॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषाभाष्य

(प्रथम खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्ता

श्री आचार्य भद्रसेनजी

प्रकाशक

आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

तृतीयावृत्ति ५०० | सं० २००८ वि० | मूल्य ६) रुपये

बाबू मथुराप्रसाद शिवहरे के प्रबन्ध से
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग प्रेस, अजमेर में
मुद्रित।

ऋग्वेद के प्रथम खण्ड की भूमिका

(तृतीय-संस्करण)

वेद शब्द पर विचार

'वेद' शब्द दो प्रकार का है, एक आद्युदात्त 'वेद', दूसरा अन्तोदात्त वेद। पाणिनि ने उञ्छादि (६ । १ । १६०) और वृषादि (६।१।२०३) दो गणों में वेद शब्द पढ़ा है। इनमें से उञ्छादि-पठित करण अर्थ में 'वेद' अन्तोदात्त है, और वृषादि गण का शेष सब अर्थों में आद्युदात्त है।

आद्युदात्त 'वेद' शब्द वेद अर्थ में ऋग्वेद में एक स्थान पर भी नहीं आया। १४ स्थानों पर 'वेदः' पद है परन्तु वह सर्वत्र 'धनवाची' 'वेदस्' शब्द है। अथर्ववेद में 'वेद' दो वार केवल 'वेद' (ज्ञानमय, मन्त्रमय वस्तु) अर्थ में आया है। जैसे—

(१) एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते।

अथर्व० ७ । ५१ । १ ॥

(२) ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम्॥

अथर्व० १५ । ३ । ७ ॥

इन दोनों स्थलों पर ही ऋक्, साम, यजु आदि का भी प्रसङ्ग है। इसी प्रकार यजुर्वेद में एक स्थान पर है।

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः।

यजु० १९ । ७८ ॥

वेदों में अनेक स्थलों पर वेद वाचक वाक्, गीः, वर्चस् आदि शब्दों का प्रयोग है।

'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति

'वेद' शब्द की प्राचीन विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति की है। जैसे—

१ वेदेन वै देवा असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त। तद् वेदस्य वेदत्वम्॥ तै० सं० १।४।२०॥

वेद से देवों ने असुरों का प्राप्य धन प्राप्त किया, यही वेद को 'वेद' कहने का निमित्त है।

(२) वेदिर्देवेभ्यो निलायत तां वेदेनान्वविन्दन्।
वेदेन विविदुः वेदिं पृथिवीम्॥ तै० ब्रा० ३।३।९।६९॥

देवों से वेदि छिप गई। उसको वेद से प्राप्त किया।

(३) आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दति, इत्यायुर्वेदः॥
सुश्रुत सू० १।१४॥

(४) आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः॥ चरक सू० ३०।२०॥

इन्हीं सब आशयों को लेकर बाद के भाष्यकारों ने भी 'वेद' की अनेक व्युत्पत्तियां लिखी हैं। जैसे—श्री स्वामी दयानन्द ऋग्वेद भाष्य-भूमिका में—विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति, अथवा 'विन्दन्ते लभन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्य विद्या यैर्येषु वा ते वेदाः।'

इस प्रकार 'विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विद्लृ लाभे, विद विचारणे' आदि चार धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में प्रत्यय करके 'वेद' शब्द सिद्ध किया है।

चारों वेदों का एक साथ आविर्भाव

चारों वेदों मे से सबसे प्रथम ऋग्वेद गिना जाता है। ऋग्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों में कौन वेद प्रथम उत्पन्न हुआ यह प्रश्न करना निरर्थक है। वेद ज्ञान नित्य है। क्योंकि उस ज्ञान का आश्रय परमेश्वर नित्य है। हमारे बोल-चाल के व्यवहार मे ऋग्वेद के नाम को प्रायः प्रथम कहते हैं इससे ऋग्वेद का प्राथम्य है। वैदिक साहित्य में जहां कहीं भी वेदों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वहां चारो वेदो का एक साथ ही उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे पुरुष सूक्त मे—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥
ऋ० १० । ९० । ९ ॥ यजु० ३१ । ७ ॥

यस्माद् ऋचोऽपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥
अथर्व० १० । ७ । २० ॥

स्तोम आत्मा छन्दांसि अंगानि यजूंषि नाम। साम तनूः०,
यजु० १२ । ४ ॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्म उपवर्हणम्। साम आसद उद्गीथ उपाश्रयः ॥ ७ ॥
अथर्व० १५ । ३ । ६ ॥

कालाद् ऋचः समभवन् यजुः कालादजायत।
अथर्व० १९ । ५९ । ३ ॥

उक्त सब उदाहरणों में सर्वहुत् यज्ञ, सुपर्ण, काल, स्कम्भ ये सब वेद-प्रतिपादित पदार्थ कोई भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं, प्रत्युत सभी परमेश्वर के नाम है। तब उस परम ज्ञानमय परमेश्वर के बीच में ओत-

प्रोत इन वेदों की परस्पर अर्वाचीनता और प्राचीनता की विध बैठाना बड़ा हास्यजनक है। परमेश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और जीवों को भी उत्पन्न किया, और साथ ही उनके लिये ज्ञानमय वेदों का भी प्रकाश किया।

वेद कैसे प्रकट हुए ?

वेद मन्त्र कैसे प्रकट हुए ? यह प्रश्न सभी विद्वानों ने अपने अपने ढंग से सरल किया है। वेदों को अनादि काल का ईश्वरीय ज्ञान मानने वालों ने ऋषियों को वेदमन्त्रों का कर्त्ता नहीं माना, प्रत्युत मन्त्रों का द्रष्टा स्वीकार किया है। जैसा निरुक्त में यास्काचार्य ने लिखा है कि—

साक्षात्-कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। ते अवरेभ्योऽसाक्षात्-कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। निरु० अ० १। ६। ४॥

ऋषियों ने धर्म को साक्षात् किया। उन्होंने दूसरे लोगों को, जिन्होंने कि मन्त्रों को साक्षात् नहीं किया था, उपदेश द्वारा मन्त्र प्रदान किये।

सबसे प्रथम किसने साक्षात् किया ?

ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। श० ११। अ० ५॥

अग्नि, वायु और आदित्य तपस्या युक्त इन तीनों से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीनों प्रकट हुए। इसी का मनु ने अनुवाद किया है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्-यजुः-साम-लक्षणम्॥

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदि इनसे सनातन 'त्रय' अर्थात् ऋग्, यजुः, साम इनका दोहन किया अर्थात् इनको उनसे प्राप्त किया। ये अग्नि आदि जड़ पदार्थ नहीं, प्रत्युत लक्षण से वे सजीव पुरुष हैं। क्योंकि पुरुषों को ही ज्ञान होना सम्भव है, जड़ों को नहीं।

शांखायन श्रौत सूत्र में ऋग्वेद के सम्बन्ध में सबसे प्रथम प्रवक्ता 'अग्नि' को ही स्वीकार किया है।

नमो अग्नय उपदेष्ट्रे, नमो वायव उपश्रोत्रे, नम आदित्यायानुख्यात्रे।

इस संकल्प में अग्नि को उपदेष्टा, वायु को उपश्रोता और आदित्य को अनुख्याता स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सम्प्रदाय-परम्परा से ऋग्वेद का प्रथम उपदेष्टा अग्नि है।

क्या ऋषि मन्त्रों को रचनेवाले हैं ?

प्रथम आक्षेप

वेद पर ऐतिहासिक आपत्तियें तब आती हैं जब ऋषियों को वेद-मन्त्रों का कर्त्ता मान लिया जाता है। इसलिये प्रथम इसी पर कुछ विचार करना चाहिये कि क्या जिन ऋषियों का मन्त्रों के साथ नाम लिखा मिलता है, वे उसके द्रष्टा हैं या कर्त्ता हैं।

मन्त्रकृत्, मन्त्रकार आदि शब्दों का प्रयोग

(१) चारों वेदों मे (ऋ० ९ । ११४ । २) मे केवल एक स्थान पर 'मन्त्रकृत्' शब्द का प्रयोग है। यथा.—

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधांपतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव।

ऋ० ९ । ११४ । २ ॥

इसी प्रकार—

शिशुर्वा अङ्गिरसां मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्। स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत्। तां० ब्रा० १३ । ३ । २४ ॥

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः मन्त्रपतिभ्यो मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परादुः। माऽहम् ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम् ॥ तै० आ० ४ । १ । १ ॥

मन्त्रकृतो वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतो वृणीत इति विज्ञायते ॥ आप० श्रौ० २४ । ५ । ६ ॥

तान् एोवाच काद्रवेयः सर्प ऋषिर्मन्त्रकृत् ॥ ऐ० ब्रा० ६।१।

अथ येषामु ह मन्त्रकृतो न स्युः स पुरोहितप्रवरास्ते प्रवृणीरन् ॥ आप० श्रौ० २४ । १० । १३ ॥

इत ऊर्ध्वान्मन्त्रकृतोऽध्वर्युर्वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतोवृणीत इति विज्ञायते ॥ सत्या० श्रौ० २ । १ । ३ ॥

दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः ॥ मा० गृ० सू० १।८।२॥

दक्षिणतस्तिष्ठन् मन्त्रवान् ब्राह्मण आचार्यायैकाञ्जलिं पूरयेत्॥ गो० गृ० सू० २ । ४ । १० ॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ पाणिनि अ० ३ । २ । ८९ ॥ कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् ॥

इन उद्धरणों में 'मन्त्रकृत्' शब्द का प्रयोग आया है ।

इन उद्धरणों में ऋषि शब्द के साहचर्य से 'कृत्' का अर्थ द्रष्टा ही है ।

स्वयं आचार्य सायण को यह बात खटकी कि जब वेद अपौरुषेय हैं तो 'मन्त्रकृत्' अर्थात् मन्त्र बनाने वाले कैसे हैं ? सायण ने ऋषि शब्द के साहचर्य से स्पष्टार्थ कर दिया है कि—

यद्यप्यपौरुषेये वेदे कर्त्तारो न सन्ति तथापि कल्पादावीश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्रकृदित्युच्यन्ते ॥ तै० आ० सा० भा० ४ । १ । १ ॥

अपौरुषेय वेद में मन्त्रों के बनाने वाले नहीं होते तो भी कल्प के आदि में, ईश्वर के अनुग्रह से, मन्त्रों के पाने वाले 'मन्त्रकृत्' कहाते हैं । इसमें सायणने 'कल्प के आदि में' यह शर्त्त व्यर्थ ही लगाई है । मन्त्रों का लाभ करना और उनका अर्थ दर्शन करना आगे भी हो सकता है । ईश्वर के अनुग्रह के अतिरिक्त गुरु के अनुग्रह से भी मन्त्रों का लाभ या

दर्शन होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण के भाष्य में सायण ने अपना अभिप्राय ठीक प्रकार से खोल दिया है।

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत्। करोतिधातुस्तत्र दर्शनार्थः॥

ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों को देखने वाला 'मन्त्रकृत्' है। 'करोति' धातु का यहां अर्थ देखना है। मन्त्र का दर्शन अर्थात् मन्त्रार्थ का साक्षात्कार करने वाला 'मन्त्रकृत्' है। परन्तु इस शब्द का अर्थ-विस्तार और भी अधिक है। सुवर्ण आदि उपपद लगकर 'कृ' धातु से बने अन्य प्रयोगों पर भी दृष्टि करनी चाहिये। सुवर्णकार, चर्मकार, लोहकार आदि शब्दों से सुवर्ण, चर्म, लोह आदि के नाना विकृत पदार्थ बनाने वाले पुरुष ही सुवर्णकार (सुनार), चर्मकार (चमार) और लोहकार (लोहार) कहाते हैं। ठीक उसी प्रकार 'मन्त्रकार' शब्द का भी अर्थ मन्त्र बनाने वाला नहीं, प्रत्युत मन्त्र के विकार अर्थात् विविध रूप उत्पन्न करके उन द्वारा कल्पोक्त यज्ञादि विधान करने में कुशल पुरुष ही 'मन्त्रकृत' या 'मन्त्रकार' शब्द से कहा जाता है। वही 'मन्त्रवान्' ब्राह्मण भी कहा गया है।

वैदिक साहित्य में ऋषि आदि शब्द का प्रयोग बिलकुल उसी अर्थ में होता रहा है जिस अर्थ में अर्वाचीन साहित्य में 'आचार्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। गुरु या आचार्य के अर्थ मे 'मन्त्रकृत्' शब्द का भी प्रयोग होता रहा है।

महर्षि दयानन्द ने भी, ऋषि शब्द का वैदिक प्रयोग, विद्वान् गुरु शिष्यों में ही होता हुआ बतलाया है। जैसे ऋग्वेद मण्डल १।सू० १।मन्त्र २।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि—

"विद्या को पढे हुए, अद्य के और पुराने मन्त्रार्थ देखने वाले, अध्यापक, तर्क, कारण पदार्थों में विद्यमान प्राण ये 'पूर्व ऋषि' का अर्थ

है। निरुक्तकार का यह कथन है कि—ऋषियों की इसी में प्रशंसा है कि नाना प्रकार के अभिप्रायों से ऋषियों की मन्त्रदृष्टियां होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि—न्यून या अधिक अभिप्राय से मन्त्रार्थों के ज्ञानों से वे प्रशंसा के योग्य होते हैं। ऋषियों की मन्त्रों मे नाना दृष्टि का तात्पर्य यह है कि उनको बड़े पुरुषार्थ से मन्त्रों के अर्थ ठीक ठीक प्रकार साक्षात् हो जाते हैं।"

"जो लोग मन्त्रार्थों को जान लेते हैं वे धर्म और विद्या का प्रचार करते हैं, सत्योपदेश से सब पर अनुग्रह करते हैं, छल रहित, मोक्ष धर्म की साधना के लिये ईश्वर की उपासना करते हैं और इच्छानुरूप फल प्राप्त करने के लिये भौतिक अग्नि आदि के गुणों को जान कर कार्य साधते हैं वे मनुष्य भी 'ऋषि' शब्द से ग्रहण किये जाते हैं।"

'नूतन ऋषि' वेद के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, नवीन तर्क, कार्य पदार्थों में स्थित प्राण हैं। फलतः महर्षि दयानन्द ने ऋषि शब्द से अध्यापक, आचार्य, गुरु तथा उत्तम तपस्वी शिष्य और वेदाध्यायी ब्रह्मचारी का भी वास्तविक अर्थ दर्शाया है।

कात्यायन ऋषि की जिस सर्वानुक्रमणी की पंक्तियों को योरोपियन लोग अपने पक्ष के पोषण में उद्धृत करते हैं कात्यायन की वही सर्वानुक्रमणी उनके मन्तव्य का खण्डन कर देती है, उसमें प्रत्येक मण्डलद्रष्टा ऋषि के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत्। वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत्। बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्। सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत्। इत्यादि॥

अर्थात् गृत्समद ने दूसरा मण्डल देखा। गाथिन विश्वामित्र ने तीसरा मण्डल देखा। वामदेव गौतम ने चौथा मण्डल देखा। बार्हस्पत्य भरद्वाज ने छठा मण्डल देखा। सातवां मण्डल वसिष्ठ ने देखा।

इत्यादि सर्वत्र 'दृश्' धातु का ही प्रयोग है । किसी स्थान पर भी ऋषियों का प्रतिपादन करते हुए कात्यायन ने 'चकार', 'कृतवान्' इत्यादि का प्रयोग नही किया ।

जिस प्रकार लोक मे 'राजकृत' आदि शब्दों का प्रयोग राजा को नियत करने अर्थ मे हैं । इसी प्रकार वेदमन्त्रों को नियत रूप से स्थिर, सुरक्षित रखने वाले विद्वान् 'मन्त्रकृत्' थे ।

दूसरा आक्षेप

विद्वानों का कथन है कि जिन ऋषियों का नाम मन्त्रो पर लिखा मिलता है वे ही मन्त्रो के रचने वाले हैं । आर्य लोगों ने वेद को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिये मन्त्र रचने वाले ऋषियों का नाम 'मन्त्रद्रष्टा' रख दिया है । उनही की बनाई स्तुतियो का संग्रह करके पीछे से 'ऋग्वेद' बना है ।

उत्तर—बहुत से वेदमन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि न होकर कई ऋषि हैं । जैसे गोपथ मे लिखा है—

तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत् । एवात्वामिन्द्र वज्रिन्० (ऋ० ४ । १९) तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवो असृजत ॥ गो० ब्रा० ६ । १ ॥

सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा । इस उद्धरण में दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि मन्त्र (ऋ० ४ । १९) पहले विद्यमान थे, उनको प्रथम विश्वामित्र ने देखा अर्थात् उसने उनका क्रियाकाण्ड सबसे प्रथम साक्षात् किया । और फिर वामदेव ने पुनः उनको ही देखा । दो ऋषि एक ही सूक्त-मन्त्रों के कर्ता नहीं हो सकते । दूसरे 'सम्पात' यह मन्त्रों द्वारा किये कर्मकाण्ड का सकेत है । उस कर्मकाण्ड के नाम से ही मन्त्रों का नाम भी 'सम्पात मन्त्र' हुआ । वह विशेष कर्मयोग का देखना ही विश्वामित्र और वामदेव का ऋषि,

है। निरुक्तकार का यह कथन है कि—ऋषियों की दृष्टि में प्रशंसा है कि नाना प्रकार के अभिप्रायों से ऋषियों को मन्त्रदृष्टियां होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि—न्यून या अधिक अभिप्राय से मन्त्रार्थों के ज्ञानों से वे प्रशंसा के योग्य होते हैं। ऋषियों की मन्त्रों में नाना दृष्टि का तात्पर्य यह है कि उनको बड़े पुरुषार्थ से मन्त्रों के अर्थ ठीक ठीक प्रकार साक्षात् हो जाते हैं।"

"जो लोग मन्त्रार्थों को जान लेते हैं वे धर्म और विद्या का प्रचार करते हैं, सत्योपदेश से सब पर अनुग्रह करते हैं, छल रहित, मोक्ष धर्म की साधना के लिये ईश्वर की उपासना करते हैं और इच्छानुरूप फल प्राप्त करने के लिये भौतिक अग्नि आदि के गुणों को जान कर कार्य साधते हैं वे मनुष्य भी 'ऋषि' शब्द से ग्रहण किये जाते हैं।"

'नूतन ऋषि' वेद के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, नवीन तर्क, कार्य पदार्थों में स्थित प्राण हैं। फलतः महर्षि दयानन्द ने ऋषि शब्द से अध्यापक, आचार्य, गुरु तथा उत्तम तपस्वी शिष्य और वेदाध्यायी ब्रह्मचारी का भी वास्तविक अर्थ दर्शाया है।

कात्यायन ऋषि की जिस सर्वानुक्रमणी की पङ्क्तियों को योरोपियन लोग अपने पक्ष के पोषण में उद्धृत करते हैं कात्यायन की वही सर्वानुक्रमणी उनके मन्तव्य का खण्डन कर देती है, उसमें प्रत्येक मण्डलद्रष्टा ऋषि के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत्। वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत्। बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्। सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत्। इत्यादि॥

अर्थात् गृत्समद ने दूसरा मण्डल देखा। गाथिन विश्वामित्र ने तीसरा मण्डल देखा। वामदेव गौतम ने चौथा मण्डल देखा। बार्हस्पत्य भरद्वाज ने छठा मण्डल देखा। सातवां मण्डल वसिष्ठ ने देखा।

इत्यादि सर्वत्र 'दृश्' धातु का ही प्रयोग है। किसी स्थान पर भी ऋषियों का प्रतिपादन करते हुए कात्यायन ने 'चकार', 'कृतवान्' इत्यादि का प्रयोग नहीं किया।

जिस प्रकार लोक मे 'राजकृत' आदि शब्दों का प्रयोग राजा को नियत करने अर्थ मे हैं। इसी प्रकार वेदमन्त्रों को नियत रूप से स्थिर, सुरक्षित रखने वाले विद्वान् 'मन्त्रकृत्' थे।

दूसरा आक्षेप

विद्वानों का कथन है कि जिन ऋषियों का नाम मन्त्रो पर लिखा मिलता है वे ही मन्त्रो के रचने वाले हैं। आर्य लोगों ने वेद को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिये मन्त्र रचने वाले ऋषियों का नाम 'मन्त्रद्रष्टा' रख दिया है। उनही की बनाई स्तुतियो का संग्रह करके पीछे से 'ऋग्वेद' बना है।

उत्तर—बहुत से वेदमन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि न होकर कई ऋषि हैं। जैसे गोपथ मे लिखा है—

तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्। एवात्वामिन्द्र वज्रिन्० (ऋ० ४। १९). तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवो असृजत॥ गो० ब्रा० ६। १॥

सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा। इस उद्धरण में दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि मन्त्र (ऋ० ४। १९) पहले विद्यमान थे, उनको प्रथम विश्वामित्र ने देखा अर्थात् उसने उनका क्रियाकाण्ड सबसे प्रथम साक्षात् किया। और फिर वामदेव ने पुनः उनको ही देखा। दो ऋषि एक ही सूक्त-मन्त्रों के कर्ता नहीं हो सकते। दूसरे 'सम्पात' यह मन्त्रों द्वारा किये कर्मकाण्ड का संकेत है। उस कर्मकाण्ड के नाम से ही मन्त्रों का नाम भी 'सम्पात मन्त्र' हुआ। यह विशेष कर्मयोग का देखना ही विश्वामित्र और वामदेव का ऋषि,

वेदमन्त्रद्रष्टा होने का कारण है। अनुक्रमणीकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के देखने वाले ऋषियों को ब्राह्मण ग्रन्थों से देख कर ही मन्त्रों के ऋषि आदि का निर्णय किया है।

प्राचीन विद्वानों के मन्तव्यानुसार ऋषियों का आप्त होना भी इसी आधार पर था कि वे वेदमन्त्रों के भीतर सत्य धर्मों का साक्षात् करके उपदेशों का प्रवचन करते थे। जैसा कि गौतम-प्रणीत न्याय-दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन ने लिखा है—

आप्तः खलु साक्षात्-कृतधर्मा। न्याय० १ । १ । ७ ॥ य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च। न्याय० २ । २ । ६७ ॥

धर्म का साक्षात् करने वाले आप्त हैं। वे आप्त ही वेदार्थों के देखने और प्रवचन करने वाले होते हैं।

वेद में ऐसे सूक्त हैं जिनके दो दो (ऋ० ८ । १४) तीन तीन, पांच पांच (ऋ० १ । १००) ऋषि हैं। एक सूक्त (ऋ० ९ । ६६) के सौ ऋषि हैं। अनुक्रमणी के सूत्रों में 'वा' का लिखना संदेहजनक नहीं है, प्रत्युत पूर्व कहे ऋषि की अनुवृत्ति को दिखाता है। अर्थात् प्रयोग काल में किसी भी एक ऋषि का स्मरण होना चाहिये।

तीसरा आक्षेप

मन्त्रों में भी इन कर्त्ता ऋषियों के नामों का उल्लेख है जैसा प्रायः कवि लोग अपना संकेत नाम देते हैं।

उत्तर—यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। अर्वाचीन सोरठे आदि में कवि का नाम अनर्थक, असम्बद्ध सा रहता है। वेद के सूक्तों में वे पद जो ऋषि नाम हैं विशेष अभिप्राय को लिये होते हैं। यदि उनका वास्तविक अर्थ लुप्त कर दिया जाय तो वेद-मन्त्र का सत्यार्थ समझ में नहीं आ सकता। सत्य बात तो यह है कि द्रष्टा ऋषि का नाम भी उन विशेष पदों के कारण ही पड़ा है। ऋजिश्वा, वृषागिर, भयमान आदि

वेद के रहस्य भरे शब्दो वाली ऋचाओ के द्रष्टा ऋषि भी उपचार से उन्ही नामों से पुकारे गये। ऐसा ही एक दृष्टान्त हमने अथर्ववेद भाषाभाष्य चौथे खण्ड की भूमिका में दर्शाया है। वहां कुन्ताप सूक्तों के द्रष्टा ऋषि 'एतश' हैं। यह नाम उनका सूक्त के प्रथम पद 'एता अश्वा०' इन दो पदों का विकृत रूप है।

चौथा आक्षेप

वेदमन्त्रो मे मन्त्र, ब्रह्म, स्तोम आदि बनाने की सूचना प्राप्तहोती है।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।

ऋ० ५। १। १२॥

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।

ऋ० ५। २९। १५॥

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।

ऋ० ४। १७। २१॥

उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व। ऋ० ४। ३। १५॥

आ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ् उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः॥

ऋ० १। १७७। ५॥

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माणि० ॥ ऋ० १। ६३। ९॥

इन सभी स्थानों पर नये ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्र बनाये जाकर इष्ट-देव को अर्पित किये गये प्रतीत होते हैं।

उत्तर—थोडा सा भी विचार करें तो आक्षेप-कर्त्ता भ्रम में प्रतीत होते हैं। वे 'अकारि' आदि प्रयोगो को भूत काल का कैसे मान लेते हैं? वेद मे जितने भी लकार प्रयुक्त हैं उनके लिये काल का कोई अवधारण नहीं। वेद मे केवल लकारों को देखकर काल का निर्णय करना बडी

गहरी भूल है। धातुसम्बन्धाधिकरण में पाणिनिसूत्र है—छन्दसि लुङ्-लङ्लिटः ॥३।४।६॥ इस सूत्रसे सब कालों में लुङ्, लङ्, लिट् होते हैं। ये तीनों ही लकार लौकिक संस्कृत में भूतकाल में ही होते हैं। धातुसम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो वहां काल की बिना अपेक्षा किये वर्त्तमान या अपेक्षित काल का अर्थ प्राप्त होगा। इस प्रकार से 'अकारि ते इन्द्र गोतमेभिः' इस वेदवाक्य का अर्थ है—हे इन्द्र! गोतम जन तेरी स्तुति करते हैं, या करें। यहां हे इन्द्र! गोतमों ने तेरी स्तुति की। ऐसा अर्थ यह वेद के व्याकरण को समझ कर किया जाता है। साथ ही इसमें कोई कारण नहीं कि 'गोतम' का अर्थ यहां गोतम के सन्तान या शिष्य ऋषि ही लिये जावें और इन्द्र का अर्थ कोई कल्पित देव ही लिया जावे। जिस रीति से 'ब्रह्माणि' का अर्थ स्तुतियां या वेदमन्त्र है क्या उसी रीति से 'गोतम' का अर्थ विद्वान् जन और 'इन्द्र' का अर्थ परमेश्वर नहीं होता है? तब वेद मन्त्र का सरल स्पष्ट अर्थ यह है कि उत्तम वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष परमेश्वर के विषयक वेद मन्त्रों का ज्ञान करें। यहां लुङ् लकार केवल धातुसम्बन्ध में कालों की अपेक्षा विना किये ही हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र जहां भी 'ब्रह्म', 'ब्रह्माणि' आदि पद और 'ततक्ष' आदि पदों का प्रयोग है वहां वहां इसी प्रकार निरुक्त के अनुसार अर्थ लेना चाहिये। ऐसा न करने से निरुक्त तथा छन्दोविषयक व्याकरण सूत्र निरर्थक हो जायेंगे।

ऋग्वेद संहिता, प्रकृति और विकृति

शौनकीय चरण-व्यूह में ऋग्वेद के सम्बन्ध में नीचे लिखा परिचय दिया गया है।

(१) तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति।

१ ऋग्वेदस्याष्टौ भेदा भवन्ति इति पाठभेदः।

ऋग्वेद के आठ स्थान हैं (१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) ऐतरेय ब्राह्मण और (४) ऐतरेयारण्यक, (५) शांखायन और (६) माण्डूक, (७) कौषीतकि-ब्राह्मण और (८) कौषीतकि-आरण्यक। अथवा वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियें जैसे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन ये ८ भेद कहाते हैं।

(२) चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीयपारः ॥

चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीयपार ये ऋग्वेद के चार पाद कहाते हैं। ऋग्वेद के ये चार पाद अनुबन्ध-चतुष्टय के समान हैं। केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना 'चर्चा' है। उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु 'श्रावक' कहाता है। उसका अध्येता शिष्य 'चर्चक' कहाता है। श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना 'श्रवणीयपार' कहाता है। इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है।

(३) क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम्।

क्रमपार, क्रमपद, क्रमजटा, क्रमदण्ड, ये चार प्रकार के पारायण कहे हैं। जिस क्रम से संहिता पढ़ी गयी है उसको 'क्रमपार' कहते हैं। संहितानुसार पद पाठ 'क्रमपद' कहाता है। अग्निम् ईळे। ईळे अग्निम्। अग्निम् ईळे। ईळे पुरोहितम्। पुरोहितम् ईळे० इत्यादि क्रम से पारायण करना 'क्रमजटा' कहाती है। इसी प्रकार अग्निमीळे, ईळेऽग्निम्। अग्निमीळे ईळे पुरोहितमीळेऽग्निमीळे पुरोहितम्। इस प्रकार 'क्रमदण्ड' कहा जाता है। जटा, माला, शिखा आदि आठ प्रकार के विकार भी केवल विद्यार्थियों को संहिता के स्मरण करने के उपकारक होने से बाद के अध्यापकों ने नाना भेद कर लिये हैं। उनको अनावश्यक विस्तार होने से यहां नहीं लिखते।

भारी भूल है। धातुसम्बन्धाधिकरण में पाणिनिसूत्र है—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥३।४।६॥ इस सूत्र से सब कालों में लुङ्, लङ्, लिट् होते हैं। ये तीनों ही लकार लौकिक संस्कृत में भूतकाल में ही होते हैं। धातुसम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो वहां काल की बिना अपेक्षा किये वर्तमान या अपेक्षित काल का अर्थ प्राप्त होगा। इस प्रकार से 'ब्रह्माणि ते इन्द्र गोतमेभिः' इस वेदवाक्य का अर्थ है—हे इन्द्र! गोतम जन तेरी स्तुति करते हैं, या करें। यहां हे इन्द्र! गोतमों ने तेरी स्तुति की। ऐसा अर्थ सब वेद के व्याकरण को समाप्त कर दिया जाता है। साथ ही इसमें कोई कारण नहीं कि 'गोतम' का अर्थ यहां गोतम के सन्तान या शिष्य ऋषि ही लिये जावें और इन्द्र का अर्थ कोई वर्णित देव ही लिया जावे। जिस रीति से 'ब्रह्माणि' का अर्थ स्तुतियां या वेदमन्त्र है क्या इसी रीति से 'गोतम' का अर्थ विद्वान् जन और 'इन्द्र' का अर्थ परमेश्वर नहीं होता है? तब वेद मन्त्र का सरल स्पष्ट अर्थ यह है कि उत्तम वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष परमेश्वर के विषयक वेद मन्त्रों का ज्ञान करें। यहां लुङ् लकार केवल धातुसम्बन्ध से कालों की अपेक्षा बिना किये ही हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र जहां भी 'ब्रह्म', 'ब्रह्माणि' आदि पद और 'ततक्ष' आदि पदों का प्रयोग है वहां वहां इसी प्रकार निरुक्त के अनुसार अर्थ लेना चाहिये। ऐसा न करने से निरुक्त तथा छन्दोविषयक व्याकरण सूत्र निरर्थक हो जायेंगे।

ऋग्वेद संहिता, प्रकृति और विकृति

शौनकीय चरण-व्यूह में ऋग्वेद के सम्बन्ध में नीचे लिखा परिचय दिया गया है।

(१) तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ* स्थानानि भवन्ति।

---

* ऋग्वेदस्याष्टौ भेदा भवन्ति इति पाठभेदः।

ऋग्वेद के आठ स्थान हैं (१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) ऐतरेय ब्राह्मण और (४) ऐतरेयारण्यक, (५) शांखायन और (६) माण्डूक, (७) कौषीतकि-ब्राह्मण और (८) कौषीतकि-आरण्यक । अथवा वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियें जैसे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन ये ८ भेद कहाते हैं ।

(२) चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीयपारः ॥

चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीयपार ये ऋग्वेद के चार पाद कहाते हैं । ऋग्वेद के ये चार पाद अनुबन्ध-चतुष्टय के समान हैं । केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना 'चर्चा' है । उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु 'श्रावक' कहाता है । उसका अध्येता शिष्य 'चर्चक' कहाता है । श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना 'श्रवणीयपार' कहाता है । इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है ।

(३) क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम् ।

क्रमपार, क्रमपद, क्रमजटा, क्रमदण्ड, ये चार प्रकार के पारायण कहे हैं । जिस क्रम से संहिता पढ़ी गयी है उसको 'क्रमपार' कहते हैं । संहितानुसार पद पाठ 'क्रमपद' कहाता है । अग्निम् ईळे । ईळे अग्निम् । अग्निम् ईळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितम् ईळे० इत्यादि क्रम से पारायण करना 'क्रमजटा' कहाती है। इसी प्रकार अग्निमीळे, ईळेऽग्निम् । अग्निमीळे ईळे पुरोहितमीळेऽग्निमीळे पुरोहितम् । इस प्रकार 'क्रमदण्ड' कहा जाता है । जटा, माला, शिखा आदि आठ प्रकार के विकार भी केवल विद्यार्थियों को संहिता के स्मरण करने के उपकारक होने से बाद के अध्यापकों ने नाना भेद कर लिये हैं । उनको अनावश्यक विस्तार होने से यहां नहीं लिखते ।

क्या एक वेद के चार वेद बनाये गये ?

वायुपुराण में लिखा है —

"युग बदलने पर युग के दोष से ब्राह्मण मन्त्र क्षीण हो गये हैं। सब मन्त्र न्यून होता चला जा रहा है। थोड़ा सा रह गया है। कृतयुग की अपेक्षा दस हजार भाग बचा है। वेद का विनाश न हो जाय इसलिये वेद के भेद करते हैं। वेद का नाश हो जाने से यज्ञ और वेद आदि सब नष्ट हो जायेंगे। पहला वेद चार चरण का था। उसका परिमाण 'शतसाहस्र' (१ लाख मन्त्र) था उससे दस गुना यज्ञ (कर्मकाण्डयोग) था। ऐसा सुनकर मनु ने चतुष्पाद् वेद को चार भागों में बांट दिया।"

विष्णुपुराण (३ । ४) में लिखा है कि—

ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। केवल व्यासजी की बड़ाई करने के लिये व्यासजी के नाम पर जैसी कल्पना सूझी, वैसा कर दिया। इसी प्रकार पहले एक लक्ष मन्त्रों का होना और युग-दोष से मन्त्रों का नष्ट हो जाना और केवल दस सहस्र मन्त्रों का रह जाना यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि स्वयम्भू से लेकर ब्राह्मणकार तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। वेद के मन्त्रों, पदों और अक्षरों तक की गणना नियत है, फिर उनके लोप हो जाने और संग्रह करने आदि की सब कपोल-कल्पित बातें उन लोगों की जो वेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, गढ़ी हुई हैं और वे मनमाना, ऊटपटांग बातें योरोपीयन लेखकों और उनके अनुयायियों के समान गढ़ लेते थे। इन पुराणों की फैलाई निराधार बातों पर योरोपीयन विद्वानों ने अपनी विचित्र विचित्र कल्पनाओं का जाल फैलाया है।

पुराणों की इस कल्पना के असत्य होने में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि एक वेद होने की कल्पना वेद और ब्राह्मणों में कहीं नहीं है। उनमें आदि काल से ही चारों वेदों की सत्ता का वर्णन है।

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ॥ ऋ० ४।३५।६ ॥
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः ॥
अथर्व० १९ । ९ । १२ ॥

इस पर सायण ने लिखा है—वेदाः साङ्गाश्चत्वारः ।

वेद मे स्पष्ट है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः० ॥ ऋ० ४।५८।३॥

कठ ब्राह्मण व निरुक्त में अर्थ किया है 'चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः ।

अतएव ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा हैः—

'जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को वेदव्यासजी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है । क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे ।'

इसके अतिरिक्त हमारा इतिहास भी सब कालों मे चारों वेदों की पृथक् सत्ता को स्वीकार करता है, जैसे—

महाभारत द्रोणपर्व । अ० ५१ ॥

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः०'

आदिपर्व मे, दुष्यन्त के वर्णन में, वेदों की पृथक् पृथक् संहिताओं का वर्णन किया है—

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः । ..
अथर्ववेदप्रवराः पूर्वयाज्ञिक-संमताः ।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते । इत्यादि ॥

सम्भव है व्यास ने वैदिक साहित्य को व्यवस्थित रूप दिया हो, वे ब्राह्मणग्रन्थों व संहितादि के पाठभेद का खूब विचार कर के अपने शिष्यों को को पढ़ाया हो । इससे वह अपने काल का 'चतुर्वेद-व्यास' प्रसिद्ध हुआ हो ।

क्या एक वेद के चार वेद बनाये गये ?

वायुपुराण में लिखा है—

"युग बदलने पर युग के दोष से ब्राह्मण स्वल्प वीर्य हो गये हैं। सब कुछ न्यून होता चला जा रहा है। थोडा सा रह गया है। कृतयुग की अपेक्षा दस हजार मन्त्र भाग बचा है। वेद का विनाश न हो जाय इसलिये वेद के भेद करने हैं। वेद का नाश हो जाने से यज्ञ और देव आदि सब नष्ट हो जावेंगे। पहला वेद चार चरण का था। उसका परिमाण 'शतसाहस्र' (१ लाख मन्त्र) था उससे दस गुना यज्ञ (कर्मकाण्डप्रयोग) था। ऐसा सुनकर मनु ने चतुष्पाद् वेद को चार भागों में बांट दिया।"

विष्णुपुराण (३ । ६) में लिखा है कि—

ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। केवल व्यासजी की बड़ाई करने के लिये व्यासजी के नाम पर जैसी कल्पना सूझी, वैसा कर दिया। इसी प्रकार पहले एक लक्षमन्त्रों का होना और युग-दोष से मन्त्रों का नष्ट हो जाना और केवल दस सहस्र मन्त्रों का रह जाना यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि स्वयम्भू से लेकर ब्राह्मणकार तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। वेद के मन्त्रों, पदों और अक्षरों तक की गणना नियत है, फिर उनके लोप हो जाने और संग्रह करने आदि की सब कपोल-कल्पित बातें उन लोगों की जो वेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, गढ़ी हुई है और वे मनमाना, ऊटपटांग बातें योरोपीयन लेखकों और उनके अनुयायियों के समान गढ लेते थे। इन पुराणों की फैलाई निराधार बातों पर योरोपीयन विद्वानों ने अपनी विचित्र विचित्र कल्पनाओं का जाल फैलाया है।

पुराणों की इस कल्पना के असत्य होने में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि एक वेद होने की कल्पना वेद और ब्राह्मणों में कहीं नहीं है। उनमें आदि काल से ही चारों वेदों की सत्ता का वर्णन है।

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ॥ ऋ० ४।३५।६ ॥
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः ॥
अथर्व० १९ । ९ । १२ ॥

इस पर सायण ने लिखा है—वेदाः साङ्गाश्चत्वारः ।

वेद मे स्पष्ट है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः० ॥ ऋ० ४।५८।३॥

कठ ब्राह्मण व निरुक्त में अर्थ किया है 'चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतुदुक्ताः ।

अतएव ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है:—

'जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को वेदव्यासजी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है । क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे ।'

इसके अतिरिक्त हमारा इतिहास भी सब कालों मे चारों वेदों की पृथक् सत्ता को स्वीकार करता है, जैसे—

महाभारत द्रोणपर्व । अ० ५१ ॥

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः०'

आदिपर्व मे, दुष्यन्त के वर्णन में, वेदों की पृथक् पृथक् संहिताओं का वर्णन किया है—

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः ।
अथर्ववेदप्रवराः पूर्वयाज्ञिक-संमताः ।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते । इत्यादि ॥

सम्भव है व्यास ने वैदिक साहित्य को व्यवस्थित रूप दिया हो, वे ब्राह्मणग्रन्थों व संहितादि के पाठभेद का खूब विचार कर के अपने शिष्यों को को पढ़ाया हो । इससे वह अपने काल का 'चतुर्वेद-व्यास' प्रसिद्ध हुआ हो ।

ऋग्वेद की २१ शाखाएं

पतंजलि ने महाभाष्य में लिखा है:—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् ॥

'बाह्वृच् अर्थात् ऋग्वेद की २१ शाखाएं हैं। प्रपञ्च हृदय के 'वेद प्रकरण' में साम और बाह्वृच् की १२। १२ अवशिष्ट शाखा गिनाई हैं। जैसे—

ऐतरेय-बाष्कल-कौषीतकी-जानन्ति बाहवि-गौतम-शाकल्य-बाभ्रव्य-पैङ्ग-मुद्गल-शौनकशाखाः—

परन्तु चरणव्यूहकार महिदास ने शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकेय ये पांच प्रकार की शाखाएं बतलाई हैं। वस्तुतः ये पांच 'चरण' हैं।

प्रथम चरण—शाकल शाखाएं

(१) मुद्गल शाखा—वेदमित्र शाकल्य के पांच शिष्य हुए मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और शौशिरि, इनमें प्रथम मुद्गल का नाम 'बृहद्देवता' में शौनक ने स्मरण किया है—

मन्यते शाकपूणिस्तु भार्म्यश्वश्चैव मुद्गलः ॥ अ० ४ । ४६ ॥

मुद्गलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकटायनः ॥ अ० ९ । ९० ॥

यह मुद्गल सम्भवतः शाकल्य का शिष्य रहा। इसके पिता का नाम भृम्यश्व होगा।

मुद्गलानामाङ्गिरसभार्म्यश्वमौद्गल्येति। तार्क्ष्य हैके ब्रुवते अतीत्याङ्गिरस-तार्क्ष्य-भार्म्यश्व-मौद्गल्येति ॥

इस लेख से प्रतीत होता है कि भृम्यश्व के सन्तान मुद्गल ही ऋग्वेद के चरणकार थे, वे अर्थद्रष्टा होने से ऋषि हैं, और उनका आम्नाय 'ऋग्वेद' मुद्गल-शाखा थी। आङ्गिरस उनके त्रिप्रवर में से एक है। इस एक दृष्टान्त से एक गुत्थी यह भी सुलझती प्रतीत होती है कि शाखा व

चरण ऋग्वेदाम्नाय के अति प्राचीन काल से रहे होंगे, पैल के शिष्यो के नाम से उनका शाखा मानना कुछ असगत होगा।

(२) गालव शाखा—की सहिता अप्राप्त है। यह पांचाल देश (रोहेलखण्ड के समीप) का वासी था। इसका दूसरा नाम बाभ्रव्य था। कामसूत्र मे इसको बाभ्रव्य पाञ्चाल कहा गया है। ऋग्वेद के क्रम-पाठ का निर्माता यही था। चरक मे कही ऋषि-सभा मे 'गालव' विद्यमान हैं। युधिष्ठिर की दिव्य धर्मसभा मे 'गालव' उपस्थित थे। यही बाभ्रव्य गोत्री पांचाल देश के महामन्त्री पद पर रहे है। जैसे—मत्स्य पुराण मे दक्षिण पञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का मन्त्री सुबालक बाभ्रव्य था। बाभ्रव्य को ही मत्स्य मे ऋग्वेद का क्रमपाठ-कर्त्ता माना है। इस सम्प्रदाय का आम्नाय पूर्वकाल से ही पृथक् रहा और यज्ञादि कर्मकाण्ड में भी इनका अन्य देशीय आचार्यों से मतभेद रहा है। जैसे ऐतरेय (५। ३) में महाव्रताध्ययन के पाठ समाप्त करने मे चातुकर्ण्य और गालव का मतभेद दर्शाया है।

(३) शालीय शाखा—तीसरी शालीय शाखा है। वैयाकरणो ने आश्वलायनादि के साथ इस शाखा को भी स्थान दिया है।

(४) वात्स्य शाखा—चतुर्थ शाखा 'वात्स्य' है। गोत्रचरणाद्वुञ् (पा० ४। २। १०४) पर पातंजलि ने 'वात्सकम्' उदाहरण देकर इसका चरण स्वीकार किया है।

उवट ने ऋक्प्रातिशाख्य का भाष्य करते हुए भूमिका में लिखा है—

चम्पायां न्यवसत् पूर्वं वत्सानां कुलमृद्धिमत्।
यस्मिन् द्विजवरा जाताः बाह्वृचाः पारमोत्तमाः॥
देवमित्र इति ख्यातस्तस्मिञ्जातो महामतिः।
स वै पारिषदे श्रेष्ठः सुतस्तस्य महात्मनः॥
नाम्ना तु विष्णुमित्रः स 'कुमार' इति शब्द्यते।

अर्थात्—चम्पा में वत्सों का सम्पन्न कुल था जिसमें बाह्वृच ब्राह्मण उत्पन्न हुए। उनमें देवमित्र पार्षदों का श्रेष्ठ विद्वान् था, वह 'कुमार', 'विष्णुमित्र' आदि नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(५) शैशिरि शाखा—पाँचवीं शाखा 'शैशिरि' शाखा है। अनुवाकानुक्रमणी में स्पष्ट है।

ऋग्वेदे शैशिरीयायां संहितायां यथाक्रमम्।
प्रमाणमनुवाकानां सूक्तै शृणुत शाकलाः॥

यहाँ शाकल के शिष्यों को शैशिरि संहिता के सूक्त अनुवाकादि का उपदेश किया है।

ऋक् प्रातिशाख्य के प्रारम्भ श्लोकों से विदित होता है कि यह पार्षद सूत्र शैशिरियों से ही लिया है। जिसका शाकलों को उपदेश किया है। जैसा लिखा है—

छन्दोः ज्ञानमाकारं भूतज्ञानं
छंदसो व्याप्तिं स्वर्गामृतत्वप्राप्तिम्।
अस्य ज्ञानार्थमिदमुत्तरत्र
वक्ष्ये शास्त्रमखिलं शैशिरीये॥

आचार्य व्याडि ने विकृतिवल्ली में शैशिरीय शाखा की ही विकृति दर्शाई है।

शैशिरीये समाम्नाये व्याडिनैव महर्षिणा।
जटाद्या विकृतीरष्टौ लक्ष्यन्ते नातिविस्तरम्॥

सायण भाष्य भी प्रायः शैशिरीय शाखा पर ही है। शिशिर आचार्य चन्द्रवंशी राजा शुनहोत्र के कुल मे राजा शल का पौत्र व आर्ष्टिषेण का पुत्र था।

यह आर्ष्टिषेण स्वयं याज्ञिक रहा, ऐसा इतिहास मे स्पष्ट है।

(५) पांचवां शाखा 'शाकल' है।

पतंजलि मुनि ने व्याकरण-महाभाष्य में लिखा है—

शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् । शाकल्येन सुकृतां संहितामनु निशम्य देवः प्रावर्षत् ॥

शाकल्य संहिता का पाठ सुन कर मेघ वरसा।

कात्यायन सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में—

'अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके'

द्वितीय चरण—बाष्कल शाखाएं

(१) द्वितीय चरण की प्रथम शाखा बाष्कल है।

दिति पुत्र हिरण्यकशिपु का एक पुत्र 'बाष्फल' था। भगदत्त चीन का राजा उसी का अवतार कहा गया है। परन्तु कदाचित् यह संहिता-कार न था। ब्रह्माण्ड पुराण मे लिखा है—

चतस्ताः संहिताः कृत्वा वाष्कलो द्विजसत्तमः।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हि तान्।
वोध्यां तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम्।
पाराशर्री तृतीयां तु याज्ञवल्क्य (जातूकर्ण्य) मथापराम्।

इस आचार्य से यह चरण शिष्यानुसार अनेक शाखाओं मे वंटा।

पाणिनि ने—कपिवोधादाङ्गिरसे। ४। १। १०७॥ आंगिरस वोध के पुत्र को 'वौध्य' कहा है। महाभारत मे राजा नहुष के पुत्र ययाति के काल में 'बौध्य' ऋषि का पता चलता है। (महा० शा० प० १७६। ५७) यह वेद का पदकार रहा है।

(२) द्वितीय शाखा—'माठर' या 'अग्निमाठर' है। बृहद्देवता (८। ८४। ८५) के श्लोको में माठर और वाष्कलों का मतभेद दर्शाया है। सम्भवतः पाठ भ्रष्ट होने से ८४ श्लोक मे वौध्य का मत है।

(३) तृतीय शाखा—पराशर की है। कुमारिल ने 'अरुण परा-शर' के शाखा-ब्राह्मण का उल्लेख किया है। पा० ४। २। ६० पर

व्याकरण महाभाष्य पतंजलि ने "पाराशरकल्पिकः" उदाहरण दिया है। पाराशर शाखा के कल्प, ब्राह्मण अवश्य विद्यमान थे।

(४) जातुकर्ण्य शाखा बाष्कलों की चतुर्थ शाखा है। शांखायन श्रौत सूत्रों में काशिराज, विदेहराज, कोशलराज आदि के पुरोहित 'जल' या 'जड' जातुकर्ण्य का पुरोहित होने का उल्लेख किया है।

वायु पुराण में लिखा है कि व्यासदेव ने जातुकर्ण्य से वेदाध्ययन व धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था।

बृहदारण्यक वंश-ब्राह्मण में लिखा है—पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्।

इस प्रकार शाकलों के समान ही बाष्कल आम्नाय था। इनमें सूक्तों का क्रम भेद था, वेद 'ऋग्वेद' दोनों का एक ही था। इनमें से कुछ सूक्तों की न्यूनाधिकता भी थी। जिसका उल्लेख महीदास ऐतरेय ने चरण-व्यूह परिशिष्ट में दर्शाया है।

तृतीय चरण—आश्वलायन शाखाएं

प्रश्न उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि के पास कौसल्य आश्वलायन शिष्य होकर आया। बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक की सभा में ऋग्वेदज्ञ 'अश्वल' होता ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न लिये, इसके शिष्य व पुत्र आश्वलायन कहे गये। चरक संहिता की प्रोक्त ऋषिसभा में आश्वलायन थे। बौद्ध मज्झिम सूत्र (२ । ५ । ३) में आश्वलायन ब्राह्मण का नाम आया है। ये सभी शाखाकार हो नहीं सकते, हां शाखाकार अवश्य प्रथम अश्वल गोत्री हो। आश्वलायन शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र मिलते हैं। बीकानेर पञ्जाब यूनिवर्सिटी आदि के पुस्तकालयों में इस शाखा की संहिता के अंशों के पदपाठ मिलते हैं। कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के ग्रन्थालय में 'आश्वलायन ब्राह्मण' नाम से एक पुस्तक है। वह ऐतरेय ब्राह्मण से भिन्न नहीं है। दोनों शाखाओं का एक ब्राह्मण प्रतीत होता है। इसी प्रकार देवस्वामी, देवत्रात आदि आश्वलायन श्रौत-

सूत्र के भाष्यकारों ने बाष्कल, शाकल आदि सब शाखाओं का एक ब्राह्मण ऐतरेय और सबका एक सूत्र आश्वलायन ही माना है। इससे सम्बद्ध अन्य शाखाओं का पृथक् ज्ञान नहीं है।

चतुर्थ चरण—शांखायन शाखाएं

इस शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र मिलते हैं। शांखायन संहिता मे भी कुछ मन्त्रो का अन्यो से भेद होना संभव है जिनका इसके कल्प मे प्रतीक पाठ है अन्यो मे सकल पाठ है। इसी से इस साखा की सहिता सिद्ध है। शाखायनो के चार भेद है।

(१) शांखायन शाखा—कौषीतकि शाखा शांखायनो का ही एक अवान्तर भेद है। शाखायन शाखा के अनेक ग्रन्थ और उन पर भाष्य भी हैं। जैसे शांखायन श्रौतसूत्र पर आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त के पुत्र और अग्नि स्वामी ने भाष्य किये है। इसी सम्प्रदाय के ब्रह्मदत्त भी कोई आचार्य हुए। शायद यही वरदत्त के पुत्र हो।

'शाखायन' शाखा के मूल पुरुष 'शख' ऋषि होगे। कापिष्ठल कठ शाखा मे 'कौष्य शंख' को स्मरण किया है।

एतद्ध वा उवाच शंखः कौष्यः (अ० ३४)। उवाच दिवा-जातः शाक्रायन्यः शंखं कौष्यम्। (अ० ३५। १) इत्यादि।

महाभारत अनुशासन पर्व मे (अ० २००) राजा ब्रह्मदत्त पाञ्चाल का शंख को बहुत दान देने का वर्णन है। शंख और लिखित दो भाई देवल के पुत्र थे (महाभारत आदि पर्व ६०। २५)। स्कन्द पुराण मे इनके पिता का नाम शांडिल्य दिया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे सुयज्ञ शांखायन का नाम लिखा है। आ० श्रौ० सू० भाष्यकार ने इसी 'सुयज्ञ' को श्रौतसूत्रकार माना है।

(२) कौषीतकि शाखा—इस शाखा का ब्राह्मण और गृह्यसूत्र मिलता है। यह शाखा शाखायन चरण के अन्तर्गत ही उपशाखा प्रतीत

व्याकरण महाभाष्य पतंजलि ने "पाराशरकल्पिकः" उदाहरण दिया है। पाराशर शाखा के कल्प, ब्राह्मण अवश्य विद्यमान थे।

(४) जातुकर्ण्य शाखा बाष्कलों की चतुर्थ शाखा है। शांखायन श्रौत सूत्रों मे काशिराज, विदेहराज, कोशलराज आदि के पुरोहित 'जल' या 'जड' जातुकर्ण्य का पुरोहित होने का उल्लेख किया है।

वायु पुराण मे लिखा है कि व्यासदेव ने जातुकर्ण्य से वेदाध्ययन व धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था।

बृहदारण्यक वंश-ब्राह्मण मे लिखा है—पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्।

इस प्रकार शाकलों के समान ही बाष्फल आम्नाय था। इनमे सूक्तो का क्रम भेद था, वेद 'ऋग्वेद' दोनो का एक ही था। इनमे से कुछ सूक्तों की न्यूनाधिकता भी थी। जिसका उल्लेख महीदास ऐतरेय ने चरण-व्यूह परिशिष्ट मे दर्शाया है।

तृतीय चरण—आश्वलायन शाखाएं

प्रश्न उपनिषद् मे पिप्पलाद ऋषि के पास कौसल्य आश्वलायन शिष्य होकर आया। बृहदारण्यक उपनिषद् मे जनक की सभा मे ऋग्वेदज्ञ 'अश्वल' होता ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये, इसके शिष्य व पुत्र आश्वलायन कहे गये। चरक सहिता की प्रोक्त ऋषिसभा मे आश्वलायन थे। बौद्ध मज्झिम सूत्र (२ । ५ । ३) मे आश्वलायन ब्राह्मण का नाम आया है। ये सभी शाखाकार हो नहीं सकते, हां शाखाकार अवश्य प्रथम अश्वल गोत्री हो। आश्वलायन शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र मिलते हैं। बीकानेर पञ्जाब यूनिवर्सिटी आदि के पुस्तकालयों में इस शाखा की सहिता के अशों के पदपाठ मिलते है। कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के ग्रन्थालय मे 'आश्वलायन ब्राह्मण' नाम से एक पुस्तक है। वह ऐतरेय ब्राह्मण से भिन्न नहीं है। दोनो शाखाओं का एक ब्राह्मण प्रतीत होता है। इसी प्रकार देवस्वामी, देवत्रात आदि आश्वलायन श्रौत-

सूत्र के भाष्यकारो ने बाष्कल, शाकल आदि सब शाखाओ का एक ब्राह्मण ऐतरेय और सबका एक सूत्र आश्वलायन ही माना है। इससे सम्बद्ध अन्य शाखाओ का पृथक् ज्ञान नही है।

चतुर्थ चरण—शांखायन शाखाएं

इस शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र मिलते हैं। शांखायन संहिता मे भी कुछ मन्त्रो का अन्यो से भेद होना संभव है जिनका इसके कल्प मे प्रतीक पाठ है अन्यो मे सकल पाठ है। इसी से इस साखा की सहिता सिद्ध है। शाखायनो के चार भेद है।

(१) शांखायन शाखा—कौपीतकि शाखा शांखायनो का ही एक अवान्तर भेद है। शाखायन शाखा के अनेक ग्रन्थ और उन पर भाष्य भी हैं। जैसे शाखायन श्रौतसूत्र पर आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त के पुत्र और अग्नि स्वामी ने भाष्य किये हैं। इसी सम्प्रदाय के ब्रह्मदत्त भी कोई आचार्य हुए। शायद यही वरदत्त के पुत्र हो।

'शांखायन' शाखा के मूल पुरुष 'शख' ऋषि होगे। कापिष्ठल कठ शाखा मे 'कौष्य शंख' को स्मरण किया है।

एतद्ध वा उवाच शंखः कौष्यः (अ० ३४)। उवाच दिवा-जातः शाकायन्यः शंखं कौष्यम्। (अ० ३५। १) इत्यादि।

महाभारत अनुशासन पर्व मे (अ० २००) राजा ब्रह्मदत्त पाञ्चाल का शख को बहुत दान देने का वर्णन है। शंख और लिखित दो भाई देवल के पुत्र थे (महाभारत आदि पर्व ६०। २५)। स्कन्द पुराण मे इनके पिता का नाम शांडिल्य दिया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे सुयज्ञ शांखायन का नाम लिखा है। आ० श्रौ० सू० भाष्यकार ने इसी 'सुयज्ञ' को श्रौतसूत्रकार माना है।

(२) कौषीतकि शाखा—इस शाखा का ब्राह्मण और गृह्यसूत्र मिलता है। यह शाखा शाखायन चरण के अन्तर्गत ही उपशाखा प्रतीत

होती है। 'कौपीतकि के पिता 'कुषीतक' थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहोड़ (ल) कौपीतकि का नाम आता है। महाभारत वनपर्व (अ० १३४।८) में कहोल को उद्दालक का शिष्य लिखा है। कहोल के पुत्र अष्टावक्र थे और उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु थे। वे परस्पर स्वयं मामा-बहनोई थे। उद्दालक ने अपनी कन्या कहोल को ब्याह दी थी। वे दोनों बहुत बड़े वेदज्ञ ब्रह्मवेत्ता थे।

(३) महाकौषीतकि शाखा—आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त ने शांखायन श्रौतसूत्र के अन्तिम तीन अध्याय महाकौषीतकि से लिये बतलाया है।

(४) शाम्बव्य शाखा—जैमिनीय श्रौतसूत्र भाष्य मे भवत्रात ने शाम्बव्य के कल्प का उल्लेख किया है, २४ पटलों में उसने यज्ञ तक कहा है। शाम्बव्य गृहस्थकारिका में शाम्बव्य को सूत्रकार माना है। इसके पांच अध्याय के गृह्यसूत्र की सूचना दी है। महाभारत आश्रम-वासिक पर्व (अ० १०) मे—

साम्बाख्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रिरे।

सम्भवतः 'शांबाख्य' न हो, 'शाम्बव्य' बह्वृच का नाम है। यह ऋग्वेद और अर्थ-शास्त्र (नीतिशास्त्र) का बड़ा विद्वान् था। उसने धृत-राष्ट्र को उपदेश किया। वह अवश्य शाम्बव्य-शाखी ब्राह्मण होगा।

पञ्चम चरण—माण्डूकेय शाखाएं

ऋग्वेदीय शाखाओं का पांचवां चरण 'माण्डूकेय' है। बृहद्देवता का आम्नाय माण्डूकेय है। इस आम्नाय मे भी कुछ सूक्त अन्यों से विशेष थे। जैसे 'ब्रह्म जज्ञानं०' सूक्त उस आम्नाय में पठित था। सूक्त क्रम मे कहीं भेद है। मण्डूक का पुत्र माण्डूकेय था। इसको शाखायन आरण्यक में 'शूरवीर' नाम से कहा है। उसके पुत्र ह्रस्व, मध्यम व ज्येष्ठ (या दीर्घ) थे। मध्यम की माता का नाम 'प्रातिबोधी' था। वह मगध का निवासी था। गोत्र नाम मातृनाम से भी चलते थे। बृहदारण्यक के

अन्तिम गुरु-वंश मे माडुकायनीपुत्र को माण्डूकीपुत्र का शिष्य कहा है। बृहद्देवता मे माण्डूकेय के ३७ सूक्त शाकलो से विशेष दिये हैं। इसी चरण में सब से अधिक ऋचा होने से यथार्थ बह्वृच माण्डूकेय आम्नाय ही था। 'बह्वृच' आम्नाय भी पृथक् कोई रहा। जिसका उल्लेख माध्यन्दिन शतपथ ११।५।१।१ में किया है। इसमे भी सूक्त ऋचाओं मे यत्किञ्चित् भेद था, क्योंकि पुरुष सूक्त (१०।९५) मे बह्वृच १५ ऋचा पढ़ते हैं, वर्त्तमान शाकल शाखा मे १८ मन्त्र हैं। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र मे बह्वृच ब्राह्मण के उल्लेख उद्धृत हैं, जो ऐतरेय, कौषीतकि आदि में उपलब्ध नही हैं। आदित्यदर्शन ने कठ गृह्य के भाष्य में बह्वृच सूत्र लिखा है जो आश्वलायन, शांखायन गृह्यों में नही है, प्रतीत होता है कि बह्वृच सूत्र भी पृथक् ही था। कुमारिल ने (तन्त्र वार्त्तिक १।३।११) में बह्वृचों का वासिष्ठ सूत्र उल्लेख किया है। वाजसनेयियो के लिये शंख लिखितोक्त सूत्र की व्यवस्था ही है। प्रतीत होता है कि बह्वृच आम्नाय पृथक् एक चरण है जिसके अन्तर्गत अनेक शाखा होंगी। भागवत (१।४) में शौनक को 'बह्वृच' कहा है। पूर्व महाभारत मे शाम्बव्य को बह्वृच कहा है। सम्भवतः शौनक का बृहद्देवता वा ऋक्प्रातिशाख्य बह्वृच शाखा का हो, अन्य सब ऋग्वेदियों ने इसे समान रूप से अपनाया हो।

चरण-व्यूह के ये पांच चरण इस प्रकार वर्णित हो गये, पुराणकारों ने शाकपूणि और बाष्कलि भारद्वाज ये दो विभाग और कहे हैं, उनका भी उल्लेख यहां अप्रासंगिक नहीं है।

(१) शाकपूणि विभाग—ब्रह्माण्ड पुराण (अ० १।३४) में लिखा है कि—

(१) माण्डूकेय शाखा की शाकपूणि ने तीन शाखाएं कीं, और निरुक्त बनाया। उसके ४ शिष्य थे, पैल, इक्षलक, शतयलाक और गज।

ब्रह्माण्ड पुराण के ये नाम बहुत सन्दिग्ध हैं। ये पैल, इक्षलिक न होकर शायद 'पैङ्गय, शैलालक' प्रतीत होते हैं। बृहद्देवता (१।२४) में पैङ्गय मधुक का मत लिखा गया है। शतपथादि में इसका मत मिलता है। शतपथ की वंश-परम्परा में भी 'मधुक पैङ्गय' को याज्ञवल्क्य का शिष्य कहा है।

(२) औद्दालकि शाखा—उद्दालक गोतम कुल का था, यह अरुण का पुत्र था। गोतम शाखा को आरुणेय शाखा कहा गया है। आरुणेय ब्राह्मण भी प्रसिद्ध है।

(३) शैलालक शाखा—पाणिनि ने अ० ४। पा० ३। सू० ११० में शैलालक की ओर संकेत किया है।

(४) शतवलाक्ष—पुराणों में इस नाम के भ्रष्ट रूप श्वेतवालाक या व्यलीक आदि हैं। निरुक्त ने 'श्वेतवलाक्ष मौद्गल्य' का उल्लेख किया है, वह निरुक्तकार भी हुआ।

(५) चतुर्थ शिष्य—शाकपूणि का चतुर्थ शिष्य कौन था, गज था वा कोई और, नहीं कहा जा सकता।

मीमांसा के शाबर भाष्य (१।३।११) में शबर स्वामी ने एक कल्प 'हास्तिक' लिखा है।

(६) वाष्कलि भारद्वाज—के सम्बन्ध में—ब्रह्माण्ड पुराण में जो नाम लिखे हैं उनमें—

त्वायनीय के स्थान में आपनाय, नन्दायनीय, कालाभूति, वालायनि आदि पाठ मिलते हैं। 'पन्नगारि' सम्भवतः शुद्ध है, पाणिनि ने (२।४।६१) में इसको प्राच्य देश का विद्वान् माना है। तृतीय नाम आर्जव है। जिसके भ्रष्ट पाठ कथाजव, तथाजप, कासार आदि पाठ हैं।

ऋग्वेदीय अन्य शाखाएं

कुछ शाखाएं पूर्व लिखित चरणो के अन्तर्गत नहीं है जैसे—

(१) ऐतरेय शाखा—इस शाखा का ब्राह्मण और आरण्यक उपलब्ध हैं, आश्वलायन गृह्य सूत्र की टीका मे प० हरदत्त ने लिखा है—

"ऐतरेयिणां च वचनं भवादिसर्वत्रसमानम् ।"

प्रतीत होता है कि इनके श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्रादि भी होगे । ऐतरेय मे अनेक मन्त्र-प्रतीक ऐसी है जो वर्तमान ऋग्वेद मे उपलब्ध नहीं है ।

(२) वासिष्ठ शाखा—ऋग्वेदियो का वासिष्ठ सूत्रो से सम्बन्ध ऊपर कह चुके हैं । वसिष्ठ का पुत्र शक्ति, शक्ति का पुत्र पराशर । पराशर की शाखा पूर्व लिख आये हैं । इसी परंपरा से व्यासदेव के पास ऋग्वेद आया होगा । चरण व्यूह मे वासिष्ठो की पद सख्या का भेद बतलाया है, 'चतुर्दश वासिष्ठानाम्' जिस पर टीका मे महीदास ने लिखा है कि वासिष्ठ गोत्रियो की सहिता में 'इन्द्रोतिभिः०' वर्ग के ७१ पद नही हैं । इसी प्रकार के भेद से यह भिन्न शाखा प्रतीत होती है ।

(३) सुलभ शाखा—सौलभ ब्राह्मण उपलब्ध है । इस सम्बन्ध मे और कुछ विदित नहीं है । 'सुलभा' नाम की राजकन्या बडी विदुषी थी, उसका सम्बन्ध इससे था या नहीं, नहीं कह सकते ।

(४) शौनक शाखा—'प्रपंच-हृदय' मे एक शौनक शाखा का उल्लेख है । इसका ऋग्वेदीय शौनकीय सूत्र भी उल्लिखित है । नेमिषारण्य-वासी शौनक 'बह्वृचसिंह' कहाते थे । बृहद्देवता और ऋक्-प्रातिशाख्य शौनक नाम से ही है । अथर्ववेदीय शौनक शाखा मे जो ऋग्वेदीय सूक्त मिलने है उनका क्या सम्बन्ध ऋग्वेद से या ऋग्वेदीय शौनक शाखा से है, नहीं कहा जा सकता ।

इस प्रकार हमने २७ शाखाओं के नाम लिखे हैं । ६ नाम

या तो अन्य किन्हीं शाखाओं में अन्तर्गणित करके २१ शाखा मान लेनी चाहियें।

इनके अतिरिक्त पाणिनि ने पाष्ठिक स्वरप्रकरण में 'कार्त कौजपादि गण' का पाठ किया है। जिसमें अनेक शाखाकारों का उल्लेख है। जैसे—

सावर्णि-माण्डुकेय, पैल श्यापर्णेय, कपि-श्यापर्णेय, शैतिकाक्ष-पांचालेय, कटुक-वार्चालेय, शाकल-शुनक, शाकल-सणक, सणक-वाभ्रव, आर्चाभिमौद्गल, वाभ्रव शालंकायन, वाभ्रव-दानच्युत, कठ कालाप, कौथुम-लौकाक्ष, मौदपैप्पलाद, सौश्रुत-पार्थव।

इन द्वन्द्व समस्त पदों में प्रायः समान समान कोटि के पदों का द्वन्द्वसमास है अर्थात् सौश्रुत-पार्थव, ये दोनो आयुर्वेद के दो सम्प्रदाय प्रतीत होते हैं, मौद पैप्पलाद ये दो अथर्ववेदीय आम्नाय हैं, कौथुम-लौकाक्ष सामवेदी दो सम्प्रदाय हैं। शेष जितने द्वन्द्व नाम हैं सबमें एक एक पूर्व परिचित ऋग्वेदीय सम्प्रदाय स्पष्ट है, अवश्य उसके साथ पठित दूसरा भी ऋग्वेदीय सम्प्रदाय ही है, ऐसा निश्चय होता है। जैसे 'माण्डूकेय' के साथ 'सावर्णि' है। सावर्णि मनु का कोई ऋग्वेदीय आम्नाय होगा, ऐसा प्रतीत होता है, मानव गृह्यसूत्र मिलता है। श्रौतसूत्र भी सम्भव है, और आम्नाय भी सम्भव है। 'कपि-श्यापर्णेय' द्वन्द्व पद में 'कपि', 'कापेय' को पाणिनि ने 'बोध्य' आङ्गिरस के साथ पढ़ा है। कापेय को पौराणिकों ने 'शापेय' कहा है।

'श्यापर्ण' आम्नायविदों का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के (अ० ३५) में आया है, वे प्रसिद्ध याज्ञिक थे, परन्तु उनकी उस समय मान-मर्यादा कुछ कम हो गई थी।

'शैतिकाक्ष-पांचालेय' में पांचालेय और वाभ्रव्य एक हैं, इनके साथ 'शैतिकाक्ष' सम्प्रदाय अनुसंधान का विषय है। 'कटुक-वार्चालेय' दोनों ही अभी अपरिचित से हैं। 'शाकल-शुनक' द्वन्द्व में दोनों ऋग्वेदीय

सम्प्रदाय हैं, शाकल शाखा का वर्णन ऊपर किया है, शौनकीयों के बृह-द्देवता और ऋक्-प्रातिशाख्य हैं।

'शाकल-सणक' और सणक 'बाभ्रव' मे 'सणक' शब्द अपरिचित है, सनत्कुमार के भ्राता 'सनक' ऋषि का वर्णन पुराण मे है, यदि यह ऋग्वेद आम्नाय प्रवर्त्तक हुए तो यह एक गौरव की बात होगी। 'आर्चा-भि मौद्गल' द्वन्द्व मे 'मौद्गल' के सम्बन्ध मे पूर्व लिख आये हैं। आर्चाभि आम्नाय का वर्णन निरुक्त में यास्क ने किया है। 'आर्चभ्या-म्नाये' (निरु०) 'आर्चाभियो का अन्यत्र कई स्थलों पर उल्लेख है। 'बाभ्रवशालंकायन' मे बाभ्रव पांचाल का पूर्व वर्णन कर दिया है, 'शालं-कायन' इतिहास प्रसिद्ध गोत्र रहा है, इस गोत्र के महामन्त्री रहे हैं। तो भी ऋग्वेदीय आम्नायो मे सालंकायन अनुसन्धान के योग्य है। इसी प्रकार 'बाभ्रव-दानच्युत' पद मे 'दानच्युत' आम्नाय खोज की अपेक्षा करता है।

शाखा-प्रवर्त्तक ऋषियों और शाखाओ का अनुसन्धान कर हम नीचे ऋग्वेदीय शाखाओ का अवधारण करते हैं—

१. शाकल, २. बाष्कल, ३. आश्वलायन, ४. शांखायन, ५. माण्डू-केय [माण्डूकायन], ६. साध्यायन [शाट्यायन], ७. औदुम्बर, ८. ऐतरेय, ९. कौषीतकी, १० शाकपूणि, ११. यास्क, १२. मुद्गल, १३. वात्स्य [वात्स्यासन], १४. शैशिरीय, १५. बाभ्रवीय, १६. पाञ्चगारि, १७, राथीतर, १८ बलाक (वालाकिः), १९. इन्द्रप्रमति (बासिष्ठ), २०. पैल, २१. अग्निमाठर, २२. जातुकर्ण्य, २२. गार्ग्य, इनमे से मुख्य मुख्य २१ शाखाओ का प्राय. उल्लेख होता है।

वर्त्तमान शाकल शाखा

वर्त्तमान में जो ऋग्वेद संहिताएं प्रचलित है उनमे से एक बम्बई मे छपी है, दूसरी मॉक्समूलर द्वारा सपादित है। दोनो के सूक्तक्रमों मे भेद हैं। पं० उमेशचन्द्र विद्यारत्न के कथनानुसार मुम्बई प्रकाशित

ऋक्संहिता आश्वलायन और मॉक्समूलर प्रकाशित वाष्कल शाखा है, बंगदेश में भी आश्वलायन शाखा का विशेष प्रचार है। वहां ऋग्वेद शाखाध्यायी विद्वानों को प्राप्त ताम्रलिपि दान-पत्र प्राप्त हुए हैं। परन्तु अधिक लोगों के विचार से प्रचलित वेदसंहिता शाकल शाखा है। इसी ऋग्वेद संहिता को सामान्य रूप से 'शाकल संहिता' वा 'शाकलक' कहते हैं। जैसा—

ऐतरेय ब्राह्मण में शाकल का उल्लेख है। अग्निष्टोम की स्तुति में लिखा है—

स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यदग्निष्टोमः। तस्य यथैव प्रायणम् तथा उदयनम्। तदेषा अभि यज्ञगाथा गीयते।

यदस्य पूर्वमपरं तदस्य यद्वस्यापरं तद्वस्य पूर्वम्।
अहेरिव हि सर्पणं शाकलस्य न विजानन्ति यतरत् परस्तात्॥

अर्थात् यज्ञक्रतु अग्निष्टोम प्रारम्भ और समाप्ति रहित प्रतीत होता है, जैसे रथचक्र। जैसे रथचक्र में, नहीं कह सकते, कौनसा भाग प्रारम्भ और कौनसा अन्त का है उसी प्रकार अग्निष्टोम यज्ञ का जैसा 'प्रायण' अर्थात् प्रारम्भ की इष्टि है उसी प्रकार 'उदयन' अर्थात् समाप्ति की इष्टि है। इसी ही आशय की यज्ञ सम्बन्ध में एक गाथा अर्थात् श्लोक गाया जाता है, जो ही इसका पूर्व भाग है वही इसका पिछला भाग है। जो इसका पिछला भाग है वही इसका पूर्व भाग है। (अहेः) साप की गति के समान शाकल की गति है, विद्वान् जन नहीं जानते कि उसका कौनसा भाग अगला और कौनसा भाग पिछला है।

आचार्य सायण के मत में शाकल सर्प विशेष का नाम है। शाकल नाम का सांप चलने के समय अपनी पूंछ को मुख से पकड़ कर कुण्डल सा बन जाता है, उस समय उसकी पूछ और मुख नहीं पहचाना जाता। इसी प्रकार का यह यज्ञ है।

अन्य विद्वान्* इस स्थान पर शाकल का अर्थ सर्प विशेष न जान कर शाकल प्रोक्त ऋग्वेद या शाकल्य की शिक्षा, सूत्र आदि मानते हैं और अहि का अर्थ सूर्य, मेघ आदि मानते हैं। हमें इस स्थान पर सायण का कथन युक्तिसगत प्रतीत होता है। और श्लेषवृत्ति से यहाँ शाकल्य-प्रोक्त यज्ञ कर्मकाण्ड भी प्रतीत होता है, इसमे भी सदेह नही।

पाणिनि सूत्र शाकलाद्वा (पा० ४। २। १२८) से भी 'शाकल' ऐसा सिद्ध होता है। शाकल शास्त्र, शाकल सघ आदि प्रयोग गतार्थ होते हैं। इस स्थान पर महर्षि दयानन्द ने 'शकलात् वा' पाठ माना है। यञन्त शकल शब्द से वैकल्पिक अण् करके 'शाकल, शाकलक' दो प्रयोग साधते हैं। दूसरे वैयाकरण गर्गाद्यन्तर्गत कण्वादि गण में पढ़े अञन्त शकल शब्द से कण्वादिभ्यो गोत्रे (४। २। ११। १) से अण् करके 'शाकलाः' साधते हैं।

अब प्रश्न यह है कि ऋग्वेद के सर्वानुक्रमणीकार ने जो 'ऋग्वेदाम्नाये शाकलके' यह प्रयोग दिया है इसका क्या अभिप्राय है शाकल्य प्रोक्त ऋग्वेद या कुछ और पदार्थ?

शकलात्। वा॥ सूत्र के व्याख्यान से 'शाकल' से शाकल्य का प्रोक्त लक्षण या शास्त्र ही सूचित है। शाकल्य ने कौनसा शास्त्र कहा? वेदमन्त्र तो नित्य ही हैं। उनको वह क्या रचेगा? प्रत्युत उस पर पद-पाठादि का उपदेश प्रवचनादि कर सकता है। फलतः शाकल्य ने ऋग्वेद के पदपाठ तथा उच्चारण आदि के जो विशेष नियम निर्धारित किये वही समस्त 'शाकल' या 'शाकलक' कहाया, इसके ही उपचार से ऋग्वेद संहिता भी उसी नाम से कही जाती है। जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने लिखा है—

---

* १ श्री हरिप्रसादजी, २ श्री भगवद्दत्तजी बी० ए०

† महाभाष्य (४। १। १८)

तत्राम्नाये सम्यगभ्यासयुक्ते खिलरहिते शाकलके। शाकस्यस्योच्चारणं शाकलकम् ।* शाकल्य ने संहिता को नहीं बनाया। प्रत्युत पदपाठ का अन्यों से भिन्न उपदेश किया है। अन्य शाखाप्रवर्त्तकों के पदपाठों और व्याख्यानो से शाकल्यकृत पदपाठ और व्याख्यान अवश्य भिन्न भिन्न रहे हैं, जैसा कि शौनकीय ऋक्-प्रातिशाख्य में भिन्न भिन्न आचार्यों के मतों को दर्शाया है। और वह मतभेद प्रायः पदपाठ और उच्चारण योग्य संहिताध्ययन में है। जैसे—शौनकोक्त ऋग्वेदीय प्रातिशाख्य में—

१. उकारश्चेतिकरणेन युक्तो रक्तोऽपृक्तो द्राघितः शाकलेन।
१।१।२६॥

शाकल आचार्य ने 'उ' इस निपात को पदपाठ मे इति के योग में प्रायः अनुस्वारसहित दीर्घ कर दिया है।

संहिता मे है अवेद्विन्द्रं जल्गुलः' (ऋ० १।२८।४)। पदपाठ है अव। इत्। ऊँ इति। इन्द्र। जल्गुलः। यहां 'ऊँ इति' ऐसा पद-शाकल्य सम्मत है। यही बात पाणिनि ने स्वीकार की है उञः ऊँ॥ पा० १।१।८॥ उ को ऊँ आदेश हो शाकल्य के मत में।

२. तत् त्रिमात्रे शाकला दर्शयन्ति।
आचार्यशास्त्रापरिलोपहेतवः।१।१।२६।

शाकल्य के शिष्य, आचार्य-शास्त्र की रक्षा के लिये, अन्तिम विप्रुत को सानुस्वार कर देते हैं, जैसे 'नत्वा भीरिव विन्दँती' । ऋ० १०। १४६।१॥

३. क्वचित् स्थितौ चैवमतोऽधिशाकलाः
क्रमे स्थितोपस्थितमाचरन्ति।२।५।५॥

संहिता क्रम मे पदपाठ 'स्थिति' कहाती है। पद के पीछे 'इति'

* शाकल्येन दृष्टः शाकल शाकल एव शाकलकः। इति क्वचित्।

लगाना 'उपस्थिति' है। शाकल सम्प्रदाय के विद्वान् क्रम से पढ़े हुए पद-पाठ के साथ ही साथ 'इति' सहित पद भी पढ़ देते हैं।

इत्यादि निदर्शनो से हमने स्पष्ट कर दिया कि ऋग्वेद की शाकल आदि शाखाओं के प्रवर्त्तक पदपाठ आदि के विशेष प्रवक्ता थे। वेद को बनाने या अपने मनमाना वेद-संहिता को विकृत करने वाले नहीं थे। संहिता के पदपाठो मे भिन्न-भिन्न आचार्य के मतों में भेद होना स्वाभाविक है। जैसा कि निरुक्तकार यास्क [निरु० ६। २८] ने शाकलकृत पदपाठ (ऋ० १०। २९। १) का स्वयं खण्डन किया है।

'वनेन वायो न्यधायि चाकन्।' वा इति च य इति च चकार शाकल्यः उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यदसुसमासश्चार्थः।

अर्थात् शाकल्य ने 'वायो' पद का 'वा और यः' ऐसा छेद किया, सो ठीक नहीं है। इसी प्रकार शाकल्य के अतिरिक्त अन्य शाखाप्रवर्त्तको के विषय में जानना चाहिये कि वे वेद की संहिता को बनाने या रूपान्तर करने वाले नहीं थे, प्रत्युत मन्त्र के ऊपर विचार करके पदपाठ, तदनुसार निर्वचन और व्याख्या प्रकट करने वाले और मन्त्रों मे नाना सत्य तत्वों का साक्षात् करने वाले ही ऋषि जन, शाखा प्रवर्त्तक थे। उनके ही उपदिष्ट व्याख्यागत पर्याय शब्दों को पिछले शिष्यो ने संहिता का रूप देकर स्थान स्थान पर पाठभेद कर दिया है। पाठभेद होने के और भी बहुत से कारण हैं जिनमें लेखक का प्रमाद तथा वक्ता और श्रोता जनो का मुखोच्चारण और श्रवण में दोष होना भी बहुत कारण हैं। जहां जहा भी पाठभेद दिखाई देते हैं वहां वहां इस प्रकार के कारणों की खोज होनी चाहिये और शुद्ध वेद-संहिता का स्वरूप निर्धारित कर लेना चाहिये।

श्री महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य मे नाना स्थलों पर प्रायः वेद मन्त्र की संहिता को साम्प्रदायिक पाठ-विकृति से बचाया है। परन्तु वैदिक यन्त्रालय के कर्त्ता-धर्त्ता जन मूल संहिताओं मे महर्षि दयानन्द के

इस स्तुत्य कार्य की रक्षा नहीं कर सके। यह तथ्य मुझे भी बहुत देर बाद पता लगा है, अतः हमारी प्रकाशित मन्त्र-संहिता में भी हम उसका पालन नहीं कर सके। उदाहरणार्थ, बह्वृच-शाखाध्यायी प्रायः ड, ढ को ळ और 'ह्ळ' पढ़ते हैं। परन्तु महर्षि के वेदभाष्य के साथ छपी मन्त्र संहिता में स्थान स्थान पर ढ का ही प्रयोग किया है, ळ, ह्ळ का नहीं। जैसे—प्रोढः समुद्रमव्यथिः० (ऋ० १।१७।१५)। ऐसे तथ्यों पर अभी और अनुशीलन होना चाहिये, तभी शुद्ध वेद की संहिता का स्वरूप प्राप्त होगा, अस्तु।

ऋग्वेद का मन्त्र-परिमाण

यह एक विवादास्पद एवं विचारणीय विषय है। शाखाओं के विवेचन में हमने बतलाया है कि उनमें सूक्तों के क्रम में भेद है, कहीं सूक्तों की मन्त्रसंख्या में भी भेद होना प्रमाणित होता है, कइयों में कोई सूक्त हैं, कोई नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वेद की शाखाओं की मन्त्र-संख्या में भी भेद होगा, सूक्त-संख्या में भी भेद होगा तो पूर्ण ऋग्वेद कितना होना चाहिये? इसका सामान्य समाधान तो यही है कि वेद का स्वतः एक स्थिर परिमाण होना उचित है। उसको किसी ने घटाया बढ़ाया नहीं, गुरु वा आचार्यों ने शिष्यों को उपदेश किया। वे उसको याद कर लेते थे। इस प्रकार स्मृति-शक्ति न्यूनाधिक हो जाने से सूक्तों और मन्त्रों की संख्या का भेद होना सम्भव है। पुराणकारों ने जो स्थान स्थान पर लिखा है कि अमुक ने तीन संहिता कीं, चार संहिता कीं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने संहिता में गड़बड़ कर दी, प्रत्युत उसका अभिप्राय केवल यह है शिष्य-भेद से जो कुछ भेद हो गया, उससे संहिता का शाखा-भेद हो गया अर्थात् शाखा में शिष्य की विशेषता कारण थी, न कि संहिता भेद करने में गुरु की भेदकारिणी विशेष बुद्धि। वस्तुतः वेद तो एक ही था। तब उसका परिमाण भी एक समान सर्वत्र नियत होना आवश्यक है।

इसी सम्बन्ध मे शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि—

बृहतीसहस्राण्येतावत्यो ह्यर्चः प्रजापतिसृष्टाः ।

अर्थात् प्रजापति ने ऋचाओं का व्यूहन किया तो १२ सहस्र बृहती परिमाण समस्त ऋचाएं थीं । अर्थात् ऋचाओं का पूर्ण परिमाण १२००० × ३६ = ४३२००० अक्षर थे ।

तदनुसार ही अनुवाकानुक्रमणी मे लिखा है—

चत्वारि शतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि ।

अर्थात् ऋचाओं के समस्त अक्षर ४३२००० है और ऋचाओं की संख्या बतलाई है—

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पंच शतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्त्तितम् ॥

ऋग्वेद पारायण—पाठ मे कुल १०५८० ऋचा और एक पाद है । यह पारायण समस्त शाखा ऋग्वेद का है । यही पारायण चरण-व्यूहकार ने भी माना है । ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद-भाष्य के प्रारम्भ की भाषा-भूमिका मे ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना १०५८९ दी है । साथ ही समस्त मण्डलो की सख्या दी है उनको जोड़ने से संख्या केवल १०५२१ ही आती है । यह भेद किस प्रकार है ?

आर्थर मेकडानल्ड का कथन है कि ऋषि दयानन्द ने ८ वें मण्डल के २० वें सूक्त में २६ के स्थान मे भूल से ३६ मन्त्र गिने है और ९ वें मण्डल मे ११०८ के स्थान मे १०९७ सख्या लिखी है । इस प्रकार ११ कम गिनी है, एक ऋचा का भेद रहता है । अर्थात् कुल मन्त्र १०५२२ होने चाहियें । यदि द्विपदा ऋचाएं १२७ और भी जोड़ ली जाय तो सब मिला कर १०५६९ हो जाती हैं । तब अनुवाकानुक्रमणी ने १०५८० मन्त्र और १ पाद सख्या कैसे लिखी ।

इस सम्बन्ध में ए० मेकडानल्ड की भूल तो यह है कि ऋग्वेद के (५ । २०) सूक्त की संख्याओं को दो वार दुगुना किया। इस प्रकार ४ संख्या कम करने पर मैकडानल्ड की संख्या १०५६५ रह जाती है, अस्तु।

स्वा० दयानन्द सरस्वती के गणित-संख्या १०५२१ में से १४० द्विपदा की आधी ऋचाओं में से (५ । ५४) की दो कम करके ६८ और जोड़ी जावें तो समस्त संख्या १०५२१ + ६८ = १०५८९ हो जाती हैं। इस प्रकार के संख्या-वैषम्य पर अभी बहुत सी बातें विचारणीय हैं, मैं अभी किसी नियत निश्चय पर नहीं हूँ।

कश्यप दृष्ट लुप्त वेद

बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी तथा सायण और स्कन्द स्वामी आदि ने १ । ९९ सूक्त की भाष्य की उत्थानिका में लिखा है कि उक्त सूक्त से आगे १००० सूक्त थे, उनमें क्रम से एक २ मन्त्र बढ़ता जाता था। षड्गुरुशिष्य के लेखानुसार ये ऋचाएं।

ऋचस्तु पंचलक्षा स्युः सैकोनशतपंचकम्।

संख्या में ५००४९९ थीं। स्कन्द के कथनानुसार इनका अध्ययन छूट गया है, अतः ये लुप्त हो गईं। परन्तु इनकी सत्ता सुनी जाती है, देखी नहीं है। इन १००१ सूक्तों का आदि मन्त्र १ ऋचा वाला 'जातवेदसे०' (म० १ । सू० ९९) वेद में विद्यमान है।

यदि इन पाँच लक्ष चार सौ उनतीस मन्त्रों को लुप्त वेद मान लें तो एक लक्षात्मक वेद मानने वालों का मन्तव्य भी कट जाता है। परन्तु जिन ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठ करके रक्खा, उन्होंने इस 'काश्यप वेद' की उपेक्षा कर दी हो, ऐसा विदित नहीं होता। अवश्य वे ऋचाएं

वर्तमान वेद का मूलभाग न थीं, प्रत्युत व्याख्यान रूप से थीं। तभी षड्-गुरु-शिष्य ने लिखा है "खिलसूक्तानि चैतानि" ये खिल सूक्त थे। ऋग्वेद के अनेक सूक्त हैं, परन्तु उनको संहिता मे स्थान नहीं मिला। इसी लिये उनका अध्ययन छूट गया है। वे मन्त्र उसी प्रकार थे जैसे उपनिषदों, ब्राह्मणों मे अनेक ऋचाएं हैं जो मूल संहिता मे नहीं पढ़ी जाती हैं।

दाशतयी।

ऋग्वेद संहिता के दश मण्डल होने से इसको 'दाशतयी' कहते हैं। अध्याय, वर्ग, क्रम से इसमे ६४ अध्याय थे और मण्डल-अनुवाक-सूक्त क्रम से दश मण्डल रहे, सब शाखाओ में यह समान विभाग था।

छन्द, ऋषि और देवता

छन्द के विषय मे ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त प्रतीत होता है कि—

अक्षराण्येव सर्वत्र निमित्तं बलवत्तरम्।
विद्याद् विप्रतिपन्नानां पादवृत्ताक्षरे ऋचाम्॥
(ऋ० प्राति० १७। ३५॥)

छन्दों के पाद, छन्द और अक्षरों द्वारा यदि परस्पर विप्रतिपत्ति अर्थात् मतभेद उपस्थित हो तो सर्वत्र अक्षरों को ही निमित्त मान कर छन्द निर्णय कर लेना चाहिये। तदनुसार ही ऋषि दयानन्द ने सर्वत्र छन्दों का प्रतिपादन किया है। जहां छन्दों मे विविध मत हैं वहां सन्धि-युक्त स्थलों मे व्यूहादि का विचार करके या पूरणार्थक 'इत्यादि' का निर्देश करके मतान्तर का निर्देश कर दिया है। छन्दोज्ञान के लिये पिंगल तथा ऋक् प्रातिशाख्य में १७ वां पटल उत्तम है।

ऋषि और देवता विषय मे ऋषि दयानन्द का मत है कि जड़ पदार्थ ऋषि नहीं हो सकते, इसलिये संवाद सूक्तों मे नदी आदि जड पदार्थों को ऋषि मानना असंगत है। इसी प्रकार संवाद सूक्तों मे ऐतिहासिक व्यक्ति देवता नहीं हो सकते, वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। इनके अतिरिक्त स्थलों में देवता का इतना मत-भेद नहीं। देवता सम्बन्ध मे आर्य वेदज्ञों को बृहद्देवता के समान देवता-प्रदर्शक पृथक् एक ग्रन्थ बनाना चाहिये।

प्रस्तुत भाष्य

प्रस्तुत भाष्य में हमने यथासम्भव सरल, सुबोध भाषा में वेदमन्त्र-गत ज्ञान को प्रकट करने का यत्न किया है। इन खण्डों में हम पाठकों की सेवा में वेदमन्त्रों में कल्पित इतिहासों की आलोचना स्थानाभाव से नहीं कर सके। केवल शाखा-भेद आदि की विवेचना कर सके हैं। ऋग्वेद के सम्बन्ध में अभी सहस्रों बातें ज्ञातव्य और विवेचना योग्य है। जिनमें से सबसे मुख्य वेदमन्त्रों मे कल्पित इतिहास है। इसकी विवेचना हम पृथक् ग्रन्थ मे करेंगे। ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान विस्तृत विषय सूची से यथावत् हो जावेगा। भाष्य मे भी स्थान स्थान पर नाना रहस्यों को खोल दिया है, जिसकी सूचना विषय-सूची मे ही दे दी गयी है। पाठक जन वहां ही देखें। ऋग्वेद पर हमे एक सायण भाष्य, दूसरा महर्षि दयानन्दकृत भाष्य के अतिरिक्त स्कन्द स्वामी, व्यंकटमाधव आदि के खण्ड-भाष्य भी देखने को मिले, अंग्रेजी, बंगला और मराठी के अनुवाद भी देखे है। वे सब सायण को नहीं छोड सके। महर्षि दयानन्द ने अपने पदार्थ-भाष्य मे बहुत अधिक कौशल दर्शाया है। जिसको भाषान्तरकार नहीं निभा सका। स्थान स्थान पर वाचक-लुप्तोपमा आदि की सूचनाओं को दृष्टि में रख कर ऋग्वेद का सरल अर्थ तथा उपमा के बल से प्राप्त पक्षान्तरों में नाना प्रकार के श्लेषमूलक अर्थों का चमत्कार देखना आव-

श्यक है, जिसको दर्शाने का थोडा सा यत्न प्रस्तुत आलोक-भाष्य में किया है। इसमें भी कितना ही लेख्य विषय जो मन्त्र के आशय को स्पष्ट करता है, विस्तार-भय से सर्वथा छोड़ दिया गया है।

महर्षि दयानन्द की बनाई 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' में बहुत से वेद विषयक प्रश्नों को सरल कर दिया है, उनको पुनः दोहराना पिष्ट-पेषण जानकर इस भूमिका में स्थान नहीं दिया गया। वे ज्यों के त्यों वहां से ही देख लेने चाहियें।

तृतीय संस्करण

मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरे जीवन-काल में ऋग्वेद के प्रथमाष्टक के आलोक-भाष्य का तृतीय संस्करण हो गया है। इसकी भूमिका में कुछ अंशों की वृद्धि की गई है। नवीन अनुसन्धान व आवश्यक ज्ञातव्य बातें इसमें और जोडी गई हैं। शाखा आदि के सम्बन्ध में श्री प० भगवद्दत्तजी बी० ए० वैदिक अनुसन्धान-विशेषज्ञ (माडल टाउन, लाहोर) ने वेद-शाखाओं पर 'वैदिक वाङ्मय के इतिहास' के प्रथम भाग में बहुत अच्छा विवेचन किया है। मैं उनसे अनेक अंशों में सहमत हूँ। इसलिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ। शाखासम्बन्ध में अभी अनेक अंश अस्पष्ट, विवादास्पद और अनिर्धारित हैं। जिनको हमने भूमिका में नहीं दिया, कालान्तर में उनकी सामग्री संकलित की जावेगी।

उस अपार ज्ञानमय प्रभु की परम रहस्यमय वाणी के सहस्रों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक रचनाओं और यज्ञों के रहस्यों का विवरण मुझ सा तुच्छ व्यक्ति क्या कर सकता है? तो भी देवतुल्य विद्वान् जनों की सेवा में जो भी 'पत्र-पुष्प' रूप से निवेदन कर दिया है, हमें आशा है, वे उससे ही प्रसन्न होकर सन्तोष व हर्ष प्रकाश करेंगे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे वेदानुशीलनरूप यज्ञ में सफल करे।

सज्जनों को तो क्या कहूँ। केवल—

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्‌वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते॥

प्रथम संस्करण—पौष शुक्ला दशमी, १९८७ वि०

द्वितीय संस्करण—चैत शुक्लाष्टमी, २००० वि०

तृतीय संस्करण—माघ शुक्ला पञ्चमी, सं० २००८ वि०

विद्वानों का अनुचर—

जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ,
आदर्श नगर, अजमेर।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)

प्रथमं मण्डलम् । प्रथमोऽष्टकः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सू० [१]—परमेश्वर की स्तुति, पक्षान्तर में राजा, विद्वान्, भौतिक अग्नि और यज्ञाग्नि का वर्णन । (२) स्तुत्य उपास्य परमेश्वर, पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन । (३) ईश्वर और राजा । (४) व्यापक परमेश्वर और राजा । (५–९) परमेश्वर, ज्ञानी, विद्वान् पुरुष का वर्णन। (पृ० १–६)

सू० [२]—ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुति, आचार्य और भौतिक वायु का वर्णन । (५–६) सूर्य, वायु के समान माता, पिता, गुरु, आचार्य, वायु और इन्द्र का वर्णन । (७–९) मित्र और वरुण नाम के वायु, सूर्य, प्राण, अपान, न्यायाधीश और राजा । (पृ० ७–११) मित्र

सू० [३]—(१–३) अश्वि नाम से रथी और अश्वारोही, जल और अग्नि, सूर्य, चन्द्र, राजा, सेनापति, दिन, रात्रि, पृथिवी और अग्नि का वर्णन । पुष्करस्रक् अश्वियों का रहस्य । (४–६) सूर्य के समान राजा के कर्त्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (७–९) विद्वानों और वीर पुरुषों के कर्त्तव्य । (१०—१२) वेदवाणी का वर्णन । (पृ० ११–१७)

सू० [४]—गौ के दृष्टान्त से विद्वान् पुरुष और परमेश्वर की उपासना । (२–१०) राजा के कर्त्तव्य और परमेश्वर का वर्णन । (पृ० १७–२०)

सू० [५]—ईश्वर का वर्णन, राजा के कर्त्तव्य। (७) पक्षान्तर में जीव का वर्णन। (पृ० २०—२३)

सू० [६]—परमेश्वर का वर्णन, पक्षान्तर मे सूर्य, राजा का वर्णन, योगी के योगाभ्यास का वर्णन। (३–४) जीव आत्मा का वर्णन। (पृ० २३–२७)

सू० [७]—परमेश्वर। पक्षान्तर में राजा। (पृ० २८—३१)

सू० [८]—परमेश्वर, राजा, सेनापति। (६) नायक विद्वान् पुरुषो के कर्त्तव्य। (८) पृथ्वी के समान वेद-वाणी का वर्णन। (९) ईश्वर की विभूतियें। (१०) ईश्वर की स्तुति। (पृ० ३१—३४)

सू० [९]—सूर्य के दृष्टान्त से राजा और परमेश्वर का वर्णन। (२) जल तत्व की साधना। राजा के कर्त्तव्य। अध्यात्म समर्पण। राजा के कर्त्तव्यों का उपदेश। (पृ० ३४—३८)

सू० [१०]—सर्वोपरि स्तुत्य परमेश्वर। (२) सर्वद्रष्टा, सुख-वर्षक, सर्वज्ञ। पक्षान्तर मे आत्मा, सूर्य। (४) गुरु आचार्य के कर्त्तव्य। (५) शिष्य को शिष्टाचार का उपदेश। (६) 'शक्र' शब्द की व्याख्या, (७–८) परम गुरु ईश्वर। सर्ववशीकर्त्ता प्रभु। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। सर्वस्तुत्य परमेश्वर। (११) पक्षान्तर में पञ्च-कोष-युक्त जीव का वर्णन। (पृ० ३८—४४)

सू० [११]—महारथी के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में राजा, सेनापति। (५) आत्मा का वर्णन। (पृ० ४४—४७)

सू० [१२]—जगत् कर्त्ता, सर्वज्ञ, परमेश्वर का अग्नि, दूत, विश्पति आदि नामों मे वर्णन। पक्षान्तर में सूर्य, अग्नि, तेजस्वी पुरुष, राजा आदि का वर्णन। (पृ० ४७—५१)

सू० [१३]—परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में विद्वान् जठराग्नि,

भौतिक अग्नि, आत्मा का वर्णन। (५) आत्मा गृहस्थ और राष्ट्र पक्ष का विवरण (६) द्वारो और सेनाओं का वर्णन। (७) दिन और रात्रि के समान स्त्री पुरुष और दो राज्य-संस्थाओं का वर्णन। (८) दो विद्वान्। (९) तीन देवियों का विवरण। (१०) संसार का कर्त्ता विश्वरूप त्वष्टा। (११) ऊखल के दृष्टान्त से वनस्पति नाम से ईश्वर की स्तुति। (१२) यज्ञ। (पृ० ५१–५८)

सू० [१४]—ईश्वरोपासना। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (४–७) वीर विद्वानो और योगियों का वर्णन। (८) वषट् कृति। (९) ईश्वर से ज्ञान और (१०–१२) सुख प्राप्ति। पक्षान्तर में राजा का वर्णन। (पृ० ५८–६४)

सू० [१५] सूर्य के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। वायुओं के दृष्टान्त से वीरों, विद्वानों का वर्णन। (३–६) गृहस्थों के कर्त्तव्य। विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। द्रविणोदस् नाम ऐश्वर्यवान् पुरुषों का वर्णन। (११) राजा रानी, प्राण अपान का वर्णन। (१२) गृहपति की राजा से तुलना। (पृ० ६४—६९)

सू० [१६]—परमेश्वर उपासक, राजा, विद्वान् जन, आत्मा और प्राण गण का वर्णन। (२) सूर्य, चन्द्र के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (३) प्रातः ईश्वर स्मरण। (४) स्वप्रकाश परमात्मा का दर्शन। (५) पिपासित भक्त का ईश्वर को रस रूप से स्मरण। (६) महा-शक्तिमान् सर्वधारक प्रभु। (७) शान्तिप्रद। (८) आनन्द-रसमय। (९) काम-पूरक प्रभु। पक्षान्तर में राजा का वर्णन (पृ० ७०–७३)

सू० [१७]—इन्द्र, वरुण, राजा और सेनापति। अध्यात्म में जीव परमेश्वर। पक्षान्तर में अग्नि और जल। (८–९) इन्द्र, वरुण-वायु और जल। (पृ० ७३–७६)

सू० [१८]—ब्रह्मणस्पति वेदज्ञ विद्वान्। आचार्य, परमेश्वर, राजा। (६) सदसस्पति, सभापति। (९) नाराशंस, सर्वस्तुत्य परमेश्वर। (पृ० ७६–८०)

सू० [१९]—अग्नि, विद्वान्, परमेश्वर, राजा, भौतिक अग्नि का वर्णन। (४–९) अग्नि, अग्रणी राजा और मरुत् वीर भटों का वर्णन। (पृ० ८०–८३)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२०]—ऋभुगण, विद्वान् ज्ञानी ईश्वरोपासक जन, शिल्पी जन। (६) देवकृत चमस का वर्णन। (७) इक्कीस प्रकार के रत्नों का धारण। (पृ० ८३–८६)

सू० [२१]—इन्द्र और अग्नि अर्थात् वायु और आग, अग्नि और सूर्य के समान सेनापति और राजा। पक्षान्तर में परमेश्वर। (६) राज-प्रजावर्ग को सावधान रहने का आदेश। (पृ० ८७–८९)

सू० [२२]—दो अश्वी, स्त्री पुरुष, दो उत्तम अधिकारी, राजा रानी, अग्नि जल, अध्यात्म में आत्मा, परमात्मा। (५) सविता, जगदुत्पादक परमेश्वर, राजा। (७) चित्र वसु के विभक्ता का स्मरण। सबकी मिलकर स्तुति। राष्ट्रपालक संस्थाओं और गृहपत्नियों की प्राप्ति। (१०) भारती, वेदवाणी। (११) सेना और गृह-पत्नियों के कर्त्तव्य। (१२) इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, तीन शक्तियों का वर्णन। पक्षान्तर में गृहपत्नी का वर्णन। (१३) पृथिवी, शासन और गृहस्थ का वर्णन। (१४) राजा प्रजा का व्यवहार। (१५) पृथ्वी के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन। (१६) परमेश्वर, राजा। (१७–२१) विष्णु, परमेश्वर। (पृ० ८९–९८)

सू० [२३]—सोम, जीवगण, वीरजन विद्वानों के कर्त्तव्य। (३) सहस्राक्ष इन्द्र वायु की व्याख्या। (४) मित्र, वरुण, प्राण और अपान की

साधना, मित्र, वरुण या वायु और सूर्य दो अधिकारी। (६) राजा, न्यायाधीश। (७) मरुत्वान् इन्द्र, सेनापति। (८) मरुद्गण वीर पुरुष, इनकी वायु से तुलना। (९) वायु, विद्युत् वृष्टि द्वारा युद्ध वीरों के कर्त्तव्य। (१०) उग्रों का वर्णन। (११) विजयी वीर। (११–१५) राजा का वर्णन। (१६–२७) आप्त पुरुषों, जलों और प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (२४, २५) गुरु शिष्य का वर्णन। (पृ० ९८–१०६)

सू० [२४]—जीव का प्रभु-स्मरण। पुनर्जन्म, ईश्वर से उत्तम ऐश्वर्य की प्रार्थना। (६) सबसे महान् प्रभु। (७) राजा, वरुण, सूर्य, परमेश्वर। राजा के कर्त्तव्य। (१२–१४) शुनः-शेप अर्थात् सुखाभिलाषी मुमुक्षु बद्ध जीव की प्रार्थना। (पृ० १०७–११२)

सू० [२५]—वरुण, परमेश्वर और राजा के प्रति भक्तों और प्रजाओं की प्रार्थना। राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् पुरुष। (पृ०११२–११९)

सू० [२६]—विद्वान् पुरुषों की सेवा। परमेश्वर से प्रार्थना। अग्नि, विद्वान्, राजा, नायक, परमेश्वर। (पृ० ११९–१२२)

सू० [२७]—अग्नि, सम्राट् के कर्त्तव्य। भौतिक अग्नि, परमेश्वर और विद्वान्। पराक्रमी सेनापति, विद्वान् नायक। (१२) विश्पति बृहद्भानु। (१३) सबका यथायोग्य आदर। (पृ० १२३–१२७)

सू० [२८] उलूखल के दृष्टान्त से विद्वान्, ज्ञानोपदेष्टा के कर्त्तव्य। गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सारथि के दृष्टान्त से गृहस्थों के कर्त्तव्य। राजा नायक को उपदेश। (पृ० १२७–१३१)

सू० [२९]—राजा और परमेश्वर से ऐश्वर्यों की प्रार्थना। (८–९) राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १३१–१३३)

सू० [३०]—वीर पुरुषों का सेनापति या नायक से सम्बन्ध। (६) संग्रामार्थ सेनापति की प्रधान पद पर प्रतिष्ठा। (१३) प्रजाओं की

आशाएं। (१४–१५) अक्ष या धुरे के दृष्टान्त से मुख्य पुरुष का कर्त्तव्य। (१६) अक्ष के दृष्टान्त से सेनापति का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर। (१७) अश्वावती शवीरा का रहस्य। सेना द्वारा शत्रु पर आक्रमण। दो अश्वी दो नायक। पक्षान्तर में देह में प्राण-अपान। (२१) दो शिल्पियों के दृष्टान्त से अध्यात्म तत्व। (२०–२०) विभावरी, ईश्वरीय शक्ति। चित्रा, अश्वा और दिवो-दुहिता का रहस्य। (पृ० १३३–१४२)

सू० [३१]—अग्नि, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर से विद्वानों की ज्ञान-प्राप्ति, राजा के राज्य मे विद्वानो के प्रति कर्त्तव्य। (३)ईश्वर का महान् सामर्थ्य। (४) ईश्वर और आचार्य के कर्त्तव्य। (६) पापनाशक प्रभु। (७) मोक्षप्रद, सर्वोत्पादक। पक्षान्तर मे राजा और विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में—देह में स्थित प्रजोत्पादक वीर्य का वर्णन। सर्वैश्वर्यप्रद, ज्ञानप्रद पिता और कवच के समान रक्षक। (१६) शरण्य। (१७) सर्वगुण सम्पन्न। (पृ० १४२–१५४)

सू० [३२]—सूर्य, वायु, विद्युत् और मेघ के वर्णन से वीर सेनापतियों के कर्मों का वर्णन। वृष्टि-विद्या का वर्णन। वृत्र-हनन का रहस्य। (पृ० १५४–१६२)'

तृतीयोऽध्यायः

सू० [३३]—ज्ञानवर्धक, रक्षक प्रभु की शरणप्राप्ति। पक्षान्तर मे आचार्य, राजा। (३) वीर योद्धा का शत्रु विजय, सेनापति। (१२) शुष्ण और इलीविश का रहस्य। (१३–१५) योद्धा और वृषभ की तुलना। (१६२–१७०)

सू० [३४]—विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (१) परस्पर विवाह, स्वयं वरण। (२) मधुवाह त्रिचक्र रथ का रहस्य। (३–६) स्त्री पुरुष, राजा, मन्त्री, रथी, सारथि का वर्णन। (७) प्रथम विवाहित स्त्री पुरुषों का

प्रथम तीन रात्रि ब्रह्मचर्य पालन। (८) यज्ञ द्वारा वायु शुद्धि का आदेश। (९) त्रिवृत त्रिचक रथ। (१०–१२) स्त्री पुरुषों को उत्तम जल, अन्न, दीर्घ जीवन, ऐश्वर्य प्राप्ति आदि का उपदेश। (१७०-१७७)

सू० [३५]—(१) परमेश्वर का नाना रूपों मे स्मरण। (२) सूर्य के दृष्टान्त से सर्वसाक्षी ईश्वर का वर्णन। (३) सूर्य, वायु और वीर के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन। (४) विश्वरूप। (५) सर्व भुवना-धार, सर्वोत्पादक प्रभु। (६) तीन द्यौ का वर्णन। (७–१) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी सुपर्ण रूप से राजा का वर्णन। (१७७–१८३)

सू० [३६]—ईश्वर और राजा का अग्नि रूप से वर्णन। अग्नि, अग्रणी नायक। (३४) विद्वान् ज्ञानी का दूत और होता रूप से वरण। (५) गृहपति और राजा की तुलना। राजा मे सब देवांशो की सत्ता। (६) नायक, राजा, परमेश्वर का समान रूप से वर्णन। (७) स्वराट् की उपासना। (८) शत्रुओं का दमन। (९) अग्नि के समान राजा की तेजस्वी स्थिति। (१०–११) राजा को विद्वानों का साहाय्य। (१२) राजा का ऐश्वर्य द्वारा प्रजा को सुखी करने का कर्त्तव्य। (१३) राजा का सर्वोच्चपद। (१४–१९) प्रजाभक्षकों का दमन और दुष्टों से प्रजा की रक्षा। (पृ० १८३–१९१)

सू० [३७]—मरुद्गणो, वीरों, विद्वानो का वर्णन। वायुओं के दृष्टान्त से वीरो का वर्णन। (९) वायुओ के दृष्टान्त से देहगत प्राणों तथा वीरो का वर्णन। (पृ० १९१–१९६)

सू० [३८]—मरुद्-गणो, वीरों, विद्वानो, वैश्यो और प्राणो का वर्णन। (पृ० १९६–२०१)

सू० [३९]—मरुद्-गण, वायुओ, प्राणों, विद्वानो का समान रूप से वर्णन। (६) 'पृषतीः' का रहस्य। (पृ० २०१–२०५)

सू० [४०]—बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान् के कर्त्तव्यों का वर्णन। राजा, सभापति और सेनापति के कर्त्तव्यो का वर्णन। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) स्त्री का उन्नत पद। (४) कन्यादान, भूमिदान। (५) आचार्य और ईश्वर का ज्ञानोपदेश। (६) वेदाभ्यास का उत्तम फल। (७, ८) वीर राजा का प्रतिष्ठा-पद। (पृ० २०५—२०८)

सू० [४१]—वरुण, मित्र, अर्यमा, आदित्य इन अधिकारियों का वर्णन। (९) चार भय-स्थानों का वर्णन। (पृ० २०९—२१२)

सू० [४२]—पूषा, पृथ्वी के समान प्रजापालक राजा के कर्त्तव्य। नाना प्रकार के दुष्टों का दमन, ऐश्वर्यों का सञ्चय। (पृ० २१२—२१४)

सू० [४३]—रुद्र, मित्र, वरुण इन अधिकारियों का वर्णन। (४) रुद्र, वैद्य, परमेश्वर। (पृ० २१४—२१७)

सू० [४४]—अग्नि, परमेश्वर, राजा, सभाध्यक्ष और विद्वान् का समान रूप से वर्णन। (१२) सिन्धु के दृष्टान्त से वर्णन। (१४) धृतव्रत वरुण के सोम-पान का रहस्य। (पृ० २१७—२२४)

सू० [४५]—प्रमुख विद्वान् और अग्रणी नायक सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० २२४—२२७)

सू० [४६]—स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) अश्वियों की सिन्धु से उत्पत्ति का रहस्य। (७) नदियों के उपयोग का आदेश। शिल्पियों का वर्णन। (१०) ताल और प्रतिक्षेपक द्वारा अग्नि उत्पन्न करने की विधि। (पृ० २२८—२३३)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [४७]—आचार्य, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्षों और राजा और पुरोहितों तथा विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (९) सूर्यत्वग् रथ का रहस्य। (पृ० २३३—२३६)

सू० [४८]—उषा के वर्णन के साथ कमनीय गुणों से युक्त कन्या और विदुषी स्त्री के गुण और कर्त्तव्य। (१) 'दिवो दुहिता' का रहस्य। (पृ० २३७–२४५)

सू० [४९]—उषा के वर्णन के साथ साथ कान्तिमती कन्या के कर्तव्यों का वर्णन। (पृ० २४५–२४६)

सू० [५०]—सूर्य के दृष्टान्त से उत्तम पति का वर्णन। स्वप्रकाश, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की उपासना। (८) रोहित्‌ देव का रहस्य। (९) सूर्य के सात अश्वों का रहस्य। (११, १२) सूर्य के द्वारा पाण्डु-रोग का निवारण तथा उसका आध्यात्मिक रहस्य। (पृ० २४६–२५२)

सू० [५१]—इन्द्र, राजा और परमेश्वर का भेद और सूर्य के दृष्टान्त से वर्णन, सेनापति की प्रतिष्ठा। राजा के कर्तव्य। वृष्टि-विज्ञान का उपदेश। (१) इन्द्र मेघ। (४) वृत्रवध। (५) मायिनों का नाश, पिप्रु का नाश। (६) कुत्स की रक्षा, अतिथि के लिये शम्बर का नाश, अर्बुद का नाश। (७) इन्द्र का वज्र। (८) शाकी इन्द्र। (९) उशना। (१२) शार्यात अनर्वा श्लोक। (१३) वृषणश्व की मेना। (१५) स्वराट् वृषभ इन सबका रहस्य। (पृ० २५२–२६१)

सू० [५२]—बरसते हुए मेघ से सेनापति राजा और परमेश्वर की तुलना और उनके कर्तव्यों और सामर्थ्यों का वर्णन। वृष्टि-विज्ञान (पृ० २६१–२७१)

सू० [५३–५८] परमेश्वर, राजा, सभा और सेना के अध्यक्षों के कर्तव्यों और सामर्थ्यों का वर्णन। (पृ० २७१–३०२)

सू० [५९]—अग्नि, वैश्वानर नाम से अग्नि, विद्युत् या सूर्य के दृष्टान्त से अग्रणी नायक, सेनापति और राजा के कर्तव्यों और परमेश्वर की महिमा का वर्णन। (पृ० ३०२–३०६)

सू० [६०]—वायु के दृष्टान्त मे विजिगीषु राजा का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर की स्तुति। (पृ० ३०६—३०९)

सू० [६१]—इन्द्र, परमेश्वर की स्तुति। राजा के गुणों का वर्णन। (६) विद्वान् शिल्पी का कर्तव्य। (७) शत्रु विजय की नीति। (८) गृह पत्नियों के दृष्टान्त से सेनाओ के कर्तव्य। (९) स्वराट् इन्द्र का स्वरूप। (१०) उसके प्रजा और शत्रुओं के प्रति कर्तव्य। (११) प्रजाओ के हाथ मे शासन का देना। (१२) वायु, मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से शत्रु-विजय का उपदेश। (१३) युद्ध विद्या के नित्य अभ्यास का उपदेश, (१४) बलशाली सेनापति का स्वरूप। (१५) इन्द्र का लक्षण। (१६) हारियोजन इन्द्र का रहस्य। (पृ० ३०९—३१८)

पञ्चमोऽध्याय

सू० [६२]—परमेश्वर की स्तुति। बलवान् राजा के कर्तव्य। (२) विद्वानों के कर्तव्य। आंगिरस, विद्वान्। (३) माता पुत्र के दृष्टान्त से सेना के कर्तव्य। मेघ और सूर्य के समान सेनापति का कर्तव्य। सरमा का रहस्य। (४) शत्रु विजय के लिये घोर गर्जनाकारी तोपों का प्रयोग। (५) राष्ट्र की वृद्धि और प्रजा का उपकार। (६) विद्युत् के समान राजा का कर्तव्य। (७) प्राण और सूर्य के समान राजा, सेनापति के कर्तव्य। (८) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुष तथा राजा प्रजा का कर्तव्य। (९) सूर्य के समान पुत्र और राजा के कर्तव्य। (१०) अंगुलियों के समान प्रजाओं और सेनाओं का कर्तव्य। (११) स्त्रियों के समान विद्वानों का कर्तव्य। (१२) ऐश्वर्य-वर्धक राजा। (१३) विद्वान् सुशासक का कर्तव्य। (पृ० ३१८—३२६)

सू० [६३]—राजा, परमेश्वर और आचार्य का वर्णन। (२) राजा के हाथ मे राजदण्ड का समर्पण। (३) शत्रुनाश के उपाय। (४)

दुष्टो का दमन । (५) हतौडे से लोहे के समान, शत्रु के बल को तोड़ने का आदेश । (६) मेघ के समान प्रजारक्षक का कर्त्तव्य । (७) ससाङ्ग राष्ट्रबल से ससाङ्ग शत्रुबल का भेदन । (८) जल और अन्न के समान प्रजा का पोषण । (९) ऐश्वर्यदान । (पृ० ३२६–३३१)

सू० [६४]—विद्वानो का कर्तव्य । (२) दीक्षा द्वारा बलवान् होने का उपदेश । वीर सैनिको और व्रतनिष्ट ब्रह्मचरियो को उपदेश । (३) ब्रह्मचारी रुद्रो और सैनिकों का वर्णन । (५–६) वायुओ के समान रुद्र वीरों का वर्णन । (७) पर्वतो और हस्तियों के समान् वीर जन । (८) सिहों के समान वीर जन । (९–१०) उनके कर्तव्य । (११) रथ के समान वीर पुरुष का वर्णन । मरुतो, वीर भटों का वर्णन । (१२) वेतनों पर सैन्यों की नियुक्ति । विद्वानों और मरुद्गण का वर्णन, रुद्र-सूनु का रहस्य । (१३) वीरों और सेनापति तथा प्राणों और आत्मा का वर्णन । (१४—१५) प्रमुख नायकों की स्थापना । (पृ० ३३१–३४०)

सू० [६५]—अग्नि, परमेश्वर, विद्वान् का वर्णन । (२) आप्त विद्वानो के कर्तव्य । (३–५) नाना दृष्टान्तो से परमेश्वर, वीर पुरुष, नायक आदि का वर्णन । (पृ० ३४०–३४४)

सू० [६६–६७]—नाना दृष्टान्तो से वीर पुरुष, नायक, राजा अग्नि तथा परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ३४४–३५०)

सू० [६८–६९]—परमेश्वर (२) जीव । आचार्य उत्तम, शासक, सभाध्यक्ष आदि का वर्णन । (पृ० ३५०–३५५)

सू० [७०]—अग्नि के समान भोक्ता राजा, स्वामी, ईश्वर का वर्णन । (पृ० ३५५–३५९)

सू० [७१]—वहिनों और गौओ के समान प्रजाओं का वर्णन । (२) वायु और तोपों के समान वीरो और विद्वानो का वर्णन । (३) वैश्यों के समान स्त्रियों का कर्तव्य । (४) तीव्र वायु के समान वीर

राजा के कर्तव्य। (५–६) योगी, गृहपति, सूर्य और राजा का समान वर्णन। (७) समुद्र के समान आचार्य, राजा और परमेश्वर। (८) गृहपति और राजा का समान वर्णन। (९) शूरवीर और ज्ञानी का वर्णन। (१०) प्रभु, राजा से प्रार्थना। (पृ० ३५९–३६५)

सू० [७२]—विद्वान् का वर्णन। (२) विद्वानों का कर्त्तव्य। (३) ईश्वर और गुरु की उपासना। (४) ईश्वर का साक्षात् करना। पक्षान्तर मे राजा का वर्णन। गुरूपासना और ईश्वरोपासना। शिष्टाचार। (६) परमेश्वर, गुरु, राजा आत्मा का वर्णन। (७) उनके कर्तव्य। (८) सप्त प्राणमय देह और सप्ताङ्ग राज्य। (९) मुमुक्षुत्व का अधिकारी, परमेश्वर का माता के समान वर्णन। (१०) ज्ञानियों और विद्वानो का वर्णन, राज्याभिषेक। (पृ० ३६५–३७१)

सू० [७३]—अग्नि, राजा का वर्णन। उसके सूर्य के समान कर्तव्य। (४) ईश्वर और राजा का आश्रय। (५) धनाढ्यो और ज्ञानवृद्धों के कर्तव्य। (६) नदियों और गौवो के समान ज्ञानैश्वर्यवानों का कर्तव्य। (७) गुरु के अधीन शिष्य का रहना। ईश्वर और उपासक की स्थिति। विरूप रात्रि दिन का रहस्य। शुक्ल कृष्ण का रहस्य। (८) परमेश्वर और मध्यस्थ राजपद। (९–१०) मनुष्यों को उत्तम उपदेश। (पृ० ३७१–३७७)

सू० [७४–७५]—परमेश्वर की स्तुति। राजा और विद्वान् के कर्तव्योपदेश। (पृ० ३७७–३८१)

सू० [७६–७८]—विद्वान् गृहस्थों के कर्तव्य-उपदेश, ईश्वरोपासना। राजा और विद्वानों के कर्तव्य और उनके स्वरूप ईश्वरोपासना। (पृ० ३८१–३८८)

सू० [७९]—पुरुषों और स्त्रियों को उपदेश। वे किस प्रकार के बनें। (२) विद्वान् की गृहपति से तुलना। गृहस्थ के कर्तव्य। मेघादि की उत्पत्ति। (३) वृष्टि के समान गर्भ-निषेक और वीर्य की उत्पत्ति तथा

उसके निषेक और पुरुषोत्पत्ति का विज्ञान। पक्षान्तर में गुरूकरण और ब्रह्मचर्यपालन। (४) परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना। (५-१२) राजा, विद्वान्, परमेश्वर से प्रार्थना। (पृ० ३८८-३९२)

सू० [८०]—स्वराज्य की वृद्धि और उनके उपायो का उपदेश। पक्षान्तर मे ईश्वरोपासना और परमेश्वर के स्वराट् रूप की अर्चना। (पृ० ३९३-३९९)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८१]—राजा का नायको के प्रति कर्तव्य। उसके गुणों का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर का वर्णन। (३) ऐश्वर्य-संचय, दो प्रमुखों की स्थापना, अनुग्रह और निग्रह के योग्य मित्र शत्रु का विवेक। (४) ऐश्वर्य वृद्धि, बल संचय का उपदेश। (६) ऐश्वर्य का विभाग, राष्ट्र ऐश्वर्य का प्रजा द्वारा भोग। (पृ० ३९९-४०३)

सू० [८२]—राजा और विद्वानों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर मे ईश्वर की स्तुति। (४) महारथी का अधिकार। पक्षान्तर में योगी का और अध्यात्म का वर्णन। (५) वीर पुरुष। (पृ० ४०३-४०६)

सू० [८३]—राजा प्रजा पालने के कर्तव्य। (२) स्त्रियो और विद्वानों के कर्त्तव्य। (३) परमेश्वर और विद्वान् आचार्य का वर्णन। (४) ब्रह्मचर्य का उत्तम फल। (५) उत्तम आचार्य और शासक की रक्षा मे वृद्धि करना। (६) उत्तम शासक के कर्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ४०६-४०९)

सू० [८४]—वीर राजा, सेनापति के कर्तव्यों का वर्णन। (४) राज्याभिषेक। (६) सर्वोच्च महारथी पद। सर्वोच्च इन्द्र। (७) सर्व-ईशान। (८) शक्तिमान्। (९) ऐश्वर्यवान्। (१०-१२) प्रजाओं

के कर्तव्य। (१३) सेनापति के कर्तव्य। दधीचि की अस्थियों का रहस्य। (१४) विजिगीषु को उपदेश। अश्व के शिर तथा शर्यणावत् का रहस्य। (१५) दमन और प्रजारञ्जन दोनों का उत्तम परिणाम। (१६) प्रमुख सर्वनियोक्ता नायक के लक्षण। (१७–१८) यथायोग्य का विवेचन। (१९) प्रजारञ्जक राजा। (२०) राजा के सुखदायी ऐश्वर्यों और रक्षा-साधनों की कामना। (पृ० ४०९–४१८)

सू० [८५]—पदाभिषिक्त विद्वानों और वीर पुरुषों का वायु के दृष्टान्त से वर्णन। उनके कर्तव्य। (३–४) उनको मातृभूमि का सेवक होना आवश्यक है। 'पृश्नि-मातरः' का रहस्य। (४५) मरुतों के रथ में 'पृषती' नाम अश्वाओं के जोड़ने का रहस्य। वृष्टि विज्ञान। (६) वेगवान् यान और विशाल भवनों के उपयोग की आज्ञा। बाहुबल से विजय करने का आदेश। (७) वीरों और उसके नायक का सूर्य के समान कर्तव्य। (८) विद्वानों और वीरों का प्राणों के समान कर्तव्य। सूर्य के समान शस्त्रबल धारण करने का उपदेश। (९) त्वष्टा का वज्र बनाने और इन्द्र का उससे वृत्र हनन का रहस्य। (१०) वीरों का अवनत राष्ट्र की उन्नति और शत्रु-नाश का कर्तव्य और वृष्टि रहस्य। (११) प्रजा की रक्षा और शत्रुनाश का कर्तव्य। दानी लोगों का कर्तव्य। वृष्टि-विज्ञान। मरुतों का प्यासे गोतम के लिये कूप उखाड़ लाने की कथा का रहस्य। (१२) त्रिधातु गृह, विद्वानों को दान तथा 'त्रिधातु शर्म' का रहस्य। (पृ०४१८–४२५)

सू० [८६] उत्तम रक्षक और परमेश्वर का वर्णन। विद्वानों, वीर भटों तथा मरुतों का वर्णन। उनके कर्तव्य। अध्यात्म में प्राणों का वर्णन। (पृ० ४२५–४२८)

सू० [८७]—वीर उत्तम नायकों का वर्णन। उनके कर्तव्य। पक्षान्तर में वृष्टि-विद्या और वायुओं का वर्णन। (४२८–४३०)

सू० [८८]—वीर पुरुषों और विद्वानों के कर्तव्यों का उपदेश।

सप्तमोऽध्यायः

सू० [९५]—(१) दो स्त्रियों के दृष्टान्त से दिन रात्रि का, आकाश पृथिवी का और ब्राह्मण, क्षत्र वर्ग का वर्णन । (२) स्त्रियों के पति वरण के दृष्टान्त से प्रधान नायक का वरण । नायक के तीन रूप, अग्नि के तीन रूप, अध्यात्म में आत्मा और परमेश्वर के तीन रूप । (४) सूर्य के समान राजा की उत्पत्ति, मातृ-गर्भ से प्रजा की उत्पत्ति । (५) गर्भगत बालक की वृद्धि के समान राजा की वृद्धि, उदय तथा सिंह के समान विजय । मेघगत विद्युत् और काष्ठगत अग्नि का वर्णन । (६–७) उभय-पक्ष की सेनाओं के बीच में वीर की स्थिति । (७) उसका पराक्रम, साथ ही सूर्य का जलाकर्षण आदि वर्णन । (८–११) सूर्य के समान राजा का तेजस्वी होना । देवसमिति का निर्माण । (पृ० ४८०–४८८)

सू० [९६]—द्रविणोदा अग्नि, ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर और विद्वान् आचार्य का वर्णन । (४) वायु और अग्नि के समान विद्वानों के कर्तव्यों का दर्शन । (५) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों का विद्वानों के धारण-पोषण कार्य । (६) विद्वानों का नायक के प्रति और उसका प्रजाजनों के प्रति कर्तव्य । (पृ० ४८८–४९२)

सू० [९७]—परमेश्वर से पाप नाश कर देने की प्रार्थना । राजा से पाप कर्म करने वाले को दण्डित करने का निवेदन और उसके साथ प्रजा की उन्नति के नाना उपाय । (पृ० ४९२–४९४)

सू० [९८]—सर्वहितकारी परमेश्वर की स्तुति । सर्वहितैषी राजा को अग्नि और सूर्य के दृष्टान्त से उपदेश । (पृ० ४९४–४९६)

सू० [९९]—आचार्य और परमेश्वर के आराधनार्थ ऐश्वर्य प्राप्ति (पृ० ४९६–४९७)

सू० [१००]—वायुगणो के स्वामी सूर्य के समान पृथिवी के सम्राट् का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर की स्तुति। मरुत्वान् इन्द्र का निरूपण। (४) परम विद्वान्, परम सखा, आचार्य भी मरुत्वान् इन्द्र है। वह संग्रामविजय, न्याय प्रकाश, अनुग्रह आदि का कर्त्ता हो। उसके कर्तव्य। (पृ० ४९७–५०५)

सू० [१०१]—आचार्य, विद्वान्, परमेश्वर और राजा और सेना-ध्यक्ष का वर्णन। उनके सखित्व, प्रेम और सौहार्द की याचना। (१३) इन्द्र के शिष्यो का रहस्य। (पृ० ५०६–५१२)

सू० [१०२]—परमेश्वर की स्तुति। पक्षान्तर मे राजा और सेना-पति का वर्णन। (पृ० ५१२–५१७)

सू० [१०३]—परमेश्वर की स्तुति। पक्षान्तर मे राजा और सेना-ध्यक्ष के कर्तव्य। (पृ० ५१८–५२२)

सू० [१०४]—राजा का सिंहासन पर अभिषेक। (२) कर्मानुरूप पुरस्कार। (३) स्वार्थ और अन्याय से धन हरने की निन्दा। (४) तेजस्वी की सेना-बलों और ऐश्वर्यो से वृद्धि। (५) बुरे राजा में अच्छे होने के भ्रम की सम्भावना। राजा को अपने स्वार्थों में प्रजा के बरबाद न करने का उपदेश। (६–८) प्रजापालन सम्बन्धी राजा के कर्तव्य। (९) राजा की आदर्श प्रतिष्ठा। (पृ० ५२३–५२७)

सू० [१०५]—चन्द्र तथा अन्यान्य आकाशचारी पिंडों के सम्बन्ध में ज्ञान। पक्षान्तर में प्रजानुरञ्जक राजा का वर्णन। (२) वृष्टि जल के आदान-प्रतिदान मे सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री पुरुष और प्रजा राजा के कर्तव्यों का वर्णन। (३) प्रजाओं और शिष्यों के राजा और आचार्य के प्रति आवश्यक विनय भाव। (४) ईश्वर विषयक प्रश्न और प्रति-

वचन तथा वेद ज्ञान के पुराने और नये धारण करने वालों का प्रतिपादन। (५) परम मूल और सर्वाश्रय का निरूपण। (६) मूल कारण का अन्वेषण। (७) अमृत जीवात्मा का वर्णन। (८) जीवात्मा को रुलाने वाली व्याधियों को दूर करने की प्रार्थना। (९) युद्धार्थी, वीर पुरुष की केन्द्र में स्थापना। आप्त्य त्रित का रहस्य। (१०) देहगत प्राणों के समान पांच प्रमुख, पञ्चायत तथा बृहद्-बल वाले पंच तत्वों का वर्णन। (११) नक्षत्रों और चन्द्रमा का वर्णन। (१२) उसी प्रकार ज्ञानियों का परमेश्वर दर्शन। (१३) वेद ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रार्थना। (१४) आचार्य का वेदोपदेश द्वारा जिज्ञासु का भव-कूप मे उद्धार। कूप मे पड़े हुए त्रित की कथा का रहस्य। (१८) वृक और तक्षा के दृष्टान्त से चन्द्र विज्ञान। गुरु शिष्य के कर्तव्य। (१९) आशीः-प्रार्थना। (पृ० ५२७—५३८)

सू० [१०६]—ऐश्वर्य और ज्ञान के दानी धनाढ्यों और विद्वानों के कर्तव्य। (३) सुप्रवाचन पितरों का रहस्य। (४—५) सर्व हितकारी ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष का कर्तव्य। बृहस्पति, मनु, कुत्स, इन्द्र आदि का रहस्य (५३८—५४१)

सू० [१०७]—विद्वान् और शक्तिशाली पुरुषों के कर्तव्य। (पृ० ५४१—५४२)

सू० [१०८]—इन्द्र और अग्नि के समान राजा, अमात्य, प्रकाश-प्रद आचार्य और अध्यात्म में जीव परमेश्वर का वर्णन। (५—८) क्षत्र, ब्रह्म और स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। (९—१०) सभाध्यक्ष, न्यायाध्यक्षों का वर्णन। विद्वानों के कर्तव्य। (पृ० ५४२—५४९)

सू० [१०९]—आचार्य और शिक्षकों के कर्तव्य। पक्षान्तर में बलवान् सेनापति और प्रमुख नायकों के कर्तव्य। (पृ० ५४९—५५३)

सू० [११०]—विद्वानो, शिल्पिजनो तथा वीर पुरुषो के कर्तव्य, उत्तम कोटि के मुमुक्षु जनो के लिये उपदेश। (५) पात्र का रहस्य। (८) ऋभुओ के बनाए गाय बछडे का रहस्य। (पृ० ५५३–५५८)

सू० [१११]—विद्वानो के शिल्पियो के समान कर्तव्य। (पृ० ५५८–५६१)

सू० [११२]—राजा-प्रजा वर्ग, प्रमुख पुरुषो और विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (२) असू धेनु का रहस्य। द्विमाता तरणि, त्रिमन्तु विचक्षण का रहस्य। (५) रेभ और वन्दन का रहस्य। (७) शुचन्ति, पुरुकुत्स, पृश्निगु का रहस्य। (८) भेड़िये के मुख मे पड़ी बटेरी का सत्यार्थ। अश्वियो का सिन्धु को मधुपान करने का रहस्य। (१०) पिप्पला का रहस्य। (११) मधुकोश का रहस्य। (पृ० ५६१–५७३)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [११३]—उषा के दृष्टान्त से नववधू, गृहपत्नी और विदुषी स्त्री के कर्तव्यो का उपदेश। (पृ० ५७३–५८२)

सू० [११४]—विद्वान् राजा तथा उपदेष्टा पुरुष के कर्तव्य। सेनापति का वर्णन। (पृ० ५८२–५८६)

सू० [११५]—परमेश्वर की स्तुति, विद्वान् तेजस्वी पुरुष के कर्तव्य। (५८६–५८९)

सू० [११६]—दो प्रमुख नायको तथा विद्वान् स्त्री पुरुषो के कर्तव्य। (३) तुग्र और भुज्यु की समुद्र-यात्रा का रहस्य। (४) अद्भुत विमान का वर्णन। (५) शतारित्रा नौ। (६) अघाश्व को श्वेत अश्व के खुर से सुरा के सैकडों कुम्भ आदि कल्पनाओं का रहस्य। (१५) विश्पला की लोहे की जाघ का रहस्य। (पृ० ५८९–६०३)

सू० [११७]—विद्वान् प्रमुख नायकों और स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (१७) सौ मेषों का रहस्य, ऋज्राश्व की कथा का रहस्य। (पृ० ६०४–६१७)

सू० [११८–१२०]—विद्वान् प्रमुख नायकों और स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (पृ० ६१८–६३३)

सू० [१२१]—राजा का कर्तव्य। परमेश्वर की स्तुति। (पृ० ६३४–६४४)

इत्यष्टमोऽध्यायः ।

इति प्रथमोऽष्टकः ॥

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

प्रथमोऽष्टकः । प्रथमं मण्डलम् ॥

प्रथमोऽध्यायः । प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ॥

ओ३म् ॥ अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर पक्ष मे—मै यज्ञ, ब्रह्माण्ड सर्ग के धारण करनेवाले, पहले ही समस्त सृष्टि से पूर्व विद्यमान प्रति ऋतु अर्थात् प्रत्येक सृष्टि-उत्पत्ति काल मे सृष्टि के घटक पदार्थों को मिलाने हारे, समस्त रमण करने योग्य, पृथिवी आदि लोकों को सर्वोत्तम धारण करनेवाले, देव सब पदार्थों के दाता, द्रष्टा और प्रकाशक, अग्नि, सबसे पूर्व विद्यमान, ज्ञानवान्, प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूं ।

राजा और विद्वान् के पक्ष मे—प्रजापालन रूप यज्ञ अर्थात् प्रजापति के कार्य को वश करनेवाले, सब के समक्ष प्रमाण रूप से स्थित, एवं सब के पूर्व धारण करनेवाले, सभा के सदस्यों के प्रेरक, सभापति, रमणीय सब उत्तम गुणो को धारण करनेवाले, रत्न सुवर्णादि के धारण

---

(१) आद्यमण्डलस्य ऋषयः शतर्चिनः क्षुद्रसूक्तन्यायेनेति षड्गुरुशिष्यः ।

करने वाले अग्नि, अग्रणी, नायक, दानशील, विजयशील राजा, सभापति, सेनापति पुरुष का मैं प्रजाजन आदर सत्कार करता हूँ।

भौतिक पक्ष में—यज्ञ, शिल्पादि के कर्त्ता, पहले से ही छेदन, भेदन आदि गुणों को धारण करने वाले, देव = प्रकाशयुक्त, गति देनेवाले साधनों, यन्त्रों एवं पदार्थों को सुसंगत करनेवाले, रथ आदि यन्त्रों के धारक, किरणों के धारक को मैं प्रेरित करता हूँ, उसका यन्त्रों और यज्ञों में सदुपयोग करूं।

यज्ञाग्नि पक्ष में—यज्ञ के आहुति-ग्रहण करनेवाले, ऋत्विक् के समान प्रति ऋतु यज्ञ करनेवाले, पुरोहित के समान आगे आदर पूर्वक आधान किये गये, प्रकाशयुक्त अग्नि को मैं प्रज्वलित करता हूँ।

'अग्निः'—अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। अङ्गं नयति सन्नममानः। अक्नोपनो भवति इति स्थौलाष्ठीविः। न क्नोपयति न स्नेहयति। त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायते इति शाकपूणिः, इताद्, अक्ताद्, दग्धाद्वा नीतात्।

'ईळे'—ईलिरध्येषणाकर्मा वा।

'देवम्'—देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। 'रत्नधातमम्' रमणीयानां धनानां दातृतमम्। इति निरु० ७। १४॥ अग्रणी होने से नायक, सेनापति, राजा, परमेश्वर 'अग्नि' कहाते हैं। यज्ञ में, उपासना में साक्षी रूप रहने से परमात्मा 'अग्नि' है। अंगों को झुका कर आगे आता है इससे विनीत शिष्य नायक और विद्वान 'अग्नि' हैं। गीला नहीं करता प्रत्युत सुखाता है इससे आग 'अग्नि' है। इण गतौ, अञ्जु म्रक्षणे, दह भस्मीकरणे, णीञ् प्रापणे इन धातुओं के योग से अग्नि शब्द बनता है। इससे गतिमान्, प्रकाशक, तेजस्वी, दाहकारी, परसंतापक सभी पदार्थ 'अग्नि' कहे जाते हैं।

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।
स दे॒वाँ एह व॑क्षति॥ २॥

भा०—वही ज्ञानस्वरूप, सब पदार्थों का प्रकाशक परमेश्वर पूर्व के, शास्त्रों के विज्ञ विद्वानों, मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषियों, विद्वान् अध्यापकों और तर्कों द्वारा और नये अर्थात् वेदार्थों के पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों द्वारा स्तुति, वन्दना, ज्ञान, मनन और अन्वेषण करने योग्य है। वह ही सूर्य के समान ऋतुओं को, आत्मा के समान प्राणों को, भोक्ता के समान भोगों को, आचार्य के समान विद्यादि दिव्य गुणों को इस जगत् में धारण करता, सब को प्राप्त करता है।

आत्मा के पक्ष में—वह आत्मा कारण और कार्यरूप से विद्यमान प्राणों द्वारा अन्वेषण करने योग्य है वह ही प्राप्य विषयों के प्रकाशक इन्द्रियों को धारण करता है।

'ऋषिभिः'—ऋषी गतौ। औणादिक इन्। अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तद् ऋषयोऽभवन् ॥ श० .. ॥ अर्त्तेः सनोतेश्चेति षड्गुरुशिष्यः। साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। निरु० १।२०॥ पुरस्तात् मनुष्या वा ऋषिषु उत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। तस्माद् यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहति आर्षं तद् भवति। निरु० १३।१२॥ अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः ॥ न्या० सू० १।१। ४४ ॥ प्राणा. ऋषयः। श० ७।२।१।५॥

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त् पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे।
य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥ ३ ॥

भा०—प्रतिदिन मनुष्य ज्ञानवान् परमेश्वर के भजन से पुष्टि द्वारा सुख देने वाले या स्वयं निरन्तर बढ़ने और बढ़ाने वाले, कीर्तिजनक, बहुत अधिक वीर, वीर्यवान, शूरवीरों और विद्वान् पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य, धन समृद्धि को प्राप्त करता है।

राजा के पक्ष में—अग्नि, तेजस्वी राजा के सहारे ही राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए, समृद्ध वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑ ।
स इद् दे॒वेषु॑ गच्छति ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने ज्ञानवन् ! सब के अग्रणी, सर्वप्रकाशक परमेश्वर ! तू जिस हिंसा आदि दोषों से रहित, एवं कभी विनष्ट न होने वाले नित्य, यज्ञ, प्रकृति के कारण तत्वों के परस्पर मिलने के सृष्टि, प्रलय आदि व्यवहारों से युक्त अन्तरिक्ष या ब्रह्माण्डमय जगत् सर्ग को सब ओर से और समस्त जल, पृथिवी आदि पदार्थों के भीतर और बाहर भी व्यापक है, वह यज्ञ ही समस्त दिव्य पदार्थों में सर्ग रूप से संयोग, विभाग और विद्वानों में उपासना रूप से होता रहता है ।

'अध्वरम्'—अध्वर इति यज्ञ नाम, ध्वरतिहिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः इति निरु० १ । ३ । ३ ॥ अध्वरमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम् । निघ० १।३॥ अध्वानं मार्गं राति ददाति । यद्वा अध्वा मार्गो विद्यतेऽस्मिन् । रो मत्वर्थीयः। ध्वरो हिंसा तदभावो यत्र । अविद्यमानो ध्वरो यस्य सः । अहिंसित इत्यर्थः। देवान् वै यज्ञेन यजमानान् सपत्ना असुरा दुधूर्षाञ्चक्रुः । ते दुधूर्षन्त एव न शेकुर्धूर्वितुं, ते पराबभूवुः । तस्माद् यज्ञोऽध्वरो नाम । श० १।४।१४ ॥ अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । ४ । १ । ३८ ॥ प्राणोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ५ ॥ रसोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ६ ॥

राजा के पक्ष में—हे विद्वन् ! जिस अहिंसनीय वीर यज्ञ = प्रजापति के तुम सब प्रकार से आश्रित हो वह यज्ञ = प्रजापालक व्यवस्था या राजा, देव अर्थात् विद्वानों के आधार पर चल रहा है ।

अध्यात्म में—अध्वर, यज्ञ नित्य आत्मा है वह देव नाम विषयों में क्रीड़ाशील प्राणों के आधार पर है । अध्यात्म में अग्नि = जाठर ।

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः ।
दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, परमेश्वर, समस्त पदार्थों का दाता, सबको अपने भीतर लेने वाला, सर्वोपरि ज्ञान और कर्म सामर्थ्यवान्

संसार को बनाने हारा, सत् पदार्थों में व्यापक, सत्यस्वरूप, अद्भुत यश, कीर्त्ति और वेदमय ज्ञानोपदेश करने वालों में सब से बड़ा, देव, दाता, सर्वप्रकाशक है। वह विद्वानों और दिव्य गुणों सहित हमें प्राप्त हो।

ज्ञानी पुरुष भी दानशील, मेधावी, क्रियानिष्ठ, सत्यभाषी, कीर्त्तिमान्, बहुश्रुत हो, वह विद्वानों या उत्तम गुणों सहित हमें प्राप्त हो।

'कविक्रतु.'—कवि. क्रान्तदर्शनो भवति। कवतेर्वा। निरु० १२।२।२॥ करोति यो येन वा स क्रतु। दया०।

'सत्यः'—सत्सु तायते। सत्प्रभवं भवति इति वा। निरु० ३। ३॥ तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि 'स-ती-यम्' इति। तद् यत् 'सत्' तदमृतं। अथ यत् 'ती' तन्मर्त्यम्। अथ यद् 'यम्' तेन उभे यच्छति। तदनेन उभे यच्छति तस्माद् 'यम्'। अहरहर्वा एवंवित् स्वर्गं लोकमेति।

अध्यात्म में—देह से देहान्तर में जाने वाला होने से जीव 'अग्नि' है। संकल्प करने और कर्त्ता होने से 'क्रतु'। 'सत्' होने से सत्य, सब प्राणों में बल और ज्ञानयुक्त होने से 'श्रवस्तम'। अद्भुत होने से 'चित्र' और द्रष्टा होने से 'देव' है। वह प्राणों सहित देह में आता है। इति प्रथमो वर्गः॥

यदुङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भुद्रं करिष्यसि।
तवेत् तत् सुत्यमङ्गिरः॥ ६॥

भा०—हे परमेश्वर! सर्वप्रकाशक! जो भी तू सर्वस्वदानशील, आत्मसमर्पक, उपासक के लिये कल्याणकारी सुख और ऐश्वर्य करता है, हे समस्त ब्रह्माण्ड के अंग अंग में व्यापक और प्राणों के भी भीतर व्यापक और अग्नि के समान प्रकाशक! वह सब तेरा ही है। और वह सत् पदार्थों में सुखप्रद या सद्गुणों से उत्पन्न होने वाला सत्य अथवा इह और पर दोनों लोकों में सुखकर है।

'भद्रम्'—भगेन व्याख्यातम्। भजनीयं, भूतानामभिद्रवणीयम्। भवद् रमयतीति वा, भाजनवद्वा। निरु० ४। १॥ यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रं, गृहं भद्रं, प्रजा भद्रं, पशवो भद्रमिति शाट्यायनिन.॥

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यं ।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक ! परमेश्वर और विद्वन् ! प्रतिदिन, दिन रात, हम लोग अपनी बुद्धि और क्रिया से भी नम्र भाव धारण करते हुए तुझे प्राप्त होते है। विद्वानो के पास नित्य हम ज्ञान प्राप्त करने के लिये जावें और उनका विनय अन्नादि से सत्कार करें। नमः इत्यन्न नाम। निघ०।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम् ।
वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑ ॥ ८ ॥

भा०—नित्य पदार्थों के और सत्य अनादि, अनन्त, संसार के प्रवर्तक ज्ञान और नियमव्यवस्था, सर्ग-चक्र एव कर्मफल के रक्षक, सबके प्रकाशक और स्वयं प्रकाशस्वरूप और अपने सर्व-दुःखहारी सर्व-दमन परमपद या स्वरूप मे सदा सब से बडे हुए, महान् परमेश्वर की शरण मे हम प्राप्त हो।

'दम.'—दाम्यन्ति शाम्यन्ति दुःखानि यस्मिन्। अथवा मदयति सुखयति इति मदो वर्णविपर्ययेण दम ।

विद्वान् भी जो श्रेष्ठ कर्मों से प्रकाशमान, ऋत, सत्य ज्ञान, वेद का रक्षक अपने गृह मे और दमन व तप जितेन्द्रियता, ऐश्वर्य मे बडा हो उसका हम सत्संग करें।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व ।
सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! वह आप परमेश्वर और विद्वान् पुरुष पुत्र के प्रति पिता के समान परिपालक है। वह तू हमारे लिये पिता के समान ही सुख से प्राप्त होने योग्य, उत्तम और सुख साधनो के उत्तम ज्ञानो को देने वाला होकर हमारे सुख, कल्याण के लिये हो और हमे प्राप्त हो, हमारे बीच मे विद्यमान रह। इति द्वितीयो वर्ग.॥

[२]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ १-३ वायुर्देवता ॥ ४-६ इन्द्रवायू । ७-९ मित्रावरुणौ । गायत्र्यः, १, २ पिपीलिकामध्या निचृद्, ६ निचृद् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वाय॒वा या॑हि दर्शते॒मे सोमा॒ अरं॑कृताः ।
तेषां॑ पाहि श्रु॒धी हव॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्, वायु के समान प्राणेश्वर ! जीवनप्रद एवं सर्वव्यापक ! हे ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य ! सब को देखनेहारे परमेश्वर ! ये समस्त उत्पन्न पदार्थ आपके रचना-कौशल से उत्तम रीति से सुभूषित हैं, बडे सुन्दर बने हुए हैं। उनको आप पालन करते हो। आप हमारी स्तुति श्रवण करें।

ज्ञानी पुरुष ज्ञान करने और पदार्थों के तत्वों तक पहुंचने से 'वायु' है। ज्ञान को देखने से 'दर्शत' है। उसके कौशल से नाना उत्तम पदार्थ बनते हैं। एवं बहुत से सौम्य गुणों से युक्त शिष्य उसको प्राप्त होते हैं। वह उनकी रक्षा करे और सबको उत्तम ज्ञानोपदेश श्रवण करावे।

भौतिक पक्ष में—गतिमान् होने से 'वायु' है, स्पर्श से देखने योग्य होने से दर्शनीय है, वह सब जगत् के जीवों और वृक्षादि को जल और प्राण से सुशोभित करता है। उनको प्राण द्वारा पालन करता, शब्द का श्रवण करने का साधन है। वह शब्द को देशान्तर तक पहुंचाता है।

'वायु'—वातेर्वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मण । एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारः । निरु० १०। १-२ ॥ वायुः सोमस्य रक्षिता । वायुमस्य रक्षितारमाह । साहचर्याद् रसहरणाद् वा । निरु० ११।५॥ वेः पुत्रश्चायन् इति वा । कामयमान इति वा । वेति च य इति च चकार शाकल्यः । निरु० ६।५।६॥

वायं उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः ।
सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिमन् ! सर्वव्यापक ! ज्ञानवन् ! सोम आदि ओषधियों का सेवन करनेवाले, सोम अर्थात् विद्वान् पुरुषों को उच्चपद प्रदान कर उनका सत्कार करनेवाले और दिन आदि के कालज्ञ, एक दिन में करने योग्य यज्ञ के ज्ञाता विद्वान् एवं अगम्य और अमृत का लाभ करने वाले ब्रह्मवित्, स्तुतिशील, विद्वान् पुरुष तेरी उत्तम स्तुति-वचनों और मन्त्रों से साक्षात् स्तुति करते है ।

वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे ।
उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक ईश्वर ! तेरी वेदवाणी उत्कृष्ट अर्थों का ज्ञान कराकर समस्त विद्याओं को सम्पर्क अर्थात् हृदय में प्रकाश करानेवाली होकर दानशील, दूसरों को विद्या देने हारे, विद्याभ्यासी और वेदानुशीलन में आत्मसमर्पण करनेवाले पुरुष को ही प्राप्त होती है । और वह वाणी उत्पन्न पदार्थों के रस या ज्ञान को ग्रहण करनेवाले को बहुत अधिक ज्ञानों, विद्याओं का ज्ञान कराती है ।

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् ।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

भा०—हे इन्द्र ! सूर्य के समान सब अर्थों के प्रकाशक और वायु के समान सब के जीवनप्रद ! तुम दोनों को ये समस्त उत्पन्न ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ और क्रियामय यज्ञ और प्राप्त करने योग्य भोग्य पदार्थ, भोक्ता जीवगण भी निश्चय से चाहते है और वे तुम्हे ही प्राप्त है । तुम तृप्तिकारक अन्नादि उत्तम पदार्थों के सहित हमे प्राप्त हो ।

जैसे सूर्य और पवन जलों को धारण करते है वे हमे अन्नादि पदार्थों सहित प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्य, इनके गुणों के धारक विद्वान्

और बलवान् पुरुषों को चाहते हैं वे सब उनके ही हैं। वे ज्ञान और बलों सहित हमें प्राप्त हों।

अथवा—वे पुत्र के समान, आज्ञावशवर्त्ती, जलों के समान सौम्य, शीतल स्वभाव शिष्य और पुत्र और जीवगण सूर्य और पवन के समान ज्ञानप्रद और प्राणप्रद, पिता, माता और गुरु, आचार्य को चाहते हैं। वे ज्ञानों और अन्नों सहित हमें प्राप्त हों।

वाय॒विन्द्र॑श्च चेतथः सु॒तानां॑ वाजिनीवसू।
तावा या॑त॒मुप॑ द्र॒वत्॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—वायु और इन्द्र का स्वरूप—हे वायो! ज्ञानवन्! और हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! ज्ञानप्रद! सूर्य के समान तेजस्विन्! तुम दोनों उषःकाल में प्रकट होने वाले, उदयकालिक सूर्य और प्राभातिक वायु के समान तमोनिवारक, सर्वप्रकाशक और प्राणपद और रोगहारक तुम दोनों भी अन्न से युक्त यज्ञक्रियाओं में अथवा ज्ञान-सम्पादन करनेवाली शिक्षा आदि में बसने वाले अथवा 'वाज' अर्थात् ज्ञानैश्वर्य को धारण करनेवाली वेदवाणी के धनी होकर प्राप्त शिष्यों और पुत्रों को ज्ञान प्रदान करते हो। वे दोनों आप शीघ्र ही हमें प्राप्त हों। आप लोग हम जिज्ञासुओं को प्राप्त होकर हमें अपना कर उपनयन द्वारा दीक्षित कर शिक्षित करो।

गुरु और आचार्य दोनों वायु और सूर्य के समान हों। वे वेद के धनी होकर पुत्रों और शिष्यों का उपनयन करें, शिष्यों को पढ़ावें, ज्ञानवान् करें। इति तृतीयो वर्गः॥

वाय॒विन्द्र॑श्च सुन्व॒त आ या॑त॒मुप॑ निष्कृ॒तम्।
म॒क्ष्वि॒१॑त्था धि॒या न॑रा॥ ६ ॥

भा०—हे वायो! ज्ञानवन्! हे सर्वप्रकाशक! आप दोनों, हे शिष्यों को गम्भीर विज्ञान मार्ग में ले चलनेहारे! तुम दोनों सचमुच ऐसी रीति से शीघ्र ही ज्ञान का सम्पादन करा देते हो, इसलिये धारणावती बुद्धि और कर्म द्वारा भली प्रकार सर्वथा 'कृत' अर्थात् निश्चित

बुद्धि वाले दृढ़ निश्चयी, व्रती, कर्म-निष्ठ शिष्य को प्राप्त करो, उसका उपनयन करो।

जीव और प्राण के पक्ष में—हे इन्द्र जीव और वायो! प्राण! दोनों शरीर के उठाने वाले, दोनों धारणा शक्ति से अन्नादि रस को उत्पन्न करते हैं, वे दोनों ही कर्मफल, भोग्य पदार्थ को प्राप्त करते हैं।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥

भा०—जल के समान, पवित्र करनेवाले, बल से युक्त सूर्य और प्राण के समान सब के स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने वाले और देह के नाशक रोगों को नाश करनेवाले अपान के समान, घातकों के घातक, शत्रुओं के वारक पुरुष को प्राप्त करता हूं। ये दोनों जल को आकर्षण करनेवाले सूर्य के समान ही दोनो 'घृत' अर्थात् पुष्टिकारक अन्न, बल, जल और तेज को प्राप्त करनेवाली क्रिया शक्ति को सम्पादन करने वाले हों। इनके बलों को पवित्र कार्यों में उपयोग हो, वे यान्त्रिक बल से जल को उत्पन्न व प्राप्त करने के साधन बनें।

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

भा०—सब से स्नेह करने वाला मित्र और सर्वश्रेष्ठ वरुण, न्यायाधीश और राजा दोनों सत्यस्वरूप वेद-ज्ञान से सत्य व्यवहार को बढ़ाने वाले और सत्य परिणाम और सिद्धान्त तक पहुचने वाले दोनों बड़े भारी राष्ट्रस्प कर्म, व्यवहार और ज्ञान को भी प्राप्त हो, उसको अपने वश करें।

मित्र और वरुण, प्राण और अपान, जल के बल से जीवन के वर्धक और प्राणों को प्राप्त होते है वे दोनों 'ऋत' आत्मा को भी व्याप्त है। सूर्य और वायु दोनो जल मे जीवन और प्राण की वृद्धि करते है। वे महान् 'क्रतु' क्रियामय संसार रूप यज्ञ को व्याप्त है। वे सत्य नियमों से बंधे रहकर जगत् को व्यापते है।

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी, परम विद्वान् मित्र और वरुण दोनो बहुतो के उपकार के लिये उत्पन्न, बहुत से निवास-स्थानो मे अथवा विशाल निवासस्थानो मे रहनेवाले कर्म और वल धारण करते हैं। वे राष्ट्र के सब कार्यों और अधिकारो को अपने वश करते है।

[३]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ देवता—१–३ अश्विनौ । ४–६ इन्द्र । ७–९ विश्वे देवा । १०–१२ सरस्वती ॥ गायत्र्य ॥ २,४,११ निचृद् । ४,११ पिपीलिकामध्या । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती ।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥

भा०—हे शीघ्र जाने वाले रथ और अश्व के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आप दोनो शीघ्र गतिशील हाथो या व्यवहारो वाले, उत्तम गुणो के पालक और बहुत से भोग्य पदार्थों से युक्त होकर वल देने वाले, उत्तम अन्नो को प्राप्त करो।

'इपः चनस्यतम्' यह प्रयोग 'समूलकाषं कषति' के समान जानना चाहिये। जल और अग्नि, रस और प्रकाश, वेग आदि व्यापक गुणो से युक्त होने से 'अश्वी' है। वे दोनो शीघ्र वेग के लिये व्यवहार मे आने से 'द्रवत्पाणी' है। दीप्ति के पालक होने से 'शुभस्पति' है। नाना भोग्य सुखकर पदार्थो को उत्पन्न करते है।

'अश्विनौ'—अथातो द्युस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमगामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेन अन्यो, ज्योतिषा अन्यः। अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः। तत्कावश्विनौ? द्यावापृथिव्यावित्येके। अहो-

रात्राविर्त्येके । सूर्याचन्द्रमसावित्येके । राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः । निरु० १० । १, १ ॥

इमे ह वै द्यावापृथिव्यौ प्रत्यक्षमश्विनौ । इमे हि इदं सर्वमश्नुवाताम् । पुष्करस्रजौ इत्यग्निरेवास्यै (पृथिव्यै) पुष्करमादित्योऽमुष्यै (दिवे) । श० ४ । १ । ५ । १६ ॥ श्रोत्रे अश्विनौ । नासिके अश्विनौ । तद्यौ ह वा इमौ पुरुषाविवाक्ष्यौ । एतावेवाश्विनौ । श० १२ । ९ । १२-१४ ॥ मुख्यौ वा अश्विनौ । श० ४ । १ । ५ । १९ ॥

द्युस्थान देवगण में अश्वी दोनों मुख्य है । एक रस से और दूसरा तेज से जगत् को व्यापता है । इसी से दोनों मुख्य हैं । आचार्य और्णवाभ के मत में अश्वों, किरणों वाले सूर्य, चन्द्र, राजा, सेनापति 'अश्वी' हैं । द्यौ पृथिवी, दिन रात्रि, सूर्य चन्द्र और राजा सभी ये 'अश्वी' कहाते हैं । पृथिवी में अग्नि और द्यौलोक में सूर्य दोनों पुष्टिकारक होने से 'पुष्कर' हैं । उनके धारक द्यौ और पृथिवी दोनों 'पुष्कर-स्रक् अश्वी' हैं । देह में कान, नाक, आंख दोनों जोड़े 'अश्वी' हैं । दो मुख्य पुरुष भी 'अश्वी' कहाते हैं ।

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया ।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥

भा०—हे मुख्य २ अधिकार के भोगने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों बहुत से कर्म करने में कुशल, सब प्रजाओं के नायक हो । आप दोनों शत्रु और प्रति-पक्षियों को दमन करने में समर्थ होकर ज्ञानयुक्त बुद्धि से वाणियों का प्रयोग करो, कहो और सुनो और उत्तम वेदवाणियों का अभ्यास करो ।

अग्नि और जल पक्ष से—अग्नि और जल दोनों 'शवीरा' अर्थात् वेग उत्पन्न करनेवाली क्रिया से युक्त होकर बहुत से कर्म करते हैं । वे दृढ़ बल से युक्त होकर उपयोगी नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं । प्राण और अपान दोनों 'पुरु' नाम इन्द्रियों के भीतर कर्म-प्रवर्तक हैं । वे दोनों

'शवीरा' अर्थात् अति तीव्र गति वाली ज्ञानशक्ति से नाना श्रोत्रादि स्थानो पर स्थिर होकर नाना वाणियो को ग्रहण करते है ।

दस्रा॑ यु॒वाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
आ या॑तं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

भा०—नाना सन्धि विग्रह आदि, सयोग और विभागो से युक्त अभिषिक्त हुए कुशो के समान शत्रुओ को नाश करके ही प्रजाओ के शासन करने मे कुशल हो । इनके बीच मे दुःखो और दु.खदायी शत्रुओ के नाश करने वाले, कभी असत्याचरण न करने वाले आप दोनो नासिका-गत प्राणो के समान दुष्टो को रुलाने वाले वीरो के बीच रहने वाले आप दोनो हमे प्राप्त हो ।

विज्ञान पक्ष मे—मिश्रण और अमिश्रण क्रिया करने मे चतुर विद्वान् पुरुषो ! आप लोगो को रोगनाशक, सदा सत्यगुण कर्म वाले, प्राण के मार्गों मे गतिशील जल और अग्नि के तत्त्व प्राप्त हो ।

इन्द्रा या॑हि चित्रभानो सु॒ता इ॒मे त्वा॒यवः॑ ।
अण्वी॑भि॒स्तना॑ पू॒तासः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! हे अद्भुत आश्चर्यकारक दीप्तियो वाले ! तू हमे प्राप्त हो । ये उत्पन्न समस्त पदार्थ, ऐश्वर्य तुझे चाहते है । और वे विस्तृत धनसम्पत्तियुक्त, किरणो या तेजो से युक्त पवित्र है । (२) हे राजन् ! ये अभिषिक्त राजगण भी तुझे चाहते है, किरणो के समान तेजस्विनी शक्तियो या प्रजाओ से पवित्र आचारवान् अभिषिक्त है । तू उनको प्राप्त हो । इस प्रकार छोटे छोटे राजा भी अपने मण्डलो की प्रजाओ द्वारा अभिषिक्त हो और वे अपने बीच मे सूर्य के समान महाराजा के अधीन रहे । (३) परमेश्वर पक्ष मे—ये समस्त पदार्थ सूक्ष्म कारण द्रव्यो से बने है, ये सब ईश्वर की सकल्प-कामना से प्रेरित है ।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

भा०—हे इन्द्र सूर्य के समान तेजस्वी और ऐश्वर्यवन्! तू उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म से प्राप्त होने योग्य है। तू विद्वान् मेधावी पुरुषों से जाना जाता है। तू उत्तम ज्ञानवान्, मेधावी, वेदज्ञ ब्राह्मण पुरुषों को प्राप्त हो।

ब्रह्म वै ब्राह्मणः। शत० १३। १। ५। ३॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! ईश्वर वीर पुरुष! अति वेग से जाने वाला वायु जिस प्रकार महान् कर्मों को करता है, उसी प्रकार तू भी वेद के ज्ञानों को या ऐश्वर्यों को प्राप्त हो। हे जलों के रस हरण करने वाली एवं तमोनाशक किरणों से युक्त सूर्य के समान वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों के स्वामिन्! तू हमें अपने इस अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में अन्न आदि सञ्चय करने योग्य पदार्थों को धारण करा।

प्राण के पक्ष में—इन्द्र, प्राणवायु गतिशील होकर हमारे अन्नों के पचाने की शक्ति प्राप्त करे और भोजनादि को धारण करे। शरीर को पुष्ट करे। इति पञ्चमो वर्गः॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत ।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे समस्त देव अर्थात् विद्वज्जनो! वीर दानशील एवं युद्ध-विजयी तेजस्वी पुरुषो! आप लोग रक्षा करने हारे, तेजस्वी, ज्ञानवान, प्रेमयुक्त, शत्रुहिंसक, वृद्धिशील, उत्तम पदार्थों के याचक एवं प्रदाता और

७–९—तदेतदेकमेव वैश्वदेवं गायत्रं तृचं दशतयीषु विद्यते। यत्तु किञ्चिद् बहुदैवतं तद्वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते। निरु० १२। ४०॥

दूसरों के रक्षक और रक्षण करने योग्य, एवं मनुष्यों को उत्तम व्यवस्था से धारण करने वाले है। आप लोग दानशील, अभयपद होकर दानशील, करप्रद, एवं आत्मसमर्पक के उत्तम पदार्थ, राष्ट्र या प्रस्तुत आदर सत्कार को प्राप्त करने के लिये आओ। विद्वान् आदि योग्य पुरुषों को इसी प्रकार से निमन्त्रण करना चाहिये। 'ओमासः'—अवितारो वावनीया वे मनुष्य-धृत.। निरु० १२।१४॥

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒प्तुरः॑ सु॒तमा ग॑न्त॒ तूर्ण॑यः।
उ॒स्रा इ॑व॒ स्वस॑राणि॥ ८॥

भा०—सूर्य के किरण जिस प्रकार दिनो को प्रकाशित करने के लिये नित्य नियम से आते है, उसी प्रकार हे विद्वान्, ज्ञान-प्रकाश से युक्त पुरुषो! आप लोग मेघो के समान मनुष्यो को जलवृष्टि द्वारा, अन्नादि वृद्धि करने और शुभ कर्मों का उपदेश देने वाले, स्वयं अति शीघ्रता से प्राप्त होने मे समर्थ होकर ज्ञान प्रदान करने के लिये, अथवा अभिषिक्त राजा या समृद्ध राष्ट्र को प्राप्त होओ।

'स्वसराणि'—अहानि भवन्ति। स्वयं सारीणि। अपि वा स्वरादित्यो भवति, स एनानि सारयति। निरु० ४।५॥

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒स्रिध॒ एहि॑मायासो अ॒द्रुहः॑।
मेधं॑ जुषन्त॒ वह्न॑यः॥ ९॥

भा०—समस्त विद्वान् पुरुष अक्षय विज्ञान बल और कोष से युक्त, सब विषयो मे चतुर बुद्धि वाले, किसी के प्रति द्रोह बुद्धि न करनेवाले, अहिंसक, राष्ट्र और समाज के कार्यों को धारण करनेवाले विद्वान् पुरुष यज्ञ, परस्पर के शुभ गुण कर्मों का सत्संग और सेवनीय अन्न का सेवन करें।

'एहिमायासः'—आङ्पूर्वस्य ईहतेश्चेष्टार्थस्य इनि.। एहिः सर्वतो गामिनी माया प्रज्ञायेषां ते। जिनकी बुद्धिया सब तरफ़ यत्नशील है वे विद्वान्,

अर्थात्(Proficient in all arts & branches of knowledge) विद्या की सब कलाओं और शाखा प्रशाखाओं में निष्णात ।

वेदवाणी का वर्णन

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

भा०—बलों, ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अन्नों से बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि को सिद्ध करनेवाली क्रिया से युक्त, सबको पवित्र करनेवाली, शुद्ध जलों से युक्त नदी के समान उत्तम ज्ञानमयी और गुरु परम्परा से बहनेवाली वेदवाणी और उसको धारण करनेवाले विद्वान् जन परस्पर संग, उत्तम कर्म और ज्ञान से ऐश्वर्य को धारण करनेवाली होकर यज्ञ, शिल्प व्यवहार, विद्याभ्यास और आत्मा और राष्ट्र को प्रकाशित करे ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

भा०—उत्तम ज्ञानों से युक्त वेदवाणी, उत्तम सत्य ज्ञानों का उपदेश करनेवाली और उत्तम बुद्धि वाले विद्वान पुरुषों को ज्ञान प्रदान करती हुई उनके यज्ञ, श्रेष्ठ कर्म और देव-उपासना को धारण करती, उसका उपदेश करती है ।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानमयी वेदवाणी अपने ज्ञान से ही बड़े भारी ज्ञानसागर का उत्तम रीति से ज्ञान कराती है । और समस्त ज्ञानों और कर्मों को विविध प्रकार से प्रकाशित करती है । जिस प्रकार बहती जलधारा यह सूचना देती है कि उसके निकास में अनन्त जलसागर है उसी प्रकार वेद-

वाणी भी उपदेश परम्परा से बराबर विस्तृत होकर अपने निकाश में स्थित अनन्त ज्ञान और शब्दराशि का ज्ञान कराती है। इति षष्ठो वर्गः॥

इति प्रथमोऽनुवाकः।

[४]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । ३ विराड् । १० निचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—दुग्ध दोहने वाले के लिये उत्तम दूध देने वाली गौ को जिस प्रकार बुलाया जाता है उसी प्रकार हम प्रतिदिन उत्तम, मनोहर, रुचिकर पदार्थों के उत्पन्न करने में चतुर, विद्यावान्, कलाविज्ञ, विद्वान् पुरुष को प्राप्त करें या उत्तम गुणों के उत्पादक परमेश्वर की स्तुति करें। दूध के लिये जैसे नित्य गौ को दोहते हैं उसी प्रकार उत्तम गुण प्राप्त करने के लिये गुणी को, ज्ञान प्राप्ति के लिये आचार्य को, रक्षा के लिये राजा को और शिल्प के लिये शिल्पज्ञ पुरुष को प्राप्त करें और उसकी आराधना करें।

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम पदार्थों या राष्ट्रों के रक्षक राजन्! प्रभो! तू हमारे ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ऐश्वर्यों या राज्य-कार्यों को प्राप्त हो। और सोम, ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का सेवन कर। सूर्य जिस प्रकार चक्षु आदि को सामर्थ्य प्रदान करता है उसी प्रकार वह भूमि और ज्ञान-वाणी का प्रदान करता है और धन-ऐश्वर्य और पुरुषार्थवान् पुरुष को तर्पित, तृप्त और आनन्दित करता है।

परमेश्वर जीवों का रक्षक सोमपा है, जीव की उपासनाओं को प्राप्त

हो। वह ऐश्वर्यवान् हृदय को तृप्त करने वाला आनन्दरस रूप और ज्ञान-वाणियों का प्रदाता है।

अथा॑ ते॒ अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुमती॒नाम्।
मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥

भा०—और हे परमेश्वर, राजन्! तेरे अति समीप प्राप्त, उत्तम ज्ञानयुक्त, श्रेष्ठ, धर्मात्मा पुरुषों के उत्तम उपदेश से हम तेरा ज्ञान करें। तू हमें त्याग मत कर, हमारी उपेक्षा मत कर। हमें प्राप्त हो।

परे॑हि॒ विग्र॒मस्तृ॑त॒मिन्द्रं॑ पृच्छा विप॒श्चित॑म्।
यस्ते॒ सखि॑भ्य॒ आ वर॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य! तू विशेष विद्वान् ज्ञानी अहिंसक, दयालुस्वभाव के ज्ञान का सञ्चय करने वाले, आत्मज्ञान के साक्षात् करने वाले उस विद्वान्, आप्त, उपदेष्टा पुरुष को पृथक्, एकान्त में प्राप्त हो और उसी से प्रश्न पूछ जो तेरे समान अन्य शिष्य गण को भी उत्तम विज्ञान का उपदेश करता है।

'विग्रः'—विविधं गृणात्यर्थान्, इति देवराजः। विप्र इति मेधाविनाम। निघ० ३। १५ ॥

उ॒त ब्रु॑वन्तु नो॒ निदो॒ निर॒न्यत॑श्चिदारत।
दधा॑ना॒ इन्द्र॒ इद् दुवः॑ ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—और चाहे हमारे निन्दा करनेवाले जन भी हमें कहें कि दूसरे स्थान में निकल जाओ, तब भी हम लोग उस परमेश्वर में ही नाना स्तुति, परिचर्या करते रहें।

अथवा परमेश्वर की ही परिचर्या करते हुए विद्वान् जन हमें उपदेश करें और हे हमारे निन्दाजनक पुरुषो! तुम अन्यत्र दूर देश में निकल जाओ।

उ॒त नः॑ सु॒भगाँ॑ अ॒रिर्वो॒चेयु॑र्दस्म कृ॒ष्टयः॑।
स्यामेदिन्द्र॑स्य॒ शर्म॑णि ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं और दुष्ट भावों के नाशक इन्द्र ! विद्वन् ! राजन् ! और हमारा शत्रु और साधारण जन भी हमें ऐश्वर्यवान् और कल्याणकारी कहें। हम सदा ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर की शरण में रहें।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! शीघ्रता के कार्य करने के लिये जिस प्रकार वेगवान् अश्व को नियुक्त किया जाता है उसी प्रकार आशु, शीघ्रकारी, प्रजापति या सुव्यवस्थित राष्ट्र के आश्रय, उसके शोभाजनक समस्त प्रजाओं और नेता पुरुषों को सुप्रसन्न करनेवाले और समस्त मित्रों को प्रसन्न रखने वाले स्वामी होने योग्य पुरुष को शीघ्र कार्य सम्पादन के लिये इस पृथिवी पर नियुक्त कर।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—हे सैकड़ों सहस्रों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्य वाले ! तू इस राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग करके, मेघों को सूर्य के समान सैकडो विघ्नकारी शत्रुओं को मारने में समर्थ हो, अर्थात् जिस प्रकार सूर्य इस जल का पान करके मेघों को रूपवान् करता है। समस्त जगत् की अन्नो द्वारा रक्षा करता है उसी प्रकार सग्रामों में संग्राम करने मे कुशल ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र या पुरुष की उत्तम रीति से रक्षा कर।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

भा०—हे सैकड़ों पदार्थों के ज्ञान बुद्धि और सामर्थ्य वाले राजन् ! सग्रामों मे विजय प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्यवान्, उस तुझको हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन्, शत्रुनाशक ! धनों, राज्यादि ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये हम आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं, तुझे ऐश्वर्य पद से विभूषित करते हैं।

यो रायो३ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर या राजा ऐश्वर्य का बड़ा भारी रक्षक और दाता है और जो उत्तम पालन पोषण करने हारा, सब कार्यों की पूर्ति करने वाला, उपासना करने वाले, धर्मात्मा पुरुषों और अभिषेक करने वाले प्रजाजनों का मित्र है उस इन्द्र, प्रभु की स्तुति करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[५]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । १ विराड् ।
३ पिपीलिकामध्या निचृद् । ५–७,९ निचृद् । ८ पादनिचृद् ॥
दशर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

भा०—हे स्तुति मन्त्रों को धारण करने वाले मित्रजनो ! आओ और विराजो । उस ईश्वर को लक्ष्य करके उसकी खूब स्तुति गान करो ।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

भा०—आकाश से लेकर पृथिवी तक बहुत से वरण करने योग्य, श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के स्रष्टा स्वामी, नाना दुष्ट स्वभाव के जीवों को कर्म फल से कष्ट देने वाले परमेश्वर की इस उत्पन्न संसार में मिलकर स्तुति करो ।

राजा वरण योग्य, सम्पदाओं का स्वामी राष्ट्र के पालक पोषकों में से सब से श्रेष्ठ पालक, इन्द्र, शत्रुहन्ता को एकत्र स्थिर होकर राजा को ऐश्वर्ययुक्त सोम = राष्ट्र के उच्च पद पर नियुक्त करें ।

आत्मा के ज्ञानों को पूर्ण करने वाले इन्द्रियों के बीच सबसे श्रेष्ठ ज्ञाता और वरण योग्य समस्त आशाओं के स्वामी, इन्द्र, आत्मा की ब्रह्मानन्द रस में समवेत होकर स्तुति करें ।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर ही योगाभ्यास काल अथवा अप्राप्त-पुरुषार्थ के प्राप्त करने मे सहायक हो । वह उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने मे सहायक हो । वह परमेश्वर ही शास्त्रो को धारण करने वाली बुद्धि को प्राप्त करने में सहायक हो । वह हमे नाना ऐश्वर्यों सहित प्राप्त हो । राजा अप्राप्त ऐश्वर्य और 'पुरन्धी' अर्थात् स्त्री, गृहस्थ के पालन, पुर, राष्ट्र के पालन की नीति मे समर्थ हो । वह हमे अन्न आदि ऐश्वर्यों सहित प्राप्त हो ।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

भा०—राजा के पक्ष मे—युद्धो मे जिसके अश्वो को शत्रुगण रथ मे लगे देखकर संग्रामो मे डट नहीं सकते, भयभीत होकर भागते है, उस ऐश्वर्यवान् राजा के गुण गान करो ।

परमेश्वर के उत्तम रीति से स्थित होने योग्य जगत् मे सूर्य के प्रकाश और आकर्षण के समान बल पराक्रम है, संग्रामो मे शत्रु जिसके सहाय से बल नहीं पकडते उस ईश्वर की स्तुति करो ।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—ऐश्वर्यों की रक्षा करने वाले राजा के भोग के लिये ही ये प्रजाओ को धारण पोषण करने वाले कार्यों मे अपने को नष्ट करने शुद्ध, पवित्र, सदाचारी राष्ट्र के पदाधिकारी गण प्राप्त होते है ।

जीव के पक्ष मे—उत्पन्न पदार्थों की रक्षा करने, उनको भोगने मे समर्थ पुरुष के भोग के लिये ये समस्त पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त है । इति नवमो वर्गः ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले जीव! तू उत्तम ओषधि रस के समान जगत् के उत्पन्न ऐश्वर्य भोग, पालन या प्राप्त करने के लिये सबसे उत्तमपद को प्राप्त करने के लिये शीघ्र ही, सब दिन सबसे बड़ा, सर्वश्रेष्ठ होकर रह।

परमेश्वर शुद्ध प्रज्ञावान्! इस उत्पन्न संसार को अपने में ले लेने से महान् है।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य प्रभो! तीव्र वेग से जाने वाले सेनाओं के प्रेरक, संचालक, अधिकारीगण तेरे में प्रविष्ट हों, तेरे अधीन होकर रहें और वे उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त तुझे कल्याणकारी हों।

को सबजीव पदार्थ प्राप्त हों और सुखकारक हों।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥

भा०—हे असंख्य ज्ञान और कर्मों के स्वामिन्! राजन्! एवं परमेश्वर! तुझको स्तुतिसमूह वेदमन्त्र बढ़ाते हैं, वे तेरी ही महिमा का गान करते हैं। वेद के सूक्त भी तेरा ही गान करते हैं। हमारी वाणियां भी तुझे बढ़ावें, तेरी महिमा का प्रकाश करें।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥

भा०—अक्षय रक्षा और ज्ञान सामर्थ्य से युक्त ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा इस सहस्रों असंख्य बल, वीर्य और सुखों वाले ऐश्वर्य को प्राप्त हो या प्रदान करे जिसमें समस्त प्रकार के पुरुषोपयोगी बल हैं।

परमेश्वर अक्षय ज्ञान और रक्षा सामर्थ्य से युक्त, सहस्रों सुखों का देनेवाला ज्ञान, अन्न और बल प्रदान करे। उसमें सब बल हैं।

८ मा नो मर्तो अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—हे राजन् ! हे आज्ञा प्रदान करने वाले वा स्तुत्य ! मरण-धर्मा मनुष्य हमारे शरीरो का द्रोह न करें, हम पर द्वेष से प्रहार न करें। तू सब का सामर्थ्यवान् स्वामी होकर घात या हिसा कार्य को दूर कर, हम तक न पहुचने दे। दशमो वर्गः ॥

[६]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ १–३ इन्द्रो देवता ॥ ४, ६, ८ ९ मरुत । ५, ७ मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्र । गायत्र्य । १२ विराड् । ४, ८ निचृद् ॥
दशर्चं सूक्तम् ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

भा०—विद्वान् योगी जन सबको नियम-व्यवस्था में बांधने वाले, महान्, सर्वाश्रय, रोषरहित, अहिंसक, तेजस्वी, समस्त स्थावर, अचेतन प्राकृतिक संसार में व्यापक परमेश्वर का समाहित चित्त होकर ध्यान करते हैं, उसका योगाभ्यास से साक्षात् करते हैं। और वे ही ज्ञानमय प्रकाश और परम ज्योतिर्मय तप से तेजस्वी होकर प्रकाशस्वरूप परमेश्वर या मोक्ष मे प्रकाशित होते है, विराजते हैं।

तेजस्वी, महान्, विचरने वाले सूर्य को उसके चारो ओर स्थित नक्षत्र आदि लोकों को आकर्षण से बांधते है, जो आकाश में चमक रहे है।

सूर्य के समान सबको बांधने वाला महान्, वायु के समान स्वच्छन्द विचरने वाले बलवान् को स्थिर प्रजाजनों के ऊपर राजा नियुक्त करते हैं। वे ज्ञानवान् पुरुष राजसभा मे विराजते हैं।

असौ वा आदित्यो ब्रध्न.। अग्निर्वा अरुष.। इमे वै लोकाः परितस्थुषः। नक्षत्राणि वै रोचनानि। वायुर्वै चरन्। (तै० ३।९।४।१–२)

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

भा०—इस आत्मा के प्राप्त करने के लिये रमण करने योग्य इस देह में कामना करने योग्य गतिशील एवं इन्द्रियों को गति देने वाले विविध पार्श्वों मे स्थित, गतिशील, दृढ़, नेता आत्मा को वहन करने वाले प्राण और अपान दोनो को योगी जन योगाभ्यास द्वारा वश करते है ।

सूर्य और अग्नि के पक्ष मे—रथ मे जिस प्रकार दोनो पार्श्वों पर दो अश्व लगाये जाते है उसी प्रकार वे दोनो दृढ और रक्तवर्ण, क्षत्रिय, रथस्थ, मनुष्यो को उठाने मे समर्थ होते है उसी प्रकार इस सूर्य और अग्नि के हरणशील आकर्षण और वेग दोनो गुण, विविध यन्त्रकला, जलचक्रादि को पार्श्वों पर धारण करने मे समर्थ, उत्तम इच्छा योग्य, गतिप्रद, दृढ, बहुत मनुष्यो को उठाकर ले जाने मे समर्थ है, उनको विद्वान् शिल्पी रथ आदि यानो मे लगावें ।

राजा के पक्ष मे—राजा के रथ मे कामनानुकूल गति करने वाले दोनों बाज़ू पर दृढ अश्वो को नियुक्त करते है ।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन ! विद्वन ! तू अज्ञानी के अज्ञान को नाश करने के लिये उसको विशेष ज्ञान और सुवर्णादि रहित धनहीन पुरुष के दारिद्र्य को नाश करने के लिये सुवर्णादि धन प्रदान करता हुआ सूर्य जिस प्रकार उषाकालो सहित उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रजा के अज्ञान और पाप-दोषो को नष्ट कर डालने वाले विद्वान और वीर पुरुषो सहित सामर्थ्यवान प्रबल और प्रसिद्ध हो । हे मनुष्यो ! आप लोग भी उसका सत्संग करो ।

(२) सूर्य रात्रि मे सोते हुए अचेत को प्रातः सचेत करता और अन्धकार मे रूपरहित पदार्थ को पुनः रूप प्रदान करता है ।

(३) अध्यात्म में—जीव केतु अर्थात् ज्ञान रहित देह को ज्ञानवान् और रूप रहित प्राणों को रूपवान् करता हुआ प्राणों के सहित देहवान् होकर प्रकट होता है।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य ताप के अनन्तर ही जल को प्राप्त करके अथवा अपनी धारणा शक्ति के अनुसार वायुएं बार बार जल को ग्रहण करने वाले स्वरूप को प्राप्त करते है और उसी समय परस्पर मिलने या सयोग से उत्पन्न होने वाले जल को भी धारण करते है। अर्थात् सूर्योत्ताप के बाद वायुगण अपने भीतर जल को धारण करने के सामर्थ्य के अनुसार, परस्पर सयोग से उत्पन्न जल को धारण कर लेते हैं वही दशा 'गर्भ' रूप कहाती है। वृष्टि आदि के पूर्व वायु जलो से गर्भित हो जाते हैं। (२) अध्यात्म मे—परस्पर स्त्री पुरुष के रजोवीर्यांश के संयोग से उत्पन्नस्वरूप को धारण करते हुए प्राण गण स्वधा अर्थात् जीव वा अन्न के साथ ही उसके लिङ्ग शरीर सहित प्रविष्ट हो कर माता की कुक्षि मे गर्भरूप को प्राप्त होते हैं।

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन्! तोड फोड करनेवाले बलवान्, उठाकर फेंकने वाले बलवान् पदार्थों से जिस प्रकार दृढ, बलवान् दुर्ग को भी तोड डाला जाता है और गुफा में भीतर स्थित रत्न आदि पदार्थ प्राप्त किये जाते है उसी प्रकार शत्रुओं का गढ तोडने वाले सेना के मुख्य पदो को धारण करने वाले, नायकों के साथ पर्वतों के गुप्त भागों में भी दृढ़ता से नाना ऐश्वर्य देने वाली भूमियों, गौवों, प्रजाओं को भी प्राप्त कर।

(२) आत्मा अज्ञान के आवरणो को तोडने मे समर्थ शरीर के धारक

प्राणों द्वारा दृढ़ता से भीतरी 'पुरीतत्' नाम गुहा में प्रवेश करके अनन्तर प्रकाशमय किरणों को प्राप्त करे।

(३) सूर्य छेदन-भेदन, संयोग-विभाग करने वाले वायुओं द्वारा आकाश में ही किरणों से जलादि पदार्थों को धारण करता है [दया०]।

(४) इन्द्र = विद्युत् वायुओं द्वारा वह निकलने वाली जल-धाराओं को प्रकट करता है [ग्रि०]।

(५) सूर्य अन्तरिक्ष में दिनों को प्रकट करता है। [मैक्स०]।

(६) विद्वान् अज्ञान का नाश करने वाले अग्निस्वरूप आचार्यों से दृढ़ सत्य, ज्ञान प्राप्त कर हृदय-गुहा में ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष देव, परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं, वे स्तोता विद्वान् पुरुष ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले, मननशील, बड़े भारी विद्वान्, बहुश्रुत एवं प्रसिद्ध परमेश्वर की साक्षात् स्तुति करते हैं।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—वायु जिस प्रकार सूर्य से युक्त होता है, दोनों समान रूप से तेजस्वी और हर्षजनक होते हैं उसी प्रकार हे वायु के समान तीव्र गति से शत्रु पर आक्रमण करने वाले निर्भय! शत्रुहन्ता सेनापति के साथ युक्त होकर ही तू शोभा पाता है। तुम दोनों समान रूप से, तेज को धारण करनेवाले और सदा प्रसन्न और एक दूसरे को आनन्दित करने वाले हो।

(२) विद्वान् जीव अभयस्वरूप आचार्य या परमेश्वर के साथ संगत होकर दीखता है।

(३) प्राणगण! अभय आत्मा के साथ संगत है। दोनों समान तेजस्वी और एक दूसरे को आनन्दप्रद है।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

भा०—यह जगत्-पालन रूप महान् यज्ञ ही निन्दनीय दोषो से रहित, खूब तेजस्वी, गणो सहित शत्रुहन्ता सेनापति के शत्रु-पराजयकारी सामर्थ्य का वर्णन करता है ।

(२) सूर्य का ससार पालन रूप यज्ञ अति कामना योग्य, निर्दोष, त्रुटिरहित, अति तेजस्वी वायुगणो या किरणो से उसके वलयुक्त कार्य का वर्णन करता है ।

(३) शरीर का जीवन यज्ञ आत्मा को प्राणगण सहित जीव के सर्वातिशायी स्वरूप को वतलाता है ।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

भा०—हे वायो ! हे प्राण ! सब दिशाओ मे जाने मे समर्थ ! एवं सब पदार्थों को ऊपर नीचे फेंकने मे समर्थ ! तू सूर्य के प्रकाश से और मेघमण्डल से आ । इस तुझ में ही वाणिया प्रकट होती हैं ।

वायु ही सब दिशाओ मे वहता है, वही मेघो मे विचरता है उसी के कारण मेघ गर्जनरूप अन्तरिक्षस्थ वाणियें प्रकट होती है । उसी प्रकार प्राण ! तू मूर्धा भाग और अन्तःकरण से भी आता है और कण्ठ की वाणिया प्रकट होती है ।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—इस पृथिवी लोक से और द्यौलोक से और अन्तरिक्ष लोक से भी वडे ऐश्वर्यवान् और उनके ऊपर शासकरूप से विद्यमान सूर्य वा प्रभु को ही हम सब पदार्थों के सयोग-विभाग करने और प्रदान करने वाला जानते है उसी से ऐश्वर्य सुख की याचना करते हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

प्राणों द्वारा दृढता से भीतरी 'पुरीतत्' नाम गुहा में प्रवेश करके अनन्तर प्रकाशमय किरणों को प्राप्त करे।

(३) सूर्य छेदन-भेदन, संयोग-विभाग करने वाले वायुओं द्वारा आकाश में ही किरणों से जलादि पदार्थों को धारण करता है [दया०]।

(४) इन्द्र = विद्युत् वायुओं द्वारा वह निकलने वाली जल-धाराओं को प्रकट करता है [ग्री०]।

(५) सूर्य अन्तरिक्ष में दिनों को प्रकट करता है। [मैक्स०]।

(६) विद्वान् अज्ञान का नाश करने वाले अग्निस्वरूप आचार्यों से दृढ़ सत्य, ज्ञान प्राप्त कर हृदय-गुहा में ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है। इत्येकादशो वर्गः॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष देव, परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं, वे स्तोता विद्वान् पुरुष ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले, मननशील, बड़े भारी विद्वान्, बहुश्रुत एवं प्रसिद्ध परमेश्वर की साक्षात् स्तुति करते हैं।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—वायु जिस प्रकार सूर्य से युक्त होता है, दोनों समान रूप से तेजस्वी और हर्षजनक होते हैं उसी प्रकार हे वायु के समान तीव्र गति से शत्रु पर आक्रमण करने वाले निर्भय! शत्रुहन्ता सेनापति के साथ युक्त होकर ही तू शोभा पाता है। तुम दोनों समान रूप से, तेज को धारण करनेवाले और सदा प्रसन्न और एक दूसरे को आनन्दित करने वाले हो।

(२) विद्वान् जीव अभयस्वरूप आचार्य या परमेश्वर के साथ संगत होकर दीखता है।

(३) प्राणगण! अभय आत्मा के साथ संगत हैं। दोनों समान तेजस्वी और एक दूसरे को आनन्दप्रद हैं।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

भा०—यह जगत्-पालन रूप महान् यज्ञ ही निन्दनीय दोषों से रहित, खूब तेजस्वी, गणों सहित शत्रुहन्ता सेनापति के शत्रु-पराजयकारी सामर्थ्य का वर्णन करता है ।

(२) सूर्य का संसार पालन रूप यज्ञ अति कामना योग्य, निर्दोष, त्रुटिरहित, अति तेजस्वी वायुगणों या किरणों से उसके बलयुक्त कार्य का वर्णन करता है ।

(३) शरीर का जीवन यज्ञ आत्मा को प्राणगण सहित जीव के सर्वातिशायी स्वरूप को बतलाता है ।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
सर्मस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

भा०—हे वायो ! हे प्राण ! सब दिशाओं में जाने में समर्थ ! एवं सब पदार्थों को ऊपर नीचे फेंकने में समर्थ ! तू सूर्य के प्रकाश से और मेघमण्डल से आ । इस तुझ में ही वाणियां प्रकट होती है ।

वायु ही सब दिशाओं में बहता है, वही मेघों में विचरता है उसी के कारण मेघ गर्जनरूप अन्तरिक्षस्थ वाणियें प्रकट होती हैं । उसी प्रकार प्राण ! तू मूर्धा भाग और अन्तःकरण से भी आता है और कण्ठ की वाणियां प्रकट होती हैं ।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—इस पृथिवी लोक से और द्यौलोक से और अन्तरिक्ष लोक से भी बड़े ऐश्वर्यवान् और उनके ऊपर शासकरूप से विद्यमान सूर्य वा प्रभु को ही हम सब पदार्थों के संयोग-विभाग करने और प्रदान करने वाला जानते हैं उसी से ऐश्वर्य सुख की याचना करते हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

[७]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । ७ निचृद् । ८, १० पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ पादनिचृद् । दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का ही सामगान करने हारे विद्वान् गान करते हैं। अर्चना योग्य मन्त्रों और विचारों से युक्त विद्वान् पुरुष अर्चनाओं और सत्यभाषणादि व्यवहारों, शिल्पादि साधक कर्मों और वेदमन्त्रों से उस महान् परमेश्वर की स्तुति करते हैं और चारों वेदों की वाणियों से ईश्वर की स्तुति करते हैं।

बृहत्—बृहता साम्ना । वाणीः—यजूरूपाभिर्वाग्भिरिति सायणः । वेदचतुष्टयीरिति दयानन्दः ।

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

भा०—वायु ही वाणी या शब्द के साथ योग करने वाले लाने और ले जाने के गुणों को एक साथ सब पदार्थों से युक्त करता है, उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् सूर्य भी संवत्सर और ताप से युक्त और प्रकाश से युक्त है।

(२) राजा वाणीमात्र से रथ में जुड़ जाने वाले, आज्ञाकारी घोड़ों से युक्त है। और वह शक्तिशाली खड्ग धारण करता और तेजस्वी, धन-सम्पन्न है।

(३) जीव ही वाणी के साथ युक्त होकर प्राण और अपान से युक्त है, वही बलवान् और तेजस्वी है।

(४) परमेश्वर वेदवाणी से युक्त होने वाले गुरु शिष्यों को मिलाता है। वह ज्ञानमय, प्रकाशमय है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर चिरकाल तक देखने के लिये और प्रकाश के लिए आकाश मे सूर्य को स्थापित करता है। और वह सूर्य किरणो से मेघ को विविध दिशाओ मे गति देता है।

(२) राजा दीर्घ दर्शन के लिए राजसभा मे सबके ऊपर सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को सभापतिरूप से स्थापित करे। वह अपनी वाणियो, आज्ञाओं से अखण्ड शासकगण का सचालन करे।

इन्द्र॒ वाजे॑षु नोऽव स॒हस्र॑प्रधनेषु च।
उ॒ग्र उ॒ग्राभि॑रू॒तिभि॑: ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू सहस्रो, असंख्य उत्तम चक्रवर्ती राज्य आदि धनों के देने वाले संग्रामो में, हमारी रक्षा कर। हे सदा बलवान्, प्रचण्ड शक्तिमन्! तू शत्रुओं को उद्वेग उत्पन्न करने वाले सर्वोत्तम रक्षाकारी साधनो और सेनाओ से हमारी रक्षा कर।

इन्द्रं॑ व॒यं म॑हाध॒न इन्द्र॒मर्भे॑ हवामहे।
युजं॑ वृ॒त्रेषु॑ व॒ज्रिण॑म् ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा को हम बडे सग्राम वा बहु धनदायी-कार्य मे बुलाते हैं। उसी शत्रुहन्ता को हम छोटे कार्य मे भी स्मरण करते हैं। घेरने वाले मेघो पर प्रकाशमान् सूर्य के समान नगरो को रोकने वाले शत्रुओ, प्रजा के समस्त व्यवहारो पर वज्र या शत्रुवारक घोर अस्त्रों का प्रयोग करने वाले, व्यवस्थापक, सदा सहायक, प्रजा के स्नेही, सावधान, सर्वाज्ञाकारी नियोक्ता राजा वा प्रभु को हम स्मरण करते है। इति त्रयोदशो वर्ग॰ ॥

स नो॑ वृषन्न॒मुं च॒रुं सत्रा॑दाव॒न्नपा॑ वृधि।
अ॒स्मभ्य॒मप्र॑तिष्कुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे जलो को मेघ के समान, सुखों के वर्षण करने हारे! हे सत्य, अभीष्ट फलो को, एक साथ ही देने वाले! तू सूर्य के समान हमारे

लिए द्वार खोल दे, वह तू हमारे लिए कभी पराजित न होने वाला, वीर विजेता के समान अप्रकम्प रहने वाला, हमें न भूलने वाला है।

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—अनन्त वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के प्रत्येक दान को लक्ष्य करके जो उत्तम उत्तम स्तुति-मन्त्र हैं उनसे अतिरिक्त उसकी और अधिक उत्तम स्तुति को मैं नहीं पाता हूं।

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥

भा०—वीर्य सेचन में समर्थ सांड जिस प्रकार गो-समूहों को अपने बल पराक्रम से प्राप्त होता है और वही जिस प्रकार अपने पराक्रम से क्षेत्र में हलादि के और मार्ग में रथ, शकट आदि के खींचने के कार्य करता है उसी प्रकार सुखों का वर्षक राजा और परमेश्वर अति सेवनीय स्वरूप, मनोहर, एवं धर्मात्माओं को अनेक पदार्थ प्राप्त कराने वाला होकर अपने बल, पराक्रम से मनुष्यों को प्राप्त होता, उनको संचालित करता है और वही कभी प्रतिपक्षियों से विचलित न होने वाला, दृढ़ निश्चयी होकर समस्त राष्ट्र और जगत् का स्वामी है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

भा०—जो राजा अद्वितीय, अकेला, राष्ट्र में बसने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, इन पांचों प्रकार के निवास करने वाले मनुष्यों के बीच में ऐश्वर्य भोगने और अन्यों को देने में समर्थ है वह राजा 'इन्द्र' कहाने योग्य है।

(२) परमेश्वर पृथिवी आदि उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, उत्तमतर, उत्तमतम इन पांचों लोकों का स्वामी और अकेला ही निवासयोग्य समस्त लोकों और मनुष्यों को ऐश्वर्य देने में समर्थ है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

भा०—समस्त प्रजाजनो से ऊपर, सबसे उत्कृष्ट वा उनके सब ओर सर्वत्र विद्यमान, राजा के समान रक्षक परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं। वह एकमात्र, अद्वितीय मोक्षमय परमेश्वर ही हमारा और तुम्हारा कल्याणकारी हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[८]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । १, ५, ८ निचृद् । २ प्रतिष्ठा । १० वर्धमाना ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू सदा उत्तम रीति से सेवन करने योग्य, अपने बराबर के शत्रुओं का विजय करने वाले, सदा शत्रुओं को पराजित करने और समस्त दु:खों को सहन कराने वाले, अत्यन्त अधिक धनैश्वर्य को हमारे रक्षा के लिये प्राप्त करा।

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

भा०—जिस ऐश्वर्य से हम लोग मुष्टिवत् संघ शक्ति से मार मार कर ही सुख सम्पदाओं को रोक लेने वाले, विघ्नकारी, शत्रुओं को सर्वथा रोक दें और हे राजन् ! परमेश्वर ! तेरे द्वारा सुरक्षित रहकर ही हम अश्वबल से शत्रुओं को विनष्ट करें, वह धन हमें प्रदान कर।

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! परमेश्वर ! तेरे अधीन सुरक्षित

रहकर हम शत्रु के वारण करने वाले आग्नेय शस्त्रास्त्र और उनको हनन करने वाले, तोप आदि संहारकारी दृढ साधनों को ग्रहण करें। युद्ध में हम स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को विजय करें।

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयं।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! परमेश्वर! हम शस्त्रास्त्रों के फेंकने में कुशल शूरवीर पुरुषों और तुझ सहायक से युक्त होकर सेनाओं को बढ़ा कर युद्ध में आने वाले शत्रुओं को बराबर पराजित करें।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—समस्त जगत् का राजा, सर्वैश्वर्यवान्, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा ही बड़ा है और वही सबसे बढ़कर है। न्यायानुसार दण्ड बल से युक्त, वीर्यवान् पुरुष को ही पूजनीय बड़प्पन का पद प्राप्त हो। वह ही अति विस्तृत बल से सूर्य और आकाश के समान महान् है।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥

भा०—जो नेता पुरुष संग्राम में लगे रहते हैं और जो लोग पुत्र, पौत्र आदि सन्तानों के प्राप्त करने में गृहस्थ होकर रहते हैं और जो विज्ञान को प्राप्त करने और गुरुओं से ज्ञान लाभ करने के इच्छुक, मेधावी पुरुष हैं वे सब भी आदर के योग्य हैं। अर्थात् संग्रामविजयी, वीर क्षत्रिय, पुत्रवान् गृहस्थ और ज्ञानवान् ब्रह्मिष्ठ विद्वान् तीनों आश्रमी समानरूप से आदरणीय हैं।

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

भा०—जो सूर्य के समान समस्त पदार्थों से रस भाग अपने भीतर ले लेने में समर्थ है, जो मेघ के समान उत्तम ऐश्वर्यों का सबसे उत्तम

लक एवं सोम अर्थात् राजपद का पालक अथवा उपभोक्ता, जल ा ग्रहणकर्त्ता होकर जलों को बरसा देने वाले अन्तरिक्ष या मेघ या र्य के समान ही प्रजाओ पर गर्जन शब्द पूर्वक वर्षण करने वाले मेघ के मान पृथ्वियो, उन पर बसने वाली प्रजाओ पर प्राप्त करने योग्य दार्थों या जलधाराओ के समान आप्तों का सेवन करता है वही राजा ादरयोग्य है। (२) प्राणगण जिस प्रकार वाणियो को सेवन करते है ौर जिस प्रकार सर्व पदार्थों का रक्षक सूर्य या जल ग्रहण करने वाला घ पृथ्वियो को सींचता है उसी प्रकार राजा प्रजाओ को बढ़ाता है अतः ह आदरयोग्य है।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—पृथ्वी के समान वेदवाणी का वर्णन। इस परमेश्वर की ही नेश्चय से उत्तम ज्ञान को प्रकाशित करने वाली, प्रिय और सत्य प्रकाशक अथवा अप्रियो को नाश करने वाली, सत्यमयी वाणी विविध विद्याओ का उपदेश करने वाली, अति विस्तृत, नानाविध वेदवाणियो से युक्त सर्वाश्रय पृथ्वी के समान ही पूजनीय है। वह दानशील एव दूसरो को ब्रह्मविद्या का प्रदान करने वाले, गुरु और अपने को भक्तिश्रद्धापूर्ण शिष्य रूप से सौप देने वाले, नित्य विद्याभ्यासी पुरुप के लिए पके फलो से लदी वृक्ष की शाखा के समान नाना सुखप्रद होती है। (२) राजा की पृथिवी, उत्तम अन्न और जल से युक्त, विविध पदार्थों की देने वाली अतएव बडी भारी, गौ आदि पशुओं से समृद्ध पृथिवी है। वह भूमि मे बीजवपन करने वाले एवं राजा को कर आदि देने वाले या ध्यान और मनोयोग देने वाले उद्योगी पुरुप को पके फलो से लदी शाखा के समान सदा परिपक्व धान्यसम्पदाओं से युक्त होकर उसे नाना भोग्य सुख प्रदान करती है।

'सूनृता'—सुष्ठु ऋतं यस्याः सा। ऋतमिति उदकान्नजलज्ञानादिनामसु.

पठितम् अन्न नाम (नि० २।७॥)। सुतरामूनयति अप्रियम् इति सून, सा चासौ ऋता सत्या चेति सूनृता प्रिया सत्यावागिति सायणः।

'विरप्शी' इति महन्नाम (निघ० ३।३)। विविधं रपण विरप् तदेषामस्तीति विरप्शानि वाक्यानि। तानि यस्यां वाचि सा विरप्शी। अत इनि-ठनावितीनिः। ङीप्। नलोपश्छान्दसः। इति सायणः।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—निश्चय से, हे ईश्वर! तेरी ये विविध ऐश्वर्यों से युक्त विभूतियां सब मेरे जैसे अपने को आत्मसमर्पण कर देने वाले जीव की रक्षा व्यवहार साधन, ज्ञानवर्धन और ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिए ही सदा ही होती है।

राजा के पक्ष मे—हे राजन्! ये तेरे समस्त ऐश्वर्य अपने को तेरे अधीन सौंपने वाले मुझ जैसे प्रजाजन की रक्षा आदि के लिए ही हैं।

'ऊतये'—रक्षणाद्यर्थस्यावतेरूतिनिपातनात्। (पा०३।३।९७॥)

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—इस परमेश्वर के वर्णन करने वाले ही मनोहर और स्तुति करने योग्य मन्त्रसमूह और सूक्त हैं। सोम, अर्थात् जगत् के पदार्थों को अपने वश करने हारे, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के गुण वर्णन के लिए ही उनका उच्चारण करो।

राजा के पक्ष मे—राजा के ही उत्तम स्तुत्य पदाधिकारी बल वीर्य के कार्य, आज्ञाएं और दण्डविधान उत्तम स्तुति योग्य हैं। वे ही राष्ट्र के भोग व पालन करने वाले राजा के योग्य हैं।

[९]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । १, ३, ७, १० निचृत्। ५, ६ पिपीलिकमध्या निचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र, सूर्य के समान तेजस्विन् ! परमेश्वर ! सूर्य जिस प्रकार समस्त चन्द्र के पर्वों, कलाओं से और अन्धकार के नाश करने वाले प्रकाश से प्रतिदिन आता है और समस्त प्राणियों के हर्ष का कारण होता है और जैसे सूर्य तेज से सर्वत्र व्यापक और बडे भारी सामर्थ्य वाला है, उसी प्रकार परमेश्वर समस्त उत्पन्न पदार्थों और प्राणियों के पोरु पोरु में स्थित, नाना उत्पादक और प्रेरक और पालन-सामर्थ्यों से और सबको प्राण धारण कराने वाले अन्न और पृथिवी आदि तत्वों से सबको प्रसन्न, आनन्दित और तृप्त करता है। वह तू हमें प्राप्त हो, हम ज्ञान-विज्ञान के रहस्यों से भरी तेरी अद्भुत शक्तियों सहित तुझे प्राप्त करें। तू अपने बल, पराक्रम और सकल संसार के धारण करने वाले व्यापक तेज से सब पदार्थों के अणु अणु में व्यापक होकर बडे भारी सामर्थ्य वाला है।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू सोम, राज्य-ऐश्वर्य के अंग प्रत्यंगों से अन्याय और अधर्माचरण के नाशक बल और व्यवस्था तथा अन्नादि सम्पत्ति से सबको तृप्त, आनन्दित और प्रसन्न करता है और बल पराक्रम से सबको सन्मार्ग-व्यवस्था को जानने हारा और सब शत्रुओं का पराजयकारी होकर बडा सामर्थ्यवान् है।

अन्धस.—'अन्धकाररूपस्यान्यायस्य निवर्त्तकम्' अथवा 'अधर्माचरणस्य नाशकम्' इति श्री दयानन्दो यजुर्भाष्ये (१९ । ७५,७७)।

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! इस अग्नितत्व और जलतत्व को नाना प्रकार से प्रकाशित करो और साधो, उत्पन्न हो जाने पर हर्षदायक क्रिया उत्पन्न करने वाले इस अग्नितत्व, विद्युत् को समस्त कार्यों और पुरुषार्थों

के करने हारे ऐश्वर्य के इच्छुक जीव के सुख के लिए प्रयोग करो।

राजा के पक्ष में—इस समस्त ऐश्वर्यमय, सबको नाना सम्पदाओं से प्रसन्न और तृप्त करने वाले, सब कार्यों को करने वाले राष्ट्र चक्र को अभिषेककाल में सबके प्रसन्न करनेवाले, सब कार्यों के सम्पादन में समर्थ पुरुष के हाथों प्रदान करो।

अध्यात्म में—समस्त विश्व का कर्त्ता और आनन्दस्वरूप परमेश्वर, इन्द्र, 'मन्दी' और 'चक्री' है ज्ञान में प्रसन्न कर्मकर्त्ता और भोक्ता जीव भी मन्दी और चक्री है। उसको उस परमेश्वर पर वार दो।

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञानवन्! सूर्य के समान उत्तम प्रकाशस्वरूप! हे समस्त संसार के द्रष्टः! समस्त विश्व को अपने भीतर आकर्षण करने या संचालन करने हारे परमेश्वर! तू हर्षित करने वाले, गुणों के प्रकाशक वेद के स्तुति वचनों से इन ऐश्वर्यों में ध्यान-वन्दनादि में, अथवा जगत्सर्गों में विद्यमान हमको हर्षित कर।

आत्मपक्ष में—हे ज्ञानवन्! आत्मन्! हे विश्वमय परमेश्वर के देखने हारे ज्ञानवन्! तू इन सब सर्गों में विद्यमान अपने आपको आत्मानन्द के उत्पादक ईश्वर की स्तुतियों से हर्षित रख।

राजा के पक्ष में—हे उत्तम बलशालिन्! राष्ट्र के देखने हारे! इन अभिषेक कार्यों में या ऐश्वर्यों के हर्षजनक स्तुति वचनों से प्रसन्न हो। एवं नाना आज्ञा और अधिकार दानों से हम अधीनस्थों को प्रसन्न कर।

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेरी वेदवाणियां समस्त सुखों के वर्षक, सबके पालक तुझको ही सर्वोच्च बतलाती हैं। तू ही उनको स्वयं सेवन

करता अर्थात् उनकी यथार्थता का विषय है। अतः मैं भी उनको तेरे ही स्तुतिवर्णन के लिए प्रयोग करता हूं।

सं चो॑दय चि॒त्रम॒र्वाग्राध॑ इन्द्र॒ वरे॑ण्यम्।
अस॒दित् ते॑ वि॒भु प्र॒भु ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! परमेश्वर! तू वरण करने योग्य, अति श्रेष्ठ, सञ्चय करने योग्य, चक्रवर्ती राज्य, विद्या, मणि, सुवर्ण, हाथी आदि सम्पत्ति को हमें प्रदान कर। तेरा व्यापक, सर्वत्र नाना सुखप्रद और उत्तम प्रभावजनक सामर्थ्य है। इति सप्तदशो वर्गः॥

अ॒स्मान्त्सु तत्र॑ चोद॒येन्द्र॑ रा॒ये रभ॑स्वतः।
तुवि॑द्युम्न॒ यश॑स्वतः ॥ ६ ॥

भा०—हे ईश्वर! हे बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन्! राजन्! तू कार्य आरम्भ करने वाले, आलस्य रहित, पुरुषार्थी हम यशस्वी एवं बल-वीर्य से सम्पन्न उद्योगी पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए उत्तम मार्ग में चला।

सं गोम॑दिन्द्र॒ वाज॑वद॒स्मे पृ॒थु श्रवो॑ बृ॒हत्।
वि॒श्वायु॑र्धे॒ह्यक्षि॑तम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हमें उत्तम वाणी, गौ आदि पशु और पृथ्वी से युक्त अन्न, बल, ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त विस्तृत, बड़े भारी अक्षय सदा बढ़ने हारे, अविनाशी यश, ज्ञान, धन और पूर्ण आयु १०० वर्षों की और उससे भी अधिक आयु प्रदान कर।

अ॒स्मे धे॑हि॒ श्रवो॑ बृ॒हद् द्यु॒म्नं स॑हस्र॒सात॑मम्।
इन्द्र॒ ता र॒थिनी॒रिषः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! हमें और हमारी रक्षा के लिए बड़ा भारी अन्न और सहस्रों को, सहस्रों सुखोपभोग देने में भी अति अधिक ऐश्वर्य और रथादि चतुरंग सम्पन्न नाना सेनाएं प्रदान कर और राष्ट्र में रख।

वम्नोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

भा०—समस्त बसने हारे प्रजाजन और उनके निवास हेतु ऐश्वर्य के स्वामी, ऋचाओं, वेदमन्त्रों के बनाने हारे उपदेष्टा या उनके प्रतिपाद्य ज्ञानवान्, सर्वव्यापक परमेश्वर की वाणियों से स्तुति करते हुए रक्षा और ज्ञानप्राप्ति के लिए हम स्तुति करते हैं।

राजा के पक्ष मे—ऐश्वर्यों और प्रजाओं के पालक ऋचाओं, वेदमन्त्रों के ज्ञाता, विद्वान् और शत्रुओं पर चढाई करने हारे सेनापति को हम नाना वाणियों से स्तुति करते हुए अपनावें।

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—शत्रु भी प्रत्येक अभिषेक मे नियत स्थान बनाकर रहने वाले दृढ़ दुर्ग के स्वामी, अपने से शक्ति मे बडे, ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति के बडे भारी बल का आदर करता है। उसके आगे झुकता है।

परमेश्वर के पक्ष मे—सुखों का लिप्सु पुरुष प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ या प्रत्येक ऐश्वर्य की प्राप्ति में परमेश्वर के महान् बल की स्तुति करता है।

'अरिः'—ऋच्छति गृह्णाति अन्यायेन इत्यरिः, ऋच्छति सुखानि च यः सोऽरिः इति दया०। इयर्त्ति गच्छति अनुष्ठेयकर्म इति अरिर्यजमान इति सायणः। इत्यष्टादशो वर्गः।

[१०]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ अनुष्टुभः। १। ३। ५ विराट्।
४ एकोना विराट्। ६, ८ निचृद्। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

भा०—गायत्र, साम के गान करने हारे गायकजन तेरा ही गान करते हैं। ज्ञानप्रद वेदमन्त्रों के ज्ञाता जन भी अर्चना करने योग्य तेरी

ही अर्चना करते हैं। हे सैकडो कर्मों के करने और विज्ञानो के जानने हारे परमेश्वर! वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण भी वंश अथवा ध्वजा दण्ड के समान तुझको ही उत्तम पद पर नियत करते हैं। सबसे ऊंचे पद पर सर्वोपरि मानते हैं।

'अर्कम्'—अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्ति। अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चति। अर्कमन्नं भवति अर्चति भूतानि। अर्को वृक्षो भवति संवृतः कटुकिम्नेति। निरु० ५। ४॥

यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥ २॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य एक पर्वत-शिखर से दूसरे पर्वत-शिखर पर चढता है तब वह और बहुत से कर्तव्य, करने योग्य कार्यों को और जाने योग्य स्थानो को दूर दूर तक देख सकता है। इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी प्राप्त होने योग्य समस्त पदार्थों को सर्वोपरि होने से जानता है। वर्षण करने वाला मेघ जिस प्रकार वायुगण से प्रेरित होकर आगे बढता है उसी प्रकार परमेश्वर समस्त काम्य सुखो का वर्षण करने हारा होकर सुख प्रदान करने वाले समस्त साधनो से संसार को चलाता है।

अध्यात्म मे—कुण्डलिनी प्रबोध के अवसर पर मेरु दण्ड मे एक पोरु से दूसरे पोर को अथवा एक मानस भूमि से दूसरी भूमि को पहुचता हुआ बहुत से लोकोत्तर कर्मों का साक्षात् करता है और तब परम पद को जानता है और धर्ममेघ मे सुखवर्षी मेघ के समान आनन्दघन होकर प्राणगण सहित उत्क्रमण करता है।

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥ ३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रकाशस्वरूप! जिस प्रकार तेजस्वी राजा लम्बेबालों वाले, कोखो पर भरे पूरे हृष्ट-पुष्ट, दो घोडो को रथ मे जोडता

है उसी प्रकार तू भी 'केशी' प्रकाशयुक्त किरणरूप केशों वाले, व्यापन-शील, वृष्टि के कराने वाले सब पदार्थों के अवयव अवयव में व्याप्त, धन च ऋण दोनों विद्युत् बलों को निश्चय से जोड़ता है। और हे ऐश्वर्यवन्! विद्युत् के समान व्यापक! हे प्रेरक! बल और ऐश्वर्य के पालक इन्द्र! तू वाणियों का श्रवण कर।

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे परमेश्वर! आप हमें प्राप्त हो। हे वाणी के प्रदान करने हारे ज्ञानप्रद गुरो! वेदमन्त्र समूहों को साक्षात् ज्ञान कराओ। सन्मुख साक्षात् उपदेश करो। प्रतिपद की व्याख्या करो। हे समस्त भूतों में निवास करने वाले और सबको अपने में बसाने हारे एवं ब्रह्मचारियों को अपने कुल में बसाने हारे, मेघ के समान ज्ञानप्रद गुरो! हमारे ब्रह्म, वेदज्ञान और ब्रह्मचर्य को और यज्ञ कर्म और परस्पर मिल के करने योग्य वेदाध्ययन रूप यज्ञ एवं आत्मा के बल और ईश्वरोपासना को भी बढ़ाओ।

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥ ५ ॥

भा०—अनेक शास्त्रों का ज्ञान करने हारे अथवा अनेक अज्ञान आदि दोषों को दूर करने में समर्थ, ज्ञानवाणी का उपदेश करने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिये मान आदर के बढ़ाने वाला वचन कहने योग्य है। जिससे वह ज्ञानवाणी में रमण करने वाला अथवा याचना-नुसार फल देने वाला आचार्य हमारे मित्रों, समान रूप से नाम, यश को धारण करने वाले पुत्र, स्त्री, भृत्य, बन्धुओं में और हमारे पुत्रों में भी बराबर उत्तम उपदेश करे। अथवा—जैसे गुरु पुत्रों और मित्रों को उपदेश करता है उसी प्रकार शक्तिशाली, ज्ञानप्रद परमेश्वर जीव को ज्ञानवर्धक, स्तुति योग्य ज्ञान, वेद का उपदेश करता है।

'शक्रः—शक्नोति यः स शक्रः । शकेरक् औणादिकः । शग्धि इति याञ्चाकर्मा निघ० । शक विभाषितो मर्षणे दिवादिः । शक्लृ शक्तौ स्वादिः । शस व्यक्तायां वाचि । शचीति वाक्प्रज्ञाकर्मनामसु । तां राति ददाति इति शक्रः । शक्रः समर्थ, उपदेशको वाणीप्रदो, याचितप्रदः, सहनशील इत्यादि ।

तमित्सखित्व ईमहे तं राये सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥६॥१९॥

भा०—उसको हम अपना मित्र होने के लिये प्रार्थना करते हैं । और उसी से ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं । उत्तम वीर्य, बल प्राप्त करने के लिये भी उसीसे प्रार्थना करते हैं । और वही 'शक्र' कहाता है जो हमें हमारे याचित फल प्रदान करता है और जो इन्द्र ऐश्वर्यवान् होकर दान देता, रक्षा करता, दुष्ट शत्रुओं का नाश करता और सबको शरण में लेता हुआ हमें सुख से बसने योग्य धन प्रदान करता है ।

'शक्रः' वसु दातुम् शकत् स शक्र इति वेदाभिप्रायः ।

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद् यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित एवं फैला हुआ और अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त, जल के समान अन्न, बल और ज्ञान तेरा ही शोधा हुआ, प्रकाशित या प्रदान किया हुआ है । अर्थात् जिस प्रकार समस्त जल या अन्न सूर्य द्वारा परिशोधित होता है उसी प्रकार समस्त कर्म फल और ज्ञान परमेश्वर द्वारा ही प्रदत्त एवं प्रशस्त है । वह भी व्यापक जल के समान सुप्रकट, सुविस्तृत है । हे ईश्वर ! हे गुरो ! जैसे कोई गवाला गौओं के वाडे को खोल दे तो गौएं बहुत प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! गुरो ! सूर्य के किरण-समूहों के समान ज्ञान-वाणियों के समूह को आप खोल दें, उनके आवरण को दूर करके प्रकट करें । और हे मेघों से युक्त वायु जिस प्रकार जल प्रदान करता करता है

उसी प्रकार अखण्ड शक्ति से सम्पन्न बलवन्! एवं ऐश्वर्यवन्! आप ऐश्वर्य, धन और ज्ञानोपदेश प्रदान करें।

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्ववंतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर! आकाश और पृथिवी दोनों भी उपासना करने योग्य तुझको नहीं व्यापते। तू उन दोनों से महान् है। तू प्रकाशयुक्त या आकाश में स्थित समस्त लोकों को अथवा आकाशस्थ सर्वोत्पादक प्रकृति के सूक्ष्म परिमाणुओं को भी विजय करता है, उन पर अपना वश रखता है। सूर्य जिस प्रकार किरण प्रदान करता है उसी प्रकार तू हमें ज्ञान-वाणियों को भली प्रकार प्रदान कर।

राजा के पक्ष में—शत्रु-वध करने वाले एवं पूजनीय तेरा राजवर्ग और प्रजावर्ग व शत्रु और मित्र दोनों तेरा पार नहीं पाते। ऐश्वर्ययुक्त सुखी प्रजाओं, विज्ञानयुक्त आप्तजनों को तू अपने वश करता है। हमें आज्ञाएं भूमियें या गौए प्रदान कर।

'ऋघायमाणम्'—ऋध्नोतिः परिचरणकर्मा। ऋध्यत इति ऋघः पूज्यः। ऋघवदाचरति इति ऋघायमाणः। दया०। नृन् हन्तीति ऋघा। अनृघा ऋघा भवतीति ऋघायमाणः। सा०।

'स्ववंतीः—' असौ लोकः स्वः। ऐ० ६। ७॥ देवाः वै स्वः। श० १।९। ३। १०॥ देवाः किरणाः। स्वरिति विशम् अजनयत्। स्वरिति पशून् अजनयत्॥ श० २। ४। १३॥

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद् दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

भा०—हे सर्वत्र श्रवण करने वाले कानों से युक्त परमेश्वर! नृ निश्चय से मेरी स्तुति को श्रवण करता है। तू मेरी स्तुति-वाणियों को धारण कर, सुन। मुझ समाहित चित्त वाले योगाभ्यासी साधक मित्र के इस स्तुति-समूह को भीतर कर। अथवा मेरे हृदय को शुद्ध कर।

आचार्य पक्ष मे—हे विज्ञानमय कर्णों से युक्त ! बहुश्रुत !

राजा के पक्ष मे—सब तरफ के वृत्तान्त सुनने हारे यन्त्रो, साधनो से युक्त।

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम्॥ १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तुझको ही हम सब कामना योग्य सुखो को सबसे अधिक वर्षाने वाला और यज्ञो और सग्रामो मे भक्तो के आह्वानों को सुनने वाला ओर प्रजाओं की पुकार और शत्रुओ की ललकारो को सुनने वाला जानते हैं। समस्त सुखो के सर्वोत्तम वर्षक तेरी सहस्रो सुखो और ऐश्वर्यो के देने वाली रक्षा की याचना करते हैं। (मन्त्राः शतम् १००)

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम्॥ ११ ॥

भा०—हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! सर्वानन्दकारक ! हे कौशिक, समस्त पदार्थों का यथार्थ उपदेश करने वाले परमेश्वर ! गुरो ! तू ज्ञान-प्रकाश से अति उज्ज्वल होकर प्रयत्न से उत्पन्न किये ज्ञान-रस का ओषधि-रस के समान पान कर, श्रवण कर, और नये जीवन को खूब अधिक बढा और वेदमन्त्रों के अर्थ देखने वाले विद्वान् पुरुष को सहस्रों ज्ञानो और ऐश्वर्यों को लाभ करने मे समर्थ कर।

अध्यात्म मे—इन्द्र जीव, कौशिक पचकोशो मे विराजमान प्रमोद-युक्त, प्रकाशयुक्त होकर ब्रह्म रस का पान करे। नये और दीर्घ आयु को प्राप्त करे और ऋषि, प्राण को सहस्रो सुख भोगने वाला बना। सर्वं वै सहस्रम्। शत० ॥

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥ १२ ॥ २० ॥

भा०—हे वेदवाणियों और विद्वज्जनों की वाणियों को सेवन करने वाले, उन के एकमात्र लक्ष्य ! ये समस्त वाणियें सब प्रकार से तुझे ही लक्ष्य करके हों, तेरे ही गुणों का वर्णन करें। वृद्धि को प्राप्त होने वाली, सेवन करने योग्य वाणियां तुझ महान् को ही लक्ष्य कर चाहने वाले को अति प्रीतिकर हों।

आचार्य या विद्वान् के पक्ष में—हे वाणियों के सेवन करनेहारे ! ये सब ज्ञानवाणियां तुझे प्राप्त हों। वृद्धि उन्नति करने वाली प्रीति-उत्पादक वाणियां तुझ दीर्घायु को अधिकाधिक प्रिय लगें। इति विंशो वर्गः ॥

[११]

१—८ जेता माधुच्छन्दस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुभः । १, ३, ८ निचृत् । ५ एकोना विराट् । ७ विराट् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

भा०—समुद्र के समान अति विस्तृत अथवा आकाश और अन्तरिक्ष में भी व्यापक, रथवान् सैनिकों के बीच सबसे श्रेष्ठ रथारोही वीर, सेनापति महारथी के समान रमण साधनरूप देहधारी जीवों में भी सर्व-श्रेष्ठ, पृथिवी आदि रमण साधन लोकों में भी व्यापक और सत् अर्थात् नाशरहित कारण द्रव्यों के भी परिपालक, स्वामी और समस्त ऐश्वर्यों के भी स्वामी, परमेश्वर को ही समस्त वेदवाणियां बढ़ाती हैं, वे उसकी महिमा का गान करती हैं।

राजा और सेनापति के पक्ष में—समुद्र में भी नौकादि से जाने वाले, गम्भीर, रथियों में महारथी, सज्जनों के पालक और अन्नों, ऐश्वर्यों और संग्रामों के स्वामी, विजेता को ही सब स्तुतियां बढ़ाती हैं, उसके यश और उत्साह को बढ़ाती हैं।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

भा०—हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! हे शत्रुनाशक राजन् ! सेनापते ! उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, वेगवान् अश्वारोही, ऐश्वर्यवान् और संग्रामकारी योद्धागण हम तेरे मित्रभाव मे रहकर कभी भयभीत न हो, सदा निर्भय रहे । हे समस्त ज्ञानो और बलो के स्वामिन् ! जीतने वाले विजय दिलाने वाले और कभी स्वयम् पराजित न होने वाले, अजेय, तुझे ही लक्ष्य करके सदा हम स्तुति करते है, तुझे नमस्कार करते है ।

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस कारण उत्तम गौ आदि पशु, वाणी आदि इन्द्रियो से सम्पन्न सुख प्राप्त करने वाले सामर्थ्य के ऐश्वर्य को स्तुतिकर्ता विद्वान् पुरुषो को दान करता है, इसी कारण से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के दिये सनातन से चले आये दान, ज्ञान और रक्षाए भी कभी विनष्ट नहीं होती ।

राजा के पक्ष मे—राजा विद्वानो को भूमि आदि धन प्रदान करता है इससे उसके दिये दान और रक्षाए नष्ट नहीं होती । सत्पात्र मे दिया दान नष्ट नहीं होता ।

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

भा०—परमेश्वर मुमुक्षु जनो के देह रूप पुरो को तोडने वाला होने से 'पुरभित्' है । वह कभी वृद्ध और परिणामी न होने से अथवा नाना पदार्थों को मिलाने, जुदा करने मे समर्थ होने से 'युवा' है । क्रान्तदर्शी होने से 'कवि' है । अनन्त पराक्रम होने से वह सर्वशक्तिमान् बल का अक्षय भण्डार है । वह परमेश्वर ही अज्ञान का निवारक होने से, ज्ञानमय वज्र का धर्ता 'वज्री' है । बहुत से विद्वानो से स्तुति किये जाने से 'पुरुष्टुत' है । वह ही इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमेश्वर विश्वरूप कर्म का धारण करने वाला है ।

सेनापति, राजा शत्रुओं के पुरों को तोड़ने वाला, सन्धि विग्रह से मिलाने तोड़ने वाला, क्रान्तदर्शी, अपरिमित बल वाला इन्द्र ही समस्त राष्ट्र-कार्यों को धारण करता है। वही गन्ओं अश्वों का स्वामी, बलवान् प्रजाओं से स्तुति किया जा सकता है।

सूर्य—जल-सघों का विच्छेदक, मेघों को मिलाने व भेदने वाला, अमित जलों व तेजों का धारक, सब जगत् के कर्मों का कर्त्ता, धर्त्ता, किरणों वाला वर्णनीय है।

त्वं व॒लस्य॒ गोम॒तोऽपा॑वरद्रिवो॒ बिल॑म् ।
त्वां दे॒वा अवि॑भ्युषस्तु॒ज्यमा॑नास आविषुः ॥ ५ ॥

भा०—हे वज्रवन्! अखण्ड वीर्यवान् राजन्! सूर्य जिस प्रकार किरणों को रोकने वाले मेघ के जल को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार तू भी भूमि को रोक लेने वाले शत्रु को दूर कर, छिन्न-भिन्न कर। भय रहित तुझमे अपना अपना आश्रय पाकर, तेरे से नाना प्रकार के ऐश्वर्य और रक्षाएं प्राप्त करके सुरक्षित विद्वान् पुरुष, युद्ध-विजयी सैनिकगण भी तुझे प्राप्त होते हैं। तेरा आश्रय लेते हैं।

अध्यात्म में—इन्द्रियों के निरोधक अज्ञान के बाधक बल को आत्मा नाश करता है। धिषणा के प्रकाशक देव, इन्द्रियगण पीड़ित होकर, शरण रूप आत्मा से शान्त होकर उसे ही प्राप्त होते हैं।

तवा॒हं शू॑र रा॒तिभि॒ः प्रत्या॑यं॒ सिन्धु॑मा॒वद॑न् ।
उपा॑तिष्ठन्त गिर्वणो वि॒दुष्टे॒ तस्य॑ का॒रवः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे शूरवीर! राजन्! परमेश्वर! तेरे अनेक दानों से मैं तुझको बहने महानद के समान अक्षय ऐश्वर्यवान् कहता हुआ प्राप्त होता हूं। हे वाणियों द्वारा स्तुति योग्य! समस्त वाणियों के आश्रय! उस समुद्र के समान गम्भीर और अक्षय ऐश्वर्यवान् तुझे ही स्तुतिकर्त्ता विद्वान् गण और राज्यादि कार्यों के कर्त्ता कुशल पुरुष तेरे सामर्थ्य को जानते हैं और तेरी उपासना करते हैं, तेरा ही आश्रय लेते हैं।

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! तू माया, कुटिल बुद्धि, दुष्ट बुद्धि वाले प्रजाओं के रक्त शोषण करने वाले अत्याचारी, अधार्मिक पुरुष को विशेष बुद्धियों से विनष्ट कर । मेधावान्, विद्वान् पुरुष तेरे उस सामर्थ्य को भली प्रकार जानते हैं और उनको तू नाना श्रवण करने योग्य ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य प्रदान कर ।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातयं उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥२१॥३॥

भा०—जिसके दान हजारों, अनेक और पूर्ण हैं और जिसके दान और भी बहुतसे हैं । सब स्तुतिकर्त्ता और मन्त्रगण बल पराक्रम से सब को अपने वश करने वाले, जगन्नियन्ता, सबके स्वामी इन्द्र, राजा और परमेश्वर की स्तुति करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[१२]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्र्यः । ३, ५ निचृद् ; ४, १० पिपीलिकामध्या निचृद् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—हम इस ब्रह्माण्डमय यज्ञ के उत्तम ज्ञाता और कर्त्ता, विश्व के ज्ञाता, समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, सबके दाता, उपास्य और सूर्य के समान दुष्टों के सन्तापकारी परमेश्वर को हम वरण करते हैं ।

विद्वान् के पक्ष में—अग्नि के समान तेजस्वी, ईश्वरोपासन करने वाले विद्वान् पुरुष को इस यज्ञ का होता वरण करते हैं ।

अग्नि के पक्ष में—प्रति कण में व्यापक होने से 'अग्नि' है । सताप-जनक होने से 'दूत' है । वेग आदि गुणप्रद होने से 'होता' है, सब

शिल्पियों के शिल्पों को देने से 'विश्ववेदाः' है। वह शिल्पमय यज्ञ का 'सुक्रतु' है।

अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभिः॒ सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म्।
ह॒व्य॒वाहं॑ पुरुप्रि॒यम्॥ २॥

भा०—आहुति या भोजन योग्य पदार्थों से जिस प्रकार आहवनीय या जाठर अग्नि को लोग अन्न, हवि प्रदान करते हैं उसी प्रकार बहुतों को प्रिय लगने वाले प्रजाओं के पालक अग्नि के समान ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को स्वीकार करने योग्य अन्न आदि पदार्थों से सदा आदर सत्कार करो।

अध्यात्म में—'पुरु' इन्द्रियों के प्रिय आत्मा को अन्तराह्वानों द्वारा साक्षात् करो।

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे।
असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑॥ ३॥

भा०—हे अग्ने, सूर्य के समान तेजस्विन्! अग्रणी नेतः! परमेश्वर! विद्वन्! तू यहां सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्राप्त कराता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करा। तू यज्ञार्थ कुशादि काटकर लाने वाले, कुशल या वायु-शुद्धि के लिये अग्नि में आहुति देने वाले विद्वान् पुरुष के उपकार के लिए स्वयं प्रकट होकर उत्तम ज्ञानों को प्रकट करने वाला और अग्नि के समान आहुति किये या श्रद्धापूर्वक दिये पदार्थों को ग्रहण करने वाला, हमारा पूजनीय होता नामक विद्वान् या उपदेष्टा हो।

ताँ उ॑श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म्।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑॥ ४॥

भा०—हे अग्ने! विद्वन्! राजन्! जब तू दूत कर्म, शत्रुओं के सताप देने वाले कार्य या सामर्थ्य को प्राप्त होता है तब तू तेरी चाहना करने वालों को विशेष प्रकार से बतला और अन्य विद्वान् ज्ञानी और तेजस्वी पुरुषों सहित आसन पर, प्रजा के राज्यासन पर विराजमान हो।

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह ।
अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! हे अग्नि में जिस प्रकार घृत आदि दीप्तिकारक पदार्थों की आहुति दी जाती है उसी प्रकार घृत अर्थात् जलो वा तेजोवर्धक साधनों की आहुति लेने हारे! हे दीप्यमान! तेजस्विन्! तू दुष्ट पुरुषो वाले, हिंसाकारी शत्रुसंघो को एक एक करके जला डाल।

भौतिक पक्ष मे—घृत की आहुति लेने वाला अग्नि, जलों को ग्रहण करने वाला सूर्य जीवन के नाशक दुष्ट रोगों से युक्त पदार्थों को जलावे, तप्त करे, भस्म करे।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही आहुति योग्य हवि को ग्रहण कर उसको नाना देश में प्राप्त कराता और ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है उसी प्रकार क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है और प्रकाशित होता है। वह भी ग्रहण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाला होने से 'हव्यवाड्' और उपदेशप्रद वाणी को मुख में धारण करने वाला होने से 'जुह्वास्य' है। इसी प्रकार युवा, बलवान् गृहपति भी गृहपति से ही उत्पन्न होकर अग्नि के समान ही गृहपति हो जाता है, वह भी अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के प्रदान करने से 'हव्यवाड्', 'जुहू' नाम उत्तम वाणी को मुख में धारण करने से 'जुह्वास्य' है। इति द्वाविंशो वर्गः।

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥

भा०—क्रान्तदर्शी, सबकी बुद्धियों से परे विद्यमान, मेधावी, ज्ञान-

स्वरूप, प्रकाशक, सत्य धर्मों को धारण करने वाले, सुखप्रद परमेश्वर की स्तुति कर और इसी प्रकार सत्य, अविनाशी धर्म वाले प्रकाशक रोगहारी अग्नि का सबको उपदेश कर।

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! राजन्! जो दान देने और ग्रहण करने योग्य, अन्न आदि पदार्थों और उत्तम गुणों का पालक पुरुष, ज्ञान के दाता और शत्रुओं के पीड़क तेरी उपासना और सेवा करता है, हे दानशील! हे द्रष्टः! तू उसका सबसे उत्तम रक्षा करने वाला हो और है।

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

भा०—जो अन्नादि पदार्थों का स्वामी होकर देवों, उत्तम विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने, उत्तम गुणों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये यज्ञाग्नि के समान परमेश्वर की आराधना करता है। हे परम पावन अग्नि के समान समस्त पाप कर्मों को दग्ध करके हृदय को पवित्र करने वाले परमेश्वर! तू उसको सुखी कर।

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह ।
उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥

भा०—हे परम पावन! हे प्रकाशस्वरूप! ज्ञानवन्! अग्ने! तू अग्नि के समान शोधक, दीप्तियुक्त, अग्रणी है। तू हमारे कल्याण के लिये उत्तम गुणों, पदार्थों और विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा। हमारे यज्ञ और हवि अर्थात् देने लेने योग्य उत्तम अन्न को भी प्राप्त करा।

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

भा०—हे परमेश्वर! राजन्! वह तू अति नवीन, सदा स्तुति योग्य, गायत्री छन्द से युक्त प्रगाथ से स्तुति किया जाकर हमें वीर पुरुषों

च उत्तम सन्तान से युक्त सेना, अभिलषित अन्न, सत्कार और ऐश्वर्य प्राप्त करा।

राजा इस गायत्र अर्थात् भूलोक-वासी प्रजाजनों द्वारा स्तुति किया जाकर वीरो से युक्त सेना और ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

भा०—हे तेजस्विन्! परमेश्वर! तू अति उज्ज्वल, शुद्धिकारक दीप्ति से सब विद्वानों और वेदो की वाणियो सहित इस स्तुतिसमूह को स्वीकार कर।

राजा अति उज्ज्वल तेज से युक्त होकर विद्वानो की स्तुतियो सहित ऐश्वर्य, पदाधिकार और बल को प्राप्त करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३]

मेधातिथि काण्व ऋषिः ॥ १ इध्म समिद्धो वाग्निः। २ तनूनपात्। ३ नराशंसः। ४ इळ। ५ बर्हिः। ६ देवीर्द्वारः। ७ उषासानक्ता। ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ। ९ तिस्रो देव्य सरस्वतीळाभारत्यः। १० त्वष्टा। ११ वनस्पतिः। १२ स्वाहाकृतय ॥ गायत्र्यः। ९ निचृद्। ७, ८, ११, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्॥ द्वादशर्चमाप्रीसूक्तम् ॥

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! अग्रणी विद्वन्! राजन्! हे ज्ञान के देने हारे! हवि को स्वीकार करने हारे! हे हृदय को पवित्र करने वाले! मलो के शोधक! शत्रुओ के नाशक! तू अग्नि के समान तेज, ज्ञान और सद्गुणों से अति उज्ज्वल होकर हममें से ज्ञान और उचित उपाय वाले पुरुष को विद्वान् जन, उत्तम गुण और पदार्थ प्राप्त करा। और हे पुरुष! तू, उसी की उपासना कर।

राजा तेजस्वी युद्धकाल मे शस्त्रास्त्रों से प्रज्वलित होकर विजिगीषु

वीरों को अपने अधीन करे। बाणों के फेंकने वाले के समान शत्रुओं को भून डालने वाला शस्त्रों से युद्ध करे।

मधुमन्तं तनूनपाद् युज्ञं देवेषु नः कवे।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

भा०—हे शरीरों के अंग प्रत्यंगों की रक्षा करने हारे 'तनूनपात्' जाठराग्नि के समान! हे क्रान्तदर्शिन्! मेधाविन्! तू हमारे मधुर, अन्नादि पदार्थों से युक्त यज्ञ के समान, मधु अर्थात् शत्रुपीडनकारी बल से युक्त परस्पर सुसंगत राष्ट्र को उत्तम रीति से भोग करने के लिये आज, सदा विद्वान् विजयी पुरुषों के आश्रय कर।

परमेश्वर हमारे यज्ञ रूप आत्मा को ज्ञानवान् करे।

अध्यात्म में—जाठराग्नि इस देह रूप यज्ञ को कान्ति के लिये मधुर पदार्थ वीर्यादि से युक्त बनावे।

नराशंसमिह प्रियमस्मिन् युज्ञ उप ह्वये।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

भा०—इस यज्ञ में प्रिय, मनोहर, सब नायक पुरुषों से स्तुति करने योग्य, मधुर जिह्वा अर्थात् मधुर वाणी बोलने वाले, स्वीकार करने योग्य अन्न चरु के सम्पादन और ज्ञानोपदेश करने वाले विद्वान् को मैं आदर से बुलाता हूँ।

भौतिक अग्निपक्ष में—जिसके लिये हवि किया जाय, ऐसे सबसे स्तुति किये, मधुर गुणकारी ज्वाला वाले अग्नि को प्रज्वलित करूं। भौतिक अग्नि की काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरूपी ये ७ जिह्वा कही गई हैं। वे मधुर, सुखप्रद, रोग-नाशक प्रकाश देने वाली हैं। घृत से उत्पन्न जिह्वा होने से भी अग्नि 'मधु-जिह्व' है। हवि को छिन्न-भिन्न करने अथवा नाना पात्र में रक्खे पदार्थों को क्रिया में प्रवृत्त कराने से 'हविष्कृत्' है। विद्वानों से उपदेश किये जाने योग्य होने से 'नराशंस' है।

अग्ने॑ सु॒खत॑मे॒ रथे॑ दे॒वाँ ई॑ळि॒त आ व॑ह ।
असि॒ होता॒ मनु॑र्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने ! ज्ञानवन् ! स्तुति किया गया, अति सुख देने वाले, रमण करने योग्य विमान यान आदि मे तू विद्वान् पुरुषो को ले आ । तू सब सुखों का देने वाला मनन-शील होकर सबका हितकारी है ।

भौतिक मे—अग्नि, विद्युत् ही नाना यानो का चालक है । वह विद्वानो द्वारा जानने योग्य होने से 'मनु' है । गति देने और सुखप्रद होने से 'होता' है ।

अध्यात्म मे—आत्मा मननशील होने से 'मनु' है । सब इन्द्रियो का वशकारी, प्रवर्त्तक होने से 'होता' है । वह देव, इन्द्रियो को अति सुखप्रद रथ रूप देह मे धारण करता है । सबसे प्रिय होने से आत्मा 'ईळित' है ।

'आत्मनस्तुकामाय सर्वं प्रिय भवति ।' बृहदा० उप० ४ । ५ ॥

ईश्वर पक्ष में—स्तुति किया जाकर परमेश्वर विद्वान् पुरुषो को अति सुखप्रद आनन्द रस में लीन कर लेता है । वह सर्वाश्रय दाता होने से 'होता', ज्ञान योग्य होने से 'मनु' और पोषक होने से 'हित' है ।

स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिरा॑नु॒षग्घृ॒तपृ॑ष्ठं मनीषिणः ।
यत्रा॒मृत॑स्य॒ चक्ष॑णम् ॥ ५ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषो ! आप लोग यज्ञ मे कुशा के बने आसनों को ऐसे बिछाओ कि वे एक दूसरे से लगे रहें । जिस पर घृत के पात्र रक्खे जायं और जहा अमृत, जल का दर्शन हो ।

पृथिवी को वेदी मानकर भौतिक पक्ष में—हे विद्वान् पुरुषो ! जल से व्याप्त विस्तृत आकाश को ऐसे धूम से आच्छादित करो । जहा जल का मेघ रूप से दर्शन हो ।

परमेश्वर और आत्मा के पक्ष मे—हे विद्वान् पुरुषो ! महान् तेजस्व-रूप महज्ञान का आस्वादन करो, उसमें आश्रय लो । उसकी धारा

लो, यहां अमृत, आत्मानन्द, परम नित्य का दर्शन है, जहां मृत्यु का भय नहीं ।

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः ।
अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—आज, सदा अवश्य यज्ञ करने के अवसर में सुख को या निर्गमन और प्रवेश को बढ़ाने वाले प्रकाश से युक्त द्वार पृथक् पृथक्, खुले, चौड़े, विविध रूप से लगाये जायं ।

गृहस्थ के पक्ष में—सब दिन यज्ञ रूप सुसगत होने के लिए गृह में विषयों में अनासक्त होकर सत्य ज्ञान को बढाने वाली देवियां पापों का वर्जन करने हारी होकर विविध रूप से आश्रय लें ।

राष्ट्रपक्ष में—युद्ध-यज्ञ के लिए शत्रुओं का वारण करने वाली विजयशालिनी सेनाएं सत्य व्यवहार और राष्ट्र बल को बढ़ाने वाली होकर विविध स्थानों पर छावनी बनाकर रहें ।

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

भा०—इस यज्ञ मे उत्तम, सुखदायी रूप और ऐश्वर्य वाले रात्रि और दिन दोनों को उपयोग मे लाऊं । जिससे हमारा यह आसन के समान आश्रय करने योग्य सुख ऐश्वर्यवर्धक गृह सब प्रकार से सुख से रहने योग्य हो ।

राष्ट्रपक्ष में—नक्त और उषस् दो सभाएं है । 'बर्हि' राष्ट्र है ।

गृहस्थ-पक्ष में—नक्त और उषस् स्त्री और पुरुष है । वे दोनों चन्द्र के समान शीतल और सूर्य के समान तेजस्वी हों । वे उत्तम रूपवान्, ऐश्वर्यवान् होकर यज्ञ मे आवें ।

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

भा०—यज्ञ मे दो विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति—मैं ज्ञान के देने वाले

देवों, विद्वानो के हितकारी, क्रान्तदर्शी, दीर्घदर्शी, शुभ वाणी बोलने वाले, विद्वानों को बुलाता हूं। वे दोनो हमारे इस यज्ञ को सम्पादित करें।

भौतिक पक्ष में—अग्नि और विद्युत् दोनो उक्त प्रकार से ज्वाला वाले, सुखप्रद दिव्य पदार्थों मे उत्पन्न होते हैं। वे हमारे यज्ञ और शिल्प को करें।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ६ ॥

भा०—'इडा', 'सरस्वती' और 'मही' तीनो देविये सुख उत्पन्न करने हारी हैं। तीनों अक्षय, अविनाशिनी, अहिंसनीय होकर आसन और गृह मे विराजें।

'इळा'—ईड्यते स्तूयते अनेन इति सा वाणी। ईळ्तेरन् औणादिकः। ह्रस्वत्वं गुणाभावश्छान्दसः। दया०। निशादिवत् टापं चैव हलन्ताना-मितीलेष्टाप् इति सायणः। ईडतेरिन्धतेश्चाकर्त्तरि कारके घञ्। ईडेर्ह्रस्व-त्वम्। इन्धेर्नकारलोपो डकारो गुणाभावश्चेति देवराजो यज्वा। इण्गता-वस्माद्वा डः। इडा गौ.। यद्वा इल स्वप्नक्षेपणयोः अस्मादिगुपधलक्षणः क.। सुप्यतेऽस्यां क्षिप्यते वा बीजादिकमिति पृथ्वी, स्त्री वा। इला इत्यन्ननाम, गो नाम च। अर्शादित्वादच्। अन्नवती, गोमती। इयम् पृथिवी वा इडा। कौ० ९। २॥ इडा हि गौः। श० २। ३४। ३४॥ पशवो वा इडा। श० १। ८। १। २१॥ अन्न वा इडा। ऐ० २। २५॥ श्रद्धा इडा। श० १२। २। ७। २०॥ इडा वै मानवी यज्ञानुकाशिनी आसीत्। तै० १। १४। ४॥ इरा पत्नी विश्वसृजाम्। तै०। ३। १२। ५॥

स्तुति करने और कथन करने से 'इला' वाणी है। दीप्ति करने से, प्रकाशक होने से 'इडा' वाणी और विद्युत् है। सहशयन और बीजवपन से स्त्री और भूमि दोनो 'इडा' है। गौ और अन्न दोनों का वाचक 'इडा' शब्द पढ़ा है। उनकी स्वामिनी भी 'इडा' है। पशु, अन्न, श्रद्धा, सत्य-

धारणावती बुद्धि या मनुष्य की पत्नी और समस्त विश्वचक्र कारणों की स्वामिनी प्रकृति भी 'इडा' और 'इरा' नाम से कहाती है।

'सरस्वती'—वाग् वै सरस्वती। श० २।५।४।६॥ सा वाक् ऊर्ध्वा उदातनोत् यथा अपां धारा संततम्। तां० २०।१४।२॥योषा वै सरस्वती, वृषा पूषा। श० २।५।१।१२॥ सरस्वतीति तद् द्वितीयम् वज्ररूपम्। कौ० १२।२॥ सरः सरस्वती चेति वाङ्-नामनी। सरति जानाति सर्वं। ज्ञायते वा विद्वद्भिः गच्छत्येव वाहूता इति सरः वाग्। सरः इत्युदकनाम च सर्त्तेस्तद्वती। वृष्ट्यधिदेवतात्वादुदकवती हि मध्यमिका वाक्। इति देवराजः। सर इति प्रशस्तम् ज्ञानं तद्वती इति दया०।

सरस्वती वाक् है, सरस्वती स्त्री है, पूषा पुरुष है। सरस्वती वज्र विद्युत् है। सरः और सरस्वती दोनों वाणी के नाम हैं। सरः जलवाचक है। इससे मध्यम वाग् विद्युत् सरस्वती है। 'सरः' उत्तम ज्ञान है, उससे युक्त वेदवाणी सरस्वती है।

भारती—एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्माद्वेवाह भरत इति। श० १।४।२।२॥ अग्निर्भरतः। सः प्राणो भूत्वा हवींपि बिभर्त्ति। तदीया भारती। अथवा भरत इति ऋत्विट् नाम। तदाया स्तुतिसाधनत्वात्। बिभर्त्ति जगद् वर्षप्रदानेन, स्वाभिधेयं धा भ्रियते प्राणिभिः व्यवहारसाधनत्वेन इति देव०।

प्राणरूप होकर सब प्रजाओं का पोषक होने से अग्नि 'भरत' है। उसकी शक्ति भारती है। भरत ऋत्विज है। उनकी स्तुति भारती है। वर्षा देकर जगत्-पालन करने से विद्युत् भारती है।

'मही—इयमेव मही। इयम् वा अदितिर्मही। श० ६।५।१०॥ पृथिवी नाम, वाङ् नाम, गो नाम च।

'मही' पृथिवी, वाणी और गौ तीनों का नाम है।

फलतः इडा = ऋग्। सरस्वती = यजुः। मही = साम। तीनों नाम पृथ्वीवाचक हैं। इला = अन्नदायी, सरस्वती = जलदात्री, मही = उत्तम रत्न

आदि दात्री। गृहस्थपक्ष में—इला = कुमारी, सरस्वती = गृहपत्नी। मही = वृद्धा। राज्यपक्ष मे—इला = भूमि-प्रबन्धकर्त्री सभा। सरस्वती = विद्वत्सभा। मही = पूज्य शिक्षक-समिति।

इलादिशब्दाभिधेया वह्निमूर्तयस्तिस्रो देव्य इति सायणः। अर्थात् तीनो प्रकार के विद्वान्।

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

भा०—यहां मैं अग्र, सर्व-प्रथम, सर्वोच्च अग्रासन के योग्य, सर्व-श्रेष्ठ, समस्त रूपो वा विश्व के रूपको अपने भीतर धारण करने वाले, संसार के कर्त्ता, सब दुःखो के छेदक एवं तेजस्वी परमेश्वर को स्मरण करता हूं। वह एक अद्वितीय हमारा उपास्य हो।

अग्निपक्ष मे—सब पदार्थों के विभाजक, सब प्रकार के रूपो के दिखाने वाले, तेजोमय अग्नि का मैं प्रयोग करू।

आत्मपक्ष मे—उस तेजोमय, दुःखो के नाशक, पुष्टि मे सब से श्रेष्ठ, विश्वरूप = आत्मा की उपासना करता हूं। वह ही केवल हमारा पूज्य है।

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः।
प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥

भा०—ऊखल जिस प्रकार कूट छानकर गृहस्थों को अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार हे वनों के पालक! हे उपभोग करने योग्य समस्त अन्नादि पदार्थों के पालक! हे उपासकों के पालक! भक्तप्रतिपाल परमेश्वर वा राजन्! हे सब पदार्थों के दातः तू चरु के समान अन्न और ज्ञान को उत्पन्न या प्रदान कर जिससे दानशील अथवा आत्मा को शुद्ध करने वाले पवित्र आचारवान उपासक को ज्ञान उत्तम रीति से हो।

'वनस्पति'—यज्ञ में ऊखल, देह में आत्मा, विश्व में परमेश्वर, राष्ट्र में राजा या सेनापति सब 'वनस्पति' हैं। यज्ञपक्ष में—ऊखल से कूटकर

हवि, अन्नादि प्राप्त कर उससे यजमान की अग्नि प्रदीप्त हो। वन अर्थात् वृक्ष, ओषधि आदि को अधिक वृष्टि लाकर पालने से बड़े वृक्ष वनस्पति हैं।

स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे।
तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ ॥ २५ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग उत्तम आहुति द्वारा दानशील धार्मिक पुरुष के घर में उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति, वायु-शुद्धि और ईश्वरोपासना के लिए यज्ञ करें। उस यज्ञ मे मैं विद्वान् पुरुषों को आदरपूर्वक बुलाऊं।

अध्यात्म मे—आत्मा के ज्ञान के लिए सत्संग करने वाले समाहित पुरुष के देह मे 'सु-आहा' उत्तम वाणी से यज्ञ अर्थात् आत्मा की उपासना करो और उसमें प्राणगणों दिव्य गुणो को अपने वश करूं।

१-४ मन्त्रों मे विद्वानो के आह्वाता होता का वर्णन है। ५ वें में यज्ञ मे आसन कुशाच्छादन है। ६ ठे मे यज्ञशाला के द्वार, ७ में नक्त और उषा, ८ वें मे दो दैव्य होता, ९ मे ३ देवियें, १० मे त्वष्टा, ११ वें मे वनस्पति और १२ वें में 'स्वाहा' का वर्णन है। अध्यात्म मे क्रम से मन, देह, उसके प्राण द्वार, जागृत, स्वप्न दशा, प्राण, अपान दो होता, इडा पिङ्गला, सुषुम्ना तीन नाड़ियें, त्वष्टा परमेश्वर, वनस्पति आत्मा और उनकी परस्पर आहुति यह अध्यात्म यज्ञ का वर्णन है।

[१४]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः गायत्र्यः ॥ ७, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्। १२ निचृद्। १०, ११ विराड् ॥ दशर्चं सूक्तम्।

एभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये।
देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे सर्वव्यापक, ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर! तू इन समस्त दिव्य गुण वाले, तेजस्वी जल, अग्नि आदि पदार्थों सहित, सुखजनक पदार्थों को उपभोग कराने के कारण समस्त आराधना, सेवा और स्तुति-

वाणियों को प्राप्त हो। मैं आपकी उपासना करता हूँ। समस्त दिव्य पदार्थों से परमेश्वर हमें आनन्द और सुख प्राप्त कराता है इस कारण वह समस्त आराधना और स्तुति-वाणियो के योग्य है, उसी की मै उपासना करूं।

अध्यात्म में—आत्मा ही प्राणों से ज्ञान रसपान करने से वह उपासना और स्तुतियों का पात्र है। साधारण अग्नि दिव्य गुणो के कारण सुखप्रद है। राजा समस्त विद्वानों सहित सोम अर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति पद का पालन और उपभोग करने के लिये स्तुतियो का पात्र है।

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः।
देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे विविध विद्याओ को और प्रजाओ को पूर्ण करने वाले विद्वन्! तेरे ही कर्मों और विज्ञानों का अन्य विद्वान् पुरुष अन्यो को उपदेश करते हैं और तेरी ही स्तुति करते, तेरा ही स्मरण करते हैं। हे अग्ने, ज्ञानवान् अग्रणी! तू, देव, दिव्यगुण वाले उत्तम विद्वानो सहित आ, हमे प्राप्त हो।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष 'इन्द्र', विद्युत् और वायु, 'बृहस्पति' अर्थात् बडे २ लोको के पालक, सूर्य, मित्र, प्राण, भौतिक अग्नि, सबके पोषक अन्नप्रद पृथिवी, अन्न और ओषधिवर्धक चन्द्र 'भग' सुख से सेवन योग्य ऐश्वर्य और 'आदित्य' सूर्य और पृथिवी की गति से उत्पन्न १२ मासों और 'मारुत गण' वायुओं के समूह इन सबका उपदेश करें और उनका प्रयोग करें।

अध्यात्म में—इन्द्र = आत्मा। वायु = प्राज्ञ। बृहस्पति = परमेश्वर। मित्र = नासिकागत प्राण। अग्नि = जाठर। पूषा = अपान। भग =

अष्टविध ऐश्वर्य। आदित्य = १२ प्राण, मारुत गण = प्राणादि वायुगण।

इसी प्रकार राष्ट्र में इन्द्र = राजा। वायु = सेनापति। बृहस्पति = पुरोहित। मित्र = राजा = अग्नि = आयुध। पूषा = पृथिवी और अन्न। भग = राज्य समृद्धि। आदित्य = वैश्यगण या विद्वान् गण, मारुत गण, सैनिक समूह वा प्रजाजन। इनको आदर-पूर्वक बुलावें और इनके कर्त्तव्यों का उपदेश करें।

प्र वो॑ भ्रियन्त॒ इन्द॑वो मत्स॒रा मा॑दयि॒ष्णवः॑।
द्र॒प्सा मध्व॑श्चमू॒षदः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों के सुख के लिये ही द्रुतगति से जाने वाले, हर्षपूर्वक शत्रु पर प्रयाण करने वाले, सबको हर्षित करने वाले, अति गर्वशील, सेना मे सुसज्जित, जलों के समान वेग से गतिशील एवं शत्रुओं का पीड़न करने वाले वीर पुरुष राष्ट्र मे भृति, अन्न आदि द्वारा रक्खे और पाले पोसे जाते हैं।

जलों और ओषधि रसों के पक्ष मे—द्रवशील, तृप्तिकारक, सुख, हर्षजनक, तृप्तिजनक, द्रवरूप, पात्र मे स्थित, मधुर जल पात्रों मे भरकर रक्खे जाते है।

ईळ॑ते॒ त्वाम॑व॒स्यवः॒ कण्वा॑सो वृ॒क्तब॑र्हिषः।
ह॒विष्म॑न्तो अर॒ङ्कृतः॑ ॥ ५ ॥

भा०—रक्षा, तेज और ज्ञान की इच्छा करने वाले, कुशा को काट लाकर यज्ञ को रचने वाले, फलतः, कुशल मेधावी, विद्वान् दान और ग्रहण करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थों से युक्त सब कार्यों को अच्छी प्रकार सुशोभित और सुन्दर, सुचारु रूप से करने वाले पुरुष तेरी ही स्तुति करते हैं।

'वृक्त-बर्हिषः'-यज्ञार्थं वृक्तं बर्हिः यैस्ते वृक्तबर्हिष ऋत्विजः अर्थात् यज्ञार्थं कृतोपक्रमाः। तद्यथा कुशान् लान्तीति कुशलाः। उभयो पदयोरेकप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् पर्यायत्वमुचितम्।

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! घृत से सिंचे, अग्नियो के समान अति तेजस्वी, मन के बल से योग-समाधि करने वाले, शरीर को वहन करने वाले अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, अति तेजोमय प्रकाश से युक्त होकर तुझको धारण करते हैं, तू आनन्दजनक ज्ञान-रस का पान करने के लिये उन विद्वान् पुरुषो को स्वीकार कर ।

अध्यात्म मे—हे आत्मन् ! वीर्य से आसिक्त, मन से युक्त शरीर का वहन करने वाले प्राणगण तुझको धारण करते हैं, तू आनन्दजनक रसपान करने के लिये अथवा उत्तम पदार्थों के भोग के लिये इन्द्रियो को धारण कर ।

हे राजन् ! कान्तिजनक पदार्थों से हृष्ट पुष्ट अश्व जिस प्रकार रथ को खींच ले जाते है उसी प्रकार जो वीर विद्वान् पुरुष, चित्त से तेरे साथ होकर तुझे धारण करते हैं, तुझे सन्मार्ग पर ले जाते हैं, हे राजन् ! तू उन विद्वान् और वीर पुरुषों को राष्ट्र ऐश्वर्य के भोग पालन के लिये नियुक्त कर ।

तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि ।
मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू देवोपासना करने वाले सत्य ज्ञान, यज्ञ और राष्ट्र की वृद्धि करने वाले, उत्तम पत्नियों से युक्त गृहस्थ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् कर । और हे उत्तम ज्वाला से युक्त अग्नि के समान उत्तम जिह्वा अर्थात् वाणी से युक्त विद्वन् ! तू हमें मधुर ज्ञानरस का पान करा ।

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया ।
मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥

भा०—अग्ने, विद्वान् ! परमेश्वर ! जो मनुष्य यज्ञ करने वाले,

उपासनाशील और जो स्तुति करने योग्य है वे अपनी वाणी द्वारा ही वषट्कार युक्त यज्ञ अर्थात् बल के कार्य में और गृहस्थ के यज्ञादि कार्य में तेरा मधुर रस, ज्ञान और अन्न का पान करें।

'वषट्कारः'—(१) वाग् वै वषट्कारः। वाग् रेतः। रेत एव एतत् सिञ्चति। (२) षट् इति ऋतवो वै षट्। तदृतुष्वेव एतद् रेत सिच्यते तदृतवो रेतःसिक्तमिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति। तस्मादेव वषट् करोति। श० १। ७। २। २१॥ वाक् च प्राणापानौ च वषट्कारः। ऐ० ६। ८॥ प्राणो वै वषट्कारः। एष एव वषट्कारो य एष तपति। श० १। ७। २। ११॥ यो धाता स वषट्कारः॥ ऐ० ३। ४७॥ त्रयो वै वषट्कारा: वज्रो धामच्छद् रिक्त.। स यदेवोच्चैः बल वषट् करोति स वज्रः। अथो य. सम. सन्ततो निर्हाणच्छत् स धामच्छन् अथ येन वषट् पराप्नोति स रिक्तः। गो० उ० ३। ३॥ वज्रो वै वषट्कारः। ऐ० ३।८॥ एते एव वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च। कौ० ३। ५। २। ऐ० ३। ८॥ तस्य एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्काराः—यद् वातो वाति। यद् विद्योतते। यत्स्तनयति। यदवस्फूर्जति। श० ११। ४। ६। ९॥

[१] शरीर मे वाणी, प्राण और अपान ये वषट्कार है। [२] वीर्य सेचन भी वषट्कार है। छ. ऋतुओं मे सूर्य बलाधान करना है यह उसका वषट्कार है। सूर्य स्वतः वषट्कार है। 'धाता' होना अर्थात् वीर्य आधान करने में समर्थ होना वषट्कार है। वज्र, धामच्छद् और रिक्त ये तीन स्वरूप वषट्कार के है। ओज. और सहः अर्थात् पराक्रम और शत्रु दमनकारी बल ये दोनों वषट्कार के दो स्वरूप है। ब्रह्म यज्ञ के चार वषट्कार है वायु का वेग से चलना, बिजली का चमकना, गर्जना और कडकना। फलत.—यज्ञ में—यज्ञशील स्तुति योग्य पुरुष मधुर अन्न का भोग करें। गृहस्थ कार्य, प्रजोत्पत्ति के कार्य में—हे अग्ने! काम! परस्पर संगत एवं एक दूसरे की इच्छा पूर्ति करने वाले स्त्री पुरुष 'जिह्वा' रस ग्रहण शक्ति से मधुर रस आनन्द को प्राप्त करें।

विद्युत् पक्ष मे—परस्पर नाना तत्वो को मिलाने मे चतुर विद्वान् पुरुष बलकारी शक्ति के उत्पादन कार्य मे उत्तम वशकारिणी शक्ति से 'मधोः' बल का उपयोग करें।

आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः ।
विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥

भा०—ज्ञानवान्, बुद्धिमान् ज्ञान के दान करने और ग्रहण करने वाला पुरुष सूर्य के समान चराचर के प्रकाशक और सचालक परमेश्वर के प्रकाश से ही उषाकाल अर्थात् सृष्टि के आदि काल मे बोध को प्राप्त कराने वाले समस्त ज्ञानप्रद वेदमन्त्रो को सब प्रकार से सर्वत्र उपदेश करे, और सुखप्रद सब दिव्य भोगो को प्राप्त करे अर्थात् जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से प्रातः चेतने वाले किरणो को या दिव्य आनन्दो को प्राप्त करता है उसी प्रकार परमेश्वर के दिये प्रकाश से विद्वान् पुरुष ज्ञानो और नाना उत्तम भोगों को प्राप्त करता है।

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! जीव ! जिस प्रकार अग्नि ऐश्वर्य और तेज की वृद्धि करने वाले गतिशील वायु से और प्राण के धारण सामर्थ्य या जल के बलों से प्रेरक बल को उत्पन्न करने वाले द्रव पदार्थ को अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार तू ऐश्वर्य के उत्पादक वायु से और सूर्य के प्रकाशों के समान प्राण के धारण सामर्थ्यों से वीर्य के उत्पन्न करने वाले मधुर अन्न और ब्रह्मानन्द रस के जनक मधुर ब्रह्मज्ञान का पान कर, उसको ग्रहण कर।

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

भा०—हे अग्ने ज्ञानवन् ! तू यज्ञ मे होता नाम ऋत्विज् के समान सब ज्ञानो को धारण करने वाला, मननशील, सर्वहितकारी होकर यज्ञों

में विराज। वह तू हमारे इस यज्ञ, एवं न नाश करने योग्य, उत्तम, सुखजनक पदार्थ को प्राप्त करा।

राजा राष्ट्र को अपने वश करने और सबको यथायोग्य मान, पद वेतन आदि देने में समर्थ, मननशील पुरुष को प्रजापालन के कार्यों मे स्थापन करे। वह हमारे 'अध्वर' प्रजापालन रूप यज्ञ को व्यवस्थित करे॥

युक्ष्वा ह्यरु॑षी॒ रथे॑ ह॒रितो॑ देव रो॒हितः॑।
ताभि॑र्दे॒वाँ इ॒हा व॑ह ॥ १२ ॥ २७ ॥

भा०—हे सूर्य के समान देदीप्यमान, तेजस्विन्! चमकने वाले! विद्वन्! देव! तू रमण करने योग्य रथ में रक्त गुण वाली, गमनशील एवं कान्तियुक्त हरणशील शक्तियों को संयोजित कर। उनसे इस लोक में कामना योग्य सुखकारी पदार्थों और व्यवहारों को प्राप्त करा।

भौतिक अग्नि की ज्वालाएं या गतियुक्त शक्तियां रक्तवर्ण की कान्ति वाली हैं और रोहित अर्थात् ईषत् रक्त हैं जिनसे वह 'देवो' अर्थात् किरणों को दूर तक पहुंचाता है। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[१५]

मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ ऋतवो देवता । १, ५ इन्द्रः। २ मरुत । ३ त्वष्टा। ४ अग्निः। ६ मित्रावरुणौ। ७—१० द्रविणोदाः। ११ अश्विनौ। १२ अग्निः॥ गायत्र्य.। १२ पिपीलिकामध्या निचृद्। २ भुरिग्। १२ निचृद्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्र॒ सोमं॒ पिब॑ ऋ॒तुना त्वा॑ विश॒न्त्विन्द॑वः।
म॒त्स॒रास॒स्तदो॑कसः ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र! जल को रश्मियों में मेघ रूप से धारण करने वाले सूर्य! तू वसन्त आदि प्रत्येक ऋतु के बल से जल का पान करता है, उनको रश्मियों से सोख लेता है और तब ही वे जल, अन्तरिक्ष, वायु, पृथिवी आदि नाना स्थानों पर आश्रय पाकर प्राणियों को हर्ष और तृप्ति

उत्पन्न करने वाले होकर द्रव रूप एवं गीला करने वाले रूप में रहते हैं, तुझको वे प्राप्त होते है। तेरे पर आश्रित हैं।

राजा के पक्ष में—हे इन्द्र राजन्! महामात्य और राजसभा के सदस्यों के बल से तू ऋतु बल से सूर्य के समान राजपद ऐश्वर्य का भोग कर। हर्षजनक नाना देशो और महलो मे रहने वाले चन्द्र के समान प्रजारञ्जनकारी विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष तुझे प्राप्त हो, वे तेरे अधीन, पात्र मे जल के समान आश्रित रहे।

मरु॑तः॒ पिब॑त ऋ॒तुना॑ पो॒त्राद्य॒ज्ञं पु॑नीतन।
यू॒यं हि ष्ठा सु॑दानवः ॥ २ ॥

भा०—हे मरुद्गण! विद्वान् जनो! जिस प्रकार वायुगण ऋतुओ के अनुसार जल को सूक्ष्म रूप से पान करते है और सूक्ष्मरूप से अपने भीतर धारण करते है और अपने पवित्र करने के सामर्थ्य से यज्ञ अर्थात् सृष्टियज्ञ को पवित्र करते हैं और वे उत्तम सुख और वृष्टि जल, कृषि फल को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार आप विद्वान् जन भी ज्ञान, बल और प्राण के सामर्थ्य से अन्न ओषधि आदि रस का पान करो और पवित्र करने वाले परमेश्वर, प्राण या जल के सत्य ज्ञान और सामर्थ्य से आत्मा और शरीर को पवित्र करो। हे विद्वान् जनो! क्योकि आप लोग उत्तम कल्याणकारी ज्ञान और ऐश्वर्य का दान करने हारे हो।

प्राणो के पक्ष मे—हे प्राणगण! मुख्य प्राण या ओंकार के बल से आत्मा को पवित्र करो। तुम उत्तम बलप्रद हो।

सैनिको के पक्ष मे—शत्रुमारक वीर पुरुष सेनापति के बल से राष्ट्र का उपभोग करे, पालन करें। ब्राह्मण के बल से यज्ञ रूप राष्ट्र को स्वच्छ करें, उत्तम रक्षाकारी हो।

अ॒भि य॒ज्ञं गृ॑णीहि नो॒ ग्नावो॒ नेष्टः॒ पिब॑ ऋ॒तुना॑।
त्वं हि र॑त्न॒धा असि॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाले! हे सब

पदार्थों को शुद्ध करने हारे ! तू यज्ञ, प्रजापति, परमेश्वर को लक्ष्य करके हमें उपदेश कर और सत्यज्ञान के बल पर आनन्द रस का पान कर। क्योंकि निश्चय से तू ही अति रमण करने योग्य ज्ञान और आत्मतत्व को धारण करने वाला है।

गृहस्थ-पक्ष में—हे सत् स्त्री से युक्त ! उसके स्वामिन् ! हे विवेकिन् ! तू परमेश्वर की उपासना कर और ऋतु के अनुसार अन्नादि भोग्य पदार्थों का भोग कर। तू ही रमण योग्य, सुखप्रद स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य आदि के धारण पोषण करने हारा है।

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह सा॒दया॒ योनि॑षु त्रि॒षु।
परि॑ भूष॒ पिब॑ ऋ॒तुना॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! तू अग्नि या सूर्य के समान इस राष्ट्र या लोक में दिव्य गुणयुक्त पदार्थों एवं दानशील और विजयशील विद्वान्, धनवान् और बलवान् पुरुषों को प्राप्त करा। और उनको तीनों उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थानों पर स्थापित कर। और इन सबको सब प्रकार से सुशोभित कर। और बल, ऋतु और सहयोगी अमात्य आदि सहित ऐश्वर्य का पालन व भोग कर।

ब्राह्म॑णादिन्द्र॒ राध॑सः पिबा॒ सोम॑मृ॒तूँरनु॑।
तवेद्धि स॒ख्यमस्तृ॑तम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन ! आत्मन ! तू प्राणों के सामर्थ्य से उस महान् परमेश्वर के आराधना, साधना या विभूति, ऐश्वर्य में से प्राप्त होने वाले परमानन्दमय रस को पान कर। और हे आत्मन् ! तेरा ही सख्य, मैत्रीभाव, प्रेम कभी नष्ट नहीं होता। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'। बृहदा० उप०।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू ऋतुओं या मन्त्रिगण अथवा राज-सभा के सदस्यों सहित महान् राष्ट्र के ऐश्वर्य से अथवा वेदोक्त प्राप्त अपने अंश रूप ऐश्वर्य का ग्रहण कर। तेरे सख्य का कभी नाश नहीं होता।

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् ।
ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—हे व्रतो, नियमो को धारण करने और उनको स्थिर रखने वाले! मित्र, सब के स्नेही, वरुण, दुष्टो के वारक तुम दोनो सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार दोनो ऋतु के अनुसार संवत्सर रूप यज्ञ को धारण करते हैं और प्राण और अपान दोनो गति बल से जिस प्रकार देह को धारण करते हैं उसी प्रकार राजा और मन्त्री, गृह मे गृहस्थ और गृहपत्नी सत्य धारक बल से शत्रुओ से नाश न होने वाले बल को और परस्पर संग से उत्पन्न प्रजापालन व्यवहार को व्याप्त होकर रहो। उस पर वश रक्खो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—धन ऐश्वर्य और द्रुत वेग को चाहने वाले ज्ञानी पुरुष उत्तम स्तुति करने से सिद्धहस्त होकर हिंसारहित, शुद्ध, पवित्र यज्ञ मे और ईश्वरोपासना के कार्यों मे और विद्या, बल, राज्य ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर की उपासना, स्तुति, प्रार्थना करते हैं। अर्थात् यज्ञो में परमेश्वर की स्तुति करते हैं।

राजा के पक्ष मे—वज्र आदि हनन करने के शस्त्रास्त्रो को हाथ मे लिये, उनको चलाने मे कुशल, सिद्धहस्त होकर प्रजापालन और सेना संग्रामो मे धन प्रदान करने वाले दाता राजा की ही कामना पूर्ण करते हैं।

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे ।
देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

भा०—जिन भी बहुत से प्राणियों को सुखपूर्वक बसाने वाले ऐश्वर्य सुने जाते हैं, उन सबको वह सब ऐश्वर्यों का देने वाला प्रभु ही हमे प्रदान करे। और उनको दिव्य कार्यों, राज्य व्यवहारो और विद्वानों के निमित्त प्राप्त करें और उनके हित के लिये प्रदान करें।

द्रविणोदाः पिपीपति जुहोत प्र च तिष्ठत ।
नेष्ट्राद् ऋतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

भा०—ऋत्विजों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला पुरुष जिस प्रकार सोम रसों का पान करता है उसी प्रकार ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ 'द्रविणोदा' राजा ही ऐश्वर्य को भोग करने की अभिलाषा करता है। इसलिये हे वीरो! विद्वान् जनो! आप लोग शस्त्रों का प्रहार करो या परस्पर का लेन देन व्यवहार करो और आगे बढ़ो। और प्राणों के बल से जिस प्रकार मनुष्य व्यापक आत्मा या मन से ही समस्त इच्छाएं करते हैं और जिस प्रकार प्राणी ऋतुओं के सहित सबके नायक सूर्य से ही सब इष्ट फल प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे वीर पुरुषो! तुम लोग भी ज्ञानवान् पुरुषों सहित सबसे आगे चलने वाले नायक पुरुष से ही अपने इष्ट कार्यों को प्राप्त करो, उनकी आज्ञा पर चलो।

यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे ।
अर्ध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

भा०—हे द्रविणोदः, ऐश्वर्यों के देने हारे परमेश्वर! जिस तुरीय, मोक्षस्वरूप तुझको प्राप्ति के समस्त साधनों से हम उपासना करते हैं, और तू ही हमें सब पदार्थों का दाता, सब कष्टों और दुःखों से त्राता और रक्षक हो। हे राजन! प्रभो! तुझ चारों वर्णों के पूरक या शत्रु, मित्र और उदासीन सबसे ऊपर विद्यमान चतुर्थ तुझको हम सब सदस्यों एवं बलों से युक्त करें। तू हमारा दाता और रक्षक हो। परमेश्वर का 'तुरीय' स्वरूप देखो माण्डूक्य उप०। अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार [आत्मै] व ॥

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता ।
ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

भा०—देह में व्यापक जाठर अग्नि से स्वतः प्रदीप्त होने वाले,

शरीर को शुद्ध करने वाले कर्मों के करने वाले होकर अन्न का मधुर रस मुख्य प्राण के बल से पान करते हैं और वे दोनो आत्मा को धारण करते हैं। इसी प्रकार शुद्ध कर्मों और नियमो वाले अग्नि के समान स्वयं प्रकाशमान, अथवा राजारूप अग्रणी नेता पद के साथ प्रकाशित होने वाले, उसके सग विराजमान होकर हे अश्वो पर चढ़ने वाले दो मुख्य अधिकारियो ! या राजा रानियो ! तुम दोनो राष्ट्ररूप यज्ञ, प्रजापालक प्रजापति पद को धारण करते हुए ऋतु के अनुकूल या बल से राज्य को प्राप्त करने वाले सामर्थ्य से ही मधुर राष्ट्र के ऐश्वर्य का पान करो, उसका उपभोग करो। राष्ट्र का धारण, पोषण व पालन करना ही उसका उपभोग करना है। राष्ट्र को दुर्व्यसनो मे नाश करना उसका भोग करना नहीं है।

इसी प्रकार एक दूसरे के हृदय मे व्यापक, एक दूसरे के भोक्ता, पति पत्नी, शुद्ध नियम व्रत का पालन करते हुए, अग्निहोत्र मे अग्नि को प्रज्वलित करने वाले आहिताग्नि होकर गार्हस्थ्य या परस्पर संगत यज्ञ को धारण करने वाले होकर ऋतु के अनुसार मधुर गृहस्थ सुख का भोग करें।

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।
देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥ २९ ॥

भा०—हे दान करने और उत्तम विद्या, ऐश्वर्य आदि पदार्थों को विभाग या प्रदान करने मे कुशल पुरुष ! तू गृहपति के पालन करने योग्य ऋतु मे ही यज्ञ को सम्पादन करने वाले प्रमुख पुरुष के लिये उत्तम व्यवहारो को सम्पादन कर और उत्तम विद्वानों को सुसगत कर।

राजा के पक्ष मे—हे राजन् ! तू गृहपति, पिता के योग्य विधान से यज्ञ राष्ट्र का नायक है। तू विजय करने वाले के लिये वीर पुरुषों को प्राप्त कर। इत्येकोनत्रिंशत् वर्गः ॥

[१६]

मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । ३ पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ विराड ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।
इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! परमेश्वर ! जल ले लेने वाले किरण रसों को पान करने के लिये जिस प्रकार वर्षण करने वाले सूर्य या मेघ को धारण करते है, उसी प्रकार सूर्य के समान तेजोमय, स्वतःप्रकाश परमेश्वर का साक्षात् करने वाले विद्वान् जन भी आनन्द रस का पान करने के लिये तुझ सब सुखों के वर्षक को ही हृदय मे धारण करते हैं और तुझे ही साक्षात् करते हैं ।

अध्यात्म मे—ये 'हरि' इन्द्रियगण तुझे धारण करते है ।

राजा के पक्ष मे—हे राजन् ! सूर्य के समान तीव्र चक्षु वाले, तेजस्वी लोग राष्ट्र के भोग और पालन के लिये तुझे बलवान् एव शस्त्रास्त्र वर्षक या प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षाने वाले को ही मेघ के समान जानकर तुझे रथ को अश्वों के समान धारण करते है, तेरे कार्य वहन करते है ।

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः ।
इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

भा०—दो अश्व जिस प्रकार राजा को रथ द्वारा ले जाते है और सब पदार्थों और कालचक्र को ले जाने वाले कृष्ण और शुक्लपक्ष जिस प्रकार चन्द्र को और दक्षिणायन और उत्तरायण जिस प्रकार सूर्य को धारण करते है, उसी प्रकार हे आत्मन ! हरणशील, गतिमान दोनों प्राण और अपान इस अति-अधिक सुखकारी रमण कराने वाले स्वरूप मे ऐश्वर्य-युक्त, आत्मसाक्षात्कार मे देखने योग्य रसमय स्वरूप में धारण करते है, द्रष्टा को वहां तक पहुचाते है । और जिस प्रकार दिन रात्रि या किरणें काल के धारण करने मे 'धाना' कहाती है सूर्य और चन्द्र की ज्योति या

जल को धारण करने से वे 'धाना' हैं और तेजप्रद होने से 'घृतस्नु' हैं उसी प्रकार ये सब आत्मा को धारण करने वाली नाडियां 'धाना' आनन्द रस को स्रवण करने वाली हैं।

राजा के पक्ष मे—समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने से प्रजाएं ही 'धाना' हैं। वे तेज, अन्नादि देती हैं।

'धानाः'—नक्षत्राणां वा एतद् रूप यद् धानाः। तै० ३।८।४।५॥ अहोरात्राणां वा एतद् रूप यद् धानाः। श० १३।२।१।४॥ पशवो वै धानाः। कौ० १८।६॥

इन्द्रं॑ प्रा॒तर्ह॑वामह॒ इन्द्रं॑ प्रय॒त्य॑ध्व॒रे।
इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—प्रात:काल के अवसर पर प्रतिदिन हम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर इन्द्र को स्मरण करें। उत्तम ज्ञान प्रदान करने वाले यज्ञ में भी हम उसी ईश्वर का स्मरण करें। और सोम, परम ब्रह्मानन्द रस का पान करने के लिये परमेश्वर को ही स्मरण करें।

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ हरि॑भिरिन्द्र के॒शिभि॑ः।
सु॒ते हि त्वा॒ हवा॑महे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर! जिस प्रकार किरणों वाले, तेजोमय वेगवान् किरणों सहित जगत् को सूर्य या वायु प्राप्त होता है, उसी प्रकार तू भी किरणों वाले वेगवान् सूर्यादि पदार्थों द्वारा हमारे ज्ञान से निष्पन्न आत्मा को प्राप्त हो। और उपासना के अवसर मे ही तुझे हम पुकारते हैं।

अध्यात्म मे—हे इन्द्र, आत्मन्! तू क्लेश देने वाले प्राणों सहित इस उत्पन्न देह को प्राप्त होता है। इस देह मे आत्मा का ही ज्ञान करें।

राजा के पक्ष मे—केश वाले अश्वों सहित तू इस प्राप्त राष्ट्र मे आ। अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यमय राष्ट्र मे तुमको आदरपूर्वक स्मरण करते हैं।

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् ।
गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—पियासा गौर मृग जिस प्रकार उत्सुक होकर जलाशय मे जल पीता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू स्तुतिवाणियों मे रमण करने वाला होकर हमारे इस स्तुतिसमूह को प्राप्त हो और इस उत्तम रीति से सम्पादित उपासना रस का पान कर, स्वीकार कर ।

राजा के पक्ष मे—गौ अर्थात् पृथ्वी मे रमण करने हारा राजा तृषित मृग के समान अति उत्सुक होकर प्रजा के जन संघ को प्राप्त करे और इस अभिषेकद्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को भोग करे । इति त्रिंशो वर्गः ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि ।
ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

भा०—हे इन्द्र, परमेश्वर ! ये उत्पन्न हुए परम ऐश्वर्ययुक्त सूर्य, वायु आदि कारण पदार्थ अन्तरिक्ष और महान् आकाश मे विद्यमान हैं उनको अपने बल मे पान कर, अपने भीतर धारण कर ।

अध्यात्म मे—सोम साक्षात् देह मे देहान्तर मे जाने वाले ये जीव अन्न के आधार पर उत्पन्न हैं । हे परमेश्वर ! उन्हे अपने मे धारण कर ।

जलों के पक्ष मे—हे इन्द्र, सूर्य ! अन्तरिक्ष मे ये द्रवणशील जल विद्यमान हैं उन्हे किरणों मे पान कर ।

राजा के पक्ष मे—प्रजाजन के ऊपर आज्ञा करने वाले ऐश्वर्यवान् उत्तम जन अभिषिक्त हैं, उनको अपने बल की वृद्धि के लिये अपने में मिला ले, अपने अधीन कर ।

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः ।
अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा यह हृदय को स्पर्श करने वाला, अतिप्रिय, स्तुतिसमूह सबसे श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, अतिशान्तिदायक हो । और तू उत्पन्न हुए इस जीव को पान कर, अपनी शरण मे ले ।

राजा के पक्ष में—यह अधिकार सर्वश्रेष्ठ, सबके हृदयों को स्पर्श करने वाला तुझे शान्तिदायक हो। तू इस अभिषेक से प्राप्त राष्ट्र या सोम राजपद को स्वीकार कर।

विश्व॒मित् सव॑नं सु॒तमिन्द्रो॒ मदा॑य गच्छति।
वृ॒त्र॒हा सोम॑पीतये॥ ८॥

भा०—वायु जिस प्रकार सब प्राणियों को आनन्दित और जीवन रस से तृप्त करने के लिये इस समस्त उत्पन्न जगत् को व्यापता है और जल को सर्वत्र पान कराने के लिये ही वह मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर उत्पन्न हुए इस समस्त सुखजनक ऐश्वर्यमय जगत् को आनन्द रस से तृप्त करने और सोमरूप चैतन्य तत्व के पालन कराने के लिये आवरणकारी तामस आवरण को नाश करके सर्वत्र व्याप रहा है।

राजा के पक्ष में—शत्रुनाशक राजा अभिषेक से प्राप्त समस्त ऐश्वर्य को अपने हर्ष और राष्ट्र-भोग के लिये प्राप्त करता है।

सेमं नः॒ काम॒मा पृ॑ण॒ गोभि॒रश्वैः॑ शतक्रतो।
स्तवा॑म त्वा स्वा॒ध्यः॑॥ ९॥

भा०—हे असंख्य कर्मों और प्रजाओं वाले परमेश्वर! या राजन्! वह तू हमारे इस मनोरथ को गौओं और अश्वों से गृहस्थ और राष्ट्र के कार्यों के समान पूर्ण कर। हम उत्तम रीति से तेरी चिन्ता करने वाले भक्तजन तेरी ही स्तुति करते हैं, तेरा ही गुणानुवाद करते हैं।

अध्यात्म में—ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर। हम शुभचिन्तक ध्यानशील होकर तेरी स्तुति करें। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

[१७]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रावरुणौ देवते॥ गायत्र्यः। २ यवमध्या विराट्। ४ पादनिचृद् (हसीयसी)। ६ निचृद्। ५ भुरिगार्ची। ८ पिपीलिकामध्या-निचृद्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

भा०—मैं प्रजाजन अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाले इन्द्र और वरुण, राजा और सेनापति, दोनो के रक्षा कार्य को स्वीकार करूं, दोनों के रक्षा कार्य को आवश्यक जानता हूँ। वे दोनो हमें सूर्य और चन्द्र के समान या वायु और मेघ या विद्युत् और मेघ के समान इस प्रकार साक्षात् राज्यकार्य में सुखी करते हैं।

अध्यात्म में—इन्द्र = जीव, वरुण = परमेश्वर दोनों मे से एक ब्रह्माण्ड और दूसरा देह मे राजा के समान प्रकाशित होने से दोनो को मैं प्राप्त करूं, वे दोनों हमे ऐसे लोक और परलोक मे सुखी करते है।

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।
धर्त्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण नामक राजा और सेनापति पुरुषो ! आप दोनो अग्नि और जल के समान मनुष्यो के धारण पोषण करने वाले हो। और मेरे समान विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले बुद्धिमान् प्रजाजन के रक्षा करने के लिए युद्ध को भी निश्चय से जाने को सदा तैयार रहते हो।

अग्नि और जल दोनो—विद्वान् पुरुष के इच्छानुकूल शिल्पकलादि साधनो को प्राप्त होकर पुरुषो के धारक, पालक और पोषक होते हैं।

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्नि और जल के समान प्रजा की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करनेहारे ! तुम दोनो ऐश्वर्य के प्रत्येक प्रकार की अभिलाषा को पूर्ण करो। उन तुम दोनो को हम लोग अपने अति अधिक समीप प्राप्त होकर याचना करते है।

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ।
भूयाम वाजदाव्नाम ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग उत्तम बुद्धियो, शक्तियो और वेदवाणियो के साथ अपने को मिलाये रक्खें और उत्तम मनन करने वाली बुद्धियो वाले विद्वानो के साथ हम सत्संग करें। और अन्न और ऐश्वर्य देने वाले पुरुषो के बीच मे हम सदा रहे।

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—सहस्रों ऐश्वर्यों और सुखों के देने वालो मे से परमेश्वर, अग्नि, विद्युत, सूर्य, मेघ, राजा यही क्रियावान्, कुशल एवं प्रशंसा-योग्य हैं। और स्तुति करने योग्यो मे से सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, जल, वायु, चन्द्र और समुद्र ही क्रियावान् और प्रशसा के योग्य हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

भा०—इन दोनों के ही ज्ञान, रक्षण और तेजः सामर्थ्य से हम सब लोग समस्त सुखो का भोग करें। और धन को कोष मे संचय करें और हमारे पास बहुत अधिक ऐश्वर्य हो।

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण राजन्! और सेनापते! मैं प्रजाजन अद्भुत, राज्य, सेना, भृत्य, पुत्र, मित्र, सुवर्ण, रत्न, हस्ती, अश्व आदि से सम्पन्न एवं दूसरो के आश्चर्यकारक धन को प्राप्त करने के लिए आप दोनो को बुलाता हूँ। आप दोनो हम सबको विजयशील बनाओ।

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम ॥ ८ ॥

भा०—हे इन्द्र और वरुण ! वायु और जल या मेघ के समान सुखप्रद ! आप दोनों को भजन या सेवन करने वाली प्रजाओं में आप दोनों हमें सुख प्रदान करो।

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे।
यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ६ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

भा०—हे इन्द्र और वरुण ! पूर्वोक्त वायु जल ! उनके समान राजन् ! सेनापते ! जिस सत्य गुण वर्णन वाली स्तुति को मैं प्रकट करता हूँ और जिस सत्य अपने गुण स्तुति और शक्ति को प्राप्त कर आप बढ़ते हैं वह आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हो। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः।

[१८]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः। देवता—१—३ ब्रह्मणस्पति। ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च। ५ बृहस्पतिर्दक्षिणा। ६—८ सदसस्पतिः : ९ सदसस्पतिर्नाराशंसो वा ॥ गायत्र्य। १ विराट्। ३, ६, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्। ४ निचृद्। ५ पादनिचृद्। नवर्चं सूक्तम्।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥

भा०—हे वेदों और वेदज्ञ विद्वानों के पालन करने हारे परमेश्वर ! तू यज्ञ कर्म करने वाले, अपने उपासक को जो तेजस्वी, वीर्यवान्, ज्ञानी, गुरु का पुत्र या शिष्य है उसको उत्तम शब्दार्थों का ज्ञाता और उपदेष्टा तथा हाथों की अंगुलियों से किये जाने वाली शिल्पक्रिया में भी सिद्धहस्त कर।

आचार्य के पक्ष में—हे आचार्य ! जो तेजस्वी माता पिता का बालक है उसको अभिषव अर्थात् स्नान करने अर्थात् विद्या पढ़कर स्नातक बनने वाला तथा उत्तम शब्दार्थों का ज्ञाता तथा हाथों की क्रियाओं में कुशल, ज्ञानवान् और क्रियावान् बना।

राजा के पक्ष में—हे समस्त ब्रह्म के स्वामिन्! मुख्य पुरोहित तू जो तेजस्वी, पराक्रमी या कामना, इच्छा वाले माता-पिता या प्रजाजन से उत्पन्न है जिसको प्रजा चाहती है ऐसे अभिषेक करने योग्य राजा को सबका आज्ञापक और शत्रुओं का उपतापक और कसे कसाये घोड़े के समान बलवान् एवं शत्रुबल को अवगाहन करने की शक्ति से युक्त एव राष्ट्र रूप रथ को खैंच लेने मे समर्थ अथवा अगल बगल की प्रबल सेनाओं से सम्पन्न बना।

'कक्षीवन्त'—कक्षीवान् कक्ष्यावान्। आपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात्। नि० ६। १०॥ कक्ष्या रज्जुः। अश्वस्य कक्षं सेवते। कक्षो गाहते.। कस. इति नामकरणः। ख्यातेर्वानऽनर्थकोऽभ्यासः। किमस्मिन् ख्यानमिति वा। कषतेर्वा तत्सामान्यान्मनुष्यकक्षः। बाहुमूलसामान्यादश्वस्य। निरु० २।१।२॥

कक्षासु। करांगुलिषु क्रियासु भवा शिल्पविद्या प्रशस्ता यस्य स कक्षीवान्। कक्षा इत्यंगुलिनाम॥ दया०॥

'औशिजः'—उशिजः पुत्रः। उशिग् वष्टेः कान्तिकर्मणः। उशि प्रकाशे जातः स उशग्। तस्य विद्यावत. पुत्र इव।

> यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः।
> स नः सिषक्तु यस्तुरः॥ २॥

भा०—जो विद्या और धनैश्वर्य से सम्पन्न, वैद्य के समान समस्त दुःखदायी रोगकारणों का नाश करने वाला, समस्त लोकों को जानने वाला, अन्न और ज्ञान से शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाला है और जो अति वेगवान् शीघ्र सुख फल देने वाला है वह हमें प्राप्त हो।

राजा के पक्ष मे—जो ऐश्वर्यवान्, रोगों के समान शत्रुओं का नाशक गौ आदि सम्पत्ति का बढाने वाला, राष्ट्र का पोषक, ऐश्वर्य को युद्धादि द्वारा प्राप्त करने और प्रजा को देने वाला, वेदज्ञ विद्वानों का

पालक और जो शत्रु पर वेग से आक्रमणकारी है वह हमें संगठित करे, हम में सब बनाकर बलवान करें।

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

भा०—महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर ! महान् राष्ट्र के पालक राजन् ! वेद के पालक आचार्य ! हमारी तू रक्षा कर। दुष्ट पुरुष का नाशकारी, कष्टप्रद आक्षेप वचन या उपदेश हम तक न पहुंचे। अपितु वेदज्ञ विद्वान् हमारी रक्षा करे। अथवा हमने से कोई भी हिंसक नष्ट हो, अदानशील पुरुष का वचन भी नष्ट हो, हमारा वचन व ख्याति नष्ट न हो।

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस पुरुष वा प्रजाजन को वायु, प्राणवायु सोमलता आदि ओषधिसमूह और वेद का पालक विद्वान् और ब्रह्माण्ड का स्वामी परमेश्वर बढ़ाते हैं वह शत्रुबलों को तितर बितर करने में समर्थ वीर पुरुष कभी दुःख नहीं पाता, कभी नष्ट नहीं होता।

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥ ३४ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन ! वेदज्ञ विद्वन् ! बृहत् राष्ट्र के पालक राजन ! तू, सोम, ओषधि रस, विद्वान जन और वीर्यादि सामर्थ्य, सेनापति, प्राण, वायु और बढ़ने की उत्तम धर्म नीति ये सब उस पुरुष को पाप से बचावें।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥

भा०—अद्भुत, आश्चर्यकारी, ऐश्वर्यवान् राजवर्ग और वैश्यवर्ग के प्रिय लगने हारे, सब प्रजा के इच्छानुकूल, योग्य ज्ञान और उचित श्रमा-

नुकूल वेतन पुरस्कार आदि देने वाले, विद्वानो की एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा के पालक, न्यायसभा या धर्मसभा के नेता सभापति को मैं धारणावती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त करूं।

परमात्मपक्ष मे—जीव के प्रिय लोकसमूह, ब्रह्माण्ड के पालक, सबको कर्म फलो के दाता, परमेश्वर को मैं बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त होऊं वा उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि प्राप्त करूं।

यस्माद्दृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।
स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥

भा०—जिसके बिना बडे भारी विद्वान् पुरुष का भी यज्ञ, कोई भी उत्तम कार्य, उपासना आदि सफल नही होता, वह परमेश्वर सर्वोपास्य, समस्त बुद्धियो और कर्मों की एकाग्रता से ध्यान करने योग्य है।

अथवा—वह समस्त बुद्धियो का संयोजन अर्थात् प्रेरणा करना जानता है। वही सब बुद्धियो को प्रेरणा करता और सब कर्मों का सचालक है।

विद्वान् के पक्ष मे—जिस विद्वान् के बिना कोई परस्पर का संगत राज्य आदि समवाय न चल सके वह पुरुष सब कार्यों का नियोजन करे।

आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् ।
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥

भा०—पूर्वोक्त सभापति के समान सर्वोच्च, सर्वप्रेरक मुख्य पुरुष ही तब स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों के सम्पादन करने वाले यज्ञादि उत्तम कार्यों को सम्पन्न करता है। और यज्ञ को उन्नति की ओर ले जाने वाला, अविनश्वर, निर्विघ्न बनाता है। और दान देने योग्य पदार्थों को विद्वान् पुरुषो के निमित्त प्राप्त करता है।

परमेश्वर के पक्ष मे—अन्नादि कर्मफलो के उत्पादक, अविनश्वर जगत्-मय यज्ञ को वही सम्पन्न करता, हवनादि क्रियाओं को करता और दिव्य गुणों या दिव्य पदार्थों मे व्याप्त है।

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ६ ॥ ३५ ॥

भा०—मैं समस्त मनुष्यों के प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर को ही सबसे अधिक अच्छी प्रकार से ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला और अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ, उनके समान ही व्यापक और सूर्यादि प्रकाशवान् लोकों के समान सबके आश्रय होकर तेज प्रकाश से युक्त, अथवा—महान आकाश और सूर्य के भी महान् आश्रय-गृह के समान देखता हूँ । अर्थात् परमेश्वर ही जगत् को सबसे उत्तम रीति से धारण करता है, वही आकाशादि पदार्थों में सबसे अधिक व्यापक है । वह समस्त तेजस्वी पदार्थों का आश्रय है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[१९]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः । अग्निमरुतश्च देवते ॥ गायत्र्यः । ७ निचृद् । ९ पिपीलिकामध्या निचृद् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! उस जगत्प्रसिद्ध नित्य विद्यमान, ब्रह्माण्डमय उत्तम यज्ञ की रक्षा के लिये तू प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है । तू विद्वानों एवं वायुओं के समान व्यापक पदार्थों के साथ आ, हमें प्राप्त हो ।

राजा के पक्ष में— हे तेजस्विन् ! राजन ! तू शत्रुओं को मारने वाले, वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले वीर पुरुषों सहित आ । तू इस श्रेष्ठ, न नाश होने वाले, यज्ञ, राष्ट्र के रक्षार्थ प्रस्तुत है ।

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! तेरे महान् कर्म और ज्ञान सामर्थ्य

से कोई तेजस्वी पदार्थ परे नहीं है। अर्थात् सूर्यादि पदार्थ भी तेरे ज्ञान और कार्य सामर्थ्य से कम और उसके भीतर हैं। और न कोई मरणधर्मा जीव ही तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से परे है। तू ही वायु, आकाश आदि व्यापक और प्रकाश, विद्युत् आदि तीव्र वेगवान् भूत तत्वो सहित प्रकट होता है। ये सब परमेश्वर के ही महान् सामर्थ्य हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥कठ०उ०॥

ये मुहो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥

भा०—हे विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! जो समस्त परस्पर द्रोह न करने वाले, एक दूसरे के साथ मिल कर, एक दूसरे के उपकारक होकर, बड़े २ लोकों को प्राप्त हैं उन तीव्रगामी, वायु आदि तत्वो के सहित तू प्रकट है।

भौतिक पक्ष में—जो द्रोहरहित विद्वान्‌गण नक्षत्रादि लोकों को ज्ञान करते हैं उन विद्वानो द्वारा तू जाना जाय।

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥

भा०—जो अति बलवान्, वेगवान्, कभी शत्रुओं से धर्षण या पराजय को प्राप्त न होने हारे, अपने बल पराक्रम के द्वारा सूर्य के समान तेजस्वी सम्राट् के गुणों को प्रकाशित करते हैं। उन वायु के समान तीव्र, बलवान् वीर पुरुषों सहित हे शत्रुसन्तापक अग्रणी राजन्! तू आ, हमें प्राप्त हो।

परमेश्वर के पक्ष में—जो बलवान् बल से पराजित न होकर भी अर्चनीय परमेश्वर की उपासना करते हैं उन विद्वानो द्वारा हे ज्ञानवन्! तू हमें प्राप्त हो।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जो वीर पुरुष श्वेत वर्ण के, उज्ज्वल रूप वाले, नाना अलकारो और गुणो से सुशोभित, शत्रुओं का नाश करने वाले, भयानक रूप को धारण करने वाले, उत्तम क्षात्र-बल से युक्त, हिंसक दुष्ट पुरुषों के भी नाश करने वाले है उन वेगवान् वीर पुरुषो सहित हे अग्रणी, तेजस्विन् ! तू आ ।

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य के आश्रय पर जो पृथिवी, चन्द्र, अन्यान्य ग्रह आदि या प्रकाश की किरणें है उनके साथ ही सूर्य उदय होता है उसी प्रकार सुखयुक्त राष्ट्र के ऊपर अधिष्ठाता रूप मे विद्यमान स्वयं ज्ञानवान्, तेजस्वी सर्वोपरि ज्ञानप्रद राजसभा मे जो विद्वान् पुरुष विराजते है उन राष्ट्र के प्राणस्वरूप विद्वान् पुरुषों के साथ हे अग्रणी तेजस्विन् ! नायक ! तू हमे प्राप्त हो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ७ ॥

भा०—जो पर्वतो को और जलयुक्त समुद्र को अथवा अन्तरिक्ष और समुद्र को, उथलपुथल करते हैं उन वायुओ सहित हे सूर्य एव विद्युत् ! तू हमे प्राप्त हो । इसी प्रकार जो वीर पुरुष पर्वतो के समान प्रजाओ को पालन करने वाले भूमियों को कपा देते है और जो ऐश्वर्य-सम्पन्न, बलवान , जल से भरे समुद्र के समान गम्भीर सेना-बल को भी नीचा दिखाते है उन वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करने वाले वीर पुरुषों के साथ हे अग्रणी नायक ! राजन ! तू प्राप्त हो ।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥

भा०—जो वायुगण सूर्य की किरणों के ताप से फैलते हैं और बल-पूर्वक अन्तरिक्ष और जलमय सागर को भी उथलपुथल कर देते है, उन वेगवान् प्रचण्ड वायुओ सहित हे सूर्य ! तू प्राप्त हो । उसी प्रकार जो वीर पुरुष सूर्य-किरणों के समान फैलने वाली अश्व की रासो से तथा उनके समान प्रजा को वश करने वाले साधनों से राष्ट्र को विस्तृत करते हे और बल से अपार सागर का भी तिरस्कार करते हैं उन वीर पुरुषो के साथ हे नायक ! तू प्राप्त हो ।

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ९ ॥ २७ ॥ १ ॥

भा०—अग्ने ! राजन् ! मैं तेरे निमित्त ऐश्वर्य अथवा राजपद के योग्य, सुखजनक मधुर, अन्न आदि पदार्थ एवं बल और अधिकार को सबसे प्रथम आनन्दपूर्वक स्वीकार करने के लिये सोम रस के समान ही प्रस्तुत करता हूं । वे वायुओ सहित जिस प्रकार सूर्य पृथिवी पर जलो को रश्मियो द्वारा पान करने के लिये आता है उसी प्रकार तू भी आ । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

[२०]

मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ ऋभवो देवता ॥ गायत्र्य । ३ विराट् । ४, ५ ८ निचृद् (५, ८ पिपीलिकामध्या) ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।
अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥

भा०—बुद्धिमान् पुरुष अपने मुख से दिव्य, उत्तम गुणों से युक्त जन्म, इस देह-रचना एवं पुनर्जन्म ग्रहण के निमित्त उत्तम उत्तम रमण योग्य सुखों के देने वाला इस प्रकार का स्तुतिसमूह करते है ।

प्र इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।
शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष, शिल्पी जिस प्रकार ऐश्वर्यवान राजा या स्वामी के लिये वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते और नाना कर्म कौशलों से सब कल पुर्जों की व्यवस्था करते हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये अपने मनन सामर्थ्य से वाणी के साथ योग देने वाले, उसके साथ समाहित होने वाले गतिशील, प्राण और अपान दोनों को साधते हैं वे ही शान्तिदायक साधनाओं से सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

जो विज्ञान से वाणी के साथ चलने वाले वेगवान् साधनों को पैदा करते हैं वे शिल्प क्रियाओं से सुसंगत शिल्प को भोगते हैं।

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् ।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

भा०—और जो विद्वान शिल्पीजन सदा सत्य व्यवहार से वर्त्तने हारे स्त्री पुरुषों के लिये सब तरफ जाने वाले उत्तम सुखप्रद अवकाश युक्त रमण साधन रथ आदि यान बनाते हैं और वे ही दुग्धादि रस देने वाली गाय और अमृत, मोक्षज्ञान को पूर्ण करने वाली वेदवाणी का भी उपदेश करते हैं।

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

भा०—सत्य विचारों से युक्त ऋजु, धर्म मार्ग पर चलने हारे, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान पुरुष युवा, गृहस्थ स्वधर्म में परस्पर मगन हुए माता पिता, स्त्री पुरुषों को एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट, सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं।

'ऋभव.'—मेधाविनाम। निघ० ३। १५। उरु भान्तीति वा, ऋतेन भान्ति इति वा ऋतेन भवन्तीति वा। निरु० ११। २। ३॥ आदित्य-

रश्मयोऽपि ऋभव उच्यन्ते । निरु० ११ । २ । ४ ॥ उरूपपदाद् भातेर्भवतेर्वा मृगय्यादित्वात् कुप्रत्ययः । टिलोपः सम्प्रसारणं च निपातनात् ।

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों के आनन्द और हर्ष वायुओं सहित मेघ, उनके समान वीर सैनिको और प्रजा पुरुषो से युक्त सेनापति के साथ और सूर्य की किरणों और उनके समान तेजस्वी राजाओं के साथ प्राप्त होते है ।

अर्थात् जैसे सूर्य की किरणों का रस तृप्तियोग्य वायुयुक्त विद्युत् और प्रखर किरणों के साथ है उसी प्रकार विद्वानों के विद्या-विलासादि आनन्द शिष्यो सहित आचार्य, प्रजाओं सहित राजा और वीरों सहित सेनापति और तेजस्वी राजाओं के साथ है । इसी प्रकार शिल्पियों को भी सेनापति, राजा आदि का आश्रय आवश्यक है । वह भी 'इन्द्र' = विद्युदादि शिल्प करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

भा०—और दानशील, सब पदार्थों के द्रष्टा, विद्वान् शिल्पी के उत्तम रीति से बनाये गये शिल्प कार्य को देखकर जिस प्रकार अन्य शिल्पी उसके अनुकरण में और बहुत से पदार्थ बना लेते हैं उसी प्रकार सबको ज्ञान और चेतना देने वाले परमेश्वर के उस जगत् प्रसिद्ध, सदा नवीन एवं सदा स्तुतियोग्य, सुखादि प्राप्त करने योग्य सब प्रकार से उत्तम रीति से बने, सुसम्पादित वेद ज्ञान को साक्षात् करके फिर ज्ञान, विज्ञान, कर्म और उपासना भेद से चार रूपों में साक्षात् करते हैं ।

अध्यात्म में—मुख्य एक प्राणरूप चमस को नाना ऋभु = प्राण ने चक्षु, घ्राण, मुख और कान रूप से चार प्रकार से विभक्त किया है ।
(मन्त्रसंख्या द्विशते २००)

य इन्द्रा॑य वचो॒युजा॑ ततक्षु॒र्मन॑सा॒ हरी॑ ।
शमी॑भिर्य॒ज्ञमा॑शत ॥ २ ॥

भा०—विद्वान पुरुष, शिल्पी जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा या स्वामी के लिये वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते और नाना कर्म कौशलों से सब कल पुर्जों की व्यवस्था करते है उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये अपने मनन सामर्थ्य से वाणी के साथ योग देने वाले, उसके साथ समाहित होने वाले गतिशील, प्राण और अपान दोनों को साधते हैं वे ही शान्तिदायक साधनाओं से सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

जो विज्ञान से वाणी के साथ चलने वाले वेगवान् साधनों को पैदा करते हैं वे शिल्प क्रियाओं से सुसंगत शिल्प को भोगते है।

तक्ष॒न्नास॑त्याभ्यां॒ परि॑ज्मानं सु॒खं रथ॑म् ।
तक्ष॑न् धे॒नुं स॑ब॒र्दुघा॑म् ॥ ३ ॥

भा०—और जो विद्वान् शिल्पीजन सदा सत्य व्यवहार से वर्त्तने हारे स्त्री पुरुषों के लिये सब तरफ़ जाने वाले उत्तम सुखप्रद अवकाश युक्त रमण साधन रथ आदि यान बनाते हैं और वे ही दुग्धादि रस देने वाली गाय और अमृत, मोक्षज्ञान को पूर्ण करने वाली वेदवाणी का भी उपदेश करते हैं।

युवा॑ना पि॒तरा॒ पुनः॑ स॒त्यम॑न्त्रा ऋजू॒यवः॑ ।
ऋ॒भवो॑ वि॒ष्ट्य॑क्रत ॥ ४ ॥

भा०—सत्य विचारों से युक्त ऋजु, धर्म मार्ग पर चलने हारे, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान् पुरुष युवा, गृहस्थ स्वधर्म में परस्पर संगत हुए माता पिता, स्त्री पुरुषों को एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट, सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं।

'ऋभवः'—मेधाविनाम। निघ० ३। १५। उरु भान्तीति वा, ऋतेन भान्ति इति वा ऋतेन भवन्तीति वा। निरु० ११। २। ३॥ आदित्य-

रश्मयोऽपि ऋभव उच्यन्ते । निरु० ११ । २ । ४ ॥ उरूपपदाद् भातेर्भवतेर्वा मृगय्यादित्वात् कुप्रत्ययः । टिलोपः सम्प्रसारणं च निपातनात् ।

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों के आनन्द और हर्ष वायुओं सहित मेघ, उनके समान वीर सैनिको और प्रजा पुरुषों से युक्त सेनापति के साथ और सूर्य की किरणो और उनके समान तेजस्वी राजाओ के साथ प्राप्त होते है ।

अर्थात् जैसे सूर्य की किरणो का रस तृप्तियोग्य वायुयुक्त विद्युत् और प्रखर किरणो के साथ है उसी प्रकार विद्वानो के विद्या-विलासादि आनन्द शिष्यो सहित आचार्य, प्रजाओ सहित राजा और वीरों सहित सेनापति और तेजस्वी राजाओ के साथ है । इसी प्रकार शिल्पियां को भी सेनापति, राजा आदि का आश्रय आवश्यक है । वह भी 'इन्द्र' = विद्युदादि शिल्प करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

भा०—और दानशील, सब पदार्थों के द्रष्टा, विद्वान् शिल्पी के उत्तम रीति से बनाये गये शिल्प कार्य को देखकर जिस प्रकार अन्य शिल्पी उसके अनुकरण में और बहुत से पदार्थ बना लेते हैं उसी प्रकार सबको ज्ञान और चेतना देने वाले परमेश्वर के उस जगत् प्रसिद्ध, सदा नवीन एवं सदा स्तुतियोग्य, सुखादि प्राप्त करने योग्य सब प्रकार से उत्तम रीति से बने, सुसम्पादित वेद ज्ञान को साक्षात् करके फिर ज्ञान, विज्ञान, कर्म और उपासना भेद से चार रूपों में साक्षात् करते हैं ।

अध्यात्म मे—मुख्य एक प्राणरूप चमस को नाना ऋभु = प्राण ने चक्षु, घ्राण, मुख और कान रूप से चार प्रकार से विभक्त किया है ।

(मन्त्रसंख्या द्विशते २००)

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

भा०—वे विद्वान् पुरुष सवन, ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और यज्ञ उपासना करने वाले के लिए सात तिया, २१ प्रकार के सुख से रमण करने योग्य पदार्थों को उत्तम उपदेशयुक्त क्रियाओं द्वारा एक एक करके धारण करें, करावें ।

यज्ञपक्ष में—'त्रिः सप्तानि' अग्न्याधेय, दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रायण, चातुर्मास्य, निरूढ़ पशुबन्ध, सौत्रामणी ये सात हविर्यज्ञ संस्था हैं । पञ्च महायज्ञ, अष्टकाश्राद्ध, श्रवणाकर्म प्रत्यवरोहण, शूलगव और आश्वयुजी-कर्म ये सात पाकयज्ञ संस्था हैं । अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम ये सात सोमयज्ञसंस्था हैं (सायण) । ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के साथ पञ्चयज्ञ, अतिथिसत्कार और दान ये ७ इनको मन, वाणी, देह से तीन प्रकार से वार २ करें करावें (दया०) ।

अध्यात्म में—प्राणगण उत्तम व्यवस्थाओं से त्रिगुण भेद से सातों सुखप्रद शरीर धातुओं को धारण करें ।

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया ।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २ ॥

भा०—राष्ट्र के कार्यभार को धारण करने हारे विद्वान् जन, अग्नि के समान तेजस्वी, धुरन्धर विद्वानों और दानशील या विजिगीषु राजाओं के बीच में भी अपने यज्ञ, सुसंगत धर्मानुकूल व्यवस्था के कार्य के योग्य अपने भाग या अंश को उत्तम रीति से सुसम्पादित करके ही धारण करें । अर्थात् प्रत्येक कार्यकर्त्ता उत्तम रीति से करके ही अपना वेतनादि पाने का अधिकारी हो अन्यथा नहीं । इति द्वितीयो वर्गः ।

[२१]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते । गायत्र्यः । २, ५ निचृद् (२ पिपीलिकामध्या) ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि ।
ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥

भा०—यहां इस जगत् में या राष्ट्र मे, मै प्रजाजन इन्द्र अर्थात् वायु और अग्नि अथवा अग्नि या सूर्य दोनो के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषो को स्वीकार करता हूं, पदो पर नियुक्त करता हूं । उन दोनो के ही स्तुतिसमूह, गुणवर्णन एवं अधिकार आदि चाहते हैं। जिस प्रकार वायु और जल मिलकर भूमि के जलांश को पान करते है और अन्तरिक्ष में उठाये रहते हैं अथवा जिस प्रकार वे उत्पन्न जगत् की रक्षा करते है, उसी प्रकार सोम, राष्ट्र और ऐश्वर्य का पान प्राप्ति, उपभोग और पालन करने मे सर्वश्रेष्ठ वे दोनों सोम, ऐश्वर्यमय राष्ट्र, राजपद और जगत् का पालन करें ।

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः ।
ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥

भा०—यज्ञो मे, उपासना के अवसरों पर जीव और परमेश्वर के गुणो का वर्णन किया जाता है और शिल्पादि मे वायु, सूर्य और अग्नि आदि के गुणो का वर्णन किया जाता है उसी प्रकार परस्पर एकत्र होने के संग्राम आदि स्थलो और प्रजा-पालन के कार्यों मे, हे नेता पुरुषो ! आप लोग इन्द्र और अग्नि, सेनापति और शत्रु-संतापक अग्रणी राजा के गुणो का अच्छे प्रकार वर्णन करो । उन ही को सुशोभित करो और अधिक उत्साहित और उत्तेजित करो । उनको ही गायत्री छन्दों में, यज्ञों मे, पुरुषो में अथवा पृथिवी के शासन और विजय कार्यों या मुख्य पद पर उनके गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन करो ।

गायत्री वा इयम् पृथिवी । शत० ४ । ३ । ४ । ९ ॥ गायत्रोऽयं भूर्लोकः । कौ० २ । ९ ॥ गायत्रो यज्ञः । गो० पू० ४ । २४ ॥

अध्यात्म में—इन्द्र = जीव । अग्नि = जाठर । गायत्र = प्राणगण ।

स्वाध्याय यज्ञ में—इन्द्र और अग्नि दोनों आचार्य हैं । एक आचारग्राहक, दूसरा विद्याप्रद । उस पक्ष में गायत्र = ब्राह्मण, विद्वान् गण । गायत्रो वै प्राणः । कौ० २ । ५ ॥ गायत्रो वै ब्राह्मणः । ऐ० १ । २८ ॥

ता मि॒त्रस्य॒ प्रश॑स्तय इन्द्रा॒ग्नी ता ह॑वामहे ।
सो॒म॒पा सोम॑पीतये ॥ ८ ॥

भा०—उन दोनों इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्नि के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषों को स्नेहवान् बन्धु, उपकारक के लिए और ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों के पालन, रक्षण और उपयोग के लिये सोम, ऐश्वर्य और उत्पन्न पदार्थों के पालक उन दोनों को हम बुलाते हैं और आदर करते हैं ।

आधिभौतिक में—मित्र अर्थात् प्राण के उत्तम गुण प्राप्त करने के लिये सूर्य, अग्नि या वायु और अग्नि का उपयोग करें ।

सोम अर्थात् वीर्य के पालन के लिए भी सोम अर्थात् ओषधि रसों के पालक दोनों का उपयोग करें ।

उ॒ग्रा सन्ता॑ हवामह॒ उपे॒दं सव॑नं सु॒तम् ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी एह ग॑च्छताम् ॥ ९ ॥

भा०—इन्द्र और अग्नि, वायु और सूर्य या विद्युत् और अग्नि या विद्युत् और मेघ इन दोनों के समान उग्र बलवान्, तीव्र स्वभाव के दोनों को हम बुलाते हैं, यह सवन, ऐश्वर्योत्पादक राज्य तैयार है । वे दोनों यहां आवें ।

भौतिक पक्ष में—वायु और अग्नि दोनों तत्व तीव्र स्वभाव के हों और लोक में पदार्थोत्पादक कारखाना चलावें, उनमें दोनों का उपयोग लें ॥

ता म॒हान्ता सद॒स्पती इन्द्रा॑ग्नी रक्ष॑ उब्जतम् ।
अप्र॑जाः सन्त्व॒त्रिण॑: ॥ ५ ॥

भा०—वे दोनों वीर्यवान् अधिकारी पुरुष पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि, महान् पद, पराक्रम और वीर्य वाले राजसभा के पालक, सभापति के तुल्य होकर दुष्ट राक्षस पुरुषों को झुका देवें, क्रूर कर्मों को छुडाकर उनको सरल-स्वभाव बना दें और प्रजा को लूट खसोट कर खाने वाले शत्रु प्रजारहित हों। अर्थात् उनके अगले आने वाले वैसे प्रजानाशक न हों।

भौतिक पक्ष में—वायु और आग दोनो पदार्थ बडे, बलकारी गुण-वान होने से 'महान्' है। गुणो के आश्रयभूत पदार्थों के पालक होने से 'सदस्पति' हैं। वे जीवन के विघातक रोगो और शत्रुओ का नाश और मूलोच्छेद करें।

तेन॑ स॒त्येन॑ जागृ॒तमधि॑ प्रचे॒तुन प॒दे ।
इन्द्रा॑ग्नी शर्म॑ यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनो उस जगत्प्रसिद्ध सत्य व्यवहार, सज्जनो के हितकारी न्याय से सबको चेताने वाले न्यायाधीश के परमपद पर रहकर स्वयं जागते रहो, सावधान रहो। और हे पूर्वोक्त इन्द्र और अग्ने ! आप दोनो सूर्य और अग्नि, वायु और विद्युत् के समान समस्त प्रजावर्ग को सुख और सुखप्रद शरण प्रदान करो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[२२]

मेधातिथि काण्व ऋषि.। देवता—१—४ अश्विनौ। ५—८ सविता। ९, १० अग्निः। ११—१२ देव्य इन्द्राणीवरुणान्यग्नान्य'। १३, १४ द्यावापृथिव्यौ। १५ पृथिवी। १६ देवो विष्णुर्वा। १७—२१ विष्णु। गायत्र्य। १, ७, १२, १७, ३, ६, १९ निचृद्। १८ पिपीलिकामध्या। १५ विराट्। एकविंशत्यृच सूक्तम् ॥

प्रा॒त॒र्युजा॒ वि बो॑धया॒श्विना॒वेह ग॑च्छताम् ।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू प्रात, सबसे प्रथम समाहित चित्त से उपा-

सना करने वाले एवं प्रेम से परस्पर मिलने वाले, दिन रात्रि के समान या सूर्य चन्द्र के समान या सूर्य और पृथिवी के समान परस्पर दोनो स्त्री पुरुषों को विशेष रूप से जागृत कर, ज्ञानोपदेश कर। वे दोनों इस यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म में इन उत्पन्न करने योग्य उत्तम सुख के पान या प्राप्त करने के लिए प्राप्त हों।

अथवा—प्रातः संयुक्त सूर्य पृथिवी दोनों हमें प्राप्त हों। विद्वान् हमें सुख प्राप्ति के लिए ज्ञान द्वारा जागृत करें। अर्थात् हमें आश्रय और ज्ञानप्रकाश दोनों प्राप्त हों, तभी हम ज्ञानी होकर सुख प्राप्त करें।

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा।
अश्विना ता हवामहे॥ २॥

भा०—जो दोनों स्त्री पुरुष उत्तम रथ वाले, रथ-संचालन में उत्तम रथी, आकाश में सूर्य चन्द्र के समान ज्ञान प्रकाश में प्रकाशित अथवा राजसभा में सम्मानित, वायुयानों द्वारा आकाशमार्ग को स्पर्श करने हारे विद्वान्, दानशील, अश्वों पर चढने वाले उत्तम राजा रानी या राष्ट्र के दो उत्तम अधिकारी हैं उन दोनों को हम आदर से बुलाते हैं।

अग्नि-जलतत्व पक्ष में—वे दोनों तत्व उत्तम रथों के घटक होने से 'सुरथ' हैं। नाना रमण साधन या रथों के संचालक होने से 'रथीतम' हैं। आकाश मार्ग में रथों के चलाने हारे होने से 'दिविस्पृक्' हैं। व्यापक गुण वाले होने से 'अश्वी' हैं। उन दोनों का हम उपयोग करें। 'जल' तत्व में घृत, तैल आदि पदार्थ भी समाविष्ट हैं।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥ ३॥

भा०—हे नाना विद्याओं को व्यापने वाले अध्यापक और शिष्य-गणो! तुम दोनों की जो-मधुर ऋग्वेद आदि ज्ञानयुक्त, उत्तम सत्यज्ञान से पूर्ण, अर्थों के प्रकाश करने वाली वाणी है उससे आप दोनों यज्ञ, सत्कर्माचरण और परस्पर के सत्संग और विद्या आदि के दान आदि

व्यवहार और आत्मा और ईश्वरोपासना के कार्य को सेवन करो। अर्थात् इन कार्यों में मधुर वेदवाणी का उपयोग करो।

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्याओं और कलाकौशल में पारंगत पुरुषो! आप दोनो जहा भी रथ से जा सकते हो वह उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी के गृह, स्थान तुम दोनो के लिये दूर नही है।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये।
स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—मै सर्व जगत् के उत्पादक, हृदय को आनन्द देने वाली पूजा वाले अथवा समस्त सूर्यादि गतिशील एव तेजस्वी, हितकारी और सब जन्तुओ को सुखकारी पदार्थों को अपने वशकारी हाथ या अधिकार वा व्यवहार मे रखने वाले परमेश्वर को ही अपनी रक्षा के लिये सदा स्मरण करता हूं। वह ही साक्षात् सब पदार्थों का देने वाला, सब ज्ञानों और तत्वों का सूर्य के समान साक्षात् दर्शाने और ज्ञान कराने वाला और सब ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला और प्राप्त करने योग्य एव जगत् मे सर्वत्र व्यापक है।

राजा के पक्ष मे—सबके प्रेरक, सुवर्णादि हृदयग्राही पदार्थों को अपने वश मे रखने वा देने वाले दाता को रक्षा के लिये स्वीकार करूं। वही प्रजाओ को धर्माधर्म का चेताने वाला, राजारूप सर्वोच्च पद के योग्य है।

सूर्य के पक्ष मे—सूर्य कान्तिमान् किरणों से 'हिरण्यपाणि' है। चेतनों और चेतनाओं का प्रेरक होने से 'सविता' और ज्ञापक, द्रष्टा होने से 'चेत्ता' और दाता, व्यापक, सर्वाश्रय और परम प्राप्य होने से 'पद' है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

अपां नपा॑तमव॑से सवि॒तार॒मुप॑ स्तुहि ।
तस्य॑ व्र॒तान्यु॑श्मसि ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों द्वारा जलों को आकर्षण कर नीचे नहीं गिरने देता, उसी प्रकार समस्त व्यापक आकाशादि पदार्थों को नाश न होने देने वाले और स्वतः नित्य, अविनाशी सबके उत्पादक और प्रेरक सर्वैश्वर्यप्रद, सविता परमेश्वर की रक्षा के लिए ही तू स्तुति कर और हम उस जगदीश्वर के ही बनाये नित्य, नियत धर्मों से युक्त व्रतों, शुभ आचरणों और उसके नित्य गुण स्वभावों की कामना करें।

राजा के पक्ष मे—प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी तथा सूर्य के समान प्रजा से जल के समान कर ग्रहण करने और उसके ही हितों में इसको व्यय करने वाले राजा का गुण वर्णन करता हूँ। उसके ही बनाये धर्म नियमों को हम चाहें।

वि॒भ॒क्तारं॑ हवामहे॒ वसो॑श्चि॒त्रस्य॒ राध॑सः ।
स॒वि॒तारं॑ नृ॒चक्ष॑सम् ॥ ७ ॥

भ०—वास या जीवन निर्वाह करने योग्य विचित्र, अद्भुत, नाना प्रकार के ऐश्वर्य के विभाग करने वाले, कर्मानुसार सबको न्यायपूर्वक प्रदान करने वाले, सब मनुष्यों और जीवों के द्रष्टा, अन्तर्यामी, सबके उत्पादक और प्रेरक के समान सर्वद्रष्टा परमेश्वर और राजा की हम स्तुति करें, चाहें, अपना स्वामी स्वीकार करें।

सखा॑य॒ आ नि षी॑दत सवि॒ता स्तोम्यो॒ नु नः॑ ।
दाता॒ राधां॑सि शुम्भति ॥ ८ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग परस्पर समान नाम और समान मान और शोभा को धारण करने हारे, सहृदय, परस्पर उपकारी मित्र होकर सब तरफ से आकर विराजो। जिससे सबका उत्पादक वह परमेश्वर ही स्तुति करने योग्य है। वही समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला

है। वही सूर्य के समान स्वयं शोभा को प्राप्त और अन्यों को भी शोभित करता है।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप।
त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! अग्रणी राजन्! इस राष्ट्र में तू विजय की इच्छा करने वाले वीर पुरुषों की विजय की कामना करने वाली अथवा तेजस्विनी राष्ट्र का पालन करने वाली सेनाओं और परिषदों को प्राप्त कर और सूर्य के समान तेजस्वी, प्रजापालक प्रजापति राजा को प्राप्त करा।

भौतिक अग्नि दिव्य पदार्थों, गुणों और व्यवहारों के पालन करने वाली शक्तियों को इस शिल्प कार्य में प्राप्त कराता और उत्पन्न करने या बनाने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने योग्य छेदन भेदन करने वाले शिल्पी को प्राप्त हो।

आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्।
वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—हे अग्रणी राजन्! तू इस राष्ट्र में रक्षण कार्य के लिये गमन करने योग्य पृथिवियां, भूमियों और तीव्र गति वाली सेनाओं को अपने वश कर, सम्भाल। और हे न्यायकारिन्! विवेकिन्! हे अग्ने! बलशालिन्! शत्रुनाशक! तू सबके पालन पोषण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को वरण करने योग्य, सबको सुख देने वाली, आहुति के समान सर्ववशकारी, उत्तम वाणी, आज्ञा या राजप्रजा के धर्मों के उपदेश करने वाली वेद वाणी को भी प्रजा पालन के निमित्त धारण कर।

गृहस्थ-पक्ष में—अग्नि वरण योग्य स्त्री को गृहस्थ धर्म पालन के लिये विवाह करे। और कान्तिमती, वरण योग्य या स्वयंवरा, उत्तम सुखदायिनी, वीर्याहुति द्वारा आधान योग्य स्त्री को धारण करे।

गृहस्थ के पक्ष में—स्त्री पुरुषों के घृत वाले दूध आदि पदार्थों का विद्वान् जन गृहस्थ के स्थिर गृह में नाना प्रकारों से सेवन करते हैं।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे पृथिवि! तू सुखप्रद, कांटों और दुःखप्रद शत्रुओं से रहित प्रजा के बसने योग्य हो। तू विस्तृत अवकाश और ऐश्वर्य से युक्त हमें शरण, सुख प्रदान कर।

स्त्रीपक्ष में—पृथिवी के समान विशाल हृदय और गुणों वाली एवं उसके समान बीज धारण में समर्थ! स्त्री हृदयवेधक, संतापजनक दुर्गुण, दुर्वचनों से रहित घर बसाने वाली, सुखजनक हो। हमें विस्तृत, यशयुक्त सुख शरण प्रदान करे। ऋक्षरः—कण्टकः। ऋच्छतेः। निरु० ९। ३२।

इति षष्ठो वर्गः।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

भा०—जिस अनादि तत्व से व्यापक परमेश्वर पृथिवी से प्रारम्भ कर समस्त लोकों को धारण करने वाले सात पदार्थों सहित इन लोकों को रचता है विद्वान् गण अथवा प्रकृति के विकार पृथिवी आदि उस ही मूल कारण द्वारा हमारी रक्षा करें और उसका ज्ञान करावें।

राजा के पक्ष में—व्यापक सामर्थ्यवान् राजा पृथिवी से आदि लेकर सात धारण करने वाले तेजः सामर्थ्यों से युक्त होकर जिस कारण से पराक्रम करे उसी निमित्त विद्वान् राज्याधिकारी और सैनिक जन हमारी रक्षा करें। अर्थात् राजा के विजय और प्रजा की रक्षा का एक ही उद्देश्य है। पृथिवी आदि पांच भूत, परमाणु और प्रकृति ये सात धातु हैं। राष्ट्रपक्ष में स्वामी, अमात्य, सुहृत्, दुर्ग, राष्ट्र, कोष और बल ये सात प्रकृति हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर इस प्रत्यक्ष और जानने योग्य जगत् को विविध रूप से रचता है और सबको तीन प्रकार से स्थिर करता है। इस जगत् के भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह कारण परमाणुओ से पूर्ण आकाश मे स्थापित करता हे। तीन प्रकार—एक प्रत्यक्ष प्रकाश रहित पृथिवीमय, दूसरा—अदृश्य कारण त्रसरेणु-रूप, तीसरा—प्रकाशमय सूर्यादि ।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

भा०—कभी विनाश को न प्राप्त होने वाला, जगत् का रक्षक, व्यापक परमेश्वर समस्त पदार्थों को इस मूल कारण से ही विविध रूपों मे बनाता है ।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

भा०—इस व्यापक परमेश्वर के किये सृष्टि आदि कर्मों को देखो जिसके अनुग्रह से जीव अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता है। वह परमेश्वर जीव का सर्वत्र साथ देने वाला मित्र है ।

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर के उस परम सर्वश्रेष्ठ पद, परम वेद्य स्वरूप को विद्वान् पुरुष आकाश मे खुले सर्वत्र विस्तृत, सर्व पदार्थों के दर्शक चक्षु, नेत्र वा सूर्य के समान स्वतःप्रकाश परम प्रमाण रूप से सदा देखते हैं ।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर का जो परम, सबसे उत्कृष्ट जानने योग्य स्वरूप है उसको नाना प्रकार से परमेश्वर की गुण की स्तुति करने वाले विद्वान् मेधावी, जागने वाले, प्रमाद रहित पुरुष भली प्रकार प्रकाशित करते हैं।

१७ से २१ तक पांचो मन्त्रो की अन्य पक्षो मे संगति साम, अथर्व और यजुर्वेद के भाष्यो मे देखें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[२३]

मेधातिथिः काण्व ऋषि ॥ देवता —१ वायुः । २, ३ इन्द्रवायू । ४—६ मित्रावरुणौ । ७—९ इन्द्रो मरुत्वान् । १०—१२ विश्वेदेवा. । १३—१५ पूषा । १६—२२ आपः । २३—२४ अग्नि (२३ आपश्च) ॥ १—१८ गायत्र्यः । १९ पुर उष्णिक् । २१ प्रतिष्ठा । २०, २२—२४ अनुष्टुभः । चतुर्विंशत्यृच सूक्तम् ॥

तीव्राः सोमा॑स॒ आ ग॑ह्या॒शीर्व॑न्तः सु॒ता इ॒मे।
वायो॒ तान् प्रस्थि॑तान् पिब ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! ये उत्पन्न हुए नाना प्रकार की उत्तम कामना और आशाओं वाले उत्पन्न, तीव्र वेग से जाने वाले, देह से देहान्तर में गति करने वाले जीवगण हैं। तू आ, दर्शन दे और उन समस्त जीवों, प्रस्थान करने वाले, तेरी तरफ आने वाले, मुक्ति के अभिलाषियों को अपने भीतर, अपनी शरण में ले।

वीरों के पक्ष मे—वे तीव्र वेग वाले अभिषिक्त, प्रोक्षित या दीक्षित वीर जन हैं, विजय के लिये प्रस्थित उनको तू प्राप्त हो और अपनी शरण में ले।

इसी प्रकार आचार्य दीक्षित कर तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों को लेवे।

वायुपक्ष मे—उत्तम कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, तीक्ष्ण वेगवाले अस्थिर जलों को वायु पान करता है।

उ॒भा दे॒वा दि॑वि॒स्पृशे॑न्द्रवा॒यू ह॑वामहे।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ २ ॥

भा०—इन्द्र और वायु, अग्नि और पवन सुख के प्राप्त करने के लिये आकाश मे यान आदि को ले जाते हैं।

अध्यात्म मे—इस परमैश्वर्य के सुख को प्राप्त करने के लिये दिव्य गुण वाले जीव और परमेश्वर दोनो ज्ञान प्रकाश को प्राप्त हैं। उन दोनो की हम स्तुति करते हैं। उनका ज्ञान करते हैं।

इसी प्रकार राष्ट्र के पालन के लिये हम ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनो को नियत करते हैं।

इन्द्र॒वा॒यू म॑नो॒जुवा॒ विप्रा॑ हवन्त ऊ॒तये॑।
स॒ह॒स्रा॒क्षा धि॒यस्पती॑ ॥ ३ ॥

भा०—मेधावी बुद्धिमान् पुरुष रक्षा, ज्ञान और तेज को प्राप्त करने के लिये सहस्रों ज्ञान साधनों से युक्त ज्ञानो और कर्मों के पालक विद्युत् और वायु के समान तेजस्वी और बलवान् मन के समान वेगवान् अथवा मन या ज्ञान से चलने हारे दोनो को प्राप्त करते है।

नाना दूत, सभासद् और प्रणिधि होने से सेनापति और राजा दोनो 'सहस्राक्ष' है। नाना क्रिया साधनो से युक्त विद्युत् और पवन भी 'सहस्राक्ष' है। छत्रि-न्याय से जीव और ईश्वर दोनों 'सहस्राक्ष' है।

मि॒त्रं व॒यं ह॑वामहे॒ वरु॑णं॒ सोम॑पीतये।
ज॒ज्ञा॒ना पू॒तद॑क्षसा ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार समाधिगत आनन्द-रस और स्वास्थ्य सुख को प्राप्त करने के लिये हम पवित्र मन और शरीर को रोग रहित करनेवाले बल से युक्त उत्पन्न होने वाले मित्र, प्राण और वरुण, अपान की साधना करते है।

उसी प्रकार राष्ट्र मे पवित्र कर्मकारी और दुष्ट पुरुषों के नाशक कण्टकशोधक सेना बल से युक्त राष्ट्र मे प्रकट होने वाले सबके स्नेही और दुःखों और कष्टो के वारण पुरुषों को राष्ट्र-ऐश्वर्य के भोग के लिये नियुक्त करें।

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—ज्योति, प्रकाश, तेज के पालक सूर्य और वायु वा सूर्य और मेघ के समान ज्ञान और तेज या जीवन को धारण करने वाले जो दो सत्य व्यवहार को बढ़ानेवाले, सत्य, वेद विज्ञान के प्रकाशक पालक हैं उन दोनों मित्र, सूर्य के तुल्य तेजस्वी ब्राह्मण वर्ग और वरुण, वायुवत् दुष्टों के वारक, सबसे वरण किये गये, क्षात्रवर्ग दोनों को राष्ट्र मे नियुक्त करता हूँ ।

वायु-सूर्य पक्ष में—ऋत, जल और अन्न को बढ़ाने वाले ।

मेघ पक्ष मे—ऋत, जल से उत्पन्न विद्युत् के पालक ।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥

भा०—बाह्य और शरीर के भीतर का वायु जिस प्रकार शरीर की अच्छी प्रकार से रक्षा करता है और सूर्य जिस प्रकार जगत् की रक्षा करता है उसी प्रकार से दुष्टों का वारक, सर्वश्रेष्ठ राजा और स्नेहवान्, न्यायाधीश अच्छी प्रकार राजा का रक्षक और ज्ञानप्रद हो। और वे दोनों समस्त रक्षा साधनों और प्रकारों से हमें उत्तम ऐश्वर्ययुक्त करें ।

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये ।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम वैज्ञानिक पदार्थों के सुख भोग करने के लिये हम लोग वायुओं के स्वामी विद्युत् को ग्रहण करें। वह वायुगण के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर सबको तृप्त करे ।

प्रजा के पक्ष में—वायु के समान तीव्र, वेगवान्, बलवान्, धीर पुरुषों के स्वामी शत्रुहन्ता, वीरपुरुष, राजा, सेनापति को नियुक्त करें। अपने सैनिकगणों, दस्तों के साथ एक समान वेग से जाने वाला वह सदा तृप्त, प्रसन्न रहे और राष्ट्र को भी पूर्ण करे ।

इन्द्र॑ज्येष्ठा म॒रुद्ग॑णा॒ देवा॑सः॒ पूष॑रातयः ।
विश्वे॒ मम॑ श्रुता॒ हव॑म् ॥ ८ ॥

भा०—राजा और सेनापति जिनमें सबसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ पद पर विराजता है, वे मरुद्गण, वीर पुरुष विजय की कामना करनेवाले, सबके पोषक, स्वामी द्वारा वेतनादि दान प्राप्त करने हारे सब मेरे स्तुति और आह्वान को श्रवण करें।

वायुपक्ष में—सूर्य को प्रबल रूप में धारण करने वाले, सूर्य की शक्ति को प्राप्त करने वाले तेजोगुण से युक्त वायुगण ही मेरे शब्द को श्रवण कराते हैं।

ह॒त वृ॒त्रं सु॑दानव॒ इन्द्रे॑ण॒ सह॑सा यु॒जा ।
मा नो॑ दुः॒शंस॑ ईशत ॥ ९ ॥

भा०—उत्तम जल और रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने वाले वायुगण जिस प्रकार विद्युत् के साथ बलपूर्वक मेघ को आघात करते हैं इसी प्रकार हे उत्तम वेतन, उपायन आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने कराने हारे! आप लोग अपने साथी, सहयोगी, शत्रुहन्ता, सेनापति के साथ बलपूर्वक राष्ट्र को घेर लेने वाले या शक्ति में बढ़नेवाले शत्रु को मारो और हम पर दुष्ट, दुःखदायी, अधार्मिक वचन बोलने या बुरा शासन करने वाले, अथवा बुरी ख्याति वाले दुष्ट कभी स्वामी वा अधिकारी न रहें।

विश्वा॑न् दे॒वान् ह॑वामहे म॒रुतः॒ सोम॑पीतये ।
उ॒ग्रा हि पृश्नि॑मातरः ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—हम लोग पदार्थों के उत्तम भोग के लिये समस्त दिव्य गुणों से युक्त, व्यवहार, व्यापारादि के साधक वायुगण का उपयोग करें। वे अन्तरिक्ष में उत्पन्न वायुगण वेगवान् होते हैं। इसी प्रकार ऐश्वर्यों के भोग के लिये समस्त विजयशील सैनिक वीरपुरुषों को हम आदर करें और वे आदित्य के समान समस्त प्रजाओं से साररूप कर को लेने वाले

राजा से बनाये गये अथवा पृथिवी माता से उत्पन्न होने हारे निश्चय से बड़े बलवान् हों ।

अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द रस पान के लिए समस्त प्राण-गण को हम वश करें । वे बड़े बलवान् है । इति नवमो वर्गः ॥

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामिति धृष्णुया ।
यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥

भा०—हे नायक वीर पुरुषो ! जब आप लोग सुखपूर्वक यात्रा करते हो तब शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले, दृढ, वेगवाले शत्रुहन्ता वीर सैनिकों का सा घोर शब्द उत्पन्न होता है । वायुओं के पक्ष में—वायुओं की वेगवाली विद्युत् दृढ रूप में विजयशील पुरुषों के घोर गर्जन के समान उत्पन्न हो, तब हे नायक विद्वान् पुरुषो ! जो भी सुखप्रद पदार्थ हो उनको प्राप्त करो ।

हस्कारादु विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः ।
मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

भा०—दिन का सा प्रकाश कर देनेवाली विशेष दीप्तिमान् सूर्य से उत्पन्न और इस विद्युत् से उत्पन्न वायुगण हमारी रक्षा करें । और वे हमें सुखी करें । वीर पुरुषों के पक्ष में—दीप्तिकारी सूर्य के समान तेजस्वी राजा के चारों ओर विद्यमान या उसके आश्रय जीने वाले धीर, वेग-सैनिक हमारी रक्षा करें और सुखी करें ।

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः ।
आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

भा०—हे सबके पोषक ! हे सब प्रकार से सब ओर दीप्ति तेज किरणों युक्त सूर्य के समान तेजस्विन् ! पृथिवी-राष्ट्र ! जिस प्रकार खोये हुए पशु को खोजकर लाया जाता है उसी प्रकार ज्ञानवती राजसभा के आश्रय रूप विचित्र, अद्भुत वृद्धिशील कर्मों का ऐश्वर्यों और प्रजा-जनों से या लोकसमूह से युक्त तेजस्वी विद्वान् पुरुष को बड़े मान से प्राप्त कर ।

पूषा राजा॑न॒माघृ॑णि॒रप॑गूळ्हं॒ गुहा॑ हि॒तम् ।
अवि॑न्दच्चि॒त्रब॑र्हिषम् ॥ १४ ॥

भा०—राजा और प्रजा दोनो को पोषण करनेवाली पृथिवी राष्ट्र, स्वतः सूर्य के समान ऐश्वर्य से तेजस्वी होकर अति गूढ, बुद्धि कौशल में स्थित, प्रज्ञावान् अनेक अद्भुत लोक, प्रजा और पशु आदि ऐश्वर्यों से युक्त पुरुष को राजा रूप से प्राप्त करे ।

परमेश्वर के पक्ष में—सूर्य के समान सर्वपोषक परमेश्वर, बुद्धि में स्थित, अति गूढ, अज्ञानियो से सुदूर, छिपे हुए, विचित्र कर्म सामर्थ्य वाले अति तेजस्वी गुणो से सुशोभित जीव-आत्मा को प्राप्त करता है ।

अथवा देह का पोषक जीव एवं अपनी बुद्धि में स्थित अद्भुत सामर्थ्य वाले गूढ़ परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करे ।

उ॒तो स मह्य॒मिन्दु॑भि॒ः षड् यु॒क्ताँ अ॑नु॒सेषि॑धत् ।
गोभि॒र्यवं॒ न च॑र्कृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—और जिस प्रकार बैलो से किसान जौ आदि अन्न की खेती करता है और जिस प्रकार वह हल में जुते बैलों को एक साथ एक दूसरे के पीछे चलाता है उसी प्रकार वह राजा ऐश्वर्यों द्वारा अपने पदों पर नियुक्त ६ अमात्यों को मुझ प्रजाजन के हित के लिए अपने अनुकूल चलावे । इसी प्रकार जीव सूर्य, मन, चक्षु आदि ६ इन्द्रियो को स्नेह-वर्धक राग प्राप्त रसों से अपने अनुकूल चलावे ।

सूर्य के पक्ष में छः ऋतु । इति दशमो वर्गः ॥

अ॒म्बयो॑ य॒न्त्यध्व॑भिर्जा॒मयो॑ अध्वरीय॒ताम् ।
पृ॒ञ्च॒तीर्मधु॑ना॒ पयः॑ ॥ १६ ॥

भा०—जीवन की रक्षा करनेवाली जलधारायें, शरीर में रक्त या प्राण की धाराएँ भगिनियों या बन्धुओं के समान अपने अहिंसित जीवन को चाहनेवाले हम जीवों के मार्गों से मधुर गुण से युक्त पुष्टिकर रस को युक्त करती हुई गति करती हैं ।

प्रजापक्ष में—प्रजा का नाश न चाहने वाले प्रजापति राजाओं के बनाये मार्गों से एक दूसरे की रक्षक प्रजाएं बन्धु, भगिनियों के समान अन्न से राष्ट्र को पुष्ट करती रहें।

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

भा०—ये जो सूर्य के समीप या उसके प्रकाश में रहती हैं और जिनके साथ सूर्य और उसका प्रकाश रहता है वे हमारे सदा जीवित रहने योग्य जीवन या शरीर यज्ञ को तृप्त, पुष्ट करें। इसी प्रकार वे पुरुष जो सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन या उसके अति समीप हैं वे हम प्रजाजन को पुष्ट करें।

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

भा०—जिन नदियों और नहरों के आश्रय हमारी गौवें जल-पान करती हैं या भूमियें सींची जाती हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! मैं उन गतिशील उत्तम गुणों वाले जलों को प्राप्त करूं। और उन ही बड़ी बहनेवाली नदियां, नहरों से अन्न को उत्पन्न करने का यत्न करो।

आप्त पुरुषों के पक्ष में—मैं उन आप्त पुरुषों को आदर से बुलाऊं जहां हमारी इन्द्रियां और वाणियां सुख प्राप्त करती हैं, उपदेश श्रवण करती हैं।

उन समुद्र के समान अगाध ज्ञान-सागरों से उपादेय ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिए यत्न करो।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जलों के भीतर मृत्युकारी रोग को निवारण करने वाला परम रस, जीवन रूप अमृत विद्यमान है और जलों में ही सब रोगों के दूर करने का बल भी है। और उत्तम गुण और बल

उन्नति के प्राप्त करने के लिये आप लोग उत्तम ज्ञान और बल युक्त होवो।

आप्तो के पक्ष मे—उनमे ही अमृत, आत्मज्ञान और उनमे ही रोगनाशक ज्ञान और उन्नति का मूल है। प्रजाओं में ही राजा और राष्ट्र का अमर जीवन, दोषों का उपाय और बलकारी गुण है। हे विजिगीषु राजाओ! उनके बल पर ही अश्व के समान बलवान् हो जाओ।

अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा।
अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुव॒माप॑श्च वि॒श्वभे॑षजीः ॥२०॥११॥

भा०—सब ओषधियो मे उत्तम सोम नामक लता ही यह मुझे बतलाती है कि जलों के भीतर ही सब प्रकार के रोगो को दूर करने की सामर्थ्य है। और वह सोम ही जलो मे समस्त जगत् को सुख शान्ति देने वाले अग्नि को भी जलो के भीतर ही बतलाता है। और जलों को ही समस्त दुःखों के दूर करने का उपाय बतलाता है।

आप्तो के पक्ष मे स्पष्ट है। उनमें ही ज्ञान और उनसे ही सब रोग शान्ति के उपाय प्राप्त होते हैं, यह बात विद्वान् शिष्य बतलाता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

आपः॑ पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३ मम॑।
ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ २१ ॥

भा०—हे जलो! जल के समान शान्तिदायक और उससे उत्पन्न प्राणो और आप्त पुरुषो! आप लोग मेरे शरीर के हित के लिये और सूर्य के प्रकाश को चिरकाल, दीर्घ आयु तक देखते रहने के लिये रोग निवारण करने वाला, सर्वश्रेष्ठ औषध सेवन कराओ।

इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हत॒ यत् किं च॑ दुरि॒तं मयि॑।
यद् वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद् वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ॥ २२ ॥

भा०—हे आपः, जलो! प्राणो! हे आप्त पुरुषो! मेरे मन और शरीर मे जो कुछ भी यह दुष्ट स्वभाव, दुष्ट इच्छा, वासना या उससे उत्पन्न पाप या मलिन अंश है उसको बहा डालो, धो दो, नष्ट करो।

और जो कुछ मैं किसी के प्रति द्रोह बुद्धि करूं और जो कुछ भी अनुचित, निन्द्य वचन कहूँ और जो कुछ भी असत्य वचन कहूँ उस सब को दूर करो।

आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥ २३ ॥

भा०—आज मैं रसयुक्त जलों में नित्य विचरण करूं अर्थात् मैं नित्य स्नान करूं। और पुष्टिकारक, रोगनाशक, सारवान् भाग से संयुक्त होऊं। हे भौतिक अग्ने! तू भी पुष्टिकारी रस से युक्त होकर मुझको प्राप्त हो और मुझको भी पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों से युक्त कर। इसीलिये उस मुझको तेज और बल से संयुक्त कर :

आप्तजनों के पक्ष में—हे आप्त विद्वान् पुरुषो! मैं शिष्य जन आज तक आप गुरुजनों की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास, धर्मानुष्ठान आदि व्रताचरण करता रहूं जो हम विद्या, वीर्य और बल से युक्त हों। हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन्! मैं दूध मात्र पर आहार करके व्रत वाला हूँ। तू हमें प्राप्त हो और मुझको ब्रह्मवर्चस् से युक्त कर।

सं मा॑ग्ने॒ वर्च॑सा सृज॒ सं प्र॒जया॒ समायु॑षा ।
वि॒द्युर्मे॑ अ॒स्य दे॒वा इन्द्रो॑ विद्यात् स॒ह ऋषि॑भिः ॥२४॥१२॥५॥

भा०—हे अग्ने! परमेश्वर! आचार्य! तू प्रजा और दीर्घ जीवन से मुझे वर्चस्वी, प्रजावान् और दीर्घायु कर। इस मेरे तप, प्रजा और ब्रह्मचर्य के शुभ कर्म को विद्वान् गण और परमेश्वर और आचार्य भी वेद-मन्त्रार्थ के वेत्ता गुरुजनों सहित जाने।

शरीर त्यागने पर मानस अग्नि से जीव नये शरीर को धारण करता है और उसे प्रकाशित करता है। जीवों के पाप पुण्य की व्यवस्था को ऋषि, योगी, विद्वान् जानते हैं। परमेश्वर कर्मानुसार जीवों को शरीर धारण कराने की व्यवस्था करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[२४]

शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः । देवता—१ कः (प्रजापतिः)। २ अग्निः । ३—५ सविता भगो वा । ६—१५ वरुणः ॥ छन्दः—१, २, ६—१५ त्रिष्टुभ । ३—५ गायत्र्यः । ३ पिपीलिकामध्या निचृद् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१॥

भा०—मरण रहित, मुक्तात्माओं के परम सुखदायक कौन से सबसे अधिक सुखमय प्रजा पालक के अति उत्तम नाम को जानें, स्मरण करें, चिन्तन और मनन करें । हम मुक्ति मे सुख ही सुख के भोगने हारे जीवों को भी वह कौन प्रजापति परमेश्वर बड़ी भारी अखण्ड पृथिवी वा प्रकृति के ऐश्वर्यों को भोगने के लिये बार प्रदान करता है, भेजता है, जिससे मैं जीव बालक पिता और जननी माता का दर्शन करता हूँ ।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥२॥

भा०—हम सब जीव गण मरण से रहित, मुक्त, अविनाशी जीवों के बीच मे सबसे प्रथम, आदितम, मुख्यतम, सर्वश्रेष्ठ सब सुखो के दाता, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के ही प्राप्त करने योग्य, आचरण योग्य, मनोहर नाम को चिन्तन करते है, वह हमे अखण्ड पृथिवी वा प्रकृति के भोग के लिये पुनः अवसर देता है जिससे मैं पिता और माता के भी दर्शन करता हूं ।

अभि त्वा देवसवितरीशानं वार्याणाम् ।
सदावन् भागमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके उत्पादक ! हे सब सुखो के दाता और सब पदार्थों के सूर्य के समान दर्शक ! हे सबके सदा रक्षा करनेहारे ! वरण करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, भजन और सेवा करने योग्य, आश्रय योग्य तुझसे ही हम याचना करें ।

यच्चिद्धि ते इत्था भर्गः शशमानः पुरा निदः ।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर, जो भी सेवन करने योग्य, कल्याणकारी ऐश्वर्य तेरा पूर्वकाल से ही स्तुति किया जा सकता है, वह निन्दित पुरुष से लेकर, मै द्वेषरहित होकर, हाथों मे धारण करता हूँ, देता हूँ। अथवा निन्दक पुरुष के प्राप्त होने से पूर्व ही मै ग्रहण करू।

भर्गभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा ।
मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ऐश्वर्य के विभाग करने वाले तेरे ही हम रक्षण, पालन और ज्ञान सामर्थ्य से उन्नत, उत्कृष्ट पद को प्राप्त करें। और हम ऐश्वर्य के शिरोभाग, सर्वोच्च आदर प्रतिष्ठा के पद को प्राप्त करने मे समर्थ हो।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वर्यश्च नामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६॥

भा०—हे परमेश्वर ! ये पूर्व से पश्चिम आदि दिशाओ मे जाने वाले पक्षिगण और उनके समान सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि बडे बड़े लोक और ज्ञानैश्वर्य वाले विमानधारी भी तेरे रक्षण सामर्थ्य और बल को नही पा सकते। और वे न तेरे शत्रु को पराजय करने और सबको वश करने के अपार बल को प्राप्त कर सकते है। वे न तेरे क्रोध या मनन सामर्थ्य या ज्ञानशक्ति को ही पा सकते है। और बिना झपक लिए, एक क्षण भी विश्राम न लेकर चलने वाली ये जल, नदी तथा अप्रमाद होकर धर्माचरण करने वाले ये आप्त जन भी तेरे बल, सामर्थ्य और ज्ञान को नहीं पा सकते। और जो वायु के तीव्र वेग हैं वे भी तेरे सामर्थ्य या महान् सत्ता को मानने से इनकार या निषेध नहीं कर सकते।

अथवा—जो वायु के भी वेग को नाश करते है अर्थात् जो वायु के तीव्र वेग की भी उपेक्षा कर देते हैं ऐसे पर्वत, महावृक्ष आदि पदार्थ

तेरे बल वीर्य और क्रोध को नहीं पा सकते। वे बहुत अल्पबल हैं।

अथवा—जो वायु के बल को माप सकते है वे भी तेरे बल वीर्य को थाह नहीं पाते।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥

भा०—प्रकाशमान, तेजोमय, सर्वश्रेष्ठ स्वयं स्वच्छ, पवित्र और पावनकारी तेजोबल से युक्त होकर सेवन करने योग्य, एवं विभक्त करके सर्वत्र पहुंचने योग्य तेज के समूह को सबके ऊपर मूल रहित या बन्धन रहित आकाश में धारण करता है। और वे सब किरणें नीचे, इस भूमि पर आकर पड़ती है। इन सबका बांधनेवाला, सबका केन्द्र ऊपर है। और वही किरणें हमारे भीतर भी विद्यमान है। इसी प्रकार सब दुःख बन्धनो से रहित मोक्ष में प्रकाशस्वरूप वरुण, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, पवित्र ज्ञान और बल से युक्त सबसे ऊपर ज्ञान समूह वेदराशि को धारण करता है। वे इस लोक में सूर्य की किरणो के समान प्राप्त है, परन्तु इन सबका मूल ऊपर ही है। वे ही ज्ञानराशिये हमारे भीतर भी विद्यमान हो। अर्थात् सूर्य जिस प्रकार सब प्रकाशो का केन्द्र सर्वोपरि है उसी प्रकार ज्ञानों का प्रधान केन्द्र परमेश्वर सर्वोपरि है।

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥

भा०—जो सर्वत्र प्रकाशमान, प्रकाशस्वरूप सर्वश्रेष्ठ, राजा के समान वरुण परमेश्वर सब दुःखो का वारण करने हारा होकर सूर्य के प्रतिदिन और प्रति संवत्सर पुनः पुनः नियम से अनुसरण करने के लिए विशाल मार्ग को बना देता है और अगम्य आकाश में भी किरणो के प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने के लिए अवकाश को बनाता है वह ही हृदय अर्थात् मर्म को शस्त्रों और दुःखदायी वचनो से वेधने वाले कटुभापी-

पुरुष का भी निराकरण करनेवाला हो। अथवा हृदयवेधी के समान निन्दक पुरुष का भी दमन करता है।

शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥

भा०—हे राजन् ! प्रकाशमान परमेश्वर ! तेरे सैकड़ों और हजारों रोग और बाधक शत्रुओं के निवारण करने वाले औषधों और वैद्यों के समान उपाय हैं। अथवा तुझ वैद्य के समान सर्व कष्ट-निवारक परमेश्वर के बनाये सैकड़ों और हजारों उपाय कष्टों से बचने के हैं। तेरी ही यह गम्भीर, अगाध पृथिवी है, तेरी ही शुभ कल्याणकारी मति सदा रहे। अथवा तेरा विशाल और गम्भीर उत्तम ज्ञान हमें प्राप्त हो। तू पाप प्रवृत्ति और दुःखदायी कष्ट करनेवाली शत्रुसेना को दूर ही से पीड़ित कर। किये हुए अपराध को भी हमसे परे हटा।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥१४॥

भा०—जो ये नक्षत्रगण ऊपर आकाश मे निश्चल रूप मे स्थापित हैं, जो रात के समय तो दिखलाई देते हैं और दिन के समय कहीं चले जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं और विशेष प्रकाश से चमकता हुआ चन्द्र रात के समय आ जाता है, यह सब उस सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के नियम कभी नष्ट नहीं होते।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ११ ॥

भा०—हे सब दुःखों के वारक, सबसे वरण करने योग्य, एवं सर्व-श्रेष्ठ परमेश्वर ! उपासना करनेवाला पुरुष उत्तम स्तुति-वचनों से उन उन अभिलाषा योग्य पदार्थों की कामना करता है। उन उन पदार्थों की ही मैं भी वेद द्वारा तेरी स्तुति करता हुआ तुझसे याचना करता हूँ। हे बहुत मनुष्यों से स्तुति करने योग्य, अतिस्तुत्य ! तू हमारा अनादर और

तिरस्कार न करता हुआ इस संसार मे हमारा अभिप्राय जान और हमे ज्ञान प्रदान कर और हमारी आयु को मत नष्ट कर ।

राजा के पक्ष मे—कर देनेवाला प्रजाजन नाना कर, अन्न आदि देकर नाना प्रकार की आशाएं करता है । मै भी वेदोक्त वचनो से तेरे गुणो का वर्णन करता हुआ उसी आशागत फल को चाहता हूँ । तू प्रजा का अनादर न करता हुआ प्रजा के कर्त्तव्यो को जान और मुझ प्रजाजन की आयु को नष्ट मत कर ।

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥१२

भा०—विद्वान् पुरुष, माता पिता, आचार्य गण और चारो वेद रात्रि को उस परम ज्ञान का ही मुझे उपदेश करें । और वे ही विद्वान् जन और वेद मन्त्र मुझे दिन के समय भी उसी परमसुख प्राप्ति कराने वाले ज्ञान का उपदेश करें । यह वेदज्ञान हृदय को सब प्रकार से प्रकाशित करता है । सुखार्थी और उत्तम विद्वान् बन्धन मे बध कर जिस परमेश्वर को पुकारता है, स्मरण करता है वह सब मे प्रकाशमान, सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, परमेश्वर हम बद्ध जीवो को अन्धकार से सूर्य के समान अज्ञानमय बंधनों से मुक्त करे ।

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः । अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

भा०—तीन खूटो मे बंधे हुए पशु के समान प्रकृति के तीन गुणो मे आन फसा और जकडा हुआ यह सुखार्थी, मुमुक्षु और जिज्ञासु पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, एव सबको अपनी शरण में लेने हारे परमेश्वर को पुकारता है । और प्रकाशस्वरूप, वह सर्वोपरि वरुण, सर्वश्रेष्ठ, कभी भी नाश न होने वाला, नित्य, ज्ञानवान्, परमेश्वर उस जिज्ञासु को बंधनों से छुडादे और वही सब पाशों को नाना प्रकार से दूर करे ।

अव॑ ते हेळो॑ वरुण॒ नमो॑भि॒रव॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे ह॒विर्भिः॑ ।
क्षय॑न्न॒स्मभ्य॑मसुर प्रचेता॒ राज॒न्नेनां॑सि शिश्रथः कृ॒तानि॑॥१४॥

भा०—हे सबो मे वरणीय, दुःखवारक परमेश्वर! हम तेरे प्रति अनादर, अवज्ञा और उपेक्षा द्वारा किये अपराध को नमस्कारो, देने और स्वीकार करने योग्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को देकर और दान, उपासना आदि कर्मों से दूर करते हैं। हे उत्कृष्ट ज्ञान वाले हे राजा के समान तेजस्विन्! हृदय और संसार भर के राजन्! हे सबके प्राणो मे रमने, प्राणो के देने और दुःखों के उखाड फेंकने वाले! तू हमारे किये कर्मो का भोग द्वारा क्षय कराता हुआ, तप द्वारा सब पाप कर्मों को भी शिथिल कर दे।

उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय । अथा॑ व॒य-
मा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू उत्तम कोटि के सात्विक बन्धन को उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और निकृष्ट, तामस बन्धन को नीचे की जीवयोनियो मे भेज कर शिथिल करता है। और मध्यम श्रेणी के पाश को विविध योनियो के भोग से शिथिल करता है। उन सब भोगो के अनन्तर, हे शरण मे लेने हारे एवं सूर्य के समान प्रकाशक! हम तेरे दिखाये कर्त्तव्य कर्म मे चल कर अखण्ड सुख, मोक्ष के प्राप्त करने के लिये निष्पाप, स्वच्छ हो जाते है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२५]

शुन शेप आजीगर्तिर्ऋषि ॥ वरुणो देवता ॥ गायत्र्य । १४, १७, ८ पिपीलिका मध्यनिचृद्। ६, १६, २० निचृत्। १० एकोना विराड। ११ विराड ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यच्चि॒द्धि ते॒ विशो॑ यथा॒ प्र दे॑व वरुण व्र॒तम् ।
मि॒नी॒मसि॒ द्यवि॑द्यवि ॥ १ ॥

भा०—हे सबके वरने योग्य राजा के समान ! हे सर्वसुखप्रद ! सर्वप्रकाशक ! परमेश्वर ! प्रजाएं जिस प्रकार दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ नियम-भङ्ग आदि अपराध किया ही करती हैं उसी प्रकार जो कुछ भी कभी हम किसी कर्त्तव्य को दिन प्रतिदिन तोड़ा करते हैं। परन्तु तू—

मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिही॒ळा॒नस्य॑ रीरधः।
मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥

भा०—हे वरुण ! राजन् ! हे परमेश्वर ! अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिये हमें मत प्रेरित कर। और इसी प्रकार क्रोध के निमित्त स्वयं लज्जा अनुभव करने वाले को दण्ड देने के लिये भी मत उकसा।

वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न सन्दि॑तम्।
गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! रथ का स्वामी बल से खण्डित, थके, हारे हुए घोड़े को जिस प्रकार नाना प्रकार की मन बधाने वाली, पुचकार वाली वाणियों से उसको अपने वश करता है उसी प्रकार हम भी सुख प्राप्त करने के लिये तेरे हृदय या ज्ञान को स्तुति-वाणियों द्वारा बाधते हैं।

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑ इष्टये।
वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥

भा०—पक्षिगण जिस प्रकार अपने रहने की जगहों के प्रति उड़ जाते हैं उसी प्रकार हे वरुण ! राजन् ! मेरी विविध प्रकार की बुद्धियां सबसे श्रेष्ठ वसु, सबको वास देने हारे, सबके शरणरूप तुझको प्राप्त करने के लिये निश्चय तेरे समीप तक उड़ती, तुझ तक पहुंचती है।

अथवा—पक्षी जिस प्रकार अपने स्थानों को छोड़ कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिये दूर २ चले जाते हैं इसी प्रकार विशेष ज्ञानवान् पुरुष अति अधिक धन प्राप्ति के लिये दूर २ देशों तक जावें।

कृदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—सुख प्राप्त करने के लिये हम लोग सबके नायक, अपने आप चुने गये राजा के समान सब कष्टों के वारक, बहुत प्रकार के ज्ञानो और प्रजाजनों के द्रष्टा पुरुष को हम लोग कब समस्त बलो का आश्रय, राजा रूप से बनावें अर्थात् सदा ही हम अध्यक्ष नायक पुरुष को अपना राजा बनावें । इति षोडशो वर्गः ॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—समस्त व्रतों, नियमों, कर्त्तव्यो की बागडोर को धारण कराने वाले दानशील स्वामी को प्रसन्न करने के लिये उसकी अभिलाषा के अनुसार वाद्य वादन और गान करने वाले गायक, वादक जिस प्रकार उसके अभिलषित गान वाद्य को दोनों समान रूप से प्रयोग करते है और सबको प्रसन्न करते है। उसी प्रकार समस्त ससार की नियम व्यवस्थाओं को धारण करने वाले सर्व सुखों के दाता परमेश्वर की कामना करने वाले साधक और जिज्ञासु जन उसके वचन को समान रूप से प्राप्त करें और सबको प्रसन्न करें ।

अथवा—राजा के दो भृत्य जिस प्रकार समान रूप से पद को प्राप्त करते, उसकी कामना करते नही प्रमाद करते, उसी प्रकार सब नियम व्यवस्थाओं के धारण करने वाले, सबके दाता, स्वामी, परमेश्वर के बनाये नियम को सूर्य और वायु भी समान रूप से व्यापते है और वे कभी प्रमाद नहीं करते ।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥

भा०—जो परमेश्वर और राजा अन्तरिक्ष, आकाश मार्ग से जाने वाले पक्षियो और विमानों के भी गन्तव्य मार्ग को जानता है समुद्र में

चलने वाली महान् आकाश में विद्यमान, बड़े २ सूर्य आदि लोकों या समुद्रगामी नौकाओं, जहाजों को भी जानता है वही परमेश्वर और राजा सेवनीय है।

वेद॒ मासो॑ धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः ।
वेदा॒ य उ॑प॒जाय॑ते ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर या विद्वान् सब नियमव्यवस्थाओं और धर्मों को धारण करने वाले सूर्य के समान नाना उत्पन्न प्रजाओं के स्वामी बारहों मासों को जानता है। और बाद में जो १३ वां मास होता है उसको भी जानता है वह सबको सुख देता है। उसी प्रकार राजा १२ प्रजा-पालक राजाओं को जानता है और जो उस १३ वें विजिगीषु को, जो सब में प्रबल हो जाता है उसको भी जानता है वही प्रजा को 'वरुण' पद पर चुनने योग्य है।

वेद॒ वात॑स्य वर्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः ।
वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥

भा०—परमेश्वर बड़े बलवान् सर्वत्र गतिशील, दर्शनीय, वायु के मार्ग को जानता है, और जो सूर्यादि लोक, नाना पदार्थों पर अधिष्ठाता, शासक रूप से विराजते हैं उनको भी जानता है।

विद्वान् वायु के मार्ग और सूर्यादि शासक पदार्थों को जाने। राजा वायु के समान प्रबल सेनापति या शत्रु राजा के मार्गों और शासकों की चालों को भी जाने।

नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३॒॑स्वा ।
साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतुः॑ ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—सदाचार और राज्य-नियमों को धारण करने वाला राजा एवं संसार के सृष्टि नियम और धर्मों को धारण या स्थापन करने वाला सर्वश्रेष्ठ, पुरुषोत्तम गृहों में बसने वाली प्रजाओं में महान् साम्राज्य की

व्यवस्था के लिये उत्तम कर्म और प्रजा से युक्त होकर विराजे। इति सप्तदशो वर्गः।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा॥ ११॥

भा०—इसी कारण ज्ञानवान् पुरुष समस्त आश्चर्यजनक, अभूतपूर्व, जो पहले कभी देखे, सुने या किये भी न गये हों ऐसे किये कर्मों और जो काम भविष्य में करने को है उन सबको देखता है। सब पर दृष्टि रखता है।

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ १२॥

भा०—उत्तम ज्ञान और कर्मों का करने वाला सूर्य के समान तेजस्वी वह ज्ञानवान् परमेश्वर, विद्वान् और राजा सदा, सब दिनों उत्तम मार्ग से हमें संचालित करे और हमारे जीवनों को बढ़ावे, उनको सफल करे।

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
परि स्पशो नि षेदिरे॥ १३॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार सुवर्ण के समान उज्ज्वल ज्योतिर्मय बाह्य स्वरूप को धारण करता है और शुद्ध प्रकाश को वस्त्र के समान धारण करता है। और प्रकाश की किरणें उसके चारों ओर विराजती हैं, उसी प्रकार राजा भी सुवर्ण वा लोह आदि धातु के बने कवच को धारण करता हुआ और सबदा शोधन, न्याय, विवेक करने वाले आसन पर विराजता है या अति शुद्ध वस्त्रों को धारण करता है सत्यासत्य को देखनेवाले स्पर्श, उसके अधीन दूत, प्रणिधि और विद्वान पुरुष उसके गिर्द विराजते हैं। इस प्रकार परमेश्वर तेजोमयरूप को धारता और शुद्ध सत्य तत्व को ग्रहण करता है और स्पर्श करनेवाले या तेजस्वी सब सूर्यादि दिव्य पदार्थ उसी के आश्रय पर विराजते हैं।

न यं दिप्संन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

भा०—जिस दानशील परमेश्वर और विजिगीषु राजा को हिंसाशील पुरुष मारना भी नहीं चाहते अर्थात् उससे मारने का संकल्प तक भी नहीं कर सकते और जन्तु और सब मनुष्यों के द्रोहकारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते और जिसको अभिमानी शत्रुगण भी परास्त नहीं कर सकते, वही परमेश्वर और राजा न्यायकारी पद पर स्थित 'वरुण' है ।

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—और जो परमेश्वर, सूर्य और मेघ समस्त मननशील पुरुषों के निमित्त पूर्णरूप से यश, अन्न प्रदान करता है और हमारे पेटों को भरने के लिए अन्न सर्वत्र पैदा करता है वह 'वरुण' है ।

उसी प्रकार जो राजा समस्त मनुष्यों में अपने यश, कीर्ति को विस्तृत करता और सब मनुष्यों और हम प्रजाजन के उदरों की क्षुधा शान्ति के लिए सर्वत्र भूगोल पर अन्न उत्पन्न कराता है वह राजा 'वरुण' है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥

भा०—गौओं के जाने के स्थान, बाड़े में जिस प्रकार गौएं जाती हैं उसी प्रकार समस्त विशाल लोकों के द्रष्टा, सूर्य के समान दर्शनीय, तेजोमय उस परमेश्वर को चाहती हुई मेरी बुद्धियां और चेष्टाएं दूर तक उसी को लक्ष्य करके चलती चली जाती हैं और मुमुक्षु के सब मनन और कर्म प्रयत्न उसी परमेश्वर के लिए हैं ।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥

भा०—क्योंकि मुझे अति प्रिय ज्ञानरस विद्वानों से प्राप्त हुआ है। और हे शिष्य! तू उस प्रिय, तृप्तिकर ज्ञानराशि को यज्ञकर्त्ता विद्वान् के समान ही अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए प्राप्त करता है इसलिए हम दोनों भली प्रकार उस ज्ञान को परस्पर वचन-प्रतिवचन द्वारा उपदेश दें और ग्रहण करें।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥ १८॥

भा०—इस पृथ्वी पर सबके दर्शनीय, रथ पर चढे, महारथी, महाराजा या सूर्य के समान तेजस्वी परम रसस्वरूप, आनन्दमय परमेश्वर को पुनः पुनः दर्शन करने के लिए मेरी इन वेदवाणियों को सेवन करो। इनका श्रवण, मनन, अभ्यास करो।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके॥ १९॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! राजन्! मेरे इस स्तुति वचन, पुकार, स्मरण को आज श्रवण कर और आज दिन, अब सदा तू ही मुझे सुखी कर। मैं रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक होकर तेरी स्तुति करता हूं।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि॥ २०॥

भा०—हे मेधाविन्! विद्वन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! तू आकाश और पृथिवी के ऊपर राजा और सूर्य के समान प्रकाशित होता है और वह तू प्रति पहर प्रत्येक मनुष्य या जन्तु के कष्टों को श्रवण करता है।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे॥ २१॥ १९॥

भा०—हे परमेश्वर! हे राजन्! हमारे उत्तम श्रेणी के सात्विक बन्धन को उन्मुक्त कर, उत्तम रीति से, उत्तम फलों के भोग द्वारा छुड़ा।

और बीच की श्रेणी के बन्धन को विविध उत्तम अधम योनि में मिले कर्म फलों के भोग द्वारा काट और निकृष्ट कोटि के पाशों को भी जीवन को सुखप्रद करने के लिये नीच योनियों में भोग भुगा कर काट। इसी प्रकार राजा भी तीनों प्रकार के अपराधियों को तीन प्रकार की कैद आदि में रखकर उनको दोषों से दूर रक्खे ॥ इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२६]

शुन शेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्र्यः । १, ८, ९ एकोना विराड् । २—६ निचृद् । ३ प्रतिष्ठा । ५, ७ विराड् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वसि॑ष्वा॒ हि मि॑येध्य॒ वस्त्रा॑ण्यूर्जां पते ।
सेमं नो॑ अध्व॒रं य॑ज ॥ १ ॥

भा०—हे पवित्र यज्ञ के योग्य विद्वन्! हे प्रजापति पद के योग्य राजन्! हे सत्संग उपासना करने योग्य परमेश्वर! हे यज्ञ अग्नि द्वारा हव्य पदार्थों को प्रक्षेप करने हारे ऋत्विग्! और हे अन्नों, बलों, पराक्रमों और समस्त परम रसों के परिपालक! तू आदित्य जिस प्रकार आच्छादक, सबके तेजों को दबा लेने हारे प्रकाशों को धारण करता है उसी प्रकार भव्य वस्त्रों को धारण कर, पहन। और वह तू हमारे इस हिंसारहित यज्ञ, प्रजापालन रूप कर्म कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर! तू सबको आच्छादन करने हारे वस्त्र त्वचा आदि प्रदान करता है। वह तू हमारे आत्मा को 'अध्वर' अर्थात् हिंसारहित जीवन प्रदान कर।

नि नो॒ होता॒ वरे॑ण्यः॒ सदा॑ यविष्ठ॒ मन्म॑भिः ।
अग्ने॑ दि॒वित्म॑ता॒ वचः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे बलशालिन्! हे अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! विद्वन्! तू हमें समस्त सुखप्रद पदार्थों और ज्ञानों के देने हारा, उत्तम पद और कार्य के लिए वरण करने योग्य श्रेष्ठ मनन करने योग्य ज्ञातव्य गुणों से युक्त होकर प्रकाश और ज्ञान को अधिक

बढ़ाने वाले उत्तम गुण या तेज से युक्त होकर हमें वाणी, वेदवाणी और उत्तम आज्ञा का उपदेश कर। अथवा हे परमेश्वर हमें ज्ञान के वर्धक वचन, वाणीमय उपदेश से युक्त कर। इन मन्त्र में विद्वान् ज्ञानी पुरुष को ही यज्ञ के लिए भी होता वरण करना चाहिए, यह भाव स्पष्ट है।

आ हि ष्मा॑ सू॒नवे॑ पि॒तापि॒र्यज॑त्या॒पये॑।
सखा॒ सख्ये॒ वरे॑ण्यः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार पालक पिता पुत्र को अपना सर्वस्व देता है और आप्त विद्वान् या बन्धु आप्त शिष्य या बन्धु को अपना ज्ञान और धन प्रदान करता है और मित्र अपना प्रेम और धन को प्रदान करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर! राजन्! तू भी हमें हमारे पिता, बन्धु और मित्र होकर मुक्त पुत्र, बन्धु और मित्र के लिए वरण करने योग्य, सर्व-श्रेष्ठ होकर सब कुछ प्रदान करता है।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्। गी० ११।४४॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। गी० ११।४३॥

आ नो॑ ब॒र्ही रि॒शाद॑सो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा।
सीद॑न्तु॒ मनु॑षो यथा ॥ ४ ॥

भा०—हमारे यज्ञ में जिस प्रकार मननशील, बुद्धिमान्, ज्ञानी पुरुष आकर बैठें उसी प्रकार हमारे सुखप्रद उत्तम अधिकारासन पर शास्य प्रजाजन के ऊपर प्रजापालन के कार्य पर भी हिंसक दुष्ट पुरुषों के नाशक दुःखों का वारक श्रेष्ठ पुरुष, सबका स्नेही और न्यायाधीश पुरुष भी विराजें।

पूर्व्य॑ होतर॒स्य नो॒ मन्द॑स्व स॒ख्यस्य॑ च।
इमा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिर॑ः ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—हे पूर्व के विद्वान् पुरुषों द्वारा सत्कार पानेहारे! उन द्वारा उच्चासन पर स्थापित! हे अधिकारों और प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य सुखों

के देने हारे ! तू इस मित्रता और बन्धुता के कारण सदा खूब प्रसन्न, हर्षित हो और इन वाणियो, स्तुतियो को श्रवण कर और हे विद्वन् ! इन वेदवाणियो को श्रवण करा । इति विंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इद् धूयते हविः ॥ ६ ॥

भा०—और जब जब भी अति विस्तृत, अनादि सिद्ध वेदज्ञान से किसी भी दिव्य पदार्थ या ज्ञानद्रष्टा, तत्व प्रकाशक विद्वान् को आदर सत्कार करते हैं, तब तब भी उस तुझ मे ही हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! अग्नि मे डाली आहुति के समान तेरे मे ही वह ग्रहण करने योग्य या देने योग्य आदर, सत्कार, स्तुति वचन, प्रेम आदि प्रदान किया जाता है । अर्थात् विद्वानो, सत्पुरुषो का आदर सत्कार आदि भी परमेश्वर की ही पूजा करना है ।

सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति । स्फुट ।

पृथिव्यादि पदार्थों मे विशेष गुण लाने के लिए भी अग्नि में ही आहुति दी जाती है और सब श्रेष्ठ कार्य करते समय भी परमेश्वर की ही स्तुति की जाती है ।

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

भा०—सुखों, ऐश्वर्यों के देने वाला वरण करने योग्य, चुन लेने योग्य, सदा स्वय प्रसन्न, सबको प्रसन्न करने हारा, स्तुति योग्य, अति सुखभाव प्रजाओं का पालक, स्वामी, राजा हमारा प्रिय, प्रीतिपात्र हो । और अग्निहोत्र या यज्ञ मे श्रेष्ठ होता से जिस प्रकार हम उत्तम यज्ञाग्नि युक्त होकर सब बन्धु-बान्धवों के प्रिय हो जाते है उसी प्रकार पूर्वोक्त राजा से ही हम सब प्रजाजन भी उत्तम अग्नि के समान तेजस्वी, शत्रु-संतापक, ज्ञान, बलप्रद राजारूप अग्नि से युक्त होकर सबके प्रेमपात्र और परस्पर प्रीतियुक्त हों ।

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः।
स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥

भा०—उत्तम गुणों से युक्त अग्नि को धारण करने वाले सूर्य के किरण जिस प्रकार अति सूक्ष्म परमाणुओं में विभक्त हुए जल को धारण करते हैं और जिस प्रकार उत्तम अग्नि से युक्त होकर पृथिवी आदि दिव्य पदार्थ वरण करने योग्य श्रेष्ठ जन, सुवर्ण रत्नादि को धारण करते हैं उसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् और शत्रुसन्तापक, प्रतापी राजा-स्वरूप अग्नि या नेताओं से युक्त होकर विजिगीषु, वीर पुरुष और करादि देने वाले व्यवहारी प्रजागण हमारे वरण करने योग्य धनैश्वर्य को धारण करते और उसका उपयोग करते हैं। और हम लोग उत्तम अग्रणी नायक, विद्वान् और परमेश्वर और यज्ञाग्नि को भली प्रकार धारण करके ही उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

भा०—हे कभी न मरने वाले चिरायुष ! दीर्घजीवन ! आयुष्मन् ! और मूर्ख और पण्डित दोनों पक्षों के मरणधर्मा, वीर पुरुषों के परस्पर उत्तम प्रवचन हों।

राजा के पक्ष में—हे वीर नेतः ! निज और शत्रु दोनों पक्षों के वीर मर्दों में परस्पर खूब शस्त्रप्रहार, कटाकटी हो।

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः।
चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—हे पर सेना को दमन करने में समर्थ बल के द्वारा उत्पन्न या प्रसव अर्थात् अभिषेक द्वारा बनाये गये सेनापते ! राजन् ! हे अग्रणी ! प्रतापिन् ! तू समस्त सेनानायकों सहित हमारे इस यज्ञ, प्रजापतिपद, सुसंगत सुप्रबद्ध राष्ट्र को इस वचन, आज्ञा प्रदान के कार्य, स्तुति या प्रजाशासन करने योग्य धर्मशास्त्र को और समस्त अन्न, पूजा और सत्कार को धारण कर और प्रदान कर। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२७]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवता —१—१२ अग्निः । १३ विश्वे देवा । छन्दः— १—१२ गायत्र्यः (३ एकोना पिपीलिकामध्या विराड् । ५, ७ निचृद्) १३ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

भा०—हिंसादि दोषों से रहित यज्ञो, प्रजापालन के उत्तम कार्यों में प्रकाशित, यशस्वी होनेवाले तेजस्वी, प्रतापी, अश्व के समान पूंछ के बालों के समान बाधक शत्रुओं के वारण करने वाले सेनादि साधनों से सम्पन्न तुझ नायक अग्रणी पुरुष को आदरपूर्वक नमस्कारों और अन्न आदि भोग्य पदार्थों से स्तुति करने के लिए हम सदा तैयार हैं, परमेश्वर दु:खों के वारक साधनों से 'वीरवान्' है। अहिंसित, कभी नाश न होने वाले सृष्टि नियमों में और अविनाशी आकाशादि पदार्थों में प्रकाशित होने से अध्वरों का सम्राट् है। वह व्यापक होने से 'अश्व' है। उसकी नमस्कारों द्वारा हम वन्दना करें।

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

भा०—वह निश्चय से बल से, बलपूर्वक रथ, यान, तोपखाना आदि विस्तृत लश्कर सहित आगे बढ़नेवाला, प्रजा को उत्तम सुख देने हारा मेघ के समान प्रजाओं पर सुख और शत्रुगण पर शस्त्र आदि वर्षानेहारा, वीर्यवान् पुरुष हमारे बीच में हमारा प्रेरक, आज्ञापक, अभिषेक युक्त राजा हो।

अग्नि-पक्ष में—बल से प्रेरित करने वाला, बड़े यान से जाने वाला, उत्तम सुखदायक बलवान् हो।

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद् विश्वायुः ॥ ३ ॥

भा०—वह तू समस्त विश्व में व्यापक परमेश्वर और समस्त प्रजाओं

का जीवनप्रद राजा या सभापति हमें पापकर्म, हत्या आदि करना चाहने वाले दुष्ट पुरुष से सदा ही दूर से और समीप से भी रक्षा कर।

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वन्! तू हमें समस्त सुख प्रदान करने वाले, उपदेश करने और गान करने वाले का त्राण या रक्षा करने वाले, सदा नये नये ज्ञानों को विद्वानों, अग्नि आदि ऋषियों और ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों में उपदेश करता है।

राजा के पक्ष में—राजा सुखप्रद, पृथिवी के शासन सम्बन्धी अति उत्तम आज्ञा हमारे हित के लिए करे।

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—हे परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू हमें परम उत्कृष्ट कोटि के संग्रामों या ऐश्वर्यों में और मध्यम कोटि के ऐश्वर्यों या युद्धों में और अति समीपतम, तृतीय कोटि के ऐश्वर्यों को भी प्राप्त करा और दे। तीनों लोकों के ऐश्वर्य को हमें प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥

भा०—हे चित्र विचित्र, नाना रंगों की किरणों वाले सूर्य के समान विद्वन्! राजन्! जिस प्रकार सूर्य समुद्र के तरंग के उठने पर समीप ही जलों को जल-कणों के रूप में विभक्त कर देता है और उस सूक्ष्म जल को शीघ्र ही वर्षारूप में बरसा देता है उसी प्रकार हे नाना विद्याओं और तेजों, पराक्रमों से युक्त विद्वन्! परमेश्वर! राजन्! तू वेग से जाने वाले, तरंग के समान उमड़ने वाले अपार ऐश्वर्य और ज्ञान राशि को सब में विभक्त कर देता है। आत्म-समर्पण के हित के लिये शीघ्र ही मेघ के समान वर्षा देता है।

यम॑ग्ने पृत्सु मर्त्य॒मवा॒ वाजे॑षु॒ यं जु॒नाः ।
स यन्ता॒ शश्व॑ती॒रिषः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! अग्ने ! विद्वन् ! प्रतापी राजन् ! जिस मनुष्य को तू सेनाओं के बीच में से बचाता या अधिक तेजस्वी बनाता है और सग्रामो के बीच मे जिसको प्रेरित करता है, आगे बढ़ाता है वह ही निरन्तर स्थिर रहनेवाली कामना योग्य प्रजाओ और आज्ञा पर चलने वाली सेनाओ का नियन्ता, व्यवस्थापक राजा और सेनापति होने योग्य होता है ।

नकि॑रस्य सहन्त्य पर्ये॒ता कय॑स्य चित् ।
वाजो॑ अस्ति श्र॒वाय्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे सहनशील ! विद्वन् ! इस ज्ञानवान्, युद्ध विद्या कुशल, पराक्रमी सेनापति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं है । और इसका बल, वीर्य, ऐश्वर्य और वेग भी जगत्-प्रसिद्ध, कहने सुनने योग्य, एवं स्तुत्य, आश्चर्यकारी है ।

'कयस्य'—कस्येत्यत्र यकारोपजन इति सायणः । चिकेति जानाति इति कय', इति दयानन्दः ॥

स वाजं॑ वि॒श्वच॑र्षणि॒रर्व॑द्भिरस्तु॒ तरु॑ता ।
विप्रे॑भिरस्तु॒ सनि॑ता ॥ ९ ॥

भा०—वह समस्त प्रजा का द्रष्टा, रक्षा के निमित्त सब पर दृष्टि रखने वाला, अश्व आदि तुरग बलों से सग्राम को पार करता और विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषो के द्वारा अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को समस्त प्रजा मे विभक्त करता है ।

जरा॑बोध॒ तद् वि॑विड्ढि वि॒शेवि॑शे य॒ज्ञिया॑य ।
स्तोमं॑ रु॒द्राय॒ दृशी॑कम् ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे गुण स्तुति द्वारा अपने वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त करनेवाले अग्रणी नायक ! तू प्रत्येक प्रकार की प्रजा के लिए यज्ञ, राष्ट्र-

व्यवस्था अथवा युद्धक्षेत्र के योग्य उपदेष्टा विद्वान्, शत्रुओं के रुलानेवाले वीर पुरुष और योद्धा के योग्य दर्शनीय उस उस सत्य गुण, स्तोम को विशेष रूप से प्राप्त कर।

वीर नायकों और सैनिकों को उनके योग्य गुणस्तवन और उत्साह-वर्धक वाक्य सुनाने से उनको अपनी शक्ति, सामर्थ्य और कर्त्तव्य का ज्ञान होता रहता है।

स नो॑ म॒हाँ अ॑निमा॒नो धू॒मके॑तुः पुरुश्च॒न्द्रः ।
धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥ ११ ॥

भा०—वह हमारे लिये बड़ा, अपरिमित बलशाली, धूम की शिखा-वाले अग्नि के समान शत्रुओं को सिर से पांव तक कंपा देने वाले बल और प्रज्ञा वाला अथवा शत्रुओं को भयभीत करने वाली ध्वजा वाला, बहुतों को आह्लाद या सुख, शान्ति देने और हृदय में उत्साह देने में समर्थ या सबको पालने में समर्थ, सुवर्णादि ऐश्वर्यवान्, बहुत कोशवान् है। वह कर्म और ज्ञान को प्राप्त करने और संग्राम, ऐश्वर्य और विजय प्राप्त करने के लिए प्रेरित करे, उत्साहित करे।

स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः ।
उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥

भा०—वह परमेश्वर राजा धनाढ्य के समान प्रजा का पालन करनेहारा, समस्त दिव्य पदार्थ अग्नि, जलादि व्यापक पदार्थों और विजिगीषु विद्वानों में सबसे कुशल, ज्ञानवान् और बड़े तेजों और दीप्तियों में अति तेजस्वी, अग्रणी, प्रतापी है। वह प्रजाजनों का वेदमन्त्रों द्वारा उनके अनुसार सब कुछ श्रवण करे और न्याय करे।

नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑ ।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः ॥१३॥

भा०—बड़े आदरणीय विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और बलवृद्ध पुरुषों को नमस्कार, आदर और बल, वीर्य उचित पद प्राप्त हो। बालक

विद्या, बल में अल्प पुत्र, शिष्य आदि को भी उचित आदर प्राप्त हो। युवा, बलवान् और विद्यावान् पुरुषों को नमस्कार आदर प्राप्त हो। विद्या, बल और अधिकार में अधिक सामर्थ्यवान् पुरुषों को आदर प्राप्त हो। हम जब भी शक्तिमान् और सामर्थ्यवान् हों, जितना भी कर सकें उत्तम ज्ञानवान्, ज्ञान, बल और सुख के प्रदाता और व्यवहारकुशल, तत्वदर्शी विद्वान् पुरुषों का सत्सग करें, उनका दान मान सत्कार करें। हे विद्या प्रकाशक विद्वान् और दानशील पुरुषो! मैं अपने से बड़ों की कीर्त्ति, स्तुति को न काटूं, न परित्याग करूं।

'आ वृक्षि'—व्रश्चतेरिति सायणः। वृजेरिति दयानन्दः।

{ २८]

शुन शेप आजीगर्तिर्ऋषि.॥ इन्द्रयज्ञसोमा देवताः॥ छन्द'—१—६ अनुष्टुभ। विराट (२ द्व्यूना ३, ६ एकोना)। ७—९ गायत्र्यः (२, ७, ८ निचृद्। ७ पिपीलिकामध्या)॥ नवर्चं सूक्तम्॥

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥ १॥

भा०—जहां बड़े आश्रय या बड़े मूल भाग वाला, बड़ा पाषाण या बड़ी शिला जिस प्रकार ऊंचा होकर ओषधियों के रस निकालने के लिये होता है उसी प्रकार ज्ञान का उपदेश करने वाला विद्वान् पुरुष बड़े विस्तृत शक्ति और अधिकार वाले राजा आदि का आश्रय पाकर ज्ञान और ऐश्वर्य के प्रचार और प्रसार करने के लिए उन्नत पद पर स्थित हो। और जिस प्रकार गृहपति ओखली से कूट पीसकर बनाये, तैयार किये अन्न और ओषधि आदि पदार्थों को प्राप्त करता और उसका भोजन करता है इसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! आचार्य! तू बहुत बड़े कार्यों को करने वाले पुरुषों द्वारा उत्पन्न किये पुत्रों को अवश्य प्राप्त कर और उनको उपदेश कर।

राजा के पक्ष मे—बहुतों को दीक्षित करने वाले गुरु के तैयार

किये विद्वानों को प्राप्त कर और उनका भोग कर अर्थात् राष्ट्र के कार्य में अपने अधीन रख।

यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥ २॥

भा०—जिसमे दो सोम को कूटने के लिये शिला और बट्टा दोनों के समान शरीर मे गति करने वाली दो जघाएं बनी हैं अथवा शरीर मे दो जघाओं के समान यज्ञ मे सोम सवन के लिये अन्न कूटने के निमित्त दो अधिसवन फलक और गृहस्थ यज्ञ मे पुत्रोत्पादक दो स्त्री पुरुष बने है और ज्ञान मे ज्ञानोत्पादक गुरु शिष्य हैं वहां अति अधिक अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य के कर्त्ता पुरुषो से उत्पादित अन्न, पुत्र और शिष्यों की, हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! आत्मन्! गृहपते! आचार्य! तू अवश्य रक्षा कर, उनको उपदेश कर और नियुक्त कर।

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥ ३॥

भा०—जिस गृहस्थ के कार्य में स्त्री त्याग करना, दान देना, व्यय करना और ऐश्वर्य अन्नादि को प्राप्त करना, संचय करना आदि का अभ्यास करती है, हे इन्द्र, विद्वन्! तू ऊखल से बने अन्नों को वहां प्राप्त कर और उनका भोजन कर। अथवा जहां स्त्रियां दान देने और सग्रह करने की शिक्षा प्राप्त करें हे विद्वन्! बड़े २ कार्य और ऐश्वर्यों के स्वामियों के पुत्रों को वहां प्राप्त कर और उपदेश कर।

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥ ४॥

भा०—अश्वों को वश करने के लिये जिस प्रकार सारथि रासों को जोड़ता है और जहां लोग दूध दही को मथन करने वाली रई को रस्सी बाधते हैं हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! वहां ओखली से तैयार किये अन्नों को भी प्राप्त कर और भोग कर।

उसी प्रकार जिस राष्ट्र मे अश्वो के समान ही शत्रुओ को मथन करने वाली क्षात्र शक्ति को नियम मे बांधा जाता है वहां बड़े ऐश्वर्यों के उत्पादक व्यापारियो द्वारा उत्पादित ऐश्वर्यों को तू प्राप्त कर, उपभोग कर।

आचार्य पक्ष मे—जहा अश्व के समान ही हृदय को मथन कर देने वाली काम चेष्टा आदि मनोवृत्ति पर नियन्त्रण रखते हैं, हे आचार्य ! उस ब्रह्मचर्याश्रम मे बड़े संयमकारी पुरुषो के पुत्रो की तू रक्षा कर और उनको उपदेश कर ।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे अति अधिक ज्ञानोत्पादक वचनों को उपदेश करने हारे विद्वन् ! तू अति अधिक ज्ञानोत्पादक, ओखली के समान जो भी तू घर घर नियुक्त किया जाता है तो तू इस राष्ट्र मे विजयकारी योद्धाओं के रणभेरी के समान अति ज्ञानप्रकाश से युक्त लाभदायक उपदेश कर ।

उलूखलक—उलूखलं कायति शब्दयति तत्सम्बुद्धौ, विद्वन्, इति दया० । उलूखलमुरुकरं वा उर्क्करं वा, ऊर्ध्वं खं वा, 'उरु कुरु मे' इत्यब्रवीत् तदुलूखलमभवत् । उरुकरं वैतदुलूखलमित्याचक्षते । निरु० ९ । २० ॥ बहुत अन्न, ज्ञान, कार्य, शक्ति आदि उत्पन्न करने वाले, ओखली, गुरु, बडा पुरुष, राजा, पुरोहित आदि सभी 'उलूखल' शब्द से कहे जाने योग्य है ।

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

भा०—हे सेवन करने योग्य फल, छाया, उत्तम रस के पालक महावृक्ष और तेरे अग्र भाग तक वायु अर्थात् रस प्राप्त कराने वाला बल विविध प्रकारों से प्राप्त होता है । और हे ओखली के समान नाना अन्नों को उत्पन्न करने वाले पुरुष ! तू ऐश्वर्यवान् पुरुष के पान करने के लिये ओषधि रस का सार भाग प्राप्त कर ।

अथवा—हे सेना समूह के पालक पुरुष ! वायु के समान तीव्र बलवान् शत्रु रूप वृक्ष के शाखाओं को तोड़ डालने में समर्थ पुरुष ! तेरे अग्र अर्थात् मुख्य भाग को विविध प्रकार से कंपाता, चलाता है। इससे हे बहुत से ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले पुरुष ! तू वायु के समान प्रबल, बलवान् राजा के उपभोग के लिये ऐश्वर्य उत्पन्न कर।

आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः ।
हरीइवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

भा०—नाना प्रकार के जौ चने आदि अन्नों को खाने वाले, परस्पर संगत और वेग से जाने वाले जैसे दो घोड़े रथ को उठाते हैं उसी प्रकार एक साथ संगत होने, यज्ञ करने और दान देने वाले और ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष वे दोनों ही ऊंचे पद, गृहस्थादि के कार्य-भार को उठाते हैं। और दोनों नाना अन्नों का उपभोग करते हैं। इसी प्रकार ऊखल मुसल भी परस्पर संगत, अन्न देने वाले, ऊँचे रक्खे जाते हैं। वे भी कूटते समय मानो अन्न खाते और औरों को कूटकर खिलाते हैं।

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

भा०—काष्ठ के ऊखल और मूसल दोनों जिस प्रकार गृहपति के लिये मधुर अन्न को तैयार करते हैं उसी प्रकार वे दोनों सेवन करने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों के पालक राजा और प्रजावर्ग और स्त्री पुरुष दोनों महान् प्रभुता और सामर्थ्य वाले होकर दर्शनीय या बड़े २ अभिषव, अभिषेक करने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों से मिलकर शत्रु नाशक बल-वान् पुरुष के लिये ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न राष्ट्रपति पद को अभिषेक द्वारा प्रदान करें।

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।
नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥ २८ ॥

भा०—'चमू' नाम अधिसवन फलक,ऊखल मूसल दोनों में कूटे

गये अन्न को निकाल लो। और पुनः उस कूटे पिसे अन्न को साफ़ करने वाले छाज पर रक्खो और शेष सोम के गोचर्म पर रक्खो। इसी प्रकार राष्ट्र का उपभोग करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनो के बीच मे शिक्षित विद्वान् पुरुष को उन्नत पद पर स्थापित करो और ज्ञान से पूर्ण उपदेशक को परम पावन, ब्राह्मण, आचार्य आदि पद पर नियुक्त कर। और उसको वाणी, वेदज्ञान के संवरण अर्थात् रक्षा के कार्य पर नियुक्त कर।

सेनापति, राजा के पक्ष में—पदाति और यान, अश्वरथ आदि पर चढा कर दोनो प्रकार की सेनाओ के ऊपर अथवा निज दोनों सेनाओ के बीच सुशिक्षित पुरुष को उत्तम पद पर स्थापित कर। पवित्र करने वा कण्टको के शोधक पद पर सर्वाज्ञापक पुरुष को लगा। पृथ्वी पर रक्षक रूप से शासन करने के लिये ऐश्वर्यवान् राजा को स्थापित कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[२९]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्दः। १, ४, ५ निचृद्। २, ३, ६, ७ विराड् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

भा०—क्योंकि, हे सज्जनों के हितकर! सत्यस्वरूप, न्यायपरायण! परमेश्वर! राजन्! हे समस्त ऐश्वर्यों और उत्पन्न पदार्थों के पालक स्वामिन्! हम अकुशल, प्राप्त करने में असमर्थ के समान अल्पबल, अल्पज्ञ है, इसलिये हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! आचार्य! राजन्! हे अधिक ऐश्वर्यवन्! आप हमे वाणी, पशु, इन्द्रिय, भूमि और अश्व आदि वेग से जाने वाले साधनों और हजारों शोभाजनक, सुखप्रद पदार्थों से विख्यात व सम्पन्न कर।

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२॥

भा०—प्राप्तव्य ऐहिक पारमार्थिक दोनों सुखों को प्राप्त करने हारे ज्ञानवन्! बलवन्! सग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक, हे शक्ति, प्रज्ञा और प्रजा के स्वामिन्! तेरा ही यह सब सामर्थ्य है। हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! इन्द्र! हमें भी सहस्रों शोभाजनक रथ विमानादि ऐश्वर्यों में उत्तम सम्पन्न कर।

नि ष्वा॑पया मिथू॒दृशा॑ स॒स्ताम॑बुध्यमाने।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥३॥

भा०—जो स्त्री पुरुष मिथ्या दृष्टि से युक्त, दुःख से मिले विषय सुख को वास्तविक सुख मानने वाले और प्रमाद, आलस्य करने वाले होकर कुछ भी ज्ञान न प्राप्त कर, मूर्ख रहते हुए सदा सोते हैं उनको उस कुमार्ग से हटा। और हे इत्यादि पूर्ववत्।

अथवा—हे इन्द्र, राजन्! परस्पर प्रेम से मिथुन होकर, सुसंगत होकर देखने वाले स्त्री पुरुष रात्रि के समय अचेत, निश्चिन्त होकर सोवें। उनको खूब निश्चिन्त सोने दे। अर्थात् तेरे उत्तम राज्य शासन में सब निश्चिन्त होकर सोवें और हमें तू गौ आदि पशु, अश्वों और ऐश्वर्यों से युक्त कर।

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥४॥

भा०—वे दानशील शत्रुगण, अचेत होकर सोवें, मूर्ख रहें। हे शूरवीर! दानशील प्रजाएं ज्ञानवान्, जागृत, सावधान होकर रहें। और हमें तू गौ आदि पशुओं, अश्वों और ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर।

समि॑न्द्र गर्द॒भं मृ॑ण नु॒वन्तं॑ पा॒पया॑मु॒या।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥५॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! सभाध्यक्ष! तू अमुक २ नाना प्रकार की पापयुक्त-वाणी से निन्दा करते हुए कर्णकटु बोलने वाले, निन्दक गधे के समान स्वभाव वाले नीच पुरुष को अच्छी प्रकार दण्डित कर

गौ आदि पशु और सहस्रों सुखप्रद ऐश्वर्यों के विषय में हमे उत्तम, सम्पन्न एव निर्दोष प्रसिद्ध कर।

पतांति कुण्डृणाच्यां दूरं वातो वनादधि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥

भा०—वायु जिस प्रकार वन से निकल कर भी बहुत दूर तक अति कुटिल गति से चला जाता है। अथवा वह दाहकारी अग्नि की ज्वाला के साथ दूर तक फैल जाता है उसी प्रकार वायु के समान बलवान् सेनापति भी सेना समूह से निकल कर राजनीति की कुटिल गति या शत्रुदाहक प्रताप और पराक्रम वाली शक्ति से दूर तक आक्रमण करे। और तू हमे गौ आदि पशु, अश्व और उत्तम ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर।

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२७॥

भा०—हे राजन्! तू सर्वप्रकार के प्रजा को रुलाने वाले, दुःखदायी एवं सर्वत्र निन्दा फैलाने वाले दुष्ट पुरुष को विनाश कर, दण्डित कर। और हिंसा और आघात करने वाले डाकू पुरुष को विनष्ट कर, उसे राष्ट्र से परे कर। हमें गौ आदि पशु, अश्व और ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[३०]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः॥ देवताः—१—१६ इन्द्रः। १७—१९ अश्विनौ। २०—२२ उषाः॥ छन्दः—१—१०, १२—१५, १७—२२ गायत्र्यः। २, ४, ६, १०, १४, १७, १८, २० निचृद् (६, १०, १५, १८ पिपीलिकामध्या)। ३, १९, २१, २२ विराट् (२१ पिपीलिकामध्या)। १२ पादनिचृद्। १६ त्रिष्टुप्। द्वाविंशत्यृचं सूक्तम्॥

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः॥ १॥

भा०—अन्न की कामना करने वाले किसान लोग जिस प्रकार कूप का

आश्रय लेते हैं और जलों से क्षेत्रों को सींचते है उसी प्रकार हे वीर पुरुषो ! आप लोगों में से संग्राम मे विजय और ऐश्वर्यों की कामना करने वाले जन सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों के करने मे कुशल शत्रु के नाशक, कार्य-दक्ष, ऐश्वर्यवान्, शत्रुघातक दानशील पुरुष का आश्रय करो। हे पुरुष ! तब जलों के समान सदा बहने वाले ऐश्वर्यों से प्रजाजन को राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनो का सेवन कर, बढ़ा।

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्।
एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जल नीचे की ओर बह जाता है उसी प्रकार जो विद्वान् शुद्ध पवित्र करने वाले सहस्रों साधनों, कर्मों और पदार्थों के प्रति और आश्रय या सेवन करने योग्य हजारों ग्राह्य पदार्थों के प्रति झुकता ही है वह उनको प्राप्त कर उनका ज्ञान करता है।

भौतिक अग्नि, विद्युत् के पक्ष में—वह विद्युत् कान्ति वाले, धातु के बने सैकड़ों और सहस्रों आश्रय द्रव्य के प्रति ऐसे वेग से आता है जैसे जल नीचे स्थान पर बह आता है। विद्युत् सुवाहक धातु के बने पदार्थों और आश्रय स्थान मेघ, पृथिवी आदि पदार्थों पर भी अति शीघ्रता से जल के समान आ दौड़ता है।

इसी प्रकार ताप भी जलवत् संग लगे अल्प ताप वाले पदार्थों में सुगमता से फैल जाता है।

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।
समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार समुद्र विविध पदार्थों को धारण करने वाले, नाना विस्तृत अवकाश को धारण करता है उसी प्रकार बलवान्, अति तृप्त इस विद्वान् पुरुष के पेट या वश में नाना सहस्रों पदार्थ धारण कराता है, उसके भोगने के निमित्त प्रदान करता है।

भौतिक अग्नि के पक्ष में—जैसे समुद्र में बहुत से पदार्थ समा जाते

हैं उसी प्रकार अग्नि के प्रचण्ड ताप में सहस्रों पदार्थ, पेट में अन्न के समान भस्म हो जाते हैं।

अ॒यमु॑ ते॒ सम॑तसि क॒पोत॑ इव गर्भ॒धिम्।
वच॒स्तच्चि॑न्न ओहसे ॥ ४ ॥

भा०—कबूतर जिस प्रकार गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास आता और संगत होता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी नाना वर्णों का आश्रय होकर अपने गर्भ मे, अपने बीच मे तुझे धारण करने मे समर्थ राष्ट्र की प्रजा को तू आपसे आप प्राप्त होता है। यह समस्त लोक तेरे ही भोग और शासन के लिये, तेरे ही वश है। उसी प्रकार हमारे तू वचन को भी प्राप्त हो।

अग्नि के पक्ष मे—नाना उज्ज्वल वर्णों से युक्त होने से अग्नि 'कपोत' है, अग्नि को भूगर्भ मे धारण करने से पृथ्वी 'गर्भधि' है। यह लोक उसी का है। वह पृथ्वी से संगत है। वही हमारे व्यक्त वचनों को भी ग्रहण करता व स्थानान्तर पहुंचाता है।

स्तो॒त्रं रा॑धानां पते॒ गिर्वा॑हो वीर॒ यस्य॑ ते।
विभू॑तिरस्तु सू॒नृता॑ ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन्! हे वीर! वीर्यवन्! जिस समस्त स्तुति वाणियों को धारण करने वाले, उनके योग्य तेरी स्तुति हैं। उस तेरी ही यह उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण विविध सम्पदा है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ऊ॒र्ध्वस्ति॑ष्ठा न ऊ॒तये॒ऽस्मिन् वाजे॑ शतक्रतो।
सम॒न्येषु॑ ब्रवावहै ॥ ७ ॥

भा०—हे सैकड़ों कर्मों और प्रज्ञाओं से युक्त राजन्! विद्वन्! परमेश्वर! तू हमारे रक्षा करने के लिए सबसे ऊंचा होकर इस संसार, राष्ट्रयज्ञ और ऐश्वर्य पद पर विराज और हम दोनों स्त्री-पुरुष, गुरु-शिष्य और राजप्रजा वर्ग मिलकर अपने से भिन्न, अन्य शत्रुजनों में भी अथवा

अन्य कार्यों और अवसरों पर भी परस्पर मिल कर तेरे गुणों का कथन किया करें ।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

भा०—हम सब मित्र, सुहृद् होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के प्रत्येक अवसर में और प्रत्येक संग्राम के अवसर में भी रक्षा करने के लिये अति बलशाली और ज्ञानशाली, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता एवं कार्य-कुशल परमेश्वर और सेनापति, राजा को बुलावें, उसे प्रस्तुत करें ।

आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

भा०—यदि वह परमेश्वर या सेनापति हमारे स्तुति-वचनों और बुलावे को सुन ले, तब अवश्य ही वह सहस्रों पुरुषों से बनी या सहस्रों ऐश्वर्यों के देने वाली सेना रूप रक्षाओं और अन्न, ज्ञान, उपाय, युद्धादि सामग्री और अश्व आदि वेगवान् साधनों से निश्चय से अवश्य आजावे ।

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

भा०—जिस नाना लोकों के बनानेवाले, सबके नायक, अति पुराण स्थान, आकाश के भी पूर्व विद्यमान परमेश्वर की तेरे पालक जन भी स्तुति करते थे । उसी की मैं आदर से स्तुति करता हूँ ।

राजा के पक्ष में—अति पुरातन स्थान, देश के नायक बहुत से शत्रुओं के मुकाबले पर जाने वाले जिसको तेरा पिता पालक वर्ग भी आदर करता है उसी का मैं भी आदर करूँ ।

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत ।
सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे सबसे वरण करने योग्य, सबको धनैश्वर्य का समान रूप से न्यायपूर्ण विभाग करनेहारे ! हे बहुत से जनों से स्तुति किये, रक्षा,

क्षेमादि के निमित्त बुलाये एवं स्मरण किये गये ! हे मित्र ! हे सबमें बसने और सबके बसाने वाले परमेश्वर ! राजन् ! हम उस तुझको स्तुति करने वाले विद्वान् पुरुषों के हितकारी रूप से चाहते और कामना करते हैं। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम्।
सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे सोम, नाना उत्पादित कार्य, पदार्थ, ऐश्वर्य आनन्द ज्ञान तथा राष्ट्र के पालक ! राजन् ! विद्वन् ! ईश्वर ! ज्ञान से युक्त हम स्त्रियों का और सोम, अन्न, ज्ञान, बल-ऐश्वर्य राष्ट्रादि के पालक और मित्र भाव से रहने वाले हम स्त्रियों और पुरुषों में से सभी का तू हितकारी है, तुझे हम प्राप्त करना चाहते हैं।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥

भा०—हे राष्ट्रपालक, ऐश्वर्यमय जगत् के पालक ! हे सखे ! मित्र ! हे बलवन् ! दुःखों के निवारक ! जिस प्रकार से भी हम तुझे अपने इष्ट, अभिलषित फल प्राप्ति के लिए चाहते हैं तू उसी प्रकार हमारा मनोरथ पूर्ण कर और वह हमारा अभिलषित कार्य भी वैसे ही सिद्ध हो।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥

भा०—अन्न आदि भोग्य पदार्थों से समृद्धिमान् होकर हम जिन प्रजाओं से और जिन सहधर्मचारिणी स्त्रियों के साथ तृप्त, सन्तुष्ट, पूर्ण सफल हो सकें वे अति ऐश्वर्य और अन्नों से युक्त होकर धनैश्वर्य वाली स्त्रियें ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में या राजा या परमेश्वर के आश्रय रहकर हमारे साथ सुख और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली हों।

परमेश्वर के प्रति विश्वास और उत्तम राजा के उत्तम राज्य में, उत्तम

स्त्रियों सहित हम ऐश्वर्यवान् होकर सुख से रहें, मनोऽनुकूल स्त्रियें और प्रजाएं प्राप्त हों।

प्र घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः।
अक्षोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥

भा०—चक्रों के बीच लगा धुरा जिस प्रकार गति करता हुआ स्वयं भी चलता है और अन्यों को भी अभिलषित स्थान तक पहुंचाता और वह स्वयं अपने ही आश्रय पर स्थित रह कर दोनों चक्रों को भी सम्भालता है उसी प्रकार हे बलवन्! शत्रुओं को पराजय करने हारे! ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू भी अपने ही समान, अपने जोड़ का अकेला, अपने ही सामर्थ्य से अपने में स्थित होकर विद्वान् गुण स्तुति करने वाले पुरुषों को स्वयं प्राप्त होता और उनको अभिलषित फल मोक्ष और सुख प्राप्त कराता है।

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्।
अक्षोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—जिस प्रकार चक्रों का धुरा क्रियाओं द्वारा गति करता हुआ इष्ट देश को प्राप्त कराता है उसी प्रकार हे सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों में कुशल ईश्वर! राजन्! विद्वन्! सभापते! तेरी जो परिचर्या, सेवा है वह भी स्तोता विद्वान् पुरुषों को अपनी बुद्धियों और कर्मों से अभीष्ट फल को प्राप्त कराती है। इति त्रिंशद् वर्गः ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि। स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता इन्द्र, भूमि और राष्ट्र का पालक राजा नथुने फुनफुनाते हुए, अतिपर्याप्त बलशाली, व्यायामशील नाद करते हुए निरन्तर श्वास लेने वाले घोड़ों से नाना ऐश्वर्यों का निरन्तर विजय करे। और वह कर्म शक्ति से सम्पन्न होकर हमें सुवर्ण और लोहादि

धातु के बने रथ दान करे। और वह सब ऐश्वर्यों का दाता दानशील हमे दान देने या ऐश्वर्य विभाग करने के लिये ही दान दे।

परमेश्वर के पक्ष मे—परमेश्वर अनादिकाल से ही अपरिमित, स्थूल परिमाण मे रहने वाले, नाना शब्द करने वाले विद्युत् आदि पदार्थों और नाना जीवों से और निरन्तर श्वास लेने वाले प्राणियो द्वारा नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करता और उनको अपने वश करता है, वह ही दानी, सर्वशक्तिमान्, हमारे भोग के लिये हमे सुवर्णादि रथ अथवा हितकारी रमण योग्य आत्मा के देह रूप रथ को प्रदान करता है।

अध्यात्म मे—आत्मा नाक के नथुनों को कंपाने वाले, नाद करने वाले, श्वास लेने वाले, प्राणों से प्रिय लगने वाले, भोग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। वही कर्म चेष्टाओं का स्वामी होकर हमारा भोक्ता आत्मा सुख प्राप्त करने के लिये आत्मा के हमे परम तेजोमय रस प्रदान करता है।

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे सूर्य और पृथिवी, आकाश और पृथिवी, दिन रात्रि और शरीर मे प्राण और अपान के समान राष्ट्र मे व्यापक शक्ति और अधिकार वाले! राष्ट्र के दुःखों और दरिद्रता आदि दोषो के नाश करने वाले आप दोनों अश्वो वाली, अश्वारोहियों से बनी, सैकड़ो वीर पुरुषों से पूर्ण, इच्छानुकूल प्रेरित सेना से सर्वत्र प्रयाण करो, जिससे हमारा राष्ट्र गवादि पशु और उत्तम भूमि वाला और सुवर्ण आदि धनों से समृद्ध हो।

अथवा—तुम दोनों इच्छानुकूल गति से जाओ। बैलों से जुते और सोने के बने यान को प्राप्त करो।

'शवीरया—'शु गतौ' इत्यस्मात् बाहुलकात् उणादिरीरन् प्रत्ययः, अथवा शवसा बलेन ईर्यते तया। अथवा शतं वीरा अस्याम् इति तकाराकारलोपश्छान्दसः॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः ।
समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

भा०—हे दुःखों के नाशक, तुम दोनों शरीर में प्राण और अपान के समान, राष्ट्र के संचालको ! तुम दोनों का रथ एक जैसा बना हुआ और विना मनुष्य के चलने वाला है । हे वेगवान् साधनों से जाने हारो ! वह रथ अन्तरिक्ष और समुद्र में भी जाता है ।

प्राणापान पक्ष में—हे कर्म श्रम की बाधा के नाशक प्राण अपान ! हे अश्व अर्थात् व्यापक भोक्ता आत्मा को धारण करने वालो ! तुम्हारा रथ रूप देह जब तक समान नामक प्राण से युक्त रहता है तब तक वह कभी नाश को नहीं प्राप्त होता । वह कामनानुसार विषय में गति करता है, इच्छानुसार चलता है । अथवा प्राण वायु या जल के आधार पर या पुरुष या आत्मा या मन के आश्रय पर गति करता है ।

'समुद्रे'—कामः समुद्रः इवेति । न वै कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य । तै० २।२।५।६ ॥ अयं वै समुद्रो योयं वायुः पवते । एतस्माद्वै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि च समुद्रवन्ति । श० १४ । २ । २ । २ ॥ आपो वै समुद्रः । श० ३ । ८ । ४ । ११ ॥ मनो वै समुद्रः । श० ७।५।२।५३॥ पुरुषो वै समुद्रः । जै० उ० ३ । ३५ । ५ ॥

गुरु-शिष्य पक्ष में—विद्या के पारंगत दोनों गुरु शिष्य 'अश्वी' हैं । ज्ञान का रथ दोनों के समान चित्त होने से युक्त होता है । वह सम्बन्ध भी अटूट है, यह समुद्र रस सागर परमेश्वर की साक्षिता पर चलता है ।

न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

भा०—हे उत्तम शिल्पि जनो ! तुम दोनों विनाश न होने योग्य दृढ रथ के सिर या अग्र भाग पर एक और को लगाओ । इससे वह आकाश में भी चला जावे ।

देह पक्ष में—न विनाश करने योग्य, रक्षा योग्य इस देह रूप रथ

के शिरोभाग में अन्य इन्द्रियों से भिन्न क्रिया करने वाले मन रूप साधन को नियमित करते हो। तब ही ज्ञानप्रकाश और परमेश्वर को भी प्राप्त किया जाता है।

सूर्यपक्ष में—इस महान् आकाश के शिर पर एक सूर्य रूप चक्र लगा है जो आकाश में घूमता है।

कस्तं उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

भा०—हे पापों के नाश करने वाली उषा के समान ज्योतिर्मयि! परमेश्वरीय शक्ते! हे स्तुति एवं ज्ञान कथा से अतिप्रिय! हे कभी न मरने वाली अविनाशिनि! नित्ये! तेरे परमानन्द के भोग या सुख को प्राप्त करने के लिए कौन मरणधर्मा प्राणी समर्थ है? कोई भी नहीं। हे विशेष तेजोयुक्त! तेजस्विनि! तू किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है? अर्थात् तू किसी को प्राप्त नहीं हो सकती? अथवा सर्व सृष्टि के कर्त्ता 'कः' सुखमय परमेश्वर को ही प्राप्त है।

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात्।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

भा०—हे व्यापक, आश्चर्यशक्तिशालिन्! एव अति पूजनीय! हे अतिदीप्तिमति ईश्वरीय शक्ते! निश्चय से अति समीप से लेकर दूर तक भी विवेचना करके तेरे स्वरूप को हम नहीं जानते।

त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः।
अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

भा०—हे सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न उषा के प्रभात वेला के समान! तेजोमय ज्ञान प्रकाश से उत्पन्न होने वाली एवं ज्ञानप्रकाश को दोहन या प्रदान करने वाली! तू ऐश्वर्यों और उन ज्ञानों सहित हमें प्राप्त हो। और हमे विद्या, ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान कर।

इसी प्रकार २०-२२ तक तीनों मन्त्र राजशक्ति परक भी हैं। जब

राजा का अभ्युदय होता है तब उसकी ऐश्वर्यशक्तियां, राज्यलक्ष्मी उदित होते समय सूर्य की प्रभा के समान हैं। (१) वह उस समय प्रभावशाली होने से विभावरी और सबसे स्तुति योग्य होने से 'कधप्रिया' अतिद्वंद्वियों के नाशकारी होने से 'उषा' है। (२) अश्व अर्थात् राष्ट्र-रूप एवं अश्वारोही बल चतुरंग सेना रूप होने से 'अश्वी' है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा से उत्पन्न और उसके ऐश्वर्य दोहन करने से 'दिवः-दुहिता' है। वह संग्रामों, ऐश्वर्यों और सुभिक्षों सहित राष्ट्र को प्राप्त हो, वह ऐश्वर्य दे। एकत्रिंशद् वर्गः ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ।

[३१]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ १—७, ९—१५, १७ जगत्यः (१, ३, ५, ६, ७, १५, १७ विराट् । ४, १०, १३ एकोना विराट् । ९, १२ द्व्यूना, २, ११, १४ निचृद्)। ८, १६, १८ त्रिष्टुभः (८ विराट, १६ एकोना विराट्, १८ निचृद्)। अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! तू 'अंगिराः' अर्थात् शरीर में प्राण के समान समस्त ब्रह्माण्ड में स्थित, सूर्य आदि लोकों के संचालक, बलस्वरूप, सबसे प्रथम, जगत् की रचना के भी पूर्व विद्यमान, सब विद्वानों और लोकों का देखने और उपदेश करने वाला, आनन्द, ज्ञान और ऐश्वर्य का दाता, समस्त दिव्य लोकों और विद्वानों का कल्याणकारी और परम मित्र है। हे परमेश्वर ! तेरे बनाये नियम में रहकर ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाले, क्रान्तदर्शी, मेधावी, मरणधर्मा विद्वान् मनुष्य भी अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाले हो जाते हैं।

राजा के पक्ष में—हे अग्रणीनायक ! तू अंगारे के समान तेजस्वी,

सब विजिगीषु राजाओं में सर्वश्रेष्ठ, सबका द्रष्टा, राजा है, तू सबका कल्याणकारी मित्र बन। तेरे शासन में रहकर ज्ञानवान्, विद्वान् हों, और प्रजाजन एवं शत्रुहन्ता वीर पुरुष चमचमाते शस्त्रों वाले हों। अर्थात् ब्राह्मण विद्वान् और क्षत्रिय तीक्ष्णायुध, सदा सन्नद्ध हों।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रस्तमः क॒विर्दे॒वानां॒ परि॑ भूषसि व्र॒तम्।
वि॒भुर्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय॒ मेधि॑रो द्विमा॒ता श॒युः क॑ति॒धा चि॑दा॒यवे॑॥२॥

भा०—हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! तू सबसे प्रथम, आदि मूल कारण 'अंगिरा' शब्दों से कहाने वाले अग्नि, आदित्य, प्राण, आत्मा आदि सबसे उत्कृष्ट, अधिक तेजस्वी क्रान्तदर्शी 'सर्वज्ञ होकर विद्वानों और सूर्यादि लोकों के व्रतों, नियमों, धर्मों को धारण करता रहा है। तू मेधावान् एवं संगत, समस्त भुवन ब्रह्मांडों के भीतर व्यापक, विशेष सामर्थ्यवान् होकर भी उनका सूक्ष्म और स्थूल, दोनों रूपों का बनाने वाला, सबके भीतर प्रसुप्त सत्तारूप से विद्यमान एवं जगत्भर को प्रलय में शान्त प्रसुप्त रूप से सुला देने वाला होकर मनुष्यों के लिए कितने ही प्रकारों से नाना शक्तियों के रूप में दिखाई देता है।

राजा के पक्ष में – शत्रुहन्ता राजा प्रजावर्ग दोनों के प्रति माता के समान पालक एवं माता-पिता और आचार्य दोनों को माता मानने वाला द्विज, युद्ध में शत्रुओं को सुलाने वाला, प्रजाजन के हित के लिये कितने ही प्रकारों से शासन करने वाला है।

भौतिक अग्नि—दो अरणियों के संघर्ष से उत्पन्न और सूर्य दो अयनों का उत्पादक व्यापक, विविध सामर्थ्यवान्, विद्युत्, तेजाब, अग्नि, जाठर आदि नाना रूपों में प्राप्त है।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॒तरि॑श्वन॒ आवि॑र्भव सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्येऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो॥३॥

भा०—हे तेजस्विन्! परमेश्वर! तू अन्तरिक्ष में गतिशील वायु तत्व के भी प्रथम विद्यमान होकर, विविध प्रजाओं और लोकों में व्यापक,

और उनको बसाने, धारण करने वाले सूर्य की ज्योति के भी पूर्व सबमें उत्तम कृति या प्रज्ञा या संकल्प रूप में प्रकट होता है। अर्थात् सूक्ष्म, अग्नि वायु आदि तत्वों की सृष्टि के भी पूर्व परमेश्वर का काम, संकल्प, इच्छा या प्रकृति रूप में प्रकट होता है। [सुक्रतु = प्रकृति। काम, संकल्प, इच्छा अर्थात् 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादि ऐत० उपनिषद्।] सबको अपने भीतर से प्रकट करने और उनको अपने भीतर ले लेने वाले, उत्पादक और प्रलयकारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से गति करती हैं अर्थात् उसी के संकल्प से भोग्यभोक्ता और जीव प्रकृति में प्रथम स्पन्द उत्पन्न हुआ। हे परमेश्वर! तू ही सब जीवों और लोकों के भरण पोषण के कार्य को भी धारण करता है। हे सबको बसाने और सबमें बसने वाले परमेश्वर! तू ही बड़े सूक्ष्म तत्वों को सगत करता है।

— राजा और विद्वान् पृथ्वी पर वेग से आक्रमण करने वाले क्षात्रबल और विविध प्रजा के स्वामी वैश्य दोनों में उत्तम कर्म और प्रजा से सर्वश्रेष्ठ होकर रहे। राजा प्रजावर्ग दोनों उससे चलते हैं। होता पुरोहित द्वारा प्रदत्त राजपद पर समस्त राज्यभार को सहन करता है। हे राजन्! तू अपने से बड़ों का आदर और सत्संग कर।

त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पुरू॒रव॑से सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः।
श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या॑ त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानमय अग्ने! तू ही मननशील बहुत से ज्ञानोपदेशों को धारण करने वाले, उत्तम कर्मों के करने वाले, पुण्याचारी जीव के उपकार के लिये सूर्य और उसके समान ज्ञानप्रकाश के देने वाले बड़े ज्ञान का उपदेश करता है। हे जीव! पुरुष! जब तू माता पिता के घर से मुक्त या पृथक् होता है तब उसी परमेश्वर के दिये ज्ञान के निमित्त तेरे माता, पिता, बन्धु आदि तुझको पहले गुरु, आचार्य के समीप उपनयन द्वारा प्राप्त कराते हैं। और फिर दूसरे उसी परमेश्वर के प्रति

ये प्राणगण या विद्वान् जन तुझको उसी परमज्ञान के लिये ले जाते हैं।

अथवा—जब माता पिता के बन्धन से मुक्त होता है तब उस परमेश्वर के ज्ञान या व्यवस्था से ही पूर्व जन्म और अपर जन्म तथा इस कल्प और अगले कल्प को तेरे कर्म आदि तुझे पुनः प्राप्त कराते हैं।

राजा के पक्ष मे—प्राणी, विद्वान्, उत्तम कार्यकुशल इन सबके हित के लिए तू राजसभा के प्रति आज्ञा देता है। जब तू माता पिता से मुक्त होता है तब तू सूर्य के समान पूर्व और पश्चिम दोनो राष्ट्र या भूमि या सामान्य और विशेष दोनो अधिकारों को प्राप्त होता है।

भौतिक अग्नि जब दोनो उत्पादक अरणियों से मुक्त होता है तब प्रथम आहवनीय के निमित्त और फिर उसे होतागण गार्हपत्य के निमित्त वेदी के पूर्व मे, और पुनः बाद में, पश्चिम भाग मे ले जाते हैं।

त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒मेका॑यु॒रग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ॥५॥

भा०—हे विज्ञानवन्! परमेश्वर! तू सूर्य और मेघ के समान जलों और सुखो के वर्षाने वाला, पोषणकारी अन्नो और पशु समृद्धि को बढ़ाने वाला और ऊर्ध्व मस्तक भाग मे वीर्य को दमन करने वाली, ऊर्ध्वरेता एवं उद्यतम भ्रकुटि या ब्रह्मरन्ध्र मे समस्त प्राणवृत्तियो को रोधने वाले योगों के लिये श्रवण करने, साक्षात्कारक ने और दूसरो के बतलाने योग्य होता है। जो स्वयं पांचों भूत और अहंकार महत् तत्वयुक्त छहों विकारो की आहुति को अपने भीतर ग्रहण करता है। और जो एकमात्र समस्त संसार जीव रूप होकर, समष्टि महान् चैतन्य होकर सबसे पूर्ण अपने भीतर विद्यमान महत् आदि समस्त प्रज्ञाओं को आच्छादित करता, ढकता, वश कर रहा है। वह परमेश्वर सबकी आहुति लेने से सबका मूल कारण 'सत्' है। वह एकायु अर्थात् समष्टि चैतन्य होने से 'चित्' है और सब

उद्यत-स्रुचे—प्राण एव स्रुवः । सोयं प्राणः सर्वाण्यंगाम्यनुसञ्चरति । योषा वै स्रुग् वृषास्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

अध्यात्म में—आत्मा आनन्दघन होने से 'वृषभ' है । वह प्राण-निरोधी योगी को साक्षात् होता है । स्वाप और मरणकाल में मन, चक्षु आदि छहों को अपने भीतर लीन करना जानता है । वह उन सब में या समस्त प्राणियों में निवास करता है ।

त्वम॑ग्ने वृ॒जि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्समृ॑ता॒ हंसि॒ भूय॑सः॥६॥

भा०—अग्रणी ! नायक ! सेनापते ! हे विविध प्रजाओं के द्रष्टा तू समवाय या संघ से बने युद्ध में बल से जाने योग्य मार्ग मे जाने वाले वीर पुरुष को अन्न आदि से पालता पोषता है । और जो तू शूरों से सुखपूर्वक भोगने योग्य चारों ओर से आक्रमण करने योग्य युद्ध में भी मारने में कुशल छोटे छोटे वीर पुरुषों के द्वारा भी एकत्र होकर युद्ध में आये बहुत से शत्रुओं को भी मार देता है । वही तू सेनापति या राजा पद के योग्य है ।

आत्मा परमेश्वर पक्ष में—हे साक्षिन् ! तू काम, क्रोधादि के सब मे फंसकर पापमार्ग से जाने वाले पुरुष को बचा लेने मे समर्थ है । वीरों से लडने में योग्य अति दुःखकर इस संग्राम में एकत्र हुए बहुत से काम क्रोधादि आभ्यन्तर शत्रुओं को हृदयाकाश में स्थिर प्राणों के बल से विनष्ट करता है ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मा मनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥
शश्वद्भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति
कौन्तेय प्रति जानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥ गीता ॥

त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मय॑ः कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! जो पुरुष दोनो जन्मों में सुख प्राप्त करने और उनको उत्तम बनाने के लिए तेरे आनन्द प्राप्त करने के लिए पियास अनुभव करता है, जो तेरे लिए तरसता है उस विद्वान् के हित के लिए तू परम सुख और अन्न, ऐहिक सुख, श्रेय और प्रेय दोनो ही प्रदान करता है। और तू उस मनुष्य को प्रतिदिन मोक्ष के निमित्त ज्ञान को प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता एवं पालन पोषण करता है। तुलना करो गीता० अ० ६। श्लो० ४०–४५।

'उभय जन्म'–अतीत, आगामी, वर्त्तमान ये तीन जन्म और आचार्य प्रदत्त द्विजन्मता ये चारो मिलकर एक जन्म है और मुक्त होने के पश्चात् पुनः जन्म लेना द्वितीय जन्म है ऐसा महर्षि का आशय है।

राजपक्ष में—उभय जन्म अर्थात् द्विपाद्, चतुष्पाद् दोनो प्रकार के जन्तुओं के हितार्थ जो तरसता है राजा उसको सुखसामग्री और अन्न का प्रबन्ध करे। उसके दिनो दिन ज्ञान और ख्याति लाभ के लिए उत्तम चिरस्थायी पद पर स्थापित करे।

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः॥ ८॥

भा०—हे तेजस्विन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! तू स्वयं स्तुति किया जाकर, उच्च आसन पर प्रस्तुत होकर, सबको उपदेश या शासन करता हुआ हमे नाना धनो, ऐश्वर्यों के प्रदान और उत्तम विभाग के लिये यशस्वी उत्तम कार्यकर्त्ता, शिल्पी, कर्मशील पुरुष को नियुक्त कर। और हम सदा नये २ प्रयत्न और उत्साह से अपने अभिलषित कर्म या उद्देश्य को बढ़ावें और अधिक फलदायक बनावें। सूर्य और पृथिवी, स्त्री और पुरुष एवं राजा प्रजा वर्ग दोनो अग्नि आदि दिव्य पदार्थ और दानशील एवं विजयशील और निरीक्षक अधिकारी और ज्ञानी, धनाढ्य पुरुषों द्वारा हमारी भली प्रकार रक्षा करें।

राजा ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये उत्तम शिल्पियों को बढ़ावे। जिससे

प्रजा अधिक उत्पादक श्रम करें। राजा प्रजावर्ग उत्तम रक्षकों और रक्षासाधनों से प्रजा को भूखों मरने और आधि व्याधियों से पीड़ित होने से बचावें।

त्वं नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॒पस्थ॒ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य॒ जागृ॑विः।
त॒नू॒कृद्बो॑धि॒ प्रम॑तिश्च का॒रवे॒ त्वं क॑ल्याण॒ वसु॒ विश्व॒मोपि॑षे ॥९॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर! हे अनिन्द्य, निष्पाप! तू सब सुखों का दाता और अग्नि आदि तत्वों में सदा जागरणशील, सदा क्रियाशक्ति रूप से व्यापक होकर जगत् के पालक सूर्य पृथिवी दोनों के बीच में सर्वत्र व्यापक है। और तू सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला और समस्त प्राणियों और लोकों और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों, देहों को रचने हारा होकर कार्य करने वाले कर्त्ता जीव को ज्ञान प्रदान कर। हे मंगलमय! तू ही इस कर्त्ता जीव के सुख के लिये समस्त प्रकार के ऐश्वर्य सर्वत्र उत्पन्न करता है।

प्रजनश्चास्मि कंदर्पः। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥ इन गीतावचनों के अनुसार—हे अनिन्द्य तेजस्विन्! वीर्य! तू माता पिता दोनों के देहांगों में सुखप्रद एवं कामना युक्त जीवों में जागृत होता है। तू ही सर्वश्रेष्ठ मति वाला जाना जाता है। हे सुखप्रद! तू जगद्विधाता के लिए समस्त जीव संसार को भूमि में अन्न बीजों के समान बीज वपन करता और सृष्टि उत्पन्न करता है।

राजा और आचार्य माता पिता से उतर कर तीसरा 'देव' है। वह सबमें सावधान होकर उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर विद्या में जन्म देने से 'तनुकृत्' है। वह बोध करावे। वही कल्याणकृत्! समस्त ज्ञानैश्वर्य का शिष्यों में मानो वपन करता है। आचार्य का शिक्षण राष्ट्र के नवयुवकों में समस्त जीवों की उन्नति के बीजों को बोने के समान है।

त्वम॑ग्ने॒ प्रम॑ति॒स्त्वं पि॒तासि॑ न॒स्त्वं व॑य॒स्कृत्तव॑ जा॒मयो॑ व॒यम्।
सं त्वा॒ रायः॑ श॒तिनः॒ सं स॑ह॒स्रिणः॑ सु॒वीरं॑ यन्ति व्रत॒पाम॑दाभ्य ॥१०॥३३॥

भा०—हे ज्ञानवन् आचार्य ! परमेश्वर ! राजन् ! तू हमारा उत्तम ज्ञान सम्पन्न पिता के समान उत्पादक और पालक है। तू हममे जीवन बल और ज्ञान का देने वाला है। हम सब तेरे बन्धु या सन्तान के समान हैं। हे अतिप्रशसनीय ! सदा आदरणीय ! सैकडो और हजारो विद्या, धर्म सुख आदि से युक्त ऐश्वर्य व्रतो के पालक, व्रतपति, तुझको प्राप्त हैं।

आचार्य उत्तम ज्ञानी होने से 'प्रमति' विद्या जन्म के दाता होने से 'पिता' ब्रह्मचर्य द्वारा, वीर्य पालक और ज्ञान देने से 'वयः-कृत्' है। शिष्यो मे वह विद्या के बीज बोने से शिष्य उसके 'जामि' उत्तम फलोत्पादक भूमियों के समान, स्नेह से बन्धु और पुत्र के समान हैं। सैकड़ो हजारो गौ आदि से युक्त ऐश्वर्य उसको दक्षिणा मे प्राप्त हो।

इसी प्रकार राजा उत्तम शत्रुस्तम्भक, पालक बलप्रद है। प्रजा उसकी ऐश्वर्यजनक भोगभूमियें हैं, उस उत्तम वीर को सहस्रो ऐश्वर्य प्राप्त हों।

उत्पादक वीर्य जीवनवृद्धि कारक होने से 'वय.कृत्' है। समस्त सैकडो गृहस्थसुख वीर्यवान् पुरुष को प्राप्त होते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

त्वाम॑ग्ने प्रथ॒मम्ा॒युमा॒यवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न्नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म्।
इळा॑मकृण्व॒न्मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत्पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ॥११॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि और विद्वान् जन सबसे आदि मे विद्यमान तुझको ही कर्म-बन्धनो में बंधने वाले जीव गण के इस लोक मे आने, ज्ञान प्राप्त करने और जीवन सुख से व्यतीत करने के लिये प्रजाओं के पालक राजा के समान बतलाते हैं, और वे ही इला स्तुति करने हारी या स्तुति योग्य वेदविद्या को ही मननशील मानवगण के शिक्षा करने वाली बतलाते हैं। जिस प्रकार पुत्र उत्पादक पिता का होता है उसी प्रकार मननशील ज्ञानवान् पुरुष का शिष्य पुत्र के समान ही होता है। उसी प्रकार यह मानववर्ग परमेश्वर और वेद चतुष्टयी, आचार्य और विद्या दोनों का पुत्र है।

राजा के पक्ष में—विद्वान् और विजिगीषु पुरुष राज्यव्यवस्था में बांधने योग्य मानव समाज के ज्ञान की वृद्धि और हित के लिए सबसे प्रथम, उच्चकोटि के पुरुष को ही प्रजाओं का पालक, राजा करे। और 'इला' भूमि और वेदवाणी को मनुष्यों के शासन करने वाली बनावें। प्रजागण अपने अपने पिता के पुत्र के समान पालने योग्य हों।

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१२॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर ! अग्रणी नायक राजन् ! सभाध्यक्ष ! हे सुख के देने हारे, राष्ट्र का विजय करने वाले ! तू ऐश्वर्य से युक्त हम सम्पन्न प्रजाजनों की और हमारे शरीरों और हमारे सन्तानों के शरीरों की अपने पालनकारी साधनों से रक्षा कर। तू हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तति के निमित्त अपने नियम शासन व्यवस्था में विना किसी प्रमाद के, निरन्तर उनके प्राणों की रक्षा करता हुआ भी उनकी गौ आदि पशुओं और चक्षु आदि इन्द्रियों का भी पालक है।

उत्पादक वीर्य पालनकारी गुणों से सन्तति प्रसन्तति और उनके हस्त, पाद, चक्षु आदि तक की निरन्तर पालना करता है। वीर्य में दोष आने से ही सन्तति में व्यंग आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

त्वम॑ग्ने॒ यज्य॑वे पा॒युरन्त॑रोऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे।
यो रा॒तह॑व्योऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न्मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम् ॥१३॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! तू यज्ञशील, उपासक भक्तजन का रक्षा करने वाला है। तू अन्तर्यामी होकर निःसंग, साधक और चार आंखों वाला, अति सावधान, चौकन्ना अथवा चारों दिशाओं में व्यापक होकर हृदय में प्रकाशित होता है। और जो तू वृक के समान हिंसक न होकर अहिंसक सौम्य होकर रहने वाले और सबके पालन पोषण करने वाले पुरुष को ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह तू अपनी स्तुति

करने हारे भक्त के उस नाना प्रकार के मन से विचारित मन्त्र, वेदमन्त्र या मनन संकल्प को भी स्वीकार करता है।

राजा, विद्वान्, सभापति आदि के पक्ष मे—तू सन्धि करने वाले, अपने से संगत पुरुष का शासन करता है। निष्पक्षपात के लिए चौकन्ना एव चारों दिशाओ मे सावधान होकर या चतुरंग बल से युक्त होकर प्रदीप्त तेजस्वी होकर रहता है और वृत्ति से रहित अपने पोषक को ऐश्वर्य देता और किये हुए मन्त्र, विचार को मन से चाहता और मानता है। अथवा चोर आदि वृत्ति से रहित सर्वपोषक तुझको जो अन्नादि प्रदान करता है उस अपने प्रजाजन के किये मन्त्र, सम्मति को मन से स्वीकार करता है। सच्चा रक्षक राजा अपनी पालक प्रजा के मत का शासन-प्रबन्ध में आदर करता है। और भक्षक राजा सदा प्रजा को चूसता, चुराता और प्रजामत का तिरस्कार करता है।

वीर्य-पक्ष में—निःसंग ब्रह्मचर्य के पालक, वीर्यरक्षा करने वाले के शरीर के भीतर वीर्य तेजरूप से चमकता है। वह विद्वान्, अन्नभोक्ता को मनन शक्ति प्रदान करता और उसी मे व्यय हो जाता है।

त्वम॑ग्न उरु॒शंसा॑य वा॒घते॑ स्पा॒र्हं यद्रेक्णः॑ पर॒मं व॒नोषि॒ तत्।
आ॒ध्रस्य॑ चि॒त्प्रम॑तिरुच्यसे पि॒ता प्र पाकं॒ शास्सि॒ प्र दिशो॑ वि॒दुष्ट॑रः ।

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! विद्वन् ! सभाध्यक्ष ! तू जब अति अधिक स्तुतिशील एवं विद्वान् वाणी से स्तुति करने वाले और उस द्वारा ज्ञान प्रदान करने वाले विद्वान् को नाना प्रकार के उस परम, सर्वश्रेष्ठ चाहने योग्य, धनैश्वर्य प्रदान करता है तव तू उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर सब प्रकार से धारण पोषण योग्य राष्ट्र या दुर्बल दीन प्रजाजन का भी पिता, पालक पिता ही कहाता है। और तभी परिपक्व ज्ञान का भली प्रकार उपदेश करता है। और तू विद्वानों मे श्रेष्ठ होकर प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्या के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है, उनसे ऊपर अपना विचार रखता और देता है।

त्वम॑ग्ने प्रय॑तदक्षिणं नरं वर्मे॑व स्यूतं परि॑ पासि विश्वतः॑ ।
स्वादुक्षद्मा यो व॑सतौ स्योनकृज्जी॑वयाजं यज॑ते सोप॒मा दिवः॑॥१५॥३४

भा०—हे अग्ने! ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वान् यज्ञकर्त्ता और यज्ञाग्नि जिस प्रकार दान-दक्षिणा देने वाले धार्मिक पुरुष की रक्षा करता है और खूब दृढता से सीया हुआ कवच जिस प्रकार युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू परमेश्वर अपनी समस्त चित्तवृत्ति, क्रियाशक्ति और वीर्य को अच्छी प्रकार नियम मे रखने वाले साधक पुरुष की सब प्रकार से रक्षा करता है। और जो पुरुष अपने निवास योग्य गृह या देह मे उत्तम स्वादयुक्त, पुष्टिकारक जल, अन्न खाता और अपने आपको सुखी रखता हुआ, प्राण धारण करने के निमित्त आजीवन यज्ञ करता है वह सूर्य के समान सुखप्रद जाना जाता है। इसी प्रकार राजा भी उत्तम शास्त्रादि ज्ञान के देने वाले पुरुष की कवच के समान रक्षा करे। अपने राष्ट्र मे सब प्रजा को सुख दे. समस्त प्राणियों को अन्न दान करे। वह सूर्य के समान दानशील तेजस्वी है। इसी प्रकार शरीर मे जाठर अग्नि और वीर्य भी सयतवीर्य वाले यति की रक्षा करता, उत्तम अन्न के भोक्ता को आजीवन सुखपूर्वक प्राण प्रदान करता है, वह 'सूर्य' या स्वर्ग के समान है। आरोग्य परमं सुखम्। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

इमाम॑ग्ने श॒रणिं॑ मीमृषो न इ॒मम॑ध्वा॑नं॒ यमगा॑म दू॒रात् ।
आ॒पिः पि॒ता प्रम॑तिः सो॒म्यानां॒ भृमि॑रस्यृषि॒कृन्मर्त्या॑नाम् ॥१६॥

भा०—हे अग्ने! ज्ञानवन्! परमेश्वर, विद्वन्! तू हमारे नाश करने वाली इस वर्तमान अविद्या को या हिंसाभाव को दूर कर। जिस तेरे पास हम इतनी दूर से भी इतना लम्बा मार्ग चल कर तुझे प्राप्त हुए हैं वह तू ज्ञानवान् पुरुषों मे भी सबसे अधिक उत्कृष्ट ज्ञान वाला, पालक और सदा आप्त, बन्धु है। तू ही मनुष्यों के हित के लिये सूर्य के समान सर्वत्र व्यापक या सत्यासत्य के विवेचक तर्कों, युक्ति प्रमाणों का उपदेष्टा है।

शरीर-गत वीर्याग्नि हमारे जीवन नाश को दूर करता है जिससे हम लम्बे जीवनपथ को पार कर लेते हैं। वह शरीर का बन्धु, पालक है। सोम्य, वीर्य रक्षक पुरुषों का पालक और मनुष्यों में ज्ञानी, ऋषियों और शरीर में इन्द्रियों, प्राणों का उत्पादक और बलकारक है।

मनुष्वद॑ग्ने अङ्गिर॒स्वद॑ङ्गिरो ययाति॒वत् सद॑ने पूर्व॒वच्छु॑चे।
अच्छ॑ या॒ह्या व॑हा॒ दैव्यं॒ जन॒मा सा॑दय ब॒र्हिषि॒ यक्षि॑ च प्रि॒यम् १७

भा०—हे अग्ने ज्ञानवन्! अग्नि के समान तेजस्विन्! हे अङ्गिरः, सूर्य के समान प्रकाश वाले! वायु के समान समस्त संसार के अंग अंग में व्यापक! हे शुचे परम पावन! पवित्र आचार वाले! तू मननशील पुरुषों से युक्त होकर, तेजस्वी, बलवान् पुरुषों से युक्त होकर, विद्याओं के पार और संग्राम में आगे बढ़ने वाले वीर पुरुषों से युक्त होकर और अपने से पूर्व विद्यमान गुरु, माता, पिता और पूज्य पुरुषों से युक्त होकर राजसभा-भवन में या मुख्य पद पर हमें प्राप्त हो। तू विद्वानों और राजाओं के हितकारी पुरुषों को प्राप्त करा। और सबके प्रिय, पुरुष को आसन पर, प्रजाजन के ऊपर शासन के लिये स्थापन कर और उसको उचित वेतन आदि प्रदान कर। अथवा मननशील, तेजस्वी और प्रयाण में कुशल पुरुष के समान राजसभा में या मुख्य आसन पर आ।

वीर्याग्नि पक्ष में—शुक्र रूप अग्नि अंग अंग में व्याप्त रस या बल के सहित, क्रिया शक्ति से युक्त होकर गृहरूप देह में प्राप्त है। सन्तति जनन में कुशल उत्पादक अंग को प्राप्त होता और सुख प्रदान करता है।

ए॒तेना॑ग्ने॒ ब्रह्म॑णा वावृधस्व॒ शक्ती॑ वा॒ यत्ते॑ चकृ॒मा वि॒दा वा॑।
उ॒त प्र णे॑ष्य॒भि वस्यो॑ अ॒स्मान्त्सं नः॑ सृज सुम॒त्या वाज॑वत्या १८।३५

भा०—हे अग्ने, ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू इस महान् वेद ज्ञान, महान् ब्रह्म अर्थात् संचालक बल और ब्राह्म बल से बढ़। हम जो कुछ भी तेरे निमित्त शक्ति से और ज्ञान से करें तू तो हमें उत्तम धन

ऐश्वर्य प्राप्त करा। और हमें उत्तम मति, बुद्धि और ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त कर। वीर्याग्नि पक्ष में ब्रह्म=अन्न। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[३२]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुभः। १, ३, ५, ७ विराट् । २, ४, ८, ९, १०, १२, १३, १५ निचृद् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

भा०—मैं इन्द्र, सूर्य के समान तेजस्वी, पराक्रमी, वायु के समान बलवान्, राजा और सेनापति के बलयुक्त उन कर्मों का उपदेश करता हूँ जिन अति उत्तम बल के कार्यों को छेदन भेदन करने में कुशल वह करता है। [१] जिस प्रकार सूर्य या वायु मेघ को प्रकाश और प्रबल वेग से आघात करता है उसी प्रकार जीता, न छोड़ने योग्य शत्रु को राजा भी प्रताप और पराक्रम से आघात करे। जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ पर आघात करके तदनन्तर उसमें से जलों को नीचे गिराता है उसी प्रकार पराक्रमी राजा भी शत्रु-सेनाओं को बार बार पीड़ित करे। और विद्युत् और वायु जिस प्रकार पर्वतों और मेघों की कोखों और तटों को विदीर्ण करता है और उनमें से नदियों और जल-धाराओं को बहा देता है उसी प्रकार राजा भी पर्वत के समान अचल, दृढ, शत्रु-राजाओं के कोखों या पार्श्व के दृढ़ रक्षा स्थानों को तोड डाले और शत्रु-सेना के प्रवाहों को छिन्न भिन्न कर दे। अथवा प्रजा के हित के लिये पर्वतों के पासों से नदी, नहरों को बहा दे।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२॥

भा०—पर्वत या मेघमण्डल में आश्रय लेने वाले मेघ को जिस प्रकार कान्तिमान् सूर्य या वायु आघात करता है और राजा के लिये त्वष्टा शिल्पी जिस प्रकार शस्त्र बनाता है उसी प्रकार वायु घोर

गर्जना करने वाले और अतितापदायी विद्युत् रूप वज्र को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार विजयशील राजा पालन करने में समर्थ गिरि पर्वत या बडे राजा के आश्रय पर रहने वाले अपने, न जीता छोड़ने योग्य, वध्य शत्रु को मारे। और त्वष्टा, कारीगर शिल्पी उसके मारने के लिये अति गर्जनाकारी, अतिताप या अग्नि से चलने योग्य शस्त्र को बनावे। और जिस प्रकार दुधार गौएं दूध की धाराएं प्रेमवश बहाती हुई बछड़े के पास वेग से जाती है उसी प्रकार जलधाराएं भी प्रकट रूप में, अति शीघ्र बहती हुई अन्तरिक्ष और समुद्र को पहुंच जाती हैं, उसी प्रकार प्रजाएं शीघ्र ही प्रेम से वशीभूत अतिद्रवीभूत होकर समुद्र के समान गम्भीर राजा के पास आवें।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिवत् सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ २

भा०—वृष, वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ जिस प्रकार गौओं में वीर्य सेचन करता है, उसी प्रकार भूमियों को सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान आचरण करने वाला सूर्य तीनों लोकों में अथवा तेज, किरण, वायु द्वारा उत्पन्न जगत् के जलीय अंश को प्राप्त करता और पान कर लेता है। और जल और तेज से पूर्ण सूर्य मेघ का अन्त कर देने वाले विद्युत् रूप तेजोमय वज्र को लेता है और मेघों में सबसे प्रथम उत्पन्न महा मेघ को आघात करता है। उसी प्रकार विजयेच्छु राजा बरसते मेघ के समान शस्त्र वर्षण में कुशल होकर, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, प्राप्ति, पालन और शत्रुनाश इन तीनों कार्यों के निमित्त अथवा सेना, राष्ट्र और जा इन तीनों के आधार पर सोम अर्थात् राष्ट्र को स्वीकार करे, और उसका भोग करे। वह ऐश्वर्यवान्, समृद्ध होकर शत्रु के वर्जन करने में समर्थ विद्युत् के समान तीव्र, तेजस्वी वाण आदि अस्त्र को ले और अत्याज्य, अवश्य वध करने योग्य शत्रुओं में से भी सबसे मुख्य, प्रथम कोटि में दीखने वाले प्रबलतम शत्रु को मारे।

यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनामर्मिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से॥४॥

भा०—हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! सूर्य के समान तेजस्विन्! राजन्! जिस प्रकार मुख्य प्रबल मेघों वा अन्धकारों को नाश करके वायु सूर्य को उषा-काल और आकाश को प्रकट करता है और समस्त मायावी रात्रिचरों की हिंसाकारी चेष्टाओं का नाश करता है, बाद में अन्धकार कहीं दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार तू भी अवश्य वध करने योग्य शत्रुओं में से सबसे प्रबलतम शत्रु को जब हे राजन्! तू मारे तब मायावी कुटिलाचारी लोगों की छल, कपट आदि कुटिल आचरणों का अच्छी प्रकार नाश कर। और उसके अनन्तर सूर्य के समान तेजस्वी आकाश के समान विस्तृत और उषाकाल के समान तमोनाशक अपने स्वरूप को प्रकट कर। और तभी तू अपने राष्ट्र में निश्चय से शत्रु को भी नहीं प्राप्त कर सकेगा। अर्थात् शत्रु का नाश होकर उसका मिलना असम्भव हो जाय।

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः॥५॥३६

भा०—इन्द्र, सूर्य और तीव्र वायु जिस प्रकार नाना कन्धों के समान उठे शिखरों वाले, आकाश को घेर लेने वाले मेघ को बड़े भारी वज्र, विद्युत् से आघात करता है और वह मेघ पृथिवी के ऊपर पानी के में गिर पड़ता है, उसी प्रकार शत्रुहन्ता राजा नाना सेनास्कन्धों या सेनांगों से युक्त बल और ऐश्वर्य में बहुत अधिक बढ़ने वाले शत्रु भी बड़े भारी हिंसाकारी शस्त्रसमूह से आघात करे, मारे। कुठार से प्रकार वृक्ष के डालों को काट दिया जाता है इसी प्रकार तीक्ष्ण से शत्रु के कन्धे और सेना के स्कध और अंग विशेष रूप से काट दिये जायं। जिससे अवश्य वध योग्य शत्रु पृथिवी के ऊपर पड़ा सदा के लिए सोये।

वृत्रं—वृत्रो वृणोतेर्वा, वर्त्ततेर्वा, वर्धतेर्वा, यदवृणोत्। तद् वृत्रस्य

वृत्रत्व यदवर्त्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । यदवर्धत तद् वृत्रत्वमिति विज्ञायते । निरु० २ । १७ ॥ इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६॥

भा०—बुरे, पापमय मद, भोगविलास से तृप्त होने वाला व्यसनी, एवं अपनी प्रजा पर अत्याचार और अन्याय के उपायो से अपने भोग विलास पूर्ण करने वाला पुरुष बडे वीर, अनेको शत्रुओ को पीडन करने मे समर्थ, उत्तम गुणो, उत्तम ऐश्वर्यों के अर्जन करने वाले अथवा ऋजु, सरल मार्ग पर जाने वाले धर्मात्मा, नीतिमान्, सग्रहशील पुरुष को लडना न जानने वाले अकुशल योद्धा के समान युद्ध मे ललकार ले। तो वह दुर्व्यसनी पुरुष इस महावीर धर्मात्मा पुरुष के शस्त्रास्त्रो के एक साथ होने वाली कडी मार या एक साथ आने वाले प्रहार को पार नहीं कर सकता। वह उससे बच नही सकता। सूर्य या वायु का शत्रु मेघ जिस प्रकार वज्र से ताडित होकर नदियो को और उनके तटो को तोड़ फोड़ देता है और नदियां विक्षुब्ध होकर भागती हैं उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् धर्मात्मा राजा का वह शत्रु दुर्व्यसनी विरोधी भी अपनी अति पीडित सेनाओ, प्रजाओं को पीस डालता है, मरवा डालता है और वे मर्यादा तोडकर भागने लगती है।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥७॥

भा०—यदि वे पाव का लङ्गडे के समान निराश्रय, वे हाथों का लूला, नि.शस्त्र, अल्पसेना वाला होकर कोई दुर्मद पुरुष पूर्वोक्त ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा के विरुद्ध सेना सहित युद्ध करे तो इस धार्मिक, बलवान् राजा का शस्त्र, सेनाबल, वीर्य, पराक्रम उसको मेघ को जिस प्रकार वायु का तीव्र विद्युत् मेघ के उठे कन्धो पर वज्र-आघात करता है, उसी प्रकार उसके कन्धे या अवयव पर सब तरफ से उसे प्रहार

करता है। और जिस प्रकार बधिया, नपुंसक बैल खूब बलवान् सांड के मुकाबले पर आकर जगह-जगह विविध प्रकार से पटका जाकर लोट-पोट हो जाता है उसी प्रकार वह बधिया, नपुसक बैल के समान निर्बल पुरुष भी सांड के समान बलवान् राजा के मुकाबले पर आना चाहता हुआ बहुत से स्थलों पर विविध प्रकार से परास्त होकर बिजली की मार खाये हुए मेघ के समान भूमि पर आ पडता है।

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥

भा०—जलधाराएं जिस प्रकार प्रजाओं के चित्त पर चढ़ी, अति चित्ताकर्षक होकर इस पृथ्वी के साथ सोये हुए प्रशान्त, टूटे तटवाले महानद को उसके तट तोड़कर उससे जा मिलती हैं। उसी प्रकार सेनाएँ भी मनोरथ पर चढी हुई इस पृथ्वी के ऊपर सोते हुए टूटे फूटे देह को रण मे छोडकर भाग जाती हैं। और जिस प्रकार मेघ जिन जलधाराओं को अपने बड़े भारी सामर्थ्य से थामे रहता है, उनका धारण करने वाला मेघ वज्र से ताड़ित होकर पाँवों तले आ पडता है, उसी प्रकार वर्द्धमान शत्रु अपने बढे हुए सामर्थ्य से जिन सेनाओं के ऊपर सेनापति, शासक रूप से रहता है उनका ही वह अत्याज्य स्वामी युद्ध में पछाड़ खाकर पांवों तले रोंदा जाता है।

'पत्सुतःशीः'—पादशब्दस्य सप्तमीबहुवचने पदादेशे कृते इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते इति सप्तम्यर्थे तसिल्। लुगभावश्छान्दसः। अथवा 'सु' इत्युपजनः।

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९॥

भा०—इन्द्र, तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार इस अन्तरिक्ष रूप मेघ की उत्पादक भूमि पर अपने आघातकारी विद्युत् आदि का प्रहार करता है तब अन्तरिक्ष को ढांप लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने

वाली अन्तरिक्ष-भूमि भी जल को नीचे गिरा देती है, मानो स्वयं मर सी जाती है। तब अन्तरिक्ष रूप माता तो ऊपर रहती है और उसका पुत्र मेघ नीचे आ पडता है। तब बछड़े सहित गाय के समान वह खण्डित वृत्र, माता के नीचे ही पडा रहता है। इसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा इस पृथिवी के ऊपर अपना शस्त्र प्रहार करता है और बढ़ते, उमड़ते शत्रु को अपने पुत्र के समान गोद या बीच मे लिये सेना भी निम्न, बलहीन हो जाती है। उस समय उस सेनापति को अभिषेक करने वाली सेना तो उठी खड़ी रहती है और उसका पुत्र के समान प्रिय अथवा सेना के पुरुषो का पालनकर्त्ता, सेनापति नीचे गिरा होता है। उस समय वह सेना खण्डित बल होकर बछड़े सहित गाय के समान खडी रहती है।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०।२७॥

भा०—सूर्य को ढक लेने वाले मेघ का शरीर, स्वरूप कहीं भी स्थिति न पाने वाले, अस्थिर, कही भी न बैठने वाले, निराश्रय वाष्प-रूप जलों के बीच मे गुप्त, अप्रत्यक्ष, छुपे रूप से रक्खा रहता है। जब जलधाराएं होकर विविध रूप से वह जाती हैं तब विजली से पछाड़ खाया हुआ मेघ विस्तृत, गिरे जल के रूप में आ गिरता है। ठीक उसी प्रकार जब घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु का शरीर भी कहीं भी आसन वृत्ति से स्थिर न होने वाली और कहीं भी निवेश या छावनी बनाकर न बैठने वाली, यात्रा करती हुई क्षुद्र आस्था या स्थिति वाली सेनाओं के बीच मे मृत रूप से, बेनाम निशान होकर गिर पडता है तब सेनाएं भी जलधाराओ के समान विविध दिशाओ में भाग जाती हैं। और प्रबल शत्रुहन्ता राजा के द्वारा आघात खाया हुआ शत्रु गहरे अन्धकार, खेद, मरण मे पडा रह जाता है। अर्थात् निर्बल सेनाओं को देख कर विजिगीषु उसके मुख्य सेनापति पर आघात करे तो सेनाएं अस्थिर

स्वभाव होने से आप ही भाग जाती हैं और शत्रु मरा पड़ा रहता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

दासपत्नीरहिंगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११॥

भा०—जिस प्रकार वणिक् जनों या पशुओं के व्यापारी से रोकी हुई गौएं निश्चेष्ट खड़ी रहती हैं और जिस प्रकार मेघ में सुरक्षित जल-धाराएं अन्तरिक्ष में रुकी खड़ी रहती हैं, नीचे नहीं गिरतीं, उसी प्रकार आश्रय रक्षा के देने वाले राजा या सेनापति को अपना पति पालक मानने वाली, आक्रामक शत्रु द्वारा सुरक्षित रहकर सेनाएं युद्ध में स्थिर भाव से रुकी खड़ी रहती हैं। और जो जलों के रहने का अवकाश ढका रहता है उसको बहने से वारण करने वाले कारण को आघात करने वाला विद्युत् और वायु दूर कर देता है। उसी प्रकार सेना जनों का जो भरण पोषण करने वाला साधन ढका हुआ, सुरक्षित रूप से होता है उस शत्रु का प्रबल हन्ता राजा मार कर दूर कर देता है। अर्थात् पालक सेनापति ही सेनाओं को रोके रहता है। प्रबल राजा उसको मार कर अधीन सेनाओं का नाश करता है वा भय से भगा देता है।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

भा०—हे इन्द्र! वीर राजन्! जब विजय करने की इच्छावाला शत्रु अकेला ही तेरे प्रति आघात करता है तब तू भी अश्वारोही सेना में कुशल होकर एकमात्र या शस्त्रबल, वज्र के आश्रय पर ही सेना द्वारा वरण करने और शत्रु को वारण करने में समर्थ हो। और तू अकेला शत्रु के गौ आदि पशुओं तथा शत्रु की भूमियों को भी विजय कर। हे शूरवीर! तू ही भूमि और आकाश के सात प्रकार जलाशयों के तुल्य तीव्र वेग से जाने वाले सेना समूहों को चलाने के लिए ऐश्वर्य को प्रदान करता है।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

भा०—जब सूर्य और मेघ दोनो युद्ध करते हैं तब इस सूर्य तक न बिजली और न गर्जना ही पहुचती है। जिस जल वृष्टि और अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत् को भी मेघ चारो ओर फेंकता है वह भी सूर्य तक नहीं पहुंचती। और इन सब अपूर्ण, अस्थायी चेष्टाओ पर प्रकाशमान सूर्य विशेष रूप से जय पाता है। इसी प्रकार जब ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा और आक्रमणकारी शत्रु दोनो परस्पर युद्ध करते हैं तब जिस जलवृष्टि के समान फेंकी शरवृष्टि को और घोर गर्जना करने वाले महास्त्र, शतघ्नी को भी वह फेंकता है तब न वह बिजली के शस्त्र और न वह गर्जनाकारी शस्त्रास्त्र उस तक पहुचते हैं। बल्कि विविध ऐश्वर्यों का स्वामी वह उन बल और शक्ति से रहित, अपूर्ण शत्रु-सेनाओं को विशेष रूप से जीत लेता है।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

भा०—हे इन्द्र, सूर्य के समान तेजस्विन्! शत्रुदल के नाश करने वाले राजन्! यदि शत्रु पर प्रहार करते हुए तुझे भय व्याप जाय तो मेघ के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले किसको तू देखता है? जिस प्रकार बाज डरकर निन्यानवे अर्थात् असंख्य नदियो को, अनेक लोकों को पार कर जाता है उसी प्रकार यदि तू भय करे तो तू भी सैकडो नदियों और जनपदो को छोड भागे। इसलिये निर्भय होकर शत्रु को मार। जब वीर पुरुष को भय व्यापता है तो वह मैदान छोडकर बुरी तरह से भागता है। पर प्रबल वीर के सिवाय शत्रु पर आक्रमण भी कौन करेगा यह सोचकर वह धैर्य से युद्ध करे, अधीर न हो।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

भा०—इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, सूर्य के समान तेजस्वी वज्र या शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ मे वश किये दीप्तिमान् राजा शत्रु पर आक्रमण करके, सफल होकर युद्ध समाप्त कर देने वाले पराजित दल का और शान्ति युक्त तपस्वी जनो का और हिंसाकारी सेनादल का भी स्वामी होकर रहता है। और वह ही प्रजाओं के बीच राजा होकर रहता है। चक्र के अरो पर जिस प्रकार लोहे का हाल चढ़ा रहता है उसी प्रकार वह राजा भी उन समस्त प्रजाओ को चारों ओर से घेरे रहता, उन पर वश किये रहता है। अथवा 'अवसित' चराचर जगत् का और 'शृङ्गी' सींगवाले पशुओं का भी वह राजा होता है, वह उन पर वश किये रहता है।

अध्यात्म मे और परमेश्वर पक्ष मे भी इन १५ मन्त्रों की उत्तम योजना है, जो स्थानाभाव से नहीं लिखते।

इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः।

अथ तृतीयोध्यायः।

[३३]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुभः (१, २, ४, ७, ८, ९, १२, १३ निचृद्। ५, ११ विराट्। १४, १५ एकोना विराट)।

पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

एतायामोपं गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आओ। हम अपनी इन्द्रियों, वाणियां और उत्तम स्तुतियों की कामना करते हुए उस परमेश्वर की शरण को प्राप्त हों। वह हमारे उत्कृष्ट कोटि के बुद्धि और ज्ञान को अच्छी प्रकार बढ़ावे। उसका कोई भी मारने वाला नहीं। वह नित्य सदा अमर,

अजातशत्रु है। और इस ऐश्वर्य, वेदवाणियो और इन्द्रियों के सर्वोच्च ज्ञान को बहुत बार हमे प्रदान करता है। वह ज्ञान को देता और अज्ञान का नाश करता है।

राजा के पक्ष मे—हम गवादि पशुओं और भूमियो की इच्छा करने वाले राजा को प्राप्त करें जो हमारे उत्कृष्ट ज्ञान और शत्रुस्तम्भक बल को बढ़ावे। वह अजातशत्रु हो। वह अपने ऐश्वर्य और पशु सम्पदा के उत्तम ज्ञान को नाना प्रकार से दान करे।

आचार्य-पक्ष में—हम वेदवाणियो के इच्छुक होकर उत्तम ज्ञानवर्द्धक अहिंसक आचार्य को प्राप्त हो। वह वाणियों के उत्तम ज्ञान को प्रदान करे।

उपेदृहं धनुदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२॥

भा०—बाज पक्षी जिस प्रकार अपने प्रिय निवासस्थान को जाता है मैं उसी प्रकार ऐश्वर्य देने वाले चक्षु आदि इन्द्रियों से न दीखने वाले, अगोचर अथवा अनुपम, उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को उसके गुणो का बहुत अधिक ज्ञान कराने वाले, उपमानों द्वारा वर्णन करने वाले स्तुति-वचनों से प्रभु की नमस्या, वन्दना करता हुआ अतिवेग से विह्वल होकर उस प्रभु को प्राप्त होऊं जो प्रति प्रहर या इस संसार मे गुण, स्तुति करने वाले भक्तो के सदा स्मरण और स्तुति करने योग्य होता है।

राजा के पक्ष मे—शत्रुओ से अजेय, धनदाता राजा को मैं प्रिय वसतिस्थान को जाने वाले पक्षी के समान प्राप्त होऊं। नाना उपमाओं से युक्त स्तुतियो से उसकी स्तुति करूं। वह विद्वानो का भी इस जगत् या लोक मार्ग मे पूज्य होता है।

नि सर्वसेन इषुधीरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

भा०—समस्त सेनाओ का स्वामी, सब तरफ धावा करने वाली सेनाओं का स्वामी राजा जब बाणों से भरे तर्कसों को बांध लेता है तब

प्रजाओं का स्वामी जिसका तेज चमकता है, वह भूमियों और गौ आदि पशुओं को प्राप्त कर रक्षा करता है । हे ऐश्वर्यवन्! हे अति अधिक शक्ति में बढ़े हुए! तू बहुत अधिक सुन्दर, भोगने योग्य उत्तम धन को प्रदान करने वाला होकर हमारे लिये वैश्य के समान बदले में कुछ चाहने वाला मत हो । अथवा सत्य व्यवहारी होकर हमारे विपरीत मत हो । परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर इन अर्थात् सूर्य से युक्त समस्त जगतों का स्वामी, आत्मा से युक्त समस्त प्राणियों का स्वामी होने से 'सर्वसेन' है । व्यापक और ज्ञानवान् होने से 'अर्य' है । वह जिस पर प्रसन्न होता है उसको ज्ञान वाणियां या प्रकाश की किरणें प्रदान करता है । हे परमेश्वर! तू बहुत ऐश्वर्य देने वाला सबसे महान् है । तू हमसे वैश्य के समान बदले में कुछ नहीं मांगता ।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रु के विनाश करने हारे! सूर्य के समान तेजस्विन्! शक्तिशाली प्रयत्नों और सहायकों सहित अकेला विचरता हुआ भी तू आघातकारी, कठिन शस्त्र से अन्यों को नाश करने वाले चोर डाकू के समान पीड़ाकारी धनैश्वर्य युक्त मदमत्त पुरुष को भी अवश्य विनाश कर । और तू प्रजा में अधर्म से घुस कर रहने वाले पुरुषों का विनाशक होकर तेरे धनुष के ऊपर अयज्ञशील, अधार्मिक, परस्पर संगति न करने वाले, परस्पर द्रोही अथवा राजा को कर न देने वाले, दूसरों के माल स्वयं चाबने वाले, क्षुद्र भोगी पुरुष, स्वल्प ऐश्वर्य वाले, अल्पधनी, दरिद्र विविध रूप से भी आक्रमण करें तो वे क्षुद्रभोगी लोग मरण को प्राप्त हों ।

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! राजन्! परस्पर मिलकर संगति

में रहने वाले, सुसगठित एवं धर्माचरणशील ईश्वरोपासकों से स्पर्धा करने वाले, उनके मुकाबले पर आने वाले, असंगठित, अदानशील, अधार्मिक पुरुष सदा तुझसे अपने सिर अवश्य परे फेर लेते है। वे मुख फेर कर परास्त हो जाते हैं। हे अश्व, हस्ती और वीर पुरुषो की सेनाओ के स्वामिन्! हे युद्ध मे स्थिर रहने वाले! तू आकाश से जिस प्रकार वायु मेघो को उडा देता है उसी प्रकार हे अति बलवन्! शत्रुओ को तपाने हारे! तू पृथिवी और आकाश दोनों में से नियम, सदाचार से रहित, व्रत या प्रतिज्ञा के पालन न करने वाले शत्रुओ को सर्वथा उड़ा दे, कठोर आज्ञा से दण्डित कर और आग्नेयास्त्रो के द्वारा विनाश कर दे ॥ इति प्रथमो वर्गः ॥

युयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६॥

भा०—जब नवशिक्षित, नई भूमि को प्राप्त या नई ही चाल या नई गति या युद्ध शिक्षा को सीखने वाले भूमि निवासी लोग अनिन्द्य, दोषरहित धार्मिक राजा की सेना से युद्ध करना चाहते हैं तो वे उसको प्रयत्न करते या प्रयाण करते है, तब बलवान् से लड़ने वाले नपुंसक, बलहीन पुरुषो के समान परास्त होकर शत्रु परम ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती राजा से भय खाते हुए नीचे उतरने वाले मार्गों से जलधाराओं के समान भाग जाते है।

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राज्य के स्वामिन्! तू इन रोते हुए और खाते पीते और नाना विनोद क्रीडाएं करते हुए भोगी विलासी पुरुषों को इस लोक, पृथ्वी के परे, पृथक् करके उनसे युद्ध कर और प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुष को अपने प्रखर तेज से सूर्य के समान जला दे और अभिषेक करने वाले एव तेरी स्वामी रूप से गुण स्तुति करते और

प्रस्ताव करने वाले विद्वान् गण के उपदेश और उत्तम ख्याति को ध्यान में रख, उसकी रक्षा कर।

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥८॥

भा०—पृथिवी लोक, उसमें रहने वाले प्रजाजनों के ऊपर शासन प्रबन्ध को करने वाले और सुवर्ण के बने मणि के समान हितकारी और मनोहर, शिरोमणि नायक से शोभा को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होते हुए वीर पुरुष भी राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी को नहीं लांघते, उससे बढ़ नहीं सकते। वह तेजस्वी बाधक शत्रुओं तथा अपने तक पहुंचने वाले जनों एवं सत्यासत्य के विवेचक पुरुषों के भी ऊपर अपने सूर्य के समान प्रखर तेज से शासन करता है, उनको अपने अधीन रखता है।

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन्! राष्ट्र-पालक राजन्! जिस प्रकार सूर्य प्रकाश और पृथिवी या आकाश और पृथिवी दोनों का अपने महान् सामर्थ्य से भोग या पालन करता है उसी प्रकार जब तू अपने महान् सामर्थ्य से राजा और प्रजा दोनों वर्गों को सब प्रकार से सुखपूर्वक भोगता और पालता है तब हे विद्वन्! ऐश्वर्य वाले शत्रुहन्तः! तू ज्ञानरहित पुरुषों को ज्ञान करने वाले विद्वान् वेदों और वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सब प्रकार से उपदेश कर और प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष को अपने बड़े शस्त्रों से नीचे गिरा कर भस्म कर डाल।

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन्।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥

भा०—मेघ जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों के ही सीमा तक नहीं पहुंचते और गर्जना, अन्धकार आदि चमत्कार चेष्टाओं से भी धन और अन्न की देने वाली पृथिवी को या तेजप्रद सूर्य को वे नहीं दाब

सकते। उनके प्रति वर्षणशील सूर्य अपने सहायक वज्ररूप वायु या विद्युत् का प्रयोग करता है और अपने तीव्र तेज से अन्धकारमय गहरे मेघ से वेग से जाने वाली जलधाराओ को सब तरह से गौओ को गवाले के समान दूह लेता है, उनको जलरहित कर देता है। उसी प्रकार जो दुष्ट पुरुष न्याय, बल, पराक्रम, तेज और पृथिवी के शासनोपयोगी सीमा या मर्यादा को नही प्राप्त कर सकते, नहीं पालन करते और जो अपनी कुटिल बुद्धियो, कपट छल से भरी चेष्टाओ से ऐश्वर्य प्रदान करने वाली पृथ्वी या राजशक्ति के भी अधीन नही रहते उन पर बलवान् राष्ट्र-पति पापो से निवारक अस्त्र बल का प्रयोग करे और अपने तेज से अन्ध-कार के समान क्लेशदायी शत्रु से वाणियो, भूमियो और पशु आदि समृद्धियों को सब प्रकार से दोह ले, उनका ऐश्वर्य प्राप्त स्वयं करके शत्रु की भूमियों का सर्वस्व प्राप्त कर ले। इति द्वितीयो वर्गः ॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११॥

भा०—अन्नों के प्रति या पृथिवी के प्रति जिस प्रकार जलधाराएं बहती हैं और इस मेघ का जल वा शरीर नावों से पार उतरने योग्य बडी २ नदियों के बीच मे भी सब ओर से आकर बढता है और सूर्य या वायु अपने सहज अति बलशाली आघातकारी शस्त्र, वज्र, विद्युत् से अपने प्रकाशो को उस मेघ के प्रति ताडित करता है उसी प्रकार समस्त आप्त जन और धाराओं के समान कुशल सेनाए अपने आपको धारण करने वाले प्रभु को या 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण पोषण करने वाले अन्न या वेतनादि वृत्ति की तरफ वह आती हैं, चली आती हैं। इस सूर्य के समान प्रतापी राजा या मेघ के समान वर्षणकारी प्रजापालक पुरुष का बल भी वेग से बहती बडी नदियो के समान बलशाली या आज्ञा पर चलाई जाने योग्य सेनाओ के बीच बढ जाता है। शत्रुहन्ता राजा अपने साथ चलने वाले स्तम्भक सेना, बल वा ज्ञान से और अति बल-

शाली, आघातकारी शस्त्र से कुछ दिनो मे ही उस अपने शत्रु को मुकाबला करके मार लेता है।

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृह्ळा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य भूमि के गढे, ताल, सरोवर, समुद्रादि मे विद्यमान जल के घनीभूत जलो को सब प्रकार से छिन्न भिन्न करता है और जिस प्रकार सूर्य, वायु और विद्युत् पृथिवी के जल को सोखने वाले शिखरों वाले मेघ को छिन्न भिन्न करता है इसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी भूमि के विजय करने मे समर्थ होकर पृथिवी के भीतर दुर्ग बनाकर छुपने वाले दृढ दुर्गों और उसके दृढ अगो को खूब वेध और प्रजा के समस्त सुख-ऐश्वर्यों को सोख लेने वाले, रक्तशोषी, अत्याचारी, हिंसाकारी साधनो मे युक्त पुरुष को विविध प्रकारों से छेद भेद डाल। और हे सेनापते! तेरा जितना बल और जितना भी पराक्रम हो उस बल से तू सेना द्वारा युद्ध करने वाले शत्रु को मार, दण्डित कर।

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥१३॥

भा०—इस विद्युत् का सब तरफ जाने वाला वेगवान् प्रहार जिस प्रकार छिन्न भिन्न करने योग्य मेघों तक पहुचता है और जिस प्रकार तीखे सींगों वाले बैल से तट भाग तोड़े जाते है और जिस प्रकार अति तीक्ष्ण वर्षाने वाले बिजली से अन्तरिक्ष को पूर्ण करने या प्रजा को पालने वा मेघ को पूरने वाले जलो को सूर्य भेद डालता है और वह वायु जिस प्रकार प्रबल विद्युत् से जलमय मेघ को नीचे एक साथ घनीभूत करके गिरा देता है उसी प्रकार इस सेनापति का सब तरफ जाने वाला सैन्य-बल शत्रुओं को जा पकड़े और जीत ले। तीखे शस्त्राग्र वर्षा करने वाले अस्त्र से तोड़ दे। वह शत्रुहन्ता इन्द्र शत्रुवारक क्षात्र-बल से बढ़ते शत्रु को ला भिड़ावे और निरन्तर उसका घात करता हुआ अपनी आज्ञा,

घोषणा और स्तम्भन शक्ति या सेना को घूंसे या शस्त्र के समान खूब आगे बढ़ा दे।

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान तेज और बल से युक्त इन्द्र, राजन्! तू जिसके बल पर युद्ध करने वाले दशो दिशाओ मे चमकने या विजय करने मे समर्थ और बलवान् एव शस्त्रवर्षण मे समर्थ वीर पुरुषगण की अच्छी प्रकार रक्षा करता है, तू उन शत्रुओ को काट गिराने वाले, शत्रु पर दूर से शस्त्रास्त्र फेंकने वाले वज्र या महास्त्र बल को इच्छा पूर्वक प्राप्त कर, रख। अश्वो के खुरो से उठाया धूलिपटल आकाश मे फैल जाय, तो भी श्वेतवर्ण के यश या देने वाली वसुन्धरा या स्वतः श्वेत कीर्ति का इच्छुक राजा तो शत्रु के नेतागणों के पराजय करने के लिए मैदान मे खड़ा रहे।

मेघ-सूर्य के पक्ष में—सूर्य! तू उग्र रूप तीक्ष्ण प्रकाश को धारण करता है जिसके बल पर दशों दिशाओं मे चमकने वाले वर्षणशील योद्धा के समान युद्ध करने वाले मेघ या विद्युत् की भी रक्षा करता है। जब गौ आदि पशुओं से उठी धूल आकाश मे व्यापती है तब भी वह सूर्य ही मनुष्यों के हित के लिये आकाश मे विराजता है।

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥

भा०—हे मघवन्, ऐश्वर्यवन्! इन्द्र! राजन्! जिस प्रकार सूर्य ग्रीष्म की दुःखदायी, प्राणियों का नाश करने वाली दशाओ में या जलों के निमित्त शान्तिदायक जल के वर्षाने वाले मेघ को प्राप्त कराता है उसी प्रकार तू दुष्ट पुरुषो द्वारा प्राप्त होने वाले वध, बन्धन आदि पीडाकारी अत्याचारों के होने पर उनको शान्त करने वाले पुरुष को भेज। हे राजन्! खेत को हलने के लिए किसान जिस प्रकार पृथ्वी के हितकारी

वलीवर्द को खेत में चलाता है और सूर्य जिस प्रकार खेतो में अन्न उपजाने के निमित्त भूमि के हितकारी किरणो को फेंकता है उसी प्रकार तू भी रणक्षेत्रों के विजय के लिए भूमि लोक के हितजनक उसके प्रबन्ध और शासन के भार उठाने में समर्थ नरपुंगव को भेज। इस भूमि पर स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन चिरकाल तक अपनी कृषि व्यापार आदि कार्य करें। हे राजन्! तू शत्रुता का आचरण करने वाले शत्रुओं और द्रोहियों को निकृष्ट कोटि की अति कष्टदायी पीडायें दे। इति तृतीयो वर्गः॥

[३४]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—जगत्यः। १ विराट् (४ एकोना), २, ६, ८, ७ निचृत्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ एकोना विराट् त्रिष्टुप्। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

त्रिश्चि॑न्नो अ॒द्या भ॑वतं नवेदसा वि॒भुर्वां॒ याम॑ उ॒त रा॒तिर॑श्विना।
यु॒वोर्हि य॒न्त्रं हि॒म्येव॒ वास॑सोऽभ्याय॒सेन्या॑ भवतं मनी॒षिभिः॑॥१॥

भा०—हे सूर्य, चन्द्र और दिन रात्रि के समान, विद्या और अधिकारों में व्यापक! हे किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य को शेष न रखने वाले, पूर्णविद्या और ऐश्वर्यवान्! आज के समान सदा आप दोनों हम प्रजाजन के हित के लिए तीनों वार, तीनों प्रकार से अधिक सामर्थ्यवान् होओ। प्रथम, तुम दोनों का गमन या यात्रा करने का साधन, रथ आदि विशेष शक्ति से युक्त हो। और तुम दोनों का देने का सामर्थ्य भी बहुत अधिक हो। रात्रि जिस प्रकार दिन के साथ खूब अनुरूप होकर रहती है अथवा वस्त्र का जिस प्रकार शीत वेला के साथ सम्बन्ध और उपयोग है उसी प्रकार तुम दोनों के यत्र, नियम, साधन एक दूसरे के अनुरूप हों। आप दोनों विद्वान् पुरुषों द्वारा एक दूसरे को लक्ष्य करके नियम में बँधने वाले होकर रहो।

स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे पृथक् २ धन न रखने हारे, अथवा एक

दूसरे से विशेषरूप से पूर्व अपरिचित दोनो एक ही ऐश्वर्यवाले ! हे एक दूसरे मे मन, वाक्, काय तीनो प्रकार से व्यापक रहने वालो ! तुम दोनो तीनो प्रकार से हमारे बीच आज विद्वानो द्वारा एक दूसरे के सन्मुख होकर विवाह द्वारा बद्ध हो जाओ। तुम दोनो का यात्रा का साधन, रथ और देह परिमाण विशेष सामर्थ्यवान् हो। परस्पर के दान-प्रतिदान और प्रेम भी विशेष रूप से प्रबल और महत्वपूर्ण हों। तुम दोनो का यन्त्र, शरीरांग अथवा नियमपूर्वक वर्तने योग्य ब्रह्मचर्यादि व्रत या नियम बन्धन वस्त्र के लिए शीत के समान अति उपयोगी सुखप्रद अथवा दिन के साथ रात्रि के समान एक दूसरे की अवधि बनाने वाला हो।

विद्वान् शिल्पियों के पक्ष मे—वे पूर्ण विद्वान् हो। उनका रथ, ऐश्वर्य बडा और यन्त्रकला परस्पर अनुरूप हो। विद्वान्गण उनका सत्सग और साक्षात् करें।

त्रयः॑ प॒वयो॑ मधु॒वाह॑ने॒ रथे॒ सोम॑स्य वे॒नामनु॒ विश्व॒ इद् वि॑दुः।
त्रय॑ स्क॒म्भास॑ स्कभि॒तास॑ आ॒रभे॒ त्रिर्नक्तं॑ या॒थस्त्रिर्व॑श्विना दिवा॑ २

भा०—मधुर, सुखप्रद अन्न आदि और मधुर सुख और वेग आदि को धारण करने वाले रथ मे जिस प्रकार वज्र के समान कठोर और विद्युत् के देने वाले तीन पवि, चक्र या यन्त्र हों। और उसमे सभी ही प्रेरक बल, वायु वा विद्युत् की ही वेगवती, गमन करने वाली शक्ति विद्वान् लोग बतलाते है। उसमें आलम्बन या आधार के लिए तीन खम्भे या दण्ड लगाये गये हों। वे उस रथ द्वारा वेगवान् यन्त्रकला के विज्ञ विद्वान् दोनो तीन वार दिन में और तीन वार रात्रि मे जाते हैं।

गृहस्थ-पक्ष मे—स्त्री और पुरुष दोनो का रमण साधन यह देहरूप रथ आनन्दप्रद होने से 'मधुवाहन' है। उसमे मन, वाणी और काय ये तीनो बलवान् वज्र हैं। उस सोम वीर्य की समस्त कान्ति या तेज को धारण करने के लिये समस्त विद्वान् उपदेश करते हैं। शरीर मे आलम्बन या आधार के लिए तीन ही स्कन्ध है शरीर, इन्द्रिय और मन। इनके

द्वारा स्त्री पुरुष दोनों दिन और रात में तीन वार अर्थात् बार २ एक दूसरे को प्राप्त हों। दिन रात दोनों एक दूसरे के सहायक हों। (मन्त्र संख्या चत्वारि शतानि ४००)

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥३॥

भा०—हे एक दूसरे के दोषों और निन्दनीय कार्यों को आच्छादित या गोपन करने वाले स्त्री पुरुषो ! एक ही दिन में आप दोनों तीन तीन वार, अर्थात् बहुत वार मधुर गुणवाले जल से, अन्न से, बल से और मधु के समान मधुर गुण से यज्ञ, आत्मा, शरीर और मन को नित्य सेचन करो। हे ऐश्वर्यों के भोक्ता, परस्पर प्रेमी स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों हमारे हित के लिए दिन और रात बलयुक्त अन्न, वेगवती शुभ कामनाओं और ज्ञान वाली प्रेरणाओं को तीन वार, वार वार सेचन करो। उनको पूर्ण करो।

राजा मन्त्री और रथी सारथि के पक्ष में—वे दोनों एक दूसरे के दोषों, मर्मों त्रुटियों को आघात होने से बचावें। वे प्रजापति पद या राज्यपद को मधुर सौम्यभाव से युक्त करें। बलवती सेनाओं को भीतर बाहर और सीमा पर रक्खें।

शिल्पीगण यन्त्र के दोष या मर्म की रक्षा करें, शिल्प यन्त्र घृत या स्निग्ध पदार्थ तेल आदि से बार बार सींचें। वेग वाली प्रेरणा देने वाली शक्तियों को लगावें। इसी प्रकार यज्ञ में पदार्थों को तीन २ वार [illegible]ण करें।

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों व्यवहार करने और चलने योग्य उत्तम मार्गों को तीन वार अर्थात् बार २ जाओ आओ। अपने अनुकूल नियम धर्म पालन करने वाले उत्तम बुद्धि, ज्ञान आदि के उत्पादक आचार्य आदि के अधीन वार वार रहो। सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने

वाले राजा या उत्तम रीति से प्राप्त करने या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य के अधीन रहकर पठन, ज्ञापन और हस्त क्रिया से तीन वार अर्थात् वार वार ज्ञान का अभ्यास करो। आनन्दप्रद, सुख सामग्री को बढाने वाले कार्य को या ऐश्वर्य पुत्रादि को भी वार वार प्राप्त करो या पति पत्नी को तीन वार प्रदक्षिणा द्वारा उद्वाह करो। तुम दोनो तीन वार, वार वार हमे अक्षय जलो के समान अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

त्रिर्नो॑ र॒यिं व॑हतमश्विना यु॒वं त्रिर्दे॒वता॑ता॒ त्रिरु॒ताव॑तं॒ धियः॑।
त्रिः सौ॑भग॒त्वं त्रिरु॒त श्रवां॑सि न॒स्त्रिष्ठं वां॒ सूरे॑ दुहि॒ता रु॑हद्रथ॑म् ॥५॥

भा०—हे विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो हमारे लिए ऐश्वर्य को भी तीन तीन वार, वार वार प्राप्त कराओ। यज्ञो और विजय तथा विद्वानो के लिए ज्ञान और यज्ञादि कार्यों मे भी वार वार ऐश्वर्य लगाओ। और बुद्धियो और कर्मों को भी शरीर, मन, प्राण तीनो तरह से रक्षा करो। सुख से भजन करने योग्य परमेश्वर की भक्ति श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा और सुखपूर्वक सेवने योग्य ऐश्वर्य की प्राप्ति, रक्षण और वर्धन द्वारा भोग करो। और श्रवण करने योग्य वेद शास्त्रादि ज्ञानों और ख्याति लाभ करने वाले ऐश्वर्यों को भी उक्त तीनो प्रकारों से तीन वार प्राप्त करो। सूर्य की पुत्री प्रभा या कान्ति जिस प्रकार दिन और रात्रि के बने प्रभात, मध्याह्न और सायं नाम तीन आधारों पर तीन प्रकार से स्थित रथ पर आरूढ होती है उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा की सब कामों को पूर्ण करने वाली प्रजा भी तुम राजा मन्त्री दोनो के मन्त्र, धन और सैन्य बल इन तीनों पर आश्रित राज्यैश्वर्य पर सुख से तीन चक्रो वाले रथ पर नव-वधू के समान विराजे।

स्त्री पुरुषों के पक्ष मे—तेजस्वी विद्यावान्, विद्वान् की सब फलों के देने वाली वेद विद्या, धर्म, अर्थ, काम इन तीन पर स्थित होकर स्त्री पुरुषो के रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ के आश्रय पर रहे।

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६॥

भा०—हे विद्या और ज्ञान प्रकाश मे पारंगत विद्वानो ! एवं रथी सारथी के समान स्त्री पुरुषो ! आप दोनो जलों से प्राप्त करके पृथ्वी पर उगे वनोषधि से और तेजोमय धातु, लोह स्वर्णादि से बने नाना रोग निवारक पदार्थों को हमारे उपकार के लिए तीन तीन वार अर्थात् वार वार प्रदान करें। शान्ति सुख के चाहने वाले के योग्य मेरे रक्षाकारी उपाय निज बन्धु पुत्र को प्रदान करो और हे शुभ गुणो और आभरणो के पालक व धारक स्त्री पुरुषो ! तीन धातु वात, पित्त और कफ के बने सुखद साधन देह को या तीन धातु के बने रोगनाशक आभूषण धारण करो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ७

भा०—हे जल और अग्नि के समान शान्ति और तेज से युक्त स्त्री पुरुषो ! यज्ञ करने वाले, परस्पर संगत हुए आप दोनो प्रतिदिन तीन धातुओं से बने शरीर को पृथ्वी पर ब्रह्मचारी रहकर तीन वार या तीन दिनों तक शयन करो। हे कभी असत्य आचरण न करने वाले तुम दोनो! आत्मा जिस प्रकार एक देह से अन्य देहों मे और वायु जिस प्रकार एक स्थान से अन्य स्थानों मे स्वयं चला जाता है उसी प्रकार दूर दूर तक के देशों को रथ पर चढ़कर तीनो लोक अर्थात् उच्च, नीच और सम, अथवा जल, पर्वत और स्थल तीनों प्रकार के भूमि-भागों मे दिन रात स्वयं चलने वाले यानों द्वारा आओ। अथवा स्वतः गमनशील यान आदि रथ सब दिन चलाओ। स्त्री पुरुषों के प्रथम तीन रात्रि व्रतपूर्वक भूमि शयन की विधि गृह्यसूत्रों मे देखो। अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणा-वधःशायिनौ स्याताम्। अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं। संवत्सरं वा। आश्व० गृ० सू० अ० ९। १०-१२ ॥

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

भा०—हे सूर्य और वायु या चन्द्रमा, रथी सारथी के समान तुम दोनो पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, आकाश आदि सूक्ष्म तत्वों से पैदा होने वाले नदियो के समान निरन्तर बहने वाले, सूक्ष्म पदार्थों द्वारा तीनो वार करके आहुति देने योग्य अन्नादि पदार्थ को सम्पादित करो। उनके लिए तीन आहुति योग्य पात्र हो और उन अन्नादि ओषधियो को दिनों और रातों मे अर्थात् दिन रात भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों स्थानो पर अच्छी प्रकार पहुचाने वाले आप दोनों प्रकाशमय किरणो की ओर स्थित अति सुखप्रद आकाश की रक्षा करते हो।

क्व१त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥९॥

भा०—हे सत्यस्वभाव वालो ! आप लोग जिसके द्वारा यज्ञ या गन्तव्य मार्ग को जाते हो। उस त्रिवृत्, त्रिकोण भूमि, आकाश और जल मे चलने योग्य साधनो से सम्पन्न रथ के तीन चक्र कहां लगे हैं ? और जो तीन एक ही आश्रय मे जुड़े हुए विशेष बन्धन हैं वे कहां हैं। और वेग वाले अति शब्दकारी यन्त्राग्नि के समान या अश्व के समान सञ्चालक शक्ति का योग कब हुआ ? ये सभी प्रश्न विशेष जानने योग्य हैं।

अध्यात्म मे—अग्नि, वायु और तेज इन तत्वों के त्रिवृतीकरण द्वारा देह रूप रथ बना है। उसके वात, पित्त, कफ तीन चक्र हैं। सत्व, रजस, तमस् अथवा मन, वाक्, प्राण तीन दण्ड है। इसमे मुख्य प्राण वेगवान् अश्व है। ये सब कहा २ स्थित हैं ? और प्राण का देह मे कब योग होता है ? ये सब ज्ञातव्य बातें हैं। इसी रथ के द्वारा स्त्री पुरुष 'यज्ञ' रूप परमेश्वर के परम पद तक साधना और तपस्या द्वारा पहुचते है।

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥१०॥

भा०—हे कभी असद् आचरण न करने वाले, सत्य स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों आदरपूर्वक आओ। अन्न आदि ग्रहण योग्य पदार्थ अग्नि में आहुति किया जावे। और आप दोनों मधु अर्थात् उत्तम अन्न और जल को पान और उपभोग करने वाले मुखों द्वारा मधुर अन्न का उपभोग करो। सर्वोत्पादक परमेश्वर और आचार्य उषाकाल के समान या ताप-कारक यौवनकाल के पूर्व ही तुम दोनों के अति अद्भुत घृतादि स्निग्ध या तेजस्वी पदार्थों से पुष्ट रथ के समान बने देह को यज्ञ के समान पवित्र कार्य, ब्रह्मचर्य और सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्रेरित करे।

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥११॥

भा०—हे सत्यवादी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग तेंतीस दिव्य गुणों, सामर्थ्यों से युक्त एवं हृष्ट पुष्ट होकर मधुर गुणों से युक्त, उपभोग योग्य नाना पदार्थों और सुखों से युक्त यौवन को प्राप्त करो। और अपने जीवन को ब्रह्मचर्य, वीर्यरक्षा आदि साधनों से खूब बढ़ाओ। और समस्त पाप कृत्यों को सर्वथा दूर करो, धो डालो। द्वेष करने वाले विरोधी, अप्रिय पदार्थों को दूर करो, उनके उपभोग, सहवास आदि का वर्जन करो। और दोनों परस्पर एक साथ मिल कर प्रेम से रहो। तीन दिनों में समुद्र और ११ दिनों में भूगोल को पार करो, [इति दया०] देह ही ३३ देवों की अयोध्यापुरी है, इसका वर्णन अथर्व० में देखो। राजा प्रजा या राजा और मन्त्री दोनों भी मधुपेय अर्थात् बलपूर्वक उपभोग्य राष्ट्र को ३३ शासकों सहित प्राप्त हों। अपना बल बढ़ावें। राष्ट्र से पापों और शत्रुओं को दूर कर, एकत्र होकर रहें।

आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥१२॥५॥

भा०—हे नाना सुखों के भोगने हारे, एक दूसरे में हृदय से व्याप्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों हमारे बीच में रथ के समान मन, वाणी और

प्राण तीन बलो से चलने वाले, रमण साधन, रथ रूप देह से उत्तम वीरों से युक्त ऐश्वर्य के समान उत्तम प्राणों से युक्त वीर्य को धारण करो। नाना विद्याओ का श्रवण करते हुए तुम दोनो को मैं आचार्य ज्ञान की वृद्धि के लिये उपदेश करता हूँ। तुम दोनों हम लोगो के बीच ज्ञानप्राप्ति, बल-प्राप्ति और ऐश्वर्यप्राप्ति के कार्य में, सन्तानो और शुभ कार्यों द्वारा हमें बढ़ाने के लिये सदा तत्पर रहो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३५]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषि ॥ देवता.—१ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रि. सविता च। २-११ सविता ॥ छन्द —१ विराड् जगती। १, ६ निचृज्जगती। २, ५, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ८ एकोनाविराट्। ३, ४, ६ त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ह्वया॑म्य॒ग्निं प्र॑थ॒मं स्व॒स्तये॒ ह्वया॑मि मि॒त्रावरु॑णावि॒हाव॑से।
ह्वया॑मि॒ रात्रीं॒ जग॑तो नि॒वेश॑नीं॒ ह्वया॑मि दे॒वं स॑वि॒तार॑मू॒तये॑ ॥१॥

भा०—सुखपूर्वक समस्त जगत् के विद्यमान रहने के लिये सबसे पूर्व विद्यमान सर्वज्ञानी, परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ। इस जगत् में रक्षा, सत्य ज्ञान और जीवन रक्षा के लिये सबके प्रति स्नेही और दुःखों के दूर करने वाले प्राण और अपान दोनों के समान परमेश्वर के स्नेहमय और दुष्ट नाशक दोनों स्वरूपों की स्मरण या स्तुति करता हूँ। जगत् को अपने भीतर रखने वाली, रात्रि के समान सुखपूर्वक निद्रा में सुलाने वाली, सकल सुखदायिनी उस परमेश्वरी शक्ति की स्तुति करता हूँ। सबकी रक्षा और ज्ञान के लिये भी सर्वोत्पादक, सर्वप्रकाशक, सर्वद्रष्टा, सर्वसुखदाता परमेश्वर की ही स्तुति करता हूँ। वही सर्व प्रथम, सर्वाग्रणी होने से 'अग्नि' है। स्नेह और दुष्ट वारण द्वारा रक्षा करने से वही 'मित्र' और 'वरुण' कहाता है। जगत् को अपने भीतर लेने से परमेश्वर ही 'रात्रि' कहाता है। ज्ञानप्रद होने से वही 'सविता' और 'देव' कहाता है।

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒नाऽऽदे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥२॥

भा०—काल रूप से सबका उत्पादक, प्रेरक सूर्य सबका प्रकाशक और वृष्टि, ताप आदि का देने वाला सूर्य जिस प्रकार स्वयं आकर्षण बल से युक्त, अथवा कृष्ण, प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक समूह के साथ भ्रमण करता हुआ और वृष्टि के द्वारा जल और प्राण, चैतन्य और मरणधर्मा शरीरधारी प्राणियों को स्थापित करता हुआ सर्व लोक हितकारी और मनोहर अथवा तेजोयुक्त अति वेगवान् पिण्ड से समस्त उत्पन्न लोकों और प्राणियों को देखता हुआ जाता है उसी प्रकार परमेश्वर सर्वाकर्षक लोकसमूहों के साथ उनमें व्यापक रह कर उनमें 'अमृत' मोक्षसुख और सत्य ज्ञान तथा 'मर्त्य' मरने वाले प्राणियों को व्यवस्थित करता हुआ अति आनन्ददायक, तेजोमय, रस स्वरूप से समस्त लोकों को अन्तर्यामी रूप से साक्षात् करता हुआ, सुवर्ण के रथ पर स्थित राजा के समान हमें प्राप्त है। राजा सुवर्ण के रथ पर बैठ कर आगे घनी धूली सहित प्रयाण करता है। अमृत, सन्तति या अन्नादि मर्त्य, प्राणिगण सबकी व्यवस्था करता हुआ निरीक्षण करता जाता है।

याति॑ दे॒वः प्र॒वता॒ यात्यु॒द्वता॒ याति॑ शु॒भ्राभ्यां॑ यज॒तो हरि॑भ्याम्।
आ दे॒वो या॑ति सवि॒ता प॑रा॒वतोऽप॒ विश्वा॑ दुरि॒ता बाध॑मानः॥३॥

भा०—देव अर्थात् सुखप्रद वायु के समान राजा या शूर पुरुष नीचे के मार्गों से भी जाता है। वह ऊपर के मार्ग से भी जाता है। वह सत्संग करने योग्य चन्द्र सूर्य के समान वेगवान्, गतिशील काल के अवयव दिन और रात्रि तथा उत्तरायण, दक्षिणायन के समान अतिदीप्तियुक्त, श्वेत, सुन्दर घोड़ों से प्रयाण करता है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा सब दुःखों और दुष्ट पुरुषों को दूर करता हुआ दूर और पास भी सर्वत्र हमें प्राप्त हो। इसी प्रकार परमेश्वर नीचे ऊपर, दूर समीप, सर्वत्र प्रकाशस्वरूप होकर अपने आप गुणों से युक्त ज्ञानी और कर्म दो प्रकार के निष्ठ साधकों द्वारा उपास्य है। वह सब दुष्ट कार्यों को दूर करता हुआ हमें साक्षात् हो।

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥४॥

भा०—नाना प्रकार के अन्नादि उत्तम पदार्थों तथा प्रकाशो का देने द्वारा सूर्य जिस प्रकार जलों को अति सूक्ष्म करने मे समर्थ किरणो से व्याप्त सब तेजो, कान्तियों को धारण करने वाले सुवर्ण आदि धातुओं तथा उच्च ज्योतियो को भी शान्त कर देने वाली प्रखर शक्तियों से युक्त बड़े भारी गतिशील पिण्ड मे स्थित है। वह विचित्र तेजों से युक्त होकर प्रकाश से रहित और आकर्षण गुण वाले लोको को और स्वयं भी बड़ी भारी शक्ति को धारण किये रहता है। उसी प्रकार दानशील, पूजनीय, सूर्य के समान तेजस्वी राजा शत्रुओं को पीड़न करने वाले एवं लोहमय शस्त्रधारियों से घिरे हुए सब प्रकार के गज, अश्व, पदाति आदि को अपने वश करने वाले सुवर्ण या लोह की बनी शङ्कु या कीलों से जड़े बड़े विशाल रथ पर चढ़े। और विविध कान्तियों से युक्त होकर अन्धकार करने वाले धूलि पटलों या कर्षणशील अन्नोत्पादक प्रजा जनो को और बलवती सेना को धारण पोषण करने वाला हो।

वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

भा०—दिव्य, तेजस्वी और आकाश में विचरने वाले समस्त लोकों मे सर्वश्रेष्ठ सबके प्रकाशक, सूर्य के समान तेजस्वी एवं सबके उत्पादक परमेश्वर की गोद मे, उसके आश्रय मे समस्त प्रजाएं और समस्त लोक स्थित हैं। और ज्ञान करने योग्य, शुभ्र, विशुद्ध ज्ञान कराने वाले पादों, छन्दों के चरणों से युक्त, प्रकाशस्वरूप आत्मा द्वारा जानने योग्य अति रमणीय, आनन्द मय रस को धारण करते हुए वह परमात्मा मनुष्यों को विविध ज्ञानो का प्रकाश करते और स्वयं भी किरणो के समान प्रकाशित होते हैं।

सूर्य के पक्ष में—समस्त लोको मे पहुंचने वाले श्वेत किरणों वाले,

अग्नि रूप कान्ति का प्रयोग करने वाले, तापमय स्वरूप को धारण करते हुए और जन्तुओं को धारण पोषण करते हुए विविध रूप से प्रकाशित होते हैं उस सूर्य के आधार पर समस्त प्रजाएं और लोक भी सदा काल से स्थित हैं।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा के आश्रय पर समस्त प्रजाएं और सब लोक आश्रय लेते है। काले लाल रंग के, बैजनी रंग के, श्वेत चरणों वाले घोड़े सुवर्ण के जुए से सुशोभित रथ को ढोते और सब लोकों को राजा का वैभव दर्शाते हैं।

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥६॥६॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत् तीन पदार्थ हैं। उनमें से दो अग्नि और विद्युत् सबके उत्पादक सूर्य के आश्रय हैं। और एक यम अर्थात् वायु के जो कि भुवन अर्थात् अन्तरिक्ष में रहती है जो वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ है। रथ के भार उठाने में समर्थ रथ के धुरे पर जिस प्रकार रथ और उस पर स्थित पुरुष सम्भले रहते हैं उसी प्रकार वायु के आश्रय पर सूक्ष्म जलों के समान जीव गण स्थिर हैं। वे वायु में विचरते और उसके आश्रय पर जीते हैं। जो भी इस रहस्य को जाने वह इस विषय में सबको उपदेश करे।

सूर्य के पक्ष में—तीन द्यौ हैं आकाश, अन्तरिक्ष और यह पृथिवी। इनमें से दो सूर्य के आश्रय हैं आकाश और अन्तरिक्ष। एक यह भूमि नियन्ता राजा के शासन में है जो समस्त वीरों को अपने वश करती है। सकल जीवित प्राणी उसी पृथ्वी पर रहते हैं। जो ज्ञानी पुरुष हैं वह उनको उपदेश करता है। इति षष्ठो वर्गः॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम सुखकारी रश्मियों से युक्त अति गंभीर, अज्ञात बल

और गतिवाला, सबको प्राणशक्ति देने वाला समस्त आकाश के प्रदेशों को विविध प्रकार से प्रकाशित करता है. परन्तु अस्त हो जाने पर फिर प्रश्न उठता है कि—अब वह सूर्य कहां है ? इस रहस्य को कौन विद्वान् जानता है कि इस सूर्य का रश्मिगण अब किस आकाश को व्याप रहा है। अर्थात् विद्वान् लोग ही उसकी गति स्थिति का ज्ञान रखते हैं। इसी प्रकार राजा भी गभीर, अगाध बलशाली अति बलवान् प्राणो मे रमण करने वाला, उत्तम मार्ग पर प्रजाओ को चलाने वाला उत्तम पालन करने वाले साधनो और शासको वाला, अपने राष्ट्र के भीतर स्थित प्रदेशों को विविध प्रकार के ज्ञानो का उपदेश करे। अब वह तेजस्वी सूर्य कहां है और उसकी रश्मि. शासन सामर्थ्य किस आकाश या स्थान या राजसभा, विद्वत् सभा को व्यापता है ? उसको कौन जाने ? अर्थात् तेजस्वी राजा की गति स्थिति दुर्बोध है।

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

भा०—हितकारी, मनोहर ज्योतिरूप व्यापनशील किरणों वाला प्रकाश और ताप का उत्पादक, प्रकाशमान सूर्य यज्ञशील पुरुष को उत्तम उत्तम रमण करने योग्य सुखों को देता हुआ आता है और वह पृथिवी के ऊपर आठों दिशाओं और सब पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले तीनों लोकों और सर्पणशील आकाशस्थ जलों को भी प्रकाशित करता है। उसी प्रकार कर आदि देने वाले प्रजाजन को उत्तम २ ऐश्वर्यों का प्रदान करता हुआ, सूर्य के समान तेजस्वी राजा हितकारी, रमणीय कृपादृष्टि से युक्त होकर आवे। वह आठों दिशा, तीनों सभाओं और सातों समुद्रों को विविध रूप से शासन करे। उन पर अपनी आज्ञा चलावे।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥९॥

भा०—जलों के ग्रहण करने वाले, हाथों के समान ज्योतिर्मय किरणों को धारण करने वाला समस्त ओषधियों और अन्तरिक्ष में और जलों का उत्पादक विशेषरूप से समस्त लोकों को आकर्षण करने वाला होकर सूर्य आकाश और भूमि दोनों के बीच में गति करता है और रोगादि पीड़ा को दूर करता है और सबके प्रेरक और उत्पादक प्रकाश समूह को प्रकाशित करता है और अन्धकार के नाश करने वाले तेज से, अथवा तमोमय, प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक समूह के सहित आकाश को प्रकाश से भर देता है। उसी प्रकार राजा सभापति भी सबका आज्ञापक सुवर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने हाथ या अधिकार में रखने वाला और विविध प्रजाओं का द्रष्टा या आकर्षक, वशकारी होकर राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में विद्यमान रहे। वह प्रजा के पीड़क शत्रु और रोगों को दूर करे। वह सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करे तथा अपने आकर्षक तेज से राजसभा को प्राप्त हो।

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

भा०—तेजोमय किरणों से युक्त सूर्य के समान सुवर्ण आदि धातुओं को अपने वश करने वाला, अथवा हिरण्य अर्थात् लोहादि धातु के बने हनन साधन, शस्त्रास्त्रों वाला, बलवान्, सबका प्राणप्रद, उत्तम सुगमता नीति से ले जाने वाला, उत्तम नायक, उत्तम सुख देने वाला, दयालु, उत्तम रक्षक अथवा उत्तम धनवान्, उत्तम निज बान्धवों और गुणों वाला होकर हमारे पास आवे और पीड़ा देने वाले मायावी दुष्ट पुरुषों और रोगों को दूर करता हुआ तेजस्वी राजा प्रतिदिन रात्रि अपने गुणों से स्तुति करने योग्य होकर स्थित हो, अर्थात् सिंहासन पर विराजमान हो।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥११॥

भा०—हे सबके उत्पादक परमेश्वर ! हे राजन् ! अन्तरिक्ष में जिन

प्रकार सूर्य के लिए पहले ही से बने रेणु रहित मार्ग हैं, उन निर्विघ्न आकाशमार्गों से सूर्य प्रतिदिन तेज द्वारा प्राप्त होकर हमें सुख प्रदान करता है। उसी प्रकार हे राजन्! आकाश और पृथिवी के बीच में जो तेरे लिए या तुझ राजा के लिए पूर्व के विद्वानो से निर्धारित विघ्न बाधा आदि से रहित, रजोदोष आदि से रहित, निःस्वार्थता युक्त, जो अच्छी प्रकार से बनाये गये हैं सुखपूर्वक जाने योग्य उन मार्गों से हमारी भी रक्षा कर। हे राजन्! हम पर अधिकारी रूप से शासन भी कर। राजा उत्तम मार्गों, विधियों और राजनियमो से प्रजा की रक्षा और शासन करे। इति सप्तमो वर्गः।

इति सप्तमोऽनुवाकः।

[३६]

घौर ऋषि । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १२ भुरिगनुष्टुप्। २ निचृत्सतः पंक्तिः। ४ निचृत्पंक्तिः। १०, १४ निचृद्विष्टारपंक्तिः। १८ विष्टारपंक्तिः। २० सत. पंक्तिः। ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती। ५, १६ निचृद्बृहती। ६ भुरिग् बृहती। ७ बृहती। ८ स्वराट् बृहती। ९ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। १३ उपरिष्टाद्बृहती। १५ विराट् पथ्याबृहती। १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती। १९ पथ्या बृहती। विंशत्यृच सूक्तम् ॥

प्र वो॑ य॒ह्वं पु॑रू॒णां वि॒शां दे॑वय॒तीना॑म्।
अ॒ग्निं सू॒क्तेभि॒र्वचो॑भिरीमहे॒ यं सी॒मिद॒न्य ईळ॑ते ॥ १ ॥

भा०—जिस परमेश्वर की सब तरह से स्तुति करते हैं उस ज्ञानवान्, शरण जाने और स्तुति करने योग्य, महान् परमेश्वर की उत्तम गुणों, दिव्य तेजों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाली बहुत सी आप प्रजाजनों के हितार्थ उत्तम अर्थों वाले मधुर वचनों से प्रार्थना करते हैं।

राजा के पक्ष मे—जिसको अन्य लोग भी चाहे, उस महान् शक्तिशाली देव अर्थात् राजा को बनाने की इच्छा वाली आप बहु संख्या-

वाली प्रजाओं के हितार्थ आप में से ही नायक पुरुष के उत्तम अर्थों वाले प्रिय वचनों से प्रार्थना करें।

जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

भा०—सब विद्याओं में विशेष रूप से प्रकट होने वाले विद्वान् जन कष्टों के सहने और शत्रुओं के पराजय करने वाले बल को बढ़ाने वाले, ज्ञानवान् परमेश्वर और अग्रणी नायक को धारण करते हैं, अपने में बलवान् को नायक रूप से नियत करते हैं। हे ऐश्वर्य प्रदान करने में कुशल ईश्वर! राजन्! हम उत्तम देने और स्वीकार करने योग्य अन्न, रत्नादि पदार्थों को प्राप्त कर तेरी सेवा करें। वह तू उत्तम चित्त वाला और उत्तम ज्ञानवान् होकर आज से इस राष्ट्र में, इस लोक में और युद्धों में और ऐश्वर्यों की प्राप्ति के निमित्त हमारा रक्षक हो।

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! अग्नि के समान तेजस्विन्! हम लोग अग्नि के समान शत्रुओं के उपतापक, परंतप, प्रतापी सबको अन्न, अधिकार और शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार के करने वाले, समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी एवं समस्त ज्ञानों के ज्ञाता तुझको उत्तम पद के लिये वरण करते हैं। तुझ बड़े सामर्थ्यवान सज्जन की, अग्नि के समान ही ज्वालाओं के सदृश न्याय-प्रकाश और तेज विविध रूप से राष्ट्र में व्याप्त होते हैं और किरणों के समान वे तेजः-प्रभाव आकाश के समान व्यापक राजसभा आदि राज्य-व्यवहार में प्रकट होते हैं। अर्थात् विद्वान् ज्ञानी, तेजस्वी, सभा के सुवक्ता को ही दूत रूप से वरण करना चाहिये।

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—सबसे उत्कृष्ट, सबसे वरण करने योग्य, प्रजा के दुःखों का

वारक, स्नेही, मित्र राजा और न्यायकारी ये सब विद्वान् गण तुझ विद्वान् पुरुष को साम आदि उपायों से शत्रु के तापकारी जानकर ही दूत रूप से अग्नि के समान प्रज्वलित करते अर्थात् उत्तम पदाधिकारों से सुशोभित करते है। जो मनुष्य तेरे निमित्त आदर पूर्वक अधिकार प्रदान करता है, हे ज्ञानवन् दूत! वह राजा तेरे द्वारा समस्त ऐश्वर्य और प्राचीन काल से चले आये राज्य को भी विजय कर लेता है।

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! तू सबको सुखी, आनन्द प्रसन्न करने हारा, सबके हर्ष का कारण, अभय प्रदाता गृहो का पालक, प्रजाओं के बीच शत्रुतापक अग्नि के समान प्रतापी एवं स्तुति योग्य है। तेरे ही आश्रय पर, अग्नि के आश्रय पर संस्कार दीक्षा आदि के समान समस्त राजा प्रजा के वे सब धर्म कर्त्तव्य ध्रुव, स्थिर आश्रित हैं जिनको विद्या, धन आदि देने वाले गुरु आचार्य तथा व्यापारी जन करते हैं। विद्वान् जन जिस प्रकार सब दीक्षा आदि कर्म और व्रत, संस्कार यज्ञ आदि कर्म अग्नि को साक्षी करके करते हैं उसी प्रकार व्यवहार में सब लेन देन राजा के साक्षी से होते हैं। स्टाम्प, टिकट, सिक्के आदि सब राजा की साक्षिता के चिह्न हैं। अथवा जिन कर्त्तव्यों को देव, पृथिवी, सूर्य, वायु आदि पालन करते है वे सब राजा मे सगत हैं। जैसा मनु ने लिखा है।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुवेर. सः वरुण. स महेन्द्रः प्रभावत. ॥ मनु० ७ । ७ ॥

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

भा०—हे अति बलशालिन्! हे ज्ञानवन्, नायक! सभापते राजन्! परमेश्वर! उत्तम ऐश्वर्यवान्, भजने सेवने योग्य तुझमें, तेरे निमित्त ही सब स्वीकार करने योग्य पदार्थ और स्तुति वचन भी प्रदान

किये जाते हैं। वह तू आज हमारे प्रति शुभ तथा प्रसन्न चित्त वाला, सुज्ञानी हो और उत्तम वीर्यवान् बलशाली युद्ध-विजयी पुरुषों और विद्वानों को भी वेतनादि प्रदान कर और राष्ट्र में सुसंगत कर। अग्नि में जो हवि देते हैं, वह बलशाली वायुओं में प्रदान करता अर्थात् फैलाता है। परमात्मा में समस्त संसार हवि रूप से प्रलयाग्नि में आहुत होता है। वह सब अग्नि आदि तत्वों को सुसंगत करता और जगत् को रचता है।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥७॥

भा०—इस प्रकार से शत्रु को नतमस्तक करने वाले, शस्त्रास्त्र बल को धारण करने वाले राष्ट्रवासी जन उस वीर नायक पुरुष को ही अपना राजा बना कर उसका आश्रय लेते हैं और उत्तम २ पदार्थों को आदरपूर्वक देने आदि क्रियाओं से भी वे मननशील पुरुष अग्रणी पुरुष को ही हवन आदि यज्ञाहुतियों से अग्नि के समान अच्छी प्रकार प्रज्व-लित, तेजस्वी और बलशाली करते हैं। तभी वे अपने हिंसक शत्रुओं को पार कर जाते हैं, उनको विजय करने में समर्थ होते हैं। परमेश्वर स्वप्रकाश होने से स्वराट् है, भक्तिपूर्वक जन उसकी उपासना करते हैं। लोग यज्ञाहुतियों से उसी को प्रज्वलित करते और दुःख बन्धनों से पार तर जाते हैं।

घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

भा०—फैलते हुए मेघ को जिस प्रकार सूर्य की किरणें विनाश करती हुई आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को पार कर जाती हैं उसी प्रकार विजयशील वीर, सैनिक गण घेरा डालने वाले शत्रु को नाश करते हुए अपने और पराये दोनों राष्ट्रों को अपने वश कर लेते हैं। और प्रजाओं के सुखपूर्वक निवास के लिये बड़े राष्ट्र को और नाना कर्मों को भी करते हैं। भूमियों के प्राप्त करने के विजयादि संग्राम कार्यों में हर्ष से हिनहिनाने

हुए अश्व के समान उत्साहपूर्वक सिंहनाद करता हुआ अश्वारोही, मेघ के समान शत्रुओ पर अस्त्र बरसाने वाला, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, सब वीरो द्वारा आदर से सेनाध्यक्ष रूप से स्वीकृत होकर विद्वान् पुरुषो के बीच विराजे।

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! राजन् ! तू समस्त तेजस्वी पदार्थों मे अति अधिक कान्तिमान्, सूर्य और अग्नि के समान राजाओ और विद्वानो मे सबसे अधिक तेजस्वी होकर अच्छी प्रकार सिंहासन पर विराज। तू राष्ट्र मे सबसे बड़ा है। तू प्रजाओं के मध्य में अग्नि के समान चमक। हे मेधाविन् एवं संगति करने योग्य ! हे उत्तम रूप से प्रशंसित ! तू रोषरहित दर्शनीय, उत्तम अग्नि के धूम के समान शत्रु को कंपाने वाले बल को विविध प्रकार से उत्पन्न कर।

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥१०॥९॥
यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥११॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिस अति पूजनीय तुझको इस राष्ट्र मे मनन करने योग्य राज्यशासन पद पर स्थापित करते हैं और हे ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम गुणों को धारण करने वाले, जिस ऐश्वर्य से पूर्ण तुझको विद्वान् सत्संग करने योग्य पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ और जिसको शत्रु पर बाण वर्षण करने वाला वीर योद्धा और जिसको स्तुति करने वाला विद्वान् और जिस अग्रणी नायक राष्ट्रपति को उत्तम संगत होने वाले अतिथि रूप शिष्यो से युक्त विद्वान् पुरुष मेघमण्डलस्थ जल के ऊपर विद्यमान सूर्य के समान सत्य व्यवहार और राज्य शासन के सत्य व्यवस्था या नियम समूह के भी ऊपर प्रकाशित करते और स्थापित करते हैं उस तेरी प्रेरित आज्ञाएं और राज्य-प्रबन्ध की व्यवस्थायें उज्वल

रूप में चमकती और सत्य न्याय का प्रकाश करती है। उस तुझ अग्रणी नायक को ये वेदमन्त्र और हम प्रजाजन बढ़ाते हैं अर्थात् गुण वर्णन द्वारा उसके कर्तव्य और साहस को बढ़ावें।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम्।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि॥ १२॥

भा०—हे अन्नादि ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू हमें सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान कर। हे तेजस्विन्! नायक! राजन्! तेरा विद्वान्, युद्धविजयी पुरुषों पर बन्धुभाव और मित्रता निश्चय से है। तू श्रवण करने योग्य, अति अद्भुत युद्ध और ऐश्वर्य का राजा है। वह तू हमें सब प्रकार से सुखी कर। तू राष्ट्र में सबसे बड़ा है।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥१३॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! तू सर्वोत्पादक होकर सबके प्रकाशक सूर्य के समान हमारी रक्षा के लिए सबसे ऊंचा होकर अर्थात् सब से उच्च बन कर रह। तू सबसे उच्च बन कर ही ज्ञान, अन्न, ऐश्वर्य और युद्ध का देने, करने और सेवने हारा है इसी कारण हम नाना विद्याओं को प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुषों से मिलकर तेरी विविध प्रकार से स्तुति करते हैं।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥१४॥

भा०—हे राजन्! तू हमारे सबके सर्वोपरि पद पर स्थित होकर हमें अधर्माचरण रूपी पाप से रक्षा कर। और ज्ञान तथा शासन द्वारा समस्त लूट पाट कर खाने वाले दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार भस्म कर। हमें धर्माचरण और दीर्घ जीवन के प्राप्त करने के लिए उत्तम बना, हमें भी ऊंचा कर। विद्वान् के प्रति हमारे अन्दर उत्तम आचरण तथा सेवा भाव आदि उत्पन्न कर।

पाहि नो॑ अग्ने र॒क्षसः॑ पा॒हि धू॒र्तेररा॑व्णः ।
पा॒हि रीष॑त उ॒त वा॒ जिघां॑सतो॒ बृह॑द्भानो॒ यवि॑ष्ठ्य ॥१५॥१०॥

भा०—हे अग्रणी ! नायक ! राजन् वा परमेश्वर ! हे विशाल तेजो, विद्या, ऐश्वर्य आदि नाना प्रभावो वाले ! हे हृष्ट पुष्ट, जवान के समान सदा बलशालिन् ! हमें राक्षस, अति दुष्ट पुरुषो से बचा । और तू अदानशील, अति कृपण विश्वासघाती, धूर्त्त, हिंसक पुरुष से भी रक्षा कर । हिंसा करने वाले व्याघ्र आदि पशु और आक्रमणकारी पुरुष से और हमें घात करने की इच्छा करने वाले से भी बचा । इति दशमो वर्गः ॥

घ॒नेव॒ विष्व॒ग्वि ज॒ह्यरा॑व्ण॒स्तपु॑र्जम्भ॒ यो अ॑स्म॒ध्रुक् ।
यो मर्त्यः॒ शिशी॑ते॒ अत्य॒क्तुभि॒र्मा नः॒ स रि॒पुरी॑शत ॥१६॥

भा०—आघात करने वाले दण्ड आदि से जिस प्रकार कच्चे घड़े आदि पात्र को तोड दिया जाता है या हतौड़े से जिस प्रकार लोहे को पीटा जाता है उसी प्रकार, हे शत्रुओं और दुष्टों को संताप देने वाले हननकारी शस्त्रो वाले राजन् ! सेनापते ! जो हमारा द्रोह करता है और जो मनुष्य शस्त्रो से बहुत अधिक सताता है ऐसे निर्दय शत्रु को सब प्रकार से विनाश कर । वह पापी शत्रु हम पर कभी प्रभुता या शासन न करे ।

अ॒ग्निर्व॑व्ने सु॒वीर्य॑म॒ग्निः कण्वा॑य॒ सौभ॑गम् ।
अ॒ग्निः प्राव॑न्मि॒त्रोत मेध्या॑तिथिम॒ग्निः सा॒ता उ॑पस्तु॒तम् ॥१७॥

भा०—अग्रणी राजा विद्वान् जन को उत्तम बल और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे । ज्ञानवान्, तेजस्वी राजा मित्र जनों को और विद्वान् ब्राह्मण आदि पूज्य अतिथि को और गुणों से प्रशंसित, विद्वान् पुरुष को युद्ध शिल्प आदि कार्य के अवसर पर उनकी रक्षा करे और उनके पास जाकर उनका सत्संग करे ।

अ॒ग्निना॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ परा॒वत॑ उ॒ग्रादे॑वं हवामहे ।
अ॒ग्निर्न॑यन्नव॑वास्त्वं बृ॒हद्र॑थं तु॒र्वीतिं॒ दस्य॑वे॒ सहः॑ ॥ १८ ॥

भा०—अग्रणी नायक राजा या सभाध्यक्ष के बल पर शीघ्रता से

दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ, यत्नशील, दूसरे के धन लेने में यत्नशील और उग्र, भयानक पुरुषों को जीतने वाले पुरुष को दूर देश से भी हम स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध के लिये ललकारते हैं। क्योंकि प्रजा के नाशकारी, चोर डाकुओं को पराजित करने में समर्थ, नये मकान या गढ़ बनवाने वाले बड़े रमण साधन, वैभव से युक्त एवं बड़े रथ सेना से बलवान् प्रजा के हिंसाकारी पुरुष को अग्नि के समान तेजस्वी राजा दूर करे और कारागार में डाल दे। अथवा ज्ञानी दूत द्वारा धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पर वश करने वाले, यत्नशील, बलवान् विजयी पुरुष को दूर देश से भी हम आदरपूर्वक बुलावें और ज्ञानी पुरुष नये भवन बनाने में कुशल बड़े भारी रथ, सेना आदि रमण साधनों से युक्त शत्रु हिंसक पुरुष को वश में लावें।

नि त्वाम॑ग्ने मनु॑र्दधे ज्योति॒र्जना॑य॒ शश्व॑ते ।
दी॒देथ॒ कण्व॑ ऋ॒तजा॑त उ॒क्षि॒तो यं न॑म॒स्यन्ति॑ कृ॒ष्टयः॑ ॥ १९ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! तेजस्विन् राजन्! अग्ने! मननशील, ज्ञानी पुरुष तुझको अनादि प्रवाह से आने वाले मनुष्यों के हित के लिए प्रकाशरूप से धारण करता है। तू विद्वान् मेधावी, ज्ञानी पुरुष के आश्रय में रह कर सत्य, राष्ट्रशासन और प्रजापालन धर्माचरण में कुशल होकर अभिषेचित होकर चमक, जिस तुझको समस्त मनुष्य आदर से नमस्कार करें।

त्वे॒षासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।
र॒क्ष॒स्विनः॒ सद॒मिद्या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥२०॥११॥

भा०—अति दीप्ति वाले, तेजस्वी, बलवान्, अग्रणी नायक राजा के अति भयानक पुरुष ज्ञान के लिए आग की ज्वाला के समान दीपते हैं। हे राजन्! तू दुष्ट राक्षसों के सहायक पीडादायक पुरुषों के स्वामी लोगों को और समस्त लूट पाट कर खाने वाले प्रजापीडक पुरुषों को भस्म कर। अथवा जो अतिदीप्त, भयानक राक्षसों के साथी अग्नि की

ज्वाला के समान दुःखदायी हैं उनको और समस्त प्रजा के खाऊ लोगों को जला दे और समस्त सभास्थान और मेरे जैसे जानने वालों के ज्ञान की वृद्धि के लिए रक्षा कर।

'यातुमावतः'—'यातुमाऽवतः' इतिसायणः। 'यातुऽमावतः' इति दयानन्दः। 'यातुऽमावतः' इति पदपाठः।

[३७]

कण्वो घौर ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६—८, १२ गायत्री। ३, ६, ११, १४ निचृद् गायत्री। ५ विराड् गायत्री। १०, १५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। १३ पादनिचृद्गायत्री। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत ॥१॥

भा०—हे अपने तेज और पराक्रम से शत्रुओं की आँखों को चकाचौंध कर देने वाले, तेजस्वी वीर पुरुषो! आप लोगों का वायुओं के सम्मिलित बल के समान शत्रु को मारने वाले समूहरूप, दलबद्ध, ऐसा बल जिसके मुकाबले पर कोई भी शत्रु न आ सके और जो रथ वा सेनांग के बल पर अधिक शोभाप्रद है उसको अच्छी प्रकार वर्णन करो, बतलाओ। अथवा हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों के पास प्राणायाम आदि योगाभ्यास द्वारा बढ़ाया वह बल जिससे अश्व न लगाने पर भी शरीर रूपी रथ शोभा देता है उसका उपदेश करो।

'कण्वाः'—कण शब्दे। भ्वादिः। कण निमीलने। चुरादिः। कणति स्तोत्रलक्षणं शब्दं करोति, कण्यते स्तूयते वा, निमीलयति परान् वा स्वतेजसा इति कण्वः। इति देवराजः।

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः॥२

भा०—जो वीर पुरुष हृष्टपुष्ट अश्वों वाली या बाणों से युक्त सशस्त्र सेनाओं और आयुधो और व्यक्तवाणियों और स्पष्ट अभिव्यक्त करनेवाले चिह्नों के सहित स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी हैं, वे ही युद्ध में विजय को प्राप्त करते हैं।

विद्वानों के पक्ष में—जो विद्वान् हृदय में आनन्दप्रद, हर्ष का वर्षण

करने वाली ज्ञान के प्रकाशक अति स्पष्ट अर्थ बतलाने वाली उत्पन्न वाणियों के साथ स्वयं आत्मा के ज्ञान के प्रकाश करने वाले हैं। वे ही जीवन-संग्राम में विजयी होते हैं।

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते॥३॥

भा०—जो सुखादि प्राप्त करानेवाले मार्ग में अति अद्भुत कर्म किया करते हैं। उनके इन वायुओं और प्राणों की हाथ पैर आदि अंगों में विद्य-मान विकसित होनेवाली नाना चेष्टाएँ जो कुछ भी तत्व बतलाती हैं उसको मैं दूरदर्शी बन कर यहां ही इस शरीर में स्थित, यहाँ बैठा ही सुन लेता हूं अर्थात् जान लेता हूँ।

वीरों के पक्ष में—इनके हाथों में अर्थात् अधिकारों में नाना वाणियें, आज्ञाएं घोडे के हांकने वाले हण्टरों के समान जो भी बोलती हैं, जो २ करने को कहती हैं उनको मैं इस राष्ट्र भर में श्रवण करूं।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्द्धा में उत्पन्न होने वाले बल की वृद्धि करने और उज्ज्वल यश प्राप्त करने के लिये परमेश्वर द्वारा दिये महान् वेद मय ज्ञान-वचन का गान करो।

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे॥५॥

भा०—जो प्राणों का बल इन्द्रियों में अथवा बैल, गौ आदि पशुओं में शरीर के अंगों में नाना अद्भुत क्रीड़ाकारी नाना चेष्टाओं को उत्पन्न करने वाला कभी नाश न होने वाला, चेतनता रूप में विद्यमान है जो अंगों के नाना प्रकार से झुकाने आदि कार्यों में भी प्रकट होता है वही खाये हुए अन्न के बने परिपक्व रस के कारण शरीर में बढ़ता है। उसके बढ़ाने का उत्तम रीति से उपदेश करो। अथवा जो मारणशील वीर सैनिकों का बल रणभूमियों में कभी नाश न होने वाला तथा अद्भुत रणक्रीड़ा करता है, वह मुख्य भाग में स्थित होकर बलपूर्वक बढ़ाता है। उसका उपदेश करो। इति द्वादशो वर्गः॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ ६

भा०—हे नायक, नेता वीरजनो ! आप लोग आकाश और पृथिवी, अथवा सूर्यादि लोक और पृथिवी या उन पर स्थित पदार्थों को कंपा देने वाले वायुओं के समान आकाश जमीन को अपने बल पराक्रम से कपा देने वाले हो। आप लोगो मे से कौन सबसे बडा है ? जिसके बल पर आप लोग सदा वायुए जिस प्रकार वृक्ष या वस्त्र के अग्रभाग, फुनगी या अंचरे को हिला डालते हैं उसी प्रकार शत्रुओ को कंपा डालते हो। अथवा तुममें सबसे बड़ा 'क' प्रजापति, राजा ही है जिसके बल पर तुम सबको कपाते हो।

अध्यात्म मे—ये नेतागण प्राणगण हैं। वे आत्मा के बल पर शरीर के कर चरणादि सब अंगों को हिलाते डुलाते हैं।

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ७

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोगों के नियन्त्रण करने और आप लोगो के अति भयकारी क्रोध को वश करने के लिये ही मननशील, विचारवान् राजा आप लोगो को अपने अधीन व्यवस्था में रखता है जिससे पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शस्त्रास्त्र वर्षण या गर्जनशील शत्रु भी कांप जाता है। अथवा आप लोगो को उग्र, अति भयंकर प्रयाण और अति तीव्र क्रोध के लिये ही रखता है जिससे शत्रु भी कांप जाता है।

अध्यात्म मे—ज्ञानी पुरुष तुम प्राणगण को इन्द्रियो के दमन और बलवान् बनाने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्राणो को वश करते हो जिससे पर्ववान् मेरुदण्ड और शब्दोच्चारणकारी मुख्य प्राण भी कम्पित हो जाता है।

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते॥८॥

भा०—वायुओ के समान अति प्रबल जिन वीर पुरुषों के उथल पुथल कर देने वाले प्रबल, प्रयाण होने पर समस्त भूगोल अर्थात् उसके वासी

प्रजाजन रोग या बुढ़ापे या शत्रु के निरन्तर आक्रमणों से अति जीर्ण, निर्बल राजा के समान भय से कांपते हैं।

अध्यात्म में—जिन प्राणों के प्रबल वेग से श्वासोच्छ्वासों के होने पर भूमि तत्व का बना शरीर बूढ़े दुर्बल राजा के समान नित्य कांपता है।

अधिदेव पक्ष में—जिन प्रबल वायुओं के प्रबल वेग से चलने पर सारा भूमण्डल कांपता है।

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः ॥९॥

भा०—जिस कारण से इन वायुओं का उत्पत्ति स्थान, आकाश स्थिर है इसी कारण पक्षीगण जिस वायु के बल पर अन्तरिक्ष से जाने आने में समर्थ होते हैं उन वायुओं का बल भी दुगुना अर्थात् महान् होता है। और उनमें शब्द और स्पर्श दो गुण रहते हैं। अथवा जिन वायुओं के बल पर ही पक्षियों का बल दुगुना हो जाता है।

वीरों के पक्ष में—इनका जनसमूह दृढ़ स्थिर है। भूमि के विजय के निमित्त निकलने के लिए ये बाजों के समान वेगवान् हैं। जिनके बल पर सब प्रकार से द्वैधीभाव का युद्ध होता है। और जिनके आश्रय राष्ट्र का बल है।

प्राणों के पक्ष में—इनका जन्म या प्रादुर्भाव स्थिर अर्थात् नियत है। ज्ञाता आत्मा के भीतर से वे मातृगर्भ से पक्षियों के समान आपसे आप बाहर आते हैं। इन प्राणों के कारण ही आत्मा में कर्त्ता और भोक्ता होने के दो भाव हैं। और इन प्राणों ही के कारण शरीर में बल है।

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१०॥

भा०—वे वायुगण, प्राणगण अपने गमन आगमन के बलों पर ही बालकों के प्रसव कराने वाले और अन्तरिक्ष में मेघों को चलाने वाले होते हैं। ये ही वाणियों को उत्पन्न करते हैं। ये ही जलों को अन्तरिक्ष में उठाये रहते हैं। बछड़ों के लिए उनके प्रेम से हंभारती हुई माताओं

जानुओ की तरफ झुकती हुई गौओ के समान वायुगण नाद सा करते हुए गति करते हैं।

वीरो के पक्ष मे—ये राष्ट्र के पुत्र आज्ञाओ का पालन करते तथा बलयुक्त प्रयाणो मे दिशाएं पार कर जाते है। ये ही शब्द करते हुए घुटने झुका कर या कदम आगे बढ़ाकर जाने के लिए तय्यार होते है।

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

त्यं चिद्धा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्र च्यावयन्ति यामभिः ११

भा०—वृष्टि के सेचन करने वाले पवनगण जिस प्रकार अपने शीघ्र वेगो से लम्बे, चौडे, बडे भारी जल न गिराने वाले, भूमि को जल से न गीला करने वाले मेघ के भी जल को गिरा देते हैं, उसी प्रकार जलो के समान शरो की वर्षा करने वाले वीर गण बडे लम्बे, विशाल न गिरने या न झुकने वाले, न मारे जाने वाले, प्रबल उस शत्रु को भी अपने प्रबल आक्रमणो से गिरा देते हैं, युद्ध से भगा देते है।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन ॥१२॥

भा०—हे प्रबल वायुओं और प्राणगण के समान वीरो! विद्वान् पुरुषो! जो आप लोगो का बल प्राणियों और प्रजा पुरुषो को सन्मार्ग मे चलने के लिए प्रेरित करता है वही बल मेघों को या पर्वतों को वायुओ के समान पर्वत के समान अकम्प, दृढ़ शत्रु पुरुषो को भी हिला देता है।

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३॥

भा०—और जब भी पवनो के समान परोपकारी, वेग से या ज्ञान-मार्ग से जाने वाले विद्वान्गण और वीरगण ज्ञानमार्ग से या युद्धमार्ग से जाते है और परस्पर वादानुवाद और वार्त्तालाप या ज्ञान का उपदेश करते है तब इनके वचनो को कोई ही सुनता और समझता है।

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै॥१४॥

भा०—हे वीरो और विद्वान् पुरुषो! आप लोग बडे शीघ्र जानेवाले यान आदि साधनों से शीघ्र ही दूर देशों तक जाओ, प्रयाण करो। आप

लोगों को विद्वान् मेधावी पुरुषों के अधीन नाना कर्त्तव्य कर्म करने होते हैं। वहां ही आप लोगों को अच्छी प्रकार संतुष्ट, तृप्त और सुखी होना चाहिये।

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्। विश्वं चिदायुर्जीवसे

भा०—आप लोगों के आनन्द लाभ करने के लिए और सदा तृप्त होने और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए समस्त पदार्थ सदा विद्यमान रहें। और इनके ही प्राप्त करने के लिए हम भी सदा पुरुषार्थ करते रहें और आनन्द से जीवन व्यतीत करें। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[३८]

१—१५ कण्वो घौर ऋषिः। मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ८, ११, १३, १४, १५, ४ गायत्री। २, ६, ७, ६, १० निचृद्गायत्री। ३ पादनिचृद्गायत्री। ५, १२ पिपीलिकामध्या निचृत्। १४ यवमध्या विराड् गायत्री। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्तबर्हिषः॥१॥

भा०—पिता अपने हाथों में, भुजाओं में जिस प्रकार पुत्र को प्रेम से सुरक्षित रूप में लेता है, खिलाता पिलाता और उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार हे शत्रुओं को घास के समान काट गिराने हारे वीर, विद्वान पुरुषो! आप लोग कथा, विद्योपदेश, उत्तम वाक्यरचना और नियम व्यवस्थाओं के द्वारा स्वयं सन्तुष्ट होने और अन्यों को सतुष्ट करने हारे विद्वान्, वाग्मी, शास्त्रज्ञ होकर निश्चय से कब प्रजाजन को अपने हाथों में, अपने वश में, अपने अधीन धारण करोगे?

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति॥

भा०—निश्चय से किस स्थान पर आप लोग अपने इष्ट प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करते हो? आकाश के समान पृथिवी के ऐश्वर्य को भी आप लोग भला कब प्राप्त करते हो? सूर्य की किरणों के समान आप लोगों की इन्द्रियें, वाणियें और भूमियें, भूमि वासी प्रजायें कहां

मनोहर शब्द करती हैं ? जहां विद्वान् हो, जब वे अपने अभीष्ट को प्राप्त हो, जहां वे उत्तम वचन बोलें वहां उस स्थान पर उस समय उनका सत्संग करो । अथवा आप लोग कहां नहीं हो ? अर्थात् आप लोग वायु के समान सर्वत्र विचरण करते हो । आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों को आप कब नहीं प्राप्त करते ? अर्थात् सदा ही आपको आकाश और भूमि के सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं । आप लोगो की ज्ञान वाणियां गौओ के समान कहां नहीं ज्ञान रस धारा बहातीं ? अर्थात् वे सर्वत्र ज्ञान मधु का उपदेशामृत प्रदान करती हैं ।

वीर जनो के पक्ष में—आप लोगो की गौवो के समान वासी प्रजाएं कहा नहीं रम रही हैं ? सर्वत्र रम रही हैं, भूमियां भी सर्वत्र हरी भरी हैं।

क्व॑ वः सु॒म्ना नव्यां॑सि॒ मरु॑तः॒ क्व॑ सुवि॒ता । क्वो॒३॒॑ विश्वा॑नि॒ सौभ॑गा ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे वायु के समान वैश्य गण और तीव्र-गामी वीर जनो ! तुम्हारे लिये नये से नये, आश्चर्यदायक सुख साधन कहां है ? और आपके शासन तथा नाना ऐश्वर्य कहां हैं ? और समस्त सौभाग्य, सुखप्रद ऐश्वर्य राज्य आदि कहा हैं ? जहां हों वहां से उनको प्राप्त करो । अथवा पूर्व मन्त्र से 'न' की अनुवृत्ति लेवें । आप लोगों के नये २ सुख साधन, शासन, ऐश्वर्य और सौभाग्य सुख कहां कहां नहीं है ? अर्थात् सर्वत्र विद्यमान हैं ।

यद्यू॒यं पृ॑श्निमातरो॒ मर्ता॑सः॒ स्यात॑न । स्तो॒ता वो॑ अ॒मृतः॑ स्याम् ॥४॥

भा०—हे आकाश रूप माता से उत्पन्न होने वाले, अथवा 'पृश्नि' सबके पालक पोषक सूर्य के तेज से उत्पन्न होने वाले वायुगण के समान पृथ्वी और तेजस्वी राजा से उत्पन्न होने वाले प्रजा के वीर पुरुषो ! यद्यपि आप लोग मरणधर्मा पुरुष हो । तथापि आप लोगो का उपदेष्टा, आज्ञापक, नेता पुरुष चिरायु, दीर्घजीवी और शत्रुओं से कभी नाश न होने वाला होकर रहे ।

अध्यात्म में—शरीरगत प्राण आत्मा से उत्पन्न होने से 'पृश्निमातर' हैं। वे स्वयं नश्वर हैं, उनका उत्पादक आत्मा अमर है।

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप॥१५

भा०—घास रहने पर मृग, तृणचारी पशु जिस प्रकार सदा हृष्ट पुष्ट और कार्य सेवा में लगने योग्य रहता है और घास आदि न मिलने पर दुर्बल और मरणासन्न तथा भार आदि उठाने के काम का भी नहीं रहता उसी प्रकार हे विद्वानो! वीरो एवं ज्ञानार्थी पुरुषो! आप लोगों का मार्गोपदेष्टा नायक भी असेव्य अर्थात् सेवा और प्रीति करने और कर्तव्य पालन करने के अयोग्य न हो। वह सदा कर्त्तव्यपरायण बना रहे। तुम उसको सदा आहार आदि से सुखी बनाये रक्खो और वह नियम, नियन्ता के मार्ग से ही जावे। अथवा वायु या मृत्यु के मार्ग में मत जावे। वह मृत्यु को प्राप्त न हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह॥६॥

भा०—अधिक से अधिक, बहुत अधिक, अति अधिक शत्रु रूप अति कष्टदायिनी पर सेना अति कठिनाई से मरने वाली, प्रबल होकर हमें प्यास से पीड़ित होकर भाग जाये। अथवा अति अधिक, अति कठिनाई से नाश होने वाली कठिनाई, आपत्ति दुरवस्था या रोगादि पीडा हमें कभी न मारे और वह भूख प्यास की पीडा के साथ अकाल दुष्काल आदि के रूप में भी हमें न प्राप्त हो।

अध्यात्म में—बड़ी से बड़ी पीड़ा और पाप प्रवृत्ति भी अवध्य या ... होकर हमें कष्ट न दे। वह हम भोग, तृष्णा या लोभ के साथ व्यापे। विद्वान् जन प्राणादि साधन से उसका प्रतिकार करें।

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम्

भा०—विद्युत् की दीप्ति से युक्त बलवान्, तीव्र गति वाले जीवों के सुखप्रद, जीवनाधार होकर जिस प्रकार वायुगण अन्तरिक्ष या मरु भूमि में भी अविचल, मूसलाधार वृष्टि करते हैं उसी प्रकार सचमुच ये अति

तेजस्वी, प्रतापी, बलवान्, ज्ञानी, शत्रुओ को रुलाने वाले वीर सेनापति के सैनिक गण धनुष के बल पर ही वायु को भी बीच मे से अवकाश न देने वाली अथवा वायु से भी बढ़कर शर वर्षा को करें। इसी प्रकार जीव के ये प्राण भी बलवान् दीप्तियुक्त रहकर हृदय देश मे विना वायु के आनन्दरस की वर्षा करते हैं। और तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ज्ञानवर्षा करते हैं।

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि॥८॥

भा०—जब इन वायुओ के कारण जल वृष्टि होती है तब जिस प्रकार हंभारती हुई गौ अपने बछड़े की तरफ लपकती है और जिस प्रकार माता प्रेम से दूध क्षरते पयोधरो से बच्चे को अपने अंग के संग लगा लेती है उसी प्रकार बिजली शब्द करती है, भूमि पर निवास करने वाले प्रजाजन को प्राप्त होती और वर्षा से सींच देती है। उसी प्रकार इन वीरो की जब शर वर्षा होती है तो गौ के समान विद्युत् अस्त्र तोप आदि गरजती हैं।

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति॥९॥

भा०—जब ये वायु गण पृथिवी को विशेष रूप से तरबतर कर रहे होते हैं तब जल को धारण करने वाले बादल से ही दिन के समय भी अन्धकार कर देते है। जब वीर पुरुष रक्तधाराओ से भूमि को गीला करते हैं तब जलधर मेघ के समान अति युद्धकारी सेनापति द्वारा दिन में भी अन्धकार या शत्रु पक्ष मे अति शोककारी दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

अधं स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः॥१०॥१६

भा०—आकाश-मण्डल या युद्धभूमि में तीव्र वायुओं और उनके समान प्रचण्ड वेग से जाने वाले वीर सैनिको के घोष से समस्त पृथिवी लोक और समस्त नरपति मण्डल मट्टी के बने घर के समान कांप जाता है। और साधारण मनुष्य तो बहुत ही अधिक कांप जाते हैं, डर जाते हैं। इति षोडशो वर्गः॥

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेमखिद्रयामभिः॥११॥

भा०—वायुगण जिस प्रकार अविच्छिन्न, अटूट वेगों से नाना प्रकार की नदियों की ओर बहते हैं उसी प्रकार हे प्रचण्ड वेगवाले वीर सैनिको! आप लोग दृढ़, बलयुक्त हाथों से अद्भुत या चिन कर बनाई गई या समृद्ध चारों तरफ से घेरने वाले परकोटों से घिरी शत्रु की पुरियों को लक्ष्य कर अनथक चालों से बढ़ते चले जाओ।

प्राणगण के पक्ष में—हे प्राणगण या योगीजनो! तुम दृढ व्यवहार वाले और अखिन्न, निरन्तर होने वाली चेष्टाओं से चेतना देने वाली नाड़ियों के प्रति गति करो। उनको अपने वश में करो।

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् सुसंस्कृता अभीशवः १२

भा०—हे वीर पुरुषो! तुम्हारे रथ चक्रों की धुराएं यान, रथ अग्नि और अश्व आदि वेग वाले वाहन इन शिल्पी गणों के कारण शुद्ध तथा बलवान हों। और रासें, अंगुलियां और अश्व भी अच्छी प्रकार से बने, सजे हों।

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् अग्निं मित्रं न दर्शतम् १३

भा०—हे विद्वन्! तू महान ज्ञान वेद राशि को अध्ययन और प्रवचन द्वारा पालन करने वाले ज्ञानवान सबके स्नेही पुरुष को प्रिय मित्र के समान प्रेम से दर्शन करने योग्य जान कर विस्तृत व्याख्या करने वाली वाणी से प्रत्येक पदार्थ के गुणों के वर्णन करने के लिए आदर से प्रार्थना कर। अथवा मित्र के समान देखने योग्य अग्रणी नायक, बड़े बल और राष्ट्र के पालक राजा को ज्ञानोपदेश करने के लिए विस्तृत वाणी से साक्षात उपदेश कर।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम १४

भा०—हे विद्वन्! तू वेदवाणी को मुख में कर ले, उसे कण्ठस्थ कर। और उस वेदवाणी को मेघ के समान गर्जना करते हुए, दूर दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका उपदेश कर। और गायत्री छन्द में कहे स्तुति युक्त वेद-वचन समूह को स्वयं गान कर, पढ़ और अन्यों को पढ़ा।

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह॥१५

भा०—हे मनुष्य! तू अति तेजस्वी व्यवहार कुशल, उत्तम ज्ञान-सम्पन्न, प्राणो और वायुगणो के समान उपकारी वीरो और विद्वानो के समूह को अभिवादन और स्तुति कर। वे ज्ञान और आयु मे वृद्ध होकर इस लोक मे हमारे हितकारी हो। वायुगण—विद्युत् से दीप्तियुक्त हैं, वे सूर्य से युक्त होने से 'अर्की' हैं। इति सप्तदशो वर्गः।

[३९]

कण्वो घोर ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्द—१, ५, ६ पथ्याबृहती। २, ७ उपरिष्टाद्विराट् बृहती। ३, ८, १० विराट् सतः पंक्ति। ४, ६ निचृत्सतः पंक्तिः। ३ अनुष्टुप्। दशर्चं सूक्तम्॥

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः॥१॥

भा०—हे विद्वानो! एवं वायु के समान तीव्र वेग वाले बलवान् वीर सैनिको! एवं व्यापारकुशल पुरुषो! जिस प्रकार सूर्य दूर देश से अपने तेज को फेंकता है उसी प्रकार दूर दूर के देश से भी आकर तुम जो इस प्रकार प्रजा और शत्रुजन को स्तब्ध या चकित कर देने वाले बल या शस्त्रास्त्रसमूह को फेंकते हो या प्रयोग मे लाते हो तो बतलाओ वह किसके क्रिया-सामर्थ्य से और किसके भौतिक बल से फेंकते हो। और तुम लोग जो वायु के समान तीव्र वेग से जा रहे हो तो किसको लक्ष्य करके जाते हो। और हे वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले आप लोग भला किसको अपने बल से कपाना चाहते हो।

परमेश्वर और आत्मा के पक्ष मे—ये तीव्र वेग से जाने वाले वायु गण अधिक परिमाण वाले जलादि को और पृथिवी आदि लोक दूर से तेज को किसके ज्ञान, बल और क्रियाशक्ति से फेंकते हैं। और कहां चले जा रहे हैं। इनका लक्ष्य क्या है। उत्तर—उसके सबके कर्त्ता प्रजापति परमेश्वर के ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य तथा बल से ही प्रेरित होकर ये

सब तेज, जल आदि बरसाते और गति करते है उसी को लक्ष्य कर जा रहे हैं।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोगों के युद्ध करने के हथियार, आग्नेय, वायव्य आदि अस्त्र शस्त्र शत्रुओं को दूर हटा देने वाले संग्राम के लिए स्थिर अर्थात् सुदृढ़ हों और शत्रुओं को रोकने और मुकाबले पर डट जाने के लिए वे हथियार बलवान्, दृढ़, मजबूत हों। हे वीर पुरुषो ! तुम लोगों की बलवती सेना अति व्यवहार कुशल, प्रशंसनीय हो। कुटिल, मायावी मनुष्य के वैसे दृढ़ शस्त्रास्त्र और प्रबल, कुशल सेना न हो।

परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर नायक पुरुषो ! जिस कारण वृक्ष के समान स्थिर शत्रु को भी प्रचण्ड वायु के समान आघात करके उखाड देते हो और पर्वत के समान भारी पदार्थ को भी पलट देते हो, उथल पुथल कर देते हो इस कारण तुम रश्मियों से युक्त प्रचण्ड वायु के समान तीव्र एवं वन के समान घना सेना संघ बना कर चलने वाले आप सब पृथिवी, समस्थल और पर्वतों के समस्त दिशाओं को विविध प्रकारों से पहुंचो और उन पर आक्रमण करो।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४॥

भा०—हे हिंसक शत्रुओं को भी नाश करने वाले वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् धार्मिक पुरुषो ! यदि शीघ्र ही आप लोगों की सेना विस्तृत सह-योगी बल और वीर सेनापति के साथ शत्रुओं के दबाने में समर्थ हो जाय तो निश्चय से हे दुष्ट शत्रुओं के रुलाने वाले वीरो ! या उपदेश करने हारे विद्वानो ! तुम लोगों का कोई भी शत्रु आकाश और

पृथिवी दोनों में भी नहीं पाया जाय, अथवा वह तुमको न पा सके।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रचण्ड वायुओं के समान प्रबल वेग से जाने वाले वीर पुरुषो! पर्वतों और मेघों को जिस प्रकार वायुगण बड़े बल से हिला देते हैं और वे जिस प्रकार वट, गूलर आदि बड़े वृक्षों को प्रबल झकोरों से तोड़ फोड़ कर पृथक् २ कर देते हैं उसी प्रकार आप लोग भी युद्ध विजय की कामना करते हुए अति मदमत्त पुरुषों या हाथियों के समान किसी की भी पर्वाह न करते हुए पर्वत के समान दृढ़ और मेघ के समान शर वर्षाने वाले शत्रुओं को भी खूब कंपा डालो और वट आदि के समान बड़ी बड़ी प्रजाओं और सेनाओं को आश्रय देने वाले राजाओं को भी तोड़ फोड़ कर भेद नीति से विरला २, पृथक् २ कर दो और अपनी समस्त आश्रित प्रजा के साथ आगे बढ़ो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! आप लोग अपने रमण, आनन्द विनोद के लिये बने रथों में या रथारोही महारथियों के अधीन देह में चेतनता रस और आनन्द का सेचन करने वाली, रक्त नाड़ियों के समान और वर्षा कालिक वायुओं के साथ जुड़ी धारा वर्षाने वाली मेघ मालाओं के समान नाना रंगों वाली तथा भरी पीठ वाली या वेगों से चलने वाली घोड़ियों को और शत्रु पर शस्त्र वर्षण करने वाली सेनाओं को लगाओ, नियुक्त करो। आप लोगों में वायुओं की सूर्य के समान रक्त वर्ण की उज्ज्वल पोशाक पहनने वाला एवं उदय को प्राप्त होने वाला, प्रतापी, तेजस्वी राजा पीठ से बोझा उठाने में समर्थ बलवान् पशु के समान राष्ट्र-भार या सेनापति पद को उठाने वाला एवं जिज्ञासा के कार्य में कुशल, अति तेजस्वी मतिमान् पुरुष उस पद को धारण करे। हे वीर जनो! आप

लोगों के प्रयाण के विषय की बातें पृथिवी, दुनियां भर या आकाश तक में भी सुनाई देवें और उन्हे सर्व-साधारण मनुष्य सुन कर भय पावें।

पृषत्यो मरुताम्—प्रावृषि सर्वतः पृषत्यो विचित्रा मेघमाला मरुतामिति स्कन्दस्वामी।

आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥

भा०—हे दुष्टों और शत्रुओं को रुलाने हारे वीर पुरुषो, नैष्ठिक ब्रह्मचारी जनो! आप लोगों के सुखजनक रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य को अति शीघ्र अपनी सन्तति और विद्या ऐश्वर्य के प्रसारक विद्वान् पुरुषों के लिये सब प्रकार से चाहते हैं। जिस प्रकार पहले आप लोग अपने रक्षाकारी बल से जाते रहे उसी प्रकार अब भी भयभीत, सकट में पड़े हमारे में विद्वान्, उत्तम पुरुषों की रक्षा के लिये अवश्य जाया करो।

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो और वीर सैनिको! जो शक्तिमान न होकर, निर्बल या सुहृद् भाव मे न रहने वाला शत्रु आप लोगों को विजय करना अभीष्ट है और साधारण मनुष्य भी जिसे जीतना चाहते हैं, वह यदि हमें मारे तो उसको अपने बल से और पराक्रम से और अपनी चढाइयों या रक्षा, प्रेम, तृप्ति, आक्रमण आदि करने वाली सेनाओं से हमसे दूर रक्खो।

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

भा०—बिजुलियां जिस प्रकार वर्षा को पूरी तरह बरसा देती हैं उसी प्रकार हे उत्तम ज्ञान से युक्त उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारे विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी हमारे प्रज्ञावान् शिष्य के प्रति अपने सम्पूर्ण ज्ञानों और ब्रह्मचर्य आदि पालनकारी शिक्षाओं सहित आओ और पूर्ण ज्ञान और सामर्थ्य प्रदान करो।

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे उत्तम रीति से प्रजा की रक्षा और शत्रु का खंड २ करने वाले वीर पुरुषो ! विद्वान् जनो ! आप लोग पूर्ण पराक्रम, बल और ब्रह्मचर्य को धारण करो । हे शत्रुओ को कम्पा देने वाले वीर पुरुषो ! और काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, प्रमाद आदि व्यसनो को कंपा कर त्याग देने हारे ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग पूरा बल और ज्ञान धारण करो। देश-द्वेषी शत्रु के ऊपर वीर पुरुष अति क्रुद्ध होकर जिस प्रकार बाण फेंकते है उसी प्रकार आप लोग भी पूर्ण ज्ञानी होकर वेद के विद्वान् और ईश्वर तथा सत्तर्कों और प्राणियों के प्राणो के प्रति द्वेष करने वाले नास्तिक कुतार्किक और हिंसक पुरुष को दूर करने के लिए शस्त्रादि के समान अपनी प्रबल इच्छा शक्ति को उत्पन्न करो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४०]

कण्वो घौर ऋषि ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—२, १, ८ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । ५ पथ्याबृहती । ३, ७ आर्चीत्रिष्टुप् । ४, ६ सतः पङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिः ॥

अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

भा०—हे वेदज्ञान के परिपालक विद्वन् ! ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! और बडे सैन्यसमूह के पालक सेनापते ! राजन् ! हम विद्यादि उत्तम गुणों की, विद्वान् पुरुषो की और विजयशील राजा की कामना करते हुए तुझको प्रार्थना करते हैं कि उठ, तय्यार हो । उत्तम कल्याणकारी शुभ साधनो तथा प्रिय पदार्थों के दाता और प्रजाओ के रक्षक विद्वान् जन और वीर पुरुष आगे बढे, अपने प्रमुख पुरुष के पास विनयपूर्वक आवें और तब हे ज्ञान वाणी के दातः ! आचार्य ! और ऐश्वर्यवन् राजन् ! सेनापते ! तू अति शीघ्रता से ज्ञानमार्ग में चलने और युद्धमार्ग में के

चलने हारा होकर उन शिष्यों और वीरगणों के साथ रह, उनके साथ बैठ, उन्हें गुरु शिक्षा देकर विद्वान् और वीरपुरुष बना ।

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।

सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

भा०—हे इन्द्रियों और दुष्ट मानस भावों को दमन करने वाले विद्वान् पुरुष के पुत्र एवं शिष्य ! जो पुरुष तुझको लक्ष्य करके उपदेश करे और हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों को जो विद्या आदि हितकारी ऐश्वर्य के लिए चाहता या तृप्त करता है आप लोग उसके उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक उत्तम वीर्य, बल अथवा उत्तम अश्व के समान बलवान् पुष्ट करने वाले ब्रह्मचर्य बल को धारण करो ।

वीरों के पक्ष में—हे बल के द्वारा प्रजा पुरुषों के रक्षक ! नायक ! सांसारिक मनुष्य हितकारी धन को प्राप्त करने के लिये तेरे आगे ही निवेदन करता है । हे वीरो ! जो तुमको चाहे या तृप्त करे उसकी रक्षा के लिये आप लोग उत्तम तुरङ्गबल और उत्तम वीर्य धारण करो ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

भा०—वेद के सत्यज्ञान तथा विद्वान्, वेदज्ञ ब्राह्मण गण का पालक राजा आगे आए अर्थात् उच्च पद पर अधिष्ठित हो । प्रिय, उत्तम सदाचरण तथा सत्य शास्त्रयुक्त वाणी बोलने वाली विदुषी स्त्री तथा राजसभा उच्चपद पर विराजे । विद्वानगण वीर नेता पुरुषों में प्रमुख सेना के वीर पुरुषों की पङ्क्तियों को वश करने में कुशल पुरुष को हमारे सुव्यवस्थित राष्ट्र कार्य में प्राप्त करावें ।

परमेश्वर के पक्ष में—वेद ज्ञान का पालक परमेश्वर वा आचार्य हमें साक्षात् हो और सत्य वेदवाणी हमें ज्ञात हो । सबका हितकारी वीर्यवान् अक्षरपंक्ति का ज्ञाता विद्वान् स्वाध्याय, यज्ञ या ज्ञान के प्रवचन कार्य में अग्रणी हो ।

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष को उत्तम पुरुषों या नायकों से युक्त राज्यैश्वर्य या बसने वाली प्रजा रूप धन को धारण कराता है। उस नायक को वीर्यवती बहुत अच्छी प्रकार सब ज्ञानों, पदार्थों और सुखों को देने वाली गौ के समान कभी न मारने योग्य, निर्दोष, निष्पाप कन्या के समान भूमि को हम प्रदान करें।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥२०॥

भा०—जिसके आश्रय पर शत्रु विजयी सेनापति, दुष्टों का निवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा, सबका स्नेही विद्वान् पुरुष न्यायाधीश आदि समस्त विद्वान्‌जन अपने २ स्थान, पद बनाये रहते हैं निश्चय से वह वेदज्ञान का पालक विद्वान् कहने और श्रवण करने योग्य मन्त्र, विचार को कहता है वही सर्वमान्य है।

परमेश्वर के पक्ष मे—वह वेद या महान् जगत् का पालक परमेश्वर जिसके आश्रय पर विद्युत् समुद्र मेघ आदि प्राणगण, वायु और पृथिवी आदि लोक तथा समस्त विद्वान् अपना आश्रय बनाये हुए हैं, वही प्रभु उपदेश और श्रवण करने योग्य वेदमन्त्रों का उपदेश करता है। इति विंशो वर्गः ॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! विजय की इच्छा करने वाले वीर पुरुषो ! हम लोग संग्राम के अवसरों पर और विज्ञान प्राप्त करने के अध्यनाध्यापन, व्याख्यान-प्रवचन आदि कार्यों में न नाश करने योग्य, स्थिर, सत्य, सदा रक्षा करने योग्य, निर्दोष यथार्थ अबाधित, शान्तिदायक, उस ही मनन योग्य विचार और वेदमन्त्र का उपदेश करें। हे मनुष्यो !

नायकगण ! यदि इस वाग्, वेद रूप वाणी को प्रत्येक अवसर पर चाहोगे, प्राप्ति और अभ्यास करोगे तो समस्त प्रकार की उत्तम, सुखप्रद वाणी तुम लोगों को अवश्य प्राप्त होगी।

को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम्।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥

भा०—विद्वानों, उत्तम गुणों, पदार्थों और वीर पुरुषों के चाहने वाले पुरुष को कौन प्राप्त होता है और शत्रुओं को कुशा के समान काटकर प्रजा पालन रूप यज्ञ करनेवाले कुशल पुरुष को कौन प्राप्त होता है? उ०—वह वेदज्ञ विद्वान् ही वीराभिलाषी और शत्रुघाती प्रतापी राजा को मन्त्री रूप मे प्राप्त होता है। दानशील पुरुष ही गृहों मे निवास करने वाली प्रजाओं, राष्ट्र भूमियों और सुसगत, सुव्यवस्थित सेनाओं से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। और भीतर गति करने वाले वायु से युक्त या भीतर आने वाले नाना ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों मे पूर्ण निवास योग्य गृह को तथा प्रजा के निवास योग्य राष्ट्र को धारण करता है।

'पस्त्याभि.'—वसन्त्यस्मिन्। पततेर्वा, सकार उपजनः। पसेः संगत्यर्थे वा इति माधवः।

उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

भा०—जो राजा अपने क्षत्र अर्थात् सेना बल को अच्छी प्रकार सुव्यवस्थित सुगठित कर लेता है वह युद्ध आदि संकट के अवसर पर भी अन्य सहयोगी राजाओं की सहायता से मैदान मार लेता है, अर्थात् शत्रु का नाश कर देता है और अपनी उत्तम निवास भूमि अर्थात् राष्ट्र को भी अपने वश किये रहता है। बड़े २ संग्राम मे भी न कोई इसके मुकाबले पर रहने वाला और न कोई इसको परास्त कर इससे बच जाने वाला ही होता है और न छोटे संग्राम में ही उस बल वीर्यशाली राजा को कोई परास्त और उल्लंघन कर सकता है। इत्येकविंशो वर्गः।

[४१]

काण्वो घौर ऋषि ॥ देवता—१—३, ७—६ वरुणमित्रार्यमण । ४—६ आदित्याः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६ विराड् गायत्री । ७, ६ निचृद्गायत्री । नवर्च सूक्तम् ॥

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। नू चित्स दभ्यते जनः॥१॥

भा०—जिस प्रमुख पुरुष को सर्वश्रेष्ठ सभापति या दुष्टो के वारणकारी, सबका मित्र, विद्वान्, उपदेशक, आचार्य, पक्षपात रहित, न्यायकारी, धर्माध्यक्ष, ये सब उत्तम ज्ञान से सम्पन्न जन सुचित्त सावधान होकर रक्षा करते हैं वह पुरुष कभी ही किसी से मारा नही जा सकता या पीडित हो सकता।

य बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते ॥२॥

भा०—जिस वीर तथा धर्मात्मा पुरुष को बाहुएं जिस प्रकार शरीर की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अनेक शत्रुओं को रोकने वाली बाहुएं तथा अनेक प्रबल सेना दल पालन करते हैं और घातक शत्रु के आक्रमण से बचाते है वह किसी प्रकार भी हिंसित या पीडित न होकर सब अंगो सहित बढ़ता है।

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः ३

भा०—प्रजा मे विशेष मान, आदर, प्रतिष्ठा से चमकने वाले तेजस्वी एवं प्रजा को अनुरञ्जन करने वाले राजा गण इन शत्रुओं के दुर्गम गढ़ो को और शत्रु के नगरो और उनमे रहने वाले निवासियो को विविध उपायों से विनष्ट करते है और दुःखदायी कारणो तथा बुराइयो को दूर कर देते हैं।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः४

भा०—हे आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालक विद्वानो! एव अधिकारी पुरुषो! सत्य ज्ञान और धर्मशास्त्र तथा वेदानुकूल चलने वाले का मार्ग सदा अति सुगम और कांटों और विघ्न, भय

बाधा से रहित होता है। इस मार्ग मे हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगो के लिये भी किसी प्रकार का कोई भय नहीं, न्यायानुसार मार्ग के उल्लंघन करने पर जहां प्रजाजन को राजगण का भय होता है वहां अन्याय से वर्त्तने वाले राजा और उसके अधीन अधिकारियो को भी पीडित प्रजा से भय उत्पन्न होता जाता है।

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत्॥५

भा०—हे सूर्य के समान सत्-मार्गों के प्रकाशक विद्वान् पुरुषो ! हे नेता पुरुषो ! आप लोग जिस प्रजा पालन या परोपकार के कार्य को सरल, कुटिलता रहित, न्यायानुकूल मार्ग से ले जाते हो वह राजा और राज्य कार्य आप लोगो के ऐश्वर्य भोग के लिये सदा प्राप्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥६॥

भा०—वह विद्वान् तथा धर्मात्मा मनुष्य किसी प्रकार भी पीडित और व्यथित न होकर सब प्रकार के रमण करने योग्य, सुखप्रद, ऐश्वर्य और अपने ही प्राण और बल से उत्पन्न पुत्र को भी भली प्रकार प्राप्त होता है।

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य ७

भा०—हे मित्र जनो ! सबके सुहृद् न्यायाधीश राजा के गुणों का या पदाधिकार का हम किस प्रकार से वर्णन करें क्योंकि सर्वश्रेष्ठ राजा का भोगने योग्य ऐश्वर्य और वैभव विस्तार या स्वरूप भी तो बहुत बड़ा है।

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे ८

भा०—हे धार्मिक पुरुषो ! विद्वान अधिकारी जनो ! और प्रिय प्रजा-जनो ! प्रजाजन और राजा तथा मैं भी आप लोगो को मारने और पीडा देने वाले से कभी प्रेम से बात न करूं। और व्यर्थ निन्दा वचन कहने वाले से भी प्रेम से न बोलूं। और आप लोगों के उत्तम गुणों और विजयी

पुरुषों को चाहने वाले मित्र वर्ग की सुखजनक उत्तम पदार्थों द्वारा ही मैं सेवा करूं या आच्छादित करूं। मित्र गण को सब प्रकार से ऐश्वर्यों से पूर्ण करूं।

चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ६।२३

भा०—विश, मादक पदार्थ, परपीडा, दूसरे के घर मे आए चार पदार्थों को देने वाले पुरुष से और चोरे हुए पदार्थों को स्थान देने वाले पुरुष से भी डरे। दुष्ट, दु.खदायी वचन और उसको कहने वाले को कभी स्नेह न करे। अथवा द्यूत खेलने वाला पुरुष जिस प्रकार चार पासो को हाथ मे लेने वाले से तभी तक डरता है जब तक वह पासों को नीचे नहीं धरता, उसी प्रकार दुर्वचन कहने वाले से डरे। उससे कभी प्रेम न करे [निरुक्तकार यास्क तथा सायण]। हनतः शपतो ददमानात् निधातोरेताश्चतुरः प्रति न विश्वसेत् बिभीयात्। दुरुक्ताय न स्पृहयेत्। एतान् मित्रकर्तुं नेच्छेत्। मारने वाले हत्याकारी, निन्दक, विष आदि देने वाले और अन्याय से पर वदार्थ के लेने वाले इन चारों पर विश्वास न करे, इनसे डरे। और दुर्वचन कहने वाले के साथ प्रेम न करे। इन चारों को मित्र न बनावे [दया०]

'चतुर·चित् ददमानात्'—इस प्रसग में मनु कहते हैं—

अग्निदान् भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।

संनिधातृंश्च मोपस्य हन्यात् चौरमिवेश्वरः॥ मनु० अ० ९।२७७॥

(१) दूसरे के घर मे आग लगा देने वाले, (२) विषयुक्त अन्न देनेवाले, (३) हत्या के लिए शस्त्र देने वाले और (४) हत्यारे, विषदायी और अग्नि लगाने वाले इन तीनों प्रकार के अपराधियों को व अपने घर में स्थान देनेवाले इन चारों को और चोरे हुए पदार्थ को अपने घर में रखने वालो को भी राजा चोर के समान दण्ड दे। वेद में भी उक्त चारो पदार्थों को देने वाले और चोरित पदार्थ को लेकर रखने वाले से भय करने और शकित रहने को कहा ।

अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके प्राप्ति साधनों के देने वाले पुरुष से और वीर्य निषेक करने हारे मातापिता से भी भय करे। परन्तु उनके दुर्वचन को स्वयं ग्रहण न करे। अथवा उनके दोषयुक्त वचन या बुरे उपदेश का आदर या प्रेम न करे।

राजापक्ष मे—चारो सेनाओं के देने मे समर्थ और प्रचुर कोश वाले राजा से भय करे। परन्तु दुर्वचन कहाने वालों का आदर न करे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[४२]

कण्वो घौर ऋषि ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृद्गायत्री। २, ३, ५—८, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सं पू॑ष॒न्नध्व॑नस्तिर॒ व्यंहो॑ विमुचो नपात्। सक्ष्वा॑ देव॒ प्र ण॑स्पु॒रः॥१

भा०—हे सबके पालनपोषण करने हारे सूर्य और पृथिवी के समान सबके रक्षक तथा पोषक! तू कठिन मार्गों के भी अच्छी प्रकार पार पहुंचा दे। हे विविध पदार्थों और सुखों को प्रजा पर न्योछावर करने वाले, मेघ के समान उदार पुरुषों को न नष्ट होने देने वाले राजन्! तू पाप और रोगपीडा से मुक्त कर। हे प्रकाशवन्! दानशील! तू हमारे आगे मार्गदर्शक रूप में रह। अथवा मार्ग के पार कर और हे प्रजा को न गिरने देने वाले! तू पाप और दुःख से मुक्त कर।

यो नः॑ पूषन्न॒घो वृको॑ दुः॒शेव॑ आ॒दिदे॑शति। अप॑ स्म॒ तं प॒थो ज॑हि॥२

भा०—हे प्रजा के पोषक राजन् वा परमेश्वर! जो पापी दूसरों के धन का चोर, दुःखदायी होकर हम पर शासन करता है उसको तू मार्ग मे कांटे के समान दूर उखाड फेंक।

अप॒ त्यं प॑रिप॒न्थिनं॑ मुषी॒वाणं॑ हुर॒श्चित॑म्। दू॒रमधि॑ स्रु॒तेर॑ज॥३॥

भा०—हे राजन् वा विद्वन्! दूसरे पर आक्रमण करने के लिए मार्ग से हटकर छुपने वाले और मार्ग मे जाते हुए पर आक्रमण करने वाले, चोरों से मूसे के समान दूसरे के घर में सेंध फाड कर चुराये धन

को ले भागने वाले, नाना प्रकार की कुटिल चालों से या झपट कर दूसरे के पदार्थों को हर लेने वाले, इन तीन प्रकार के चोरो को मार्ग से दूर बलपूर्वक शासन या उपदेश द्वारा दूर कर ।

त्वं तस्यं द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्यं चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ।४

भा०—हे राजन् ! तू आंख के सामने, देखते देखते और पीठ पीछे दोनो प्रकार मे पदार्थ चुराने वाले,पाप और हत्यादि करने की घात मे लगे, क्या तेरा, क्या तेरा करके चुराने वाले उस उस नाना प्रकार के दुष्ट पुरुष की प्रजा को सन्ताप देने वाले गण के ऊपर पैर रखकर, उन पर बलपूर्वक शासन करके उनका मुकाबला कर, उनको वीरतापूर्वक दबा ।

आ तत्ते दस्रमन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥५॥२४

भा०—हे दुष्टो के नाश करने हारे ! हे उत्तम ज्ञान और मनन सामर्थ्य वाले ! हे प्रजा के पोषक राजन् ! जिस शासन-बल से तू मां बाप के समान प्रजा के पालक अधिकारी पुरुषों को प्रेरित करता है, हम तेरे उस प्रजा के रक्षण तथा व्यवहार को चाहते हैं, स्वीकार करते हैं । इति चतुर्विंशो वर्गः ।

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥६॥

भा०—हे समस्त श्रेष्ठ सुखप्रद ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे सबसे अधिक हित और प्रिय वाणी के बोलने हारे परमेश्वर और सुन्दर सुवर्ण और लोहादि धातु के बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न राजन् ! उत्तम वाणी से युक्त विद्वन् ! तू हमे उत्तम शिल्पी के समान सुख और शान्ति प्रदान करने वाले धन और ऐश्वर्य प्रदान कर ।

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७॥

भा०—हे समस्त जगत् के पोषक परमेश्वर ! राष्ट्र प्रजा के पोषक राजन् ! विद्वन् ! हम लोगो को सुख से जाने योग्य उत्तम मार्ग से सब विघ्न बाधाओं को पार कर । और हमें अपने जीवन उद्देश्यो तक पहुंचने वाला बना । इस संसार में तू ही कर्त्तव्यो और ज्ञानो को जानता और

बनाता है, हमे भी आकर ज्ञान प्राप्त करा। हे विद्वन्! तू उन सब कर्त्तव्यों और विज्ञानों को स्वयं जान और हम सबको जना।

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूर्षन्निह क्रतुं विदः ॥८॥

भा०—हे सबको अन्न आदि से परिपुष्ट करने हारे प्रभो! राजन्! विद्वन्! जिस प्रकार पशुपाल अपने पशुओं को उत्तम चारे से भरे खेत मे चराने के लिए ले जाता है उसी प्रकार तू भी हमे उत्तम यव आदि अन्नों और ओषधियो से युक्त देश को पहुंचा। जिसमे जीवन मार्ग पर नया कोई सताप, पीड़ा, थकान आदि भी न हो। इस संसार मे तू ही शुभ कर्म करने की सामर्थ्य और ज्ञान को भी प्राप्त कर और हमे करा।

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूर्षन्निह क्रतुं विदः॥९॥

भा०—हे सर्वपोषक! राजन्! सभा-सेनाध्यक्ष! तू सब कार्य करने मे समर्थ है। तू हमे समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण कर। तू ही अच्छी प्रकार हमें सब ऐश्वर्य प्रदान कर। तू अच्छी प्रकार तीक्ष्ण और तेजस्वी हो। तू ही हमारे पेटों को अन्न से पूर्ण कर। तू ही समस्त कर्त्तव्यों और ज्ञानों को स्वयं जान तथा अपनी प्रजा को जना।

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि। वसूनि दस्ममीमहे ॥१०।२५

भा०—हम लोग सबके पोषक पुरुष को न मारें, उसे पीडित न करें। प्रत्युत उत्तम वचनों से उससे वार्तालाप करें उसका सत्कार करें। शत्रु के नाश करने वाले एव दर्शनीय, अति उत्तम पुरुष से हम ऐश्वर्यों की याचना करें। अथवा अपने पोषक से मधुर वचन कहे और हिंसक को मारें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दस्म—दसि दश दर्शनयोः दसि भाषार्थः। दसु उपक्षये।

[४३]

१—९ कण्वो घोर ऋषिः ॥ देवता—१, २, ४—६ रुद्रः। ३ मित्रावरुणौ। ७—९ सोमः॥ छन्दः—१, ७, ८ गायत्री। ५ विराड्गायत्री। ६ पादनिचृद् गायत्री। ९ अनुष्टुप्॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे ॥१॥

भा०—उत्तम ज्ञान से युक्त परमेश्वर और उत्तम पवित्र चित्त से युक्त विद्वान्, सुखो, ज्ञानो और ऐश्वर्यों को प्रजा पर मेघ के समान वर्षण करने वाले, बहुत बडे बलशाली, हृदय मे विराजमान, दुष्टो को रुलाने वाले राजा, परमेश्वर तथा उत्तम उपदेश देने वाले आचार्य के प्रसन्न करने के लिए अति शान्तिदायक, सुखजनक हम वचन बोलें।

यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे। यथा तोकाय रुद्रियम्॥२॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी पशुओं को घास आदि खाने को देती है और अखण्ड शासन वाली राज्यव्यवस्था या राजा मनुष्यों की वृद्धि और हित के लिए होता है और जिस प्रकार गोपाल गौओ के हित के लिए पालन करता है और जिस प्रकार माता बालक के लिए अति प्रिय पोषक होती है। उसी प्रकार हमारे लिए शत्रु और दुष्टो के रुलाने वाले रुद्र, परमेश्वर, राजा का यह जगत्सर्जन, दुष्ट दमन आदि कार्य और विद्वान् उपदेष्टा का उपदेश आदि कार्य हमारी कल्याण-वृद्धि करे।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः॥३॥

भा०—जिस प्रकार हमे हमारा मित्र या प्राण चेताता और चैतन्य बनाये रखता है और जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, अज्ञानों और दुष्टो का वारक राजा हमे कुमार्ग में पैर रखने से चेताता है और हमें वार वार चेताता रहता है और जिस प्रकार हमसे प्रेम करने वाले समस्त हमे सङ्कट से चेताते हैं उसी प्रकार वह दुष्टो का पीड़क परमेश्वर राजा और ज्ञानोपदेष्टा आचार्य भी समस्त प्रजाओं, पुत्रों और शिष्यों को उपदेश करें, उनको सब प्रकार के संकटों, कष्टो और दुःखों से बचावें।

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥४॥

भा०—गाथा, ज्ञान-वाणियो और विद्वानो के परिपालक, यज्ञों और यज्ञकर्ता, धर्मात्मा पवित्र पुरुषों के पालक, सुखकारी ओषधि और दुःख से छूटने के उपाय बतलाने वाले, ज्ञानोपदेष्टा, विद्वान् परमेश्वर से

हम अति शांतिदायक और दुःखनाशक परमसुख दायक मोक्ष की याचना करते हैं।

यः शुक्र इ॑व सूर्यो॒ हिर॑ण्यमिव॒ रोच॑ते। श्रेष्ठो॑ दे॒वाना॒ं वसु॑ः॥५॥२६

भा०—जो अति दीप्ति वाला सूर्य के समान प्रखर तेज से चमकता है और जो सुवर्ण या अपने जीव आत्मा के समान अत्यन्त प्रिय है। वही सब विजयेच्छु विद्वानो और उत्तम पुरुषो मे श्रेष्ट और सबको बसाने और सबमे बसने वाला परमेश्वर है। उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष आदि को भी सूर्य के समान तेजस्वी, सुवर्ण और आत्मा के समान प्रिय, विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ और सबको बसाने वाला होना चाहिये। इति षड्विंशो वर्गः॥

शं नः॑ कर॒त्यर्व॑ते सु॒गं मे॒षाय॑ मे॒ष्ये॑। नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ गवे॑॥ ६॥

भा०—वह परमेश्वर और समस्त ज्ञानो का उपदेशक वेद तथा राजा हमारे अश्व, भेढा, भेड़ी, पुरुषों, स्त्रियों और गौ, बैलों के लिए भी सुख और शान्ति प्रदान करे।

अ॒स्मे सो॑म॒ श्रिय॒मधि॒ नि धे॑हि श॒तस्य॑ नृ॒णाम्। महि॒ श्रव॑स्तुविनृ॒म्णम्॥७

भा०—हे सर्वानन्दप्रद परमेश्वर! सबके प्रेरक एव अभिषेक योग्य राजन्! ऐश्वर्यवन्! तू हमारे लिए सौ पुरुषो के योग्य पर्याप्त लक्ष्मी, सम्पदा, बडा भारी अन्न और ज्ञान तथा बहुत से प्रकारो का धन संग्रह करके रख, प्रदान कर।

मा नः॑ सोम परि॒बाधो॒ मारा॑तयो जुहुरन्त। आ न॑ इन्दो॒ वाजे॑ भज ८

भा०—उत्तम पदार्थों, पुरुषो और राजा और राष्ट्र को पीडित करने ... पुरुष हम पर बलात्कार न कर सकें। हे दयालो, वेग मे या द्रुत-ति मे शत्रुओं पर आक्रमण करने हारे! तू हमारे हित के लिए युद्ध के ... या जीवन सग्राम मे हमे नियुक्त कर या हमे प्राप्त हो।

यास्ते॑ प्र॒जा अ॒मृत॑स्य॒ पर॑स्मि॒न्धाम॑न्नृ॒तस्य॑।
मू॒र्धा नाभा॑ सोम वेन आ॒भूष॑न्तीः सोम वेदः॥९॥२७॥८॥

भा०—हे सर्वेश्वर ! राजन् ! सत्यस्वरूप, कभी नाश न होने वाले तेरी जो प्रजाएं है, तू उनके सिर के समान प्रमुख नायक एवं पूज्य और नाभि या केन्द्र मे सबका आश्रय होकर सबसे उत्कृष्ट दुःख रहित स्थान या राष्ट्र अथवा ऐश्वर्य मे रहना चाहती हैं उनको तू सदा चाह, उनको प्रेम कर और उनको समृद्ध रूप मे स्वयं प्राप्त कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४४]

प्रस्कण्व ऋषि ॥ देवता—१—१४ अग्नि ॥ छन्दः—१,५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती। ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। ७, ११ निचृत्पथ्याबृहती। १२ भुरिग्बृहती। १३ पथ्याबृहती च। २, ४, ६, ८, १४ विराट् सतः पंक्तिः। १० विराड्विस्तारपंक्तिः —
९ आर्ची त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ विव॑स्वदु॒षस॑श्चि॒त्रं राधो॑ अमर्त्य ।
आ दा॒शुषे॑ जातवेदो वहा॒ त्वम॒द्या दे॒वाँ उ॑ष॒र्बुध॑: ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे जरामरण से रहित अविनाशी ! हे समस्त पदार्थों के जाननेहारे, प्रत्येक पदार्थ मे व्यापक ! ऐश्वर्यवन् !, विद्यावन् ! समस्त जीवो के स्वामिन् ! तू अपने को आपके समर्पण कर देनेवाले साधक को उषाकाल में से उत्पन्न होने वाले, सूर्य के समान प्रकाशवाले, अद्भुत ऐश्वर्य के समान पापो के जला देने वाली विशोका प्रज्ञा के उदय कालो मे विशेष प्राणों के सामर्थ्यों से युक्त, चेतना या चितिशक्ति से युक्त साधना का बल प्राप्त करा ; तू आज भी प्रात.काल ब्राह्ममुहूर्त्त में जागने वाले एव उस विशोका प्रज्ञा के द्वारा विशेष ज्ञान सम्पन्न होने वाले, विद्वान् ज्ञाननिष्ठ पुरुषो को भी अपने मे धारण कर। इसी प्रकार हे राजन् ! प्रतापी सभाध्यक्ष ! तू पापी लोगों के संतापकारी अपने उदयों या उत्थानों से ही प्रजा को अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान कर और विद्वान् विजयी पुरुषों को धारण कर।

जुष्टो हिं दूतो असिं हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! जिस प्रकार अग्नि अपने बीच मे पडे आहुति के पदार्थों को सूक्ष्म रूप से अति गुणकारी करके दूर देश तक पहुचाता है उसी प्रकार तू भी ले जाने और ले आने योग्य वृत्तान्तो और सदेशो को सूक्ष्म रूप से प्रजा के हित के लिए ले जाने हारा है। इसीलिए तू सबका प्रीतिपात्र और दूत एव शत्रुओं का तापक होने से भी 'दूत' होने योग्य है। तू कभी शस्त्रादि से से भी न मारने योग्य अवध्य पुरुषो मे रथवान् नायक के समान सर्व-प्रमुख है। तू दिन रात्रि और प्रातः उषाकाल इनसे युक्त होकर अग्नि जिस प्रकार उत्तम बलकारी अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी राजा और प्रजा वर्ग दोनो या दो अश्वारोही और तेजस्वी उषा के समान विद्या और प्रभाव से युक्त होकर हमे उत्तम वीर्य बल से युक्त बड़े भारी राष्ट्र और विख्यात यश और बल को प्रदान कर। 'अग्नि' यज्ञ के बीच नायक होने से 'रथी' है : वह परिपाक करके वीर्यप्रद अन्न देता है।

परमेश्वर पक्ष मे—उपास्य होने से 'दूत' है। स्तुति योग्य होने से हव्यवाहन है। रसस्वरूप होने से अविनाशी जीवो के बीच रथी है। वह प्राण, अपान और प्रजा के उदय मे बडा ज्ञान प्रदान करे।

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥

भा०—आज, अब, सदा हम लोग बहुतो को प्रसन्न सतुष्ट करने और प्रिय लगने वाले, सर्वप्रिय सकल विद्या और उत्तम गुणो के आश्रय, अग्नि के समान तेजस्वी, अग्नि के धूम के समान शत्रु को कम्पित करने वाले एवं प्रभावशाली ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त प्रातःकाल की वेलाओं में जिस प्रकार अग्नि और सूर्य विशेष दीप्तियो से युक्त होकर क्रम से उत्तरोत्तर दीप्तियों में बढ़ता ही जाता है उसी प्रकार अपने राष्ट्र की

विविध कामना और तेजस्वी कार्यों के अवसर पर विशेष सौम्य एवं उत्तरोत्तर बढ़ने वाली कान्ति को प्राप्त करने वाले, अथवा सभा को अपने वश करने मे समर्थ यज्ञो मे अश्वमेध आदि यज्ञो के विशेष आश्रय रूप अग्नि के समान ही समस्त प्रजा के एकत्र हुए सघो और प्रजा पालक राजाओं के बीच मे अहिंस्य या अवध्य होने के पद को विशेष रूप से प्राप्त होने वाले उत्तम संदेशो तथा उपासना आदि पदार्थों के ले जाने हारे दूत रूप से हम चुनें ।

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

भा०—प्रात काल के अवसरो मे जिस प्रकार हम लोग अग्नि को प्रदीप्त कर परमेश्वर की यज्ञों मे उपासना करते है । उसी प्रकार हम लोग सबसे श्रेष्ठ, उत्तम, सब से अधिक बलशाली अतिथि के समान पूजनीय, सबके प्रेमपात्र और सेवा करने योग्य अच्छी प्रकार आदर से बुलाये जाने योग्य वेतन,भृति आज्ञा आदि के देने वाले राजा के हित के लिए विजिगीषु राजाओं, विद्वानो और वीर पुरुषों के प्रति जाने के योग्य समस्त उपस्थित या वर्तमान कार्यों और व्यवस्थाओ को भली प्रकार जानने वाले ज्ञानी पुरुष को नाना प्रकार की इच्छा और कामनाओ की पूर्त्ति के निमित्त मैं प्रधान पुरुष के रूप मे नियुक्त करूं, भेजूं ।

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! हे अविनाशिन् ! हे सबके पालक ! हे दु खो के नाशक ! हे ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न आदि पदार्थों और बलो और ज्ञानो को धारण करने वाले ! सबको त्राण करने वाले कभी न मरने हारे या न मारने योग्य, अवध्य, उपासना योग्य, एवं आदर सत्कार करने योग्य, विपत्तियो से बचाने वाले प्रभो ! तेरी मैं स्तुति करूंगा । परमेश्वर अमर होने से 'अमृत' है । दूत अवध्य होने से

'अमृत' है। राजा बल में अदम्य होने से 'अमृत' है। आत्मा नित्य होने से 'अमृत' है। परमेश्वर पालक होने से, आत्मा भोक्ता होने से, राजा भोक्ता और पालक दोनों होने से 'भोजन' है। दूत भेंट, उपायन, सन्देश आदि ले जाने से 'हव्यवाहन' है। ईश्वर स्तोतव्य गुण और जगत् के लोक धारक होने से 'हव्यवाहन' है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम्॥ ६॥

भा०—हे अति युवा पुरुष के समान कभी क्षीण न होने वाले बल वीर्य से युक्त, अतिप्रिय! मनोहर! हे नमस्कार करने योग्य पूज्य! परमेश्वर और राजन्! तू उत्तम स्तुतियों से युक्त एवं उत्तम अनुशासनों, शिक्षाओं से युक्त मधुर, मनन करने योग्य ज्ञानों और वचनों को जिह्वा पर धारण करने वाला, मधुर वाणी से बोलने वाला, अपने भक्तों को मधुर भक्तिरस प्रदान करने वाला, उत्तम आदर सत्कार से सत्कृत होकर तू उत्तम मेधावी उपासक या भली प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले पुरुष को जीवन के लिए दीर्घायु बढ़ाता हुआ दिव्य, विद्वानों में श्रेष्ठ, एवं वीर पुरुषों में उत्तम जन की रक्षा कर और स्तुति करने वाले को ज्ञान प्रदान कर। उपदेश करने वाले के वचनों का श्रवण कर, उनको समझ। प्रार्थना करने वाले का अभिप्राय जान। अथवा हे पुरुष! तू राजा, विद्वान् एवं ईश्वर के भक्तजन को नमस्कार कर।

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत्॥ ७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! तेजस्विन्! हे राजन्! परमेश्वर! समस्त ऐश्वर्य के स्वामी, सब सुखों और ऐश्वर्य के दाता, तुझको ही समस्त प्रजाएं अच्छी प्रकार प्रदीप्त करती, हृदय में चेताती, आपके द्वारा अपने को बलवान् तेजस्वी बनाती हैं। हे बहुत सी प्रजाओं से स्तुति योग्य! तू उत्कृष्ट ज्ञानवाले विद्वानों और विजयेच्छु पुरुषों को इस राष्ट्र में अतिशीघ्र

प्राप्त करा। स्वयं उनको प्राप्त हो। प्रजाएं राजा को तेजस्वी बनाती हैं और राजा प्रजाओं को तेजस्वी बनाता है।

सुवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

भा०—हे उत्तम अहिंसनीय, प्रबलतम! उषाकाल के समान शत्रु-रूप अन्धकार के नाशक! मेधावी, बुद्धिमान्, शत्रुहन्ता और उत्तम ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाले अथवा सोम अर्थात् राजा के पद पर अभिषेक करने वाले पुरुष देने और स्वीकार करने योग्य पदार्थों को धारण करने वाले तुझको, सूर्य के समान तेजस्वी, सूर्य चन्द्र से युक्त दिन रात्रि के समान प्रकाशक शत्रुसंतापक और प्रजा को शान्तिदायक ऐश्वर्यवान् अग्नि के समान तेजस्वी रूप में प्रदीप्त करते हैं, तुझे अधिक शक्तिशाली, प्रभाववान् और तेजस्वी बनाते हैं।

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! तू यज्ञों के पालक अग्नि के समान हिंसादि से रहित प्रजापालन के कार्यों में और शत्रु से न मारे जाने वाले वीर पुरुषों के बीच उन सबका स्वामी और समस्त अधीन प्रजाओं का आदर योग्य एवं संदेशहर या प्रमुख है। तू राष्ट्र के ऐश्वर्यों को आनन्दप्रद अन्न आदि ओषधि-रसों के समान पान करने या उपभोग करने के लिए सुख, ज्ञान और मोक्षानन्द के देखने वाले अर्थात् प्राप्त करने वाले प्रातःकाल अग्नि और सूर्य के समान चेतने वाले तेजस्वी, अप्रमादी, ज्ञानी विद्वान् और वीर पुरुषों को आज सदा धारण कर।

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे विशेष दीप्ति या प्रकाश से समस्त लोकों को आच्छादित करने वाले अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन्! तू पूर्व के उषाकालों या

दिनो के समान ही समस्त संसार मे दर्शनीय होकर प्रकाशित हो और विज्ञान और तेज का प्रकाश कर। तू जनसंघों और प्रजा के निवास योग्य स्थानों और संग्रामों मे ज्ञानदाता और रक्षक है। यज्ञो मे, प्रजापालन आदि के उत्तम कार्यों मे सब मनुष्यों का हितकारी होकर प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश और सत्यासत्य के विवेक के लिए साक्षी-रूप से आगे उत्तम पद पर स्थापित होकर सबका हित करने वाला है। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

नि त्वा॑ य॒ज्ञस्य॒ साध॑न॒मग्ने॒ होता॑रमृ॒त्विज॑म् ।
म॒नु॒ष्वद्दे॑व धीमहि॒ प्रचे॑तसं जी॒रं दू॒तमम॑र्त्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! तुझको हम लोग सुप्रबद्ध, सुसगत ब्रह्माण्ड, जगत् के बनाने, पालने और आश्रय देनेहारा, समस्त सुखों के देने हारा या समस्त जगत् को अपने भीतर ले लेनेहारा, शरीर मे प्राणों को स्थापन करने वाला, सूर्य के समान ऋतुवत् कल्पो २ मे प्रलय और सृष्टि करनेवाला, उत्कृष्ट ज्ञान वाला अविनाशी, नित्य सबको संहार करने वाला, कालस्वरूप सर्वोपास्य ज्ञान, सामर्थ्य से सम्पन्न तुझको जानते और अपने हृदय मे धारण करते है।

विद्वान् राजा के पक्ष मे—प्रजापालन के साधक, सुखों के दाता, प्रति ऋतु यज्ञ के कर्ता, अथवा ऋतु अर्थात् सदस्यों से सम्बद्ध, उत्तम विद्वान् शत्रुओं के नाशकारी, प्रतापी, दूत के समान अवध्य प्रबल जान कर मानवों मे युक्त तुझको राष्ट्र के परमपद पर स्थापित करते हैं।

यद्दे॒वानां॑ मित्रमहः पु॒रोहि॑तो॒ऽन्त॑रो॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ।
सिन्धो॑रिव॒ प्रस्व॑नितास ऊ॒र्मयो॒ऽग्नेर्भ्रा॑जन्ते अ॒र्चय॑ः ॥ १२ ॥

भा०—हे मित्र अर्थात् सूर्य समान महान् तेज और सामर्थ्य वाले! तथा मित्रों, स्नेह करने वाले सुहृदों मे से सबसे अधिक पूजनीय परमेश्वर! तू समस्त सूर्य, पृथिवी आदि लोको और विद्वानो के बीच ही सबके साक्षी रूप से विद्यमान सर्वोच्च पद पर स्थापित, सबके कल्याणकारी, सबके

अन्तःकरणों मे व्यापक, अन्तर्यामी होकर सर्वोपास्य पद को प्राप्त हैं। महान् सागर के भारी गर्जना करने वाले तरंग जिस प्रकार उमड़ते है और आग की ज्वालाएं जिस प्रकार भडका करती हैं उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक, एव सबको अपने भीतर बांधने वाले या सबको चलाने हारे, शक्ति और ज्ञान के अगाध सागर तेरे मे से ही ये सब तरंगें उमड़ती और प्रकाशस्वरूप तेरी ही समस्त ये ज्योतिज्वालाए चमक रही हैं।

दूत और विद्वान् के पक्ष मे—हे मित्र राजा के समान पूज्य ! मित्र और शत्रुरूप दोनो के बीच तू साक्षी रूप होकर दूतकर्म के लिये जा तेरे गर्जना पूर्ण वचन सिन्धु की तरंगो और अग्नि की ज्वालाओ के समान उमडें, उठें और चमकें।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे कानो से उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक श्रवण करने वाले विद्वन् ! राजन् ! तू तेरे साथ सदा प्रयाण करने और जाने वाले सदा सहयोगी, राज्य के कार्यों को अपने ऊपर धारण करने वाले, विद्वानों और विजयेच्छु और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ प्रजा के धर्म, व्यवहारो को श्रवण कर। अवध्य, एव अहिसनीय, तिरस्कार न करने योग्य, उच्च आदरणीय उच्च पद को प्राप्त होकर सबका स्नेही, न्यायाधीश और प्रातःकाल ही अपने कार्य पर दत्त-चित्त होकर सबसे पूर्व उपस्थित होने वाले विद्वान् जन आदर योग्य बड़े २ पदो और आसनो पर विराजें।

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः॥ १४ ॥ ३० ॥

भा०—उत्तम व्यवस्थित रीति से देने वाले सत्य के बढ़ाने और सत्य के बल से बढ़ने वाले विद्वान् पुरुषों को अपनी वाणी या मुख अर्थात् मुख्य बनाने वाले प्रजा के मनुष्य न्यायपूर्वक कहे आज्ञा-वचनों को श्रवण करें। वे और स्वय प्रजाओं द्वारा वरण किया गया, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश,

समस्त व्रतों नियमों को धारण करने वाला दो मुख्य विद्वानों और दुष्ट पापी पुरुषों को संताप देने वाली पोलिस अथवा तत्व प्रकाश करने वाली न्यायसभा के साथ मिल कर कूट पीस कर निकाले ओषधि रस के समान वादविवाद द्वारा निर्णय किये यथार्थ तत्व को ग्रहण करे। अर्थात् प्रजाजन विद्वान् वकील को प्रमुख करें, सत्य से वढें, उत्तम रीति से फीस शुल्क दें और न्याय प्राप्त करें। न्यायाधीश दो विद्वानों तथा न्यायसभा या ज्यूरी से मिल कर तत्व को ग्रहण करे।

सेनापति और सैनिकों के पक्ष में—वीर सैनिक वायु के समान तीव्र उत्तम रीति से शत्रु को काटने और प्रजा के पालक और उत्तम वेतन दिये जाकर वल और राष्ट्र को वढाते हुए आज्ञा वचन सुनें। राजा, नियम पालक होकर विद्वानों और चतुरंग सेना और राजसभा से मिल कर राष्ट्र को वश करे, भोग करे। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[४५]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ १—१० अग्निर्देवा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्। ५ उष्णिक्। २, ३, ७, ८ अनुष्टुप्। ४ निचृदनुष्टुप्। ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने॒ वसूँ॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ उ॒त।
यजा॑ स्वध्व॒रं जनं॒ मनु॑जातं घृत॒प्रुष॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् विद्वन्! तू इस संसार में वा राष्ट्र में वसने वाले, [illegible] वर्ष के ब्रह्मचारी, प्राणों के नियमी, ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी और ४८ [illegible] तेजस्वी विद्वानों को अथवा ब्राह्मणों, क्षत्रियों और व्यापारी वैश्य को एकत्र कर। और हे राजन्! तू उत्तम यज्ञशील, [illegible] आत्मक और [illegible] मननशील, आचार्य आदि की शिक्षा प्राप्त करके शास्त्रनिष्णात विद्वान हुए, घृत दुग्धादि के साथ अन्नादि पोषक पदार्थों के सेवन करने वाले तेजस्वी तथा विधिपूर्वक जलों और ज्ञानों द्वारा स्नात हुए, स्नातक विद्वान पुरुष को भी ऐश्वर्य प्रदान कर तथा उनका सत्संग कर।

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! राजन् ! विविध प्रकार के शास्त्रों के ज्ञाता, विद्या के दाता, विद्वान् आचार्यगण भी भक्तिपूर्वक दान देने वाले शिष्य के लिए ही उत्तम विद्या आदि को प्राप्त करें। हे रक्तवर्ण के अश्वों या अश्वारोही सैनिकों के स्वामिन् ! हे स्तुति वाणियों के पात्र ! तू ही उन तेंतीस प्रकार के विद्वानों को प्राप्त कर।

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे महान् कर्त्तव्य करने वाले ! अति सूक्ष्म मनोहर बुद्धि वाले प्रतिभावान् पुरुष के समान तीनों तापों से रहित, मुक्तमुक्त पुरुष के समान और नाना रूपों को धारण करने वाले बहुश्रुत के समान और अंगों में बलकारक प्राण के समान होकर उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् पुरुषों के उपादेय ज्ञानयुक्त वचन को श्रवण कर।

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

भा०—बड़े बड़े कार्यों को करने वाले विद्वान् एवं शिल्पीगण और सबको सन्तुष्ट करने वाले, मनोहर बुद्धियों से युक्त पुरुष भी अवध्य, अति प्रबल राजाओं के बीच में ज्ञानी, प्रतापी और अति शुक्ल, निष्पाप, अति उज्ज्वल तेज से चमकने वाले अति तेजस्वी, प्रतापी धर्मात्मा पुरुष को अपनी रक्षा के लिए राष्ट्र के लोग प्रधान राजा रूप से स्वीकार करें॥ इसी प्रकार विद्वानजन रक्षा और ज्ञान के लिए ज्ञानी गुरु और परमेश्वर की स्तुति करें।

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—घृत की आहुति लेकर अग्नि जिस प्रकार चमकता है उसी

प्रकार ज्ञान और तेज की आहुति से देदीप्यमान हे विद्वन् ! हे सुख प्राप्ति के कार्यों और साधनों मे कुशल, उत्तम ऐश्वर्यप्रद ! विद्वन् ! प्रभो ! जिन वेदवाणियो से मेधावी विद्वान् पुरुषों के पुत्र और शिष्यगण रक्षा और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये तेरी स्तुति करते है। तू इन वेदवाणियों को श्रवण कर और अन्यो को श्रवण करा, उपदेश कर। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम् हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥

भा०—हे अद्भुत ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्यों के धारण करने वाले ! सबसे उत्तम ज्ञानी, फलप्रद, ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! हे सब जनों को भरपूर तृप्त करने हारे ! सबके प्रिय ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! अग्ने ! हवि पदार्थ को समस्त वायु, जल आदि पदार्थों तक प्राप्त कराने के लिये जैसे प्रज्वलित अग्नि को प्राप्त करते हैं और रथादि को उठा ले चलने के लिये जैसे अश्व को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ग्रहण करने योग्य, उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये अति दीप्तियुक्त केशों के समान किरण समूहों से युक्त, तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी तुझको प्रजा जनों में सभी प्राणी तुझे ही पुकारते और प्राप्त करते हैं।

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रतापिन् ! ज्ञानवन् ! प्रभो ! यज्ञों में जिस प्रकार अग्नि का आधान करते हैं उसी प्रकार उत्तम ज्ञानों, ऐश्वर्यों और सुखों के देने वाले प्रति ऋतु में यज्ञ करने वाले, एवं राजसभा के सदस्यों को एकत्र करने वाले, सबसे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, समस्त विद्याओं और प्रजा के कष्टों को श्रवण करने वाले, अति विस्तृत ज्ञान और विद्या से युक्त तुझ विद्वान् और शक्तिमान् को सभी उत्तम ज्ञानों और कामनाओं को प्राप्त करने के लिये कोष के समान सुरक्षित रूप से रखने और अपने हृदयों मे स्थापित करते हैं।

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्त्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! प्रतापिन्! राजन्! जिस प्रकार विद्वान् लोग यज्ञशील, दक्षिणा के दाता यजमान के लिये हवि ग्रहण करके सोम सेवन करने वाले ऋत्विग् जन अग्नि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार विविध पदार्थों, ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् पुरुष राष्ट्र को ऐश्वर्यमय बना कर मरणशील करप्रद या भृति के देने वाले प्रजा पुरुषों के हित के लिये ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को धारण करते हुए उत्तम अन्न और ज्ञान को प्राप्त करने का लक्ष्य रखकर बड़े भारी तेजस्वी तुझको शिष्य बनकर प्राप्त हों ।

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे बल को सम्पादन करने वाले! हे सज्जनों में कुशल सहनशील! हे श्रेष्ठ गुणों मे बसने वाले विद्वन्! यहां इस काल मे प्रातः ही आकर उपस्थित होनेवाले शिष्य गणों और दिव्य गुणों वाले विद्वानो के प्रिय पुरुष को भी ओषधि रसपान के लिये वैद्य जिस प्रकार रोगियों को आदर से बैठाता है उसी प्रकार उत्तम आसन पर सत्कार पूर्वक बैठा ।

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरो अह्न्यम् ॥ १० ॥ ३२ ॥

भा०—हे उत्तम ऐश्वर्यों को देनेहारे, दानशील पुरुषो! एव ज्ञान के दाता विद्वान् पुरुषो! यह ज्ञान का पिपासु, दीक्षा को प्राप्त शिष्य है। एक दिन के उपवास व्रत कर चुकने के अनन्तर प्राप्त हुए उसको तुम पालन करो, अपने भीतर ले लो। हे विद्वन्! तू अपने अभिमुख आये हुए विद्वानों के हितकारी जन को समानरूप से आदरपूर्वक सम्बोधन वचनों द्वारा अपने साथ मिला लो।

[४६]

१—१५ प्रस्कण्वः काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १० विराड्गायत्री । ३, ११, ६, १०, १४ गायत्री । ५, ७, ६, १३, १५, २, ४, ८ निचृद्गायत्री ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

भा०—तेजस्वी सूर्य की प्रिय, मनोहर अपूर्व, अद्भुत, दिन में सबसे पूर्व प्रकट होने वाली उषाकाल जिस प्रकार प्रकट होकर अपने उत्पादक दिन रात्रि तथा सूर्य के उत्तम तेज को प्रकाश करती है उसी प्रकार यह अति कामना योग्य अपने अभिलषित कामना करने वाले पति को प्रिय लगने हारी सबसे प्रथम उसी को प्राप्त होकर विविध प्रकार से उत्तम गुणों को प्रकट करती है । हे परस्पर प्रेम से युक्त स्त्री पुरुषो या गुरुजनो ! दिन और रात्रि या सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान तुम दोनों के मैं बहुत ही अधिक गुणों का वर्णन तथा उत्तम ज्ञान का उपदेश करूं ।

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥

भा०—जो ये दोनों एक दूसरे के दुःखों को नाश करने वाले या एक दूसरे के प्रति दर्शनीय, सुन्दर, सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार महान् आकाश से प्रकट होते हैं उसी प्रकार तुम भी सिन्धु के समान गम्भीर माता पिताओं से रत्नों के समान उत्पन्न हुए अथवा महानदी से माता के समान सींचे गये, उत्तम क्षेत्रों या वृक्षों के समान, परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन या चित्तवाले ऐश्वर्यों के देने वाले, कर्म, उद्योग और प्रज्ञा के बल से ऐश्वर्य धन या ज्ञान को प्राप्त करने वाले होकर रहो ।

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों का रथ, रमण विनोद करने का साधन पक्षियों के साथ अन्तरिक्ष में भी जावे । वृद्धावस्था में वर्त्तमान बड़े बूढ़े आदमी तुम दोनों को सदा उपदेश करते रहें ।

अध्यात्म में—जब वृद्ध जन तुम दोनों को सदा उपदेश करें तब ही

तुम दोनों का आत्मा परमहंस योगियों या प्राणों के साथ तापरहित, सुखमय अध्यात्म दशा मे विचरे।

हुविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा। पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४॥

भा०—अपनी किरणों के ताप से जलो को सूक्ष्मरूप से खींच लेने वाला सूर्य जिस प्रकार सबका पालन करने वाला होकर पिता रूप से वृद्धिसे अन्न उपजाकर,उससे सबको पालन करता है और समस्त कुटिल, टेढ़े मेढ़े मार्गों को प्रकाश से दिखाता भी है उसी प्रकार हे गृहस्थ के बीच नायक नायिका रूप से विद्यमान स्त्री पुरुषो! आप दोनों अन्न द्वारा प्रजाओं का पालन करो। कुटिल मार्ग के देखने वाले होकर अर्थात् विवेकशील बनकर आदर्श माता पिता के समान सन्तानों का पालन करो।

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा। पातं सोमस्य धृष्णुया॥५॥३३

भा०—हे सदा सत्याचरण करने वाले, हे अभिमत, प्रिय, ज्ञान-युक्त वाणी के बोलनेवालो! आप दोनो का, वीर रथी और सारथि के समान मननशील बुद्धिमान् पुरुषों के बीच शत्रुओं का नाशक प्रभाव और आदर हो। उससे और शत्रुओं को धर्षण या पराजय करने वाले बड़े सामर्थ्य से आप दोनों राष्ट्र, ऐश्वर्य और शरीरस्थ वीर्य तथा उत्तम सन्तति का पालन करो। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः।

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम्॥६

भा०—हे सूर्य और चन्द्र या दिन और रात्रि के समान परस्पर अनुरक्त एवं उपकारक स्त्री पुरुषो! जो अन्न या उत्तम कामना या अभिलाषा, दिन रात्रि के बीच सन्धि वेला में उत्पन्न होने वाली प्रभातवेला उषा के समान कान्तिवाली उज्वल चित्ताकर्षक होकर हमे हमारे दुःख, शोक और दारिद्र्यादि के चिन्ता रूप अन्धकार से पार उतार दे उस इच्छा, कामना और उद्योग, चेष्टा, सम्मति या अन्नादि ऐश्वर्य वृद्धि को हमें प्रदान करो।

आ नो॑ ना॒वा म॑ती॒नां या॒तं पा॒राय॒ गन्त॑वे। यु॒ञ्जाथा॑मश्विना॒ रथ॑म्॥७॥

भा०—हे विद्या मे निपुण स्त्री पुरुषो ! एवं शिल्प कला में चतुर पुरुषो ! आप दोनों हमारे बुद्धिमान् मनुष्यों को पार, परले तट पर पहुंचाने के लिए जल मे नौका से उपस्थित रहो और आया जाया करो और स्थल मे रथ मे बैल और घोड़े जोडा करो।

अ॒रित्रं॑ वां दि॒वस्पृ॒थु ती॒र्थे सिन्धू॑नां॒ रथः॑। धि॒या यु॑युज्र॒ इन्द॑वः॥८

भा०—हे शिल्प मे निष्णात स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों के आकाश के पार जाने के लिए और बहने वाले महा समुद्रों के पार जाने के लिए बड़ा भारी यान हो और पृथिवी पर जाने के लिए उत्तम रथ हो। जिसमें उत्तम कौशल से नाना द्रुतगति करने वाले चक्रादि पदार्थ लगाये जावें। अथवा समुद्र और भूमि के पार जाने के लिए बड़ी नाव, जहाज और पृथिवी पर बड़ा रथ हो। जिसमें अग्नि या विद्युत आदि पदार्थ और जलों को युक्ति से लगाया जावे। दया०।

सूर्य पक्ष में—नदियों या जलों के पार जाने के लिए बड़े नाव के समान मानो आकाश को पार जाने के लिए यह सूर्य रूप रथ है जिसमें अति वेगवान् किरणें या चन्द्र के समान नवग्रह बड़ी युक्ति के साथ लगे हैं अर्थात् गति कर रहे हैं।

दि॒वस्क॑ण्वास॒ इन्द॑वो॒ वसु॒ सिन्धू॑नां प॒दे। स्वं व॒व्रिं कुह॑ धित्सथः॥९

भा०—हे विद्वान् ज्ञानी स्त्री पुरुषो ! समुद्रों के परम गन्तव्य, गुप्त, गहरे स्थान में रक्खे वास योग्य भूमि ऐश्वर्य के समान एवं सूर्य की किरणों और सूर्य चन्द्र के समान तुम दोनों सुन्दर, उज्ज्वल रूप या ऐश्वर्य को भी किस स्थान पर रखना चाहते हो॥ अथवा हे विद्वानो ! जलों के बीच में, जल, अग्नि आदि तत्वों और अपने रूपवान् पदार्थों को या धन को कहां रक्खोगे।

अध्यात्म में—हे प्राण और अपान ! सूर्य की किरणों या आकाश में स्थित जलों के समान जो तुम्हारे ये प्राण या लिङ्गशरीर हैं। इनमें

सदा गतिशील प्राणो के परम गन्तव्य पद मे वास करने वाले वरण करने योग्य अपने सुन्दर आत्मा को तुम कहां धारण करते हो। उत्तर अगले मन्त्र में देखो।

अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः॥१०।३४

भा०—जब सूर्य का प्रकाश सुवर्ण के समान धातु के बने दीप्तियुक्त पदार्थ पर पडता है तब उसकी ज्वालायें दीप्तिकिरणपुंज के रूप मे प्रकट होती हैं और काठ आदि के आश्रय रूप बन्धन से रहित, अग्नि ज्वाला रूप से प्रकट होता है। इस स्थल पर 'हिरण्य' प्रक्षेपक नतोदर दर्पण है। 'अंशु' का अर्थ फोकस है। जब सूर्य नतोदर दर्पण पर पडता है तब सूर्य की दीप्ति फोकस पर झुकती है। वहां अग्नि प्रकट होता है। वह अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों में बद्ध न होने से 'असित' कहाता है। वह तीव्र ज्वाला या 'जिह्वा' या किरणो के शंकु के रूप मे ही होता है। महर्षि दया० ने स्पष्ट लिखा है। विना बन्धन का दीप्ति रूप सूर्य प्रकाश अंशु के स्थान मे जिह्वा के रूप मे प्रकट होता है। इसलिए सूर्य के सन्मुख ही अपना सुवर्ण आदि धातु का बना दर्पण पदार्थ उचित स्थान पर रक्खे। प्रथम मन्त्र में प्रश्न था कि सूर्य की किरणें अपना रूप कहां प्रकट करती हैं इसका इस मन्त्र मे उत्तर स्पष्ट हो गया। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः।

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः॥११॥

भा०—समुद्र के अपार जल के भी अच्छी प्रकार पार जाने के लिए मार्ग अवश्य है। और प्रकाश और सूर्य का भी गमन करने का मार्ग विविध उपायो से देखा जाता है। पूर्व के मन्त्र ९ में समुद्रों के बीच में बसने लायक स्थान कहा है और सूर्य और चन्द्र समुद्र के अतिरिक्त अपना रूप कहां रखते हैं ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट हुआ।

अध्यात्म मे—सत्य का ही मार्ग इस संसार सागर के पार जाने के लिए सबसे उत्तम है उसी मार्ग से परम मोक्ष या ज्ञानी आत्मा का मार्ग भी देखा जा सकता है या प्राप्त हो सकता है।

तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतः॥१२

भा०—उपदेशक विद्वान् पुरुष, आनन्द और सुख को प्राप्त करने के लिए परम प्रेरक शक्ति या बल या ऐश्वर्य को पालन, पूरण करनेवाले सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि जल और उनके समान ज्ञानयुक्त शिल्पियों के उन उन, नाना प्रकार के विज्ञानों और सामर्थ्यों को प्रत्येक पदार्थ में ही देखना चाहता है अर्थात् अनुभव करता है।

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम्॥१३

भा०—सूर्य के आधार पर रहने वाले दिन और रात्रि जिस प्रकार जल और वायु के पान या उपभोग द्वारा शान्तिदायक तथा सुखप्रद होते हैं उसी प्रकार विविध शिष्यों या अन्तेवासी छात्रों के स्वामी, अथवा विशेष ब्रह्मचर्यादि के पालनार्थ रहने योग्य आचार्य गुरु के अधीन नित्य नियम से रहने वाले स्त्री और पुरुष, कन्या और कुमार दोनों वीर्य के पालन और वेदवाणी के अभ्यास द्वारा मननशील ज्ञानवाले होकर जन साधारण को शान्तिदायक एवं कल्याणकारी सौम्य होकर अपने घरों को आवें। इसी प्रकार राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों तेजस्वी राजा के आश्रय पर राष्ट्र के भोग और पालन द्वारा ज्ञानी पुरुषों से युक्त होकर शान्तिदायक हों।

युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋता वनथो अक्तुभिः॥१४॥

भा०—बराबर व्यतीत होनेवाले दिन रात्रि के बीच जिस प्रकार शोभाकर उषा आती है उसी प्रकार समस्त देशों में यात्रा करने वाले तुम दोनों की राज्यसम्पदा के अनुरूप उसको बढ़ाने वाली ही उत्तम कामना या नव उदय होने का तेज तुम दोनों को प्राप्त हो। तुम दोनों सत्य व्यवहार वाले होकर बहुत दिनों तक ऐश्वर्य सम्पदा का भोग करो।

सभा-सेनाध्यक्ष के पक्ष में—सर्वत्र विपक्षी पर वार प्रहार करने वाले दोनों के राज्यलक्ष्मी के अनुरूप ही सूर्योदय के समान प्रताप का उदय होता है। वे सब दिन सत्य मार्गों का सेवन करें।

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः १५

भा०—हे रथी और सारथी के समान एक दूसरे के अधीन राजा प्रजाजनो ! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो ! या स्त्री पुरुषो ! आप दोनो ओषधि रस के समान ऐश्वर्य का अति परिमित दोनो मिलकर भोग करो और तुम दोनों मिलकर आनन्दित और दृढ़ रक्षा के उपायों और व्यवहारो से हमे शरण और सुख प्रदान करो । इति पंचत्रिंशो वर्गः ।

इति तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४७]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषि. ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१, ५ निचृत्पथ्या बृहती । ३, ७ पथ्या बृहती । ९ विराट् पथ्या बृहती । २, ६, ८ निचृत्सतः पंक्ति । ४, १० सत पंक्ति ॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे सत्य व्यवहार से बढ़ने वाले, सत्य के कारण यशस्वी आचार्य और उपदेशक तुम दोनों का यह शिष्य पुत्र के समान है । एवं हे आचार्य और उपदेशको ! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो ! तथा राजा और पुरोहितो ! यह राष्ट्र राष्ट्रपति को अभिषेक किया गया है । वह पुत्र, शिष्य और राष्ट्रपति उत्तम ओषधि रस के समान ज्ञानवान्, मधुरभाषी, अति-बलकारी हो । उसको स्वीकार करो, एक रस कर लो और दानशील-पुरुष के लिए रमण करने योग्य उत्तम रत्नादि पदार्थ प्रदान करो ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥

भा०—हे अग्नि और जल दोनों के समान परस्पर उपकारक स्त्री पुरुषो ! एवं सभा, सेना दोनों के अध्यक्षो ! आप दोनों तीन प्रकार से बंधे, तीनों प्रकार के शिल्पों से बने अथवा आकाश, स्थल और जल

तीनों स्थानों पर चलने हारे उत्तम सुवर्ण, लोह, पीतल आदि धातु से जड़े, सुरूप रथ से यात्रा किया करो और विद्वान् पुरुष तुम दोनों को सत्य वेदज्ञान का उपदेश करें। अथवा विद्वान् जन तुम्हारे अन्नादि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करावें। यज्ञ और प्रजापालन के कार्यों में तुम दोनों उन विद्वानों के स्तुति-वचन और आदरपूर्वक आमन्त्रण को अच्छी प्रकार आदर से श्रवण करो।

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम्॥ ३॥

भा०—हे पूर्वोक्त स्त्री पुरुषो! सभासेनाध्यक्षो! मधुर, सुखप्रद पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य को सत्य से बढ़ानेहारे होकर आप दोनों ओषधि रस के समान गुणकारी, सुखप्रद रूप से सेवन करो और आज के समान सदा दुःखों के नाशक होकर राष्ट्र में बसे प्रजाजन का पालन पोषण करते हुए अथवा ऐश्वर्य को धारण करते हुए तुम दोनों रथ पर बैठकर ज्ञानप्रद, विद्वान्, यज्ञशील, दानशील राजा तथा कर-प्रद प्रजा पुरुष को प्राप्त होवो।

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना॥ ४॥

भा०—हे पूर्वोक्त सभा-सेनापतियो! हे समस्त प्रकार के धनों, ऐश्वर्यों के स्वामियो! या ज्ञानी पुरुषो! आप दोनों तीनों समान कोटि के उच्च स्थानों पर स्थित प्रजाजन पर या पृथिवी निवासी लोगों के ऊपर शत्रुनाशक बल, अन्न और मधुर ऐश्वर्य या ज्ञान से पूज्य प्रजापति या राष्ट्र को संयुक्त करो या सेचन करो, उस पर अन्तरिक्षस्थ मेघ और विद्युत के समान ऐश्वर्य का वर्षण करो। सोम, सबके प्रेरक राजा का अभिषेक करने वाले विद्वान् पुरुष सब प्रकार से दीप्तियुक्त, तेजस्वी होकर अथवा शत्रुहन्ता वीर जन प्रतापी होकर तुम दोनों को स्वीकार करें, तुम पर अनुग्रह करें या तुम्हें अपनावें।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

भा०—हे राष्ट्र के व्यापक अधिकार वाले, राष्ट्र के भोक्ता के समान पूर्वोक्त सभा सेनाध्यक्षो ! हे उत्तम गुणो के पालक, हे सत्याचरण से बढ़ने वालो ! तुम दोनों जिन उत्तम कामनाओ और प्रेरित होने वाली या सञ्चालित सेनाओं से विद्वान् पुरुषो की अच्छी प्रकार से रक्षा करते हो उनसे ही हम सामान्य प्रजाजनों की भी सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करो और जिस प्रकार युद्ध के रथी, सारथी दोनो अपने आज्ञा देने वाले सेनापति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करो। या राजा की रक्षा करो। इति प्रथमो वर्गः।

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं के नाश करने मे तत्पर ! राष्ट्र में व्यापक अधिकार वालो ! आप दोनो उत्तम दास आदि भृत्यो से युक्त स्वामी के अधीन रह कर, अथवा उत्तम २ ऐश्वर्यों के देने वाले पुरुष के हितार्थ, नाना वासोपयोगी धनों, ऐश्वर्यों को अपने रथ में रख कर अति सुख और पुष्टि के देने वाले अन्न को प्राप्त कराओ और समुद्र और आकाश दोनों मार्गों से बहुत सी प्रजाओं से चाहने योग्य ऐश्वर्य को हमें प्रदान करो।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥

भा०—हे कभी असत्याचरण न करने हारो ! राष्ट्र के दो प्रमुख अधिकारियो ! चाहे तुम दोनों दूर देश मे हो और चाहे तुम दोनों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के अभिलाषी प्रजाजनों के ऊपर शासन करते होवो तो भी इसी कारण से कि उत्तम गति से चलने वाले रथ से सूर्य की किरणों के साथ २ ही, अप्रमादी होकर हमारे पास आओ।

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥

भा०—हे नेता पुरुषो ! रथी और सारथी जनो ! तुम दोनों के अश्वगण शत्रुओं से न मारे जाने वाले राजा की शोभाओं और नाना ऐश्वर्यों को भी प्रजा को प्राप्त करावें । तुम दोनों उत्तम धर्माचरण और न्याय के करने वाले और उत्तम सात्विक दानशील राजा के लिये प्रेरणा करने योग्य सेना और शस्त्रास्त्र समूह को अच्छी प्रकार सगठित करते हुए प्रधान नायक पद पर आकर विराजो अथवा सग्राम की शोभा बढ़ाने वाले अश्व ही ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले हो ।

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे सत्याचरण वाले, सत्य मार्ग के प्रवर्त्तक अथवा नासिका के समान प्रमुख स्थान पर विराजने वाले ! आप दोनों ऐश्वर्य को देने वाले राजा के अति मधुर ऐश्वर्य को ओषधि रस के समान उपभोग के लिये जिस रथ से सदा से, निरन्तर, स्थायी ऐश्वर्य, प्रजा के बसाने वाले राष्ट्र को प्राप्त कराते हो उस ही सबके प्रेरक, आज्ञापक राजा को, शरीर भोक्ता आत्मा को त्वचा या देह के समान सुरक्षित रखने वाले रथ से आया जाया करो ।

उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१०॥२॥

भा०—हे सभापति और सेनापति ! एवं रथी, सारथी ! तुम दोनों को हे अति ऐश्वर्यों के स्वामियो ! हम प्रजाजन ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये उत्तम वचनों, स्तुतियों और आदर सत्कार के पदार्थों और उपचारों से निरन्तर बुलाते हैं । आप लोग वीर पुरुषों की सेना और विद्वान् पुरुषों की प्रिय राजसभा दोनों स्थानों पर सदा ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पालन करो । इति द्वितीयो वर्गः ।

[४८]

प्रस्कण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, ९ विराट् पथ्या बृहती । ५, ११, १३ निचृत् पथ्या बृहती च । १२ बृहती । १५ पथ्या बृहती । ४, ६, १४ विराट् सतः पङ्क्तिः । २, १०, १६ निचृत्सतः पङ्क्तिः । ८ पङ्क्तिः ।

षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य से उत्पन्न होने के कारण सूर्य की कन्या के समान समस्त आकाश को अपने प्रकाश से पूर्ण करने वाली प्रभात वेला के समान ज्ञानों और गुणों से प्रकाशमान पिता माता की कन्या के समान अथवा कामना करने हारे प्रियतम पति की शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाली ! हे उषः ! समस्त पापों के जला देने वाली ! एवं हे कामना करने वाली तेजस्विनि ! तू सुन्दर, चाहने योग्य, उत्तम गुणों वाले योग्य पुरुष के साथ पत्नीरूप में युक्त होकर हमारे बीच में अपने उत्तम गुणों को प्रकाशित कर । हे विशेष दीप्तियों से युक्त उषा के समान विचित्र उत्तम भावों और गुणों से युक्त ! हे देवि ! शुभ गुणों से युक्त ! दानशीले ! तू बड़े तेज, कान्ति या अन्नादि भोग्य सम्पत्ति से और गौ आदि पशु ऐश्वर्य से उत्तम अन्न वस्त्र आदि नाना पदार्थों के देने वाली हो । इसी प्रकार राजसभाएं, राज्यसंस्थाएं भी उत्तम सभापति के साथ मिलकर तेजस्वी राजा की सब कामनाओं को पूर्ण करें । बड़े अन्न धन, पशु आदि सम्पदा से प्रजा को ऐश्वर्य देने वाली हों ।

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद् राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभातवेले ! उसके समान शुभ दर्शन और प्रेम से युक्त स्त्री ! तथा दुष्ट पुरुषों और राष्ट्र के पापों को जला देने वाली राज्य-संस्थे ! सुख से निवास करने के लिये अश्वों, अश्वारोहियों से युक्त सेना

और गौओं आदि पशु से युक्त सम्पदाएं और समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली भूमियां बहुत अधिक संख्या में प्राप्त की जावें। इस हेतु तू मुझे उत्तम ज्ञानों से पूर्ण वाणियां, आज्ञाओं का उपदेश कर और ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त करा, स्त्री भी पति को शुभ तथा मधुर वाणियां कहे। उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः॥ ३॥

भा०—जब प्रभात वेला व्यापती है तब वह प्रकाश वाली होकर सब पदार्थों को प्रकट करती है। वह ही सब रथों या देहों में वेग देने वाली है, इसके प्रकट होने पर सब लोग अपने देहों और व्यापारी लोग अपने शकट आदि रथों को चलाने लगते हैं और जो धन की इच्छा करने वाले बड़े व्यापारी लोग हैं। वे भी इसके आगमनों के अवसरों पर समुद्र में अपने जहाजों को काबू करते हैं। उसी प्रकार ज्ञान की कामना करने वाले योगी जन इसके आगमनों के प्रभात कालों में अनेक आत्मानंद रसों के बहाने वाले परमेश्वर और आत्मा में धारण द्वारा अपने आपको स्थापित करते हैं। वह ज्योतिष्मती प्रज्ञा प्रकट होती है, वही प्रकाश वाली होकर आनन्द-रसों को वेग से उत्पन्न करती है। इसी प्रकार स्त्री पति की कामना करनेहारी होकर पति के साथ रमे। नित्य उसकी ही कामना करती हुई वह अपने नाना मनोरथों को उसके प्रति प्रकट करे। जो अन्न के समान भोगने योग्य काम्य-सुखों को चाहने वाले पुरुष इसके नाना आनन्द रसों के उत्पन्न करने वाले काम या अभिलाषा पर या गृहस्थ के निमित्त और स्त्री के आचरणों पर विशेष संयम या व्यवस्था रखते हैं उन ही को वह सब सुखों को देने वाली और रमण योग्य सुखप्रद कार्यों, व्यवहारों को चलाने वाली होती है।

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम्॥ ४॥

भा०—हे प्रभातवेले ! जो सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष हैं, वे तेरे आगमन के कालों में अपने आत्मा के बन्धनो को काट देने के लिए अपने चित्त को योगसमाधि में अच्छी प्रकार लगाते है। इस ही अवसर पर इन मनुष्यो के बीच जो उस आत्मज्ञान और परम परमेश्वर के नाम और उसके स्वरूप का स्वयं उच्चारण करता और अन्यों को उपदेश करता है वह बहुत ही बुद्धिमान्, विद्वान् होता है।

स्त्री के पक्ष मे—जो तेरे आगमन के अवसरो पर दान देने की इच्छा करते हैं वे विद्वान् हैं और वह बहुत बुद्धिमान् है, जो मनुष्यो को स्त्रियों का नाना प्रकार से आदर करने का उपदेश करता है।

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः॥ ५॥ ३॥

भा०—निश्चय से उषा, प्रभातवेला भी स्त्री के समान ही उत्तम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली है। अर्थात् जिस प्रकार स्त्री पति को प्रेमपूर्वक कुमार्गों से हटाकर, कुव्यसनो से बचाकर सन्मार्ग मे ले आती है इसी प्रकार प्रभात वेला भी सुखपूर्वक प्राणियो को योग, उपासना आदि कार्य मे लगा देती है। स्त्री जिस प्रकार उत्तम उत्तम भोग प्रदान करती हुई अथवा पति और सन्तानो को व्रत, नियमादि का पालन कराती हुई प्राप्त होती है उसी प्रकार उषा भी उत्तम सुख प्रदान करती हुई और उत्तम व्रत, नियमों का पालन कराती हुई आती है। और जिस प्रकार स्त्री पुरुष के साथ ही वृद्धावस्था तक आयु व्यतीत करती हुई गमन योग्य मार्ग को दोनों चरणो से चलती है उसी प्रकार उषा भी प्रतिदिन प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई मानो पग पग धरती हुई प्राप्त होती है और जिस प्रकार स्त्री घर की तथा अन्न की रक्षा के लिए पक्षियो को उड़ाती है अथवा अपने पक्ष वाले सम्बधियों को उत्तम आदर प्राप्त कराती है। उसी प्रकार उषा भी अपने आगमन पर वृक्ष पर बैठे पक्षियो को जगा जगाकर आहार विहार के लिए उड़ाती है। इसी प्रकार ज्योतिष्मती

विशोका का उदय होने पर भी वह प्रज्ञा योगी की सुखप्रदात्री, पालक, पाप के नाश करने वाली ज्ञानस्वरूप होकर आती है और परम हंसों को ऊर्ध्वमार्ग, मोक्ष की तरफ ले जाती है। इति तृतीयो वर्गः।

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥ ६ ॥

भा०—अश्वों की सेना से युक्त संग्रामनेत्री स्त्री जिस प्रकार संग्राम को विविध प्रकारों से जाती है और नाना ऐश्वर्यों से युक्त सौभाग्यवती नायिका, नववधू जिस प्रकार पति के संग लाभ के निमित्त विविध मार्गों से जाती है, उसी प्रकार जो उषा प्रभात वेला भी दिन और रात्रि के संगम को दूर करती है और जिस प्रकार वह ऐश्वर्यवती श्री धन और अन्न के याचकों को उनके अभीष्ट पदार्थ प्रदान करती है और युद्ध-कुशल स्त्री जिस प्रकार अर्थनीति में कुशल युद्धार्थी शत्रुओं को भी विमुग्ध कर देती है उसी प्रकार उषा भी स्तुति द्वारा प्रार्थनाशील पुरुषों को विविध मार्गों से प्रेरित करती है। जिस प्रकार युद्धकुशला स्त्री देश को रक्त से गीला करती हुई आगे बढ़ती है और जिस प्रकार नववधू स्त्री अथवा को आंसुओं से गीला करती हुई पति-गृह को प्राप्त होती है उसी प्रकार यह उषा भी ओस से भूलोक को गीला करती हुई आती है और युद्ध-कुशला सेना या स्त्री के विशेष शत्रुदाहकारी प्रतापक या उग्र हो जाने पर पक्षियों के समान भगोड़े शत्रु कभी नहीं ठहरते, वे भयभीत होकर भाग ही जाते हैं और जिस प्रकार नववधू के पति के प्रति विशेष कामना युक्त होने पर विशेष वेग से जाने वाले अश्व कहीं भी विश्राम न लेते हुए जाते हैं, उसी प्रकार हे उषः! तेरे उदित हो जाने पर भी उड़ने वाले पक्षी कभी घोंसलों पर टिके नहीं रहते।

एषाऽयुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

भा०—यह उषा, प्रभातकाल की सूर्य-प्रभा जिस प्रकार दूर वर्त्तमान सूर्य के उदय से पूर्व ही सैकड़ो रमणीय, मनोहर किरणो से सुखपूर्वक सेवन करने योग्य होकर मनुष्यो को प्राप्त होती है, उसी प्रकार यह उत्तम सेवनीय, ऐश्वर्य पितृगृह कल्याण से युक्त सुभगा नववधू सूर्योदय के पूर्व ही दूरदेश मे स्थित अपने पितृगृह से अपने रथ मे घोडे जोड़ कर आवे और सैकडो रथो सहित मनुष्यो की बस्ती को आवे।

विश्वमस्या नानाम् चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य को मानो कन्या के समान तेज से ही समस्त आकाश को पूर देने वाली प्रभातवेला जिस प्रकार अति तेजस्विनी होकर द्वेष करने वाले चोर आदि को और हिंसक जन्तुओ को दूर करती हुई प्रकट होती है और वह उत्तम दिन की नेत्री समस्त जगत् को नयनो द्वारा दिखाने के लिए समस्त संसार मे प्रकाश कर देती है और उसके देखते ही समस्त संसार भक्ति, प्रेम से ईश्वर को नमस्कार करता है उसी प्रकार तेजस्वी माता पिता की पुत्री 'सूर्या' अथवा कामना करने हारे पति के सब मनोरथो को पूर्ण करने वाली ऐश्वर्यो और सौभाग्यो से युक्त होकर स्वयं पति की कामना करती हुई द्वेष करने वाले शत्रुओ को और हिंसकों को भी दूर करे, वह प्रभात वेला के समान सुशोभित हो। और वह उत्तम नायिका या उत्तम महिला हो। समस्त जगत् उसका विनय से आदर करे।

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

भा०—हे उषः! प्रभातवेले! हे प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न मानो उसकी कन्या के समान! एवं प्रकाश से आकाश को पूर्ण करने वाली! तू पूर्व दिशा मे सूर्य और पश्चिम दिशा में स्थित चन्द्र दोनो से प्रकाशित हो और सूर्य के आगमन कालो मे विशेष रूप से प्रकट होती हुई हमारे

लिए बहुत उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराती रह। इसी प्रकार हे कान्तिमति कमनीये! कन्ये! हे ज्ञानवन् पुरुष की पुत्री और प्रियतम पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी तू सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के समान आह्लादक पति के साथ संगत होकर सर्वत्र प्रकाशित हो और गृहस्थोचित कामनाओं को पूर्ण करने के अवसरों में हमारे हितार्थ अपने उत्तम गुणों को प्रकट करती हुई बहुत अधिक सौभाग्य, ऐश्वर्य को धारण करती हुई हमें प्राप्त हो।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

भा०—हे उत्तम रीति से दिन को या सूर्य को लाने वाली नायिका-स्वरूप उषः! जब तू विशेष तेज से प्रकट होती है तब तुझ पर ही समस्त जगत् का प्राण लेना और जीवन व्यतीत करना निर्भर है। हे अद्भुत ऐश्वर्य तेज से युक्त! हे विशेष दीप्तिवाली! वह तू बड़े भारी शक्तिमान, वेगवान आदित्य से युक्त होकर हमारी ईश्वर-स्तुति को श्रवण कर। इसी प्रकार हे उत्तम नायिके! नववधू! जब तू उत्तम गुणों को प्रकट करे तो तेरे आधार पर समस्त घर भर का सुख से प्राण लेना, जाना और आजीविका आदि निर्वाह निर्भर हो। वह तू हे विशेष कान्तियुक्ते! विभा-वति! हे अद्भुत नाना धनधान्यवति! बड़े सुन्दर रमण या बड़े भारी रथ के समान भार-वहन में समर्थ पति या गृहस्थ रूप रथ के साथ युक्त होकर श्रवण करने योग्य बड़ों के वचनों को आदर से सुन। इति चतुर्थो वर्गः॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

भा०—हे प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति कमनीये कन्ये! जो अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल अद्भुत आश्चर्यजनक, संग्रह करने योग्य मनुष्यों के हित के लिये है। उस अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को तू प्राप्त

कर। उससे हे स्त्री ! तू उत्तम पुण्यवान्, न हिंसा करने योग्य, न पीडा देने योग्य, उन पूज्य पुरुषों को प्राप्त कर, जो अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश को धारण करने हारे तेरे प्रति उपदेश करते हैं।

उषा और विद्वानों के पक्ष में—हे उषः ! जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेरे स्वरूप को देख कर भगवान् की स्तुति करते हैं तू उन पुण्यात्माओं को मनुष्यों के हित के लिये अद्भुत, आदर योग्य ज्ञान और बल प्रदान कर।

विश्वा॑न्दे॒वाँ आ व॑ह॒ सोम॑पीतये॒ऽन्तरि॑क्षादुष॒स्त्वम्।
सास्मासु॑ धा॒ गोम॒दश्वा॑वदु॒क्थ्य॒१॑मुषो॒ वाजं॑ सु॒वीर्य॑म् ॥१२॥

भा०—हे उषा के समान उज्वल कान्तिमति ! कमनीये कन्ये ! अन्तरिक्ष, आकाश से जिस प्रकार प्रभात वेला, उत्तम वायु, जल और ओषधि रसों के पान करने के लिये समस्त सूर्य की किरणों और दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है उसी प्रकार गृहस्थ में जल, अन्न आदि उत्तम पदार्थ और गार्हस्थ्य सुखों के उपभोग के लिये भीतर के अन्तःकरण से तू समस्त उत्तम गुणों को धारण कर। हे कमनीये ! पति की इच्छा करने हारी ! तू वह हममें भी पशु आदि सम्पत्ति, सुन्दर वाणी तथा भूमि और इन्द्रियों के बल से युक्त वेग वाले अग्नि यादि यानों और अश्व आदि पशुओं से सम्पन्न प्रशंसा योग्य उत्तम वीर्य और बल के देने वाले ऐश्वर्य और अन्न सम्पदा धारण कर, प्रदान कर।

यस्या॒ रुश॑न्तो अ॒र्चय॒: प्रति॑ भ॒द्रा अदृ॑क्षत।
सा नो॑ र॒यिं वि॒श्ववा॑रं सु॒पेश॑समु॒षा द॑दातु॒ सुग्म्य॑म् ॥१३॥

भा०—जिसकी प्रातःकालीन उषा के समान दीप्तियुक्त, एवं चोर, दस्यु और अन्धकार को नाश करने वाली किरणों के समान पापों को नाश करने वाले, उज्वल अति कल्याणकारी, सुखजनक गुण, प्रत्यक्षरूप से दीखते हों, वह पाप को नाश करने वाली, कान्तिमती कन्या उत्तम सुवर्णादि से युक्त सुन्दर रूप वाले, सबके मन को हरने वाले, सुखजनक, ऐश्वर्य सौभाग्य को हमें प्रदान करे।

लिए बहुत उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराती रह। इसी प्रकार हे कान्तिमति कमनीये! कन्ये! हे ज्ञानवन् पुरुष की पुत्री और प्रियतम पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी तू सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के समान आह्लादक पति के साथ संगत होकर सर्वत्र प्रकाशित हो और गृहस्थोचित कामनाओं को पूर्ण करने के अवसरों में हमारे हितार्थ अपने उत्तम गुणों को प्रकट करती हुई बहुत अधिक सौभाग्य, ऐश्वर्य को धारण करती हुई हमें प्राप्त हो।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

भा०—हे उत्तम रीति से दिन को या सूर्य को लाने वाली नायिका-स्वरूप उषः! जब तू विशेष तेज से प्रकट होती है तब तुझ पर ही समस्त जगत् का प्राण लेना और जीवन व्यतीत करना निर्भर है। हे अद्भुत ऐश्वर्य तेज से युक्त! हे विशेष दीप्तिवाली! वह तू बड़े भारी शक्तिमान्, वेगवान् आदित्य से युक्त होकर हमारी ईश्वर-स्तुति को श्रवण कर। उसी प्रकार हे उत्तम नायिके! नववधू! जब तू उत्तम गुणों को प्रकट करे तो तेरे आधार पर समस्त घर भर का सुख से प्राण लेना, जीना और आजीविका आदि निर्वाह निर्भर हो। वह तू हे विशेष कान्तियुक्ते! विद्या-वति! हे अद्भुत नाना धनधान्यवति! बड़े सुन्दर स्वरूप या बड़े भारी रथ के समान भार-वहन में समर्थ पति या गृहस्थ रूप रथ के साथ युक्त होकर ग्रहण करने योग्य बड़ों के वचनों को आदर से सुन। इति चतुर्थो वर्गः।

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

भा०—हे प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति कमनीये कन्ये! जो अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल अद्भुत आश्चर्यजनक, संग्रह करने योग्य मनुष्यों के हित के लिये है। उस अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को तू प्राप्त

कर। उससे हे स्त्री! तू उत्तम पुण्यवान्, न हिंसा करने योग्य, न पीडा देने योग्य, उन पूज्य पुरुषों को प्राप्त कर, जो अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश को धारण करने हारे तेरे प्रति उपदेश करते हैं।

उषा और विद्वानों के पक्ष में—हे उषः! जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेरे स्वरूप को देख कर भगवान् की स्तुति करते हैं तू उन पुण्यात्माओं को मनुष्यों के हित के लिये अद्भुत, आदर योग्य ज्ञान और बल प्रदान कर।

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

भा०—हे उषा के समान उज्वल कान्तिमति! कमनीये कन्ये! अन्तरिक्ष, आकाश से जिस प्रकार प्रभात वेला, उत्तम वायु, जल और ओषधि रसों के पान करने के लिये समस्त सूर्य की किरणों और दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है उसी प्रकार गृहस्थ में जल, अन्न आदि उत्तम पदार्थ और गार्हस्थ्य सुखों के उपभोग के लिये भीतर के अन्तःकरण से तू समस्त उत्तम गुणों को धारण कर। हे कमनीये! पति की इच्छा करने हारी! तू वह हममें भी पशु आदि सम्पत्ति, सुन्दर वाणी तथा भूमि और इन्द्रियों के बल से युक्त वेग वाले अग्नि यादि यानों और अश्व आदि पशुओं से सम्पन्न प्रशंसा योग्य उत्तम वीर्य और बल के देने वाले ऐश्वर्य और अन्न सम्पदा धारण कर, प्रदान कर।

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३॥

भा०—जिसकी प्रात कालीन उषा के समान दीप्तियुक्त, एवं चोर, दस्यु और अन्धकार को नाश करने वाली किरणों के समान पापों को नाश करने वाले, उज्वल अति कल्याणकारी, सुखजनक गुण, प्रत्यक्षरूप से दीखते हों, वह पाप को नाश करने वाली, कान्तिमती कन्या उत्तम सुवर्णादि से युक्त सुन्दर रूप वाले, सबके मन को हरने वाले, सुखजनक, ऐश्वर्य सौभाग्य को हमें प्रदान करे।

ये चि॒द्धि त्वामृष॑यः॒ पूर्वं॑ ऊ॒तये॑ जुहू॒रेऽव॑से महि ।
सा नः॒ स्तोमाँ॑ अ॒भि गृ॑णीहि॒ राध॒सोषः॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ॥१४॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान कमनीये! उज्वल गुणों वाली स्त्री! जो भी पूर्व के विद्वान् लोग ज्ञान आदि प्राप्त करने और गृहस्थ और व्रतादि के पालन करने के लिये तुझको उपदेश करते हैं वह तू उन हमारे उपदेश समूहों को स्वयं और अन्यों को उपदेश कर, पढ़, उनका स्वाध्याय कर और प्रकाश, तेज शुद्ध कर्म और धनैश्वर्य से युक्त हो।

उषा के पक्ष में—हे उषः! पूर्व के वेदज्ञ विद्वान् तुझे प्राप्त करके अपने ज्ञान वृद्धि और रक्षा के लिये परमेश्वर की जो स्तुति करते थे, अपने उज्वल प्रकाश और तेज से और आराधना योग्य इष्टदेव द्वारा उन स्तुति-वचनों का हमें भी उपदेश कर। अर्थात् वे भक्तिवचन प्रातःकाल हममें भी उठें, हम भी प्राप्त हों।

उषो॒ यद॒द्य भा॒नुना॒ वि द्वारा॑वृ॒णवो॑ दि॒वः ।
प्र नो॑ यच्छतादवृ॒कं पृ॒थु च्छ॒र्दिः प्र दे॑वि॒ गोम॑ती॒रिषः॑ ॥ १५ ॥

भा०—हे उषा के समान कान्तिमती, तेजस्विनि स्त्री! जैसे वह उषा सूर्य के प्रकाश से आकाश के दोनों द्वार, पूर्व और पश्चिम के आने जाने के मार्गों को प्राप्त होती है उसी प्रकार तू भी सूर्य के प्रकाश से और अपने गुण प्रकाश से ज्ञानवान् पुरुषों के आने और जाने के मार्गों को अच्छी प्रकार खोला कर और हमें हिंसक प्राणी बिच्छू सर्पादि से रहित, अति विशाल घर और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न अन्नादि ऐश्वर्य को खूब प्रदान किया कर।

सं नो॑ रा॒या बृ॑ह॒ता वि॒श्वपे॑शसा मिमि॒क्ष्वा समिळा॑भि॒रा ।
सं द्यु॒म्नेन॑ विश्व॒तुरो॑षो महि॒ सं वाजै॑र्वाजिनीवति ॥ १६ ॥ ५ ॥

भा०—हे उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारी विदुषी स्त्री! तू हमें बड़े अधिक परिमाण वाले नाना प्रकारों के ऐश्वर्य से

हमारी वृद्धि कर, हम पर हरएक प्रकार की ऐश्वर्य की वर्षा कर जिससे हम बढ़े और उत्तम प्राणियों, भूमियो, अन्न सम्पदाओ से हमे बढ़ा। समस्त शत्रुओ के नाशक एवं सेवको को शीघ्र से शीघ्र कार्य कराने मे समर्थ धन और प्रकाश, तेज, प्रभाव से युक्त कर। हे अति पूजनीये! हे ऐश्वर्यवती, उत्तम क्रिया और ज्ञान से युक्त! तू सग्रामो, ऐश्वर्यो और अन्नो से भी बढ़ा। इति पचमो वर्गः।

[४९]

प्रस्कण्व. काण्व ऋषि ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान सबको प्रिय लगने वाली कन्ये! तू कल्याणकारी गुणो और व्यवहारो से रहित अति उज्वल सूर्य से उषा के समान, तेजस्वी ज्ञानी कुल से हमे प्राप्त हो और जलो के सोखने वाले लाल रग के किरण जिस प्रकार उषा को लाते है उसी प्रकार हे विदुषी कन्ये! तुझको लाल वर्ण के घोडे ऐश्वर्यवान् बलवीर्य से युक्त ब्रह्मचारी, प्रिय पति के घर तक सुखपूर्वक ले आवें।

अरुणप्सवः—प्सान्तीति प्सव' अश्वाः, अरुणा रक्तगुणविशिष्टाश्च ते प्सवश्च इति।

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम्।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

भा०—हे उषा के समान कमनीये कन्ये! हे सूर्य-कन्या उषा के समान तेजस्वी माता पिता की पुत्रि! तू जिस सुखप्रद, अति अवकाश वाले विशाल उत्तम सुवर्ण आदि से बने, उत्तम रूप वाले रमण साधन रथ पर विराजती है अर्थात् बैठ कर जाती है उसी से आज, शुभ अवसर पर उत्तम ज्ञान, यश और ऐश्वर्य से युक्त, प्रिय जन अर्थात् पति को निर्विघ्न रूप से प्राप्त हो।

वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभातवेला के समान सबको प्रयत्न और पुरुषार्थ में लगानेहारी! हे सबको गृह के उद्योगों में प्रवृत्त करने वाली! तेरे नाना आगमनों तथा पुरुषार्थों के साथ साथ जिस प्रकार ऋतुओं के अनुकूल आनेवाले पक्षीगण और दोपाये और चौपाये, नाना मनुष्य और पशुगण, आकाश के नाना प्रदेशों और भूमि के नाना प्रदेशों से आया करते हैं इसी प्रकार ऋतुओं के अनुसार तेरे गृह पर नाना ज्ञान विज्ञान से युक्त, परमहंस, परिव्राजक गण, दोपाये भृत्यजन और चौपाये गौ, अश्व आदि पशुगण भी पृथिवी के नाना प्रान्तों से अच्छी प्रकार आवें।

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥ ६ ॥

भा०—हे उषा के समान उत्तम गुण-रश्मियों से उज्ज्वल कन्ये! जिस प्रकार किरणों से विविध दिशाओं को प्रकाशित करती हुई उषा समस्त संसार को रुचिकर, मनोहर और सुन्दर कर देती है उसको देखकर सबमें व्यापक परमेश्वर की कामना करते हुए विद्वान् पुरुष स्तुति करते हैं, उसी प्रकार तू भी गुण रूप किरणों से प्रकाशित होती हुई समस्त संसार या गृहस्थ को मनोहर कर देती है, उसे जगमगा देती है। उस तुझको स्वयं बसना चाहने वाले विद्वान् पुरुष उपदेश करें या तेरी गुण स्तुति करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[५०]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः । सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१–९ गायत्री (१, ६ निचृद्। २, ४, ८, ९ पिपीलिकामध्या निचृद्। ५ यवमध्या विराट्।) १०, ११ निचृदनुष्टुप्। १२, १३ अनुष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥

भा०— रूप और गुणों का ज्ञान करानेहारे रश्मिगण जिस प्रकार समस्त संसार को सब कुछ प्रकाश में दिखाने के लिए ऐश्वर्य तेज से युक्त प्रकाशमान, ताप और प्रकाश के दाता सूर्य को प्राप्त हैं उसी प्रकार उस प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान्, एवं वेदज्ञान में निष्णात, अति कमनीय, एवं विवाह के अभिलाषी, तेजस्वी पुरुष को सब के प्रति अपने गुणों को प्रकाश करने के लिए, सबके समक्ष ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्रियां उद्वाह विधि से प्राप्त हों। अर्थात् विदुषी, गुणवती स्त्रियें विद्वान्, गुणवान् पतियों को प्राप्त करें और उत्तम ज्ञान और व्यवहार का प्रकाश करें।

परमेश्वर पक्ष में—ज्ञानी पुरुष उस प्रकाशस्वरूप ज्ञानवान् परमेश्वर को सर्वोपरूप से धारण करें, अपनावें। और गुण-स्तुति द्वारा सूर्य की रश्मियों के समान उसके गुणों का प्रकाश करें। इसी प्रकार तेजस्वी राजा के अधीन ज्ञापक विद्वान् पुरुष उसकी आज्ञाओं का प्रकाश करने के लिए उसको उच्चपद पर स्थापित करें।

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑। सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥२॥

भा०—जिस प्रकार रात्रि के कालों में नक्षत्र गण चन्द्र के साथ संगत होते हैं और दिन काल में वे दूर हो जाते हैं, नहीं दिखाई देते, इसी प्रकार सन्तति उत्पन्न करनेहारी स्त्रियां भी आह्लादकारी पति के साथ ऋतु-रात्रियों में संगत हों और सबको ज्ञान और प्रकाश के दिखाने वाले तेजस्वी पति की वृद्धि के निमित्त नक्षत्रों के समान दिन में दूर रहें। अर्थात् सन्तानार्थिनी स्त्रियें भी पुरुषों से दिन में कभी संग न करें। 'तायृ सन्तानपालनयोः' भ्वादि.। अहोरात्रो वै प्रजापतिः। तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः। प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रात्या संयुज्यन्ते। प्रश्न उप० १।१३ ॥

अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॒ अनु॑। भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥३॥

भा०—अति दीप्ति से चमकने वाली अग्नियां जिस प्रकार चमकती हैं उसी प्रकार इसके अन्यों को ज्ञान करानेवाले किरणों के समान गुण

समस्त जनो को प्राप्त हो, ऐसा मै देखूं। इस प्रतापी पुरुष के ज्ञान प्रदान करनेवाले गुण सूर्य के किरणो के समान समग्र मनुष्यों के हित के लिए इस प्रकार प्रकाशित हैं जिस प्रकार देदीप्यमान अग्नियां हों। मैं ऐसी ही गुणबुद्धि से सदा अपने पालक को देखूं।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्॥४॥

भा०—हे सूर्य! सर्वप्रकाशक परमेश्वर! सूर्य जिस प्रकार महान् आकाश को पार करने हारा, सब प्राणियों से देखने योग्य, सब विश्व को अपने प्रकाश से दिखाने वाला, ज्योति, प्रकाश को करने हारा होकर समस्त विश्व को रुचिकर रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार हे विद्वानो! वा परमात्मा भी सब को दुःखों से तारने वाला और स्वयं समस्त विश्व को पार कर सबसे परे विद्यमान है, वह सब का द्रष्टा, सब प्रकाशमान लोकों का रचने हारा है। और समस्त संसार मे अति मनोहर रूप से प्रकट हो रहा है अथवा समस्त तेजस्वी पदार्थों को प्रकाशित कर रहा है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष कष्टो से तारक होने से 'तरणि', दर्शनीय होने से 'दर्शत', ज्ञान प्रकाश करने से 'ज्योतिष्कृत्' और तेजस्वी होने से सूर्य होकर सबके प्रति मनोहर रूप से प्रकट हो।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य समस्त तेजस्वी पदार्थों और प्रजा तथा मनुष्यो को साक्षात् उदय होकर प्राप्त होता है और समस्त विश्व को पना प्रकाश और ताप प्रकट करने के लिये आता है उसी प्रकार हे मेश्वर और विद्वन्! तू दिव्य पदार्थों और विद्वानो की प्रजाओं और ननशील मनुष्यो के प्रति साक्षात् स्वरूप मे उदय हो, उनको उत्तम रूप से प्राप्त हो। और सब प्रकार के प्रकाश, सुख और ज्ञानोपदेश को दर्शाने और उपदेश करने के लिये भी तू उनके प्रति प्रकट हो अर्थात् उनको प्राप्त हो। इति सप्तमो वर्गः॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

भा०—हे सबको पवित्र करने हारे ! हे सबसे श्रेष्ठ सब पापो और दुःखो को नाश करने हारे परमेश्वर ! तू जिस कृपा से पूर्ण चक्षु या प्रकाश से समस्त प्राणियो को धारण पोषण करने वाले इस भूलोक को सूर्य के समान और समस्त जन्तुओ के प्रति देखता है हम तेरी उसी कृपादृष्टि की याचना और स्तुति करते है ।

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥७॥

भा०—हे तेजोमय ! सबके उत्पादक, सञ्चालक ! परमेश्वर ! जिस प्रकार सूर्य रात्रियों के साथ साथ दिनो को भी उत्पन्न करता है और बडे २ पृथ्वी लोक और अन्तरिक्ष को व्याप्त होता है और समस्त जन्तुओ को देखता जाता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू भी विशाल लोको और आकाश को व्याप्त सर्वत्र व्यापक है और समस्त जन्मो को देखता है ।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

भा०—सात या सर्पणशील, वेगवान् अश्व जिस प्रकार रथ मे लगाकर तेजस्वी पुरुष को उठा कर ले जाते हैं और जिस प्रकार सात किरणें प्रदीप्त किरणों वाले सूर्य को धारण करती हैं उसी प्रकार हे विविध विज्ञानो के दिखाने और विविध लोकों को विशेष रूप से देखने हारे जगदीश्वर ! राजन् ! हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! सात वेगवान् एवं व्यापक तत्व तुझको धारण करते हैं । आत्मा को सात प्राण, परमेश्वर को पाच भूत और महान् अहंकार ये सात विकार तथा राजा को राज्य के सात अंग धारण करते हैं ।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार से सूर्य जल को न गिरने देने वाली और पदार्थों को शोधन करने वाली सात प्रकार की किरणो को अपने साथ लगाये रखता है और अपनी प्रेरक शक्तियों से ही उनके सहित सर्वत्र व्यापता है

और जिस प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी प्राणों को प्रेरणा करने हारा योगी भी सात शरीर के मलो को शोधन करने वाली रमण साधन इस देह को न गिरने देने वाली, देहपात न होने देने वाली, इसको चेतन बनाये रखने वाली प्राणवृत्तियों को योग द्वारा वश और एकाग्र करता है, उन अपने आत्मा की योजनाओं, प्रेरणाओं, एकाग्र वृत्तियों से ही परम पद में गति करता है और जिस प्रकार सेनाओं का सञ्चालक, प्रजाओं का प्रेरक, वीर राजा अपने रथ को न डिगने देने वाली सात या वेगवान् घोड़ियों को जोड़ता है और अपनी युक्तियों से उन द्वारा रण-मार्ग में जाता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी समस्त जीवों के रमण के साधन ब्रह्माण्ड को न नष्ट होने देने वाली पूर्व कही सात सुखों की धारक, तत्व शक्तियों को परस्पर संयुक्त करता है और उन अपने योजन करने की शक्तियों युक्त होकर उनके द्वारा सर्वत्र स्वयं व्यापन होकर सबको चला रहा है।

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १०॥

भा०—हम लोग समस्त अन्धकार, शोक, दुःख सबके ऊपर और सबके परे वर्त्तमान इन लौकिक पदार्थों की अपेक्षा उच्च संसार के प्रलय के बाद भी विद्यमान रहने वाले एवं प्रलयकारी प्रकाशवान् सूर्य को साक्षात् दर्शन करते हुए समस्त सुखों के देने वाले, एवं प्रकाशमान पदार्थों में से भी सबसे उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले परम आत्मा रूप परम ज्योति प्राप्त हों।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ ११॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन्! स्नेह युक्त, मित्र के समान पूजनीय! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! आत्मन्! उदय होता हुआ और उत्तर आकाश में आता हुआ या क्रमशः ऊंचा आता हुआ सूर्य जिस

प्रकार हृदय के रोग को और पीलिया को नाश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे सबके प्रेरक ! सबके हृदयों के प्रकाशक, विद्या के द्वारा तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू भी हृदयाकाश में उदित होता हुआ, हे विद्वन् ! उत्तम पद और दशा को प्राप्त होता हुआ और भी उत्तम ज्ञान प्रकाश को उन्नत था प्राप्त करता हुआ तू मेरे हृदय के पीडा देने वाले रोग के समान अज्ञान और सुखों के हरने वाले बन्धन को नाश कर।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

भा०—हम अपने देह के बल और सुख को अपहरण करने वाले रोग को शुक अर्थात् तोते के समान किये गये नाना प्रकार के कटु, तिक्त फलों के आस्वादन तथा नाना वृक्षों से युक्त प्रदेशों में भ्रमण आदि कार्यों द्वारा और शरीर के पोषण करने वाली, लेपन करने योग्य ओषधियों द्वारा, उन ओषधियों के बल पर वश में करें और दुःख पीडा को हरने और स्वत द्रव रूप एवं देह के मलों को बहा कर निकाल देने वाले पदार्थों के बल से भी अपने देह के बलहारी, चेतनाहारी रोग को दूर करें। अथवा शुक, रोपणा का और हारिद्रव ये ओषधियों के विशेष वर्ग हैं जिनका स्पष्टीकरण देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य का० १। सू० २२। १–४॥ चेतना और ज्ञान के हरने वाले तामस आवरण को हम ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् और ज्ञानप्रद उपनिषद् की वल्लियों और अज्ञान मोह के हरने और भगा देने वाले उपदेशों द्वारा दूर करें।

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा०—यह सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी, आत्मा का स्वरूप मोह आदि शत्रुओं को दबाने और पराजित करने वाले बल के साथ प्रतापी राजा और सूर्य के समान मेरे अप्रीति करने वाले रोग के समान देह और आत्मा पर प्रहार करने वाले शत्रु को विनाश करता हुआ

उदय को प्राप्त होता है। इसलिए जो मुझको नाश नहीं करे उसको मैं भी पीडित न करूं। प्रत्युत शत्रु के विनाश के लिये ही मैं उसको दण्डित करूं। अथवा मैं शत्रु के लाभ के लिये किसी को पीडित न करूं।

इत्यष्टमो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[५१]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १० जगती। ५, १३ विराड् जगती। २, ११, १२ निचृज्जगती। ३,४, १८ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६, ७ त्रिष्टुप् (अभिसारिणी) १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पचदशर्चं सूक्तम् ॥

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग उस मेढे के समान अपने प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाले, मेघ और सूर्य के समान राष्ट्र पर अन्न, जल और ज्ञान, प्रकाश की वर्षा करने हारे, बहुत से प्रजाजनों से आदर प्राप्त करने वाले, अर्चना योग्य, स्तुतियों से मान करने योग्य, ऐश्वर्यों के रत्नाकर, समुद्र के समान अगाध गुणों के सागर रूप राजा और परमेश्वर की वाणियों और वेदवाणियों से स्तुति कर उसे प्रसन्न करो। जिससे मनुष्यों के हितकारी कर्म तथा सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी जन समस्त प्रजाजन के पालन के लिये विविध देशों में, विविध प्रकार से विचरते, फैलते और विस्तृत होते हैं उस अति दानशील, महान् प्रजाओं को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञानवान्, मेधावी पुरुष को सब प्रकार से साक्षात् कर स्तुति करो। सुखों का वर्षण करने से परमेश्वर 'मेष' है। ऋचाओं द्वारा स्तुति योग्य होने से 'ऋग्मिय' है। वह ऐश्वर्य का सागर है।

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम्।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२॥

भा०—उत्तम रक्षा करने हारे एव ज्ञानवान् शीघ्र कार्य करने मे कुशल विद्वान् तेजस्वी, अति ऐश्वर्यवान्, सत्यज्ञानी पुरुष बलशालिनी शक्तियो और सेनाओ से घिरे हुए सूर्य या मेघ जिस प्रकार अन्तरिक्ष को अपने तेज और अपने विस्तृत फैलाव से पूर्ण कर देता है उसी प्रकार अपने और पराये राष्ट्र के बीच मे विद्यमान देश को भी अपने प्रभाव से और युद्ध-समय मे शरवर्षा से अन्तरिक्ष को पूरने वाले, उत्तम इच्छा, कर्म, सामर्थ्य वाले, उत्तम आशा और अधिकार को प्राप्त, शत्रु हनन करने वाले, ऐश्वर्यवान्, अपनी सेनाओं को हर्षित करने और शत्रुओ के गर्व को तोडने हारे, अनेको कार्य सामर्थ्यों और प्रज्ञाओ से युक्त वीर सेनापति को ही वेगयुक्त, बलवती, वाणी तथा आज्ञा प्रदान करने का अधिकार तथा बलप्रद अन्नादि देने वाली राजनीति प्राप्त हो और विद्वान् पुरुष, उत्तम कर्मसाधक शिल्पी जन उसको प्राप्त हो और तेजस्वी पुरुष उसकी रक्षा करें।

परमेश्वर पक्ष मे—समस्त ज्ञान उस उत्तम कामना से युक्त परमेश्वर को प्राप्त है। समस्त आकाश मे व्यापक बड़ी शक्तियो से युक्त परमेश्वर को ही सत्यज्ञानी, कुशल, अज्ञानान्धकार के नाशकारी योगी जन भजन करते है और उसी को वेगवती, सच्चे हृदय से निकली स्तुति प्राप्त होती है।

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित्।
ससेन चिद् विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन्॥३

भा०—हे सेना से युक्त सेनापते! राजन्! सूर्य जिस प्रकार प्रकाशयुक्त किरणो से या प्राणो से युक्त प्राणियों के हित के लिये मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है और बरसा देता है उसी प्रकार तू भी प्राणधारी प्रजाजनों के हित के लिये अपनी भूमि को पालन करने वाले पर्वत या मेघ के समान वर्ग को या गौओं आदि पशु समूहों और ज्ञानयुक्त हितकारी आज्ञाओ को भी प्रकट कर और तीनो प्रकार के दुःखों से मुक्त करने के लिये, अथवा अपने राष्ट्र मे ही निवास करने वाले प्रजाजन के-

हित के लिये तू सैकड़ों द्वारों, भूलभुलैया वाले गढ़ वा व्यूहों में भी सैकड़ों आवरण वाले मेघावयवों में सूर्य के समान मार्ग और भूमि को प्राप्त करने हारा होकर संग्राम में आच्छादन करने वाले मेघ के अच्छिन्न मेघ को जिस प्रकार वायु नचाता है उसी प्रकार राष्ट्र पर अपना वश करने वाले शत्रु के छिन्न भिन्न हुए बल समूह को भी अपने पराक्रम से नचाता हुआ विविध प्रकार के हर्षों और सुखों को प्राप्त करने के लिये ऐश्वर्य प्राप्त कर।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर विद्वानों के लिये वाणी समूह, वेद-राशि को प्रकट करता है। त्रिविध तापों से रहित जीव के लिये शत-आयु वाले जीवनों में मार्ग को दिखाता है। सूर्यों से युक्त जगतों के स्वामिन्! तू अति आनन्द के लिये जीवन संग्राम में निवास करने वाले मुमुक्षु जन के अच्छेद्य अज्ञान को भी दूर करता है। तू हमें ऐश्वर्य प्रदान कर।

त्वम॒पामा॑पि॒धाना॑वृणो॒रपा॑धा॑रय॒ः पर्व॑ते॒ दानु॑मद्व॒सु॑।
वृ॒त्रं यदि॑न्द्र॒ शव॒साव॑धी॒रहि॒मादित्सूर्यं॑ दि॒व्यारो॑हयो दृ॒शे ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सूर्य जिस प्रकार जलों को आकाश में रखने वाले कारणों को दूर कर देता है उसी प्रकार तू प्रजाओं और आप्त विद्वानों के शत्रुओं के द्वारा उत्पन्न किये बन्धनों को दूर कर। और जिस प्रकार सूर्य मेघ में और पर्वत पर दान देने योग्य और जीवन प्रदान करने वाले जल को धारण करता है, उसी प्रकार तू भी पर्वत के समान गम्भीर, स्थिर तथा मेघ के समान सबको निष्पक्षपात होकर सुखजनक पदार्थ देने वाले पुरुष को प्रजा के हित के लिये देने योग्य ऐश्वर्य को धारण करा। और जिस प्रकार वायु बल से मेघ को आघात करता है और अनन्तर सबको प्रकाश से दिखाने के लिये सूर्य को मध्य आकाश में स्थापित करता है, उसी प्रकार हे सेनापते! तू बलपूर्वक सब ओर से आघात करने वाले शत्रु, दस्यु आदि को नाश कर और उसके पश्चात् न्याय-प्रकाशन के पद, राजसभा के ऊपर व्यवहारों के देखने और न्याय

के मार्ग को दर्शाने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी और ज्ञानवान् पुरुष को उच्च पद पर स्थापित कर। परमेश्वर जलों को वर्षाता है, वह पर्वत में पाने योग्य बहुमूल्य रत्न उत्पन्न करता है, अपने बल से आवरक अज्ञान को दूर करता और सूर्य को आकाश में प्रकाश के लिये स्थापित करता है।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥९

भा०—जो दुष्ट, डाकू जन सोते हुए दूसरो के पदार्थों को हर लेते है, अथवा जो स्वार्थी छल कपटों से सब कुछ अपने भोग विलास मे ही फूक देते है, उन मायावी, छली, कपटी पुरुषो को अपनी नाना उपाय युक्त या ज्ञानबुद्धियो द्वारा दूर मार भगा, उनको भयभीत कर या उपदेश कर। हे मनुष्यो को वश करने हारे! उन द्वारा मान, आदर योग्य, एवं मनुष्यों की चित्तवृत्ति के जानने हारे अथवा उनके हित में मनोयोग देने हारे! तू अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाले शत्रु के दुर्गों को तोड फोड़ डाल। और दस्युओं को मारने के अवसरो में, संग्रामों के बीच सरल, धार्मिक मार्गों पर चलने वाले उत्तम मनुष्य समूह या कुत्तो के समान सुशिक्षित अपनी इन्द्रियो और आधीन सैनिकों के वश-कारी पुरुष की अच्छी प्रकार रक्षा कर। अथवा पालनकर्ता माता पिता के प्रति सरल व्यवहारकारी उत्तम प्रकृति के पुरुष की रक्षा कर।

परमेश्वर और विद्वान् गण के पक्ष मे—वे अपनी अमृतमयी ज्ञानवाली वाणी से जो लोग सब कुछ अपने भोग विलास मे फूंकते हैं उनको उपदेश करें। परमेश्वर शरीर को पालन करने वाले देही आत्मा के देहबन्धनों को काटे। धार्मिक जन की रक्षा करे। इति नवमो वर्गः॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

भा०—तू प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण और रक्त शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश करने के अवसरों में वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र बल को धारण कर। और सूर्य या वायु जिस प्रकार मेघ को अपने तेज और वेग से आघात करता है उसी प्रकार वज्र या शस्त्रों के धारण करने वाले शत्रु सैन्य को पीड़ित कर और अतिथि या पूज्य पुरुषों के गमन करने योग्य या आश्रय लेने योग्य, उत्तम पुरुषों के हित के लिये या अतिथियों के आदर सत्कार के लिये बड़े भारी मेघ के समान दानशील, एवं असंख्यात ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से युक्त पद को अपने ज्ञान और सामर्थ्य से प्राप्त कर, पहुंच। और सदा ही दुष्ट पुरुषों के दलन के लिये तू उत्पन्न हो।

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या॥७॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! सेनापते! तेरे ही अधीन समस्त बलवती सेना, सदा साथ रहने वाली, तेरे संग ही स्थिर है। तेरा चित्त सोमरस के समान राष्ट्र के ऐश्वर्य को भोग करने और अपने बल बढ़ाने के लिये उत्कण्ठित होता है। तेरी बाहुओं में स्थापित, तेरे शासन या वश में रहने वाला खड्ग, शस्त्र-बल सर्वत्र प्रसिद्ध है या सदा ओषधि के समान शत्रु रूप रोगों को दूर करने में समर्थ होता है। तू शत्रु के सब बलों को निर्मूल कर और अपने समस्त शस्त्रवर्षी सैन्य बलों की रक्षा कर।

परमेश्वर पक्ष में—हे प्रभो! तुझ में ही सुखों के बरसाने वाले समस्त सामर्थ्य हैं, वे तेरे आनन्द रस पान के लिये उत्कण्ठित करती हैं। तेरा बल समस्त विभूति या तेरी आराधना ही रोगों और कष्टों को दूर करती है। उच्छेद योग्य काम आदि के सब बलों को तू नाश कर। हमारे बल वीर्य की तू रक्षा कर।

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ८

भा०—हे विद्वन् ! सेनापते ! तू श्रेष्ठ पुरुषों को, सम्पत्ति के वास्तविक स्वामियों को भी विशेष विवेक से जान। और जो प्रजा के पीडक या वास्तविक स्वामी की सम्पत्ति को लूट खसोट लेने वाले, चोर, डाकू, दुष्ट पुरुष हैं उनको भी विवेक पूर्वक जान अर्थात् मालिक और चोर दस्युओं का विवेक भली प्रकार कर, जिससे राज्य में न्याय उचित रीति से हो। अव्यवस्था फैल कर चोर डाकू गरीब निर्बलों को सता कर उनके माल के स्वयं स्वामी न बन जावें। हे राजन् ! तू व्रत, धर्म, नियम, सत्य, व्यवहार और सत्य भाषण आदि को पालन करने वाले, उद्दण्ड पुरुषों को प्रजा से युक्त राष्ट्र या भूस्वामी के हित के लिये शासन करता हुआ उनको दण्डित कर। तू कर देने वाले या तेरा मान आदर करने वाले, राष्ट्रवासी जन का तू आज्ञापक होकर शक्तिमान् होकर रह। तेरे उन उन नाना प्रकार के समस्त कर्मों और अद्भुत व्यवहारों के एक साथ मिल कर होने वाले हर्ष, विनोद और उत्सवों के अवसरों पर मैं प्रसिद्धि चाहता हूं।

अनु॑व्रताय र॒न्धय॒न्नप॑व्रताना॒भूभि॒रिन्द्र॑ः श्न॒थय॒न्नना॑भुवः ।
वृ॒द्धस्य॑ चि॒द् वर्ध॑तो॒ द्यामिन॑क्षतः॒ स्तवा॑नो व॒म्रो वि ज॑घान सं॒दिह॑ः ९

भा०—सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुहन्ता राजा अनुकूल होकर व्रतों और नियमों को पालन करने वाले प्रजाजन के हित के लिए व्रत, नियमों को न पालन करने वाले, उद्दण्ड पुरुषों को दण्डित करता हुआ और अपने अधीन भूमियों के स्वामी माण्डलिक अधीशों द्वारा अथवा अधिक वैभव और सामर्थ्य वाले, समर्थ, बलवान्, वीर पुरुषों या सेनाओं द्वारा अपने मुकाबले पर न आ सकने वाली शत्रु-सेनाओं को विनाश करता हुआ स्तुति का पात्र होकर राष्ट्र की अच्छी प्रकार उपचय वृद्धि करने हारा वल्मीक के समान गुप्त सुरंगों से युक्त दुर्गों को रच कर या उसके समान संचयशील, प्रचुर कोशवान् होकर बढे हुए और बढ़ते हुए और आकाश में फैलते हुए मेघ के समान तेजस्विता में बढ़ने वाले शत्रु-बल को भी

विविध उपायों से नाश करे, मारे। सायण आचार्य की 'नभ्र' और 'सदिह' नामक ऋषि की कल्पना निराधार है।

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः १०।१०

भा०—हे राजन्! जब तेरे बल को तेरी मैत्री और वृद्धि करने वाला सहायक मन्त्री या मित्र राजा अपने शत्रु-पराजयकारी बल से अति अधिक तीक्ष्ण कर देता है, तब अपने महान् सामर्थ्य से तेरा सैन्यबल आकाश और भूमि दोनों के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को विविध प्रकार से पीड़ित करता है, दोनों को भयभीत करता है। हे नेता पुरुषों के प्रति मनोयोग देने हारे! अथवा प्रजा के हितों में दत्तचित्त! एवं प्रजाओं को वश करने हारे वायु के वेग से चलने वाले मन अर्थात् इच्छानुसार रथ में जुड़कर चलने हारे तीव्र, वेगवान् अश्व और अश्वारोही भृत्यगण सब प्रकार से भरे पूरे, पूर्ण कोशवान् तुझको यश, धन और ऐश्वर्य सब तरफ से प्राप्त करावें। इति दशमो वर्गः॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद् वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ११

भा०—जब समस्त राष्ट्र के वश करने में समर्थ सभापति या राजमन्त्री, विद्वानों के बीच सबसे मुख्यतम विद्वान्, क्रान्तदर्शी, महामात्य के कर्म और पदाधिकार पर स्थिर हो जाय तो उसके आश्रय पर ऐश्वर्यवान् राजा खूब चमक जाता है। खूब प्रभाववान्, तेजस्वी और यशस्वी हो जाता है, तब वह सब के साथ ही अति वेगवान्, अति कुटिल मार्गों से दौड़ने वाले अश्वों पर महारथी के समान कुटिल चालों के चलने वाले और कुटिल चालों से युद्ध करने वाले, शत्रु और उदासीन राजाओं पर भी अपना शासन जमा लेता है। वेग से गमन करने वाले मेघ को जिस प्रकार वायु या विद्युत् अपने आघात से टकराकर उसके जलों को प्रवाह रूप से भगा देता है उसी प्रकार आक्रमण करने वाले शत्रु के प्राप्त सेनाओं

को बहते प्रवाह के समान वेग से मैदान से निकाल देता है, भगा देता है और स्वयं अपने बल को बढ़ा कर वह राष्ट्र के शोषण करने वाले शत्रु के गढ़ों या दुर्गों को विविध रीतियों से कंपा देता है, नाश करता है।

'मन्दिष्ट' इति पाठ. श्रीमद्दयानन्दपादाभिमतश्चिन्त्य. ।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥

भा०—हे शत्रुओं के नाशक और ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू जब मेघ के समान शरवर्षण करने वाले वीर पुरुषों के योग्य बलकारी ऐश्वर्यों, रसों, पदार्थों के पान और उपभोग और प्राप्ति और परिपालन के अवसरों में रथ पर जमकर बैठता और जिनके बल पर तू सब आनन्द विनोद प्राप्त करता या युद्ध में पयाण करता है वे भी शरों से मारने योग्य, शत्रुओं के बीच में विचरने के अवसर, संग्राम आदि के लिए अच्छी प्रकार तेरे द्वारा वेतन और अन्न द्वारा भरण पोषण किये जाय। जिस प्रकार से तू अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यों या अभिषिक्त राजाओं के बीच प्रतिद्वन्द्वी वीर से रहित, अद्वितीय राष्ट्र को प्राप्त करना चाहता है। उसी प्रकार राजसभा और विद्वानों के बीच भी स्तुति वाणी को या स्तुति योग्य यश, ख्याति या उत्तम पद को प्राप्त कर।

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! राजन्! जिस प्रकार बड़े गुणों से युक्त एवं ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाले उत्तम सिद्ध हस्तांगुलियों वाले, प्रवीण, क्रियाकुशल शिष्य को आचार्य थोड़ा ही विवेचनकारिणी अथवा छेदन भेदन करने की शिल्प विद्या का उपदेश करता है और वही उपदेशयुक्त वाणी से वेगवान्, बलवान् अश्व या उपकरणों के स्वामी को प्रेरणा कार्यों में करनी आवश्यक होती है उसी प्रकार हे राजन्! तेरी आज्ञा को चाहने वाले अगल बगलों के बन्धनों से कसे अश्व के समान

पार्श्वों की सेनाओं से युक्त बड़े भारी सेना के शासक पुरुष को भी तू छोटी सी ही छेदन भेदन करने की संक्षिप्त आज्ञा को संकेतरूप से दिया कर। हे उत्तम कर्म और प्रज्ञा सामर्थ्य वाले पुरुष! तेरी मान करने योग्य आज्ञा जब बलवान्, वेगवान् अश्वों वाले वीर पुरुष के प्रेरण या शासन के कार्यों में भी अच्छी प्रकार दी जाती है तब तू समस्त कार्यों के करने में समर्थ होता है।

इन्द्रो॑ अश्राथि सु॒ध्यो॑ निरे॒के व॒ज्रेषु॒ स्तोमो॒ दुर्यो॒ न यूपः॑।
अ॒श्व॒युर्ग॒व्यू र॑थ॒युर्व॑सू॒युरिन्द्र॒ इद्रा॒यः क्ष॑यति प्रय॒न्ता ॥ १४ ॥

भा०—स्तुति करने योग्य वचनों या स्तुति के कार्यों में जिस प्रकार वेद के सूक्त मुख्य रूप से ग्रहण करने योग्य हैं और द्वार पर स्थित मुख्य स्तम्भ जिस प्रकार घर के आश्रय के लिये मुख्य है उसी प्रकार सन्देहरहित होकर अथवा समस्त भोग योग्य विषयों को सर्वथा त्याग कर, केवल एकमात्र सुखपूर्वक ध्यान चिन्तन करने योग्य वह परमेश्वर ही आश्रय करने और भजन सेवन करने योग्य है इसी प्रकार सब धनों के व्यय हो जाने पर युद्ध आदि कार्यों में सैनिक समूह तथा द्वारस्थ स्तम्भ के समान या शत्रुओं को वारण करने वाले सैनिकों का एकमात्र स्तम्भ, उत्तम रीति से चिन्तन या मनन करने में कुशल ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, विद्वान् पुरुष ही आश्रय करने योग्य है। और वह ऐश्वर्यवान् राजा ही अश्वों का स्वामी, गवादि पशुओं, आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी समस्त राष्ट्र वासी प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी और अन्यों को अश्व, रथ, गो, ऐश्वर्यादि देना और स्वयं प्राप्त करना चाहता हुआ धनैश्वर्य का ऐश्वर्य को अच्छा देने वाला होकर और अपने पास रखता है। अथवा उत्तम बुद्धिशाली पुरुषों को उस परमेश्वर का या राजा का आश्रय लेना चाहिये। 'अश्वयुः इत्यादि'—इदयुरिदं कामयमानोऽथापि तद्वदर्थे भाष्यते। अश्वयुर्गव्युरित्यपि निगमो भवति। (निरु० ६।६।३)।

इदं नमो॑ वृ॒ष॒भाय॑ स्व॒राजे॑ स॒त्यशु॑ष्माय त॒वसे॑ऽवाचि ।
अ॒स्मिन्नि॑न्द्र वृ॒जने॒ सर्व॑वीराः स्मत्सू॒रिभि॒स्तव॒ शर्म॑न्त्स्याम ॥१५॥११

भा०—सुखों और समस्त ऐश्वर्यों को वर्षण करने वाले परमेश्वर और शत्रु पर शस्त्रादि वर्षाने वाले बलवान् सर्वश्रेष्ठ, सत्य के बल वाले या सदा विद्यमान, सज्जनों के हितकारी बलवाले स्वयं अपने तेज से देदीप्यमान, प्रतापी, महान बलवान् पुरुष यह नमस्कार अर्थात् आदर वचन कहा जाता है। हे ऐश्वर्यवन्! इस शत्रु और कष्टों के निवारण के अवसर पर संग्रामादि कार्य में इस तेरे शत्रुवारक बल पर हम समस्त वीर गण विद्वान् तेजस्वी नायक पुरुषों सहित तेरे उत्तम शरण या आश्रय में रहें। इत्येकादशो वर्गः ।

[५२]

सव्य आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ९, १० स्वराट् त्रिष्टुप् । १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप । २–४ निचृज्जगती । ६, ११ विराड् जगती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्यं सु मे॒षं म॑हया स्व॒र्विदं॑ श॒तं यस्य॑ सु॒भ्वः॑ सा॒कमीर॑ते ।
अत्यं॒ न वाजं॑ हवन॒स्यदं॒ रथ॒मेन्द्रं॑ ववृत्या॒मव॑से सुवृ॒क्तिभिः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष! तू मेघ जिस प्रकार भूमियों पर जलों की वर्षा करता है जिसके वर्षण के साथ २ ही सैकड़ों उत्तम उर्वरा भूमियों के स्वामी किसान गण एक साथ हल चलाते हैं उस सुखकारी मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले अथवा मेढ़े के समान शत्रुओं से मुकाबला लेने वाले, दृढ़ उस राजा का अच्छी प्रकार आदर कर जिसके अधीन रहकर सैकड़ों उत्तम भूमिपति एक साथ ही युद्ध यात्रा करते हैं। अथवा जिसके बल से सैकड़ों अच्छे अच्छे भूमिपति कांप जाते।

परमेश्वर के पक्ष में—उस परमेश्वर की उपासना कर जिसके आश्रय में या जिसको प्राप्त करने के लिये सैकड़ों उत्तम कोटि के, अति सामर्थ्य-वान् पुरुष यत्न करते हैं या जिसके भय से उत्तम २ बलशाली लोग भी

कांपते हैं। मैं प्रजाजन वेगवान् अश्व के समान गमन करने योग्य मार्ग पर वेग से जाने वाले, एव शत्रु के ललकार पर वेग से आक्रमण करने वाले रथारोही, शत्रुहन्ता राजा को उत्तम शत्रुओं को पराजय करने वाले शक्तियों सहित अपनी रक्षा के लिये वरण करु। अथवा भक्त के आह्वान, पुकार और स्तुति पर हीं करुणा मे द्रवित होने वाले, अति-दयालु, रस स्वरूप, परमरमणीय, परमेश्वर को मैं उत्तम हृदयग्राही स्तुतियो द्वारा प्राप्त करु।

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥

भा०—ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् सूर्य या विद्युत् या वायु जब समस्त आकाश को घेरने वाले, अति वेग से वहने वाली नदियों के वहाने वाले मेघ को आघात करता है तब वह जलों को नीचे फेंकता हुआ और प्रचुर अन्न सामग्री से जगत् भर को हर्षित करता है। वह विद्युत या सूर्य भी मेघ के धारक जलो या वायुओं में ही रह कर, नीचे न गिर कर अर्थात् विजयी बनकर सहस्रो दीप्तियो से युक्त होकर बडी बलवती शक्तियों के रूप में बढ़ता है। ठीक उसी प्रकार शत्रुघाती ऐश्वर्यवान् बलवान् राजा जो नदियों से घिरे या समृद्धियो से भरे पूरे नगर को घेरने वाले शत्रु को मार लेता है वह जलो के समान ऐश्वर्यों को या समस्त जनों को नमाता हुआ, गिराता या दवाता हुआ, ऐश्वर्य और अन्नादि भोगयोग्य पदार्थों से सबको हर्षित करता हुआ पर्वत के समान अचल और नाना पालक सामर्थ्यों से युक्त होकर वह राष्ट्र के धारण करने वाले नाना मुख्य पुरुषों के बीच में कभी भी कर्त्तव्यच्युत या पराजित न होकर, एवं स्वतः पूर्ण अस्खलित, बल वीर्य वाला, ब्रह्मचारी रहकर सहस्रों ज्ञानो और रक्षाकारी साधन सेना आदि बलो और तेज प्रभावो से सम्पन्न होकर सेनाओं के आधार पर बढे।

स हि द्वरो द्वरिषु व॒व्र ऊध॑नि च॒न्द्रबु॑ध्नो॒ मद॑वृद्धो मनी॒षिभिः॑ ।
इन्द्रं॒ तम॑ह्वे स्वप॒स्यया॑ धि॒या मंहि॑ष्ठराति॒ स हि पप्रि॒रन्ध॑सः ॥३॥

भा०—वह राजा संवृत, गुप्त रखने योग्य व्यवहारो और राज-कार्यों मे अत्यन्त संवृत, गुप्त, गम्भीर, गुप चुप रहने वाला, कूप के समान गहरा और शीतल जल वाला या अन्धकार से छुपे गार के समान अगम्य भाव हो कर रहे । और उषा-काल मे चन्द्र को अन्तरिक्ष मे रखने वाले सूर्य के समान रजत, स्वर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने मूल आश्रय मे रखने वाला तेजस्वी एव कोष सम्पन्न होकर विद्वान् मननशील पुरुषो के द्वारा स्वयं अपने हर्ष को बढ़ाने वाला, अति 'उत्तम दानशील, उत्तम धर्म कर्मानुष्ठान से युक्त, बुद्धि या ज्ञान से युक्त इस पुरुष को मै 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् एवं दयालु ज्ञानी उपदेशक आचार्य 'इन्द्र' करके पुकारता हूं । वह ही अन्न, जीवन और ऐश्वर्यों को पूर्ण करने वाला है ।

आ यं पृ॒णन्ति॑ दि॒वि सद्म॑बर्हिषः समु॒द्रं न सु॒भ्व१॒ः स्वा अ॒भिष्ट॑यः ।
तं वृ॑त्र॒हत्ये॒ अनु॑ तस्थुरू॒तयः॒ शुष्मा॒ इन्द्र॑मवा॒ता अहु॑तप्सवः ॥४॥

भा०—उत्तम वेग और बल से बहने वाली नदिया जिस प्रकार समुद्र को सब तरफ से पूर्ण करती हैं उसी प्रकार जिस पुरुष को सब प्रकार की कामना वाली पूर्ण अपनी ही प्रजाए और राजसभा भवन मे उत्तम आसन पर विराजने वाले विद्वान् पुरुष सब प्रकार से पूर्ण करते हैं रक्षाकारी, बलवान्, प्रतिकूल शत्रुओ से रहित, कुटिलता रहित आजीविका या वृत्ति वाले वीर पुरुष विघ्नकारी शत्रु के विनाश के कार्य में सेनापति, सभाध्यक्ष के ही पीछे पीछे हो जावें । अर्थात् उसके अनुयायी और अनु-गामी होकर रहें ।

अ॒भि स्ववृ॑ष्टिं॒ मदे॑ अस्य॒ युध्य॑तो र॒घ्वीरि॑व प्रव॒णे स॑स्रुरू॒तयः॑ ।
इन्द्रो॒ यद्व॒ज्री धृ॒षमा॑णो॒ अन्ध॑सा भि॒नद्व॒लस्य॑ परि॒धीँरि॑व त्रि॒तः॥५।१२

भा०—इस सेनाध्यक्ष के अति आवेश और उत्साह पूर्वक युद्ध करते हुए अपने बाणों और ऐश्वर्यो की वृष्टि के सामने उसको लक्ष्य करके, अति

वेग से वहने वाली नदियें जिस प्रकार नीचे स्थान में वह जाती हैं उसी प्रकार उसकी प्रचण्ड वेग से जाने वाली रक्षाकारी सेनाएं भी अपने से दवने वाले शत्रु पर या उत्कृष्ट कोटि के ऐश्वर्य पर टूट पड़ती हैं। जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ के पटलों को ऊपर, आड़े और तिरछे तीनों प्रकारों से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार बलवान्, खड्ग आदि शस्त्रों के धारण करने हारा शत्रुघाती, सेनापति त्रिगुण सैन्य से युक्त होकर शत्रुओं का बलपूर्वक पराजय करता हुआ बलवान् शत्रु के चारों ओर स्थापित रक्षा पुरुषों को अन्धकार को दूर करने वाले तेज के समान तीक्ष्ण बल से तथा अन्नादि उपभोग्य पदार्थों के प्रलोभन द्वारा छिन्न भिन्न करे अर्थात् उनमें दान और दण्ड के उपायों से भेद का प्रयोग करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार मेघ जलों को अपने भीतर थाम कर आकाश के ऊपर के तल में फैल जाता है और जिसका फैलाव या विस्तार बेरोक हो उस मेघ के अगले पिछले मुखों या छोरों पर वायु विस्तृत वज्र रूप विद्युत् का प्रहार करता है। तब दीप्ति सर्वत्र फैलती है और उसका प्रबल बल भी चमकता और प्रकाश के लिए होता है। ठीक उसी प्रकार जब [illegible]त्रु राजा भी आप्त प्रजाओं को घेर कर इस पृथ्वी लोक के बांधने वाले [illegible]य राजधानी पर चारों तरफ से घेरा डाल कर बैठ जावे तब उत्तम [illegible] दल के बल पर या प्रयाण काल में जिसके फैलने वाले और कुत्तों के [illegible]न टुकड़ों पर जीने वाले वेतनधारी नौकर या भेदू लोग भी किसी [illegible]र काबू न आ सकें, ऐसे बड़े हुए बल वाले शत्रु के प्रबल हननकारी [illegible]स्य सेना के भागों पर ही हे राजन्! तू विद्युत् के समान गर्जनाकारी अस्त्र का प्रयोग करके शत्रु पर प्रहार कर। और तब सूर्य की चमक के

समान तेरी दीप्ति, तेज भी सब तरफ फैले और तेरा बल भी खूब प्रकाशित हो कर चमके।

अध्यात्म में—जब अज्ञान का मेघ प्राण वृत्तियो या लिंगशरीर को घेर कर रजोगुण के मूल या प्राणो के आश्रय रूप चित्त को घेर लेता है तब अदम्य, बेकाबू इन्द्रियों रूप कुक्करो के स्वामी बढ़ते हुए काम के भोगसाधन जीभ और कामांग दोनो पर ज्ञानी पुरुष प्रबल आघात करें, उन पर नियन्त्रण करें, तब उसका तेज, प्रभा और बल बढ़ता और फैलता है।

ह्रदं न हि त्वा॑ न्यृ॒षन्त्यू॒र्मयो॒ ब्रह्मा॑णीन्द्र॒ तव॒ यानि॒ वर्ध॑ना।
त्वष्टा॑ चि॒त् ते॒ युज्यं॑ वावृधे॒ शव॑स्त॒तक्ष॒ वज्र॑म॒भिभू॑त्योजसम् ॥७॥

भा०—तरगें जिस प्रकार आप से आप, स्वभावतः जलाशय को प्राप्त होती हैं, अथवा जिस प्रकार नाना जलधाराएं बडे जलाशय को प्राप्त होती हैं, उसी मे आ मिलती हैं और उसके स्वरूप को बढ़ा देती हैं उसी प्रकार हे परमेश्वर! जितने भी ये वेदमन्त्र अथवा बडे पृथ्वी, आकाशादि पदार्थ हैं वे सब स्वभावतः निश्चय से तेरी ही महिमा को बढ़ाने वाले हैं, तेरे ही गुणों का प्रकाश करने वाले हैं। इसी प्रकार हे राजन्! जिस प्रकार जलतरंग जलाशय को प्राप्त होते हैं और उसको बढ़ाते हैं उसी प्रकार समस्त बडे ऐश्वर्य अन्नादि भोग्य पदार्थ, बडे बड़े राष्ट्र, ब्राह्मण वर्ग और वेद के अनुशासन जितने भी हैं वे सब तुझे ही बढाने वाले, तेरी शक्ति सामर्थ्य की वृद्धि करने हारे हों। जिस प्रकार मेघ या जल के अवयव अवयव को सूक्ष्म सूक्ष्म कणो मे छेदन भेदन करने में समर्थ सूर्य या विद्युत् सयोग से प्राप्त होने वाले और रथादि सचालन कार्यों में लगाने योग्य बल को बढ़ाता है और सब शत्रुओ के पराजय करने वाले ओज, पराक्रम या परम बल को धारण करने वाले प्रबल शक्तिमान् अस्त्र को भी बना सकता है उसी प्रकार कान्तिमान्, सर्व सृष्टि का रचयिता परमेश्वर योग समाधि से प्राप्त होने वाले बल को बढ़ाता है और सब प्रकार के

काम, क्रोध आदि भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं को भी दबा लेने वाले तथा समस्त ऐश्वर्यों और पराक्रम को धारण करने वाले बल को पैदा कर देता है। उसी प्रकार हे राजन्! बढ़ई या शिल्पी तेरे अनुरूप, तेरे योग्य सहकारी शस्त्रास्त्र-बल को भी बढ़ावें और शत्रुओं को दबाने, पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त वज्र या महास्त्र को भी बनावें।

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे समस्त कर्मों और क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने में एकत्र धारण करने हारे! हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! जिस प्रकार सर्व साधारण जनों के उपकार के लिए जलों को पृथ्वी पर डालता हुआ सूर्य या विद्युत्, किरणों और वेगवान् आघातों से मेघ को आघात करता है और भुजाओं के समान बल और आकर्षण दोनों पर आश्रित अति वेगवती गति से बने वज्र या प्रबलशक्ति को धारण करता है और आकाश में सब पदार्थों को दिखाने के लिए प्रकाशमान सूर्य को धारण करता है, उसी प्रकार हे समस्त 'क्रतु' अर्थात् कर्ता जीवों को अच्छी प्रकार भरण पोषण करने हारे! हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! तू समस्त अज्ञानों और दुःखों को हर लेने वाले विद्वान्, परोपकारी पुरुषों तथा सुखप्रद पृथिवी, वायु आदि तत्वों से मननशील प्राणियों के उपकार के लिए मेघ के समान जलों को पृथ्वी पर फेंकता हुआ अथवा मनुष्य जन्म धारण करने के लिए प्राणों या लिंग शरीरों को भूलोक पर भेजता हुआ ज्ञान पर आवरण डालने वाले, बढ़ते हुए अज्ञान-बन्धनों को नाश करता है। राजा जिस प्रकार बाहुओं में लोहे के बने शस्त्रास्त्र को धारण करता है उसी प्रकार दुःखों को बांधने वाले ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा पापों से निवारक बल को प्रदान कर और ज्ञान के प्रकाश में देखने या दिखाने के लिए आकाश में सूर्य के समान सबको प्रेरक अपने ज्ञान विद्या प्रकाश को धारण करा। इसी प्रकार इन्द्ररूप आचार्य भी पूर्ण ज्ञानी होकर अपने शिष्यों द्वारा

अज्ञान को नाश करे। मनुष्य समाज के उपकार के लिये उत्तम कर्मों और ज्ञानो का उपदेश करे। बलवीर्य को धारण करे और सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्मचारी को अपने सावित्री के गर्भ मे धारण करे। इसी प्रकार राजा वेगवान् अश्वो और अश्वारोहियो से शत्रु को मारता हुआ मानवो के उपकार के लिए आप्त पुरुषों को पृथ्वी पर या सब मार्गों मे भेजता हुआ और पृथ्वी को वश करता हुआ, शत्रुओ के बाधक बाहुओ या क्षत्रियो मे लोहादि के बने शस्त्रास्त्र धारण करावे। वह न्यायसभा मे व्यवहारो को न्यायपूर्वक देखने और निर्णय करने के लिए सूर्य के समान सत्यासत्य के विवेकशील ज्ञानी पुरुष को स्थापित करे।

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

भा०—जो सासारिक दु:खो से भय खाकर मनुष्यो के हितार्थ उत्तम उत्तम धनों का सग्रह करने हारे, सम्पन्न पुरुष उस महान्, स्वयं स्वभाव से आह्लादकारक, उत्तम ज्ञान सम्पन्न, सब दु:खो के काटने हारे, स्तुति योग्य प्रभु की स्तुति करते हैं तब वे आकाश के बीच उदय होने वाले सूर्य के समान देदीप्यमान एव ज्ञान और प्रकाश के प्रदान करने वाले परमेश्वर को वे अपने समस्त प्राणो पर वश करने हारे, उनको एकाग्र करने वाले विद्वान्जन साक्षात् कर बडे प्रसन्न, हर्ष, आनन्द और सुख अनुभव करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यो मे धनसम्पन्न पुरुष प्रजाओं के रक्षक विद्वान् और वीर लोग बहुत से मनुष्यो का समवाय बनाकर, अथवा नेताओं पर आश्रित होकर शत्रु के भय से जब जब भी अपने में से बड़े, अपने अनुयायी प्रजा के आह्लादक, प्रजारजक स्तुति योग्य, पुरुष को समस्त विजयशील सेना और ज्ञानयुक्त सभा के ऊपर, आकाश मे उदय होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी शासक रूप से बना देते हैं तब वे उस ऐश्वर्यवान् स्वामी के साथ साथ ही स्वय भी बडे सुख या स्वर्ग समान समृद्ध राष्ट्र का उपभोग करते हैं।

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते।
वृत्रस्य यद्वद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः॥१०॥५

भा०—हे राजन्! सेनापते! बलवन् सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार मेघ के जल को छिन्न-भिन्न कर देता और नीचे गिरा देता है। और इस वज्र, विद्युत् के शब्द को सुनकर मारे भय के मानो मेघ भी कांप जाता है। उसी प्रकार हे राजन्! तेरा तेजस्वी, बलवान् सेनाबल, शस्त्रास्त्रबल आकाश और भूतल दोनों को बांधने या घेरने वाले बल मे बढते हुए शत्रु के शिर, मुख्य भाग को राज्यैश्वर्य के हर्ष मे ही उत्पन्न बल से तोड दे। राज्यैश्वर्य के सुख के निमित्त शत्रु के मुख्य बल मे भी राजा भेद-नीति का प्रयोग करे और इस बलवान् वज्र या शस्त्रास्त्र बल के कडकडाते शब्द से भय द्वारा छिन्न-भिन्न करे। शत्रु को दान और दण्डभय दोनो उपायो से तोडे। इति त्रयोदशो वर्गः।

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत्॥११॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! सभापते! जो यह पृथिवी है, वह निश्चय से 'दशभुजि' है। अर्थात् वह प्रकृति के समान दशों इन्द्रियों से जीवो द्वारा भोग करने योग्य है, अथवा दशों दिशाओं के वासी प्राणियों द्वारा भोग करने या राजा द्वारा दशों दिशाओं मे रक्षा करने योग्य है। समे सब दिनों, सदा ही अन्नादि को उत्पन्न करने वाले प्रजाजन सदा फैलें या इसको विस्तृत करें अर्थात् वे जंगल आदि काटकर विस्तृत क्षेत्र यार करें जिससे प्रचुर अन्न हो। ऐश्वर्यवन्! हे राजन्! निश्चय से इस वी पर बल से, पराक्रम से और प्रजा को बढ़ाने वाले उद्योग से तेरे त्रु को पराजित करने वाला बल भी सूर्य के प्रकाश के समान न्तूर सिद्ध हो।

परमेश्वर के पक्ष मे—हे परमेश्वर! यही पृथ्वी दशों दिशाओं और इन्द्रियों से भोग योग्य है। प्रजाएं इस पर बढ़ती चली जा रही हैं।

तेरे बल, प्रजा और बुद्धि के कार्य से तेरा यश, ख्याति प्रकाश के समान या विस्तृत-आकाश के समान विस्तृत है।

त्वम॒स्य पा॒रे रज॑सो॒ व्यो॑मनः॒ स्वभू॑त्योजा॒ अव॑से धृषन्मनः।
च॒कृ॒षे भूमिं॑ प्रति॒मान॒मोज॑सो॒ऽपः स्वः॑ परि॒भूरे॒ष्या दिव॑म् ॥१२॥

भा०—सबके संकल्प विकल्प करने वाले चित्तों को अपने ज्ञान, विवेक और अद्भुत अज्ञेय रचना से धर्षण या पराजित करने हारे परमेश्वर! तू स्वतः बिना किसी के सहयोग से अपने प्रचुर ऐश्वर्य और पराक्रम से सम्पन्न होकर इस भूलोक या अन्तरिक्ष और विस्तृत आकाश के परले पार भी रक्षण करने के लिये विद्यमान है। तू ही अपने बल के अनुरूप ही सब प्राणियों तथा चराचर के उत्पन्न करने वाली भूमि या प्रकृति को बनाता अर्थात् विकृत या विविध रूपों में प्रकट करता है। और तू ही सर्वव्यापक होकर प्राणों को या जलों को समस्त सुखों और अन्तरिक्ष या वायु को और महान् आकाश या प्रकाश, तेजस्तत्व को भी व्याप रहा है।

राजा के पक्ष में—अपने ऐश्वर्य और पराक्रम से युक्त होकर तू ही विविध रक्षा वाले लोक समूहों से पार वा दूर, देशान्तर में भी रक्षा करने के लिये समर्थ है। तू इस पृथिवी को बल पराक्रम का मापक बनाता है। जो राजा जितनी पृथ्वी का स्वामी है उसका उतना ही पराक्रम या शासन है। प्रजाओं को सुखैश्वर्य और ज्ञान प्रकाश, सबको तू प्राप्त कर। शत्रुओं के 'मन' अर्थात् स्तम्भन बल को पराजित करने से राजा 'धृषन्मना' है और सर्वोपरि सामर्थ्यवान् होने से 'परिभू' है।

त्वं भु॑वः प्रति॒मानं॑ पृथि॒व्या ऋ॒ष्ववी॑रस्य बृह॒तः पति॑र्भूः।
विश्व॒माप्रा॑ अ॒न्तरि॑क्षं महि॒त्वा स॒त्यम॒द्धा नकि॑र॒न्यस्त्वावा॑न् ॥१३॥

भा०—हे परमेश्वर! तू ही अति विस्तृत समस्त चराचर के मूल कारण प्रकृति और भूमि का प्रत्यक्ष देखने वाला और भूमि के परिमाण का कर्त्ता और बड़े भारी बड़े २ सामर्थ्यों वाले सूर्यादि लोकों और बड़े २

वीर पुरुषो से युक्त और राजाधिराजो का भी पति, पालक और स्वामी है। तू ही महान् सामर्थ्य से समस्त संसार को और महान् अन्तरिक्ष, सूर्यों और भूमियो के बीच के अवकाश भागों को और सत्-रूप मे व्याप्त हुए और सत् पदार्थों मे विद्यमान यथार्थ तत्व को भी सब तरफ से और सब तरह से पूर्ण कर रहा है। सचमुच तुझ जैसा और कोई दूसरा नहीं, तू एक, अद्वितीय है।

राजा के पक्ष मे—तू पृथिवी को मापने वाला या उसका प्रतिनिधि है। तू बडे २ दर्शनीय वीर पुरुषो का पालक है। सबके हृदय को वा पक्ष प्रतिपक्ष के मध्यस्थ पद को और सत्य व्यवहार को पूर्ण करता है। तुझसा दूसरा कोई नहीं। तू ही सर्वोपरि अध्यक्ष है।

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥१४॥

भा०—जिस परमेश्वर के समस्त पदार्थों मे तदनुरूप होकर सत्ता-रूप से विद्यमान व्यापन सामर्थ्य को सूर्य और पृथिवी भी अन्त नहीं पा सकते और उस रजस् स्वरूप, ऐश्वर्यवान्, लोक-विभूतिमय परमेश्वर के विस्तृत व्यापन या महान् स्वरूप का प्राणगण, आकाश, समुद्र आदि भी अन्त नहीं पा सके। और वीर योद्धा के समान सबके साथ काल रूप मे संग्राम करते हुए इसके आनन्द राशि मे इसकी अपने ऐश्वर्यादि गुणों की वृष्टि का भी उपरोक्त पदार्थ नहीं पा सके। और वह अकेला सब मे अनुरूप होकर, सूक्ष्म या व्यापक होकर समस्त ससार को और जीव को अपने से भिन्न या जुदा प्रकट करता या रखता है। इसी प्रकार प्रजानु-रागी राजा के विशेष महान् सामर्थ्य को, न राजा प्रजा वर्ग या ज्ञानी अज्ञानी, और न नदी समुद्र ही पार पाते है। युद्ध करते समय भी इसके ऐश्वर्य और शस्त्र वृष्टि के पार को शत्रुगण नहीं पा सके। वह अकेला समस्त जगत् का शासन प्रेमपूर्वक, उनके अनुकूल, उनसे मिल कर करे।

आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५॥१४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! उस परम प्राप्तव्य, परम पद के निमित्त इस लोक मे विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं । समस्त देव जन, विद्वान् गण तेरे ही आश्रय मे रह कर खूब हृष्ट और प्रसन्न रहते हैं । क्योंकि तू पापो को भून डालने वाले अज्ञान नाशक प्रकाश से शत्रु के बाधक बल के जीवन या प्रमुख भाग को ही नाश कर देता है ।

सेनापति के पक्ष मे—वेगवान्, तीव्र, बलवान्, शत्रुमारक वीर पुरुष और प्रजास्थ विद्वान् जन इस और सभी युद्धों मे तेरा आदर सत्कार करें और समस्त विद्वान् तेरी प्रसन्नता मे प्रसन्न रहे । शत्रुओ को भून देने वाली, तेजस्वी नीति और शस्त्र युक्त वध आदि दण्डो और शस्त्रास्त्रो से तू शत्रु के जीवन, प्राण तक को नष्ट कर। इति चतुर्दशो वर्गः ।

[५३]

सव्य आङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३ निचृज्जगती । २ भुरिग्-जगती । ४ जगती । ५—७ विराड्जगती । ८, ९ त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ (त्रिष्टुप्) विराट्-स्थाना । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

भा०—हम विद्वान् जन सूर्य के प्रकाश मे, भक्त जनो के समान विविध ऐश्वर्य एवं ईश्वर की परिचर्या करने हारे पुरुष के घर मे या एकत्र मिलकर बैठने के स्थान मे उस महान् परमेश्वर के लिये या बडे भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ही उत्तम वेदवाणी को और नाना अन्य स्तुतियो को भी उत्तम रीति से धारण करें । सोते हुए आलसी लोगों के रमण योग्य धन और ऐश्वर्य के सुखों को जैसे अन्य लोग हर लेते हैं और सोते हुए लोग ऐश्वर्य से वञ्चित हो जाते हैं उसी प्रकार वह ज्ञानी और विद्वान् पुरुष भी ऐश्वर्य और ज्ञान के कोश को प्राप्त करे और औरो को

प्राप्त करावे। सुवर्ण आदि धनों और विद्या आदि सात्विक दान योग्य ज्ञानों को देने हारे स्वामी और आचार्य पुरुषों के लिये बुरे वचन कभी न कहने चाहियें।

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शन. सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि २

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू अश्वों और अग्नि आदि व्यापक तत्वों का दान करने हारा है। तू गौवों का देने हारा है। तू जौ आदि अन्न का दाता है और तू समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है। तू शिक्षा देने वाला नायक आचार्य के समान आदि गुरु है। तू काम अर्थात् सत् संकल्पों को कृश न करने हारा, यथोचित विवेकी है। तू समस्त मित्रों का परम मित्र है। वह तू उत्कृष्ट ज्ञान का भी पालक, अथवा अति पुरातन, पुराण पुरुष है। हे परमेश्वर! इस तुझको ही हम इस प्रकार से तेरी स्तुति करें और अन्यों को उसका उपदेश करें।

शचींव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः॥३॥

भा०—हे उत्तम बुद्धि, उत्तम कर्म और उत्तम वाणी वाले हे ऐश्वर्यवन्! हे प्रजाओं के बहुत से कामों, सुखों और प्रजाओं को भी उत्पन्न करने हारे! हे प्रकाशवान् और ज्ञानवान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ राजन्! सभाध्यक्ष! परमेश्वर! यह सब और जितना ऐश्वर्य या बसने वाला जीव संसार है यह सब तेरा ही है, ऐसा ही सब कोई जानता है। इस कारण या इस राष्ट्र से हे शत्रुओं का पराजय करने हारे! अथवा हे सब तरफ की नाना विभूतियों, ऐश्वर्यों के स्वामिन्! उस समस्त ऐश्वर्य को, या कर को संग्रह करके मुझ प्रजाजन को ऐश्वर्य से पूर्ण कर या पालन पोषण कर। तुझे चाहने वाले स्तुति-वचनों के करने वाले विद्वान् पुरुष के अभिलाषा को तू कभी नष्ट मत होने दे। उसकी अभिलाषा को अवश्य पूर्ण कर। अथवा तेरा आश्रय लेकर मैं रहूँ। तू मुझे ऐश्वर्य से पूर्ण कर

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

भा०—जो पुरुष शुभचित्त वाला, उत्तम ज्ञानवान् और ज्ञान वाणियों से हमारे अज्ञान, अविद्या या दारिद्र्य दशा को रोकने वाला है, उसके साहाय्य से और इन नाना प्रकार के प्रकाशयुक्त द्रव्यो औ उत्तम गुणो से, और इन ऐश्वर्यों, आह्लादक, सुखजनक पदार्थों और ०। वेग से जाने वाले वीर पुरुषो से और अश्व, अग्नि, जल आदि से युक्त रथ-बल तथा अश्व अर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति से और शत्रुओ के नाशक, विद्युत् से बने अस्त्र से हम लोग प्रजा के नाशक, अत्याचारी डाकू लोगों को भयभीत करते हुए और उसको मारते काटते हुए और अति वेगवान्, द्रुतगामी वीरों द्वारा शत्रुओं को सदा के लिए दूर करके या ज्ञानवान्, उत्तम विद्वानो के द्वारा परस्पर के द्वेष के भावो को दूर करके अन्नों द्वारा या प्रबल इच्छा से या प्रबल सेना से युद्ध आदि कार्य प्रारम्भ करें। अथवा जलों और अन्न के एक साथ उपभोग द्वारा परस्पर के द्वेष के भावों को दूर करके एकत्र मिलकर, संगठित होकर कार्य आरम्भ करें।

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥१५॥

भा०—हे सभाध्यक्ष ! सेनाध्यक्ष ! हम लोग ऐश्वर्य से युक्त होकर एक साथ मिलकर कार्य करें। अन्न और प्रबल इच्छा से युक्त होकर संग्राम तथा अन्य कार्य प्रारम्भ करें। वेगवान् अश्वो, यानों से और सब तरफ और सब प्रकार के ज्ञानों और प्रकाशों से युक्त होकर हम लोग मिलकर बहुतों के आह्लादक, एवं अति अधिक सुवर्णादि धनसम्पन्न ऐश्वर्यों से युक्त होकर संग्राम आदि कार्य प्रारम्भ करें। विजय करने वाली उत्कृष्ट ज्ञानवान् विद्वानो को प्रमुख रखने वाली, एवं शत्रुओं को अच्छी प्रकार थामने वाली, पुरुषों तथा शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ बल से

युक्त भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखने वाली और अश्वों और अश्वारोही वीरों तथा शीघ्रगामी यान वाली सेना से प्रबल होकर हम भली प्रकार शत्रुओं से संग्राम करें और लौकिक अन्य २ बड़े कार्यों को भी हम ऐश्वर्य, अन्न और धन और उत्तम मतिवाली वीर सेना से युक्त होकर करें।

गृहस्थ पक्ष में—उत्तम बुद्धि वाली वीर्यवान् पति या पुत्र के बल से युक्त उत्तमवाणी तथा गौ आदि पशु सम्पदा को पालन करने वाली, अश्वादि पशुओं के उपयोग जानने वाली स्त्री के सहित गृहस्थ कार्य सम्पन्न करें। इति पञ्चदशो वर्गः।

ते त्वा मदा॑ अमदन् तानि॒ वृष्ण्या॒ ते सोमा॑सो वृत्र॒हत्ये॑षु सत्पते।
यत्का॒रवे॒ दश॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ति ब॒र्हिष्म॑ते॒ नि स॒हस्रा॑णि ब॒र्हय॑ः ॥६॥

भा०—हे सज्जनों के पालन करने हारे सेनापते! जब तू विज्ञान, राज्यासन तथा प्रजाजनों से युक्त राज्यकर्त्ता, राजा की रक्षा के लिए दस हजारों व बहुत, असंख्यात. शत्रुओं के विघ्नकारी कार्यों और सैनिकों को विनाश करने में समर्थ होता है तब वे अति हर्षित होने वाले उन-उन बलयुक्त प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने के कार्यों को करते हुए सेना दलों के आज्ञापक, नायकगण शत्रुओं के हनन करने के कार्यों में तुझे भी हर्षित करें। तेरे चित्त को वे अपनी वीरता से प्रसन्न कर दें।

आचार्य के पक्ष में—आसन पर बैठने वाले कर्मनिष्ठ पुरुष के सहस्रों विघ्नों को आचार्य दूर करे। और अज्ञान आदि विघ्नों को दूर करने में स्वयं प्रसन्न रह कर ज्ञान के इच्छुक शिष्यगण नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करते हुए तुझ आचार्य को प्रसन्न करें।

यु॒धा युध॒मुप॒ घेदे॑षि धृष्णु॒या पु॒रा पुरं॒ समि॒दं हं॒स्योज॑सा।
नम्या॒ यदि॑न्द्र॒ सख्या॑ परा॒वति॑ निब॒र्हयो॒ नमु॑चिं॒ नाम॑ मा॒यिन॑म् ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सेनापते! तू जिस कारण शत्रु को दबा लेने

मे समर्थ, एवं तेरे समक्ष विनय से झुकने वाले मित्र से मिलकर, उसकी सहायता से कभी जीता न छोड़ने योग्य, अवश्य वध करने योग्य, सबसे प्रसिद्ध और प्रबलतम, अति छल-कपट की मायाओं को करने वाले शत्रु को दूर देश में ही विनाश करता है और तू शत्रु पर प्रहार करने वाले वीर पुरुष से योद्धा शत्रु को ही जा पकड़ता है और शत्रु को दबा देने वाले, अदम्य, अपने प्रबल दुर्ग से शत्रु के दुर्ग को और पराक्रम से इस प्रत्यक्ष आंखों के सामने खड़े शत्रु बल को भली प्रकार मारने में समर्थ होता है इसी से तू उत्तम सेनापति है। अथवा रात्रि के समान या रात्रि-काल में धर्षणशील, योद्धा, पराक्रम और मित्र वर्ग से मिलकर मायावी शत्रु को तू विनाश कर।

त्वं कर॑ञ्जमु॒त प॒र्णयं॑ वधी॒स्तेजि॑ष्ठयातिथि॒ग्वस्य॑ वर्त॒नी।
त्वं श॒ता वङ्गृ॑दस्याभिन॒त् पुरो॑ऽनानु॒दः परि॑षूता ऋ॒जिश्व॑ना॥८॥

भा०—हे सेनापते! तू प्रजाजनों पर शस्त्रों के फेंकने वाले और दूसरों के प्राप्त किये देह वा पालन योग्य पदार्थों को चोरने वाले, अथवा प्रजा के पालक पुरुषों पर आक्रमण करने वाले शत्रु को अतिथि के समान पूजनीय पुरुषों को प्राप्त होने वाले प्रजाजन की रक्षा के लिये अति तेजस्विनी, अग्नि से दीप्त होने वाली, शत्रु पर गोला या शस्त्रों को फेंकनेवाली बन्दूक और तोप जैसी शक्ति से विनाश कर। और तू टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलने वाले और अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देने वाले दुष्ट शत्रु पुरुष के सैकड़ों दुर्गों को सधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी, वशवर्ती सेना बल द्वारा घेर कर तोड़ डाल। अथवा अनुकूल कर न देने वाले कुटिलाचारी शत्रु पुरुष के नगरों को तोड़ और सधे हुए कुत्तों के समान आज्ञाकारी भृत्यों के स्वामी के साथ मिलकर अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थों की रक्षा कर।

त्वमे॒ताञ्ज॑नरा॒ज्ञो द्विर्दशा॑ब॒न्धुना॑ सु॒श्रव॑सोपज॒ग्मुषः॑।
ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑ नव॒तिं नव॑ श्रु॒तो नि च॒क्रेण॒ रथ्या॑ दु॒ष्पदा॑वृणक्॥९॥

भा०—हे राजन्! वीर सेनापते! प्रसिद्ध यशस्वी तू बन्धुओं से रहित और उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, राष्ट्रपति या प्रजाजन के साथ युद्ध करने के लिये इन तेरे प्रति या युद्ध के लिए जाने वाले बीसों धार्मिक राजा जनों तथा जनपदों के राजाओं को ६००९९ साठ हज़ार निन्यानवे पुरुषों को दुष्प्राप्य, अति प्रबल रथों या महारथियों से बने चक्र या चक्र-व्यूह द्वारा रक्षा करके शत्रुओं को भी दूर करने में समर्थ हो। बीसों राजाओं के मुकाबले पर ६००९९ का एक प्रबल रथों का चक्रव्यूह रक्षा के लिए पर्याप्त है।

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम्।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः ॥१०॥

भा०—हे सेनापते! तू उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति को अपने रक्षा साधनों से सुरक्षित रख। हे शत्रुहन्तः! तू हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर सैनिकगण को भी देहों के रक्षक, कवच आदि साधनों से सुरक्षित रख और इस बड़े भारी सबको अपने साथ मिलाने हारे या सबसे पृथक् हुए राजा के लिए वज्र अर्थात् सेना, शस्त्रास्त्र बल को और अतिथि के समान पूज्य राजा के प्रति सर्वसमर्पण कर इसकी शरण में आने वाले प्रजाजन को तू अपने वश कर और पर्याप्त ऐश्वर्यवाला बना।

य उ॒दृचीन्द्र दे॒वगो॑पाः॒ सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा असाम।
त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः॥११॥१६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! सभापते! सेनाध्यक्ष! जो विद्वानों और विजिगीषु, वीर पुरुषों से सुरक्षित तेरे मित्रगण हैं वे और हम तेरे लिए अत्यन्त कल्याणकारी होकर रहें। हम उत्तम वीरजन तेरे साथ सौ वर्षों से भी अधिक दीर्घ जीवन को खूब अच्छी प्रकार धारण करते हुए तेरी युद्ध-यज्ञ की समाप्ति पर अथवा संग्राम के अनन्तर उत्तम फल प्राप्त

कर लेने पर अथवा ऊंचे स्वर से गान करने योग्य स्तुति द्वारा तेरी स्तुति करें। इति षोडशो वर्गः।

[५४]

सव्य आंगिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ४, १० विराड्जगती॥ २, ३, ५ निचृज्जगती। ७ जगती। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम्॥

मा नो॑ अ॒स्मिन् म॑घवन् पृ॒त्स्वंह॑सि न॒हि ते॑ अन्तः॒ शव॑सः परी॒णशे॑।
अक्र॑न्दयो न॒द्यो॒३ रोरु॑व॒द्वना॑ क॒था न क्षो॒णीर्भि॒यसा॒ समा॑रत॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! तेरे बल और शक्ति का अन्त या पार नहीं पाया जा सकता। तू हमें पाप में और नाना संग्रामों या नाना पीडाजनक आयासों में मत रुला, मत पीड़ित कर। अथवा हमें सब प्रकार से लुप्त कर देने वाले, मिटा डालने वाले पाप में मत रुला। तू जंगलों में नदियों के समान भ्रमा २ कर मत रुला। भय के मारे त्रस्त हुए पृथ्वी निवासी जन भी क्यों न एक संग मिलकर तेरी शरण में आवें। इसी प्रकार राजा भी प्रजाओं को पापाचार के कार्यों में या संग्रामों में पीड़ित न करे। उनको जंगलों में न भटकावे। भयार्त होकर क्यों न प्रजाएं एकत्र संगठित होकर रहें?

अर्चा॑ श॒क्राय॑ शा॒किने॒ शची॑वते शृ॒ण्वन्त॒मिन्द्रं॑ म॒हय॑न्न॒भि ष्टु॑हि।
यो धृ॒ष्णुना॒ शव॑सा॒ रोद॑सी उ॒भे वृषा॑ वृष॒त्वा वृ॑ष॒भो न्यृ॒ञ्जते॑॥२॥

भा०—हे प्रजाजन! तू शक्ति से भरे हुए, बलवान् पदार्थों और पुरुषों के स्वामी, स्वतः भी अति शक्तिशाली और प्रज्ञावान्, कर्मशक्ति से सम्पन्न और शक्तिशालिनी सेनाओं के स्वामी परमेश्वर की स्तुति कर। सब स्थानों और सब कालों में वह परमेश्वर सुन रहा है, ऐसा जान कर ईश्वर के प्रति आदर और श्रद्धा से पूजन और अर्चन करता हुआ तू साक्षात् सा जान कर उसकी स्तुति किया कर। इसी प्रकार प्रजाओं के न्याय-व्यवहारों और कष्टों को सुनते हुए का आदर करता हुआ राजा की

साक्षात् स्तुति कर। जो मेघ के समान प्रजाजनों पर, जल के समान सुखों की और विजुलियों के समान शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने हारा है, वह सर्व-सुखवर्षक होकर ही आकाश और पृथ्वी दोनों को सूर्य के समान अपने वर्षण सामर्थ्य या बांध लेने वाले आकर्षण सामर्थ्य से राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को अपने अधीन, वश करता है।

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः॥३॥

भा०—शत्रुओं के पराजित करने हारे जिसका मन, चित्त और ज्ञान और स्तम्भन वल या शासन और अपना क्षात्रवल दोनों शत्रु को पराजित करने वाले हैं और जिसकी वाणी, वचन या आज्ञा भी वलयुक्त और सुखजनक है उस वडे भारी तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी राजा का आदर कर। वह बड़े भारी यश, कीर्ति, अन्न और ज्ञान से युक्त, प्राण वल से युक्त, अन्य शत्रुओं को परास्त करने हारा, वडे भारी सैन्य वल से अपना मुख्य सर्दार वनाया जावे। वह वलवान् पुरुषों को प्रिय अथवा स्वयं सर्वश्रेष्ठ, सुखों का वर्षक होकर दो प्रवल अश्वों से युक्त रथ के समान दो विद्वान् पुरुषों से सहायवान् होकर अति वेगवान्, वलशाली हो।

त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि॥४॥

भा०—जो तू शत्रुओं का पराजय करने और दवाने में समर्थ होकर समूह वना कर रहने वाले मायावी पुरुषों को अति हृष्ट, प्रसन्न चित्त से सेना द्वारा उनको पराजित करना चाहता या स्वयं अपने अधीन सेना रखना चाहता है, तव तू जिस प्रकार सूर्य मेघ पर अपनी किरण या दीप्ति को फेंकता है उसी प्रकार जो अति तीक्ष्ण अपने हाथों से कावू करके चलाने योग्य विद्युत् के वने सर्वसंहारक अस्त्र को छोडे और वडे भारी आकाश और सूर्य के प्रकाश को रोक लेने वाले मेघ को धर्षण या पराभव करने वाले अपने तेज से सूर्य या वायु जिस प्रकार छिन्न भिन्न करता था

बिजुली जिस प्रकार अपने तीव्र सामर्थ्य से ही जल को नीचे गिरा देता है उसी प्रकार बड़े भारी ज्ञानी या तेजस्वी राजा के ऐश्वर्य को भोगने वाले शान्ति के नाशकारी, दुष्ट पुरुष को क्रोध और आवेश से हीन, गर्व रहित, निर्वीर्य करे और नीचे तोड गिरावे।

नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यद्द्या चित्कृणवः कस्त्वा परि॥५॥१७॥

भा०—हे परमेश्वर! जो तू आज भी बराबर पूर्व कालो के समान सब के प्राणप्रद वायु के और किरण समूहो से युक्त पृथ्वी के जलो को शोषण करने वाले सूर्य के भी शिर पर, उसके भी ऊपर अधिष्ठाता होकर अति प्राचीन, सनातन से चले आये संसार की वृद्धि करने वाले ज्ञान से सबको उपदेश या गर्जना करता हुआ जलो और ज्ञानो को नीचे गिराता या देता है तब आज भी तुझे छोडकर कौन दूसरा ऐसा करने में समर्थ है, तेरे सिवाय कोई नहीं। उसी प्रकार हे राजन्! प्राणि के प्राणों या जीवनो के दाता और दुष्ट पुरुषों के जत्थे के स्वामी, प्रजा के रक्तशोषी बलवान् पुरुष के भी शिर पर तू विराज कर प्रजाओं को उत्तम उपदेश या आज्ञा करता है और शत्रुओ को रुलाता हुआ भोग योग्य ऐश्वर्यो के जलों के समान मेघवत् वर्षा दे और आगे की तरफ बढ़ने वाले, शत्रु के नाशकारी अपने स्तम्भन बल या प्रबल चित्त से जो तू करता है उसको तुझ से दूसरा कौन हो जो कर सके। इति सप्तदशो वर्गः।

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव॥६॥

भा०—हे राजन्! हे परमेश्वर! हे सैकड़ों वीर कर्मों और प्रज्ञानों के स्वामिन्! तू समस्त मनुष्यो के हितकारी, उनमे श्रेष्ठ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पर वश करने हारे! उन चारों की इच्छा करने हारे, अथवा शत्रुओं के नाशकारी, यत्नशील, शत्रुओं के मारने में कुशल, कान्तिमान्, तेजस्वी या ज्ञानवान्, रथों पर चढ़ने हारे और रथों और

घोड़ों, रथारोही घुड़सवारों को संग्राम करने के निमित्त रक्षा कर। और शत्रु के ९९ निन्यानवे अर्थात् अनेकों पुरों को विनाश कर।

स वा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः॥७॥

भा०—वह ही निश्चय से राजा है जो मनुष्य और सज्जनों का पालक होकर राष्ट्र की वृद्धि करे और उस पर अपनी आज्ञा चलावे। और जो उत्तम २ अन्न आदि ग्रहण करने और दान करने योग्य पदार्थों का दान करता हुआ शासन करने के साधन न्याय और दमन को प्रतिक्षण, प्रतिदिन और प्रत्येक जन के प्रति यथावत्, विना प्रमाद और अन्याय के करता है और जो [उत्तम वेदानुकूल वचनों को अन्यों को उपदेश करे और अपने ऐश्वर्य और धन से दानशील होकर इस राष्ट्रवासी प्रजा के हित के लिए आकाश से वरसे मेघ के समान उन पर ऐश्वर्यों और सुखों का वर्षण करे।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेरा राष्ट्रीय सेना वल अनुपम, सबसे बढ़कर और बुद्धिवल या मंत्रवल या ज्ञानबल भी अनुपम, सबसे वढ़ चढ़ कर हो। जो वेतन, आजीविका आदि देने वाले तेरे अधीन रहकर, तेरे बहुत वड़े वल को और ऐश्वर्य को और स्थिर करने और वढ़ाने मे समर्थ हों वे सव अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्यों सहित अन्न, ऐश्वर्य, वल, वीर्य, ज्ञान और ओषधि आदि रस का पान, पालन, प्राप्ति और उपभोग करते हुए अच्छी प्रकार सुख से रहें।

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व॥९॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! मेघों की वर्षाओं से जिस प्रकार भरे पूरे पर्वती नाले वेग से वेरोक तटों और वृक्षों को तोड़ते फोड़ते हुए

निकलते हैं। उसी प्रकार ये सेनाओ में विराजमान वीर सैनिक गण भी मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्षाने वाले, उदार स्वामियो से दिये गये ऐश्वर्यों से और पर्वतो के समान दृढ़ राजाओं से पालित पोषित हैं। वे पात्रो के समान राष्ट्र के बहते और अस्थिर ऐश्वर्यों को भी धारण करने और राष्ट्र-ऐश्वर्यरूप भोग्य रस को भोग करने के साधन होकर ऐश्वर्य से समृद्ध, राष्ट्र और राष्ट्रपति के पद को पालन और उपभोग करने मे समर्थ हैं। वे सब बहुत से ऐश्वर्यों को शत्रु देश से ले आने वाले बहुत संख्या में तेरी ही रक्षा और वृद्धि के लिए हों। तू इनके आधार पर राष्ट्र को विविध प्रकार से प्राप्त कर, उसमे व्याप जा। और इन अधीन पुरुषो को भी भृत्य के समान नियुक्त कर और इनके चित्त को देने योग्य धन अर्थात् वेतन, पुरस्कार आदि के लिए उत्सुक बनाये रख। अर्थात् उनको दान उपाय से वश कर।

अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥

भा०—आश्रय देने वाले, आधारस्वरूप, कुटिल, टेढ़े मेढ़े स्थान जिनमें सूर्य या विद्युत् का प्रकाश तुरन्त नहीं पहुंचता, वहां का सा अन्धकार जलों के बीच रहता है और जल को अपने भीतर, गर्भ मे धारण करने वाले और पुनः द्रवरूप से उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म रूपों के भीतर ही ऊंचे कन्धे वाला मेघ पर्वताकार सा होकर दीखा करता है। गर्जना करने वाली बिजुलिया भी सब आवरण करने वाले मेघ के रूप से भीतर रहती हैं इनको वायु या विद्युत् ही एक दूसरे के पीछे स्थित जल की तहो को भी आघात करके नीचे प्रदेशों में गिरा देता है। इस प्रकार निरन्तर जल बरसा करते हैं। ठीक इसी प्रकार राष्ट्र मे भी अन्धकार प्रजाओं के बीच आश्रय देने वाले बडे २ लोगों की आड मे कुटिलतापूर्वक, दीवट के नीचे अन्धकार के समान, रहा करता है। राजा उसको सूर्य के समान नाश करे। बढ़ते हुए राष्ट्र के उत्पन्न या प्रकट करने वाले राष्ट्र के अवयवों

के भीतर ही राष्ट्र के पालनकारी साधनों का स्वामी, पर्वत के समान अचल और मेघ के समान सुखों का वर्षक होकर रहे। मेघ या विद्युत् जिस प्रकार जल-धाराओं को नीचे के प्रदेशों में बहाता है उसी प्रकार वरण करने योग्य, चाहने योग्य सुन्दर रूप वाली सुवर्ण आदि के रूप में रक्खी हुई समस्त समृद्धियों को अनुकूल, कर्मानुकूल या नियमानुकूल रखकर अपने आगे झुकने वाले विनीत भृत्यों में प्राप्त करावे, प्रदान करे। अर्थशास्त्र या प्रजापालन की यही नीति है—"अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षिणी, रक्षितविवर्धिनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादिनी च [कौ० अर्थ०]। दण्डनीति अलब्ध को प्राप्त करे, प्राप्त की रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे, बड़े ऐश्वर्य को तीर्थों अर्थात् अधीन सेवकों में प्रदान करे।

स शेवृ॑धमधि॑ धा द्युम्नम॒स्मे महि॑ क्ष॒त्रं ज॑ना॒षाळि॑न्द्र॒ तव्य॑म्।
रक्षा॑ च नो म॒घोनः॑ पा॒हि सू॒रीन् रा॒ये च॑ नः स्वप॒त्या इ॒षे धाः॥११॥८॥

भा०—हे राजन्! वह तू समस्त जनों को अपने वश करने में समर्थ होकर शान्ति और सुख को बढ़ाने वाले ऐश्वर्य को और बड़े भारी बल-शाली क्षत्रिय बल को हमारी रक्षा के लिए खूब अधिक मात्रा में रख और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए और उत्तम, गुणशाली पुत्रों को भरण पोषण करने वाले अन्न की वृद्धि और रक्षा के लिए हममें से ऐश्वर्य-वान् विद्वान् पुरुषों की भी रक्षा कर, नियुक्त कर और पालन कर। इत्यष्टादशो वर्गः।

[५५]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः जगती। २, ५—७ निचृत्। ३, ८ विराट्। अष्टर्चं सूक्तम्॥

दि॒वश्चि॑द॒स्य वरि॒मा वि प॑प्रथ॒ इन्द्रं॒ न म॒ह्ना पृ॑थि॒वी च॒न प्रति॑।
भी॒मस्तुवि॑ष्माञ्चर्ष॒णिभ्य॑ आत॒पः शिशी॑ते वज्रं॒ तेज॑से॒ न वंस॑गः॥१॥

भा०—जिस प्रकार इस सूर्य की वरिमा, श्रेष्ठ गुण या तेज या बड़प्पन आकाश के भी पार तक विविध दिशाओं में फैल जाता है।

और सूर्य के अपने महान् वैभव से पृथिवी भी बराबरी नहीं करती । ठीक उसी प्रकार उस राजा के श्रेष्ठ गुण प्रकाशमान सूर्य या विस्तृत आकाश एवं बड़ी विद्वद्-राज-सभा से भी अधिक विशेष रूप से विस्तृत हों । और समस्त पृथिवी वासी प्रजा अपने बड़े बल से भी शत्रु नाशक राजा का प्रतिपक्षी न हो । वह राजा अति भयानक बलशाली होकर समस्त मनुष्यों के हित के लिये सूर्य के समान तेज से शत्रु को सताप देने वाला होकर बलीवर्द जिस प्रकार भोग्य गोगण पर जाता है उसी प्रकार वह भूमियों का भोग करे । और उत्तम भोग्य अन्नों को प्राप्त कराने वाला मेघ जिस प्रकार भूमियों पर वर्षा करता है उसी प्रकार प्रजाओं को भोग्य नाना ऐश्वर्य प्रदान करने हारा हो । सूर्य जिस प्रकार प्रकाश करने के लिये अपने अन्धकार-वारक किरण समूह को तीव्र करता है और मेघ जिस प्रकार प्रकाश के लिये विद्युत् को तीक्ष्ण करता है, उसी प्रकार राजा भी अपने और पराक्रम और प्रभाव की वृद्धि करने के लिये अपने शस्त्रास्त्र बल को सदा तीक्ष्ण, सदा तैयार और अति वेगवान् उग्र, बलवान् बनाये रक्खे ।

परमेश्वर पक्ष में—परमेश्वर का महान् सामर्थ्य आकाश से भी दूर तक फैला है । पृथिवी उस की समानता नहीं करती । वह सर्व शक्तिमान् प्रजा के हित के लिये दुष्टों का संतापक है । वह तेज के प्रसार के लिये अन्धकार के नाशक सूर्य आदि पदार्थ को तीक्ष्ण बनाता है ।

सो अ॑र्ण॒वो न न॒द्य॑: समु॒द्रिय॒: प्रति॑ गृभ्णाति॒ विश्रि॑ता॒ वरी॑मभिः ।
इन्द्र॒: सोम॑स्य पी॒तये॑ वृषायते स॒नात्स यु॒ध्म ओज॑सा पनस्यते ॥२॥

भा०—जिस प्रकार समुद्र नदियों को अपने भीतर ले लेता है, उसी प्रकार सूर्य भी अव्यक्त शब्द करने वाले, गर्जनाशील, विविध प्रकारों और रूपों में स्थित जलों को नाना रोकने वाले कारणों या किरणों द्वारा अथवा अति अधिक शक्ति वाले किरणों से ले लेता है । वही समुद्र अर्थात् महान् आकाश या अन्तरिक्ष प्रदेश में उत्पन्न सूर्य जल को अपने

किरणों द्वारा पान कर लेने के कारण ही बाद में वर्षा करने वाले मेघ के समान, मेघ का रूप होकर बरसता है। मानो सूर्य ही मेघ रूप में बदल जाता है। वह सदा से ही प्रहार करने वाला विद्युत् होकर अपने पराक्रम या बलकर्म से नाना व्यापार अर्थात् वर्षण, गर्जन, विद्युत् आदि के कार्य करता है। ठीक उसी प्रकार यह राजा समुद्र से उत्पन्न रत्न के समान उज्वल होकर भी जिस प्रकार सागर अपने भीतर जल से भरी पूर्ण नदियों को ले लेता है उसी प्रकार वह गर्जना करने हारी सेनाओं तथा समृद्धिशाली उन उन नाना प्रजाओं को भी ले लेता है, अपने वश कर लेता है, जो नाना रक्षा साधनों और बड़े बड़े सामर्थ्यों से विविध उपायों, स्वार्थों तथा विविध देशों, दिशाओं और कार्यों में आश्रय पा रही हैं। ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, ऐश्वर्य के भोग, राष्ट्र के पालन और ओषधि आदि रस पान के लिए वर्षणकारी मेघ या सूर्य के समान आचरण करे और सदा वह अपने पराक्रम से, शत्रुओं पर प्रहार करने हारे योद्धा के समान सदा सन्नद्ध होकर स्तुति का पात्र हो, अथवा राज्य के समस्त व्यवहार करे।

त्वं तमि॑न्द्र॒ पर्व॑तं॒ न भोज॑से म॒हो नृ॒म्णस्य॒ धर्म॑णामिरज्यसि।
प्र वी॒र्ये॑ण दे॒वताति॑ चेकिते॒ विश्व॑स्मा उ॒ग्रः कर्म॑णे पु॒रोहि॑तः ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! जिस प्रकार मेघ को सूर्य, विद्युत् या वायु समस्त प्रजाओं के पालन के लिये आघात करता, छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार नाना पालन सामर्थ्यों से युक्त अथवा पर्वत के समान अभेद्य दृढ़ शत्रु को भी तू प्रजाओं के पालन और ऐश्वर्य भोग के लिये आघात करता है। और तब तू बड़े भारी मनुष्यों को वश करने में समर्थ, उनके मनों को हरने वाले ऐश्वर्य के धारण करने वाले, बड़े २ धनाढ्य पुरुषों के बीच में भी ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। वीर्य या वीरोचित प्रताप या विविध प्रकार से शत्रु को उखाड़ फेंकने के बल से तू समस्त दानशील स्वामियों और विजय करने वाले सेनाजनों में से भी

सबसे बढ़ कर जाना जाता या स्वयं जानता है। तभी तू सब कर्मों के लिये,बड़ा प्रबल, भयकारी, आगे स्थापित साक्षी, द्रष्टा, निरीक्षक, शासक के रूप में स्थापित हो। अथवा तू पर्वत या मेघ के समान शत्रु राजा को भी अपने भोग के लिये आघात न कर, प्रत्युत प्रजा के सुख के लिये उसे दण्डित कर।

स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४॥

भा०—जिस प्रकार नमस्कार करने वाले, विनयशील विद्यार्थियों के समान भक्तजनों द्वारा परमेश्वर अरण्य में, एकान्त में स्तुति किया जाता है और वह जनों और जन्तुओं में अति उत्तम उपभोग योग्य ऐश्वर्य और ज्ञान का आचार्य के समान उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र होता है, इसी प्रकार वह राजा ही भोगने और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य के लिये उसके प्रति झुक २ कर आदर करने वाले विनीत सेवकों द्वारा उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करे। और वह सर्वसाधारण जनों पर उत्तम भोग्य, ऐश्वर्य, राज्य समृद्धि को प्राप्त करने का उनको उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र हो। जब भी राजा सब प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारा, दानशील, मेघ के समान उदार या महा वृषभ जिस प्रकार गौ को प्राप्त करता है उसी प्रकार वह समस्त रसों के पान कराने वाली आज्ञापक वाणी और भूमि को या प्रजा की स्तुति को प्राप्त करता है, तब वह वर्षक मेघ के समान उदार प्रजा का मनोरंजक और प्रजा के कुशल क्षेम, परम हित करने से भी सबके मनो के हरण करने वाला प्रजा के रक्षण द्वारा ही प्रजाओं के मन हरने वाला, एवं स्वयं स्वतन्त्र मुख्य हो जाता है।

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥

भा०—वह राजा या सेनापति ही राष्ट्र कार्य में बाधा उत्पन्न करने

वाले कष्टको को शोधन करने मे समर्थ, सैन्यबल मे और बडे पराक्रम, उत्साह और साहस से शत्रु पर प्रहार करने मे समर्थ, योद्धा होकर प्रजाजनों के हित के लिये बडे २ संग्राम करता है। और शत्रुओं के वारण करने वाले उनको आघात करने वाले शस्त्र तथा वध, अगच्छेदन आदि दण्ड का भी प्रयोग करता है। तभी कान्तिमान्, सूर्य के समान तेजस्वी उस शत्रुहन्ता राजा के ऊपर भी लोग श्रद्धा करते हैं और विश्वास करते हैं। अर्थात् राष्ट्र की शासन-व्यवस्था के भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के कण्टकों के शोधन करने वाले विजयी राजा पर ही प्रजाजन को अपने जान, माल की रक्षा का विश्वास जमता है। दूसरे, वह यह सब दमन का कार्य भी अपने स्वार्थ से न करे।

विद्वान् ज्ञानी पक्ष मे—अज्ञान और मलो का शोधन करने वाले ज्ञान बल और तप से लोगों के हित के लिये योद्धा वीर के समान बड़े बडे विज्ञानो को सम्पादित करे। अज्ञान-नाशक ज्ञान रूप अस्त्र का सदा प्रयोग करे, तभी उस तेजस्वी आचार्य पर लोग श्रद्धा और विश्वास करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स हि श्र॒व॒स्युः सद॑नानि कृ॒त्रिमा॑ क्ष्म॒या वृ॑धा॒न ओज॑सा विना॒शय॑न्।
ज्योतीं॑षि कृ॒ण्वन्न॑वृ॒काणि॒ यज्य॒वेऽव॑ सु॒क्रतु॒ः सर्त॒वा अ॒पः सृ॑जत्॥६॥

भा०—वह निश्चय से यश प्राप्त करने की इच्छा से नाना प्रकार के शिल्पों द्वारा बनाये जाने वाले आश्रय गृह, दुर्ग, उपवन, रथ आदि बनवावे। और वह अन्न सम्पदा को प्राप्त करने की इच्छा से कृत्रिम, नये २ जलों, जलाशय, सेतु और नहरों को बनवावे। और भूमि सम्पत्ति और जनपद-वासी प्रजा के द्वारा बढ़ता हुआ और पराक्रम से शत्रुओं के बनाये गृहों, आश्रय स्थान, दुर्ग और जलाशय, सेतु, बन्ध आदि पदार्थों को विनाश करता रहे। जिस प्रकार वायु अपने प्रबल झोकों से आकाश में प्रकाशमान पिण्ड, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आदि को मेघ आदि के आवरण से रहित कर देता और आकाश को स्वच्छ कर देता है उसी

प्रकार राजा भी राज्य में चोरों से रहित और भेड़िया, सिंह, बिलाव आदि रात्रिचारी प्राणियों के भय से रहित प्रकाश के साधन, बड़े २ लैम्पों, ज्योति-स्तम्भों को नगरों और मार्गों में करता रहे। जिस प्रकार यज्ञ करने वाले के लिये मेघ या सूर्य नीचे बहने के लिये जलों को नीचे बहाता है। उसी प्रकार राजा भी शिल्प या एञ्जिनीयरी के कार्यों के करने में कुशल होकर, राष्ट्र में बहने और एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिये जलों, नहरों और जल-मार्गों को बनावे॥ विद्वान् पुरुष भी ज्ञान की कामना करके कृत्रिम गृहों को बना कर भूमि या गृह, कलत्र आदि से सन्तानों को बढ़ाता हुआ, पराक्रम से अपने विरोधियों को नाश करता हुआ, छलादि रहित ज्ञान-प्रकाशों को प्रकट करता हुआ उत्तम ज्ञानवान्, कर्मनिष्ठ होकर लोक यात्रा के लिये उत्तम कर्मों को करे और ज्ञानों को प्रदान करे।

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ७

भा०—हे ऐश्वर्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और अभिषिक्त राज्यपद के रक्षक राजन्! विद्वन्! तेरा मन सदा ज्ञान देने के लिए हो और तेरा मन अर्थात् स्तम्भन बल, पराक्रम शत्रुओं के खण्डन, विनाश के लिए हो। हे स्तुति और अभिवादन को प्रेम और आदर से श्रवण करने हारे! तू अपने दोनों अश्वों को आगे, अपने अधीन चलने हारा कर। हे राजन्! जो नियन्त्रण करने में कुशल, रथियों के साथ बैठने वाले सारथी लोग और उनके समान सहयोगी नियम व्यवस्था के अधिकारी हैं, वे ज्ञान वाले और प्रजा के पालन पोषण करने वाले होकर तुझ को विनाश न करें। प्रत्युत सारथियों के समान वे भी राष्ट्र और राजा रूप मुख्य स्वामी की रक्षा करें।

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः॥८॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः राजन्! सेनापते! सभाध्यक्ष तू अपने हाथों में, अपने अधीन अक्षय ऐश्वर्य को धारण कर। और खूब प्रसिद्ध, यशस्वी, कीर्तिमान् होकर अपने शरीर मे तथा अपने विस्तृत राष्ट्र में शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाले, अदम्य बल को धारण कर। तेरे शरीरो के समान सुदृढ़ राज्यतन्त्रों मे बहुत से क्रियाशील पुरुष तथा कर्मवान् और प्रज्ञावान् पुरुष भी ऐसे हों जो रक्षाकारी, ज्ञानी पुरुषो या जल से पूर्ण जीवनप्रद कूपो या छिपे खजानो के समान कर्म कर, अधीनस्थ, कर्म कुशल पुरुषो से घिरे हुए, सुरक्षित रहे। इति विंशो वर्गः॥

[५६]

सव्य आंगिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृज्जगती। २ जगती विराड् जगती। ४ त्रिष्टुप्। ६ भुरिक त्रिष्टुप्॥ षडर्चं सूक्तम्॥

एष प्र पूर्वीरव॒ तस्य॑ च॒म्रिषोऽत्यो॒ न योषा॒मुद॑यंस्त भु॒र्वणिः।
दक्षं॑ म॒हे पा॑ययते हिर॒ण्यय॒ं रथ॑मा॒वृत्या॒ हरि॑योग॒मृभ्व॑सम्॥१॥

भा०—अश्व जिस प्रकार घोडी को प्राप्त हो, अथवा जिस प्रकार स्वयंवर मे बल, शौर्य की प्रतिस्पर्द्धा मे सबसे अधिक बढ़ जाने वाला पुरुष ही भरण-पोषण करने हारा पति होकर स्वयंवरा कन्या को विवाह लेता है उसी प्रकार राष्ट्र को धारण पोषण करने मे समर्थ बल-शौर्य की प्रतिस्पर्द्धा मे सबसे अधिक बढ़ जाने हारा यह वीर राजा भी उस राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ, अग्रगण्य पात्रों मे रक्खी, भरी पूरी, योग्य सम्पदाओं के समान सेनाओं मे आज्ञा पर चलने वाली, सर्वश्रेष्ठ अग्रगण्य, बल में परिपूर्ण सेनाओं को अपने अधीन करके उन पर शासन कर नियम में चलाता है। और वह बहुत अधिक दीप्ति के साथ तीव्र बाण आदि अस्त्रों को फेंकने मे समर्थ अश्वो द्वारा जोते जाने वाले लोह के बने रथ या तोप को प्रयोग करके बडे भारी विजय कार्य करने के लिए बल या क्रिया-सामर्थ्य को सुरक्षित रखता है।

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा॥२॥

भा०—उद्यमशील या उपदेशो से युक्त, लज्जा से विनीत और हृदय से पति को चाहने वाली, शुभ नासिका वाली सुन्दर स्त्रिया जिस प्रकार पति को प्राप्त होती है। और जिस प्रकार उत्तम रीति से भोगने योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाले धनाभिमानी पुरुष परदेश मे जाने के लिए समुद्र का आश्रय लेते हैं, अथवा अपने मार्गों पर चलते समय पृथक् पृथक् बंटे हुए मार्गों को स्वीकार करने वाली नदियां जैसे समुद्र को प्राप्त होती हैं और विद्वान् पुरुष जिस प्रकार पर्वत के समान अचल और ज्ञानोपदेश के करने वाले मेघ के समान अचल ज्ञानवर्त्ती गुरु को ब्रह्मचर्य के तेज से युक्त होकर प्राप्त होते हैं, और कामनाशील स्त्रियां जिस प्रकार विवाह के अवसर पर बडे साहस से शिलाखण्ड पर पैर रख देती हैं उसी प्रकार स्तुतिशील आदर से झुकने और अपने स्वामी को चाहने वाली तथा अपने नायक पति द्वारा प्रेरित होना चाहने योग्य बहुतसी, एव बहुत से देशो में बसने वाली प्रजाए अथवा आगे आगे बढ़ने वाली सेनाएं, ज्ञान और बल के और संग्राम और ऐश्वर्य के पालक शत्रुविजयी बलवान् पुरुष को प्राप्त कर अपने तेज से उस पर आरूढ़ हों, उस पर आश्रय करें। कामनायुक्त स्त्री के विवाहकाल मे शिलाखण्ड पर पैर रखना भी पर्वत के समान अचल पति पर आश्रय लेकर स्वयं अचल होने की प्रतिज्ञा लेने के भाव को दर्शाता है। उसी प्रकार प्रजागण और सेनागण युद्ध मे एक साथ प्रयाण करने मे भी अपने स्वामी राजा पर आश्रय ले, अपने यत्न से उसके आश्रय मे स्थिर बनी रहे।

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥

भा०—वह वीर पुरुष शीघ्र सुखजनक, एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने और सगी जन को शीघ्र सुखी करने वाला, अथवा शत्रुओं को शीघ्र नाश

करने वाला, गुणों से महान्, आदर योग्य, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला, स्वतः बलों से पूर्ण, दुष्टों को अपने अधीन रखने में समर्थ और उनके वश में न आने वाला विज्ञान से युक्त अथवा कवच और शस्त्रास्त्र से युक्त, प्रबल और सुरक्षित है, जो पौरुष कर्म और पुरुषत्व के योग्य यौवनकाल में सब दुःखों और विरोधियों का नाशक निर्दोष अवध्य बल है, जिस बल से वह स्वयं मेघ से गिरने वाली अति तीव्र वृष्टि या विद्युत् के समान प्रतापशाली या पर्वत के समान ऊंचे शिखर के समान चमकता है, उस बलवान् नाना प्रज्ञाओं से युक्त पुरुष को हे पतिवरे कन्ये ! तू दृढ़ता से बांधने वाले गृहस्थ बन्धन में अच्छी प्रकार बांध ले। और वह तुझे सब प्रकार की विभूतियों, ऐश्वर्यों और भूमियों में या देशों में हर्ष में अति प्रसन्न रक्खे। अथवा उसका दुःखनाशक, सबको सुभूषित करने वाला आनन्दप्रद बल है जिससे तू उसे गृहस्थ बन्धन में बांधे और वह तुझे बांधे।

सेनापति के पक्ष में—वीर सेनापति जिस बल से मायावी बलवान् शत्रु को बन्धन में, कारागार में डाले।

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! यदि बलवती सेना तुझे अपने बलवीर्य और पराक्रम से बढ़ाने वाली और विजय की कामना करने हारी होकर कामनायुक्त, बलवती महिला के समान ऐश्वर्यवान् अपने पति को प्राप्त होती है, पति या स्वामी का आश्रय लेती है तब जो वीर पुरुष शत्रुओं को पराजित करने वाले, प्रबल बल से सूर्य जिस प्रकार अन्धकार को नाश करता है उसी प्रकार शत्रुबल को नाश करता है और जो पूज्य और शत्रुओं का विवेक करने हारा अथवा वेगवान् धनापहारी पुरुषों को अपने प्रताप से रुलाने या गुञा देने वाला होकर बड़े उद्योग से उत्तम रजोरेणु के समान गुणवती तुझको प्राप्त हो। सूर्य जिस प्रकार उषा के

पीछे पीछे अनुगमन करता है उसी प्रकार अपनी सेना के पीछे २ चलता है और उसी प्रकार वह स्वामी भी अपनी स्त्री का अनुगमन करे ।

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार जो सबको अपने अधीन रखने हारा सूर्य दिशाओ मे अपने प्रकाश और आकर्षण द्वारा अविनाशी, अपने स्थान से न डिगने वाले समस्त चराचर के आश्रय रूप पृथिवी आदि लोक को भी अधर आकाश मे स्थापित करता है और जो सूर्य सबके हर्षकारी सुखों और जल वर्षाने वाले अन्तरिक्ष मे हर्षों के जनक, वृष्टि, विद्युत् आदि कार्यों को उत्पन्न करता हुआ जलो को रोकने वाले मेघ को आघात करता है और जल को नीचे गिरा देता है । इसी प्रकार सब शत्रुओ को अपने अधीन करने मे समर्थ सेनापति राष्ट्र के धारण करने वाले आश्रय-रूप बडे भारी लोकसमूह या राजगण को समस्त दिशा मे अपने अधीन स्थापित करता है और यही शत्रुनाशक राजा सुखपूर्वक आनन्द के अव-सर मे प्रजाजनों को हर्षित करने वाले न्याय, शासन आदि कार्यों को करता हुआ जल के सागर रूप मेघ को सूर्य के समान शत्रु के अपार सैन्यबल को भी मार गिराता है ।

गृहस्थ पक्ष में—इसी प्रकार सन्तान के वृद्धिजनक, अखण्ड आश्रय-रूप वीर्य को ज्ञान प्रकाशरूप मस्तक या ज्ञानोपयोगी इन्द्रियों में पूर्ण वश करे । स्वामी हर्ष के सुखप्रद अवसर में पत्नी के प्रसन्नकारक कर्मों को करता हुआ जलो को भूमि पर मेघ के समान गृहस्थोचित पुत्रोत्पादन आदि नाना सुख रूप जलों का वर्षण करे ।

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६॥२१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभाध्यक्ष ! जिस प्रकार सूर्य या मेघ पृथिवी के नाना प्रदेशों में अपने बल से आकाश से जल प्रदान करः

है उसी प्रकार तू महान् शक्तिशाली होकर अपने पराक्रम से पृथिवी के प्रजाओं के रहने, वसने योग्य गृहों और नगरों में उत्तम प्रकाश और ज्ञान वाले विद्वज्जनों से सब प्रजा को धारण करने वाले ज्ञान तथा न्याय व्यवस्थापन को धारण करता है। और तू अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्याधिकार के हर्ष और उत्साह में आप्त प्रजाजनों को प्राप्त कर। और समयानुसार, बीच बीच में यथावसर शत्रुगणों के पीस डालने या चकनाचूर कर देने के उपाय से बढ़ते हुए शत्रु को, विद्युत् या वायु जिस प्रकार मेघ को समय समय पर आघात करता है उसी प्रकार विविध उपायों से आघात कर और शत्रु के बल को तोड़। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५७]

सव्य आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—जगती (३ विराट । ६ निचृत्) ५ भुरिक् , व्यूहेन स्वराट् त्रिष्टुप् विराट् जगती वा । षड्च सूक्तम् ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥

भा०—नीचे प्रदेश में वेग से आते हुए जलों के वेग को जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता, उसी प्रकार अपने आगे विनय से रहने वाले भृत्य आदि जनों को प्राप्त होने वाला जिस वीर, सभा और सेना आदि के अधिपति राजा का समस्त आयु भर बल की वृद्धि के लिये खुला हुआ, बेरोक बहाता हुआ धनैश्वर्य का प्रवाह भी ऐसा प्रबल हो, जिसको प्रतिपक्षी शत्रु रोक न सके। ऐसे बड़े भारी दानशील, गुणों में महान्, बड़े भारी वेग वाले, सत्य के बल वाले, अथवा सज्जनों के उपकार के लिये बल का प्रयोग करने वाले, बलवान् पुरुष के लिये मैं ज्ञान, स्तुति और अधिकार प्रदान करूं।

अधं ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जल-प्रवाह नीचे स्थानों पर आप से आप बहे आते हैं उसी प्रकार उत्तम, ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष के ज्ञान और ऐश्वर्यों के वश मे अपनी उत्तम कामनाओ को पूर्ण करने के लिये समस्त जगत् रहे। और सूर्य को अन्धकार का नाश करने वाला ज्योतिर्मय, प्रकाश रूप वज्र जिस प्रकार अति कान्तियुक्त होकर मेघ में व्यापता और उसको छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर सेनापति का ऐश्वर्यमय और लोह आदि धातु का बना शस्त्रास्त्र बल अति वेगवान्, दर्शनीय, अद्भुत, पर्वत के समान अचल और मेघ के समान अस्त्रवर्षी शत्रु पर भी अच्छी प्रकार व्यापे, उस पर वश करे और उसका हनन करके उसे शिथिल करने वाला हो।

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

भा०—जो शोभा युक्त प्रकाश के करने में प्रभात वेला के समान होकर शोभायुक्त, सुखजनक, उत्तम हिंसा रहित प्रजापालन के कार्य में सूर्य के समान, शत्रु और दुष्ट पुरुषो के असत्य व्यवहार छल, कपट आदि को दूर करने हारा है और जिसका तेज और धारण सामर्थ्य, ख्याति और शत्रुओं को नमाने वाला बल, ऐश्वर्य और राजपद, प्रकाश, न्याय और विज्ञान भी दिशाओं के समान उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये किया जाता है उस बलों के लिये अति भयकर, अति स्तुति योग्य एवं उत्तम कार्यकुशल पुरुष के लिये आदर पूर्वक भरण पोषण कर।

इमे तं इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः॥४॥

भा०—हे बहुत सी प्रजाओं से स्तुति किये जाने हारे! हे सबके स्वामिन्! और सबको वास और आश्रय देने हारे! जो हम लोग तेरा आश्रय लेकर और प्रथम मंगलरूप से तेरा नाम लेकर सब कार्य, धर्मानुष्ठान आदि करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! वे ये हम सब तेरे ही हैं। जिस

और सब प्रकार से ईश्वर की उपासना करता और नाना ऐश्वर्यों का सेवन करता है।

(२) अग्रणी, राजा के पक्ष में—वह बल से प्रसिद्ध, कभी न मारे जाने वाला, समस्त अधिकारों और ऐश्वर्यों का देनें और लेने वाला, विविध ऐश्वर्यों से युक्त राष्ट्र का सेवक, प्रतिनिधि, दूत होता और शत्रुओ को पीड़ित करता है। (३) अथवा नाना तेजों से युक्त सूर्य का प्रतिनिधि अर्थात् सूर्य जिस प्रकार तापकारी और पुनः वर्षा जल का देने वाला है उसी प्रकार प्रजा को कर से पीड़ित कर ऐश्वर्य के लेने और पुनः उन पर सुखों का वर्षाने वाला हो। वह अति उत्तम मार्गों से समस्त लोकों या देशों को विविध परिमाण मे, प्रान्तों में विभक्त करे और विद्वानों के बीच में अपनी आज्ञा से या अन्न द्वारा समस्त जनों की सेवा करता हुआ उनका पालन करे। (४) परमेश्वर भी सर्वशक्तिमान् प्रसिद्ध होने से 'सहोजाः', अमर होने से 'अमृत', दुष्टों का तापकारी होने से दूत होकर सूर्य के समान तेजस्वी है। वह दुष्टों को पीड़ित करता है, उत्तम मार्गों और व्यवस्थाओं से लोकों को बनाता और चलाता है। वह समस्त दिव्य पदार्थों मे अपने आदान अर्थात् वशकारी सामर्थ्य से सब प्रकार आच्छादित करता, व्यापता है।

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत्॥२॥

भा०—अपने भोग्य कर्मफल को भोग्य अन्न के समान प्राप्त करता हुआ, जरा से रहित आत्मा शीघ्र ही काष्ठों के बीच अग्नि जिस प्रकार उनका भोग करता हुआ भी उनके ही आश्रय मे रहता है, उसी प्रकार व्यापक, आकाश, पृथ्वी आदि तत्वों के आश्रय पर ही और शीघ्र ही पिपासित के समान उन ही पदार्थों का भोग करता हुआ उनके ही बीच में रहता है और जिस प्रकार वेगवान् अश्व मार्ग को पार करता अच्छा मालूम होता है और जिस प्रकार अति अधिक दाहकारी अग्नि का ऊपर

का भाग अति उज्वल होता है उसी प्रकार अति तेजस्वी, सब पापों को भस्म कर देने हारे इस जीवात्मा का आनन्द सेवन करने वाला स्वरूप भी बहुत ही प्रिय प्रतीत होता है। आकाश मे स्थित मेघ के खण्ड के समान वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करने वाला जीव भी गर्जते मेघ के समान ही अन्तर्नाद करता है।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वसु और रुद्र नामक ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुषो द्वारा वरा जाकर, पुरोहित हो, उसी प्रकार प्राणो द्वारा और देह मे और ब्रह्माण्ड मे वास के आश्रय पृथिवी आदि तत्वों द्वारा सबसे प्रथम अपने भीतर धारण किया जाकर समस्त ग्राह्य, भोग्य रूप आदि विषयों का ग्रहण करने हारा है और कभी मृत्यु द्वारा भी विनाश न होकर, स्थिर रह कर बल और वीर्य, रयि अर्थात् दैहिक विभूतियों को अपने वश करता है। वही जीव एक देह से दूसरे देह मे जाने वाला और अपने को प्रिय लगने वाला, रस स्वरूप या स्वतः आनन्दमद प्रजाओं में रथी के समान सब कार्यों को सहज ही मे साधता हुआ बाल्य, यौवन, वार्धक्य आदि आयु की नाना दशाओं में अनुकूल या निरन्तर, एक समान परिवर्तन रहित रह कर सुखप्रद, स्वयं द्रष्टा होकर नाना वरण करने योग्य ऐश्वर्यों को स्वयं विविध उपायों से प्राप्त करता और भोगता है।

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

भा०—वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जिस प्रकार तृणो और काष्ठों में विविध रूप से फैलता है उसी प्रकार यह आत्मा भी प्राणों द्वारा वेगवान्, गतिमान् पृथिवी, वायु, जल आदि तत्वों मे भी विविध देहों को धार कर विविध रूपों में स्थित है और जिस प्रकार ज्वालाओं द्वारा और अपने वेग से गमन करने की शक्ति से अग्नि चटचटा आदि बहुत प्रकार

स्तुति करने योग्य, वीर्य स्वरूप जान कर तुझे धारण करते हैं और सब को सुख और विविध ऐश्वर्य के देने वाले, अतिथि के समान देह रूप गृह में अकस्मात् आने और चले जाने वाले, अथवा देह से देहान्तर में जाने वाले वा अतिथि के समान पूजा और आदर के योग्य, सबसे अधिक वरण करने योग्य, अत्यन्त प्रिय और मित्र के समान सुखकारी, तुझको दिव्य, तेजोमय, सात्विक जन्म लेने के लिये अथवा ज्ञान प्रकाश से युक्त जन्म ग्रहण करने के लिये तुझे धारण करते हैं।

वीर सेनापति के पक्ष में—जनपदों के हितार्थ शत्रुओं को भून देने वाले प्रतापी वीर जन भी उत्तम सुखदाता, स्तुति योग्य तेरी खजाने के समान रक्षा करते हैं। वेतन, अन्न, पदाधिकार के दाता, पूज्य, सर्वश्रेष्ठ मित्र के समान तेरे दिव्य रूप से प्रादुर्भाव अर्थात् राज्यारोहणादि के लिये तुझे स्थापित करते हैं।

होतारं सुप्त जुह्वो॒ यजिष्ठं॒ यं वाघतो॑ वृणते॑ अध्वरेषु॑।
अग्निं विश्वे॑षामर॒तिं वसू॑नां सपर्यामि॒ प्रय॑सा यामि॒ रत्न॑म् ॥७॥

भा०—यज्ञों में जिस प्रकार सात ऋत्विक्, आहुति देने हारे, ज्ञानवान्, यज्ञ को सबसे उत्तम रीति से करने वाले पुरुष को होता रूप से वरण करते हैं। उसी प्रकार हिंसा रहित प्राणों द्वारा शरीर के पालन आदि कार्यों में गन्धादि विषयों को ग्रहण करने वाले सातों प्राण विद्वान् ऋत्विजों के समान गतिमान् होकर जिस सबसे उत्तम, बल देने वाले आत्मा को ही अपने होता, मुख्य बलों, सुखों के दाता रूप से वरण करते हैं उसको प्रमुख कर उसके अधीन रहते हैं मैं उसी अग्नि के समान देह में अव्यक्त रूप से रहने वाले समस्त प्राणियों के बीच में विद्यमान, उस जीवात्मा को प्रकाश स्वरूप जान कर उसका नित्य अभ्यास करूँ और उसी परम रमणीय, परम सुन्दर, मनोमोहक एवं अति सुखप्रद आत्मा को प्राप्त होऊँ और रमण योग्य सुख की प्रार्थना करूँ।

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे बल के उत्पन्न करने हारे या विद्यादि से उत्पन्न होने वाले, हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! और हे स्नेहवान् पुरुषो के आदर करने हारे ! आज के समान सदा, सत्य गुणो के वर्णन करने वाले विद्वानो को तू त्रुटिरहित, कभी विच्छिन्न न होने वाले सुख को प्रदान कर । हे अग्नि के समान विद्या के प्रकाश से सब पदार्थो को प्रकाशित करने हारे विद्वन् ! आत्मन् ! तू बल के कारण कभी भी शिष्ट मर्यादा से न गिरता हुआ, स्वयं दृढ़ रह कर स्तुति करने वाले की राजा जिस प्रकार लोह की बनी या शस्त्रों से सजी परकोटों से प्रजाजन की रक्षा करता है उसी प्रकार तू ज्ञान-साधनो से बनी पालन करने वाली साधनाओं से पाप और पाप से उत्पन्न हुए दुःख से रक्षा कर ।

राजा भी बल पराक्रम के कारण अभिषेक योग्य होने से 'सहसः सूनु' है । मित्र राजाओ के आदर करने और सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'मित्रमहः' है । वह स्तुतिकर्त्ता विद्वानों को त्रुटि रहित सुख दे । पराक्रम से कभी पछाड़ न खाने वाला होने से 'ऊर्जः नपात्' है । वह लोह के शस्त्रो से सुसज्जित पुरियों या पालनकारी सेनाओ से रक्षा के प्रार्थी प्रजाजन की रक्षा करे ।

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९॥२४॥

भा०—हे विशेष प्रभायुक्त, तेजस्विन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! आत्मन् ! स्तुति करने हारे पुरुष के लिये सब शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य के समान सब विघ्नों के दूर करने वाला और गृह के समान शरणप्रद हो । तू ऐश्वर्यवान्, विद्वानो और धनाढ्यों को भी सुख-शान्तिदायक हो । तू पाप और हत्या आदि पापाचरण करने हारे, दुष्ट पुरुष से भी हे ज्ञानवन् ! प्रतापिन् ! आचार्य ! ईश्वर ! राजन् ! स्तुतिशील

पुरुष की रक्षा कर। और प्रातःकाल ही ज्ञान और कर्म से हृदय में वसाने योग्य हे प्रभो! और ज्ञान और उत्तम कर्म न्यायाचरण से ऐश्वर्य प्राप्त करने हारा हे राजन्! बुद्धि और ज्ञान का धनी हे विद्वन्! और बुद्धि या मनोबल से प्राणो के स्वामिन्! या धारण करने वाली चिति रूप से देह में वसने हारा हे आत्मन्! तू शीघ्र ही हमें प्राप्त हो, दर्शन दे। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[५९]

नोधा गौतम ऋषिः॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ निचृत्। २, ४ विराट्। ३ पंक्ति। सप्तर्चं सूक्तम्॥

व॒या इद॑ग्ने अ॒ग्नय॑स्ते अ॒न्ये त्वे विश्वे॑ अ॒मृता॑ मादयन्ते।
वैश्वा॑नर॒ नाभि॑रसि क्षिती॒नां स्थूणे॑व॒ जनाँ॑ उप॒मिद्य॑यन्थ॥१॥

भा०—हे सबको प्रकाशित करने हारे, सबके धारक परमेश्वर! तेरे से अतिरिक्त सब अग्नियें, सूर्य, नक्षत्र, अग्नि, विद्युत् आदि तथा ज्ञानी, आचार्य, विद्वान् जन भी तेरे शाखाओं के समान हैं। सब अविनाशी आकाश आदि पदार्थ और कभी मृत्यु को न प्राप्त होने वाले जीवगण तेरे आश्रय पर स्थिर होकर आनन्द अनुभव करते हैं। हे समस्त पदार्थों के संचालन करने हारे, सब जनों के हितकारी, सब में व्यापक! तू समस्त मनुष्यों और पृथिवी आदि तत्वों का भी आश्रय, सबका केन्द्र, सबको अपने भीतर नियम-व्यवस्था में बांधने हारा है, बीच का स्तम्भ जिस प्रकार समस्त गृह के अवयवों को थामे रहता है उसी प्रकार तू सबको आश्रय, सर्वज्ञ, सबको ज्ञानोपदेश करने वाला या सबका सञ्चालक होकर सब जनों और जन्तुओं को नियम में रखता है। इसी प्रकार हे राजन्! अन्य सब नायक तेरे अधीन, तेरे ही शाखा-प्रशाखा के समान हैं। सब जीव तेरे आधार पर प्रसन्न हों, तू सब भूमि वासियों का केन्द्र है। तू मुख्य आधार-स्तम्भ के समान सबको ऊपर उठाये रखने वाला, सबको नियम में रख।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥

भा०—वह सबका अग्रणी, सबका प्रकाशक परमेश्वर आकाश और सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों का भी सूर्य के समान शिर, सबसे मुख्य, सबसे उच्च, सबका अधिष्ठाता है । वही पृथिवी के भी बीच में केन्द्रवत् अग्नि या विद्युत् के समान उसको धारण करने वाला और भूमि और सूर्य प्रकाशित और अप्रकाशित दोनो प्रकार के लोको का स्वामी, उनको धारण करने हारा है । हे समस्त लोको के चलाने हारे ! उस तुझ सबके दाता और प्रकाशक परमेश्वर को ही विद्वान् ज्ञानी पुरुष उत्तम गुण स्वभाव वाले पुरुषों के लिये सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश देने वाला प्रकट करते या साक्षात् करते हैं ।

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य मे जिस प्रकार किरणें स्थिर रूप से हैं, उसी प्रकार समस्त विश्व के पदार्थों के सञ्चालक एवं समस्त नायकों और मनुष्यो के स्वामी सर्व-प्रकाशक, सबके आगे विद्यमान, सर्वज्ञ परमेश्वर मे, विद्युत् मे समस्त ऐश्वर्यों के समान समस्त जीवो के जीवनोपयोगी पृथिवी, जल आदि तत्व और अपने में प्रजाओ को बसाने वाले लोक गण और समस्त ऐश्वर्य स्थित हैं । जितने ऐश्वर्य पर्वतो मे, मेघो मे और ओषधियों मे और जलो मे और जितने ऐश्वर्य मनुष्यों मे विद्यमान हैं, हे परमेश्वर ! तू उस सबका प्रकाशक, राजा या स्वामी है ।

राजा के पक्ष मे—सूर्य मे किरणों के समान नायक राजा में सब ऐश्वर्य स्थापित हो । पर्वत, ओषधि, जल, समुद्र, मनुष्य सब मे स्थित रत्नों और धनो का वह राजा रक्षक है ।

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥

भा०—माता और पिता दोनो जिस प्रकार अपने पुत्र के लिए बड़े उपकारक और उसकी वृद्धि करने वाले होते हैं, इसी प्रकार सूय और पृथिवी या आकाश और पृथिवी दोनों ही अपने उत्पादक परमेश्वर के लिए बडी विशाल होकर विद्यमान है। वे दोनों ही उस परमेश्वर की विशाल महिमा को बतलाते हैं। जिस प्रकार साधारण मनुष्य पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के लिए बड़ी स्तुतिया गाता है उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् चतुर, क्रियाकुशल पुरुष भी अनन्त सुख और आकाश और प्रकाश के स्वामी सत्य के बल से बलवान् अथवा समस्त सत् पदार्थों मे बल-रूप से विद्यमान, समस्त पदार्थों के संचालक, सबके हितकारी, नायक, गुरु, आचार्य, राजा आदि मे सबसे श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम के वर्णन और उपासना के लिए पूर्ण रूप से उसका वर्णन करने वाली बड़ी भारी, विशद अर्थों से युक्त वेदवाणियों का पाठ करे। उन वेद-वाणियो से परमेश्वर की स्तुति करे।

दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम्।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥

भा०—हे समस्त लोकों के नेता! समस्त मनुष्यों मे व्यापक! हे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन्! वेदों को उत्पन्न करने, जानने और जनाने हारे! समस्त उत्पन्न पदार्थों मे सत्ता और नियामक बल रूप से विद्यमान! तेरा महान् सामर्थ्य बड़े भारी सूर्यादि लोकों से मण्डित आकाश से भी बहुत अधिक बड़ा है। हे परमेश्वर! तू मननशील प्रजाओं का भी राजा, स्वामी, उनमें ज्ञान-प्रकाश का करने हारा है और तू ही विद्वानों और विजय की कामना करने वाले वीरों को युद्ध या परस्पर प्रबल प्रहार करने के सामर्थ्य द्वारा उत्तम उत्तम धनैश्वर्य प्रदान करता है।

सभापति और सेनापति के पक्ष मे—हे विद्वन्! सर्व-हितकारी नेत! तेरा महान सामर्थ्य ज्ञानवान् विद्वानों से बनी राजसभा से भी बड़ा है। तू समस्त मनुष्यों और प्रजाओं का राजा है, तू युद्ध द्वारा ही दानशील

पुरुषो या विद्वानो को धन प्रदान करता है। अथवा विजयेच्छु वीर पुरुषो को युद्ध करने के हेतु ही धन, उनको भृति वेतन आदि देता है।

प्र नू म॑हि॒त्वं वृ॑ष॒भस्य॑ वोचं॒ यं पू॒रवो॑ वृत्र॒हणं॒ सच॑न्ते।
वै॒श्वा॒न॒रो दस्यु॑म॒ग्निर्ज॑घ॒न्वाँ अधू॑नो॒त् काष्ठा॒ अव॒ शम्ब॑रं भेत् ॥६॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष मे—जिस विघ्नकारी, बाधक शत्रु के नाश करने हारे परमेश्वर का समस्त मनुष्य आश्रय लेते हैं। उस जलो के वर्षक, मेघ के समान सब सुखो के वर्षक और शकटवाही वृषभ के समान समस्त ब्रह्माण्ड के धारक परमेश्वर के बडे भारी सामर्थ्य का निरन्तर मै उपदेश करता हूं। समस्त विश्व का प्रणेता, सब मनुष्यो का हितकारी, ज्ञान-स्वरूप, सबका प्रकाशक प्रभु प्रजापीड़क का नाश करे। जलो के प्रदान करने वाले मेघ को बिजुली के समान अज्ञान को नाश करता और समस्त दिशाओ को कँपा देता है। अथवा तेजस्वी, प्रकाशमान् सूर्यादि लोको और समस्त प्राणियो को संचालित करता है।

(२) अध्यात्म मे—इन्द्रियगण समस्त प्राणियो मे रहने वाला आत्मा अन्त.करण को ढकने वाले अज्ञान को, प्राणो को। (३) राजा के पक्ष मे—जिस पुरुष के नायक को शत्रुहन्ता जान कर मनुष्य प्रजाएं आश्रय कर लेती हैं उस नर-श्रेष्ठ के गुणो का मै उपदेश करता हूँ। वह सर्व लोक-हितकारी अग्रणी होकर प्रजा के नाश करने वाले दुष्ट पुरुषो को दण्डित करे। प्रजा को घेरने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करे। दिशाओ के वासियो को भी प्रभाव से कँपाता रहे।

वै॒श्वा॒न॒रो म॑हि॒म्ना वि॒श्वकृ॑ष्टिर्भ॒रद्वा॑जेषु यज॒तो वि॒भावा॑।
शा॒त॒व॒ने॒ये श॒तिनी॑भिर॒ग्निः पु॑रु॒णी॒थे ज॑रते सू॒नृता॑वान् ॥७॥२५॥

भा०—परमेश्वर या राजा अपने महान् सामर्थ्य से सब मनुष्यो का हितकारी, सब का नेता, सचालक और समस्त मनुष्यादि प्रजाओं का स्वामी, भरण पोषण करने वाले और ज्ञानोपदेश करने वाले, सम्पन्न और विद्वान् पुरुषो मे भी सबका उपास्य, सबको दान देने वाला

तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥

भा०—हृदय के प्रिय, मित्रगण प्रति ऋतु में यज्ञ करने वाले, राष्ट्र में ऋतुओं के समान मुख्य पदों के अधिकारी, देह में प्राणों के समान प्रधान सभासद्, मननशील, उत्तम कोटि के ज्ञानवान्, सब प्रकार से तत्वों को पृथक् पृथक् करके देखने वाले, विवेचक और दीर्घायु पुरुष जिसको अधर्म, शत्रु और दुर्व्यसनों के वारण करने के अवसर या कर्त्तव्य पथ पर मुख्य रूप से बना देते हैं, नियुक्त कर देते हैं, उस सब दिशाओं में उदय को प्राप्त होने वाले मधुरभाषी पुरुष को नई नई स्तुति या नई राज्य-लक्ष्मी या प्रजा प्राप्त हो और वह तू हमारे बीच उत्तम ख्यातिमान होकर उस नई राज्यलक्ष्मी को भोग करे । अर्थात् उगते हुए सूर्य के समान नव-पराक्रमी विजेता को नई उत्तम कीर्त्ति प्राप्त हो, वह कीर्त्तिमान् होकर नये राष्ट्र का भोग करे ।

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—प्रजाओं को हृदय से चाहने वाला, कान्तिमान्, तेजस्वी, अग्नि के समान समस्त मलों, कण्टकों और बाधक दुष्ट पुरुषों को दूर करने हारा, मनुष्यों के बीच में सबको समान रूप से बसानेवाला, सबको वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ है । वही समस्त ऐश्वर्यो और अधिकारों के स्वामी और प्रदान करने हारे के रूप में प्रजाओं के ऊपर स्थापित किया जाय और वही सबको दमन करने वाला और स्वयं भी जितेन्द्रिय और अपने मन पर काबू करने वाला, गृहस्वामी के समान राष्ट्रवासी प्रजाओं को अपनी सन्तान के समान पालन करने वाला दीपक या तेजस्वी सूर्य के समान सबका अग्रणी हो । वही समस्त ऐश्वर्यों का पालक भी बनाया जावे । इति षड्विंशो वर्गः ।

तं त्वा॑ वयं पति॑मग्ने रयी॒णां प्र शं॑सामो म॒तिभि॒र्गोत॑मासः ।
आ॒शुं न वा॑जम्भ॒रं म॒र्जय॑न्तः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥५॥२६॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! ऐश्वर्यों के पालक उस तेरी हम उत्तम स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष ज्ञानशील पुरुषो से मिलकर तुझे उत्तम वचनो का उपदेश करें और तेरी स्तुति करें। संग्राम मे अपने बलवान् स्वामी को ले जाने हारे अश्व को जिस प्रकार झाड़ पोछकर, थपक थपक, सजा धजाकर तैयार करते हैं उसी प्रकार अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले, युद्ध मे जाने वाले या युद्ध के लिए नाना ऐश्वर्यों को धारण करने वाले और युद्धार्थ नाना सेनादलों को भरण-पोषण करने हारे तुझ राजा को परिशोधित और सुशोभित करते हुए और लोभ, काम आदि उपधाओ द्वारा परीक्षित या शोधित करते हुए हम तेरी प्रशंसा करें, तुझे उत्तम मानकर तेरे गुणो का वर्णन करें। और जिस प्रकार बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष अपने सब उत्तम कार्यों मे प्रातःकाल ही फुर्ती से लग जाता है उसी प्रकार प्रातःकाल ही, दिन प्रारम्भ होते ही, वह विद्वान्, ध्यानी पुरुष अति शीघ्र, सबसे प्रथम अपने धारणावती दृढ़ बुद्धियों और कर्म सामर्थ्यों से अपने भीतर बसने वाला, दृढ़ निश्चयी और उद्योगी होकर कार्य मे लग जावे। इति षड्विंशो वर्गः ।

[६१]

नोधा गौतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१, १४, १६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ८, १०, १२ पंक्ति । ३, ५, १५ विराट् पंक्ति. । ८, ११ भुरिक् पंक्ति । १३ निचृत् पंक्तिः । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒स्मा इदु॒ प्र त॒वसे॑ तु॒राय॒ प्रयो॒ न ह॑र्मि॒ स्तोमं॒ माहि॑नाय ।
ऋची॑षमा॒याध्रि॑गव॒ ओह॒मिन्द्रा॑य॒ ब्रह्मा॑णि रा॒तत॑मा ॥ १ ॥

भा०—अति आदर और स्नेह से दिये जाने योग्य अन्न और ज्ञान या अर्घ, पाद्य आदि जल जिस प्रकार योग्य उत्तम पुरुष को दिया जाता

निमित्त मैं वेद स्तुति समूह को उच्चारण करूं। उसी परमेश्वर के लिए मैं विश्वव्यापक, पापनाशक स्तवन करूं, वही सब ज्ञानों का दाता है।

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—रथ के संचालन के लिए जिस प्रकार वेगवान् घोड़े को लगाया जाता है उसी प्रकार इस परम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, राष्ट्र के पालक या सैनापत्य पद को अच्छी प्रकार संचालन करने के लिए अपनी वाणी आ आज्ञा से स्तुति योग्य, अथवा सूर्य के समान तेजस्वी शत्रुओं को उखाड़ देने मे समर्थ, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् दान देने योग्य ऐश्वर्यों के एकमात्र आश्रय स्थान, गुरु के श्रवण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाले अथवा अन्यों के प्रति उपदेश करने वाले या यशस्वी, शत्रुओं के प्रकोटों और मोर्चों, नगरो और दुर्गों के तोडने हारे पुरुष को प्रस्तुत करने के लिये अन्न और ऐश्वर्य की वृद्धि कामना से मै सबके सामने प्रकट करूं और उसे मुख्य पद पर स्थापित करूं।

परमेश्वर के पक्ष में—वह सर्व शक्तिमान्, ज्ञानो का एकाश्रय, ज्ञानोपदेशों का परम गुरु और देह-बन्धनों का तोडने हारा है। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से उसकी स्तुति के लिए वाणी से स्तुति का प्रकाश करूं। इति सप्तविंशो वर्गः॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

भा०—इस ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्रपति के विजय के लिए ही शिल्पीगण सूर्य जिस प्रकार अपने तेजस्वी किरण समूह को प्रकट करता है उसी प्रकार उत्तम, अति अधिक क्रियासामर्थ्य से युक्त, अति वेगवान्, तीव्र, अति तापजनक, अग्निमय शत्रु वर्जन करने वाले ऐसे शस्त्रास्त्र समूह को गढ़ गढ़ कर बनावे, जिस हिंसाकारी, घात करते हुए, प्रयुक्त अस्त्र से शत्रुओं का नाश करता हुआ कितने ही शत्रु दलों को

थामने और कितने ही असंख्य बलों और शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, बलवान् सेनापति अपने बढ़ते हुए या वर्तमान शत्रु के मर्मों तक को पहुंच जाय और छिन्न-भिन्न करके विजय करले।

परमेश्वर के पक्ष में—वह तेजोमय प्रभु इस जीव के हित के लिए उपदेशमय, पापनिवारक ज्ञान वज्र का उपदेश करता है। जिससे वह बलवान् इन्द्रियों का स्वामी होकर बढ़ते अज्ञान के मर्मों का भी नाश करे।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥७॥

भा०—अपना मुख्य पदाधिकारी नियत करने वाले इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ही अभिषेकों या ऐश्वर्यों के आश्रय पर व्यापक अधिकार वाला होकर सेनापति और राष्ट्रपति शीघ्र ही पालन करने वाले राज्यपद को और उत्तम उत्तम अन्नों और योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करे। और वह शत्रुओं को परास्त करने में सबसे अधिक बलवान् होकर परिपक्व राष्ट्र के ऐश्वर्य को गढ़ रूप से लेता हुआ वाणों के फेंकने में कुशल धनुर्धर जिस प्रकार शूकर को एक ही प्रहार से वेध देता है और सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार वह वीर सेनापति, शत्रुओं पर शस्त्रास्त्र प्रहार करने में चतुर होकर अपने उत्तम खाद्य के समान सुगमता से जीत लेने योग्य शत्रु को प्राप्त करके, पर्वत को वज्र के समान, अथवा पर्वत के समान अभेद्य शत्रु को भी वेध डाले अथवा अखण्ड शस्त्र का प्रहार करे।

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः॥ ८॥

भा०—जिस प्रकार ऋतु-काल में गमन करने वाली, कमनीय पतियों की स्त्रियां अपने अपने ऐश्वर्य या सौभाग्यवान् पति की वृद्धि के लिये तेजस्वी पुत्र-सन्तति को बढ़ाती हैं और जिस प्रकार ज्ञान करने योग्य विद्वानों करके पालने योग्य वेद-वाणियां ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की महिमा को प्रकाश करने के लिये अर्चना योग्य स्तुति-सूक्त को प्रकट करती हैं उसी

होकर वेग से बहता हुआ उसे धारण किये रहता है उसी प्रकार सभा और सेना का अध्यक्ष भी अति शीघ्रकारी, विना विलम्ब के कार्य करने में चतुर, शत्रु पर प्रहार करता हुआ, शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान्, कितने ही ऐश्वर्यों और बलों का धारण करने वाला, अथवा पराक्रम करते हुए समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होकर इस प्रत्यक्ष में आगे खड़े, शक्ति और बल में बढ़ते हुए शत्रु के विनाश के लिए तू शस्त्रास्त्रयुक्त सेना-बल का प्रयोग कर। सूर्य जिस प्रकार सूक्ष्म जलों के संयोग से जल-प्रवाहों को वहा देने के लिए अपने तिरछे प्रकाश और वेग से मेघ के अङ्ग अङ्ग को छिन्न भिन्न कर देता है। और तिरछी चाल से चर्मकार तिरछे शस्त्र से जिस प्रकार मृत पशु का जोड़ जोड़ काटता है और वक्ता जिह्वा आदि के तिरछे आघात से वाणी के प्रत्येक अङ्ग अङ्ग अर्थात् प्रत्येक वर्णों वा पर्वों को ज्ञानपूर्वक विभक्त करता है उसी प्रकार शत्रु की प्राप्त सेनाओं के प्रवाहों को भगा देने के लिए शत्रु बल के पोरु पोरु, अङ्ग-प्रत्यङ्ग को जानता हुआ विविध प्रकार से काट।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून्॥ १३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! जो वीर पुरुष शत्रुओं का नाश करने वाले योद्धा के समान अभ्यास करने वाला नया ही शस्त्रों और अस्त्रों का अभ्यास करता हुआ संग्राम के विजय के लिए शत्रुओं के नाश का नित्य अभ्यास करे हे विद्वन्! तू उस अति शीघ्रकारी क्रियाकुशल पुरुष को पूर्व पुरुषों को आविष्कार किये हुए अथवा वर्तमान के शिष्यों की अपेक्षा पूर्व के शिक्षित और विद्याकुशल गुरुओं द्वारा रचे हुए युद्धोपयोगी कार्यों के प्रवचनों द्वारा अच्छी प्रकार उपदेश कर, शिखा। अर्थात् नव प्रविष्ट युद्ध-शिक्षाभ्यासियों को विद्वान् पुरुष पूर्व के आचार्यों द्वारा रचे कर्तव्यों और कर्मों की शिक्षा दें और वे तदनुसार शस्त्रास्त्रों का युद्ध में शत्रुओं पर आक्रमण करने में प्रबल होने के लिए ही पुनः पुनः अभ्यास करें।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार दृढ़ पर्वत भी विद्युत् के उग्र बल से कांप जाते हैं उसी प्रकार इस अति कान्तिमान्, तेजस्वी, विद्वान् सेनापति के भय से दृढ़ पर्वत के समान अचल शत्रुगण भी कांपें और आकाश और भूमि तथा उनके समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा अन्य जन भी कांपे। तेजस्वी, विद्वान् आचार्य का अज्ञान को दूर करने वाला ज्ञानधारी और व्रतधारी शिष्य जिस प्रकार शीघ्र ही ब्रह्मचर्य, व्रतपालन और शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल वीर्य को प्राप्त करने मे समर्थ होता है उसी प्रकार उस तेजस्वी सभापति, सेनापति के दुःखनाशक रक्षण के अधीन रहकर उसके साथ मन्त्रणा करता हुआ नायको का धारक पोषक, प्रेरक आज्ञाओ या उसकी वाणियो का धारण करने वाला प्रजागण या अधीन उप-अधिकारी भी शीघ्र ही आप ही बलवृद्धि करने मे समर्थ होता है।

अध्यात्म मे—परमेश्वर की स्तुति करने वाला जीव उसके आश्रय से शीघ्र बलवान् हो जाता है।

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

भा०—जो पुरुष बडे भारी ऐश्वर्य और संख्या में बहुत अधिक दलो का स्वामी है और जो अकेला इन समस्त प्रजाओ और अधीनस्थ भृत्यों का भोग करता है, उन पर शासन करता है वह ही परम ऐश्वर्य-वान् पुरुष है। उसको ही यह सर्वोच्च राष्ट्रपति का बड़ा भारी पद योग्य जानकर प्रदान किया जाता है। उत्तम व्यापक किरणों वाले सूर्य के साथ स्पर्धा करने वाले अर्थात् तेज और पराक्रम मे सूर्य के समान तेजस्वी और उत्तम अभिषेक योग्य, अश्व के समान निर्भीक, पराक्रमी तथा राष्ट्र-पति पुरुष को ही वह राष्ट्रचक्र प्राप्त होता और उसकी रक्षा करता है।

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६।२६।४।

भा०—हे रथ में अश्वों को जोड़ने वाले सारथी या महारथी के समान ! हे प्रजा के दुःखहारी विद्वानों की नियुक्ति और प्रबल उपायों का आयोजन करने वाले राजन् ! वेगवान् सैनिकों के नियोक्ता, आज्ञापक तथा प्रबल तुरंगों और अश्वारोही वीरों और आग्नेयादि अस्त्रों के संचालक वीर सेनापते ! विद्वन्, ऐश्वर्यवन् ! जिस प्रकार मेघ के बल पर कृषक गण अन्नों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार बड़े वाणियों के धारक विद्वान् पुरुष तेरे ही बड़े सुखकारी, ज्ञानमय वेदमन्त्रों के समान, उत्तम, बलप्रद अन्नों, ऐश्वर्यों और बलों को उत्तम रूप से सम्पादित करते हैं, प्राप्त करते हैं और औरों को प्राप्त कराते हैं। अपने प्रज्ञा और कर्म के बल से राष्ट्र में स्वयं बसने और प्रजा को बसाने और ऐश्वर्य सम्पादन करने हारा तू इन अधीनस्थ प्रजाजनों में सब प्रकार के सुवर्ण आदि नाना धनों के देने वाले ज्ञान और कर्म सामर्थ्य का जिस प्रकार सूर्य प्रातःकाल अपना प्रकाश और आचार्य प्रातःकाल शिष्यों में अपना ज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार शीघ्र ही प्रदान कर, धारण करा। जिससे वह प्रजाजन सब सुखों और विद्याओं को प्राप्त हो। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ।

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्याय ।

[६२]

नोधा गौतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् (१, ४, ६ विराट् । २, ५, ६ निचृत् । ३ विराड्रूपा । ७, ८ विराट्स्थाना (अथवा ३, ७, ८ । भुरिगार्षी पंक्तिः) । त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र मन्महे शवसानायं शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥

भा०—हम लोग ज्ञान बल से युक्त समस्त स्तुति प्रार्थनाओ को स्वीकार करने वाले, सत्य ज्ञान को स्पष्ट रूप से सबके आगे प्रकट करने वाले, ऋचाओ द्वारा अन्यों को उपदेश करने वाले, विविध गुणो के कारण नाना प्रकार से श्रवण करने योग्य, सबके नायक, सचालक परमेश्वर के बल और यश बतलाने वाले, समस्त ज्ञानों के उपदेश करने वाले, अर्चना करने योग्य, शरीर मे प्राणो के समान सर्वत्र स्थित, अथवा सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों के स्वामी तथा ज्ञानी पुरुषों के स्तुत्य रूप को अच्छी प्रकार से दोषो और भीतरी मलो को दूर करने वाली साधनाओ, स्तुतियो से हम लोग स्तुति करें, उसका वर्णन करें। इसी प्रकार बलशाली, बल से पराक्रमी, स्तुति योग्य, सत्य ज्ञान के उपदेष्टा, विविध गुणो से प्रसिद्ध, वेद-ऋचाओ के ज्ञाता पुरुष के बलयुक्त आघोषणा वचन कहे और देह मे प्राण या बल के समान पदाधिकारी की और स्तुति योग्य तेजस्वी रूप की हम स्तुति करें।

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्यं॑ शवसा॒नाय॒ साम॑।
येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगो मे से भी पहले के, पूर्व शिक्षित मा बाप के समान विद्या आदि देने वाले व्रत पालक गुरुजन प्राप्त करने या धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों के जानने हारे, ज्ञानी और अग्नि के तुल्य तेजस्वी तथा शरीर मे प्राणो के समान समाज और राष्ट्र मे जीवन-जागृति धारण कराने वाले विद्वान्, पराक्रमी जन जिसके द्वारा स्तुति, प्रार्थना और सत्कार करते हुए उत्तम वाणियो को प्राप्त करते, उनका ज्ञान और सत्य साक्षात् करते हैं आप लोग उस ही बडे विज्ञान प्रवचन के लिए उत्तम प्रतिस्पर्द्धी अज्ञान के नाशक नमस्कार रूप भक्ति-भाव को बडे बलशाली विज्ञानमय परमेश्वर के लिए उच्चारण करो।

इसी प्रकार बडे बलवान् राजा या सभाध्यक्ष के लिए बडे भारी शत्रु नाशक, शत्रुओं को नमाने वाला बल और भोग्य ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और

उसका बड़ा आदर करो। जिससे हमारे पूर्व के परिपालक, मास्त्य पद के वेत्ता और ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष आदर सत्कार करते हुए ही वाणियों के समान भूमियों और पशु-सम्पदाओं को भी प्राप्त करते हैं।

इन्द्र॒स्याङ्गि॑रसां चे॒ष्टौ वि॒दत् स॒रमा॒ तन॑याय धा॒सिम् ।
बृह॒स्पति॑र्भि॒नदद्रिं॑ वि॒दद् गाः सम॒स्रिया॑भिर्वावशन्त॒ नरः॑ ॥३॥

भा०—उत्तम ज्ञानवती माता जिस प्रकार पुत्र के लिए पोषक अन्न प्राप्त करती है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा या सभाध्यक्ष और बलवान्, तेजस्वी पुरुषों के इच्छानुकूल संचालित नीति के युद्ध मार्ग में चलती हुई वेग से आगे बढ़ने वाली सेना और अपने सन्तान के लिए अन्न आदि शरीर धारक भोग्य पदार्थ को प्राप्त करे। और सूर्य जिस प्रकार मेघ को किरणों से छिन्न भिन्न करता है बड़े भारी बल और राष्ट्र का स्वामी, उसी प्रकार पर्वत के समान अचल शत्रु को भी उदय को प्राप्त होने वाली, सहोत्थायी वीर सेना द्वारा तोड़ डाले। जिस प्रकार सूर्य मेघ के छिन्न भिन्न हो जाने पर अपनी किरण को पुनः तेजोरूप से प्राप्त करता है उसी प्रकार वह राजा भी नाना भूमियों को प्राप्त करे। और नायकजन उसको एक साथ ही मिलकर प्रकाशित करें।

स सु॒ष्टुभा॒ स स्तु॒भा स॒प्त विप्रैः॑ स्व॒रेणाद्रिं॑ स्व॒र्यो॒३॒॑ नव॑ग्वैः ।
स॒र॒ण्युभिः॑ फलि॒गमि॑न्द्र शक्र व॒लं रवे॑ण दरयो॒ दश॑ग्वैः ॥ ४ ॥

भा०—ताप और प्रकाशों को उत्पन्न करने वाला सूर्य जिस प्रकार नये कोमल कोमल ताप से प्रवेश करने वाले और दशों दिशाओं में फैलने वाले, वेग से जाने वाले, किरणों से और स्थिर ताप से कण कण हुए जलों के देने वाले, अखण्डित पर्वताकार, अपने भीतर जलों को और अपने विस्तर से आकाश को आच्छादन करने वाले मेघ को छिन्न-भिन्न करता है। अथवा जिस प्रकार सूर्य किरणों से शब्दकारी विद्युत् कोमल गतियों से और वायु अपने प्रसरणशील झकोरों से क्रम से अखण्ड, सूक्ष्म और वाष्परूप या कण कण रूप जल बरसाने वाले और साकाश के

आच्छादक इन तीनो प्रकार के मेघो को विदीर्ण या छिन्न-भिन्न कर देते हैं उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे शक्तिशालिन् ! तू भी वह उत्तम द्रव्य गुण क्रिया से स्थिर करने वाले स्थायी प्रबन्ध से और राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूरने वाले सात विद्वान् पुरुषो के द्वारा और बडे उपदेश से और नये-नये प्रदेशो और ज्ञान मार्ग से जाने वाले और दश दिशाओ मे जाने वाले राज-पुरुषो और वेग से जाने वाले सैनिको के द्वारा पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शस्त्रवर्षी फल वाले बाणो के फेंकने वाले योद्धा और शस्त्र वर्षा द्वारा आकाश को रोक लेने वाले तथा नगर को घेरने वाले बलवान् शत्रु को दुन्दुभि आदि के घोर शब्द तथा संताप जनक आग्नेयास्त्र की घोर गर्जना से भयभीत कर और छिन्न-भिन्न कर। इस मन्त्र मे अद्रि, फलिग और वल ये तीनो नाम मेघ के छिन्न-भिन्न दशा के सूचक है। इसी प्रकार वे शत्रु की तीन अवस्थाओ को दर्शाते हैं।

गृ॒णा॒नो अङ्गि॑रोभिर्दस्म॒ वि व॑रु॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ गोभि॒रन्धः॑।
वि भूम्या॑ अप्रथय इन्द्र॒ सानु॑ दि॒वो रज॒ उप॑रमस्तभायः ॥५॥१॥

भा०—जैसे जीव प्राणों के द्वारा अन्न का परिपाक करता है और जिस प्रकार दिन के पूर्व भाग, प्रभात द्वारा और सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार हे दर्शनीय दुष्टो के नाशक! हे ऐश्वर्यवन् ! तू ज्ञानवान् पुरुषों और अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् प्रतापी और सैनिको से उपदेश करता हुआ और स्तुति किया जाता हुआ शत्रु के संताप देने वाले तेज से और आज्ञावाणियो और भूमियो से अन्न, ऐश्वर्य को विशेष रूप से प्रकट कर। अथवा ज्ञान के प्रखर तेजस्वी विद्वान् पुरुष द्वारा और ज्ञानवाणियो द्वारा अज्ञान अन्धकार को दूर कर। हे राजन् ! तू भूमि के उच्च भाग, उत्तम प्रदेश को विस्तृत कर। आकाश और प्रकाश के समान विद्वानो की बनी सभा को और लोक समूह को और मेघ के समान उन पर ज्ञानो और धनैश्वर्यों के दाता विद्वानो और समृद्ध जनो को भी शिक्षक और पोषक रूप से स्थापित कर। इति प्रथमो वर्ग.।

तदु प्रयंक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार इस मेघ को छिन्न-भिन्न तथा दुःखों के नाश करने वाले विजुली रूप इन्द्र का यही सबसे अधिक प्रशसनीय और प्रत्यक्ष उत्तम कर्म है कि आकाश में ही चारों मेघयुक्त दिशाएं मधुर जल से युक्त होकर तृप्त हो सींचती है और मधुर जल से पूर्ण नदियां भी जल सींचती है। उसी प्रकार शत्रुओं और प्रजापीड़कों के नाश करने वाले दर्शनीय सभा सेनाध्यक्ष इस राजा का यह ही अति आदर करने योग्य कार्य है और यही सबसे श्रेष्ठ, सुखप्रद, दर्शनीय कर्म है कि इस आश्रय योग्य भूप्रदेश पर चारों दिशाओं की प्रजाएं मेघ बरसने पर मधुर जल से भरी नदियों के समान खूब ऐश्वर्य से भरपूर हो सबको तृप्त करती है।

आचार्य के पक्ष में—यही पूज्यतम अन्धकार के नाशक आचार्य का विद्या का उपदेश करना दर्शनीय और सर्वश्रेष्ठ कार्य है कि जिसके आश्रय में रहकर चारों दिशाओं के वासी जन हर्षप्रद ज्ञान से युक्त होकर संतुष्ट हो दान करते हैं।

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः॥ ७॥

भा०—मुख्य प्राण जिस प्रकार अन्नों द्वारा एक आश्रय पर रहने वाले चिरकाल से विद्यमान, प्राण और अपान दोनों को प्रकट करता है और अपने वश रखता है और जिस प्रकार मुख्य स्थान पर स्थित सूर्य किरणों से समान आश्रयवाली सदा से विद्यमान आकाश और भूमि दोनों को विशेष रूप से व्यापता है उसी प्रकार मुख्य रूप से स्थापित, अनायास समस्त कार्यों को सिद्ध करने हारा अथवा बड़े बड़े युद्ध आदि प्रयत्नों में भी शत्रु द्वारा वीर सेनापति और सभापति सत्य ज्ञानों का उपदेश करने वाले अथवा स्तुत्य सूर्य के समान तेजस्वी अर्चनीय विद्वानों और वीर पुरुषों द्वारा उनकी सहायता से अति शाश्वत काल से चले आए, एक ही

आश्रय, राष्ट्रभूमि पर बसने वाले राजा और प्रजा दोनो वर्गों को विशेप-रूप से पालन करता और उन दोनो से स्वयं वरण किया जाता है। सूर्य जिस प्रकार प्रकाश, वर्षा आदि उत्तम कार्यों को करता हुआ आकाश मे, आकाश और पृथिवी दोनो को धारण और पोषण करता है। उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् प्रजा के लिए शुभ कार्यों को करने वाला श्रेष्ठ, आचारवान् पुरुष मान आदर करने योग्य अपने आश्रय पर उठाये रखने योग्य राजा प्रजावर्ग दोनो की रक्षा करने हारे सर्वोच्च राजपद पर स्थित होकर धारण करे, उनको वश करे।

सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

भा०—रात्रि काले अन्धकार से बने रूपो से और दिन-वेला कान्ति-मय रूपों से एक दूसरे के पीछे क्रम से आती जाती हैं। और वे दोनो सनातन, अनादि काल से एक दूसरे से भिन्न रूप या कान्तिवाली पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले होकर अपने आगमनो, व्यवहारो से सूर्य और पृथ्वी की सेवा या परिक्रमा करते अर्थात् उन पर आश्रित हैं। सूर्य के उदय से दिन और पृथ्वी की आड से रात्रि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार एक दूसरे से सम्बद्ध होकर युवावस्था मे स्थित स्त्री पुरुष दोनो अनादि कारण से और अनादि काल से सूर्य और पृथ्वी के समान अपने कार्य व्यवहारो से परस्पर आचरण करें। वे दोनो शरीर रचना मे एक दूसरे से भिन्न आकृति, रुचि और चेष्टा वाले, वार वार एकत्र रहने वाले तथा सन्तान रूप मे पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले हो। उन दोनो मे से स्त्री, रात्रि के समान नाना गुणो और प्रेमो को प्रकट करने वाली और स्नान, अनुलेपन तथा अभ्यग और उज्वल आभूषणादि से कान्तिमती होकर आकर्षण करने वाले रूपों से युक्त हो। और दिन या सूर्य के समान प्रति-पक्षियो को तापकारी और स्त्री के प्रति कामनावान् अभिलाषायुक्त होकर पुरुष उज्वल कान्तिमय स्वरूपो से युक्त होकर रहे। और वे दोनो एक

दूसरे के प्रति सब प्रकार से अनुकूल आचरण करें। इसी प्रकार राजा प्रजा या राजा और भूमि भी सूर्य और पृथिवी या दिन और रात्रि के समान भिन्न रुचि होकर भी अपने व्यवहारों को वार वार मिलावें। ऐश्वर्य आदि आकर्षण गुणों से प्रजा और पराक्रम आदि तेजोमय रूपों से राजा रहे। वे एक दूसरे के उपकार करते रहें।

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः।
आमासु चिद् दधिषे पक्कमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार नाना उत्तम कर्मों को करने वाला अपने बल से सबका प्रेरक होकर आकाश और पृथिवी को धारण करता है उसी प्रकार पुत्र भी उत्तम सदाचारी होकर अपने बल और ज्ञान से माता पिता का भरण पोषण करे, उसी प्रकार राजा सबका आज्ञापक होकर अपने बल, पराक्रम से राष्ट्र के शासकवर्ग और शास्य प्रजावर्ग दोनों का पोषण करे। और जिस प्रकार सूर्य वर्षण आदि उत्तम कर्मों का आचरण करता है, सनातन से लोकों पर प्रेम-भावनायें रखता है उसी प्रकार राजा भी उत्तम आदर योग्य उपकार करता हुआ पुराने, राजपरम्परा से चले आये मित्रता और प्रेम भाव को सदा बनाये रक्खे। सूर्य जिस प्रकार कच्ची, कोमल लताओं में पकने योग्य रस को प्रदान करता है और सूत्र रसों को आकर्षण कर लेने वाली गहरे रंग की लताओं में अति दीप्ति-कारक, तीव्र रस प्रदान करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी अपक्क, सन्तति-प्रसन्तति से बढ़ने वाली प्रजाओं में से कच्ची उमर की प्रजाओं में पकने योग्य, अन्न के समान अभ्यास द्वारा पका लेने योग्य बल धारण करा। और शत्रुओं का वर्षण अर्थात् विनाश करने में समर्थ प्रजाओं में अति तेजस्वी, उग्र बल धारण करा।

सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥२

भा०—एक ही आश्रय में रहने वाली भूमिवासिनी प्रजाएं भी

अंगुलियों के समान रह कर शत्रु पराजयकारी बलो से युक्त होकर कभी नाश को प्राप्त नहीं होती। और वे प्रतिपक्ष या प्रबल शत्रु रूप प्रचण्ड वायु से रहित होकर अपने अपने कर्त्तव्यो और नियम धर्मो का पालन करती हैं। इसी प्रकार बलों से नाश को न प्राप्त होने वाले विद्वान् और रक्षक भूपतिगण एक ही देश मे रहने वाले, सदा ही आपस मे स्थिर धर्मों, कर्त्तव्यो का पालन करें। पुत्रोत्पादक, समर्थ पुरुष जिस प्रकार अपनी स्त्रियो की रक्षा करते हैं उसी प्रकार वे भूपति लोग सहस्रो भूमियों की रक्षा करें। बहिनें जिस प्रकार विना सकोच के आने जाने वाले भाई की सेवा सत्कार करती हैं उसी प्रकार बहिनो के समान या धनों को प्राप्त करने वाली वे प्रजाएं भी विना संकोच और भय के शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर नृपति की परिचर्या करें, उसके अधीन रहे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११॥

भा०—हे दर्शनीय ! हे प्रजा के दुःखों के नाश करने हारे ! तू स्तुति करने योग्य है। कामना युक्त पत्निया जिस प्रकार कामना युक्त अपने पति के पास जाती और उससे आलिंगन करती हैं उसी प्रकार हे बलवन् ! मननशील, विज्ञानयुक्त, सनातन से चले आये, अनादि-सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों के करने हारे, ऐश्वर्य के इच्छुक, मननशील, विद्वान् गण कान्तिमान्, प्रजा के इच्छुक तुझ प्रजा के पालक को स्वय कामनायुक्त होकर प्राप्त हों और तुझे बलपूर्वक पकड लें, तेरा दृढ़ता से आश्रय लें।

सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर एव राजन् ! दुःखो और दुष्ट शत्रुओं के नाशक ! अनादि काल से ही तेरे हाथ मे, तेरे वश मे विद्यमान ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होते, वे कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। तेरे ऐश्वर्य सदा अक्षय

त्वं स॒त्य इ॑न्द्र धृ॒ष्णुरे॒तान् त्वमृ॑भु॒क्षा नर्य॒स्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं॑ वृ॒जने॑ पृ॒क्ष आ॒णौ यूने॒ कुत्सा॑य द्यु॒मते॒ सचा॑हन् ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभा-सेनापते ! तू सज्जनों में श्रेष्ठ, सत्य व्यवहार वाला होकर इन समस्त शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ हो। सत्य से भासित, महान् सामर्थ्य वाले विद्वानों और बड़े तेजस्वी वीरों और शिल्पियों के बीच में उनका स्वामी होकर रहने वाला, सबमें महान्, सब नरों में श्रेष्ठ, सबका हितकारी, उत्तम नेता तू सबको पराजय करनेवाला बलवान् हो। तू शत्रुओं को वर्जन करने वाले, मित्र शत्रु सबको एकत्र मिला देने वाले, घमासान अतितुमुल युद्ध में जवान, वज्रधारी शस्त्रास्त्र से युक्त तेजस्वी सेना बल को अपना बल प्रदान कर और एक समवाय या संघशक्ति से आक्रमण करके शत्रुओं का नाश कर। अथवा शत्रुओं को परे हटाने के काम में जवानों में बल देकर शत्रुओं का नाश कर। या भिड़ने के काम में खड्गधारी बल को उत्तेजित कर और घोर गर्जनायुक्त तोपों की लड़ाई में कान्तियुक्त आग्नेय अस्त्रों के वेत्ता पुरुषों को अधिकार और बल देकर शत्रुओं का नाश कर। अथवा जवान शस्त्रधर और तेजस्वी पुरुषों के बल से प्रजा के शोषणकारी शत्रु का नाश करे।

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र चोदीः॒ सखा॑ वृ॒त्रं यद्व॑ज्रिन् वृषकर्मन्नु॒भ्नाः ।
यद्ध॑ शूर वृषमणः परा॒चैर्वि दस्यूँ॒र्योना॒वकृ॑तो वृथा॒षाट् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! निश्चय से तू ही उस दूरस्थ मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को भी दूर से ही परास्त कर। हे वर्षणशील मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों और शत्रुओं पर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा करने हारे ! हे उत्तम शस्त्र-अस्त्रों से युक्त ! तू सबका मित्र है। हे शूरवीर ! हे शूरवीरों के समान उदारचित्त वाले ! अथवा शूरों की व्यवस्था को जानने हारे ! उनकी वृद्धि में दत्तचित्त ! जिससे तू अनायास ही शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर प्रजापीड़कों को उनके घर में

ही विविध उपायों से छेदता भेदता, नाश करता है, इसलिये तू आदर करने योग्य है।

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ।
व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥५॥४॥

भा०—हे शत्रुहन्तः! राजन्! सभाध्यक्ष! तू उस दृढ़, प्रबल शत्रु को स्वयं न मारना चाहता हुआ भी केवल प्रजा पुरुषों के अप्रीतिकारक होने से दिशाओं के विजय के लिये हमारे घोड़ों के लिये मार्ग खोल, उनको विजय करने की आज्ञा दे। हे वीर्यवन्! बलशालिन्! जिस प्रकार हतौड़ों से दृढ़ लोह को भी कूट डाला जाता है उसी प्रकार शत्रुओं को हनन करने वाले नाना राजनैतिक साधनों से शत्रुओं का नाश कर।

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर! शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! सेनापते! परमेश्वर! राजन्! जलों के प्राप्त कराने और जल के वर्षण आदि के अवसर पर जिस प्रकार लोग विद्युत् और मेघों को ला बरसाने वाले वायुओं को चाहते हैं उसी प्रकार वीर नायक पुरुष धन प्राप्त कराने वाले सुखों के वर्षण करने वाले युद्धकाल मे तुझको ही पुकारते और स्मरण करते हैं। हे स्वयं समस्त राष्ट्र के धारण करने के सामर्थ्य से युक्त! हे वज्रवन्! हे जलों के धारक मेघ के समान अन्नों के स्वामिन्! हे जीवों के स्वामिन्! संग्राम मे और ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्त करने के अवसरों मे तेरा यह प्रजा के रक्षा करने का कार्य बराबर चलता रहे।

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सेनापते! हे उत्तम शस्त्र समूह के स्वामिन्! हे तेजस्विन् राजन्! तू निश्चय से युद्ध करता हुआ बहुत से शस्त्रास्त्रों के स्वामी या बहुत से शत्रुओं को उखाड़ देने वाले वीर राजा के लिए,

अथवा बहुत से शत्रुओं के आक्रमणों से पीड़ित और उत्तम उत्तम ऐश्वर्यों के देने वाले, विजय करने और प्राप्त करने योग्य राष्ट्र के समस्त प्रजाजन को पालन करने वाले, जनपदवासी राज प्रजावर्ग की रक्षा के लिए सभा, सभासद्, सभापति, सेना, सेनापति, भृत्य और प्रजागण इन सातों, अथवा सहायकगण, साधन और साम, दाम, भेद और दण्ड और देश-विभाग और काल-विभाग इन सातो के द्वारा अथवा स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र और दुर्ग और सेनाबल इन सातो के द्वारा शत्रु के इन सातों को और उसके नगरियो, गढ़ो और क़िलों को तोड फोड़ डाल।

त्वं त्यां न॑ इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पी॑पयः परि॑ज्मन्।
यया॑ शूर प्रत्य॒स्मभ्यं॒ यंसि॒ त्मन॒मूर्जं॒ न वि॒श्वध॒ क्षर॑ध्यै ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्! वीर सेना-सभाध्यक्ष! जिस प्रकार मेघ या विद्युत् इस पृथ्वी के ऊपर जलों को वर्षाता, सबको बढ़ाता है। जल के रूप मे सब तरफ़ बहने के लिए अपने को त्याग देता है उसी प्रकार हे दानशील राजन्! तू भी इस पृथवी पर जलों के समान उस उस, नाना प्रकार की अद्भुत अद्भुत अन्न समृद्धि तथा सेनाओं को बढ़ा। हे शूर-वीर! जिसके द्वारा तू हमारे उपकार और रक्षा के लिए अपने को अन्न के समान दूसरों के उपकारार्थ समर्पित करता है अर्थात् जिस प्रकार अन्न अपनी सत्ता को खोकर अन्य प्राणियों के देहो को पुष्ट करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू हम प्रजाओं की रक्षा और पुष्टि के लिए युद्धादि में अपने आपको बलि कर। हे समस्त राष्ट्र को धारण करने हारे! तू अन्न और जल के समान ही बहने और सर्वत्र पराक्रम और त्याग द्वारा बरसने के लिए तैयार रह।

अका॑रि त इन्द्र॒ गोत॑मेभि॒र्ब्रह्मा॒ण्योक्ता॒ नम॑सा॒ हरि॑भ्याम्।
सु॒पेश॑सं॒ वाज॒मा भ॑रा नः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ ५॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! उत्तम किरणों से जिस प्रकार अन्न की वृद्धि के साथ साथ ऐश्वर्य और नाना सुख भी उत्पन्न होते हैं उसी

प्रकार विद्वान्‌गण तेरे हरणशील अश्वों के समान आगे बढ़ने वाले बल और पराक्रम दोनों की वृद्धि के लिए आदर, सत्कार और अन्नादि के साथ साथ स्तुति, ज्ञानोपदेश और नाना धन भी प्रस्तुत करते हैं। तू हमारे लिए कर्म, शक्ति और प्रज्ञा के बल से स्वयं प्रजा में रहने और राष्ट्र में सुख से प्रजा के बसाने वाला होकर प्रतिदिन या शीघ्र ही या अपने राज्य के प्रारम्भ काल में ही उत्तम सुवर्ण आदि धनों और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न ऐश्वर्य को प्राप्त करा। और शीघ्र ही हमें पुनः पुनः प्राप्त हो। इति पञ्चमो वर्गः॥

[६४]

नोधा गौतम ऋषि ॥ अग्निर्मरुतश्च देवताः। छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ६, ९, १४ विराट् जगती। २, ३, ७, १०, ११, १३ निचृज्जगती। ८, १२ जगती। १५ निचृत् त्रिष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

वृष्णे॒ शर्धा॑य सु॒म॑खाय वे॒धसे॒ नोधः॑ सुवृ॒क्तिं प्र भ॑रा म॒रुद्भ्यः॑।
अ॒पो न धीरो॒ मन॑सा सु॒हस्त्यो॒ गिरः॒ सम॑ञ्जे वि॒दथे॑ष्वा॒भुवः॑ ॥१॥

भा०—हे यथार्थ सत्य विज्ञान के उपदेश और प्रवचन को धारण करने हारे विद्वन्! तू जल वर्षण करने वाले मेघ और घोर गर्जन करने वाले विद्युत्, पृथ्वी से सूर्य की किरणों द्वारा जल का वायु में आना और और फिर वृष्टि द्वारा बरसना, अन्न का उत्पन्न होना, पुनः प्राणियों द्वारा खाया जाकर जीव सन्तति रूप से उत्पन्न होना आदि उत्तम यज्ञ के लिये और विविध जल आदि पदार्थों के धारण करने के लिये वायुओं की उत्तम रीति से अज्ञान को दूर करने वाली स्तुति या वर्णन किया कर। इसी प्रकार सब सुखों को वर्षाने वाले राजा की वृद्धि के लिये, राष्ट्र की बल वृद्धि के लिये, राष्ट्र में उत्तम यज्ञों, धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिये और राष्ट्र में विविध ऐश्वर्यों और व्यवस्थाओं के धारण के लिये विद्वान् और वायु के समान बलशाली वीर पुरुषों के उत्तम, दोष-निवारक गुण स्तुति को प्रकट कर। बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार मन से विचार कर

ज्ञान-वाणियों को प्रकट करता है और उत्तम हस्त क्रियाओं में कुशल पुरुष जिस प्रकार नाना कर्मों, विज्ञानो तथा हाथों द्वारा बनाये जाने योग्य उत्तम शिल्पो को प्रकट करता है उसी प्रकार से उत्तम हस्त क्रियाओं मे कुशल, सिद्धहस्त होकर संग्राम आदि कार्यों से सब तरफ सामर्थ्य प्रकट करने वाले, कर्म-कौशलों और शस्त्र-संचालन, सेना-सचालन आदि क्रियाओं को प्रकट करूं और मैं ही धीर, सयमी, वाग्मी होकर ज्ञानपूर्वक सब प्रकार से सफल होने वाली आज्ञाओ और वाणियों का प्रकाश करूं।

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२॥

भा०—वे वायुओं के समान प्रवल, वीर और विद्वान् जन सूर्य के प्रकाश से प्रेरित होकर जिस प्रकार वायुएं प्रवल हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान प्रकाश से युक्त आचार्य और तेजस्वी राजा या सेनापति से दीक्षित और प्रेरित होकर अन्यो को ज्ञान देने वाले, विद्वान् तथा शत्रुओं को मारने वाले अति उग्र हो जाते है। और समष्टि प्राण के अधीन रह कर ज्ञानोपदेष्टा के शिष्य भी ज्ञान सुखो के वर्षक एवं वीर्यवान् वृषभो के समान विशाल कार्य वाले और वीर जन शत्रुओ को रुलाने वाले सेनापति के अधीन मेघ के समान शस्त्रास्त्रो के वर्षण करने वाले हो। वे मर्द, जवान, वलवान्, प्राणों मे रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी और शत्रु सेनाओ को उखाड़ फेंकने वाले, पाप रहित, स्वच्छचित्त, किरणों और अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्र-कारक, मन, वाणी, काय तीनों से शुद्ध, सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी, हस्ती आदि बलवान् प्राणियों के समान बलवान् और सात्विक गुणों वाले, वीर्यवान्, मेघों के समान ज्ञान-जलों के वर्षक भयानक या शान्तिदायक स्वरूप वाले, भयप्रद और अभय बनकर रहें।

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना॥३॥

भा०—युवा, बलशाली, दुष्टो को रुलाने हारे, कभी जीर्ण या दुर्बल न होने हारे, किसी के अधीन होकर भोग्य और दण्डनीय न होने वाले, शत्रुओं से असह्य वेगवान्, पर्वतो के समान अचल वीरगण समस्त दिव्य, आकाशस्थ और राजसभा और साधारण प्रजा के दृढ़ समस्त जनों को भी अपने बल से विचलित कर देने वाले हों।

प्राण-वायुओ और वायुओ के पक्ष मे—शरीर में रसों के मिलाने और तप्त करने हारे, बलशाली मरण, ज्वर आदि पीडा द्वारा प्राणियो को रुलाने वाले, अन्न के समान भोग्य बनकर और दबकर न रहने वाले असह्य तीव्र वेगवाले अथवा प्रकाश-किरणो को न धारण करने या न रोकने वाले, पर्वतो या मेघो के समान शरीरादि के या जीवन-जलों के धारक होकर पृथिवी और तेज दोनो के बने विकार कठिन रूप में आये हुए सबके मूल कारणो को सचालित करते हैं।

चित्रैर॒ञ्जिभि॒र्वपु॑षे॒ व्य॑ञ्जते॒ वक्ष॑स्सु रु॒क्माँ अधि॑ येतिरे शु॒भे।
अंसे॑ष्वेषां॒ नि मि॑मृक्षुर्ऋ॒ष्टयः॑ सा॒कं ज॑ज्ञिरे स्व॒धया॑ दि॒वो नरः॑ ॥४॥

भा०—तेजस्वी राजा के नायक, वीरगण, नाना प्रकार के अपने को प्रकट करने वाले चिह्नों, अकों या पोशाकों और बैजों द्वारा अपने शरीर को विविध रूप से प्रकट करें या सजावें और शोभा के निमित्त वे अपने छातियो पर स्वर्णपदकों को लगावें और इनके कन्धो पर शत्रुनाशक हथियार दण्ड भाले आदि शोभा देवें। वे ऐसे पृथिवी के विजय और पालन की शक्ति के साथ प्रकट हो।

प्राण वायुओ के पक्ष मे—अद्भुत क्रिया करने वाले, प्रकट करने की चेष्टा करने वाले, शरीर के धारण पोषणकारी रूप को प्रकट करने के लिए विविध रूपो मे दृष्टिगोचर होते है और वे शोभा के लिए छातियों मे, अपने पांच वायु गण रोचक, दीप्तिमान् विद्युत्, जाठराग्नि आदि पदार्थों को धारण करते है। इनके बल पराक्रमों पर शरीर की नाना गतियें

निरन्तर होती है और वे चेतना ज्ञान के नायक प्राणगण स्व अर्थात् शरीर को धारण करने वाली चेतना शक्ति के साथ प्रकट होते हैं।

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥५॥

भा०—वीर सैनिकगण राजा को समस्त राष्ट्र का शासक बना देने हारे, शत्रुओं को कंपा देने हारे, हिंसकों की हिंसा करने या उनको उखाड फेंकने वाले होकर अपने बलों या बलवान् अस्त्रशस्त्रों से प्रचण्ड वायु के झकोरों और विद्युत् के समान आघातकारी अस्त्रों का भी प्रयोग करें। दुग्ध रस का इच्छुक पुरुष जिस प्रकार गाय के थनों को दोहता है उसी प्रकार वे शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष भूमि रूप गौ से नाना दिव्य पदार्थों, शक्तियों और सारयुक्त ओषधियों को प्राप्त करें और वे सब देशों और स्थानों में जाने हारे विद्वान् वीरजन दूध से जिस प्रकार बालक को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार और जल जिस प्रकार क्षेत्र को सींचता है उसी प्रकार भूमि को पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थों और ऐश्वर्य से सेचन करते हैं, उसे पुष्ट करते हैं।

वायुओं के पक्ष में—वायुगण, सामर्थ्यवान् प्राणों का उत्पादक होने से 'ईशानकृत्' हैं। घातक रोगों के नाश करने से 'रिशादस' हैं, वृक्षों को कपाने से 'धुनि' हैं, वे ही प्रचण्डवात और मेघों की विद्युतों को उत्पन्न करते हैं। वे रात्रि काल में आकाशस्थ जलों को अन्तरिक्ष से ओसरूप में दोहते हैं या आकाश रूप गौ के मेघरूप पयोधरों से जलों को दोहते हैं और जल से और पुष्टिप्रद अन्न से भूमि को सींचने और पूर्ण कर देते हैं। मेघों को कंपाने से 'धुनि' हैं और सर्वत्र गमन करने से 'परि-ज्रि' हैं।

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण जलों को मेघों में पूर्ण करते और

भूमियों पर सेचन करते हैं और उत्तम जलप्रद और सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। उसी प्रकार उत्तम, वीर जन भी यज्ञादि उत्तम कार्यों मे और युद्धो में सब प्रकार से सामर्थ्यवान् और उत्तम रीति से शत्रुओ के खण्डन और प्रजा पालन करने वाले, दानशील और वायुवत् तीव्र, वेगवान् होकर घृत से युक्त दुग्ध और अन्न का और जलो का सेचन करते हैं, राष्ट्र में इन पदार्थों की ही वृद्धि करते हैं। जिस प्रकार वीर्यवान्, बलवान् और वेगवान् अश्व को वीर्य सेचन के कार्य के लिए घोड़ी के पास ले जाते है और जिस प्रकार वायुगण वेग से जाने वाले या अन्न के उत्पादक मेघ को अश्व के समान वृष्टि करने के लिए विविध दिशाओ मे ले जाते हैं उसी प्रकार वीर पुरुष भी बलवान्, पराक्रमी, युद्धविजयी, अन्नादि ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति को भी शत्रु पर शस्त्रो और प्रजा पर सुखो की वर्षा करने के लिए प्राप्त करें या विद्वान् जन उनको विशेष रूप से शिक्षित करें। जिस प्रकार मनुष्य कूप से जल को प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार वायुगण गर्जना करते हुए या आकाश रूप गोमाता के स्तनों के समान विद्यमान अक्षय मेघ से जलो को दोहते हैं उसी प्रकार वीर प्रजाजन भी उत्तम ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करने वाले, सिंहनाद करते हुए, अक्षय कोष के समान अक्षय बल वाले अथवा कभी क्षीण न होने वाले, अमर दीर्घजीवी, बलवान् पुरुष से ऐश्वर्य और सामर्थ्य को दोहते या प्राप्त करते हैं।

म॒हि॒षासो॑ मा॒यिन॑श्चि॒त्रभा॑नवो गि॒रयो॒ न स्वत॑वसो रघु॒ष्यदः॑।
मृ॒गा इ॑व ह॒स्तिनः॑ खादथा॒ वना॒ यदारु॑णीषु॒ तवि॑षीरयु॑ग्ध्वम्॥७॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग बड़े बलवान्, अति बुद्धिचातुरी से युक्त, अद्भुत कान्तिमान्, पर्वतो और मेघो के समान अपने पराक्रम पर खड़े होने वाले, अति वेग से जाने वाले हो। जब आप लोग लाल वर्ण वाली, तेजस्विनी या सुख देने वाले रथों, यानों की बनी सेनाओ में समस्त बलो या सैन्यदलों को जोड़ दें। तब भी हाथी नामक पशु जिस प्रकार जगलो को खा जाते या उपभोग करते हैं, उनको तहस नहस करते

हैं उसी प्रकार तुम भी क्रियाकुशल और सिद्धहस्त बनकर शत्रुओं को खोजने वाले होकर शत्रु-सेनासमूहों को विनाश करो और भोग्य ऐश्वर्यों का भोग करो।

वायुपक्ष में—वायुगण बड़े सामर्थ्य वाले भूमि पर बहने वाले, कुटिलगामी, अद्भुत दीप्ति वाले, नाना अग्नियों वाले, जलों को अपने भीतर लेने वाले, स्वतः बलवान्, वेग से जाने वाले हैं। वे भी हाथियों के समान वनों को वेग से तोड़ते फोड़ते हैं और वे प्रातः वेलाओं में जलों को प्राप्त करावें।

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः॥८॥

भा०—उत्कृष्ट और बहुत अधिक ज्ञान वाले विद्वान्, वीर पुरुष शेरों के समान बलवान्, पराक्रमी होकर गर्जना करें और वे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी और समस्त विद्याओं के जानने हारे, उत्तम, सुदृढ़ अंगों वाले होकर बलवान् शरीरों वाले गजों के समान गम्भीर-वेदी हों। रात्रियां जिस प्रकार सेचने वाली जलबिन्दु-पंक्तियों से भूमि को छा देती हैं उसी प्रकार ये वीर भी शत्रुओं का नाश करने हारे होकर आयुधों से पृथ्वी का विजय करते हुए एक साथ शत्रुओं को पीडन करने वाले, सर्प के क्रोध के समान शत्रु के एक ही वार में प्राण हरण करने वाले कोप से युक्त अथवा उत्तम कोप और उत्तम ज्ञान वाले, अति उग्र और अति बुद्धिमान् होकर एक साथ ही युद्ध में बल से जावें।

वायुपक्ष में—उत्तम ज्ञान और चेतना के देने वाले, उत्तम रीति से सुखजनक अवयवों वाले, उत्तम ऐश्वर्यों और ज्ञानों के देने वाले, सेवन करने वाली वेगवान् मेघमालाओं से रात्रि के समान भूमियों को सींचते हुए, एक साथ मेघों को लाने वाले होकर बल से हमें भली प्रकार प्राप्त हों।

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः॥९॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! सैन्यगणों को अपने आश्रय या अधीन रखने वाले या गणो, जनो, सेना समूहो से शोभा देने वाले! हे वीर नायकों के अधीन समवाय, सगठन बनाकर रहने वाले, शूरवीर सर्प के समान शत्रु के प्राणहारी क्रोध वाले या मेघ के समान अमित मन्यु, क्रोध या ज्ञान वाले या अक्षय या उत्तम ज्ञान और उद्वेग वाले वीर विद्वान् पुरुषो! आप लोग सूर्य और भूमि के समान राजा और प्रजा दोनो वर्गों को अपने बल और ज्ञान-सामर्थ्य से सर्वत्र उपदेश करो, अपने गुणों को बतलाओ। और हे विद्वानो और वीरो! आप सब लोग सुन्दर रूप के समान दर्शनीय और विद्युत् के समान अपनी कान्ति से स्वतः देखने योग्य होकर दृढ बन्धनो से बंधे रथों पर तुम्हारा पराक्रम स्थिर हो। विद्वानो का ज्ञान रमण करने योग्य आत्मानन्द रूप रसों मे या रमण योग्य प्राणो या देहों ने सुन्दर रूप विद्युत् के समान मनोहर और दीप्ति रूप से विराजे। अथवा [एक नकार पादपूरणार्थ है।] विद्युत् आदि अस्त्र ही तुम्हारा दर्शनीय रूप के समान उज्वल रहे।

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः॥१०॥७॥

भा०—समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानो के स्वामी या विश्व को जानने और उसे धन रूप मे प्राप्त करने वाले, अपने बल, पराक्रमों और ऐश्वर्यों से एक समान या उत्तम स्थान के रहने वाले, परस्पर अच्छी प्रकार सम्मिलित, बलों और सेनाओ के द्वारा गुणो और कार्यों मे महान्, अस्त्रों के चलने हारे, वीर्यवर्धक अन्न और जल के खाने वाले वीर पुरुष अनन्त बल से युक्त होकर बाहुओं में बाण आदि अस्त्रों को धारण करें।

वायु के पक्ष मे—सब पदार्थों को प्राप्त, उत्तम आश्रय मे स्थित अग्नि आदि तत्वों से युक्त, बलवती क्रिया से महान् पदार्थों को इधर उधर उठा फेंकने वाले, वृष्टि-जलों या मेघों को अपने मे लेने वाले, दूसरों को

उनका भोग देने वाले, गतिशील वायुगण अनन्त बल वाले होकर प्रेरक बल को सूर्य और अग्नि दोनों के आश्रय से धारण करते हैं।

हिर॒ण्यये॑भिः प॒विभि॑ः पयो॒वृध॒ उज्जि॑घ्नन्त आप॒थ्यो॒ऽ न पर्व॑तान्।
म॒खा अ॒यासः॑ स्व॒सृतो॑ ध्रुव॒च्युतो॑ दुध्र॒कृतो॑ म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः॥११॥

भा०—जिस प्रकार मार्ग में चलने वाला रथ लोहे के बने या उसमें मढे हुए चक्रों से उत्तम रीति से चलता है उसी प्रकार वीर, पुरुष सब तरफ़ के मार्गों के जानने और वश करने हारे होकर लोहे के बने हुए खड्गों और शस्त्रास्त्रों से पर्वत के समान अचल होकर शत्रु राजाओं और प्रतिपक्षी वीरों को उत्तम या अधिक बल से विनाश करने वाले हों। वे वीर्य बल के वर्धक, पूजा के योग्य, अपने बल पराक्रम से आगे बढने वाले, स्थिर राज्यों को भी डावांडोल करने वाले, धारण करने योग्य या असह्य बल पराक्रमों को करने वाले, चमचमाते हुए अस्त्रों वाले होकर वीर पुरुष सर्वत्र रण में जाने वाले हों।

वायु-पक्ष में—वृष्टि जल को बढाने वाले, मेघों और पर्वतों को अधिक बल से ताडने हारे, अपने वेग से जाने वाले, स्थिर पदार्थों को भी कंपाने वाले, धारण करने योग्य बलों के धारने वाले व्यापक वायुगण हैं।

घृ॒षुं पा॑व॒कं व॒निनं॒ विच॑र्षणिं रु॒द्रस्य॑ सू॒नुं ह॒वसा॑ गृणीमसि।
र॒ज॒स्तुरं॑ त॒वसं॒ मारु॑तं ग॒णमृ॑जी॒षिणं॒ वृष॑णं सश्चत श्रि॒ये॥१२॥

भा०—हम लोग शत्रुओं के बल को नाश करने वाले, अ[illegible] के समान तेजस्वी, भोग्य ऐश्वर्य या वेतन को प्राप्त करने वाले, विविध मनुष्यों से बने हुए, शत्रु-दल को रुलाने वाले, संग्राम के अथवा वीर सेनापति के पुत्र के समान उनके अधीन, राजस भाव, ऐश्वर्य की प्राप्ति से शीघ्र कार्यकारी, बलवान्, ऋजु अर्थात् धर्म और न्याय के मार्ग पर चलने वाले, बलवान्, दुष्टों पर शर वृष्टि करने वाले, वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रुओं के मारने वाले सैनिकों के गण को हम देने योग्य वेतन, स्वीकार योग्य उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि द्वारा शिक्षित

करें या उनका आदर करें। हे प्रजाजनो! तुम उनको लक्ष्मी या ऐश्वर्य और शरण या आश्रय प्राप्त करने के लिये प्राप्त करो।

(२) वायुगण के पक्ष में—घर्षण उत्पन्न करने वाले, पवित्रकारक, सब पदार्थों को पृथक् पृथक् बांटने वाले, विलेखन करने वाले, तीव्र, प्राण रूप से जीव के प्रेरक और परमेश्वर के पुत्र के समान अथवा कारण रूप वायु से उत्पन्न को उसके ग्राह्य रूप से हम उपदेश करें। हे मनुष्यो! हम लोग लोकों और धूलियों को वेग से चलाने वाले, बलवान्, उत्तम जीवन के प्रेरक, वृष्टिकारक वायुगण को विद्या, शिक्षा, राज्य आदि सुख प्राप्ति के लिये प्राप्त होवें। (३) पूर्वोक्त रीति से विद्वान् जन भी 'मरुत्' हैं। वे भी पापनाशक होने से 'पावक' हैं। ज्ञानोपदेश के दाता होने से 'रुद्र के सूनु' हैं, लोगों के चलाने वाले होने से 'रजस्तुर' हैं, ऋजुमार्गगामी होने से 'ऋजीषी' हैं। उनको विद्या और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्राप्त करो।

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिराप्रच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

भा०—हे वायु के समान तीव्र वेग से जाने हारे वीर पुरुषो! एवं विद्वान् पुरुषो! आप लोग रक्षा के लिये जिस पुरुष की रक्षा करते या जिसकी शरण में प्राप्त होते हो। और जो अश्वों, अश्वारोही वीर पुरुषों के द्वारा संग्राम को विजय करता और नायक पुरुषों के साथ मिल कर जो ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है और जो परस्पर पूछ कर जिज्ञासा से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है वह मनुष्य बल और ज्ञान से शीघ्र समस्त जनों से बढ़ कर उच्च आसन पर विराजता है।

अध्यात्म में—हे प्राणगणो! आप जिस आत्मा को अपनी देहरक्षा के लिये प्राप्त हो, जो इन्द्रिय गणों से ज्ञान को प्राप्त करता है, जो प्राणों से ऐश्वर्यों को पाता है और ज्ञातव्य परम पद ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त

करता और उसका अभ्यास करता है वह सब जनों को ज्ञान के बल से पार कर उनसे ऊंचा होकर परम पद मे विराजता है।

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! आप लोग समस्त करने योग्य कार्यों मे कुशल, संग्रामो मे शत्रुओं से पराजित न होने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यों को कमाने या उसकी रक्षा करने वाले, समस्त राष्ट्र के द्रष्टा, शत्रु के नाशकारी, राष्ट्र के विस्तार करने वाले पुरुष को धन सम्पन्न पुरुषों के ऊपर स्थापित करो। अपने पुत्र और पौत्र के समान प्रिय, ऐसे प्रशंसनीय जन को हम सौ बरसों तक पुष्ट करें।

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥८॥११॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो तथा वीर जनो ! आप लोग शीघ्र ही चिरस्थायी, विनाश को प्राप्त न होने वाले, वीर पुरुषों से युक्त, युद्ध के विजय करने वाले, ऐश्वर्य को और वीर्यवान् पुरुष को हममे धारण करो। और हज़ारो के और सैकड़ों के स्वामी, सहस्रदलपति, शतदलपति, समस्त सुखों के दाता महापुरुष को भी हम मे स्थापित करो। और प्रज्ञा और कर्म के धनी पुरुष शीघ्र ही दिन के प्रारम्भ समय मे या सभी कार्यों के प्रारम्भ काल मे हमें प्राप्त हो। इत्यष्टमो वर्गः। इत्येकादशोऽनुवाकः॥

[६५]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्ति (२, ३, ५ निचृत्। ४ विराट्) अथवा १–१० द्विपदा विराट् (३, ६, ७, ८, ६ निचृत्)। पञ्चर्चं दशर्चं वा सूक्तम् ॥

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥१॥

भा०—धीर, बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार वनगुफा मे छिपे हुए पशु

के साथ विद्यमान चोर को उसके चरणचिह्नों से पीछा करते हैं, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे आत्मन् ! सबके द्रष्टा रूप से ब्रह्माण्ड रूप गुहा या हृदय रूप गुहा मे व्यापक, सबके पालक अन्न, ऐश्वर्य, पद या सर्व वशकारी बल को अपने मे धारण करने वाले, सबके पोषक अन्न और सबके भक्तिभाव को धारण अर्थात् स्वीकार करते हुए तुझको समान प्रेम से तेरा सेवन करने हारे, ध्यानवान्, समस्त उपासक, सत्संगी पुरुष ज्ञान-साधनों से तुझे प्राप्त होते हैं और वे सब तेरे ही आश्रय पर रहते हैं, तेरी उपासना करते हैं।

राजा के पक्ष मे—पशु सम्पत्ति के साथ विद्यमान राष्ट्रूप गुफा में रहने वाले आदर, अन्न, पदाधिकार और ऐश्वर्य आदि के धारण करने और प्राप्त कराने वाले के प्रति विद्वान् पुरुष प्रेम युक्त होकर प्राप्तव्य पदाधिकारो से उसके अनुकूल रहें और उसके साथ संघ बनाकर उसके आश्रय पर रहे।

अग्नि के पक्ष मे—सब पदार्थों के भीतर वर्त्तमान अन्नादि को खाने वाले जन अग्नि को अनेक उपायो से प्राप्त करें। यज्ञशील जन वेदमन्त्रों से उपासना करते हैं।

ऋतस्य॑ दे॒वा अनु॑ व्र॒ता गु॑र्भु॒वत्परि॑ष्टि॒र्द्यौर्न भूम॑ ।
वर्ध॑न्ती॒मापः॑ प॒न्वा सुशि॑श्विमृ॒तस्य॒ योना॒ गर्भे॒ सुजा॑तम् ॥२॥

भा०—दिव्य अग्नि आदि तेजस्वी पदार्थ, भूमि आदि सुखप्रद लोक तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियां और विद्वान् और विजयेच्छु वीरगण सत्य-स्वरूप, सबके प्रवर्त्तक परमेश्वर के तथा सत्य ज्ञानमय, वेद-ज्ञान और सबके संचालक, सत्य व्यवहार वाले राजा की शासनव्यवस्था के उपदेश किये कर्त्तव्यो का अनुसरण करते हैं। उनकी परीक्षा करना और ज्ञान-दर्शन भी सूर्य के समान स्पष्ट, प्रकाशक और पृथ्वी के समान दृढ आश्रय है। गर्भस्थ जल या आप्त पुरुष जिस प्रकार उत्तम रीति से पुष्टि पाने वाले उत्तम बालक को बढ़ाने और पुष्टि करते हैं उसी प्रकार आप्त पुरुष सत्य, न्याय, शासन-कार्य मे समस्त प्रजा को वश करने वाले राजपद

पर उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हुए इस राजा को उत्तम व्यवहार, सद्-उपदेश और स्तुतियुक्त वाणी से बढ़ावें, उसे उत्साहित करें।

परमेश्वर के पक्ष में—व्यापक शक्तियें उत्तम गुणों से महान्, उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, सत्य के आश्रय में विराजमान प्रभु को बढ़ाते हैं। उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं।

अग्नि के पक्ष में—सब तेजस्वी पदार्थ उस अग्नि के व्रत का अनुकरण करते हैं। उनका दर्शन भी महान कल्याणकारी है। सर्वत्र व्यापक अग्नि और जल अपने भीतर विद्युत् रूप से विद्यमान को भी गर्भ में सोते बालक के समान बढ़ाते हैं।

पुष्टिर्न र॒ण्वा क्षि॒तिर्न पृ॒थ्वी गि॒रिर्न भुज्म॒ क्षोदो॒ न श॒म्भु।
अत्यो॒ नाज्म॒न्त्सर्ग॑प्रतक्तः॒ सिन्धु॒र्न क्षोदः॒ क ईं॑ वराते ॥ ३॥

भा०—ज्ञान करने योग्य परमेश्वर और अग्नि तथा राजा व सभाध्यक्ष शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सुख को बढ़ाने वाली पुष्टि के समान अग्नि, विद्युत्, राजा और परमेश्वर तीनों में से प्रत्येक सुख देने वाला है। वह भूमि के समान सबको अपने में निवास, आश्रय देने वाला है। पर्वत के समान सबको पालन करने वाला है। वेग में, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में अश्व के समान छूटते ही शत्रु के पास पहुंचने और पहुचाने वाला है। अथवा जल को अपने भीतर दबाव से रखने वाला, जल समूह जिस प्रकार वेग से बहता है, वह रोके नहीं रुकता, इसी प्रकार ईश्वर भी सृष्टि द्वारा जाना जाकर अगाध सागर के समान सर्जनशक्ति का अक्षय भण्डार है। अग्नि भी जल के समान संसार में अपरिमित है। राजा भी वेग से आक्रमण करने पर अदम्य वेग से शत्रु पर टूट पड़ता और बड़ा पीड़ाजनक, उमड़ते समुद्र के समान भयंकर है। इन सबको कौन वरण कर सकता है। अर्थात् उस प्रभु को कौन पूर्णतया जान सकता है।

जा॒मिः सिन्धू॑नां॒ भ्राते॑व॒ स्वस्रा॒मिभ्या॒न्न राजा॒ वना॑न्यत्ति ॥
यद्वात॑जूतो॒ वना॒ व्यस्था॑द॒ग्निर्ह॑ दाति॒ रोमा॑ पृथि॒व्याः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार वायु से प्रचण्ड होकर जंगलों में विविध रूपों से फैलता है तब वह जंगलों को खा जाता है, जला डालता है, उसी समय मानो वह पृथिवी के लोगों के समान उत्पन्न ओषधि आदि वनस्पतियों को कुठार के समान काट डालता है, उनको जलाकर छिन्न-भिन्न करता है, उसी प्रकार अग्रणी नेता पुरुष जो वायु के समान प्रचण्ड वेगवाले वीर पुरुषों के बल से प्रचण्ड होकर शत्रु के सैनिक दलों पर विविध दिशाओं से जा चढ़ता है, वह निश्चय से पृथिवी पर स्थित लोगों के समान, उसको छा लेने वाले या मारकाट कर गिरा देने योग्य शत्रु-सैन्य को काट गिराता है। वह राजा नाना भोग्य ऐश्वर्यों को भोग करता है। वह बहती नदियों के समान अदम्य वेगवाला होने से उनका बन्धु है। वह बहिनों की रक्षा करने वाले भाई के समान स्वयं अपने बल से रणक्षेत्र में शत्रु पर धावा बोलने वाली सेनाओं का भरण पोषण करने-वाला रक्षक है। हाथियों को वश करने वाले अथवा हाथियों पर सवारी करने हारे ऐश्वर्यवान् पुरुषों का राजा के समान वश करने हारा है।

आत्मा के पक्ष में—आत्मा प्राणों का एकमात्र उद्भव और बन्धु है। इन्द्रियों का पोषक, प्राणों का राजा होकर ऐश्वर्यों या देहों का भोग करता है। वह प्राण के वेग से प्रेरित होकर देहों में विराजता है। वह आत्मा ही जड़ प्रकृति के नाना उच्छेद करने योग्य बन्धनों को काटता है।

रोम—लूयते छिद्यते इति रोम।

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥५॥१०॥

भा०—हंस नाम पक्षी जिस प्रकार जलों में डुबकी लगाकर भी श्वास लेता रहता है, उसी प्रकार राजा आप्त प्रजाजनों के बीच विराजता हुआ प्राण लेता, जीता जागता रहे। वह यज्ञादि से अग्नि के समान उत्तम ज्ञान और कर्म के द्वारा अति अधिक ज्ञानवान् होकर प्रजाओं के बीच में प्रातः चेतने वाले अग्नि के समान ही सबको जीवन

के प्रारम्भ के वयस में ही बोध कराने वाला हो। ओषधि आदि गण जिस प्रकार शरीर का पोषक है उसी प्रकार वह राजा भी राष्ट्र का पोषक हो। वह सत्य व्यवहार, न्यायशासन और ज्ञान में कुशल और प्रसिद्ध होकर छोटे बछड़े से युक्त गौ आदि पशु के समान प्रजा के प्रति प्रेमवान्, कृपालु होकर रहे, विशेष सामर्थ्यवान् और कोशयुक्त होकर भी अग्नि के समान दूर दूर तक अपने तेज, दीप्ति को फैलाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी हो। इति नवमो वर्गः।

[६६]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पंक्ति । ४, ५ विराट् अथवा— १—१० द्विपदाविराट् (७, द्व्यूना, ९, १० एकोना) पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

र॒यिर्न चि॒त्रा सूरो॒ न सं॒दृगायु॒र्न प्रा॒णो नित्यो॒ न सू॒नुः ।
तक्वा॒ न भूर्णि॒र्वना॑ सिषक्ति॒ पयो॒ न धे॒नुः शुचि॒र्वि॒भावा॑ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार ऐश्वर्यमय द्रव्य नाना प्रकार के संग्रह करने योग्य पदार्थों से पूर्ण होता है या अनेक प्रकार के सुखों को देने वाला होता है उसी प्रकार अग्रणी नायक भी आश्चर्यजनक गुणों वाला हो। वह विद्वान् पुरुष वा सूर्य के समान सम्यक् दृष्टि वाला, तत्वज्ञानी और अन्यों को अच्छे प्रकार दीखने और दिखाने वाला हो। वह प्राण के समान राष्ट्र में आयु का वर्धक हो। वह पुत्र के समान सबका स्थिर दायभागी, सबकी जायदाद का स्वामी है। जिस जायदाद का कोई वारिस नहीं उसका वारिस राजा हो और चोर पुरुष जिस प्रकार प्रजा को लूटकर जंगलों में जा छिपता है उसी प्रकार वह भी शत्रुओं को कठोर दण्ड देने वाला और प्रजाओं का पालक होकर सविभाग करने और देने योग्य ऐश्वर्यों को प्रदान करे। या वह सैन्य दलों को संघटित करे। वह गाय के समान प्रजा को पुष्टिकारक अन्न प्रदान करे। वह ईमानदार, शुद्ध आचरणवान, सच्चा होकर अग्नि के समान विशेष दीप्ति से चमके।

अग्नि के पक्ष में—ज्वर के समान भून डालने वाला, संतापजनक, अथवा अश्व के समान अपने स्वामी का पोषक है।

दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥२॥

भा०—जो अग्रणी नायक, सेनापति सब मनुष्यों का विजय करने हारा, घर के समान सुखदायी होकर प्राप्त धन की रक्षा का उपाय करता है और प्रजा का कल्याण करता है। जो पके जौ के समान स्वयं परिपक्व अनुभव और बल से युक्त होकर प्रजा को पुष्ट करता है और जो ज्ञानी, विद्वान् ऋषि के समान यथार्थ बात का वर्णन करता है वह प्रजाओं के बीच सबसे श्रेष्ठ, कार्यकुशल, वेगवान् अश्व के समान धुरन्धर, अन्न ऐश्वर्य से प्रसन्न, तृप्त किया जाकर राष्ट्र मे बल, सामर्थ्य और जीवन को धारण कराता है।

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै।
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥३॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार दूर २ स्थानों तक अपनी दीप्ति को फैलाता है और उसकी ज्वाला को कोई पकड़ नहीं सकता। इसी प्रकार नेता भी दूर दूर स्थानों, देशों तक अपने असह्य तेज को फैलाने वाला हो। वह कर्मों और प्रज्ञानों के कर्ता के समान नित्य, ध्रुव, स्थायी होकर अपने किये कर्मों के फलों का भोक्ता हो। वह घर में स्त्री के समान, राष्ट्र मे सबका अन्न वस्त्र से पालक पोषक और सुखदायक हो। वह सम्पूर्ण राष्ट्र की व्यवस्था के लिए अति अधिक या पर्याप्त हो। वह आश्चर्यजनक कर्मों का कर्ता जो प्रजाओं के बीच तीव्र, तेजस्वी सूर्य के समान अन्यों से प्रकाशित न होने वाला, रथ या सूर्य के समान दीप्तिमान्, उज्ज्वल कर्मों का करने वाला और स्वर्ण आदि ऐश्वर्यों का स्वामी होकर सबको संकट से पार पहुंचाने वाला और संग्रामों में अति दीप्तिमान् हो।

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥४॥

भा०—राजा युद्ध के लिये भेजी या तैयार हुई सेना के समान शत्रु के हृदय मे भय को उत्पन्न करे और राष्ट्र मे बल और सुख की वृद्धि करे और निर्बल राष्ट्रवासी जन की रक्षा करे। बाणों के फेंकने वाले वीर पुरुष की दीप्ति को अग्रभाग मे रखने वाले, तेज मुख वाले खूब गहरे छेदने वाले बाण के समान शत्रुओं को छेदन-भेदन या नाश करने वाला और तेजस्वी मुख वाला हो। वह राष्ट्र का नियन्ता होकर जो प्रकट वर्तमान उसका स्वामी और या अपने समान बलशाली पुरुष के साथ मिलकर युगल पति-पत्नी के समान आगे उत्पन्न होने वाले सब पदार्थों को वश कराने वाला हो। वह ही कन्याओं के समान नव कान्ति से युक्त, उषाओं के प्रथम वयस की समाप्ति करके प्रौढ़ता मे लाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी, उठती प्रजाओं को और अधिक प्रौढ़, ऐश्वर्यवान्, बलवान् बनाने हारा और विवाहित पत्नियों के पति के समान सम विषम, सब दशाओं मे प्रजाओं का सब प्रकार से भरण-पोषण करने वाला हो।

तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥५॥१०॥

भा०—गौए जिस प्रकार घर को आ जाती है उसी प्रकार उस अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शरण को तुम लोग और हम लोग भी चर सम्पत्ति, पशु गण और बसने योग्य गृह आदि स्थिर सम्पत्ति के सहित प्राप्त हों। जिस प्रकार बहने वाला जल नीचे जाने वाली धाराओं को प्रबल वेग से बहाता है उसी प्रकार सिन्धु के समान प्रबल वेगवान् सेनापति समस्त सेना गणों को नियम व्यवस्था मे बांध कर आज्ञा द्वारा प्रेरणा किये जाने वाले सेना बल या भृत्य वर्ग को नीचे प्रदेशों, पदों या अधीन रहने वाली प्रजाओं के प्रति भेजे। जिस प्रकार दर्शनीय सूर्य में किरणें प्राप्त है उसी प्रकार ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुष और बलवान् पुरुष

पुंगव भी दर्शनीय, शत्रु-सतापजनक प्रतापी, तेजस्वी राजा को प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

[६७]

पराशर शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पङ्क्ति । १, २, ४ निचृत् । ५ विराट् । अथवा—द्विपदा विराट् (२, ३, ८—१० निचृत् । ५ भुरिक्)

पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥

भा०—जो वीर पुरुष वनो मे भस्म कर देने वाले अग्नि के समान, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के बीच शत्रुओं का विजय करने वाला हो, जो मनुष्यों के बीच उनका प्राण के समान स्नेही, अन्नादि भोग्य पदार्थ को एव शीघ्रकारी कुशल पुरुष को वरण करता, प्राप्त करता है और जो राजा के समान जरा रहित बलवान् जवान मर्द को अपने कार्य के लिये चुन लेता है वह रक्षक पुरुष के समान सब कार्यों का साधक और सज्जन पुरुष के समान कल्याणकारी, क्रियाकुशल, प्रजावान् पुरुष के समान सब को सुख देने और कल्याण करने वाला, उत्तम आचरण करने वाला, उत्तम रीति से प्रजाओ का पालक, पोषक और धारण करनेवाला सबको उचित अधिकारो, ऐश्वर्यों और वेतनो का देने वाला तथा ग्राह्य और देने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाला हो। वही अग्रणी, ज्ञानी पुरुष 'अग्नि' अर्थात् तेजस्वी पद पर स्थापित करने योग्य है।

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद् गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥

भा०—गुफा या उत्तम ज्ञान मे स्थित विद्वान्, आचार्य देव व अन्य ज्ञानेच्छु पुरुषो को अपने ज्ञान मे धारण करता है। और जिस प्रकार सुरक्षित स्थान मे स्थित राजा विजयी पुरुषो को अपनी शरण में रखता या भय के अवसरो मे नियुक्त करता है उसी प्रकार परमेश्वर

समस्त ऐश्वर्यों को अपने हाथों मे या वश में रखता हुआ ब्रह्माण्ड, आकाश या बुद्धि रूप गुहा मे विराजता हुआ अपने ज्ञान और बल के अधीन पृथिवी सूर्य आदि समस्त दिव्य लोकों, विद्वान् पुरुषों और प्राणों को स्वयं धारण करता है। और इसी बुद्धिरूप गुहा में इसको वे ज्ञान, उत्तम प्रज्ञा और श्रेष्ठ कर्मों के धारण करने वाले योगीजन साक्षात् करते हैं और वे महापुरुष ही हृदय से अति तीक्ष्ण किये हुए, अति सूक्ष्म रीति से विवेचित किये हुए विचारो और वेदमन्त्रों का अन्यों को उपदेश करते हैं।

राजा के पक्ष मे—अपने हाथ मे समस्त ऐश्वर्यों को रखने हारा सम्पन्न पुरुष विद्वानों को अपनी शरण मे रक्खे। वह स्वयं सबकी रक्षा में विराजे। प्रज्ञावान्, विद्वान् जन सुविचारित विचारों और वेदमन्त्रों का उपदेश करें और सबको ज्ञान प्रदान करें।

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥३॥

भा०—गतिमान् और अन्यों को गति देने वाला सूर्य जिस प्रकार पृथिवी को धारण करता है और प्रकाश और आकाश को या उसमें स्थित लोकों को भी आकर्षण द्वारा स्थिर करता है और जिस प्रकार जन्म न लेने वाला, अजन्मा परमेश्वर सत्य ज्ञानों और सत्य वैज्ञानिक नियमों के द्वारा सब लोकों के निवास योग्य भूमि और आकाश को भी धारण करता और थामता है उसी प्रकार विद्वान् राजा भी सत्य विचारों और ज्ञानों मे स्वयं ज्ञानवान् और शत्रुओं का पराजेता होकर प्रजा से बसी पृथिवी और ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वत्-सभा दोनों को धारण करे और विजयशालिनी सेना को भी थामे, अपने वश करे। हे परमेश्वर और राजन्! हे विद्वन्! आप समस्त प्रजाजनों के स्वामी होकर हृदय को सन्तुष्ट करने वाले, प्राप्त करने योग्य ज्ञानों, ऐश्वर्यों और पदाधिकारों तथा उत्तम स्थानों को प्रदान करके पशुओं अर्थात् अज्ञान के बन्धन से हुए

बचाओ। अथवा हे राजन्! तू पशुओ के लिये गोचर स्थानों की रक्षा कर। अथवा उत्तम स्थानो और उत्तम पशुओं को नष्ट होने से बचा। हे विद्वन्! बुद्धि मे स्थिर होकर गूढ़ विज्ञान को प्राप्त कर। हे परमेश्वर! तू बुद्धि के भी अति गूढ़ स्थान मे परम विचार से प्राप्त होता है।

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः सुसाद धारामृतस्य।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥

भा०—जो मनुष्य परम बुद्धि या हृदय मे विद्यमान व्यापक परमेश्वर को जान लेता है और जो सत्य ज्ञानमय वेदविद्या की वाणी को या सत्य व्यवहार को धारण करने वाली विद्या, शास्त्र-व्यवस्था को प्राप्त कर लेता, अपने वश कर लेता है और जो विद्वान् पुरुष परस्पर एक स्थान पर संगत होकर सत्य तथा सत्य ज्ञानो को विशेष रूप से और विविध प्रकारो से खोलते, उनको प्रकट करते हैं। वह पूर्वोक्त शासक पुरुष उस विद्वान् जन के लिए नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने का प्रवचन करे।

वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥५॥११॥

भा०—जो परमेश्वर विविध रूपों से छुपे कार्यों को प्रकट करने वाले कारणो मे से अपने महान् सामर्थ्य से आगे उत्पन्न होने वाले कार्यों को विविध रूपों से प्रकट करता है। और जो लताओं में विविध रूपों में प्रकट करता है और माताओं के गर्भ मे जो प्रजाओ को विविध प्रकारों से उत्पन्न करता है, वह ज्ञानवान्, चित्-स्वरूप सब में चेतना को देने वाला, सबका जीवनाधार होकर प्राणों और जलो के बीच में समस्त प्रजाओ को उत्पन्न करता है। ध्यानी, बुद्धिमान् पुरुष निर्माण करके जैसे अपना घर खड़ा कर लेते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष जिसको अच्छी प्रकार जान करके अपना परम आश्रय या शरण बना लेते है।

राजा के पक्ष मे—राजा शत्रुओं को विविध उपायों से रोकने वाली

सेनाओं और उत्तम ऐश्वर्यवान् धनाढ्यों के आधार पर प्रजाओं को विविध उपायों से वश करे। वह स्वयं ज्ञानवान्, प्रजाओं को चेताने वाला हो। प्रजाओं के दमन में तत्पर हो और सबके जीवनों का रक्षक हो। धीर जन उसको अच्छी प्रकार राजा बनाकर सब प्रजा के शरण स्थान के समान बनावें। इत्येकादशो वर्गः।

[६८]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ १, ४ निचृत्। अथवा—द्विपदा विराट् (१, ७ निचृत्)॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

श्रीणन्नुप॑ स्थाद्दिवं॑ भुरण्युः स्थातुश्चरथ॑मक्तून्व्यू॑र्णोत्।
परि॒ यदे॑षामेको॒ विश्वे॑षां॒ भुव॑द्दे॒वो दे॒वानां॑ महि॒त्वा॥ १॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य सबका पालक पोषक होकर ओषधियों को परिपक्व करता है, आकाश में स्थित होता है और स्थावर तथा जंगम, चराचर जगत् को प्रकाशित करता है और वह समस्त प्रकाशमान पिण्डों में से अपने महान् सामर्थ्य के कारण सबसे श्रेष्ठ है, इसी प्रकार परमेश्वर समस्त ब्रह्माण्ड का कालाग्नि द्वारा परिपाक करता हुआ ज्योतिर्मय प्रकाश को तथा महान् आकाश और समस्त तेजोमय सूर्य आदि को व्यापता है। वह सबका पालक पोषक प्रभु स्थावर और जंगम संसार को और जगत् को प्रकाशित करने वाले किरणों या रात्रियों को विविध प्रकार से प्रकट करता है, उनके अन्धकारों के आवरणों को दूर कर प्रकाशित करता है। अकेला ही इन सब प्रकाशक और सुखप्रद लोकों और पदार्थों के बीच अपने महान् सामर्थ्य से सबसे बड़ा प्रकाशक और सुखदाता होकर सर्वत्र विद्यमान है। विद्वान् और राजा ज्ञान और विद्वत् सभा को दृढ करता हुआ स्थावर और जंगम को पोषण करे, प्रकाशकारी विज्ञानों को प्रकट करे। वह अकेला ही अपने महान् सामर्थ्य से सब विद्वानों और विजिगीषुओं में सबसे बड़ा बने।

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥

भा०—जो तू हे जीवात्मन्! जीव सूखे काठ से प्रज्वलित अग्नि के समान कार्य आदि के शोषण रूप तप, धर्मानुष्ठान से विशेष रूप से प्रकाशित होता है तब ही समस्त प्राण आदि गण और मनुष्य जन तेरे ज्ञान और कर्म का प्रेम से ग्रहण करते और सेवन करते है। और ज्ञान मार्गों से अविनाशी मोक्षमय परम सत्य को प्राप्त होते हुए सभी वे विद्वान् गण दिव्य गुण से युक्त स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर! सर्वव्यापक, सर्वज्ञानमय अनादि सत्य स्वरूप तेरी ही ये समस्त उत्तम कोटि की प्रेरणाएं है। और ध्यान, धारणा और उस द्वारा आनन्द रस का पान भी अनादि सत्य स्वरूप तेरे ही, जल के पान के समान शान्तिदायक और जीवन के वर्धक हैं। इसी से तू समस्त लोकों और प्राणियो का जीवन स्वरूप, प्राणो का प्राण है। समस्त जन तेरे उपदिष्ट सत्य कर्मों ही को करें। जो तेरे निमित्त अपने आपको समर्पण करें और जो कोई तेरे विषय की अन्यो को शिक्षा दें तू सब कुछ जानता हुआ उसको ऐश्वर्य प्रदान कर।

राजा और विद्वान् के पक्ष मे—हे राजन्! हे विद्वन्! तू सत्य व्यवस्था और ज्ञान का प्रेरक, उपदेशक और धारक हो। सब तेरे बनाये नियम कर्तव्यो का पालन करें। जो तुझे धन दे और जो तुझे उत्तम शिक्षा दे उसके ऐश्वर्य धन की तू भी रक्षा कर। अथवा उसको तू ऐश्वर्य प्रदान कर।

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥

भा०—सब सुखों का दाता परमेश्वर मननशील पुरुष के होने वाले संतान में भी अधिष्ठातृ रूप से विद्यमान है। वह ही इन समस्त ऐश्वर्य-मयी, रमण करने हारी, उत्पादक शक्तियों का पालक है। इसी कारण मूढ़ता रहित, ज्ञानवान् प्रजाजन और मरण या मृत्यु से रहित युवा पुरुष पुत्र प्राप्त करने की चाह करते हैं। और परस्पर मिल कर अपने प्राण बलों से एक दूसरे के शरीर में सन्तान उत्पादक वीर्य को ही पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ जानते हैं।

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य शासं तुरासः।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥१०॥१२॥

भा०—पुत्रगण जिस प्रकार प्रेम से पिता के ज्ञानमय उपदेश को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष अति शीघ्रकारी, आलस्य रहित होकर इस परमेश्वर या आचार्य या अग्रणी नायक के शासन को प्रेम और आदर से श्रवण करते और उसको बिना विलम्ब के पालन करते हैं। दमन करने वाले, ज्ञान से युक्त, जितेन्द्रिय, सर्ववशकारी वह विद्वान् या परमेश्वर बहुत से अन्नादि कर्मफलों का स्वामी होकर ऐश्वर्यों और द्वारों को खोल देता है, प्रकट करता है। नक्षत्रों से आकाश के समान उनके दुःखरहित सुख को उत्तम उत्तम गुणों से जड़ देता है। उसी प्रकार जो प्रजागण राजा के शासन को पिता के पुत्र के समान सुनते और पालते हैं वह जितेन्द्रिय राजा उन्हें ऐश्वर्य प्राप्ति के उनको नाना द्वार खोल देता है, उनके सौभाग्य को नाना उत्तम सुखों से सजा देता है। इति द्वादशो वर्गः॥

[६९]

पराशरः शक्तिपुत्र ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—पङ्क्तिः। २, ३ निचृत्। ४ भुरिक्। ५ एकोना विराट्। अथवा—द्विपदा विराट् (४, ६, ६ निचृत्। ८ भुरिक्। १० विराट्)। पञ्चर्चं दशर्चं वा सूक्तम्॥

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥१॥

भा०—शुद्ध, कान्तिमान्, प्रभात वेला को अपने उदय और प्रवेश से जीर्ण करने अर्थात् समाप्त करने हारे सूर्य के समान निरन्तर तेजस्वी, सब पदार्थों को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने हारा और सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार परस्पर संगत भूमि और आकाश दोनो को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ज्ञान-प्रकाश का प्रकाशक, सूर्य के तुल्य विद्वान् पुरुष परस्पर सम्बन्ध से मिले हुए स्त्री पुरुष दोनो को ज्ञान से पूर्ण करने हारा हो । हे विद्वन् ! तू विज्ञान और उन्नत कर्मों द्वारा ही ऊपर उत्तम रीति से विराजमान हो । और तू विद्वान् उत्तम पुरुषों का पुत्र, शिष्य होकर ही अन्य विद्या के अभिलाषी शिष्यों का भी पिता के समान आचार्य, परिपालक, गुरु हो ।

वीर्य के पक्ष में—आकाश में सूर्य के समान वीर्य देह में कान्तिजनक है । वह परस्पर संगत प्राण और अपान दोनों को पूर्ण बल देता है, वह ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से सबके ऊपर होकर प्राण गण को 'पुं' नाम नरक अर्थात् शरीरिक कष्टों से बचाने से 'पुत्र' और उनका पालक होने से 'पिता' है । वीर्य रक्षा से देह मे रोगादि नहीं होते और सभी इन्द्रियें बलवान् और सुरक्षित रहती है ।

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥

भा०—ज्ञानवान्, मेधावी और उत्तम कर्त्तव्यो का विधान और उपदेश करने वाला अग्रणी ज्ञानी पुरुष विशेष रूप से और विविध विद्याओं का ज्ञाता होकर भी गर्व रहित हो । वह गौवो के थान के समान उत्तम ज्ञान रसों का देने वाला और पुष्टिकारक अन्नो का खाने वाला और अन्यों को उत्तम अन्नो का खिलाने वाला हो । वह जनों के बीच में

सबको सुखकारी सर्व प्रिय के समान आदर से बुलाने योग्य हो। वह प्राप्त होकर समस्त सभा जनों के बीच में विराजमान हो। और घर में सबको आनन्द देने हारा हो।

अध्यात्म में—आत्मा ज्ञानवान्, गर्वरहित, गायों के थान के समान आनन्दघन, अन्नादि कर्म फलों का भोक्ता, सुखकारी, स्मरणीय, देह के बीच विराजमान नवद्वारमय देह में जो रमण करने हारा है, वह भी 'अग्नि' कहाता है।

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥३॥

भा०—उत्पन्न हुए सुशील पुत्र के समान घर में सबको सुखी करने हारा, स्वयं प्रसन्न और सन्तुष्ट रह कर अश्व के समान वेगवान्, ज्ञानवान्, बलवान् होकर प्रजाओं को विद्वान् सभापति या राजा विविध संग्रामों और कष्टों से पार कर देता है। वह अग्रणी, ज्ञानी पुरुष, अग्नि के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र के व्यापक, सार्वजनिक हितकारी कार्य में एक ही देश या स्थान में रहने वाली प्रजाओं को अपने नायक पुरुषों द्वारा वश करे। और सब विद्वानों के योग्य पदों और उत्तम २ कार्यों को अन्यों को प्राप्त करावे और स्वयं प्राप्त करे।

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! तेरे नियत किये हुए एवं उपदिष्ट इन कर्त्तव्यों और धर्मों का कोई भी नाश नहीं करे, कोई भी नहीं तोड़े। जिससे तू इन मनुष्यों के हित के लिये अति शीघ्र ही सुखजनक कार्य, प्रबन्ध अथवा उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थ प्रदान करता है और जिस कारण से तू अपने समान मान, आदर और बल से युक्त विद्वान् नायक, नेता पुरुषों के साथ मिलकर आज्ञा-वचनों को प्रकट करता है और उनसे मिलकर जब तेरा जो भी कार्य होता है उसको भी कोई नाश नहीं करे।

अथवा जब कोई तेरे कार्य का नाश करे, तभी तू अपने समान बलवान् पुरुषों से मिलकर उनके सहोद्योग से बाधक कारणो को दूर कर ।

उषा न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके ॥५॥१३॥

भा०—प्रभात वेला को अपने उदय से जीर्ण अर्थात् समाप्त कर देने वाले सूर्य के समान विशेष प्रभा से युक्त तेजस्वी राजा और विद्वान् समस्त प्रजाओं को समस्त रूपों, प्रजाजनों और ऐश्वर्यों को जानने वाला, सुख से बसाने वाला होकर उस प्रजाजन को जाने, उसके अभिमत फल प्रदान करे । और स्वय उस दर्शनीय पुरुष के अधीन रहकर सुखजनक ऐश्वर्य को धारण करते हुए उसके आगे आदर से झुके और द्वारों को उसके स्वागत के लिये खोल दें ।

परमात्मा के पक्ष में—वह परमेश्वर सूर्य के समान विशेष कान्ति से युक्त, समस्त पदार्थों का ज्ञाता प्रकाशमान्, सबमें बसने वाला, अन्तर्यामी है । सब मनुष्य उसका ज्ञान करें । अथवा वही उस जीव को ज्ञान और सुख प्रदान करता है । विद्वान जन सब अपने आत्मा से सुख और ज्ञान को धारण करते हुए दुष्ट भावो को दूर करें और उस परम दर्शनीय प्रभु के अधीन होकर स्तुति करें । इति त्रयोदशो वर्गः ।

[७०]

पराशर शाक्त्य ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —पङ्क्ति. । १, ४ विराट् । ३, ५ निचृत् ॥ षडर्च एकादशर्च वा सूक्तम् ॥

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार उत्तम कान्ति, ज्वाला और दीप्ति से युक्त होकर समस्त पदार्थों को व्यापता है या खा जाता अर्थात् भस्म कर देता है, उसी प्रकार बुद्धि और विज्ञान के बल से सबका स्वामी ज्ञान-

वान् राजा उत्तम कान्तिमान् तेजस्वी होकर ऐश्वर्य से समृद्ध, धनधान्य से पूर्ण प्रजाओं और समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्यों को व्यापता और उनका भोग करता है। वह विद्वानों के बताये अथवा सूर्य, मेघ आदि के लोकोपकारक गुणों के अनुकरण में प्रजा के हितकारी कर्त्तव्यों को और मननशील जनों के जन्म को भी पालन करे और उसको सफल करे। हम सब उसकी ही शरण जावें।

ईश्वर के पक्ष में—वह ज्ञान से सबका प्रेरक, स्वामी, तेजस्वी होकर सब पूर्ण शक्तियों, प्रजाओं और सब पदार्थों में व्यापक है। वह सर्वज्ञ, सब दिव्य पदार्थों के धर्मों को और मननशील प्राणियों के जन्मों तक को व्यापता है, उनको जानता है, हम उसकी उपासना करें।

जीवपक्ष में—जीव अपने बुद्धि बल से सब शक्तियों का तेजस्वी अग्नि के समान ज्ञान करे और भोग करे। वह दिव्य पदार्थों और विद्वानों के गुणों, धर्मों और कर्त्तव्यों जाने और फिर मानुष जन्म को प्राप्त करे, हम उस जीव को जानें।

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः॥२॥

भा०—जो परमेश्वर प्राणों और सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुओं और लोकों के बीच गर्भ के समान छुपा है या उसको पकड़ने या थामने और वश करने वाला है। जो किरणों के बीच सूर्य के समान सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को वश करता है। जो स्थावर, अचेतन पदार्थों के भीतर व्यापक, उनको भी वश करने वाला है। जो विचरने वाले जगम पदार्थों के बीच व्यापक और उनका भी वशीकर्त्ता है [मन्त्र सख्या अष्टौ शतानि (८००)] और वह पर्वत के समान अभेद्य, कठिन पदार्थ के बीच में और गृह के समान द्वारवान्, सच्छिद्र पदार्थों में भी व्यापक है, जो प्रजाओं को सुख से बसाने वाले राजा के समान समस्त पदार्थों में चेतना रूप से विद्यमान, जन्म-मरण रहित, अमृतमय और समस्त संसार को

उत्तम रीति से धारण करने हारा, स्थापन करने हारा और सबको पोषण करने हारा है। हम उसी परमेश्वर का भजन करें।

जीवपक्ष मे—जो अप् अर्थात् लिङ्ग शरीरो और प्राणो के बीच छुपा, उनको ग्रहण या धारण करने वाला है, वनस्पतियो के बीच छुपा हुआ या सेवनीय पदार्थों का भोक्ता है। वह चर, अचर, स्थावर, जंगम मे भी विद्यमान है। कठिन पदार्थ अस्थि और गृह के समान देह मे भी विद्यमान है। वह 'विश्वरूप' सब प्राणियो मे प्रविष्ट, न नाश होने वाला, सब कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता, उत्तम कर्म और ज्ञानवान् है। उसके भोग के लिये ये सब पदार्थ हैं। उस जीव को हम जानें, प्राप्त करें।

स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्ताँश्च विद्वान् ॥३॥

भा०—जो परमेश्वर और ज्ञानी पुरुष इस मनुष्य प्राणी को उत्तम उपदेश वचनों से बहुत अधिक ज्ञान प्रदान करता है वह ही अग्नि जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को नाश करने से रात्रि का स्वामी कहाता है, उसी प्रकार अज्ञानमय मोहरात्रि का नाश करने वाला ज्ञानमय परमेश्वर ऐश्वर्यों को अपने उपासको के लिए बहुत अधिक प्रदान करता है। हे ज्ञानवन् विद्वन् और परमेश्वर! विद्वानो और उत्तम गुणो की उत्पत्ति और सब मनुष्यो को भी उनके विषय मे अच्छी प्रकार जानते हुए इन समस्त भूमिवासी जीवो और पदार्थों की रक्षा कर।

इसी प्रकार अग्रणी पुरुष प्रजाजन को ऐश्वर्य दे, उत्तम वचनो से ज्ञान दे और वह सब उत्तम व्यवहारो, विद्वानो और मनुष्यों को जान कर उनके हितार्थ नाना ज्ञानो और धनो की रक्षा करे।

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्।
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥४॥

भा०—अँधेरी रात्रियें जिस प्रकार उगते सूर्य या प्रकाशमान् अग्नि को बढ़ाती हैं, उसके महान् सामर्थ्य को प्रकट करती हैं, इसी प्रकार जिस

अग्रणी नायक को त्रिविध रूपों वाली, विविध प्रकार की, पूर्व से ही विद्यमान या पूर्व शिक्षित, सिद्धहस्त, नाना साधनों से पूर्ण, शत्रु-नाशकारिणी सेनाएं बढावें और जो जल से युक्त वा सूर्य से प्रेरित भूमि स्थावर वृक्ष से बने रथ के तुल्य स्थिर पार्थिव जड़ पदार्थ से ही जगत् के मरण के योग्य भूमण्डल को रथवत् बनाता है। इसी प्रकार जो राजा सत्य न्याय से उज्ज्वल स्थावरों पदार्थों से रथ के तुल्य, रमणीय स्थिर राजा के लिये उत्तम आनन्दप्रद राज्य का निर्माण करता है। वह समस्त कर्मों को सर्वहितकारी, सत्य, न्यायानुकूल, ठीक ठीक करता हुआ प्रजा का सुखकारी, प्रतापी और तेजस्वी राज-पद पर विराज कर विद्वान् के समान सबको सुखों, अधिकारों और ऐश्वर्यों का देने वाला होकर सेवित और आश्रय किया जाता है। उसी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य को नाना प्रकार की सर्ग-प्रलय-कारिणी शक्तियां बढ़ा रही हैं। जिस सत्यज्ञानमय की महिमा को चराचर जगत् बढ़ा रहा है, वह सब सत्य कर्मों के करने वाला सुखमय, सर्वसुखप्रद, सर्वत्र व्यापक परमेश्वर उपासना और आराधना करने योग्य है।

जीव के पक्ष में—रात्रियां और दिन जिसके शरीर को बढाती हैं, प्राणों से युक्त जिसके सामर्थ्य को चर अचर देह बतला रहे हैं, वह सब कर्मों का कर्त्ता सुखकारी, सुखप्रद, हृदय में स्थिर आत्मा साधना करने योग्य है। अत्र "स्थातुः। च। रथम्।" इति पदपाठश्चिन्त्यः॥ स्थातुः। च रथम्। इति पदपाठः (१।५८।५) (१।६८।१) इत्यत्र च द्रष्टव्यः।

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥५॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पृथिवी आदि लोकों और ज्ञान-वाणियों में और सेवन करने योग्य किरणों और जलों में, सूर्य के समान उत्तम कथन करने योग्य गुण को धारण कराता है। सब ही हममें से आदित्य के समान तेजस्वी बलवान् तुझ को प्राप्त होते हैं। बहुत से मनुष्य तेरी

विविध प्रकार से उपासना करते हैं। बूढ़े पिता के धन को जिस प्रकार पुत्र ले लेते हैं उसी प्रकार अति पुराण, सनातन पालक तुझ से परम ज्ञान और ऐश्वर्य को सब मनुष्य प्राप्त करें।

राजा के पक्ष में—राजा गौ आदि पशु और भोग्य ऐश्वर्यों के निमित्त उत्तम कीर्ति को धारण करे। सब सुखकारी, प्रतापी, बल्वान् को शरण रूप से प्राप्त हो या कर प्रदान करें। नायक जन उसकी सेवा करें। पिता के धन के समान उसके ऐश्वर्य को प्रजागण भोग करें या बढ़ावें।

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥६॥

भा०—यह परमेश्वर साधना करने वाले भक्त के समान ही उसकी उन्नति करने का अभिलाषी होता है। वह शस्त्रास्त्र की वर्षा करने वाले शूरवीर के समान दुःखों को दूर फेंक देने वाला या पृथिवी आदि लोकों का संचालक और सर्वत्र व्यापक है। वह चढ़ाई करने वाले राजा के समान सदा अन्धकार पर विजय पाने वाला अति कान्तिमय होकर आत्मा वा परमात्मा के साथ मिलकर, प्राप्त करने योग्य आनन्द लाभ के अवसरों पर अनुभव करने योग्य है।

राजा या सेनापति के पक्ष में—वह राज्यवृद्धि की आकांक्षा करता है, धनुर्धर के समान सदा शूरवीर, सेना बल से प्रयाण करने वाला होकर अति भयानक संग्राम के अवसरों पर अति तेजस्वी हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१]

पराशर शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द—त्रिष्टुप्। २, ५ निचृत्। ३, ४, ८, १० विराट्। ६ एकोना विराड् त्रिष्टुप् भुरिक् पङ्क्तिर्वा ॥

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥

भा०—कामनाशील स्त्रियें अपने कामना युक्त पति को जिस प्रकार प्राप्त होकर उसे प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार एक ही देश में रहने वाली

प्रजाएं प्रेमपूर्वक चाहती हुई अपने प्रति प्रेम करने वाले पालक राजा को प्राप्त होकर उसे अच्छी प्रकार समृद्ध करें। किरणें जिस प्रकार अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई कुछ कुछ अन्धकार से अँधियारी, कुछ २ ललाई लिये हुए उषाकाल को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाली भूमियें, उनके निवासी प्रजागण या विद्वान् जन ज्ञान से सम्पन्न, आगे बढ़ने वाले कान्तिमान्, तेजस्वी संग्रह करने योग्य अद्भुत ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले शत्रुओं को जला डालने वाले राजा या विद्वत्सभा को प्राप्त हों।

परमेश्वर के पक्ष में—प्रेम वाली स्त्रियें जिस प्रकार प्रेमी पति को चाहती हैं उसी प्रकार एक स्थान की प्रजाएं अपने पालक नित्य परमेश्वर का भजन करें। किरणें जिस प्रकार उषा को प्राप्त हों उसी प्रकार विद्वान्, ज्ञानवाली प्रजाएं पापनाशक, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करें।

वी॒ळु चि॑द्दृ॒ळ्हा पि॒तरो॑ न उ॒क्थैरद्रिं॑ रुज॒न्नङ्गि॑रसो॒ रवे॑ण ।
च॒क्रुर्दि॒वो बृ॑ह॒ती गा॒तुम॒स्मे अहः॒ स्व॑र्विविदुः के॒तुमु॒स्राः ॥ २ ॥

भा०—विश्व को पालन करने वाले वायु गण जिस प्रकार बड़े बलवान्, दृढ मेघ को छिन्न-भिन्न कर देते हैं और अग्नि से बलवान् विद्युतें या बारूद की नालें जिस प्रकार बड़ी गर्जना सहित दृढ पर्वत को तोड़ फोड़ देती हैं उसी प्रकार प्रजा का पालन करने वाले ज्ञानी पुरुष और देह में प्राणों के समान देश के रक्षक वीर जन ज्ञानोपदेशों से बड़े बलवान् और दृढ अभेद्य अज्ञान अन्धकार को और शत्रु गढ़ को बड़े भारी वेदमय शब्द और घोर गर्जना से तोड़ें, विनाश करें। किरणें जिस प्रकार सब पदार्थों के ज्ञान कराने वाले प्रकाश को उत्पन्न करती हैं और आदित्य को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् पुरुष बड़े भारी ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होने के लिये हमें मार्ग का उपदेश करें। और अधीन होकर वास करने वाले अन्तेवासी, शिष्यगण ज्ञानवान् गुरु को प्राप्त हों। अथवा निष्ठ होकर रहने वाले पुरुष सुखकारी ज्ञानवान् परमेश्वर को

ज्ञान करें, उसे प्राप्त हो। इसी प्रकार वीर पुरुष हमारे हित के लिये बड़े तेजस्वी पुरुष के अधीन पृथिवी को करें। और वे विद्वान् सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुओं से न मारे जाने वाले, ध्वजा के समान ऊंचे वीर पुरुष को प्राप्त हो।

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वोः विभृत्राः।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

भा०—स्वामी, वैश्यगण जिस प्रकार धन का संग्रह करते हैं और उस की वृद्धि करते हैं और मितव्ययता से स्वयं उसका भोग न कर के साधु-सज्जनो और सन्तानो पर व्यय कर देते हैं उसी प्रकार विद्याभिलाषिणी कन्याएं और गृह की स्वामिनी, ज्ञान, ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली, विविध उपायो से प्रजाओ का भरण पोषण करने मे कुशल होकर सत्य वेद, ज्ञान को धारण करें और धन का लाभ करें या उसे धन के समान सञ्चय करें और बाद मे भी उसका अध्ययन और चिन्तन तथा स्मरण और पोषण करें। वे तृष्णा से या लोलुपता से धन का लोभ न करती हुई अच्छी प्रकार विद्वान् पुरुषो को और अपने से उत्पन्न हुए पुत्रो को उत्तम ज्ञान और अन्न से बढाती हुई उत्तम कर्मो और फलो को प्राप्त हो।

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विशेष बल को धारण करनेवाला या विविध प्रजाओ का पालक पोषक नली आदि द्वारा विशेष उपाय से धारण किया जाकर वायु इस अग्नि को मथता है, नाना प्रकार से तेज करता है, तब वह घर घर मे श्वेत, शुभ्रवर्ण का होकर प्रकट होता, प्रकाशित होता है। तभी वह भूनने वाला, तीव्र अग्नि के रूप मे होकर ताप-क्रिया को प्रकट करता है। उसी प्रकार विशेष एवं विविध प्रजाओं का पोषक और विशेष रूप से धारित और पोषित पृथिवी पर वेग से पयाण करनेवाला राजा इस

अग्रणी नायक को मथे, प्रकट करे। अर्थात् संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा जो सबसे अधिक उत्तम सिद्ध हो उसको अग्रणी सेनापति बनावे। वह प्रत्येक स्वीकार करने और प्रजा और देश को अपने वश करने के अधिकार पर अति प्रबल और सम्पन्न होकर विजयशील हो। इसके अनन्तर सब पदार्थों को भून देने वाले, अग्नि के समान शत्रुओं को पीडित करने मे समर्थ होकर राजा उस नायक को समवाय बल मे प्राप्त होकर अर्थात् उसे उच्च-पद प्रदान कर राजा के समान प्रबल राष्ट्र के विजय के लिए दूत अर्थात् अपने प्रतिनिधि के कार्य पर स्थापित करे।

म॒हे यत्पि॒त्र ईं॒ रसं॑ दि॒वे कर॒व त्स॑रत्पृश॒न्य॑श्चिकि॒त्वान्।
सृ॒जदस्ता॑ धृष॒ता दि॒द्युम॑स्मै॒ स्वाया॑ दे॒वो दु॑हि॒तरि॒ त्विषिं॑ धात् ॥५॥

भा०—मनुष्य जब सबसे बड़े पालक परमेश्वर के ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त करने के लिए प्राप्त करने योग्य साक्षात् रसरूप आत्मानन्द का सम्पादन करता है तब वह ज्ञानवान् होकर परमेश्वर को स्पर्श करता हुआ अर्थात् उसका योगाभ्यास द्वारा आनन्द लेता हुआ बन्धन से मुक्त हो जाता है या अन्धकार को दूर करता है। धनुर्धर जिस प्रकार प्रगल्भता से बाण फेंकता है उसी प्रकार सब विषय वासनाओं या कर्मबन्धनों को दूर फेंकने हारा, बाधक कारणों को पराजित करने वाले सामर्थ्य से साधक के इस हित के लिए अज्ञान-नाशक ज्ञान-प्रकाश को प्रदान करता है और सूर्य जिस प्रकार अपनी कन्या के समान उषा मे कान्ति को धारण कराता और कामनावान् पति अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली अपनी भार्या मे तेज अर्थात् वीर्य को धारण करता है, उसी प्रकार दानशील, ज्ञानों का प्रकाशक परमेश्वर या प्रकाश का द्रष्टा आत्मा अपनी कन्या के समान अपने ही से उत्पन्न होने वाली, सब सङ्कल्पों को पूर्ण करने वाली प्रकृति अथवा परमानन्द रस को दोहन अर्थात् प्राप्त करने वाली चिति शक्ति में कान्ति, तेज, प्रकाश और दीप्ति को धारण करता है।

राजा के पक्ष मे—जैसे बड़े भारी जगत् के पालक आकाश या

प्रकाश के लिए क्षितिज को स्पर्श करने वाला सूर्य इस प्रकाश को फेंकता और अन्धकार को दूर करता है, वैसे ही प्रजापालक ज्ञानी पुरुष सबके पालक ज्ञान-प्रकाश के लिए ऐसे बल को उत्पन्न करे और शत्रु को दूर करे। धनुर्धर होकर प्रगल्भता से शत्रु पर बाण फेंके। दानशील या विजिगीषु राजा अपने ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाली प्रजा मे तेज पराक्रम को धारण करावे और उसके आश्रय रहकर अपने मे तेज करे। इति पञ्चदशो वर्गः।

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे आचार्य ! तेरे लिये, तुझे प्राप्त व प्रसन्न करने के लिये जो पुरुष अपने घर में या अपने इन्द्रियो के दमन कार्य या देह मे सब प्रकार से विशेष तेजस्वी होकर सूर्य के समान चमकता है, प्रतिदिन कान्तिमय देव और प्रिय आचार्य के लिये नमस्कार आदर और अन्नादि पदार्थ प्रदान करता है हे ज्ञानवन् ! आचार्य ! परमेश्वर ! तू विद्या और शिक्षा से तथा ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ाने हारा होकर इस शिष्य या साधक के ज्ञान, बल और आयु को बढ़ा देता है और तू जिस रथवान्, देहवान् या आत्मवान् या आनन्द रस से युक्त पुरुष को सन्मार्ग पर चलाता है वह ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है।

राजा के पक्ष मे—जो तेरे शासन में चमक जाता है और जो सब दिनों तेरा आदर करता और तुझे इच्छानुसार अन्नादि देता है, हे अग्रणी राजन् ! तू राजा प्रजा दोनो को बढ़ाने हारा होकर उसके बल को बढ़ा और जिस रथारोही, महारथी शासक को तू अपनी आज्ञा मे चलावे उसे ऐश्वर्य से युक्त कर।

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥

भा०—क्षरने वाली, देशों में सर्पण करने वाली, बहती बहती बड़ी बड़ी नदियां जिस प्रकार समुद्र को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार समस्त विद्याभिलाषी जन ज्ञानवान् आचार्य को प्राप्त करते है और समस्त परस्पर सम्पर्क, परस्पर सहयोग से मिलकर एक हुई सेनाएं और संगठित प्रजाएं अग्रणी नायक और सेनापति का आश्रय लेती है। हमारा सेना बल और अन्नादि ऐश्वर्य बन्धुओं द्वारा जाना जाय, अर्थात् कोई हमारे बल और ऐश्वर्य का पार न पा सके। ज्ञानवान् पुरुष विद्वानों और विजयी पुरुषों के द्वारा उनके बल पर उत्तम ज्ञान और स्तम्भन बल प्राप्त करावें।

परमेश्वर के पक्ष में—समुद्र का नदियों के समान, समस्त भक्त जन ज्ञानवान्-प्रभु का आश्रय लेते है। हमारा ज्ञान और आयु इन्द्रियों द्वारा व्यय न हो। वह ज्ञानी आत्मा विद्वानों और प्राणों के आश्रय उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

आ यदि॒षे नृ॒पतिं॒ तेज॒ आन॒ट् शुचि॒ रेतो॒ निषि॑क्तं॒ द्यौर॒भीके॑।
अ॒ग्निः शर्ध॑मनव॒द्यं युवा॑नं स्वा॒ध्यं॑ जनयत्सू॒दय॑च्च ॥ ८ ॥

भा०—जो तेज या ओज, आग्नेय तत्व शरीर में, जीवन की रक्षा करनेवाले या प्राणों के पालन करने वाले पुरुष को अन्न के खाने पचाने तथा कामना और संकल्प करने के लिए प्राप्त होता है वही अति शुद्ध वीर्य स्त्री-पुरुष के परस्पर संग-काल में गर्भ में स्थापित किया जाता है। तभी तेजस्वी, सूर्य व अग्नि के समान कामना से युक्त पुरुष वीर्यवान् दोष रहित हृष्ट पुष्ट, युवा होने वाले उत्तम गुणों और कर्मों को धारण करने वाले अथवा उत्तम ध्यान ज्ञान वाले पुत्र को उत्पन्न करता है और उसको उत्तम मार्ग में प्रेरित करता है।

राजा के पक्ष में—सब पर शासन करने के लिये राजा को शुद्ध शासन-बल अभिषेक द्वारा प्राप्त हो। वह अपने राष्ट्र में अग्रणी तेजस्वी,

युद्ध मे अनिन्दनीय, उत्तम बलवान्, युवा पुरुषो को पैदा करे और उनको ठीक राह पर चलावे।

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥

भा०—जो शूरवीर राजा और ज्ञानी विद्वान् मन के समान तीव्र होकर अकेला शीघ्र ही युद्ध के मार्ग के समान इस ससार के आवागमन के मार्ग को भी पार कर जाता है और जो दूसरा सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष एक ही साथ सत्य गुणों और ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है, वे दोनो शरीर मे प्राण और अपान के समान राष्ट्र मे रहते हुए मित्र, सबका स्नेही, ज्ञानवान् ब्राह्मण और 'वरुण' दुष्टों का वारक क्षत्रिय दोनों गुणों से प्रकाशमान, मन्त्री और राजा, उत्तम बलवान् बाहुओं वाले अथवा श्रेष्ठ व्यवहारो मे कुशल, गौओं मे तृप्तिकारी दुग्ध रस के समान विद्वानों और प्राणो मे प्रिय, अमृत, आत्मज्ञान या आत्मतत्व के समान भूमियों मे और प्रजाओं में सबको तृप्त करने वाले जल और अन्न की रक्षा करते हुए रहे।

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन्।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१०॥१६॥

भा०—हे ज्ञानवन्! अग्रणी राजन्! प्रभो! तू हमारे पिता, पितामह आदि से चले आये मैत्री भावो को नष्ट मत होने दे। तू क्रान्तदर्शी, विद्वान् और सब पदार्थों का जानने हारा होकर सदा हमारे सन्मुख रह। बुढ़ापा इस रूप को जल के समान या मेघखण्ड के समान नाश कर देता है उस महा विपत्ति या सङ्कट या मृत्यु के पहले ही तू हमे ज्ञान प्रदान कर अर्थात् जीवन मुक्त कर। इति षोडशो वर्गः।

[७२]

पराशर, शाक्त्य ऋषि:॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—त्रिष्टुप। १, २, ५, ६, ९ विराट्। ७ निचृत्। ३, ८ एकोना विराट् त्रिष्टुप्। भुरिक्पङ्क्तिर्वा।

नि काव्या॑ वे॒धसः॒ शश्व॑तस्क॒र्हस्ते॒ दधा॑नो॒ नर्या॑ पु॒रूणि॑ ।
अ॒ग्निर्भु॑वद्रयि॒पती॑ रयी॒णां स॒त्रा च॑क्रा॒णो अ॒मृता॑नि॒ विश्वा॑ ॥१॥

भा०—जो पुरुष अनादि सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर के विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों का अथवा सृष्टि नियमों का अच्छी प्रकार अभ्यास करता है। वह मनुष्यों के हितकारी बहुत से ज्ञानों को हाथ में, अपने वश मे रखता हुआ ज्ञानी पुरुष, अग्रणी नायक, समस्त जलों के समान जीवनप्रद, अन्नों के समान सुखप्रद, अमृत ज्ञानों को और नित्य सत्यार्थ प्रतिपादन करने वाले वेद-ज्ञानों को अपने आत्मा मे प्रकाशित करता हुआ सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का ईश्वर या स्वामी हो जाता है।

अ॒स्मे व॒त्सं परि॒ षन्तं॒ न वि॑न्दन्नि॒च्छन्तो॒ विश्वे॑ अ॒मृता॒ अमू॑राः ।
श्र॒म॒युवः॑ पद॒व्यो॑ धियं॒धास्त॒स्थुः प॒दे प॑र॒मे चार्व॒ग्नेः ॥ २ ॥

भा०—हम मे से सब मे व्यापक होकर बसने वाले सबके ऊपर, सबके भीतर और बाहर विद्यमान प्रभु को चाहते हुए भी सब कोई उसे नहीं पाते। प्रत्युत मोहरहित, ज्ञानी, श्रमशील, तपस्वी, परम पद को प्राप्त कराने वाले ज्ञान और कर्म के धारण करने वाले, अमर जीव, सूक्ष्म जल जिस प्रकार सूर्य के किरणों द्वारा उच्च आकाश मे चले जाते हैं उसी प्रकार उस ज्ञानमय प्रभु के परम प्राप्तव्य स्वरूप मोक्ष मे विराजते हैं।

ति॒स्रो यद॑ग्ने श॒रद॒स्त्वामिच्छुचिं॑ घृ॒तेन॒ शुच॑यः सप॒र्यान् ।
नामा॑नि चिद्दधिरे य॒ज्ञिया॒न्यसू॑दयन्त त॒न्वः॑ सु॒जा॑ताः ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! आचार्य! राजन्! जो शुद्ध पवित्र होकर शुद्ध पवित्र तुझको तीन वर्षों तक सेवन करे, तेरा ही सत्संग करें वे उत्तम क्रियाकुशल और वरणीय, उत्तम चरित्रवान् पुरुष यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना, प्रार्थना, तथा उत्तम श्रेष्ठ कर्मों के अनुसार ही समस्त व्यवहारों और उत्तम नामों को भी धारण करें और वे जल से अपने देहों को स्नान करावें, गुरुओं के पास विशेष योग्यता प्राप्त करने

के लिये तीन वर्ष उनका सत्संग करके निष्णात हों। इसी प्रकार अग्नि अर्थात् राजा के अधीन भी तीन वर्ष निष्कपट सेवा करके स्थिर कार्य पर विशेष उपाधि सहित नियुक्त किये जायं। अभिषेक द्वारा उनको विशेष रूप से दीक्षित कर दिया जाय।

परमेश्वर के पक्ष में—शुद्ध भाव से तीन वर्ष लगातार ब्रह्मचर्यपूर्वक निष्कपटता से रहने पर तपस्वी जन परमेश्वर के गुणों और स्वरूपों को साक्षात् करने लगते हैं और तेज से उनके देह तमतमाने लगते हैं। यह तथ्य अनुभवापेक्ष है।

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४॥

भा०—मरण समय में प्राणियों को रुलाने वाले, प्राणों के साधक अर्थात् उनको वश करने वाले, निरन्तर ज्ञान सम्पादन करने वाले सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक विद्वान् जन बड़े भारी सूर्य और पृथिवी के समान देह में स्थित प्राण और अपान, भूमि और राज्य या विद्या और कर्म दोनों को उत्तम रीति से धारण करते और पुष्ट करते हैं। ज्ञानवान् पुरुष समस्त प्राप्त शक्तियों को धारण करता हुआ, परम सर्वोच्च प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में स्थित प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर को साक्षात करे।

राजा के पक्ष में—शत्रुओं को रुलाने वाले वीर राजा के अधीन और राष्ट्र या प्रजापालक प्रभु के अधीन, विशेष ज्ञान प्राप्त किये हुए पुरुष बड़े राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को अपने वश करें। ज्ञानी राजा के आधे पदाधिकार को धारण करने हारा प्रजाजन सर्वोच्च पद पर स्थित अग्रणी नायक को प्राप्त करे। राजा का आधा बल उसका राष्ट्र है और आधा वह स्वयं है। तभी राजा और प्रजावर्ग दोनों तुले रह सकते हैं -नहीं तो एक दूसरे को नष्ट कर दें।

सं॒जा॒ना॒ना उप॑ सीदन्नभि॒ज्ञु पत्नी॑वन्तो नम॒स्यं॑ नमस्यन् ।
रि॒रि॒क्वांस॑स्त॒न्वः॑ कृण्वत॒ स्वाः सखा॒ सख्यु॑र्नि॒मिषि॒ रक्ष॑माणाः॥५॥१७

भा०—हे आचार्य ! विद्वन् ! पूजनीय ! अच्छी प्रकार परस्पर जानने हारे जिस प्रकार गोड़े समेट करके सभ्यता से बैठते है, उसी प्रकार शिष्य-गण गुरुजन के समीप बैठें और साधक जन भी उसी प्रकार हे परमेश्वर ! आसन लगा कर ईश्वरोपासना के लिये बैठें । गृहपतियों से युक्त गृहस्थ-जन भी नमस्कार और आदर सत्कार योग्य पुरुष को नमस्कार और आदर सत्कार करें । मित्र के लिये जिस प्रकार मित्र उसके देखते ही अपने शरीर तक को आलिंगन आदि द्वारा त्याग देता है उसी प्रकार हे वीरो और विद्वान् जनो ! परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुए आप लोग स्पर्द्धा पूर्वक एक दूसरे के ज्ञान और बल की वृद्धि में अपने शरीरों तक को भी परित्याग कर दो । एक दूसरे के लिये प्राण तक त्याग दो । इसी प्रकार हे साधको ! त्याग और तप द्वारा अपने शरीर को कृश करते अर्थात् सयमी बनाते हुए अधर्म से अपने को बचाते रहो । इति सप्तदशो वर्गः ।

त्रिः स॒प्त यद् गुह्या॑नि॒ त्वे इत् प॒दावि॑द॒न् निहि॑ता य॒ज्ञिया॑सः ।
तेभि॑ रक्षन्ते अ॒मृतं॑ स॒जोषाः॑ प॒शूँश्च॑ स्था॒तॄँश्च॒रथं॑ च पाहि ॥ ६ ॥

भा०—सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना में कुशल पुरुष जिन २१ ज्ञान करने योग्य गुहा अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य गुप्त तत्वों का साक्षात् ज्ञान करते हैं वे सब तुझ में ही स्थित हैं । उन इक्कीसों के द्वारा समान आश्रय पर स्थित, समान रूप से एक ही को सेवन या प्रेम करने वाले मित्र के समान प्रेम से अमृत, आत्मतत्व की रक्षा करते हैं । हे प्रभो ! तू विद्वान् जन पशुओं के समान मूर्ख जनों का और स्थावर वृक्ष और भूमि आदि लोकों को और अन्य समस्त जंगम प्राणिसमूह को भी पालन कर ।

राजा के पक्ष में—प्रजापालक राजा या राष्ट्र के उपकारी जन

रहस्यमय २१ अधिकार-पदों को जानें। वे सब राजा के ही आश्रय पर स्थित हैं। वे सब समान रूप से राजा की रक्षा करें और राजा राष्ट्र में गौ आदि पशुओं, वृक्ष, ओषधि आदि स्थावरों और अन्य वन के जन्तुओं की भी रक्षा करे।

अध्यात्म में—शरीर के घटक २१ सौ तत्व तुझ आत्मा में आश्रित हैं। उन द्वारा ही आत्मा की रक्षा करते हैं। वह आत्मा ज्ञानेन्द्रियों को, कर्मेन्द्रियों को और देह की भी रक्षा करें।

अथवा—विद्वान् लोग चित्त में धारण करने योग्य चार वेद और तीन क्रिया, विज्ञान और उद्योग, इन सातों को श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा धारण करें। उनसे अमृत, मोक्षसुख को तथा पशु, भृत्य, स्थावर, चर आदि सम्पदा को प्राप्त करें और रक्षा करें।

त्रि. सप्त—७ पाकयज्ञ, ७ हविर्यज्ञ और ७ सोमयज्ञ (सा०)। विशेष विवरण देखो अथर्ववेद (१।१।१)

विद्वाँ अ॑ग्ने व॒युना॑नि क्षिती॒नां व्या॑नु॒षक् छु॒रुधो॑ जी॒वसे॑ धाः।
अ॒न्त॒र्वि॒द्वाँ अध्व॑नो देव॒याना॒नत॑न्द्रो दू॒तो अ॑भवो हवि॒र्वाट् ॥ ७ ॥

भा०—विद्वन्! राजन्! ईश्वर! तू समस्त जानने योग्य पदार्थों और ज्ञानों को जानता हुआ प्रजाओं के जीवन धारण करने के लिए दुःखदायी अज्ञान, क्षुधा, पीडा आदि रोकने वाले अन्नादि ओषधियों और उपायों को निरन्तर उनके स्वभाव के अनुकूल विविध प्रकार से रचता और प्रदान करता है और आत्मा के भीतर समस्त तत्वों को जानता हुआ हे विद्वन्! तू आलस्य रहित होकर विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मोक्ष मार्गों को नाना प्रकार से विधान या उपदेश कर। तू ग्राह्य ज्ञानों को प्राप्त करने हारा, सबको ज्ञानवाणी का संदेश सुनाने हारा हो।

राजा के पक्ष में—अग्रणी नायक सब कुछ ज्ञातव्यों को जानता हुआ प्रजाओं की नाना विपत्तियों को रोकने वाले अन्न संग्रह आदि उपायों को प्रजाओं के जीवन के लिए करे। राष्ट्र के भीतर बडे राजमार्गों

को बनवावे, आलस्य रहित होकर आज्ञाएं देता हुआ शत्रु संतापक एवं दुष्टों का दण्डकारी हो।

स्वाध्यो॑ दि॒व आ स॒प्त य॒ह्वी रा॒यो दुरो॒ व्यृ॑त॒ज्ञा अ॑जानन्।
वि॒दद्गव्यं॑ स॒रमा॑ दृ॒ळ्हमू॒र्वं येना॒ नु कं॒ मानु॑षी॒ भोज॑ते॒ विट् ॥८॥

भा०—उत्तम रीति से आत्मचिन्तन करने वाले, सत्य वेदज्ञान के वेत्ता पुरुष, सातों इन बड़े प्राणों को मूर्धा स्थान के या ज्ञान-प्रकाशक ज्ञानैश्वर्य के सात द्वार ही जानते है। बोध कराने वाली बुद्धि इन्द्रियों में होने वाले दृढ़ बल को प्राप्त करती है, जिससे मानुष प्रजा सुख प्राप्त करती है।

राष्ट्र-पक्ष में—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सुहृत्, कोष और बल इन सातों को विद्वान् जन ऐश्वर्य का द्वार जानें। अपने आक्रमण से शत्रु का नाश करने वाली सेना पृथ्वी के शासन करने वाले प्रबल शत्रुनाशक बल को प्राप्त करती है और जिससे मानुष प्रजा भी सुख और अन्न-ऐश्वर्य का भोग करती है। अथवा पूर्वोक्त ७ तथा वेद और उनके ६ अंग इन सातों को वेदज्ञ पुरुष ऐश्वर्यों का द्वार जानते हैं। ज्ञानवती बुद्धि या विद्वान् जन इनमें ही वेदवाणियों का प्रबल ज्ञान प्राप्त करते और मनुष्य नाना सुख भोगते हैं।

आ ये विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ त॒स्थुः कृ॑ण्वा॒नासो॑ अमृत॒त्वाय॑ गा॒तुम्।
म॒ह्ना म॒हद्भिः॑ पृथि॒वी वि त॑स्थे मा॒ता पु॒त्रैरदि॑ति॒र्धाय॑से॒ वेः ॥९॥

भा०—जो विद्वान् जन अपनी समस्त सुन्दर बलिष्ठ सन्तानों को उत्पन्न कर उनको सुशिक्षित कर चुकते हैं वे अमरपद, ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मोक्षमार्ग का आश्रय लेवें। माता जिस प्रकार अपने पुत्रों सहित विराजती है इसी प्रकार समस्त पृथिवी अखण्ड ऐश्वर्य वाली होकर अपने बड़े-बड़े सामर्थ्यों से कर्मफलों के भोक्ता या देह से देहान्तर में जाने वाले आत्मा, जीवगण के धारण पोषण के लिए अपने महान् सामर्थ्य से विविध रूप से स्थित होती है। अथवा यह विस्तृत अखण्ड

परमेश्वरी शक्ति तेजस्वी सूर्य के समान मुमुक्षु को महान् सामर्थ्य और आनन्द रस से धारण पोषण करने के लिए बड़े बड़े पुत्रों से माता के समान विशेष रूप से स्थित रहती है।

राज्यपक्ष में—जो शत्रुओं को दूर करने के सब उत्तम उपायों को करते हैं। वे अन्न, जल के तथा राज्य के सुख पाने के लिए पृथिवी पर शासन करें। और पृथिवी माता अखण्ड, अदीन होकर अपने बड़े बड़े तेजस्वी वीर पुत्रों सहित बड़े भारी बल से सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पालन-पोषण के लिए विविध प्रकार से स्थिर रहे।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यद॒क्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥

भा०—जो मरण धर्म से रहित, मुमुक्षु व मुक्त जन बाह्य और आभ्यन्तर दोनों चक्षु या इन्द्रियों को सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त कर लेते हैं वे इस परमेश्वर के आश्रय में अति उत्तम शोभा या ज्ञान दीप्ति को धारण करते हैं। मेघ से गिरती जलधाराएं या वेग से चलती नदियें जिस प्रकार नीचे की ओर बह आती हैं, हे विद्वन्! हे ईश्वर! उसी प्रकार आपके साधकों की पूर्वोक्त दशा में रसधाराएं साक्षात् स्रवित हों। ज्योतिष्मती, प्रज्ञाओं को वे जानें या साक्षात् करें।

राष्ट्रपक्ष में—विद्वान् जन ज्ञान से युक्त विद्वत्-सभा की दो आंखों के समान दो मुख्य पुरुषों को नियुक्त कर लें तब उस मुख्य राजा के ऊपर राज्यलक्ष्मी का भार रक्खें। तब जलधाराएं नदीधाराओं के समान उस पर बहें अर्थात् उसका अभिषेक हो। हे अग्रणी नायक! तब विद्वान् लोग तेजोयुक्त वेदवाणियों का ज्ञानोपदेश करें या तेजस्विनी उषाओं के समान प्रभाववर्द्धक क्रियाओं का तुझे ज्ञान दें।

[७३]

पराशर. शाक्त्य ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १, २, ४, ५, ६, ७, ९, १० निचृत्। ८ एकोना विराट् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

को बनवावे, आलस्य रहित होकर आज्ञाएं देता हुआ शत्रु संतापक एवं दुष्टों का दण्डकारी हो।

स्वाध्यो॑ दि॒व आ स॒प्त य॒ह्वी रा॒यो दुरो॒ व्यृ॑त॒ज्ञा अ॑जानन्।
वि॒दद्गव्यं॑ स॒रमा॑ दृ॒ळ्हमू॒र्वं येना॒ नु कं॒ मानु॑षी॒ भोज॑ते॒ विट् ॥८॥

भा०—उत्तम रीति से आत्मचिन्तन करने वाले, सत्य वेदज्ञान के वेत्ता पुरुष, सातों इन बड़े प्राणों को मूर्धा स्थान के या ज्ञान-प्रकाशक ज्ञानैश्वर्य के सात द्वार ही जानते हैं। बोध कराने वाली बुद्धि इन्द्रियों मे होने वाले दृढ़ बल को प्राप्त करती है, जिससे मानुष प्रजा सुख प्राप्त करती है।

राष्ट्र-पक्ष मे—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सुहृत्, कोष और बल इन सातों को विद्वान् जन ऐश्वर्य का द्वार जानें। अपने आक्रमण से शत्रु का नाश करने वाली सेना पृथ्वी के शासन करने वाले प्रबल शत्रुनाशक बल को प्राप्त करती है और जिससे मानुष प्रजा भी सुख और अन्न-ऐश्वर्य का भोग करती है। अथवा पूर्वोक्त ७ तथा वेद और उनके ६ अंग इन सातों को वेदज्ञ पुरुष ऐश्वर्यों का द्वार जानते हैं। ज्ञानवती बुद्धि या विद्वान् जन इनसे ही वेदवाणियों का प्रबल ज्ञान प्राप्त करते और मनुष्य नाना सुख भोगते हैं।

आ ये विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ त॒स्थुः कृ॑ण्वा॒नासो॑ अमृत॒त्वाय॑ गा॒तुम्।
म॒ह्ना म॒हद्भिः॑ पृथि॒वी वि त॑स्थे मा॒ता पु॒त्रैरदि॑ति॒र्धाय॑से॒ वेः ॥९॥

भा०—जो विद्वान् जन अपनी समस्त सुन्दर बलिष्ठ सन्तानों को उत्पन्न कर उनको सुशिक्षित कर चुकते हैं वे अमरपद, ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मोक्षमार्ग का आश्रय लेवें। माता जिस प्रकार अपने पुत्रों सहित विराजती है उसी प्रकार समस्त पृथिवी अखण्ड ऐश्वर्य वाली होकर अपने बड़े-बड़े सामर्थ्यों से कर्मफलों के भोक्ता या देह से देहान्तर में जाने वाले आत्मा, जीवगण के धारण पोषण के लिए अपने महान् सामर्थ्य से विविध रूप से स्थित होती है। अथवा वह विस्तृत अखण्ड

परमेश्वरी शक्ति तेजस्वी सूर्य के समान मुमुक्षु को महान् सामर्थ्य और आनन्द रस से धारण पोषण करने के लिए बड़े बड़े पुत्रों से माता के समान विशेष रूप से स्थित रहती है।

राज्यपक्ष मे—जो शत्रुओ को दूर करने के सब उत्तम उपायो को करते हैं। वे अन्न, जल के तथा राज्य के सुख पाने के लिए पृथिवी पर शासन करें। और पृथिवी माता अखण्ड, अदीन होकर अपने बड़े बड़े तेजस्वी वीर पुत्रो सहित बडे भारी बल से सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पालन-पोषण के लिए विविध प्रकार से स्थिर रहे।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥

भा०—जो मरण धर्म से रहित, मुमुक्षु व मुक्त जन बाह्य और आभ्यन्तर दोनो चक्षु या इन्द्रियो को सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त कर लेते हैं वे इस परमेश्वर के आश्रय मे अति उत्तम शोभा या ज्ञान दीप्ति को धारण करते हैं। मेघ से गिरती जलधाराएं या वेग से चलती नदियें जिस प्रकार नीचे की ओर बह आती हैं, हे विद्वन्! हे ईश्वर! उसी प्रकार आपके साधको की पूर्वोक्त दशा मे रसधाराएं साक्षात् स्रवित हों। ज्योतिष्मती, प्रज्ञाओ को वे जानें या साक्षात् करें।

राष्ट्रपक्ष मे—विद्वान् जन ज्ञान से युक्त विद्वत्-सभा की दो आंखों के समान दो मुख्य पुरुषो को नियुक्त कर लें तब उस मुख्य राजा के ऊपर राज्यलक्ष्मी का भार रक्खें। तब जलधाराए नदीधाराओ के समान उस पर बहे अर्थात् उसका अभिषेक हो। हे अग्रणी नायक! तब विद्वान् लोग तेजोयुक्त वेदवाणियो का ज्ञानोपदेश करें या तेजस्विनी उषाओं के समान प्रभाववर्द्धक क्रियाओ का तुझे ज्ञान दें।

[७३]

पराशर. शाक्त्य ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १, २, ४, ५, ६, ७, ९, १० निचृत्। ८ एकोना विराट्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शासुः॑ ।
स्यो॒न॒शीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत् ॥१॥

भा०—पिता से प्राप्त धन जिस प्रकार सन्तान को सुखमय जीवन प्रदान करता है उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी आचार्यादि पालक जनों से सुशिक्षित, उत्तम शासकों द्वारा स्वीकृत होकर बल तथा दीर्घायु धारण करें। वह ज्ञानवान् शासक के उत्तम रीति से प्रयोग किये गये शासन वचन अर्थात् आदेश के समान उत्तम मार्ग पर ले जाने वाला और सर्व शास्त्रों का उपदेष्टा हो। वह सुख से शयन करने हारे अतिथि के समान समस्त सुखजनक उत्तम पुरुषार्थों में स्थिर हो। वह सुखप्रद दाता के समान स्वयं सबसे प्रसन्न और सबको सुखी करने हारा हो। वह विद्वान् राजा विशेष विशेष काम या राजसेवा करने वाले पुरुष को आश्रय रहने का घर भी देवे। राजा अपने सेवकों को उत्तम आश्रय या गृह दे अर्थात् उत्तम गुणवान्, परमेश्वर अपने भक्त साधक को शरण देता है।

दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑ ।
पु॒रु॒प्र॒श॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत् ॥२॥

भा०—जो सबका आज्ञापक सूर्य के समान सत्य अर्थ का प्रकाशक सत्य, यथार्थ ज्ञान का दाता और सर्व सज्जनों का हितचिन्तक होकर अपने कर्म और ज्ञान द्वारा समस्त शत्रु और बाधक विघ्नों के वर्जन करने में समर्थ सैन्य-बलों को सब प्रकार से सुखी रखता है, वह राजा और विद्वान् पुरुष ही बहुत-सी प्रजा द्वारा प्रशंसा योग्य सुन्दर, तेजस्वी, रूपवान् दीपक आदि के समान यथार्थ तत्व का दर्शाने वाला और आत्मा के समान सुखप्रद, एवं सेवा योग्य और राष्ट्र के समस्त अंगों और प्रजाओं को धारण पोषण करने में समर्थ हो।

परमेश्वर के पक्ष में—प्रभु सर्वोत्पादक सत्य ज्ञानवान् होकर समस्त अन्धकारों को दूर करने वाले ज्ञानों और सूर्यादि लोकों की रक्षा करता

है, वह अतिस्तुत्य, तेजो रूप के समान सत्य अथवा अचिन्त्य, अपने आत्मा के समान सदा सेवनयोग्य, सुखप्रद होकर अपने उपासकों के हृदय मे धारण करने योग्य है ।

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥

भा०—जो दानशील, सर्वप्रकाशक मेघ और सूर्य के समान समस्त विश्व को और समस्त जीवगण को धारण और पोषण और आनन्द रस का पान करने हारा है । जो जलांशों को अपने भीतर धारण करने वाले सूर्य के समान हितकारी मित्रों से युक्त राजा भूमि पर सुख से निवास करता है । एक ही शरण या आश्रय स्थान मे रहने वाले वीरगण जिस प्रकार प्रेम से रहते हैं उसी प्रकार जिस राजा के अधीन पुरो मे रहने वाले प्रजागण तथा आगे बढ़ कर शत्रु पर टूट पडने वाले या उच्च पदों पर स्थित नायकगण भी एक वृत्तिदाता के आश्रय रहते हुए शत्रुओं को विविध रीति से उखाडने हारे हो । स्त्री जिस प्रकार निन्दा योग्य, बुरे लक्षणों और पापों से रहित पति के प्रति प्रेम से बद्ध होकर रहती हुई कभी उसके विपरीत नहीं होती, उसी प्रकार नायकगणो से बनी हुई प्रजा या सेना भी अपने पालक राजा या सेनापति को प्रेम करने हारी होकर गर्ह्य या निन्दा के योग्य, पापाचारो से रहित हो । सेनापति की आज्ञा-पालक सेना ही उत्तम होती है ।

अध्यात्म मे—देव, ईश्वर और जीव । पृथिवी प्रकृति । वीर प्राण । नारी बुद्धि ।

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! लोग जिस प्रकार अपने शासन कार्य या देहरूप गृह मे नित्य प्रज्वलित अग्नि को अन्न पाक आदि कार्यों मे सेवन करते, उसको प्रयोग मे लाते हैं और जिस प्रकार प्राणगण नित्य

आत्मा को अपने शासन कार्य या देहरूप गृह में जीवित जागृत आत्मा का आश्रय लिए रहते हैं और जिस प्रकार लोग अपने गृहों में निरन्तर ज्ञान से दीप्त विद्वान् पुरुष की सेवा करते हैं उसी प्रकार इस अचल भूमियों में नायकगण दमन या शासन कार्य में नियुक्त होकर चिरस्थायी प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी राजा को प्राप्त हों, उसका आश्रय लें और इस अपने राजा में वा उसके अधीन ही बहुत अधिक यश, तेज और ज्ञान प्राप्त करें। हे राजन्! तू सबको जीवन देने वाला, सब प्रजा-गण का स्वामी, सबको प्रेम से प्राप्त होने वाला और सबका धारक पालक और आश्रय होकर ऐश्वर्यों को देनेहारा हो।

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् परमेश्वर! अग्रणी राजन्! धनाढ्य लोग दान करते हुए ही खूब जलादि से परिसेचित और परिवर्धित और शरीर में बल और वीर्य के देने वाले अन्नों को और समस्त आयु को विविध प्रकारों से भोग करें और सूर्य किरणों के समान ज्ञानवान्, विद्वान् जन स्नेह, सुख को सेवन करने वाले ज्ञानों का ज्ञान प्रदान करते हुए ही पूर्ण आयु का विशेष रूप से भोग करें और ज्ञान प्राप्ति के निमित्त एकत्र होने के अवसरों पर स्वामी या ज्ञानी के सेवने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें और संग्रामों में शत्रुगण के भोग योग्य ऐश्वर्यों को विद्वानों और वीर पुरुषों में उनकी रक्षा के लिए पारितोषिक रूप में प्रदान करते हुए हम उन वीरों और विद्वानों को प्राप्त करें।

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६॥

भा०—अपने बछड़ों को अति प्रेम से चाहती हुई, अच्छे बड़े स्तन-मण्डलों वाली, तेजोयुक्त, स्वच्छ अन्न खाने वाली गौएं जिस प्रकार दूध

का पान कराती हैं उसी प्रकार ज्ञानप्रकाश का सेवन कराने वाले ज्ञान-रस का पान कराने में कुशल, उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुष लोगों को वेदोक्त या सत्यज्ञान, सत् व्यवस्था-शासन का पान करावें अर्थात् उपदेश करें। जिस प्रकार नदियें और जलधाराएं मेघ से या पर्वत से निकलकर दूर दूर देशो तक विविध दिशाओं में बह जाती है, उसी प्रकार ज्ञान के सागर एवं प्रजाओं को प्रेमसूत्र में बांधने वाले नायकगण कभी भी खण्डित न होने वाले परमेश्वर राजा का आश्रय लेकर उत्तम ज्ञान और अन्नमात्र की याचना या प्राप्ति करते हुए दूर दूर देशो तक जावें और उत्तम ज्ञान को संसार में फैलावें।

त्वे अ॑ग्ने सुम॒तिं भिक्ष॑माणा दि॒वि श्रवो॑ दधिरे य॒ज्ञिया॑सः।
नक्ता॑ च च॒क्रुरु॒षसा॒ विरू॑पे कृ॒ष्णं च॒ वर्ण॑मरु॒णं च॒ सं धुः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! गुरो! परमेश्वर! तेरे अधीन ही अध्यनाध्यापन व ज्ञान का आदान-प्रदान करने हारे गुरु शिष्यजन, अथवा ईश्वर के उपासक सज्जन सूर्य के समान तेजस्वी तुझ गुरु के अधीन रहकर उत्तम ज्ञान और उत्तम अन्न की याचना करते हुए उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान और अन्न को धारण करें और वे रात और दिन उनके समान ही विपरीत स्वरूप वाले कृष्ण और अरुण वर्ण को धारण करें। अर्थात् रात और दिन जिस प्रकार क्रम से अन्धकार और प्रकाश को धारण करते हैं उसी प्रकार शिष्य और गुरुजन भी 'कृष्ण' मृगछाला और 'अरुण' काषाय वस्त्र धारण करें। अथवा गुरुजन विद्या प्रकाश से उज्वल होकर अरुण वर्ण हैं और शिष्यगण अज्ञानयुक्त होने से कृष्णवर्ण हैं। वे दोनों विपरीत रूपों को धारण करते हैं। अथवा प्रत्येक जानने योग्य विषय में पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष, साधर्म्य और वैधर्म्य, गुण और दोष दोनों प्रकार के विवरणों का अच्छी प्रकार ज्ञान करें।

यान्रा॒ये मर्ता॒न्त्सुषू॑दो अग्ने॒ ते स्या॑म म॒घवा॑नो व॒यं च॑।
छा॒येव॒ विश्वं॒ भुव॑नं सिसक्ष्यापप्रि॒वान्रोद॑सी अ॒न्तरि॑क्षम् ॥८॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! राजन् ! ईश्वर ! जिन उत्तम, दृढ, नश्वर देहों से युक्त पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए एकत्र कर उनको संगठित करता है वे और हम सब प्रजाजन भी तेरे अधीन रहकर ऐश्वर्यवान् हों। अथवा तू जिनको ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है वे और हम सब धन सम्पन्न हों। तू समस्त संसार को आकाश और भूमि तथा अन्तरिक्ष को भी सब तरह से पूर्ण करता हुआ छाया के समान उनके भीतर व्याप्त है।

राजा के पक्ष में—राज-प्रजावर्ग और मध्यस्थ पद को पूर्ण करता हुआ विद्वान् राजा समस्त राष्ट्र को आच्छादक छत्र या वृक्ष की छाया के समान शान्तिप्रद, रक्षक शरण रूप से प्राप्त होता है।

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः।

ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥९॥

भा०—हे परमेश्वर ! अग्रणी सेनापते ! राजन् ! तेरे से सुरक्षित रहकर हम अश्वों, अश्वारोहियों से अश्वों, अश्वारोहियों को, नायकों से नायकों को और वीर पुरुषों से वीरों को प्राप्त हों और युद्ध में अश्वारोही नायक और पैदल वीरों से शत्रु के अश्वारोहियों, नायकों और पैदल वीरों का विनाश करें। हम अपने पिता, पितामह आदि पूर्वजों और गुरुजनों द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य के स्वामी हों, और हमारे विद्वान् जन सौ वर्षों तक दीर्घजीवी होकर उस ऐश्वर्य का विविध प्रकार से भोग करें।

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च।

शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः॥१०।२०।१२॥

भा०—हे समस्त शासन-विधानों के विधातः ! विद्वन् ! और ज्ञानप्रद परमेश्वर ! हे अग्रणी नायक ! ज्ञानवन् ! तेरे ये नाना ज्ञानमय वचन मन और हृदय या आत्मा को प्रिय लगने वाले अर्थात् 'मन', मनन तर्क-वितर्ककारिणी बुद्धि द्वारा सुविचारित और अन्तःकरण द्वारा श्रद्धा

विश्वास करने योग्य सत्य और प्रिय हो। हम लोग धुरा के समान उत्तम रीति से कार्यभार को उठाने में समर्थ होकर तेरे अधीन विद्वानों और वीरों से सेवन करने योग्य ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य को धारण करते हुए राज्य आदि ऐश्वर्यों का संयमन अर्थात् प्रबन्ध करने में अच्छी प्रकार समर्थ हों। इति विंशो वर्गः। इति द्वादशोऽनुवाकः।

[७४]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्री। १, २, ४, ६ निचृत्। ३ पिपीलिकामध्या। ७ विराट्। ८ द्विपदा विराट्। व्यूहेन वा गायत्री।

नवर्चं सूक्तम् ॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

भा०—हम लोग समीप प्राप्त होते हुए अर्थात् प्रभु की उपासना करते हुए दूर और समीप हमारी प्रार्थनाओं को श्रवण करने वाले, सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति के लिए हिंसा या पीड़ा से रहित, शान्तिदायक वेदमन्त्रों का उच्चारण और मनन करें।

राजा के पक्ष में—पास और दूर की प्रजा की प्रार्थनाओं को श्रवण करने हारे, प्रतापी राजा को हम लोग हिंसारहित, प्रजा को शान्ति और सुख देने वाले मन्त्र या यन्त्रणा का उपदेश करें।

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु। अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

भा०—जो ईश्वर स्नेह करने वाली अतएव परस्पर प्रेमभाव से सत्संग करने वाली प्रजाओं में सदा पूर्व उत्पन्न शिक्षित विद्वानों द्वारा अपने से आगे आने वालों के प्रति साक्षात् उपदेश करने योग्य है और जो अन्यों को विद्या आदि का दान करने वाले तथा अपने आपको ईश्वर के प्रति समर्पण करने वाले उपासक के धनैश्वर्य और प्राण-जीवन की भी रक्षा करता है।

राजा के पक्ष में—जो स्नेह से परस्पर सघटित प्रजाओ के वीच सवसे मुख्यपद के योग्य है, वह दानशील, धनाढ्य और ज्ञानवान् पुरुष के धन और प्राण की रक्षा करे।

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि। धनञ्जयो रणेरणे ॥ ३ ॥

भा०—और समस्त प्राणिजन उसकी स्तुति और प्रवचन करे कि ऐश्वर्य के लिए विजय प्राप्त करने वाला ज्ञानवान् परमेश्वर और राजा विघ्नो का और वढ़ते हुए शत्रुओं का नाशक होकर प्रत्येक रमण योग्य आनन्दप्रद अवसरों में सबसे उत्तम पद पर विराजे।

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये। दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! तू जिसके घर मे अग्नि के समान अग्रणी, मार्गदर्शक होकर ज्ञान का संदेश श्रवण करानेहारा होता है और उत्तम अन्नो को खाने के लिए जावे वह तू उसके लिए सब दुःखों के नाश करने वाले हिंसारहित, सुखदायी ज्ञानोपदेश और यज्ञोपासना कर। [उत्तम विद्वानों के आतिथ्यरूप यज्ञ का वर्णन देखो अथर्व काण्ड १५।]

ईश्वर के पक्ष में—जिसके घर मे या हृदय मे उत्तम ज्ञानो के प्रकाश के लिए तू दुःखों का नाशक होकर रहता और प्राप्त होता है उसके यज्ञ और हिंसा रहित उपासना को ही सव भववन्धनो का नाशक वना देता है। अथवा अग्नि जिसके घर मे प्रकाश के लिये और चरु आदि सुगन्धित रोगनाशक पदार्थों को जलाने के लिए रोगनाशक होकर रहता और व्यापता है वह उसके इस अहिंसायुक्त उत्तम काम को पीड़ाओं और रोगों का नाशक वना देता है।

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहुः सुबर्हिषम् ॥५॥

भा०—हे समस्त देह के अवयवों मे रस या प्राण के समान समस्त ब्रह्माण्ड के अवयव अवयव मे चेतनता या शक्तिरूप मे व्यापक! हे शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले प्रभो! विद्वान् लोग उस तुझको ही उत्तम स्तुति योग्य, आश्रय योग्य, उत्तम दानी, ज्ञानप्रकाशक और सवका द्रष्टा

तथा उत्तम ज्ञान, बल और आश्रय वाला बतलाते है। तथा राजा उत्तम भक्तों का स्वामी, स्तुत्य और शिरोधार्य आज्ञा वाला होने से 'सुहव्य' है, उत्तम राजा होने से 'सुदेव' और उत्तम वृद्धिशील बल और उत्तम प्रजाजन होने से 'सुबर्हिष्' है। राष्ट्र का प्राण तथा जलते अगारो के समान तेजस्वी होने से 'अंगिराः' और शक्ति से राजा बनने से 'सहसः-बाहु' कहाता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

आ च वहा॑सि॒ ताँ इ॒ह दे॒वाँ उप॒ प्रश॑स्तये। ह॒व्या सु॑श्चन्द्र वी॒तये॑ ॥६॥

भा०—हे उत्तम रीति से सबको आह्लादित करनेहारे! चन्द्र के समान प्रिय, मनोहर उत्तम ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू इस लोक मे राष्ट्र मे या गृह पर उन नाना ज्ञान के द्रष्टा और उपदेष्टा पुरुषों को उत्तम रीति से ज्ञानोपदेश करने और ग्रहण करने योग्य ज्ञानो के प्रकाश करने और उत्तम अन्नो की रक्षा और खाने के लिये प्राप्त करा। अथवा स्वयं सुख प्राप्ति आदि के लिए स्तुति योग्य विद्वानो को प्राप्त कर।

न योरु॑प॒ब्दिर॒श्व्यः॑ शृ॒ण्वे रथ॑स्य॒ कच्च॒न। यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ॥७॥

भा०—हे सर्वज्ञ प्रभो! जब तू उपासना के कर्म को प्राप्त होता है अर्थात् भक्तो से उपासना किया जाता है तब सब दुःखो के दूर करने वाले रमण योग्य रस-स्वरूप तेरा अति समीप होकर प्राप्त करने योग्य अज्ञान का नाशक और भक्तों का पालक भोक्ता आत्मा का हितकारी शब्द क्या नही सुनाई देता है? अवश्य देता है हे तेजस्विन्! अग्रणी नायक! जब तू इस अर्थात् शत्रु के पीडन कार्य पर उनको प्राप्त होकर उनका छेदन-भेदन करने हारा और अश्वबल मे कुशल होकर प्रयाण करता है तब जाते हुए रथ का क्या शब्द नही सुनाई देता है? देता ही है।

त्वोतो॑ वा॒ज्यह्र॑यो॒ऽभि पूर्व॑स्मा॒दप॑रः। प्र दा॒श्वाँ अ॑ग्ने अस्थात् ॥८॥

भा०—हे अग्रणी नायक! तेरे से रक्षित और सुरक्षित होकर वेग से जाने हारा बलवान्, भय, लज्जा और संकोच से रहित दानशील, शस्त्रादि

फेंकने में कुशल होकर पूर्व अर्थात् मुख्य पद से दूसरा होकर भी आगे बढ़े। हे परमेश्वर! ज्ञानी पुरुष भी निःसंकोच होकर अपने पूर्व के अनुभवी ज्ञाननिष्ठ गुरु से शिष्यवत् ज्ञान प्राप्त करके वह आगे बढ़े।

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे ॥६।२२

भा०—हे ज्ञानवन्! हे द्रष्टः! दातः! तू दान देने हारे या अपने को आपके निमित्त त्याग देने वाले उपासक और विद्वान् पुरुषों के हित के लिये बहुत बड़ा उत्तम प्रकाश युक्त, उत्तम बल या बलवान् वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७५]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—आर्षी गायत्री। २, ५ निचृत्। ३ विराट्। ४ एकोना विराट। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥१॥

भा०—हे विद्वन्! तू मुख में उत्तम भोजन करने योग्य अन्नों को खाता हुआ विद्वानों को बहुत अधिक प्रसन्न करने वाले, अति विस्तृत, ज्ञानयुक्त वाणी का सेवन कर। अथवा मुख्य पद पर विराज कर ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्यों को स्वयं लेता और अन्यों को देता हुआ विद्वानों के प्रिय उत्तम वचन का सेवन कर।

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२॥

भा०—हे तेजस्वी, सर्वोत्तम पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ! हे ज्ञानवन्! हे उत्तम, मेधावी, बुद्धिमान् प्रिय शिष्य! तेरी विशालता के अनन्तर तुझे हम प्रिय सनातन से चले आये, एवं सब को सेवने योग्य वेद ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश करें।

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३॥

भा०—शिष्य बनाने के पूर्व आचार्य शिष्य से पूछे—हे ज्ञानवन्! तेजस्विन् शिष्य! तेरा कौन बन्धु है? तुझे अन्न वस्त्र देने वाला और तेरा

रक्षक कौन है ? निश्चय से कह, तू कौन है ? तू किसके आश्रय पर स्थित है ?

अध्यात्म मे—जीवात्मा के विषय मे जिज्ञासु इन प्रश्नो को समाधान करे और परमेश्वर को न जानने के सिवाय परमेश्वर के इन जीवो का कोई बन्धु, दाता, रक्षक और आश्रय नही है। अथवा परमेश्वर के विषय मे भी उन प्रश्नो का समाधान करे कि उसका कोई बन्धु, दाता या रक्षक या आश्रय नही है। वह स्वयं कर्त्ता है।

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! परमेश्वर! तू ही समस्त जनों का ज्ञाता, परिचित, बन्धु है। तू ही प्रिय स्नेही मित्र है। तू हित मित्र जनों का स्तुति योग्य परम सखा है।

'जामि.'—ज्ञाधातोर्बाहुलकादौणादिको मिर्जादेशश्च।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू अपने गृह के और उसके समान हमारे देह का इन्द्रियो के दमन कार्य का अभ्यास कर। और प्राण और अपान दोनो को सुसगत कर। बडे भारी ऋत, सत्य, वेद ज्ञान को प्राप्त कर अन्यो को उसका उपदेश कर। इति त्रयोविंशो वर्गः।

[७६]

गोतमो राहूगण ऋषि.॥ अग्निर्देवता॥ छन्द —त्रिष्टुप्। १, ३, ४, ५ निचृत्। २ विराट्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! मन या सकल्प विकल्प करने वाले चित्त और ज्ञान को वरण करने, प्राप्त करने या श्रेष्ठ बनाने के लिये तुझे क्या उपायन,

भेट उचित है ? हे परमेश्वर, ज्ञान की प्राप्ति और चित्त को उत्तम बनाने के लिए तेरी किस प्रकार की प्राप्ति या उपासना आवश्यक है। हे विद्वन् ! प्रभो ! तेरी कौनसी स्तुति या अभिलाषा अति सुखकारिणी है। तेरे ज्ञान और कर्म सामर्थ्य को अध्ययन-अध्यापनादि कर्मों, दान देने योग्य पदार्थों तथा उपासनाओं द्वारा कौन पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है ? किस चित्त से हम अपने को तेरे अर्पण करें। 'आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।' इति स्नातकधर्म। परमेश्वर के लिये उपगमन, उपासना, स्तुति और यज्ञमय जीवन आवश्यक है।

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे सबके पूर्व विद्यमान, सर्वप्रकाशक ! आप सब सुखों और ज्ञानों के दाता होकर यहां विराजमान हो। आप कभी तिरस्कार और वध, पीडा आदि न प्राप्त करके हमारे आगे आगे नायक के समान अग्रणी पथप्रदर्शक होकर रहो। समस्त संसार को जल, अन्न और प्रकाश से पूर देने वाले सूर्य और भूमि दोनों के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तेरा ज्ञान करे। हे राजन् ! वे दोनों तेरी रक्षा करें। हम लोग मन को सुन्दर पवित्र परस्पर वैररहित, प्रेमयुक्त उत्तम भाव वाला बनाये रखने के लिये विद्वानों का सत्संग करें। अथवा हे ईश्वर ! हे विद्वन् ! आप बड़े भारी पारस्परिक उत्तम प्रेम युक्त पवित्र चित्त बने रहने के लिये उत्तम गुणों और विद्वान् पुरुषों का सत्संग हमें प्रदान कर। हे मनुष्य ! तू चित्त के उत्तम भाव बनाने के लिये विद्वानों का हमेशा सत्सग कर।

प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥३॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू समस्त दुष्ट मनुष्यों और बुरे भावों तथा दोषों को अच्छी प्रकार भस्म कर, उनको

जला डाल और दानशील पुरुषो, उत्तम कर्मों और परस्पर के सत्संगो को निन्दा, घात प्रतिघात या विनाश या विच्छेदन होने से बचाने वाला हो। और धारण और आकर्षण से युक्त सूर्य के समान दो अश्वों से युक्त या दो प्रमुख विद्वानो सहित ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति को प्राप्त कर। सुखों और उत्तम ऐश्वर्यों को देने वाले ऐसे राजा का हम आतिथ्य सत्कार करें।

प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम नियन्त्रण करने हारे! हे समस्त लोको और बसने वाली प्रजाओ के पिता के समान पालक! हे सबको दान देने हारे, सब की संगति करने और पूजने योग्य! तू इस राष्ट्र मे, इस मुख्य पद पर विद्वानों और वीरो के साथ और प्रजा की सम्मति से युक्त वाणी, व्यवस्था-शास्त्र से सबको ज्ञानवान् कर और समस्त शासन-भार को अपने कन्धो पर उठाकर नियमपूर्वक राज्यासन पर विराजमान हो। मैं मुख से तेरी स्तुति करता और तुझे उपदेश करता या तुझे राजा स्वीकार करता हूं। हे विद्वन्! राजन्! तू प्रजा से त्याग की हुई कर आदि सामग्री और दुष्टों को दमन करके राष्ट्र को बुरे पुरुषो से स्वच्छ पवित्र करने के कार्य को प्राप्त कर, उन साधनो वा पदार्थों को प्राप्त कर। अथवा हे विद्वन्! तू उत्तम खाद्य और पवित्र पदार्थ ही हमेशा खा।

परमेश्वर के पक्ष मे—ईश्वर प्रजा की हितकारी वाणी वेद से सब ज्ञान और विश्व को धारण करता और सब दिव्य पदार्थ अग्नि आदि पदार्थों के साथ व्यापक है, मैं उसकी मुख से या मुख्य रूप से स्तुति करूं। वह ग्राह्य और पावन तेज को धारता है और वह सर्वोपास्य, सर्व-नियन्ता, सर्वोत्पादक होकर सबको ज्ञान प्रदान करता है।

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई क्रान्तदर्शी, उत्तम कोटि का विद्वान्, अन्य उत्तम उत्तम विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के साथ मिलकर विविध धनों से पूर्ण, धनाढ्य मनुष्य के घर में उत्तम वचनों द्वारा उत्तम उत्तम व्यवहारों का उपदेश करता और उत्तम अन्न आदि हवियों से अपने प्राणों को तृप्त करता और विद्वानों का आदर-सत्कार करता और कराता है उसी प्रकार हे सब सुखों के दातः! विद्वन्! हे सज्जनों के बहुत अधिक हितकारिन्! ज्ञानवन्! नायक! तू आज के समान सब दिन या शीघ्र ही अति हर्षजनक, स्तुति योग्य वाणी से सबको सुख दे, उनको संगठित कर। उनका यथायोग्य सत्कार कर। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[७७]

गोतमो राहूगण ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ विराट् स्थाना। २ निचृत्। ३, ५ विराट्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान्॥ १॥

भा०—जो मरणशील प्राणियों में स्वयं कभी न मरने वाला, सत्य गुणों और ज्ञानों से युक्त, सब सुखों का दाता, सब ऐश्वर्यों का लेने या वश करने वाला, सबसे अधिक पूजनीय है। जो दिव्य पदार्थ सूर्य आदि लोकों को बनाता है, उस सर्वप्रकाशक परमेश्वर के लिये किस प्रकार से और क्योंकर हम प्रदान करें अर्थात् उसको क्योंकर हम आत्म-समर्पण करें? और विद्वानों के हृदय को प्रिय लगने वाली कौन सी वाणी दुष्टों के प्रति करने वाले इस प्रभु के लिये कही जाय?

राजा और विद्वान् के पक्ष में—मनुष्यों में अमृत, ज्ञानवान्, सदा जागृत, उत्साही, सत्य न्याय वाला जो विद्वानों को नियुक्त करता है उसको कैसे हम भेंट दें। उसके आदरार्थ कैसे वचन कहें? इन सब बातों का सदा विचार करना चाहिये।

यो अ॑ध्व॒रेषु॒ शंत॑म ऋ॒तावा॒ होता॒ तमू॒ नमो॑भि॒रा कृ॑णुध्वम् ।
अ॒ग्निर्यद्वेर्मर्ता॑य दे॒वान्त्स चा॒ बोधा॑ति॒ मन॑सा यजाति ॥ २ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र मे कहे 'कथं' प्रश्न का उत्तर इस मन्त्र मे बतलाते हैं। जो हिंसारहित, न नाश करने योग्य श्रेष्ठ कर्मों और श्रेष्ठ पुरुषो मे भी अत्यन्त अधिक शान्तिदायक, कल्याणकारी, सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला, सब सुखों का दाता है उसको ही नमस्कारो द्वारा अपने अभिमुख करो, उसको प्राप्त करो और प्रसन्न करो। और जो स्वयं सबका अग्रणी, ज्ञान-प्रकाशक मनुष्य के हित के लिये दिव्य ज्ञानों, प्रकाश की किरणों तथा उत्तम विद्वानों को प्रकाशित करता और स्वयं धारण करता है। वही सब को ज्ञान प्रदान करता और ज्ञान से सबको युक्त करता है। इससे वह सबके पूजा के योग्य है।

विद्वान् राजा के पक्ष में—सबका कल्याणकारी, सत्य न्यायवाला होकर मनुष्यों के हितार्थ विद्वानों को नियुक्त करता और उत्तम उत्तम् गुणों को प्रकट करता है, ज्ञान से सबको ज्ञानवान् करता और सबको परस्पर संगत करता है, वह अग्रणी नायक, विद्वान् है। उसको आदर सत्कार और अन्नो से प्रसन्न करो।

स हि क्रतु॒ः स मर्य॒ः स सा॒धुर्मि॒त्रो न भू॒दद्भु॑तस्य र॒थीः ।
तं मेधे॑षु प्रथ॒मं दे॑व॒यन्ती॒र्विश॒ उप॑ ब्रुवते द॒स्ममारी॑ः ॥ ३ ॥

भा०—वह ही उत्तम कर्मो का कर्ता और उत्तम ज्ञानो का प्रकाशक, वही उत्तम मनुष्य, शत्रुओं का मारनेवाला, वही परोपकार, सन्मार्ग मे स्थित सब कार्यों का साधक, शत्रु को वश करने मे समर्थ, सूर्य के समान तेजस्वी, सबका मित्र, आश्चर्यजनक युद्ध करने वाले सैन्य बल का महारथी अथवा आश्चर्यजनक ऐश्वर्य को लानेहारा हो। उस शत्रुओं के नाशक दर्शनीय पुरुष को चाहती हुई, ज्ञानयुक्त प्रजाएं यज्ञो और श्रेष्ठ कार्यों और संग्राम के अवसरो में भी सबसे प्रथम उसे प्रस्तुत करती है, अर्थात् उसको सर्वश्रेष्ठ जान कर अग्रासन देती है।

स नो॑ नृ॒णां नृत॑मो रि॒शादा॑ अ॒ग्निर्गिरोऽव॑सा वेतु धी॒तिम् ।
तना॑ च॒ ये म॒घवा॑नः॒ शवि॑ष्ठा॒ वाज॑प्रसूता इ॒षय॑न्त॒ मन्म॑ ॥ ४ ॥

भा०—जो हिंसक, दुष्ट पुरुषों और शत्रुओं का नाश करने हारा, अग्नि के समान तेजस्वी है वह ही हमारे समस्त नायकों में से सबसे श्रेष्ठ पुरुष होकर अपने ज्ञान और पालन-सामर्थ्य से राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति और उपदेश युक्त वाणी और शासनकारिणी आज्ञाओं को प्राप्त करे। और जो अति बलवान्, बल, वीर्य, ज्ञान और ऐश्वर्यों से उत्तम पदों को प्राप्त, ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुष हैं वे नाना धन और मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें। और वे भी अपने ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य से उत्तम वाणियें प्रकाशित करें। राष्ट्र के कार्य में प्रतापी पुरुष सभापति और विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष सभासद् हों।

ए॒वाग्निर्गोत॑मेभिर्ऋ॒तावा॒ विप्रे॑भिरस्तोष्ट जा॒तवे॑दाः । स ए॑षु द्यु॒म्नं पी॑पय॒त्स वाजं॒ स पु॒ष्टिं या॑ति॒ जोष॒मा चि॑कि॒त्वान् ॥५॥२५॥

भा०—निश्चय से वही अग्रणी, ज्ञानवान्, नायक सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला, सत्य न्यायवान्, ऐश्वर्यों का स्वामी, विविध विद्याओं के वेत्ता विद्वान्, उत्तम स्तुतिकर्त्ता, वाग्मी पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किया जावे, वह ही इन धार्मिक विद्वान् पुरुषों के बीच धन प्राप्त कराता है, वही ऐश्वर्य, ज्ञान और बल को प्राप्त कराता और वह अन्नादि समृद्धि और गौ आदि पशु सम्पत्ति की वृद्धि करता है, वही ज्ञानवान् पुरुष सबके सेवन करने योग्य और सबका प्रेमपात्र हो जाता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[७८]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—आर्षी गायत्री ॥

अ॒भि त्वा॒ गोत॑मा गि॒रा जात॑वेदो॒ विच॑र्षणे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥१॥

भा०—हे सबके आदि द्रष्टा! सबके देखने हारे ज्ञानस्वरूप, हे समस्त धनों और ज्ञानों के उत्पादक स्वामिन्! परमेश्वर! ज्ञान-वाणियों के उत्तम विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन तुझे ही लक्ष्य कर वेदवाणी से स्तुति

करते हैं। हम भी तेरे गुणों के प्रकाश करने वाले मन्त्रों तथा तेरे गुणों और ऐश्वर्यों से मुग्ध होकर तुझे लक्ष्य कर सदा नमस्कार करें।

राजा के पक्ष में—हे राजन्! उत्तम भूमियों के स्वामी और हम प्रजाजन तुझे वाणी से मुख्य पद पर प्रस्तुत करते और धनों सहित तेरे आगे झुकते हैं। ऐश्वर्यवान् होने से 'जातवेदा' और सर्व-निरीक्षक साक्षी, द्रष्टा या विविध प्रजाओं का स्वामी होने से 'विचर्षणि' है।

तमु॑ त्वा॒ गोत॑मो गि॒रा रा॒यस्का॑मो दुवस्यति। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः॥२॥

भा०—हे परमेश्वर! एवं विद्वन्! ज्ञान और ऐश्वर्य की कामना करने वाला विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन उस स्तुति योग्य तुझ को ही वाणी से भजन करता है। हम भी उत्तम गुणों के प्रकाशक स्तुति-वचनों और यशः कीर्तनों से तुझे लक्ष्य करके अच्छी प्रकार स्तुति करें।

तमु॑ त्वा वाज॒सात॑ममङ्गि॒रस्व॑द्धवामहे। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः॥३॥

भा०—ज्ञानों, अन्नों और ऐश्वर्यों के उत्तम दान देने वाले, शरीर में प्राणों के समान और आकाश में सूर्य के समान सबको चेतना और प्रकाश देने वाले उस तेरी ही हम स्तुति करते हैं उत्तम यश संकीर्तनों से हम तुझे ही बार बार नमस्कार करते हैं।

तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रव धूनु॒षे। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥४॥

भा०—जो तू प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को कठोर दण्डों से भयभीत कर देता है उस मेघ या अन्धकार के समान प्रबल शत्रु को सूर्य के समान छिन्न-भिन्न करने वाले तुझको हम धनों और चमचमाते शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित होकर अच्छी प्रकार स्तुति करें। तेरे यश का कीर्त्तन करें।

अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑म॒द्वचः॑। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः॥५।२६॥

भा०—अधर्म को त्यागने वाले और शत्रु से अपने देश को छुड़ा लेने वाले अथवा अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले हम सदा अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, वीर नायक के आदर और हित के लिये मधुर और मनन योग्य विचार पूर्ण, हर्षजनक वचन कहा करें। और

उत्तम गुण प्रकाशक स्तुति-वचनों से उसके गुणों को सर्वत्र प्रकाशित किया करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[७६]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१–३ त्रिष्टुप्। (१ विराट्। २–३ निचृत्)। ४–६ आर्ष्युष्णिक्। (५, ६ निचृद्)। ७–१२ गायत्री (७, ८, १०, १२ निचृत्। ८ पिपीलिकामध्या) ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥

भा०—पुरुष कैसा हो ? अन्धकार और राजस आवरण को दूर करने के कार्य में और विविध दिशाओं मे फैलने या आक्रमण करने में सुवर्ण के समान तेज या ज्योति से युक्त या सूर्य वा अग्नि के समान तेजस्वी हो। और विविध सार अर्थात् वलों के प्राप्त करने और विविध ऐश्वर्यों के दान करने के कार्य में भी मेघ के समान उदार, निष्पक्षपात भाव से सब पर सुखों का वर्षक हो। प्रचण्ड वायु के समान वेगवान्, अत्यन्त उग्र होकर शत्रुओं को भय से कंपा देने वाला हो। स्त्रियें किस प्रकार की बनें ? स्त्रियें और कुमारी कन्याएं शुचि, पवित्र, निष्कलंक आचार के प्रकाश या कान्ति से सुशोभित, प्रातःकालिक नव प्रभात वेलाओं के समान हृदय को आह्लादित तथा पवित्र करने वाली, लौकिक कुटिल, अधार्मिक कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ, निष्पाप (Innocent and Ignorant of evils) और उत्तम यश वाली, नित्य उत्तम कर्म और ज्ञानों को प्राप्त करने की इच्छा वाली, कभी निकम्मा न रहने वाली और सत्य व्यवहार करने वाली अर्थात् सन्तानों के प्रति सद्-व्यवहार करने में कुशल हों।

आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥२॥

भा०—किरण गण जिस प्रकार गति देने वाले वायुगण से मिलकर जब इस प्रकार मेघ पर सब तरफ़ से आघात करते हैं तब श्याम रंग का बरसने वाला बादल गर्जन करता है। और वह अति शान्तिदायक मानो मुस्कराती हुई विद्युतो से युक्त हो जाता है। तब जलवृष्टियां गिरती हैं और मेघ गरजते हैं। इसी प्रकार वे उत्तम पालन और ज्ञान तथा कर्म की सामर्थ्य वाले विद्वान् पुरुष अपने प्रकाशक ज्ञानों से सब तरफ व्यापते हैं। अज्ञान अंधकार को काटने वाला, सब के चित्तों को आकर्षण करने वाला विद्वान् पुरुष, मेघ के समान ज्ञानो और सुखो की वर्षा करने वाला होकर जिस प्रकार यह वृष्टि का कार्य होता है उसी प्रकार उत्तम उपदेश करे। और कल्याण करने वाली, किञ्चित् हास से खिले मुख वाली सुन्दरियों के समान सबका उपकार करने वाली, विकसित भावों वाली वाणियो से वह सबको प्राप्त हो। और उसकी जल वृष्टियों के समान ज्ञानवर्षाएं हों। और ज्ञानों के देने वाले गुरुजन मेघों के समान गंभीरता से उपदेश करें।

गृहस्थ पक्ष में—जब चित्ताकर्षक बलवान् पति कल्याणी, प्रसन्नवदना ब्रह्मचारिणी कन्याओं के साथ उनकी इच्छानुसार उन्हे प्राप्त होता है तब सुखों की वर्षा होती है या तभी उत्तम रीति से निषेक आदि कर्म होते हैं और उत्तम प्रजाएं उत्पन्न होती हैं।

यदी॑मृतस्य॒ पय॑सा॒ पिया॑नो॒ नय॑न्नृ॒तस्य॑ प॒थिभी॒ रजि॑ष्ठैः।

अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा॒ त्वचं॑ पृञ्च॒न्त्युप॑रस्य॒ योनौ॑ ॥२॥

भा०—जिस प्रकार आकाश को पूर देने वाले जल के वाष्पमय रूप से खूब भरपूर, तृप्त होकर वायु इस मेघ को या जल को अन्तरिक्ष के धूलिकणों से युक्त मार्गों से ले जाता है तब सूर्य, वायु, जल सर्वत्र व्यापक भूमि के अंश धूलि आदि ये सब पदार्थ मेघ के उत्पन्न होने के स्थान में जल की त्वचा को अर्थात् जल के बाह्यांश को संयुक्त करते हैं और तब मिलकर जल का वृन्द तैयार हो जाता है। उसी प्रकार अब

के परिपोषक सूक्ष्म अंश शुक्र से परिपुष्ट होकर पुरुष मूल सत्कारण के उस वीर्यांश को रजो युक्त मार्गों से प्राप्त कराता है और सूर्य का तेज, प्राण, उदान और सर्वत्रगामी जीव ये सब गर्भाशय के उत्पत्ति-कमल में त्वग् को सम्पर्क करते हैं तब उस स्थान मे जीव की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार सूर्य की वायु और जल की भूमि ये जब भूमि की त्वचा, पृष्ठ पर संयुक्त होते हैं जल से भरा मेघ जल को धूलि-मार्गों से पहुचाता है तब भूमि पर अन्न, ओषधि तथा जीवों की उत्पत्ति होती है।

आचार्य के पक्ष में—सत्य ज्ञान के सार भाग से परिपुष्ट आचार्य शिष्य को वेद के ऋत, सत्य धार्मिक मार्गों से ले जाता है और न्यायकारी शासक, स्नेही बन्धुवर्ग, दुष्ट वारक सैनिक गण भ्रमणशील परिव्राजक गण ये सब उपनयन द्वारा ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य के आश्रय में ब्रह्मचर्य के रक्षार्थ रूप तपस्योचित मृगछाला आदि साधन को प्रस्तुत करें। तभी उत्तम शिष्य उत्पन्न होते हैं।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

भा०—हे समस्त पदार्थों के जानने हारे परमेश्वर! विद्वानों से युक्त विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! शक्ति के एकमात्र आश्रय प्रभो! शक्तिमान् पुरुष से उत्पन्न विद्वन्! सर्वप्रकाशक! तू गौ आदि पशुओं से युक्त ऐश्वर्य का अथवा वेदवाणी का स्वामी है। तू हमें बड़ा भारी धन तथा वेद ज्ञान प्रदान कर। हे विद्वन्! तू वेदवाणियों से युक्त ज्ञान का स्वामी है। तू बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद, ज्ञानोपदेश हमें प्रदान कर।

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

भा०—वह परमेश्वर, विद्वान् और राजा अग्नि के समान तेजस्वी, प्रकाशक और प्रतापी अति दीप्त होकर सबको सुख से बसाने हारा, वाणी से स्तुति करने योग्य है। हे बहुत सी सेनाओं से युक्त, बहुत से

बलों और ज्ञानोपदेशक मुखों या वचनों से युक्त, क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, ज्ञानी होकर तू हमारे हित के लिये उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त ज्ञान का प्रकाश कर।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! गुणों से प्रकाशमान! ज्ञानवन्! विद्वन्! परमेश्वर! तू दुष्ट पुरुषों और विघ्नकारी दुष्ट भावों का विनाश कर। और हे अग्नि के समान तीक्ष्ण, तेजोमय मुख या ज्वाला के तीक्ष्ण नाशक साधनों, शस्त्रास्त्रों वाले! वह तू अपने बल और ज्ञान सामर्थ्य से दिन और रात दुष्ट पुरुषों की काठों को आग के समान भस्म कर डाल। इति सप्तविंशो वर्गः।

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य ॥७॥

भा०—हे स्तुति करने योग्य सर्वप्रकाशक, परमेश्वर! तू हमें गान करने या स्तुति करने वाले पुरुष की रक्षा करने में समर्थ वेद-ज्ञान के अच्छी प्रकार धारण करने के कार्य में और उस पृथिवी लोक के उत्तम रीति से भरण-पोषण के कार्य मे ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा पालन कर और समस्त ज्ञानों और कर्मों के प्राप्त करने के अवसरों मे हमारी रक्षा कर। राजा केवल इस भूलोकस्थ प्रजाजन के भरण-पोषण मे तथा अन्य समस्त प्रकार के कार्यों में हम प्रजाजनों की रक्षा करे।

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८॥

भा०—हे अग्रणी नायक! हे प्रभो! हे ऐश्वर्यवन्! तू हमे एक ही साथ विद्यमान समस्त शत्रुओं और कष्टों को पराजित कर देने वाले, उत्तम मार्ग में ले जाने वाले अथवा सर्वश्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव के उत्पादक समस्त सेनाओं और संग्रामों मे भी दुस्तर, न समाप्त होने वाला, अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त करा।

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ॥९

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे प्रभो ! तू हमें दीर्घजीवन को प्राप्त करने के लिए उत्तम ज्ञान-विज्ञान के साथ साथ समस्त प्राणियों के जीवनों और आयु की वृद्धि और पुष्टि करने वाले सबको सुखों के देने वाले आम ऐश्वर्य को प्रदान कर।

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व सुम्नयुर्गिरः॥१०॥

भा०—हे ज्ञानवाणियों के उत्तम विद्वन् ! तू तीक्ष्ण ज्वाला या दीप्ति-वाले अग्नि के समान तेजस्वी परमेश्वर, विद्वान् और राजा के वर्णन करने के लिए स्वयं सुख की इच्छा करता हुआ आचारादि में पवित्र प्रभाव-जनक वाणियों को और ज्ञानोपदेशयुक्त वाणियो को अच्छी प्रकार धारण कर और अन्यों को धारण करा।

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः। अस्माकमिद्वृधे भव ॥११॥

भा०—हे तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! ज्ञानवन् ! जो हमें दूर और पास सर्वत्र ही सब प्रकार से देना चाहता हो और हमें प्राप्त होना चाहता हो वह आप हमारे वृद्धि के लिए हूजिये। अथवा हे ज्ञानवन् ! नायक ! जो हमारे पास आकर हमें सब प्रकार से नाश करना या हानि पहुंचाना चाहता है वह हमसे दूर हो और तू हमारी वृद्धि के लिए हो।

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति।
होता गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—हजारों देखने वाले साधनो वाला, विशेष रूप से द्रष्टा ज्ञानवन् परमेश्वर, विद्वान् और तेजस्वी राजा समस्त विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करे और वह ज्ञान का दाता, स्तुति योग्य, एवं वेदज्ञान का विद्वान् होकर उपदेश करे। राजा सहस्रों चरों और राजसभा के सभासदों से राष्ट्र के कार्यों को देखने वाला होने से 'सहस्राक्ष' है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८०]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—पथ्यापङ्क्तिः (पंचपदा) । १, ११ निचृत् । ५, ६, ९, १०, १३, १४ विराट् । २—४, ७, १२, १५ एकोना विराट् । ८, १६ द्व्यूना विराट् । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

इत्था हि सोम् इन्मदे ब्रह्मा चकार् वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१॥

भा०—अति हर्षजनक ऐश्वर्य, राज्यशासन के व्यवस्थित हो जाने पर महान् ज्ञानवान् एवं बड़े भारी ब्रह्मा, आचार्य या पुरोहित पद पर विराजमान वेदज्ञ विद्वान् ही इस प्रकार से राज्यशासन बढ़ाने का उपदेश करे । हे शस्त्रास्त्र सेना बल के स्वामिन् ! हे सबसे अधिक शक्तिवाले ! तू अपने राज्य की निरन्तर वृद्धि और मान आदर करता हुआ अपने पराक्रम से इस पृथिवी में से सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार सर्प के समान कुटिलाचारी और मेघ के समान शस्त्रवर्षी शत्रु को सर्वथा दण्डित कर, परास्त कर ।

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

भा०—हे शस्त्रास्त्र सेनाबल के स्वामिन् ! राजन् ! वह सब सुखों का वर्षक बाज के समान आक्रमण द्वारा बलपूर्वक प्राप्त किया हुआ, अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वैभव तुझे हर्षित करे । जिसके बल पर तू अपने राज्यशासन को निरन्तर अधिक मान-आदर देता हुआ, उसकी ही वृद्धि करता हुआ, बल पराक्रम से जलों में से मेघ के समान आप्त प्रजाओं के बीच में से बढ़ते हुए या नाना चाल चलते हुए, विघ्नकारी शत्रु को सर्वथा निकाल बाहर कर ।

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३॥

भा०—हे राजन् ! तू अपने राज्यपद की ही प्रतिदिन प्रतिष्ठा करता हुआ आगे बढ़, प्रयाण कर, अभिमुख शत्रुओं को लक्ष्य करके उनके सामने जा और उनको परास्त कर। तेरा शस्त्रास्त्र बल सूर्य की किरणों के समान कभी रोका नहीं जा सकता। क्योंकि हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तेरा बल ही परम धन है, वह सब मनुष्यों और नायकों को अपने अधीन दबाकर रखने में समर्थ है। अतः तू मेघ के समान फैलते हुए शत्रु को मार, दण्डित कर। समस्त राष्ट्रवासिनी प्रजाओं को विजय कर। अथवा जलों के समान वेग से भागने वाली शत्रु सेनाओं को जीत।

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू नित्य प्रति अपने ही राज्य या राजशासन के महत्त्व को बढ़ाता हुआ, मेघ को जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से छिन्न भिन्न करता है और वायुओं में विद्यमान जीवों को तृप्त करने वाली इन जलधाराओं को आकाश से नीचे गिराता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू भी भूमि पर अधिकार करने के लिये अपने बढ़ते हुए शत्रु को मार और मनुष्य आदि प्रजाओं या वीर भटों की बनी इन जीवन को ही धन के समान जानने वाली प्रजाओं को अपने अधीन कर।

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥२१॥

भा०—सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार वायु वेग से कांपते हुए मेघ के शिखर अर्थात् उन्नत भाग को विद्युत् के आघात से आक्रमण करके जलों के बह जाने के लिये प्रेरित करता है उसी प्रकार अपने राजत्वपद की वृद्धि और प्रतिष्ठा करता हुआ क्रोध करते हुए, उमड़ते हुए शत्रु के एक एक अंग को स्वयं क्रुद्ध होकर ऐश्वर्यवान् राजा सब ओर से आक्रमण करके और जलधाराओं के समान सेनाओं को भाग निकलने के लिये प्रेरित करता हुआ उसे मार गिरावे। अथवा आगे बढ़ने वाले और प्रहार

करते हुए शत्रु के पराजय के लिये उसको सब तरफ से आक्रमण करके नीचे दबावे अर्थात् परास्त करे ।

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ।६।

भा०—अपने राजत्वपद की प्रतिष्ठा करता हुआ ऐश्वर्यवान् राजा, सूर्य के समान तेजस्वी होकर सैकड़ों अंगोंवाले शस्त्रास्त्र बल से प्रहार करने वाले शत्रु के प्रत्येक अंग पर अच्छी प्रकार प्रहार करे । और स्वयं अन्नादि ऐश्वर्य का स्वामी और दाता होकर सबको प्रसन्न करता हुआ मित्र राजाओं के हित के लिये भूमि अर्थात् विस्तृत राज्य को चाहे ।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे वीर्यवन् ! हे अखंड राज्य-शासन, शस्त्र और पर्वतयुक्त राज्य के स्वामिन् ! जिस बल से तू अपने राज्यपद की प्रतिष्ठा करता हुआ उस मायावी, छली, इधर उधर भागते या आक्रमण करते हुए हिंसक शत्रु को अपने बुद्धि कौशल से विनाश करता है । वह अपराजित बल तेरे ही वृद्धि के लिये है ।

वि ते वज्रासो अस्थिरन् नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे शस्त्र अस्त्र बल नावों से खेये जाने वाली ९० नदियों को भी अपने शासन मे रखने में समर्थ हों । तेरे अधीन ९० महानदियों वाला देश हो । तेरा वीरो का बना सैन्यबल या पराक्रम बहुत बड़ा हो । और तेरी बाहुओं मे और शत्रु को पीड़न करने वाली सेना के दोनों बाजुओं में भी बडा बल हो । उससे तू अपने राज्य-शासन की सदा वृद्धि करता रह ।

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

भा०—जो राजा अपने राजपद की प्रति-दिन अर्चना, मान आदर और वृद्धि करता है उस बलवान्, सहस्रों प्रजाओं, ऐश्वर्यों और राष्ट्र-कार्यों के आश्रय स्वरूप पुरुष का आप सब लोग एक साथ मिल कर सत्कार करो। बीसों अमात्य, सहायक मिल कर सब प्रकार से उसके राज्यकार्य को संभालें। इस राज्यपद को सैकड़ों सेना के पुरुष आदर से नमस्कार और सत्कार करें। यह महान् राष्ट्र, धनैश्वर्य और महान् पद और ज्ञानमय वेद परम ऐश्वर्यवान् राजा की वृद्धि के लिये उत्तम रीति से व्यवस्था-पूर्वक स्थिर हो, वही उसका रक्षक स्वामी हो।

इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॒ तवि॑षीं॒ निर॑ह॒न्त्सह॑सा॒ सहः॑ ।
म॒हत्तद॑स्य॒ पौंस्यं॑ वृ॒त्रं ज॑घ॒न्वाँ अ॑सृज॒दर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१०॥३०॥

भा०—विद्युत् या वायु सूर्य के समान तेजस्वी राजा मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु की बलवती सेना को और उसके सामर्थ्य को अपने बल-पराक्रम से सब प्रकार से नाश करे। जो वह बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को नाश कर जल-धाराओं के समान प्रजाओं को आनन्द से युक्त सुखी कर देता है वह ही उसका बड़ा भारी पौरुष अर्थात् पुरुषार्थ है। वह अपनी राज्यशक्ति को नित्य बढ़ाता रहे।

इ॒मे चि॑त्तव॒ म॒न्यवे॒ वेपे॑ते भि॒यसा॑ म॒ही ।
यदि॑न्द्र वज्रि॒न्नोज॑सा वृ॒त्रं म॒रुत्वाँ॒ अव॑धी॒रर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥११॥

भा०—हे राजन्! ऐश्वर्यवन्! जब तू अपनी राज्यशक्ति को बराबर बढ़ाता हुआ वायु के वेग से युक्त विद्युत् के समान शत्रु के मारने में समर्थ वीर सेनागण का स्वामी होकर अपने पराक्रम से मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को विनाश करता है तब जिस प्रकार बड़ी विशाल आकाश और पृथिवी दोनों, सूर्य या विद्युत् के प्रकोप से कांपते हैं उसी प्रकार तेरे क्रोध के भय से ये दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग अथवा स्वसेना और परसेना दोनों कांपें।

न वेपंसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्रं आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार मेघ सूर्य या विद्युत् को न वेग से और न गर्जन से ही विशेष रूप से भयभीत कर सकता है। प्रत्युत तेजोमय, बलपूर्वक गिरने वाला विद्युत् ही उसको छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकार अपने राज्य-सामर्थ्य को बढ़ाता हुआ राजा उस शत्रु को लक्ष्य करके लोहमय शस्त्रों से सुसज्जित और सहस्रों पीड़ा या दाहों को उत्पन्न करनेवाला साक्षात् खड्ग के समान नाशकारी होकर सब तरफ़ से उसका नाश करे। वह शत्रु उस राजा को न अपने वेग से और न गर्जनमात्र से डरा सकता है।

यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! जिस प्रकार विद्युत् को प्रेरित करके वायु मेघ को छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार तू भी अपने शत्रु के वारण करने वाले सैन्य-बल से या शस्त्र से शत्रु शैन्य को खा जाने वाले, व्यापक शक्ति वाले अस्त्र को प्रहार करके घटते वा युद्ध करते हुए शत्रु से युद्ध कर। और जैसे सूर्य के प्रकाश के बल पर या आकाश में सर्वत्र फैला मेघ छिन्न-भिन्न हो जाता है उसी प्रकार आगे से प्रहार करने वाले शत्रु को नाश करते हुए तेरा बल शत्रु का नाश करे। तू उस प्रकार अपनी राज्य की खूब वृद्धि करता रहे।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगंच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४॥

भा०—हे अखण्ड बल वीर्य के स्वामिन् ! प्रबल सेनापते ! हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! जब तेरे गर्जना और आज्ञा में स्थावर और जंगम सभी कांपते हैं। तेरे क्रोध और ज्ञान-सामर्थ्य के भय से सूर्य के समान तेजस्वी तथा छेदन-भेदन करने वाला सैन्य गण और शिल्पीगण भी भय से सदा

कांपा करे। तू इस प्रकार अपनी राजसत्ता की निरन्तर वृद्धि करता रह।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥

भा०—कोई चाहे क्यों नहीं राजा की शरण में जावे? किन्तु हम राजा को ही शरण रूप से प्राप्त करें। हम विचार करें कि राजा से बढ़ कर दूसरा कौन है? जो अपने राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, उसका आश्रय लेकर दानशील, ज्ञानी और विजय या ऐश्वर्य की कामना करने वाले पुरुष मनुष्यों के अभिलाषा योग्य, मन चाहे धन, ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और समस्त बल पराक्रमों को अच्छी प्रकार स्वयं धारण करते हैं और उस ही में वे सब ऐश्वर्यों, सामर्थ्यों और पराक्रमों को स्थापित करते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—उस भगवान्, परमेश्वर को चाहे कोई क्यों न प्राप्त हो? कोई क्यों न उसकी शरण में जावे? किन्तु हम तो नित्य उस परमेश्वर का ही स्मरण करते हैं। वीर्य और बल में सबसे उस प्रभु के सिवाय श्रेष्ठ दूसरा कौन है? सूर्य आदि लोक और विद्वान् जन उसमें ही समस्त ऐश्वर्य, ज्ञान, कर्म और बल-पराक्रम स्थापित करते और उसके आश्रय पर स्वयं इनको अपने मे अच्छी प्रकार धारण करते हैं। अथवा क्या सर्वव्यापक परमेश्वर को हम नहीं जान सकते। समस्त बलों को दूसरा कौन धारण करता है? सिवाय परमेश्वर के दूसरा नहीं। वही प्रभु परमेश्वर अपने परम शासन को प्रतिष्ठित किये हुए है।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत। तस्मिन् ब्रह्माणि
पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

भा०—प्रजा का पीड़न न होने देने वाला, प्रजा के दुःखों की शान्ति करने वाला, मननशील, ज्ञानवान्, सबका पालक गुरु प्रजाओं का धारण पोषण करने वाले समस्त उपायों और गुणों को स्वय प्राप्त कराने वाला होकर जिस ज्ञान या कर्म को करता, उसी कर्म को तुम लोग भी करो और उस ऐश्वर्यवान् वीर पुरुष के आश्रय रहकर पूर्व पुरुषों के समस्त

ऐश्वर्य और ज्ञानों तथा स्तुति योग्य गुणों को प्राप्त कर। वह अपने राज्य की सदा वृद्धि करे।

यह समस्त सूक्त परमेश्वरोपासना परक भी है। 'स्वराज्य' अपने आत्मा के प्रकाशस्वरूप का साक्षात्कार या स्वतःप्रकाशक परमेश्वर का परम स्वरूप ही स्वराज्य है, उसकी प्राप्ति उसकी अर्चना है। इन्द्र यह आत्मा है। (१) सोम परमानन्द रस है। उसमें मग्न आत्मा ईश्वर की स्तुति अपनी वृद्धि के लिये करे। अज्ञान का नाश करे। (२) ज्ञानवान् पुरुष है। वृक्ष अज्ञान है। (३) नृ-इन्द्रियां। उनको दबाने वाला सामर्थ्य 'नृम्ण' है। 'अपः' प्राणगण। वज्र ज्ञान है। (४) भूमि = चित्त-भूमि। मरुत्वती आपः। प्राणमय वृत्तियां। (५) अन्धसः, आनन्द रस। 'सखायः' प्राण गण। (७) मायी मृग मन है। 'नवतिः नाव्या' ९० वर्ष हैं। (८) 'विंशति' दश २ बाह्य और आभ्यन्तर प्राणगण, 'शत' सौ वर्ष। (११) मही, प्राण और अपान। (१२) त्वष्टा-प्राण। (१५) दध्यङ्-ध्यानी पुरुष। उत्तम स्तुतियां। इति दिक्। इत्येकत्रिंशो वर्गः।

इति पञ्चमोऽध्यायः।

अथ षष्ठोऽध्यायः।

[८१]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—पचपदा पङ्क्तिः। १, २, ७–९, विराट्। ३, ५ निचृत्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

भा०—मेघों को छिन्न-भिन्न करने वाले सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी, बढ़ते हुए शत्रु का नाश करने वाला ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, राजा अपने नायक पुरुषों के साथ ही प्रजागण के हर्ष की वृद्धि और बल की वृद्धि करने के लिये बड़े और अधिक ऐश्वर्य प्राप्त करे। बड़े बड़े संग्रामों

और छोटे छोटे संग्रामों में भी हम उसको ही शरण रूप से प्राप्त करें। संग्राम कार्यों में हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करे।

अध्यात्म में और परमात्मा के पक्ष मे—इन्द्र, आत्मा और परमात्मा। नृ, प्राणगण विद्वान्गण। मद—अति हर्ष, परमानन्द। शव—ज्ञान और बल। आजि—व्यापक गुण, महान् पदार्थ। अर्भ—हृदयाकाश और परमाणु। वाज—ज्ञानैश्वर्य।

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥२॥

भा०—हे शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे, शूर राजन्! सेनापते! तू सेनाओं में सबसे श्रेष्ठ और उनका हितकारी है, तू सेना द्वारा संग्राम-कुशल है। तू बहुत से उपायों से शत्रुओं को पराजित करने हारा है। छोटे, अल्प बल वाले को भी तू बढ़ाने वाला हो और अन्यों के लिये नाना सुख उत्पन्न करने वाले, दानशील धर्मात्मा की वृद्धि के लिये तू अपना बहुत सा ऐश्वर्य प्रदान कर।

परमात्मा के पक्ष में—'इन' अर्थात् स्वामी, आत्मा से युक्त इन्द्रिय गणों में सर्वश्रेष्ठ होने से आत्मा 'सेन्य' है। स्वामी प्रभु समस्त लोकों में व्यापक होने से प्रभु 'सेन्य' है। बहुत देने से 'पराददि' है। स्वल्प जीव की अपेक्षा करने वाले या दभ्र, हृदयाकाश को आनन्द सामर्थ्य से बढ़ाता है। 'सवन' अर्थात् उपासनाशील आत्मसमर्पक जीव को वह बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है।

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥३॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! जब नाना संग्राम उठ खड़े होते हैं उस समय शत्रुओं को पराजय करने वाले बल को दृढ करने के लिये नाना प्रकार के धनों को धारण किया जाता है, उनको कोश में संग्रह किया जाता है। उसी समय अति हर्ष से आवेग को प्राप्त होने वाले, दृढ़ शत्रुओं

का गर्व ढीला कर देने वाले रथ में दो घोड़ों के समान राज्य के भार को उठाने के लिये दो मुख्य विद्वानों को भी नियुक्त कर। तू किसी शत्रु को मारे और किसी को ऐश्वर्य या राष्ट्र के ऊपर अधिकारी रूप से स्थापित करे। हे ऐश्वर्यवन् ! हमें बसने योग्य राष्ट्र में या ऐश्वर्य के बल पर पालन पोषण कर। अथवा हे इन्द्र ! तू किसको मारे और किसको राष्ट्र में स्थापित करे इस बात का विवेक कर और हम प्रजाजन को राष्ट्र में पालन पोषण कर।

क्रत्वा मुहाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः। श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥

भा०—कर्म, सामर्थ्य और बुद्धि में बड़ा शक्तिशाली, भयंकर शत्रुओं का नाशक, प्रबल तेजस्वी, सूर्य के समान वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों और वीरों, विद्वानों का स्वामी, सेनापति या राजा अपने अन्न आदि धारण पोषण के सामर्थ्य के अनुसार ही सैन्य बल की वृद्धि करे और राज्यलक्ष्मी के विजय के लिये हाथों में लोह के बने खड्ग के समान ही पार्श्ववर्त्ती, बाहुओं में स्थित सेनाओं में भी वेग से जाने वाले बल वीर्य को धारण करावे।

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ॥५॥१॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित परमाणु आदि वस्तुओं और समस्त लोक-समूह को सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है। तू उनमें भी व्यापक है। तू सूर्य में प्रकाशमय दीप्ति को तथा आकाश में चमकते हुए सहस्रों सूर्यों को थाम रहा है। हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे जैसा कोई भी न पैदा हुआ और न होगा। तू समस्त विश्व को बहुत अच्छी प्रकार से धारण करने में समर्थ है। तू उस विश्व से कहीं बड़ा है।

राजपक्ष में—हे इन्द्र ! तुझसे दूसरा न कोई पैदा हुआ, न होगा। तू समस्त राष्ट्र के भार को उससे बढ़कर अपने में धारण करने का यत्न

कर । तू पृथिवी निवासी लोक समूह या जनों को सब प्रकार के ऐश्वर्य से पूर्ण कर, ज्ञानवान् पुरुषों की सभा में रुचिकर कार्यों को नियत करे।

यो अर्यो मर्तभोजनं परा ददाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥

भा०—जो परमेश्वर और राजा स्वयं सबका स्वामी होकर दान देने हारे पुरुष को मनुष्यों को पालन करने और भोग करने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करता है वह ऐश्वर्यवान्-परमेश्वर और राजा हमें भी बहुत सा ऐश्वर्य प्रदान करे। हे प्रभो ! तू अपने बहुत से राष्ट्र में एकत्रित हुए ऐश्वर्य का विविध रूपों में, विभागों में, प्रजाओं में विभक्त कर। हम राष्ट्रवासी, तेरे ऐश्वर्य का सेवन करें, आनन्द लाभ करें। स्थित महान् ऐश्वर्य का विभाग, देखो (यजुर्वेद अ० २८)।

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।
सं गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू अति ऋजु, सरल धर्मानुकूल, सुखप्रद, विज्ञानवान् और कर्म-सामर्थ्यवान् है। तू हमें प्रत्येक हर्ष के अवसर में या प्रत्येक आनन्दजनक पदार्थ में सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रदान करता है उसी प्रकार ज्ञानमय किरणों, ज्ञानवाणियों, लोकसमूहों, विद्वानों तथा पशु आदि समूहों को और इन्द्रियों को भी प्रदान करता है। दोनों हाथों से भर २ कर देने वाले महादानी के समान बहुत, सैकड़ों ऐश्वर्यों को या बसने वाले जीवों और लोकों को अच्छी प्रकार धारण कर, तू ऐश्वर्यों को प्रदान कर और हमें सब प्रकार भरण पोषण कर। इसी प्रकार राजा भी प्रत्येक हर्ष के अवसर गौओं के समूह के समूह, जूथ के जूथ देने वाला हो, वह साधु धर्माचरण करने वाला और धार्मिक चित्त वाला हो, वह दोनों हाथों से भर भर कर ऐश्वर्यों का संग्रह करे और ऐश्वर्यों का दान करे और प्रजा का पालन-पोषण करे।

आदयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८॥

भा०—हे शत्रुओं के नाशक राजन् ! तू अभिषेक द्वारा प्राप्त, एवं ऐश्वर्यमय राष्ट्र में बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि और उसके उपभोग के लिये सबको तृप्त कर, उनको भरपूर धन दे। नाना ऐश्वर्यों के स्वामी तुझको हम आश्रय लें और तुझसे समस्त अभिलाषाओं को प्राप्त करें और तू हमारा रक्षक हो।

परमेश्वर के पक्ष में—हे दोषों के निवारक ! इस जगत् में तू ज्ञान और बल धन से सबको तृप्त कर। शेष पूर्ववत्।

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥९॥२॥

भा०—हे राजन् ! और ईश्वर ! वे समस्त जीवगण तथा पशु आदि, तेरे सब वरण करने योग्य ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं। तू सबका स्वामी, जनों के भीतर भी देखता और उनको ज्ञान उपदेश करता है, उनके भीतर ज्ञान को प्रदान कर। दान न देने वाले उनका धन आ भर, हमें प्रदान कर। गवादि पशु सब राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं। वह स्वामी राजा सब प्रजाओं के बीच ज्ञान का उपदेश करे। योग्य अधिकारी पुरुष दान न देने वाले कंजूसों के धन को दण्ड भय से प्रजा को दिलवावे।

[८२]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—पचपदा पङ्क्तिः। १, ४ निचृत्। २, ३, ५ विराट्। ६ विराट् जगती ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! विद्वन् ! हे धनों के स्वामिन् ! तू प्रतिकूल पुरुष के समान अन्यथा भाव होकर मत रह। और अति समीप सावधान होकर उत्तम रीत से वाणियों अर्थात् प्रजा की पुकार का श्रवण

कर । अनन्तर तुझ से यही प्रार्थना है कि हमें उत्तम सत्य ज्ञानमय वाणी से युक्त तथा अन्नादि युक्त कर । तथा रथ में दो अश्वों के समान दुःखों के हरने वाले दो मुख्य विद्वानों को सत्य उपदेश के लिए लगा, नियुक्त कर ।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२॥

भा०—अपने तेज या दीप्ति से चमकने वाले सूर्य आदि के समान तेजस्वी होकर मेधावी, ज्ञानी पुरुष अति नूतन, नयी से नयी बुद्धि से युक्त होकर ईश्वर की स्तुति करें तथा नाना विद्याओं का उपदेश करें । वे सब उत्तम गुणों को प्राप्त करें और सब ऐश्वर्यों का भोग करें । वे निरन्तर आनन्द प्रसन्न रहें और सबके प्रति प्रेमभाव से युक्त, सबके प्रिय होकर अपने दुर्व्यसनों, दोषों और बुरे पुरुषों को त्याग करें, जैसे कपड़े को झटक कर झाड़ देते हैं और उसकी धूलि दूर हो जाती है, उसी प्रकार विद्वान् अपने आत्मा में से मलों को दूर करें । हे राजन् ! हे आत्मन् ! तू अपने प्राण और अपान के समान और ज्ञानी और कर्मनिष्ठ विद्वानों को रथ में अश्वों के समान नियुक्त कर । वे राष्ट्र की व्यवस्था करें ।

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! ईश्वर ! राष्ट्र कार्यों, ज्ञानों और जगत् के समस्त व्यवहारों को उत्तम रीति से देखने हारे तुझको हम नमस्कार और स्तुति करें । तू पूर्ण रीति से स्नेहबन्धन से बधकर निश्चय से स्तुति किया जाकर आगे बढ़, प्रयाण कर । और शत्रुओं को वश कर । अथवा हे परमेश्वर ! तू कामना करने वाले या अपनी इन्द्रियों पर वश करने वाले साधकों को प्राप्त हो । और हमें ज्ञान और कर्म की शक्ति को प्रदान कर ।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४॥

भा०—हे शत्रुओं के नाशक! वीर! राजन्! जो वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों और विद्वानों को अपने अधीन नियुक्त करने वाले, पूर्ण सब के पालन करने वाले, रक्षक सेनाबल को अच्छी प्रकार वश करता या जानता है वह ही उस प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने वाले भूमि राज्य को प्राप्त करने वाले विजयी रथ पर विराजे। वैसा सामर्थ्यवान् होकर तू अपने अश्वों और दोनों बाजू के सेना-दलों को नियुक्त कर, संचालित कर।

योगी के पक्ष में—जो सब दुःखों के वारक अपने स्वरूप को समाधि से प्राप्त कराने वाले पूर्ण पालनकर्त्ता परमेश्वर को जान लेता है वह उस समस्त सुखों के बरसाने वाले रसस्वरूप, सब दुःखों के छुड़ाने वाले, सूर्यादि लोकों में व्यापक, ज्ञानवाणियों के प्रापक, परमेश्वर को प्राप्त होता है, उसकी उपासना करता है। हे आत्मन्! तू अपने वेगवान् प्राण और अपान दोनों को वश कर।

अध्यात्म में—जो इन्द्रिय रूप अश्वों से युक्त पालक आत्मा को जानता है वह उस बलवान्, सुखप्रद इन्द्रियों को वश करने वाले रथ के समान आत्मा या देह आदि को प्राप्त करता या वश कर लेता है।

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५॥

भा०—हे सैकड़ों प्रकार के कर्म, सामर्थ्य और प्रज्ञानों के जानने हारे विद्वन्! तू अपने दोनों अश्वों को रथ में जोड़। तेरे दायें पार्श्व का और बायें पार्श्व का अश्व भी अच्छी प्रकार से जुड़े। उस रथ से पुत्रों की उत्पादक, प्रिय स्त्री को और ऐश्वर्यों की उत्पादक प्रिय भूमि को अति हर्षित करता हुआ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। अथवा अन्न आदि भोग्य पदार्थों से प्रिय पत्नी व भूमि को प्रसन्न करता हुआ रथ से देश-देशान्तर को प्राप्त हो।

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः॥६॥

भा०—हे उत्तम शस्त्रास्त्र सेनाबल से युक्त सेनापते ! राजन् ! विद्वन् ! तेरे उत्तम केशों वाले रथ को ले जाने वाले बलवान् अश्वों को मैं सारथि अन्न धन के निमित्त या ज्ञान के साथ, रथ-संचालन की कला के ज्ञान सहित रथ में जोड़ूं। अपने बाहुओं के अधीन उन दोनों अश्वों को तथा अपने अधीन राज्य-शकट के संचालक दोनों मुख्य पुरुषों को अपने समीप रख। इस प्रकार तू विजय के लिए प्रयाण कर। तुझे अति वेगवान्, दीक्षा-प्राप्त सुभट खूब सुप्रसन्न करें। और तू राष्ट्र के पोषक, शत्रु के बल के रोकने वाले वीर पुरुषों और भूमि का स्वामी होकर अपनी स्त्री तथा प्रजापालन करनेवाली राजसभा, उत्तम नीति तथा पालक राजशक्ति के साथ अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर। इति तृतीयो वर्गः॥

[८३]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृज्जगती। २ जगती। ६ त्रिष्टुप् व्यूहन जगती वा॥ षडर्चं सूक्तम्॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः॥१॥

भा०—हे सेनापते ! राजन् ! अश्व से युक्त रथ या रथारोहियों के सेनादल में सबसे मुख्य पुरुष तेरे रक्षा-साधनों से स्वयं सुख से समस्त प्रजाजनों को अच्छी प्रकार रक्षा करने में समर्थ होकर भूमियों, पशुओं के विजय द्वारा लाभ के निमित्त जावे। अथवा उत्तम प्रजारक्षक पुरुष तेरे किये रक्षार्थ विधानों द्वारा रथ पर बैठ कर भूमियों पर विचरण करे। तू उसको ही बहुत अधिक ऐश्वर्य से ऐसे पूर्ण कर जैसे चेतनारहित जल-धाराएं अनायास सब तरफ़ से आ आ कर महान् सागर को पूर देती हैं। अथवा उस मुख्य पुरुष को इसलिये ऐश्वर्य प्रदान कर जिससे विशेष

ज्ञानों वाले आप्त विद्वान् जन सबको केन्द्र के समान अपने में बांधने वाले सागर के समान गम्भीर राजा को प्राप्त हों ।

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जलधाराएं स्वयं नीचे स्थल को प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार विदुषी स्त्रियें प्रेम पूर्वक स्वीकार करने वाले विद्वान् पुरुष को प्राप्त हों । जिस प्रकार लोग अन्तरिक्ष या सूर्य को विस्तृत रूप में देखते हैं उसी प्रकार वे स्त्रियें तथा आप्त विद्वान् जन रक्षास्थान तथा ज्ञान को भी साक्षात् करें । विद्वान् तेजस्वी, ज्ञान की कामना करने हारे पुरुष अपने आगे आगे या उत्तम रीति से आगे आगे चलने वाले उत्तम विद्वानों सहित योग्य शिष्यों के स्वामी पुरुष को प्रमुख स्थान पर स्थापित करते हैं । और वे सब मिलकर वरण करने योग्य या श्रेष्ठ पुरुष जिस प्रकार कन्या के स्वयंवर में आकर कन्या की अभिलाषा करते हैं उसी प्रकार वे भी मिल कर वेद ज्ञान, परमेश्वर और ऐश्वर्य से पूर्ण उनके प्रिय विद्वान् पुरुष को प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं, उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं ।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! गुरो ! परमेश्वर ! जो दोनों परस्पर सम्मिलित, स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य, राजा प्रजा आदि जोड़े मन, वाणी, प्राण और इन्द्रिय गण पर वशी होकर तेरी सेवा या आज्ञा का पालन करते हैं तू उन दोनों के हित के लिये उपदेश योग्य वचन, वेद-ज्ञान का उपदेश प्रदान कर, अथवा जो दोनों मिल कर एक दूसरे के प्रति कहने तथा आचरण करने योग्य ज्ञानोपदेश या आचरण करते हैं उन दोनों का तू धारण पोषण कर । हे परमेश्वर ! जो संयम वा जितेन्द्रियता से न रहने वाला पुरुष भी जब तेरे उपदेश किये नियम में रहता है उस ऐश्वर्य के अभिलाषी, अपने आपको अधीन शिष्य रूप से अर्पण करने वाले दानशील,

पुरुष की कल्याण करने वाली, सुखजनक शक्ति पुष्ट हो जाती है। अर्थात् गुरुसेवा और ईश्वरभक्ति से अजितेन्द्रिय और दुर्बल भी प्रबल हो जाता है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥३॥

भा०—जो जलते अगारों के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष बाहर की यज्ञाग्नियों और भीतर की प्राणाग्नियों को प्रज्वलित करके उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त शान्तिजनक साधना से प्रथम अवस्था को ब्रह्मचर्य पूर्वक धारण करते हैं। अथवा जो मुख्य बल, ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं बछड़ा जिस प्रकार अपनी माता को प्राप्त होता है और दूध आदि भोजन वा सुख पाता है उसी प्रकार वे मनुष्य स्तुति योग्य उत्तम व्यवहार और उपदेश योग्य वेद-ज्ञान के पालन सामर्थ्य और अश्वों और गौओं से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। अथवा जो ज्ञानी पुरुष प्रथम बल को धारण करते हैं वे स्तुति योग्य, उत्तम व्यवहार कुशल सम्पन्न पुरुष के योग्य भोजन, अश्वों और गौओं से युक्त पशु-सम्पत्ति को भी प्राप्त करते हैं।

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

भा०—प्रजाओं को पीड़ा न देने हारा, शान्तिदायक, प्रजापालक पुरुष उत्तम परस्पर के संगति कराने वाले विद्या, विज्ञान, प्रचार तथा अन्य अन्य उत्तम साधनों से सबसे मुख्य पद पर स्थित होकर नाना मार्गों को, नाना विधानों को बिस्तृत करता है, बना लेता है, उसके पश्चात् जिस प्रकार कान्तिमान् सूर्य उदय होकर अपनी किरणों को सब तरफ फेंकता है उसी प्रकार तेजस्वी, व्रतों, धर्म नियमों का पालक पुरुष संसार में प्रकट होता है, विद्वान् पुरुष का पुत्र या शिष्य, सुशिक्षित, तेजस्वी, सब प्रजा की हित कामना वाला पुरुष समस्त वेद-वाणियों को सर्वत्र प्रकाश करता है और क्रान्तदर्शी, तेजस्वी, राज्यलक्ष्मी का इच्छुक राजा भूमियों को प्राप्त करता है। तब सब मिलकर हम यम-नियम में

निष्ठ, सर्वनियन्ता परमेश्वर के प्रसिद्ध या प्रकाशित सब दुःखों से रहित, अमृतमय मोक्षसुख को सूर्य द्वारा वृष्टि जल के समान अतिशान्तिदायक रूप में प्राप्त करते हैं। उत्तम विद्वान् के भूमियां प्राप्त कर लेने पर हम सब परस्पर संगठित होकर सर्वनियन्ता राजा के प्रकट रूप से अविनाशी, स्थिर शासन के सुख को स्वयं बनाते और सुव्यवस्थित करते हैं। सूर्य के समान ज्ञानी आचार्य नव वाणियों का उपदेश करता है तब यम नियम पालन रूप-ब्रह्मचर्य के प्रकट अविनाशी वीर्य को हम प्राप्त करते हैं।

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ६।४

भा०—जिस प्रकार उत्तम, अविनाशी, नीचे न गिरने वाले, श्रेष्ठ यज्ञ, कर्म या उत्तम फल के प्राप्त करने के कुश-घास काट ली जाती है उसी प्रकार जिस राज्य में उत्तम सन्तान के लिये यह समस्त भूलोक और उसमें रहने वाले प्रजाजन त्यागे जाते हैं, अर्थात् जहां उत्तम सन्तति के लिये मा बाप अपना सर्वस्व त्यागते हैं और जहां आकाश में सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश में अर्चना करने योग्य ज्ञानवान् पुरुष वेदवाणी का सर्वत्र उपदेश करता है और जिस देश में उत्तम उपदेश करने योग्य वचनों में कुशल ज्ञानोपदेष्टा पुरुष मेघ के समान गंभीर ध्वनि से उपदेश करने हारा उपदेश करता है उस ही प्रजाजन के हित के लिये सब प्रकार के प्राप्त करने योग्य कार्य-व्यवहारों में उत्तम ऐश्वर्यों, सुखों का दाता पुरुष उपदेश करता है। इति चतुर्थो वर्गः।

[८३]

गोतमो राहूगण ऋषिः। इन्द्रो देवता। छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप्। २, ४ विराडनुष्टुप्। ६ भुरिगुष्णिक्। ७–९ उष्णिक्। १०, १२ विराट् पथ्यापङ्क्तिः। ११ निचृत् पथ्यापङ्क्तिः। १३–१५ निचृद् गायत्री। १६, १८ त्रिष्टुप्। १७ विराट् त्रिष्टुप्। १८ त्रिष्टुप्। (प्रगाथ =) १९ एकोना विराट् पथ्या बृहती। २० निचृत् सतोबृहती पङ्क्तिः॥ विंशत्यृचं सूक्तम्॥

असा॑वि॒ सोम॑ इन्द्र ते॒ शवि॑ष्ठ धृष्ण॒वा ग॑हि ।
आ त्वा॑ पृणक्त्विन्द्रि॒यं रजः॒ सूर्यो॒ न र॒श्मिभिः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुओं का धर्षण, पराजय करने हारे ! प्रगल्भ ! हे अति शक्तिशालिन् ! हे राजन् ! सेना, सभाध्यक्ष विद्वन् ! तू आ, हमें प्राप्त हो। तेरे लिये ही यह ओषधि रस, अन्न और ऐश्वर्य और अध्यात्म में परमानन्द रस उत्पन्न होता है, किरणों से जिस प्रकार सूर्य समस्त अन्तरिक्ष को व्याप्त लेता है उसी प्रकार ऐश्वर्य, आत्मिक बल और सामर्थ्य तुझे सब प्रकार से पूर्ण करे ।

इन्द्र॒मिद्धरी॑ वह॒तोऽप्र॑तिधृष्टशवसम् ।
ऋषी॑णां च स्तु॒तीरुप॑ य॒ज्ञं च॒ मानु॑षाणाम् ॥ २ ॥

भा०—वेगवान् अश्व जिसके बल को कोई दबा या परास्त नहीं कर सके ऐसे ऐश्वर्यवान् राजा को ही वेगवान् दोनों अश्व तथा दो ज्ञानवान् पुरुष वेदमन्त्रार्थों के जानने वाले विद्वानों की स्तुतियों और मनुष्यों के यज्ञ को भी प्राप्त कराते हैं। अर्थात् विद्वानों और मनुष्यों के सत्संगों में राजा अश्वों द्वारा रथ पर चढ़ कर ही जावे और दूसरे, उसके अधीन दो विद्वान् उसके राज-कार्य-भार को चलाने के लिये नियुक्त हों। एक का कार्य विद्वानों के सत् आदेश राजा तक पहुंचना है और दूसरे का कार्य साधारण प्रजा के उत्तम कार्यों के साथ राजा को सम्बद्धित रखना है।

आ ति॑ष्ठ वृत्रह॒न् रथं॑ यु॒क्ता ते॒ ब्रह्म॑णा॒ हरी॑ ।
अ॒र्वा॒चीनं॒ सु ते॒ मनो॒ ग्रावा॑ कृणोतु व॒ग्नुना॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य के समान शत्रु-दल को छिन्न भिन्न करने हारे ! तेरे अधीन कार्य निर्वाहक दो विद्वान्, दो अश्वों के समान रथ रूप राज्य कार्य-भार में नियुक्त हों। तू उस कार्य पर अधिष्ठाता रूप से विराजमान हो। उत्तम वचनोपदेशों का देने वाला वाग्मी पुरुष उत्तम वचनोपदेश से तेरे चित्त को अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य कार्य की ओर उत्तम रीति से आकर्षित करे।

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू इस सबसे उत्तम, साधारण मनुष्यों को प्राप्त न होने वाले, सबको सन्तुष्ट करने वाले, अत्यन्त सुखदायी उत्तम ओषधि रस के समान अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यपद को प्राप्त कर, उसका उपभोग कर। तुझे शुद्ध जल की धाराओं के समान शुद्ध, सत्य ज्ञान की व्यवस्था-पुस्तक वेद की ज्ञानवाणियाँ सब प्रकार से तेरा अभिषेक करें, तुझे प्राप्त होकर ज्ञान प्रदान करें।

इन्द्राय नूनमर्चतोकथानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा का अवश्य आदर सत्कार करो और उसके लिये योग्य वचनों तथा उपदेश करने योग्य शास्त्रोपदेशों का भी उपदेश करो। अभिषेक को प्राप्त होकर ऐश्वर्यवान् पुरुष हर्ष को प्राप्त हों। हे प्रजाजनो ! आप सब लोग सबसे उत्तम बल का एवं सर्वोत्तम, बलवान् पुरुष का आदर किया करो।

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! जब तू अश्वों को जोड़ता है तब क्या तुझसे बढ़कर उत्तम रथारोही कोई नहीं होता और तेरे बराबर क्या बल में भी कोई दूसरा नहीं होता ? और क्या उत्तम अश्वारोही भी तुझसे दूसरा नहीं होता ? होता है। तब तू अति गर्व में मत भूल। सावधान होकर राज्य-शासन कर। अथवा हे इन्द्र ! जब तू अश्वों को जोड़ता है तब तुझसे दूसरा बड़ा महारथी नहीं दीखता, तेरे जैसा बल में भी दूसरा नहीं दीखता। और नहीं तुझसे दूसरा उत्तम अश्वारोही कोई राष्ट्र को भोग सकता है अर्थात् तू ही सबसे बड़ा महारथी, बलशाली और उत्तम अश्वारोही, राष्ट्र का पालक है।

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥

भा०—जो अकेला ही अद्वितीय होकर दानशील मनुष्य को ऐश्वर्य भी नाना प्रकार से देता और दिलाता है हे विद्वान् लोगो! वह ही प्रतिकूल शब्द अर्थात् विरोधी निन्दा से रहित, अथवा जिसके समान पद पर दूसरे किसी को प्रस्तुत न किया जा सके, ऐसा अद्वितीय, अथवा किसी से पराजित न होने वाला, राष्ट्र का स्वामी हो।

परमेश्वर के पक्ष में—वह आत्मसमर्पक भक्त को नाना ऐश्वर्य देता है। वह एक अद्वितीय सबका शासक स्वामी है।

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रिय विद्वान् पुरुषो! ऐश्वर्यवान् राजा न जाने कब वश न आने वाले, दुःसाध्य या धनहीन या बलहीन शत्रु पुरुष को पैर से अहिच्छत्र के समान उछाल कर फेंक दे, नष्ट कर दे और वह हमारी पुकारों को न जाने कब सुन ले? 'क्षुम्पम्'—अहिच्छत्रकं भवति। इति यास्कः। अहिच्छत्रक को भाषा में 'पदबहेड़ा' कहते हैं जो बरसात में पड़े काठ पर सफेद गोल गोल छतरी सी पैदा हो जाती है, जिसे 'सांप की छतरी' या पंजाबी में 'खुम्बी' कहते हैं। वह पैर के थोड़े से धक्के से ही उखड़ कर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार राजा न वश आने वाले उद्दण्ड निर्बल या निर्धन, कोशरहित या भयभीत राजा को न जाने कब नष्ट कर दे? उसको वह कभी भी नष्ट कर सकता है। इसी प्रकार प्रजा की कामनाओं को भी वह कभी अनायास ही पूर्ण कर सकता है।

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! जो पुरुष भी बहुतों में से उत्तम ऐश्वर्य का

स्वामी होकर तेरे अधीन रहकर तेरी सेवा करता है उसको तुम ऐश्वर्यवान् राजा का ही उग्र, भयकारी बल प्राप्त होता है।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः। या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥६॥

भा०—दीप्तियें, किरणें जिस प्रकार वृष्टि के कारणस्वरूप सूर्य के साथ साथ रहने वाली उसी की शोभा के लिये प्रकाशित होती हैं अर्थात् प्रकाशित होकर उसी की शोभा बढ़ाती हैं और वे स्वादुयुक्त, मधुर व्याप्ति से युक्त, सूक्ष्म होकर ऊपर फैल जाने वाले, वाष्पमय जल को पान कर लेती हैं उसी प्रकार जो अपने सेनापति की आज्ञा या वाणी में रहने वाली या राष्ट्र मे आनन्द से रमण करने वाली, उत्तम वीर प्रजाएं और सेनायें अपने शत्रुहन्ता सेनापति के साथ साथ रह कर चलती हैं वे स्वादु, आनन्दप्रद, व्यापक, मधुर अन्न और ऐश्वर्य का भोग करती हैं और स्वराज्य प्राप्त करके वृषभ के साथ गौओं के समान राष्ट्र में रहने वाली प्रजाएं राष्ट्र की शोभा को बढ़ाने और नायक की तेजोवृद्धि के लिये उसके साथ ही हर्षित और सुखी होती हैं।

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ११

भा०—दुधार गौएं जिस प्रकार अपने बच्चे से मिलना चाहती हुई उसके लिये दुग्ध रस प्रदान करती हैं उसी प्रकार अपने ही राज्य की वृद्धि के लिये, राष्ट्रवासिनी प्रजाएं ऐश्वर्यवान् राजा को धारण और पोषण करने वाली और उस राजा की अति प्रिय, हितकारी होकर उसके शत्रु का अन्त कर देने वाले शस्त्र-अस्त्रयुक्त सैन्यबल की वृद्धि करें और आपस का स्पर्श अर्थात् एक दूसरे के साथ दृढ़ संगति, प्रेम रखती हुई, सुसंगठित होकर किरणों के समान परस्पर मिश्रित होकर ऐश्वर्य को परिपक्व करें। अर्थात् किरणें जिस प्रकार मिलकर ओषधियों में रस का परि-

पाक करती हैं उसी प्रकार प्रजागण भी परस्पर मिलकर बलवान् होकर राजपद और राज्य के ऐश्वर्य को परिपक्व और सुदृढ़ करें।

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२॥

भा०—वे उत्तम ज्ञान से युक्त, विदुषी प्रजाएं इस नायक के शत्रु-पराजयकारी बल की अपने शत्रु को नमाने वाले शस्त्र-अस्त्र बल तथा आदर सत्कार और अन्नादि समृद्धि से आराधना करती हैं, उसकी वृद्धि करती हैं। अपने राज्यैश्वर्य की वृद्धि के लिये अथवा अपने पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से बतलाने के लिये अथवा पूर्व के गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए अपने राजा के बहुत से नियमों, विधानों और कर्तव्यों को धारण करें, उनका पालन और रक्षण करें।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥१३॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार समस्त पदार्थों को धारण करने वाले वायु आदि पदार्थों में भी व्यापक प्रकाश के आघात करने वाले, इधर उधर गति देने वाले किरणों से मेघस्थ जलों को आघात करता है, उनको छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार मुकाबले के प्रतिस्पर्धी शत्रु की सेना से पराजित न होने वाला, शस्त्रों को छिन्न भिन्न करने वाला राजा बल धारण या शस्त्रों को धारण करने वाले वीरों को अपने वश में रखने वाले वीर सेनापति के बाण फेंकने में कुशल वीर सैनिकों से नव गुण नब्बे [८१०] बढ़ते शत्रुसैन्यों को पराजित करे। 'नवतीः नव वृत्राणि' ८१० शत्रुसैन्य कैसे ? शत्रु, मित्र और उदासीन भेद से तीन हुए, उनके मित्र और मित्रों के मित्र इस प्रकार प्रत्येक के तीन तीन होकर ९ भेद हुए। उत्तम, अधम और मध्यम भेद से प्रत्येक के २७ हुए। इनमें भी प्रत्येक प्रभाव, उत्साह और मन्त्र इन तीनों शक्तियों के भेद से ८१ हुए। दस दिशा भेद से ८१० हुए।

अध्यात्म में—आत्मा शरीर-धारक प्राण के रोग-नाशक बलों से

बलवान् होकर ८१० प्रकृतिजन्य विकारों को नाश करे। अथवा ११ वर्षों को पार करता है, पूर्णायु, सुखी जीता है।

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥

भा०—शीघ्रगामी मेघ का मुख्यभाग जलांश जो आकाश में और मेघों के खण्ड खण्ड में व्यापक है उसको जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से व्याप लेता है और उसको छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार विजय की कामना करता हुआ विजिगीषु, बलवान् पुरुष तुरग-बल या व्यापक राष्ट्र का जो शिर या मुख्य भाग पर्वत अर्थात् पालक बल से सुरक्षित भागों में या पर्वत के समान उन्नत और प्रजापालक पुरुषों पर आश्रित है वह उसको हिंसा बाले, संग्राम या सैन्यबल के आश्रय पर प्राप्त करे।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥१५॥

भा०—इस पृथिवी लोक में विद्वान् जन सूर्य के किरणों को जैसे उत्तम, प्रकट, उज्ज्वल स्वरूप को जानते हैं इसी प्रकार के स्वरूप को वे चन्द्रमा के लोक के भीतर भी जानें अर्थात् वहां भी वही सूर्य-रश्मियों का प्रकाश है।

उसी प्रकार राजा के पक्ष में—उस राष्ट्र में तेजस्वी, तीक्ष्ण राजा की वाणी, आज्ञा का जैसा उत्तम या प्रकट शत्रु को दबाने वाला स्वरूप है, वैसा ही चन्द्रमा के समान प्रजा के चित्तों को आह्लादकारी शीतल या मधुर स्वभाव के राजा की आज्ञा का भी राष्ट्र के वश करने के कार्य में उत्तम परिणाम, उत्तम वशकारक प्रभाव मानते हैं। अर्थात् उग्रता से जैसे वश किया जाता है वैसे ही मधुरता, नम्रता, शीतलता से भी वश किया जाता है। राजा को भीम और कान्त, भयानक और कमनीय दोनों प्रकार का होना चाहिये।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरियार्णवः ॥ रघुवंशे ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्॥१६॥

भा०—[प्रश्न] आज के समान सदा कौन समर्थ पुरुष गतिशील रथ में जिस प्रकार बैलों या वेगवान् अश्वों को जोड़ा जाता है उसी प्रकार सत्य न्याय-प्रकाशन, यज्ञ-सम्पादन, वेदज्ञान, अध्ययनाध्यापनादि कार्यों के धुरा उठाने के कार्यों में उत्तम कर्मों वाले विरोधियों पर असह्य, क्रोध करने वाले, तेजस्वी, विरोधियों से असह्य, पराक्रम और कोप करने वाले मुख्य लक्ष्य पर वाण फेंकने वाले, लक्ष्यवेधी शत्रु के हृदय आदि मर्म-स्थानों पर निशाना लगाने वाले, मर्मवेधी, प्रजा को सुख शान्ति देने वाले, वीर, कर्मिष्ठ, उग्र, लक्ष्यवेधी और मर्मच्छेदी, सुखप्रद पुरुषों को कार्य में लगाये रखता है। [उत्तर] वह प्रजापति, राजा ही इनको राष्ट्र के उचित कर्मों मे नियुक्त करे। जो राजा इन उक्त लोगों की भरण पोषण या जीविका को, खूब प्रबल, समृद्ध तथा सुदृढ़ कर लेता है वही राजा जीया करता है, उसका राज्य चिरस्थायी रहता है। अथवा जो भृति अर्थात् वेतन पर उनको रखकर समृद्ध करता है, वह ही जीता रहता है। फलतः अधीनस्थ अधीकारियों को राजा अपनी स्थिरता के लिये उत्तम वेतनों पर नियुक्त करे।

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥१७॥

भा०—कौन युद्ध मे आगे बढ़ता, शत्रुओं को मारता या सब प्रजा और सेना पर निरीक्षण या शासन करता है? कौन मारा जाता है? कौन डरता? या शत्रु को डराता है। कौन मान आदर करता है, विद्यमान राजा के कौन समीप रहता है? कौन प्रजा के सन्तानों पुत्रों की रक्षा के लिये योग्य है। हाथी आदि युद्धोपयोगी पशुओं की रक्षा और शिक्षा के लिये कौन उपयोगी है? और धन या कोश की रक्षा के लिये, विस्तृत राष्ट्र या प्रजाजनों की शारीरिक उन्नति के लिये कौन शिक्षा देता है?

इत्यादि सभी बातो का राजा ठीक ठीक प्रकार से विचार कर यथायोग्य पुरुषो को यथायोग्य कार्य मे नियुक्त करे ।

को अ॒ग्निमी॑ट्टे ह॒विषा॑ घृ॒तेन॒ स्रु॒चा य॑जाता ऋ॒तुभि॑र्ध्रु॒वेभि॑ः ।
कस्मै॑ दे॒वा आ व॑हाना॒शु होम॒ को मं॑सते वी॒तिहो॑त्रः सुदे॒वः ॥१८॥

भा०—अग्नि को जिस प्रकार हविषा आहुति और घृत से यज्ञ मे बढ़ाया जाता है और जिस प्रकार अन्न और घृत के भोजन से जाठराग्नि या जीवन को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार सबके स्वीकारने योग्य धन और विज्ञान से और तेजोयुक्त पराक्रम से युद्ध के बीच आग्नेयास्त्र और राष्ट्र के बीच मे स्थित तेजस्वी राजा को पुष्ट करता है । और स्थिर नियम से अवश्य आने वाले ऋतुओ से स्रुच नाम यज्ञपात्र से कौन यज्ञ करता है और स्थिर राजसभा के सदस्यो द्वारा या ज्ञानयुक्त वाणी द्वारा कौन संत्सग करने और परस्पर वादानुवाद करने में निपुण है ? विद्वान् जन और वीर पुरुष किसके हितार्थ शीघ्र ही भाग्य, एवं स्वीकार्य पदार्थों को लाते और किसके आज्ञा वचनों को आदर से शिरोधार्य करते है ? कौन नाना विज्ञानो को प्राप्त करने वाला, उत्तम द्रष्टा, तेजस्वी और बद्धकुशल है, कौन सब कुछ जानता है ? अर्थात् सब पर ध्यान रखने और सबको चलाने मे समर्थ है ? यह सब बातें राजा कर्मचारियों को नियुक्त करने के पूर्व ही विचार कर ले ।

त्वम॒ङ्ग प्र शं॑सिषो दे॒वः श॑विष्ठ॒ मर्त्य॑म् ।
न त्वद॒न्यो म॑घवन्नस्ति मर्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवी॑मि ते॒ वच॑ः ॥ १६ ॥

भा०—ऐ राजन् ! हे शक्तिशालिन् ! तू तेजस्वी, विजयेच्छु और सब कार्यदर्शी होकर ही मनुष्यो को उत्तम मार्ग का उपदेश कर, उन का अच्छी प्रकार शासन कर । हे ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं और दुःखों के नाशक ! तेरे से दूसरा कोई प्रजाओ को सुख देने हारा कृपालु नहीं है । तेरे लिये मैं उत्तम वचन, धर्मयुक्त वाणी का उपदेश करूं, कहूँ ।

परमेश्वर के पक्ष मे—मै तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२०॥८॥१३॥

भा०—हे समस्त प्रजाजनो को राष्ट्र में सुख से बसाने हारे! तेरे ऐश्वर्य, समृद्धियां या समृद्ध होने के साधन हम प्रजाजनों को कभी भी विनाश न करें। तेरे राष्ट्र को रक्षा करने के उपाय और शत्रुओं को कंपा देने वाले सेना–चतुरंग आदि भी हमारा कभी नाश न करें। हे मनुष्य! उत्तम मननशील पुरुष! समस्त ऐश्वर्य हमारे विचारवान्, दीर्घदर्शी, उत्तम विद्वान् तथा समस्त प्रजा पुरुषों के उपकार के लिये प्राप्त कर। इति अष्टमो वर्गः। इति त्रयोदशोऽनुवाकः॥

[८५]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, २, ६ जगती। ३, ७, ८ निचृज्जगती। ४, १० विराट जगती। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। व्यूहेन जगती। १२ त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः॥१॥

भा०—जाने के अवसर पर जिस प्रकार स्त्रियें अपने को आभूषण आदि से सजाती हैं और जाने योग्य मार्ग में जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व शोभा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार शत्रुओं को रुलाने वाले या आज्ञा के प्रवर्तक राजा और उपदेष्टा आचार्य के पुत्र के समान पदाभिषिक्त शासक वीर सैनिक और शिष्य गण उत्तम कर्म और आचरण के अभ्यासी विद्वान्, वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले, पर-पक्ष वालों से संघर्ष या स्पर्द्धा करने वाले, वीर्यवान्, वीरगण, सूर्य और पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या स्वपक्ष और परपक्ष दोनों की वृद्धि के लिये कार्य करते हैं और संग्रामों और ज्ञान-लाभ के अवसरों पर हर्षित होते हैं।

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जलों के वर्षण करने हारे, प्रबल वायुगण आकाश में स्थान प्राप्त करते या सूर्य के प्रकाश का आश्रय लेते हैं। और महान् बल को प्राप्त करते हैं सूर्य का आश्रय लेते हुए वे बल को और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं और वे आदित्य से उत्पन्न होने वाले या मेघ के उत्पादक वायुगण शोभा को धारण करते हैं उसी प्रकार वे अपने २ पदों पर नायक रूप से अभिषिक्त हुए शत्रुओं को रुलाने हारे वीर नायकगण अपने महान् सामर्थ्य को प्राप्त करें और सूर्य के समान तेजस्वी पद पर अपना उत्तम स्थान बनावें, अधिकार करें। अथवा भूमि पर ही सभा-भवन और गृह आदि बनावें, वे सूर्य के समान तेजस्वी, आदर करने योग्य प्रधान राजा का आदर,मान, प्रतिष्ठा करते हुए महान् ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हुए भूमि को अपनी माता मानते हुए, मातृभूमि के पुत्र होकर राज्यवासियों व ऐश्वर्य पर अपना पूर्ण अधिकार करें।

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या पृथिवी या तीव्र गमन से उत्पन्न होने वाले वायुगण प्रकाशित होने वाली विद्युतों से सुशोभित होते हैं और अपने में विविध कान्ति वाले मेघों को धारण करते हैं। विविध दिशाओं में फैलने वाले मेघ को पीडित करते हैं तब उनके मार्गों पर ही मेघ का जल भी जाता है अर्थात् जिधर वायु बहता है, मेघों की सजल घटा उधर ही जाती है, ठीक इसी प्रकार पृथिवी माता के पुत्र, देशभक्त वीरजन जब नाना पदों और मान-प्रतिष्ठा के सूचक पदकों और चिह्नों से अपने को सुशोभित करते हैं, अथवा विद्याओं के प्रकाशक वचनों और शास्त्रों द्वारा शुभ, कल्याणकारी वचनों का उपदेश करते हैं और शुद्ध होकर

शरीरों पर नाना रुचि, कान्ति और दीप्ति वाले आभूषणों और पदार्थों या वस्त्रों और शस्त्र-अस्त्रों को धारण करते है और वे सब प्रकार के गर्वीले शत्रु को पीड़ित करते है अर्थात् उन्हे परास्त करते हैं तब इनके मार्गों पर ही तेजस्वी समस्त शस्त्र-अस्त्र, बल और ऐश्वर्य, राज्यपद चलता है।

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा। मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण उत्तम सूर्य प्रकाश को धारण करने वाले होकर तीव्र आघात करने वाली विद्युतों से चमकते है और बल से न गिरने वाले जलों को बरसाते हुए, मन के समान तीव्र वेग वाले तथा वर्षणशील मेघ के समूहों से युक्त होकर वर्षणशील मेघमालाओं को एकत्र करते हैं, उसी प्रकार जो आप उत्तम संग्राम मे कुशल होकर शत्रुबल के नाशकारी शस्त्रों से चमचमाते और अक्षय बल-पराक्रम से प्रबल शत्रुओं को भी पदभ्रष्ट और रण से विमुख करते हुए जब मन के समान अति तीव्र वेग वाले होकर रथों पर विराजते हो तब हे वीर पुरुषो ! आप लोग शत्रुओं पर शस्त्र-अस्त्रों के वर्षण करने वाले, बलवान्, वीर पुरुषों के गुणों को साथ लिये हुए प्रबल सेनाओं को अपने अधीन नियुक्त करो, उनको अपनी आज्ञा मे संचालित करो। अथवा पराक्रम से प्रबल शत्रुओं को भी गिराते हुए अपने रथों मे हृष्ट पुष्ट घोड़ियों के समान रथों के अधीन शस्त्रवर्षी अगल बगल मे पदाति सेनाओं का सञ्चालन करो।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥

भा०—वायुएं जिस प्रकार पृथ्वी पर अन्नादि की उत्पत्ति के लिये मेघ को लाते हुए, जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को एकत्र करती हैं, चमचमाते सूर्य या विद्युत् के बल से जलधाराओं को विविध दिशाओं मे बरसा देते हैं और जलों से समस्त भूमि को चमड़े के समान भूमि पर जलों को फैला कर उसे तरबतर करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् जनो!

आप लोग जब जब और जिन जिन यन्त्र आदि मे जल सेचन करने वाली यन्त्र-कलाओ को जोड कर बनाओ तब तब वेग उत्पन्न करने के लिये कभी नास न होने वाले स्थिर मेघ के समान जल-वर्षक यन्त्र को चलाते रहो, और अति दीप्त अग्नि के बल से नाना जल-धाराएं विविध दिशाओं में छूटें। और वे जलो से थोडीसी भूमि के समान ही बहुत बडी भूमि को तरबतर कर दें।

वीरो के पक्ष में—जब रथो मे उनके अधीन आप लोग अश्व के समान अगल-बगल में रहने वाली, शस्त्र-वर्षण में कुशल पदाति सेनाओं को नियुक्त करो। युद्ध में शत्रु से छिन्न-भिन्न होने वाले मेघ के समान शस्त्र-अस्त्र वर्षण करने वाले सेना के प्रबल भाग को वेग से आगे को बढ़ाए हुए चलो। और अश्व-बल की धाराएं, पंक्तियो पर पंक्तियें, लगातार विविध दिशाओ में छूटें। जलो के समान समस्त भूमि को छोटे से स्थान के समान गीला कर दें, उसे भर दें। चर्म-इव—'चर्म' भूमि नापने का नपेना है, जिसमें लगभग १॥ वर्ग गज़ भूमि आती है।

आ वो॑ वहन्तु॒ सप्त॑यो रघु॒ष्यदो॑ रघु॒पत्वा॑नः॒ प्र जि॑गात बा॒हुभि॑ः।
सीद॒ता ब॒र्हिरु॒रु व॒ः सद॑स्कृ॒तं मा॒दय॑ध्वं मरुतो॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः॥६॥९

भा०—जिस प्रकार वायुगण के वेगवान् झकोरे अति शीघ्रगामी होते हैं, अन्तरिक्ष में व्यापते और जलो और अन्नों से सबको तृप्त करते है उसी प्रकार हे विद्वान् और वीर पुरुषो! आप लोगो को वेग से मार्गों में भागने वाले, अति स्वल्प काल में बहुत सा मार्ग चले जाने वाले अश्व गण धारण करें अर्थात् आप अति वेगवान् अश्वों पर सवारी करें। आप लोग अपने बाहुबलों से अच्छी प्रकार आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो। इन भूमिवासी प्रजाओं पर शासक रूप से विराजमान होवो। आप लोगों का गृह, सभास्थान आदि विशाल रूप से बनाया जावे। आप लोग मधुर जल और अन्न आदि रसो का उपभोग करके स्वयं खूब तृप्त और स्वत आनन्दित हो और औरों को भी तृप्त करें। इति नवमो वर्गः।

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७॥

भा०—वायुगण जिस प्रकार अपने बल से युक्त होकर आकाश में स्थित है उसी प्रकार वे वीर जन भी अपने बल से बलशाली होकर अपने बड़े भारी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वे विशाल अति सुखप्रद गृह को बनावें और उसमें रहें। आकाश में जिस प्रकार जल को गिराने वाले वृष्टिकारक मेघ को व्यापक या भीतर भीतर तक पवित्र होने वाला प्रकाशक सूर्य प्राप्त होता है और उसमें व्यापता है और उसके ऊपर के आकाश में पक्षी के समान ऊपर ऊपर रहता है उसी प्रकार व्यापक शक्ति और ज्ञान वाला विद्वान् शत्रुओं के मद को नाश करने और प्रजा के हर्ष को बढ़ाने वाले सैन्य-गण की सब प्रकार से रक्षा करें, ऐश्वर्य से तृप्ति करने वाले और प्रिय अन्तरिक्ष के समान उच्चासन या भूमि-शासक के पद पर आकाश में पक्षी या सूर्य के समान तेजस्वी होकर अधिष्ठित होकर रहें।

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण समस्त मनुष्यों में प्राण रूप से सब प्रकार के प्रयत्नों और चेष्टाओं को करते हैं उसी प्रकार वे युद्ध करने वाले, शूरवीर, उत्साही पुरुषों के समान विद्वान् गण सदा सावधान और आलस्य रहित होकर अपने कार्यों पर जाने वाले अश्वों, बलों और ज्ञानों के धर्त्ता और यशों के अभिलाषी होकर प्रजाओं और संग्रामों के बीच में नाना प्रकार के प्रयत्न और उद्योग करें। उन विद्वान् और उद्योगी वीर पुरुषों से समस्त लोक और प्राणी भय करते हैं। वे राजाओं के नायक वीर पुरुष युद्ध आदि में तेज और पराक्रम को दिखाने वाले हों।

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार सहस्रों पाक करने वाले, तापदायक और तेजोमय किरण-समूह को प्रकट करता है, और उसको नाना कर्म करने के लिये धारण करता है उससे ही मेघ को आघात करता और जलों के सागर रूप मेघ को नीचे गिरा देता है अर्थात् प्रचुर वृष्टि करता है। इसी प्रकार उत्तम प्रजा-हित के कर्मों का करने हारा तेजस्वी पुरुष, प्रजा के हित और उनको अच्छा लगने वाला, सहस्रो प्रकार से दुष्टों को संताप देने वाला, सहस्रो शत्रु-सैन्यों को गिरा देने वाले, उत्तम रीति से बने जिस शस्त्र-अस्त्र बल को सञ्चालित करता है, ऐश्वर्यवान् वह सेनापति या राजा उस सैन्यबल को नायक के अधीन रख कर नाना कर्म करने के लिये धारण करता और उसको पालता, पुष्ट करता है, उससे ही बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को दण्डित करता है। और शत्रु सैनिको की सेना-रूपी सागर को भी सर्वथा नीचे गिरा देता है, उसे परास्त करता है।

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥

भा०—वायुगण अपने बल या सूर्य के तेज से नीचे भूमि पर स्थित जल को ऊपर उठा ले जाते हैं और वे ही बढ़ते हुए मेघ को विविध प्रकार से छिन्न भिन्न भी कर देते हैं। वे जलों के समूह, मेघ को कंपाते हुए सूर्य के बल पर वा जल के बल पर संग्राम के सदृश बलयुक्त या अति रमणीय कार्यों को करते हैं, उसी प्रकार वे वीर, विजयेच्छु सैनिक गण अपने बल पराक्रम से नीचे गिरे हुए राष्ट्र को ऊंचा उठावें। अथवा वे अपने पराक्रम से सुरक्षित राज्य और राष्ट्रपति को ऊंचा करें और बराबर बढ़ते हुए, दृढ़ नाना पालन सामर्थ्यों से युक्त, पर्वत के समान दुर्गम, बीच में बाधा डालने वाले शत्रु को अपने पराक्रम से विविध उपायों से तोड़ फोड़ डालें। वे उत्तम, दानशील या उत्तम रीति से शत्रु बल को खण्ड खण्ड कर देने में कुशल बाण आदि शस्त्र-अस्त्रों को अग्नियुक्त अर्थात् तेज करते हुए और शब्द करने वाले मारू बाजे को बजाते हुए ऐश्वर्य

प्राप्ति के हर्ष में संग्रामोचित व विनोद युक्त नाना कर्मों को करें।

जि॒ह्मं नु॑नु॒द्रे॑ऽव॒तं तया॑ दि॒शासि॑ञ्च॒न्नुत्सं॒ गोत॑माय तृ॒ष्णजे॑ ।
आ ग॑च्छन्ती॒मव॑सा चि॒त्रभा॑नवः॒ कामं॒ विप्र॑स्य तर्पयन्त॒ धाम॑भिः ११

भा०—वायुगण प्यासे भूमिपालक किसान जन के हित के लिये, या प्यासे उत्तम प्रदेशों के लिये उसी दिशा से प्रजा की रक्षा करने वाले, कूप के समान अगाध जल को धारण करने वाले जलप्रद मेघ को तिरछा, आकाश मार्ग से उड़ा ले जाते हैं और जल बरसा देते हैं। वे अद्भुत विद्युत्, कान्तियों से युक्त होकर उस प्रदेश को प्राप्त हो जाते हैं, विविध प्रकारों से भूमियों को जल और अन्नादि से पूर्ण कर देने वाले मेघ के धारण पोषणकारी जलों से कामना युक्त प्रजाजन को उनकी अभिलाषानुसार खूब तृप्त कर देते हैं। उसी प्रकार चित्र-विचित्र दीप्ति वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी और नाना चमचमाते, आग्नेयादि अस्त्र-शस्त्रों के सुसज्जित वीरगण और अधिक ऐश्वर्य के अभिलाषी 'गोतम' अर्थात् पुरुष-पुंगव नरश्रेष्ठ राजा की वृद्धि के लिये उसी दिशा से अर्थात् विजय करने की रीति से कूप के समान नीच और कुटिलगामी, शत्रुजन को मार भगावें और उत्तम मार्ग से जाने वाले भले पुरुषों को नाना ऐश्वर्यों से वृक्ष के समान सींच सींच कर बढ़ावें। अपने रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान बल से इस राजा को प्राप्त हों और उसको विद्वान् गण तथा विविध ऐश्वर्यों और तेजों से पूर्ण सूर्य के किरणों के समान प्रजा को धारण-पोषणकारी नाना सामर्थ्यों, तेजों और प्रतापों से खूब तृप्त करें, खूब बढ़ावें। सामान्यतः—दानी लोग प्यासे पथिकों के लिये गहरा कूआ खोदें, जल पिलावें, भूमियों को सींचें, विद्वान् ब्राह्मणों की अभिलाषाओं को स्थान, अन्नादि से तृप्त करें, उनकी रक्षा करें।

या वः॒ शर्म॑ शशमा॒नाय॒ सन्ति॑ त्रि॒धातू॑नि दा॒शुषे॑ यच्छ॒ताधि॑ ।
अ॒स्मभ्यं॒ तानि॑ मरुतो॒ वि य॑न्त र॒यिं नो॑ धत्त वृषणः सु॒वीर॑म् ॥१२॥१०॥

भा०—प्राण गण जिस प्रकार शम आदि साधना करने वाले,

भगवान् में आत्म-समर्पण करने वाले पुरुष को शरीर के धारण करने वाले वात, पित्त, कफ इन तीन धातुओं से युक्त सुखो या इनसे बने देहों को वश करते हैं, उसी प्रकार, हे विद्वानो और वीर पुरुषो! तुम्हारे जो लोह सुवर्ण और रजत तीनों धातुओं के बने अथवा वाणी, मन और काय तीनों को पोषण करने वाले सुखप्रद साधन या गृह हैं उनको तुम लोग उत्तम ज्ञानोपदेश करने वाले और विद्यादि सद्गुणों का दान करने वाले ज्ञानप्रद गुरु, विद्वान् पुरुषों के लिये प्रदान करो। वे ही सुख-साधन हे विद्वान् वीर पुरुष! हमे भी विशेष रूप से प्रदान करो। सुखों के वर्षा करने हारे! आप लोग हमे उत्तम वीर पुत्रों और पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो। इति दशमो वर्गः।

[८६]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—गायत्री। २, ३, ६, ७, १० निचृद् (२, ३, ७ पिपीलिकामध्या)। दशर्चं सूक्तम् ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥१॥

भा०—हे विविध प्रकार के और विशेष तेजों वाले ज्ञानों और प्रभावों से युक्त विद्वान् और वीर पुरुषो! आप लोग जिसके घर में, या जिसके आश्रय रह कर पृथिवी की और विद्या, विज्ञान की रक्षा करते हो वह मनुष्य उत्तम रक्षक है।

अध्यात्म मे—प्राणगण जिस आत्मा के देह में रह कर शरीर की रक्षा करते हैं वह आत्मा शरीर का उत्तम रक्षक है। उस ब्रह्माण्ड में जिस सूर्य के अधीन ये वायु गण रह कर जल का किरणों द्वारा पान करते हैं वह सूर्य ही समस्त प्रजाओं का बड़ा रक्षक है। इसी प्रकार वह परमेश्वर जिसके आश्रय मे रह कर विद्वान् गण आनन्द रस का पान करते हैं वह सबसे बड़ा रक्षक है।

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मरुतः शृणुता हवम् ॥२॥

भा०—हे यज्ञों, उत्तम कर्मों, सत्संगों और ज्ञान के श्रवण और प्रवचन को स्वयं धारण करने और अन्यों को प्राप्त कराने वाले विद्वान् पुरुषो ! देह में प्राण के समान राष्ट्र में जीवन धारण कराने हारे ! आप लोग पूर्व कहे उत्तम २ कर्मों द्वारा और अन्यान्य परोपकार के कार्यों द्वारा विद्वान् पुरुष के और मननशील पुरुषों के उपदेशों को श्रवण करो और कराओ ।

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे॥३॥

भा०—और जिस ज्ञानैश्वर्य वाले पुरुष के अधीन रहकर विद्वान् पुरुष को गुरुजन और अधिक तीक्ष्ण बुद्धि वाला विद्वान् बना देते हैं वह ज्ञान वाणियों के मार्ग मे तथा इन्द्रियों के ज्ञान करने के मार्ग में सफलता से जाने वाला हो ।

अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ४

भा०—वृद्धिशील प्रजाजन के हित के निमित्त तथा दिव्य उत्तम कर्मो के निमित्त इस वीर्यवान् पराक्रमी पुरुष को अभिषेक द्वारा प्राप्त हुआ राज्यैश्वर्य और उत्तम वचन और आनन्द, हर्ष और अन्यान्य गुण भी प्रशंसा योग्य होते हैं ।

अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ५।११

भा०—जो सब मनुष्यों के प्रति कृपालु है और सूर्य के चारों ओर जिस प्रकार किरणें सूर्य के अधीन रहती हैं उसी प्रकार समस्त बलशालिनी भूमिवासिनी वेग से प्रयाण करने वाली प्रजाएं और सेनाएं इस राष्ट्रपति के आज्ञा-वचनों और उपदेशों को श्रवण करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६॥

भा०—वायुगण शरत् आदि ऋतुओं से जिस प्रकार मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार पूर्व के विद्वानों से प्राप्त रक्षा-साधनों और ज्ञानों से हम लोग भी मनुष्यों के लिए सुख साधन प्रदान करें ।

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ॥७॥

भा०—जैसे वायुगण और प्राणगण नाना उत्तम सुखों के देने वाले होकर अन्न, जल आदि नाना प्रिय पदार्थों को वर्षाते तथा देते हैं और भूमि निवासी जन ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्य के देने वाले हो । आप लोग जिस जिसको अन्न और आत्मा को तृप्त करने वाले ज्ञान आदि प्रदान करते हैं वह मनुष्य बड़े उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी हो ।

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः॥८॥

भा०—हे नायक पुरुषो ! हे सत्य ज्ञान और नित्य बल से युक्त पुरुषो ! पसीना बहाने वाले, परिश्रमी, सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाले, नाना उत्तम कामना करने वाले पुरुष के उत्तम सकल्प को जानो । अथवा सत्य के बल पर आश्रित, परिश्रम से प्राप्त करने योग्य उत्तम पुरुषों द्वारा उपदेश योग्य, विद्वानों और शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित, कामना करने योग्य धर्मानुकूल 'काम' नामक अभिलाषा योग्य, पुत्रैषणा रूप पुरुषार्थ का भी अच्छी प्रकार ज्ञान करो । प्रजनश्चास्मि कंदर्पः ॥ धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ ॥ गीता० ॥

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ९

भा०—हे सत्य ज्ञान वाले और नित्य बल वाले, सदा हृष्ट-पुष्ट पुरुषो ! हे वीर जनो ! अपने महान् सामर्थ्य से तुम लोग उस पूर्वोक्त काम अर्थात् अभिलाषा करने योग्य पुरुषार्थ को प्रकट करो, सबको उस का उपदेश करो । और कामना योग्य पदार्थों की प्राप्ति में विघ्नकारी पुरुषों और पदार्थों को तथा बाधक कारणों को उत्तम प्रकाश युक्त ज्ञान और विशेष दीप्ति वाले आग्नेय शस्त्र-अस्त्र तथा विद्युत् और ज्ञान के प्रयोग से विनाश करो और अपने इष्ट की प्राप्ति करो ।

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—आप लोग अपने महान् ज्ञान-सामर्थ्य से बुद्धि में स्थित खेद-जनक अज्ञान रूप अन्धकार को विनष्ट करो। और सब कुछ खाजाने वाले, सर्वस्व-नाशक लोभ या कामतृष्णा रूप तामस विकार को भी विविध उपायों से दूर करो। जिस परम ज्ञानमय तेज की हम कामना करें उस उत्तम प्रकाश को प्रकट करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[८७]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ विराड् जगती। ३ जगती। ६ निचृज्जगती। ४ त्रिष्टुप्। व्यूहेन वा जगती। षड्च सूक्तम् ॥

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१॥

भा०—कुछ वीर पुरुष किरणों के समान हों। वे तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं की खूब काट-छांट करने में कुशल, सब प्रकार से बड़े शक्तिशाली, शत्रु के सामने कभी न झुकने वाले, उनसे परास्त न होने वाले ऋजु, सरल, धर्मयुक्त मार्ग में जाने वाले अथवा ऐश्वर्यों और बल-उपार्जन में दत्तचित्त, सब राज्यकार्यों में खूब सेवा करने वाले तथा राजपुरुषों द्वारा सेवा करने योग्य, भय से कभी न कांपने वाले, उत्तम नायक, नेता पुरुष विस्तृत, परराज्य, स्वराष्ट्र सब पर आच्छादन, अपना अधिकार या शासन करने वाले या शत्रुओं के नाशक, रक्षा, ज्ञान आदि के प्रकाशक और प्रकट चिह्नों और गुणों सहित हों। वे विविध उपायों से शत्रुओं और बाधक कारणों को उखाड फेंकें।

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२॥

भा०—वायुगण कुटिलता से जाने योग्य आकाश भागों में जाते हुए मेघ को किसी भी मार्ग से लाकर संचित कर देते हैं तब मेघ जल बरसाते हैं, वायुगण अपने वेगवान् झकोरों में ही जलाभिलाषी प्राणिवर्ग

के लिये मधुर जल बरसाते हैं, उसी प्रकार हे वीरो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग कुटिल मार्गों वाले, दुर्गम, सुरक्षित स्थानो मे पक्षियों के समान आकाश आदि किसी भी अज्ञात मार्ग से जाकर संग्रामों मे प्राप्त करने योग्य विजयैश्वर्य को संचय कर लिया करो। आप लोगो के रथों पर मेघो के समान शत्रुओं के तूणीर तथा राजा के खजाने वाण और ऐश्वर्य बरसावें। और आप लोग सत्कार पूर्वक रखने वाले अपने स्वामी के लिये मधु अर्थात् जल के समान स्वच्छ, तेज, बल और जल का सेचन करो। उस को प्रकट करो, उसका अभिषेक करो।

विमानो के पक्ष मे—विमान आदि रथो मे ज्वलनशील तैल, जलादि का सेचन करो।

प्रैषामज्मे॑षु विथु॒रेव॑ रेजते॒ भूमि॒र्यामे॑षु॒ यद्ध॑ यु॒ञ्जते॑ शु॒भे।
ते क्री॒ळयो॒ धुन॑यो॒ भ्राज॑दृष्टयः स्व॒यं म॑हि॒त्वं प॑नयन्त॒ धूत॑यः ॥३॥

भा०—जब भी वे वीरगण उत्तम, शोभाजनक युद्ध के लिये मार्गों मे एक साथ गमन करते है तब इनके शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले युद्धादि पराक्रमों के अवसरों पर, भय से कांपती हुई स्त्री के समान भूमि भी मानो भयभीत होकर कांप जाती है। वे युद्धक्रीडा के व्यसनी, शत्रुओं को धुन डालने व कँपाने वाले, चमचमाते शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित शत्रु के हृदय मे कंपकंपी उत्पन्न कर देने में समर्थ होकर स्वयं अपने महान् सामर्थ्य को अपने कार्यव्यवहार से प्रकट कर देते हैं, क्रिया द्वारा अपने बल को बतला देते हैं।

वायुपक्ष मे—उत्तम वृष्टि लाने के लिये जब वायुगण चलते हैं तब मेघों को इधर उधर फेंकने वाले प्रबल वेगों मे भूमि भयभीत स्त्री के समान कांपती है। वे वृक्षों को कंपाते हुए, विद्युतें चमकाते हुए, पर्वतों को कंपाने वाले वायुगण अपने कामों से ही अपने महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं।

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो॒ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः॥४॥

भा०—वह पूर्वोक्त वीर नायक और विद्वानों का दल स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाला, मृग के समान अति वेग से जाने वाले अश्वों वाला, जवान, हृष्ट पुष्ट इस राष्ट्र का पूर्ण सामर्थ्यवान्, राष्ट्र का पूर्ण स्वामी बलवती सेनाओं से युक्त हो और वह सज्जनों के प्रति उत्तम व्यवहार वाला, उनका हितकारी, सत्यधर्माचरण करने वाला, ईमानदार, अपने और परायों के ऋण को चुकाने वाला, उत्तम, अनिन्दनीय शुद्धाचारी, सबमें उत्तम गिना जाने योग्य, सुखों का वर्षक, उत्तम बलवान् होकर इस उत्तम ज्ञान और धारण करने योग्य कर्मों, शक्तियों का अच्छी प्रकार रक्षा करने और उनको बतलाने वाला हो।

वायुओं के पक्ष में—अपने बलों से चलने हारा, मेघरूप अश्वों वाला, शक्तियों से युक्त होकर सब प्राणिसमूह का प्राणप्रद होने से स्वामी है। पृथिवी पर विद्यमान जंतुओं का हितकारी, जल लाने वाला अनिन्द्य है, वह उत्तम कर्मों और धारण योग्य प्रजाओं का रक्षक है।

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५॥

भा०—प्राचीन, पूर्व के पालक पुरुष के वीर्य से प्राप्त हुए जन्म, उत्पत्ति से ही हम लोग अपने नामों, स्वरूपों को कहा करते हैं। उत्पादक के गुणों के देखने से ही वाणी भी तदनुरूप व्यवहार योग्य नामों को कहती है। उत्तम यज्ञ आदि कर्म में जब वेदमन्त्रों को धारण करने वाले विद्वान् जन भी उस परमेश्वर को स्तुति प्रार्थना द्वारा प्राप्त होते हैं तभी वे अपने उपास्य प्रभु परमेश्वर के गुणों और तदनुरूप नामों को भी धारण करते हैं। उसी प्रकार पालक पुरुष के द्वारा ही वीर सैनिकों के भी नाम कहे जायं। उनके प्रेरक नाम के देखने से ही उनका वर्णन करे। राष्ट्र के

कामों में विद्वान् पुरुष राजा को प्राप्त हो, तभी वे राष्ट्रपति के दिये विशेष विशेष उपाधियों और पदों को धारण करें।

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्कभिःसुखादयः
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः॥६॥१२

भा०—जो शोभा और राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये सूर्य की किरणों के समान राजा के तेज की वृद्धि करने वाले सहायकारी पुरुषों द्वारा कर्त्ता, प्रजापति पुरुष को अच्छी प्रकार उत्तम राज्यपद पर अभिषिक्त करते हैं और जो पुरुष रासों से अश्वों के समान नायक और राष्ट्र को वश में रखने में कुशल हैं और जो ऋचाओं, वेदमन्त्रों, वाणियों, व्यवस्थाओं, आज्ञाओं और राष्ट्र के राज्यांगों द्वारा राष्ट्र को उत्तम रीति से, धर्मानुकूल उपायों से भोगने वाले और उत्तम अनिन्दनीय, स्वच्छ पदार्थों का भोग और भोजन करने वाले वाग्मी विद्वान्, प्रबल इच्छाशक्ति वाले, स्वयं गतिमान्, उत्साही और दूसरों को भी अपनी आज्ञा में चलाने हारे, सेना के स्वामी, शत्रु से कभी भय न खाने वाले हैं वे, वे, वे, क्रम से तीनों प्रकार के व्यक्ति सबको प्रिय लगने वाले, सबको प्रसन्न और तृप्त करने वाले, मनोहर मारुत पद, स्वरूप, महान् सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं! अर्थात् राष्ट्र की समृद्धि की वृद्धि ये तेजस्वी पुरुष राज्याभिषिक्त करने वाले जन 'मारुत तेज' को धारण करते हैं अर्थात् वे शत्रुहन्ता सैनिक बल को वश करने में समर्थ होते हैं, दूसरे वे अपने बल से वृक्षों को वायु के समान, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होते हैं। जो अश्वों के समान रासों से राष्ट्र को वश करते हैं और सूर्य की किरणों के समान जलवत् सुखों की वर्षा करते हैं वे भी वायुओं के समान प्रजा के प्राणप्रद, जीवनाधार होते हैं। जो ऋचा, अर्थात् वेदज्ञान से युक्त होकर ज्ञान जल का वर्षण करते और सात्विक भोजन करते और धर्माचारी, विवेकी हैं वे मारुत अर्थात् प्राणबल को शरीर में आरोग्य रूप से भोगते हैं। जो वाणी वाले वाग्मी हैं, प्रबल, निर्भय हैं, वे वीर सैनिक नायकों का पद प्राप्त करते हैं।

वायु-पक्ष में वायुगण सूर्य की किरणों से बल प्राप्त करके जल का सेचन करते है। प्राण-शक्तियों से युक्त उत्तम अन्न देते हैं। गर्जनामय विद्युत् वाले, तीव्र वेगवान् होते हैं। अथवा सुख प्राप्त करने के लिये जो पुरुप अग्नियों से जलों की वर्षा करते हैं वे शिल्पज्ञ होते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[८८]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः। भुरिक्पङ्क्तिः। ५ निचृत्पङ्क्तिः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृद् बृहती ॥ षड्‌र्चं सूक्तम् ॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! उत्तम गृहस्थो और गण बना कर रहने वाले वीर पुरुषो! वायुगण जिस प्रकार दीप्ति वाले सूर्य के पालन सामर्थ्यों और गमन वेगों वाले उत्तम किरणों से युक्त होकर विजुलियों वाले मेघों सहित खूब जब वृष्टि से बढ़ी हुई अन्न सम्पत्ति से युक्त आते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् जनो! आप भी बिजुली की दीप्ति से युक्त, उत्तम विचारित यन्त्रों से बनाये गये चालक खूटियों तथा शस्त्र-अस्त्रों से युक्त घोड़ों और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा शीघ्र मार्ग में जाने वाले, रथों या योग्य सवारियों द्वारा आया जाया करो। हे उत्तम बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुषो! पक्षियों के समान या सेना के साथ शीघ्र गति से आया जाया करो।

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥२॥

भा०—तेजस्वी, अद्भुत, खड्गधर योद्धा जिस प्रकार शस्त्र से शत्रु-सेना का नाश कर देता है उसी प्रकार वे वीर विद्वान् गण रथ की चक्र-

धारा से भूमि को पीडित करते हैं। वे लाल, पीले रथो को वेग से ले जाने वाले अश्वों या यन्त्रो से उत्तम शोभा प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठ, सुखकारी प्रजापालक राजा को प्राप्त होते हैं।

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार लोग काटने वाले कुल्हाडे आदि शस्त्रों को कन्धो पर उठाते और ऊंचे ऊंचे वृक्षो को काट गिराते हैं उसी प्रकार हे वीर सैनिक लोगो! आप लोग अपने शरीरों या कन्धो पर शत्रुओ का हिंसन या वध करने वाले शस्त्र-अस्त्रों को, राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये धारण करो। और ऊंचे उमडते हुए शत्रु-सेना के दलो को काट गिराओ। उत्तम विद्या और ऐश्वर्य मे प्रसिद्ध अति धनाढ्य जन भी तुम लोगों के भरण-पोषण और रक्षा के लिये ही अक्षय शस्त्रास्त्र बल को अपना धन बना लेते हैं। अथवा तुम्हारे रक्षणार्थ वे पर्वत के समान उच्च धन राशि का संग्रह करते हैं।

विद्वानों के पक्ष मे—अपनी उत्तम शोभा के लिये ही विद्वान् जन शरीरों में पावन बुद्धियों, पवित्र वाणियो को धारण करें। उच्च कोटि के ऐश्वर्यों को प्राप्त करें। हे विद्वानो! तुम्हारे भरण-पोषण आदि के लिये उत्तम कोटि के बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी सम्पन्न लोग भी पर्वत के समान विशाल धन प्राप्त करते हैं।

अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम्।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥४॥

भा०—वेद का अध्ययन करते हुए उत्तम वाणी को धारण करने वाले विद्वान् जन उत्तम वेदमन्त्रो द्वारा ज्ञान-रस का पान करने और औरो को पान कराने के लिये सबसे ऊपर, ऊंचे स्थान पर विद्यमान, सर्वोच्च, परम ज्ञानानन्द रसों को कूप के समान धारण करने वाले परमेश्वर को प्रेरते अर्थात् उसकी उत्तम रीति से स्तुति, आराधना

करते है। जैसे ऊंचे स्थान पर बने जलाशय, कूप या टैंक से पानी को पान, स्नान आदि करने के लिये विद्वान् जन यन्त्रों द्वारा नीचे बहा लेते हैं उसी प्रकार विद्वान् जन अपने से ऊपर, अधिक ऊच्च कोटि मे स्थित परमेश्वर और आचार्य को अपनी ज्ञान-रस पिपासा को शान्त करने के लिए प्रेरित करते हैं, उससे प्रार्थना करते और उसकी स्तुति करते हैं। विद्वान् जन जिस प्रकार जल प्राप्त करने की क्रिया को सब प्रकार से साधते हैं उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन भी दुःखों के वारण करने वाली, ज्ञानप्रद, सुखप्रद, चित्तों की प्रकाशक देवी, वेदविद्या को सब प्रकार से अभ्यास करते है। हे विद्वान् पुरुषो ! उत्तम ज्ञान के धारण करने वाले परम रस को पान करने के लिये और इस ज्ञान और कर्ममयी, दिव्य ऐश्वर्यमय वेद विद्या को प्राप्त करने के लिये विद्या और धन के अभिलाषी पुरुष सब दिनो तुम लोगों के पास सब देशों से आ आ कर एकत्र हों और ज्ञान का अभ्यास करें।

किरणों और वृष्टिविद्या के पक्ष में—दिन गण या सूर्य के प्रकाश गीधों के समान जलों को अपने भीतर लेने की इच्छा वाले होकर इस जल उत्पन्न करने वाली प्रकाशमयी मा सूर्य की धारण शक्ति को सब तरफ फैलाते हैं। उत्तम सूर्यगण अपनी किरणों से प्रकाश करते हुए, पान करने के लिये ऊपर, अन्तरिक्ष में कूप के समान अधिक जल को धरने वाले मेघ को प्रेरित करते है। अथवा कुओं आदि के द्वारा जल को उत्पन्न करने वाले कूपि-कर विद्वान् जन भूमियों को जलपान कराने अर्थात् सेचने के लिये नाना साधनों के कूप में स्थित जल को ऊपर खींच लेवें। जल के अभिलाषी लोग भी इस जल प्राप्त करने की सुखप्रद उत्तम क्रिया को तुम लोगों से सीखें। ऐश्वर्य या महान् राष्ट्र को वश करते हुए विद्वान् भूमिपति लोग उत्तम आदर, मान, सत्कारों से स्वयं राष्ट्र का भोग करने के लिये हे वीरो ! तुममें से जो धनाकांक्षी है वे इस धनप्रद, उत्तम रक्षा कारिणी बुद्धि को धारण करें।

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥

भा०—हे वीर सैनिक गणो ! वह प्रत्यक्ष तुम लोगो का योजन अर्थात् विशेष व्यवस्था या कार्य में नियुक्ति पूर्व योजना या नियुक्ति के समान ही जाननी चाहिये जिसको तुम लोगो के लिये तुममे सबसे श्रेष्ठ वह प्रधान सेनापति, विद्वान् उपदेश करता है। जो तुमको सुवर्ण के चक्रों और लोह की शस्त्र-अस्त्र रूप शत्रुनाशकारी दाढों वाले, जंगली शूकरों के समान क्रोधान्ध होकर विविध दिशाओ मे दौडते हुओं को देखा करता है। शिक्षक सेनापति वीर सैनिको को पूर्व शिक्षित व्यूहों की आज्ञा करे। युद्ध मे सशस्त्र होकर वेग से दौड़ते हुए सैनिको पर अपनी आंख रक्खे। वेतन-बद्ध होने से सुवर्ण या धन प्राप्ति ही मानो उनके वेग से जाने का कारण है। शस्त्र ही उनके शत्रुओ को फाड़ खाने के साधन हैं। वे शूकर के समान क्रोधान्ध होकर दौड़ते हैं। अथवा अपने उत्कृष्ट बल वाले को ललकारने से वीर गण 'वराहू' हैं।

शिल्पपक्ष में—अग्नि, वायु, जल आदि वेग युक्त, अति घोर शब्दकारी पदार्थों का यह विशेष प्रकार का संयोजन पूर्व के समान ही जानना चाहिये, जिसका गति विद्या का उत्तम विद्वान् उपदेश करता है। जो श्रेष्ठ पुरुषों को लेकर जाने वाले या खूब शब्द करके चलने वाले नाना दिशाओ मे वेग से जाते हुए लोह के बने स्वर्ण के समान चमकते हुए चक्रों और लोह के ही हाल से मढे रथों को देखता है, उनका आविष्कार करता है।

अध्यात्म मे—हे प्राणगण, मुख्य गोतम, आत्मा, पूर्व कल्प के समान ही तुम प्राणों का देह में सयोजन करता है। वह हिरण्य रूप आत्मा तुमको चलाने वाला और वेग से चलने वाले मनो बल से प्राह्य विषय के भोग करने वाला नाना दिशा में जाते हुए उत्तम अन्नों को प्राप्त होने वाला तुमको देखता है, तुम पर शासन करता है।

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुष की वाणी जिस प्रकार बांध लेती है अर्थात् अपने आराध्य देव को वश में कर लेती है उसी प्रकार हे देह में प्राणों के समान राष्ट्र के जीवन रूप विद्वानो! वीर सैनिक पुरुषो! आप लोगों की यह वह नाना प्रकार की प्रतिदिन भरण पोषण करने वाली आजीविका ही है जो आप में से प्रत्येक को अपने अपने कार्य पर बांध रही है। देह को धारण पोषण करने वाली अन्न या पिण्डपोषणी आजीविका के अनुसार ही वह प्रधान राजा इन सेनाओं के बाहुओं को भी अनायास ही बांध लेता है। अर्थात् वीर पुरुषों के बाहुबल भी वेतन के अधीन होते हैं। इति चतुर्दशो वर्गः।

[८९]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्द:—१, ५ निचृज्जगती। २, ३, ७ जगती। भुरिक् त्रिष्टुप्। एकोना वा विराड् जगती। ८ विराट् त्रिष्टुप्। ९, १० त्रिष्टुप्। ६ स्वराड् बृहती विराट्पङ्क्तिर्वा। दशर्चं सूक्तम्॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥

भा०—हमारे बीच में जो पुरुष उत्तम क्रियाकुशल, ज्ञानी और सबके कल्याणकारी, सुखकारक एवं सेवा और सत्संग करने और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले हैं वे कभी मारने, पीडा देने और वध करने योग्य नहीं हैं। वे कभी किसी अवस्था में परित्याग या उपेक्षा न किये जावें। वे सदा उत्तम वृक्षों के समान उत्तम कर्मों और फलों को देने वाले या उत्तम कृपकों के समान उत्तम ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने हारे होकर हमें सदा प्राप्त हों। अथवा वे हमारे घरों पर आवें। जिस कारण से वे ज्ञानवान्, विद्वान, विद्याप्रद, दानी और विजयेच्छुक पुरुष प्रतिदिन

कभी आयु और जीवन शक्ति को न खोने वाले, सदा दीर्घायु, बलवान् रक्षक होकर हमारी वृद्धि के लिये ही हो।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम्।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥

भा०—सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा विद्वानो की कल्याण और सुख देने वाली उत्तम बुद्धि, उनके उत्तम ज्ञान हमे सदा प्राप्त हो। सरल, धर्मात्मा विद्वानो की सुखदायी, कल्याणमय विद्या आदि का उपदेशरूप दान हमे सदा प्राप्त हो। दानशील, विजयी, उत्साही, तेजस्वी पुरुषो के मित्र भाव को सदा प्राप्त करें। वे विद्वान् जन हमारे जीवन को दीर्घ काल तक जीने के लिये खूब बढ़ावें या उन्नत करें। उसी प्रकार ऋतु-अनुकूल प्राप्त होने वाले या प्राण-बल को धारण करने वाले अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य आदि दिव्यगुण वाले तेजस्वी पदार्थों का उत्तम स्तम्भन-बल तथा धर्मात्मा विद्वानो की शुभ मति हमे प्राप्त हो, उनकी उत्तम दानशक्ति हमे प्राप्त हो। हम उनके प्रेम भाव व अनुकूलता को प्राप्त करे। वे हमारे जीवन की वृद्धि करनेवाले हों।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोमम॒श्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥

भा०—ऐश्वर्यवान्, सेवा करने योग्य, सुखजनक, सर्व सुहृद् ब्राह्मण, मरणादि दुःखो से बचाने वाले वैद्य आदि, कभी नाश, पीडा या दुःख न देने योग्य, सदा पूज्य, माता पिता, भूमि और गुरु आदि पूज्य जन, कार्यों में चतुर ज्ञानी, गुरु और पिता आदि, अहिंसक, किसी को पीड़ा न देने वाले शत्रुओ को वश करने मे समर्थ, न्यायकारी, सर्वश्रेष्ठ, दुःखों और दुष्टो के वारक, सर्वोत्पादक, पिता, सर्वप्रेरक, उपदेशक, शम दमादि सम्पन्न साधक जन, गुरु शिष्य तथा स्त्री पुरुष, अग्नि जल, दिन रात्रि आदि युगल, उन सभी को हम अपने से पूर्व के गुरुओ द्वारा पढ़ने, ज्ञान करने योग्य, सनातन से चली आयी वेदवाणी द्वारा प्रशंसा करें, उनका

वेदानुसार ज्ञान का उपयोग और आदर करें। विदुषी स्त्री और उत्तम ज्ञानों से भरपूर वेदवाणी और ज्ञानवान् परमेश्वर और विद्वज्जन भी उत्तम ऐश्वर्यों तथा पुत्र पौत्रादि, धन-धान्यादि से युक्त सेवनीय सुखकारी ज्ञान से युक्त होकर हमें सुख प्रदान करें।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥४

भा०—वायु और प्राण हमें वह नाना प्रकार के सुखकारक, रोग दूर करने का सामर्थ्य प्राप्त करावें। माता और माता के समान पृथिवी दोनों वह रोगनाशक बल दें। प्रकाशमय सूर्य पालक होकर पिता के समान उस रोगनाशक बल को प्राप्त करावे। सोम अर्थात् रोगों को निकाल बाहर कर देने वाले और नाना सुखों और बलों के उत्पादक ओष-धियों के रसों को तैयार करने वाले विद्वान् पुरुष तथा सिल, बट्टा, खरल आदि साधन, उपकरण सुखकारी होकर नाना प्रकार के दुःखों के दूर करने के उपायों को प्राप्त करावें। हे स्त्री पुरुषो! माता पिताओ! गुरु शिष्यो! आप लोग बुद्धिमान् होकर रोगों को और दुःखों को दूर करने के उपायों और साधनों का श्रवण करो और कराओ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥५॥१५॥

भा०—हम लोग चर, जंगम, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणधारी और वृक्ष, पर्वत आदि स्थावर संसार के पालक, धारण पोषण करने वाले अन्न से सब जीवों को तृप्त करने वाले या सद्बुद्धि प्रदान करने वाले उस परम ऐश्वर्यवान्, स्वामी परमात्मा को ज्ञान और रक्षा को प्राप्त करने के लिये स्मरण करते हैं। वह सबका पोषक, दुष्टों से रक्षक, सब प्रजाओं का पालन करने हारा और कभी विनष्ट न होकर, नित्य सुरक्षित रहकर हमारे धनों और ऐश्वर्यों की वृद्धि और हमारे सुख और कल्याण के लिये हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

भा०—बड़े हुए, बहुत अधिक ज्ञान और अन्नादि सम्पत्ति का स्वामी आचार्य और परमेश्वर हमें सुख और कल्याण प्रदान करे। समस्त-ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी, सबका पोषक प्रभु हमें शरीर-पोषण का सुख प्रदान करे। विद्वान् ज्ञानी या वेग से अन्यत्र जाने हारा शिल्पी रथचक्र की न टूटने वाली धारा वाला होकर हमें मार्ग लांघने का सुख प्रदान करे और वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष अटूट, दृढ़ हथियारों से युक्त होकर हमें शत्रुजय से प्राप्त होने वाले सुख को दे। वेदवाणी और बड़े राष्ट्र का स्वामी हमें ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य-समृद्धि का सुख दे। अथवा प्रचुर अन्न और ज्ञान का स्वामी होने से परमेश्वर 'वृद्ध-श्रवा.', सर्वज्ञ और धनों का स्वामी होने से 'विश्ववेदाः', व्यापक, सबका प्रेरक होने से 'तार्क्ष्य' और दुष्टों का नाशक होने से 'अरिष्टनेमि' और वेदवाणी और महान् ब्रह्माण्ड का पालक होने से वही 'बृहस्पति' है। वह हमें सब प्रकार के सुख प्रदान करे।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह॥७॥

भा०—जिस प्रकार जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त, सेचन में समर्थ मेघों के उत्पादक, वायुगण गति करते हुए लोगों को उत्तम सुख प्राप्त कराते हैं और वे ही अग्नि की ज्वाला से युक्त होकर प्रकाश युक्त होकर सूर्य के समान चमकते हुए हमें दीप्ति सहित प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार तेजस्वी, दानशील, ज्ञानदर्शक, विद्वान्, वीर पुरुष हृष्ट-पुष्ट और नाना वर्णों के अश्वादि यानों पर चढ़ कर, मातृभूमि से उत्पन्न प्रजा को सुख और शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाले संग्रामों, ज्ञान-सत्संगों में जाने वाले, अग्नि के समान समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली उपदेशप्रद वाणी से युक्त, विचारशील, सूर्य के समान तेजस्वी

चक्षु वाले अथवा सूर्य, प्राण, अन्न आदि के परम सूक्ष्म तत्वों को देखने और उनको स्पष्ट रीति से वर्णन करने वाले, समस्त दानशील और ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानद्रष्टा पुरुष इस राष्ट्र में ज्ञान प्रकाश और रक्षण-सामर्थ्य सहित हमें सदा प्राप्त हों।

भ॒द्रं कर्णे॑भिः शृणुयाम देवा भ॒द्रं प॑श्येमा॒क्षभि॒र्यज॑त्राः ।
स्थि॒रैरङ्गै॑स्तुष्टु॒वांस॑स्त॒नूभि॒र्व्य॑शेम दे॒वहि॑तं॒ यदायुः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे सत्संग करने योग्य, एवं अग्निहोत्र, ईश्वरोपासना करने और विद्या आदि उत्तम पदार्थों के देने हारे विद्वान्, दानशील पुरुषो! हम लोग कानों से सुखकारी कल्याणकारक वचनो का श्रवण करें। आंखों से सुखकारी, कल्याणजनक दृश्य को देखें। परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करते हुए और ज्ञानयोग्य पदार्थों का यथार्थ रूप से वर्णन करते हुए, हम लोग स्थिर, दृढ़, निश्चल अंगो से और विस्तृत, हृष्ट पुष्ट शरीरों से जो दीर्घ जीवन विद्वान् जनो को हितकारी है हम भी प्राप्त करें।

श॒तमिन्नु श॒रदो॒ अन्ति॑ देवा॒ यत्रा॑ नश्च॒क्रा ज॒रसं॑ त॒नूना॑म् ।
पु॒त्रासो॒ यत्र॑ पि॒तरो॒ भव॑न्ति॒ मा नो॑ म॒ध्या री॑रिषता॒युर्गन्तोः॑ ॥६॥

भा०—हे उत्तम साधनों से प्राण धारण करने और कराने में समर्थ विद्वानो! और अग्नि, जल, वायु, सूर्य, पृथिवी, अन्न आदि जीवन देने वाले पदार्थो! जिस जीवन दशा में सौ वर्ष ही हमारे शरीरों की जीर्ण दशा को पूर्ण कहते हैं और जब, जिस काल में पुत्र भी बड़े होकर गृहस्थ धारण कर बच्चों के पिता अथवा हम वृद्धों के पालन करने योग्य हो जायं उस दशा तक पहुचने के लिए बीच बीच में हमारी आयु को मत नष्ट होने दो अर्थात् हमे सदा स्वस्थ रक्खो।

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् १०।१६

भा०—प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, सूर्य, नक्षत्रादि और आकाश ये कभी नाश न होने से 'अदिति' है। आकाश और उसमें स्थित वायु भी नाश

न होने से 'अदिति' हैं। पुत्रों को उत्पन्न करने वाली माता, नित्य आदर करने योग्य, कभी पीडा या आज्ञा भंग न करने योग्य होने से 'अदिति' है। सर्वोत्पादक 'माता' प्रकृति और मातृस्नेहवान् परमेश्वर भी अविनाशी होने से 'अदिति' है। इसी प्रकार पालन करने वाला और वीर्य और विद्या से उत्पन्न करने वाला पालक, जनक और आचार्य ये भी पीड़ा न देने और आज्ञा उल्लघन करने योग्य न होने से तथा उनके उपकार कभी नष्ट न होने से और उनके सदा एक भाव में आदर योग्य बने रहने से भी 'अदिति' कहाने योग्य हैं। पिता और पालक जनों को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कष्टों से बचाने वाला पुत्र, शिष्य, चाहे वह क्षेत्र सम्बन्ध और विद्या सम्बन्ध से हो, सन्तति-परम्परा, कुल-परम्परा और सम्प्रदायपरम्परा को न खण्डित करने हारा होने से 'अदिति' है। समस्त देव गण, विद्वान् पुरुष तथा सूर्यादि दिव्य पदार्थ पीड़ा न देने योग्य तथा नाश न होने हारे होने से 'अदिति' कहाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचो जन नाश न करने योग्य होने तथा प्रवाह से सदा विद्यमान रहने से 'अदिति' हैं। समस्त उत्पन्न पदार्थ कारणरूप से और नाशवान् न होने से 'अदिति' है और आगे भविष्यत् में भी उत्पन्न होने वाले पदार्थ कारण पदार्थों में अव्यक्त रूप से विद्यमान होने से 'अदिति' कहाते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[९०]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ८ गायत्री। २, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्। ३ पिपीलिकामध्या विराट्। ४ विराट्। ५, ६ नि अनुष्टुप ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः॥१॥

भा०—गुण, कर्म और स्वभाव से श्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला, सबसे मुख्य पद के लिये वरण करने योग्य, मृत्यु से बचाने वाला

सबका स्नेही, शत्रुओं और वाधक दुःखदायी कारणों का नियन्त्रण करने वाला, न्यायकारी, उत्तम विद्वान् पुरुषो के साथ, समान भाव से प्रीति-युक्त होकर विद्वान् पुरुष, राजा हमें ऋजु, सरल, कुटिलता रहित नीति अर्थात् धर्म-मार्ग से सन्मार्ग पर चलावे। इसी प्रकार उत्तम गुणों से युक्त परमेश्वर हमें उत्तम गुणों, कर्मों और स्वभावो से युक्त होने के कारण सब से समान भाव से प्रेम करने हारा और सबका प्रेमपात्र होकर हमें उत्तम धर्ममार्ग से चलावे।

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। व्रता रक्षन्ते विश्वाहा॥२

भा०—जो लोग सब दिनो, नित्य नियत धर्म नियमों को स्वय पालन करते और औरों से पालन कराते है वे ही वस्तुतः बसे हुए प्रजा-जन और ऐश्वर्य के सुख से वसाने और उनकी रक्षा करने मे समर्थ होते हैं और विद्वान् तथा वीर जन वे सब दिनो बढे वडे गुणो, कर्मों और नाना उपायो द्वारा असावधानता, मोह, प्रमाद और आलस्य से रहित होकर रहे।

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः॥३॥

भा०—वे कभी न मरने वाले अर्थात् यशस्वी, बलवान्, अपराजित, जीवन्मुक्त, दीर्घजीवी, प्रजा, पुत्र, शिष्य एवं उत्तराधिकारी आदि पर-म्परा से सदा बने रहने वाले अधिकारी, विद्वान् जन अप्रीति करने योग्य, द्वेष्य, दुष्ट पुरुषो और बुरे, खोटे कर्मों और विचारों को दूर करते हुए, हम मरणधर्मा मनुष्यों के लिये सुख प्रदान करें।

वि नः पथः सुवितायं चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः॥४

भा०—ऐश्वर्यवान्, विद्यावान् और शत्रुओं का नाश करने वाला सबका पोषक, अन्न देने वाला और राजा उत्तम सेवनीय पदार्थों और गुणों से युक्त परमेश्वर, विद्वान् आचार्य और राजा आदि और विद्वान् वीर तथा वैश्यादि गण, हमारे सुखपूर्वक देश-देशान्तर में जाने और उत्तम

ऐश्वर्यो को प्राप्त करने के लिये मार्गों और नाना उपायों को निर्धारित तथा विस्तृत करें, बनावें ।

उत नो धियो गो अंग्राः पूषन् विष्णवेवयावः ।
कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे सबके पोषण करने हारे ! हे व्यापक सामर्थ्य वाले परमेश्वर ! हे ज्ञानो को स्वयं प्राप्त करने और औरों को प्राप्त कराने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमारी बुद्धियों को उत्तम वेद वाणियों से प्रकाशित होने वाला करो । अर्थात् हमारे कर्म और विचारों मे 'गो-अग्र' अर्थात् वेदवाणी मुख्य साक्षी रूप से रहे । अथवा हमारे समस्त विचार उत्तम वाणियों द्वारा आगे आने या प्रकाशित होने वाले हों । हमारे विचार उत्तम वचनो मे प्रकाशित हो । इसी प्रकार अधीनस्थ सैनिक आदि अपने नायक से कहते हैं—हे पोषक ! हे विष्णो ! महान् सामर्थ्य और अधिकार वाले नायक ! हमारे सब काम तेरी वाणी को आगे रख कर हो । तेरी आज्ञा पहले हो और हमारे कार्य तदनुसार हों । हे गति देने हारे या शीघ्रगामी रथ से जाने हारे महारथी ! तू हमे सुख-कल्याण से युक्त कर । अथवा हमारे सब काम ज्ञानवान् आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के नायकत्व मे हों । इति सप्तदशो वर्गः ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥६

भा०—अन्न को प्राप्त करने की इच्छा वाले मानव समाज के लिये वायुगण जिस प्रकार जल बरसाते हैं उसी प्रकार सत्य ज्ञान के इच्छुक जिज्ञासु जन के लिये ज्ञानवान् पुरुष मधुर ब्रह्म विद्या का उपदेश दें । और जिस प्रकार महा नदियें अन्न के इच्छुक को नहरों से जल बहाती हैं उसी प्रकार ज्ञान के अगाध सागर एव विद्या सम्बन्ध से अपने साथ शिष्यो को बांधने वाले आचार्य गण सत्य ज्ञान के जिज्ञासु को मधुर ब्रह्मज्ञानोपदेश प्रदान करते है । ओषधियां जिस प्रकार हमारे लिये मधुर

गुण से युक्त एवं मधुर, सुखजनक स्वास्थ्य और पुष्टि प्रदान करने वाली होती हैं उसी प्रकार तेज और ताप को धारण करने वाले पदार्थ और प्रतापी, तेजस्वी, वीर सेनाएं और परिपक्व ज्ञान वाले जन हमारे लिये मधुर ज्ञानप्रद हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥७॥

भा०—रात्रि का समय हमारे लिये मधुर, सुखकारी हो और उषा-काल, प्रभात वेलाएं हमारे लिये मधुर, सुखकारी, शान्तिप्रद, आरोग्य-कारक हों। पृथिवी की धूलि और पृथिवी पर बसे यह समस्त लोक भी मधुर गुण से युक्त, सुख और आरोग्यकारक और बलकारक हों। सूर्य हमारे पालक पिता के समान मधुर, सुखकारी, आरोग्यजनक हों।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥८॥

भा०—वनस्पति हमारे लिये मधुर रस, फल और छाया से युक्त हो और सूर्य और शरीरगत प्राण हमारे लिये मधुर सुखदायी प्रकाश और बल देने वाला हो। हमारी गौ आदि पशु और सूर्य की किरणें और वेदवाणियें और देहगत इन्द्रियें हमें क्रम से मधुर दुग्ध, घृत आदि रस, मधुर प्रकाश से उत्पन्न होने वाले रोग-नाशक प्रभाव, ज्ञान और सुखप्रद, अनुभव देने वाले हों।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः॥ ९॥ १८॥

भा०—हमें सबका परम स्नेही, परमेश्वर शान्ति प्रदान करे। वह सर्वश्रेष्ठ, दुःखों का निवारक शान्तिदायक हो। वह न्यायकारी, दुष्टों का नियन्ता, प्रभु शान्तिदायक हो। वेदवाणी का पालक और बड़े लोकों का पालक, ऐश्वर्यवान् प्रभु हमें शान्तिदायक हो। बड़े भारी पराक्रम वाला, अनन्य बलशाली और सर्वव्यापक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो। इत्य-ष्टादशो वर्गः॥

[६१]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषि ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ स्वराट् पङ्क्तिः। २ पङ्क्तिः। १८, २० भुरिक्पङ्क्तिः। २२ विराट् पङ्क्तिः। ५ पादनिचृद् गायत्री। ६, ८, ९, ११ निचृद् गायत्री। १०, १२ गायत्री। ७, १३, १४ विराट् गायत्री। १५, १६ पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री। १७ परोष्णिक्। १९, २१, २३ निचृत् त्रिष्टुप्। त्रयोविंशत्यृच सूक्तम्॥

त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म्।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीरा॑ः ॥ १ ॥

भा०—हे सब जगत् के प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर और विद्वन्! आप मन की प्रबल इच्छा द्वारा अच्छी प्रकार जानते और ज्ञान देते हो। आप अति ऋजु, सरल मार्ग की ओर ले जाते हो। आपकी ही उत्तम नीति से हमारे पालक, मा बाप के समान, स्नेहवान् होकर धीर और कर्मशील बुद्धिमान् पुरुष विद्वानों के बीच में रहते हुए उत्तम ऐश्वर्य और परमसुख को प्राप्त करते हैं॥

राजा वै सोमः। श० १४। १। ३। १२। राजा और विद्वान् के पक्ष में—तू अपनी बुद्धि से सब कुछ भली प्रकार जान। और हमें ऋजु, धर्ममार्ग पर ले चल। हे ऐश्वर्यवन्! पालक, शासन जन विद्वानों और विजयेच्छु धीर पुरुषों के आधार पर ही तेरी उत्तम नीति से धैर्यवान् होकर सुखों में रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करें।

अध्यात्म में—अन्न वै सोम.। श० ३।१।१।८॥ प्राण. सोमः। श० ७। ३। १। २॥ रेत. सोम.। श० ३। ३। २। १॥ हे अन्न, प्राण और प्रजा के उत्पादक, हे शुक्र! तू मन की प्रेरणा से या कामना या हर्ष द्वारा समस्त रोगों को दूर करता और उत्तम ज्ञान सामर्थ्य देता है। और राजस भाव से युक्त मार्ग की तरफ गृहस्थोचित कार्य में भी प्रवृत्त करता है। बुद्धिमान् मा बाप तेरे उत्तम उत्तन उपयोग से विद्वानों के

बीच पुत्र और प्राणों के बल पर रमण योग्य, शारीरिक सुखप्रद बल को प्राप्त करते हैं।

त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः।
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे अभिषेक योग्य, ऐश्वर्यवन्, ज्ञानवन्, सर्वाज्ञापक, प्रेरक राजन्! परमेश्वर! विद्वन्! तू उत्तम कर्मों और उत्तम उत्तम ज्ञानों से उत्तम कर्म करने हारा और उत्तम ज्ञानवान् है। तू नाना बलों में उत्तम बलशाली और समस्त संसार को जानने हारा, समस्त धनों का स्वामी है। तू समस्त काम्य पदार्थों, सुख, विद्या, धन आदि के वर्णन करने के सामर्थ्यों से और अपने महान् सामर्थ्य से मेघ के समान सुखों के वर्षण-कारी 'वृषा' हो। और तू समस्त मनुष्यों को देखने हारा, सब पर साक्षी अधिष्ठाता होकर ऐश्वर्यों से ऐश्वर्यवान् है। शुक्र शरीर में क्रिया सामर्थ्यों का उत्पादक होने से 'सुक्रतु' और ज्ञान या मनन शक्तियों और बलों का वर्धक होने से 'सुदक्ष' है। पुरुषत्व आदि गुणों का उत्पादक होने से 'वृषा' है। कान्तियों और तेज, ओज आदि का जनक होने से 'द्युम्नी', प्राणों, इन्द्रियों और 'नृ' अर्थात् नरों में दीखने से 'नृचक्षा' है। सब काम्य सुखों को देने से 'विश्ववेदाः' है।

राज्ञो॒ नु ते॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ बृ॒हद्ग॑भी॒रं तव॑ सोम॒ धाम॑।
शुचि॒ष्ट्वम॑सि प्रि॒यो न मि॒त्रो द॒क्षाय्यो॑ अर्य॒मेवा॑सि सोम ॥३॥

भा०—हे राजन्! हे सर्वश्रेष्ठ, सब दुष्टों के वारक, सबसे वरण करने योग्य! तुझ राजा के ही बनाये ये सब राज्यपालन के नियम हों। हे राजन्! तेरा धारण सामर्थ्य और नाम, जन्म और स्थान तथा यश भी बहुत बड़ा और गम्भीर, सब पर प्रभाव डालने वाला हो। तू प्रिय मित्र के समान शुद्ध, निष्कपट व्यवहार वाला हो। और हे ऐश्वर्यवन्! तू शत्रुओं का दमन करने वाले, सेनापति और न्यायकारी, धर्माध्यक्ष के समान बल और यथार्थ न्याय-शासन करने हारा हो। अथवा परमेश्वर के

सब सत्य नियम और उसका बल महान् अगाध है। वह प्यारे मित्र के समान सबका हितचिन्तक तथा स्वच्छ हृदय है, वह सूर्य के समान समस्त बलों और ज्ञानों का आश्रय है।

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥४॥

भा०—हे राजन्! सबके अधिपते और सर्वत्र प्रकाशमान! हे सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! तेरे जो जगत् को धारण करने वाले महान् बल, सामर्थ्य, सूर्य में जो धारण-पोषण सामर्थ्य, पृथिवी में और जो पर्वतों में, जो ओषधियों तथा वनस्पतियों में और जो जलों में हैं, उन सब सामर्थ्यों से हम पर अनुग्रह करता हुआ देने और ग्रहण करने योग्य समस्त पदार्थों को प्रत्येक प्राणी को प्रदान कर और अपने वश कर।

राजा के पक्ष में—ज्ञानसम्बन्धी कार्यों, व्यवहार या विद्वत्सभा में पृथिवी निवासी प्रजा में पर्वतों और मेघों के समान अचल और शस्त्रवर्षी नायकों में ताप, दाह युक्त प्रतापी सेनाओं में जो तेरे तेज, पराक्रम हैं उन सबसे हम प्रजाओं का तिरस्कार न करता हुआ ग्राह्य और दानयोग्य ऐश्वर्यों को हमसे ले और फिर दान कर। अथवा अन्तरिक्ष पृथिवी, पर्वत आदि स्थानों में सब उत्तम पदार्थ भरे हैं, प्रजा को वञ्चित न करता हुआ योग्य रीति से राज-स्व और प्रजा-स्व का विभाग कर।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः॥५॥१९

भा०—हे सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! तू नित्य कारण, विद्यमान कार्य और सज्जनों का पालक है। तू सबका प्रकाशक, सबका अधिपति, राजा और सूर्य के समान अज्ञान-आवरण का नाश करने वाला है। तू सबको सुख और कल्याणकारी, सबके सेवने योग्य और ज्ञानवान्, कर्मसामर्थ्यवान् है। इसी प्रकार विद्वान् राजा, सद्गुणों का, सज्जनों का पति, शत्रुनाशक सज्जन और कर्मण्य हो। सोम नाम ओषधि रस

और शरीर में शुक्र दोनों सद्गुणों के पालक, रोगनाशक, सुखकारक, सेवन करने योग्य और बल-बुद्धि के वर्धक हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः।

त्वं च॑ सोम नो॒ वशो॑ जी॒वातुं॒ न म॑रामहे। प्रि॒यस्तो॑त्रो॒ वन॒स्पतिः॑ ६

भा०—हे राजन् और परमेश्वर! आप हमारे जीवन को वश या स्थिर करने वाले और उसके चाहने वाले हो, तब हम मृत्यु को प्राप्त न हों। तू सेवनीय ऐश्वर्यों का, जीवों का और वनों तक का पालक, और प्रिय प्रीतिकारी स्तुति वचनों द्वारा उपासना करने योग्य है तेरे स्तुति-वचन सुन कर हमारे हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है, इसी से प्रिय-स्तोत्र है। देह में शुक्र रस, जीवन का स्थापक, उसमें तेज बल का धारक होने से मृत्यु को दूर करता है। 'वन' अर्थात् इन्द्रियों का पालक उत्तम गुणों से युक्त है। सोम रस, जीवन में बलदायक, मृत्यु आदि दुःखों का नाशक, उत्तम गुणों वाला ओषधि है।

त्वं सो॑म म॒हे भगं॒ त्वं यून॑ ऋताय॒ते। दक्षं॑ दधासि जी॒वसे॑ ॥७॥

भा०—हे सर्वोत्पादक परमेश्वर! सर्वप्रेरक राजन्! तू महान् युवा, बलवान्, सत्यज्ञान, बल और शासन व्यवस्था को चाहने वाले पुरुष को सेवन करने योग्य ऐश्वर्य धारण कराता है और दीर्घ जीवन के लिये बल और सामर्थ्य प्रदान करता है। सोम रस और शुक्र युवा पुरुष को कान्ति और बल देता है। राजा युवा पुरुषों को अधिकार ऐश्वर्य और जीविका के लिये अन्न और वृत्ति देता है।

त्वं नः॑ सोम वि॒श्वतो॒ रक्षा॑ राजन्नघाय॒तः। न रि॑ष्ये॒त्त्वाव॑तः॒ सखा॑ ८

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! परमेश्वर! तू हमें सब प्रकार के हम पर पाप और अत्याचार करने के इच्छुक दुष्ट पुरुषों से बचा। तेरे जैसे बल-शाली रक्षक का मित्र कभी नष्ट नहीं हो सकता। वीर्य तथा ओषधिरस भी शरीर पर सब प्रकार के आघातकारी रोग आदि से बचावें। वीर्य के समान सहायक पदार्थ का मित्र देह कभी नष्ट नहीं होता।

सोम॒ यास्ते॑ मयो॒भुव॑ ऊ॒तयः॒ सन्ति॑ दा॒शुषे॑। ताभि॑र्नोऽवि॒ता भ॑व ॥९॥

भा०—हे सोम, राजन्! प्रभो! जो तेरे सुखजनक शान्तिदायक रक्षा के साधन और ज्ञान दानशील पुरुष के हित के लिये हैं उनसे तू हमारा रक्षक हो। वीर्य तथा ओषधिरस के सुखजनक गुणो मे देह की रक्षा होती है।

इ॒मं य॒ज्ञमि॒दं वचो॑ जुजुषा॒ण उ॒पाग॑हि। सोम॒ त्वं नो॑ वृ॒धे भ॑व॥१०॥

भा०—हे प्रभो! इस यज्ञ, उपासना कर्म को और इस स्तुति-वचन को तू स्वीकार करता हुआ हमे प्राप्त हो। हे राजन्! तू इस रक्षाकारी प्रजापालन के कार्य को और इस विद्वान् के धर्मयुक्त वचन अर्थात् शास्त्र को सेवन या प्रेम से पालन करता हुआ हम प्रजाजनो को प्राप्त हो। तू हमारे बल, ज्ञान और सुख की वृद्धि के लिये हो। शरीर मे शुक्र, देह मे जीवन-धारण रूप यज्ञ और विद्याभ्यास के करने मे उपयुक्त हो, शरीर की वृद्धि करे। ओषधिरस नाना अन्य रसो के मिश्रण को प्राप्त हो, शास्त्रप्रोक्त गुण को धारण करे, शरीर की वृद्धि करे। इति विंशो वर्गः।

सोम॑ गी॒र्भिष्ट्वा॑ व॒यं व॒र्धया॑मो वचो॒विद॑ः। सु॒मृ॒ळी॒को न॒ आ वि॑श ११

भा०—हे सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर! हम स्तुति वचन कहने मे चतुर, वाग्मी पुरुष या तेरी भक्ति के मर्म को समझने वाले तुझको प्रेममयी वाणियो से बढ़ावें, तेरी महिमा को बढ़ावें। तू हमे उत्तम सुखप्रद होकर प्राप्त हो। हे सावित्री वेद-माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाले शिष्य जन! हम विद्या युक्त वाणियों, प्रवचनों को जानने हारे होकर तुझको उत्तम ज्ञानमय वाणियो से बढ़ावें, तुझे अधिक ज्ञानवान् करें, तू गुरुजनो का उत्तम सुखदायी, प्रिय शिष्य होकर हमारे पास आकर रह। शिष्यगण माता सावित्री के गर्भ तथा आश्रय में प्रविष्ट हो। स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन राजा सोम को उपदेश देकर ज्ञानवान् करे और वह प्रजा में सुखकारी होकर रहे।

ग॒य॒स्फानो॑ अमीव॒हा व॑सु॒वित् पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः। सु॒मि॒त्रः सो॑म नो भव१२

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू ऐश्वर्यो और पशुओं को बढ़ाने वाला,

रोगों के समान दुःखदायी कारणों को नाश करने हारा, राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनों के लिए ऐश्वर्यों का लाभ कराने वाला, गौ, अन्न आदि पुष्टिकारक समृद्धि को बढ़ाने हारा और हमारा उत्तम मित्र हो। ओषधि रस सोम और देह मे शुक्र प्राणों और अपत्यों की वृद्धि करने हारा, रोगनाशक, जीवन और देह मे इन्द्रिय शक्तियों को प्राप्त कराने वाला, पुष्टिकारक और उत्तम रीति से मृत्यु कष्ट से बचाने हारा हो। शिष्य और पुत्रजन ज्ञान और सन्तति का बढाने हारा, कष्टों को दूर करने हारा, धनप्रापक, पोषक अन्नादि का बढ़ाने हारा, गुरुजनों के प्रति उत्तम स्नेही मित्र होकर रहे।

गय इत्यपत्यनाम, धननाम, गृहनाम च (निघ०)। तद् यद् गच्छति तस्माद् गय। एष ह वै सोमः सर्वान् लोकान् गच्छति। गो० ५०।५।१४। प्राणा वै गयाः। श० १४।८।१५।७। गवां नः स्फाययिता प्रतारयितैधीत्याह। ऐ० १।१३॥

सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा। मर्यं इव स्व ओक्यें॥१३॥

भा०—खाने योग्य उत्तम घासों के बीच जिस प्रकार गौवें प्रसन्न होती हैं और रमण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार अपने घर में आनन्द प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! तू हमारे हृदय में रमण कर, हमारे हृदय मे प्रकाशित हो। हे शुक्र, सोम! हमारे हृदय में हर्ष, चित्त-प्रसाद उत्पन्न कर।

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः। तं दक्षः सचते कविः॥१४॥

भा०—हे सर्वप्रकाशक! ऐश्वर्यवन्, सर्वोत्पादक विद्याशिक्षक! परमेश्वर! गुरो! विद्वन्! जो पुरुष तेरे मित्रभाव, सत्सग मे रहकर विद्याभ्यास और स्तुति करता है वह ज्ञानवान्, क्रियाकुशल और क्रान्तदर्शी, परम विद्वान् होकर उस तुझ परम पुरुष को ही प्राप्त होता है।

शुक्र पक्ष मे—ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याभ्यास करनेवाला पुरुष विद्वान्, क्रियावान्, बुद्धिमान् होकर बलवान, वीर्यवान् भी होता है।

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! तथा हे छात्र ! तू निन्दा-वचन और घात-प्रतिघात करने वाले दुष्ट पुरुष से हमारी रक्षा कर । और तू हमारा मित्र और उत्तम सुखजनक हो । तू पाप से भी हमारी सदा रक्षा कर । इत्येकविंशो वर्गः ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ १६ ॥

भा०—हे राजन् ! छात्र ! तू सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो, तुझे सब तरफ़ से वीर्यवान्, पुरुषों में होनेवाला उत्पादक बल प्राप्त हो । तू बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्त करने मे हमारा सहायक और यत्नवान् हो । परमेश्वर गुणो से महान् है, उसे सब प्रकार का बल प्राप्त है । वह ऐश्वर्य के प्राप्त करने में सहायक हो ।

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

भा०—हे अति हर्षदायक ! ऐश्वर्यवन् राजन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! छात्र ! शरीर मे शुक्र ! तू अपने सर्वव्यापक ज्ञान, बल आदि गुणो से हमारे अन्दर खूब वृद्धि को प्राप्त हो । तू उत्तम यश कीर्ति, ज्ञान और बल से युक्त होकर हमारी वृद्धि के लिये और हमारा मित्र के समान वर्धक और पोषक हो ।

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥

भा०—हे राजन् ! चारों ओर से आक्रमण करने और प्रजा को पीडन करने वाले, सब ओर से शस्त्र-अस्त्रों को फेंकने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले तुझे पुष्टिकारक जल और अन्न रस अच्छे प्रकार प्राप्त हों । वेगवान् अश्व गण, संग्रामकारी योद्धा तथा सेना बल एक साथ मिल कर

चलें। समस्त प्रकार के प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर अस्त्र-शस्त्रों को वर्षाने वाले, बलवान् पुरुषों के दल-बल एक साथ अच्छी प्रकार प्राप्त हों। तू प्रजा और राष्ट्र के दीर्घ जीवन और स्थिरता के लिये खूब सब प्रकार से हृष्ट-पुष्ट और वृद्धि को प्राप्त होता हुआ विद्या-प्रकाश के बल पर, सूर्यवत् ज्ञानवान् पुरुषों का आश्रय लेकर, उत्तम, सर्वश्रेष्ठ श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेश, अन्नादि ऐश्वर्य तथा श्रवण करने योग्य यश, ख्याति को धारण कर। हे छात्र! तुझे उत्तम जल, अन्न, बल, वीर्य अच्छी प्रकार प्राप्त हो। अमृतमय मोक्ष-ज्ञान के लिये ज्ञानवान् गुरु के आश्रय होकर उत्तम श्रवण योग्य ज्ञानों को धारण कर। परमेश्वर के पुष्टिकारक अन्न, जल, बल, वीर्य सभी हमें प्राप्त हों। वह प्रभु सदा भरपूर है। वह अमृत और आनन्द के प्रदान करने के लिये तेजोमय नाना बलों और ज्ञानों को रखता है।

या ते धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम्।
ग॒य॒स्फान॑: प्र॒तर॑ण: सु॒वीरोऽवी॑रहा॒ प्र च॑रा सोम॒ दुर्या॑न् ॥१६॥

भा०—हे सूर्य के समान ऐश्वर्यवन्! राजन्! तेरे जिन तेजों, लोकों, स्थानों और पदाधिकारों को देने योग्य कर या आदर से प्रदान या स्वीकार करके सबके पूजनीय, प्रजापालक तेरा मान-आदर करते हैं वे समस्त तेज और पदाधिकार या बल तुझे ही प्राप्त हैं। धन तथा गौ आदि पशुओं का बढ़ाने वाला, दुःखों से प्रजा को पार उतारने वाला, उत्तम वीरों से युक्त, सेनापति सब प्रकार से शक्ति और प्रजा का रक्षक हो। वह वीर पुरुषों का व्यर्थ नाश करने वाला न हो। हे राजन्! तू हमारे घरों को या द्वारों वाले नगरों में भी अच्छी प्रकार आ जा, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष हमारे घरों पर जावें आवें।

छात्रपक्ष में—हे छात्र! जिन बलों और तेजों को विद्वान् जन अन्न और ज्ञान द्वारा तुझे प्रदान करते हैं वे तेरे ब्रह्मचर्य पालन, विद्या अध्ययन आदि कार्य का सम्मान करते हैं। तू ज्ञान, प्राण और वेदवाणियों

का वर्धक, उत्तम गुरु से विद्या प्राप्त कर पार पहुंचने वाला, उत्तम वीर्यवान्, अपने वीर्य और प्राण गण का नाश न करने हारा होकर हमारे गृहो को भिक्षार्थ और उपदेशार्थ प्राप्त हो ।

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
साद॒न्यं॑ विद॒थ्यं॑ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥२०॥२२॥

भा०—जो राष्ट्र इस राजा को पुष्ट करने के लिये कर प्रदान करे उसको वह ऐश्वर्यवान् राजा दुधार गौवें, वेगवान् अश्वगण, कर्मकुशल वीर पुरुष, गृह बसा कर रहने वाले उत्तम गृहस्थ, ज्ञान, सत्संग, यज्ञ और संग्राम मे कुशल तथा सभा मे उत्तम वक्ता, मा बाप के समान प्रजा की प्रार्थनाओं को हित से श्रवण करने वाले अधिकारी प्रदान करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अषा॑ह्ळं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रिं॑ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जां सु॑क्षि॒तिं सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥ २१ ॥

हे राजन् ! सेनापते ! युद्धो मे शत्रु से कभी पराजित न होने वाले, संग्रामों मे या सेनाओ के बल पर राष्ट्र का पालन करने वाले, सुखो के देने वाले तथा शत्रुओं को उपताप, पीडा देने वाले, शत्रु के वर्जने मे समर्थ बल का रक्षक, राज्य के भरण पोषण करने और शत्रुओ को उखाड़ फेंकने वाले, धनाढ्य वैश्यो और बलशाली क्षत्रिय लोगों के उत्पादक अथवा संग्रामो में प्रसिद्ध, कुशल योद्धा, उत्तम निवासस्थान और उत्तम भूमि के स्वामी, उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यो से युक्त विजय करते हुए तेरे विजय के साथ साथ ही हम भी खूब प्रसन्न हों ।

त्वमि॒मा ओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो अ॑जनय॒स्त्वं गाः ।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व॑१॒॑न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥ २२ ॥

भा०—हे सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! तू इन समस्त ओषधियों को, जलो को और गौ आदि पशुओं तथा मनुष्यो को उत्पन्न करता है । तू विशाल अन्तरिक्ष या आकाश को विस्तृत करता है और तू प्रकाश

से अन्धकार को विविध प्रकार से दूर करता है। अथवा हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! तू ताप, प्रकाश और रोगनाशक गुणों को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुषों, सेनाओं और उत्तम उत्तम ओषधियों को उत्पन्न करता, जलों, आह्जनों और उत्तम कर्मों, प्राणों और ज्ञानों को प्रकट करता है, इन्द्रियों, वेदवाणियों, पृथिवियों तथा जगम जीवों और गतिमान् लोकों को उत्पन्न करता है। हे राजन्! तू अपने विशाल राष्ट्र को, जिसके बीच प्रजाएं बसें, सब प्रकार से फैला और ज्ञान प्रकाश से खेद, दुःखों और क्लेशों को दूर कर।

देवेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गं स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य।
मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ॥२३॥२३॥

भा०—हे विजय की कामना करने हारे! हे सबके आज्ञापक! ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! तू हमारे ऐश्वर्य के सेवन तथा प्राप्त करने योग्य अंश को उद्देश्य करके विचार, ज्ञान तथा शत्रु को वश कर लेने में समर्थ दृढ़ बल से मुक़ाबले पर लड़, शत्रु पर खूब प्रहार कर। वह शत्रु तुझे पीड़ित न कर सके, तुझ पर आतंक न जमा सके। तू हमारे समस्त ऐश्वर्य का स्वामी है। तू पृथिवी, पशु-सम्पत्ति, इन्द्रियों से भोग्य पदार्थों और ज्ञान और वाणी-प्रकाश की नाना कामनाओं को प्राप्त कराने वाले संग्राम या प्रति स्पर्द्धा में खूब अच्छी प्रकार विचार करके बाधक शत्रुओं और रोगादि दुःख कारणों को दूर कर। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[९२]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः॥ १, १५ उषा देवता। १६—१८ अश्विनौ॥ छन्दः—१, २ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराड् जगती। ५, ७, १२ विराट् त्रिष्टुप्। ६, १२ निचृत्त्रिष्टुप्। ८, ९ त्रिष्टुप्। ११ भुरिक्पङ्क्तिः। १३ निचृत्परोष्णिक्। १४, १५ विराड् परोष्णिक्। १६, १७, १८ परोष्णिक्॥

ए॒ता उ॒ त्या उ॒षसः॑ के॒तुम॑क्रत॒ पूर्वे॒ अर्धे॒ रज॑सो भा॒नुम॑ञ्जते।
नि॒ष्कृ॒ण्वा॒ना आयु॑धानीव धृ॒ष्णवः॒ प्रति॒ गावोऽरु॑षीर्यन्ति मा॒तरः॑ १

भा०—प्रभात वेलाएं जिस प्रकार सब जगत् का ज्ञान कराने वाले प्रकाश को उत्पन्न करती हैं और इस महान् लोक के पहले या पूर्व दिशा के आधे भाग मे सूर्य के प्रकाश को प्रकट करती हैं। शत्रुओ को पराजय करने मे समर्थ, प्रगल्भ, वीर योद्धा जन जिस प्रकार अपने हथियारो को अच्छी प्रकार चमका लेते हैं उसी प्रकार सूर्य को उत्पन्न करने वाली या प्राणियो के जीवनो को मापने वाली उषाए, नित्य गमनशील या किरणें लाल वर्ण वाली होकर दिनो को प्रकाशित करती हुई भूमि के प्रत्येक स्थान पर जाती हैं। उसी प्रकार ये वे उषा के समान जीवन के पूर्व वयस में वर्त्तमान प्रात.काल के सूर्य की किरणों के समान मनोहर एवं अपनी स्वच्छ शुद्ध भावनाओं से पापो और पापियो को दाह उत्पन्न करने वाली, एवं पतिकामना से युक्त होकर स्त्रियें अपने राजस भाव से युक्त जीवन अर्थात् यौवन के पहले आधे भाग में या पूर्ण समृद्ध काल मे तेजस्वी पुत्र को प्रकट करें, उत्पन्न करें। प्रगल्भ वीर जन जिस प्रकार अपने आयुधो को चमचमाते हुए आगे बढते हैं और गौवें जिस प्रकार समस्त सुखैश्वर्यों से गृहो को सुशोभित करती हुई आती हैं उसी प्रकार पुत्रों की उत्पादक माताए अपने गृहो को अच्छी प्रकार सुशोभित करती हुई, क्रोध आदि से रहित सौम्य स्वभाव होकर रहे। इसी प्रकार धर्षणशील सेनाएं भी शत्रु को भून देने से 'उषस्' हैं, वे अपने पूर्ण सामर्थ्य में झण्डे को उठाती और प्रतापी सेनापति का तेज प्रकट करती हैं। गमनशील होकर तेजस्विनी, राष्ट्र-निर्मात्री या रक्षक होकर आगे मुक़ाबले पर बढ़े।

उद॑पप्तन्नरु॒णा भा॒नवो॒ वृथा॑ स्वा॒युजो॒ अरु॑षी॒र्गा अ॑युक्षत।
अक्र॑न्नु॒षासो॑ व॒युना॑नि पू॒र्वथा॒ रुश॑न्तं भा॒नुमरु॑षीरशिश्रयुः ॥२॥

भा०—अरुण वर्ण के, लाल रग के किरण जिस प्रकार आपसे आप अनायास उदय को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष नव उदित सूर्य के समान अनुराग राग से रंजित होकर उदय को प्राप्त होते हैं। और उत्तम रीति से स्वय आजुतने वाले, सुशील बैलों को जैसे कोई रथवान् रथ में

जोड़ता है उसी प्रकार उत्तम पुरुषों के साथ योग चाहने वाली गमन योग्य, सुभग, दीप्तिमती कन्याओं को विद्वान् लोग योग्य वरों से संयुक्त करें। दिन के प्रारम्भ भाग की प्रभात वेलाएं जिस प्रकार सबसे पूर्व ज्ञान और कर्मों को प्रकट करती हैं उसी प्रकार यौवन या जीवन के पूर्व वयस में विद्यमान कन्याएं भी अपने पूर्व काल में नाना प्रकार के ज्ञानों और कर्मों का सम्पादन करें, वे भी पढ़ें और ज्ञान लाभ करें। और विद्या पढ़ चुकने पर जिस प्रकार तेजस्विनी उषाएं सूर्य का आश्रय लेती हैं उसी प्रकार अति तेजस्विनी वा रोषरहित, सौम्यस्वभाव वाली कन्याएं तेजस्वी पति का आश्रय करें। जैसे पृथिवी पर प्रथम उषा का आगमन तदनन्तर सूर्य का वरण, इसी प्रकार वेदि में प्रथम कन्या का आगमन तब वर का वरण, यह भी व्यंग्योक्त है। उदयशील पुरुष सूर्य के समान उदय होते हैं। उत्तम आज्ञा में नियुक्त सेनाएं उनके नीचे रहती हैं। वे शत्रु तापक सेनाएं नाना युद्ध-कला का ज्ञान करती हैं, तब वे सूर्यवत् तेजस्वी राजा का आश्रय लेती हैं।

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

भा०—कर्म करने वाले अधीन भृत्यों को जिस प्रकार वेतनों द्वारा अपने वश करते या उनका सत्कार करते हैं, उसी प्रकार समान योग द्वारा अर्थात् गुण, शरीर, बल और विद्या आदि में समान पुरुष के साथ संयुक्त करने से ही दूर देश से प्राप्त करने योग्य स्त्रियों का सत्कार करें। कन्याओं को दूर देश में पुरुषों से योग्य जोडा मिलाकर विवाह देना ही कन्याओं का सत्कार करना है। और जो उत्तम क्रिया-कुशल, सदाचारी, उत्तम दानशील या उत्तम रक्षक, ओषधि आदि रस का सेवन करने वाले या उत्तम रीति से निषेक करने हारे, सुसंगत पति के लिये अपने समस्त कामना और अन्नादि सुख-सम्पदा को प्राप्त कराने वाली होती हैं, उनका ही सब लोग आदर करते हैं।

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ४

भा०—नाऊ जिस प्रकार नाना वंशो को काट देता है उसी प्रकार उषा नाना कृष्ण रूप अन्धकारो को काट डालती है। अथवा नर्त्तक जिस प्रकार नाना रूप बदल लेता है उसी प्रकार वह प्रभात वेला भी नाना प्रकार के रूपो को धारण करती है। अर्थात् हलकी प्रकाश रेखा से सूर्योदय तक उषा के नाना प्रकार के रूप बदलते हैं। उसी प्रकार नर्त्तकी के समान ही पूर्व वयस में वर्त्तमान कन्या या योग्य पुरुष की कामना करने वाली, कान्तिमयी नववधू भी सुवर्ण आदि के बने नाना आभूषणो को धारण करे। उदय होने वाली उषा जिस प्रकार अन्धकार निवारक प्रकाश के विनाशक घोर अन्धकार को दूर कर देती है और जिस प्रकार गाय दुग्ध देने वाले थन भाग को विशाल रूप मे प्रकट करती है उसी प्रकार नवयुवती भी वक्षस्थल को प्रकट करती है अर्थात् छाती के उभार को प्रकट करती है, उसके प्रकट होने पर ही उचित विवाह-योग्य काल है। उस समय सब लोकों के हितार्थ प्रकाश प्रदान करती हुई उषा के समान वधू भी अपने गुणो का प्रकाश करे। गौवें जिस प्रकार स्वयं अपने बाडे मे अनायास प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार नवयुवतियें भी प्राप्त करने योग्य पति को अपने सहज प्रेम से आश्रय रूप में प्राप्त करें। और प्रभात की प्रभा जिस प्रकार अन्धकार को दूर कर देती है। उसी प्रकार वधू भी पति कुल के खेद, दु:ख और गृह के सूनेपन को विविध उपायों से दूर कर घर को उजियाला करे।

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५॥२४॥

भा०—इस उषा की देदीप्यमान कान्ति प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है और वह विविध दिशाओ मे फैल जाती है। और वह नेत्रादि के सामर्थ्य को विनाश कर देने वाले काले अन्धकार को दूर कर देती है।

उसी प्रकार इस कन्या की आदर सत्कार से देखने योग्य उत्तम गुण-राशि प्रत्येक को दीखने लगती है, उसकी कीर्ति सब देशों में फैल जाती है। वह गुण-राशि बड़े भारी कलङ्क को भी मिटा देता है। जिस प्रकार प्रकाशमान् सूर्य को उषा प्रकट कर देती है उसी प्रकार ज्ञान-सत्सगों में, जहां अनेक विद्वान् एकत्र हों, वहां ही अपने रूप के समान ही ज्ञान और अध्ययन और वाक्पाटव को भी कन्या प्रकट करे। तब सूर्य के प्रकाश से आकाश को पूर्ण कर देने वाली उषा जिस प्रकार सूर्य का आश्रय लेती है उसी प्रकार कामना युक्त पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली, अथवा ज्ञानी पुरुष की कन्या दीप्तिमान्, तेजस्वी, ब्रह्मचारी पति का आश्रय ग्रहण करे। इति चतुर्विंशो वर्गः।

अता॑रिष्म॒ तम॑सस्पा॒रम॒स्योषा उ॒च्छन्ती॑ व॒युना॑ कृणोति।
श्रि॒ये छन्दो॒ न स्म॑यते विभा॒ती सु॒प्रती॑का सौमन॒साया॑जीगः॥६॥

भा०—प्रभात वेला जिस प्रकार प्रकट होती हुई और अन्धकार को दूर करती हुई समस्त पदार्थों का ज्ञान कराती है, उसी प्रकार कमनीय कन्या प्रथम वयस में वर्त्तमान रहकर बालभाव को दूर करती हुई नाना ज्ञानों व कर्मों को सम्पादन करती है। वह खुश करने वाले अनुकूल प्रेमी के समान होकर शोभा और सौभाग्य के लिये ईषत्-हास करे और विविध गुणों से प्रकाशित होती हुई सुमुखी होकर शुभचित्तता, उत्तम हृदय या सौहार्द की वृद्धि के लिये वचन कहे तथा कर्म करे। इस प्रकार हम गृहस्थ जन इस शोक, दुःख आदि रूप अन्धकार के पार उतरें। अथवा वह कन्या वेद के समान ज्ञान का प्रकाश करने या आच्छादन करने वाले गृह के समान ही सम्पत्ति की वृद्धि के लिये हो। वह इत्यादि पूर्ववत्।

उषापक्ष में—उषा वेद-वाणी के समान शोभा के लिये प्रकाश करती, सुन्दर मुख, रूप या प्रतीति प्रकट करने वाली होकर उत्तम हृदय के भावों को उत्पन्न करने के लिये अज्ञान-अन्धकार को ग्रसती है। इस प्रकार हम रात्रि के अन्धकार से पार हों। इसी प्रकार विशोका या ज्योतिष्मती

प्रज्ञा का उदय होने पर योगी को प्रज्ञातिरेक अर्थात् विशेष पारमार्थिक ज्ञान उत्पन्न होते हैं, हृदय मे प्रकाश हो जाता है, वह संसार के दुःखान्धकार से पार हो जाता है।

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७॥

भा०—जिस प्रकार 'उषा', प्रभात की सूर्यप्रभा आकाश को और पृथिवी को सूर्य के प्रकाश से पूर्ण करने वाली, नाना प्रकाशो से युक्त होकर उत्तम विचारक योगी जनो के हृदयों मे उत्तम उत्तम सत्य ज्ञानों, स्तुति वचनो तथा वेद वाणियो को प्राप्त कराती है उसी प्रकार योगी के साधना-काल मे उत्पन्न हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा भी ज्ञान-प्रकाश का दोहन करने वाली, उत्तम सत्य ज्ञानो और वेद-वाणियो को प्रकट करने वाली, प्रकाशमयी, ज्योतिष्मती होकर विद्वान्, वाणीकुशल पुरुषों द्वारा स्तुति की जाती है। इसी प्रकार कमनीया कन्या भी उत्तम वचन और वाणियों को बोलने वाली, अपने शुभ गुणो से प्रकाशित होती हुई, नायिका, सर्वश्रेष्ठ महिला रूप को धारण कर श्रेष्ठ पुरुषो द्वारा स्तुति की जाती है, नाना कविजन भी उसका यश गाते हैं। हे प्रभात वेला के समान कान्ति और कमनीय गुणो से युक्त कन्ये! तू उत्तम प्रजाओ से युक्त, भृत्यादि कर्मकर पुरुषो से युक्त अश्व आदि विजय के साधन रूप बलवान् पशुओं के दृढ़ आश्रय वाले गौ आदि पशु और भूमि आदि मुख्य सम्पत्ति से युक्त ऐश्वर्यो को प्राप्त करा। स्त्री द्वारा घर बसने पर पुत्र, भृत्य, अश्व, हाथी, गौ, भूमि आदि समस्त ऐश्वर्य बढे और उनका नाश न हो।

उषा के पक्ष मे—हे उषः! तू किरणो से युक्त प्रकाशों को देती है। सेना आदि भी शत्रुपीडक होने से 'उषा' है। वह भी राष्ट्र, प्रजा, नायक, चतुरंग सेना, गौ आदि तथा भूमि से युक्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करावे।

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार उषा सूर्य के आगमन से उत्पन्न होती है, वह स्वयं ज्ञान को उत्पन्न करने वाली है और उत्तम रीति से अन्धकार-नाशक प्रकाश से चमकती है उसी प्रकार जो तू ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाले उत्तम कर्म और उत्तम ज्ञान से शोभित है, उस तेरे द्वारा हे प्रभात वेला की सूर्यप्रभा के समान कान्तिमति ! एव योग्य अनुरूप पति की कामना करने हारी स्त्री ! हे उत्तम ऐश्वर्यवति सौभाग्यवति ! मैं पुरुष उस यशो जनक, उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, दास, भृत्यजनो के उत्तम आज्ञाकारी वर्गों वाले अथवा शत्रु-नाशक वीर सैनिकों के उत्तम दलों सहित अश्वारोही सेनाओं को सधाने वाले या उसके आश्रय पर स्थापित, बड़े भारी ऐश्वर्य, धन कोश को प्राप्त करूं और भोग करूं ।

अध्यात्म में यशस् = आत्मा, वीर, प्राण, अश्वबुध्य = व्यापक परमात्मा से बोध करने हारा, श्रवः = ज्ञान, वाज, ज्ञान ।

विश्वा॑नि दे॒वी भुव॑नाभि॒चक्ष्या॑ प्रती॒ची चक्षु॑रुर्वि॒या वि भा॑ति ।
विश्वं॑ जी॒वं च॒रसे॑ बो॒धय॑न्ती॒ विश्व॑स्य॒ वाच॑मविदन्मना॒योः ॥६॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य की प्रभा जिस प्रकार समस्त लोकों को प्रकाशित करके पूर्व से पश्चिम को जाती हुई बड़े भारी प्रकाशक तेज या सूर्य से विशेष रूप से प्रकाशित होती है और समस्त प्राणिमात्र को चलने-फिरने और कार्य्य व्यवहार करने के लिये जगाती हुई समस्त चेतनावान्, मान या ज्ञान के इच्छुक पुरुष की वाणी को प्राप्त करती है उसी प्रकार उत्तम गुणों से युक्त स्त्री समस्त लोकों, पदार्थों को विशाल ज्ञान से युक्त चक्षु द्वारा साक्षात् करके साक्षात्, सबके सन्मुख विशेष रूप से शोभा को प्राप्त होती है । वह समस्त प्राणीमात्र को सत् कर्म के आचरण करने के लिये ज्ञान प्रदान करती हुई मान, सत्कार या ज्ञान के इच्छुक समस्त विद्वान् मनुष्यों के वाणी को प्राप्त करे, विद्वानो का उपदेश ग्रहण किया करे ।

अध्यात्म में—वह ज्योतिष्मती साक्षात् आत्मतत्वमयी चितिशक्ति ज्ञानप्रकाशक चक्षु होकर प्रकाशित होती है । उत्तम पद को प्राप्त होने के

लिये जीव को प्रबुद्ध, ज्ञानवान् करती है और मननशील स्तुतिकर्त्ता की या ज्ञानमय परमेश्वर की वेदवाणी को प्राप्त करती है।

पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः॥१०।२५॥

भा०—जिस प्रकार प्रतिदिन प्रकट होने वाली, प्रवाह से नित्य उषा एक समान प्रकाशित रूप प्रकट करती है और कुत्तों की सहायता से मृगों को मारने वाली व्याधिनी या कुक्कुर आदि पशुओं को मारने वाली भेडिया के समान पोरु पोरु काटने वाली या बाज पक्षिणी के समान भय से व्यथित प्राणियों को काल धर्म से विनाश करती हुई, मरणधर्मा प्राणी की आयु को समाप्त कर देती है उसी प्रकार उत्तम गुणो से प्रकाशित होने वाली सौभाग्यवती स्त्री, वार वार उत्तम रूपो मे प्रकट होने वाली या वार वार पुत्र प्रसव करती हुई और अपने समान वर्ण, रूप, गुणों से युक्त पुरुष को या प्रसव द्वारा पुत्र को प्राप्त करके शोभा को प्राप्त होती हुई उद्वेग करने वाले, भयजनक, बाधक कारणों और शत्रुओं को कुत्ता आदि पशुओं को वृकी या व्याघ्री के समान विनाश करती हुई पुर अर्थात् अन्तःपुर मे जीवन स्वरूप होकर या स्वयं वृद्ध होकर अपनी और अपने साथ अपने संगी पति की आयु को वृद्धावस्था तक प्राप्त कराती हुई जीवन व्यतीत करे।

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति॥११॥

भा०—सूर्य की प्रातःकालिक प्रभा जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई आकाश के पर्यन्त अर्थात् दूर दूर तक के भागों को भी जगा देती या प्रकाशित कर देती है निरन्तर, नित्य प्रकाश के आगमन से आप से आप भाग जाने वाली या अपनी वडी भगिनी के समान साथ रहने वाली रात्रि को दूर कर देती है और वह मनुष्यो के आयु के वर्षों को या स्त्री पुरुष आदि के घने जोडो को काल धर्म से नाश करती

हुई अपने प्रेमी पुरुष के दर्शन से स्त्री के समान मानो प्रसन्न होकर रात्रि को या उषा-काल को अपने उदय से विनाश कर देने वाले सूर्य के दर्शन से वह विशेष शोभा से खिल उठती है। उसी प्रकार स्त्री दोषों को दूर करती हुई अपने गुणों से ज्ञान प्रकाश के परली सीमाओं को जान ले अर्थात् उत्तम कोटि के शास्त्रों का भी ज्ञान करे। अपनी भगिनी को निरन्तर, सदा, अपने से दूर देश में सम्बन्ध करावे। अर्थात् एक ही घर में कई बहनें न विवाही जावें। नहीं तो कलह हो जाने से परस्पर भगिनी-पन का स्नेह भी नाश हो जाता है। वह स्त्री मनुष्य के आयु के वर्षों को व्यतीत करती हुई विद्वान् धर्मोपदेष्टा पुरुष के दर्शन, ज्ञान, सत्संग या कथनोपकथनों द्वारा विशेष शोभा को प्राप्त हो। अथवा अपने आयु को वृद्धावस्था तक पहुंचा देने वाले अपने प्रिय पति के दर्शन या उपदेश से विशेष शोभा को प्राप्त हो।

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार संग्रहशील वैश्य प्रजा पशुओं को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और जिस प्रकार समुद्र या वेगवती नदी जल को प्राप्त होकर बढ़ती या फैलती है उसी प्रकार अति अधिक तेज को प्राप्त होकर, उत्तम ऐश्वर्यवती, सूर्य की सुन्दर प्रात: काल की प्रभा वृद्धि को प्राप्त होती हुई सर्वत्र फैलती है। इसी प्रकार सञ्चयशील एवं गुणों से आदर करने योग्य उत्तम सौभाग्यवती स्त्री बड़े शील तथा अधिक ज्ञान और तेज से बढ़ाती हुई अपने यश को बढ़ाती हुई सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार प्रातः प्रभा देव, परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि नियमों को न विनाश होने देती हुई अर्थात् भक्त, व्रतपालक जनों से पालन कराती हुई सूर्य की किरणों सहित देखी जाती और उनसे ही जानी जाती है, एवं सूर्य-किरणों से ही अन्यों को जगत् के पदार्थ दिखाती और उनका ज्ञान कराती है। उसी प्रकार उत्तम महिला भी देव, परमेश्वर सम्बन्धी,

सन्ध्या उपासना, अग्नि-होत्रादि और देव अर्थात् विद्वानो सम्बन्धी बलि-वैश्वदेव और आतिथ्य सत्कार तथा देव अर्थात् अग्नि, जल, पृथिवी आदि पञ्चभूत तथा शरीरस्थ इन्द्रियो के हितकारी परोपकारक जगत् के हित तथा शरीर के हित के स्नानादि नित्य कृत्यो को कभी न विनाश करती हुई, उनको करने से कभी न चूकती हुई, देव अर्थात् अपने प्रिय इच्छुक पति के कार्यों की हानि न करती हुई, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के ज्ञान-प्रकाशो से तत्वो का दर्शन करती हुई और औरो को दिखाती हुई ज्ञान प्राप्त करे और करावे। अथवा वह स्त्री महानदी जिस प्रकार जल राशि का विस्तार करके बडी हो जाती है उसी प्रकार सञ्चय-शील होकर पशुओ को बढाती हुई बहुत अधिक विविध प्रकार से समृद्ध हो।

उष॒स्तच्चि॒त्रमा भ॑रा॒स्मभ्यं॑ वाजिनीवति ।
येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥ १३ ॥

भा०—हे पति की कामना करने हारी कमनीये कन्ये! हे ऐश्वर्य और अन्न की वृद्धि, उत्पत्ति तथा परिशोधन या परिपाक आदि करने में कुशल नववधू! तू हमारे लिये ऐसा नाना प्रकार का उत्तम, संग्रह करने योग्य धन, ऐश्वर्य तथा ज्ञान प्रदान कर जिससे हम पुत्रो और पौत्रों का भी पालन पोषण करें और उन्हे शिक्षित बनाएं।

उषो॑ अ॒द्येह गो॑म॒त्यश्वा॑वति विभावरि ।
रे॒वद॒स्मे व्यु॑च्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

भा०—उषा, प्रात.प्रभा किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और गतिमान् या व्यापक तेजस्वी सूर्य से युक्त होने से 'अश्वावती' है। वह विशेष कान्ति से युक्त होने से 'विभावरी' है। वही भक्तो की स्तुतियो से युक्त होने के कारण 'सूनृतावती' होती है। उसी प्रकार हे कान्तिमति! पति को हृदय से चाहने वाली प्रियतमे! कमनीये! कान्ति-सुभगे! हे गृह मे उत्तम पशु-सम्पदा और देह मे उत्तम इन्द्रिय शक्तियों से युक्त! हे अश्व आदि वेगवान् साधन, हाथी घोडे आदि सवारी के पशुओं तथा रथों

और अश्वारोहियों की स्वामिनि ! तथा सांसारिक सुख दुःखो के भोक्ता उत्तम आत्मा से युक्त ! अथवा कल पर कार्य न छोड़ने वाली, आलस्य रहित ! हे विशेष गुणों से प्रकाशमान, रात्रि के समान सुख मे शयन आदि का सुख देने वाली ! हे उत्तम ज्ञान वाणी को बोलने हारी सुकण्ठि ! मधुरालापिनि ! तू इस गृहस्थ मे और इस जीवन काल मे हमे ऐश्वर्य-सम्पन्न-गृह सुख विविध प्रकारों से प्रदान कर । अथवा विवाह काल मे 'नववधू' गौ आदि पशु सम्पदा से 'गोमती' और रथ मे अश्व जुते रहने से 'अश्वावती' है वह अन्न आदि से युक्त होने से 'सूनृतावती' है ।

युक्ष्वा हि वाजिनीवृत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार उषा प्रातःकाल के समय उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाली नाना क्रियाओं से युक्त होने से 'वाजिनीवती' है वह लाल घोड़ों के समान लाल वर्ण के प्रकाशो को फैलाती है, उसी प्रकार हे कान्तिमती नववधू ! तू उत्तम ऐश्वर्यजनक मङ्गल क्रियाओं को करने हारी होकर लाल वर्ण के या वे रोक चलने वाले अश्वो को रथ मे लगा और स्नेह से युक्त अश्व के समान बलवान् पुरुषों को अपने अधीन भृत्य नियुक्त कर, और हमें समस्त उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करा ।

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय मे व्यापने वाले वर वधू ! पति पत्नी ! तुम दोनों विरोधी आपवादो का नाश करने हारे एवं गुणों और अनुरागों से दर्शनीय ! हे समान चित्त वाले तुम दोनों हमारे घर के सामने आकर गोचर्म से मढ़े या तांत से बंधे लोह, पीतल धातुओं से सजे और सुवर्ण के समान चमकते हुए रथ को रोको और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो।

अध्यात्म मे—शरीर प्राण और अपान दोनों रोगों के नाशकारी

होकर इन्द्रियों और आत्मा से युक्त रमण योग्य सुखकारी देह को हमारे वर्तमान जीवन के अनुकूल नियम में रक्खें ।

यान्वित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥

भा०—दिन रात्रि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को मनुष्यों के हित और सुख के लिये सेवन करने योग्य बना देते हैं उसी प्रकार जो आप दोनों तेजस्वी गुरु से प्राप्त प्रकाशक वेदवाणी रूप ज्योति का इस प्रकार से समस्त जनों के हित के लिये उपदेश करते हो, हमें आप दोनो हमारे कल्याण के लिये उत्तम अन्न, बल और पराक्रम को प्राप्त कराओ ।

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

भा०—जिस प्रकार सुखप्रद सूर्य और पवन प्रकाश और पदार्थों का उपभोग प्रदान करने के लिये प्रातःवेला को प्रकट करने वाले किरणों को हमें प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार दान आदि उत्तम गुणों वाले, सुखों के मूल उत्पादक, बाधक कारणों के नाश करने वाले, हित और प्रिय व्यवहार मार्ग में चलने वाले होकर उत्तम पदार्थों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिये प्रात.काल की वेला में चेतन या जागृत होने वाले विद्वानों को प्राप्त करावें ।

[९३]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ अग्नीषोमौ देवते ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ३ विराड्नुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् (अनुष्टुब्गर्भा), न्यूनेन वाऽनुष्टुप् । ४ स्वराट् पङ्क्तिः । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् । ९, १०, ११ गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्ने ! ज्ञानवन् विद्वन् ! और हे सोम उत्पादक पितः ! शम आदि गुणों से युक्त परीक्षक जनो ! आप दोनों मेघ के समान ज्ञानोपदेशों की वर्षा करने हारे हो। मेरे इस ग्राह्य वचन को श्रवण करो और कुछ मेरे हित के लिये ग्राह्य, श्रवण करने योग्य उपदेश, ज्ञान-प्रवचन का श्रवण कराओ। और वेद के सूक्तों के प्रतिदिन प्रवचन, व्याख्यान करने की अभिलाषा करो। अपने द्रव्य और सर्वस्व को अर्पण करने वाले शिष्य जन के लिये कल्याणकारक होओ।

राष्ट्रपक्ष में—अग्नि, अग्रणी नायक, सोम ऐश्वर्यवान् आज्ञापक दोनों प्रजा के वचन श्रवण करें और उनकी प्रार्थनाओं पर उत्सुकता से ध्यान दें और उनके लिये सुखकारी हों। आत्मा और ब्रह्म भी अपने भक्तों की स्तुति श्रवण करते, स्तुतियों द्वारा भक्त को चाहते और सुख देते हैं।

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे अग्नि और सोम, आचार्य और उत्तम विद्वन् ! आप दोनों के इस ज्ञानमय वचन का जो आज और सदा ही आदर करे उसको उत्तम वीर्य, ब्रह्मचर्य वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों का पोषण कर प्राणों और शीघ्र क्रिया करने मे चतुर मन, आत्मा और कर्मेन्द्रियो के हितकर्म से युक्त बल को धारण कराओ।

राष्ट्रपक्ष में—जो प्रजा राजा और मन्त्री की आज्ञा-वचन का आदर करे उसको वे पशुओं अश्वादि रथो के उत्तम बल और अधिकार दें।

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम्।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्ने ! हे सोम, वायो ! जो तुम दोनों के बीच भावी मे प्रचुर अन्न को उत्पन्न करने वाली घृतादि की आहुति प्रदान करता है वह प्रजा सहित उत्तम बल से युक्त पूर्ण आयु को विविध प्रकार से भोग करे। हे अग्रणी ज्ञानवन् ! ब्राह्मण ! हे सबके आज्ञापक राजन् ! जो आप दोनों

के राष्ट्र को वश करने मे योग्य बना देने वाली कर की अदायगी कर देते हैं वह उत्तम प्रजा, बल और पूर्णायु का भोग करें।

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः॥ ४॥

भा०—हे अग्नि और सोम विद्वन्! एवं राजन्! तुम दोनों का वह वीर्य भी विदित ही है कि आप दोनों ज्ञान, व्यवहार और वाणियों को हर लेते हो। तुम दोनों अपने समीप बसने वाले, अन्तेवासी आच्छादक छात्र को माता पिता के हितकारी पुत्र के समान ज्ञान-साधना को प्रदान करो और बहुतों के लिये हितकारी एक सूर्य के समान आत्मरूप ज्योति को प्राप्त कराओ।

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान्॥ ५॥

भा०—समान एक काल और एक देश मे क्रियाशील होकर जिस प्रकार अग्नि और सोम, प्रकाश और वायु दोनों आकाश या सूर्य के प्रकाश मे नाना रुचिकर कार्यों को धारण करते हैं और जलप्रवाहों को वृष्टि रूप से मेघ मे से मुक्त कर देते हैं, बरसा देते हैं उसी प्रकार उत्तम विद्वान् शिक्षक हे ज्ञानवन् और हे शम आदि के शिक्षक आचार्य! तुम दोनो ज्ञान के आधार पर इन नाना रुचिकर विज्ञानों को समान क्रिया और प्रज्ञा वाले होकर तुम दोनो धारण करो। तुम दोनों मेघ मे स्थित जलों के समान बन्धन मे बधे प्राण वाले प्राणियो को निन्दा योग्य पीडा और गर्हणीय पाप बन्धन से मुक्त करो।

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम्॥६॥२८॥

भा०—अग्नि और सोम इन दोनो मे से अग्नि को जिस प्रकार वायु सूर्य के बल से धारण करता है और दूसरे आकाशस्थ मेघ को जिस प्रकार

वेगवान् प्रबल वायु का झकोरा पर्वत पर जा टकराता है और वे दोनों ही अग्नि और सोम बडे भारी बल से बढ़ते हुए इस महान् दृश्य जगत् को परस्पर लेन देन तथा सुसम्बद्ध रहने के लिये बहुत बडा बना लेते हैं। उसी प्रकार पृथ्वी माता के विजय के निमित्त वेग से जाने हारा पुरुष ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में एक अग्नि अर्थात् अग्रणी, ज्ञानवान् के रूप में प्राप्त होता है। और दूसरा बाज़ के समान शत्रु पर आक्रमण करने हारा दृढ़ अभेद्य जनसमूह में से दूसरे सोम, ऐश्वर्यवान् आज्ञापक श्रेष्ठ पुरुष को दूध से मक्खन के समान मथ कर प्राप्त करे। वे दोनों विद्वान् और ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन वेद ज्ञान और बड़े ऐश्वर्य से वृद्धि को प्राप्त होते हुए इस महान् लोक को महान् राष्ट्र के बनाने के लिये तैयार करें।

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि और सोम, अग्नि और वायु दोनों मिल कर प्राप्त हुए चरु आदि खाद्य पदार्थ को भस्म कर देते हैं और अपने बीच से सूक्ष्म रूप से धारण करके वर्षणशील होकर उससे स्वयं तृप्त हो, अन्यों को सुखी करते हैं। अपने उत्तम रक्षा सामर्थ्य से उत्तम सुख देने वाले होकर शान्ति और रोग नाश करते हैं उसी प्रकार हे अग्ने! अग्रणी, मुख्य ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! हे 'सोम' ऐश्वर्यवन् राजन्! अथवा आचार्य और शिक्षक! तुम दोनों आपके पास प्रस्तुत किये 'हवि' ग्राह्य स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करो, स्वीकार करो। उसको चित्त से चाहो। और समस्त अधीन शिष्यों और प्रजाजनों पर ज्ञान और सुखों की वर्षा करने वाले होकर उस स्वीकृत पदार्थों का सेवन करो। आप दोनों अपने उत्तम ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य से निश्चय से दुष्टों के नाशक व उत्तम सुख शरण देने वाले होओ और दानशील पुरुष के लिये शान्ति प्राप्त करने और दुःखों को दूर करने वाले उपाय प्रदान करो।

यो अ॒ग्नीषोमा॑ ह॒विषा॑ सप॒र्याद्दे॑व॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ यो घृ॒तेन॑ ।
तस्य॑ व्र॒तं र॑क्षतं पा॒तमंह॑सो वि॒शे जना॑य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥८॥

भा०—जो पुरुष उत्तम संस्कृत 'हवि' अर्थात् चरु से अग्नि और वायु दोनों की परिचर्या करता है अर्थात् उनमें उत्तम पदार्थ की आहुति देता है और जो परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार करने वाले चित्त से युक्त होकर घृत से और विद्वानों का अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि जलों से सत्कार करता है वे दोनों उसके सत्य भाषण, तप, स्वाध्याय आदि नित्य कर्मों का पालन करते हैं और वे दोनों उसको अनेक प्रकार के पापाचरण और ज्वरादि दुःखों से बचाते और प्रजाजन के हित के लिये बड़ा सुख प्रदान करते हैं। इसी प्रकार अग्रणी, विद्वान् राजा दोनों का जो अन्नादि द्वारा आदर-सत्कार करते और विद्वानों के प्रति सत्कार और आदरवान् चित्त से और जलादि से सत्कार करते हैं उनके नियमों का पालन करते, उसे पाप कर्मों से बचाते, प्रजाजन को शासन और शास्त्रानुशासन द्वारा बड़ा सुख प्रदान करते हैं।

अग्नी॑षोमा॒ सवे॑दसा॒ सहू॑ती वनतं॒ गिरः॑ । सं दे॑व॒त्रा ब॑भूवथुः ॥९॥

भा०—अग्नि और वायु जिस प्रकार एक समान रूप से चरु को ग्रहण करते हैं और समस्त पृथिवी, जल, आकाश, अन्तरिक्ष आदि पदार्थों पर समान रूप से व्याप जाते हैं उसी प्रकार ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् मन्त्री और राजा, आचार्य और शिष्य दोनों समान ज्ञान और ऐश्वर्यवान् होकर एक दूसरे के समान, एक साथ ही वर्णन योग्य होकर स्तुति वाणियों का सेवन करते हैं। वे विद्वान् पुरुषों के बीच में एक साथ मिल कर ही शक्तिशाली और कार्यसम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

अग्नी॑षोमाव॒नेन॑ वां॒ यो वां॑ घृ॒तेन॒ दाश॑ति । तस्मै॑ दीदयतं बृ॒हत् ॥१०॥

भा०—जिस प्रकार घृत और जल के साथ अग्नि और वायु दोनों के बीच ग्राह्य अंश को प्रदान करता है उसके लिये वे दोनों बहुत प्रकाश करते हैं। अग्नि में घृताहुति देने से वह बहुत उज्वल हो जाता है और

वायु में जलांश अधिक आ जाने से वृष्टि द्वारा अन्नादि पदार्थ अधिक मात्रा मे होते हैं, उसी प्रकार हे विद्वन् ! हे राजन् ! जो भी पुरुष तुम दोनो में किसी को स्नेह से या तेजस्विता से या नम्रता सेवा तथा कर आदि प्रदान करता है उसको आप बहुत २ ज्ञान और ऐश्वर्य प्रकाशित करते और प्रदान करते हैं ।

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् ।
आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त अग्नि और वायु या अग्नि और जल के समान उपकारक स्वभाव वाले विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनो हमारे स्वीकार करने योग्य इन पदार्थों को प्रेम से स्वीकार करो और हमें सदा एक साथ प्राप्त होओ ।

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२।२१।१४

भा०—अग्नि और जल या अग्नि और वायु के समान राष्ट्र का शिक्षण और पालन करने वाले आप दोनो हमारे अश्वों को खूब पालन और हमारे दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली गौवो को और अन्न उत्पादक भूमियो को खूब हृष्ट-पुष्ट और जल से सेचित करो। हमारे धनाढ्य पुरुषों के आश्रय पर राष्ट्र के रक्षक सैन्यो का पालन करो और हमारे प्रजा-पालन रूप यज्ञ को खूब अन्न-समृद्धि और सुख-सामग्री से युक्त करो ।

[९४]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, १० निचृज्जगती। ६, १२, १३, १४ विराड् जगती । २, ३, १६ त्रिष्टुप् । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । विराट वा जगती । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ निचृत् त्रिष्टुप् । भुरिक् पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

इमं स्तोम॒मर्ह॑ते जा॒तवे॑दसे॒ रथ॑मिव॒ सं म॑हेमा मनी॒षया॑।
भ॒द्रा हि नः॒ प्रम॑तिरस्य सं॒सद्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१

भा०—जिस प्रकार बुद्धि-पूर्वक वेग से जाने वाले रथ को संचालित करते और उसका उपयोग करते और उसकी देख भाल और रक्षा करते हैं उसी प्रकार पूजनीय समस्त पदार्थों के जानने वाले विद्वान् और ऐश्वर्यों के स्वामी धनाढ्य तथा वेदो के परम उत्पत्ति स्थान परमेश्वर इनके उपदेश, प्रवचन तथा उपासना के लिये इस स्तुति को बुद्धि पूर्वक, बड़े विचार से अच्छी प्रकार करें जिससे बुरे परिणाम उत्पन्न न हों। जैसे वेगवान् रथ के सञ्चालन में थोडा सा चूकने पर बहुत हानि होती है, इसी प्रकार विद्वानो, ऐश्वर्यवानो और परमेश्वर की स्तुति और आदर-सत्कार में चूक जाने पर भी बहुत हानि होती है। इस विद्वान् और ऐश्वर्यवान् की सभा और सत्संग में निश्चय से हमें सुख और कल्याण के देने वाली पवित्र बुद्धि तथा उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस परमेश्वर की उपासना मे हमे सुखकारिणी उत्कृष्ट मति प्राप्त होती है। हे ज्ञानवन्! अग्रणी नायक! परमेश्वर तेरे मित्रभाव में रहते हुए हम कभी दुखी और विनाश को प्राप्त न हों और कभी तेरा व्रत खण्डित न करें।

यस्मै॒ त्वमा॒यज॑से॒ स सा॑धत्यन॒र्वा क्षे॑ति॒ दध॑ते सु॒वीर्य॑म्।
स तू॑ताव॒ नैन॑मश्नोत्यंह॒तिरग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥२॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! विना अश्व के भी, अग्नि या विद्युत् के बल से जिस प्रकार रथ चला जाता है उसी प्रकार तू जिसको थोडा सा भी अपना ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है वह अपने विना सहायक के, सब काम सिद्ध करता है, वह विना शिक्षक के, उत्तम और कुशल हो जाता है, वह शत्रुओं को विना चतुरंग के वश कर लेता है, विना अश्व आदि सवारी के अपने उद्देश्य तक पहुच जाता है, अग्नि या विद्युत् के बल से चलने वाले रथ के समान वह पृथ्वी पर आदर-पूर्वक रहता है। वह उत्तम वीर्य, बल, तेज को धारण करता है। वह स्वयं

वृद्धि को प्राप्त होता और औरों को भी बढ़ाता है उसको पाप, दुःख, पीड़ा, बाधा कुछ भी प्राप्त नहीं होता । हे ज्ञानवन् ! हे नायक ! हे परमेश्वर ! हम तेरे मित्र भाव में रह कर कभी पीडित न हों ।

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में अग्नि को अति प्रदीप्त करते हैं, वह समस्त यज्ञ कर्मों को साधता है, आहुति किये हविष्य को समस्त वायु जल आदि पदार्थ अग्नि के द्वारा ही प्राप्त करते हैं और अग्नि सूर्य की किरणों को अपने में रखता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! राजन् ! हम तुझे अति उज्वल, तेजस्वी, प्रतापी बनाने में समर्थ हों । तू ज्ञानों और राष्ट्र के कार्यों की साधना कर, उनको प्राप्त कर, अपने वश कर । तेरे आश्रय पर ही विद्वान् पुरुष, दान किये हुए अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का भोग करते हैं । तेरे आश्रय रहकर देव अर्थात् विजयेच्छु जन प्राप्त अन्न-वेतनादि को भोगते हैं । तू सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों को और अदिति अर्थात् भूमि माता के पुत्रों, वीर सैनिकों को सब ओर से धारण कर । हम भी उनको ही चाहते हैं । हम तेरे मित्रभाव में कभी पीडा को न प्राप्त हों ।

परमेश्वर के पक्ष में—तुझ तेजःस्वरूप को हम प्राप्त कर सकें, तू हमें ज्ञान और कर्मों का उपदेश कर । तेरे आश्रय पर विद्वान् जन और कामना वाले जीव गण कर्म फल भोगते हैं । तू सूर्यों और जीवन्मुक्तों को धारण करता है हम भी उनकी कामना करते हैं । शेष पूर्ववत् ।

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा-पर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञार्थ अग्नि के लिये हम ईंधन लाते हैं, चरु पदार्थ तैयार करते हैं, पर्व, पर्व पर हम उसे चेताते हैं और वह हमारे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के समस्त साधनों को उपस्थित करता है उसी प्रकार हे राजन् ! ज्ञानवन् ! नायक ! हम तेरी वृद्धि और तेज को

चढ़ाने के लिये तेजस्वी, उज्ज्वल होने के साधनों का संग्रह करें। तेरे निमित्त सब प्रकार के उत्तम अन्नों और स्वीकार करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें। प्रत्येक पालन करने और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले साधन और वेदज्ञानमय व्यवस्था-पुस्तक या शास्त्र के एक-एक पर्व, या अध्याय-अध्याय से हम ज्ञान प्राप्त करते हुए और तुझे चेताते हुए तेरे मित्रभाव मे रहकर कभी पीड़ित न हो। हमारे जीवनों के लिये उत्तम उत्तम ज्ञानो और उत्तम उत्तम कार्यों को खूब अच्छी प्रकार से अनुष्ठान कर।

परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—तेजःस्वरूप तुझको धारण करें, तेरे लिये स्तुतिवचन कहे, तेरी सेवा करें, वेदानुशासन के प्रतिपर्व, प्रति अध्याय अथवा पर्व पर्व पर तेज और ज्ञान का सम्पादन करें। तू सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये ज्ञानो और कर्मो का उत्तम रीति से उपदेश कर।

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥५।३०॥

भा०—इस सभापति, राजा और विद्वान् के राज्य मे प्रजाओं के रक्षक पुरुष और दोपाये, भृत्य, कमकर आदि और जो चौपाये सब जन्तु प्रकट चिह्नों या गुणों सहित होकर विचरें। अर्थात् राजपुरुषों, भृत्यों के भी शरीरो पर उनके भिन्न भिन्न विभाग का चिह्न, पदक आदि हों और पशुओं पर भी चक्र, शूल आदि का चिह्न हो। हे राजन्! तू पूजा, आदर सत्कार करने योग्य उत्तम ज्ञानवान् होकर सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और गुणों से महान् सामर्थ्य वाला है। तेरे मित्र भाव में हम कभी पीड़ित न हों।

परमेश्वरपक्ष में—परमेश्वर के बनाये दोपाये, चौपाये तथा अन्यान्य सभी प्राणी प्रजाओं के रक्षा करने हारे होकर ही विचरते हैं। परमेश्वर पूज्य, अद्भुत सामर्थ्यवाला, महान् है। उसके प्रेमभाव में हम कभी पीड़ित न हों। इति त्रिंशो वर्गः।

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥६

भा०—हे विद्वन्! अध्यक्ष! तू अध्वर अर्थात् हिंसा कर्म से रहित, प्रजाओं के हिंसन, परिपीड़न आदि से रहित, प्रेम भाव से मिल कर रहने और प्रजापालन के कार्य का संयोजक, उसको चाहने वाला और शत्रु से कभी नष्ट या पराजित न होने वाले राष्ट्र का स्वामी है और तू सबसे मुख्य सब अधिकारों और ऐश्वर्यों का स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को वितरण करने हारा है। तू ही सबसे मुख्य शासक एवं ज्ञानोपदेष्टा है। तू राष्ट्र के कण्टकों, दुष्ट पुरुषों को दूर करके उसे स्वच्छ, पापाचरणों से रहित करने वाला, एवं सबको पवित्र करने वाला, पंक्तिपावन है। तू जन्म से ही, स्वतःसिद्ध, स्वभावतः यज्ञ में ब्रह्मा के समान, रात्रि में दीपक के समान सबके आगे, मुख्य, अग्रणी पद पर स्थापित है। तू समस्त ऋत्विजों के यज्ञोपयोगी कर्मों को जानने वाले विद्वान् के समान, समस्त ऋतु अर्थात् सभा के सदस्यों को सुसंगत करने तथा सभा आदि के नियमों को जानता हुआ, उनको हे बुद्धिमान् खूब पुष्ट, दृढ़ कर देता है। हे ज्ञानवन्! नायक! तेरे मित्र-भाव में हम पीडित न हों।

परमेश्वर समस्त यज्ञों का स्वामी होने से 'अध्वर्यु' है, सर्वश्रेष्ठ सुखों का दाता होने से 'होता', ज्ञानप्रद होने से 'प्रशास्ता', हृदयपावन होने से 'पोता', सब का साक्षी और हित-चिन्तक होने से 'पुरोहित' है।

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥७

भा०—जिस प्रकार उत्तम रूपवान्, सबको एक समान दिखाने हारा, दूर रह कर भी विद्युत् के समान खूब चमकता है, रात के अन्धकार को पार करके भी स्वयं देखता अर्थात् दूर तक प्रकाशित करता है, उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष सब प्रकार से उत्तम, सुन्दर मुख या दृढ़ अंग

वाला या उत्तम प्रतीति या ज्ञान से युक्त, अन्यों को भी उत्तम ज्ञान कराने हारा, सबको समान रूप से देखने वाला, निष्पक्षपात, दूर रह कर भी विद्युत् के समान अधिक रुचिकर, प्रकाशमान, तेजस्वी होकर रहता है। हे विद्वन्! तू रात में अन्धकार को भी पार कर जाने वाले अग्नि के समान अज्ञान-अन्धकार को पार करके सबसे अधिक दूर तक देखता और अन्यों को अपने ज्ञान से तत्वों को दिखलाता है। हे ज्ञानवन्! विद्वन्! हम तेरे मित्र भाव में रहकर कभी पीडा, कष्ट, रोग और अज्ञान से दुखी न हों।

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥८॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! हमारे आज्ञा देने हारे, ऐश्वर्यवान् एवं अभिषेक प्राप्त राजा का रथ सबसे मुख्य और शक्ति और बल से पूर्ण सबसे आगे चलने वाला हो। और हमारा उपदेश और शास्त्र भी अनधिकारी पुरुषों के लिये दुःख से ज्ञान करने योग्य, दुर्गम अथवा दुष्ट बुद्धि और दुष्टाचरण करने वालों को पराजय करने वाला हो। अथवा हमारा आज्ञा-वचन शत्रुओं के समक्ष में न आने वाला हो। उसके रहस्य भेद को शत्रु न समझ सकें। हे विद्वानो, हे विजयशील सैनिको! तुम लोग उसके वचन को अच्छी प्रकार जानो। और और भी पुष्ट, बलवान् करो। अर्थात् अग्रणी नायक की आज्ञा के अनुकूल चलकर उसके आज्ञा-वचन को प्रबल करो, उसका अनुमोदन करो। हे विद्वन्! नायक! तेरे मैत्रीभाव में रहकर हम पीडित अन्नु से व्यथित न हों।

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥९॥

भा०—हे ज्ञानवन्! हे नायक! तू दुःखदायी और दुष्परिणामजनक वचनों को कहने वालों और लोगों को बुरी बात सिखाने वालों को नाना

दण्डों से पीड़ित करके राष्ट्र से दूर कर। जो लोग दूर देश में और समीप में भी कोई भी दुष्ट बुद्धियों और दुःखदायी, हीन आचार चरित्रों वाले, प्रजा के माल को हड़प जाने वाले, खाऊ लोग हैं उनको नाना दण्डों से दण्डित करके प्रजा से परे हटा, उनको प्रजा में मत रहने दे। और यज्ञ, परस्पर सत्संग और ज्ञानोपदेश तथा परमेश्वरोपासना आदि कार्यों की वृद्धि के लिये तथा 'यज्ञ' अर्थात् उपास्य या पूजा और आदर के योग्य प्रजापालक राजा और आचार्य के हित के लिये स्तुति, चर्चा और उपदेश करने वाले पुरुष के लिये सुखप्रद साधन उपस्थित कर। हम तेरे मैत्री-भाव में रहकर कभी दुष्ट पुरुषों द्वारा पीडित न हों।

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१०॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वेग से चलने वाले यान या रथ में दीप्ति से युक्त, दृढ़, वायु के वेग से जाने वाले दो वेगदायक यन्त्रों को सञ्चालित करना है तब साड के समान धुधकारने का सा शब्द होता है, जल से युक्त अग्नि के धूम के से झण्डे से वह अग्नि युक्त होता है, इस प्रकार एंजिन द्वारा अग्नि-रथ चलता है। उसी प्रकार हे अग्रणी नायक! जब तू अपने रथ में रोष रहित, सुस्वभाव, सुशील, हृष्ट पुष्ट अश्वों को जोड़ता है तब वन अर्थात् सेनासमूह के स्वामी रूप से विद्यमान तुझ श्रेष्ठ पुरुष का वृषभ या बरसाने वाले सजल मेघ के समान शब्द या वचन भी गम्भीर गर्जना के तुल्य हो। तभी तू शत्रुओं के हृदय में कंपकंपी पैदा कर देने वाले ध्वज से युक्त होकर आगे बढ़। तेरी मित्रता में रहकर हम कभी पीडित न हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन्।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११॥

भा०—जिस प्रकार वन में लगे अग्नि के चटचटा शब्द से पक्षी भय

खाते है और द्रुत गति से जानेवाले या वृक्ष-पत्राहारी और तृणचारी पशु विविध स्थानों में आश्रय के लिये जा छिपते या व्याकुल हो जाते हैं। अथवा द्रुत गति वाले, वृक्षों को जला देने वाले अग्नि के ज्वाला कण तृणों को भस्म करने वाले होकर विविध दिशाओं में फैल जाते हैं उसी प्रकार उसके पश्चात् हे रणनायक! तेरे भयंकर शब्द या गर्जना या रणवाद्य से पक्षियों के समान भीरु हृदय वाले, रथारोही शत्रुजन भी भय खाएं और द्रुत गति से ले जाने वाले, तृणचारी अश्व विशेष रूप से स्थिर होकर रहे। तब तेरे अधीन रहने वाले रथारोही, वीर पुरुषों के लिये विजय और सुख प्राप्त हो। हे नायक! तेरे मित्रभाव में हम कभी पीड़ित न हो।

अ॒यं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धाय॑सेऽवया॒तां म॒रुतां॒ हेळो॒ अद्भु॑तः।
मृ॒ळा सु नो॒ भूत्वे॑षां॒ मनः॒ पुन॒रग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार मित्र, सूर्य या दिन के प्रकाश और ताप को वरुण, रात्रि काल की शीतलता को धारण करने के लिये नीचे और ऊपर की ओर आने जाने वाले, वायुगण का वेष्टन अर्थात् वातावरण भी अद्भुत, आश्चर्यकारी रूप से बना हुआ है और इनका स्तम्भन बल हमें सुखकारी होता है उसी प्रकार स्नेह करने और प्रजा को मृत्यु कष्ट से बचाने वाले और सबसे श्रेष्ठ वरण करने योग्य, दुष्ट शत्रुओं के वारक राजा और न्यायाधीश के अधिकार-बल और शासन को धारण-पोषण करने के लिये अधीन होकर कार्यों पर जाने वाले मनुष्यों, विद्वानों, सैनिकों और प्रजाओं का यह वेष्टन अर्थात् घेरा डाले रहना और राष्ट्र में जाल के समान फैले रहना, आना, जाना और आक्रमण करना भी अति आश्चर्यकारी हो। अथवा मित्रों और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण अर्थात् पालन पोषण के लिये नीचे मार्ग पर जाने वाले, नीचवृत्ति के, कुपथगामी पुरुषों को विस्मयकारी रूप से, जैसा उनके जीवन में कभी भी नहीं हुआ हो, ऐसा घोर अनादर, अपमान और कष्ट हो। हे राजन्! तू हमें सुखी कर और इन प्रजाजनों, विद्वानों और वीर पुरुषों का चित्त सदा उत्तम मार्ग में रहे।

और हे नायक ! विद्वन् ! तेरे मित्र भाव में हम कभी पीड़ित न हों।
('हेडः'— हिडि गत्यनादरयोः । हेड अनादरे । हेड वेष्टने ।)

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी आदि पांचो दिव्य पदार्थों में सबसे अधिक व्यापक, तीव्र गतिशील और श्रेष्ठ प्रकाशवान् अग्नि या विद्युत् है उसी प्रकार हे ज्ञानवन् ! हे राजन् ! हे परमेश्वर ! तू ही समस्त ज्ञानी, विजिगीषु और तेजस्वी पुरुषों मे श्रेष्ठ, विजिगीषु और तेजस्वी है। तू ही अद्भुत, स्नेहवान्, प्रजाओं को प्राण वायु के समान मृत्यु से बचाने वाला सच्चा मित्र है। तू देह मे वसने वाले गौण वसु आदि प्राणगण मे मुख्य आत्मा के समान बसने वाले प्रजाजनों मे श्रेष्ठ, बसने और उनको बसानेवाला, एवं ब्रह्माण्ड में पृथिवी आदि लोकों मे सबसे श्रेष्ठ है। सब मे वसने हारा, व्यापक और सबको वसाने हारा है। तू उपासना आदि यज्ञकर्म तथा संग्राम और अन्य दानादि श्रेष्ठ कार्यों मे सबसे श्रेष्ठ है। तेरे अति विस्तृत शरणप्रद, सुखकारी आश्रय मे हम सदा रहे और हम तेरे मित्रभाव मे रह कर कभी कष्ट प्राप्त न करें।

तत्ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥१४॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! तेरा यही कार्य कल्याणकारक और प्रजा का सुखकारक है कि जो तू अच्छी प्रकार ज्ञानों और पराक्रमों से युक्त सैन्य बलों से तेजस्वी होकर अपने गृह और इन्द्रिय दमन और राज्य-शासन मे ही राजैश्वर्य और अन्नादि ओषधि रस से परिपुष्ट होकर और प्रजाओं को सबसे अधिक सुख देने वाला हो और तू स्तुति का पात्र बन। तू दानशील, कर आदि देने वाले प्रजाजन के हित और रक्षा के लिये राज्य, उत्तम रत्न और श्रेष्ठ ऐश्वर्य और आत्मा को रमण

कराने वाला, आत्मज्ञान धारण कर। हे ज्ञानवन्! पुरुष! एवं नायक राजन्! तेरी मित्रता में रहते हुए हम कभी पीड़ित न हों।

परमेश्वर के पक्ष में—हे प्रभो! वही तेरा सबसे अधिक कल्याणजनक सुखकारी रूप है कि तू तेज:स्वरूप है। तू अपने अति आनन्दमय रूप में सबसे अधिक आनन्दप्रद और ऐश्वर्यवान् होकर स्तुति किया जाता है। तू ही समस्त सुख और ऐश्वर्य को धारण करता है। तेरे प्रेम भाव में मग्न रह कर हम कभी पीड़ित न हों।

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५॥

भा०—हे अखण्ड! नाशरहित परमेश्वर! आचार्य, एवं अखण्ड शासन वाले बलवान् राजन्! तू उत्तम ऐश्वर्यवान् है। तू जिसको समस्त कार्यों में पापरहित शुद्ध आचरण का उपदेश प्रदान करता है और जिसको तू बल से और ज्ञान से सन्मार्ग में चलाता है वह उत्तम पुत्र पौत्रों से और ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है। हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! हम भी तेरे दिये ज्ञान, बल और प्रजा से समृद्ध ऐश्वर्य से युक्त हों।

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥
॥ १६ ॥ ३२ ॥ ६ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक! विद्वन्! राजन्! प्रभो! हे ज्ञानप्रद! सुखप्रद! विद्याप्रकाशक! तू सब कुछ जानने हारा है। वह तू कृपा करके हमारे उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामित्व जीवन और ज्ञान को इस लोक, इस जन्म और इस राष्ट्र में खूब बढ़ा और हमें प्राण, अपान तथा दिन और रात्रि, सूर्य और मेघ, अविनाशी कारण, सागर या नदी गण, पृथिवी और विद्युत् या महान् आकाश ये सब भी हमें वह परम सुख-सौभाग्य प्रदान करें और बढ़ावें। इति द्वात्रिंशो वर्गः।

इति षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

[९५]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ औषस सत्यगुणविशिष्टः शुद्धोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक्पङ्क्तिर्व्यूहेन त्रिष्टुब् वा ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥

भा०—जैसे दो स्त्रियें भिन्न भिन्न रूप रंग वाली, अपने शुभ प्रयोजन के निमित्त विचरती हैं और वे दोनों एक दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती पोपती हैं और जैसे एक की गोद में मनोहर श्याम रंग का बालक हो और दूसरी की गोद में शुक्र, शुद्ध, उज्वल वर्ण का बालक हो । उसी प्रकार प्रकाश और अन्धकार से भिन्न भिन्न रूप के दिन और रात्रि अपने उत्तम जगत् के कल्याण करने के प्रयोजन से मानो दोनों स्त्रियों के समान विचरते हैं । वे दोनों एक दूसरे के या पृथक् पृथक् अपने अपने अग्नि और सूर्य या चन्द्र और सूर्य दोनों को बालक के समान ही अपना रस प्रदान करके पुष्ट करते हैं। अर्थात् रात्रि के गर्भ से उत्पन्न सूर्य का पोषण दिन करता है और दिन से उत्पन्न अग्नि का पोषण रात्रि करती है । सूर्य और अग्नि का उन दोनों को अधिक उज्वल रूप में प्रकट करना उनका पोषण करना है । एक में या अपनी जननी रूप दिन-वेला में जलों और रसों का हरण करने वाला सूर्य अपनी रश्मियों से जल को धारण करने वाला होता है। और दूसरी रात्रि में शुद्ध कान्तिमान् अग्नि या जल ही उत्तम तेजस्वी होकर दिखाई देता है । अथवा दोनों रात्रि और दिन, भिन्न भिन्न रूप के होकर उत्तम प्रजा-पालन के कार्य में परस्पर मिलकर बसे हुए संसार को बालक के समान पालते हैं । दिन से भिन्न रात्रिकाल में उष्णता को दूर करने वाला चन्द्र अपने गुण से धारण करने योग्य ओषधि रस से युक्त होता है और दूसरी, रात्रिकाल से भिन्न दिनवेला में कान्तिमान सूर्य

उज्वल रूप से दिखाई देता है। अथवा आकाश और पृथिवी दोनो संसार रूप बालक को या सूर्य और अग्नि या मेघ और अग्नि को पालते हैं, सूर्य और मेघ दोनो जल लेने और लाने से 'हरि' और 'स्वधावान्' हैं। अग्नि तेजस्वी होने से 'शुक्र' है।

अध्यात्म मे—विरूप अर्थात् भिन्न रूप के प्राण और अपान यह दो प्राण की गतियां हैं। वे देह मे बसे आत्मा को पुष्ट करती हैं। एक देह को धारण करने और अन्न को पचाने और भूख लगाने वाला होने से प्राण 'हरि' है, दूसरा अपान अर्थात् नाभि से नीचे के अधश्चारी प्राण-शक्ति मे शुक्र, वीर्य जो देह में कान्तिजनक होता है वह आश्रित है। इसी प्रकार ब्राह्मण वर्ग और क्षत्र वर्ग, ये दोनों शान्त और उग्र स्वभाव से भिन्न भिन्न होकर भी परस्पर मिलकर प्रमुख विद्वान् और नेता को, तथा बसते प्रजाजन को पालते हैं, एक में ज्ञानवान् विद्वान् है दूसरे मे तेजस्वी नायक है। आकाश और पृथिवी दोनो दो भिन्न भिन्न रूप वाली होकर वत्सरूप वायु या मेघ को पुष्ट करते हैं अर्थात् जल से पूर्ण करते हैं या बसे प्राणि संसार को पालते हैं। एक की गोद में 'हरि' सूर्य है दूसरे की गोद में 'शुक्र' अर्थात् जल है।

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार दस जवान स्त्रियें मनुष्यों में विशेष तेज से तेजस्वी, तीक्ष्ण तेज से उज्वल मुख वाले या तीक्ष्ण सैन्य वाले अपने बाहुबल से यशस्वी पुरुष को अपने अपने पति रूप से परिणय करती हैं और वे दसों जैसे आलस्य रहित होकर अपने तेजस्वी पति से प्राप्त विविध उपायों से भरण पोषण किये गर्भ को आलस्य रहित होकर उत्पन्न करती है, उसी प्रकार ये दश दिशाएं, जो उनमें बसी प्रजाएं परस्पर मिलने और न मिलने अर्थात् पृथक् पृथक् रहते से हैं, वे दसों लोगों मे विविध गुणों से प्रकाशमान, तीक्ष्ण सेना-बल से युक्त, अपनी भुजाओ से कीर्त्ति

की कामना वाले पुरुष को, सूर्य को दिशाओं के समान सब तरफ से घेर लेतीं, उसकी शरण मे प्राप्त होती हैं और वे उस विविध उपायों से भरण पोषण करने वाले बलवान् पुरुष की तेजस्वी सैन्यबल को तेजस्वी सूर्य के समान प्रतापी वश करने में समर्थ करते हैं। आलस्य रहित होकर उत्पन्न करते हैं।

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद् वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥

भा०—इस अग्रणी नायक के प्रजाजनो के हितार्थ तीन रूप होते हैं। एक रूप उसका समुद्र मे है अर्थात् वह समुद्र के समान गम्भीर हो। एक रूप उसका महान् आकाश या सूर्य में है अर्थात् वह सूर्य के समान तेजस्वी और आकाश के समान महान्, सब पर वशी है। तीसरा रूप जलो या प्राणों मे है अर्थात् वह सबके जीवनों का आधार और शान्तिदायक है। वह तीन ही कार्य करता है जैसे प्रथम, वह अपने मुख्य दिशा या देश का शासन करे। दूसरे, राजाओं और पृथिवी निवासी प्रजाजनों के बीच मे प्राणस्वरूप मुख्य राजसभा के सदस्यों का अच्छी प्रकार शासन करे। तीसरा, सब काम ठीक ठीक प्रकार से धारण करे और विधान अर्थात् क़ायदे-क़ानून की व्यवस्था करे।

अग्नि के पक्ष मे—अग्नि के तीन रूप हैं, एक समुद्र मे वाडवाग्नि, दूसरा आकाश मे सूर्य, एक प्राणों मे जाठर या अन्तरिक्ष मे विद्युत् वह सूर्य रूप से उदय होकर पूर्व दिशा को प्रकट करता है, ऋतुओं को बनाता है, सब काम ठीक ठीक नियम से निभाता है। इसी प्रकार काल के तीन रूप भूत, भवत् और भविष्यत्। वह सर्वत्र हैं। वह सूर्य रूप से उक्त तीन कार्य करता है। आत्मा के भी तीन जन्म या रूप हैं। एक समुद्र अर्थात् जल में जीवनोत्पादक अंश, दूसरा आकाश मे तेजो रूप, तीसरा प्राणों में वायु रूप। वह आत्मा पार्थिव देहों के बीच मुख्य दिशा अर्थात् चेतना को प्रकट करता है, प्राणों को वश करता और अपने अनुकूल

समस्त कर्म करता है। इसी प्रकार परमेश्वर के तीन रूप—एक महान् आकाश मे, एक सूर्य मे, एक प्राणो मे। वह सब लोको मे मुख्य शक्ति को धारण करता है वह गतिमान् पदार्थों को चलाता और सब को अपने अधीन ठीक ठीक प्रकार से बनाता या रचता है।

क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥४॥

भा०—सूर्य और तत्सदृश राजा की बालक के समान उत्पत्ति का रहस्य कहते हैं। इस छुपे रहस्य को कौन जानता है कि बालक स्वधाओ से, प्राणशक्तियो से माताओ को प्रसव करने मे प्रेरित करता है या प्रकट करता हे। समस्त प्राणिनो को बसाने वाला सूर्य रूप बालक अपने धारण-पोषण सामर्थ्यों, कान्तियो से माता रूप दशों दिशाओ को प्रकट करता है। मेघ रूप वत्स जलों से समस्त ओषधियों की उत्पादक भूमियो से अन्न उत्पन्न करवाता है। वृष्टि जलों से भूमियों मे ओषधि, अन्न, वृक्षादि उपजते हैं। उसी प्रकार सबका बसाने वाला राजा अन्नों और वेतनो तथा स्वराष्ट्र को शासन, धारण, पोषण की शक्तियो से ही विद्वान् ज्ञानी पुरुषों अथवा अपने को राजा बनानेवाली प्रजाओं को प्रकट करता है या उनको अपने राजा बनाने के लिये प्रेरित करता है। मातृगर्भ मे जिस प्रकार गर्भ रूप बालक बहुत से जलो की गोद मे से ही प्रकट होता है और सूर्य जिस प्रकार बहुत से जलों अर्थात् समुद्र मे से निकलता प्रतीत होता है और आत्मा जैसे बहुत से नाना प्राणों के भीतर गर्भ के समान घिरा रह कर उनके बीच मे से प्रकट होता है, उसी प्रकार तेजस्वी राजा बहुत सी, नाना प्रकार की आप्त प्रजाओं के बीच गर्भ के समान घिरा हुआ या उनको अपने वश मे ग्रहण करने हारा होकर, उनके बीच मे से ही उत्पन्न या प्रकट होता है। वह स्वयं अपनी शक्ति से युक्त होकर गुणों से महान् और क्रान्तदर्शी होकर प्रकट होता हे। उसी प्रकार अग्नि अपने तेजों से मातृ रूप काष्ठों को उज्ज्वल करता है। वह विद्युत् रूप से

जलों के बीच से प्रकट होता है। वह दूर तक दिखाने वाले आदित्य रूप से आकाश में विचरता है।

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थे।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार इन गर्भ धारण करने हारी माताओं के भीतर गर्भाशय में बाद में वेदना पीड़ा उत्पन्न करने वाला बालक वृद्धि को प्राप्त होता है। और वह कुटिल आकार की नाड़ियों के ऊपर अपने आत्मा के बल पर या माता के अपने खाये अन्न पर पलता है। दोनों माता पिता उत्पन्न होते हुए पीड़ाजनक या तेजस्वी बालक से उस समय भय खाते हैं कि कहीं वह बाहर आता हुआ माता की मृत्यु आदि का कारण न हो। वे दोनों उसके प्रत्यक्ष देखने पर पीड़ाजनक बालक को ही स्नेह करते हैं। ठीक इसी प्रकार स्वयं अपने तेजों से प्रकट होने वाला उत्तम श्रेष्ठ नायक, राजा कुटिल, कूट षड्यन्त्रकारियों के भी ऊपर, उनसे अधिक प्रबल होकर, अपने बल से यशस्वी होता हुआ और इन प्रजाजनों के बीच, उनके ही मानो गोद में, उन पर अधिष्ठित होकर वृद्धि को प्राप्त होता अर्थात् अधिक शक्तिशाली हो जाता है। उत्पन्न या प्रकट होते हुए उस सूर्य के समान तेजस्वी राजा से राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा स्ववर्ग और शत्रुवर्ग दोनों भय करते हैं। और वे दोनों उसके सन्मुख आकर उस सिंह के समान पराक्रमी एवं सहनशील और शत्रुओं के हिंसक बलवान् राजा को आदर और प्रेम से देखते और उसकी सेवा करते अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। सूर्य प्रकट होता हुआ दशों दिशाओं के ऊपर विद्यमान रहता है, दिन रात्रि दोनों उदयकालों में उससे भय करतीं अर्थात् रात्रि भागती और दिन उसके पीछे चलता है, दोनों उसके अधीन हैं। उदय के बाद उस अन्धकारनाशक सूर्य को पूर्व और पश्चिम दोनों सूर्य का सेवन करती हैं। विद्युत् कुटिलता से जाने वाले मेघस्थ जलों के बीच में ऊपर ऊपर पृष्ठ भाग पर रहता है, अपने तेज से चमकता

है, उसके प्रकट होने पर अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों कांपते है, उसका सेवन करते हैं। अग्नि काष्ठो के बीच मे ऊर्ध्व ज्वाला होकर अपने तेज से प्रकट रूप से जलता है। दोनो अरणि-काष्ठ जल जाने के भय से डरते हैं, वे उसी जलाने वाले से स्नेह भी करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥

भा०—सेवने योग्य, शोभन अंग वाली, सुखप्रद दो स्त्रियां जैसे एक ही पुरुष को प्रेम करें उस प्रकार मानो दोनो पक्षो की प्रजाएं जिस उत्तम पुरुष को प्रेम करती हैं, जिस प्रकार हभारती हुई गौवें अपने शीघ्रतापूर्वक गमनो द्वारा अपने बच्चों के पास पहुंचती हैं उसी प्रकार भूमिवासी प्रजा-जन भी जिसके पास प्रेम से पहुचते हैं और जिस प्रकार नाना यज्ञ सामग्रियो से दक्षिणायन काल मे अथवा दायें हाथ से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं उसी प्रकार जिस वीर नायक विद्वान् जन को नाना स्वीकार योग्य उपायो द्वारा दक्षिण अर्थात् दायें हाथ की ओर सुशोभित करते हैं, वह समस्त क्रियाकुशल पुरुषों में से सबका स्वामी, सबसे बडा हो। सूर्य को आकाश और पृथ्वी दोनो सेवते हैं, किरणें उसे अपने प्रकाशो सहित प्राप्त होती है। दक्षिण मे वे किरणें उसके प्रकाश को अधिक उज्वल कर देते हैं। वह सब यज्ञ क्रियासाधकों का स्वामी है।

उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥७॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार वृष्टि करने वाले वायु और मेघ दोनो को अपने वश करता हुआ ऊपर उठाता और नियम मे रखता है और समस्त भूमण्डल से सार भूत, व्यापक, सूक्ष्म जल को ऊपर खीच लेता है और पुनः बरसाकर भूमियों को नये हरे चोले पहना देता, उसी प्रकार जो नेता, सेनानायक शत्रुओं के लिये भयंकर होकर दोनों पक्षों की शस्त्र-वर्षण-कारी सेनाओं को दो बाहुओं के समान युद्ध के लिये उद्यत करता

है, उनको सदा आक्रमण के लिये तैयार रखता है और उनको अच्छी प्रकार तैयार करता हुआ आक्रमण करने का उद्योग करता है वह समस्त राष्ट्र से शीघ्र कार्य करने वाले चुस्त, वलवान्, पराक्रमशील, निरन्तर गतिशील सैन्य-वल को उठा लेता है, चुन लेता है और माता के समान अपने शरीर को अर्पण करके रक्षा करने वाली सेनाओं को नयी नयी पोशाकें प्रदान करता है। अथवा मातृ-रूप भूमियों को नये वस्त्रों के समान नये रक्षक, सैन्य प्रदान करता है। शुक्रम् इत्युदकनाम। निघ०।

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार किरणों और जलों से युक्त होकर अपने प्रदीप्त तेज को और अधिक उत्कृष्ट कर लेता है और दूर तक प्रकाश फेंकने द्वारा अन्तरिक्ष को भी स्वच्छ कर देता है तब प्रकाशमान किरणों की एकत्र स्थिति होती है उसी प्रकार राजा जब एक ही सभा-भवन में ज्ञानी पुरुषों और आप्त जनों या भूमि निवासी प्रजाओं और विद्वान् आप्त जनों सहित समान रूप से संगत होकर भी अपने उज्ज्वल रूप को उनसे उत्कृष्ट बना लेता है, धारक, बुद्धिमान्, व्यवस्थापक विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुष सबके आश्रय रूप, सबको एकत्र बांधने वाले मुख्य केन्द्रस्थ पद को सुशोभित करता है तब वही विद्वानों की राजकीय सभा बन जाती है। अर्थात् देवसभा या राजसभा में विद्वानों और भूमिवासी प्रजाओं के प्रतिनिधि हों। विद्वान्, ज्ञानी और सभा पर वश करने में समर्थ पुरुष मुख्य सभापति पद पर विराजें।

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९॥

भा०—बड़े भारी सूर्य का अन्धकार को नाश करने वाला, विशेष रूप से देदीप्यमान, तेज जिस प्रकार आकाश या अन्तरिक्ष को व्याप लेता है उसी प्रकार हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन्! नायक

राजन् ! बड़े दानशील, तेरा शत्रुओं को पराजय करने वाला, विविध प्रकार की प्रजा को प्रिय लगने वाला, अति देदीप्यमान बड़ा भारी तेज भी सबको बांधने वाले, मुख्य, आश्रय रूप भूलोक या राष्ट्र को या मुख्य पद को प्राप्त करता है। तू अपने समस्त यशो से सूर्य और अग्नि के समान ही खूब तेजस्वी होकर कभी नाश को प्राप्त न होने वाले, स्थायी रक्षा-प्रबन्धों से हमारी रक्षा कर।

धन्वन्त्स्रोतः॑ कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिर॒भि न॑क्षति क्षाम्।
विश्वा॒ सना॑नि ज॒ठरे॑षु धत्ते॒ऽन्तर्नवा॑सु चरति प्र॒सूषु॑ ॥ १० ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जल के प्रवाह को मेघ रूप से उत्पन्न करता है। अथवा वह ऊपर उठने वाले जल-प्रवाह को या दीप्ति को दूर तक जाने वाला या भूमि को प्राप्त होने वाला करता है और ऊपर उठे जलो से ही पृथिवी को व्याप लेता है अर्थात् उन्हें भी भूमि पर बरसा देता है और समस्त देने योग्य जलों या अन्नों को परिपाक योग्य ओषधि वनस्पतियो के बीच में धारण पोषण करता और नयी उत्पन्न होने वाली लताओं में रस को परिपाक करने वाले तेज रूप से व्यापता है। उसी प्रकार राजा भी मरु भूमियो में जल प्रवाह को नहरों के रूप में बनवावे। वह मार्ग और भूमि को जल तरङ्ग के समान उत्तम बनवावे। जल तरंगों या ऊर्ध्व देश में स्थित जलों से भूमि को सिचवावे। प्राणियो के पेटों मे सब प्रकार के अन्न-दान प्रदान करे। अथवा भीतरी कोषों मे सब दान देने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करे। नयी उत्तम भूमियों में, भूवासिनी प्रजाओं में उनके भीतर विचरे।

ए॒वा नो॑ अग्ने स॒मिधा॑ वृधा॒नो रे॒वत्पा॑वक॒ श्रव॑से॒ वि भा॑हि।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥११।२

भा०—अग्नि जिस प्रकार काष्ठ से बढ़ता हुआ विशेष दीप्ति से चमकता है उसी प्रकार हे अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी राजन् ! पूर्वोक्त प्रकारों से हमारे बीच एक साथ तेजस्वी होने के उपाय से बढ़ता

और हम राष्ट्र वासियों को बढ़ाता हुआ ऐश्वर्य से युक्त ज्ञान, अंश और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये विशेष रूप से चमक। सूर्य, मेघ, अखण्ड शासन, समुद्र, पृथिवी और आकाश ये सब हमें वह ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें। इति द्वितीयो वर्गः।

[९६]

कुत्स आंगिरस ऋषि ॥ द्रविणोदाः शुद्धोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्द —त्रिष्टुप्। ४ विराट्। ५ निचृत् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥१॥

भा०—ऐश्वर्य की कामना करने वाले, विजयेच्छु लोग ऐश्वर्यों के देने वाले अग्रणी और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को धारण करें और वे प्राणों को, आप्त जनों को स्नेही मित्र और बन्धु जनों को और बुद्धि बल को भी अपने वश में करें। वह ऐश्वर्य देने वाला नायक, वीर पुरुष पुरातन, अपने से पूर्व के नायकों के समान उनके चरण-चिह्नों पर चलता हुआ और शत्रुओं को पराजय करने वाले सैन्य-बल से विजयी और यशस्वी होता हुआ शीघ्र ही सब प्रकार के विद्वान् कवियों के काव्यमय स्तुति-वचनों को वस्तुतः, ठीक ठीक अपने में धारण करे। परमेश्वर अपने सामर्थ्य से सदा समस्त विद्वानों की स्तुति का पात्र है, वह पुराण पुरुष है। वह प्राणों को, सूर्य को और प्रज्ञानों को वश करता है, वे विद्वान्, ऐश्वर्यप्रद परमेश्वर को अपने में सदा धारण करते हैं।

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२॥

भा०—वह परमेश्वर ज्ञान से पूर्ण और सब संसार से भी पूर्व विद्यमान, ज्ञानमय, परम कवि परमेश्वर द्वारा प्रकाशित वेद वाणी से और सनातन, चैतन्यमय कारण से मननशील पुरुषों की इन समस्त प्रजाओं

को उत्पन्न या प्रकट करता है। अथवा मन्वन्तरों में उत्पन्न होने वाली मनुष्य की इन प्रजाओं को उत्पन्न करता है। वही विविध वसु अर्थात् बसे हुए लोकों के स्वामी रूप सब जगत् के प्रकाशक सूर्य से प्रकाश और सूक्ष्म जलांशों को धारण करता है। उस परमैश्वर्यप्रद सब के आगे विद्यमान अनादि सिद्ध परमेश्वर को विद्वान् जन धारण करते हैं। राजा भी पूर्व के मेधावी, ज्ञानवान् पुरुषों की ज्ञानमय उपदेश-वाणी से मननशील पुरुषों में बसी मनुष्य की प्रजा को उत्पन्न करे। विविध बसी प्रजा के स्वामी की दृष्टि से ज्ञान और कर्मों का प्रकाश करता हुआ, उनको धारण करे। विद्वान् गण उसी ऐश्वर्यप्रद नायक को धारण करें।

तमी॑ळत प्रथ॒मं य॑ज्ञ॒साधं॒ विश॒ आरी॒राहु॑तमृञ्जसा॒नम् ।
ऊ॒र्जः पु॒त्रं भ॑र॒तं सृ॒प्रदा॑नुं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस सब से प्रथम विद्यमान, सर्वश्रेष्ठ, महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ को वश करने वाले, अथवा यज्ञों और श्रेष्ठ कर्मों द्वारा प्राप्त करने योग्य परम पुरुष की उपासना, स्तुति प्रार्थना, करो। प्राप्त करने योग्य वा स्वयं शरण में आने वाली प्रजाओं को उत्तम रीति से समृद्ध करते हुए, बल और अन्न से उत्पन्न, पुरुष को क्षुधादि मरण से त्राण करने वाले, भरण-पोषण करने वाले तथा सर्पणशील, व्यापक चेतना या बल को देने वाले, प्राण और अन्न को उत्पन्न करने वाले सर्वपूज्य धनैश्वर्य के दायक परमेश्वर को देवगण धारण करें।

स मा॑त॒रिश्वा॑ पु॒रुवा॑रपुष्टि॒र्वि॒दद् गा॒तुं तन॑याय स्व॒र्वित् ।
वि॒शां गो॒पा ज॑नि॒ता रोद॑स्यो॑र्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥४॥

भा०—वह परमेश्वर आकाश में व्यापक वायु के समान जगत् को निर्माण करने में उपादान रूप प्रकृति के परमाणु परमाणु में व्यापक, एवं प्रमाता, ज्ञानकर्ता आत्मा के भी भीतर वर्तमान रह कर बहुत से अभिलाषा करने योग्य ऐश्वर्यों और काम्यसुखों की सम्पत्ति को देने हारा, सब सुखों, ज्ञान-प्रकाशों को प्राप्त कराने हारा होकर पुत्र के लिये माता

पिता के समान और शिष्य को आचार्य के समान, ज्ञानमयी वाणी वेद का ज्ञान कराता है। वह समस्त प्रजाओं का रक्षक, सूर्य और पृथिवी और आकाश व पृथिवी का उत्पादक है। विद्वान् गण उसी समस्त ऐश्वर्यों को देने वाले ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को धारण करते और उसकी स्तुति करते हैं। इसी प्रकार राजा, अपनी माता पृथिवी के आधार पर जीने वाला तथा उस पर निवास करने वाला बहुत से ऐश्वर्यों का दाता, सुख-प्रद होकर प्रजाओं को पुत्र के समान जान भूमि आदि प्रदान करे। वह प्रजाओं का रक्षक और राजा-प्रजा वर्गों का उत्पादक है। विजयेच्छु वीर जन उस ऐश्वर्यप्रद, वृत्तिदाता नायक की रक्षा करें।

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार स्त्री पुरुष दोनों परस्पर अच्छी प्रकार मिल कर एक बालक को दुग्ध आदि पान कराते, पालते-पोसते हैं और जिस प्रकार रात दिन अच्छे प्रकार संगत होकर एक दूसरे के वर्ण का अर्थात् रूप का नाश करते हुए अपने बीच मे स्थित सूर्य को बालक के समान धारण करते है और वह कान्तिमान् होकर आकाश और भूमि के बीच में शोभा पाता और चमकता है। किरण गण उस प्रकाश और जीवन देने वाले सूर्य रूप अग्नि को धारण करते हैं। तथा जिस प्रकार विद्वान् गुरुजन उस गुरुदक्षिणादि देने वाले बालक को अपने भीतर शिष्य रूप से धारण करते हैं, उसी प्रकार दिन रात्रि के समान दो प्रकार की संस्थाएं, विद्वत्सभा और राजसभा, दोनों परस्पर संगत होकर वेदभाव को नाश करती हुई एक ज्ञानवान् पुरुष को पुष्ट करें। सबको रुचिकर, प्रिय नायक, ज्ञानवान् विद्वानों और भूमि के वासी प्रतिनिधियों के बीच मे विशेष रूप से विराजे। विद्वान् पुरुष ज्ञान और ऐश्वर्यों के देने वाले उस अग्रणी नायक को व्यवस्थापक के रूप में धारण करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥

भा०—जो समस्त ऐश्वर्यों का आश्रय, मूल कारण और समस्त वास करने हारे जीवों और राष्ट्रवासियों को एक साथ मिलाने हारा, सब को जोड़ने हारा, एक दूसरे से लेन-देन के और आदर-सत्कार और परस्पर संगति के व्यवहार को बतलाने हारा, अभिलाषा करने योग्य पदार्थ का इच्छानुरूप रीति से प्राप्त कराने वाला है उस अग्रणी नायक, ऐश्वर्यप्रद पुरुष को अविनाशी स्थिर पद की या दीर्घजीवन की रक्षा करते हुए विद्वान् और वीर जन धारण करते हैं। परमेश्वर सब ऐश्वर्यों का आश्रय तथा बोध कराने वाला पृथिवी आदि लोकों का ज्ञान कराने वाला है। वही विद्यादि तथा श्रेष्ठ कर्मों का ज्ञान कराता है। वही काम्य कर्मों का ज्ञान कराने वाला तथा आश्रय है। मोक्षपद अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त दशा को प्राप्त हुए विद्वान् जन उसी को ऐश्वर्यप्रद, ज्ञान-स्वरूप करके मानते और जानते हैं।

नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥

भा०—अब और पहले भी समस्त ऐश्वर्यों का एकमात्र आश्रय, उत्पन्न हुए कार्य-जगत् के और पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले संसार के एक-मात्र आधार, अनादि काल से वर्तमान, अविनाशी कारण और वर्तमान में विकार को प्राप्त होने वाले और व्यापक तथा अन्नान्य बहुत से असंख्य पदार्थों के रक्षक, धारण करने वाले ऐश्वर्यप्रद, जीवनप्रद, सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर को समस्त विद्वान् गण और दिव्य शक्तियां धारण करती हैं। वह उनमें व्यापक है। उसी प्रकार नायक पुरुष भी ऐश्वर्यों का आश्रय, वर्तमान में उत्पन्न और आगे होने वाले प्राणियों और अब, विद्यमान और आगे प्राप्त होने वाले सब पदार्थों के रक्षक पुरुष को देव, विद्वान् जन मुख्य पद पर स्थापित करें।

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यों का दाता, राजा और परमेश्वर शीघ्र गति करने वाले, वेगवान् रथ आदि वा जंगम धन, पशु आदि का हमें दान दे वह परस्पर बांट लेने योग्य स्थावर धन, सुवर्ण रजतादि का प्रदान करे। वह वीर पुरुषो से युक्त सेना या वीरों को उत्पन्न करने वाले अन्न को हमें दे। और वह हमें दीर्घ जीवन प्रदान करे।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥४॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल १।सू०९५।मं०११॥ इति चतुर्थो वर्गः ।

[९७]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्री । १, ७, ८ पिपिलिका-मध्या निचृद् । ३, ६ निचृद् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥१॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हमारे पाप मल को सुवर्ण के मल को आग के समान, अपनी ज्ञानाग्नि से भस्म करके दूर कीजिये और हमारे प्राण, देह और ऐश्वर्य को शुद्ध, प्रकाशित और उज्ज्वल कीजिये, पुनः आपसे प्रार्थना है कि हमारे पाप को भस्म करके दूर कीजिये ।

इसी प्रकार विद्वान्, राजा और सभाध्यक्ष भी हमारे असत्य भाषण, रोग, आलस्य तथा अज्ञान आदि दोषों को तथा हमारे बीच में रहने वाले पापकारी पुरुष को दूर करें और दण्डित करें। इसी प्रकार सूक्त में समझना चाहिये। इस सूक्त का ईश्वर परक अर्थ देखो अथर्ववेद आलोक-भाष्य का० ४। सू० ३३।

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! हम लोग उत्तम क्षेत्र अर्थात् कर्मों के उत्तम बीजरूप संस्कारों के वपन के लिये उत्तम देह, सन्तान-

वपन के लिये उत्तम स्त्री और अन्न वपन के लिये उत्तम से उत्तम भूमि को प्राप्त करने की इच्छा से और उत्तम मार्ग, भूमि, ज्ञान वाणी और और व्यवहार को प्राप्त करने की इच्छा से और प्राण, प्रजा और ऐश्वर्यों और उत्तम लोको या निवास के प्राप्त करने की इच्छा से तेरी उपासना करें, तुझे प्राप्त हो और परस्पर संगत होकर अध्ययन, यज्ञ आदि सत्कर्म करें। हे ज्ञानवन्! तेजस्विन्! आप कृपा कर हमारे पाप मल को भस्म कर डालो।

प्र यद्भन्दि॑ष्ठ एषां प्रास्माका॑सश्च सूरयः॑। अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥३॥

भा०—जो हमारे विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष हैं, हे अग्रणी नायक! विद्वन्! प्रभो! उनमें से आप ही सबसे अधिक प्रजा को सुखकारी और कल्याणकारी हैं। और वे सब उत्तम रूपसे सभापति और सभासद् रूप से मान-आदर प्राप्त करें। हमारा पाप, रोग, आलस्य तथा दुराचार, असत्य-भाषण, चौर्य, हिंसा आदि बुरे कर्म दण्ड, प्रायश्चित्त और उपदेश आदि से राजा द्वारा या आपकी कृपा से भस्म कर दूर कर दिये जायं।

प्र यत्ते॑ अग्ने सूरयो॒ जाये॑महि॒ प्र ते॑ व॒यम्। अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥४॥

भा०—जो तेरे ही अधीन रह कर, हे विद्वन्! तेजस्विन्! विद्वान् जन उत्तम रूप से प्रकट होते हैं उसी प्रकार तेरे अधीन रह कर हम लोग भी उत्तम बनें। अर्थात् आचार्य के अधीन जैसे शिष्य उत्तम विद्वान् हो जाते हैं, उत्तम राजा के अधीन प्रजाएं भी उसी प्रकार सुशिक्षित, सुसभ्य बनें। हमारे पाप-कर्मों को आप भस्म करके दूर करें।

प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑। अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥५॥

भा०—सूर्य और अग्नि के समान जिस बलवान्, विद्वान्, तेजस्वी राजा के भी किरणों और ज्वालाओं के समान तेज और विद्वान् पुरुष सब को निकलते और व्यापते हैं वह आप हमारे पापों को दूर करें।

त्वं हि वि॑श्वतोमुख वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑। अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥६॥

भा०—हे सब तरफ, सब बातों में सुखस्थानीय ! सब में मुख्य ! तू क्योंकि सब प्रकार से और सबके ऊपर विराजमान है, तेरे शासन से हमारे समस्त पापाचरण दूर हों। परमेश्वर सर्वव्यापक होने से 'विश्वतो-मुख' है। सर्वोपरि शक्तिशाली होने से 'परिभू' है।

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ॥७॥

भा०—हे सब तरफ मुखों वाले अर्थात् सब स्थानों पर मुख्य पदाधिकारी को अपने नियम में चलाने हारे ! नाव से जैसे नदी को पार किया जाता है उसी प्रकार तू शत्रुओं से हमें पार कर, उन पर हमें विजयी कर। हमारे हत्याकारी पापी पुरुष को तथा शत्रु से उत्पन्न दुःख को निवा-रण कर। परमेश्वर हमारे द्वेष भावों से हमें नदी से नाव के समान पार करे। मनुष्य के हृदय में बैठे क्रोध और द्वेष तथा अन्यान्य भीतरी शत्रुओं से पार होना कठिन होता है। ईश्वर का भजन ही उनसे पार कराता है।

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥८॥५

भा०—वह तू नौका से जिस प्रकार महानद को पार किया जाता है उसी प्रकार हमें सुख, शान्ति और उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिये पार कर और हमारे शोक, दुःख और अन्य पापों को दूर कर। इति पञ्चमो वर्गः।

[९८]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ विराट्। ३ निचृत्। तृच सूक्तम् ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—हम लोग समस्त नरों के हितकारी विद्वान् राजा और पर-मेश्वर की शुभ मति, उत्तम ज्ञान और शासन में सदा रहें। क्योंकि वह तेजस्वी, सबसे ऊपर, सबका स्वामी होकर उत्पन्न हुए समस्त लोकों का आश्रय करने योग्य, आधार और भजन और सेवा करने योग्य है। जिस

प्रकार इस काष्ठ आदि से उत्पन्न होकर अग्नि और इधर पूर्व दिशा से उत्पन्न होकर सूर्य इस समस्त विश्व को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह सबका हितकारी राजा और विद्वान् पुरुष इस राष्ट्र से ही उत्पन्न होकर इस समस्त विश्व को विशेष रूप से देखता और समस्त ज्ञान को प्रकाशित करता है। इस प्रकार समस्त नरों का हितकारी पुरुष सूर्य के सदृश होकर बलवान् होता है। परमेश्वर इस विश्व के द्वारा ही प्रसिद्ध होता है, इस विश्व को साक्षी, नियन्ता रूप से देखता है। वह भी सूर्य के समान इसको प्रकाशित करता है।

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥२॥

भा०—सब मनुष्यों का नेता, सबका सञ्चालक, नायक परमेश्वर सूर्य और महान् आकाश में व्यापक है, वह इस संसार के अंग अंग मे व्यापक होकर इस समस्त पृथिवी मे व्यापक है, वह सर्वत्र रसों का सेचन करने हारा होने से समस्त ओषधियो में भी प्रविष्ट हो रहा है। वह विद्युत् के समान वर्षा से जल सेचन करने हारा होकर बडे भारी बल से समस्त संसार को चला रहा है। वह हमें दिन और रात हिंसक शत्रु आदि नाशकारी मृत्यु से बचावे।

राजा के पक्ष मे—राजा ज्ञानवान्, विद्वानों के समुदाय में और सामान्य पृथिवीवासी प्रजा मे और शत्रुओं का सतापकारी सैनिक जनों के प्रति आदर से आश्रय लेने योग्य होता है। उन पर ऐश्वर्यों का वर्षण करता है, वह शत्रुओं पर शरवर्षणकारी होकर सैन्यों के भीतर प्रविष्ट होता है। वह बल से ही अग्रणी पुरुष सबके आश्रय योग्य होकर हम प्रजाजन को सब हिंसक शत्रुओं से बचावे। विद्युत् अग्नि और सूर्य वृष्टि का कारण होने से 'पृष्ट' है।

अथवा परमेश्वर-पक्ष में—वह विद्वानो द्वारा नाना प्रकार से प्रश्नों द्वारा जानने योग्य है। वह आकाश, भूमि, ओषधि, जल आदि सब में व्यापक है।

वैश्वा॑नर॒ तव॒ तत्स॒त्यम॑स्त्व॒स्मान्रायो॑ म॒घवा॑नः सचन्ताम् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥३॥

भा०—हे सब नायकों का स्वामी, सर्वोपरि, सर्वहितकारी ! तेरा वह परम सामर्थ्य, यश अवश्य सत्य सदा स्थिर ही रहे। हमें ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् उनके पालक, जन प्राप्त हों। ऐश्वर्य और ऐश्वर्य के स्वामी सम्पन्न पुरुष हमारे बीच में स्थिर होकर रहें। प्रजा का मित्र, सर्वश्रेष्ठ, समस्त अखण्डनीय विद्वान् और विजयी पुरुष, मेघ और सागर पृथिवी और सूर्य सब हमें वह समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें। इति षष्ठो वर्गः।

[९९]

कश्यपो मरीचिपुत्र ऋषिः ॥ अग्निर्जातवेदा देवता ॥ छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप्। एकर्चं सूक्तम् ॥ *

---

* इस सूक्त पर अनुक्रमणीकार कात्यायन ने लिखा है कि—'जातवेदस एका। जातवेदस्यम्। एतदादीन्येकभूयांसिसूक्तसहस्रमेतत्तु कश्यपार्षम्।' इसी प्रकार ऋग्वेद-भाष्यकार स्कन्दस्वामी लिखते हैं—'अतः परं कश्यपार्षं उत्सृष्टाध्ययनं एकाधिकं सूक्तसहस्रम्। तस्यैतदेकर्चं आद्यं सूक्तम्। एवं हि भगवान् शौनक आह।

पूर्वा पूर्वा सहस्रस्य सूक्तानामेकभूयसाम्।
जातवेदस इत्याद्या कश्यपार्षस्य शुश्रुम ॥ इति ॥

यस्यैकाधिकानां सूक्तानां सहस्रस्य सूक्तस्य कश्यपार्षस्य सर्वसूक्तेषु पूर्वापूर्वैषा ऋक्। जातवेदस्य इत्याद्यमेकर्चमिति। एतद्वयमपि श्रुतवन्त एव नाधीतवन्त इत्यर्थः।

अर्थात्—'जातवेदस०' इत्यादि १००१ सूक्त कश्यप ऋषिदृष्ट हैं। स्कन्द लिखते हैं—इसके आगे कश्यपदृष्ट वेद का अध्ययन छूट गया है जो १००१ सूक्त था। उसका आदिम यह एक ऋचावाला सूक्त है। ऐसा ही शौनक ऋषि ने (बृहद्देवता में) कहा है (पूर्वा पूर्वा०) अर्थात्

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१॥७॥

भा०—हम लोग ऐश्वर्य के स्वामी को पुष्ट करने और ज्ञान-सम्पन्न आचार्य के प्रसन्न करने के लिये ऐश्वर्य का लाभ करें। वह आचार्य शत्रुता का आचरण करने वाले के धन को सर्वथा भस्म कर दे। वह हमें दुर्गम से दुर्गम दुःखप्रद कष्टों और दुर्गतियों से नाव से नदी के समान पार करे।

परमेश्वर के पक्ष में—हम ज्ञान के एकमात्र आश्रय परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ज्ञानानन्द को प्राप्त करें। वह शत्रुता करने वाले, द्वेषबुद्धि वाले पुरुष के ज्ञान को नष्ट कर देता है। परमेश्वर हमें सब कठिन दशा और दुर्गतों से पार करे। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१००]

वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूताः वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पङ्क्तिः । २, १३, १७ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्ति । ६, १०, १६ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ११, १८ विराट् त्रिष्टुप । ७, ८, ६, १२, १४, १५, १६ निचृत् त्रिष्टुप् । त्र्यूहेन वा सर्वास्त्रिष्टुभः । एकोनविंशत्यृच सूक्तम् ॥

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

भा०—वायु गण से युक्त सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार वर्षण करने वाले मेघस्थ जलों से संयुक्त होकर जल वर्षाने वाला होता है और वह

कश्यपदृष्ट १००१ सूक्तों की पहली पहली यह ऋचा है। यह जातवेदा सूक्त एक ऋचावाला है, ऐसा हमने भी सुना है। देखा नहीं है। सम्भव है कि यहां कश्यपदृष्ट १००० सूक्त 'खिल' हों। गूढ रहस्य होने से उनका पढ़ना-पढ़ाना छूट गया है और वह लुप्त हो गये हैं

आकाश और पृथिवी पर अच्छी प्रकार प्रकाश करता है। वह जलों में व्यापक होकर भरण पोषण करने वाले अन्न वायु, जल इत्यादि पदार्थों में प्रकाश और ताप रूप में प्राप्त करने योग्य होकर हमारी जीवन रक्षा के लिये समर्थ होता है उसी प्रकार जो प्रजा पर मेघ के समान ऐश्वर्यों और शत्रुगण पर शस्त्र-अस्त्रों की वृष्टि करने में समर्थ, बलवान और बलवान्, वीर्यवान् पुरुषों में विद्या, ओज, तेज, पराक्रम आदि गुणों से युक्त होकर आकाश में सूर्य के समान, ज्ञान में और पृथिवी और पृथिवी पर स्थित समस्त पदार्थों मे और प्रजाजनों के बीच महाराज के समान तेजस्वी और सजल मेघवत् वाणी, आज्ञा देने वाले प्रभुपद पर विराजने वाला यज्ञों में अग्नि और मुख्य पुरोहित के समान संग्राम में स्वीकार करने योग्य, वायु के समान प्रबल, वेगवान्, वीर सैनिक गणों तथा विद्वानों और प्रजाजनों का स्वामी, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा हम राष्ट्रवासियों की रक्षा के लिये हो।

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य का जाने का मार्ग यथा अधीन ग्रहों को नियन्त्रण करने का महान् सामर्थ्य अन्य ग्रहों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और जिस प्रकार सूर्य का मेघों को नाश करने वाला और शोषणकारी ताप प्रत्येक पोषणकारी अन्नादि पदार्थों मे व्यापक होता है वह अपने प्रकाशों से ही सबसे अधिक जल वर्षण करने वाला होता है। वह वायुगण से युक्त सूर्य हमारे जीवनों की रक्षा करने के लिये समर्थ होता है। उसी प्रकार सूर्य के समान जिस तेजस्वी पुरुष का याम अर्थात् यम वा नियन्ता होने का महान् पद, अधिकार, सामर्थ्य और प्रयाण करने का मार्ग शत्रुओं और अधीनस्थों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और जिसका शत्रुओं का संतापजनक पराक्रम प्रत्येक संग्राम में विघ्नकारी और बढ़ते हुए शत्रुओं का नाश करने हारा हो वह अपने मित्रों सहित

अपने प्रयत्नों द्वारा अति बलवान् होकर वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले वीर नरों तथा विद्वानों का स्वामी, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पृथ्वीपति ही हमारी रक्षा के लिये हो।

दि॒वो न यस्य॒ रेत॑सो॒ दुघा॑नाः॒ पन्था॑सो॒ यन्ति॒ शव॒साप॑रीताः।
त॒रद्द्वे॑षाः सास॒हिः पौंस्ये॑भिर्म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥३॥

भा०—सूर्य के रश्मिगण जिस प्रकार जलों को प्रदान करने वाले होते हैं और बल या व्यापक सामर्थ्य से युक्त या सबसे बढ़कर दूर तक जाते हैं उसी प्रकार जिस महान् राजा के नीति के मार्ग बल, वीर्य, पराक्रम को बढ़ाने वाले और सैन्य-बल से अवर्जित अर्थात् उससे युक्त रहते हैं। वह समस्त शत्रुओं को पार कर जाने हारा बलों से वीर सैनिकों और विद्वानों का स्वामी राजा हमारी रक्षा करने वाला हो।

सो अङ्गि॑रोभि॒रङ्गि॑रस्तमो भू॒द्वृषा॒ वृष॑भिः॒ सखि॑भिः॒ सखा॒ सन्।
ऋ॒ग्मिभि॑रृ॒ग्मी गा॒तुभि॒र्ज्येष्ठो॑ म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥४॥

भा०—वह पूर्वोक्त राजा ज्ञानवान्, अग्नि के समान तेजस्वी और प्राणों के समान जीवनधारी पुरुषों सहित होकर भी उनमें सबसे अधिक ज्ञानी, तेजस्वी और जीवन शक्ति से युक्त हो। वह वर्षणकारी मेघों के सहित सूर्य के समान प्रजा पर सुखों का वर्षक, परोपकारी और वीर पुरुषों के साथ रहकर भी सबसे अधिक बलवान् और सुखों का वर्षक हो। वह मित्रों के साथ सबसे बढ़कर मित्र हो। वेदमन्त्र के ज्ञाता पुरुषों के साथ रहकर उनसे अधिक वेदों का अर्थज्ञ हो। वह साम आदि गान करने और उत्तम स्तुति करने हारे भक्तों के साथ रहकर उत्तम सामज्ञ और उत्तम स्तुतिकारी, सबमें श्रेष्ठ हो। ऐसा वीर सैनिकों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी राजा और आचार्य हमारी रक्षा और ज्ञान वृद्धि के लिये सदा हो।

स सू॒नुभि॒र्न रु॒द्रेभि॒रृभ्वा॑ नृ॒षाह्ये॑ सास॒ह्वाँ अ॒मित्रा॑न्।
सनी॑ळेभिः श्रव॒स्या॑नि॒ तूर्व॑न्म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥५॥२॥

भा०—तीव्र वेग वाले वायुओं सहित विद्युत् जिस प्रकार अन्नों के उत्पादक जलों को आघात कर वृष्टि द्वारा हम लोगों की प्राणरक्षा के लिये होता है उसी प्रकार वह तीव्र, वायुवेग से जाने वाले, वीर सैनिकों का स्वामी, महान् ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति, पुत्रों के समान प्रिय, शत्रुओं को रुलाने वाले, अति भयंकर, एक ही समान आश्रय या छावनी में रहने वाले वीरों, भटों से नायक पुरुषों द्वारा विजय करने योग्य सग्राम मे शत्रुओं को पराजित करने हारा और अपने सैनिकों के अन्नादि वेतनों के लिये युद्ध करने वाले शत्रु सैन्यों को विनाश करता हुआ तथा उनके ऐश्वर्यों को प्राप्त करता हुआ हमारी रक्षा के लिये हो। अथवा संग्राम मे वाजियें मारता हुआ अर्थात् विजय करता हुआ। इत्यष्टमो वर्गः।

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६॥

भा०—जो क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला अथवा मन्यु अर्थात् अभिमानयुक्त शत्रु को नाश करने वाला या अपने ही भीतरी क्रोध आदि का नाशक होकर संग्राम का करने वाला है और जो इस संग्राम के अवसर मे हमारे अपने नायक और वीर पुरुषों के सहाय मे शत्रुओं का नाश करता है वही सूर्य के प्रकाश के समान न्याय-व्यवहार का देने वाला होकर, सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करता है। वही सज्जनों का पालक, नाना प्रजाओं द्वारा स्तुति किया हुआ, बहुत से शत्रुओं से ललकारा हुआ, वीर पुरुष वीर सैनिक पुरुषों का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा हमारी सदा रक्षा के लिये हो।

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥७॥

भा०—रक्षा करने हारे वीर पुरुष और ज्ञानवान् विद्वान् और तेजस्वी पुरुष तथा रक्षा और उत्तम ज्ञान, तेज आदि सद्गुण उस पूर्वोक्त वीर पुरुष को शूरवीरों के योग्य संग्राम मे हर्षित करते, उसकी स्तुति

करते, उसके गुणों का प्रकाश करते और उसको उपदेश करते हैं। ऐसे वीर पुरुष को ही पृथ्वी निवासी प्रजागण अपने रक्षण कार्य करने योग्य धन और जीवन सर्वस्व का पालक तथा रक्षक नियत करते हैं। वह सब प्रकार के अनुग्रह और विग्रह आदि कर्म करने मे समर्थ है। वह अकेला ही वीर भटों का स्वामी होकर सेनापति हमारी रक्षा के लिये हो।

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८॥

भा०—हर्षों के अवसरों पर और संग्राम के कालो में प्रजाजन और नायक पुरुष और बलों के धारण करने वाले सैन्य से उसी महारथी की शरण मे रक्षा प्राप्त करने के लिये आते हैं और उसी वीर पुरुष को वे धन प्राप्त करने के लिये भी प्राप्त होते हैं। वही घोर अन्धकार में भी सूर्य के समान प्रकाश देता और मार्ग दिखाता है। वह वीर सैनिकों का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा हम प्रजाजनों की रक्षा के लिये हो।

स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९॥

भा०—वह वीर पुरुष, सेनानायक अपने बढ़ते हुए और उमड़ते हुए बड़े बड़े शत्रुओं को भी अपनी बाईं भुजा से वश करे। या अपने बाईं तरफ की सेना से वह शत्रुओं को बाध ले। और वह दायें हाथ में अपने पराक्रम से किये विजय आदि कर्म तथा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्यों को और सिद्धहस्त सैन्यों को अच्छी प्रकार वश करे वह शत्रु को उखाड फेंकने वाले बल से ही ऐश्वर्यों को प्राप्त करता और अन्यों को प्राप्त कराता है। वह वीर भटो का स्वामी, वीर सेनापति हमारी रक्षा के लिये हो।

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१०॥९॥

भा०—वह सैनिक व राजा ऐश्वर्यों का दान करने हारा तथा उत्तम स्वामी होकर रथों, रथारोही सैनिकों से तथा ग्रामों, जनसमूहों तथा

सैन्यसमूहों से और समस्त कृषि करने वाली प्रजाओं व शत्रुकर्षक सैन्यों से और वह बलवीर्य पराक्रमों से युक्त होकर विजय लाभ के लिये अश्व के समान सदा ही, अति शीघ्र दुर्दमनीय, असाध्य शत्रुओं को भी वश करने हारा हो, वह वीर भटों का स्वामी सेनापति या राजा हम प्रजाजनों का रक्षक हो। इति नवमो वर्गः ॥

स जामिभिर्यत् समजाति मीह्ळेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११॥

भा०—जब वह बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त होकर, एवं बहुत से शत्रुओं से युद्ध में ललकारा जाकर अपने बन्धुवर्गों से और बन्धुरहित, अथवा बन्धु बान्धवों से भिन्न अन्य वीर पुरुषों से सहायवान् होकर संग्राम तथा युद्ध में तीव्र वेग से जाने वाले वीर भटों से विजय प्राप्ति के लिये मिल कर शत्रुओं को उखाड़ लेता है तब वह वीरों का स्वामी, सेनापति शरण में आये हम आप्त प्रजाजनों और हमारे पुत्रों और पौत्रों की रक्षा करने में समर्थ हो।

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२॥

भा०—हमारी रक्षा के लिये वह वीर सैनिकों और विद्वानों सहित शत्रुहन्ता राजा शस्त्र-अस्त्र को धारण करने वाला, प्रजा के नाशक पुरुषों को दण्ड द्वारा विनष्ट करने वाला, दुष्टों के चित्तों में भय उत्पन्न करने वाला, शत्रुओं के भीतर उद्वेग उत्पन्न करने वाला, सदा दण्ड देने में समर्थ, सहस्रों विज्ञानों का जानने वाला तथा सहस्रों चित्तों तथा ज्ञानी पुरुषों का स्वामी, सैकड़ों पदार्थों को प्राप्त करने वाला, स्वयं महान् या बड़े भारी सामर्थ्य और सत्य ज्ञान से प्रकाशमान, तेजस्वी, बल से ही वह सेना द्वारा शत्रु-नाशकारी महावीर के समान, पांचों जनों के बीच उन पर शासक रूप से विद्यमान हो।

'पाञ्चजन्यः'—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद। अथवा

। गन्धर्व, अप्सरस, देव, असुर, राक्षस (सा०)। अथवा अध्यापक, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनापति, सर्वजनाध्यक्ष, ये पांच (द०)

तस्य॒ वज्रः॑ क्रन्दति॒ स्मत्स्व॒र्षा दि॒वो न त्वे॒षो र॒वथः॒ शिमी॑वान्।
तं स॑चन्ते स॒नय॒स्तं धना॑नि म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥१३॥

भा०—उसका शत्रुओं को संताप देने वाला, घोर शब्दकारी, महान् घोप करते वाला, गर्जनशील, अस्त्रसमूह अतिशक्तिशाली, खूब गरजे और मानो शत्रुओं को ललकारे। और उसका तेज सूर्य के तेज के समान चमचमाता हो। उसी को सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। उसी को सब प्रकार के धन प्राप्त होते हैं। ऐसा वीर पुरुषों का स्वामी हमारी रक्षा के लिये नियुक्त हो।

यस्याज॑स्रं॒ शव॑सा॒ मान॑मु॒क्थं प॑रिभु॒जद्रोद॑सी वि॒श्वतः॑ सीम्।
स पा॑रिष॒त् क्रतु॑भिर्मन्दसा॒नो म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥१४॥

भा०—जिसका शत्रुओं को नाश करने का सामर्थ्य और वचन अर्थात् आज्ञा-वचन निरन्तर, वेरोक, अखण्डित होकर आकाश और भूमि के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की सब तरफ़ से, सब प्रकारों से बलपूर्वक रक्षा करता है, वह स्तुति और हर्ष को प्राप्त होकर उत्तम उत्तम विज्ञानों से प्रजा का पालन करे। वह वीरों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी राजा हमारा रक्षक हो।

न यस्य॑ दे॒वा दे॒वता॒ न मर्ता॒ आप॑श्च॒न शव॑सो॒ अन्त॑मा॒पुः।
स प्र॒रिक्वा॒ त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती॥१५॥१०॥

भा०—जिसकी दान, प्रकाश आदि गुणों से युक्त परली सीमा को अपने बल, सामर्थ्य से न देव अर्थात् योद्धा गण, न मरने वाले मनुष्य, न आप्त जन प्राप्त कर सके, वह शस्त्र-अस्त्र बल से पृथ्वी और आकाश तथा सामान्य प्रजा और राजवर्ग दोनों से बढ़ा हुआ वीरों और विद्वानों का स्वामी ऐश्वर्यवान् राजा हमारी रक्षा के लिये हो। वह महान् देव, परमेश्वर जिसके परम पार को न कोई विद्वान्, न सूर्य आदि देव, न

मरने वाले प्राणी और न प्राणगण अपने सामर्थ्य से पा सके, वह अपने विवेचक और प्रकाशक ज्ञान और प्रलयकारी सर्व संहारकारी अनन्त बल से आकाश और पृथ्वी के विस्तार से कहीं बड़ा है। वह हमारी रक्षा करे। इति दशमो वर्गः।

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६॥

भा०—खूब सधे हुए, युद्धकुशल अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामी, सेनापति की सुप्रबद्ध प्रजाओं के बीच में लाल पोशाक वाली और श्याम वर्ण के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, उत्तम व्यापक साधनों से युक्त या स्वय बहुत बड़ी पौरुष युक्त, वीर पुरुषों से बनी, विजय कार्य में लगी हुई सेना मुख्य मुख्य केन्द्र स्थानों पर शस्त्र वर्षण करने में समर्थ, बलवान्, रथारोही महारथी को धारण करती हुई, अति वेग व उत्साह से जाने वाली होकर ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये जानी जाती है।

अग्नि के पक्ष में—अग्नि की ज्वाला लाल और नीली, उत्तम किरणों वाली, प्रदीप्त शिखा, धुरा स्थानों के बल पर वेग वाले रथ को धारण करती हैं। वह हमारे लिए सुखप्रद हो, वह प्रजाओं के बीच ज्ञान करने योग्य हैं।

एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७॥

भा०—हे राजन्! ऐश्वर्यवन्! वेगवान्, सरल, सधे हुए बड़ी शक्तियों वा अश्वों का नायक शब्द विद्या या महान् घोष और भयकर उत्पन्न करने की विद्या को जानने वाला, विजिगीषु, युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला, शत्रुओं में भय सञ्चार के साधनों का वेत्ता और उत्तम धनों और उपायों का वेत्ता, ये सब उत्तम विद्वानों की वाणियों के वक्ता विद्वान् और साधना-सम्पन्न पुरुष इन और उन नवीन और प्राचीन, समीप और दूर के और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, अपने और पराये, सब

प्रकार के शत्रु को वश करने के उपायों का अनेक प्रश्नों से पूछे जाकर तुम बलवान् सेनापति या राजा को उपदेश करें। अर्थात् भली प्रकार से समझाएं।

दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८॥

भा०—बहुतसी प्रजाओं से स्तुति और आदर को प्राप्त होकर राजा पृथिवी पर प्रजा को नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को और लुक-छिप कर प्राणियों के प्राणों को नष्ट कर देने वाले, हत्यारे पुरुषों को आक्रमणों से और शस्त्र या बाण के प्रयोग से अच्छी प्रकार नाश कर दे और तेजस्वी और श्वेत वर्ण के उज्वल, चरित्रवान् मित्र वर्गों के साथ मिलकर भूमि के क्षेत्र का अच्छी प्रकार विभाग करे, बांट ले और वह सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करे और उत्तम वीर्यवान् होकर जलों के समान शान्तिप्रद, सुखद, आप्त पुरुष। तथा शान्तिमय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करे और मित्र राजाओं के बीच में विभाग करे।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥१९॥११

भा०—विद्याओं को साक्षात् देखनेहारा और ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाशक विद्वान्, आचार्य और सभाध्यक्ष, हम पर हमेशा अध्यक्ष होकर उपदेश करने और आदेश देने वाला हो। हम लोग सब प्रकार से कुटिल विचारों और चेष्टाओं से रहित होकर सौम्यभाव से उत्तम अन्न, ऐश्वर्य, धन आदि अपने आचार्य और राजा को प्रदान करें और उससे उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करें। उस धर्मात्मा राजाओं आचार्य को मित्रगण, श्रेष्ठजन, माता, समुद्र, भूमि और आकाश ये सब बढ़ावें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०१]

आंगिरसः कुत्स ऋषि । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृज्जगती । २, ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५, ७ विराड् जगती । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९, ११ त्रिष्टुप् । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुषो ! स्वयं सुप्रसन्न तथा अन्यों को आनन्दित करने वाले स्वामी के लिये अन्न आदि पालनकारी सामग्री सहित वचनों का आदरपूर्वक प्रयोग करो, उत्तम वचन तथा अन्नादि से उसका सत्कार करो । अथवा अपने पालक स्वामी प्रमुख राजा के आगे ऐसा वचन कहो जिससे वह प्रसन्न होकर तुमको उत्तम आजीविका, पालन-साधन और अन्नादि प्रदान करे । हे मनुष्यो ! जो राजा, सेनापति तथा राष्ट्रपति, उत्तम सधे हुए अश्वों से युक्त सैन्यबल से काले अन्धकार को गर्भ में रखने वाली रात्रियों को जैसे प्रकाश से सूर्य विनाश करता है उसी प्रकार कर्षण अर्थात् प्रजापीड़न करने वाले शत्रु को अपने भीतर रखने वाली शत्रु सेनाओं को अच्छी प्रकार विनाश कर सके । ऐश्वर्य और यश चाहने वाले पुरुष उस बलवान्, शत्रुओं पर शस्त्रों का और प्रजा पर सुखों का मेघ के समान वर्षण करनेवाले वज्र अर्थात् शस्त्र-अस्त्र-बल को अपने दायें हाथ में लिये, वीर भटों के स्वामी, राष्ट्रपति को हम प्रजाजन मित्र भाव के लिये स्वीकार करें ।

आचार्य के पक्ष में—जो आचार्य धर्मानुकूल, सरल, वशीकृत इन्द्रियों के अभ्यास तथा अध्ययन द्वारा तामस भावों को अपने भीतर रखनेवाली दुश्चेष्टाओं को विनाश करता है, जिज्ञासु जनों के गुरु, अज्ञान के वर्जन करने वाले ज्ञानोपदेश में कुशल, विद्याओं को मेघ के समान वर्षाने वाले उस आचार्य को श्रवण योग्य वेदज्ञान के अभिलाषी हम लोग सखा भाव के लिये स्वीकार करें ।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

भा०—जो राष्ट्रपति, वीर पुरुष निरन्तर सबको सन्तुष्ट करने और प्रजाओं में हर्ष उत्पन्न करने वाले क्रोध और शत्रुस्तम्भनकारी बल से विविध स्कन्धावार अर्थात् छावनी वाले शत्रु को विनाश करने में समर्थ हो और जो पुरुष शस्त्र-अस्त्र को धारण करने वाले, प्रबल तथा खूब सुसंबद्ध, सुदृढ़ शत्रु को भी विनाश करने में समर्थ हो और जो व्रतों, नियम और व्यवस्थाओं के न पालन करने वाले केवल अपना ही पेट पालने और भरने वाले को भी नाश करे और जो ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता अन्य शोषक अर्थात् बलनाशक विरोधी न होने के कारण प्रजाओं का रक्त शोषण करने वाला हो उसको भी सर्वथा परास्त करे, उस वीर सुभटों सहित घोर पुरुष को हम प्रजाजन सखा भाव के लिये स्वीकार करें ।

आचार्य, परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—निरन्तर आत्मशान्तिप्रद ज्ञान अज्ञान को खण्ड खण्ड नाश करे । जो आत्मा को घेर लेने वाले, केवल पेट भरने वाले व्रत, यम, नियम आदि सदाचार से रहित आचरण को नाश करे, न सूखने वाले, सदा बढ़ते रक्त शोषक लोभ को जो वर्जित करे और विद्वानों, शिष्यों और प्राणों सहित आत्मरूप इन्द्र को अपना मित्र बनावे ।

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

भा०—जिस परमेश्वर का बड़ा भारी बल आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप रहा है और जिसकी बनाई नियम व्यवस्था में चन्द्र या वायु चल रहे हैं और जिसके महान् सामर्थ्य या शासन को समस्त समुद्रगण और महानदियां भी स्वीकार करती हैं उस महान् शक्तियों और समस्त वायुगणों तथा सबके प्राणों के स्वामी परमेश्वर को हम मित्र भाव

के लिये पुकारते हैं उसे स्वीकार करते हैं। उसी को हम अपना अन्तरंग सुहृद् करके जानें।

राजा के पक्ष में—जिसके महान् सामर्थ्य तथा शासन को राज-प्रजावर्ग, 'वरुण' दुष्टों का वारक सेनापति, 'सूर्य' सदृश तेजस्वी विद्वान्, 'सिन्धवः' तीव्र वेगवान् अर्थात् पुरुषार्थी प्रजाएं प्राप्त हैं। अथवा जिसके बड़े सामर्थ्य को आकाश, पृथिवी, वायु, सूर्य और सागर आदि विशाल पदार्थ प्राप्त हैं अर्थात् उपमानरूप से उसके बड़े सामर्थ्य को दिखलाते हैं। अर्थात् जो आकाश और पृथिवी के समान सबका धारक, पोषक, वायु के समान प्रबल, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्रों के समान गम्भीर है उस राजा को हम अपना सुहृद् बनावें।

यो अश्वा॑नां॒ यो गवां॒ गोप॑तिर्व॒शी य आ॑रि॒तः कर्म॑णि-कर्मणि स्थि॒रः।
वी॒ळोश्चि॒दिन्द्रो॒ यो असु॑न्वतो व॒धो म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥४॥

भा०—जो प्रजाओं और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में समर्थ, बलवान्, जितेन्द्रिय, पृथिवीपति होकर अश्वों और गौओं का स्वामी है और जो स्थायी रूप से राष्ट्र के प्रत्येक कार्य में प्रस्तुत किया जाता और आघोषित किया जाता है और जो यज्ञादि कार्य, अभिषेक और विद्या-प्राप्ति आदि करने वालों से भिन्न बलवान्, शत्रु का भी मारने वाला है उस प्रबल सैनिक पुरुषों और विद्वानों के स्वामी पुरुष को हम मित्रभाव के लिये स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार जो कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मन को वश करने वाला होकर 'गोपति' है अर्थात् प्रत्येक कार्य में स्थिर ज्ञान-वान् है। प्राणायाम आदि योगाभ्यास के प्रबल बाधक विघ्नकारी दुष्ट पाप को भी नाश करता है, उस परमेश्वर, आचार्य और आत्मा को हम अपना सखा बनावें।

यो विश्व॑स्य॒ जग॑तः प्राण॒तस्पति॒र्यो ब्र॒ह्मणे॑ प्रथ॒मो गा अवि॑न्दत्।
इन्द्रो॒ यो दस्यूँ॒रध॑राँ अ॒वाति॑रन्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥५॥

भा०—जो परमेश्वर जंगम, प्राणधारी, समस्त संसार का पालनकर्ता है। और जो महान् सामर्थ्यवान् वेदज्ञ विद्वान् का सब से प्रथम, आद्य गुरु होकर उसके लिए वेदवाणियों का उपदेश करता है। और जो परमेश्वर सज्जनों और अन्य प्राणियो को नाश करनेवाले दुष्ट पुरुषों को नीचे, दुःखदायी लोकों या जन्मो को पहुंचाता है, उस समस्त प्राणधारियों के स्वामी परमेश्वर को हम अपने परम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें, उसको हम अपना परम सखा मानें।

राष्ट्रपति के पक्ष में—जो राष्ट्र के सब जंगम पशु और प्राणियों का पालक है, जो वेदज्ञ विद्वान् को भूमि और पशुओं का दान करे, दुष्टों को नीचे गिरावे वह हम प्रजाओं का मित्र हो।

यः शूरे॑भि॒र्हव्यो॒ यश्च॑ भी॒रुभि॒र्यो धाव॑द्भिर्हू॒यते॒ यश्च॑ जि॒ग्युभि॑ः।
इन्द्रं॒ यं विश्वा॒ भुव॑ना॒भि सं॑ द॒धुर्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥६।१२॥

भा०—जो परमेश्वर शूरवीर पुरुषों द्वारा स्तुति करने योग्य है और जो भीरु, भयभीतों द्वारा भी प्रार्थना किया जाता है। जो भागते हुए और जो विजय करते हुओं से भी आदर और प्रेम से स्मरण किया जाता है, जिसको समस्त प्राणी और लोक साक्षात् अपने भीतर धारण करते हैं उस महान् शक्तियों और समस्त प्राणियों के स्वामी को हम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें, उसे अपना परम सखा मानें। इसी प्रकार वह वीर, राष्ट्रपति राजा हमारा परम मित्र हो जिसे शूरवीर ललकारें या अपना सहायक मित्र करें। जिसे भीरु जन भी अपना आश्रय स्वीकार करें। जिसे मैदान छोड़ कर दौड़ने वाले और मैदान पर विजय पाने वाले दोनों प्रकार के लोग अपना शरण और सहायक मानें, जिस राजा को सब प्रजाजन अपना साथी करके मानें अथवा जिससे सन्धि करें।

रु॒द्राणा॑मेति प्र॒दिशा॑ विचक्ष॒णो रु॒द्रेभि॒र्योषा॑ तनुते पृ॒थु ज्रय॑ः।
इन्द्रं॑ मनी॒षा अ॒भ्य॑र्चति श्रु॒तं म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥७॥

भा०—जो उत्तम चातुर्य आदि गुणों वाला, विविध विद्याओं तथा प्रजा के शासन कार्यों को देखने हारा, विद्वान् होकर शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों के उत्तम शासन तथा ज्ञानोपदेष्टा जनों के उत्तम अनुशासन, प्रदेश या उपदेश से बड़े भारी बल को प्राप्त कर लेता है और जैसे स्त्री या भेद-नीति की वाणी भी जिस प्रकार वीर पुरुषों की सहायता से बड़ा शत्रुसंहारक बल प्रकट कर सकती है, उसी प्रकार जो राजा शत्रुओं को रुलाने वाले वीरों की सहायता से अपने महान् राष्ट्र बल को बढ़ा लेता है और जिस ऐश्वर्यवान् और बलवान् प्रसिद्ध पुरुष को गुरु से उपदिष्ट वेद-वचन को बुद्धि के समान स्तुति वाणी साक्षात् स्तुति करती है उस वीर पुरुषों को हम अपने मित्रभाव के लिये स्वीकार करते हैं।

आचार्य के पक्ष में—आचार्य शिष्यों के अनुशासन से अधिक बल प्राप्त करता है। वाणी भी विदुषी स्त्री के समान शिष्यों या प्राणों के द्वारा ही बड़ा बल बढ़ाती है। बुद्धि द्वारा ही विस्तृत होकर गुरु-उपदेश को भी उस इन्द्र अर्थात् आचार्य का ही आदर करती है। उसी विद्यार्थियों के परम गुरु को हम भी आत्मकल्याण के लिए स्वीकार करें।

यद्वा॑ मरुत्वः पर॒मे स॒धस्थे॒ यद्वा॑व॒मे वृ॒जने॑ मा॒दया॑से।
अत॒ आ या॑ह्यध्व॒रं नो॒ अच्छा॑ त्वा॒या ह॒विश्च॑कृमा सत्यराधः ॥८॥

भा०—हे वीर सैनिक पुरुषों के अध्यक्ष! चाहे तू सर्वोत्तम स्थान में या साधारण शुद्ध घर या जीवन-दुःखों के दूर करने के लिए वृत्ति उपाय में तृप्त होकर रहे तो भी तू हमारे यज्ञ या स्थिर राज्य शासन को प्राप्त हो। तेरी कामना से या तेरे सहित हम लोग सत्य ऐश्वर्ययुक्त एवं सत्य आराधना से युक्त अन्नादि उत्तम पदार्थ प्राप्त करें।

इसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी चाहे ऊंचे से ऊंचे स्थान या पद को प्राप्त हो या वह छोटी से छोटी स्थिति पर हो, वह हमारे श्रेष्ठ यज्ञकार्य में आवे, उसके लिये हम सच्चे हृदय से अन्नादि दें, उसका सत्कार करें।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तेरे सहित, हम लोग ऐश्वर्य को प्राप्त करें। हे उत्तम कार्यकुशल ! तेरे साथ मिलकर हम अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करें, हे बहुत बड़े ऐश्वर्य को धारण करने वाले ! और हे सेनाओं, अश्वो और अश्वारोहियों के स्वामिन् ! सेनापते ! तू अपने गणों, भृत्यजनो और दल-बल सहित वीर भटो और विद्वानो सहित इस प्रजापालन रूप यज्ञ वा सुव्यवस्थित राष्ट्र में प्रजाजनों पर या राजसिंहासन पर स्थित होकर स्वयं तृप्त हो और औरों को आनन्दित कर ।

आचार्य के पक्ष में—हे विद्यावान् ! तेरे साथ मिल कर हम शान्ति-दायक शास्त्र-ज्ञान को प्राप्त करें। हे ब्रह्म ज्ञान के कराने वाले ! हे उत्तम ज्ञानबल युक्त ! तेरे संग से हम प्राप्त करने योग्य तथा शिष्यों को देने योग्य ज्ञान प्राप्त करें। हे शक्तियों से युक्त अथवा शिष्यों से युक्त और वायु के समान आलस्यरहित, अप्रमादी शिष्यों सहित अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ में रहकर अति उत्तम, सर्वोपरि पद पर विराजमान हों ।

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! जो तेरे अधीन विद्वान् जन और अश्व, अश्वारोही गण हैं उन सहित तू तृप्त, संतुष्ट और प्रसन्न होकर रह, भोजन करने हारा जिस प्रकार अपने दोनों जबाड़ों को खोलता है उसी प्रकार तू भी राष्ट्र के भोग्य पदार्थों को भोग करने और शत्रु-राज्यों को बल द्वारा प्राप्त करने के लिये दायें बायें की दोनों सेनाओं को विस्तृत कर और जिस प्रकार भोजनकर्त्ता पुरुष खाते समय जीभ चलाता है उसी प्रकार हे राजन् ! राष्ट्र के ऐश्वर्यों को भोग करने के लिये रसपान करने वाली जिह्वा के समान प्रजा-शासन और शत्रु-दमन करने वाली दो प्रकार की वाणियों को प्रकट कर । अथवा जिह्वा के समान अगली दो सेनाओं

का संचालन कर। हे उत्तम सुखप्रद राजन्! तुझे अश्व और विद्वान् दूर दूर तक ले जावें। हे प्रजाओं को चाहने वाले उनके प्रिय! तू हम प्रजाजनों के अन्न आदि भोग्य पदार्थों को और युद्ध आदि राष्ट्रकार्यों को ग्रहण कर।

आचार्य के पक्ष में—वह प्रिय शिष्यों के साथ प्रसन्न होकर रहे। वह ऐहिक और पारमार्थिक सुखों और ज्ञान-वाणियों को प्रकट करे। विद्वान् शिष्य उसे धारण करे। हे आचार्य! तू हम गृहस्थ जनों के अन्नों को स्वीकार कर।

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥१३

भा०—वायु के वेगादि गुणों से स्तुति करने योग्य शत्रुओं को वर्जन करने हारे सेनापति के रक्षक हम लोग उस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता के साथ रहकर ही संग्राम करें और ऐश्वर्य का लाभ करें। शेष पूर्ववत्। इति त्रयोदशो वर्गः।

[१०२]

कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती। ३, ५—८ निचृज्जगती। २, ४, ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम्॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥१॥

भा०—हे प्रभो! स्वामिन्! तेरी वाणी और बुद्धि जो ज्ञान और कर्तव्य प्रकट करती है, साक्षात् पूजनीय तेरी इस बड़ी आदरणीय ज्ञानप्रद और कर्मप्रद वाणी को मैं स्तुति करने वाले वचन तथा कर्म में धारण करता हूं। विद्वान जन और विजय की कामना करने वाले पुरुष उस शत्रु पराजयकारी राजा, सेनापति को आनन्द, उत्सव, उत्तम काम तथा

शासन के कार्य मे या जन्म आदि के अवसर में अपने बल द्वारा हर्षित करते और उसके साथ स्वय हर्षित होते हैं।

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२॥

भा०—इस परमेश्वर के महान् सामर्थ्य को बहने वाली नदियें, और सूर्य और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष सब अपने स्वरूप मे धारण कर रहे हैं। हे परमेश्वर ! हमे दिखाने और आंखों से ज्ञान कराने और सत्य ज्ञान को धारण कराने के लिये यह तेरे सूर्य और चन्द्रमा दोनों प्रकाशमान होकर नाना प्रकार से आते जाते हुए गति कर रहे हैं।

राजा के पक्ष में—तेरे ही यश और ऐश्वर्य को सर्पणशील, समृद्ध प्रजाएं, नदियों के समान धारण करती हैं। पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष तीनों तेरे गुणों को अपने में धारण करते हैं। सूर्य, चन्द्र और शान्ति के देने वाले स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान देने और विश्वास योग्य पदार्थों को उपदेश देने के लिये विचरण करें।

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! तेरे जिस समस्त दुःखों पर विजय करने वाले रसस्वरूप, सबको अपने में रमण करने वाले स्वरूप को अच्छी प्रकार प्राप्त कर लेने पर योगदशा में, हे बहुत सी प्रजाओं से स्तुति करने योग्य ! दुःखों को दूर करने वाले, तुझे प्राप्त करने वाले योगकाल में हे आत्मन्, परमात्मन् ! हम अनुक्षण, निरन्तर आनन्द रस का लाभ करते हैं। तू उसी रसस्वरूप को हमे सदा आनन्द लाभ कराने के लिये प्रकट कर। हे ऐश्वर्यवन् ! हे परम पूज्य परमेश्वर! मन से तुझे चाहने वाले हमें तू शान्ति और सुख प्रदान कर।

राजा तथा सेनापति के पक्ष मे—जिस तेरे विजयशील रथ को देख कर हम प्रसन्न होते है, हे राजन् ! तू उस रथ को ऐश्वर्य विजय के लाभ

के लिये आगे बढ़ा। हे राजन्! मन से तुझे चाहने वाले हम लोगों को तू सुखमय शरण प्रदान कर।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४॥

भा०—हे परमेश्वर! राजन्! सेनापते! तुझ सहायक के साथ मिलकर हम लोग विजय लाभ करें। तू प्रत्येक संग्राम के अवसर पर हमारे प्राप्त होने योग्य, ग्राह्य सेना के टुकड़े को अथवा जन, वस्त्र, शस्त्र, कोश, ऐश्वर्य आदि के हिस्से को उत्तम रीति से सुरक्षित रख। हमारे लिये हे ऐश्वर्यवन्! तू धन को सुगमता से प्राप्त होने योग्य कर और हमारे कार्यों, शरीरों और मनोरथों के नाशक, बाधक शत्रुओं के बलों को हे ऐश्वर्यवन्! अच्छी प्रकार तोड़ डाल अर्थात् नष्ट कर दे।

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव॥५।१४॥

भा०—हे समस्त ऐश्वर्यों के धारण करने हारे वीर नायक! निश्चय से तुझसे स्पर्द्धा करने वाले, तेरे सदृश बल और ज्ञान वाले ये नाना जन भी विविध व्यवहारों में कुशल, एवं नाना विद्याओं के प्रवक्ता जन ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य सहित विद्यमान हैं। इन सब में से तू ही ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्ति के लिये हमारे विजयकारी, मुख्य रथ अर्थात् महारथी पद पर विराजमान हो, क्योंकि तेरा चित्त और ज्ञान खूब अच्छी प्रकार सुरक्षित, स्थिर और अच्छी प्रकार नियमित है। इति चतुर्दशो वर्गः।

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६॥

भा०—हे राजन्! सभापते एवं परमेश्वर! तेरी बाहुएं अर्थात् अनन्त शक्तियें शत्रुओं को पीडन करने वाली अगल-बगल की सेनाएं भूमियों का विजय करने वाली हैं और दोनों बाहू अर्थात् छाती का भाग अपने विस्तार और बल सामर्थ्य से वृषभ को भी जीतने वाला, उसमें

भी अधिक शक्तिशाली हो। और तू स्वयं अमित, अनन्त ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त, सबसे श्रेष्ठ तथा प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा और शत्रुओं को वध, बन्धन, सन्धि आदि से बांधने वाला और प्रत्येक काम में सैकड़ों ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य और पराक्रमों वाला संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाला है। वह ऐश्वर्यवान् स्वामी बल, पराक्रम से अपने समान किसी को न रखने वाला, अनुपम और सबके सामर्थ्य को मापने वाला पैमाना है और उस तुझ को भजन करने हारे भक्त जन एवं शरणार्थी और ऐश्वर्य के इच्छुक सभी जन विविध रूपों से स्तुति करते हैं। आत्मा ख = इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञानों का कर्त्ता एवं परमेश्वर आकाशस्थ ब्रह्माण्डों का स्रष्टा होने से 'खजंकर' है।

उत्ते॑ श॒तान्म॑घव॒न्नुच्च॒ भूय॑स॒ उत्स॒हस्रा॑द्रिरिचे कृ॒ष्टिषु॒ श्रवः॑।
अ॒मा॒त्रं त्वा॑ धि॒षणा॑ तित्विषे म॒ह्यधा॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे पुरन्दर ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! तेरा ज्ञान, ऐश्वर्य, यश मनुष्यों में सौ से भी अधिक बड़े और उसमें भी अधिक संख्यावाले पुरुषों से अधिक हो। हजारों से भी अधिक हो। बड़ी भारी, अति पूजनीय, उत्तम विद्या, बुद्धि और वाणी, अपरिमित बलशाली तुझको अधिक तेजस्वी बनावे और हे शत्रुओं के गढ़ों को तोड़ने हारे! तू मेघों को सूर्य के समान अपने बढ़ते हुए विपरीत आचरण करने वाले शत्रुओं को दण्डित कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर! सैकड़ों, सहस्रों और उनसे भी अधिक असंख्यात लोकों और ब्रह्माण्डों से भी तेरा सामर्थ्य बढ़ कर है। अनन्त बलशाली तुझको बड़ी भारी पूजनीय वेदवाणी प्रकाशित करती है। तू जीवों को देह बन्धनरूप दुर्गों को ज्ञान वज्र से तोड़ने हारा है। तू हमारे अज्ञान आवरणों को नाश कर।

त्रि॒वि॒ष्टि॒धातु॑ प्रति॒मान॒मोज॑सस्ति॒स्रो भूमी॑र्नृपते॒ त्रीणि॑ रोच॒ना।
अती॒दं विश्वं॒ भुव॑नं ववक्षिथाश॒त्रुरि॑न्द्र ज॒नुषा॑ स॒नाद॑सि ॥८॥

भा०—हे परमेश्वर! तू बल, पराक्रम और तेज का कारण पृथिवी,

जल, तेज, वायु, आकाश, ब्रह्माण्ड के धारण करने वाले इन तत्वों के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, स्वल्प, अधिक और सम मात्रा में विचित्र या त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय होकर प्रत्येक पदार्थ के रचनेहारा है। तू पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष तीनों को उन सबसे बढ़ कर धारण कर रहा है, उनसे भी महान् है। हे समस्त जीवों के पालक ! तू सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों से महान् है। तू इस समस्त संसार या ब्रह्माण्ड को उससे महान् होकर उसे धारण कर रहा है। हे ऐश्वर्यवन्! तू स्वभाव से और अनादि काल से शत्रु रहित है, तेरा कोई नाश करनेवाला नहीं, तू अविनाशी है।

राजा के पक्ष में—तू औरों के बल को नापनेवाला तीन गुणा शक्तिशाली हो। तीनों उत्तम, अधम और मध्यम, स्व, पर और उदासीन तीनों की तीनों भूमियों या राष्ट्रों को, तीन प्रजा के रुचिकर तेजोवर्धक, न्याय, बल और राज्य शासन, को सब से बढ़ कर धारण करने में समर्थ हो। तू इस समस्त राज्य को धारण कर और स्वभावतः उसी से तू अजातशत्रु होकर रह।

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः॥ ६॥

भा०—हे राजन्! हम लोग विजयशील, तेजस्वी पुरुषों और विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ तुझको स्वीकार करें। तू ही संग्रामों में सदा शत्रुओं का पराजय करने हारा हो। वह ऐश्वर्यवान् राजा ही हममें से प्रत्येक पदार्थ को अति समीप होकर उसका ज्ञान करने वाले रहस्यतत्वज्ञ इस शिल्पादि के बनाने वाले पुरुष को उत्तम उत्तम पदार्थों के उत्पादन कार्य में सब के आगे प्रमुख करे। और जिस प्रकार शिल्पी पृथिवी फोड कर निकले हुए वृक्ष के काष्ठ को रथ बना देता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् पुरुष, राजा या सेनापति सबसे उत्तम या ऊर्ध्वचारी होकर शत्रु सेना को फोडने में समर्थ रथ नाम सेनाङ्ग को उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने और

उत्तम रीति से सेना के प्रशासन कार्य में सबके आगे प्रमुख स्थान पर नियत करे अर्थात् शत्रु भेदन में कुशल महारथी को सर्वाग्रणी बनावे ।

परमेश्वर के पक्ष में—हम समस्त दिव्य गुण वाले प्रकाशक, लोकों और विद्वानों में प्रथम, मुख्य तेरी स्तुति करते हैं । तू सब मनुष्यों का वशीकर्त्ता तथा सबसे श्रेष्ठ है । वह तू परमेश्वर इस तेरे नित्य मनन करने वाले, स्तुतिकर्त्ता, कर्मकर्त्ता जीव को और रमण साधन देह को वनस्पति के समान उत्पन्न होने के लिये समर्थ करता है । अथवा रमण करने वाले उत्तमांग या मूर्धास्थल या सूर्यबिम्ब को भेदन करने वाले आत्मा को सबसे प्रथम अपने उत्तम ऐश्वर्य और आज्ञा मे ले लेता है ।

त्वं जि॑गेथ॒ न धना॑ रुरोधि॒थार्भे॑ष्वा॒जा म॑घवन्म॒हत्सु॑ च ।
त्वामु॒ग्रमव॑से॒ सं शि॑शीम॒स्यथा॑ न इन्द्र॒ हव॑नेषु चोदय ॥ १० ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! सेनापते ! राजन् ! छोटे मोटे तथा बड़े बड़े संग्रामों में तू विजय प्राप्त कर । तू ऐश्वर्यों को अपने पास ही मत रोके रह, प्रत्युत प्रजाओं और भृत्यों के उपकार में व्यय कर । उग्र, भयानक, शत्रुबल के नाश करने में समर्थ तुझको हम अपनी रक्षा के लिये आश्रय करके तुझे खूब तीक्ष्ण और उत्तेजित करें और तेरा आश्रय लेकर शत्रुओं का खूब नाश करें और हमें हे ऐश्वर्यवन् ! तू युद्ध-आह्वानों में, संग्रामों में और स्वीकार करने योग्य उत्तम कर्मों मे प्रेरित कर ।

हे परमेश्वर ! तू हमें छोटे बड़े सब उद्देश्यों और संग्रामों में विजय प्राप्त करा । हमें सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करा । तुझ बलशाली का आश्रय लेकर अपनी रक्षा के लिये हम शत्रुओं का नाश करें । तू उत्तम कर्मों में हमें प्रेरित कर ।

वि॒श्वाहेन्द्रो॑ अधिव॒क्ता नो॑ अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम॒ वाज॑म् । तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः सिन्धु॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥

भा०—व्याख्या देखो म० १ । सू० १०० । मन्त्र १९ । इति पञ्चदशो वर्गः ।

[१०३]

कुत्स आङ्गिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ; २, ४ विराट त्रिष्टुप् । ७, ८ त्रिष्टुप् ॥

तत्त॑ इन्द्रि॒यं प॑र॒मं प॑रा॒चैरधा॑रयन्त क॒वयः॑ पु॒रेदम् ।
क्ष॒मेदम॒न्यद्दि॒व्य१॒॑न्यद॑स्य॒ समी॑ पृच्यते सम॒नेव॑ के॒तुः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा वह परम ऐश्वर्य, सामर्थ्य या सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है जिसको क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग बहुत पहले काल से अपने दूरदर्शी पारमार्थिक साक्षात्कारों द्वारा 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार यथार्थ रूप से धारण कर रहे हैं, ज्ञान करते चले आ रहे हैं। यह ईश्वर का महान् सामर्थ्य पृथिवी में कुछ भिन्न ही प्रकार का है और आकाश या सूर्य में वह सामर्थ्य भिन्न प्रकार का है। प्रेम युक्त चित्तवाली स्त्री जिस प्रकार अपने प्रिय पति से जा मिलती है उस प्रकार, अथवा युद्ध में लड़ती सेना जैसे परसेना से जा भिड़ती है उसी प्रकार यह परमेश्वर का ज्ञापक, प्रकाशक दोनों प्रकार का स्वरूप परस्पर सुसंगत हो जाता है। एक दूसरे के अनुकूल उपकार्य उपकारक भाव से सम्बद्ध है। पृथिवी में नाना जीव सृष्टि, ओषधि, लता, अन्न, अग्नि इत्यादि सभी पदार्थ हैं। आकाश में सूर्य, वायु, मेघ आदि पर दोनों स्थानों में स्थित ईश्वर के ये महान् सामर्थ्य एक दूसरे के उपकारक होते हैं। पृथ्वी के जल में मेघादि की उत्पत्ति और मेघ, सूर्य, वायु आदि के द्वारा पृथ्वी पर जीव संसार की उत्पत्ति और जीवन, अन्न आदि होते हैं।

राजा के पक्ष में—यह राजा का बड़ा भारी ऐश्वर्य या शासन बल है जो एक तो पृथिवी निवासी प्रजा में व्यवस्था रूप से, दूसरा राजसभा में है। वह उभयत्र उसका ज्ञापक होकर परस्पर सम्बद्ध है।

स धा॑रयत्पृथि॒वीं प॒प्रथ॑च्च॒ वज्रे॑ण ह॒त्वा निर॒पः स॑सर्ज ।
अह॒न्नहि॒मभि॑नद्रौहि॒णं व्यह॒न्व्यं॑सं म॒घवा॒ शची॑भिः ॥ २ ॥

भा०—वेद भगवान् ईश्वर के महान् सामर्थ्यों का वर्णन करते है। वह परमेश्वर सूर्य के समान पृथिवी को धारण करता है और उसको विशाल आकार का बनाता है जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् या प्रबल वायु से मेघ को आघात करके वृष्टि के जल को उत्पन्न करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी विद्युत् के बल से दो भिन्न २ प्रकार के वायुतत्वो को मिलाकर जलो को निर्माण करता है। सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न करता, रोहिणी नक्षत्र के योग मे उत्पन्न मेघ को छिन्न-भिन्न करता और विविध स्कन्धो वाले मेघ को विविध प्रकार से नाश करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी अपनी बडी बडी शक्तियो से सर्वत्र व्यापक, महान्, अन्धकारमय जगत् के कारण तत्व, प्रकृति को आघात करता, उसमे प्रविष्ट होता है और ससार को प्रकट कर देने वाले महान्, हिरण्यगर्भ रूप अण्ड को भेदता है, उसे विभक्त कर नाना लोक बनाता है। विविध पृथिवी आदि पञ्चभूतो रूप स्कन्धों से युक्त या विविध शाखाओ से युक्त वृक्ष के समान विस्तृत सर्ग को भी विविध रूपो मे विभक्त करता या विनाश करता या प्रकट करता है।

राजा के पक्ष मे—वह पृथिवी को शासन द्वारा धारण करता, राष्ट्र को बढाता है, शस्त्रास्त्र बल से शत्रु को मार कर प्रजाओं की वृद्धि करता है। मेघ के समान उमडते शत्रु का नाश करता, विविध छावनियो को बसाने वाले और वट के समान फैलने वाले शत्रु के राज्य या क्षात्रबल को छिन्न-भिन्न करता है।

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर जगत् मे उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणियों का पालन पोषण करने हारा, अपने सत्य स्वरूप को धारण करने वाला, अपने महान् सामर्थ्य से नाश होने वाली सृष्टियों को और आत्मा के देह-बन्धनों को विविध प्रकारों से विनाश करता हुआ विशेष रूप से व्याप

रहा है । हे शक्तिशालिन् ! ज्ञानस्वरूप प्रभो ! तू नाशकारी दुष्ट पुरुष को नाश करने के लिये उसके बध का उपाय करता है और हे ऐश्वर्यवन् ! तू श्रेष्ठ पुरुषों और प्रजा के पालक स्वामीजनों के शत्रुओं को पराजय करने योग्य बल और ऐश्वर्य की वृद्धि कर ।

राजा या सभा सेनादि के अध्यक्ष के पक्ष में—वह विद्युत् से बने शस्त्रास्त्रवाला अथवा प्रजा का पोषक, अपने पराक्रम से दुष्ट पुरुषों की नगरियों और गढ़ों को तोड़ता हुआ विविध दिशाओं में विचरे । वह विद्वान् विवेकी होकर दुष्टों पर शस्त्र का प्रयोग करे । भले पुरुषों तथा प्रजा के स्वामी या वैश्य वर्ग के बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करे ।

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥

भा०—वह शक्तिशाली परमेश्वर नाशकारी अज्ञान को नाश करने के लिये अति समीप प्राप्त होता हुआ निश्चय से सबको प्रेरणा करने हारा होकर ज्ञान की वृद्धि के लिये जिस प्रसिद्ध तेजोमय स्वरूप को धारण करता है वह उस अपने स्तुति करने वाले जन के लिये स्तुति करने योग्य नाम और स्वरूप को मनुष्यों के इन कल्पित अनेकों वर्षों तक धारण कर रहा है ।

राजा के पक्ष में—दुष्ट पुरुषों में भी कीर्त्ति प्राप्त करने के लिये राजा जिस प्रसिद्ध नाम को धारण करे वह बहुत से वर्षों तक धारण करे । अर्थात् वह चिरस्थायी कीर्त्ति प्राप्त करे ।

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय । स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! इस परमेश्वर का यह प्रत्यक्ष दीखने वाला बहुत प्रकार का और बहुत अधिक सबका परिपोषक स्वतः पुष्ट, दृढ़, परिपूर्ण वह परम बल देखो और बल, वीर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये उस महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा पर श्रद्धा, दृढ़ विश्वास करो ।

अथवा उस परमेश्वर के दृढ़ सत्य व्यवस्था को बल वृद्धि के लिये धारण करो। वह गतिमान् समस्त सूर्यादि लोकों में व्याप्त है। वह व्यापक आकाशादि पदार्थों तथा भोक्ता जीवों को भी अपने वश में किये है। वह समस्त ओषधि, अन्न, लता, वृक्ष, वनस्पतियों तथा प्रताप और तेज के धारक सूर्य अग्नि आदि को भी वश करता है। वह समुद्र, मेघ आदि में स्थित जलों, प्राणों, लिंग शरीरों तथा व्यापक जगत् निर्मातृ उपादान कारणावयवों को भी वश कर रहा है। भोग और सेवन करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को वश कर रहा है।

आत्मपक्ष में—इस अपने आत्मा के बड़े भारी बल का साक्षात् करो और इस 'इन्द्र' आत्मा के 'श्रत्' सत्य रूप को जानकर उस पर विश्वास करो, उसका आदर करो। वह वेद-वाणियों, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों, तापधारक लोकों और देह गत धातुओं को और कर्मों, ज्ञानों और भोग्य सुखों को प्राप्त करता है।

राजा के पक्ष में—राजा का बढ़ा हुआ बल देखो और बल की वृद्धि के लिये उस पर विश्वास, भरोसा करो। राजा वह भूमियों, गो-सम्पत्ति तथा अश्वों, ओषधियों, नदी, ताल आदि जलस्थानों और वनों को अपने वश करे। इति षोडशो वर्गः।

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः॥ ६ ॥

भा०—जो शूरवीर पुरुष अदानशील, कंजूस, दूसरों को अधिकार और आवश्यक भोजन, धन, वेतन आदि भी न देने वाले अत्याचारी पुरुषों को सब प्रकार से भयभीत करके उनसे चोर डाकू के समान धन को छीन ले आता है उस राष्ट्र के बहुत अधिक कार्य करने वाले, सत्य और न्याय के बल से बलवान्, सुखों के वर्षक नरश्रेष्ठ पुरुष के लिये हम लोग ऐश्वर्य उत्पन्न करें और राज्यपद का अभिषेक करें।

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम्।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥

भा०—हे सेनापते ! जिस कारण से तू सोता हुआ साप जिस प्रकार बिजली की कड़क से जाग जाता है उसी प्रकार सोते हुए, बेखबर पड़े साप के समान कुटिल, सामने से चढ़ाई करने वाले शत्रु को अपने प्रबल शस्त्र-बल से खूब अपनी शक्ति का परिचय करा देता है, कि सुधर जाओ नहीं तो कठोर दण्ड पाओगे, इसलिये तू अपने बल को खूब अच्छी प्रकार दृढ़ बनाये रख। काम अभिलाषा से हृष्ट पुष्ट हुए अपने पति को देख कर जिस प्रकार स्त्रियें अधिक प्रसन्न होती हैं उसी प्रकार हे राजन् ! अति हर्ष से युक्त तुझको प्राप्त करके राष्ट्र के पालन करने वाली सेनाएं, और ज्ञानी पुरुष और वेग से जाने वाले रथी और वीर योद्धा और समस्त विद्वान् और विजिगीषु जन, तेरे हर्ष में हर्षित हों।

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी पर सूखा डालने वाले अर्थात् न बरसने वाले या बलवान् जल से भरे हुए, पृथिवी से जौ आदि धान पैदा करने वाले बढ़ते हुए मेघ को और जल से भरे हुए उसके भागों को विविध प्रकार से छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! सेनापते ! तू प्रजा के रक्त शोषण करने वाले, अपने पेट और कोशक को भरने वाले, कुत्सित अन्न के खाने और अन्यों को देने वाले, विघ्नकारी शत्रु को और नगर को घेरने वा नाश करने वाले शत्रु की नगरियों को जब विविध उपायों से तोड़ता है तब मित्र राजा, सर्वश्रेष्ठ सेनापति, शासनकारी, अति वेग से जाने वाला सैन्यदल, भूमिवासी प्रजाजन और सूर्य वा आकाश के समान विद्वान् जन हमारी वृद्धि करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१०४]

१, ४, ५ स्वराट् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७ त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥

भा०—दिन और रात प्राप्त करने योग्य समीप में होकर ले जाने में समर्थ अश्वों, अश्वारोहियों को अब साथ ले तथा युद्धादि कार्य से युक्त करके और ज्ञानवान् या वेग से जाने वाले अन्य पदाति सैन्यों को छोड़ कर अथवा पक्षियों के समान पिञ्जरे में बंधे कैदियों को छोड कर ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् ज्ञानी पुरुष जिस प्रकार अपने आसन पर विराजता है उसी प्रकार हे राजन्! हे विद्वन्! तेरे विराजने के लिये स्थान, आसन बनाया जावे तू उस पर विद्वान् या अन्तरिक्ष में गर्जते मेघ के समान विराज। अर्थात् युद्धादि द्वारा सिंहासन पर विराज। अथवा किरणों को दूर दूर तक फैला कर सूर्य जिस प्रकार अपने स्थान अन्तरिक्ष में विराजता है उसी प्रकार घोड़ों या अश्वारोही वीर कार्य-कुशल पुरुषों को देश विजय और शासन के लिये छोड़ कर आप सिंहासन पर विराजे।

अध्यात्म में—प्राप्त विषय का ज्ञान कराने वाले ज्ञानेन्द्रियों को विषयों से छुडाकर आत्मा अपने आश्रय हृदय देश में विराजे। जो ईश्वर अपने प्राप्त ज्ञानी और भोक्ता जीवों को मुक्त करता है वह हृदय देश में विराजे।

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुवितायं वर्णम् ॥२॥

भा०—वे नाना देशवासी नायक, प्रजाओं के मुख्य पुरुष ऐश्वर्यवान् राजा और ज्ञानवान विद्वान् के पास रक्षा, शरण और ज्ञान प्राप्त करने

के लिये आवें। वह शीघ्र ही उनको उत्तम उत्तम मार्गों का उपदेश करे। दानशील, अन्नादि का दाता विद्वान् स्वामी अपने अधीन सेवक जन के क्रोध, उद्वेग को सदा दूर करते रहें। वे हम प्रजाजनों के हितार्थ उत्तम कार्य में लगाये गये को वरण करने योग्य उत्तम धन, वेतन आदि प्राप्त करावें। अथवा देव विद्वान् गण, नाशकारी दुष्ट पुरुष के क्रोध को नाश करें। और हम में से उत्तम मार्ग पर जाने वाले को उत्तम वर्ण, पद या धन प्राप्त करावें।

अव॒ त्मना॑ भरते॒ केत॑वेदा॒ अव॒ त्मना॑ भरते॒ फेन॑मु॒दन्।
क्षी॒रेण॑ स्ना॒तः कुय॑वस्य॒ योषे॑ ह॒ते ते स्या॑तां प्रव॒णे शिफा॑याः ॥३॥

भा०—एक पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करके और ज्ञानवान् होकर भी अपने मतलब से, अपने स्वार्थ से चक्र वृद्धि ब्याज आदि द्वारा बढ़े हुए धन और ज्ञान को नीच उपाय से प्राप्त करता है और नीच कार्य में ज्ञान और धन का उपयोग करता और दूसरा स्वभावतः नीच उपाय से धनादि हरता है वे दोनों जलाशय में मानों जल से व्यर्थ नहाते हैं। वे दोनों भीतर मलिन होते हैं। वे दोनों कुत्सित यव वाले अर्थात् दरिद्र की स्त्रियां जिस प्रकार नदी की ढाल में खड़ी अथवा परस्पर के आक्षेप, निन्दा, कलहवृत्ति के नीच व्यवहार में पड़कर आपस में लड़तीं और नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार वे दोनों भी नष्ट हो जाते हैं। अथवा ऐश्वर्य प्राप्ति का उत्तम उपाय जान करके भी स्वार्थ के निमित्त नीच उपाय से धन संग्रह करता है वह मानो जल से स्नान करके भी अपने निमित्त जल में फेना ही प्राप्त करता है। और यदि कुत्सित अन्न खाने वाले दरिद्र पुरुष की दो स्त्रियां हों तो वे दोनों नदी प्रवाह के समान कलह के नीच व्यवहार में डूब कर नष्ट हो जाती हैं।

यु॒योप॒ नाभि॒रुप॑रस्या॒योः प्र पूर्वा॑भिस्तिरते॒ राष्टि॒ शूरः॑।
अ॒ञ्ज॒सी कु॑लि॒शी वी॒रप॑त्नी॒ पयो॑ हिन्वा॒ना उ॒दभि॑र्भरन्ते ॥ ४ ॥

भा०—मेघ के समान प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य देने वाले, सब प्रजाओं को परस्पर मिलाये रखने वाले, सबके जीवनाधार, राष्ट्र के प्राण स्वरूप पुरुषों का केन्द्र या आश्रय होकर राजा सबको मोहित करता है। वह शूरवीर होकर समुद्र के समान धनैश्वर्यों से पूर्ण, समृद्ध प्रजाओं के साथ राज्य करता और राष्ट्र में प्रकाशित होता है और खूब अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है। जिस प्रकार जल बहाती हुई, बढ़ती उमड़ती हुई नदियां जलों से समुद्र को भर देती हैं उसी प्रकार उस समुद्र समान पुरुष को नाना उत्तम गुणों से युक्त या अन्न समृद्धि से भरी पूरी कुलिश अर्थात् शस्त्रास्त्र से राष्ट्र की रक्षा करने वाली और वीर नायक को अपने पालक रूप से धारण करने वाली अथवा वीर्यवान् पुरुषों को पालन करने वाली प्रजाएं बल, वीर्य की वृद्धि करती हुई समुद्र को जल से भरने के समान ऐश्वर्यों से उसे पूर्ण कर देती हैं। इति सप्तदशो वर्गः।

प्रति॒ यत्स्या नीथाद॑र्शि॒ दस्यो॒रोको॒ नाच्छा॒ सद॑नं जान॒ती गा॑त्।
अध॑ स्मा नो मघवञ्चर्कृ॒तादिन्मा नो॑ म॒घेव॑ निष्ष॒पी परा॑ दाः ॥५॥

भा०—मार्ग जिस प्रकार भवन के रूप में बने डाकू के घर तक जाता है ठीक इसी प्रकार जो वह न्यायसरणि या आप्त प्रजा दीख रही है वह एक मार्ग के समान डाकू के घर को ही अपना शरण सा जानती हुई प्राप्त हो सकती है। अर्थात् प्रजाजन न्याय लेने के लिये डाकुओं के गढ़ को ही राजसभा सी जान कर उसमें भी प्रवेश कर सकती है। फलतः प्रजा भी बुरे राजा को अच्छा राजा जानकर उसके अधीन हो जाती है। तब हे ऐश्वर्यवन्! स्थिर रूप से निर्धारित किये धर्म मार्ग से हमें ले चल। और स्त्री-भोग का व्यसनी जिस प्रकार स्त्री-व्यसन में ही नाना धन नाश कर डालता है उसी प्रकार तू हमें अपने व्यसनों के कारण पराये हाथों मत दे डाल, हमारा विनाश मत कर।

स त्वं न॑ इन्द्र॒ सूर्ये॒ सो अ॒प्स्व॑नागा॒स्त्व आ भ॑ज जीवशं॒से।
मान्त॑रां भु॒जमा री॑रिषो नः॒ श्रद्धि॑तं ते मह॒त इ॑न्द्रि॒याय॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन ! तू हमारे बीच में जीवन प्रदान करने से स्तुतियोग्य सूर्य के समान सर्व जीवनप्रद, तेजस्वी पद पर प्राप्त हो। वह तू प्रजाओं के बीच सब प्राणियों से स्तुति करने योग्य हिंसा, पीडा आदि पापाचरण से रहित रहने में लगा रह। तू अपने राष्ट्र के भीतर रमण करने वाली,-तेरा पालन करने वाली और तेरे द्वारा भोगी जाने योग्य प्रजा को भी अपनी अन्तःपुर की भोक्तव्य स्त्री के समान थोडा भी पीड़ित मत कर। तेरे बड़े भारी सामर्थ्य और ऐश्वर्य पद और अधिकार के लिये हमारा सदा बड़ा आदर भाव बना रहे।

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७॥

भा०—हे अनेक प्रजाओं से सत्कार करने योग्य ! आदरणीय, माननीय राजन् ! मैं भी तेरा मान करता हूं। तेरे कार्य और वचन सत्य और आदर योग्य माने जायें। तू सब सुखों को वर्षाने हारा, मेघ और सूर्य के समान उदार, बलवान् होकर बडे भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये हमें प्रेरित कर। हे राजन् हमें वे बने, बिन सजे, टूटे फूटे, ढहे घर में मत रख और हममें से भूख से पीडित जनों को अन्न और दूध आदि पान करने योग्य पदार्थ प्रदान कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे स्तुत्य ! मैं तेरा मनन करता हूँ। तुझ पर हमारी श्रद्धा है। तू हमें महान ऐश्वर्य की तरफ ले चल। कर्म और उत्तम कर्म-फल से रहित योनि अर्थात् भोगयोनि पशु आदि शरीर में मत डाल। हम भूखे प्राणियों को अन्न और जल दूध आदि सदा प्रदान कर।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन ! राजन ! हमें मत मार। हमें कभी त्याग मत कर। हमारे प्रिय भोजनों और भोगने योग्य वस्तुओं को मत चुरा अर्थात् हमसे मत छीन और मत छीनने दे। हे ऐश्वर्यवन् ! हे शक्तिशालिन ! हमारे

गर्भगत सन्तानों को मत विनाश होने दे। अर्थात् भय से व्यथित करके गर्भिणी स्त्रियों को दुःखित मत कर और मत होने दे, हमारे सहोदर, जन्म से एक साथ उत्पन्न कच्चे पात्रों के समान स्वरूप बल वाले, असमर्थ, पालन करने योग्य बालकों को मत विनष्ट कर अर्थात् गर्भगत और कच्ची उमर के बच्चों की रक्षा कर। हे परमेश्वर! हमारे गर्भों को और नाना जन्मोपार्जित कर्मों से युक्त पालन करने योग्य देहों को कच्चे घड़े के समान मत टूटने दे, उनकी रक्षा कर। इति अष्टादशो वर्गः।

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुर॒यं सु॒तस्तस्य॑ पिबा॒ मदा॑य।
उ॒रु॒व्यचा॑ ज॒ठर॒ आ वृ॑षस्व पि॒तेव॑ नः शृणुहि हू॒यमा॑नः ॥६॥१६॥

भा०—हे राजन् तू प्रजा के साक्षात् कार्यव्यवहार में आगे आ। अथवा अश्वादि द्वारा जानने वाला या साक्षात् आदर सत्कार योग्य या तेजस्वी होकर हमें प्राप्त हो। तुझे विद्वान् ऐश्वर्य का इच्छुक कहते हैं। यह अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य है। उसको प्रजा के हर्ष और आनन्द प्राप्त कराने के लिये प्राप्त कर, उसका उपभोग कर। तू विशाल और विविध सत्कारों, ज्ञानों और सामर्थ्यों से युक्त होकर उदर में दुग्ध आदि के समान अपने उत्पन्न होने के स्थान राष्ट्र में ही बलवान् होकर रह, उसमें सुखों की वर्षा कर और हमारे पालक के समान आदर पूर्वक बुलाया जाकर हमारी प्रार्थनाओं को सुन।

अध्यात्म में—हे आत्मन्! तू साक्षात् हो। तू आनन्द का इच्छुक है। इस आत्मानन्द रस का पान कर। अपने स्वरूप में बल प्राप्त कर, और हमारे स्तुति-वचन सुन।

[१०५]

१—१९ आप्त्यस्त्रित ऋषिः, आङ्गिरस कुत्सो वा। विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, २, १६, १७ निचृत्पङ्क्तिः। ३, ४, ६, ९, १५, १८ विराट् पङ्क्तिः। ८,१० स्वराट् पङ्क्तिः। ११, १४ पङ्क्तिः। ५ निचृद् बृहती। ७ भुरिग्बृहती। १२ महाबृहती। १९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

च॒न्द्रमा॑ अ॒प्स्व१॒॑न्तरा सु॑प॒र्णो धा॑वते दि॒वि ।
न वो॑ हिरण्यनेमयः प॒दं वि॑न्दन्ति विद्युतो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥१॥

भा०—चन्द्र जलों के मध्य अर्थात् जलमय होकर और आकाश में उत्तम रश्मियों से युक्त होकर गति करता है। हे ज्ञानी पुरुषो! आकाश में विशेष दीप्तियें या किरणें सुवर्ण के समान धार वाली होकर तुम लोगों के ज्ञान गोचर नहीं होतीं। हे सूर्य और पृथिवी! तुम दोनों मुझ ज्ञानेच्छु पुरुष को इस उक्त रहस्य का ज्ञान प्राप्त कराओ।

राष्ट्रपक्ष में—प्रजाओं और ज्ञानवान् पुरुषों, विद्वत्सभा के बीच उत्तम वेगवान् रथ या वाहनों से युक्त होकर प्रजाओं को आह्लाद देने वाला, प्रजा के चित्तों को अनुरंजन करने वाला राजा राष्ट्र में भ्रमण करता है। किन्तु हित और रमणीय स्वभाव वाले तेजस्वी पुरुष, हे प्रजा-जनो! आप लोगों के स्थान तक नहीं आते। हे राज-प्रजावर्गो! या विद्वान् आचार्य और गुरुजनो! मेरे इस रहस्य का आप दोनों ज्ञान कराओ और करो।

अर्थ॒मिद्वा उ॑ अ॒र्थिन॒ आ जा॒या यु॑वते॒ पति॑म् ।
तु॒ञ्जाते॒ वृष्ण्यं॒ पयः॑ परि॒दाय॒ रसं॑ दुहे वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥२॥

भा०—जिस प्रकार धन के अभिलाषी जन धन को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार स्त्री, पत्नी पति को प्राप्त होकर प्रसन्न होती है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर जिस प्रकार निषेक करने योग्य पुष्टिकारक धातु, वीर्य का एक दूसरे को प्रदान करते और लेते हैं उसी प्रकार धन और धनाभिलाषी दोनों भी सुखवर्धक, पुष्टिकारक अन्नादि लेते और देते हैं। धन ही अन्नादि देता है और अर्थी धन द्वारा ही लेता है। इसी प्रकार पृथ्वी और सूर्य, राजा और प्रजा भी मिलकर वर्षण योग्य जल तथा बलवान् पुरुषों के योग्य बल वीर्य का परस्पर आदान प्रदान करते और जिस प्रकार भूमि सूर्य प्रकाश लेकर उसको अपना जल प्रदान करती है और स्त्री जिस प्रकार आश्रय, वस्त्र अन्न और हृदय-प्रेम आदि लेकर पति को अति सुख

प्रदान करती है और गौ जिस प्रकार घास आदि खाकर क्षीर दोहन करती है उसी प्रकार प्रजा या भूमि भी, राजा के बल पराक्रम को लेकर स्वाद सारमय बहुमूल्य ऐश्वर्य प्रदान करती है। हे सूर्य और पृथिवी के समान स्त्री पुरुषो! राजा और प्रजाओ! गुरु शिष्यो! तुम दोनों मेरे इस प्रकार के कथन का सत्य रहस्य जानो।

मो षु दे॑वा अ॒दः स्व॒१र्व॑ पादि दि॒वस्परि॑ ।
मा सो॒म्यस्य॑ शं॒भुवः॒ शूने॑ भूम॒ कदा॑ च॒न वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥३॥

भा०—हे विद्वानो और विजयाभिलाषी पुरुषो! वह परला सूर्य समान तेजस्वी राजा तथा पारलौकिक सुख, आकाश मे अन्तरिक्ष से भी परे विद्यमान सूर्य के समान ही ज्ञान प्रकाश के उत्तर काल मे होता है वह कभी नीचे न गिरे, कभी नष्ट न हो, ऐश्वर्य के योग्य शान्ति देने वाले राजा के विपरीत हम प्रजाजन कभी न हों। हे राजा, प्रजावर्गो! तथा गुरु शिष्यो! स्त्री पुरुषो! मेरे इस उपदेश युक्त वचन को आप लोग जानो। हे ज्ञानेच्छु शिष्यो! वह परम सुखकारी ज्ञान प्रकाश गुरु से प्राप्त होकर नष्ट न हो। हम शिष्य जन शिष्यो के हितकारी शान्तिकारी, कल्याणजनक गुरु के सुख सेवादि कार्य मे कभी आलस्य न करें। गृहस्थ सुख के देने और रमण क्रीडा करने वाली स्त्री से प्राप्त होने वाला वह गृह्य-सुख कभी नष्ट न हो। हम दाराजन ऐश्वर्यवान् शान्तिदायक पति की सेवा परिचर्या मे प्रमाद न करें।

य॒ज्ञं पृ॑च्छाम्यव॒मं स तद्दू॒तो वि वो॑चति ।
क्व॑ ऋ॒तं पू॒र्व्यं ग॒तं कस्तद्बि॑भर्ति॒ नूत॑नो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥४॥

भा०—शिष्य कहता है हे विद्वान् गुरो! मै उत्तम रक्षा करने के साधनो से सम्पन्न सब सुखों, ऐश्वर्यों के दाता, सर्व पूजनीय, परम उपास्य प्रजापति परमेश्वर को लक्ष्य करके प्रश्न करता हूं। वह तू तपस्वी, ज्ञानवान्, परिचर्या करने योग्य आचार्य रूप होकर राजा का सदेशहर दूत जिस प्रकार खोज खोज कर, गहरी गहरी बातें बतलाता है उसी

प्रकार तू विविध ज्ञानों को या विशेष ज्ञानों का विविध प्रकार से उपदेश करता है, पूर्व ऋषियों से प्राप्त वेद का सत्य ज्ञान कहां है और नये वर्तमान के ज्ञान को कौन नया विद्वान् धारण करता है। उपदेश करने और लेने हारे गुरु शिष्य मेरे उपदेश किये इस प्रकार के प्रश्नों का ज्ञान सम्पादन करें। मूल सत्य कारण अब कहा गया और उसको कौन सा नूतन कारण धारण करता है इस बात को आकाश और पृथिवी ही जानते हैं।

इसी प्रकार रक्षा-साधनों से युक्त, प्रजापति राजा के विषय में प्रश्न करूं या जानना चाहूँ तो उसका विशेष ज्ञान गुप्त दूत ही बतला सकता है। पूर्व के राजाओं और अधिकारियों से प्राप्त धन कहा है और अब उसको कौन धारण करता है? यह राज प्रजावर्ग सब अच्छी प्रकार जानें। सबसे छोटा यज्ञ कौन है। यह विद्वान् ही बतलावे। पूर्व का जीवन का मूल कारण वीर्य आदि कहां जाता है और नया पुत्र आदि कौन उसको धारण करता है। माता पिता इस रहस्य को जानें।

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५॥२०

भा०—हे दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् जनो और पृथिव्यादि लोको! जो ये तुम नाना पृथिवी आदि लोक सूर्य के प्रकाश में तीनों कालों और तीनों लोकों में व्यापक या प्रत्यक्ष विद्यमान हो तुम्हारा मूल कारण आदि प्रवर्तक बल कहा है। उस प्रवर्त्तक बल से भिन्न 'अनृत' अर्थात् जड, प्रकृति अब कहा है। तुम्हारी अनादि काल से चली आई धारण करने और बल देने या उत्पन्न करने वाली पुन. अपने में समा लेने वाली शक्ति कहां है। हे गुरु शिष्य दोनो! मुझ विद्वान् से इस तत्व का ज्ञान प्राप्त करो।

ये जो आप विद्वान् जन हैं सत्य ज्ञान के प्रकाश में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोटि के पुरुषों में या तीनों कालों में हैं। आपके लिये

सत्य और असत्य कहां है। सनातन की वेदवाणी या मुख्य आज्ञा कहां स्थित है। यह राजा प्रजा वर्ग दोनो जानें। इति विंशो वर्गः।

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम्।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६॥

भा०—तुम्हारे मूल सत् कारण, सत्य ज्ञान और बल, वीर्य के बल को मेघ या समुद्र के समान धारण करने वाला कहा है। सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का साक्षात् दर्शन या ज्ञान कैसा है सूर्य के समान तेजस्वी, सब दुष्टों के नियन्ता, कठिनता से चिन्तना करने योग्य, बुद्धि के अगम्य परमेश्वर को किस महान् उपदेशमय मार्ग से प्राप्त करें।

हे शूरवीर, ज्ञानी पुरुषो! तुम्हारे ऐश्वर्य को धारण करने वाला राजा कहां है? दुःखों के वारक राजा का चक्षु अर्थात् राज्यप्रबन्ध देखने का साधन कहा है? न्यायकारी शत्रु नियन्ता राजा के किस किस न्याय मार्ग से हम दुष्ट पुरुषों को वश करें। राज प्रजावर्गो! तुम दोनो इस बात का अच्छी प्रकार ज्ञान करो।

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित्।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७॥

भा०—मैं जीव वही हूं जो पूर्व काल में, इस देह से पूर्व भी विद्यमान रहा। और इस उत्पन्न जगत् में या इस देह के उत्पन्न हो जाने पर अब कुछ पदों या वाक्यों का उच्चारण करता हूं। भेड़िया जिस प्रकार प्यासे मृग को जा पकड़ता है, उसकी प्यास लगी की लगी रह जाती है और व्याघ्र उसके प्राण अपहरण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार उसी मुझ जीव को मानसी व्यथाएं और चिन्ताएं और देह के रोग आदि आ घेरते हैं। जीव की कामनाओं की प्यास पूरी नहीं हो पाती और चिन्ताए जीवन समाप्त कर देती हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

राष्ट्रपक्ष में—मैं वही राजा हूं जो पहले अभिषेक काल में कुछ एक

वचन कहता हूँ। प्यासे मृग को वाघ के समान अब मुझे प्रजापालन की चिन्ताएं खाए जाती हैं। राज प्रजावर्ग दोनों उसको जानें और दूर करें।

सं मा॑ तपन्त्य॒भित॑: स॒पत्नी॑रिव॒ पर्श॑वः। मूषो॒ न शि॒श्ना व्य॑दन्ति मा॒ध्य॑: स्तो॒तारं॑ ते शतक्रतो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥८॥

भा०—हे सैकड़ों कर्मों और ज्ञानों के स्वामिन्! प्रभो! परमेश्वर! पास रहने वाली या आलिंगन करने हारी बहुत सी स्त्रियां जिस प्रकार अपने दरिद्र या वृद्ध पति को बहुत कष्ट देती हैं उसी प्रकार ग्राह्य विषयों तक पहुचने वाली इन्द्रियां सब तरफ मुझ जीव को संताप उत्पन्न करती हैं। मूषक जिस प्रकार विना धुले माडी आदि से मढे सूतों को खा जाता है या जैसे मूषा अपनी तैलादि से युक्त पुच्छ आदि को स्वादु जान कर खाता है उसी प्रकार मानस चिन्ता और शारीरिक रोग तेरी स्तुति करने हारे मुझे खाये जाते हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

मुझ प्रजाजन को सौतों के समान पास के जन या परशुओं को धारण करने वाले शस्त्र-धर शत्रुजन पीड़ित करते हैं। हे राजन्! तेरे स्तुति करने वाले को मानस चिन्ताएं खाए जाती हैं। हे दुष्टों को रुलाने वाले वीर राजा और न्यायाधीश तुम दोनों मुझ प्रजाजन की इस स्थिति को जानो और उपाय करो।

अ॒मी ये स॒प्त र॒श्मय॒स्तत्रा॑ मे॒ नाभि॒राត॑ता।
त्रि॒तस्तद्वे॑दा॒प्त्यः स जा॑मि॒त्वाय॑ रेभति वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥९॥

भा०—जो ये सात या सर्पणशील, निरन्तर गति करने हारे दीपक या सूर्य की किरणों के समान फैलने वाले और अश्व की रासों के समान देह को वश करने वाले सप्त प्राण हैं उनके आश्रय मेरी नाभि, देह का केन्द्र स्थान या सुप्रबन्ध व्याप्त है। आप्तजनों में श्रेष्ठ अथवा प्राणों के तत्वों को जानने हारा योगी या आत्मा ही सब अज्ञान बन्धनों को पार करके उस परम ज्ञान रहस्य को जान लेता है। वही परम बन्धुता को

प्राप्त करने के लिये परमेश्वर की स्तुति करता है। हे स्त्री पुरुषो! या हे गुरु शिष्यो! आप मुक्त आत्मा के इस रहस्य को जानो।

राष्ट्रपक्ष मे—ये जो सात राष्ट्र को वश करने वाले देह मे सात धातु और सात प्राणो के समान राज्य के सात अग हैं उनमे ही मुक्त राजा और प्रजाजन दोनो का शासन सुप्रबन्ध स्थित है। आपः अर्थात् आप्त प्रजाजनो का हितकारी मित्र, शत्रु और उदासीन तीनो मे से अधिक शक्तिमान् या तीनो के भीतर व्यापक ज्ञानवान् पुरुष उस तत्व को जाने। वह परस्पर के बन्धु भाव की वृद्धि के लिये सब को उपदेश करे। राज प्रजा वर्ग दोनों मेरे इस तत्व-वचन को समझें।

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी॥१०॥११

भा०—आकाश के बीच मे जिस प्रकार जल वर्षण करने वाले मेघ विराजते हैं उसी प्रकार वे जो सुखों के देने वाले महान् ज्ञानप्रकाश वाले आकाश के समान विशाल हृदयाकाश के बीच स्थित पांच प्राण हैं वे एक साथ मिल कर रहने वाले संगियों के समान होकर नित्य रहते हैं। यही बात विद्वान् पुरुषों के बीच मे उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है।

राष्ट्रपक्ष मे—बडी भारी राजसभा के बीच पांच नरश्रेष्ठ पांचों प्रकार की प्रजा के मुख्य प्रतिनिधि हो। वे एक साथ मिल कर रहें। विद्वानों के बीच कहने योग्य वचन को कहे। राज-प्रजावर्ग इस प्रबन्ध को भली प्रकार जानें।

पञ्च उक्षण.—पृथिवी मे अग्नि, अन्तरिक्ष मे वायु, आकाश मे सूर्य, दिशाओं मे चन्द्रमा, 'स्व·' अर्थात् दूर आकाश मे नक्षत्र। (तैत्ति०) पृथिवी मे अग्नि, अन्तरिक्ष मे वायु, दूर आकाश में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र और जलों मे विद्युत्। (शाखायन ब्रा०) अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत्। (सा०)। अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य इनके प्रकाश (दया०)

अध्यात्म में—पञ्च प्राणादि, पञ्च वायुगण ।

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११॥

भा०—जिस प्रकार आकाश के बीच मे किरणें किसी रुकावट के आजाने पर उसी पर पडती है । इसी रीति से वे सूर्य की किरणें क्रान्ति-मार्गों पर गति करते हुए चन्द्र को भी प्राप्त होती है । और वे ही सूर्य की किरणें विशाल समुद्र के जलो पर भी पडती है, इस प्रकार से वे चन्द्र को प्रकाशित करती है और उदय और अस्त कालो मे जलपृष्ठ पर भी अद्भुत दृश्य उत्पन्न करती है । उसी प्रकार ये उत्तम रीति से पालन पोषण करने के साधनो वाले, उत्तम ज्ञानो से युक्त विद्वान् जन और उत्तम यान साधन रथो वाले वीर जन विजयेच्छु शत्रुराजा के रोकने के निमित्त बीच ही मे आखडे हों । वे मार्गों पर जाते हुए चोर पुरुष को पकड लेवें । और बडी भारी प्रजाओं के भीतर जाते हुए या बडी बडी नदियों को तैरते हुए चोर पुरुष को भी पकडें । अर्थात् वे सूने रास्ते चलते हुए या भीड मे छुपते हुए अपराधी को भी पकडें । हे राजा प्रजाजनो ! और गुरु शिष्यो ! आप राज प्रजावर्गों के विषय मे यही व्यवहार जानो । वे उत्तम ज्ञान तथा तेजस्वी पुरुष मोक्ष ज्ञान के बीच मे सयमपूर्वक दमन कर्म में निष्ठ होकर विराजते है । नाना मार्गों मे जाते हुए तथा बडे बलशालीन प्राणो मे गति करने वाले सब दुःखो के छेदन वज्ररूप आत्मा को प्राप्त होते हैं ।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार नदियें जल बहाती है और सूर्य जिस प्रकार सत्य अर्थात सबको साक्षात् दीखने वाला या सब वस्तुओं के सत्य स्वरूप को दिखाने वाला अपना प्रकाश सबके हित के लिये फैला देता है, वह प्रकाश को किसी से छिपाकर नहीं रखता है, उसी प्रकार हे विद्या

के देनेवाले विद्वान् पुरुषो और जिज्ञासु शिष्यो ! आप लोग उस परम अति स्तुत्य, सद्यः प्राप्त, अपने मे धारित और सबके हितकारी, लाभ-दायक वेदमन्त्रो मे विद्यमान उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य सत्य वेद ज्ञान को सबको प्रदान करो, ग्रहण कराओ और उसको फैलाओ। हे स्त्री पुरुषो ! हे राज प्रजावर्गो ! हे गुरुशिष्यो ! मेरे इस उपदेश का ज्ञान करो।

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम्।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसीः १३

भा०—हे सकल विद्याओ के जानने हारे विद्वन् ! तेरा वह ज्ञान करने योग्य उत्तम विद्यामय ज्ञान, ज्ञान की कामना करने हारे शिष्यों और विद्वानो मे भी प्राप्त करने योग्य है। अथवा तेरा शिष्यों के प्रति वह उत्तम बन्धु भाव है। तू उच्च आसन पर विराज कर और उनके अज्ञान आदि दोषो को नाश करने मे समर्थ और अधिक विद्वान् होकर मननशील शिष्यो और विद्वानो से युक्त होकर हममे से धन देने मे समर्थ तथा ज्ञान के जिज्ञासु शिष्य जनो को सब प्रकार के ज्ञानो का लाभ करा। (वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत्)।

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी॥१४॥

भा०—उच्च आसन पर विराजमान, शिष्यो और सत्संगियो के अज्ञानादि दोषो और दुःखो का नाश करने हारा, मननशील पुरुषो का स्वामी, सब ऐश्वर्यो और ज्ञानो का दाता, अधिक गुणवान् या अपेक्षा से अन्यो से अधिक विद्वान् होकर ज्ञानवान्, अग्रणी नायक और आचार्य, विद्वानों, धन और ज्ञान के अभिलाषी पुरुषों को ग्रहण करने योग्य अन्न, धनादि और ज्ञानों को प्रदान करे। वह स्वयं विद्वान् सूर्य के समान अन्य विद्या के अभिलाषी जनों के बीच मेधावी, बुद्धिमान्, वाग्मी होकर

रहे। नायक राजा विजयेच्छु वीरों को धनैश्वर्य दे और उनके बीच में शत्रुनाशक तेजस्वी सूर्य के समान होकर रहे।

ब्रह्मा॑ कृणोति॒ वरु॑णो गातु॒विदं॒ तमी॑महे।
व्यू॑र्णोति हृ॒दा म॒तिं नव्यो॑ जायतामृ॒तं वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥१५॥२२॥

भा०—जो सर्वश्रेष्ठ, सबसे वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक वीर नायक, राजा, परमेश्वर और विद्वान् ऐश्वर्य, ब्रह्म ज्ञान तथा द्रव रक्षण आदि कार्य सम्पादन करता है उस वेद वाणी के जानने वाले, श्रेष्ठ मार्ग के बतलाने वाले और पृथ्वी के स्वामी को हम याचना करें, उसकी उपासना करें अथवा महान् परमेश्वर या विद्वान् जिस शिष्य को वेदज्ञ बना देता है हम उसे सत्सग के लिये प्राप्त हों। वह स्तुति करने योग्य, नव शिक्षित सदा प्रसन्न होकर हृदय से विचार विचार कर ज्ञान को विविध प्रकारों से प्रकट करे और उसका विस्तार करे, वह उसका उपदेश प्रमाण योग्य, विश्वास्य, सत्य हो। अथवा आचार्य हृदय से मनन योग्य ज्ञान प्रकट करे और नवीन शिष्य उस सत्य ज्ञान को प्राप्त करे। शेष पूर्ववत्।

अ॒सौ यः पन्था॑ आदि॒त्यो दि॒वि प्र॒वाच्यं॑ कृ॒तः।
न स दे॑वा अति॒क्रमे॒ तं म॑र्तासो॒ न प॑श्यथ वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥१६॥

भा०—आकाश में या प्रकाश के निमित्त जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार जो यह परम उत्कृष्ट मार्ग मुमुक्षु और जिज्ञासु जनों को प्राप्त करने योग्य, सबके स्वीकारने योग्य, प्रकाशमान अखण्ड ब्रह्म से उत्पन्न ज्ञान-प्रकाश के प्राप्त करने के लिये उपदेश प्रवचन द्वारा गुरु शिष्य परम्परा से उपदेश किया जाता है, हे विद्वान् पुरुषो! हे जिज्ञासुओ! वह महान् ज्ञानमार्ग, वेदप्रतिपादित मार्ग कभी उल्लघन करने योग्य नहीं है। हे मरणशील, अज्ञानी पुरुषो! तुम लोग उसको नहीं देख रहे हो। आओ उसके साक्षात् करने का यत्न करो। शेष पूर्ववत्।

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी॥१७॥

भा०—दुःखो मे फंसा हुआ पुरुष तीनों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों से घिरा हुआ मानो कुए मे गिरे मनुष्य के समान ही उत्तम विद्वान्, ज्ञान और हस्तावलम्ब देने वाले दयाशील पुरुषो को अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये पुकारता है, उनके पास जाता है। वेद वाणी का तथा बड़े भारी ब्रह्माण्ड का स्वामी, प्रभु परमेश्वर और वह दयाशील पुरुष चारों तरफ से आघात करने वाले कष्टों और पापो से बचाने के लिये बड़ा यत्न करता हुआ उसकी पुकार को गुरु के समान श्रवण करता है।

विद्या, शिक्षा और ब्रह्मचर्य, इन तीनो मे निष्णात होकर पुरुष कूप अर्थात् हृदयगुफा मे अवहित, सावधान, दत्तचित्त, ध्यानावस्थित होकर अपनी रक्षा तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये उत्तम दिव्य गुणो को धारण करता और विषयो में क्रीड़ाशील इन्द्रियगणों को अपने वश करता है। तब वह स्वयं बडी भारी वेद वाणी का पालक, विद्वान् ज्ञानी होकर और पापाचार से पृथक् होकर वड़ा यत्न करता हुआ उस परमपद, ब्रह्म के स्वरूप या भीतरी आत्मादि के ज्ञान को श्रवण करता है। शेष पूर्ववत्।

अरुणो मासकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥

भा०—जिस प्रकार लाल रंग का मांसखोर बाघ मार्ग से जाते पुरुष को देखे और पीठ में थकान अनुभव करने वाले बढ़ई के समान झुक करके उस पर जा पडता है और जिस प्रकार मासो को विभाग करने वाला आकाश मार्ग से जाने वाला चन्द्र विशाल आकाशस्थ क्रान्ति मार्ग से जाते हुए सूर्य को देखता है। बढ़ई जिस प्रकार झुक कर काम करता करता पीठ में पीडा अनुभव करने लगता है और वह बार बार

बैठ बैठ कर पुनः उठता है उसी प्रकार चन्द्र भी बार बार कलाकार या धनुषाकार कुबड़े के समान हो हो कर और आमावास्या काल में लुप्त हो होकर बार बार उदित होता है। तेजस्वी, समस्त विद्याओं को प्राप्त करने वाला शिष्य जन ज्ञानों तथा बलों का सग्रह करता हुआ, सूर्य या चन्द्र के समान तेज, ज्ञानोपदेश, शील, सदाचार आदि का अपने में धारण करने हारा होकर सन्मार्ग से जाते हुए अपने से बड़े गुरु आदि को अवश्य देखे और उसका अनुकरण करे। पीठ में पीडा को अनुभव करने वाला बढई जैसे बार बार उठता है उसी प्रकार शिष्य जन भी बार बार पूछने या प्रश्न करने के कार्य में खूब आनन्द लेने वाला, खूब प्रश्नाभ्यासी होकर समस्त सदेहों का समाधान कर कर के और गुरु के उपदेशों को सुन सुन कर और गुरु की बार बार पूजा सत्कार और विनय कर कर के ऊपर उठे, उन्नत पद को प्राप्त करे।

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः१८।२३।१५

भा०—इस उपदेश देने हारे विद्वान् तथा उसके दिये उपदेश से हम सब प्रकार के वीर पुरुषों और बलवान् प्राणों से युक्त होकर ऐश्वर्यवान् स्वामी तथा आचार्य के अधीन रह कर, उसको प्रमुख रूप से अपनाते हुए हम विरोधी शत्रु और भीतरी काम, क्रोध आदि दुर्व्यवहारों और दुराचारों को दूर करने वाले बल को प्राप्त करने में सदा तैयार रहें। शेष पूर्ववत्। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

इति पञ्चदशोऽनुवाकः॥

[१०६]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—१-६ जगती। ७ निचृत् त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१-६ निषादः। ७ धैवतः॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे। रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥१

भा०—हम लोग ऐश्वर्यवान् राजा, उपदेशप्रद आचार्य, विद्युत् और सूर्य मरण भय से बचाने वाले प्राण तथा मित्रजन, सर्वश्रेष्ठ दुःखों के वारक तथा समुद्र, अग्नि, विद्युत् आदि तत्वज्ञानी, ज्ञानप्रकाशक विद्वान् तथा अग्रणी नायक जन और विद्वानों, वीरभटों तथा अन्यान्य वायुओं और प्राणों के बल, शत्रुघातक सैन्य को पिता, माता, आचार्य तथा मूल उत्पादक कारण, शत्रुघातक सैन्य तथा परब्रह्म आदि अन्य अखण्ड शक्ति वाले तत्वों और पूज्य पुरुषों को अपनी रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वीकार करें। और उत्तम दानशील या रक्षाकारी पुरुष जिस प्रकार दुर्ग अर्थात् विषम स्थानों से रथ को बचा ले जाते हैं उसी प्रकार प्रजाओं को सुख से चलाने वाले और विद्यादि उत्तम गुणों से रहने वाले पुरुष हमारी सब प्रकार के पाप से रक्षा करें, बचावें।

त आ॑दित्या आ ग॑ता स॒र्वता॑तये भू॒त दे॑वा वृत्र॒तूर्ये॑षु श॒म्भुवः॑ ।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥२॥

भा०—जैसे सूर्य के किरण अथवा अखण्ड, अविनाशी अग्नि आदि तत्व दिव्य शक्ति और तेज से युक्त एवं बल के देने वाले होकर मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों के नाश करने के कार्यों में सब सुखजनक और शान्तिजनक होते हैं। उसी प्रकार हे सूर्य के समान तेजस्वी, राष्ट्र के मुख्य कार्यों और ऐश्वर्यों को अपने हाथ में लेने वाले विद्वान्, विजयार्थी और दानशील पुरुषो! आप लोग आओ और बढ़ते शत्रुओं के नाशकारी संग्रामों के अवसरों में सब प्राणियों और प्रजाओं के कल्याण के लिये शान्ति उत्पन्न करने वाले होकर रहो। विषम भूमियों में रथ को बचाकर लेजाने वाले सारथियों के समान आप लोग हम लोगों को सब प्रकार के पापाचारों से, सब तरह से बचाते रहो।

अव॑न्तु नः पि॒तरः॑ सुप्रवाच॒ना उ॒त दे॒वी दे॒वपु॑त्रे ऋता॒वृधा॑ ।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥३॥

भा०—हमारी उत्तम प्रवचन अर्थात् ज्ञान और धर्म का उपदेश करने में कुशल पालक पिता माता और गुरुजन रक्षा करें और हमें ज्ञान दें। और विद्वान्, तेजस्वी किरणों और रत्नादि पदार्थों के समान पुत्रों को उत्पन्न करने वाले, स्वच्छ जलों के समान ज्ञानों और उत्तम आचरणों की वृद्धि करने वाले, अन्नादि के देने और प्रकाश करने वाले, भूमि और प्रकाश करने वाले, भूमि और सूर्य के समान पुष्टि और शिक्षा के देने और ज्ञान का प्रकाश करने वाले माता और पिता दोनों हमारी रक्षा करें। वे सब सुखकारी जल की वृष्टि करने वाले सूर्यादि लोकों के समान सब प्रजाओं को सुखसे बसाने वाले जन हम लोगों को विषम स्थान से रथ को सारथी के समान सब प्रकार के पापाचरणों से बचावें।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥४॥

भा०—इस राष्ट्र में हम लोग नायक वीर पुरुषों से स्तुति करने योग्य तथा मनुष्यों के शासक ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न बलवान् शत्रु-नाशकारी वीरों के स्वामी और उनका आश्रय सबके पोषक, सूर्य समान तेजस्वी पुरुष को विशेष ज्ञान, बल और ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हुए हम सुखजनक साधनों से युक्त उसकी याचना करते हैं और उसकी शरण आते हैं। शेष पूर्ववत्।

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शंयोर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥५॥

भा०—हे वेदवाणी के पालक एवं बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन्! विद्वन्! और ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! परमेश्वर! तेरा जो मनुष्यों को हित-कारी शान्तिदायक और दुःख विनाशक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके देने वाला ज्ञान है उसे हमारे लिये सदा ही सुखदायक कर, सुगम बना। हम उसे ही चाहते हैं, उसे ही प्राप्त हों। शेष पूर्ववत्।

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निर्वाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६॥

भा०—विद्युत् वेग से जाने वाली होकर कूप आदि गहरे स्थान में गिरता हुआ मेघों को छिन्न-भिन्न करने वाले शक्ति या समस्त कर्मों के पालक जलों के भीतर उनको फाड़ने मे समर्थ तेज को प्रकट करता है। इसी प्रकार विद्युत् आदि विद्याओं का प्रकट करने वाला विद्वान् निरन्तर ज्ञानवान् होकर, मन्त्रार्थों और सत्य सिद्धान्तों का साक्षात् करने वाला होकर, कूप आदि गिर जाने के विषम स्थान मे अज्ञानान्धकार के नाशक, सब कर्म सामर्थ्यों और वाणियों के पालक, विद्याज्ञान और धन के स्वामी परमेश्वर आचार्य और नायक पुरुष को रक्षा तथा ज्ञान वृद्धि लिये पुकारता है, उससे प्रार्थना करता है कि वह उसे गिरावट के स्थानो से बचावे। शेष पूर्ववत्।

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥७॥२४

भा०—प्रकाश देने वाली, अविनाशी, नित्य ज्ञान को देने वाली विद्या, माता और आचार्य आदि हमे दिव्य ज्ञानों, गुणो और सामर्थ्यों सहित पालन करे। त्राण करने वाला रक्षक, राजा विद्वान् और परमेश्वर हमारा पालन करे। शेष पूर्ववत्। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१०७]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः। विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥ तृच सूक्तम्॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥

भा०—विद्वानो का विद्या दान और दानशील पुरुषो का अन्न, धन आदि देना और विद्वानों, विजयी वीर पुरुषो का परस्पर मिलना तथा दिव्य पदार्थों का परस्पर संयोग अर्थात् सुसगत होकर रहना और उत्तम

शिल्प आदि सुख प्राप्त कराता है। हे तेजस्वी, किरणों और १२ मासों के समान सुख, विद्या और ऐश्वर्यों के देने और लेने हारे या अखण्ड शक्ति ब्रह्म और राजशक्ति के धारक पुरुषो! आप लोग सबको सुखी करते रहो। जो आप लोगों की शुभ मति और ज्ञानशक्ति उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली है वह विद्वान् को तथा दरिद्र पुरुष को भी सदा नये से नये रूप में प्रकट होकर प्राप्त हो।

उप॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑म॒न्त्वङ्गि॑रसां॒ साम॑भिः स्तू॒यमा॑नाः।
इन्द्र॑ इन्द्रि॒यैर्म॒रुतो॑ म॒रुद्भि॑रादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के साम, सगीतों द्वारा स्तुति किये जाकर या उत्तम वचनों द्वारा आदर पूर्वक प्रार्थना किये जाकर विद्वान् और विजयी पुरुष सूर्य की किरणों के समान अपने रक्षण सामर्थ्यों सहित हमें प्राप्त हों। इसी प्रकार आदरपूर्वक प्रार्थित ऐश्वर्यवान् पुरुष अपने ऐश्वर्यों सहित और वीरगण अपने अन्य सहयोगी विद्वानों सहित सूर्य और पृथिवी किरणों या १२ मासों के समान आचार्य और राजा आदि पूजनीय पुरुषो अपने शिष्यों और भृत्यों सहित हमें सुख प्रदान करें।

तन्न॒ इन्द्र॒स्तद्वरु॑ण॒स्तद॒ग्निस्तद॑र्य॒मा तत्स॑वि॒ता चनो॑ धात्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥३।२५

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति, सब दुःखों का वारक, सबमें श्रेष्ठ, अग्रणी नायक तथा ज्ञानी पुरुष, शत्रुओं का नियन्ता और न्यायकारी पुरुष, उत्पादक माता पिता, धर्ममार्ग का प्रेरक आचार्य तथा परमेश्वर ये सब हमें नाना प्रकार के ऐश्वर्य, अन्न, सद्वचन नाना प्रकार के सुख, शिक्षण आदि प्रदान करें। शेष पूर्ववत्। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[१०८]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ३, ६, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ९, १०, १३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

य इ॑न्द्राग्नी चि॒त्रत॑मो रथो॑ वाम॒भि विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि॒ चष्टे॑ ।
तेना या॑तं स॒रथं॑ तस्थि॒वांसाथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र और अग्नि ! वायु और आग के समान अमात्य और राजन् ! आप दोनो का अति अद्भुत रमणसाधन, विजयी रथ या राष्ट्र शासन का काम समस्त लोकों, देश तथा जल स्थल और आकाश सबको दीखता और अपने प्रकाश से चमकता है, उस रथ से आप दोनों एक ही रथ पर महारथी और सारथी के समान बैठे हुए आओ, हमें प्राप्त होओ और उत्पन्न हुए अन्नादि भोग्य पदार्थ तथा ऐश्वर्य का पान करो, उपभोग करो ।

आधिदैविक मे—इन्द्र, अग्नि अर्थात् सूर्य के प्रकाश और प्रताप, दोनो से युक्त किरण, उनका चित्रतम रथ सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता है । वे दोनों एक ही साथ आते हैं और जल का पान करते हैं, उसे सूक्ष्म रूप से खींच लेते हैं ।

अध्यात्म मे—इन्द्राग्नी' जीव और परमेश्वर इनका अद्भुत रथ देह और ब्रह्माण्ड, दोनों मे दोनो समान रूप से अधिष्ठित हैं । एक सोम अर्थात् अन्नादि का भोक्ता और दूसरा परमानन्द रसमय है ।

याव॑दि॒दं भुव॑नं॒ विश्व॒मस्त्यु॑रु॒व्यचा॑ वरि॒मता॑ गभी॒रम् ।
तावाँ॑ अ॒यं पात॑वे॒ सोमो॑ अस्त्व॒र॑मिन्द्राग्नी मन॑से यु॒वभ्या॑म् ॥२॥

भा०—यह समस्त भुवन, लोक जितना विस्तृत है और जितना यह बहुत विस्तृत विशालता से गभीर, अगाध है उतना ही ऐश्वर्यमय राष्ट्र भी हो । इन्द्र और अग्नि सूर्य और वायु और सूर्य के समान तेजस्वी राजन् और सेनापते ! तुम दोनों के चित्त के सतोष और ज्ञान और पालन करने और भोग करने के लिये यह राष्ट्र बहुत अधिक हो ।

अध्यात्म मे—जीव और परमेश्वर के लिए तो यह समस्त ससार चिन्तन और ज्ञानवर्धन तथा आनन्द अनुभव के लिये परमानन्दमय हो

जाता है। सूर्य और वायु दोनों समस्त विश्वभर के जल को अपने में धारण करते हैं।

चक्राथे हि सध्र्य१ङ् नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्॥३॥

भा०—सूर्य और वायु दोनों जिस प्रकार मिलकर वर्षा करने वाले मेघ के जल के वर्षाने वाले होकर वर्षा कर देते हैं अपना नाम, जन्म, स्वरूप आदि सब प्रजाओं के सुख के लिये समर्पित कर देते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में वे दोनों इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और उत्तम अग्रणी या नायक विद्वान् पुरुष दोनों एक साथ मिलकर अपने नाम या शत्रुओं को झुका डालने वाले बल को एक साथ ही मिलकर प्रजा के सुखदायी रूप में कर देते हैं और वे दोनों मेघ को सूर्य के समान, बढ़ते हुए शत्रु को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे दोनों एक साथ मिले हुए ही बलवान् एवं प्रजाओं पर सुख और शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों को बरसाने में समर्थ होकर अपने उच्च आसनों पर विराज कर, जमकर या परस्पर का ज्ञानोपदेश ग्रहण करते हुए बलवान्, सब सुखों के देने वाले सोम अर्थात् समृद्ध राष्ट्र ऐश्वर्य की वृद्धि कर देते हैं, प्रजाओं को खूब सुखी, समृद्ध कर देते हैं। गुरु शिष्य भी परस्पर मिलकर एक दूसरे का नाम यशस्वी करते हैं, विघ्नों का नाश करते हैं, एक दूसरे के संग में बैठकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सुखपूर्वक बलवान् शिष्यगण या वीर्य पालन और ब्रह्मचर्य वृद्धि करते हैं।

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम्॥४॥

भा०—यज्ञ में अग्नियों के प्रज्वलित हो जाने पर चरुओं को घृतों से मिलाते हुए स्रुचा को हाथ में स्थिर करते हुए अर्थात् पकड़ते हुए कुश आसन बिछाते हुए अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों तीव्र सोम रसों से सबके लिये सुचित्त भाव वाले हो जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्र और

अग्नि के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुष राजा और मन्त्री या वायु और अग्नि के समान सेनापति और राजा दोनों अग्नियो के समान तेजस्वी नायको के खूब उत्तेजित हो जाने पर अपने गुणों का खूब प्रकाश करते हुए बाहुओं के समान सेनाओ को तथा राष्ट्र के स्त्री पुरुषों, भूमियो तथा वाणी और प्रजा लोको को नियम में बद्ध, सुसंयत करके साथ ही विस्तृत शास्य प्रजाजन को खूब विस्तृत करते हुए अति तीव्र, शत्रुओं के प्रति वेग से जाने वाले, जलों के समान सौम्य गुण वाले, उत्तम पदो पर अभिषिक्त हुए नायकों सहित उत्तम सुखप्रदाता प्रजा के चित्तानुरंजन करने के लिये हमारे प्रति आवें। इस मन्त्र मे नीचे लिखे स्रुच् के शब्दार्थों पर विचार करने से स्त्री पुरुषों के परस्पर प्रजोत्पत्ति और गुरु शिष्य के ज्ञानप्राप्ति के उत्तम सिद्धान्तो पर भी प्रकाश पड़ता है।

'स्रुच्'—स्रुचश्चेतद्वेदीश्चाह। विश्वा वेदि घृताची स्रुक्। श० ९। २। ३। १७॥ योषा हि स्रुक्। श० १। ४। ४। ४॥ युजौ ह वा एते यज्ञस्य यत् स्रुचौ। श० १। ८। ३। २७॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७। ४। १। ३६॥ वाग् वै स्रुक्। श० ६। ३। १। ८॥ गौर्वास्रुचः। तै० ३। ३। ५। ४॥ इमे वै लोका स्रुचः। तै० ३। ३। १। २॥ यजमानः स्रुच.। तै० ३। ३। ६। ३।

यानी॑न्द्राग्नी च॒क्रथु॑र्वी॒र्या॑णि॒ यानि॑ रू॒पाण्यु॒त वृष्ण्या॑नि।
या वां॑ प्र॒त्नानि॑ स॒ख्या शि॒वानि॒ तेभिः॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑॥५॥२६

भा०—हे वायु और अग्नि के समान परस्पर उपकारक स्वामी, भृत्य और राजा और मन्त्री, क्षत्र ब्रह्म एवं स्त्री पुरुषो! आप दोनों जिन वीर्यों, बलों और सामर्थ्यों को जिन नाना प्रकार के सुंदर पदार्थों को या रुचिकर कार्यों को और पुरुषार्थ युक्त और सुखवर्षक कार्यों को प्रकट करें अर्थात् आचरण में लाएं और आप दोनों जो चिरस्थायी शुभ, मङ्गलजनक, कल्याणकारी मित्रता के कार्य हैं उन सबके साथ युक्त

होकर तैयार किये हुए सांसारिक ऐश्वर्य तथा राज्य और ओषधि-रसों तथा अन्न और शारीरिक बल आदि का उपभोग करो।

यद॑ब्रवं प्रथ॒मं वां॑ वृणा॒नो॒३॒॑ऽयं सोमो॒ असु॑रैर्नो वि॒हव्यः॑।
तां स॒त्यां श्र॒द्धाम॒भ्या हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥६॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! मैं तुम दोनों को यज्ञ में, यज्ञ के सम्पादन के लिये पुरोहितों के समान वरण करता हुआ, योग्य कार्य कुशल जानकर जो कुछ भी कहूं, उपदेश करूं यह ज्ञानोपदेश हममें से केवल प्राणों में रमण करने वाले ज्ञान रहित पुरुषों को विविध प्रकार से ग्रहण कर ज्ञानवान् होना चाहिये। हे इन्द्र और अग्नि के समान स्त्री पुरुषो! आप दोनों उस सत्य श्रद्धा को प्राप्त होओ और प्राप्त ज्ञान और उससे प्राप्त सांसारिक पदार्थों का सुख प्राप्त करो। यह राष्ट्र तथा ऐश्वर्य बलवान् पुरुषों के विविध उपायों से भोग्य है। उसी के लिये मुख्य रूप से वरण करता हुआ अमात्य राजा अथवा सेनाध्यक्ष या सभाध्यक्ष दोनों को उपदेश करता हूं कि आप दोनों सज्जन हितकारिणी, सत्य धारण करने वाली वाणी को प्राप्त हों और तब न्यायानुकूल ऐश्वर्य का भोग करें।

यदि॑न्द्राग्नी॒ मद॑थः॒ स्वे दु॑रो॒णे यद्ब्र॒ह्मणि॒ राज॑नि वा यजत्रा।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ७ ॥

भा०—जिससे हे ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुषो! आप दोनों प्रकार के जन अपने घर में स्वतः आनन्द प्रसन्न रहते हो जिस कारण से आप दोनों ब्राह्मणों के बीच में और राजा की सभा में राजा के द्वार पर भी आदर प्राप्त करने वाले हो। इस कारण से ही आप दोनों प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारे होकर आवो और सम्पन्न सोम, राष्ट्रैश्वर्य तथा शासकपद का उपभोग करो। तात्पर्य यह है कि गृह में सम्पन्न विद्वानों और राजाओं के आदर योग्य पुरुषों को शासन कार्य में नियुक्त करना चाहिये। दरिद्र और निर्गुणों को नहीं।

यदि॑न्द्राग्नी॒ यदु॑षु तु॒र्वशे॑षु॒ यद् द्रु॒ह्युष्वनु॑षु पू॒रुषु॒ स्थः।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् स्त्री पुरुषो! क्योंकि बलवान्, यम नियमों में निष्ठ पुरुषों में शत्रुओं के नाशकारी धर्मार्थ-काम-मोक्ष चारों के अभिलाषी, हिंसक दुष्ट पुरुषों के वश करने वाले पुरुषों में द्रोहकारी या धनाभिलाषा से एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने वाले पुरुषों में, प्राणमात्र पर आजीविका करने वाले या अन्यों को प्राणप्रद पदार्थ अन्नादि देने वाले पुरुषों में और सबको विद्यादि से परिपूर्ण करने वाले उच्च कोटि के पुरुषों में आदरपूर्वक रहते हो इस कारण से समस्त सुखों और ज्ञानों के वर्षक होकर आप दोनों सर्वत्र आओ, जाओ और उत्पन्न हुए ऐश्वर्ययुक्त बलवर्धक पदार्थों का उपभोग करो, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

यदि॑न्द्राग्नी अव॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्यां॑ पर॒मस्या॑मु॒त स्थः।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ९ ॥
यदि॑न्द्राग्नी पर॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्या॑मव॒मस्या॑मु॒त स्थः।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१०॥

भा०—जिस कारण से वायु और विद्युत् के समान न्यायाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष उत्तम गुण से रहित अर्थात् निकृष्ट गुण वाली, मध्यम गुण वाली और अति उत्तम गुणों वाली तीनों प्रकार की पृथिवी में अधिकार, मान और सत्कार पूर्वक रहते हैं उसी से वे दोनों सब प्रजा को सुखप्रद होकर प्राप्त हों और प्राप्त ऐश्वर्य का भोग करें ॥ ९ ॥

भा०—शेष पूर्ववत्। पूर्व मन्त्र में अवम, मध्यम, परम इस क्रम से पृथिवी के विशेषण हैं दूसरे मन्त्र में परम, मध्यम और अवम इस क्रम से विशेषण हैं। वायु और अग्नियों की स्थिति और क्रम दोनों प्रकार की जाननी चाहिये, एक भूमि से अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से आकाश में जाने वाले और दूसरे आकाश से मध्यम अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से पृथिवी को आने वाले ये दो प्रकार के वायु और अग्नियों का वर्णन है।

उसी प्रकार चढ़ते और उतरते क्रम मे योग्य विद्वान् अधिकारियों का भी वर्णन समझना चाहिये । अर्थात् छोटे अधिकार वाले अपने से बड़े अधिकारी से निवेदन करते है और बड़े छोटे अधिकारियो को आज्ञा करते है । दोनो ही प्रकारो से वे प्रजा को सुखकारी हों ।

यदि॑न्द्राग्नी दि॒वि ष्ठो यत्पृ॑थि॒व्यां यत्पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥११॥

भा०—क्योंकि वायु और अग्नि ये दोनों तत्व सूर्य में भी है। पृथिवी में, पर्वतों में, ओषधियो में और समुद्र, नदी आदि जलो मे भी विद्यमान हैं, वे दोनो इसी कारण से सुखो को देने वाले होकर सर्वव्याप्त हैं । वे दोनो उत्पादित अन्नादि रस मे भी रहते है । वायु अग्नि के उपकारक जन विद्वानों के बीच, प्रजावासियो के बीच, मेघों के समान पालक, शिक्षक पर्वतो के समान अचल, राजाओ के बीच ओषधियों के समान शत्रुओ के नाशक सैन्यो मे और प्राणो के समान आप्तजनो में भी आदरपूर्वक रहते है । इसलिये वे सर्व सुखप्रद होकर हमे प्राप्त हों और हम ऐश्वर्य का भोग करें ।

यदि॑न्द्राग्नी उदि॑ता सूर्य॑स्य मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दये॑थे ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१२॥

भा०—जिस कारण से ऊपर की तरफ गये हुए वायु और अग्नि तत्व दोनो सूर्य और अन्तरिक्ष के बीच मे जल के साथ युक्त होकर स्वयं तृप्त, जलपूर्ण होते और सब प्राणियो को सुखकारी होते हैं । इसी से वे दोनो जलो के वर्षणकारी होते है । वे प्राप्त होते और जल को भूपृष्ठ पर से पान करते है । इसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश देने वाले पुरुष के ज्ञान प्रकाश के मध्य मे रहकर उदय को प्राप्त होने वाले इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी पुरुष अपने शरीर को धारण करने वाली आजीविका या अन्न से तृप्त हो । वे बलवान् हृष्ट पुष्ट होकर आवें । पुन प्राप्त वीर्य, ऐश्वर्य आदि गृहस्थोचित पदार्थों का भोग करें ।

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१३॥२७

भा०—इस प्रकार से ऐश्वर्य का भोग करते हुए पूर्वोक्त प्रकार के विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् स्त्री पुरुष हमारे लिये समस्त धनों को अच्छी प्रकार विजय करें। शेष पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः।

[१०९]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः ॥

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१॥

भा०—हे इन्द्र और अग्ने! हे आचार्य और शिक्षक! हे राजन् और विद्वन्! मैं उत्तम से उत्तम ऐश्वर्यों को चाहता हुआ अथवा मैं स्वयं गृहस्थ रूप से बसे हुए पुरुषों मे सर्वश्रेष्ठ होकर ज्ञानवान् या ज्ञातिगण और एक वंश, पद, समाज और कुल मे उत्पन्न हुए लोगो को अपने हृदय से विविध प्रकार का उपदेश दू। आप दोनो से कोई और दूसरा पुरुष मेरे लिये और अधिक उत्तम ज्ञानवान् और बुद्धिमान् नही है। वह मैं आप दोनों की ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली बुद्धि को प्राप्त और तदनुकूल कर्म को करूं।

अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२॥

भा०—हे इन्द्र और अग्नि, विद्युत् अग्नि या वायु और अग्नि के समान जीवनप्रद और ज्ञानप्रद पिता और आचार्य! विपरीत गुणों वाले, गुणहीन जमाई कन्या को प्राप्त करने के लिये अधिक धन व्यय करता है और अपना अति निकट सम्बन्धी अपनी स्त्री का भाई अर्थात् साला भी भगिनी के प्रेम से उत्तम जमाई को प्रसन्न रखने के लिये बहुत सा

धन प्रदान करता है, परन्तु उन दोनों से भी कहीं बहुत अधिक ऐश्वर्यो के देने वाले आप दोनों को मैं सुनता हूँ। और मैं समस्त ऐश्वर्य के उत्तम दान प्राप्त करने के लिये आप दोनों के अति नवीन, नये से नया, उत्तम से उत्तम स्तुति समूह को प्रकट करता हूँ।

मा छे॑द्म र॒श्मीँरि॑ति॒ नाध॑मानाः पितृ॒णां श॒क्तीर॑नु॒यच्छ॑मानाः ।
इ॒न्द्रा॒ग्निभ्यां॒ कं वृष॑णो मदन्ति॒ ता ह्यद्री॑ धि॒षणा॑या उ॒पस्थे॑ ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग अपने पालन करने वाले माता पिता, गुरु, आचार्य तथा अन्य पालक जनों के प्रजा तन्तुओं, सन्तानों, शिष्यों, उनकी नियत की हुई मर्यादाओं तथा उनके प्रकाशित विज्ञान किरणों का हम कभी उच्छेद या विनाश न करें। इस बात की आशिषें और शुभ कामनाएं करते हुए और पूर्वोक्त पालक गुरु जनों के नाना प्रकार के सामर्थ्यों को समस्त लोकों के प्रकृति अनुकूल उनको सुख पहुचाने के लिये नियमित व्यवस्थित करते हुए और अन्यों को प्रदान करते हुए बलवान् वीर्यवान् पुरुष मेघों के समान दानशील होकर पवन विद्युत् से मेघों के समान इन्द्र और अग्नि ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी विद्वान् पुरुषों से युक्त होकर प्रज्ञा बुद्धि और वाणी के समीप उसके आश्रय होकर सुख का लाभ करते हैं, क्योंकि वे दोनों ही मेघों के समान दृढ़ और विपत्ति और भय से कभी न भागने वाले अविनाशी स्वभाव वाले हैं।

यु॒वाभ्यां॑ दे॒वी धि॒षणा॒ मदा॒येन्द्रा॑ग्नी॒ सोम॑मुश॒ती सु॑नोति ।
ताव॑श्विना भद्रहस्ता सुपाणी॒ आ धा॑वतं॒ मधु॑ना पृ॒ङ्क्तम॒प्सु ॥४॥

भा०—हे इन्द्र और विद्युत् या विद्युत् और अग्नि या वायु और अग्नि के समान सर्वोपकारी जीवन और ज्ञान के देने वाले तेजस्वी गुरुजनो! दिव्य आदि गुणों से प्रकाशमान प्रज्ञा बुद्धि ही अति अभिलाषा युक्त प्रियतमा स्त्री के समान आप दोनों के अति हर्ष और सुख के लिये सब प्रकार के आनन्द रस तथा ऐश्वर्यों और योग्य विद्यार्थी को उत्पन्न करती है। अथवा वे आप दोनों सूर्य चन्द्र, दिन रात तथा स्त्री पुरुषों

के समान परस्पर मिलकर सर्व दुःखकारी शत्रु और दुराचारी और कष्टों के नाशक उपायो और उत्तम व्यवहारों से युक्त होकर प्राप्त होओ और समस्त प्रजाओं में, जलो में जल के समान अपने मधुर स्वभाव तथा ज्ञान और आनन्द से खूब मिल जाओ। वे तुम्हारे और तुम उनके हो जाओ। जैसे कामनायुक्त स्त्री, पिता और आचार्य के सुख और हर्ष के लिये ही पुत्र को उत्पन्न करती है। उसी प्रकार उत्तम विद्या भी "सोम" अर्थात् शिष्य को उत्पन्न करती है। "ततोऽस्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते।" स्त्री पुरुष जिस प्रकार दानादि से कल्पहस्त हैं और कोमलता आदि गुणों और शुभ आभूषणादि से उत्तम कर कमल वाले होकर अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करते और जलो मे जल के समान मिलकर एक हो जाते हैं। 'समापो हृदयानि नौ'।

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्रचर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५॥२८॥

भा०—विद्युत् और आग दोनों पदार्थों को मैं जल के फाड़ने के कार्यों मे बहुत अधिक बल वाला सुनता हूं। उन दोनों के इस क्रियात्मिक विज्ञान को मैं गुरुमुख से श्रवण करूं। वे दोनों इस प्रत्यक्ष बढ़ने योग्य सुसंगत, शिल्पादि मन्त्रो और वैज्ञानिक कार्यों मे बनाये गये पदार्थ रथ आदि मे बैठ कर अति हर्ष प्रदान करते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र मे विद्युत् और अग्नि के समान तेजस्वी पवन और सूर्य के समान सर्व प्राणप्रद, दुष्ट रोगादि के नाशक विद्वान् और बलवान् जन तुम दोनों राष्ट्र के ऐश्वर्य, भूमि, पशु आदि के विभाग के कार्य और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो के उच्छेदन के कार्य में सबसे अधिक बलवान् सुनता हूं। वे दोनों प्रकार के जन बढ़ाने योग्य, अति विस्तृत सुव्यवस्थित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्य के निमित्त सब कार्य-व्यवहारों के द्रष्टा होकर उत्तम आसन पर विराज कर अभिषिक्त हुए राजा या राष्ट्रपति को खूब अधिक हर्षित करें, उसके बल को खूब तृप्त और पूर्ण करें। गुरु शिष्यादि भी ज्ञानरूप

धन के वितरण और अज्ञान नाश के कार्य में प्रबल हो। और अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ में विराज कर ज्ञान से तृप्त हो और अन्यों को तृप्त करें।

प्र च॑र्षणिभ्यः॑ पृतना॒ हवे॑षु॒ प्र पृ॑थि॒व्या रि॑रिचाथे दि॒वश्च॑।
प्र सिन्धु॑भ्यः॒ प्र गि॒रिभ्यो॑ महि॒त्वा प्रेन्द्रा॑ग्नी॒ विश्वा॒ भुव॒नात्य॒न्या॥६॥

भा०—उक्त दोनो वायु और अग्नि तत्व इन दोनो के समान गुण वाले पूर्वोक्त जन सैन्यों द्वारा किये जाने वाले युद्धो में अपने महान् सामर्थ्य से समस्त मनुष्यों से बढ़ जाते है। वे अपने महान् पराक्रम और सामर्थ्य से पृथिवी से भी बढ़ जाते है। वे दोनो अपने महान् पराक्रम से सूर्य से भी अधिक हो। वेग मे वे दोनो नदी प्रवाहों से भी अधिक वेगवान् हों। गम्भीरता और गुरुता मे पर्वतो से भी अधिक बडे हो। वे समस्त भुवनो, लोकों और उत्पन्न होने वाले पदार्थों से शक्ति और गुणों मे अधिक हो।

आ भ॑रतं॒ शिक्ष॑तं वज्रबाहू अ॒स्माँ इ॑न्द्राग्नी अवतं॒ शची॑भिः।
इ॒मे नु ते र॒श्मयः॒ सूर्य॑स्य॒ येभिः॑ सपि॒त्वं पि॒तरो॑ न॒ आस॑न्॥७॥

भा०—ये सूर्य की रश्मियां ही है जिनसे समस्त जीवो के पालक ओषधिगण तथा कृषक गण समान रूप से अन्नादि खाद्य फल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार वे ही ये सूर्य की रश्मियो के समान ज्ञान के प्रकाश हैं जिनके साथ मिल कर हमारे पालक गुरुजन समान पद, स्थान, मान, आदर, सत्कार प्राप्त करते हैं। हम उनके आश्रय पर ही रहे। हे सूर्य के समान तेजस्विन् अग्नि के प्रकाशक आप दोनों भद्र पुरुषो! बल, वीर्य तथा शस्त्र शक्ति को अपने वश मे रखते हुए हमें खूब समृद्ध करो। हमें सब प्रकार से शिक्षा दो और उत्तम कर्मों और ज्ञानो से रक्षा करो।

पुर॑न्दरा॒ शिक्ष॑तं वज्रहस्ता॒स्माँ इ॑न्द्राग्नी अवतं॒ भरे॑षु। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! आप दोनो शत्रुओं के गढो को तोड़ने हारे, शत्रु को निवारण करने वाले शस्त्रास्त्र बल तथा विज्ञान को

अपने हाथ में अर्थात् वश में धारण करने वाले होकर हमारी यज्ञों और संग्रामों में रक्षा करो। शेष पूर्ववत्। एकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

[११०]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ३, ७ विराड् जगती। ६, ८ निचृज्जगती। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। नवर्चं सूक्तम् ॥

तृतं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१॥

भा०—मेरा उत्तम ज्ञान और कर्म अति विस्तृत होकर फिर भी उसी प्रकार पूर्ववत् अधीन द्रव्यों और शिष्यो की रक्षा करता, फैलाता और गुरुपरम्परा से शिष्यादि को उत्पन्न करता है, अति स्वादुयुक्त, मधुर रसधारा के समान ज्ञानधारा प्रवचन अर्थात् उपदेश के लिये अथवा अध्याप्य शिष्य के हितार्थ उपदेश की जाती है यह आश्चर्यकारी विद्वान् पुरुष समस्त दिव्य रत्नों से भरे समुद्र के समान उत्तम गुणों और विद्या के प्रकाशों से परिपूर्ण है। आप्त, सत्य ज्ञान, वेद से सुशोभित होने वाले विद्वान् योग्य पुरुषो! आप लोग उत्तम उपदेश प्रद वाणी द्वारा उपदेश किये गये ज्ञानरस से अच्छी प्रकार स्वयं तृप्त होओ और अन्यों को भी तृप्त करो।

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥२॥

भा०—हे पाक यज्ञो के न करनेहारे अथवा हे परिपक्व ज्ञान और अनुभव और निश्चय वाले विद्वान् पुरुषो! नवागत, कम उमर के लोगों की अपेक्षा अधिक प्राचीन, वृद्ध तथा आगे, ऊंचे मान योग्य पदों पर जाने वाले कुछ एक मेरे प्रिय आप्त बन्धु होकर आप लोग सब तरफ़ समस्त जीवों के रक्षा करने और सुख उपभोग करने में सर्व-श्रेष्ठ बल

और ज्ञान की इच्छा करते हो तो आओ, आगे बढो। जिस प्रकार अन्त-रिक्ष में उत्पन्न होने वाले मेघ वायु के महान् बल से प्रेरित होकर सूर्य के अधीन रहते हैं और जिस प्रकार उत्तम धनुर्धारी पुरुष अपने पराक्रम की अधिकता से सूर्य के समान तेजस्वी दानशील राजा, अमात्य या सेनापति के पद या स्थान को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार आप लोग उत्तम ज्ञान करने योग्य विद्या विज्ञान से युक्त होकर ब्रह्मचारीगण जिस प्रकार समावर्त्तन के बाद अपने उत्पादक पिता के घर में आजाते हैं उसी प्रकार आप ज्ञानवान् पुरुष भी समस्त सुखों के देने वाले, समस्त ज्ञानैश्वर्यों के देनेवाले आचार्य के समान ज्ञान के सूर्य समस्त जगत् के उत्पादक परम प्रभु परमेश्वर के घर अर्थात् शरण को प्राप्त करो।

सौधन्वनासः—सु-धन्वन्। रिविधिविगत्यर्थः (भ्वादिः) अतः कनिन्। धन्वेति अन्तरिक्षनामसु पदनामसु च पठ्यते।

तत्स॑वि॒ता वो॑ऽमृत॒त्वमासु॑व॒दगो॑ह्यं॒ यच्छ्र॒वय॑न्त॒ ऐत॑न।
त्यं चि॑च्चम॒सम॑सु॑रस्य॒ भक्ष॑ण॒मेकं॒ सन्त॑मकृणुता च॒तुर्व॑यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! सूर्य जिस प्रकार अमृत, चेतनता, जीवन या अन्न और प्राण को प्रदान करता है, अन्न की कामना करते हुए कृषक जन खेत जाते हैं। प्राणों के पोषण में रत प्राणी के खाने योग्य अन्न को खेत में बो बोकर एक गुना अनाज को चौगुना कर लेते हैं, उसी प्रकार आचार्य ज्ञानों का उत्पादन करने वाला विद्वान् और सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर आप लोगों को वह कभी न छिपाने योग्य सूर्य के प्रकाश के समान अगोप्य, प्रकट, उज्ज्वल अमृतस्वरूप, आत्मतत्व और परम ज्ञान प्रदान करे जिसको स्वयं गुरुमुखों द्वारा श्रवण करने और अन्यों को श्रवण कराने की इच्छा करते हुए आगे बढो और हम जिज्ञासु गृहस्थों के पास आओ। अन्न के समान ग्रहण करने योग्य, पवित्र इस प्राणों में रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी, योगी पुरुष के प्राप्त करने या भोगने योग्य जीवन-सुख या ज्ञान को एक को चौगुना करो। अर्थात्

अपने बल को बढ़ाओ और जीवन की १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्ष तक की करने का यत्न करो। अथवा एक ही ज्ञान को चार प्रकार से करके अध्ययन करो, एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋग्, यजु, साम, अथर्व रूप से अध्ययन करो। अथवा एक ही जीवन रूप यज्ञ को चार आश्रम भेद से ४ भागो मे बांट दो। अथवा एक ही जीवन को धर्मार्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों से युक्त करो।

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः॥४॥

भा०—ज्ञान विज्ञानो से युक्त वाणी को धारण करने वाले, मरणशील होकर भी सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, उत्तम कोटि के ब्रह्मज्ञानी पुरुष शान्तिदायक कर्मों का आचरण करके अमृतस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं। और वे सूर्य के समान तेजस्वी, दीर्घदर्शी होकर वर्ष मे सूर्य के समान ही ज्ञानों और नाना कार्यों से नाना सुखों को प्राप्त करते हैं।

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम्।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—जिस प्रकार अन्न को चाहने वाले किसान लोग सरकण्डे की दण्डी से खेत मापते या तीखी फाली से खेत बनाते हैं और शिल्पी लोग नमूने के समान दूसरा पात्र बनाने की इच्छा करते हुए एक वर्त्तन को सींक के बने पैमाने से माप लेते या तीक्ष्ण शस्त्र छेनी आदि से गढ़कर बना लेते है उसी प्रकार विनाश न होने वाले नित्य पदार्थों में श्रवण, गुरुपदेश अर्थात् सत्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए उसके अति समीप तक पहुच कर उसका साक्षात् कर, हस्तामलकवत् उसका वर्णन करने वाले सत्य ज्ञान के ज्ञाता विद्वान् पुरुष उन अविनाशी पदार्थों के सदृश उपमान को दृष्टान्त के रूप मे चाहते हुए अति तीक्ष्ण ज्ञान से उसकी दण्डी से क्षेत्र को मापने के समान विविध प्रकार से ज्ञान करते

हैं और पूर्वोक्त पात्र के समान ही सदृश धर्मों वाले दृष्टान्त को चाहते हुए प्रयत्नशील एक अद्वितीय देह में चक्षु आदि प्राणों से भिन्न सबके पालक आत्मा को और ब्रह्माण्ड में सबके संचालक, प्रयत्नशील समस्त जगत् के पालक एकमात्र, अद्वितीय परमेश्वर को विविध प्रकारों से जानते हैं।

राष्ट्र के पक्ष में—साधारण जनों से भिन्न विशेष पुरुषों में ही यश या ऐश्वर्य की स्थापना करने की इच्छा करते हुए विद्वान् जन उस यश ऐश्वर्य के योग्य पुरुष को ही ऐश्वर्यवान् करते हुए सत्य ज्ञान और विशाल सामर्थ्य से तेजस्वी पुरुष प्रयत्नशील, उपयोगी, साहसी एक पालक को तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र बल से विविध उपायों से उसको प्रमुख नायक बनाते हैं।

सूर्य के पक्ष में—किरण गण अन्न उत्पन्न करना चाहते हुए समीप प्राप्त होकर अपने समान तेजस्वी सूर्य को चाहते हुए अपने तीक्ष्ण ताप से एक सर्वपालक सूर्य का अपने उत्पत्ति-स्थान क्षेत्र के समान विविध प्रकार से ज्ञान कराते हैं। इति त्रिंशो वर्गः।

आ म॒नी॒षाम॒न्तरि॑क्षस्य॒ नृभ्यः॒ स्रु॒चेव॑ घृ॒तं जु॑हवाम वि॒द्मना॑।
त॒र॒णि॒त्वा ये पि॒तुर॑स्य सश्चि॒र ऋ॒भवो॒ वाज॑मरुहन्दि॒वो रजः॑॥६॥

भा०—खूब प्रकाशमान किरणें जिस प्रकार पृथिवी आदि लोकों पर अन्नों को उत्पन्न करती हैं, वे आकाशस्थ लोकों तक भी प्राप्त होती हैं और जो अति शीघ्र ही, इस जगत् को अन्न आदि पालक या जीवनप्रद पदार्थ को प्राप्त कराती हैं और जो अन्तरिक्ष के बीच में स्थित रहकर मनुष्यों के हित स्रुच् से जैसे घृत अग्नि पर दिया जाता है उसी प्रकार जल की [illegible]ी करती हैं हम उन किरणों के ज्ञान के लिये ज्ञानपूर्वक अपनी बुद्धि को [illegible]वें। उसी प्रकार सत्य ज्ञान से प्रकाशित विद्वान् जन ऐश्वर्य को प्राप्त [illegible]रते हैं, वे सूर्य के समान तेजस्वी लोकों या पदों को प्राप्त होते हैं। जो [illegible] ही इस प्रजागण को पालनकारी साधन प्राप्त कराते हैं और आकाश [illegible] बरसते बादल से जल के समान वाणी द्वारा ज्ञान का उपदेश करते

है उनके अधीन हम ज्ञानपूर्वक स्तुति या अपनी पूजा को या बुद्धि को प्रदान करें।

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७॥

भा०—हमारा ऐश्वर्यवान् शत्रु-संहारक राजा और सेनापति एवं आचार्य तेज से सूर्य के समान खूब प्रकाशित होने वाले और सत्य ज्ञान से प्रकाशित होकर सदा नये से नया अर्थात् नये से नये, उत्तम विचारो वाला हो। वह विद्वान् ही ज्ञानो, ऐश्वर्यों और संग्रामो से और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं सबको बसाने वाला और उनमे तेजस्वी होकर बसने वाला और समस्त सुखों का देने वाला, दानशील हो। हे विद्वान् और विजयेच्छु पुरुषो! आप लोगो के ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से आप लोगो के प्रिय दिवस अर्थात् अनुकूल और अभिमत दिवस मे हम लोग ऐश्वर्य और अभिषेकादि के विरोधी शत्रुओ की सेनाओं के मुकाबले पर डटे रहे, उनको विजय करें।

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८॥

भा०—हे सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार शिल्पी लोग चाम की गाय को भी अपने उत्तम क्रिया कौशल से वास्तविक गाय के समान रूपवान् आकार वाला बना देते हैं उसी प्रकार आप लोग भी उत्तम आचरण द्वारा वेद वाणी को सब प्रकार से अङ्ग अङ्ग से रूपवान्, क्रियासमृद्ध करो। गोपाल जन जिस प्रकार बछड़े से उसकी माता को या लोग बच्चे से उसकी माता को मिला देते हैं उसी प्रकार हे विद्वन् लोगो! आप लोग भी विद्याओं का उपदेश करने हारे विद्वान् से उत्तम ज्ञान, अध्ययनाध्यापन, वेदारम्भ आदि संस्कार द्वारा ज्ञानकुशल विद्यार्थी को वार बार संयुक्त करो। मन से प्रमाता आत्मा को उत्तम वेग से संयुक्त करो। अन्तेवासी शिष्य से उपदेशकारी आचार्य को युक्त

करो, वसने वाले जीव से सब जगत् के मापक, निर्माता परमेश्वर को उत्तम योग क्रिया द्वारा युक्त करो और हे उत्तम ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम कर्माचरण से ही दीर्घजीवन से युक्त या जराजीर्ण माता पिता दोनों को युवा बलवान् करो अर्थात् सेवादि से उनको सदा स्वस्थ और बलवान् करो । अथवा युवानौ पितरौ जिव्री अकृणोतन उत्तम उत्तम आचरणों द्वारा ही जवान माता पिता को वृद्ध और दीर्घजीवन वाला कर । युद्ध वीर पुरुष चाम से बाण फेंकने की तांत या धनुष् की डोरी बनावें । फिर शब्द करने वाली कसी डोरी को बाण से संयुक्त करें । उत्तम धनुर्धर लोग उत्तम क्रियाकौशल से जीवनयुक्त जवान हृष्ट पुष्ट हो पालकों को सभाध्यक्ष सेनाध्यक्ष पद पर नियुक्त करें ।

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६।३१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! आचार्य ! तू विद्यावान् सत्यज्ञान से प्रकाशित विद्वानों का स्वामी होकर बल और ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त हमें अपने ज्ञानों सहित प्राप्त हो और संग्रह करने योग्य अपने सुंदर ज्ञान को हमें प्रदान कर । उसी प्रकार तेजस्वी पुरुषों से युक्त राजा सूर्य के समान होकर संग्राम के कार्य में वीर्यवान् पुरुषों, वेगवान् अश्वों से हमें प्राप्त हो । और हमें अद्भुत संग्रह योग्य ऐश्वर्य प्रदान करे । शेष पूर्ववत् । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[१११]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१–४ जगती । ५ त्रिष्टुप् ।
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥

भा०—अपने विज्ञान सहित क्रिया उत्पन्न करने में कुशल पुरुष से जाने वाले रथ को बनावें । वे ही उत्तम प्रबन्ध से युक्त अश्व

कल पुर्जों को धारने वाले बिजुली को धारण करने वाले रथ को वेग से दूर लेजाने में समर्थ दो यन्त्रो को भी बनावें। ज्ञानवान् पुरुष अपने पालक माता पिताओ के सुख के लिये अपनी जवानी की उमर को उनकी सेवा योग्य बनावें। और ज्ञानवान् पुरुष बच्चों के पालने के लिये माता को सदा साथ रहने में समर्थ और शक्ति से युक्त बनावें अथवा ज्ञानपूर्वक सोच समझकर आचरण करने वाले बुद्धिमान् पुरुष अपने रमण साधन रथरूपी समान देह को उत्तम व्यवहारो और आचरणों से युक्त, उत्तम चेष्टाओं के करने मे चतुर, फुर्तीले रथ के समान उत्तम चाल चलने वाला बनावें। बाह्य ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों दोनों को बलवान् करें। जिससे वे ऐश्वर्यवान् आत्मा को धारण करने में समर्थ और बलवान् सुखवर्षक प्राणों को धारण करने वाले हों और पालनकारी प्राण अपान के अभ्यास द्वारा अपने जीवन को दीर्घ जीवन वाला सदा जवान बनावें। बच्चे के लिये माता के समान मन को बलवान् करने के लिये उसके प्रमाता आत्मा या उपदेष्टा गुरु आचार्य और परमेश्वर को सदा संग रहने वाला करें। परमेश्वर को सदा अपने साथ का सहायक बनावें। शिल्पी लोग उत्तम रथ बनावें। ऐश्वर्यवान् राजा आदि को वहन करने वाले वृषाण अर्थात् अण्डकोशों से युक्त बलवान् घोड़ों को युक्त करें। अपने मा बाप, राजा प्रजा, भूमि और भूपति दोनों के लिये अपनी जवानी को लगावें। प्रजारूप वत्स के लिये इस माता रूप गौ को सदा संयुक्त करें! राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां तेनाद्य वत्समिव लोकमिमं पुषाण ?

आ नो॑ यज्ञाय॑ तक्षत ऋभु॒मद्वयः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य सुप्र॒जाव॑ती॒मिष॑म्।
यथा॒ क्षया॑म॒ सर्व॑वीरया वि॒शा तन्नः॒ शर्धा॑य धासथा॒ स्वि॑न्द्रि॒यम् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमारे जीवन को उत्तम वैदिक यज्ञ या पूर्णायु रूपी यज्ञ प्राप्त करने के लिये सत्य ज्ञान के प्रकाश से युक्त अथवा अति बलवान् प्राण से युक्त करो और उत्तम ज्ञान और बल

की प्राप्ति के लिये उत्तम सुखजनक प्रिय सन्तानों से युक्त अन्नादि समृद्धि को सब प्रकार से तय्यार करो। जिससे हम लोग सब प्रकार के शत्रुओं को कंपा देने वाले वीर पुरुषों से युक्त प्रजा से युक्त होकर सुख से रहें। हमारा वह बल तेज और ऐश्वर्य शत्रुनाशक बल की वृद्धि के लिये अच्छी प्रकार सुख से धारण करो। अथवा हम उत्तम प्रजा से युक्त कामना को ज्ञान और बल की वृद्धि के लिये करें और समस्त पुत्रों सहित स्त्री के साथ सुख से रहें। इन्द्रियों को बलवृद्धि के लिये अच्छी प्रकार दमन करें।

आ तंक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम्॥३॥

भा०—हे विद्वान् और अधिक धनाढ्य पुरुषो! आप लोग हमारे लिये उत्तम भोग योग्य, सुखजनक नाना पदार्थ भली प्रकार बनाओ। हे नायक पुरुषो! आप लोग रथ प्राप्त करने के लिये और अश्व प्राप्त करने के लिये भोग योग्य धन पैदा करो। बन्धु और उससे भिन्न शत्रु को भी संग्रामों में जीत लेने वाले विजय देने वाले हमारे धन सामग्री का सब दिन सब कोई आदर करे।

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे॥४॥

भा०—ज्ञान और रक्षा के लिये मैं सत्य ज्ञान से प्रकाशमान विद्वान् पुरुषों के बसाने वाले उनके आश्रय, अति तेजस्वी पद पर विराजमान आचार्य और राजा को 'इन्द्र' स्वीकार करता और कहता हूं और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये अति बल से और सत्य ज्ञान से प्रकाशित शक्तिशाली और विद्वान पुरुषों को वेगवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् और वायु के समान बलवान् विद्वान रूप से प्राप्त करूं। दोनों स्नेही मित्र और सर्वश्रेष्ठ अश्वारोही राजा और सेनापति, देह में प्राण और अपान गृह में दोनों स्त्री पुरुष वे सब सुखों को प्राप्त करने, ज्ञान और कर्मों के सम्पादन करने और शत्रुओं को विजय करने के लिये हमें प्रेरित करें।

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५।३२॥

भा०—बड़े भारी धन, बल और सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाला तेजस्वी पुरुष पोषण करने, यज्ञ करने और संग्राम करने के लिये शत्रुओं का नाश करे और हमें खूब तीक्ष्ण करे और संग्रामों का विजय करने हारा पुरुष बलवान्, वेगवान् होकर हमारी रक्षा करे । शेष पूर्ववत् । इति द्वात्रिंशो वर्गः ।

[११२]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ द्वितीयस्य अग्निः शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, १३, १५, १७, १८, २०, २१, २२ निचृज्जगती । ४, ८, ६, ११, १२, १४, १६, २३ जगती । १६ विराड् जगती । ३, ५, २४ विराट् त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । २५ त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम् ॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥

भा०—मैं भूमि और सूर्य के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों का वर्णन करता हूं । प्रथम चयन की हुई इष्टि अर्थात् याग साधन के लिये जिस प्रकार प्रदीप्त कान्तिमान अग्नि को यजमान और उसकी पत्नी दोनों प्राप्त करते हैं उसी प्रकार सूर्य और पृथिवी के समान प्रजावर्ग दोनों पूर्व के विद्वानों और विजयशील राजाओं द्वारा सञ्चित ज्ञान और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये राज्य तन्त्र के व्यवस्थापन के कार्य और शत्रु पर प्रयाण करने के कार्य में अन्धकार मय मार्ग में दीपक के समान पहले ही से समस्त बातों के जान लेने के लिये अति तेजस्वी, उत्तम, प्रजा को अच्छा लगने वाले कान्तिमान्, मनोहर अग्रणी नायक पुरुष को प्राप्त करते हैं । हे राज प्रजावर्गो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों जिन रक्षाओं के निमित्त

या जिन-रक्षा, साधनों से युक्त होकर संग्राम में अपने भाग को प्राप्त करने के लिये कार्यकुशल पुरुष को सुप्रसन्न करते और उसकी शरण जाते हो उन रक्षा आदि साधनों से ही आप दोनो अच्छी प्रकार आओ।

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

भा०—उत्तम रीति से ज्ञान को धारण करने हारे, विषय भोगादि से आसक्त न होने वाले त्यागी जिज्ञासु पुरुष ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार ज्ञान के उत्तम प्रवक्ता के पास उपस्थित होते हैं उसी प्रकार उत्तम रीति से युद्ध करने वाले या उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाले कहीं भी आश्रय न पाते हुए प्रजाजन शत्रुओं के नाश करने और ऐश्वर्य के दान लेने के लिये तुम दोनो विजयशील रथ-बल पर अथवा आप दोनों के स्थायी राज्यशासन पर आश्रय करते, स्थिरता प्राप्त करते हैं। उस समय हे राष्ट्र के भोक्ता दो मुख्य अधिकारियो, राजा अमात्य, राजा रानी, राजा सेनापति आदि युगल पुरुषो! आप दोनों जिन रक्षा आदि उपायों से परस्पर की संगति के कार्य में धारण करने योग्य प्रजाओं की रक्षा करते हो उन ही उपायों से आप दोनों हमें सुखपूर्वक प्रसन्नता से प्राप्त होवो।

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३

भा०—उस उत्तम तेजस्वी, अमर आत्मा के उत्तम शासन में जिस प्रकार प्रजाओं-देहों में प्राण और अपान दोनों रहते हैं और अन्यों से न प्रेरित होने वाली, अदम्य या नित्य, वाणी को बलवान् बनाते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों भी ज्ञानप्रकाश में कुशल अमर अविनाशी परमेश्वर के उत्तम शासन में बलपूर्वक प्रजाओं के बीच में निवास करो। इसी प्रकार हे मुख्य राजा रानी, राजा अमात्य, राजा सेनापति

आदि युगलो ! आप दोनो भी राजसभा मे कुशल दीर्घजीवी, अमर यशस्वी सबके उत्तम शासन या आदेश के भीतर उन प्रजाओं के हित के लिये उनके बीच मे निवास करो। आप दोनो अयोग्य पुरुषो से शासन न होने योग्य, अथवा पूर्व कुछ भी पुत्र रत्नादि न उत्पन्न करने हारा। धारण करने योग्य, बाद मे गर्भ धारण करने मे समर्थ, कुमारी कन्या या गौ के समान अन्नादि रत्नो को दान कराने वाली भूमि को नाना ऐश्वर्यों से सेचन करते हो.उन रक्षादि उपायो से आप अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

'अस्वं धेनुम्'—इस असू धेनु का विवरण देखो अथर्ववेद मे वशा सूक्त।

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति। याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥

भा०—सर्वत्र सब पदार्थों को अपने वेग से उथल पुथल और प्रेरित करने में समर्थ वायु अपने से उत्पन्न अग्नि के बल से पृथिवी और आकाश दोनो को धारण करने वाला और अति वेगवान् पदार्थों मे सब से अधिक शीघ्रगामी होकर रहता है। उसी प्रकार सब तरफ़ आक्रमण करने हारा दिग्विजयी पुरुष अपने राज्यप्रसारक सैन्य-बल के बल से राज-वर्ग और प्रजा-वर्ग दोनों पर शासनकारी या माता पिता दोनो को आदर करने वाला और हिंसाकारी शत्रुओं पर वेग से आक्रमण करने वाला या सूर्य के समान वेगवान् तेजस्वी होकर जिन नाना रक्षादि व्यवहारों से विशेष शोभा को धारण करता है। और जिन उत्तम उपायो से कर्म, उपासना और विज्ञान इन तीनों की विद्या अर्थात् त्रैविद्या, वेदों को जानने वाला अथवा अरि, मित्र और उदासीन तीनो को अपने वश करने वाला, विलक्षण, अतिचतुर, कुशल, विद्वान् होता है अथवा जिनसे माता, पिता और गुरु का मान्यकर्त्ता पुरुष विद्वान् हो जाता है। उनही उपायों सहित हे अश्विगणो हमारे समीप आओ।

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उदन्दनमैरयतं स्वर्दृशे। याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५॥ २३॥

भा०—हे विद्वान् आचार्य और शिक्षक पुरुषो ! माता, पिता और योग्य स्त्री पुरुषो ! आप दोनों जिन रक्षा आदि उपायों और ज्ञान वाणियों से स्तुतिशील, सब प्रकार से अपनाये हुए, विनीत एवं उपवीत अथवा सब कष्टों, अज्ञानों या दुःखों से घिरे हुए शुद्धाचारी, अभिवादनशील पुत्र और शिष्य को परम ज्ञानमय परमेश्वर या परम सुख का दर्शन करने के लिये उत्तम पद की ओर प्रेरणा करते हो, उसे ऊंचा उठाते और जिन ज्ञान, रक्षा आदि उपायों से ज्ञानवान् और ऐश्वर्य के इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष को और आगे बढ़ाते हो, उन उपायों से हमें भी प्राप्त होवो।

परमेश्वरपक्ष में—प्राण और अपान दोनों वासनाओं से या अज्ञान से घिरे, कर्म-बंधनों में बंधे स्तुतिकर्त्ता उपासक आत्मा को परमात्मा के दर्शन के लिये ऊपर उठाते हैं। राजा और सेनापति प्रार्थना करने वाले, शत्रुओं के कारागार में बंधे और बन्दी बने हुए पुरुष को उबारते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

याभि॒रन्त॑कं॒ जस॑मान॒मार॑णे भु॒ज्युं याभि॑रव्य॒थिभि॑र्जिजि॒न्वथुः॑ ।
याभिः॑ क॒र्कन्धुं॑ व॒य्यं॑ च॒ जिन्व॑थ॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥६॥

भा०—प्रत्यक्ष आमने सामने शत्रु सेना के आजाने पर होने वाले युद्ध में शत्रुओं पर आघात करने वाले प्रजा के दुःखों और शत्रुओं का अन्त कर देने वाले पुरुष को जिन उपायों से और प्रजा के पालक, बड़े ऐश्वर्य के भोक्ता सम्पन्न पुरुष को जिन पीडा या कष्ट से बचाने वाले उपायों से प्रसन्न और पुष्ट, सन्तुष्ट करते हो और जिन उपायों से कर्मकर शिल्पियों को भृति आदि द्वारा बांधने वाले, बड़े एञ्जिनीयर और वस्त्रादि बनाने वाले, शिल्पज्ञ, उत्तम कारीगरों को सन्तुष्ट करते हो, हे पूर्वोक्त राजप्रजावर्गो ! आप दोनों उन उपायों से एक दूसरे के उपकारक होवो।

याभिः॑ शु॒चन्तिं॑ धन॒सां सु॑षं॒सदं॑ त॒प्तं घ॒र्मम् ओ॒म्याव॑न्त॒मत्र॑ये ।
याभिः॒ पृश्नि॑गुं पुरु॒कुत्स॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥७॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! राजा और विद्वान् जनो! जिन उपायों से प्रजाजनो के हृदयों को और नगरों की निवास भूमि को शुद्ध पवित्र करने और प्रकाश से जगमगा देने वाले जनो को, ऐश्वर्यों के दान देने वाले उत्तम सभा के अध्यक्ष को, सन्तप्त पुरुष को और तेजस्वी पुरुष को इस राष्ट्र मे वसनेवाले जन समूह के हित के लिये सब प्रकार से सुरक्षित करते हो। और जिन उपायों से नाना प्रकार की गौओ के पालक या अन्तरिक्ष मे जाने वाले वैमानिक वर्ग और नाना शस्त्रास्त्रो के स्वामी, शस्त्रागार के रक्षक वर्गों की और उनके रक्षक सेनापति की रक्षा करते हो उन सब उपायों सहित तुम दोनो हमे प्राप्त होवो।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥८॥

भा०—जिन रक्षा आदि उपायो से, शक्तिशाली सेना और वेद-वाणियों और उत्तम कर्मों से हे समस्त सुखों के वर्षा करने हारे सभा-सेनाध्यक्षो! आप दोनों धर्म-मार्ग से पराङ्मुख जाने वाले चक्षुर्हीन, अन्धे, अज्ञानी पुरुष को सम्यग् दर्शन करने के योग्य अच्छी प्रकार वना देते हो और जिन उत्तम कर्मों से पङ्गु, लगड़े को चलने मे अच्छी प्रकार समर्थ कर देते हो। और जिन शक्तियो से आप दोनों ठगों की शिकार वनी बटेरी के समान अति दीन प्रजा को ठगों और शत्रुओं से छुड़ाते हो उन उन उपायो से युक्त आप दोनों हमे भी प्राप्त होइये।

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥९॥

भा०—जिन विज्ञान, दीप्ति आदि उपायों और प्रयोगों से अन्न और जल से वने गतिशील प्राण का स्वयं ज्ञान करते हो और अन्यों को उसका अनुभव कराते हो। अथवा जिन उपायों से समुद्र के समान आनन्द-रसो के सागर महान् आत्मा को मधुर रस से पूर्ण रूप मे जान लेते हो, और आप दोनो कभी स्वयं जीर्ण न होकर प्राण अपान रूप से जिन

उपायों से सब प्राणों में मुख्य रूप से बसने वाले आत्मा को बल प्रदान करते हो। और जिन उपायों से आप दोनों बलशाली विज्ञान शास्त्रों के सुनने वाले, अतिविद्वान् अथवा गुरुमुख से श्रवण करने योग्य वेदोपदेश के स्वामी सब लोगों के हितकारी पुरुष के समान वाणी के स्वामी, श्रोत्र के स्वामी और शरीर के नायक अन्य प्राणों के स्वामी आत्मा को सब प्रकार से रक्षा करते हो उन उपायों से हे प्राण और अपान ! हमारे पास भी आओ और हमें ज्ञान प्राप्त कराओ।

विद्वानों और शिल्पियों के पक्ष में—जिन विज्ञान के उपायों से समुद्र को भी मधुर सुखदायी बनाते हो या जिन उपायों से जल से भरे समुद्र के पार जाते हो, जिन उपायों से सबसे श्रेष्ठ राजा को प्राप्त होते हो, जिन उपायों से बलवान्, वेगवान् नरों के नायक पुरुष को प्राप्त होते हो, उन्हीं सब उपायों, ज्ञानों सहित हमें प्राप्त होवो।

याभिर्विश्पलां धनुसामथर्व्यं सुहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्।
याभिर्वशमुश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१०॥३४

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! जिन विज्ञान के उपायों से ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली, कभी न मारी जाने वाली, दृढ़, प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप में स्वीकार करने वाली विशाल सेना या सेनापति को सहस्रों सुखों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले संग्राम में तृप्त करते हो अर्थात् सेनाओं को शस्त्रास्त्र, रथ आदि आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करते हो और जिन उपायों और क्रियाओं सहित राष्ट्र पर वश करने वाले अश्व सेनाओं के स्वामी, सबके आज्ञापक सेनापति को प्राप्त होते हो। उन सहित ही हमें भी प्राप्त होवो।

अध्यात्म में—प्राण, अपान जिन सामर्थ्यों से अन्तःप्रविष्ट प्राणों के पालक, ऐश्वर्यों के भोक्ता अविनाशी आत्मा को तृप्त और सुखी करते हैं, वे दोनों जिन बलों से सबके वशी, प्राणों के पति सबके प्रेरक आत्मा को प्राप्त हों उन सामर्थ्यों से हमें भी प्राप्त हों। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधुकोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ११

भा०—हे उत्तम रीति से देने हारे विद्वान् शिल्पियो ! जिन उपायों और साधनो से विद्वान् पुरुष के सन्तानों के लिये, व्यवहारशील वैश्य प्रजावर्ग के लिये दीर्घ काल तक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाले अथवा बहुत अधिक ज्ञान, धनादि के स्वामी के हित के लिये मेघ के समान राजा और विद्वान् गुरु का धन और ज्ञान का अक्षय कोश मधुर जल के समान ज्ञान और सुख का वर्षण करते हो और जिन साधनों सहित आप दोनों सर्व सहायको से युक्त स्तुतिकर्ता विद्वान् पुरुष को प्राप्त हैं उनके सहित हमे भी प्राप्त होइये ।

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १२

भा०—जिन विज्ञान युक्त साधनो से पृथ्वी को तथा नदी को जल के प्रवाह से आप दोनो मेघों के समान पूर्ण कर देते हो और जिन विज्ञान साधनों से विना घोडे के रथ को विजय करने के लिये यन्त्रादि साधनों से अच्छी प्रकार चला देते हो तीनों भुवनों मे तेजस्वी गुण, कर्म, स्वभाव तीनो मे उज्वल पुरुष, अथवा अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों तेजों को जानने हारे वैज्ञानिक, अग्नि, जल, विद्युत् तीनों के तत्वज्ञ पुरुष जिन उपायों से ऊपर जाने वाली जलधाराओ, किरणो और विद्युत् धाराओ को उठाने मे समर्थ होते हैं उन सब साधनों सहित हमें प्राप्त होवो ।

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१३॥

भा०—जिन साधनो और उपायों से ज्ञान को धारण करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त होते हो या जिन उपायों से इस समस्त विश्व के धारक सूर्य का सब प्रकार से ज्ञान करते हो और जिन

उपायों से खेतों, भूमियों अन्नों, जीवों के उत्पादक स्थावर जंगम की उत्पादकभूमियों का ज्ञान करते हो और जिन उपायों से अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम तीनों को प्राप्त होने वाले कृषिज्ञ, वणिक् और योद्धा पुरुष को प्राप्त होते और उसकी रक्षा करते हो उन सब साधनों से आप दोनों मुख्य और गौण शिल्पी आदि विद्वान् जन हमें भली प्रकार प्राप्त हों।

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शंबरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१४॥

भा०—जिन रक्षा साधनों और उपायों से आप दोनों मेघ को आघात कर छिन्न भिन्न कर देने वाले सूर्य और वायु के समान प्रजा के शान्ति सुख के नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के कार्य में बड़े भारी अतिथिजनों के आश्रय और उनके प्रेम और सत्कार से प्राप्त होने वाले, उनको अर्घ पाद्य, आचमनीय आदि जलों द्वारा तृप्त करने वाले और प्रजा को भी कूप, नहर आदि द्वारा वर्षा धाराओं से मेघों के समान तृप्त करने वाले सूर्य के समान तेज, ज्ञान प्रकाश के देने और धारण करने वाले पुरुष को प्राप्त होते हो। शत्रुओं के नगरों को तोड़ने आदि युद्ध कार्य में जिन साधनों से दुष्टों के हराने वाले वीर पुरुषों को प्राप्त होते हो इन ही साधनों सहित हमें भी प्राप्त होवो।

याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१५॥३५

भा०—जिन उत्तम साधनों और साधनाओं से वैद्यजन वमन करने वाले और विविध ओषधादि रसों के पालक पुरुष की रक्षा करते हैं उसी प्रकार उत्तम गुणों से युक्त प्रशंसित वमन अर्थात् प्राप्त ज्ञान को अन्यों के प्रति उपदेश करने वाले गुरु और विविध विद्याओं के ज्ञान-रस को पान करने वाले शिष्य की रक्षा करते और उनको प्राप्त होते हो और जिन साधनों से ज्ञानवान, नव वधू को प्राप्त करने वाले पुरुष को अथवा धन-राशियों को गिनने में कुशल धन को अपनी स्त्री के समान पालने

वाले धनाढ्य पुरुष की रक्षा करते हो और जिन उपायों से और अश्व के मर जाने पर केवल रथ वाले, असहाय पुरुष और विविध अश्वों और अश्वारोही जनों के स्वामी और अति विस्तृत राष्ट्र के स्वामी की सेवा, परिचर्या करते हो। उन सब साधनों से आप हमें भी प्राप्त होवो। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

याभि॒र्नरा॑ श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभिः॑ पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथुः॑ ।
याभिः॒ शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥१६॥

भा०—जिन ज्ञान-साधनों और रक्षा के उपायों सहित हे नायक पुरुषो! आप दोनों सुख से सोते हुए प्रजाजन और सबको शान्तिदायक सुख से शयन कराने वाले राजवर्ग को विविध दुःखों से रहित और इस राष्ट्र में शासक रूप से विद्यमान, मननशील पुरुष और प्रजापति राजा को जाने के मार्ग, विज्ञान, भूमि आदि प्राप्त कराते हो। जिन उपायों सहित बाणों की पंक्तियों और शरधारी या शत्रुहन्ता सेनाओं को किरणों से ओत-प्रोत, सूर्य के समान तेजस्वी और प्रजाओं के शासन मर्यादाओं को बाधने वाले शासक पुरुष की रक्षा और राष्ट्र-हित के लिये शत्रुओं की तरफ चलाते हो, उन साधनों सहित हमें भी प्राप्त होवो।

याभिः॒ पठ॑र्वा॒ जठ॑रस्य म॒ज्मना॒ग्निर्नादी॑देच्चि॒त इ॒द्धो अ॒ज्मन्ना ।
याभिः॒ शर्या॑त॒मव॑थो महाध॒ने ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥१७॥

भा०—जिन साधनों और रक्षा के उपायों सहित भुक्त पदार्थों को अपने भीतर धारण कर लेने वाले पेट की सब कुछ पचा लेने वाली आग के समान वीर तथा धर्मात्मा राजा सब भुक्त अर्थात् अधीन देशों को महान् बल से चमकाता है और जिन साधनों से युक्त होकर सञ्चित काष्ठों में लगे और भड़के हुए चिताग्नि के समान जलते हुए संग्राम में वीर भटों को अपने तेज से भस्म करने वाला, पठनशील विद्यार्थियों को प्राप्त करने वाले आचार्य और वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति आगे बढ़ता है और जिन साधनों से युक्त होकर संग्राम में हिंसक पुरुषों

पर चढ़ाई करने वाले शूरों और शाखाओं सहित आक्रमण करने वाले सेनापति की रक्षा करते हो उनके सहित होकर तुम दोनों नायक पुरुष हमें भी प्राप्त होवो। पठर्वा—पतद् अर्वा। पृषोदरादित्वात् साधुः। ठत्वं छान्दसम्। पठतो ऋच्छति वा।

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १८

भा०—हे विद्वन्! जिनके द्वारा ज्ञानपूर्वक तू अन्यों को ज्ञान कराता है। हे सेनाध्यक्ष और सैनिक जनो! आप दोनों जिन उपायों और रक्षा-साधनों से खूब युद्ध करने में समर्थ होते हो और जिन उपायों से आप दोनों सूर्य की किरणों के प्रकाश और जल को प्रकट करने में सूर्य और विद्युत् के समान तथा ज्ञान वाणियों को विशद ज्ञान करने कराने के लिये गुरु शिष्य के समान पृथिवी के ऐश्वर्य को विविध प्रकार से प्राप्त करने के लिये मुख्य पद पर या संग्राम भूमि में आगे बढ़ते हो। जिन साधनों से मननशील या शत्रुओं के रोकने और थामने में समर्थ, मुख्य युद्ध विद्या के ज्ञाता, शूरवीर सेनापति को प्रेरने योग्य बाण आदि तथा सेना आदि बल से अच्छी प्रकार रक्षा करते हो उन रक्षा-साधनों सहित हमें प्राप्त होवो।

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १६

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग जिन उत्तम ज्ञानपूर्वक किये रक्षा-साधनों से विविध प्रकार के आनन्द प्राप्ति के लिये पतियों के साथ यज्ञ द्वारा संयोग करने वाली पत्नी जनों को विवाहित करते या गृहस्थ में प्रवेश कराते हो और जिन उपायों से तेजस्विनी, ब्रह्मचारिणी कन्याओं को शिक्षा प्रदान करते हो और जिन उपायों से उत्तम दानशील पुरुष को उत्तम देने योग्य ज्ञान और द्रव्य प्राप्त कराते हो उन उपायों सहित आप दोनों हमें भी प्राप्त होवो।

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम्।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२०॥३६

भा०—हे दो मुख्य अधिकारियो! राजा, अमात्य आदि जनो! तुम दोनो! जिन रक्षासाधनो और उपायो से नित्य ज्ञान और द्रव्य के देने वाले प्रजाजन और विद्वान् जन के हित के लिये शान्ति और सुख-कारक होते हो और जिन उपायो और साधनो से सुख सामग्री, ऐश्वर्य के भोक्ता और पालक पुरुष की रक्षा करते हो, जिनसे पृथ्वी के स्वामी अध्यक्ष ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करते हो और सत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष और सत्य ज्ञान और अन्न के धारण करने वाली रक्षणशील पुरुषों की उत्तम विद्या या नीति से युक्त उत्तम रीति से प्रजा के भरण पोषण करने वाली नीति की जिन उपायो से रक्षा करते हो उन उपायो से आप हमे प्राप्त होवें। इति षट्त्रिंशो वर्गः।

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२१॥

भा०—जिन रक्षा साधनों, ज्ञानपूर्वक उपायो और नीतियो से आप दोनों अग्नि के समान तेजस्वी तथा शत्रु पक्ष को कृश, दुर्बल करने वाले सेनापति पुरुष की शत्रुओं को उखाड फेंकने के संग्राम आदि कार्य मे परिचर्या करते हो, उसके अधीन रहकर उसकी आज्ञा पालन करते हो और वेग के संग्राम और शीघ्र गमन आदि कार्य मे जिन उपायों से जवान पुरुषों और वेगवान् अश्वों और अश्वारोही सेनादल की रक्षा करते हो और जिन उपायों से वेग मे आगे बढने वाले वीरो को मधु मक्षिकाओं को मधु के समान उनको स्थिर रूप से बांधे रखने वाले प्रिय अन्न प्रदान करते हो उन उपायों सहित हमे प्राप्त होवो।

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२२

भा०—हे मुख्य पुरुषो! आप दोनों जिन उपायों से नायक वीर पुरुषों से विजय करने योग्य संग्राम में भूमियों के विजय के लिये युद्ध करने वाले वीर नायक पुरुष को बढ़ाते हो और जिन साधनों से खेत के समान सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री और पुत्र के लाभ करने के निमित्त पुरुष को प्रसन्न और शक्तिशाली करते हो, जिन उपायों से हमारे रथों की रक्षा करते हो और जिन उपायों से अश्वों और रथारोही, अश्वारोही पुरुषों की रक्षा करते हो उन्हीं सब साधनों सहित हमें प्राप्त होवो।

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दुभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २३

भा०—जिन साधनों से ऐश्वर्य के अर्जन करने और शत्रु का मुकाबला करने वाले सेनाध्यक्ष के शस्त्रास्त्र, सेनाबल की आप दोनों सैकड़ों प्रज्ञाओं, कर्मों से युक्त होकर रक्षा करते हो और जिन उपायों से शत्रु के नाशक और शत्रुओं का वध करने वाले की खूब अच्छी प्रकार रक्षा करते और उसको आगे बढ़ाते हो जिन उपायों से शत्रु के नगरों को ध्वस करने वाले और बहुत ऐश्वर्य देने वाले की रक्षा करते हो उन उपायों सहित हमें प्राप्त होवो।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! या दो मुख्य पुरुषो! सभासेनाध्यक्षो! [illegible]प दोनों हमारे हित के लिये उत्तम कर्म या क्रियायोग का उपदेश [illegible]ने वाली वाणी का उपदेश करो। हे दुःखों, दुष्ट पुरुषों और शत्रु का [illegible] करने हारे मुख्य पुरुषो! हे सुखों का वर्षण करने वाले और [illegible] पुरुषो! आप दोनों हमारे हित के लिये उत्तम कर्मों का उपदेश करने वाली बुद्धि या मानस शक्ति या प्रेरणा को करो। तुम दोनों को मैं प्रकाशरहित अन्धकारमय मार्ग में प्रकाश करने के लिये और द्यूत आदि छल

कपट के व्यवहार से रहित धर्ममार्ग में गमन कराने के लिये नित्य बुलाता हूं। आप हमें ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम के विजय कार्य में वृद्धि करने के लिये समर्थ होवो।

द्युभि॑र॒क्तुभि॒: परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒: सिन्धु॑: पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥२५॥३७॥७॥

भा०—हे दो मुख्य पुरुषो! आप दोनों हमारी सब दिनों और रातों में न नाश करने योग्य, कल्याणकारी, उत्तम उत्तम ऐश्वर्यों से सब प्रकार से रक्षा करो। शेष पूर्ववत्। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः।

अथाष्टमोऽध्यायः।

[११३]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ १—२० उषा देवता। द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि ॥ छन्दः—१, ३, ६, १२, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। ७, १८—२० विराट् त्रिष्टुप्। २, ५ स्वराट् पंक्तिः। ४, ८, १० ११, १५, १६ भुरिक् पंक्तिः। १३, १४ निचृत्पंक्ति। विंशत्यृच सूक्तम् ॥

इ॒दं श्रेष्ठं॒ ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रागा॑च्चि॒त्रः प्र॑के॒तो अ॑जनिष्ट॒ विभ्वा॑। यथा॒ प्रसू॑ता सवि॒तुः स॒वायँ॑ ए॒वा रात्र्यु॒षसे॒ योनि॑मारैक् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री पुत्रोत्पादक पुरुष के पुत्र के उत्पन्न करने के लिये गर्भाशय को रिक्त करती है। अथवा उत्पादक पति के ऐश्वर्य वृद्धि और कामना करने योग्य पति के बसने के लिये गृह को बनाती है और जिस प्रकार रात्रि सूर्य के उत्पन्न या उदय होने के लिये और उषाकाल के लिये स्थान प्रकट करती है। उसी प्रकार समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली समस्त जीवों को रमण कराने वाली, प्रलय दशा, सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर के ऐश्वर्य तथा सामर्थ्य को प्रकट करने के लिये और उसी प्रकार दिन में सन्धि वेला के समान सर्ग और प्रलय

के बीच के सन्धि वेला को प्रकट करने के लिये भी आश्रय रूप काल को प्रकट करती है। और जिस प्रकार समस्त तेजस्वी पदार्थों मे उत्तम तेजस्वी सूर्य उदय होता है अद्भुत या चेतना या चिद् रूप मे रमण करने वाला उत्तम ज्ञानवान् पुरुष महान् परमेश्वर के साथ मिलकर सुख, ऐश्वर्य और आनन्द से युक्त हो जाता है यह साक्षात् सर्वश्रेष्ठ सब ज्योतियो मे परम ज्योति, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म प्रकट होता है।

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने॥ २॥

भा०—लाल बछड़े वाली लाल गाय या श्वेत वर्ण की गौ के समान अति देदीप्यमान सूर्य रूप बछड़े को साथ लिये हुए लाल आभा वाली उषा आती है। और फिर इसी के स्थानों पर काली वर्ण वाली गौ के समान काली अन्धकार वाली रात्रि भी आती है या काली अन्धकार वाली रात्रि उसके लिये स्थान त्यागती अर्थात् प्रदान करती है। उसको अपना विश्राम स्थान देकर चली जाती है। दिन और रात्रि दोनो समान पद के स्नेह मे बधे हुए दो सहोदर भाई या मित्र या बहनो के समान रहती हुई कभी नाश न होने वाली एक दूसरे के पीछे आती हुई अपने अपने प्रकाश सूर्य और चन्द्र नक्षत्रादि के प्रकाशों मे प्रकाशित होती हुई परस्पर एक दूसरे को दूर हटाती हुई एक दूसरे का नाश करती हुई अपना अपना स्वरूप प्रकट करती हैं।

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे॥ ३॥

भा०—दो बहनो या दो भाई बहनो के समान एक साथ विचरने [illegible]ले दिन और रात्रि दोनो का मार्ग एकसा और अनन्त है। वे दोनो [illegible] न गुरु से अनुशासित दो शिष्यो के समान, राजा से आज्ञा किये दो भृत्यों के समान, देव अर्थात् प्रकाशमान सूर्य से शासित होकर या परमेश्वर के शासन मे स्थित होकर एक दूसरे के पीछे होकर चलते है।

वे दोनो सुन्दर अंगो वाले भाई बहनों के समान परस्पर संग भी नहीं करते, एक स्थान पर ठहरते भी नहीं। वे दोनो एक समान चित्त वाले दो मित्रों के समान होकर भी एक दूसरे से भिन्न रूप वाले तमः और प्रकाशस्वरूप हैं।

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ४ ॥

भा०—उत्तम कान्तिवाली, उत्तम धन, ज्ञान, यश और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाली, विविध व्यवहार और कान्तियो से चित्र एवं पूजनीय विदुषी के समान प्रतीत होती है। जो हमारे लिये गृह के द्वारो के समान दुःखो के वारक साधनो या तमो विनारक प्रकाशो को विशेष रूप से प्रकट करती है। वह समस्त जगत् को हमारे अर्पण करके हमारे लिये ऐश्वर्य प्रकाशित करती है और समस्त लोको को अपने भीतर ले लेती है।

जिह्मश्ये॒चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥५॥१॥

भा०—सब पापों को भस्म कर देने वाली उषा किसी पुरुष को टेढ़े मेढे सोने के लिये और किसी को उठकर काम पर जाने के लिये और किसी को सब प्रकार के भोग सुखों को प्राप्त करने और किसी को यज्ञ दान करने के लिये और किसी को धन प्राप्त करने के लिये और अति सूक्ष्म पदार्थों या सूक्ष्म तत्व को या भीतरी दहराकाश को देखने वाले अध्यात्म साधकों को उस महान् परमेश्वर का विशेष रूप से साक्षात् कराने के लिये समस्त लोकों को प्रकट करती है या जगा देती है। इति प्रथमो वर्गः॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभि प्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ६ ॥

भा०—प्रभात एक को धन, राज्यैश्वर्य प्राप्त करने के लिये एक को अन्न तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एक को बड़े भारी यज्ञ करने के लिये

और एक को धनादि प्राप्त करने के लिये और नाना प्रकार के जीवनोपायों को प्रकट करने के लिये समस्त उत्पन्न पदार्थों और लोकों को व्यापती और प्रकट करती है।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७॥

भा०—यह सूर्य की पुत्री के समान उषा, शुद्ध प्रकाश को धारण करती हुई विविध प्रकाशों को प्रकट करती हुई दिखाई देती है। वह मानो समस्त पृथ्वी पर के ऐश्वर्य की स्वामिनी है। हे उत्तम ऐश्वर्य वाली विदुषी के समान प्रभातवेले! तू आज इस जगत् मे विविध गुणों के समान प्रकाशों को प्रकट कर। युवती कन्या विद्वान् तेजस्वी कामना युक्त पुरुष की इच्छा पूर्ण करने वाली होने से 'दिवः दुहिता' है। शुद्ध वीर्यों या वस्त्रों को धारण करने से 'शुक्रवासा': है। ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती होने से 'सुभगा' है।

परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

भा०—यह उषा पूर्व की गुजरी हुई उषाओं के मार्ग का अनुसरण करती है और अनन्त काल तक आगे आने वाली उषाओं मे से सबसे पहली है। वह प्रकट होती हुई प्राणी संसार को जगाती, उठाती हुई मानो किसी भी मरे मुर्दे पुरुष को जगाती, चेतन करती हुई सी प्रकट होती है। इसी प्रकार विदुषी स्त्री अपने से पूर्व की या परम पद परमेश्वर को प्राप्त होने वाली विदुषी स्त्रियों के चले मार्ग का अनुगमन करे। और आगे आने वाली, अपने से छोटे उम्र की स्त्रियों मे प्रमुख रहे। पुरुष को उन्नति मार्ग में प्रेरित करती हुई, अपने गुणों को प्रकाश करती हुई, मुर्दे मे जान सी फूकती हुई अकर्मण्य पुरुष को भी कर्मण्य और साहसी बनावे।

उषो यद॒ग्निं स॒मिधे॑ च॒कर्थ॒ वि यदाव॒श्चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य।
यन्मानु॑षान्य॒क्ष्यमा॑णाँ॒ अजी॑ग॒स्तद्दे॒वेषु॑ चकृषे भ॒द्रमप्नः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे उषः ! जो तू अच्छी प्रकार प्रकाशित करने के लिये अग्नि अर्थात् सूर्य को उत्पन्न करती है और सूर्य के प्रकाश से जो तू विविध पदार्थों को प्रकट करती है। और जो तू यज्ञ करने वाले मनुष्यों को व्यापती है, उनको प्रेरित करती है वह तू विद्वान् पुरुषों में सुखकारी, उत्तम कार्य करती है।

स्त्री के पक्ष में—स्त्री यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करती है, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के ज्ञान प्रकाश से सब पदार्थों का ज्ञान कराती और गृहस्थादि यज्ञ के करनेवाले पुरुषों को उबारती है। इन कार्यों से वह विद्वानों के बीच उत्तम सुखकारी कार्य को करती है।

किय॒त्या यत्स॒मया॒ भवा॑ति॒ या व्यू॒षुर्याश्च॑ नू॒नं व्यु॒च्छान्।
अनु॒ पूर्वाः॑ कृपते वावशा॒ना प्र॒दीध्या॑ना॒ जोष॑म॒न्याभि॑रेति ॥१०॥२॥

भा०—जो उषाएं प्रकट हुईं और जो अभी तक प्रकट हो रही हैं वे सब कितने काल तक ही रहती हैं ? अर्थात् उनका स्थितिकाल दीर्घ नहीं होता। यह उषा भी दीप्तिमती होकर पूर्व की उषाओं के समान ही प्रकट होती है और अच्छी प्रकार गुण रूप किरणों से चमकती हुई आगे आने वाली अन्य उषाओं से अनुकरण की जाती है। ठीक इसी प्रकार जो स्त्रियां पतियों के साथ रहती हैं, जो अपने यौवनादि गुणों को प्रकट करती हैं, उनमें से प्रत्येक स्त्री का उषाकाल अर्थात् कमनीय कन्या रहने का काल कितनी देर है ? अर्थात् बहुत न्यून है। पति की कामना करती हुई वह अपने से पूर्व की स्त्रियों के चले सन्मार्ग पर उनका अनुकरण करती हुई कार्य करने में समर्थ होती हैं और स्वयं गुणों में उज्वल होकर अन्य स्त्रियों सहित प्रेम को प्राप्त होती है। इति द्वितीयो वर्गः।

ई॒युष्टे ये पूर्व॑तरा॒मप॑श्यन्व्यु॒च्छन्ती॑मु॒षसं॒ मर्त्या॑सः।
अ॒स्माभि॑रू॒ नु प्र॑ति॒चक्ष्या॑भू॒दो ते य॑न्ति॒ ये अ॑प॒रीषु॒ पश्या॑न् ॥११॥

भा०—जो मनुष्य पूर्व प्रकट होने वाली खिलती हुई उषा को देखते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं। जो आगे आने वाली उषाओं में भी पूर्व की खिली उषा को देखें वे भी सुख को प्राप्त होते हैं। हमें भी वह प्रत्यक्ष साक्षात् हो। हम भी सुख को प्राप्त हों।

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान तेज और कान्ति को धारण करने वाली स्त्री! तू समस्त अप्रीतिकारक, द्वेषोत्पादक कर्मों को दूर करती हुई, सत्य व्यवहार को पालन करने वाली सत्य व्यवहार, ज्ञान, यज्ञ, अन्न और ऐश्वर्य के निमित्त गुणों में विख्यात होने वाली, उत्तम सुखों को देने वाली और उत्तम शुभ वाणियों को उच्चारण करती हुई, विद्वानों की उपदिष्ट विशेष नीति या कान्ति या धारण करने योग्य यज्ञोपवीत आदि चिह्न को धारण करती हुई यहां, इस गृह में आज सबसे उत्तम स्त्री होकर प्रकट हो। विवाहादि में कन्या 'सुमङ्गली' होती है। वह गोभिल के अनुसार यज्ञोपवीतिनी होती है।

शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३॥

भा०—कमनीय गुणों से युक्त पापों को नाश करती हुई उषा के समान उत्तम गुणों से युक्त स्त्री निरन्तर पहले के समान विविध गुणों को प्रकट करे और सुख पूर्वक निवास करे, और वह अब भी ऐश्वर्य से युक्त होकर इस लोक तथा पतिगृह को प्रकाशित करे। और वह आगे आने वाले दिनों में भी विशेष गुणों को प्रकाशित करे और जरा अर्थात् आयु की हानि न करती हुई मृत्यु के दुःखों से रहित होकर आत्मरूप से अपने को अमृत जानती हुई स्वयं धारण किये धर्मों, उत्तम पदार्थों तथा 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करने वाले अन्न आदि पदार्थों सहित जीवन सुख-प्राप्त करे। उषा काल रूप से या प्रवाह से अजर, अमृत और नित्य है।

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार सूर्य के किरणों से दिशाओं में विशेष रू से प्रकाश करती है उसी प्रकार कमनीय स्त्री भी अपने तेजस्वी पति के ज्ञानप्रकाशक विशेष गुणों से समस्त क्रियाओं और विद्याओं में विशेष रूप से चमके। प्रकाश करने वाली उषा जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार-मय रूप को दूर कर देती है या रात्रि को दूर करके सब पदार्थों के उज्वल रूप को प्रकट करती है उसी प्रकार उत्तम स्त्री भी राजस, तामस और मलिनता को दूर करके अपने शुद्ध कान्तिमय सुन्दर रूप को प्रकट करे, स्वच्छ रहे। उषा जिस प्रकार अरुण किरणों से सबको जगाती हुई उत्तम सहयोगी आदित्य के साथ गमन करती है उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त कन्या भी अपने अनुराग युक्त गुणों से सबको उत्तम ज्ञान कराती हुई और लाल घोडे सहित जुते हुए रथ से तथा अनुराग युक्त होकर संसार मार्ग में यात्रा करे।

आ वहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५॥३॥

भा०—उषा जिस प्रकार पोषण करने योग्य, वृद्धि करने योग्य और वरने, स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों को लाती हुई सबको जगाती हुई आश्चर्यजनक प्रकाश करती है और वह अनादि काल से आने वाली समस्त उषाओं की उपमा अर्थात् उनके समान धर्मों को धारण करती हुई और विशेष सूर्य की दीप्ति से युक्त आगामी उषाओं में प्रथम होकर व्याप्त होती है उसी प्रकार पोषण योग्य ऐश्वर्यों, धनों को सब प्रकार से धारण करती हुई स्वयं ज्ञान लाभ करती हुई अपने परिवार में आश्चर्य-जनक ज्ञान प्रकट करे। वह बहुत सी पूर्व काल की, अपने से पूर्व उत्पन्न सच्चरित्र स्त्रियों के समान उत्तम गुणों को धारण करने वाली, सर्वोपमा-योग्य हो और विशेष विद्या और कान्ति में चमकती हुई स्त्रियों में भी

प्रथम, सबसे श्रेष्ठ होकर विविध प्रकार से विख्यात हो। इति तृतीयो वर्गः।

उदी॑र्ध्वं जी॒वो असु॑र्न॒ आगा॒दप॒ प्रागा॒त्तम॒ आ ज्योति॑रेति।
आरै॒क्पन्थां॒ यात॑वे॒ सूर्या॒याग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥ १६ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग उठो! उन्नति मार्ग पर चलो! आलस्य छोड़ कर उठ जाओ। प्रभात काल मे हमे शरीर का सचालन करने वाला जीवात्मा प्राप्त होता है अर्थात् वह पुनः सोने के बाद जागृत रूप मे प्रकट होता है। अन्धकार, मोह दूर हटता है और प्रकाशमान् सूर्य आगे बढ़ा चला आता है। वह उषा सूर्य के गमन करने के लिये मार्ग छोडती जाती है। हम भी उसे प्राप्त हों। जहा विद्वान् जन जीवन की वृद्धि करते हैं। अथवा हम भी उस सूर्य को प्राप्त करें जिसके आश्रय होकर प्राणी गण समस्त जीवन सुख से व्यतीत करते हैं। इसमे उपासक के अध्यात्म ज्योति के उदय का भी वर्णन है।

स्यू॒मना॑ वा॒च उदि॑यर्ति॒ वह्निः॒ स्तवा॑नो रे॒भ उ॒षसो॑ विभा॒तीः।
अ॒द्या तदु॑च्छ गृण॒ते म॑घो॒न्य॒स्मे आयु॒र्नि दि॑दीहि प्र॒जाव॑त् ॥१७॥

भा०—विशेष दीप्ति वाली उषाओं के आने पर ज्ञानो को धारण करने वाला विद्वान्, स्तुति करता हुआ एक दूसरे से सम्बद्ध और उत्तम ज्ञानों से ओत-प्रोत वेद वाणियों को प्रकट करता है। उसी प्रकार विशेष दीप्ति से युक्त प्रभातों मे नित्य हा स्त्री को विवाहने वाला पुरुष विद्वान् होकर गुणो का वर्णन करता हुआ सुखजनक वाणियों को बोला करे। उषा जिस प्रकार स्तुति करने वाले के हृदय मे ज्ञान का प्रकाश करती है और उपासक ध्यानी के स्तवन करते करते प्रभात का प्रकाश कर देती है उसी प्रकार हे उत्तम स्त्री! तू भी ऐश्वर्यवती होकर सुख-कर प्रीति-युक्त वचन कहने वाले पति के सुख के लिये आज दिन वह नाना प्रकार के गुण प्रकट कर और हमारे सुख के लिये उत्तम सन्तति से युक्त अपने जीवन को और अन्नादि को प्रकाशित कर।

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८॥

भा०—अपने को उपासना मे भगवान् के प्रति सर्वात्मना अर्पण कर देने वाले पुरुष के हित के लिये जो किरणो से युक्त उषाएं सब-प्राणो से युक्त या सबो को प्रेरित करने हारी अथवा वीरवती होकर प्रकट होती हैं और उसके दुःखों को दूर करती हैं। उन व्यापक सूर्य या प्राण को देने वाली, उसको प्रकट करने वाली उषाओ को वायु या प्राण के समान उत्तम स्तुति वाणियो के उच्चारण करते करते सूर्य के उदय होजाने पर परमेश्वर का उपासक भोग करे। अर्थात् प्राणायाम और स्तुति भजन कीर्त्ति तथा मन्त्रोच्चारण करते करते ध्यानी पुरुष को प्रभातवेला मे सूर्योदय हो जावे और इस प्रकार वह उषाओं का आत्मिक सुख प्राप्त करे।

इसी प्रकार सुख देने वाले पति पुरुष को कमनीय कन्याएं भी सब वीर पुत्रों से युक्त और पशु आदि सम्पदा से तथा मधुर वाणियों से युक्त होकर विविध सुखों को प्रकट करती और दुःखों को दूर करती हैं। और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ब्रह्मचारी या ऐश्वर्यवान् पुरुष ही ज्ञानवान् गुरु के समान वेद वाणियों को उत्तम रीति से प्राप्त करके स्नातक हो जाने पर उन अश्वादि पशुओ को देने और पालने वाली स्त्रियों को पति रूप मे प्राप्त हो। एक वचन और बहुवचन का प्रयोग जात्याख्या मे है।

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥ १९ ॥

भा०—यह उषा सूर्य की किरणो को प्रथम प्रकट करने वाली है। और वह उषा सूर्य का मुख है। वह यज्ञ का झण्डे के समान ज्ञापन करने वाली है। वह परमेश्वर की उत्तम स्तुतियों को प्रकट करती है। वह सबसे वरण करने और सेवन करने योग्य होने से 'विश्ववारा' है। इसी प्रकार हे सबसे वरण करने योग्य, श्रेष्ठ या सब उत्तम पदार्थों और सुखों को चाहने वाली स्त्री ! तू उत्तम विद्वान् तेजस्वी पुत्रो की माता

हो। पुत्र की सेना के समान रक्षक और माता पिता दोनो का मुख अर्थात् दोनो मे मुख्य हो और गृहस्थ रूप यज्ञ की चेताने वाली, गुणों में विशाल और सुखो की वृद्धि करने हारी होकर प्रकट अर्थात् पति गृह मे प्रकाशित हो। वेदज्ञ विद्वान् तथा परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति युक्त वचन कहने वाली हमारे दुःखों को दूर कर और हमे समस्त जनों में प्रसिद्ध या सन्तानयुक्त कर।

यच्चित्रमप्न॑ उषसो वह॑न्तीजानाय॑ शशमानाय॑ भद्रम्।
तन्नो॑ मित्रो वरु॑णो मामहन्तामदि॑तिः सिन्धु॑ पृथिवी उत द्यौः॥२०॥४

भा०—प्रभात वेलाएं जिस प्रकार यज्ञ करने वाले तथा ईश्वरार्चना करने वाले, स्तुतिशील पुरुष के सुख के लिये अद्भुत रूप, उत्तम स्तुति योग्य कर्म को और सुख और कल्याणजनक ज्ञान को प्राप्त करती है उसी प्रकार कामनानुकूल स्त्रियां अपने साथ संग करने वाले प्रशंसित, गुणवान् पुरुष के लिये आश्चर्यजनक पुत्र और कल्याण और सुखमय जीवन को प्राप्त करती हैं। शेष पूर्ववत्। इति चतुर्थः वर्गः।

[११४]

कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ रुद्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३, ६, ८, ९ विराट् जगती च। १०, ४, ५, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् निचृत् त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इमा रुद्राय॑ तवसे॑ कपर्दिने॑ क्षयद्वी॑राय प्र भ॑रामहे मतीः।
यथा शमस॑द्द्विपदे चतु॑ष्पदे विश्वं॑ पुष्टं ग्रामे॑ अस्मिन्न॑नातुरम्॥१॥

भा०—अब विद्वान् राजा का वर्णन करते हैं। दुष्टों को रुलाने वाले, अन्यों को ज्ञान का उपदेश करने वाले तथा ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी, बलवान्, केश जटा वाले पूर्ण युवा, दोषनाशक वीर पुरुषों के स्वामी या शत्रुओं के नाशकारी या ऐश्वर्य युक्त वीर गणों के स्वामी, राजा या सभाध्यक्ष के गुण वर्णन के लिये हम इन मनन करने योग्य ज्ञान-वाणियों को धारण

करते हैं। जिससे दोपाये और चौपायो के सुख के लिये सुख, कल्याण हो और इस ग्राम या जनपद मे सब कोई हृष्ट पुष्ट और दुःख, रोग, शोक आदि से कभी पीडित न हो।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२॥

भा०—हे दुष्ट शत्रुओ को रुलाने वाले! संसार के दुःखों को दूर करने वाले! अध्यात्म ज्ञान के उपदेश देने हारे! आचार्य! ज्ञानरोधक अविद्या आदि के नाशक! प्रभो! हमे सुखी कर और हमे ब्रह्मानन्द प्रदान कर। शत्रु सेना के वीरों के नाश करने वाले तेरा अन्न, बल, वीर्य, पदाधिकार, मान, आदर द्वारा हम सत्कार करें। मननशील विवेकी पालक राजा हमे जो कुछ भी शान्तिदायक और दुःखो का नाशक साधन प्रदान करता है हम उसको ओषधि के समान उपयोग करें। हे दुःखों को दूर भगाने हारे हम तेरी उत्तम नीतियों के अनुसार चलें।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३॥

भा०—हे रुद्र! उपदेशों के देने हारे! हे प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे! हम लोग वीर पुरुषों को बसाने वाले तेरी शुभ मति को विद्वान् पुरुषों के सत्सग द्वारा प्राप्त करें। तू हमारी प्रजाओं को सुखी करता हुआ ही सर्वत्र विचरण कर और हम सुखी, अहिंसित वीर पुरुषों और पुत्रो के साथ तेरे लिये अन्न आदि प्रदान करें।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग विद्या, न्याय और तेज से देदीप्यमान, तेजस्वी, युद्ध के विजयी और प्रजा पालन रूप उत्तम कर्म के साधक अति कुटिल, टेढ़े, शत्रुओं से कभी पराजित न होने हारे, दूरदर्शी पुरुष को अपने सुख दुःख आदि निवेदन करें। वह विद्वानो के क्रोध अथवा अनादर आदि

करने वाले पुरुषों को हमसे दूर करे। हम इस शत्रुरोधक वीर पुरुष की शुभ मति, धर्मानुकूल प्रज्ञा और बल को प्राप्त हों।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५॥५॥

भा०—ज्ञान, न्याय तथा तेज से प्रकाशित व्यवहार से श्रेष्ठ गुणों का उपदेश करने वाले मेघ के समान निष्पक्षपात और उत्तम सात्विक आहार करने हारे रोष रहित, अति देदीप्यमान, तेजस्वी, पूर्ण ब्रह्मचारी, जटिल, विद्वान् अथवा सुन्दर मुकुटधारी, सूर्य के समान दीप्तिमान्, रुचिकर, सुन्दर रूपवान् पुरुष को आदरपूर्वक निवेदन करें तथा उसका सत्कार करें। वह अपने हाथ में वैद्य के समान रोगों के समान शत्रुओं का वारण करने वाले साधनों, कष्टों के नाशक, स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों और उत्तम उपायों को धारण करता हुआ हमें सुख, शरण, कवच और गृह और शस्त्रास्त्र साधन प्रदान करे। इति पञ्चमो वर्गः।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

भा०—पिता का आशीर्वचन जिस प्रकार पुत्रों को बढाने हारा होता है उसी प्रकार हे मरणादि क्लेश से रहित ज्ञानवन्! विद्वन्! पालक ज्ञानोपदेष्टा गुरु का यह वचन, उपदेश वीर, वायु के समान बलवान्, आलस्य रहित शिष्यों को बढाने वाला कहा जाता है। हे विद्वन्! हमारे शरीर, मन और आत्मा पुत्र और पौत्र आदि के सुख के लिये स्वादु से भी स्वादु, आनन्दप्रद मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर और सुखी कर।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥

भा०—हे दुष्टों के रुलाने वाले! न्यायाधीश! राजन्! एवं रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन! तू हमारे में से विद्या और बल में बडे को

विनाश मत कर। हममें से छोटे बालक को मत विनष्ट होने दे। हममें से वीर्य सेचन मे समर्थ युवा पुरुष को नष्ट मत कर। हममें से जो जीव निषेक द्वारा गर्भाशय मे स्थित है उनको नष्ट मत होने दे। हमारे पिता और माता को मत मार। हमारे प्रिय शरीरो को मत पीड़ित होने दे।

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८॥

भा०—हे दुष्टो के रुलाने हारे राजन्! तू हमारे पुत्र और पौत्र आदि संतति पर हिंसा का प्रयोग मत कर। हमारे जीवन पर आघात मत कर। हमारी गौओं और हमारे घोड़ों पर भी हिंसा का प्रयोग मत कर। उनको मत मार और दूसरों को मत मारने दे। क्रोध, मन्यु वाला उत्साही तू हममें से वीरों को मत मार। हम उत्तम अन्न, कर तथा उत्तम कर्मों वाले होकर तुझ से सदा ही यह प्रार्थना करते हैं।

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥

भा०—पशुओं का पालक ग्वाला जिस प्रकार समस्त दुग्ध आदि पदार्थ तथा पशुसमूहों को भी स्वामी को ही प्रदान करता है इसी प्रकार हे पालक राजन्! गुरो! प्रभो! तेरे ही लिये इन स्तुति-वचनों तथा ग्राह्य पदार्थों को मैं समर्पित करता हूं। हे विद्वान् पुरुषों के पालक राजन्! शिष्यो के पालक गुरो! तू हमें सुख, सुखकारक ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान कर। तेरी शुभ मति कल्याणकारक और सबसे अधिक सुखजनक है, और इसी कारण हम लोग तेरी रक्षा और ज्ञानैश्वर्य को ही सदा चाहते हैं।

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः॥१०॥

भा०—हे वीर पुरुषों को अपने आश्रय मे बसाने हारे राजन्! तेरे राष्ट्र में रहने वाले गाय आदि पशु के हत्यारे और पुरुषों के हत्यारे हिंसक

मनुष्य को तू राष्ट्र से दूर कर। इस प्रकार हम और तुझ राजा दोनो को सुख प्राप्त हो। हे प्रजाजन को सुख देने वाले राजन्! तू हमें सुखी कर। गुरु के समान सर्वोपरि शासक होकर हमे उपदेश कर। और तू ऐहिक और पारमार्थिक दोनों सुखों को बढ़ाने वाला या राजवर्ग प्रजावर्ग दोनो का वर्धक, दोनों का स्वामी या ज्ञान कर्म दोनो का स्वामी होकर हमें भी अपनी शरण और सुख प्रदान कर।

अवो॑चाम॒ नमो॑ अस्मा अव॒स्यवः॑ शृ॒णोतु॑ नो॒ हवं॑ रु॒द्रो म॒रुत्वा॑न्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥११।६॥

भा०—रक्षा और ज्ञान के चाहने वाले हम लोग इस शरणप्रद और ज्ञानप्रद राजा और आचार्य के मान के लिये सदा आदर सत्कार सूचक पद 'नमस्ते' आदि का उच्चारण करें। और वह विद्वान् वीर पुरुषों और ज्ञानेच्छु शिष्यो का स्वामी दुष्टों का रोदनकारी राजा और उत्तम उपदेशदाता आचार्य हमारी प्रार्थना सुने। शेष पूर्ववत् ॥ इति षष्ठो वर्गः॥

[११५]

कुत्स आङ्गिरस ऋषि ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ षड्च सूक्तम् ॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥१॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार किरणों का समूह रूप, तेजोमय है। वह मित्र अर्थात् वायु, प्राण, वरुण अर्थात् मेघ या जल और अग्नि इन सब को आश्चर्य कर रूप से दिखाने वाला, सबका प्रकाशक, चक्षु के समान सबका साक्षी रूप सा होकर उदय को प्राप्त होता है और वह आकाश, पृथिवी और वायुमण्डल सबको प्रकाश से भर देता है और जंगम और स्थावर दोनों के जीवन के समान है। उसी प्रकार परमेश्वर समस्त तेज-स्वी पदार्थों और विद्वानों का आश्चर्यकारी प्रकाशक, ज्ञानदर्शक और

मार्गदर्शक, चक्षु के समान सर्वसाक्षी है। वह बलस्वरूप एवं चक्षु आदि से ग्रहण भी नहीं किया जाता है। वह प्राण, अपान, जाठर तथा वायु, जल और अग्नि सबका अद्भुत द्रष्टा और प्रवर्त्तक है। वह सब का प्रेरक होकर आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में व्याप रहा है। वह ही स्थावर जंगम सब में व्यापक, सबका अन्तर्यामी है।

सूर्यो॑ दे॒वीमु॒षसं॒ रोच॑माना॒ं मर्यो॒ न योषा॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात्।
यत्रा॒ नरो॑ देव॒यन्तो॑ यु॒गानि॑ वितन्व॒त प्रति॑ भ॒द्राय॑ भ॒द्रम् ॥२॥

भा०—विवाह काल में जिस प्रकार पुरुष अपने अनुरूप रुचि की, प्रेमपात्री स्त्री के पीछे पीछे चलता है उसी प्रकार कान्ति वाली, प्रकाशमयी उषा के पीछे पीछे सूर्य भी चलता है। जिसके आश्रय पर नाना सुखों की कामना करने वाले विद्वान् पुरुष कल्याणकारी पुरुष के हाथ उसको सुखकारी स्त्री रूप ऐश्वर्य प्रदान करके युग अर्थात् जोड़े बना देते हैं। इसी प्रकार जिस सूर्य का आश्रय लेकर विद्वान् गणितज्ञ जन, भले को भले पदार्थ प्रदान करते हुए पांच पांच संवत्सरों की गणना से कृत, त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगों की कल्पना करते हैं।

भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रित॒ः सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः।
न॒म॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थु॒ः परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति स॒द्यः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के नील या श्याम वर्ण की किरणें विशेष ज्वरादि नाशक होने से प्राणियों को सुखकारक होती हैं और चित्र विचित्र वर्ण वाले शबल वर्ण अर्थात् रक्त, नील, पीतादि वर्ण के मिश्रित किरण भी उक्त नील वर्ण के किरणों के अनुसार ही प्राणियों को अधिक हर्षोत्पादक होते हैं। वे नीचे झुकते हुए पृथिवी के और आकाश के पृष्ठ पर सब तरफ पडती हैं वे ही आकाश और पृथ्वी पर सर्वत्र शीघ्र ही फैल जाती है।

उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा के वेगवान् अश्वारोही जन और तेजस्वी आचार्य के विद्याओं में वेग से आगे बढ़ने वाले

विद्यार्थी जन कल्याणकारी, सुखजनक, सुसभ्य और पीत वस्त्र को धारण करने वाले या मृगचर्म से श्याम वर्ण या पीत वर्ण सब आश्चर्य जनक, अपने गमन करने योग्य नियत मा पर जाने वाले होकर सभो द्वारा अनुमोदन या अभिनन्दन करने योग्य हों। वे बड़ो को नमस्कार आदर सत्कार करते हुए ज्ञान और तेज के उच्च पद तक प्राप्त होते है। और शीघ्र ही सूर्य और पृथ्वी के समान दम्पति होकर गृहस्थ आश्रम को प्राप्त होते हैं। अथवा वे राज-प्रजा वर्ग को व्याप लेते हैं।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य का जिस प्रकार स्वतः प्रकाशित होकर अन्यों को प्रकाश देना और महान् सामर्थ्य वाला होना यही उसका अनुपम देवत्व और महत्व है। वह लोक-व्यवहार के कार्यों के चलते रहने पर भी बीच मे अपने विस्तृत प्रकाश को संहार कर लेता है। सूर्य जब भी एक ही स्थान से किरणें फैलाता है और दिन को प्रकट करता है और बाद मे रात्रि-काल सब पर अपना काले वस्त्र के समान अन्धकार रूप आवरण फैला देता है उसी प्रकार सबके प्रेरक परमेश्वर का देवत्व भी वह बडा अलौकिक है। परम प्रकाश और अक्षय दान सामर्थ्य भी बडा अद्भुत है और उसका महान् सामर्थ्य भी अलौकिक है कि बनाये हुए इस जगत् के बीच मे विस्तृत इस लोक को भी संहार कर देता है अर्थात् रचे लोकों का प्रलय कर देता है। जब वह एक तरफ अन्धकार को दूर ने वाले प्रकाशमान सूर्यों को स्थापित करता है तो भी दूसरी ओर न्तर महा प्रलय रात्रि समस्त जगत् पर पुनः सबको आवरण करने अन्धकार को भी फैला देता है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥

भा०—मित्र, वायु आकाश को आवरण करने वाले वरुण अर्थात् मेघ को अथवा मित्र, दिन और वरुण, रात्रि इन दोनों को दिखाने या प्रकट करने के लिये सूर्य जिस प्रकार आकाश में स्थिर होकर अपने तेजो-मय रूप को प्रकट करता है उसी प्रकार सबका प्रेरक और उत्पादक परमेश्वर मित्र अर्थात् मरण से त्राण करने वाली जीवन या सृष्टि और वरुण अर्थात् वारण करने वाले मृत्यु या प्रलय को प्रकट करने के लिये अपने तेज को प्रकट करता है। अथवा अपने मित्र तथा श्रेष्ठ धर्मात्मा भक्त के हृदय में अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है। इस परमेश्वर का सूर्य के समान देदीप्यमान चिन्मय सामर्थ्य भी अनन्त, निःसीम है। रात्रि के अन्धकार के समान काला या सबको आकर्षण करने वाला, या परमाणु परमाणु को छिन्न-भिन्न करने वाला संहारक बल भी अनन्त है। जिसको सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से गति करने वाली उसकी शक्तियां धारण करती हैं।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥७॥१६

भा०—आज हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग सूर्य के उदय के समान हृदय में सर्वोत्पादक परमेश्वर के ज्ञानोदय हो जाने पर निन्दनीय पाप से भी सर्वथा मुक्त हो जाओ। शेष पूर्ववत्। इति सप्तमो वर्गः॥

इति षोडशोऽनुवाकः॥

[११६]

कक्षीवानृषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, १०, २२, २३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ८, ६, १२, १३, १४, १५, १८, २०, २४, २५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ७, २१ त्रिष्टुप्। ६, १६, १६ भुरिक् पंक्तिः। ११ पंक्तिः। १७ स्वराट् पंक्तिः॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः। यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥

भा०—जिनका विज्ञान कभी असत्य न हो ऐसे सत्य विद्या, विज्ञान वाले प्रमुख शिल्पियो के उपकार के लिये मैं राजा मार्ग में आये पर्वत वृक्ष आदि बाधक पदार्थों को तथा शत्रु जन-समूहों को घास के समान काट गिराऊं और वायु जिस प्रकार मेघस्थ जलों को प्रेरता है, छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार मैं जन-समूहो को अपनी आज्ञा के बल पर चलाऊं। जो वे दोनों सत्य विज्ञान वाले अति अधिक ऐश्वर्यवान्, विशेष हर्षोत्पादक युवा पुरुष के लिये उसकी स्त्री को और सेना को अपने साथ संचालन करने वाले रथ से सुरक्षित रूप से ले जाते हैं।

अथवा असत्य व्यवहार से रहित या नासिका के समान प्रमुख स्थान पर स्थित दोनो सेनाध्यक्षो के साथ मै शत्रु गण को कुश तृण के समान काट गिराऊं और मेघों को वायु के समान सैनिक सघो को सञ्चालित करू। जो वे दोनो सेना के सञ्चालक होकर रथ से विशेष हर्षोत्पादक प्रिय पति के लिये उसकी वधू के समान अति ऐश्वर्यवान् राजा के निमित्त सर्वोत्पादक सर्वाश्रय भूमि को रथ सेना के बल से प्राप्त कराते हैं।

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

भा०—हे सेना के नासिका या प्रमुख स्थान पर स्थित, कभी असत्य न देखने वाले चक्षुओं के समान अध्यक्ष पुरुषो! आप दोनों बलवान् चक्रों या पैरों वाले शीघ्र गतिशील रथों से युद्ध-विजिगीषु पुरुषों की वेगवती सेनाओं से शत्रु सेनाओं को छिन्न-भिन्न करते हो। तब घोर गर्जनकारी तोप आदि यन्त्र सर्व नियामक राजा के प्रचुर धन देने वाले सं[illegible]म मे सहस्रों को विजय करे। अथवा उपराम को प्राप्त हुए शत्रु के सहस्रों सेना बलों का विजय करे।

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे कोई मरता हुआ पुरुष अपने जीवन रक्षा के लिये धन का त्याग कर दे, उस समय जिस प्रकार दो नाविक जलों पर चलने वाली और पानी को भीतर न जाने देने वाली, सुदृढ़ नावों से पार उतार देते हैं। इसी प्रकार शत्रु-हिंसक और प्रजापालक पुरुष भी रण में मरने मारने पर उतारू होकर अपने भोक्ता या पालक राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को समुद्र के समान संकट दशा मे त्याग देता है। ऐसी दशा मे शीघ्रगामी अश्वों और रथों के स्वामी अध्यक्ष जन अपने आत्मिक बल और विचार मन्त्रणा युक्त वाणियो रूप नावो से उठा लें, उसे सकट से पार करें।

तिस्रः क्षपस्त्रिरहाति॒ व्रज॑द्भि॒र्नास॑त्या भु॒ज्युमू॑हथुः पत॒ङ्गैः।
स॒मु॒द्रस्य॒ धन्व॑न्ना॒र्द्रस्य॑ पा॒रे त्रि॒भी रथैः॑ श॒तप॑द्भिः॒ षळ॑श्वैः ॥४॥

भा०—तीन रात और तीन दिन लगातार अति वेग से चलने वाले अश्वो के समान वेग से जाने वाले सैकड़ो चरणो वाले और छः अश्व अर्थात् वेगवान् यन्त्र कलाओं से युक्त समुद्र, रेता और कीचड़ तीनों प्रकार की भूमियों में अथवा जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों पर चलने वाले तीनो प्रकार के रथो से सदा सत्य विज्ञान वाले दो विद्वान् समस्त राष्ट्र के पालक और भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वर्य को समुद्र के, रेगिस्तान और अन्तरिक्ष के तथा जल से युक्त कीचड़ वाले स्थल के पार पहुंचाया करें।

अध्यात्म मे—'भुज्यु' आत्मा है 'अश्व' शरीर मे लगे मन सहित पांच इन्द्रियें है। शत सौ वर्ष है। 'नासत्य' नासिकास्थ प्राण अपान है। तीन रात, तीन दिन बाल्य, यौवन और जरावस्था तथा उनके प्रारम्भ के तीन काल शैशव, नव यौवन, नई-उठौती हैं। समुद्र धन्व और आर्द्र तीनो ज्ञान, कर्म और उपासना है।

अ॒ना॒र॒म्भ॒णे तद॑वीरयेथामनास्था॒ने अ॑ग्रभ॒णे स॑मु॒द्रे।
यद॑श्विना ऊ॒हथु॑र्भु॒ज्युमस्तं॑ श॒तारि॑त्रां ना॒वमा॑तस्थि॒वांस॑म् ॥५॥८॥

भा०—विद्यावान्, शिल्पवान् पुरुष सैकड़ों चक्षुओं वाली अथवा अनेकों चक्षुओं वाली नाव पर बैठे हुए ऐश्वर्य के भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वय को घर लाते है वे वस्तुतः अवलम्बन रहित आश्रय के स्थल से रहित और सहायता के लिये जहा कुछ पकड़ा न जा सके ऐसे समुद्र में पराक्रम करते है।

अध्यात्म मे—'शतारित्रा' नाव शत-वर्ष जीवी देह है। उस पर बैठे हुए आत्मा कर्म फल भोक्ता को प्राण और अपान या गुरु और परमेश्वर 'अस्त' अर्थात् परम शरण मोक्ष तक पहुंचाते हैं तो वे दोनों उस आत्मा को ऐसी दशा में पहुंचाते हैं जहां प्रथम आरम्भ अर्थात् कर्म का उदय न हो, द्वितीय अनास्थान अर्थात् देह मे स्थित न हो, तृतीय अग्रभण अर्थात् कर्म का बन्धन न हो ऐसे समुद्र अर्थात् रस-सागर आनन्दमय समुद्र मे वे उस आत्मा को प्रेरित करते हैं। अथवा यह जगत् कामनामय समुद्र है, जो 'अनारम्भण' है अर्थात् इसमें कुछ करते नहीं बनता, अनास्थान अर्थात् कोई आश्रय या शरण नहीं, 'अग्रभण' अर्थात् शाखावलम्ब या हस्तावलम्ब नही हैं। इत्यष्टमो वर्गः।

यम॑श्विना द॒दथुः॑ श्वे॒तमश्व॑म॒घाश्वा॑य॒ शश्व॒दित्स्व॒स्ति।
तद्वां॑ दा॒त्रं महि॑ की॒र्तेन्यं॑ भूत्पै॒द्वो वा॒जी सद॒मिद्धव्यो॑ अ॒र्यः ॥ ६ ॥

भा०—हे शीघ्रगामि रथों के सञ्चालन करने मे कुशल शिल्पियो! तुम दोनों कभी न मरने वाले अश्व के स्वामी, राजा को श्वेत, चमकता हुआ या अति बलशाली मार्गगामी साधन देते हो वह सदा अनादि सिद्ध, सदाकाल के लिये कल्याणदायक हो, वह तुम दोनों का बहुत बड़ा कीर्तिजनक दान है। उसी से वेग से जाने वाला साधन सुख से स्थानान्तर पहुचने में समर्थ होता है और सदा ही वणिग् जन या स्वामी ग्राह्य पदार्थों को लेने मे समर्थ होता है। अथवा वेगवान् होकर शीघ्र ही अपने गृह पर पहुच कर स्वामी स्तुति योग्य होता है।

अध्यात्म में—'अघाश्व' अमृत चेतन जीव है। प्राणापान का अभ्यास

उसको 'श्वेत अश्व' अर्थात् शुक्र, व्यापक, अनादि सिद्ध, आनन्दमय ब्रह्म का साक्षात् कराता है। वह बड़ा स्तुत्य, ज्ञान प्रदाता, ज्ञानैश्वर्यवान् अपने प्राप्तव्य पद को पहुंचा हुआ, कृतकृत्य आत्मा 'पेद्व' है और सबका स्वामी परमेश्वर ही सदा अर्थात् उपास्य और शरण लेने योग्य है।

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७॥

भा०—हे सन्मार्ग पर ले जाने वाले शिक्षक विद्वान् पुरुषो! आप दोनों यथार्थ विद्याभ्यास करने वाले, ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान, अश्व के समान कसे कसाये, सदा कटिबद्ध या कक्ष में यज्ञोपवीत धारण करने वाले या अपनी कक्षा में उत्तम रहने वाले शिष्य जन को बहुत अधिक ज्ञान धारण करने में समर्थ बुद्धि को प्रदान करते हो। हे दोनों नायक पुरुषो! घोड़े के खुर के आकार के बने मेघ के समान जल नीचे बरसाने वाले कारोतर अर्थात् छनने से जल के समान सुख, शान्ति और आनन्द देने वाली विद्या रूप रस के सैकड़ों कलसे सेचन करो, अर्थात् उसे विद्यास्नातक और व्रतस्नातक करो। ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम से शिक्षा प्राप्त करने वाले गुरुजन बहुत ज्ञान दें और बाद में सहस्र-धारा स्नान के लिये अश्व के खुराकार छनने से जल के शतघटों से राज्याभिषेक के समान अभिषेक करा कर विद्यास्नातक और व्रतस्नातक बनावें। यद्वा—वर्षणशील, व्यापनशील मेघ के समान ज्ञान को वर्षण करने वाले, विद्या में पारंगत आचार्य का उपदेश रूप जो बड़े भारी शुद्ध ज्ञान और आचार शिक्षा को छान पवित्र कर देने वाला छनना है, उससे सुख और आनन्द के देने वाली शिक्षा के मानो सैकड़ों कुम्भों से उसका स्नान करावें।

राजा के पक्ष में—दो वीर सेना और सभा के नायक वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले अथवा उच्च पद प्राप्त होने योग्य अधिकार के योग्य बगल में पेटी आदि वस्त्र धारण करने वाले, राज्यरक्षा के लिये सन्नद्ध पुरुष को नगर को धारण करने, उस पर शासन करने का सामर्थ्य

और अधिकार प्रदान करें और उस पर बलवान् अश्व के खुर के आकार वाले छानने से जल के सैकड़ों कलसों से राज्या-भिषेक करें। अश्व के खुर के आकार का छनना बनाने का अभिप्राय केवल बलवान् अश्वारोही सेना के बल पर राज्यलक्ष्मी प्राप्त कराना है। 'सुरा' अर्थात् जलधारा सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी का प्रतिनिधि है।

अध्यात्म में—प्राण और अपान दोनों कक्षीवान् नामक मुख्य प्राण को देह रूप पुर के धारण पोषण का बल प्रदान करते हैं। वह सदा गतिशील होने से 'पज्रिय' है। देह में हृदय और फुप्फुसों का जोड़ा अश्वके खुरों के आकार का होने से वही रक्त शोधक छनना है उससे सुरा उत्तम जीवन प्रद रस-धारा रक्त के सहस्रों कुम्भ अर्थात् कोष्ठ या सैलों से सेचित किये जाते हैं।

अधिदैवत पक्ष में—आकाश, पृथिवी दोनों अश्वी हैं। वे दोनों प्रकाशमय किरणों से युक्त आकाश में गति करने वाले सूर्य को ब्रह्माण्ड पालन का सामर्थ्य देते हैं। वर्षणशील मेघ के सब से जल के सैकड़ों घड़े मानो छलनी से सहस्र धारा के रूप में बरसाते हैं।

हिमेना॒ग्निं घ्रं॒समवारयेथां पितु॒मती॒मूर्ज॑मस्मा अधत्तम्।
ऋ॒बीसे॒ अत्रि॑मश्विनाव॑नीत॒मुन्नि॑न्यथुः॒ सर्व॑गणं स्व॒स्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे आकाश और पृथिवी या दिन रात्रि तुम दोनों मिलकर शीतल जल से अग्नि को और शीतल जल से ही दिन के परिताप को वृष्टि द्वारा निवारण करते हो। तुम दोनों ही कारण क्रम से इस प्राणि-वर्ग 'अन्न से युक्त बल, पराक्रम और सम्पत्ति प्रदान करते हो। पृथ्वी पर नीचे गिरे हुए सब प्रकार के भूख से पीड़ित अन्न आदि के भोक्ता जीव-गण को और भोगने योग्य अन्नादि ओषधि गण को ऊपर उठाते हो, जीवन प्रदान करते और उन्हें जल द्वारा सेचित कर हरा भरा करते हो।

नायकों के पक्ष में—हे वीर नायको ! तुम दोनों हिम से अग्नि के निवारण करने के समान शत्रुहनन करने के साधन सेनाबल से सताप-

कारी शत्रु को वारण करो। इस प्रजाजन को पालक बल से युक्त पराक्रम प्रदान करो। तेज के नष्ट हो जाने पर भी उत्साह, धन और प्रज्ञा तीनों बल से रहित राजा को भी समस्त अनुयायी गणों सहित कुशल से उन्नत पद पर पहुचा दो। प्राण और अपान दोनो आहित अग्नि के समान देह के संताप को कम करते, अन्न रस वाली पुष्टि देते, उदर में स्थित अन्न को सब प्राणो सहित शरीर के कल्याण के लिये ऊपर उठाते हैं।

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे सिद्ध विज्ञान के नियमो से युक्त सूर्य और वायु तुम दोनों ऊपर आकाश में मूल आधार वाले, सब के रक्षा करने वाले मेघ को दूर दूर देशो तक ले जाते हो और उसको तिरछे जल वाला बना देते हो। प्यासे प्राणी वर्ग और ओषधि वर्ग को पिलाने के लिये और पृथिवी के स्वामी के अनेक ऐश्वर्य, पशु, धान्य उत्पन्न करने के लिये अनेक जल धाराएं फूट निकलती हैं।

राजा के पक्ष में—वे दोनों प्रमुख नायक रक्षाकारी सैन्य बल को दूर तक भेजें और उसको उच्च अधिकारियों के आश्रय में बद्ध करके कुटिल शत्रु के वारण करने में समर्थ करें। प्यासे को पिलाने के लिये जिस प्रकार जल बहते हैं उसी प्रकार वे वीर जन अपने श्रेष्ठ राजा के सहस्रो ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये वेग से गमन करें।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥५॥

भा०—युद्ध में डर कर भाग जाने वाले भीरु से जिस प्रकार सेनापति कवच छुडा लेता है। उसी प्रकार हे सत्य नियमों के व्यवस्थापक राष्ट्र और दो नायक विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों आयु समाप्त करने वाले वृद्ध संसार भोगते हुए मरणोन्मुख पुरुष से विभाग करने योग्य धन

सम्पत्ति को मरने से पूर्व ही छुड़ा कर अगले आने वाले सन्तान को प्रदान करो। त्यागी पुरुष के जीवन को उत्तम रीति से बढ़ाओ। हे दुःखों के नाश करने वाले! तुम दोनों उस पुरुष की कन्याओं के लिये योग्य पति का प्रबन्ध करो। इति नवमो वर्गः॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय॥ ११॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! गृहस्थ के नायक नायिकाओ! तुम दोनों परस्पर कभी असत्याचरण न करते हुए दर्शनीय—सुन्दर स्त्री रूप से स्तुति योग्य पुत्र लाभ करने के लिये खूब गहरे छिपे जिस खजाने को खनन कर प्राप्त करते हो वह तुम दोनों का प्रशंसा करने योग्य, उत्तम एषणा से युक्त, दुःखों से बचाने वाला और वरणीय, श्रेष्ठ, प्राप्त करने योग्य धन के समान हो।

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच॥१२॥

भा०—हे सन्मार्ग में लेजाने वाले उपदेशक और अध्यापक जनो! घोर-शब्दकारी विद्युत् जिस प्रकार वृष्टि को प्रकट करती है उसी प्रकार मैं धारण करने योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त राजा किसी प्रकार की भी हिंसा न करने वाले शमादि युक्त मां बाप और प्रजापालक विद्वान गुरुओं का शिष्य होकर आप दोनों स्त्री पुरुष वर्गों को ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये अश्व सैन्य या भोक्ता राजा होने के प्रमुख अधिकार से अति उग्र, प्रबल अज्ञान और पाप के नाशक ज्ञान और दण्ड प्रयोग का भी उपयोग करूं, जैसे ज्ञान का धारण करने वाला अथर्ववेद का ज्ञाता विद्वान् तुम दोनों को सकल विज्ञानों में पारंगत आचार्य के मुख्य पद से तुम दोनों को मधुर आनन्द-जनक ज्ञान का प्रवचन करता है। अर्थात् प्रशान्त, वेदविद् विद्वान जिस प्रकार प्रमुख होकर ज्ञान प्रदान करे उसी प्रकार राष्ट्र की ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये राजा अपने दण्ड आदि उग्र कर्म को

भी मेघ के समान निष्पक्षपात होकर अश्व बल तथा राष्ट्र में व्यापक, भोक्ता राजा होने के मुख्य बल से करे। राजा जब अपने मधु रूप पृथिवी राज्य को प्रजावर्गों को सौंप देता है तब भी उसका भोक्ता होने का मुख्य पद लुप्त हो जाता है और इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी शिष्य वर्गों को अपना पूर्ण ज्ञान देकर अपने बराबर बना देता है तब वह भी उनको स्नातक बना देने से उनके प्रति गुरु का कार्य नहीं करता। इसी को अलंकार से अश्वियों को अश्व के शिर से उपदेश करना और पुनः उसका छेदन करना कहा गया है।

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३॥

भा०—हे कभी असत्य आचरण न करने वालो! और हे मुख पर नासिका के समान यशस्वी, मुख्य पद पर विराजमान! आप दोनों को कार्यकुशल और बहुत सी प्रजाओं और राष्ट्रों के पालने, और बहुत सी भुजाओं अर्थात् योद्धा वीर जनों सहित बलवान् जानकर पुर की रक्षा करने वाली संस्था बड़े भारी युद्ध यात्रा के काल में बुलाती और मुख्य कार्यकर्त्ता रूप में स्वीकार करती है। आप दोनों गुरु के उपदेश के समान अथवा शासक राजा के समान ही बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न उस राजसभा के उस शासन को श्रवण करो। हे अश्व बल के स्वामी, आप दोनों उसको हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब अथवा सुवर्णादि धन को हाथ में रखने वाले वैश्य वर्ग को अथवा सुवर्ण के समान कान्तिमान् हनन साधन से या दल के स्वामी तेजस्वी पुरुष को आश्रय रूप से प्रदान करो। राजसभा की शक्ति बहुत बढ़ जाने पर उसके सभापति या राजा का बल कम होता है। इसलिये वह 'वध्रिमती' है। क्योंकि उसका पति नपुंसक के समान उदासीन और बलहीन है। ऐसी दशा में दो प्रमुख अधिकारी सभा के कार्यों को वैश्य वर्ग के धन के बल पर चलावें। इस राजसभा में धनाढ्यों का ही बल रहता है [illegible]

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥

भा०—हे नायक पुरुषो ! कभी असत्य मार्ग पर न जाने वाले प्रमुख पुरुषो ! जिस प्रकार वार वार आने वाली उषा को घेर लेने वाले अन्धकार के मुख से छुड़ाकर पदार्थों के प्रकाश करने वाले सूर्य को प्रकट करते हो और जिस प्रकार कोई नर नारी भेड़िये के मुख से बटेरी को छुड़ा कर किसी दयाशील की देख रेख में उसे रख दे उसी प्रकार तुम दोनों भेडिये के समान पीठ पीछे से आक्रमण करने वाले डाकू लोगों के प्रजा को खा जाने वाले मुख अर्थात् आपस में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता के अवसर पर व नाना वृत्तियों, व्यवसायों और उद्योगों में गुजर करने वाली, बटेरी के समान निर्बल दुःखी प्रजा को सदा छुड़ाते रहो और हे बहुतों को पालने और भोगने में समर्थ, आप दोनों विविध न्याय व्यवहारों को देखने के लिये अध्यक्ष पद पर प्रजा पर कृपा और अनुग्रह करने वाले और समर्थ दूरदर्शी विद्वान, प्रज्ञावान पुरुष को नियुक्त करो ।

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥१५॥१०॥

भा०—रात्रि में या अन्धकारमयी अज्ञान दशा में, अथवा सङ्कटावस्था में भोग विलास की क्रीड़ा करने वाले राजा का शील और चरित्र या आगे बढ़ने वाला बल पक्षी के पत्र के समान कट जाता है । उस समय हे विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों प्रजावर्ग का पालन करने वाली नीति की रक्षा के लिये, ऐश्वर्य प्राप्ति और प्रजाहित के निमित्त और आगे बढ़ने के लिये शीघ्र ही लोहे की बनी, शत्रु को मारने वाली सशस्त्र सेना को, गाड़ी में लगे लोहे के पहिये के समान, संयोजित करो । इति दशमो वर्गः ॥

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥

भा०—जो प्रजा के मा बाप के समान पालक पद पर बैठ कर भी राजा चोर सरकार को बनाये और उसे दृढ़ रखने के लिये सैकड़ों प्रतिस्पर्द्धी विद्वान् सभासदों को भी शासन करने में समर्थ सरल स्वभाव के पुरुष को अन्धकार में रक्खे और पीडित करे तो सदा सत्य व्यवहार के करने वाले मुख्य नायक पुरुष दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाशक, उत्तम वैद्यो के समान ज्ञानरहित, उस राजा को राज्यव्यवहार को देखने वाली आंखें प्रदान करें जिससे प्रजा का नाश न हो।

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे॥१७॥

भा०—कन्या जिस प्रकार विवाह काल में विद्वान् पुरुष के साथ काठ के पीढ़े या रथ पर बैठती है ठीक उसी प्रकार सूर्य की पुत्री के समान उषा गतिशील सूर्य के प्रकाश के साथ अन्धकार पर विजय पाती हुई हे दिन रात्रि! तुम्हारे उत्तम रमणीय रूप पर विराजती है। इसी प्रकार, हे अपने मुख्य स्थान पर विराजने वाले दो प्रमुख पुरुषो! सर्वोशासक राजा के समस्त मनोरथों और बल को पूर्ण करने वाली विजयशील सेना अश्व के सैन्य से युक्त होकर भी तुम दोनों के रथ नामक सैन्य पर आश्रित रहती है। सभी विद्वान् और विजयेच्छु योद्धा जन हृदयों से आप दोनों को अनुमति दें। आप दोनों शोभा या लक्ष्मी से युक्त होकर रहो।

गृहस्थ पक्ष में—सूर्य की उषा के समान उत्तम तेजस्विनी बाप की बेटी, काठ के पीढ़े के समान उच्च घोडे से जुते रथ पर विराजे। अथवा विद्वान् पुरुष से युक्त गृहस्थ रूप रथ पर विराजे, हे परस्पर असत्य आचरण न करने वाले वर वधू! तुम दोनों को समस्त पुरुष अनुमति दें। तुम दोनों विद्वान् लक्ष्मी और शोभा से युक्त होकर रहो।

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता॥१८॥

भा०—हे अश्व सेना के स्वामी दो मुख्य सेनापति और सैन्यवर्गो ! आप दोनों जब युद्ध की कामना करने और शत्रु के नाश करने वाले के लिये और पुष्ट और वेगवान योद्धाओं के स्वामी के लिये वेग से जाते हुए ऐश्वर्य से युक्त गृह या व्यवहार पद को प्राप्त होते हो तब तुम दोनों को परस्पर आश्रित रथ, मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला और दुष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला होकर परस्पर संयुक्त हुए आप दोनों को धारण करता है।

हे वर वधू गृहस्थ जनो ! तुम दोनो समान रूप से जाते हुए ज्ञान प्रकाश के देने वाले विद्वान् और अन्नादि से भरण पोषण करने वाले माता पिता के हित के लिये धन धान्य सम्पन्न गृह को प्राप्त होते हो तब एक दूसरे के सब अगों से पूर्ण, गृहस्थ रूप रमण का साधन, रथ एक दूसरे मे विवाह बंधन मे बधे हुए आप दोनो को धारण करे। वह गृहस्थ रूप रथ, वृषभ, सुखो का वर्षक और दुःखों का नाशक हो।

र॒यिं सु॑क्ष॒त्रं स्व॑प॒त्यमायुः॑ सु॒वीर्यं॑ नासत्या॒ वह॑न्ता ।
आ ज॒ह्नावीं॒ सम॑न॒सोप॒ वाजै॒स्त्रिरह्नो॑ भा॒गं दध॑तीमयातम् ॥१६॥

भा०—हे सदा सत्य का पालन करने वाले प्रमुख राज-पुरुषो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्य, उत्तम क्षात्रबल, उत्तम राज्यव्यवस्था, उत्तम सन्तान, दीर्घ जीवन, अन्न और उत्तम वीर्य बल धारण करते हुए और एक दूसरे मे समान चित्त वाले होकर अपने सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाले शत्रुओ पर हथियार छोडने वाले सेनापति की या वेतन भृति आदि देने वाले राजा की सेना को देखने भालने के लिये वेगवान अश्वों और भृत्यों सहित दिन मे तीन तीन वार आवो।

सुखादि देने वाले तथा वीर्य दान देने वाले सन्तति को दिन मे तीन वार प्राप्त हो। उनकी देख भाल तीन वार कर लिया करो और उनको भोजनादि से सन्तुष्ट किया करो।

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२०॥२१॥

भा०—हे दो प्रमुख नायको ! आप दोनों गन्तव्य, प्रयाण करने योग्य स्थान को सब ओर से घेर लेओ और सुख से गमन करने योग्य मार्गों से अपने सैन्य को रात रात में ले जाओ । विविध प्रकार से पर्वतों के समान अचल शत्रुओं को भी भेद डालने वाले रथ सैन्य से युक्त होकर शत्रुओं के जीवन और बल की हानि करते हुए प्रयाण करो ।

हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों इस भोग्यसुख को प्राप्त होवो । सुखदायक राजस सुखों से रात्रि काल व्यतीत करो । पर्वतों के समान विशाल कष्टों के भी तोडने वाले बल, वीर्य या गृहस्थ के परस्पर रमण साधन उपायों से जरा रहित होकर संसार की यात्रा करो ।

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१॥

भा०—हे शीघ्र तर जाने वाले सैन्य के प्रमुख नायको ! दोनों तुम हजारों सुखों के देने वाले ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये एक एक दिन के युद्ध के लिये वशकारी, सर्व नियामक और जितेन्द्रिय पुरुष को सुरक्षित रक्खो । ऐश्वर्यवान् राजा के बल से बढ़ कर अस्त्रों की शत्रुओं पर वर्षा करते हुए दुःखदायी, सुख के नाशक, विशाल ऐश्वर्यवाली अदानशील शत्रु सेनाओं को अच्छी प्रकार नाश करो । स्त्री पुरुष सहस्रों सुखों के भोगने और एक दिन के भी रमण करने के लिये वश अर्थात् इन्द्रिय संयम का पालन करें । बलवान् होकर अति ज्ञान और धन वाले दुष्ट सुखों के नाशक सुख न देने वाली दुश्चेष्टाओं को परे मार भगावें ॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार नीचे, गहरे कूप से भी पान करने के लिये जल ऊपर निकाल लिया जाता है । उसी प्रकार हिंसा के व्यसनी निकृष्ट

कोटि के पुरुष के रक्षण सामर्थ्य से भी प्रजा पालन के लिये शत्रुओं का वारण करो। उसी प्रकार पूज्य, विद्वान् पुरुष के उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान रक्षण सामर्थ्य रूप मेघ से जल के समान शान्तिदायक, दुःखवारक ज्ञान प्राप्त करो। हे प्रमुख नायको! तुम दोनों जिस प्रकार सोने वाले के लिये विस्तर बिछाया जाता है उसी प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले के लिये अपनी सेनाओं के बल पर विस्तृत भूमि को बढ़ाओ, प्रदान करो।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष कुए से जल के समान शत्रु हिंसक और विद्वान् के रक्षण तथा ज्ञान सामर्थ्य से वरणीय, दुःखवारक बल और ज्ञान प्राप्त करें। सोने वाले को विस्तर और अज्ञान नाशक विद्वान् को शुभ प्रेममयी वाणी और उत्तम गौ प्रदान करें।

अवस्यते स्तुवते कृष्णियार्य ऋजूयते नासत्या शचीभिः।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय॥ २३॥

भा०—हे सत्य ज्ञान और व्यवहार वाले विद्वान् प्रमुख पुरुषो! आप दोनों अपने रक्षण और ज्ञान चाहने वाले, स्तुतिशील, विद्वान्, सबके चित्तों के आकर्षक या दुःखों के विनाश करने में समर्थ, धर्म मार्ग पर चलने हारे सरल स्वभाव, सर्व हितकारी पुरुष के व्यवहारों को यथार्थ रूप से देखने के लिये अपनी शक्तियों और ज्ञान वाणियों द्वारा व्यापक, ज्ञानशील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान खोये हुए पशु के समान प्रदान करो। इसी प्रकार माता पिता दोनों भी अपनी रक्षा चाहने वाले, स्तुतिशील, मनोहर, धर्मात्मा, सर्व हितकारी पुत्र या शिष्य को प्रभु के दर्शन के लिये खोये पशु के समान व्यापक परमेश्वर तक पहुंचाने वाले सर्व दर्शक ज्ञान प्राप्त करावें।

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण॥ २४॥

भा०—सोम रस को यज्ञ पात्र में से जिस प्रकार आहुति देने वाला स्रुवा से ऊपर उठा लेता है उसी प्रकार सेना और सभा के दोनों

नायक विद्वान्, आज्ञापक! ऐश्वर्य लक्ष्मी से सम्पन्न राजा को अमंगल-कारी पाप से बधे हुए, प्रजाओं के बीच अपने कार्यों में शिथिल हुए जल में बहते हुए नाव के समान विप्लव अर्थात् धर्म नाश में प्रवृत्त, सन्मार्ग से विचलित हुए राजा को दश रात्र और नौ दिन में उन्नत करें। अर्थात् उनको इतने दिनों का अवसर उठने के लिये दें।

इसी प्रकार विद्वान् पुरुष जब अमङ्गल, अशुचि प्रसूतक या शव के अशौच से युक्त हो तब, उसको जलों में निहला कर दश रात्रि और नव दिन के बाद शुद्ध कर लें।

गृहस्थ स्त्री पुरुष भ्रष्ट, जरायु से बधे, गर्भगत जलों में लिपटे बालक को जल में स्नान करा लेने पर भी दश रात और ९ दिन के बाद ऊपर उठावें अर्थात् सूतक में भी बालक को दश रात्रि के बाद पुनः स्नान द्वारा स्वच्छ कर नामकरण करें। शवाशौच में भी दश रात्र में जलादि में स्नान कराके शुद्ध करें।

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५॥१२॥

भा०—हे उक्त मुख्य पुरुषो! नायको! एवं स्त्री पुरुषो! मैं इस राष्ट्र, गृह और देह का पालक राजा आप दोनों के कर्त्तव्यों का वर्णन करता हूं। मैं सुखप्रद, उत्तम भूमि और गौ आदि सम्पत्ति का स्वामी उत्तम पुत्रों और वीर भृत्यों का स्वामी होऊं। और चक्षुओं से देखता हुआ और दीर्घायु का भोग करता हुआ मैं गृह के समान बुढ़ापे की दशा अर्थात् पूर्णायु को प्राप्त होऊं।

अध्यापक और उपदेशक के पक्ष में—मैं शिष्य उत्तम ज्ञान वाणियों और उत्तम इन्द्रियों का और उत्तम प्राणों का साधक होकर तथा दीर्घ आयु होकर ज्ञान का दर्शन करता हुआ उपदेश देने वाले गुरु को और सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को प्राप्त होऊं ॥ इति द्वादशो वर्गः॥

[११७]

कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् पङ्क्तिः । २, ६, १९ विराट् पङ्क्तिः । २, २५, २१ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ७, १० १६, १७, १८, २१, २२ निचृत् त्रिष्टुप् । ८, ९, १०, १३-१५, २०, २३ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, २४ त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्या पारंगत, मनस्वी, विद्वान् पुरुषो ! या राजा रानी ! मधुर अन्न तथा ओषधि रस के समान आनन्दप्रद ऐश्वर्य के आनन्द लाभ तथा दमन करने के लिये अति वृद्ध, ज्ञानानुभवी 'होता' नामक योग्य पुरुषों को योग्य कार्याधिकार सौंपने द्वारा विद्वान् पुरुष आप दोनों के प्रति सब बात खोल कर कहता है। आप का दान प्रजा के सुखं वृद्धि करने वाला हो। और आप दोनों की वाणी विविध विद्वानों तथा अधिकारी वर्गों द्वारा सेवन की जाने योग्य हो। हे प्रमुख पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्यों सहित हमें सेना और अन्नादि समृद्धि और अनुकूल इच्छा सहित प्राप्त होवो।

यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम नायक विद्वान् जनो ! जो आप दोनों का मन से भी अधिक वेग वाला युद्ध क्रीडा करने वाला, उत्तम अश्वों से युक्त रथ प्रजाओं को प्राप्त होता है। अथवा प्रजाओं के मुख से आपकी प्रशंसा कराता है और जिससे आप दोनों शुभ कर्म करने वाले के घर तक जाते हो उस ही रथ से हमारे गृह पर भी सदा आया करो।

अध्यात्म में—प्राण अपान दोनों का मन से भी अधिक वेगवान अर्थात् व्यापक, उत्तम प्राण आदि अश्वों सहित रथ आत्मा है। वह

रमण कर्त्ता और रस स्वरूप होने से 'रथ' है, प्राणादि से युक्त होने से 'स्वश्व' है। मन से भी तीव्र जाने का अभिप्राय आत्मा का ज्ञानमार्ग में तीव्र होने का है। तद् धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्। ईश उप०॥ वह स्वयं उत्तम कर्त्ता होने से 'सुकृत' है और वह आत्मा पुण्यात्मा के हृदय में प्रकट होता है।

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता॥ ३॥

भा०—हे नायक पुरुषो! या राजदम्पती! आप दोनों प्रकाशरहित, अन्धकारमय पाप, अज्ञान से वेद शास्त्रज्ञ पांचों जन ब्राह्मण आदि चार वर्ण तथा तद्-बाह्य इन सब मनुष्य मात्र के हितकारी, विविध तापों और विविध बन्धनों से रहित पुरुष को उनके गण सहित बन्धन से छुडाओ और अमङ्गल जनक, अकल्याणकारी प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष के छल कपट के जालों को नाश करते हुए पूर्व के सब सिद्धान्तों के अनुकूल बलवान् होकर प्रेरित करो।

अध्यात्म में—संसार बन्धन 'ऋबीस' है। पांच प्राणों से युक्त भोक्ता चेतन आत्मा 'अत्रि' है। प्राण गण 'गण' है। आत्मस्वरूप, सर्वप्रपञ्चोपशम, अमात्र 'शिव' है। तद्विपरीत अनात्म प्रत्यय 'अशिव' माया है। प्राण अपान का अभ्यास उसको दूर करता है। देखो ऋ० १।११६।८॥

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैरृषिं नरा वृषणा रेभमप्सु।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥४॥

भा०—हे समस्त सुखों के वर्षक विद्वान् स्त्री पुरुषो! एवं मुख्य अधिकारियो! दु:खदायी, दुर्गम मार्गों के अनवरत चलने आदि से पीडित, भय खाकर भगे हुए, छुपे हुए अश्व को जिस प्रकार यत्न से आश्वासन पूर्वक खोजकर युक्ति से रथ आदि में पुनः लगाते हैं उसी प्रकार अति गंभीर ज्ञान के द्रष्टा, विविध ज्ञानों में निष्णात, कार्यों और ज्ञानों में आप्त जनों के बीच विद्वान्, प्रवचनकारी आचार्य उत्तम पुरुष को विविध

कार्यों से प्राप्त करो । आप लोगों के प्रति पूर्व के विद्वानों के किये ज्ञानोपदेश नष्ट नहीं होते ।

अध्यात्म में – गूढ़ भोक्ता आत्मा अश्व के समान है । वही द्रष्टा होने से 'ऋषि', स्तुतिकर्त्ता होने से 'रेभ' है । कर्म बन्धनों से 'त्रिगुत' अर्थात् विविध योनियों में चला जाता है । उसको नाना कर्मानुष्ठानों द्वारा प्राप्त करो ।

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रजा के दुःखों का दूर करने वाले, दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले, विद्वान स्त्री पुरुषो ! एवं प्रमुख नायको ! सोते हुए पुरुष को जिस प्रकार जगा के खड़ा कर दिया जाता है उसी प्रकार भूमि की पीठ पर मानो सोते हुए, उसमें गड़े हुए, मिट्टी के नीचे पड़े अन्न को बीज वपन द्वारा उगाओ । अन्धकार में छुपे हुए सूर्य के समान तेजस् या चेतना आयु और जीवन देने वाले अन्न को उत्पन्न करो और भीतर गड़े, दर्शनीय दीप्तियुक्त सुवर्ण को जैसे शोभा अर्थात् शरीर भूषा के लिये रचना जाता है उसी प्रकार देह में रुचि और दीप्ति को उत्पन्न करने वाले अन्न को भूमि से बीज वपन द्वारा प्राप्त करो ।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी अपने ही उत्पादक रमणकारी अंगों में सोते हुए से अर्थात् गुप्त अन्धकार में रहते सूर्य के समान राजस्–तामस कर्म में निगूढ, छुपे सुवर्ण के समान गुप्त जीवात्मा को बालक रूप में अपनी कीर्त्ति तथा सेवा के लिये वीर्य निषेक अर्थात् बीज वपन द्वारा उत्पन्न करें ।

इसी प्रकार साधक स्त्री पुरुष भी भीतर सोते हुए अर्थात् गूढ़, तामस-आवरण में छुपे सूर्य के समान, स्वप्रकाश, सुवर्ण के समान कान्तिमान् आत्मा को उत्तम स्तुति के लिये अपने हृदय में प्रकाशित करें और उसका ज्ञान करें । रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं तं विद्यात् शुक्रममृतम् । उप० देखो । सू० ११६।११।१२ ।

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

भा०—हे असत्याचरण से रहित सभा सेनाध्यक्षो! वीर उत्तम स्त्री पुरुषो! ज्ञान करने योग्य, शास्त्रों मे विद्वान् उत्तम नियम व्यवस्था में बद्ध पुरुष, तुम दोनों को उस ज्ञान का उपदेश करें जिससे वेगवान् अश्व या अश्व सेना के वेगवान् शत्रु गमनकारी आक्रमण से ही राष्ट्रवासी जन के सुख के लिये मार्ग मार्ग मे मधुर सुखकारी पदार्थों के जलों के घटों के समान सैकडों पात्र आप दोनों प्रदान करो। विशेष देखो सू० ११६। मन्त्र०। मेघ से जल के समान और घडों के जल से छिडकाव के समान राजा अपने पराक्रम से अपनी प्रजा के लिए ऐश्वर्य सुख बरसा दे।

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥७॥

भा०—हे नायक, मुख्य उत्तम पुरुषो! आप दोनों यथार्थ उपदेश करने मे समर्थ, बीज वपन के समान शिष्य-भूमियों मे ज्ञान वपन करने में कुशल सर्वोपकारक पुरुष को विशेष स्नातक पद प्रदान करो। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग पालक पिता के आश्रय या गृह पर रहने वाली विकृत, शब्द न करने वाली, अति उत्तम वेद की विदुषी स्त्री के लिये गृह बसाने के निमित्त जरावस्था तक पहुचने के लिये योग्य पालक पुरुष को पति रूप से प्रदान करो। विशेष देखो सू० ११६। मंत्र १०, ७, २३॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे सुखों के वर्षण करने हारे, प्रमुख राज्य के भोक्ता पुरुषो! आप दोनों ज्ञानवान् पुरुष को दीप्ति से युक्त तेजस्विनी विद्या का दान करो। उपदेश करने वाले अध्यापक या एक स्थान मे गुरु के अधीन रह कर विद्याभ्यास करने वाले, अन्तेवासी, ब्रह्मचारी, ज्ञानवान् पुरुष के लिये

महान् सामर्थ्य और तेज प्रदान करो और जो आप दोनों नायक तथा प्रजा के पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजने वाले अध्यक्ष और आचार्य को प्रवचन करने योग्य सुसम्पन्न ज्ञान और यश प्रदान करते हो, वह भी तुम दोनों का ही श्रेष्ठ काम है।

अध्यात्म में—आत्मा ही चेतन और ज्ञानवान् होने से 'श्याव', देह में निवास करने से 'क्षोण', प्रकाश स्वरूप होने से 'कण्व', प्राण रूप देह के नायकों पर अधिष्ठाता होने से 'नार्षद' है। ज्ञान दीप्ति 'रुशती' है। ब्रह्म ज्ञान 'महः' है। आत्मज्ञान 'श्रवः' है। वह गुरुपदेश द्वारा प्राप्त होने से 'प्रवाच्य' है।

पुरु वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पियो! बहुत से रूपों या पदार्थों को बनाते हुए आपलोग दूर जाने के लिये अति बल को धारण करने वाले, वेगवान्, अदृश्य या बेरोक, अतुल्य बल, आगे आने वाली रोक अर्थात् डाट पर धक्का मारने वाले श्रवण करने योग्य, शब्दकारी दूर तक पहुंचा देने वाले, शीघ्रगामी अश्व अर्थात् अग्नि या विद्युत से चलने वाली गाड़ी या यान को भगाओ। हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों नाना प्रकार के रूप या ऐश्वर्यों को धारण करके भी परमपद प्राप्त करने के लिये सहस्रों उपदेश देने वाले ज्ञानवान्, आप्त गूढ, अज्ञान नाशक, वेद ज्ञान में कुशल संसार से तराने वाले आचार्य और परमेश्वर का अवलम्बन करो। उसको अपने सब कार्यों में और हृदय में धारण करो और उससे उपदेश ग्रहण करो।

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे उत्तम, दानशील ऐश्वर्य के भोक्ता, स्त्री पुरुषो! तुम दोनों के ये सब कार्य श्रवण करने योग्य, प्रशंसा करने योग्य तथा अन्नादि उत्पादन और प्रदान सम्बन्धी, अथवा यशोजनक हैं। या वेदोक्त ज्ञान के

अनुसार हो। सूर्य और पृथिवी का एकमात्र आश्रय वह महान् परम ब्रह्म ही समस्त विद्याओं का विज्ञापक अनादि गुरु है। और परस्पर उपदेश लेने और देने वाले और एक दूसरे के ऊपर आश्रित सूर्य पृथिवी के समान गुरु शिष्य और स्त्री पुरुष इन दोनों के सब कार्यों का आश्रय भी वही परमेश्वर और ज्ञानमय वेद सब विज्ञानों का विज्ञान कराने हारा है। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! क्योंकि ज्ञानवान् पुरुष ही आप दोनों को उस परम ब्रह्म और वेद के ज्ञान का उपदेश करते हैं इसलिये आप दोनों विद्वान् पुरुषों को देने के लिये अन्न आदि इच्छानुकूल पदार्थों के साथ प्राप्त होवो और ज्ञान प्राप्त करो और अन्न का दान करो।

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्या रिणीतम् ॥११॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों पालन पोषण करने में समर्थ पुत्र के समान उपदेश किये जाकर मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष को अन्न प्रदान करते हुए, ज्ञान देने में कुशल पुरुष तथा वेदोक्त कर्म के आश्रय रह कर वेद और ब्रह्मचर्य द्वारा बढ़ते हुए, कभी असत्याचरण न करते हुए प्रजा वर्ग के पालन करने वाली नीति को अच्छी प्रकार चलाओ।

इसी प्रकार राष्ट्र के दो प्रमुख नायक या राजा रानी दोनों विविध ऐश्वर्यों से राज्य को पूरने वाले विद्वान् वर्ग के लिये सर्व प्रेरक सूर्य के ज्ञान से या पुत्र के समान मान कर उपदेश और आज्ञा वचन कहते हुए सुवर्ण, रजत, रत्न आदि ऐश्वर्य और अन्न को भूमि से खन कर प्राप्त करते हुए, सूर्य के आश्रय पर जल से और ज्ञानी पुरुष के आश्रय पर ब्रह्म ज्ञान से बढ़ते हुए, प्रजा पालन की नीति को सदा सत्य स्वभाव, न्यायवान् होकर पालन करें।

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

भा०—हे ज्ञान विज्ञान युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान, परम

मेधावी परमेश्वर के रचे हुए वेदमय ज्ञान को अथवा तेजोमय वीर्य, ब्रह्मचर्य को कभी नष्ट न करते हुए बलवान् वीर्य सेचन मे समर्थ युवा स्त्री पुरुषो ! आप दोनो उत्तम स्तुति को या कीर्ति को प्राप्त करते हुए, यशस्वी होकर सुवर्ण वे भरे गड़े हुए कलसे के समान किस शयन स्थान पर या किस आश्रम मे और किस महान् उद्देश्य के निमित्त शयन करते हुए दसवें दिन हित और रमण योग्य, एवं आत्मा रूप बीज को उत्तम रूप से वपन करते हो। रजो दर्शन से दसवें दिन अर्थात् स्नान से पाचवीं रात्रि गर्भाधान करने पर सन्तान अति उत्तम होती है यह गर्भ-विज्ञान वादियो का सिद्धान्त है। किस आश्रम मे ? यह प्रश्न है। गृहस्थ मे। यह उत्तर है।

राष्ट्र के प्रमुख पालक भी न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखनें वाले, बलवान्, सुख से सोती हुई प्रजा को पालन करने वाले होकर सुवर्ण से भरे कलसे के समान दसवें दिन किस आश्रय पर उदवपन करते हैं अर्थात् समस्त शक्ति का वपन करते हैं ? उत्तर है राजा या विद्वानों के आश्रय पर नव दिनों के अनन्तर दसवें दिन राज्याभिषेक होता है। पुत्र के समान दिन और रात्रि हिरण्य कलश के समान तेजस्वी सूर्य को उत्पन्न करते हैं।

युवं च्यवा॑नमश्विना॒ जर॑न्तं॒ पुन॒र्युवा॑नं चक्रथुः॒ शची॑भिः।
यु॒वो रथं॑ दुहि॒ता सूर्य॑स्य स॒ह श्रि॒या ना॑सत्यावृणीत ॥ १३ ॥

भा०—हे शरीर और आत्मा के बल से युक्त, अश्व के समान हृष्ट पुष्ट युवा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ज्ञान प्राप्त करने वाले उपदेश प्राप्त करते हुए बालक को विद्या और कर्मों के उपदेशों से युवा, जवान करो। तब हे सदा सत्य स्वभाव के स्त्री पुरुषो ! उत्तम तेजस्वी उत्पादक पिता की पुत्री तुम दोनों के बीच मे अति शोभा के सहित रमण योग्य पति को वरण करें।

हे प्रमुख न्यायकारी नायक पुरुषो ! आप दोनो शत्रु को संग्राम

में पराजित करने वाले आज्ञापक, युवा बलवान् पुरुष को शक्तियों और अधिकारों से युक्त करो। सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को सब ऐश्वर्यों को दोहन या पूर्ण करने वाली पृथ्वी निवासिनी प्रजा अपनी राज्य समृद्धि सहित महारथी पुरुष को अपना स्वामी वरण करे।

युवं तुग्र्याय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना।
युवं भुज्युमर्णसो निःसमुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों युवा, बलवान् और परस्पर संगत होकर शत्रुओं के नाशकारी, बल सम्पादन करने के लिये पालने योग्य अथवा बलवान् पुत्र उत्पन्न करने के लिये पूर्व के विद्वानों से उपदेश किये ज्ञानों, उपायों और मार्गों से पुनः मननशील या पुनः परस्पर सम्मत होवो और तुम दोनों जल से भरे समुद्र से भोग योग्य रत्नादि ऐश्वर्य और व्यापार योग्य पदार्थ या परस्पर के सुख को विमानों और गतिशील नौका आदि साधनों से और सधे हुए सुशील अश्वों से, या उत्तम कार्य में लगी इन्द्रियों से देश से देशान्तर ले जाया करो। अथवा गृहस्थ स्त्री पुरुष पूर्व के आचार्यों से दिखाये या सनातन से चले आये वेद ज्ञानों द्वारा पुनः मननशील होकर युवा होवें। और जल के समुद्र से भोग्य रत्नादि के समान स्त्री पुरुष जन ऋजु, सरल धर्म मार्ग में चलने वाले ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से युक्त होकर पालने योग्य वीर्य या ब्रह्मचर्य को धारण करें या परस्पर भोग्य गृहस्थ कर्म का वहन करें।

अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान्।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥१५॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! एक दूसरे के हृदय में व्यापक! एक दूसरे से सुखों के भोग करने हारे तुम दोनों में से प्रत्येक विवाहित पुरुष बिना व्यथा या पीडा के ही संसार रूपी समुद्र के पार जाने हारा है। वह

उत्तम रीति से गृहस्थ का भार उठाने में समर्थ होकर ही पालन करने योग्य पुत्रों को उत्पन्न करने में समर्थ होकर आहुति करे अर्थात् वीर्याधान करे। तब दोनों वीर्य निषेक करने और धारण करने में बलवान् होकर मन के वेग से जाने वाले रमण करने योग्य गृहस्थ रूप रथ या परस्पर के सुख से परस्पर उत्तम रीति से युक्त होकर कुशलपूर्वक उस गृहस्थ कार्य का निर्वाह करें। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥

भा०—हे सेना और सभा के मुख्य अध्यक्ष पुरुषो! भेड़िये के मुख से जिस प्रकार कोई दयालु पुरुष बटेरी को छुड़ा दे उसी प्रकार भेड़िये के स्वभाव वाले प्रजाभक्षक शासक के मुख या भक्षण कर जाने वाले रक्त शोषक उपायों से आप दोनों जब २ भी प्रजागण को छुड़ाते हो तब २ वह प्रजा सुख से व्यवहार और व्यापार से रहने वाली या उद्योग धन्धों से जीने वाली प्रजा आप दोनों को उत्तम नामों से पुकारती है और आप दोनों विजयशील रथादि साधन से तथा शत्रु जयकारी उपाय से पर्वत के शिखर के समान ऊंचे पद तक विशेष प्रकार से पहुंचते हो और तब सब तरफ फैली शत्रु सेना के रक्खे पदार्थों के विष के समान घातक और दूषक पदार्थ से विविध दिशाओं में फैले प्रजाजन को बचाते हो और प्रत्येक पदार्थ या बच्चे २ तक को अपने व्यापक राज्य प्रबन्ध से प्राप्त होते हो। उसको अपने वश कर लेते हो।

वर्तिका नाम उषा को दिन और रात्रि दोनों विशेष दीप्ति वाले सूर्य के मुख से पृथक् करते हैं, उदयाचल के शिखर पर प्रतिदिन विजयशील, प्रमुख रथ या स्वरूप से जाते हैं। विविध देशों में व्याप्त अन्धकार के प्रभाव को व्यापक तेज से विनष्ट करते हैं।

इसी प्रकार वृक स्वभाव से तुम माता पिता अपनी सुवृत्त, शील-सम्पन्न पति के अधीन रहने वाली कन्या को बचाओ। ऐसी वह कन्या

तुम से प्रार्थना करती है। अपने विजयी रथ से पर्वत के उच्च शिखर तक चढ़ा मेघ जिस प्रकार जल से सब पदार्थों पर बरसता है उसी प्रकार व्यापन गुण से सब देशों के पुरुषों को मिलाओ।

शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७॥

भा०—जैसे अमङ्गलकारी पिता प्रजा के कल्याणकारी प्रजापालक राजा द्वारा अपने घोर अन्धकार को दूर करता है, विविध फोड़ फाड़ करने वाली एवं चोर स्वभाव की राजसभा या शासन व्यवस्था के निमित्त सौ प्रतिस्पर्धी विद्वानों या आयु के १०० वर्षों को शेरनी के लिये सौ भेड़ों के समान बलि देने वाले राजा को हे मुख्य अध्यक्ष जनो! आप दोनों दो आंखें प्रदान करो और आंख से अन्धे पुरुष के लिये विविध प्रकार से देखने के लिये सूर्य और चन्द्र का सूर्यातप और चन्द्र तप दोनों के समान शान्तिदायक ज्ञान और संतापदायक दण्ड व्यवस्था करने वाले और उन दोनों को दो आंखों के समान दो अध्यक्ष प्रदान करो। ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग में जाने वाले सरल अकुटिल धर्मात्मा राजा के अधीन रक्खो।

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रमुख पुरुषो! हे सुखों की प्रजा पर वर्षा करने हारे नायको! इस प्रकार से अन्धे राज्यकर्त्ता पुरुष को ही जो राज-व्यवस्था, सुख और प्रजा के भरण पोषण का कार्य करने को कहती है वही वृक अर्थात् भेड़िया या बाघ के समान प्रजा का नाश करने वाली होती है। इसलिये ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग पर चलने वाले इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय राजा सदा सूर्य के समान दीप्तिमान् होकर सौ और एक अर्थात् १०१ मेष अर्थात् वर्षों तक प्रकाशमान, तेजस्वी रहकर प्रजा को उसके भरण पोषण करने के लिये आज्ञाएं देवे। मेष राशि का भोग

करना सूर्य का एक वर्ष भोगना कहाता है। इसी कारण १०० या १०१ मेष का १०० या १०१ वर्ष ही ग्रहण करना उचित है।

युवति कन्या का उसकी पूर्ण आयु अर्थात् जरावस्था तक पहुचने वाला युवा पुरुष पति जिस प्रकार जितेन्द्रिय होकर १०१ वर्षों तक सुख पूर्वक उसका भरण पोषण करता है। उसी प्रकार वह धर्मात्मा राजा भी प्रजा का अपनी पूर्णायु तक पालन करे।

म॒ही वा॑मू॒तिर॑श्विना मयो॒भूरु॒त स्रा॒मं धि॑ष्ण्या॒ सं रि॑णीथः।
अथा॑ यु॒वामिद॑ह्वय॒त्पुर॑न्धि॒राग॑च्छतं सीं वृषणा॒ववो॑भिः ॥ १६ ॥

भा०—हे समस्त राज्य, ऐश्वर्य और गृहस्थ के सुखों को भोगने वाले प्रमुख स्त्री पुरुषो! आप दोनो की बडी भारी रक्षणशक्ति, प्रजा को सुख प्रदान करने वाली होती है। आप दोनों बुद्धिमान् होकर त्रुटियों को सुसंगत कर दिया करो और पुर अर्थात् राष्ट्र या नगर को धारण करने वाला तथा पालन पोषण करने की शक्ति, कर्म और प्रज्ञा वाला राजा या विद्वान् पुरुष इस प्रकार आप दोनों को उपदेश करे कि तुम दोनों अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्यों से सुसंगत होकर रहो, परस्पर मिलकर रहो।

अधे॑नुं दस्रा स्त॒र्यं॑१ विष॑क्ता॒मपि॑न्वतं श॒यवे॑ अश्विना॒ गाम्।
यु॒वं शची॑भिर्वि॒म॒दाय॑ जा॒यां न्यू॑हथुः पुरुमि॒त्रस्य॒ योषा॑म् ॥२०॥१६॥

भा०—हे विद्वान् और प्रमुख स्त्री पुरुषो एवं अधिकारी जनो! हे दुष्ट पुरुषों के नाश करने हारो! आप दोनों सोने वाले अर्थात् राज्य कार्य में प्रमाद करने वाले आलसी राजा के लिये दूध न देने वाली वन्ध्या गौ के समान ऐश्वर्य या भोग्य पदार्थों के न देने वाली विस्तृत या वन्ध्या, [illegible] या हिंसाशील राजद्रोहिणी विरुद्ध मार्ग में या विद्रोह में [illegible], विपरीत हुई पृथिवी, राष्ट्रभूमि या सेना को नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न करो। अर्थात् द्रोहियों को नाश करके जैसे अन्नोत्पादक सूनी भूमि को जल सींच कर हरा भरा किया जाता है वैसे ही उसको सुख समृद्ध करो।

विशेष हर्ष से युक्त पुरुष के गृहस्थ धर्म के लिये जिस प्रकार जाया अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री को उससे विवाहित कर दिया जाता है उसी प्रकार सेवन करने योग्य भूमि को भी नाना शक्तियों से वश करके बहुत से मित्र राजाओं से सहायवान् राजा के अधीन नियम पूर्वक प्राप्त कराओ। प्रमादी राजा की प्रजाएं विद्रोह करती हैं। उनको बलवान् सेनापति और सभापति शान्त करें और ऐश्वर्य सम्पन्न करें। बहुमित्र राजा के अधीन उसको सुशासन में रक्खें। इति षोडषो वर्गः।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

भा०—अब पूर्वोक्त रूप से फल न देने वाली राष्ट्रभूमि को समृद्ध करने का उपाय बतलाते है—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो, एवं प्रमुख अधिकारियो! आप दोनों जन भूमि को विशेष रूप से खोदने वाले हल यन्त्र से भूमि को खन कर यव आदि धान्य बोते हुए मनुष्य वर्ग के खाने पीने के लिये इच्छानुरूप अन्न और वृष्टि जल को प्रदान करते हुए और तेजोमय आग्नेयास्त्र से प्रजा के नाश करने वाले, दुष्ट डाकू वर्ग को सब प्रकार से संताप देते हुए, श्रेष्ठ प्रजा वर्ग के हित के लिये सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को शासक बनावो।

अथवा हे सभा सेनाधीशो! शत्रुओं को काट गिरा देने वाले शस्त्र जौ के समान दूर करने योग्य शत्रु पक्ष को छेदन करते हुए और मनुष्य वर्ग के हितार्थ सेना बल को पूर्ण करते हुए चमचमाते आग्नेयास्त्र से दुष्टों को भस्म करते हुए श्रेष्ठ राजा के पुत्र के समान प्रजाजन की वृद्धि के लिये तेज और न्याय का प्रकाश करो।

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

भा०—हे अश्व सेना और विद्वत्सभा के स्वामी वीर सेना और विद्वत् सभा के नायक अध्यक्ष पुरुषो! आप दोनों न हिंसा करने वाले,

प्रजापालक और शान्तिविधायक, प्रजापति के पद पर कार्य करने वाले, राष्ट्र को धारण करने में सामर्थ्य को प्राप्त विद्वान्, बलवान् पुरुष को ही अश्व सेना और राष्ट्र का मुख्य पद प्रदान करो। और हे शत्रुओं के नाश करने में कुशल पुरुषो! वह मुख्य पुरुष ऐश्वर्य की कामना करता हुआ आप दोनों को शिल्पियों से बनाये गये मधुर एवं शत्रुओं का पीडन और स्तम्भन करने वाला बल या शस्त्रास्त्र साधन तथा ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त कराता है। और जितना भी कक्षाओं में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ज्ञान है उसका भी उपदेश करता है। अथवा वह सत्य ज्ञान और न्याय शासन चाहता हुआ सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी शासन या आज्ञा और आचार्य के समान ज्ञान का उपदेश करे। गुरु जिस प्रकार उत्तरोत्तर कक्षाओं में कहने योग्य ज्ञान की वृद्धि करता है उसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अधिकारी युक्त श्रेणियों में प्राप्त होने योग्य शासनाधिकार और तदुपयोगी ज्ञान भी प्रदान करे। 'दधीचे'—इन्द्रियं वै दधि। तै० २।१।५६। दधि हैवास्य लोकस्य रूपम्। श० ७।५।१।३॥ सोमो वै दधि। कौ० ८।९॥ वाङ् वै दध्यङ् आथर्वण. ॥ श० ६।४।२।३॥ 'आथर्वणाय'—प्राणो वा अथर्वा। श० ६।४।२।२॥ अथ अर्वाङ् एव-मेतासु अप्सु अन्विच्छ। गो० पू० १।४॥

सदा॑ कवी सुम॒तिमा च॑के वां॒ विश्वा॒ धियो॑ अश्विना॒ प्राव॑तं मे।
अ॒स्मे र॒यिं ना॑सत्या बृ॒हन्त॑मपत्य॒साचं॒ श्रुत्यं॑ रराथाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे दूरदर्शी विद्वानो और विदुषी स्त्री पुरुषो! मैं आप दोनों शुभ कर्मानुकूल मति, ज्ञान और अनुमति को प्राप्त करूं। मुझे समस्त कर्मों, ज्ञानों और रक्षा आदि अनुग्रह को आप लोग प्रदान करें। हे सत्य व्यवहारशील स्त्री पुरुषो! आप दोनों हमें पुत्र पौत्रादि को प्राप्त होने वाले बड़े भारी प्रसिद्ध और श्रवण या गुरूपदेश द्वारा प्राप्त होने योग्य वेदज्ञानमय ऐश्वर्य को प्रदान करें।

हिरण्यहस्तमश्विना ररा॒णा पु॒त्रं न॑रा वध्रिम॒त्या अ॑दत्तम् ।
त्रिधा॑ ह॒ श्यावमश्विना विक॑स्तमु॒ज्जीवस॑ ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥

भा०—हे विद्वानो और विदुषी स्त्री पुरुषो ! आप दोनो राष्ट्र की बढ़ती हुई विद्या के पुत्र अर्थात् उसके पालन, अभ्यास और सेवन करने वाला, ऐश्वर्य को अपने हाथ मे या वश में करने हारा पुत्र या शिष्य प्रदान करो। हे मार्गदर्शी विद्वान् नायक जनो ! हे उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारो ! मन, वाणी, काय तीनों प्रकार से विशेष विकास को प्राप्त होने वाले विद्वान् पुरुष को दीर्घ जीवन के लिये या राष्ट्र मे जीवन जागृति की वृद्धि के लिये उत्तम शिक्षा दो या उत्तम पद पर स्थापित करो।

इसी प्रकार राष्ट्र के प्रधान नायक पुरुष भी स्वतन्त्र रूप से कुछ न कर सकने वाले सभापति से युक्त सभा के पुत्र या पालक रूप से ऐश्वर्यवान् पुरुष को और बढ़ती हुई राष्ट्रशक्ति के पालक को हित और रमणीय, उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीर पुरुष को नियत करें। राष्ट्र मे जीवन की जागृति और प्राणरक्षा के लिये प्रज्ञा, उत्साह, प्रभु शक्ति या धन, काम, बल और प्रज्ञा इन तीनों मे प्रबल पुरुष को उत्तम, प्रधान पद प्राप्त करावें।

ए॒तानि॑ वामश्विना वी॒र्या॑णि॒ प्र पू॒र्व्याण्या॒यवो॑ वोचन् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॑ वृषणा यु॒वभ्यां॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम ॥२५॥१७॥

भा०—हे विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! सभा-सेनाध्यक्षो ! तथा गुरु शिष्यो ! ये नाना प्रकार के वीर जनों के योग्य बल और वीर्य के द्वारा साधने योग्य, पूर्व के विद्वानों तथा सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर या वेद द्वारा प्रतिपादित जो ज्ञान या बल पराक्रम हैं उन को विद्वान् जन शिष्यों को उपदेश किया करें। हे सुखों के वर्षक, बलवान् पुरुषो ! हम लोग उत्तम पुत्रों, प्राणों और पुरुषों से सहायवान् होकर ऐश्वर्य और वेद ज्ञान का सम्पादन करते हुए विज्ञान का सर्वत्र उपदेश करें। इति सप्तदशो वर्गः।

[११८]

कक्षीवानृषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहा ॥ १ ॥

भा०—हे राज प्रजा के प्रमुख पुरुषो ! आप दोनों का वह रथ बाज के समान वेग से जाने हारा, अपने भृत्यों से युक्त, उत्तम रीति से सुखप्रद होकर सदा हमारे पास आवे और जावे । जो तीन स्थानों पर बन्धा हुआ, वायु के वेग से जाने हारा होकर मनुष्य के मन से भी अधिक वेग से जाने हारा है ।

अध्यात्म में—हे प्राण और अपान ! बुद्धि और आत्मन् ! तुम दोनों का यह रमण साधन रथ देह 'श्येन' अर्थात् चेतन ज्ञानवान् आत्मा के कारण चेतन, ज्ञानकर्त्ता और गतिमान् होने से 'श्येनपत्वा' है । सुखदायी होने से 'सुमृडीक' है । और आत्मा अपने ही प्राणों से युक्त होने और स्वप्रकाश होने से 'स्ववान्' है । वह प्रत्यक्ष होता है । प्राण, उदान और व्यान में या शिर, छाती और नाभि में बधा होने से 'त्रिबन्धुर' है । प्राणों या मरुत् (Metoblolic Force) के वेग से गतिमान् होने से 'वातरंहा' है मन के बल से ही यह वेगवान् है ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! आप तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त, तीन प्रकार के आवरणों से युक्त, तीन कला युक्त चक्रों से युक्त, उत्तम मनुष्यों या गतियों या शृङ्गारों से युक्त, रथ से भूमि के ऊपर, नीचे समीप और दूर आया जाया करो । आप दोनों हमारे गौओं को व्याप्त

आदि से तृप्त तथा भूमियो को जल से सेचन किया करो। हमारे अश्वो की वृद्धि करो। और हमारे वीर जनो और पुत्र जनो को खूब बढ़ाओ।

अध्यात्म में—मस्तक, मेरुदण्ड और मासपेशियें इन तीन प्रकार के बन्धन होने से या त्रिविध गुणो के बन्धन होने से देह 'त्रिबन्धुर' है। आत्मा, मन और प्राण तीन प्रकार के कारक पदार्थों से या आत्मा, मन और इन्द्रिय इन तीन से वह 'त्रिचक्र' है। सुख से पदार्थों को भोगने से 'सुवृत' है। प्राण और अपान या माता और पिता जन हमारे वेद-वाणियो, भूमियो और ज्ञानेन्द्रियो को तथा कर्मेन्द्रियो, विद्वानो और पशुओ को बढ़ावें।

प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥ ३॥

भा०—हे विदुषी वा विद्वान् स्त्री पुरुषो! दुःखों और दुष्ट पुरुषो के नाश करने वाले उत्तम मार्ग से और उत्तम चाल से चलने वाले उत्तम सुख साधनों से युक्त, रथ और रमण साधनो से युक्त होकर भी पर्वत के समान उत्तम और उन्नत पद पर जाते हुए भी इस पवित्र वेद वाणी का श्रवण किया करो। हे प्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों के प्रति पूर्व काल मे उत्पन्न विद्वान्, पूर्व पुरुष, क्या कुछ असम्भव या कुछ निन्द-नीय वाणी कहते रहे? नहीं, कुछ भी नहीं। अथवा हे स्त्री पुरुषो! तुम आदर करने योग्य मेघ के समान सर्वदाता, प्रमुख विद्वान् नायक की वाणी, गुरु वाणी, वेद या मेघ ध्वनि का सदा श्रवण करो।

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति॥ ४॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पीजनो! आप दोनो को रथ मे लगे हुए अति शीघ्रगामी सूर्य के समान दीप्ति वाले, अति वेग से जाने वाले श्येन पक्षी के समान युद्ध भूमि मे झपट कर दौड़ने वाले, सरपट घोड़े या विद्युत् आदि यन्त्र दूर देश में पहुचावें। जो अन्तरिक्षों और जलों मे वेग से

जाने वाले गीध के समान लम्बे पक्ष वाले और लम्बी उडान लगाने वाले उत्तम गन्तव्य प्राप्ति-स्थान या ठिकाने तक ले जाते हैं ।

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्टी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५॥१८॥

भा०—हे नायक पुरुषो ! सूर्य की कन्या उषा के समान कान्तिमती और सूर्य के समान तेजस्वी नायक की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारी प्रेमयुक्त या ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई युवति स्त्री, तुम दोनों के बने रथ पर प्रथम बैठे, तुम दोनों को बडे बड़े डील वाले किरणों के समान लाल रंग के बडे तेजस्वी गतिशील घोडे दो ले जावें । अथवा उत्तम रूप को चाहने वाली वरवर्णिनी युवति ही तुम स्त्री-पुरुषों में से प्रथम रथ पर चढे । इति अष्टादशो वर्गः ।

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

भा०—नाना सुख प्रदान करने हारे, एवं निषेक आदि करने हारे माता पिता जनो ! आप लोग उत्तम आचरणों से नित्य अभिवादनशील तथा उत्तम स्तुति करने हारे पुत्र या शिष्य को ऊपर उठाओ । उसे सब प्रकार से उन्नत करो, हे अन्धकार या दुर्गुणों को नाश करने हारे ! आप दोनों उत्तम वाणियों, शक्तियों और कर्मों द्वारा अध्ययनशील शिष्य को उत्तम या उच्चपद पर प्राप्त कराओ और यात्री को जहाजी जिस प्रकार समुद्र से पार उतार देता है उसी प्रकार पालने योग्य पुत्रादि हितकारी पिता आदि को भी निर्विघ्न पार करो । और युवा पुरुष को इस लोक को छोड कर जाने वाला वृद्ध अर्थात् दीर्घायु करो । अथवा संसार यात्रा करने वाले को बलवान् करो ।

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे नायको ! सन्मार्ग पर ले जाने हारो !

आप दोनो विनय से अपने अधीन सन्मार्ग पर ले जाने योग्य, उपनीत, माता पिता, भाई तीनो सम्बन्धियो से रहित शिष्य को तप से प्राप्त होने योग्य रक्षा, ज्ञान और तेज दायक पराक्रम, वीर्य और ब्रह्मचर्य को धारण कराओ और तुम दोनो खूब लिप्त, विषय तृष्णा मे फसे हुए विद्वान् पुरुष की उत्तम स्तुति प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उसे सन्मार्ग देखने योग्य शास्त्र रूप चक्षु प्रदान करो।

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं नायक पुरुषो ! आप दोनों अज्ञान निद्रा मे सोने वाले और ऐश्वर्य युक्त अथवा प्रार्थनाशील उत्तम पूर्व पुरुषो से युक्त अथवा पूर्व शुभ संस्कारो से युक्त पुरुष के लिए वेद वाणी को काम धेनु के समान ज्ञान-रस देने वाली बना देते हो, उसको उपदेश करते हो। तुम दोनों उद्योग आदि से निर्वाह करने वाली प्रजा को पापाचार से छुडाओ और प्रजाओ के पालन करने की नीति और दुष्टों के हनन करने की शक्ति प्रदान करो।

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग दूर या विजयार्थ जाने हारे वीर पुरुष को तेजस्वी, विद्युत् द्वारा चलने वाला, आगे आये शत्रु को मारने वाला, संग्राम मे शत्रुओ को ललकारने वाला, शत्रु को पराजित करने वाला, भयजनक, बलवान्, सहस्रों ऐश्वर्यों का देने वाला, शत्रुओ पर शरो की और प्रजा पर सुखो की वर्षा करने वाला, दृढ अङ्गों वाला शीघ्रगामी, पृथ्वी राज्य के भोगने मे और पालने में और उसे व्याप लेने मे समर्थ सैन्य बल या विमान आदि प्रदान करो।

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०॥

भा०—हे उत्तम विद्या आदि शुभ गुणों में विख्यात विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे प्रजा को सन्मार्ग पर चलाने हारे नायक पुरुषो ! हम लोग ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्य को याचना करते हुए, उन प्रसिद्ध आप दोनों को उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये अपना प्रमुख नेता स्वीकार करते हैं। आप लोग उत्तम ज्ञान-वाणियों का सेवन करते हुए ऐश्वर्य से पूर्ण रथ या रमण साधनों से सुख, ऐश्वर्य की वृद्धि करने और उत्तम मार्ग में ले जाने के लिये हमें प्राप्त होवें।

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ॥११॥१९॥

भा०—हे कभी परस्पर असत्य आचरण न करने हारे विद्वान्, सबल, ऐश्वर्य के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! एवं नायक जनो ! आप दोनों को मैं सप्रेम अन्न और उत्तम स्वीकार करने योग्य वचनों का प्रदान कर अनादि काल से चली आने वाली उषा या प्रभात वेला के खिल जाने पर प्रातः समय आदर पूर्वक नमस्कार करता हूँ और बुलाता हूँ। आप दोनों पक्षी के समान वेग से हमारे गृह पर नये रथ से आइये, पधारिये। विद्वान् स्त्री पुरुषों को इसी प्रकार आदर से अपने गृह पर निमन्त्रित करना चाहिये। इति एकोनविंशो वर्गः।

[११९]

१—१० कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृज्जगती। ३, ७, १७ जगती। ८ विराड्जगती। २, ५, ९ भुरिक् त्रिष्टुप्॥

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः॥१॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! मैं आप दोनों के बहुत अधिक बुद्धि से बनाये गये, बहुतसी आश्चर्यकारी घटनाओं को करने वाले अद्भुत, मन के समान वेग से जाने वाले, अति वेगवान् अश्व से युक्त, यज्ञ योग्य देश में जाने वाले, सहस्रों ध्वजा से युक्त, सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से पूर्ण,

सैकड़ो ऐश्वर्यों वाले, शीघ्र गतियो से जाने वाले, धनैश्वर्य के धारण और प्रदान करने वाले, रथ अर्थात् विमानादि का उत्कृष्ट गमन को लक्ष्य करके वर्णन करता हूं।

देह पक्ष मे—यह देह रचना मे बहुत आश्चर्यकारी रचनाओ से पूर्ण है। मन की प्रेरणा से चलने वाला है। जीव ही इसमे अश्व अर्थात् भोक्ता रूप से विराजने वाला है। यज्ञ अर्थात् उपासना करने योग्य परमेश्वर के भजन करने के लिये बना है। अथवा यह देह यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसगत अंगों से बना है या यज्ञ अर्थात् पञ्चाहुति द्वारा निर्मित है और पूर्ण जीवन भोगने के लिये मैं उसे स्वीकार या धारण करता हू। और यह रथ रूप देह अनेक ज्ञान करने वाले ज्ञान-तन्तुओं या ज्ञान-साधनो से युक्त है। नाना भोग योग्य सामर्थ्यों से या भोक्ता आत्मा और इन्द्रियो से सम्पन्न है। सौ बरस तक वास करने योग्य है। वह शीघ्र गतियो से युक्त या अन्न का भोक्ता या सुखों से पूर्ण है। सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला है। वह अन्न के आश्रय पर रहता है।

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! रथ के उत्तम मार्ग में जिस प्रकार रथ की ऊची स्थिति रक्खी जाती है उसी प्रकार इस देह और आत्मा के धारण पोषण का कार्य उत्तम मोक्ष मार्ग मे जाने वाले के लिये ही प्रतिक्षण रक्खा जावे। और जिस प्रकार रथ पर सवार होने से शीघ्र ही सब दिशाएं या दूर देश भी प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार इसको शासन करने के निमित्त उपदेश करने वाले गुरुजन भली प्रकार प्राप्त हों। मैं जिज्ञासु पुरुष गुरु से प्राप्त, अति प्रदीप्त, उज्ज्वल ज्ञान-रस का मेघ से गिरते जल के समान उत्तम रीति से उपभोग करू। हमे ज्ञान प्रदाता और रक्षक जन प्रतिक्षण प्राप्त हों। और आप दोनों के रमण करने

योग्य रथ के समान हमारे गृहस्थ आश्रम को अन्न सम्पत्ति और पराक्रम शक्ति भी सब तरफ़ से प्राप्त हो।

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३॥

भा०—जब परस्पर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए, एक दूसरे को युद्ध मे विजय करने के लिये यत्नशील होकर आदरणीय, अपरिमित या अपराजित विजयशील वीर पुरुष रण मे या किसी अन्य सुन्दर रमणीय उत्सव आदि के शुभ अवसर पर एकत्र होते हैं और जब हे विद्वान् नायको वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनो श्रेष्ठ विद्वान् धार्मिक तथा प्रतिष्ठित पुरुष को प्राप्त होते हो तब उत्तम रीति से सेवने योग्य रणस्थल और सभा-भवन मे भी आप दोनो का ही उत्तम रथ विशेष रूप से युद्ध आदि विद्या में कुशल जाना जाता है।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१ंदिवोदासाय महि चेति वामवः॥४॥

भा०—हे प्रजा पर सुखों की और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने में कुशल नायको ! अथवा बलवान् वीर्यवान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों विद्वानों और वेगवान् अश्वारोहियों से युक्त, सबके पालक और सबके भरण पोषण करने हारे नायक को अपने नाना उपायों से पालक जनों के हित के लिये विशेष रूप से अपने ऊपर धारण करते हुए विशेष जय प्राप्त कराने वाले प्रयत्न करें। क्योंकि ज्ञान प्रकाश देने वाले पुरुष के लिये आप दोनों की संसार मे बड़ी भारी रक्षा समझी जाती है।

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम्। आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती॥५॥२०॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों के ही परस्पर प्रेम और इच्छा पूर्वक मिलकर एक हो जाने वाले, बलपूर्वक धारण करने योग्य, रमणकारी,

आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ को इस गृहस्थ तत्व के विषय में उपदेश करने में कुशल विद्वान्, आचार्य और पुरोहित तुम दोनो को उत्तम रीति से बीजवपन द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिये विवाहित करते हैं, तुम दोनो को गृहस्थ के कर्त्तव्य में बांधते हैं। तुम दोनो का इस गृहस्थ मे स्वामित्व समान रूप से हो। इस कार्य में हे पुरुष, तेरे सखा भाव मे जाने वाली, तेरा मित्र होकर रहने वाली, पुरुष के हृदय को जीतने वाली अथवा सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ वधू ही वरण करे। तब तुम दोनों एक दूसरे के पति पत्नी होकर रहो। अथवा तब तुम दोनो एक दूसरे का हृदय जीतने वाले अथवा सन्तानोत्पादक पति पत्नी होकर रहो।

सभा सेनाध्यक्षों या नायकों के पक्ष मे—हे प्रमुख नायको! तुम दोनों के ही जुड़ने वाले बलपूर्वक संग्राम करने योग्य रथ को आज्ञाकारी दो उपदेशक सारथी ही शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर देने के लिये इस राष्ट्र के हित के लिये नियम में चलावें। मित्र भाव को प्राप्त होने वाली स्त्री के समान सेना और सभा तुम दोनों का पति रूप से वरण करे। तुम दोनों विजयशील सभा और सेना के स्वामी होकर रहो।

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनो उत्पन्न होते ही शब्द करने वाले, रोने वाले बालक की प्रसव क्रिया के भी पूर्व से ही खूब रक्षा करो और इस लोक मे आये नव बालक के परिताप, ज्वर आदि दुःख को शीतल जल या छाया से घाम के समान दूर करो। तुम दोनों स्त्री पुरुष शयनशील शिशु की इन्द्रियों मे अथवा गाय के समान दूध पिलाने वाली उसकी उत्पादक माता में बालक की रक्षा करने वाले दूध की वृद्धि करो और स्तुत्य गुणो से युक्त, अभिवादनशील बालक दीर्घ जीवन से युक्त होकर बड़ा हो।

इसी प्रकार हे विद्वान् शिक्षक स्त्री पुरुषो ! आप दोनो उपदेश करने योग्य शिष्य की रक्षा करो। मां, बाप, भ्राता अथवा विविध तापों से रहित बालक को तपस्या द्वारा युक्त हो जाने पर शीतल जल के समान शान्तिदायक, ज्ञानमय विद्योपदेश से स्नान कराओ। शान्ति और कल्याण के इच्छुक शिष्य की वाणी में ज्ञान की वृद्धि करो। तुम्हारा अभिवादनशील शिष्य दीर्घ आयु हो।

इसी प्रकार हे नायक जनो ! प्रार्थी पुरुष को उपद्रवों से बचाओ। इस राष्ट्र में बसी प्रजा के संताप को शान्तिदायक उपाय से दूर करो। सोने वाले अचेत प्रजाजन के रक्षा के उपाय और बल को पृथ्वी पर बढ़ाओ। स्तुति योग्य वन्दनीय गुरुजन दीर्घायु हो।

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत्॥७॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम गति से जाने वाले रथ को प्राप्त कर शत्रुओं के नाशकारी रथी और सारथी दोनों परस्पर मिल कर दूर देश तक चले जाते हैं इसी प्रकार हे दर्शनीय रूप वाले एवं एक दूसरे के दुःखों को दूर करने वाले स्त्री पुरुषो ! कार्य करने में कुशल होकर उपदेश करने योग्य वेदवाणी से युक्त नित्याभिवादन योग्य निरन्तर सत्य ज्ञान के उपदेष्टा विद्या-वृद्ध पुरुष का संसार की दूर की यात्रा पार करने के लिये सत्संग करो। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग उत्पत्ति स्थान गर्भाशय से बालक के समान विविध विद्याओं में पूर्ण शिष्य को उत्पन्न करो और विशेष स्तुति योग्य वाणी से तुम दोनो को नाना कर्मों का उपदेश करने वाले विद्वान् की प्रतिष्ठा अच्छी प्रकार प्राप्त हो।

बालक के पक्ष में—जब तुम दोनों गृहस्थ के करने वाले स्त्री पुरुष परस्पर संगत होवो तब तुम दोनों स्तुति योग्य जरण्या अर्थात् जरायु के साथ बाहर आये विविध गुणों से पूर्ण रमणीय बालक को क्षेत्र अर्थात्

गर्भाशय से उत्पन्न करो और तब तुम दोनों की विशेष व्यवहारकुशलता से इस कार्य में नाना कार्यों को करने वाले की प्रभुत्व या प्रतिष्ठा हो।

अर्गच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निर्बाधितम्।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरहं चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग अपने पालक माता पिता के त्याग से कुछ खिन्न से हुए एवं आप दोनों की स्तुति या विद्याध्ययन करते हुए बालक वा शिष्य को प्राप्त करें। अथवा हे राज प्रजावर्गो! अपने पालक जन गुरु आदि से विद्या प्राप्त करके दूर देश में स्थित, कृपाशील सर्व सुखों के त्याग द्वारा पीडित, तपस्वी पुरुष को प्राप्त होओ। इस विद्वान् तपस्वी पुरुष से ही निश्चय से तुम दोनों को सुखदायिनी, आश्चर्यजनक ज्ञान, उपाय और अभीष्ट सिद्धियें भी प्राप्त हों। यदि स्त्री पुरुषों को पुत्र न प्राप्त होता हो तो वे किसी ऐसे बालक को जिसको उसके मां बाप छोड़ चुके हों और आश्रय चाहता हो अपना पुत्र बना लें और उससे ही उन के सब अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो सकते हैं।

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत्॥९॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो! जिस प्रकार अति हर्ष में मस्त होकर मधुमक्षिका कूजती है उसी प्रकार कान्तिमान् तेजस्वी परमेश्वर या अचार्य का पुत्र या शिष्य, साधक विद्वान् सोम, परम ज्ञान और आनन्द रस के परम हर्ष या ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य के दमन या पालन में सावधान होकर तुम दोनों को मधुर ज्ञान का व्यक्त वाणी द्वारा उपदेश करे। और आप से आप मधुर अन्नादि पदार्थ प्राप्त करें। आप दोनों वर्ग सकल विद्याओं को धारण करने वाले शिष्यों को प्राप्त होने योग्य या धारणीय गुणों को प्राप्त आचार्य, विद्वान् उपदेष्टा के मनन करने योग्य ज्ञान का सब प्रकार से सेवन करो। और वह तुम दोनों के प्रति विद्या से युक्त

मस्तक के समान उन्नत और मुख्य पद प्राप्त करके उपदेश करें। विशेष व्याख्या देखो सू० ११६। मं० १२॥

यु॒वं पे॒दवे॑ पुरु॒वार॑मश्विना स्पृ॒धां श्वे॒तं त॑रु॒तारं॑ दुवस्यथः ।
श॒र्यै॑र॒भिद्युं॒ पृत॑नासु दु॒ष्टरं॑ च॒र्कृत्य॒मिन्द्र॑मिव चर्षणी॒सह॑म् ॥१०।२१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! हे राज प्रजावर्गो! हे राष्ट्र में मुख्य पदों के भोक्ता नायक पुरुषो! आप दोनों उच्चतम आसन को प्राप्त करने वाले राजा और प्राप्त हुए राष्ट्र के हित के लिये बहुतसे प्रजाजनों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाले, परस्पर स्पर्धा करने वाले, प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के पार पहुंचा देने वाले, अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाले, शत्रुहिंसक बाणादि अस्त्र शस्त्रों को चलाने में कुशल, धीर योद्धाओं से, किरणों से सूर्य के समान तेजस्वी, विजयशील योद्धा संग्रामों में पराजित न होने वाले, समस्त शत्रु मनुष्यों को पराजय करने में समर्थ, बलशाली राष्ट्रपति या सूर्य के समान ही शासन कार्य या अन्धकार को दूर करने में कुशल पुरुष या सैन्य वर्ग को प्रदान करो।

इन समस्त अश्वि-सूक्तों में अध्यात्म तथा ईश्वरोपासनापरक रहस्यों को विस्तार भय से नहीं दर्शाया है। उनको कहीं कहीं दिखाये संकेतों से ही जान लेना चाहिये ॥ इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१२०]

औशिजपुत्रः कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । २ भुरिग्गायत्री । १० गायत्री । ११ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री । ३ स्वराट् ककुप् उष्णिक् । ५ आर्च्युष्णिक् । ६ निचृदुष्णिक् । ८ भुरिगुष्णिक् । ४ आर्च्यनुष्टुप् । ७ स्वराडार्च्यनुष्टुप् । ९ अनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

का रा॑ध॒द्धोत्रा॑श्विना वां॒ को वां॒ जोष॑ उ॒भयोः॑ ।
क॒था वि॑धा॒त्यप्र॑चेताः ॥ १ ॥

भा०—हे पति पत्नी भाव से रहने वाले स्त्री पुरुषो! दोनों के परस्पर प्रेम व्यवहार में तुम दोनों में से कौन है जो अपने को सब प्रकार से समर्पण करती हुई कार्य सिद्ध करती है? और कौन है जो सर्वात्मना स्वीकार करने वाला होकर कार्य साधता है? अथवा कौन स्त्री और कौन पुरुष प्रदान और आदान के कार्यों को करता और करती है। इस बात का खूब ज्ञान सम्पादन करो। क्योंकि तुम दोनो मे से कोई भी ज्ञान-रहित मूढ़ होकर किस प्रकार से परस्पर का गृहस्थ कार्य करने मे समर्थ हो सकता है? इसलिये गृहस्थ के दोनो अंगों को अपने अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिये।

हे युद्ध विद्या मे निपुण वीर नायको! या सेनापति और सैन्य वर्गो! आप दोनो में से कौन तो शत्रुबल को वश करने मे समर्थ होता है? और तुम दोनों में से परस्पर मिल कर करने योग्य राज-सेवा के कार्य मे कौन प्रमुख होकर शत्रुओं को वश करने में समर्थ है? युद्ध विद्या और सेना सञ्चालन के कार्यों से अनभिज्ञ मूढ पुरुष दोनो ही कार्यों को विना जाने किस प्रकार उक्त-कार्य खूबी से कर सकता है?

हे आत्मन्! कौन सी वेदवाणी तुम दोनो का आराधन करती है। जब दोनों का परस्पर प्रेम है तो तुम दोनो में से कौन किस को प्राप्त होना है? अज्ञानी किस प्रकार से इस तत्व का वर्णन कर सकता है?

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥

भा०—अविद्वान्, विद्याहीन या शूद्र भृत्य विद्वान्, जानकार स्त्री पुरुषो या मालिक मालिकनी से जा कर जिस प्रकार बड़े महल के दरवाज़े पूछता है उसी प्रकार नाजानकार, मूर्ख पुरुष विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर उन से ही इस देहब- या संसार बन्धन से मुक्त होने के द्वारों को पूछे. इसी प्रकार सेनाध्यक्षों से ही नाजानकार, नवसिखुआ

दुर्ग और व्यूहों के द्वारों को या शत्रु के वारण करने के उपायों को पूछे। इस प्रकार से जो पर या उत्कृष्ट नहीं, वह जीव पर अर्थात् उत्कृष्ट परमेश्वर की अपेक्षा अपर है। और आत्मा की अपेक्षा अपर देहादि भी चेतना और ज्ञान से रहित है। ठीक इसी प्रकार क्रिया में अकुशल पुरुष-समूह में भी समझना चाहिये कि क्रिया का जानने वाला पुरुष विद्वान् और अकुशल अविद्वान् होता है।

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

भा०—हम उन दोनों विद्वान् पुरुषों को आदरपूर्वक स्वीकार करें अर्थात् उनका सत्संग करें और वे आप दोनों ही आज, अब, नित्य हमें मनन करने योग्य ज्ञान का उपदेश करें। तुम दोनों का सच्चा प्रिय पुरुष या सबको विद्योपदेश से मिलाने हारा, उपदेष्टा पुरुष सब पर दयालु होकर तुम दोनों का सत्कार करे।

वि पृच्छामि पाक्या न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों के विनाश करने हारे! आप दोनों परिपक्व विज्ञान वालों में ही मैं इस अद्भुत, आश्चर्यकारी वषट्कार, यज्ञ-आहुति या आदान प्रतिदान, सृष्टिगत सर्ग और प्रलय के विषय में, अन्य विद्वानों के समान विविध प्रश्न पूछता हूँ। आप दोनों सहनशील, शत्रु पराजयकारी और अति वेगवान्, शीघ्रकारी हम सबकी हमेशा रक्षा करो।

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—भृगु अर्थात् इन्द्रियों के धारण और दमन करने वाले, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के तुल्य आचरण करने वाले, सर्व पापनाशक वेद जो अति उत्तम प्रभुवाक्य रूप से विद्यमान सर्वोपरि

मान्य है उससे मैं भी सुशोभित होऊं। और जिस वाणी से हे विद्वान् पुरुष! उत्तम ज्ञानों और माहात्म्य परमपद के प्राप्त करने में कुशल, बाण चलाने में सिद्धहस्त, लक्ष्यवेध में चतुर पुरुष के समान अपने उद्देश्य तक पहुंचने वाला विद्वान् आप दोनों का सत्संग करता है उससे भी मैं खूब सुशोभित होऊं। इति द्वाविंशो वर्गः॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम्।
आक्षी शुभस्पती दन्॥ ६॥

भा०—हे शोभाकारी और तेजस्वी, उत्तम ज्ञान के पालक, जल के पालक मेघ के समान ज्ञानवर्षक, प्रमुख विद्वान् स्त्री पुरुषो! ज्ञानवान्, विद्यावान् पुरुष का श्रवण करने योग्य गायन करने वाले की नित्य अज्ञानपूर्वक कुपथ में पड़ जाने से रक्षा करने हारे, आंखों के समान मार्ग दिखाने वाले, मैं भी आप दोनों के ज्ञान को प्राप्त करूं।

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम्।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः॥ ७॥

भा०—हे राष्ट्र को बसाने और घर को बसाने वाले नायको और स्त्री पुरुषो! विद्वानो! निश्चय से आप दोनो बड़े भारी पूजनीय ज्ञान और रक्षा और ऐश्वर्य के देने वाले होवो। और जो आप दोनों हमें सब प्रकार से विद्या आदि शुभगुणों और वस्त्र आभूषणादि से भी अलंकृत करते हो वे आप दोनों हमारे उत्तम रक्षक और उत्तम वेदवाणियों और इन्द्रियों और गवादि पशुओं और भूमियों के पालक और रक्षक होवो। और हमें हम पर पापाचार, हत्या आदि अपराध करने वाले भेड़िये के समान छल से आक्रमण करने वाले, दुष्ट पुरुष से रक्षा करो।

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः।
स्तनाभुजो अशिश्वीः॥ ८॥

भा०—हे राज्यकर्त्ता पुरुषो! विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग हमें

किसी भी मित्र जनों से रहित, सबके शत्रु, स्नेह-शून्य, अकारण वैरी पुरुष के स्वार्थ के लिये कभी न धरें या उसको हमारा पता न दें। हमारे घरों से दुधार गौवें अन्यत्र कहीं, संकट के स्थान में न जावें। और स्तनों द्वारा बच्चों और बच्चों के पालने वाली गौवें और माताएं शिशु रहित न हों।

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! एवं नायको! अध्यक्ष जनो! दुःखों को दूर करने और सुखों के प्राप्त करने के लिये और स्नेही, मित्र जनों के पालन करने के लिये ये सब गौएं, भूमियें और माताएं अपना दूध, अन्न और स्नेह हमें प्रदान करती हैं। आप दोनों भी हमें हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि और अन्नादि देने वाली भूमि को प्राप्त और सदुपयोग करने के लिये विशेष ज्ञान का उपदेश करें और गौओं से पूर्ण अन्न समृद्धि प्राप्त करने के लिये सदा प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहें।

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः।
तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥

भा०—शिल्प विद्याओं में कुशल तथा बलवती, वेगवती क्रिया के उत्पन्न करने में कुशल शिल्पियों के बनाये विना अश्व के चलने वाले रथ, विमान, मोटर गाड़ी आदि रमण करने योग्य आनन्दप्रद यानों को मैं राजा और प्रजावर्ग प्राप्त करूं और उस यान आदि ऐश्वर्य से मैं बहुत [illegible] तेजस्वी होऊं।

अध्यात्म में—इस देह में प्राण और अपान ये दो 'अश्वी' हैं जो [illegible] अर्थात् अन्न शक्ति के स्वामी होने से वाजिनीवान् हैं। उनके इस देह रूप अश्वरहित रथ का मैं आत्मा भोग करता हूं और उससे बहुत कामनाएं पूर्ण करता हूं।

इसी प्रकार मुख्य राजा अपने अधीन सभा और सेना के दो अध्यक्षों के हाथ शक्ति देकर उनके विना 'अनश्व' अर्थात् विना भोक्ता के रथ अर्थात् उत्तम व्यवस्थित राष्ट्र का भोग स्वतः करे और उससे खूब तेजस्वी हो।

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु ।
सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

भा०—हे आदर सत्कार से युक्त विद्वन्! यह सुखदायक, रमण करने, आनन्द विहार करने योग्य और वेग से जाने वाला रथ है। वह अन्य जनों तक भी पहुंचाया जाता है। अर्थात् उसमें बैठ कर अन्यों तक पहुंचा जाता है। अथवा उसमें विराजे पति पत्नी या वर वधू अन्य जनों तक पहुंचाए जाते हैं। ऐसा ही एक रथ जिससे ऐश्वर्य का, सुखप्रद रसपान के समान उपभोग हो सके मुझे भी बना दे।

भक्त ईश्वर को कहता है—हे महान् शक्ति वाले प्रभो! यह देह रमण करने से 'रथ' है। अथवा यह आत्मा रस स्वरूप होने से 'रथ' है। यह सुखप्रद हो, इसमें 'ख' अर्थात् इन्द्रियें सुख, शान्तिजनक हों, वे दुःखदायी न हों। इससे परमैश्वर्य, ब्रह्मानन्दरूप रस का पान करने के साथ साथ दोनों उपास्य और उपासक इस आत्मा में उत्पन्न होने वाले आनन्दों को लक्ष्य करके ही धारण किये जाते हैं। वैसा ही यह सुखप्रद देह या आत्मा मेरा भी कर दे।

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता वस्त्रि नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

भा०—और मैं निद्रा, आलस्य करने वाले आलसी तथा स्वयं ऐश्वर्य का भोग और अन्यों का पालन न करने वाले धनवान् पुरुष इन दोनों से उदासीन हूँ, दोनों को निरुपयोगी निकम्मा समझता हूँ, क्योंकि वे दोनों शीघ्र ही या सुखनाशक होने से स्वयं नष्ट हो जाते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः।

इति सप्तदशोऽनुवाकः।

[१२१]

औशिज कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद् गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड् विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥

भा०—समस्त मनुष्यों और नागकों का पालक या सत्कार योग्य राजा त्वरावान् उत्सुक होकर उत्तम राजा को हृदय से चाहने वाले, तेजस्वी विद्वान् पुरुषों की वाणियों और उपदेशों को इस प्रकार से कब श्रवण करे ? [उत्तर] जब सत्सग करने या राष्ट्ररूपी यज्ञ की रक्षा करने वाला स्वामी बड़े महल या अन्तःपुर के समान प्रजाओं के पालन रूप उत्तम कार्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करे और बहुत अधिक ऊंचे पद पर कदम बढ़ावें । प्रायः ऊंचे राज्यादि पद को पाकर, पुरुष गर्वी होकर विद्वानों का वचन नहीं सुनता, परन्तु उसी अवसर पर उसे विद्वानों का वचन उत्सुक होकर श्रवण करना चाहिये ।

अध्यात्म में—परमेश्वर से मेल करने वाला मुमुक्षु जब अपने प्रवेश योग्य प्राणों पर वश प्राप्त कर ले और महल के ऊंचे अग्रण्ड्र रक्षा स्थान के समान उस अविनाशी, पालक, परमेश्वर तक पहुंचता है तब भी प्राणों का पालक जितेन्द्रिय तथा सब मनुष्यों का पूजाश्रय होकर वह ज्ञानवान ईश्वरभक्तों की वाणियों का बार बार श्रवण किया करे ।

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बहुत अधिक तेजस्वी सूर्य आकाशस्थ पिण्डों को आकर्षण बल से थामता है और पृथिवी के ऊपर अन्न की उत्पत्ति के लिये ऐश्वर्य रूप से सब प्राणियों के जीवन धारक जल को मेघ द्वारा

बरसाता है उसी प्रकार तेजस्वी, सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से चमकने वाला पुरुष ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुषों की राजसभा को वश करे। ऐश्वर्य की वृद्धि और संग्रामों के विजय के लिये धन को मेघ के समान भृत्यों पर बरसा दे, अथवा द्रुत गति से जाने वाले अपने सैन्य को या शस्त्रास्त्र को शत्रु पर बरसा दे। महान् शक्ति वाला सूर्य जिस प्रकार अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली वरण करने योग्य कन्या के समान अपने प्रकाशों से जगत् को ढक देने वाली उषा को प्रकाशित करता है और उसके बाद स्वयं भी प्रकट होता है, इसी प्रकार पृथ्वी के विशाल राज्य का भोक्ता नृपति भी अपने सामर्थ्य या प्रभुत्व से प्रकट होने वाला अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा को अपने अनुकूल देखे, उस पर अनुग्रह करे और जिस प्रकार सूर्य के व्यापक प्रकाश के नाश करने वाली भूमि को माता के समान पालन करने वाली और अन्धकारमय गोद में लेने वाली रात्रि को अपने पीछे छोड़ जाता है उसी प्रकार राजा भी समृद्ध राष्ट्र और राष्ट्रपति के मुख्य वाणी या शासन को या शत्रुनाशक सेना या मान्य करने योग्य व्यवस्था को समस्त पृथ्वी के ऊपर माता के समान राष्ट्र के पालन और रक्षा करने वाले को नियत करता है।

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

भा०—प्रकाशमान् सूर्य जिस प्रकार पूर्व दिशा में प्रकट होने वाले देने योग्य प्रकाश को देता और प्रकाशमान् उषाओं को व्यापता है उसी प्रकार जो तेजस्वी पुरुष पूर्व के विद्वानों से दिये और उपदेश किये गये देने और आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य न्याय और ज्ञान को प्रकट करता और सबके चित्त को लुभाने वाली उत्तम धार्मिक नीतियों को वर्त्तता है और जो अति शीघ्रकारी, वायु के समान वेग से शत्रु पर जाने वाला सब दिनों बड़े प्रबल वज्र या अशनि प्रपात के समान सदा स्थिर और दृढ़ शस्त्रास्त्र बल को तीक्ष्ण करके शत्रु पर प्रहार करता है, और चौपाये

पशुओं के तथा साधारण मनुष्यों के बीच नायकों के और दोपाये भृत्य आदि सेवक जनों के हित के लिये सूर्य के प्रकाश के समान न्याय और विद्या के प्रकाश तथा राजसभा और विद्वत्सभा को स्थापित करता है वही तेजस्वी अग्नियों के बीच सूर्य के समान विद्वान्, तेजस्वी और वीर पुरुषों में और प्रजागण राजा अर्थात् सम्राट् बनने योग्य है ।

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अन्धकार से आवृत तेजोमय, तापदायक रश्मियों के समूह को प्रकाश और वृष्टि जल के प्रयोजन से भूमि पर फैलाता है उसी प्रकार राष्ट्रपति इस प्रजाजन के हर्ष के लिये या इस प्रजाजन के आनन्द या दमन और शासन के निमित्त और सत्य न्याय के प्रकाश, ऐश्वर्य और अन्नादि समृद्धि की वृद्धि के लिये सुखों से युक्त या अन्यों से अज्ञात शासन वाणियों के उपदेशप्रद, समूह को और सुरक्षित, उत्तम वेग से जाने वाली सेनाओं के शत्रुओं के तापदायी सैन्य बल को राष्ट्र को प्रदान करता है, प्रकट करता है। और जिस प्रकार तीनों लोकों में श्रेष्ठ, सर्वोच्च सूर्य अपने उत्तम प्रकाश को प्रगट करके अन्धकार को दूर करता है और जिस प्रकार माता, पिता और आचार्य इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वेदत्रयी का विद्वान्, आचार्य अपने उत्कृष्ट सर्ग, विद्योपदेश काल में संशय युक्त अज्ञान को दूर करता है उसी प्रकार जो पुरुष निश्चय से अपने उत्तम राष्ट्र के बनाने के कार्य में या युद्धादि में शत्रु, मित्र, उदासीन तीनों में सर्वश्रेष्ठ होकर अथवा प्रजा, [illegible] और प्रभुत्व तीनों में श्रेष्ठ होकर राष्ट्रवासी मनुष्यों के द्रोहकारी [illegible] पुरुषों को दूर करता है वही राष्ट्र, नगर तथा सुख समृद्धि के नाना [illegible] को घर के द्वारों के समान खोल देता है ।

तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार भरण पोषण करने वाले माता पिता जल्दी मचाने वाले, अधीर बालक के लिये उत्तम वीर्योत्पादक दूध और धन प्राप्त कराते हैं, अथवा माता पिता जिस प्रकार बालक को उत्तम जल और पुष्टिकारक अन्न और धन प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे राजन्! राष्ट्र के पालक मां बाप के समान राजा-प्रजावर्ग या सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष राष्ट्र के और तेरे भरण पोषण करने में समर्थ होकर अति क्षिप्रकारी और शत्रुओं के नाश करने मे समर्थ तुझ राजा की पुष्टि के लिये उत्तम जल से युक्त पुष्टिकारक अन्न और वीर्यवर्धक दुग्ध और धनै-श्वर्य प्राप्त करावें। और जिस प्रकार गो पालक या विद्वान् जन सर्व पोषक, दूध देने वाली गौ के शुद्ध, पवित्र दूध को सब तरफ़ से ले लेते हैं और उससे यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार वे विद्वान् जन समस्त प्रजा को समान रूप से भरण पोषण करने वाले, अन्न को दोहन करने वाली मातृ-भूमि के पुष्टिकारक अन्न के समान शुद्ध ईमानदारी से प्राप्त धन को तेरे हित के लिये स्वीकार करें, प्राप्त करें, तुझे प्रदान करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥

भा०—उषा के समीप सूर्य जिस प्रकार अति अधिक प्रकाश के सहित प्रकाशित होता है उसी प्रकार राजा इस शत्रु को सन्ताप देने वाली सेना तथा कमनीय गुणों से युक्त प्रजा और भूसम्पत्ति के योग से सब दुःखों से स्वय पार होने और अन्यों को पार करने हारा होकर विद्वान् पुरुष और तेजस्वी राजा उत्तम रीति से प्रसिद्ध हो और खूब प्रसन्न और तृप्त हो और अच्छी प्रकार प्रकाशित और सर्वप्रिय हो। वह ऐश्वर्यवान् होकर जिन अपने तेजः सामर्थ्यों को देने वाले सहयोगियों के राज्यैश्वर्य का भोग करता है उन्हीं के बल से स्रुवा से अभिषेक को प्राप्त होता हुआ राष्ट्र को धारण करने वाले तेज और बल, राज्यैश्वर्य का भी भोग करे और स्तुत्य कर्मों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करे। अथवा उन ऐश्वर्यप्रद सह-

योगियों के द्वारा ही स्रवणशील जल आदि से इस राष्ट्रभूमि को कृषि आदि के लिये सींचता हुआ लोकोपकारक स्तुत्य कर्मों को करे और उत्तम ऐश्वर्यों का सदा भोग करे।

स्त्रिध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्तम दीप्ति वाला और सेवन करने योग्य वृष्टि-जलों को धारण करने में समर्थ होकर अन्तरिक्ष में सब ओर रश्मि-समूह का निरोधन अथवा पृथ्वी के स्तम्भन आदि कार्य करता है और जिस प्रकार विद्वान् उत्तम तेजस्वी होकर भजन या सेवन करने योग्य एकमात्र प्रभु को ही अपने हृदय में धारण करता हुआ इन्द्रियगण के नाना प्रकार के निरोध अर्थात् संयम के कार्यों को अच्छी प्रकार करता है। उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा भी उत्तम दीप्ति युक्त अग्नि के समान सुतीक्ष्ण और वन अर्थात् सेवन करने योग्य भोग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला होकर भूमि के हिंसा रहित धर्म कार्य और प्रजा पालन के कार्य में संयम करने के उपायों को अच्छी प्रकार अनुष्ठान करे। और जिस प्रकार सूर्य दिन प्रतिदिन, निरन्तर उत्तम अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाश के किरणों से चमकता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष! आप भी प्रतिदिन अपने कर्त्तव्य कर्मों के अनुरूप ही अच्छी प्रकार प्रकाशित हो और गाड़ी आदि से नगर में प्रवेश करने वाले, पशुओं को चाहने वाले और वेग से यानादि से जाने वाले के लिये भी अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। अर्थात् इनकी वृद्धि कर।

अद्या महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार महान् आकाश या प्रकाश का भोक्ता या व्यापक सूर्य जल बरसाने वाले मेघ के साथ युद्ध करता हुआ अपने आकर्षण और प्रकाश या प्रकाश और ताप दोनों को अपने वश रखता है उसी प्रकार हे राजन्! तू बड़े भारी तेज, विद्वत्सभा या विजयशालिनी

सेना का भोक्ता, वीर सभापति और सेनापति इस राष्ट्र में या संग्राम में ऊपर उठते हुए, ऐश्वर्य को विजय करते हुए शत्रु के मुकाबले पर युद्ध करता हुआ रथ के दोनों अश्वों को अपने वश कर। और जिस प्रकार याज्ञिक लोग प्राण के बल से प्राप्त करने योग्य, थका देने वाले, तृप्ति करने वाले, हरे सोमोषधि रस को गौ के दूध से मिश्रित करके प्रस्तरों से कूटकर रस प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे सेनापते ! राजन् ! तेरी वृद्धि के लिये वे वीर गण अति प्रसन्न करने वाले वेगवान् वायु वेग से प्राप्त होने वाले, अति शीघ्रगामी, सेनापति की आज्ञा पर ही वेग से जाने वाले वेगवान् अश्वबल को मेघों के समान शस्त्रास्त्रवर्षी पुरुषों द्वारा अथवा न दीर्ण होने वाले, दृढ़, अभेद्य पर्वतों के समान अचल महारथियों द्वारा दोहते हैं, उनको पूर्ण करते हैं ।

त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्तयो॒ गोर्दि॒वो अश्मा॑न॒मुप॑नीतमृभ्वा॑ ।
कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत व॒न्वञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒यासि॑ व॒धैः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! जिस प्रकार सूर्य आकाश और पृथिवी पर व्यापने वाले, अपने समीप आये मेघ को बहुत अधिक प्रकाश या वेगवान् वायु से खूब चलाता है उसी प्रकार तू भी विज्ञानवान् शिल्पी से प्राप्त कराये हुए शिला के समान अभेद्य और लोह के बने शस्त्रास्त्र को भूमि और आकाश के बीच चला। अर्थात् भूमि और विजयलक्ष्मी के लाभ कराने वाले फौलाद के बने शस्त्रास्त्र समूह को शत्रुओं के प्रति रण-भूमि में चला। हे बहुत जन्तुओं से ललकारे जाने वाले ! अथवा बहुत सी प्रजाओं द्वारा रक्षार्थ बुलाये जाने वाले सेनापते ! जल-वृष्टि के लिये जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी पर के जल को सुखा देने वाले ताप को धारण करता हुआ असंख्य किरणों से प्रकाशित होता है। उसी प्रकार हे सेना-पते ! तू काट गिरा देने योग्य शत्रुओं से काटी जाने वाली प्रजा की रक्षा के लिये शत्रु के शोषणकारी बल को धारण करता हुआ या शोषणकारी

शत्रु को विनाश करता हुआ अनन्त, असीम, असंख्य शस्त्रों और वीर भटों के साथ प्रयाण कर।

आचार्य के पक्ष में—हे बहुत सी प्रजाओं तथा शिष्यों से आदर पाने योग्य विद्वन्! सत्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले, आचार्य द्वारा उपनयन किये गये वेदवाणी और तेज ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले एवं चट्टान के समान दृढ़, सहिष्णु, फौलाद के समान बलवान् पुरुष को गृहस्थाश्रम के प्रति समावर्त्तन कर जिस ब्रह्मचारी पर या जहां तू बुरी आदतों के तोड़ने के लिये या बल वीर्य के प्राप्त करने के लिये वा वेद सूक्तों को पढ़ने वाले शिष्यों के हित के लिये बल को धारण करता हुआ अनन्त प्रकारों के ताड़ना आदि उपायों से प्राप्त होता है।

कुत्सः—इत्येतत् कृन्ततेः। ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः॥

पुरा यत्सूर॒स्तम॑सो॒ अपी॑ते॒स्तम॑द्रिवः फलि॒गं हे॒तिम॑स्य। शुष्ण॑स्य चि॒त्परि॑हितं॒ यदोजो॑ दि॒वस्परि॒ सुग्र॑थितं॒ तदादः॑॥ १०॥ २५॥

भा०—जिस प्रकार अन्धकार का नाश कर देने से सूर्य मेघ को भी सर्व प्रकार से छिन्न-भिन्न करता है और मेघ का जो ओज आकाश या सूर्य पर दृढ़ता से बँध कर उसे ढांप लेता है उसको भी तू छिन्न-भिन्न करता है इसी प्रकार हे पर्वतों से युक्त भूमि के स्वामिन्! अथवा मेघ के समान शस्त्रास्त्रवर्षी वीर! महारथी पुरुषों के नायक! और पर्वत के समान अचल, दुर्भेद्य सैन्यबल से युक्त एवं वज्र के धारक! राजन्! सेनापते! तू पहले के समान ही विद्वान्, समस्त सैन्य का सञ्चालक होकर प्रजा को कष्टदायी, नाशकारी इस शत्रु दल के उस फाड़नेवाले शस्त्र को छिन्न-भिन्न कर और प्रजा के पोषणकारी शत्रु का जो भूमि पर फैला हुआ तेज, पराक्रम अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित हो उसको भी सब प्रकार से छिन्न-भिन्न कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

अनु त्वा मही पाजसी अचुक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥११॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी दोनो विशाल बलवती और स्थिर, स्वतः कार्य करने में असमर्थ होते हुए भी सूर्य के प्रकाशरूपी कार्य में प्रसन्न और तृप्त हो जाते है उसी प्रकार हे वीर राजन्! तेजस्वी राजवर्ग और भूमि के समान आश्रय रूप प्रजावर्ग। दोनो आदरणीय और बड़े बलवान् और चरणो के समान आश्रय स्वरूप, चक्ररहित रथ के समान शिथिल, एव स्वतः अपनी शक्ति से रहित अथवा स्वतः इच्छा रहित होकर भी राज्यपालन और शत्रु उच्छेद के काम मे तेरे साथ प्रसन्नतापूर्वक सहयोग दें। हे राजन्! तू जिस प्रकार चारो तरफ़ फैले हुए और अपने को घेरनेवाले मेघ को सूर्य बडे भारी अन्धकारवारक प्रकाश या विद्युत् से नदी धाराओं मे सुला देता है अर्थात् जल रूप से वरसा देता है उसी प्रकार हे राजन्! तू अपने राष्ट्र के चारो ओर घेरा डाले हुए और बढ़ते हुए श्रेष्ठ, धार्मिक व्यवहारो और जनो के नाशकारी शत्रुदल को शरीर को मर्म नाडियो का आघात करने वाले बड़े प्रवल अपने शस्त्रास्त्र से सुलादे अर्थात् उसे मार गिरा।

त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान्! जिस प्रकार सूर्य शरीर सचालक प्राणों की रक्षा करता और शरीर को वहन या धारण करने वाले वायु के साथ उत्तम रीति से संयुक्त हुए प्राणों को पर वश करता है। उसी प्रकार हे राजन्! समस्त नायकों और प्रजा वासी पुरुषों का हितकारी, उनमे सर्वश्रेष्ठ होकर जिन नायक पुरुषो को सुरक्षित रखता है। तू उन ही राष्ट्र-कार्यों का अच्छी प्रकार वहन करने वाले वायु या प्राण के उत्तम गुणों को धारण करने वाले, उनके उत्तम साथियो और वेगवान् अश्वों के समान राष्ट्र के राज्यरूप रथ के संचालक पुरुषो पर, अश्वों पर सारथी या महारथी के समान विराज, उन पर शासन कर। और सब के हर्ष-

दायक शत्रुनाशक संग्राम में पालन करने वाले और उससे पार उतारने वाले शत्रु के वर्जन या धारण करने में समर्थ जिस शस्त्रास्त्र या सैन्य बल को मेधावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र व शिष्य सर्व वशीकार में समर्थ, वशी पुरुष तुझको प्रदान करता है, उपदेश करता है। तू उसको सदा तीक्ष्ण कर, उसको सदा तैयार रख।

आधिभौतिक पक्ष में—ये 'काव्य उशना' अर्थात् गर्जनकारी मेघ से सम्पन्न कान्तिमान् विद्युत् ही जिस मेघछेदक बल को प्रदान करे उसको सूर्य ही अपने तेज से तीक्ष्ण करता है। अर्थात् विद्युत् की अग्नि भी सूर्य की ही रूपान्तरित अग्नि है।

त्वं सूरो हरितो रामयो नृन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों को फेंकता और उनके द्वारा समस्त दिशाओं को रमण कराता, सुखी और हर्षित करता है और हरे वृक्ष लता आदि को रमणीय अर्थात् हरा भरा बना देता है, उसी प्रकार हे राजन्! तू भी सबका प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी होकर वेगवान् अश्वों को, ज्ञानवान् विद्वानों को, दिशावासी प्रजाओं को और तीव्र वेगवान वायु के समान आक्रमणकारी वीर नायकों और वीर भटों को सञ्चालित कर, प्रसन्न कर, युद्ध क्रीडा करा। हे ऐश्वर्यवन्! सूर्य जिस प्रकार चक्र अर्थात् समस्त ज्योतिश्चक्र या ग्रहचक्र को धारण करता, सञ्चालित करता और व्यापता है और वेगवान, बलवान् अश्व जिस प्रकार रथ के चक्र या चक्रवान् रथ को धारता और ले जाता है उसी प्रकार यह राजा राष्ट्र-रूपी चक्र के कार्य कर्तृगण को पालित पोषित और सञ्चालित करे और द्वादश राजचक्र को अपने शौर्य, वीर्य और नीति द्वारा धारण करे और सञ्चालित करे। हे ऐश्वर्यवन्! जिस प्रकार सूर्य मनुष्य जीवन के ९० वर्ष रूपी नाव से पार करने योग्य बड़ी नदियों के पार मनुष्यों को डाल देता है और उनको यज्ञ करने या वीर्य दान करने में असमर्थ या वृद्धा-

वस्था से अशक्त कर देता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू शत्रुओ को नाव से पार करने योग्य बड़ी बडी ९० नदियो के भी पार मार भगा।

अथवा नाव से तरने योग्य नदियो के पार नौका को अच्छी प्रकार चलवा। अथवा प्रेरणा करने योग्य सेनाओ के पालन करने मे समर्थ उत्तम आज्ञापक पुरुप को उत्तम पद पर स्थापित कर। इसी प्रकार स्तुति योग्य विद्वान् पुरुषो के पालक अति स्तुत्य पुरुप को स्थापित कर और जिस प्रकार विद्युत् जल न देने वाले मेघो को काट काट कर या गड़े में नीचे जल बना कर गिरा देता है। उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी अदान-शील, कर आदि न देने वाले तथा सन्धि द्वारा मेल न रखने वाले शत्रुओं का कूए या गहरे गट्टो मे रख। अथवा काट काट कर उनको विनाश कर।

'नवति नाव्यानाम्'—णु स्तुतौ इत्यतो डौ प्रत्य औणादिकः। नौः। तस्मात् अतिरौणादिको नवतिः। नौति स्तौति, उपदशति, प्रेरयति, स्तूयते, उपदिश्यते, प्रेयते वा इति नौः, नवतिश्च। तेषु साधुः नाव्यस्तेषाम् नाव्यानाम्। अथवा नावा तार्या नाव्या नद्यः, तासाम्।

त्वं नो॑ अ॒स्या इ॑न्द्र दुर्हणा॑याः पा॒हि व॑ज्रिवो दुरि॒ताद॒भीके॑।
प्र नो॒ वाजा॑न्र॒थ्यो॒३ अश्व॑बुध्यानि॒षे य॑न्धि॒ श्रव॑से सू॒नृता॑यै ॥१४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे वीर्यवन् ! उत्तम शत्रुवारक नीति और साम आदि उपायों के स्वामिन् ! राजन् ! प्रभो ! परमेश्वर ! तू हमे इस संग्राम या ससार रूपी संग्राम मे भी दु:ख से या कठिनता से नाश करने योग्य, दुःसाध्य शत्रुसेना से या दारिद्रय आदि विपत्ति से और दुष्टाचार और दुर्गति से बचा और रथारोहियों मे सबसे कुशल, महारथी होकर तू हमारे सूर्य के आश्रय पर होने वाले अन्नों को मेघ के समान अश्व सैन्य के आश्रय पर प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों तथा सग्रामों को कीर्ति और ऐश्वर्य और उत्तम अन्नादि समृद्धि, वेदवाणी तथा धन प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार प्रदान कर।

मेघ के पक्ष मे—जलों को देने से मेघ 'इन्द्र' है। विद्युत् युक्त होने

से वह 'वज्रवान्' है। वह दुःख से नाश न होने वाली दुष्काल, दारिद्रय आदि जनपीड़ा से हमें बचावे। वह रस या जलमय होने से 'रथ्य' है। सूर्य अश्व है उसके आश्रय पर होने वाले अन्न आदि पदार्थ 'अश्वबुध्न्य वाज' हैं। उनको अन्न और जल की वृद्धि के लिये प्रदान करें।

अथवा हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! हमें तू विद्युत् आदि वेग वाले पदार्थों के जानने वाले विद्वान् प्राप्त करा।

मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त। आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५॥२६॥८॥१॥

भा०—वह तेरी कृपा से प्राप्त हुई शुभ, उत्तम पूजनीय, ज्ञानमय मति हमसे कभी न विनष्ट हो। हे अन्नों और ऐश्वर्यों की उत्तम कोटि को देने वाले तथा विज्ञानवान् पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से पूजने योग्य ऐश्वर्यवन् राजन्! और परमेश्वर! हमारी समस्त कामनाएं और इष्ट प्रजाएं भी तुझे एकत्र होकर वरण करें। हे ऐश्वर्यवन्! तू सबका स्वामी है। तू हमें भूमियों, उत्तम वाणियों तथा इन्द्रियगणों के आश्रय पर उत्तम उत्तम सुख प्रदान कर। तेरी कृपा से हम सब अति दानशील और वृद्धिशील होकर एक साथ मिल कर आनन्द सुख से रहने और अन्नादि से तृप्त होने वाले होवें। इति षड्विंशो वर्गः।

इत्यष्टमोऽध्यायः।

इति प्रथमोऽष्टकः

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डित-जयदेवशर्म-विरचिते, ऋग्वेदस्यालोकभाष्ये प्रथमोऽष्टकः समाप्त।

'नम्र निवेदन'

हमने ग्रन्थ की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान दिया है, पुनरपि यदि ग्रन्थ में कुछ अशुद्धियां रह गई हों तो उसे विज्ञपाठक सुधार लें।— ग्रन्थकार

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा

विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्त्ता

श्री विश्वनाथजी विद्यालङ्कार

भूतपूर्व प्रोफेसर गुरुकुल कांगड़ी

प्रकाशक

आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

द्वितीयावृत्ति १०००   सं० २०१० वि०   मूल्य ६)

प्रकाशक:—

आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर.

मुद्रक—

गिरीशचन्द्र शिवहरे एम० ए०,
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

प्रथम मण्डल । सू० [१२२]—आचार्य के प्रति शिष्यों का कर्त्तव्य । (२) 'उपासानक्ता' रूप में पति-पत्नी का वर्णन । (३–१०) पिता, आचार्य का शिष्यवत् पुत्रों के प्रति और शिष्यों और पुत्रों का गुरु, आचार्य, माता और पिता जनों के प्रति कर्त्तव्य का वर्णन । (११–१५) महान् परमेश्वर का वर्णन । (१२) दशातय का रहस्य । (१४) हिरण्यकर्ण मणिग्रीव का रहस्य । (१५) 'मशर्शार' के चार शिशुओं का रहस्य । (पृ० १—७)

सू० [१२३]—उषा के दृष्टान्त से नववधू का आदर और उसके तथा गृहपत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) पति के कर्त्तव्य । (७) रात्रि दिन के दृष्टान्त से पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ७—१२)

सू० [१२४]—उषा के दृष्टान्त से युवती कन्या तथा युवा पुरुष को गृहस्थ प्रवेश का उपदेश, और उनके गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का वर्णन । पक्षान्तर में सेना और योगज विशोका का दिग्दर्शन । (पृ० १२—१८)

सू० [१२५]—आयु के पूर्व भाग में ब्रह्मचर्य का और अनन्तर गृहस्थ का उपदेश, और उनके कर्त्तव्य । (पृ० १८—२१)

सू० [१२६]—वीरों के दृष्टान्तों से जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । (६–७) राजा, राजनीति, राजसत्ता का वर्णन, पक्षान्तर में चेतना,

सू० [१३४]—शूर पुरुष का प्रयाण, समृद्धि की वृद्धि, तथा सहोद्योग। आचार्य का कर्मों और ज्ञानों का उपदेश। वायु, सूर्य, सारथि, आदि के दृष्टान्त से गुरु का कर्त्तव्य, (४) उषाओं के दृष्टान्त से शिष्यो का गुरु की कीर्ति प्रसारित करना, वायु के दृष्टान्त से उनको ऐश्वर्य प्राप्त करने का उपदेश। (५) राजा के अधीनस्थ अधिकारियो के कर्त्तव्य। राजा को दुष्टो के नाश का उपदेश। (६) राजा का सर्वोपर पालन और ऐश्वर्यभोग का अधिकार। (पृ० ५५–५८)

सू० [१३५]—प्रधान पदवीधर के आदर की विधि, (२) उसकी वेष भूषा, और कर्त्तव्य, सेनानायक होने योग्य पुरुष। (३) शतिनी, सहस्रिणी सेनाओ सहित सेनापति की नियुक्ति, राज्यव्यवस्थापक अध्वर्युजनो का कर्त्तव्य। (४) सेनापति, सभापति आदि का रथो से गमन, उत्तम ऐश्वर्यों मे प्रथमाधिकार। (५) प्रधान पुरुष की राष्ट्र मे, देह मे आत्मा के समान स्थिति, देह मे वीर्यों के समान राष्ट्र मे बलवान् शासको की स्थिति। (७) सूर्य, वायु, वृष्टि आदि के दृष्टान्त से शासक के प्रजापालन के कार्यों का वर्णन। (८) पक्षियों के आश्रय वृक्षवत् शासक प्रधान पुरुष की स्थिति और राष्ट्र की समृद्धि का वर्णन। (९) मेघवत् पराक्रमी, ऐश्वर्यवान् पुरुषों को प्रजापालन का उपदेश। (पृ० ५९–६४)

सू० [१३६]—अधीन प्रजाओं का उत्तम प्रधान शासकों के प्रति पुत्रवत् कर्त्तव्य। शासकों को न्यायोचित व्यवहार का उपदेश। सूर्य-चन्द्रादिवत् व्यवस्थापकों का कर्त्तव्य। राजाप्रजा का प्रेममय व्यवहार। परस्पर पाप से रक्षा करने का कर्त्तव्य। (६) श्रेष्ठ जनों का आदर सत्कार। (७) समृद्ध होकर उत्तम सुख प्राप्त करने का उपदेश। (पृ० ६४–६७)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [१३७]—देह मे प्राण-उदानवत् मित्र और वरुण दो अधि-

कारियों और अन्न-औषधिरसवत् सोम नाम विद्वानों के कर्त्तव्य । वैदिक श्लेषमय वाक्यों का स्पष्टीकरण । (३) सोम और गोदोहन के दृष्टान्त से भूमिदोहन । (पृ० ६७—६९)

सू० [१३८]—पूषा, नाम प्रजापोषक अधिकारी राजा के कर्त्तव्य (४) पूषा के 'अजाश्व' होने का कारण । [६९—७१)

सू० [१३९]—विद्वान् आचार्य के अधीन वेदाभ्यास करने का उपदेश । (२) मित्र वरुण का सत्यासत्य विवेक, न्याय का कर्त्तव्य । (३) उत्तम स्त्री पुरुषों के प्रति अन्य जनों के सद्व्यवहार का उपदेश । (४) रथ में दो अश्वों के समान शासनादि कार्य में उत्तम पुरुषों की नियुक्ति । (५) ज्ञानी, कर्मिष्ठ पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (७) विद्वान् नेता के कर्त्तव्य । (८) व्यापारियों और वीरों का कर्त्तव्य । ९. विद्वानों के कर्त्तव्य । दध्यङ् अङ्गिरा. प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु, आदि की व्याख्या । (१०) सूर्य, मेघ दृष्टान्त से विद्या धनादि देने लेने वाले के कर्त्तव्य । (११) ११, ११, ११, करके ३३ व, ३३ अधिकारी (७१—७७)

सू० [१४०]—यज्ञाग्निवत राजा को पोषण करने का उपदेश । (२) द्विजन्मा और त्रिवृत् अग्नि, विद्वान और राजा । (३) बालक के प्रति माता पिता के समान राजा प्रजावर्ग के कर्त्तव्य । (४—५) मुमुक्षु जनों का वर्णन (६) सूर्य और अग्नि के दृष्टान्त से राजा वा नायक का प्रजा के ग्रहण पालनादि का वर्णन । (७—८) राजा प्रजा का पति-पत्नीवत् परस्पर स्नेहवान् होकर रहने का वर्णन । (९) भूमि और राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (१०—११) मेघस्थ विद्युत के दृष्टान्त से विद्वान् नायक वा राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (१२) नौकावत् सेना का निर्माण, पक्षान्तर में 'पद्वती नौ' का रहस्य । (१३) उषाओं के दृष्टान्तों से विदुषी वीर पुरुषों का कर्त्तव्य । (पृ० ७७—८३)

सू० [१४१]—सत्य प्रकाश में अग्नि और गौओं के दृष्टान्त से

विद्वान् और वेदवाणियों का वर्णन। (२) जीवात्मा और मनुष्य की तीन दशाएं (३) असंग आत्मा के ज्ञान करने का उपदेश। (४) वनस्पतिवत् जीवो के जन्म लेने आदि का वर्णन। (५-७) अविनाशी आत्मा का जन्म लेने का रहस्य। (८) उसके बन्धनो के नाश का उपदेश। (९, १०) नायकवत् प्रभु का वर्णन। (१०-१२) वीर नायक और आत्मा का वर्णन। (पृ० ८३-८९)

सू० [१४२]—अग्निवत् नायक के कर्त्तव्य। तनूनपात् का रहस्य। (५) यज्ञाग्निवत् उपासना कर्म, यज्ञकर्त्ता जनो के समान उपासक का वर्णन। द्वारो के समान प्रजाओं और सेनाओ का वर्णन। (७) रात दिन के समान माता पिता का वर्णन। (८) दैव्य होता, विद्वानों का कर्त्तव्य। (९) भारती, इळा, सरस्वती, और होत्रा का वर्णन। (१०) त्वष्टा, शिल्पी, (१२) वनस्पतिवत् राजा का वर्णन। (१२) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१३) विद्वानों के आदर का उपदेश। (पृ० ८९-९३)

सू० [१४३]—विद्यार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) अग्नि सूर्यवत् आचार्य की स्थिति, (४) सर्वपापनाशक अग्नि प्रभु की स्तुति। (५) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (६-७) तपस्वी विद्यार्थी का कर्त्तव्य। (८) विद्वान् को अप्रमादी रहने का उपदेश। (पृ० ९३-९६)

सू० [१४४]—अग्नि-व्रत का वर्णन। विद्यार्थी के आचार्य शुश्रूषा व्रत का वर्णन। आचार्य शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन। (३) माता, पिता, आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। (४) माता पिता का बालक के प्रति कर्त्तव्य। (५) प्रजाओं का रक्षक के प्रति व्यवहार और रक्षक का कर्त्तव्य। (६) अग्निवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। (७) मेघवत् राजा का कर्त्तव्य। (पृ० ९६-९९)

सू० [१४५]—आदर्श विद्वान् का वर्णन। (२) जिज्ञासु का

कर्त्तव्य। (३) शिष्य का स्वरूप। (४) शिष्य के कर्त्तव्य। (५) विद्यार्थी के कर्त्तव्य। (पृ० ९९–१०१)

सू० [१४६]—(१) पुत्रवत् शिष्य का कर्त्तव्य, विद्यार्थी का लक्षण। त्रिमूर्धा सप्तरश्मि का रहस्य। पक्षान्तर में परमेश्वर, त्रिमूर्धा सप्तरश्मि, अग्नि का वर्णन। (२) सूर्यादिवत् जगत्-धारक प्रभु। (३) सूर्य पृथिवी के समान स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य। (४) विद्वानों का प्रभु-दर्शन। (५) दर्शनीय शिष्य (पृ० १०१–१०४)

सू० [१४७]—अग्रिवत् आचार्य का वर्णन। (२) उपदेश करने का प्रकार। (३) प्रभु का वर्णन। (पृ० १०४–१०६)

सू० [१४८]—मातरिश्वा शिष्य का वर्णन। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (४) आचार्य-वर्णन (५) विद्यार्थी का बल। (पृ० १०६–१०८)

सू० [१४९]—तेजस्वी स्वामी के कर्त्तव्य। (३) उसका शासन। द्विजन्मा विद्वान् का वर्णन। (पृ० १०८–११०)

सू० [१५०]—प्रभु के प्रति शरणयाचना। अह्लादक प्रभु की शरण। (पृ० ११०–१११)

सू० [१५१] उत्तम शासक के कर्त्तव्य, (३) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, [४] पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन। (५) पति पत्नी का परस्पर वरण। (६) परस्पर सभ्य व्यवहार और मधुर वचन बोलने का उपदेश (७) उत्तम विद्वानों के सत्संग की आज्ञा। (९) धनैश्वर्य, बुद्धि, सामर्थ्यादि प्राप्ति का उपदेश। (पृ० १११–११५)

सू० [१५२]—सुसभ्य बनकर स्त्री पुरुषों को रहने का उपदेश। (२) सभ्यों के लक्षण। (३) वेदाभ्यास, ज्ञान प्राप्ति का उपदेश, पति पत्नी के प्रति उत्तम उपदेश। (५) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी रहने का उपदेश। 'अनर्वाणु वृषा' का रहस्य। अध्यात्म में—आत्मा का वर्णन।

तृतीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

सू० [१६०]—सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से पति-पत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन, (३) उत्तम पुत्र के लक्षण और कर्त्तव्य। (पृ० १३४–१३६)

सू० [१६१]—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन। सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज का स्पष्टीकरण। (२) उत्तम दूत के उत्तम फल, ऋतुओं के एक चमस को चार करने का रहस्य। (३) नाना रथ तथा यन्त्र कलादि के चालक अग्नि के दृष्टान्त से दूत के राष्ट्र-भूमि के प्रति कर्त्तव्यों का वर्णन। (४) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा वा शासकों का कर्त्तव्य। (५) दुष्टों के दमन का उपाय (६) सूर्य, राजा सेनापति आदि के दृष्टान्त से विद्वानों को उत्तम उपदेश। (७) धनुर्धर पुरुषों और शिल्पियों के कर्त्तव्य। (९) विद्वानों का नाना विद्याओं के प्रचार का कार्य। (१०–१४) विद्वानों, राष्ट्रवासियों को लाभप्रद उपदेश। (पृ० १३६–१४२)

सू० [१६२]—श्रेष्ठ जनों के प्रति आदर का उपदेश। वाजी देव जात सप्ती आदि का रहस्य। (२) अभिषिक्त राजा और प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य, विश्वरूप अज का रहस्य। (३) सेनापति के योग्य पुरुष, अश्व-मेघ के अश्व के आगे छाग आदि लाने का रहस्य। (४) अश्ववत् राष्ट्र-पति के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। अध्यात्म में अश्व, परमेश्वर का वर्णन। (५) राष्ट्ररूप यज्ञ का वर्णन, अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप, (६) राष्ट्र पति के सहयोगियों का कर्त्तव्य। (७) अश्ववत् राष्ट्रपति, ब्रह्मचारी, और गृहस्थ पति का वर्णन। आत्मा का वर्णन (८) अश्व के बन्धनों के समान राष्ट्रपति की मर्यादाएं। (९) राष्ट्र के ऐश्वर्य के प्रबन्ध को विद्वानों के अधीन रखने का उपदेश। (१०) वध किये अश्व के मांसादि की नाना कल्पना आदि अयुक्त अर्थों का खण्डन। शरीर की व्यवस्थावत् राष्ट्र की सुव्यवस्था। अश्वमेघ के अश्व के मांस पकाने आदि का खण्डन। (११) त्याग और तप के सत्फल का उपभोग राष्ट्र की भावी प्रजा को मिले (१२) तपस्वी, दृढ़ राष्ट्रपति की परिपक्व अन्न से तुलना।

'मांसमिक्षा' का सत्यार्थ । (१३) भूमि के स्थल, जल आदि का निरिक्षण,' पक्षान्तर में आत्मा और शरीर का वैज्ञानिक और दार्शनिक रहस्य । मांस्-पचनी उखा और पात्रों का सत्य रहस्य । (१४) राष्ट्र की अश्व से तुलना । उनके सब कार्यों पर विद्वानों की अध्यक्षता । (१५) राष्ट्रशासक बल और सैन्य का कर्त्तव्य । अश्वसैन्य और राष्ट्रपति की अश्व से तुलना । (१७) अश्ववत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (१८) अश्व-देह की राष्ट्र-देह से तुलना (१९) अश्व, काल, संवत्सर और प्रजापति राजा की तुलना (२०) राजा के कर्त्तव्य । (२१) ज्ञानी विद्वान् और राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२२) विद्वान् और राजा के प्रति राष्ट्र का कर्त्तव्य । अश्वमेध के इस सूक्त का सर्वतोमुखी रहस्य । (पृ० १४२—१५१)

सू० [१६३]—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से शिष्य की उत्पत्ति, और विद्वान् होने पर उसकी सफलता । आचार्य का शिष्य के प्रति कर्त्तव्य । यम से दिये अश्व को त्रित का जोड़ना और इन्द्र का उस पर बैठने और गन्धर्व का लगाम पकड़ने का सत्यार्थ । (३) अश्व की उपमा से ब्रह्मचारी का वर्णन, शिष्य की पुत्र से तुलना । (४) तीन बन्धन (५) आत्म-शुद्ध्यर्थ व्रतों का आचरण (६—७) शिष्य का कर्त्तव्य अध्यात्म में भक्त का उपास्य-आत्मदर्शन । (८) विद्वान् तेजस्वी के शासन में सब सम्पदाएं । (९) आचार्य, सर्वोच्च पद । (१०) जिज्ञासु शिष्यों का कर्त्तव्य (११) वीर, बलवान् राजा और राजा को तेजस्वी होने का उपदेश । (१२) सर्वोपास्य प्रभु । (१३) उत्तम पुरुष का मां बाप के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १५३—१५७)

सू० [१६४]—सप्त प्राण आत्मा का वर्णन परमेश्वर का वर्णन । (२) आत्मा, सूर्य, परमात्मा संवत्सरात्मक चक्र का वर्णन, एक त्रिनाभि अनर्व चक्र का रहस्य । (३) सप्त चक्र रथवत् आत्माधिष्ठित देह और परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन । (४) हड्डी वाले देह में बेहड्डी के आत्मा का रहस्य । (५) देह में प्राणों और आत्मा में यज्ञों का

विस्तार। वस्त्र में तन्तु वितान और वयन का रहस्य। (६) सर्वाधार परमेश्वर विषयक प्रश्न। (७) ब्रह्मज्ञानी से आत्मविषयक प्रश्न। शिर से क्षीर दोहने वाली गौओ का रहस्य। (८) माता पिता या दम्पतिवत् परमेश्वर प्रकृति का वर्णन। गर्भरसा बीभत्सु माता का रहस्य। (९) उत्पत्ति कार्यों मे परमात्मशक्ति को देखना। (१०) तीन माता तीन पिताओं के पालक प्रभु का वर्णन। (११) द्वादशार, द्वादशाकृति और षडर सप्तचक्र का वर्णन। (१३) पञ्चार चक्र, आत्मा। (१४) दशाश्व रथवत् सर्वाधार आत्मा। (१५) सात साकंज और ६ ऋषियो का वर्णन। (१६) परमेश्वरी शक्तियों का वर्णन। (१७) सवत्सा गौवत् उषा सूर्य, और परमेश्वर, शक्ति का वर्णन। (१८) परात्पर प्रभु के विरल ज्ञाता। (१९) समीप के लोको का विवेक। (२) विश्व मे विद्यमान जीव ब्रह्म का दो पक्षियोवत् वर्णन। (२१) रश्मिवत् ज्ञानी-- जनों का ज्ञानप्रकाश करना। आत्मा के रश्मि इन्द्रियों का वर्णन। (२२) संसार वृक्ष पर मधुभोजी सुपर्ण। (२३) विद्वानो की अमृत पद प्राप्ति। छन्दस्त्रयी ईश्वर स्तुति। (२४) चारो वेदो की उत्पत्ति। (२५) महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर। (२६) वेद वाणी का गौ के समान ज्ञान-दोहन। आचार्य का सवितावत् ज्ञानवर्षण। (२७–२८) परमेश्वर का माता एवं गौवत्, ज्ञानरसदान, और मातृवत् प्राणिमात्र से प्रेम। (२९) विद्युत् मेघवत् ईश्वर का वेदोपदेश प्रकाश। (३०) देहो मे आत्मवत् लोकों मे प्रभु की स्थिति। (३१) परमेश्वर और जीव का साक्षात्कार। (३२) अगम्य आत्मा। (३३) जीव और विश्व की उत्पत्ति का रहस्य। (३४–३५) पृथिवी के परम अन्त भुवन की नाभि, महान् आत्मा के विश्वोत्पादक सामर्थ्य और परमाश्रय विषयक प्रश्न और उत्तर। (३६) सूर्यवत् प्रभु का शासन। (३७) जीव की ज्ञानप्राप्ति। (३८) कर्मों से जीव का उच्च नीच योनि मे जन्म लेना। (३९) सूर्य मे किरणोवत् परब्रह्म के ज्ञानियों की स्थिति। (४०) गौ

समान परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। (४१) विद्युत्वत् वैदिक और लौकिक वाणी का वर्णन। (४२) विद्युत्वत जीवनाधर प्रभुशक्ति। (४३) शकमय धूम, नीहारिका तथा परमेश्वर का वर्णन। (४४) विद्युत् वायु सूर्य के कार्य और विश्व की सृष्टि, पालन और संहारकारी प्रभुशक्ति के कार्यों का वर्णन। (४५) चतुष्पदा वाणी का वर्णन। वाणी के चार रूप। (४६) परम प्रभु के इन्द्र, मित्र, वरुणादि नाना नामो की व्यवस्था। (४७) किरणोंवत् विद्वानो को प्रभुपद-प्राप्ति। (४८) महायन्त्रवत् अध्यात्म शक्तियों का वर्णन। (४९) सर्वसुखद सरस्वती नाम परमेश्वर का वर्णन। (५०) विद्वानो की यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना। (५१) वृष्टि जलवत् जीव की उच्च नीच गति का वर्णन (५२) सर्वाधार सहस्वान् मेघवत प्रभु। (पृ० १५७—१८५)

सू० [१६५]—गुरु के आश्रय छात्रों का ब्रह्मचर्यवास और गुरु सेवा। (२) गुरु की और देह मे प्राणो पर आत्मा की स्थिति। (३) अद्वितीय शक्ति के विषय में प्रश्न। (४) प्रभु के वा गुरु के प्रति शान्ति-उपदेश। (५) वीरोंवत् मुमुक्षुओ का वर्णन। (६–७) विद्युत-वत् प्रबल नायक। (८) राजा के राष्ट्र मे उत्तम कार्य। (९) सर्वो-परि अनुपम प्रभु। (१०) अद्वितीय शासक। (११) वीरो का नायक से सम्बन्ध। (१२) विद्वानों, वीरों का राष्ट्र मे, देह में प्राणवत् कर्त्तव्य। (१३) उनका योग्य परस्पर आदर। (१४–१५) परस्पर ज्ञानदान और बल प्राप्ति। (पृ० १८५–१९१)

चतुर्थोऽध्याय

सू० [१६६]—शिष्यों का गुरु के अधीन ज्ञानों का लाभ। (२) गृहस्थों के अन्नोपभोगवत् तेजस्वी मुमुक्षुओं की ब्रह्मरति, रुद्र विद्वानों का सर्वोपकार। (४) वीरों का प्रयाण। (५) वायु के समान ही वीरों का शत्रुच्छेदन। (६) प्रजाओ का रक्षण। (७) प्रशसनीय वीरों के लक्षण। (८) उनके कर्त्तव्य। (९) स्पर्द्धावान् सशस्त्र वीरों का

वर्णन। (१०) पक्षियोंवत् सुसज्जित वीरों का वर्णन। (११–१४) सूर्य के अधीन वायुगणवत् सेनापति के अधीन वीरों और गुरु के अधीन शिष्यों का व्रतपालन। (पृ० १९१–१९७)

सू० [१६७]—रक्षक प्रभु की शरण सहस्रों ऐश्वर्यवान् हैं। (२) विद्वानों, धनवानों की राष्ट्र में उत्तम कामना। (३) पत्नीवत् वाणी से सुशोभित विद्वानों का आदर। (४) वीर युवाओं को वायु के दृष्टान्त से नवपत्नी के ग्रहण और रक्षा का उपदेश। (५) सूर्य दीप्तिवत् पुरुष को प्राप्त होने वाली स्त्री के उत्तम लक्षण। (६) यज्ञ में वेद वाणी के गानवत् पुरुष को उत्तम गाथागान का उपदेश। (७) नव गृहस्थों को सत्य प्रतिज्ञा से गृहस्थ निर्वाह का उपदेश। (८) विद्वानों, उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (९, १०) बलवृद्धि का कर्त्तव्य। (पृ० १९७–२०२)

सू० [१६८]—(१–४) एक साथ काम करने का उपदेश। विद्वानों को ज्ञानोपदेश करने का कर्त्तव्य। पत्नीवत् उनकी संगिनीशक्ति का वर्णन। वीरों का शासन कार्य। (५) सशस्त्रास्त्र वीरों का वीरकर्म। (६) परमेश्वर का सर्वोपरि बल। (७) वीरों की प्रबल शक्ति के लक्षण। (९) विद्युतों का यज्ञ से सम्बन्ध। (१०) वीर नायकों के कर्त्तव्य। (पृ० २०२–२०७)

सू० [१६९]—महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का वर्णन। (२) उत्तम दानशीलता। (३) प्रभु की अद्वितीय शासन-व्यवस्था। (४) यज्ञदक्षिणावत् प्रभु का समृद्धिदान। (५) मेघवत् प्रभु की उदारता। (६) सेनापति का वर्णन। (७) परिव्राजकों के वायुवत् कर्त्तव्य। (पृ० २०७–२१०)

सू० [१७०]—मन की अस्थिरता, और भविष्य का अज्ञान। (२) भविष्य के लिये स्वामी, सेनापति को बलवान् होने का कर्त्तव्य।

(३) पोषक नायक का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (४) यज्ञ का उपदेश । (५) सबके पालक प्रभु, वसुपति आचार्य का कर्त्तव्य । (पृ० २१०–२१२)

सू० [१७१]—गुरु का शिष्यो के प्रति उपदेश। विद्वानों के कर्त्तव्य । (४) शस्त्र धारण करना आवश्यक, उसका उचित प्रयोजन । (५) विद्वानो के ज्ञानविस्तार का कर्त्तव्य । प्रजा को राजा बलवान् बनावे । (६) प्रजा का पालन करे । (पृ० २१२–२१५)

सू० [१७२]—विद्वानो वीरों के कर्त्तव्य । देह मे प्राणो की स्थिति । (३) अत्याचारी राजा से रक्षा करने की प्रार्थना । पक्षान्तर में देहमय तृणस्कन्द का वर्णन । (पृ० २१५–२१६)

सू० [१७३]—प्रातः किरणो के प्रकाश के साथ वेदगान का उपदेश । (२) सिंहवत् वीर का शत्रु के प्रति आक्रमण और प्रजा का भरण पोषण । (३) सूर्यवत् भूमि का शासन । (४) वीरों का सशस्त्र होकर शत्रुनाश का कर्त्तव्य । (५) सेनापति का सूर्यवत् पराक्रम । आत्मा, सत्वा, मघवा (६) अद्वितीय होकर प्रजापालन । (७) प्रजा का सहोद्योग । (८) परस्पर प्रसन्नता । (९) स्वामी और सेवक का परस्पर व्यवहार । (१०) न्यायशील राजा के नीचे प्रजा का प्रेमसहित होकर रहना । (११) यज्ञ, परस्पर संगति राष्ट्र को समृद्ध करती है, कुटिलता सदा हानिकारक है । (१२) नायक का संकटों से बचाने का कर्त्तव्य । (१३) उत्तम आज्ञापक का कर्त्तव्य । (पृ० २१६–२२२)

सू० [१७४]—(१–८) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । सेनापति के कर्त्तव्य । दुष्टों का दमन । (९) शत्रुनाश, सेनासञ्चालन । (१०) सैन्य बल की वृद्धि । (पृ० २२२–२२५)

सू० [१७५]—पात्रस्थ ओषधि रसवत् उत्तम पालक के कर्त्तव्य । (२) वह अधिक बलशाली हो । (२) शूरवीरवत् सेनासञ्चालक

पञ्चमोऽध्याय

अष्टमोऽध्याय

में प्रभु का वर्णन। शकुनि, श्येन, शकुन्त, आदि का रहस्य। इति द्वितीयं मण्डलम्। (पृ० ४४९—४५२)

अथ तृतीयं मण्डलम्

सू० [१]—गुरु और शिष्यों के कर्त्तव्य। राष्ट्र, तेजस्वी राजा का वर्णन। (पृ० ४५३–४६२)

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य। (२) राष्ट्रपति का पूज्य पद। (३) विद्वान् गुरु का वरण (५) अग्निवत् नायक का स्थापन उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४६२–४६९)

सू० [३]—अग्निवत् प्रधान पद पर स्थित विद्वान्, नायक पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० ४६९–४७४)

सू० [४]—अग्रणी नायक के कर्त्तव्य (४) राजा प्रजाजनों और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। वीरों का कर्त्तव्य (पृ० ४७४–४७९)

सू० [५]—अग्नि के दृष्टान्त से समर्थ योग्य विद्वान् अधिकारी के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। अग्रणी नायक का वर्णन। (७) जीव के पुनर्जन्म की व्यवस्था। अरणियों से अग्निवत् माता पिता से जीव सर्ग। (पृ० ४८०–४८६)

सू० [६]—प्रधान पुरुष का आदर करने का उपदेश। उससे ज्ञानग्रहण। माता पिता का कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। (पृ०-४८६–४९०)

इत्यष्टमोध्यायः ॥

इति द्वितीयोऽष्टकः।

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[२२]

॥ औशिजः कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक पङ्क्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥

भा०—हे क्रोधरहित या ज्ञान की तीव्र भावना वाले शिष्यो ! तुम्हारे दुःखो को दूर करने वाले और तुम पर सुखो की वर्षा करने वाले गुरु के प्रति, उनकी पालना करने वाले अन्न आदि को तथा उचित सत्कार को श्रद्धापूर्वक भेट रूप मे लाया करो । आकाश और पृथिवी के बीच सबको प्राण देने वाले सूर्य की ओर जल वृष्टि धारक वायुओं के समान वीर शिष्यो के साथ विद्यमान ज्ञान के देने वाले आचार्य के गुणो का मैं वर्णन करता हूँ ।

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥

भा०—दिन की न्याईं ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित पुरुष हो, तथा रात्रि की न्याईं सद्गुणो के तारामण्डल से विभूषित स्त्री हो। ये दोनों नाना विद्याओं के जानने वाले हो। स्त्री सती पत्नी के समान पूर्व स्वीकृत पति की निरन्तर वृद्धि के लिये यत्न करे। कवच को योद्धा के समान वह विशेष रूप से बुने गये वस्त्र को पहनती हुई, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की लक्ष्मी होकर और सुवर्ण के आभूषणो से सुन्दर दीखने वाली होकर सुलोचना हो।

म॒मत्तु॑ नः॒ परि॑ज्मा वस॒र्हा म॒मत्तु॒ वातो॑ अ॒पां वृष॑ण्वान् ।
शि॒शी॒तमि॑न्द्रापर्वता यु॒वं न॒स्तन्नो॒ विश्वे॑ वरिवस्यन्तु दे॒वाः ॥३॥

भा०—गृह-वस्त्रादि से आदर करने हारा, उद्यमी, और आप्त पुरुषों के हितार्थ मेघ के समान ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाला ऐश्वर्यवान् पिता, तथा अपने समीप वसने वाले शिष्यों को आदर से रखने वाला और उनके द्वारा आदरणीय, सबको अन्न तथा ज्ञान प्रदान करने वाला, और प्राप्त शिष्यों के हितार्थ ज्ञानजलों का वर्षण करने वाला गुरु ये दोनों हमें हर्षित करें। हे विद्युत् और पर्वत के समान सर्वोपकारक पिता और गुरु! आप दोनों हम अधीनस्थ ब्रह्मचारियों और सन्तानो को तीक्ष्ण बुद्धि, तपस्या और अभ्यास से शिक्षित करें। और हमें सब विद्वान् और दानशील पुरुष भी ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करें।

उ॒त त्या मे॑ य॒शसा॑ श्वेत॒नायै॒ व्यन्ता॒ पान्तौ॑शि॒जो हु॒वध्यै॑ ।
प्र वो॒ नपा॑तम॒पां कृ॑णुध्वं॒ प्र मा॒तरा॑ रास्पिनस्या॒योः ॥ ४ ॥

भा०—सुख-रस के सदा पान करने वाले पुत्र या शिष्य का निर्माण करने वाले मातापिता अथवा गुरु और गुरुपत्नी, जोकि ज्ञानसे जगत् को उज्ज्वल करने के लिये भोजन ग्रहण करते और जल-पान करते हैं, आप उन दोनों का, मैं तेजस्वी बाप का पुत्र या गुरु का शिष्य होकर अत्यन्त अधिक आदर करता हूं। और वार २ सहायतार्थ आप को पुकारता हूं।

आप सब अपने प्राणो, ज्ञानों और आचारादि कर्तव्यों को न नष्ट होने देने वाले पुत्र या शिष्य को उत्तम रीति से सुशिक्षित करो ।

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—दुःख के नाश करने के लिये जिस प्रकार वेदवाणी उत्तम उपदेश प्रदान करती है, उसी प्रकार मैं विद्याप्रेमी गुरु तथा माता पिता का पुत्र एवं शिष्य होकर, सबको ज्ञान देने तथा सबके दुःख नाश करने के लिये, ज्ञानमय परमेश्वर के श्रेष्ठ धन स्वरूप वेदज्ञान का, तथा आप लोगों के उत्तम उपदेश और ज्ञान का, पुष्टि और वृद्धि करने वाले और आगे योग्य पात्रों में विद्या-दान देनेवाले विद्यार्थी को अच्छी प्रकार प्रवचन करूं । इति प्रथमो वर्गः ॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥

भा०—हे मित्र और सर्वश्रेष्ठ माता पिता या गुरु और गुरुपत्नी आदि जनो ! आप दोनों मेरे इन स्वीकार करने योग्य वचनों का श्रवण करो, तथा गृह में माता-पिता और गुरुगृह में गुरुपत्नी तथा गुरु आप सब मेरे वचनों का श्रवण करो । हमारे वचनों को उत्तम श्रवणशील पुरुष और कान देकर सुनने वाली माता तथा गुरुपत्नी सुने । बहने वाला जलप्रवाह जिस प्रकार जलों से उत्तम खेतों को सींच देता है उसी प्रकार आप हमारे हृदय-क्षेत्रों को उपदेशामृत से सींचिये ।

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७॥

भा०—हे पापों से निवारक तथा स्नेहवान् दोनों प्रकार के सज्जनो ! मैं आप दोनों की स्तुति करता हूं । क्योंकि सैकड़ों गौओं और भूमियों के समान उपकार करने वाली सैकड़ों ज्ञानवाणियों का प्रश्न करने योग्य ज्ञानरहस्यों

के निमित्त यमनियमो का आचरण करने वाले ब्रह्मचारियो मे, तुम दोनो का दानही श्रेष्ठ दान है। जिस प्रकार लोग गमन करने वाले रथ में पोषणकारी धन सम्पत् और अन्नादि रखकर और उसकी रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार पिता गुरु आदि प्रिय शिष्यो को कुमार्गों से रोकते हुए अथवा अपनी इन्द्रियों को विषय-विलासो से रोकते हुए और जितेन्द्रिय होकर, प्राप्तव्य तथा गुरूपदेश से श्रवण करने योग्य तथा रमणीय, और अतिप्रिय रस-स्वरूप आत्मा मे पोषण सामर्थ्य को धारण करते हुए शीघ्र ही गमन करते है, आगे बढ़ते है।

अ॒स्य स्तु॑षे म॒हिम॑घस्य॒ राधः॒ सचा॑ सने॒म नहु॑षः सु॒वीराः॑।
जनो॒ यः प॒ज्रेभ्यो॑ वा॒जिनी॑वा॒नश्वा॑वतो र॒थिनो॒ मह्यं॑ सू॒रिः॥ ८॥

भा०—मैं पुत्र या शिष्य श्रेष्ठविधि से कमाई हुई पिता की धन सम्पत्ति या गुरु की विद्या सम्पत्ति की प्रशंसा करता हूँ, जिस सम्पत्ति को हम उत्तम वीर पुरुष स्वय लेकर अन्यो के प्रति दान करें। जो स्वामी बलवन्तो को ज्ञान और अन्नरूप सम्पत्ति का देने वाला है, और मुझ पुत्र या शिष्य के हित के लिये मुझे सन्मार्ग पर चलाने वाला है, मैं उस इन्द्रियो के स्वामी और शरीर-रथ के स्वामी की प्रशसा करता हूँ।

जनो॒ यो मि॑त्रावरुणावभि॒ध्रुग॒पो न वां॑ सु॒नोत्य॑क्ष्ण॒या॒ध्रुक्।
स्व॒यं स यक्ष्मं॒ हृद॑ये॒ नि ध॑त्त॒ आप॒ यदीं॒ होत्रा॑भिॠ॒तावा॑॥ ९॥

भा०—हे स्नेह करने वाले तथा श्रेष्ठ माता पिता या गुरुपत्नी और गुरु! आप दोनो से जो कोई द्रोह करता है, और जो सीधे द्रोह न करके, टेढे तरीके से द्रोह करके आप दोनों के सम्बन्ध की सत्कारादि क्रियाओ को अच्छी प्रकार नही अनुष्ठान करता, वह आप से आप हृदय मे पीडा क्लेश आदि कष्ट को प्राप्त होता है। और जो सत्कार वाणियो द्वारा आप का सत्कार करता है वह सत्य मार्ग पर चलने वाला सब प्रकार के सुखो को प्राप्त करता है।

स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१०॥२॥

भा०—वह बड़े २ मनुष्यों में भी महान् हो जाता है, जो कि अपनी इन्द्रियों का दमन कर उन द्वारा प्रेरित होता है, जो अत्यन्त बलशाली है, और नरों में जिसके उद्यम का यश फैला हुआ है, जो संसार में विद्या आदि का दान करता है, और जो उत्तम कर्मों के करने वाला होकर विचरता है, तथा जो असुर भावों के साथ युद्धों में सदा विजयी, शूर साबित होता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्या और ऐश्वर्य से प्रकाशमान ! तथा हे सबको आनन्द देने और स्वयं आनन्दित होने वाले स्तुत्य जनो ! आप लोग, सबके प्रेरक तथा नित्य और सबको एक सूत्र में बांधनेहारे परम पुरुष के उत्तम वचन और स्तुति को श्रवण करो, और सुन कर उस मार्ग पर चलो। क्योंकि आकाश में प्रेरणा देने वाले, पूर्ण रक्षणसामर्थ्य वाले परमेश्वर की आराधना या उस द्वारा दिया गया ऐश्वर्य, महान् सामर्थ्य से रमणसाधन रूप देह को धारण करने वाले आत्मा के उत्तम प्रशासन के लिये होता है।

एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२॥

भा०—सबके प्रेरक और दशों दिशाओं में व्यापक जिस परमेश्वर के नाशक तथा धारक सामर्थ्य का विद्वान् जन वर्णन किया करते हैं वह समस्त बसने वाले जीवों और बसने योग्य लोकों का विस्तार करने वाला है। हे विद्वान् पुरुषो ! जिन श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों के या श्रेष्ठ पुरुषों के आश्रय पर आप सब लोग नाना ऐश्वर्यों को भोगते हो, उन ऐश्वर्यों का

उत्तम प्रकार से सब का भरण पोषण करने वाले अनेक यज्ञ आदि कामों मे दान किया करो।

मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥

भा०—हम साधक लोग, दशो दिशाओ से युक्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर की स्तुति करते है। जिसके आश्रय पर वे दसो दिशा वासी प्रजाजन अन्नो को धारण करते हुए उद्देश्य को प्राप्त होते है। ये सूर्य आदि लोक भी या बडे २ राजा महाराजा भी क्या स्वयं सामर्थ्यवान् है? ये क्या ईश्वर है? अर्थात् उस परमेश्वर की तुलना मे ये सब तुच्छ हैं। वह परमेश्वर ही वेगवान्, मन, अग्नि आदि पदार्थों का इष्ट अर्थात् प्रेरक है, वही समस्त बागडोर चलाने वाला है, वही परमेश्वर आकाश मार्ग से जाने वाले समस्त नक्षत्रादि लोको को और समस्त नायको या पुरुषो को चलाता और वश करता है। [२] अध्यात्म मे यह आत्मा दशविध प्राणगण का धारक होने से 'धासि' है। जिसके आश्रय पर ये दसो प्राण अन्नों को भोगते रहते है। वह आत्मा अश्व अर्थात् इन्द्रिय और रश्मि अर्थात् ज्ञान तन्तुओं का प्रेरक है। ये प्राणगण तो क्षुद्र शक्ति वाले है। वह इन गतिशील नायक प्राणो को भी वश करता है।

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

भा०—समस्त विनयशील योद्धाजन तथा विद्वान् पुरुष मिलकर हमारे मे से कान मे सुवर्ण के कुण्डल पहने और गले मे मणियो की माला पहने उत्तम नायक पुरुष का, उसे अर्घ्य, पाद्य, आचमन और अभिषेक आदि के योग्य जल प्रदान कर उसकी सेवा करें। और हमारे हित के लिये हमारे अपने और परायों के बीच मे उत्तम विद्वान् पुरुष उसको चाहे। वह सबका स्वामी पुरुष शीघ्र ही ज्ञान करने योग्य

वाणियों, समस्त भाषाओं और वेदवाणियों को और दुधार गौओं को प्राप्त करें।

चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥१५॥३॥

भा०—दुष्टों को नाश करने और विजय करने वाले राजा के चारों वर्ण और चारों आश्रम, या सेना के चारों अंग, और सर्वत्र विद्यमान अन्नादि सामग्री के स्वामी पुरुष के अध्यक्षजन, भृत्यजन और प्रजाजन ये तीनों, इस प्रकार ये सब शिशु या बालक के समान पालन करने एवं शासन करने योग्य हैं। वे सब मुझ प्रजाजन को प्राप्त हों। हे सर्वस्नेही और सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग। आप दोनों का रथ के समान ही राष्ट्र विशाल रूप होकर, तथा सुखकारी किरणों वाले सूर्य के समान सुखकारी शासन प्रबन्ध के युक्त होकर प्रकाशित हो। [२] देह का राजा आत्मा बाधक कारणों पर विजय करने से 'जिष्णु' है। अन्नादि का स्वामी होने से 'आयवस' है। अज्ञान नाशक होने से 'मशर्शार' है। ४ × ३ = ७ प्राण उसके शिशु हैं। मित्रवरुण, प्राण और अपान हैं। शरीर रथ है। इति तृतीयो वर्गः।

[१२२]

दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७, ९, १०, ११, विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णादुदस्थादर्या३विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥

भा०—यज्ञ में दायें भाग में विराजने वाली वधू का विशाल रथ जोड़ा जावे। और उसमें कभी नाश न होने वाले दीप्तियुक्त रत्न लगाये जायें। गृह की स्वामिनी नव वधू वियोग से शोकातुर होते हुए पितृगृह

से अपने पति सम्बन्धी गृहों के प्राप्त होने के लिये विशेष आदर युक्त होकर उस रथ पर चढ़े।

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

भा०—प्रभात वेला के समान उत्तम कमनीय गुणों से युक्त कन्या समस्त परिवार से पूर्व जागे। वह ऐश्वर्य को विजय करने वाली सेना के समान सबके चित्तों पर विजय प्राप्त करती हुई, बड़ी गुणवती, यथायोग्य भोजन, मान, आदर का विभाग करने वाली युवती, उत्कृष्ट गुणों को प्रकाशित करे। वह उषा के समान पुन. २ प्रतिदिन सदा नये प्रसन्न रूप में प्रकट होती हुई अपने पूर्व विद्यमान, विद्यावृद्ध और वयोवृद्धों के आदर सत्कार के कार्य को सबसे मुख्य होकर प्राप्त हो।

यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम कुलवंश से उत्पन्न होने वाली! प्रभात वेला के समान कमनीय गुणों से युक्त कन्ये! तू आज के समान सदा ही उत्तम पुरुषों के लिये सेवन करने योग्य अन्न आदि का विशेष रूप से विभाग किया कर। इस गृहाश्रम के क्षेत्र में हममें से गृह का स्वामी दानशील पुरुष ही पुत्रों को उत्पादन करने वाला तेरा पति हो। ऐसा ही वह पाप कर्मों से रहित हम जिज्ञासुजनों को सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी होने के लिये उपदेश करे।

गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—प्रकाश से फैलने वाली, प्रभात वेला जिस प्रकार प्रतिदिन नव स्वरूप धारण करती हुई प्रति गृह में प्राप्त होती है उसी प्रकार कभी भी न ताड़ने और न व्यथा पाने योग्य, अतिकोमल स्वभाव की

नववधू प्रतिदिन अपने विनयशील स्वभाव को अधिकाधिक धारण करती हुई प्रत्येक गृह को भली प्रकार आदर से प्राप्त होती, और वह उषा के समान ही अपने गुणों का प्रकाश करती हुई, समस्त ऐश्वर्यों को सेवन करती हुई, सदा वसने हारे गृहस्थ में प्रवेश करने हारे विद्वान् नवयुवकों में से सबमें श्रेष्ठ युवक को ही प्राप्त हो।

भग॑स्य॒ स्वसा॒ वरु॑णस्य जा॒मिरुषः॑ सूनृते प्रथ॒मा ज॑रस्व।
प॒श्चा स द॑घ्या॒ यो अ॒घस्य॑ धा॒ता जये॑म॒ तं दक्षि॑णया॒ रथे॑न ॥५॥४॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान कान्तिमति! तू सूर्य की बहिन प्रभात वेला के समान ही साक्षात् गृहलक्ष्मी है। उषा जिस प्रकार अन्धकार के वारण करने वाले सूर्य की भगिनी है, उसी प्रकार हे कन्ये! तू भी श्रेष्ठ भ्राता की भगिनी है। हे शुभ वाणी बोलनेहारी! तू सर्वश्रेष्ठ होकर उत्तम गुणों का बखान कर, या स्वयं उत्तम स्तुति को प्राप्त कर। और जो पाप का पोषण करने वाला है उसका तिरस्कार कर। और उसको हम लोग अति बलवती सेना से और रथबल से विजय करें। इति चतुर्थो वर्गः।

उदी॑रतां सू॒नृता॒ उत्पुर॑न्धी॒रुद॒ग्नयः॑ शुशुचा॒नासो॑ अस्थुः।
स्पा॒र्हा वसू॑नि॒ तम॒साप॑गूळ्हा॒विष्कृ॑ण्वन्त्यु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥६॥

भा०—प्रातः वेलाएं जिस प्रकार अंधकार से छुपे नाना ऐश्वर्यों को और विशेष रूप से चमकने वाली दीप्तियों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार उत्तम स्त्रियां अन्धकार में छिपे नाना अभिलाषा करने योग्य उत्तम ऐश्वर्यों को प्रकट करें। और विशेष दीप्तियों का प्रकाश करें। उत्तम वाणियां उठें। वेदवाणियां उच्च स्वर से पढ़ी जावें। पुर अर्थात् देह, गृह आदि को धारण करने वाली युवतियां उन्नति को प्राप्त हों। और शुद्ध स्वच्छकारक यज्ञाग्नि प्रज्वलित हो।

अपा॒न्यदेत्य॒भ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ विषु॑रूपे॒ अह॑नी॒ सं च॑रेते।
प॒रि॒क्षि॒तोस्तमो॑ अ॒न्या गुहा॑क॒रद्यौ॑दु॒षाः शोशु॑चता॒ रथे॑न ॥७॥

भा०—दिन और रात्रि दोनों तम और प्रकाश से विपरीत रूप के होकर भी एक साथ गति करते हैं। इन दोनों में से एक हटता है तो दूसरा सन्मुख आजाता है। समीप २ निवास करते हुए दोनों में से एक रात्रि अन्तरिक्ष में अन्धकार को फैलाती है तो दूसरी उषा अति दीप्तियुक्त रथ अर्थात् तीव्र प्रकाशवान् सूर्य से प्रकाशित होती है। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी भिन्न २ स्वभाव के एक साथ ही सांसारिक सुख का भोग करें। उनमें एक परे होवे तो दूसरा सामने आवे अर्थात् यदि एक व्यक्ति उत्तम कार्य करता २ थककर विश्राम करे तो उसका स्थान दूसरा ले। साथ ही निवास करने के लिये उन दोनों में से एक स्त्री बुद्धि में यदि अन्धकार के समान खेद, शोक आदि प्रकट करे तो दूसरा प्रभात के समान प्रकाश वाला होकर अति दीप्तियुक्त तथा रमण करने योग्य स्वरूप से प्रकाशित हो और खेद आदि अन्धकार को दूर करे।

सदृशीर॒द्य स॒दृशी॒रिदु॑ श्वो दी॒र्घं स॑चन्ते॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ ।
अ॒न॒व॒द्यास्त्रि॒ंशतं॒ योज॑ना॒न्येकै॑का॒ क्रतुं॒ परि॑ यन्ति स॒द्यः ॥ ८ ॥

भा०—प्रभात वेलाएं जिस प्रकार आज समान रूप से दीखती हैं उसी प्रकार कल अर्थात् भविष्य में भी दीखती हैं। उसी प्रकार उत्तम सुन्दर स्त्रियें भी जिस प्रकार आज गुणों से युक्त अपने पतियों के अनुरूप हों उसी प्रकार भविष्य में भी सदा तदनुरूप बनी रहें। वे निन्दनीय आचारों से रहित होकर वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के चिरकालतक निवास करने योग्य गृह को प्राप्त हों। जिस प्रकार उषाएं सूर्योदय के स्थान से आगे ३०। ३० योजन दूर तक दीखती हैं और अकेले २ प्रत्येक यज्ञ या अपने कर्त्ता सूर्य के आश्रय पर रहती हैं उसी प्रकार स्त्रियां भी कम से कम ३०। ३० योजन अर्थात् १२० कोश दूर तक नित्य कर्त्ता को प्राप्त हों। वे समीप २ विवाहित न होवें।

जा॒न॒त्यह्नः॑ प्रथ॒मस्य॒ नाम॑ शु॒क्रा कृ॒ष्णाद॑जनिष्ट श्वि॒ती॒ची ।
ऋ॒तस्य॒ योषा॒ न मि॑नाति॒ धामाह॑रह॒र्निष्कृ॒तमा॒चर॑न्ती ॥ ९ ॥

भा०—दो कुलों को मिलाने हारी स्त्री अपने कुल में अतिप्रसिद्ध आदि वंशकर्त्ता का गोत्रनाम उच्चारण करती हुई, स्वयं शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई कान्तिमति कृष्ण अर्थात् हीनकर्म करने वाले कुल से भी चाहे उत्पन्न हुई हो, वह भी शास्त्रादि से निश्चित, उत्तम शोभाजनक कार्य का आचरण करती हुई, सत्य व्यवहार या वेद, या सत्याचरण युक्त पुरुष के गृह आदि का नाश नहीं करे, प्रत्युत उसको उत्तम रीति से बसावे।

कुन्येव तुन्वा॒३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥५॥

भा०—कन्या जिस प्रकार अपने शरीर से अपना स्वरूप प्रकट करती हुई अपने साथ संयुक्त प्रिय पति को प्राप्त होती है, उसी प्रकार हे तेजस्विनि उषा! तू भी अपने विस्तृत प्रभामय स्वरूप से प्रकट होती हुई अपने से सुसंगत सूर्य को प्राप्त होती है। और जिस प्रकार जवान स्त्री भली प्रकार मुस्कराती हुई विशेष गुणों से प्रकाशित होती हुई अपने पति के समक्ष अपने बाहुमूल आदि अंगों को प्रकट करती है उसी प्रकार हे उषा! तू भी मानो प्रकाश किरणों से मुसकाती हुई प्रकाशों से प्रकाशित होती होई सबके समक्ष नाना रूपों को प्रकट करती है। इति पञ्चमो वर्गः।

सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।
भद्रा त्वमुषो वितुरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

भा०—उषा जिस प्रकार प्रभामय देह को प्रकट करती है, दूर तक अन्धकार को दूर करती है, उसी प्रकार हे प्रभातवेला के समान कमनीये! नवयुवति! दोनों कुलों को मिलाने हारी तू उत्तम रीति से सुशिक्षित होकर, माता द्वारा अच्छी प्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित की जाकर, दिखाने के लिये अपने शरीर को प्रकट कर। तू मंगल आचार वाली होकर खूब अपने उत्तम

गुणों को प्रकट कर । अन्य कमनीय कन्याएं भी तेरी उस रूपादि शोभा को प्राप्त न हों । अर्थात् तु सबसे अधिक सुशोभित हो ।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्वि॒श्ववा॑रा॒ यत॑माना र॒श्मिभि॒ः सूर्य॑स्य ।
परा॑ च॒ यन्ति॒ पुन॒रा च॑ यन्ति भ॒द्रा नाम॒ वह॑माना उ॒षास॑ः ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार उषाएं सूर्य की किरणों से यत्नशील होती हुई, सूर्य और किरणों से युक्त होकर, तथा विश्व को व्यापने वाली होकर, सुन्दर रूप धारण करती हुई, चली जाती है और फिर आजाती है, उसी प्रकार कमनीय नववधुएं भी रथ में लगे अश्वों और गौ आदि पशुसमृद्धि से सम्पन्न होकर, समस्त संकटों को दूर करने हारी, सूर्य के चढते ही गृहोद्योग करती हुईं, सुन्दर स्वभाव, विनय और उत्तम नाम, ख्याति धारण करती हुईं, कल्याण आचरण वाली होकर पतियों के संग दूर देश में भी जावें और पुनः अपने पिता के घर लौट आवें।

ऋ॒तस्य॑ र॒श्मिम॑नु॒यच्छ॑माना भ॒द्रम्भ॑द्रं॒ क्रतु॑म॒स्मासु॑ धेहि ।
उषो॑ नो अ॒द्य सु॒हवा॒ व्यु॑च्छा॒स्मासु॒ रायो॑ म॒घव॑त्सु च स्युः ॥१३॥६॥

भा०—हे प्रभातवेला के समान कान्तिमति ! जिस प्रकार प्रभातवेला सूर्य के किरण के अनुकूल प्रकाश करती हुई, हममें अतिकल्याणजनक, ज्ञान, कर्म, बल धारण कराती है, उसी प्रकार सत्य ज्ञानमय वेद के ज्ञानप्रकाश के अनुसार उद्योग करती हुई तू हममें अति सुख और कल्याण-जनक यज्ञ आदि कर्म, धर्माचरण को धारण करा । तू आज और आज के समान सदा उत्तम ज्ञानोपदेश से युक्त होकर हमारे बीच अज्ञानों का नाश कर । और हम नाना ऐश्वर्यवानों को और भी विविध ऐश्वर्य प्राप्त हों । इति षष्ठो वर्गः ॥

[१२४]

कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ११ त्रिष्टुप् । १२ विराट्त्रिष्टुप् । १, १३ भुरिक् पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ८ विराट् पंक्तिश्च ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥

भा०—जिस प्रकार अन्धकार दूर करती हुई उषा सूर्यरूप अग्नि के आश्रय पर बहुत अधिक प्रकाश को प्राप्त करती है और उदय को प्राप्त होता हुआ सूर्य भी विशाल उषा के साथ परम तेज को प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि के प्रदीप्त होने पर पति की कामना करने हारी कन्या अपने गुणों का प्रकाश करती हुई बड़ी भारी शोभा का आश्रय ले। इसी प्रकार उदित होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष कान्तिमती स्त्री का आश्रय ले। इस गृहस्थाश्रम में सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक परमेश्वर शीघ्र हमें इष्ट प्रयोजन के लिये दोपाये, चौपाये, भृत्यादि और पशु धन प्रदान करे।

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रभातवेला परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि कर्मों का लोप न करती हुई, मनुष्य सम्बन्धी वर्षों की उत्तम रीति से मान करती हुई, अभी तक आई उषाओं के सदृश और आगे आने वाली उषाओं की मुख्य होकर विशेष रूप से प्रकाशित होती है, उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त वधू परमेश्वर, आचार्य, माता, पिता, पति आदि मान्य पुरुषों, या उपासना, सेवा, शुश्रूषा आदि नित्य धर्मों तथा उनके उपदेश किये कर्मों का कभी भी लोप न करती हुई, और मनुष्य जाति के भिन्न २ युगों, कालों, समयों का निर्माण करती हुई, पूर्व आई उत्तम स्त्रियों के बीच उपमा देने योग्य होकर, और भविष्य में आने वाली वधुओं में सबसे श्रेष्ठ होकर विविध गुणों से प्रकाशित हो।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य की कन्या के समान उषा जिस प्रकार

प्रत्यक्ष दिखाई देती है, वह सबके समक्ष वा पूर्व दिशा में प्रकाश को धारण करती हुई सूर्य के मार्ग पर गमन करती है, और उत्तम ज्ञानवती विदुषी के समान अन्य दिशाओं का लोप नहीं करती, उसी प्रकार यह ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष की कन्या एकत्र हुए जनसमूह के समक्ष उज्ज्वल वस्त्र-आभूषणों को धारण करती हुई, प्रत्यक्ष देखी जावे, उसे सब कोई देखें। वह सत्यज्ञानमय वेद के उपदिष्ट मार्ग का उत्तम रीति से अनुमान करे। और उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करती हुई गुरुजनों के आदेशों को और उपदेष्टा मान्य पुरुषों का नाश न करे, उनको कष्ट न दे, और उनके दिये सदुपदेशों का लोप न करे।

उषो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—उषा के समान शोभावती नव वधू समीप देखी जावे। जिस प्रकार शुन्ध्यु नाम का जलचर, बतक, हंस आदि अपने वक्षःस्थल को उन्नत कर चलते हैं उसी प्रकार कन्या भी उन्नत वक्षःस्थल वाली अर्थात् पूर्ण युवती हो। और स्तुतिशील विद्वान् जिस प्रकार उत्तम प्रिय वचनों का प्रकाश करता है उसी प्रकार वधू भी हृदय को प्रिय लगने वाले गुणों और वचनों का प्रकाश करे। जिस प्रकार उषा सोते हुए प्राणियों को जगा देती है उसी प्रकार नववधू भी गृह में विराजे और सोते हुए अज्ञान दशा में विद्यमान बालकों को मातृगुरु होकर जगाती हुई, ज्ञानवान् करती हुई, अभी तक हुई कुलवधुओं के बीच में सबसे अधिक नित्य धर्मों का पालन करती हुई बार २ घर आवे, जावे।

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—व्यापनशील अन्तरिक्ष के पूर्व के आधे भाग में उषा जिस प्रकार सूर्य की किरणों को प्रकट करती हुई ज्ञान और प्रकाश पैदा करती है,

और पालक भूमि और सूर्य दोनों के बीच में स्थित होकर दोनों को अपने प्रकाश से पूरती हुई श्रेष्ठ स्वरूप को विशेष रूप से प्रकट करती है, उसी प्रकार नववधू भी उत्तम ज्ञान और कर्म करने में कुशल लोकसमूह के आगे उत्तम पद में विराजती हुई, उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली होकर, वेद वाणियों के ज्ञान को अच्छी प्रकार प्रकट करे, तदनुकुल आचरण करे। और वह माता पिता दोनो के समीप रहती हुई, दोनो को प्रियाचरण से प्रसन्न करती हुई, अति श्रेष्ठ गुण को विशेष रूप से विस्तृत करे। इति सप्तमो वर्ग.।

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम्।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६॥

भा०—यह उषा जिस प्रकार अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर जगत् के प्रत्यक्ष कराने के लिये न बन्धुतारहित पृथिवी आदि लोक का परित्याग करती है, और न सूर्यादिबन्धु का ही परित्याग करती है, प्रत्युत मलरहित, स्वच्छ प्रकाश से चमकती हुई स्वल्प पदार्थ से भी दूर नहीं होती, इसी प्रकार विविध गुणों से प्रकाशित होने वाली नववधू भी ऐसी ही है। वह सन्तानो से बढ़ी हुई अपने गुणो को दर्शाने के लिये न अपने बन्धुजनो से भिन्न को त्यागती और न अपने बन्धुजनो को ही त्यागती है अर्थात् वह सबके प्रति समान भाव से अपने गुणो का प्रकाश करे। यह पाप और मल से रहित शरीर से अति सुन्दर रूपवती होती हुई न छोटे बालक से ही पृथक् हो और न बडे तेजस्वी व्यक्ति से पृथक् हो, अर्थात् छोटे बडे सबको प्रिय लगती रहे।

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७॥

भा०—नव वधू अपने प्रिय पुरुष पति को ऐसे प्राप्त हो मानो उसके अतिरिक्त दूसरा उसका भरण पोषण करने वाला कोई नहीं है। रथारोही

विजिगीषु वीर जिस प्रकार धनैश्वर्य को विजय द्वारा लाभ करने के लिये उद्यत होता है उसी प्रकार वह नववधू भी गृहस्थ के ऐश्वर्यों के लाभ के लिये पति गृह की ओर प्रयाण करने के लिये रथ पर आरूढ़ हो। वह अपने पति के लिये कामना करती हुई, सुन्दर वस्त्र आच्छादन पहनती हुई, सन्तान कामना वाली स्त्री के समान निःसंकोच होकर जावे। हंसती, मुसकराती हुई, प्रसन्न वदन होकर अपने रूप को अच्छी प्रकार प्रकट करे।

स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव।

व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार सूर्य की किरणों द्वारा अन्धकार दूर करती हुई अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करती है, और रात्रि जिस प्रकार अपनी बडी बहिन उषा के लिये अपना स्थान आदर से प्रदान करती है, और अपने मान का ख्याल न करती हुई परे हट जाती है, इसी प्रकार नव वधू तेजस्वी पति के उत्तम गुणों से प्रकट होती हुई अपने सुन्दर रूप को प्रकट करे। और बहिन बडी बहिन के लिये स्थान रिक्त करे, आदर से उसे अपना स्थान दे। उसके हित के लिये अपने इष्ट को मानो त्यागती हुई आप स्वयं दूर हट जाय। और स्वयंवर के लिये सभास्थल में आने वाली वरवर्णिनी कन्याओं के समान अपने उज्ज्वल रूप को प्रकट करे।

आसां पूर्वासामहंसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात्।

ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥

भा०—छोटी बहिन अपने से पूर्व की बड़ी बहिन के पीछे २ उसका अनुकरण करती हुई चले। निश्चय से वे सब बहिनें सदा नये उत्तम रूप वाली होकर, उत्तम दिनों वाली उषाओं के समान पूर्व शिष्टों के आचरण वाले और ऐश्वर्यवान् सौभाग्य को प्रकट करें।

प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु।

रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवति प्रभातवेले ! पालन करने वाले प्राणियों को जगा और जो न जागने वाले व्यवहार कुशल पुरुष सोते हो उनको भी जगा। हे सत्य व्यवहार से युक्त प्रात.वेले ! तू सब प्राणियो की आयुओ को प्रति दिन क्षीण करती हुई ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हित के लिये अपने ऐश्वर्ययुक्त रूप को प्रकट कर। और स्तुतिशील उपासक के लिये भी अपने ऐश्वर्यमय रूप को प्रकट कर। हे वधू ! इसी प्रकार जो व्यवहार युक्त पुरुष सोते हैं उन अपने पालक भ्राता, पति आदि पुरुषो को तु जगा। अर्थात् आप उनसे पूर्व उठ कर जगा। हे शुभ व्यवहार और उत्तम वाणी वाली ! हे सौभाग्यवति ! ऐश्वर्यवान् सम्बन्धियो और उत्तम वेदोपदेष्टा पुरुष के आदर के लिये आपकी ऐश्वर्यवृद्धि करने वाला सुखकारी रूप और गुण प्रकट कर। इति अष्टमो वर्गः ॥

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम्।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार यह उषा आगे २ बढ़ती है, और उज्ज्वल रश्मियो के समूह को अपने आगे जोडती है, निश्चय से विविध दिशाओं मे अपना रूप प्रकट करती और अन्धकार को दूर करती है, और ज्ञानप्रद होकर उत्तम रूप से प्रकट होती है, तब यज्ञाग्नि और सूर्य घर २ उपस्थित होता है, उसी प्रकार यह यौवन युक्त स्त्री बडी हो, और अरुण रंग के बैलो वा अश्वो के समूह को आगे रथ के जोडे, वह निश्चय से अपने उत्तम गुणो का प्रकाश करे। और विशेष ज्ञानयुक्त होकर प्रकट हो, और यज्ञाग्नि स्त्री के साथ ही गृह मे स्थापित हो।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥

भा०—हे उष.! तेरे विशेष रूप से प्रकट हो जाने पर जिस प्रकार पक्षिगण अपने निवास के घोसले से उड जाते हैं, और जो अन्नादि को

प्राप्त करने वाले कृषि आदि जन हैं वे भी अपने २ घर से बाहर चले जाते हैं, हे उषः ! साथ रहने वाले दानशील सूर्य को तू बहुत उत्तम ऐश्वर्य धारण कराती है, उसी प्रकार हे कमनीयगुणों से युक्त नववधू ! तेरे विशेष रूप से गृह में बस जाने पर जो अन्न आदि पालन सामर्थ्यों को धारण करते हैं वे प्रातःवेला में घोसलों से उड़ते पक्षियों के समान उन्नत पद को प्राप्त हों। और हे विदुषि कन्ये ! अपने साथ एक गृह में रहने वाले अन्न-वस्त्र तथा मान आदर एवं सर्वस्व समर्पण करने वाले अपने पुरुष को तू भी बहुत अधिक, प्रचुर, भोग्य ऐश्वर्य, सुख प्राप्त करा।

अस्तो॑ढ्वं स्तोम्या॒ ब्रह्म॑णा॒ मेऽवी॑वृधध्वमुश॒तीरु॑षासः ।
युष्माकं॑ देवी॒रव॑सा सनेम सह॒स्रिणं॑ च श॒तिनं॑ च॒ वाज॑म् ॥१३॥९॥

भा०—हे स्तुतिकारी मन्त्र समूह को पढ़ने हारी विदुषि स्त्रियो ! आप मन से पति की कामना करती हुई स्तुति उपासना किया करो। और मेरे महान् धन और ब्रह्मवर्चस् बल और ज्ञान में आप वृद्धि को प्राप्त होवो और मुझे बढ़ाओ। हे उत्तम गुणों वाली एवं प्रिय कामना युक्त देवियो ! आप लोगों की रक्षा और ज्ञानसामर्थ्य और प्राप्ति में हम लोग सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त और सैकड़ों बलों से युक्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

उषा विषयक सूक्त में पक्षान्तर में 'उष' धातु दाहार्थक और पीडार्थक होने से राजा की सेना का और अध्यात्म में अज्ञानदाहक होने से समाधि में प्रकट होने वाले प्रकाश के उदय काल का भी वर्णन है। इति नवमो वर्गः।

[१२५]

कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ दम्पती देवते दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ३, ७ त्रिष्टुप्। २, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५ जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रा॒ता रत्नं॑ प्रात॒रित्वा॑ दधाति॒ तं चि॑कि॒त्वान्प्र॑ति॒गृह्या॒ नि ध॑त्ते ।
तेन॑ प्र॒जां व॒र्धय॑मान॒ आयू॑ रा॒यस्पोषे॑ण सचते सु॒वीरः॑ ॥ १ ॥

भा०—प्रभात काल में जागने वाले प्रभातवेला में ही उत्तम रमण

करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ को धारण करे। अर्थात् जीवन के प्रारम्भ भाग कौमार दशा में ही गुरु के समीप आकर मनुष्य २५ वर्ष तक न्यून से न्यून जीवन में रमण करने योग्य बल वीर्य, और ज्ञान को धारण करे। ज्ञानवान् होकर उसको ग्रहण करके निषेक द्वारा धारण करावे उससे ही वह उत्तम वीर्यवान् पुरुष सन्तति को बढाता हुआ, और उसी ऐश्वर्य सुख सौभाग्य की वृद्धि और पुष्टि से दीर्घ जीवन को बढाता हुआ, सन्तति और दीर्घ जीवन के आश्रय पर स्थायी होकर रहने में समर्थ होता है।

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥२॥

भा०—हे अपने जीवन के प्रभात काल से अपने गुरु के समीप आने वाले! जो समस्त ज्ञानों का दाता आचार्य ऐश्वर्य के सहित तुझे अपने समीप आते को प्राप्त करके ज्ञान की अभिलाषा से प्राप्त हुए तुझको मूंज की बनी मेखला से उत्तम उद्देश्य के लिये नियम में बांधता है, वही आचार्य उस तुझ शिष्य को बडा बल, ज्ञान और दीर्घायु धारण कराता है। उसी से तू उत्तम ज्ञानवान् [illegible] उत्तम बलवान् इन्द्रियों से युक्त उत्तम [illegible]तकारी [illegible] विचार।

उप॑ क्षरन्ति सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ईजा॒नं च॑ य॒क्ष्यमा॑णं च धे॒नव॑: ।
पृ॒णन्त॑ं च॒ पपु॑रिं च श्रव॒स्यवो॑ घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वत॑: ॥४॥

भा०—सुख देने वाली दुधार गौएं यज्ञ करने वाले और यज्ञ करने में उत्सुक गृहस्थीजन को प्राप्त होती है जैसे कि नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं । वे गौएं जो कि दूधरूपी यशस्वी अन्न वाली है, और जिनसे दूध रूप में घी की धाराएं बहती है, पालन पोषण करने वाले तथा पूर्ण करने वाले गृहस्थी को प्राप्त होती हैं ।

नाक॑स्य पृ॒ष्ठे अधि॑ तिष्ठति श्रि॒तो यः पृ॒णाति॒ स ह॑ दे॒वेषु॑ गच्छति ।
तस्मा॒ आपो॑ घृ॒तम॑र्षन्ति॒ सिन्ध॑व॒स्तस्मा॑ इ॒यं दक्षि॑णा पिन्वते॒ सदा॑ ॥५॥

भा०—जो पुरुष अन्यों को धन, अन्न तथा ज्ञान से परिपूर्ण करता और सबको प्रसन्न और सुखी करता है वह सबको आश्रय देने हारा होने से आश्रय किया जाता है । वह जहां जरा भी दुःख और क्लेश नहीं ऐसे परमानन्द स्वरूप परमेश्वर के आश्रय पर विराजता है । वह ही निश्चय से विद्वानों और दानशील और व्यवहारकुशल पुरुषों के ऊपर और उनके बीच आदर से जाता है । उसके लिये आप्त पुरुष और आप्त प्रजाजन महानदों या जलधाराओं के समान अन्न, जल, ज्ञान और तेज प्रदान करते है और उसके लिये यह भूमि समस्त अन्न ऐश्वर्य आदि देने में समर्थ होकर सदा समृद्ध करती है । शबर स्वामी के कथनानुसार सांसारिक सुखसामग्री भी स्वर्ग शब्द से कहे जाते है ।

दक्षि॑णावता॒मिदि॒मानि॑ चि॒त्रा दक्षि॑णावतां दि॒वि सूर्या॑सः ।
दक्षि॑णावन्तो अ॒मृत॑ं भजन्ते॒ दक्षि॑णावन्तः॒ प्र ति॑रन्त॒ आयु॑: ॥६॥

भा०—जो लोग धर्म से उपार्जित धन ऐश्वर्य विद्या आदि के निमित्त श्रद्धा से दान देने और बल और ज्ञान प्राप्त करने की साधना करते हैं उनके लिये ही समस्त प्रकार के नाना विध सुखजनक पदार्थ हैं । उक्त प्रकार के धन और ज्ञान और आत्मशक्ति सम्पादन करने वालों के लिये ही

आकाश में सूर्यों के समान इस भूमि में तेजस्वी पुरुष उनकी सेवा के लिये होते हैं। उस प्रकार के ऐश्वर्यदान देने और बल और प्रज्ञा के सम्पादन करने वाले पुरुष ही मोक्षानन्द, पुत्रादि सन्तति तथा अन्न जल की समृद्धि का भी भोग करते हैं। और उक्त प्रकार के दाता या ज्ञान बल के स्वामी लोग ही दीर्घ जीवन को उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं।

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७॥१०॥

भा०—विद्वान्, उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम मर्यादाओं का पालन करने हारे तथा भरणपोषण करने वाले धार्मिक गृहस्थ, दुःख या दुरवस्था प्राप्त कराने वाले पापाचरण को न करें। और वे जार के समान दूसरों की स्त्री आदि पर लम्पटता आदि कुकर्म न करें। उनमें से कोई एक पुरुष राजा बनकर उनकी सब तरफ से रक्षा करने हारा हो। परन्तु पालन पोषण न करने वाले को शोक दुःख और पीड़ाएं सब तरफ से प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

[१२६]

॥ १२६ ॥ १—५ कक्षीवान्। ६ भावयव्य । ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी चर्षिः। विद्वांसो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ६, ७ अनुष्टुप्। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अमन्दान्त्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

भा०—जो संसार का राजा वेदज्ञानोपदेश को श्रवण कराने की इच्छा करता हुआ, मुझको सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान करता है, उस सिन्धु के समान अतिगम्भीर आत्मा के ऊपर अधिकार करके रहने वाले, तथा पुत्रोत्पादन में समर्थ परमेश्वर की बहुत स्तुतियों को मैं अच्छी प्रकार धारण करूं।

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

भा०—मैं बगल में यज्ञोपवीत धारण कर, शिष्यों को प्राणदान करने वाले आचार्य की सैकड़ों वाणियों को प्राप्त करूं। और ज्ञानप्रकाश में कभी नाश को प्राप्त न होने वाली ख्याति को विस्तृत करूं। मैं समृद्ध राजा के योग्य सैकड़ों मोहरों को और सैकड़ों खूब सधे हुए घोड़ों को भी शीघ्र ही प्राप्त करूं।

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥३॥

भा०—सबको अपनी आज्ञा से चलाने वाले आचार्य से दी गई, शरीर को वहन करने वाली शक्तियों से युक्त दस रमणीय इन्द्रियां मुझे प्राप्त हों और उसके पश्चात् मुझे इन्द्रियों की हितकारी साठ हजार छोटी २ शारीरिक शक्तियां प्राप्त भी हों। और उनको दिनों के प्राप्त होने पर यथा समय उत्तम जितेन्द्रिय विद्याकुशल पुरुष सदा प्राप्त करे और उसका भोग करे।

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥४॥

भा०—दशों रमण साधनों अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी आत्मा दशरथ है। प्रत्येक इन्द्रिय से अन्तःकरण चतुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चारों का पृथक् २ भोग होने से ४० अश्व हैं वे ही सहस्रों सुखों के अग्रगामी होते हैं। उद्यमी विद्वान् जन ही, जो कि हर्ष वर्षण करने वाले तथा आत्म-चेतना वाले हैं वे इन इन्द्रियरूप अश्वों को उत्तम रीति से वश करें।

पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥५॥

भा०—हे उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, परस्पर प्रेम और विद्या-सम्बन्ध, और योनिसम्बन्धों से बंधे हुए ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग ज्ञानवान् और साधन सम्पन्न तथा उत्तम प्राण तथा शकट के स्वामी होकर, वरण करने योग्य ऐश्वर्यों को तथा यश को प्राप्त करने की इच्छा करो। मैं अध्यक्ष पुरुष आप में से उपयुक्त तीन मुख्य पुरुषों को, और आठ प्रमुख सभासदों को ऐश्वर्यवान् स्वामी के धारण पोषण करने, उसे बल-वान् बनाये रखने में समर्थ या विपक्ष के शत्रु को थाम लेने वाले जानकर, राष्ट्र के संचालक रूप से, शकट में लगे बैलों के समान प्रमुख उत्तम पुरुषों और आप लोगों के सर्वोत्कृष्ट उत्तम प्रयत्नों को भी अपने अनुकूल करके धारण करता हूं। यह शरीर जीवन से युक्त 'अनस्' है। उसको धारण करने वाले गति चेतना युक्त प्राण 'पज्र' हैं। वे एकत्र सुबद्ध होने से 'सुबन्धु' हैं। आत्मरूप स्वामी को धारण करने वाले होने से वे 'अरि-धायस्' हैं। इस देह में गति उत्पन्न करने से इसमें लगे बैलों के समान होने से वे 'गो' हैं। सात शीर्षण्य प्राण आठवीं वाक् इनको और आत्मा, बुद्धि, मन इन तीन को, और इनके उत्तम व्यापार या चेष्टा सामर्थ्यों को मैं देह के भीतर आकर धारण करता, वश करता हूं।

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

भा०—जो नीति या राजसभा राष्ट्र को वश करने के कार्य में ताडना करने वाली चाबुक के समान सब प्रकार स्वीकार की जाने योग्य, और सब ओर से सुरक्षित होती है वह प्रयत्नशील भृत्यादि के बीच में सबसे अधिक दान करने वाली होकर मुझे सैकड़ों भोग्य, ऐश्वर्य और रक्षा करने के सामर्थ्य प्रदान करती है। (२) 'चेतना' देह पर शासन करने में दिका-सारती होने से कशीका है। शरीर में सर्वत्र वश करने से 'आगधिता', और सर्वत्र निश्चित होने से 'परिगधिता' है। वह यत्नशील प्राणों में सबसे

अधिक यत्नशील होने से 'याशुरी' है। वह सैकड़ों शक्तियों और भोग्य सुखों को देती है।

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥११॥१८॥

भा०—हे राजन्! मुझ राजसभा से सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों पर समीप २ बैठ कर अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार कर, और मेरे कार्यों को स्वल्प या राष्ट्र के लिये हानिकारक, तुच्छ मत समझ। पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत प्रदेशों में रहने वाली भेड़ जिस प्रकार रोम अर्थात् काट लेने योग्य ऊन रूप लोमों से आच्छादित होने से रोमशा है, उसी प्रकार मैं राजसभा भी पृथिवी को धारण पोषण करने वाली समस्त नीतियों की रक्षा करने वाली होकर, काटने और उखाड़ फेंकने योग्य शत्रुओं का अन्त कर देने वाली, और सर्वस्व हूं। (२) ब्रह्मविद्या के पक्ष में—हे योगिन्! मुमुक्षो! तू अति सूक्ष्मता से विचार कर। मुझ ब्रह्मविद्या के छोटे से छोटे हृदयाकाश में उत्पन्न अनुभवों को स्वल्प मत जान। वाणी को धारण करने वाली समस्त चेतना शक्तियों की मैं पालन करने वाली, सर्व भूतात्मस्वरूप होकर लोम २ में व्यापक, अथवा सब दुखों का अन्त कर देने वाली हूं। 'लोमशा' लूयन्ते इति लोमानि तानि स्यति इति लोमशा। रलयोरभेदः छान्दसे। इत्येकादशो वर्गः ॥ इत्यष्टादशोऽनुवाकः ॥

[१२७]

परुच्छेप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ८, ९ अष्टिः। ४, ७, ११ भुरिगष्टिः। ५, ६ अत्यष्टिः। १० भुरिगति शक्वरी ॥ एकादशर्चं सूक्तम्।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥

भा०—मैं सबको सुख, अधिकार और बल देने हारे, सबको अ
और भृति देने वाले, सबको बसाने वाले, शत्रुबल को पराजय करने मे सम
प्रेरक, ऐश्वर्य और विद्या मे प्रसिद्ध, मेधावी पुरुष को नायक रूप
जानूं। जो दानशील वीर पुरुषो को प्राप्त होने वाले सामर्थ्य और स
उत्कृष्ट शक्ति द्वारा आह्वान किये गये सैन्यबल के कारण चमकती हुई ज्वा
से चमकता है।

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २

भा०—हे मेधाविन्! हे शुद्ध आत्मा वाले वा शीघ्रता से कार्य सम्पा
करने हारे! विचारशील विद्वान् पुरुषो और ज्ञान विज्ञानो सहित, स
अधिव पूजनीय, प्राणवान् एवं ज्ञानी पुरुषो मे सबसे बड़े तुझको
प्राप्त हों! सूर्य के समान चारो ओर प्रकाश से और तेज से व्याप
दीर्घदर्शी विद्वानों को अधिकार ऐश्वर्य देने वाले, ज्वालाओ के समान
को धारण करने वाले, सुखो के वर्षक जिस पुरुष को ये सब राज्
प्रविष्ट होकर रहने वाली प्रजाएं, उसे प्रसन्न करने और स्वयं प्रसन्न
के लिये प्राप्त होती है।

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्
परशुर्न द्रुहन्तरः। वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

भा०—वह विविध दीप्ति और तेज से युक्त पराक्रम से खूब चम
रहे। और जिस प्रकार कुल्हाड़ा वृक्षो को खूब अच्छी प्रकार काट गि
है उसी प्रकार वह भी द्रोही जनो को मारने वाला हो। और जिसका
वीर्य, बल, पराक्रम संग्राम मे शत्रुसेना को नाश करता है और वह
विजय करने हारा होकर सैन्य बल को नियम मे रखता है, और

नहीं भागता। वह धनुष से शत्रु वशकारी के समान आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है।

दृळ्हा चिद॑स्मा अनु॑ दुर्यथा॑ विदे तेजि॑ष्ठाभिर॒रणि॑भिर्दाष्ट्य॒-वसेऽग्नये॑ दाष्ट्यव॑से। प्र यः पु॒रूणि॒ गाह॑ते तक्ष॒द्वने॑व शो॒चिषा॑। स्थि॒रा चि॒दन्ना॒ नि रि॑णा॒त्योज॑सा॒ नि स्थि॒राणि॑ चि॒दोज॑सा ॥४॥

भा०—जैसे विद्वान् पुरुष को लोग आदरपूर्वक अन्न, वस्त्र, धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार उस नायक को दृढ, बलवान् सैन्य, स्थायी, धनैश्वर्य प्रजाएं अपनी रक्षा के लिये प्रदान करें। जिस प्रकार अग्नि को अति तीव्रता से प्रज्वलित होने वाली अरणियों या काष्ठों सहित प्रकाश प्राप्त करने के लिये हवि आदि प्रदान करता है उसी प्रकार प्रजाजन अग्रणी नायक की वृद्धि के लिये अति तेजस्विनी शत्रुओं के नाशकारी सेनाओं सहित दृढ ऐश्वर्य अपनी रक्षा के लिये प्रदान करें। जिस प्रकार अग्नि अपनी ज्वाला से वनों को जला कर लुंज पुञ्ज कर देता है उसी प्रकार जो अपने तेज से शत्रु सेना को काट गिराता है, और जो बहुत से सैन्यों को खूब आलोडित कर देता, और जिस प्रकार जाठर अग्नि खाये हुए अन्नों को अपनी शक्ति से पचा डालता, या अग्नि जिस प्रकार अपने पर धरे अन्न आदि खाद्य पदार्थों को ताप से उबाल देता और खाने योग्य बना देता है उसी प्रकार जो अपने ओज से स्थिर शत्रु सैन्यों को अपना भोग्य बना लेता है, प्रजाजन उसको कर आदि दें।

तम॑स्य पृ॒क्षमुप॑रासु धीमहि॒ नक्तं॒ यः सु॒दर्श॑तरो॒ दिवा॑तरा॒द-प्रा॑यु॒षे दिवा॑तरात्। आद॒स्यायु॒र्ग्रभ॑णवद्वी॒ळु शर्म॒ न सू॒नवे॑। भ॒क्तमभ॑क्त॒मवो॒ व्यन्तो॑ अ॒जरा॑ अ॒ग्नयो॒ व्यन्तो॑ अ॒जराः॑ ॥५॥१२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार रात्रि में उत्तम दिन की अपेक्षा भी उत्तम रीति से देखने योग्य और अन्यों को अपने प्रकाश में छिपानेहारा है उसी प्रकार जो परमात्मा शक्तिशाली भक्त जन के लिये दिन के प्रकाश

से भी अधिक अच्छी प्रकार दर्शनीय, उज्ज्वल और स्पष्ट मार्गदर्शी है, इस महान् संसार के रचने हारे उस प्रभु का हम ध्यान पूर्वक रमण करने योग्य आभ्यन्तर चित्त भूमियों में धारण करें और ध्यान करें। उसके उत्तम रीति से ध्यान करने के अनन्तर उसका प्राप्त होना और ग्रहण करना होता है। और वह पुत्र के लिये पिता के घर के समान ही दृढ़ आश्रम हो जाता है। स्वयं किसी की भक्ति न करने हारे भजन करने योग्य उस परम रक्षक प्रभु को प्राप्त होते हुए, उस अजन्मा परमेश्वर में रमण करने हारे, उसमें अपने आपको समर्पण करने हारे ज्ञानी पुरुष, उसकी कामना करते हुए जरा आदि से रहित अमृतरूप हो जाते हैं। इतिद्वादशोवर्गः।

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः। आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा। अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

भा०—वह राजा वायु के प्रबल वेग के समान बड़ा भारी शब्द करने वाला होता है, उत्तम वर्ण युक्त, धन धान्य पैदा करने वाली समृद्ध भूमियों में सबकी अभिलाषा पूरी करने योग्य और शत्रुओं को पीडाकारी सेनाओं में प्रबल गर्जन या आज्ञाकारी होता हुआ प्रजाओं को उनका मन चाहा सुखैश्वर्य प्राप्त करा देने वाला अर्थि-कल्पद्रुम हो। और अग्नि जिस प्रकार यज्ञ का मुख्य आश्रय होता है और यज्ञोपासन में दिये सब चरु पदार्थों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह नायक सुव्यवस्थित राष्ट्र वा सैन्यदल का मुख्य ध्वजा के समान सबसे उच्च और आदरणीय होकर मान आदर में दिये गये उत्तम अन्नों और ग्राह्य ऐश्वर्यों को सब प्रकार से स्वीकार करता है। हर्ष उत्पन्न करने वाले इस नायक के मार्ग को शुभ उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सब कोई प्रेम से ग्रहण करें। लोग अपने कल्याण के लिये इसके कल्याण मार्ग से प्रेम करें।

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो

मुथ्नन्तो दाशा भृगवः । अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

भा०—पाप संकल्पो को भून डालने वाले पुरुष यज्ञ मे चरु आदि देने के लिये जिस प्रकार इस भौतिकाग्नि को मथते हुए कीर्त्तन करते हुए नमस्कार करते हुए उपासना करते है, उसी प्रकार विद्यादि के उपदेष्टा, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष इस महान् राष्ट्रपति को बार २ मथते अर्थात् उसके उत्तम से उत्तम गुणो की परीक्षा लेते हुए, दोनो राजा और प्रजा के हित के लिये, समस्त राज्याधिकार दान करने के लिये, उसका आदर सत्कार करते हुए जब प्रार्थना करते है तब जो शुद्ध, निष्कपट और इन समस्त प्रजाओं को धारण करने मे समर्थ हो वही अग्रणी होकर बसे राष्ट्रों, प्रजाओ और ऐश्वर्यों का स्वामी हो । वही सबको प्रिय लगने वाले गोपनीय खजानो को स्वयं बुद्धिमान् होकर सबको विभक्त करे ।

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे । अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया । अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥

भा०—समस्त राज्य का शासन के भीतर प्रविष्ट प्रजाओं के पालक तेरी हम उपासना करते है, तुझे अपना पालक स्वीकार करते है । जिस प्रकार सब आश्रय और सब सन्तानें अन्नादि भोजन को प्राप्त करने के लिये स्त्री-पुरुष रूप गृहस्थ, या मां बाप, या गृहपति के पास आते है उसी प्रकार हम समस्त प्रजाजन ऐश्वर्यों के भोगने और अपनी रक्षा के लिये सब प्रजाओं के लिये समान निष्पक्षपात रूप से रहने वाले, समस्त प्रजाओं के दमन करने वाले, दण्डव्यवस्था के पालक पुरुष को प्राप्त होते है । और हम ऐश्वर्यों के भोग और न्यायपूर्वक रक्षा के लिये सत्य वाणी को धारण करने वाले, मनुष्यो के बीच अतिथि के समान पूजनीय तुझको हम प्राप्त होते है । सन्ततिजन जिस प्रकार पिता के समीप अन्नादि पदार्थों

को प्राप्त करने के लिये उपस्थित होते हैं उसी प्रकार जिस सर्व पालक के समीप, उसकी गोद और उपासना में स्थित ये सब अमर, मुक्त आत्मा, भोक्ता विद्वान् जन उत्तम ज्ञानों और मोक्ष सुखों को प्राप्त करने के लिये उपासना करते हैं। और विद्वान् दिव्य पुरुषों में सभी ज्ञानी पुरुष उसी की उपासना करते हैं।

त्वम॑ग्ने सह॑सा सह॑न्तमः शुष्मिन्त॑मो जायसे देवता॑तये र॒यिर्न देवता॑तये। शु॒ष्मिन्त॑मो हि ते॒ मदो॑ द्यु॒म्निन्त॑म उ॒त क्रतुः॑। अध॑ स्मा ते॒ परि॑ चरन्त्यजर श्रु॒ष्टीवा॑नो॒ नाज॑र॥ ९ ॥

भा०—हे नायक राजन्! तू सबको पराजित करने वाले बल से सबसे बढ़ कर पराजित करने वाला, और विद्वानों के हितार्थ सबसे अधिक बलवान् है। हे राजन्! तू परम धनवत् सुखदाता है। तेरा दमन या शासन शत्रुओं का सबसे अधिक शोषण करने वाला और सबसे अधिक यशस्वी, और क्रियासामर्थ्यवान् हो। हे जीर्णता या नाश को प्राप्त न होने हारे राजन्! अति शीघ्र कार्यकारी सेवकजन दूत आदि तेरी सेवा करें।

प्र वो॑ म॒हे सह॑सा॒ सह॑स्वत उष॒र्बुधे॑ पशु॒षे नाग्नये॒ स्तोमो॑ बभू-त्व॒ग्नये॑। प्रति॒ यदीं॑ ह॒विष्मा॒न्विश्वा॑सु॒ क्षासु॒ जोगु॑वे। अग्रे॑ रे॒भो न ज॑रत ऋषू॒णां जू॒र्णिर्होत॑ ऋषू॒णाम्॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों का मन्त्रसमूह उत्तम गुणों को प्रकाशित करता हुआ, महान् सामर्थ्य वाले, बल से बलवान्, आलस्य रहित, प्राणियों के परिपोषक और व्यवस्थापक, समस्त भूमियों और चित्त भूमियों में प्राप्त होने वाले परमेश्वर के लिये होवे। और विद्वान् पुरुष जिस प्रकार बड़े ज्ञानवान् पुरुषों के समक्ष विद्या का प्रकाश करता है, उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ता विद्वान् उपासक जिज्ञासु विद्यार्थीजनों को परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानोपदेश करे।

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना ।
महो रायः सुचेतुना । महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥ १३ ॥

भा०—हे ज्ञानवान नायक ! वह तू हमारे अति समीप सबका साक्षी होकर, उत्तम ज्ञानवान् पुरुषो सहित, विद्वान् तथा विजयशील पुरुषो सहित हमे अन्नादि समृद्धि से युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे बलवानो मे सबमे अधिक बलवान् ! तू अच्छी प्रकार से ज्ञान करने के लिये और इस प्रजा का पालन करने के लिये हमे उत्तम बल वीर्य प्रदान कर । हे ऐश्वर्यवन् ! तू बल से उग्र और शत्रुओ का मथन करने वाला होकर स्तुतिकर्त्ता, उपासक विद्वान् पुरुषो को बडा उत्तम बल प्रदान कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१२८]

॥ १२८ ॥ १—८ परुच्छेप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—निचृदत्यष्टि ; ३, ४, ६, ८ विराडत्यष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ५, ७ निचृदष्टिः । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् । विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥

भा०—यह मननशील, विद्याओं का योग्यपात्रो मे दान देने वाला आचार्य, विद्या आदि दान करने मे सबमे उत्तम दाता होकर, विद्या की इच्छा करने वाले जिज्ञासुजनो के व्रतो के अनुकूल अपने कर्त्तव्यो का यथावत् पालन करे । वह विद्वान् पुरुष समस्त श्रवण योग्य उपदेशो का जानने हारा, विद्यार्थी को अपना सखा या मित्र बना लेना चाहता है । वह धन सम्पन्न पुरुष के समान यश की कामना करता है । सदा विघ्न, पीडा आदि रहित होकर वह ज्ञान प्रदान करने मे कुशल पुरुष स्तुतियोग्य वेदवाणी के ज्ञान कार्य के योग्य पद पर विराजे और उसके समक्ष ज्ञान ग्रहण करने हारा विद्यार्थी अच्छी प्रकार सावधान, सुरक्षित, एवं सब

प्रकार उत्तम वस्त्र और यज्ञोपवीत आदि धारण कर, गुरु द्वारा उपनीत होकर वेदवाणी के ज्ञान करने के लिये नियमपूर्वक एवं विनय से समीप विराजे।

तं य॒ज्ञ॒साध॒मपि॑ वातयाम॒स्यृ॒तस्य॑ प॒था नम॑सा ह॒विष्म॑ता दे॒वता॑ता ह॒विष्म॑ता। स न॑ ऊ॒र्जामु॑पा॒भृत्य॒या कृ॒पा न जू॑र्यति। यं मा॑त॒रिश्वा॒ मन॑वे परा॒वतो॑ दे॒वं भाः प॑रा॒वतः॑ ॥ २ ॥

भा०—हम उस अध्यापन वा ज्ञानदान करने वाले विद्वान् पुरुष को सत्यव्यवहार के मार्ग से, शुभ गुणों को प्राप्त करने वा विद्या के उत्सुक शिष्य जनों के हितार्थ, भेंट पुरस्कार सहित विनय द्वारा उत्साहित करें। जिस विद्यादाता पुरुष को, दूर २ देश से आया और आचार्य की गोद में बढ़ने वाला शिष्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रकाशित करता है, वह हमारे बल वीर्यों के धारण कर लेने पर अपने इस सामर्थ्य से कभी क्षीण नहीं होता, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ता है।

एवे॑न स॒द्यः पर्ये॑ति॒ पार्थि॑वं मुहु॒र्गी रेतो॑ वृष॒भः कनि॑क्रद॒द्दध॒द्रेतः॒ कनि॑क्रदत्। श॒तं चक्षा॑णो अ॒क्षभि॑र्दे॒वो वने॑षु तु॒र्वणिः॑। स॒दो दधा॑न॒ उप॑रेषु॒ सानु॑ष्व॒ग्निः पर॑षु॒ सानु॑षु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् अपनी व्यापक होने वाली क्रिया से पृथ्वी के ऊपर विद्यमान पदार्थों को अति शीघ्र व्याप लेता है उसी प्रकार राजा भी अपने गमन साधन रथादि से समस्त पार्थिव लोक को प्राप्त करे। और जिस प्रकार वार २ गर्जने वाला मेघ जल को भूमियों पर बरसाता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा पर सुखों का वर्षण करने वाला एवं सर्वश्रेष्ठ, एवं वृष अर्थात् धर्म मार्ग से चमकने वाला होकर, शत्रुओं को वार २ ललकारता हुआ, वार २ सेना आदि को आज्ञाएं प्रदान करता हुआ, राष्ट्र में ऐश्वर्य और बल वीर्य को धारण करावे। और जिस प्रकार जलप्रद मेघ बड़े वेग से जाने वाला होकर वनों में सैकड़ों पदार्थों को दिखाता हुआ, मेघों में, ऊंचे प्रदेशों में और दूर के गिरिशिखरों पर अपना आश्रय

रखता है उसी प्रकार राजा विजिगीषु होकर, सेवने योग्य ऐश्वर्यों में शीघ्र ही उनको ग्रहण करने वाला होकर, अपने अध्यक्षों द्वारा सैकड़ों कार्यों का विचार करे। और वह उच्चावच कालों में दूरस्थ पर्वतों में अग्नि के समान अपना आश्रय गढ, दुर्ग आदि स्थापित करे।

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति। क्रत्वा यज्ञस्य चेतति क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे। यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ का पुरोहित उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाला होकर, निर्विघ्न समाप्त होने वाले यज्ञ को जानता और अन्यों को जनाता है, और यज्ञकर्म द्वारा यज्ञ का ज्ञापन कराता है, उसी प्रकार उत्तम धर्माचरण कृत्यों का करने वाला, प्रत्येक घर में सबका नायक राजा प्रत्येक दमन या शासन कार्य में, अविनाशी राष्ट्रसंघ का ज्ञान रक्खे, और अपने उत्तम ज्ञान से उपास्य परमेश्वर का भी ज्ञान करे। वह बुद्धिमान् अपने ज्ञान सामर्थ्य से बाण के समान आचरण करे अर्थात् अपने लक्ष्य की ओर आगे बढे। वह समस्त उत्पन्न पदार्थों को देखे और सुव्यवस्थित करे। क्योंकि जिस प्रकार अग्नि घृत द्वारा विशेष कान्ति को धारण करता है उसी प्रकार राजा भी अतिथि के समान प्रतिष्ठित होता, और तेज और पराक्रम से लक्ष्मी का भाजन हो जाता है और राष्ट्र आदि कार्यों का निर्वाहक बन जाता है।

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या। स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना। स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—इस नायक की सेनाओं में अग्रणी पुरुष की आज्ञा में लोग परस्पर मिल कर गठित हो जाते हैं, और वायु के समान तीव्र आक्रामक वीरजनों के जो भोगयोग्य ऐश्वर्य हैं वे सब वशवर्त्ती राजा को ही प्राप्त

हों। वह अग्रणी पुरुष राष्ट्र मे बसे प्रजाजनो के बल के सहित शत्रुओ के नाशकारी बल को प्राप्त करता है। वह हमे अति कुटिल पापाचार और पापमय कुटिल शिक्षा से पालन करता है। इति चतुर्दशो वर्ग. ॥

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्। विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे। विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥६॥

भा०—(१) विद्वान् आचार्य के पक्ष मे—समस्त विद्याओ मे प्रविष्ट गुरु गुणो से महान्, अति अधिक मतिमान्, स्वय अपने अधीन समस्त शिष्यो को बसाने हारा होकर, दायें हाथ मे रखे आमलक के समान प्रत्यक्ष रूप से समस्त ज्ञानैश्वर्य को धारण करे। वह उस विद्यारूप धन को सूर्य के समान प्रदान करे। वह केवल उसे यश या धन की अभिलाषा से प्रदान न करे। बाणो को अपने भीतर धारण कर लेने वाले तर्कन के समान समस्त कामनाओ को अपने भीतर अन्तर्मुख कर लेने वाले विद्वानो के बीच उत्तम प्रदान करने योग्य ज्ञानोपदेश और आचार को सब ओर से सगृहीत करके प्रदान करे। अग्नि या सूर्य या दीपक या मशाल के समान मार्ग दिखाने वाला विद्वान् पुरुष सभी उत्तम सदाचारी, सत्कर्म करने वाले पुण्याचरणशील जिज्ञासु को वरण करने योग्य ज्ञानैश्वर्य प्रदान करे। और ज्ञान के समस्त द्वारो को विशेष रूप से खोल दे। (२) इसी प्रकार राजा सर्वहितकारी होने से 'विश्व' है। वह समस्त ऐश्वर्य को अपने हाथ मे रखे। वह सब इच्छुक याचको को दान करे। प्रजा के लिये ऐश्वर्य प्राप्त करने के सब द्वार खोल दे।

स मानुषे वृजने शन्तमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः। स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते। स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

भा०—वह विद्वान् पुरुष, मुख्य नायक और राजा मनुष्यो वा प्रजाओं

के मार्ग में अति शान्तिदायक और हितकारी रूप में स्थापित किया जाय। वह विद्वान् और नायक पुरुष एक दूसरे से मिल कर करने योग्य कार्यों तथा संग्रामों में सबसे उत्कृष्ट पद के योग्य हो। वह सब उत्तम कर्मों में प्रजाओं का पालक, सबका प्रिय राजा हो। वह प्रधान पुरुष अधीन प्रजाजनों के अच्छी प्रकार बनाये गये ग्रहण करने वा दान देने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों और स्तुति वचनों को प्राप्त हो। वह नायक विद्वान् सब दुःखों के नाश करने वाले सेनापति आदि के बल से और बड़े भारी विजिगीषु पुरुष के हिंसाकारी सैन्य बल से भी हमारी रक्षा करने में समर्थ हो।

अ॒ग्निं होता॑रमीळते॒ वसु॑धितिं प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं न्ये॑रिरे हव्य॒वाहं॒ न्ये॑रिरे। वि॒श्वायुं॑ वि॒श्ववे॑दसं॒ होता॑रं यज॒तं क॒विम्। दे॒वासो॑ र॒ण्वमव॑से वसू॒यवो॑ गी॒र्भी र॒ण्वं व॑सू॒यवः॑ ॥ ८ ॥ १५ ॥

भा०—विद्वान् जन ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले, ज्ञानवान् और नायक, ऐश्वर्यों के धारण करने वाले, प्रिय, सबसे अधिक ज्ञान देने वाले, अल्पज्ञों को चेताने वाले, मतिमान्, ऐश्वर्यवान्, उत्तम अन्न आदि पदार्थों को धारण करने वाले पुरुष का आदर करते हैं। उसको आदर से प्राप्त होते हैं। धनाभिलाषी पुरुष जिस प्रकार वाणियों या स्तुतियों से रमण करने हारे धनाढ्य की स्तुति करते हैं, और ज्ञान की कामना करने हारे २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने की इच्छा करने वाले उत्तम विद्योपदेशक पुरुष को वेदवाणियां सहित प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष समस्त ज्ञानभण्डार को प्राप्त होने वाले, एवं समस्त मनुष्यों के स्वामी, समस्त ऐश्वर्य और ज्ञानों के स्वामी, ज्ञानैश्वर्य के दाता, पूजनीय, क्रान्तदर्शी पुरुष को अपनी रक्षा के लिये नियमानुकूल प्राप्त हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१२६]

परुच्छेप ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १, २ निचृदत्यष्टिः । ३ विराडत्यष्टिः ।

४ अष्टिः । ६, ११ भुरिगष्टिः । १० निचृदष्टिः । ५ भुरिगतिशक्करी । ७ स्व-
राडतिशक्करी । ८, ९ स्वराट् शक्करी । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि । सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् । सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक राजन् ! आप रमण करने योग्य राष्ट्र और रथादि के बने सैन्य को, राष्ट्र यज्ञ के लिये, खूब बलवान् करके सन्मार्ग पर ले जाने में समर्थ है । अतः हे दोष रहित ! अनिन्दनीय ! हे सबके प्रेरणा करने हारे नायक ! तु उसको आगे ले चल, उसको उन्नति मार्ग पर चला । अश्वों को वश करने में समर्थ सारथी जिस प्रकार वेगवान् अश्व को अपने प्रयोजन में लगा लेता है उसी प्रकार तू भी सबको वश करने में समर्थ होकर अति शीघ्र ही उस बलवान्, वेगवान् सैन्य और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र तथा ज्ञानवान् विद्वज्जन सबको इष्ट सुखमय प्रयोजन के लाभ के लिये नियुक्त कर । हे सब कार्यों को शीघ्रता से करने हारे ! तू विद्वान् मेधावी पुरुषों की वाणी के समान ही हम प्रज्ञावान् पुरुषों के बीच वाणी का प्रयोग कर ।

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः । यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता । तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२॥

भा०—हे सेना और सभा के स्वामिन् ! जो तू कई सेनाओं, संग्रामों, और प्रजाओं के बीच में उत्तम नेता पुरुषों के सहित शत्रुओं को संग्राम में ललकारने के लिये समर्थ होता है, वह तू हमारे प्रजाजनों के वचन और न्याय-व्यवहार श्रवण कर । क्योंकि जो पुरुष शूरवीर पुरुषों के साथ मिलकर प्रजाओं को सुख प्रदान करने में समर्थ होता है, और जो विद्वान् पुरुषों के द्वारा ज्ञान और ऐश्वर्य और अन्न प्रदान करने या युद्ध पार करने

मे समर्थ होता है, उस ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष को अधिकारवान् पुरुष भी सत्संग योग्य और आश्रितजनों के सेचन और संवर्धन करने वाला जानकार, अतिवेगवान् बलवान् अश्व के समान आश्रय करते हैं, उसे समस्त शासकों का भी शासक बना देते है।

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम्। इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे। मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते! हे शूरवीर! तू निश्चय से दर्शनीय है। जिस प्रकार सूर्य, किरणों से खिंचे जल मे समस्त पृथिवी को आच्छादन करने वाले वातावरण को पूर्ण कर देता है और वर्षणशील मेघ को पूर्ण करता और बरसा देता है उसी प्रकार हे सेनापते! तू भी देह की त्वचा के समान राज्य की रक्षा करने वाले, सुखों के वर्षक रक्षक पुरुषों को ऐश्वर्य से सेंचता है, उनका परित्राण करता है। सूर्य जिस प्रकार व्यापनशील मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू अपने पर आ चढने वाले, फैले हुए, या हिंसक मनुष्य को दूर कर। और मैं प्रजा सुख की कामना करने वाले, शत्रुओं को रुलाने वाले, एवं सदुपयोग देने वाले, सब के स्नेही, और प्रजा को मरण से बचाने वाले, सर्व श्रेष्ठ, सब कष्टों के वारक, उत्तम सुख देने वाले, अपने ही पराक्रम से यश ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले तेरे लिये मैं नाना प्रकार के प्रसिद्धिजनक वचन कहता हूं।

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम्। अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित्। नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! हम लोग सबके मित्र, दीर्घायु, उत्तम रीति से शत्रुओं को पराजय करने वाले, सबके सहायक, सग्रामों और ऐश्वर्य, ज्ञान, बल के कार्यों मे अति सहनशील, ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष

को हमारे अपने और आप सब लोगों के इष्ट सुख लाभ के लिये हम प्राप्त करना चाहते हैं। हे राजन्! हे विद्वन्! तू कई संग्रामो मे हमारी रक्षा के लिये विशाल धन की रक्षा कर।

नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिरराणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः। नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे। विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ॥ ५॥ १६॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष! अति अधिक तेज वाली लकड़ियो से युक्त अग्नि भी जिस प्रकार शान्त हो जाता है इसी प्रकार हे शूरवीर पुरुष! तू अति भयंकर और अतितेज से युक्त, और वेग से आगे बढने वाली रक्षाकारिणी सेनाओ से युक्त होकर भी ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् पुरुष की बहुत अधिक बढ़ी बुद्धि या ज्ञान के आगे झुक, उसका आदर कर। पूर्वकाल के समान ही तू स्वयं अपराध और पाप से रहित रहकर हमे सन्मार्ग पर चला। तू सब कुछ जानता है। तू अग्नि के समान समस्त कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाला होकर मनुष्यो के सब दु:खो को दूरकर, और सुख द्वारा आज्ञा और उपदेश द्वारा पालन कर। इति षोडशो वर्गः॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति। स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्। अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्॥ ६॥

भा०—चन्द्रमा के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले, प्रेम से आर्द्र हृदय वाले उस शिष्य को मैं विद्वान् पुरुष उत्तम २ ज्ञान का उपदेश करूं। जो स्वीकार करने योग्य शिष्य बन कर इच्छा वाला होकर ज्ञान को प्राप्त होता है, और बाधक शत्रुओं का नाश करने वाले वीर पुरुष के समान बाधक कारणों का नाश करता हुआ, मनन करने योग्य ज्ञान और मननपूर्वक वत को प्राप्त करता है, वह अपने आप ज्ञान साधनो से हमारे निन्दनीय आचार विचारो को दूर भगा दे और विपरीत मिथ्याज्ञान

को दूर करे। पापाचार की शिक्षा देने वाला पुरुष क्षुद्र जन के समान नीचे जा गिरे।

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्। दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि। आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः॥ ७॥

भा०—हम लोग ज्ञान उत्पन्न करने वाली वाणी द्वारा उस ज्ञान योग्य ब्रह्मपद को प्राप्त करें और उसका अन्यों को उपदेश करें। हे ऐश्वर्यवन्! हम ऐश्वर्य के समान सुखप्रद उत्तम वीर्यवान् पुरुष को भी प्राप्त करें। उत्तम मननशील पुरुषों द्वारा उपदेश प्राप्त करके हम विपरीत ज्ञान के नाशक परमेश्वर या आत्मा के रूप को प्रबल इच्छा या प्रेरणा द्वारा प्राप्त करें। दानशील या सत्संग करने योग्य उत्तम पुरुष को जिस प्रकार यशसूचक स्तुतियों द्वारा पहुँचते है उसी प्रकार हम उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को सत्य और उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुतियों से खूब भली प्रकार अपने साथ जोड लें, उसको अपने हृदय मे योग द्वारा ध्यान कर तन्मय हो जावें। (२) इसी प्रकार वीर्यवान् धनैश्वर्यवान् दुष्टों के हिंसक, सत्संग योग्य राजा और आचार्य को भी उत्तम ज्ञान ज्ञानवानों, यश अन्नवर्धक क्रियाओं और स्तुतियों सहित मिलें, उससे अपना सम्पर्क या सम्बन्ध बढावें।

प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम्। स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः। हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो और मित्र वर्गो! शत्रुविनाशक सेनापति अपने यशकारी पराक्रम के कामों मे तुम्हारी और हमारी दोनों की रक्षा के लिये और दुष्ट मतवाले पुरुषों के विनाश करने के लिये, और दुष्टाचार वाले दुर्दमनीय मनुष्यों के तोड फोडने के लिये अच्छी प्रकार समर्थ हो।

जो ज्वर या जरा के समान जीवन का नाश कर देने वाली सेना, प्रजाजनों को खा जाने वाले शत्रुपुरुषों से हमारा विनाश कर देने के लिये भेजी जावे वह अपने आप विनाश को प्राप्त हो। वह परास्त होकर हम तक न पहुँचे और लौट कर अपने देश भी न पहुंचे।

त्वं न॑ इन्द्र राया परी॑णसा याहि प॒थाँ अ॑ने॒हसा॒ पुरो॑ याह्य॒रक्षसा॑। सचे॑स्व नः परा॒क आ सचे॑स्वास्तमी॒क आ।
पा॒हि नो॑ दूरादा॒राद॒भिष्टि॑भिः सदा॑ पाह्य॒भिष्टि॑भिः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! तू बहुत से ऐश्वर्य से युक्त होकर, पाप और हिंसा से रहित तथा दुष्ट पुरुषों से रहित, निर्भय, निर्विघ्न मार्ग से हमारे नगरों को आया जाया कर। दूर देश में भी तू हमें प्राप्त हो, और दूर देश से भी तू आकर सब प्रकार गन्न, दुग्धदान ओषधिदान और सत्संगों द्वारा हमारी रक्षा कर। और उत्तम इच्छाओं, कामनाओं, आज्ञाओं और प्रेरणाओं से हमारी रक्षा कर।

त्वं न॑ इन्द्र राया तरू॑षसो॒ग्रं चि॑त्वा महि॒मा स॑क्ष॒दव॑से म॒हे मि॒त्रं नाव॑से। ओजि॑ष्ठ त्रात॒रवि॑ता॒ रथं॒ कं चि॑दमर्त्य। अ॒न्यम॒स्मद्रि॑रिषेः॒ कं चि॑दद्रिवो॒ रिरि॑क्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू सकटों से पार करने और शत्रुओं का नाश करने वाले ऐश्वर्य से हमारी रक्षा कर। बलवान् सर्वस्नेही, और मृत्यु से रक्षा करने वाले तुझको महा रक्षा के लिये सामर्थ्य प्राप्त हो। हे सबसे अधिक ओजस्विन्! हे सबके पालक, हे सबके रक्षक! हे आसाधारण पुरुष! तू अति सुखकारी वेगवान् रथ, बल एवं रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कर। हे उत्तम पर्वतों की भूमि के स्वामिन्! हम पर हिंसा का प्रयोग करते हुए शत्रु का भी विनाश कर, उसको दण्ड दे।

पा॒हि न॑ इन्द्र सुष्टुत स्रि॒धो॑ऽवया॒ता स॒दमिद्दु॑र्म॒ती॒नां दे॒वः सन्दु॑र्मती॒नाम्। ह॒न्ता पा॒पस्य॑ र॒क्षस॑स्त्रा॒ता विप्र॑स्य॒ माव॑तः। अधा॒ हि त्वा॑ जनि॒ता जीज॑नद्वसो रक्षो॒हणं॑ त्वा॒ जीज॑नद्वसो ॥११॥२७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन ! हे उत्तम स्तुति योग्य ! तू देव हमें दुःखजनक पाप से बचा । तू सदा ही दुष्ट मति वाले पुरुषों और उनकी दुष्ट कामनाओं को नीचे गिरा देने वाला है । तू विघ्नकारी पापाचारी पुरुष का मारने वाला दण्ड देने वाला है । तू मेरे जैसे आत्मवान् सच्चरित्र विद्वान् पुरुष का त्राण करने वाला हो । हे सबको अपने आश्रय पर बसाने वाले ! उत्पादक परमेश्वर ने तुझको उत्पन्न किया है और तुझको दुष्ट पुरुषों का नाश करने और दण्ड देने हारा पैदा किया और बनाया है ।

[१३०]

॥ १३० ॥ १—१० परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १, ५ भुरिगष्टिः । २, ३, ६, ९ स्वराडष्टिः । ४, ८, अष्टिः । ७ निचृद्-त्यष्टिः । १० विराट् त्रिष्टुप् ॥

एन्द्र॑ या॒ह्युप॑ नः परा॒वतो॒ नायमच्छा॑ वि॒दथा॑नीव॒ सत्प॑ति॒रस्तं॒ राजे॑व॒ सत्प॑तिः । हवा॑महे त्वा व॒यं प्रय॑स्वन्तः सु॒ते सचा॑ । पु॒त्रासो॒ न पि॒तरं॒ वाज॑सातये॒ मंहि॑ष्ठं॒ वाज॑सातये ॥ १ ॥

भा०—बलवान् पुरुषों का पालक नायक जिस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले संग्राम के नाना साधनों को प्राप्त होता है, और जैसे राजा सत्य धर्मों का पालक होकर राज सभा में प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे विद्वान् ! तू हमें दूर देशों में भी प्रेमवश इस वायु के समान हमें प्राप्त हो । तू सत्यधर्मों का पालक होकर ज्ञानों को और निवास योग्य स्थान को प्राप्त कर । हम लोग परस्पर के संगठन द्वारा उत्तम प्रयत्न से युक्त होकर ऐश्वर्य या धन के विभाग के लिये पुत्र जिस प्रकार अपने दानशील और पूजनीय तुझको स्वीकार करते, तेरी शरण आते हैं ।

पिबा॒ सोम॑मिन्द्र सुवा॒नमद्रि॑भिः॒ कोशे॑न सि॒क्तम॑व॒तं न वंस॑ग-स्तातृषा॒णो न वंस॑गः । मदा॑य हर्य॒ताय॑ ते तुवि॒ष्टमा॑य॒ धाय॑से । आ त्वा॑ यच्छन्तु ह॒रितो॒ न सूर्य॒मह्ना॒ विश्वे॑व॒ सूर्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! शिलाखण्डो से कूट पीस कर निकाले गये शान्तिदायक औषधिरस को जिस प्रकार पिपासित पुरुष पान करता है और जिस प्रकार अन्तरिक्षगत मेघ द्वारा सींचे गये जल से पूर्ण जलाशय मे प्यासा बैल आकर जल पान करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी विद्वानो से उपदेश किये गये उत्तम मार्ग मे प्रेरणा करने वाले ज्ञानोपदेश को अमृत के समान पान कर। यह सब ऐश्वर्य तेरे हर्ष और तृप्ति करने के लिये है, तेरी कामना की पूर्त्ति के लिये और तेरे लिये नाना प्रकार के ऐश्वर्य सुखो और प्रजाओ की वृद्धि के लिये, और तेरे प्रजा पालन, धारण पोषण के लिये है। सूर्य को जिस प्रकार समस्त दिन आश्रय करते है और जिस प्रकार समस्त दिशाएं और प्रकाश की किरणें सूर्य को धारण करती है और उसी के आश्रय रखती है उसी प्रकार समस्त दिशावासी प्रजाजन और समस्त अपराहत और आगे बढने वाले सैन्य गण तुझे धारण करें।

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि। व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः। अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः॥ ३॥

भा०—पर्वतो मे खूब सुरक्षित पक्षिणी के गर्भ अण्डे को जिस प्रकार पक्षी खोज लेता है, उसी प्रकार अग्नि और सूर्य के समान अति तेजस्वी पुरुष अनन्त शस्त्रास्त्र अर्थात् शत्रुसेना के बीच छिपे हुए ग्रहण करने योग्य अंश को और इस पृथिवी की गुफा मे छिपे खजाने खोज ले और गौओं के समूह को जिस प्रकार दण्डवान् गोपाल अपने वश करता है उसी प्रकार अति तेजस्वी पुरुष भी वज्र अर्थात् समस्त शस्त्रास्त्रबल से सम्पन्न होकर भूमियो के समूह या गमन करने योग्य मुख्य मार्गों को अपने अधीन करने की इच्छा करे। जिस प्रकार गृहपति ढके हुए गृह के द्वारो को खोलता है उसी प्रकार राजा सब ओर से सुरक्षित तथा शत्रुओ को दूर से ही वारण कर देने वाली प्रेरणा करने योग्य सेनाओ को खोले, उनको शत्रु पर जा टूटने की आज्ञा दे।

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यद् हिहत्याय सं श्यत् । सं विव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना । तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य तीक्ष्ण प्रकाश को अन्धकार के नाश करने और मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये चारों ओर फेंकता है, और जिस प्रकार मेघ या विद्युत् को और प्रहारकारी हिमकण को बरसाता है उसी प्रकार शत्रुनाशक सेनापति और राजा अपनी वृद्धि करता हुआ, शत्रुओं का नाश करता हुआ बाहुओं में तीक्ष्ण और बहुत दूर तक जाने वाले शस्त्रादि हथियार को शत्रु पर चलाने के लिये और अभिमुख बढ़े चले आते हुए शत्रु को मारने के लिये खूब तीक्ष्ण करे और सैन्य को खूब उत्तेजित करे। हे शत्रुओं के नाश करने हारे ! काटने वाला जिस प्रकार वन में उत्पन्न बड़े वृक्षों को कुल्हाड़े से काट गिराता है उसी प्रकार तू पराक्रम शक्तिमान् सैन्य बल और दृढ़ सामर्थ्य से युक्त होकर सेनासमूह से युक्त शत्रुओं को सर्वथा काट डाल।

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव । इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् । धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—मेघ जिस प्रकार अनायास ही नदियों को समुद्र की ओर बहा देता है उसी प्रकार हे सेनापते ! तू भी गमन करने और आक्रमण करने के लिये रमण करने के साधनों वा वेग से चलने वाले रथों और संग्राम करने वाले वीर पुरुषों को तैयार कर। रक्षा करने वाली सेनाएं या सस्थाएं एकत्र होकर अक्षय और सबके लिये समान रूप से उपभोग करने योग्य द्रव्यमय कोश को धारण करें। अथवा वे शत्रु से न नाश होने वाले सबके प्रति निष्पक्ष अभिलषित पूज्य नायक को प्रधान पद पर नियुक्त करें। वे सेनाएं तथा संस्थाएं समस्त ऐश्वर्य का दोहन करने वाली

दुधार गौओं के समान मननशील प्रजाजन के हित के लिये और सब प्रकार के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाली हो।

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः। शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्। अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ६

भा०—उत्तम कारीगर जिस प्रकार वेग से चलने वाले रथ को तैयार करता है, इसी प्रकार हे विविध ऐश्वर्यों से प्रजाओ को पूर्ण करने हारे राजन्! सुकर्मा, मनीषी और ज्ञान का लाभ करने वाले और शिष्य जन तुझ राजा की उत्साह वृद्धि के लिये इस वाणी को प्रकट करते है। हे राजन्! सुख के प्राप्त करने के लिये तुझ राजा को प्रजाजन अति तेजस्वी बनाते है। सग्रामो के अवसरो मे नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त करने और बल को बढाने के लिये वीर पुरुष संग्राम शूर तुझ नायक को, लडाऊ, वेगवान् अश्व के समान सुशोभित और प्रशसित करते हुए आगे बढते है।

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो। अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्। महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

भा० —हे सेनापते! रक्षणसामर्थ्य तेज और अभिमत ऐश्वर्य के देने वाले और प्रजाओं के पालन मे समर्थ राजा की वृद्धि के लिये तू ९० अर्थात् अनेक शत्रुपुरो को तोड। हे युद्ध मे अपने कर चरणादि के कौशल दर्शाने हारे! तू बडे दानशील जन की वृद्धि के लिये और अतिथि के समान पूजनीय पुरुषो को उत्तम वाणी एव दुग्धादि उत्तम खाद्य पदार्थ और भूमि आदि के देने वाले पुरुष के उपकार के लिये, प्रजा के शान्ति और कल्याण के नाश करने वाले और शस्त्रधारी पुरुष को स्वयं प्रचण्ड भयकर होकर पर्वत के समान उच्चपद राजसिंहासन से नीचे गिरा दे। और

तू पराक्रम से समस्त संग्रामों का या संग्रामकारी शत्रु सैन्यों का विनाश कर।

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु। मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत्। दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति समस्त संग्रामों और हर्ष के अवसरों में सबके शरण योग्य, विद्या आदि गुणों में श्रेष्ठ, अन्यों को धन और अन्न आदि देने और राजा को कर देने वाले प्रजाजन की अच्छी प्रकार रक्षा करे। वह अनेक प्रकार के सेना आदि रक्षा के साधनों से सम्पन्न होकर सुख और ऐश्वर्यों से राष्ट्र को सींच कर बढ़ाने वाले संग्रामों में दानशील श्रेष्ठ प्रजाजन की रक्षा करे। मनुष्य मात्र के हित के लिये व्यवस्था के न पालन करने वाले उच्छृंखल दुष्ट पुरुषों का शासन करे। और उनके मुख आदि को काला करके, अपमानित करके दण्ड दे। और प्रजा के धनादि की तृष्णा से लोलुप पुरुष को सूखे काष्ठ को अग्नि के समान जला दे। और मारते हुए शत्रुगण को भी सर्वथा भस्म ही कर दे।

सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति। उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे। सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने बड़े भारी बल से और तेज से प्रकट होकर ग्रहचक्र को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है, उसी प्रकार सबको वश में चलाने वाला तेजस्वी राजा अपने बल पराक्रम और प्रभाव से समस्त राष्ट्रचक्र को अच्छी प्रकार धारण करे। तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार समीप प्राप्त देश में अन्धकार को खण्ड २ करता है उसी प्रकार राजा राजकीय लाल पोषाक पहन कर समीप प्राप्त होने पर सबकी वाणी को हर ले अर्थात् उसके सामने आतंक से किसी को कुछ कहने का साहस न

रहे। वह सबका शक्तिशाली शासक होकर प्रजाजन से कर आदि ऐश्वर्य ले। हे क्रान्तप्रज्ञ ! कान्तिमान् सूर्य जिस प्रकार दूर आकाश से प्रकाश करने के लिये दूर २ के लोकों में पहुंचता है उसी प्रकार सब प्रजाओं को चलाने वाला पुरुष भी प्रजाओं की रक्षा करने के लिये दूर दूर के देशों तक जावे। और गति वेग से जाने वाला अन्धकारनाशक प्रकाश जिस प्रकार समस्त सुखों को देता और सभी दिनों वैसा ही क्षिप्रकारी और अन्धकार का नाशक बना रहता है उसी प्रकार अतिक्षिप्रकारी और शत्रुनाशक और धनों का शीघ्र विभाग करने हारा राजा भी विचारशील पुरुषों के समान सुखकारी ऐश्वर्यों को विभक्त करे, और सब दिनों ही वैसा ही क्षिप्रकारी, शत्रुनाशक और धनैश्वर्य का विभाजक बना रहे।

स नो नव्ये॑भिर्वृषकर्मन्नु॒क्थैः पुरां॑ दर्तः पा॒युभिः॑ पाहि श॒ग्मैः।
दि॒वो॒दा॒सेभि॑रिन्द्र॒ स्तवा॑नो वावृधी॒था अहो॑भिरिव॒ द्यौः ॥१०॥१६॥

भा०—हे धाराएं वर्षाने वाले मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा करने वाले राजन्! हे शत्रुओं के पुरों, गढों नगर के परकोटों को तोड़ने हारे! वह तू नये नये, उत्तम से उत्तम, अति प्रशंसनीय एवं गुरुओं द्वारा उपदेश करने योग्य सुख साधनों और रक्षा करने के उपायों से हम प्रजाजनों की रक्षा कर। जिस प्रकार दिनों अर्थात् अपने प्रकाशों से सूर्य वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी ज्ञानप्रकाश और मनुष्यों की अभिलाषायोग्य समस्त व्यवहारयोग्य, दिव्य पदार्थों के देने वाले विज्ञानवान् गुरुजनों से उपदेश किया जाकर, शिक्षित होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो।

[१३१]

परुच्छेप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदत्यष्टिः। ४ विराडत्यष्टिः। ३, ५, ६, ७ भुरिगष्टिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम्।

इन्द्रा॑य॒ हि द्यौरसु॑रो॒ अन॑म्न॒तेन्द्रा॑य म॒ही पृ॑थि॒वी वरी॑मभिः-

द्युम्नसाता वरीमभिः। इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः। इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार यह नक्षत्रमण्डलमय आकाश और अपने प्रबल क्षोकों से सब पदार्थों को उथल पुथल कर देने वाला महान् वायुमय अन्तरिक्ष या विद्युत् वरण करने योग्य किरणों से प्रकाश प्राप्त करने के लिये अन्धकार के नाशक और जलों और मेघों के भेदक सूर्य के समक्ष झुकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वानों और पुरुषों से राजसभा और शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला बलवान् सैन्यसमूह उपायों से यश और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा के समक्ष आदर से झुके। जिस प्रकार समस्त किरणगण सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार समान रूप से प्रीति और सेवा करने हारे विजयशील, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पुरुष भी उसको अपने आगे नायक के समान धारण करें। समस्त मनुष्योपयोगी ऐश्वर्य उसी ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के निमित्त दिये जावें। और वे सब पुनः सर्व मनुष्यों के हितकारी हों।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि। इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२॥

भा०—हे राजन्! तुझको एकमात्र बलवान् एवं सब ऐश्वर्यों का वर्षक मानते हुए, या स्वयं महावृषभ के समान क्रोध से प्रतिस्पर्द्धाशील वीर पुरुष पृथक् पृथक् सुखमय राज्य को स्वयं भोगने की कामना से युक्त होकर भी समस्त ऐश्वर्यों और शासन कार्यों पर भी एक समान निष्पक्षपात तुझको ही प्रतिपालन करते हैं, तेरी ही आज्ञा और अनुमति की ही प्रतीक्षा करते हैं। नदी से पार पहुँचा देने वाली नाव के समान उस तुझको ही बल के धारण करने के प्रमुख पद पर संग्राम सागर से पार करने वाले एवं पालन योग्य अन्नादि के दाता रूप से धारण करें। ज्ञान और

पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले ज्ञानोपार्जक पुरुष दान योग्य द्रव्यो से जिस प्रकार आचार्य को सन्तुष्ट करते है उसी प्रकार पुरुषार्थी लोग राजा को भी दान योग्य ऐश्वर्यों से और स्तुति योग्य वचनो तथा सेना समूहो से अपने मे धारण करे।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! रक्षा चाहने वाले स्त्री पुरुषो के जोडे सब प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते हुए तुझे प्राप्त होकर विविध दुःखो को नाश करने मे समर्थ होते हैं। वे सब प्रकार अपना आत्मोत्सर्ग करने हारे, सब कुछ सहने वाले होकर गौओं के हितकारी बाडे के समान आश्रयप्रद लोको को शरण रूप से प्राप्त होने योग्य आश्रय के लाभ के लिये तुझको प्राप्त होकर विशेष रूप से यत्न करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! तू जब गौ आदि पशुओ की समृद्धि की कामना करने वाले, सुख को प्राप्त होने वाले, दो जनो, अर्थात् स्त्रीपुरुष गृहदम्पति को भली प्रकार सुख सामग्री प्राप्त कराता उनको एकत्र रखता और उनको उत्तम ज्ञान प्रदान करता है तभी सहयोग से उत्पन्न होने वाले सुखो के वर्षण करने वाले बलवान् पुरुषो के बने सैन्य और साथ होने वाले शस्त्रास्त्र बल वीर्य, पराक्रम को भी प्रकट करता है।

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते। महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! तेरा पालन और तेरे राष्ट्र बल को पूर्ण करने वाले प्रजाजन तेरे इस प्रत्यक्ष दीखने वाले वीर्य, बल पराक्रम को जानें, जब तू सब शत्रुओ को पराजय करता हुआ उनकी शरत् के समय अर्थात् युद्ध

यात्रा काल के उपयोगी नगरियों को नीचे गिरा देता है। हे बल के स्वामिन्! तू उस २ नाना प्रकार के सन्धि द्वारा तुझसे न आ मिलने वाले तथा तुझे कर न देने वाले पुरुष को अच्छी प्रकार शासित और दण्डित कर। हे राजन्! तू इन आप्त प्रजाजनों को प्रसन्न करता हुआ और स्वयं भी प्रसन्न होता हुआ, विशाल पृथिवी और जलों को तथा पृथिवी-निवासी प्रजाजनों और प्राणिवर्गों को अपने वश कर।

आदित्ते॑ अ॒स्य वी॒र्य॑स्य चर्किर॒न्मदे॑षु वृषन्नु॒शिजो॒ यदावि॑थ सखीय॒तो यदावि॑थ। च॒कर्थ॑ का॒रमे॑भ्यः॒ पृत॑नासु॒ प्रव॑न्तवे। ते अ॒न्याम॑न्यां न॒द्यं॑ सनिष्णत श्रव॒स्यन्तः॑ सनिष्णत ॥ ५ ॥

भा०—हे सब सुखों के और ऐश्वर्यों के वर्षण करने वाले राजन्! तू जो अपने यश, धर्म, अर्थ की कामना करने वाले पुरुषों की रक्षा करता है और जो तू मित्र के समान वर्त्ताव करने वाले सहायक जनों की रक्षा करता है, तभी वे हर्षों और उत्सवों के अवसरों में तेरे इस बल पराक्रम की वृद्धि करते हैं। तू संग्रामों में इनके हितार्थ उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिये उनके कार्य विभाग नियत कर। वे पृथक् २ अपनी समृद्धि को भोग करें और अन्न, यश और ऐश्वर्य की वृद्धि की कामना करते हुए दान भी करें।

उ॒तो नो॑ अ॒स्या उ॒षसो॑ जु॒षेत॒ ह्य॒१॒॑र्कस्य॑ बोधि ह॒विषो॒ हवी॑मभिः॒ स्व॑र्षाता॒ हवी॑मभिः। यदि॑न्द्र॒ हन्त॑वे॒ मृधो॒ वृषा॑ वज्रि॒ञ्चिके॑तसि। आ मे॑ अ॒स्य वे॒धसो॒ नवी॑यसो॒ मन्म॑ श्रुधि॒ नवी॑यसः ॥६॥

भा०—राजा इस उस उषाकाल के और सूर्य के ग्रहण करने योग्य व्रत और आचरण का सेवन करे। और हमें ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और कर्मों द्वारा, सुख ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, ज्ञानवान्, प्रबुद्ध तथा जागृत और सचेत कर। हे शस्त्र बल के धारण करने हारे राजन्! जिसमें तू प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने में समर्थ होकर, संग्रामकारी शत्रु सेनाओं के दण्ड देने और मारने के लिये खूब अच्छी प्रकार उपाय करे

इसलिये तू मुझ इस कार्यविधान करने में कुशल नवीन २ विद्याओं को ज्ञान करने वाले विद्वान् पुरुष के मनन करने योग्य ज्ञान का श्रवण कर।

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम्। जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः। रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः॥ ७॥ २०॥

भा०—हे शूरवीर राजन्! सेनापते! हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! तू बल पराक्रम तथा ऐश्वर्य में बढ़ता हुआ, और हमें हृदय से चाहता हुआ, शत्रुभाव दर्शाने वाले मारने योग्य उस मनुष्य को शस्त्र बल से मार, जो हम पर पाप या घात करना चाहता है। हे लोकविख्यात! तू उत्तम यशस्वी प्रजाओं के कष्टों को उत्तम रूप से श्रवण करने हारा होकर श्रवण कर। मार्ग में आये विघ्न के समान समस्त प्रकार की दुर्बुद्धि और सब प्रकार के दुष्टबुद्धि वाले जन दूर हों। इति विंशो वर्गः॥

[१३२]

परुच्छेप ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ विराडत्यष्टिः। २ भुरिगतिशक्वरी। ४ निचृदष्टिः॥ षड्ऋचं सूक्तम्॥

त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः। नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते। अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम्॥ १॥

भा०—हे परमैश्वर्यवन्! हम लोग तेरी सहायता से और तेरे से सुरक्षित रहकर सेना वृद्धि करके युद्ध करने के इच्छुक शत्रुओं को, पूर्वज पुरुषों द्वारा सम्पादित धनैश्वर्य की रक्षा के लिए पराजित करें। हमसे हिस्सा बांट कर उपभोग करने के इच्छुक जनों को साथ मिलाकर अच्छी प्रकार न्यायपूर्वक विभाग करके उसका सेवन करें। इस दिन अति समीप आये हुए शिष्य को गुरु के समान तू तेरा राज्याभिषेक करने हारे अधीन प्रजाजन के हित के लिए अध्यक्ष होकर आज्ञा और उपदेश कर। परस्पर

संगठन मे सुसम्पन्न और सबको भरण पोषण करने वाले राष्ट्र में हम अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करते हुए, अपने किये उत्तम कार्य और परिश्रम का फल विविध उपायों से सञ्चित करें।

स्वर्जेषे भरं आप्रस्य वक्मन्युपर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि। अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः। अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के लिए अन्धकार का नाश करता है, और प्रत्येक शिर अर्थात् मुख द्वारा स्तुति योग्य होता है, उसी प्रकार ज्ञानोपदेश करने के लिये अज्ञान नाशक आचार्य अज्ञान का नाश करता तथा ज्ञान का उपदेश करता है और वह प्रत्येक शिर से, समीप बैठकर अनुकरण द्वारा बांचने योग्य होता है अर्थात् गुरु उपदेश करता और प्रत्येक विद्यार्थी उसके ज्ञान वाणी का तदनुसार स्वयं अभ्यास करता और अपने अन्य शिष्यों को भी प्रवचन द्वारा बढ़ाता है। इस लिये हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिए, अपने प्रकाशमान ज्ञान में साधना करने वाले तथा पूर्ण ज्ञानी और अन्यों को ज्ञान से पूर्ण करने वाले विद्वान् पुरुष के, आत्मा का पोषण करने वाले प्रवचन उपदेश में रह कर, उषाकाल और जीवन के प्रभात अर्थात् बाल्यकाल में प्रबुद्ध हो, ज्ञान सम्पादन कर, अपना अज्ञान नाश करें।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयं-मृतस्य वारसि क्षयम्। वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः। स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य का जिस प्रकार दूर तक जाने वाला तेज अति देदीप्यमान और सनातन से चला आ रहा है, उसी प्रकार हे प्रभो! तेरा वेदमय वचन अति प्राचीन काल से विद्यमान और अति प्रकाशमान् कान्ति-

युक्त अभिव्यक्त हो। उपासना और सत्संग के योग्य जिस तुझ प्रभु में भक्त-जन वरण करने योग्य आश्रय लाभ करते हैं वह तू स्वयं सत्य ज्ञान का आश्रय स्थान, और सब दुःखो का वारण करने हारा है। हे भगवन्! आप उस परम ज्ञान का विशेष रूप से उपदेश करें। और हे प्रभो! विद्वान् जन ज्ञानरश्मियों या प्राणों के निग्रह द्वारा अपने भीतर ध्यान योग से इह और और पर, अह और स्व, जीव और ब्रह्म दोनों को पृथक् २ साक्षात् कर लेते हैं। वही परमात्मा ज्ञानवान् पुरुष को ज्ञानोपदेश के लिए, तुझ बन्धु के अधीन रहने वाले भक्तों के हितार्थ उनके अनुकूल होकर ज्ञान वाणियों को प्रदान करने हारा होता है।

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम्। ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च। सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम्॥ ४॥

भा०—हे आचार्य! शिक्षा देता हुआ तू देह में स्थित प्राणों के समान चैतन्यवृद्धि वाले शिष्यों के प्रति ज्ञान करने योग्य तत्व को खोल। इस प्रकार नवीन रीति और पूर्व प्रचलित रीति से भी जो प्रवचन करने योग्य है वह भी स्पष्ट करके बतला। इन हम शिष्य जनों के हित के लिए तू सबके प्रति समान भाव से रहने वाले उपदेश से सर्वोत्कृष्ट एवं आदर करने योग्य है, तू इसे दण्डित कर, ताड़ना दे। तू ज्ञान का सम्पादन करने वालों के हित के लिये हो। जिस किसी को भी व्रत ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषण, विनय आदि से रहित पाओ उसको और क्रोध दिखाने वाले अविनयी, व्रत रहित शिष्य को दण्डित कर।

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्रयक्षन्त श्रवस्यवः। तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा। इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः॥ ५॥

भा०—अति शीघ्रता से ज्ञानैश्वर्य देने वाला आचार्य जो ज्ञानो द्वारा मनुष्यो को अच्छी प्रकार मार्ग दिखाता है उसे सन्तति से युक्त दीर्घजीवन प्राप्त हो। वेदमय उपदेश को श्रवण करने की इच्छा करने वाले जिज्ञासु लोग परम हितकारी धन के समान सुगोप्य आत्मा के बल पर दुःखो से तर जाते है, और उत्तम रीति से अन्यो को भी ज्ञान प्रदान करते है। वे लोग बाधा उपस्थित हो जाने पर उसके बल पराक्रम के कारण ही उसकी पूजा, आदर करते है। जिस प्रकार दान लेने वाले पुरुष दान देने वालो के सन्मुख रहते उसी प्रकार अध्ययन करने वाले शिष्य जन अविद्यानाशक गुरु के अधीन रह कर प्रवचन योग्य गुरूपदेश को सन्मुख बैठ कर धारण करें।

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्। अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥२१॥

भा०—हे सूर्य के समान शत्रुओं के नाश करने हारे! हे पर्वत के समान अचल! जो हम पर सेना लेकर आक्रमण करे, सबसे आगे जाकर युद्ध करने वाले होकर आप दोनो वज्र से उस उसको मारो, दण्ड दो। यदि वह शत्रु वन में या संकट में चला जाय और भाग जाय तो दूर चले गये शत्रु को भी पकड़ने की इच्छा करो। हे शूरवीर! हमारे शत्रुओं को सब तरफ से वेधता हुआ तू सब प्रकार से सब तरफ से छिन्न भिन्न कर डाल। (२) ज्ञानैश्वर्यवान होने से आचार्य इन्द्र है, और पालन करने से 'पर्वत' है। वे पूर्व अवस्था अर्थात् बाल्यकाल में बालक को ताड़ने से 'पुरोयुध' है। जो दुर्भाव हम पर आक्रमण करें उनको वे दोनो दण्ड दें, जो कोई छात्र कठिनाई में पड़ जाय तो दूर तक भटक गये को, आचार्य प्रेम से उभार लेवे। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१३३]

परुच्छेप ऋषिः इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप् । ५ आर्षी गायत्री । ६ स्वराड् ब्राह्मी जगती । ७ विराडष्टिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळहा अशेरन् ॥१॥

भा०—जल से जिस प्रकार दोनों तट स्वच्छ हो जाते हैं उसी प्रकार सत्य व्यवहार, न्याय से मित्र और शत्रु दोनो पक्षों को पवित्र करूं। मैं राजद्रोहकारी भूमियों को जला डालूं। जहां शत्रु लोग आक्रमण करके मारे जावें उन गिरने या पराजित होने के स्थान पर ही वे मारे गये लोग भूमि पर सोवें। अध्यात्म में—मैं ज्ञान से इस लोक और परलोक दोनो को पवित्र करूं। मैं आत्मा की विरोधी द्रोहकारणी विक्षेपप्रवृत्तियों या वासनाओं को सूखी लताओं के समान जला दूं। वे काम क्रोधादि शत्रुगण जहां पहुंच कर विनष्ट हो जाते हैं उस गुहास्थित ब्रह्म को प्राप्त होकर शान्त हो जावें।

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

भा०—हे वज्रधर ! जिस प्रकार लपेट लेने वाले पैर से पहलवान् अपने शत्रु को लपेट कर नीचे गिराता और सिरों को कुचल डालता है, इसी प्रकार तू शत्रुओं को पकड़ कर पीड़ा देने वाली शत्रुसेनाओं के शिर-भागों अर्थात् प्रमुख नायकों, और मुख्य बलवान् दलों को लपेट लेने वाले हाथी के पैर या गट के समान उससे भी कहीं बड़ी शक्ति से चारों तरफ से घेर लेने वाले अपने सेनाबल से चारों ओर से घेर कर उसको काट छिन्न भिन्न कर।

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
ऐलब्धानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार पीडादायी व्यक्तियों को विल के समान बने कैदखाने मे डाल दिया जाता है उसी प्रकार इन पीडादायक सेनाओं के प्रबल बल को कष्टदायी बड़े भारी गढ़ो मे युक्त ऊंचे नीचे खड्डो मे भरे स्थान मे डाल कर उसका नाश कर ।

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लुङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

भा०—हे सेनापते! तू जिन सेनाओं के तीन-पचासों को अर्थात् तीन तीन कतारों की पचास २ की सेनाओं को भी सब तरफ से पैंतरों से या सब तरफ चलने वाले चौमुखा मारने वाले शस्त्रों और अस्त्रों से काट गिरावे, या मार भगावे, वही तेरा उत्तम मन—संकल्प हो, वह ही तेरा उत्तम आदर योग्य विचार रहे ।

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक! पीले वर्ण के प्रकाश से भुन जाने वाले, पीड़ा को देने वाले, देह के अवयव २ व्यास, या रक्त को चूसने वाले रोगकारी कारण को सूर्य के प्रखर ताप मे जैसे नष्ट किया जाता है, उसी प्रकार पीतवर्ण के तेजस्वी पुरुषों द्वारा पीडित होने वाले, पीडादायी, खण्ड २ होने वाले शत्रुसैन्य को अच्छी प्रकार नष्ट कर डाल । और समस्त बाधक कारणों और शत्रु बल को दूर कर ।

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः । शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! तू बड़े भारी शत्रुदल को नीचे गिरा कर छिन्न भिन्न कर। हे न दीर्ण होने वाले शस्त्रबल से युक्त ! विद्युत् के भय से जिस प्रकार पृथिवी के समान आकाश भी चमक उठता है, उसी प्रकार मानो चमकने वाले अति तेजस्वी तेरे भय से पृथिवी की सामान्य प्रजा के समान तेजस्वी राजजन भी चमकें, कांपे, वा भयभीत हों। तू भयकर हिंसाकारी शूरवीर पुरुषों और हिंसाकारी शस्त्रों से सब राजगण में सबसे अधिक बलशाली जाना जावे। और अपने शूर पुरुषों का न नाश करता हुआ, हे शूरवीर ! हे शत्रुओं द्वारा न मुकाबला किये जाने वाले ! तू तीन-साते अर्थात् इक्कीस बलशाली शरीरगत मूल तत्वों से युक्त आत्मा के समान होकर मुख्य भोक्ता जाना जावे।

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः। सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः। सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥७॥२२॥१६॥

भा०—निश्चय से अभिषेक करने वाला प्रजाजन ही निवास योग्य आश्रय प्राप्त करता है। और अभिषेक करता हुआ प्रजाजन उत्तम पुरुषों, विद्वानों और विजयशील पुरुषों के अप्रीतिकर द्वेषी शत्रुओं को भी विनाश करने में समर्थ होता है। अभिषेक करने हारा ही अधिक पुरुषों से सुरक्षित न रह कर भी बलवान् होकर सहस्रों ऐश्वर्य सुखों को प्राप्त करता है। अभिषेक करने वाले प्रजागण को ही वह ऐश्वर्यवान् राजा सर्वत्र सुख उत्पादन करने हारे ऐश्वर्य का प्रदान करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले एकोनविंशोऽनुवाकः समाप्तः ॥

[१३४]

१—६ परुच्छेप ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, निचृदत्यष्टिः। २, ४ विराडत्यष्टिः। ५ अष्टिः। ६ विराडष्टिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सो-

मस्य पूर्वपीतये । ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती । नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

भा०—उत्तम मार्ग मे ले जाने हारे, संसार के विलासों को त्यागने वाले निःस्वार्थ विद्वान् अपने पूर्व के विद्वानों और पुरुषो के ज्ञान ऐश्वर्य आदि का पान करने के लिये तुझको हे वायु के समान राष्ट्र के प्राण रूप राजन् ! ज्ञान, परमपद, और प्रीति प्राप्त करावें। हे राजन् ! उत्तम सत्य वेदवाणी मन को ज्ञान प्रदान करती हुई तेरे कार्य के अनुकूल रहे। हे शूरवीर ! तू पूजनीय उत्तम ज्ञान के देने वाले गुरु आचार्य के लिये और यज्ञ के दान और युद्ध क्षेत्र मे शत्रुओ के नाश करने के लिये अश्वों से जुते रथ तथा असंख्य रथ सेना से प्रयाण किया कर।

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः । यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः । सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२॥

भा०—हे ज्ञानवान् राजन् ! सुख की कामना करने वाले हममें से जो क्रियाशील तथा सदाचारवान्, तथा चन्द्र के समान सबके आल्हादकर और सोम रसों के समान राष्ट्र के पोषक, गौओं और बैलो मे ऐश्वर्य अन्न आदि उत्पन्न करते हुए, अति तेजस्वी, और व्यवहारज्ञ होकर तुझे प्रसन्न करें, और जो पुरुषार्थी लोग ज्ञान और बल प्राप्त करने के लिये उद्योग करते है वे सदा एक साथ महोद्योगी होकर एक ही रथ मे लगे अश्वों के समान एक कार्य मे लग कर, आत्मसमर्पण करने वाले शिष्य जिज्ञासु को नाना ज्ञानयुक्त प्रजाओं और कर्मों का सब प्रकार से उपदेश करते है।

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे । प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव । प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

भा०—शिष्यो को ज्ञानमार्ग मे परिचालन करने वाला विद्वान्, वृद्धिशील एवं किरणो के समान तेजस्वी, तथा अजीर्ण शिष्यो को, ससार के कार्यभार को उठाने मे समर्थ होने के लिये, ज्ञान शक्ति के धारण करने के कार्य मे, धुरा मे बैलो के समान अपने वश करता हुआ सन्मार्ग में नियुक्त करता है। हे विद्वान्! तू विद्या के उपदेश करने मे कुशल हो कर, शिष्य की सोती हुई बुद्धि और देहरूप पुर को धारण करने वाली शक्ति को अच्छी प्रकार जगा, उसे प्रबुद्ध कर, उसे ज्ञानवती बना। और उसे पृथ्वी और आकाश अर्थात् समस्त जगत् के ज्ञान का उत्तम रीति से उपदेश कर। ज्ञानोपदेश श्रवण कराने के लिये तू उन जिज्ञासु शिष्यो को अपने अधीन बसा। गृहस्थ की कामना करने हारे, उन युवको को गृहस्थ मे और विद्याभिलाषी पुरुषों को अपने पास ही बसा।

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु। तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते। अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—अति दीप्त प्रभात वेलाए जिस प्रकार किरणों के आधार पर दूर २ देश मे पहुच कर जगत् के सुखकारी आच्छादक प्रकाशो को फैलाती है उसी प्रकार हे विद्वन्! तेजस्वी एव तेरे अधीन बसने वाले छात्रगण इन्द्रियो को दमन करने वाले साधनो और नये से नये स्तुत्य ज्ञानमय प्रकाशो और कार्यों के आधार पर, दूर २ के देश मे भी तेरे अति कल्याणकारी यश पटो को विस्तृत करें। और गौ और उसके समान धारण करने वाली यह पृथ्वी समस्त रसो का दोहन करने वाली कामदुघा होकर समस्त प्रकार के ऐश्वर्य का प्रदान करे। जिस प्रकार वेग से गमन करने वाले वायुगण आकाश या पृथ्वी के पार्श्वों मे नाना मेघो और जलवृष्टियो को लाते हैं उसी प्रकार व्यापारी जन भी नदियो द्वारा और पृथिवी और आकाश के सब पार्श्वों मे ऐश्वर्य प्राप्त करावें।

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि । त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये । त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

भा०— हे बलवान् राजन ! वीर्यवान, शुद्ध आचारण वाले, अति शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने मे कुशल, उग्र पुरुष, हर्ष अवसरो मे और प्रजाओं के भरण पोषण के कार्य मे लगे। वे तुझे ही चाहे और तुझे ही सदा प्रेरणा करते रहे। हे राजन ! छद्मगति से चलने वाला कुटिलाचारी पुरुष भी शत्रुओ का नाश करता हुआ, तुझ ऐश्वर्यवान पुरुष की प्रजापीड़क पुरुषों के दूर करने के उत्तम काम के निमित्त स्तुति करता है। तू सब प्रकार के उत्पन्न हुए सांसारिक भय से रक्षा करता है। और तू ही धर्म से अर्थात् अपने धारण सामर्थ्य से असुर अर्थात् दुष्ट पुरुषो के व्यवहार से प्रजा की रक्षा करने में समर्थ है।

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि। उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम्। विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—हे बलवान राजन ! पूर्व पुरुषो द्वारा किये कर्मों से भी विलक्षण कर्म करने हारा अथवा जिसके पूर्व कोई अन्य न हुआ हो ऐसे अद्वितीय पद के योग्य होकर तू इन ऐश्वर्यों और पदाधिकारो का ओषधि रसो के समान पान अर्थात् उपभोग करने मे समर्थ है तू ही अभिषिक्त राजपदाधिकारियों में से सब से उत्तम रहकर ऐश्वर्य भोग करने का अधिकारी है। तू विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न और सब दोषो से रहित प्रजाओं का भी पालन करने मे समर्थ है। गौएं जिस प्रकार सेवन करने योग्य घी आदि पदार्थ प्रदान करती हैं उसी प्रकार समस्त प्रजाएं तेरे लिये सेवन करने योग्य और आश्रय करने योग्य समस्त ऐश्वर्य को प्रदान करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३५]

परुच्छेप ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः १, ३ निचृदत्यष्टिः । २, ४ विराडत्यष्टिः ।
५, ९ भुरिगष्टिः । ६, ८ निचृदष्टिः । ७ अष्टिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

स्तीर्णं बर्हिरुपं नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते । तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे । प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् जिस प्रकार पूज्य और आदरणीय पुरुष के लिये आसन बिछाया जाता है उसी प्रकार तेरे लिये यह वृद्धियुक्त सिंहासन फैला हुआ है । तू उसको प्राप्त करने के लिये हजारों अश्वसैन्यों और सौ सौ के दस्तों वाली सेनाओं सहित हमें प्राप्त हो । असंख्य पुरुषों के स्वामी और नियुक्त सेनाओं के स्वामी तथा व्यवहारकुशल तुझ विजिगीषु के लिये सब विजयेच्छुक जन सब से प्रथम प्रधान पद के उपभोग के लिये सब नियम व्यवस्था करते हैं । और वे मधुर, अन्नों से युक्त और उत्पादित ऐश्वर्य से युक्त तेरे ही हर्ष और सुख के निमित्त सदा कार्य सम्पादन करने के लिये स्थापित हों. और स्थिर, अविचलित निर्भय होकर रहें ॥

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति । तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते । वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥

भा०—हे सेनापते ! यह शस्त्रों से, न दीर्ण होने वाले कवचों से, और मणियों और आदर करने योग्य विद्वानों से पवित्र या दीक्षित हुआ हुआ विद्वान् पुरुष, चाहने योग्य वस्त्रों को धारण करता हुआ और वस्त्रों और आभूषणों को धारण करता हुआ खड्ग धारण करता है । हे सेनापते ! योग्य गुणों से युक्त पुरुष साधारण मनुष्यों और विद्वान् और विजयी पुरुषों के बीच तेरी सेवा करने वाला कहा जाता है । हे बलवन् सेनापते ! तू अपने अधीन नियुक्त सेनाओं को सन्मार्ग पर ले चल, तू

हमारा स्वामी, हमें सदा समृद्ध रूप में चाहने वाला होकर सब राष्ट्रों का भोग करता हुआ हमें प्राप्त हो ।

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रं स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि वी॒तये॒ वायो॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑ । तवा॒यं भा॒ग ऋ॒त्वियः॒ सर॑श्मिः॒ सूर्ये॒ सचा॑ । अ॒ध्व॒र्युभि॒र्भर॑माणा अयंसत॒ वायो॑ शु॒क्रा अ॑यंसत ॥ ३ ॥

भा०—हे वायु के समान बलवन् राजन ! तू राज्य को प्राप्त करने उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यो का उपभोग करने के लिये, नाश न होने वाले हमारे राष्ट्र को, बलवान् अश्व और सैकडों हस्तों से बनी और हजारों वीर पुरुषों से बनी नाना सेनाओं सहित प्राप्त हो। तेरा ऋतु अनुकूल सेवन करने योग्य अंश है, जो सूर्य में विद्यमान किरणों के समान राष्ट्र को वश करने के साधनों सहित तुझे प्राप्त है। और हे बलवन् शासक ! अविनाश्य राष्ट्र के सञ्चालक मुख्य पुरुषों सहित राष्ट्र के कार्य भार को धारण करते हुए शुद्ध आचारवान् पुरुष राष्ट्र का भली प्रकार नियन्त्रण करें।

आ वां॒ रथो॑ नि॒युत्वा॑न्वक्ष॒दव॑से॒ऽभि प्रयां॑सि॒ सुधि॑तानि वी॒तये॒ वायो॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑ । पिब॑तं॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः पूर्व॒पेयं॒ हि वां॑ हि॒तम् । वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ राध॒सा ग॑त॒मिन्द्र॑श्च॒ राध॒सा ग॑तम् ॥४॥

भा०—हे बलवन् सेनापते ! हे ऐश्वर्यवन् ! उत्तम पुष्टिकारक भोज्य अन्न को और उत्तम ऐश्वर्यों को भोगने, और उनके पालन और प्राप्त करने के लिये, उत्तम अश्वों से युक्त रथ तुम दोनों को वहन करे, दूर २ देशों तक ले जावे। आप दोनों मधुर अन्न का उपभोग करें। आप दोनों के लिये निश्चय से सबसे पूर्व पान करने योग्य पदार्थ भी स्थित है। आप दोनों सबको सुखी करने वाले सुवर्ण आदि ऐश्वर्य सहित और सब कार्यो को भली प्रकार साधने वाले उपाय सामग्री सहित आवें, धनैश्वर्य सहित हमें प्राप्त हों।

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्। तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या। इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान जगत् और राष्ट्र को करादान और ऐश्वर्यदान द्वारा पालने वाले ! जो विद्वान् पुरुष आप दोनो के ज्ञानो और कर्त्तव्य कर्मों का नित्य प्रति अभ्यास करते है, और प्रजापालक राज्यो की व्यवस्था करते है, और ज्ञानवान्, शीघ्र कार्य करने मे कुशल, चन्द्र के समान आल्हादक इस राज्य को वेगवान् अश्व के समान सदा शोधन करते, उसको त्रुटियो रहित करते रहते हैं, उन नायको के ऐश्वर्य का आप दोनो हर्ष के लिये उपभोग करो । हमारे इस राज्य मे रक्षण करने के निमित्त आप दोनों आवे । आप दोनो अन्न और ऐश्वर्य के देने, पालने और संग्रामो मे शत्रु का नाश करने वाले होकर हमे प्राप्त होवें । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत। एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः। युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार ओषधि रस नाना रसो मे डाले जाकर, शरीर को नाश न होने देने वाले प्राणो से धारण किये जाकर, विशुद्ध वीर्य रूप से विराजनक होकर शरीर को व्यवस्थित करते है, उसी प्रकार हे इन्द्र ! और वायु ! अर्थात् राजन् और सेनापते ! आप दोनो के सहायतार्थ ही ये प्रजाओं को सन्मार्ग मे चलाने मे समर्थ शक्तिशाली पुरुष प्रजाओ मे सबके सन्मुख अभिषेक किये जावें। और वे राष्ट्रयज्ञ को नाश होने से बचाने वाले प्रबल नायको और विद्वान् पुरुषो द्वारा प्रजा का धारण और पोषण करते हुए, कार्यकुशल और शुद्ध धर्माचरण वाले होकर, राष्ट्र का प्रबन्ध करते रहें । जिस प्रकार वेग से फैलने वाले ओषधि रस तिरछे लगे

दशापवित्र नामक छनने पर गति करते हैं और उसमें लगे भेड के बालों को पार कर जाते हैं उसी प्रकार ये तीव्र वेग से जाने हारे पुरुष भी अति उत्तम पवित्र, राष्ट्र और प्रजाजन को पवित्र करने वाले आदेश को लक्ष्य करके चलें। और वे सब राजा और सेनापति तुम दोनों को हृदय से चाहते हुए, सौम्य स्वभाव के अनुगामी शासक होकर, कभी समाप्त न होने वाले अर्थात् अनेक, उच्छेदन या काट गिराने योग्य शत्रुओं को भी पार कर जाने में समर्थ हों।

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

भा०—हे वायु के समान प्राणप्रद विद्वन्! और राजन्! तू सोने वाले आलसी पुरुषों से आगे बढ। और तू सनातन या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाले पुरुषों से आगे बढ। जहां उपदेष्टा विद्वान् पुरुष उपदेश करता हो तुम दोनों वहां जाया करो। और फिर अपने २ गृह आया करो। हे वायु के समान बलवन् पुरुष! तू और ऐश्वर्यवान् तुम दोनों अपनी पूरी शक्ति और नियुक्त सेना से प्रजाओं का न नाश होने देने वाले प्रजापालन के प्रत्येक कार्य को प्राप्त होते हो तो राष्ट्र में जल घी दूध खाद्य पदार्थ और उत्तम तेज और विज्ञान का प्रकाश सर्वत्र सुना जाता और पाया जाता है, और शुभ सत्यमय वाणी और अन्न सम्पत्ति विविध प्रकार से दिखाई देती है।

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः। साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

भा०—मधुर फल के देने वाले अश्वत्थ अर्थात् पीपल को जिस प्रकार फल खाने की इच्छा से पक्षिगण प्राप्त होते और उसका आश्रय लेते

हैं और जिस प्रकार अपत्य की कामना करने वाले स्त्री पुरुष अश्वत्थ या पीपल का औषधि रूप से सेवन करते हैं, उसी प्रकार हे राजन और सेनापते ! विजयशील पुरुष, शत्रुदल को कंपा देने वाले सामर्थ्यों को धारण करने वाले आश्रय वृक्ष के समान दृढ़ एवं अश्वसैन्य के बल पर सग्राम में स्थित होने वाले जिस नायक का आश्रय लेते हैं, आप दोनों इस राष्ट्र में अवश्य ही उस नायक को धारण करो। और वे हमारे वीर पुरुष सग्राम में विजयी होवें। राज्य में गौएं एक साथ ही बियावें। अर्थात् दूध घी एक साथ बहुत अधिक मात्रा में हो। जौ आदि अन्न भी एक ही साथ पके। हे विद्वन्! तेरी गौए क्षीण न हों और दुधार गौएं चोर आदि द्वारा चुराई जाकर नष्ट न हों। [अथर्ववेद में शमी पर स्थित पीपल को पुत्रोत्पादक कहा है। "शमीमश्वत्थ आरूढ़स्तत्रपुंसवनं कृतम् ॥" यहा मधु के साथ अश्वत्थ के सेवन से पुत्र प्राप्ति होती है। पीपल, वट, और ढाक तीनों की फुनगी का सेवन समान रूप से पुत्रजनक है]।

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महिव्राधन्त उक्षणः। धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः। सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

भा०—वायु के समान बलवान् सेनापते! जो ये बाहु के पराक्रम से युक्त होकर, अति समृद्ध प्रजा के बीच सेवन करने वाले मेघ के समान दानशील और वृषभों के समान बलवान् हैं, वे उत्तम पति होने योग्य हैं। जिस प्रकार मेघ जलमयस्थान और रेगिस्तान दोनों पर स्थित होकर वर्षा करते हैं उसी प्रकार जो वीर बड़े बलशाली होकर बढ़ते हुए, जल स्थल और अन्तरिक्ष में स्थिर होकर शत्रुओं पर शर वर्षण करने में समर्थ होते हैं, वे ही समृद्धि के अवसर और संग्राम में धनुष के कार्यों में विजय शील होते हैं। और वे वाणी से भी स्थान नहीं पाते अर्थात् उनका बल पराक्रम भी अवर्णनीय होता है। और वे सूर्य की किरणों के समान बड़ी

कठिनता से वश में आने वाले हाथी के बल से दुष्ट पुरुषों को भी नियन्त्रण करने में समर्थ हो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१३६]

॥ १३६ ॥ १—७ परुच्छेप ऋषिः ॥ १—५ मित्रावरुणौ । ६—७ मन्त्रोक्ताः देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ स्वराडत्यष्टिः । निचृदष्टिः । ४ भुरिगष्टिः । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्। ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग चिरायु वाले माता और पिता को सबसे अधिक आदर और अन्न अच्छी प्रकार प्रदान करो। और प्रजा को सुखी करने वाले राजा और सेनाध्यक्ष को भी अति स्वादयुक्त और धन और ज्ञान अच्छी प्रकार प्रदान करो। सभा और सेना के अध्यक्ष वे दोनों सम्राट् होकर घृत के समान पुष्टिकारक सारवान् पदार्थ को प्राप्त करने वाले, और 'घृत' अर्थात् तेजोमय ज्ञान के देने वाले, या घृत अर्थात् जल द्वारा अभिषेक करने योग्य हैं। और वे दोनों प्रत्येक यज्ञ में, प्रत्येक सत्सग के अवसर पर स्तुति आदर करने योग्य हैं। और उन दोनों का बल वीर्य किसी भी शत्रु द्वारा धर्षण करने या हारने वाला न हो। और उनकी विजयकामना दानशील और तेजस्वीपन भी किसी प्रकार किसी से धर्षण या तिरस्कार प्राप्त होने योग्य न हो। अध्यात्म में प्राण और अपान दोनों को उत्तम स्वादयुक्त अन्न से पुष्ट करो। वे देह के सम्राट् हैं। तेज धारण कराने वाले हैं। प्रत्येक देह उनकी स्थिति है। उनके बल और तेज को कोई रोगादि धर्षण नहीं कर सके।

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः। द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य

च । अधा दधाते बृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥२॥

भा०—महान् पराक्रमशाली पुरुष के लिये ही यह वरण करने योग्य बड़ी भारी भूमि देख पड़ती है। सूर्य की किरणों से किस प्रकार चक्षु युक्त होता और शक्तिशाली हो जाता है और सत्य ज्ञान का मार्ग भी सूर्य की किरणों से प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की ज्ञानमय किरणों से भीतरी नेत्रयुक्त होते और सत्यज्ञान का मार्ग भी उपलब्ध हो जाता है। सबके स्नेही, नियम में बांधने वाले न्यायकारी, और सर्वश्रेष्ठ और दुःखों और दुष्टों के वारण करने वाले पुरुष का आसन अन्तरिक्ष के समान ऊषा और सूर्य के समान तेजोयुक्त हो। मित्र और वरुण अर्थात् न्यायाधीश राजा दोनों ही बड़े भारी बल को धारण करें, और बड़े स्तुति योग्य, दीर्घ आयु और ज्ञान को भी धारण करें।

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे । ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती । मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

भा०—अदिति अर्थात् आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र, जिस प्रकार पृथ्वी को धारण करने वाले, प्रकाश और ताप से युक्त, ज्योतिर्मय और नक्षत्रों से युक्त अखण्ड आकाश को प्रतिदिन सदा जागृत रहते हुए नियम पूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार मित्र अर्थात् सर्वस्नेही सभाधीश, और वरुण अर्थात् दुष्टों का वारक सेनापति दोनों प्रतिदिन सावधान रह कर, सुखजनक ऐश्वर्यों से युक्त ज्योतिर्युक्त रत्नों को धारण करने वाली, निवास करने वाले प्राणियों और मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी को अच्छी प्रकार धारण करें। वे दोनों दान देने योग्य ऐश्वर्य और दानशील जनों के पालक, अदिति अर्थात् अखण्ड पृथ्वीराज्य के स्वामी, न्यायप्रकाश, ऐश्वर्य और तेज से युक्त राज्य को प्राप्त हों। उनके अधीन दुष्ट पुरुषों को नियमन करने में समर्थ न्यायाधीश दुष्टों को पीड़ा देने वाले पुरुषों का

स्वामी होकर समस्त राष्ट्रवासी जनों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला हो।

अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः। तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः। तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

भा०—प्रजाओं के रक्षाकार्यों में सब प्रकार से सेवा करने वाला, और दानशील पुरुषों में सब ऐश्वर्यों से युक्त होकर सबका प्रेरक राजा, मित्रों और सर्वश्रेष्ठ पुरुषों के लिये अत्यन्त शान्तिकारक हो। विद्वान् और वीर पुरुष सब समान प्रीति से युक्त होकर उससे प्रेम करें। हम जिस न्याय और श्रेष्ठ कार्य को चाहते हों तेजस्वी प्रमुख पुरुष वैसा करें। और जो हम चाहते हों वह वे दोनों सत्य न्यायशील प्रमुख पुरुष करें।

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परिपातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्। उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥

भा०—जो पुरुष स्नेहवान् मित्र और दुःखों के वारक श्रेष्ठ पुरुष के हित के लिये नाना कर्मों का अनुष्ठान करे वे दोनों अजातशत्रु तथा दानशील उस पुरुष की पाप से रक्षा करें। और सत्याचार के अनुसार अति विनयशील होकर रहने वाले उसको न्यायशील पुरुष भी पापाचार और वधादि क्लेश से सब प्रकार से बचावे। जो उक्त दोनों मित्र और वरुण अर्थात् स्नेही और श्रेष्ठ पुरुषों के कर्त्तव्य को स्तुत्य वचनों द्वारा सर्वत्र वर्णन करता है, और अनुष्ठान करने योग्य धर्माचरण को स्तुति योग्य उपायों से भली प्रकार आचरण करता है, उसको भी न्यायशील पुरुष, पापमार्ग और वधादि दुःखों से सुरक्षित करे।

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे। इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम्। ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

भा०—मैं बड़े भारी तथा सूर्य के समान तेजस्वी, आकाश और पृथ्वी के समान पालक माता पिता, स्नेहवान् मित्र, और वरुण, करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष, सुखों के वर्षण करने वाले, मेघ के समान सबको उत्तम सुख देने वाले उपकारी जनों के प्रति आदर सत्कार के वचन कहूं। हे मनुष्य ! तू ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान्, दीप्ति युक्त, न्यायकारी, ऐश्वर्यवान्, परम पुरुष की स्तुति कर। हम चिरकाल तक दीर्घजीवन भोगते हुऐ उत्तम सन्तान सहित रहें। और प्रेरक गुरु आदि की रक्षा में सदा विद्यमान् रहें।

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥७।२६।१॥

भा०—हम लोग दानशील पुरुषों की रक्षा से ऐश्वर्यवान् होकर, अपने आप को व्यवहार कुशल वैश्यवर्गों सहित यश और ऐश्वर्यों से समृद्ध हुआ जानें। अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी, प्राण के समान जीवनप्रद, जल के समान दुःखवारक पुरुष हमें सुख शान्ति प्रदान करें। और हम भी ऐश्वर्यवान् होकर उस सुख सम्पदा का भोग करें। इति षड्विंशो वर्गः।

इति द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[१३७]

परुच्छेप ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१ निचृच्छक्वरी। २ विराट्शक्वरी। ३ भुरिगतिशक्वरी॥ तृच सूक्तम्॥

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे। आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः। इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १॥

भा०—हे मित्र और हे वरुण ! शरीर में प्राण और उदार के समान राष्ट्र में प्रजा के साथ स्नेह करने और उनके दुःखों के निवारण करने हारे दो प्रकार के अधिकारी पुरुषो ! आप दोनों आइये। ये सोम आदि औषधियों के उत्तम २ अन्नरस मेघों द्वारा सिक्त और पाषाणों से कुटे पिसे गौ के दुग्ध में परिपाक किये हुए होकर जिस प्रकार हर्ष और तृप्ति को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ये अभिषेक करने योग्य नवाधिकारी पुरुष राष्ट्रभूमि के ऊपर स्थापित होकर अति हर्षप्रद और गर्व से शत्रु पर प्रयाण करने में समर्थ हैं। हम इनका अभिषेक करते है। आप दोनों आकाशस्थ देदीप्यमान सूर्य चन्द्र के समान उत्तम ज्ञान और शुद्ध व्यवहार' मे और उच्च पद मे स्थित होकर प्रजा का अनुरंजन करने वाले, और हम प्रजाजनों का पालन करने वाले होकर हमे प्राप्त होवें। ये सौम्य जन आप दोनों की 'गो' अर्थात् वाणी में आश्रित होकर आप दोनो के ही अधीन रहे। ये पृथ्वी के कार्य में स्थित होकर शुद्ध व्यवहार वाले, शीघ्र कार्य करने वाले और सदाचारी हों।

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः। उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः। सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये॥ २॥

भा०—हे स्नेही और सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे सर्वश्रेष्ठ और दुख वारक रात्रि के समान शान्तिदायक माता पिता ! ये सौम्य शिष्यगण ज्ञान जल और भक्तिभाव से आर्द्रचित्त, पुत्रों के समान पालित, शिक्षित और विद्यादि मे स्नातक होकर गृहस्थ धारण के कार्य मे आश्रय करने योग्य हो गये हैं। ये युवक विद्वान्‌गण सूर्य के समान तेजस्वी आचार्य के नियमों मे नियन्त्रित और शिक्षित होकर प्रभात वेला के समान जीवन के पूर्व भाग मे ज्ञान प्राप्त हो जाने पर तुम माता पिताओं के पालन करने के लिये हों। ये पुत्र स्नेहवान् बन्धुजन, श्रेष्ठ गुरुजन, ज्ञानमय परमेश्वर, और यज्ञ के पालन करने के लिये हों, और उत्तम आचरण वाले हों।

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः। अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये। अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

भा०—दिन भर चर कर पुनः घर पर आई गाय को जिस प्रकार गृहस्थ लोग उसके अंगो को पीडित न करने वाले हाथो से दोहते है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष सबको अपने भीतर बसाने वाली भोग्य वसुंधरा को न दीर्ण होने वाले शासनों और शासकों द्वारा दोहते हैं। स्नेहवान् माता पिता! और कष्टवारक गुरुजनो! आप लोग हमारी रक्षा करते हुए हमारे ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये आइये। जिस प्रकार सिद्ध प्रकार सोमरस पान करने के लिये होता है उसी प्रकार पदाभिषिक्त युवक सौम्य स्वभाव वाला होकर आप दोनों के पालन के लिये नायक और उत्तम पुरुषो द्वारा योग्य पद पर अभिषिक्त किया जाय। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१३८]

परुच्छेप ऋषि ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृदत्यष्टिः। २ विराडत्यष्टिः ४ भुरिगष्टिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते। अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्। विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

भा०—बहुत प्रजाओ और लोको में प्रसिद्ध, सर्वपोषक प्रभु की महिमा का अच्छी प्रकार वर्णन किया जाता है। बलशाली इसकी स्तुति को कोई नाश नहीं कर पाता, और उसकी सत्ता को भी कोई मिटा नहीं सकता। मैं अतिसमीप स्थित रक्षक और सुख शान्ति के एक मात्र उत्पादक प्रभु की, सुख की कामना करता हुआ, सदा स्तुति करूं। जो दानशील, प्रकाशस्वरूप, सबको कामना करने योग्य प्रभु समस्त संसार

के मनों को अपने भीतर मिलाये रखता है, वह ही पूजनीय है। वह ही सर्वोपास्य, ऐश्वर्यवान्, सुखमय होकर सबको अपने में जोड़े रखता है। (२) इसी प्रकार राजा को भी चाहिये कि वह बहुतों में प्रसिद्ध बलवान् विद्यावान् हो, उसके यश का नाश न हो। सबका निरन्तर पालक, सुखकारी हो, सबका मन अपनी ओर खींचने वाला हो।

प्र हि त्वा॑ पूषन्नजि॒रं न याम॑नि॒ स्तोमे॑भिः कृण्व ऋ॒णवो॒ यथा॒ मृध उष्ट्रो॒ न पी॑परो॒ मृधः॑ । हु॒वे यत्त्वा॑ मयो॒भुवं॑ दे॒वं स॒ख्याय॒ मर्त्यः॑ । अ॒स्माक॑माङ्गू॒षान्द्यु॒म्निन॑स्कृधि॒ वाजे॑षु द्यु॒म्निन॑स्कृधि ॥२॥

भा०—वेग से गमन करने के निमित्त जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व को लिया जाता है उसी प्रकार हे सर्वपोषक राजन्! युद्ध में प्रयाण के लिये शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और उन पर बाण आदि अस्त्रों के फेंकने में समर्थ तुझको, स्तुति करने योग्य, सेनासमूहों सहित, अधिकारवान् करता हूँ। जिससे तू संग्रामों को जा सके। ऊंट जिस प्रकार बड़े २ रेगिस्तानों को पार करा देता है उसी प्रकार तू भी हिंसाकारी शत्रुओं और सेनाओं और संग्रामों को पार कर। जिस तुझको मैं साधारण मनुष्य शान्तिजनक, दानशील और विजिगीषु जान कर, मित्रता के लिये स्वीकार करता हूँ, वह तू हमारे विद्वान् पुरुषों को तेजस्वी बना। और संग्रामों को विजय करने और अन्न और ज्ञानों को उपलब्ध करने में भी हमारे विद्वानों को ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी बना।

यस्य॑ ते पूषन्त्स॒ख्ये वि॑प॒न्यवः॒ क्रत्वा॑ चि॒त्सन्तोऽव॑सा बुभु॒ञ्जिर इति॒ क्रत्वा॑ बुभु॒ञ्जिरे । तामनु॑ त्वा॒ नवी॑यसीं नि॒युतं॑ रा॒य ईमहे । अहे॑ळमान उरुशंस॒ सरी॑ भव॒ वाजे॑वाजे॒ सरी॑ भव ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके पोषक स्वामिन! जिस आपके मित्र भाव में रहते हुए विद्वान् जन, आपके रक्षा कर्म से सदा पालित होते, और इस संसार का ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से भोग करते हैं, उस तुझको प्राप्त होकर

हम लोग भी उस नयी से नयी ऐश्वर्य की लक्ष्मी की संपदा को तुझसे मांगते हैं। हे अति स्तुति योग्य ! तू हमारा अनादर और हम पर क्रोध न करता हुआ ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी हो, और प्रत्येक संग्राम में शत्रु पर प्रयाण करने वाला हो।

अस्मा ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व। ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः। नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥४॥२॥

भा-—हे बकरियों और अश्वों के स्वामिन् ! अथवा हे वेगवान् अश्वों वाले ! तू इस पृथ्वी के राज्य प्राप्त करने के लिये, हमारा तिरस्कार न करता हुआ, धन, अन्न, यश और ज्ञान की इच्छा करने वालों को इष्ट फल दान करता हुआ, हमारे सदा समीप रहे। हे दर्शनीय ! हे शत्रुओं के नाशकारिन् ! हम लोग तुझको ही उत्तम २ स्तुति वचनों से प्राप्त करें। हे सर्वपोषक ! मैं तेरा कभी तिरस्कार न करूं। हे सब प्रकार से प्रकाशमान् ! मैं तेरे मित्रभाव को कभी लुप्त न होने दूं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१३६]

परुच्छेप ऋषिः ॥ देवता—१ विश्वेदेवाः। २ मित्रावरुणौ। ३—५ अश्विनौ। ६ इन्द्रः। ७ अग्निः। ८ मरुतः। ९ इन्द्राग्नी। १० बृहस्पतिः। ११ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, १० निचृदष्टिः। २, ३ विराडष्टिः। ६ अष्टिः। ८ स्वराडत्यष्टिः। ४, ९ भुरिगत्यष्टिः। ७ अत्यष्टिः। ५ निचृद्बृहती। ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी। अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥

भा०—वेद का श्रवण हो। मैं अपने आगे कर्म और प्रज्ञा वा धारण क्रिया के सहित ज्ञानवान् वा ज्ञानमार्ग में आगे ले चलने वाले आचार्य को आदर्श रूप मे स्थापित करूं। तदनन्तर मैं उसके दिव्य ज्ञान और बल को धारण करूं। हम सब शिष्यगण उस ज्ञानमय तेजस्वी पुरुष को आचार्यरूप मे वरण करें। हम लोग इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान्, तथा वायु के समान प्राणप्रद इन दोनों को भी स्वीकार करें। जिस प्रकार नाभी या केन्द्र मे अरे लगे रहते हैं, और सूर्य मे जिस प्रकार किरणें रहती हैं उसी प्रकार वसु आदि ब्रह्मचारी को अपने अधीन बसाने वाले गुरु मे, समस्त कार्यों का प्रतिपादन करने वाली अतिस्तुत्य वाणी अच्छी प्रकार बंधती है और अंगुलियां जिस प्रकार पकड़ने योग्य पदार्थ को पकड़ लेती है, और जिस प्रकार स्तुतियां स्तुत्य उपास्य देव को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हम विद्याभिलाषी शिष्य जनों को उत्तम वेद वाणियां, प्रज्ञाएं और कर्म भी उत्तम रूप से सुख देती हुई प्राप्त हों।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना। युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम्। धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः॥२॥

भा०—हे स्नेहवान और दुःखनिवारक जनो! आप लोग सत्य से असत्य को अपने ज्ञानबल से पृथक् करके सर्वोपरि न्याय वितरण किया करो। और हम भी आप दोनों के न्यायभवनों मे, ज्ञानवान् आत्मा के अपने मननशील चित्त से, और उत्तम प्रज्ञाओं, और मन मे, और अपनी इन्द्रियों मे और राष्ट्रपति के अपने अध्यक्षों द्वारा, प्रजा के हितकारी और रमणीय व्यवहार को ही सदा अच्छी प्रकार देखा करें, और सत्य से असत्य का विवेक किया करें।

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः। युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा। प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये॥३॥

भा०—हे राष्ट्र का भोग करने वाले तथा विद्याओं मे व्यापक उत्तम स्त्री पुरुषो । स्तुतियों से तुम देवों को चाहते हुए, सम्मुख आने वाले विद्वान् पुरुष, वेदवाणी का श्रवण कराते वा उपदेश करते हुए, मानो तुम दोनों को ग्रहण करने योग्य ज्ञान प्राप्त कराते है। और वे पवित्र करने हारे तुम दोनों के सुन्दर रथ पर जल मधु आदि का वर्णन करते हैं। हे दर्शनीय एवं दुःखों के नाश करने वालो ! हे समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामियो ! सब प्रकार की लक्ष्मियां और अन्न आदि सम्पत्ति तुम दोनों की ही सर्वोपरि रहे।

अचौंत दस्रा व्यु॑ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों और दुष्टों का नाश करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो, दुःख रहित गृहस्थ या ऐश्वर्य को विविध उपायों से प्राप्त करो। आकाशमार्ग मे विहार करने के अवसरों में जिस प्रकार कभी नीचे न गिरने हारे सावधानी से उड़ने हारे उड़ाके वायु रथों की योजना करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र और धर्म को पतित न होने देने वाले, तथा रथों के निर्माता पुरुषो को कामना योग्य व्यवहारो के प्राप्तिमार्गों में नियुक्त करो और आप दोनो सन्मार्ग से जाते हुए और लोक समूह का धर्मानुकूल शासन करते हुए, शीघ्र ही राजस भोगमय ऐश्वर्य का शासन करते हुए, समृद्ध राज्य को प्राप्त करो। और तुम दोनो के सुबद्ध, लोह सुवर्ण आदि से मढ़े रथ पर हम भी विराजें।

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म को अपने भीतर बसाने हारे स्त्री पुरुषो ! आप दोनो हमें दिन और रात इन उत्तम कर्मों और बुद्धियों

से उत्तम विद्या और ऐश्वर्य का दान करो। आप दोनों का दिया हुआ उत्तम दान कभी नाश को प्राप्त न हो। और कभी हमारी तरफ से भी देने योग्य दातव्य पदार्थ नाश को प्राप्त न हो। इति तृतीयो वर्गः॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः। ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे। गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि॥ ६॥

भा०—हे मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का वर्षण करने हारे, हे वीर्यवान्! हे ऐश्वर्यवन्! पर्वतों पर उत्पन्न हुए वृक्ष लतादि जिस प्रकार बरसते मेघ से जलपान करने हारे होकर रसवान होते हैं, और वे भूमि भेद कर उत्पन्न होते और नाना फलों को उत्पन्न करने वाले होते और सबको आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार पर्वत के समान अचल नायकों से सञ्चालित रस पान करने वाले बलवान् नायक की रक्षा करने चन्द्र के समान अह्लादजनक, राजा के पुत्रों के समान पालित, नाना पदों पर अभिषिक्त और शत्रुओं को जड़ मूल से उखाड फेंकने वाले हों। वे दान देने योग्य, बड़े भारी, अद्भुत धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये तुझे हर्षित और उत्साहित करें। हे आज्ञा देने योग्य श्रेष्ठ वाणियों को अपने हाथ में रखने हारे राजन्! तू वाणियों से सबको उपदेश करता हुआ उत्तम सुखप्रद होता हुआ आ और हमें प्राप्त हो।

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः। यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन। वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा॥ ७॥

भा०—हे अग्रणी नायक! तू स्तुति योग्य और प्रार्थित होकर हमारे कथनों को अच्छी प्रकार सुना कर। तू यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना में लगे दानशील पुरुषों और बड़े २ यज्ञों के करने में समर्थ तेजस्वी राजाओं के हित के लिये भी उपदेश किया कर। और जिस गोरस वाली गौ के

समान ज्ञान आनन्दरस देनेवाली वाणी को ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजन तपस्वी पुरुषों को करें, न्यायशील राजा सबके साथ ही कर्त्ता अर्थात् स्वामी के लिये नाना प्रकार से उसका दोहन करे। वह अग्रणी राजा मुझ राष्ट्रजन के हित के लिये वेदवाणी को सबके साथ मिलकर प्राप्त करे और जाने।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः। यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्। अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥८॥

भा०—हे वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले वीर पुरुषो! और देशदेशान्तर में जाने वाले व्यापारियो! और ज्ञानेच्छु आलस्य रहित विद्यावान् पुरुषो! वे नाना प्रकार के आप लोगों के सदा से चले आये पौरुष के कर्म और बल, सामर्थ्य और पुरुषोचित कर्त्तव्य हम से कभी दूर न हों। तुम लोगों के सदा काल से चले आये ऐश्वर्य और यश नष्ट न हों। तुम लोगों के नगर और देहादि भी नष्ट न हों। जो आप लोगों का युग युग में कभी नाश न होने वाला नया से नया, संग्रह करने योग्य, वेदवाणी से उत्पन्न होने वाला धन है वह भी हम में स्थापित करो। जो आप का अपार बल है उसे और जो भी दुखों की नाशकारी सामर्थ्य है उसको भी हम में धारण कराओ।

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः। तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

भा०—व्रत धारण करनेवाले को प्राप्त होने वाला, पूर्ण विद्वान्, तेजस्वी ज्ञानी, यज्ञों का प्रिय, मेधावी, तीनों तापों से रहित, और मनन शील, ये सभी प्रकार के विद्वान् मेरे मातृजन्म और विद्याजन्म को जानें। वैसे पूर्व विद्यमान् अनुभववृद्ध जन मुझे भी मननशील रूप से प्राप्त करें। उन पूर्वोक्त विद्वानों का विद्वानों और देहगत इन्द्रियों पर वश हो। और

उनमें ही हमारे भी सम्बन्ध हों। और उनके बड़े भारी ज्ञान और प्राप्त करने योग्य प्रतिष्ठापद से और वेदवाणी के उपदेश से मैं सब प्रकार विनीत और शिक्षित होऊं। मैं वाणी के उपदेश से परमेश्वर और ज्ञानी आचार्य दोनों के आगे सदा विनयशील होकर रहूं।

होता॑ यक्षद्व॒निनो॑ वन्त॒ वार्यं॒ बृह॒स्पति॑र्यजति॒ वेन॑ उ॒क्षभिः॑ पु॒रु॒वारे॑भिरु॒क्षभिः॑। ज॒गृ॒म्भा दू॒र आ॑दिशं॒ श्लोक॒मद्रे॒रध॒त्मना॑। अधा॑रयद॒ररि॒न्दानि॑ सु॒क्रतुः॑ पु॒रू सद्मा॑नि सु॒क्रतुः॑ ॥१०॥

भा०—दाता जिस प्रकार धन को प्रदान करता और धनाभिलाषी उस श्रेष्ठ धन को ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अधिकारों को योग्य पुरुषों को देने द्वारा पुरुष वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान ऐश्वर्य और पदाधिकार हमें प्रदान करे, और वन अर्थात् उत्तम विद्यावान् और उत्तम अभिलाषी पुरुष उस वरण करने योग्य पद को ग्रहण करें। वेदवाणी और बृहती भूमी अर्थात् महान् राष्ट्र का पालक, तेजस्वी और मेधावी राजा, बहुत से प्रजाजनों से वरण किये जाने वाले, सहसम्मति से चुने गये, कार्यभार को अपने कन्धों पर उठा कर राज्यकार्यों के चलाने वाले धुरन्धर पुरुषों और मेघों के समान सुखों के वर्षक पुरुषों द्वारा श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करे। मेघ के दूर से ही सुनने योग्य शब्द को जिस प्रकार हम लोग दूर से ही सुन लेते हैं उसी प्रकार अचल राजा के दूर से ही सुनाई देने वाली आज्ञा और घोषणा को ग्रहण करें। वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष उत्तम कर्मकुशल और उत्तम प्रज्ञावान् होकर, अपने आत्म सामर्थ्य से 'अररि' अर्थात् न देने वाले को दमन करने के साधनों को धारण करे। और वही उत्तम पुरुष बहुत से आश्रयगृहों, भवनों और पदाधिकारों को भी अपने सामर्थ्य से धारण करे।

ये दे॑वासो दि॒व्येका॑दश॒ स्थ पृ॑थि॒व्यामध्येका॑दश॒ स्थ।
अ॒प्सु॒क्षितो॑ महि॒नैका॑दश॒ स्थ ते दे॑वासो य॒ज्ञमि॒मं जु॑षध्वम् ११।४।२०

भा०—हे विद्वान् जनो ! सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त आप लोग जो ग्यारह हो, पृथिवी पर अध्यक्ष रूप से शासन करने के निमित्त भी ग्यारह होकर रहो, और बड़े भारी सामर्थ्य से जलों में निवास करने हारे होकर सामुद्रिक व्यापार और सेना विभाग के लिये भी ११ होकर रहते हो, वे आप लोग इस सुसंगत राष्ट्र और सर्वैश्वर्यप्रद प्रजापति राजा की प्रेम से सेवा करो । अध्यात्म में—दश प्राण और जीवात्मा, दश इन्द्रियां और मन, दश दिशा और सूर्य सब ११, ११ हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥ इति विंशोऽनुवाकः ॥

[१४०]

दीर्घतमा औचथ्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ ५, ८ जगती । ३, ७, ११ विराड्जगती । ९, ४, ६ निचृज्जगती च । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, १२ निचृत् त्रिष्टुप् पङ्क्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार वेदी में विराजने वाले, सुन्दर प्रकाशवान्, उत्तम कान्ति युक्त अग्नि को प्रदीप्त करने और बढ़ाने के लिये पोषक काष्ठ और घर प्रदान किया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् प्रजाजन ! तू सब पदार्थों का लाभ कराने वाली भूमि पर राजा रूप से विराजने वाले, सबको प्रिय लगने वाले तेज को धारण करने वाले, उत्तम कान्तिमान् नायक पुरुष के पालन पोषण और वृद्धि के लिये प्राणों के धारक अन्नादि और पदार्थ को अच्छी प्रकार उपस्थित करो । सूर्य के समान अन्धकार और शोक दूर करने वाले, शुद्ध उज्ज्वल वर्ण के, सुवर्ण चांदी आदि से बने रथ वाले, शुद्ध आचार चरित्र के पुरुष को वस्त्र के समान मान और आदर से भी आच्छादित करो ।

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार दो अरणियों से उत्पन्न होने के कारण 'द्विजन्मा' है । वह तीनों रूपों से वर्त्तमान खाने योग्य अन्न को प्राप्त कराता है । अग्नि रूप से पकान्न को देता है, विद्युत् रूप से जल को और सूर्य रूप से फलादि को प्रदान करता है । वह इस खाने योग्य अन्न को ही एक वर्ष में फिर २ बढ़ा लेता है । वह अन्न सूर्य से भिन्न जाठर अग्नि के मुख से और भिन्न रूप से भौतिक काष्ठाग्नि की ज्वाला से भी खाया जाता है । इस कारण वह जलों का वर्षण करने वाला सूर्य ही समस्त प्राणियों के संताप का वारण करने वाला होकर जलयुक्त मेघों को उत्पन्न करता है । उसी प्रकार यह अग्रणी पुरुष भी माता पिता और गुरु शिक्षा दोनों से उत्पन्न होकर द्विज होकर, तीन ऋणों सहित त्रिसूत्र से युक्त होकर रहता है । वह वर्ष में खाने योग्य इस अन्न को बार २ प्राप्त करे और बढ़ावे । और खाये हुए अन्न के समान फिर अपने राष्ट्र के बल की वृद्धि करे । वह दूसरे के मुख से, और दूसरे की जिह्वा अर्थात् वाणी से युद्ध आदि में विजयी होकर, बलवान् राज्य प्रबन्धक होकर, फिर दूसरे जनों से ही शत्रुओं को वारण करने में समर्थ होकर, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के स्वामियों को भी साफ करदे, उनको परास्त करे ।

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार माता और पिता दोनों बच्चे को लक्ष्य करके उसके प्रति सदा आकर्षण या मन खिंचाव या प्रेम से पूर्ण रहते हैं, और वे उसके सदा साथ रहा करते हैं, और वे दोनों पिता के यत्न, हर्ष, कुल, गोत्र को बढ़ाने वाले, आगे जीभ निकालने वाले, गिरते पड़ते, शीघ्र ही फिसल जाने वाले, सदा सहाय योग्य, रक्षण करने योग्य बालक को लक्ष्य करके

खूब प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजा वर्ग भी एकत्र ही निवास करते हुए, शत्रु दल को गिरा देने और प्रजा के आकर्षण करने के गुणों से व्याप्त होकर भय से कांपते, और दोनो बालक को मां बाप के समान राजा को ही प्राप्त होते और उसकी वृद्धि करते हैं। पिता के बढ़ाने वाले बालक के समान ही उसको भी मुख्य उत्तम वाणी से युक्त शत्रु को नाश करने वाला, शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन पद से उखाड़ देने वाला, सखा या संघ शक्ति का आश्रय राष्ट्ररक्षक जानकर आश्रय लेते हैं।

मुमुक्वो॒ मन॑वे मानवस्य॒ते र॑घु॒द्रुव॑ः कृ॒ष्णसी॑तास ऊ॒ जुव॑ः।
अ॒स॒म॒ना अ॑जि॒रासो॑ रघु॒ष्यदो॒ वात॑जूता॒ उप॑ युज्यन्त आ॒शव॑ः ॥४॥

भा०—समस्त मानव जगत् को अपनाने वाले ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये, अपने को संसार बंधन से मुक्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष ही उपयुक्त होते हैं, वे ही उस परमेश्वर की उपासना में लगा करते हैं। वे तीव्र वेग से उपासना के मार्ग पर चलते हैं, भूमि में हल चलाने वाले कृषकों के समान तपस्या द्वारा अपने कर्मबंधनों को अन्त कर देते हैं, अन्यों से असाधारण चित्त और ज्ञान वाले होते हैं, निरन्तर प्रयत्नशील और बाधक कारणों और विक्षेपक मलों को उखाड़ फेंकने में यत्नशील होते हैं, तीव्र वेग वाले तथा सन्मार्गों में वेग से जाने वाले, इस मार्ग पर शीघ्र गति से चलते हैं।

आद॑स्य॒ ते ध्व॒सय॑न्तो॒ वृथे॑रते कृ॒ष्णम॑भ्वं॒ महि॒ वर्प॒ः करि॑क्रतः।
यत्सी॑ म॒हीम॒वनि॒ प्राभि मर्मृ॑शद॒भिश्व॒सन्स्त॒नय॒न्नेति॒ नान॑दत् ॥५॥

भा०—उसके पश्चात् जो मुमुक्षु जन, पापमय मलिन कर्माशय या मिथ्याज्ञान का विनाश करते और बड़े भारी अव्यक्त करने योग्य आत्म-स्वरूप को साक्षात् कर लेते हैं, वे इस परमेश्वर को अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि जो पुरुष सर्वतोभावेन, उस महान् सर्वरक्षक को प्राप्त हो जाता है, वह आश्वासन या हृदय की शान्ति को प्राप्त हुआ, और

मेघ के समान उत्साह से गर्जता हुआ, और सिंह के समान नाद करता हुआ, अति उत्साहवान्, निर्भय होकर परम पद को प्राप्त होता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥६॥

भा०—जो प्रधान अग्रणी पुरुष प्रभु होकर राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजाओं के बीच में अपने को सिंहासन पर अधिकृत करता हुआ और सामर्थ्यवान् होता हुआ अध्यक्ष रूप से प्राप्त होता है, और यज्ञ द्वारा बनी धर्म दाराओं मे मन्त्रोच्चारण करते हुए पति के समान राष्ट्र का पालन करने वाली सेनाओं और प्रजाओं को गर्जना करता हुआ प्राप्त होता और जो पराक्रमी होकर विस्तृत भूमियों, प्रजाओं सेनाओं को सुशोभित करता है, वह भयकर बड़े दुर्दान्त साड के समान अति भयंकर, तथा शत्रुओं के वश मे न आकर शत्रुओं का नाश करने वाले शस्त्रास्त्रों और सैन्यों का बराबर सञ्चालन करे।

स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आशये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥

भा०—वह अग्रणी अपने राज्य को भली प्रकार विस्तृत करने वाला और विविध उपायों से विस्तृत करता हुआ भूमि को ग्रहण करे और ज्ञानवान् होकर निरन्तर विदुषी प्रजाओं मे सत्संग करे। वे ज्ञानसमृद्ध विदुषी प्रजाएं असाधारण देव अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी राजा के तेजस्वी रूप को प्राप्त होतीं और बार २ बढ़ती हैं। पालन करने वाले माता पिता के अभिलाषा योग्य और भिन्न २ रूप वाले के पुत्र को जिस प्रकार विदुषी स्त्रियां प्राप्त करतीं और पुन सन्तान की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार वे प्रजाएं भी पालन करने वाले राजा और राजवर्ग के हित के लिये परस्पर मिलकर विशेष स्वरूप को प्रकट करती हैं।

तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद्वसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८॥

भा०—अग्रगण्य उत्तम सुकेशी स्त्रियां जिस प्रकार पति को प्राप्त करते ही उनके विरह में मरती हुईं भी, पुनः आते हुए पति के लिये उठकर खडी हो जाती हैं, और विद्या को प्राप्त करने हारा पुरुष जिस प्रकार उन स्त्रियों की जीर्ण दशा या जीवन नाश को दूर करता हुआ उनको प्राप्त होता है, और उन्हे जीवन पुनः देता है, उनको पुनः हर्षित, प्रफुल्लित कर देता है, उसी प्रकार आगे बढने वाली श्रेष्ठ प्रजाएं, क्लेशों मे फंसी हुई उस उत्तम अग्रगण्य नायक को निश्चय ही भली प्रकार प्राप्त करती है। और वे मरती हुईं भी आते हुए राजा के आदर और वृद्धि के लिये बार २ उठ खडी होती, उनका आदर करती हैं। पुरुष सिंहनाद करता हुआ या प्रजा को शिक्षा देता हुआ उन प्रजाओं की जरा को दूर करता हुआ उनको प्राप्त हो। उत्तम प्राण और न नाश हुए जीवन और जीवित प्राणियों से समृद्धि करता हुआ उनको प्राप्त हो।

अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार बालक माता की गोद में उसके वस्त्र को अपने मुख में चाबता हुआ, वेगवान् होकर अति शब्द युक्त सात्विक विविध चेष्टाओं से गमन करता है, और वह पदार्थों का आस्वाद लेता हुआ चरण से चलने वाले बडे बालक की अवस्था को धारण कर लेता और बडा हो जाता है, बुद्धिमती माता उसके पीछे रहती हुई उसके साथ रहा करती है, उसी प्रकार अग्रणी राजा भी उसका मान आदर करने वाली पृथिवी माता के वस्त्र के समान पालन पोषण करने योग्य ऐश्वर्य का आस्वादन करता हुआ, शत्रु पर आक्रमण करने में वेगवान् और विजयशील होकर, बहुत से उपदेश करने वाले वीर्यवान् बलवान् वीर और विद्वान्

पुरुषों सहित विविध देशों पर प्रयाण करे, उनका विजय करे। वह सब कालों में पृथ्वी के ऐश्वर्य का भोग करता हुआ ज्ञानवान् पुरुष के उपकार के लिये ही अपना पूर्ण जीवन धारण करे। उसके अनुकूल वेग से जाने वाली और सदा उसके अनुकूल चलने वाली, अथवा वार्त्तावृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाली वैश्य प्रजा अनुकूल संघ बना कर रहे।

अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे तेजस्विन् नायक! तू हमारे ऐश्वर्यवान्, सम्पन्न और निष्पाप पुरुषों के बीच में प्रकाशित हो। जितेन्द्रिय होकर प्रजा के और शत्रुओं के दमन करने में भी दृढ़ चित्त होकर, बालकों से युक्त उत्तम प्रजाओं को प्रकाशित कर। और संग्रामों में शत्रुओं को पुनः २ दूर करता हुआ कवच के समान प्रजाओं की रक्षा कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।
यत्ते शुक्रं तन्वो॒ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११॥

भा०—हे अग्रणी नायक! दुःख से प्राप्त किये और कष्ट से सुरक्षित प्रिय धन से भी बढ़कर जो यह सुख से धारण करने योग्य हमारा मन है वह तुझे प्रिय हो। और जो तेरे राष्ट्र शरीर का शुद्ध तथा पवित्र तेज चमकता है, उससे तू हमें रमण करने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करा।

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् पुरुष रमण करने और वेग से जाने के लिये और गृह तक पहुंचने के लिये, स्थिर चप्पुओं वाली और दृढ़ पैर या लंगर वाली नाव को तैयार करता है उसी प्रकार हे अग्रणी राजन्! रमण करने के लिये और हमारे गृह बसा कर रहने के लिये हमें तू नित्य शत्रुओं

से बचाने वाली, पैरों चलने वाली, शत्रुओं को दूर हटा देने वाली सेना को प्रदान कर। जो हमारे वीर पुरुषों को और राष्ट्रवासी हमारे धनसम्पन्न जनों को भी सकटों से पार करे। और सुखदायी हो। अध्यात्म में—पद्वती नौ यह देह है। आत्मा के रमण करने और बन्धन में रखने दोनों प्रयोजनों के लिये है। वह हमें प्राणो को और आत्मा को भी भवसागर से पार उतारती और सुख प्राप्त कराती है।

अभी नो॑ अग्न उ॒क्थमिज्जु॑गुर्या॒ द्यावा॒क्षामा॒ सिन्ध॑वश्च॒ स्वगू॑र्ताः।
गव्यं॒ यव्यं॒ यन्तो॑ दी॒र्घाहेषं॒ वर॑मरु॒ण्यो॑ वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू हमें उत्तम उपदेश ही प्रदान किया कर। आकाश और पृथिवी, समुद्र और नदियां, ये सब अपने ही बलों से प्रेरित होकर जिस प्रकार भूमि और इन्द्रियो के हितकारी और यवादि के योग्य क्षेत्र को प्राप्त होकर, वृष्टि और उत्तम अन्न को प्रदान करती हैं, और अरुण कान्ति से युक्त प्रभात वेलाएं जिस प्रकार अभिलाषा करने और सब को प्रेरने वाले वरणीय प्रकाश को प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी के समान एक दूसरे के उपकारक राजा और प्रजा, समुद्र के समान गम्भीर और प्रजा को परस्पर बांध लेने में समर्थ महापुरुष, अपने सहयोगी बन्धु बान्धवो से उद्यमशील होकर, गौओ के दुग्ध के समान भूमि से प्राप्त ऐश्वर्य और वेद वाणी से प्राप्त ज्ञान को और यवादि अन्नोपयोगी क्षेत्र को प्राप्त होते हुए, चिरकाल तक बहुत दिनों तक प्रजा को सन्मार्ग में प्रेरक वरण करने योग्य उत्तम पद अधिकार को प्राप्त करें। और उषाओं के समान कमनीय गुणो से युक्त नव युवतियां अभिलाषानुकूल वरण करने योग्य प्रिय पुरुष को प्राप्त करें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१४१]

दीर्घतमा ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ६, ११ जगती। ४, ७, ९, १० निचृज्जगती। ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ भुरिक् पंक्तिः। १३ स्वराट् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

वळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥

भा०—प्रकाशमान अग्नि का पदार्थों को परिपक्क करने का ताप पदार्थों को दिखलाने और प्रकाशित करने वाला होता है। वही तेज शरीर की रक्षा पोषण और वृद्धि के लिये भी धारण करने योग्य है यह बात इस प्रकार से सर्वथा सत्य है। अग्नि का तेज जिस बल या शक्ति से उत्पन्न हुआ करता है इसी कारण से वह शरीर मे भी बल को उत्पन्न करता है। मनन करने वाली बुद्धि भी इसको ही सब प्रकार से आश्रय करती है, और उसकी ही साधना है अर्थात् वह भी तेज से ही उत्पन्न होकर भीतरी तेज को उत्पन्न करती है। दूध वाली गौएं जिस प्रकार अपने वत्स को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार जल को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धाराएं भी समान रूप से प्रवाहित होती हुई उस महान् अग्नि को तेज रूप मूल कारण तक ले जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष का दुष्टों को संताप देने वाला तेज भी बल से ही उत्पन्न होता है। और उसका वह दर्शनीय तेज सचमुच एक बल है। बुद्धि भी उसको स्वीकार करती और उसको प्रमाणित और अधिक बलशाली बनाती है। एक समान मार्ग से जाने वाली ज्ञान की वाणियां भी उसी तक हमे पहुंचाती हैं।

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

भा०—जीवात्मा की तीन दशाएं— [१] इसका सेचन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने मे मूल कारण है उसको उत्तम अन्न खाने वाला पुरुष सदा धारण करता है। और जो उसका स्वरूप सातों प्राणों या शिरोगत सातों इन्द्रियों मे कल्याणयुक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली माताओं के बीच गर्भ रूप से रहता है वह इसका द्वितीय स्वरूप है। और जो वीर्यसेक्ता पुरुष के पुत्र कामना को पूर्ण करने के

लिये स्त्रियां जिस दसों उत्तम ज्ञान कर्म साधनों से युक्त पूर्णाङ्ग बालक को जनती हैं वह उत्पन्न जीव के रूप में आत्मा का तीसरा स्वरूप है। (२) इसी प्रकार अन्नादि पालन के साधनो वाला पिता इस पुरुष के पोषणीय देह को बाल्यकाल में पुष्ट करता है। दूसरा कौमार काल का देह है जिस को सातों सुखकारी पदार्थों को धारण करने वाली माताओ के बीच में पाला जाता है। और फिर यौवन मे इस सेचन-समर्थ श्रेष्ठ पुरुष का तीसरा पूर्ण यौवन का समय है, कामना पूर्ति के लिए जिस दश धर्म लक्षणों से सम्पन्न युवा पुरुष को प्राप्त कर स्त्रियां सन्तान उत्पन्न करती हैं।

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३॥

भा०—इस जीव को अधिक सामर्थ्यवान् विद्वान् लोग, बड़े रूपवान् देह के बन्धन से निर्मुक्त करते हैं। और मधुर रस के प्राप्त करने के निमित्त हृदय के भीतर विराजमान् जिस सनातन आत्मा को प्राण वायु, अग्नि को पवन के समान, प्रज्वलित करता है, उसका साक्षात् कर ज्ञान करो।

प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ॥४॥

भा०—वह जीव आत्मा कैसा है? जो जीव सर्वोत्कृष्ट अन्न के सार से प्रकट होता है, और जो अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाले गृहों मे वृद्धि को प्राप्त होता है, और दोनों स्त्री पुरुष जब इस जीव के जन्म के लिये यत्न करते हैं, तभी वह बलवान् तेजोमय शुद्ध कान्तिमान् आत्मा प्रकट होता है।

आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥५॥८॥

भा०—आत्मा का ही वर्णन है। वह जीव माताओं के गर्भ में प्रथम प्रविष्ट होता है, अनन्तर उनके बीच में वह किसी प्रकार भी पीड़ित न

होता हुआ बहुत अच्छी प्रकार शुद्ध रक्त से सिक्त होकर विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होता है। वह जीवात्मा सनातन काल से चला आया, और पूर्व की माताओं को प्राप्त होकर अनुकूल स्थिति में जन्म को प्राप्त करता रहा, उसी प्रकार अब के काल में विद्यमान नये काल को अर्थात् अब की माताओं में भी नियमपूर्वक जन्म को प्राप्त होता है, अर्थात् जीवोत्पत्ति-क्रम अनादि काल से एक समान ही है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते। देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥६॥

भा०—जीवात्मा का ही पुनः वर्णन है। जब संपर्क करते हुए कामना की एषणाओं मे ऐश्वर्य के समान सुखजनक भोग को साधते हैं, तब ही लोग भोक्ता जीव को पुत्र रूप से प्राप्त करते है। वह जीव बहुतों द्वारा वर्णित होता है, और ज्ञान और बल से प्राणों को, और स्तुति योग्य उत्तम मरण शील देह को धारण पोषण करने के लिये प्राप्त होता है।

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः। तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

भा०—जीव की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं—जब वह प्रसव योग्य हो जाता है तब वह प्राण वेग से प्रेरित होकर, कुटिल मार्ग से आता हुआ, अति पीडित होकर, वक्ता पुरुष जिस प्रकार मौन को छोड देता है उसी प्रकार वह भी जेरं को छोड देता है। माता को पीडा और संताप देने वाले, खिचाव तनाव के मार्ग मे स्थित, शुद्ध जन्म वाले उस जीवात्मा के मार्ग में रुधिर या राजस् भाव भी आता है।

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते। आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार रथ वा विमान रज्जुओं और कीलादि के बंधनों से

तैयार किया जाकर आकाश और भूमि पर गमन करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा भी निषेक आदि संस्कारो द्वारा उत्पन्न और संस्कृत होकर इस पृथ्वी पर आता, ज्ञानमय प्रभु और आचार्य से विवेक दीप्ति को प्राप्त होकर कर चरण आदि अवयवो और योग के साधनाङ्ग प्राणायाम लादि से इस तेजोमय परमेश्वर को प्राप्त होता है। बाद मे शूरवीर के समान अति बलवान् इस जीव के वे उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, दुःखो के काटने वाले, हंस पक्षियो के समान विशुद्ध ज्ञानी पुरुष, अपने ज्ञान प्रकाश से इसे प्राप्त होते और तब तू पापादि बन्धनो को दग्ध कर देता है।

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुरराान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९

भा०—व्यापक परमेश्वर का वर्णन। हे अग्रणी! तेरे ही बल से सब कार्यों को धारण करने वाला सर्वश्रेष्ठ सूर्य, और प्राण के समान प्रिय चन्द्र, और उत्तम सुखो के देने वाले दिन रात, और गमनशील प्राणो के नियामक वायु, ये सब गतियुक्त होकर कार्य करते हैं, जो सब प्रकार अरो पर चक्रधारा के समान अपने महान् क्रियासामर्थ्य, शक्ति और ज्ञानसामर्थ्य से समस्त जनो और प्राणों पर सर्वशक्तिमान् स्वामी हो रहा है।

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१०

भा०—हे नायक! तू स्तुतिशील तथा सवन या अभिषेक करने वाले प्रजाजन को दान देने के लिये उत्तम पुरुषो के हितकारी उत्तम पदार्थ को प्राप्त कर। हे युवक! हे उत्साहवन्! हे भूमिरत्न के स्वामिन्! तुझको उत्तम कार्यों मे ऐश्वर्य के समान सेवनीय, एवं बल के कारण स्तुति योग्य हम जानें। (२) आत्मा के पक्ष मे—वह परमात्मा ज्ञान साधना क

वाले या स्तुतिकर्त्ता उपासक को सुखरूप से प्राप्त होता है; उसी स्तुत्य का हम ध्यान करें।

अस्मे र॒यिं न स्वर्थं॒ दमू॑नसं॒ भगं॒ दक्षं॒ न प॑पृचासि धर्ण॒सिम्।
र॒श्मीँरि॑व॒ यो यम॑ति॒ जन्म॑नी उ॒भे दे॒वानां॒ शंस॑मृ॒त आ च॑ सु॒क्रतुः॑ ॥ ११ ॥

भा०—हे परमात्मन्! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य के समान, उत्तम पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम को और इन्द्रियों और मन को दमन करने वाले विद्यादि के धारण करने वाले, सेवन करने योग्य ऐश्वर्ययुक्त अपने स्वरूप को प्रकट करता है। सूर्य जिस प्रकार किरणों को और सारथि जिस प्रकार अश्व की वागों को वश में करता है उसी प्रकार इहलोक और परलोक दोनों जन्मों को तू नियम में रखता है। तू विद्वानों के और प्राणों के बीच स्तुत्य रूप को प्राप्त करता है। सत्य व्यवहार के निमित्त तू शोभन कर्म करने वाला और उत्तम ज्ञानवान् है।

उ॒त नः॑ सु॒द्योत्मा॑ जी॒राश्वो॒ होता॑ म॒न्द्रः शृ॑ण॒वच्च॒न्द्ररथः।
स नो॑ नेष॒न्नेष॑तमै॒रमूरो॒ऽग्निर्वा॒मं सु॑वि॒तं वस्यो॒ अच्छ॑ ॥ १२ ॥

भा०—आत्मा का वर्णन है। वह हमारा उत्तम रीति से चमकने वाला प्रकाशस्वरूप आत्मा, कर्मफल भोक्ता जीव, सब विद्याओं और ज्ञानों को ग्रहण करने वाला, और आल्हादक चन्द्र के समान प्रकाशस्वरूप, अति हर्षकर और उत्तम सुना जाता है। वह अमर, ज्ञानवान् आत्मा हमें नायक प्राणों द्वारा देह में बसने योग्य और उनके द्वारा देह में बसने द्वारा होकर, सुख प्राप्त करने योग्य उत्तम पद तक ले जावे और उसका साक्षात् करे।

अस्ता॑व्य॒ग्निः शिमी॑वद्भिर॒र्कैः साम्रा॑ज्याय प्र॒तरं॒ दधा॑नः। अ॒मी च॒ ये म॒घवा॑नो व॒यं च॒ मिहं॒ न सूरो॒ अति॒ निष्ट॑तन्युः ॥१३॥९॥

भा०—देह के अंगों में व्यापक जीव, उत्तम कर्मों का अनुष्ठान

करने वाले और शम की साधना वाले, और अर्चनाशील तेजस्वी पुरुषों से नित्य स्तुति किया जाता है। वह सम्राट् परम प्रभु के अद्वितीय पद के लाभ के लिये, भवसागर को पार करने वाले ज्ञानानुष्ठान को धारण करता है। और जो ये ऐश्वर्यवान् हैं वे और हम सब, नित्य स्तुति कर उसको प्रसिद्ध करें, उसके गुणों को प्रकट करें। इति नवमो वर्गः।

[१४२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ देवता—१, २, ३, ४ अग्नि । ५ बर्हिः । ६ देव्यो द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ । ९ सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतिः । १३ इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८, ९ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप् । ३, ७, १०, ११, १२ अनुष्टुप् । १३ भुरिगुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार अग्नि प्रकाश देने वाले किरणों को स्वयं और अन्यों को भी प्रदान करता है, और स्रुक् नाम घृताधार पात्र को थामने वाले और सोम वाले यजमान के हितार्थ यज्ञ का सम्पादन करता है, उसी प्रकार हे अग्रणी पुरुष ! तू भी खूब विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशित और तेजस्वी होकर उत्तम गुणों को धारण कर और विद्वान् पुरुषों को प्राप्त हो। और आज संयत वीर्य वाले, शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न कर उनको उत्तम पद पर अभिषिक्त करने वाले, ज्ञान और धन सौंपने वाले वृद्ध पिता के लिये पूर्व पुरुषों से प्राप्त प्रजातन्तु और शिष्यतन्तु को विस्तृत कर।

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

भा०—देह को न गिरने देने से जाठर अग्नि 'तनूनपात्' है। वह

जिस प्रकार स्तुतिशील हविदाता पुरुष के घृत और व्रीहि आदि अन्न से युक्त यज्ञ को सम्पादित करता है, उसी प्रकार हे प्रजा के शरीरों और विस्तृत राष्ट्र को न गिरने देने वाले राजन्! तू कष्टों को पार करने वाले, अपने को तेरे प्रति समर्पण कर देने वाले मेरे जैसे मेधावी जन के, जल से पूर्ण और अन्न से समृद्ध राष्ट्र यज्ञ को संचालित कर।

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

भा०—पुरुषों से स्तुति करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष शुद्ध आचारवान्, अग्नि के समान अन्यों को पवित्राचारी बनाने हारा, आश्चर्यजनक, दानशील, अन्य दानशील पुरुषों के बीच में स्वयं सबसे श्रेष्ठ दानशील, सुसंगत राज्य को, मधुर अन्न, मधुर वचन तथा मधुर जल से तीनों प्रकार से सेचन करे।

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम मधुर वाणी वाले विद्वन्! तू स्तुति किया जाकर इस लोक और इस जन्म में प्रीति कारक, आश्चर्यकर ऐश्वर्य को धारण कर और प्राप्त कर। तुझे मेरी यह उत्तम बुद्धि भली प्रकार उपदेश की जावे।

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में स्रुक् आदि पात्रों को उठाए हुए यज्ञकर्त्ता लोग कुश बिछाते हुए 'इन्द्र' अर्थात् परमेश्वर के व्यापक सुख को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको शत्रुजन नष्ट न कर सकें ऐसे राष्ट्र में लोगों को नियम में रखने में समर्थ उत्तम शासक जन, बड़े भारी राष्ट्र को आच्छादित करते हुए, शत्रुहन्ता राजा के लिये विद्वानों विजयेच्छुक वीर-

पुरुषों ने खूब परिपूर्ण, खूब विस्तृत, सुखकारक भवन या दुर्ग आदि बनाते हैं।

वि श्र॑यन्तामृता॒वृधः॑ प्र॒यै दे॒वेभ्यो॑ म॒हीः।

पा॒व॒कासः॑ पुरु॒स्पृहो॒ द्वारो॑ दे॒वीर॑स॒श्चतः॑ ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—घरों में बड़े २ द्वार विद्वानों और व्यवहारवान् पुरुषों के आने जाने के लिये विविध प्रकार से खड़े किये जांय। वे द्वारों वाले गृह सत्याचरण के बढ़ाने वाले हों, द्वार पवित्र रखे जांय, सब द्वारा स्पृहा के योग्य हों, और विलक्षण हों। इति दशमो वर्गः ॥

आ भन्द॑माने॒ उपा॑के॒ नक्तो॒षासा॑ सु॒पेश॑सा।

य॒ह्वी ऋ॒तस्य॑ मा॒तरा॒ सीद॑तां ब॒र्हिरा सु॒मत् ॥ ७ ॥

भा०—रात और दिन जिस प्रकार सबको सुख देने वाले और उत्तम रूप वाले हैं, उसी प्रकार कल्याणकारक, रात्रि और उषा के समान एक दूसरे के अति समीप रहते हुए, सुन्दर रूप और अंगो वाले, सत्य ज्ञान के जानने वाले माता पिता बड़े पूज्य होकर सदा हमारे समीप आवें, और उत्तम हर्षदायक आसन पर आकर विराजें।

म॒न्द्रजि॑ह्वा जुगु॒र्वणी॒ होता॑रा॒ दैव्या॑ क॒वी।

य॒ज्ञं नो॑ यक्षतामि॒मं सि॒ध्रम॒द्य दि॑वि॒स्पृश॑म् ॥ ८ ॥

भा०—अति हर्ष उत्पन्न करने वाली वाणी वाले, निरन्तर उद्यमशील, ज्ञान के दान और ग्रहण करने वाले, विद्वानों में प्रसिद्ध और उत्तम गुणों को धारण करने वाले, दूरदर्शी विद्वान् हमारे इस सब कार्यों के साधक, कामनाओं को प्रदान करने वाले श्रेष्ठकर्म को सुसंगत करें।

शुचि॑र्दे॒वेष्वर्पि॑ता॒ होत्रा॑ म॒रुत्सु॒ भार॑ती।

इळा॒ सर॑स्वती म॒ही ब॒र्हिः सी॑दन्तु य॒ज्ञियाः॑ ॥ ९ ॥

भा०—जो विद्वानों में प्राप्त, शुद्ध, शिष्य परम्परा से प्राप्त करने योग्य विद्यामयी वाणी है, और जो वीर प्रजाजनों में प्रजापालक राजाओं

की वाणी है, और जो ईश्वरोपासना योग्य, और प्रशस्त ज्ञान वाली बड़ी भारी उत्तम वेद वाणी है, वे सब श्रेष्ठ कर्म तथा उपासनादि के योग्य है। वे सब वृद्धिशील पुरुष और विद्यार्थी जन मे विराजें। अथवा होत्रा ऋग्वेद, भारती यजुर्वेद, इला सामवेद, सरस्वती अथर्ववेद।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुवारं पुरुत्मना।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

भा०—हमारा प्रिय शिल्पी हमे पुष्ट करने के लिये और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमारे केन्द्र मे आकर विराजे। वह हमे अति शीघ्र रक्षा वाले, आश्चर्यकारी, बहुत अधिक और पर्याप्त साधन से और स्वयं अपने सामर्थ्य से प्रभूत ऐश्वर्य प्राप्त करावे।

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

भा०—हे वनस्पति अर्थात् महावृक्ष के समान अपनी छाया में अपने आश्रितों को शरण देने हारे! तू अपने सामर्थ्य से विद्या और धन के अभिलाषी उत्तम विद्वान् पुरुषो को अपने समीप बुला कर उन्हे ऐश्वर्य प्रदान कर। ज्ञानवान्, दानशील और बुद्धिमान् पुरुष विद्वान् पुरुषो मे देने योग्य धन आदि पदार्थ सदा दिया ही करता है।

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग पोषण करने वाले, विद्वानों, वैश्यप्रजा और वीरसैनिको के स्वामी, विजिगीषुओं के स्वामी, वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले, ज्ञान करने वाले के रक्षकरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले और प्रभु के लिये, उत्तम सत्य आचरण और सत्कार द्वारा, उत्तम वचन सत्कार और अन्नादि, पदार्थ उपस्थित करो।

स्वाहांकृतान्या गह्युप हुव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गंहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्यावन् आचार्य ! आप उत्तम वाणी और आदर द्वारा सुसम्पादित अन्न आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये आओ । आओ और उत्तम वचन श्रवण करो । लोग यज्ञ में और परस्पर सत्संग और उत्तम कर्म के अवसर पर तुझे बुलाते, और तुझसे ज्ञानश्रवण करने की प्रार्थना करते हैं । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१४३]

दीर्घतमा ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृज्जगती । २, ३, ५, विराड्जगती । ४, ६ जगती च । ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र तव्यंसीं नव्यंसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहंसः सूनवें भरे । अपां नपाद्यो वसुंभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदद् ऋत्वियः ॥ १ ॥

भा०—जो आप्त पुरुषों के बीच कर्माचरण में पतित नहीं होता और जो गुरु के अधीन विद्या प्राप्ति के लिए बसने वाले छात्रों के सहित गुरु को सेवा शुश्रूषा से प्रसन्न करने वाला, ज्ञान का स्वीकार करने हारा, सत्य ज्ञान को धारण करने वाले गुरुओं के अधीन रहने वाला होकर विनय से पृथिवी पर विराजता है, ऐसे अंग २ में विनय से झुकने वाले वाणी और बल के सम्पादन करने वाले शिष्य के लिये मैं आचार्य बल सम्पादन करने वाली और नये से नया ज्ञान सम्पादन करने वाली तथा धारण पोषण करने वाली अध्ययनक्रिया और ज्ञान का अच्छी प्रकार उपदेश करूं।

स जायंमानः परमे व्योमन्याविरग्निरंभवन्मातरिश्वंने । अस्य क्रत्वां समिधानस्यं मज्मना प्र द्यावां शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

भा०—वह ज्ञानवान् विनयशील विद्यार्थी सावित्री-माता के पद पर चलने वाले, माता के समान अपने गर्भ में बालक को लेने हारे आचार्य की यशोवृद्धि और हर्ष के लिये, सबसे उत्कृष्ट तथा विशेष रक्षा करने वाले एवं विशेष रूप से पालने योग्य 'ओ३म्' अर्थात् परब्रह्म की शरण में और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान में उत्पन्न होता हुआ अपने उत्तम गुणों से प्रकट हो। तेज से चमकने हारे इसकी उत्तम प्रज्ञा से और कर्म सामर्थ्य से और बल से उसका तेज और प्रभाव, आकाश और पृथिवी प्रकाशित कर दे।

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम कान्तिमान् सूर्य की किरणें कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं, और जिस प्रकार तेज से बलशाली सूर्य के कभी नष्ट न होने वाले किरण सदा वेग वा प्रवाहों के समान बढ़ने वाले होते हैं, वे अन्धकारमय रात्रि वेला को लांघ कर प्रकाशित हुआ करते हैं, उसी प्रकार उत्तम रीति से सब पदार्थों को ज्ञानदृष्टि से देखने वाले, उत्तम रूप या शुभ शोभा से युक्त, उत्तम कान्तिमान्, इस आचार्य और विद्वान् के ज्ञानप्रकाश कभी नाश को प्राप्त नहीं होते, और अवर्णनीय रूप से उत्तम होते हैं। दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अविनाशी, तथा वेग से बहने वाली सरिताओं के समान वेग से गति करने वाले ज्ञानप्रवाह, कभी न सोते हुए अज्ञान रात्रि को पार कर प्रकाशित होते हैं।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥

भा०—ज्ञानों और ऐश्वर्यों के जिस स्वामी को, पाप और कर्म बन्धनों को भून देने वाले तपस्वी लोग, पृथिवी और समस्त चराचर संसार के मध्य में, केन्द्र में, सबको बल से सञ्चालित करने वाला मुख्य-

बल रूप जानते और बतलाते हैं, हे पुरुष ! उस सर्वप्रकाश परमेश्वर की वाणियों से स्तुति कर । जो कि अकेला अपने घर में स्वामी और शरीर में आत्मा के समान, चले हुए इस महान् ब्रह्माण्ड के दमन करने में सर्वश्रेष्ठ राजा के समान विराजता है ।

न यो वरा॑य म॒रुता॑मिव स्व॒नः सेने॑व सृ॒ष्टा दि॒व्या यथा॒शनि॑ः ।
अ॒ग्निर्जम्भै॑स्तिग्मि॒तैर॑त्ति॒ भर्व॑ति यो॒धो न शत्रू॒न्त्स वना॒ न्यृ॑ञ्जते ॥ ५ ॥

भा०—वेग वाले वायुओं का शब्द जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता, और सेनापति के आज्ञावचन से प्रेरित होकर छूट निकली सेना जिस प्रकार रोकी नहीं जा सकती, और जिस प्रकार मेघ से निकली विद्युत् रोके नहीं रुक सकती, उसी प्रकार जो अग्रणी रोका नहीं जा सकता, योद्धा पुरुष जिस प्रकार शत्रुओं का तीक्ष्ण शस्त्रों से नाश कर देता है और जिस प्रकार अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से जंगलों को भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् पुरुष अपने तीक्ष्ण तपः साधनों से सेवने योग्य विलासों का नाश करे और, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्त शत्रुओं को अपने वश करे ।

कु॒विन्नो॑ अ॒ग्निरु॒चथ॑स्य॒ वीर॒सद्वसु॑ष्कु॒विद्वसु॑भि॒ः काम॑मा॒वर॑त् ।
चो॒दः कु॒वित्तु॑तु॒ज्यात्सा॒तये॒ धिय॒ः शुचि॑प्रतीकं॒ तम॒या धि॒या गृ॑णे ॥ ६ ॥

भा०—विनीत विद्यार्थी हमारे बहुत से उत्तम वचनों या आज्ञावचन का पालक और प्राप्त करने का इच्छुक हो । वह गुरुओं के अधीन रहकर अन्य सहाध्यायी ब्रह्मचारी गण के साथ अपने अभिलाषा करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करे । वह आचार्य द्वारा नित्य प्रेरित होकर ज्ञान और कर्म का आचार-शिक्षाओं को प्राप्त करने के लिये, बहुत अधिक बाधक कारणों

-का नाश करे। तब उस शुद्ध पवित्र स्वरूप वाले शोभन मुख शिष्य को आचार्य इस प्रज्ञा और कर्म से उपदेश करे।

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७॥

भा०—अच्छी प्रकार तेज वा वीर्यरक्षा के द्वारा तेजस्वी होता हुआ शिष्य, घी को प्राप्त होकर चमकने वाले अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाशक, और सत्य ज्ञान और वेदज्ञान के धुरन्धर आचार्य को, मित्र या सुहृत् के समान प्राप्त करे। वह शिष्य, ज्ञान और तपस्याओं से प्रकाशित होता हुआ बाधक कारणों और पीडाओं से आक्रान्त न होकर, ज्ञानप्राप्ति के अवसरों में और शास्त्रों में चमके। आचार्य हमें विशुद्ध अक्षरोच्चारण से युक्त वेदवाणी को उद्योगपूर्वक प्राप्त कराए।

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥१२॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाश! प्रमाद से रहित, कल्याणकारी, शान्ति प्राप्त कराने वाले, रक्षक और पावन कराने वाले, दूसरों से न मारे जाने वाले, दोम गर्व आदि से रहित, आंख न झंपकने वाले, सदा सावधान, कर्त्तव्य पर सदा दृष्टि रखने वाले विद्वान् पुरुषों सहित तू स्वयं भी कभी प्रमाद न करता हुआ हमारी प्रजाओं की सब प्रकार से रक्षा कर।

[१४४]

दीर्घतमा ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ७ निचृज्जगती। २ जगती। ६ भुरिक्पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१॥

भा०—अग्नि-व्रताचरण का स्वरूप। जिस प्रकार अग्नि अपनी शुद्ध ज्वाला को ऊपर धारण करता है उसी प्रकार शिष्य शुद्ध प्रज्ञा, शुद्ध कर्म-

चरण को सर्वोपरि मुख्य रखता हुआ इस शिक्षक आचार्य के निर्धारित नियम तथा परमेश्वर के निमित्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। तब व्रत पालन रूप ब्रह्मचर्य के बाद क्या करे? जो कान्तिमती कन्या इसके सर्वोत्तम तेज आदि गुणों को प्रेम से ग्रहण करती है उस यज्ञ की दक्षिण दिशा में स्थित होकर पति को वरण करने वाली उस स्वयंवरा को स्वयं भी दाहिनी बाजू स्थित कन्या द्वारा वरण किया जाकर प्राप्त हो।

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योना देवस्य सदने परीवृताः।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

भा०—जब विद्वान् पुरुष शिष्य होकर, आप्तपुरुषों के समीप उन द्वारा शिष्य रूप से धारण किया जाकर, निवास करे, तब वह अन्न और जलों के समान ही उन आत्मज्ञानरसों का भी पान करे, जिनसे वह ज्ञानवान् हो, और सब प्रकार से ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले ज्ञानप्रद आचार्य के गृह और विद्याभवन में विद्यावान् आप्त पुरुष भी विदुषी माताओं के समान ही प्रेम से उसको सब प्रकार से उपदेश करे।

युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥

भा०—माता पिता और आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। जब समान वय वाले स्त्री पुरुष या माता पिता या पति पत्नी परस्पर एक दूसरे के लिये समान कामना योग्य पदार्थ को परस्पर मिलाना चाहते हैं, उसका ही परिणाम यह शरीर उत्पन्न होता है। जिस प्रकार रथ को ढोने वाले अश्व के रासों को अपने नियन्त्रण में रखता है उसी प्रकार हमारा पूज्य आचार्य भी ज्ञानों का प्रदान करने हारा, उस उत्पन्न बालक को, सब दशाओं को अपने वश करके, सब उपायों से अपने हाथ में ले।

यमी द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४॥

भा०—जिस बालक को दोनो समान रूप से परिपक्व बल वीर्य वाले, मित्र या सखाभूत, एक ही गृह मे रहते हुए स्त्री पुरुष, पति पत्नी एक समान पुत्रोत्पादक गर्भाशय में स्थित इसकी नाना प्रकार से परिचर्या करते हैं, उसको पालते पोषते है, तब वह दिन और रात पाला जाकर बहुत से मनुष्योचित जीवन के वर्षों को व्यतीत करता हुआ, जरारहित युवा हो जाता है।

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥

भा०—उस सूर्य के समान प्रतापी पुरुष को दसों दिशा निवासिनी प्रजाएं और हम शत्रुसंहारकारी युवा पुरुष, विद्यार्थिजन जिस प्रकार गुरु को ज्ञान प्राप्ति के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार प्रजा रक्षण के लिये बुलाते हैं। और जिस प्रकार धनुष के ऊपर दूर तक जाने वाले बाणों को रखता और शत्रु को लक्ष्य करके चढाई करने वालों से नये २ प्रदेशों को प्राप्त करता और उनको अपने अधीन रख लेता है, इसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष उत्तम ब्रह्मपद को लक्ष्य करके जाने वाले मुमुक्षुओं के साथ मिलकर नये २ ज्ञानों को प्राप्त करे। और धनुष के बल पर बाणों के समान, दूर के देशों को भी प्राप्त करे।

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६॥

भा०—हे विद्वन्! तू अपने ही सामर्थ्य से द्युलोक के और पृथ्वी के ऐश्वर्य का, पशुपालक के समान राजा हो। ये दोनों शुभ्रवर्ण के बड़े भारी, राजलक्ष्मी से युक्त, हित और रमणीय स्वरूप वाले, स्तुति करने वाले राजा और प्रजावर्ग तेरे से महान् राष्ट्र की आशा करते हैं।

अग्ने जु॒षस्व॒ प्रति॑ हर्य॒ तद्वचो॒ मन्द्र॒ स्वधा॑व॒ ऋत॑जात॒ सुक्र॑तो।
यो वि॒श्वतः॑ प्र॒त्यङ्ङसि॑ दर्श॒तो र॒ण्वः सन्दृ॑ष्टौ पितु॒माँ इ॑व॒
क्षयः॑ ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रशंसनीय ! हे जलप्रद मेघ के समान सबको अन्नादि वृत्ति देने हारे ! हे मेघस्थ जलों से उत्पन्न विद्युत् के समान सत्यज्ञान द्वारा प्रसिद्ध ! हे शोभन कर्म और प्रज्ञा वाले विद्वन् ! तू उस वेदोपदेश का सेवन कर और उसे पुनः २ चाह। तू सब प्रकार से प्रत्येक पुरुष से सत्कार करने योग्य है। तू दर्शनीय और यथार्थ तत्वज्ञान में रमण करने वाला, और सम्यक् ज्ञान दृष्टि के हो जाने पर अन्यों को भी उपदेश करने वाला होकर, अन्न से भरपूर भवन के समान सुख से निवास करने और आश्रय करने योग्य है।

[१४५]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, विराड्जगती । २, निचृज्जगती च । ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तं पृ॑च्छता॒ स ज॑गामा॒ स वे॑द॒ स चि॑कि॒त्वाँ ई॑यते॒ सा न्वी॑यते।
तस्मि॑न्त्सन्ति प्र॒शिष॒स्तस्मि॑न्नि॒ष्टयः॒ स वाज॑स्य॒ शव॑सः शु॒ष्मि-
ण॒स्पतिः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! वह विद्वान् परम पद तक पहुँचा है, वह ही उस परम पद को जानता और प्राप्त करता है। वह ही विशेष ज्ञानवान् होकर ध्येय परम पद तक जाता है। वही अन्यों द्वारा अनुसरण और अनुकरण करने योग्य है। उसके ही आश्रय पर उत्तम शासन और उसके ही आश्रय पर यज्ञ दान आदि उत्तम कर्म और सत्संग, मैत्रीभाव और लेन देन आदि निर्भर हैं। वह समस्त ज्ञान, अन्न और वेग का और बलों का स्वामी है, और वही बलवान् पुरुषों का भी स्वामी है।

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत्। न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥

भा०—जिस बात को सब कोई लोग नहीं पूछा करते, विद्वान् जन ही उस विशेष प्रष्टव्य तत्त्व को विद्वान् के समीप जाकर पूछता है, जिसको कि वह बुद्धिमान् ध्यानयोगी पुरुष अपने मनन सामर्थ्य से अपने आप से भी ग्रहण करता है। इसका प्रथम वचन अर्थात् उपदेश भी संदेह योग्य नहीं होता, और इसका प्रश्न के उपरान्त दिया उत्तररूप वचन भी सन्देह योग्य होता। मोह और गर्व आदि से रहित विनीत पुरुष ही इस विद्वान् के ज्ञान और सामर्थ्य से लाभ उठाता है।

तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे। पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥३॥

भा०—शिष्य का स्वरूप। उसको ही ग्रहण करने योग्य वेदवाणियां प्राप्त होती हैं। विद्वानों की ज्ञानवाणियां भी उसको ही प्राप्त होती हैं। वह ही अकेला मुझ आचार्य के सब वचनों को सुने। वह बहुत सी आज्ञाओं का पालक, कार्य करने में अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, विद्यादान की साधना करने हारा, त्रुटिरहित व्रत का पालक, उत्तम प्रशंसनीय एवं मां की गोद में बालक के समान स्वच्छ हृदय से आचार्य की विद्यामय गोद में कार्यारंभ करने वाला होकर उत्तम रीति से ज्ञान ग्रहण करे।

उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः। अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४॥

भा०—शिष्य के कर्त्तव्य। जो आचार्य का सत्संग करता है और उसके समीप ही उपस्थित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करता है, वह शीघ्र ही आचार्य रूप माता से उत्पन्न होकर अन्य सहाध्यायियों सहित या योग करने योग्य उत्तम गुणों से शनैः २ आगे बढ़ता है।

कामना वाली स्त्रियां जिस प्रकार अपने पति के पास जाती हैं उसी प्रकार विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन जब उस पूज्य शान्त परिपक्व ज्ञान वाले पूज्य स्थान पर स्थित आचार्य को प्राप्त हों, तब वे हृदय का आनन्द प्राप्त करने, और हर्ष या सन्तोष प्राप्त करने के लिये नाना प्रकार के प्रश्न करें और तत्व पर विचार करें।

स ईं मृगो अप्यो॑ वनर्गुरुप॑ त्वच्युप॒मस्या॑ं नि धा॑यि। व्य॑ब्रवीद्वयुना मर्त्ये॑भ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋ॑तचिद्धि स॒त्यः ॥ ३ ॥ १४ ॥

भा०—विद्यार्थी के कर्त्तव्य। जलाभिलाषी हरिण जिस प्रकार जंगल में भटकता और जल खोजता है उसी प्रकार वह विद्यार्थी भी विद्यातत्वों के खोजने हारा, ज्ञान और कर्मों के उपदेश का अभिलाषी, वन में आचार्यों और वनस्थ तपस्वियों के आश्रमों में जाता हुआ गुरु के समीप प्राप्त होने वाली मृगछाला या वृक्षत्वक् या ब्रह्मचारी के योग्य वल्कल पहनाकर रखा जाता है। वह ही सत्यज्ञान का निरन्तर संग्रह करता हुआ, विद्वान् अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानवान्, सत्य आचरणशील, सत्यवक्ता, सज्जनों का हितैषी और उनमें श्रेष्ठ, पूज्य होकर, मरण धर्मा अन्य मनुष्यों को नाना प्रकार के ज्ञानोपदेश करे।

[१४६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५ त्रिष्टुप्। ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

त्रि॒मू॒र्धानं॑ स॒प्तर॑श्मिं गृणी॒षेऽनू॑नम॒ग्निं पि॒त्रोरु॒पस्थे॑।
नि॒ष॒त्तम॑स्य॒ चर॑तो ध्रु॒वस्य॒ विश्वा॑ दि॒वो रो॑च॒नाप॑प्रि॒वांस॑म् ॥१॥

भा०—हे विद्वन्! माता पिता के समीप विराजमान पुत्र जिस प्रकार माता पिता गुरु तीनों के मस्तकों के ज्ञानानुभवों से युक्त होता है इस लिये 'त्रिमूर्धा' है, अथवा माता पिता गुरु तीनों को अति आदर से अपने सिर माथे रखने वाला होने से वह 'त्रिमूर्धा' है, उसके समान ही

यह सूर्य भी तीनों लोकों के ऊपर शिर के समान विराजमान होने से त्रिमूर्धा है। वेद के सातों प्रकार के छन्द ही रश्मि अर्थात् ज्ञान निदर्शक होने से विद्वान् पुरुष 'सप्तरश्मि' है, सूर्य में सात प्रकार की रश्मि होने से सप्तरश्मि है। अग्नि की काली, कराली आदि सात ज्वालाएं सप्तरश्मि हैं। हे विद्वन्! तू ऐसे न्यूनतारहित ज्ञानी पुरुष की स्तुति कर। सर्वत्र विचरण करते हुए धैर्यवान्, इसके सब प्रकार के कार्य और ज्ञान प्रकाश देने वाले एव सबको रुचि करते हैं। (२) विद्यार्थी का भी लक्षण। हे विद्वन्! तू ऐसे न्यूनतारहित अखण्डव्रती विनीत बालक को उपदेश कर। वह माता पिता के समीप बैठा हुआ तीनों का अपने शिर से आदर करता हो। विद्या से पूर्ण करने वाला, सातों ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण हो। इस स्थिर रूप से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए की समस्त कामनाएं और व्यवहार रुचिकर हों। (३) परमेश्वर पक्ष में—वह माता, पिता, गुरु तीनों से ऊपर होने से त्रिमूर्धा है। सप्त छन्द उसकी सात रश्मि हैं। पूर्ण होने से अनून है। व्यापक होने से विचरणशील, कूटस्थ होने से 'ध्रुव' है। वही विश्व का पालक होने से पश्विवान् है। ये सब चमचमाते प्रकाश सूर्यादि उसी के हैं।

उ॒क्षा म॒हाँ अ॒भि व॑वक्ष ए॒ने अ॒जर॑स्तस्थावि॒तऊ॑ति॒र्ऋष्वः॑।
उ॒र्व्याः प॒दो नि द॑धाति॒ सानौ॑ रि॒हन्त्यूधो॑ अ॒रुषा॑सो अस्य ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बड़ा, जलवर्षक सूर्य आकाश, पृथिवी इन दोनों को धारण करता है, और जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र दर्शनीय और महान् होकर अविनाशी होकर विराजता है, और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के उच्च प्रदेश पर अपने किरणों को डालता है, और इसके प्रकाशमान किरण जलमय प्रदेशों को स्पर्श कर मानो जल पान कर उनको सुखा देते हैं, उसी प्रकार बड़ा भारी सुखों का वर्षक और जगत् भार के उठाने वाला परमेश्वर इन पृथिवी और आकाश दोनों को सब प्रकार से धारण कर रहा है। वह इस लोक की सब प्रकार से रक्षा करता हुआ महान् व्यापक

अविनाशी होकर विराजता है। वह महती प्रकृति के समग्र ऐश्वर्य में भी अपनी पूर्व की गति शक्तियों को स्थापित करता है। और उनके स्तन के समान आनन्दरस से भरे उत्तम रूप का रोष रहित, एवं अहिंसक सौम्य-जन ही आस्वाद लेते हैं।

समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥३॥

भा०—पृथ्वी सूर्य के समान स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य। गौ जिस प्रकार बछड़े के सदा समीप रहती है उसी प्रकार माता पिता बालक का दूध और अन्न से पोषण करने वाले, एक संतान को समान रूप से प्रेम पूर्वक प्राप्त होते हुए, सब प्रकार से विविध उपाय और धर्माचरण आदि कार्य करें। वे दोनों उत्तम शोभायुक्त कर्मों और हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान्, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने हारे, कभी परित्याग न करने योग्य उत्तम मार्गों पर चलते हुए, और सब प्रकार के ज्ञानों और बड़े २ कार्यों को भी अपने में धारण करते हुए रहें।

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥४॥

भा०—ध्यान और धारणशील दीर्घदर्शी विद्वान्, हृदय से भक्ति द्वारा बहुत लोगों को संकटों से बचाते हुए, समुद्र के समान अथाह आनन्द-सागर प्रभु को प्राप्त होते हुए उसको भली प्रकार साक्षात् करते हैं। और वे उस अविनाशी प्राप्तव्य पद मोक्ष को स्वयं प्राप्त होते और औरों को भी वहां तक पहुँचाते हैं। इनके हित के लिये वह सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक सर्वप्रकाशक तेजोमय प्रभु प्रत्यक्ष होता है।

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५॥१५॥

भा०—शिष्य विद्याभ्यास करने के उपरान्त समस्त दिशाओं में

यह सूर्य भी तीनों लोकों के ऊपर शिर के समान विराजमान होने से त्रिमूर्धा है। वेद के सातों प्रकार के छन्द ही रश्मि अर्थात् ज्ञान निदर्शक होने से विद्वान् पुरुष 'सप्तरश्मि' है, सूर्य में सात प्रकार की रश्मि होने से सप्तरश्मि है। अग्नि की काली, कराली आदि सात ज्वालाएं सप्तरश्मि हैं। हे विद्वन्! तू ऐसे न्यूनतारहित ज्ञानी पुरुष की स्तुति कर। सर्वत्र विचरण करते हुए धैर्यवान्, इसके सब प्रकार के कार्य और ज्ञान प्रकाश देने वाले एव सबको रुचि करते हैं। (२) विद्यार्थी का भी लक्षण। हे विद्वन्! तू ऐसे न्यूनतारहित अखण्डव्रती विनीत बालक को उपदेश कर। वह माता पिता के समीप बैठा हुआ तीनों का अपने शिर से आदर करता हो। विद्या से पूर्ण करने वाला, सातों ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण हो। इस स्थिर रूप से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए की समस्त कामनाएं और व्यवहार रुचिकर हों। (३) परमेश्वर पक्ष में—वह माता, पिता, गुरु तीनों से ऊपर होने से त्रिमूर्धा है। सप्त छन्द उसकी सात रश्मि हैं। पूर्ण होने से अनून है। व्यापक होने से विचरणशील, कूटस्थ होने से 'ध्रुव' है। वही विश्व का पालक होने से पप्रिवान् है। ये सब चमचमाते प्रकाश सूर्यादि उसी के हैं।

उभा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बडा, जलवर्षक सूर्य आकाश, पृथिवी इन दोनों को धारण करता है, और जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र दर्शनीय और महान् होकर अविनाशी होकर विराजता है, और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के उच्च प्रदेश पर अपने किरणों को डालता है, और इसके प्रकाशमान किरण जलमय प्रदेशों को स्पर्श कर मानो जल पान कर उनको सुखा देते हैं, उसी प्रकार बडा भारी सुखों का वर्षक और जगत् भार के उठाने वाला परमेश्वर इन पृथिवी और आकाश दोनों को सब प्रकार से धारण कर रहा है। वह इस लोक की सब प्रकार से रक्षा करता हुआ महान् व्यापक

अविनाशी होकर विराजता है। वह महती प्रकृति के समग्र ऐश्वर्य में भी अपनी पूर्व की गति शक्तियों को स्थापित करता है। और उनके स्तन के समान आनन्दरस से भरे उत्तम रूप का रोप रहित, एवं अहिंसक सौम्य-जन ही आस्वाद लेते हैं।

समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥३॥

भा०—पृथ्वी सूर्य के समान स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य। गौ जिस प्रकार बछड़े के सदा समीप रहती है उसी प्रकार माता पिता बालक का दूध और अन्न से पोषण करने वाले, एक संतान को समान रूप से प्रेम पूर्वक प्राप्त होते हुए, सब प्रकार से विविध उपाय और धर्माचरण आदि कार्य करें। वे दोनों उत्तम शोभायुक्त कर्मों और हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान्, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने हारे, कभी परित्याग न करने योग्य उत्तम मार्गों पर चलते हुए, और सब प्रकार के ज्ञानों और बड़े २ कार्यों को भी अपने में धारण करते हुए रहें।

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥४॥

भा०—ध्यान और धारणशील दीर्घदर्शी विद्वान्, हृदय से भक्ति द्वारा बहुत लोगों को कष्टों से बचाते हुए, समुद्र के समान अथाह आनन्द-सागर प्रभु को प्राप्त होते हुए उसको भली प्रकार साक्षात् करते हैं। और वे उस अविनाशी प्राप्तव्य पद मोक्ष को स्वयं प्राप्त होते और औरों को भी वहां तक पहुंचाते हैं। इनके हित के लिये वह सर्वोत्पादक और सर्वप्रेरक सर्वप्रकाशक तेजोमय प्रभु प्रत्यक्ष होता है।

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५॥१५॥

भा०—विद्या विद्याभ्यास करने के उपरान्त समस्त दिशाओं में

सब लोगों के देखने के योग्य होता है। वह सर्वत्र विजयी, स्तुति और सत्कार के योग्य छोटे और बड़े सबको जीवन देने वाला हो। वह ऐश्वर्य-वान् और सब प्रकार से और सबके लिये दर्शनीय होकर, बहुतों का त्राण करने हारा, इन गर्भों में उत्पन्न छोटे २ बच्चों का उत्पादक हो जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४७]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् विद्वन्! जो पुरुष तुझे उत्तम रीति से प्राप्त होकर, दानशील होते, और आत्मा को शुद्ध पवित्र बनाना चाहते हैं, और जो तेरे ज्ञान आदि गुणों को निरन्तर या अति स्वल्पकाल में ही ग्रहण कर लेते हैं, वे विद्या की कामना वाले विद्यार्थिजन और विद्वान् पुरुष दोनों ही, विद्या को स्वयं धारण करते हुए भी वेदज्ञान का अपने शिष्यों को अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त कराने के निमित्त पुत्र और शिष्यादि में किस प्रकार से उपदेश करें।

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

भा०—उपदेश करने का प्रकार बतलाते हैं। [शिष्य] हे प्रौढ़ विद्यासम्पन्न! हे अपने आपको उत्तम रीति से वश करने वाली दमन शक्ति से सम्पन्न! आप मुझको इस प्रशस्त, उत्तम रीति से धारण करने योग्य उपदेश का ज्ञान कराओ। [आचार्य] हे शिष्य! तू मुझसे ज्ञान प्राप्त कर। इस प्रकार परस्पर प्रार्थना और आदेश के बाद एक तो ज्ञान का रस के समान पान करता है, दूसरा गुरु उपदेश करता है। [शिष्य]

हे ज्ञानवन्! मैं तेरी स्तुति करने वाला, तेरे शरीर को अभिवादन करता हूँ, चरणों में नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार शिष्य गुरु के चरणों में नमस्कार करे।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन परमेश्वर! जो तेरे अधीन ज्ञानव्रत का पालन करने वाले, स्वयं सब पदार्थों को भली प्रकार देखते हुए अन्धे को बुरे मार्ग से बचा देते हैं, उसी प्रकार ममता वाले ज्ञानरहित पुरुष को दुष्ट आचरण से बचावें। समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी आचार्य उत्तम आचरण करने वाले उन सब शिष्यों की रक्षा करे, जिससे कि नाशकारी काम, क्रोध, पाप युक्त कर्म और हीन पुरुष आदि भी उन पर आघात नहीं कर सकें।

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् गुरो! जो पुरुष किसी को कुछ नहीं देता, और दूसरे पर पापाचरण और आघात आदि का ही प्रयोग करने की चेष्टा करता है, वह अदानशील होकर ही भीतर कुछ और बाहर कुछ इस प्रकार के दो रूपों से लोगों को ठगता है। परन्तु जो हमारे बीच मनन-शील और विचारवान् पुरुष है वह हमारा बार २ उपदेष्टा हो। और उस गुरु के दुःखदायी कठोर वचनों से भी शिष्यजन अपने २ शरीर और आत्मा को उसके अनुकूल आचरण करके शुद्ध पवित्र करें।

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ५।१६

भा०—और जो तू उत्तम विद्वान् होकर, एक पुरुष दूसरे पुरुष को, कोमल और कठोर या भीतर से हित और ऊपर से कटु दोनों प्रकार

के वचनों से प्रेरित करता है, वह तू हे पाप वासनाओं पर विजय करने वाले और हे सहनशील ! हे सदा सत्योपदेश करने हारे ! स्तुति करने वाले शिष्य का रक्षा कर । तू हमें दुष्टाचरण करने के लिए कभी धारण मत कर अर्थात् अपने अधीन रखकर बुरा काम मत करने दे । इति षोडशो वर्गः ॥

[१४८]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ पंक्ति । ५ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्व१र्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि में वायु प्रविष्ट हो जाता है, और उसको समग्र रूपों से युक्त, सब दिव्य पदार्थों में विद्यमान जानकर विद्वान् पुरुष मथ कर उत्पन्न करता है, और देह में विशेष कान्ति से युक्त जिस अग्नि को मानव प्रजाओं में, यज्ञों में, सुरक्षित रूप से स्थापित करते हैं, उसी प्रकार जिस आचार्य को प्राप्त होकर माता की गोद में बालक के समान नव शिष्य प्रविष्ट होकर, उसका आश्रय लेकर, ज्ञान के देने वाले, समस्त नाना रूप पदार्थों के जानने वाले, सब ज्ञानेच्छुक विद्यार्थियों के हितकारी आचार्य को प्राप्त होकर, दूध में से मक्खन के समान ज्ञान-रूप सार को मथकर शिष्य प्राप्त करे, जिसको उत्तम ज्ञान रूप बीज के वपन करने और अज्ञान के नाश करने के लिये विशेष कान्ति और ज्ञान सामर्थ्य से युक्त, आश्रयकारी पुरुष को विद्वान् जब मनन पूर्वक कर्म करने वाली प्रजाओं या अन्तःप्रविष्ट शिष्यरूप प्रजाओं में सूर्य के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशक रूप से गुरु पद पर स्थापित करें ।

ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

है उसी प्रकार इस आचार्य के दिखाये प्रकाश के पीछे २ वायु के समान सदागति, आलस्यरहित, सावधान, ज्ञानवान् शिष्यगण भी अनुगमन करें। और जिस प्रकार बाण के फेंकने वाले धनुर्धारी के फेंके हुए तीव्र बाण के पीछे २ वायु वेग से जाता है उसी प्रकार ज्ञान देने वाले गुरु की बुरी आदतों को बाहर निकालने वाली ताडना के अनुसार ही विद्यार्थी सब दिन चला करे।

न यं रि॒पवो॒ न रि॑षुण्यवो॒ गर्भे॒ सन्तं॑ रेष॒णा रे॒षय॑न्ति ।
अ॒न्धा अ॑प॒श्या न द॑भन्नभि॒ख्या नित्या॑स ईं प्रे॒तारो॑ अरक्षन् ॥५।१७

भा०—विद्यार्थी का बल। जिस प्रकार काष्ठादि के गर्भ में लगे अग्नि को बड़े आंधी के झंकोरे भी नहीं नष्ट कर सकते, उसी प्रकार [illegible] के गर्भ में विद्यमान जिस ब्रह्मचारी को काम, क्रोध, लोभ आदि [illegible], और न ही नाशकारिणी आत्मा की [illegible] वृत्तियां विनष्ट करें [illegible] के लो[illegible] [illegible] प्रका[illegible]
जिस प्रकार अग्नि को अन्धे, न देखने वाले [illegible]
नहीं नष्ट कर सकते, उसी [illegible]
न देखने वाले [illegible] [illegible]
चारों ओर उसके [illegible] २ [illegible]
[illegible] करें।

भा०—हे मनुष्यो! वरण करने योग्य विज्ञान देने वाले पुरुष को कभी पीडित नहीं किया करते। और मुख्य विद्वान् के मनन करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को अंगों में विनय से झुकने वाला विनीत शिष्य ही लेने की इच्छा करे। अति समीप प्राप्त शिष्य के प्रति उपदेश करने योग्य वाणी को धारण करने वाले इस क्रियाशील पुरुष के समस्त कर्मों को प्रेम से ग्रहण करो।

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः॥ ३॥

भा०—रथ में लगे उत्तम अश्व रासों द्वारा सुसंयत होकर जिस प्रकार रथ में स्थित पुरुष को प्राप्त करने योग्य देश में ले जाते हैं उसी प्रकार विद्या का दान और आदान करने में कुशल पुरुष जिस शिष्य को स्थिर आश्रय पर स्थापित करके उसको शिष्य रूप से ग्रहण करते हैं, और उत्तम वाणियों उत्तम शासन क्रियाओं द्वारा धारण करते हैं, ऐसे शिष्य को विद्वान् लोग अपने अधीन ग्रहण करते हुए, ज्ञान का प्रदान करते हुए, इष्ट विद्यामार्ग में अच्छी प्रकार आगे ही आगे ले जावें।

पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून्॥४॥

भा०—आचार्य का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार जला कर नाश कर डालने वाला अग्नि अपने ज्वालाओं से बहुत से वनों को नाश कर देता है और उसी प्रकार आचार्य भी अज्ञानों और दुःखों का नाशकारी होकर ताड़ना आदि उपायों से बहुत से बुरे व्यसनों को सर्वथा दूर कर देता है। और जिस प्रकार अग्नि विशेष कान्तिमान् होकर जंगल में सब तरफ प्रकाश करता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी विशेष ज्ञानसामर्थ्य से युक्त होकर शिष्यों के प्रदान करने योग्य ज्ञान में अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। और जिस प्रकार अग्नि की ज्वाला के अनुकूल वायु बहा करता

वह आप्त पुरुषों के एकत्र होकर बैठने के सभा भवन में सबको अधिकार देने और सबको स्वीकारने वाला, और सबको संगत करने और सबको भृति आदि देने हारों में सबमें मुख्य होकर विराजे ।

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—यह वही सबके ज्ञानैश्वर्य का देने और लेने वाला विद्वान् पुरुष है, जो माता पिता के द्वारा प्राप्त प्रथम जन्म के अनन्तर आचार्य और विद्या द्वारा व्रताचरण और और विद्याध्ययन करके द्विजन्मा होकर, समस्त श्रवण करने योग्य श्रेष्ठ २ ऐश्वर्यों और ज्ञानों को धारण करता है। उत्तम पुत्रवान् पिता जिस प्रकार अपने पुत्र को सर्वत्र दे देता है उसी प्रकार वह विद्वान् उत्तम पुत्र के समान शिष्य से युक्त होकर, स्वयं मरणधर्मा होने से अपने विद्याधन को इस विद्यार्थी को सौंप दे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१५०]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिग्गायत्री ।
२ निचृदुष्णिक् ॥ तृच सूक्तम् ॥

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! दानशील और ऐश्वर्यवान् स्वामी होकर मैं आज्ञाकारी बड़े अध्यक्ष के गृह में नित्य भृत्य के समान होकर, तेरी ही शरण में होकर तुझसे बहुत कुछ प्रार्थना करूं ।

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

भा०—जो न विद्या का दान दे सके और और न धन का दान दे

सके वे दोनो दान न देने के कारण 'अदेव' है, उन दोनो मे से जो धनवान् होकर भी उस धन के भोग और दान मे समर्थ नही है, उसकी मै कभी विशेष स्तुति नही करता।

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १६ ॥

भा०—आकाश मे जिस प्रकार चन्द्रमा सबको आह्लादित करने वाला, नित्य वृद्धि को प्राप्त होने वाला होता है, उसी प्रकार हे विद्वन्! वह उत्तम पुरुष भी जो कि महान् है और सब कामनाओ के पूर्ण करने मे सदा वृद्धिशील है सबको आह्लादकारक होता है। हे अग्रणी नायक! ऐसे सेवन करने और ज्ञान ऐश्वर्य दान देने वाले तेरे अधीन रह कर हम उत्तम २ पद को प्राप्त होवे। इत्येकोनविंशो वर्ग. ॥

[१५१]

दीर्घतमा ऋषि. ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द—भुरिक त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ विराट जगती। ६, ७ जगती। ८, ९ निचृज्जगती च ॥ नवर्चं सूक्तम्।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१॥

भा०—गो अर्थात् वेदवाणी के उत्तम ज्ञाता और भूमि के बड़े २ स्वामी तथा उत्तम रीति से प्रजा के पालन-पोषण करने मे समर्थ लोग, गवादि पशुओं और भूमियो से बसी प्रजाओं के निमित्त प्रजा के मित्र के समान स्नेही रूप जिस नायक को प्रजाओं के बीच और सग्राम और आनपान के निमित्त मुख्य रूप से स्थापित करते है, उसके पालनसामर्थ्य और बल पराक्रम से और उसकी आज्ञा से, एक दूसरे की मर्यादाओं को रोकने मे समर्थ राजा प्रजावर्ग दोनो कापे। ऐसे सर्वप्रिय, सबको सगठित करने वाले, पूज्य दानशील पुरुष को समस्त जनो के पालक रूप से प्रतिष्ठित करे।

यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः। अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥

भा०—हे एक दूसरे के प्रति सुखों के वर्षण करने और दुष्टों की शक्तियों को रोकने वाले मित्र और वरुण ! अर्थात् दिन रात्रि के समान सदा साथ रहने वाले स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों के हितकारी, मेघ के समान बहुत सी प्रजाओं को ज्ञान और धनादि जलों से सींचने वाले, ज्ञानैश्वर्यवान्, अपने २ व्यापार करने में कुशल राजपुरुष, मित्रों के समान रक्षक होकर राज्यकार्य को अच्छी प्रकार धारण करें, आप दोनों तब गृहों के स्वामी उस पूज्य विद्वान् पुरुष की वाणी या आज्ञा का ज्ञान प्राप्त करो और नित्य श्रवण करो।

आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे। यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्या, सुख, ज्ञान और वीर्य के सेचन और संवर्धन करने हारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! पृथिवी निवासी प्रजाजन बड़ी भारी आत्मबल की वृद्धि के लिये ही तुम दोनों के अच्छी प्रकार गुरु-उपदेश प्राप्त करने योग्य विद्याजन्म को अलंकृत करते हैं अर्थात् गुरु के अधीन शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। जिससे आप दोनों सब प्रकार से सत्यज्ञान के प्राप्त करने के लिये अपने आप को पुष्ट करो, और जिससे उत्तम ज्ञानवान् गुरु के प्रियाचरण करने के लिये उसके अधीन वेदवाणी और वैदिक कर्मानुष्ठान द्वारा अहिंसा आदि धर्मों से युक्त ब्रह्मचर्य आदि व्रत का उत्तम रीति से पालन करो।

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत्। युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४॥

भा०—पृथ्वी का स्त्री के समान वर्णन। हे प्राणों में रमण करने वाले स्त्री पुरुषो ! जो बहुत अधिक प्रिय सुख देने और पति को तृप्त करने हारी होती है वह ही निवास योग्य भूमि के समान गृह बसा कर रहने योग्य उत्तम स्त्री होती है। हे परस्पर सत्य व्यवहार को धारण करने वालो ! तुम दोनों सत्य व्यवहार को उत्तम जान कर उसका भाषण करो, और उसी सत्य को सदा वृद्धिकारी जान कर सर्वत्र उसका उपदेश करो। शकट का बोझा ढोके ले जाने के कार्य में जिस प्रकार बलवान् बैल को जोड़ा जाता है उसी प्रकार आप दोनों भी बड़े भारी प्रकाशमय वेद के ज्ञान को और उनमें उपदिष्ट कर्म को और सब कार्यों के सम्पादन करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को, अपने बड़े भारी कार्यभार के उठाने में उपयुक्त किया करो।

मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुचं उषसस्तक्ववीरिव ॥५॥२०॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों इस पृथ्वी में विशेष महत्ता से वरण करने योग्य और दुःखों के वारण करने वाले एक दूसरे को प्राप्त होवो। घर में दोष रहित दूध पिलाने वाली गौवें जिस प्रकार रंभाती हैं, उसी प्रकार शिशुओं को अपना दूध पिलाने वाली निर्दोष, अन्न आदि देने वाली स्त्री, रात और दिन मेघ के समान ज्ञानवर्षक और सूर्य के समान तेजस्वी पालक पुरुष को सुखपूर्वक प्राप्त हो। परस्पर एक दूसरे को उत्तम वचन कहें और स्पष्ट से एक दूसरे को चेताते रहें। इति विंशो वर्गः ॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुणा गातुमर्चथः।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६॥

भा०—हे दिन रात्रि के समान श्रेष्ठ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो ! उत्तम केशों से युक्त गृहस्थ स्त्रियां तुम्हारे सत्य आचार और व्यवहार के विषय में

तुम दोनों की स्तुति करें। और तुम दोनों परस्पर के व्यवहार का आदर करो। और आप दोनों स्वयं उत्तम बुद्धियों और वाणियों का परस्पर प्रयोग करो। और एक दूसरे को बढ़ाओ और प्रसन्न रखो। और विद्वान् पुरुष की मनन करने योग्य ज्ञानवाणी को प्राप्त करो।

यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः। उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों का जो पुरुष नाना प्रकार के दानों और सत्संग योग्य ज्ञानोपदेशों से आदर सत्कार करने वाला, विद्वान्, ज्ञानप्रदाता, ज्ञान विज्ञान को मननपूर्वक साधन करने वाला होकर, तुम्हें उत्तम ऐश्वर्य देता और ज्ञानोपदेश करता है, और जो तुमसे सत्संग करता है, तुम दोनों सदा उसके ही समीप जाया आया करो। उस सौम्य अहिंसक द्वेषरहित पुरुष को प्राप्त होओ और हम सब के प्रिय होकर ज्ञान वाणियों और शुभ मति को प्राप्त होवो और हमें भी प्राप्त कराओ।

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु। भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥८॥

भा०—जो पुरुष मन के उत्तम प्रयोगों में कुशल और सत्य ज्ञान, धर्माचरण और ऐश्वर्यवान् तुम दोनों को, उत्तम सत्कार, मान, पूजा और सत्कर्मों द्वारा, वाणियों और भूमियों द्वारा, उज्ज्वल करते हैं, और जो आप दोनों को मनन करने योग्य ज्ञान और संयमशील तथा बिना गर्व के चित्त से वेदवाणियों का उपदेश करते हैं, वे आप दोनों उनके ज्ञानैश्वर्य से युक्त वचन और ज्ञान को प्राप्त होवो।

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम्। न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥९॥

भा —हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्ययुक्त बल और ज्ञान और दीर्घ जीवन को धारण करो, और उसको ऐश्वर्ययुक्त बना कर उपभोग करो। आप दोनों नायक होकर इस लोक में रक्षा करने वाले महान् सामर्थ्य को अपनी बुद्धियों से प्राप्त करो। आप दोनों की दानशीलता और ज्ञानप्रकाश को प्रकाशवान् पदार्थ अथवा तीनों लोक भी नहीं व्याप सकते। और आप की विद्वत्तायुक्त ज्ञान-दानशीलता को सदा प्रवाहशील नदियां या समुद्र भी नहीं प्राप्त हो सकते, और आप दोनों के ऐश्वर्य को व्यवहार-कुशल पुरुष भी नहीं प्राप्त हो सकते। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१५२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ६ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

भा०—हे मित्र अर्थात् परस्पर स्नेहपूर्वक सखा बन कर रहने और वरण अर्थात् एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री और पुरुषो ! तुम दोनों खूब हृष्टपुष्ट होकर उत्तम वस्त्रों को धारण करो, और उत्तम गृहों में निवास करो। और तुम दोनों के उत्पन्न किये हुए पुत्र पौत्रादि सन्तान दोषरहित, परस्पर द्वेष या द्वेषभाव से रहित और एक दूसरे का आदर करने और स्वयं मनन करने वाले, विचारशील हों। हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों समस्त असत्य व्यवहारों को अपने सत्य व्यवहार और सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य के बल से नाश करो। सत्य से असत्यों पर विजय प्राप्त करो। और सत्य के बल से तुम दोनों परस्पर मिल कर रहो।

एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

भा०—इन लोगों में से कोई ही ऐसा तत्वदर्शी, मननशील, विद्वानों

से उपदेश प्राप्त, नाना सत्यासत्य विवेक करने वाली मति से युक्त होता है, जो चारों वेदों को प्राप्त करके वाणी, मन और शरीरों से भोग करने योग्य अथवा तीनो गुणों को प्राप्त करता है, और बलवान् होकर इस जगत् का विजय करता है। प्रायः विद्वानो की निन्दा करने वाले अन्य सब बातों में श्रेष्ठ होकर भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत्॥ ३॥

भा०—चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से प्रथम चरणादि से रहित वेद वाणी प्रकट होती है। हे अध्यापक विद्यार्थी आदि जनो! आप दोनों में से कौन इस रहस्य को जानता है। विद्यार्थी को ग्रहण करने में समर्थ जिज्ञासु पुरुष इस संमुख स्थित आचार्य के ज्ञान को सब प्रकार से धारण करता है। वही उसके सुविचारित सत्य ज्ञान को पूर्ण करता, और अज्ञान और अनृत व्यवहार को दूर करता, उससे पार हो जाता है।

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम्।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम॥ ४॥

भा०—हम लोग कमनीय कन्याओं के कन्यात्व को जीर्ण करने वाले उसके प्रिय पति को सदा सूर्य के तुल्य उत्तम मार्ग से जाते हुए देखें। और उसको हम कभी नीच मार्ग से जाते हुए न देखें। और सदा हम उसे विस्तृत वस्त्रों और गृहों में रहते हुए देखें। यही स्नेहशील और वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का उत्तम तेज, वैभव और धारणसामर्थ्य का स्वरूप या उत्तम पद है।

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः॥ ५॥

भा०— जिस प्रकार सूर्य अश्व रहित होकर भी शीघ्रगामी प्रसिद्ध है,

शीघ्र गमन करने वाला होकर उसके कोई रासें नहीं हैं, तो भी वह मेघादि द्वारा गर्जता हुआ पर्वतादि उच्च प्रदेशों में व्यापकर शोभा को प्राप्त होता है, उसी प्रकार उत्पन्न होकर बालक, 'अश्व' या भोक्ता के समान बद्ध न होकर, बे लगाम घोड़े के समान बाधक करणों से रहित होकर शिरों, स्कन्धों को ऊंचे रखता हुआ, और खूब विद्याभ्यास करता हुआ ज्ञानैश्वर्य प्राप्त करे। और फिर युवा होकर वे ब्रह्मचारीगण अचिन्तनीय ब्रह्म को प्राप्त करें। और स्नेहवान् तथा श्रेष्ठ पुरुष में होने योग्य तेज और धारण पोषण सामर्थ्य का उत्तम रीति से उपदेश करें। अध्यात्म में—आत्मा स्वभाव से अभोक्ता होने से 'अनश्व' है, अंगुलि आदि अंगों से रहित होने से 'अनभीशु' है, व्यापक होने से अर्वा है। वह सर्वोपरि प्राप्तव्य होने से 'ऊर्ध्वसानु' है। महान् होने से 'ब्रह्म', अचिन्तनीय होने से 'अचित्त' है। योग द्वारा साक्षात्कारी जन 'युवा' हैं, वे उसका सेवन करते हैं।

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन्।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ८ ॥

भा०—गौएं जिस प्रकार अपने स्तन पर ममता से पालन करने योग्य बछड़े की रक्षा करती हुई उसको हृष्ट पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार दूध पिलाने वाली माताएं ममता से युक्त अन्न के अभिलाषी पुत्र को पालती हुई अपने ही स्तन के आश्रय पर पुष्ट करें। और जिस प्रकार बालक माता को प्राप्त होकर अन्न की याचना करता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी अपने गुरु से भोजनार्थ अन्न की याचना करे, और वह सूर्य के समान तेजस्वी और माता के समान स्नेहवान् आचार्य को प्राप्त कर उसकी सब प्रकार से सेवा करता हुआ, गुरु से उत्तम ज्ञानों की गुरु से याचना करे और उसकी रक्षा करे।

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥९॥२२॥

भा०—हे स्नेहवान् मित्रजन एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों की अन्नादि पदार्थों के सेवन करने की क्रिया को मैं विद्वान् सेवक पुरुष अन्न द्वारा और आदरपूर्वक ज्ञान और रक्षा द्वारा पुन. २ सम्पादन करूं। पुनः आप दोनों को भोजनादि के लिये निमन्त्रित करके आप का आदर करूं। हमारा अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य और ब्राह्मणवर्ग सब मनुष्यों में सब शत्रुओं और सब अकाल आदि कष्टो और दारिद्रय आदि दु.खों और विघ्न बाधाओं और द्वन्द्वो को सहन करे। और हमारी दिव्य सुख-वृष्टि प्रजाओं को उत्तम रीति से पालन करने मे समर्थ हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१५३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द—१, २ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यजा॑महे वां म॒हः स॒जोषा॑ ह॒व्येभि॑र्मित्रावरुणा॒ नमो॑भिः ।
घृ॒तैर्घृ॑तस्नू॒ अध॒ यद्वा॑म॒स्मे अ॑ध्व॒र्यवो॒ न धी॒तिभि॒र्भर॑न्ति ॥ १ ॥

भा०—हे स्नेहवान् एवं एक दूसरे को श्रेष्ठ जान कर वरण करने और एक दूसरे की विपत्तियों का वारण करने हारो ! अति प्रेम से युक्त होकर हम स्वीकार करने योग्य उत्तम पदार्थों और उत्तम अन्नों वा सत्कारों द्वारा आप दोनों के उत्तम यज्ञ आदि कार्य का सम्पादन करें। मेघ जिस प्रकार जल, और सूर्य जिस प्रकार तेज का प्रवाह बहाता है उसी प्रकार हे सबके प्रति स्नेह का प्रवाह बहाने वाले आप दोनों। आप दोनों के हितार्थ और हमारे कल्याण के लिये, ऋत्विजों के तुल्य, धारण पोषण करने वाली क्रियाओं, युक्तियों और उपायों से आप दोनों का पोषण करें।

प्रस्तु॑तिर्वां॒ धाम॒ न प्रयु॑क्ति॒रया॑मि मित्रावरुणा सुवृ॒क्तिः ।
अ॒नक्ति॒ यद्वां॑ वि॒दथे॑षु॒ होता॑ सु॒म्नं वां॑ सू॒रिर्वृ॑षणा॒विय॑क्षन् ॥ २ ॥

भा०—हे सूर्य और मेघ के समान स्नेहवान् और दुःखवारक स्त्री पुरुषो! हे ज्ञानों, सुखोंके वर्धक और वीर्यवान् स्त्री पुरुषो! जब विद्वान् और ज्ञान ऐश्वर्यादि को देने में समर्थ पुरुष तुम दोनों के साथ सत्संग करने की इच्छा करता है तो वह यज्ञों, सत्संगों और ज्ञानप्रसङ्गों में आप दोनों के हितार्थ सुखकारी कल्याण ज्ञान को प्रकट करता है। उसी प्रकार मैं यथार्थतत्व को वर्णन करने वाले के समान ही क्रिया कौशल को जानने वाला, और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोक कर सन्मार्ग में प्रेरित करने हारा होकर, आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊं।

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

भा०—जिस प्रकार दुधार गाय अन्नादि खाद्य पदार्थ देने वाले को अपने दूध आदि से पुष्ट करती है उसी प्रकार अखण्डित चरित्र वाली स्त्री देने योग्य अन्न, वस्त्र, आभूषणादि पदार्थों के देने वाले और सत्य व्यवहार वाले पुरुष को सुख समृद्धि से बढ़ाती है। और जो तुम दोनों का ज्ञान और धन के लाभ होने पर आदर करता हुआ आप दोनों की वृद्धि करता है वह यज्ञ में हवि देने वाले मुख्य होता के समान सब सुख ऐश्वर्यों का देने वाला होता है। (२) इसी प्रकार अदिति आचार्य अपने प्रिय पदार्थ के दाता शिष्यजन को ज्ञान से बढ़ाता है। ज्ञान यज्ञ में मित्र, वरुण रूप से विद्यमान शिष्य गुरु में से जो दूसरे का आदर पूर्वक ज्ञान बढ़ाता है वही सर्वपूज्य सर्वदाता 'आचार्य' है।

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४॥२३॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! हर्ष देने वाली और हर्ष प्राप्त करने योग्य प्रजाओं के बीच में रहते हुए आप दोनों को, गौ आदि पशुगण और जल, दूध, अन्न, अन्न आदि और उत्तम विदुषी स्त्रियां, वृद्धि करें। और हमारे

भा०—हे स्नेहवान् मित्रजन एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों की अन्नादि पदार्थों के सेवन करने की क्रिया को मैं विद्वान् सेवक पुरुष अन्न द्वारा और आदरपूर्वक ज्ञान और रक्षा द्वारा पुन २ सम्पादन करूं। पुनः आप दोनों को भोजनादि के लिये निमन्त्रित करके आप का आदर करूं। हमारा अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य और ब्राह्मणवर्ग सब मनुष्यों में सब शत्रुओ और सब अकाल आदि कष्टों और दारिद्रय आदि दुःखों और विघ्न बाधाओं और द्वन्द्वों को सहन करे। और हमारी दिव्य सुख-वृष्टि प्रजाओं को उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१५३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

भा०—हे स्नेहवान् एवं एक दूसरे को श्रेष्ठ जान कर वरण करने और एक दूसरे की विपत्तियों का वारण करने हारो! अति प्रेम से युक्त होकर हम स्वीकार करने योग्य उत्तम पदार्थों और उत्तम अन्नों वा सत्कारों द्वारा आप दोनों के उत्तम यज्ञ आदि कार्य का सम्पादन करें। मेघ जिस प्रकार जल, और सूर्य जिस प्रकार तेज का प्रवाह बहाता है उसी प्रकार हे सबके प्रति स्नेह का प्रवाह बहाने वाले आप दोनों! आप दोनों के हितार्थ और हमारे कल्याण के लिये, ऋत्विजों के तुल्य, धारण पोषण करने वाली क्रियाओं, युक्तियों और उपायों से आप दोनों का पोषण करें।

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

भा०—हे सूर्य और मेघ के समान स्नेहवान् और दुःखवारक स्त्री पुरुषो! हे ज्ञानों, सुखोंके वर्धक और वीर्यवान् स्त्री पुरुषो! जब विद्वान् और ज्ञान ऐश्वर्यादि को देने में समर्थ पुरुष तुम दोनों के साथ सत्संग करने की इच्छा करता है तो वह यज्ञों, सत्सगों और ज्ञानप्रसङ्गों में आप दोनों के हितार्थ सुखकारी कल्याण ज्ञान को प्रकट करता है। उसी प्रकार में यथार्थतत्व को वर्णन करने वाले के समान ही क्रिया कौशल को जानने वाला, और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोक कर सन्मार्ग मे प्रेरित करने हारा होकर, आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊं।

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३॥

भा०—जिस प्रकार दुधार गाय अन्नादि खाद्य पदार्थ देने वाले को अपने दूध आदि से पुष्ट करती है उसी प्रकार अखण्डित चरित्र वाली स्त्री देने योग्य अन्न, वस्त्र, आभूषणादि पदार्थों के देने वाले और सत्य व्यवहार वाले पुरुष को सुख समृद्धि से बढ़ाती है। और जो तुम दोनों का ज्ञान और धन के लाभ होने पर आदर करता हुआ आप दोनों की वृद्धि करता है वही यज्ञ में हवि देने वाले मुख्य होता के समान सब सुख ऐश्वर्यों का देने वाला होता है। (२) इसी प्रकार अदिति आचार्य अपने प्रिय पदार्थ के दाता शिष्यजन को ज्ञान से बढ़ाता है। ज्ञान यज्ञ में मित्र, वरुण रूप से विद्यमान शिष्य गुरु में से जो दूसरे का आदर पूर्वक ज्ञान बढ़ाता है वही सर्वपूज्य सर्वदाता 'आचार्य' है।

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४॥२३॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! हर्ष देने वाली और हर्ष प्राप्त करने योग्य प्रजाओं के साथ में रहते हुए आप दोनों को, गौ आदि पशुगण और जल, कूप, नदी, तड़ाग आदि और उत्तम विदुषी स्त्रियां, वृद्धि करें। और हमारे

बीच में आप दोनों में से जो समस्त सुखों को देने हारा, गौ के दूध को देने वाले गोपालक के समान होकर, पूर्व के बड़े आप्त पुरुषों द्वारा स्थिर कर दिया जाता है, वह ही पालक पति रूप से रहे। वे तुम पति पत्नी इस पुष्टिकारक दुग्ध, अन्नादि को खाओ और पीओ और आनन्दित रहो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१५४]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ षड्टृच सूक्तम् ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

भा०—जो परमेश्वर पार्थिव पदार्थों और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि लोकों को विविध रूप से बनाता है, जो जगत् के प्रलय हो जाने के बाद भी विद्यमान उस कारण रूप प्रकृति को, जिसमें कि समस्त प्राकृतिक जगत् एक समान होकर कारण रूप से एक साथ रहते हैं, धारण करता है, और जो बहुत प्रकारों और मन्त्रों से स्तुति किया जाता है या सबको वेद द्वारा उपदेश करने हारा है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय, या कारणरूप, सूक्ष्म कार्यरूप और स्थूल कार्य पदार्थों को विशेष रूप से सञ्चालित करता है, उस व्यापक परमेश्वर के बलशाली महान् कार्यों का मैं वर्णन करूं।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

भा०—जिस जगदीश्वर के तीन महान् विक्रमणों अर्थात् सत्व, रजस, तमस् इन तीनों से बने सर्गों में, या सृष्टि, स्थिति, प्रलय इन तीन क्रियाओं में समस्त भुवन आश्रय पर पा रहे हैं, और जो बल, पराक्रम और शक्ति में सिंह के समान पापकारियों को भय देने हारा, सम विषम

आदि नाना स्थानों में भी विचरने हारा, वेद वाणी में स्थित है, वह व्यापक परमेश्वर अच्छी प्रकार स्तुति करने योग्य है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौः इन तीन स्थानों से, इस लम्बे चौडे, उत्तम यत्न द्वारा बनने वाले, एक ही आकाश स्थान में स्थित जगत् को अकेला बनाता है, उस सर्वव्यापक, अनन्त बलशाली, वेदवाणियों में ज्ञानरूप से विराजने वाले, महान् स्तुति योग्य परमेश्वर का मनन करने योग्य ज्ञान और महान् बल उत्तम रूप से हमें प्राप्त हो।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

भा०—जिस परमेश्वर की तीनों सृष्टियां मधुर गुण से पूर्ण हैं। और जो तीनों नाश न प्राप्त होते हुए जीवनधर्म को धारण करने वाली क्रिया से सब प्राणियों को तृप्त और आनन्दित करता है, और जो परमेश्वर पृथिवी और सूर्य को और तीनों धारण करने वाले सत्व, रजस्, तमस् इन गुणों से बने समस्त संसार को धारण करता है वह ही समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों को अकेला, विना अन्य किसी की सहायता के स्वयं धारण करता है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥

भा०—जिस परमेश्वर के आश्रय पर रहकर, परम उपास्य देव की आराधना करने वाले, उसके भक्तजन आनन्द लाभ करते हैं, मैं उस परमेश्वर के प्रिय पालनकारी तथा आनन्द रस का साक्षात् लाभ करूं। सचमुच वह निश्चय से हमारा बन्धु है। नाना लोकों में व्यापक परमेश्वर

के सर्वोत्कृष्ट 'प्रासव्य' परम वेद्य स्वरूप में ही मधुर आनन्द रस का स्रोत है।

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥२४॥

भा०—जिन गृहों में बहुत उत्तम २ सींगो वाली गौए और बहुत सी किरणें बहुत से रोगों का नाश करने वाले गुणों से युक्त होकर प्राप्त हों, हम लोग आप दोनो को ऐसे २ निवास गृहों को प्राप्त करना चाहते हैं। निश्चय से यहां बहुस्तुत्य, बलवान् सूर्य का परम प्रकाश बहुत अच्छा प्रकाशित होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१५५]

दीर्घतमा ऋषि ॥ विष्णुर्देवता इन्द्रश्च ॥ छन्दः—१, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ निचृज्जगती ॥ षड्च सूक्तम् ॥

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुषो! आप लोग बुद्धिपूर्वक यत्न करने वाले महान् शूरवीर, और उत्तम विद्या और गुणों में प्रवेश करने वाले पुरुष के हित के लिये अपने जीवन धारण कराने वाले अन्नादि के बने पान करने और पालन करने योग्य पदार्थ आदर सत्कार से प्रदान करो। उत्तम अश्व के द्वारा जिस प्रकार लोग पर्वतों तक पहुँच जाते हैं उसी प्रकार साधनाशील और ज्ञान मार्ग में आगे बढ़ने वाले विद्वान् के द्वारा पर्वतों के शिखरों के समान उच्च पदों पर पूजित होकर विराजते हैं। और कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते।

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य और वायु के तेज और वेग को जिस प्रकार उत्तम अन्न-

पान करने वाला मेघ अपेक्षा करता है, हे वायु और सूर्य के समान बलवान् और तेजस्वी विद्वान् और शूरवीर पुरुषो ! क्रियाकुशल तुम दोनों पुरुषों के इस प्रकार के तेज को और उत्तम ज्ञान और सत्संग को उत्तम ज्ञान-रस का पिपासु प्राप्त करता है। जिस प्रकार वायु और सूर्य दोनों ही मनुष्यों के हित के लिये प्रतिक्षण धारण पोषणार्थ देने योग्य अन्नादि पदार्थों का पालन करते हैं और जिस प्रकार वे दोनों अग्नि की व्यापनशील ज्वाला की रक्षा करते हैं उसी प्रकार उक्त इन्द्र और विष्णु, सेनापति और राजा प्रजा के साधारणजन के हितार्थ धारण करने योग्य प्रत्येक पदार्थ की रक्षा करें और वे शत्रु पर बाणवर्षा करने वाले अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शत्रु को उखाड़ फेंकने की शक्ति की रक्षा करें।

ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार वृष्टि की धाराएं अन्न को बढ़ाती हैं और इसके बड़े भारी पुरुषत्व का बल बढ़ाती हैं, और वह अन्न खाया जाकर वीर्य उत्पत्ति और शरीर की रक्षा और पालन और नाना प्रकार के भोग भोगने के लिए भी पुरुषों को प्रवृत्त करता है। वही अन्न वीर्य द्वारा माता पिता से उत्पन्न होकर पुत्र रूप होकर सूर्य के समान प्रकाशित होने और ज्ञान प्रकाश और व्यवहार के उत्तम रुचिकर तेजस्वी कार्यों में भी पिता के निकृष्ट, सर्वोच्च और सबसे उत्तम यश को भी धारण करता है। उसी प्रकार वे विदुषी स्त्रियां, और माता और पिता उसकी वीर्य रक्षा और देहरक्षा के लिये उसके बड़े भारी बल की वृद्धि करें। वह पुत्र उनको मां बाप की नम्रता से प्राप्त हो। वह सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी होकर प्रकाशित होने के लिये उसके परे के और तीसरे स्वरूप को भी धारण करे।

'अवरं परं तृतीयम्'—अवर अर्थात् देह, पर अर्थात् पुत्र और तृतीय

अर्थात् पिता तीनों को धारण करे। अर्थात् पुत्र स्वय पुत्र का कर्त्तव्य पालन करे, पौत्र को उत्पन्न करे और पिता का पालन करे। वह पुत्र एक ही समय में अपने पुत्र का पिता, अपने पितामह का पौत्र कहावे अर्थात् वह तीन पीढ़ियों का रक्षक हो।

तत्तदिदंस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरंवृकस्य मीळ्हुषंः।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरुक्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥

भा० – जिस प्रकार सूर्य अपने अग्नि, विद्युत् और सूर्य इन तीन विशेष रूपों से समस्त लोकों में व्याप जाता है उसी प्रकार जो पुरुष तीन विशेष गमन या उपायों से अति प्रशंसित जीवन की रक्षा और धारण करने के लिये पृथिवी के समस्त पदार्थों और लोकों और प्राणियों को अति उत्तम रूप से क्रमण कर जाता है, वह नाना प्रकार का पोषण, हम लोग, स्वामी, रक्षक, भेडिये के समान वञ्चक वा प्रजाभक्षक न होने वाले मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्षक प्रजापालक का ही बतलाते हैं।

द्वे इदंस्य क्रमंणे स्वर्दृशोंऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयंमस्य नकिरा दंधर्षति वयंश्चन पतयंन्तः पतत्रिणंः ॥५॥

भा०—जिस प्रकार इस तेजोमय सूर्य के दो क्रमण, दो स्थान पृथिवी और अन्तरीक्ष इनको मनुष्य विद्या के बल से प्राप्त कर लेता है, और इसके तीसरे स्थान आकाश को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता, दूर तक उड़ने वाले बड़े २ पक्षी भी वहा तक नहीं पहुँच सकते, इसी प्रकार सन्तान आदि के सुखमय मार्ग को देखने हारे इस वीर्यवान् ब्रह्मचारी के दो ही ऐसे क्रमण अथात् गमन, आश्रय या आचरण हैं जिनको अच्छी प्रकार ज्ञानपूर्वक देख कर मनुष्य धारण कर सकता है। इसका तीसरा स्वरूप था विद्याजन्म वह है जिसको मार्ग में जाते, गिरने से बचाने वाले सहायकों से युक्त या रथादि के स्वामी और सामान्य ज्ञानवान् पुरुष भी कभी तिरस्कृत नहीं कर सकते।

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतींरवीविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वंभिर्युवा कुमारः प्रत्येत्याहवम् ६॥२५॥

भा०—जिस प्रकार कुमार दशा को त्याग कर बड़े लम्बे चौड़े विशाल शरीर वाला युवा पुरुष अपनी वाणी या आज्ञा के अधीन पुरुषों से विविध दिशाओं के शत्रुओं को गिराता हुआ युद्ध को जाता है, और चार के साथ नव्वे अर्थात् ९४ पुरुषों के बने विशेष बलशाली पुरुषों और चक्रव्यूह को भी हाथ में रखे चक्रास्त्र के समान अपने नमाने वाले बलों से कपा देता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी कुत्सित काम क्रोधादि से ग्रस्त न होकर, आचार्य के उपदेशों को जीवन में संगति करने वाला, नित्य वृद्धिशील, विशालकाय होकर, वेद की ऋचाओं या ज्ञानवान् विद्वानों से विविध ज्ञानों को प्राप्त करता हुआ, समस्त ज्ञान को प्राप्त हो। वह ९४ प्रकार के विरुद्ध बाधक कारणों को गोल चक्र के समान अपने चार आश्रमों या चार प्रकार के ब्रह्मचर्य बलों से कपा दे, उनको दूर करे। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[१५६]

दीर्घतमा ऋषिः॥ विष्णुर्देवता॥ छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्।
५ स्वराट् त्रिष्टुप्। निचृज्जगती। ४ जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता॥ १॥

भा०—हे दिशाओं में व्यापक विद्वन्! तू मित्र अर्थात् मृत्यु से बचाने वाले रक्षक के समान सुख का देने हारा हो। तू जलवर्षी मेघ के समान स्नेह और पुष्टिकारक अन्न और तेजोयुक्त पदार्थों और ओज का प्रदान करने वाला हो। तू सूर्य के समान अति तेज, ऐश्वर्य, यश और बल से सम्पन्न हो। तू रक्षक रूप से सबको प्राप्त होने और इसी प्रकार

से विख्यात कीर्ति वाला हो। और हे व्यापक शक्ति वाले। तेरा स्तुति करने योग्य व्यवहार और गुण विद्वान् पुरुष द्वारा पूज्य, और तेरा सत्सग और दान आदि कार्य अन्नादि से समृद्ध पुरुष द्वारा सम्पादन करने योग्य हो। (२) इसी प्रकार सर्व व्यापक परमेश्वर सबका मित्र, सुखप्रद, अन्न, जल, तेज का दाता, ऐश्वर्यवान्, रक्षक, महान् व्यासिमान् है। विद्वान् उसके गुण गाता, और हविष्मान् उसके निमित्त यज्ञ दान करता है।

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्॥२॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, मेधावी, अपने से पूर्व विद्यमान विद्याव-योवृद्ध पुरुषों की उत्तम रीति से सेवा करने वाले, सदा सुप्रसन्न, स्वभाव से ही ज्ञान सम्पादन करने में सलग्न, ज्ञान मार्ग में प्रवेश करने वाले नव विद्यार्थी को ज्ञान दान करता है, और जो पुरुष व्रतों और गुणों में महान् इस विद्यार्थी को उत्तम २ ज्ञान का सदा उपदेश करता है, वह ही श्रवण योग्य कर्मों से युज्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास करता है।

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥ ३॥

भा०—हे यथार्थ गुणों का उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषो! आप लोग पूर्व के विद्वानों द्वारा विद्या के योग्य पुरुष को यथाविधि प्राप्त करो। और ज्ञानैश्वर्य को अपने में धारण करने वाले को विद्या द्वारा नवीन जन्म प्राप्त कराके विद्या से पूर्ण करो। इसके उत्तम नाम को भी जानते हुए इसे विशेष रूप से उपदेश करो। हे विद्याओं में व्यापक विद्वन्! हम तेरे महान् उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४॥

भा०—व्यापक प्रकाश वाला सूर्य जिस प्रकार दिन को प्राप्त कराने वाले किरण समूह को प्रकट करता, और उत्तम बल को धारण करता है, और जिस प्रकार वायुगुणों के प्रेरक इस सूर्य के सामर्थ्य को मेघ और दिन रात्रि प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शिष्य रूप मित्रों से युक्त आचार्य उस परम वेद्य ज्ञान को और गो रूप वाणियों के संघ वेद को प्रकाशित करे। वह प्रकाश लाभ कराने वाले, तथा उत्तम ज्ञानसामर्थ्य को धारण करे। तेज से चमकने वाला श्रेष्ठ पुरुष, और नाना ऐश्वर्यों के भोक्ता स्त्री-पुरुष, ज्ञानवान् आचार्य के उस ज्ञान और कर्मसामर्थ्य को प्राप्त हों और उसमें सहयोग करें।

आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥ २६ ॥ २१ ॥

भा०—जो विद्वानों का हितकारी, शुभ गुणों और विद्याओं में प्रवेश करने हारा जिज्ञासु पुरुष, विद्या आदि ऐश्वर्य से युक्त गुरु को प्रसन्न करने के लिए और उसकी सेवा करने के लिए उसको प्राप्त होता है, और जो उत्तम उपकार करने वाले के प्रति अधिक उपकार करने वाला होता है, वह बुद्धिमान् पुरुष, कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों में स्थिर होकर, उत्तम शुभ गुणों और विद्या में निपुण श्रेष्ठ गुरु को प्रसन्न करे। धनार्थी जिस प्रकार दानशील को प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त वह विद्या दान देने वाले को प्राप्त हो, और उसकी सेवा शुश्रूषा करे। इति षड्विंशो वर्गः। इत्येकविंशोऽनुवाकः ॥

[१५७]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ जगती। ५ निचृत् त्रिष्टुप्।
६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृज्जगती ॥ षड्च सूक्तम् ॥

अबो॑ध्य॒ग्निर्ज्म उदे॑ति॒ सूर्यो॒ व्यु॑षाश्च॒न्द्रा म॒ह्यावो॑ अ॒र्चिषा॑ ।
आयु॑क्षाताम॒श्विना॒ यात॑वे॒ रथं॒ प्रासा॑वीद्दे॒वः स॑वि॒ता जग॒त्पृथ॑क् ॥ १ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार प्रज्वलित होता, और पृथिवी को प्रकाशित करने वाला सूर्य जैसे उदय को प्राप्त है, वैसे विनयी शिष्य अपनी विद्याभूमि आचार्य से विद्वान् होकर सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो। जैसे आल्हादकारिणी विस्तृत वेला कान्ति के सहित प्रकट होती है, उसी प्रकार कान्तमती कन्या तेज से विविध गुणों को प्रकट करे। इसी प्रकार विद्या में व्यापक और विद्या के बल से जगत् के सुखों को भोगने वाले विद्वान् स्त्री-पुरुष मिलकर संसार के मार्ग पर चलने के लिये उत्तम आनन्द देंगे और वेग से चलने वाले गृहस्थ रूप रथ को युक्त करें। जैसे सर्वप्रेरक सूर्य प्राणिसंसार को पृथक् प्रेरित कर सबको उनकी प्रकृति के अनुसार चलाता और उनको जीवन देता है उसी प्रकार उत्पादक कामनावान् पुत्रैषी, प्रिय पुरुष संतान को उत्पन्न करे।

यद्यु॒ञ्जाथे॒ वृष॑णमश्विना॒ रथं॑ घृ॒तेन॑ नो॒ मधु॑ना क्ष॒त्रमु॑क्षतम् ।
अ॒स्माकं॒ ब्रह्म॒ पृत॑नासु जिन्वतं व॒यं धना॒ शूर॑साता भजेमहि ॥२॥

भा०—हे गृहस्थ सुखों के भोगने और एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषो! जब आप दोनों सुख का और वीर्य का सेचन करने वाले रमण करने के साधन रूप अंग को संयुक्त करो इसमें पूर्व आप दोनों अपने वीर्य को घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ से और मधुर अन्न से सींचो। इसी प्रकार हमारे मनुष्यों में उत्तम अन्न और बल को करो। जिससे हम लोग सदा शूरवीर पुरुषों को प्राप्त करने के लिए नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करें और सेवें।

अ॒र्वाङ् त्रि॑च॒क्रो म॑धु॒वाह॑नो॒ रथो॑ जी॒राश्वो॑ अ॒श्विनो॑र्यातु॒ सुष्टु॑तः ।
त्रि॒व॒न्धु॒रो म॒घवा॑ वि॒श्वसौ॑भगः॒ शं न॒ आ व॑क्षद् द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥३॥

भा०—विद्यावान् स्त्री पुरुषो का जल के बल से चलने वाला, मधुर नाना सुखों को प्राप्त कराने वाला, और अन्न आदि उपभोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, वेगवान् अश्वों से युक्त, तीन चक्रों वाला, उत्तम, प्रशंसनीय, तीन बन्धनों वाला, बहुमूल्य, समस्त ऐश्वर्यों से युक्त रथ हमें प्राप्त हो, और हमारे दो पाये भृत्य आदि चौपाये गौ आदि पशुओं को शान्ति सुख प्राप्त करावे।

आ न॒ ऊर्जं॑ वहतमश्विना यु॒वं मधु॑मत्या नः॒ कश॑या मिमिक्षतम्।
प्रायु॒स्तारि॑ष्टं नी रपां॑सि मृक्षतं॒ सेध॑तं॒ द्वेषो॒ भव॑तं सचा॒भुवा॑ ॥४॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों हमें बल पराक्रम और उत्तम अन्न प्राप्त कराओ। और तुम दोनों हमें मधुर तथा विज्ञानयुक्त वाणी से सेचन करो, उससे हमारे ज्ञान की वृद्धि करो। जीवन को बहुत अधिक बढ़ा हमें दीर्घायु करो। हमारे सब पापों को सब प्रकार से शुद्ध कर दूर करो। द्वेष के भावों को दूर करो और सदा एक दूसरे के साथ सहयोगी होकर रहो।

यु॒वं ह॒ गर्भं॒ जग॑तीषु धत्थो यु॒वं विश्वे॑षु॒ भुव॑नेष्व॒न्तः।
यु॒वम॒ग्निं च॑ वृषणाव॒पश्च॒ वन॒स्पती॑रश्विना॒वैर॑येथाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे बलवान् स्त्री पुरुषो! जिस प्रकार सूर्य और वायु भूमियों और प्राणियोनियों में ऋत्वनुसार गर्भ धारण कराते हैं, उसी प्रकार [illegible], [illegible], पापों के सेचन और वीर्य रक्षण करने हारो! आप दोनों [illegible] योग्य रात्रियों में ही गर्भाधान क्रिया द्वारा गर्भ धारण करो इससे अतिरिक्त निषिद्ध रात्रियों में नहीं। आप दोनों सब लोकों के [illegible] करो। आप दोनों अग्नि और जलों को और वनस्पतियों को [illegible]।

यु॒वं ह॑ स्थो भि॒षजा॑ भेष॒जेभि॒रथो॑ ह स्थो र॒थ्या॒३॒॑ राथ्ये॑भिः।
अथो॑ ह क्ष॒त्रमधि॑ धत्थ उग्रा॒ यो वां॑ ह॒विष्मा॒न्मन॑सा द॒दाश॑ ॥६॥२७

९ लि.

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों रोगनाशक वैद्यो और औषधियों से रोग निवारण करने वाले होकर रहो और रोग निवारण किया करो। आप दोनों रथ के योग्य उत्तम अश्वों और बैल आदि पशुओं से रथ संचालन के कार्य में कुशल होकर रहो। और तुम दोनों उग्र होकर, जो अन्न और ऐश्वर्य आदि ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों से सम्पन्न होकर चित्त से, प्रेम से प्रदान करता है उसको, क्षात्र बल और राष्ट्र के भी ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थापन करो। इति सप्तविंशो वर्गः।
द्वितीयोऽध्यायः॥

[१५८]

दीर्घतमा ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। भुरिक् पंक्तिः। ६ निचृदनुष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती॥१॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान सुखों का वर्षण करने वाले माता और पिता! आप दोनों प्रजाओं के बसाने और स्वयं राष्ट्र और गृह बसने हारे दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों के देने, और दुष्टों को रुलाने वाले, परस्पर बढ़ते और अधीनों की वृद्धि करते हुए, अति अधिक ज्ञानशील, दुःखों के नाशक और दर्शनीय होओ। उपदेश करने योग्य उत्तम शिष्य तुम दोनों के समीप जब विद्याप्राप्ति के निमित्त प्राप्त होता है तब आप दोनों आनन्दनीय ज्ञान वाणियों और रक्षा क्रियाओं सहित ज्ञान का प्रसार करो। और आप दोनों का दान देने योग्य जो ज्ञान और ऐश्वर्य है उसको उत्तम कामना की पूर्ति और इष्ट सिद्धि के लिये अच्छी प्रकार प्रदान किया करो।

को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता॥२॥

भा०—हे राजा रानी पुरुषो ! आप दोनों, एक दूसरे के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले मन से परस्पर आचरण करते हुए जब पृथिवी के ऊपर रहने के स्थान में परस्पर आदरपूर्वक ऐश्वर्य से सम्पन्न नगरवासिनी प्रजाओं को पुष्ट करो, तब प्रजाओं के बीच उनको बसाने वाले उनके प्राणों के समान होकर तुम दोनों हमारे हित के लिये जागते रहो, सदा सावधान होकर रहो। इस शुभ मति के लिये तुमको कौन ज्ञान प्रदान करे। अथवा प्रजापति परमेश्वर ही उत्तम मति का उपदेश करे।

युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य सञ्चालन के कार्य में कुशल पुरुष के कार्य के लिए, सर्व पालक तथा विद्वान् और बलवान् राष्ट्रपति प्रजासागर के बीच स्थापित किया जाता है, जिस प्रकार शूरवीर सेनापति वेग से जाने वाले अश्वों सहित महासागर को जाता है, उसी प्रकार मैं भी वेगवान साधनों से युक्त होकर आप दोनों राष्ट्र के स्त्री पुरुषों की शरण को प्राप्त होता हूं।

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान सदा प्रकाशमान् सभा और सेना के स्वामी जनो ! समीप २ बैठकर राष्ट्र तथा राज्य के हित लिये परस्पर बातचीत वा चर्चा किया करो, वचनों के पात्र प्रशंसनीय राजा की रक्षा किया करो। वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाली, दायें बायें रहने वाली, और पक्ष प्रतिपक्ष से विवाद करने वाली सभा के सदस्यों की दोनों श्रेणियां मुझ राजा या स्वामी को विपरीत रूप से दोहन न करें अर्थात् हानिकारक उपयोग न करावें। बल्कि दशगुना संचय किया हुआ काष्ठ के समान प्रज्वलित होने वाला तेजस्वी सैन्य समूह भी मुझको न जलावे।

क्योंकि तुम दोनों सभा और सेना के स्वामियों के आश्रय पर ही राजा वा प्रजावर्ग अपने राष्ट्र में बंधकर इस भूमि का भोग करता है।

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

भा०—जब राष्ट्र के नाशकारी शत्रुजन अच्छी प्रकार धन धान्य से परिपूर्ण, राष्ट्रपति को नीचे गिराने का यत्न करें, उस समय उत्तम माताओं के समान हितकारिणी और धनैश्वर्य से सम्पन्न आप्त प्रजाएं मुझे निगलने का यत्न न करें, प्रत्युत मेरी रक्षा करें। जब धन, जन और कोप, तीनों प्रकार की शक्तियों को बढ़ाकर राष्ट्र का नाश करने वाला शत्रुजन इस राष्ट्र के शिर को विविध और विपरीत मार्ग से नाश करता है तब वह मानो अपने ही आप अपने ही छाती और कन्धों पर आघात करता है। प्रजा का उत्तम बलवान् नायक राजा का घात करना अपना ही नाश कर लेना है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—जो अति विस्तृत अज्ञान और शोकादि में व्याकुल, और अति ममताशील लोभी होता है वह राजा दसवें वर्ष जीर्ण होकर नाश को प्राप्त हो जाता है। और जो राजा नियमों में सुबद्ध, जितेन्द्रिय प्रजाओं के ऐश्वर्य और प्रयोजन को प्राप्त करता है वह उनका महान् स्वामी और रथ के संचालक के समान उनको सन्मार्ग में ले जाने हारा होता है।

अथवा युग = ५ वर्ष। दशमे युगे = पचासवें वर्ष। अध्यात्म में—ज्ञानरहित जीव दीर्घतमा मामतेय है। इति प्रथमो वर्गः॥

[१५६]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् जगती । २, ३, ५ निचृज्जगती । ४ जगती च ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र द्यावा॑ य॒ज्ञैः पृ॑थि॒वी ऋ॑ता॒वृधा॑ म॒ही स्तु॑षे वि॒दथे॑षु॒ प्रचे॑तसा ।
दे॒वेभि॒र्ये दे॒वपु॑त्रे सु॒दंस॑से॒त्था धि॒या वार्या॑णि प्र॒भूष॑तः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी बड़े और प्रजाओं को अन्न और जल से बढ़ाने वाले हैं, और जिस प्रकार वे दोनों प्रकाशयुक्त किरणों और सुखप्रद पदार्थों द्वारा पालन करने वाले और उत्तम रीति से दुःखनाशक रह कर नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार ज्ञान प्रकाश से युक्त और भूमि के समान प्रजा के उत्पादक माता पिता और गुरुजन अति पूजनीय सत्य ज्ञान और अन्न जल से सन्तानों की मन आत्मा और देह की वृद्धि करने वाले हों। उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त से युक्त उन दोनों की मैं ज्ञानों के निमित्त स्तुति करूं। जो दोनों उत्तम विद्वानों द्वारा व्यवहारकुशल पुत्रों और शिष्यों से युक्त होकर, तथा उत्तम कर्म और ज्ञान से युक्त होकर बुद्धि और कर्म के बल से वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों को अधिक मात्रा में धारण करते कराते हैं।

उ॒त म॑न्ये पि॒तुर॒द्रुहो॒ मनो॑ मा॒तुर्महि॒ स्वत॑वस्त॒द्धवी॑मभिः ।
सु॒रेत॑सा पि॒तरा॒ भूम॑ चक्रतुरु॒रु प्र॒जाया॑ अ॒मृतं॒ वरी॑मभिः ॥ २ ॥

भा०—और मैं द्रोह रहित पिता और माता के मन को, स्नेहों से स्वयं बलवान् और अति पूज्य मानता और जानता हूं। क्योंकि सन्तानों के पालक माता पिता उत्तम वीर्यवान् होकर श्रेष्ठ २ उपायों से स्वसन्तानों के लिये बहुत अधिक अन्नादि उत्पन्न और प्रदान करें। इसी प्रकार गुरुजन उत्तम वीर्यवान् होकर, स्वशिष्यों को भूमा स्वरूप अमृतमय ब्रह्मज्ञान प्रदान करें।

ते सू॒नवः॒ स्वप॑सः सु॒दंस॑सो म॒ही ज॑ज्ञुर्मा॒तरा॑ पूर्व॒चित्त॑ये ।
स्था॒तुश्च॑ स॒त्यं जग॑तश्च॒ धर्म॑णि पु॒त्रस्य॑ पाथः प॒दमद्व॑याविनः ॥३॥

भा०—वे पुत्र जन, उत्तम ज्ञान उत्तम कर्म और व्यवहार वाले होकर, सबसे पूर्व मान आदर करने के लिये माता पिता दोनों और ज्ञान कराने

वाले आचार्यजनों को सबसे अधिक पूज्य जानें। हे माता पिताओ! आप दोनों स्थावर सम्पत्ति और जंगम पुत्रादि के धारण करने में साधारण माँ बाप से गुणों में अधिक हो, आर्य पुत्र के स्थान या मार्ग का पालन करो।

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४॥

भा०—वे पुत्र बुद्धिमान्, उत्तम ज्ञान और चित्त वाले, क्रान्तदर्शी दीर्घदर्शी, उत्तम दीप्ति और तेज से युक्त, अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणों के समान पुत्रोत्पादन में समर्थ होकर, जोड़े २ बन कर एक ही स्थान में घर बना कर रहते हुए, नये २ प्रजातन्तु को अपनी कामनारूप पुत्रैषणा के निमित्त उत्पन्न करें।

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५॥२

भा०—हम लोग सर्वोत्पादक परमेश्वर के श्रेष्ठ आराधनीय स्वरूप को उत्तम उपासनाकाल में सदा चिन्तन करें। वे दोनों सूर्य और पृथिवी के समान उत्तम चित्त और ज्ञानवान् होकर हमारे लिये सैकड़ों गौओं और वाणियों से युक्त ऐश्वर्य युक्त, सम्पदा प्रदान करें। द्वितीयो वर्गः ॥

[१६०]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् जगती। २, ३, ४, ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

भा०—सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार समस्त विश्व को शान्ति और कल्याण देने वाले हैं, प्रकाश और जल से पूर्ण होकर क्रान्तदर्शी प्रकाश को धारण करते और सबको धारण करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों स्त्री-पुरुष या माता पिता भी समस्त संसार को शान्ति देने और कल्याण करने

वाले न्याय व्यवहार से युक्त होकर, प्रजाजनों और लोकों के हितार्थ, क्रान्तदर्शी विद्वानों को धारण करने वाले, उत्तम जन्म वाले, समस्त लोकों को अपने आश्रय में धारण करने वाले हों। उनमें से सूर्य के समान तेजस्वी और कामना युक्त पुरुष धर्म से शुद्ध पवित्र हो। उसी प्रकार कामना युक्त स्नेहवती स्त्री भी धर्म से शुद्ध पवित्र होकर अन्तःकरण में विराजे।

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों अति विस्तृत और विविध शक्तियों से युक्त होते हैं, और महान् होकर समस्त भुवनों को पालते हैं, और उत्तम रीति से दृढ होकर रहते हैं, उसी प्रकार माता और पिता अति विशाल हृदय वाले, गुणों में महान्, अयुक्त कार्यों कामादि विलासों में अनासक्त होकर, गृह में उत्पन्न सन्तानों की रक्षा करें। वे दोनों अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट और उत्तम शरीर वाले सुन्दर हों। और उन दोनों में जो सन्तानों का पालक पिता है वह नाना रुचिकर पदार्थों और वस्त्रों से सब प्रकार से सब पुत्रादि सन्तानों को आच्छादित करे और पाले।

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३॥

भा०—वह माता पिता का पुत्र, पवित्र आचार और पवित्र वेद ज्ञान से युक्त होकर, धैर्यवान्, अग्नि के समान तेजस्वी और गृहस्थ को वहन करने में समर्थ होकर, अपनी उत्तम बुद्धि से समस्त उत्पन्न सन्तानों और लोकों को भी पवित्र करता है। सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी और उत्तम सबल मेघ को जल से पूर्ण करता है उसी प्रकार वह पुत्र भी दूध पिलाने वाली माता या गौओं को उत्तम वीर्यवान् बलवान् वीर्य निषेक्ता पिता को सदा ही पवित्र करता है। हे पुरुषो! आप लोग इसके बल वीर्य को और शुद्धिकारक ज्ञान जल को पूर्ण करो।

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४॥

भा०—यह पुत्र उत्तम ज्ञानी और कर्मण्य विद्वानों के बीच सबसे अधिक ज्ञानी, कर्मनिष्ठ आप्त होवे। जो पुत्र अपने को उत्तम ज्ञान देने वाले माता पिताओं तथा गुरुजनों को सब प्रकार के कल्याणों के उत्पादक रूप से जानता है, और जो चित्त को मनोरंजक करने वाले माता पिताओं को उत्तम कर्मयुक्त कीर्त्ति से विशेष कीर्त्तिमान् बनाता है, और उन दोनों को कभी नाश को प्राप्त न होने वाले स्तम्भों के समान आश्रयप्रद उपायों से अच्छी प्रकार से सेवा करता है, उनको प्रसन्न करता है।

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्। येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञान और आश्रय के देने वाले! आप दोनों स्तुति योग्य और अति पूज्य होकर, बड़ी कीर्त्ति, बड़े भारी बल वीर्य को धारण कराओ। जिसके बल से हम सदा ही प्रजाओं को विस्तृत करें। आप दोनों स्तुति योग्य बल पराक्रम को हममें प्राप्त कराओ। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६१]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् जगती ॥ ३, ५, ६, ८, १२ निचृज्जगती। ७, १० जगती च। निचृत् त्रिष्टुप्। ४, १३ भुरिक् त्रिष्टुप्। स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप्। १४ स्वराट् पङ्क्तिः। चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं १ कद्यदूचिम।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१॥

भा०—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन। क्या यह पुरुष सबसे अधिक प्रशंसनीय गुणों से युक्त है, क्या यह सबसे अधिक युवा, बलवान्,

उत्साह पूर्ण है, अथवा क्या सबसे अधिक ज्ञान में वृद्ध है, ऐसा पुरुष हमें प्राप्त हो। हम जो कुछ भी कहें उसको दूसरे राज्य में ले जाने के लिये वह दूतकर्म के पद को प्राप्त हो। हे तत्वार्थ को अपने भीतर धारण करने में कुशल! जो पुरुष बड़े कुल में उत्पन्न होता है ऐसे मेघ के समान सत्पात्र पुरुष की हम निन्दा नहीं करें। प्रत्युत हे ज्ञानवन् पुरुष! दौत्य कर्म के लिये तो शीघ्र गति से जाने वाले पुरुष के ही सामर्थ्य की हम अधिक प्रशंसा करते हैं।

सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज हैं अर्थात् उत्तम धनुर्धर वीरों में तीन प्रकार के पुरुष हैं शिल्पी, धनाढ्य और वेगवान् बलशाली। परन्तु वीर योद्धाओं के सन्धि विग्रहादि के दूतकर्म के लिये चतुर्थ प्रकार का विद्वान् भी आवश्यक है उसका विवेचन है वह श्रेष्ठ, युवा उत्साही, यथार्थ वक्ता, सत्पात्र, कुलीन, शीघ्रगामी हो।

एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम्।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२॥

भा०—हे उत्तम धनुष आदि शस्त्रों के सञ्चालन में कुशल पुरुषो! ज्ञान देने हारे विद्वान् पुरुष आप लोगों को उस उक्त प्रश्न के विषय में उपदेश करते हैं। मैं विद्वान् पुरुष भी आप लोगों के समक्ष उसको यथावत् प्रकट करता हूं। आप लोग चारों जने मिल कर एक सत् पात्र वा मेघ के समान गम्भीर गर्जन करने वाले पुरुष को अपना दूत नियत करो। यदि इस प्रकार करोगे तो आप लोग विद्वान् एवं दानशील होकर और ज्ञानप्रद पुरुषों के साथ मिल कर, एक सुसंगत राष्ट्र के अंग एवं पूज्य पद के योग्य होकर रह सकोगे।

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३॥

भा०—हे विद्वान्, ज्ञानी पुरुषो! ... और दूतकर्म को ...

वाले पुरुष को लक्ष्यकर जो २ नाना कार्य आप लोग कहते हो कि उसके लिये उत्तम अश्व, अनुगामी रथ और अश्वसैन्य तैयार करो, और रथ सेन्य तैयार करो, नाना रस पिलाने वाली गौ के समान पृथिवी तैयार करो, स्त्री-पुरुष दोनों को युवा बलवान् बनाओ। हम विद्वान् लोग प्रजा के हितार्थ ही उन नाना उत्तम कार्यों को करने के लिये आप्त होते हैं।

चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन्।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न किये मेघों को प्रकट करता है और स्वयं दिशाओं के बीच में प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष जिन स्वय तैयार किये चतुरंग सैन्य बलों को, चारों वर्णों या चारों आश्रमों को सुव्यवस्थित रूप से बने और अच्छे रूप से आचरण किये हुए अपने अधीन देखता है, तब वह राजा प्रजा और शासन करने योग्य भूमियों के बीच उनका भोक्ता होकर सब प्रकार से प्रकाशित होता है। तब राज्य शासन करने वाले, सत्य धर्म और ज्ञान से प्रकाशित होने वाले बड़े पुरुष उससे यह प्रश्न करें कि वह जो भी दूत हमारे पास आवे वह कहां रहे? प्रमुख २ विद्वान् को किस २ पद पर स्थापित करें। इस प्रकार राजा से पूछ कर विद्वान् लोग उसी प्रकार उसका निश्चय करें।

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—जो लोग मेघ के समान सब सुखों के वर्षक, विद्वानों द्वारा पालन करने योग्य राजा के निन्दक हैं उनको हम मारें, इस प्रकार से जब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष आज्ञा का निश्चय करता है, तब उत्तम शासन में वे पुरुष दण्ड से भयभीत होकर नाना प्रकार से झुक जाते हैं। तब राजा की कामना योग्य राज्यव्यवस्था नाना प्रकार के वश करने के

उपायों से सघ बनाकर मिले हुए राष्ट्र के मनुष्यों को पाले पोसे, प्रसन्न करें और आगे बढ़ावे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६॥

भा०—शत्रुहन्ता सेनापति राष्ट्र के धारण और शत्रुसंहरण के बलों का प्रयोग करे । स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रम को, रथ को सारथी के समान सदा सञ्चालित करें । राजा जिस प्रकार सब प्रकार की प्रजा को धारण करता है उसी प्रकार वेद की वाणी का पालक विद्वान् संसार के पदार्थों का एकत्र करने वाली वेदवाणी का ज्ञान करे । सत्य वाणी, सत्य व्यवहार के द्वारा सामर्थ्यवान्, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त राजा, विविध सामर्थ्यों सहित, दानशील और तेजस्वी पुरुषों के पास जावे । इस प्रकार हे पुरुषो ! आप लोग सुसभ्य, सुशिक्षित, सत्कर्मा होकर यज्ञ अर्थात् परस्पर सत्संग से और लेन देन के व्यवहार से प्राप्त होने योग्य सेवनीय राष्ट्र व ऐश्वर्यों को प्राप्त करो ।

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७॥

भा०—हे उत्तम धनुर्धारी पुरुषो ! आप लोग ढाल के बल पर भूमि को अपने धारण सामर्थ्यों से प्राप्त कर अपने वश करने में समर्थ होओ । और हे शिल्पीजनो ! आप लोग शिल्पों द्वारा चर्म में से बाणों को दूर फेंकने वाले धनुष को और प्राप्त करो । जो युवक कुमारों को अपने अधीन धारण करें उन ऐसे उपदेश करने वाले विद्यावृद्ध माता पिताओं को अपना प्रमुख स्वीकार करो । उत्तम अश्व से उत्तम अश्व को तैयार करो । उत्तम अश्व से अश्व सन्तति प्राप्त करो । रथ जोड़ कर दिव्य लोगों, गुणों, समस्त उत्तम व्यवहारों और विजयशील उत्तम कर्मों को प्राप्त करो ।

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८॥

भा०—हे उत्तम धनुर्धर वीर पुरुषों के शिक्षण में कुशल पुरुषो! आप लोग अपने अधीन पुरुषों को ऐसा उपदेश देते रहा करो कि ऐसा जल पान किया करो। यह रोगों से छुड़ाने और शरीर को शुद्ध कर देने वाला औषधिरस है इसे निश्चय ही पान किया करो। यदि वह भी पान न करना चाहो तो उन सबसे भी उत्तम सोम आदि रस में ही सदा अनन्दित रहो।

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों में एक विद्वान् यही उपदेश करे कि जल ही बहुत गुणों से युक्त है, वह जलों की विद्याओं का ही उपदेश करे। दूसरा व्यक्ति ऐसा उपदेश किया करे कि अग्नि ही बहुत गुणों से युक्त है। वह अग्नि के ही गुणों का उपदेश किया करे। और आप में से एक बहुत से शिष्यों को शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या का या भूमि की विद्या का ही अच्छी प्रकार प्रवचन किया करे। इस प्रकार आप लोग सत्य ज्ञानों का उपदेश करते हुए, ज्ञान और ऐश्वर्यों का भोग करने वाले या ज्ञान जिज्ञासु मानवों को नाना विभागों में बांट दो।

श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः १०

भा०—विद्वान् पुरुषों के कार्यों का वर्णन। एक विद्वान् पुरुष जल को यन्त्र द्वारा नीचे से ऊपर निकालता है, और दूसरा विद्वान् श्रवण करने योग्य उत्तम वाणी को नीचे की तरफ हृदय या नाभिदेश से उठा कर ऊपर मुख द्वारा प्रकट करता है। अथवा श्रवण योग्य गौ को चराता है। र एक पुरुष हल की फाली से या अन्नोत्पादक क्रिया से प्राप्त हुए मन

जो उत्तम लगने वाले अन्नादि को पैदा करता या उसे रुचिर बनाता है। एक विद्वान् अन्त होने सूर्य के शक्तिदायक अंश को उससे प्राप्त करता है। ऋतुओं की रक्षा करने में समर्थ विद्वानों के हित के और जो कुछ भी पदार्थ हैं उन्हें पालक माता और पिता दोनों प्राप्त कराना चाहें ।

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुषो ! आप लोग ऊंचे स्थानों पर उस पशुवर्ग के हितार्थ घास आदि चरने योग्य पदार्थ उत्पन्न करो, और नीचे के गहरे स्थानों पर उत्तम कर्मों की इच्छा या परोपकार से प्रेरित होकर जल एकत्र करो। घर में जब जाकर रहो या सोवो तब सदा अग्राह्य पुरुष के दुश्चरित्र का [illegible] अनुमान मत करो।

सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥

भा०—हे पुरुषो ! जब परस्पर प्रेम से मिल कर प्राणियों और पुत्रों को प्राप्त होवो, उस समय आप लोगों के माता पिता कहीं ना रहें, [illegible] चिन्ता मत करो। जो आप लोगों के बाहु को पकड़े, जो तुम्हारी [illegible] पर प्रतिबन्ध लगावे उसको तुम बुरा कहो, और जो तुम्हारे [illegible] उत्तम रीति से उपदेश करे उसके लिये प्रिय वाणी बोला करो।

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३॥

भा०—हे सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले सूर्य किरणों के समान देदीप्यमान ! हे सुख से शयन करने हारे, निश्चिन्त विद्वान् जनो ! आप [illegible] परम ज्ञान के सम्बन्ध में सदा प्रश्न किया करो। तुम से कुछ [illegible] छिपा रखने योग्य हे आचार्य ! इसे यह सब ज्ञातव्य विषय कौन [illegible] सकता है ? । तब अपने गुरु के अधीन रहने वाला विद्वान् ही

अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर ले जाने हारे, ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य को कहे कि आप एक वर्ष में ही यह समस्त ज्ञान हमें विशेष रूप से व्याख्यान कर दें।

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥६॥

भा०—हे बलवीर्य और ज्ञान का पतन या विनाश न होने देने हारे विद्वान पुरुषो! जिस प्रकार वायुगण सूर्य के बल से चलते हैं, और अग्नि भूमि के आश्रय से बढ़ती, और यह वायु अन्तरिक्ष का आश्रय लेकर चलता है, और जिस प्रकार सर्व श्रेष्ठ राजा समुद्र के समान गम्भीर आज्ञाओं के साथ या मेघ आर्द्र करने वाले या भूतल से उठते हुए जलों के साथ गमन करता है, इसी प्रकार तुमको चाहने वाले तथा बल-वीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाले विद्वान् लोग प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१६२]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् । त्रिष्टुप् । ३, ११, २१, भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ स्वराट् त्रिष्टुप् । १३, १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५, १६, २२ स्वराट् पङ्क्तिः । १९ विराट् पङ्क्तिः । ३ निचृ-ज्जगती ॥ द्वाविंशर्चं सूक्तम् ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हमारा मित्र, श्रेष्ठ पुरुष, शत्रुओं का नियन्ता न्यायाधीश, वायु और जीवनप्रद, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुषों के बीच निवास करने वाला मेधावी, और अन्य विद्वान् या शत्रुनाशक सैनिक लोग हमारे उस विजयशील पुरुषों में प्रसिद्ध, वेग से आगे बढ़ने हारे पुरुष के बलों और

सामर्थ्यों की कभी निन्दा और उपेक्षा न करें। जिस बलवान्, ज्ञानवान्, वेगवान्, समवाय करने में कुशल पुरुष के नाना सामर्थ्यों का हम अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं। अध्यात्म में—आत्मा और परमात्मा दोनों शक्ति और ज्ञान सामर्थ्यवान् होने से 'वाजी' है, इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्ति वाला होने से 'देवजात' है। व्यापक होने से 'सप्ति' है। हम उसके गुण वर्णन करें और मित्र, उत्तम ज्ञानी और धनी पुरुष राजादि हमारी उपेक्षा और अपमान न करें। प्राण, उदान, समान, और इन्द्रियों की शक्ति और अन्यान्य उपप्राण भी हमें न छोड़ें। (यजु०। अ० २५। २५)

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति। सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

भा०—जब अभिषेक तथा धनैश्वर्य से सुशोभित पुरुष की दी हुई और मुख्यरूप से प्राप्त वृत्ति को अधीनस्थ पुरुष प्राप्त करते हैं, तब उत्तम प्रज्ञावान् विद्यार्थी के समान उत्तम शोभा से युक्त, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, सब पदार्थों और राष्ट्र में बसे प्राणियों और अधिकारों का स्वामी, सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ, सेनापति और पोषक स्वामी दोनों का प्रिय लगने वाले तथा जल और अन्न के समान सबको पालन करने वाले बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

भा०—जब विजयी तथा व्यवहारकुशल समस्त विद्वान् पुरुषों से सर्वविध शत्रुओं का छेदन भेदन करने हारा वीर पुरुष, वेगवान् अश्वसैन्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के साथ, सर्वपोषक सूर्य और पृथिवी के तेज और ऐश्वर्य को भोग करने वाला होकर, सब से आगे २ सेनापति के मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है, तब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ही विद्वान्

अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर ले जाने हारे, ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य को कहे कि आप एक वर्ष में ही यह समस्त ज्ञान हमें विशेष रूप से व्याख्यान कर दें।

दि॒वा या॑न्ति म॒रुतो॒ भूम्या॒ग्निर॒यं वातो॑ अ॒न्तरि॑क्षेण याति।
अ॒द्भिर्या॑ति॒ वरु॑णः समु॒द्रैर्यु॒ष्माँ इ॒च्छन्तः॑ शवसो नपातः॥१४॥६॥

भा०—हे बलवीर्य और ज्ञान का पतन या विनाश न होने देने हारे विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार वायुगण सूर्य के बल से चलते हैं, और अग्नि भूमि के आश्रय से बढ़ती, और यह वायु अन्तरिक्ष का आश्रय लेकर चलता है, और जिस प्रकार सर्व श्रेष्ठ राजा समुद्र के समान गम्भीर आप्तजनों के साथ या मेघ आर्द्र करने वाले या भूतल से उठते हुए जलों के साथ गमन करता है, इसी प्रकार तुमको चाहने वाले तथा बल-वीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाले विद्वान् लोग प्राप्त हों। इति षष्ठो वर्गः॥

[१६२]

दीर्घतमा ऋषिः॥ मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः॥ छन्दः—१, २, ६, १०, १७, २० निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ७, ८, १८ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ११, २१, भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ स्वराट् त्रिष्टुप्। १३, १४ भुरिक् पङ्क्तिः। १५, १९, २२ स्वराट् [illegible]क्तिः। १६ विराट् पङ्क्तिः। ३ निचृ-ज्जगती॥ द्वाविंशर्चं सूक्तम्॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ ख्यन्।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि॥१॥

भा०—हमारा मित्र, श्रेष्ठ पुरुष, शत्रुओं का नियन्ता न्यायाधीश, वायु और जीवनप्रद, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुषों के बीच निवास करने वाला मेधावी, और अन्य विद्वान् या शत्रुनाशक सैनिक लोग हमारे उस विजयशील पुरुषों में प्रसिद्ध, वेग से आगे बढ़ने हारे पुरुष के भलों और

सामर्थ्यों की कभी निन्दा और उपेक्षा न करें । जिस बलवान्, ज्ञानवान्, वेगवान्, समवाय करने में कुशल पुरुष के नाना सामर्थ्यों का हम अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं। अध्यात्म में—आत्मा और परमात्मा दोनो शक्ति और ज्ञान सामर्थ्यवान् होने से 'वाजी' हैं, इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्ति वाला होने से 'देवजात' है। व्यापक होने से 'सप्ति' है। हम उसके गुण वर्णन करें और मित्र, उत्तम ज्ञानी और धनी पुरुष राजादि हमारी उपेक्षा और अपमान न करें। प्राण, उदान, समान, और इन्द्रियों की शक्ति और अन्यान्य उपप्राण भी हमें न छोड़ें। (यजु० । अ० २५ । २५)

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

भा०—जब अभिषेक तथा धनैश्वर्य से सुशोभित पुरुष की दी हुई और मुख्यरूप से प्राप्त वृत्ति को अधीनस्थ पुरुष प्राप्त करते हैं, तब उत्तम प्रश्नशील विद्यार्थी के समान उत्तम शोभा से युक्त, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, सब पदार्थों और राष्ट्र में बसे प्राणियों और अधिकारों का स्वामी, सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ, सेनापति और पोषक स्वामी दोनों को प्रिय लगने वाले तथा जल और अन्न के समान सबको पालन करने वाले बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

भा०—यह विजयी तथा व्यवहारकुशल समस्त विद्वान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ शत्रुओं का छेदन भेदन करने हारा वीर पुरुष, वेगवान् अश्वसैन्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के साथ, सर्वपोषक सूर्य और पृथिवी के तेज और ऐश्वर्य को भोग करने वाला होकर, सब से आगे २ सेनापति के मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है, तब सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ही विद्वान्

जन और अश्व के सहित सर्वप्रिय, सबके संमुख देने योग्य प्रधान पद को प्राप्त इस नायक को उत्तम कीर्त्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये परिपुष्ट करता है।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति। अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

भा०—जब उत्तम अन्न के समान श्रेष्ठ, तथा विद्वानों का भार अपने ऊपर लेकर उनको उत्तम मार्ग पर ले जाने हारे, अश्व के समान बलवान् सेनापति मननशील पुरुष तीन प्रकार से करते हैं, इस अवसर पर सर्व-पोषक पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ भोक्ता, तथा शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ पुरुष, विद्वानों और तेजस्वी विजयाभिलाषी पुरुषों के प्रति सब के संयोजक सेना-पति को एक दूसरे का परिचय कराता हुआ प्राप्त हो। वर्ष की तीनों ऋतुओं में सेनापति आदि का भ्रमण करावे और उसी अवसर पर और प्रधान २ प्रजापालक शासकों से उसका परिचय कराया करें।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता और ब्रह्मा ये ऋत्विज् होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र रूप यज्ञ में अधिकारों का प्रदाता, समस्त प्रजापालन के तन्त्र को चलाने-हारा महामात्र, सबको अधीन योग्यतानुसार कल पुर्जों के समान जोड़ने वाला, राजादि नायकों और विद्वान् ब्राह्मणों को मान दान आदर से सदा उत्साहित और उत्तेजित करने वाला, विद्वानों और शस्त्रास्त्र बल को अपने वश में रखने वाला, सन्मार्ग का उपदेष्टा, उत्तम मेधावी या सबकी न्यूनताओं को पूर्ण करने हारा आदि नाना अधिकारी हों। हे विद्वान् अधिकारियो! आप सब उस सुव्यवस्थित तथा उत्तम रीति से सुशोभित राजा वा राष्ट्र द्वारा, प्रजा की कुक्षियों को सब प्रकार से पूर्ण करो।

(२) अध्यात्म में सातो प्राण सात ऋत्विग् हैं। यज्ञ आत्मा है। उपासना धर्ममेघ तथा आनन्दघन में रम रम कर सब कामनाएं पूर्ण करो। इति सप्तमो वर्गः ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य प्रजा के बीच स्तम्भ के समान सर्वाश्रय राजा के पद को परिश्रम से बनाते हैं, और जो उसको अपने कन्धों पर धारण करते है, और जो स्तम्भ के मुख्य भाग के समान राजा के प्रधान पद को वृक्ष को वर्धकि के समान शस्त्रास्त्र सचालनों द्वारा बाधक कारणों को नाश करके बनाते हैं, और ज्ञानवान्, वेगवान्, शत्रु पर प्रयाण करने वाले अश्वसैन्य और सेनानायक के लिये परिपक्व अन्न को सब प्रकार से सग्रह करके उन तक पहुँचाते है, उन सभी सहोद्योगी पुरुषों का उद्यम हमें प्राप्त हो।

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥

भा०—जो पुरुष मुझ प्रजाजन के लिये मनन करने योग्य ज्ञान को धारण करता है, और जो विद्वान् और वीर तेजस्वी पुरुषो की समस्त आशाओं कामनाओं को धारण करता है, वह गुरु के समीप प्राप्त यज्ञोपवीत वाला द्विज, उत्तम ज्ञानवान् और उत्तम रीति से सबको आनन्दित करने हारा होकर हमें सदा प्राप्त हो, इसको देख कर विविध विद्याओं के वेत्ता विद्वज्जन और मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि जन सदा प्रसन्न होते हैं। उसको हम लोग विद्वानो और वीर पुरुषों के पोषण कार्य में उत्तम बन्धु रूप से बनावें।

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

भा०—जो ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और वलवान् पुरुष का दमन साधन, यम नियम पालन, और व्यवस्था हो, उसका दान आदि करने का धन और दण्ड वल, आदि हो, और जो इस ज्ञानी, वलवान् पुरुष की शोभा देने वाली सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक, सर्जनकारिणी या व्यवस्था निर्मात्री और जो इसके प्रमुख स्थान पर शत्रु और संकटों के काटने में समर्थ वलवान् सैन्य अच्छी प्रकार से वेतन पर नियत है, हे पुरुष! तेरे वे सब पदार्थ विद्वान् वीर पुरुषों के अधीन और उनके हित के लिये हुआ करें।

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑।
यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ९ ॥

भा०—जो भाग विजयी राष्ट्र का रोष का कार्य करने वाली सेना पर जाती है, और जो अंश तापदायक और शत्रु सन्तापक वज्र आदि शस्त्रास्त्र बल में लग जाता है, और जो भाग शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले वीर पुरुष के हाथों अर्थात् हनन करने के साधनों और उपायों में लग जाता है, जो राष्ट्र के ऐश्वर्य का अंश छिद्र रहित राष्ट्र प्रबन्ध कार्यों में और प्रबन्धकर्ताओं में व्यय हो जाता है, वे सब कार्य तुझ राष्ट्र और राष्ट्रपति के देवों के अधीन ही हुआ करें।

यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्याप॒वाति॒ य आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धो अस्ति॑।
सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तारः॑ कृण्वन्तू॒त मेधं॑ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥१०॥८॥

भा०—जो वध करने योग्य शत्रु पेट के भीतर पड़े अन्नकचरे अन्न के समान नाशक विभाग के हाथ से निकल भागे, और जो रोगकारी क्रिम के जन्तुओं का परपीड़न का कार्य है, उपद्रव को शान्त करने वाले विद्वान् और वीर पुरुष उत्तम उपाय से उसका विनाश करें। और हिंसाकारी वर्ग को खूब सन्तप्त करें। जिससे वह दुष्टता त्याग सौम्य हो जाय। विशेष देखो यजु० २५। ३३ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥

भा०—हे राष्ट्र ! शूल अर्थात् हल आदि द्वारा तोड़े फोड़े गये, तथा सूर्य आदि से संतापित परिपक्व खेतों से जो भाग अलग हो वह भूमि पर न पड़ा रहे, और वह तिनको घासो मे भी न मिल जाय। प्रत्युत वह अन्नादि के इच्छुक विद्वान् और विद्या और विजय के इच्छुक विद्यार्थियों और वीरों को प्राप्त हो। देखो यजु० अ० २५। ३४ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

भा०—जो विद्वान् लोग अन्नादि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब पके खेतों वाला देखते है, और जो इसके विषय मे कहते हैं कि वह खेत खूब उत्तम पके धान के गन्ध से युक्त है इस पके खेत को काट के ले जाओ, और जो इस भोगयोग्य राष्ट्र के मन को लुभाने वाले अन्न ऐश्वर्यादि की याचना करते हैं उनका उद्यम और उपदेश हमे प्राप्त हो। देखो (यजु० २५। ३५)

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

भा०—जो मन को अच्छे लगने वाले नाना अन्नों और फलो का परिपाक करने वाली और खोदी जाकर उत्तम फल देने वाली भूमि की निरन्तर देख भाल करता है, और जो सब प्राणियों की पालना करने वाले रस या जल से सेचन करने के साधन कूप, तडाग आदि स्थान है, और जो विचरने वाले पथिको के निमित्त ग्रीष्म काल में सुखकारी आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं, और जो स्थान २ पर अङ्कित मार्ग और स्नान करने के तीर्थ आदि स्थान हैं, वे सभी सुखजनक पदार्थ अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को सुभूषित करते हैं। (यजु० २५। २६)

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

भा०—वे सब तेरे काम राष्ट्र में जाने आने के मार्ग, राजसभा आदि के अधिवेशन होने के स्थान, पदाधिकार के योग्य नियुक्ति, प्रजा के मान योग्य जल और अन्न इन सबका निरीक्षण विद्वान् पुरुषों के अधीन रहे। (यजु० २५। (२८)

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥९॥

भा०—हे राष्ट्र! विषैले धूम से पीडित करने वाले तथा उद्वेजक गन्ध वाले अग्निमय अस्त्र प्रयोग तुझे कभी पीड़ित और दुःखित न करें। खूब भड़कती हुई हड़िया अर्थात् बारूद से भरा बम्ब आदि तुझे कभी उद्विग्न न करें। प्राप्त हुए, सबको प्रिय, दानशील, परिश्रमी, राष्ट्रपति को, दान-शील और विजय के इच्छुक जन स्वीकार करते हैं। इति नवमो वर्गः ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

भा०—राष्ट्रपति के आदर के लिये उत्तम वस्त्र बिछाते हैं, ऊपर पह-नने का लबादा सर्वोत्तम गृह और अध्यक्ष पद देते हैं। सुवर्ण के आभूषण, प्रजाओं का मिल कर उत्तम से उत्तम अभिनन्दन या वस्त्र आदि उत्तम पदार्थ का देना, और पैरों का रखने का पीढ़ा आदि ये सब प्रसन्न करने के पदार्थ उस बलवान् पुरुष को विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच व्यापक अधिकार वाला और व्यवस्थित करते हैं।

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार तेज घोड़े को एड़ी या चाबुक से पीड़ित कर ठीक मार्ग पर चलाया जाता है, उसी प्रकार अब बिना विचारे

शीघ्रता से कार्य कर डालने वाले तेरे अवसाद अर्थात् पथभ्रष्ट होने पर कोई अपने वल से या पाष्णिग्राह अर्थात् पीछे से आक्रमण करने वाली शत्रुसेना से, या अपनी बड़ी शासन शक्ति से तुझे पीड़ा पहुँचावे तो तेरी उन सव त्रुटियों को मैं विद्वान् पुरोहित, यज्ञो मे जैसे हवियो को वेद मन्त्र सहित स्रुचों से दिया जाता है उसी प्रकार, महान् बल और वेदज्ञान और ऐश्वर्य द्वारा दूर करूं।

चतु॑स्त्रिंशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त॥१८॥

भा०—राष्ट्र को अपने वल से धारण करने वाले वीर्यवान् पुरुष का शासन चक्र, विद्वानो के वीच सुप्रबन्धक, तथा ऐश्वर्यवान् व्यापक राष्ट्र के ३४ पसुलियों के समान चौतीसो विभागो को अच्छी प्रकार सुसंगत करे। हे विद्वान् लोगो! आप लोग राष्ट्र के सव अंगों को छिद्र अर्थात् त्रुटि रहित रखो। और सब काम और सब ज्ञान त्रुटि रहित सम्पादन करो। पुनः २ घोषणा करके राष्ट्र के अंगो को विभक्त करो। प्रजा को विविध विद्याओं में शिक्षित करो।

एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ ऋ॒तुः।
या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ॥१९॥

भा०—सवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्र के प्रजापति से तुलना करते हैं। तेजस्वी सूर्य के आशुगामी, काल का विभागकर्त्ता एक पूर्ण संवत्सर है, उसके भी दो अयन नियन्ता होते हैं। उसी प्रकार ऋतु भी संवत्सर को विभक्त करता है उस ऋतु के भी दो दो मास नियामक हैं। उसी प्रकार हे प्रजापालक राष्ट्रपते! तथा सबके भोक्ता तेरे ऊपर एक सर्वोपरि ज्ञानवान् पुरुष तुझे विशेष रूप से शासन करने वाला हो, और तेरे अधीन दो शासक प्रजा को नियम रखने वाले, देह मे दो भुजाओ के समान नियामक हो। तेरे राष्ट्रिय अंगो मे से जिन २ को ज्ञानवान् नियन्ता

के अधीन करूं, उन २ अंगों को ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के अधीन अच्छी प्रकार वश करूं।

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः॥ २०॥

भा०—हे राजन्! शस्त्रबल तेरे शरीर पर आघात न पहुँचावे। हे विद्वन्! शासन करने में अकुशल पुरुष लोभी होकर तेरे दोषों की उपेक्षा करके शस्त्रादि से देह के अंगों को कभी छिन्न भिन्न या पीड़ित न करे। अर्थात् तुझे सच्चा शिक्षक प्राप्त हो। हे राजन्! शासन में अकुशल लोभी पुरुष तेरे देहों के अवयवों को व्यर्थ न काटे फाटे।

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

भा०—हे राष्ट्र! इस प्रकार सुव्यवस्था से तू कभी न मरे, न पीड़ित हो। सुख से गमन करने योग्य मार्गों और उपायों से उत्तम व्यवहारों और योद्धाओं को प्राप्त हो। रथ में हृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान दो योग्य नायक नियुक्त हों। ऐश्वर्यवान् ज्ञानी पुरुष उपदेष्टा आज्ञापक की धुरा अर्थात् मुख्य पद पर उपस्थित हो।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम्। अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् २२।१०

भा०—ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष, हमारे लिये, उत्तम गौओं से युक्त, पृथिवी से उत्पन्न अन्नादि समृद्धि से युक्त, उत्तम अश्वादि से समृद्ध, और सबको पुष्ट करने वाले ऐश्वर्य, को और हमें अनाचार अन्याय और अधर्म अभाव को, तथा पुरुषत्व युक्त पुत्रों को उत्पन्न करे। वह अखण्ड बल से युक्त होकर राष्ट्र का भोक्ता एवं अन्नादि प्राप्त पदार्थों

से समृद्ध होकर हमारे धन, वल, वीर्य और क्षात्र वल को प्राप्त करे। इति दशमो वर्गः ॥

[१६३]

दीर्घतमा ऋषिः ॥ अश्वोऽग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६,७, १३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिः ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१॥

भा०—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से उत्पन्न होने वाले शिष्य का वर्णन करते हैं। हे ज्ञानवान् पुरुष ! जो तू समुद्र या महान् आकाश से उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के समान ज्ञानों के सागर और ज्ञानों में परिपूर्ण गुरु से द्विजन्मा रूप में उत्पन्न होता हुआ, सबसे उत्तम पद पर विराज कर उपदेश करता है। और बाज के दोनों बाजू जिस प्रकार बलवान् होकर आकाश के पार जाने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् आत्मा या पुरुष के वश करने वाले दोनों ज्ञान और कर्म उसको अपार भवसागर से पार करने में समर्थ हों। हरिण की बाहुएं जिस प्रकार जिस प्रकार वेग से वन आदि में उसकी रक्षा करने में समर्थ होती हैं उसी प्रकार सर्वदुःखहारी आत्मा की अज्ञान सकटों और विपक्षियों को दूर करने और पीड़ित करने वाले देह और मन के दोनों बल प्राप्त हों। तभी ऐसा तेरा मातृगर्भ और आचार्यगर्भ से उत्पन्न होना अति आदर योग्य एवं सफल है।

समस्त सूक्त की राजा के पक्ष में लगने वाली अर्थयोजना देखो यजु० अ० २९। १२–२४ ॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

भा०—यम नियमों के पालन करने और उत्तम संयम कराने वाले गुरु या पिता द्वारा दिये गये इस योग्य शिष्य को, अज्ञान सागर से पार उतरने में समर्थ, ज्ञान कर्म और उपासना तीनों में सिद्ध, एवं तीनों वेदों में पारंगत आचार्य सन्मार्ग में लगावे। सबमें से श्रेष्ठ अज्ञान का नाशक आचार्य इस पर शासन करे। और गौ अर्थात् वेद वाणी को धारण करने वाला आचार्य उसको व्यापक विद्या प्राप्त करावे और वश करने वाली मर्यादा को अपने अधीन रखे। इस प्रकार जिन विद्वान् पुरुषों के अधीन शिष्यगण ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते हुए निवास करें वे विद्वान् जन मिल कर सूर्य के समान तेजस्वी गुरु से ही सर्वविद्या के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मचारी को उत्पन्न करते और प्राप्त करते हैं। (राज्यपक्ष में देखो यजु० २९ । १३)

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३॥

भा०—हे ब्रह्मचारिन्! तू यम नियमों का पालन करने वाला, इन्द्रियों को दमन करने हारा होने से 'यम' है। तू भूतल से जल ग्रहण करने वाले सूर्य के समान आचार्य से ज्ञानग्रहण करने वाला, और 'अदिति' अर्थात् माता, पिता, आचार्य का पुत्र और शिष्य होने से भी 'आदित्य' है। हे अज्ञान के नाशक! तू पालन करने योग्य ब्रह्मचर्यव्रत के पालन से तीनों वेदों में पार करने वाला, और पुत्र तथा शिष्य रूप से माता पिता गुरु को भी इह और पर दोनों लोकों में तारने हारा है। तू अपने प्रेरणा करने वाले आचार्य के साथ विशेष प्रकार से स्नेहवान् और विद्यासम्बन्ध से सम्बद्ध है। ज्ञान को प्राप्त करने के लिये तेरे ऊपर तीन बन्धन कहे गये हैं अर्थात् पितृ ऋण, देव ऋण, और ऋषि ऋण ये तीनों ही बन्धन हैं। उनसे बद्ध ही 'त्रित' है। राष्ट्र और राजा के पक्ष में देखो यजुर्वेद (२९ । १४)

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! ज्ञान प्राप्त करते हुए तेरे ऊपर विद्वान् तीन बन्धन बतलाते हैं। इसी प्रकार कर्मों के करने और ज्ञानों के धारण करने में भी तेरे तीन ही बन्धन हैं, कर्म, कर्मफल और करण। आकाश के समान महान् परमेश्वर के बीच रहते हुए तेरे तीन कर्त्तव्य हैं, स्तुति, प्रार्थना और उपासना या श्रवण, मनन और निदिध्यासन। हे ज्ञानवन् आचार्य! और तू सर्व श्रेष्ठ, और सब कष्टों का वारण करने-हारा होकर मुझ शिष्य को वहां लेजा, जिस स्थान में कि तेरा सबसे उत्तम जन्म या स्वरूप होता हुआ बतलाते हैं। राजा आदि पक्ष में (देखो यजु० अ० २९। १५)।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५॥११॥

भा०—हे बलवीर्यसम्पन्न! तेरे लिये ये पापों को दूर करने और आत्मा को शुद्ध करने वाले व्रत आदि नाना उपाय हैं। और ये शान्ति का ज्ञानप्रदान करने वाले तथा तेरी सेवा करने योग्य उपास्य गुरु के शान्ति-दायक उपदेश करने वाले ज्ञानवचनों या आचरणों के खजानों के समान ज्ञानभण्डार हैं। इस गुरु के अधीन इस आश्रम में तेरे योग्य सुख और कल्याणकारिणी रस्सियों के समान उत्तम मर्यादाओं और व्यापक विद्याओं या वाणियों को मैं साक्षात् देख रहा हूं, जिन का कि सत्यज्ञान और वेद की रक्षा करने वाले विद्वान् जन सब प्रकार से पालन करते हैं। (राजा पक्ष में यजु० २९। १६) 'शफा.'—शं फणन्ति इति शफाः। इत्येका-दशो वर्गः॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! मैं तेरी आत्मा को ज्ञान और मनन शील चित्त से अति समीप होकर तेरी सेवा और उपासना द्वारा जान लू, अर्थात् गुरु के हृदयगत ज्ञान को शिष्य समचित्त होकर प्राप्त करे। और हे आचार्य ! दिन के समय मे गमन करते हुए और सब पर ऐश्वर्यवान् स्वामी के समान आचरण करते हुए सूर्य के समान तेजस्वी तेरे रक्षण को मैं प्राप्त करू। और शिर के समान तेरे मुख्य पद को रजोदोष और हिंसा के भावों से रहित तथा सुख से गमन करने योग्य मार्गों से विचरने वाला देखू। (राजपक्ष मे —यजु० २९ । १७)। (२)

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७॥

भा०—हे शिष्य ! इस गुरु गृह मे वेदवाणी के प्राप्त करने के अवसर में और योग द्वारा इन्द्रियगण को दमन करने के अवसर मे, समस्त कामनाओं को विजय करने की इच्छा करते हुए तेरे सबसे उत्तम स्वरूप को मैं देखू। जब मनुष्य तेरे भोजन करने योग्य पदार्थ को अनुकूल होकर आदर से प्राप्त करावे तभी तू उत्तम रीति से ग्रसने वाला, भूख से युक्त होकर उत्तम अन्नादि ओषधियों का सेवन कर। राजा के पक्ष में देखो (यजु० । २९ १८)

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम्।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

भा०—हे अश्व के समान बलवान् पुरुष ! जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ, मनुष्य, गौ आदि सम्पत्ति, कन्याओं का सौभाग्य, और अनुगामी रक्षकों के दल चलते हैं, विजयेच्छु लोग अश्व के बल को जानते हैं, उसी प्रकार तेरे पीछे २, तेरे अधीन रथ और रमण करने योग्य पदार्थ हों, तेरे अधीन साधारण जन हों, तेरे अधीन गौ आदि पशु हों, तेरे अधीन, तेरी रक्षा में ही तुझे चाहने वाले स्त्री, पुरुषों का सौभाग्य और ऐश्वर्य सुरक्षित

रहे। तेरे अधीन नाना व्रताचरण करने हारे शिष्यगण या शिष्य समूह तेरे ही मैत्रीभाव को प्राप्त हो। और विद्वान् और दानशील पुरुष भी तेरे बल वीर्य का उत्तम आदर करें, उसका महत्व जानें। राजपक्ष मे देखो (यजु० २९। १९)

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥

भा०—इस विद्वान् के प्राप्त होने योग्य ज्ञान के साधन ज्ञानमार्ग मे वेग से जाने वाले हों। सुवर्णादि को शिर पर रखने वाला ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष भी इसके नीचे की श्रेणी का है। और जो आचार्य उससे भी अधिक श्रेष्ठ होकर ज्ञानवान् शिष्य के भी ऊपर अधिष्ठाता होकर विराजता है उसे अन्नादि भोग्य पदार्थों को दानशील पुरुष प्राप्त करावें। राजा के पक्ष मे—देखो (यजु० २९। २० ॥)

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥१०॥१२॥

भा०—अश्व जिस प्रकार पिछले भागों पर कशा द्वारा प्रेरित होकर मध्य भागों को मिलाए हुए, शीघ्र रण मे जाने वाले, वेगवान् होकर हंसों के समान पंक्ति दल बनाकर दौड़ते है, विजयप्रद संग्राम को जाते हैं, उसी प्रकार योगाभ्यासी विद्वान् जन, गुरुओं द्वारा बतलाये सिद्धांतों और उद्देश्यों को धारण करके, आदित्य के समान प्रमुख पुरुष को अपने बीच में रखते हुए, आने वाली बाधाओं को नष्ट करते हुए, ज्ञानमार्ग में जाने वाले, सब विघ्नों को पार कर जाने वाले, और निरन्तर आगे २ ही बढ़ने वाले आत्मावान् हों। जब वे ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त होने में सब से उत्तम पार पहुँचा देने वाले मार्ग अथवा सब बंधनों को फेंक देने वाले मोक्षमत को प्राप्त हों तब वे आनन्द सुख को भोगने और परम मार्ग देवयान को जाने वाले परम हंस के समान अपने व्रत कर्मों और भक्ति

में दृढ़ता से आश्रय पाकर निरन्तर यज्ञ करें। अश्वों और वीरों के पक्ष में देखो (यजु० २९ । २१)। इति द्वादशो वर्गः ॥

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तेरा शरीर वेगवान् अश्व के समान शीघ्रता से जाने में समर्थ और बलवान् हो। तेरा चित्त वायु के समान वेग से युक्त हो, तेरे पर्वत शिखरों के समान दूर से सबको दीखने योग्य, कर्म, यज्ञ आदि, कूप, बगीचे, और भवन आदि परोपकारी पदार्थ और उच्च शिखर वाले बहुत से प्रासाद, जगल के दुर्गम स्थानों में भी विविध रूप से स्थिर हों। देखो (यजु० अ० २९ । २२)

उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।
अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्यानु॑ प॒श्चात्क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥१२॥

भा०—सर्व व्यापक ज्ञानवान् आत्मा, विद्वानों को प्राप्त होने योग्य ज्ञान से देदीप्यमान होता हुआ स्तुति को प्राप्त होता है। वह स्तुति करने योग्य है। वह जन्म रहित होने से 'अज' है। वह सबका प्रबन्धक और बन्धु होने से 'नाभि' है। वही सब यज्ञों में पुरोहित के समान सब से आगे मुख्य पद या उपास्य पद पर प्राप्त कराया जाता है। उसी को लक्ष्य करके स्तुति कर्त्ता विद्वान् जन आगे बढ़ते हैं। विद्वान् जन उस परमात्मा की ही स्तुति करते, उसी को प्राप्त करने का यत्न करते हैं। राजा के पक्ष में देखो (यजु० २९ । २३)

उप॒ प्रागा॑त्पर॒मं यत्स॒धस्थ॒मर्वाँ॒ अच्छा॑ पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।
अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या अथा शास्ते॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥१३॥१

भा०—ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष जो सबसे उत्तम स्थान को प्राप्त करे वह पिता और माता और विद्वान् पुरुषों को भी प्राप्त होकर उनकी उत्तम प्रकार से सेवा करने वाला होकर आगे बढ़ता है। तब विद्या आदि देने वाले

मान्य पुरुष के आदरार्थ श्रेष्ठ धन देने की भी इच्छा करे। अध्यात्म में एवं राजपक्ष में—देखो (यजु० अ० २९।३४)। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१६४]

दार्घतमा ऋषिः ॥ देवता—१—४१ विश्वेदेवाः। ४२ वाक्। ४२ आपः। ४३ शकधूमः। ४३ सोमः ॥ ४४ अग्निः सूर्यो वायुश्च। ४५ वाक्। ४६, ४७ सूर्यः। ४८ संवत्सरात्मा कालः। ४९ सरस्वती। ५० साध्याः ५१ सूर्यः पर्जन्यो वा अग्नयो वा। ५२ सरस्वान् सूर्यो वा ॥ छन्दः—१, ९, २७, ३५, ४०, ५० विराट् त्रिष्टुप्। ८, ११, १८, २६, ३१, ३३, ३४, ३७, ४३, ४६, ४७, ४९ निचृत् त्रिष्टुप्। २, १०, १३, १६, १७, १९, २१, २४, २८, ३२, ५२, त्रिष्टुप्। १४, ३९, ४१, ४४, ४५ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२, १५, २३ जगती। २९, ३६ निचृज्जगती। २० भुरिक् पङ्क्तिः। २२, २५, ४८ स्वराट् पङ्क्तिः। ३०, ३८ पङ्क्तिः। ४२ भुरिग् बृहती। ५१ विराडनुष्टुप् ॥ द्वापञ्चाशदृच सूक्तम् ॥

(समस्त सूक्त देखो अथर्व० का० ९। सू० ९, १०)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

भा०—सब पदार्थों का सेवन करने वाले, ज्ञानवान् या वयोवृद्ध, अन्नादि भोजन ग्रहण करने वाले देहवान् जीव का, भरण पोषण करने वाला, बीच में रहने वाला, अन्नादि खाने वाला जाठर अग्नि है। अथवा आत्मा और इन्द्रियों के बीच में स्थित मन सबका भोक्ता होकर विद्यमान है। और तीसरा पोषक तत्व सब अंगों में तेज और बल का सेचन करने वाला आत्मा है। मैं साधक शिरोगत सात मूर्धन्य प्राणों को धारण करने वाले, और शरीर के भीतर प्रविष्ट सब अंगों की प्रजा को राजा के समान पालना करने वाला आत्मा का साक्षात् करता हूं। (२) परमेश्वर पक्ष में—समस्त विश्व को वमन कर देने, अपने में से उगल देने, या रचनेहारा

वा परमसेव्य परमेश्वर 'वाम' है। अपने में ले लेने हारा होने से वह 'होता' है। सर्व पालक होने से 'पलित' है। कर्मफलों का भोक्ता जीव उसके मध्यम भ्राता के समान है। देह के बीच में रहने से 'मध्यम' है। इसका तीसरा भाई 'घृत' अर्थात् अन्न, ज्ञान और वीर्य का सेचन, दान, और वर्षण करने वाला, आचार्य, दाता और वीर्य से युक्त सदेह पुरुष है। इसी पुरुष में सात पुत्रों से युक्त प्रजापति के समान सप्त प्राणों के पिता प्रजापति का स्वरूप साक्षात् करता हूं।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

भा०—वह आत्मा से संयुक्त देह एक आत्मा रूप रथी से युक्त रथ के समान है। उस देह रथ में सात गौण प्राण जुतते हैं, और एक ही मुख्य प्राण गाड़ी में लगे अश्व के समान बलवान् और कर्म फलों का भोक्ता आत्मा धारण करता और उसे चलाता फिराता है। वह आत्मा स्वयं पूर्व कहे सातों प्राण रूप अश्वों के नामों वाला है। देखने से आत्मा ही चक्षु और सूंघने से वही नाक, सुनने से वही कान कहा जाता है। वह कर्त्ता शरीर में तीन गुण, या वात, पित्त, कफ तीन धातु या अग्नि, जल, वायु तीन तत्वों द्वारा बंधा होने से 'त्रिनाभि' है। वह कभी नाश को प्राप्त न होने से 'अजर' है। उसके चेतन्य के लिये दूसरा कोई सञ्चालक कारण उपेक्षित नहीं होने से वह 'अनर्वा' है। वह स्वयं सञ्चालक होकर अन्यों से सञ्चालित नहीं होता। जिसके आश्रय में सब प्राणि गण स्थिर हैं। (२) सूर्य सप्तचक्र रथ है। गतिमान् होने से वह 'रथ' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। सात ग्रह उसमें लगते हैं। वह सातों को धारण करता और नमाता है। स्वयं अपने, ग्रह और उपग्रह तीनों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। अथवा तीनों लोकों को बांधने से त्रिनाभि' है। ध्रुव होने से अजर या अचर है। स्वत. गतिमान् होने से 'अनर्वा' है।

ये सब पृथिवी आदि लोक उसी पर आश्रित हैं। (३) परमेश्वर पक्ष में—यह परमेश्वर सबका सञ्चालक होने से 'रथ' है। उसको सातो चित्त भूमियों पर स्थित साधक जन योग द्वारा साक्षात् करते हैं वह व्यापक होने से 'अश्व' है। वह सातों के प्रति, पुत्रों के प्रति, माता के समान अमृत रस पान के लिये नमता है अत. 'सप्तनामा' है। तीन लोको, प्रकृति के तीनो गुणों को बांधने वाला होने से 'त्रिनाभि' है। उसमें ही समस्त लोक आश्रित हे। इसी प्रकार संवत्सरात्मक चक्र मे अधिक मलमास सहित सात ऋतु हैं। सूर्य एक अश्व है। वह सात किरणो को नमाने या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला है। तीन ग्रीष्म, वर्षा, शरद् रूप में बद्ध हे। विशेप देखो (अथर्व० का० ९। सू० ९। २॥)

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सात मुख्य चक्रो वाले महायन्त्र के चलाने के लिए उसमें प्रत्येक चक्र पर एक २ अध्यक्ष इस प्रकार सात अध्यक्ष सञ्चालक नियत हों, और उनके अधीन सात अश्व या प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उस वेगवान् यन्त्र को सञ्चालित करें, और उसमें सात अपने ही बल से चलने वाले कलापुञ्ज भली प्रकार चलते हों, जिन मे गमन करने वाले यन्त्रो के पृथक् २ सात स्वरूप या सात प्रकार के यन्त्र स्थापित हो, उसी प्रकार इस रमण करने के देहरूप रथ को सात मुख्य प्राण अपने वश करते हैं। वे सातों ही के भोक्ता इन्द्रिय होकर धारण कर रहे हैं। उनमें रहने वाली सात बहनो के समान सात शक्तियां सात तनू-माताएं 'स्व' अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाली शक्तिया गति कर रही हैं। जिनमें इन्द्रियो के सात स्वरूप स्थित हैं। (२) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ मे पञ्चभूत महत् और अहकार ये सात अश्व हैं, उनमें विद्यमान शक्तिया सात स्वसाए हैं। (३) आदित्य पक्ष—में सात रश्मियां, सात

वा परमसेव्य परमेश्वर 'वाम' है। अपने में ले लेने द्वारा होने से वह 'होता' है। सर्व पालक होने से 'पलित' है। कर्मफलों का भोक्ता जीव उसके मध्यम भ्राता के समान है। देह के बीच में रहने से 'मध्यम' है। इसका तीसरा भाई 'घृत' अर्थात् अन्न, ज्ञान और वीर्य का सेचन, दान, और वर्षण करने वाला, आचार्य, दाता और वीर्य से युक्त सदेह पुरुष है। इसी पुरुष में सात पुत्रों से युक्त प्रजापति के समान सप्त प्राणों के पिता प्रजापति का स्वरूप साक्षात् करता हूं।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

भा०—वह आत्मा से संयुक्त देह एक आत्मा रूप रथी से युक्त रथ के समान है। उस देह रथ में सात गौण प्राण जुतते हैं, और एक ही मुख्य प्राण गाड़ी में लगे अश्व के समान बलवान् और कर्म फलों का भोक्ता आत्मा धारण करता और उसे चलाता फिराता है। वह आत्मा स्वयं पूर्व कहे सातों प्राण रूप अश्वों के नामों वाला है। देखने से आत्मा ही चक्षु और सूंघने से वही नाक, सुनने से वही कान कहा जाता है। वह कर्त्ता शरीर में तीन गुण, या वात, पित्त, कफ तीन धातु या अग्नि, जल, वायु तीन तत्वों द्वारा बंधा होने से 'त्रिनाभि' है। वह कभी नाश को प्राप्त न होने से 'अजर' है। उसके चैतन्य के लिये दूसरा कोई सञ्चालक कारण उपेक्षित नहीं होने से वह 'अनर्वा' है। वह स्वयं सञ्चालक होकर अन्यों से सञ्चालित नहीं होता। जिसके आश्रय ये सब प्राणि गण स्थिर हैं। (२) सूर्य सप्तचक्र रथ है। गतिमान् होने से वह 'रथ' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। सात ग्रह उसमें लगते हैं। वह सातों को धारण करता और नमाता है। स्वयं अपने, ग्रह और उपग्रह तीनों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। अथवा तीनों लोकों को बांधने से 'त्रिनाभि' है। ध्रुव होने से अजर या अचर है। स्वतः गतिमान् होने से 'अनर्वा' है।

ये सब पृथिवी आदि लोक उसी पर आश्रित हैं। (३) परमेश्वर पक्ष मे—यह परमेश्वर सबका सञ्चालक होने से 'रथ' है। उसको सातो चित्त भूमियो पर स्थित साधक जन योग द्वारा साक्षात् करते हैं वह व्यापक होने से 'अश्व' है। वह सातो के प्रति, पुत्रो के प्रति, माता के समान अमृत रस पान के लिये नमता है अत. 'सप्तनामा' है। तीन लोको, प्रकृति के तीनो गुणों को बाधने वाला होने से 'त्रिनाभि' है। उसमे ही समस्त लोक आश्रित है। इसी प्रकार सवत्सरात्मक चक्र मे अधिक मलमास सहित सात ऋतु हैं। सूर्य एक अश्व है। वह सात किरणों को नमाने या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला है। तीन ग्रीष्म, वर्षा, शरद् रूप मे बद्ध है। विशेष देखो (अथर्व० का० ९। सू० ९। २॥)

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सात मुख्य चक्रों वाले महायन्त्र के चलाने के लिए उसमे प्रत्येक चक्र पर एक २ अध्यक्ष इस प्रकार सात अध्यक्ष सञ्चालक नियत हों, और उनके अधीन सात अश्व या प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उस वेगवान् यन्त्र को सञ्चालित करें, और उसमे सात अपने ही बल से चलने वाले कलापुञ्ज भली प्रकार चलते हों, जिन मे गमन करने वाले यन्त्रो के पृथक् २ सात स्वरूप या सात प्रकार के यन्त्र स्थापित हों, उसी प्रकार इस रमण करने के देहरूप रथ को सात मुख्य प्राण अपने वश करते हैं। वे सातो ही के भोक्ता इन्द्रिय होकर धारण कर रहे हैं। उनमे रहने वाली सात बहनो के समान सात शक्तिया सात तनू-मातायें 'स्व' अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाली शक्तिया गति कर रही हैं। जिनमें इन्द्रियो के सात स्वरूप स्थित हैं। (२) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ मे पञ्चभूत महत् और अहंकार ये सात अश्व हैं, उनमे विद्यमान शक्तिया सात स्वसाएं हैं। (३) आदित्य पक्ष—मे सात रश्मियां, सात

-ग्रह, सात ऋतु, (४) संवत्सर पक्ष में—अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त्त ये सात कालावयव हैं । स्वयं गतिमान् होने से, या 'स्वः' नाम तेज-तापमय सूर्य से प्रेरित होने से रश्मि 'स्वसा' है । विशेष देखो अथर्व० का० ९ । ९ । ३ ॥

को द॑दर्श प्रथ॒मं जाय॑मानमस्थ॒न्वन्तं॒ यद॑न॒स्था बिभ॑र्ति ।
भूम्या॒ असु॒रसृ॑गा॒त्मा क्व॑ स्वि॒त्को वि॒द्वांस॒मुप॑ गा॒त्प्रष्टु॑मे॒तत् ॥४॥

भा०—जो हड्डियों आदि शरीर के घटक पदार्थों से रहित होकर भी हड्डियों आदि से युक्त शरीर को धारण और पालन पोषण करता है, उस सबसे पहले और इस शरीर से भी पूर्व विद्यमान, और देह से प्रादुर्भूत होते हुए को कौन देख पाता है । भूमि का विकार पाञ्चभौतिक स्थूल पार्थिवांश, वायु का अंश प्राण, जल अंश रुधिर और यह जीव सभी कहां रहे । उस समय कौन जिज्ञासु होकर इस रहस्य को पूछने के लिये समस्त सर्ग के तत्व को जानने वाले के समीप जाता है । अर्थात् बहुत कम इस तत्व को पूछने वाले हैं । विशेष देखो (अथर्व० का० ९ । ९ । ४ ।)

पाकः॑ पृच्छामि॒ मन॒सावि॑जान॒न्दे॒वाना॑मे॒ना निहि॑ता प॒दानि॑ ।
व॒त्से ब॒ष्कयेऽधि॑ स॒प्त तन्तू॒न्वि त॑त्निरे क॒वय॒ ओत॒वा उ॑ ॥५॥१४॥

भा०—मैं ब्रह्मचर्य, तपस्या और गुरु-उपासना द्वारा अपने देह बल-वीर्य और ज्ञान को परिपक्व करने हारा जिज्ञासु, मन से विशेष तत्वज्ञान को न जानता हुआ प्रश्न करता और ज्ञान प्राप्त करता हूं । क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष देखने योग्य, उत्तम पुत्र के निमित्त ही मानो उसके देह-घटक धातुओं को विविध रूप से विस्तृत करते हैं । विद्वानों या प्राणों के ये ही ज्ञातव्य निगूढ़ तत्व गुप्त रूप से रखे हैं । अथवा—सत्य स्वरूप, सब में बसे, वा सब को बसाने वाले आत्मा में ही विद्वान् जन सातों सोम और पाक यज्ञों को विस्तृत करते हैं । उनको न जानता हुआ मैं मन से प्रश्न करता हूं कि वह आश्रय भूत 'वत्स' कौन है ? उसके आश्रय पर सात

तन्तु कैसे फैलाये जाते हैं, उन देवों के ज्ञेय गुप्त रूप कौन से और कहां छुपे हैं ? विशेष देखो अथर्व० ९।६।९। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

अचिकित्वाञ्चिकितुर्षश्चिदत्र कुवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्युजस्यं रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६॥

भा०—इस तत्वज्ञान के लिये मैं ज्ञानवान् क्रान्तदर्शी विद्वानों के समीप जाकर स्वयं कुछ भी न जानता हुआ अज्ञानी शिष्य के समान ज्ञान लाभ करने के लिये ही उस परमेश्वर या महान् शक्तिमान् के विषय में प्रश्न करता हू। मुख्य प्राण जिस प्रकार छ. गौण प्राणों पर वशी है, उसी प्रकार इन छहों लोकों को जो विशेष रूप से और विविध प्रकारों से थाम रहा है, अजन्मा, अनादि, सबके सञ्चालक उस परमतत्व के रूप में किसी एक अद्वितीय पदार्थ का उपदेश करो।

इह ब्रवीतु य ईमुङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुंह्रते गावो अस्य वुव्रिं वसाना उदकं पुदापुः ॥७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों में से जो विद्वान् पुरुष भी इस सूर्य के समान अति उत्तम कान्तिमान्, व्यापक, गतिमान्, तेजोमय हंस के समान विवेकवान् आत्मा के भीतर छुपे, निगूढ़, चिन्मय स्वरूप को भली प्रकार जानता और साक्षात् करता है वह इस आत्मा के सम्बन्ध में हमें उपदेश करे कि जिस प्रकार सूर्य की किरणें तेजोमय रूप को धारण करती हुईं शिर अर्थात् ऊपर की ओर से मेघ द्वारा जल वर्षण करती हैं, उसी प्रकार इस आत्मा की गोरूप इन्द्रियां शिरोभाग से क्षरणशील आनन्द रस को उत्पन्न करती हैं, और वरण करने योग्य दैहिक आवरण या विषय के स्वरूप को धारण करती हुईं ज्ञान सामर्थ्य से, वृक्ष जिस प्रकार चरण भाग से जल पीते हैं, उसी प्रकार उत्तम ज्ञान का पान करती हैं। विशेष विवरण और पहेली का स्पष्टीकरण देखो (अथर्व० का० ९।९।५॥)

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार माता पुत्रों के उत्पादक पुरुष को परस्पर सगम के निमित्त ऋतु के अवसर पर सेवती है, उसके समीप आती है, और पूर्व से कल्पित चित्त से उससे सगत हो जाती है, और बन्धन चाहती हुई गर्भरूप और साररूप वीर्य को धारण करने में समर्थ होकर पति से अच्छी प्रकार संगत होकर रहती है, और पति-पत्नी परस्पर विनयशील होकर परस्पर के वचन प्रतिवचन को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वेद वाक्य के तत्व को जगन्निर्मातृ माता-प्रकृति पिता-परमात्मा को ऋत अर्थात् उसके परम ऐश्वर्यमय बल में बंध कर उसका आश्रय लेती है, उसके धारण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य से वह उसके साथ सदा सगत रहती है। वह ब्रह्म के बीज से गर्भित होकर इसकी शक्ति से ओत प्रोत हो जाती है। इस तत्वज्ञानमय वचन रूप उपनिषत् को ज्ञानवान्, विनयी जन ही प्राप्त करें।

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार कार्य करने में समर्थ और धारण करने में समर्थ पुरुष की शक्ति पर पुत्रों की माता एक चित्त होकर आश्रय पाती है, और अनन्तर बाह्य बाधाओं को वर्जन करने वाली सुरक्षित नाड़ियों के भीतर गर्भ स्थिर हो जाता है अनन्तर बालक उत्पन्न होकर शब्द करता है, इन सब कार्यों में विद्वान् जन तीनों लोकों में समस्त रूपों के पदार्थों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के सामर्थ्य को इस पृथ्वी के समान ही उत्पादक पालक और विश्वजननी रूप में देखा करें।

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् १०।१

भा०—अकेला सूर्य जिस प्रकार अन्न, जल और तेज को उत्पन्न करने वाली पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु इन तीनों को, और पालन करने वाले अग्नि, वायु और विद्युत् इन तीन को धारण करता हुआ सबसे ऊपर अध्यक्ष होकर विराजता है, इसको कोई पदार्थ मन्द तेज नहीं कर सकता, उसी प्रकार एक अद्वितीय परमेश्वर ही सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों से युक्त तीन प्रकार की प्रकृति, या उत्तम, मध्यम, निकृष्ट या भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों को, और अग्नि, वायु, और जल इन तीन जीवों के पालकों को धारण करता हुआ सबके ऊपर अध्यक्ष रूप में होकर विराजता है। इसके सामर्थ्य और तेज को सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि कोई भी तिरस्कृत नहीं कर सकते। विद्वान् लोग उस परोक्ष, तेजोमय परमेश्वर के सेचन के सामर्थ्य के वर्णन में, समस्त साधारण यज्ञ जनों से न सेवन करने योग्य, तथा समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली वेद वाणी को गूढ़ रूप से, भाव पूर्ण रूप में वर्णन करते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः॥

द्वाद॑शारं न॒हि तज्जरा॑य॒ वर्व॑र्ति च॒क्रं परि॒ द्याम्ऋ॒तस्य॑।
आ पु॒त्रा अ॑ग्ने मिथुना॑सो॒ अत्र॑ स॒प्त श॒तानि॑ विंश॒तिश्च॑ तस्थुः ॥११॥

भा०—जिस प्रकार सदागतिशील काल का बारह मास रूप अरों वाला संवत्सर चक्र सूर्य के आश्रय पर सदा घूमता रहता है, वह कभी नाश होने के लिए नहीं होता, प्रत्युत बराबर चलता है, और उससे सात सौ बीस दिन रात उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सत्य चिन्मय आत्मा का बारह प्राणरूप अरों वाला चक्र अर्थात् करणसमूह जो इच्छा करने वाले मन के आश्रय पर चेष्टा करता है, वह उसके नाश के लिये नहीं होता, प्रत्युत उसकी शक्ति के विकास के लिये ही होता है। इस देह में सात सौ बीस जोड़े अर्थात् अध्यात्मतत्व आत्मा को त्राण करने वाले उसकी शक्ति को प्रकट करने वाले होकर, हे ज्ञानवान् पुरुष! इस आत्मा के आश्रय देह में रहते हैं। संवत्सर में दिन रात्रि के समान प्राण और रयि दो पक्ष

हैं उनके ही अंशांश रूप से वर्ष के दिन रात्रि के समान ३६०, ३६० कलाएं हैं। इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १–६ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

भा०—विद्वान् लोग सबके पालक कालात्मा सूर्य या संवत्सर को प्रकाशमान तेज के सर्वोत्तम स्थान में स्थित, क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष अथवा हेमन्त, शिशिर को एक मानकर पांच ऋतु रूप चरणों, और १२ मास रूप १२ स्वरूप वाला, और वर्ष द्वारा जल बरसाने वाला, बतलाते हैं। और ये दूसरे विद्वान् जीवन में आनन्द देने वाले, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन रात, मुहूर्त इन सात अथवा सात ग्रहों की परिधि से युक्त, छः ऋतु रूप अरों वाले वर्ष से युक्त क्रान्तिचक्र में विविध पदार्थों को दिखाने वाले सूर्य को स्थित बतलाते हैं। (२) अध्यात्म में—ज्ञान करने के पांचों साधनों का स्वामी आत्मा, 'पञ्चपाद' है। १२ प्राणों का स्वामी होने से वह 'द्वादशाकृति' है। उसको कामनाशील देह के परम स्थान हृदय में 'पुरीषी', पुरु अर्थात् प्रीणन साधन इन्द्रियों द्वारा भोग्य विषयों की इच्छा करता हुआ और इस देह रूप पुर का सञ्चालन करता हुआ बतलाते हैं। दूसरे व्यक्ति उसी को सात मूर्धन्य प्राणों के चक्र या समूह या मूल, अधिष्ठान, नाभि, मणिपूर, आज्ञा, सोम, सहस्रदल आदि सात चक्र वाले और मन सहित छहों इन्द्रिय रूप अरों से युक्त इस देह में विविध विषयों के द्रष्टा रूप से स्थित बतलाते हैं। इसका विवरण देखो प्रश्न उप० १। ११ ॥ और (३) परमेश्वर ब्रह्माण्ड रूप पुर का संचालक होने से 'पुरीषी' है। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द ये ब्रह्म के पञ्च-पाद हैं। पञ्चतन्मात्र, पञ्चस्थूल भूत अहङ्कार और महत् ये १२ उसी की शक्ति के द्वारा भौतिक विकास, आकार या विकार होने से वह ब्रह्म 'द्वादशाकृति' है। तेजोमय परमेश्वर के परम समृद्ध रूप के निरूपण में उक्त

प्रकार ब्रह्म को सबका उत्पादक पिता पालक बतलाते हैं। दूसरे उसी को सप्ततत्व से युक्त तन्मात्रामय ज्ञानसाधनों से सम्पन्न देह पर द्रष्टारूप समष्टि चेतन्य रूप से वर्णन करते हैं।

पञ्चा॑रे च॒क्रे प॑रि॒वर्त॑माने॒ तस्मि॒न्ना त॑स्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
तस्य॒ नाक्ष॑स्तप्यते॒ भूरि॑भारः स॒नादे॒व न शी॑र्यते॒ सना॑भिः ॥१३॥

भा०—पांच अरो वाला चक्र जो बराबर घूम रहा है उसके आश्रय में ही समस्त भुवन स्थित हैं। उसका बहुत से भार से युक्त धुरा गरम नहीं होता, वह अपनी नाभि सहित चिर काल से चला आ रहा है, तो भी वह नहीं घिसता आदित्य या संवत्सर चक्र बराबर घूम रहा है। उनमें पांच ऋतु पाच अरे हैं उसका अक्ष अर्थात् अध्यक्ष बहुत से प्राणियो का भरण पोषण करने से 'भूरिभार' है। वह सतप्त नहीं होता, जिस प्रकार चक्र का धुरा बहुत भार लेकर चलता हुआ गरमा जाता है। उसी प्रकार सवत्सर चक्र का केन्द्र तप्त नहीं होता, तो भी वह कालचक्र अनादि काल से चला आ रहा है, वह क्षीण नहीं होता। (२) अध्यात्म मे—पाच इन्द्रिय पाच अरे है। उनमे युक्त आत्मा के आश्रय ही सब उत्पन्न होने हारे प्राणी गण स्थिर हैं, उसका अध्यक्ष आत्मा सबको धारण करके भी खिन्न नहीं होता, सर्व शक्तिमान् प्रभु अनादि काल से विद्यमान, सबका समान रूप से नाभि अर्थात् आश्रय है, वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। (३) यह समस्त जगत् चक्र भी पाच भूत रूप अरो से युक्त है, उसका अध्यक्ष भी ईश्वर है।

सने॑मि च॒क्रम॒जरं॒ वि वा॑वृत उत्ता॒नायां॒ दश॑ यु॒क्ता व॑हन्ति।
सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒ रज॑से॒त्यावृ॑तं॒ तस्मि॒न्नार्पि॑ता॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार उत्तान भूमि पर दश अश्व एक ही रथ में जुड़कर उसको ढो ले जाते हैं, और हाल सहित दृढ चक्र बराबर घूमता जाता है, इसी प्रकार उत्तम शक्तिमान् परमेश्वर के आश्रय पर विद्यमान प्रकृति

में ही पांचों भूत और पाच उनकी तन्मात्राएं सब मिलकर दसों परस्पर सम्मिलित होकर इस जगत् को धारण करते हैं, और सर्वत्र समान रूप से नियमपूर्वक चलने हारा काल कभी नाश को न प्राप्त होकर विशेष रूप से वर्त्तता है, व्यतीत होता है। जिस प्रकार देखने वाली आंख प्रकाश से युक्त होकर आगे ग्राह्य विषय तक जाती है और अन्य इन्द्रियगण भी उसी के आश्रय रहते हैं, उसी प्रकार सर्वप्रेरक सूर्य के समान तेजोमय परमेश्वर का सब पदार्थों को दिखाने और बतलाने वाला वेद और प्रकाशमय सूर्यादि प्रकाश युक्त तेज और ज्ञान से युक्त होकर प्राप्त होता है, उसी के ऊपर सब लोक स्थित हैं। (२) अध्यात्म में—सर्ववशकारी प्राण, सबसे ऊपर विद्यमान चिति शक्ति के आधार पर चल रहा है और दश प्राण उसमें युक्त होकर देह को धारण करते हैं। सूर्य रूप आत्मा या सूर्यचक्र सहस्रदल कमल का अन्तश्चक्षु ज्ञान युक्त होकर आगे बढ़ता है उसी के आश्रय सब देहस्थ प्राणी जीते हैं।

साकुञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति। तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः॥ १५॥ १६॥

भा०—जिस प्रकार एक साथ उत्पन्न हुए वसन्तादि ऋतुओं में से सातवें को एक अधिक मास से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, और छः यम अर्थात् जोड़े, दो दो मासों के बने ऋतुओं को क्रान्तदर्शी विद्वान् 'देवज' अर्थात् तेजस्वी सूर्य से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, उनके समस्त प्राणियों को अभिलषित स्वरूप भिन्न २ रूप में विकार को प्राप्त हुए हैं, वे स्थिर सूर्य के ही धारण सामर्थ्य या तेज के अनुसार विविध रूप से चलते हैं, उसी प्रकार आत्मा से अधिष्ठित देह में एक साथ उत्पन्न शिरोगत सातों में से सातवें मुख्य प्राण को अध्यात्मवेदी ऋषिजन एक मात्र आत्मा के ही मुख्य बल से एक अकेला ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, और शेष छहों जोड़े

आत्मा की शक्ति से उत्पन्न होते बतलाते हैं, उनके अभिलषित रूप आदि विषय भी स्थाता के धारण सामर्थ्य के अनुसार ही रचे हैं, वे सब रूप वाले देह में विकृत होकर गति करते हैं। इति षोडशो वर्गः॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् १६

भा०—आदित्य पक्ष में—सूर्य के रश्मि जल को अपने गर्भ में धारण करने में स्त्रियों के समान होते हैं, और वे ही पुन. भूमि पर पुरुष के समान वीर्यवत् जल सेचन कर ओषधियों के उत्पादक होने से पुरुष के समान होते हैं (२) आत्मा के पक्ष में—ज्ञानवृत्तिया अपने गर्भ में आत्मा को धारण करने से स्त्रियों के समान हैं और वे ही प्राण देने से पुमान् हैं। अथवा वे सब वृत्तिया मुख्य पुरुष की ही हैं ऐसा बतलाते हैं। उनको ज्ञानी ही जानता है। अज्ञानी नहीं जानता। महाज्ञानी पुरुष पुत्र अर्थात् अल्पायु होकर भी ज्ञानवान् होने से वृद्ध अज्ञानियों के पिता के समान आदरणीय है।

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः॥१७

भा०—जिस प्रकार गाय परे के अर्थात् पिछले पैरों के नीचे और अगले पैरों के पीछे अपने बछडे को धारण करती हुई खड़ी होती है, उसी प्रकार यह उषा परम स्थान आकाश से नीचे और अवर पद इस भूलोक से ऊपर, अन्तरिक्ष गत मेघ से बसने वाले जीवलोक का पालन पोषण करती हुई उदित होती है। वह अदृश्य स्थान से न जाने कहां से आती हुई किसी सगुद्धतम आधे आकाश को व्यापती है, कहीं भी वह सूर्य को यूथ के बीच में नहीं प्रसव करती। (२) परमेश्वरी शक्ति सर्व व्यापक होने से 'गौ' है। उसका पर पद आकाश और अवर पद यह लोक, दोनों के बीच स्थित जगत् को अपने सामर्थ्य से धारण करती हुई सबको उन्नतम

...प्रकृति आदि पदार्थों के विकृत गण में किसी के भी आश्रय होकर जगत् को प्रसव नहीं करती। प्रत्युत परमेश्वर की निरपेक्ष शक्ति ही जगत् को उत्पन्न करती है। अध्यात्म में देखो अथर्व० का० ९। ९। १८॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण।

कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, इस स्थावर जंगम जगत् के इस लोक में और पर अप्रत्यक्ष लोक में परिपालक परमेश्वर को, इस पृथ्वीलोक से ऊपर और आकाश से नीचे स्थित मेघ के समान सबके जीवनप्रद रूप में साक्षात् जान लेता है, वह इस लोक में कोई विरला ही होता है, जो क्रान्तदर्शी होकर तत्वज्ञान का उपदेश करता है वही यह भी बतलाता है कि इसी प्रकार अन्तःकरण भी कहां से उत्पन्न होता है। (अथर्व० ९। ९। १८)

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।

इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

भा०—जो जीवगण इस लोक में हैं वे अज्ञान के कारण ब्रह्म से दूर होने से दूरस्थ हैं। जो परम पद को प्राप्त हो जाते हैं उनको ही ब्रह्म पद के समीप गया बतलाते हैं। जीव और ब्रह्म दोनों के किये कर्म ही सब लोकों को धारण करते हैं। (२) दूर के ग्रह आदि समीप और समीप के चक्रगति वश से दूर हो जाते हैं। चन्द्र और सूर्य के भ्रमण ही लोकों को धारण करते हैं। (अथर्व० ९। ९। १९)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥१७॥

भा०—जीव ब्रह्म वृक्ष पर स्थित दो पक्षियों के दृष्टान्त से वर्णन करते हैं। जिस प्रकार दो उत्तम पंखों वाले पक्षी एक साथ प्रेम से

संयुक्त हुए, एक दूसरे के मित्र बने हुए, एक ही वृक्ष के ऊपर स्थित होकर एक दूसरे से आलिंगन करते या वृक्ष का आश्रय लेते हैं, उसपर सुख लाभ करते हैं, उनमें से एक स्वादयुक्त फल खाता हो दूसरा न खाता हुआ देखा करे, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा दोनों, उत्तम पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' है। परमात्मा सब से बड़ा पालक है, जीव अधीनस्थ प्राणों और देहादि संघात का पालक होने 'सुपर्ण' है। वे दोनों साथ रहने वाले साथी हैं। वे व्याप्य व्यापक भाव से सदा सम्बद्ध हैं, पिता पुत्र भाव से, आश्रयाश्रयी भाव से, उपास्य-उपासक भाव से सदा युक्त हैं। दोनों सखा अर्थात् मित्र के समान रहते हैं। वे दोनों एक वृक्ष का आश्रय लेते हैं। प्रश्चनीय अर्थात् काटे जाने वाले देह में जीवात्मा आश्रित है, विराट् ब्रह्माण्ड रूप में परमेश्वर है, जो विराट् प्रलय में काट दिया जाता है। उन दोनों में एक जीवात्मा स्वादु मनोहर पाकित पके फल के समान अपने किये पाप पुण्यमय कर्म के सुख दुःख रूप फल का भोग करता है। और परमेश्वर न करता हुआ केवल साक्षी-मात्र होकर सर्व द्रष्टा होकर रहता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

यत्रा॑ सुप॒र्णा अ॒मृत॑स्य भा॒गमनि॑मेषं वि॒दथा॑भि॒स्वर॑न्ति ।
इ॒नो विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः स मा॒ धीरः॒ पाक॒मत्रा वि॑वेश ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार रश्मियां जल के अंश को लेतीं और निरन्तर सब पदार्थों के लाभ या ज्ञान कराने के निमित्त सर्वत्र प्रकाश करती हैं, सूर्य समस्त जगत् का रक्षक है, वह पकने योग्य ओषधि आदि में किरणों द्वारा प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जिस परमेश्वर में उत्तम गति से जाने वाले देवयान मार्ग के आत्मज्ञानी पुरुष उस अमृत, नित्य, अविनाशी, परमेश्वर के स्वरूप के भजन सेवन को ही निरन्तर समाहित चित्त होकर ज्ञान और परम पद के लाभ के लिये उसी की स्तुति करते और अन्यों को उसका उसका उपदेश करते हैं। और वही सबका स्वामी

परमेश्वर समस्त जगत् का रक्षक है। वह ध्यानवान्, धीर बुद्धिमान पुरुष परिपक्व ज्ञान वाले मुझ साधक को इस परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में सब प्रकार से ज्ञान प्रदान करे। (२) अध्यात्म में—यास्क के [निरु० ३। २। ६] अनुसार—इन्द्रिय गण 'सुपर्ण' हैं। अविनाशी आत्म-चैतन्य द्वारा गृहीत ज्ञान को ग्रहण करती हैं। वह आत्मा सब इन्द्रियों का रक्षक है। वह मुझ अपरिपक्व ज्ञानवान् पुरुष को प्राप्त हो।

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

भा०—जिस संसार रूप वृक्ष के ऊपर मधुर कर्म फल के भोक्ता उत्तम कर्म और ज्ञानवान् जीवगण आश्रय पाते, और अपनी सन्तान उत्पन्न करते, और परमेश्वर का भजन करते हैं, उसके उत्तम स्थान में पालनकारी फल की विद्वान् लोग चर्चा करते हैं। जो पुरुष अज्ञानवश सर्वपालक परमेश्वर को नहीं जानता वह ही उस स्वादु परम आनन्द रूप फल को नहीं प्राप्त करता।

यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३॥

भा०—गान करने वाले का त्राण करने वाला परमेश्वर ही गायत्री छन्द में वेद में स्तुति किया गया है। तीनों वेदों में स्तुति करने योग्य परमेश्वर का ही त्रिष्टुप् छन्दों में वर्णन किया है। जगती छन्दों में भी उसी सर्व व्यापक प्रभु का वर्णन किया गया है। उस प्राप्य परमेश्वर को जो जानते हैं वे अमृतत्व को भोगते हैं। देखो (अथर्व० भाष्य का० ९ सू० १०। १)॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

भा०—वह परमेश्वर गायत्री छन्द से ऋग्वेद को आरम्भ करता है। ऋचाओं के समूह से गान को रचता है। और यजुर्वेद भी विधियों की दृष्टि से अथर्ववेद को रचता है। दो चरणों और चार चरणों वाले अक्षरों मे ही विद्वान् लोग सात छन्दों से रची वाणियों का ज्ञान करते हैं। देखो (अथर्ववेद भाष्य का० ९ । १० मन्त्र २)॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्। गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥२८॥

भा०—वह परमेश्वर गति देने वाली कालशक्ति से वेग से गति करने वाले सूर्यादि लोक समूह को आकाश मे थामता है, और अधिक वेगवान् के आश्रय पर ही सूर्य के समान तेजस्वी पिण्ड को सर्वत्र भ्रमण करते हुए दिखाता है। गान करने वाले के रक्षक परमेश्वर के ही अधीन अच्छी प्रकार देदीप्यमान अग्नि, विद्युत् और सूर्य तीनों है। वह महान् सामर्थ्य से और स्वरूप से उनसे भी कहीं बढ़कर है। विशेष विवरण देखो (अथर्व० का० ९ । १० । ३)॥ इत्यष्टादशो वर्गः॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥

भा०—जिस प्रकार कोई गृहस्थ सुखपूर्वक दोहने योग्य गाय को चाहता है और कुशल पुरुष उसको दोहता है, उसी प्रकार मैं उस वेद वाणी रूप गौ का दोहन करता हूं, ब्रह्मवाणी का गुरु के समीप जाकर अध्ययन करता हूं। उत्तम कुशल तथा गो अर्थात् वाणी के रस का दोहन करने हारा विद्वान् पुरुष ही इसको दोह पाता है। जैसे अति प्रदीप्त सूर्य जल को वृष्टि रूप से उत्पन्न करता है उसी प्रकार शिष्यों का आज्ञापक आचार्य स्वयं तेजस्वी तपस्वी, या ज्ञान का धारण करने हारा होकर सब से उत्तम ज्ञानाभिषेक करता है। उसकी शिक्षा ही मैं सदा उत्तम रीति से उपदेश करता हूं। विशेष विवरण देखो अथर्व० का० ७ । ७३ । ७॥

हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्समि॒च्छन्ती॒ मन॑सा॒भ्यागा॑त् ।
दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॑ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां मह॒ते सौभ॑गाय ॥२७॥

भा०—अपने बछड़े की प्यारी गौ अपने वत्स के प्रति प्रेम हिंकार शब्दपूर्वक उस को चूमती हुई चित्त से स्नेहपूर्वक गृह में बछड़े के समीप आ जाती है, और वह मनुष्यों के अन्न, दुग्ध, घृत आदि सब ऐश्वर्यों और बाल वृद्धादि सबको पालने वाली होती है, वह कभी वध न करने योग्य एवं सदा पालने योग्य होकर स्त्री पुरुषों के लिये दूध प्रदान करती है, वह बड़े भारी सौभाग्य की वृद्धि के लिये वृद्धि को प्राप्त हो। उसी प्रकार समस्त लोकों में बसने वाले जीवों का पालन करने वाली और ज्ञानपूर्वक बसे हुए इस लोक रूप वत्स को प्रेम से चाहती हुई प्रभु की परमेश्वरी शक्ति वेद द्वारा ज्ञानोपदेश करती हुई साक्षात् दिखाई देती है। वह अवि-नाशिनी होने से 'अघ्न्या' है। वह आत्मा और मन दोनों को पुष्टिप्रद सामर्थ्य प्रदान करती है। वह उत्तम ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये सबसे बढ़ कर है, वह हमें बढ़ावे। देखो अथर्व० ७।७३।८॥

गौर॑मीमे॒दनु॑ व॒त्सं मि॒षन्तं॑ मू॒र्धानं॒ हिङ्ङ॑कृणो॒न्मात॒वा उ॑ ।
सृक्वा॑णं घ॒र्मम॒भि वा॑वशा॒ना मिमा॑ति मा॒युं पय॑ते॒ पयो॑भिः ॥२८॥

भा०—जिस प्रकार आंख झपकते बछड़े को देख कर प्रेम से गौ शब्द करती है, और उसको प्रेमपूर्वक अपनाने के लिये उसे सूंघती और पुचकराती है, माता के थनों में रस उत्पन्न करते हुए बछड़े को लक्ष्य करके अति कामना करती हुई रंभाती है, उसी प्रकार व्यापक और ज्ञानमय होने से परमेश्वर 'गौ' है। प्रजाजन वत्स हैं। वह मानो सब को दया से अपनाने या सब को ज्ञान कराने के लिये आचार्य के समान उपदेश करती, और सामगान आदि करती है। वह तप करते हुए शिष्य के प्रति उपदेश करने वाले आचार्य के समान आत्मा के प्रति अन्तर्नाद करती हुई ज्ञान-पूर्ण उपदेश करती है, और पुष्टिकारक पदार्थों या ऐश्वर्यों से उन्हें पुष्ट करती है। अन्य पक्षों की योजना देखो (अथर्व० अ० १०।९।७॥)

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता। सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

भा०—(१) यह मेघ गर्जना करता है। जिसके साथ २ अति वेग से जाने वाली मध्यमिका वाक् या विद्युत् सब तरफ चमचमाती हुई, ध्वंस होने अर्थात् क्षीण होने वाले मेघ के आश्रय में आश्रित हुई, शब्द किया करती है। वह तीव्र क्रियाओं से मनुष्यमात्र को भयभीत करती है। वह विशेष दीप्तिमती होकर अपना रूप प्रकट करती है। (२) वह परमेश्वर वेद द्वारा आचार्यवत् उपदेश करता है जिसके साथ कि वेद वाणी सदा सगिनी होकर रहती है। वेद वाणी नाशवान् वर्ण की ध्वनि पर आश्रित रह कर ज्ञानों द्वारा मनुष्य का बड़ा उपकार करती है, विशेष २ अर्थ की द्योतिका होकर वरणीय परमेश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करती, उसी का प्रतिपद वर्णन करती है। विशेष देखो (अथर्व० ९ । १० । ७ ॥)

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥१६॥

भा०—जीव आत्मा, गृहों के बीच गृहपति के समान, देहों के बीच उनका धारण करने वाला होकर स्थिर रूप से जीवनप्रद और प्राणसाधक तथा अति वेग से इन्द्रियों में गति उत्पन्न करता हुआ, शरीर को सञ्चालित करता हुआ, प्राण देता हुआ व्याप रहा है। वह जीवात्मा मरने वाले जड़ देह के बीच में अपने आप को धारण करने वाली शक्तियों या अन्नो के द्वारा भोग करता और विचरता है। वह स्वयं मरणधर्मा देह से भिन्न होकर भी मरने वाले शरीर के साथ एक ही आश्रय में रहता है। परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर सबको प्राण देता हुआ, शीघ्र गति देने वाला, पूरस्थ, शरीरों के बीच कर्मानुसार जीव को प्रवेश करता हुआ स्वयं अदृश्य, निष्क्रिय रूप से व्याप रहा। और जीव जड़देह का अपने किये कर्मों द्वारा

या अन्नों से भोग करता है। वह ब्रह्म मरणधर्मा जीव से भिन्न होकर भी जीव के साथ ही व्यापक रूप से रहा करता है। देखो (अथर्व० ९ । १० । ८ ॥) इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१॥

भा०—सब के रक्षक, नाना मार्गों से समीप आते और दूर जाते हुए, कभी भी नाश को प्राप्त न होते हुए अस्त न होने वाले सूर्य के समान विद्यमान स्वयं प्रभु का नाना प्रकारों से मैं साक्षात् करता हूं। परमेश्वर सात्विक मार्ग से साधक के कभी अति निकट और तामस प्रवृत्तियों से कभी बहुत दूर होता प्रतीत होता है। वह उसके सदा साथ रहने वाली अर्थात् स्वाभाविक, और सब तरफ जाने और व्यापने वाली शक्तियों को अपने में धारण करता हुआ उत्पन्न हुए समस्त लोकों के भीतर और बाहर सर्वत्र वर्त्तमान रहता है। (२) जीवात्मा भी समीप और दूर के मार्गों से विचरता; कभी नाश को प्राप्त होता, उस आत्मा का मैं साक्षात् करूं। वह स्वाभाविक और विविध दिशाओं में जाने वाली प्राण और इन्द्रियों की चेष्टाओं पर वश करता हुआ समस्त प्राणों के भीतर चेष्टा करता है। (देखो अथर्व० ९ । १० । ११)

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥

भा०—जो जीव यह सब कार्य करता है। वह जीव भी इस जीव स्वरूप को नहीं जानता है। और जो इस सब अपने कर्म आदि को साक्षी होकर देखता है वह भी उस सब से पृथक् और छिपा हुआ अदृश्य है। वह माता के गर्भाशय के भीतर लिपट २ कर बहुत से जन्म धारण करता हुआ प्राकृत बन्धन को धारता है या भूमि को प्राप्त होता है। देखो अथर्व० भाष्य ९ । १० । १० ॥

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

भा०—मेरा पालक और उत्पादक सूर्य है, वही केन्द्र के समान हम सब जीवों का आश्रय है। उसी आश्रय में बन्धु के समान प्रेम से बांधने वाली, माता के समान गर्भ में धारण करके उत्पन्न कर पालने वाली यह पृथिवी है। ऊर्ध्व रीति से अतिविस्तृत, भोग्य भोक्तृ के समान परस्पर संयुक्त सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच में मेरा प्रकट होने का स्थान है। इस स्थान में ही पालक सूर्य अन्नादि ऐश्वर्यों को दोहन करने वाली पृथिवी में गर्भ धारण करता है। अथवा जलादि देने वाले अन्तरिक्ष में गर्भ अर्थात् जल से पूर्ण मेघादि को स्थापित करता है। (२) परमेश्वर प्रकृति पक्ष में—तेजोमय प्रभु ही 'द्यौः' है। वह सबको कर्म बन्धनों में बांधने वाला है। सर्व निर्मात्री प्रकृति माता है। ऐश्वर्य दोहन करने हारी प्रकृति है। वह ईश्वरीय शक्ति से विकार को प्राप्त होती है। उसमें ब्रह्म हिरण्यगर्भादि को धारण करता है। अथर्व० ९। १०। १२॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

भा०—हे विद्वन्! मैं तुझ से पृथिवी के परले अन्त को पूछता हूं। मैं उस परले अन्त के विषय में पूछता हूं जिस पर समस्त संसार की धुरी टिकी है। मैं तुझसे पूछता हूं कि भूमियों पर उत्पादक वीर्य के निषेक करने वाले तथा सर्व व्यापक परमेश्वर का उत्पादक वीर्य कौन सा है जिससे यह विविध प्रजाएं तथा लोक लोकान्तर उत्पन्न होते हैं। और पूछता हूं कि वेद वाणी का सर्वोत्कृष्ट परमाश्रय कौन सा है। उत्तर अगले मन्त्र में स्पष्ट है। अथर्व० ९। १०। १३॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ३५।२०

भा०—यह वेदि पृथिवी का परला छोर है। यह परमोपास्य परमेश्वर समस्त संसार का आश्रय है। यह सर्वोत्पादक सूर्य निषेचक परमेश्वर का परम वीर्य रूप तेज है। यह महान् प्रभु ही वेदवाणी का परम रक्षास्थान है। अथर्व० ९। १०। १४॥ इति त्रिंशो वर्गः॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ३६

भा०—सर्पण करने वाले किरण, समृद्धतम जलांश को अपने भीतर ग्रहण करते हुए, प्राणिमात्र को उत्पन्न करने में समर्थ जल को, महान् सामर्थ्य वाले सूर्य के उत्तम शासन से विशेष रूप से धारण करने वाले अन्तरिक्ष में स्थापित करते हैं। वे किरण शक्तिशाली सूर्य की क्रियाओं और स्तम्भन बल से सर्वत्र व्यापकर सब ओर पहुँच जाते हैं। (२) परमेश्वर पक्ष में—अपने से अधिक शक्तिमान् परमेश्वर के बल ऐश्वर्य को भीतर धारण करने वाले सातों महत् अहंकार और पञ्च सूक्ष्मभूत, विविध पदार्थों को धारण करने वाले आकाश में परमेश्वर के शासन में विराजते हैं। वे सातों ईश्वर की धारणशक्तियां, ज्ञान सामर्थ्य से विद्वानों के समान क्रिया और ज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र विकृत होकर, सर्वोत्पादक होकर नाना पदार्थों के रूप में प्रकट हो रहे हैं।

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥३७॥

भा०—जिस तरह का यह मैं हूं सो मैं विशेष रूप से नहीं जानता हूं। मैं तो वस्तुतः मनोरूप अन्तःकरण से प्रकार बंधा हुआ और उसी में छिपा हुआ विचरता हूं। जब सत्यान्मरूप परमेश्वर के स्वरूप से प्रथम उत्पन्न विषयग्राही इन्द्रिय रूप ज्ञानसाधन मुझे प्राप्त होते हैं, तभी इस वाणी के द्वारा भजन करने योग्य परम ब्रह्म को अथवा वेद वाणी के भाग अर्थात् प्रतिपाद्य सत्यज्ञान को मैं प्राप्त हूं। (अथर्व० ९। १०। १५)

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ३८

भा०—यह जीव अन्न और जल से बने इस शरीर तथा अपने किये कर्मों के फल से बद्ध होकर नीचे अर्थात् तुच्छ योनियों मे जाता, और उसी प्रकार कर्मों से बद्ध या शरीर मे बद्ध होकर उत्कृष्ट देहो मे जाता है। वह अविनाशी आत्मा मरणधर्मा जड़देह के साथ मिलकर एक साथ रहता है। आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह वे दोनों परस्पर सदा साथ रहने वाले सभी लोको मे साथ ही जाने वाहे विविध लोको को प्राप्त होते हैं। सभी जन उनमे से एक को भली प्रकार जान लेते हैं और मूढ़ जन दूसरी आत्मा को नहीं जान पाते।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ३९

भा०—ऋग् आदि चारों वेदो के बीच प्रतिपादित किये गये, जिस अविनाशी, और सबसे उत्कृष्ट तथा विशेष रूप से सब के रक्षक परमेश्वर में सब तेजोमय सूर्यादि लोक आश्रय पा रहे हैं, जो पुरुष उसको नहीं जानता वह ऋग आदि वेदो से क्या करेगा? क्या फल प्राप्त कर सकता है। जो विद्वान् उस परम वेद्य आत्मा को जान लेते हैं वे ही उस आनन्दमय परमेश्वर की सम्यग् ज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं।

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥२१॥

भा०—हे अविनाशशीले। जिस प्रकार गौ उत्तम तृण आदि खाने हारी होकर शुद्ध जल पीती और तृण खाती, और समस्त संसार को दूध आदि पौष्टिक पदार्थ और कृषि आदि द्वारा अन्न प्रदान कर ऐश्वर्य सुख से पूर्ण करती है, उसी प्रकार हे कभी नाश न होने योग्य परमेश्वरी शक्ते! तू उत्तम 'यवस्' अर्थात् प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य सुखों का अन्यों को प्राप्त

कराने वाली है। तू सदा निश्चय से सेवने योग्य ऐश्वर्यों की स्वामिनी है। हम ऐश्वर्यवान् बनें। छेदन करने योग्य तुच्छ देहबन्धन एवं तुच्छ सांसारिक दुःखों को तू खा जा, नष्ट कर। यह परमेश्वरी शक्ति सर्वत्र व्यापती हुई विशुद्ध ज्ञान रस अन्यों को पान कराती है। देखो अथर्व० का० ७। ७३। ११॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥ ४१॥

भा०—जिस प्रकार ध्वनि करने वाली अन्तरिक्ष की वाणी विद्युत् ध्वनि करती है, वह जलों को उत्पन्न करती, मेघरूप एक आश्रय में रहकर 'एकपदी', मेघ और वायु के आश्रित रहने से 'द्विपदी', और चारों दिशाओं में व्यापने से 'चतुष्पदी', और चार दिशा और चार उपदिशाओं में व्यापने से 'अष्टापदी', और ऊपर की ऊर्ध्व दिशा में भी व्यापक होने से 'नवपदी' होती हुई, सहस्रों प्रकार से जलप्रस्रवण करती हुई, परम आकाश में चमकती है, उसी प्रकार परमेश्वर की वेदवाणी ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाली और ज्ञानवान् विद्वानों को रमण कराने वाली होकर, ज्ञानानन्द रसों को उत्पन्न करती है। वह एकमात्र परम परमेश्वर का ज्ञान कराने से 'एकपदी', गुरु शिष्य दो द्वारा ज्ञान करने कराने योग्य होने से 'द्विपदी', चारों वेद में आश्रित या चारों आश्रमों द्वारा सेवने योग्य होने से 'चतुष्पदी' है। चार वर्ण चार आश्रमों की व्यवस्थापक और उनको ज्ञान देने वाली होने से 'अष्टापदी', वही एकमात्र नवें ब्रह्म के आश्रित होने से 'नवपदी' है। और सहस्रों प्रकार से 'अक्षर' अर्थात् परमेश्वर का वर्णन करने और सहस्रों अक्षर अर्थात् ककारादि वर्णराशियुक्त होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम रक्षास्थान ओंकार में आश्रित है। वह सबको उपदेश करती, ज्ञान प्रदान करती और अज्ञान का नाश करती, सन्मार्ग में प्रेरित करती है। (३) अथवा—'सुलस्य वाणी सरस्वती' विद्वानों में रमण करने से गौरी, ज्ञानरसों या सत्कारों कर्मों को उत्पन्न

करती है। प्राणरूप एक चरण वाली, अथवा अव्याकृत रूप से एक गद्यमय स्वरूप होकर एकपदी, या एक ओंकार रूप होने से एकपदी है। सुप्, तिङ् भेद से द्विपदी, वा मनुष्य की वाणी होने से द्विपदी, नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात भेद से वा अव्याकृत रूप से चौपायों में भी व्याप्त होने से 'चतुष्पदी', सम्बोधन सहित सात विभक्तियों द्वारा जानने योग्य होने से वा अष्टविध प्राणि-सर्ग में व्यापक होने से 'अष्टापदी', नवविधि वैकारिक सर्ग में व्यापक होने से, वा अव्यय सहित पूर्वोक्त विभक्ति तथा सम्बोधन युक्त होने से 'नवपदी' होकर, सहस्रों अक्षरों वाली होने से 'सहस्राक्षरा' है। वह परम सर्वोत्कृष्ट विशेष ज्ञानवान् पुरुष में विकास को प्राप्त होती है। अथर्व० ९। १०। २१।

प्रमाण—जैसे 'एकपदी'—अज एकपात्। वेद॥

'द्विपदी'—प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि। गी० अ० १३। १९।

'चतुष्पदी'—प्रकृतिं पुरुषञ्चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च। गी० अ० १३। ११॥

'अष्टापदी'—भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। गी० अ० ७। ९॥

'नवपदी'—अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्। गी० अ० ७। ५॥

सहस्राक्षरा—एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। गी० अ० ७। ६॥

विशेष विवरण देखो अथर्ववेद आलोक भाष्य का० ९। १०। २१।

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति॥ ४२॥

भा०—जिस प्रकार उस विद्युत् से आघात खाकर जलों को बहाने वाले मेघ बहुत अधिक मात्रा में और विशेष रूप से बरसते हैं, उस वर्षा से चारों दिशाओं में बसने वाले जीवगण जीवन धारण करते हैं। उस मेघगर्भा विद्युत् से ही जल बरसता है और उसी के आश्रय जीव संसार

अपना जीवन धारण करता है, उसी प्रकार उस परमेश्वरी शक्ति से ऐश्वर्यों के समुद्र बहते हैं, उससे चारों दिशाओं में स्थित लोक जीते हैं, उसी से अक्षय जीवन शक्ति प्राप्त होती है, जिससे समस्त जीव संसार जीवन प्राप्त करता है।

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

भा०—मैं शक्तिमान् तथा धूम के समान नीहार (Nebula) को मैं वैज्ञानिक देख रहा हूं। अपेक्षया समीप तथा चारों दिशाओं में फैलने वाले इस नीहार से भी सूक्ष्मतर तथा विविध दिशाओं में गति करने वाले अति सूक्ष्म तत्व जो कि भारी पिण्डों में बलसेचन करने वाले हैं, वे महान् सूर्य को परिपक्व, परिपुष्ट और अधिक प्रतापी बना रहे हैं। वे जगत् को धारण करने वाले तत्व सृष्टि के पूर्व में विद्यमान् थे। (२) परमेश्वर पक्ष में—यह जीव या यह संसार स्पन्दन शील होने से, 'धूम', और शक्तिमय होने से 'शकमय' है। वह अति समीप है। स्वयं उत्पन्न होने और विविध प्रजाओं के उत्पन्न करने में 'विषुवान्' है। उससे भी उत्कृष्ट सर्वसाधक, सब को बल देने वाला परमेश्वर है। उसको विद्वान् जन प्राप्त करने के लिये तप और योग करते हैं। वे धर्म सर्व श्रेष्ठ हैं। (अथर्व० ९ । १० । २५)

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥

भा०—इस विश्व में केश अर्थात् किरणों और अपने २ व्यापक चिन्हों सहित तीन पदार्थ विद्यमान् हैं जो क्रम से विद्युत्, सूर्य और वायु हैं। वे तीनों अपनी २ ऋतु के अनुसार विशेष २ लक्षणों से अपने आप को दिखलाते हैं। इनमें से एक विद्युत् बरसते मेघ के साथ प्रकट होता है, वह वर्ष में एक बार समस्त ओषधियों और प्राणियों के बीजों को वपन करता

है। वे मौसम मे उत्पन्न होते हैं। उनमे से एक सूर्य ज्येष्ठ आदि मास में समस्त विश्व को किरणों से सब प्रकार से देखता और प्रकाशित करता है। और तीसरे वायु का वेग तो देखने मे आता है, परन्तु उसका रूप नहीं देख पड़ता। (२) इसी प्रकार विश्व के प्रति परमेश्वर के तीन रूप हैं। वे कालगति के अनुसार ससार को दीखते हैं। पहिला बीजों के समान सबको उत्पन्न करता है, दूसरा सब प्रकार शक्तियो से देखता पालता है। तीसरा सहारकारी रूप है, उसका वेग दीखता है रूप नहीं दीखता, काल होकर तू सबका सहार करता है। अथर्व० ९ ।१०। २६ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥

भा०—वाणी के चार जानने योग्य स्वरूप माने गये हैं। जो बुद्धिमान वेदज्ञ विद्वान् हैं वे वाणी के इन चारो स्वरूपों को भली प्रकार जानते हैं। उनमे से तीन रूप गुहा अर्थात् बुद्धि मे स्थित रहकर प्रकट नहीं होते। और वाणी के चौथे स्वरूप को मनुष्य बोलते हैं।

वाणी के वे चार स्वरूप कौन २ से हैं इसमे बहुत से मत भेद हैं जिनका सक्षेप से उल्लेख करते हैं। (१) भू, भुव., स्व. और प्रणव इन चार पदों मे समस्त वाणी परिमित है। (२) ऋग, यजु, साम और अथर्व (३) सर्प, पक्षी, क्षुद्र सरीसृपो और चौथे मनुष्यों की भाषा। परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी। इन मे परा मूलाधार मे सूक्ष्म नादरूप से रहती है, हृदयचक्र में वही पश्यन्ति है, बुद्धि मे आकर वह मध्यमा है, मुख मे आकर वैखरी है। (५) वाणी के ४ रूप हैं नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। नाम सत्वासत्व सम्बन्ध का द्योतक है, क्रिया का द्योतक आख्यात, विशेषण का द्योतक उपसर्ग है, और अव्यय शब्द को निपात कहा जाता है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥२२॥

भा०—विद्वान् लोग परमात्मा को ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। और वह ही गरुत्मान् और दिव्य 'सुपर्ण' कहाता है। विद्वान् लोग एक सत् परमात्मा को ही बहुत तरह से कहते हैं, उसको ही अग्नि, यम और मातरिश्वा नाम से कहते हैं। परमेश्वर ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' है। स्नेही और मृत्यु से त्राणकारी होने से 'मित्र' है। सर्व श्रेष्ठ और दुःख-निवारक होने से वरुण, तेजोमय होने से 'दिव्य' है, भली प्रकार पालन-कारी और पूर्ण होने से 'सुपर्ण' है। महान् आत्मा होने से 'गरुत्मान्' है। वह सब से पूर्व और ज्ञानवान् होने से 'अग्नि', सर्व नियन्ता होने से 'यम', जगन्निर्मात्री प्रकृति में और ज्ञाता आत्मा में भी सूक्ष्मतया व्यापक और गतिदाता होने से 'मातरिश्वा' है। विद्युत् प्राण, जल, समुद्र, सूर्य, अग्नि, मृत्यु, वायु आदि दिव्य पदार्थ भी भिन्न २ गुणों से ही इन्द्रादि नामों से कहे जाते हैं। और उनमें भी वे गुण परमेश्वर से प्राप्त होने से वे सब नाम परमेश्वर में ही मुख्यतया अधिक उचित हैं। अन्यों के वे गौण नाम हैं। वह परमेश्वर अद्वितीय होने से 'एक' है। सर्वत्र व्यापक, सर्वाश्रय, सत्स्वरूप एवं कारण होने से 'सत्' है। सब उसी की नाना नामों और प्रकारों से स्तुति करते हैं। विशेष प्रमाण देखो अथर्व० ९। १०। २८॥ इति द्वाविंशो वर्गः ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥

भा०—श्याम वर्ण के, तथा नीचे की तरफ जाने वाले, जल से भारी मेघ को ले जाने वाले, उत्तम वेग से जाने वाले वायुगण, जलों के सूक्ष्मांशों को धारण करते हुए जब आकाश की ओर उड़ते हैं, वे जल के स्थानों से सब ओर फैल जाया करते हैं, और बाद में आकाश से गिरते हुए जल

से विशाल भूमि विशेष रूप से गीली हुआ करती है, इसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान् जीवगण प्राणमय लिंगशरीरों को धारण करते हुए, काले अशुक्ल, नीचे गिराने वाले पापकर्म को दूर करने हारे होकर, ज्ञान प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे सत्य ज्ञानमय प्रकाश के आश्रयस्थान से पुनः लौटते हैं और फिर उनके तेजोमय ज्ञान से यह भूमि सिंचती हैं। वे ज्ञानोपदेश करते हैं। अथर्व० ९।१०।२२॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥४८॥

भा०—जिस प्रकार किसी यन्त्र में १२ परिधिए हों, और एक ही चक्र हो। और तीन धुरे पर लगने वाले पट्टे हों। उसको कोई विरला ही ठीक २ जान सकता है। उस चक्र में तीन सौ साठ खूंटियों के समान चलने और न चलने वाली कलाए लगी है। प्रकार २ कालचक्र में १२ मास १२ परिधियां हैं। संवत्सर का एक चक्र है। उसमें तीन मुख्य ऋतुएं तीन धुरे पर स्थित तीन पट्टे हैं। उससे ३६० दिन रात्रि रूप ३६० शंकु के समान कला है, जिनके घुमाते ही रात्रि दिन होता है। ब्रह्म पक्ष में— पांच स्थूल, पांच सूक्ष्म महत् अहंकार ये १२ परिधि हैं। एक ब्रह्म कर्त्ता 'चक्र' है। तीन गुण संसार में बन्धनकारी होने से नभ्य हैं। ३६० संवत्सर की अहोरात्र रूप प्राण 'कलाएं' हैं। अध्यात्म में १२ प्राण हैं। एक आत्मा कर्त्ता है। तीन गुण बांधने वाले हैं। ३६० धारक प्रयत्न कला रूप हैं।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः॥४९॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम दुग्धदात्री माता का स्तन बालक को सुख से सुला देने वाला, सुखप्रद होकर उसे पुष्ट करता है, उसी प्रकार हे वेदवाणि! और वेद वाणी के जानने वाले विद्वन् और उत्तम ज्ञानमय

परमेश्वर ! जो तेरा पालक स्वरूप उपासक को शान्ति देने वाला है, और जो सुख और आनन्द देने वाला है जिससे समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ ज्ञानों और गुणों को पुष्ट करता है, जो रमणीय सुखों को धारण करता, अपने में बसने वाले शिष्यों और भक्तिमान् प्रिय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करने और उनको ऐश्वर्य देने वाला है, जो सुख कल्याण का देने वाला है, उसको इस जगत् मे सबके पोषण के लिये प्रकट करता है। राष्ट्र पक्ष में—देखो यजुर्वेद अ० ३८। ५॥ विदुषी स्त्री माता और द्यौः पक्ष में देखो अथर्व० का० ७। १०। १॥

यज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः॥५०॥

भा०—देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले, दानशील, व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष, अग्नि आदि पदार्थों से होने योग्य, या दान, परस्पर सत्संग और उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मों से उपास्य परमेश्वर की उपासना करते, तथा प्राप्त करने योग्य धर्मार्थ, काम, मोक्ष और पुरुषार्थों की साधना करते हैं। वे नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य अनुष्ठान आदि कर्त्तव्य सबसे उत्तम हैं। जिन कर्त्तव्यों के बीच में रहकर प्रारम्भ के प्रथमाभ्यासी साधनाशील उत्तम पद की कामना करते हुए रहते हैं और जिन कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहकर ही वे पूर्वोक्त साधक पुरुष बड़े सामर्थ्यवान् होकर सब प्रकार के दुःखों से रहित मोक्ष तक को प्राप्त होते हैं। विशेष सप्रमाण विवेचन देखो अथर्व० ७। ५। १॥

स॒मा॒नमे॒तदु॑द॒कमुच्चैत्यव॒ चाह॑भिः।
भूमि॑ प॒र्जन्या॒ जिन्व॑न्ति॒ दिवं॑ जिन्वन्त्य॒ग्नयः॑॥५१॥

भा०—यह जल जिस प्रकार ऊपर भी जाता है, कुछ दिनों में नीचे भी उतरता है, यह दोनों अवस्थाओं में एक समान रहता है। जल को बरसाने वाले मेघ भूमि को सन्तुष्ट करते हैं, और अग्नियां अन्तरिक्ष को

जल से तृप्त करती हैं, उसी प्रकार यह जीव भी जल के समान दोनों दशाओं में एक समान ही रहता है, अर्थात् कुछ दिनों में वह ऊपर जाता है, उत्तम लोक को प्राप्त करता है। कुछ दिनों तक वह पुनः नीचे लोकों को भी प्राप्त करता है। जिस समय जीव नीचे, भूमि आदि लोक में आता है तब उसके उत्पन्न होने में उत्तम कारण प्राण, आदि उसके उत्पत्ति को पुष्ट करते हैं, और जब ज्ञानी पुरुष उसके ज्ञान को बढ़ाते हैं तब वह उत्तम गति को भी प्राप्त करता है।

दि॒व्यं सु॑प॒र्णं वा॑य॒सं बृ॒हन्त॑म॒पां गर्भं॑ दर्श॒तमोष॑धीनाम्।
अ॒भी॒प॒तो वृ॒ष्टिभि॑स्त॒र्पय॑न्तं॒ सर॑स्वन्त॒मव॑से जोहवीमि ॥५२॥२३॥

भा०—आकाश में स्थित, उत्तम रश्मियों से युक्त, अति वेग से गमन करने वाले, सबकी वृद्धि करने वाले और स्वय महान्, जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण कर लेने वाले, सबको तेज से दिखाने वाले, स्वयं दर्शनीय, ओषधियों को ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्राप्त होने वाले जलों से तृप्त करने वाले जलों से पूर्ण मेघ या सूर्य का जिस प्रकार सभी आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार मैं साधक अति कामनीय, कान्तिमय, दिव्य, उत्तम पालनकारी और ज्ञानमय, ज्ञान और बल में सबसे महान्, सबसे बड़े प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी अपने वश में रखने हारे, परम दर्शनीय, अति सुन्दर, देह में ताप या जीवन को धारण करने वाले चराचर जगत् को सब तरफ की सुखों की जलधाराओं से तृप्त, एवं आनन्दित करते हुए, उत्तम ज्ञान और कर्म के भण्डार, समुद्र के समान अगाध परमेश्वर की, ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये, उपासना करता हूँ, उसको पुकारता और उसका आश्रय लेता हूँ। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१६५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ ११, १२ निरृद्

परमेश्वर ! जो तेरा पालक स्वरूप उपासक को शान्ति देने वाला है, और जो सुख और आनन्द देने वाला है जिससे समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ ज्ञानों और गुणों को पुष्ट करता है, जो रमणीय सुखों को धारण करता, अपने में बसने वाले शिष्यों और भक्तिमान् प्रिय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करने और उनको ऐश्वर्य देने वाला है, जो सुख कल्याण का देने वाला है, उसको इस जगत् मे सबके पोषण के लिये प्रकट करता है। राष्ट्र पक्ष में—देखो यजुर्वेद अ० ३८ । ५ ॥ विदुषी स्त्री माता और द्यौः पक्ष में देखो अथर्व० का० ७ । १० । १ ॥

यज्ञेन॑ यज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥५०॥

भा०—देव अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना करने वाले, दानशील, व्यवहारज्ञ एवं तेजस्वी विद्वान् पुरुष, अग्नि आदि पदार्थों से होने योग्य, या दान, परस्पर सत्संग और उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मों से उपास्य परमेश्वर की उपासना करते, तथा प्राप्त करने योग्य धर्मार्थ, काम, मोक्ष और पुरुषार्थों की साधना करते हैं। वे नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य अनुष्ठान आदि कर्त्तव्य सबसे उत्तम है। जिन कर्त्तव्यों के बीच में रहकर प्रारम्भ के प्रथमाभ्यासी साधनाशील उत्तम पद की कामना करते हुए रहते हैं और जिन कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहकर ही वे पूर्वोक्त साधक पुरुष बडे सामर्थ्यवान् होकर सब प्रकार के दु.खों से रहित मोक्ष तक को प्राप्त होते हैं। विशेष सप्रमाण विवेचन देखो अथर्व० ७ । ५ । १ ॥

स॒मा॒नमे॒तदु॑द॒कमुच्चैत्यव॒ चाह॑भिः ।
भूमिं॑ प॒र्जन्या॒ जिन्व॑न्ति॒ दिवं॑ जिन्वन्त्य॒ग्नयः॑ ॥ ५१ ॥

भा०—यह जल जिस प्रकार ऊपर भी जाता है, कुछ दिनों में नीचे भी उतरता है, यह दोनों अवस्थाओं में एक समान रहता है। जल को बरसाने वाले मेघ भूमि को संतृप्त करते हैं, और अग्नियां अन्तरिक्ष को

जल से तृप्त करती हैं, उसी प्रकार यह जीव भी जल के समान दोनों दशाओं में एक समान ही रहता है, अर्थात् कुछ दिनों में वह ऊपर जाता है, उत्तम लोक को प्राप्त करता है। कुछ दिनों तक वह पुन. नीचे लोकों को भी प्राप्त करता है। जिस समय जीव नीचे, भूमि आदि लोक में आता है तब उसके उत्पन्न होने में उत्तम कारण प्राण, आदि उसके उत्पत्ति को पुष्ट करते हैं, और जब ज्ञानी पुरुष उसके ज्ञान को बढ़ाते हैं तब वह उत्तम गति को भी प्राप्त करता है।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम्।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥२३॥

भा०—आकाश में स्थित, उत्तम रश्मियों से युक्त, अति वेग से गमन करने वाले, सबकी वृद्धि करने वाले और स्वय महान्, जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण कर लेने वाले, सबको तेज से दिखाने वाले, स्वयं दर्शनीय, ओषधियों को ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्राप्त होने वाले जलों से तृप्त करने वाले जलों से पूर्ण मेघ या सूर्य का जिस प्रकार सभी आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार मैं साधक अति कामनीय, कान्तिमय, दिव्य, उत्तम पालनकारी और ज्ञानमय, ज्ञान और बल में सबसे महान्, सबसे बड़े प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी अपने वश में रखने हारे, परम दर्शनीय, अति सुन्दर, देह में ताप या जीवन को धारण करने वाले चराचर जगत् को सब तरफ की सुखों की जलधाराओं से तृप्त, एव आनन्दित करते हुए, उत्तम ज्ञान और कर्म के भण्डार, समुद्र के समान अगाध परमेश्वर की, ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये, उपासना करता हूँ, उसको पुकारता और उसका आश्रय लेता हूँ। इति त्रयोविंशो वर्ग. ॥

[१६५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१, ३, ७, ५ ११, १२ विराट्

त्रिष्टुप् । २, ८ ६ त्रिष्टुप् । १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १४ भुरिक् पंक्तिः । १५, पंक्तिः । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कया॑ शुभा सव॑यसः सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒तेऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥ १ ॥

भा०—वायु के समान आलस्य रहित छात्रजनो ! आप सब लोग एक समान वीर्य, ज्ञान और अवस्था वाले, एक ही स्थान पर रहते हुए, किस प्रकार उत्तम रीति से परस्पर को बलवान् बनाओ ? इस बात को अच्छी प्रकार जानो । उत्तर-आप लोगों में एक दूसरे की बलवृद्धि सदा समान क्रिया, समान रहन सहन, वेश, आहार, विहार, चेष्टा आदि से होनी सम्भव है । ये शिष्य आदि जन किस २ देश से आ २ कर और किस विचार या संकल्प से प्रेरित होकर स्वयं बलवान् होकर भी अधिक बलशाली और प्रवृद्ध ज्ञानवान् पुरुष को आदर पूजा देते और उसके अधीन रहते हैं ? । उत्तर-उसके अधीन शिष्य बन कर रहने की इच्छा, या वसु अर्थात् ब्रह्मचारी होने की इच्छा से ।

कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त ।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम ॥ २ ॥

भा०—हे युवा विद्वान् पुरुषो ! आप लोग किस के पास से ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्रों के ज्ञान और नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकते हो ? अन्तरिक्ष में वेग से जाते हुए बाजों के समान भोग्य व्यसनों या विषयों के प्रति जाते हुए तुम लोगों को अहिंसामय वेदाध्ययनादि यज्ञ-कार्य में कौन तुम्हें वेदाभ्यास कराता है ? किस बड़े ज्ञानवान् पुरुष से हम सब मनुष्य अति आनन्द लाभ कर सकते हैं । उत्तर—उस प्रजापति तुल्य, सर्वोपदेशक गुरु से वेदज्ञान प्राप्त करें, वही हमें सत्पथ में चलावे, उसी से हम सुप्रसन्न रहें । अध्यात्म में—(२) मरुतः प्राणगण वे एक ही देह आश्रित रहकर समान वायु की चेष्टा से देह में आरोग्य सुख

वर्पण करते हैं। वसु अर्थात् आत्मा की शक्ति से सब मुख्यप्राण के आश्रय रहते हैं। वे उसी के बलों को सेवते हैं। वही उन पर वश करता है। उसी के ज्ञान और स्तम्भनबल से देह में रमण करते हैं।

कुतुस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू सबसे अधिक महान्, पूजनीय होकर एक अद्वितीय होकर किस बल पर गमन करता है, हे सज्जनों के पालक तेरा ऐसा बल क्योंकर है, हमसे मिला हुआ है तो भी तेरे सम्बन्ध में नाना विध प्रश्न किये जाते हैं। अतः हे उत्तम आकर्षक गुणों से युक्त, दुःखहारी साधनों से युक्त स्वामिन्! तेरा जो भी हमारे लिये हितकारी वचन हो वह उत्तम २ उपायों से हमें उपदेश कर।

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आशासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतुस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! मेरा बलवान् तथा मेघ के समान ज्ञान-जलों की वर्षा करने वाला उपदेश शान्ति को प्राप्त करता है। और मनन-शील पुत्र और शिष्यगण मेरे ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञानों को, पिता के धनों के समान चाहते हैं, इन उत्तम वचनों को सदा ले लेना चाहते हैं। उनको ज्ञानवान् और कर्मनिष्ठ और गुरु और शिष्य हमें अच्छी प्रकार प्राप्त कराए।

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! क्योंकि तू हमें 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करने योग्य वृत्ति को प्रदान करता है इसलिये हम सैनिक लोग देहों को चमकाते और सुशोभित करते हुए और अपने समीप के बड़े २ सैन्यों सहित तेरा साथ देते हुए इन समस्त पदार्थों को हम अपने उप-

योग में लेते हैं। हे परमेश्वर! तू हमारे जीवात्मा में भी व्यापक है। हम अपने आत्मिक बलों से अपने आपको सुशोभित करते हुए, योगसमाधि का अभ्यास करते हुए, इन गतियुक्त प्राणों को वश में करते हैं।

क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये।
अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के बल से जल नहीं उत्पन्न होता अपितु विद्युत् ही बलवान् होकर अपने प्रहारों से जल को नीचे गिराता है उसी प्रकार हे सैनिको! राष्ट्र का धारण पोषण करने वाला आप लोगों का बल कहां विद्यमान रहता है? क्या आप लोगों में रहता है या मुझ सेनापति में? सुनो, मैं निश्चय से तीक्ष्णस्वभाव और बलवान् होकर शस्त्रों के प्रहारों से समस्त शत्रु को नमा लेता हूँ।

भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥

भा०—हे हममें सबसे अधिक बलवन्! हे ऐश्वर्यवन्! हे जलों के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्विन्! तू हमारे परस्पर सहयोग से होने वाले एक समान पुरुषोचित बलों से बहुत काम करता है। और हम बहुत से कार्य जो भी हम मरुद् सैनिक चाहें वह तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से करने में समर्थ होते हैं।

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान्।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥

भा०—वीर सैनिको! मैं अपनी उग्रता से बलवान् होकर राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को नाश करने में समर्थ होता हूँ। और मैं शस्त्रास्त्र और यन्त्र कलादि को हाथ में धारण कर, मननशील प्रजाजन के हित के लिये, इन नाना प्रकार के नदी तड़ाग आदि को सुख से बहने वाले नहर आदि रूप में बनाता हूँ।

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥

भा०—हे पूज्य गुणों से युक्त ! परम आत्मन् ! कोई भी पदार्थ या कार्य तेरी प्रेरणा के विना नहीं है । तेरे जैसा ज्ञानवान् विद्वान् तथा दानशील भी कोई और नहीं । हे सबसे अधिक बढ़े हुए ! तू जिन अद्भुत् कर्मों को करता है उनको न उत्पन्न होने वाला ही कोई कर सकता है, न उत्पन्न हुआ ही कोई कर सकता है ।

एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् १०॥२५

भा०—एक मेरा ही व्यापक पराक्रम हो । मैं जिन कर्मों को मन की शक्ति से या सङ्कल्प की शक्ति से वश कर लेता हूँ उनको करने में समर्थ होता हूँ, हे वीरो ! मैं निश्चय से बलवान् और विद्वान् होकर जिनको भी प्राप्त कर लेता हूँ । मैं शत्रुहन्ता उन पर ही अपना प्रभुत्व करता हूँ । इसी प्रकार परमेश्वर का बल व्यापक है । अद्वितीय ही अपने व्यापक बल से सृष्टि के कार्य करता, वह ज्ञानवान्, बलवान्, जिन पदार्थों में व्यापक है उन सब पर वह वशी है ।

अमन्दन्मा मरुत स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

भा०—हे नायको ! इस राष्ट्र में आप लोगों के जो स्तुति वचन मेरे लिये हर्षकारी होते हैं, और जो श्रवणयोग्य महान् ऐश्वर्य और प्रभुत्व आप लोग बना रहे हो वह सब आप लोगों को भी सुखकारी हो । हे मित्रगणो ! आप लोग अपने शरीरों से मेरे शरीर की रक्षा और वृद्धि के लिये, मेरे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, सुखों के वर्धक उत्तम यज्ञशील मुझ मित्र के लिये, जो यज्ञ करते हो उसका उत्तम फल आपको भी प्राप्त हो ।

प्रवेद्रेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
सञ्चक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥

भा०—हे प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार करने वाले प्रिय विद्वान् पुरुषो ! आप सब लोग मेरे प्रति अति स्नेहवान् होकर रहो ! और उत्तम गुरु उपदेश, वेद ज्ञान और उत्तम इच्छाओं और शक्तियों को धारण करते हुए चन्द्र या सुवर्ण के समान उत्तम वर्ण वाले, तेजस्वी और शुद्ध चरित्रवान् होकर उत्तम रीति से अन्यों को उपदेश करके, और उत्तम रीति से तत्वों का आलोचन करके, अपने को आच्छादित करो, अपने को अन्न वस्त्रादि से सुभूषित करो और सुरक्षित रखो । और मेरे राष्ट्र की भी अवश्य रक्षा करो ।

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! देखो यहां आप लोगों का कौन आदर सत्कार करता है । हे मित्रों अपने समान स्नेही को ही प्राप्त होवो । हे अद्भुत २ नाना कर्म करने हारे विद्वानो ! आप लोग मनन योग्य को प्राप्त कराते हुए मेरे इन समस्त ऐश्वर्यों और सत्यज्ञानों के शेष न रखकर, पूर्ण रीति से प्राप्त करने वाले और ज्ञाता होवो ।

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥

भा०—सेवा शुश्रूषा करने योग्य पुरुष से जिस प्रकार परिचर्या करने वाले पुरुष को शिल्पसाधिका बुद्धि प्राप्त होकर उसे भी शिल्प करने में कुशल कर देती है, उसी प्रकार माननीय पुरुष की बुद्धि भी हमें योग्य बनावे । हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वान् पुरुष के समीप उसके समक्ष

जाकर उसका सत्संग करो। और वह विद्वान् उपदेष्टा आप लोगों को, नाना प्रकार के वेदज्ञान आदरपूर्वक प्रदान करे।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥२६॥३॥

भा०—हे मनुष्यो ! यह आप लोगों के लिये ही उत्तम वेदमन्त्र समूह है। सबको हर्षित करने वाले माननीय तथा संसार के कारीगर परमात्मा की यह वेदवाणी है। आप लोग उसके समीप इच्छापूर्वक आवें। हम लोग उत्तम ज्ञान, दृढ़ इच्छाशक्ति, पाप निवारक और शत्रु निवारक बल, और जीवन या जयदायी सामर्थ्य को प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[१६६]

मैत्रावरुणोऽगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, जगती। ३, ५, ६, १२, १३ निचृज्जगती। ४ विराट् जगती। ७, ६, १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। १४ त्रिष्टुप् १५ पङ्क्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१॥

भा०—हे विद्या के अभिलाषी विद्यार्थी जनो ! मेघ के समान निष्पक्षपात होकर ज्ञानवर्षण करने वाले आचार्य के ज्ञान को प्राप्त करने, और ब्रह्मचर्यपूर्वक उसके अधीन रहकर उत्तम द्विजत्व प्राप्त कर विद्या में जन्म लेने के लिये जो आप लोगों का माता पिता से प्राप्त या पूर्व जन्मों से प्राप्त महान् सामर्थ्य है उसका उपदेश करते हैं। नाना प्रकार की वेदध्व-

मित्रों को करने वाले शिष्यो ! जिस प्रकार मार्ग बनाने के लिये वृक्षादि की लकड़ियों को काट दिया जाता है और जिस प्रकार राज्य शासन के जमाने के लिये युद्ध या शस्त्रप्रहारों से शत्रुओं के सैन्यों को काट गिराया जाता है उसी प्रकार आप लोग शक्तिमान् होकर संयम के पालन के लिये बलों का सम्पादन करो।

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः। नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार गृहस्थ लोग इन्द्रियोपभोग्य विषयों में रमण करते हुए, मधुर अन्नादि पदार्थ धारण करते हुए, अपने औरस पुत्र को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार सहनशील तपस्वीजन अपने पुत्र के समान ही देह को प्रेरणा देने वाले नित्य आत्मा को मधुर आनन्दमय रूप से धारण करते हुए, उसी में रमण करते हुए, उपासना द्वारा उसको प्राप्त हो अतिप्रसन्न हुआ करते हैं। वे सत्य ज्ञान के उपदेष्टा नमस्कार करने वाले विनत शिष्य को अपने ज्ञान से युक्त करते हैं। वे 'स्व' अर्थात् अपने आत्मा के बल से बलवान् होकर दानयोग्य अन्नादि पदार्थों के प्रदान करने वाले को कभी नष्ट नहीं करते।

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे। उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण हितकारी मित्रों के समान जल से सबको सुखजनक होकर इस जीवगण के सुख के लिये बहुत लोकों को जल से सींचते हैं, और वे सबके रक्षक और अमृत, प्राणमय होकर हवि द्वारा यज्ञ करने वाले को धन, गौ आदि समृद्धि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार वीर सैनिक हितकारी मित्रों के समान, अपने २ पदों पर स्थित

होकर अन्न और पुष्टिकारक पदार्थों से सबको सुख देने वाले जिस अन्न-दाता के वृद्ध्यर्थ धनों की समृद्धि को दें वे राष्ट्ररक्षक अमर होकर उसी के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, बहुत से लोकों को बढ़ाते हैं।

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्। भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥

भा०—जो वीर पुरुष अपनी बलशालिनी सेनाओं से समस्त लोकों की धूलियों और लोकों को वायु गणों के समान सब तरफ से व्याप लेते हैं। हे वीर पुरुषो! वे आप लोगों के तीव्र वेग से जाने वाले अपने आप संयत, उत्तम रीति से बंधे हुए, या जितेन्द्रिय, अश्वगण और सवार लोग वेग से जाते हैं, उस समय सब प्राणी गण भयभीत होते हैं, और सब महल या उनमें रहने वाले स्त्री आदि जन कांपते हैं। हे वीरो! तब भी खूब उत्तम नियमों में बंधे, हथियारों के बीच सुसज्जित होकर आप लोगों का प्रयाण करना बड़ा अद्भुत, विस्मयकारी होता है।

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः। विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार सब मनुष्यों के हितकारी तीव्र वेग से जाने वाले वायु गण पर्वतों और मेघों को गुंजाते हैं, आकाश या अन्तरिक्ष पृष्ठ को भी व्याप लेते हैं, जिस प्रकार वायुओं से सब बड़े वृक्ष उनके वेग के भय से कांपते हैं, और ओषधिएं रथ पर चढ़ी स्त्री के समान खूब वेग से उड़ता सा धावता है, उसी प्रकार सब मनुष्यों के हितकारी वीर और सज्जन पुरुषों के रथ आदि जो कि विद्युत् के द्वारा चलते हैं वे पर्वतों की शोभा बढ़ावें और पृथ्वी पर पर्वतों को गुंजावें। वे भूमि और अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर भी चलें। हे वीर पुरुषो! आपके उखाड़ फेंकने वाले बल के

आधार पर सब सैन्य दल के रक्षक शत्रुजन तथा ऐश्वर्यपालक जन भी भय खाते हैं। और दाहकारी अस्त्रों के धारण करने वाली सेना भी रथ को चाहने वाली नव वधू के समान भीरु होकर मानो अपने नायक को चाहती हुई खूब कांप जाती वा आगे बढ़ती है। इति प्रथमो वर्गः ॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा॥६॥

भा०—हे विद्वान् वीर पुरुषो! प्रचण्ड, तीव्र गुण-कर्म स्वभाव वाले आप लोग उत्तम ज्ञान से अपने जन संघों, ग्रामों और प्राणसमूहों को नष्ट न होने देते हुए, उनकी रक्षा करते हुए, हमारी शुभ बुद्धि, ज्ञान और बल को सदा पूर्ण करो। जहां तुम वीरों की हिंसाकारी दांतों वाली चमचमाती विद्युत्शक्ति भूमि और आकाश को फाड देती है और खूब लगी हुई या चलाई हुई तेज धार की शस्त्र धारा के समान विद्युत् भी मे अश्वादि पशुओं और अधीन होकर लड़ने वाले सैनिकों का नाश कर संग्राम डालती है।

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७॥

भा०—वीर पुरुष युद्धादि में अपने सैन्य और प्रजा के बीच मे दृढ़ता आदि गुणों के देने वाले, कभी धन का नाश न करने वाले, सदा समृद्ध, शत्रुओं को खूब काट गिरा देने वाले और अति दानशील, संग्रामों और यज्ञों मे उत्तम प्रशंसित होते हैं, वे आनन्दप्रद राष्ट्र की रक्षा के लिये सूर्य समान तेजस्वी पुरुष की अर्चना करते हैं, उसको प्रमुख बना कर उसके अधीन रहते हैं। इसी प्रकार विद्वान् ज्ञान मार्गों मे अति आनन्दमय आत्मरस का पान करने के लिये तेजोमय प्रभु की उपासना करते हैं। वे ही शूरवीर परम शक्तिमान् प्रभु के श्रेष्ठ २ कर्मों को भली प्रकार जानते हैं।

शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! सदा बलशाली, नाना वाणियो, ज्ञानोपदेशों व विद्याओं के ज्ञाता, बलवान् होकर जिस पुरुष को बचाते और गर्व-भरी स्तुति या हिंसा होने से पुत्र समान पोषणादि कर्मों से रक्षा करते हो, उसको आप लोग कुटिल मूर्छाकारी प्राणघातक पाप से सैकड़ों को पालने वाले, पुरो या नगरों से सुरक्षित रखो।

विश्वा॑नि भ॒द्रा म॑रुतो॒ रथे॑षु वो मिथ॒स्पृध्ये॑व तवि॒षाण्याहि॑ता।
अंसे॒ष्वा वः॒ प्रप॑थेषु खा॒दयोऽक्षो॑ वश्च॒क्रा स॒मया॒ वि वा॑वृते ॥९॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! तुम्हारे वेग से जाने वाले रथों में सब प्रकार के सुखकारीपदार्थ और परस्पर स्पर्धा से लड़ने वाली सेना, और प्रबल हथियार रखे होने चाहियें। इसी प्रकार तुम्हारे कन्धों पर भी और उत्तम २ मार्गों में खाने योग्य फल आदि उत्तम पदार्थ हो, और तुम्हारे रथ का धुरा दोनों चक्रों के निकट ही विशेष रूप से घूमे।

भूरी॑णि भ॒द्रा नर्ये॑षु बा॒हुषु॒ वक्ष॑स्सु रु॒क्मा र॑भ॒सासो॑ अ॒ञ्जयः॑।
अंसे॒ष्वेताः॑ प॒विषु॑ क्षु॒रा अधि॒ वयो॒ न प॒क्षान्व्यनु॒ श्रियो॑ धिरे ॥१०॥२

भा०—जो वीर मनुष्य वेग से काम करने वाले होकर मनुष्यों के हितकारी, शत्रु-बाधक बाहुओं पर बहुत से कल्याणकारी कर्त्तव्य धारण करते हैं, छातियों पर सुवर्ण के आभूषण पदक को जो कि उनके किये उत्तम कार्यों और गुणों को प्रकट करते हैं, कन्धों पर शुभ्रवर्ण के वस्त्र, और वाणियों में उत्तम शब्द, और शस्त्रों में तीक्ष्ण धारों को, पक्षों को पक्षियों के समान, विविध प्रकार से धारण करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

म॒हान्तो॑ म॒ह्ना वि॒भ्वो॒३॒॑ विभू॑तयो दूरे॒दृशो॒ ये दि॒व्या इ॑व॒ स्तृभिः॑।
म॒न्द्राः सु॑जि॒ह्वाः स्वरि॑तार आ॒सभिः॒ सम्मि॑श्ला॒ इन्द्रे॑ म॒रुतः॑ परि॒ष्टुभः॑ ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के आश्रय वायुगण होते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन सैनिक वीर, और अन्धकारनाशक विद्वान्

आचार्य के अधीन चतुर विद्यार्थी जन रहें। वे महान् सामर्थ्य से गुणों में महान् अर्थात् आदरयोग्य हों, वे कार्य करने में समर्थ, नाना ऐश्वर्यों से युक्त, दिव्य पदार्थ सूर्य चन्द्र आदि लोक जिस प्रकार नक्षत्रगणों सहित दूर से दीखने वाले होते हैं उसी प्रकार ये भी ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर विस्तृत गुणों और अनुभवों सहित दूरदर्शी हों। वे स्वयं सब उत्तम पदार्थों की कामना करने वाले, आल्हादकारी और स्तुति युक्त, उत्तम वाणी वाले, मुखों से उत्तम वचन बोलनेहारे, परस्पर अच्छी प्रकार मिले हुए, स्नेही, सबको धारण करने और सब विद्याओं का अध्ययन करने वाले हो।

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम्।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

भा०—यह वायुओं का ही महान् सामर्थ्य है, और उनका ही लम्बा चौड़ा दान सामर्थ्य है जो विद्युत् भी जल के साथ विविध कुटिल मार्ग से चमका करता है। उसी प्रकार हे उत्तम कुलों में उत्पन्न और गुणों में प्रसिद्ध विद्वान् पुरुषो! आप लोगों का वह नाना प्रकार का महान् सामर्थ्य है, और आप लोगों का ही वह लम्बा चौड़ा विद्यादान है, आप लोगों का व्रत आचरण भी सूर्य के व्रत के समान ही है। आप लोग जिस उत्तम पुण्यकारी पुरुष के उपकार के लिये विद्या आदि दान करते हो, उसके उपकार के लिये ऐश्वर्यवान् पुरुष भी अपने दान देने योग्य धन से प्रत्यक्ष परोक्ष विविध प्रकारों से सहायकारी होते हैं।

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥

भा०—वायुगण की यह बन्धुता है कि वे गत वर्ष या गत काल के समान शान्तिदायक मेघादि को पुन. लाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार मनुष्यमात्र को सुख और अन्न आदि प्राप्त कराकर अपने वर्षणादि कर्मों सहित ही जाने जाते हैं। उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो!

आप लोगों का वह उत्तम बन्धुभाव है कि आप लोग दीर्घजीवी होकर अतीत काल में भी जो उपदेश करने योग्य उत्तम वेदवचन और ज्ञान रहता है उसकी रक्षा किया करते हो, और इसी उत्तम धारण शक्ति, बुद्धि और अध्ययन आदि कर्म से मनुष्यमात्र के हित के लिये श्रवण करने योग्य ज्ञान की रक्षा करके, स्वयं नेता बनकर उत्तम आचारों और कर्मों के साथ ज्ञान का सम्पादन करते और कराते रहते हो। ऐसा ही किया करो।

येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शू॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न॒ परी॑णसा तुरासः ।
आ यत्त॒तन॑न्वृ॒जने॑ जना॑स ए॒भिर्य॒ज्ञेभि॒स्तद॒भीष्टि॑मश्याम् ॥१४॥

भा०—हे वेगवान्, वायुओं के समान सर्वोपकारक विद्वान् और बलवान् पुरुषो ! आप लोगों के जिस बड़े भारी सामर्थ्य और ज्ञान से हम बहुत लम्बा जीवन बढ़ा लेते हैं, और आप के जिस विघ्ननिवारक बल पर निर्भर करके लोग नाना यज्ञ करते हैं, मैं उन यज्ञों, दान, सत्सग, उपासना आदि पुण्यकर्मों के साथ २ आप के उसी बल सामर्थ्य से अपने अभीष्ट, मनचाही मनोकामना को प्राप्त करूं।

ए॒ष वः॒ स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गी॒र्मा॑न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒यां वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १५ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सू० १६५ का १५ वां मन्त्र।

इति तृतीयो वर्गः ॥

[१६७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो मरुतश्च देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, भुरिक् पङ्क्तिः । ७, ९ स्वराट् पङ्क्तिः । १० निचृत् पङ्क्तिः । ११ पङ्क्तिः । २, ३, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

स॒हस्रं॑ त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्र॒मिषो॑ हरिवो गू॒र्तत॑माः ।
स॒हस्रं॒ रायो॑ मा॒दय॑ध्यै सह॒स्रिण॒ उप॑ नो यन्तु॒ वाजाः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरी हजारों रक्षा के साधन, उत्तम उद्यमी सहस्रों सेनाएं, और हजारों ऐश्वर्य, और हजारों ऐश्वर्य प्रदान करने वाले ज्ञान ,और नाना ऐश्वर्य और बल और अन्न हमें हर्ष और आनन्द प्राप्त करने के लिये प्राप्त हों।

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

भा०—वे वैश्य गण और विद्वान् जन ! जो विद्या और वयस् में वृद्ध, बड़ी भारी ज्ञानज्योतियों से प्रकाशमान्, विद्वानों के सत्संग से उत्तम शुभ बुद्धिवाले हैं, वे हमें सदा ज्ञानों और रक्षा साधनों सहित प्राप्त होते रहें। और वे जो उत्कृष्ट कोटि के आदमी समुद्र के परले पार भी धन ऐश्वर्य की कामना से व्यापार करते हैं और ऐश्वर्य उपार्जन करते हैं वे भी हमें प्राप्त हों।

मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं में जल प्रकट होने वाली, उत्तम रूप से विद्यमान्, सुवर्ण के समान चमकने वाली मेघमाला लचकती तलवार के समान चमकती है, और जिन वायुओं में समान कान्तिवाली मनुष्य की स्त्री के समान अन्तरिक्षरूप गुफा में विचरने वाली शब्द करने वाली मध्यमा वाक् विद्युत् आश्रित है, उसी प्रकार जिन विद्वानों में, प्रकाश-युक्त और सु-अभ्यस्त, तथा हित और रमणीय ज्ञान से शिष्यों के ज्ञान-सामर्थ्य को बढ़ाने वाली, सबको प्राप्त होकर रमण कराने वाली, पुरुषार्थों को प्राप्त कराने वाली, मनुष्य की सभा में एक साथ बैठने वाली स्त्री के समान धर्मसभा आदि सभाओं को धारण करने वाली, हृदय में या बुद्धि के आश्रय होकर विचारपूर्वक मुख से निकलने वाली, ज्ञान देने में श्रेष्ठ-वाणी अच्छी प्रकार निवास करती है वे विद्वान् जन हमारे आदर के पात्र हों।

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार संयोग विभाग करने वाली साधारण गति से बहने वाले और भासने वाले वायु गण, दूर २ तक के देशों को जलों से सींच देते हैं, शब्द करने वाले मेघ और विद्युत् दोनों का भी गर्जन दूर नहीं हटा देते प्रत्युत स्वयं भयकर वेग से चलकर जल का प्रदान करने वाले होकर, सब प्राणियों के प्रति मित्रभाव के लिये, सबके बढ़ाने तथा तथा पुष्ट करने वाले जल अन्न या सूर्य का सेवन करते कराते हैं, उसी प्रकार विद्वान् लोग अपने से कम अवस्था वाली, अपने समान बल वीर्य धारण करने वाली स्त्री के साथ संगत होने वाले, अलङ्कारों और उत्तम उज्ज्वल वस्त्रों से शोभायमान होकर उत्तम रीति से स्त्री क्षेत्र में बीज वपन करें। रोने के स्वभाव वाली दुःखिता स्त्री को या दीन दुखिया को भी वे अपने से दूर न करें। बलवान् शत्रुओं के लिये भयकर होकर भी दिव्य गुणों से युक्त एवं कामनाशील प्रेमयुक्त होकर अपने कुल को बढ़ाने वाली स्त्री को ही मित्रभाव की वृद्धि के लिये उससे और अधिक प्रेम करें।

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य की मध्यान्ह काल की दीप्ति जिस प्रकार तेज प्रकाश देने वाली होकर विविध लोकों को धारण करने वाले सूर्य के रमणीय बिम्ब को प्राप्त होती है, अथवा वायु की तीव्र गति जिस प्रकार विशेष शिल्प रचने वाले पुरुष के वेगवान् रथ को प्राप्त होती है, उसी प्रकार असुर अर्थात् प्राणप्रिय पुरुष की हितकारिणी, विविध प्रकार से अपने केशों को बांधने वाली, वियुक्त होते हुए, माता पिता सम्बन्धियों को देखकर आंखों में जल भरलाने वाली, सब मनुष्यों के लिये उचित स्नेहवाली, दीप्तियुक्त

मुख वाली, कान्तिमती, सुन्दर स्त्री जब अपने अभिलषित पुरुष को स्वीकार करे, तब वह सूर्य की कान्ति के समान और जल की धारा के समान विवाह विधि से धारण करने वाले वर के प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य जलों का ग्रहण करने वाला, ओषधियों को उत्पन्न करने द्वारा, क्रिया करता हुआ वायुओं की 'गाथा' अर्थात् ध्वनि करने वाली गर्जना को गाता है, तब वे वायुगण संघातयोग्य जलों में व्यापने वाली, सब पदार्थों में गूढ़ रूप से रहने वाली अति बलवती विद्युत् को जलवर्षण और दीप्ति के लिये अन्तरिक्ष में प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का आदरणीय, उत्तम ज्ञान और अन्न सम्पदा से युक्त, ऐश्वर्य को प्राप्त करके वृद्धों की सेवा शुश्रूषा करने वाला शिष्य, जब गाथा अर्थात् वेदवाणी का अध्ययन कर लेता है, या अग्नि की परिक्रमा करता हुआ गाथा अर्थात् वेद मन्त्र का पाठ करता है, तब वर के सखाजन धर्मानुकूल व्यवहारों में अच्छी प्रकार शुभ गुण विद्या आदि स्वभाव द्वारा अपने को मिलाने वाली युवती कन्या को, शुभ कार्य के निमित्त सब प्रकार से दृढ़तया स्थापित करें। उसे किसी प्रकार का क्षोभ न होने दें।

प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७॥

भा०—जो इन विद्वान् पुरुषों का सत्य, वर्णन करने योग, महान् सामर्थ्य है, मैं उसका उपदेश करता हूं। वह यह कि जो उनमें से वीर्य-सेचन अर्थात् पुत्रोत्पादन करने में चित्त देने वाला, गृहस्थ का अभिलाषी, पुत्रैषणावान्, अहंभाव से युक्त, आत्मवान्, जितेन्द्रिय है वह ही धर्म

और लोकयात्रा में स्थिरचित्त, सुख सौभाग्य से युक्त, पुत्र जनन में समर्थ दारा को विवाहे।

पान्ति मित्रावरुणावद्याच्चयंत ईमर्यमो अप्रशस्तान्।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मित्र अर्थात् सबका स्नेही या प्रजा को मरण से बचाने वाला, तथा वरुण अर्थात् सब दुष्टों का वारक और श्रेष्ठ जन और शत्रुओं को सयमन करने वाला न्यायकारी पुरुष, निन्दनीय पापाचरण से रक्षा करें। और बुरे पापाचारी लोगों का विनाश करें। इस प्रकार न करने से कभी न डिगने वाले स्थिर राष्ट्र भी उत्तम पद से गिर जाते हैं। इस प्रकार दानयोग्य कर आदि सम्राह्य पदार्थों को प्रजा से स्वीकार करने वाला पुरुष सब प्रकार से बढ़ता और इस प्रजाजन को भी बढ़ाता है।

नुही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः॥ ९॥

भा०—हे शत्रुओं का नाश करने वाले बलवान् पुरुषो! हम प्रजाजनों में से आप लोगों के बल और ज्ञान का दूर और पास पहुंच भी कदाचित् कोई पार न पा सके। आप सब लोग शत्रु का पराजय करने वाले बल से सदा बढ़ते हुए, अपने धर्षक बल द्वारा हर्ष करने वाले अधार्मिक शत्रुओं को, जल को तटों के समान, चारों ओर से घेर कर रोक लो।

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात्॥१०॥

भा०—हम लोग परमेश्वर वा राजा के अति प्रिय होकर ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की आज और आने वाले दिनों में आगे भी अन्य मनुष्यों के सत्संग में स्तुति करें। उसके गुणों का वर्णन करें। हम पहले भी और अब सब दिनों उसके गुण गान करें। वह हमें बहुत बल सामर्थ्य, सद्भाव

करे। और वह सब नायकों मे से सबसे बड़ा होकर हमारे अनुकूल सुखदाता हो।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल १।सू० १६५।१५०॥ इति पञ्चमो वर्गः॥

[१६८]

अगस्त्य ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती। २५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६, ७, भुरिक् त्रिष्टुप। ८, त्रिष्टुप। ९, निचृत् त्रिष्टुप्। १० पङ्क्ति॥

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो! मिलकर करने योग्य उपासना, युद्ध, यज्ञ, सत्संग आदि प्रत्येक कार्य मे आप लोगो की शीघ्र गति भी एक समान वेग से हुआ करे। उपासना मे एक साथ मन्त्रादि कहे, युद्ध मे एक चाल से कदम उठावें, सत्संगो मे समान भाव से वर्त्ते। आप लोगो मे से जो दिव्य गुणो वाले और विद्वानो के उपासक शिष्य आदि है, और अग्नि आदि दिव्य पदार्थों को प्राप्त वैज्ञानिक लोग है, वे प्रत्येक काम और प्रत्येक ज्ञान को धारण करें, आप लोगो मे से नव शिक्षितो को, आकाश और पृथिवी के बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, और बड़े भारी रक्षा कार्य के लिये, दुःखदायी कारणों को दूर कर देने वाले साधनो सहित, सब प्रकार से वरण करूं और उनको कार्य मे नियुक्त करूं।

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष निरन्तर देश देशान्तर मे भ्रमण करने हारे, बल ऐश्वर्य और आत्मसामर्थ्य से संसार में प्रकट हैं, और स्वयं अपने

बल से बलवान्, शत्रुओं को और बाधक मोह आदि अन्तः शत्रुओं को कंपाकर दूर करने हारे, परम सुखमय सूर्य के समान प्रकाशमय, सर्व-प्रेरक परमेश्वर को साक्षात् करते हैं, वे सत्या में सहस्रों जलतरंगों के समान स्वयं भी ज्ञानों और कर्मों का उपदेश करने हारे, तथा गौओं के समान ज्ञानदुग्ध से सबको पालने वाले, और अभिवादन आदर और कामना करने योग्य, सेचन करने वाले मेघों के समान सुख से ज्ञान का वर्षण करने हारे हैं।

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३॥

भा०—सोम आदि ओषधियां जिस प्रकार एक २ रेशे में तृप्त अर्थात् रस से पूर्ण होती हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष सौम्य गुणों से युक्त शिष्यों वाले, तथा पुत्री और अपने औरस पुत्रों वाले हैं, वे हृदयों में पूर्ण तृप्त होकर सेवकों के समान सदा सेवा करने को तैयार होकर विराजें। उत्तम गृहस्थ कार्यों को आरम्भ करने वाली, या प्रेमालिंगन करने वाली स्त्री जिस प्रकार कन्धों पर हाथ रखकर पति का आलम्बन और आलिंगन करती है उसी प्रकार इन वीर पुरुषों के कन्धों पर बलवती अस्त्रादि शक्ति आश्रय पाती है, और हाथों में अपना खाद्य भोजन और क्रिया कौशल या कर्तव्य अथवा हाथों में हस्तत्राण और काटने वाली तलवार सदा तैयार रहता है।

अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण अपने ही बल से प्रेरित होकर आकाश में अनायास जाते आते हैं, और अपनी गति से आप ही सबको प्रेरित करते हैं, और वे जिस प्रकार रेणुरहित और बलशाली होकर बलवान् [illegible?]

सूर्य से रश्मियां पाकर बड़े दृढ़ वनों पर्वतों को भी कंपा देते हैं, उसी प्रकार ये वीर पुरुष और विद्वान् जन धनैश्वर्य के द्वारा नियुक्त होकर, तेजस्वी पुरुष के अधीन अनायास ही जाते आते हैं। वे साधारण मनुष्यों से भिन्न रहकर स्वयं शासनव्यवस्था से प्रजा को संचालित करें। वे हिंसादि दोषों से रहित, बल द्वारा प्रसिद्ध, तीव्र गतिवान्, और चमचमाते शस्त्रों से सुसज्जित होकर शत्रु के दृढ़ सैन्यों और दुर्गों को भी कंपा देते और स्थायी ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करते हैं।

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३नैतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—दुधारा तलवार के समान बिजली को धारण करने वाले जैसे वायुगण होते हैं, वे वृष्टियों अन्नों को प्राप्त कराने के लिये आकाश से जल बरसाते हैं, प्रश्न यह है कि उनके बीच में कौन सा बल उसको चला रहा है? उत्तर—जैसे उत्तम अश्व बिना ताडना के ही मार्ग में जाता है उसी प्रकार शुक्र कान्ति से युक्त सूर्य जो दिन को करनेहारा है वही सब वायुगण को चला रहा है। ठीक इसी प्रकार हे विद्वान् और वीर पुरुषो! विद्युत् के समान रण में दुधार तलवार और आत्मा में ज्ञान दीप्ति को धारण करने वाले आप लोगों के बीच वह कौन है जो जिह्वा की गति से जिस प्रकार दोनों जबाड़े चलते हैं उसी प्रकार शत्रु को हनन करने वाली दायें बायें या स्वपक्ष परपक्ष की दोनों सेना को अपनी वाणी द्वारा ही सञ्चालित करता है। और आप लोग अन्नों की प्राप्ति के लिये जल बरसाने वाले मेघों के समान बाणों और सेनाओं के सञ्चालन के कार्य में धनुष के बल से शत्रुओं को च्युत करने वाले, बहुत से ऐश्वर्यों के लिये उत्कृष्ट इच्छा वाले, अश्व के समान बिना ताड़ना के ही मार्ग पर जाने वाले हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥

भा०—इस लोक का सबसे उत्कृष्ट बड़ा भारी कारण या आश्रय कहा है? 'अवर' अर्थात् उत्पन्न कार्य जगत् किस पर आश्रित है? हे विद्वान् लोग! जिस परम आश्रय पर आप पहुँचते हैं उसका उपदेश करो। देवगण जिसके बल से गति करते हैं? जिस प्रकार शिथिल जलों को वायु गिरा देते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! वह कौन सा बल है जिससे प्रेरित होकर व्यथित दुःखितों को आप प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार वायु गण विद्युत् या मेघ से दीप्तिमान् जलमय मेघ को लाते और बरसाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी सर्वत्र समानभाव से व्यापक, सबके लिये हितकारी, सूर्य के समान दीप्तिमान्, सब शक्तियों के सागर को मेघ के समान आनन्दवर्षी धर्ममेघ, या आत्मा सहित विविध उपायों से प्राप्त करते हो। वह कौन सा है? उत्तर—वह परमेश्वर है।

सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥७॥

भा०—वायुओं का जलादि का विभाग रोगकारी न होकर सुख देने वाला है। वह वायुओं का विभाग वेगवान्, विविध फलों को पकाने वाला, मेघ के जलों को छिन्न भिन्न कर पीसने वाला होता है। वायु गणों का दान सुखजनक, बहुवेगयुक्त, मेघ लाने वाला, बलात् सबको दबाने वाला होता है। इसी प्रकार हे विद्वान् जनो! वीर पुरुष! आप लोगों का किया हुआ विभाग भी अन्यों को कष्ट देने वाला न हो, प्रत्युत सुख देने वाला हो। आप लोगों की दीप्ति नाना प्रकार के उत्तम परिणामों का परिपक्व करने वाली हो। और वह आप लोगों का त्रिविध भागों में विभक्त होना भी शत्रु का प्रत्येक अंग पीस डालने वाला हो। और आप लोगों को दिया दान पालन करने वाले यजमान की दी दक्षिणा के समान कार्यक्षमता को बढ़ाने वाला हो। और वह बड़े २ लोगों में भी वेग या शक्ति पैदा कर देने वाला, प्राणों की शक्ति के समान या मेघों के दीप

उत्पन्न विद्युत् के समान या बलवान् पुरुषों की सेना के समान सबको अपने अधीन कर देने वाला और कल्याणकारी सुखदायक हो।

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति॥ ८॥

भा०—जब वायुगण मेघ से उत्पन्न गर्जना को उत्पन्न करते हैं तब जलधाराएं या वेगवान् जलधारा बहाने वाले मेघ विद्युत् के आघातों से बराबर विक्षुब्ध होते हैं, और जब वायुगण सब तरफ वर्षा करते हैं तब मानो पृथिवी पर बिजलियां मानो नीचे को मुंह किये ईषद् हास करती, मुस्कराती हैं। इसी प्रकार विद्वान् लोग जब भी मेघ के समान ज्ञान धाराओं के देने वाले पद पर स्थित होकर परमपवित्र करने वाले ईश्वरोपासना तथा पवित्र कार्यों के लिये वेदवाणी का उच्चारण करते हैं, तब वे बहुत नदियों या बरसते मेघों या गर्जते समुद्रों के समान 'स्तोभ' नामक सामगानोपयोगी ध्वनि को उत्पन्न करते हैं। और जब ऋत्विग्जन पृथिवी पर इस अग्नि को घृत धारा स्नान कराते हैं तब विशेष कान्तियुक्त अग्निज्वालाएं प्रत्यक्ष रूप से मुस्कराती हैं, चमक उठती हैं।

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम्।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्॥ ९॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य बड़े भारी जीवलोक के आनन्दपूर्वक रमण करने के लिये अपना प्रकाश, तीक्ष्ण ताप उत्पन्न करता, और वेग से जाने वाले वायुगणों के समूह को भी प्रेरित करता है, और वे तीव्र वेग से जाने वाले वायुगण जलमय मेघ को उत्पन्न करते हैं, उसके अनन्तर लोग इच्छानुकूल जल और खेतों में अन्न को ही सब ओर बरसा और उत्पन्न हुआ देखते हैं, उसी प्रकार आदित्य के समान तेजस्वी ऐश्वर्यवान् प्रतापी राजा या सेनापति बड़े भारी संग्राम के विजय के लिये तेजस्वी तथा आक्रमण करने में कुशल शत्रुमारक वीरपुरुषों के सैन्य को उत्पन्न

करें और आज्ञा से चलावे। जब वे समवाय या दस्ते या दल बना कर चलने हारे वीर जन असामर्थ्य, थकान प्रकट करते हैं तब वे अपनी रक्षा और अभिलषित वेतन और अन्न को भी प्राप्त करते हैं।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥७॥

भा०—व्याख्या देखो ऋ० १। १६५।१५॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[१६९]

गस्त्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ भुरिक् पङ्क्तिः। २ पङ्क्तिः। ५, ६ स्वराट् पङ्क्तिः। ४ बृहत्युष्णिक्। ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप्॥

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा॥ १॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! दुःखों के नाशक! सूर्य के समान तेजस्विन्! तू भी महान् ही है। क्योंकि तू ही इन सब बड़े २ लोकों को अपने से उत्पन्न पुत्रों के समान ही अपना रहा है, उनकी रक्षा करने हारा है। हे वायुओं के प्रवर्त्तक सूर्य के समान और शिष्यों के प्रवर्त्तक ज्ञानवान् गुरु के समान इन सब प्राणियों के पिता के समान सबके उत्पादक! वह तू सर्व पूज्य सब कुछ जानने हारा है। तू तेरे जितने अति प्रिय सुख हैं उन्हें हमें प्रदान कर।

अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ॥ २॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! मनुष्यों के बीच में विद्वान् लोग बुरे मार्गों और बुरे आचरणों का निषेध करते हुए तेरी समस्त मनुष्य प्रजाओं को उत्तम कार्य में प्रेरित करें। क्योंकि सुखों के वर्षाने-वाले उत्तम धन के सर्वत्र विभाग कर देने में विद्वान् पुरुषों की सर्व-

अभ्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निर्श्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तेरी ही वह अवर्णनीय प्रेरणा और शक्ति सर्वश्रेष्ठ और सर्वत्र व्यापक है, जो कि विद्वान्गण अतिपुरातन सनातन से चले आये अनादिसिद्ध ज्ञान का हमें उपदेश करते हैं। काष्ठ में लगा अग्नि जिस प्रकार लगकर खूब चमकता है और आकाश में जिस प्रकार सूर्य चमका करता है उसी प्रकार व्यापक आत्मा में ज्ञानवान् पुरुष भी शुद्ध ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित हो। जल जिस प्रकार द्वीप को घेर लेते हैं और उसको अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार प्राणगण भीतरी और बाहर दोनों ओर से प्राणों को धारण करने वाले देह को बल और अन्न प्रदान करते और पुष्ट करते हैं।

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम्।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् । सूर्य के समान अन्धकारों और शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस प्रकार अति बल प्रदान करने वाली दक्षिणा के द्वारा दान करने योग्य द्रव्य राशि को यजमान पुरोहित के हाथ सौंपता है उसी प्रकार तू भी सबसे अधिक बलशालिनी 'दक्षिणा' अर्थात् आत्मा को कार्य करने में समर्थ बलवती शक्ति या सेना के द्वारा हम प्रजाजनों को सब ऐश्वर्य देने वाली राज्यलक्ष्मी प्रदान कर। हे राजन् ! जो स्तुतिशील प्रजागण वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् और ज्ञानवान् तुझको चाहती हैं, क्षीर के देने वाले स्तन को जिस प्रकार अन्नों के द्वारा अधिक पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार वे प्रजाएं भी अपने बलों और ऐश्वर्यों से मधुर और शत्रु को कंपाने वाले गर्जनशील तुझ वीर को खूब समृद्ध करें।

त्वे राय॑ इन्द्र तो॒शत॑माः प्रणे॒तारः॒ कस्य॑ चिदृता॒योः ।
ते षु णो॑ म॒रुतो॑ मृळयन्तु॒ ये स्मा॑ पु॒रा गा॑तू॒यन्ती॑व दे॒वाः ॥५॥८॥

भा०—जिस प्रकार दानयोग्य मेघ के जल, जल के इच्छुक किसी भी किसान को खूब प्रसन्न करते और उसको खेत के काम में लगाने वाले होते हैं उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! दानशील पुरुष ! तेरे ऐश्वर्य सत्य और धन की इच्छा करने वाले के लिये अतिसुख देने वाले और उसको उत्तम कार्य में लगाने वाले हों । इसी प्रकार हे आचार्य ! तेरे देने योग्य ज्ञानोपदेश, वेद और सत्य ज्ञान के इच्छुक शिष्य को, उसके अज्ञान को अच्छी प्रकार नाश करने और हृदय को सुखी करने वाले और उसे सन्मार्ग में ले जाने वाले हैं । जो विद्वान् जन, या विद्याभिलाषी जन पहले पृथिवी के समान सबके आश्रयभूत ब्रह्मचर्य, सन्मार्ग और गानयोग्य वेदराशि के अभ्यास की इच्छा करते हैं वे विद्वान् पुरुष हमें खूब सुखी करें । इति अष्टमो वर्गः ॥

प्रति॒ प्र या॑हीन्द्र मी॒ळ्हुषो॒ नॄन्म॒हः पार्थि॑वे॒ सद॑ने यतस्व ।
अध॒ यदे॑षां पृथुबु॒ध्नास॒ एता॑स्ती॒र्थे नार्यः॒ पौंस्या॑नि त॒स्थुः ॥६॥

भा०—हे सेनापते ! तू मेघों के समान तुझ पर शस्त्र वर्षाने वाले प्रतिपक्षी पर प्रयाण कर, उन पर चढ़ाई कर, और बड़े भारी पृथिवी के राज्यसिंहासन के प्राप्त करने के निमित्त यत्न कर । कब कर ? जब कि इन अपने वीर सैनिक पुरुषों के बड़े मूल, आधार वाले, दृढ़ क्षत्रगण, चढ़ा २ प्रयाण करने वाली सेनाएं, स्त्रियां और प्रजाएं, पार पहुंचा देने वाला नाव पर पोत के समान संग्राम सागर से पार उतारने वाले नायक पुरुष के अधीन रहकर नाना बल कर्म करने को तैयार बैठी हैं ।

प्रति॑ घो॒राणा॒मेता॑नाम॒यासां॑ म॒रुतां॑ शृण्व आय॒ताम॑उप॒ब्दिः ।
ये मर्त्यं॑ पृतना॒यन्त॒मूमै॑र्ऋणा॒वानं॒ न प॒तय॑न्त॒ सर्गैः॑ ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार वेग से चलने वाले, गतिशील, और सब तरफ

जाने वाले वायुओं की ध्वनि सुनाई देती है, और जिस प्रकार वे वायु गण अन्न को चाहने वाले मनुष्य को पशु आदि रक्षा साधनों और जल सहित प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार धनी लोग रक्षाकारी पुरुषों य नाना उपयों सहित ऋण वाले पुरुष के प्रति अपने को उसके धन का भी स्वामी बतलाते हैं, उसी प्रकार दुष्टों को भय देने वाले, शुक्ल वर्ण के वस्त्रों वाले, उत्तम कर्म और ज्ञान से सम्पन्न, ज्ञानवान्, सब तरफ जाने वाले, वायु और प्राण के समान सर्वोपकारी परिव्राजकों की उपदेशमयी वाणी बराबर सुनाई दे जो विद्वान् पुरुष अपने रक्षासाधनों से और नाना प्रकार उपायों से सेना और सहायक मनुष्यों को चाहने वाले पुरुष को भी ऋणी पुरुष के समान प्राप्त कर, उसे अपने वशकर, उत्तम उपदेशों से उस पर आधिपत्य प्राप्त करते हैं।

त्वं मानेभ्यः इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आचार्य विद्वन्! तू समस्त ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली, शीघ्र ही दुःखों को रोकने और अज्ञान का नाश करने वाली श्रेष्ठ वाणियों को, मान करने वाले उत्तम शिष्यों के लिये खोल २ कर रख। हे ब्रह्मदान के दातः! तू प्राणों के समान प्रिय स्तुतिशील, विद्या की कामना करने वाले शिष्यजनों से इस प्रकार प्रार्थना किया जाता है कि हम सन्मार्ग में उत्तम प्रेरणा वाले, पापों के निवारक, और जीवन देने वाले अमृत को प्राप्त करें। इति नवमो वर्गः॥

[१७०]

अगस्त्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप्। ४ निचृदनुष्टुप्। ५ भुरिक् पङ्क्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम्।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति॥ १॥

भा०—जो निश्चय से आज नहीं है वह कल भी नहीं। उसको कौन जानता है जो अद्भुत, आश्चर्यजनक या जो कभी हुआ ही नहीं ? जो सब से भिन्न है उस अन्य का ज्ञान करने का साधन चित्त, इधर उधर सञ्चार करता है, इधर उधर सर्वत्र विचलित होता रहता है, वह स्थिर नहीं होता। और अच्छी प्रकार विचार और स्मरण किया हुआ भी विनष्ट हो जाता है। अर्थात् आज, कल परसों आदि काल के भागों में उत्पन्न अनित्य पदार्थों को कोई नहीं जानता। तब जो आत्मा कभी उत्पन्न नहीं हुआ उसके विषय में भी कोई क्या जाने ! वह आत्मा सबसे पृथक् रहने से 'अन्य' है। उसका सकल्प विकल्प साधन चित्त है वह इधर उधर जाता, नाना फल भोग करता, एक स्थान पर नहीं टिकता।

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हम तेरे ही भरण पोषण करने वाले या तेरे द्वारा ही पोषण पाने योग्य, तेरे भाई हैं। तू हमें क्यों मारना चाहता है ? तू उनके साथ उत्तम, साधना द्वारा सबको वश करने वाले व्यवहार से आचरण कर। हमें समास में, एक साथ मिलकर बनी सघशक्ति से जाने योग्य कार्य में मत मार।

किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे।

विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

भा०—हे सबके भरण पोषण करनेहारे ! हे वृक्षादि स्थावर पदार्थों को भी वेग से उखाड़ फेंकने में समर्थ वायु के समान बलशालिन् ! तू हमारा मित्र होकर क्यों हम से अधिक अपने को मानता और हमारा तिरस्कार करता है, जिस प्रकार तेरा चित्त है हम भी उसे प्राप्त करें, जानें तू क्या हमें दान या हमें भी नहीं देना चाहता ? अगस्त्य आत्मा को कह रहे हैं वह सबका भरण पोषणकारी होने से भ्राता है। तृष्णा, क्रोध, तन्द्रा

आदि समान नामों से कहलाने योग्य होने से 'सखा' है। उसके पास 'मनः' मननसामर्थ्य, ज्ञानसामर्थ्य है। वह अपनी ज्ञान शक्ति ही इन्द्रियों को प्रदान करता है।

अरं कृण्वन्तु वेदिं सम॒ग्निमि॑न्धतां पु॒रः।
तत्रा॒मृत॑स्य॒ चेत॑नं य॒ज्ञं ते॑ तनवावहै ॥ ४ ॥

भा०—वेदि को विद्वान् पुरुष सुशोभित करें उत्तम रीति से उसका निर्माण करें। अग्नि को आगे प्रज्वलित करें। वहां अमरणधर्मा नित्य जीव को ज्ञान कराने वाले तुझ परमेश्वर की पूजा, उपासना रूप यज्ञ को हम स्त्री पुरुष मिलकर करें।

त्वमी॑शिषे वसुपते॒ वसू॑नां॒ त्वं मि॒त्राणां॑ मित्रपते॒ धेष्ठः॑।
इन्द्र॒ त्वं म॒रुद्भिः॒ सं व॑दस्वा॒ध प्राशा॑न ऋ॒तुथा॑ ह॒वींषि॑ ॥५॥१०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे सब ऐश्वर्यों और बसने बसाने वाले जीवों और लोकों के पालक! तू ही सब प्राणियो, ऐश्वर्यों और लोकों का स्वामी है। उनको अपने वश कर रहा है। हे मित्रों के पालक! तू सब स्नेह करने वालों का पालन पोषण और धारण करने वाला है। तू प्राणों के समान प्रिय विद्वान् मनुष्यों के साथ उत्तम सवाद कर। और ऋतु अनुसार उत्तम अन्नों का अच्छी प्रकार भोग करा। अधीन रहने वाले शिष्य अन्तेवासी 'वसु' ब्रह्मचारी हैं। उनका आचार्य 'वसुपति' है। वे ही 'मरुत' हैं उनसे संवाद कर उनको विद्योपदेश देवे। ऋतु अनुसार अन्नों और हविष्यों का भोग करे। इति दशमो वर्ग. ॥

[१७१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः १, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप। ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पांक्ति. ॥

प्रति॑ व ए॒ना नम॑सा॒हमे॑मि सू॒क्तेन॑ भिक्षे सुम॒तिं तु॒राणा॑म्।
र॒रा॒णता॑ मरुतो वे॒द्याभि॒र्नि हेळो॑ ध॒त्त वि मु॑चध्व॒मश्वा॑न् ॥ १ ॥

भा०—हे योग्य शिष्यो ! मैं इस नमाने के साधन, विनय को सिखाने वाले उपाय से तुम्हें प्राप्त होता हूं। उत्तम वेद के उपदेश से चचल वृत्ति वाले आप लोगों की उत्तम मति को चाहता हू। आप सब अपना मनोयोग मुझे दें। आप लोग ज्ञान करने योग्य विद्याओं से आनन्द युक्त हुए प्रसन्न चित्त से क्रोध और हृदय के बीच छुपे अनादर और चचलता के भाव को वश में करो। और भोक्ता इन्द्रियों को विशेष रूप से वश करो।

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥

भा०—हे शिष्य जनो ! हे उत्तम विद्या और शुभ गुण, कर्म, उपदेशों की कामना करने वालो ! यह आप लोगों के लिए विनयशीलता से युक्त, विनय से ग्रहण करने योग्य उत्तम उपदेश हृदय से खूब विचार किया गया और मनन द्वारा धारण करने योग्य है। आप लोग मन से इसको ग्रहण करते हुए सब प्रकार से मनसा, वाचा, कर्मणा, मेरे अति निकट आवो। आप लोग ही अन्नों की वृद्धि करने वाले वायुगण के समान गुरुजनों के प्रति विनयशीलता और उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करने हारे हो।

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग स्तुति किये जाकर और गुरुओं द्वारा उत्तम रीति से उपदेश प्राप्त करके हमें सदा सुखी करो। और उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य का स्वामी अति प्रशंसित होकर हमारे लिये अत्यन्त शान्ति और कल्याण का करने वाला हो। हे विद्वान् वीर पुरुषो ! हमारे पास सब दिनों सब से ऊंचे अत्यन्त सुन्दर, सेवने योग्य ऐश्वर्य और जानने योग्य राज्यसुख प्राप्त हों।

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः॥४॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो! इस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष से प्रेरित या भयभीत होता हुआ, और उसी से मैं प्रजाजन भयभीत होकर, कांपता रहता हूँ। इसलिये तुम्हारे लेने योग्य जो तेज धार वाले अस्त्र शस्त्र हैं उनको हम भी अपने पास रखें और आप लोग भी हमें सदा सुखी रखो।

यावन्तः स्त्रीपुरुषा. भवेयुः तावन्त. सर्वे शस्त्राभ्यासं कुर्युः। इति महर्षिदयानन्दः। 'जितने स्त्री पुरुष हों वे सब शस्त्राभ्यास करें' यह भावार्थ इस मन्त्र पर महर्षि ने लिखा है।

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविर. सहोदा.॥५॥

भा०—हे प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे राजन्! सभाध्यक्ष! उषाओं के चमकने पर किरण जिस बल पराक्रम से सबको प्रबुद्ध करती है उसी प्रकार सनातन से चली आयी प्रजाओं की बस्तियों में विचारवान्, ज्ञानवान् और माननीय, उत्तम मार्ग में चलने हारे, या वहां के ही रहने वाले पुरुष प्रजा को शिक्षित और जागृत करें। हे राजन्! वह तू हमें बलवान् तेजस्वी, वीरों और विद्वानों और व्यापारियों से ज्ञान, बल, कीर्त्ति, ऐश्वर्य प्रदान कर। तू स्वयं भी बलवान् तेजस्वी, वृद्ध और स्थिर दृढ़ और शत्रु पराजयकारी बल का देने वाला हो।

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥६॥११॥

भा०—हे राजन्! ऐश्वर्यवन्! तू अति बलवान् और सहनशील मनुष्यों की रक्षा कर। उनको अपने अधीन राजपुरुष बना कर रख। तू राष्ट्रदेह को प्राणों के समान प्रिय और शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों,

विद्वानों और व्यापारी वैश्यों के सहयोग से अपने क्रोध, और अनादर के कारणों को दूर करता रह। उत्तम, शुभ, सुखजनक, ज्ञान वाले तथा ध्वजा चिन्हादि वाले वीरों और विद्वानों के साथ शत्रु को पराजित करता हुआ राष्ट्र का पालन करता रह। और हम प्रजाजन उत्तम अन्नादि समृद्धि शत्रु वर्जन करने योग्य बल और जीवन प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः॥

[१७२]

अगस्त्य ऋषि.॥ मरुतो देवता छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ३ गायत्री॥ तृच सूक्तम्॥

चित्रो वोऽस्तु याम॑श्चित्र ऊती सुदानवः।
मरुतो अहिभानवः॥ १॥

भा०—हे विद्वान और वीर पुरुषो! आप लोगों का जीवन मार्ग, आगमन और प्रयाण भी अद्भुत मान करने योग्य और अन्यों को ज्ञान प्रदान करने और चेताने हारा हो। आप लोग जो उत्तम दानशील, सूर्य के समान तेजस्वी होकर सब की रक्षा करने और ज्ञान देने के लिये हों। (२) देह में—प्राणगणों का आगमन, गति और व्यापन चेतनासञ्चार करने वाला हो। जीवनप्रद होने से वे 'सुदानु' हैं। न मरने वाला अविनाशी आत्मा 'अहि' है। उसके भानु अर्थात् तेज और ओज को धारने वाले प्राण 'अहिभानु' हैं। वे देह की रक्षा के लिये होते हैं।

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः।
आरे अश्मा यमस्यथ॥ २॥

भा०—हे उत्तम दानशील और शत्रु सेना के खण्ड २ करने वाले विद्वन् और राष्ट्र देह के प्राणरूप वीर पुरुषो! आप लोगों की जो द्रुत वेग से आने वाले शत्रुओं को सताप देने, जलाने वाली, हिंसा करने वाली धार या तेज है वह हम से दूर रहे। और वज्र के समान कठोर अस्त्र या दूर तक फेंकने वाला विद्युत् जिसको तुम फेंकते हो वह भी दूर ही रहे।

(२) प्राणों की रोगादिनाशक शक्ति शरीर को साधने वाली होने से 'ऋञ्जती शरु' है। 'अश्मा' भोक्ता आत्मा है जिसको वे धारण करते हैं। वह दोनों प्राप्त हों।

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील पुरुषो ! आप लोग जो तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला अत्याचारी राजा है उसके अधीन प्रजा को उससे बचाओ। हमारे जीवन की रक्षा के लिये हमें ऊंचा करो। (२) अध्यात्म में—वायु से जिस प्रकार तृण हिलता है उसी प्रकार चलने वाला यह देह 'तृण-स्कन्द' है। उसके भीतर प्रविष्ट प्राणगण रोग आदि से बचावें। और उनके दीर्घ जीवन के लिये उनको उत्कृष्ट बलवान् बनावें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१७३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ११ पङ्क्तिः ६, ९, १०, १२ भुरिक् पङ्क्तिः । २,८ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ बृहती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत्।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! जब सूर्य की किरणें अन्तरिक्ष में अपने दिव्य, तेजस्वी निवास या आश्रयस्थान सूर्य को सब तरफ प्रकाशित करदें तब प्रातःकाल के समय तू जिस प्रकार भी चाहे या जिस प्रकार तू जानता हो उसी प्रकार तू अज्ञान के नाश करने वाले या अविनाशी ईश्वर की स्तुति करने वाले साम का गान कर। और सबके बढ़ाने वाले सब सुखों के स्वामी की हम भी स्तुति करें। दुधार गौओं के समान ज्ञानरस देने वाली वेदवाणियां, कभी नाश को न प्राप्त होकर, सबको बढ़ाने वाले उपासना

रन में दिव्य और सबके आश्रय परमेश्वर को सब प्रकार से प्रकट करती है।

अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

भा०—प्रजा पर सुखों का वर्षण करने हारा, शत्रुओं पर शस्त्रों का वर्षण करने हारा, विद्वान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष, अपने चमचमाते शस्त्रों से युक्त बलवान् शस्त्रवर्षी सैनिकों के साथ गमन करे। वह भूखे सिंह के समान खूब बढ़कर उद्यम करे, शत्रु पर सेनाबल को दण्ड के समान उठाकर उससे पीड़ित करे। और वह सबको अन्न, वेतनादि देने वाला, सबका दाता, सबको सत्सगादि कराने वाला, व्यवस्थापक उत्तम मनुष्य, मननशील और शत्रुस्तम्भनकारी पुरुषों के बीच उनकी स्तुति को सुनता हुआ, या उन्हें प्रसन्न करता हुआ अच्छी प्रकार उद्यम करता, और समस्त नर नारियों का अच्छी प्रकार भरण पोषण करता है।

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार होता परिमित उत्तम गणित विज्ञान और शिल्प विज्ञान के नियमों से मापकर बनाये गये गृह में रहता है, और पृथ्वी के गर्भ को धन आदि से पूर्ण कर लेता है, उसी प्रकार किरणों द्वारा जल को लेने हारा सूर्य गमन करता हुआ परिमित स्थानों में व्यापता है, और शरत् अर्थात् वर्ष भर के पृथिवी के मध्य या भीतरी बीजधारक भाग को जल से पूर्ण करता है। जिस प्रकार सवारी को ले जाते हुआ घोड़ा हिनहिनाता है, जिस प्रकार वृषभ हुंकारता है, जिस प्रकार राजसभा में दूत अपना सन्देश निर्णय प्रकट करता है, उसी प्रकार यह विद्युत् गर्जता आकाश और भूमि दोनों को व्यापता है।

ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—विद्वान् और दानशील राजा को स्वयं प्राप्त करने की इच्छा करने वाले पुरुष, इस राजा के हित के लिये, शत्रु को पदच्युत करने वाले शस्त्रास्त्रों का अच्छी प्रकार प्रयोग करते हैं। शस्त्रास्त्र शत्रु पक्ष के हथियारों की अपेक्षा अधिक वेग से फैलने और जाने वाले हों। हम प्रजागण उन यन्त्रों और अस्त्रों को बनावें और तैयार करें। वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, शत्रुनाशकारी तेज और पराक्रम से युक्त उत्तम सुखदायिनी भूमि में सर्वश्रेष्ठ होकर, परस्पर असत्याचरण से न वर्त्तने वाले स्त्री पुरुषों के समान रथ पर विराजमान् होकर, पूर्वोक्त शत्रुनाशक साधनों को करे।

तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥५॥१३॥

भा०—हे विद्वन्! तू उस ऐश्वर्यवान् की ही सदा स्तुति कर जो निश्चय से बड़ा बलवान्, शूरवीर, ऐश्वर्यवान्, रथ या रथसेना पर स्थित, हो, और जो अपने प्रति आने वाले शत्रुओं के साथ सबसे अधिक युद्ध करने वाला, मेघ के समान शस्त्रवर्षी वीरों का स्वामी, और आवरणकारी शत्रुओं का विविध उपायों से नाश करने वाला है। (२) अध्यात्म में—इन्द्र अर्थात् आत्मा सत्वगुण से युक्त होने से 'सत्वा', ऐश्वर्यवान् और पूजायोग्य होने से 'मघवा', देह और ब्रह्माण्डरूप रथ पर स्थित, या रस रूप आनन्द में स्थित होने से 'रथेष्ठा' है। वह बड़े योद्धा के समान आवरणकारी अज्ञान का नाशक है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये नास्मै।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥६॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् अपने महान् सामर्थ्य से सचमुच मनुष्यों के हित के लिये सब कार्य करने में समर्थ है उसके लिये अगल बगल में रहने वाले छोटे मकानों के समान स्वपक्ष और परपक्ष की सेनाएं भी पर्याप्त नहीं है। वह महान् ऐश्वर्यवान् राजा सबको अच्छी प्रकार अपने

वश कर लेता है। और शत्रुवर्जक बल जिस प्रकार बहुत प्रजा की रक्षा करता है उसी प्रकार वह भी बलवान् होकर बहुत से ऐश्वर्य और बड़े राज्य को धारण करता है, और जलमय मेघ जिस प्रकार समीप विद्यमान् अन्तरिक्ष और पृथवी का भरण पोषण करता है उसी प्रकार वह भी अन्न समृद्धि का स्वामी होकर समीप सोने वाली स्त्री या बन्धुजन के समान स्नेहमयी प्रजा को या पृथवी को पालता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से इतना भारी है कि उसके लिये आकाश और भूमि भी समाने को पर्याप्त नहीं है, वह पापनिवारक महान् आत्मा सब में व्यापक है। वही शक्तिमान् होकर पृथिवी को मेघ के समान धारण करता है।

समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः॥ ७॥

भा०—भूमियां जिस प्रकार अन्नों को प्राप्त होकर सूर्य को उदय करके बहुत प्रसन्न होती हैं, उसी प्रकार हे शूरवीर! जो भूमिवासी प्रजाएं अपने ऐश्वर्यों, बलवान् अश्वों और वीरों के साथ अपने प्रेरक, विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष को हर्ष के अवसरों में स्वामी के साथ २ बड़ा हर्ष अनुभव करती हैं वे ही संग्राम के अवसरों में सज्जनों के बल को बढ़ाने वाले सबसे उत्तम मार्ग में चलने वाले तुझको प्रेम और उत्साह से युक्त होकर सब तरफ से सुशोभित करने के लिये तैयार रहते हैं।

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान्॥ ८॥

भा०—हे राजन्! तेरे समस्त ऐश्वर्य तथा यज्ञ यागादि समुद्र या अन्तरिक्ष के जलों के समान निश्चय से सुख और कल्याणकारी होते हैं, जब तेरी दिव्य गुण वाली उत्तम प्रजाएं इन आप्त पुरुषों और प्राणों से अति हर्ष प्राप्त करती हैं। जब तू मननशील विद्वान् पुरुषों को उत्तम आदर

की मधुर वाणी भी अनुकूल होकर सेवन करने योग्य हो जाती है।

असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार अग्रणी पुरुषों के उत्तम उपदेशों से लोग अपनी उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने में सफल होते हैं, उसी प्रकार हे पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त करने कराने हारे नायक विद्वान्! हम लोग उत्तम उपदेशों से ही सुखदायी कामनाओं को प्राप्त होकर, उत्तम रीति से उत्तम मित्रभाव से सखा होकर रहें। ऐश्वर्यवान् पुरुष जिस प्रकार सत्कार पूजा और स्तुति में दत्तचित्त होकर उत्तम स्तुत्य पदार्थ प्रदान करता है, उसी प्रकार वह ऐश्वर्यवान् प्रभु जैसे भीतर वैसे हमारे स्तुति प्रार्थना और उपासना के भीतर विद्यमान रहे। जिस प्रकार वेगवान् रथ या पुरुष हर काम फुर्ती से कर लेता है उसी प्रकार शीघ्र फलप्रद परमेश्वर उत्तम २ वेदोपदेशों को प्राप्त कराता रहे।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः॥१०।१४।

भा०—जिस प्रकार उत्तम मार्ग के नायक पुरुषों के उपदेशों से, मनुष्य परस्पर स्पर्धा या द्वेष संघर्ष को छोड़कर प्रेमी हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे बीच शासन को अपने हाथ में सभालने वाला बलवान्, पराक्रमी, न्यायशील राजा रहे। हम लोग कलहहीन होकर परस्पर प्रेम से रहें। धर्मविरुद्ध स्पर्द्धा न करें जिस प्रकार मित्रता चाहने वाले और मध्यस्थ होने के इच्छुक राजागण, उत्तम शासन में रहकर, पुर या नगर के स्वामी राजा को भेंट पुरस्कार देते हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर! तू ज्ञान वज्र से अज्ञान दूर करने हारा होकर हमारा ही होकर रह, और उत्तम पुरुषों की शिक्षाओं से हम भी मानो द्वेष रहित होकर, मित्रों के इच्छुक और मध्यस्थ पुरुषों

के इच्छुक होकर, उत्तम उपासना और सत्सगों द्वारा इस देहपुरी के पालक आत्मा की शिक्षा करते, उसकी साधना करते हैं।

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११॥

भा०—कोई ही परस्पर सगति योग्य या दानशील राजधर्म निश्चय से ऐश्वर्यवान् राजा को समृद्ध कर देता है। और कोई दूसरा चित्त से कुटिलता करता हुआ इधर उधर भटक जाता है। जिस प्रकार कोई स्थान घाट मे पियासे को भी भली प्रकार उसे प्राप्त होकर उसकी प्यास बुझा देता है, और जैसे कोई २ लम्बा रास्ता भी जाने वाले पथिक को इधर उधर कर देता है। इसी प्रकार कोई आत्मा या परमेश्वर की उपासना का साधन इन्द्र को बढ़ा देता अर्थात् इन्द्र के समृद्ध रूप को प्रकट कर देता है और मन से कुटिल सदा इधर उधर भटकता है।

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू हमारा नीचे गिराने हारा कर्त्ता न हो। प्रत्युत इस जगत् मे सेनाओं और सग्रामों के बीच मे तेरा शत्रुओं और पापों को दूर करने वाला वज्र या सामर्थ्य विजयाकांक्षी सैनिकों के साथ रक्षा ही करता है। जिस महान् वीर्यवान् तेरी शत्रु को दूर कर देने वाली वाणी, वेतन पुरस्कार आदि पाने वाले वीर भटों की प्रशंसा करती है वह तू हमें कभी सकट में न डाल।

एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आ नोऽववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३॥१५॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! हमारा यह बल, स्तुति और स्तुतिवचन तेरे हित के लिये है। इससे तू हमारे लिये पृथिवी, और सन्मार्ग को प्राप्त करा। हे अश्वसैन्य के स्वामिन्! हे दिव्यप्रकाश राजन्! तू अपने ऐश्वर्य

की वृद्धि, रक्षा और उत्तम प्रयाण के लिये हमें सब तरफ भेज। और हम सर्वत्र अन्न, बल और जीवन या आजीविका देने वाले उपाय को प्राप्त करें। इति पञ्चदशो वर्गः।

[१७४]

अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—निचृत्पङ्क्तिः। २, ३, ६, ८, १० भुरिक् पङ्क्तिः। दशर्चं सूक्तम्॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः॥ १॥

भा०—हे परम ऐश्वर्य युक्त! तू राजा है। तू मनुष्यों और उत्तम नायक लोगों और जो दानशील धनाढ्य और विद्यादाता विद्वान् हैं उनकी रक्षा कर। हे बलवन्! तू हम प्रजाजनों का पालन कर। तू हमारा उत्तम वेदमय सत्यज्ञान का पालक और ऐश्वर्यवान् है। तू हमें दुःखों से तारने वाला, सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ, सब धनों को ला देने वाला एवं वसी प्रजाओं को अपनी छत्रछाया में रखने वाला और बल प्रदान करने वाला है।

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त्।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः॥ २॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू दानशील प्रजाओं को अति कोमल वाणी बोलने वाला कर। वे धनादि के मद में परुष भाषण न किया करें। जिस प्रकार सूर्य वर्ष की सातों ऋतुओं को खण्ड २ करता और मेघों द्वारा जल प्रदान करता है, और संयोग विभाग करने में समर्थ बहुत से वज्रों से या विद्युत् से युक्त वायु के लिये जल या मेघ को छिन्न भिन्न करता है, उसी प्रकार जब तू सात प्रकार की शत्रुओं की हिंसाकारिणी पुरियों का नाश करे तब हे अनिन्दनीय! तू जलों के समान ऐश्वर्यों को प्रदान कर, और बहुत से शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र के युवकगण के प्रोत्साहन के लिये नगर के घेरने वाले शत्रुओं का विनाश कर।

अज्ञा वृतं इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम्।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुहन्तः राजन् ! तू वश जाकर शूर पति वाली सेनाओं की ओर तुझे अपने मन से चाहने वाली इस पृथिवी को सञ्चालित कर। बहुतों से स्मरण करने योग्य ! वीर पुरुषों के साथ तू अन्यों को पीडा न देने वाले, शीघ्रगामी रथों के स्वामी अग्रणी को अवश्य सुरक्षित रख। जिससे वह सब कर्मों और राष्ट्र के कार्यों पर रहने के लिए और उच्छृंखलों पर दमन करने के लिये सिंह के समान निर्भय रहकर राष्ट्र की रक्षा करे।

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! एक ही समान से तेरे वज्र की गर्जना ध्वनि के महान् सामर्थ्य से तेरे शत्रुगण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। यह सब तेरा ख्याति के लिये ही है। राजा जब अपने सैनिकदलों को अपने अधीन वश कर लेता है तब युद्ध द्वारा आज्ञावाणियों को प्रकट करता या भूमियों को अपने अधीन कर लेता है, और वेगवान् दो अश्वों से युक्त रथ में बैठकर, शत्रुपराजयकारी बल से ऐश्वर्यों और सम्मानों पर विजय प्राप्त करता है।

वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥५॥१६॥

भा०—हे शत्रुनाशक सेनापते ! वायु के वेग से जाने वाले, सरल गति वाले, सुसम्बद्ध दोनों अश्वों को, और शत्रु के सैन्यों को काट गिराने वाले [illegible] बल को, जिस पर तू चाहे उस पर चला है, उस पर सेना-बल और अश्वबल से चढ़ाई कर। तू सूर्य के समान तेजस्वी होकर अपने समीप अपने राज्यचक्र को खूब चला और उसका भार अपने ऊपर अच्छी

प्रकार ले। तब शस्त्रबल को हाथ मे लेकर स्पर्धालु शत्रुओं पर आक्रमण कर। (२) अध्यात्म में—दो अश्व प्राण अपान हैं जो वात अर्थात् मुख्य प्राण के दो रूप हैं। इन्द्र आत्मा है। वह जिस पर भी चाहे अपनी स्तुतिकारी वाणी का प्रयोग और प्राणापान का बल रोककर करे। वह आत्मा मुख्य 'चक्र' सहस्रदल को पहुँचे और ज्ञान के वज्र को हाथों में लेकर बाधक वृत्तियों पर विजय करे। इति षोडशो वर्गः॥

उ॒रु॒न्वाँ इ॑न्द्र मि॒त्रेरू॑न्चो॒दप्र॑वृद्धो हरिवो॒ अदा॑शून्।
प्र ये॒ पश्य॑न्नर्य॒मणं॒ सचा॒योस्त्वया॑ शू॒र्ता वह॑माना॒ अप॑त्यम्॥ ६॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों के नाशक सेनापते! तू चोदना अर्थात् वेदाज्ञा के बल से बढ़ी हुई शक्ति से युक्त, सबसे बड़ा आदरणीय होकर, अदानशील लोभी, तथा मित्रघाती को दण्ड देने वाला है। जो लोग तुझ न्यायकारी को अच्छी प्रकार जान लेते हैं वे जब मनुष्यों की सन्तानों को हरते हुए पकड़े जावें तो वे धूर्त लोग एक साथ समवाय बल से तेरे द्वारा दण्डित किये जाया करें।

रप॑त्क॒विरि॑न्द्रा॒र्कसा॑तौ॒ क्षां दा॒सायो॑प॒बर्ह॑णीं कः।
कर॑त्ति॒स्रो म॒घवा॒ दानु॑चित्रा॒ नि दु॑र्यो॒णे कुय॑वाचं मृ॒धि श्रे॑त्॥७॥

भा०—क्रान्तदर्शी पुरुष उत्तम अन्न को प्राप्त करने के निमित्त भृत्यवर्ग के लिये निवास करने की भूमि का उपदेश करे। वह पृथिवी को खूब ऐश्वर्य बढ़ाने वाली बनावे। ऐश्वर्यवान् पुरुष ही तीनों प्रकार की पर्वतमय, सम, और जलमयी स्थली, अथवा उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों को उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और सुखप्रद पदार्थों से अद्भुत रूप से पूर्ण करे। और वही दुःखदायी रणांगण में कुत्सित वाणी के बोलने वाले को खूब मारे।

स॒ना ता त॑ इन्द्र॒ नव्या॒ आगुः॒ सहो॒ नभोऽवि॑रणाय पू॒र्वीः।
भि॒नत्पुरो॒ न भिदो॒ अदे॑वीर्न॒नमो॒ वध॒रदे॑वस्य पी॒योः॥ ८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! नये विद्वान् लोग तुझे उन अनेकानेक तथा सनातन से चले आये प्रजापालनकारी धर्मों का उपदेश करें। तू पहले की शत्रुसेनाओं को विशेष युद्धादि के न करने के लिये पराजित कर। तू शत्रु की नगरियों को तोड़ डाल, और कर न देने वाले, तथा कूट चालने वाले द्रोही लोगों को निरन्तर नमा। और राजा को न स्वीकार करने वाले हिंसक पुरुष का हनन कर उसे दण्ड दे।

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू शत्रु को कंपा देने हारा हो। तू शत्रु को कंपा देने वाले नायकों वाली प्रजाओं को बहती नदियों या देह में बहती नाड़ियों के समान प्रवाह में सञ्चालित कर। जो तू हे शूरवीर ! समुद्र को भी अतिक्रमण करके अपनी प्रजा और सेना के पालन करने में समर्थ है इसलिये तू शीघ्रता से जाने वाले अपने अधीन मनुष्य को, और यत्नशील पुरुषों को सुख से समुद्र के भी पार कर, सफटों से पार उतार।

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १०॥१७

भा०—हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! तू हमारे में से सब प्रकार से सबसे अधिक ईमानदार, दयालु, चौर्यवृत्ति से रहित, और समस्त नायक पुरुषों में से सबसे उत्तम, मनुष्यों का पालक होकर रह। वह तू हमारी समस्त [illegible] और [illegible] सेनाओं के बीच में शत्रुविजयकारी बल को [illegible] हो। जिससे हम लोग अभिमत पदार्थ, शत्रुवर्जक बल और [illegible] सामर्थ्य प्राप्त करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१७५]

[illegible]

[illegible]

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पात्र में रखा हुआ आनन्ददायक ओषधियों का सार देह में हर्ष का सञ्चार और तृप्ति करने वाला होता है और वह मनुष्यों द्वारा पान किया जाता है, इसी प्रकार तुझ प्रजा के पालक का दमनकारी सामर्थ्य महान् है, और सबको हर्ष देने वाला होता है, जिसमें तू अति हर्षयुक्त रहता है। तथा जो प्रजाओं द्वारा पालन किया जाता है, हे अश्वसैन्य के स्वामिन् ! हे प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले ! तेरा अति बलवान्, प्रजावर्ण या शासक वर्ग, चन्द्र के समान आल्हादकारी और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला, और सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाला, सहस्रों को ऐश्वर्य विभक्त करने वाला हो।

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरा हर्षकारी तथा दमनकारी शासकवर्ग नायक रूप से स्वीकार करने योग्य तथा बलवान् होकर हमें प्राप्त हो ! हे इन्द्र ! तू या वह शासकवर्ग शत्रुपराजयकारी बल वाला, ऐश्वर्य का सर्वत्र विभाग करने वाला, शत्रु सेनाओं और प्रजा के मनुष्यों को दबाने हारा कभी नहीं मरता।

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तू निश्चय से शूरवीर है। तू सैन्य को व्यूहों में, ऐश्वर्य को प्रजाओं में यथोचित रूप से विभाग करने हारा होकर पैदल योद्धा पुरुषों को और रथसैन्य को भी सञ्चालित कर। तू ही बलवान् होकर व्रत अर्थात् उत्तम कर्मों से हीन प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुषों को अपने तेज से, हंडिया को आग के समान, संतप्त करे।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

भा०—हे क्रान्तदर्शिन् ! तू सबका स्वामी है। तू अपने बल पराक्रम से सूर्य के समान समृद्धियुक्त, बलवान्, अन्धकारनाशक, राज्यचक्र, बलचक्र, मण्डल तथा शस्त्रबल को अप्रत्यक्ष रूप में धारण कर। और वायु के समान बलवान् सैन्य के तीव्र घुड़सवारों के द्वारा प्रजा के रक्त-शोषण करने वाले आतङ्ककारी दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये उनको काट २ कर नाश कर देने वाले वध अर्थात् शस्त्रबल और राजदण्ड को धारण कर।

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! दमन का सामर्थ्य, राज्य प्रबन्ध निग्रह में अति अधिक बलशाली, और तेरा कर्म और ज्ञान का सामर्थ्य भी सबसे अधिक यश, अन्न और तेज से युक्त है। बढ़ते हुए और नगर को घेरने वाले दुष्ट शत्रु का नाश करने और धनैश्वर्य प्राप्त कराने वाले इन्हीं दमनसामर्थ्य से तू समस्त ऐश्वर्य को राष्ट्र के भिन्न २ भागों में विभक्त करता हुआ सबको अच्छा प्रकार जान।

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार प्यासे को जल अति सुखदायी होते हैं, उसी प्रकार पूर्ण विद्वान् विद्योपदेष्टाओं के लिये तू भी अनन्त सुख कल्याणकारी के समान यथावत् हुआ कर। तुझे लक्ष्य करके मैं उस नित्य वेद विद्या का प्रदान करता हूं। जिससे हम सब अन्न, प्रेरणा, उत्तम शिक्षा, पापनिवारक बल, और जीवन प्राप्त करें।
इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१७६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप्
३ विराडनुष्टुप् । ५ भुरिगुष्णिक् । त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

मत्सि नो वस्यंइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विंश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये प्रजा-जनों को आनन्दित कर । मेघ के समान दयालु एवं बैल के समान बलवान् होकर ऐश्वर्य का प्रदान कर, या ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में प्रवेश कर । तू शत्रुओं का हनन और अपनी वृद्धि करता हुआ खूब राज्य बढ़ा । और समीप में कहीं भी शत्रु को प्राप्त न कर ।

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! जो एक अद्वितीय देखने वालों के बीच सर्वद्रष्टा है, तू उसको लक्ष्य करके अपनी स्तुति वाणियों का प्रयोग कर । जिसको लक्ष्य करके स्तुति करने से, हल खेंचने वाले बैल के प्रयत्न के अनन्तर या मेघ के वर्षण के बाद खेत में अन्न के समान, आत्मा में अमृत बीज बोया जाता और उत्पन्न होता है, वह समस्त सुखों का वर्षक, मेघ के समान और बलवान् बलीवर्द के समान आत्मा या अन्तःकरण रूप क्षेत्र में, खेत में जौ के समान, दुःखों से छुड़ा देने हारे ज्ञानरूप अन्न की कृषि करता कराता है । वह भवबन्धन काटने के साधन ब्रह्मज्ञान को उत्पन्न करता है ।

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

भा०—जिसके हाथों में पांचों राष्ट्रवासी प्रजाजनों के सब प्रकार के

धन और समस्त जन हैं, वह तू जो हम से द्रोह करे उस दुष्ट पुरुष को, आकाश की बिजली के समान पीडित कर और दण्डित कर।

पञ्च क्षितयः—पांच प्रकार के प्रजाजन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निषाद, अथवा देव, मनुष्य, पितृ पशु और पक्षीगण। (२) अध्यात्म में—पांचों क्षिति, पञ्च प्राण। 'द्युम्' = सचिद् आदि विभूति। अस्मध्रुग् = अज्ञान।

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।

अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

भा०—यज्ञ न करने हारे, बडी कठिनता से नष्ट होने वाले उस दुष्ट पुरुष का नाश कर, जो तुझे सुखकारक नहीं होता। हमें उसका धन प्रदान कर। सूर्य के समान विद्वान् पुरुष ही उस धन को प्राप्त करे।

आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत्।

आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

भा०—विद्या और पुरुषार्थ या राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों से बढ़ने वाले जिसकी अर्चा के प्राप्ति कार्य में सदा अनुकूलता रहती है, हे ऐश्वर्य-वन्! तू उसकी रक्षा कर। तू संग्राम के लिये ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये बलवान्, वेगवान् सैन्य या पुरुष की अच्छी प्रकार रक्षा कर।

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो (सू० १७५, मन्त्र ६) इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१७७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—४ धैवतः। ५ पञ्चमः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥१॥

भा०—मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला, मेघ के समान सबको विद्या और ऐश्वर्यों का देने वाला, सब मनुष्यों का राजा सब प्रजाओं के बीच में सबसे सत्कार करने योग्य पुरुष ही 'इन्द्र' है, वह प्राप्त हो। हे राजन्! तू प्रशंसित होकर, यश और धन का अभिलाषी होकर, अपने रक्षणसामर्थ्य से समस्त कामनाओं को प्राप्त कराने और स्वयं करने वाला घोड़ों को जोड़कर हमारे समीप आ।

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् सेनापते! जो तेरे बलवान् प्रजाओं में श्रेष्ठ और प्रजा और शत्रुओं पर मेघों के समान सुखों और शस्त्रों की वर्षा करने वाले दानवीर और युद्धवीर, महान् ऐश्वर्य और अन्न से युक्त और उच्च उत्तम पदों पर नियुक्त, बैलगाड़ियों या बलवान् अश्वों से युक्त रथों पर सवार, वेग से गमन करने वाले हों, हे राजन्! तू उन पर शासक होकर विराज। उनके साथ ही सबके समक्ष प्रकट हो। अभिषेक द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त होने पर तुझे बुलाते हैं।

आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३॥

भा०—हे राजन्! तू बलवान् रथ और रथसैन्य को अपने अधीन रख, उस पर नायक बन कर रह। तेरे ही कार्य के लिये बलवान् तथा सबको ठीक २ प्रेरने और सञ्चालन करने वाला अभिषिक्त पुरुष सेनानायक हो। जिस प्रकार अभिषेक काल में जलों का परिषेचन किया जाता है उसी प्रकार शत्रु को व्यथित और सतप्त करने वाले नाना सैन्यांग

भी खूब परिपुष्ट हो। हे नरश्रेष्ठ! तू इसे प्राप्त होकर बलवान् अश्वों से या अश्वसैन्य के दो दलों से बलवान् रथ और पूर्वोक्त रथ-सैन्य को जोड़-कर, अश्व सैन्यों से रथ-सैन्य को सुरक्षित करके बड़े वेग से प्रयाण कर। (२) अध्यात्म में—बलवान 'रथ' देह है। 'सोम' वीर्य है। रक्तादि रस 'मधु' है। प्राण और अपान दो 'हरि' हैं। वह चित्तभूमियों के विजय के लिये आत्मवशी होकर प्रस्थान करता है।

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह॥४॥

भा०—यह 'यज्ञ' अर्थात् सबका उचित आदर सत्कार, सज्जनों का सत्संग और उत्तम व्यवस्था करने हारा राजा और राज्य, दिव्य गुण प्राप्त कराने हारा है। यह शस्त्रादि फेंकने योग्य आयुधों से अति प्रदीप्त होने वाला सेनापति है। ये नाना धनैश्वर्य हैं। हे शत्रुहन्त! यह महान् ऐश्वर्य, या उत्तम ओषधि रस या सबको सन्मार्ग में चलाने हारा शासन-वर्ग है। यह राज्यवृद्धि करने वाला प्रजाजन दूर तक फैला हुआ अथवा बिछा हुआ उत्तम आसनवत् है। हे शक्तिशालिन्! तू इस पर विराज कर आगे बढ़ और अच्छी प्रकार इसका पालन कर और उपभोग कर। इसी राष्ट्र में रथ के दो अश्वों के समान राष्ट्र को वहन करने वाले, योग्य कार्यसञ्चालक सेनापति और न्यायाधीश दोनों को निज २ क्षेत्र में मुक्त कर, उनको स्वतन्त्रता से कार्य करने दे। (२) नाना सत्कारोपकार होने से 'यज्ञ' है। विद्वानों द्वारा या प्राणों से संगत होने से 'देवता' है। प्राणगणों से शरीर को धारण करने या अति पवित्र होने से वह 'मियेध्य' है। अन्न 'ब्रह्म' है। उत्पन्न 'सोम' वीर्य है। अन्न से बनने हारा शरीर 'बर्हि' है। शक्तिमान् आत्मा उसका उपभोग करता है।

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥५॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू उत्तम रीति से स्तुति को प्राप्त होकर, वेदज्ञानों को विद्वान् के समान, ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हम लोग मान करने योग्य कार्यकर्त्ता, शिल्पी के ज्ञान और रक्षा साधन से सुरक्षित रहकर, उत्तम विद्याओं का उपदेश करते हुए, प्रतिदिन उत्तम ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करें। और अन्न, बल और जीवन भी प्राप्त करें। इति विंशो वर्गः॥

[१७८]

अगस्त्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पङ्क्तिः। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। २ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् आचार्य! तेरी जो वह प्रसिद्ध श्रवण करने योग्य ख्याति है, जिस से तू विद्वान् उपदेष्टा और स्तुतिशील प्रजाजनों की रक्षा करने में समर्थ होता है, उसी ख्याति से तू हमारे कामना करने योग्य, हमें उत्तम बना देने वाले मनोरथ को भस्म मत कर। मैं तेरी मनुष्यों के योग्य समस्त प्राप्त सम्पत्तियों को सब प्रकार से प्राप्त करूं। (२) हे इन्द्र परमेश्वर जो तेरी श्रुति वेद है जिससे तू विद्वानों को ज्ञान देता है, उससे हमारे मनोरथ को विफल न कर।

न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च॥२॥

भा०—राजा सूर्य और विद्युत् के समान तेजस्वी होकर भी हम प्रजाओं को पीड़ित न करें, जो प्रजाएं कि उसकी बहनों के समान उसकी बन्धु होकर वा उसकी शरण में स्वयं आकर एक ही स्थान या देश में नाना कार्य व्यवहार करती हैं, तथा जो इस राजा के हित के लिये प्राणों के समान प्रिय होकर, उत्तम सुख भोग देने हारी होकर देश भर में

फैलकर रहती है। वह ऐश्वर्यवान् पुरुष, देह में आत्मा और घर में पति के समान, हमारे प्रति मित्र भाव से हमें अन्न और बल आदि प्रदान करे। (२) अध्यात्म में 'योनि' देह है। प्राणगण स्वयं अनायास वा आत्मा के बल से चलने वाले होने से 'स्वसा' हैं। वे ही आपोमय होने से 'आपः' हैं। उत्तम देह पालक होने से 'सुतुक' हैं।

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥

भा०—शरण याचना करने वाले कार्यकर्त्ता जनों के वचनों का सुनने वाला, संग्रामों में शूरवीर, शत्रुहन्ता राजा, अपने नायकों सहित विजय करने वाला होकर जब भी अपने सामर्थ्य से करप्रद राष्ट्र के समीप उत्तम आज्ञाओं को उठा देने में समर्थ होता है, तभी वह रथसैन्य को लेकर शत्रु पर प्रहार करने वाला भी हो।

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥

भा०—शत्रुहन्ता राजा अपने नायकों के साथ मिलकर उत्तम यश प्राप्त करने की इच्छा से, अपने मित्र राष्ट्र के अन्न को खा जाने वाले शत्रुओं को पराजित करे। अथवा पराजित करने में समर्थ हो। वह कर देने वाले राष्ट्र का उत्तम उपदेश के समान शासक होकर, सत्य २ न्याययुक्त आचरण करने वाला न्यायाधीश होकर, एक दूसरे के विरुद्ध वादप्रतिवादों की वाणियों से युक्त संग्राम अर्थात् परस्पर विवाद या कलह के अवसर में, उत्तम जनों के समान प्राप्त बातों की ही स्तुति करे, उनका निर्णय रूप से प्रस्तुत करे, अप्राप्त बातों को नहीं। अर्थात् वायु जिस प्रकार तुष को दूर फेंक कर अन्नों को ग्रहण करता है उसी प्रकार विवाद में न्यायाधीश प्राप्त सत्य को ले लेवें, असत्यों को नहीं।

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान्।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥२३॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! हे उत्तम पूज्य धनाध्यक्ष ! तेरे सहाय से हम बड़े २ अभिमान करने वाले शत्रुओं को भी पराजित करें। तू हमारा रक्षक हो, और तू ही हमारी वृद्धि के लिये हो। हम प्रजागण अन्न और शत्रु को पराङ्मुख कर देने वाला बल और जीवन प्राप्त करें। एकविंशो वर्गः ॥

[१७९]

लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषी ॥ दम्पती देवता ॥ छन्द —१, ४ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ५ निचृद्बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१॥

भा०—दिन रात और आयु को निरन्तर न्यून २ करने जाने वाले उषाकालों में भी प्रतिदिन निरन्तर श्रमशील होकर गृहकार्य करती और करता हुआ मैं गृहपत्नी और गृहपति, अपनी आयु के पूर्व के वर्ष व्यतीत करें, बाद में वृद्धावस्था देहों के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है। इसलिये ही वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष अपने यौवन काल में ही अपनी धर्म पत्नियों को प्राप्त करें।

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

भा०—जो भी पूर्ण विद्यावान्, सत्यज्ञान को समान रूप से प्राप्त करने हारे हों वे ज्ञानप्रदान करने वाले उत्तम विद्वानों के साथ मिलकर सत्यज्ञानों की चर्चा करें। वे भी अपना देह गिरा देते हैं, और जीवन का परम प्राप्य फल नहीं प्राप्त करते, इसलिये हे स्त्री पुरुषो ! जब बड़े २ ब्रह्मचारियों तक के देह अस्थिर हैं और वे भी अपने छोटे जीवन में अपना उद्देश्य नहीं प्राप्त कर सके तो फिर गृहस्थियों को अपने गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिये विलम्ब न करना चाहिये,

अवश्य गृहस्थ का पालन करने में समर्थ स्त्रियां यौवन काल में ही वीर्यसेचन में समर्थ पुरुषों के साथ संगति लाभ करें और उत्तम सन्तान प्राप्त करें।

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

भा०—क्योंकि विद्वान् पुरुष भी बिना उद्देश्य के श्रम करने वाले की रक्षा नहीं करते। इसलिये हे प्रियतम ! हे प्रियतमे ! हम दोनों मिलकर अपने से स्पर्धा या संघर्ष करने वालों का मुकाबला करें। हम गृहस्थ में रहकर शतवर्षों में व्यतीत करने योग्य जीवनरूप संग्राम को परस्पर मिलकर विजय करें। और एक दूसरे को अच्छी प्रकार प्राप्त करते और एक दूसरे का अच्छी प्रकार आदर करते हुए दोनों पति पत्नी एक दूसरे को प्राप्त करें, गृहस्थ कार्य निबाहें।

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

भा०—रुके हुए नद अर्थात् नाले का जिस प्रकार बल या वेग बढ़ जाता है उसी प्रकार वीर्य का निरोध करनेहारे विद्याध्ययनशील ब्रह्मचारी का काम, गृहस्थ करने का संकल्प युक्त स्त्री वा पुरुष को भी प्राप्त होता है। वह इस शरीर के स्वाभाविक कारण से और अन्य बाह्य कारणों से और अन्य भी किसी अवर्णनीय परस्पर प्रेम आदि कारण से भी प्रकट हो जाता है। ऐसी दशा में स्त्री अपनी संकोच मुद्रा का लोप कर अभिरक्षा करके वीर्यसेचन में समर्थ युवा पुरुष को सब प्रकार से प्राप्त होती है। वह भी अधीर सी होकर वेगवान् और गम्भीर प्राण होने वाले पुरुष को धारण करे, उसका उपभोग करे।

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

भा०—मैं स्त्री चन्द्र के समान आल्हादजनक, उत्तम सन्तान के प्रसव करने में समर्थ पुरुष को, अति निकटतम हृदय की गहरी तहों में मानो रसवत् पिये हुए के समान ही कहूं, जानूं और अनुभव करूं। हम स्त्रीजन जो भी परस्पर का अपराध करें उसको बहुत सी कामनाओं वाला मनुष्य दूर करके हमें सुखी करे।

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥२२॥

भा०—खोदने के साधन कुदाल, हल आदि से खेत को खोदता हुआ किसान या माली जिस प्रकार क्षेत्र से उत्तम फल प्राप्त करता है उसी प्रकार सैकड़ों दुर्गम अविचल संकटों को दूर फेंक देने में समर्थ, अथवा अप्रिय, कुवचनादि अपराधों को दूर करने वाला, क्षमाशील पुरुष, अव-दारण अर्थात् भेदन करने वाले, संकटों को तोडने वाले उपायों से खनन करता हुआ, विघ्नों को दूर करता हुआ, उत्तम प्रजा, उत्तम पुत्र, और बल को प्राप्त कराना चाहता हुआ, ऋषि के समान एक दूसरे के वरण वाले वर वधू दोनों को पुष्ट करता है, और ज्ञान धन के देने वाले उत्तम और विद्वानों के आश्रय पर ही सच्ची २ आशाओं और कामनाओं को प्राप्त करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१८०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ७ निचृत् २, ५, ३, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्। २, ६ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत्।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! जब तुम दोनों का वेगवान् रथ जलपूर्ण समुद्रों और रमण करने योग्य उत्तम २ स्थल प्रदेशों को, और मनोरञ्जन

करने वाले स्थानों को जावे, तो दोनों के घोड़े भी उत्तम रीति से वश किये हुए होने चाहियें । लोहे की बनी चक्रधाराएं जिस प्रकार मार्ग को काटती हुई जाती हैं उसी प्रकार तुम दोनों के पवित्र आचार परस्पर के हितकारी और रमणीय होकर एक दूसरे को पुष्ट करें और सब संकटों को काटें । तुम दोनों जल के समान मधुर २ जीवन के आनन्द रसों का आस्वाद लेते हुए सब दिनों का उत्तम सेवन किया करो ।

युवमत्यस्यावं नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥

भा०—तुम दोनों विविध विज्ञानों से युक्त, सब मनुष्यों में श्रेष्ठ, सत्संगति करने योग्य, अश्व के समान भ्रमणशील परिव्राजक के समीप बड़े विनय से जाया करो । और हे सब प्रकार के उद्यम करने में लगे हुए स्त्री पुरुषो ! और हे भारी भौंरों के समान मधुवत् मधुर ज्ञान, अन्न, जलादि पदार्थों का उपयोग और संग्रह करने हारे स्त्री पुरुषो ! जो भी विद्वान् तुम्हारे पास स्वयं प्रेम से आकर भाई या बहिन के समान तुम दोनों को, ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के सम्पादन करने के लिये अधिक पुष्ट, बलिष्ठ बनाता है, और उत्तम अन्न के उपयोग के लिये तुम्हें उपदेश करता है, तुम उसको विनय से प्राप्त होओ, उसका सदा आदर सत्कार करो ।

युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥

भा०—जब सूर्य के ताप और प्रकाश के समान शुद्ध अन्तःकरण वाला और उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सत्यज्ञान को प्राप्त करने के अभिलाषी आप दोनों के भीतर ज्ञान का प्रदान करे, तब तुम दोनों हे स्त्री पुरुषो ! [illegible] अनुभव करो । स्वयं ज्योति की तरफ आने वाली अपनी बुद्धि में [illegible] अनादि काल से प्राप्त जो एक सारभूत ज्ञान है उसको धारण करो ।

युवं हं घर्मं मधुमन्तुमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नराश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने और सब प्रकार के अन्न प्राप्त करने के लिये, तथा तीनों दुःखों से रहित होने और देह के भोजनादि भोग प्राप्त करने के लिये, अन्न सहित घृत को प्राप्त करो, बाधक कारणों को समूल उखाड देने वाले कर्मों और ज्ञानों को प्राप्त करो। हे नर नारियो ! आप दोनों को सम्यगदर्शन करने वाले विद्वान् का सत्संग, और मधुर अन्नादि पदार्थों को प्राप्ति रथ के चक्रों के समान परस्पर एक साथ और एक मार्ग पर चलने पर, स्वमेव प्राप्त होवे।

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्रयो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥२३

भा०—जिस प्रकार शत्रुबलों का नाश करने में श्रेष्ठ विजयशील पुरुष, पृथ्वी के भार को अपने ऊपर धारण करने से, नाशकारी शत्रुओं के खण्डन करने के लिये प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! प्रतिग्रह करने योग्य पात्रों में उत्तम, तथा विद्यावृद्ध मैं वाणी के ऊहापोह द्वारा, तुमको सब प्रकार का उत्तम ज्ञान देने के लिये, दुःखों के नाशक तुम दोनों को प्राप्त होता हूँ। और जिस प्रकार जल नदी आदि पृथ्वी में ही आश्रय पाते हैं इसी प्रकार आप्तजन, आप दोनों की महानुभावता से, सूर्य और पृथिवी के समान स्तुति के योग्य आप दोनों को प्राप्त हों, और सब तत्वों का द्रष्टा विद्वान्, ज्ञान और वयस् में वृद्ध, परस्पर संगत और दानशील और यज्ञशील आप दोनों को पाप से परे रखे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों भृत्यों को नियुक्त करते हो। तब तुम दोनों उत्तम दानशील और विघ्नों के नाश करने में चतुर होकर, अपने प्रजाधारण के सामर्थ्यों से, उत्तम पुत्र के धारण योग्य सामर्थ्य को उत्पन्न करते हो। उस समय वह तेजस्वी विद्वान् वायु के समान सबका जीवनप्रद होकर सबको उत्तम मार्ग में चलावे, और सर्वत्र सुख सौभाग्य द्वारा व्यापे। और वह उत्तम कर्मसम्पादन करता हुआ प्रयोजन के लिये बल को अपने हाथ में लेवे।

वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान्।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ७

भा०—हे ऐश्वर्यों के भोग करने वाले स्त्री पुरुषो ! उत्तम स्तुति करने हारे और सभाओं में उत्तम सत्यवचन कहने वाले हम तुम दोनों की विविध प्रकार की स्तुति करते हैं और तुमसे नाना प्रकार के व्यवहार करते हैं। उसी प्रकार हित चाहने वाला विद्वान् पुरुष भी विविध प्रकार से उपदेश करे। इसी प्रकार व्यवहारवान् वैश्य जन भी बहुत धनसम्पन्न होकर तुम लोगों से नाना प्रकार के व्यवहार किया करें। और इसी प्रकार आप दोनों कभी निन्दा योग्य न होकर सब पर सुखों की वृष्टि करने वाले होकर, परमेश्वर और विद्वानों के समीप रहकर विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी बनो, और देव के समीप स्थित ईश्वरोपासक जन का पालन किया करो।

युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

भा०—हे व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार विशेष आवाज करता हुआ और वृक्षों को उखाड़ फैंकने वाला वायु सहस्रों गर्जनाओं से नगाड़े के समान ही पुरुषों को सचेत करता है, उसी प्रकार विविध उपदेशों से युक्त उत्तम अपना आनन्द ज्ञान प्राप्त कराने के लिये

अज्ञान और पाप अपराधों को उखाड फेंकने वाला, नायक पुरुषो मे से उत्तम नेताओं मे प्रशंसा को प्राप्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष, ध्वनि करने वाले मेघ या नक्कारे के समान हजारों उपदेशो या बलवान् उपायों से तुम दोनो को सचेत, प्रबुद्ध और ज्ञानवान् करे।

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

भा०—दानशील पुरुष जिस प्रकार अन्य मनुष्यों के रथ के बल से प्राप्त होता है उसी प्रकार जब तुम दोनों आगे बढ़ने मे समर्थ होकर रथादि के सामर्थ्य से आगे बढो, और सबसे आगे बढ़ जाओ। तब तुम दोनों कभी भी असत्याचरण और अशिष्टता का व्यवहार न करते हुए विद्वानो के हित के लिये उत्तम वेगवान् अश्व आदि साधनो को रखो, जिससे हम प्राजावर्ग ऐश्वर्यों से सम्पन्न होवें।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम्।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥२४॥

भा०—हे उत्तम गुणवान् पुरुषो! आज हम आप दोनो के अधीन, रथ के समान संकटो से पार ले जाने वाले नये से नये, दु:खो के निवारक, आकाश मे जाते सूर्य के समान ज्ञान वाले विद्वानों की सभा को प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पुरुष को, सुख से दुर्गम मार्गों को तय करने के लिये, उत्तम स्तुतिवचनो और अविकारसूचक तथा मानवर्धक पदो मे पुकारें। और हम प्रजाजन अन्न, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते। छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६, ७, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥१॥

भा०—हे राष्ट्रसम्पत्ति और व्यापक अधिकार का भोग करने वाले श्री पुरुषो ! आप दोनों अभिलाषा योग्य उत्तम अन्न आदि धनैश्वर्यों के लिये अतिलोकप्रिय होकर यज्ञ करने की इच्छा करते हुए, कभी जल-कणों के सदृश तुच्छ प्रजाजनों को जब भी उन्नत करते हो यही आप दोनों का बड़ा भारी दान है जो तुम दोनों की बड़ी कीर्त्ति उत्पन्न करता है। क्योंकि तुम दोनों ही सबको बसाने वाले राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होकर मनुष्यों के रक्षा करने हारे हो। राजा, रानी, सभा सभाध्यक्ष, सेना, सेनापति आदि युगल 'अश्विना' हैं।

आ वामश्वा॑सुः शुच॑यः पय॒स्पा वात॑रंहसो दि॒व्यासो॒ अत्या॑ः।
म॒नो॒जुवो॒ वृष॑णो वी॒तपृ॑ष्ठा॒ एह स्व॒राजो॑ अ॒श्विना॑ वहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे अश्वों और विद्वानों के स्वामी राजप्रजापुरुषो ! आप दोनों के अधीन शुद्ध पवित्र आचार वाले, शुद्ध जल और पुष्टिकारक दुग्ध आदि पान करने हारे, वायु के समान वेग से जाने वाले, दिव्य, शत्रु सेनाओं का अतिक्रमण कर वेग से आक्रमण करने वाले मन के वेग के

करने योग्य एवं बुद्धि और विवेक में कार्य करने हारो ! तुम दोनों में जो पुरुष रथ के समान रमण करने और अन्यों को रमण कराने या अपने आश्रय रखकर ले जाने हारा, पृथ्वी के समान पालन करने हारा, उत्तम वेगयुक्त साधनों का स्वामी, वेगवान् पदार्थों और वीरपुरुषों के बीच में व्यवस्थित, बलवान्. मन से भी अधिक वेग और बल वाला, अपने को ही सबसे प्रथम रखने हारा, सबसे अधिक पूज्य सत्सगयोग्य पुरुष है, वही सुख से लोकयात्रा के लिये हमें प्राप्त हो।

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र के समान अश्विनामक स्त्री पुरुषो ! आप दोनों अमुक २ कुल में उत्पन्न हुए, शरीर और अपने गुणों से निष्पाप होवो। आप दोनों परस्पर संगत होकर एक दूसरे को चित्त से चाहो। तुम दोनो में से प्रत्येक विजयशील, एक दूसरे से गुणों में उत्कृष्ट, उत्तम गृहस्थ यज्ञ का करने वाला, तेजस्वी माता पिता का उत्तम भाग्यवान् पुत्र होकर गृहस्थ को धारण करे।

प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५॥२५॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय में व्यापक स्त्री पुरुषो ! हे जिस प्रकार वृषभ गौ के पीछे कामनावश जाता है उसी प्रकार तुम दोनों में से जो भोगों का भोक्ता और सर्वश्रेष्ठ और सूर्य या सुवर्ण के समान सुन्दर रूप का है, वह कामना करने योग्य उत्तम २ पुत्र आदि पदार्थों को लक्ष्य करके, गृहस्थ आदि आश्रमों को जाता है। तुम दोनों में से प्रत्येक के मन और इन्द्रिय रूप अश्व को, मनोरञ्जन करने वाले नाना राजस् भोग और नाना लोक, ऐश्वर्यों से, हृदय को मथन कर देने वाले आकर्षण से, और उत्तम २ वाद्य आदि संगीतों से, स्वरों से विविध प्रकार से तृप्त करें और उनकी वृद्धि करें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

प्र वां शुरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के समान हे स्त्रीपुरुषो ! जिस प्रकार सूर्य वर्षणशील होकर सबको व्यापता हुआ मधु अर्थात् जलों को लेना या अन्नों को उत्पन्न करना चाहता हुआ पूर्व प्राप्त जलों को ग्रहण करता है, और वह प्रति ऋतु का स्वामी है, उसी प्रकार तुम दोनों में से शरत् आदि उत्तम रमण करने योग्य ऋतुओं का स्वामी, निषेकादि करने में समर्थ, सब स्त्रियों पर विजय पाने वाला, मधुर अन्नादि अनेक ऐश्वर्यों और पुत्रादि फलों की कामना करता हुआ प्रथम मन से चाही दाराओं को प्राप्त करता है । वे हृदय में व्यापने वाली पत्नियां भी इन दोनों में से एक को सुख प्राप्त कराने वाले कामनाओं और उपायों से, नाना अनेक ऐश्वर्य सामग्रियों, बलवान् पुत्रों से, उसको तृप्त और पुष्ट करती हैं । वे उमड़ती हुई नदियों के समान उत्तम कान्ति वा नाना गुणों से समृद्ध होकर उसे प्राप्त हों । (२) अध्यात्म में सौ वर्ष आने से शरद्वान् पुरुष आत्मा है । वह मधुर फलों का इच्छुक होकर पूर्व विद्वानों के ज्ञानों पर आचरण करता है । और वे व्यापक सत्त्व वाले प्राणियां उसको प्राप्त होतीं और अपने ज्ञानों से भर देती हैं ।

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

से क्षरण = सुख से, चक्षु से और हाथों से अथवा अभिधा, लक्षणा और व्यंजना रूप से। या आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति से। अथवा शब्द वा अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध से।

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! तुम दोनों में से तेजस्वी और उत्तम रूपवान् पुरुष की वह उत्तम वाणी, त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान आसनस्थ वेदवेत्ताओं की बनी धर्मसभा के बीच में सब मनुष्यों को सन्तुष्ट करे। बलवान् साड जिस प्रकार गौ के ऊपर वीर्य सेचन करने के अवसर में अति प्रसन्न होता है, और जिस प्रकार वर्षणशील मेघ पृथ्वी पर जल वर्षाने में सबको तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार तुम दोनों में से वीर्य सेचन में समर्थ वीर्यवान् मनुष्य वीर्य-दान देता हुआ स्वयं प्रसन्न हो और सहचरी को भी तृप्त करे।

युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान्।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥२६॥

भा०—हे एक दूसरे के आत्मा के स्वामी स्त्री पुरुषो! तुम दोनों को उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सबके पोषक सूर्य के समान और राष्ट्र को धारण करने वाले राजा के समान जानकर, अग्नि अर्थात् तेजस्वी सूर्य और कमनीय प्रभातवेला के समान स्तुति करता है। जो तुम दोनों को सेवा आदि कर्त्तव्यों का भी पूर्ववत् उपदेश करता हुआ तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करे। इस प्रकार हम सभी प्रजाजन अन्न बल और दीर्घायु प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः॥

[१८२]

अगस्त्य ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराट् जगती। २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६, ८ स्वराट् पङ्क्तिः॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् पुरुषो! यह सबसे उत्तम देह है। इसमें बलवान् प्राणों का स्वामी, रमण करने और चलाने हारा आत्मा है। उसको उत्तम रीति से अलंकृत करो, उसमें उत्तम गुण और बल धारण कराओ, उसको अच्छी प्रकार प्रसन्न करो। सूर्य के समान तेज:स्वरूप उस आत्मा के पुत्र के समान उसको न गिरने देने हारे, ज्ञान-कर्म दोनों को प्रेरने वाले, उत्तम प्रज्ञा को उत्पन्न करने वाले, प्रजाओं को पालने वाले धन बल से सम्पन्न, उत्तम कर्म और आचरण से सदा पवित्र व्रत का पालन करने वाले, देह में सदा शुद्धि बनाये रखने वाले, दो प्रधान पुरुषों के समान देह में प्राण और अपान हैं। उनको उत्तम सामर्थ्यवान् करो और सब प्रकार से अन्नादि द्वारा हृष्ट पुष्ट करो और तृप्त करो।

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

से क्षरण = सुख से, चक्षु से और हाथों से अथवा अभिधा, लक्षणा और व्यंजना रूप से। या आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति से। अथवा शब्द वा अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध से।

उत स्या वां रुशतो वप्सो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! तुम दोनों में से तेजस्वी और उत्तम रूपवान् पुरुष की वह उत्तम वाणी, त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान आसनस्थ वेदवेत्ताओं की बनी धर्मसभा के बीच में सब मनुष्यों को सन्तुष्ट करे। बलवान् सांड जिस प्रकार गौ के ऊपर वीर्य सेचन करने के अवसर में अति प्रसन्न होता है, और जिस प्रकार वर्षणशील मेघ पृथ्वी पर जल वर्षाने में सबको तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार तुम दोनों में से वीर्य सेचन में समर्थ वीर्यवान् मनुष्य वीर्य-दान देता हुआ स्वय प्रसन्न हो और सहचरी को भी तृप्त करे।

युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान्।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥२६॥

भा०—हे एक दूसरे के आत्मा के स्वामी स्त्री पुरुषो! तुम दोनों को उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, सबके पोषक सूर्य के समान और राष्ट्र को धारण करने वाले राजा के समान जानकर, अग्नि अर्थात् तेजस्वी सूर्य और कमनीय प्रभातवेला के समान स्तुति करता है। जो तुम दोनों को सेवा आदि कर्त्तव्यों का भी पूर्ववत् उपदेश करता हुआ तुम दोनों को ज्ञानोपदेश करे। इस प्रकार हम सभी प्रजाजन अन्न बल और दीर्घायु प्राप्त करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१८२]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराट् जगती। २ स्वराड् त्रिष्टुप्। ६, ८ स्वराट् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् पुरुषो ! यह सबसे उत्तम देह है । इसमें बलवान् प्राणों का स्वामी, रमण करने और चलाने हारा आत्मा है । उसको उत्तम रीति से अलंकृत करो, उसमें उत्तम गुण और बल धारण कराओ, उसको अच्छी प्रकार प्रसन्न करो । सूर्य के समान तेजःस्वरूप उस आत्मा के पुत्र के समान उसको न गिरने देने हारे, ज्ञान-कर्म दोनो को प्रेरने वाले, उत्तम प्रज्ञा को उत्पन्न करने वाले, प्रजाओं को पालने वाले धन बल से सम्पन्न, उत्तम कर्म और आचरण में सदा पवित्र व्रत का पालन करने वाले, देह में सदा शुद्धि बनाये रखने वाले, दो प्रधान पुरुषों के समान देह में प्राण और अपान हैं । उनको उत्तम सामर्थ्यवान् करो और सब प्रकार से अन्नादि द्वारा हृष्ट पुष्ट करो और तृप्त होवो ।

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

भा०—हे जो स्त्री पुरुष रमणयोग्य गृहस्थरूप रथ को मधुर अन्न और आमोद प्रमोद और स्नेह से पूर्ण कर धारण करते हैं और जो अपने देहरूप रथ को बलवीर्य से पूर्ण रखते हैं, वे इन्द्रतम अर्थात् देहरथ में लगे उत्तम घोड़ों के समान हों, वे सब प्रकार से ज्ञानवान्, ज्ञानप्रद गुरु को उसी रम्य गृहस्थ व्रत से प्राप्त हों । (२) अध्यात्म में ये इन्द्र = आत्मा के प्रमुख बल होने से 'इन्द्रतम' हैं । मुख्य प्राण होने से मरुत्तम, दुःखनाशक होने से 'दस्र', देह में हित होने से 'रथ्य', देह में आश्रित होने से रथीतम हैं । वे अन्न पालित देह का वहन करते हैं । उसी देह से वे सब प्रकार से चेतनावान् आत्मा को प्राप्त हैं ।

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

भा०—हे गुरुओ ! आप विद्या का प्रक्रम करने वाले शिष्य की प्रज्ञा या मति को पार करते हो और वेदवाणी के इच्छुक विद्वान् जो कोई भी विना दान भेंट के भी आता है उसके लिये क्या आप दोनो उदासीन रहते है ? या क्या करते है ? उदासीन नही रहते, प्रत्युत् ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते हो । (२) प्राणापान इस देह मे कैसे रहते है ? क्या करते है ? जो पुरुष अन्न नहीं खाता उसकी क्रियाशक्ति और प्रज्ञा को न्यून कर देते और पीड़ित कर देते है । जो वाणी को बोलने वाला 'विप्र' अर्थात् विविध उपायों से शक्ति को अन्नादि से पूर्ण करता है उसको वे प्रकाश, तेज देते है ।

जुम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

भा०—सब ओर से भौंकते और भयकर चीत्कार आदि करते हुए कुत्ते के स्वभाव के जन्तुओं और शत्रुओ का अच्छी प्रकार नाश करो । संग्रामकारी पुरुषों को मारो । हे विद्या और बल से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उक्त कर्मों के करने के नाना साधनो को प्राप्त करो और जानो । और आप लोग उत्तम उपदेष्टा से विद्या प्राप्त करके हरेक वाणी को उत्तम रमणीय गुणों से अलकृत, रत्नों से जडी लडी के समान बनाओ । ऐसे आप दोनों कभी असत्याचरण न करते हुए मेरे प्रशसनीय उपदेश को जानो और उसका पालन करो ।

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥५॥२७॥

भा०—आप दोनों स्त्री पुरुष वर्ग मिलकर समुद्रों मे, ऐसे २ अपने जनों से युक्त या दृढ़ पक्षों और पतवारों वाले जहाज को, शत्रुनाशकारी वा लेन देन करने वाले व्यापारी पुरुषों के उपयोग के लिये बनाओ । जिससे विद्वानों मे विद्यमान् ज्ञान के द्वारा सुख से गमन करने मे समर्थ

होकर दूर २ तक पहुँचो, और बड़े भारी जलसागर के भी पार करने में समर्थ होवो (२) अध्यात्म में—यह देह प्राणों के आश्रय पर बना संसार सागर से पार उतरने का 'प्लुव' है, आत्मायुक्त होने से 'आत्मन्वान्' है। वाम, दक्षिण पार्श्व पक्षी के तुल्य हैं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥६॥

भा०—समुद्र के मध्य भाग में साथ लगी चार २ नौकाएं हों, जो समुद्रों के बीच में आलम्बन रहित, भयजनक अन्धकार के समान गंभीर जल में फंसे और निराश हुए व्यापारी जन को जल अग्नि से युक्त अश्व अर्थात् एंजिनों के दो दो स्वामियों से सञ्चालित होकर उसे पार पहुँचा देवें। (२) अध्यात्म में—'जठल' मध्यस्थ मुख्य चित्त में लगी चार नावें चार अन्तःकरण हैं। देहधारी यह 'तौग्र्य', जीव है। जो आलम्बन रहित, निरुपाय अविद्यान्धकार में फंसा और प्राणों में या लिङ्ग शरीरों में फंसा रहता है। अथवा चार नौका चार वेद, जो अज्ञान में फंसे को तारते हैं।

कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत्। पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥

भा०—जल के बीच में कौन सा वह वृक्ष खूब अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित है जिसको उत्तम बलवान् पुरुष जल के बीच में अति दुःखी होकर एवं आशावान् होकर खूब अच्छी प्रकार पकड़ लेता है? गिरते हुए वानर के लिये जिस प्रकार पत्ते ही उसको सम्भालने के लिये पर्याप्त होते हैं, उसी प्रकार विद्वान् स्त्री पुरुष भी गिरने वाले, आश्रय की खोज करने वाले पुरुष के आलम्बन के लिये पालन करने वाले साधन बनकर, कीर्ति के लिये उसे ऊपर उठा लिया करें। पूर्व प्रश्न का उत्तर है—जिस

प्रकार जल से भरे सागर के बीच आलम्बन के लिये वह वृक्ष की बनी नौका ही है जिसे व्यापारी वा परराष्ट्र विजयी आश्रय के लिये पकडता है।

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन्।
अस्माद्द्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥२८॥

भा०—हे सदा सत्य का भाषण, मनन और आचरण करने वाले नर नारी जनो ! तुम दोनों के माननीय पुरुष जो वेदोपदेश करें, वह तुम दोनो को सदा अनुकूल हो। इस विद्वानों की सभा से आज अर्थात् अभी तुम निर्णय व्यवस्था आदि प्राप्त करो। इस प्रकार हम सब लोग उत्तम मनोकामना और बल और दीर्घ जीवन प्राप्त करें। इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

[१८३]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः ४ भुरिक् पंक्तिः। ५, ६ निचृत् पंक्तिः। २, ३ विराट् त्रिष्टुप ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

भा०—जो मन से भी अधिक वेगवान् है, जो तीन बन्धनों वाला, और जो तीन चक्रों वाला है, उसके साथ बलवान् दो अश्व जोड़ो। तीन धातुओं के बने जिस द्वारा उत्तम कर्म करने वाले धर्मात्मा पुरुष के गृह को, पर्खों से पक्षी के समान, प्राप्त होगो। अध्यात्म में—मन से भी अधिक वेगवान् आत्मा है, उसकी तरफ बलवान् प्राण और अपान दोनों का योग करो। योगाभ्यास के बल से उनको वश करो। आत्मा युक्त देह सत्व, रजस्, तमस् तीनों से बंधा होने से 'त्रिवन्धुर' है। मन, वाणी और काया इन तीन कारकों से युक्त होने से 'त्रिचक्र' है। वह वात, पित्त, कफ से युक्त होने से त्रिधातु है। मन आत्मा दोनों योग द्वारा उस प्रभु परमेश्वर का साक्षात् करें।

सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सुख से चलने हारा यान पृथिवी के चारो ओर जाया करता है, जिस पर अन्नादि प्राप्य पदार्थों के प्राप्त करने के लिये काम काज वाले आदमी बैठते हैं, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! सत् आचार-युक्त, रमण करने और कराने वाला गृहस्थ-रथ, निवास योग्य भूमि के समान अपने आश्रय पर बसाने वाली स्त्री को प्राप्त होकर रहता है, जिस मे परस्पर के सम्पर्क, सग, अनुराग और प्रेम के आधार पर रहकर दोनो कार्यकुशल स्त्री पुरुष विराजते हैं। हे स्त्री पुरुषो ! देह मे उत्पन्न होने वाले उत्तम रूप को भी प्राप्त करो। सूर्य की कन्या उषा अर्थात् प्रभात वेला के सग नये रूप मे प्रकट होने वाले कान्तियुक्त रूप से युक्त होकर, तुम दोनों स्त्री पुरुष परस्पर मिलकर रहो।

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥

भा०—हे नरनारी जनो ! आप दोनो सदाचारयुक्त गृहस्थाश्रम रूप रथ पर आकर स्थित होवो। जो तुम दोनो को रमाने हारा, अन्न, ज्ञान और बल से युक्त तुम्हारे कर्त्तव्य कर्मों के अनुकूल रहता है। हे कभी परस्पर असत्य व्यवहार न करने हारो ! आप दोनो जिस द्वारा गृह और लोकयात्रा तथा अपनी स्थिति को प्राप्त करने या निवाहने के लिये और पुत्रलाभ या अपने आत्मा या देह के सुख के लिये प्राप्त होते हो उस रथस्वरूप गृहस्थाश्रम पर आरूढ़ होवो।

मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनो मे से कोई भेड़िये के समान कुटिला-चारी हिंसक या चोर स्वभाव वाला पुरुष होकर एक दूसरे को अपमानित

न करे। और तुम मे से किसी को चोरस्वभाव की हिंसाशील स्त्रिया भी अपमानित न करें। तुम दोनों एक दूसरे का कभी त्याग न करो। तुम दोनों का यह परस्पर सेवन करने योग्य पृथक् २ भाग है। यह वेदवाणी व्यवस्था करने वाली है। हे एक दूसरे के दु खो का नाश करने वालो! ये मधुर अन्नों, जलो, उत्तम फलो के खजाने सब तुम्हारे ही उपभोग के लिये हैं।

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान्।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम्॥ ५॥

भा०—हे दुःखों और दु.खदायी कारणो के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो! जो पुरुष उत्तम वेदवाणी का विद्वान्, बहुतो को दान देने वाला, भ्रमणशील परिव्राजक या त्रिविध दु खो से रहित, उपादेय ज्ञान बल और ऐश्वर्यादि से युक्त होकर, रक्षा के लिये तुम्हे अपनी शरण मे लेता है और जो निश्चित दिशा के समान पूर्वाचार्यों और उपदेशो द्वारा निर्दिष्ट और उपदिष्ट दिशा की ओर अत्यन्त सरल मार्ग से ले जाने हारा हो, वही तुम दोनो के लिये रथ मे लगे वृषभ के समान सन्मार्ग पर ले जाने वाला हो। हे सदा सत्य-व्यवहार वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनो मेरे वचन को श्रवण करो।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥६॥२९॥४॥

भा०—हम लोग इस दु.खदायी अविद्यान्धकार के पार पहुँचें और पहुँच गये हैं। आप दोनों के प्रति यह बहुत से कर्त्तव्यों का उपदेश प्रत्येक को पृथक् भी कह दिया जाता है। आप दोनों विद्वान् पुरुषो से जाने योग्य मार्गों से जीवन यात्रा करो। हम लोग भी इसी प्रकार से उत्तम अन्न, कामना, बल, और उत्तम जीवन प्राप्त करते हैं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[१८४]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१ पंक्तिः । ४ भुरिक् पंक्तिः । ५, ६, निचृत् पंक्ति. । २, ३, विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

ता वामुद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥

भा०—हे असत्याचरण से रहित विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों चाहे कहीं भी रहे, तो भी ज्ञान का वहन करने या दूसरों तक पहुँचाने वाला विद्वान् व हम लोग, प्रभात वेला के खुल जाने पर तुम दोनों को आज नित्य उत्तम उपदेश दें। उन तुम दोनों को अगले दिन भी प्रेम से उपदेश करें। तुम दोनों में से उषा के समान नित्य अपने रूप को उज्ज्वल प्रसन्न दिखाने वाली कमनीय स्त्री के निमित्त विवाह करने वाला पुरुष उत्तम वचनों से बोले। चाहे तुम दोनों किसी भी दशा या देश में रहो पर असत्य-व्यवहार कभी न करने वाले होकर रहो। और जिस प्रकार वैश्य अपना माल सबसे उत्तम मूल्य देने वाले को देता है उसी प्रकार तुम दोनों में जो स्वामी है वह अधिक सुख देने वाले दूसरे अंग के लिये परस्पर की कामना या प्रेम को कभी नीचे न गिरने देना वाला ही रहे।

अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥

भा०—हे बलवान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग व्यवहार करने में कुशल हम लोगों को आनन्दित रक्खो। हृदय की प्रेमतरंग से दोनों सुप्रसन्न रहते हुए उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों तक उठकर उनको आदर से प्राप्त करो, उन तक उत्साहयुक्त होकर पहुँचो। हे उत्तम नरनारियो ! प्राप्त सम्पदाओं और ज्ञानों का सञ्चय करने वाले स्त्री पुरुषो !

मननशील पुरुषों के उत्तम २ वचनों से मैं आप दोनों को प्राप्त करता हूँ। आप दोनों मेरे वचनों को कानों से श्रवण किया करो।

श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३॥

भा०—हे पालन पोषण करने वाले वर वधू के माता पिता जन ! जिस प्रकार कोई जन्तु वाण से विध कर तन्मय हो जाता है इसी प्रकार एक दूसरे के प्रति मनोकामना रूप वाण से आहत हुए स्त्री और पुरुष दोनों यदि कभी परस्पर असत्य आचरण असत्य भाषण चोरी आदि न करके धर्मपूर्वक रहने वाले हों तो वे दोनों एक दूसरे की शोभा और एक दूसरे के आश्रय के लिये होते हैं। प्रजाओं में प्रसिद्ध २ विद्वान् पुरुष भी सूर्य की कान्ति या उषा के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करने वाली वधू और बहुत से सामर्थ्यों से युक्त महान् स्वयंवृत पति, इन दोनों के परस्पर के धारण रूप विवाह को लक्ष्य करके, गुजरे हुए अतीत काल के जोड़ों की भी प्रशंसा किया करते हैं।

अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम दानशील, एक दूसरे के प्रति अच्छी प्रकार समर्पण करने वाले वर वधू ! विद्वान् पुरुष यज्ञ की कामना से उत्तम वीर्यवान् पुत्र को प्राप्त करने के लिये, तुम दोनों को देख २ कर प्रसन्न होते हैं। हमारी कामना है कि तुम दोनों की वह उत्तम दानशीलता या परस्पर समृद्धि हमारे लिये मधुर, रम्य और उत्तम फलजनक हो। आप दोनों प्रमाणभूत और माननीय आप्त, क्रिया कुशल अनुभवी पुरुष के कहे उपदेशों को प्रसन्नता से प्राप्त करो।

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनो को ज्ञानवान् पुरुषों ने पाप के
ार्ग से बचाने के लिये यह वेदमन्त्रो द्वारा उपदेश किया है। हे ऐश्वर्य-
क्तो। आप दोनो कभी असत्याचरण न करते हुए, पाप या विघ्न
ाधाओं को दूर करने मे समर्थ पुरुष के अधीन या विघ्नादि से रहित
ार्ग मे अति प्रसन्न होते हुए, अपनी सन्तान और अपने आप की उन्नति
; लिये, उत्तम तथा दुःख से रहित मार्ग और गृह या शरण को
ाप्त करो।

प्रतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त १८३। मन्त्र ६॥ इति प्रथमो वर्गः॥

[१८५]

अगस्त्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ७, ८, १०, ११
त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

भा०—द्यावा पृथ्वी रूप से माता पिता के कर्त्तव्यो का वर्णन। माता
और पिता इन दोनो मे से पहले कौन उत्पन्न हुआ, और बाद मे कौन
उत्पन्न हुआ, अथवा मुख्य कौन और गौण कौन है? और यह भी बतलाओ
कि वे दोनो किस प्रयोजन से उत्पन्न हुए है? हे दीर्घदर्शी विद्वान् पुरुषो !
आप लोग बतलावें कि इस तत्व का रहस्य कौन भली प्रकार से जानता
है। वस्तुतः ये दोनो माता और पिता स्वयं अपने आप अपने देह से और
अपनी आत्मा से सब जगत् को या समस्त 'विश्व' अर्थात् जीवमात्र को
विविध प्रकार से धारण पोषण करते है। और जिस प्रकार सूर्य और
पृथ्वी अपने सामर्थ्य से समस्त जल को धारण करती है उसी प्रकार, रात

और दिन के समान और रथ के दो पहियों के समान विविध प्रकार से वर्त्तते हैं।

भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार विचलित न होते हुए, स्वय पादों से रहित होकर भी सूर्य-पृथ्वी दोनों विचरणशील चरणों से युक्त जीव ससार को अपने भीतर धारण करते हैं, उसी प्रकार दोनों माता पिता भी अधर्मपथ पर न चलते हुए और धर्ममार्ग या गृहस्थ में स्थिर रहते हुए स्वय विशेष पद या महत्वाकांक्षा से रहित होकर भी, स्पनन्दनशील विशेष चेतनायुक्त चरणों से युक्त गर्भ को धारते हैं। माता पिताओं की गोद में पुत्र के समान पृथिवी और आकाश दोनों स्थायी सर्वप्रेरक सूर्य को धारण करते हैं। माता और पिता दोनों हमें असत्याचरण से उत्पन्न हुए तथा असामर्थ्य से बचावें।

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत्।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों का जीवों के प्रति दान अखण्ड आकाश, सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी से ही उत्पन्न होता, और वह अविनाशी, पीड़ा न देने वाला, अन्नादि से सम्पन्न, सुखजनक, निष्पाप होता है, उसी प्रकार अखण्ड चरित्रवान् माता पिता का भी दिया हुआ धन निष्पाप, अक्षय, वध आदि द्वारा जीवन नाश के सकटों से रहित, बिना किसी का वध किये ही प्राप्त होने वाला, अन्न से युक्त, अति सुखकारी हो। माता पिता उपदेश दाता होकर, परोपदेश करने वाले पुत्र के हितार्थ सभी प्राप्य पदार्थों को उत्पन्न करें। माता और पिता दोनों हमें बड़े अपराध से बचावें।

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अन्नादि पालन सामर्थ्य द्वारा, पृथिवी और आकाश सूर्य को पुत्र के समान धारण करते हुए, सबका पालन करते हुए भी कभी पीडित होकर अपने कार्य से शिथिल नहीं होते. उसी प्रकार माता और पिता भी अन्न आदि पालन और रक्षा के सामर्थ्य द्वारा पुत्रों और प्रजाओं की पालना और रक्षा करते हुए कभी संताप और दुःख अनुभव करने वाले न हुआ करें। वे दोनों सन्तानों को उपदेश करने और कुपथों से रोक थाम करने वाले हुआ करें। वे दोनों विद्वान् पुत्रों के माता पिता बनें, अर्थात् उत्तम सन्तानों को जानें। जिस प्रकार दोनों आकाश और पृथ्वी सूर्य से प्रकाशमान् दिन और चन्द्र के प्रकाश वाली रात्रि दोनों के दोनों रूपों से जीवों की कष्ट से रक्षा और पालन करते हैं, उसी प्रकार दोनों माता पिता भी प्रकाशवान् दिनों के दिन-रात्रि दोनों रूपों से हमें उत्तम योनि में न होने रूप महान् कष्ट से बचावें, वे सन्तानों को उत्तम रीति से पैदा और पालन करें।

सं॒गच्छ॑माने युव॒ती सम॑न्ते॒ स्वसा॑रा जा॒मी पि॒त्रोरु॒पस्थे॑ ।
अ॒भि॒जिघ्र॑न्ती॒ भुव॑नस्य॒ नाभिं॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अभ्वा॑त् ॥ ५ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और भूमि दोनों, एक दूसरे से सदा मिले हुए, अति बलशाली, सीमा भागों में मिले हुए, भाई बहन के समान या एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धु होकर, संसार के केन्द्र को सब प्रकार से धारण करते हैं, इसी प्रकार पिता और माता दोनों परस्पर संगत होकर, युवा अवस्था में विद्यमान, एक दूसरे को प्राप्त होने वाले, अपने माता पिताओं के समीप बालक बालिका के समान उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले होकर भी उत्पन्न बालक का नाभि को प्रेम वश बार २ सूंघते या चुम्बन करते हुए हमें असामर्थ्य से उत्पन्न दुःखों से मुक्त करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

उ॒र्वी सद्म॑नी बृह॒ती ऋ॒तेन॑ हु॒वे दे॒वाना॒मव॑सा॒ जनि॑त्री ।
द॒धाते॒ ये अ॒मृतं॑ सु॒प्रती॑के॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अभ्वा॑त् ॥६॥

भा०—स्त्री पुरुष, पति पत्नी या माता पिता बड़े विशाल हृदय वाले, घर के समान सबको अपनी शरण में लेने वाले, प्रजाओं को बढ़ाने वाले, धन अन्न और सत्यज्ञान से प्रिय बन्धुजनों की रक्षा आदि द्वारा उनको उत्पन्न करने हारे हों। उनको मैं आदरपूर्वक स्वीकार करता हूँ। जो वे दोनों पुत्र प्रजा आदि को और अन्न जल आदि को धारण करते हैं वे उत्तम सुख और ज्ञान प्रतीति वाले, सूर्य पृथिवी के समान होकर कष्ट में हमारी रक्षा करें।

उ॒र्वी पृ॒थ्वी ब॑हु॒ले दू॒रेअ॑न्ते॒ उप॑ ब्रुवे॒ नम॑सा य॒ज्ञे अ॒स्मिन् ।
द॒धाते॒ ये सु॒भगे॑ सु॒प्रतू॑र्ती॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अभ्वा॑त् ॥७॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता बड़े यशस्वी, बहुत से पदार्थों के ला देने वाले, दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान हैं, और जो उत्तम ऐश्वर्यवान्, अति वेगवान्, कार्यकुशल होकर बिना विलम्ब के हमारा पालन पोषण करते हैं, मैं उनको इस आदर सत्कार के अवसर पर बड़े आदर भाव से बुलाऊं। वे आकाश और पृथिवी के समान हमें दु:ख से बचावें।

दे॒वान्वा॒ यच्च॑कृ॒मा कच्चि॒दाग॒: सखा॑यं वा॒ सद॒मिज्जास्प॑तिं वा ।
इ॒यं धीर्भू॑या अव॒यान॑मेषां॒ द्यावा॒ रक्ष॑तं पृथिवी नो॒ अभ्वा॑त् ॥८॥

भा०—हम लोग विद्वानों के प्रति जो भी किसी प्रकार का अपराध करें, और कोई भी अपराध मित्र के प्रति या पत्नी पति जमाता या वर-वधू के प्रति करें, उन सब अपराधों को दूर करने का उपाय सदा ही यह दृढ़ व्रत हो। सूर्य और पृथिवी के समान माता पिता हमें पाप से बचावें।

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम्।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः॥ ९॥

भा०—आकाश और पृथिवी के समान माता पिता दोनों स्तुतियोग्य, और मनुष्यों के हितकारक होकर मेरी रक्षा करें। और वे दोनों उत्तम रक्षक होकर रक्षण, ज्ञान, आदि गुणों से हमें प्राप्त हों। वणिग् जन जिस प्रकार उत्तम धन देने वाले को अधिक पदार्थ प्रसन्न होकर देता है उसी प्रकार हम ऐश्वर्यवान् होकर, अन्नादि से यथेच्छ प्रसन्न होकर, बहुत अधिक धन और ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा और यत्न करें।

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः॥ १०॥

भा०—मैं उत्तम ज्ञानवान् होकर, सूर्य के समान तेजस्वी राजवर्ग और पृथ्वी के समान उसके आश्रय प्रजागण के हित के लिये, सब से प्रथम और सब से उत्तम उस सत्यज्ञान, सत्यव्यवस्था वा वेदवचन का उपदेश करता हूं, जो सबको श्रवण करने योग्य है। दोनों ही परस्पर प्रेमयुक्त होकर हमारी निन्दा योग्य पाप से रक्षा करें। और नाना रक्षण के उपायों से पालन करें और वे ही दोनों हम सब की रक्षा करें।

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥११॥३॥

भा०—हे आकाश और पृथिवी के समान माता और पिता! जो भी मैं यहां इस लोक में आप दोनों के सम्बन्ध में अन्यों को उपदेश करूं या आप दोनों को जो कुछ कहूं वह सत्य ही हो। आप दोनों सदा विद्वानों और उत्तम गुणों के रक्षण आदि साधनों से सदा समीप और आश्रयरूप होकर रहो। जिससे हम सब लोग अन्न, उत्साह, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति तृतीयो वर्गः॥

[१८६]

अगस्त्य ऋषिः ॥ विश्वेदेवा ॥ छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७ भुरिक् पङ्क्तिः ६ पङ्क्तिः । १० स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ न॒ इळा॑भिर्वि॒दथे॑ सुश॒स्ति वि॒श्वान॑रः सवि॒ता दे॒व ए॑तु ।
अपि॒ यथा॑ युवानो॒ मत्स॑था नो॒ विश्वं॒ जग॑दभिपि॒त्वे म॑नी॒षा ॥१॥

भा०—समस्त प्राणियों को सन्मार्ग पर ले जाने वाला, सबका उत्पादक, प्रेरक और प्रकाशक परमेश्वर, सब सुखद पदार्थों और ज्ञानों का दाता, सब प्रकार और सर्वत्र प्राप्त करने योग्य व्यापक ज्ञान के स्वरूप में समस्त संसार को व्यापता है । वह उत्तम स्तुतियों और स्तुत्य विभूतियों से हमें प्राप्त हो । हे बलवान् युवा पुरुषो ! आप लोग भी उत्तम मन की प्रेरणा, प्रबल इच्छा शक्ति और प्रज्ञा द्वारा समस्त जगत् को और हमें भी आनन्दित प्रसन्न करो ।

आ नो॒ विश्व॒ आस्क्रा॑ गमन्तु दे॒वा मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णः स॒जोषाः॑ ।
भुव॒न्यथा॑ नो॒ विश्वे॑ वृ॒धासः॒ कर॑न्त्सु॒षाहा॑ विथु॒रं न शवः॑ ॥ २ ॥

भा०—न्यायाधीश, शत्रुओं का नियन्ता, अति श्रेष्ठ राजा सभी शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले अन्य भी जो उत्तम विद्वान् और तेजस्वी, विजयेच्छुक पुरुष हों वे सभी समान प्रेम से युक्त होकर हमें प्राप्त हों । जैसे भी होवे हर प्रकार से सब हमें बढ़ाने वाले हों । वे बल और अन्न को शत्रुविजय और दुष्टों को दमन करने वाला बनावें । वे उस साम्राज्य-पालक बल को प्रजा को व्यथा देने वाला, दु:खदायी न बनावें ।

प्रेष्ठं॑ वो॒ अति॑थिं गृणी॒षेऽग्निं श॒स्तिभि॑स्तु॒र्वणिः॑ स॒जोषाः॑ ।
अस॒द्यथा॑ नो॒ वरु॑णः सु॒की॒र्तिरिष॑श्च पर्ष॒दरिगू॒र्तः सू॒रिः ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम जनो ! तुम लोग शीघ्र सन्मार्ग पर जाने हारे, प्रेम व्यवहार वाले, आप लोगों में से सबसे अधिक प्रिय, अग्नि या दीपक

के समान सबके आगे चलने और मार्ग दिखाने वाले अतिथि के समान पूज्य विद्वान् की स्तुति करो। जिससे वह सर्वश्रेष्ठ हममें रहकर उत्तम कीर्तिमान् हो। वह हमारी अन्नादि समृद्धियों और हमारी इच्छाओं को पूर्ण करे। शत्रुओं पर उद्यत होकर तथा सर्वप्रेरक और सञ्चालक होकर आयुधों और सेनाओं को भी प्रेरित करे।

उप॑ व॒ एषे॒ नम॑सा जिगी॒षोषासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः।
स॒मा॒ने अह॒न्विमिमा॑नो अ॒र्कं विषु॑रूपे॒ पय॑सि स॒स्मिन्नूध॑न् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रात. और सायं उस ही अन्तरिक्ष में नाना रूप के जलों के वर्षण के निमित्त एक-जैसे दिन मे भी सूर्य को विशेष २ रूपों का बना देते हैं, और कालपर्यय से अन्न सस्यादि सहित प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार उत्तम दुहने योग्य गौ अपने एक ही स्तनमण्डल में नाना रूप मे बदलने वाला दूध प्रदान करने के लिये एक ही दिन में सूर्य से युक्त दिन को व्यतीत करके विनय भाव से घर को आ जाती है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! मैं समान अन्तरिक्ष के नीचे नाना रूप के पुष्टिकारक अन्न के निमित्त एक समान दिन में ही अर्चना करने योग्य विधान या उत्तम उपदेश प्रकट करता हुआ, शत्रु और मित्र प्रजाओं को नमाने वाले शस्त्रबल और विद्याबल या विनय से और विजय करने की इच्छा से, आप प्रजाजन और विद्वान् लोगों के समीप प्राप्त होता हूं।

उ॒त नो॑ऽहि॑र्बु॒ध्न्यो॒३॒॑ मय॑स्कः॒ शिशुं॒ न पि॒प्युषी॑व वेति॒ सिन्धुः॑।
येन॒ नपा॑तम॒पां जु॒नाम॑ मनो॒जुवो॒ वृष॑णो॒ यं वह॑न्ति ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—सबके परम मूल मे स्थित, सर्वाश्रय अविनाशी परमेश्वर हमें सुखी करे। जो सबको व्यवस्था में बांधने वाला परमेश्वर दूध पिलाने वाली माता के समान हम सुख की नींद सोने वाले बालकों को सदा प्राप्त होता है। जिसके बल से प्राणों को न गिरने देने वाले देह को हम अपने वश करते और जिसको बलवान् मन की गति से चलने वाले

जीवगण या इन्द्रियगण आत्मारूप से अपने ऊपर धारण करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत नं ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां नं इह गम्याः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों सहित व्यापने के कार्य में उत्तम है और जिस प्रकार मेघों के आघात करने वाला सूर्य या विद्युत् क्षेत्रकर्षण करने वाले किसानों के मनोरथों को पूरा कर देता है, इसी प्रकार शत्रुओं का नाश करने वाला तेजस्वी पुरुष प्रजा के प्रति अति स्नेहवान् होकर, राष्ट्र पर सब प्रकार से व्यापने और सब प्रकार से उसकी रक्षा और पालन करने के लिये विद्वान् पुरुषों सहित हमारे इस राष्ट्र को प्रशंसनीय रूप से प्राप्त हो। वह ही प्रजाजनों और विद्वानों को सब प्रकार के ऐश्वर्यों से पूर्ण करता हुआ, बढ़ते और घेरते हुए विघ्नकारी शत्रु और दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर, सब नायकों में से बहुविध शक्तियों और ऐश्वर्यों से सब से महान् होकर, हमारे इस राष्ट्र में आवे, हमें प्राप्त हो।

उत नं ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥

भा०—समस्त नायकों में से उत्तम प्रशंसनीय पुरुष को जिस प्रकार घोड़ों को रथों में जोतने वाले और बुद्धिमान् वीर प्राप्त होते हैं, और जिस प्रकार गौएं नन्हे बच्चे को प्रेम से चाटती है और जिस प्रकार गौएं युवा वीर्यवान् सांड को कामनावश चाटती हैं, और जिस प्रकार सन्तानाभिलाषी स्त्रियां सब मनुष्यों में या दृढ़ पुरुष को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हमारे मननशील मनुष्य भी शीघ्रगामी अश्व आदि साधनों से युक्त होकर, कष्टों से पार करने वाले, सब मनुष्यों में उत्तम पुरुष को प्राप्त होते हैं। उसको ही सब स्तुति वाणियां भी प्राप्त होती हैं।

उत नं ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥

भा०—सैन्यबल को बढ़ाकर सैनिकों के अधिपति नायक लोग एक चित्त होकर, आकाश और पृथ्वी के बीच वायुगण के समान राजा और प्रजावर्ग दोनो के बीच में निष्पक्ष रह कर हमारे इस राष्ट्र को अवश्य प्राप्त हों। भूमियों के समान देश की रक्षा करने वाली रथ सेनाएं हृष्टपुष्ट प्रबल अश्वों से युक्त होकर, सूर्य के साथ लगे किरणों के समान अन्धकार-वत् शत्रु पर विजय की इच्छा करने वाले राजा लोग और प्रजा को ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य लोग हमारे राष्ट्र को प्राप्त हों।

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥

भा०—जो इन वीरों और विद्वानों के बीच में अपने बड़े विज्ञान और बल के सामर्थ्य से विशेष ज्ञान प्राप्त करते और शत्रुओं को दूर करने का उपाय करते हैं वे उत्तम प्रयोगों के कुशल पुरुष शत्रुओं को अच्छी प्रकार दूर करने के बल और साधन का प्रयोग करते हैं। उत्तम सुप्रकाश-युक्त दिन में जिस प्रकार हिंसक व्यक्ति शिकार को अच्छी प्रकार मार लेता है उसी प्रकार इनकी नायक सहित सेनाएं हैं वे अन्न से युक्त समस्त देश को मेघों के समान सींचते और उनका उपयोग करते हैं। इसी प्रकार भय से कांपते हुए शत्रु को सब ओर से शस्त्रास्त्रों के बरसते मेघ के समान निरन्तर प्रहार करते हैं।

प्रो अश्विनावर्वसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१०॥

भा०—हे राजा प्रजा जनो! आप लोग राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले सभापति, सेनापति, राजा प्रजा, एवं उत्तम स्त्री पुरुषों को राष्ट्र के पालन आदि कार्यों के लिये उत्साहित करें। प्रजा का पोषण करने वाले

राजा को स्वयं बलशाली व्यक्तियों को और द्वेष रहित पर्वतों व देश के प्रकोटों के स्वामी को वायु के समान बलवान् को तथा ज्ञानवान् पुरुष को आगे २ उत्तम पदों पर रखो। इन सब देवों अर्थात् विद्वान् पुरुषों को मैं राष्ट्रपति प्रजा के सुख की वृद्धि के लिये राष्ट्रकार्य में लगाता हूँ।

इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥५॥

भा०—हे दानशील, यज्ञ सत्संगति और ईश्वरोपासना करने वाले पुरुषो! वह परमेश्वरी वाणी और शक्ति तुम्हारे और हमारे सबके अज्ञान को दूर करने और ज्ञान का प्रकाश करने वाली, सबसे उत्कृष्ट प्राण और बल देने वाली और सबको शरण देने वाली हो। वह जो विद्वानों, विजयेच्छु जनों और अग्नि आदि समस्त लोकों में वसूयु होकर गूढ़ रूप से चेष्टा करती, गति देती है। हम उसी शक्ति की उपासना कर अन्न, बल और जीवन प्राप्त करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१८७]

अगस्त्य ऋषिः ॥ ओषधयो देवता ॥ छन्दः—१ उष्णिक्। ३, ७ भुरिगुष्णिक्। २, ८ निचृद् गायत्री। ४ विराट् गायत्री। ९, १० गायत्री च। ३, ५ निचृदनुष्टुप्। ११ स्वराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

भा०—मैं अन्न के समान पालक, महान्, समस्त जगत् को धारण करने वाले बल स्वरूप परमेश्वर की निरन्तर स्तुति करूं, जिसके पराक्रम से वाक्, काय, मन तीनों के किये कर्मों में फसा यह जीव आवरणकारी अज्ञान को पोरु २ करके छिन्न भिन्न करके विविध रूप से नाश करने में समर्थ होता है।

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे ।
अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

भा०—हे सबके पालक अन्न के समान आनन्द देने वाले ! हे अन्न के समान मधुर एवं अति आनन्ददायक ! तुझे हम वरण करते हैं । तुझे ही हम सबसे श्रेष्ठ जानकर उपास्यरूप से चुनते हैं । तू ही हमारा रक्षक, प्रकाशक, प्रिय, तृप्तिकारक, वृद्धिकारक, शरण में लेने हारा स्वामी हो ।

उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥

भा०—हे पालक ! तू अति कल्याणकारी होने से 'शिव' है, तू सुखदायी रक्षा, तृप्ति, प्रीति, कान्ति, दीप्ति, वृद्धि, श्रुति आदि उपायों से हमें प्राप्त होता है । तू सुख आनन्द का एक मात्र उत्पत्तिस्थान, आनन्द की जननी है । तू कभी द्वेष न करने हारा और द्वेष न करने योग्य मित्र उत्तम सुखस्वरूप, दो के भेद से रहित अर्थात् अनन्य, अद्वितीय है ।

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः ।
दिवि वाता इव श्रिताः ॥ ४ ॥

भा०—हे अन्न के समान सर्वपालक ! अन्न के नाना प्रकार के मधुर आदि रस जिस प्रकार सब पदार्थों में विद्यमान हैं, और जिस प्रकार आकाश में वायु स्थित है उसी प्रकार के अद्भुत् २ रस, बल और आनन्द धाराएं विविध रूपों में स्थित हैं, तू और शोभा रूप से विद्यमान है ।

तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वपालक प्रभो ! तेरे प्रदान करते हुए वे नाना रस तेरे ही अलौकिक स्वरूप हैं । हे सबसे अधिक स्वादु ! हे पालक ! रसों का

स्वाद लेने वाले हम प्रबल गर्दन वाले होकर, तेरी नित्य स्तुति किया करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम्।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे अन्न के समान पालक परमेश्वर! जिस प्रकार ग्राह्य विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का 'मन' इस अन्न में स्थित है, इसी के आधार पर वह पुष्ट होता है, और जिस प्रकार अन्न की विज्ञानप्रद शक्ति से मन देह भर में सञ्चरणशील होता है, और जिस प्रकार अन्न के तृप्ति करने वाले गुण से यह जीव सर्प के समान मूर्छित करने वाली अमिट भूख प्यास का नाश करता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर! तुझमें ही बड़े २ प्रकाशमान लोकों का स्तम्भनबल और ज्ञान धरा है। तेरे ही ज्ञान से यह जगत् सुन्दर बना है। तेरी शक्ति से ही सूर्य मेघ को भिन्न भिन्न करता है।

यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम्।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥

भा०—हे पालक प्रभो! तू पालन करने वाले मेघ, विद्युत्, पर्वत, अन्न, आदि सभी पदार्थों में अन्न के समान विविध रूपों में विद्यमान् है। इसीलिये हे प्रभो! उस अदृश्य, सर्वव्यापक तुझको उन पदार्थों में तुझे ही प्राप्त करते हैं। हे आनन्दमय! हे प्रकृति मधुर! हे पालक अन्न के समान हृदय के तृप्तिकारक! तू इस जन्म में हमारे खाने वा तृप्ति के लिये खूब पदार्थ प्राप्त करा।

यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे।
वातापे पीव इद्भव ॥ ८ ॥

भा०—जो हम जलों और ओषधियों का शरीर में व्यापने वाला अंश खा लेते हैं इसलिये हे वात अर्थात् प्राण से बलवान् होने वाले! तू पुष्ट ही रह।

यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥९॥

भा०—हे सोम ओषधे! जो तेरा गौ के दूध से मिला और जौ आदि से मिला रस है उसको हम सेवन करें। हे वायु अर्थात् प्राण से पुष्ट होने वाले देह! तू परिपुष्ट हो।

करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः ।
वातापे पीव इद्भव ॥ १० ॥

भा०—हे ओषधे! अन्नादि! तू शरीर का रचने हारा है। तू स्वयं पुष्टिकारक और स्वयं परिपुष्ट, रोगों को दूर करने वाला, शक्तियों और वीर्य आदि धातुओं का उद्दीपक है। हे वायु या प्राण के समान देह में फैलने हारी ओषधे! तू पुष्टिकारक हो।

तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥ ७ ॥

भा०—हे पालक अन्न के समान प्रभो! गौएं या बैलगण जिस प्रकार खाने योग्य दूध और अन्न आदि पदार्थ बहाते और खूब अधिक मात्रा में उत्पन्न करते हैं, और जिस प्रकार हम लोग विद्वान् पुरुषों और अपने लिये भी अन्न को उत्तम वाणियों सहित प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हे स्वामिन्! हम उत्तम वाणियों और स्तुतियों से उस उपास्य तुझको प्राप्त होते हैं, तुझे द्रवित करते हैं, प्रेम और दया से पूर्ण करते हैं। तुझको उत्तम गुणों को प्राप्त करने और अपने हित के लिये, एक साथ सयोग से अति आनन्द देने वाला जान कर तुझे प्राप्त होते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१८८]

अगस्त्य ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६, ७, १० निचृद्गायत्री । २, ४, ८, ९, ११ गायत्री ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।
दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥

भा०—खूब तेज से युक्त होकर सूर्य या अग्नि जिस प्रकार किरणों से युक्त होकर सहस्रों को अपने वश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तू भी प्रकाशमान्, दानशील, अति तेजस्वी होकर ज्ञानी और वीर, विजयोत्सुक पुरुषों द्वारा सहस्रों शत्रुओं को जीत कर सब से अधिक प्रकाशित हो । तू दुष्टों का सन्ताप देने हारा, क्रान्तदर्शी होकर उत्तम खाद्य पदार्थों को प्राप्त करा ।

तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते ।
दधत्सहस्त्रिणीरिषः ॥ २ ॥

भा०—अन्न प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाले पुरुष का 'यज्ञ' अर्थात् जीवनमय श्रेष्ठकर्म, सहस्रों सुखैश्वर्यों के देने वाले अन्नों को अपने में धारण करता हुआ, देह को न गिरने देने वाला होकर, मधुर अन्न और जल से अच्छी प्रकार कान्तिमान्, उज्ज्वल हो जाता है, इसी प्रकार देह को न गिरने देने वाला आत्मा और राष्ट्र विस्तार को कम न होने देने वाला राजा, वेद और ऐश्वर्य को प्राप्त होने वाले के लिये मधुर अन्न, जल तथा आनन्द से अच्छी प्रकार चमकता है । वह हजारों की सेनाओं को और अध्यात्म में सहस्रों इच्छाओं और वासनाओं को धारण करता है ।

आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् ।
अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्रणीनायक ! तू यज्ञाहुति करता हुआ, या आमन्त्रण पाकर, स्तुतिपात्र होकर, यज्ञ अर्थात् राष्ट्र पालन करने वाले विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा । तू सहस्रों का देने और विभाग करने वाला है ।

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् ।
यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥

भा०—जहां बल से आगे की ओर बढ़ने वाले सहस्रों वीरों से युक्त वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन को तेजस्वी पराक्रमी पृथिवी के स्वामी नरपति विस्तृत करते, उस पर शासन करते हैं, हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग वहां अच्छी प्रकार रहो ।

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।
दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—विविध गुणों कर्मों से प्रकाशमान् जो चक्रवर्त्ती के समान सर्वत्र अच्छी प्रकार प्रकाशित है वह राजा, और राष्ट्र में फैली हुईं बहुत सी, जो द्वारों के समान शत्रुओं को वारण करने हारी प्रजाएं और सेनाएं हैं, वे उत्तम सामर्थ्य वाली होकर, दुग्धादि खाद्य पदार्थों को प्रवाहित करें, अधिक मात्रा में उत्पन्न करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः ।
उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥

भा०—दिन रात्रि के समान हे राजा प्रजावर्गो ! आप दोनों इस देश में एक साथ रहो । आप दोनों उत्तम कान्तिमान्, एक दूसरे की रुचि वाले, उत्तम सुवर्णादि ऐश्वर्यवान् होकर, लक्ष्मी से खूब शोभा को प्राप्त होवो ।

प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥

भा०—विद्वानों में उत्तम, दीर्घदर्शी, दानशील और गुणग्राही, उत्तम वाणी बोलने वाले, विद्या बल का विस्तार करने वाले उत्तम नायक विद्वान् जन हमारे इस प्रजापालन आदि कार्य का सम्पादन करें ।

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे ।
ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥

भा०—हे भरत अर्थात् पालन पोषण करने वाले मनुष्यों की सभे ! हे भूमि सम्बन्धी प्रबन्ध करने वाली धर्मसभे ! हे उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभे ! और भी जो नाना प्रकार की सभा-समितिएं हैं मैं तुम सबसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम सब हमारी राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये हमें सदा सन्मार्ग में करती रहो ।

त्वष्टा॑ रू॒पाणि॒ हि प्र॒भुः प॒शून्विश्वा॑न्त्सम॒ानजे ।
तेषा॑ नः स्फा॒तिमा य॑ज ॥ ९ ॥

भा०—समस्त संसार का निर्माता परमेश्वर जिस प्रकार सबको उत्पन्न करने में समर्थ होकर समस्त रूपों को, रुचिकर पदार्थों और समस्त पशुओं को अच्छी प्रकार प्रकट करता है, और जिस प्रकार सूर्य रूपों को और रूप दिखाने वाली किरणों को भी प्रकट करता है, और दोनों ही प्रचुर वृद्धि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् तू भी शिल्पकार पदार्थों को गढ़ने में कुशल होकर, नाना रुचिकर सुन्दर पदार्थों और नाना प्रकार के उपयोगी पशुओं को भी वैज्ञानिक उपायों से प्रकट कर, और उनकी प्रचुर समृद्धि हमें प्रदान कर ।

उप॒ त्मन्या॑ वनस्पते॒ पाथो॑ दे॒वेभ्यः॑ सृज ।
अ॒ग्निर्ह॒व्यानि॑ सिष्वदत् ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार जलों और प्रकाशों या रश्मियों का पालक सूर्य, पान करने योग्य जलों को मेघ द्वारा उत्पन्न करता है, सूर्य का ताप और अग्नि परिपाक करके अन्नों और खाने योग्य फलों को स्वाद युक्त करता है, उसी प्रकार हे वनों और जलों और ऐश्वर्यों के पालक पुरुष ! तू विद्वानों, करप्रद प्रजाजनों के हित के लिये अपने सामर्थ्य से उत्तम जल, उत्तम अन्न और उत्तम पालन का उपाय किया कर । अग्रणी नायक और विद्वान् पुरुष खाने योग्य पदार्थों को उत्तम स्वादयुक्त बनावे ।

पु॒रो॒गा अ॒ग्निर्दे॒वानां॑ गाय॒त्रेण॒ सम॑ज्यते ।
स्वाहा॑कृतीषु रोचते ॥ ११ ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानवान् परमेश्वर जिस प्रकार गायत्री मन्त्रों से अच्छी प्रकार से प्रकट होता है, और अग्नि जिस प्रकार स्वाहाकारो और स्तुतियों से अच्छी प्रकार प्रकट होता है, उसी प्रकार सबका अग्रणी विद्वान् सबके आगे चलने द्वारा, विद्वानों और वीर विजेता पुरुषो के बीच वेदज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित होता है, और वही उत्तम वचन, भाषण, उत्तम हव्यादि पदार्थों के उपयोगो मे होकर भला और शोभायुक्त प्रतीत होता है। इति नवमो वर्गः ॥

[१८९]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः ३, ५, ६ विराट् पंक्ति ॥ ७ पंक्ति ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू मार्गदर्शक के समान हमे ऐश्वर्य और आनन्द प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार, सुखप्रद मार्ग से ले चल। हे सर्वप्रकाशक ! तू सब जानने योग्य विद्याओं को जानने हारा है। तू हमसे कुटिल कर्मों से उत्पन्न पाप को दूर कर। तेरे लिये हम बहुत २ नमस्कार वचन, सत्कार सहित उत्तम स्तुति करें। (२) विद्वान् पुरुष भी सब विद्याओ को जाने, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये उत्तम धर्मानुसार मार्ग पर चले। पापो, कुटिल वृत्तियो को दूर करे, सब लोग उसका अधिकाधिक आदर और उसे नमस्कार किया करें।

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् विद्वन् ! परमेश्वर ! तू सदा नवीन, कभी पुराना न होने हारा, सदा स्तुतियोग्य है। तू सब संकटो से कल्याणकारी, सुखदायक मार्गों और उपायो द्वारा पार कर। तू बहुत से सुखो को देने

वाली नगरी के समान पालक, पृथ्वी के समान आश्रयरूप और विस्तृत हो। और हमारे नन्हे २ बच्चों और बड़े पुत्रों को भी सुख और शान्ति-दायक हो।

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः।
पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे परमेश्वर! तू रोगकारी, पीड़ादायक रोगों और दुष्ट पुरुषों को हमसे पृथक् कर, जो कि मनुष्यों को सब प्रकार से पीड़ित करते हैं। हे सर्व सुखप्रद! हे दानशील! सत्संग योग्य, सुसंगतिकारक उत्तम स्नेही! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम गति प्राप्त करने के लिये समस्त अमृतस्वरूप, प्राणप्रद, जीवनदाता औषधियों से हमारी निवास भूमि पर हमारे उपयोग के लिये पूर्ण कर।

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशक विद्वन् परमेश्वर! तू हमारा स्थायी पालन करने के नाना उपायों से पालन कर, और तू अग्नि के समान कान्ति और शुद्ध तेज से चमकता हुआ हमारे प्रिय गृह में और देश में आ। हे दुःखों से छुड़ाने हारे! हे बलवान्! निश्चय से स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को तेरा भय न प्रतीत हो, और हे सहनशील! बलवन्! अन्य भी किसी प्रकार का उसको भय न प्राप्त हो।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥५॥१०॥

भा०—हे ज्ञानवन्! शत्रु और दुष्ट पुरुषों को अग्नि के समान संताप देने हारे राजन्! परमेश्वर! तू हत्यारे, हिंसा करने की इच्छा करने वाले शत्रु, और दुःखदायी दांत वाले व्याघ्र आदि, और काटने वाले सर्प, वृश्चिक आदि खा जाने वाले और नाश करने वाले, इनके लिये हमें कभी न छोड़। हे बलवन्! हमें कभी मत त्याग।

वि षु त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिहुतामसि हि देव विष्पट् ॥६॥

भा०—हे सत्यज्ञान में विशेष रूप से प्रसिद्ध विद्वन् प्रभो ! तुझ सहायक को प्राप्त होकर पुरुष, स्तुति करता हुआ, शरीर की रक्षा के लिये आच्छादन करने योग्य कवच को विशेष रूप से बांधता है, और वह सब प्रकार के हिंसाकारी शत्रु और निन्दक पुरुष से बचाता है। हे देव ! तू कुटिलाचारी लोगों का विविध उपायों से बाधक है।

त्वं ताँ अग्न उभयान्विविद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥

भा०—हे अग्रणी शासक ! हे दानशील एवं सत्कार मान पूजा के योग्य ! तू उन दोनों प्रकार के अच्छे और बुरे ज्ञानी और अज्ञानी छोटे और बड़े सब मनुष्यों को जानता हुआ, प्राप्त होने पर विवेकपूर्वक न्याय करता है, और अधिकार प्राप्त हो जाने पर तू मनुष्यों के हित के लिये शासन करने योग्य और 'शास' अर्थात् खड्ग आदि शस्त्र धारण करने में कुशल हो। और तुझे चाहने वाले अपने प्रिय सहयोगियों से अलंकारों से सुभूषित करने योग्य होकर तू मर्यादा का उल्लघन नहीं कर।

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥११॥

भा०—जो ज्ञानवान् पुरुषों और शत्रुनाशक सैन्यों का सञ्चालक है उस नायक के निमित्त हम निश्चित सत्य वचनों का उपदेश करें, और उस शत्रु पराजयकारी पुरुष के अधीन रहकर हम लोग विद्वान् वेदमन्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों और वेदमन्त्रों से सहस्रों ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करें। हम अन्न, पापनिवारक बल और उत्तम जीवन प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१६०]

अगस्त्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८ त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ धैवतः स्वरः ॥

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! अश्वादि से रहित, मेघ के समान शस्त्रादि वर्षण करने में चतुर, हर्षोत्पादक गम्भीर वाणी बोलने हारे, बड़े शास्त्रज्ञान और वेदवाणी और बड़े राष्ट्र के पालक, स्तुतियोग्य ज्ञानी और वीर पुरुष को तू अन्नों द्वारा बढ़ा । 'गाथा' अर्थात् उत्तम वेदादि शास्त्र की कथा या ज्ञानवाणी को दूसरे तक पहुँचाने वाले उत्तम कान्तिमान् मान करने योग्य पुरुष की विद्वान् और साधारण पुरुष भी सब प्रशंसा करते और कीर्त्ति सुनते हैं (२) परमेश्वर पक्ष में—परमेश्वर अन्य पर आश्रित न होने से 'अनर्वा' है । समस्त सुखों की वर्षा करने से 'वृषभ' है । उसकी वेदवाणी हर्षजनक होने से वह 'मन्द्रजिह्व' है । महान् ब्रह्माण्ड या पालक होने से 'बृहस्पति' है । हे विद्वन् तू उसको उत्तम अर्चना करने वाले वेदमन्त्रों से बढ़ा । सब उसकी कथा को रुचि करके सुनें ।

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जल की कामना करने वाले कृषकों के लिये जल बड़ा हर्षकारी होता है और पावस ऋतु की वाणियां उस मेघ को लक्ष्य करके उपस्थित होती हैं, और जिस प्रकार वायु बड़ा बलशाली होकर उत्तम जलों को देकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार जो पुरुष जलों के समान विद्या आदि की कामना करने वालों को हर्षजनक होता है, उसको ज्ञानवान् सदस्य पुरुषों की सभी वाणियां प्राप्त होती हैं । वह ही बड़े राष्ट्र और वेद का पालक आचार्य ब्रह्मवेत्ता है । वही निश्चय से ज्ञान करने वाले प्रमाता परमेश्वर के अधीन गति करने वाला होकर उस सत्यस्वरूप परमेश्वर में जा मिलता है । (२) इसी प्रकार राजा को सदस्यों की वाणियां उसी सभापति को लक्ष्य करके प्रस्तुत होती हैं जो

बिधाता के समान विद्वानों के बीच सभापति बना दिया जाता है। वह राजा या सभापति बड़े भारी ज्ञान से राष्ट्रैश्वर्य और सत्य न्याय के बल पर अच्छी प्रकार अधिकार करे। वह उत्तम बातो को प्रकट करने वाला कान्तिमान् होकर वरने योग्य वचनो, ज्ञानों और कर्मों को प्रकट करे।

उप॑स्तुतिं॒ नम॑स॒ उद्य॑तिं च॒ श्लोकं॑ यंसत्सवि॒तेव॒ प्र बा॒हू।
अ॒स्य क्रत्वा॑ह॒न्यो॒ ऽयो अस्ति मृ॒गो न भी॒मो अ॑र॒क्षस॒स्तु विष्मा॑न् ॥ ३ ॥

भा०—जो हिंस के समान भयकर, बहुत से बलों और बलवान् पुरुषों का स्वामी, और जो कभी किसी से मारा नहीं जा सके, उस बाधक शत्रुओं से रहित पुरुष के उत्तम कर्म और ज्ञानबल से, मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी और पराक्रमी होकर, अपने दोनों बाहुओं द्वारा प्रशंसा शस्त्रबल के उत्थान, और वेदादि वाणी को अच्छी प्रकार अपने बश करता है।

अ॒स्य श्लोको॑ दिवी॒यते पृ॒थि॒व्यामत्यो॒ न यं॑सद्यक्ष॒भृद्विचे॑ताः।
मृ॒गाणा॒ न हे॒तयो॒ यन्ति॑ चे॒मा बृह॒स्पते॑रहि॒मायाँ अ॒भि द्यून् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ की गर्जना अन्तरिक्ष में होती है उसी प्रकार इस वेदपालक विद्वान् पुरुष का वेदोपदेश भी उपासना करने वाले का पालन पोषण करने वाला और विविध ज्ञानों से युक्त होकर, पृथिवी में वेगवान् अश्व के समान, ज्ञान की कामना करने वाले और पृथिवी के समान ज्ञानजल को धारण करने वाले शिष्य की चित्त भूमि में प्राप्त होता है। और दिनोदिन वेदज्ञ बिद्वान् की ये वेदवाणियां, ढूंढ २ कर शिकार करने वालो के बाणो के समान तथा सर्प के समान कुटिलाचारी तथा अज्ञानी पुरुषों को भी पहुँचती है और इनकी कुटिलता और अज्ञान का नाश करती है।

ये त्वा॑ दे॒वो॒स्रिकं॒ मन्य॑मानाः पा॒पा भ॒द्रमु॑प॒जीव॑न्ति प॒ज्राः।
न दू॒ढ्ये॒ ऽअनु॑ ददासि वा॒मं बृह॑स्पते॒ चय॑स॒ इत्पिया॑रुम् ॥५॥१२॥

भा०—हे अन्नदान के देने वाले विद्वन् ! जो पापी जन तुझको वेद-वाणियों के साथ विचरने वाला विद्वान् जानते हुए आदरपूर्वक तेरे समीप आकर रहते हैं, वे भी ज्ञानवान् हो जाते हैं और उत्तम पद तक पहुँच जाते हैं। हे विद्वन् ! तू उत्तम ज्ञान को दुष्ट चित्त वाले पुरुष के लिये भी निरन्तर प्रदान करता है। हिंसक पुरुष को भी तू पालता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्थां दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपावृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् मार्ग जैसे उत्तम रथ आदि से जाने वाले को सुख पूर्वक उद्देश्य तक पहुँचा देता है, उसी प्रकार तू भी उत्तम सदाचार से आगे बढ़ने वाले और उत्तम अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों का उपयोग करने वाले को लक्ष्य तक पहुँचा देता है। मित्र जिस प्रकार अति प्रसन्न होकर अन्याय मार्ग में जाने वाले राजा को भी हित से बुरे मार्ग से हटाकर न्यायमार्ग में चलाता है, उसी प्रकार तू भी अपनी इन्द्रिय आदि को नियम में रखने में असमर्थ स्खलित पुरुष को सन्मार्ग में चलाता है। जो उत्तम धर्ममार्ग से जाने वाले तेरा साक्षात् करते हैं, या अन्यों को उपदेश करते हैं, वे सत्य मार्ग में स्थिर होकर किसी सत् तत्व को आच्छादित न करते हुए हमारे सामने रहें। वे सब तत्व खोल २ कर कहें।

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम भूमिया जिस प्रकार स्वामी को प्राप्त होती हैं और बहती हुई तटों और भंवरों वाली नदियां समुद्र को जिस प्रकार पहुँच जाती हैं, उसी प्रकार विनयशील तथा वीर्य का स्तम्भन करने हारे विद्यार्थि-जन उदार हृदय वाले तथा निरोध वृत्ति वाले होकर विद्या के अगाध सागर रूप विद्वान् को प्राप्त करते हैं। वह विद्वान् वेदवाणी या अन्नदान

का पालक विद्यार्थियों को हृदय से चाहता हुआ, ऐहिक-पारमार्थिक दोनों जिताने का उपदेश करता है। वह अज्ञानी विद्यार्थियों के लिये ज्ञान बढ़ाने और अज्ञान से पार उतारने वाला होने से 'तर' अर्थात् नौका के समान है, और आप्त और जलों के समान उनके आचार चरित्र शुद्ध करने हारा होने से 'आप.' है।

एवा मुहस्तुविज्ञातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥१३॥

भा०—वह महान्, अपने से बड़े विद्यावृद्ध से उत्पन्न, शरीर आत्मा से बलवान, वेदज्ञ विद्वान् विद्यादाता होकर, वर्षणशील मेघ के समान एक सर्वश्रेष्ठ रूप से धारण किया जाता है। वह प्रशंसायोग्य पुरुष हमें उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, और उत्तम भूमि, वाणी और पशुओं से युक्त ज्ञान और ऐश्वर्य स्वयं धारण करे और हमे प्रदान करे। हम अन्न या मनोकामना, बल, और जीवन प्राप्त करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१९१]

अगस्त्य ऋषिः ॥ अबोषधिसूर्या देवताः ॥ छन्दः—१ उष्णिक् । २ भुरिगुष्णिक् ३, ७ स्वराडुष्णिक् । १३ विराडुष्णिक् ४, ६, १४ विराडनुष्टुप् । ५, ८, १५ निचृदनुष्टुप् । ९ अनुष्टुप् । १०, ११ निचृद् बृहत्यनुष्टुप् । १२ विराड् बृहत्यनुष्टुप् । १६ भुरिगनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥

भा०—अति पतङ्ग के समान विष वाला जीव होता है। और दूसरा पिंपला जीव जल धारा के समान कुटिल चाल से चलने वाला होता है। ये दोनों ही प्रकार के जीव देखे जाते हैं। और वे दोनों काटने पर भिन्न २ प्रकार से दाहकारी होते हैं। वे जीव प्राय. देखने में नहीं

आते तो भी वे छुपे रूप से अपने शिकार को पकड़ते हैं और काट लेते हैं।

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती॥ २॥

भा०—विषनाशक ओषधि कई प्रकार की होती हैं। जैसे ओषधि समीप आती हुई न दीखने वाले विष जन्तुओं को नाश कर देती है। और दूर जाती हुई भी वह अपने पूर्व प्रभाव या मादकता से उनका नाश कर देती है। और वह उनको ऐसे मारती है जैसे मानो कूट कूट कर आघात करती है। वे उसके प्रभाव से तड़प २ कर मरते हैं। अथवा ओषधि कूटी जाती हुई भी अपने उग्र गन्धों से विषैले जन्तुओं का नाश कर देती है, और पीसी जाकर और भी सूक्ष्म होकर वह विष जन्तु को मानो पीस डालती है। उनका सर्वथा नाश कर देती है।

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत॥ ३॥

भा०—शर अर्थात् सरकण्डों में रहने वाले, छोटी जात के सरकण्डों में रहने वाले, दाभ या कुशा घास में रहने वाले, नदियों, तालाबों के तटों में उत्पन्न घासों के बीच, मूंजों में रहने वाले, वीरण नाम तृणों में रहने वाले ये नाना प्रकार के न दीखने वाले अर्थात् छिपे हुए विषैले जन्तु सब उन २ तृण आदि पदार्थों के साथ ही चिपटे रहते और उनमें छुपे रहते और घात लगाये रहते हैं।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत॥ ४॥

भा०—गौएं जिस प्रकार गोशाला में शान्त होकर पड़ी रहती हैं, हिंसक जन्तु जिस प्रकार वन में छुपे २ घुसे रहते हैं, जिस प्रकार मनुष्यों

के बीच में ज्ञान या ज्ञानी पुरुष शान्त भाव से रहते हैं, उसी प्रकार विषैले जीव भी छुपे रहकर पडे रहते हैं।

एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—ये सभी विषधारी जीव जो दिन मे छुपे रहते हैं वे पूर्वोक्त सब रात्रि के प्रारम्भ समय मे चोरों के समान प्रत्यक्ष रूप मे दीखा करते हैं। जो जीव प्रायः नहीं भी दीखते वे भी सबकी दृष्टि मे आकर या स्वयं सब कुछ देखते हुए खूब अपने तईं सावधान होकर रहते हैं। अथवा रात्रि मे न दीखने वाले जीव भी सबको नहीं दीखते, इसलिये हे पुरुषो! आप सब सचेत होकर रहो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य या आकाश, मेघादि वृष्टि द्वारा पालक होने से तुम जीवो का पालक, पिता के समान है। यह पृथिवी सबकी माता के समान है। ओषधिगण और चन्द्रमा भरण पोषण करने वाला होने से सबके भ्राता के समान है। ये सब उत्पन्न जीव-जन्तु सब अपने २ सामर्थ्य से चलने, सरकने वाले या सुख से रहने वाले होने से 'स्वसा' अर्थात् भगिनी के समान है। वे इनमें से कुछ जो कि देख नहीं पड़ते, दूसरे जो सबको देख पडते है वे सभी हे प्राणिगणो! तुम रहो और अच्छी प्रकार सुख पूर्वक विचरो।

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

भा०—जो कन्धो के बल सरकने वाले, जो अंग अर्थात् पावो के बल चलने वाले, सूई के समान कांटे से काटने वाले, और जो अति चचंल,

अतितीव्र वेदना देने वाले हैं, जो कुछ भी यहां दिखाई नहीं पड़ते, हे सब जीवो ! तुम सब एक साथ ही हमें छोड़ जाओ या नष्ट हो जावो ॥

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।

अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

भा०—सबके देखने योग्य, न दीखने वाले दोषों का भी नाश करने वाला सूर्य पूर्व की ओर उदय होता है। वह सब न दीखने वाले प्राणियों और सब प्रकार की पीड़ा देने वाली जीव जातियों को दूर करता हुआ प्रकट होता है।

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।

आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य नाना विषों और सभी अन्धकारों का नाश करता हुआ ऊपर उठता है, उसी प्रकार पर्वतों से नाना प्रकार के रस ओषधियों का आदान करने वाला विषवैद्य सब प्रकार जन्तुओं और ओषधियों के गुणदोषों को प्रत्यक्ष परीक्षण से देखने हारा होकर, न देखे हुए विषों और रोगों का भी नाश करने में समर्थ होता है।

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।

सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं

हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—सुरा अर्थात् भाप की विधि से शुद्ध जल बनाने वाले के घर में पात्र जिस प्रकार रखा रहता है और उसमें भाप बना जल बूंद २ करके टपकता है, उसी में सब समाता जाता है, उसी प्रकार मैं भी विष को सूर्य में विलीन करता जाऊं। इससे न तो सूर्य ही विष द्वारा मरता है और न हम ही प्राण त्याग करते हैं। इस विष को सूर्य के साथ लगाना विष को दूर करना है। विष हरने के कार्य में यह पदार्थ बड़ा उपयोगी है। हे विष ! तुझको भी यह सूर्य मधुर अर्थात् सह्य कर देता है। हे

रोगिन्! मधु देने वाली ओषधि या यह विषवैद्य भी तुझे सुख दे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इ॒य॒त्ति॒का श॑कुन्ति॒का स॒का ज॑घास ते वि॒षम्।
सो चि॒न्नु न म॑राति॒ नो व॒यं म॑रामा॒रे अ॑स्य॒ योज॑नं
हरि॒ष्ठा मधु॑ त्वा मधु॒ला च॑कार ॥ ११ ॥

भा०—इतनी छोटी सी पंख वाली वह चिड़िया तेरे विष को खा जाती है। इससे वह भी नहीं मरती है, और हम भी नहीं मरते। इस जन्तु का योग भी विष को दूर करता है। विष के हरने वालों में उसका भी विशेष स्थान है। हे विष! विष को मधुर करने वाली यह तुझे मधुर कर देती है।

त्रिः स॒प्त वि॑ष्पुलिङ्ग॒का वि॒षस्य॒ पुष्प॑मक्षन्।
ताश्चि॒न्नु न म॑रन्ति॒ नो व॒यं म॑रामा॒रे अ॑स्य॒ योज॑नं
हरि॒ष्ठा मधु॑ त्वा मधु॒ला च॑कार ॥ १२ ॥

भा०—२१ प्रकार की विष खा जाने वाले छोटे पक्षियों की जातियां हैं जो विष के अतिपुष्ट या प्रबल अंश को खा जाती हैं। वे भी विष से नहीं मरतीं। और इस प्रकार हम भी नहीं मरते। (आरे अस्य योजन) इत्यादि पूर्ववत्।

न॒वा॒नां न॑वती॒नां वि॒षस्य॒ रोपु॑षीणाम्।
स॒र्वा॑साम॒ग्रभं॒ नामा॒रे अ॑स्य॒ योज॑नं
हरि॒ष्ठा मधु॑ त्वा मधु॒ला च॑कार ॥ १३ ॥

भा०—मैं ९०+९=९९ निन्यानवे, विष को हरने वाली समस्त ओषधियों का नाम और स्वरूप लूं, उनको जानूं, उनका अन्यों को उपदेश करूं। (आरे अस्य योजनम्) इत्यादि पूर्ववत्। विष के ९९ प्रकार और उनके ९९ ही प्रकार के प्रतिबन्धक उपाय हैं।

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥

भा०—३ × ७ = २१ प्रकार के मयूर जाति के पक्षी हैं, और सात प्रकार की स्वयं गति करने वाली नाड़ियां होती हैं। वे सब विशेष रूप से विष को ऐसे दूर करती हैं, जैसे कहारिया या नदियां जल को हर ले जाती हैं। मुर्गी की जातियों का गुदा भाग सर्प के काटे विष को बार २ लगाने से चूस लेता है। क्रम से एक के बाद एक लगाने से २१ मुर्गियों के बाद विष शमन हो जाता है। ऐसे पक्षियों के २१ प्रकार होना सम्भव है।

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥

भा०—इतना सा कुसुम भी विष की औषध है। उस विष के स्थान को प्रस्तर या शस्त्र से छेद दूं। उससे विष दूर २ तक जाने वाली धाराओं में फूट निकलता है।

कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥१६॥२४॥१॥

भा०—छोटा सा नेवला जो पर्वत से चला हुआ आता है वह मानो यह कहता है कि वृश्चिक का विष उससे निर्बल है। तो फिर हे काटने वाले विच्छू ! तेरा विष अब प्रबल नहीं है। तेरी भी औषध नकुल आदि प्राणियों में विद्यमान है। इस सूक्त के ८ वें मन्त्र में सूर्य को जहां विष नाशक बतलाया है वहां सूर्यवर्ग में पठित अर्कपत्री, आदित्यभक्ता आदि ओषधियों का भी उपदेश विष प्रयोग पर जानना चाहिये। 'अर्क' के अनुभूत चिकित्सा सागर में नीचे लिखे गुण प्राप्त होते हैं—

(१) सर्प का विष उतारने के लिये उसके दंश पर आकड़े का दूध टपकता रहे जब तक शरीर में विष रहेगा तब तक दूध सूखता रहेगा

जब विष का दोष शरीर में न रहेगा तब दंश पर भी दूध न सूखेगा।
(अनु० चि० २८ । ७६)

(२) अर्क की तीन कोपलें गुड़ में लपेट, खिलाकर ऊपर घी पिलाने से साप का विष उतरता है। (अनु० चि० २८ । ७८)

(३) बिच्छू के दंश पर अर्क का दूध लगाने से उसका विष उतर जाता है। (अनु० चि० २८ । ७९)

इसकी जड़ पानी के साथ पीसकर पिलाने से सांप का विष उतरता है। (अनु० चि० २८।८०)

(४) अर्कपत्री–इसको घिस कर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

(५) इसको सर्पदंश पर लगाने और खिलाने से सर्प का बिष उतरता है (अनु० चि० ३० । ३, ७)

मन्त्रों में 'हरिष्ठा.' शब्द है। कदाचित् वह हरीठा हो। हरीठा के गुण—इसकी गिरी को पानी में पीस कर पिलाने से बिष उतर जाता है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के निम्नलिखित सूक्त भी विशेष प्रकाश डालते हैं। अथर्व० (५ । १३ । १-११), (५ । २३ । १-१३), (४ । ३१ । १-१२), (२ । २३ । १-६), (६ । १२ १-३), (६ । ५२ । १-३) (७ । ५६ । १८) (१० । ४ । १-२६) इनमें सर्पविष के प्रकार, अन्य विषैले जन्तु, उनकी ओषधियो, सर्पों की जातियों, वृश्चिक, तथा बिच्छू, सूर्य आदि का प्रकारान्तर से न्यूनाधिक वर्णन है। इति षोडशो वर्गः ॥

इति चतुर्विंशोऽनुवाकः ॥

इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम्

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्

[१]

आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समद ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः, ६ भुरिक् पङ्क्ति । १३ स्वराट् पङ्क्तिः । २, १५ विराड् जगती । १६ निचृज्जगती । ३, ५, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६, ११, १२, १४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्वी ! हे मनुष्यों और नायकों के भी पालक राजन् ! प्रभो ! तू तेजस्वी कर्मों से प्रसिद्ध हो । जिस प्रकार अग्नि शीघ्र दीप्ति से अन्धकार का नाश करता है उसी प्रकार तू भी दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा और सब प्रकार से तेजस्वी हो । मेघ के जलों में अग्नि जिस प्रकार विद्युत् रूप से उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी आप्त पुरुषों से और प्रजाजनों से अधिक शक्तिशाली रूप से प्रकट हो । जिस प्रकार अग्नि पत्थरों की रगड़ से प्रकट होता है उसी प्रकार तू 'अश्मा' अर्थात् वज्र, शस्त्रास्त्र बल से उसके भी ऊपर अध्यक्ष रह कर प्रकट हो । वनों ,जगलों से, उनके वृक्षों से जिस प्रकार महान् दावानल उत्पन्न होता है और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् जलों से, विद्युत् उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी वन अर्थात् सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से या बहुत सी संख्या में विद्यमान् सेना-दलों से प्रकट या प्रसिद्ध हो । जिस प्रकार अग्नि ओष- उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू भी 'ओषधि' अर्थात् शत्रु को

संताप देने वाले वीरपुरुषों की सेनाओं से राष्ट्र के रोगों के समान पीड़ा-दायक जनों को दूर करने हारा हो। हे मनुष्यों के पालक ! तू मनुष्यों के बीच मन, वाणी और काय, तीनों में पवित्र हो। दण्डनीति के अनुसार चार प्रकार से शुचि रहने का उपदेश है धर्म, अर्थ, काम और भय में राजा को शुद्ध रखना चाहिये। वह अधर्म से किसी को न सतावे, अन्याय से धन न छीने, दूसरों की स्त्रियों, कन्याओं का कामी होकर आहरण न करे, शत्रुओं से संग्राम काल में भयभीत न हो।

तवा॑ग्ने हो॒त्रं तव॑ पो॒त्रमृ॒त्वियं॒ तव॑ ने॒ष्ट्रं त्वम॒ग्निदृ॑ताय॒तः।
तव॑ प्रशा॒स्त्रं त्वम॑ध्वरीयसि ब्र॒ह्मा चासि॑ गृ॒हप॑तिश्च नो॒ दमे॑ ॥२॥

भा०—हे विद्वन् नायक ! दान देने द्वारा उत्तम सत्कार भी तेरा ही है, यज्ञ के समान पवित्र कार्य तेरा है। प्रति ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाले ऋत्विजों के योग्य आदर सत्कार और यज्ञ में नेष्टा के समान नायक-पन अर्थात् अन्यों को सन्मार्ग में ले चलने का कार्य तेरा ही हो। और तू ही अग्नि को प्रकाशित करने वाला, अपने समान अन्य विद्वान् और तेजस्वी को उत्पन्न करने वाला अग्नियों को प्रज्वलित एवं उनसे यज्ञ करने हारा हो। सत्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, अन्न और वेदानुकूल न्यायव्यवस्था करने वाला तेरा ही सर्वोपरि प्रधान शासन हो। तू अध्वर अर्थात् प्रजाओं को पीड़ा का नाश और अहिंसा का पालन करना चाहता है। तू राष्ट्र पालन के कार्य को यज्ञ के समान करना चाहता है। तू ही चारों वेदों के जानने वाले ब्रह्मा के समान सबका स्वामी हो। घरों में हमारे बीच गृह-स्वामी के समान राष्ट्र का पालक हो।

त्वम॑ग्न॒ इन्द्रो॑ वृष॒भः स॒ताम॑सि॒ त्वं विष्णु॑रुरुगा॒यो न॑म॒स्यः॑।
त्वं ब्र॒ह्मा र॑यि॒विद्ब्र॑ह्मणस्पते॒ त्वं वि॑धर्तः सचसे॒ पुर॑न्ध्या ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य के समान प्रकाशमान् ! तू ऐश्वर्यवान्, उत्तम सुखों को देने हारा, सत्पुरुषों के बीच नमस्कार और पूजा करने योग्य है। तू

व्यापक सामर्थ्यवान्, बहुतो से स्तुति किया जाय। तू वेदों का विद्वान् सब पदार्थों को जानने हारा हो। हे वेद के पालक ! हे विविध उपायों से राष्ट्र का धारण करने हारे ! तू पुरा अर्थात् राष्ट्र को धारण करने वाली बुद्धि और राजनीति के साथ रहता हुआ समवाय बना कर रह। (२) परमेश्वर ब्रह्म अर्थात् वेद का पालक और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली शक्ति से युक्त है। वह स्वयं 'ब्रह्मा' अर्थात् सब से महान् है।

त्वम॑ग्ने राजा॒ वरु॑णो धृ॒तव्र॑त॒स्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि द॒स्म ईड्यः॑।
त्वम॑र्य॒मा सत्प॑ति॒र्यस्य॑ स॒म्भुज॒न्त्वमंशो॑ वि॒दथे॑ देव भाज॒युः ॥४॥

भा०—हे पदार्थों के प्रकाशक राजन् ! तू गुणों से राजा है। सबसे श्रेष्ठ, सब दुःखों का वारक सत्य व्रतों का धारण करने वाला, सब का स्नेही, दुःखो और दुष्टों का नाशक और सबसे स्तुति योग्य है। तू शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी, सज्जनों का प्रतिपालक है। ओर जिस राष्ट्र के उत्तम रीति से भोग और पालन करने के लिये तू मुख्य आज्ञापक होता है, हे राजन् ! उसी के ज्ञानपूर्वक धनादि प्राप्त करने के निमित्त न्यायपूर्वक विभाग करने हारा हो।

त्वम॑ग्ने त्वष्टा॑ विध॒ते सु॒वीर्यं॒ तव॒ ग्नावो॑ मित्रमहः सजा॒त्य॑म्।
त्वमा॑शु॒हेमा॑ ररिषे॒ स्वश्व्यं॒ त्वं न॒रां शर्धो॑ असि पुरू॒वसु॑ः ॥५॥१७॥

भा०—हे तेजस्विन् ! तु सबको बनाने हारा है, कुल्हाड़े या शस्त्र के समान काम करने वाले विद्वान् को उत्तम बल प्रदान करता है। हे स्तुति-वाणियों के स्वामिन् ! हे मित्र के समान सबका आदर करने वाले ! कार्यकर्त्ता के साथ तेरा ही बन्धुभाव है। तू ही सबका बन्धु है। तू बहुत शीघ्र ऐश्वर्य आदि से बढ़ाने वाला होकर उत्तम अश्वादि रथादि सैन्य और वाहनों से युक्त ऐश्वर्य को प्रदान करता है। तू बहुत सी, अनेक, प्रजाओं का बसाने वाला, तू मनुष्यों के बीच में शत्रुनाशकारी शस्त्रास्त्रों का धारण करने वाला बलस्वरूप है। इति सप्तदशो वर्गः॥

त्वम॑ग्ने रु॒द्रो असु॑रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे।
त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शङ्ग॒यस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॑सि॒ नु त्मना॑ ॥६

भा०—हे आग के समान तेजस्विन् राजन्! तू दुष्टों को रुलाने हारा 'असुर' अर्थात् शत्रुओं को उखाड फेंकने वाला, महान् है। तू द्युलोक सम्बन्धी वायुओं के वर्षाकारी बल के समान विजय करने वाले विजिगीषु के शत्रुमारक सैनिकों के परस्पर सम्मिलित बल का स्वामी हो। जिस प्रकार अग्नि वेगवान् वायुओं को बढ़ाता है उसी प्रकार हे राजन् तू वायु के समान वेग से जाने वाले अश्वों से प्रयाण कर। तू सबको शान्ति सुख पहुँचाने वाला सबका पोषक होकर, आत्मसामर्थ्य से सेवा करने वाले, कार्य कर्त्ताओं की रक्षा करता है।

त्वम॑ग्ने द्रविणो॒दा अ॑रं॒कृते॒ त्वं दे॒वः स॑वि॒ता र॑त्न॒धा अ॑सि।
त्वं भगो॑ नृपते॒ वस्व॑ ईशिषे॒ त्वं पा॒युर्दमे॒ यस्तेऽवि॑धत् ॥ ७ ॥

भा०—हे सूर्य के समान सब सुखों के देने हारे! तू खूब पुरुषार्थ करने वाले को धनों, ऐश्वर्यों का देने वाला है। तू सर्वप्रद, उत्पादक, सब रमणीय रत्न आदि पदार्थों को धारण करने वाला है। हे मनुष्यों के पालक! तू सब ऐश्वर्यों का स्वामी होकर समस्त ऐश्वर्यों का और बसी प्रजा का स्वामी हो। जो तेरे दमनकारी शासन मे काम करता, तेरी सेवा परिचर्या करता है, तू उसका पालन करने हारा है।

त्वाम॑ग्ने॒ दम॒ आ वि॒श्पतिं॒ विश॒स्त्वां राजा॑नं सुवि॒दत्र॑मृञ्जते।
त्वं विश्वा॑नि स्वनीक पत्यसे॒ त्वं स॒हस्रा॑णि श॒ता दश॒ प्रति॑ ॥८॥

भा०—हे नायक राजन्! प्रजाएं तुझको दमन कार्य में प्रजा पालक बनाती हैं। और वे ही तुझको उत्तम दानशील, उत्तम प्राप्त ऐश्वर्य का रक्षक, उत्तम ज्ञान का रक्षक राजा बनाती हैं। हे सौम्य सुख! हे उत्तम सैन्य के स्वामिन्! तू सब पदार्थों का स्वामी है। और तू दस सौ हजार अर्थात् दस लाख १००००००, सैन्यों पर भी स्वामी है।

त्वाम॑ग्ने पि॒तर॑मि॒ष्टिभि॒र्नर॒स्त्वां भ्रा॒त्राय॒ शम्या॑ तनू॒रुच॑म् ।
त्वं पु॒त्रो भ॑वसि॒ यस्तेऽवि॑धत्त्वं सखा॑ सु॒शेवः॑ पास्या॒धृषः॑ ॥९॥

भा०—हे ज्ञानस्वरूप राजन् ! लोग यज्ञों और सत्कारों से तुझको पालक माता पिता जानकर तेरी सेवा करते हैं। अग्नि के समान प्रत्येक देह में कान्तिस्वरूप तेरी उत्तम कर्मानुष्ठान से भाई के समान बन्धुता उत्पन्न करने के लिये सेवा करते हैं। जो तेरी अच्छी प्रकार से सेवा करता है तू उसका पुत्र के समान सहायक हो जाता है। तू ही सखा, उत्तम सुख देने वाला होकर, तिरस्कार और बलात्कार करने वालों से उसकी रक्षा करता, उसे बचाता है। राजा विस्तृत राष्ट्रदेह में शोभायमान होने से 'तनूरुच' है।

त्वम॑ग्न ऋ॒भुरा॒के न॑म॒स्य॑स्त्वं वाज॑स्य क्षु॒मतो॑ रा॒य ई॑शिषे ।
त्वं वि भा॑स्यनु॑ दक्षि दा॒वने॒ त्वं वि॑शि॒क्षुर॑सि य॒ज्ञमा॒त॒निः ॥१०।१८॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् प्रतापिन् राजन् ! तू तेजस्वी, सत्य के बल से चमकने वाला, महान् सामर्थ्यवान् है। तू समीप विद्यमान् और सबके नमस्कार करने योग्य है। तू प्रचुर अन्न आदि भोग्य सामग्री से युक्त बल और विज्ञान तथा ऐश्वर्य का स्वामी है। तू विशेष रूप से चमकता है, शोभा पाता है, तू क्रम से अपने शत्रुओं को भस्म कर देता है। और आत्मसमर्पक पुरुष के हित के लिये विविध विद्याओं को सिखाने वाला और विविध उपायों से दमन करने वाला होता है। तू यज्ञ, विद्या और धन, प्राण आदि के दान कार्य को सदा करता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्वम॑ग्ने॒ अदि॑ति॒र्दे॑व दा॒शुषे॒ त्वं होत्रा॒ भार॑ती वर्धसे गि॒रा ।
त्वमिळा॑ श॒तहि॑मासि॒ दक्ष॑से॒ त्वं वृ॑त्र॒हा व॑सुपते॒ सर॑स्वती ॥११॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप ! हे सब गुणों के दाता ! दानशील पुरुष के लिये तू सूर्य के समान अक्षय शक्ति, जीवन और ऐश्वर्य का भण्डार

है। तू ही सब सुखों और ज्ञानों को देने वाली वाणी, तथा सूर्य की दीप्ति के समान सब तत्व को प्रकाशित करने वाली वाणी होकर, वेद वाणी से उसे बढ़ाता है। तू बल और क्रिया शक्ति को बढ़ाने के लिये सौ बरसों की आयु तक प्राप्त होने वाली अक्षय अन्नसम्पदा के समान जीवनप्रद है। हे ऐश्वर्य के पालक! हे बसे प्रजाजन के पालक! तू विघ्नकारी तथा अज्ञान का नाश करने हारा और नदी के समान उत्तम ज्ञानजल से सब को पवित्र करने हारा है।

त्वम॑ग्ने सु॒भृत॑ उत्त॒मं वय॒स्तव॑ स्पा॒र्हे वर्ण॒ आ सं॒दृशि॒ श्रियः॑।
त्वं वाजः॑ प्र॒तर॑णो बृ॒हन्न॑सि॒ त्वं र॒यिर्ब॑हु॒लो वि॒श्वत॑स्पृथुः ॥१२॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! तू सुख से धारण करने योग्य एवं अपने आश्रितों का उत्तम रीति से पोषक है। तेरे दर्शनीय चाहने योग्य वरण करने में ही उत्तम बल और उत्तम शोभाएं और लक्ष्मी प्राप्त होती है। तू ज्ञान और ऐश्वर्य का साधक और संग्रामों से पार उतारने वाला है। तू सदा बढ़ने वाला और प्रजा को बढ़ाने वाला है। तू द्रव्य-सम्पदा के समान अपने में सबको रमाने वाला है। तू बहुत से सुख ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला और सब प्रकारों से विस्तृत और अतिविस्तारवान् है।

त्वाम॑ग्न आ॒दि॒त्यास॑ आ॒स्यं॑ त्वां जि॒ह्वां शुच॑यश्चक्रिरे कवे।
त्वां रा॑ति॒षाचो॑ अध्व॒रेषु॑ सश्चिरे॒ त्वे दे॒वा ह॒विर॑दन्त्याहु॑तम् ॥१३॥

भा०—हे विद्वन्! पृथिवी माता के पुत्र प्रजागण, पृथिवी के स्वामी तेजस्वी राजा गण और अखण्ड ब्रह्म और अविनाशिनी वेदवाणी के उपासक जन तुझको अपना मुख बना लेते हैं, तुझे अपना प्रमुख, अपना प्रतिनिधि और आदेश देने वाला नियत कर लेते हैं। हे मेधाविन्! शुद्ध-चित्त वाले जन, तुझे अपनी जिह्वा अर्थात् वाणी बना लेते हैं। अर्थात् तेरी ही वाणी उनके अभिप्राय को स्पष्ट करे यह उनको अभिमत होता है। राजा लोगों के मुख और वाणी विद्वान् दूत होते हैं। दान आदि सत्कर्मों

में स्थित लोग भी हिंसादि से रहित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्यों में तुझको ही प्राप्त होते हैं। विद्वान् लोग तेरे अधीन रह कर ही सब प्रकार से प्राप्त अन्न धन ऐश्वर्यादि का ही भोग करते है।

त्वे अ॑ग्ने॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑सो अ॒द्रुह॑ आ॒सा दे॒वा ह॒विर॑द॒न्त्याहु॑तम्। त्वया॒ मर्ता॑सः स्वदन्त आसु॒तिं त्वं गर्भो॑ वी॒रुधां॑ जज्ञिषे॒ शुचिः॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशवन् राजन्! तेरे अधीन रहकर समस्त चिरंजीवी, परस्पर द्रोह न करते हुए, तुझ प्रमुख पुरुष के साथ या तुझ द्वारा प्राप्त हुए अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का भोग करते हैं। और तेरे द्वारा ही सब मनुष्य ऐश्वर्य का भोग करते हैं। तू ही बलवीर्य धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं का ग्रहण, स्वीकार और वश करने हारा होकर, पवित्र रूप में प्रकट हो।

त्वं तान्त्सं च॒ प्रति॑ चासि म॒ज्मनाग्ने॑ सुजात॒ प्र च॑ देव रिच्यसे। पृ॒क्षो यद॒त्र॑ महि॒ना वि ते॒ भुव॒दनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी रोद॑सी उ॒भे ॥१५॥

भा०—हे सब ज्ञानों के प्रकाशक! तू उन सबके साथ मिलने पर भी सबके समान है, और प्रत्येक के भी बराबर है। और बल से हे उत्तम गुणों से प्रसिद्ध! हे दानशील! तू सबसे अधिक बढ़ जाता है। तू सबसे अधिक शक्तिशाली है। जो पृथ्वी पर अन्न आदि है वह भी तेरे महान् सामर्थ्य से ही विविध रूपों से उत्पन्न होता है। तेरे वश में ये दोनों एक दूसरे की मर्यादा को सीमित करने वाले सूर्य पृथिवी के समान राजा प्रजा वर्ग या माता पिता और गुरु शिक्षक वर्ग हैं, वे तेरे ही अधीन तेरे से उतर कर पूज्य हैं। तू सब से अधिक पूज्य है।

ये स्तो॒तृभ्यो॒ गोअ॑ग्रा॒मश्व॑पेशस॒मग्ने॑ रा॒तिमु॑पसृ॒जन्ति॑ सू॒रयः॑। अ॒स्माञ्च॒ तांश्च॒ प्र हि नेषि॒ वस्य॒ आ बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ १६ ॥ १९ ॥

भा०—जो विद्या जल से स्नान करने के इच्छुक विद्यार्थी जन, और विद्वान् पुरुष स्तोता, नाना विद्याओं को उपदेश करने वाले विद्वानों के हित अपनी उत्तम वाणी वा चक्षु आदि इन्द्रियो को आगे किये, सावधान, आशुगामी मन के उत्तम रूप वाली, मनन क्रिया से युक्त, चित्त वृत्ति का दान गुरुओं के अति समीप आकर करते हैं उनके प्रति सब कुछ समर्पण करते हैं और जो विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष विद्वानों को उत्तम सत्कारयुक्त वाणी को आगे रखकर अश्व अर्थात् राजसी सम्पत्ति का दान करते हैं। हे विद्वन् प्रभो! हमें और उन प्रतिग्रह देने और लेने वाले दोनों को निश्चय से उत्तम ऐश्वर्य, आवास आदि, प्रदान कर। हम सब उत्तम वीर्यवान् वीर पुत्र आदि से सम्पन्न होकर ज्ञानयज्ञ अध्ययन, अध्यापन और सग्राम और यज्ञ के अवसर में भी बड़े महत्वपूर्ण, वृद्धिकारी वचन और वेदमन्त्र रूप बृहती वेदवाणी को भी कहें, उच्चारण करें। अभ्यास करें और उपदेश करें। एकोनविंशो वर्गः॥

[२]

गृत्समद ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २, ७, १२ विराट् जगती। ४ जगती। ५, ६, ९, १३ निचृज्जगती। ३, ८, १०, ११ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

य॒ज्ञेन॑ वर्धत जा॒तवे॑दसम॒ग्निं य॑जध्वं ह॒विषा॒ तना॑ गि॒रा।
स॒मि॒धा॒नं सु॑प्र॒यसं॒ स्व॑र्णरं द्यु॒क्षं होता॑रं वृ॒जने॑षु धू॒र्षद॑म्॥ १॥

भा०—हे प्रजाजनो! आप लोग ज्ञान और धनैश्वर्यों में विख्यात, अतितेजस्वी, उत्तम अन्नसम्पदा से पूर्ण, सुख के मार्ग में ले जाने वाले, प्रकाशमान्, सबको अपनी शरण में लेने और सबको अन्न वेतनादि देने हारे, शत्रु को वर्जन करने में समर्थ सैन्यबलों के बीच में राष्ट्र धुरा के भार को उठाकर ले चलने वाले, और 'धुर्' अर्थात् मुख्य पद पर विराजने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, नायक पुरुष का, परस्पर प्रेम, सत्संग,

संगठन से, ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न और कर से, विस्तृत राष्ट्र और वाणी से सत्कार करो। (२) सर्वैश्वर्यमान् सर्वज्ञानमय होने से परमेश्वर 'जातवेदाः' है। प्रकाशस्वरूप होने से 'अग्नि,' सबका तृप्तिकारी होने से 'सुप्रया', सुखप्रद आनन्दमय परम पुरुष होने से 'स्वर्णर्', सब बलों और लोकों का धारक होने से 'धूर्षद्' है।

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥

भा०—गौएं जिस प्रकार गोशालाओं में बछड़ों के प्रति प्रेम से बद्ध होकर हमारती हैं उसी प्रकार हे राजन्! प्रजाजन भी दिन रात तुझे लक्ष्य करके तेरे प्रति अपने निवेदन और प्रार्थनाएं किया करते हैं। हे बहुतों से वरण करने योग्य तू सब ऐश्वर्यों का स्वामी अच्छी प्रकार दृढ़ होकर मनुष्यों के जीवन के वर्षों तक दिनों के समान रात के समयों में भी चमकता है। राजा का प्रबन्ध दिन के समान रात्रि में भी बराबर रहे।

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग लोकों के आश्रयभूत पृथिवी पर उत्तम गति करने वाले रथ को जिस प्रकार चलाते हैं, और, जिस प्रकार वे उत्तम गति और क्रियाओं को उत्पन्न करने वाले, शीघ्र वेग के उत्पादक तेज से युक्त अग्नि को यन्त्रों से प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार उस क्रियाकुशल, राजा और प्रजाओं के बीच अतिमतिवान्, रथ के समान सन्मार्ग से ले जाने वाले, ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी, भूमि निवासी प्रजाओं के बीच मित्र के समान स्नेहवान्, सबसे श्रेष्ठ नायक को, सब लोकों के आश्रय-भूत परमपद पर नियत करते हैं, उसको उत्तम पद प्रदान करते हैं। (२) परमेश्वर समस्त उत्तम कर्मों का कर्त्ता होने से 'सुदंसा' है। व्यापक और सत्संग होने से 'अरति' है। रसमय होने से 'रथ' है। तेजस्वरूप होने से 'शुक्रशोचिः' है।

तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४

भा०—जिस प्रकार बड़े भारों को दूर तक ढो ले जाने में समर्थ अग्नि को 'ह्वार' अर्थात् गुप्त स्थान में रखते हैं, और पृथ्वी पर वेग से चलने वाले, नाना धुरों से गति देने वाले अग्नि को विद्वान् लोग यन्त्र में स्थापित करते हैं, उसी प्रकार उस राष्ट्र के कार्यभार को उठाने में समर्थ पुरुष को अपने गृह में प्रजाजनों के हितार्थ विद्वान् लोग स्थापित करते हैं। उसी प्रकार उत्तम कान्तिमान्, उत्तम रुचि वाले, उत्तम प्रकृति के, चन्द्र या सुवर्ण के समान सबके आल्हादक पुरुष को कुटिल कार्यों के दमन करने के लिये स्थापित करें। इसी प्रकार पृथ्वी को ऐश्वर्ययुक्त करने वाले, इन्द्रियों से ज्ञान करने वाले आत्मा के समान अध्यक्षों द्वारा प्रजाजन को सदा सावधान करने वाले, ऐश्वर्य के भोक्ता, राष्ट्रपालक, बल का पालन करने वाले उस नायक पुरुष को राजा और प्रजावर्ग के जनों के अनुकूल करके विद्वान् लोग स्थापित करें।

स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५।२०

भा०—होता नाम ऋत्विक् जिस प्रकार यज्ञ को सब प्रकार से सम्पादित करता है और उसको अन्य सहायकजन वाणी और चरुओं से सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार वह परमेश्वर कभी नाश न होने वाले, अनादि काल से वर्त्तमान सनातन शाश्वत विश्वरूप यज्ञ का सब प्रकार से सम्पादन कर रहा है। मननशील मनुष्य उस ही परमेश्वर को ग्रहण करने योग्य उत्तम गुणों और ज्ञानों से तथा वेदवाणी या स्तुति द्वारा सुभूषित करते हैं। वह हरणशील, नाश करने या खा जाने वाले दाढ़ों से युक्त पुरुष के समान समस्त जगत् को प्रलयकाल में परमाणु २ करके ग्रस जाने वाला, बढ़ती हुई नाना लोकों की प्रजाओं में सबका पालन

पोषण करता है । आकाश या सूर्य जिस प्रकार विस्तृत प्रकाशों से आकाश और पृथिवी दोनो को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर स्वयं प्रकाशस्वरूप होकर आकाश और भूमि दोनों को मानो चेतना से युक्त कर रहा है, उनमें जान सी डाल देता है ।

स नो॑ रे॒वत्स॑मिधा॒नः स्व॒स्तये॑ सन्दद॒स्वान्र॒यिम॒स्मासु॑ दीदिहि । आ नः॑ कृणुष्व सुवि॒ताय॒ रोद॑सी॒ अग्ने॑ ह॒व्या मनु॑षो देव वी॒तये॑ ॥ ६ ॥

भा०—प्रदीप्त होता हुआ अग्नि जिस प्रकार हममें बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! हे प्रभो ! अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ बहुत ऐश्वर्ययुक्त धनसम्पदा को हमारे कल्याण के लिये प्रदान करता हुआ, हमारे बीच प्रकाश कर । और आकाश और पृथ्वी, माता पिता तथा राजा प्रजावर्गों को हमारे उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने और जन्म-लाभ करने के लिये हमारे अनुकूल बना । और हे ज्ञानवन् ! प्रकाशक ! हे सब सुखों के देने वाले ! तू मनुष्यों को भक्ष्य और ग्राह्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये समर्थ कर ।

दा नो॑ अग्ने बृह॒तो दाः॑ सह॒स्रिणो॑ दु॒रो न वाजं॒ श्रुत्या॒ अपा॑ वृधि । प्राची॒ द्यावा॑पृथि॒वी ब्रह्म॑णा कृधि॒ स्व॑र्ण शु॒क्रमु॒षसो॒ वि दि॑द्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! परमेश्वर ! एवं राजन् ! तू हमें वृद्धि करने वाले बड़े २ अक्षय भोग्य पदार्थ प्रदान कर । तू हमें सहस्रों सुखों के देने वाले पदार्थ दे । श्रवण करने के लिये हे विद्वन् ! हमारे लिये द्वारों के समान ज्ञान के पट खोल दे । और ऐश्वर्य, धन ज्ञान और महान् सामर्थ्य से राजा प्रजा, गुरु, शिष्य, आकाश और भूमि इनको उत्तम प्रकाश से युक्त कर । शुद्ध सूर्य के प्रकाश को जिस प्रकार प्रभात वेलाएं विशेष रूप से प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त प्रजाएं भी विशेष तेजस्वी बनें ।

स इ॒धान उ॒षसो॒ राम्या॒ अनु॒ स्व१॒॑र्ण दी॑देदरु॒षेण॑ भा॒नुना॑ ।
होत्रा॑भिर॒ग्निर्मनु॑षः स्वध्व॒रो राजा॑ वि॒शामति॑थि॒श्चारु॑रा॒यवे॑ ॥८॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य स्वयं प्रकाशित होता हुआ रात्रियों के पीछे आने वाली उषा वेलाओं को अति उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित करता है, और जिस प्रकार अग्नि दिन रात अपने उज्ज्वल प्रकाश से सब प्रकार सुखों को तथा ताप शक्ति को प्रकट करता या चमकाता है, वह विद्वान् पुरुष सब दिन और रात अपने क्रोध आदि कुटिल भाव से रहित ज्ञान के तेज से समस्त सुख तथा उत्तम उपदेश प्रकट करे। (२) इसी प्रकार तेजस्वी राजा अपने उज्ज्वल तेज से दिन रात प्रजा के सुख को चमकाता रहे, बराबर बढ़ाता रहे। उत्तम पूजनीय प्रजा को पालन करने द्वारा, प्रजा की हिंसा न करने वाला राजा समस्त प्रजाओं में अतिथि के समान पूजनीय, मनुष्यमात्र के लिये सञ्चालक, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष, कर आदि लेने के कार्य और उत्तम आज्ञावाणियों से मनुष्यों को उत्तम मार्ग पर ले चले।

ए॒वा नो॑ अग्ने अ॒मृते॑षु पूर्व्य॒ धीष्पी॑पाय बृ॒हद्दि॑वेषु॒ मानु॑षा ।
दुहा॑ना धे॒नुर्वृ॒जने॑षु का॒रवे॒ त्मना॑ श॒तिनं॑ पुरु॒रूप॑मि॒षणि॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्नि के समान विद्वन्! हे पूर्व विद्वानों से विद्वान् हुए! तू हमारे दीर्घजीवी, बड़े भारी ज्ञान और प्रकाश से युक्त, और बलशाली जीवों में, मनुष्योचित नाना सुखों और ऐश्वर्यों और कर्मों और बुद्धियों की वृद्धि कर। स्वय आत्मसामर्थ्य से दूध देने वाली गाय के समान तू पुरुषार्थ करने वाले पुरुष के हित के लिये, उसकी इच्छा होने पर, सैकड़ों सुखों वाले बहुत से रूपों के ऐश्वर्य की भी वृद्धि कर। (२) परमेश्वर सबसे पूर्व और पूर्ण होने से 'पूर्व्य' है। वह अविनाशी बड़ी कामना वाले जीवों में ज्ञान और कर्मों का उपदेश करता, पुरुषार्थी को उसकी वित्तैषणा, लोकैषणा आदि होने पर कर्त्ता के आत्म-सामर्थ्य के अनुसार नाना रूप ऐश्वर्य प्रदान करता है।

व॒यम॑ग्ने॒ अर्व॑ता वा सु॒वीर्यं॒ ब्रह्म॑णा वा चितये॒मा जनाँ॒ अति॑ ।
अ॒स्माकं॑ द्यु॒म्नमधि॒ पञ्च॑ कृ॒ष्टिषू॒च्चा स्व१॒॑र्ण शु॑शुचीत दु॒ष्टर॑म् ॥ १० ॥

भा०—हे नायक ! हम अश्वों और विद्वान् पुरुषों के बल से, अन्न धनैश्वर्य और ब्रह्म अर्थात् वेद-ज्ञान से, सब मनुष्यों को अतिक्रमण करके, बल, बुद्धि, ज्ञान, ऐश्वर्य में उनसे अधिक होकर, अपने अपने उत्तम बल, वीर्य, और ज्ञान का अन्यों को ज्ञान करावें, उसका अन्यों के उपकार में प्रयोग करें। हमारा तेज और बल तथा ऐश्वर्य, यश मनुष्यों के बीच अपार होकर, सूर्य के समान प्रकाशित हो। और पांचों जनों के ऊपर स्थित होकर नायक हमारे पाचों प्रकार के प्रजाजनों के बीच अपार अन्न, यश, बल को प्रकाशित करे।

स नो॑ बोधि सहस्य प्र॒शंस्यो॒ यस्मि॑न्त्सु॒जा॒ता इ॒षय॑न्त सू॒रय॑ः ।
यम॑ग्ने य॒ज्ञमु॑प॒यन्ति॑ वा॒जिनो॒ नित्ये॑ तो॒के दी॑दि॒वांसं॒ स्वे दमे॑ ॥११॥

भा०—हे बलशालिन् परमेश्वर! ज्ञानवान् पुरुष, अक्षय तथा अति सूक्ष्म और अपने देह गृह में दीपक के समान चमकने वाले जिस परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, और जिसमें या जिसके अधीन रहकर शम, दम आदि उत्तम कर्मों में प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष नाना काम्य सुख प्राप्त करते हैं, वह तू हमें उस यज्ञ का उपदेश कर।

उ॒भया॑सो जातवेदः स्याम ते स्तो॒तारो॑ अग्ने सू॒रय॑श्च॒ शर्म॑णि ।
वस्वो॑ रा॒यः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॒ भूय॑सः प्र॒जाव॑तः स्वप॒त्यस्य॑ शग्धि नः ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे ज्ञान में प्रसिद्ध! तेरी स्तुति करने वाले और अन्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले हम लोग दोनों ही, तेरी शरण, तेरे सुखमय आश्रम में रहें। तू बहुत सुवर्णादि से युक्त, उत्तम प्रजा से युक्त, उत्तम सन्तानों से युक्त, तथा बसने योग्य गृह भूमि आदि ऐश्वर्य और दान देने योग्य धन को हमें प्रदान करने में समर्थ हो। (२) परमेश्वर

वेदों का और ज्ञानों का उद्भव होने से 'जातवेदाः' है। हम सब उसकी शरण में या सुखमय परमानन्द स्वरूप में लीन रहें। वह हमें बहुतों को सुखी करने में समर्थ बहुत से उत्तम प्रजा सन्तान आदि वाले लोकों ऐश्वर्यों और धनों को देने वाला है।

ये स्तोतृभ्यो गोअंग्रामश्वंपेशसमग्ने रातिमुंपसृजन्ति सूरयः।
अस्माँश्च ताँश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ १३॥ २१॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल २। सू० १। म० १६॥ इत्येकविंशो वर्गः॥

[३]

गृत्समद ऋषिः॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, १० त्रिष्टुप्। ७ जगती॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात्।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन्॥ १॥

भा०—अति प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष स्थापित होकर पृथिवी पर प्रत्येक पदार्थ पर अपना वश करता हुआ साक्षात् समस्त लोकों पर अध्यक्ष रूप में स्थित है। वह तेजस्वी पुरुष सबको अपने अधीन कर लेने और उनको इष्ट पदार्थ देने वाला, पापाचारों से पवित्र करने हारा, उत्तम ज्ञान, व्यवहार, तेज और रक्षा के साधनों से युक्त होकर, उत्तम प्रजावान्, उत्तम शत्रु हिंसाकारी, विजयेच्छु होकर, अन्य विद्वानों का सत्कार करता हुआ उनको अपने साथ मिलावे।

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान्॥ २॥

भा०—जिस प्रकार सब स्थानों को प्रकाशित करता हुआ उत्तम ज्वाला वाला अग्नि अपने महान् सामर्थ्य से तीनों प्रकार की अग्नि, विद्युत्, सूर्य रूप अग्नियों को प्रकट करता हुआ, घृत से युक्त मन्त्र से चरु को युक्त कर यज्ञ के मूर्धा भाग कुण्ड में उत्तम प्रकाशमान् किरणों को प्रकट करता है, और जिस प्रकार सबसे स्तुति किया गया सूर्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, और आकाश तीनों लोकों को और सब स्थानों को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ और उदक को वर्षाने वाले स्तम्भक मेघ से अन्न उत्पन्न करने वाले क्षेत्र को सींचता हुआ महान् जगत् के मूर्धास्थान आकाश में दिव्य किरणों को प्रकट करता है, उसी प्रकार सब मनुष्यों से स्तुति करने योग्य विद्वान् पुरुष अपने धारण सामर्थ्यों और तीनों प्रकार के तेजों एषणाओं और उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि व्यवस्थाओं को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट करता हुआ, उत्तम दीप्तिमान्, दीप्तियुक्त ज्ञान और मननकारी अन्तःकरण से ज्ञान के योग्य आत्म भूमि को आर्द्र करता हुआ, जगत् के प्रजापालक सर्वोच्च स्थान में स्थित होकर दिव्य गुणों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करे।

ई॒ळि॒तो अ॑ग्ने॒ मन॑सा नो॒ अर्ह॑न्दे॒वान्य॑क्षि॒ मानु॑षा॒त्पूर्वो॑ अ॒द्य।
स आ व॑ह म॒रुतां॒ शर्धो॒ अच्यु॑त॒मिन्द्रं॑ नरो बर्हि॒षदं॑ यजध्वम् ॥३॥

भा०—हे ज्ञानवन् तेजस्विन्! तू सब मनुष्यों से पूर्व सबसे वन्दना करने योग्य है। तू मन से और ज्ञान से आज के समान सदा ही सब विद्वानों को सत्कार योग्य पदार्थ देता है। तू अन्यों का सत्कार करने हारा है। वह तू सब वीर पुरुषों के बल को और कभी परास्त न होने वाले ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति को धारण कर। हे नायक पुरुषो! आप लोग उस उत्तमासन पर विराजे ऐश्वर्यवान् पुरुष की उपासना और आदर सत्कार करो।

दे॒वं ब॒र्हिर्वर्ध॑मानं सु॒वीरं॑ स्ती॒र्णं रा॒ये सु॒भरं॒ वेद्य॑स्याम्।
घृ॒तेना॒क्तं व॑सवः सीदते॒दं विश्वे॑ देवा आदित्या य॒ज्ञिया॑सः ॥४॥

भा०—हे कमनीय गुणों से युक्त तथा वृद्धिशील स्वामी को बढ़ाने हारे प्रजाजन! तू बढ़ता हुआ उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर खूब विस्तृत इन सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली पृथ्वी में उत्तम रीति से सब का भरण पोषण करता हुआ ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये यत्नवान् हो। यज्ञ में बिछे हुए और जल से प्रोक्षित कुशासन पर जिस प्रकार वेदी में विद्वान्-जन विराजते हैं उसी प्रकार हे राष्ट्रनिवासिजनो! हे सब विद्वान् पुरुषो! और हे तेजस्वी राजागणो और ज्ञान धनैश्वर्यादि के दान प्रतिदान करने-हारो। 'अदिति' भूमि के शासको और अखण्ड ब्रह्म के उपासको! और हे यज्ञ करने और यज्ञ अर्थात् प्रजापति राजा और परमेश्वर की सेवा करने हारो! आप सब लोग जल से सिंचे इस राष्ट्र में विराजो, तेज और अन्नादि पुष्टिकारक पदार्थों से सम्पन्न प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजो।

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५।२२॥

भा०—जिस प्रकार बड़े २ द्वार सुख से आने जाने योग्य हों उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग, सुख से गृहस्थ कार्य में प्रगति करने वाली, भूमि के समान उदार एवं सन्तति उत्पन्न करने में समर्थ, कमनीय अपने पुरुषों को चाहने वाली स्त्रियों को अन्न आदि सत्कारों सहित विशेष रूप से प्राप्त करो। विविध सुखों को प्राप्त करने कराने वाली, ज्वरादि रोगों से रहित रहती हुईं, अपने वर्ण को, कीर्ति और अन्न को और उत्तम पुत्र से युक्त गृह को पवित्र करती हुई, स्त्रियों को विशेष ख्याति लाभ कराओ और उन्हें आदर दो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

भा०—दिन और रात्रि जिस प्रकार उत्तम कर्मों को करवाते हैं, जलादि से सींचते रहते हैं, नाना शब्दों से गुंजित रहते हैं, दोनों ही यज्ञ

का स्वरूप बनाते हुए पट बुनने वाली वरणी के समान चलते हैं, उसी प्रकार घर में स्त्री और पुरुष दोनों उषा काल के समान कान्तियुक्त और नक्त अर्थात् रात्रिकाल के समान एक दूसरे को सुख-निद्रा, रात्रि आदि देने वाले हों। वे दोनों हमें अच्छे विनययुक्त उत्तम कर्मों को भली प्रकार से करावें। वे दोनों सुखों के वर्षाने वाले, एक दूसरे के प्रेम से सिक्त, हृष्टपुष्ट, निषेक करने और धारने में समर्थ हों। वे दोनों रमणीय मनोहर शब्दों को बोलते हुए एक दूसरे के प्रति आत्मदान एवं सुसंगति-जनक गृहस्थ-यज्ञ के स्वरूप को और विस्तृत प्रजातंतु को भी बुनने के यन्त्र वरवाणियों के समान परस्पर मिलकर बुनते हुए, परस्पर की कामना और इच्छाओं को भली प्रकार से पूर्ण करते हुए, पुष्टिकारक अन्न और दुग्धादि से भरपूर होकर रहें।

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥

भा०—देवतुल्य पूज्य पुरुषों के प्रति उत्तम सत्कार करने में कुशल, एक दूसरे को इच्छापूर्वक स्वीकार करने वाले, उत्तम कोटि के अति-विद्वान्, सुन्दर शरीर वाले, रूप लावण्ययुक्त, एक दूसरे का सत्कार करने वाले होकर, सरल निष्पक्ष होकर, एक दूसरे के प्रति आत्मा को समर्पण करें और परस्पर संगत होवें। वे दोनों स्त्री पुरुष ऋतु २, प्रत्येक उपयुक्त अवसर में, समय २ पर विद्वानों का सत्संगत करते हुए पृथिवी के बीच तीनों सेवने योग्य धर्म, अर्थ, और काम को प्राप्त करने के निमित्त परस्पर एक दूसरे की चाहना करें और संग करें।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥

भा०—सरस्वती देवी हमारी बुद्धि और कर्म को सत्कर्म में प्रवृत्त

कराती हुई, और अभिलषित सुख देने वाली इडा देवी, सब को अति-शीघ्र ले जाने या कार्य करने वाली और स्वयं शीघ्र कार्य करने वाली भारती, ये तीनों देवियें स्वधा अर्थात् अन्न के द्वारा आश्रय को प्राप्त करके, त्रुटिरहित, सावधानता से इस वृद्धिशील गृहस्थ का अच्छी प्रकार पालन करें। 'सरस्वती'—उत्तम ज्ञान वाली विदुषी। 'इळा' अन्नदात्री भूमि के समान सब सुखों को उत्पन्न करने वाली। 'भारती' मनुष्यों को सुख और आश्रय देने वाली। स्त्री ही के तीनों गुण हैं विदुषी, अन्न साधिका, और गृहस्थ सुख देने वाली। इन तीनों गुणों से युक्त स्त्रियां गृहस्थ बसा कर घर का पालन करें। राष्ट्र पक्ष में विद्वत्सभा, भूमि या अन्न की उपज आदि की प्रबन्धकर्त्री सभा और समाज की सुव्यवस्था करने वाली सभा क्रम से सरस्वती (Legislative) इळा (Revenue) भारती (Municipality) वे तीनों ही राष्ट्र में अपना स्थान पाकर दोषरहित कार्य सम्पादन करें और प्रजा की रक्षा करें।

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः।
प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः॥ ९॥

भा०—सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण का, वीर्य, बल और अन्न को धारण करने वाला, वा उत्तम प्रजनन या सतानोत्पादन के सामर्थ्य को धारने वाला, विद्वानों और उत्तम गुणो की कामना करने हारा, वीर्यवान् पूर्ण युवापुरुष और स्त्री अति शीघ्र ही उत्तम सन्तान रूप से उत्पन्न हों। अथवा—उक्त गुणविशिष्ट वीरपुत्र उत्पन्न हो। जगत्कर्त्ता परमेश्वर हमें कुल सन्तति को बांधने वाली उत्तम सन्तान प्रदान करे। और वह सन्तति देवों और अपने माता पिता आदि विद्वानों के लिये रक्षा करने वाले साधन अन्न आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम्॥१०॥

भा०—जलों का पालक मेघ जिस प्रकार वृष्टिरूप मे जलधाराएं छोड़ता हुआ उपस्थित होता है, और जिस प्रकार रश्मियों का पालक सूर्य रश्मियों द्वारा प्रकाश दान देता है, और जिस प्रकार 'वन' अर्थात् सैन्यदल का पति शरवर्षण करता हुआ उपस्थित है, और जिस प्रकार वट आदि महावृक्ष अपने फलों को दूसरों के उपकारार्थ प्रदान करता हुआ खड़ा रहता है, उसी प्रकार गृहस्थ पुरुष जो कि नाना भोग और सविभाग करने योग्य दानधन का स्वामी है वह पुत्र पौत्रादि तथा ब्राह्मण, अतिथि आदि को अपना अन्न धन आदि त्याग करता हुआ सदा उपस्थित है। और अग्नि जिस प्रकार क्रियाओं से अन्न को अच्छी प्रकार पका देता और दूसरों के खाने योग्य बना देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञानों और उत्तम कर्मों के द्वारा ग्रहण करने योग्य अन्न और गूढ ज्ञानों को भी अच्छी प्रकार अन्यों को प्रदान करे। वह अच्छी प्रकार स्वयं ज्ञानवान् होकर उस ज्ञान आदि पदार्थ को तीनों प्रकार से अर्थात् वाणी द्वारा, क्रिया द्वारा और उपयोग व व्यवहार द्वारा अच्छी प्रकार प्रकाशित करे। और विद्वानों का हितैषी दोषों को शान्त करने हारा विद्वानों के लिये भोग्य अन्नादि पदार्थ को प्राप्त करावे।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥११॥२३॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि में घृत का सेवन किया जाता है, और अग्नि के बढ़ाने का आधार घृत है, घृत अर्थात् स्निग्ध पदार्थ पर ही वह आश्रित है, स्निग्ध पदार्थ में उत्पन्न तेज ही अग्नि का तेज है, वह अन्न के साथ घी को प्राप्त कर तृप्ति करता है, उसी प्रकार यह मेघ जल को भूमि पर सेचन करता है, और इस मेघ का उद्भवस्थान भी जल ही है। वह मेघ भी जल के रूप में स्थित है। उसकी स्थिति, उत्पत्ति, जल ही है। हे मेघ! तू अन्न को उत्पन्न करने के लिये जल को प्राप्त करा, और

समस्त प्रजावर्ग को हर्षित कर और उत्तम रूप से प्रदान किये इस प्रकार के अन्न को जल के रूप में तू हे वर्षणशील मेघ ! सर्वत्र प्राप्त कराता है। तू धन्य है। इसी प्रकार हे वीर्य सेचन में और गृहस्थ धारण करने में बलवान् युवक पुरुष ! तू सेचन करने योग्य वीर्य का सेचन कर। इस पुरुष का मूल उत्पादक कारण वीर्य ही है। यह पुरुष उस निषेक योग्य वीर्य ही के आश्रय में स्थित है। इस पुरुष शरीर का धारण करने वाला तेज, ओज या जन्म, स्थिति और स्वरूप तीनों 'घृत' अर्थात् यह वीर्य ही है। तू उस वीर्य को उत्तम अनुकूल अन्न खाकर, अन्न के अनुरूप ही धारण कर, और अन्य संगिनी को भी तृप्त, सुप्रसन्न कर। हे वीर्य सेचन में समर्थ ! तू उस धारण करने योग्य वीर्य को उत्तम रीति से प्रदान करने की विधि से यथाविधि धारण करा। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ स्वराट् पंक्तिः । २, ३, ५, ६, ७ आर्षी पंक्तिः । ४ भारुगुष्णिक् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥

भा०—जो अल्प व्यवहारज्ञ, स्वल्प विद्याप्रकाश से युक्त मनुष्यों के हितार्थ सूर्य के समान या स्नेही सखा के समान सहायक, खूब उत्पन्न पदार्थों का जानने वाला, और उनको अपने आश्रय में धारण करने वाला, विद्या और ऐश्वर्य का देने वाला होता है, उस उत्तम रीति से प्रकाशित होने वाले, पापों और दुराचारों को अच्छी प्रकार वर्जने और छुडाने हारे, अतिथि के समान पूज्य, उत्तम अन्नादि सामग्री और विद्या और प्रेमादि सद्गुणों से युक्त, प्रजाओं के बीच में अग्रणी आचार्य की आप के हित के लिये प्रशंसा करता हूं। (२) विद्युत् उत्तम प्रकाशवान् होने से 'सुद्योत्मा' है। रोगहारी और तमोनाशक होने से 'सुवृक्ति' है। विद्वान्

पुरुषों के नाना प्रयोगों में आकर बहुत ऐश्वर्य के उत्पादक मित्र के समान सबका पालक पोषक है। (३) परमेश्वर प्रकाशस्वरूप, पापहारी, पूज्य, आनन्दमय, मित्र, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सब को धारण करने वाला है।

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्विता दधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥

भा०—विद्युत्-विद्या के विद्वान् जिस प्रकार इस विद्युत् को विशेष उपाय करते हुए जलों के स्थान और वेगवान् पदार्थ इन दोनों स्थानों से ही प्रजाओं के हितार्थ प्राप्त करते हैं, यह विद्युत् बहुत से पदार्थों में व्यापक होकर विद्वान् पुरुषों के प्रायः सभी कार्यों में प्रयुक्त हो। वह प्रकाशमान् कार्यों में शक्तिस्वरूप, वेगवान् व्यापक गुणों वाला है। उसी प्रकार तपस्वी लोग प्रजाओं के बीच मनुष्यों के लिये इस विद्वान् की परिचर्या करते हुए इसको प्रजाओं के समीप दो रूपों में धारण करें। एक विद्यादाता का रूप दूसरा आचार शिक्षक का। वह बहुत सामर्थ्यवान् सब प्रकार की विपत्तियों और शत्रुओं का वारण करने में समर्थ हो। वह विद्वानों के बीच ऐश्वर्यवान्, और वेगवान् अश्वों से युक्त हो।

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥

भा०—सुख से निवास करने की इच्छा करते हुए विद्वान् लोग, मननशील प्रजाओं में, नायक और ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को, प्राण और मित्र के समान अतिप्रिय बनाकर रखें, जो कि दानशील पुरुष के गृह में विपत्तियों का नाशकारी, विरोधियों को भस्म करने वाला, सब समृद्धियों का बढ़ाने हारा है। वह रात्रियों को दीपक के समान कामना वाली प्रजाओं को प्रकाशित करता है (२) परमेश्वर को मित्र के समान प्रिय जानकर उसकी उपासना करें। वह रात्रियों को चन्द्र या अग्नि के समान अपने आत्मसमर्पक के हृदय में सब शुभ कामनाओं को प्रकाशित कर देता है।

अस्य र॒ण्वा स्वस्ये॑व पु॒ष्टिः सन्दृ॑ष्टिरस्य हिया॒नस्य॒ दक्षोः ।
वि यो भरि॑भ्रदो॒षधीषु जि॒ह्वामत्यो॒ न रथ्यो॑ दोधवीति॒ वारा॑न् ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार ओषधि वनस्पतियों में अपनी ज्वाला को पुष्ट करता है, और बालों को घोड़े के समान ज्वालाओं को कंपाता है, उसी प्रकार जो नायक परसैन्य को भस्म करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले सैन्यों और प्रजाओं के बीच वाणी को विविध प्रकार से धारण करता है, विविध आज्ञाएं प्रदान करता है और घेरने वाले शत्रुओं को कपाता है, जिस प्रकार रथ में लगने योग्य अश्व उस नायक पुरुष का पोषण करना भी अपने देह के पोषण के समान सबको अतिप्रिय होना चाहिये। और जिस प्रकार जलती हुई और बढ़ती हुई अग्नि में अपने प्रकाश से अच्छी प्रकार मार्ग आदि दिखाने का विशेष गुण सबको प्रिय होता है इसी प्रकार अपने विरोधी जनों को भस्म करने वाले, बल और ऐश्वर्य में निरन्तर बढ़ते हुए उस नायक पुरुष की सम्यक् दृष्टि ही सबको प्रिय लगती है।

आ यन्मे॒ अभ्वं॑ व॒नदः॒ पन॑न्तो॒शिग्भ्यो॒ नामि॑मीत॒ वर्ण॑म् ।
स चि॒त्रेण॑ चिकिते॒ रंसु॑ भा॒सा जु॑जु॒र्वां यो मुहु॒रा युवा॒ भूत् ॥५॥२४

भा०—जिस प्रकार यह जीव है जो कि एक शरीर में वृद्ध होकर भी बार २ युवा हो जाया करता है, जिस 'अहं' पदवाच्य जीव के अव्यक्त महान् रूप को ज्ञानप्रद गुरु या स्तोता लोग ज्ञान के जिज्ञासुओं को बराबर बतलाते हैं पर तो भी उसका स्वरूप नहीं प्रतीत होता, वह आत्मा अपने अतिमनोहर स्वरूप को आश्चर्यजनक या चित्स्वरूप में रमण करने वाले तेज से जानता है, इसी प्रकार नायक की बड़ाई को कविजन श्रोतृजनों के प्रति वर्णन करते हैं तो भी उसका गूढ़रूप नहीं पता चलता। वह अनुभवी वृद्ध होकर भी कार्य करने में सदा युवा रहता है,

वह अद्भुत तेज से अपने रम्य रूप अर्थात् प्रजामनोहारी रूप से प्रकट करता है, वही नायक होने योग्य है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत्।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥

भा०—नायक संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों के प्रति प्यासे के समान अर्थलिप्सु होकर प्रकाशित हो। वह जलप्रवाह के समान अदम्य वेग से प्रयाण करे। वह स्वयं रथसेना का स्वामी होकर हर्षसूचक शब्द करता हुआ मार्ग से जावे। सूर्य के समान या नक्षत्रों से मण्डित आकाश के समान अपने बन्धुजनों से मुस्कराता तथा सुप्रसन्न होता रहे। वह चित्ताकर्षक, या शत्रु को काट गिरा देने वाले मार्ग पर चलता हुआ और शत्रुजनों को संतापजनक और स्वयं भी तपस्वी होकर अतिरम्यरूप में जाना जावे। नायक चित्ताकर्षक या शत्रु-निकृन्तन के मार्ग से जाने से 'कृष्णाध्वा' है।

स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७॥

भा०—जो उत्तम नायक पृथ्वी पर पराक्रम करता, शत्रु की बड़ी भारी सेना को भस्म कर दे, जो स्वयं प्रयाण करने हारा, अपने से अन्य किसी रक्षक की अपेक्षा न करता हुआ, स्वयं सबको भली प्रकार देखता हुआ, विविध देशों में ठहरता, शत्रु पर अभियोक्ता या आक्रामक होकर चढ़ाई करता हुआ और जो सूर्य के समान तेजस्वी होकर निरन्तर आक्रमण करने वाले सैन्यों को अपने तेज से सतप्त करता हुआ, बड़े सामर्थ्य से अपने व्यथादायी शत्रुओं को उच्छिन्न करता हुआ, बड़े भारी ऐश्वर्य या राज्य का मानो भोग करने में समर्थ होता है, वही तेजस्वी पुरुष यथार्थ में 'अग्नि' कहाने योग्य है।

नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! अब पहिले से चले आए तेरे व्रत या रक्षणकार्य के अधीन, तृतीय संख्या के यज्ञ या सवन काल में तू हमें मनन करने योग्य ज्ञान का उपदेश कर । हमें संयमशील वीरों और पुत्रों शिष्यों से युक्त, बड़े भारी उत्तम अन्नादि समृद्धि से युक्त, बल ज्ञान और उत्तम संतान या उत्तराधिकारी से युक्त गृह, पशु, धनधान्य, सुवर्णादि स्थायी सम्पत्ति प्रदान कर । राजा आदि शासकवर्ग अपने तीसरे सवन अर्थात् नौकरी के काल के उपरान्त अपने पहले प्राप्त शासन के अनुभव अन्यों को दें । इसी प्रकार आचार्य आदि भी तीसरे वानप्रस्थकाल में अपने पूर्व के प्राप्त ज्ञान के अनुशीलन कार्य में नयों को मनन योग्य विज्ञान प्रदान करें ।

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥ ९॥२५

भा०—हे विद्वन् ! जिस प्रकार आकाश में वायुगण या सूर्य की किरणें मेघों को और जलों को छिन्न-भिन्न करते हुए मेघों को निर्बल कर आप उनसे प्रबल हो जाते हैं, उसी प्रकार विद्वानों के समान ज्ञान और मनन में आनन्द लेने हारे उत्तम पुरुष अपनी बुद्धि में ज्ञानों का विभाग अर्थात् पृथक् विवेचन करते हुए अपने से पूर्व के जो लोग उस कार्य से उपरत हो चुके हैं उनसे भी अधिक विद्वान् हों । वे रथों पर आनन्द से युद्ध करने हारे वीरों के समान ही उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने वाले हों । जो पुरुष उपदेश करते हैं उन विद्वान् पुरुषों को वह नाना प्रकार का कामना करने योग्य ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन प्रदान कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृदनुष्टुप् २, ४, ५ अनुष्टुप् । ८ विराडनुष्टुप् । ७ भुरिगुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥

भा०—ज्ञानवान् पुरुष अपने पालक मा बाप, गुरु, आचार्य आदि पितृतुल्य जनों से धनैश्वर्य और विद्या प्राप्त करके, स्वयं उनकी रक्षा करने के लिये उनका भी पिता हो जाता है, और स्वयं ज्ञानवान् पुरुष ज्ञानदान करने वाला होकर ज्ञान से तृप्त करने के कारण अपने पालक पितृतुल्य पुरुषों का भी पिता होता है, वह उनको सब दुःखों पर विजय करने वाला सर्वश्रेष्ठ धन को प्रदान करता है, इसी प्रकार हम लोग ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर इन्द्रियों और शत्रुओं पर संयम या वश करने में समर्थ होकर विजय करने वाले ऐश्वर्य और क्षात्रबल के दान देने में समर्थ हों ।

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २ ॥

भा०—जिस यज्ञ के नायक में सात रश्मिएं जुडी हैं वह मनुष्यों के समान ही स्वयं आठवां, देवों में देव, परम देव है । वह सबको पवित्र करने और प्रेरने वाला होकर समस्त जगत् में व्यापक है । यज्ञ में सात ऋत्विजों पर जिस प्रकार एक 'होता', होता है उसी प्रकार देह में सात प्राणों पर उनका प्रेरक आत्मा या मन है । संसार में सात ऋतुओं पर एक सूर्य उसमें आठवां परमेश्वर परम पावन सर्वत्र व्याप्त है ।

दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ ३ ॥

भा०—जो समस्त विश्व को धारण करता है, और जो भी विद्वान् वेदादि सत् शास्त्रोक्त ब्रह्मज्ञानों का उपदेश करता है वह उन सबको निश्चय

से व्यापता और जानता है। वह समस्त क्रान्तदर्शी पुरुषों के जानने और करने योग्य कार्यों और ज्ञातव्य ज्ञानों के ऊपर चक्र पर चढ़े हाल के के समान विद्यमान है।

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥ ४ ॥

भा०—जिस कारण पवित्र ज्ञान और कर्म के साथ वह सर्वश्रेष्ठ शासनकर्त्ता परमेश्वर सब प्रकार से पवित्र है, इसलिये उस परमेश्वर के सनातन से चले आये व्रतों-धर्मों को जानने और पालन करने वाला पुरुष, वृक्ष के शाखाओं के समान, बराबर वृद्धि को प्राप्त होता और यथाक्रम से बराबर ऊंचे ही ऊंचे चढ़ता है।

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५ ॥

भा०—जो बहिनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली, 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को प्राप्त करने वाली प्रजाएं, भूमि, जल, पर्वत, या पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश तीनों से बहुत प्रकार के इस वरणीय उत्तम धन को प्राप्त करती हैं वे मनुष्य प्रजाएं, इस अपने नायक के ही स्वीकार्य धन को दुधार गौ के समान प्राप्त करती हैं। प्रजाएं जो भी धन मिलकर प्राप्त करती हैं वह एक प्रकार से राजा का ही ऐश्वर्य है। (२) जो 'स्व' आत्मा की तरफ जाने वाली चित्तवृत्तियां कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों से श्रेष्ठ इस आत्मतत्व को प्राप्त करती हैं, या वेदत्रयी से इस श्रेष्ठ आत्म-ज्ञान को प्राप्त करती हैं, वे आत्मा को प्राप्त होने वाली वाणियों या गौओं के समान, इस सर्वप्रणेता परमेश्वर के ही श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त करती और अन्यों को प्राप्त कराती हैं।

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ६ ॥

भा०—जल को धारण करती हुई मेघमाला को पृथ्वी के समीप आते देखकर जिस प्रकार कृषक प्रसन्न होता है, इसी प्रकार माता के समीप स्वयं पति को प्राप्त होने वाली स्वयंवरा कन्या ब्रह्मचर्य द्वारा तेज को धारती हुई प्राप्त हो। ऐसी कन्याओं में किसी के आ जाने पर गृहस्थयज्ञ का कर्त्ता वर्षा पाकर जौ के समान अति प्रसन्न होता है। (२) आत्मा की तरफ जाने वाली चित्तवृत्ति जब प्रमाता आत्मा के समीप वीर्य या तेज को धारती हुई पहुँचाती है तो उन वृत्तियों के उदय होने पर अविनाशी आत्मा सब संग दोषों से दूर रहता हुआ, वृष्टि में यवक्षेत्र के समान खूब प्रसन्न हो आनन्द लाभ करता है।

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम्।
स्तोमं युज्ञं चादरं वुनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥

भा०—स्वयं मनुष्य, ऋतु २ में यज्ञ करने वाले ऋत्विज के समान अपने ही धारण पोषण करने वाले की प्रतिसमय सत्संगति, उपासना और स्तुति करे। और अनन्तर हम उस स्तुतियोग्य सदा संगतियोग्य उपास्य परमेश्वर का खूब भजन करें, और उसके प्रति दान और अपने को समर्पण करें।

यथा विद्वाँ अरं कर्द्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः।
अयमग्ने त्वे अपि यं युज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार यह विद्वान् पुरुष सब उपासना सत्कार और दान करने योग्य आदरणीय पुरुषों के लिये खूब अन्न आदि प्रदान करता है, उसी प्रकार जिस भी यज्ञ, उपासना आदि कर्म को हम करते हैं, वह सब हे परमेश्वर! तेरे ही निमित्त करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[६]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १, ३, ४, ८ गायत्री । २, ५, ६ निचृद्गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनः।

इमा ऊ षु श्रुधी गिरः॥ १॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि समीप रखी हुई समिधा को प्रज्वलित कर देता है उसी प्रकार हे ज्ञानवन्! गुरो! ईश्वर! आप भी इस अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली समिधा को जो शिष्य रूप से आप के समीप प्राप्त है उसे स्वीकार करें, प्रेमपूर्वक अपनावें, उसे ज्ञानाग्नि से प्रज्वलित करें। और हे शिष्य! इन वेदवाणियों का तू उत्तम रीति से श्रवण कर।

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे।

एना सूक्तेन सुजात॥ २॥

भा०—हे शीघ्रगामी साधनों में वेग देने वाली अग्नि! तेरा इस क्रिया से यन्त्र बनावें। हे बलशक्ति को न गिरने देने वाली! हे उत्तम गुणों में प्रसिद्ध! तेरा हम इस सूक्त अर्थात् अग्निविद्या के उपदेश से सम्पादन, सञ्चालन और प्रयोग करें।

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः।

सपर्येम सपर्यवः॥ ३॥

भा०—हे द्रविण, ऐश्वर्य या जल को देने वाली अग्नि! द्रुतगमन करने वाले, वाणी या विशेष शब्द के साथ सेवन योग्य तुझको हम उत्तम सेवा चाहने वाले, वेदवाणियों से प्राप्त करते हैं।

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्।

युयोध्यस्मद् द्वेषांसि॥ ४॥

भा०—हे अपने अधीन बसने वाले शिष्यों और प्रजाजनों के पालक! हे उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले! वह तू उत्तम ऐश्वर्यवान् और विद्वान् होकर, ज्ञानसम्पादन कर और औरों को ज्ञान सम्पादन करा। हम से द्वेषयुक्त व्यवहारों को पृथक् कर और करा।

स नो॑ वृ॒ष्टिं दि॒वस्परि॒ स नो॒ वाज॑मन॒र्वाण॑म् ।
स नः॑ सह॒स्रिणी॒रिषः॑ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् रूप अग्नि आकाश से वृष्टि देता है, और अश्व के बिना वेगवान् रथ देता है और सहस्रों सुखप्रद कामनाएं पूर्ण करता है, इसी प्रकार वह विद्वान् हम पर अपने ज्ञानप्रकाश से सुखों का वर्षण करे, हिंसक योद्धा से रहित संग्राम पर विजय प्राप्त करावे, बिना अश्व के वेगवान् रथ को संचालित करे और हमारी ओर सहस्रों सुख देने वाली कामनाओं को प्रेरित करे ।

ईळा॑नायाव॒स्यवे॒ यवि॑ष्ठ दूत नो गि॒रा ।
यजि॑ष्ठ होतरा ग॑हि ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि और सूर्य तापवान् होने से 'दूत' है, जल-कणों को पृथक् करने से 'यविष्ठ' है, वृष्टि अन्न आदि देने से 'यजिष्ठ', और प्रकाश आदि देने और जल आदि लेने से 'होता' है, वह इस अर्थात् अन्न के इच्छुक तथा अपनी रक्षा चाहने वाले को पर्जन्यवाणी के साथ प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे दुष्टों के संतापक ! हे बलशालिन् ! हे दानशील ! हे अधिकार आदि देने वाले तू स्तुति करने वाले और रक्षा के चाहने वाले पुरुष को और हमको आज्ञावाणी सहित प्राप्त हो ।

अ॒न्तर्ह्य॑ग्न॒ ईय॑से वि॒द्वाञ्जन्मो॒भया॑ कवे ।
दू॒तो जन्ये॑व॒ मित्र्यः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे क्रान्तदर्शिन् ! तू दुष्टों के लिये संतापकारी तथा सज्जनों के लिये हितकारी के समान, मित्रों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् होकर इहलोक और परलोक में इन दोनों जन्मों के सम्बन्ध में उपदेश कर ।

स वि॒द्वाँ आ च॑ पिप्रयो॒ यक्षि॑ चिकित्व आनु॒षक् ।
आ चा॒स्मिन्त्स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ८ ॥ २७ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् विद्वन् ! तथा ईश्वर ! सब कुछ जानता हुआ तू

सबको प्रसन्न और पूर्ण करता है, और सबके अनुकूल पदार्थ निरन्तर देता है। तू इस महान् ब्रह्माण्ड और पृथ्वीलोक में और उत्तमासन पर आकर विराजता है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृद् गायत्री। ४ त्रिपाद्गायत्री। ५ विराट् पिपीलिका मध्या। ६ विराड् गायत्री ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर।
वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥ १ ॥

भा०—हे युवा! हे अग्नि के समान तेजस्विन्! हे गृहस्थ में बसने और बसाने हारे। हे पालन पोषण करने हारे राजन्! तू सर्वोत्तम तथा बहुतों के चाहने योग्य ऐश्वर्य को सब तरफ से प्राप्त कर और ला।

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च।
पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! हमारे ज्ञानप्रकाश पुरुष तथा साधारण प्रजाजन पर शत्रु अपना स्वामित्व प्राप्त न करे। प्रत्युत तू ही उस शत्रु से हमें पार कर, उस पर विजयी बना।

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव।
अति गाहेमहि द्विषः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! तेरे द्वारा हम लोग जल की धाराओं के समान सब शत्रुओं और अप्रियों को पार कर जावें,।

शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे।
त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥

भा०—हे पवित्र करने हारे! हे अग्नि के समान तेजस्विन्! घृतों से आहुति किये गये अग्नि के समान अति तेजों से युक्त होकर तू शुद्ध आचारवान्, स्तुतियोग्य, सत्कारयोग्य होकर बड़े रूप में विविध दिशाओं में प्रकाशित हो।

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः ।
अष्टापदीभिराहुतः ॥ ५ ॥

भा०—राजा उत्तम पृथिवियों से, मेघों नदियों तथा नहरों से, आठ सचिव रूप पदाधिकारी लोगों से बनी राजसभाओं से सभापति रूप से स्वीकृत हो ।

द्रन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः ।
सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को अन्न के समान खाता है उसी प्रकार विद्वान् भी वृक्ष वनस्पति के ही अन्न वाला अर्थात् वानस्पतिक भोजन करने वाला हो। जिस प्रकार अग्नि घृत से सब प्रकार सींचा जाकर खूब बढ़ता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी घृत, दुग्ध आदि सारवान् पदार्थों का आसेचन, सेवन करने वाला हो। वह अग्नि अति-पुरातन अविनाशी है तो विद्वान् भी दीर्घजीवी हो। अग्नि सब को भस्म करने वाला है, विद्वान् उत्तम पदार्थों को लेने और विद्यादि को देने वाला हो। अग्नि सदा स्वीकारने योग्य श्रेष्ठ है, विद्वान् सर्वश्रेष्ठ और श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाला हो। अग्नि बलवान् वायु से उत्पन्न होने और अरणियों द्वारा बलपूर्वक मथन करने पर उत्पन्न होने से बल का पुत्र है, विद्वान् बलवान् वीर्यवान् माता पिता का पुत्र हो। अग्नि अद्भुत गुणों वाला है, विद्वान् आश्चर्यकारी विद्या और चमत्कारी गुणों से युक्त ऐसा हो जैसा पहले कोई न हुआ हो। (२) इसी प्रकार परमेश्वर संसार द्रु को अन्न के समान प्रलयाग्नि में खा जाने से 'द्रु-अन्न' है। सर्पणशील सूर्य आदि लोकों को प्रेरने वाला है। शेष विशेषण स्पष्ट है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री २। निचृत् पिपीलिकामध्या गायत्री। ३, ५ निचृद्गायत्री। ४ विराड् गायत्री। ६ निचृदनुष्टुप् ॥
षडृचं सूक्तम् ॥

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि।
यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥ १ ॥

भा०—जो अग्नि रथों के प्रति अश्व के समान आचरण करने वाला, तथा प्रचुर अन्न उत्पन्न कराने में समर्थ हो उस यशस्वी तथा जल वर्षाने वाले अग्नि के अनुकूल अवसरों का वर्णन कर।

यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिम्। चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥

भा०—जो सूर्य दानशील मेघ को उत्तम रीति से लाने में समर्थ होता है वह स्वयं भी नाश न होकर तामता से जल को वाष्प के रूप में जार्ण करता हुआ, जठर में अन्न के समान वायु में विलीन करता हुआ, प्रदीप्त अग्नि के समान उत्तम पराक्रम वाला होता है। इसी प्रकार नायक और विद्वान् भी कर और वृत्ति आदि देने वाले या आत्मसमर्पक पुरुष को सन्मार्ग में ले जाने वाला हो, वह स्वयं युवा, शत्रु का नाश करता हुआ, आहुति से तीव्र अग्नि के समान उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों से उत्तम रीति से कार्यारम्भ करने वाला, उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हो।

य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते।
यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, सूर्य, विद्युत् आदि घरों में, गृहकार्यों में अपनी कान्ति से दिन रात उत्तम ही कहा जाता है, जिसका व्रत, कर्म और स्वभाव, प्रकाश, दाह आदि कभी नष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार जो पुरुष गृहों में, गृहस्थों में दिन और रात उत्तम लक्ष्मी, धनैश्वर्य सम्पदा से रहता है, जिसका व्रत, नित्य धर्माचरण कभी खण्डित नहीं होता है वह ही प्रशंसा के योग्य होता है। उसी प्रकार जो राजा प्रजा और शत्रुओं के दमन कार्यों में शोभा, शान या बड़ी राजलक्ष्मी सहित रहे और जिसकी आज्ञा या नियम, कानून न टूटें वह दिन रात प्रशंसनीय है।

आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा।
अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि सूर्य के समान तेज से और ज्वाला से चमकता है, और अपने अविनाशी गुणों से चमकता रहता है, उसी प्रकार जो पुरुष सूर्य के समान ही अति आश्चर्यकारी तेज से और प्रकाश से अपने स्थायी गुणों से अपने को प्रकट और सब के प्रति प्रिय रूप में प्रकट करता हुआ सर्वत्र प्रकाशित होता है वह प्रशंसा योग्य है।

अग्निमनुं स्वराज्यमग्निमुक्थानिं वावृधुः।
विश्वा अधि श्रियों दधे ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार आहुति के भक्षक अग्नि को लक्ष्य कर यज्ञादि में वैदिक सूक्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वह अग्नि शोभा कान्तियों को धारता है उसी प्रकार यह जो समस्त राज्य लक्ष्मियों को अपने वश में रखता है उस ही ऐश्वर्य के भोक्ता, अपनी राजसत्ता के स्वामी अग्रणी नायक को लक्ष्य करके नाना स्तुतिवचन बढ़ते हैं।

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानांमूतिभिर्वयम्।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्यांम पृतन्यत. ॥ ६ ॥ २६ ॥ ५ ॥

भा०—हम ज्ञानमय विद्वान् ऐश्वर्यवान्, व्यापारी तथा प्रेरक राजा इन दानशील तेज व्यक्तियों की रक्षाओं से कभी नाश को न प्राप्त होते हुए, संघ बना कर सब कार्यों में समर्थ हों। और सेना की इच्छा वाले शत्रुओं को भी हम पराजित कर लें। इत्येकोनत्रिंशद्वर्गः ॥

[६]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः ॥ षड्ृचं सूक्तम् ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥

भा०—होता आदि ऋत्विजों के बैठने के स्थान वेदी में चरु आदि का ग्रहण करने वाला अग्नि जिस प्रकार प्रकाशित होकर विराजता है, उसी

प्रकार शासन के अधिकार देने और लेने वाले विद्वानों के विराजने के स्थान सभाभवन में सब राज्यभार को स्वीकार करने वाला ज्ञानी नायक तथा विद्वान् तेजस्वी पुरुष प्रकाश करता हुआ, उत्तम वल से युक्त, कार्यकुशल, अपने कर्त्तव्य कर्मों और उत्तम शील आचार के नाश न होने से उत्तम बुद्धि और ज्ञान से युक्त, राष्ट्रवासियों में सब से श्रेष्ठ और अन्यों को सुख से बसाने वाला, सहस्रों का भरण पोषण करने में समर्थ, पवित्र सत्य वाणी बोलने हारा होकर, वेदी में होता या अग्नि के समान मुख्य आसन पर बिराजे।

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार सतापकारी, वर्षणशील, सब कार्यों का प्रवर्त्तक, दीपक के समान सन्मार्ग में ले जाने वाला, किरणों और भूमियों का रक्षक है, उसी प्रकार हे नायक! तू ही हमारा परम पालन पोषण करने और रक्षा करने हारा है। हे समस्त समृद्धियों की मेघ के समान वर्षा करने हारे दयालो! तू ही सब का बसाने हारा और सन्मार्ग में प्रजाओं को चलाने हारा है। हे अग्रणी! तू ही हमारे विस्तृत राष्ट्र में पालकों के और हमारे भी शरीरों का प्रमादरहित होकर रक्षक और प्रकाशक हो, और हमें ज्ञान प्रदान कर।

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥

भा०—हे तेजस्विन्! हम तेरे सर्वोत्कृष्ट विद्यासम्बन्धी जन्म के निमित्त तेरा विशेष आदर करें, और तेरे साथ रहते हुए सभा आदि स्थानों में तेरे उससे कम महत्व के जन्म अर्थात् माता पिता से हुए जन्म के सम्बन्ध की भी स्तुतियुक्त वचनों से चर्चा करें, उस सम्बन्ध से भी तेरी मानहानि न करें। तू जिस योनी अर्थात् गृह या मातृकुल से

उत्पन्न हो उसका भी आदर करें। खूब प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार चरु घृत आदि की आहुति देते हैं उसी प्रकार खूब तेजस्वी तुझ में प्रजाजन अन्न और कर आदि उपादेय पदार्थ अच्छी प्रकार प्रदान करें।

अग्ने॒ यज॑स्व ह॒विषा॒ यजी॑याञ्छ्रु॒ष्टी दे॒ष्णम॒भि गृ॑णीहि॒ राधः॑ ।
त्वं ह्यसि॑ रयि॒पती॑ रयी॒णां त्वं शु॒क्रस्य॒ वच॑सो म॒नोता॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे नायक ! तू दानशील होकर अन्न आदि देने और विद्वानों से स्वीकार करने योग्य पदार्थों का दान दे और उसके द्वारा अन्यों में मैत्रीभाव उत्पन्न कर। शीघ्र ही देने योग्य धन को देने का उपदेश कर। निश्चय तू ही ऐश्वर्यों का स्वामी है। तू शीघ्र कार्य कराने में समर्थ अति तेजस्वी वाणी का आज्ञापक, प्रवक्ता है।

उ॒भयं॑ ते॒ न क्षी॑यते वस॒व्यं॑ दि॒वेदि॑वे॒ जाय॑मानस्य दस्म ।
कृ॒धि क्षु॒मन्तं॑ जरि॒तार॑मग्ने कृ॒धि पतिं॑ स्वप॒त्यस्य॑ रा॒यः ॥ ५ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् नायक ! दर्शनीय ! हे प्रजा के दुःखों का नाश करने वाले ! प्रतिदिन बढ़ते हुए तेरा दोनों प्रकार का, इस पृथिवी और आकाश का ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होता है। तू विद्वान् उपदेष्टा पुरुष को अन्न आदि से युक्त कर और उसको उत्तम पुत्र वाले धन का स्वामी कर।

सैना॒नीके॑न सुवि॒दत्रो॑ अ॒स्मे यष्टा॑ दे॒वाँ आय॑जिष्ठः स्व॒स्ति ।
अद॑ब्धो गो॒पा उ॒त नः॑ पर॒स्पा अग्ने॑ द्यु॒मदु॒त रे॒वद्दि॑दीहि ॥६॥१॥

भा०—हे सेनानायक ! तू वह इस सैन्यबल से उत्तम रीति से प्राप्त धन की रक्षा करने द्वारा, सब से सत्संगति और मैत्रीभाव रखता हुआ, विद्वानों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों को मिलाता और वेतनादि देता हुआ, कहीं भी हिंसित न होकर, हमारा रक्षक और संग्राम आदि संकटों से पार करने वाला, एवं तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् होकर प्रकाशित हो और ऐश्वर्य का दान कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०]

गृत्समद ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट् त्रिष्टुप ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः ॥

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥

भा०—अग्रणी विद्वान्, नायक नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों का देने वाला, युद्ध में शत्रुओं को ललकारने वाला, विपत्ति-कालों में प्रजाओं द्वारा उत्सवों में मित्रों द्वारा पुकारे जाने और निमन्त्रित किये जाने योग्य, सर्वश्रेष्ठ है । जब मननशील गुरु, या मनन करने योग्य सचिवादि के गुप्तमन्त्र द्वारा बल और ज्ञान में खूब प्रदीप्त होता है तब इस पृथिवी पर राजा, और अन्नादि के लाभ में पिता, और वाणी विद्या से प्राप्त कराने में आचार्य, पालक पिता के समान हो जाता है । वह चिरजीवी राज्यलक्ष्मी का वस्त्रों के समान अपने शोभा रूप से धारण करता हुआ या लक्ष्मी को स्वयं आच्छादन अर्थात् उसकी रक्षा करता हुआ, विविध ज्ञानों से युक्त, न्याय व्यवहारों द्वारा विवेकशील, और दुष्टों से राष्ट्र को कण्टकशून्य करता हुआ, श्रवण करने योग्य, ज्ञानवान् और यश का पात्र और बलवान् हो ।

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू मेरे प्राप्त उपदेश का श्रवण कर । ज्ञानवान् पुरुष चित्रदीप्ति वाले सूर्य या अग्नि के समान तेजस्वी होकर सब प्रकार की वाणियों से विविध ज्ञानों का देने वाला, शिष्य और पुत्र परम्परा से नित्य, सदा अमर हो जाता है । वह विविध ज्ञानों को धारण करने हारा कार्य सम्पादन करता है । उसके रमणीय उपदेशरूप 'रथ' को धारण करने वाले, दोष से रहित, आदित्य के समान तेजस्वी, वृद्धिशील या ज्ञानवान् दो पुरुष धारण करते हैं ।

उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् लोग नायक को, ऊपर उठने वाली अर्थात् अभ्युदय-शालिनी प्रजा के बीच उत्तम रीति से ऐश्वर्ययुक्त और अभिषिक्त करते हैं। और वह बहुत से सुवर्ण वाली अर्थात् ऐश्वर्य से सम्पन्न प्रजाओं के बीच उनका भी वश करने हारा होकर रहे। शत्रुओं द्वारा पीड़ित हुई प्रजा में भी वह अपने तेज के कारण बहुत बड़े २ बलों और सहायकों से न घिरा रहकर भी स्वयं उत्तम चित्त या उत्तम ज्ञान वाला तथा अन्यों को उपाय बतलाने वाला होकर रहता है ।

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ ४ ॥

भा०—समस्त प्राणियों में रहने वाले, तिर्यग् योनि में भी जाने वाले, जीवन रूप से और भी अधिक विस्तृत, सदा बढ़ने वाले, विविध रूपों से व्यापक, अन्नों द्वारा कार्य करने वाले द्रष्टृशक्तिरूप आत्मारूप अग्नि को हम अन्न से और जल से पुष्ट करते हैं ।

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥ ५ ॥

भा०—नायक अग्रणी पुरुष साधारण मनुष्यों से आश्रय करने योग्य, चाहने योग्य रूप रंग वाला, अपने शरीर से खूब हृष्ट पुष्ट शत्रु को कभी सह नहीं सकता। उस प्रतिदेश में व्याप्त शक्तिशाली को सब प्रकार से मैं प्रजाजन अभिषिक्त करता हूं, और वह राक्षसों से भिन्न उत्तम भद्रपुरुष के से चित्त से उस मेरे दिये ऐश्वर्य का प्रेम से सेवन करे ।

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥२॥

भा०—हे ज्ञानवन् नायक! तू श्रेष्ठ एवं शत्रु के निवारण करने वाले बल से शत्रुओं का विजय करता हुआ अपने सेवनीय अन्न राष्ट्र को प्राप्त कर। हम दूतगण तुझको विचारने योग्य मन्त्र के समान यह हित उपदेश करते हैं। उत्तम वचनों से युक्त वाणी से मैं तुझको ऐश्वर्य का विभाग करने हारा, बहुत अधिक अन्न से सम्पर्क रखने हारे भोग्य पदार्थ का भागी स्वीकार करता हूँ। इति द्वितीयो वर्गः॥

[११]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ८, १०, १३, १९, २० पङ्क्तिः। २, ६ भुरिक् पङ्क्तिः। ३, ४, ९, ११, १२, १४, १८ निचृत् पङ्क्तिः। ७ विराट् पङ्क्तिः। ५, १६, १७ स्वराड् बृहती भुरिक् बृहती १५ बृहती। २१ त्रिष्टुप्॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम्॥

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! तू हमारी पुकार या निवेदन को सुन। हम पीड़ा मत दे। हम तुझे ऐश्वर्यों के दान देने के लिये सदा उद्यत रहें। निश्चय से बले प्रजाजन के बीच रहने वाले, अन्न और बल-पराक्रम से युक्त ये धनों के स्वामी बढ़ते हुए महा नदों के समान तुझ को बढ़ाते हैं।

सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! हे शूरवीर! तू जिन पूर्व से विद्यमान् और पूर्वजों से शासित भूमियों को प्राप्त हुआ, और जिनकी मेघ के समान सिंचाई करता रहा है, वे भूमियां यदि मुकाबले पर मारने योग्य शत्रु ने घेर ली हों तो उस न मरने हारे आत्मा के समान अपने को अमर अविनाशी मानता हुआ और विद्योपदेशों से बढ़ता हुआ तू शत्रु को अवश्य छिन्न भिन्न कर, नीचे गिरा डाल।

उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥

भा०—हे शूरवीर सेनापते ! जिन उत्तम वचनों में और उपदेशों के स्तुतिवचनों या उपदेशों में तू कामनावान् है, और जिन में तू सुख हर्ष लाभ करता है, वे शुभ फल देने वाले वायु के समान बलशाली तेरे उपकार के लिये ही विस्तृत होते हैं।

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे अति तेजस्वी चमचमाते बल को बढ़ाते हुए और बाहुओं में शुभ्र चमचमाते शस्त्रसमूह को धारण करने वाले शूरवीर पुरुष तुझे प्राप्त हों। और तू उनसे अतितेजस्वी सूर्य के समान बढ़ता हुआ हमारी प्रजाओं का नाश करने वाली शत्रुसेनाओं को सूर्य के समान संतापदायी नायक द्वारा पराजित कर। अथवा हमारी प्रजाओं और सेविका भृत्याओं को भी शत्रु बल को पराजित करने योग्य बना।

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे निर्भय वीर ! तू अपने बल पराक्रम से, गुहा अर्थात् छिपने के स्थान में स्थित, अपने को छिपा लेने में कुशल, गुह्य और प्रजाओं के बीच ढके मायावी, और प्रजाओं को ही क्षीण करते हुए या प्रजाओं में घर किये हुए, दानशील और व्यवहारशील लोगों को स्तम्भित अर्थात् विघ्नों से कार्य करने में असमर्थ बनाने वाले अदय हन्तव्य शत्रु का विनाश कर।

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे पहले किये बड़े कार्यों की हम स्तुति करें,

और नये किये गये कार्यों की भी स्तुति करें। बाहुओ में शस्त्रास्त्रसमूह धारण करना चाहते हुए आप की या बाहुओ में चमकते हुए शस्त्र की हम स्तुति करें। सूर्य की धारण और आकर्षण या ताप और प्रकाश दोनों प्रकार की किरणों के समान तेरे शौर्य को बतलाने वाले दोनो अश्वों की हम स्तुति करते हैं।

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥

भा०—हे सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्विन्! संग्राम में प्रयाण करने की इच्छा वाले तेरे दोनों अश्व, प्रताप को दर्शाने वाले शब्द या गर्जन को करते हैं। तेरा राष्ट्र बढ़े, वह खूब प्रसन्न हो। तू शत्रु पर चढ़ाई की इच्छा करता हुआ मेघ के समान प्रजापालन करने हारा संग्राम कर, और राष्ट्र मे रमण कर, उसका सुख से उपभोग कर।

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥

भा०—पर्वत के समान अचल, मेघ के समान शत्रुओं पर और अपनी प्रजाओं पर शरों और ऐश्वर्यसुखों की वर्षा करने हारा, तथा पालन करने के साधनों में सम्पन्न पुरुष, सदा अप्रमादी रहता हुआ निरन्तर उच्च आसन पर बैठे। वह उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों से और माता के समान पालन पोषण करने वाली प्रजाओं और घोर गर्जन करने वाले तोप आदि साधनों से राष्ट्र को निरन्तर वश करता हुआ एक साथ अच्छे प्रकार आक्रमण करे। बहुत दूर २ तक वेदवाणी की वृद्धि करते हुए विद्वान् पुरुष, परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट वेदशास्त्र की वाणी का निरन्तर विस्तार करें।

इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा, बड़े भारी वेग से जाने वाले अश्व-

सैन्य का आश्रय लेकर, आलस्य प्रमाद में पड़े हुए, मायावी, छली, कपटी, बढ़ते हुए शत्रु का सर्वथा विनाश करे। और सिंहगर्जना करने वाले इस बलवान् पुरुष के वज्र या शस्त्रास्त्र बल से राजवर्ग और प्रजावर्ग स्वसैन्य और शत्रुसैन्य दोनों भय से कांपें। (२) अध्यात्म में सिन्धु और प्राणमय कोश में व्यापने वाला मायावी अर्थात् बुद्धि का स्वामी बलवान् मन शुन है। इसको अर्थात् आत्मा ही प्रेरित करता है। धर्ममेघ समाधि में आनन्दवर्षा करने वाले इस आत्मा के ज्ञानवज्र या चेतना से प्राण अपान दोनों चलते हैं।

अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात्।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥५॥

भा०—इस बलवान्, शस्त्रवर्षणकारी पुरुष का शस्त्रास्त्रबल घोर गर्जन करे, और जो मननशील ज्ञानवान् है वह विनाश करे। दुष्टभाषण करने वाले, व्रतादि का खण्डन करने वाले पुरुष की समस्त मायाओं को वह वीर विनष्ट करे, नीचे गिरावे। इति चतुर्थो वर्गः॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥

भा०—हे शूरवीर! जिस प्रकार सोम ओषधिरस या प्राणवायु का पान किया जाता है उसी प्रकार तू ऐश्वर्य का बराबर उपभोग कर। उत्पन्न अपने पुत्रों के समान अति हर्षजनक अभिषेक प्राप्त जनपद जन तुझे हर्षित करें। कोखें पूरने वाले भोजनों के समान वे जनपदजन तेरी कोखों को पूर्ण करें। अर्थात् दायें बायें रहकर तेरे बल को बढ़ावें। इस प्रकार अभिषिक्त पुर का अध्यक्ष पुरुष राजा और समृद्ध राज्य दोनों की रक्षा करें।

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तेरे अधीन रह कर हम विविध विद्या और धनों को पूर्ण करने वाले तथा सत्य वाणी से सम्बद्ध होते हुए रहें। उत्तम कर्म और ज्ञान का सेवन और आचरण करें। ज्ञान रक्षा और उत्तम आनन्द लाभ की इच्छा करते हुए हम तेरी उत्तम स्तुति को धारण करें और तेरे उत्तम शासन को बनाये रखें। हम प्रजाजन शीघ्र ही तेरे ऐश्वर्य दान के सत्पात्र हों।

स्याम॒ ते त॑ इन्द्र॒ ये त॑ ऊ॒ती अ॑व॒स्यव॒ ऊर्जं॑ व॒र्धय॑न्तः।
शु॒ष्मिन्त॑मं॒ यं चा॒कना॑म देवा॒स्मे र॒यिं रा॑सि वी॒रव॑न्तम् ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! जो हम लोग तेरे पालन सामर्थ्य से रक्षा, ज्ञान, प्रीति, शत्रुनाश, वृद्धि आदि की कामना करते हुए बल पराक्रम को बढ़ाते रहते हैं, वे हम तेरे होकर रहें। जिस अधिक बल वाले, वीर्यवान् पुत्र भृत्य मित्रादि से युक्त ऐश्वर्य को हम चाहते हैं, हे राजन् ! तू वही हमें प्रदान करता है।

रासि॒ क्षयं॒ रासि॑ मि॒त्रम॒स्मे रासि॒ शर्ध॑ इन्द्र॒ मारु॑तं नः।
स॒जोष॑सो॒ ये च॑ मन्दसा॒नाः प्र वा॒यव॑ः पा॒न्त्यग्र॑णीतिम् ॥ १४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् देव ! तू हमें निवास करने योग्य घर दे। हमें मित्र प्रदान कर, हमें वायुओं का सा प्रबल बल प्रदान कर। और जो सब को हर्षदायक, समान रूप से परस्पर प्रेम करने वाले हैं और जो सर्वश्रेष्ठ नीति और युद्ध में आगे बढ़ती सेना की रक्षा करते हैं वे विज्ञानवान् और बलवान् होने से 'वायु' नाम से कहाने योग्य हैं।

व्यन्त्विन्नु येषु॑ मन्दसा॒नस्तृ॒पत्सोमं॑ पाहि द्र॒ह्यदि॑न्द्र।
अ॒स्मान्त्सु पृ॒त्स्वा त॑रु॒त्राव॑र्धयो॒ द्यां बृ॒हद्भि॑र॒र्कैः ॥ १५ ॥ ५ ॥

भा०—जिन पूर्व कहे विद्वानों और वीर पुरुषों के आश्रय होकर प्रजाजन ऐश्वर्य की कामना करते और उसको प्राप्त करते और भोग करते हैं, उन पर ही निर्भर रह कर हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू भी पूर्ण तृप्त और

दृढ़ होकर उस ऐश्वर्य की रक्षा कर। हे सकटों और अविद्या से पार उतारने हारे! सूर्य जिस प्रकार बड़े २ प्रकाशों से और अन्नों से भूमि और आकाश को बढ़ाता, समृद्ध करता है, उसी प्रकार तू हमें संग्रामों के बीच बड़े उत्तम २ विचारों और तेजस्वी पूज्य वीर पुरुषों से बढ़ा। इति पञ्चमो वर्गः॥

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान्।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन्॥ १६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे दुःखों से पार उतारने वाले! जो पुरुष वेदोक्त वचनों से सुखस्वरूप तेरी सेवा करते, तेरी उपासना करते, तेरे सुख का आनन्द अनुभव करते हैं वे निश्चय से बहुत बड़े आदमी हो जाते हैं। वे तेरी रक्षा में रहते हुए, गृह के समान वृद्धिशील राष्ट्र को विस्तृत करते हैं। वे ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र।
प्र दोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम्॥१७॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष! तू तेजस्वी वीर पुरुषों के बीच अति प्रसन्न होता हुआ तीनों लोकों में सूर्य के समान, ऐश्वर्य का उपभोग कर। हे विद्वन्! आचार्य! तू तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों पर प्रसन्न होकर शरीर, आत्मा और मन तीनों की तपस्याओं, वा तेजस्विता, वेदवाणी और दीर्घ आयु इन तीनों के प्राप्त करने के लिये वीर्य की रक्षा कर, अथवा 'सोम' अर्थात् विद्या के इच्छुक शिष्य की रक्षा कर। हे शूरवीर! तू शरीर में स्थित बालों के समान अपने शरीर पर आश्रित जनों पर अति प्रसन्न होकर उनके ही बल पर अपने शत्रुओं को खूब अच्छी प्रकार कंपा, भयभीत कर। और अश्वों के द्वारा राष्ट्र को अपने पुत्र के समान पालन कर और अन्नरस के समान भोग को प्राप्त कर।

धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम्।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र॥ १८॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र वायु जल देने वाले मेघ को आच्छादन करने वाले मकडी के जाले के समान छिन्न भिन्न कर देता है, और मनुष्य के लिये सूर्य के प्रकाश को खोल देता है, और वह प्रकाशों का विघ्न-कारक मेघ एक ओर हट जाता है, उसी प्रकार हे वीर पुरुष! जिस बल से अपने सैन्य आदि काटने वाले तथा बढ़ते हुए शत्रु को नाशकारी पुरुष मकडी के जाले के समान छिन्न भिन्न कर नीचे गिरा देता है, तू उस बल को धारण कर। और तू श्रेष्ठ पुरुष के लिये प्रकाश को प्रकट कर। हे ऐश्वर्यवन्! वह तू सकटों का नाश करने हारा होकर दक्षिण हाथ में बिराज, अर्थात् सबका पूज्य होकर रह।

सनेम ये तं ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रितार्य॥ १९॥

भा०—जो पुरुष तेरे रक्षा आदि साधनों से समस्त स्पर्धा करने वाली ललकारने वाली शत्रु-सेनाओं और दुष्ट-पुरुषों को पार कर जाते हैं, हम उनको प्राप्त करें। हे राजन्! तू हमारे उपकार के लिये और तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने वाले पुरुष के लिये, मित्रता के कारण, हमें वह उत्तम शिल्पी लोगों से प्राप्त होने योग्य रुचिकर रूप प्राप्त करा।

अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान्॥ २०॥

भा०—सूर्य और विद्युत् जिस प्रकार तेज ताप से युक्त होकर मेघ को छिन्न भिन्न करता है, विद्युत् यन्त्र के चक्र को चलाता है, तथा बढ़ता हुआ मेघ को उत्पन्न करता और फैलाता है, उसी प्रकार शत्रुनाशकारी पुरुष अंगारों के समान दाहकारी वीर पुरुषों का स्वामी होकर, समस्त ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले तथा अतिहर्ष से युक्त, सघबल, सैन्यबल और धनबल तीनों प्रकार के साधनों से सम्पन्न राष्ट्र के हित के लिये, करोड़ों सैन्य को बढ़ाता हुआ उसको खूब विस्तृत करे। वह सूर्य के

समान द्वादश राजचक्र को सञ्चालित करे और घेरने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करे।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥२२।३।१

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! वह तेरी बल और उत्साह उत्पन्न करने वाली प्रभात वेला प्रकाशमयी होकर स्तुतिकर्ता पुरुष को श्रेष्ठ ज्ञान प्रत्यक्ष में प्रदान करती है। हे ऐश्वर्यवन्! तू हमारे बीच में ऐश्वर्यवान् होकर स्तुति करने वाले विद्वान् उपदेशकों को दान दे और उनको अतिक्रमण करके दुःखित मत कर। हम लोग उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञान प्राप्त कराने के लिये बहुत उत्तम एवं बड़े ज्ञान वेद का उपदेश करें। इति सप्तमो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[१२]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्द—१—५, १२—१५ त्रिष्टुप्। ३—८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ भुरिक् त्रिष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥१॥

भा०—जो अपनी शक्तियों से प्रकट होकर सबके आदि में विद्यमान, मननशील, सूर्य के समान सबका प्रकाशक, अपने ज्ञान और कर्म के बल से समस्त पृथिवी आदि पदार्थों को सब प्रकार सुशोभित करता है, जिसके बल से आकाश और पृथिवी दोनों कांपते और चल रहे हैं, हे मनुष्यो! ऐश्वर्य की महत्ता से वह 'इन्द्र' कहलाता है।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! जो चलायमान, अति विरल और तरल पदार्थों में बनी, भूकम्पों से कांपती हुई पृथिवी को दृढ़ करता है,

खूब भड़कते हुए, आग उगलते हुए पर्वतों को रम्य बनाता है, जो बहुत बड़े अन्तरिक्ष को बनाता है, जो सूर्य आदि लोकों से मण्डित ऊपर के आकाश को थाम रहा है, वह परमैश्वर्यवान् होने से परमेश्वर ही 'इन्द्र' कहाता है।

यो ह॒त्वाहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धू॒न्यो गा उ॒दाज॑दप॒धा व॒लस्य॑ ।
यो अश्म॑नोर॒न्तर॒ग्निं ज॒जान॑ सं॒वृक्स॒मत्सु॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥३॥

भा०—जो सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुमय स्वरूप को व्यापक कर, उनमें आघात या गति या प्रथम स्पन्दन उत्पन्न करके उनमें गति या क्रिया उत्पन्न करता है और जो निरन्तर गति करने वाले प्रकृति के त्रसरेणुमय अवयवों को चलाता है, जो वेदवाणियों को उत्तम रीति से प्रकट करता है, या जो गो अर्थात् सूर्यों और पृथिवी आदि लोकों को ऊपर आकाश में चला रहा है, जो घेरने वाले अज्ञान आवरण को दूर हटाता, जो परस्पर उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष, नर मादा दोनों के बीच अग्नि अर्थात् चेतना जीव को उत्पन्न करता है, जो हर्षावसरों में समस्त दुःखों को दूर करता है, हे विद्वान् जनो! वह इस समस्त संसार का सञ्चालक, प्रभु 'इन्द्र' है।

येने॒मा विश्वा॒ च्यव॑ना कृ॒तानि॒ यो दासं॒ वर्ण॒मध॑रं॒ गुहाकः॑ ।
श्व॒घ्नीव॒ यो जि॑गी॒वाँ ल॒क्षमाद॑द॒र्यः पु॒ष्टानि॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥४॥

भा०—जिसने ये समस्त गतिशील सूर्य आदि लोक बनाये या जिसने इन सबको गतिमान् किया है, जो नीचे ले जाने वाले तथा नाश उत्पन्न करने वाले स्वीकृत रूपों को दबा देता है, व्याध जिस प्रकार निशाने को नहीं चूकता उसी प्रकार सर्वविजयी, होकर पोषण योग्य प्राणी देहों का स्वामी होकर अपने वश में रखता है, हे लोगो! वही परमेश्वर है।

यं स्मा॑ पृ॒च्छन्ति॒ कुह॒ सेति॑ घो॒रमु॒तेमा॑हु॒र्नैषो अ॒स्तीत्ये॑नम् ।
सो अ॒र्यः पु॒ष्टीर्विज॑ इ॒वा मि॑नाति॒ श्रद॑स्मै धत्त॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥५॥

भा०—जिस परमेश्वर के विषय में प्रायः लोग पूछा करते हैं कि बतलाओ वह कहां है? और इस परमेश्वर को कुछ लोग घोर, सबका हनन करने वाला भयानक काल बतलाते हैं, और कुछ लोग इसके विषय में कहा करते हैं कि वह है ही नहीं, वह सबका स्वामी उद्वेगकर्त्ता पुरुष के समान समस्त पदार्थों का विनाश करने में भी समर्थ है। इसके विषय में सत्यज्ञान प्राप्त करो, विश्वासपूर्वक यह सत्य जानो कि हे विद्वान् लोगो! वही 'इन्द्र' सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर है। इति सप्तमो वर्गः ॥

यो र॒ध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒ यो ब्र॒ह्मणो॒ नाध॑मानस्य की॒रेः।
यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शि॒प्रः सु॒तसो॑मस्य॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥६॥

भा०—जो उत्तम रीति से आराधना करने वाले उपासक का सत् शास्त्रानुकूल प्रेरणा करने हारा है, जो कृश, निर्बल और स्वल्प धन और शक्ति वाले को साहसपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा करने वाला है, जो वेद और वेदज्ञ को प्रेरने वाला है, वेद का ऋषियों के हृदय में प्रकाश करने वाला, वेदज्ञ विद्वानों को उपदेश द्वारा अन्यों पर अनुग्रह करने के लिये प्रेरित करने वाला है, जो हृदय में पाप कर्मों के लिये पश्चात्ताप करने वाले जो पुनः सन्मार्ग में सदाचार पूर्वक रहने की प्रेरणा करने हारा है, जो स्तुति करने वाले और उत्तम कार्य करने वाले को उत्तम कार्य की प्रेरणा करता है, जो उत्तम ज्ञानों वाला तथा उत्तम शक्तिशाली होकर, 'ग्रावा' अर्थात् उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों के सत्सङ्ग करने वाले का रक्षक और उत्तम ऐश्वर्यों, ज्ञानों और उत्तम शिष्यों को उत्पन्न करने वाले वैश्य, विद्वान्, शिष्य और आचार्य इनका रक्षक, और उनकी इच्छापूर्ति करने और आनन्द देने हारा है, हे विद्वान् पुरुषो! वस्तुतः वह ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' है।

यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः। यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां नेता॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ७ ॥

भा०—जिस परमेश्वर के निर्देश में अश्व तथा शीघ्रगामी और व्यापक पृथिवी सूर्य आदि और विद्युत्, आयु आदि हैं जिसके निर्देश में गौए, वेद वाणियां, इन्द्रियां, उत्तम भूमियां और गतिमान् सभी लोक है, जिसके निर्देश मे समस्त 'ग्राम' अर्थात् सघ है, जो परमेश्वर सबके प्रेरक सूर्य और उसके समान उत्पादक वीर्यवान् पुरुष को और जो कमनीय कान्तिवाली, प्रभात वेला को उत्पन्न करता है, जो समस्त नदियो, प्रकृति के परमाणु, कारण दशा मे स्थित तत्वो, लिङ्ग, शरीरो, लोको आदि का भी नायक, सचालक है, हे मनुष्यो ! वही 'इन्द्र' है।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः॥ ८॥

भा०—जिस परमेश्वर को दुःखों के कारण रोने वाले तथा उत्तम मार्ग मे यत्नशील स्त्री पुरुष विविध प्रकार से पुकारते हैं, जिसको उत्तम कोटि के और निकृष्ट कोटि के बड़े छोटे, ऊचे नीचे सभी शत्रुगण भी विविध प्रकार से बुलाते हैं, और एक ही रथ पर बैठे हुए स्त्री पुरुष भी भिन्न २ नामो से याद करते है, हे मनुष्यो ! वह परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः॥९॥

भा०—जिस परमेश्वर के विना मनुष्य काम आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त नही करते, देवासुर-संग्राम मे एक दूसरे पर प्रहार करते हुए लोग भी जिसको अपनी रक्षा के लिये पुकारते है, जो समस्त विश्व का मापनेवाला है, दृढ से दृढ पदार्थों और दुर्गों और शत्रुगण को भी गिरा देने और भय से विमुख कर देनेहारा है, हे पुरुषो ! वह 'इन्द्र' है!

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान। यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः॥१०॥८॥

भा०—जो बड़ा भारी पाप करनेवालो को और शासन न मानने

और उत्तम मार्ग को न जानने वाले उच्छृङ्खलों और अज्ञानियों को सदा वाणों और शासनरूप दण्ड से नष्ट करता है। जो कुत्सित वाणी बोलने और निन्दित कर्म करनेवाले की निन्दित वाणी को कभी फलने नहीं देता और नाशकारी दुष्ट पुरुष का नाशक है, हे विद्वान् पुरुषो! वह ऐश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' पद से कहाता है। इत्यष्टमो वर्गः॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥११॥

भा०—४० वर्षों तक पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करने वाले, पर्वतों में तपश्चर्या करते हुए तथा शांति को वरने वाले व्यक्ति को जो परमेश्वर प्राप्त होता है, अर्थात् ८ वर्ष की आयु से विद्याभ्यास आरम्भ कर ४८ वें वर्ष तक जो ब्रह्मचर्य तथा तपस्यापूर्वक विद्याभ्यास करता है परमेश्वर उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है, और जो परमेश्वर बल पकड़नेवाले, सर्प के समान कुटिल, मर्मच्छेदी, हृदय में अव्यक्त रूप से रहने वाले अज्ञान को नष्ट करता है, हे पुरुषो! वही सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥ १२ ॥

भा०—जो परमेश्वर सूर्य के समान सात रश्मियों वाला, मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला, वायु के समान बहुत बलवान् होकर, सर्वत्र गति करने तथा सब जगत् के सञ्चालन करने के लिये, नदियों तथा प्राणों के समान सात प्रकृति-विकृतियों को रचता है। जो सशस्त्र वीर पुरुष के समान आकाश में वट के समान फैलते हुए संसार को ज्ञानवज्र से विनष्ट कर देता है, हे पुरुषो! वह परमैश्वर्यवान् 'इन्द्र' है।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः॥१३॥

भा०—आकाश और पृथिवी दोनों लोक इसके आगे झुकते हैं, इसके बल से ही पर्वत और मेघ भी भयभीत से होकर कांपते हैं। जो समस्त जगत् का पालक और समस्त ऐश्वर्यों का पालक, सर्वत्र व्यापक, वज्र के समान सब पापों को वर्जन करने मे समर्थ, और उस वर्जनकारी बल से सबको दण्ड देने वाला है, हे मनुष्यो ! वही परमैश्वर्य-वान् 'इन्द्र' परमेश्वर है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

भा०—जो परमेश्वर सवन, अर्थात् यज्ञ, प्रार्थना, उपासना, ज्ञान-सम्पादन, ऐश्वर्य वृद्धि आदि करते हुए पुरुष की रक्षा करता है। जो परमेश्वर विद्या और बल परिपक्व करने और तपस्या से आत्मा को परि-पक्व करने वाले की रक्षा करता है। अपनी रक्षाकारिणी शक्ति से स्तुति करने और अन्यों को ज्ञानोपदेश करने वाले की, और जो ऊंची गति करने वाले, अधर्म को लांघकर धर्ममार्ग में जाने वाले धर्मात्मा पुरुष की रक्षा करता है, जिसको वेद बढ़ाता, या जिसके गुणों का महान् स्वरूप प्रकट करता है, जिसकी महिमा को ओषधिवर्ग और वीर्य बढ़ा रहा है, जिसकी यह समस्त आराधना और ऐश्वर्य है, हे पुरुषो ! वही परमेश्वर 'इन्द्र' है।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥६॥

भा०—जो परमेश्वर दुर्धर्ष और अजेय होकर भी सवन, यज्ञ, प्रार्थना, उपासना करने वाले के लिये और बल, ज्ञान, और वीर्य को ब्रह्मचर्य और तपस्या से परिपक्व करने वाले पुरुष के लिये सब प्रकार का ज्ञान, धन, अन्न और बल प्रदान करता है, वह तू निश्चय से सत्य स्वरूप है, तेरी सत्ता में वस्तुत. कोई संदेह नहीं। हे परमेश्वर ! प्रति

दिन, हम लोग तेरे प्रिय और उत्तम वीर्यवान् होकर तेरे विषयक ज्ञान का उपदेश करें। (अथर्ववेद भाष्य का० २० । सू० ३४।१-१८) इति नवमो वर्गः ॥

[१३]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, १०, ११, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, १३ त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती । ५, ६ विराड् जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते । तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार ऋतुमती स्त्री पुत्र उत्पन्न करने हारी होती है, और उससे उत्पन्न हुआ पुत्र जिन जलों के भीतर लिपटा हुआ बढ़ता है वह उन जलों के भीतर प्रविष्ट होकर रहता है, वह प्रेममयी माता ही उस अपने मे उत्पन्न पुत्र को दूध पिलाने वाली होती है। किरण के समान सुन्दर उस बालक के लिये सबसे प्रथम वह दुग्ध ही पान योग्य होने से 'पीयूष' है और वह अति उत्तम, प्रशंसा-योग्य होता है। ठीक इसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषों की बनी सभा ही राष्ट्र के भोक्ता या तेजस्वी उदीयमान राजा को उत्पन्न करने वाली है। उससे प्रकट होकर वह उन आप्त पुरुषों और प्रजाओं मे प्रवेश करता है जिनमे कि वह बढ़ता है। प्रेम से प्राप्त होकर वह उत्पादक मातारूप राष्ट्र प्रजा पुष्टिकारक पदार्थों का पान करा २ उसकी वृद्धि करती है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा के लिये वह ही प्रजा का दिया पुष्टिकारक अंश या भाग सबसे उत्तम है।

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् । समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥

भा०—दूध को स्तनों में धारण करती हुई, सहवासिनी होकर

पत्नी सर्व प्रकार से इस पति को प्राप्त हो। प्रजा को पालने के लिये भोजन उपस्थित करे। अनुकूल होकर चलने में उत्तम आचार से रहने वालों का यही एक जैसा मार्ग है। जो उन नाना व्यवस्थाओं को, बालकों की जननियों या माताओं या देवियों को सबसे प्रथम या मुख्य-रूप से जानता है, वही प्रशंसनीय है।

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते। विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥

भा०—जो परमेश्वर समस्त पदार्थ प्रदान करता है वही एक समस्त पदार्थों के अनुकूलवेदनीय सुखकारी उपयोग का उपदेश करता है। वह नाना रूपों को मूर्त्तिमान् और रुचिकर बनाता है, और उन २ कर्मों को करने वाला भी वह अकेला ही जाना जाता है। उस अद्वितीय परमेश्वर की ही ये समस्त विविध प्रेरणाएं हैं, वही एक सब संसार-सञ्चालन आदि की पीड़ाओं को सह रहा है। जो परमेश्वर उन सब क्रियाओं को पहले ही से कर रहा है और करता है वही सबसे अधिक स्तुतियोग्य है।

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते। असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥

भा०—अपनी प्रजाओं के हित के लिये गृहपति जिस प्रकार पोषण-कारी पशु, अन्न, भूमि आदि समृद्धि का विभाग करते हुए राजा का आश्रय लेकर बैठते हैं, उसी प्रकार लोग जिस परमेश्वर को प्रजाओं के हित के लिये समृद्धिमय जानकर विविध प्रकार से भजन करते हैं, और जिस प्रकार आगामी काल के लिये लोग ऐश्वर्य को गांठते हैं और जिस प्रकार लोग भविष्य के लिये अपनी पीठ या आधार को पक्का मजबूत बनाते हैं, उसी प्रकार जिस परमेश्वर को धन के समान विद्यमान तथा

देह से पीठ के समान संसार भर को थामने वाला, और प्रभावशाली जानकर उसके साथ प्रेम बनाकर उसको अपने में जोड़ते हैं। और मनुष्य जिस प्रकार अपनी दाढ़ों से भोजन चबाकर खाता है उसी प्रकार जो परमेश्वर सब संसार का पालक होकर भी दाढ़ों से भोजन के समान ही समस्तजगत् को प्रलय काल में ग्रास कर जाता है, और जो तू हे परमेश्वर! उन नाना कर्मों को सबसे पहले से ही करता आ रहा है वह तू वेदों द्वारा प्रशंसा के योग्य है।

अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्साह्युक्थ्यः॥ ५॥ १०॥

भा०—हे मेघ के नाशक सूर्य के समान अज्ञान-आवरण के नाशक परमेश्वर! तू सूर्य के प्रकाश के द्वारा अच्छी प्रकार से देखने के लिये पृथिवी को बनाता है। और जो तू वेग से जाती हुई भूमियों, नदियों और लोकों के मार्गों को प्रकट और बेरोक कर देता है। जलों से सींच कर जिस प्रकार अन्न से युक्त क्षेत्र ओषधिवर्ग को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष उत्तम स्तुतियों से सर्वप्रकाशक, बलवान् तुझको प्रकट करते हैं वह तू वेदवाक्यों में स्तुति के योग्य है।

इति दशमो वर्गः॥

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ।
सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे साह्युक्थ्यः॥ ६॥

भा०—जो परमेश्वर सूर्य के ऊपर निर्भर कर भोजन और अन्न वृद्धि कर धन को प्रदान करता है, और जो परमेश्वर गीली ओषधियों से सूखे और मधुर अन्न आदि को प्राप्त कराता है, वही परमेश्वर सूर्य में बड़ा अपार खजाना गुप्त रूप से स्थापित करता है, और जो समस्त संसार का अकेला ही ईश्वर है वह तू प्रशंसनीय वचनों के योग्य है।

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वां अभितः सास्युक्थ्यः ॥७॥

भा०—जो परमेश्वर अपने धारण सामर्थ्य या ईश्वरीय नियम से जगत् को पालन करने के हेतु फूलों वाली उत्तम फल उत्पन्न करने वाली और सब प्राणियों को रोगादि से बचाने वाली नाना ओषधि लताओं को धारण करता है और जो अन्तरिक्ष और पृथिवी में एक से एक भिन्न चमकने वाले पदार्थ उत्पन्न करता है और जो स्वयं महान् होकर नाना विनश्वर पदार्थों को रचता है वह तू स्तुति करने योग्य है।

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर बहुत पदार्थों और लोकों को बनाने हारा है, जो बसने वाले प्राणियों के साथ विद्यमान मनुष्यों को मारने वाले घातक कारण का विनाश करने, अन्नादि से प्राप्त करने, और प्राणनाशक पदार्थों के नाश करने के लिये अन्न उत्पन्न करने वाली भूमि के मुख को सदा खुला रखता है वह ही तू स्तुति के योग्य है।

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥

भा०—जिस परमेश्वर के दश गुणा सौ अर्थात् सहस्रों साथी हैं। जिस अद्वितीय परमेश्वर के गुणश्रवण और आनन्दलाभ करने के लिये वेद को तूने प्रेरित किया है जो बिना रस्सी के ही दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार बांध लेता है, जो विनाश से बचाने के लिये उत्तम रीति से रक्षा करने में कुशल है, वह तू हे परमेश्वर! सबसे प्रशंसा करने योग्य है।

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम्।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्यु-क्थ्यः ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—इस परमेश्वर के महान् पौरुष के अधीन ही सब प्रकार की नियम व्यवस्थाएं हैं। वे उसके पुरुषतत्व को हमें बतलाती हैं। सब मनुष्य सब कर्मों को करने वाले विश्वस्रष्टा की आराधना के निमित्त ही उत्तम ऐश्वर्य को धारण करते हैं। वह परमेश्वर ही सूर्य के समान उन्हीं विस्तृत दिशाओं को या द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि और आपः, ओषधि इन छहों को, और पांच देखने वाली इन्द्रियों को धारण करता है, और जो तू पालक, पूरक और सबसे उत्कृष्ट है, वह तू सबसे श्रेष्ठ प्रशंसनीय है।

सुप्रवाचनं तवं वीर वीर्यं१यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु। जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

भा०—हे वीर परमेश्वर! तेरा बल पराक्रम उत्तम रीति से गुरु जनों से उपदेश किये जाने योग्य है। तू एक ही महान् कर्म और ज्ञान के बल से समस्त बसे जगत् को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में कारणरूप से स्थिर रहने वाला और बलवान् जो तू है उस का ही ज्ञान और बल सर्वोत्कृष्ट है। वह तू जिन सब कार्यों को करता है वही तू प्रशंसनीय है।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्। नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पापों से युक्त पुरुषों को इस संसार के कष्टमय महासागर से सुखपूर्वक तर जाने के लिये, कर्मबन्धनों का नाश करने और शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराने के लिये और तन्तु के समान शिष्यपरम्परा और पुत्रपरम्परा बनाये रखने के लिये भी ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग को रमणीय कर देता है। नीच पद में रहते हुए को भी तू ऊपर उठाता है। दूर त्याग किये जिसको बन्धु बान्धव जन छोड़कर चले गये ऐसे अनाथ को भी ऊपर उठाता है। अन्धे अर्थात् ज्ञानहीन और बहरे अर्थात् उपदेशविहीन पुरुष को भी वेदज्ञान के उपदेश से युक्त करता है। वह तू प्रशंसनीय है।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! तेरा बहुत सा वसे प्राणिजनों और लोकों के हित के लिये धन है। जो बहुत ही अद्भुत धन है, हे सबको बसाने हारे! वह हमें दान देने के निमित्त दो। हम यज्ञ कीर्त्ति और ज्ञान में कुशल, उत्तम वीर्यवान् होकर, सब दिनों, यज्ञों, ज्ञानयोग्य शास्त्रों का बहुत गुण कथन करें, कहें। इति द्वादशो वर्ग. ॥

[१४]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द.—१, ३, ४, ९, १०, १२ त्रिष्टुप्। २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्पंक्तिः। ११ भुरिक् पंक्तिः॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥

भा०—हे अध्वर अर्थात् हिंसारहित, परस्पर प्रेम, सत्संग, प्रजापालन के कार्यों की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषो! पात्रों से जिस प्रकार ओषधिरस निर्बलों को दिया जाता है और उससे उनको पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार साथ रहकर रक्षा करने वाले या एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य का भोग करने वाले सहयोगियों द्वारा ऐश्वर्यवान् पुरुष या राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ और हर्ष और तृप्ति को देने वाले अन्न को नहरों और कुइयों से खूब सींचो, अन्न की खूब खेती करो। वीर पुरुष सदा ही इस ऐश्वर्य, उत्तम अन्न, भक्ष्य पेय सामग्री की कामना करता रहता है। वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार इस जल का पान करना चाहता है उसी प्रकार राष्ट्र का प्रबन्ध करने और उसको बढ़ाने वाले राजा के उपभोग के लिये इस ऐश्वर्य और अन्न का पान, उपभोग प्रदान करो। यही वह चाहता है।

भा०—इस परमेश्वर के महान् पौरुष के अधीन ही सब प्रकार की नियम व्यवस्थाएं हैं। वे उसके पुरुषतत्व को हमें बतलाती हैं। सब मनुष्य सब कर्मों को करने वाले विश्वस्रष्टा की आराधना के निमित्त ही उत्तम ऐश्वर्य को धारण करते हैं। वह परमेश्वर ही सूर्य के समान छहों विस्तृत दिशाओं को या द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि और आपः, ओषधि इन छहों को, और पांच देखने वाली इन्द्रियों को धारण करता है, और जो तू पालक, पूरक और सबसे उत्कृष्ट है, वह तू सबसे श्रेष्ठ प्रशसनीय है।

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु । जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

भा०—हे वीर परमेश्वर ! तेरा बल पराक्रम उत्तम रीति से गुरु जनों से उपदेश किये जाने योग्य है। तू एक ही महान् कर्म और ज्ञान के बल से समस्त बसे जगत् को अच्छी प्रकार धारण कर रहा है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में कारणरूप से स्थिर रहने वाला और बलवान् जो तू है उस का ही ज्ञान और बल सर्वोत्कृष्ट है। वह तू जिन सब कार्यों को करता है वही तू प्रशंसनीय है।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् । नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू पापों से युक्त पुरुषों को इस संसार के कष्टमय महासागर से सुखपूर्वक तर जाने के लिये, कर्मबन्धनों का नाश करने और शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराने के लिये और तन्तु के समान शिष्यपरम्परा और पुत्रपरम्परा बनाये रखने के लिये भी ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग को रमणीय कर देता है। नीच पद में रहने हुए को भी तू ऊपर उठाता है। दूर त्याग किये जिसको बन्धु बान्धव जन छोड़कर चले गये ऐसे अनाथ को भी ऊपर उठाता है। अन्धे अर्थात् ज्ञानहीन और बहरे अर्थात् उपदेशविहीन पुरुष को भी वेदज्ञान के उपदेश से युक्त करता है। वह तू प्रशंसनीय है।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥१२

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! तेरा बहुत सा बसे प्राणिजनों और लोकों के हित के लिये धन है। जो बहुत ही अद्भुत धन है, हे सबको बसाने हारे! वह हमें दान देने के निमित्त दो। हम यज्ञ कीर्त्ति और ज्ञान से कुशल, उत्तम वीर्यवान् होकर, सब दिनों, यज्ञों, ज्ञानयोग्य शास्त्रों का बहुत गुण कथन करें, कहें। इति द्वादशो वर्गः॥

[१४]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, १२ त्रिष्टुप्। २, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्पंक्तिः। ११ भुरिक् पंक्तिः॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि॥१॥

भा०—हे अध्वर अर्थात् हिंसारहित, परस्पर प्रेम, सत्संग, प्रजापालन के कार्यों की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषो! पात्रों से जिस प्रकार ओषधिरस निर्बलों को दिया जाता है और उससे उनको पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार साथ रहकर रक्षा करने वाले या एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य का भोग करने वाले सहयोगियों द्वारा ऐश्वर्यवान् पुरुष या राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ और हर्ष और तृप्ति को देने वाले अन्न को नहरों और वृष्टियों से खूब सींचो, अन्न की खूब खेती करो। वीर पुरुष सदा ही इस ऐश्वर्य, उत्तम अन्न, भक्ष्य पेय सामग्री की कामना करता रहता है। वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार इस जल का पान करना चाहता है उसी प्रकार राष्ट्र का प्रबन्ध करने और उसको बढ़ाने वाले राजा के उपभोग के लिये इस ऐश्वर्य और अन्न का पान, उपभोग प्रदान करो। यही वह चाहता है।

अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त विद्वान् पुरुषो ! विद्युत् जिस प्रकार वृक्ष को भस्म कर देता है उसी प्रकार जो ज्ञान और प्रजा के कामों को घेरने वाले शत्रु का नाश करता है, उन २ नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को चाहने वाले इसके लिये इस ऐश्वर्य को लाओ, पूर्ण करो। यह शत्रुहन्ता वीर पुरुष ही इस राष्ट्र का उपभोग करने के योग्य है।

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥

भा०—हे हिंसारहित प्रजापालन के कार्यों को चाहने वाले विद्वान् पुरुषो ! जो शत्रुहन्ता वीर पुरुष प्रजा को त्रास देने वाले का नाश करता है, जो गौओं को गोपाल के समान भूमियों और प्रजाओं को उत्तम मार्ग में चलाता है, नगर पुर आदि के घेर लेने वाले शत्रु को मेघ को वायु के समान छिन्न भिन्न कर दूर करता है, उस पुरुष के लिये अन्तरिक्ष में वायु के समान यह समस्त ऐश्वर्य है। उत्तम वस्त्रों से जिस प्रकार वृद्ध या विद्योपदेष्टा गुरु को आदरपूर्वक सुशोभित करते हैं उसी प्रकार उस शत्रुघातक ऐश्वर्यवान् पुरुष को अच्छी प्रकार उत्तम वस्त्रादि से आच्छादित अलंकृत करो।

अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥

भा०—प्रजा का हिंसा कार्य न हो ऐसा प्रबन्ध करने वाले हे विद्वान् शासक पुरुषो ! जो वीर पुरुष दूसरे के माल को या सत्य को छुपाने वाले और प्रतिघात करने वाले शत्रु का भी नाश करने में समर्थ है और जो सौ के बीच में अकेला रहकर भी शेष ९९ शस्त्रधारी हाथों को रण में पछाड़ सके, जो अरबों शत्रुगण को नीचे दबाकर पीड़ित कर सके, उस

सेनापति को ऐश्वर्य के धारण और राष्ट्र के पालन करने के लिये आगे बढ़ाओ। उसको राज्य का सर्वोत्तम पद प्रदान करो।

अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥

भा०—प्रजा में परस्पर के नाश को न चाहने वाले हे व्यवस्थापक लोगो! जो प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष को दण्डित करता है, जो प्रजा का रक्तशोषण करने वाले को और स्वयं किसी को शोषण या निर्बल न किया जा सकने योग्य अदम्य शत्रु को भी मार सके, जो विविध अंशो अर्थात् प्रजापीडित उपायों वाले दुष्ट को दण्डित करता है, जो अपना ही पेट भरने वाले और अधर्म को न त्यागने वाले को दण्डित करे, जो रुधि अर्थात् प्रजाओं को पाप करने से रोकने वाली नियम मर्यादाओं को लांघ जाने वाले का नाश करे, उस शत्रुनाशक वीरपुरुष के लिये समस्त अन्न आदि नाना उपभोग योग्य पदार्थ प्रदान करो।

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥१३॥

भा०—हे युद्धयज्ञ के सिद्ध करने में कुशल पुरुषो! जो प्रजा की शान्ति और सुख को रोकने वाले दुष्ट पुरुषो की पहले से ही विद्यमान सैकड़ो नगरियो या पलने के स्थानो या अड्डों को पत्थर के ढेले के समान अपने शस्त्रबल से तोड़ डाले, और जो पुरुष अति तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से युक्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रु के सैकड़ो नगर तोड़े और हजारों को छुरे से बालों के समान काट २ कर साफ कर दे, ऐसे बहादुर पुरुष के लिये राष्ट्र का ऐश्वर्य प्रदान करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यवृणग्भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥

भा०—हे युद्धयज्ञ के कर्त्ता और राष्ट्र की हिंसा न चाहने वाले

विद्वान् पुरुषो ! जो भूतल पर स्वय शत्रुहन्ता होकर, निन्दित आचरण करने वाले, अतिथिवत् अपने से ऊंचे पद पर स्थित पूज्य पुरुषों पर आक्रमण करने वाले, मनुष्य के सैकड़ों, हजारों वीरों को एक दम दूर करे, यह ऐश्वर्यं या अभिषेक योग्य पद उसको प्रदान करो ।

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रजापालन आदि उत्तम काम करने के अभिलाषी जनो ! नायक पुरुषो ! आप लोग जो कुछ भी स्वयं प्राप्त करना चाहें, उसे शीघ्र धारण करते हुए, उस ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होकर रहो और उसे भी प्राप्त कराओ । और जगत् प्रसिद्ध सेनापति या राजा के लिये बाहुबल से पवित्र हुआ ऐश्वर्य लाओ । हे उसके साथ संगति और मैत्री करने या ऐश्वर्यं देने वाले पुरुषो ! उसको उत्तम प्रकार का ऐश्वर्यं निःस्वार्थ भाव से प्रदान करो ।

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त प्रकार के विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उसके लिये पक्क अन्न और सुखकारी समृद्धि उत्पन्न करो । वन में अच्छी प्रकार पवित्र किये पदार्थ के समान सैन्यदल के आधार पर प्राप्त ऐश्वर्यं सेवन करने के निमित्त उत्तम रीति से लाओ । वह प्रेम से सेवन करता हुआ तुम्हारे हाथों से तैयार किये ऐश्वर्यं को सब प्रकार से चाहता है । इसलिये इन्द्र पद पर स्थित सभापति के लिये अतिहर्षजनक ओषधिरस के समान पुष्टिप्रद एवं स्वच्छ पवित्र ऐश्वर्यं प्रदान करो ।

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥

भा०—हे प्रजापालन रूप यज्ञ की इच्छा करने हारे शासक विद्वान्

पुरुषो ! जिस प्रकार दूध से गौ का थान पूर्ण रहता है उसी प्रकार ऐश्वर्यों से पृथिवी के पालक राजा को खूब पूर्ण करो। मैं इस प्रजाजन के भरण पोषण के सामर्थ्य को जानता हूँ। राष्ट्रयज्ञ का करने वाला राजा भी इस देने वाले को जाने।

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रजापालन को चाहने और परस्पर हिंसा को न चाहने के इच्छुक पुरुषो ! जो व्यवहारयोग्य व्यापार से प्राप्त धन का और जो पृथिवी से प्राप्त होने वाले अन्न सुवर्ण आदि का और क्षमा अर्थात् भूमि से प्राप्त होने वाले क्षेत्र, सेना, पशु हस्ति आदि का भी राजा है, उस ऐश्वर्य-वान् पुरुष को, यव या अनाज से भडोले के समान, नाना ऐश्वर्यों से पूर्ण करो। हे नायको ! नाना अध्यक्ष जनो ! तुम्हारा कर्म ही वह रहे।

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १३। मन्त्र १३॥ इति चतुर्दशो वर्गः।

[१५]

गृत्समद ऋषि॥ इन्द्रो देवता॥ छन्द—१ भुरिक् पंक्तिः। ७ स्वराट् पंक्तिः। २, ४, ५, ६, ९, १० त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ८ विराट् त्रिष्टुप्। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

भा०—उस महान् सत्यस्वरूप परमेश्वर के बडे २ सच्चे २ कार्यों और साधनों का अच्छी प्रकार वर्णन करता हूं। वह परमेश्वर तीनों लोकों में अथवा सूर्य आदि और पृथिवी आदि लोकों और मनुष्य आदि प्राणियों में उत्पन्न जगत् सर्वप्रेरक बल, और प्राणों की रक्षा करता है।

अपने अति आनन्दमय स्वरूप में प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म रूप को वह ऐश्वर्यवान् प्रभु विनष्ट करता अर्थात् विकृत करता है।

अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ २॥

भा०—बांस या स्तम्भ के विना ही जो शून्य में बड़े भारी नक्षत्र आदि से भरे द्युलोक को स्थिर कर रहा है। इसी प्रकार विना आश्रय के ही सूर्य पृथिवी दोनों लोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी को भी धारण कर रहा है। और पृथिवी को विस्तृत करता है। ऐश्वर्यवान् परमेश्वर यह सब जगत् के सञ्चालक बल के कारण ही करता है।

सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥३॥

भा०—माप २ कर जिस प्रकार घर बनाया जाता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने निर्माणसाधनों से और विज्ञानयुक्त नियमों से अति वेग से चलने वाले या प्राचीन और वर्त्तमान के भी समस्त लोकों को विशेष रूप से रचता है। वह मानो वज्र से नदियों के खुदे मार्गों को काटता है। और दूर तक जाने वाले मार्गों से जाने के लिये उन नदियों को अनायास ही रचता है। वह सर्वप्रेरक और उत्पादक बल को अपने वश में रखने के कारण ही ये सब कर्म करता है।

स प्रवोळ्हॄन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ ४॥

भा०—समस्त पदार्थों के संयोग और विभाग करने में समर्थ प्रकृति के परमाणु २ तक को छिन्न भिन्न करने हारा वह 'इन्द्र' परमेश्वर विनाश या प्रलय को अच्छी प्रकार लाने वाले अग्नि जलादि तत्वों को व्यापकर, अग्नितत्व के खूब प्रज्वलित हो जाने पर एक दूसरे पर आघात प्रतिघात करने वाले समस्त संसार को भस्म कर देता है। और वही

परमैश्वर्यवान् प्रभु इस जगत् को गौओं अश्वों और रथादि साधनों से रच देता है। उत्पन्न होने वाले जगत् के उन २ नाना कर्मों को वह परमेश्वर अति आनन्द में मग्न रहता ही करता है। अथवा उन २ कर्मों को वह प्रभु उत्पादक और प्रेरक बल के हर्ष या उत्कर्ष होने से ही करता है।

स ईं मुहीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातृनपारयत्स्वस्ति।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ५।१५

भा०—वह परमेश्वर चलने वाले जल और चलने वाली इस बड़ी भारी पृथ्वी को भी बराबर चलते रहने के लिये प्रहार करता है, उसको गति देता रहता है। और वह इस बडी भारी नदी के समान बराबर चलने वाले प्रवाह से अनादि ससार को या तृष्णा रूप नदी को पार होने के लिये इस नदी का नाश कर देता है। उस भोगतृष्णा से पूर्ण नदी में स्नान न करने वालों, उसमें न डूबने वालों को बड़े कल्याण और सुख के साथ पार कर देता है। वे उस नदी से पार निकल कर महान् ऐश्वर्य को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं। ऐश्वर्यवान् प्रभु ये सब कार्य अपने महान् उत्पादक सामर्थ्य के सर्वातिशायी होने के कारण करता है।

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से बन्धन में पड़े तथा उन्नत मार्ग पर चलने वाले जीव को स्वयं प्राप्त करता, उस पर अनुग्रह करता है। अपने ज्ञानवज्र से प्रभात वेला के समान कान्तिमती चेतना के स्वरूप इस देह को अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है अर्थात् विदेह मुक्ति प्राप्त होता है। स्वय वह प्रभु निर्वेग, निष्क्रिय रहकर भी वेग वाली ज्ञान क्रियाओं से क्लेशों को काट डालता है। यह सब वह प्रभु सोम अर्थात् उत्पन्न होने वाले एवं प्रभु के उपासना करने वाले जीव के आनन्द के निमित्त ही करता है।

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥

भा०—वह विद्वान् परमेश्वर दीप्ति वाले लोकों या प्रकाशों के आच्छादक घोर तम को दूर करता है। और प्रकट होकर उच्च पद पर स्थित होता है। वह परमेश्वर सबकी प्रार्थनाओं को सुनने वाला होकर प्रत्येक स्थान मे विद्यमान है। वह विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होता है और विविध ज्ञानों को प्रकाशित करता है। वह विविध कर्मों का उपदेश करता है। महान् ऐश्वर्य के अति उत्कर्ष के कारण या उत्पन्न संसार और जीवगण के आनन्द लाभ के निमित्त परमेश्वर यह नाना कार्य करता है।

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥

भा०—परमेश्वर विद्वान् ऋषियों द्वारा और तेजस्वी सूर्य आदि लोकों द्वारा, जगत् के ज्ञान को घेरने वाले अज्ञान को और चक्षु आदि को घेरने वाले अन्धकार को नष्ट करता है। वह स्तुति किया जाता है और वही पोरु पोरु से बने हुए देह के दृढ़ अंगों को विविध शक्तियों से संचालित करता है। इन प्राणियों की भिन्न २ निमित्तों से उत्पन्न रुकावटों को दूर कर देता है। वह प्रभु जीवों को आनन्द देने या सर्वैश्वर्यवान् होने से ये सब कार्य करता है।

स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर आलस्य के द्वारा दूसरों के ऐश्वर्य पर मुंह लगाने वाले और अन्यों को त्रास देने वाले दुष्ट पुरुष को उखाड़ कर नष्ट कर देता है। इसी प्रकार हिंसक पुरुष का भी नाश करता है। वह समस्त विश्व का बनाने वाला प्रभु इस लोक में हित और रमणीय

वस्तु को प्राप्त कराता है। सोमस्य मदे० इत्यादि पूर्ववत्! 'प्राव:'—अवधातुरत्र हिंसार्थः। भ्वादिः॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुंहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥२०।१६

भा०—व्याख्या देखो सू० १।१।२१॥ हे ऐश्वर्यवन्! तेरी वह उत्साह उत्पन्न करने वाली धनैश्वर्यवती दानक्रिया उत्तम उपदेश करने वाले विद्वान् को निश्चय से श्रेष्ठ अभिलषित फल प्राप्त करावे। तू हममें ऐश्वर्यवान् होकर ज्ञानोपदेष्टा लोगों को दान कर, उनका अतिक्रमण या तिरस्कार करके उनको दग्ध या सतप्त न कर। हम उत्तम पुत्र और भृत्यवान् होकर ज्ञानादि के अवसर पर वृद्धिकर वचन और स्तुति कहें और उपदेश करें। इति षोडशो वर्गः॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ७ जगती। विराड् जगती ४, ५, ६, ८ निचृज्जगती च। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे॥ १॥

भा०—यज्ञ में अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर जिस प्रकार सर्वोपरि स्तुतियोग्य परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति और अग्नि में अन्नादि चरु दिया जाता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! मैं आप समस्त सत्पुरुषों के बीच में सबसे अधिक स्तुतियोग्य, विद्या, ऐश्वर्य और आयु में सबसे बड़े के लिये यज्ञ में उत्तम स्तुति और उत्तम अन्नादि पदार्थ प्रस्तुत करूं। कभी नाश न होने वाले, कभी जरावस्था को प्राप्त न होने वाले, अपरिणामी, नित्य, कालक्रम से स्थावर और जंगम सबको जीर्ण करते हुए, मेघ के समान सबके सेचक, सदा से युवा परमेश्वर को हम रक्षा आदि कार्यों के लिये पुकारें।

यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या। जठरे सोमं तन्वी३सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥

भा०—जिस महान् 'इन्द्र', परमेश्वर से भिन्न कुछ भी अन्य पदार्थ नहीं। इसके आश्रय में ही समस्त बल वीर्य एक स्थान पर एकत्र हुए हैं। वह परमेश्वर अपने पेट में ओषधिरस के समान समस्त जगत् और ऐश्वर्य को धारण करता है। अपने विस्तृत व्यापक रूप में बड़े भारी बल को धारण करता है। वह हाथ में खड्ग के समान ज्ञानवज्र को धारण करता और शिर या मस्तक भागों में सर्वोपरि प्रज्ञा और उत्तम विज्ञान धारण करता है।

न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः। न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र चलने वाले अश्वों द्वारा कोई पुरुष बहुत से योजनों तक चला जाता है उसी प्रकार हे परमेश्वर! शीघ्रगति करने वाले तत्वों से तू बहुत से योगों से बने पदार्थों में व्यापता वा उन्हें बनाने में समर्थ है। तेरा ऐश्वर्य आकाश और पृथिवी दोनों से भी नहीं नापा जा सकता। वह उन दोनों से कहीं अधिक है। और तेरा रथ अर्थात् रमण करने योग्य आनन्दरस भी मेघों से कम नहीं, उनसे भी कहीं बढ़कर है। वह समुद्रों से भी कम नहीं है। समुद्रों और मेघों का जलरूप रस भी उस आनन्दरस से कहीं न्यून है। तेरे बलवीर्य को कोई पा नहीं सकता।

विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते। वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥

भा०—दानशील, आदर सत्कार, सत्संग, मान और पूजा के योग्य, सबको पराजित करने हारे, सुखों की वृष्टि करने वाले, सर्वत्र व्यापक उस परमेश्वर के प्राप्त करने और जानने के लिये सब ही यज्ञ करते,

अपनी बुद्धि को दौड़ाते और यज्ञ करते हैं। हे प्रभो! तू सब सुखों का वर्षण करने वाला, सबसे बड़ा विद्वान्, विशेष रूप से अलंघनीय, है। तू अन्नादि पदार्थों से हमें समस्त सुख प्रदान कर। वर्षा करने वाले प्रकाशमान सूर्य और विद्युत् द्वारा हे ऐश्वर्यवन्! इस जगत् का पालन कर।

वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ५॥१७

भा०—वेदमय ज्ञानकोश, तथा सुखों और आनन्दों के वर्षक मधुर ज्ञान की दीप्ति, ये दोनों सुखो के वर्षक प्रभु के आनन्द को अन्न के समान उपभोग करने वाले बलवान् आत्मा के पालन करने के लिये हैं। यज्ञशील स्त्री पुरुष अखण्डित ब्रह्मचर्य के पालक हों। लोग भी बलवान्, दृढ़ और ज्ञानजलों के वर्षक हों। वे पुष्टिकारक ओषधिरस को तथा ज्ञान और ऐश्वर्य को उत्पन्न करें और प्रदान करें।

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि ॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! तेरा वज्र सुखों का वर्षक और शत्रुओं की शक्ति का प्रतिबन्धक हो। तेरा रथों का बल शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रवर्षी हो। तेरे दोनों अश्व बलवान् हों। तेरे शस्त्रास्त्र दृढ़ हों। हे सर्वोत्तम! बलवानों दमन का और सुखों के वर्धक ऐश्वर्य का तू स्वामी हो। उससे तू सदा तृप्त हो।

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे॥७॥

भा०—ऐश्वर्यों या शासनकार्यों के बीच में प्रतिपक्षियों के पराजय करने में समर्थ होकर मैं, संग्रामों में तुझको नाव के समान तारक तथा आज्ञावचन का स्वामी जानकर तुझको ही धन सहित प्राप्त होता हूँ। तू हमारे इस वचन को ही बहुत समझता है। हम ऐश्वर्यवान् तुझको जल

के कूप के समान ऐश्वर्य का अक्षय कूप जानकर रात दिन अपने क्षेत्र सींचते हैं, अपना कारवार पुष्ट करते हैं। परमेश्वर भी जीवन-संग्राम में नाव के समान है। वेदवचनों का स्वामी होने से 'वचस्यु' है। मैं काम क्रोध आदि को दबा कर उपासना के अवसरों में वेद मन्त्र से उसकी प्रार्थना करूं। वह हमारे इस थोड़े से वचन को बहुत करके लेता है। उसको हम परमैश्वर्य का अक्षय कूप जानकर उससे अपने क्षेत्र आत्मा को निरन्तर सींचें।

पुरा संम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी। सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥

भा०—घास चारे के ऊपर परिपुष्ट होने वाली गाय जिस प्रकार बछड़े के पास प्रेम से उस पर संकट आने के पूर्व जा आती है, उसी प्रकार पीड़ा या विपत्ति होने के पूर्व ही तु हमें प्राप्त हो। हे अपरमित ज्ञान और क्रियासामर्थ्य से युक्त! स्त्रियों से जिस प्रकार उनके इच्छुक पुरुष मिल जाते हैं उसी प्रकार तेरे उत्तम ज्ञानों से हम एक बार अच्छी प्रकार व्याप जावें।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी। शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २। १५। १० ॥ अष्टादशो वर्गः ॥

[१७]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराड् जगती। २, ४ निचृज्जगती। ३, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते। विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! इस सूर्य की प्रेरकशक्ति के अंश जो कि पुरातन काल मे वर्त्तमान रहते हुए उदय को प्राप्त होते हैं, प्रकट होते हैं, उनको और जो भी समस्त बीज भूमि मे सुरक्षित रहते हैं वे जब एक साथ ही अंकुर रूप में परिवर्तित होकर बाद मे और भी पुष्ट हो जाते हैं उन सबको वह परमेश्वर आनन्द विकास के लिये, या जगत् के हर्ष के लिये बढ़ाता, प्रेरित करता है। इसलिये परमेश्वर के उस सामर्थ्य को प्राण के समान स्तुति या वर्णन योग्य जान कर उसकी उपासना करो।

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत्।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥

भा०—वह परमेश्वर ही होना सम्भव है जो निश्चय से सबसे प्रथम इस संसार के धारण पोषण करने के लिये बड़ा बल पराक्रम प्रकट करता हुआ अपने महान् सामर्थ्य और स्वरूप को सर्वत्र प्रकट करता है। युद्धो में शूरवीर जिस प्रकार अपने शरीर को सब तरफ से कवच आदि से सुरक्षित कर लेता है उसी प्रकार मानो जगत् में व्यापक परमेश्वर भी अपने आप को सब ओर से ढक सा लेता है। जिस प्रकार सिर पर वीर पुरुष उजली पगडी या मुकटादि पहरता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य से तेजस्वी सूर्य या नक्षत्रादि मण्डित आकाश को धारण किये हुए है।

अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥ ३ ॥

भा०—और हे परमेश्वर ! तू सबसे प्रथम सबसे आदि में, बड़े जगत् को उत्पन्न करने और चलाने में समर्थ बल वीर्य को प्रकट करता है, और जो तू इस जगत् के भी पूर्व अपने ज्ञान के अनुसार बल को प्रकट करता है तब जिस प्रकार रथ में स्थित तीव्र अश्वों के संचालक

सारथि द्वारा विशेष रीति से चलाए गये वेगवान् अश्व एक साथ और पृथक् २ भी वेग से दौड़ते हैं, उसी प्रकार सूर्यरथ में स्थित आकर्षक व्यापक शक्ति से विविध दिशाओं में चलाये गये वेगवान् ग्रह एक स्थान आकाश में रहकर, पृथक् २ अपने २ गतिमार्गों या क्रान्तिमार्गों पर एक वेग से दौड़ लगा रहे हैं।

अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत। आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४ ॥

भा०—और जो समस्त उत्पन्न लोकों और पदार्थों में भी व्याप कर अपने महान् बल से अपने को सबका ईश्वर प्रकट करता हुआ, सबसे उत्कृष्ट बलशाली होकर बहुत बड़ा हो जाता है, अग्नि जिस प्रकार तेज से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी अपने तेज से या सूर्यादि द्वारा आकाश और पृथिवी दोनों को दो पक्षों के समान मानो सीकर फैला देता या व्यापता है। और दूर २ तक स्थित अंधकारों को सूर्य के समान अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है।

स प्राचीनान्पर्वतान् दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः। अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥

भा०—वह परमेश्वर अति पुरातन, पर्व पर्व अर्थात् तह पर तह जमने से बने पर्वतों को काल क्रम से और भी दृढ़ करता है, और जलों के भी सार भाग अन्न को नीचे भूमि तल पर उत्पन्न करता है। वह समस्त जगत् का पोषण करने वाली पृथिवी को धारण कर रहा है। और अपनी निर्मात्री व्यापक शक्ति से आकाशमण्डल और उसमें स्थित ग्रह तारा सूर्य जगत् को नीचे गिरने या स्थानभ्रष्ट होने से थामे रहता है।

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदस्परि। येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥ ६ ॥

भा०—परमेश्वर जगत् के जन्म होने से लेकर इसे सब प्रकार से पुत्र को पिता के समान खूब अलंकृत करता है। वह परमेश्वर बहुत ऐश्वर्य के देने से 'तुविष्वनि' है। वह हिंसाकारी दुष्ट पुरुष को नीचे गिरा कर पृथक् करता है।

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्। कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः ॥ ७ ॥

भा०—गृह में बूढ़ी हो जाने वाली कन्या जिस प्रकार माता पिता के साथ सदा रहती हुई एक ही घर से ऐश्वर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार हे प्रभो! तुझे अपना गृह जानकर तुझ में ही आश्रय पाकर जीर्ण होने वाला मैं, सर्वसाधारण में रहने सहने के स्थान से उठकर वहां से हटकर तुझ ऐश्वर्यवान् को प्राप्त होकर याचना करता हूँ। तू उत्तम ज्ञान प्रदान कर, प्रतिमास उत्तम वस्तुएं उपस्थित कर, जिससे सबको तू तृप्त करता है उस शरीर के सेवन करने योग्य भाग को हमें दे।

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दृदिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान्।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हम लोग तुझको ही सबका पालक और ऐश्वर्यों का भोक्ता कहते हैं, वैसा जान कर तुझको पुकारते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! तू समस्त कर्मों का फल देने वाला और तू समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला है। हे ऐश्वर्यवन्! तू नाना प्रकार के रक्षा आदि कार्यों से हमारी रक्षा कर। हे ऐश्वर्यवन्! हे सब सुखों के वर्षक! तू हमें खूब ऐश्वर्यवान् कर।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥२०

भा०—व्याख्या देखो सू० १७। ९ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[१८]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः । ४, ८ भुरिक् पक्ति. । ५, ६ स्वराट् पक्तिः । ७ निचृत् पक्तिः २, ३, ९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार नया रथ, ऐसा जोडकर बनाया जाय जो कि सब सुखों का देने वाला हो जिसमें घोड़े के जोडने के चार स्थान हों, तेज मध्यम और मन्द तीनों प्रकारों की गति से चलने वाला, तीनों गतियों पर शासन या वश करने के मन्त्र से युक्त हो, घोडों के मुखों में लगने वाली सात रासों के समान सात वश करने के साधन लगे हों, जिसमें दश थामने और चलाने के यन्त्र हों, जो सुख का देने वाला हो, ऐसा रथ जिस प्रकार साथ जुड़ी स्तम्भ करने वाली मुट्ठियों से प्रभात में वेग से चलाने योग्य होता है उसी प्रकार यह जीवात्मा प्रभात काल में इच्छाओं से और भजन क्रियाओं से रमण करने योग्य होता है। वह रमणकारी होने से 'रथ' है। सदा नित्य होने से 'नव' है। सगदोष से रहित है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों में सलग्न रहता है। अथवा चारों वेदों से सदेह समाधान करने वाला या चारों अन्त.करणों से युक्त है। वह तीनों वेद वाणियों को धारण करने हारा, मन, वाणी, काया, तीनों पर शासन करने वाला, मूर्धागत सात प्राणों से सात रश्मि वाला है। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दश साधन नाव में लगे चप्पुओं के समान जीवन यात्रा करने में साधन हैं, वह मनुष्य का आत्मा परम सुख का अभिलाषी होकर, यज्ञादि साधनों और उत्तम विचारयोग्य बुद्धियों से प्राप्त होता है। परमात्मा पक्ष में—परमात्मा रसरूप एव रमण योग्य होने से 'रथ' है। स्तुति योग्य और अद्भुत होने से 'नव' है। शुद्ध होने से 'सस्नि' है। अन्त.करण चतुष्टय से समाहित होकर जानने योग्य होने

से 'चतुर्युग' है। तीनों लोको पर शासक होने से या वेदत्रयी तीनो प्रकार की वाणियों को धारने हारा होने से 'त्रिकश' है। सप्तलोकों का शासक होने से 'सप्तरश्मि' है। दशों दिशाओं के स्वामी के समान त्राण करने वाला होने से 'दशारित्र' है। वह सुख देने वाला होने से 'स्वर्ष' है। वह यज्ञों और उत्तम मननो द्वारा प्राप्त करने योग्य है। वही योगाभ्यास द्वारा एकाग्रचित्त से प्राप्त किया और ध्यान किया जाता है।

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर पहले, दूसरे और तीसरे, भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनो में समवेत है। वह मननशील एवम् मनुष्यों के हितार्थों का देने वाला है। सबसे उत्कृष्ट, सबसे अधिक बलवान् होकर अपने से भिन्न प्रकृति के गर्भ, हिरण्यगर्भ या ब्रह्माण्ड आदि विकारों को उत्पन्न करता, धारण करता है, उस संसार को फिर अन्य अर्थात् उस परमेश्वर से भिन्न महत् आदि एव पृथ्वी आदि प्रकृति-विकृति पदार्थ ही प्रकट करते है, और वह परमेश्वर अपने से भिन्न उपासक जीवों से साक्षात् प्राप्त किया जाता है।

हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥३॥

भा०—सदा वेदवचन या गुरु उपदिष्ट ज्ञान के अनुसार जिस प्रकार शिल्पीजन रथ में वेगवान् वायु अग्नि दोनों को वेग से जाने के लिये अश्वों के समान जोड़ लेता है उसी प्रकार मैं नये से नये स्तुति करने वाले उत्तम रीति से कथित वेदमन्त्र से उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के रमणयोग्य परमानन्दमय स्वरूप में आने या सुख को प्राप्त करने के लिये दुःखों के दूर करने वाले मन और आत्मा दोनों को योग द्वारा जोड़ दूं। हे

परमेश्वर ! इस लोक में तुझे प्राप्त करके बहुत से विद्वान् जन रमण करते हैं, और दूसरे केवल यज्ञ करते हुए भी तुझे अच्छी प्रकार प्राप्त न कर आनन्द लाभ नहीं कर पाते ।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू स्तुति द्वारा अभ्यर्थना किया जाकर प्राण अपान रूप दो साधनों से, चार वेदों से, चार अन्तःकरणों और मन सहित इन्द्रियों से, आठों प्रमाणों और दश यमों और नियमों से हमारे ब्रह्मास्वाद में हमें प्राप्त हो । हे उत्तम धनैश्वर्य के स्वामिन् ! समस्त प्राप्त ऐश्वर्य तुझे ही दिया जाता है । हमें संग्राम करने वाले न कर ।

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ५॥२१

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू बीस, तीस, चालीस तीव्र बुद्धि वाले विद्वानों के द्वारा हमें प्राप्त हो । और इसी प्रकार पचास, साठ और सत्तर रमण करने के सुख साधनों से ऐश्वर्य पालक के पद को प्राप्त हो । इत्येकविंशो वर्गः ॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! ८०, ९०, १०० तीव्र बुद्धिमान् विद्वानों से धारण किया जाकर तू हमें साक्षात् प्राप्त हो । यह ऐश्वर्य सुख देने वाले कार्यों में तेरी ही कामना से हर्ष और आनन्द लाभ के लिये बढ़ाया गया है ।

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर । रमण

करने योग्य आनन्द के धारण करने के कार्य में स्त्री पुरुष को नियुक्त कर।

न मु इन्द्रेण सुख्यं वि योषदुस्मभ्यंमस्य दक्षिणा दुहीत।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

भा०—मेरा ऐश्वर्यवान् परमेश्वर से मैत्री भाव कभी न टूटे। उसका दिया धन ज्ञान हमें गौ के समान नाना सुख प्रदान करे। सबसे महान्, दुःखों को दूर करने वाले, सूर्यरश्मि के समान प्रकाशक तथा बाहु के समान अवलम्बदायक, उत्तम २ फलदायक, उपास्य प्रभु के अधीन रहकर हम विजयशील होवें।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ९।२२

भा०—व्याख्या देखो सू० १७। ९॥ इति द्वाविंशो वर्गः॥

[१६]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, ८, विराट् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। ३ पंक्तिः। ४, ७ भुरिक् पंक्तिः। ५ निचृत् पंक्तिः॥

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥

भा०—हे मन को वश करने वाले विद्वान् पुरुषो! हे वेदज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के चाहने वाले नायक पुरुषो! जिसके आश्रय में ऐश्वर्यवान् आत्मा शक्ति में बढ़ता हुआ उत्तम ज्ञानमय प्रकाश में स्थान प्राप्त करे, उस जीवन धारण करने वाले ज्ञान और शक्ति उत्पन्न करने या देने वाले ज्ञानमय प्रभु के आनन्द रस का आत्मसंतोष प्राप्त करने के लिये पान किया करो।

अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

भा०—इस मधुर आनन्दरस को खूब प्राप्त करता हुआ, ज्ञानवज्र को धारण करता हुआ विद्वान् पुरुष, विश्व के महासागर में विद्यमान, विघ्नकारी प्रबल अज्ञान रूप शत्रु को, विविध उपायों से कुठार से वृक्ष के समान काट गिरावे। तब समृद्ध और प्रसन्न और उत्साहित प्रजाओं के अन्नादि ऐश्वर्य, घोंसलों के पक्षियों के समान और दिनों को सूर्य की किरणों के समान, आप से आप प्राप्त हो जाते हैं।

स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत्॥ ३॥

भा०—वह परमेश्वर ऐश्वर्यवान्, गुणों और कर्मों में महान् होकर अव्यक्त तम, प्रलयदशा में अविकृत प्रकृतितत्व में व्याप्त होकर, आकाश में प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच में विशेष वेग या स्पन्दन को अच्छी प्रकार उत्पन्न करता है। तब वह महान् आकाश को और सूर्य या आकाश को प्रकट करता है। और सब पदार्थों को प्रकट करने वाले तेजस्तत्व से सब किरणों को प्रदान करता, दिनों के समान नाश होकर भी पुनः उत्पन्न और अस्त होने वाले जीवों के ज्ञानों और कर्मों को साधता है।

सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ॥४॥

भा०—वह परमेश्वर अपने को उसके अधीन सेवक और उपासक रूप में सौंप देने वाले मनुष्य को, अद्भुत २ और अनुपम बहुत से ऐश्वर्य प्रदान करता है, वह सूर्यादि के समान जगत् के आच्छादक अन्धकार और अज्ञान का नाश करता है। वह सूर्य के समान तेजस्वी पद या प्रकाशवान् आत्मस्वरूप के प्राप्त करने के लिये, एक दूसरे से अधिक तेजस्वी होने में स्पर्धा करने वाले मनुष्यों के लिये जो सब दिन समान रूप से आश्रय करने योग्य और निरन्तर सहायक होता है।

स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ् मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५॥२३॥

भा०—परमेश्वर उपासक जन के लिये सूर्य के गुणों से भी बढ़कर तेजस्वी है। वह उपासक के दुर्गुणों को हटाकर निष्पाप धन प्राप्त करा देता है। जो पुरुष अपने धन का नाश कर ले वह उस व्यापक प्रभु को नहीं प्राप्त कर सकता। स्तुति किया गया प्रभु सूर्य से बढ़कर है। वह दानशील सूर्य या मेघ के समान उसको योग्य और पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त कराता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार धान काट लाने वाले कृषक के हित के लिये न सूखे सामान्य जौ आदि को सुखा कर देता है, और प्रकाश देने के लिए आवरण करने वाले मेघ के ९९ खण्डों को विशेष रूप से सचालित करता है, उसी प्रकार वह परमेश्वर कामनावान् होकर, स्तुति करने वाले एवं समान रूप से 'रथ' अर्थात् रमण साधन आत्मा को तन्मय करने वाले उपासक के हित के लिए, सदा हरे भरे, कदन्न के समान कुत्सित आचरण वाले बलशाली कामवेग को विनष्ट कर देता है। और इच्छानुसार दानशील पुरुष के लिये वह परमेश्वर शान्ति के नाशक, आत्मा को घेरने वाले अज्ञान के पालन करने वाली वासनाओं या वासनाओं के उदय होने की नाड़ियों को विशेष रूप से छिन्न-भिन्न करता है।

एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! हम स्वयं अपने आत्मा से अपने आप को बलवान् और ज्ञानवान् करते हुए, तेरे श्रवण करने योग्य गुणों

के समान ही तेरे कहने योग्य स्तुतिवचन को भी प्राप्त करें। और हम तेरे उस मैत्रीभाव का सुखपूर्वक उपभोग करें, और अप्रमादी रहकर हम अदानशील हिंसक पुरुष के हिंसाकारी कृत्य का विनाश करें।

एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥

भा०—गमन करने वाले जिस प्रकार मार्गों को बना लेते हैं, और जिस प्रकार अन्यों को ज्ञान देने की इच्छा करने वाले पुरुष नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं, उसी प्रकार हे शूर पुरुष के समान सब संकटों से बचाने हारे प्रभो! ज्ञान और शरण के इच्छुक, तथा आनन्द को चाहने वाले, सबकी आकांक्षा के पात्र परम मेधावी परमेश्वर ही में हर्ष प्राप्त करने वाले, योगिजन, तेरे ज्ञानमय स्वरूप और नाना ज्ञानों, कर्मों, उत्तम आचरणों का स्वयं आचरण करते, और उनका अन्यों को उपदेश करते हैं। वे ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मसाक्षात्कार की अभिलाषा करते हुए, हे परमेश्वर! तेरी नई से नई अनुपम प्रेरणा, सर्वोत्तम बल, और तेरे में उत्तम निवास, और तेरे परम सुख को प्राप्त करते हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १८ । ९ ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२०]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। २ बृहती। ३ पङ्क्तिः। ४, ५, ७ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥

भा०—संग्राम की कामना करने वाला वीर पुरुष जिस प्रकार रथ

को शब्दों से खूब पूर्ण कर लेता है, और अन्न को ढोना चाहने वाला मनुष्य जिस प्रकार शकटादि को भरता है, और वह वेग से या शीघ्रता से जाना चाहने वाला जिस प्रकार रथ का आश्रय लेता है, और ऐश्वर्य चाहने वाला जिस प्रकार 'रथ' अर्थात् युद्धविजयी रथ को चाहता है, उसी प्रकार हम लोग हे ऐश्वर्यवन्! तेरे स्तुतिकर्त्ता, प्रकाशित होते हुए और बुद्धि से तेरे जैसे या तुझे अपनाने वाले नायक पुरुषों से सुखयाचना करते हुए, तेरे ज्ञान ऐश्वर्य को पुष्ट करें। तू हमें भली प्रकार जान।

त्वं न॑ इन्द्र त्वाभि॑रू॒ती त्वा॑य॒तो अ॑भिष्टि॒पासि॒ जना॑न्।
त्वमि॒नो दा॒शुषो॑ वरू॒तेत्थाधी॑र॒भि यो नक्ष॑ति त्वा ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! तू रक्षा, ज्ञान, बल आदि से हमारे बीच में विद्यमान अपने प्रेमी भक्तों को आने वाली विपत्तियों से बचाने वाला है। तू अपने को तेरे तईं समर्पण करने वाले को विपत्तियों से बचाने वाला, अपनी शरण में स्वीकार करने वाला, उसके प्रति सत्यबुद्धि और सत्यकर्म वाला है, जो कि सत्यबुद्धि होकर तुझे ही अपना एकमात्र जान तेरे पास आता है।

स नो॒ युवेन्द्रो॑ जो॒हूत्रः॒ सखा॑ शि॒वो न॒राम॑स्तु पा॒ता।
यः शंस॑न्तं॒ यः श॑शमा॒नमू॒ती पच॑न्तं च स्तु॒वन्तं॑ च प्र॒णेष॑त् ॥३॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और राजा हमारे बीच उत्तम उपदेश करने वाले और स्तुति करने वाले की रक्षा के द्वारा उसे उत्तम मार्ग से ले जाता है। धर्म मर्यादाओं को लांघकर चलने वाले और अन्यों को सन्ताप देने वाले को दण्ड द्वारा उत्तम मार्ग में ले जाता है, अथवा जो द्रुतगति अर्थात् सब धर्मों को लांघकर संन्यास मार्ग में जाने वाले और अपने आत्मबल को तपस्या द्वारा परिपक्व करने वाले को सन्मार्ग से ले जाता है, वह सुखों से जोड़ने और दुःखों से दूर करने वाला, नित्य तरुण निरन्तर उत्तम पदार्थ देने वाला, अथवा भक्त प्रेमी जनों से नित्य

स्मरण किया और पुकारे जाने वाला, मित्र, कल्याणकारी है, वह हमारे पुरुषों और प्राणों का भी पालक और रक्षक हो।

तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः॥ ४॥

भा०—हे मनुष्य! तू परम ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति कर, उसी की चर्चा कर, जिसकी शरण में रहकर पहले भी लोग वृद्धि पाते रहे, और कामादि शत्रुओं का नाश करते रहे हैं। वह ज्ञान, धन और वृद्धि की कामना करने वाले, नये शरण में आये, अपने आश्रय में बसे भक्त की कामना को स्वयं प्राप्त होकर पूर्ण करता है।

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि॥५॥२५॥

भा०—वह परमेश्वर ज्ञानवान् पुरुषों को और तेजस्वी अग्नि, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों और लोकों को, उनके उत्तम मार्ग में प्रेरणा करता हुआ उनके कथन योग्य बड़े २ ऐश्वर्यों और बलों को धारण करके, सूर्य के साथ प्रभातवेलाओं को और स्तुतियों को चाहता हुआ, सबको खा जाने वाले लोभ, मोह या अज्ञान सम्बन्धी पूर्वजन्म के बन्धनों को भी शिथिल कर देता है। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान्॥६॥

भा०—वह श्रुति अर्थात् वेदों से श्रवण करने योग्य ऐश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों का प्रकाशक है। वह मननशील ज्ञानी पुरुष के सब कष्टों का सर्वोत्तम नाश करने वाला और सबसे ऊपर, सबसे अधिक पूज्य और शक्तिशाली है। वह सब विघ्नों को परास्त करने द्वारा संसार भर को धारण पोषण करने वाले सामर्थ्य का स्वामी है। वह शरण में प्राप्त हुए सेवक के प्रिय शिर के समान पूजनीय, सिर आंखों पर रहकर अपने अधीनस्थ का भरण पोषण करता, पालता है।

स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार काले अन्धकार की उत्पादक रात्रियों को दूर करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर विघ्नों और आवरणकारी मोह आदि का नाशक, देहपुरी के बन्धन का तोड़ने वाला होकर, कृष्ण अर्थात् पापयुक्त कर्मों को उत्पन्न करने वाली लौकिक सुख के देने वाली और ज्ञान और पुण्य का नाश करने वाली चित्तवृत्तियों को तितिर बितिर करता है। जिस प्रकार सूर्य मनुष्य को भूमि और जल प्रदान करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी मननशील मनुष्य के भोग और उपकार के लिये भूमि और जल दोनों ही उत्पन्न करता है। और वह दानशील मनुष्य की स्तुति या कीर्त्ति को सत्य के बल से बढ़ाता है।

तस्मै तवस्य मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥८॥

भा०—जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार सत्र अर्थात् यज्ञ में जलप्रद मेघ की वृद्धि के लिये वृष्टिकारक बल को बढ़ाने वाला चरु ही निरन्तर दिया जाता है, उसी प्रकार अभीष्ट अर्थात् पाने योग्य फल प्राप्त करने के लिये सत्याचरण और मिथ्याचार से रहित सत्य उपासना द्वारा उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त विद्वान् पुरुषों द्वारा आत्मा की शक्ति को बढ़ाने वाला दान, स्तवन आदि कर्म फल निरन्तर देते या त्यागते रहना चाहिये। इस जीव के अज्ञान को बांधने वाले ज्ञान और कर्म रूप दोनों बाहुओं से अज्ञान नाशक बल को धारण कर लेते हैं तब वह आत्मा के नाशकारी अन्त शत्रुओं का नाश करके आवागमन सम्बन्धी देहबन्धनों को पार कर जाता है। अध्यात्म में—आवागमन का बन्धन आत्मा के लिये आयसी पुर या फौलादी गढ़ है। वही यह भौतिक देह है। प्राणमय, विज्ञानमय मनोमय कोश तीनों 'राजसी पुर' हैं, और आनन्दमय कोश

हिरण्ययीपुर या हिरण्ययकोश है। सभी कोश प्राणों पर आश्रित होने से आसुर कहाते हैं।

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त। मं० ९ ॥ इति षड्विंशो वर्गः ॥

[२१]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ६ त्रिष्टुप्। ४ विराट् जगती। ५ निचृज्जगती ॥ षडृच सूक्तम् ॥

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१॥

भा०—जो समस्त विश्व को जीतने वाला, सबसे उत्कृष्ट है, जो धन, ऐश्वर्य द्वारा भी सबको जीतने वाला, सबसे अधिक धनी है, जो सुख में भी सबको जीतने वाला, आनन्दमय है, जो सत्य के बल से सबको जीतने वाला है, जो समस्त मनुष्यों को जीतने वाला सबमें बड़ा प्रधान नायक है, जो सत्यादि उत्पन्न करने में श्रेष्ठ भूमि को अपने वश करने वाला है, जो अश्व अर्थात् व्यापक पदार्थों और भोक्ता जीवों को भी अपने अधीन रखने वाला है, जो गमनशील पृथ्वी सूर्य आदि का भी जीतने वाला है, जो जलों, प्राणों, प्रजाओं और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का जेता है, ऐसे ऐश्वर्यवान् सर्वोपास्य दानशील परमेश्वर के प्राप्त करने के लिये, अति कमनीय आत्मा को उसके समीप तक लेजा और अर्पित कर।

अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! जो सर्वत्र व्यापक, समस्त जगत् का भंग, नाश, प्रलय करने वाला समस्त ऐश्वर्य को उचित रूप से विभाग करने वाला, किसी से और कभी भी उल्लंघन न करने योग्य, सबका सहन करने वाला, विश्व का विधाता, बहुत ज्ञानोपदेश करने वाला सब जगत् को उठाने वाला, जगत् का धारण और संचालन करने वाला, दुस्तर, अपार सामर्थ्य वाला, सत्य से विजयशील है उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये सदा नमस्कारयुक्त वचन का प्रयोग करो।

सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः।
वृतञ्चयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३॥

भा०—जो सत्य से शत्रु का पराजय करने वाला, सब मनुष्यों को सेवन करने योग्य या सब प्रजाजन का भोक्ता, सब जन्तुओं को अपने अधीन रखने में समर्थ, दुष्टों को च्युत करने वाला, दुष्टों पर वज्र का प्रहार करने वाला, प्रेम और सेवा को देखकर मेघ के समान बरसने वाला, ऋतु, सत्य का एकमात्र पुञ्ज, सहनशील, प्रजाओं में व्यापक शासन वाला है, मैं ऐसे परमेश्वर के किये गये बल पराक्रम आदि का अन्यों को उपदेश करूं।

अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर किसी अन्य से प्रेरित न होने वाला, काम्य सुखों की वर्षा करने वाला, हिंसकों का हिंसक, गम्भीर, अपार सामर्थ्यवान्, महान्, तथा क्रान्तदर्शिता और बुद्धिमत्ता में जिसका कोई पार नहीं पा सकता ऐसा वह है। हिंसकों को दूर करने और उत्तम ऐश्वर्यवान् समृद्ध पुरुषों को प्रेरणा करने वाला है, दुष्टों को शिथिल करने वाला है, बलवान् है, महान् और उत्तम उपास्य है। वह ही उषाओं को और सुख को उत्पन्न करता है।

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः। अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥

भा०—उपासना, सत्सगति और दान आदि श्रेष्ठ कर्म से ओर उपास्य परमेश्वर, कर्मों और बुद्धियों को प्राप्त करने वाले, कामनावान्, मेधावी पुरुष, अपनी बुद्धियों और उत्तम कर्मों की वृद्धि और उन्नति करते हुए उत्तम ज्ञानमार्ग को प्राप्त कर लेते हैं। ऐश्वर्यवान् के अधीन अपनी वृद्धि और उन्नति करते हुए, सब प्रकार का उपदेश देने वाली वेदवाणी को समीप बैठकर प्राप्त करने से अपनी रक्षा, ज्ञान, सद्गति, आत्मतृप्ति आदि की आकांक्षा करते हुए, उत्तम वाणियां और उत्तम ऐश्वर्यों बलों और ज्ञानों को करते हैं।

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ६॥२७

भा०—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! आप हम में सर्वोत्तम ज्ञान और धन बल वीर्य धारण करो, प्रदान करो, बलवान् सामर्थ्यवान् पुरुष की सुचित्तता, चेतना, सावधानता और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो। ऐश्वर्यों की वृद्धि, शरीरों की रोगरहितता, और वाणी की मधुरता, दिनों का सुदिनपन प्रदान करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[२२]

गृत्समद ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ अष्टिः। २ निचृदतिशक्वरी। ४ भुरिगतिशक्वरी। ३ स्वराट् शक्वरी ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथ्वी को प्रकाश देने और उसका रस लेने

वाला महान् सूर्य बहुत बल वाला होकर, पृथिवी वायु और द्युलोक में स्थित और ओषधि अन्नादि प्राप्त होने वाले जल का व्यापक तेज से पान करता है, और वायुमण्डल को जल से तृप्त या पूर्ण कर देता है, उत्पन्न चर अचर जगत् को भली प्रकार वश करता है, उसी प्रकार महान् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक अपने सामर्थ्य से यवादि ओषधियों पर आश्रित रहने वाले जीव जगत् का पालन करता है, उसे खूब तृप्त कर देता है। और उत्पन्न हुए जगत् को भली प्रकार वश करता है। जिस प्रकार सूर्य जल से जगत् को हर्षित करता है उसी प्रकार परमेश्वर इस जीव संसार का पालन करके जीव जगत् को हर्षित और सुखी करता है और उसको बड़े २ भारी काम करने में समर्थ करता है। जिस प्रकार चन्द्र सूर्य को प्राप्त होता, उसी के आश्रय बढ़ता और गति करता है उसी प्रकार वह भक्त सत्याचरण करने वाला महान् होकर इस विशाल, सर्वैश्वर्यदाता सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है, उसी में समवेत या आश्रित होकर रहता है।

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ २॥

भा०—सब कान्तियों और दीप्तियों का स्वामी परमेश्वर अपने बल से हिंसाशील को दबा देता है। वह प्रभु द्यौ और पृथिवी दोनों को पूर्ण कर रहा है। उस परमेश्वर के बल से यह संसार बढ़ता है। वह परमेश्वर जगत् के एक अंश को अपने जठर में प्रलीन कर धर लेता है, एक अंश को व्यक्त रूप में उत्पन्न करता है। चन्द्र समान आह्लादक दिव्य गुणों वाला तथा सत्याचरण वाला व्यक्ति उस परमेश्वर को प्राप्त होता है।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः॥ ३॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू बल वीर्य, पराक्रम के साथ ही प्रसिद्ध है। जो कर्मशक्ति और ज्ञानशक्ति के साथ ही प्रकट हुआ है, बल, दीप्ति के साथ ही समस्त संसार को धारण कर रहा है। तू संसार के उत्पादक सामर्थ्यों सहित महान् है। सहनशील, सबका द्रष्टा, अभिलषित ऐश्वर्य धन स्तुतिशील पुरुष को देने हारा है। (सः एन० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

(१-३) देखो अथर्व० भाष्य का० २। सू० ९५। १-३ ॥

तव॒ त्यन्नर्यं॑ नृ॒तोऽप॑ इन्द्र प्रथ॒मं पू॒र्व्यं दि॒वि प्र॒वाच्यं॑ कृ॒तम्।
यद्दे॒वस्य॒ शव॑सा॒ प्रारि॑णा॒ असुं॑ रि॒णन्न॒पः।
भुव॒द्विश्व॑म॒भ्यादे॑व॒मोज॑सा वि॒दादूर्जं॑ श॒तक्र॑तुर्वि॒दादिष॑म् ॥४।२८।२

भा०—हे परमेश्वर ! हे समस्त संसार को अपनी शक्ति से नचाने हारे ! हे सर्वैश्वर्यवन् ! तेरा ही वह नरों का हितकारी, सर्वश्रेष्ठ, सब से पूर्व का कार्य है जो कि ज्ञान मे अच्छी प्रकार वर्णन करने और प्रवचन द्वारा शिष्यों को उपदेश करने योग्य है। वह यह कि देदीप्यमान सूर्य या अग्नितत्व के बल से प्राण या वायुतत्व को गति देता हुआ तू जलतत्व में गति उत्पन्न करता है। तथा प्रकाशरहित समस्त संसार को अपने पराक्रम से व्याप लेता है। तू सैकडों कर्मों और ज्ञानो का स्वामी होकर बल देता और प्रेरणा भी प्रदान करता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[२३]

गृत्समद ऋषिः ॥ देवताः—१, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पतिः। २-४, ६—८, १०, १२—१६, १८ बृहस्पतिश्च ॥ छन्दः—१, ४, ५, १०, ११, १२ जगती। २, ७, ८, ९, १३, १४ विराट् जगती। ३, ६, १६, १८ निचृज्जगती। १५, १७ भुरिक् त्रिष्टुप। १९ निचृत् त्रिष्टुप ॥

एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

ग॒णानां॑ त्वा ग॒णप॑तिं हवामहे क॒विं क॑वी॒नामु॑प॒मश्र॑वस्तमम्।
ज्ये॒ष्ठ॒राजं॒ ब्रह्म॑णां ब्रह्मणस्पत॒ आ नः॑ शृ॒ण्वन्नू॒तिभिः॑ सीद॒ साद॑नम् ॥१

भा०—हे वेदज्ञान के पालक परमेश्वर ! गणनायोग्य प्रमुखों में सबके प्रमुख और उनके पालक, कवियों में महाकवि और सर्वोपमायोग्य तथा श्रवण करने योग्य कीर्त्ति में सर्वश्रेष्ठ, बड़ों २ के भी राजा तुझको हम पुकारते हैं। तू हमारी स्तुति श्रवण करता हुआ रक्षा आदि शक्तियों सहित विराजने योग्य प्रत्येक स्थान पर विराजमान हो।

देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२॥

भा०—हे बलवानों में बलवान् ! हे बड़े २ लोकों और वेदवाणी के पालक प्रभो ! सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् जन तेरे यज्ञसम्बन्धी अर्थात् उपासना करने योग्य, परम भजन करने योग्य स्वरूप को प्राप्त करते हैं। आप किरणों समेत सूर्य के समान परम ज्योति से तेज और समस्त बड़े २ लोकों और वेदमय ज्ञानों के उत्पादक एवं प्रकट करने वाले हो। (२) राजा महान् राष्ट्र का पालक होने, से बड़े २ ऐश्वर्यों का स्वामी होने से 'बृहस्पति' और 'ब्रह्मणस्पति' है।

आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि । बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! पापों से पूर्ण कर्म को और अज्ञानमय अन्धकार को विविध उपायों से नष्ट करके, आप, ज्योतिर्मय सत्य के रथ में स्थित होते हो, जो कि दुष्ट पुरुषों को भय देने वाला, शत्रुओं का नाश करने वाला, राक्षस स्वभाव विघ्नकारी पुरुषों का नाशक, दुर्गम बाधाओं का नाश करने वाला, सुख देने वाला तथा प्रकाश स्वरूप है। (२) राजा पापों, अज्ञानों को दूर करे। तेजस्वी, भयंकर, शत्रुनाशक, दुष्टनाशक, प्रजा सुखकारक, सामान्य और धन के उत्पादक रथ पर विराजे।

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४॥

भा०—हे बड़े व्रतों और बड़े लोकों के पालक परमेश्वर ! तू उत्तम न्याययुक्त मार्गों, नीतियों से सबको सन्मार्ग पर चलाता और उनकी रक्षा करता है। जो तेरे प्रति अपने को सौंप देता है उसको पाप, कष्ट, कभी नहीं व्यापता। तू वेद, वेदज्ञ और ईश्वर के विरोधी पुरुषों को तपाने वाला, और क्रोध आदि अन्त शत्रुओं और अभिमानियों का नाश करने हारा है। तेरा वह प्रसिद्ध बडा भारी महान् सामर्थ्य है।

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्म-णस्पते ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—हे वेद और महान् विश्व के पालक परमेश्वर ! तू उत्तम रक्षक होकर जिसकी रक्षा करता है उसको किसी भी प्रकार से न कोई पाप, न दुर्गति, न शत्रुजन और न दोनों पक्षों के भेदू लोग मार सकते हैं। तू उसके समीप सब नाशकारी कारणों को दूर कर देता है।

इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दुधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥

भा०—हे महान् विश्व के पालक प्रभो ! तू हमारा रक्षक, उत्तम मार्ग बनाने वाला, विविध सत्योपदेशों का उपदेष्टा, सबका विशेष रूप से सर्वोपरि द्रष्टा है। तेरे महान् व्रत के लिये हम उत्तम मनन करने वाली बुद्धियों और मन्त्रों सहित तेरी स्तुति करते हैं। हम पर जो भी कोई कुटिलता या क्रोध आदि करे उसको उसकी अपनी दुःखदायिनी प्रकृति वेगवती तलवार होकर नष्ट करे। मनुष्य की अपनी कुटिलता ही उसकी नाशकारी होती है।

उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥

भा०—हे परमात्मन् ! जो पुरुष हम अपराध रहितों को पीड़ित करता है, और अदानशील पुरुषों का संगी है, पर्वत शिखरों में विचरने वाले 'वृक' भेड़िये के समान हिंसक है, उसको हमारे मार्ग से दूर कर । विद्वानों और उत्तम गुणों को प्राप्त करने के लिये हमारे लिये सुख से गमन करने योग्य उपाय और मार्ग बना ।

त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥

भा०—हे बड़े लोकों के रक्षक परमेश्वर ! हम तुझको अपने शरीरों का पालक मानते हैं । हे अपने शत्रुनाशक बल से सङ्कटों से पार उतारने वाले ! हम तुझे सब पर अध्यक्ष रूप से आज्ञा देने वाला, हमें चाहने वाला स्वामी स्वीकार करते हैं । तू दिव्य गुणों और उत्तम विद्वानों और परमेश्वर की निन्दा करने वालों का विनाश करता है, जिससे दुष्ट आचरण वाले दुर्बुद्धि लोग भविष्य में प्राप्त होने वाले या उत्कृष्ट हमारे सुख को न विनष्ट करें ।

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर ! उत्तम वृद्धि करने वाले तुझ सहायक से, हम मननशील पुरुषों के हितकारी लोग, चाहने योग्य धन को प्राप्त करें । आघात करने वाली, अदानशील तथा उत्तम कर्मों से रहित जो दुष्ट प्रजाएं हमपर आक्रमण करती हैं उनका तू नाश कर ।

त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—हे परमात्मन् ! पालन करने और ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले, शुद्ध पवित्र आचारवान्, तथा सहायक से हम उत्तम ज्ञान, बल और दीर्घजीवन धारण करें । कुख्याति वाला, और दुष्ट शासन करने वाला, बुरे २ उपदेश देने वाला दुष्ट पुरुष, तथा सबको मारने और ठगने वाला वञ्चक पुरुष हम पर कभी प्रभुता न करे । हम लोग उत्तम कीर्त्ति वाले, उत्तम उपदेष्टा होकर उत्तम बुद्धियों से युक्त होकर स्वयं तरें और अन्यों को संकटों से पार उतारें । इति त्रिंशो वर्गः ॥

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥११॥

भा०—हे महान् वेदज्ञान के पालक ! तू अनुपम दानशील है । तू बलवान्, पुकार पर पहुँचने वाला, कामादि शत्रु को खूब पीडित करने वाला, देवासुर संग्रामों में शत्रु को पराजित करने हारा, न्यायशील पितृ-ऋण आदि के चुकाने में सहायता देने वाला, और तीव्र स्वभाव के तथा अपनी वीरता में हर्ष अनुभव करने वाले गर्वीले शत्रुओं का भी दमन करने हारा है ।

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः १२

भा०—जो व्यक्ति उत्तम भावनाओं से रहित चित्त से दूसरे की हिंसा करता है, और अन्य शासन करने वालों में या शस्त्रों हथियारों के कारण अतिभयंकर होकर प्रजा का उद्वेजक तथा गर्वी होकर हनन करना चाहता है, हे वेदवाणी के पालक न्यायकारिन् ! उसका हथियार हमें स्पर्श न करे । उस दुखदायक चेष्टा वाले बलवान् पुरुष के क्रोध और अभिमान को हम तुच्छ समझें और नहीं सा कर दें ।

भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वोमृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव १३

भा०—वह बृहस्पति परमेश्वर प्रजा के पालन पोषण के कार्यों में सदा आदरपूर्वक स्तुति करने योग्य, विनय और आदर से प्राप्त करने योग्य, ज्ञानों और बलों में व्यापक, बहुत प्रकार के और बहुत से धनैश्वर्य को प्रजाओं में विभक्त करने वाला, प्रजाओं का स्वामी, नाश करने की इच्छा वाले समस्त देवासुर सङ्ग्रामों का शत्रु के रथों के समान संहार करे।

तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम्।
आविस्तत्कृष्व यदसंत्त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय १४

भा०—हे बड़ों २ के मालिक! जो दुष्ट पुरुष, प्रसिद्ध बल वाले तुझे निन्दा का पात्र बनाते हैं, अर्थात् तेरी निन्दा करते हैं तू उन विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को अति तेजस्विनी और संताप देने वाली व्यवस्था से पीड़ित कर। जो प्रशंसा करने योग्य ज्ञान और बल है उसको प्रकट कर। और पाप से परिपूर्ण पुरुष को विविध उपायों से पीड़ित कर।

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् १५।२१

भा०—हे बड़ों के भी पालक! जिस तेज को सर्वश्रेष्ठ स्वामी पाने योग्य है, जो प्रकाशयुक्त, मनुष्यों के बीच कर्म और ज्ञान उत्पन्न करने द्वारा होकर विशेष रूप से प्रकाशित होता है, जो अन्य को भी चमकाता है, हे वेदज्ञान, सत्य, न्याय और धर्म में प्रसिद्ध! तू हम में वही सर्वोत्तम अति अद्भुत, अलौकिक ब्रह्मतेज, स्थापन कर।

बृहस्पते! अति यदर्यो अर्हात् इत्येतया ऋचा परिदध्यात्तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकाम. अतीव वा अन्यान् ब्रह्मवर्चसमर्हति। द्युमदिति द्युमदिव वै ब्रह्मवर्चस विभाति। यद् दीदयत् शवस ऋत प्रजातेति, दीदायेव वै ब्रह्मवर्चसम्। तदस्मासु द्रविण धेहि चित्रम् इति। चित्रमिव वै ब्रह्मवर्चसम्। ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवतीति। ऐतरेय ब्राह्मणे ४।११ इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः। आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥

भा०—हे बड़ों के भी पालक प्रभो! जो द्रोही, प्राप्त करने योग्य प्रत्येक स्थान में नित्य रमण करने वाले होकर अन्न आदि भोग्य पदार्थों में आक्रमण करके पदार्थ हर लेना चाहते हैं, उन चोर पुरुषों से हमें भय न हो। जो विद्वानों के बीच में भी त्याग, या विघ्नवर्जन के बल को हृदय में धारण करते हैं, हे बड़ों २ के भी पालक! वे शान्तिमय, सुखकारी वचन से भिन्न दूसरे उपाय को नहीं जानते। वे त्यागशील जन 'साम' उपाय को ही सर्वश्रेष्ठ जानते हैं।

विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः। स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥१७॥

भा०—विषम दशाओं के उपस्थित रहने पर भी साम के ही उपाय को उत्तम कहने वाला जो प्रभु है वही सर्वोत्पादक तुझको समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ बना देता है। वही धनों को सग्रह करने वाला, वही धनों को लेने और देने में समर्थ है। वही बड़े राजैश्वर्य का पालक, वही द्रोही पुरुषों को नष्ट करने और दण्ड देने में समर्थ है। वही बड़ी न्याय व्यवस्था के धारण करने वाले के पद पर स्थित होने योग्य है।

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः। इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८॥

भा०—हे बड़े राष्ट्र के पालक! हे तेजस्विन्! जिस प्रकार मेघ किरणों के समूह को प्रथम रोक लेता है और फिर छिन्न भिन्न होकर जल त्याग देता है तो यह सब सूर्य की शोभा के लिये ही होता है, इसी प्रकार पालन सामर्थ्य से युक्त शासक जो भूमियों के समूहों या क्षेत्रों को विशेष रूप से प्राप्त करता, और फिर तेरे लिये कर रूप से अन्न प्रदान करता

है, तो वह तेरी ही लक्ष्मी के वृद्धि के लिये हो। और विद्युत् के योग से अन्धकार या श्यामपन से घिरे हुए जल के सागर अर्थात् प्रचुर जल को जो बृहस्पति अर्थात् प्राणों का पालक वायु पुनः नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार राष्ट्र-पालक वीर सेनापति के साथ मिलकर दुःख शोकादि से घिरे हुए, सैनिकों के महासागर के समान अपार सैन्यबल को नीचे गिरा देता, मारकर भूमि में गिरा देता है।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥२२॥६॥

भा०—हे ब्रह्माण्ड, प्रकृति और ज्ञानमय वेद के पालक परमेश्वर! हे बड़े राज्य के पालक राजन्! तू इस संसार और राष्ट्र का नियामक है। तू उत्तम वचनों अर्थात् वेदों का ज्ञान करा। हमारे पुत्र पौत्र आदि को ज्ञान ऐश्वर्यादि से तृप्त और पूर्ण कर। विद्वान् गण जो पदार्थ प्रदान करते हैं वह सब कल्याणकारी होता है। हम उत्तम वीरपुरुषों से युक्त होकर संग्राम में और ज्ञान सभाओं में बहुत उत्तम वचन कहें। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

[२४]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—११, १३—१६ ब्रह्मणस्पतिः। १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च देवते ॥ छन्दः—१, ७, ६, ११ निचृज्जगती। १३ भुरिक् जगती। ६, ८, ११ जगती। १० स्वराड् जगती। २, ३ त्रिष्टुप्। ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। १२, १६ निचृत् त्रिष्टुप्। १५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा। यथा नो मीढ्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥

भा०—बृहती नाम वेदवाणी के पालक हे विद्वन् ! तु इस नवीन अर्थात् शिष्यों ने जिसको पहले नहीं जाना ऐसी, या सदा नवीन सदा सत्य महावाणी द्वारा उत्तम आजीविका को प्राप्त करने में अधिकारी है। वह तू इस को प्राप्त कर और हम तेरी भरण पोषण की सेवा करें। जिससे तेरा मित्र, तेरे समान नाम वाला दूसरा अध्यापक भी मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करने वाला होकर, हमारी स्वल्पमति को बढ़ाता और सधाता है। उसी प्रकार तू भी हमारी बुद्धियों को सिद्ध, निश्चित, ज्ञानवान्, परिपक्व कर।

यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

भा०—जो दबाने योग्य भीतरी और बाह्य शत्रुओं को बल पराक्रम से दबा लेता है, जो क्रोध या ज्ञान से शान्तिनाशक शत्रुओं के विघ्नों को मेघों के जलों को सूर्य या विद्युत् या वायु के समान छिन्न भिन्न कर देता है, जो स्थिर अविद्यादि शत्रुओं को अच्छी प्रकार नष्ट कर देता है, वही 'ब्रह्मणस्पति' वेद का पालक है, और वही वसु अर्थात् २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के पालक शिष्य के भीतर भी प्रवेश करता है।

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥३॥

भा०—तेजस्वियों में जो सबसे अधिक तेजस्वी होता है उसका यह अलौकिक कर्म होता है कि उसके समस्त दृढ पदार्थ भी शिथिल हो जाते हैं, और बलशाली भी कोमल होकर झुक जाते हैं। वह विद्वान् और राजा बड़े बल से भूमियों और भूमिवासी प्रजाओं को उत्तम मार्ग में चलाता और उत्तम २ ज्ञानवाणियों का उपदेश करता है। आत्मा पर आवरण डालने वाले को भेद डालता और अज्ञानान्धकार को छिपा देता, और प्रकाश के समान सुख और तेज को प्रकट करता है।

अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्संमुद्रिणम् ॥४॥

भा०—बड़े भारी बल का पालक सूर्य जिस प्रकार जल के भार से नीचे को झुके हुए, मीठे जल को धारण करने वाले, व्यापक विद्युत् को फेंकने वाले मेघ का बल से आघात करता है, उस मेघ को सब आदित्य के किरण पान किया करते हैं, और वे किरण जल से भरे कूप के समान जल से पूर्ण मेघ को एक साथ ही बहुत सा सींच लेते हैं, इसी प्रकार बड़े बल का पालक शक्तिमान् पुरुष अपने आगे झुके हुए, शस्त्र-बल से गिराये हुए, अन्नादि सुखजनक भोग्य पदार्थों को धारण करने वाले जिस परराष्ट्र को अपने बल से छिन्न भिन्न कर देता है, उसका सब सुख प्रकाश के देखने वाले विद्वान् जन उपभोग और पालन करें। जल वाले कूप के समान बहुत बार सींचें।

सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

भा०—वेदविद्या रूप धन का पालक परमेश्वर या विद्वान् पुरुष, जिन ज्ञानों और कर्मों का प्रकाश करता है, वे सब सनातन हैं। उनमें से कईयों के द्वार वर्त्तमान में खुल जाते हैं, कईयों के भविष्य में, कईयों के सम्बन्ध में महीनों लग जाते हैं, और कईयों के सम्बन्ध में वर्ष लग जाते हैं। कई बार ही पुरुष विशेष प्रयत्न न करते हुए भी, अनायास नाना फलों का उपभोग करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानबल से पहुँचते हुए जो विद्याभिलाषी पुरुष गुप्त स्थान में रखे व्यापारी-धनाढ्यों के धन के समान बुद्धि में रखे विद्योपदेश

पुरुषों के उस सर्वोत्कृष्ट ज्ञानकोश को प्राप्त कर लेते है, वे लोग अनृत अर्थात् असत्य बातों का परित्याग करके फिर वे जहां से उस गुरुगृह में आए थे उसी अपने पितृगृह में चले जाते है।

ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिःषो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥७॥

भा०—सत्यज्ञान अर्थात् वेद का सेवन करने वाले क्रान्तदर्शी ज्ञानी लोग, ऋत अर्थात् सत्यज्ञान से अविद्या के कार्यों को विवेकपूर्वक त्याग करके, फिर इस लोक से बड़े मार्गों को प्रस्थान करते है। वे बाहुओं के बल से जलाई गई तथा पत्थरों मे रहने वाली संमुख मे स्थापित और अग्नि का परित्याग कर देते है, यह जानकर कि यह कुछ नहीं हे, यह रमण के योग्य नहीं है।

ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८॥

भा०—बड़े राष्ट्र का पालक राजा, वेदविद्या का पालक विद्वान् पुरुष जिस प्रदेश या पदार्थ को भी चाहता है उस प्रदेश को या उस पदार्थ को वह सत्यवचन और व्यवहाररूप डोरी से कसे, विना विलम्ब के कार्य करने वाले ज्ञानरूप धनुष से, उस २ अभिलषित पदार्थ को प्राप्त कर लेता है। वहां उसकी उत्तम इच्छाएं ही उत्तम बाण के समान हे। जिनसे वह अपने सब संकटों और दुष्ट भावों को उखाड़ फेंकता हे। वे कान मे स्थान प्राप्त करके अर्थात् वे दूसरे के कर्णगोचर होकर मनुष्यों को उत्तम उपदेश कहते हुए उनको सन्मार्ग दिखाने के लिये होते है।

स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥

भा०—जो बड़े राष्ट्र का पालक, बड़े वियाविज्ञान का पालक विद्वान् है वह उत्तम मार्ग से प्रजा को ले जाने वाला, उत्तम नीतिमान् हो। वह

विनीत, विनयशील हो। वह यज्ञ में पुरोहित के समान सबके सामने अध्यक्ष मार्गदर्शक हो। वह उत्तम स्तुतियुक्त, सुशिक्षित हो। वह युद्ध में भी कुशल हो। वह सबको स्पष्ट आज्ञा देने वाला, उत्तम वाणी से उपदेश देने वाला जब अपनी मनन शक्ति से ज्ञानयज्ञ करता है तब वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर निष्प्रयोजनों को सन्तप्त करने हारा होकर तपता है।

विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—सब सुखों की वृष्टि और वृद्धि करने वाले बड़े बल और ज्ञान के स्वामी के प्रदान किये उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान सब कार्यों को सिद्ध करने वाले होते हैं। सबके चाहने योग्य ज्ञान ऐश्वर्य के स्वामी प्रभु के ये सब दिये दान हैं, और उसका ऐश्वर्य भी व्यापक, सर्वोपरि सामर्थ्यवान् सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध है, जिससे दोनों प्रकार के विद्वान् जन नाना धनों का भोग करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥

भा०—हे परमेश्वर! जो तू बाद में उत्पन्न अनित्य कार्यजगत् में सब प्रकार से व्यापक सामर्थ्य वाला होकर सर्वत्र रमनेहारा अपने बल से इस महान् संसार को धारण कर रहा है, वह तू सबका प्रकाशक, सर्वव्यापक, ब्रह्माण्ड का पालक है। वह तू ही सब प्रकाशमान सूर्यादि को और उन समस्त बड़े २ लोकों को प्रत्यक्ष में विस्तृत करता है और प्रकट करता है।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम्।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२॥

भा०—हे उत्तम धन वाले तथा ऐश्वर्यवान् और बृहत् राज्य के पालक राजा और सभापति ! तुम दोनो का सब कुछ सत्य होना चाहिये। और तुम दोनो के कर्त्तव्य और नियम को सभी आप्त प्रजाएं कभी नष्ट नहीं करतीं। रथ मे लगे दोनों वेगवान् अश्व जिस प्रकार देशान्तर मे पहुँचाते है उसी प्रकार आप दोनो भी हमारे स्वीकार करने योग्य अन्न को प्राप्त करो।

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥

भा०—और शीघ्र वेग से जाने वाले, रथ को ढो ले जाने वाले घोड़ों के समान राज्यकार्य को धारण करने वाले उत्तम २ शासक भी जिसकी आज्ञा को विनय से श्रवण करते है, जो सभा मे उत्तम पद पर स्थित, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला होकर, उत्तम बुद्धि से नाना ऐश्वर्यों को धारण करता और प्राप्त करता है, जो बलवान् शत्रुओं को भी दबाने वाला होकर अपने वश हुई पृथ्वी के अनुसार ही ऋण या कर लेता है, वह निश्चय से बलवान् और ऐश्वर्यवान् होकर संग्राम मे भी बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान का या बड़े भारी सेनाबल का पालक होता है।

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥ १४ ॥

भा०—बड़ा काम करने की इच्छा करते हुए तथा बडे भारी धन, जन, राष्ट्र के स्वामी का क्रोध भी उसके अपने वश, अधिकार और विशेष जितेन्द्रियता के अनुसार ही सत्य अर्थात् उचित फलदायक हुआ करता है। जो पुरुष किरणों से सूर्य के समान अपनी वाणियों या आज्ञाओं को अन्यों के ऊपर चलाता है या जो भूमियों पर शासन करता है वह उन

अधीनों को ज्ञानप्रकाश और व्यवहारज्ञान, विजय के लिये विभक्त करता या प्रदान करता है। और उसकी रीति, गति या नीति या आज्ञा बड़ी भारी बहती नदी के समान बड़े अदम्य बल से स्वतन्त्र ही निकलती है।

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् १५

भा०—हे बड़े ऐश्वर्य के पालक! उत्तम नियमव्यवस्था के करने वाले हम दीर्घजीवन और बल के उत्पादक ऐश्वर्य के सब दिनों स्वामी हों। तू हम वीर पुरुषों को वीर पुरुषों के बीच में जोड़ कर रख। तू सबका स्वामी होकर वेदज्ञान के अनुसार मेरे आवेदन को प्राप्त कर।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥३॥

भा०—हे ज्ञान और ऐश्वर्य के पालक। तू उत्तम नियामक, व्यवस्थापक है। तू इस वेद का ज्ञान कर और पुत्र और शिष्य को सुखी कर, जिसकी विद्वान् जन रक्षा करते हैं वह समस्त जगत् सुखकारक होता है। उत्तम वीर्यवान् होकर यज्ञ और संग्रामादि में हम बहुत उत्तम उपदेश करें। इति तृतीयो वर्गः॥

[२५]

गृत्समद ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता॥ छन्दः—१, २ जगती। ३ निचृज्जगती। ४, ५ विराड् जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत्।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥१॥

भा०—वेद का ज्ञाता पुरुष जिस २ को अपना शिष्य बनाता है उस २ शिष्य द्वारा वह दूसरे शिष्य को प्राप्त करके शिष्य परम्परा से आगे बढ़ता है। उस समय वह अग्नि को जलाने वाले के समान ही होता है। जैसे मनुष्य न चमकते हुए काठ को प्रज्वलित करता है उसी

प्रकार ज्ञानी पुरुष भी अंग २ में विनयशील शिष्य को विद्या की दीप्ति से चमकाता हुआ, वेदज्ञान का संस्कार करके, याचनाशील शिष्य को उत्तम ब्रह्मज्ञान का दान करके स्वयं ही बढ़ता है। इस प्रकार वह पुत्र से पौत्र के समान शिष्य प्रशिष्य को विद्यावान् करके गुरुपरम्परा और वंशपरम्परा से आगे बढ़ता है।

वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥२॥

भा०—समृद्ध -राष्ट्र का पालक राजा जिस २ को अपना सहयोगी या नियुक्त भृत्य बना लेता है उसके पुत्र और पौत्र को भी बढ़ाता है। और हिंसाकारी शत्रु की भूमियों से अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, अथवा याचनाशील प्रजाजन के ऐश्वर्य की भूमियों से बढ़ाता है। और स्वयं सबका ज्ञान रखता है। स्वयं भी प्रसिद्ध होता है, स्वय भी बढ़ता है।

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रींरभि वष्ट्योजसा।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥ ३ ॥

भा०—धनैश्वर्य का पालक राजा, जिस २ को अपना साथी बना लेता है, आग की ज्वाला के समान उस अग्रणी नायक पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति फिर निवारण करने या टूटने योग्य नहीं होती। वह स्थिरता से नियुक्त कर दिया जाता है। नदी या समुद्र जिस प्रकार जल को अपने भीतर ले लेना चाहता है, और जिस प्रकार बलवान् साण्ड निर्वीर्य बधिया बैलों को वश दबाता है, उसी प्रकार वह उत्तम कार्य-कुशल पुरुष अपने पराक्रम से सत्य के हनन करने वाले, या शस्त्र से आघात करने वाले शत्रुजनों को भी मुकाबला करके अपने वश कर लेता है। (२) अथवा नकारोऽत्रैवार्थस्तदनुवादी। वेदविज्ञानी जिसको अपना शिष्य बनाता है उसका गार्हपत्य अग्नि के ज्वाला के समान ही गुरुशिष्य

का बन्धन भी स्थिर बनाये रखने के लिये ही होता है। वह कर्मनिष्ठ विद्वान् जलों को नदी के समान, निर्बलों को बली के समान, सत्यज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पुरुषों को सब प्रकार से चाहता है।

तस्मा॒ अर्ष॑न्ति दि॒व्या अ॑स॒श्चतः॒ स सत्व॑भिः प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति।
अनि॑भृष्टतविषिर्ह॒न्त्योज॑सा॒ यं यं युजं॑ कृणु॒ते ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥ ४ ॥

भा०—महान् राज्य का पालक राजा जिस २ को राज्यकार्य में नियुक्त करता है उसे कामनायोग्य अन्यों से अप्राप्त विभूतियां प्राप्त होती हैं। वह वीर पुरुषों और बलों सहित सबसे श्रेष्ठ होकर सबकी भूमियों में भ्रमण करता है, वह सेना से कभी च्युत नहीं होकर पराक्रम से शत्रु का नाश करता है। (२) इसी प्रकार आचार्य जिसको शिष्य बनाता है उसे अन्य मूर्खों से अप्राप्य वेदवाणियां प्राप्त होती हैं, वह वीर्यों से युक्त होकर वेदवाणियों से विचरता है। बल से कभी भ्रष्ट न होकर ओज से पापों का नाश करता है।

तस्मा॒ इद्विश्वे॑ धुनयन्त॒ सिन्ध॒वोऽच्छि॑द्रा॒ शर्म॑ दधिरे पु॒रूणि॑।
दे॒वानां॑ सु॒म्ने सु॒भगः॒ स ए॑धते॒ यं यं युजं॑ कृणु॒ते ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥ ५ ॥

भा०—महान् ऐश्वर्य और बल का पालक राजा जिस २ को अपना सहयोगी बना लेता और राज्यकार्य में नियुक्त करता है उसके लिये समस्त समुद्र, नदी, जल आदि चलते हैं। वे सब नदी आदि उसे बहुत से निर्दोष सुख प्रदान करते हैं। वह विद्वानों और विजयी पुरुषों के योग्य सुख में उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर बढ़ता है। इसी प्रकार गुरु का जिस पर अनुग्रह होता है उस पर प्राणगण सुख बरसाते हैं। वह दिव्य पुरुष इन्द्रियों के सुख में भी सौभाग्यवान् होकर सवित् आदि सिद्धियों में वृद्धि को प्राप्त होता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२६]

गृत्समद ऋषिः ॥ ब्रह्मणस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ जगती २, ४ निचृज्जगती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥

भा०—सरल, कार्यों के साधन करने में कुशल, कर्मण्य, उपदेष्टा पुरुष कार्य के नाशक विघ्नों को, अन्धकार को किरणों के समान, या वन को कुठार के समान दूर करे। देवतुल्य उत्तम गुणों का इच्छुक पुरुष उत्तम गुणों के विरोधियों का तिरस्कार करे। उत्तम रक्षक, संग्रामों में दुःख से विजय करने योग्य कठिन शत्रु का विनाश करे। और यज्ञशील, दानशील, और सत्संतगशील पुरुष अदानी असंगति के योग्य कुसङ्गी पुरुष के भोग्य ऐश्वर्य को विविध रूपों में विभक्त कर दे।

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥

भा०—हे वीर तथा विविध विद्याओं को कथन करने हारे विद्वन्! तू उत्तम सत्संग कर, विद्या आदि दान दे। मननशील पुरुष से उत्तम गुण और ज्ञान प्राप्त कर। विघ्न का नाश करने के लिये अपने चित्त को कल्याण विचार वाला बना। उत्तम अन्नादि उपादेय पदार्थ उत्पन्न कर। जिससे तू उत्तम ऐश्वर्यवान् हो। हम सब महान् यज्ञ के पालक प्रभु और आचार्य की रक्षा, को प्राप्त करें।

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

भा०—जो पुरुष श्रद्धा से युक्त मन वाला होकर, देने योग्य अन्न रत्नादि और ग्रहण करने योग्य ज्ञान ऐश्वर्यादि के हेतु, विद्या के अभिलाषी शिष्यों के पिता के तुल्य आचार्य की, और वेद के पालक प्रभु की, सब प्रकार से सेवा करता है वह ही जन से, वही प्रजा से, वही उत्तम जन्म जन्म से, वह पुत्रों और भृत्यादि और नायक पुरुषों से शक्ति को प्राप्त करता और नाना धनों को प्राप्त करता है।

यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४॥५॥

भा०—जो मनुष्य धन का स्वामी होकर, घृतों से युक्त अन्नों से उस प्रभु की सेवा करता है उसको वह ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु ले जाता है, उसको पाप से बचाता, महापातक तथा हिंसाओं से भी बचाता है। वह परमेश्वर बड़ा भारी कारीगर अद्भुत तथा आश्चर्यजनक है।
इति पञ्चमो वर्गः ॥

[२७]

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः ॥ आदित्यो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, १३, १४, १५, निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ८, १२, १७ त्रिष्टुप् । ११, १६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः । ९, १० स्वराट् पंक्तिः ॥
सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥

भा०—प्रकाशमान् सूर्य की किरणों के लिये जिस प्रकार 'जुहू' नाम चमस के द्वारा घृत चुआते हैं, अर्थात् जल वर्षाने वाली आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैं तेजोमय ज्ञान और बल वीर्य प्रदान करने वाली वेदवाणियों का, तेज से चमकने वाले तथा वीर्यरस को ग्रहण करने वाले उत्तम विद्यार्थियों के लिये, वाणी द्वारा कथन करता हूं। स्नेही मित्र, दुष्टों को बांधने वाला न्यायकारी, ऐश्वर्यवान् आप्तजन, इनमें से जो बहुत से गुणों में प्रसिद्ध, व्यवहार कुशल, क्रियावान् और शत्रुनाशक, इनमें से प्रत्येक हमारी शिक्षाप्रद वाणियों का श्रवण करें।

इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२॥

भा०—स्नेह करने वाला, न्यायकारी और श्रेष्ठ, ये सब उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले होकर, तथा सूर्य की किरणों के समान प्रकाशक और बारहों मासों के समान नाना सुखों का देने वाले होकर, शुद्ध पवित्र आचार वाले होकर वाणी से पवित्र होकर, वेद त्याज्य पाप कर्मों से रहित तथा अनिन्दित आचार वाले होकर, अन्यों की हिंसा न करने वाले होकर, मेरे इस स्तुतिवचन को प्रेमपूर्वक सुनें।

त आ॒दि॒त्यास॑ उ॒रवो॑ गभी॒रा अद॑ब्धासो॒ दिप्स॑न्तो भूर्य॒क्षाः।
अ॒न्तः प॑श्यन्ति वृ॒जि॒नोत सा॒धु सर्वं॒ राज॑भ्यः पर॒मा चि॒दन्ति॑ ॥३॥

भा०—जो पुरुष सूर्य की किरणों या स्वत. सूर्य के समान प्रकाशमान, प्रजाओं से जलों के समान करों को लेने वाले महान् सामर्थ्य वाले, गम्भीर स्वभाव वाले, अखण्ड शासन करने वाले शत्रुओं से न मारे जाने वाले, स्वयं दुष्टों को दण्ड देने वाले, बहुत से दूतादि रूप चक्षुओं वाले, या बहुत से अध्यक्षों के स्वामी होते हैं। वे पापों और साधु कर्मों को अपने भीतर ही देख लेते हैं, उन प्रकाशमान तेजस्वी पुरुषों के लिये दूर २ की वस्तुएं भी सब समीप के समान ही हो जाती हैं।

धा॒रय॑न्त आ॒दि॒त्यासो॒ जग॒त्स्था दे॒वा विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः। दी॒र्घाधि॑यो॒ रक्ष॑माणा असु॒र्य॑मृ॒तावा॑न॒श्चय॑माना ऋ॒णानि॑ ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य की किरणों के समान प्रजाओं से कर लेने वाले उनके हित के लिये करों को पुनः उन पर बरसा देने वाले, अत एव समस्त भुवन के रक्षक, जंगम और स्थावर सबका धारण पोषण करते हुए, दीर्घदर्शी, प्राणों के समान रमण करने योग्य उत्तम अन्न, जल तथा धन की रक्षा करते हुए, सत्य ज्ञान, सत्य आचरण, धन और जल अन्न आदि से सम्पन्न होकर, जलों को मेघों के समान ऐश्वर्यों और कर आदि का शनैः २ संग्रह करते हुए, अपने भीतर ही सब पाप और पुण्य का विवेक कर लेते हैं।

त्रि॒धामा॑दित्या॒ अव॑सो वा॒ अ॒स्य यद॑र्यमन्भ॒य आ चि॒न्मयो॒भु ।
यु॒ष्माकं॑ मित्रावरुणा॒ प्रणी॑तौ॒ परि॒ श्वभ्रे॑व दुरि॒तानि॑ वृज्याम् ॥५॥६

भा०—हे सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश करने वाले और राष्ट्र में कर आदि लेने वाले अध्यक्ष पुरुषो ! और हे श्रेष्ठ पुरुषों के मान करने और दुष्टों का नियमन करने वाले न्यायकारिन् ! आप लोगों के इस पालन और करादान का जो भी सुखकारी परिणाम हो उसे मैं भय या संकट के अवसर पर अवश्य प्राप्त करूं ! हे प्रजा को मरण से बचाने और दुष्टों के निवारण करने वाले अध्यक्षो ! तुम्हारे उत्तम न्याय-शासन में दुराचारों और दुःखदायी संकटों को गढ़ों के समान दूर से ही त्याग दूं। इति षष्ठो. वर्ग. ॥

सु॒गो हि वो॑ अर्यमन्मित्र॒ पन्था॑ अनृक्ष॒रो व॑रुण सा॒धुरस्ति॑ ।
तेना॑दित्या॒ अधि॑ वोचता॒ नो॒ यच्छ॑ता नो दुष्परि॒हन्तु॒ शर्म॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे न्यायकारिन् ! हे दुष्टों के वारण करने हारे ! हे उत्तम ज्ञानवान् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! और कर आदि लेने वाले राजगणो ! आप लोगों का मार्ग सुख से जाने योग्य, कण्टकरहित, उत्तम और कार्य साधने वाला है। उसी मार्ग से हमें अध्यक्ष रूप से आज्ञा दो। हमें कभी नाश न होने वाला सुख प्रदान करो ।

पिप॑र्तु नो॒ अदि॑ती॒ राज॑पु॒त्राति॒ द्वेषां॑स्यर्य॒मा सु॒गेभिः॑ ।
बृ॒हन्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ शर्मोप॑ स्याम पुरु॒वीरा॒ अरि॑ष्टाः ॥ ७ ॥

भा०—राजा के पुत्र के समान अपने अधीन रखने वाली राजसभा, न्यायसभा और जनसभा, अखण्ड शासन शक्ति वाली और न्यायकारी सुगम उपायों से हमें परस्पर के द्वेष के भावों और द्वेषकारी पुरुषों से पार करें। सखा के समान प्रजा के स्नेही, और रात्रि के समान सब दुःखों के वारण करने वाले शासक का सुखदायी शरण भी बहुत बड़ा और प्रजा का

वर्धक हो। हम भी बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त होकर रोगों और शत्रुओं से पीड़ित न होते हुए, सुखी रहें।

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥

भा०—आदित्यगण तीनों भूमियों को और तीनों आकाशों को सत्यबल के द्वारा धारण कर रहे हैं। अर्थात् अग्नि, वायु, और सूर्य भूमि अन्तरिक्ष और आकाश को धारण करते हैं। इन तीनों लोकों में इनके तीन ही प्रकार के मुख्य २ कार्य हैं। हे तेजस्वी पुरुषो ! उनके समान ही आप लोगों का भी ज्ञानव्यवहार और परस्पर के लेन देन के व्यवहार में सत्य के बल से ही महान् सामर्थ्य है। हे न्यायकारिन् ! हे दुष्टवारक ! हे सखे ! वह सामर्थ्य उत्तम रीति से बना रहे।

त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥

भा०—ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर चलने वाले मनुष्य के हित के लिये, हित और प्रिय वचन बोलने वाले, सूर्य के समान ज्ञान से प्रकाशमान, शुद्ध आचार-व्यवहार और अन्तःकरण वाले, अभिषेक जलों से पवित्र, स्वप्न अर्थात् निद्रा आदि में न फसे हुए सावधान, आंख न झपकने वाले अर्थात् दृष्टिदोष से रहित, शत्रु से न मारे जाने योग्य, बहुत प्रशंसनीय तथा बहुश्रुत विद्वान् पुरुष, दिव्य तथा प्रकाशमान ज्ञान, कामना और व्यवहार इन तीनों को धारण करते हैं।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥७॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ ! दुःखों और दुष्टों के वारक ! हे सुरा आदि मादक पदार्थों से रहित, व्यसनों से मुक्त ! जो दानशील, ज्ञानप्रकाशक सूर्यादि के समान उपकारी जन हैं, और जो सामान्य मनुष्य हैं उन

सबका तू राजा है। हे विद्वन् ! हमें विविध विद्याओं के दर्शन करने के लिये सौ बरस की आयु प्रदान कर। हम सुखपूर्वक धारण करने योग्य पूर्ण आयुएं प्राप्त करें, भोगें। इति सप्तमो वर्गः ॥

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११॥

भा०—अदिति अर्थात् अखण्ड ब्रह्म के उपासक ब्रह्मज्ञानी पुरुष, न दायें न दक्षिण दिशा में, न बायें न उत्तर दिशा में, न आगे न पूर्व दिशा में, न पीछे न पश्चिम दिशा में कभी विचिकित्सा या संदेह को प्राप्त होते हैं। वे कभी और कहीं भी भ्रम में नहीं पड़ते हैं, उनका ज्ञान सर्वगामी होता है। हे प्रजाओ और शिष्यों को बसाने वाले विद्वान् और बलवान् पुरुषो ! मैं परिपक्व ज्ञानवाला और धीर होकर दक्षिणादि दिशाओं में कभी संदेह में न पड़ूं प्रत्युत् आप लोगों से सन्मार्ग में ले जाया जाकर भयरहित परम ज्योति ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करूं और उसका परम आनन्द प्राप्त करूं।

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥

भा०—जो राजाओं और सत्यमार्ग में ले जाने वाले उत्तम नायकों को ज्ञानोपदेश प्रदान करता है, जिसको सदा स्थिर रहने वाली ज्ञान-शक्तियां और समृद्धियां भी बढ़ाती हैं, वह ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों का देने वाला, ज्ञानों, यज्ञों और संग्रामों में प्रशंसित, धनसम्पन्न होकर रथ से रथी के समान अपने रमणीय कार्य से सबसे प्रथम आगे बढ़ता है।

शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥

भा०—जो पवित्र आचारवान् व्यक्ति कभी हिंसित और हिंसक न होकर, उत्तम अन्नोत्पादक जलों का सेवन करता है, वह दीर्घजीवी और

उत्तम वीर्यवान् होता है । जो तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के उत्तम शासन में रहता है उसको शत्रुगण और विपत्तिया न समीप से और न दूर से ही नष्ट कर सकती हैं ।

अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४॥

भा०—हे शासन करने वाली विदुषि ! हे मरण से रक्षा करने वाले सुहृत् ! हे श्रेष्ठपुरुष ! हम जब भी कोई आप लोगों के प्रति अपराध करें तो भी हमें सुखी करो । मैं बहुत बडा भयरहित प्रकाश प्राप्त करू । हमें लम्बी चौड़ी अन्धकारमय दशाएं प्राप्त होकर हमारा नाश न करें । हम तामसी दशाओं में न पड़े रहें ।

उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥

भा०—इस राजा के लिये शासकवर्ग और शास्यवर्ग दोनों अच्छी तरह एक दूसरे को प्राप्त होकर बढ़ाते हैं । उत्तम ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार आकाश से वृष्टि प्रदान करके सब अन्न को पुष्ट करता है इसी प्रकार राजा भी उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर ज्ञानवान् पुरुषों से उत्तम सुखवृष्टि प्रदान करता और प्रजा को पुष्ट करता है । वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का संग्रामों में विजय करता हुआ प्रयाण करता है । और राजावर्ग प्रजावर्ग समृद्ध होकर इसके लिये उत्तम कर्म साधने वाले होते हैं ।

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥ १६ ॥

भा०—हे तेजस्वी ज्ञानवानो ! हे पूजनीय सत्संग योग्य पुरुषो ! आप लोगों की जो अतुल् बुद्धियां और बुद्धियों द्वारा किये गये कार्य हैं, जो द्रोह बुद्धि वाले शत्रु के लिये गठे हुए पाशों के समान हैं, मैं उनको

दुःख से अश्व के स्वामी के समान पार कर जाऊं। हम लोग कुशलतापूर्वक बड़े सुखमय गृह में सदा रहें।

माह मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादवं स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥८॥

भा०—हे राजन्! हे श्रेष्ठ पुरुष! मैं सर्वप्रिय, उत्तम ऐश्वर्यवान् तथा बहुत दान देने वाले, बन्धु के समान सदा प्राप्त होने वाले पुरुष की सुख समृद्धि को कभी स्पर्धा से न लूं। हे राजन्! उत्तम नियन्त्रण से युक्त ऐश्वर्य से मैं वञ्चित न रहूँ। हम उत्तम वीर पुरुषों से युक्त होकर तेरे शासन के बहुत २ गुण कहें। इत्यष्टमो वर्गः॥

[२८]

कूर्मो गार्त्समदो वा ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१, ३, ६, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ७, ११ त्रिष्टुप्। ८ विराट् त्रिष्टुप। ९ भुरिक् त्रिष्टुप। २, १० भुरिक् पङ्क्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः॥१॥

भा०—यह समस्त जगत् क्रान्तदर्शी, सूर्य के समान तेजस्वी, स्वयं प्रकाशित होने वाले परमेश्वर से ही प्रकट होता है। इसी प्रकार विद्वान् से सब ज्ञान प्रकट होता है। वह अपने महान् सामर्थ्य से समस्त सत् पदार्थों को प्राप्त होता है।

तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून्॥ २॥

भा०—किरणों वाली प्रभात वेलाओं के आने पर जिस प्रकार अग्नियां जीर्ण या अल्पप्रकाश हो जाती हैं, उसी प्रकार हम लोग दिनोदिन ऐश्वर्यों से युक्त वृद्धावस्था की आयु विवेक प्रज्ञाओं के उषाकालों के समान प्राप्त होने पर व्यतीत करें। हे परमेश्वर! हम उत्तम बुद्धि से

युक्त होकर तेरी स्तुति करते हुए तेरे उपदेश किये धर्मकार्य में रहकर उमत्त ऐश्वर्यवान् हों।,

तव॑ स्याम पुरु॒वीर॑स्य॒ शर्म॑न्नुरु॒शंस॑स्य वरुण प्रणेतः।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः॥ ३॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ राजन्! हे उत्तम नायक! हम लोग बहुत से वीर पुरुषों के स्वामी तथा बहुतों से प्रशंसित जो तू है उसकी शरण में रहें। हे विजयेच्छुक पुरुषो! आप सब लोग हमारे बीच कभी पीड़ित न होकर, अखण्ड परमेश्वर या राजा के या राष्ट्रभूमि के पुत्र के समान होकर, परस्पर के सहायक होने के लिये सब प्रकार से समर्थ, सहनशील हो।

प्र सी॑मादि॒त्यो अ॑सृजद्विध॒र्ता ऋ॒तं सिन्ध॑वो॒ वरु॑णस्य यन्ति।
न श्रा॑म्यन्ति॒ न वि मु॑चन्त्ये॒ते वयो॒ न प॑प्तू रघु॒या परि॑ज्मन्॥४॥

भा०—जिस प्रकार विविध रश्मियों से जल को धारण करने वाला सूर्य जल को वृष्टिरूप में उत्पन्न करता है, उत्तम रूप से अन्न को उत्पन्न करता है, और मेघ की जलधाराएं बहती हैं और समुद्र को जाने वाली जल की नदियां बहती हैं, वे कभी न थकती हैं न चलने से रुकती हैं, इसी प्रकार समस्त संसार को अपने भीतर ले लेने वाला परमेश्वर 'ऋत' अर्थात् इस गतिशील, व्यक्त संसार को बहुत ही खूबी से बनाता है, वह स्वयं इसको विशेष रूप से और विविध उपायों से धारण कर रहा है। सर्वश्रेष्ठ उस प्रभु के शासन में ये जलधाराओं के समान बन्धन में बंधे जीवगण अन्न और जीवन प्राप्त करते हैं। ये जन्म तथा मरण से कभी नहीं थकते। कभी पूर्ण मुक्त नहीं होते अर्थात् मुक्ति का सुखभोग कर फिर जन्म धारण करते हैं। वे वेग से जाने वाले पक्षियों के समान इस भूलोक पर ऊपर नीचे विचरते रहते हैं।

वि मच्छ्र॑थाय रश॒नामि॒वाग॑ ऋ॒ध्याम॑ ते वरुण॒ खामृ॒तस्य॑।
मा तन्तु॑श्छेदि॒ वय॑तो॒ धियं॑ मे॒ मा मात्रा॑ शार्य॒पसः॑ पु॒र ऋ॒तोः॥५॥

भा०—हे श्रेष्ठ प्रभो ! बंधी रस्सी के समान पाप और अपराध को आप मुझसे विशेषरूप से ढीला कर दो। मेघ के जल से जिस प्रकार नदी या खुदे हुए तालाब को खूब भर देते हैं उसी प्रकार हम तेरे धनैश्वर्य और सत्यन्याय के कारण खूब समृद्ध और सम्पन्न हो। बुनने वाले जिस प्रकार तागा न टूटना चाहिये उसी प्रकार प्रजातन्तु और यज्ञतन्तु के कर्म को विस्तारते हुए यज्ञतन्तु और प्रजातन्तु न टूटें। ऋतु के पूर्व जिस प्रकार अन्न की मात्रा न समाप्त होनी चाहिये उसी प्रकार ठीक प्रयाण काल या मृत्युगति के पूर्व मेरे कार्यों की मात्रा, अर्थात् कर्मों द्वारा बना शरीर नष्ट न हो। इति नवमो वर्गः ॥

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो! मुझसे आप भय दूर करें। हे सत्य व्यवहार के स्वामिन्! तू अच्छी प्रकार प्रकाशमान है। तू मुझ पर अनुग्रह कर। बछड़े से रस्सी को जिस प्रकार खोलकर पृथक् कर दिया जाता है उसी प्रकार हे प्रभो! तू मुझसे पापबन्धन को छुड़ा दे। तेरे समीप या दूर तुझसे भिन्न कोई आख के झपक के काल के लिये भी ईश्वर या संसार का चलाने हारा नहीं है।

मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो! हे वायु के समान प्राणों के देने वाले! ये जो तेरे पाप करने वाले का नाश कर देते हैं, तेरी संगत मैत्री और उपासना में रहते हुए हमें उन शस्त्रों से मत पीडित होने दे। हम लोग प्रकाश से दूर के स्थानों को न जावें। और हमारे जीवन की वृद्धि के लिये हिंसाकारियों का विनाश कर।

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ ! हे बहुतों मे प्रसिद्ध ! बहुत से गुणों, बलों में प्रसिद्ध प्रभो ! तेरे लिये हम पहले भी नमस्कार और सत्कारादि वचन कहते रहे हैं, और निश्चय से बाद में भी तेरे लिये नमस्कार आदि सत्कार-योग्य वचन कहेंगे। पर्वत के समान अचल तुझमे ही सर्वश्रेष्ठ कर्म दृढ़ता से स्थिर हैं।

परं ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम्।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९॥

भा०—हे राजन् ! जिन ऋणों को मैंने किया या जो मुझ पर अन्यों द्वारा किये हुए प्रमाणित किये गये हों उनको मुझसे दूर कर, उनको उतरवाने की व्यवस्था कर। मै प्रजाजन दूसरे के किये से, दूसरे की कमाई से भोग न करूं। क्योंकि हमारी बहुत सी प्रभात वेलाएं ऋण की चिन्ता से ऐसी होती है जैसी मानो प्रभात वेलाएं हुई ही न हों। हे सर्वश्रेष्ठ ! उन दुःख चिन्ताओं की घडियों मे हम जीवों को शिक्षित कर। प्रजा मे राजा ऐसी व्यवस्था करे कि कोई किसी का ऋणी न हो। सब अपने परिश्रम का भोग प्राप्त करें। ऋण की चिन्ता मे दिनों का सुख नष्ट न करें। राजा ऋणापहारियों को दण्डित करके शिक्षा दे।

यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०

भा०—हे राजन् ! जो मेरा सहयोगी या मित्र होकर मुझ भीरु पुरुष को सोते समय मे भय बतलावे, या जो चोर या डाकू हम प्रजाजन को मारता, पीड़ित करता है, हे दुष्टनिवारक राजन् ! तू उस भयकारी साथी, मित्र, चोर या डाकू से हमे बचा।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ११॥१०॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २७। मं० १७॥ इति दशमो वर्गः॥

[२९]

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः १, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ६, ७ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः॥१॥

भा०—हे नियम व्यवस्थाओं के स्थिर करने और प्रजा के रक्षक शिक्षण आदि के व्रतों को धारण करने हारे तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! आप लोग प्रबल इच्छा, ज्ञान और कर्म वाले होकर, एकान्त में सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री के समान पाप आदि अपराध को मुझ प्रजाजन से दूर करो। हे सर्वश्रेष्ठ राजन्! हे मित्रवद् गुरो! हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों के सुनते हुए मैं ज्ञानवान् पुरुष, प्रजा के सुख और कल्याण की रक्षा करने के लिये आप से प्रार्थना करता हूँ।

यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च॥२॥

भा०—हे तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! आप लोग राष्ट्र में उत्तम ज्ञान स्वरूप और आप लोग ही ओज, बल, पराक्रमस्वरूप हो। आप लोग परस्पर के द्वेष और अप्रीति के कारणों को सदा दूर करते रहो। आप लोग मुकाबले पर दुष्टों को पीस डालने में समर्थ होकर सब कुछ कर सकते हो। आप ही लोग हमें वर्त्तमान में और भविष्य में भी सुखी करो।

किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात॥ ३॥

भा०—हे सबको बसाने और राष्ट्र में बसने वाले प्रजा जनो! हे

वसु नाम के विद्वान् ब्रह्मचारी जनो ! कहो, आप लोगों की क्या प्रिय सेवा हम लोग करें ? प्राप्त होने योग्य या बन्धुजनों के योग्य तथा विभागयोग्य धनादि पदार्थ से भी आप लोगों का क्या आदर सत्कार करें। हे स्नेही पुरुष ! हे सर्वश्रेष्ठ ! हे अखण्ड शासन के कर्त्तः ! ऐश्वर्यवन् सेनापते ! आप लोग हमें सुख समृद्धि धारण कराओ।

ह्ये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम्। मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥

भा०—हे दिव्य पुरुषो ! आप लोग ही विद्या आदि गुणों में व्यापक और धन आदि प्राप्त कराने हारे होकर रहो। मुझ ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाले राष्ट्रजन को सुखी करो। आप लोगों का रमण योग्य साधन बीच ही में रह जाने वाला न हो, प्रत्युत सत्य व्यवहार में सिद्धि तक पहुँचावे। और आप लोगों जैसे बन्धुजनों में हम लोग कभी थके मांदे दुःखित और पीडित न हों।

प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास। आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों में से एक उत्तम शासक ही बहुत से अपराधों को अच्छी प्रकार विनष्ट करने में समर्थ हो, जो वह पिता के समान द्यूत के व्यसनी अर्थात् अनायास दूसरे के धन को छल-पूर्वक हरने वाले पर शासन करे, पाश-बन्धन दूर रहें और पाप भी हमसे दूर रहें। पुत्र आदि के रहते मुझ पिता को, पक्षी को व्याध के समान, निर्दयतापूर्वक मत पकड़ो। ऋणादि रहने पर भी पुत्र ऋण चुका सकता है। अतः मुझे दण्ड न देकर पुत्रादि से ऋण लेने की व्यवस्था करो।

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्। त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥ ६ ॥

भा०—आज आप लोग हमारे प्रति आदरणीय और अभय आदि देने और सत्संग करने वाले होवो। आप लोगों के हृदय के प्रेम या अभिप्राय को मैं जानूं। क्योंकि सम्भव है कि भयभीत होकर मैं नष्ट हो जाऊं। हे विद्वान् पुरुषो! अतिहिंसक भेड़िये के स्वभाव वाले, चोर डाकू पुरुष के लिये छेदन हिंसन आदि कार्य से हमें बचाओ। हे दानशीलो! आप लोग हमारी आपत्तिकाल से भी रक्षा करो।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥११॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २७। १७॥ इत्येकादशो वर्गः॥

[३०]

गृत्समद ऋषि ॥ १—५, ७, ८, १० इन्द्रः। ६ इन्द्रासोमौ। ९ बृहस्पतिः। ११ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ३ भुरिक् पंक्तिः। २, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ६, ७, ९ त्रिष्टुप्। १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम्॥ १ ॥

भा०—जलों के उत्पादक तथा मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले, सूर्य के लिये ये जलधाराएं नहीं करते। दिनोदिन इन जलों का सबसे प्रथम प्रकट हुआ मेघ जल कितने देश में आ जाता है यह विचारना चाहिये अर्थात् मेघ आदि का स्थान बहुत स्वल्प है, उत्पादक सूर्य बहुत दूर है, सूर्य के स्वार्थ के लिये ये मेघादि नहीं उत्पन्न होते प्रत्युत प्राणियों के उपकार के ही लिये होते हैं। उसी प्रकार सत्यज्ञान वेद और सत्य आदि के प्रकट करने वाले, सर्वोत्पादक, प्रकृति के व्यापक स्वरूप में परमाणु २ में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले परमेश्वर के स्वार्थ के लिये ये समस्त प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु सृष्टिरूप होकर क्रीड़ा नहीं कर

रहे हैं। इन प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का प्रथम सर्ग अर्थात् प्रथम विकार जो प्रतिदिन विकृत होता चला जा रहा है भला कितने थोड़े स्थान में परिमित है।

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥

भा०—जो तेजस्वी राजा इस राष्ट्र में उत्तम राष्ट्रप्रबन्ध और अन्नादि ऐश्वर्य को पुष्ट करता है यह भूमि और भूमिवासिनी प्रजा उस राजा को दो कार्यों के लिये कहती है। एक विघ्नकारी बढ़ते हुए शत्रु के हनन के लिये, दूसरे विद्वान् पुरुषों की वृद्धि के लिये। उसके पश्चात् राष्ट्र में भी दो ही कार्य प्रारम्भ होते हैं। उस राजा की प्रीति या मनोकामना के अनुकूल दिन-प्रतिदिन मार्गों को काटती हुई नदियों के समान मार्ग लांघती हुईं तथा शत्रु को कंपाती हुई सेनाएं यातव्य शत्रु पर जा चढ़ती हैं।

ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३॥

भा०—सूर्य तीक्ष्ण प्रहार के समान तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त होकर आकाश में ऊपर ठहरता है और मेघ के लिये हननकारी विद्युत् को प्राप्त करता है। मेघ को आच्छादित करता हुआ जल को द्रवित कर देता है। उसी प्रकार शत्रुहन्ता राजा तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से बलवान् होकर, अन्तरिक्ष अर्थात् दोनों सेनाओं के बीच में या ऊंचे आकाश में सबसे ऊंचे पद या स्थान पर स्थित हो। और बढ़ते शत्रु के विनाश के लिये आघातकारी प्रहार करे। शस्त्रवृष्टि करने वाले सैन्य पर अधिकार करता हुआ शत्रु को भगा दे। इस प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा शत्रु पर विजय करे।

बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य जल देने वाले मेघ के विशेष जलमय तथा छिन्न भिन्न द्वारों को, तापकारी व्यापक विद्युत् से आघात करता है, उसी प्रकार हे बड़े सैन्य के स्वामिन्! बलवान् तथा शस्त्रास्त्र बल के मुख्य व्यूह-द्वारों पर स्थित वीर पुरुषों को बिजली के समान तापकारी अस्त्र से ताड़ित कर। पूर्व विजेताओं के समान ही शत्रु को धर्षण करने वाले अस्त्र-शस्त्र बल से ठीक २ प्रकार शत्रु सैन्य का हनन कर। हे शत्रुहन्तः! तू इस प्रकार हमारे शत्रु का अवश्य विनाश किया कर।

अवं क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ५।१२

भा०—हे राजन्! आकाश से बिजली के समान ऊंचे से शस्त्रास्त्र नीचे की ओर फेंक। जिससे तू उत्तम स्तुतियुक्त होकर शत्रु को विनष्ट कर सके। बच्चों और सन्तानों को बहुत सा ऐश्वर्य देने के लिये हमको गौ आदि पशु और उत्तम भूमियों से समृद्ध कर। इति द्वादशो वर्गः॥

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥६॥

भा०—हे इन्द्र अर्थात् सेनापति या राजन्! हे सोम अर्थात् ऐश्वर्यवन् वैश्यवर्ग! आप लोग जिस काम को चाहते हो उसको और उस ज्ञानयुक्त बुद्धिकौशल को प्राप्त करने के लिये उद्यम करो। आप दोनों मिलकर आराधना या साधना करने वाले दानशील पुरुष को चोदना अर्थात् वेदशास्त्र के अनुसार चलाने हारे होकर रहो। तुम दोनों हम सामान्य प्रजाओं की रक्षा करो और इस भय के स्थान में प्रकाश, आलोक, करो।

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम्।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥

भा०—हे मनुष्यो! जो मेरे शरीर को पुष्ट करे, जो मुझे बल ओज,

कान्ति और सुख प्रदान करे, जो मुझे दान दे, विशेष रूप से जागृत रखे, जो ओषधिरस निकालते हुए मुझको उत्तम इन्द्रियों से युक्त करता हुआ प्राप्त हो अर्थात् जिसे बनाते २ आंख, नाक, मुख आदि की शक्ति बढ़े, ऐसी ओषधि आदि पदार्थों का रस प्राप्त कर सेवन करो और जो ओषधि मुझे आकर्षित न करे, मुझमें उसके प्रति अभिलाषा को न जगावे, जो ओषधि मुझमें तप, सहनशक्ति, वीर्य उत्पन्न न करे और जो सुख उत्पन्न न करे, और जिसके बनाने में निषेध कह देवें ऐसी ओषधियों को मत तैयार करो ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् या वायु वर्षणशील मेघ पर आघात करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा सेना से आक्रमण करने वाले, शान्ति को भंग करने वाली सेनाओं के बीच में बलवान्, उत्साहवान् उस शत्रु को भी मारे। उसी प्रकार हे विदुषि स्त्री ! तू हमारे बीच में आ, प्रवेश कर और प्राण के बल से बलवती वाणी और वायु के वेग से बलवती विद्युत् के समान शत्रुओं का धर्षण करती हुई शत्रुओं का विजय कर।

यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥

भा०—हे बड़े राज्य के पालक ! हमारे बीच में जो छुपा हुआ और जो हिंसा करने वाला आततायी हो उसको सब में दण्डनीय रूप से अपराधी घोषित करके तीक्ष्ण शस्त्र से बेध, दण्डित कर। हे राजन् ! तू हथियारों से शत्रुओं का विजय कर। हे राजन् ! तू द्रोह के कारण भी प्रजा में एक दूसरे के मारने वाले को भी पकड़ और कैद में रख।

अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

भा०—हे शूरवीर सेनापते ! हमारे शूरवीर पुरुषो से मिलकर जो २ बल पराक्रम के कार्य करने योग्य हो उनको कर । शत्रु सदा तुझसे कांपते रहें, उनको मारकर उनके धन हमें प्रदान कर ।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥१३॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! मैं सुख का इच्छुक प्रजाजन तुम्हारे वीर-पुरुषो के सैन्यबल को और विजयेच्छुक पुरुषो मे श्रेष्ठ जनो को अन्न आदि सत्कार द्वारा उपदेश करता हूं । जिससे हम लोग समस्त वीर पुरुषों सहित तथा उत्तम पुत्र, पौत्रादि सन्तानो से युक्त, श्रवणयोग्य ऐश्वर्य को दिनादिन प्राप्त करें । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३१]

गृत्समद ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ जगती । ३ विराट् जगती । ५ निचृज्जगती । ६ त्रिष्टुप । ७ पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१॥

भा०—हे मित्र ! और हे वरुण ! सदा साथ रहने वाले आप दोनो आदित्य के समान तेजस्वी ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचारियों, दुष्टो को रुलाने वाले ३६ वर्ष के ब्रह्मचारियों, और २४ वर्ष के ब्रह्मचारियो सहित, हमारे रमणसाधन यानो की रक्षा कीजिये । जिससे अन्न और यश के इच्छुक, हर्ष के अभिलाषी और जलो या वनो मे विहार करने वाले प्रजागण पक्षियो के समान गृहों के भी ऊपर वेग से उड़ा करें ।

अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् । यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग प्रीतियुक्त होकर हमारे वेगवान् रथ को प्रजाओं के बीच ऊपर २ चलाया करो । और जो आप शीघ्रगामी हो तो आप लोग जाने योग्य गतियों से लोकों को पार करते हुए पृथिवी के उच्च प्रदेश में भी हाथों से यन्त्रों को सञ्चालित किया करें ।

उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥

भा०—वह हमारा राजा ज्ञानप्रकाश से सबका देखने वाला, मनुष्यों के बल से सब उत्तम काम करने में समर्थ होता है । वह चोर आदि से रहित रक्षादि साधनों से बड़े दान, भृति, वृत्ति आदि देने और ऐश्वर्य के स्वयं प्राप्त करने के लिये, रथ पर सवार होता है ।

उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् । इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥

भा०—और वह सर्वप्रकाशक सुखदाता परमेश्वर उत्पन्न हुए इस संसार का रचने वाला, शिल्पी के समान इसको बनाने वाला, स्तुति योग्य, अन्न के समान चाहने और शक्ति उत्पन्न करने वाला, वाणी के समान सब अर्थों का प्रकाशक, भूमि के समान सर्वाधार ऐश्वर्यवान्, सबके सेवने योग्य, बड़ी भारी कामना अर्थात् संसार रचने के प्रबल सङ्कल्प से युक्त, सूर्य और पृथिवी, माता और पिता, गुरु और जनक के समान समस्त लोकों का धारक पालक और ज्ञानदाता, अन्न और पृथिवी के समान पुष्टि करने वाला, गुरु की स्त्री के समान और पुर के स्वामी राजा के समान ब्रह्माण्ड को व्यवस्थित रखने वाला और गृहस्थ धर्म को निभाने वाले एक दूसरे के पालक पतिपत्नी के समान जीव संसार के प्रति अति प्रेममय, और सूर्य-चन्द्र के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला, समान रूप से सब पर प्रेमयुक्त होकर, गमनशील प्रजाओं में रथ के

समान इस रमण करने योग्य देह और वेग से चलने वाले समस्त संसार को गति देने वाली महा शक्तियों से चल रहा है।

उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों दिन और रात्रि के समान उत्तम कल्याण और ऐश्वर्य सुख से युक्त, एक दूसरे को स्नेह से देखने वाले और एक दूसरे के गुणों को दर्शाने वाले, परमेश्वर की कामना करने वाले, जंगम प्राणियों और स्थावर ओषधि वनस्पति और पाषाण आदि को उत्तम रूप से कार्य व्यवहारों में लाने वाले होकर रहो। हे पृथ्वी के समान एक दूसरे का आश्रय होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो ! मैं जो आप दोनों को नित्य नूतन वचन द्वारा उपदेश करूं और मानस कायिक वाचिक तीनों प्रकार के बलों और बाल यौवन वार्धक्य तीनों अवस्थाओं और ऋग्, यजु, साम, तथा मन्त्र, कर्म, और उपासना इन तीनों ज्ञानों से सम्पन्न तुम दोनों को आयु को मैं सुरक्षित और परिवर्धित करता हूं।

उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग, हमारी शुभकामना करने वाले प्रेमी सज्जनों के समान, आप लोगों के उपदेश की सदा कामना किया करें। वह परमेश्वर मेघ के समान फैला हुआ, आकाश के समान अति सूक्ष्म या सब संसार के आश्रय में स्थित होकर सबको नियम में बांधने वाला, आनन्दमय एकमात्र स्वरूप से विद्यमान, तीनों लोकों में व्यापक, महान् लोकों में भी व्यापक तथा सबका उत्पादक है, वही समस्त प्राणों और प्राण वालों का पालक अन्न प्रदान करता, वही शीघ्र

गति से चलने वाले सूर्य विद्युत् आदि लोकों और पदार्थों का प्रेरक होकर बुद्धिपूर्वक समस्त कार्यों को धारता है।

एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम्।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥७।१४॥

भा०—जिस प्रकार परस्पर मिलकर काम करने वाले शिल्पी लोग, स्तुतियोग्य स्वामी के लिये उत्तम कोटि के प्रयत्नसाध्य पदार्थ बनाते हैं और वे उससे धन अन्न और यश की इच्छा करते और ऐश्वर्य या जल अधिकार की कामना करते हैं, इसी प्रकार यज्ञ, उपासना और दान करने वाले ज्ञानी लोग, अतिस्तुत्य परमेश्वर के लिये उत्तम रूप से हृदय से उठे भावपूर्ण स्तुति वचनों को प्रकट करते हैं। वे ज्ञान की और अन्न की कामना करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो! मैं आप लोगों के इन उत्तम वचनों को नित्य चाहता और स्वीकार करता हूँ। रथ में लगा अश्व जिस प्रकार बड़े वेग को प्राप्त करके मार्ग व्यापता है, उसी प्रकार निश्चय से तुम जीवगण रमण योग्य देह से विद्यमान देह से देहान्तर में जाने वाले होकर नाना ऐश्वर्य और अन्नादि कर्म फल को भोगा करो।

[३२]

गृत्समद ऋषि. ॥ १, द्यावापृथिव्यौ। २, ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा। ४, ५ राका। ६, ७ सिनीवाली। ८ लिङ्गोक्ता देवता ॥ छन्दः—१ जगती। ३ निचृज्जगती। ४, ५ विराड् जगती। २ त्रिष्टुप्। ६ अनुष्टुप्। ७ विराडनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप् ॥

अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥

भा०—आकाश और पृथिवी जिस प्रकार जल प्रदान करती, उत्पन्न हुए संसार की रक्षा करती हुए नाना पदार्थ करते हैं, जिनसे बहुत अधिक जीवन प्राप्त होता है, वे स्तुति योग्य हैं। ऐश्वर्य का इच्छुक पुरुष

उनने सुख प्राप्त करता है। उसी प्रकार हे सूर्य और भूमि के समान माता पिताओ! आप दोनों सत्यधर्मानुकूल सुख की कामना करने वाले इस गुप्त पुत्र के लिये मेरा वचन ग्रहण करते हो। आप दोनों मेरी रक्षा करने हारे होवो। जिस आप दोनों की बड़ी आयु है वे आप दोनों मेरे समक्ष प्रशंसा करने और आदर करने योग्य हैं। आप दोनों के अधीन आप के वसु, धनैश्वर्य आदि का इच्छुक और स्वामी मैं पुत्र इस आदर को धारण करूं।

मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः। मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर! हे राजन्! हे विद्वन्! मनुष्य के छुपे पाप हम किसी दिन भी पीडित न करें। तू इन दुःखदायी विपत्तियों द्वारा हमें पीडित न कर। हमारे परस्पर के मैत्रीभावों को मत टूटने दे, प्रजा में फूट मत पैदा कर। प्रत्युत् हमारे उस मैत्रीभाव को तू भी जान और प्राप्त कर। सुख की इच्छा वाले चित्त से तुझसे हम याचना प्रार्थना करते हैं।

अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्। पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३॥

भा०—हे विद्वन्! हे प्रभो! तू क्रोध और अनादर के भाव से रहित मन से, ज्ञान कराने वाली उत्तम क्रियाओं से और उत्तम वचन से, प्रत्येक अवयव, वर्ण २, और पद २ पृथक् २ रूप से प्रकट करने वाली, स्वयं परिपुष्ट, गौ के समान रस पिलाने वाली, ज्ञान, बल और चारों पुरुषार्थों को पूर्ण करने वाली, श्रवण योग्य वेदवाणी को शीघ्र ही स्वयं धारण कर और अन्यों को धारण करा। हे बहुतों से प्रशंसित विद्वन्! तुझ ज्ञानवान् को मैं सब दिन प्रेरित करता, दान आदि से बढ़ाता और प्रेम से प्राप्त होता हूँ।

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४॥

भा०—मैं उत्तम नाम वाली, तथा पूर्णिमा के चन्द्रमा से युक्त रात्रि के समान मनोरम स्त्री की उत्तम स्तुति द्वारा प्रशंसा करूं और उसे अपने समीप आदर से बुलाऊं। वह हमारे वचन सुने। वह उत्तम भाग्यवती होकर स्वयं हमारे वचनों को समझे, हमारा अभिप्राय जाने। न टूटने वाली सुई से जिस प्रकार वस्त्र सिये जाते हैं उसी प्रकार वह अपनी अखण्डित बुद्धि से गृहस्थ के कर्मों को सम्पादित करती रहे अर्थात् वह उत्तम २ कर्मों का तांता लगाये रखे। और वही प्रशंसा योग्य, बहुत ऐश्वर्य देने वाले और बहुत से धनों के स्वामी वीर्यवान् पुत्र को उत्पन्न करे।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥

भा०—हे चांदनी के समान मनोरमे! जो उत्तम तेरे उत्तम शिल्प-कार्य और शुभ संकल्पमय मतियां हैं, जिनसे तू सर्वस्व देने वाले पति के लिये बसने योग्य नाना द्रव्य और अन्नादि सुख-सामग्री प्रदान करती है, उनसे हमें सदा ही उत्तम चित्त वाली होकर प्राप्त हो। हे सुभगे! उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यमयी! तू असंख्य समृद्धियों को देती और उनमें रमती और रमाती हुई हमें प्राप्त हो।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रेम-बन्धन से वरण करने वाली, पति द्वारा वरण करने योग्य! हे बहुत सुन्दर केशपाश वाली! जो तू विद्वान् पुरुषों के बीच में से स्वयं अपनी इच्छानुसार एक को प्राप्त होने वाली है, तू ग्रहण करने

योग्य तथा आदर सम्मान से दिये गये द्रव्य को प्रेम से स्वीकार कर। हे उत्तम स्त्री! हमें उत्तम सन्तान प्रदान कर।

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥

भा०—जो स्त्री उत्तम बाहुओं वाली, उत्तम अगुलियों वाली, सुखपूर्वक सन्तान उत्पन्न करने वाली, बहुत से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो, उस प्रजाओं की पालक तथा अन्नादि के बन्धन से वरण करने वाली स्त्री को खान-पान की सामग्री प्रदान करो।

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—जो प्रेमवश अव्यक्त अस्फुट शब्द कहने वाली, अतिलज्जाशील, जो अति प्रेम वाली, जो सुख देने वाली, चांदनी रात्रि के समान मनोहर और जो उत्तम ज्ञानवाली हो ऐसी ऐश्वर्य वाली और समस्त दुःख वारने वाली स्त्री को आत्मसुख, तृप्ति और कल्याण सुख प्राप्त करने के लिए अपने समीप बुलाओ। ऐसी स्त्री को स्वीकार करूं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[३३]

गृत्समद ऋषिः ॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६, १३, १४, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ९, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ८ त्रिष्टुप्। २, ७ पंक्तिः। १२. भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने वाले! हे वीर पुरुषों, वैश्यों तथा उत्तम मनुष्यों के पालन करनेवाले सेनानायक! राजन्! आचार्य! सूर्य के समान तथा अच्छी प्रकार तत्व को देखने और अन्यों को दिखाने वाले तुझसे

उत्तम मनन योग्य सुख, ज्ञान आदि हमें प्राप्त हो। तू हमसे कभी न पृथक् हो। हमारे राष्ट्र का वीर पुरुष अश्व पर सवार होकर सब प्रकार से समर्थ हो। हमारा पुत्र ज्ञानवान् पुरुष के अधीन रहकर सब प्रकार से समर्थ बने। हम उत्तम सन्तानों से सन्तानवान् होकर प्रसिद्ध हों।

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः॥ २॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषों के रुलाने वाले प्रभो! राजन्! दुष्ट रोगों को भगाने वाले वैद्य! हम लोग तेरे से दिये अति शान्तिदायक तथा रोग-नाशक ओषधियों से सौ बरसों तक जीवन का भोग करें। पदार्थों, रोगों और शत्रुजनों को हमसे दूर कर। पाप को भी सर्वथा नाश कर। नाना प्रकारों से आने और सब अंगों में व्यापने वाले दुःखदायी रोगों को विशेष रूप से नष्ट कर।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि॥३॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने वाले! दुःखों को भगाने वाले! तू उत्पन्न हुए संसार के बीच में कान्ति से सबसे अधिक प्रशंसायोग्य है। हे शस्त्रास्त्र से सज्जित बाहु वाले पुरुष! तू सब बल वालों में सबसे अधिक बलवान् है। हमें पाप से कल्याणपूर्वक पार कर। और सब प्रकार की पाप के कारण आने वाली आपत्तियों को दूर कर।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि॥ ४॥

भा०—हे दुःखों को भगाने वाले वैद्य! तुझे हम कभी क्रुद्ध न करें। हे सर्वश्रेष्ठ! हम तुझे बुरी निन्दा और समान स्पर्द्धा और बराबरी पर बुलाने से कभी कुपित न करें। प्रत्युत नमस्कार और आदरवचनों से सदा सत्कार करें। हमारे वीरों और पुत्रों को उत्तम रोगनाशक उपायों और

ओषधियों से उत्तम सुख प्रदान कर। मैं तुझे व्याधिनाशकों में से सबसे श्रेष्ठ चिकित्सक सुनता हूं।

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै॥५॥१६॥

भा०—जो पुरुष ग्रहण करने योग्य उत्तम अन्न आदि ओषधियों से उत्तम सुख देता और उत्तम उपदेशों से ज्ञान प्रदान करता है, उस को उत्तम स्तुति वचनों से मैं धारण करूं या उसके अधीन रहूं। वह कोमल हृदय वाला, उत्तम ज्ञान देने वाला और उत्तम मुखाकृति से युक्त हंसमुख सर्वपालक होकर इस मननकारिणी शक्ति और सर्वज्ञान करने में समर्थ बुद्धि के बल से हमें कष्ट और पीडा न दे। इति षोडशो वर्गः॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।
घृणीव छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम्॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार वायु से युक्त वर्षण करने वाला मेघ खूब उज्ज्वल अन्न से याचनाशील कृषक जन को खूब तृप्त कर देता है, उसी प्रकार मनुष्यों का स्वामी, बलवान् पुरुष शत्रुओं को टुकड़े २ कर देने वाले बल से ऐश्वर्य की कामना करने वाले मुझ राष्ट्रजन को खूब प्रसन्न और हर्षित करे। सूर्य के ताप से सन्तप्त पुरुष जिस प्रकार छाया का सेवन करता है उसी प्रकार हे राजन्! मैं निष्पाप होकर सब दुःखों को दूर भगाने वाले तेरा सुखमय शरण का सेवन करूं।

क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः॥ ७॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने और प्राणियों के दुःख दूर करने हारे! तेरा सबको सुख शान्ति देने हारा वह हाथ कहां है? जो स्वयं सब रोगों और कष्टों को दूर करने वाला, सन्तप्त पुरुष के ताप की शान्ति करने वाले जल के समान सुखदायक है और जो काम्य भोगों से प्राप्त होने

वाले व्याधि आदि पीड़ाओं को दूर करता है। हे सुखों की वर्षा करने हारे बलवन्! मुझको सदा क्षमा कर वा सब प्रकार से सहनशील, दृढ़ बलवान् बना।

प्र ब॒भ्रवे॑ वृष॒भाय॑ श्वि॒तीचे॑ म॒हो म॒हीं सु॑ष्टु॒तिमी॑रयामि।
न॒म॒स्या क॑ल्मली॒किनं॒ नमो॑भिर्गृणी॒मसि॑ त्वे॒षं रु॒द्रस्य॒ नाम॑ ॥ ८ ॥

भा०—सबको पालने पोषने वाले, काम्य सुखों और ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, उज्ज्वल कान्ति को धारने वाले उस महान् परमेश्वर की मैं बड़ी भारी उत्तम स्तुति करूं। हे विद्वान् पुरुष! तू भी नमस्कारों से उस मलों को शोधने वाले की वन्दना कर। हम उस दुःखहारी के अति-तेजस्वी स्वरूप की स्तुति करते हैं।

स्थि॒रेभि॒रङ्गैः॑ पुरु॒रूप॑ उ॒ग्रो ब॒भ्रुः शु॒क्रेभिः॑ पिपिशे॒ हिर॑ण्यैः।
ईशा॑नाद॒स्य भुव॑नस्य॒ भूरे॒र्न वा उ॑ योषद्रु॒द्राद॑सु॒र्य॑म् ॥ ९ ॥

भा०—नाना रूपवान् पदार्थों का स्वामी, बलवान् और सबका पालक पोषक होकर, तेजोयुक्त सूर्यों और सुवर्ण आदि सम्पत्ति द्वारा स्थायी जगत् के अंग प्रत्यगों में सुशोभित हो रहा है। संसार के वशकर्त्ता तथा भरण पोषणकारी और दुष्टों को रुलाने हारे उस परमेश्वर से प्राणों में रमण करने वाला परमानन्द तथा महान् विश्वसञ्चालन बल कभी भी नहीं पृथक् होता।

अर्ह॑न्बिभर्षि॒ साय॑कानि॒ धन्वार्ह॑न्नि॒ष्कं य॑ज॒तं वि॒श्वरू॑पम्।
अर्ह॑न्नि॒दं द॑यसे॒ विश्व॒मभ्वं॒ न वा ओजी॑यो रुद्र॒ त्वद॑स्ति ॥१०।१७॥

भा०—परमेश्वर सर्वपूजनीय होने से 'अर्हन्' है। वही जगत् के अन्त करने वाले प्रलयकारी साधनों को और अन्तरिक्ष या जल को, वही सम्पूर्ण सम्पत् को, वही उपास्य विराट् रूप को या 'विश्वरूप' अर्थात् जीव जगत् को धारण करता है। वही इस महान् विश्व की रक्षा करता है। उससे अधिक बलशाली दूसरा नहीं है। इति सप्तमो वर्गः॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

भा०—हे विद्वन्! तू रथ पर विराजने वाले, प्रसिद्ध और ज्ञानवान्, युवा और बलवान्, सिंह के समान शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाले, घोर शत्रुनाशक पुरुष की स्तुति कर। हे दुष्टों को रुलाने वाले! तू स्तुतिशील विद्वान् पुरुष को सदा सुखी कर। तेरी सेनाएं शत्रुजन को हमसे दूर ही छिन्न भिन्न करें।

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार कुमार वन्दना करने योग्य तथा समीप आते हुए पिता को प्रति दिन नमस्कार करता आगे झुकता है, इसी प्रकार हे दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष! तू भी वन्दनीय और अन्नादि सुखदायी पदार्थों को देने वाले, तथा उपासनीय, सच्चे पालक परमेश्वर को आदरपूर्वक नमस्कार किया कर। स्तुति पाकर हे परमेश्वर! तू हमें मार्ग का उपदेश करता है और अपने इस सम्मुख स्थित को रोगों और दुःखों के निवारक ओषधों और उपायों का प्रदान करता है।

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

भा०—[illegible] वृष्टि करने वाले प्राणों और वायुओं के समान हे विद्वान् पुरुषो! जो रोगनिवारक ओषधियां अतिशुद्ध, जो अति अधिक रोगों को शमन करने वाली, जो सुख कल्याणजनक हैं, जिनको हमारा परिपालक पिता आदि जन मननशील होकर सबसे उत्तम ग्राह्य जानकर लेता है, वे हमारे और तुम्हारे लिये शान्तिकर और रुलाने वाले रोगों को दूर करने वाली हों। उनको मैं भी प्राप्त करना चाहूं।

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥

भा०—हे शान्तिजल से स्नान कराने वाले ! रुलाने वाले दुष्ट पुरुष की या दुःखकारी रोग की पीड़ा और वर्जने योग्य पीडाएं और अति तीक्ष्ण शस्त्र तथा ज्वरादि की बड़ी भारी पीडा और दुर्मति आदि हमसे परे ही रहे। ऐश्वर्यवान् पुरुषों के पुत्रों और पौत्रों के लिये उक्त कष्टों को दूरकर और सबको सुखी कर ।

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—हे जगत् के भरण पोषण करने वाले ! हे सर्वश्रेष्ठ सुखों के वर्षक ! हे ज्ञान देने वाले ! जिस कारण तू न किसी का कोई पदार्थ हर, न कोप या अनादर कर, न किसी का दण्ड वधादि कर, प्रत्युत हमारा वचन, पुकार सुनता हुआ, और उत्तम ज्ञान का श्रवण करता हुआ, हमें ज्ञान करा। हम उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञान-प्राप्ति और धन-प्राप्ति के संग्राम आदि काम में बहुत उत्तम वचन कहें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३४]

गृत्समद ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृज्जगती २, १०, ११, १२, १३ विराड्जगती । ४, ५, ६, ७, १४ जगती । १५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

धारावरा मरुतो धृष्णवोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु-गण मेघ की जल-धारा को आवृत करते हैं, उसी प्रकार विद्वान् भी धारा अर्थात् वाणी को धारण करने वाले या वाणियों की प्रीति के लिये अपने अधीन 'अवर' अर्थात् नव शिष्यों को

धारण करने वाले, तथा वीर पुरुष भी 'धारा' अर्थात् नायक की आज्ञा के अधीन रहने वाले हों। वीर पुरुष वायुओं के समान पराक्रम वाले हों। वे सिंहों के समान भयकर, शक्तियों और सेनाओं सहित सबका आदर सत्कार करने वाले, अग्नियों के समान दीप्तियुक्त हों। वायुएं जिस प्रकार जलों के सहित होती हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी ऋजु अर्थात् धर्मानुकूल सन्मार्ग पर स्वय चलने और अन्यों को चलाने हारे हों। वायु-गण जिस प्रकार मेघ को वेग से दूर ले जाते हुए सूर्यरश्मियों को प्रकट करते हैं उसी प्रकार विद्वान्-जन भ्रम या सशय रूप से मेघ को दूर करते हुए, नाना वाणियों को प्रकट करें।

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य॑भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥

भा०—आकाश के नाना भाग जिस प्रकार नक्षत्रों से जगमगाते हैं, उसी प्रकार वीर और विद्वान् पुरुष भी तेजस्वी होकर, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले बलों से और आच्छादन या रक्षा करने वाले शरणप्रद उपायों से अन्यों को चेतावें। विद्वान् पुरुष उत्तम अन्न के खाने वाले हों और वीर पुरुष 'खाद' अर्थात् सशस्त्र सेनादल के स्वामी हों। वे मेघ से उत्पन्न वृष्टियों के समान विशेष रूप से चमकें। उपदेष्टा गुरु वाणी के पवित्र गुरुपद पर स्थित होकर पुरुषों को प्रकाशवान् हृदय वाला ज्ञानी बनावे। गर्जनकारी बरसता मेघ अन्तरिक्ष के जलमय अन्तरिक्ष के भाग में वायु-गण को चमचमाती बिजुली धारण करने वाला बनाता है, उसी प्रकार रुद्र अर्थात् पृथिवी के अतिदीप्तियुक्त उच्च पद स्थित होकर, तुम लोगों को सुवर्ण पदकों को छाती पर धारण करने वाला करता है। तब वे सैनिक भी विद्युत् वाले मेघ की वर्षाओं के समान जगमगाते हैं।

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३॥

भा०—सग्राम आदि प्रतिस्पर्धा के कार्यों के अनन्तर जिस प्रकार वायु के समान प्रबल वेग से जाने वाले सवार लोग निरन्तर वेग से चलने वाले अश्वों को सींचते है, उनको जल से निहलाते है और जिस प्रकार वायु गण मेघों मे क्षेपण आदि के कार्यों मे व्यापक या विस्तृत देशों को सींचते है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वेगवान् पशुओं और पुरुषों को सींचे, उनकी वृद्धि करें, और उनको पुष्ट करें। जिस प्रकार वायुगण नदी के बीच वेगवान् साधन पाल पतवार आदि से नौका को चलाते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग नदी के बीच वेगवान् यानों और रथों से वेगवान् यन्त्रों से वेग से जाते और नाव तथा वेग से चलाते है। वायु गण जिस प्रकार सुवर्ण के समान चमकने वाले तेज से युक्त होकर मेघों और वनों को कंपित करते हुए वर्षण करने वाली मेघमालाओं से सेचन करने योग्य अन्न से युक्त क्षेत्र को प्राप्त होते, उसी प्रकार हे विद्वान् व्यापारी जनो! और हे शत्रुगण को मारने वाले वीर पुरुषो! आप लोग भी सुवर्ण के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख वाले, एवं लोहमय शिरस्त्राण, शस्त्रास्त्र पहन कर शत्रुओं को कंपाते हुए, क्रोध से पूर्ण वीर जन और ज्ञान से युक्त विद्वान् होकर, शस्त्रवर्षी सेनाओं और हृष्ट पुष्ट अश्वाओं से, धाराओं से जल सेचने योग्य क्षेत्र के समान शस्त्र वर्षण करने योग्य परराष्ट्र पर प्रयाण करो।

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार जीवन देने वाले वायुगण अन्न या जलवृष्टि के आधार पर समस्त लोकों को धारण करते है, और मित्र के समान प्रिय के स्थान को धारण करते हैं, उसी प्रकार अन्यों को जीवन देने वाले विद्वान् पुरुष परस्पर सम्पर्क और प्रेम के आश्रय पर नाना प्रकार के लोकों और प्राणियों को धारण करते, सबका भार अपने पर लेते है, और

उनके मित्र के स्थान को सदा धारण करते हैं, वे सबके मित्र बने रहते हैं। वे हृष्ट पुष्ट इन्द्रियरूपी अश्वों वाले, नाशरहित धन सम्पदा वाले, ऋजु अर्थात् धर्मानुकूल मार्ग को प्राप्त होते हुए, सब ज्ञानों में धुरन्धर हों।

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः। आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे चमचमाते शस्त्रों वाले वीरो! और देदीप्यमान ज्ञान से युक्त विद्वानो! हे क्रोध से युक्त वीरो और हे ज्ञान से युक्त ज्ञानवान् पुरुषो! हे शत्रु को मारने वाले वीरो और वायुवेग से जाने वाले विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार वायुगण गर्जते अन्तरिक्षों वाले, प्रकाश करने वाले, गर्जना सम्पन्न वाणी वाले अविनाशी आकाश मार्गों से जाते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो तुम दूध से भरे थनों वाली गौओं के समान स्पष्ट उपदेश करने वाली वाणियों से युक्त होकर, विनाशरहित धर्ममार्गों से, आकाश से जाने वाले हंसों के समान बन्धनमुक्त या परम हंसों के समान, परम मधुर आनन्दमय प्रभु के परमानन्द प्राप्ति के लिये, रात दिन, निरन्तर उच्च यत्न किया करो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन। अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञान से युक्त विद्वानो! और क्रोध से युक्त वीर पुरुषो! जिस प्रकार वायु गण मेघ के आधार पर अन्नों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी ज्ञानप्रदान करने वाले विद्वान् पुरुष के आश्रय में रहकर उत्तम ज्ञानों और धनैश्वर्य को उत्पन्न करो। और स्तुतिवचनों के समान मनुष्यों को उपदेश और शासन करने वाले होकर ऐश्वर्यों और अभिषेकयोग्य पदों को प्राप्त होवो। और हे वीर पुरुषो!

तुम अश्वों की सेना को या राष्ट्र के व्यापक शक्ति को बढ़ाओ, तथा दूध देने वाले थन को लक्ष्य कर अर्थात् बहुत अधिक दूध पाने के लिये गोसम्पदा को बढाओ। हे विद्वान् पुरुषो! तुम लोग भी ज्ञानरस देने वाली वेदवाणी की वृद्धि करो, उसका मनन और पाठ करो। हे विद्वानो! वीर पुरुषो! आप लोग उपदेश करने वाले विद्वान् की और शत्रु की हानि करने वाले वीर पुरुष की वृद्धि के लिये विज्ञान से युक्त बुद्धि को और सुवर्णादि से युक्त धारण शक्ति को बढ़ाओ।

तं नो॑ दात मरुतो वा॒जिनं॒ रथ॑ आपा॒नं ब्रह्म॑ चि॒तय॑द्दि॒वेदि॑वे।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ वृ॒जने॑षु का॒रवे॑ स॒निं मे॒धामरि॑ष्टं दु॒ष्टरं॒ सहः॑ ॥७॥

भा०—हे वीरो! और विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमें रथ में लगे बलवान् अश्व के समान वेग कार्य में बलवान् उत्तम पुरुष प्रदान करो। दिन प्रति दिन पान करने योग्य ब्रह्मज्ञान का हमें ज्ञान कराओ। स्तुतिशील पुरुषों को इच्छानुसार धन अन्नादि प्रदान करो। बलयुक्त कर्मों में कर्म करने वाले शिल्पी उत्तम वेतन, उत्तम बुद्धि, अभययुक्त सुख, और परायों से न लांघने योग्य बल प्रदान करो।

यद्यु॒ञ्जते॑ म॒रुतो॑ रु॒क्मव॑क्षसो॒ऽश्वा॒न्रथे॑षु॒ भग॒ आ सु॒दान॑वः।
धे॒नुर्न शिश्वे॒ स्वस॑रेषु पिन्वते॒ जना॑य रा॒तह॑विषे म॒हीमिष॑म् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार दीप्तिमान् विद्युत् को धारण करने वाले वायुगण उत्तम जल देने वाले होकर क्षेत्र में अन्न डालने वाले कृषक के लिये बड़ी वृष्टि का सेचन करते और बहुत अन्न की वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित वक्षःस्थल वाले और वायु के समान वेग वाले वीर, उत्तम दानशील होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये रथों में वेगवान् साधनों को जब जोड़ते हैं, तब वे अन्नादि कर देने वाले प्रजाजन को बढ़ाने के लिये, बछड़े को दुधार गाय के समान, बड़ी भारी अन्नादि सम्पदा को उनके घरों में सींचते हैं।

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥९॥

भा०—हे वीर और विद्वान् पुरुषो! जो मनुष्य भेड़िये या चोर के समान प्रजाघातक होकर हम प्रजाओं का शत्रु होकर हमें पकड़े या दबाये रखता है, हे राष्ट्र में बसने और राष्ट्र में बसाने वाले, 'वसु' नाम विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमें हिंसक राजा या चोर पुरुष से बचाओ और उस पर संतापजनक क्रोध आदि या सैन्यचक्र से चढ़ाई करो। हे दुष्टों को रुलाने वाले! तुम लोग प्रजा को खा जाने वाले दुष्ट पुरुष के हनन करने योग्य साधनों को और उन घातकों को मार गिराओ।

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—वायु के समान बलवान् वीरो! और विद्वान् पुरुषो! आप लोगों का यह आश्चर्यजनक नियम-व्यवस्थापन का कार्य जाना जाता है जिससे कि आप्त बन्धुवर्ग और मित्रवर्ग, पृथिवी के जलादि के आश्रय स्थानों को, गौ के स्तनमण्डल के समान दोहते हैं। जो आप का अद्भुत कर्म स्तुतिशील विद्वान् पुरुष की निन्दा करने वाले का विनाशक होता है। हे अहिंसनीय तथा दुष्टों के रुलाने के पदों पर स्थित पुरुषो! आप लोगों का यह अद्भुत कार्य अपनी आयु को क्रम से व्यतीत करने वाले जीर्ण प्राणियों के आयु पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त होने के लिये बाल, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्थाओं से पार पहुँचा देने वाला होता है।

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥

भा०—हे वीरो! और विद्वान् पुरुषो! ज्ञानपूर्वक गमन करने वाले, व्यापक शक्ति वाले, अर्थ और यश के चाहने वाले राजा के उत्तम रीति

से भरण-पोषण और प्रजापालन के कार्य में, हम लोग, अधिक सामर्थ्य वाले, सुवर्ण के समान कान्तिमान् स्वरूप वाले, यज्ञपात्रों को नियम में रखने वाले ऋत्विजों के समान राज्य के प्रजाजनों के और अपने प्राणों और वीर्य आदि को नियम में रखने और पालन करने वाले उन सब आप लोगों को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करें। और अन्न की आकांक्षा करने वाले किसान जिस प्रकार मेघ के लाने वाले मरुतों को चाहते हैं और उसमें उत्तम जल और अन्न चाहते हैं, जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान के इच्छुक जन उत्तम आराधनीय ज्ञानप्रवचन चाहते, और उसके लिये उत्तम विद्वानों को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हम लोग भी बृहत् ऐश्वर्य की चाहना करते हुए प्रशसनीय धन और उत्तम कार्यसाधक बल चाहते हैं।

ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु।
उषा न रामीरुरुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार उषाएं रात्रियों को उज्वल प्रकाशों से दूर कर देती हैं, उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष अति देदीप्यमान बड़े ज्ञानप्रकाश से युक्त और किरणों तथा जलों से युक्त सूर्य और मेघ के समान पावन और शान्तिदायक, हमारी अन्धकारमय अर्थात् रमण-विलास आदि युक्त अज्ञानरात्रियों को दूर करते हैं, वे दश इन्द्रियों को वश करने हारे, उच्च कोटि के विद्वान् पुरुष उपासना करते और उपास्य परमेश्वर का मनन द्वारा साक्षात् ज्ञान करते हैं। वे उषाकाल के प्रादुर्भावों के अवसरों और विशेष प्रज्ञा के उदय होने के कालों में हम उत्तम रीति से बढ़ावें, अपना अनुभव हमें बतलावें।

ते क्षोणीभिरुरुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥

भा०—घोर गर्जन करने वाले मेघ या प्रबल वायुगण जिस प्रकार शब्दकारिणी विद्युतों और अरुण अर्थात् सब तरफ चमकने वाले प्रकाशों

से जल के स्थानों अर्थात् मेघों में बल प्रकट करते हैं, और उत्तम रूपवान् वरण करने योग्य अन्न आदि सम्पदा को पुष्ट करते और प्रदान करते हैं, उसी प्रकार उपदेश देने वाले विद्वान् गण और दुष्टों को रुलाने और प्रजाओं को सद्-व्यवस्था द्वारा पाप में गिरने से रोकने वाले शासक और वीर जन, शब्द करने वाली वाणियों और आज्ञाओं से, या भूमियों और उनमें रहने वाली प्रजाओं सहित, और प्रजाओं को जीवनमार्ग दर्शाने वाले उत्तम गुणों से, वेद ज्ञान, सत्य, धर्म-व्यवस्था और राष्ट्र और ऐश्वर्य के सदन अर्थात् स्थानों, विद्या के आश्रमों, राजसभाओं और शासकपदों पर वृद्धि को प्राप्त हों। वे बलवान् अश्व सैन्य से, या सबसे बढ़े चढ़े सर्वातिशायी बल और ज्ञान से मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञान की, और शत्रुओं पर वारों की, और प्रजाओं पर उत्तम ऐश्वर्यों और सत्यवचनों की वर्षा करते हुए, सबको आह्लादजनक सुवर्ण रजतादि धातुमय, उत्तम रूप से युक्त सुवर्णादि, तथा वरण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम शोभा, और पद को धारण करें।

तां इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार शरीर, वाणी और मन तीनों को वश करने वाला यजमान अपने काम्ययज्ञ को करने के लिये होता आदि पांच ऋत्विजों को बैठाता है, और अपने अभिमुख बैठे हुओं को यज्ञरूप रथ के चक्र के समान यज्ञकर्म-निर्वाह के लिये सञ्चालित या प्रेरित करता है, और जिस प्रकार उपर्युक्त तीनों पर संयम करने वाला पुरुष शरीर को धारण करने वाले पांच प्राणों को अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने और भोग, गति, व्यापार आदि करने के लिये अपने अधीन प्राणों को करके रथ या यन्त्र के चक्रों के समान यथेष्ट घुमाता और चलाता है, उसी प्रकार धन, सैन्य और मन्त्र तीनों प्रकार के बलों को प्राप्त होकर जिन

पांच अपने से छोटे पद पर स्थित, राज्यपदों के धारण करने वाले अधि-कारियों को रक्षादि कार्य के लिये अपने चारों ओर स्थित चक्रव्यूह या सैन्यमण्डल के द्वारा सञ्चालित करे। वह उनको प्राप्त होता हुआ रक्षा करने के लिये बड़े भारी राज्य और सैन्य को सञ्चालित करता है। हम प्रजा लोग भी अपनी रक्षा के लिये इस प्रकार के शत्रु को नमाने वाले बल के निमित्त ही उसकी विनय से स्तुति प्रार्थना करें कि वह हमारी उस बल से रक्षा करे।

यया॑ र॒ध्रं पा॒रय॒थात्यंहो॒ यया॑ नि॒दो मु॒ञ्चथ॑ वन्दि॒तार॑म्।
अ॒र्वाची॒ सा म॑रुतो॒ या व॑ ऊ॒तिरो॒ षु वा॒श्रेव॑ सुम॒तिर्जि॑गातु ॥१५॥२१

भा०—हे विद्वान् लोगो! जो आप लोगों की रक्षणशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति और सबको तृप्त और प्रसन्न करने की शक्ति है, जिससे साधक और आराधक को पाप से पार कर देने में समर्थ होते हो, और जिससे समस्त निन्दनीय कार्यों को दूर करते, या निन्दक जन से प्रार्थी पुरुष को मुक्त करते हो, अर्थात् उसको निन्दकों के जाल में नहीं पड़ने देते, वह आप लोगों की ज्ञान और मन्त्रमयी पालनकारिणी शक्ति हमें प्राप्त हो, और आप की उत्तम ज्ञानमयी प्रज्ञा बछड़े के प्रति हम्भारती गौ के समान प्रेमवती होकर, हमें भली प्रकार सभी कार्यों में प्राप्त हो। इत्येकविंशो वर्गः॥

[३५]

गृत्समद ऋषिः ॥ अपांनपाद्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। १४ त्रिष्टुप्। २, ३, ८ भुरिक् पङ्क्तिः। ५ स्वराट् पङ्क्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

उपे॑मसृक्षि वाज॒युर्व॑च॒स्यां चनो॑ दधीत ना॒द्यो गिरो॑ मे।
अ॒पां नपा॑दाशु॒हेमा॑ कु॒वित्स सु॒पेश॑सस्करति॒ जोषि॑ष॒द्धि ॥१॥

भा०—जो पुरुष अन्न को प्राप्त करना चाहता है वह जिस प्रकार

जल को उत्पन्न और प्राप्त करने की क्रिया को करता, और जल को उपाय द्वारा प्राप्त करता है, और वह पुरुष नदी के जल को वश करके अन्न को पुष्ट करता और प्राप्त करता है, उसी प्रकार ज्ञान और बल की इच्छा करने वाला पुरुष वेदवाणी और गुरुप्रवचन के योग्य अध्ययन-अध्यापन और ऊहापोह आदि क्रिया का अभ्यास करे। और वह उपदेष्टा मुझ गुरु का प्रिय हितैषी होकर मेरी वाणियों के उपदेश को धारण करे। जिस प्रकार अन्नार्थी कृषक जलों के न गिरने देता हुआ शीघ्र क्रिया करता हुआ अन्नादि की कृषि को बहुत उत्तम बना लेता है, उसका सेवन भी कर लेता है, उसी प्रकार अपने प्राणों और वीर्यों को न पतित होने देने वाला वीर्यरक्षक ब्रह्मचारी शीघ्र ही ज्ञान और बल की वृद्धि करता हुआ, बहुत उत्तम ज्ञान और शारीरिक बल को प्राप्त करता है, और उसका वह उत्तम रीति से सेवन भी करता है।

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥

भा०—समस्त संसार का चलाने वाला, उसमें व्यापक और उसका स्वामी परमेश्वर, जलों के बीच पादरहित नाव के समान सबको पार उतारने वाला, अपनी महाप्राण शक्ति के महान् सामर्थ्य से समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों और प्राणियों और संसार के समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है। वह ही इस महान् प्राणबल को बहुत रूपों में जानता, धारता और वश करता है। उसी परमेश्वर के वर्णन करने के लिये हम लोग इस अपने हृदय में स्थित सुखजनक और उत्तम रीति से सु-विचारित विचार को वाणी द्वारा प्रकट करें।

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार कुछ नदियां एक साथ मिलकर चलती हैं, और

दूसरी नदियां अकेली ही चलती हैं, और वे सब मिलकर एक महान् समुद्र को पूरती हैं, और सब उसके चारों ओर से नदियें आ मिलतीं और चारों ओर जुड़ी रहती हैं। उसी प्रकार कई प्रार्थना और स्तुतिशील प्रजाएं एक साथ मिलकर प्रभु की उपासना करती हैं और कई अलग २ दूसरी श्रद्धायुक्त प्रजाएं वे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को स्तुतियों से पूर्ण करती हैं, उसकी महिमा बढ़ाती है। तथा उस अति पवित्र, देदीप्यमान, प्रकृति के परमाणुओं, लोकों और प्रजाओं के बीच स्वयं नष्ट न होने वाले परमेश्वर को, पवित्र चित्त होकर उपासक प्रजाएं उसके आश्रय पर स्थित हों, उसकी उपासना करें। इसी प्रकार गुणों से समृद्ध स्त्रियां गुणों में समान पतियों को पूर्ण करें। पुरुष स्वयं आधे हैं स्त्रियां मिलकर उसको पूर्ण करती हैं। स्त्रियां दो प्रकार से प्राप्त होती हैं। कुछ स्त्रियां स्वयं इच्छापूर्वक स्वयंवर कर लेती हैं। दूसरी स्त्रियां पिता आदि द्वारा पतियों को प्राप्त होती हैं दोनों दशाओं में वे मान आदर सहित, एवं समान कोटि के विद्या बल गुणों से अनुरूप पतियों को ही वे प्राप्त हों। पुरुष भी शुचि अर्थात् पवित्र, धर्मात्मा, ईमानदार, उज्ज्वल रूप यश वाले, वीर्यों और प्राणों का नाश न करने वाले ब्रह्मचारी, और ज्ञानों के पालक हों। ऐसे पुरुषों को ही स्त्रियां सब प्रकार से अपना आश्रय बनाया करें।

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥४॥

भा०—शुद्धजल वाष्प जिस प्रकार मेघ में स्थित विद्युत् को प्राप्त होते हैं, और विद्युत् रूप अग्नि काष्ठों के बिना भी स्वयं प्रकाशमान, तथा दीप्तियुक्त स्वरूप वाला होकर सेचन करने वाले जलों सहित चमकता है, उसी प्रकार आप्त पतियों को प्राप्त करने वाली, विनयशील, तथा अच्छी प्रकार अपने देहों पर अलंकार धारण करती हुई और रजोधर्मादि के अनन्तर स्नानादि से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर स्त्रियां, उन अपने जवान

पुरुषों को प्राप्त हों। वे पति दाराओं में सेचन करने योग्य वीर्य को पुष्ट करने हारे, परिपक्व-वीर्यवान् सेचन करने योग्य शुद्ध वीर्यों सहित बिना कृत्रिम उपायों के ही स्वभाव से तेजस्वी होकर हमारे बीच ऐश्वर्ययुक्त होकर चमकें और हमें भी उज्ज्वल करें।

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥५॥२२॥

भा०—इस व्यथा न देने योग्य दिव्य पुरुष के लिये, तीन प्रकार की दिव्य गुणों वाली नारियां अन्न अर्थात् उपभोग्य पदार्थों को धारण करती हैं, वे विवाहेच्छु नव स्त्रियां कृतार्थ अर्थात् पूर्व विवाहित अन्य स्त्रियों के समान ही समान गुणों के पुरुषों को प्राप्त हों। वह नव उत्पन्न सन्तान जो पहले सन्तान उत्पन्न कर चुकी हों ऐसी धाइयों के भी पुष्टिकारक दुग्ध का पान करे। कामशास्त्र की दृष्टि से भिन्न २ शक्तियों के आधार पर पुरुषों तथा स्त्रियों के तीन २ प्रकार हैं। उन्हीं तीन प्रकारों का यहां वर्णन है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥

भा०—इस गृहस्थ में अश्व के समान बलवान् सन्तान का जन्म हो, और उसको उत्तम सुख प्राप्त हो। हे गृहपति तू द्रोह करने वाले हिंसक पुरुष से सत्संग करने योग्य उत्तम विद्वान् पुरुषों की रक्षा कर किया। पुरियों का विजेता राजा के समान तू भी नगरियों में और गृहस्वरूप किले में सर्वोत्कृष्ट होकर रह। क्योंकि शत्रुजन जिसे गिरा न सकें ऐसे दृढ़ घर का शत्रु भी नाश नहीं कर सकते। इस घर में असत्याचरण और असत्यभाषणादि बुरे कार्य न हुआ करें।

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७ ॥

भा०—जिस गृहस्थ के अपने घर में उत्तम दूध दोहने वाली गौ हो वह गोदुग्ध को पीता है, और उत्तम तथा पाक आदि संस्कारों से संस्कृत अन्न का भोग करता है। वह दुग्ध का नाश न करने वाला पुरुष दूध की धाराओं में बल की वृद्धि करता हुआ, विशेष सेवाकार्य करने वाले, वास योग्य धन देने योग्य भृत्यादि के लिये भी विशेष रूप से अच्छा प्रतीत होता है, उनको भी प्रिय मालूम होता है।

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति। वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥

भा०—जो गृहस्थ पुरुष दुग्ध आदि पेय पदार्थों के होते सत्य निष्ठ होता और निरन्तर विद्वानों से उपदेश किये गए पवित्र कर्त्तव्यों और तेजादि से अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, उसके ही अन्य उत्पन्न होने वाली सन्तानें शाखाओं के समान फैलती हैं और उत्तम सन्ततियां सहित इसके गृह में नाना प्रकार की वेलें तथा बगीचे आदि होते हैं।

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः। तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥ ९ ॥

भा०—अपने शरीरों में स्थित प्राणों और वीर्यों को विनष्ट न होने देने वाले वीर्यपालक ब्रह्मचारी गृहपति, उपस्थेन्द्रिय का संयम करें। वे कुटिल प्रवृत्तियों के ऊपर होकर, उनका त्याग करके विशेष तेज को धारण करें। बड़े उत्तम स्वभाव और गुणों वाली सुवर्ण के समान उज्ज्वल वर्ण और रूप वाली सन्तानें उस प्रकार के ब्रह्मचारियों के सर्वोत्तम बड़े भारी सामर्थ्य को स्वयं भी धारण करती हुई उन्हें प्राप्त हों।

हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः। हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार सुवर्ण के देने वाले या हितकारी और आनन्द-दायक रमणीय पदार्थ देने वाले दानी होते हैं वे इस प्रजाजन को अन्न

प्रदान करते हैं, और जैसे हित और रमणीय सुख देने वाले अग्नि, जल, मेघ, विद्युत् आदि पदार्थ इस प्रत्यक्ष बसे लोक को अक्षय अन्नादि भोग्य पदार्थ देते हैं, और वे तेजोमय सर्वाश्रय सूर्य के आश्रय पर स्थित रहकर यह दान का कार्य करते हैं। वह सूर्य भी स्वयं सुवर्ण के समान कान्ति वाला, तेजःस्वरूप, जलों को किरणों द्वारा आकाश में बांधने वाला, वह ही सुवर्ण के समान वर्ण वाला है, उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी गृहपति भी हो। वह हित रमणीय स्वरूप हो, उत्तम रमणीय पदार्थों के देखने वाला या सौम्य दृष्टि हो, प्राणों का रक्षक तेजस्वी हो। सुवर्णादि ऐश्वर्य से पूर्ण गृह में रहकर प्रकट हो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम्।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य॥ ११॥

भा०—प्राणों और वीर्यों का न विनाश करने वाले ब्रह्मचारी का बल और सुख शोभा, और नाम स्थिर होकर बढ़ता है। जिस तेजस्वी स्वरूप को इस प्रकार से सद्गुण और भी अधिक प्रदीप्त करते हैं उसका खाद्य पदार्थ अग्नि के समान ही घृत से युक्त बल तथा पुष्टिकारक हो।

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः॥१२॥

भा०—हम लोग बहुतों के बीच में सबकी रक्षा करने वाले, सबके मित्र, इस प्रभु की दानों, उत्तम सत्संगों, और अन्नों से, और नमस्कार द्वारा सेवा करें। गिरिशिखर के समान उन्नत उत्तम पद को अच्छी प्रकार सुशोभित करें। धारने योग्य भागों से अग्नि के समान इसको अन्नों से पुष्ट करें और अर्चना करने योग्य गुणों और सत्कारों और उत्तम वचनों से उसकी स्तुति और अभिवादन करें।

स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष॥ १३॥

भा०—जिस प्रकार वर्षा करने वाला सूर्य उन दिशाओं में 'गर्भ' अर्थात् जल से पूर्ण वायुमण्डल को उत्पन्न करता है, और वही छोटे बालक के समान समुद्रादि से रस का पान करता है, उसको समस्त दिशाएं अपना २ जलरस पिलाती हैं, वह सूर्य वर्षाजलों का उत्पादक होकर, क्षीण तेज न होकर, मानो अग्नि और विद्युत् या प्रकाशरूप से इस जगत् में व्यापता है, इसी प्रकार वे वीर्यसेचक पुरुष भी उन वरण करने वाली सहधर्मचारिणी दाराओं में गर्भ को उत्पन्न करें। वे भी प्रथम बालक रूप में दुग्ध पान करते रहे हैं। उन्हें उनकी माताएं, बछड़ों को गौओं के समान, दुग्ध रस पिलाती रही हैं। वे फिर पोत्र आदि होकर, अक्षीण तेज वाले होकर, दूसरे २ देहों में इस लोक में आते जाते रहे हैं।

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्माभिर्विश्वहा दीदिवांसम्।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४॥

भा०—सबसे उत्कृष्ट पद पर स्थित, अक्षय और अमोघ वीर्यों से से सब दिनों सूर्य के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुष को स्वयंवरण करने हारी सहधर्मिणी जलस्वभाव होकर, उत्तम रूपों से सुसज्जित होकर, आप से आप गुणों में उत्कृष्ट महान् होकर प्राप्त करती है। विवाह बंधन मे बांधने वाले उसके लिये घृतयुक्त पुष्टिकारक अन्न को प्राप्त कराती है।

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम्।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥२४॥

भा०—हे अग्रणी! नायक! ज्ञानवान् पुरुष! जनों के कल्याण करने और सन्तान को उत्पन्न करने के लिये उत्तम भूमि को प्राप्त होने वाले कृषक के समान और ऐश्वर्यवान्, गुणवान् पुत्रों को प्राप्त करने के लिये उत्तम पापनिवृत्ति के व्रत ब्रह्मचर्यादि को प्राप्त हुए तुझको जो विद्वान्, गुरु आदि पालने और ज्ञान से पूर्ण करते हैं, वह तेरे लिये बड़ा ही कल्याण और सुखजनक है। हम उत्तम पुत्रों से युक्त गृहस्थ जन

भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये तुझे बहुत उत्तम उपदेश करें।

इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३६]

गृत्समद ऋषिः ॥ १ इन्द्रो मधुश्च । २ मरुतो माधवश्च । ३ त्वष्टा शुक्रश्च । ४ अग्निः शुचिश्च । ५ इन्द्रो नभश्च । ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३ जगती ॥ षड्च सूक्तम् ॥

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः । पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१॥

भा०—हे राष्ट्र के पालक! शासन किया जाता हुआ और बढ़ता हुआ प्रजाजन तेरी वृद्धि के लिये ही भूमियों को बसावे, उनमें बसे। नेता लोग प्रजा के रक्षक मेघों के समान जलधाराओं और झरनों के बहाने वाले पर्वतों द्वारा जलों को प्राप्त करें। हे ऐश्वर्यवान् राजन्! जो तू सबसे प्रथम, मुख्य रूप होकर सबका स्वामी है वह तू उत्तम रीति से प्रदान किये वा छः हिस्सों में किये गये षष्ठांश कर को उत्तम रीति से या वेदाज्ञा के अनुसार कर लेने वाले अधिकारी या कर देने वाले प्रजाजन से प्राप्त करके, ऐश्वर्य को ओषधिरस के समान प्राप्त कर, उपभोग कर, और राष्ट्र का पालन कर।

यज्ञैः सम्मिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत । आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार समस्त संसार का भरण पोषण करने वाले सूर्य से उत्पन्न वायुगण, सबको पवित्र करने वाले प्रकाश के बल से जल का पान करते हैं, और वे यज्ञों से अच्छी प्रकार मिलकर भूमि को सेचन करने वाली जलधाराओं और वेग से जाने वाली बिजुलियों से अपने जाने के अन्तरिक्षमार्ग में शोभायमान होते हुए, चाहने वाले कृषकों के निमित्त

उनके अतिप्रिय होते हैं, इसी प्रकार हे उत्तम पुरुषो ! हे नायको ! आप लोग भी सबका धारण पोषण करने वाले राष्ट्र के पति राजा के पुत्र के समान होकर राष्ट्र के सञ्चालक होओ। आप लोग उत्तम आसन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर साधिकार विराज कर, पवित्र व्यवहार से ऐश्वर्य का उपभोग करो, और ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करो। और आप लोग दान, मान, सत्कार, परस्पर सत्सगों से अच्छी प्रकार मिल जुलकर, नाना शस्त्रवर्षिणी और शत्रुनाश करने वाली सेनाओं सहित अति शोभायुक्त होकर और प्रतिष्ठा सूचक चिन्हों, पदकों के बीच अतिप्रिय होकर रहो।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम नाम, ख्याति और प्रशंसा से युक्त होकर अपने आश्रयगृह के समान निर्भय होकर, हमारे पास आओ। उत्तम शासन और वृद्धिशील प्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष और उपदेष्टा रूप से विराजो, और उत्तम उपदेश, आज्ञाएं प्रदान करो। हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! अज्ञान के विच्छेदक ! तू भी सुख और उत्तम गुणवान् सहयोगी जनों, और उत्पादक विदुषी स्त्रियों, और व्यवहार कुशल विद्वान् तेजस्वी पुरुषों सहित, अन्नों का सेवन करता हुआ तृप्त, प्रसन्न होकर रह।

आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥

भा०—हे मेधाविन् ! हे उत्तम २ पुत्र, यश, और ऐश्वर्य आदि पदार्थों की कामनाओं को करने हारे ! हे दानशील ! तू सुख देने वाले उत्तम गुणों को धारण कर। और उनका सत्संग कर। तू तीन योनियों

अर्थात् माता, पिता, और आचार्य उनकी शिक्षा से शिक्षित होकर मातृमान्, पितृमान्, और आचार्यवान् हो। अपने से उत्कृष्ट पद पर स्थित माननीय पुरुष के समीप जा, उसके सत्सग से ओषधिरसों से युक्त मधु के समान भव-रोगहारी उत्तम ज्ञानरूप मधुर उपदेश का पान कर, और अग्नि के धरने के स्थान चूल्हे से जिस प्रकार अन्न पकाकर उससे तृप्त होते हैं उसी प्रकार प्रति अंग मे झुकने वाले शिष्य को धारण करने वाले आचार्य ने तेरे अपने सेवन योग्य सेवा सुश्रूषा, और ज्ञानाश से तू तृप्त हो। (२) इसी प्रकार राजा विविध ऐश्वर्यों से प्रजा-राष्ट्र को भरने मे विप्र है। वह विजयेच्छुक वीरों को आज्ञा दे, वेतनादि दे। शत्रु, मित्र, उदासीनों के ऊपर विराजे। चढ़ कर आने वाले का मुकाबला करे। ऐश्वर्य रूप मधुर फल को भोगे या ऐश्वर्ययुक्त राज्य का पालन करे। अग्नि के समान तेजस्वी तथा सेना को धारण करने वाले वीर पुरुष ने अपना अंश प्राप्त करके तृप्त हो।

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥५॥

भा०—उत्पन्न पुत्र जिस प्रकार अपने शरीर से उत्पन्न होता, धनैश्वर्य का बढ़ाने वाला, बल पराक्रम स्वरूप होकर माता पिता के बाहुओं में या गोद में लिया जाता है, वह पिता के द्वारा पालित पोषित होता है, उसी प्रकार हे उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन्! यह पुत्र के समान अभिषेक द्वारा प्राप्त प्रजाजन तेरे शरीर के समान विस्तृत राष्ट्र से उत्पन्न होकर तेरे धनैश्वर्य को बढ़ाने वाला है। यह शत्रुओं का पराजय करने वाला बल पराक्रम स्वरूप होकर सब दिनों तेरी बाहुओं पर पालनीय पुत्र के समान धारा जाता है। यह प्रजाजन माता द्वारा जाने गये पुत्र के समान तेरी ही वृद्धि के लिये हो, और तेरी ही वृद्धि के लिये इसका सब प्रकार भरण पोषण किया जाय। और तू ही इसके 'ब्रह्म' अर्थात् धन-और-विज्ञान से

उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य और विज्ञान के स्वामी पुरुषवर्ग से इसका पालन और उपभोग कर, ताकि यह प्रजाजन तृप्त सन्तुष्ट होकर रहे।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु। अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥ २५ ॥ ७ ॥

भा०—हे उत्तम गुणों से चमकने वाले राजा रानी के समान स्त्री पुरुषो! आप लोग मेरे ग्रहण करने योग्य ज्ञान के सत्संग योग्य दान को प्रेम से सेवन किया करो। जब ज्ञान का देने वाला विद्वान् अच्छी प्रकार विराजे तब आप दोनों विनयपूर्वक उसके समक्ष आकर उत्तम प्रवचन करने वाले विद्वान् से पूर्व विद्वानों से सेवन की और प्रवचन की गयी वेदवाणियों का अच्छी प्रकार ज्ञान करो। और शान्तिदायक, अन्न के समान मधुर, अप्रकट, शिष्यों के योग्य 'मधु' अर्थात् ब्रह्मज्ञान का अच्छी प्रकार ग्रहण करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[३७]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—४ द्रविणोदाः ५ अश्विनौ । ६ अग्निर्देवता । छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड् जगती ४, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षड्‌ृचं सूक्तम् ॥

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम्। तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे धनों और ज्ञानों के देने हारे! तू दानशील से प्रीति से दिये दान से अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करके तृप्त और आनन्दित हुआ कर। हे अपनी हिंसा न चाहने वाले और प्रजा के पीड़नादि भी न चाहने वाले प्रजास्थ पुरुषो! वह ज्ञानैश्वर्य का देने वाला पुरुष, पूर्ण को

...राने वाला अग्नि के समान पूर्ण आसेचन या पुष्टि और दान चाहता है।
...हे प्रजाजनो । उसको उसके अभिलषित कामना योग्य पदार्थ प्राप्त
कराओ। वह दानशील पुरुष है। हे द्रव्यों के दान देने हारे! तू दानशील
...राकर सर्वाधिकार देने वाले विद्वान् से ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करके
राजसभा के सदस्यों सहित ऋतुओंनुसार ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का
पान, उपभोग और पालन कर।

यम् पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते।
...ध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब
ऋतुभिः ॥ २ ॥

भा०—जिसको मैं प्रजाजन पहले उत्तम रूप में स्वीकार करूं उसको
यह सब घर आदि प्रदान करूं। वह ही दानशील पुरुष स्तुति करने
योग्य है। जो प्रसिद्ध रूप से ऐश्वर्यवान् या पालक बनता है। हे धन
और ...न देने हारे। अपना और प्रजा का विनाश न चाहने वाले प्रजा-
जनों से उत्तम रूप से प्रस्तुत और नियम किये, अभिषिक्त राजपद के
योग्य, तथा मधु के समान प्रजागण से सगृहीत ऐश्वर्य और अन्नादि रस
को, राजसभा के सदस्यों सहित, पवित्र व्रतनिष्ठ पुरुष के ग्रहण करके
उसका उपभोग और पालन कर।

मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते।
...आगूर्या धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब
ऋतुभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे सेना और सैन्य गणों का पालन करने हारे! तेरे राज्य के
कार्यभार के उठाने वाले कार्यकर्त्ता लोग हृदय से राजा और प्रजा दोनों
के ...द को धारण करें। जिन से तू प्रजाओं का नाश न करता हुआ
...पालन युक्त हो सके। तू इसी प्रकार से बराबर दृढ़ हो। हे शत्रुओं के
... तू सबसे भेद करके और सब प्रकार से उद्य...
...करने में समर्थ।

करके, राज्य-कार्यभार को अपने ऊपर उठाकर, नेता या नायक के कार्य से ज्ञानवान् राजसभा के सदस्यों सहित ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम्।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्र को ऐश्वर्य देने और राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं के वेतन देने और राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करने वाला पुरुष, दान देने और कर आदि लेने के कार्य से राष्ट्र का भोग और पालन करे। कण्टकशोधन और धर्मपालन की पवित्र व्यवस्था से स्वयं सुप्रसन्न रहे अन्यों को प्रसन्न करे। और नायक बनकर इष्ट पदार्थ प्राप्त कराकर, हितकारी अन्न आदि पदार्थ का स्नेह से सेवन करे। ऐश्वर्य और ज्ञान के देने वालों का प्रेमपात्र होकर वह चतुर्थांश का, जो कि सबसे अधिक शुद्ध और सदा बने रहने वाला है, और जो राजा का पालन और त्राण कर सकने के योग्य है, उस चतुर्थ अंश का स्वयं भोग करे।

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम्।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥

भा०—हे 'वाज' अर्थात् वेग, बल, ऐश्वर्य और संग्राम आदि करने की शक्ति या सेना को बसाने वाले स्वामी जनो! आप दोनों आज वेगवान् अश्वों सहित जाने वाले, दूर देश में जाने और पहुँचा देने वाले, नायक पुरुषों को ढो ले जाने वाले उत्तम वेगवान् रथ को जोड़ा करो इसमें ही आप दोनों का विविध प्रकार के कष्टों से मुक्त होना सम्भव है। आप दोनों लेने देने योग्य पदार्थों और अन्नों को मधुर पदार्थ से संयुक्त करो। इसीलिये इस प्रकार सुखप्रद स्थान को जाया करो। और इस प्रकार उत्तम ओषधि रस और ऐश्वर्य का सेवन करो।

जोष्यंग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम्। विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् अग्रणी नायक! जिस प्रकार अग्नि समिधा अर्थात् काष्ठ को सुख से लेता, उनको जला देता है, उसी प्रकार तु भी उत्तम अग्नि या कान्ति के उत्पादक साधन या क्रिया का सेवन कर। अग्नि जिस प्रकार घृत आदि की आहुति चाहता है उसी प्रकार तू भी आदरपूर्वक सत्कार और दान को स्वीकार कर। तू जनों के हितकारी उत्तम अन्न और वेदज्ञान का सेवन कर। और तू उत्तम स्तुतिवचन का सेवन कर। हे प्रजा के बसाने वाले! तू समस्त गुणों और व्यवहारों की कामना करता हुआ, सब अधिकारियों सहित, कामना करने वाले, तथा अपने से गुणों और अनुभवों में बड़ों को ऋतु अनुसार उत्तम अन्नादि पदार्थों का उपभोग करा। इति प्रथमो वर्गः ॥

[३८]

स्वयं उस जगत् को अपनी रक्षा में स्वीकार करके उसे कुशल-क्षेम युक्त दशा में रखता है।

विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥

भा०—सबसे ऊपर विराजने वाला सर्वाध्यक्ष परमेश्वर समस्त जगत् के शीघ्र सञ्चालन और सुख के लिये, अति विस्तृत हाथों वाला होकर, मानो अपनी बाहुओं को दूर २ तक फैला रहा है। इसी कारण जल-धाराएं उसके शासन में रहकर सर्वत्र अति शुद्ध करने वाले होकर सब ओर क्रीड़ा कर रहे हैं, और उसी के शासन में यह गतिमान् वायु भी आकाश में क्रीड़ा कर रहा है।

आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर जिन पुरुषों को व्यापनशील सब प्रकार से शुद्ध उपायों से मुक्त कर देता है, उनमें से निश्चय से अपने समीप आने वाले पुरुष को आत्मा को खूब आनन्दित और हर्षित करता है। और साक्षात् मेघ के समान दयालु आनन्दघन प्रभु स्वरूप को प्राप्त होने वाले पुरुषों की प्रभु को प्राप्त करने की इच्छा को भी यह नियम से पूर्ण करता है। और उस सर्वोत्पादक प्रभु के व्रत उपासना आदि अनुष्ठान करने के अनन्तर ही सब बन्धनों से छुड़ाने वाली मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है।

पुनः समव्यद्वितंतं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥

भा०—विस्तृत जगत् को व्यापने वाली प्रकृति बार २ इस विस्तृत जगत् को अच्छी प्रकार व्यापती है, और जगत् को सृजती और संहारती है, और उस जगत् के बीच धारण करने में समर्थ परमेश्वर शक्ति से करने योग्य कर्मबल को सब प्रकार से धारण किये रहता है। वह

अन्धकार को दूर करके समस्त प्रकृतिजन्य संसार के ऊपर शासक रूप से स्थित रहता है। वही ऋतुओं को भी विविध विभागों में बांटता और धारण करता है। वही सबका प्रकाशक और सर्वोत्पादक तथा अति अधिक ज्ञानवान् होकर सर्वत्र व्यापक होकर रहता है।

नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५॥२॥

भा०—जिस प्रकार द्वारों में प्रवेश करने वाला अग्नि अर्थात् सूर्य का प्रभावशाली तेज नाना घरों में और समस्त प्राणियों को विशेष रूप से व्यापता है, उसी प्रकार अग्नि के समान चमकने वाला, समस्त जगत् का उत्पत्तिस्थान, तेजःस्वरूप, सब द्वारों अर्थात् मार्गों में व्यापक परमेश्वर नाना लोकों और समस्त जीवसंसार को वश करता है। जिस प्रकार माता अपने पुत्र को सबसे उत्तम पदार्थ देती है और उत्पादक पिता द्वारा इस पुत्र का ज्ञान-शिक्षण आदि कार्य उसके बाद देना अभीष्ट होता है, उसी प्रकार सब जगत् की माता परमेश्वर उत्पन्न जीव संसार को सबसे उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करता है और उस सर्वोत्पादक परमेश्वर द्वारा ही इस जीवसंसार को ज्ञान भी निरन्तर अनुकूल रूप से प्रेरित करता है।

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत्।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष संसार के विषम मार्गों पर विजय करता हुआ, दिग्विजय के इच्छुक वीर राजा के समान, विशेष मान आदरपूर्वक स्थित होकर, शिक्षा प्राप्त करके समावर्त्तन द्वारा लौट आता है। वह समस्त विचरने वाले प्राणियों और सेवकादि का प्रेमपात्र होकर घर में आकर रहे। वह नित्य नियमपूर्वक कार्य करने हारा होकर धर्म के विपरीत कर्म और ज्ञान को, बिगड़े अन्न के समान त्याग कर प्रकाश रूप में स्थित समस्त सूर्य के व्रत का अनुकरण करे।

त्वया॑ हि॒तमप्य॑म॒प्सु भा॒गं धन्वान्वा मृ॑ग॒यसो॒ वि त॑स्थुः ।
वना॑नि॒ विभ्यो॒ नकि॑रस्य॒ तानि॑ व्र॒ता दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्मि॑नन्ति ॥७॥

भा०—हे विद्वन् ! तू समीप प्राप्त प्रजाजनों में प्राप्त करने योग्य सेवनीय अंश को स्थापित कर, मृगगण मरुदेश में जिस प्रकार जल को ढूंढते २ फिरा करते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्य और ज्ञान की खोज लगाने वाले जिज्ञासु लोग ज्ञान-जल से युक्त पुरुष को विविध प्रकार से प्राप्त हों, और खोजी लोग अपने प्राणों के लिये सेवनीय ज्ञानों और प्रकाशों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त हों। ज्ञान और ऐश्वर्य के दाता, ऐश्वर्यवान् विद्वान् पुरुष के उन नाना व्रतों, नियमों का कोई कभी नाश न करे, नहीं तो॥।

या॒द्रा॒ध्यं॑१ वरु॑णो॒ योनि॒मप्य॒मनि॑शितं नि॒मिषि॒ जर्भु॑राणः ।
विश्वो॑ मार्ता॒ण्डो व्र॒जमा प॒शुर्गा॑त्स्थ॒शो जन्मा॑नि सवि॒ता व्याकः॑ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार जगत् को घेर लेने वाला रात्रिकाल का अन्धकार, सूर्यास्त होने पर, शीतल तथा सेवनीय, जलमय समुद्र को और भूभाग को घेर लेता है, और अण्डों से उत्पन्न समस्त पक्षिगण, तथा पशुगण भी अपने गन्तव्य गृहों या बाड़ों में लौट आते हैं, फिर बाद में प्रात:काल सूर्य सब स्थानों और सब प्राणियों को विशेष रूप से प्रकट कर देता है, उसी प्रकार अज्ञानों का वारक आचार्य ज्ञानमय अन्धकार काल में पालन करता हुआ, शरण में आने वाले शिष्यों से आराधना करने योग्य होकर, सुखदायी तथा प्राणों के लिये हितकर शरण को प्रदान करे। तब 'मार्त्तण्ड' अर्थात् सूर्य के आश्रय पर जीने वाले समस्त जन और चक्षुओं से देखने वाले विवेकी पुरुष अपने गन्तव्य शरण को प्राप्त होते हैं। और वह सबका आज्ञापक तेजस्वी पुरुष सब स्थानों और सब उत्पन्न होने वाले प्राणियों को व्यवस्थित करे। इसी प्रकार परमेश्वर भी प्रलय में सबकी रक्षा करता हुआ सर्गारम्भ में विश्व को प्रकट करता है।

न यस्येन्द्रो वरु॑णो न मि॒त्रो व्र॒तम॑र्य॒मा न मि॒नन्ति॑ रु॒द्रः ।
नारा॑तयस्त॒मि॒दं स्व॒स्ति हु॒वे दे॒वं स॑वि॒तारं॒ नमो॑भिः ॥ ९ ॥

भा०—जिसकी नियम-व्यवस्था को न विद्युत्, न जल, न मेघ, न समुद्र, न वायु और न नियामक सूर्य; न जीवगण और न शत्रुगण ही तोड़ सकते हैं, उस इस साक्षात् सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की हम नमस्कारों से अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करें।

भग॒ं धियं॑ वा॒जय॑न्तः पुर॑न्धि॒ नरा॒शंसो॒ ग्नास्पति॑र्नो अव्याः ।
आ॒ये वा॒मस्य॑ सङ्ग॒थे र॑यी॒णां प्रि॒या दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स्या॑म ॥१०॥

भा०—ऐश्वर्यमय, सुख कल्याण के दाता, ध्यान करने योग्य, समस्त जगत् को धारण करने वाले परमेश्वर का हम स्वयं ज्ञान प्राप्त करें और अन्यों को उसका ज्ञान देने वाले हों। वह सब मनुष्यों से स्तुति किया जाने योग्य पालक प्रभु हम जीवों की और वेदवाणियों की रक्षा करता है। और उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर और समस्त पशु आदि सम्पदाओं के प्राप्त होने पर हम सर्वोत्पादक सर्वप्रकाशक, सर्वप्रद परमेश्वर के प्रिय होकर रहें।

अ॒स्मभ्यं॒ तद्दि॒वो अ॒द्भ्यः पृ॑थि॒व्यास्त्वया॑ द॒त्तं काम्यं॒ राध॒ आगा॑त् । शं यत्स्तो॒तृभ्य॑ आ॒पये॒ भवा॑त्युरु॒शंसा॑य सवित-र्जरि॒त्रे ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर! तूने हमें आकाश से अन्तरिक्ष के और पृथिवी से वह चाहने योग्य जल, अन्न, सुवर्ण रत्नादि ऐश्वर्य दिया है, वह हमें प्राप्त हो। जो विद्वानों को शान्तिदायक और कल्याणकारी हो, आप्त विद्वान् एवं बन्धुजन के लिये शान्तिदायक हो, बहुत से प्रशंसित विद्योपदेश करने वाले गुरुजन को शान्ति सुख देने वाला हो। इति द्वितीयो वर्गः॥

[३९]

गृत्समद ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ५, ३ स्वराट् पंक्तिः ॥

अष्टर्चं सूक्तम्

ग्रावा॑णेव॒ तदिदर्थं॑ जरेथे॒ गृध्रे॑व वृ॒क्षं नि॑धि॒मन्त॒मच्छ॑ ।
ब्र॒ह्माणे॑व वि॒दथ॑ उक्थ॒शासा॑ दू॒तेव॒ हव्या॒ जन्या॑ पुरु॒त्रा ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उत्तम दो उपदेशकों की न्याईं उसी अर्थ अर्थात् प्राप्त करने योग्य परम तत्व ब्रह्म का उपदेश करो। जिस प्रकार गीधों का जोड़ा वृक्ष का आश्रय लेता है उसी प्रकार तुम दोनों वृक्ष के समान आश्रयरूप खजाने के स्वामी को सदा प्राप्त करो। यज्ञ में जिस प्रकार दो ब्राह्मण वेदों के सूक्तों के कहने वाले होकर वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों ज्ञान उपदेश करने के अवसर में वेद के उत्तम वचनों के कहने वाले होकर उपदेश करो। और जिस प्रकार युद्धों के अवसरों में संधि-निग्रह कराने में कुशल और जनों के हितकारक तथा बहुत से पुरुषों के त्राण करने वाले दो दूत अपना संदेश कहते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों उत्तम वचनों द्वारा पुकारे जाने योग्य होकर, उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले और बहुत पदार्थों के रक्षक एवं बहुत पदार्थों के स्वामी होकर जीवन यापन करो।

प्रा॒त॒र्यावा॑णा र॒थ्ये॑व वी॒राजे॑व य॒मा वर॒मा स॑चेथे ।
मेने॑ इव त॒न्वा॒३॒॑ शुम्भ॑माने॒ दम्प॑तीव क्रतु॒विदा॒ जने॑षु ॥ २ ॥

भा०—हे वर और वधू ! रथ में लगने योग्य दो अश्वों के समान या रथ में लगने वाले चक्रों के समान एक साथ मिलकर प्रातःकाल से ही कार्यों में व्याप्त होकर, वीर्यवान् वीर होकर, न उत्पन्न अनादि दो आत्माओं के समान परस्पर एक दूसरे के ऊपर प्रेमयुक्त होकर, यम नियम जितेन्द्रिय होकर, श्रेष्ठ कार्य और धन को प्राप्त करो। और तुम

दोनों एक दूसरे का मान आदर करने वाले दो स्त्री पुरुषों के समान या मेना नामक दो पक्षियों के समान शरीर से शोभायमान और आदर्श पति-पत्नी के समान दाम्पत्य सम्बन्ध का पालन करने वाले होकर, सब मनुष्यों के बीच यज्ञ आदि उत्तम कर्म और श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ करके परस्पर मिलकर रहो।

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥

भा०—दो सींग जिस प्रकार सबसे आगे बढ़कर विरोधी को मारते या आगे बढ़े रहते हैं उसी प्रकार हे वर वधुओ ! तुम दोनों भी गिरि-शिखरों के समान हमारे बीच में प्रथम, उत्तम, अग्रगण्य होकर जीवन व्यतीत करो। दो खुर या दो पैर जिस प्रकार शरीर के नीचे रहकर वेगों से जाने वाले होते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी परस्पर मिलकर, एक दूसरे का आश्रय होकर, दुःखों के पार जाने के साधनों से जाते हुए और सबका पालन पोषण करते हुए आगे बढ़ो। और प्रतिदिन चकवा-चकवी के समान ही उत्तम सुन्दर वचन बोलने हारे और रथ में जुड़ने वाले उत्तम बैलों के समान शक्तिमान् बलवान् होकर आगे की तरफ बढ़ते जाओ।

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव । श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥

भा०—हे वर-वधुओ ! आप दोनों मिलकर दो नावों के समान हमारे दोनों कुलों को दुःख और कर्त्तव्य सागर से पार करो। रथ में लगे जूओं के समान या जूओं में जुड़े अश्वों के समान, रथचक्र के केन्द्र या नाभि में लगे दण्डों के समान, रथ के बीच भाग में भार के सहने वाले बलों। से ओ दो ५०टों के समान और रथ के ऊपर लगे लोहे के दो [illegible] के समान इन सबों से पार करो। और दोनों दायें बायें चलने

वाले दो कुत्तों के समान रक्षक रहकर हमारे शरीरों का कभी हिंसन न करते हुए, कन्धों पर लगे कवचों के समान हमारे शरीरों का नाश न होने देते हुए हमें विविध प्रकार के नाशकारी विपदा से बचाओ।

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक्। हस्ताविव तन्वे३शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों उत्तर-दक्षिण की या पूर्व-पश्चिम की दो समान जरा से रहित होओ। दो नदियों के समान वेग से जाने या परस्पर मिलकर रहने वाले होओ। दो आंखों के समान एक पदार्थ को एक रूप से देखने वाले, प्रेममय होकर, दर्शनशक्ति से युक्त अर्थात् विवेकी होकर आगे जाओ और हमें आगे ले चलो! और आप दोनों दो हाथों के समान और दो पैरों के समान शरीर के लिये शान्ति कल्याण उत्पन्न करने वाले होकर हमें उत्तम २ धनों ऐश्वर्यों को प्राप्त कराओ। इति चतुर्थो वर्गः ॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः। नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥

भा०—मुख के ओठों के समान मधुर वचन बोलते हुए, बच्चों को स्तनों के समान हमें जीवनवृद्धि के लिये पुष्ट करो। दोनों नाकों के समान हमारे शरीर की रक्षा करने हारे और दो कानों के समान हमारे बीच उत्तम रीति से श्रवण करने वाले होकर रहो।

हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि। इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥

भा०—तुम दोनों हमारे बीच मे दो हाथों के समान शक्ति को धारण करने वाले रहो। और जिस प्रकार आकाश और भूमि अपने बीच समस्त लोकों या धूलकणों या जल को धारते हैं उसी प्रकार आप दोनों ऐश्वर्यों और बल वीर्य को अच्छे प्रकार प्राप्त करो और प्राप्त कराओ।

हे वायु-अग्नि के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो ! आप दोनों के कर्त्तव्यों को बतलाने वाली इन वाणियों को, हथियार के शरण के समान अधिक उज्ज्वल करने वाले गुण और कार्य मे आप लोग और अधिक तीक्ष्ण और उज्ज्वल करो ।

एतानि॑ वामश्विना॒ वर्ध॑नानि॒ ब्रह्म॒ स्तोमं॑ गृत्सम॒दासो॑ अक्रन् ।
तानि॑ नरा जुजुषा॒णोप॑ यातं बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥८॥५॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एव अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वामियो ! उत्तम हर्षों और सुखों को चाहने वाले या उत्तम प्रवचनों में हर्षित होने वाले विद्वान् पुरुष, तुम दोनों की शक्तियों और बलों को बढ़ाने वाले साधनों को, वेदोपदेश और ऐश्वर्य को, तथा स्तुति वचन को करें। उनको हे नायक नायिके ! तुम दोनों प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए परस्पर समीप रहकर आगे बढ़ो । हम लोग उत्तम वीरों और वीर्यवान् पुत्र सन्तानादि से युक्त होकर बहुत उत्तम ज्ञान विज्ञान का उपदेश, कथोपकथन और तुम्हारे गुण वर्णन करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[४०]

गृत्समद ऋषिः ॥ १—६ सोमापूषणावदितिश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् पंक्तिः ॥ षड्च सूक्तम् ॥

सोमा॑पूषणा॒ जन॑ना रयी॒णां जन॑ना दि॒वो जन॑ना पृथि॒व्याः ।
जा॒तौ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पौ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥१॥

भा०—सोम अर्थात् उत्पादक पिता और 'पूषा' पोषक माता दोनों नाना प्रकार की पशु-सम्पदाओं के और नाना ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले होते हैं। और वे दोनों सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष और पृथिवी के समान विस्तृत पर का आश्रय और उसके समान बीज को धारण कर उत्पन्न करने वाली मातृ शक्ति के भी उत्पन्न करने वाले होते हैं। वे

दोनों समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों के रक्षा करने वाले होते हैं। उन दोनों को विद्वान् लोग कभी नाश न होने वाले सन्तान रूप 'अमृत' का केन्द्र या उत्पत्तिस्थान बनावें, मानें और जानें। प्रजातिरमृतम् । शत० ॥

सोमः—(१) स्वा वै म एषा इति तस्मात् सोमो नाम। शत० ३।९।४।२२॥ वह पुत्रोत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक प्रजा मेरी ही है। ऐसा कहने वाला पुरुष सोम है।

(२) सोमः राज्यम् आदत्त ११।४।३।३॥ राजा वै सोमः ॥ शत० ११।४।३।३॥ सोमो राजा राजपतिः ॥ १४।१।३।१२॥ स यदाह सम्राड् इति सोमं वा एतदाह । गो० पृ० ५।१३॥ क्षत्रं सोमः ॥ ऐ० २।३८॥ प्राणः सोमः श० ७।३।१।२॥ रेतः सोमः कौ० १३।७॥ सोमो रेतोऽदधात् ॥ तै० १।६।२॥ सोमो वै ब्राह्मणः । ता० २२।२६।५॥

पूषा—इयं वै पूषा । इयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च । शत० ३। ४ । ४ । २ । २५ ॥ इयं वै पृथिवी पूषा । शत० २।५।४।७॥ प्रजननं वै पूषा श० ५।२।५।८॥ पशवः पूषा ऐ० २।२४॥ पूषा भागदुघः २।३।९।४।३॥

सोम राजा है, वीर्य है, वीर्यवान् पुरुष है, ब्राह्मण है। इसी प्रकार पूषा पृथिवी है, माता है, पशु-सम्पदा है, और राष्ट्र में करसंग्रही अधिकारी भी पूषा है। देह में—प्राण और अपान सोम-पूषा हैं, शरीर के और पृथिवी में सुवर्णादि के समान रयि हैं। शुक्रबीज और डिम्ब दिव और पृथिवी हैं। उत्पन्न गर्भ भुवन है। कामनाशील स्त्री पुरुष या उत्पादक तत्व 'देव' हैं।

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥२॥

भा०—ये दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे की कामना करते हुए, एक दूसरे के गुणों को प्रकाशित करने वाले सन्तति रूप से उत्पन्न होकर रहें तो सभी विद्वान् जन उनको भी प्रेम करते हैं। वे दोनों अप्रीतिजनक

अन्धकारों अर्थात् शोक दुःखजनक कारणों और काले कर्मों का विनाश करें। इन दोनों सोम और पूषा अर्थात् उत्पादक और पोषक पति पत्नी रूप गृहस्थों के साथ मिलकर, इनके द्वारा ही अज्ञान विपत्तिमय अन्धकार का नाश करने वाला विद्वान पुरुष और ऐश्वर्यवान् राजा, गृह बनाने वाली भूमि स्वरूप कन्याओं में परिपक्व वीर्य को उत्पन्न होने की व्यवस्था करे। बालविवाहों को सर्वथा रोक दे।

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥

भा०—पुरुष और स्त्री दोनों वीर्य और रज दोनों के आश्रय पर विशेष रूप से बनने वाले, सात धातुओं के चक्रों वाले, विश्व अर्थात् जीव के रहने जिसका नाश नहीं होता ऐसे, योनियों और लोकों में आने जाने वाले, मन के द्वारा सञ्चालित होने वाले, प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान इन पांच प्रकार की रासों या प्रवर्त्तक शक्तियों से युक्त, या नाक, कान, त्वचा, आंख और रसना इन पांच ज्ञानेन्द्रियोंरूप किरणों से युक्त रमण करने योग्य देह को पुष्ट करें।

दिव्य॒न्यः सद॑नं च॒क्र उ॒च्चा पृ॑थि॒व्याम॒न्यो अध्य॒न्तरि॑क्षे।
ताव॒स्मभ्यं॑ पुरु॒वारं॑ पुरु॒क्षुं रा॒यस्पोषं॒ वि ष्य॑तां॒ नाभि॑म॒स्मे ॥४॥

भा०—उन दोनों में से सोम और पूषा अर्थात् पुरुष और स्त्री दोनों में से एक ज्ञान, ऐषणा, कामना और लोक व्यवहार ऊंचा स्थान करता है, और दूसरा भाग्या अर्थात् स्त्री पृथिवी में अग्नि के समान या अन्तरिक्ष में विद्युत् के समान अपनी स्थिति करे। वह गृहस्थ का सर्वाश्रय होने से पृथिवी के समान और पालक पोषक होने से अन्तरिक्षगत वायु के समान रहे। वह पति के अन्तःकरण में निवास करने से भी 'अन्तरिक्ष' में रहता है। वे दोनों हमारे लिये स्वीकार करने योग्य बहुत से धनादि बहुत प्रकार के अन्नादि से पूर्ण, ऐश्वर्य की पुष्टि या वृद्धि करने वाले

मुख्य केन्द्र-गृह को हमारे उपकार के लिये बांधें। (२) देह में एक प्राण मूर्धा में रहता है, दूसरा अपान नितम्ब या नाभि से नीचे रहता है, तीसरा 'अन्तरिक्ष' अर्थात् देह के बीच के खोखले भाग में समान रूप से रहता है। वे दोनों इन्द्रियों की रक्षा करने वाले, उत्तम अन्नपाचक, कान्ति के पोषक नाभि भाग को बांधते हैं। उसको दृढ़ करें।

विश्वा॑न्यन्यो भुव॑ना ज॒जान॒ विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ॥५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों में से एक पृथिवी सब पदार्थों को उत्पन्न करने से 'सोम' है, वह सब प्रकार के भूतों और प्राणियों को उत्पन्न करती है और दूसरा सबको प्रकाश द्वारा दिखाता हुआ प्राप्त होता है, उसी प्रकार पुरुष और स्त्री दोनों में से माता उत्पादक होने से 'सोम' है, वह समस्त सन्तानों को उत्पन्न करे, और दूसरा पुरुष सब गृहस्थ के कार्य को देखता, उस पर निगरानी रखता हुआ आवे। ऐसे दोनों उत्पादक और पोषक माता पिता मुझ पुरुष के धारण करने योग्य कर्मों की रक्षा करें। हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों के द्वारा हम लोग सब मनुष्यों पर विजय करें, सबसे ऊंचे होकर रहें। (२) अपान सब रसों को उत्पन्न करता, प्राण ज्ञानेन्द्रियों से देखता और वाणी से बोलता है। मेरे देह के कर्म या व्यापार को दोनों चलाते, सब देहों पर उन दोनों के बल से हम ऊंचे रहते हैं।

धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु विश्वमि॒न्वो र॒यिं सोमो॑ रयि॒पति॑र्दधातु।
अव॑तु दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—पोषणकर्त्ता पुरुष सब प्रकार की बाधाओं और बाधक शत्रुओं का नाश करने वाला होकर गृहस्थ के धारण पोषण कर्त्तव्य को बढ़ावे। उत्पादक माता ऐश्वर्य की पालिका होकर ऐश्वर्य को धारण करे। कामना करने हारी, उत्तम गुणों से युक्त स्त्री माता होकर पुत्रों का पालन

करे और वह विरोधी जन से रहित हो। हम उत्तम वीर्यवान् होकर ज्ञानसम्पदा में और युद्धों और यज्ञों में बड़े ज्ञान और वेदादि का उपदेश करें। (२) अपान धारण शक्ति बढ़ाता है, और वीर्य 'रयि' इस जड़ देह का पालक होकर इसका धारण करता है। 'अदिति' अर्थात् अखण्ड चेतनाशक्ति तेजोमयी होने से 'देवी' है. वह निर्बाध, सर्वोपरि स्वतन्त्र होकर सबको पालती है। हम उसी की खूब चर्चा करें। इति षष्ठो वर्गः॥

[४१]

गृत्समद ऋषिः ॥ १, २ वायुः। ३ इन्द्रवायू। ४—६ मित्रावरुणौ। ७—९ अश्विनौ। १०—१२ इन्द्रः। १३—१५ विश्वेदेवाः। १६—१८ सरस्वती। १९—२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, ११, १३, १५, १९, २०, २१ गायत्री। २, ५, ९, १२, १४ निचृद् गायत्री। ७ त्रिपाद्गायत्री। ८ विराड् गायत्री। १६ अनुष्टुप्। १७ उष्णिक्। १८ बृहती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—हे वायु के समान बलशालिन्! जो तेरे सहस्रों सैनिकों तथा सहस्रों ऐश्वर्यों के स्वामी महारथी पुरुष हैं तू उनके सहित, खूब युद्ध करने वाले सैनिकों या रथों में नियुक्त अश्वों का स्वामी होकर, ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये आ, प्राप्त हो।

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम योद्धाओं से युक्त सेनापते! वा उत्तम यम-नियमों से युक्त उनके पालन करने वाले जितेन्द्रिय! बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष! आप आओ। यह मैं शीघ्र कार्य करने में कुशल सैनिक और

शुद्धचित्त और तेजस्वी शिष्य होकर तेरे द्वार को प्राप्त होता हूँ। और आप भी ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजन तथा स्नान करने वाले स्नातक के गृह को प्राप्त हों। समावर्त्तन काल में स्नातक गुरु को गृह पर बुलाकर आचार्य की पूजा, आदर सत्कार करता है।

शुक्रस्याद्य गवांशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

भा०—मेघ और वायु दोनों जिस प्रकार लक्षों किरणों से युक्त तथा किरणों के आश्रय रूप तेजस्वी सूर्य को प्राप्त होकर भूमि पर आश्रित जल का पान करते हैं, उसी प्रकार हे मेघ और वायु के समान दानशील और बलवान् पुरुषो! आप दोनों, नियम-व्यवस्था वाले प्रबन्धक और वाणी के प्रधान आश्रय अर्थात् आज्ञापक, तेजस्वी पुरुष के समीप आओ। हे नायक नेता पुरुषो! आप पृथ्वी पर स्थित या गौओं से प्राप्त होने वाले शुद्ध बलवर्धक दुग्ध आदि और ओषधिरसों का पान करो।

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

भा०—हे मित्र के समान स्नेही पुरुष! और वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्रीजन! आप दोनों सत्य को बढ़ाने वाले, सत्य से बढ़ने वाले, जल और धन की वृद्धि करने वाले होवो। हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों का यह उत्पन्न सौम्य पुत्र हो। और आप दोनों मेरा ग्रहण करने योग्य वचन श्रवण करें।

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥७॥

भा०—हे प्रजाओं के रंजन करने वाले, गुणों से शोभा पाने वाले उत्तम राजा रानी, राजा सचिव, गुरु शिष्यो! एवं स्त्री पुरुषो! आप दोनों परस्पर द्रोह न करते हुए, उत्तम स्थायी तथा सहस्रों स्तम्भों वाले घर तथा सभा-भवन में, विराजो, रहो, आश्रय लो। इति सप्तमो वर्गः ॥

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥

भा०—वे दोनों स्त्री पुरुष सूर्य-चन्द्र या सूर्य-विद्युत् के समान तेजस्वी एवं सम्राट् अर्थात् चक्रवर्ती, राजा के समान सबके शास्ता हों। घृतयुक्त अन्न का सेवन करें। अदिति अर्थात् पुत्र के लिये हितकारी एवं एक दूसरे को स्वीकार करने वाले, दान करने योग्य धनैश्वर्य के पालक पति-पत्नी कुटिलता या चोरी, लुका छिपी के भावों से रहित होकर परस्पर किसी प्रकार छल कपट न रखते हुए संगत होवें।

गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले, दुष्टों को रुलाने और मर्यादाओं को पालने वाले होकर, बहुत सी गौवों से युक्त, अश्वों से युक्त तथा मनुष्यों के पालन करने योग्य व्यापार को किया करो।

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥

भा०—हे धनैश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, वर्षणशील उदार पुरुषों को बसाने वाले, बलवान् पुरुषों के बीच में स्वयं रहने वाले वीर पुरुषो ! आप दोनों ऐसे मार्ग पर चलें जिस पर न दूर रहने वाला और न बीच में रहने वाला दुष्कीर्तियुक्त शत्रु आक्रमण कर सके।

ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥

भा०—हे अश्वादि के आरोही पुरुषों के स्वामियो उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे धिष्ण्यो ! उत्तम आसनों के योग्य ! वे आप दोनों उत्तम सेवा और धन को प्राप्त कराने वाले सुवर्ण के समान दिखाई देने वाले ऐश्वर्य को हमें प्राप्त कराओ।

इन्द्रो॑ अ॒ङ्ग म॒हद्भ॒यम॒भी षदप॑ चुच्यवत् ।
स हि स्थि॒रो विच॑र्षणिः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, सर्व-मार्गप्रकाशक होकर बड़े भारी विद्यमान भय को मुकाबला करके दूर कर देता है। क्योंकि वह ही स्थिर, अन्त तक ठहरने में समर्थ, विविध उपायों को देखने और दिखाने वाला, और विविध प्रजाओं का स्वामी है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्र॑श्च मृ॒ळया॑ति नो॒ न नः॑ प॒श्चाद॒घं न॑शत् ।
भ॒द्रं भ॑वाति नः पु॒रः ॥ ११ ॥

भा०—और जब ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वीर राजा, अपना आत्मा और प्रभु परमेश्वर हमें सुखी करता है, तब हमें पीछे और आगे से भी पाप नहीं लगता, पापाचरण हम तक नहीं पहुँचता और साथ ही हमारे आगे पीछे सर्वत्र सुख कल्याण होता है।

इन्द्र॒ आशा॑भ्य॒स्परि॒ सर्वा॑भ्यो॒ अभ॑यं करत् ।
जेता॒ शत्रू॒न्विच॑र्षणिः ॥ १२ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् सबका द्रष्टा परमेश्वर और और विविध विद्वान् मनुष्यों का राजा सब भीतरी और बाहरी शत्रुओं को जीतने हारा है। वही समस्त दिशाओं से अभय करे।

विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मं हव॑म् ॥
एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत ॥ १३ ॥

भा०—हे समस्त विद्वान् पुरुषो ! उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले पूज्य पुरुषो ! आप लोग आइये। यह उत्तम आसन है इस पर आकर विराजिये। हे अध्यक्ष पुरुषो ! यह वृद्धिशील प्रजाजनों का राष्ट्र है इस पर आप अध्यक्ष रूप से रहें। मेरे उत्तम वचन का श्रवण करें !

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।

एत पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों का यह हर्ष को उत्पन्न करने वाला आनन्द ज्ञानविज्ञान से युक्त है। और विज्ञान और सुखों के देने वाले विज्ञान वृन्द और धनसम्पन्न पुरुषों के बीच में है। इस कामना योग्य का पान करो, भोगो।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।

विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्यो ! हे वीर बलवान् पुरुषगण ! आप लोग ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को अपने में सर्वश्रेष्ठ बनाकर धारण करने वाले, दानशील और स्वयं पुष्ट या सम्पन्न होने पर दान देने वाले, या पोषक राजा, पिता, आचार्य आदि को अन्न, कर आदि देने वाले या भूमि के अनुसार दान देने वाले और भूमि से द्रव्य प्राप्त करने वाले दाता। आप मेरे वचन का श्रवण करो। इति नवमो वर्गः ॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥

भा०—हे शिक्षा देने वाली आचार्याणि और हे मातः ! हे अध्यापन करने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! हे उपदेश करने वालों में सबसे अधिक पूज्य ! हे विद्यादि दान करने वाली स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ ! हे उत्तम ज्ञान वाली ! हम उत्तम ज्ञानोपदेश और प्रवचन से रहित अकुशल, मूर्ख, [illegible] के समान हैं। हमें उत्तम ज्ञानोपदेश कर।

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञानवाली विदुषी स्त्रि ! तुझ विदुषी के आश्रय पर ही हमारा समस्त आयु और जीवनसुख आश्रित है। तू सुख और ज्ञान

देने वाले ज्ञानी पुरुषों के बीच में आनन्दित हो और हमारी सन्तान को उपदेश कर।

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति।

या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

भा०—हे उत्तम विज्ञानयुक्त विदुषी स्त्रि! हे ऐश्वर्य अन्न, ज्ञान और बल युक्त! हे सत्याचरण, उत्तम ज्ञान, धनैश्वर्य अन्नादि को स्वीकार करने वाली! तू ये उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त कर, सेवन कर। जिन मनन करने योग्य, मन के प्रिय पदार्थों को, विद्वान् होकर आनन्द प्रसन्न रहने वाले विद्वान् जन, विद्वानों मे प्रदान करते और स्वयं लेते हैं।

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे।

अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

भा०—हे सूर्य और भूमि के समान प्रकाशकों, सेचकों, और उत्पादकों! आप दोनों सत्संग, दान, उपासना आदि उत्तम कर्म और गृस्थादि यज्ञ के कार्य के लिये आगे बढ़ो। आप दोनों को ही हम इस निमित्त अच्छी प्रकार वरण करते हैं और इसी कार्य के लिये अग्रणी नायक का और ग्राह्य ज्ञान और उत्तम अन्न आदि पदार्थ को धारण करने वाले विद्वान् पुरुष का हम वरण किया करते हैं।

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्।

यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥

भा०—सूर्य के समान दोनों ही तेजस्वी और पृथिवी के समान विशाल और सर्वाश्रय होकर, उत्तम ज्ञान और शुभकामना मे एक दूसरे का स्पर्श या प्राप्ति या दान प्रतिदान करने वाले, इस नाना सुखों के साधक उत्तम गृहस्थ, सत्संग, उपासना आदि उत्तम कर्म को विद्वान् पुरुषों के बीच में स्थापित करो।

आ वा॑मु॒पस्थ॑मद्रुहा दे॒वाः सी॑दन्तु य॒ज्ञियाः॑।

इ॒हाद्य सोम॑पीतये ॥ २१ ॥ १० ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप दोनो के समीप ही आप की इस उपस्थिति या गृह में, परस्पर द्रोह न करने वाले, परस्पर सत्संग में विराजने वाले या सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक, वा विद्यादि दान करने में कुशल पुरुष ओषधि अन्न और ऐश्वर्य के पान या उपभोग के लिये आदरपूर्वक विराजें। इति दशमो वर्गः ॥

[४२]

गृत्समद ऋषिः ॥ कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

कनि॑क्रदज्ज॒नुषं॑ प्रब्रु॒वाण इय॑र्ति॒ वाच॑मरि॒तेव॒ नाव॑म्। सु॒म॒ङ्ग॒लश्च॑ शकुने॒ भवा॑सि॒ मा त्वा॒ का चि॑दभि॒भा विश्व्या॑ विदत् ॥१॥

भा०—हे शब्दशालिन् ! वा पक्षी के समान निःसंशय होकर दूर २ तक भ्रमण करनेहारे विद्वन् ! या पक्षी के समान आकाशवत् सर्वोपरि मार्ग से जाने में समर्थ ! खेवट जिस प्रकार नाव को चलाता है, उसी प्रकार आप भी उपदेश करते हुए या आज्ञा प्रदान करते हुए, अर्थात् शिष्यों के प्रति विद्या का प्रवचन या अध्यापन करते हुए, शिष्य को विद्या में उत्पन्न या निष्णात करने वाली उसे विद्या-सम्बन्ध से नया जन्म देने वाली वाणी का प्रदान करें और आप उसके प्रति शुभ मंगलजनक होवो। कोई किसी प्रकार का भी तिरस्कार सर्वसामान्य से आने वाला तुझे प्राप्त न हो। (२) परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—परमेश्वर ही सारा जन्मज्ञापक वाणी को प्रकट करता है एवं वेद का उपदेश करता है, वह शक्तिमान् शान्तिदायक होने से 'शकुन' है। पापनाशक कल्याणजनक होने से 'सुमङ्गल' है। कोई भी 'अभिभा' तिरस्कार या अग्नि आदि उस तक नहीं पहुंचते। वह सबसे परे और ऊपर है। जीवात्मा जन्म को लेता है।

वाणी बोलता है। अंग देह से युक्त होने से 'सुमङ्गल' है। कोई बाहरी ज्योति या नाशकारी शक्ति या आवरण उस तक नहीं पहुँचता।

'शकुनिः'—शक्नोत्युन्नेतुमात्मानम्, शक्नोति नदितुम् इति वा, शक्नोति तकितुम् इति वा, सर्वतः शंकरोऽस्त्विति वा शक्नोतेर्वा।

'मङ्गलः'—मंगलं गिरतेः, गृणात्यर्थे, गिरत्यर्थान् इति वा, मङ्गल-मङ्गवत्। मज्जयति पापमिति नैरुक्ताः। मां गच्छत्विति वा।

मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता। पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन्! प्रजाओं को शान्तिदायक पुरुष! बाज और गरुड़ जिस प्रकार निर्बल पक्षियों को मार डालता है उसी प्रकार बाज के समान आक्रमण करने वाला वेगवान् अश्वारोही शत्रु तुझको न मारे। वेग से जाने वाला रथी भी तुझे न मार सके। बाणादि शस्त्रों से सुसज्जित शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और शस्त्रों को फेंकने में कुशल शत्रु तुझे न पकड़ सके। तू बाप दादों से चली आई सनातन दिशा का अनुसरण करता हुआ, उत्तम आज्ञा और उपदेश करता हुआ, उत्तम कल्याणजनक और सेवन करने योग्य वचन कहता हुआ इस लोक में उत्तम वचन कह।

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते। मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥११॥

भा०—हे शक्तिशालिन्! शान्तिकर! आप घरों के बीच दायें ओर से हमारे बीच विराजकर उपदेश करो। आप उत्तम कल्याणकारी और हितकारी वचन कहने वाले हो। चोर-स्वभाव का पुरुष हम पर शक्तिशाली न हो। पाप की बात कहने या सिखाने वाला पापाचार से शासन करने वाला घोर, क्रूर, हत्यारा हम पर शासन न करे। हम लोग उत्तम वीर्यवान् पुत्रों से युक्त होकर संग्राम और ज्ञान में तुम्हारा बड़ा यश गान करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[४३]

गृत्समद ऋषिः ॥ कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २ निचृज्जगती ।
२ भुरिगतिशक्वरी ॥ तृच सूक्तम् ॥

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥

भा०—जिस प्रकार पक्षीगण आकाश में चक्कर लगाते हुए ऋतु २ के अनुसार अपनी २ बोली बोलते हैं, उसी प्रकार शक्तिशाली वीर पुरुष और शान्तिकारक विद्वान् जन शिल्पीजन और कर्मनिष्ठ ज्ञानोपदेश करने वाले उत्तम जन, दक्षिण हाथ या आदरणीय स्थान पर विराजकर, ज्ञान और पदाधिकार के अनुसार आज्ञा आदि वचन कहते हुए उपदेश दिया करें। वे सान्त्वना देने वालों या साम उपाय के वक्ता दूतों और मन्त्र का उपदेश करने वालों और साम गायन करने वाले विद्वानों के समान, दोनों प्रकार की अर्थात् ऐहिक और पारमार्थिक, स्वपक्ष और परपक्ष दोनों के अनुकूल या सन्धि और विग्रहयुक्त वाणियों के समान सुख-दुःख दोनों की जनक वाणियों को विवेकपूर्वक कहें। और साम गायन करने वाला पुरुष जिस प्रकार गायत्री और त्रिष्टुभ छन्दों से उत्पन्न साम को गान करके उत्तम शोभा पाता और श्रोताओं का मन अनुरञ्जित करता है, उसी प्रकार राजदूत 'गायत्र' अर्थात् प्रार्थना स्तुतिकर्त्ता का त्राण करने वाले, और 'त्रैष्टुभ' अर्थात् उत्साहादि त्रिविध शक्तियों से शत्रु का नाश करने वाले राष्ट्रबल को प्राप्त करके, सूर्य के समान चमकता है। इसी प्रकार विद्वान् उपदेश ब्राह्मणवर्ग को और क्षात्रवर्ग को अपने वश करके प्रकाशित हो या उनको अनुरञ्जित करे।

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिशालिन् ! हे शान्ति करने हारे ! विद्वन् ! राजदूत ! उद्गाता जिस प्रकार साम का गान करता है उसी प्रकार तू उत्तम पद से आज्ञा देने वाला होकर समता को उत्पन्न करने वाले तथा शान्तिकारक वचन का उपदेश कर। ब्रह्म अर्थात् चतुर्वेदवेत्ता का पुत्र या शिष्य जिस प्रकार यज्ञों मे वेदमन्त्रो और सूक्तों का उच्चारण और प्रवचन करता है उसी प्रकार तू भी महान् राष्ट्र का सच्चा पुत्र उसको दुःखों से त्राण करने वाला होकर, ऐश्वर्यों के निमित्त और अभिषेक कालों मे शासन कर, उत्तम वचन कह। जिस प्रकार वृष्टिकर्त्ता मेघ प्रजायुक्त भूमियों पर आकर गर्जता है उसी प्रकार तू भी सन्तानो से युक्त प्रजाओं और गृहस्थ स्त्रियों को प्राप्त होकर घरों २ मे जाकर, हमें सब प्रकार कल्याणकारी वचन का उपदेश किया कर। हे शक्तिशालिन् ! शान्तिकारक ! तू हमें सब प्रकार से धर्मानुकूल पुण्य वचन कहा कर।

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ३।१२।४।१२

भा०—हे शान्तिदायक ! शक्तिशालिन् ! तू जब भी बोले तब २ दूसरों के कल्याणकारी वचन ही कहा कर। और जब तू मौन बैठे तब भी हमारे लिये शुभ संकल्प किया कर। कद्दू का फल जब जल मे तैरने वाला हो जाता है, अर्थात् सूख जाता है, तभी वह वाद्य मे लग कर सुरीला शब्द करता है, उसी प्रकार तू भी जब उत्तम पद पर आरूढ होकर और प्रधान कार्यकर्त्ता होकर बोले तब शुभ ही वचन कह। मदमत्त या गर्वी होकर कुवाच्य मत कर। हम उत्तम वीर और बलवान् पुत्रों से युक्त होकर संग्राम और यज्ञ मे तेरे बड़े यश का वर्णन करें। इति द्वितीये मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः ॥ इति गात्संमदं द्वितीयं मण्डलम् ॥ इति द्वादशो वर्गः ॥

इति द्वितीयं मण्डलम्

अथ तृतीयं मण्डलम्

[१]

गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ९, ११, १२, १५, १७, १९, २० निचृत् त्रिष्टुप्। २, ६, ७, १३, १४ त्रिष्टुप्। १०, २१ विराट् त्रिष्टुप्। २२ ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्। ८, १६, २३ स्वराट् पंक्तिः। १८ भुरिक् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! सोम अर्थात् वीर्य के बल का मुझको उपदेश कर। ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने तथा संग्राम के कार्य में लग रहने के लिये मुझे कार्यभार उठाने में समर्थ बना। मैं साक्षात् तेजस्वी होकर उत्तम गुणों और शक्तियों को प्राप्त करूं। मैं मेघ के समान दुःखों संतापों को शान्त करने वाले को प्राप्त होकर शान्ति प्राप्त करूं। हे विद्वन् ! तू अपने शरीर को प्रेम से रख।

प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥

भा०—हम लोग परस्पर के संग और विद्या आदि दान को उन्नति की ओर ले जाने वाला बनावें। जिससे ज्ञान की वाणी बढ़े। अग्नि को जिस प्रकार समिधाओं द्वारा अधिक तीव्र किया जाता है उसी प्रकार सज्जनों और उत्साहजनक वचनों से और नमस्कार और विनय व्यवहार से नेता पुरुष का सब लोग सेवा करें। आकाश से जिस प्रकार मेघ जल प्रदान करते हैं और तेजस्वी सूर्य से जिस प्रकार किरणें प्रकाश देता है

उसी प्रकार प्रकाशमय प्रभु या उत्कृष्ट आचार्य से शिक्षा प्राप्त मेधावी, विद्वान् पुरुषों में से विद्वान् लोग नाना ज्ञानों का उपदेश करें। वे उत्तम बुद्धिमान् और बलवान् पुरुष को ज्ञान मार्ग दें।

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३ ॥

भा०—उत्तम बुद्धि से युक्त, ज्ञान और कर्म में पवित्र और उत्तम बलवान्, सबका उत्तम बन्धु के समान प्रेमी विद्वान्, अपने जन्म से, सूर्य के समान तेजस्वी राजा और पृथिवी के निवासी प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है। विद्वान् लोग जलों के बीच प्रकाशक विद्युत् के समान प्रजाओं के बीच गुणों और तेज से दर्शनीय एवं प्रजा के व्यवहारों के देखने वाले पुरुष को अवश्य प्राप्त करें। और उसी को स्वयं आगे बढ़ने वाली प्रजाओं के काम में भी अग्रणी नायक रूप से प्राप्त करें।

अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्या॑रुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्र की सात बड़ी शक्तियां अर्थात् स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य, उत्तम ऐश्वर्य शील, युद्ध में शीघ्रगामी तथा शुभ कर्मों वाले, रोषरहित उज्ज्वल पुरुष को बड़े सामर्थ्य से बढ़ाती हैं। जिनको अपने पुत्र न हों ऐसी भगिनियां जैसे नवजात शिशु को लेने पुचकारने के लिये प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार विद्याओं में व्याप्त विद्वान् जन और अश्वारोही वीर पुरुष और उनकी सेनाएं तथा विजयेच्छुक राजपुरुष और विद्वान् पुरुष उस प्रसिद्ध अग्रणी नायक पुरुष को सब ओर से प्राप्त होते हैं। और जन्म होने पर जिस प्रकार धाइयां बालक का सुन्दर रूप बनाती हैं उसी प्रकार वे राजा बनने पर उसके तेज को बढ़ाते हैं।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥१३॥

भा०—विद्वान् और बलवान् पुरुष, शीघ्रता से कार्य करने में समर्थ शरीर और राष्ट्र के अंगों से ऐश्वर्य को सब प्रकार से बढ़ाता हुआ और शुद्ध आचार विचार और वाणी वाले क्रान्तदर्शी विद्वानों से अपनी बुद्धि और कर्म को पवित्र करता हुआ, जलों के बीच में तेज और जीवन को धारण करने वाले विद्युत् के समान आप्त प्रजाओं के बीच तेज को वस्त्र के समान धारण करता हुआ, उनके जीवनों को और बड़ी अक्षय सम्पदाओं को उत्पन्न करता और बढ़ाता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

बभ्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार न गर्जने वाली तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न जलधाराओं को विद्युत् व्यापता है, उसी प्रकार राजा भी सब प्रकार से स्वयं ऐश्वर्य का भोग न करने वाली, नाश न करने योग्य, उसकी कामना करने वाली, उसके पुत्रतुल्य, उसके शरण में आई हुई, उत्तम वस्त्र आभूषण से आच्छादित प्रजाओं को प्राप्त हो। और वे सनातन से विद्यमान, चार वर्ण और पूर्व के तीन आश्रमों से युक्त, तथा उसको सेवने वाली प्रजाएं, सुन्दर बालक को एक ही गृह में रहने वाली स्त्रियों के समान, एक ही ग्रहण करने योग्य वरणीय नायक का धारण पोषण करें।

स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम्। अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार घृत अर्थात् वर्षा रूप से क्षरने योग्य जल के आश्रयभूत अन्तरिक्ष में मधुर जलों के बहाने में, इस सूर्य के ७ किरण सब बनाकर कार्य करते हैं, और वे ही नाना रूप वाली अति विस्तृत भूमियों का सेवन करते रहते हैं, उसी प्रकार इस पुरुष के घर पर लघु रूप में बहुत सी संख्या में एक, दूर २ तक फैली हुई, नाना वर्णों वाली,

दुग्धादि सेचन करती हुई गौवें घी और नाना मधुर पदार्थों के बहाने के लिये विद्यमान हों। और उस घर में दर्शनीय गृहपति के माता और पिता दोनों उत्तम आचारों वाले हों।

वभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८॥

भा०—हे बल से उत्पन्न और बल के प्रेरक! जिस प्रकार अग्नि तेजस्वी और बलवान् रूपों को धारण कर चमकता है उसी प्रकार तू भी उज्ज्वल दृढ़ शरीरों को धारण करता हुआ, और पुष्ट करता हुआ विशेष रूप से प्रकाशित हो। तथा जहां क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान और उद्योग से बलवान् पुरुष बढ़ता है वहां मधु और घी आदि सुखकारी पुष्टिकारक पदार्थों की समृद्धियां झरती हैं, अनायास प्राप्त होती हैं।

पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥

भा०—पालक सूर्य से जिस प्रकार जन्म लेकर मेघ उत्पन्न होता है, और वही सूर्य जिस प्रकार इसकी जलधाराओं को उत्पन्न करता है, और नाना गर्जनाएं भी उत्पन्न करता है, उसी प्रकार यह जीव भी जन्म से ही अपनी पालिका माता के दुग्ध से भरे स्तन को प्राप्त करता है, वह स्वयं इस स्तन की धाराओं को उत्पन्न करता है, नाना चीत्कार आदि को भी उत्पन्न करता है। वह कल्याणकारी मित्रों सहित पहले अपने घर में विचरता है, और बड़ा होने पर दिव्य मित्रों सहित घर से बाहर भी विचरता है। (२) पुत्र के समान शिष्य पालक आचार्य से जन्म लाभ करके ज्ञानरस के धारक वेद को प्राप्त करे। उसके उपदेश की नाना वाणियों का विविध प्रकार से अभ्यास करे। विविध विद्याओं को ग्रहण करे। उत्तम मित्रों सहित बुद्धि मार्ग में विचरते हुए, बुद्धि द्वारा विद्या की दीप्तियों को प्राप्त कर, बड़ी शक्तियों से भी कोई उसे परास्त नहीं करे।

पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ॥१०॥१४॥

भा०—पुत्र बल होकर अकेला ही पिता के और उत्पन्न करने वाली माता के भी पेट को भरता है। वह पुष्टियों से पूर्ण और पुष्ट करने वाली दूध के धाराओं का पान करे। पति पत्नी होकर रहने वाले और समान रूप से एक दूसरे को प्रेमपाश में बांधने वाले होकर दोनों इस बलवान् तथा शुद्ध पवित्र सन्तान के लिये ही होते हैं। हे पुत्र ! तू भी मननशील पुरुषों के लिये हितकारी होकर उन दोनों का निरन्तर पालन कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥

भा०—शिष्य हर्ष में दण्डित या पीड़ित न करने वाले अति विस्तृत ज्ञानवान् गुरु के अधीन रहकर बढ़े और पूर्व विद्वानों से प्राप्त एवं सुपरीक्षित आप्त विद्वान् आगे बढ़ने वाले शिष्य को बल और कीर्ति से और भी बढ़ाते हैं। वह शम दम आदि से जितेन्द्रिय चित्त होकर, सत्यज्ञान के आश्रय परम प्रभु में सोवे, उसी में रमे। वह स्वयं अनादि गुणों का ज्ञान करने वाली, स्वयं अपने २ मार्ग या व्यवसाय उद्योग में जाने वाली प्रजाओं के कार्यव्यवहार के आश्रय पर बढ़े।

अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥

भा०—अग्नि के समान तेजस्वी, अन्यों को मार्ग बतलाने हारा विशाल पालक स्थिर सा भी और किसी प्रकार भी आक्रमण न करने योग्य होकर समस्त प्रजा का भरण पोषण करने हारा हो। वह बड़ी २ भूमियों और रूप प्रजाओं के संग्रामों तथा संगतिस्थानों और समानों में भी दर्शन करने योग्य, अपने को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले गुरु के हित के

लिये, तथा अपत्य के समान प्रजाजन के लिये, विद्या और दीप्ति से प्रकाशमान होकर और ऋजु स्वभाव वाला हो। जो पिता के समान उत्पादक होकर किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार मेघ से जलधाराएं उत्पन्न करता है उसी प्रकार समस्त प्रजाओं के ऊपर प्रकट हो। वह प्रजाओं को अपने आश्रय में धारण करने में समर्थ सर्वश्रेष्ठ नायक और महान् हो।

अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम्।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥

भा०—जो वीर विद्वान् पुरुष उत्तम ऐश्वर्य से युक्त शत्रु को सताप देने की शक्ति को धारण करने वाले वीर पुरुषों के जत्थे के जत्थे उत्पन्न कर देता है, विजय के इच्छुक लोग अपने चित्त से उसको ही प्राप्त प्रजाओं को वश करने हारा, दर्शनीय, विशेष तेजस्वी, रूपवान् जानकर उससे संगत होते हैं, उससे मिल जाते हैं और उस अग्नि के समान सबसे अधिक व्यवहारोपयोगी, गुणों में प्रसिद्ध और बड़े बलवान् की ही पूजा करते हैं। (२) अथवा—वरण करने वाली नवयुवती, सौभाग्यवती होकर जलों के बीच विद्युत् के समान प्राणों के बीच मुख्य, दर्शनीय, विशेष रूपवान् भव्य पुत्र को उत्पन्न करे। जिसको विद्वान् पुरुष चित्त से या ज्ञान से संयुक्त रें।

बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४॥

भा०—बड़ी दीप्तियां तथा अति शुक्ल वर्ण वाली विचित्र कान्तियां जिस प्रकार दीप्तियुक्त अग्नि को प्राप्त हैं, उसी प्रकार बड़े २ तेजस्वी, वीर्यवान्, विविध विद्याओं से चमकने वाले पुरुष भी, नाना दीप्तियों वाले धर्मात्मा, तथा ज्ञानवान् अग्रणीनायक को एवं परमेश्वर को प्राप्त हों। और जल भरने वाले लोग जिस प्रकार अपनी गुफा में अग्नि का सेवन करते हैं, उसी प्रकार अपने अपार बड़े भारी राष्ट्र में अन्न पूर्ण करते हुए

लोग अपनी राजसभा के बीच में ज्ञानवृद्ध अग्रणी नायक को प्राप्त करें, उनका सत्संग करें। (२) इसी प्रकार अमृत आत्मा का रस दोहन करने वाले 'गुहा' अर्थात् बुद्धि में अपने अपार महान्, समुद्र के समान गम्भीर, सर्वाश्रय अन्तरात्मा में ही उस महान् ज्ञानमय प्रभु को प्राप्त करें।

ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥१५॥

भा०—हे अग्रणी नायक! मैं तुझे प्राप्त होने और कर आदि देने वाला प्रजाजन तुझको स्वीकार करने योग्य नाना ऐश्वर्यों सहित आदर करता और मान पद प्रदान करता हूँ। तुझे खूब चाहता हुआ, तुझसे शुभ मति, उत्तम ज्ञान, और तेरी मित्रता चाहता हूं। तू स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन के हितार्थ, विद्वान् पुरुषों और विजयेच्छुक वीर पुरुषों द्वारा, रक्षा आदि उपाय अच्छी प्रकार कर। और दमन करने योग्य सैन्यों से हमारी रक्षा कर। इति पञ्चदशो वर्गः॥

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥ १६ ॥

भा०—हे उत्तम और प्रयत्नयुक्त नीति वाले राजन्! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले विद्वन्! हम लोग तेरे अधीन या तेरे समीप निश्चय और दृढ़ता से रहने वाले और सब प्रकार के धन प्राप्त कराने वाले उत्तम साधनों को धारण करते हुए, उत्तम वीर्य और अन्न ज्ञान और यश से बलवान् और दानशील होकर, विद्वानों के विरोधी युद्धशील पुरुषों को नीचा दिखावें।

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान्।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! तू समस्त वेदरूपी काव्यों को जानकर, विद्वानों के बीच में सबको आनन्द देने वाला और सबको ज्ञान देने हारा सब

प्रकार से हो और मन आदि इन्द्रियों को दमन कर जितेन्द्रिय होकर, साधारण प्रजाजनों को वसा और महारथिओं के बीच रमण करने वाला महारथी होकर तू सबको वश करता हुआ विजयेच्छु वीरों और दानशील तेजस्वी पुरुषों का अनुसरण कर।

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन्।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

भा०—घी से प्रज्वलित होने वाले अग्नि या तेज से चमकने वाले सूर्य के समान तेजस्वी राजा विद्वानों के द्वारा ज्ञात सभी ज्ञानों को जानता हुआ, और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों संग्रामों और यज्ञों को साधता हुआ, मनुष्यों के बीच विशाल घर में अमृत अर्थात् मृत्यु-धर्म से रहित, दीर्घायु होकर विराजे और पृथिवी में विशेष रूप से सूर्य के समान प्रकाशित हो।

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्र सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू हमें मङ्गलमय मित्रताओं, सौहार्दों सहित प्राप्त हो। और तू सबसे बड़ा, बड़ी पूजनीय ज्ञान और ज्ञान और रक्षाओं से प्राप्त होता हुआ, हमें बहुत सा दुःखों से भली प्रकार तारने वाला, उत्तम वाणी से युक्त, सेवने योग्य, हमारा कीर्त्तिजनक ऐश्वर्य उत्पन्न कर।

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम्।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०॥

भा०—हे अग्रणी नायक! इन सेवन करने योग्य और अद्भुत कर्मों को मैं विद्वानों से उत्पन्न तेरे हित के लिये उपदेश करता हूं। ये बड़े २ ऐश्वर्य सब बलवान् पुरुष के लिये बने हैं। सब जनों में विद्वान् पुरुष ही उत्तम पद पर स्थिर किया जाता है। (२) अध्यात्म में—हे जीव!

पूर्वकाल से आए हुए तुझको तेरे पुराने और नये जन्मो को मैं अच्छी प्रकार बतलाता हूँ। ये सब बड़े २ जन्म उसी देहादि के प्रबन्धक आत्मा के भोग के लिये बने हैं। प्रत्येक जन्म या उत्पन्न देह मे उत्पन्न बुद्धि का स्वामी आत्मा निबद्ध होता है।

जन्मंञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजंस्रः।
तस्यं वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥

भा०—प्रत्येक जन्म मे या प्रत्येक उत्पन्न होने वाले देह में कभी नाश न होने वाला नित्य आत्मा ही, सबके स्नेही या आत्मा के स्नेही विद्वान् पुरुषो ने प्रकाशित किया, जाना और अनुभव किया और जगाया है। उस पूजनीय आत्मा के ही उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने के निमित्त हम सब कल्याणकारक उत्तम चित्त के भाव मे रहा करें। (२) राजा, विद्वान् पक्ष में—प्रत्येक कार्य तथा प्रत्येक पदार्थ पर विद्वान् को अधिष्ठाता रूप से स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मति के अधीन रहकर हम उत्तम चित्तभाव मे रहा करें।

इमं यज्ञं संहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो ररांणः।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यंजस्व ॥२२॥

भा०—हे बलवान् पुरुष ! हे उत्तम ज्ञान और कर्म वाले ! तू हमारे इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र को विद्वान् वीर और दानशील पुरुषो के अधीन कर। हे दानशील ! तू सदा आनन्द प्रसन्न रहता हुआ, हमारी बड़ी २ सेनाओं को अच्छी प्रकार नियम मे रख। हे तेजस्विन् ! हम प्रजाओं को बड़ा धन और बल दे, प्राप्त करा। (२) हे सर्वशक्तिमन् प्रभो ! हमारी इस आत्मा को प्राणों के बीच सुरक्षित रख। तू हम मे रमता रह। हमारी बड़ी २ कामनाएं पूर्ण कर। बड़ा भारी ऐश्वर्य तथा ज्ञान दे।

इळांमग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शंश्वत्तमं हवंमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥१६॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! राजन् ! तू स्तुति करने योग्य वाणी और भूमि को और बहुत से कर्म करने के आश्रय भूत गवादि पशुओं के दान को, दाता के लिये सिद्ध कर। हमारा पुत्र और पौत्र भी विविध सन्तानों और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध हो। हे अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! तेरी वह शुभ मति और ज्ञान हमारे कल्याण के लिये हो। इति षोडशो वर्गः॥

[२]

विश्वामित्रः ऋषि.॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता॥ छन्द.—१, ३, १० जगती। २, ४, ८, ६, ९, ११ विराड् जगती। ५, ७, १२, १३, १४, १५, निचृज्जगती च॥

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति १

भा०—अग्नि के बढ़ाने के लिये जिस प्रकार पवित्र घृत को तैयार करते हैं उसी प्रकार सत्य न्यायाचरण को बढ़ाने वाले सब मनुष्यों के बीच में सबके नायक रूप से विराजमान होने योग्य अग्रणी प्रधान पुरुष को बढ़ाने और उत्पन्न करने के लिये, हम उत्तम प्रगल्भ बुद्धि को और अधिष्ठातृरूप से भोगने योग्य पदवी को उत्पन्न करें। साधारण मनुष्य और विद्वान् पुरुष दोनों वर्ग उस राष्ट्रपति पद को स्वीकार करने वाले नायक को, रथ को औजार के समान, अच्छी प्रकार तय्यार करें।

स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः॥२॥

भा०—वह विद्वान् और तेजस्वी पुरुष सूर्य और अग्नि के समान ही अपने जन्म या प्रादुर्भाव से ही आकाश और भूमि के समान पालक एवं उपदेश करने वाले माता और पिता या आचार्य कुल दोनों को प्रकाशित करे। वह माता और पिता या मान करने वाली माता और मान अर्थात् ज्ञानदाता आचार्य दोनों का ही स्तुति योग्य और अभिलषित प्रेम पात्र

पुत्र हो। वह अग्नि के समान तेजस्वी होकर 'हव्य' अर्थात् दान और प्रतिग्रह करने योग्य अन्न, द्रव्य रत्नादि को वहन करने हारा, जरारहित, युवा, अन्न से परिपुष्ट, रोग, आदि से न मारे जाने योग्य, अजेय, विशेष दीप्ति को अपने में बसाने वाला, कान्तिमान्, प्रजाओ के बीच विद्यादि गुणो में सबसे ऊपर रहने से अतिथि के समान पूज्य हो।

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३॥

भा०—दानशील, स्वर्गादि सुखो वा काम्यफलों के चाहने वाले जिस प्रकार बलवान्, सबको पार उतारने वाले परमेश्वर के विविध कर्मों को धारण करने वाले यज्ञ या उपासना कार्य में नाना चयन आदि क्रियाओं से दीप्तिमान् अग्नि को उत्पन्न कर लेते हैं, उसी प्रकार क्रिया और प्रज्ञा के सामर्थ्य से बलवान् और ज्ञानवान्, संकट से पार उतारने वाले, प्रधानपद को विशेष रूप से धारण करने वाले शासनकार्य में विद्वान् तथा व्यवहारकुशल पुरुष, नाना ज्ञानोत्पादक विधियो और नाना संज्ञापक पदवियों और घोषणाओं से अग्रणी नायक रूप में दीप्ति से युक्त तेज से चमकने वाले पुरुष को, उत्पन्न करते हैं। और जिस प्रकार युद्ध में जाने वाला योद्धा बड़े वेगवान् अश्व को तैयार करता है उसी प्रकार ऐश्वर्य का सेवन करने की इच्छा वाला मैं प्रजाजन बल से महान् सबको अतिक्रमण करने वाले पुरुष की याचना करता हूँ, ऐसे पुरुष को प्राप्त करूं।

आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम्।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥

भा०—जिस प्रकार ऐश्वर्य का विभाग करने के इच्छुक या उसको चाहने वाले लोग ज्ञानी पुरुष को प्राप्त करते है, उसी प्रकार सबको आनन्द देने वाले पुरुष के सर्वश्रेष्ठ, लज्जा न दिलाने वाले परम ज्ञान को स्वयं सेवन करने और अन्यो को प्रवचन द्वारा दान करने वाले हम लोग,

सदा पाप मल आदि के भस्म करने वाले तेजस्वी पुरुषों के बीच में दानशील, तेजस्वी और हृदय से शिष्य को चाहने वाले, दिव्य कान्ति से प्रकाशमान, क्रान्तदर्शी प्रज्ञा से युक्त, ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को आचार्य, गुरु और उपास्य रूप से वरण करें।

अ॒ग्निं सु॒म्नाय॑ दधिरे पु॒रो जना॒ वाज॑श्रवसमि॒ह वृ॒क्तब॑र्हिषः।
य॒तस्रु॑चः सु॒रुचं॑ वि॒श्वदे॑व्यं रु॒द्रं य॒ज्ञानां॒ साध॑दिष्टिम॒पसा॑म् ॥१७

भा०—जिस प्रकार यज्ञवेदी में कुशाएं बिछाने हारे याज्ञिक लोग, सुख प्राप्त करने के लिये अपने आगे अग्नि का आधान या स्थापन करते हैं, उसी प्रकार विस्तृत प्रजाओं के स्वामी प्रजास्थ जन, सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये, बल और ऐश्वर्यों को अन्न के समान भोगने वाले अथवा युद्धों में कीर्त्तिमान्, उत्तम दीप्ति और रुचि वाले, विजयेच्छुक सैनिकों के हितकारी, दुष्टों को रुलाने वाले, दान देने और सत्संग करने वाले लोगों की और कर्म करने वाले उद्यमी लोगों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले, अग्रणी नायक को, सबसे पूर्व या सबके समक्ष अध्यक्ष रूप से स्थापित करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

पाव॑कशोचे॒ तव॒ हि क्षयं॒ परि॒ होत॑र्य॒ज्ञेषु॑ वृ॒क्तब॑र्हिषो॒ नरः॑।
अग्ने॒ दुव॑ इ॒च्छमा॑नास॒ आप्य॒मुपा॑सते॒ द्रवि॑णं धेहि॒ तेभ्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे नायक! हे पवित्र करने वाले तेज को धारण करने वाले, हे सुख ऐश्वर्यादि के देने वाले! पृथिवीराज्य को बढ़ाने वाले नेताजन, संगत होने योग्य अवसरों, युद्धों और सभा भवनों में तेरी सेवा करने की इच्छा करते हुए, प्राप्त करने योग्य तेरे ही निवास गृह की शरण लेते हैं। तू उनको धन आदि प्रदान कर।

आ रोद॑सी अपृण॒दा स्व॑र्म॒हज्जा॒तं यदे॑नम॒पसो॒ अधा॑रयन्।
सो अ॑ध्व॒राय॒ परि॑णीयते क॒विरत्यो॒ न वाज॑सातये॒ चनो॑हितः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि आकाश और पृथिवी में व्याप्त हो रहा है,

और महान् तथा उत्पन्न और प्रकाशस्वरूप को क्रिया वाले जीव धारण करते हैं, वही अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर जीवन को नाश न होने देने वा यज्ञ के लिये प्राप्त किया जाता है, वह रथ में लगे अश्व के समान देह में अन्न को अंग २ में विभक्त कर देने के लिये पाचन करने के लिये उपयुक्त है, उसी प्रकार प्रज्ञावान् पुरुष माता और पिता दोनो का अच्छी प्रकार पालन करे। बड़े भारी उत्पन्न सुख को पूर्ण करे। कर्मनिष्ठ, श्रमी, उद्योगी लोग उसका धारण पोषण करें। वह परपीड़ारहित पालनादि कार्य के लिये प्राप्त किया जाय। वही सग्राम और वेग के लिये अश्व के समान ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने और विभाग करने या दान देने के लिये, प्रवचन कार्य मे, शासन और उपदेश के कार्य मे नियुक्त किया जाय।

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम्।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग ग्रहण करने और खाने योग्य अन्नों को देने वाले, उत्तम पालक और अहिंसक स्वामी को सदा आदर से नमस्कार करो और दानशील दमन करने मे समर्थ और सब गृहों, गृह-स्थित प्रजाजनो के हितकर, ज्ञानवान् और ऐश्वर्य की सेवा परिचर्या करो। वह उत्तम महारथी, बड़े भारी राष्ट्र और सत्य ज्ञान और न्याय का देखने-हारा, स्वय अग्नि के समान तेजस्वी, सब दानशील एवं तेजस्वी पुरुषों में सबसे आगे अध्यक्ष रूप से स्थापित करने योग्य है।

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः॥ ९॥

भा०—जिस प्रकार सर्वव्यापक महान् अग्नितत्व की तीन दीप्ति युक्त ज्वालाएं हैं। वे तीनों कान्तियुक्त और मृत्युभय से रहित होकर सबको पवित्र करती हैं। अथवा उन तीनों को कामना करने हारे निर्भय विद्वान्

प्राप्त होते और साधते हैं। अग्नि के उन तीनों मे से एक प्रकार की दीप्ति को मरणधर्मा जीवों में अन्नादि के भोक्ता जाठराग्नि और स्थूलाग्नि रूप से पुष्ट करते हैं और शेष दोनों विद्युत् और सौर-अग्नि सर्वोत्पादक लोक अर्थात् अन्तरिक्ष और सूर्य मे प्राप्त होते है। उसी प्रकार महान् तथा युद्धादि में सर्वत्र जाने वाले तेजस्वी पुरुष की तीन शक्तियां अविनाशी और तेजोयुक्त होकर राष्ट्र को शुद्ध पवित्र करें। अथवा मृत्युभय से रहित, कामना वाले प्रजागण उन तीनों को प्राप्त हो। उनमे से एक को मरण-शील प्रजाजन मे पालन करने वाली अर्थात् राष्ट्रपालक और रक्षक रूप से रखें। और दो समीप के पडोसी राष्ट्र को प्राप्त हो अर्थात् उनके मुकाबले पर हों। राजा की शक्ति के तीन भागो मे से एक राष्ट्र की रक्षा करे, दो भाग उदासीन और शत्रु राष्ट्रों का मुकाबला कर सकें।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे। स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत्॥ १०॥ १८॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्यों की सेनाएं तेज की वृद्धि करने के लिये शस्त्र को अच्छी प्रकार चमकाती है, उसी प्रकार धनैश्वर्यादि के इच्छुक प्रजागण प्रजागणों के तेज को बढ़ाने के लिये प्रजाओं के 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को धारण और पालन करने मे समर्थ, क्रान्तदर्शी, समस्त प्रजाओं के पालक पुरुष को सब प्रकार संस्कृत करें। वह ऊपर के और नीचे के सब स्थानों पदों को प्राप्त करे। अथवा उत्तम बलशाली और अधीन सामन्तों को भी प्रयाण द्वारा वश करे। वह इन सब भुवनों या प्रदेशों के बीच मे भीतरी रहस्य भाग को व्याप ले और उसको धारण करे। इत्यष्टादशो वर्गः॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः। वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे॥११॥

भा०—वह बलवान् जठरों मे उत्पन्न जाठराग्नि के समान प्रमुख होकर, नाना प्रकार के ऐश्वर्यों के आधार पर सबका पालन करे और स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हो और सिंह के समान गर्जे। वह सब मनुष्यों का नायक तथा साधारण मनुष्यो से ऊंचा और बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर, कर-प्रदानशील प्रजा को नाना धन और राष्ट्र मे बसने का अधिकार और रमणीय हीरा मुक्ता आदि और रमण करने योग्य उत्तम भोग्य पदार्थ विविध रूपो में देता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो।

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं मन्दमानः सुमन्मभिः।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अनादि काल से आकाश के ऊपर चढ़ जाता है, उत्तम किरणों से सबको सुखी करता, प्राणिमात्र के लिये पुष्ट करता और समान रूप से अपना मार्ग तय कर लेता है, उसी प्रकार सबका नेता पुरुष, सनातन से चले आये दुःखरहित तेज के सर्वोपरि पद को प्राप्त करे और अपने उत्तम विचारों और उत्तम विचारवान् पुरुषों द्वारा प्रजा का कल्याण करता हुआ, तेज और विजय के सर्वोपरि दुःख-रहित पद को प्राप्त करे। और प्राणिमात्र के लिये पूर्व के समान या अपने से पूर्व विद्यमान पिता आचार्यादि के समान पोषक अन्नादि ऐश्वर्य उत्पन्न करता हुआ, जागरणशील, सदा सावधान होकर, समान अर्थात् निष्पक्षपात मार्ग या मान आदर से युक्त मार्ग पर चले।

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यमा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्। तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार सत् कारणस्वरूप, यज्ञ के योग्य, विशेष रूप से सर्वत्र पूर्ण प्रशंसा के योग्य, द्युलोक मे विद्यमान् विद्युत् को वायु धारण करता है, उस अद्भुत वेग से जाने वाले, उत्तम दीप्ति युक्त, पीली रश्मियों

वाले अग्निरूप विद्युत् को नये से नये प्रयोगों के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको भूमि पर वेग से जाने वाला वायु के समान बलवान् वीर पुरुष स्थापित करता है उस, सत्य न्यायाचरण और वेद की व्यवस्था से युक्त, दानशील प्रजापति के योग्य, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञान, व्यवहार, विजयकामना में निवास करने वाले, अद्भुत् मार्गों से जाने वाले, पीत वर्ण के बालों के समान मानो तेज को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी वा प्रजाओं के क्लेशों को दूर करने वाले, उत्तम दीप्ति या संहारशक्ति से युक्त नायक को नई २ प्रेरणाओं के लिये प्रार्थना करें, वरें ।

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १४

भा०—स्वयं शुद्ध, अन्यों को भी पवित्र करने वाले, जाने योग्य मार्ग में अति आवश्यक रूप से अपेक्षित या सन्मार्ग में प्रेरणा करने हारे, सुख को या समस्त पदार्थों के विज्ञान को देखने वाले, प्रकाश का ज्ञान कराने वाले, स्वयं प्रकाश में विद्यमान, उषा काल में सूर्य और यज्ञादि के समान स्वयं भोर में जागने और अन्यों को जगाने वाले, आकाश में मस्तकस्थ सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के बीच भी सबके शिरो-देश पर स्थित, शिरोमणि, पूज्य, अग्रणी, अन्य प्रतिद्वन्द्वी से कभी स्पर्धा में न पराजित होने वाले अद्वितीय, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त उस महान् पुरुष को हम लोग आदर सत्कार पूर्वक प्राप्त हों और प्रार्थना करें ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१९॥

भा०—आनन्ददायक, ज्ञान के देने वाले और आश्रय में लेने वाले, शुद्ध पवित्र स्वभाव के, दो भावों से न रहने वाले, सरलस्वभाव, जितेन्द्रिय और दानशील, प्रशंसनीय, सब पदार्थों के स्वयं देखने और

दिखाने वाले, मनुष्यों के हितकारी रूप मे दर्शनीय, रथ के समान अद्भुत, गृह के समान सबके शरण योग्य पुरुष को, धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह अद्वितीय होने से 'अद्वयावी' हे। विश्वद्रष्टा होने से 'विश्वचर्पणि' हे। गृह के समान शरण योग्य, सर्वहितकारी, रस रूप होने और रमणयोग्य होने से रथ के समान, चित् रूप होने से 'चित्र' हे। हम उसकी प्रार्थना करें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३]

विश्वामित्र ऋषि ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २, ३, ४, ६, ८, ९ जगती। ७, १० विराट् जगती। ११ भुरिक् पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥

भा०—बुद्धिमान् पुरुष सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे, बड़े बलवान्, शिक्षा का उपदेश करने वाले पुरुष के हितार्थ धरने योग्य स्थानों, गृहों, और लोकों में नाना प्रकार के रत्न और रमण करने योग्य पदार्थों को तैयार करें। अग्रणी, ज्ञानी, विनीत पुरुष कभी नाश को न प्राप्त होकर, दीर्घायु होकर विद्वानों की सेवा करे और सन्मार्ग से चलता हुआ सनातन से चले आये धर्मानुकूल कर्त्तव्यों को कभी दूषित न करे, उनमें दोष न आने दे।

अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥

भा०—आकाश और भूमि के बीच सतापकारी, अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य गति करता है, उसी प्रकार अधिकार को देने और प्राप्त करने वाला, सबके समक्ष आदर से साक्षी रूप में स्थापित किया हुआ

वाले अग्निरूप विद्युत् को नये से नये प्रयोगों के लिये प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जिसको भूमि पर वेग से जाने वाला वायु के समान बलवान् वीर पुरुष स्थापित करता है उस, सत्य न्यायाचरण और वेद की व्यवस्था से युक्त, दानशील प्रजापति के योग्य, राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञान, व्यवहार, विजयकामना में निवास करने वाले, अद्भुत् मार्गों से जाने वाले, पीत वर्ण के बालों के समान मानो तेज को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी वा प्रजाओं के क्लेशों को दूर करने वाले, उत्तम दीप्ति या संहारशक्ति से युक्त नायक को नई २ प्रेरणाओं के लिये प्रार्थना करें, वरें ।

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १४

भा०—स्वयं शुद्ध, अन्यों को भी पवित्र करने वाले, जाने योग्य मार्ग में अति आवश्यक रूप से अपेक्षित या सन्मार्ग में प्रेरणा करने हारे, सुख को या समस्त पदार्थों के विज्ञान को देखने वाले, प्रकाश का ज्ञान कराने वाले, स्वयं प्रकाश में विद्यमान, उषा काल में सूर्य और यज्ञादि के समान स्वयं भोर में जागने और अन्यों को जगाने वाले, आकाश में मस्तकस्थ सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश के बीच भी सबके शिरो-देश पर स्थित, शिरोमणि, पूज्य, अग्रणी, अन्य प्रतिद्वन्द्वी से कभी स्पर्धा में न पराजित होने वाले अद्वितीय, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त उस महान् पुरुष को हम लोग आदर सत्कार पूर्वक प्राप्त हों और प्रार्थना करें ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥१९॥

भा०—आनन्ददायक, ज्ञान के देने वाले और आश्रय में लेने वाले, शुद्ध पवित्र स्वभाव के, दो भावों से न रहने वाले, सरलस्वभाव, जितेन्द्रिय और दानशील, प्रशंसनीय, सब पदार्थों के स्वयं देखने और

दिखाने वाले, मनुष्यों के हितकारी रूप में दर्शनीय, रथ के समान अद्भुत, गृह के समान सबके शरण योग्य पुरुष को, धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह अद्वितीय होने से 'अद्वयावी' है। विश्वदृष्टा होने से 'विश्वचर्षणि' है। गृह के समान शरण योग्य, सर्वहितकारी, रस रूप होने और रमणयोग्य होने से रथ के समान, चित् रूप होने से 'चित्र' है। हम उसकी प्रार्थना करें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३]

विश्वामित्र ऋषि ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २, ३, ४, ६, ८, ९ जगती। ७, १० विराट् जगती। ११ भुरिक् पङ्क्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥

भा०—बुद्धिमान् पुरुष सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे, बड़े बलवान्, शिक्षा का उपदेश करने वाले पुरुष के हितार्थ धरने योग्य स्थानों, गृहों, और लोकों में नाना प्रकार के रत्न और रमण करने योग्य पदार्थों को तैयार करें। अग्रणी, ज्ञानी, विनीत पुरुष कभी नाश को न प्राप्त होकर, दीर्घायु होकर विद्वानों की सेवा करे और सन्मार्ग से चलता हुआ सनातन से चले आये धर्मानुकूल कर्त्तव्यों को कभी दूषित न करे, उनमें दोष न आने दे।

अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥

भा०—आकाश और भूमि के बीच संतापकारी, अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य गति करता है, उसी प्रकार अधिकार को देने और प्राप्त करने वाला, सबके समक्ष आदर से साक्षी रूप में स्थापित किया हुआ

मननशील पुरुष भी आसन पर विराजकर, राजवर्ग और प्रजावर्ग या वादी-प्रतिवादी या मित्रवर्ग-शत्रुवर्ग दोनों के बीच में दूत के समान सबका कार्य साधने हारा, और दुष्टों का संतापजनक और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारा होकर प्राप्त हो। और जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि बड़े भारी महल को अपने प्रकाशमान किरणों से जगमगा देता है, उसी प्रकार प्रेरित या प्रार्थित बुद्धि और कर्त्तव्यों को अपने में धारण करने वाला अग्रणी मुख्य पुरुष, विद्वानों द्वारा और अपने उत्तम गुणों से, बड़े भारी निवासयोग्य सभाभवन और राष्ट्र को भी अलंकृत करता और अपने वश करता है।

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः। अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके॥ ३॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिस प्रकार काष्ठसञ्चयादि द्वारा और नाना कर्मकाण्ड द्वारा, यज्ञो को बतलाने वाले और यज्ञ को साधने वाले अग्नि को आदर और श्रद्धापूर्वक प्रज्वलित करते हैं, उसके आश्रय पर सब कार्य करते और उसके आश्रय यज्ञशील पुरुष सब सुखों की कामना करते हैं, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष परस्पर के सत्सगों, मैत्रीभावों, व्यवहारों और लेने देने के कार्यों के संज्ञापक, और यज्ञ, ऐश्वर्य लाभ और संग्राम के साधने वाले ज्ञानवान् नायक राजा को, अपने २ ज्ञानों और कर्मों के द्वारा आदरपूर्वक सेवा करें, उसका मान करें। जिसके आश्रय रहकर ज्ञान, कर्म और वाणियों को सभी लोग अच्छी प्रकार धारण करते हैं उसी के आश्रय दानशील और मित्रभाव से रहने वाला पुरुष भी नाना सुखों को चाहता है।

पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम्। आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः

भा०—वह परमेश्वर अग्नि के समान स्वयंप्रकाश, सब श्रेष्ठ कर्मों, सद्व्यवहारों, सत्संगों, पूज्य पुरुषों और सब आत्माओं का पिता है। वह महान् शक्तिमान् संसार के समस्त भूगोलों को गति देने वाला, सब प्राणियों के प्राणों में भी रमण करने वाला, प्राणों का प्राण, विद्वानों को विज्ञान से युक्त करने से विमान के समान संसार महासागर से पार करने वाला और विद्वान् पुरुषों के लिये ज्ञानमय है। वह नाना रूपों से सूर्य पृथिवी के समान चेतन और अचेतन, प्रकाशवान् अप्रकाशवान्, सत्-त्यत्, प्राण रयि आदि में प्रविष्ट है, व्यापक है। वह बहुतों को प्रिय लगने हारा, क्रान्तदर्शी, नाना तेजों और लोकों से जीवों का कल्याण करता और सुखी बनाता है। (२) इसी प्रकार बलवान् पुरुष भी सब सत्संगों, सद्व्यवहारों, मैत्री भावों का पालक, विद्वानों के मान का पात्र, ज्ञानवान् होकर, प्रजा और शासकवर्ग दोनों में मध्यस्थ होकर सर्वप्रिय हो और अपने पराक्रम से भी सबको सुखी करे ।

चन्द्रम॒ग्निं च॒न्द्रर॑थं॒ हरि॑व्रतं वैश्वान॒रम॑प्सु॒षदं॒ स्व॒र्विद॑म् ।
वि॒गा॒हं तूर्णिं॒ तवि॑षीभि॒रावृ॑तं॒ भूर्णिं॑ दे॒वास॑ इ॒ह सु॒श्रियं॑ दधुः ॥५॥२०

भा०—विद्वान् पुरुष सबको आनन्द देने वाले, सुवर्ण के समान आल्हादजनक, सुवर्ण के बने रथ वाले वा चन्द्र के समान रमणीय रूप वा चन्द्रवत् सर्वाल्हादक एवं शान्तिकारक गुणों से युक्त, वेगवान् अश्वों और विद्वानों के वरण करने वाला, सब नायकों के अग्रणी, विद्युत् के समान प्रजाओं में अध्यक्ष पद पर विराजने वाले, सबको प्राप्त करने सबको सुख देने वाले, युद्ध में परसैन्यों का मथन करने हारे, अति वेग-वान्, बलवती सेनाओं से घिरे हुए, सबके पालक, उत्तम लक्ष्मी और कान्ति से युक्त पुरुष को नायक रूप से इस राष्ट्र में धारण करें। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह प्रभु सर्वाल्हादक होने से 'चन्द्र' है। आनन्दमय रस होने से 'चन्द्रथ' है। दुःखहारी शीलवान् होने से 'हरिव्रत' है।

सर्वव्यापक होने से 'विगाह' है। वह वलवती समस्त शक्तियों से युक्त सर्वपालक सर्व सम्पदाओं का स्वामी है। उसको सव देव, सूर्यादि तथा विद्वान् जन अपने में धारण करते हैं। इति विंशो वर्गः ॥

अ॒ग्निर्दे॒वेभि॒र्मनु॑षश्च ज॒न्तुभि॑स्तन्वा॒नो य॒ज्ञं पु॑रु॒पेश॑सं धि॒या।
र॒थीर॒न्तरी॑यते॒ साध॑दिष्टिभिर्जी॒रो दमू॑ना अभिशस्ति॒चात॑नः ॥६॥

भा०—वह अग्रणी नायक पुरुष, अग्नि के समान तेजस्वी होकर, बुद्धि और कर्म के द्वारा दानशील, तेजस्वी, कामनावान् मनुष्यों से, मननशील पुरुषों के नाना रूपों का परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव विस्तृत करता हुआ, रथों का स्वामी, उत्तम उपदेशों को साधने वाले पुरुष के साथ मिलकर विजयी, दमनशील, हिंसाकारी शत्रुओं का नाश करने वाला राष्ट्र के भीतर प्रवेश करे।

अग्ने॒ जर॑स्व स्वप॒त्य आयु॑न्यू॒र्जा पि॑न्वस्व॒ समिषो॑ दिदीहि नः।
वयां॑सि जिन्व बृह॒तश्च॑ जागृव उ॒शिग्दे॒वाना॒मसि॑ सु॒क्रतु॑र्वि॒पाम् ॥७॥

भा०—हे विद्वन् तेजस्वी पुरुष! तू उत्तम सन्तान के प्राप्त होने पर उसमें उत्तम उपदेश कर। और उत्तम अन्नरस से हमें तृप्त कर। हमें सन्मार्ग में चला, अथवा हमें प्रेम से चाह। उत्तम अन्नों और वलों को दे और स्वयं प्राप्त कर। अपने से बड़ों को अन्नादि से तृप्त प्रसन्न किया कर। हे जागरणशील, सदा सावधान जितेन्द्रिय! तू ज्ञानादि के दाता पुरुषों के वीच में उनको चाहने वाला और विद्वानों के वीच उनके उत्तम ज्ञान और कर्म को धारण करने वाला हो। (२) वह परमेश्वर पुत्र रूप मनुष्यों को उपदेश करता, अन्न से पालता, वृष्टियां प्रदान करता, सव वलों और जन्तुओं को वढ़ाता, सवको धारण करता है, वह सव में तेजस्वी, विद्वानों में भी सर्वोत्तम, ज्ञानवान् है। सदा जागृत प्राणरूप रहने से 'जागृवि' है।

विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम्। अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥

भा०—श्रेष्ठ पुरुष, समस्त प्रजाओ के पालक, महान्, अतिथि के समान सत्कार करने योग्य, सबको नियम मे रखने वाले, उत्तम कर्मों और बुद्धियो के बीच मे आत्मा के समान उनका नियन्ता और विद्वानो और हिंसा न करने वाले बलवान् पुरुषो के बीच में स्थित होकर उनको भी नियम में रखने वाले, देह मे चेतन आत्मा के समान स्वयं भी चित्-स्वरूप व अन्यो को ज्ञान देने वाले, सब पदार्थों के ज्ञाता वा सब ऐश्वर्यों और ज्ञानो के स्वामी परमेश्वर और राजा की सभी लोग अपनी वृद्धि करने के लिये उसके सेवनीय गुणों द्वारा स्तुति करते हैं।

विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः। तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९॥

भा०—ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष, विशेष दीप्ति से युक्त, दानशील, तेजस्वी, विजयेच्छुक, उत्तम रणशील और बल से उत्तम शोभायुक्त रथसैन्य का स्वामी होकर, भूमियों पर विजय करता है। दमन के कार्य में बहुत से प्रजाजनो का पोषण करने वाले उस नायक के कर्त्तव्यों और नियमों का हम गृह मे बहुत सी सन्तानो का पोषण करने वाले होकर, उत्तम व्यवहारो और पापादि बुरे कार्यों के त्याग से सब प्रकार से पालन करें।

वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण। जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥ १० ॥

भा०—हे समस्त लोकों को सन्मार्ग पर ले चलने हारे प्रधान

नायक ! और परमेश्वर मैं तेरे उन धारण करने योग्य तेजों, उत्तम गुणों और चरित्रो को जानना चाहता हूँ। हे विशेष रूप से सबके देखने हारे ! जिनसे तू सर्वत्र या स्वयं समस्त सुखों को प्राप्त करने और अन्यों को भी सुख प्राप्त कराने और शत्रुओं को ताप देने और अधीनो को उपदेश और प्रकाश देने में समर्थ है। तू ही अधीनों को उपदेश और प्रकाश देने मे समर्थ है। तू ही सूर्य या अग्नि के समान प्रकट और प्रसिद्ध होकर समस्त लोकों और प्राणियों को और आकाश और पृथिवी को पालता और पूर्ण करता है। हे विद्वन् ! तू स्वपक्ष और परपक्ष, एवं शासकवर्ग और प्रजा-वर्ग दोनों को पूर्ण करता है। हे ज्ञानवन् ! तू स्वयं अपने महान् सामर्थ्य से उन सब लोकों को व्याप रहा है, सबको अपने अधीन कर रहा है।

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥२१॥

भा०—सबके सञ्चालक, सर्वहितकारी, प्रधान पुरुष का दुःख नाश करने वाली क्रियाओं से बड़ा भारी ऐश्वर्य प्राप्त होता है। तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार बड़े भारी तेज:सामर्थ्य से आकाश और भूमि को बहुत जल से पूर्ण करता है, उसी प्रकार अकेला ज्ञानवान् पुरुष अपने शुभ कर्म करने की इच्छा और संकल्प से बहुत वीर्यवान् माता और पिता या पिता और गुरु दोनो पालको का मान आदर करता हुआ प्रसिद्ध होता है। (२) परमेश्वर अपनी महान् शक्तियों से महान् ब्रह्माण्ड को गति देता है। वही सबका कर्त्ता, अपनी ज्ञान और कर्मशक्ति से एक अद्वितीय, बड़े भारी उत्पादक वीर्य और बल से सब जगत् के पालक सूर्य और पृथिवी दोनो को महान् बनाता हुआ प्रकट होता है। इति एकविंशो वर्गः॥

[४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ स्वराट् पंक्तिः। २, ३, ५ त्रिष्टुप्। ६, ८, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ विराट् त्रिष्टुप्॥

समित्संमित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी पुरुष! जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक समिधा पाकर प्रज्वलित होता है उसी प्रकार तू भी शुभ चित्त और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर, प्रत्येक ज्ञानदीप्ति से स्वयं ज्ञानवान् हो और हमें भी ज्ञानवान् कर। प्रत्येक कान्ति और पवित्र कार्य से हमें शुभ ज्ञान और नाना ऐश्वर्य प्रदान कर। हे विद्वन्! तू सत्संग और मैत्रीभाव के लिये विद्वान् पुरुषों को धारण कर। अथवा ज्ञान प्रदान के लिये विद्या की कामना करने वाले शिष्यगण के प्रति विद्या-दान करने के प्रयोजन से प्रवचन द्वारा विद्या का उपदेश कर। और तू मित्र होकर अपने मित्ररूप हमको उत्तम चित्त से युक्त होकर प्राप्त हो और ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान कर।

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् तीन सवन रूप से अग्नि में दिन मे तीन बार यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार जिसको विद्वान् पुरुष प्रतिदिन तीन बार सत्संग करें वह विद्वान् अग्रणी पुरुष सर्वश्रेष्ठ, मृत्यु दुःख से बचाने वाला, सबका स्नेही, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी हो। वह प्राण के समान हमारे शरीरों का नाश न होने देने हारा विद्वान्, घृत के आश्रय मे स्थित, तथा नाना कार्य करने वाले हमारे इस शरीर और समाजरूप को मधुर अन्नों उत्तम सुखों और परिणामों से युक्त करे।

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३॥

भा०—कष्टों को अन्धकार के समान दूर करने और सबसे वरण करने योग्य दीप्ति, अन्नों और भूमियों के दान देने, सत्संग और मैत्रीभाव

की वृद्धि के लिये, सर्वश्रेष्ठ दानशील पुरुष को प्राप्त होती है। और वह सर्वश्रेष्ठ दीप्ति बलवान्, मेघ के समान वर्षणशील को भी नमस्कार आदि आदर योग्य वचनों से स्तुति करने के लिये प्राप्त हो। वह स्वयं इच्छावान् होकर सब से बड़ा दानशील, सत्संगयोग्य एवं सुहृद् होकर विद्वान् पुरुषों को दान करे, सत्संग दे और मित्रभाव से मिले।

ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि। दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! हे राजा प्रजाजनो! तुम दोनों के परस्पर हिंसा से रहित कार्य में तुम दोनों के ऊपर उच्च कोटि का उपदेश करने हारा विद्वान् नियत किया जावे। जिससे सर्वश्रेष्ठ प्रकाश सबको प्राप्त हों। आकाश के बीच में सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश का देने वाला गुरु और राष्ट्र को वश करने वाला राजा उच्चासन पर विराजे। हम लोग विद्वानों का विशेष सत्कार करने वाला तथा उनके मान को बढ़ाने वाला आसन बिछावें।

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन। नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥५॥२२॥

भा०—सात प्रकार के ग्रहण करने योग्य और दान देने योग्य पदार्थों को, यज्ञ के सप्त होत्र आदि कर्मों के समान, इच्छापूर्वक स्वीकार करते हुए, सत्यज्ञान, अन्न तथा ऐश्वर्य के द्वारा समस्त राष्ट्र को व्यापते हुए, अपने विपक्ष का मुकाबला करें। तुम संग्रामों में कीर्तिमान् वीर पुरुषों से बने स्वरूप को धरने वाली पूर्व से ही तैयार, सुशिक्षित सेनाएं प्राप्त करो। इस परस्पर के मैत्रीभाव से व्यवस्थित राष्ट्र को प्राप्त होओ। राष्ट्र की 'सप्तहोत्र' सात प्रकृतियां है। (२) अध्यात्म में—देहगत सात प्राण या सर्पणशील प्राण 'सप्तहोत्र' है। उनको मानस् बल से वश करते हुए सत्य के बल से 'विश्व' अर्थात् आत्मतत्व को प्राप्त होते हैं। 'नृ'

अर्थात् आत्मा को रूपवान् करने वाली पूर्व की वासनाएं ही प्राप्त होने योग्य देहों में प्रकट होकर इस आत्मा को विविध भोगों में प्राप्त होती हैं।
इति द्वाविंशो वर्गः ॥

आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार स्वरूप में भिन्न २ प्रकार के रूपों वाले दिन और रात्रि मानो परस्पर मुस्कराते हैं, विकसित होते हैं, उसी प्रकार शरीरों में विभिन्न २ प्रकार के रूप, रुचि और कान्ति और रचना वाले स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को चाहने वाले और एक दूसरे के सदा समीप रहते हुए, एक दूसरे का कल्याण और सुख करते हुए मुस्कराया करें, सदा प्रसन्नवदन होकर रहें। जिससे महान् गुणों और तेजों से युक्त होकर स्नेही मित्र, वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और विद्वान् शिष्यों से युक्त आचार्य, प्राणों के बल से युक्त शत्रुहन्ता बलवान् भी हमें प्रेम से स्वीकार करें।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥

भा०—दिव्य गुणों को धारण करने वाले तथा एक दूसरे को सुख देने वाले स्त्री पुरुष राष्ट्र में मुख्य हैं, उनको अच्छी प्रकार कार्य दक्ष करता हूँ, क्योंकि उनके आश्रय पर ही देश देशान्तर में भ्रमण करने वाले, प्रेम-सम्पर्क के योग्य विद्वान् जन अपनी धारणाशक्ति से स्वयं प्रसन्न होते और औरों को तृप्त करते हैं। वे व्रतों का पालन करने हारे, अपने व्रतों का ही चिन्तन करते हुए, तथा सत्य वेदज्ञान का उपदेश करते हुए, सत्य धर्म का पालन और सत्यस्वरूप परमेश्वर का ही उपदेश करते हैं।

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सर्वप्राणिसमूह के पालक-पोषक सूर्य की दीप्ति, उसकी अन्य पालक पोषक ताप विद्युत् आदि शक्तियों के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर, इस अन्तरिक्ष और इस भूलोक को प्राप्त होती है, उसी प्रकार प्रजा का भरण पोषण करने वाले मुख्य पुरुष की प्रजापालक नीति, 'भरत' अर्थात् अन्य प्रजापोषक पुरुषों की शक्तियों या सेनाओं और सभाओं से समान प्रीति से युक्त होकर, इस लोक अर्थात् प्रजाजन पर विराजे, उत्तम पद प्रतिष्ठा प्राप्त करे। 'देव' अर्थात् विद्वान् और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर पृथिवी, अर्थात् पृथिवी-निवासिनी प्रजा इस लोक पर प्रतिष्ठा से विराजे। अग्नि के समान तेजस्वी नायक मनन शील पुरुषों के साथ समान प्रीति युक्त होकर विराजे। 'सरस्वती' अर्थात् वेदवाणी का अभ्यास करने वाले विद्वानों से युक्त उत्तम ज्ञानवाली विद्वत्-सभा इस लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करे। इस प्रकार तीनों देवियां हमें प्राप्त होकर इस लोक में आदरपूर्वक विराजें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद के आप्री सूक्त।

तन्न॑स्तु॒रीप॒मध॑ पोषयि॒त्नु देव॑ त्वष्ट॒र्वि र॑रा॒णः स्य॑स्व।
यतो॑ वी॒रः क॑र्म॒ण्यः॑ सु॒दक्षो॑ यु॒क्तग्रा॑वा॒ जाय॑ते दे॒वका॑मः ॥ ९ ॥

भा०—हे दानशील कारीगर! तू दुखों और सकटों से पार उतारने वाला तथा पोषण करने वाला बल प्रदान करता हुआ हमें दुःख बंधनों से मुक्त कर, जिससे वीर्यवान्, कर्मकुशल, उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् उपदेष्टा का संगलाभ करने और शस्त्रास्त्र में कुशल, उत्तम ज्ञानदाता जनों की कामना करने वाला पुत्र, शिष्य और प्रजाजन उत्पन्न हो सके।

वन॑स्पते॒ऽव॑ सृजोप॑ दे॒वान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति।
सेदु॒ होता॑ स॒त्यत॑रो यजाति॒ यथा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मानि॒ वेद॑ ॥१०॥

भा०—हे सेवन करने योग्य उत्तम भोग्य ऐश्वर्यों के पालन करने हारे, एवं महावृक्ष के समान अपने से सेवन करने वाले आश्रित जनों के

पालक ! राजन् ! विद्वन् ! तू देव अर्थात् विद्वान् वीर और कामनाशील पुरुषों को अपने अधीन कर, उनको योग्य मार्ग पर चला। और उनको अपने समीप रखकर योग्य बना। अग्नि जिस प्रकार 'हवि' अर्थात् चरु को वायु आदि तत्वों तक छिन्न भिन्न करके पहुँचाता है और लोक में रोगनाशक होकर शान्ति उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अग्रणी नायक, विद्वान् और स्वामी पुरुष, ग्रहण करने योग्य अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को भी शान्तिदायक होकर, प्रचुर मात्रा में दे। वह ही दानशील होकर अधिक सत्याचरणशील, ईमानदार और सत्य के बल से स्वयं और अन्यों को तराने वाला होकर दान करे और अन्यों से मित्रभाव से वर्त्ते। जिससे वह दिव्य पुरुषों, विद्वानों के बीच में उत्तम जन्मों को प्राप्त करे।

आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑ ।
ब॒र्हिर्न॒ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादय-
न्ताम् ॥ ११ ॥ २३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाशक तेजस्विन् ! सूर्य या अग्नि जिस प्रकार प्रदीप्त होकर प्रकाशयुक्त किरणों और वायु से प्रकट होता है, उसी प्रकार तू भी अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र सहित शत्रुनाशक वीर सेनापति सहित तथा अति शीघ्रगामी विजय कामना वाले वीर पुरुषों सहित और रथसैन्य सहित हमारे पास प्राप्त हो। और हमारे बीच वृद्धि तथा प्रतिष्ठायुक्त प्रजाजन पर उपविष्ट हो। इसी प्रकार उत्तम पुत्रों की पूज्य माता के समान उत्तम रीति से प्रजाओं को मानव-कष्टों से त्राण करने वाली अटूट शक्ति, हमारे वृद्धिशील राष्ट्र पर विराजे। दानशील और ऐश्वर्य के इच्छुक वीर और दानशील धनी और ज्ञानी पुरुष उत्तम वाणी, उत्तम दान और उत्तम स्तुति प्रार्थना से दीर्घायु होकर, स्वयं भी तृप्त हों और हमें भी खूब तृप्त, आनन्द प्रसन्न करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिः । ६ स्वराट पङ्क्तिः । ४ त्रिष्टुप् । ५, ७, १०, निचृत् त्रिष्टुप् । ८, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥

भा०—दीप्तिमान् सूर्य जिस प्रकार प्रभात वेलाओं में सब सोते हुए प्राणियों को जगाता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् विद्वान् स्वयं ज्ञानवान् मेधावी, सर्व विद्याओं से पूर्ण, क्रान्तदर्शी पुरुषों के चरण चिन्हों पर चलने-हारा होकर सबको जगावे और स्वयं भी प्रत्येक ज्ञान का ज्ञाता हो। वह विस्तृत ज्ञान और बल से युक्त होकर विद्वानों के प्रिय तथा उत्तम गुणों के इच्छुक पुरुषों द्वारा प्रकाशित होकर, कार्यों के भार को वहन करने में समर्थ विद्वान्, अन्धकार के समान अज्ञान को दूर करके ज्ञान के द्वारा मार्गों को खोले।

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य सन्दृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार भौतिक अग्नि काष्ठसमूहों से बहुत बढ़ता है उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुष विद्याओं का उपदेश करने वाले वेद के सूक्तों, उत्तम वेदवाणियों से खूब अच्छी प्रकार बढता है। और उत्तम उपदेष्टाओं के बीच में उत्तम वचनों से आदर करने योग्य है। वह सत्य ज्ञान को अच्छी प्रकार दिखलाने वाली, सनातन से चली आई वेदवाणियों का अभ्यास करना चाहता हुआ, विशेष रुचि के अनुसार स्वयं सेवा किया जाकर, कामनाशील शिष्यजनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है। (२) परमेश्वर ज्ञानमय सर्वप्रकाशक है। वह वेदवाणियों द्वारा महान् है। वह स्तुतिकर्मों के वचनों से स्तुत्य है। वह पूज्य उपासित होकर

ज्ञानदर्शक सनातन वेदवाणियो को प्रभातो के सूर्य के समान, प्रकाशित करता है।

अधा॑य्य॒ग्निर्मानु॑षीषु वि॒क्ष्व१॒॑पां गर्भो॑ मि॒त्र ऋ॒तेन॒ साध॑न् ।
आ ह॑र्य॒तो य॑ज॒तः सान्व॑स्था॒दभू॑दु॒ विप्रो॒ हव्यो॑ मती॒नाम् ॥ ३ ॥

भा०—जलों के बीच मे विद्युत् जिस प्रकार गतिशील बल से सब कार्यों को साधता हुआ स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यो की इन प्रजाओं मे, कर्मों और ज्ञानों और आप्त प्रजाओ के बीच मे सुरक्षित, प्रजाओं का सुहृत्, उनको मरण से बचाने वाला, प्राणो के बीच विद्यमान आत्मा के समान, स्थापित किया जाना चाहिये। वह सत्य ज्ञान और न्याय के अनुसार सब कार्यों को साधता हुआ, कान्तियुक्त, दानशील तथा सत्सग के योग्य और पूज्य होकर, शैल-शिखर के समान उन्नत पद और सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त पद पर विराजे और वह विशेष विद्याओं से पूर्ण, विद्वानों और मननशील पुरुषों के बीच मे वरण या स्वीकार करने योग्य हो। परमेश्वर सबके भीतर प्राणों का प्राण और सूक्ष्म प्रकृति के परमाणुओं के भीतर व्यापक, ज्ञान से प्राप्त किया जाता है। वह सर्वपूज्य कान्तिमान् परमसेव्य पद पर विराजता और विशेष रूप से पूर्ण होकर मननशील विद्वानों से स्तुत्य है।

मि॒त्रो अ॒ग्निर्भ॑वति॒ यत्समि॑द्धो मि॒त्रो होता॒ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।
मि॒त्रो अ॑ध्व॒र्युरि॑षि॒रो दमू॑ना मि॒त्रः सिन्धू॑नामु॒त पर्व॑तानाम् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार खूब प्रदीप्त अग्नि मनुष्य के मित्र के समान सहायकारी होता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष जो ज्ञानों और गुणों मे अच्छी प्रकार प्रकाशित हो जाता है वह स्नेही मित्र के समान सबका सुहृत् हो। वह सबको मरने से बचाने वाला, ज्ञान और अन्न का देनेहारा सर्वश्रेष्ठ और कष्टो का वारण करने वाला, सब ऐश्वर्यों और ज्ञानो का स्वामी हो। वही सबका स्नेही सुहृद् होकर सब किसी की भी हिंसा या

पीड़ा की कामना न करता हुआ, अहिंसा-व्रती, स्वयं दृढ़ इच्छाशक्ति से सम्पन्न और सबको प्रेरणा करने में समर्थ, तथा मन इन्द्रियों को जीतने में समर्थ हो। वही नदियों के समान वेग से जाने वाली सेनाओं या प्रजाओं और पर्वतों के समान अभेद्य, दृढ़ एवं पालन शक्तियों से युक्त बड़े २ शासक जनों का भी मित्र, सहायक हो जाता है। (२) परमेश्वर पक्ष में—हृदय में अतिदीप्त प्रकाशवान् परमेश्वर ही परम मित्र है। वह सब कुछ देता, सर्वश्रेष्ठ, सर्वैश्वर्य का स्वामी, अहिंसक, पालक, प्रेरक, दमनकर्त्ता, प्राणों, जलों, प्रकृति के परमाणु और पर्वतों और पालकतत्वों का मापक और पालक है।

पाति॑ प्रि॒यं रि॒पो अग्रं॑ प॒दं वेः पाति॑ य॒ह्वश्चर॑णं॒ सूर्य॑स्य। पाति॒ नाभा॑ स॒प्तशी॑र्षाणम॒ग्निः पाति॑ दे॒वाना॑मुप॒माद॑मृ॒ष्वः ॥५॥२५॥

भा०—जिस प्रकार अग्नितत्व गमनशील पृथिवी के सर्वश्रेष्ठ तथा प्रिय अन्न आदि की रक्षा करता है, वही सूर्य के गमन या कार्य की रक्षा करता है, वही सात विभागों में विभक्त वायु की रक्षा करता, वह सब दिव्य पदार्थों के स्वरूप को नाश होने से बचाता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष अपने प्रिय मित्र पुत्र आदि को पाप से बचावे। वही जाने वाले मार्गगामी पुरुष के आगे रखने योग्य पद या मार्ग की रक्षा करे। वही स्वयं महान् होकर सूर्य के कर्त्तव्य अर्थात् उसके समान प्रकाशक, तेजस्वी, पालक आदि होने के उत्तम कर्त्तव्य का पालन करे। वह नाभि या केन्द्र में विराज कर शिर के समान सात मुख्य अंगों से युक्त राज्य का पालन करे। वह अग्रणी महान् दर्शनीय तथा विस्तृत सामर्थ्यवान् होकर, सब व्यवहारकुशल विद्वानों और ऐश्वर्य के इच्छुक तथा दानशीलों और विद्यादाताओं के हर्ष की और उनके सन्तोषकारक व्यवहारों की, उनके उपमा या तुल्यता देने वाले कर्त्तव्यों की रक्षा करे। अध्यात्म में—आत्मा भोक्ता पार्थिव शरीर के प्रिय श्रेष्ठ प्राप्तव्य ज्ञान की रक्षा करता, बड़े प्रेरक प्राण की रक्षा करता, वह सात शीर्षण्य प्राणों से युक्त प्राण को

नाभि में रखता और देवों अर्थात् प्राणों के हर्षहेतु और ज्ञान चेतना के देने वाले सामर्थ्य को रखता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान्।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—ऋतु अर्थात् जल को उत्पन्न करने वाला मेघ या स्रोत जिस प्रकार उत्तम, सुन्दर और वेग से चलने वाले जल को उत्पन्न करता है, और जिस प्रकार खूब दीप्तिमान् अग्नि या सूर्य उत्तम स्वरूप को दिखलाता है, उसी प्रकार समस्त ज्ञानों को और जानने योग्य पदार्थों को जानता हुआ, सत्य ज्ञान से प्रकाशित एवं महान् तेजस्वी पुरुष, अपना सुन्दर नाम, कीर्त्ति, यश करे और उत्तम व्यापक शासन करने में समर्थ हो। घी जिस प्रकार सोने वाले या आराम से रहने वाले पुरुष के चर्म की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि सोते हुए पथिक के स्थान की जंगली प्राणियों से रक्षा करता है, उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी पुरुष, प्राप्त हुए सोते हुए, असावधान प्रजाजन के शरीरों की उनके प्राप्त करने योग्य सुखों की और उनके गृहादि स्थानों की और स्वयं अपने तेजोयुक्त पद की विना प्रमाद के रक्षा करे।

आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार घृत से युक्त यज्ञस्थान में स्थित रहती है और जिस प्रकार विद्युत् बड़े शब्द करने वाले जल से युक्त मेघरूप आश्रयस्थान में स्थित रहती है, उसी प्रकार अग्रणी पुरुष जल और घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों से युक्त घर को प्राप्त कर उसमें रहे और नायक पुरुष जल सम्पदा से युक्त राष्ट्र पर शासक बनकर रहे और स्वयं कामनाशील होकर विस्तृत उपदेश करने वाले और चाहने वाले प्रेमी विद्वान् पुरुष को प्राप्त हो। स्वयं चमकता हुआ, शुद्ध पवित्र, निश्छल आचरण से

युक्त, महान्, सबको पवित्र करता हुआ, बार २ आकाश और भूमि को या माता और पिता दोनों को अतिस्तुत्य बनावे। (२) जीव तेजस्वरूप परम आश्रय प्रभु की कामना करता हुआ उसकी ओर प्रस्थित हो, वह स्वयं प्रकाश, पवित्र होकर बार २ जन्म लेकर नये से नये मां-बाप बना लेता है ।

स॒द्यो जा॒त ओष॑धीभिर्ववक्षे॒ यदी॒ वर्ध॑न्ति प्र॒स्वो॑ घृ॒तेन॑ ।
आप॑ इव प्र॒वता॒ शुम्भ॑माना उरु॒ष्यद॒ग्निः पि॒त्रोरु॒पस्थे॑ ॥ ८ ॥

भा०—स्वयं उत्पन्न होने वाली नदियां या अन्नादि उत्पन्न करने वाली जलधाराएं जिस प्रकार नीचे की ओर बहते जल से शोभा को प्राप्त होती है और वे जल से बढ़ती है, उसी प्रकार अग्रणी विद्वान् पुरुष सभासदो से वरण करने योग्य या विराजने के उच्चआसन के योग्य और गुणों मे प्रसिद्ध होकर, ताप तेज को धारण करने वाली सेनाओं से धारण किया जाता है और वह उनके सहयोग मे ही रोषयुक्त होकर प्रचण्ड हो जाता और शत्रुओं पर प्रहार करता है। क्योंकि वे ही उसकी उच्च आसन पर अभिषेक करने हारी होकर और नीचे विनय से जलधाराओं के समान सुशोभित होती हुईं, उसको जलाभिषेक से बढ़ाती और स्वयं भी बढ़ती हैं और वह अग्रणी नायक मां-बाप के गोद मे बालक के समान माता भूमि और सैन्यबल दोनों की उपस्थिति, सन्निधि, रक्षा मे स्वय अपने को बढ़ावे और प्रजा की भी रक्षा करे ।

उदु॑ ष्टु॒तः स॒मिधा॑ य॒ह्वो अ॑द्यौ॒द्वर्ष्म॑न्दि॒वो अधि॒ नाभा॑ पृथि॒व्याः ।
मि॒त्रो अ॒ग्निरीड्यो॑ मात॒रिश्वा॒ दू॒तो व॑क्षद्य॒जथा॑य दे॒वान् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथ्वी पर अग्नि काष्ठ के संग से बड़ा होकर खूब चमकता है, उसी प्रकार जलसेचनकाल अर्थात् वर्षणकाल मे भी अन्तरिक्ष में वही अग्नि विद्युत्‌रूप से अति दीप्ति से या वायु के संघर्षण-रूप उद्दीप्त कारण से उत्तम रीति से चमकता है, वह अग्नि सूर्यरूप में

भी परम आकाश के बीच में अच्छे तेज से महान् होकर वृष्टिसेचन के लिये उत्तम रीति से या सबसे ऊपर चमकता है। वही अग्नि सबका मित्र, सबको अभीष्ट, अपने उत्पादक कारण अरणि, काष्ठ, अन्तरिक्ष और परमाकाश में जीवित और स्थित और गति करता हुआ, तापवान् होकर महान् यज्ञ करने के लिये दिव्य पांचों भूतों, तेजस्वी लोकों और प्रकाशमय किरणों को धारण करता है। (२) नायक पक्ष में—प्रशंसित एवं सबके समक्ष प्रस्तुत किया गया, गुणों में महान्, रूप में आकाश में सूर्य के समान पृथिवी के केन्द्र में स्थित होकर सबसे ऊपर चमके। वह सर्वस्नेही, अग्रणी, पृथ्वी माता पर रहने हारा, वायु के समान बलवान्, दुष्टों का सन्तापकारी होकर, विजिगीषु वीरों के संगत होने या मिलाये रखने के लिये सब पर हुकूमत करे।

उद॑स्तम्भीत्स॒मिधा॒ नाक॑मृ॒ष्वो॒३॑ग्निर्भव॑न्नुत्त॒मो रो॑च॒नाना॑म्।
यदी॑ भृ॒गुभ्य॒ः परि॑ मात॒रिश्वा॒ गुहा॒ सन्तं॑ हव्य॒वाहं॑ समी॒धे ॥१०॥

भा०—अन्तरिक्षगत वायु जलाने वाले काष्ठ आदि से, घर में रखे तथा अन्नादि देने वाले अग्नि को प्रदीप्त करता है, तो भी महान् अग्नि अर्थात् सूर्य सब प्रकाशमान चन्द्रादि पिण्डों के बीच में सबसे उत्तम होता हुआ, अपने तेज से पूर्ण आकाश को सर्वोपरि रहकर थामने में समर्थ है, उसी प्रकार इन्द्रियों को पोषण करने वाले गौण प्राणों से भी श्रेष्ठ प्रमाता आत्मा के आश्रय रहकर श्वास लेने या देह को प्राणवान् करने हारा मुख्य प्राण इस देह में रहने वाले या बुद्धितत्व में व्यापक भोग्य पदार्थों के ग्रहीता जीवात्मा को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है। तो भी परमेश्वर चमकने वाले सूर्यादि या कामनाशील आत्माओं में सबसे उत्तम होता हुआ, उत्तम तेज से, दुःखादि बाधा से रहित परम आनन्दमय स्वरूप को सर्वोपरि स्थायीरूप से बनाये रहता है।

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध।
स्यान्न॑ः सू॒नुस्तन॑यो विजा॒वाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥११॥२५॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० ३।१। सू० १। मन्त्र २३ ॥) इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् ६, ११ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥

भा०—हे क्रियाशील विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार कहे गये मननशील शिल्पी लोग, दानशील स्वामी की कामना करते हुए, दानशील स्वामिजनों को अच्छी लगने वाली शिल्पक्रिया को करते हैं और वह शिल्पक्रिया वेग से युक्त, या ऐश्वर्य से युक्त, दक्षिणा या मजदूरी पैदा करने वाली और उत्तम रूप से प्रकट होकर, अग्रणी तेजस्वी पुरुष को अन्न, सुख आदि पदार्थ पूर्ण करती हुई प्राप्त होती है और जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता लोग परमेश्वर की उपासना करते हुए मन्त्रों द्वारा प्रेरित होकर ईश्वरोपासनायुक्त वाणी को और यज्ञक्रिया करते हैं और दक्षिण दिशा से लाई जाकर घृत से युक्त 'जुहू' नाम स्रुक् पूर्व की ओर अग्नि को लक्ष्य करके आगे बढ़ती है, उसी प्रकार हे क्रियाशील पुरुषो ! आप लोग भी मननशील पुरुष से उपदेश किये जाकर, उत्तम गणों और ज्ञानदानशील विद्वानों की कामना करते हुए, उनको मन से चाहते हुए विद्वान् दानी और ज्ञानदाता गुरुजनों की पूजा सत्कार क्रिया को अच्छी प्रकार किया करो और ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष के सुख के लिये तेज और पौष्टिक पदार्थ को प्राप्त करने वाली क्रिया शक्ति को धारण करने वाली, बल, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम गमन या आचरण वाली, उत्तम सत्कार रूप क्रिया, ज्ञानवान् एवं नायक पुरुष के मान आदर के लिये अन्नादि प्राप्त कराती हुई प्राप्त हो ।

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य प्रकट होकर आकाश और पृथिवी दोनों को पूर्ण करता और पालन करता है और वह अपने महान् सामर्थ्य से आकाश और पृथिवी से भी अधिक बढ़ जाता है और सात ज्वाला वाली अग्नियां भी उसी के अंश कहाती हैं, उसी प्रकार हे अग्रणी नायक ! तू प्रसिद्ध होकर उत्तम उपदेश करने वाले पिता और गुरु दोनों को पूर्ण कर और पालन कर और हे सर्वोत्कृष्ट दानशील ! तू अपने महान् ज्ञान और बल के सामर्थ्य से सूर्य और पृथिवी, ज्ञानी और अज्ञानी दोनों से बढ़ जा । सात छन्दों वाली वाणियों के जानने वाले, एवं कार्य भार वहन करने वाले पुरुष तेरे ही अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें, तेरे ही शिष्य भृत्यादि कहावें ।

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥

भा०—जब मनुष्य प्रजाएं विजयेच्छुक पुरुषों की कामना करती हुई और नाना प्रकार के अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों से युक्त होकर, देह में वीर्य के समान बलकारी तथा गृह में दीप्त ज्वाला के समान प्रकाशक तुझको चाहती हैं, तो ज्ञानप्रकाश से युक्त विद्वान् जन और पृथिवी के समान आश्रय वाली सामान्य प्रजा और यज्ञशील, संगठन के अंग भूत, शासक लोग भी, दुष्टों के दमन के लिये सबको वश करने वाले तुझको ही सर्वोच्च पद स्थापित करते हैं ।

महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥

भा०—महान् पुरुष कान्तिमान् होकर, चाहने वाले उभय पक्षों के बीच एक साथ बैठने के सभाभवन में स्थिर रहकर अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा

पद पर विराजे और विशाल शक्ति और वाणी वाले नायक के अधीन स्त्री और पुरुष दोनों ही उन्नति की ओर बढ़ने वाले, समान भाव से एक-दूसरे को और पुत्रादि का पालन करने वाले जरा अर्थात् वृद्धावस्था से रहित, कामनादि से युक्त, अथवा अति शुद्ध, समान भाव से एक दूसरे का वरण करके एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले और अङ्गाङ्गी भाव से दायें बायें होकर, एक शरीर सा बनाकर एक दूसरे के पूरक होता, सन्तान को दुग्धादि पिलाने हारे हो।

व्रता ते॑ अग्ने मह॒तो म॒हानि॒ तव॒ क्रत्वा॒ रोद॑सी॒ आ त॑तन्थ।
त्वं दू॒तो अ॑भवो॒ जाय॑मान॒स्त्वं ने॒ता वृ॑षभ चर्षणी॒नाम् ॥५॥२६॥

भा०—हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन् राजन्! परमेश्वर! तुझ महान् के बड़े २ कर्म नियम है। तू अपनी क्रिया और ज्ञान सामर्थ्य से आकाश और भूमि दोनों को विस्तृत कर रहा है तू प्रसिद्ध होता हुआ दुष्टों का संतापजनक और भक्तों से उपासित होता है। हे बलवन्! तू सब मनुष्यों का नायक हो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

ऋ॒तस्य॑ वा के॒शिना॑ यो॒ग्याभि॑र्घृ॒त॒स्नुवा॒ रोहि॑ता धु॒रि धि॑ष्व।
अथा॒ व॑ह दे॒वान्दे॑व॒ विश्वा॑न्त्स्वध्व॒रा कृ॑णुहि जातवेदः ॥६॥

भा०—हे विद्वन् पुरुष! केश वाले दो लाल घोड़ो को रथ की धुरा में जिस प्रकार रासों से जोड़ा जाता है, उसी प्रकार तू नाना क्लेशों के सहने वाले, स्नेह को बढ़ाने वाले, परस्पर स्नेही, एक दूसरे के प्रति अनुराग से रक्त स्त्री पुरुषों को योग्य वाणियों से सत्याचरण और ज्ञान के धारण करने के कार्य में लगा, नियुक्त कर, और हे मार्गों का प्रकाश करने और सुखों को देने वाले! तू सत्फलों की कामना करने वाले सब विद्वान् पुरुषों को सत्कर्म में लगाने वाली उत्तम वाणियों से ही उत्तम उद्देश्यों तक ले जा और हे प्रज्ञावान् पुरुष! तु स्त्री पुरुषों को उत्तम रीति से परस्पर की हिंसा से रहित, सौम्य स्वभाव वाला, यज्ञशील, परस्पर सत्संग और मैत्रीभाव से युक्त बना।

दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानशील विद्वन् ! हे नायक ! सूर्य के प्रकाशो के समान तेरे प्रकाश, तेरी रुचियां, कामनाएं सबको अच्छी प्रतीत हो। जिस प्रकार विशेष रूप से चमकने वाली और अपने से पूर्व प्राप्त उषाकालों के अनन्तर स्वय प्रकाशित होता है, उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी प्राचीन काल से प्राप्त, विविध ज्ञानो का प्रकाश करने वाली, पापो का दाह करने वाली वेदवाणियों को प्राप्त करके सुशोभित हो। जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलों को चमकाती है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी सत्कर्म करके प्रकाशित हो। जगलो मे जिस प्रकार अग्नि कमनीय वृक्षो को भी जला देता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी सेवन करने योग्य विषयों मे कामना योग्य वासना का भस्म करने हारा हो। ऐसे ज्ञानप्रद, उत्तम पदार्थों के स्वीकर्त्ता, त्यागी, स्तुत्य, सबके हर्षजनक पुरुष के कर्म की विद्वान् लोग स्तुति करते है।

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आ येमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥

भा०—हे अग्रणी ! जो विद्वान् और शक्तिमान् पुरुष, विशाल, आकाश मे सूर्य या वायु के समान, अपने भीतर निवास करने वाले विशाल आत्मा मे हर्ष को प्राप्त होते है और जो सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञानप्रकाश के निमित्त ज्ञानप्रकाशक पुरुष है और उत्तम रीति से यज्ञ करने हारे वा सुगृहीत नाम वाले और प्रजाओ की रक्षा करने हारे, सगति और मैत्री से युक्त है, वे रथ मे लगने योग्य अश्वों के समान अपने को नियम मे रखें।

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! तू उन उक्त वीरों के साथ एक समान रथ वाला होकर और नाना रथों सहित आगे बढ़। वे अश्वों और अश्वारोहियों के समान विशेष रूप से सामर्थ्यवान्, एवं किरणों के समान व्यापने वाले हों। हे नायक ! तू उन कामनावान्, विजयशील, तेजस्वी, पालन करने वाली शक्ति से युक्त, ३३ प्रधान पुरुषों को उनके अपने देह को धारण करने योग्य अन्न और वेतन देकर धारण कर और उनको सन्तुष्ट कर। इन ३३ देवों के वर्णन का स्पष्टीकरण देखो। ऋ० १। १३८। ११॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

भा०—जिस महान् पुरुष के सूर्य और पृथिवी के समान विशाल माता या पिता और गुरु, उत्तम उपदेश करने वाले, प्रत्येक सत्संग के अवसर पर उसकी वृद्धि के लिये उपदेश करते हैं और वे दोनों अति पूज्य, सुन्दर शुभ रूप वाले, सत्यज्ञानों से पूर्ण, सत्याचरण वाले होकर, ज्ञान में उत्पन्न विद्वान् के समीप उसके अहिंसनीय दृढ़ रक्षकों के समान रहते हैं, वही उत्तम ज्ञान को लेने वाला पुरुष है।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे।११।२७।८।२

भा०—व्याख्या देखो (३ । १ । २३)॥ इति सप्तविंशो वर्गः॥ इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति द्वितीयोऽष्टकः॥

इति श्रीविद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीपण्डित-जयदेवशर्म-विरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये द्वितीयोऽष्टकः समाप्त.॥

मुद्रकः—
दी फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर.

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद विषय सूची

तृतीयोऽष्टकः । तृतीये मण्डले

(सप्तमसूक्ताद् आरभ्य)

प्रथमोऽध्यायः (पृ० १–११७)

सू० [७]—(१) माता पिता गुरुजनों का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में अग्नि, प्रभु शितिपृष्ठ हैं । (२) किरणों वाले सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा, प्रकाश ग्रहणवत् शिष्यों की उपासना और ज्ञान ग्रहण । राजा प्रजा का व्यवहार । (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । गृहपति के कर्त्तव्य । (४) चालक शक्ति और यन्त्र, किरणों और सूर्य और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से राजा प्रजा का व्यवहार । (५) राजा प्रजावत् गुरु शिष्य । (६) सूर्य, मेघ से जलान्नवत् गुरु जनों से ज्ञानोपार्जन । गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (७) यज्ञकर्त्ताओं, सूर्य की किरणों के समान देह में प्राणों के कर्म । (८) मेघों के तुल्य आदर योग्य गुरुजन । (९) अश्व की रासों वा सूर्य की किरणों के समान शिष्यों प्रजाओं का नियन्त्रण । (१०) उषाओं के समान प्रजाओं के कर्त्तव्य । (पृ० १–११)

सू० [८]—वृक्षवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में राजा का कर्त्तव्य । (४) आचार्य के गर्भ से उत्पन्न विद्वान् को उपदेश । (६) कुठारवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । कृषक, वा क्षत्रियवत् विद्वान् । (८) लोकों में सूर्यवत् प्रधान विद्वान् की स्थिति । (९) हंसों के तुल्य वीर और विद्वान् जन । (१०) यज्ञ में यूपों के समान विद्वान् वीरजन । (११) वटवत्

राजा या आचार्य का शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ना। पक्षान्तर में सूक्त की यज्ञ-यूपों में योजना। श्लेष से किरणों, विद्वानों प्राणों वीर सैनिकों की ओर योजना का निर्देश। (पृ० ११–१८)

सू० [९]—अपांनपात् आत्मा के समान विद्वान् नायक (२) जलों में विद्युत्, काष्ठों में अग्निवत् विद्वान् वीर नायक की स्थिति। (३) नौकावत् आचार्य और प्रभु। (४) प्रजाओं का सिंहवत् शूर नायक का स्वीकार। (५) अग्नि वायुवत् गुरु शिष्य का व्यवहार (७) अन्धकार में दीपवत् विद्वान्। यज्ञाग्निवत् विद्वान् और वीर नायक। पक्षान्तर में प्रभु का स्वरूप। (पृ० १८–२४)

सू० [१०]—सम्राट्-अग्नि, परमेश्वर, राजा के कर्त्तव्य। परमेश्वर की भक्ति, उपासना। (४) परमेश्वर का स्वात्म ज्ञान-दर्शन। अध्यात्म में अग्नि जीव। (५-९) परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना। पक्षान्तर में विद्वान् नेता के कर्त्तव्य। (पृ० २४–२९)

सू० [११]—अग्नि, अग्रणी नायक के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० २९–३३)

सू० [१२] –इन्द्र, अग्नि, मेघ और सूर्य वा वायु और विद्युत् के समान, प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। गुरु आचार्य के कर्त्तव्य (४) वायु-सूर्यवत् विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य। सेनाध्यक्ष सभाध्यक्षों का कर्त्तव्य। (पृ० ३३–३७)

सू० [१३]—अग्निवत् आचार्य और राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ३७–४१)

सू० [१४]—विद्वान् गुरु और परमेश्वर का वर्णन। (३) यज्ञाग्निवत् उसकी उपासना। पक्षान्तर में विद्युत् के दो प्रकारों का वर्णन। नायक सेनापति की दो सेनाएं। (४) 'सहसः पुत्र' अग्नि और नायक। (५) दान-प्रतिदान, विद्वत्सेवा और ज्ञानार्जन, (६-७) आराधना, आत्म-समर्पण विद्वान् नायक के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० ४१–४६)

सू० [१५]—विद्वान् उत्तम नायक की शरण में रहने का उपदेश। (२) राजा वा गुरु का प्रजा से पिता-पुत्रवत् सम्बन्ध। (३) मेघवत् राजा के कर्त्तव्य। (३-४) प्रजा वर्ग की उत्तम कामना। (५) रथवत् नायक। विजिगीषु के कर्त्तव्य। (पृ० ४६—५१)

सू० [१६]—स्वामी, ईश्वर, परमेश्वर का वर्णन। (२) वायुवत् वीरों के कर्त्तव्य। (३) अग्रणी के अनुयायियों के प्रति कर्त्तव्य। (५) उत्तम राजा से प्रार्थना। पक्षान्तर में प्रभु से प्रार्थना। (पृ० ५१—५४)

सू० [१७]—यज्ञाग्निवत् वीर विद्वान् के कर्त्तव्य। परमेश्वर का वर्णन (२) सूर्यवत् विद्वान् का आदान, प्रतिदान। (३) तीन आयु, तीन उषाओं की व्याख्या। (४) उत्तम रक्षक, ज्ञानप्रद का आदर। (पृ० ५४—५९)

सू० [१८]—मित्र और मातृ पितृवत् ज्ञानी और प्रभु का वर्णन। (२) दुष्ट संतापक प्रभु। (३) अपने बल वृद्धि के लिये ज्ञानी, तेजस्वी प्रतापी का पालन करना प्रजा का कर्त्तव्य है। (४) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। सर्वस्नेही उत्तम पुरुषों में शक्ति स्थापन करके उपद्रवों को शान्त करने का उपदेश (५) राजा को सदा सहायतार्थ उद्यत होने का उपदेश। (पृ० ५९—६२)

सू० [१९]—यज्ञ में होता के समान नायक का वर्णन। (२) गृहाश्रम के समान राज्याश्रम का निर्वाह। पक्षान्तर में आचार्यकुल का वर्णन। (३) प्रजा को शिक्षित करने का कर्त्तव्य। (पृ० ६२—६६)

सू० [२०]—गृहस्थ के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। (२) राजा के तीन बल, तीन स्थान, तीन जिह्वा, तीन तनु। परमेश्वर की तीन शक्तियां। (३) विद्वान् ज्ञानाश्रय गुरु, प्रभु। (४) तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य। (५) दधिक्रा अग्नि, उषा, बृहस्पति, सविता, अश्वी, मित्र-वरुण, आदित्यों का आह्वान। इनका रहस्य। (पृ० ६६—७०)

सू० [२१]—यज्ञ का संस्थापक अग्नि विद्वान्। (२) अग्नितुल्य आचार्य। पक्षान्तर में ईश्वर और राजा। (५) उनका अभिषेक। (पृ० ७०–७४)

सू० [२२]—अग्नि विद्युत्, ज्ञानप्रद आचार्य गुरु का शिष्य को उपदेश। पक्षान्तर में अग्नि तत्व का वर्णन। (४) पुरीष्य अग्नि में नाना नेता। अध्यात्म में—प्राणगण। (पृ० ७४–७७)

सू० [२३]—अरणियों से अग्निवत् विवाद द्वारा सभाभवन में शास्त्र का सत्य निर्णय प्राप्त करना। अग्नि, सूर्य, विद्युत् के तुल्य दीर्घ जीवन की वृद्धि का उपदेश। (३-४) देह में प्राणों से गर्भवत् सेनाओं और प्रजाओं से तेजस्वी नायक की उत्पत्ति। नायक का चुनाव और प्रतिष्ठा। पक्षान्तर में—प्राणों में आत्मा का प्रकट होना। (पृ० ७७–८०)

सू० [२४]—वीर नायक के कर्त्तव्य। तेजस्वी हो, उत्तमासन पर विराजे, अभिमानी शत्रुओं को पराजित करे; सत्कार लाभ करे, राष्ट्र को वीर पुरुषों और ऐश्वर्यों से बढ़ावे। पक्षान्तर में आत्मा, परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ८०–८३)

सू० [२५]—उत्तम सेनापति। उत्तम आचार्य, उपदेशक आदि का वर्णन। अध्यात्म में आत्मा। (पृ० ८३–८६)

सू० [२६]—वैश्वानर अग्नि, विद्वान्, और परमेश्वर। (२) वैश्वानर मातरिश्वा। (३) अश्व के दृष्टान्त से विद्वान् नेता वा प्रभु का वर्णन। (४) मेघमालाओं, अश्वाओं, सेनाओं से युक्त वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन। (५-६) तेजस्वी पुरुषों की वायुओं से श्लिष्टोपमा। (७) जातवेदाः अग्नि जीवात्मा। (८) तीन पावन साधनों से पवित्र होकर ब्रह्म की साधना (९) शतधार मेघवत् विद्वान् का रूप। (पृ० ८६–९३)

सू० [२७]—विद्वानों का वर्णन। प्रभु और गुरु की उपासना। विद्वान् प्रधान नेता, और स्वामी के कर्त्तव्य। (११) यन्त्रचालकाग्निवत् नियन्ता के कर्त्तव्य। (पृ० ९३–१००)

सू० [२८]—अग्नि शिष्य का कर्त्तव्य वर्णन । पक्षान्तर में स्वामी का वर्णन। (४) पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। माध्यन्दिन सवनका भाव। (पृ० १००–१०४)

सू० [२९]—अग्नि के समान प्रजा और आत्मा के शरीरधारक होने और उत्पन्न होने का वर्णन । अग्नि-मन्थन, प्राण-मन्थन, और प्रजोत्पत्ति की समानता । पक्षान्तर में सैन्य-मन्थन । (२) अरणियों से अग्नि की उत्पत्ति की अध्यात्म व्याख्या । अग्रणी नायक की अधिस्थापना । (५-६) अग्निमन्थन का अध्यात्म प्रकार । मन्थन और अश्व चालन की तुलना । अग्निवत् आत्मा और वीर । (७) विद्वान् अग्नि, (८) अग्नि राजा और स्वामी । (९) अग्नि आचार्य और वीर पुरुष । (१०) अग्नि के ऋत्विय योनि की व्याख्या । (११) तनूनपात् जीव । विद्युत्वत् आत्मा की उत्पत्ति का रहस्य । पक्षान्तर में ब्रह्मचारी का जन्म । (१२) मथिताग्नि और विद्वान् । अमृत अग्नि वीर । (१४) विद्युत् जीव । (१५) यज्ञाग्निवत् विद्वान् । (१६) विद्वान् होता अग्नि । (पृ० १०४–११७)

इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ११७–२०९)

सू० [३०]—वीर पुरुष, और परमेश्वर का वर्णन । (२) वीर, विद्वान्, (३) सेनापति का वर्णन । विद्युत् के समान वीर का वर्णन । पक्षान्तर में परमेश्वर का जगत्सर्ग और सञ्चालन । (५) राजा के कर्त्तव्य । वीर सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रुनाश, प्रजापालन (९) सजल मेघवत् लोक का धारण । पक्षान्तर में गृहपति का वर्णन । (१०) बलवान् राजा के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में मेघ का वर्णन । (११) सूर्यवत् महारथी राजा का कर्त्तव्य वर्णन । (१२) मेघ सूर्यवत् प्रजा को अन्न देने का कर्त्तव्य । राजा के अधीन उत्तम भूमि का वर्णन, पक्षान्तर में आचार्य की वाणी का वर्णन । (१५) राजा का प्रजा को युद्ध शिक्षा देने का कर्त्तव्य । दान-

शील के कोशों का वर्णन । (१८) शत्रु का महास्त्रों से नाश करने का उप देश । (१९) ऐश्वर्यवान् दानी सर्वप्रिय, सबके वंशों को बढ़ाने वाला हो । (२०) सर्वश्रेष्ठ, वीर स्तुत्य पुरुष इन्द्र कहाने योग्य है । (पृ० ११७–१२४)

सू० [२१]—(१) पुत्रपुत्रिका-विधान, कन्या का अपुत्र पिता कन्या में जामाता द्वारा उत्पन्न पुत्र को अपना पुत्र बनावे । (२) कन्या के पिता का वही दायभागी पुत्र हो । कन्या परगोत्र के पुरुष को दी जाती है । अग्नियों के दृष्टान्त से पुत्र-पुत्री का विचार (३) अग्निवत् पुत्र शिष्य और वीर बड़े होकर उन्नत हों । (४) सूर्य के दाहक किरणों के तुल्य वीर को सेनाएं और प्रजाएं अपनावें । (५) देह में सातों प्राणवत् राष्ट्र में सात प्रकृतियों का वर्णन । (६) विद्युत्वत् सेना का कर्त्तव्य । (७) मेघ और रत्नगर्भ पाषाणवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । (८) वीर और विद्वान् ज्ञान संग्रह करे, दुखदायक, प्रजाशोषक कारणों का नाश करें । प्रजा को पाप से मुक्त करे । (९) विद्वानों का नियमानुसार व्रताचरण, और आराधना । (१०)गौओं से दुग्धवत् आत्म ज्ञान का उपार्जन,इसी प्रकार राजा का दुग्धवत् भूमि-दोहन । (११) शत्रुहन्ता का आदर और पोषण । (१२) उसके लिये विशाल भवन निर्माण । अध्यात्म में प्राणों का देह-साधन । (१३) सर्वथा स्तुत्य प्रभु । (१४) प्रभु की सहस्रों सनातन शक्तियें । (१५) उत्तम राजा का कर्त्तव्य । (१६) विद्या वृद्धि और प्रजा को उन्नत करने का उपदेश । (१७) दिन रात्रिवत् राजा प्रजा का व्यवहार । (१८) सूर्य वा मेघवत् राजा उदार हो । (१९) वह प्रजा को शिक्षित करे । (२०) प्रजा का पालन करे । (२१) सूर्यवत् भूमि पर राजा का शासन और दुष्टदमन का वर्णन । (पृ० १२४–१४९)

सू० [३२]—मध्यान्ह में भोजन अन्न, खाने का उत्तम उपदेश । पक्षान्तर में तीव्र बलवान् होकर राजा का प्रजैश्वर्य भोग और आचार्य का विद्या-दान । अध्यात्म में माध्यन्दिन सवन । (२) सूर्य के जलपानवत् प्रजा से कर–

संग्रह और उसके पालन का उपदेश । पक्षान्तर में वीर्य रक्षा और ब्रह्मचर्य का उपदेश । (३) मध्यान्ह के सूर्यवत् तेजस्वी राजा की दशा । (४) तेजस्वी राजा के वायुवत् बलवर्धक जन । (५) सूर्य विद्युत्वत् तेजस्वी को व्यवहार करने का उपदेश । पक्षान्तर में सन्तानवत् आचार्य का पालन । (६) विद्युत् के मेघ को आघात करने के समान दुष्टजन का नाश । पक्षान्तर में—परमेश्वर का प्रकृति में स्पन्द और नीहारिका सञ्चालन । (७) अपार शक्तिशाली इन्द्र का आदर । (८) जगद्-धारक वायुवत् राजा का कर्त्तव्य । (१०) राजा जीव और ईश्वर का वर्णन । (११) विद्युत् वत् शत्रु पर आघात, (१२) यज्ञ से इन्द्र राजा की वृद्धि । यज्ञ का स्वरूप (१४) रक्षक सर्वतारक प्रभु । (१५) कुशलवत् राष्ट्र को पूर्ण समृद्ध करने का उपदेश । (१६) निर्बाध इन्द्र का सामर्थ्य । (पृ० १४९–१६०)

सू० [३३]—गो-वृषभ, वा नदियों के समान प्रेम से संगत स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । सेना-सेनापति का वर्णन । विपाट् शुतुद्री का रहस्य । (३) विपाट् माता, का वर्णन । विपाट् माता परमेश्वर । (४) नदी जल के दृष्टान्त से प्रजोत्पत्त्यर्थ स्त्री का पाणिग्रहण । (५) रक्षा की इच्छा से वरवर्णिनी का वरवरण । नदियों और कुशिकसूनु का रहस्य । पक्षान्तर में सेनानायक का सेनाओं द्वारा वरण । सूर्य, मेघ, जलधारावत् राजा का दुष्टदमन, प्रजापालन और गृहपति का कर्त्तव्य, एवं शिल्पी इंजनीयर का नहरें बनाना । (७) मेघ के छेदक-भेदक सूर्य, वायुवत् राजा और आचार्य का शत्रु और अज्ञान का नाश । (८) उपदेष्टा और शासक को उपदेश । (९) नदियोंवत् विनीत महिलाओं को उपदेश । (१०) कन्या वा स्त्रीवत् प्रजा का राजा के प्रति विनय । (११) स्त्रियों के प्रति आदर भाव । (१२) योग्य भूमिवत् स्त्री प्राप्त कर संसार पार करने का उपदेश । (१३) ब्रह्मचारिणियों को मेखलादि मोचन और शुद्ध हो कर गृहस्थ में प्रवेश । (पृ० १६०–१७२)

सू० [३४]—वीर राजा के कर्त्तव्य। शत्रु नाश, स्वपक्षपोषण, प्रजा पालन। (२) प्रजा का राजा की शरण में जाना, (३) मायावियों का नाश। सूर्य अग्नि वत् राजा के कर्त्तव्य। ध्वजा के नीचे प्रजा को लाना, (५) उत्तम अध्यक्षों को नियुक्ति। राजा का गुरुवत् व्यवहार। (६) पुण्यकर्मा, दुष्टदलक को कीर्त्ति लाभ। (७) राजा को विद्वान् का उपदेश। (८) सैन्यादि का श्रेणी विभाग, चिकित्सा, छाया वाले वृक्षों और जल, सैन्यादि का प्रबन्ध। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० १७२–१७८)

सू० [३५]—वीर राजा की युद्ध यात्रा। (२) युद्ध रथ। अश्व पालन (४) रथ में दो अश्वों के समान राष्ट्र में दो प्रमुखों की नियुक्ति। (५) प्रलोभन में पड़ने का उपदेश। (६) स्थायी राजा की नियुक्ति पक्षान्तर में आचार्य का शिष्य पालन। (७) सूर्य वत् राष्ट्र के प्रबन्धक अधीन शासकों के कर्त्तव्य। (१०) राजा की तीक्ष्ण वाणी, पक्षान्तर में आत्मा और परमेश्वर आचार्य, का वर्णन। (पृ० १७८–१८४)

सू० [३६]— राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्मा परमात्मा का वर्णन। (३) गुरु शिष्य और राजा प्रजा का पुत्र पितावत् सम्बन्ध। (४) महान् का अपार सामर्थ्य। सूर्यवत् राजा का वर्णन और प्रजा का पालन और समर्थन। (७) नदियों वत् प्रजाओं का कर्त्तव्य। (८) जलाशयवत् जनों और कोषों का वर्णन। पक्षान्तर में शिष्यों के कर्त्तव्य। इन्द्र की सोमधाना कुक्षियों और उसके सोम-भक्षण का रहस्य। (९) वसुओं का वसुपति। उसके कर्त्तव्य। (पृ० १८४–१९२)

सू० [३७]—शत्रु दलन और विजयार्थ सेनापति का स्थापन। उसके प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य। सेनापति का प्रस्ताव, स्तुति और उत्साहवर्धापन। सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रु पराजय। पञ्चजन का स्पष्टीकरण (१०) राजा की राष्ट्र के धनैश्वर्य की आशंसा। पक्षान्तर में अध्यात्म वर्णन। (पृ० १९२–१९५)

सू० [३८]—उत्तम शिल्पी और अश्व के समान विद्वान् के कर्त्तव्य (२) ज्ञान प्राप्त्यर्थ विद्वानों की उपासना का उपदेश । पक्षान्तर में प्रभु शक्तियों का वर्णन । (३) ज्ञान प्रकाश करना विद्वानों का कर्त्तव्य । संयम और परस्पर पोषण । (४) किरणों और सूर्यवत् अध्यक्ष और अधीनों का सम्बन्ध । स्वरोचि, असुर, वृषा परमेश्वर । (५) 'मेघवत् राजा का शासन । परमेश्वर और आत्मा के शासन का उत्तम नमूना । (६) शासन कार्य में तीन सभाएं । वायुकेश गन्धर्वों का रहस्य । (७) मेघमाला वत् वाणी के अद्भुत कर्म । पक्षान्तर में प्रभु की वेद वाणी की शिक्षा से समस्त विद्वानों को ज्ञान की प्राप्ति । (८) राजा प्रजा का परस्परवरण । परमेश्वर सर्व तेजोमय । (९) ईश्वरीय सनातन धर्म की साधना । (पृ०१९६–२०३)

सू० [३९]—पति को स्त्रीवत् ईश्वर को सर्व स्तुति की प्राप्ति । (२) उत्तम पत्नीवत् वेदवाणी का वर्णन । (३) यमसू के दृष्टान्त से, सयंमी को विद्या प्राप्ति, स्त्री पुरुषों को उपदेश । राष्ट्र के यम, यमसू, और प्रभु यम । (४) विद्वान् वीर योद्धा पालक पितरों का वर्णन । (५) गुरुओं का शिष्यानुगमन और सूर्य-व्रतपालन । (६) राजा की पशु-सम्पत् प्राप्ति । धन दान और रक्षा । (८) असत्य से सत्य के और अन्धकार से प्रकाश के विवेक का उपदेश । (८) सूर्यवत् ज्ञान-प्रकाश की स्तुति । (पृ० २०३–२०९)

तृतीयोऽध्यायः (पृ० २०९–२९९)

सू० [४०]—राजा का राष्ट्रोपभोग । (२) प्रशस्त पुरुषों के लिये अन्न भोजन का उपदेश । (३) यज्ञ, सत्संग की वृद्धि का उपदेश । (४) गुरु गृह में शिष्योंवत् अभिषिक्त अध्यक्षों का राजा के अधीन कार्य करना । (५) पेट में अन्न को जैसे वैसे कोश में ऐश्वर्य को और विद्यागर्भ में शिष्य का रखने का उपदेश । (६) ऐश्वर्यों का पालक इन्द्र, प्रभु, उसकी उपासना । (पृ० २०९–२१२)

सू० [४१]—सूर्यवत् राजा वा प्रभु का आह्वान। (२) राजा राष्ट्र की वृद्धि करे। (३) विवेक से राष्ट्र का पालन और उपभोग करे। (६) उत्तम पुरुष को नीच कार्य में लगाने का निषेध। (९) सर्व-प्रिय राजा। सोम और इन्द्र का रहस्य। (पृ० २१२–२१५)

सू० [४२]—सोम इन्द्र के सम्बन्ध और उनके नाना रहस्य। राजा प्रजा, शिष्य आचार्य के कर्त्तव्य। (५) शतक्रतु, वाजिनीवसु इन्द्र। (६) धनञ्जय और इन्द्र। (७) गवाशिर यवाशिर सुतका रहस्य। कुशिकों का इन्द्राह्वान। (पृ० २१५–२१९)

सू० [४३]—राजा का दो मित्र ब्रह्म, क्षत्र से मिलकर राज्य संचालन। प्रजा के साथ उत्तम व्यवहार। (७) सूर्य मेघवत् राजा के नाना कर्त्तव्य। (पृ० २१९–२२३)

सू० [४४]—अध्यक्ष राजा के कर्त्तव्य। (२) गृहवत् राज्य में परस्पर आदर सत्कार और प्रेम का उपदेश। (३) सूर्य-आकाश का सस्य-श्यामला भूमि का पालन। राजा तेजस्वी हो, सूर्य वायु की शक्तिवत् इन्द्र, और अर्जुन वज्र की व्याख्या। सैन्य दलों से ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। (पृ० २२३-२२६)

सू० [४५]—राजा का अश्व सैन्यों सहित प्रयाण और आगमन। (२) सूर्य विद्युत् वायुवत् राजा का शत्रु-उच्छेदन कार्य। (३) किरणों, समुद्र, गो-गोपाल आदिवत् राजा प्रजा के सम्बन्ध। (४) पिता का पुत्रवत् राजा का प्रजा को सम्पत्ति देना। (५) स्वराट् शासक सर्वोच्च, बहुश्रुत, कीर्त्तिमान् हो। सूक्त की अध्यात्म योजना। (पृ० २२६–२३०)

सू० [४६]—राजा के वीरोचित कर्त्तव्य। (५) शासकों और शास्यों का राजा के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० २३०–२३३)

सू० [४७]—मरुत्वान् इन्द्र का जठर में सोम-सेचन का रहस्य। राष्ट्र में जल सेचन का उपदेश। (२) समरुत्, सूर्यवत् सगण इन्द्र को विजय का आदेश। (३) ऋतुपालक, सूर्यवत् राजसभा के सभ्यों सहित

(५) ऐश्वर्य के वृद्ध्यर्थ देश-देशान्तर में यातायात करने का उपदेश। (६) ऐश्वर्य कमा कर दुनियां के सुख उत्तम स्त्री, जाया, रथ, भवन आदि को प्राप्त करने का उपदेश। (७) समृद्धों को दान का उपदेश। (८) सूर्य के जल पानवत् ज्ञानोपार्जन का उपदेश। (९) सर्व प्रिय होने का उपाय। (१०) परमहंस विद्वानों का कर्त्तव्य। हंस का रहस्य। (११) वीरों के कर्त्तव्य। (१२) उत्तम राजा। (१४) राजा का निकृष्ट असभ्य देशों के प्रति कर्त्तव्य। 'कीकट', 'प्रमगन्द', 'नैचाशाख' के रहस्य। (१५) उषावत् वाणी और भूमि का रूप। (१६) वृद्धों की वाणी, और भूमि। (१७) रथवत् राष्ट्र, गृहाश्रम, और बैलोंवत् शास्य-शासन और स्त्री पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (१८) बलप्रद स्वामी सबको पुष्ट करे। (१९) वीरोचित उपदेश। (२०) रथवत् और तरुवत् स्वामी के कर्त्तव्य। उबलती हांडी के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य का उपदेश। (२२) मूर्ख और विवेकी का भेद। (२४) राज पुरुषों, सैनिकों के कर्त्तव्य। (पृ० २५६–२७०)

सू० [५४]—प्रधान नायक के कर्त्तव्य। उत्तम शासक की प्रशंसा और आदर। (३) स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (उत्तम) ज्ञान के वक्ता दुर्लभ हैं। (६) सूर्य भूमिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों के स्वभाव कैसे होने चाहियें। (८) स्त्री का अधिकार। (९) पवित्र दाम्पत्य। (१०) दम्पति के कर्त्तव्य। (११) उत्तम पिता के कर्त्तव्य। (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य। वीरों के कार्य। (१४) उत्तम मुख्य पुरुष का स्थापन। उसके कर्त्तव्य। (१८) व्यवस्थापक न्यायाध्यक्ष के कर्त्तव्य। (२१) उत्तम अन्न जलों के उपभोग का उपदेश। (पृ० २७० २८३)

सू० [५५]—परब्रह्म परमेश्वर का वर्णन। महान् असुर। सूर्यवत् उसके ज्ञानमय प्रकाश। पक्षान्तर में विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य। (४) तेजस्वी पुरुष का वर्णन। माता-पुत्रवत् राजा-प्रजा का व्यवहार।

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० २९९–३८२)

सू० [६१]—उपावत् युवति वधू के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में सेना के कर्त्तव्य । (४) चर्खे की तकली के समान स्त्री के कर्त्तव्य । उषावत् स्त्री के उत्तम गुण और कर्त्तव्य । (पृ० ३२४–३२९)

सू० [६२]—सूर्य मेघवत् राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का उपदेश इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा आदि नाना विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) बृहस्पति परमेश्वर । (८) वाणी का स्त्रीवत् स्वीकार (२) सम्यग्दृष्टि वाला विद्वान् वा सर्व द्रष्टा प्रभु । (१०) गुरु मन्त्र, सावित्री गायत्री । सर्वोत्पादक प्रभु सविता की उपासना, (१३) सोम विद्वान के कर्त्तव्य । (१६) मित्र वरुण अर्थात् स्त्री पुरुषों को उपदेश । (पृ० ३२९–३३६)

॥ इति तृतीय मण्डलम् ॥

अथ चतुर्थ मण्डलम्

सू० [१]—उत्तम मार्गदर्शी और अग्रणी पुरुष के आदर का उपदेश । आचार्य और राजा का वरण । उनके कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर से प्रार्थना । (६) राजा की गौवत् अघ्न्या प्रजा का पालन । (७) अग्नि विद्युत्, सूर्यवत् राजा के तीन रूप । (८) दीपकवत् मार्गदर्शी, और भवनवत् सर्वरक्षक राजा का स्वरूप । (९) लगाम से अश्ववत् उत्तम नीति से राष्ट्र का संचालन और ऐश्वर्य पद प्राप्ति । (१०) अग्नि, अग्रणी का यथार्थ कर्त्तव्य । (११) राजा का अपात् अशीर्षा रूप । मेघवत् दयालु हो । (१२) मेघवत् आचार्य और राजा, पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । उनकी ७ प्रकृति । (१३) जिज्ञासु जनों का कर्त्तव्य । मार्गदर्शी जनों का गोपालकवत् कर्त्तव्य । (१४) शिक्षकों और संचालकों के कर्त्तव्य । उनका वरण । (१६) वेद वाणी का त्रिधा मनन । उसके २७

रूप। उस द्वारा प्रभु की स्तुति। (१७) प्रकाश से तिमिरवत् ज्ञान से अज्ञान का नाश। दुष्टों का नाश और न्याय का कर्त्तव्य। (१८) ज्ञान की प्रकाश से तुलना। (१९) प्रभु, स्वामी का उत्तम रूप। नित्य परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ३३८–३५१)

सू० [२]—अविनाशी अमृत परमेश्वर का वर्णन। जगत् के राजा के तुल्य प्रभु का वर्णन। (४) राजा के कर्त्तव्य। उसके लिये उपदेश। (६) सूर्यवत् उसका पद। (७) प्रभु के कृपापात्र कौन। प्रातः उपासक उसके कृपापात्र हैं। उपासकों के कर्त्तव्य। (११) दाता राजा, स्वामी के कर्त्तव्य। (१४) शिल्पियों के तुल्य वीरों के कर्त्तव्य। (१५) किरणों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य। (१७) पुण्यकर्मा जनों का सुवर्णवत् आत्मशोधन। (१८) स्वामी का आदर्श रूप। (१९) अधीन के कर्त्तव्य। (पृ० ३५२–३६४)

सू० [३]—न्यायवान् राजा की प्रथम स्थापना। (२-८) उसके लिये उत्तम भवन। (३) शास्ता के कर्त्तव्य। उसको क्या २ जानना चाहिये? (९) शास्य या शिष्य के कर्त्तव्य। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (१२) उत्तम देवियों और गृहपतियों के कर्त्तव्य। (१३-१६) उत्तम मनुष्य के कर्त्तव्य। नायक के कर्त्तव्य और नीतियुक्त वचनों के उपदेश। (पृ० ३६४–३७४)

सू० [४]—रक्षोघ्न अग्नि। राजा को बल सम्पादन का उपदेश, दुष्ट सन्तापक राजा वा सेना नायक के कर्त्तव्य। उसके अग्निवत् तीव्र तेजस्वी रूप का वर्णन। (६-१०) उसके अनुग्रहपात्र। पक्षान्तर में प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, अर्चना। (११) स्वामी और प्रजा का उत्तम सम्बन्ध। (१२) भृत्य वा अधीन शासक कैसे हों। (पृ० ३७४–३८२)

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सू० [५]—वैश्वानर अग्नि। सर्वनायक की उपासना। (२) उसका स्वरूप। अग्रणी परमेश्वर से प्रार्थना। (५) नीचे गिरने वाले

लोगों की दशा । (६) गुरु, महान् ज्ञान शिष्य को देवे । (७) शिष्य का कर्त्तव्य । (८) माता पितावत् आचार्य का स्वरूप । (९) सूर्यवत् प्रमुख पद । (१०) वाणी द्वारा शिष्य गुरु के ज्ञान को कैसे जाने । (१२) गुरु का कर्त्तव्य और उसकी उत्तम अभिलाषा । (१६-१४) जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य । उनके प्रति गुरु के कर्त्तव्य । (१५) तेजस्वी राजा । (पृ० २८२—२९१)

सू० [६]—अध्वर का होता अग्नि, ज्ञानप्रद गुरु और राजा । (२) तेजस्वी सेनानायक के कर्त्तव्य । (३) ब्रह्मचारिणी के तेजस्वी पुत्रवत् सेना के तेजस्वी नायक का वर्णन (४) अग्नि, सूर्यवत् तेजस्वी नायक । (७) सर्वोपरि आदरणीय प्रभु । (८) अग्रणी का उज्ज्वल पद । (९) कैसे को नायक बनावें । उसकी गुणस्तुति । (पृ०२९१—२९७)

सू० [७]—प्रभु की उपासना । वह अग्निवत् स्वप्रकाश । स्तुत्य । दीपक वा अग्निवत् उसका ग्रहण । (४) पापनाशक प्रभु । (५) परम पावन । (६) सत्-चित् प्रभु । (७) आनन्द मय प्रभु, प्रकृति का स्वामी । (८-११) अग्नि, विद्वान्, दूतवत् प्रभु । अग्निवत् तेजस्वी का वर्णन । (पृ० २९७—४०४)

सू० [८]—बहुज्ञ पुरुष का आदर सत्कार । ज्ञानमय सर्वज्ञ प्रभु की उपासना । अग्निहोत्र, और प्रभु की उपासना । (६) विद्युत्-साधना और ऐश्वर्य प्राप्ति । गुरु प्रभु-शुश्रूषा । (७-८) धन, बल की याचना । (पृ० ४०४—४०७)

सू० [९]—राजा, विद्वान् अग्रणी नायक, और ज्ञानमय प्रभु की उपासना और स्तुति । (पृ० ४०७—४१०)

सू० [१०]—उत्तम नायक, विद्वान् आदि की समृद्धि की आ-शंसा । उससे रक्षा, ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना । (पृ० ४१०—४१३)

सू० [११]—विद्वान् नायक को तेजस्वी होने का उपदेश । (२)

विद्वानों, शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष। वह ज्ञान और ऐश्वर्य का अग्नि, विद्युत् के समान उत्पादक हो। दोषों, पापों से सबको पार करे। उत्तम बुद्धि दे। (पृ० ४१२–४१६)

सू० [१२] यज्ञाग्निवत् विद्वान् की सेवा शुश्रूषा। उसको श्रद्धापूर्वक दान। (२) प्रातः सायं अग्निहोत्र। अग्नि का स्वरूप, अग्निवत् तेजस्वी अग्र नायक। उसके कर्त्तव्य। प्रजा को अपराध रहित करना। पैर में बद्ध गौवत् पदों में बद्ध वाणी का दान। पाप मोचन। (पृ० ४१६–४२०)

सू० [१३]—प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् का वर्णन। (२) महावृषभवत् बलवान् तेजस्वी को सबको कंपाने का कर्त्तव्य। (३) रक्षार्थ तेजस्वी का आश्रय (४) अन्धकार को सूर्यवत् अज्ञान वा शत्रु का नाश। (४) सूर्य की अनवलम्ब स्थिति का कारण। तद्वत् नायक की सर्वोच्च स्थिति। (पृ० ४२०–४२४)

सू० [१४]—सूर्य को उषाओं की तरह तेजस्वी पुरुष को प्रजाओं की चाह। सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक विस्तार करना। (३) उषावत् विदुषी स्त्री के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों का परस्पर बन्धन। (पृ० ४२४–४२६)

सू० [१५]—तेजस्वी पुरुष के योग्य पद। (६) उसका संस्कार। (८-१०) वीरों में से दो प्रधानों का चुनाव। 'साहदेव्य कुमार' की व्याख्या। (पृ० ४२६–४३०)

सू० [१६]—ऐश्वर्यवान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के गुरुवत् कर्त्तव्य। (२) विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। मार्गावसान में अश्वों के तुल्य शिष्यों को आवकाश प्रदान। (३) मेघ के दृष्टान्त से ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश। अध्यात्म में ईश्वरार्चन का उपदेश। (४) सूर्यवत् अज्ञान नाश। (५) राजा का विनय धारण, भरण, रक्षणादि से पिता तुल्य होना। (६) मेघवत् शत्रु दल में भेद के प्रयोग का उपदेश। शत्रु को पराजय करने का उपदेश। (१०) भूपति सैन्यपति दोनों की स्थापना। नारी-

-र्वत् सेना का वर्णन। (११) प्रयाण का उपदेश। (१२) दुष्टों का दमन और दलन। (१३) सैकड़ों सहस्रों परसैन्यों का उच्छेद। (१४) विद्युत्वान् मेघ और सिंह के तुल्य वीर का स्वरूप। (१५) प्रजाओं का राजा को, गुरु को शिष्य और पति को स्त्रीवत् वरण द्वारा प्राप्त होना। (१६) 'इन्द्र' किसे कहें। उसके कर्त्तव्य। (१८-२१) सर्वोपरि राजा और प्रभु। प्रजाओं का उत्साह और कर्त्तव्य। (पृ० ४३१–४४४)

सू० [१७]—शत्रुहन्ता इन्द्र (२) प्रतापी का प्रभाव और आतंक कैसा हो। (३) वज्रधर का शत्रु मर्दन। (४) प्रचुर बलशाली ही प्रचुर सम्पदा का स्वामी हो। (५) प्रजा के वास्तविक अधिकार निरूपण। (७) शत्रुदलन की प्रार्थना। शत्रुहन्ता का आतंक, और उत्तम फल। प्रजा के पालन पोषण की प्रार्थना। (१२) विजेता का अंश निर्णय। उसके उदार कर्त्तव्य। (१४) राजचक्रवत् सैन्यचक्र का चालन, राष्ट्र की वृद्धि, और उसमें अभय का स्थापन। (१६) गृहस्थों का रक्षक राजा हो। (१७-२७) आचार्य इन्द्र। (पृ० ४४४–४५५)

सू० [१८]—उन्नति का पुराण मार्ग। प्रत्येक राष्ट्र प्रजा और पुत्रादि के पालन योग्य व्रत। (२) जन्म मरण के जीवन रूप संकट मार्ग से निकलने की जिज्ञासा। (३) मुग्ध पुरुष के समान, आत्मा की गति। और विवेक की प्राप्ति। (४) आत्मा की सर्वोपरि शक्ति। (५) प्रकृति परमेश्वर से जगत् की उत्पत्ति। जलधारावत् प्रवाह रूप से प्रकट होने वाली प्रकृति की विकृतियों से उनके विकर्त्ता के विषय में विवेकपूर्ण प्रश्न। (७) प्रभु का जगत् सर्जन। (८) स्त्रीवत् प्रकृति का वर्णन। प्रकृति परमेश्वर का परस्पर व्याप्य व्यापकभाव। (९-१०) सर्वेश्वर कर्म फलप्रद, परमेश्वर। विवेक। पक्षान्तर में—राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० ४५५–४६५)

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० ४६५–५४२)

सू० [१९]—वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। राजा का शत्रुनाशार्थ

वरण । पक्षान्तर में अज्ञान नाशार्थ प्रभु का वरण। (२) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से विद्वानों, वीरों का प्रयाण और राजा का शासन । विघ्नकारी शत्रु का विनाश । (३) शत्रु पर आक्रमण का आदेश (४) वायु और सूर्यवत् पराक्रमी वीर शत्रु को चूर्ण करे । (५) राका प्रजा, सैन्यादि के कर्त्तव्य । (६) भूमि माता की सेवा (७) नदियों को मेघवत् प्रजाओं को समृद्ध करने का उपदेश। (८) सूर्यवत्, मेघवत् शत्रु से घोर संग्राम । (९) शत्रुओं को करप्रद बनावे । 'उखच्छित् पर्व' का रहस्य । विस्फोटक पदार्थों का उपयोग । आग्नेयास्त्र । (९) सनातन वेद-धर्मों का प्रवर्त्तन करे । राजा विद्वानों का पालन करे । (पृ० ४६५–४७२)

सू० [२०]—राजा के प्रजा पालन के धर्मों का उपदेश । (५) पति पत्नी, राजा प्रजा का प्रेम व्यवहार । पति इन्द्रपद वाच्य । (६) इन्द्र का लक्षण । (७) सेनापति इन्द्र । (८) दण्ड नायक पालक । (९) प्रभु का महान् सामर्थ्य । (१०) उससे रक्षा, समृद्धि की याचना । (पृ० ४७२ -४७६)

सू० [२१]—अति प्रबल सैन्यबल के स्वामी राजा का रक्षार्थ आह्वान । (२) राजा कृषक वर्ग का उपकारक हो । (३) सूर्य, विद्युत्, सुवर्णवत् राजा की प्राप्ति । (४) राजा विजयी, स्तुत्य । (५) शत्रु विजयी ऐश्वर्य का स्वामी बने । (६) नायक का दीपवत् कर्त्तव्य । (७) राजा के सब प्रयत्न राष्ट्रहित हों । (८) कृषि के लिये नहरों का आयोजन और कृषि के साधनों का वर्णन । (९) बाहु कल्याण कर्म करें, दान दें । (१०) राजा कर्मानुसार वेतन दे । (पृ० ४७६–४८२)

सू० [२२]—बलशाली राजा का कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि । (२) राजा की ऊर्णा, परूष्णी सेना । (३) बल पराक्रम का यश । (४) ईश्वर के जगत् सञ्चालकवत् राजा का राष्ट्र-सञ्चालन का कार्य (६) राजा के सब कार्य न्यायानुसार होने चाहियें। प्रजाएं भी राजा की वृद्धि करें।

(७-११) वह राष्ट्र का नियन्ता और उत्तम कर्मशील हो। प्रजा को ज्ञान और धन से सम्पन्न करे। (पृ० ४८२–४८७)

सू० [२३]—राजा और आचार्य के सम्बन्ध में नाना ज्ञातव्य बातें प्रजा वा शिष्य को उपदेश। (५) प्रश्नोत्तर से नाना उपदेश। (७) शत्रु का निःशेषकरण। (८) वेद वाणी का महत्व। राजा की आज्ञा, न्याय व्यवस्था का वर्णन। (९) सत्याचरण की महिमा। (१०) ऋत का महत्व। (पृ० २८७–४९४)

सू० [२४]—राजा की उत्तम गुण स्तुति और प्रभु की अपार कीर्त्ति। स्तुत्य प्रभु। सर्व शर काम्य प्राप्य, प्रभु। (५) राष्ट्र समृद्धि और आत्म समृद्धि का वर्णन। (६) प्रभु सेना और प्रभु सख्य। (७) प्रभु शक्ति और बल प्राप्ति (८) प्रजा का सम्पन्न, बली राजा के प्रति प्रेम। (९) राजा की राष्ट्र के प्रत्येक अंग से देहांगवत् प्रीति। कर संग्रह और कर्त्तव्य-परायणता। (१०) राष्ट्र का क्रम—प्रति क्रम। (पृ० ४९४–५००)

सू० [२५]—सर्व हितकारी नायक। उसके कर्त्तव्य। उसके प्रिय सहयोगी। (३) तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर। (४) सूर्यवत् राजा की स्थिति। (५) सर्वोपरि शक्ति राजा। (६) वह दुष्टों का कुछ नहीं लगता। अदाता कंजूस कदर्य को राजा प्रेम नहीं करता। (७) उस इन्द्र राजा के लिये सब की पुकार। (पृ० ५००–५०४)

सू० [२६]—स्वतः परमेश्वर का आत्म वर्णन। पक्षान्तर में यजमान के आत्मा की उदात्तता। (४। ५) श्येन, विद्वान्‌वत् आत्मतत्व का वर्णन। धर्मात्माओं का उन्नति पथ। (पृ० ५०४–५१०)

सू० [२७] - जीव का वर्णन। आवागमन का सिद्धान्त। (२) सर्व बन्धनमोचक, मोक्षदायक प्रभु। (३) ज्ञान दाता गुरु प्रभु ही जीव को मुक्त करता है (४) मोक्ष मार्ग की ओर गमन। पक्षान्तर में राष्ट्र में राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (पृ० ५१०–५१४)

सू० [२८]—सूर्यवत् उपकारक और देह में आत्मा के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। (२) राजा का प्रबल सहायक। (६) शत्रु नाश का कर्त्तव्य। दुर्ग का प्रयोग। राष्ट्र में कृपि और खानें खोदने के कार्य को प्रवृत्त करना। (पृ० ५१४–५१७)

सू० [२९]—उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् आचार्य, उपदेशक और राजा का कर्त्तव्य। (४) बलवान् राजा प्रजा से अभय करे। राजा का हितैषी हों। (पृ० ५१७–५१९)

सू० [३०]—राजा की सर्वोत्तम स्थिति। सर्वोपरि परमेश्वर का वर्णन। (२) सेना और प्रजा दो राज्यरथ के दो पहियों के तुल्य हैं। (३) शत्रु नाशन आदि राजा के कर्त्तव्य। (१) प्रजा 'दिवः दुहिता'। उषा, सेना, और नवबधू का समान वर्णन। शत्रुसेना का दमन। प्रजा पर आधिपत्य। धनैश्वर्य का विजय। (१३) शुष्ण के नाश का रहस्य। (१४) शम्बर हनन का रहस्य। (१५) राष्ट्र के पांच जनों की रक्षा (१६) क्षत्रिय, वैश्यों की रक्षा का उपदेश। तुर्वश यदु का रहस्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। (१९) विकलाङ्ग दीनों पर दया (२१) राजा का महान् विक्रम। (२४) राजा के करसंग्रही समृद्धिकारक हों। (पृ० ५१९–५२६)

सू० [३१]—परमेश्वर और राजा से प्रार्थना। और राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ५२९–५३३)

सू० [३२]—राजा सेनापति के प्रति प्रजा की नाना प्रार्थनाएं और और आकाक्षाएं। और राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। राजा से रक्षा, धन, ज्ञान, न्याय आदि की प्रार्थना। (२२,२३) दो आंखों के तुल्य सस्नेह रहने का राजा प्रजा वर्गों को उपदेश। (पृ० ५३३–५४२)

सप्तमोऽध्यायः ।

सू० [३३]—सूक्ष्म जल के परमाणुओं के तुल्य ज्ञानी पुरुषों का वर्णन उनके कर्त्तव्य। वाज, विम्वा ऋभु, इन का रहस्य । (४) ऋतुओं का वर्णन (५) ऋभुओं के बनाये चमसों का रहस्य । चतुर्वर्ग साधना की विवेचना । (७) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य । (८) उत्तम शिष्यों के कर्त्तव्य । (पृ० ५४२–५४९)

सू० [३४]—ऋभुओं का वर्णन । विद्वानों और शिल्पज्ञों के कर्त्तव्य (९–११) ऋभु नाम से कहाने योग्य जनों का वर्णन । (पृ० ५४९–५५५)

सू० [३५]—ऋभुओं का वर्णन । किरणों वत् सौधन्वन, वीर । (२) चतुर्धा पुरुषार्थ, चतुर्धा आश्रम, चतुरंग सैन्य और चतुर्धा अन्न का निर्माण । (४) ऋभुओं के चमस का रूप । (५) कृत्रिम अश्वादि यन्त्र निर्माण । (७) हर्यश्व और ऋभु कौन हैं । (८) सौधन्वन, साधकों का वर्णन (९) सौधन्वन वीरों का वर्णन । (पृ० ५५५–५६१)

सू० [३६] विना अश्व, बिना लगाम के त्रिचक्र आकाश, जल, भूमि गामी रथ के दृष्टान्त से आत्मा के देहरथ का वर्णन । (३) ऋभु विद्वानों का कार्य युवकों को तैयार करना है । (४) राष्ट्र का चतुर्धा विभाग । अन्तः करण चतुष्टय । आयु के चार भागों का वर्णन । चर्ममयी गौ जिह्वा, वाणी का वर्णन । ऋभु प्राण । (५) वेद नामक ज्ञान का वर्णन । उसके रक्षा का कर्त्तव्य । (६) ऋभु, विम्वा वाज, आदि विद्वानों वीरों के कर्त्तव्य उनमें वेदोपदेश के स्थिर करने का उपदेश । (९) ज्ञानपूर्वक कर्म करने का उपदेश । (पृ० ५६१–५६६)

सू० [३७]—ऋभु विद्वानों के कर्त्तव्य । (४) उत्तम सुवर्ण रत्नादि के आभूषण धारण करने का उपदेश । (पृ० ५६६–५७०)

सू० [३८]—द्यावा पृथिवी रूप से राजा प्रजा और उनके कर्त्तव्यों का वर्णन । (२) अश्ववत् रथधारक राजा का वर्णन । (५) चोरवत्

दुष्ट राजा की निन्दा, उत्तम राजा की प्रशंसा। (६) सूर्यवत् अश्ववत् और वरवत् वीर सेनापति का वर्णन। (८) विजुली वत् सेनापति। (९) रथवत् महारथी का वर्णन। 'दधिक्रा' सेनापति राजा का वर्णन। भयहेतु। (पृ० ५७०–५७६)

सू० [३९]—'दधिक्रा' परमेश्वर। राष्ट्र का संचालक, धारक राजा 'दधिक्रा' उसका अभिषेक। (३) दधिक्रा गुरु। (६) उनकी उपासना। (पृ० ५७६–५७९)

सू० [४०]—दधिक्रा राजा, परमेश्वर। परस्पर स्नेही राजा प्रजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर के गुण स्तवन। (३) वेगवान् बाणवत् और बाज़ पक्षी के तुल्य सेनापति। (४) वेग से बढ़ते अश्ववत् अभ्युदय-शील पुरुष का वर्णन। आत्मा का वर्णन। (पृ० ५७९–५८३)

सू० [४१]—इन्द्र वरुण गुरु जन। विनीत शिष्य के कर्त्तव्य। इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुष, दिन रात्रि, प्राणापान। (४) राज्य के प्रधान दो पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) गाड़ी के तुल्य वाणी और उसके अभ्यागत गुरु शिष्य, इन्द्र वरुण। (६) मेघ विद्युत्वत् राजा अमात्य इन्द्र वरुण। (७) माता पितावत् उनके कर्त्तव्य। (९) अर्थपति ज्ञानपति, इन्द्र वरुण। (पृ० ५८३–५९१)

सू० [४२]—राजा के कर्त्तव्य। आत्मा का वर्णन। (२) राजा वरुण, परमेश्वर का वर्णन, उसका वैभव। (७) उसकी उपासना। (८) त्रसदस्यु का रहस्य। अध्यात्म व्याख्या। (पृ० ५९१–५९७)

सू० [४३]—स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन। (पृ० ५९७–६०१)

सू० [४४]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० ६०१–६०४)

सू० [४५]—गृहस्थ रथ का वर्णन। उसमें विद्वान् की जल अन्ना-दि से पूर्ण पात्रवत् स्थिति। किरणों वत् विद्वानों का अभ्युदय। (३)

अष्टमोऽध्यायः । (पृ० ६२७—७१९)

सू० [५४]—सविता, प्रभु, राजा, आचार्य। प्रभु की उपासना स्तुति प्रार्थना, (४) प्रभु का अविनाशी सत्य सामर्थ्य, (५) सब महान् शक्तियों, पञ्च भूतों के भी सामर्थ्य उसी उत्पादक के हैं। (६) सब उसी की विभूति हैं। (पृ० ६४५–६४९)

सू० [५५]—सर्वोपरि शासक की विवेचना। (२) सर्वप्रिय विद्वान् जन। (३) स्त्री माननीया है, वह सब सुखों की जननी है। (४) उत्तम विद्वान् और स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य उत्तम भूमि और गृह आदि प्राप्त करें। (५) स्त्री को सब पापों से बचाने वाला उसका पति है। स्त्री उसके शरण की सदा प्रार्थना करे। (६) स्त्रियें कैसे पुरुष को वरें। और लोग वर वधू की प्रशंसा करें। (७) अदिति माता रूप स्त्री के कर्त्तव्य (८–९) अग्नि पुरुष, उषा स्त्री का कर्त्तव्य। सर्व देवमय पति। प्रभु। (पृ० ६४९–६५४)

सू० [५६]—सूर्य पृथिवीवत् वर वधू, स्त्री पुरुष और गुरु शिष्य, राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) दोनों का उत्पादक विश्वकर्मा प्रभु। सुज्ञानी गुरु है। (पृ० ६५४–६५८)

सू० [५७]—खेतपाल के समान गृहस्थ में क्षेत्रपति पुरुष और संसार में क्षेत्रपति परमेश्वर और राष्ट्र में राजा के कर्त्तव्य। (२–३) अन्न, फल, मूल आदि खाद्य सामग्री की समृद्धि की याचना (४–५) उत्तम रीति से कृषि का उपदेश। (पृ० ६५८–६६२)

सू० [५८]—समुद्र से उत्पन्न मधुमान् ऊर्मि का वर्णन। नाना पक्षों में स्पष्टीकरण। (२) वेदमय परम ज्ञान को धारण करने का आदेश। चतुःश्रृङ्ग गौर का रहस्य। (३) मर्त्य मात्र में प्रविष्ट चतुः श्रृंग, त्रिपाद्, द्विशिरा, सप्तहस्त महादेव वृषभ का आलंकारिक वर्णन। (८-१०) उत्तम स्त्रियों के समान घृतधारा और वाणियों का वर्णन। (पृ० ६६२–६७०)

इति चतुर्थं मण्डलम्

अथ पञ्चमं मण्डलम् (पृ० ६७१—)

सू० [१]—प्रातः यज्ञ। तरु की शाखाओं के समान विद्वानों को शाखा प्रशाखाओं में फैलने का आदेश। सूर्यवत् ज्ञानी पुरुष का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सूर्यवत् गुरु का शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य। वाणियों द्वारा ज्ञानबीजारोपण, ज्ञानयज्ञ का वर्णन। शिष्यों का भूमिवत् और अग्निवत् ज्ञानाहुतियों का ग्रहण। (४) माता पितावत् गुरुजनों से शिष्य पुत्र की उत्पत्ति। (५) जीवन के पूर्व भाग में वनस्थों के बीच ज्ञानग्रहण का उपदेश। उसका अग्नि वा सूर्यवत् व्यवहार (७) ज्ञानी की यज्ञाग्निवत् स्थिति। ज्ञानी, गुरु, परम पावन, दान्त चित्त, पूज्य है, वही 'सहस्रशृङ्ग वृषभ' सूर्यवत् है। सहस्रशृङ्ग वृषभ का रहस्य। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ६७१—६७९)

सू० [२]—माता पुत्र के दृष्टान्त से आचार्य शिष्य और राजा और पृथिवी का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (७) राजा के नाना कर्त्तव्य। शुनःशेप के बन्धन मोचन का रहस्य। (पृ० ६८०—६८७)

सू० [३]—अग्रणी नायक के ही वरुण, मित्र, इन्द्रादि नाना रूप और उनकी विशेषताएं। (२) कन्या के पितावत् राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा का रुद्ररूप। (७) पापी को कठोर दण्ड देने का विधान। (८) यज्ञाग्निवत् नायक पुरुष का रूप। (९) राजा का पुत्र और पितृ भाव। राजा पिता वसु। पक्षान्तर में परमेश्वर। (पृ० ६८७—६९७)

सू० [४]—वसुपति अग्नि राजा आचार्य प्रभु की स्तुति। (२) हव्यवाड् यज्ञाग्निवत् विद्वान् का वर्णन। (३) परमपावनाग्नि विश्पति। (४) जातवेदा का समिदाधान। (५) दमूना अग्नि अतिथि का वर्णन। (६) दुष्टों का दमन और नाश। (९) नौकावत् प्रभु। (१०) उससे अमृतत्व की यज्ञ का रहस्य। (पृ० ३९५—७००)

सू० [५]—अग्निहोत्र, देवयज्ञ का वर्णन। विद्वान् अग्नि और

अथ चतुर्थोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः (पृ० ७२०—)

सू० [१२]—वृष्ट्यर्थ यज्ञाहुति के तुल्य नायक पुरुष के प्रजा का करादि त्याग, सत्य ज्ञान और सत्याचरण का उपदेश। (३) विना भूमि के जैसे बीज नहीं फलता इसी प्रकार विना प्रजा वा पृथिवी के राष्ट्र नहीं समृद्ध होता। राजा को उसी को प्राप्त करने का उपदेश। उसके लिये कुछ आवश्यक ज्ञातव्य बातें। (५) दुष्टों का स्वयं नाश। (पृ० ७२०–७२३)

सू० [१३]—विद्वान् तेजस्वी पुरुष की सेवा-शुश्रूषा, उसका समर्थन। अपने ऐश्वर्य के निमित्त प्रजा का राजा का आश्रय ग्रहण। (पृ० ७२३–७२५)

सू० [१४]—परमेश्वर की स्तुति। विद्वान् शिष्यादि का ज्ञानवान् करने का आदेश। यज्ञाग्निवत् उसकी उपचर्या। (४) उसके दस्युनाशक सामर्थ्य की उत्पत्ति। (पृ० ७२५–७२७)

सू० [१५]—उत्तम विद्यावान् श्रेष्ठ जन का अभिषेक। उसके गुणों की स्तुति। (३) उसके प्रति अधीनों के कर्त्तव्य। उसके मातृवत् कर्त्तव्य। विद्युत्वत् उसका उग्र सामर्थ्य। चौरवत् उसका धनान्वेषण का कर्त्तव्य। (पृ० ७२७–७४०)

सू० [१६]—मित्रवत् अग्नि का स्थापन, उस अग्निवत् विद्वान् अग्रणी नायक का कर्त्तव्य। (३) सम्पन्न जनों के नायक के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० ७४०–७४२)

सू० [१७]—यज्ञाग्निवत् उत्तम अध्यक्ष की स्तुति। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ७४२–७४४)

सू० [१८]—प्रातः स्मरणीय प्रभु की उपासना। उत्तम विद्वान् अधिनायक वृद्ध का आदर सत्कार। (४) नायक जन कैसे बनें। (पृ० ७४४–७४६)

सू० [१९]—जीव बालकवत् अग्नि की उत्पत्ति। (२) जीवों का पुरियों में प्रवेश। (३) जीवों को अन्न द्वारा पोषण (४) न्याय से

स्थापन। (२) उसका राजदण्ड ग्रहण। दुष्टों के दमन का कर्त्तव्य। (३) राष्ट्रैश्वर्य पालन, शत्रु नाशक। (४) सेनाओं का प्रबन्ध और सिंहवत् पराक्रम। (५) राष्ट्र से करादान, नवभूमि विजय, और उस पर अध्यक्ष स्थापन। शिल्पी के तुल्य बलवान् राजा के कर्त्तव्य। (७) २०० बड़े अध्यक्षों का स्थापन। सभाओं वा त्रिविध सैन्यों का स्थापन। (८-९) युद्धार्थ प्रयाण। शत्रु नाश। (१२) विद्वान् आचार्य की गोरस से पूर्ण पात्र से तुलना। उसी प्रकार सम्पन्न राजा का वर्णन। पक्षान्तर में परमात्मा की उपासना और आत्म समर्पण। (१३) उसकी स्तुति-अर्चा। (पृ० ७७१—१८०)

सू० [२०]—बीज निधाता प्रभु और कोशसञ्चयी राजा का वर्णन। विद्यादाता गुरु का वर्णन। (२) विद्युत् के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (६) प्रजा समृद्धयर्थ दुष्टों का दमन। (७) गोदुग्धवत् कर संग्रह का उपदेश। अवश्य दण्डनीय का शिरच्छेद। पुरस्कार योग्य कामना। (८) शत्रु नाशार्थ सैन्य सञ्चालन। (१०) शत्रु की छानबीन, स्वशक्ति वर्धन। (१२) भूमियों का अध्यक्षों में विभाग और प्रबन्ध। (१३) अधीन-जनों का राजा से पुत्र पिता का सा सम्बन्ध। (१४) सूर्यवत् राजा का राष्ट्र भोग। (पृ० ७८०—)

सू० [२१]—सूर्यवत् सेनापति राजा का वर्णन। (२) राजा अधर्म में पैर न रखे, समवाय बनावे, और राष्ट्र में अविवाहितों को विवाहित करके राष्ट्र की प्रजा-वृद्धि का प्रबन्ध करे। (३) राजा शत्रु से भूमि की रक्षा करे। (४) प्रजा राजा की शक्ति बढ़ावे। (५) शत्रु पर आक्रमण का उपाय। (६) नये २ साहस कार्यों का उपदेश। (७) राजा वा प्रधान का कर्त्तव्य। राष्ट्रवृद्धि, वा शत्रुनाश, शक्तिसंचय। (८) ज्ञान, पालन का प्रबन्ध। सैन्य का धारण। (९) सेनापति और सैन्य के कर्त्तव्य। (१०-११) नाना योग्य पुरुषों की नियुक्ति, यन्त्र के

अथ द्वितीयोऽध्यायः

राष्ट्रपालन में स्थान २ पर सैन्य-संस्थापन। मुख के जबड़ों के समान सेनाओं की स्थिति। (३) अशक्त प्रजा की स्थिति और उसका कर्त्तव्य। (४) ब्रह्म क्षत्र वर्ग का राजा के साथ सम्बन्ध (५) बलशाली, समृद्ध उत्तम राजा का कर्त्तव्य। (६) अधीन दो प्रमुख। और प्रजा द्वारा उसका आदर। (पृ० ८१७–८२०)

सू० [३७]—विद्युत्वत् विजयशील बलवान् नेता का कर्त्तव्य। (३) प्रजारक्षार्थ शासन। (४) पतीवत् पालक प्रभु का वरण। (४) समृद्ध सम्पन्न राजा। (पृ० ८२१–८२३)

सू० [३८]—उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ८२३–८२५)

सू० [३९]—राजा के प्रजा को समृद्ध करने के कर्त्तव्य। दानशील को उपदेश। सर्वदाता प्रभु। उसकी स्तुति। (पृ० ८२५–८२८)

सू० [४०]—सोमपति इन्द्र राजा के कर्त्तव्य। (२) उसका बल और बलका उपयोग। (३) तेजस्वी होने का उपदेश। (५) चक्र-द्वारा उत्पन्न सूर्यग्रहण के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन। (८) शत्रु-नाश के उपाय। (पृ० ८२८–८३३)

सू० [४१]—मित्र और वरुण। उनके कर्त्तव्य। (३) अश्वी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (४) कार्यकर्त्ताओं की अविलम्बकारी होने का उप-देश। (५) सामान्य विद्वान् जनों के कर्त्तव्य (६) वायु तीव्रगामी साधन का रथ में उपयोग। प्रजाओं के कर्त्तव्य। (७) उषासानक्ता, दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) पोष्य वर्ग का आदर। पालन-कर्त्ताओं के कर्त्तव्य। (१०) वैद्युतिक अग्नि, तद्वत् तेजस्वी नायक के कर्त्तव्य। (११) वृद्ध गुरु जनों के कर्त्तव्य। (१२) प्रजा और शासक के परस्पर के कर्त्तव्य। (१४) उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य। सेना के कर्त्तव्य। विद्वानों के कर्त्तव्य। (११) सर्वमाता वाणी। (पृ० ८३३–८४४)

सू० [४२]—वाणी का वर्णन। पक्षान्तर में पञ्चजन की वाणी का आदर (२) अखण्ड शासक परिषत् अदिति। उसके मातृवत् कर्त्तव्य,

(३) विद्वानों में उत्तम का अभिषेक। राजा विद्वान् के कर्त्तव्य, ज्ञान वितरण। उत्तम नाना शासकों को अप्रमादी होने का उपदेश। (७) प्रधान पद योग्य जन। दुष्टों और कदर्यों को दण्ड। (११) वीर पुरुष का आदर। रुद्र का रहस्य। वैद्यवत् वीर जन स्त्रियोंवत् उत्तम नदियों नहरों का उपयोग। (१३) गृहस्थ वत् राज्य-व्यवहार। पक्षान्तर में 'आहना' प्रकृति का वर्णन (१४) मेघवत् गुरु का कर्त्तव्य। (१५) सैन्य बल का कर्त्तव्य। राजाज्ञा की व्यापकता और मान्यता हो। शासन में अपीड़ित प्रजा का रहना। स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ८४४–८५३)

सू० [४३]—नदीवत् वाणी का वर्णन। (२) माता पिता के प्रति कर्त्तव्य। (३) किरणों वत् विद्वानों का कर्त्तव्य। उत्तम अन्न जल से सत्कार करने का उपदेश। वायुवत् और सूर्यवत् क्षत्रियों का कर्त्तव्य। (६) अन्नवत् ज्ञानोपार्जन। (७) किरणोंवत् और गुरुओं का शिष्यों को तप करने का उपदेश। (८) उत्तम शान्तिदायक वाणी का प्रयोग हो। स्त्री पुरुष समान रूप से उन्नति पथ पर बढ़ें (९) ज्ञानवान् बलवानों का आदर (१०) शिष्यों, वीरों के कर्त्तव्य, वायु मरुत, शिष्य, प्रजा वैश्य जन हैं। (११) नदीवत् वाणी और स्त्री का वर्णन। अधिकार, न्यायशासन योग्य पुरुष। (१२) शस्त्र-सज्जित राजा के कर्त्तव्य। (१४) जलवत् राजा का अभिषेक संस्कार। (१५) मातेवत् राजा वा गुरु का कर्त्तव्य। प्रजा पीड़ारहित राज्य में रहे। सुखदायक नीति से रहें। (पृ० ८५३–८६२)

सू० [४४)—राजा को राष्ट्र-दोहन का उपदेश। (२) राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि का उपाय। (३) राजा की उन्नति का मार्ग। (४) करादान की विधि। (५) प्रजा को बढ़ाने का उपदेश। (६) वृक्षों के तुल्य शासक जनों को दयालु होने का उपदेश। (७) उत्तम राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (९) उत्तम वाणी, उत्तम गति उन्नति का मूल है। (१०) नायक होने योग्य पुरुष। (११) उत्तम सेनानायक। (१२) उदार

इति चतुर्थेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
७८	६,७	सत्यमा स्थायी	सत्य या स्थायी
९२	२२	प्रकाशमान्	प्रकाशमान
१४७	४	प्रकाश युक्त से	प्रकाश से युक्त
१७०	१८	उपदेय	उपादेय
२३८	१२	विद्यमान्	विद्यमान
२५४	११	सवने	सवने
२७२	१८	अद्धात्	अद्धा
४१९	२२	(त्वां)	(तां)
४२९	२५	पुरुष····संग	पुरुष से····संगत
४५९	२२	विकृति में	विकृतियें
४७६	१८	[२०]	[२१]
४८६	९	मच्छति	यच्छति
५१०	१४	राजा को	राजा की
५९१	६	(प्रकीळान्)	(प्रक्रीडान्)
६८१	१९	कुमार अतिज्ञान	अतिज्ञान

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता

अथ तृतीयोऽष्टकः

(तृतीये मण्डले)

[७]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ९, १० त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः । परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥

भा०—(धासेः) दुग्धपान करने वाले बालक के (मातरा) माता और पिता दोनों (परिक्षिता) उसके ऊपर और उसके साथ रहने वाले (पितरा) पालक होकर (प्रयक्षे) उत्तम मैत्रीभाव और संगति लाभ करने तथा उत्तम दान प्रतिदान करने के लिये (संचरेते) साथ मिलकर धर्म का आचरण करें । (दीर्घम् आयुः) वे दीर्घ आयु (प्रसर्स्राते) प्राप्त करते हैं । परन्तु जो लोग (शितिपृष्ठस्य) सूक्ष्म विषयों पर भी प्रश्न-शील और (धासेः) ज्ञान धारण करने या ज्ञान-रस का पान करने वाले विद्वान् शिष्य ब्रह्मचारी के (मातरा) माता और (पितरा) पिताओं के

समान उत्पादक और पालक गुरुजनों को (प्र आरुः) उत्तम रीति से प्राप्त होते हैं वे (सप्त वाणीः) सातों प्रकार की छन्दोमयी वाणी को (विविशुः) प्रविष्ट होते हैं। उनका ज्ञान विस्तृत होता है और वे दोनों (परिक्षिता पितरा) शिष्य और गुरु साथ रहने वाले, वा दोषों को सब प्रकार से दूर करने वाले पालकजनों का मां बाप के समान ही (प्र यक्षे) आदर करता हूं। वे ज्ञान प्रदान करने के लिये उसके (सं चरते) साथ रहते और उसके (दीर्घम् आयुः) दीर्घ जीवन और ज्ञान को (प्रसर्स्राते) फैलाते हैं। (२) तीक्ष्ण स्पर्श होने से अग्नि 'शितिपृष्ठ' है नीलपृष्ठ होने से सूर्य 'शितिपृष्ठ' है। किरणों द्वारा जल पान करने से 'धासि' है। (३) इसी प्रकार ज्ञानमय स्वरूप होने से परमेश्वर 'शितिपृष्ठ' और जगत् के धारण करने से 'धासि' है।

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः॥ २॥

भा०—(वृष्णः) जल वर्षण करने वाले सूर्य की (अश्वाः) व्यापनशील किरणें जो (दिवक्षसः) प्रकाश और आकाश में व्यापती हैं वे ही (धेनवः) स्वयं रस-पान करने वाली और संसार भर को रस-पान कराने वाली गौओं के समान हैं। उन (देवीः) प्रकाशमयी और (मधुम् उद्वहन्तीः) जल को ऊपर उठा लेने वाली किरणों को वह सूर्य ही (आतस्थौ) धारण करता है। और (ऋतस्य सदसि) जल के या इस गतिशील संसार की स्थिति के एकमात्र स्थान आकाश देश में (क्षेमयन्तं) रक्षा करने और सुख शान्ति देने वाले सूर्य के (परि) चारों ओर (एका गौः) एक यह पृथिवी (वर्तनिं) वार २ लौटकर आने वाला मार्ग (चरति) चलती है। उसी प्रकार (वृष्णः) बलवान् पुरुष, राजा की ही (अश्वाः) शीघ्रगामिनी अश्व सेनाएं और (दिवक्षसः) विजय कामना में लगी और व्यवहार तथा विज्ञानोपार्जन में लगी प्रजाएं ही (धेनवः) उसकी रस

पिलाने वाली गौओं के समान हैं। वह बलवान् पुरुष (देवीः) कर आदि देने और ऐश्वर्यादि की कामना करने वाली (मधुम् उद्वहन्तीः) अन्न और बल को उत्तम रीति से धारण करने वाली प्रजाओं पर गृहपति के समान (आ तस्थौ) अध्यक्षवत् विराजता है। हे राजन्! (ऋतस्य) सत्य व्यवहार वा अन्न से पूर्ण (सदसि) राजसभा में और महलों में (क्षेमयन्तं) सबका कल्याण और प्रजा का रक्षण कार्य करते हुए (त्वा परि) तेरे ही आश्रय करके (एका गौः) यह समस्त पृथिवी (वर्त्तनिं) सन्मार्ग और लोक व्यवहार पर (चरति) चलती है।

आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम्।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार (सीम्) सूर्य (पतिः) पालक (रयिविद्) भूमि को प्राप्त कर (भवन्तीः) उत्पन्न या प्रकट हुई (सुयमाः) उत्तम नियमों में व्यवस्थित रश्मियों या दीप्तियों को (अरोहत्) उत्पन्न करता है और वही (नीलपृष्ठः) नील वर्ण होकर भी (पुरुधप्रतीकः) बहुत प्रकार के स्थावर जंगमों को धारण करने वाले सामर्थ्य से युक्त होकर (धासेः) विशेष नील वर्ण को धारण करने में समर्थ (अतसस्य) अलसी नामक पौदे के भीतर ही (ताः प्र अवासयत्) उन २ विशेष वर्ण की व्यापक रश्मियों को प्रविष्ट करा देता है उसी प्रकार (चिकित्वान्) ज्ञानवान् विद्वान् (रयीणाम्) ऐश्वर्यों का (रयिवित्) स्वामी (पतिः) सर्वपालक (सुयमाः) उत्तम सुखपूर्वक नियम में आने वाली (भवन्तीः) प्रजाओं को वश कर उन पर (सीम्) सब प्रकार से (आ अरोहत्) अधिष्ठित रहता है। और वही (नीलपृष्ठः) नील वर्ण का पीठ पर लबादा पहनकर अथवा (नील-पृष्ठः) नील मेघ के समान सौम्य और (पुरुधप्रतीकः) बहुतों को धारण करने में समर्थ ज्ञान और बल से सुस्वरूप होकर (अतसस्य) निरन्तर गमन करने में समर्थ, आक्रमण आदि करने

में तैयार (धासेः) धारण पोषण नरने में तत्पर पुरुष के समान (ताः) अपनी उन प्रजाओं को (प्र अवासयत्) उत्तम रीति से बसा देता है। (२) गृहस्थपक्षमें—(सुयमाः) शुभ रीति से विवाह करने वाली, उत्तम गृह प्रबन्ध करने में या उपरति करने में समर्थ (भवन्तीः) होती हुई दारा को ज्ञानी धनी पति प्राप्तकर सन्तान उत्पन्न करता है। सौम्य स्वरूप होकर अपने व्यापक धारक पोषक कार्य द्वारा उनको 'वासित' गर्भित करता है।

महिं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (स्तभूयमानं) स्तम्भन करने या थाम रखने वाले (त्वाष्ट्रम्) शिल्पी द्वारा बनाये यन्त्र-प्रबन्ध को (ऊर्जयन्तीः) अधिक बल देने वाली शक्तियों को (वहतः) रथादि पदार्थ (वि अङ्गेभिः वहन्ति) विविध अंगों, अवयवों, कल पुर्जों से धारण करते हैं, (सधस्थे) अपने ही साथ के स्थान में (दिद्युतानः) दीप्तिमान् अग्नि, विद्युत् (रोदसी) शब्द करने या बल को रोकने वाले दो स्थानों में (एकाम्) एक के समान ही प्रवेश करता है और जिस प्रकार सबको (स्तभूयमानं) स्तम्भन और धारण करने वाले (अजुर्यम्) न जीर्ण होने वाले स्थायी (त्वाष्ट्रं) सूर्य के तेज को (ऊर्जयन्तीः) बल रूप में बदलने वाली दीप्तियों को (वहतः) दूर तक ले जाने वाले तरङ्ग रूप किरण (वि अङ्गेभिः) विविध अंगों या प्रकाश के कणों के रूप में (वहन्ति) दूर तक पहुंचाने में समर्थ होते हैं और (दिद्युतानः) प्रकाशमान सूर्य या विद्युत् (सधस्थे एकाम्-इव) शयन स्थान में एक स्त्री को एक पुरुष के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच के भाग को भी (आविवेश) व्याप लेता है। उसी प्रकार (स्तभूयमानं) स्तम्भन करने वाले (त्वाष्ट्रम्) सूर्य के समान तीक्ष्ण प्रकाशवान् (अजुर्यं) अक्षय (महि) महान् (ऊर्जयन्तीः)

और बल और ऐश्वर्य करने वाली प्रजाओं को (वहतः) अपने अधीन और अपने ऊपर ले चलने वाले नायकगण (वि अंगेभिः) अश्व, रथ, पदाति आदि विविध सेनाओं तथा विविध राज्यांगों द्वारा (वहन्ति) धारण करते हैं। इसी प्रकार विविध अंगों से (दियुतानः) प्रकाशित होने वाला मुख्य नायक भी (रोदसी) शब्दकारिणी अपनी और परायी या अपने अगल बगल की शत्रु रोकने में समर्थ सेना को (सधस्थे एकामिव) गृह में एक स्त्री को एक पति के समान प्रेम से (आविवेश) व्याप ले, उसे वश में किये रहे।

जा॒नन्ति॒ वृष्णो॑ अरु॒षस्य॒ शेव॑मु॒त ब्र॒ध्नस्य॒ शास॑ने रणन्ति।
दि॒वो॒ रुचः॑ सु॒रुचो॒ रोच॑माना इळा॒ येषां॒ गण्या॒ माहि॑ना गीः॥५॥१॥

भा०—(येषां) जिनकी (इळा) इच्छा और स्तुति योग्य वाणी और भूमि (गण्या) गणना करने योग्य, पूज्य एवं गण अर्थात् सैन्य दलों और जनों की हितकारिणी और (गाः) उत्तम वाणी, उपदेश (माहिना) बड़ी महत्वपूर्ण सत्कार करने योग्य होती है वे (दिवः-रुचः) प्रकाश से कान्तिमान् सूर्यों के समान तेजस्वी, विद्या प्रकाश में रुचि रखने वाले (सुरुचः) उत्तम कान्तियुक्त, सुखप्रद, उत्तम रुचियों वाले (रोचमानाः) स्वयं चमकते हुए, सबको अच्छे लगते हुए, सर्वप्रिय होते हैं। वे (अरुषस्य) अहिंसक, रोषरहित, तेजस्वी (वृष्णः) बलवान् आचार्य, राजा या सेनापति के (शासने) शासन या उपदेश में (शेवं जानन्ति) सुख अनुभव करते हैं। (उत) और वे ही (ब्रध्नस्य) सबको नियम व्यवस्था में बांधने वाले, सर्वाश्रय, सूर्यवत् तेजस्वी आचार्य राजा के (शासने) शासन में (रणन्ति) उत्तम ज्ञान का अभ्यास करते और अति प्रसन्न होते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

उ॒तो पि॒तृभ्यां॑ प्र॒विदानु॒ घोषं॑ म॒हो म॒हद्भ्या॑मनयन्त शू॒षम्।
उ॒क्षा ह॒ यत्र॒ परि॒ धान॑म॒क्तोरनु॒ स्वं धाम॑ जरि॒तुर्व॒वक्ष॑॥६॥

भा०—जिस प्रकार (उक्षा) सेचन में समर्थ बलवान् सूर्य (जरितुः अक्तोः) शब्द करने और जल सेचन करने वाले मेघ को (परिधानं) सब प्रकार से धारण करने में समर्थ (स्वं धाम) अपने तेज को अनुकूलता से धारण करता है और उस समय (महद्भ्याम् पितृभ्याम्) बड़े पालक सूर्य और पृथिवी या आकाश और भूमि दोनों से लोग (घोषम् अनु प्रविदा) गर्जन के अनन्तर उत्तम जल लाभ से (महः शूषम् अनयन्त) बड़े भारी सुख और अन्न को प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार सूर्य जब (अक्तोः परिधानं) रात्रि के अनन्तर उसको दूर करने वाले (जरितुः स्वं धाम) और रात्रि को जीर्ण करने वाले अपने तेज को (ववक्ष) पहुंचाता है तब ब्रह्मचारी लोग (महद्भ्यां पितृभ्याम् अनु) बड़े पूजनीय पालक या माता पिता और आचार्य इनसे (घोषम् अनु) वेद के अनुकूल (प्रविदा) उत्तम ज्ञान प्राप्त करके (महः शूषम्) बड़ा बल, ज्ञान और सुख प्राप्त करते हैं (२) गृहस्थपक्ष में—(उक्षा) वीर्य सेचन में समर्थ और गृहस्थ भार को वहन करने में समर्थ दृढ़ युवा पुरुष (यत्र) जब (अक्तोः) विशेष कान्तिमती या अपना अभिप्राय या कामना प्रकट करने वाली स्त्री के लिये (परि-धानं) पहनने के वस्त्र या सब प्रकार से धारण पोषण के पदार्थ और (जरितुः अनु) आयु को जरावस्था को पहुंचाने वाली स्त्री के (अनु) मनोनुकूल (स्वं-धाम) अपना गृह (ववक्ष) धारण करता है (उत उ) तब (पितृभ्यां महद्भ्यां) पूजनीय दोनों पिताओं अर्थात् स्वपिता और श्वशुर दोनों से (घोषम् अनु प्रविदा) वेदोपदेश के अनुसार उत्तम स्त्री लाभ करने के अनन्तर (महः शूषम् अनयन्त) सभी बड़ा सुख लाभ करते हैं। अथवा (जरितुः अक्तोः) अपनी आयु को जीर्ण कर देने वाली और अपने गुणों को पुरुषों में अभिव्यक्त करने में समर्थ स्त्री (उक्षा) वीर्य सेचक पति (परिधानं) सब प्रकार से धारण करने योग्य (स्वं धाम) अपना वीर्य-

मय तेज या पुत्रादि रूप से उत्पत्ति को (अनु ववक्षे) अनुरूपता से प्राप्त कराता है तब बड़े पालक पिता और आचार्य से वेदाध्ययन के अनन्तर उत्तम ज्ञान प्राप्त करके वे पुत्रादि ही बड़ा ज्ञान और बल एवं सुख प्राप्त करें ।

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में (सप्त विप्राः) उद्गाताओं को छोड़कर शेष १२ ऋत्विजों में सात होता का कार्य करने वाले (पञ्चभिः अध्वर्युभिः) पांच यज्ञकर्त्ताओं के साथ मिलकर अथवा पांच अध्वर्युओं सहित पत्नी और यजमान सब सात विद्वान् होकर (वेः प्रियं पदं) कान्तिमान् अग्नि के स्थान, यज्ञ की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं और (अजुर्या उक्षणः देवाः) अविनाशी, जलादि सेचन समर्थ कान्तिमान् सूर्य की किरणें (प्राञ्चः) पूर्व दिशाओं में प्रकट होकर (देवानाम् व्रता अनु गुः) जल देने वाले मेघों के कार्यों का अनुगमन करते हैं । उसी प्रकार अध्यात्म में—(सप्त विप्राः) सात या सर्पणशील निरन्तर गति करने हारे और शरीर को विविध प्रकार से पूर्ण करने वाले सात प्राण या देहस्थ सात धातुगण (पञ्चभिः) पांच (अध्वर्युभिः) देह को न मरने देने वाले, उसको जीवित रखने वाले पांच इन्द्रियों सहित अथवा पांच इन्द्रियों सहित मन और बुद्धि मिलकर सातों (निहितं) भीतर स्थित (वेः) व्यापक या कान्तिमान् प्रकाशस्वरूप ज्योतिर्मय आत्मा के (प्रियं) अति प्रिय, मनोहर (पदं) स्वरूप की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं, उसको अपने भीतर धारण करते हैं । वे प्राण गण (प्राञ्चः) आगे की ओर को प्रकट होने वाले (उक्षणः) सुख के सेचन और देह को धारण करने हारे (अजुर्याः) कभी जीर्ण न होने वाले (देवाः) कान्तिमय और कामनाशील होकर (देवानाम् व्रता) सूर्य की किरणों के कर्त्तव्यों का (अनु गुः हि) अनुसरण करते हैं । अर्थात् जिस

प्रकार (पञ्चभिः) वचन या परिपाक करने में समर्थ अहिंसक किरणों से मिलकर (सप्त) वेगवान् किरण सूर्य के प्रिय स्वरूप को रखते हैं और वे सेचन समर्थ होते और प्रकाश करते हैं उसी प्रकार ये इन्द्रियगण भी भीतर रस-सुख सेचन करते और सब पदार्थों का ज्ञान प्रकाशित करते हैं। और वे ही (मदन्ति) सबको हर्षित और सुखी भी करते हैं।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार दो (दैव्या) देने और लेने वाले (होतारा) जल देने और जलाकर्षण करने वाले (प्रथमा)सबसे श्रेष्ठ सूर्य और पृथ्वी दोनों मुख्य करके जाने जाते हैं, जिनके आश्रय पर (सप्त पृक्षासः) गतिशील जलसेचक मेघ (स्वधया) अन्न और जल से सबको (मदन्ति) हर्षित करते हैं वे (ऋतं शंसन्तः) जल की ही सूचना गर्जना द्वारा देते हुए (दीध्यानाः) प्रजाओं का धारण पोषण करते हुए (व्रतपाः) अपने नियमों का पालन करते हुए (व्रतम् अनु) नियम के अनुसार या जल के अनुपात में या वरणकारी व्यापक जल के पालक (ऋतम् इत् आहुः) अन्न की सूचना देते हैं। उसी प्रकार मैं (दैव्या) विद्वानों और ज्ञान ऐश्वर्य के देने वालों में उत्तम ज्ञानैश्वर्य की कामना करने वालों के हितकारी (होतारा) ज्ञान अन्नादि देने वाले (प्रथमा) उत्तम पिता और आचार्य दोनों को मैं (नि ऋञ्जे) अच्छी प्रकार पूजित करूं। वे (सप्त) सातों प्रकार के (पृक्षासः) सम्बन्धों से सम्बद्ध वा (सप्त) उपसर्पण या सत्संग करने योग्य (पृक्षासः) ज्ञान जलों की मेघों के समान वर्षा करने वाले (स्वधया) अमृत, अन्न और आत्मज्ञान से स्वयं प्रसन्न रहते हैं। (ऋतं शंसन्तः) सत्योपदेश करते हुए (ते) वे (व्रतपाः) व्रतों के पालक (दीध्यानाः) उत्तम गुणों से प्रकाशमान और निरन्तर ध्यान धारणा का अभ्यास करते हुए (ऋतम्) सत्य ज्ञान, वेदाभ्यास को

(व्रतं) व्रत, आचरणीय कर्त्तव्य का (अनु आहुः) निरन्तर उपदेश करते हैं। (२) अध्यात्म में—प्राण, अपान वा बुद्धि और आत्मा दो दैव्य अर्थात् प्राणों के आश्रय और कामनाशील इन्द्रियों का हितकारी होता है। उनको मैं अपने वश करूं वे सातों अर्थात् अपने आत्म सामर्थ्य धारण करने वाली चिति शक्ति से सम्पर्क करके सुखी होते हैं। वे ज्ञान को बतलाते ज्ञान को ही अपने व्रत कहकर उसका पालन करते हैं। नियम को उल्लंघन नहीं करने से 'व्रतपा' हैं। वे शरीर को धारण करते एवं अपने (व्रतम् अनु दीध्यानाः) कर्मानुसार ही प्रकाशित होते हैं।

वृषायन्ते मुहे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि॥ ९॥

भा०—(रश्मयः महे अत्याय यथा सुयामाः वृषायन्ते) जिस प्रकार रासें ऐसे बड़े बलवान् वेगवान्, अश्व को उत्तम रीति से वश में करने वाली होकर उसके लिये बन्धन के समान हो जाती हैं और जिस प्रकार (रश्मयः महे अत्याय चित्राय वृष्णे) उत्तम प्रहरों तक बड़े भारी अद्भुत वर्षणकारी दीप्तिमान् सूर्य की किरणें (सुयामाः) चमकने वाली होकर (वृषायन्ते) वर्षणशील मेघ के समान आचरण करती हैं अर्थात् वृष्टि लाती हैं उसी प्रकार (रश्मयः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली व्यापक (सुयामाः) उत्तम नियम व्यवस्था करने वाली (पूर्वीः) पहले के विद्वानों की बनाई व्यवस्थाएं वा पूर्णसमृद्ध, पूर्व से विद्यमान प्रजाएं (महे) महान् (अत्याय) सबको अतिक्रमण करके रहनेवाले, (वृष्णे) प्रजा को नियमों में बांधने वाले (चित्राय) सबके पूजनीय एवं अद्भुत पराक्रमी पुरुष के लिये भी (वृषायन्ते) उसको नियम में बांधने के लिये बलवती एवं सुखों की वृष्टि करने के लिये मेघ-तुल्य हो जाती हैं। (देवः देवान् रोदसी वहति) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य किरणों को और आकाश और पृथिवी को धारण करता है उसी प्रकार

हे (देव) विजय की कामना करनेहारे विद्वन् ! राजन् ! हे (होतः) प्रजाओं को सुख एवं अधीनों को वेतनादि देनेहारे ! तू (मन्द्रतरः) अत्यधिक हर्षित करनेवाला एवं (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (महः) बड़े २ (देवान्) दानशील एवं विजयेच्छुक, नाना कामनाओं से युक्त वीर पुरुषों को और (रोदसी) स्वकीय प्रजावर्ग और शासकवर्ग या स्व और पर चक्र दोनों को (वक्षि) धारण कर। उनका कार्य भार वहन कर।

पृ॒क्षप्र॑यजो द्रविणः सु॒वाचः॑ सु॒के॒तव॑ उ॒षसो॑ रे॒वदू॑षुः।
उ॒तो चि॑दग्ने महि॒ना पृ॑थि॒व्याः कृ॒तं चि॒देनः॒ सं म॒हे द॑शस्य ॥१०॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः ऊषुः) कान्ति से युक्त प्रभात वेलाएं प्रकट होती हैं और सर्वत्र फैल जाती हैं उसी प्रकार हे (द्रविणः) ज्ञानवान् एवं द्रव्यवान् पुरुष ! राजन् ! (पृक्षप्रयजः) अन्नों को अच्छी प्रकार देनेवाले (सुवाचः) उत्तम वाणी बोलने वाले और (सुकेतवः) उत्तम ज्ञान से युक्त और विद्याओं द्वारा ज्ञान कराने वाले, (उषसः) कान्तियुक्त, तेजस्वी सर्वप्रिय, प्रजागण (रेवत्) ऐश्वर्य से पूर्ण राष्ट्र में बसें। (उतो चित्) और हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (चित्) सूर्य या अग्नि जिस प्रकार (पृथिव्याः एनः दशस्यति) पृथिवी के दोष को नाश करती है उसी प्रकार तू भी (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (पृथिव्याः) पृथिवी पर विस्तृत प्रजा के (कृतं एनः) किये हुए अपराधों को (महे) बड़े सौभाग्य के लिये (सं दशस्य) अच्छी प्रकार नाश कर। (२) अध्यात्म में—(पृक्षप्रयजः) सर्वरससेचक परमेश्वर की उत्तम पूजा करने वाली उत्तम वाणियां शुभ ज्ञान देनेहारी होकर प्रभात-वेलाओं के समान तेजोमय आत्म रूप सूर्य को प्रकट करें, हे आत्मन् तू अपने महान् सामर्थ्य से चित्त भूमि के मल को बड़े ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार नाश कर।

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध ।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भूत्व॒स्मे ॥११॥२॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० ३ । सू० १ । मं० २३) इति द्वितीयो वर्गः॥

[८]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३, ७ स्वराडनुष्टुप् ॥
एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒ञ्जन्ति॑ त्वाम॑ध्व॒रे दे॑व॒यन्तो॒ वन॑स्पते॒ मधु॑ना॒ दैव्ये॑न ।
यदू॒र्ध्वस्तिष्ठा॒ द्रवि॑णे॒ह ध॑त्ता॒द्यद्वा॒ क्षयो॑ मा॒तुर॒स्या उ॒पस्थे॑ ॥१॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान राष्ट्रैश्वर्य के विभागों के भोक्ता, प्रजाजनों के पालक, विद्या की याचना करनेवाले शिष्यजनों के पालक विद्वन् ! तू (यत्) जब (ऊर्ध्वः) गुणों और अधिकारों में सबसे उत्कृष्ट होकर (तिष्ठ) रह । और (इह) इस राष्ट्र में और शिष्य में (द्रविणा) नाना ऐश्वर्य (धत्तात्) धारण करा (यत् वा) और जब (अस्याः मातुः) इस सर्वोत्पादक माता पृथिवी के (उपस्थे) गोद में बालक के समान (क्षयः) तेरा निवास हो तब जिस प्रकार (देवयन्तः दैव्येन मधुना अञ्जन्ति) सूर्य की किरणें जल देनेवाले मेघ के समान होकर मेघस्थ जल से भूमि को सींचते हैं और वे स्वयं प्रकाशमान होकर सूर्य के प्रकाश से समस्त भूमि को प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार (अध्वरे) हिंसा रहित, प्रजाओं को नाश न करनेवाले राष्ट्रपालन रूप व्यवहार में (त्वाम्) तुझको (देवयन्तः) चाहते हुए (दैव्येन) देव, विद्वानों के योग्य (मधुना) अन्न और ज्ञान से (त्वाम् अञ्जन्ति) तुझे प्रकाशित करते और तुझे ही चाहते हैं । (२) शिष्य के पक्ष में—(देवयन्तः) विद्वान् जन मुझे चाहते हुए ज्ञान से तुझे चमकावें

तू ऊंचा, उन्नत हो, माता के समान पालक ज्ञान-जन्म के दाता, ज्ञानवान् आचार्य के समीप तेरा निवास हो।

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २॥

भा०—हे वनस्पते! राजन्! विद्वन्! सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (समिद्धस्य) खूब अच्छी प्रकार प्रज्वलित, ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष के (पुरस्तात्) आगे (श्रयमाणः) स्थिर होकर (अजरं) अविनाशी (सुवीरम्) उत्तम वीर्य-बल के देनेवाले (ब्रह्म) वेदज्ञान और ऐश्वर्य को (वन्वानः) सेवन और अभ्यास करता हुआ (अस्मद् आरे) हमारे समीप और दूर के (अमतिं) अधर्म युक्त, जड़ बुद्धि को और अदृश्य शत्रु सेना को भी (बाधमानः) दूर करता हुआ (महते सौभगाय) बड़े भारी उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (उत् श्रयस्व) उन्नत पद पर स्थिर हो। गुरु तेजस्वी शिष्य के समक्ष ब्रह्म ज्ञान का वितरण करता हुआ अज्ञान का नाश करे और शिष्य तेजस्वी ज्ञानी आचार्य के समक्ष ब्रह्मज्ञान की (वन्वानः) याचना करता हुआ गुरुओं के समीप अज्ञान को दूर करे, दोनों ही बड़े सौभाग्य प्राप्ति के लिये उन्नत होकर विराजें।

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि।
सुमिती मीयमानो वर्चोधा यज्ञवाहसे ॥ ३॥

भा०—हे (वनस्पते) सूर्य के समान तेजस्वी शिष्यों और वीरों के पालक! हे वट आदि के समान आश्रित धनादि के याचकजनों के पालक! (पृथिव्याः वर्ष्मन्) वृष्टि जलादि युक्त स्थान पर बड़े वृक्ष के समान तू भी (पृथिव्याः वर्ष्मन्) पृथिवी के सुप्रबन्ध से युक्त राष्ट्र शासन के कार्य में (उत् श्रयस्व) उन्नत पद पर विराज। और (सुमिती) जिस प्रकार बड़ा भारी वृक्ष बड़े परिमाण से (मीयमानः) मापे जाने योग्य होता है उसी प्रकार तू भी (सुमिती) शुभ, उत्तम माप या पैमाने से मापा जाकर

(वर्चोधाः) तेज और बल को धारण करता हुआ (यज्ञवाहसे) राज्य-रूप यज्ञ को वहन करने के लिये (पृथिव्याः अधि) इस पृथिवी पर हे विद्वन् ! तू उन्नत हो। (सुमती मीयमानः) उत्तम ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करता हुआ तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी होकर दान दिये जाने योग्य अध्यापनीय ज्ञान को धारण करने और कराने के लिये उन्नत पद पर विराज, ऊपर उठ।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥

भा०—(युवा) जवान, बलवान् (सुवासाः) उत्तम वस्त्रों को धारण करता हुआ (परिवीतः) सब प्रकार से विद्याओं को प्राप्त कर, एवं तेजस्वी होकर, उपवीतधारी ब्रह्मचारी के समान (आ अगात्) प्राप्त हो। (सः उ) वह ही (जायमानः) माता के गर्भ के समान विद्या के गर्भ में से उत्पन्न होता हुआ (श्रेयान् भवति) सबसे श्रेष्ठ हो। (धीरासः) धीर, बुद्धिमान् (कवयः) विद्वान् (स्वाध्यः) उत्तम विद्या को धारण और प्रदान करने वाले जन उसको (मनसा) चित्त से (देवयन्तः) चाहते हुए और (मनसा देवयन्तः) ज्ञान के प्रकाश से दानशील सूर्य के समान तेजस्वी बनाते हुए (तम् उन्नयन्ति) उसको ऊंचे पद पर लेजावें।

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (अह्नां सुदिनत्वे जायते) प्रादुर्भाव होकर दिनों को उत्तम दिन बनाने में समर्थ होता है उसी प्रकार (समर्ये) मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान संग्राम या सभास्थल और (विदथे) यज्ञ में भी (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (जातः) प्रसिद्ध विद्वान् और वीर पुरुष (अह्नां) आगे आने वाले विपक्षियों और मित्रों के दिनों को उत्तम बनाने में समर्थ होता है या उनके उत्तम समय में प्रकट होता है। (धीराः) धीर, बुद्धिमान् पुरुष (मनीषा) विचारपूर्वक ही

(अपसः) अपने कर्मों को पवित्र करते हैं और (देवयाः) विद्वानों का सत्कार करने हारा (विप्रः) विद्वान् ब्राह्मण भी (मनीषा) उत्तम मननशील मति से ही (वाचम्) वेद वाणी को (उत् इयर्त्ति) उच्चारण करता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यान् वः) जिन आप लोगों को (देवयन्तः) देव, अर्थात् कामनाशील, प्रिय पुरुषों के समान आचरण करने वाले या विजयेच्छुक पुरुषों को चाहने वाले (नरः) नायकजन और विद्याभिलाषी शिष्यों के इच्छुक गुरुजन (नि मिम्युः) अच्छी प्रकार से उपदेश करते और (स्वधितिः वा) मेघों को वज्र के समान, काष्ठों को कुठार के समान, हे (वनस्पते) सर्वाश्रय ! तेजस्विन् सैन्यदलपते ! तू जिनको (ततक्ष) गढ़ता, बनाता और तैयार करता है (ते) वे (देवासः) विद्वान् और वीर पुरुष (स्वरवः) सूर्य के समान तेजस्वी और स्वयं विद्योपदेशों से युक्त और (तस्थिवांसः) स्थिर बुद्धि होकर (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये (प्रजावत्) प्रजा के समान या प्रजा से युक्त (रत्नम्) रमणीय उत्तम धन (दिधिषन्तु) धारण करें और दें।

ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७ ॥

भा०— (ये) जो (वृक्णासः) अविद्या से उत्पन्न समस्त बन्धनों को काट देनेहारे, (यत-स्रुचः) प्राणों और इन्द्रियों का संयम करने वाले, (अधि क्षमि) क्षमा, सहनशीलता में रहकर (निमितासः) स्थिर रूप से ज्ञानवान् या खूब परिमित भाषण करने वाले (क्षेत्र-साधसः) देह पर वश करने में कुशल हैं (देवत्रा) ज्ञानी और दानशील पुरुषों के बीच में वे (नः) हमारे (वार्यं) वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य को

(व्यन्तु) प्राप्त करें, प्रदान करें । (२) इसी प्रकार हमारे बीच में (क्षेत्र-साधसः) क्षेत्र अर्थात् युद्धक्षेत्र और अन्नक्षेत्रों के साधन उत्पन्न करने वाले वीर और वैश्य कृषक (वृक्णासः) शत्रुओं और कण्टकों का छेदन करने हारे (अधि क्षमि यतस्रुचः) भूमि पर रक्त बहाने वाले नदियों, सेनाओं और जल बहाने वाली धाराओं को नियम में रखने वाले (निमितासः) अपने राज्यों और क्षेत्रों को मापने वाले होकर (नः वार्यं) हमारे उत्तम ऐश्वर्य और अन्न को (व्यन्तु) प्राप्त करें ।

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(आदित्याः) सूर्यगण, सूर्य की किरणों और बारहों मास (रुद्राः) और प्राणगण और आकाश के वायु (वसवः) पृथिव्यादि लोक और जीवगण जिस प्रकार (सुनीथाः) उत्तम रीति से संगत होकर (द्यावा क्षामा) सूर्य पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों को व्यापकर (सजोषसः) एक समान रूप से सेवने योग्य (यज्ञम् अवन्ति) सुव्यवस्थित संसार-प्रबन्ध और परस्पर के जल प्रकाश आदि के लेने देने के व्यवहार को चला रहे हैं और (अध्वरस्य) अविनाशी महान् यज्ञ के (केतुम्) प्रवर्त्तक और ज्ञापक सूर्य और परमेश्वर को (ऊर्ध्वं कृणवन्ति) सबसे ऊपर रखते हैं उसी प्रकार (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी गण, परस्पर आदान प्रतिदान करने वाले वैश्य जन, (रुद्राः) नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण एवं दुष्टों को रुलाने वाले क्षत्रियगण (वसवः) २४ वर्ष के ब्रह्मचारी एवं राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजन (द्यावा क्षामा) आकाश और भूमि (पृथिवी अन्तरिक्षम्) पृथिवी और अन्तरिक्ष इन सबको वशकर (सजोषसः) समान प्रीति भाव से युक्त होकर (देवाः) दानशील और परस्पर के चाहने वाले तेजस्वी होकर (यज्ञम्) परस्पर के सत्संग की रक्षा करें और (अध्वरस्य) इस हिंसारहित राष्ट्र यज्ञ के

(केतुम्) ज्ञापक और ध्वजा के समान उन्नत और मान आदर के योग्य पुरुष को (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (कृण्वन्तु) रक्खें।

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ॥
उन्नीयमाना कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९॥

भा०—(हंसा इव श्रेणिशः) पंक्ति बांधकर जिस प्रकार हंस शब्द करते हुए आते जाते हैं उसी प्रकार (शुक्रा वसानाः) शुद्ध, कान्तियुक्त वस्त्रों को धारण करने वाले (श्रेणिशः यतानाः) अपने २ वर्ग या पंक्ति में बद्ध होकर यत्न करते हुए (स्वरवः) शत्रुओं को पीड़ा देने वाले या उत्तम ध्वनि या शब्द करते हुए उत्तम उपदेश वचन कहते हुए (नः) हमें (आगुः) प्राप्त हों। वे (पुरस्तात्) सबके समक्ष (कविभिः) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों द्वारा (उत् नीयमाना) उत्तम पद पर पहुंचाये हुए (देवाः) दानशील विद्वान् और विजयी पुरुष (देवानाम्) सूर्य के प्रकाशक किरणों के (पाथः) जल को जलप्रद मेघों के समान उनके (पाथः) अनुकरणीय मार्ग को (यन्ति) प्राप्त होते हैं। प्रसङ्गवश किरणों और मेघगण (शुक्रा वसानाः) 'शुक्र' अर्थात् सूक्ष्म जलों को धारण करने वाले (स्वरवः) उपताप देनें वाले, इसी प्रकार मेघ गर्जनशील, (कविभिः उत् नीयमानाः) वायुओं द्वारा उठाकर देशान्तर ले जाये गये वे (देवाः) जलप्रद मेघ (देवानां पाथः) प्रकाशक किरणों के जल को प्राप्त होते हैं। (२) वीर पुरुष पंक्तिबद्ध होकर चमचमाते वर्दी शस्त्रादि धारते हुए क्रान्तदर्शी सेना नायकों द्वारा आगे उत्तम रीति से ले जाये जाकर विजयेच्छुकों के मार्ग पर चलें। (३) विद्वान् पुरुष (शुक्रा वसानाः) शुक्र, पुण्य कर्मों को धारण करते हुए या वीर्य को धारण करते हुए, ब्रह्मचारी रहकर हंस पक्षियों के समान स्वच्छ होकर पंक्तिबद्ध होकर आगे २ क्रान्तदर्शी गुरुजनों द्वारा उत्तम मार्ग से लेजाये जाकर हम (देवानाम्) इच्छुकों के दिये (पाथः) जलादि सत्कार को प्राप्त हों।

शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥

भा०—विद्वान् और वीरजन (पृथिव्याम्) इस पृथ्वी पर (चषालवन्तः) भोग करने योग्य नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न और (स्वरवः) शत्रुओं को तपाने वाले और उत्तम वचन कहने वाले हों और वे (चषालवन्तः स्वरवः) सुन्दर छल्लों से युक्त यज्ञ के यूपों के समान (शृङ्गिणां) सींग वाले बैल आदि पशुओं के या उच्च पर्वतों के (शृङ्गाणि-इव) ऊंचे सींगों या शिखरों के समान ऊंचे स्थान पर स्थित होकर या आगे बढ़कर विपक्षियों का नाश करने वाले होकर (संददृश्रे) अच्छी प्रकार दीखें। वे (वाघद्भिः) अपने पूज्य विद्वानों द्वारा (विहवे) विविध उपदेश प्रदान से युक्त स्वाध्यायकाल में वा विशेष रूप से आह्वान करने के संग्रामकाल में (श्रोषमाणाः) उत्तम उपदेश और आज्ञा व ज्ञान श्रवण करते हुए (अस्मान्) हमें (पृतनाज्येषु) संग्रामों में (अवन्तु) रक्षा करें।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥४॥

भा०—हे (वनस्पते) महावृक्ष के समान याचनाशील और ऐश्वर्यों के सेवन करने वाले जनो और भोग्य ऐश्वर्यों के पालक राजन्! शिष्यों के पालक विद्वन्! सैन्य दलों के पालक सेनापते! तुझको (स्वधितिः) अपने बल से धारण करने योग्य उत्तम शस्त्रबल और शास्त्रबल (तेजमानः) तीक्ष्ण करता हुआ (महते सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (प्र-निनाय) उत्कर्ष युक्त पद पर पहुंचाता है। शस्त्र से काटा जा कर पुनः सहस्रों शाखाओं से फूटने वाला वट आदि वनस्पति जिस प्रकार (शतवल्शः सहस्रवल्शः) सैकड़ों और सहस्रों शाखाओं और अंकुरों से युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार तू

(शतवल्शः) सैकड़ों शाखाओं और (सहस्रवल्शः) हज़ारों अंग प्रत्यंग, एवं पुत्र पौत्रादि रूप शाखाओं और अंकुरों से युक्त होकर (वि-रोह) विविध प्रकार से उन्नत हो। और (वयम्) हम भी (वि रुहेम) विविध प्रकार से वनस्पतियों के समान ही उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हों।

यज्ञ में यह सूक्त उपचार से यज्ञवेदी में स्थित यूपों के वर्णन में लगाया जाता है। (१) वृक्ष के काष्ठ से बना हुआ यूप वनस्पति है, उसको ऋत्विज् लोग घृत से चुपड़ते हैं। वेदी पर स्थित होता है। (२) माप २ कर बनाया जाता है (४) वस्त्र से सजाया जाता है। (६) शस्त्र से काटा जाता है, (९) बहुत से यूप एक पंक्ति में खड़े किये जाते हैं, (१०) शिर पर सुवर्ण का छल्ला लगाया जाता है वह छल्ला 'चषाल' और यूप का कटा भाग 'स्वरु' कहाता है। यूप जड़ पदार्थ हैं उनमें (ऋ० २) मन्त्रों में कहे अज्ञान नाश करने वाली वाणी का बोलना (ऋ० ५) रत्नादि धारण करना (६) श्रवण करना (१०) सैकड़ों अंकुरों से फूटना आदि सम्भव नहीं है। इसलिये वह योजना गौण है। श्लेषवृत्ति से क्रियाकाण्ड की योजना समझनी चाहिये। श्लेष वृत्ति से यह सूक्त सूर्य की किरणों विद्वानों, प्राणों, वीर सैनिकों तथा वनस्पति नाम से आश्रयभूत राजा, सेनापति और गृहस्थ पुरुष का व'न करता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ बृहती। २, ५, ६, ७ निचृद्बृहती। ३, ८ विराड् बृहती। ९ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥

भा०—हम सब (सखायः) परस्पर मित्र, एक समान नाम, ख्याति वाले (मर्त्तासः) मरणधर्मा मनुष्य (ऊतये) अपनी रक्षा और ज्ञान,

और मनोकामना पूर्ण करने के लिये (अपां नपातम्) प्राणों के बीच आत्मा के समान स्वयं नाश न होने वाले, प्राणों को बांधने वाले आत्मा के समान ही सब आप्त प्रजाजनों के प्रबन्धक (सुभगं) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सुदीदितिम्) उत्तम ज्ञान-प्रकाश से युक्त, तेजस्वी, (सुप्रतूर्त्तिम्) सुखपूर्वक उत्तम रीति से पार पहुंचा देने और खूब शीघ्रता, वेग फुर्ती वाले, अनालसी, क्रियावान्, (अनेहसम्) अहिंसक, एवं निष्पाप, उपद्रवादि से रहित (त्वा) तुझको हे विद्वन्! हे नायक! हम लोग गुरु, नेता व रक्षक रूप से (ववृमहे) वरण करते हैं। (२) परमेश्वर भी, समस्त लोकों और प्रकृति के परमाणुओं तक का प्रबन्धक होने से 'अपां नपात्' है। वह उत्तम ऐश्वर्यवान्, ज्योतिर्मय, उत्तम तारक, निष्पाप है। उसको हम रक्षा, ज्ञान, तेज, हर्षादि के लिये वरण करें।

कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः॥ २॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (कायमानः) मानो चाहता हुआ, कान्तिमान् होकर (वना अजगन्) वनों में लगता और विद्युत् रूप से (अपः अजगन्) जलों को भी प्राप्त है। और उसका जिस प्रकार (निवर्त्तनं) बुझ जाना असह्य हो जाता है, अग्नि स्वयं (दूरे सन् इह अभवः) दूर रहकर भी प्रकाश रूप से समीप हो जाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! (त्वं) तू (वना) सेवन करने योग्य ज्ञानों को (कायमानः) चाहता हुआ, देता हुआ (यः) जो तू (मातृः अपः) माता के समान स्नेहवान् वा उत्तम ज्ञानी आप्त पुरुषों को (अजगन्) प्राप्त हो, हे अग्ने! विद्वन्! एवं विनयशील! (ते) तेरे (तत्) उस (निवर्त्तनम्) विद्याभ्यास के पथ से 'निवर्त्तन' लौट आने को मैं (न प्र मृषे) कभी सहन न करूं। (यत्) जो तू (दूरे सन्) दूर रहकर (इह अभवः) फिर यहां रहता अर्थात् विद्याभिलाषी, विद्यार्थी उत्तम ज्ञानों को चाहता

हुआ मातृतुल्य विद्वान् गुरुओं को जाए, वह अधबीच में न लौटे, दूर रहकर बाद घर में आवे । (२) आचार्य के पक्ष में—वह (वना कायमानः) सेव्य ज्ञानों का उपदेश करता हुआ उत्तम ज्ञाता आप्त शिष्यों को, प्राणों को आत्मा के समान प्राप्त हो । गुरु का (निवर्त्तनं) शिष्यों को अधर्म कार्यों से हटाना यह भी (तत् प्रमृषे) उत्तम तितिक्षा के लिये ही है । वह (दूरे सन्) दूर रहकर भी, देशान्तर में भी हो तो (इह अभवः) प्रेमवश हमारे पास ही रहे । (३) राष्ट्रनायक (वना) सेवनीय ऐश्वर्यों को चाहता हुआ अपने राजनिर्माता आप्त प्रजाजनों को प्राप्त करे । उसका प्रजा को कुपथ से हटाये रखना ही उत्तम तितिक्षा है । वह दूर रहकर प्रजा में दण्ड रूप से रहे ।

अति॒ तृ॒ष्टं व॑वक्षि॒थाथै॒व सु॒मना॒ अ॑सि ।
प्रप्रा॒न्ये यन्ति॒ पर्य॒न्य आ॑सते॒ येषां॑ स॒ख्ये असि॑ श्रि॒तः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! आचार्य ! हे प्रभो ! तू (तृष्टं) प्यारे, विद्या के तीव्र अभिलाषी शिष्य को (अति ववक्षिथ) अज्ञान से पार नौका के समान लेजा वा अति उत्तम उपदेश कर । अथवा—(तृष्टं अति ववक्षिथ) चाहे तू अति 'तृष्ट' तीखा कटु कठोर वचन ही कहता है (अथैव) तो भी तू (सुमनाः असि) शुभ चित्त वाला, हृदय में शुभ कामना से युक्त (असि) हो । हे विद्वन् आचार्य ! तू जिनके (सख्ये) मित्रभाव में (श्रितः) स्थित हो, जिनके प्रति तेरा अति स्नेह है उन शिष्यजनों में से भी (अन्ये) कुछ विद्यार्थी (प्र प्रयन्ति) विद्या समाप्त करके चले जाते हैं और (अन्ये) दूसरे जिनकी विद्या समाप्त नहीं हुई वे (परि आसते) तेरे समीप ही बैठते हैं । इसी प्रकार नायक शुभ चित्त होकर धन सुख के अभिलाषी प्रजाजन का भार अपने ऊपर ले । उसके कुछ सैनिक प्रयाण करें, कुछ उसको घेरे रहें या 'आसन' गुण का पालन करें ।

ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहो अप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥

भा०—विद्वन् लोग जिस प्रकार (अप्सु श्रितम्) जलों में स्थित विद्युत् अग्नि को भी (अद्रुहः) उससे द्रोह न करते हुए अनुकूल रूप से सिंह के समान वश कर लेते हैं उसी प्रकार (निचिरासः) अति काल से विद्यमान (अद्रुहः) द्रोहरहित प्रजाएं भी (स्रिधः) हिंसाकारिणी शत्रु-सेनाओं और सहनशील सेनाओं को (अति ईयिवांसम्) अतिक्रमण करने वाले, उनसे अधिक शक्तिशाली और (शश्वतीः) अपने राष्ट्र की पूर्व से ही विद्यमान और (सश्चतः) साथ में सहयोग करने वाली प्रजा को भी (अति) अतिक्रमण करने वाले (ईम्) इस नायक पुरुष को (अप्सु श्रितं) आप्त प्रजाओं के बीच स्थित (सिंहम् इव) सिंह के समान पराक्रमी पुरुष को (अनु अविन्दन्) अनुकूल रूप से प्राप्त करें उसको विरोधी न बनावें। (२) आचार्य पक्ष में—जो पुरुष (शश्वतीः) सनातन से विद्यमान अक्षय वेद-वणियों को खूब जानने हारा हो उसकी चिरकाल तक द्रोहरहित शुश्रूषु रहकर सेवा करें।

ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
एनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (त्मना) अपने स्वरूप से (ससृवांसम्) व्यापक और (तिरः हितम्) छुपे हुए (अग्निम्) अग्नि को (मथितं परि) मथे जाने के उपरान्त (मातरिश्वा परावतः परि आ अनयत्) वायु दूर २ तक ले जाता वा फैला देता है उसी प्रकार (इत्था) सत्य के बल से और (त्मना) अपने बल से (ससृवांसम्) आगे बढ़ने वाले (तिरः-हितम्) सबसे ऊपर विराजमान (एवं) इस (मथितम्) मंथन करके निकाले सारवान् भाग से युक्त एवं मथ कर निकाले गये (अग्निम् इव) अग्नि के समान प्रकाशमान, तेजस्वी (एनम्) इस विद्वान् पुरुष को (मातरिश्वा)

ज्ञानी पुरुष के आश्रय से आगे बढ़ने वाला शिष्यगण (देवेभ्यः) उत्तम कमनीय गुणों को प्राप्त करने के लिये (परावतः) दूसरे देशों से भी (परि आ अनयन्) आ २ कर प्राप्त करते हैं। (२) इसी प्रकार अग्रणी तेजस्वी पुरुष को (मातरिश्वा) वायु के समान बलवान् सैन्यगण भी (देवेभ्यः) कामनायोग्य ऐश्वर्यों के लिये या विद्वानों के लाभार्थ प्राप्त करते हैं या उसको सर्वत्र विजय के लिये ले जाते हैं। इति पञ्चमो वर्गः॥

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य॥ ६॥

भा०—हे (हव्यवाहन) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को धारण करने और प्राप्त कराने हारे विद्वन्! (मर्त्ताः) मनुष्य लोग (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों और तुझे या विद्यादि चाहने वालों के हितार्थ शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये (तं त्वा) उस तुझ श्रेष्ठ पुरुष को (अगृभ्णत) स्वीकार करते हैं। हे (मानुष) मननशील! मनुष्यों के हितकारक! हे (यविष्ठ्य) युवा पुरुषों में सबसे उत्तम, बलवन्! तू (तव) अपने (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म के सामर्थ्य से (विश्वान्) सब (यज्ञान्) श्रेष्ठ कर्मों, उत्तम दानयोग्य ज्ञानों और दानयोग्य धनों तथा सत्संग करने योग्य विद्वानों को भी (अभि पासि) सब प्रकार से पालन करता है। (२) अग्नि हव्य चरु को सूक्ष्म करके अन्य तत्वों तक पहुंचा देने से 'हव्यवाहन' है। उसको दीप्तियुक्त किरणों के और काम्य यज्ञों के लिये लोग ग्रहण करते हैं। वह समस्त अग्निष्टोमादि यज्ञों का पालन करता है।

तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे॥ ७॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (पशवः अपिशर्वरे समिद्धम्) रात्रि के अन्धकार में प्रदीप्त अग्नि के समीप ही समस्त गवादि पशु और मनुष्यादि

आश्रय पाते हैं। उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! (यत्) जब (अपिशर्वरे) रात्रि के समान घोर अज्ञानान्धकार के काल में और चारों ओर से हिंसाकारी शस्त्रादि के द्वारा प्रवृत्त संग्राम-काल में (पशवः) सब मनुष्य पशुओं के समान अज्ञानी और अधीनता स्वीकार करने वाले या तुझको ही तेजस्वी देखने वाले (समिद्धम्) खूब ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित और खूब तेजस्वी (त्वाम्) तुझको ही (सम्-आसते) आश्रय लेते हैं। (तव) तेरा (तद्) वह (भद्रम्) कल्याण और सुख-जनक (दंसना) उत्तम कर्म और ज्ञान दर्शन हो (पाकाय) परिपाक के लिये अग्नि के तेज के समान अपने ज्ञान-अनुभव और बल वीर्य को परिपक्व करने के लिये या उत्तम उपदेश देने के लिये (चित्) ही (छदयति) उनको आप वस्त्रों और कवचों से आच्छादित, सत्कृत, सुशोभित या अलंकृत करता है।

आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम्।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सु-अध्वरम्) उत्तम यज्ञ करने वाले, एवं अहिंसक और स्वयं हिंसादि से पीड़ा न देने योग्य (शीरम्) सुप्त के समान अति शान्त, (पावक शोचिषम्) पवित्र करने वाली दीप्ति और तेज से युक्त, (आशुम्) विद्याओं में व्यापक, (दूतम्) सेवा करने योग्य (प्रत्नम्) वृद्ध (ईड्यं) स्तुति योग्य (देवं) दानशील, ज्ञानों के प्रकाशक विद्वान् को (आजुहोत) अच्छी प्रकार स्वीकार करो, आदर से बुलाओ और उसका (सपर्यत) आदर से सेवा सत्कार करो। (२) परमेश्वर अविनाशी, सर्वपालक होने से 'सु-अध्वर' है, वह व्यापक होने से 'शीर' है। दुष्टों का संतापक होने से 'दूत' और अविनाशी और सर्व संचालक होने से 'अजिर' है। उस सनातन स्तुत्य देव को आत्मसमर्पण करो, उसी की पूजा करो। (३) वीरनायक उत्तम पालक, स्वयं अहिंसक, अग्नि

के समान तेजस्वी, शीघ्रगामी, शत्रु-संतापक, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, सर्वश्रेष्ठ, स्तुत्य विजिगीषु को उत्तम पद पर स्वीकार करो, उसकी सेवा करो ।

'दूरमजिरं' इति क्वचित् पाठः ।

त्रीणि॑ श॒ता त्री स॒हस्रा॑ण्य॒ग्निं त्रिं॒शच्च॑ दे॒वा नव॑ चासपर्यन् ।
औक्ष॑न्घृ॒तैरस्तृ॑णन्ब॒र्हिर॑स्मा॒ आदिद्धोता॑रं॒ न्य॑सादयन्त ॥९॥६॥

भा०—(अग्निं देवाः असपर्यन्) जिस प्रकार अग्नि को दिव्य किरण आश्रित हैं वे उसे (घृतैः औक्षन्) तेजों से बढ़ाते और (अस्मा बर्हिः अस्तृणन्) उसके वृद्धिशील रूप या प्रकाश को फैलाते हैं उसी प्रकार (त्रीणि शता त्री सहस्रा, त्रिंशत् च नव च) तीन हज़ार, तीनसौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ (देवाः) वीर पुरुष (अग्निम् असपर्यन्) अग्रणी तेजस्वी नायक की सेवा करें, उसके अधीन रहकर आज्ञा पालन करें । वे उसको (घृतैः) तेजों से (औक्षन्) घी से अग्नि के समान ही बढ़ावें । और (अस्मा) उसके (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र को (अस्तृणन्) खूब विस्तृत करें और (आत्) अनन्तर उसी (होतारं) सर्वैश्वर्य के देने वाले राजा को (नि असादयन्त) अच्छी प्रकार से स्थापित करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[१०]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ विराडुष्णिक् । ३ उष्णिक् । ४, ६, ७, ९ निचृदुष्णिक् । २ भुरिग् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

त्वाम॑ग्ने मनी॒षिणः॑ स॒म्राजं॑ चर्षणी॒नाम् ।
दे॒वं मर्ता॑स इन्धते॒ सम॑ध्व॒रे ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान अपने ही तेज से चमकने वाले ! हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (मनीषिणः) मन को वश करके

सन्मार्ग पर चलाने हारे योगीजन एवं बुद्धिमान् (मर्त्तासः) पुरुष (चर्षणीनां) दर्शन करने वाले ज्ञानी पुरुषों और मनुष्य प्रजाओं के बीच (सम्राजं) अच्छी प्रकार चमकने वाले एवं सम्राट् के समान सबके ऊपर शासक (देवं) दानशील, तेजस्वी, विजिगीषु (त्वाम्) तुझको (अध्वरे) शत्रुओं द्वारा न नाश होने वाले दृढ़ राज्य पालन के कार्य एवं श्रेष्ठ यज्ञ-कर्म में (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त वा प्रकाशित करते हैं।

त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (यज्ञेषु) उपासना आदि पूजनीय कार्य व्यवहारों में (ऋत्विजम्) ज्ञानवान् पुरुषों में ज्ञान के देने वाले, (होतारम्) समस्त संसार को अपने में धारण करने हारे (त्वाम्) तेरी (ऋतस्य गोपाः) सत्य धर्माचरण के पालन करने वाले जन (ईळते) स्तुति करते हैं और तू भी (ऋतस्य गोपाः) परम सत्य ज्ञान का रक्षक होकर (स्वे दमे) अपने जगत् के दमन कार्य और अन्तः-करणों में प्रकट हर्ष रूप में (दीदिहि) प्रकाशित हो। (२) राजापक्ष में—(यज्ञेषु) संग्रामों और सभाओं में (ऋत्विजम्) सदस्यों के साथ संगत होने वाले दानशील और राज्य को स्वीकारने वाले (ऋतस्य गोपाः) सत्य न्याय और ऐश्वर्य के पालक लोग तुझको चाहते हैं। तू धनैश्वर्य का स्वामी होकर अपने (दमे) गृह के बीच गृहपति के समान शत्रुदमन कार्य में खूब प्रकाशित हो, अपने गुणों का प्रकाश कर। (३) इसी प्रकार गृहस्थ विद्वान् के पक्ष में—वह प्रतिऋतु यज्ञ और दान देने से 'ऋत्विग्' हवन करने से 'होता' है। वह सत्य धर्म का पालक होकर अपने घर में दीपक या यज्ञाग्नि के समान चमके।

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) सबके प्रकाशक प्रभो ! (यः) जो पुरुष (जातवेदसे) उत्पन्न हुए प्रत्येक पदार्थ के भीतर विद्यमान (ते) तुझको (समिधा) अच्छी प्रकार हृदय प्रकाशित करने वाले विज्ञान द्वारा (ददाशति) अपना आत्मा सौंप देता है (सः) वह (सुवीर्यम्) उत्तम बल, पराक्रम को (धत्ते) धारण करता है और (सः) वही (पुष्यति) धनधान्य, गौ पशु, सुवर्णादि से पुष्ट और समृद्ध होता है । (२) राजा पक्षमें—(जातवेदसे) धनैश्वर्य के द्वारा प्रसिद्ध उसे जो करादि देता है वह उत्तम बल रखता और समृद्ध होता है । (३) इसी प्रकार विद्वान् आचार्य के अधीन अपने को 'समिधा' सहित सौंपता है वह उत्तम ब्रह्मचर्यपालक होकर वीर्यवान् और विद्यादि से पुष्ट होता है ।

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् ।

अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः अध्वराणां केतुः) जिस प्रकार अग्नि यज्ञों का ज्ञान कराने वाला और (सप्तहोतृभिः अञ्जानः) सात होताओं द्वारा प्रकाशित होता है । उसी प्रकार (सः) वह (अध्वराणां) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले जीवात्माओं और सत्कर्मों का (केतुः) ज्ञान देने और प्रकाशित करने वाला (अग्निः) तेजोमय परमेश्वर (देवेभिः) दिव्य गुणों, दिव्य पदार्थों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों द्वारा (आगमत्) हमें प्राप्त हो । वही (सप्तहोतृभिः) प्रकाश देने वाली सात रश्मियों से सूर्य के समान और सात प्राणों से आत्मा के समान (सप्त) सात वा सर्पणशील (होतृभिः) संसार के धारण करने वाले प्रवहण आदि सात तत्वों से, ज्ञान प्रदान करने वाले सात छन्दों से (हविष्मते) 'हवि' अर्थात् ज्ञान ग्रहण करने में समर्थ बुद्धि बल से युक्त पुरुष के लिये (अञ्जानः) अपने गुणों और ज्ञानों का प्रकाश करने हारा है । (२) अध्यात्ममें—अग्नि आत्मा है । सब जीवनादि यज्ञों का चेताने वाला, देव अर्थात् विषयेच्छुक प्राणों

या कामनाओं से प्रकट होता है। शिरोगत सात ग्राहक द्वारों से अन्नवान् देह को चेतन करने के लिये अपने को प्रकट या अभिव्यक्त करता है। (३) राजा सात विद्वान् शासकों द्वारा अपना शासन प्रकट करे और विद्वानों सहित अन्नादि सम्पन्न प्रजा के पालन के लिये आवे।

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (विपां) विद्वान् पुरुषों के बीच में (ज्योतींषि) ज्ञानमय ज्योतियों को (बिभ्रते) धारण करने वाले (वेधसे न) परम श्रेष्ठ विद्वान् के समान (अग्नये) ज्ञान प्रकाशक और (बृहत् पूर्व्यम्) बहुत बड़े पूर्वों द्वारा उपासित और अभ्यस्त (वचः) वेदवाणी को (होत्रे) देने और धारण करने वाले परम विद्वान् और परमेश्वर के लिये (बृहत्) बहुत अन्नादि (प्र भरत) लाओ एवं परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (बृहत्) बड़ा ज्ञान स्वयं (प्र भरत) प्राप्त करो। (२) राजा के पक्षमें—विद्वानों के बीच तेजों को धारण करने वाले, विधाता, कार्यकर्त्ता एवं विधाननिर्माता नायक पुरुष के प्रति बड़े उत्तम, पूर्व विद्वानों द्वारा अभ्यस्त (वचः) वाङ्मय का उपदेश करो। इति सप्तमो वर्गः ॥

अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निम्) अंग में विनयशील तेजस्वी पुरुष को (नः गिरः) हमारी ज्ञानोपदेश-वाणियें (वर्धन्तु) बढ़ावें (यतः) जिनसे वह (उक्थ्यः) उक्थ अर्थात् वेद और वेदोपदिष्ट ब्रह्म ज्ञान में निपुण और स्वयं भी प्रशंसनीय (जायते) हो और (महे) बड़े भारी (वाजाय) ज्ञान और बल प्राप्त करने और (द्रविणाय) ऐश्वर्य लाभ करने के लिये भी (दर्शतः) दर्शनीय हो। (२) परमेश्वर क्योंकि (उक्थ्यः) वेद

द्वारा स्तुत्य है अतः उस सर्वप्रकाशक को हमारी स्तुतियां बढ़ावें, उसके गुणों को प्रकाशित करें। वह बड़े ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के प्राप्त करा देने के लिये दर्शनीय, अद्भुत है।

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् परमेश्वर ! तू (यजिष्ठः) सब दान देने, सत्संग करने और मैत्रीभाव रखने वालों में सर्वश्रेष्ठ है। तू (देवयते) उत्तम गुणों और विद्वानों की (यज) संगति करा कर। तू (होता) सबका दाता और धर्त्ता (मन्द्रः) सबको हर्षित करने वाला आनन्दमय होकर (स्रिधः) विद्या आदि गुणों के नाश करने वाली दुर्वासनाओं को (अति विराजसि) लांघकर, उनसे कहीं परे विशेष दीप्ति से प्रकाशित होता है। (२) राजा सबसे अधिक दानशील होकर कामनावान् प्रजाजन की वृद्धि के लिये विद्वानों का सत्संग करे। वह सब हिंसाकारी सेनाओं वा धर्मविरोधियों के ऊपर विराजे।

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् ।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥

भा०—हे (पावक) पवित्र करने हारे, परम पावन प्रभो ! (सः) वह परम तू (नः) हमें (दीदिहि) प्रकाशित कर और (अस्मे) हमें (द्युमत्) कान्ति से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम वीर्य, बल (दीदिहि) प्रदान कर। तू (स्वस्तये) सुख कल्याण की वृद्धि के लिये (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता पुरुषों के (अन्तमः) भीतर अन्तःकरण में स्थित (भव) हो, सदा उनके समीप रह। (२) अग्नि के समान सबको पवित्र करने वाला विद्वान् हमें विद्या प्रकाश से चमकावे, उत्तम वीर्य धारण करावे, विद्याभ्यास करने वाले शिष्यजनों के सदा समीप रहे।

तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! (विपन्यवः) विविध प्रकार से स्तुति करने हारे (विप्राः) मेधावी, ज्ञानी पुरुष (जागृवांसः) जागरणशील, ब्राह्म-मुहूर्त्त में ही सबसे पूर्व जागने वाले, सदा जागृत, प्रबुद्ध, सावधान लोग (हव्यवाहम्) देने योग्य ज्ञान के देने वाले, (सहोवृधम्) सहन करने, शत्रुओं को परास्त करने वाले, बल को बढ़ाने वाले, (अमर्त्यं) अमरणशील, नित्य (तं) उस प्रसिद्ध (त्वा) तुझको (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार यज्ञाग्नि के समान ही प्रकाशित करते हैं । अपने हृदय में जागृत करते हैं । (२) राजा को (विपन्यवः) विविध व्यवहारकुशल विद्वान् जन सदा सावधान रहकर उसे चेतावें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[११]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ८ निचृद्गायत्री । ३, ९ विराड् गायत्री । ४, ६ गायत्री ॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः ।
स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥

भा०—जो (अग्निः) अग्रणी, नायक, विद्वान् पुरुष (होता) दानशील, (पुरोहितः) दीपक के समान सबके समक्ष अध्यक्षरूप में स्थापित किया जाता है वह (अध्वरस्य) जिस कार्य में प्रजाओं का नाश और जो कार्य परिणाम में नाशकारक और स्वतः भी नाशवान् न हो, उसका (विचर्षणिः) विविध रूप से देखने हारा हो (सः) वही (यज्ञम्) परस्पर के सत्संग, दान-प्रतिदान, पूजा सत्कार आदि के (आनुषक्) अनुकूलता से और आनुपूर्वी क्रम से किये जाने योग्य विधि-विधान को (वेद) भली प्रकार जाने ।

स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः ।
अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (हव्यवाड्) दान देने और लेने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने और अन्यों को प्राप्त कराने हारा (अमर्त्यः) साधारण पुरुषों से विशेष (उशिक्) अग्नि के समान तेजस्वी, सर्वप्रिय, उत्तम पदार्थों की कामना करने वाला (दूतः) दुष्टों को संतापदायक और सेवा करने योग्य, (चनोहितः) पचन योग्य अन्न और उत्तम वचन योग्य ज्ञानादि का हितकारी, उसको धारण करने वाला (अग्निः) अग्रणी हो वह (धिया) बुद्धि और उत्तम कर्म से (सम् ऋण्वति) अच्छी प्रकार समस्त कार्यों को जाने और उत्तम मार्ग पर चले । परमेश्वर स्तुतियोग्य और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने से 'हव्यवाड्', (उशिग्) तेजोमय, अन्नादि से हितकारी है । वह अपनी धारण शक्ति से सर्वत्र (सम् ऋण्वति) समानभाव से व्यापक हो रहा है ।

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः ।
अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् , ज्ञानों का प्रकाशक विद्वान् और नायक पुरुष (धिया) अपनी उत्तम बुद्धि से (चेतति) विचार करे वह (यज्ञस्य) सत्कार, दान मान आदि कार्यों में (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान, वृद्धजनों में कुशल और (केतुः) सब कर्त्तव्यों का बतलाने वाला एवं ध्वजा के समान सर्वोपरि अग्रगण्य हो । (अस्य) इसका (अर्थं हि) गमन, चेष्टा और प्रयोजन भी (तरणि) प्रजा को दुःखों से तारने वाला, लोकोपकारक हो । (२) परमेश्वर ज्ञान और विश्व के धारण सामर्थ्य से सब कुछ जानता है वह इस व्यवस्थित जगत् के (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान और उसका प्रकाशक है । उसका सर्वत्र

व्यापन और प्रेरण ही समस्त संसार को चलाने और उसका (अर्थ) ज्ञान ही (तरणि) इस जीव को तराने, दुःखों से पार उतारने वाला है।

अ॒ग्निं सू॒नुं सन॑श्रुतं॒ सह॑सो जा॒तवे॑दसम्।
वह्निं॑ दे॒वा अ॑कृण्वत ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवाः) व्यवहार और शिल्पकुशल विद्वान् लोग (सहसः सूनुं) बल के सञ्चालक और उत्पादक (अग्निं) अग्नि, तत्व, विद्युत् को (वह्निं) रथादि को देश से देशान्तर में उठाकर लेजाने में समर्थ (अकृण्वत) बना लेते हैं। उसी प्रकार (अग्निम्) अग्रणी और ज्ञानवान् (सन-श्रुतम्) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने हारे (जात-वेदसम्) प्राप्त करके विद्वान् हुए एवं ऐश्वर्यवान् (सहसः सूनुं) बल के उत्पादक, सैन्यबल के सञ्चालक पुरुष को (देवाः) व्यवहारकुशल पुरुष (वह्निं) राष्ट्र कार्य को वहन करने में समर्थ (अकृण्वत) बनावें, उसे प्रधान सञ्चालक बनावें। (२) सनातन से प्रसिद्ध एवं श्रवण मनन किये गये ज्ञानमय, सर्वप्रेरक, उत्पादक, सर्वज्ञ सर्वपालक परमेश्वर को लक्ष्य कर विद्वान् जन सब कार्य करते हैं।

अदा॑भ्यः पुर॒एता॑ वि॒शाम॒ग्निर्मानु॑षीणाम्।
तूर्णी॒ रथः॒ सदा॒ नवः॑ ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(तूर्णीरथः) अति वेगवान् रथ जिस प्रकार (मानुषीणाम् विशाम् पुरः एता) मनुष्य प्रजाओं के बीच सबसे आगे चलता है उसी प्रकार (मानुषीणाम्) मननशील, मनुष्य (विशाम्) प्रजाओं के बीच (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष (अदाभ्यः) किसी से भी मारा न जा सकने योग्य, बलवान् और रक्षा करने योग्य, (तूर्णी) कार्य करने में क्षिप्रकारी (रथः) वेगवान्, बलवान् और (सदा-नवः) सदा नवीन, अति प्रसन्न, सर्वप्रिय सर्वस्तुत्य होकर (पुरः एता)

आगे २ चलने हारा हो। (२) परमेश्वर नित्य, अहिंसक सर्व से पूर्व विद्यमान, सबका तारक, रसस्वरूप एवं सदा स्तुत्य है। इति नवमो वर्गः॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।

अग्निस्तुविश्रवस्तमः॥ ६॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी नायक अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (तुविश्रवस्तमः) बहुत ज्ञानवान्, बहुत से ऐश्वर्यों से सम्पन्न, (देवानाम्) प्राणों के बीच (अमृक्तः) अमृतः, [ककारोपजनः] अमर आत्मा के समान वा (देवनाम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच (अमृक्तः) शत्रुजनों से न मारा जा सकने योग्य, (क्रतुः) कर्मकुशल और (विश्वान् अभियुजः) समस्त अभियोक्ता, आक्रमणकारी प्रतिस्पर्द्धी शत्रुओं को (साह्वान्) पराजित करने वाला और सम्मुख आई सहयोगिनी प्रजाओं को भी वश करने वाला हो। परमेश्वर सब पृथ्वी तेज आदि तत्वों में अमृत, नित्य, सबका वशकर्त्ता महान् 'क्रतु' कर्त्ता एवं ज्ञाता है।

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।

क्षयं पावकशोचिषः॥ ७॥

भा०—(दाश्वान् मर्त्यः) दानशील, करप्रद, प्रजाजन (वाहसा) उत्तम उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले नायक एवं विद्वान् पुरुष के द्वारा ही (प्रयांसि) अन्न ज्ञान, बल आदि तृप्तिकर प्रिय पदार्थों को (अभि-अश्नोति) प्राप्त करता है। और वही (पावकशोचिषः) अग्नि के तेज के समान पवित्र तेज वाले उस नायक के (क्षयं) निवास योग्य गृह को भी (अभि अश्नोति) प्राप्त करता है। (२) परमेश्वर पक्षमें—(दाश्वान्) आत्मसमर्पक उपासक सर्वधारक परमेश्वर से ही सब प्रिय ऐश्वर्य प्राप्त करता है। वही पवित्र तेजोमय प्रभु के समीप स्थिति पाता वा उसके द्वारा अपने दुःखों का विनाश कर पाता है।

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः ।
विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥

भा०—हम (विप्रासः) बुद्धिमान् (जातवेदसः) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी (अग्नेः) ज्ञानी, तेजस्वी और अग्रणी पुरुष के (मन्मभिः) मनन करने योग्य वचनों, विचारों और बल सामर्थ्यों से (विश्वानि) सब प्रकार के (सुधितानि) सुख से धारण करने योग्य, उत्तम हितकारी ज्ञानों और पदार्थों का (परि अश्याम) सब प्रकार से भोग करें । (२) हम परमेश्वर की स्तुतियों द्वारा सब ऐश्वर्य प्राप्त करें ।

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे ।
त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक ! हम लोग (देवासः) धनादि ऐश्वर्यों और ज्ञानों की कामना करते हुए (त्वे) तेरे प्रति (एरिरे) शरण आते और प्रार्थना करते हैं और तेरे ही अधीन रह कर हम सब (वाजेषु) संग्रामों के अवसर पर वा ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त होने पर (विश्वानि) सब प्रकार के (वार्या) वरण करने योग्य उत्तम ऐश्वर्यों को (सनिषामहे) एक दूसरे को दान करें एवं परस्पर विभाग करके उपभोग करें । (२) परमेश्वर पक्षमें—विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं, हम भी यज्ञों में समस्त वरणीय पदार्थ तेरे ही आश्रय होकर प्राप्त करें । इति दशमो वर्गः ॥

[१२]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ९ निचृद्-गायत्री । २, ४, ६ गायत्री । ७ यवमध्या विराड्गायत्री च ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और हे अग्ने ! हे ऐश्वर्यवन् हे ज्ञानवन् ! मेघ और सूर्य या वायु विद्युत् के समान जीवन, प्राण और अन्न और ज्ञान प्रकाश देने वाले गुरु जनो ! आप दोनों (आ गतम्) आइये । जिस प्रकार मेघ और सूर्य दोनों मिलकर (नभः) आकाश को (गीर्भिः) गर्जनादि मध्यम वाणियों से व्यापते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (गीर्भिः) उत्तम उपदेशों से (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (नभः) विद्या और योनि सम्बन्धों से बंधे (सुतम्) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य को (आ गतम्) प्राप्त होओ । और आप दोनों (धिया इषिता) ज्ञान और कर्म द्वारा उसको सन्मार्ग में प्रेरित करते हुए (अस्य) इसको (पातम्) पालन करो । (२) (सुतं) अभिषेकादि से स्नात राजा को इन्द्र और अग्नि, वायु और आग के समान बलवान् तेजस्वी पुरुषवर्ग प्राप्त हों । वे उत्तम वाणियों से उस वरण करने योग्य (नभः) राज्य प्रबन्ध में कुशल या व्यवस्थाओं से बद्ध, एवं एकाश के समान सर्वोपरि विराजमान उसको अपने ज्ञान और उद्योग से प्रेरते हुए उसका पालन करें ।

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त वायु और सूर्य के समान बल और ज्ञान प्रकाश से युक्त आप दोनों के समीप ही (यज्ञः) सत्संग करने वाला एवं विद्योपदेशादि देने योग्य (चेतनः) चेतन, ज्ञान से प्रबुद्ध पुत्र वा शिष्य (जिगाति) प्राप्त होता है । आप दोनों (जरितुः सचा) उपदेश देने वाले के सहायक होकर (इमं सुतम्) इस पुत्रादि को (अया पातम्) इस वाणी से पालन करो ।

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रम्) वायु के समान बलवान् और (अग्निम्) अग्नि के

समान तेजस्वी दोनों कविच्छद्रा विद्वान् पुरुषों को अन्नवस्त्रादि से आच्छादित करने वाले हैं उन दोनों को मैं (यज्ञस्य) परस्पर के सत्संग और मैत्री भाव की (जूत्या) प्रेरणा या बलसे (वृणे) वरण कररता हूं। (ता) वे दोनों (इह) इस समय (सोमस्य) सौम्य स्वभाव वाले शिष्य के उत्तम गुणों और सेवा शुश्रूषादि द्वारा (तृम्पताम्) स्वयं सुखी हों और (सोमस्य तृम्पताम्) शिष्य को भी ज्ञान से तृप्त, पूर्ण करें। (२) बलवान् तेजस्वी पुरुषों को परस्पर के संगति के बल से वरण करें और वे दोनों राष्ट्र-ऐश्वर्य से तृप्त हों और प्रजा को तृप्त करें।

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥

भा०—मैं शिष्य वा पुत्रजन (तोशा) बढ़ाने और ज्ञानोपदेश करने वाले (वृत्रहणा) अवरणकारी विघ्न और अज्ञान को नाश करने वाले (सजित्वाना) समान रूप से जितेन्द्रिय (अपराजितौ) कभी न पराजित, सदा पराक्रमशील, (वाजसातमा) ज्ञानैश्वर्य के उत्तम देने वाले, (इन्द्राग्नी) वायु सूर्य के समान विद्वानों को (हुवे) प्राप्त करूं। (२) (तोशा) शत्रुओं के नाशक, (वृत्रहणा) दुष्टों को मारने वाले, (सजित्वाना) विजयशील वीरों से युक्त (अपराजिता) कभी पराजित न होने वाले (वाजसातमा) अन्नैश्वर्यादि के देने वाले वीर तेजस्वी पुरुषों को उत्तम पद के लिये स्वीकार करूं।

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषो ! (उक्थिनः) उत्तम ज्ञान और गुणों वाले, (नीथाविदः) विनयाचारों और उत्तम मार्गों को जानने वाले, (जरितारः) विद्वान् पुरुष (वाम् अर्चन्ति) आप दोनों का सन्मान करते हैं। मैं भी (इषे) अन्नादि ऐश्वर्य,

उत्तम प्रेरणा और अभिलाषा की पूर्त्ति के लिये (आवृणे) आप दोनों को वरण करता हूं ।

इन्द्राग्नी न॒व॒तिं पुरो॑ दा॒सप॑त्नीरधूनुतम् ।
सा॒कमेके॑न॒ कर्म॑णा ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) वायु और सूर्य के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुष (पुरः) अपने सामने स्थित (नवतिम्) ९० (नवे) (दास-पत्नीः) शत्रुनाशक सैनिकों को अपने भीतर पालन करने वाली सेनाओं को (एकेन कर्मणा) एक ही समान कर्म के (साकम्) साथ (अधूनु-तम्) सञ्चालन करें । इसी प्रकार वे अपने आगे आई ९० शत्रु-सेनाओं को भी एक ही पराक्रम से भय से कम्पित करें ।

इन्द्रा॑ग्नी अप॑स॒स्पर्युप॒ प्र य॑न्ति धी॒तय॑ः ।
ऋ॒तस्य॑ प॒थ्या॒३॑ अनु॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि या वायु और अग्नि के समान तेजस्वी बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार (धीतयः अपसः परि उप प्र यन्ति) हाथ की अंगुलियां कार्य करने के लिये आगे बढ़ती हैं, वा लोग (ऋतस्य पथ्याः अनु) ऐश्वर्य प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों का (धीतयः) सब गतियें, धारण शक्तियें वा कर्म, (अपसः परि उप प्र यन्तु) कर्त्तव्य-कर्म पर आश्रित, उसके ही ऊपर निर्भर हों । और वे सब (ऋतस्यपथ्याः अनु) सत्याचरण और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के उत्तम मार्गों के अनुकूल हों ।

इन्द्रा॑ग्नी तवि॒षाणि॑ वां स॒धस्था॑नि॒ प्रयां॑सि च ।
यु॒वोर॒प्तूर्यं॑ हि॒तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे वायु और सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायु और सूर्य दोनों के (तविषाणि) बल वा शक्तियां और (प्रयांसि) प्रजाओं को तृप्त करने वाले अन्न जलादि (सधस्थानि) एक ही स्थान पर

परस्पर सम्बद्ध रहते हैं और उन दोनों पर ही (असूर्यम्) वृष्टि जलों का लाना निर्भर होता है। उसी प्रकार (वां) तुम दोनों के (तविषाणि) सब बल, कर्म और (प्रयांसि च) प्रजाओं को प्रिय और हृष्ट पुष्ट करने वाले कार्य (सधस्थानि) एक स्थान पर ही हों अर्थात् वे परस्पर अनुकूल रहें। (युवोः) तुम दोनों पर ही (असूर्यम्) कार्यों को शीघ्र सम्पादन करने और प्रजाओं के सञ्चालन का कार्य भी स्थित है।

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥ १२ ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) सूर्य और वायु के समान तेजस्वी बलवान् सेनाध्यक्ष और सभाध्यक्षो ! आप दोनों (दिवः) ज्ञान, प्रकाश, तेजस्विता और उत्तम कामनायुक्त व्यवहारों में (रोचना) कान्ति और तेज से युक्त सब प्रजाजन को अच्छे लगने हारे होकर (वाजेषु) संग्रामों और ऐश्वर्यों के बीच (परि भूषथः) विद्यमान रहो या पदों को सुशोभित करो। (वां) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (वीर्य) बल पराक्रम (प्र चेति) सबसे उत्तम जाना जाए और अन्यों को ज्ञान देने वाला हो। इति द्वादशो वर्गः॥

इति तृतीये मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१३]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । २, ३, ५, ६, ७ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आपके (देवाय) विद्या आदि शुभ गुणों की कामना करने वाले (अग्नये) अग्नि के समान तेजस्वी एवं अंगों में विनयशील शिष्य को विद्याभ्यास करने के लिये (देवेभिः) अन्य विद्याभिलाषी शिष्यों वा उत्तम दिव्य गुणों सहित (आगमत्) हमें प्राप्त

हो (सः) वह (नः) हमारा (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य और उत्तम विद्यादाता होकर (बर्हिः) उत्तम आसन पर, आकाश में सूर्य के समान (आ सदत्) विराजे। उस (बर्हिष्ठम्) उत्तम आसन पर स्थित पुरुष को (अस्मै) इसके हित के लिये (अर्च) आदर सत्कार करो। (२) राजा पक्ष में—मार्ग प्रकाशक अग्रणी पद के लिये जो अन्य विद्वानोंसहित हमें प्राप्त हो, वह सबसे अधिक दानशील, (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजाओं पर विराजे, उस पद के लिये उसका आदर करो।

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (दक्षं) बल और ज्ञान का (रोदसी) आकाश और भूमि के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों (सचेते) आश्रय लेते हैं और (ऊतयः) सब रक्षाकार्य और रक्षकजन भी (यस्य दक्षं सचन्ते) जिसके बल का आश्रय लेते हैं। (तं) उसको (हविष्मन्तः) अन्नादि ऐश्वर्यों केस्वामी लोग भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (ईडते) चाहते हैं और उसकी स्तुति करते हैं। और (सनिष्यन्तः) भविष्यत् में दान देने और ऐश्वर्य का सेवन करने के अभिलाषी भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (तं सचन्ते, तम् ईळते) उसकी शरण जाते हैं और उसको ही चाहते और सराहते हैं।

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (वः) तुम लोगों को (मघम् वनिता) ऐश्वर्य का विभाग करता और (दाता) देता है तुम लोग (तम् अग्निम्) उस अग्रणी, ज्ञानी विद्वान् तेजस्वी पुरुष की (दुवस्यत) सेवा करो। (सः) वह (विप्रः) विविध बलों से पूर्ण करने हारा है। (सः) वही (एषां) इन प्रजाओं का (यन्ता) नियम में बांधनेवाला, नियन्ता (अथ) और

(सः) वही (यज्ञानां) यज्ञों, उत्तम सत्संग और मैत्री भावों का (यन्ता) बांधने वाला है।

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) तेजस्वी, ज्ञानी, अग्रणी पुरुष (नः) हमें (शंतमा) अति अधिक शान्ति देने वाले (शर्माणि) गृह, शरण, सुख आदि (वीतये) उपभोग और रक्षा के लिये (यच्छतु) प्रदान करे। यतः जिनसे (नः) हमें (दिवि) आकाश में और (अप्सु) अन्तरिक्ष में विद्यमान (वसुः) जीवन वसाने योग्य प्रकाश, वृष्टि, वायु आदि और (क्षितिभ्यः) भूमियों और उनमें रहने वाली प्रजाओं से प्राप्त होने वाला (वसु) रत्न, सुवर्ण, इन्धन, अन्न आदि खूब (प्रुष्ण-वत्) स्नेहन, सेचन और पुष्टि करने वाले प्रकाश, जल और अन्न से समृद्ध ऐश्वर्य (आ) सब प्रकार से प्राप्त हों। (२) इसी प्रकार परमेश्वर हमें शान्ति कर (शर्म) गृह रूप देह दे, जिन से (दिवि) कामना और (अप्सु) प्राणों के बल पर और (क्षितिभ्यः) पृथ्वी आदि पञ्चभूतों से (प्रुष्णवत्) इच्छा पूरक, स्नेहयुक्त और पोषक (वसु) जीवनोपयोगी बल प्राप्त हो।

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥

भा०—(वस्वीभिः) ऐश्वर्य या तेज से युक्त (धीतिभिः) दीप्तियों, किरणों से (दीदिवांसं यथा ऋक्वाणः अग्निम् इन्धते) प्रकाशमान अग्नि को जिस प्रकार वेदज्ञ विद्वान् प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार (ऋक्वाणः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् लोग (अस्य) इस अग्रणी नायक की अपनी निजी (वस्वीभिः) वसने वाली ऐश्वर्य युक्त प्रजाओं, सेनाओं तथा (धीतिभिः) धारण पोषण करने वाली समृद्धियों वाणियों और नीतियों में से (दीदि-

वांसं) राष्ट्र की रक्षा करने वाले, (अपूर्व्यं) अपूर्व, गुणों और कार्यों के करने में कुशल, (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी, (विशाम् विश्पतिम्) प्रजाओं के बीच रहकर प्रजाओं का पालन करने हारे, (होतारं) सबको सब प्रकार के सुखों के देने, राष्ट्र को अपने अधीन रखने और शत्रु के ललकारने वाले वीर पुरुष को (इन्धते) प्रकाशित करें। और अधिक उज्ज्वल और वीर प्रतापी बनावें। (२) परमेश्वर पक्ष में—(वस्वीभिः धीतिभिः) संसार को बसाने और उसमें व्यापने वाली धारक शक्तियों, देदीप्यमान अद्वितीय एवं जीवों के स्वामी, सर्व सुखदाता तेजोमय प्रभु को स्तुति कर्त्ता-जन प्रकाशित करते हैं, उसके गुणों को प्रकट करते हैं। (३) विद्वान् (वस्वीभिः धीतिभिः) ज्ञान से युक्त वाणियों से प्रकाशित है उस ज्ञानदाता (ऋक्काणः) वेदाभ्यासी जन, अन्ते वासीजनों के पालक आचार्य को प्रकाशित करते हैं।

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! एवं ज्ञानवन् विद्वन् ! तू (मरुद् वृधः) स्वयं भी विद्वान् मनुष्यों, व्यापारी जनों और प्रजाओं और शत्रु को मारने वाले वीर सैनिकों के बल पर बढ़ने वाला और (सहस्र सातमः) सहस्रों ऐश्वर्यों को देने और स्वयं उपभोग करने में सर्वश्रेष्ठ और (उक्थेषु) प्रशंसा योग्य कार्यों और पदों पर भी (देवहूतमः) विद्वानों द्वारा अति प्रशंसित, एवं कामनावान् प्रिय पुरुषों द्वारा प्रेम से बुलाये जाने योग्य, विद्वानों को अपनी शरण में लेने हारा है। ऐसा तू (नः) हमें (ब्रह्मन्) बड़े भारी धनैश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (अविषः) व्याप, एवं रक्षा कर और (नः) हम (मरुद्-वृधः) सामान्य व्यापारी प्रजाओं के बल पर बढ़ने वाले प्रजाजनों को भी (शं) शान्ति सुख (शोच) प्रदान कर। (२) विद्वान् जन (उक्थेषु) सूक्तों में (देवहूतमः)

विद्याभिलाषी जनों का उत्तम उपदेष्टा है (वह मरुद्-वृधः) शिष्य गणों से बढ़ने वाला, सहस्रों ज्ञानों का दाता होकर ब्रह्मज्ञान के निमित्त हमें ज्ञानवान् करे और हमें शान्ति प्रदान करे।

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! नायक ! परमेश्वर ! (नः) हमें तू (सहस्रवत्) हज़ारों की संख्या वाले, (तोकवत्) उत्तम पुत्र पौत्रादि से युक्त, (पुष्टिमत्) धन धान्य, पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न, (द्युमत्) दीप्तियुक्त, ज्ञानयुक्त, (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य, बल से युक्त (वर्षिष्ठम्) खूब बढ़े हुए (अनुपक्षितम्) बहुत अधिक व्यय करने पर भी न क्षीण होने वाले, अक्षय ऐश्वर्य का (नः) हमें (रास्व) प्रदान कर।

[१४]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६ पङ्क्तिः ॥

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥ १ ॥

भा०—(होता) विद्वानों को आदर पूर्वक बुलाने, विद्यार्थियों को सब विद्याओं का दान करने हारा, (मन्द्रः) स्वयं कमनीय गुणों से युक्त, अन्यों को प्रसन्न करने हारा (सत्यः) सत्य धर्माचरण से युक्त, सज्जनों का हितकारी, (यज्वा) दानशील, सत्संगी एवं मित्रभावसे रहने हारा, (कवितमः) बहुत दूरदर्शी, (सः) वह (वेधाः) सर्व कार्य करने में कुशल, मेधावी होकर (विदथानि) यज्ञों, लाभ करने योग्य विज्ञानों को (आ अस्थात्) अभ्यास करे । वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी नायक (विद्युत् रथः) विद्युत् से चलने वाले रथ का स्वामी, वा विद्युत् के समान रमणीय-

स्वरूप, कान्तिमान (सहसस्पुत्रः) बलवान् पुरुष का पुत्र (शोचिष्केशः) तेजों को सिंह के वालों के समान धारण करने वाला होकर (पृथिव्यां) अन्तरिक्ष में सूर्य के समान पृथिवी पर (पाजः) बल, ऐश्वर्य (अश्रेत्) धारण करे। (२) परमेश्वर भी (वेधाः) समस्त जगत् का कर्त्ता, सर्व-सुखैश्वर्य का दाता, अनन्दघन, सत्य, सर्व मित्र, सबसे बड़ा कवि है। वह विद्युत् के समान तेजोमय, रसमय, बल का पुतला, ज्ञानी, दीप्तिमय होकर (पृथिव्यां) विस्तृत महती प्रकृति में अपना बल आधान करता है।

अ यामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२॥

भा०—हे (ऋतवः) सत्यज्ञान वेद और धर्म-व्यवस्था के जानने हारे! मैं (ते अयामि) तेरे समीप तेरी शरण आता हूं। और (ते) तेरे सत्कार के लिये हे (सहस्वः) भीतरी और बाह्य शत्रुओं को पराजित करने वाले, 'सहः' शक्ति के स्वामिन्! मैं (चेतते ते) स्वयं ज्ञानवान् और अन्यों को सद्विद्या और सन्मार्ग का ज्ञान कराने हारे तेरे आदर के लिये (नमः उक्तिम् अयामि) आदरसूचक 'नमः' ऐसा वचन प्रस्तुत करता हूं। (जुषस्व) तू उसको प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। तू स्वयं (विद्वान्) विद्यावान् होकर (विदुषः) अन्य विद्वानों को भी (आ वक्षि) धारण करता वा उनके अभिमुख ज्ञान का प्रवचन करता है। हे (यजत्र) पूजनीय! हे विद्या के देने हारे! हे दानशील! तू (ऊतये) ज्ञान प्रदान करने के लिये (मध्ये) हमारे बीच में (बर्हिः) वृद्धियुक्त उत्तम आसन पर (आ निषत्सि) सबके समक्ष आदरपूर्वक विराज। (२) इसी प्रकार राजा भी (ऊतये) रक्षा के लिये (बर्हिः) बृहत् राष्ट्र के प्रजाजन पर सब के बीच में विराजे (३) परमात्मा को हम नमस्कार करें। वह भी मूल प्रधान प्रकृति 'ऋत' का स्वामी, ज्ञानी, सर्वशक्तिमान् है। वह सब के बीच में व्यापक होकर विराजता और रक्षा करता है।

द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषसा) दिन रात्रि की दोनों सन्ध्याएं (वातस्य पथ्याभिः) वायु के मार्गों अर्थात् आकाश भागों से (वाजयन्ती) प्रकाश करती हुईं (अच्छ द्रवताम्) सब के सन्मुख आती रहती हैं वे (दुरोणे) उच्च आकाश के बीच में (बन्धुरा इव) एक जुए में लगे दो काष्ठों के समान परस्पर सम्बद्ध, या परस्पर बन्धुता से युक्त होकर (आ तस्थतुः) विराजती हैं । उस समय विद्वान् लोग (हविर्भिः पूर्व्यं अञ्जन्ति) हविष्य चरुओं द्वारा पूर्वसाधित अग्नि के समान ही (हविर्भिः ज्ञानदायक वचनों से पूर्वतन चिरंतन प्रभु को ही (अञ्जन्ति) प्रकाशित करते हैं । उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् पुरुष ! (उषसा) उत्तम कान्ति से युक्त वा तुझे या परस्पर की कामना करते हुए परस्पर प्रेम से युक्त स्त्री और पुरुष दोनों वर्ग (ते वाजयन्ती) तेरे लिये अन्न प्रदान करते हुए वा तेरे ज्ञान की कामना करते हुए (वातस्य) वायु के समान जीवन देने वाले वा बलवान् तुझ पुरुष के पास (पथ्याभिः) उत्तम मार्गों से (अच्छ द्रवताम्) तेरे सन्मुख आवें और वे दोनों (दुरोणे) गृह में (बन्धुरा इव) रथ के युग में जुड़े ईषा नाम दो बांसों के समान परस्पर बंधकर (आतस्थतुः) रहें । और सभी वे लोग (सीम्) सब प्रकार से (पूर्व्यम्) विद्याओं से पूर्ण विद्वान् पुरुष को (हविर्भिः) उत्तम अन्नों से (अञ्जन्ति) आदरपूर्वक बढ़ावें । (२) शिल्पपक्ष में विद्युत की दोनों प्रकार की शक्तियां दाहकारी तापवान् होने से 'उपस्' हैं । वे वेग पैदा करती हुई अतिगमनशील विद्युत् को गुजरने देने के मार्ग अर्थात् 'तार' आदि से एक दूसरे के प्रति दौड़ती हैं । वे दोनों (दुरोणे-द्रोणे) एक घर, कोष्ठ या पात्र में ही सम्बद्ध रहती हैं । (हविर्भिः) उत्तम उपायों से इस प्रकार विद्वान् लोग (पूर्व्य) पूर्व जनों से ज्ञात या पूर्व से

ही विद्यमान् उस विद्युत् तत्व को प्रकट कर लेते हैं। (३) नायक सेनापति के पक्ष में—(उषसा) शत्रु को भस्म कर देने वाली दो सेनाएं संग्राम, बल या ऐश्वर्य उत्पन्न करती हुईं वायु के वेगों से आगे बढ़ें। वे घर में दम्पती के समान, रथ के युग में दो काष्ठों के समान (दुरोणे दुर्-रोहणे) दुराक्रम्य, सर्वोच्च प्रधान नायक के आधीन ही सम्बद्ध होकर रहें। जब कि सब लोग शक्ति से पूर्ण उस प्रधान नायक को (हविर्भिः) प्रदान करने योग्य उत्तम पदों या हथियारों से (अञ्जन्ति, म्रक्षन्ति, सिञ्चन्ति) अभिषेक कर दें।

मि॒त्रश्च॒ तुभ्यं॒ वरु॑णः सह॒स्वोऽग्ने॒ विश्वे॑ म॒रुतः॑ सु॒म्नम॑र्चन् ।
यच्छो॒चिषा॑ सहसस्पुत्र॒ तिष्ठा॑ अ॒भि क्षि॒तीः प्र॒थय॒न्त्सूर्यो॒ नॄन् ॥४॥

भा०—(अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी नायक! हे (सहस्वः) शक्तिशालिन् (तुभ्यम्) तेरे (सुम्नम्) उत्तम ज्ञान और स्तम्भन बल की (मित्रः च वरुणः) स्नेही मित्रजन और श्रेष्ठजन या तुझे वरण करने वाले जन और (मरुतः) वायु के समान बलवान् सैनिकजन और प्रजाजन भी (अर्चन्) अर्चना करते हैं, उसका आदर करते हैं। (यत्) क्योंकि हे (सहसः पुत्र) बल के पुत्र! बल के अवतार वा (सहसः) शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य के (पुत्र) बहुत से पुरुषों की रक्षा करने हारे! तू (शोचिषा) अपने तेज से (सूर्यः) सूर्य के समान, उत्तम बल-वान् उत्तम स्वामी और प्रेरक वा आज्ञापक होकर अपने (नॄन्) नायक पुरुषों को (प्रथयन्) दूर २ तक किरणों के समान फैलाता हुआ (क्षितीः) नाना राष्ट्रों को भी (अभि तिष्ठाः) विजय कर इनको अपने अधीन कर। (२) विद्वान् पुरुष के ज्ञान को मित्रजन, उत्तम जन और अन्य विद्वान् जन भी सराहें। वह ज्ञान-दीप्ति से (क्षितीः) प्रजाओं को प्राप्त होकर (नॄन्) मनुष्यों के ज्ञान का विस्तार करे।

व॒यं ते॑ अ॒द्य र॑रि॒मा हि काम॑मुत्ता॒नह॑स्ता॒ नम॑सोप॒सद्य॑ ।
यजि॑ष्ठेन॒ मन॑सा यक्षि दे॒वानस्रे॑धता॒ मन्म॑ना॒ विप्रो॑ अग्ने ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! (अद्य) आज (वयम्) हम (उत्तान-हस्ताः) हाथों को ऊपर की ओर बढ़ाये हुए (नमसा) नमस्कार आदर भाव और अन्नादि सहित (उपसद्य) तेरे समीप आकर, शान्ति से आचार्य के समीप शिष्य के समान बैठकर (ते कामम्) तेरे अभिलाषा योग्य पदार्थ को (ररिम) प्रदान करें । और तू (विप्रः) विविध विद्याओं, ऐश्वर्यों और बलों से पूर्ण है । तू (अस्रेधता) कभी न क्षीण होने वाले और दूसरे के प्रति हिंसा के भाव से रहित (मन्मना) ज्ञान और विचार से (यजिष्ठन) दान भाव और मैत्रीभाव से युक्त (मनसा) चित्त से (देवान्) अत्यन्त अधिक विद्या और ऐश्वर्य की कामना करने वालों को (यक्षि) विद्यादि दान कर, उनसे सत्संग कर, स्नेह कर और (देवान् यक्षि) विद्वानों की पूजा कर । सेनापति पक्ष में—देव = विजिगीषु सैनिकगण अन्य राजगण ।

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) बल के पवित्र करने हारे, हे शक्ति को उत्तम उपयोग में लाकर उसको पवित्र पुण्य कीर्त्ति युक्त करने हारे ! वा बल के द्वारा सब विजित ऐश्वर्य को पवित्र अर्थात् साधिकार उपयोग योग्य बना लेने हारे ! वीर एवं विद्वान् एवं शक्तिशालिन् ! (देवस्य) सूर्य के समान सर्व प्रकाशक, सर्व सुखों के दाता परमेश्वर और उत्तम विजिगीषु राजा के (वाजाः) समस्त ज्ञान और ऐश्वर्य और (पूर्वीः) पूर्ण एवं सनातन से चली आई (ऊतयः) समस्त रक्षाएं भी (त्वत्) तुझ से ही (वि यन्ति) विविध प्रकार हमें प्राप्त होती हैं । (त्वं) तू ही हमें (सहस्रिणं) सहस्रों सुख, ऐश्वर्यों से युक्त (रयिं) धन और (अद्रोघेण) द्रोहरहित, प्रेमयुक्त (वचसा) वचन या वाणी से वेद के द्वारा (सत्यम्) सत्य ज्ञान, सत्य न्याय (देहि) प्रदान कर । (२) परमेश्वर पक्षमें—(देवस्य)

देव अर्थात् कामनाशील जीव के अभीष्ट सभी ऐश्वर्य और कामनाएं हे प्रभो! तुझसे ही विविध प्रकार से प्राप्त होती हैं। तू ही प्रेमयुक्त वेद वाणी से सत्य और असंख्य धन देता है।

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥१४॥

भा०—हे (दक्ष) बलवन्! अतिचतुर! विद्वन्! हे (दक्ष) शत्रुओं को भस्म करने हारे अग्नि के समान तेजस्विन्! प्रतापशालिन्! हे (कविक्रतो) क्रान्तदर्शी, मतिमान् पुरुषों के ज्ञान के समान ज्ञानों और कर्मों वाले! हे (देव) दानशील! हे कमनीय! हे प्रकाशक! (अध्वरे) अहिंसारहित राष्ट्रपालन आदि यज्ञ रूप कार्य में (यानि) जो भी (इमा) ये नाना कार्य हम (अकर्म) करते हैं वे सब (तुभ्यम्) तेरे लिये ही करते हैं। तू (विश्वस्य सुरथस्य) समस्त उत्तम रथादि अश्व पदाति अंगों से युक्त सैन्य का अपने को स्वामी जान। हे (अमृत) न मरने हारे! दीर्घायु! आयुष्मन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (तत् सर्वम्) वह समस्त ऐश्वर्य (स्वद) भोग कर। (२) ईश्वर और आत्मा के पक्षमें—हे देव प्रभो! यज्ञ में हमारे सब कार्य तेरे ही निमित्त हैं। (सुरथस्य विश्वस्य) उत्तम रमण योग्य विश्व जगत् को जानता। तू (इह) इस जगत् में स्वयं अमृत, अविनाशी होकर सबको (स्वद) खा जाता है अर्थात् प्रलय काल में सब विश्व को कालाग्नि रूप में भस्म कर देता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[१५]

उत्कील कात्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ३, ७ भुरिक् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू स्वयं (पृथुना) अति विस्तृत (पाजसा) बल और ज्ञान से (शोशुचानः) अग्नि के समान देदीप्यमान होता हुआ (अमीवाः) रोगों के समान (रक्षसः) विघ्नकारी (द्विषः) द्वेष युक्त, प्रेम से वर्त्ताव न करने वाले शत्रु पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित कर। (बृहतः) महान् (सुशर्मणः) उत्तम घरों के स्वामी, दुष्टों के नाशक एवं सुख साधनों से युक्त (सुहवस्य) उत्तम नाम और ख्याति वाले (अग्नेः) ज्ञानवन् अग्रणी के (शर्मणि) गृह या शरण में और (प्रणीतौ) उत्तम नीति या शासन में (स्याम) रहूं। (२) सब सुखों का धाम परमेश्वर है। उसी का बड़ा भारी बल और ज्ञान है। मैं उसके दिये सुख, शरण और उसके दिखाये उत्तम मार्ग में चलूं।

त्वं नो॑ अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ॒ त्वं सूर॒ उदि॑ते बोधि गो॒पाः।
जन्मे॑व॒ नित्यं॒ तन॑यं जुषस्व॒ स्तोमं॑ मे अग्ने त॒न्वा॑ सुजात ॥२॥

भा०—(अस्याः उषसः) उस उषा के (व्युष्टौ) विशेष कान्ति से चमकने पर और (सूरे उदिते) सूर्य के उदय हो जाने पर (त्वं) तू ही (नः गोपाः) हमारा रक्षक होकर (बोधि) स्वयं जाग, ज्ञानवान् हो और हमें भी ज्ञानवान् कर और जगा। (जन्म इव तनयं) नवीन जन्म अर्थात् देह धारण करना ही जिस प्रकार नव-जात बच्चे को (तन्वा जुषते) नये देह से युक्त करता है उसी प्रकार हे (सु-जात) उत्तम जात अर्थात् बालक के समान शुभ गुणों और कर्मों से प्रख्यात (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी विद्वन् ! तू भी (तन्वा) अपने शरीर से या विस्तृत राष्ट्र से (नित्यं) सदा से विद्यमान (मे स्तोमं) मुझ प्रजाजन के उत्तम प्रशंसनीय समूह को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर। अथवा—(जन्म इव तनयं) जन्म देने वाला पिता जिस प्रकार पुत्र को स्वीकार करता है उसी प्रकार तू भी पिता के समान मुझ प्रजा के संघों को (स्तोमं) उत्तम वचनों या वीर्य-युक्त दलों, अधिकारों और ऐश्वर्य का सेवन कर, प्राप्त कर।

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान उत्तम ज्ञान-प्रकाश और तेज से युक्त विद्वन्! राजन्! हे (वृषभ) मेघ के समान प्रजाओं पर ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने हारे! हे बलवन्! शक्तिमन्! हे उत्तम प्रबन्धकारिन्! (त्वं) तू (नृचक्षाः) मनुष्यों को उत्तम ज्ञानोपदेश करने और उनके सत् और असत् कर्मों को देखने वाला होकर (कृष्णासु अरुषः) अन्धकार से युक्त रात्रियों में या उनके उपरान्त अग्नि या सूर्य के समान (अरुषः) देदीप्यमान होकर स्वयं भी (कृष्णासु) युद्धादि के कारण कर्षण द्वारा पीड़ित हुई प्रजाओं पर (अरुषः) रोष रहित, दयाशील होकर (पूर्वीः) पूर्व के राजाओं की बसाई प्रजाओं को या (पूर्वीः) धन धान्य से पूर्ण प्रजाओं को (वि भाहि) प्रकाशित कर। (२) इसी प्रकार हे विद्वन्! तू (कृष्णासु) कृष्ण अर्थात् हीन पापादि कर्मों से कलुषित अज्ञानान्धआर पूर्ण प्रजाओं में स्वयं ज्ञान से देदीप्यमान होकर (पूर्वीः) पूर्व पुरुष या पूर्ण पुरुष परमेश्वर की प्रकाशित वाणियों को (वि भाहि) विशेष एवं विविध प्रकारों से प्रकाशित कर।

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा सञ्जिगीवान्।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् विद्वन्! राजन्! हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! विवेकशील! हे (सुप्रणीते) शुभ और उत्कृष्ट नीति वाले! तू (अषाळ्हः) अन्यों से न पराजित होने वाला, अन्यों के औद्धत्य, अविनय आदि को न सहन करने हारा, (वृषभः) मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजाओं पर सुख समृद्धियों की वर्षा करने हारा या बैल के समान हृष्ट, पुष्ट बलवान् (विश्वा सौभगा) समस्त ऐश्वर्यों और (विश्वाः पुरः) शत्रु के समस्त गढ़ों को

(संजिगीवान्) अच्छी प्रकार विजय करने हारा (प्रथमस्य) सबसे मुख्य, (पायोः) सबके रक्षक, (बृहतः) महान् (यज्ञस्य) परस्पर मैत्रीभाव और संगति से बने प्रजापालन या संग्राम आदि का (नेता) नायक होकर (दिदीहि) प्रकाशित हो। (२) अध्यात्म में—(पुरः) देहों पर विजय पाता हुआ आत्मा। (३) गृहस्थ या विद्वत् पक्ष में—(प्रथमस्य पायोः) सबसे उत्तम रक्षा करने योग्य ब्रह्मचर्य पालक के अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ का कर्त्ता।

अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके॥ ५॥

भा०—(जरितः) सत्य गुणों और विद्याओं के उपदेश करने हारे विद्वन्! हे शत्रुओं को जीर्ण शीर्ण कर देने हारे प्रतापशालिन्! तू (सुमेधाः) उत्तम प्रज्ञावान् (दीध्यानः) अग्नियों और सूर्य के समान तेजस्वी होकर (देवान्) विद्वानों, दिव्य गुणों और धन और विद्या के अभिलाषी पुरुषों को (अच्छिद्रा) त्रुटिरहित, अविच्छिन्न, अटूट (शर्म) गृह और (पुरूणि) बहुत से ऐश्वर्य (आवक्षि) प्राप्त करा। (रथः न) जिस प्रकार रथ (सस्निः अभि वाजं वक्षि) अच्छी प्रकार वश किया हुआ वीर को युद्ध में पहुंचा देता है और जिस प्रकार रथ अच्छी प्रकार दृढ़ होकर (वाजं) अन्न को ढो लाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन्! नायक! तू भी (सस्निः) अपनी इन्द्रियों और मन को अच्छी प्रकार रोक दमन कर, जितेन्द्रिय होकर (वाजं वक्षि) ज्ञानैश्वर्य को धारण कर और (वक्षि) उपदेश कर। हे वीर तू (सस्निः) ऐश्वर्य को उत्तम रीति से प्राप्त करने में समर्थ होकर (देवान् वाजं वक्षि) विजिगीषु सैन्य दलों को युद्ध में लेजा और (नः) हमें (त्वं) तू (सुमेके) उत्तम रूपवान् या उत्तम उपदेश करने वाले दानशील, मेघों के समान ज्ञान अन्न या सुखों को सेचन व वर्षण करने वाले (रोदसी) उत्तम उपदेश देने, मर्यादा में

सन्तानों और परस्पर को रोक रखने, दुष्टों को रुलाने वाले स्त्री पुरुष, पति पत्नी, माता आदि प्राप्त करा। हे वीर तू (सुमेके रोदसी) मेघों के समान उत्तम शस्त्रवर्षी शत्रुओं को रुलाने और रोक रखने वाली दो सेनाओं को दायें बायें रखकर (वक्षि) धारण कर। (२) परमेश्वर पक्षमें—(सुमेधाः) सबका सुख और उत्तम ज्ञान शक्ति, रचना शक्तियें धारण करने हारा (सस्निः) शुद्धस्वरूप (रथः) रसस्वरूप है। वह हमारे लिये उत्तम रसवर्धक आकाश, भूमि को धारण करता है।

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सु दोघे।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥६॥

भा०—हे (वृषभ) बलशालिन्! हे सर्वश्रेष्ठ! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! (त्वं) तू (नः) हमें (प्र पीपय) अच्छी प्रकार बढ़ा। (नः वाजान् प्र पीपय) हमारे ऐश्वर्यों और बलों की वृद्धि कर (नः सुदोघे रोदसी प्र पीपय) जिस प्रकार सूर्य उत्तम जल वृष्टि और अन्न को दोहने या देने वाले भूमि और आकाश दोनों को समृद्ध करता है उसी प्रकार तू हमारे उत्तम उपदेश करने, हमें कुपथ से रोकने और दुष्टों को रुलाने वाले उत्तम ज्ञानों और अन्नों से हमें पूर्ण करने वाले माता पिताओं को (प्र पीपय) बढ़ा, पुष्ट कर। हे (देव) विजिगीषो! हे विद्वन्! (देवेभिः सुरुचा रुचानः) प्रकाशयुक्त किरणों से उत्तम कान्ति से प्रकाशमान सूर्य के समान तू भी (देवेभिः) विद्याभिलाषी शिष्यों और विजयाभिलाषी वीरों से और उत्तम रुचि और कान्ति से (रुचानः) प्रकाशित और सर्वप्रिय होता हुआ हमें (वाजान् जिन्व) ज्ञानों, ऐश्वर्यों का प्रदान कर और (वाजान् जिन्व) संग्रामों का विजय कर (नः) हमारे बीच (मर्त्तस्य) किसी मनुष्य को (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (मा परि स्थात्) न आ घेरे।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥१५॥

भा०—व्याख्या देखो (म०३।सू०७।म०११) इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१६]

उत्कीलः कात्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ भुरिगनुष्टुप् । २, ६ निचृत् पंक्तिः । ३ निचृद्बृहती । ४ भुरिग् बृहती ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

अयम॒ग्निः सु॒वीर्य॒स्येशे॑ म॒हः सौभ॑गस्य ।
रा॒य ई॑शे स्वप॒त्यस्य॒ गोम॑त॒ ईशे॑ वृत्र॒हथा॑नाम् ॥ १ ॥

भा०—(अयम्) यह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष और अग्रणी नायक, राजा (सुवीर्यस्य) उत्तम वीर्य, बल का (ईशे) स्वामी हो, (महः सौभगस्य) बड़े भारी उत्तम कल्याणजनक, सुखप्रद ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो। वह (सु-अपत्यस्य) उत्तम सन्तानों और (गोमतः) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न (रायः) धनैश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो और वह (वृत्र-हथानां) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के हनन, नाश करने वाले वीर पुरुषों का भी (ईशे) स्वामी हो। (२) परमेश्वर उत्तम बल, बड़े सौभाग्य, आवरक अज्ञानों के नाशक ज्ञानों का और (गोमतः रायः) वेद वाणी से युक्त पारलौकिक विभूति का भी स्वामी है।

इ॒मं नरो॑ मरुतः सश्चता॒ वृधं॒ यस्मि॒न्रायः॒ शेवृ॑धासः ।
अ॒भि ये सन्ति॒ पृत॑नासु दू॒ढ्यो॑ वि॒श्वाहा॒ शत्रु॑माद॒भुः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (पृतनासु) सेनाओं और संग्रामों में (दूढ्यः) दूसरे का बुरा सोचने वाले, एवं दुष्ट बुद्धि से युक्त शत्रुओं को (अभि सन्ति) पराजित करते हैं और जो (विश्वाहा) सदा, सब दिनों, अपने (शत्रुम्) नाशकारी शत्रु को (आदभुः) अच्छी प्रकार नाश करें ऐसे हे (नरः) वीर नायक लोगो ! हे (मरुतः) वायु के समान बलवान्, वेग से आक्रमण करने और बल से शत्रु को मारने और उखाड़ देने हारो ! आप लोग (इमम्) इस (वृधम्) सबको बढ़ाने हारे प्रधान पुरुष को

(सश्चत) प्राप्त होओ, (यस्मिन्) जिसके अधीन रहकर आप लोग (रायः) धन के (शेवृधासः) सुखों को बढ़ाने हारे होओ, वा (रायः शेवृधासः) जिसके अधीन रहकर धनैश्वर्य भी सुखों को पुष्टों को करने वाले हों।

स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे राजन्! हे (मीढ्वः) सुखों के सेचक! बढ़ाने हारे! बलवन्! (तुविद्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों और तेजों, अन्नों के स्वामिन्! (त्वं) तू (नः) हमें (रायः) धन के द्वारा या धन को प्राप्त करने के लिये (शिशीहि) तीक्ष्ण अर्थात् तेजस्वि कर। और (सुवीर्यस्य) उत्तम, शोभाजनक वीर्य से युक्त, (वर्षिष्ठस्य) अति प्रचुर मात्रा में विद्यमान, (प्रजावतः) प्रजाओं से युक्त, (अनमीवस्य) रोगादि रहित और (शुष्मिणः) बल से युक्त अर्थात् प्रजा और बल वीर्य के उत्पादक अन्न के द्वारा या अन्न को प्राप्त करने के लिये (नः शिशीहि) हमें तीक्ष्ण, तेजस्वी, अजेय कर। अथवा (नः) हमारे बीच में जो (सुवीर्यस्य वर्षिष्ठस्य प्रजावतः अनमीवस्य शुष्मिणः रायः शिशीहि) वीर्यवान्, दीर्घायु, प्रजावान्, रोगरहित, बलवान् हो उसके धनों को बढ़ा।

चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम्॥ ४॥

भा०—(यः) जो (चक्रिः) स्वयं कार्यों को करने में कुशल होकर (विश्वा भुवना अभि यतते) समस्त लोकों को लक्ष्य करके उनके उपकार करने में बलवान् रहता है, जो (सासहिः) सहनशील पराक्रमी होकर (देवेषु) ऐश्वर्य की कामना करने और विद्यादि गुणों में चमकने वाले विद्वानों के बीच (चक्रिः) कार्यकुशल होकर उनकी (दुवः) सेवा

शुश्रूषा (आ यतते) आदरपूर्वक यथायोग्य करता है। जो (देवेषु) दानशील, विजयेच्छुक पुरुषों के बीच भी (सुवीर्ये) उत्तम शोभाजनक वीर्य, बल को प्राप्त करने (उत्) और (नृणाम्) मनुष्यों या नायक पुरुषों के बीच (शंसे) उत्तम ख्याति लाभ करने के निमित्त (आ यतते) पूर्व यत्न करता है वही (अग्निः) अग्रणी, नायक, तेजस्वी प्रतापी है। (२) परमात्मा के पक्षमें—परमेश्वर (भुवना विश्वा चक्रिः) सब लोकों के बनाने हारा है। वह (देवेषु दुवः आ चक्रिः) दिव्य तेजस्वी सूर्य, अग्नि, विद्युदादि पदार्थों में ताप, शक्ति, प्रदान करता है। वह (देवेषु) विद्वानों में उत्तम बल देने और मनुष्यों के (शंसे) उपदेश करने में (आ यतते) सब प्रकार से यत्न करता है। अर्थात् वही बल और ज्ञान देता है।

मा नो॑ अग्नेऽम॒तये॒ मा वी॒रता॑यै रीरधः।
मा गोत॑यै सहसस्पुत्र॒ मा नि॒देऽप॒ द्वेषां॒स्या कृ॑धि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! तू हमें (अमतये) बुद्धिहीनता के कारण (मा रीरधः) मत नाश होने दे। (अवीरतायै मा रीरधः) वीरता के न होने के कारण मत नष्ट होने दे। (अगोतायै) भूमि और इन्द्रियों में बल न होने के कारण (मा रीरधः) मत विनष्ट होने दें। हे (सहसस्पुत्र) बल पराक्रम के पालक! तू (निदे) निंदा, कलह के कारण (मा रीरधः) मत विनष्ट होने दे। अर्थात् प्रजा के नायक नेता विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष प्रजा का नाश मूर्खता, भीरुता, इन्द्रिय-दौर्बल्य या भूमिरहितता और पारस्परिक निन्दा के कारण न करें। प्रत्युत प्रजा में से अज्ञान, दुर्बुद्धि, भीरुता, इन्द्रिय-दौर्बल्य और निराश्रयता तथा विद्या और वाणी के अभाव, परस्पर निन्दा, कलह आदि को दूर करें। दुष्ट राजा प्रजा को मूर्ख, भीरु, दुर्बल, विद्या और भूमि सम्पत्ति से हीन रखता और परस्पर निन्दा द्वारा लड़ा लड़ा कर नाश किया करता है। और स्वार्थ साधा करता है। हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष! तू (नः) हमारे बीच में से

(द्वेषांसि) द्वेषों को (अपाकृधि) दूर कर *जिसे हम प्रजा गण द्वेषरहित और प्रेमयुक्त होकर बढ़ें । (२) परमेश्वर हम में से ये बातें दूर करे ।

शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक राजन् विद्वन् ! तू (अध्वरं) हिंसा रहित प्रजा-पालन आदि उत्तम व्यवहार के पालन के कार्य में (प्रजावतः) प्रजा से से युक्त (बृहतः) बड़े (वाजस्य) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने में (शग्धि) समर्थ हो और उसके द्वारा स्वयं (शग्धि) शक्तिशाली बन । हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (तुविद्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (मयोभुना) सुख को उत्पन्न करने वाले (यशस्वता) कीर्त्ति और अन्न से सम्पन्न (राया) ऐश्वर्य से (सं सृज) हमें समृद्ध कर । इति षोडशो वर्गः ॥

[१७]

कतो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । ३ निचृत् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (यजथाय) यज्ञ के लिये (समिध्यमानः) प्रदीप्त किया हुआ अग्नि (प्रथमा धर्मा अनु) अपने विस्तृत करने वाले या प्रसिद्ध धर्मों के अनुसार (अक्तुभिः) रात्रियों द्वारा या (अक्तुभिः) अन्य को प्रकट करने वाले साधन घृत आदि या रश्मियों से अच्छी प्रकार चमकाया या सींचा जाता है और वह (विश्ववारः) सब से वरण करने योग्य

* उत्कीलः कात्य इति द० । समिध्यमानः पञ्च कतो वैश्वामित्रः इति सर्वा०० ॥

सब कष्टों का वारक (शोचिष्केशः) दीप्तिमय केशों या किरणों से युक्त, (घृत-निर्णिक्) दीप्तिस्वरूप या घृत से अति पवित्र स्वरूपवान्, (पावकः) पवित्रकारक, (सुयज्ञः) उत्तम यज्ञ का साधन होकर (देवान् यजथाय भवति) जो विद्वानों के सत्संग तथा उत्तम गुणों के प्रदान और प्रकाशों को देने के लिये समर्थ होता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानवान्, तेजस्वी, अग्रणी पुरुष भी (शोचिष्केशः) दीप्तियों तेजों को केशों के समान मुख या शिर पर धारण करनेहारा (घृत-निर्णिक्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी स्वरूप से युक्त, (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी और सत्संग से अन्यों का पवित्र निष्पाप करने वाला (सुयज्ञः) सुखपूर्वक सत्संग, मैत्री, सत्कार, मान आदर करने योग्य, एवं उत्तम दानशील (विश्ववारः) सब से वरण करने योग्य (देवान् यजथाय) विद्वान् पुरुषों की परस्पर संगति और प्रेम, मैत्रीभाव उत्पन्न करने के लिये (समिध्यमानः) सब से मिलकर उत्ते-जित प्रकाशित या प्रेरित किया जाकर (प्रथमा धर्मा अनु) कीर्त्ति प्रसिद्ध करने वाले वा प्रख्यात एवं उत्तम या पूर्व से चले आये (धर्मा अनु) धर्मों, नियमों, धार्मिक व्यवस्थाओं या कर्त्तव्यों के अनुकूल (अक्तु-भिः) अभिषेकों द्वारा, घृतसेचनों द्वारा अग्नि के समान (सम् अज्यते) अच्छी प्रकार अभिषेक किया जावे । (२) परमेश्वर (प्रथमा धर्मा अनु समिध्यमानः) सर्वोत्तम धर्मों के धारण करने योग्य कर्मों के अनुसार उत्तम रीति से प्रकाशित किया जाकर (अक्तुभिः) उसके लक्षणों के प्रकाशों वा योगाङ्ग साधनों द्वारा हृदय में प्रदीप्त किया जावे वह सबके वरण करने योग्य, सब कष्टों का वारक तेजोमय तेजों से अन्यों को पालन करने वाला होने से ही 'पावक' है वह उत्तम पूजनीय प्रभु (देवान् यजथाय) उत्तम गुणों को अपने में प्राप्त करने या देवों, विद्वानों के लिये पूजा करने योग्य है ।

यथायंजो होत्रमंग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मंनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान प्रकाश और तेज से युक्त ! विद्वन् ! राजन् ! (यथा) जिस प्रकार से तू (पृथिव्याः) पृथिवी से (होत्रम्) लेने योग्य ज्ञान और अन्नादि ऐश्वर्य के समान (पृथिव्याः) पृथिवी पर बसी विस्तृत प्रजा से ऐश्वर्य (अयजः) आदर-पूर्वक प्राप्त करता है और हे (जातवेदः) ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे तू (चिकित्वान्) स्वयं ज्ञानवान् होकर (यथा) जिस प्रकार (दिवः) सूर्य से प्रकाश के तुल्य, आकाश से वृष्टि के तुल्य (दिवः) ज्ञानी पुरुषों से (होत्रम् अयजः) ग्रहण करने योग्य उत्तम ज्ञान प्राप्त करता है (एवं) उसी प्रकार (अनेन) इस (हविषा) ग्रहण करने योग्य अन्न और ज्ञान से तू (देवान्) इन पदार्थों की कामना करने वाले विद्वान् जनों को (यक्षि) प्रदान कर और तू (मनुष्वत्) मननशील, ज्ञानी पुरुष के तुल्य हो (इमं यज्ञं) इस परस्पर के सत्संग, आदान-प्रतिदान व्यवहार को (अद्य) आज (प्र तिर) उत्तम रीति से विस्तृत कर। (२) परमेश्वर पृथिवी और आकाश या सूर्य को अन्न जल प्रकाश आदि देता है उसी प्रकार इस अन्न से अभिलाषियों की अभिलाषा पूर्ण करता है। वह सदा इस दान व्यवहार की वृष्टि करे।

त्रीण्यायूंषि तव॑ जातवेदस्ति॒स्र आ॒जानी॑रु॒षस॑स्ते अग्ने।
ताभि॑र्दे॒वाना॒मवो॑ यक्षि वि॒द्वानथा॑ भव॒ यज॑मानाय॒ शं योः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे (जातवेदः) उत्तम प्रज्ञा से युक्त (तव) तेरे (त्रीणि) तीन (आयूंषि) आयु हों और तदनुसार (ते) तेरे (उषसः) प्रभात वेला के समान देह के दोषों को दग्ध करने वाली (तिस्रः) तीन (आजानीः) उत्तम या नवीन शक्तियों को उत्पन्न करने वाली, माता के समान उत्पादक दशाएं हों। तू (विद्वान्) इन दशाओं को अच्छी प्रकार जानता हुआ (ताभिः) उन दशाओं से ही (देवानाम्) प्राणों को (अवः) रक्षा और उचित अन्नादि तृप्ति (यक्षि)

प्रदान कर (अथ) और (यजमानाय) सत्संग करने वाले के लिये (शं) शान्तिकारक और (योः) संकटों और संशयों को दूर करने वाला (भव) हो। (२) अथवा—हे विद्वन्! तेरी तीन आयुएं हैं, बाल्य-काल, यौवन काल और वार्धक्य। इनमें तीन ही उषाकाल हैं प्रथम शैशव, द्वितीय कौमार तृतीय नयी बुढ़ौती। तीनों कालों में वह देवों अर्थात् अन्न और जीवन के दाता माता पिताओं, ज्ञानों के दाता गुरुजनों और दीर्घ जीवन के दाता प्राणों का यज्ञ, सत्संग और साधन करे। इन दानशील, सत्संगी जनों को शान्ति सुख प्रदान करे। (३) राष्ट्रनायक पक्ष में–(जातवेदः) हे ऐश्वर्यवन्! तेरी तीन 'आयु' अर्थात् आय के आधन व्यापार, भूमि, संग्राम। इनमें तीन ही उषाएं उन आयों के उत्पादक हैं शत्रु को दाह तापकारी सेना, ऐश्वर्य से कान्तियुक्त प्रजाएं और अन्नादि के लिये कामना करने योग्य कृषक प्रजा। उनसे (अवः) तीन प्रकार के पदार्थ प्रजा के रक्षक हैं अन्न, धन और रक्षा, तू उनका प्राप्त कर। वह करादि देने वाले प्रजाजन के लिये शान्तिकर और दुःखनाशक हों। (४) परमेश्वर का आयु अर्थात् प्राप्तिसाधन, ज्ञान कर्म उपासना तीन 'आजानी उषा' अर्थात् उत्तम ज्ञानप्रद ज्योतिएं मन, बुद्धि, चित्त। इनसे वह विद्वानों को ज्ञान और हर्ष देता आत्मसमर्पक भक्त को शान्ति और दुःख नाश करता है।

अ॒ग्निं सु॒दीतिं॑ सु॒दृशं॑ गृ॒णन्तो॑ नम॒स्याम॒स्त्वेड्यं॑ जातवेदः।
त्वां दू॒तम॑र॒तिं ह॑व्य॒वाहं॑ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! हे प्रभो! हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे और समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! हम लोग (ईड्यम्) प्रशंसायोग्य, स्तुत्य, सबको प्रिय (सुदीतिम्) उत्तम दीप्ति, उत्तम दाता एवं रक्षक, (सुदृशं) उत्तम, शुभ दर्शनीय एवं उत्तम द्रष्टा, (त्वा अग्निम्) तुझ अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् को (नमस्यामः) नमस्कार करते हैं। (देवाः) दिव्य पदार्थ, दिव्य गुण

और देव विद्वान् वीर विजयीगण (त्वाम्) तुझको (दूतम्) सबके सेवा करने योग्य एवं दुष्ट पुरुषों को संतापजनक (हव्य-वाहं) ग्राह्य पदार्थों को धारण करने योग्य और (अमृतस्य) अन्न, ऐश्वर्य दीर्घ जीवन का (नाभिम्) आश्रय (अकृण्वन्) करें। (२) परमेश्वर रक्षक दाता, उत्तम द्रष्टा, सर्वज्ञ सर्वैश्वर्यवान् है। हम स्तुति कर्त्ता उसका नमस्कार करें। सूर्यादि देव, एवं विद्वान्‌जन उसको दुष्टों का संतापकर, सब सुखों का प्रापक, सब स्तुतियों और स्तुत्य गुणों का धारक और अमृत, परमानन्द का आश्रय बतलाते हैं।

यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥१७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! हे अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रनेतः राजन्! (यः) जो पुरुष (त्वत्) तुझसे (होता) ज्ञान और ऐश्वर्य का ग्रहण करने वाला (पूर्वः) पूर्ण ज्ञान और बल से युक्त (यजीयान्) अधिक दानशील, सब का सत्संगी होकर (द्विता) स्व और पर दोनों पक्षों में (सत्ता) उत्तम पद पर विराजने हारा और (स्वधया) अन्न और जल से (शम्भुः) सबको शान्ति देने हारा है। हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! तू (तस्य धर्म अनु) उसके धर्मानुसार या धारण सामर्थ्य के अनुकूल ही (प्र यज) उत्तम ज्ञान और अधिकार प्रदान कर। (अथ) और (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसन या पीड़न से रहित प्रजापालन आदि उत्तम कार्य को (देववीतौ) विद्वानों और वीर पुरुषों की रक्षा में ही (धाः) स्थापित कर। (२) परमेश्वर से बलादि प्राप्त करने वाला यह आत्मा (पूर्वः) पूर्ण ज्ञानी होकर उसी में (यजीयान्) आत्मसमर्पण करता है। वह इह और अमुत्र दोनों में नित्य स्थिर रहकर (स्वधया) अपने ही स्वरूप से शान्ति का आश्रय हो जाता है। परमेश्वर उसके (धर्म अनु) धारणकर्त्ता आत्मा से उत्तम मैत्रीभाव करता है। वह

परमेश्वर हमारे (अध्वरे) अविनाशी आत्मा को (देववीतौ) देव, दिव्य गुणों की प्राप्ति वा प्राणों की कान्ति में स्थापित करे । इति सप्तदशो वर्गः॥

[१८]

कतो वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥

भा०—(सखा इव सख्ये) मित्र के लिये मित्र जिस प्रकार (सुमनाः साधुः) उत्तम चित्त वाला और हितोपदेशादि से मित्र का कार्य साधक होता है और जिस प्रकार (पितरा इव) पुत्र के लिये माता पिता उत्तम चित्त वाले और सन्मार्ग में चलने का उपदेश देकर कार्यसाधक होते हैं, उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू (नः) हमें (उपेतौ) प्राप्त होकर हमारे प्रति (सुमनाः) शुभ चित्त वाला और (साधुः भव) उत्तम कार्यसाधक हो। (हि) और (जनानां) मनुष्यों के बीच जो (क्षितयः) राष्ट्र निवासी लोग (पुरुद्रुहः) बहुतों के साथ द्रोह करने वाले हैं उनको और (प्रतीचीः) प्रतिकूल मार्ग से जाने वाले और (अरातीः) शत्रुओं को (प्रति दहतात्) प्रति समय भस्म कर । अथवा—(क्षितयः हि पुरुद्रुहः) मनुष्य प्रायः पारस्परिक बहुत से द्रोह करने वाले होते हैं अतः (प्रतीचीः दह) विपरीत मार्गगामी दुष्ट शत्रुओं को भस्म कर ।

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः॥२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी नायक ! तेजस्विन् ! हे (तपो) संतापजनक ! तू (अन्तरान्) भीतरी या परस्पर फूटे हुए (अमित्रान्) परस्पर के स्नेहभाव से रहित शत्रुओं को (तप) सन्तप्त कर और

(परस्य) दूसरे (अररुषः) अति अधिक हिंसाकारी शत्रु की (शंसम्) अभिलाषा या ख्याति को (तप) सन्तप्त कर, नष्ट कर। हे (तपो) संतापजनक ! हे तपस्विन् ! हे (वसो) प्रजा के बसाने हारे ! तू स्वयं (चिकितानः) ज्ञानवान् रहता हुआ (अचित्तान्) चित्तरहित, तेरी आज्ञा पर अपने चित्त न देने वालों को भी (तप) पीड़ित कर। और (ते) तेरे (अयासः) विज्ञानयुक्त पुरुष या शीघ्रगामी रथी, अश्वारोही आदि भृत्य, दूत आदि (अजराः) जरावस्था, आयुहानि से रहित, दीर्घायु होकर (वि तिष्ठन्ताम्) विविध दिशाओं में स्थिर रहें और विविध देशों को जावें। सायण के मत में—(तपो = तप-उ) पदपाठ से विरुद्ध है।

इ॒ध्मेना॑ग्न इ॒च्छमा॑नो घृ॒तेन॑ जु॒होमि॑ ह॒व्यं तर॑से॒ बला॑य।
याव॒दीशे॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान इ॒मां धियं॑ शत॒सेया॑य दे॒वीम् ॥ ३ ॥

भा०—(तरसे बलाय) इस संसार से पार उतरने और बल प्राप्त करने के लिये (इच्छमानः) चाहता हुआ जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता (घृतेन इध्मेन) घृत और काष्ठ के साथ (हव्यं जुहोति) आहुतियोग्य पदार्थ अग्नि में देता है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन् ! अग्रणी एवं अग्नि के समान संतापकारक ! प्रतापिन् ! मैं प्रजाजन भी (तरसे) शत्रुओं से पार उतरने का सामर्थ्य प्राप्त करने और (बलाय) बल वृद्धि के लिये (इच्छ-मानः) कामना करता हुआ (घृतेन) उत्तम जल तथा (इध्मेन) काष्ठ, ईंधन के सहित (हव्यं जुहोमि) तुझे भोजन करने योग्य अन्न सामग्री प्रदान करूं अथवा बल और वेग की अभिलाषा वाला पुरुष जिस प्रकार (इध्मेन घृतेन) ईंधन से पकाकर और घी से मिला कर (हव्यं) अन्न जाठराग्नि में देता या खाता है उसी प्रकार मैं प्रजाजन भी बल वृद्धि की कामना करता हुआ काष्ठों और जलों सहित अन्नादि तुझे देता हूं। मैं प्रजाजन (वन्दमानः) पूज्यों की स्तुति और अभिवादन से आदर करता हुआ (शतसेयाय) सौ संख्या से परिमित आयु को पूर्ण करने के लिये

(इमां) इस (देवीम्) सबसे चाहने योग्य (धियं) बुद्धि या धारणा शक्ति को (यावत् ईशे) जितना हो सके, उतना (ब्रह्मणा) बड़े भारी धनैश्वर्य से वेद ज्ञान से सम्पन्न होकर प्राप्त करूं और उसका स्वामी बनूं। अथवा-(शतसेयाय) सैकड़ों ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सबको धारण करने वाली, ऐश्वर्य देने वाली इस भूमि को (ब्रह्मणा) अन्न सहित (यावत् ईशे) यथा सामर्थ्य प्राप्त कर उसका स्वामी बनूं।

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) शत्रु को पराजित करने योग्य बल के सञ्चालक और उत्पादक! तू (स्तुतः) स्तुतियुक्त, प्रशंसित एवं उच्च पद पर प्रस्तुत होकर (शोचिषा) दीप्ति से अग्नि के समान तेजस्वी होकर (शशमानेषु) प्रशंसा करने योग्य और (विश्वामित्रेषु) सबके स्नेही, सबसे मित्रभाव से रहने वाले पुरुषों में (रेवत्) धनैश्वर्य से युक्त राष्ट्र और (बृहत् वयः) बड़ा भारी बल, सैन्य (उत् धेहि) उत्तम रूप में स्थापित कर। राजा सैन्य आदि का भार उत्तम प्रशंसनीय सर्वस्नेही निष्पक्षपात पुरुषों के कन्धे पर रक्खे, जिससे राष्ट्र में (शं) शान्ति और (योः) दुःखों और उपद्रवों का नाश हो। हे (कृत्वः) क्रियाशील, उत्तम कर्मों के करने वाले कर्मण्य पुरुष! इसीलिये हम (ते) तेरे (तन्वं) शरीर को एवं विस्तृत राष्ट्र को (भूरि) बहुत २ (मर्मृज्म) शुद्ध करें, अभिषिक्त करते हैं।

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥५॥१८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! हे (धनानां सनितः) धनों के दान और संविभाग करने हारे! तू (रत्नं कृधि) रमण करने योग्य

उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न कर। (यत् समिद्धः) जब तू अच्छी प्रकार चमकता है तब तू (सः घ इत् भवसि) उसी प्रकार होता है। तू (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् (स्तोतुः) स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् पुरुष के (दुरोणे) घर में (रेवत्) ऐश्वर्य से युक्त (सृप्रा करस्ना) सदा सहायता के लिये आगे बढ़ने वाले बाहुओं को और (वपूंषि) उत्तम रूपवान् शरीरों का (दधिषे) धारण करता, पालता पोसता है। (२) स्वामी, पिता के समान ही परमेश्वर भी उपासक के घर में (करस्ना सृप्रा) आगे बढ़ने वाले, कर्मों को शुद्ध करने वाले मन और वाणी देता और ऐश्वर्यवान् पुरुष के घर में उत्तम २ शरीर या जन्म देता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१९]

कुशिकपुत्रो गाथी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, २, ४, ५ धैवतः । ३ पञ्चमः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं होता॑रं॒ प्र वृ॑णे मि॒येधे॒ गृत्सं॑ क॒विं वि॑श्व॒विद॒ममू॑रम् ।
स नो॑ यक्षद्दे॒वता॑ता॒ यजी॑यान्रा॒ये वाजा॑य वनते म॒घानि॑ ॥ १ ॥

भा०—(मियेधे) मेध्य अर्थात् पवित्र यज्ञ में (अग्निं होतारं) ज्ञानवान् आहुतिदाता को जिस प्रकार वरण किया जाता है उसी प्रकार मैं प्रजाजन (मिमेध्ये) शत्रुओं को हनन करने के कार्य, संग्राम के निमित्त (होतारं) योग्य दान, ऐश्वर्य व अधिकार देने वाले (गृत्सं) ऐश्वर्य प्राप्त करने के इच्छुक, लोकैषणा और वित्तैषणा से युक्त और (गृत्सं) उत्तम उपदेश देने हारे, (कविं) सबसे उत्तम, बुद्धिमान्, (विश्वविदम्) समस्त राज्यकार्यों को जानने वाले, (अमूरम्) संकट, विपत्तिकाल में मोह को प्राप्त न होने वाले, (अग्निं प्रवृणे) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को उत्तम पद पर वरण करता हूं। (सः) वह (यजीयान्) सबसे बड़ा

दानो सबसे अधिक आदर, संगति या परस्पर सख्य, संगठन करने हारा पुरुष (देवताता) विद्वानों और वीर पुरुषों को (यक्षत्) एकत्र कर संगति करे, उनको व्यवस्थित करे और वह (राये) ऐश्वर्य और (वाजाय) बल या संग्राम के विजय के लिये (मघानि) नाना उत्तम धन (वनते) प्रदान करे।

प्र ते॑ अग्ने ह॒विष्म॑तीमिय॒र्म्यच्छा॑ सुद्यु॒म्नां रा॒तिनी॑ घृ॒ताची॑म्।
प्र॒द॒क्षि॒णिद्दे॒वता॑तिमुरा॒णः सं रा॒तिभि॒र्वसु॑भिर्य॒ज्ञम॑श्रेत् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञान से युक्त! हे तेजस्विन्! (ते) तुझे मैं (हविष्मतीम्) उत्तम उपादेय गुणों अन्नादि समृद्धि से युक्त, (सुद्युम्नाम्) शुभ ऐश्वर्य से युक्त, (रातिनीम्) दिये नाना पदार्थों से युक्त (घृताचीम्) तेजस्विनी, विद्वान् तेजस्वी युवा के हाथ उत्तम कन्या के समान उत्तम राष्ट्र प्रजा को (अच्छ प्र इयर्मि) तेरे सन्मुख प्रस्तुत करता हूं। और (उराणः) जिस प्रकार अधिक प्राणवान्, बलवान् युवा पुरुष अग्नि की प्रदक्षिणा करके (रातिभिः वसुभिः) उत्तम दान योग्य ऐश्वर्यों सहित (देवतातिम् ताम्) कामनाशील स्त्री को प्राप्त कर (यज्ञम् सम् अश्रेत्) उसके साथ संगतिकारक यज्ञ अर्थात् परस्पर दान प्रतिदान के व्यवहार और मैत्रीभाव को सेवता है उसी प्रकार हे अग्ने! तू भी (प्रदक्षिणित्) उत्तम बलयुक्त मार्ग से जाता हुआ (उराणः) अति बलवान् और बहुत यज्ञवान् होकर (रातिभिः) दानशील, एवं बसने वाले प्रजाजनों वा देने योग्य ऐश्वर्यों से हित (यज्ञं) परस्पर के लेने देने के व्यवहार को (सम् अश्रेत्) चला, स्थापित कर। शिष्य और आचार्य पक्ष में—हे अग्ने विद्वन्! मैं शिष्य तुझे उत्तम धन ऐश्वर्य से युक्त, अन्न से सम्पन्न, जल से युक्त लक्ष्मी प्रस्तुत करता हूं। इस प्रकार प्रदक्षिणा करके (उराणः) बहुतसी सेवा करने वाला शिष्यजन (देवतातिम्) देवतुल्य, या ज्ञानदाता (यज्ञं) पूज्य गुरु को (रातिभिः वसुभिः) इसी प्रकार देने वाले अन्ते वासियों के साथ

या दान करने योग्य ऐश्वर्यों के साथ (सम् अश्नेत्) सेवन करे उसका आश्रय ले।

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानयुक्त तेजस्विन् ! काष्ठ को अग्नि के समान अपने सम्पर्क से ज्ञान प्रकाश से प्रज्वलित करनेहारे ! (सः) वह विद्यार्थी (त्वा उतः) तेरे से सुरक्षित और तेरे से अध्यापित होकर (तेजीयसा मनसा) अति अधिक तेज से युक्त ज्ञान और तेजस्वी चित्त से युक्त हो। (उत) तू भी (सु-अपत्यस्य) उत्तम पुत्र के समान (शिक्षोः) शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्य के लिये (शिक्ष) ज्ञान की शिक्षा कर। हे (अग्ने) विद्वन् ! (रायः) दान करने योग्य ज्ञान के (नृतमस्य) सबसे उत्तम नायक (ते) तेरे (प्रभूतौ) उत्तम प्रभाव, शासन एवं उत्तम सन्तति रूप में हम तेरे (सुस्तुतयः) उत्तम विद्यो-पदेशों से युक्त (वस्वः च) तेरे अधीन वास करने वाले शिष्य (भूयाम) होकर रहें। इसी प्रकार हे राजन् ! तेजस्वी ज्ञान वा मन से तेरे द्वारा सुरक्षित यह प्रजाजन है। तू उसे (शिक्ष) शिक्षित कर। ऐश्वर्य प्रदान कर। (स्वपत्यस्य शिक्षोः) उत्तम पुत्रादि के पिता के समान प्रजा के पालक और शिक्षक और (रायः नृतमस्य प्रभूतौ) धनैश्वर्य के नायक के प्रभाव या (रायः प्रभूतौ) धन की प्रचुर वृद्धि के कार्य में हम (ते सुस्तुतयः) तेरे अधीन बसने वाले हैं। अथवा—(ते वस्वः रायः प्रभूतौ भूयाम) तेरे बसने योग्य ऐश्वर्य की प्रचुर वृद्धि में हम उत्तम कीर्त्तिमान् हों।

भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक प्रतापवान् पुरुष ! (देवस्य) परमेश्वर के (यज्यवः) उपासकजन वा (देवस्य ते यज्यवः जनासः)

विजय करने के इच्छुक तेरी संगति करने वाले, तेरे साथी लोग (ते) तेरे ही अधीन (भूरीणि) बहुत से (अनीका) सैन्यों को (दधिरे) स्थापित करें, रक्खें। हे (यविष्ठ) अति अधिक ज्ञानवान्, बलवान् या सबसे बढ़कर शत्रुओं का नाश करनेहारे ! (सः) वह तू जो (अद्य) आज (दिव्यं) दिव्य, मनोहर कान्तियुक्त, उत्तम (शर्धः) बल को (यजासि) संग्रह करता है तू उस (देवतातिम्) विद्वान् विजयी पुरुषों के योग्य, उनके हितार्थ बल को (आ वह) धारण कर। नायक होकर उसका सञ्चालन कर। आचार्य पक्ष में—(देवस्य यज्यवः जनासः) विद्याकाम शिष्य को ज्ञान देने वाले विद्वान् जन तुझ में ही बहुत से (अनीका) ज्ञान और बलों को धारण करावें। जब तू दिव्य बल प्राप्त करले तब तू (देवतातिं) अन्य शिष्यों को प्रदान कर।

यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥१९॥

भा०—हे आचार्य (अग्ने) विद्वन् ! (देवाः) ज्ञानों के अभिलाषी शिष्यजन (यजथा) विद्यादान करने एवं तेरी सत्संगति लाभ करने के लिये ही (मियेधे) मेध अर्थात् ज्ञानरूप पवित्र यज्ञ में (निषादयन्तः) अपने आप तेरे अधीन समीप बसते हुए (होतारम्) विद्या के देने वाले (त्वा) तुझको (अनजन्) प्राप्त होते, तुझको प्रकाशित करते या उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं। (अग्ने) ज्ञानवन् ! (सः त्वं) वह तू (इह) इस आश्रम में (नः) हमारा (अविता) रक्षक, ज्ञानदाता होकर (बोधि) हमें ज्ञानोपदेश कर और (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (श्रवांसि) अन्नों के समान (तनूषु श्रवांसि) विस्तृत आत्माओं में या तेरे पुत्र समान शिष्य में श्रवण करने योग्य वेद ज्ञानों को (धेहि) धारण करा। (२) राजा के पक्ष में—(देवाः) विजिगीषु लोग (मियेधे) संग्राम में परस्पर संगति या मैत्रीभाव के लिये तुझ दानशील और वशी-

कर्त्ता को ही आसन पर बिठलाते हुए तेरा अभिषेक करें। तू हम प्रजाजनों का रक्षक होकर सब कर्त्तव्य जान। हमारे पुत्रादि को भी (श्रवांसि) ऐश्वर्य, अन्नादि धारण करा। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[२०]

गाथी ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः॥१

भा०—(वह्निः) विवाह करने वाला युवा पुरुष जिस प्रकार (अग्निम्) आवसथ्य यज्ञाग्नि को और (दधिक्रां उषसम्) धारण पोषण करने वाले को प्राप्त होने वाली, कामनाशील, मनोरमा स्त्री को या (दधिक्रां) पोषक पिता से भी बढ़ जाने वाले पुत्र को और (अश्विना) सूर्य पृथिवी या सूर्य चन्द्र के समान माता पिता दोनों को (व्युष्टिषु) विशेष उषा कालों में या विशेष प्रेम के अवसरों में (उक्थैः) उत्तम वचनों से (हवते) बुलाता है उसी प्रकार (वह्निः) राज्य कार्य भार को अपने ऊपर धारण करने वाला पुरुष (अग्निम्) अग्रणी नायक को (उषसम्) प्रभात बेला के समान अपने पीछे तेजस्वी सूर्यवत् सेनापति को धारण करने वाली (दधिक्राम्) अपने धारक पोषक को प्राप्त (उषसम्) शत्रु को सन्तप्त और दग्ध करने वाली सेना को, या (दधिक्राम्) पीठ पर सवार को धारण करके वेग से जाने वाले अश्व को और (अश्विना) दो अश्ववान् सेनापति या राजा प्रजा वर्ग या राजा रानी दोनों को (व्युष्टिषु) दुष्ट शत्रुओं को विविध प्रकार से ताप या पीड़ा देने के संग्राम आदि कार्यों में (उक्थैः) उत्तम प्रशंसनीय वचनों, पदों और कर्मों से (हवते) अपनाता और रखता है। (सुज्योतिषः) उत्तम चमकते आभूषणों, तेजों और ज्ञानों को

धारण करने वाले (देवाः) विद्वान् और वीर लोग (सजोषसः) परस्पर समान प्रीतिभाव से युक्त होकर (नः अध्वरं) शत्रु तथा दुष्टों द्वारा होने वाले हमारे विनाश को न (वावशानाः) चाहते हुए (नः शृण्वन्तु) हमारे निवेदन तथा व्यवहारों को सुना करें ।

अग्ने॒ त्री ते॒ वाजि॑ना॒ त्री ष॒धस्था॑ ति॒स्रस्ते॑ जि॒ह्वा ऋ॑तजात पू॒र्वीः । ति॒स्र उ॑ ते त॒न्वो॑ दे॒ववा॑ता॒स्ताभि॑र्नः पाहि॒ गिरो॒ अप्र॑युच्छन् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् पुरुष ! (ते) तेरे (त्री) तीन प्रकार के (वाजिना) ज्ञान, बल और अन्न हैं। तीन प्रकार के शास्त्रकृत, परानुभववेद्य और स्वानुभव वेद्य, और तीन प्रकार का बल आत्मिक, वाचिक, शारीरिक, तीन प्रकार का अन्न खाद्य, लेह्य, चोष्य, अथवा, ओषधियों से उत्पन्न धान्य बीजादि, लता वृक्षादि से प्रसूत कन्द मूल फल पुष्पादि और पशु जीवों से उत्पन्न दूध और दूध से बने पदार्थ और (त्री सधस्था) तेरे तीन एकत्र होकर रहने के स्थान हैं। एक ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ और तीसरा वानप्रस्थ ये तीन आश्रम हैं। चतुर्थ आश्रम में एकान्त विचरता है तब वह किसी के साथ नहीं होता। राजा की तीन 'सधस्थ' अर्थात् सभाभवन राजसभा, धर्मसभा, विद्वत्-सभा। (ते तिस्रः पूर्वीः जिह्वा) तेरी तीन पूर्व आचार्यों द्वारा उपदिष्ट सनातन जीभें अर्थात् वाणियां हैं। स्तुति रूप ऋग्, गान रूप साम और कर्म-निदर्शक गद्यरूप यजुः। राजा की तीन जिह्वाएं तीन वाणियें अपने शासकों के प्रति, प्रजा के प्रति और परपक्ष के प्रति। हे (ऋतजात) वेद, सत्य व्यवहार और न्याय में प्रसिद्ध पुरुष ! (ते) तेरे (तिस्रः उ तन्वः) तीन ही तनु अर्थात् देह हैं अपना देह, यश और राष्ट्र। ये तीनों देह (देववाताः) देवों द्वारा सञ्चालित हैं। स्वदेह को देव अर्थात् प्राण चलाते हैं यशःकाय को विजिगीषु सैन्य स्थिर रखते हैं और राष्ट्र देह को ऐश्वर्य के इच्छुक एवं दानशील शासक और प्रजावर्ग

चलाते हैं। (ताभिः) उन तीनों देहों द्वारा तू (अप्रपुच्छन्) विना प्रमाद के ही (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (पाहि) रक्षा कर। अर्थात् उन द्वारा तू हमारे साथ की हुई वाणियों अर्थात् व्यवस्थाओं और दिये वचनों को पालन कर। 'देववाताः' यह विशेषण वाजिन, जिह्वा, तनु और गिरः सबका समान है। अन्नादि विद्वान् पुरुषों से उपदिष्ट हों, वेद वाणियें विद्वानों से ज्ञान कराई जावें, वाणियों या व्यवस्थाओं को विद्वान् बनावें। (२) परमेश्वर के तीन बल अग्नि, जल, वायु जीवों के एकत्र वास के लिये तीन लोक पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यौ, तीन वाणी, ऋक्, साम, यजुः, ज्ञान, गान, कर्म, तीन तनु, सत् चित् आनन्द, उनसे वह (नः गिरः) हम स्तुतिकर्त्ता जनों की रक्षा करे।

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥३॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानों को प्राप्त करके प्रसिद्ध होने हारे! विद्वन्! हे (देव) ज्ञानों के देने वाले आचार्य! गुरो! हे (स्वधावः) आत्मा को धारण करने वाली स्नेहमयी शक्ति के स्वामिन् वा अन्नवन्! (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञान के प्रकाशक! (अमृतस्य) कभी न मरने वाले, शिष्य-पुत्रादि परम्परा से सदा जागृत रहने हारे (तव) तेरे (भूरीणि नाम) बहुत से नाम (संदधुः) बतलाते हैं। हे (विश्वमिन्व) समस्त जगत् को जानने वा सबको और सब विद्याओं का उपदेश करने वाले या विश्व अर्थात् आत्मा को जानने जनाने हारे! (याः च) जो भी (मायिनां) बुद्धिमान् पुरुषों की (मायाः) नाना विद्याएं और ज्ञान-बुद्धियां हैं हे (पृष्टबन्धो) प्रश्न करने वाले शिष्य के बन्धु-रूप आचार्य! उन सब (पूर्वीः) पूर्व काल से चली आई, सनातन विद्याओं को (त्वे) तेरे में अर्थात् तेरे ही आश्रय रहकर (संदधुः) अच्छी प्रकार धारण करें। (२) परमेश्वर सर्वज्ञ देव! (स्वधावः) स्वयं ब्रह्माण्ड

की धारक शक्ति, समष्टि चेतन्य के स्वामिन् परमात्मन्! अमृत स्वरूप तेरे बहुत से नाम हैं, और समस्त विद्वान् मनिमानों की सनातन विद्याएं तुम में ही रक्खी हैं लोग तुझ से ही पाते हैं। तू जिज्ञासु जीव का बन्धु एवं पृष्ट अर्थात् कर्म फल देने में बन्धु के समान स्नेहवान् होकर दयालु है।

अ॒ग्निर्ने॒ता भग॑ इव क्षि॒तीनां॒ दैवी॑नां दे॒व ऋ॑तु॒पा ऋ॒तावा॑।
स वृ॑त्र॒हा स॒नयो॑ वि॒श्ववे॑दाः पर्ष॒द्विश्वाति॑ दुरि॒ता गृ॒णन्त॑म् ॥४॥

भा०—(भगः इव) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (ऋतुपाः) वसन्त आदि ऋतुओं का पालक होकर (दैवीनां) देव अर्थात् जल प्रदान करने वाले मेघों से हरी भरी रहने वाली (क्षितीनां) भूमियों का (नेता) नायक है उनको प्रकाशित करता, उनमें उत्पन्न ओषध्यादि को पालता है और जिस प्रकार (ऋतुपाः) ऋतु काल का पालन करने वाला ऋतुगामी (देवः) कमनीय, मनचाहा पति (क्षितीनां दैवीनां) मनोकामना से युक्त, अपने अधीन रहने वाली, भूमिरूप दारा का (नेता = परिणेता) विवाह करने और उसका सुखैश्वर्य प्राप्त कराने वाला, (ऋतावा) धन से सम्पन्न (भगः) भजन, सेवनीय, सुखकारक कल्याणकारक होता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानप्रकाश से युक्त तेजस्वी, तपस्वी पुरुष (भगः) सबका कल्याणकारी, ऐश्वर्यवान् (देवीनां) देव, दानशील राजा के पीछे चलने वाली (क्षितीनां) प्रजाओं का (नेता) नायक स्वयं (देवः) दानशील, व्यवहारज्ञ (ऋतुपाः) राज-भ्राताओं और राजसभा के सदस्यों का स्वामी और (ऋतावा) सत्य, न्यायविधान का पालक हो। (सः) वह (वृत्रहा) मेघों को सूर्य के समान बढ़ते शत्रुओं को और अज्ञानों का नाश करने हारा, (सनयः) नीतिमान् होकर (विश्ववेदाः) सब कुछ जानने हारा सब प्रकार के ऐश्वर्यों का स्वामी होकर (गृणन्तम्) दुःख का निवेदन करने वाली प्रजाजन को (विश्वा दुरिता अति पर्षत्) सब प्रकार के दुःखदायी मार्गों और बुराइयों से पार करे।

दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥२०

भा०—मैं (दधिक्राम्) धारक पोषक पदार्थों में व्यापक विद्युत् (उषसं च) दाहकारी (देवीं) तेजस्विनी प्रकाशयुक्त प्रभा, दीप्ति, (बृहस्पतिम्) महान् आकाश के पालक, वायु और (देवं च सवितारम्) सबके प्रकाशक, सबके प्रेरक और उत्पादक सूर्य (अश्विना) सूर्य और चन्द्र से युक्त दिन और रात्रि तथा (मित्रावरुणा) मित्र, वायु और वरुण जल, अथवा प्राण और अपान, (भगं च) सबके सेवन करने योग्य सुख-शान्ति-कारक ऐश्वर्ययुक्त अन्न, (वसून्) पृथिवी आदि वसुओं (रुद्रान्) ११ प्राणों को और (आदित्यान्) बारहों मासों को (इह हुवे) इस जगत् में प्राप्त करूं। (२) राष्ट्र में—धारक पोषक वर्गों को क्रमण करने हारा उनसे अधिक शक्तिशाली अग्रणी नेता, शत्रुदाहक 'उषा' विजियिनी सेना, बड़े राष्ट्र का धारक, सर्वज्ञापक, देव राजा, स्त्री पुरुष, मित्र, न्यायाधीश और वरुण, सर्वश्रेष्ठ दुष्टवारक गणाधिपति, वसु, प्रजाजन 'रुद्र' अध्यक्ष, और आदित्य, व्यापारीजन वा तेजस्वी संन्यासी जन उनको (हुवे) प्राप्त करूं। (३) अध्यात्म में—दधिक्रा अग्नि प्राण, उषादेवी इच्छा या चिति, सविता बृहस्पति देव आत्मा वाक्पति, अश्वि प्राण और उदान, मित्र वरुण, समान उदान, वसु अन्य उपप्राण चक्षु आदि 'रुद्र' मुख्य एकादश प्राण, 'आदित्य' द्वादश चक्रस्थ ज्ञान केन्द्र उनको मैं धारण करता हूं।

[२१]

कौशिको गाथी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप् । २, ३ अनुष्टुप् । ५ विराट् बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥

भा०—हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बुद्धि और ऐश्वर्य वाले विद्वन् ! तू (इमं यज्ञम्) इस परस्पर दानप्रतिदान, पूजा सत्कार, सत्संग व्यवहार आदि उत्तम कामों को (नः) हमारे बीच (अमृतेषु) न मरने हारे दीर्घ-जीवी, वृद्ध जनों और युवा पुत्रों में (धेहि) स्थापित कर। (इमा) ये (हव्या) ग्रहण करने योग्य अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य और सद्गुणों को धर्मार्थ काम मोक्षादि के साधक साधनों को (जुषस्व) सेवन कर। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (होतः) सबके दातः ! (अग्ने) प्रतापिन् ! ज्ञानवन् ! (प्रथमः) सबसे प्रथम (घृतस्य मेदसः) घृत के समान स्नेहयुक्त चीकने पदार्थ द्वारा बने (स्तोकानां) थोड़ी २ मात्रा में स्थित पदार्थों का तू (निषद्य) आदरपूर्वक बैठकर (प्र अशान)उत्तम रीति से भोजन कर। (२) इसी प्रकार सबसे श्रेष्ठ राजा (निषद्य) सिंहासन पर विराज कर (स्तोकानां) अपने से अल्पशक्ति वाले प्रजाओं और सामन्तों के बीच में विराज कर (मेदसः घृतस्य) प्रजाओं के स्नेह और तेज का (प्राशान) अच्छी प्रकार उत्तम रीति से उपभोग करे। वह इस प्रजा पालन रूप यज्ञ को 'अमृत' अर्थात् उत्साही स्थायी पुरुषों पर स्थापित करे।

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (पावक) पवित्र करने हारे एवं अग्नि के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार (मेदसः स्तोकाः) स्निग्ध पदार्थ के बिन्दु अग्नि में पड़ते हैं उसी प्रकार (ते) तेरे (मेदसः) स्नेह से युक्त (घृतवन्तः) ज्ञान और ब्रह्मचर्य के तेज से सम्पन्न (स्तोकाः) बिन्दुओं के समान अल्पबल और अल्पज्ञानी वा विद्याभ्यासी शिष्यगण (श्चोतन्ति) तुझ से ही निकलते हैं। हे विद्वन् ! तू (देव-वीतये) विद्वान् पुरुषों के बीच कान्ति धारण करने के लिये या ज्ञानाभिलाषी शिष्यों के बीच ज्ञान प्रकाशित करने के लिये (स्वधर्मन्) अपने धर्म में स्थित होकर (नः) हमें

(श्रेष्ठं वार्यम्) उत्तम, वरण करने योग्य और ज्ञानैश्वर्य (धेहि) प्रदान कर। (२) अपने से अल्प, तेजस्वी, हृष्ट पुष्ट अधीन भृत्य उसके अधीन (श्चोतन्ति) चलें। वे उनके तेज को बढ़ाने के लिये उनके भोजन के लिये अपने धर्म में स्थित होकर श्रेष्ठ ऐश्वर्य और उत्तम अन्न दें।

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव॥ ३॥

भा०—हे (सन्त्य) सत्यासत्य का विवेक करने में श्रेष्ठ पुरुष ! (अग्ने) विद्वन् ! (विप्राय) विविध विद्याओं से पूर्ण एवं नाना धर्म कर्मों में रत (तुभ्यं) तेरे अधीन ये (घृतश्चुतः) घृत से सिंचे अग्नियों के समान तेज से युक्त (स्तोकाः) विद्याभ्यासी शिष्यजन हैं। तू (श्रेष्ठः) उन सब में श्रेष्ठ (ऋषिः) ज्ञानों का द्रष्टा होकर (समिध्यसे) प्रकाशित हो। और (यज्ञस्य) ज्ञानमय श्रेष्ठ दान और सत्संग का (प्र-अविता) सबसे उत्तम रक्षक और ज्ञाता (भव) हो। (२) राजा के अधीन स्वल्पशक्ति वाले भी तेजस्वी हों। वह उनके संगठन का रक्षक हो।

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर॥ ४॥

भा०—हे (अध्रिगो) गो अर्थात् वेदवाणी और इन्द्रियगण पर अधिकार रखने हारे विद्वन् ! जितेन्द्रिय ! हे 'गो' अर्थात् पृथिवी पर शासन करने हारे राजन् ! हे (शचीवः) हे उत्तम प्रज्ञा और शक्ति वाले ! (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशक ! तेजस्विन् ! (स्तोकासः) वेदों का स्तवन अर्थात् पठन और अभ्यास कराने वाले विद्वान् जन (तुभ्यं) तेरा ही (मेदसः) स्नेहयुक्त और (घृतस्य) जल और घी के समान प्रवाह युक्त, तेजस्वी या पवित्रकारक ज्ञान जल के द्वारा (श्चोतन्ति) सेचन करते, जलों से मेघों के समान तुझे स्नान कराते हैं। हे राजन् (स्तोकासः) शत्रु का हनन करने वाले वीर और उसके स्तुति कर्ता अल्पशक्तिशाली

पुरुष (तुभ्यं) तेरा ही (मेदसः घृतस्य) स्नेह युक्त जल के द्वारा अभिषेक करते हैं । तू (कविशस्तः) विद्वान् पुरुषों से प्रशंसित एवं शिक्षित होकर (बृहता भानुना) बड़े भारी तेज से सूर्य के समान (आ अगाः) आ, हमें प्राप्त हो । हे (मेधिर) विद्वन् ! प्रज्ञावन् ! तू (हव्या) ग्रहण करने योग्य अन्न ऐश्वर्यादि (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर । वेदज्ञ पूर्ण ब्रह्मचारी को अध्यापक स्नातक बनावें । वह घर पर आकर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करे । इसी प्रकार वीर और गुण-स्तुतिकर्त्ता जन पृथ्वी पर अधिकार और शक्तिशाली पुरुष का अभिषेक करें । दोनों ही सूर्य के समान अन्नों और करों को लें । (२) परमेश्वर—सर्व शक्तिमान् 'गौ' पृथिवी सूर्यादि का शासक है । उसी के स्नेह और तेज का उससे अल्प शक्तिशाली पदार्थ सूर्यादि हमें प्रदान करते हैं । वह सर्वस्तुत्य हमें तेजसहित प्राप्त हो, हमारी ग्रहणयोग्य स्तुतियों को स्वीकार करे ।

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५।२१

भा०—हे (वसो) गुरु के अधीन वास करने हारे विद्वन् ! अथवा हे अपने अधीन शिष्यों को बसाने हारे आचार्य ! (ते) तेरे (मध्यतः) हृदय के बीच से (ओजिष्ठं) अति अधिक ओजस्वी (मेदः) स्नेह और वीर्य (उद्भृतं) उत्तम रीति से तैने धारण किया है । (वयं) हम गुरु जन (ते) तुझे (प्र ददामहे) अच्छी प्रकार उत्तम २ ज्ञान प्रदान करते हैं । (ते अधि त्वचि) तेरी त्वचा पर (स्तोकाः) जल धाराओं के समान ज्ञान-जल प्रवाहित करने वाले विद्वान् जन (श्चोतन्ति) तेरा ज्ञान जल से स्नान करावें । तू (तान् देवशः) उन विद्वानों या तुझे चाहने वाले बन्धुजनों को (प्रतिविहि) प्राप्त हो । (२) हे राजन् ! तेरा जो सबसे अधिक ओजस्वी (मेदः) शत्रुहिंसक बल (मध्यतः) राष्ट्र के बीच में (उद्भृतम्) सर्वोपरि वेतन आदि द्वारा बद्ध है हे राष्ट्र के बसाने हारे

वसो ! वह (ते) तुझे हम प्रजाजन ही प्रदान करते हैं तू (स्तोकाः) तेरे अल्प शक्तिशाली जन ही तेरे देह पर अभिषेक करते हैं, तू तेरे इच्छुक जन को प्राप्त हो (२) हे वसो ! परमेश्वर ! तेरा ही स्नेह हमारे बीच सब से उत्कृष्ट रूप से धारण किया है। वही स्नेह तेरे लिये हम प्रकाशित करते हैं। (स्तोकाः) स्तुतिकर्त्ता जन मृगछाला पर बैठकर तेरे लिये ही ज्ञान मार्ग की संगति करते हैं। तू उन तेरे इच्छुकों को प्राप्त हो, उनके प्रति प्रकाशित हो। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२२]

गाथी ऋषिः ॥ पुरीष्या अग्नयो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ निचृत् पंक्तिः । ४ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१॥

भा०—(अयं) यह (सः) वह (अग्निः) अग्नि या विद्युत् है (यस्मिन्) जिस में (इन्द्रः) सबको प्रदीप्त करने वाला विद्वान् पुरुष (वावशानः) इच्छा करता हुआ, (जठरे) यन्त्र के मध्य में (सुतं) उत्पन्न (सोमं) प्रेरक बल को उदर में जल वा अन्न के समान (दधे) स्थापित करता है। इस प्रकार वह (अत्यं न सप्तिम्) वेगवान् अश्व के तुल्य (अत्यं) निरन्तर जाने वाले (सप्तिम्) गतिशील (सहस्रिणं वाजं) सहस्रगुण वेग या बल को (दधे) धारण करता है। हे (जातवेदः) ज्ञानवन् ! मतिमन् ! तू उस वेग वा बल को (ससवान्) अच्छी प्रकार यन्त्र के अन्य २ भागों में विभक्त करता हुआ ही (स्तूयसे) स्तुति करने योग्य है। अथवा वह अग्नि ही इस प्रकार प्रबल वेग धारण करने से (स्तूयसे) उपदेश देने योग्य है। (२) (अयं सः अग्निः) यह ही वह ज्ञानवान् आचार्य है (यस्मिन् जठरे) जठर या उदर के

समान जिसमें वह आचार्य स्वयं (रुद्रः) ज्ञान का धारक होकर (वावशानः) शिष्य की कामना करता हुआ (सोमं सुतं) शिष्य को पुत्र के समान (दधे) धारण करता है। आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमुपसंयन्ति देवाः ॥ अथर्व० कां० ११। स० ५। १ ॥ हे (जातवेदः अत्यं न सस्नि ससवान्) वेगवान् अश्व सैन्य का धारण करने वाले नायक के समान तू भी (सहस्रिणं वाजं) सहस्रों प्रकार के ज्ञान को (ससवान् सत्) अन्योंमें विभक्त या प्रदान करता हुआ ही (स्तूयसे) स्तुति किया जाता है। (३) यह वही अग्नि प्रभु है जो स्वयं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर अपने भीतर उत्पन्न संसार को धारण करता है। वह सहस्रों ऐश्वर्यों का देने हारा, व्यापक प्रभु ही स्तुति करने योग्य है।

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! अग्नि के समान प्रकाशक! (ते यद् वर्चः) तेरा जो तेज (दिवि) सबके कामना करने योग्य ज्ञान-प्रकाश में और (पृथिव्याम्) अति विस्तृत वेद वाणी में और (यत्) जो तेज (ओषधीषु) देह में ताप को धारण करने वाले (अप्सु) प्राणों में है। हे (यजत्र) शक्ति और ज्ञान के देने हारे! (येन) जिस तेज से (उरु) तू बहुत बड़े (अन्तरिक्षं) अन्तःकरण में विद्यमान ज्ञान को (आ ततन्थ) विस्तारित करता है (सः) वह तू (भानुषः) प्रकाशमान सूर्य के समान (त्वेषः) तीक्ष्ण, तेजस्वी (अर्णवः) समुद्र के समान गम्भीर (नृचक्षाः) मनुष्यों के बीच द्रष्टा और उपदेष्टा है। (२) अग्निपक्षमें—अग्नि तत्व का ही वह तेज है पृथिवी में अग्नि रूप से, ओषधियों में रस या काष्ठरूप से, जलों में और्वा-नल या मेघों में विद्युत् रूप से है जिससे

विशाल अन्तरिक्ष पूर्ण हो जाता है वह सूर्य, कान्तिमान्, जलमय, मेघवान्, सब मनुष्यों का द्रष्टा, दिखाने वाला, चक्षु का जनक भी है।

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (दिवः) सबसे अधिक प्रकाशमान सूर्यवत् तेजस्वी गुरुजन से प्राप्त (अर्णम्) विनय द्वारा प्राप्त करने योग्य ज्ञान को तू (अच्छ) उसके सन्मुख होकर (जिगासि) अभ्यास कर और (ये धिष्ण्याः) जो विशेष धारणावती बुद्धियों, नाना ज्ञानों को चाहने वाले शिष्य जन हैं उन (देवान्) विद्या के अभिलाषी शिष्यों को (अच्छा उचिषे) अभिमुख कर भली प्रकार उपदेश कर। और (याः) जो (आपः) आप्त प्रजाएं (सूर्यस्य रोचने) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान गुरु के सर्वप्रिय, तेजोयुक्त प्रकाश या उच्च पद पर (परस्तात्) उत्तम पद पर और जो (अवस्तात्) उससे नीचे शिष्य पद पर (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित होते हैं उन के प्रति भी ज्ञान प्राप्त करा और उत्तम उपदेश कर। (२) राजा (दिवः) राज-विद्वत्सभा से उत्तम ज्ञान प्राप्त करे, उत्तम आसनयोग्य, एवं पदाधिकारी, वीर, यशस्काम पुरुषों के प्रति आज्ञावचन कहे। उन्नत और अधीन प्रजा का शासन करे।

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥

भा०—(पुरीष्यासः) अन्न, ऐश्वर्य, पृथिवी, इन्द्रादि पद, विद्वान्, प्रजाजन, पशु आदि उनसे सम्पन्न (अग्नयः) अग्रणी, तेजस्वी नेताजन, (प्रवणेभिः) उत्तम सैन्य दलों, प्रजाजनों और अधीनस्थ विनयशील सहायक मार्गों से (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर परस्पर (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (यज्ञम्) परस्पर के मैत्रीभाव, सत्संग, दान प्रतिदान, को, (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न जलों और (महीः)

उत्तम वाणियों और भूमियों को (जुषन्ताम्) सेवन करें। (२) अध्यात्म में—(अग्नयः) प्राणगण (पुरीष्यासः) पुरीतत् नाड़ी तक पहुंचने हारे वा देह के मांस तक में व्यापक (प्रावणेभिः) उत्तम भोग्य पदार्थों से युक्त होकर परस्पर उपघात, पीड़ा, बाधारहित होकर रोगशून्य अन्न और (महीः) बड़ी बलवती शक्तियों को और (यज्ञं) परस्पर के संगत करने वाले पूज्य आत्मा के बल को (जुषन्ताम्) प्राप्त करें। (३) विद्वान् जन प्रजाहितैषी द्रोहरहित होकर (यज्ञं) परमेश्वर और उत्तम २ कामनाओं को प्राप्त करें।

पुरीष्यासः—पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति। श० २।१।१।७॥ अन्नं पुरीषम्। श० ८।१।४।५॥ पुरीषं वा इयम्। श० १२।५।२।५॥ ऐन्द्रं हि पुरीषम्। श० ८।७।३।७।०दक्षिणाः पुरीषम्। ८।७।४।१५॥ देवाः पुरीषम्। नक्षत्राणि पुरीषम्। वयांसि पुरीषम्। प्रजाः पुरीषम्। पशवः पुरीषम्। पुरीतत् पुरीषम्। शत० ८।७।४।१—१८॥ अध्यात्मम्—मांसं पुरीषम्। देवाः पुरीषम्। पुरीतत् पुरीषम्। शत० ८।७।४—१—१८॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२२॥

भा०—व्याख्या देखो मं० ३।सू०१।मं०२३॥ इति द्वाविंशो वर्गः॥

[२३]

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी ॥ अग्निर्देवता ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥

भा०—(निर्मथितः) दो अरणियों के बीच में मथन करने से प्रकट

होने वाला अग्नि जिस प्रकार (सधस्थे) यजमान के यज्ञ गृह में (सुधितः सन् अमृतं आदधे) उत्तम रीति से स्थापित होकर अमृत अर्थात् न नाश होने वाले सदा जागृत रूप को धारण करता है उसी प्रकार (सधस्थे) एकत्र सभासदों के विराजने के स्थान, सभाभवन में (निर्मथितः) विशेष, आलोड़न किये हुए ज्ञान सार को जानने वाला, शास्त्रज्ञ विद्वान् (सुधितः) उत्तम रीति से स्थापित होकर (अमृतम्) अमर, अविनाशी, सत्यमा स्थायी पद को (आदधे) धारण करे । वह (युवा) बलवान् युवावस्था-सम्पन्न, दानैश्वर्यों का विभाजक, (कविः) क्रान्तदर्शी, बुद्धिमान् , (अध्वरस्य) नाशरहित एवं अहिंसामय प्रजापालनादि यज्ञ को (प्रणेता) उत्तम मार्ग से ले चलने हारा हो । वह (अग्निः) अग्रणी नायक, अग्नि के समान तेजस्वी होकर (जूर्यत्सु) स्वयं भस्म हो जाने वाले (वनेषु) वनों में या काष्ठों में अग्नि के समान, (जूर्यत्सु) वेगवान् (वनेषु) किरणों में (अजरः) अविनश्वर सूर्य के समान, वा (वनेषु अग्निः) जलों में विद्युत् के समान स्वयं (अजरः) जीवन की हानि न करता हुआ (अत्र) इस राष्ट्र में (जातवेदः) ज्ञान, ऐश्वर्य से युक्त होकर (अमृतं) सन्तति को गृहस्थ के समान (अमृतं) अमृत, यश, अन्नादि समृद्धि और राष्ट्र के स्थायी दीर्घ जीवन को (आदधे) स्थापित करे ।

अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥

भा०—(देवश्रवाः) विद्वानों के ज्ञानों को श्रवण करने वाला, उन द्वारा ज्ञान और यश प्राप्त करने वाला, (देववातः) और विद्वानों द्वारा प्रेरित उनकी आज्ञा का वशंवद ऐसे दोनों (भारता) प्रजाओं के भरण पोषण करने वाले स्त्री पुरुषों के समान उक्त प्रकार के दोनों पुरुष मिलकर (सुदक्षम्) उत्तम बलयुक्त, प्रज्ञायुक्त (रेवत्) ऐश्वर्य से समृद्ध (अग्निं) तेजस्वी, अग्रणी नायक को (अमन्थिष्टाम्) दो अरणियों से

मथकर निकले अग्नि के समान पक्ष प्रतिपक्ष के बीच संघर्ष या वादविवाद द्वारा परस्पर मथकर सार के समान निर्णय करें। हे (अग्ने) अग्रणी नायक! ज्ञानवन्! (बृहता राया) बड़े भारी ऐश्वर्य से युक्त होकर (एषां) इन सब प्रजावर्गों को (वि पश्य) विविध प्रकार से देख। उनके व्यवहारों का निर्णय कर। और (नः) हमारा (अनु द्यून्) सदा दिनों (नेता भवतात्) सन्मार्ग में ले चलने हारा हो। गृहस्थ पक्षमें—(देवश्रवाः) प्रिय काम्य पति का वचन श्रवण करने वाली स्त्री और 'देव' अर्थात् काम्य गुणों से प्रेरित 'देववात' पुरुष। दोनों प्रजा के भरण पालन करने से 'भारत' हैं। ये दोनों अग्नि को मथन कर यज्ञ का आधान करें। मथित वीर्य से सन्तान रूप अग्नि का आधान करें। वह उनका आगामी सन्तति का नायक या प्रवर्त्तक हो।

दश॒ क्षिपः॑ पू॒र्व्यं सी॑मजीजन॒न्त्सुजा॑तं मा॒तृषु॑ प्रि॒यम्।
अ॒ग्निं स्तु॑हि दैववा॒तं दे॑वश्रवो॒ यो जना॑ना॒मस॑द्व॒शी ॥ ३ ॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों प्रेरित प्राण जिस प्रकार (मातृषु प्रियं सुजातं अजीजनन्) माताओं के गर्भों में उत्तम रीति से उत्पन्न प्रिय बालक को उत्पन्न करते हैं। और जिस प्रकार (दश क्षिपः) दशों दिशाएं उत्तम रूप से प्रकट प्रिय सूर्य को प्रकट करती हैं उसी प्रकार (दश) दसों (क्षिपः) दिशाओं में शत्रु सेनाओं पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाली या आज्ञाकारिणी सेनाएं और प्रजाएं (मातृषु) सर्वोत्पादक भूमियों में (पूर्व्यम्) पूर्व वंश से चले आये (प्रियम्) सर्व प्रिय (सुजातम्) पुरुष को उत्तम रूप से (सीम् अजीजनत्) सर्वत्र प्रकट करें। उसे नायक बनावें। हे (देवश्रवः) विद्वानों के ज्ञानों को श्रवण कराने वाले विद्वन्! तू (देववातं) देवों के विद्वानों द्वारा सञ्चालित प्रेरित (अग्निम्) अग्रणी नायक की (स्तुहि) स्तुति कर उसके उत्तम गुणादि सहित उसे प्रस्ताव द्वारा प्रस्तुत कर (यः) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच

सबको (वशी असत्) वश करने हारा हो। (२) आत्मा (मातृषु) प्रमाता, ज्ञान-साधनों, इन्द्रियों के बीच में प्रकट होता है, दशों प्राण उसे प्रकट करते हैं।

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वान्! नायक! मैं प्रजाजन (त्वा) तुझको (पृथिव्याः) अतिविस्तृत, (इलायाः) पृथ्वी और वाणी के (वरे) सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने योग्य पद पर, सर्वोच्च आसन पर (अह्नां सुदिनत्वे) दिनों के बीच शुभ दिन में (निदधे) स्थापित करूं और तू (दृषद्वत्यां) प्रस्तरों में युक्त, शिला पर्वतादि वाली, (आपयायां) जलों से व्याप्त, नदी ताल आदि वाली और (सरस्वत्यां) उत्तम तालों वा सागरों से युक्त नाना भूमियों में (रेवत्) ऐश्वर्यवान् होकर (मानुषे) मनुष्यों के बीच में (दिदीहि) प्रकाशित हो। (२) विद्वान् गुरु, सरस्वती वेद वाणी जो 'दृषद्वती' अज्ञाननाशक निष्ठ पुरुषों में स्थित और (आपयायां) आप्त पुरुषों से प्राप्त होने योग्य वाणी में मननशील विद्वत्संघ में प्रकाशित हो। राजपक्षमें—राजा, दृषद्वती आपया, शस्त्रास्त्र से युक्त दूर देश गामिनी और वेगवती सेना में मननशील होकर चमके।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥२३॥

भा०—व्याख्या देखो म० ३। १। २३ ॥ इति त्रयोविंशो वर्गः।

[२४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्। २ निचृद्गायत्री। ३, ४, ५ गायत्री ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! नायक! तू (अभिमातीः) आक्रमण करके हत्या करने वाले और अभिमान से पूर्ण, विघ्नकारी (पृतनाः) शत्रु-सेनाओं को (अप-अस्य) दूर कर और (सहस्व) उनको पराजित कर। तू स्वयं (दुःस्तरः) शत्रुओं द्वारा विशाल सागर के समान दुस्तर या अलंघ्य होकर और (अरातीः) कर न देने वाले शत्रुओं को (तरन्) साधता, पराजित करता हुआ (यज्ञ-वाहसे) तुझ से मित्रभाव, सत्संग, कर आदि देकर राजा प्रजा का सा सम्बन्ध करने वाले प्रजागण के उपकार के लिये तू (वर्चः) तेज, बल (धाः) धारण कर, उसको अन्न समृद्धि प्रदान कर। (२) अध्यात्म में—परमेश्वर या विद्वान् (अभिमातीः पृतनाः) मनुष्य की अहंकारवृत्तियां दूर करे और (अरातीः) अदानशीलता वा लोभ-वृत्तियों को हटाकर (यज्ञवाहसे) उपास्य प्रभु या आत्मा को प्राप्त करने के लिये तेज को धारण करे करावे।

अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः।
जुषस्व सू नो अध्वरम्॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या, विज्ञान के प्रकाश और ब्रह्मचर्य आदि के तेज से युक्त विद्वन्! प्रतापशालिन्! तू (इळा) सबके चाहने योग्य उत्तम वेदवाणी और भूमि से युक्त होकर (समिध्यसे) अच्छी प्रकार उत्तेजित वा प्रदीप्त हो। तू (वीतिहोत्रः) उत्तम गुणों से व्याप्त विद्याओं, रक्षाओं और कान्तिमय तेजों को स्वयं धारण करने और अन्यों को देने हारा और (अमर्त्यः) कभी न मरने हारा, अविनश्वर, दीर्घायु और पुत्र पौत्रादि सन्तति द्वारा चिरस्थायी होकर (नः) हमारे (अध्वरं) न नाश होने वाले और हिंसन पीड़नादि से रहित पालन आदि यज्ञ कार्य को (सु जुषस्व) सुखपूर्वक प्रेम से स्वकीर कर।

(२) अध्यात्म में—यह आत्मा तेजःस्वरूप, अविनाशी, अजर, अमर होकर भी पार्थिव देह में (इळा) अन्न वाणी और इच्छा शक्ति द्वारा प्रकाशित होता है। वही जीवन यज्ञ को सेवन करता है। (३) और परमेश्वर (इळा) वेद वाणी से प्रकाशित होता है। (४) गृहस्थ मनचाही भूमिरूप स्त्री से।

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत।
एदं बर्हिः सदो मम॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! हे (जागृवे) सदा जागरणशील! हे प्रबुद्ध! कभी न असावधान रहने वाले! पहरेदार के समान सदा जागते रहने वाले! यते! हे (सहसः सूनो) अन्तः शत्रु के नाशक बल, सहनशीलता, क्षमता के जनक! बलों, सैन्यों के प्रेरक, नायक और बल के द्वारा शासक! तू (द्युम्नेन) अन्न, ऐश्वर्य और तेज के सहित (मम) मेरे (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील, उत्तम आसन, प्रजाजनाधिकार में (आसदः) आ विराज।

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः।
यज्ञेषु ये उ चायवः॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रतापिन्! तू (यज्ञेषु) यज्ञों, परस्पर मित्रता और सत्संगयुक्त कार्यों में (ये उ चायवः) जो उत्तम सत्कार करने वाले, एवं सत्कार करने योग्य मनुष्य हैं उनकी (गिरः) उत्तम वाणियों का वा (गिरः) उत्तम उपदेश करने वाले उनको ही (विश्वेभिः) समस्त (अग्निभिः) ज्ञानी वा अग्रणी पुरुषों और (देवेभिः) दिव्य कमनीय गुणों वाले व व्यवहारज्ञ विजयेच्छुक पुरुषों द्वारा (महय) आदर सत्कार कर।

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसं।
शिशीहि नः सूनुमतः॥ ५॥ २४॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे प्रतापशालिन् ! तू (दाशुषे) दानशील, सबको सुखों के देने वाले वा आत्म-समर्पक वा करादि देने वाले प्रजाजन को (वीरवन्तं) उत्तम पुत्रों और बलवान् वीर पुरुषों से युक्त (परीणसं) बहुत प्रकार का (रयिं) ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर। और (सूनुमतः) पुत्र पौत्रों से युक्त वा उत्तम शासक से युक्त (नः) हमें (शिशीहि) शासन कर, और शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण कर, बलवान् और तीक्ष्ण बुद्धियुक्त असह्य तेजस्वी बना और उन्नति-पथ पर तीव्र वेग से ले चल। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १, २, ३, ४ अग्निः । ५ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! तू (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान और चित्त से युक्त और (विश्ववेदाः) सब प्रकार के धनों और ज्ञानों का स्वामी होकर (दिवः सूनुः असि) प्रकाश के प्रवर्त्तक सूर्य के समान-ज्ञान-प्रकाश का प्रवर्त्तक और (दिवः सूनुः) ज्ञान प्रकाशयुक्त आचार्य के पुत्र के समान (दिवः सूनुः) विजय कामना वाली सेना का सञ्चालक है। तू (पृथिव्याः तनः) पृथिवी के समान विशाल गुणों वाला, माता का पुत्र वा (पृथिव्याः तनाः) पृथिवी राज्य को विस्तार करने वाला हो। हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू (इह) यहां, इस लोक में, (देवाः) सब धनैश्वर्य व सुख की कामना करने वाले पुरुषों को (यजः) ज्ञान सत्संग आदि उत्तम गुण ऐश्वर्यादि प्रदान कर।

अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् , तेजस्वी पुरुष ! (वीर्याणि) नाना बलों वीर्यों को (सनोति) प्राप्त वा प्रदान करता है। वही (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (भूषन्) तेज और ज्ञान से सबको सुशोभित करता हुआ (अमृताय) अमृत मोक्षसुख, दीर्घायु, उत्तम सन्तति आदि प्राप्त करने के लिये (वाजं सनोति) बल वीर्य, वाणी आदि प्रदान करता है । हे अन्नादि (पुरुक्षो) भोज्य सामग्रियों के स्वामिन् ! तू (नः) हमें (इह) यहां (देवान् आवह) विद्वानों को प्राप्त करा । अथवा (नः देवान् इह आवह) हम इच्छाशील पुरुषों को धारण कर । हमारे शासन का भार अपने ऊपर ले ।

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) प्रकाशमय सूर्य वा विद्युत् या अग्नि-तत्व (अमूरः) कभी नाश न होकर (विश्वजन्ये) सबको उत्पन्न करने वाली और (अमृते) नाश न होने वाली, प्रवाह से वा कारण-रूप से नित्य, (देवी) दिव्य गुणयुक्त, जल अन्नादि देने वाली (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनों को (आभाति) प्रकाशित करता है और वह (पुरु-चन्द्रः) बहुत प्रकार से, बहुतों को सुखी और आह्लादित करने वाला होकर (नमोभिः) अन्नों (वाजैः) प्रकाश वेगादि से (क्षयान्) सर्वत्र व्यापता है । उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानवन् प्रतापशाली पुरुष (अमूरः) कभी मूढ़ न होकर (देवी) उत्तम गुणों से युक्त, कमनीय, (अमृते) दीर्घायु, नाश न होने वाले, (विश्वजन्ये) सबको उत्पन्न करने वाले, सब सुखसम्पदा के उत्पादक (द्यावापृथिवी) पिता माता व ज्ञानी और अज्ञानी और शासक और प्रजावर्ग दोनों को (आ भाति) चमकावे, उनको

प्रकाशित करे, उनके गुणों को प्रकाशित करे। और (नमोभिः) आदर और (वाजैः) ज्ञान, अन्न और वेगयुक्त सेवा शुश्रूषादि कर्मों द्वारा और राजा ऐश्वर्य और संग्रामों द्वारा (पुरुचन्द्रः) बहुतों को आह्लादित करने हारा होकर (क्षयन्) निवास करे और औरों को भी बसावे।

अग्न॑ इन्द्र॑श्च दा॒शुषो॑ दुरो॒णे सु॒ताव॑तो य॒ज्ञमि॒होप॑ यातम्।
अम॑र्धन्ता सोम॒पेया॑य देवा ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! तू (इन्द्रः च) और ऐश्वर्यवान् वा सूर्य के समान अज्ञान का नाशक और शत्रुपक्ष का दलन करने वाला वीर पुरुष दोनों ही (अमर्धन्ता) एक दूसरे का परस्पर नाश या घात-उपघात न करते हुए (देवा) सत्य के प्रकाशक, कामना और कान्ति से युक्त होकर (दाशुषः) दानशील, करप्रद, वा आत्मसमर्पक (सुतवतः) ऐश्वर्य युक्त, समृद्ध प्रजाजन के (दुरोणे) गृह में (सोमपेयाय) ऐश्वर्य के पान अर्थात् उत्तम रीति से प्राप्ति और सेवन के लिये (इह) यहां (यज्ञम्) परस्पर प्रेमभाव और संगति और परस्पर लेने देने के व्यवहार को (उप यातम्) प्राप्त हों। और ज्ञान, प्रेम और ऐश्वर्य की वृद्धि करें। (२) इसी प्रकार उपदेशक, अध्यापक जन (सुतवतः) दानशील पुत्रवान् गृहस्थों के घर में (सोमपेयाय) ज्ञान का पान कर। और (सोमपेयाय) उत्तम शिष्य को प्राप्त कर उसको ब्रह्मचर्यादि व्रत पालन कराने के लिये आवें।

अग्ने॑ अ॒पां समि॑ध्यसे दुरो॒णे नित्यः॑ सूनो सहसो जातवेदः।
स॒धस्था॑नि म॒हय॑मान ऊ॒ती ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र के समान! एवं बल के उत्पादक, सैन्य के प्रेरक! नेतः! हे (जातवेदः) प्रज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामिन्! (अपां दुरोणे)

तू जलों के बीच सूर्य या विद्युत् के समान (अपां दुरोणे) आप्त प्रजाजनों के गृह वा राष्ट्र के बीच में (नित्यः) सदा वर्त्तमान रहकर भी (सधस्थानि) एकत्र होकर रहने योग्य गृहों और लोकों को अपनी (ऊती) रक्षा और ज्ञान से (महयसानः) अलंकृत करता हुआ (समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है । सूर्य, विद्युत् दोनों पृथिवी के स्थानों को (ऊती) अन्न से समृद्ध करते हैं । विद्वान् ज्ञान से, वीर पुरुष रक्षा से । (२) अध्यात्म में—(अपां दुरोणे) प्राणों के गृह इस देह में यह (नित्यः) अविनाशी आत्मा नाना देह के स्थानों को, केन्द्रों को विशेष रूप से अधिष्ठित कर विराजता है इसी प्रकार नित्य परमेश्वर प्रकृति के परमाणुओं वा लोकों के बीच में । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[२६]

विश्वामित्रः । ७ आत्मा ऋषिः ॥ १—३ वैश्वानरः । ४—६ मरुतः । ७, ८ अग्निरात्मा वा । ९ विश्वामित्रोपाध्यायो देवता ॥ छन्दः—१—६ जगती । ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (देवं वैश्वानरं अग्निं हविष्मन्तः गीर्भिः हवन्ते) प्रकाशमान, सबके हितकारी अग्नि को यज्ञ चरु वाले ऋत्विग् लोग प्राप्त कर उसे आहुति देते हैं उसी प्रकार हम (कुशिकासः) सत्य का उपदेश करने हारे विद्वान् जन और शत्रु को ललकारने वाले वीरजन (वसूयवः) आचार्य के अधीन निवास करने वाले ब्रह्मचारी होने की इच्छा करते हुए वा ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (वैश्वानरं) सबको उत्तम मार्ग में चलाने वाले, (अनु सत्यम्) सदा सत्य व्यवहार का अनुसरण करने वाले (स्वर्विदम्) स्वयं सुख, प्रकाश और प्रताप को प्राप्त करने और अन्यों को सुख प्राप्त कराने

हारे, (सुदानुं) उत्तम दानशील, शत्रुभञ्जक, (देवं) तेजस्वी, ज्ञान-प्रकाशक, विजिगीषु (रथिरं) रमणीय ज्ञानवान् वा रथादि के स्वामी, (रण्वं) उपदेष्टा और रण में प्रयाण कुशल, (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष एवं नायक पुरुष को (मनसा) चित्त से और उत्तम यन्त्र-बल से (निचाय्य) पूजित कर वा अलंकृत करके (हविष्मन्तः) बहुत से देने योग्य उपहार पदार्थों को लिये हुए, (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (हवामहे) उसे प्राप्त हों और अपना गुरु व नायक स्वीकार करें। (२) परमेश्वर भी रमणीयस्वरूप वा रसस्वरूप होने से 'रथिर' है। हम प्रेम भक्ति से युक्त होकर वाणियों द्वारा उसकी स्तुति करें।

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम्।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥

भा०—हम लोग जिस प्रकार (अवसे) गति उत्पन्न करने और पदार्थों के सत्यासत्य रूप का ज्ञान करने और कान्ति या प्रकाश के लिये (शुभ्रम्) खूब चमकने वाले (अग्निम् हवामहे) अग्नि को उपयोग में लेते हैं उसी प्रकार हम लोग (अवसे) रक्षा, ज्ञान और कान्ति आदि कमनीय गुणों के लिये (शुभ्रम्) तेजस्वी, शुद्ध कर्मों वाले, (वैश्वानरं) सब नायकों के नायक (मातरिश्वानम्) वायु के आश्रय जीवित अग्नि के समान मातृस्वरूप मातृभूमि के निमित्त प्राण धारण करने वाले और माता अर्थात् उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों के आश्रय एवं उनके निमित्त रहने वाले, (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (बृहस्पतिम्) बड़े वेदज्ञान वाणी और बड़े राष्ट्र के पालक (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूरने वाले, और शिष्यों को विविध ज्ञानों से पूर्ण करने वाले, (श्रोतारम्) श्रवणशील, बहुश्रुत, एवं सबके सुख दुःख निवेदनों को यथावत् सुनने वाले, (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, सर्वोपरि उत्तम आसन पर अध्यक्ष रूप से विराजने वाले (रघुस्यदम्) अतिशीघ्रगामी, तीव्रबुद्धि, (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् और

नायक को (मनुषः) हम मननशील पुरुष मिलकर (देवतातये) उत्तम प्रकाशों और गुणों को पाने और विद्वानों और वीरों के हित के लिये (हवामहे) प्राप्त करें। (२) परमेश्वर शुद्ध होने से 'शुभ्र' है। वह ज्ञानी के हृदय में व्यापक होने से 'मातरिश्वा' है। दया से सबकी सुनने से श्रोता, व्यापक होने से अतिथि, स्वल्पशक्ति जीवों और लोकों को भी वेग से चलाने वाला होने से रघुस्यद है।

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥

भा०—(जनिभिः) स्वयं ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ (कुशिकेभिः) उत्तम उपदेष्टा लोगों द्वारा (अश्वः न) बलवान् अश्व के समान हृष्ट पुष्ट (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का नायक, सबका सञ्चालक पुरुष भी (युगेयुगे) प्रति दिन और प्रति वर्ष (समिध्यते) ज्ञान, बल और तेज द्वारा प्रदीप्त और उत्तेजित उत्साहित किया जाय। (सः) वह (जागृविः) सदा जागरणशील, सावधान (अग्निः) अग्रणी, नायक वा विद्वान् (अमृतेषु) अमृत अर्थात् दीर्घजीवी गुरुओं के अधीन रहकर या (अमृतेषु) अविनश्वर ऐश्वर्यों के निमित्त (नः) हमारे लिये (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, बल से युक्त (सु-अश्व्यम्) उत्तम अश्व आदि सेनाङ्गों सहित (रत्नं) रमणीय धन (दधातु) रक्खे और प्रदान करे। (२) परमेश्वर स्तुतिशील जनों द्वारा प्रति दिन हृदय में प्रकाशित किया जावे। वह उत्तम बल और इन्द्रियों से युक्त, अमृतमय ज्ञानों और आत्माओं में रमणीय सुख प्रदान करे।

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (वाजाः अग्नयः) वेग से गति करने वाली

विद्युतें (तविषीभिः) बलवान् वायुओं से (सम्मिश्लाः) मिलकर (शुभे) जल वृष्टि के निमित्त (प्र यन्ति) चलती हैं और (पृषतीः) सेचन करने वाली मेघमालाओं को (अयुक्षत) सञ्चालित करते हैं और जिस प्रकार (अग्नयः) आगे ले चलने वाले सारथि लोग (तविषीभिः प्र यन्तु) स्थूल बलवती घोड़ियों से आगे बढ़ें और उन (पृषतीः) दृढ़पार्श्व वाली अश्वाओं को (शुभे) उत्तम मार्ग में सञ्चालित करें उसी प्रकार (अग्नयः) अग्रणी नायक पुरुष (वाजाः) बलवान् वेगवान् होकर (तविषीभिः) बलवती सेनाओं के साथ (प्र यन्तु) युद्ध में आगे बढ़ें और (शुभे) शुभ कार्य के निमित्त (सम्मिश्लाः) एक साथ मिलकर (पृषतीः) शत्रु पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाली सेनाओं को, दिव्य शक्तियों को अच्छी रीति से (प्र अयुक्षत) प्रयोग करें। जिस प्रकार (मरुतः) वायुगण (बृहदुक्षः पर्वतान्) बहुत २ जल वर्षाने वाले पर्वताकार मेघों को (प्र वेपयन्ति) कँपा देते हैं उसी प्रकार (विश्ववेदसः) समस्त बातों का ज्ञान कर पता लगाने वाले (मरुतः) वायुसमान वेगवान्, बलवान्, शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिक जन (बृहदुक्षः) बहुत से शस्त्रास्त्र बरसाने वाले होकर (अदाभ्याः) स्वयं परास्त न हो, अजेय होकर (पर्वतान्) राष्ट्रों और सैन्य दलों के पालक बड़े २ अचल योद्धा नायकों को (प्र वेपयन्ति) खूब कँपा देने में समर्थ हों। अध्यात्म में—समस्त ज्ञान-तन्तुओं से युक्त प्राण-गण देह के पोरु २ से युक्त अंगों को सञ्चालित करते हैं। (शुभे) शुद्ध श्वेत जल के तुल्य वर्ण के रुधिर में मिले हुए (अग्नयः) अग्नि के समान रक्त वर्ण के कण (तविषीभिः) बलयुक्त प्राणों से मिलकर देह भर में गति करते हैं और वे मिलकर (पृषतीभिः) देह भर में रस सेचन करने वाली नाड़ियों से (प्र अयुक्षत) प्रेरित होते हैं।

अ॒ग्नि॒श्रियो॑ म॒रुतो॑ वि॒श्वकृ॑ष्टय॒ आ त्वे॒षमु॒ग्रमव॑ ईमहे व॒यम्।
ते स्वा॒निनो॑ रु॒द्रिया॑ व॒र्षनि॑र्णिजः सिं॒हा न हे॒षक्र॑तवः सु॒दान॑वः ॥५॥२६

भा०—जिस प्रकार (मरुतः) वायुगण (अग्निश्रियः) विद्युत् की विशेष शोभा को धारण करने वाले (विश्वकृष्टयः) सब प्रकार की कृषियों को उत्पन्न करने के कारण होते हैं उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् और वायु के समान शत्रु-उच्छेदक वीर पुरुष भी (अग्निश्रियः) अग्नि के समान तीक्ष्ण प्रतापी होने से उसी के समान विशेष तेजस्वी रूप को धारण करने हारे और (विश्व-कृष्टयः) समस्त विश्व को सद्गुणों से अपनी ओर आकर्षण करने हारे हों। (वयम्) हम लोग उनके (उग्रं) उग्र, शत्रु के लिये भयदायक, तीक्ष्ण (त्वेषम्) तेज और (अवः) रक्षण का (ईमहे) याचना करते हैं। (ते) वे (स्वानिनः) मेघ के समान गर्जना करने वाले (रुद्रियाः) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति के अधीन रहने वाले (वर्षनिर्णिजः) जलवर्षी वायु गण के समान शस्त्रवर्षण द्वारा राष्ट्र के शोधक, (सिंहाः न) सिंहों के समान शूरवीर, (हेषक्रतवः) उत्तम हर्ष ध्वनियों और उत्तम प्रज्ञा वा कर्म वाले (सुदानवः) शुभ ऐश्वर्य देने और उत्तम रीति से रक्षा करने वाले हों। (२) विद्वान् पुरुष अग्नि के समान तेजस्वी, सबके चित्तों के आकर्षक, उत्तम उपदेष्टा, वर्षों में बूढ़े, सिंहों के समान हर्षपूर्ण ध्वनि और ज्ञान वाले उत्तम ज्ञानप्रद हों। उनके तेज और रक्षा, ज्ञान की हम सब कामना करें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (व्रातं-व्रातं) प्रत्येक सैन्य दल में और (गणं-गणं) प्रत्येक गण अर्थात् कटक २ में (सुशस्तिभिः) उत्तम स्तुतियों सहित (अग्नेः) अग्रणी नायक पुरुष के (भामं) विशेष तेजों और (मरुताम्) वीर पुरुषों के (ओजः) पराक्रम की कामना करते हैं। वे (धीराः) धैर्यवान्, बुद्धिमान् पुरुष (विदथेषु) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर (पृषदश्वासः) विशेष मृग के समान वेगगामी वा चित्र वर्ण

वा भरे कुक्षि वाले हृष्ट पुष्ट अश्व और (अनवभ्रराधसः) अक्षय धनैश्वर्य बल के स्वामी होकर भी (यज्ञं) परस्पर मैत्रीभाव को (गन्तारः) प्राप्त हों।

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

भा०—जिस प्रकार (जातवेदाः जन्मना अग्निः) अपने स्वरूप को प्रकट करने वाला या प्रत्येक पदार्थ में व्यापक अग्नि उत्पन्न होकर (अग्निः) आगे २ रह कर सन्मार्ग से चलाने हारा होता है उसी प्रकार (जातवेदाः) ज्ञानी और ऐश्वर्यवान् मैं भी (जन्मना) स्वभाव से ही (अग्निः) प्रकाशमान अग्नि के समान अग्रणी, आगे सन्मार्ग का नायक (अस्मि) होऊं। (मे) मेरी आंख अग्नि के प्रकाश के समान मार्ग देखने वाली और (घृतम्) तेज से युक्त हो। (मे आसन्) मेरे मुख में (अमृतम्) अमृत, शुद्ध जल और अन्न हो। जिस प्रकार (अर्कः) सूर्य (त्रिधातुः) तीनों लोकों को धारण करने हारा होता है। और जिस प्रकार (अर्कः त्रिधातुः) अर्क अर्थात् अन्न रुधिर, मांस, अस्थि तीनों को धारण करता है और जिस प्रकार (अर्कः त्रिधातुः) मन्त्र वाणी, मन और काय तीनों के कर्मों को धारण करता है, उसी प्रकार मैं भी (अर्कः) अर्चना या आदर सत्कार योग्य होकर (त्रिधातुः) उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के जनों का धारक पोषक होऊं। (रजसः विमानः) जिस प्रकार अन्तरिक्ष का धारक विशेष रूप निर्माण करने वाला वायु वा लोक समूह का विशेष निर्माता है उसी प्रकार मैं भी (रजसः) प्रजा लोकों के बीच (विमानः) विशेष ज्ञान और मान-आदर से युक्त होऊं (घर्मः) घर्म अर्थात् घाम या सूर्य (अजस्रः) निरन्तर एक सार सर्वत्र एक तेज से चमकता रहता है उसी प्रकार मैं भी (घर्मः) दीप्तियुक्त होकर (अजस्रः) कभी विनाश न होने वाला होकर रहूं। और (हविः)

अन्न के समान सब के ग्रहण करने योग्य स्तुत्य अन्न के समान तृप्ति-तुष्टिकारक (नाम) भी (अस्मि) होऊं।

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य१र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन्।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥

भा०—(त्रिभिः पवित्रैः अर्कं) जिस प्रकार तीन प्रकार के पवित्र करने के साधन प्रकाश, वायु और छाज से अन्न को पवित्र किया जाता है उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य (अर्कं) अर्चना वा ज्ञान करने योग्य अपने आत्मा को भी (त्रिभिः) तीन (पवित्रैः) पवित्र करने वाले साधनों, पवित्र आचरण, पवित्र वचन और पवित्र विचार वा मनन इनसे (अपुपोत् हि) अवश्य पवित्र करे। वह (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर (ज्योतिः अनु) परम ज्योतिःस्वरूप अर्थात् प्रकाशस्वरूप आत्मा के अधीन रहने वाली (मतिं) मननशील बुद्धि या वाणी को या (ज्योतिः अनु मतिम्) ज्ञानप्रकाश के अनुकूल प्रज्ञा को भी (हृदा) अन्तःकरण, हृदय के सहित (अपुपोत् हि) पवित्र करले। (स्वधाभिः वर्षिष्ठं रत्नम् अकृत) जिस प्रकार जलों से ही प्रचुर वृष्टि से युक्त रमण करने योग्य रमणीय दृश्य हो जाता है और जिस प्रकार (स्वधाभिः वर्षिष्ठं रत्नम् अकृत) अन्नों द्वारा वृद्धियुक्त चिरकालिक रमणणीय जीवन का प्रचुर सुखदायक बल वीर्य उत्पन्न किया जाता है। उसी प्रकार (स्वधाभिः) आत्मा की धारण-पोषणकारिणी शक्तियों द्वारा (रत्नम्) उस अतिशय रमण करने योग्य (वर्षिष्ठम्) चिरकाल में विद्यमान पुराण पुरुष ब्रह्म तत्त्व को (अकृत) साधे, (आत् इत्) उसके अनन्तर ही वह (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान परस्पर सम्बद्ध, परमेश्वर और जीव, प्रकाशमान् और प्रकाश रहित, ज्ञानी अज्ञानी और उपकारक और उपकार्य ब्रह्म और प्रकृति इनको (परि अपश्यत्) सब प्रकार से पृथक् २ साक्षात् करता है। (२) तीन पवनों से, अन्न को प्रकाश से, हृदय को ज्ञान से

अपने धारक बलों से प्रचुर ऐश्वर्य को पवित्र करे और फिर हृदय से, ज्ञान से आकाश और पृथिवी के सब पदार्थों का ज्ञान करे।

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९।२७॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञानप्रकाश और अन्न के देने वाले माता पिता जनो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग (शत-धारं) सैकड़ों धाराओं से बरसने वाले मेघ के समान, (शतधारं) सैकड़ों वेदवाणियों से सम्पन्न, (अक्षीयमाणं उत्सम्) कभी क्षीण न होने वाले कूप या स्रोत के समान अक्षय ज्ञान से युक्त, (विपश्चितम्) विद्वान् (वक्त्वानां पितरम्) अध्यापन वा प्रवचन करने योग्य उपदेश वाक्यों के पालक एवं पिता के समान ही उपदेश करने योग्य शिष्यों के पालक (मेडिं मदन्तं) ज्ञान वाणी को उपदेश करने वाले और (पित्रोः उपस्थे) माता और पिता के अति समीप पद पर स्थित (सत्यवाचं) सत्य वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष को (पिपृतं) सब प्रकार से पालन और पूर्ण करो। दान, मान और सत्कारों से पुष्ट करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[२७]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १ ऋतवोऽग्निर्वा । २—१५ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, १४, १५ निचृद्गायत्री । २, ३, ६, ११, १२ गायत्री । ४, ५, १३ विराड् गायत्री पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या।
देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् विद्वान् पुरुषो ! हे सभासदो ! सदस्यो ! (वः) तुम लोगों के (वाजाः) वेगवान् रथ आदि पदार्थ (अभिद्यवः) सब

प्रकार से चमकने वाले और (घृताच्या) दीप्ति से युक्त रात्रि से युक्त (हविष्मन्तः) ग्राह्य प्रकाश वाले, दिनों के समान वा कान्ति और स्नेह से सम्पन्न होकर गतिशील शक्ति से (हविष्मन्तः) ग्राह्य गुणों, वेगादि से पूर्ण हों। और (सुम्नयुः) सुख की अभिलाषा करने वाला पुरुष उन द्वारा (देवान्) दानशील, व्यवहारज्ञ, विद्वान् और प्रेम से चाहने वालों को (जिगाति) प्राप्त हो। (२) हे मनुष्यो (वाजाः) ज्ञानी लोग (हविष्मन्तः) उत्तम अन्न और शिष्यों को उपदेश देने योग्य शास्त्रज्ञान सहित होकर (घृताच्या) दीप्तियुक्त वाणी से विराजते हैं, (सुम्नयुः) सुखाभिलाषी पुरुष उन ज्ञानदाता पुरुषों को प्राप्त हों।

ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्।
श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २ ॥

भा०—(गिरा) वाणी द्वारा ही (यज्ञस्य) ज्ञान प्रदान करने और मैत्री और सत्संग के (साधनम्) करने वाले (विपश्चितम्) उत्तम कर्मों को स्वयं जानने और अन्यों को जनाने वाले विद्वान् (श्रुष्टीवानम्) शीघ्र उद्देश्य तक पहुंचने और पहुंचाने में समर्थ व गुरूपदेशों के श्रवण करने वाले श्रुतिविज्ञ, बहुश्रुत (धितावानम्) सेवन और धारने योग्य ज्ञानादि पदार्थों को धारण करने वाले (अग्निम्) सर्वाग्रगण्य विद्वान् पुरुष का मैं (इळे) स्तुति करूं, उसको हृदय से चाहूं। (२) परमेश्वर वेदवाणी से यज्ञ अर्थात् ज्ञान देने वाला सब ऐश्वर्यों का धारक, सर्वशक्तिमान् है, उसकी मैं स्तुति करूं।

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः।
अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे अग्रणी! हे प्रभो! (देवस्य) ज्ञानद्रष्टा, दाता और विजयेच्छुक (वाजिनः) बलवान् और ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् (ते) तेरे अधीन रहकर हम (यमं) नियम व्यवस्था,

ब्रह्मचर्य पालन और राष्ट्र और देह का संयम करने में (शकेम) समर्थ हो सकें। और (द्वेषांसि) परस्पर के द्वेषों और द्वेष करने वाले शत्रुओं को (अति तरेम) विजय करें।

समिध्यमानो अध्वरे३ग्निः पावक ईड्यः।
शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४ ॥

भा०—(अध्वरे समिध्यमानः) यज्ञ में प्रज्वलित होते हुए (अग्निः) अग्नि के समान (अध्वरे) हिंसारहित कार्य, प्रजापालन, अध्यापन आदि कार्य में (समिध्यमानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (पावकः) अग्नि के समान ही सबके हृदयों को पवित्र करता हुआ (ईड्यः) स्तुति योग्य और सबके चाहने योग्य होता है। वही (शोचिष्केशः) दीप्तियुक्त किरणों को केशों के समान धारण करने वाले अग्नि के समान तेजोमय किरणों से युक्त तेजस्वी होता है। (तम्) उससे ही हम (ईमहे) ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य की याचना करें। (२) परमेश्वर (अध्वरे) अहिंसनीय, अमृत, अविनाशी पद पर विराजता हुआ परमपावन, परमस्तुत्य तेजोमय है उसी की प्रार्थनोपासना करते हैं।

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(घृतनिर्णिक् स्वाहुतः अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्) उत्तम रीति से आहुति पाकर दीप्तस्वरूप अग्नि जिस प्रकार यज्ञ के चरु को ग्रहण करता है उसी प्रकार (पृथुपाजाः) विस्तृत ज्ञान और बलशाली, (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से विशेष (घृतनिर्णिक्) स्नेहमयस्वरूप, (सु आहुतः) उत्तम दान मानादि से पुरस्कृत होकर (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् और तेजस्वी पुरुष (यज्ञस्य) परस्पर के सत्संग, मैत्रीभाव और दान आदि के योग्य, (हव्यवाट्) ग्राह्य पदार्थों और गुणों को

धारण करने में समर्थ होता है। (२) परमेश्वर महान् शक्तिशाली, अमृत, दीप्तिमय, उत्तम पूजा द्वारा जानने योग्य ज्ञानमय, पूजादि सत्कार के द्वारा स्तुतियों को स्वीकार करता है। इति अष्टाविंशो वर्गः ॥

तं स॒बाधो॑ य॒तस्रु॑च इ॒त्था धि॒या य॒ज्ञव॑न्तः ।
आ च॑क्रुर॒ग्निमू॒तये॑ ॥ ६ ॥

भा०—(सबाधः) दुर्व्यसनों और आक्रमणकारी भीतरी और बाहरी शत्रुओं को बाधा देने और पीड़ित करने में समर्थ (यतस्रुचः) यज्ञ चमसों को हाथ में थामने वाले याज्ञिकों के समान अपने उत्तम साधनों, इन्द्रियों और अधीन जनों को नियम में रखने वाले। (यज्ञवन्तः) यज्ञ, दान, सत्संग, परस्पर मैत्री, व्यवस्था के स्वामी पुरुष (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अग्निम्) विद्वान्, अग्रणी पुरुष को (इत्था धिया) इस २ प्रकार की सत्य बुद्धि और कर्म द्वारा (आचक्रुः) अध्यक्ष रूप से नियत करें। (२) उपासनाशील निर्व्यसनी, जितेन्द्रियजन रक्षार्थ ही परमेश्वर को सत्य साक्षात्कार करने वाली मति और योग क्रिया द्वारा (आचक्रुः) साक्षात् करते हैं।

होता॑ दे॒वो अम॑र्त्यः पु॒रस्ता॑देति मा॒यया॑ ।
वि॒दथा॑नि प्रचो॒दय॑न् ॥ ७ ॥

भा०—(होता) दानशील (देवः) विजिगीषु राजा, नायक (विदथानि) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों को (प्रचोदयन्) उत्तम रीति से देता हुआ (मायया) अपने बुद्धि और आज्ञा के बल से (पुरस्तात् एति) सबके आगे चलता है। (२) (देवः होता) विद्वान् ज्ञान प्रकाशक ज्ञानदाता गुरु (विदथानि प्रचोदयन्) ज्ञानों का उपदेश करता हुआ (मायया) बुद्धि के बल से आगे चलता है और पीछे २ शिष्य उसका अनुगमन करते हैं। (३) परमेश्वर (विदथानि प्रचोदयन्) उत्तम ज्ञानों को प्रेरणा करता हुआ (मायया) जीव की निजी बुद्धि

शक्ति से ही (पुरस्तात् एति) उसके आगे साक्षात् ज्ञान का विषय होता है। वह (देवः) सब सुखों का दाता प्रकाशस्वरूप है।

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥

भा०—(यज्ञस्य साधनः वाजी यथा वाजेषु प्रणीयते) संग्राम करने का साधन और संग्राम का विजय करने वाला जिस प्रकार अश्व और अश्व नाम सेनाङ्ग संग्रामों में आगे २ बढ़ाया जाता है उसी प्रकार (अध्वरेषु) हिंसादि दोषों से रहित (वाजेषु) ज्ञानों और बलों के कार्यों में (यज्ञस्य) परस्पर सत्संग में भी भाव और विद्यादि दान की साधना करने वाला, उत्तम रीति से निभाने वाला (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण करने वाला पुरुष ही (धीयते) प्रधान पद पर स्थापित किया जाता और (प्रणीयते) आगे, अग्रासन पर सब कामों में आगे किया जाता है। (२) इसी प्रकार परमेश्वर सब ऐश्वर्यों के प्राप्त्यर्थ सब यज्ञों में सबसे प्रथम स्तुति किया जाता है।

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे।
दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥

भा०—(वरेण्यः) वरण करने योग्य, अतिश्रेष्ठ, गुरु जन (तना धिया) अपनी विस्तृत श्रेष्ठ बुद्धि और ज्ञान आधान करने वाली शिक्षा से (भूतानां) सभी प्राणियों की (गर्भम्) गर्भ के समान रक्षा करने वाले और (दक्षस्य) चतुर विद्यार्थी जन के (पितरं) पिता के तुल्य पालन करने वाले, ज्ञान, सद्गुण स्थापनादि ग्रहणयोग्य शिक्षण (आदधे) प्रदान करे। और (चक्रे) तदनुसार आचरण करे। (२) (वरेण्यः) सूर्य (दक्षस्य = क्षदस्य तना) अन्न को विस्तृत करने वाली भूमि में (भूतानां) उत्पन्न होने योग्य प्राणियों के (गर्भम्) रक्षक, उत्पादक

और पालक अग्नि को धारण सामर्थ्य से उत्पन्न करता और अन्तरिक्ष को जल से गर्भित करता है।

नि त्वा॑ दधे॒ वरे॑ण्यं॒ दक्ष॒स्येळा स॑हस्कृत।
अग्ने॑ सुदी॒तिमु॒शिज॑म् ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) बल के द्वारा उत्पन्न अग्नि के समान (सहःकृत) शत्रु पराजयकारी बल से सम्पन्न, एवं प्रसिद्ध राजन्! (अग्ने) अग्रणी तेजस्विन्! विद्वन्! एवं नायक! (दक्षस्य इडा) दक्ष अर्थात् विद्योपार्जन और धनोपार्जन, सेनासञ्चालन में चतुर, एवं शत्रुपक्ष को भस्म करने वाले पुरुष की (इडा) वाणी, भूमिवासिनी प्रजा, और सर्वोपरि इच्छा (वरेण्यम्) वरण करने योग्य (सुदीतिम्) उत्तम दीप्ति से युक्त, (उशिजम्) शिष्यों को हृदय से चाहने वाले, तेजस्वी (त्वा) तुझको (निदधे) स्थापित करूं। (२) पापदहन करने में समर्थ पुरुष दक्ष है। उसकी स्वाभाविक मानसी प्रवृत्ति मनोभूमि इला है वह उस परम वरणीय तेजोमय, कान्तिमय सर्वप्रिय को भीतर धारण करे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

अ॒ग्निं य॒न्तुर॑म॒प्तुर॑मृ॒तस्य॒ योगे॑ व॒नुषः॑।
विप्रा॒ वाजैः॒ समि॑न्धते ॥ ११ ॥

भा०—(विप्राः) विविध विद्याओं से पूर्ण शिल्पीजन जिस प्रकार (वाजैः) नाना वेगवान् साधनों और चलने वाले चक्र आदि से (यन्तुरम्) सबको नियम में रखने वाले (अप्तुरम्) जलों को शीघ्रता से चलाने या प्रेरित करने वाले अग्नि को (ऋतस्य योगे) जल के सहयोग में (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं और यन्त्रादि चलाते हैं उसी प्रकार (वनुषः) नाना ऐश्वर्यों की अभिलाषा करने वाले (विप्राः) विद्वान् जन (ऋतस्य योगे) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (यन्तुरम्) उत्तम नियन्ता (अप्तुरम्) आप्त प्रजाजनों को सन्मार्ग में चलाने वाले

(अग्निम्) अग्रणी नायक विद्वान् को (वाजैः) नाना ऐश्वर्यों से प्रदीप्त करते, अधिक तेजस्वी और उग्र, बलवान् बनाते हैं।

ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि।
अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥ १२ ॥

भा०—(ऊर्जः) बल, पराक्रम और अन्न-समृद्धि से (नपातम्) कभी प्रजा को च्युत न होने देने वाले, प्रत्युत बल-पराक्रमशील सैन्य को नियम प्रबन्ध में अच्छी प्रकार बांधने वाले (अध्वरे) हिंसारहित, शत्रुओं की सेना को नाश करने योग्य दृष्ट राज्यादि कार्यों में (उप-द्यवि) आकाश या अन्तरिक्ष में सूर्य या विद्युत् के समान राजसभा और उत्तम कोटि की जनसभा में (दीदिवांसम्) प्रकाशित होने वाले (कवि-क्रतुम्) क्रान्तदर्शी विद्वानों की सी प्रज्ञा और कर्म से युक्त, (अग्निम्) ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् को मैं (ईडे) स्तुति करूं, उसके गुणानुवाद करूं, उससे सत्संग, प्रार्थनादि करूं, उसका आदर सत्कार करूं। अथवा—(उपद्यवि) ज्ञानप्रकाश में चमकने वाले वा तृतीयाश्रम वानप्रस्थ में विद्यमान विद्वान् का मैं आदर सत्संगादि करूं।

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) आग (तमांसि तिरः समिध्यते) अन्धकारों का नाश करके स्वयं प्रकाशित होता है उसी प्रकार (वृषा) बलवान् और राज्य प्रबन्ध करने में चतुर राजा और व्रत-बन्ध करने में चतुर विद्वान् (ईडेन्यः) सबके स्तुति करने योग्य, (नमस्यः) सबके द्वारा नमस्कार करने योग्य, (दर्शतः) सबसे दर्शन करने योग्य हो और वह (तमांसि तिरः) सब प्रकार के शोक, दुःखों और शत्रुरूप तिमिरों और अज्ञानान्धाकारों को दूर करता हुआ (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार ज्ञान और तेज से प्रकाशित होता है। (२) परमेश्वर स्तुत्य,

नमस्य, सबका द्रष्टा है वह हृदय से अज्ञानों को दूर करता हृदय में सुखानन्दों की वर्षा करता हुआ हृदय में प्रकाश करे।

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥

भा०—(देववाहनः अश्वः न) जिस प्रकार विजय की कामना करने वाले राजा को अपने ऊपर रखने वाला अश्व वा अश्वसैन्य (वृषद) बलवान् एवं शत्रु पर शस्त्रास्त्र की वर्षा करता हुआ (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार उत्तेजित होता है। उसी प्रकार (देववाहनः) वीर विजयी सैनिकों को अपने साथ युद्ध में ले जाने हारा, (अग्निः) अग्रणी नायक (वृषः) शस्त्रवर्षी, प्रजा पर सुखों की वृद्धि करने वाला वा शत्रुओं का दमन और सैन्य, प्रजा आदि का प्रबन्ध करने हारा होकर (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है। (तं) उसको (हविष्मन्तः) बहुत से अन्न धनादि के स्वामी प्रजाजन (ईडते) स्तुति करते और चाहते हैं। (२) सब उत्तम गुणों, लोकों, विद्वानों को अपने में धारण करने से परमेश्वर 'देववाहन' है। व्यापक होने से 'अश्व' है। (३) प्राणों को धारण करने से देववाहन आत्मा है। भोक्ता होने से 'अश्व' है। ज्ञानवान् पुरुष उसकी स्तुति वर्णन करते हैं। देव अर्थात् द्योतक किरणों या प्रकाशों को धारने से अग्नि, सूर्य आदि भी 'देववाहन' हैं। जलादि सेचन करने से सूर्यादि 'वृषा' हैं।

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (वृषन्) प्रजा पर सुखों और शत्रु पर बाणों की वृष्टि करने हारे बलवान् पुरुष ! हे (अग्ने) अग्रणी ! विद्वन् ! हे सेना नायक ! (वयं) हम भी (वृषणः) बलवान् होकर (बृहत्) बड़े भारी (त्वा वृषणं) तुझ बलवान् (दीद्यतं) प्रकाशमान तेजस्वी को ही (समिधीमहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें। तेरी ख्याति उत्साह बढ़ावें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

विश्वामित्र ऋषिः॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ६ निचृद्गायत्री । ३ स्वराडुष्णिक् । ४ त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ जुष॑स्व नो ह॒विः पु॑रो॒ळाशं॑ जातवेदः ।
प्रा॒तः॒सा॒वे धि॑यावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे (जातवेदः) उत्तम विज्ञान को प्राप्त करने हारे! हे (धियावसो) ज्ञान और उत्तम कर्म या व्रताचरण का पालन करते हुए, अपने अधीन शिष्यों को बसाने वाले आचार्य एवं आचार्य के अधीन स्वयं बसने वाले शिष्य! (प्रातःसावे) प्रातःकल यज्ञ-काल में जिस प्रकार (नः पुरोडाशं हविः) हमारे पुरोडाश को अग्नि अग्निहोत्र काल में लेता है उसी प्रकार तू भी (प्रातःसावे) प्रभात के तुल्य जीवन के प्रथम काल, ब्रह्मचर्य आश्रम में (नः) हमारे (हविः) ग्रहण करने योग्य अन्न के समान ही उपदेशयोग्य (पुरोडाशम्) आगे सन्मुख बैठे शिष्य को देने योग्य ज्ञान को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर अन्यों को ग्रहण करा। (२) कर्म और बुद्धि से वसु धनैश्वर्य का दाता, गृहीता वा कर्मानुसार, प्रज्ञानुसार धन देने वाला स्वामी 'धिया वसु' है। वह आदरपूर्वक दिये गये अन्न, कर आदि को स्वीकार करे।

पु॒रो॒ळा अ॑ग्ने पच॒तस्तुभ्यं॑ वा घा॒ परि॑ष्कृतः ।
तं जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) सब युवा जनों में सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक बलवन्! कार्यकुशल! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! जिस प्रकार (पुरोडाः पचतः परिष्कृतः) आगे रक्खा हुआ, परिपाक किया हुआ, सजा सजाया अन्न आगे रक्खा हो, उसको भोक्ता पुरुष प्रेम से सेवन करता है उसी प्रकार (पुरोडाः) समक्ष स्थित होकर अपने को आत्म-समर्पण करने हारा विद्यार्थी (पचतः)

अपने बुद्धि और देह एवं ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्यादि को परिपक्व करता हुआ (वा घ) निश्चय से (परिष्कृतः) सब प्रकार से तैयार होकर विराजता है। (तं) उसको (जुषस्व) प्रेम से रख।

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम्।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! हे वीर अग्रणी! जिस प्रकार अग्नि (आहुतं पुरोडाशम् तिरः-अह्न्यम्) आहुति किये सायंकाल या सूर्यास्त काल के पुरोडाश को लेता है उसी प्रकार तू भी (तिरः-अह्न्यम्) दिन व्यतीत हो जाने पर (आहुतम्) प्राप्त (पुरोडाशम्) आगे सत्कारपूर्वक दिये हुए अन्न को खा और ज्ञान को प्राप्त कर। इसी प्रकार हे आचार्य! तू तेरे समर्पित शिष्य को सायंकाल होने पर भी (पुरोडाशम्) अपने सदा समक्ष रख कर, (वीहि) रक्षाकर, क्योंकि तू (सहसः सूनुः) बल, वीर्य, ब्रह्मचर्य का उत्तम उत्पादक, प्रेरक उपदेष्टा (असि) है। तुझे ही (अध्वरे हितः) उसके नाश न होने देने के निमित्त स्थापित एवं नियुक्त किया है।

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्! हे (जातवेदः) विज्ञानवन्! तू (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न काल में होने वाले 'सवन' अर्थात् होमादि कर्म, बलिवैश्वदेव आदि के हो चुकने पर (इह) यहां गृह में पुरोडाश को अग्नि के समान ही (पुरोडाशम्) आदरपूर्वक आगे स्थापित अन्न आदि भोज्य द्रव्य को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (विदथेषु) विज्ञानों, संग्रामों, यज्ञों और प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों में से भी (तव यह्वस्य) तुझ महान् एवं शत्रु पर प्रयाण करने वाले राजा के समान विद्या मार्ग या देवयान

ज्ञान मार्ग से जाने वाले का (भागधेयं न प्रमिनन्ति) भाग नष्ट नहीं करते। विद्वान् पुरुष निःसंकोच होकर मध्याह्न-सवन वलिवैश्व होम के अनन्तर अपना अंश प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। (२) आचार्य पक्ष में— 'पुरोडाश' अर्थात् पुरस्थित विद्यादि से अलंकृत शिष्य को माध्यंदिन सवन अर्थात् २४ से ३६ वर्ष की आयु तक के काल में भी प्रेम से रक्खें। ज्ञानों के ग्रहण के अवसरों में अपने (भागं) प्रेम से सेवा करने वाले को धीर पुरुष विनष्ट नहीं करते। (३) राजा का मध्यदिन सवन, सूर्य के समान अति प्रचण्ड ताप से शत्रु से संग्राम करने का अवसर है। उस समय भी वह उपायन, भेंट आदि प्रजा से ले, प्रजाएं राजा के उचित भाग का नाश नहीं करें।

अग्ने॑ तृ॒तीये॒ सव॑ने॒ हि कानि॑षः पुरो॒ळाशं॑ सहसः सूनवाहु॑तम् ।
अथा॑ दे॒वेष्व॑ध्व॒रं वि॑प॒न्यया॒ धा रत्न॑वन्तम॒मृते॑षु॒ जागृ॑विम् ॥५॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक, वीर्य के उत्पादक ! एवं बलवान् पुरुष के पुत्र एवं शिष्य ! (अग्ने) विद्वन् ! तेजस्विन् ! तू (आहुतम्) आहुति किये अन्न के समान ही आदरपूर्वक प्रदान किये हुए (पुरोडाशं) आगे रखे हुए अन्नादि पदार्थ को (तृतीये सवने हि) तृतीय, सर्वश्रेष्ठ सवन-काल में भी (कानिषः) भली प्रकार चाह। (अथ) और (अमृतेषु) दीर्घायु चिरंजीव (देवेषु) विद्या की कामना करने वाले शिष्य जनों में (विपन्यया) विविध प्रकार से उपदेश करने योग्य वाणी द्वारा (रत्नवन्तम्) उत्तम ज्ञान से युक्त (जागृवि) सदा जागरणशील, सदा सावधान शिष्य को (अध्वरम्) यज्ञ के समान कभी नष्ट न होने वाला वा अहिंसादि व्रतनिष्ठ बनाकर (धाः) धारण कर। उसको पाल, पुष्ट कर।

अग्ने॑ वृधा॒न आहु॑तिं पुरो॒ळाशं॑ जातवेदः ।
जु॒षस्व॑ ति॒रोअ॑ह्न्यम् ॥६॥३१॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानवन्! ऐश्वर्यवन्! (अग्ने) विद्वन्! अग्रणी नायक! तू (वृधानः) स्वयं बढ़ता हुआ, (आहुतिम्) आहुति को अग्नि के समान (पुरोडाशम्) अन्न को और आगे समर्पित शिष्य को (तिरः-अन्ह्यम्) अतीत दिनों में कुशल, योग्य शिष्य वा भृत्य को (जुषस्व) अपने समीप रख। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[२९]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १—४, ६—१६ अग्निः। ५ ऋत्विजोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्। ४ विराडनुष्टुप्। १०, १२ भुरिगनुष्टुप्। २ भुरिक् पङ्क्तिः। १३ स्वराट् पङ्क्तिः। ३, ५, ६ त्रिष्टुप्। ७, ८, १६ निचृत् त्रिष्टुप्। ११, १४, १५ जगती ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम्।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥

भा०—अग्नि की उत्पत्ति के समान प्रजा और आत्मा के शरीर-धारक उत्पन्न होने का वर्णन। (अधिमन्थनं प्रजननं विश्पत्नीम्) जिस प्रकार अग्नि को मन्थन द्वारा उत्पन्न करने के लिये 'अधिमन्थन' अर्थात् मन्थन दण्ड के ऊपर रखने का काष्ठ होता है उसी प्रकार (प्रजननं) मन्थन दण्ड के नीचे का काष्ठ 'प्रजनन' अर्थात् अग्नि-उत्पादक काष्ठ (कृतम्) बनाया जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर ने ही (इदम्) यह पुरुष-शरीर (अधिमन्थनम्) स्त्री के हृदय को मथन कर देने वाले भावों पर अधिकार करने वाला, उनका लक्ष्यरूप (कृतम् अस्ति) बनाया है। और (इदम्) यह विशेष अङ्ग भी परमेश्वर ने ही (प्रजनने) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का साधन (कृतम्) बनाया है। हे मनुष्य तू (एताम्) उस, दूर देश में विद्यमान अथवा (आ-इताम्) स्वयं इच्छा पूर्वक प्राप्त (विश्पत्नीम्) गर्भ में प्रविष्ट प्रजाओं को भलीभांति पालन

करने में समर्थ स्त्री को (आ भर) उत्तम रीति से प्राप्त कर और (आ भर) सब प्रकार से पालन पोषण कर। (पूर्वथा) हम लोग पूर्व पुरुषों के समान ही, जिस प्रकार (अग्निं मन्थाम) मथन, घर्षण द्वारा अग्नि या विद्युत् को उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार (अग्निम्) आगे भविष्य में प्राप्त होने योग्य और अगले वंश के चलाने वाले पुत्र को (मन्थाम) 'मथन' अर्थात् एक दूसरे के हृदयादि को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करें। (२) अध्यात्म में 'प्राण' अधिमन्थन है, 'अपान' प्रजनन काष्ठवत् है। भीतर प्रविष्ट आत्मा या प्राणगण की पालिका या उनकी ग्राह्य विषयों तक जाने वाली बुद्धि या चेतना विश्पत्नी काष्ठ के समान है उनसे प्रकाशमय आत्मा का प्राणायामादि साधनों द्वारा प्रादुर्भाव करें (३) राष्ट्रपक्ष में—शत्रु मथनकारी सैन्य 'अधिमन्थन' है। स्वराष्ट्र उत्तम प्रजा को उत्पन्न करने वाला 'प्रजनन' है। प्रजाओं का पालन करने वाली नीति, या राजसभा विश्पत्नी है। इसके आश्रय पर सब राजकर्त्ताजन अपने अग्रणी को परस्पर विचार-संघर्षों के द्वारा प्राप्त करें।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥ २॥

भा०—(गर्भिणीषु) गर्भिणी स्त्रियों में (गर्भः इव) जिस प्रकार गर्भ (सुधितः) अच्छी प्रकार धारण किया होता है और जिस प्रकार (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थ में विद्यमान व्यापक अग्नि भी (अरण्योः) दो अरणी नामक काष्ठों में गुप्त रूप से स्थित रहता है। उसी प्रकार (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न वा प्रसिद्ध पदार्थों को जानने वाला विद्वान् (अरण्योः) अति अधिक उत्तम मार्ग में ले जाने वाले माता पिता, गुरुजनों के अधीन (निहितः) नियमपूर्वक रक्खा जाकर और (गर्भिणीषु) अपने भीतर उसको सब प्रकार से गर्भ के समान सुरक्षित रखने वाली माताओं के समान विद्याओं के बीच गर्भ के समान ही

(सुधितः) सुखपूर्वक उपदिष्ट होकर (दिवे दिवे) दिन प्रतिदिन (जागृवद्भिः) जागरणशील, अति सावधान (हविष्मद्भिः मनुष्येभिः) अग्नि को जिस प्रकार हवि चरु वाले ऋत्विज् उपासते हैं उसी प्रकार (हविष्मद्भिः) ग्राह्य ज्ञानों वाले (मनुष्येभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (ईड्यः) उपदेश करने योग्य है। (२) इसी प्रकार यह आत्मा, जीव जो (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान है वह (अरण्योः) खूब सुप्रसन्न दम्पतियों के बीच विद्यमान रहता है। गर्भिणी माताओं द्वारा धारण किया जाता है। उत्पन्न हो जाने पर जागरणशील सावधान पुरुषों द्वारा गर्भ में रक्षा किया जाने योग्य होता है।

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३ ॥

भा०—(चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर हे पुरुष ! (उत्तानायाम्) उत्तान लेटी भूमिरूप स्त्री में (अव भर) वीर्य आधान कर। वह (प्रवीता) उत्तम रीति से कान्तिमती पति से संगत होकर (सद्यः) शीघ्र ही (वृषणं) बलवान् हर्षदायक पुत्र को (जजान) उत्पन्न करे। (अस्य पाजः) इस पुरुष का वीर्य ही (रुशत्) दीप्तियुक्त और (अरुषस्तुपः) उज्वल स्तुति योग्य होकर (इडायाः वयुने) भूमिरूप माता के अन्तरंग भाग में (पुत्रः) पुत्र रूप में (अजनिष्ट) प्रकट होता है। (२) उसी प्रकार (उत्तानायाम्) उतान विस्तृत भूमि में विद्वान् पुरुष बीजवपन करे, वह (प्रवीता) अच्छी प्रकार बोई जाकर (वृषणं) बलयुक्त अन्न को उत्पन्न करती है। उसका (पाजः) अन्न (रुशत्) उज्वल पीत वर्ण और (अरुषस्तूपः) उज्ज्वल वर्ण अन्न होकर भूमि के पुत्र के समान इसके ऊपर उत्पन्न होता है। (३) अग्नि के पक्ष में— नीचे अधरारणि होती है उसमें अग्नि विद्या का ज्ञाता मन्थन-दण्ड धरे। वह बलपूर्वक रगड़ी जाकर बलयुक्त अग्नि को उत्पन्न करती

है। (अस्य पाजः) इस अग्नि का तेज (रुशत्) उज्ज्वल देदीप्यमान होता है। और (अरुषस्तूपः) उज्ज्वल तेज समूह युक्त अग्नि (इडायाः पुत्रः) उत्तर वेदी के पुत्र के समान ही (वयुने) अरणि के छिद्र में उत्पन्न होता है। विद्वान् शिष्य के पक्ष में—हे विद्वान् गुरो! तू (चिकित्वान्) स्वयं ज्ञानवान् होकर शिष्य की 'उत्ताना' अर्थात् ज्ञानोन्मुख बुद्धि में ज्ञान स्थापित कर। वह (सद्यः) शीघ्र ही (प्रवीता) उत्तम ज्ञान से युक्त होकर शिष्य को बलवान् बना देती है। वह (अरुषस्तूपः) देदीप्यमान तेजःसंघ से युक्त वा रोषरहित एवं स्तुत्य होकर (इडायाः पुत्रः) वाणी के पुत्र के समान शिष्य आचार्य के (वयुने अजनिष्ट) विज्ञान में भी कुशल हो जाता है। राष्ट्रपक्ष में—उत्सुक प्रजा के बीच विद्वान् जन ऐश्वर्य प्राप्त करावे। वह तेजस्विनी होकर नायक को बलवान् बनाती है। वह तेजस्वी होकर मातृ-भूमि के पुत्र के समान (वयुने) अन्तरिक्ष में वायु के समान बलवान् एवं ज्ञान और कर्म में कुशल हो जाता है।

इळायास्त्वा पुदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! हे (जातवेदः) विद्वन्! हे ऐश्वर्यवन् (पृथिव्या नाभा अधि) पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष के बीच में (हव्याय वोढवे) ग्रहण करने, चलाने के लिये जिस प्रकार महान् सूर्य है उसी प्रकार (इळायाः पदे) भूमि के सर्वोच्च शासक पद पर और (इळायाः पदे) वाणी के उत्तम ज्ञान के निमित्त (पृथिव्या नाभा अधि) पृथिवी राज्य के केन्द्र में और विस्तृत नगर भूमि के बीच (त्वा) तुझको (हव्याय) कर और ऐश्वर्य के रूप में स्वीकारने योग्य राज्य को (वोढवे) वहन करने के लिये (त्वा निधीमहि) तुझे स्थापित करें। इसी प्रकार हे (जातवेदः) विद्याओं में निष्णात! तुझको (हव्याय वोढवे) प्रदान योग्य

ज्ञान कोष के धारण करने और अन्यों तक पहुँचाने के लिये (नि धीमहि) नियुक्त करते हैं।

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥३२॥

भा०—(यज्ञस्य पुरस्ताद् अग्निं यथा मन्थन्ति जनयन्ति च) जिस प्रकार यज्ञ के पूर्व याज्ञिक लोग अग्नि का मथन करते और उसको प्रकट कर लेते हैं उसी प्रकार हे (नरः) श्रेष्ठ, नायक पुरुषो ! आप लोग (कविम्) क्रान्तदर्शी (प्रचेतसम्) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले (अमृतम्) अविनाशी, दीर्घायु (सुप्रतीकम्) उत्तम विश्वासपात्र और शुभ सुन्दर रूपवान् (अद्वयन्तं) दो प्रकार का रूप न प्रकट करने वाले, भीतर बाहर, मन और वाणी और कर्म में एक समान आचरण करने हारे निष्कपट पुरुष को (मन्थत) मथ कर दूध में से मक्खन के समान और काठों में से अग्नि के समान सामान्य प्रजागण में से सर्वश्रेष्ठ सारवान् पुरुष को खूब वादविवाद, विचार के बाद यत्न से प्राप्त करो। हे (नरः) श्रेष्ठ पुरुषो ! आप उसको ही (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर के सुसंगत जन-समाज की ध्वजा के समान आदरणीय और मान ज्ञान का बतलाने वाला (प्रथमम्) सबसे मुख्य (सुशेवम्) उत्तम सेवादि सुखों से युक्त (पुरस्तात्) सबके आगे २ (अग्निम्) अग्रणी मार्गदर्शक के समान (जनयत) बनाओ। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (बाहुभिः मन्थन्ति) बाहुओं से रासें पकड़ कर अश्व को जब मथते, मथने के समान झटके लगाते हैं और तब (अश्वः न वाजी) वेगवान् अश्व जिस प्रकार (अरुषः) मर्म स्थानों पर ताड़ित होकर (विरोचते) विविध रूप में उछलता, कूदता, भागता है इसी प्रकार जब अग्नि को

वाहुओं से मथते हैं तव भी (अश्वः) वह व्यापक अग्नि (अरुषः) सब प्रकार चमकता हुआ (वाजी) वेगवान् होकर (वनेषु विरोचते) किरणों और काष्ठों में विशेष रूप से चमकता है उसी प्रकार (यदि) जब (वाहुभिः) वाधित वा पीड़ित करने वाली सेनाओं से शत्रुओं को (मन्थन्ति) मथन या विनाश करते हैं तव (वाजी) संग्राम करने में कुशल पुरुष (वनेषु) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के निमित्त वा सैन्य दलों के बीच (अरुषः) तेजस्वी या रोषरहित होकर (विरोचते) विशेष रूप से चमकता और सर्वप्रिय होता है। (अश्विनोः यामन् चित्रः न) दिन रात्रि के प्रहरों में जिस प्रकार सूर्य (अनिवृतः) अबाधित होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति) घासों को ताप से झुलसाता हुआ तीव्र ताप से ही मेघों को सर्वत्र छादित करता है और जिस प्रकार (अश्विनोः चित्रः न) अश्व के स्वामी रथी और सारथी दोनों का चित्र गति से जाने वाला अश्व (यामन्) मार्ग में (अनिवृतः) अबाधित होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति) तुच्छ घासों को खाता हुआ भी शत्रु के हथियारों को चीर कर निकल जाता है और जिस प्रकार अग्नि (अश्विनोः यामन् चित्रः) दिन रात्रि के कालों में अद्भुत रूप होकर (तृणा दहन् अश्मनः परिवृणक्ति) तिनकों को जलाता हुआ पत्थरों को तड़का देता है उसी प्रकार वीर तेजस्वी पुरुष भी (अश्विनोः) अश्व सैन्य के स्वामी स्वपक्ष और परपक्ष, दोनों के (यामन्) संयमन या वश करने में (चित्रः) अद्भुत कुशल होकर (अनिवृतः) किसी से भी बाधित न होकर (तृणा दहन्) तृणकों के समान तुच्छ वा हिंसाकारी शत्रु सैन्यों को अग्नि के समान भस्म करता हुआ (अश्मनः) शस्त्रों आयुधों को (परि वृणक्ति) छिन्न भिन्न कर देता है।

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥

भा०—(जातः अग्निः रोचते) उत्पन्न होकर अग्नि जिस प्रकार प्रकाशित होता है और (हव्यवाहम् अध्वरेषु अदधुः) चरु को ग्रहण करने में समर्थ प्रज्वलित अग्नि को यज्ञों में आधान करते हैं। उसी प्रकार (जातः) प्रकट होकर (अग्निः) अग्रणी, नायक विनयशील ज्ञानी पुरुष (चेकितानः) अन्यों को ज्ञान देता और स्वयं ज्ञानवान् होता हुआ (वाजी) ऐश्वर्य और ज्ञान से सम्पन्न होकर, (विप्रः) मेधावी (कविशस्तः) क्रान्तदर्शी, विद्वानों द्वारा शिक्षित और उत्तम प्रकाशित (सुदानुः) ज्ञान और धन का दाता होकर (रोचते) सब को प्रिय लगता है। (देवासः) विद्वान् और उसकी कामना करनेहारे मित्र राजा जन (यं) जिस (विश्वविदं) सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता (ईड्यं) स्तुतियोग्य, पृथ्वी राज्य के योग्य (हव्यवाहम्) ऐश्वर्य के धारक श्रेष्ठ पुरुष को (अध्वरेषु) यज्ञों और संग्रामों तथा अन्य उत्तम कार्यों पर (अदधुः) अध्यक्ष रूप से स्थापित करते हैं।

सीदं होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (होतः) सुख और ज्ञान के देनेहारे विद्वन् ! तू (स्वे लोके उ) अपने आत्मदर्शन में ही (सीद) प्रसन्न होकर विराज। तू अध्यात्म दर्शन में प्रतिष्ठा प्राप्त कर। तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (यज्ञं) अपने इष्ट आत्मा या स्वाध्यायादि यज्ञ वा आत्मसमर्पणादि कार्य को (सुकृतस्य) उत्तम धर्म कर्म के (योनौ) परम योनि अर्थात् कारण वा आश्रय परमेश्वर या शास्त्र में (सादय) स्थापित कर। तू (देवावीः) देव अर्थात् ज्ञानों को देने वाले इन्द्रिय गणों की रक्षा करता हुआ, जितेन्द्रिय होकर (देवान्) इन प्राणों को (हविषा) अन्न वा ज्ञानोपाय से (यजासि) वश कर। हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (यजमाने) तेरे से संगति करने वाले, तुझसे प्रेम करने वाले, तुझे सब सुखों के देने वाले प्रभु

में ही तू (बृहत् वयः) अपना जीवन (धाः) प्रदान कर अथवा तू दान-शील मित्र, सत्संगी वा शिष्य में अपना बड़ा ज्ञान प्रदान कर। (२) राजा अपने ही राष्ट्र में विराजे, उत्तम धर्म के आश्रय पुरुषों में सत्संगादि करे। विद्वानों का रक्षक होकर अन्न को अन्नादि से सत्कार करे, आत्मसमर्पक करादि देने वाले प्रजाजन से बहुत बड़ा बल स्थापित करे।

कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥९॥

भा०—(येन) जिस द्वारा (देवासः) विद्वन् वीर लोग (दस्यून्) प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट शत्रुओं को (असहन्त) पराजित करते हैं (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी वीर पुरुष (पृतनाषाट्) शत्रु सेनाओं को पराजित करने हारा (सुवीरः) उत्तम वीर, वीर्यवान् हो। ऐसे ही (धूमं) शत्रुओं को कंपा देने वाले (वृषणं) बलवान् पुरुष को (कृणोत) अपने में उत्पन्न करो और हे (सखायः) मित्रगण! आप लोग (अस्रेधन्तः) नाश को न प्राप्त होते हुए सदा बलशाली बनो (वाजम्) संग्राम में (अच्छ इतन) अपने शत्रु पर जा बढ़ो। (२) हे विद्वान् शिष्य जनो! आप लोग ज्ञान के वर्षक अज्ञान के नाशक पुरुष को आश्रय करो। अपने वीर्य का नाश न करते हुए, ब्रह्मचारी रहकर (वाजं) ज्ञान को प्राप्त करो। यह ज्ञानी सब मनुष्यों में सहनशील, तपस्वी, (सु-वि-इरः) उत्तम विविध विद्याओं का उपदेष्टा है, जिसके द्वारा विद्या की कामनावाले जन काम क्रोधादि आत्म-नाशक भावों को पराजित करते हैं। आत्मा परमात्मा और योगी पक्षमें—वे असङ्ग, ज्ञान निर्धूत कल्पश होने से धूम, ज्ञान सुख वर्षक धर्ममेघ से 'वृषभ' हैं। शेष स्पष्ट है।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! (ते) तेरा (अयं) यह (योनिः) घर (ऋत्वियः) सब ऋतुओं के अनुकूल सुखदायी हो। (यतः) जिसमें प्रकट होकर तू (अरोचथाः) सबका प्रेमभाजन हो। हे विद्वन् विनीत! शिष्य (अयं) यह आचार्य या गुरुगृह ही (ते ऋत्वियः योनिः) तेरे लिये सत्यज्ञान प्राप्त करने योग्य वा प्राणों के बल वृद्धि योग्य (योनिः) निवासस्थान है (यतः जातः) जिसमें से तू विद्यासम्पन्न होकर (अरोचथाः) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से चमक। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू यहां (तम्) उस परमेश्वर को (जानन्) जानता हुआ (आसीद) यहां उत्तमासन पर आदर पूर्वक विराज (अथ) और (नः) हमारी (गिरः) उत्तम वेद-वाणियों की वृद्धि कर। (२) आत्मारूप अग्नि के लिये यह देह (ऋत्विया) प्राणों के निवास योग्य उत्तम गृह है। आत्मा इसमें प्रकट होकर नाना रुचि प्रकट करता है। उस परम प्रभु को जानता हुआ वह उत्तम लोक में विराजे और हम स्तोत्रकों की स्तुतियों की वृद्धि करता है। (३) राजा के लिये यह सभाभवन (ऋत्वियः) ऋतु अर्थात् राजसदस्योचित घर है। जिसमें वह तेजस्वी होकर विराजता है। वह उस पद का विशेष रूप से ज्ञान करके आसन पर विराजे और हमारी उत्तम वाणियों या प्रार्थनाओं को अधिक समृद्ध करे। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

तनूनपा॑दुच्यते॒ गर्भ॑ आसु॒रो नरा॒शंसो॑ भवति॒ यद्वि॒जाय॑ते।
मा॒त॒रिश्वा॒ यदमि॑मीत मा॒तरि॒ वात॑स्य॒ सर्गो॑ अभव॒त्सरी॑मणि॥११॥

भा०—यह अग्नि (तनूनपात्) जिसका व्यापक रूप कभी नाश को प्राप्त नहीं होता है इसीलिये 'तनूनपात्' कहा जाता है। अथवा वह सब प्राणियों के भीतर प्राण रूप से रहकर देहों को गिरने नहीं देता इसलिये 'तनूनपात्' कहाता है। वही (गर्भः) सबके भीतर गर्भ में बालक के समान प्रसुप्तवत् रहने से 'गर्भ' कहाता है। वही (आसुरः) असुर अर्थात् प्रकाश से रहित वायु के आश्रय उत्पन्न होने से 'आसुर' कहाता

है। वह ही (नराशंसः) बहुत से विद्वान् पुरुषों से शिष्यों के प्रति विद्युत् आदि रूप में उपदेश करने योग्य होने से 'नराशंस' हो जाता है। (यत्) जो (विजायते) इस प्रकार से नाना रूपों में प्रकट होता है। और (यत्) जो (मातरि) अपने ही निर्माण करने या उत्पन्न करने वाले में या आकाश में (अमिमीत) विद्युत् रूप से शब्द करता है इसलिये वह (मातरिश्वा) 'मातरिश्वा' कहाता है। और इस अग्नि के (सरीमणि) वेग से चलने पर (वातस्य सर्गः) वायु की उत्पत्ति (अभवत्) होती है अथवा (वातस्य सरीमणि सर्गः अभवत्) वायु के वेग से चलने पर इस अग्नि की उत्पत्ति होती है। अथवा यह विद्युत् रूप अग्नि (आसुरः गर्भः) जब मेघ के गर्भ में विद्यमान रहता है तब वह (तनूनपात् उच्यते) व्यापक जलों को भी नीचे न गिरने देने से या जलों के बीच में स्वयं न गिरने से 'तनूनपात्' कहाता है (यद्) जब वह (विजायते) विशेप दीप्ति से प्रकट होता है। (नराशंसः भवति) मनुष्य भी उसका वर्णन करते हैं इसलिये वह 'नराशंस' कहाता है। और (यत्) जब (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में श्वास के समान वेग से चलने वाला वायु (मातरि) अन्तरिक्ष में (अमिमीत) इस अग्नि-विद्युत् को उत्पन्न करता है तब (वातस्य सरीमणि) प्रबल वायु के चलने पर ही (सर्गः अभवत्) जल वृष्टि होती है। (२) विद्वान् के पक्षमें—असुर अर्थात् मेघ के समान दोषों को दूर करने वाले आचार्य के अधीन जब (गर्भः) गृहीत गर्भ के समान सुरक्षित ब्रह्मचारी होता है तब वह 'तनु' अर्थात् शरीर से वीर्य क्षरित या स्खलित न होने देने वाला ब्रह्मचारी 'तनूनपात्' कहाता है। और जब (विजायते) विशेप रूप से विद्यावान् होकर आचार्य-कुल में उत्पन्न हो जाता है तब (नराशंसः) उत्तम पुरुषों द्वारा उपदेश योग्य होने से 'नराशंस' कहाता है। जब वह (मातरि) माता के समान उत्पादक ज्ञानदाता विद्वान् आचार्य के अधीन (अमिमीत) विशेप रूप से विद्या

का अभ्यास करता, अपने में ज्ञान प्राप्त करता है तब वह (मातरिश्वा) ज्ञानी आचार्य के अधीन अपने आपको समर्पण करने से 'मातरिश्वा' कहाता है। यह शिष्य की इस प्रकार की (सर्गः) सृष्टि या उत्पत्ति (वातस्य) ज्ञानवान् पुरुष के (सरीमणि) संगति लाभ करने पर ही (अभवत्) होती है, अन्यथा नहीं।

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥

भा०—(सुनिर्मथा) उत्तम मन्थन दण्ड से (निर्मथितः) मथा हुआ अग्नि उत्तम स्थान पर स्थापित होकर जिस प्रकार (सु-अध्वरा) उत्तम व्यवहारों में (देवान् करोति यजते च) उत्तम २ व्यवहारों को उत्पन्न करता और उत्तम फल भी देता है उसी प्रकार (कविः) क्रान्त-दर्शी विद्वान् (सुनिर्मथा) उत्तम शास्त्रालोडन रूप तप से (निर्मथितः) विशेष रूप से मथित हो, सुतप्त होकर वा पूर्ण ज्ञान रूप सार प्राप्त करके (सुनिधाः) उत्तम स्थान पर नियुक्त किया जावे। इसी प्रकार नायक भी उत्तम २ परीक्षाओं से परीक्षित होकर उत्तम पद पर नियुक्त हो। हे (अग्ने) अग्रणी नायक और हे विद्वन्! तू (देवान्) विद्वान् अपने ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों को (सु-अध्वरा) शोभन, विनष्ट न होने वाले, स्थिर कार्यों में (कृणु) लगा और उन कार्यों में अपने उत्तम गुणों को प्रकट कर। (देवयते) शुभ गुणों की कामना करने वाले को यज्ञ में उत्तम गुण प्रदान कर।

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम्।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३

भा०—(मर्त्यासः) मनुष्य नायक को (अस्रेमाणम्) शत्रुओं द्वारा शोषण किये जाने योग्य (तरणिं) संकटों से पार उतारने में समर्थ (वीडुजम्भम्) बलवान् हिंसाकारी सैन्य बलों से युक्त,

(अजीजनन्) बनावें । और (दस) दसों दिशाओं की प्रजाएं सेनाओं वा (स्वसारः) स्व-अर्थात् धन का लक्ष्य करके आने वाली, स्वयं उसके शरण आने वाली (अग्रुवः) आगे आकर (समीचीः) एक साथ उसका आदर करती हुई (जातम् पुमांसं) उत्पन्न हुए पुत्र को बहिनों के समान प्रेम से उस (जातं पुमांसम्) प्रसिद्ध वा प्रकट हुए वीर पुरुष को (अभि सं रभन्ते) सब ओर से प्राप्त करें और प्रसन्न हों ।

प्र सुप्त होता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिंपति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार अग्नि (सप्तहोता) सातों प्राणों से सात ऋत्विजों के समान ग्रहण करने योग्य (सनकात्) अपने सनातन मूलकारण से उत्पन्न होकर (अरोचत) प्रकाशित होता है और जो (मातुः उपस्थे) अपने उत्पादक निमित्त भूत वायु के समीप और (ऊधनि) रात्रिकाल वा अन्तरिक्ष में (अशोचत्) चमकता है अथवा जो सूर्य रूप में सात रश्मियों द्वारा जल ग्रहण करने हारा, सनातन चिरकाल से चमक रहा है और जो (मातुः) आकाश के बीच (ऊधनि) मेघ में विद्युत् रूप से चमकता है (यत्) जो अग्नि (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सुरणः) उत्तम ध्वनि करता हुआ (न निमिषति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता और जो (असुरस्य) बलवान् प्रभञ्जन वायु के (जठरात्) मध्य से (अजायत) प्रकट होता है । अथवा—(सुरणः) सुख से या उत्तम रूप से गमन करने वाला सूर्य (दिवे दिवे) प्रतिदिन (न निमिषति) कभी अस्त नहीं होता (यत्) जो विद्युत् रूप से (असुरस्य) मेघ के (जठरात्) मध्य भाग से उत्पन्न होता है । उसी प्रकार (मातुः उपस्थे ऊधनि) माता का गोद स्तनों पर पलते बालकवत्, मातृ-पृथिवी के ऊपर उत्तम ऐश्वर्य पद पर (अशोचत्) विशेष कान्ति से चमकता है और सातों प्राणोंवत् सात प्रकृतियों का वशकर्त्ता सर्वप्रिय होता है

वह उत्तम रमणशाली होकर कभी (न निमिषति) अस्त सूर्यवत् नहीं होता।

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥

भा०—(अमित्रायुधः) शत्रुओं पर अपने शस्त्रों का प्रहार करने में कुशल जो वीर पुरुष (मरुताम्) वायु के समान बलवान् व व्यापारियों के हितार्थ (प्रयाः) आगे बढ़ते हुए (प्रथमजाः) सर्वश्रेष्ठ पद पर स्थित अग्रगण्य होकर (ब्रह्मणः) बड़े भारी राष्ट्रैश्वर्य का (विश्वम्) सर्वस्व (इत्) ही (विदुः) प्राप्त कर लेते हैं वे (कुशिकासः) परस्पर सर्वश्रेष्ठ, सन्धि से सुसम्बद्ध वा व्यवहारकुशल पुरुष (द्युम्नवत्) उत्तम कीर्तियुक्त (ब्रह्म) ऐश्वर्य को (एरिरे) प्राप्त होते हैं और वे (एकः—एकः) एक एक करके भी (दमे) दमन कार्य में (अग्निम्) अपने अग्रणी नायक को ही (सम-एधिरे) सब मिलकर चमकाते, उसके ही तेज, प्रताप और प्रभाव को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार विद्वान् जन अपने भीतरी द्वेष, काम क्रोधादि शत्रुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने हारे सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ, उत्तम पद की ओर जाने वाले (ब्रह्मणः इत् विदुः) परमेश्वर से ही समस्त विश्व को उत्पन्न हुआ जानते हैं या उसीसे समस्त ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे (कुशिकासः) उत्तम ज्ञानोपदेष्टा होकर तेजोयुक्त, यशोयुक्त (ब्रह्म) वेद-वचनों का (ऐरिरे) उच्चारण करते, उपदेश करते हैं। वे एक २ करके (दमे) अपने गृह में और (दमे = मदे) अति हर्ष या प्रसन्नता की दशा में (अग्निं) ज्ञानमय तेजोमय प्रभु को यज्ञाग्नि के समान ही अच्छी प्रकार प्रकाशित करते हैं। उसी के गुणों को अपने में जगाते, उसी को प्रकट करते हैं।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् १६।३४।१।२

भा०—हे (होतः) साधनों, उपसाधनों और राष्ट्र को अपने अधीन ग्रहण करने वाले! हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्! वीर पुरुष! (यत्) जिस कारण से हम लोग (इह) इस और (यज्ञे प्रयति) और प्रयत्नशील, सबके परस्पर संगति से युक्त समुदाय में वा प्रयत्नसाध्य संग्राम आदि कार्य में (त्वा) तुझको (अवृणीमहि) सर्व-श्रेष्ठ पद पर नायक रूप से वरण करते हैं इसलिये तू भी (ध्रुवम्) इस स्थायी पद को (अयाः) प्राप्त कर। (उत) और (ध्रुवम्) इस स्थिर राष्ट्र को (अशमिष्ठाः) शान्तकर। तू (विद्वान्) स्वयं ज्ञानवान् विद्वान् होकर (प्रजानन्) सब कुछ अच्छी प्रकार जानता हुआ (सोमम्) ऐश्वर्य को (उपयाहि) प्राप्त कर। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

इति तृतीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः। इति तृतीये मण्डले द्वितीयोऽनुवाकः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[३०]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ९—११, १४, १७, २० निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६, ८, १३, १९, २१, २२ त्रिष्टुप्। १२, १५ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ७, १६, १८ भुरिक् पङ्क्तिः॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम्॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सूर्य के समान अज्ञानान्धकार के विनाशक विद्वन्! शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने हारे वीर पुरुष वा परमेश्वर! (त्वा) तुझका (सोम्यासः) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य दीक्षा प्राप्त शिष्य और ऐश्वर्य प्राप्ति के इच्छुक एवं नाम पदों पर अभिषेक योग्य जन, (सखायः)

और तेरे समान ख्याति प्रसिद्धि वाले जन (त्वा इच्छन्ति) तुझे चाहते हैं। वे (सोमं) ज्ञान और ऐश्वर्य का (सुन्वन्ति) सम्पादन करते हैं, उसको प्राप्त करने का यत्न करते हैं और (प्रयांसि दधति) उत्तम ज्ञानों, अन्नों और ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। वे (जनानाम्) मनुष्यों के बीच में रहते हुए उनकी की हुई (अभिशस्ति) हिंसा, स्तुति और निन्दा सब कुछ (तितिक्षन्ते) सहन करते हैं। हे इन्द्र ! (त्वत्) तुझसे अधिक (प्रकेतः) उत्कृष्ट ज्ञानवाला (कश्चन हि) कौन है ? तुझ से बड़ा ज्ञानी महामति दूसरा नहीं।

**न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजां॒स्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम् ।
स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने अ॒ग्नौ ॥२॥**

भा०—हे (हरिवः) वेगवान् अश्वों के स्वामिन् ! (ते) तेरे लिये (परमा चित् रजांसि) दूर से दूर के लोक या प्रदेश भी (दूरे न) दूर नहीं है। तू (हरिभ्याम्) वेगवान् अश्वों से (आ प्रयाहि = आयाहि प्रयाहि) आ जा सकता है। (स्थिराय) स्थिर (वृष्णे) बलवान् मेघ के समान ऐश्वर्यादि के वृष्टि करने वाले तेरे लिये (इमा) ये नाना प्रकार के (सवना) ऐश्वर्य और अभिषेकादि कृत्य (कृता) किये जावें। और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी नायक के अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने, एवं तेजस्वी होकर चमकते रहने पर (ग्रावाणः) शत्रुओं को शिलापाटों के समान कुचल देने वाले वीर गण भी (युक्ताः) अधीन रहकर सहयोग करते हैं। (२) हे विद्वन् ! तेरे लिये (परमा रजांसि) परम, सर्वोत्कृष्ट ज्ञान भी दूर, अज्ञेय नहीं है, तू (हरिभ्यां) मन और इन्द्रियों के प्रयोग से उनको प्राप्त कर। स्थिर मति और मनो बन्धन करने में समर्थ तेरे जानने के लिये ही ये (सवना) सब पदार्थ बने हैं तुझ ज्ञानी पुरुष के ज्ञान से प्रकाशित होने पर तेरे अधीन ही ये (ग्रावाणः) स्तुतिशील विद्याभ्यासी जन भी (युक्ताः) मनोयोग दें और विद्या में दत्तचित्त हों।

इन्द्रः॑ सुशि॒प्रो म॒घवा॒ तरु॑त्रो म॒हाव्रा॑तस्तुवि॒कूर्मि॒र्ऋघा॑वान् ।
यदु॒ग्रो धा बा॑धि॒तो मर्त्ये॑षु क्व१॒॑त्या ते॑ वृषभ वी॒र्या॑णि ॥ ३ ॥

भा०—सेनापति पक्षमें—(इन्द्रः) ऐश्वर्य व शत्रु बलों को विदारण करने, फोड़ने फाड़ने वा छेदने काटने और उनके भयभीत करने हारा (सुशिप्रः) उत्तम शोभायुक्त नासिका और जबाड़ों वाला वा उत्तम शोभा युक्त शिरस्त्राण, मुकुट आदि वाला, (तरुत्रः) दुःखों, शत्रु के आक्रमणों, युद्धों से पार उतारने वाला, (महाव्रातः) बड़े सैन्य दलों का स्वामी, (तुविकूर्मिः) बहुत से कर्मकर्त्ताओं का स्वामी वा नाना कर्म करने वाला, (ऋघावान्) शत्रु को मारने वाले नाना शस्त्रों, नाना वीर पुरुषों और शत्रुनाशक शक्तियों और सेनाओं का स्वामी है । हे (वृषभ) बलवन् ! मेघ के समान शत्रुओं पर शस्त्रों और प्रजा पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा करने हारे ! तू (बाधितः) शत्रुओं से संग्रामों में दुष्टों की करतूतों से लाचार होकर राष्ट्र में भी (मर्त्येषु) स्वपक्ष के मारने वाले शत्रुओं, साधारण मनुष्यों के बीच में भी (यत्) जिन २ नाना (वीर्याणि) बलों को (उग्रः) अति भयंकर तेजस्वी होकर (धाः) धारण करता और प्रकट करता है (त्या) वे नाना बल पराक्रम के कर्म (ते) तेरे (क्व) कहां हैं ? यह सब सदा सावधान रहकर जांचता रह । (२) परमेश्वर वा विद्वान् पुरुष (सुशिप्रः) उत्तम ज्ञानवान्, तेजस्वी (तरुत्रः) अज्ञान और भवबन्धन से तारने वाला (महाव्रातः) बड़े व्रतपालकों वा लोकसंघों का स्वामी (ऋघावान्) भीतरी शत्रु 'ऋ' अर्थात् उद्वेगजनक क्रोधादि दुर्भावों को नाश करने वाली शक्ति का स्वामी (इन्द्रः) आत्मद्रष्टा पुरुष और ऐश्वर्यवान् है । तू भयंकर होकर मनुष्यों, मरणधर्मा प्राणियों के बीच (बाधितः) प्रयत्नवान् होकर नाना बलों को प्रदान करता है वे सब तेरे वीर्य बल (क्व) कहां ? किस स्थान पर केन्द्रित—आश्रित हैं ? सर्व संसार की सञ्चालक शक्तियां कहां स्थित हैं ? तेरा सब अगम्य है ।

त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् (अच्युतानि च्यावयन् वृत्रा जिघ्नमानः चरति) न गिरने वाले जलों को नीचे गिराता और मेघस्थ जलों को ताड़न करता हुआ विचरता है उसी प्रकार हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः! सेनापते ! (त्वं हि) तू निश्चय से (एकः) अकेला, अद्वितीय (अच्युतानि) अच्युत, दृढ़, न क्षीण होने वाले, जमकर लड़ने वाले बलवान् शत्रु-सैन्यों को (च्यवयन्) स्थानच्युत करता हुआ, भगाता और गिराता हुआ (वृत्रा) मेघों को वायु विद्युत् या सूर्यवत् बढ़ते हुए शत्रुगण को (जिघ्नमानः) हनन करता हुआ (चरसि) विचरता है। (तव) तेरे (अनुव्रताय) अनुकूल, नियमपूर्वक रहने के लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान ऊपर नीचे विराजमान ज्ञानी, अज्ञानी, पुरुष स्त्री और शास्य शासक, प्रजावर्ग और अध्यक्ष गण, सेनावर्ग और नायकवर्ग और (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के समान शस्त्रवर्षी वीर और पोरु २ और टुकड़ी टुकड़ी से बने सैन्य-व्यूह सभी (निमिता इव) नियम में व्यवस्थित के सदृश (अनु तस्थुः) रहकर तेरे अधीन होकर काम करें। (२) परमेश्वर (एकः अच्युतानि च्यवयन्) एक अद्वितीय होकर गतिरहित, जड़ पांचों भूतों या प्रकृति के परमाणुओं को चला रहा है। वह (वृत्रा) वृद्धिशील महान् ब्रह्माण्डों या चक्रगति से विवर्त्तन करने वाले सूर्यादि लोक और नीहार-मण्डलों (Nelulae) को (जिघ्नमानः) घनीभूत स्थूल सूर्य, पृथिवी ग्रह नक्षत्रादि में पिण्डित करता हुआ (चरसि) सर्वत्र व्यापता और सब को चला रहा है। (द्यावापृथिवी पर्वतासः) सूर्य, पृथिवी और पर्वत वा मेघ आदि पदार्थ भी (तव व्रताय) तेरे व्यवस्था पालन करने के लिये ही मानो (निमिता इव) बहुत नियमपूर्वक रचे जाकर (अनु तस्थुः) तेरी आज्ञानुसार सब काम

करते हैं। अथवा (वृत्रा जिघ्नमानः चरसि) तू विघ्न वा बाधाओं को नाश करता हुआ व्याप रहा है।

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन्।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥५॥१॥

भा०—हे सेनापते ! राजन् ! मेघ या विद्युत् जिस प्रकार (वृत्रहा-सन् श्रवोभिः दृढम् अवदः) मेघों में व्यापता और उनको बलपूर्वक आघात करता हुआ सुनाई देने वाली गर्जनाओं से समस्त प्रजा को अकाल से निर्भय रहने के निमित्त स्थिर रूप से बतला देता है उसी प्रकार तू भी (वृत्रहा) नगर के घेरने, प्रतिद्वन्द्विता में बढ़ने वाले और विघ्नकारी शत्रुओं को विनाश करता हुआ हे (पुरुहूत) बहुत सी प्रजाओं से संकटों में पुकारे जाने योग्य राजन् ! वीर ! (श्रवोभिः) श्रवण करने योग्य घोषणावचनों से (अभये) प्रजा को अभय के निमित्त (दृढम्) दृढता-पूर्वक (अवदः) कह दे, उनकी रक्षा का निश्चय करा दे। (इमे अपारे रोदसी) इन अनधिपति, असीम आकाश और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार सूर्य अच्छी प्रकार वश करता है उसका ही (काशिः) यह सब प्रकाश सर्वत्र व्याप रहा है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (इमे) ये (रोदसी) स्वपक्ष और परपक्ष की सेनाएं जो दुष्टों को रुलाने में समर्थ और एक दूसरे की बाढ़ को रोकने में समर्थ हैं वे दोनों (अपारे) पाररहित, अतिशय विस्तृत हैं। वा (अपारे) उत्तम पालक पुरुष से रहित हैं। उन दोनों को (यत्) जब तू (संगृभ्णाः) अच्छी प्रकार से वश कर लेता है तो हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् परम पूज्य पद के स्वामिन् ! (ते इत्) तेरा ही यह (काशिः) प्रबल, न्यायप्रकाश वा तेज पराक्रम वा प्रबल हाथ वा पुष्टि अर्थात् प्रहार साधन बल और प्रबन्ध साधन शासन है। (२) परमेश्वर और आचार्य अज्ञान नाशक होने से 'वृत्रहा' हैं। वह समस्त जीव संसार को अभय देने के लिये गुरु द्वारा

श्रवण योग्य श्रुतियों, वेदवाक्यों से स्थिर सत्य ज्ञान का उपदेश करता है। (रोदसी) नर नारी दोनों ही पालक वा अज्ञानता से रहित हैं। उनको वह (संगृभ्णाति) अपने अधीन वश करे, उपनयन पूर्वक भली प्रकार शिष्यवत् स्वीकार करे, यह उसी का ज्ञान प्रकाश है जिससे सब ज्ञानवान् हों।

इति प्रथमो वर्गः ॥

प्र सू त॑ इन्द्र प्रवता हरि॑भ्यां प्र ते॒ वज्रः॑ प्रमृ॒णन्ने॑तु शत्रू॑न् ।
ज॒हि प्रती॑चो अनू॑चः परा॑चो विश्वं॑ स॒त्यं कृ॑णुहि वि॒ष्टम॑स्तु ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन् ! (ते वज्रः) तेरा वेगवान् रथ (हरिभ्यां) वेगवान् दो रथों से युक्त होकर (प्रवता) प्रबल वेग से और उत्तम मार्ग से (प्र सु एति) अति उत्तम रूप से आगे बढ़े। और (ते वज्रः) तेरा खड्ग, शस्त्र बल भी (शत्रून् प्रमृणन्) शत्रुओं को अच्छी प्रकार नाश करता हुआ (प्र एतु) आगे बढ़े। तू (प्रतीचः) प्रतिकूल दिशा से आने वा प्रतिपक्षी शत्रुओं को और (अनूचः) कपट वृत्ति से अनुकूल वा पीछे से आक्रमण करने वाले और (पराचः) दूर गये, दूर के शत्रुओं को भी (प्रजहि) आगे बढ़कर मार और तू (विश्वं) सब (सत्यं) यथार्थ बात को (प्र सु कृणु) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर। और यह सत्य (विष्टम् अस्तु) सर्वत्र राष्ट्र में फैले। (२) हे परमेश्वर ! तेरा (वज्रः) गम्य, शरणयोग्य और अज्ञाननाशक ज्ञान हम शिष्यों को कर्म और ज्ञान द्वारा प्राप्त हो। तू बाधक प्रतिपक्षी क्रोधादि व्युत्थानों को अनुकूल सुख रूप से प्राप्त व्यसनों और दूरगत चिरकालिक संस्कारों को नष्ट कर समस्त सत्य का को प्रकाशित करता वा विश्व जगत् को सत् रूप में प्रकट करता है वह सत्य ही सर्वत्र व्यापता है।

यस्मै॒ धायु॒रद॑धा॒ मर्त्या॒याभ॑क्तं चिद्भजते गेह्यं१॒ सः ।
भ॒द्रा त॑ इन्द्र सुम॒तिर्घृ॒ताची॑ स॒हस्र॑दाना पुरुहूत रा॒तिः ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मै) जिस पुरुष को हे ऐश्वर्यवन् ! तू (धायुः) सबको

धारण पोषण करने हारा होकर (अदधाः) धारण पोषण, पालन व विद्या ज्ञान आदि प्रदान करता है (सः) वह पुरुष (अभक्तं चित्) विभाग करने के अयोग्य विद्या आदि के समान या (अभक्तं) पूर्व कभी न सेवित अपूर्व धन के तुल्य श्रेष्ठ, (गेह्यं) गृहोपयोगी धन को (भजते) प्राप्त करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति योग्य (ते सुमतिः) तेरी शुभ मति, ज्ञान (भद्रा) सबका कल्याण करने वाली, (घृताची) प्रकाश और स्नेह से युक्त, एवं रात्रि के समान सुखदायिनी है। (ते रातिः) तेरा दान भी (सहस्रदाना) सहस्रों को देने वाला है। (२) अध्यात्म में—जिस पर प्रभु कृपा करते हैं (गेह्यं) वह ग्रहण करने योग्य, इसी शरीर में भोगने योग्य अपूर्व ऐश्वर्य पाता है।

स॒हदा॑नुं पुरुहूत क्षि॒यन्त॑मह॒स्तमि॑न्द्र॒ सं पि॑ण॒क्कुणा॑रुम्। अ॒भि वृ॒त्रं वर्ध॑मानं॒ पिया॑रुमपा॒दमि॑न्द्र त॒वसा॑ जघन्थ ॥ ८ ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुतियोग्य ! (सहदानुम्) जल सहित (कुणारुम्) गर्जनशील मेघ को जिस प्रकार वायु, विद्युत् या सूर्य अपने तेज से और वेग से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार तू भी (सहदानुं) सैन्य को मार गिराने वाली शस्त्र बल से सहित, (क्षियन्तम्) प्रजा या राष्ट्र में बसने वाले (कुणारुम्) अहंकार से गर्जते हुए, शत्रु या दुष्ट पुरुष को (अहस्तम्) हस्त या हनन साधन, शस्त्रों से रहित करके (संपिणक्) अच्छी प्रकार पीस या कुचल डाला। और जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (पियारुम् वर्धमानं वृत्रं अपादं तवसा जघन्थ) पान किये जाने योग्य, बढ़े हुए, बहुत अधिक जल को वेग से आघात करके नीचे गिरा देता है उसी प्रकार (अभिवर्धमानं) मुकाबले पर बढ़ने वाले (वृत्रं) अतएव वृद्धिशील (पियारुं) हिंसाशील शत्रु को (अपादम्) गमन करने के साधन चरण रथादि रहित, निराश्रय करके (तवसा) बलपूर्वक (जघ-

न्थ) नाशकर, दण्डित कर। आचार्य—(सहदानुं) व्रत खण्डन करने वाले कुकर्मों से युक्त (क्षियन्तं) अधीन रहने वाले (कुणारुं) अध्ययनशील (अहस्तं) अप्रशस्त कर्मा विद्यार्थी को भी अच्छी प्रकार दण्डित करे। और (अपादं) ज्ञानरहित, बढ़ते हुए विघ्नकारी (पियारुम्) व्रत विलोपक विघ्न को शक्ति से नाश करे।

नि सा॒म॒नामि॑षि॒रामि॑न्द्र॒ भूमि॑ म॒हीम॑पा॒रां सद॑ने ससत्थ।
अस्त॑भ्ना॒द्द्यां वृ॑ष॒भो अ॒न्तरि॑क्षम॒र्ष॑न्त्वाप॒स्त्वये॒ह प्रसू॑ताः ॥९॥

भा०—(वृषभः) वृष्टि करने हारा सूर्य जिस प्रकार (द्याम् अस्तभ्नात्) तेज को या आकाशस्थ जलों को धारण करता है। और वही स्वयं (सदने) अपने स्थान पर (नि ससत्थ) नियम से स्थिर रहता है और (अपाराम् महीम्) पालकरहित बड़ी भारी (सामनाम्) समस्थल वाली या एक समान गति से जाने वाली, (इषिराम्) अन्न से पूर्ण या क्रान्ति मार्ग से चलने वाली (भूमिं) भूमि को और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष को भी (अस्तभ्नात्) धारण करता है। और जिस प्रकार उसी से (प्रसूता) प्रेरित (आपः) जल अन्तरिक्ष और भूमि को (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (वृषभः) शस्त्रवर्षी, बलवान् वीरपुरुष (सदने) अपने आश्रय पर (नि ससत्थ) स्थिर होकर विराजे और पहले (सामनाम्) साम-वचनों से युक्त (इषिराम्) पति के प्रति स्त्री के समान अपने प्रति अनुराग इच्छा से युक्त (महीम्) बड़ी पूज्य (अपाराम्) असीम, अपार वा रक्षक पालक व पूरक पुरुष से रहित (भूमिम्) सब अन्नादि ऐश्वर्यों की उत्पादक भूमि को और (अन्तरिक्षम्) भीतर से स्थित जन समुदाय को और (द्याम्) ज्ञान प्रकाश से युक्त उच्च तेजस्वी जनता वा विद्वत्सभा को भी (अस्तभ्नात्) वश करे। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! राजन् (त्वया प्रसूताः) तेरे द्वारा शासित (आपः) प्राप्त प्रजाएं (अर्षन्तु) तुझे प्राप्त हों या सन्मार्ग में (नि अर्षन्तु) नियम से चलें। (२) गृहस्थ में

स्त्री (सामना) समान मन वाली, सामयुक्त प्रीतिपूर्वक वचन कहने वाली और समान अधिकार, मानपद से युक्त हो। (इरिंरा) अपार, असीम प्रेम वाली या जिसको पतिरूप पालक या उसके अर्धांश का पूरक पुरुष न प्राप्त हुआ हो (द्यौ) ज्ञान और कामना से युक्त हो। ऐसी स्त्री को पुरुष अपने घर में रखकर (अस्तभ्नात्) अपने अधीन रक्खे। पुरुष से उत्पादित (आपः) उत्तम पुत्र गण ही प्राप्त हों। (२) परमेश्वर पुरुष सर्व वशी होने से वृषभ है। समावस्था को प्राप्त, प्रकृति इसकी इच्छा शक्ति से गति करने वाली, महत् तत्व वाली असीम है उसको वह परमेश्वर वश करता है। वह प्रसुप्त अप्रतर्क्य अलक्षणा होने से 'द्यौ' है (आपः) हे प्रभो ! वे सब प्राकृत परमाणु नीहारिकामण्डल तेरे ही द्वारा प्रेरित होकर चल रहे हैं।

अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः॥१०॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (अलातृणः) बहुत अधिक शत्रुओं पर प्रहार करने योग्य, समर्थ (वलः) शत्रु नगरों को घेरने में समर्थ या (वलः = बलः) बलवान् पुरुष जो (गोः व्रजः) गौ के आश्रयभूत बाड़े के समान (गोः) पृथिवी का (व्रजः) एकमात्र आश्रय हो वह (पुरा) सब से प्रथम (हन्तोः) प्रतिपक्ष के आघात से (भयमानः) भय करता हुआ (विः आर) विविध प्रकार की चालें चले। और (निरजे) अपने शत्रु को सर्वथा उखाड़ देने और अपने आप बच निकलने के लिये मार्गों को (सुगाम्) उत्तम सुखपूर्वक गमन करने योग्य (अकृणोत्) बनावे और (पुरुहूतं) बहुतों से प्रशंसित वा विपत्तिकाल में पुकारने योग्य उत्तम नायक को (धमन्तीः) उत्तेजित करने वाली (वाणीः) वाणियों को (प्र अवन्) अच्छी प्रकार सुरक्षित रक्खे और उसको (धमन्तीः) पुकारने वाली (गाः) भूमि निवासिनी प्रजाओं की भी (प्रावन्) अच्छी

प्रकार रक्षा करे। (२) मेघपक्ष में—(अलातृणः वलः) विद्युत् आघात करने वाला आकाश में व्यापक मेघ (गोः व्रजः) अति वेगवती विद्युत् का आश्रय है। वा (गोः व्रजः) गौ के आश्रय के समान ही पृथिवी निवासिनी प्रजा का जीवनाश्रय होता है। (भयमानः हन्तोः पुरा व्यार) भयभीत शत्रु जिस प्रकार बलवान् मार से भय करके पहले परे हट जाता है उसी प्रकार वह भी (भयमानः = उभयमानः) अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों में गर्जता हुआ (हन्तोः पुरः) पृथिवी पर जल विद्युतादि के आघात करने के लिये विविध प्रकार से फैल जाता है, विविध मार्गों से जाता है। (पुरुहूतं धमन्ती वाणीः) विद्युतों को प्रदीप्त करती हुई दीप्तियों को वा गर्जनाओं को बहुतों के इष्ट जल को ध्वनित करने वाली गर्जनाओं को सुरक्षित रखता है। (निरजे) सब जल फेंक देने या निकाल देने के लिये सुगम मार्ग बना लेता है (गाः अवन्) बहुतसी भूमि निवासी प्रजाओं की रक्षा करता है। (३) आचार्य—अज्ञान को नाश करने वाला होने से अलातृण है। विद्यार्थी संरक्षा संवरण करने से 'बल' है। वेद वाणी का आश्रय या प्राप्ति मार्ग होने से (गोः व्रजः) है। वह दण्ड देने के पहले उसके बुरे पापों से भय करके विविध उपाय करे। शिष्य के बुरे लक्षणों को सर्वथा दूर करने के सुगम २ मार्ग बनावे। (पुरुहूतं) बहु उपदेश योग्य शिष्य को उपदेश करने वाली नाना वाणियों और (गाः) ज्ञानयुक्त शिष्यों को (प्रावन्) अच्छी प्रकार रक्षा करे। इति द्वितीयो वर्गः॥

एको॒ द्वे वसु॑मती समी॒ची इन्द्र॒ आ प॑प्रौ पृथि॒वीमु॒त द्याम्।
उ॒तान्तरि॑क्षाद॒भि नः॑ समी॒क इ॒षो र॒थीः स॒युजः॑ शूर॒ वाजा॑न् ॥११॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुओं को नाश करने हारा बलवान् पुरुष (पृथिवीम् उत द्याम्) आकाश और पृथिवी को सूर्य के समान (द्याम् उत पृथिवीम्) ज्ञानवान् प्रजाओं और सामान्य भूमि वासी प्रजाओं

(द्वे) दोनों को (एकः) अकेला ही (समीची) परस्पर एक दूसरे से संगत और (वसुमती) ऐश्वर्यों तथा वसने वाले प्रजा और अध्यक्षगणों से युक्त करके (आ पप्रौ) सब प्रकार से पालता और पूर्ण, समृद्ध करता है वह ही (उत अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के बीच में से भी प्रजा को पुष्ट करता है। उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर पुरुष ! तू (नः समीके) हमारे समीप रहता हुआ (रथीः) रथारूढ़ महारथी होकर (नः) हमारी (इषः) इच्छाओं और सेनाओं को और (सयुजः) सहयोगी कार्यकर्त्ताओं को और (वाजान्) वेगवान् अश्वों, ऐश्वर्यों को (अभि आ पूरय) सब प्रकार पूर्ण कर। (२) विद्वान् पुरुष या सुसंगत ऐश्वर्ययुक्त नर नारियों को ज्ञान से पूर्ण करे, वह अन्तःकरण से भी हमारे समीप रहकर हमारी उत्तम इच्छाओं, सत्संगकारी मित्रों और प्राप्त ज्ञानयोग्य शरणागत शिष्यों को ज्ञान से पूर्ण करे।

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥ १२ ॥

भा०—(यत् = यः) जो (सूर्यः न) सूर्य के समान तेजस्वी हो कर (दिवे दिवे) प्रति दिन (हर्यश्वप्रसूताः) वेगवान् सैन्यों के नाम का प्रशंसित (प्रदिष्टाः) उत्तम रीति से आज्ञावशवर्त्ती (दिशः) दिशाओं में रहने वाली अन्य प्रजाओं को या शत्रु सेनाओं को (मिनाति) अपने आज्ञा के वश करता या उखाड़ फेंकता है। वह (अध्वनः) सब मार्गों और प्रदेशों को (अश्वैः) वेगवान् अश्वों और आशु मगन करने वाले साधनों के समान अच्छी प्रकार वश करे। और (तत् आत् इत्) तब उसके अनन्तर ही वह (अस्य) उस राष्ट्र अर्थात् उत्तम अधपक्षों से, सैन्यों, दूर २ के राष्ट्रों को पहले तेजस्वी होकर वश करे। फिर सब स्थानों पर अपने तीव्र वेगवान् यानों या गाड़ियों का प्रबन्ध करे और तब राष्ट्र के संकटों को दूर करे। अथवा—(सः सूर्यः दिशः मिनाति):

वह सूर्यवत् तेजस्वी होकर दिशावासिनी प्रजाओं को नाश न करे। प्रत्युत सब मार्गों और स्थानों को वेगवान् अश्वादि साधनों से वश करके राष्ट्र को विशेष कड़े प्रबन्ध से युक्त प्रजा को स्वच्छन्द विहरने दे। अर्थात् सदा ही कोई 'मार्शल्ला' न लगा रहे।

दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥

भा०—(विवस्वत्याः उषसः यामन् अक्तोः महि चित्रम् अनीकं दिदृक्षन्त) जिस प्रकार सूर्य की उत्तम प्रभा के प्रकट होने पर 'अक्त' अर्थात् उसके प्रकाश सूर्य का अद्भुत उत्तम मुख लोग देखना चाहा करते हैं और (इन्द्रस्य पुरूणि सुकृता कर्म जानन्ति) सूर्य के बहुत से उत्तम २ कर्मों को जाना करते हैं उसी प्रकार (उषसः यामन्) शत्रुओं को सन्तप्त करने वाली (विवस्वत्याः) विविध वसु, ऐश्वर्यों और प्रजाजनों से बनी सेना के (यामम्) प्रयाणकाल में लोग (अक्तोः) उसके सेचक, पालक, प्रकाशक, संचालक सेनापति के (महि) महान् (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) सैन्य या बल को (दिदृक्षन्ते) देखना चाहा करते हैं (यत्) जब वह (महिना) अपने बड़े भारी सैन्य या महान् सामर्थ्य से (आगात्) आता है तब (इन्द्रस्य) उस शत्रुहन्ता के (पुरूणि) नाना (सुकृता) उत्तम रीति से किये (कर्म) कर्मों को (विश्वे) सभी लोग (जानन्ति) जान लेते हैं।

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४॥

भा०—(वक्षणासु) जगत् को धारण करने वाली दिशाओं के बीच में यह सूर्य (महि ज्योतिः निहितम्) बड़ा भारी प्रकाश सूर्य रूप स्थापित है और (आमा) उसकी सहचरी (गौः) पृथिवी (पक्वं बिभ्रती) परि-

पक्व अन्न या स्वरूप को धारण करती हुई (चरति) विचरती, गौ के समान उत्तम रस अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि में (इन्द्रः) जल देने वाला मेघ वा (सीम्) सूर्य (यत्) जो कुछ भी सर्वप्रकार के (भोजनाय) प्राणियों के भोजन करने और उनकी रक्षा करने के लिये (अदधात्) धारण कराता है इसलिये उस पृथिवी में (विश्वं) सब प्रकार का (स्वाद्म) उत्तम स्वादयुक्त वा उत्तम खाद्य अन्न आदि पदार्थ (संभृतम्) अच्छी प्रकार स्थित और पुष्ट होता है। (२) इसी प्रकार—(वक्षणासु) वहन या धारण करने में समर्थ सेनाओं और प्रजाओं में ही (महि ज्योतिः निहितम्) जलधाराओं में विद्युत् के समान बड़ाभारी तेज स्थित रहता है। वह (आमा) बल में कच्ची, निर्बल होकर भी गौ के समान (पक्वं बिभ्रती चरति) परिपक्व बलवान् वीर्यवान् स्वामी को धारण करती हुई पत्नी के समान ही उसका सुख भोग करती है अथवा स्वयं निर्बल रहकर उस (पक्वं) परिपक्व वीर्यवत् दृढ़ तेज को धारण करती हुई (चरति) उसका भोग करती है। जिसको (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (भोजनाय) सबके भोग और रक्षा के लिये धारण करता है वह (विश्वं स्वाद्मं) सब प्रकार का सुखकारक, सुखादु भोजन और बल (उस्रियायां संभृतम्) दुधार गौ के समान सब पदार्थों की उत्पादक भूमि वा प्रजा में अच्छी प्रकार विद्यमान और परिपुष्ट होता है। (३) (इन्द्रः) विद्वान् आचार्य (भोजनाय) रक्षणीय शिष्य को जो ज्ञान प्रदान करता है वह ज्ञानोत्पादक वाणी में अच्छी प्रकार स्थित है। (वक्षणासु) वचनयोग्य वाणियों में ही बड़ा ज्ञानप्रकाश स्थित है यह (गौः) ज्ञानवाणी स्वयं (आमा) कोमल होकर भी परिपक्व ज्ञान को धारण करती हुई (चरति) गुरु से शिष्य का प्राप्त होती है।

इन्द्र दृह्यं यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के हन्तः ! सेनापते ! (यज्ञाय) संग्राम करने के लिये वीर पुरुष (यामकोशः) लम्बे २ खड्ग वाले (अभूवन्) होवें। तू (सखिभ्यः) मित्रवर्ग और (गृणते) स्तुतिशील प्रजावर्ग को (शिक्ष) ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान कर, उनको वेतन और युद्ध की शिक्षा दे। और (दृह्य) उनसे अपने को दृढ़ कर और बढ़। क्योंकि (दुर्मायवः) दुःखदायी शब्द करने वाले (मर्त्यासः) मरने वा मारने वाले (निषङ्गिणः) खड्ग वा तरकसों वाले (रिपवः) शत्रुगण (हन्त्वासः) मारने योग्य हैं, बड़े बलवान् हैं, जब बलवान् शत्रुओं को मारना हो तो राजा मित्रवर्गों को और प्रजा को युद्ध की शिक्षा करे और उनके शस्त्र भी बड़े २ हों। (२) दानशील ऐश्वर्यवान् के पक्षमें—कोश ख़ज़ाने बहुत बड़े २ हों। वह मित्रों और विद्वान् को दान करे और बढ़े। दुष्ट वचन, दुष्ट चाल और (नि-सङ्गिणः) निकृष्ट संग वाले पापी शत्रु पुरुष सदा (हन्त्वासः) मारने और दण्ड देने योग्य हों। विद्वान् पक्षमें—हे आचार्य तू बढ़े। तेरे ज्ञानकोश विस्तृत हों, तू मित्रों, प्रेमीजनों और स्तुतिशील को ज्ञान दे। दुष्टवचनी, दुराचारी, कुसंगी, पापकर्मा और दण्ड देने योग्य मनुष्य को दण्ड दे। इति तृतीयो वर्गः ॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैर॒मित्रै॑र्ज॒ही न्ये॑ष्वश॒निं तपि॑ष्ठाम्।
वृ॒श्चेम॒धस्ता॒द्वि रु॑जा॒ सह॑स्व ज॒हि रक्षो॑ मघवन्र॒न्धय॑स्व ॥१६॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ! सेनापते ! (अवमैः) नीच, अधम, (अमित्रैः) स्नेह न करने वाले शत्रुजनों द्वारा तेरा (घोषः) गर्जन, तेरे अस्त्रों का गर्जन (शृण्वे) सुना जाय। और (एषु) उन पर तू (तपिष्ठाम्) अति सन्तापदायक अग्नि से खूब प्रज्वलित, (अशनिं) अशनि नामक विद्युत्वत् अस्त्र, तोप (विजहि) चलाकर शत्रु का नाश कर। (ईम्) इन शत्रुओं को सब तरफ़ से (वृश्च) शस्त्रों से काट (विरुज) विविध प्रकार से पीड़ित कर और उनको तोड़, (सहस्व) उनको पराजित

कर। (रक्षः) आगे बढ़ने से या सत्कार्यों के करने से रोकने वाले बलवान् विघ्नकारियों को (जहि) मार (रन्धयस्व) विनष्ट कर। तपिष्ठ अशनि 'तोप' है जिसका परिणाम यह है शत्रु के शरीर कटें, विविध प्रकार सैन्य टूटें फूटें, पराजित हों। 'तोप', 'तपिष्ठ' दोनों शब्दों की तुलना करो।

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य॥ १७॥

भा०—हे (इन्द्र उद्वृह) तू स्वयं उन्नत होकर बढ़! शत्रुहनन करने हारे! सेनापते! तू (रक्षः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को (सह-मूलम्) मूलसहित (वृश्च) काट डाल और (मध्यं) उसके बीच के भाग के (प्रत्यग्रं) आगे बढ़े हुए अगले भाग को भी (प्रति शृणीहि) एक २ करके नष्ट कर। (आकीवतः) कितने भी दूर पर विद्यमान (सललूकं) भागते हुए अति लोभी, वा पापी पुरुष को (चकर्थ) मार और (ब्रह्म-द्विषे) धन के कारण हमसे द्वेष करने वाले वा वेद वा वेदज्ञ के द्वेषी पुरुष के विनाश के लिये (तपुषिम् हेतिम्) तापदायी, ज्वलनशील आग्नेय अस्त्र (अस्य) फेंक, चला।

स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान्॥१८॥

भा०—हे (प्रणेतः) उत्तम नेता सेनापते! तू (वाजिभिः) संग्राम करने में कुशल वीर पुरुषों, अश्वों और उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों सहित (यत्) जब (पूर्वीः) पूर्व, वंशपरम्परा से प्राप्त या पूर्व से शिक्षित (महीः) बड़ी २, पूज्य (इषः) सेनाओं पर (स्वस्तये) हम प्रजाजन वा राष्ट्र के कल्याण के लिये (आ सत्सि) अध्यक्ष रूप से विराजे हम (बृहतः) बड़े २ (रायः) ऐश्वर्यों के (वन्तारः) विभाग करवाने वाले (स्याम) हों। (अस्मे) हमें हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! (प्रजा-

वान् भगः) उत्तम सन्तान और उत्तम प्रजा से युक्त ऐश्वर्य (अस्तु) प्राप्त हो ।

आ नो॑ भर॒ भग॑मिन्द्र द्यु॒मन्तं॒ नि ते॑ दे॒ष्णस्य॑ धीमहि प्रे॒के ।
ऊ॒र्व इ॑व पप्रथे॒ कामो॑ अ॒स्मे तमा पृ॑ण वसुपते॒ वसू॑नाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (द्युमन्तं) तेज से युक्त, प्रकाशयुक्त, चमकीला (भगम्) स्वर्ण मुक्ता आदि ऐश्वर्य (आ-भर) प्राप्त करा । (प्ररेके) बड़े भारी शंकास्थान, संशय-पूर्ण, संकटापन्न विपत्तिकाल में भी हम (ते) तुझ (देष्णस्य) दानशील पुरुष की ही (धीमहि) याद करें । तू अपनी दानशीलता से हमारे प्राणों के संकट संदेहादि के अवसर पर रक्षक हो । (अस्मे कामः) हमारी इच्छा, धनादि प्राप्त करने की अभिलाष भी (ऊर्वः) अग्नि के समान (प्रपथे) बढ़ा ही करती है । हे (वसूनां वसुपते) समस्त बसे हुए प्रजाजनों के बीच सब ऐश्वर्यों के और प्रजाओं के पालक ! तू हमारे (तत् आपृण) उस अभि-लाष को पूर्ण कर । अध्यात्म में वा आचार्य पक्षमें—शंका, संदेह से युक्त शास्त्र में (देष्णस्य) ज्ञानदाता आदेष्टा के प्रकाश युक्त ज्ञान को हम धारण करें । हमारा (कामः) अभिलाषुक आत्मा समुद्र की तरह से बढ़े, वसु अर्थात् अन्तेवासी शिष्यों का पति कुलपति उस आत्मा को ज्ञान से पूर्ण करे ।

इ॒मं कामं॑ मन्दया॒ गोभि॒रश्वै॑श्च॒न्द्रव॑ता॒ राध॑सा प॒प्रथ॑श्च ।
स्व॒र्यवो॑ म॒तिभि॒स्तुभ्यं॒ विप्रा॒ इन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कुशि॒कासो॑ अक्रन् ॥ २० ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (गोभिः) गौओं और (अश्वैः) अश्वों और (चन्द्रवता) सुवर्ण से युक्त (राधसा) कार्यसाधक धन से हमारे (इमं कामं) इस अभिलाषा को या अभिलाषा युक्त आत्मा को (मन्दय) तृप्त कर और हर्षित कर और (पप्रथः च) उसको और बढ़ा । (स्वर्यवः) सुख की कामना करने वाले (विप्राः) विद्वान् बुद्धिमान् (वाहः) कार्यों को अपने ऊपर लेने हारे (कुशिकासः) उत्तम वचन स्तुति बोलनेहारे

कुशल पुरुष (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (कामं अक्रन्) सदा अभिलाषा करते हैं, उसी को चाहते हैं। (२) हे प्रभो ! तू हमारे इस 'काम' अर्थात् तृष्णा या आत्मा को ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों और आह्लाद-युक्त आराधना से मन्द कर या तृप्त कर, तुझ ईश्वर की ही वे सब विद्वान् स्तोता चाह करें।

आ नो॑ गो॒त्रा द॑र्दृहि गोपते॒ गाः सम॒स्मभ्यं॑ स॒नयो॑ यन्तु॒ वाजाः॑। दि॒वक्षा॑ असि वृषभ स॒त्यशु॑ष्मो॒ऽस्मभ्यं॑ सु म॑घवन्बोधि गो॒दाः ॥ २१ ॥

भा०—हे (गोपते) पृथ्वी के पालक ! राजन् ! तू (नः) हमारे (गोत्रा) कुलों को (आदर्दृहि) आदर युक्त कर, बढ़ा। और (गाः आद-र्दृहि) गौवों को प्रदान कर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजाः) वेग-वान् अश्वादि और संग्राम और ऐश्वर्य भी (सनयः) सुखप्रद, भोग योग्य (संयन्तु) होकर अच्छी प्रकार प्राप्त हों। हे (वृषभ) बलवन् ! तू (दिवक्षाः) सूर्य के समान विज्ञान प्रकाश आदि में व्यापक और (सत्यशुष्मः) सत्य और न्याय के बल से बलवान् और सच्चा बलवान् (असि) है। तू (गोदाः) गौ, भूमि, वाणी आदि का दाता है। तू हे (मघ-वन्) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मभ्यं) हमारे लाभ के लिये ही (सु बोधि) उत्तम ज्ञान कर और करा। (२) हे गोपते ! आचार्य हमें (गोत्रा) वाणियों को प्रदान कर। ज्ञान वाणियें ही हमारे प्रति तेरे उत्तम दान हों। तू ज्ञाननिष्ठ एवं सत्य ज्ञान बल से युक्त है। तू हमारे लिये वेदवाणी-प्रद होकर हमें ज्ञान करा।

शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ स॒ञ्जितं॒ धना॑नाम् ॥२२॥४॥

भा०—हम लोग (शुनं) उत्साह में बढ़े हुए या ज्ञानवृद्ध या शीघ्र कार्य सम्पादन करने वाले (मघवानम्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी,

(इन्द्रम्) शत्रु के हन्ता (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) ऐश्वर्य के देने वाले (भरे) संग्राम में (नृतमं) सर्वश्रेष्ठ नायक (उग्रम्) शत्रुओं के लिये भयप्रद (समत्सु) संग्रामों में (ऊतये) रक्षा करने के लिये (शृण्वन्तं) प्रजाओं की पुकार सुनने वाले और (वृत्राणि) बढ़े हुए शत्रुओं को (घ्नन्तं) विनष्ट करते हुए और (धनानाम् सञ्जितम्) धनों का विजय करने वाले पुरुष को (हुवेम) 'इन्द्र' इस आदरयोग्य पद से (हुवेम) बुलावें। उसी के 'मघवा' और 'श्वा' आदि भी नाम हैं।

[३१]

विश्वामित्रः कुशिक एव वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट् पङ्क्तिः । ३, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ५, ९, १५, १७—२० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, ८, १०, १२, २१, २२ त्रिष्टुप् । ११, १३ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

शास॒द्वह्नि॑र्दुहि॒तुर्न॒प्त्यं॑ गाद्वि॒द्वाँ ऋ॒तस्य॒ दीधि॑तिं सप॒र्यन् ।
पि॒ता यत्र॑ दुहि॒तुः सेक॑मृ॒ञ्जन्त्सं श॒ग्म्ये॑न॒ मन॑सा दध॒न्वे ॥ १ ॥

भा०—(वह्निः) कन्या को विवाह करने वाला पुरुष (दुहितुः) कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए (नप्त्यं) नाती को (गात्) प्राप्त होता है इस प्रकार (विद्वान्) जानता हुआ (ऋतस्य) धर्मशास्त्र या सत्य को (दीधितिं) धारण करने वाली व्यवस्था का (सपर्यन्) आदर करता हुआ (शासत्) ऐसा अनुशासन करे अर्थात् इस प्रकार की व्यवस्था करे (यत्र) जिसमें (दुहितुः) कन्या का (पिता) पिता, पालक (सेकम्) सेचन से प्राप्त पुत्र को (ऋञ्जन्) प्राप्त करता हुआ (शग्म्येन) सुखी (मनसा) चित्त से (सं दधन्वे) मान ले। और कन्या का सम्बन्ध योग्य पुरुष से कर दे। कन्या का पिता जिसके पुत्र नहीं है वह इस चिन्ता में

है कि कन्या का विवाह कर देने पर कन्या में जो नाती होगा उसको तो कन्या के साथ विवाहित पति ही ले लेगा। तब वह 'ऋत' अर्थात् सत्य क़ानूनी व्यवस्थापक के पास जाकर व्यवस्था मांगे। वहां सत्यव्यवस्था को धारण करने की 'सपर्या' अर्थात् सेवा करने वाला जज (शासत्) शासन करे, ऐसी व्यवस्था दे जिससे कन्या का पिता कन्या के (सेक) भीतर हुए पुत्र को प्राप्त कर सके, और सुखी चित्त से (सं दधन्वे) अपनी कन्या का सम्बन्ध दूसरे कुल से करदे। वह यही व्यवस्था है कि अपुत्र पिता की कन्या में जमाई से हुआ नाती ही कन्या के पिता का वंशकर हो। वह अपने नाना की जायदाद का ही हकदार हो। देखो मनु के पुत्र-पुत्रिका विधान (मनु अ० ९। १२७॥)

न जा॒मये॒ तान्वो॑ रि॒क्थमा॑रैक्च॒कार॒ गर्भं॑ सनि॒तुर्नि॒धान॑म्।
यदी॑ मा॒तरो॑ ज॒नय॑न्त॒ वह्नि॑म॒न्यः क॒र्ता सु॒कृतो॑र॒न्य ऋ॒न्धन्॥२॥

भा०—(तान्वः) देह से उत्पन्न हुआ पुत्र (जामये) अन्यों के लिये पुत्र उत्पन्न करने वाली अपनी भगिनी को (रिक्थं) पिता का धन (न आरैक्) नहीं प्रदान करे। प्रत्युत वह उस अपनी भगिनी को (सनितुः) उसके भोक्ता, पाणिग्रहीता पति के लिये (गर्भं निधानं चकार) गर्भ धारण करने योग्य (चकार) बनावे। (यदि) यद्यपि (मातरः) माता पिता लोग (वह्निम् जनयन्त) पुत्र पुत्री दोनों को ही पुत्र रूप से या सन्तान रूप से उत्पन्न करते हैं तो भी उन दोनों में से (अन्यः) एक पुत्र ही (सुकृतोः) पिता के लिये सुखकारी कार्य पोषणादि का (कर्त्ता) करने हारा होता है। और (अन्यः) दूसरी कन्या (ऋन्धन्) केवल सुसम्पन्न सुभूषित मात्र ही करदी जाती है और दूसरे को दे दी जाती है। जिस प्रकार विद्वान् लोग अग्नि को उत्पन्न करते हैं जिनमें से एक केवल चमकाता प्रकाश देता है दूसरा यज्ञ को करता है। उसी प्रकार एक कुल को पालता पोषता दूसरा केवल मात्र सजाता ही है।

अ॒ग्निर्ज॑ज्ञे जु॒ह्वा॒३॒॑ रेज॑मानो म॒हस्पु॒त्राँ अ॑रु॒षस्य॑ प्र॒यक्षे॑ ।
म॒हान् गर्भो॒ मह्या जा॒तमे॑षां म॒ही प्र॒वृद्धर्य॑श्वस्य य॒ज्ञैः ॥ ३ ॥

भा०—जिसप्रकार (जुह्वा) 'जुहू' अर्थात् ज्वाला से (रेजमानः) कंपकपाता हुआ (अग्निः) अग्नि (जज्ञे) उत्पन्न होता है और वह (अरुषस्य) सर्व प्रकार में देदीप्यमान सूर्य के समान अपने (महः पुत्रान्) बड़े २ किरणों को (प्रयक्षे) उत्तम रीति से एकत्र करने या प्रसारित करने में समर्थ होता है। वह अग्नि ही (एषां महान् गर्भः) इन सब किरणों का बड़ा भारी उत्पादक और धारक होता है और (एषां महि आजातम्) उनका बहुत बड़ा स्वरूप होता है (हर्यश्वस्य) पीत किरणों से युक्त सूर्य के किरणों से मिलने से उनकी (प्रवृत्) चेष्टा या प्रवृत्ति या कार्य करने की शक्ति भी बहुत बड़ी होती है। उसी प्रकार (जुह्वा) वाणी के बल से (रेजमानः) आगे बढ़ता हुआ (अग्निः) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष भी (जज्ञे) प्रकट होता है और वह (अरुषस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (महः पुत्रान्) बड़े २ पुत्रों को (प्रयक्षे) उत्तम पद पर पहुंचने, उत्तम रीति से सत्संग करने के लिये उत्पन्न करता है। उन बड़े पुत्र रूप शिष्यों का गुरु के अधीन रहना यह विद्वान् आचार्य का (महान् गर्भः) बड़ा भारी गर्भ के समान विद्यागर्भ है जिसमें वह शिष्यों को धारण करता है। (एषाम् आजातम् महि) इनका इस प्रकार वेद ज्ञान में उत्पन्न होना भी बड़ा आदरयोग्य महत्व पूर्ण होता है। और (हर्यश्वस्य) आकर्षणशील आत्मवान् महान् गुरु के (यज्ञैः) दिये विद्या दानों और सत्संगों से (एषां) इन शिष्यों की (प्रवृत्) प्रवृत्ति, चेष्टा भी (मही) बड़ी, उत्तम हो जाती है। (२) इसी प्रकार अग्रणी नायक अपनी कान्ति और वाणी के बल से शत्रुओं को कंपाता और स्वयं तमतमाता हुआ बड़े २ पुरुषों का (प्रयक्षे) उत्तम संगठन करने के लिये उत्पन्न हो। उस तेजस्वी का (गर्भः) वश भी बड़ा, उनका स्वरूप भी बड़ा,

और तीव्र अश्वों के स्वामी के दान मान सत्कारों से उनका कार्य व्यापार भी बहुत बड़ा, विशाल हो जाता है।

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

भा०—(स्पृधानं) शत्रु के साथ मुकावला करने वाले वीर पुरुष को देखकर वा प्राप्त कर (जैत्रीः) विजय करने वाली सेना और प्रजाएं (असचन्त) समवाय या संघ वना लेती हैं। और उसको ही वे (तमसः) अन्धकार के बीच में मार्ग दिखाने वाले (महि ज्योतिः) बड़े भारी ज्योति के समान ही (निर्-अजानन्) जानते हैं। वे उसको अन्धकार रात्रि में से निकले सूर्य के समान ही जानते हैं। (उषासः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (तं प्रति उद् आयन्) उसका आश्रय लेकर ही ऊपर आती हैं। उसी प्रकार (उषासः) शत्रुतापकारी सेनाएं, (उषासः) कमनीय वा उदयशील, प्रजाएं (जानतीः) जानती वूझती हुई (तं प्रति) उसको भली प्रकार आश्रय करके (उत आयन्) ऊपर उठती हैं। वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी शत्रुनाशक पुरुष (गवाम् एकः पतिः अभवत्) सब भूमियों का, अद्विती पालक हो जाता है।

वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन् प्राचा हिन्वन् मनसा सप्त विप्राः।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश॥५॥५॥

भा०—(धीराः) धीर, बुद्धिमान् ध्याननिष्ठ विद्वान् जन (वीडौ) वल प्राप्त होजाने पर या बलवान् प्राण के आश्रय पर ही (सतीः सप्त) वलवती सातों वृत्तियों या प्रकृतियों को (अतृन्दन्) मारते हैं। उन पर वश करते हैं। (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष ही उन (सप्त) सातों को (प्राचा) उत्तम पद की ओर जाने वाले (मनसा) मननशील चित्त वा ज्ञान से (अहिन्वन्) उनको बढ़ाते, उनको पुष्ट करते। और

वे (विश्वाम्) समस्त (ऋतस्य पथ्याम्) सत्य के मार्ग (अविन्दन्) जान लेते हैं। (प्रजानन् इत्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष ही (ताः) उन सातों को (नमसा) गुरुभक्ति, परमेश्वरोपासना और उत्तम आहार द्वारा (आ विवेश) प्रविष्ट होकर उनको दमन करता है। (२) राष्ट्र पक्षमें— स्वामी, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और बल इन सातों प्रकृतियों को (धीराः = अधि ईराः) अध्यक्षजन वश करता है। अपने (मनसा) वश करने वाले बल से उनको बढ़ावे, जो (ऋतस्य) सत्य न्याय के सब हित मार्ग को जानते हैं। विद्वान् ही उनको अन्न के बल पर या नमाने वाले दण्ड के बल पर वश करे।

विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक् कः।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (यदि) जब (सरमा) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत् (अद्रेः) मेघ का (रुग्णम्) भंग (विदत्) कर देती है। तब वह (सध्र्यक्) साथ में ही विद्यमान (पूर्व्यं) पूर्व से सञ्चित (महि पाथः) बड़े भारी जलराशि को (कः) उत्पन्न करती है। वह (सुपदी) शोभन रूप वाली या उत्तम वेग से जाने वाली विद्युत् (अक्षराणां) नीचे न गिरने वाले मेघस्थित जलों के (अग्रं) अग्र प्रान्त में स्थित भाग को (नयत्) नीचे ले आती है (प्रथमा) वह सब से प्रथम या व्यापक हो कर भी (अच्छा) खूब (रवं जानती गात्) ध्वनि करती हुई प्रकट होती है। उसी प्रकार (सरमा) वेग से जाने वाले वीर पुरुष की बनी सेना (यदि अद्रेः रुग्णम् विदत्) जब अपने दीर्ण होने वाले प्रबल नायक का भङ्ग हुआ जान ले तो वह (पूर्व्यं) पूर्व के लोगों से किये (सध्र्यक्) साथ में विद्यमान (महि पाथः) बड़े भारी पालनशील बल को (कः) उत्पन्न करे। वह (सुपदी) उत्तम पदों, संकेतों से युक्त होकर (अक्षराणां) अपने में से 'अक्षर', अविनाशी, शत्रु भय से न भाग जाने वाले, अविचलित

स्थिर पुरुषों के (अग्रं) मुख्य भाग को (नयत्) आगे बढ़ावे और वह (प्रथमा) स्वयं सर्वश्रेष्ठ (रवं जानती) उनके संकेत ध्वनि का जानती हुई (अच्छ गात्) सेना आगे आगे बढ़े।

अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥

भा०—(विप्रतमः) सब से अधिक विद्वान् पुरुष (सखीयन्) सबको अपना मित्र बनाने की इच्छा करता हुआ (अगच्छत्) प्राप्त हो। और (अद्रिः गर्भम्) जिस प्रकार मेघ अपने गर्भ में स्थित जल को (सुकृते असूदयत्) शुभ अन्नोत्पत्ति के लिये दूसरों पर बरसा देता है और (अद्रिः गर्भम् सुकृते असूदयत्) जिस प्रकार पर्वत वा पाषाण खण्ड अपने भीतर के मणिमुक्ता, जल आदि पदार्थ उत्तम शिल्पी पुरुष के लाभ के लिये उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी (अद्रिः) मेघवत् उदार और पर्वत के समान अचल होकर भी (सुकृते) अन्यों के सुख उत्पन्न करने के लिये या (सुकृते) उत्तम धर्माचरण करने वाले शिष्य जन के उपकार के लिये (गर्भम्) अपने भीतर के ज्ञान को (असूदयत्) उत्तम जलों के समान प्रवाहित करे, ज्ञानस्रोत को बहादे। (मर्यः) उत्तम पुरुष (युवभिः) युवा, बलवान् पुरुषों सहित (मखस्यन्) ज्ञान यज्ञ का सम्पादन करता हुआ (ससान) ज्ञान का दान और विभाग करे। (अथ) और (अंगिराः) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (सद्यः) शीघ्र ही (अर्चन्) अन्यों से पूजनीय (अभवद्) हो जावे।

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥

भा०—(पुरोभूः) सबसे पूर्व और सबके आगे होकर रहने वाला अग्रणी नायक (सतः-सतः) प्रत्येक बलवान् पुरुष का (प्रतिमानं)

परिमाण करने वाला, सब को मापने में समर्थ, सब से अधिक बलशाली हो और (विश्वा) सब (जनिमा) उत्पन्न जन्तुओं को (वेद) जाने। वह (शुष्णम्) सब का शोषण करने वाले दुष्ट पुरुष को (हन्ति) मारे वह (नः) हमें (दिवः) प्रकाश सुख ज्ञान की (पदवीः) पगदण्डियों पर (प्र अर्चन्) आगे बढ़ावे वह (गव्युः) गो अर्थात् पृथिवी अर्थात् उस पर रहने वाली प्रजा का हितेच्छु और (सखा) सब का मित्र होकर (सखीन्) अपने मित्रों को (अवद्यात्) अकथनीय निन्दित पाप से (अमुञ्चत्)) छुड़ावे। (२) विद्वान् पुरुष प्रत्येक पदार्थ को प्रतिमान परिमाण और सब उत्पत्तियों को जाने। वह उनके (शुष्ण) शोषक दुःख शोकादि का नाश करे अथवा उनके वीर्य को प्राप्त करे वह (गव्युः) वाणी का स्वामी, ज्ञान की उत्तम प्रतिष्ठाओं को पावे, मित्र शिष्यों को पाप से मुक्त करे।

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (गव्यता मनसा) वाणी के समान स्तुति शील चित्त से (अमृतत्वाय) अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने के लिये (अर्कैः) अर्चना करने योग्य, स्तुतियोग्य विद्वानों सहित या मन्त्रों से (गातुम् कृण्वानासः) उत्तम मार्ग या भूमि या स्तुति को करते हुए (नि सेदुः) नियम से स्थिर होकर विराजें। (एषां) इन विद्वानों का (इदं चित् नु) यही उत्तम (भूरि) बहुत बड़ा (सदनं) आश्रय या प्रतिष्ठा है (येन) जिस (ऋतेन) सत्य, धर्माचरण के बल से (मासान्) मासों या काल के नाना भागों को (असिषासन्) विभक्त करते हैं। भिन्न २ मास के लिये वे भिन्न २ व्रताचरण की व्यवस्था कर लेते हैं।

सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥६॥

भा०—(रेतसः पयः दुघानाः) उत्तम वीर्य के उत्पादक दूध को जिस प्रकार गौओं से दुहा जाता है उसी प्रकार (प्रत्नस्य) सर्वश्रेष्ठ, सनातन से चले आये (रेतसः) बल वीर्य, ब्रह्म विज्ञान के उत्पादक (स्वं) अपने आत्मा को (पयः) वृद्धि या पुष्टकारक ज्ञान रूपसे (दुघानाः) पूर्ण करते हुए और (स्वम् सम्पश्यमानाः) अपने ही आत्मा को सम्यक् दृष्टि से साक्षात् करते हुए (अभि अमदन्) खूब प्रसन्न और हर्षित होते हैं। (एषां) उनको (घोषः) वाणी, उपदेश ही (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान समस्त स्त्री पुरुषों को (वि अतपत्) विविध प्रकार से तपाता या तपस्या करता है। वे विद्वान् गण (जाते) अपने पुत्र के समान शिष्य में ही (निःस्थाम् अदधुः) निष्ठाको धारण कराते और (गोषु) वाणियों, विद्याओं में (वीरान्) वीर्यवान् पुरुषों को (अदधुः) नियुक्त करते हैं। वीर पुरुष अपने पूर्व के संचित सुरक्षित वीर्य से उत्पन्न अपने पुष्टिकारी बल को देखते और पूर्ण करते हुए अपनी आज्ञा से स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को स्थापित करते हैं। (जाते) प्राप्त राष्ट्र में या प्रसिद्ध पुरुष में स्थिरता प्राप्त करते और भूमियों पर वीरों को स्थापित करते हैं। (२) अध्यात्म में (वीरान्) प्राणों को।

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह बलवान् पुरुष (जातेभिः) प्रसिद्ध बलशाली पुरुषों द्वारा, उनकी सहायता से (वृत्रहा) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं को नाश करने हारा होता है (सः) वह (इत् उ) ही (हव्यैः) वेतनादि देने योग्य, उत्तम नाम पदों से व्यवहार करने योग्य (अर्कैः) अर्चना योग्य पूज्य, स्तुत्य पुरुषों से (उस्रियाः) उर्वरा भूमियों को (असृजत्) युक्त करता है। और (जेन्या गौः) विजय करने योग्य, वह भूमि (उरुची) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं (घृतवत् मधु) जलों से युक्त अन्न (स्वाद्म)

उत्तम खाने योग्य स्वादु पदार्थ (भरन्ती) धारण करती हुई (दुदुहे) गौ के समान प्रदान करती है। (२) विद्वान् पुरुष (जातेभिः) प्रादुर्भूत हुए मन्त्रों या विचारों द्वारा (उस्रियाः) वाणियों को प्रकट करे। यह (जेन्या गौः) विजयशालिनी वाणी (उरूची) बहुत ज्ञान युक्त होकर गौ के समान स्नेह युक्त मधुर सुख कर परिणाम उत्पन्न करती है।

पि॒त्रे चि॑च्चक्रुः॒ सद॑नं॒ सम॑स्मै॒ महि॒ त्विषी॑मत्सु॒कृतो॒ वि हि ख्यन्।
वि॒ष्क॒भ्नन्तः॒ स्कम्भ॑नेना॒ जनि॑त्री॒ आसी॑ना ऊ॒र्ध्वं र॑भ॒सं वि मि॑न्वन् ॥ १२ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (अस्मै पित्रे) इस सर्वपालक पुरुष के लिये ही (महि सदनं) बड़ा भारी गृह, भवन (त्विषीमत्) उत्तम दीप्ति से युक्त (चित्) बड़े आदर से (सं चक्रुः) बनाते हैं और (सुकृतः) उत्तम शिल्पकार लोग (हि) ही उसको (वि ख्यन्) विशेष रूप से देखते हैं। वे लोग (जनित्री) माता के समान उत्पन्न करने वाली भूमि आधार और शिखर भाग दोनों को (स्कम्भनेन) थामने वाले स्तम्भादि साधन से (वि-स्कभ्नन्तः) विविध उपायों से थामते और दृढ़ करते हुए (उर्ध्वम् आसीनाः) उन्नत स्थान, शिखर पर बैठे हुए (रभसं) गृह को सब कार्यों का साधक (विमिन्वन्) विविध प्रकार मापें और बनावें। (२) अध्यात्म में—(सुकृतः) प्राणगण उस इन्द्र के इस देह रूप तेजोमय गृह को बनाते हैं, देखते हैं, विद्वान् लोग कुम्भक प्राणायाम से (जनित्री) प्राण अपान दोनों को थामते और सर्वकार्यसाधक आत्मा परमात्मा का विविध उपायों से ज्ञान और साक्षात् करते हैं।

म॒ही यदि॑ धि॒षणा॑ शि॒श्नथे॒ धात्स॑द्यो॒वृधं॑ वि॒भ्वं१॒ रोद॑स्योः।
गिरो॒ यस्मि॑न्ननव॒द्याः स॑मी॒चीर्विश्वा॒ इन्द्रा॑य॒ तवि॑षी॒रनु॑त्ताः ॥१३॥

भा०—(यदि) यदि (मही) भारी वाणी और प्रज्ञा तुम लोगों की (यस्मिन्) जिस परमेश्वर के विषय में (शिश्नथे) स्वयं शिथिल

हो जाय, उसका वर्णन करने में असमर्थ हो तो भी वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी में भी (विभ्वं) विविध शक्तियों में विद्यमान व्यापक (सद्योवृधं) अति शीघ्र बढ़ा देने वाले उसी प्रभु परमात्मा को (धात्) बतलाती है। (यस्मिन्) जिस परमेश्वर में (अनवद्याः) निन्दादि दोषों से रहित (विश्वाः) समस्त (गिरः) वाणियें (समीचीः) अच्छी प्रकार संगत होती हैं। और उसी (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् की ही (विश्वाः तविषीः) समस्त ये शक्तियां (अनुत्ताः) स्वयं चल रही हैं। किसी अन्य द्वारा प्रेरित नहीं हैं। (२) शास्य शासकों के बीच विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष बड़ी बलवती सेनाएं अपने आश्रय के लिये नियुक्त करे। जिसमें स्तुतियें संगत हों, सब शक्ति सेनाएं उसी के आधीन रहें।

मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे परमेश्वर! हम लोग (ते) तेरे (महि सख्यं) बड़े भारी पूजनीय मैत्रीभाव को (आवश्मि) सदा चाहते हैं। (वृत्रघ्ने) बढ़ाते शत्रुओं को नाशक और बाधक के अज्ञान नाशक, सूर्यवत् प्रकाशक तेरे ही अधीन (नियुतः) नियुक्त या लक्षों करोड़ों (पूर्वीः) पहले से चली आई, सनातन या पूर्ण (शक्तीः) सेनाएं शक्तियां (आ यन्ति) प्राप्त हों (सूरेः) सबके उत्पादक, प्रेरक और ज्ञानवान् प्रकाशक तेरे ही (स्तोत्रम्) स्तुति और (महि) बड़े भारी, पूज्य (अवः) ज्ञान और रक्षादि को हम लोग (आ अगन्म) प्राप्त हों। तू (अस्माकं) हमारा (गोपाः) रक्षक होकर (सु बोधि) उत्तम रीति से ज्ञानवान् हो और हमें भी प्रबुद्ध कर।

महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत्।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥७॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और तत्वदर्शी राजा और विद्वान् पुरुष (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति और दर्शन विज्ञान से युक्त अपने मित्र जनों के उपकार के लिये ही वड़ा भारी, अति उत्तम (क्षेत्रं) रहने के लिये, बीज अनाजादि बोने के लिये और निवास करने के लिये क्षेत्र, खेत, पुत्रोत्पादक स्त्री और कार्य क्षेत्र, और (पुरु-चन्द्रं) बहुत प्रकार के सुख आह्लाद जनक धन को (विवित्वान्) विविध उपायों से प्राप्त करता और कराता हुआ (आत् इत्) अनन्तर (चरथं) जंगम सम्पत्ति और भोग्य अन्नादि सामग्री भी (सम् ऐरत्) प्रदान किया करे। और वह (नृभिः साकं) अपने प्रधान नायक पुरुषों के साथ मिलकर (दीद्यानः) स्वयं तेजस्वी होकर विद्या के द्वारा (सूर्यं उषसं) सूर्य और उषा और (गातुम् अग्निम्) पृथिवी और अग्नि के समान (साकं) एक साथ मिलें। माता पिता और पुत्र और पत्नी पति के जोड़े (अजनत्) उत्पन्न करे वा (सूर्यम् उषसं) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष, उषा के समान कान्तियुक्त या शत्रुसंतापक सेना को और (गातुम्) पृथ्वी के समान विस्तृत राष्ट्र और (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मण और अग्रणी पुरुषों को पैदा करे, उनको ब[ना]वे।

अ॒पश्चि॑दे॒ष वि॒भ्वो॒३॒॑ दमू॑नाः॒ प्र स॒ध्रीची॑रसृजद्वि॒श्वश्च॑न्द्राः ।
मध्वः॑ पुना॒नाः क॒विभिः॑ प॒वित्रै॒र्द्युभि॑र्हिन्वन्त्य॒क्तुभि॒र्धनु॑त्रीः ॥१६॥

भा०—(दमूनाः) मन को वश करने वाला और राष्ट्र को दमन करने मे समर्थ पुरुष (अपः चित्) जलों के समान रोक लगा देने पर यथेष्ट दिशामें ले जाने योग्य (सध्रीचीः) अपने साथ सहयोग करने वाली (विश्व-चन्द्राः) सब को आह्लाद करने वाली सब प्रकार के धन सुवर्णादि से समृद्ध (विभ्वः) व्यापक, विविध सुखों के उत्पादक विद्याओं और प्रजाओं को (प्र असृजत्) और उत्तम रीति से उन्नत करे। वे विद्याएं और प्रजाएं (द्युभिः अक्तुभिः) दिन और रात, सदा ही (मध्वः) अन्न

जल आदि मधुर, बलकारी पदार्थों को (पुनानाः) पवित्र करती हुई और (पवित्रैः) स्वयं पवित्र और अन्यों को भी पवित्र करने वाले, पंक्तिपावन (कविभिः) दूरदर्शी विद्वानों द्वारा (धनुत्रीः) सबको प्रसन्न करने वाली और स्वयं धन धान्य और बल को रखने वाली होकर (हिन्वन्ति) स्वयं बढ़ें बढ़ावें। विद्वान् पुरुष अपने संग रहने वाली शिष्य प्रजाओं और विद्याओं को सर्वाह्लादक विशेष सामर्थ्यवान् करें और नायक पुरुष अपनी प्रजाओं को सुवर्णादि से समृद्ध करें।

अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः॥१७॥

भा०—(सूर्यस्य मंहना) जिस प्रकार सूर्य के महान् सामर्थ्य से (उभे) दोनों (कृष्णे) श्वेत और काली, प्रकाशमय और अन्धकारमय, (यजत्रे) परस्पर संगत हुए दिन रात्रि तथा (कृष्णे यजत्रे) एक दूसरे का आकर्षण करने वाले आकाश और पृथिवी (अनु जिहाते) एक दूसरे के पीछे अनुसरण करते और अनुकूल रहते हैं। और उसी के सामर्थ्य से दोनों (वसुधिती) बसने वाले लोकों को धारण करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी, शासक तेरे (मंहना) महान् सामर्थ्य और दान से (कृष्णे) एक दूसरे को परस्पर आकर्षण करने वाले, एक दूसरे के प्रिय (यजत्रे) एक दूसरे को आत्मसमर्पण करने वाले और संगतिशील स्त्री पुरुष (उभे) दोनों (अनुजिहाते) एक दूसरे के अनुकूल चलते और व्यवहार करते हैं। तेरे ही सामर्थ्य से दोनों (वसुधिती) ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! (काम्या) कामना करने वाले, (ऋजिप्याः) ऋजु, सरल धर्मानुकूल व्यवहार करने वाले (सखायः) मित्र गण (वृजध्यै) शत्रुओं का वर्जन करने के लिये (ते महिमानं) तेरे ही महान् सामर्थ्य को (परि)

सब प्रकार से आश्रय लेते हैं। (२) ईश्वर के महान् सामर्थ्य से परस्पर पूर्वक दिन-रात्रिवत् सूर्य चन्द्र चलते और धर्मात्मा जन पाप को वर्जते हैं।

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्॥१८॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी राजन्! हे शत्रुओं के नाशक! सूर्य जिस प्रकार (विश्वायुः) सबको आयु, दीर्घ जीवन देने वाला, (वयोधाः) बल धारण करने वाला, (वृषभः) मेघ से वृष्टि करने वाला (गिरां पतिः) अन्तरिक्षस्थ मेघ गर्जनाओं का स्वामी है उसी प्रकार तू (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी, सबके जीवनों का रक्षक (वयोधाः) बल और विज्ञान को धारण करने वाला, (वृषभः) शान्ति, सुख का वर्षक (सूनृतानां गिरां) उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण वाणियों और उत्तम ज्ञान धन वा अन्नों से समृद्ध स्तुतिकर्त्ताओं का (पतिः भव) पालक हो। (शिवेभिः) कल्याणकारी, (सख्येभिः) मित्रता के भावों, कार्यों से, और (महीभिः ऊतिभिः) बड़ी रक्षा करने वाली शक्तियों और रक्षा साधनों से (महान्) महान् आदरणीय होकर (सरण्यन्) सबके जाने योग्य उत्तम मार्ग के समान सबका चारा होता हुआ वा स्वयं उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता हुआ (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो!

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम्।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः॥१९॥

भा०—हे (अंगिरस्वन्) जलते हुए अंगारों के समान तेजस्विन्! वा तेजस्वी विद्वानों वा वीरों के स्वामिन्! राजन्! (तम्) उस (नव्यं) स्तुति करने योग्य (पुराजाम्) सबसे पुरातन वा पूर्व उत्पन्न, वयोवृद्ध तुझको (नमसा) नमस्कार और अन्नादि द्वारा

(सपर्यन्) पूजा करता हुआ (सन्यसे) धनों का परस्पर विभाग करने वाले जनों के बीच न्यायानुकूल व्यवस्था वा उद्योग करने के लिये (कृणोमि) नियत करूं। तू (बहुलाः) बहुत सी (द्रुहः) परस्पर द्रोह करने वाली (अदेवीः) ज्ञान प्रकाश युक्त से व्यवहारज्ञ विद्वान् वा राजा से रहित प्रजाओं को (वि याहि) विविध प्रकार से प्राप्त हो, वश कर, ऐसी द्रोही और अदानशील शत्रु-प्रजा पर (वि याहि) विविध उपायों से आक्रमण कर। और (अदेवीः वि याहि) अविदुषी स्त्रियों और प्रजाओं को दूर कर अर्थात् उनको विद्वान् कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (सातये) प्रदान करने के लिये (स्वः) सुख ऐश्वर्य (धाः) धारण करा।

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम्।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः॥२०॥

भा०—हे राजन् ! हे सेनापते ! हे विद्वन् ! (पावकाः) अग्नियों की (मिहः) वर्षाएं (प्रतताः) दूर तक फैली हुई (अभूवन्) हों, तू (नः) हमें (आसाम् पारम्) उनके पार करके (स्वस्ति) सुखपूर्वक (पिपृहि) पालन कर। अथवा—(पावकाः) पवित्र स्वच्छ करने वाली (मिहः) जलवृष्टियें (प्रतताः अभूवन्) दूर २ तक फैली हों (नः) हमारे (आसाम्) इनके पालन सामर्थ्य को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (पिपृहि) पूर्ण कर। अर्थात् खूब वृष्टियां हों उनसे प्रचुर अन्न हों और प्रजा का पालन हो। इसी प्रकार राष्ट्र में (मिहः पावकाः) ज्ञान सेचक, परमपावन पुरुष दूर २ तक फैलें। उनसे हमें (आसाम् पारम्) उन शत्रु सेनाओं और विपत्तियों के पार करे, सुख को पूर्ण कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (रथिरः) महारथी होकर (नः) हमें (रिपः) हिंसक पुरुष और जन्तु से (पाहि) बचा। और (मक्षु

मक्षु) अति शीघ्र, (नः) हमें (गोजितः कृणुहि) भूमिविजयी वाग्-विजयी और जितेन्द्रिय बना ।

अदे॑दिष्ट वृत्र॒हा गोप॑ति॒र्गा अ॒न्तः कृ॒ष्णाँ अ॑रु॒षैर्धाम॑भिर्गात् ।
प्र सू॒नृता॑ दि॒शमा॑न ऋ॒तेन॒ दुर॑श्च॒ विश्वा॑ अवृणो॒दप॒ स्वाः ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्रहा) अन्धकार का नाशक (गोपतिः) किरणों का स्वामी सूर्य (गाः अदेदिष्ट) रश्मियों को दूर २ तक डालता, जगत् को प्रकाशित करता है । और जिस प्रकार (कृष्णान् अन्तः) काले अन्धकारों के भीतर (अरुपैः धामभिः) अति देदीप्यमान प्रकाशों से (गात्) प्रवेश करता और उनको व्याप लेता है । और जिस प्रकार वह (ऋतेन) जल के वर्षण द्वारा (सूनृता दिशमानः) अन्नों को प्रदान करता हुआ (स्वाः विश्वाः दुरः अवृणोत्) अपने सब अन्धकारवारक किरणों को दूर २ तक प्रकट करता है । उसी प्रकार राजा वा सेनापति (वृत्रहा) बढ़ते और घेरते हुए शत्रु का नाश करने हारा वीर पुरुष (गो-पतिः) समस्त भूमियों और आज्ञा वाणियों का स्वामी होकर (गाः अदेदिष्ट) भूमियों पर शासन करे और आज्ञाओं का प्रदान किया करे । इसी प्रकार (वृत्रहा गोपतिः गाः अदेदिष्ट) अज्ञान या विघ्नों का नाशक, वेदवाणियों का पालक विद्वान् शिष्यों को वाणियों का उपदेश करे । सेनापति (अरुपैः धामभिः) देदीप्यमान तेजों से और प्रजाओं का वध न करने वाले राष्ट्र के धारक पोषक उपायों से (कृष्णान् अन्तः गात्) कर्षण करने योग्य, दबाने योग्य दुष्टों के भीतर प्रवेश करे और कर्षक किसान प्रजाओं के भीतर तक पहुंचे, उनका प्रिय बने। इसी प्रकार आचार्य (अरुषैः धामभिः) रोप, ताड़नादि से रहित ज्ञानधारक उपायों से (कृष्णान् अन्तः गात्) अपनी ओर आक-र्षण करने योग्य प्रिय शिष्यों के भीतर स्थान प्राप्त करे । राजा (ऋतेन सूनृता दिशमानः) सत्य, न्याय-व्यवस्था और वेद के द्वारा उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को देता हुआ और (ऋतेन सूनृता दिशमानः) धनैश्वर्य सहित

अधीनों को उत्तम अन्न प्रदान करता हुआ वह (स्वाः) अपनी (विश्वाः दुरः) समस्त शत्रुनिवारक सेनाओं और शक्तियों का द्वारों के समान (अप अवृणोत्) प्रकाश करे। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष सत्य ज्ञान से युक्त उत्तम वाणियों का उपदेश करता हुआ अपनी समस्त (दुरः) अज्ञान दूर करने वाली वाणियों को हृदय के द्वारों के समान प्रकट रूप से खोल दे।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥८॥

भा०—व्याख्या देखो ३। ३०। २२ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३२]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७—९, १७ त्रिष्टुप्। ११—१५ निचृत्त्रिष्टुप्। १६ विराट् त्रिष्टुप्। ४, १० भुरिक् पङ्क्तिः। ५ निचृत्पङ्क्तिः। ६ विराट्पङ्क्तिः। सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमपते) सोम अर्थात् उत्तम ओषधि, अन्नादि खाद्य रसों के पालक वा पान करने हारे पुरुष ! तू (सोमं पिब) उस अन्नादि ओषधि रस को पान कर, उसको खा। (यत्) जब (ते) तेरा (माध्यन्दिनं) दिन के मध्य काल का (सवनं) सवन अर्थात् यज्ञ, वलिवैश्वदेव (चारु) उत्तम रीति से हो चुके। हे (मघवन्) हे उत्तम धन युक्त ! हे (ऋजीषिन्) सरल इच्छाओं और ऋजु, सादे उत्तम इष् अर्थात् अन्न को उपभोग करने हारे ! उस समय तू (शिप्रे) मुख के दोनों भागों को (प्रप्रुथ्य) अच्छी प्रकार भर करके और (हरी) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों को भोजन काल में (विमुच्य) विशेष रूप से शिथिल,

बन्धन मुक्त करके (इह) इस उत्तम अन्न भोजन के समय (मादयस्व) अपने को अन्न से तृप्त कर। (२) राजा सेनापति के पक्षमें—हे (सोमपते) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालक! तू इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र का पालन और उपभोग कर। जब तेरा (माध्यन्दिनं सवनं) मध्याह्न काल के सूर्य के समान राष्ट्र के बीच में होने वाला 'सवन' अर्थात् अभिषेक हो जावे उस समय हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! हे (ऋजीपिन्) ऋजु अर्थात् अकुटिल, धर्ममार्ग पर प्रजा को प्रेरित करने हारे! तू (शिप्रे) अपनी दोनों बलयुक्त सेनाओं को (प्रप्रुथ्य) अच्छी प्रकार वश करके (हरी विमुच्य) अश्वों को छोड़कर (इह) इस राष्ट्र में (मादयस्व) अपने और अपने प्रजाजन को तृप्त, सन्तुष्ट और आनन्दित कर। (३) आचार्य 'सोम' शिष्य का पालन करे जब की उसका अपनी आयु के मध्यकाल में होने योग्य सवन, गृहस्था-श्रम को पूर्ण कर वनस्थ होने का अवसर हो। वह (शिप्रे) ज्ञान और कर्म दोनों को पूर्ण कर (हरी विमुच्य) मन को हरने वाले माता पिता और पुत्रादि बन्धनों को छोड़कर इस विद्या प्रदान के कार्य में आनन्द-लाभ करे। अध्यात्म में—सोम आत्मानन्द 'माध्यंदिन सवन' आत्मा के भीतर होने वाला 'सवन' अर्थात् 'आनन्द वर्षण' करने वाले 'धर्म मेघ' का उदय, 'हरी' प्राण और अपान की दोनों गति।

गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सूर्य के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार (गवाशिरं शुक्रं पिबति) सूर्य किरणों से प्राप्त होने योग्य शुद्ध जल का पान करता है और (मारुतेन गणेन रुद्रैः सजोषाः वर्षति) वायुओं और गर्जते मेघों या विद्युतों से युक्त होकर जल वर्षाता है उसी प्रकार तू भी (गवाशिरम्) इन्द्रियों और भूमि निवासी प्रजाओं के द्वारा भोग और प्राप्त करने योग्य (मन्थिनम्) शत्रुओं और दुष्टों के दल को मथन

या दलन करने में समर्थ (शुक्रं) बल को और शीघ्रता से काम करने वाले सेनाबल को (पिब) प्राप्त कर और पालन कर । (ते) तेरे अधीन (मदाय) तेरे ही हर्ष को बढ़ाने और (मदाय = दमाय) उसको दमन, व्यवस्थापना करने के लिये (सोमं) अभिषेक द्वारा प्राप्त होने वाले राष्ट्रैश्वर्य के पालक पद को (ररिम) प्रदान करें । तू (ब्रह्मकृता) ब्राह्मणों के द्वारा शिक्षित वा धन द्वारा वशीकृत व प्राप्त (मारुतेन) मनुष्यों, शत्रु-मारक सैनिकों के (गणेन) संख्याबद्ध दल से वा (मारुतेन गणेन) सुवर्ण के बने संख्या योग्य धन राशि से और (रुद्रैः) विद्वानों के उपदेष्टा विद्वानों और दुष्ट शत्रु को रुलाने वाले वीर पुरुषों से (सजोषाः) समान भाव से प्रीतियुक्त होकर (तृपत्) खूब तृप्त, पूर्ण होकर (आ वृषस्व) सब प्रकार से बलवान् , प्रबन्ध करने में समर्थ हो । (२) विद्वान् पुरुष इन्द्रियों को बलवान् करने वाले हृदय को मथने वाले वीर्य की रक्षा करे । तृप्ति के लिये हम अन्न दें । प्राणायाम आदि वायुगण और अन्य गौण प्राणों से सुसेवित, अन्न से तृप्त होकर बलवान् बनें । (३) आचार्य को (मदाय) विद्योपदेश के लिये शिष्य को सौंपें । वह वीर्य पालन करावे (मारुतेन) वेदाध्ययन के अभ्यासी शिष्यगण और नैष्टिक ब्रह्मचारियों से युक्त होकर बढ़े ।

ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यंन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (माध्यन्दिने) दिन के मध्य में होने वाले (सवने) काल में जिस प्रकार सूर्य वायुओं से मिलकर (सोमं पिबति) जल का पान करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं को दलन करने वाले पुरुष ! (ये) जो लोग (ते) तेरे (शुष्मं) शत्रुओं को शोषण करने वाले बल या सामर्थ्य को और (ये) जो (तविषीम्) बलवती सेना को (अवर्धन्) बढ़ाते हैं और जो (मरुतः) वायु के समान तीव्र बलवान् पुरुष (अर्चन्तः) तेरा आदर सत्कार करते हुए

(ते ओजः) तेरे ओज पराक्रम को बढ़ाते हैं, हे (वज्रहस्त) शस्त्रों से सुसज्जित हाथों या शत्रु हननकारी सेना के स्वामिन् ! हे (सुशिप्र) शोभन मुख वाले, सौम्यमुख ! तू सूर्य के समान ही (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न कालिक सूर्य के समान तेज होने पर या राष्ट्र के बीच में अभिषेक होने पर (रुद्रेभिः) शत्रु को रुलाने वाले वीरों सहित और (सगणः) अपने सैन्य गणों सहित राष्ट्र का पालन और उपभोग कर। (२) अध्यात्म में—प्राणगण आत्मा की बल और शक्ति को बढ़ाते हैं, उनके बल पर मनुष्य उत्तम अन्नादि का उपभोग करें।

त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः) वायुगण ही (इन्द्रस्य शर्ध) विद्युत् के बल को धारण करके (इन्द्रस्य मधुमत् शर्धः विविप्रे) सूर्य या विद्युत् के बल से युक्त बल अर्थात् वर्षाकारी मेघ को सञ्चालित करते हैं और उन वायुओं से प्रेरित या उत्पन्न हुआ यह विद्युत् (वृत्रस्य मर्म विवेद) वृत्र अर्थात् मेघ के मर्म या मध्य भाग तक पहुंच जाता है उसी प्रकार (ये मरुतः) जो वीर विद्वान् पुरुष (इन्द्रस्य) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति के अधीन रहकर (आसन्) उसके मुख अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हैं वे ही (अस्य) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति या राष्ट्र के (मधुमत् शर्धः) शत्रुगण को कंपा देने वाले बल को (विविप्रे)सञ्चालित करते हैं। (येभिः) जिनसे (इषितः) प्रेरित और सैन्य युक्त होकर वह राजा (वृत्रस्य) अपने बढ़ते हुए और घेरने वाले (अमर्मणः) अज्ञात मर्म वाले (मन्यमानस्य) अभिमानी शत्रु के (मर्म) अति निर्बल मृत्युकारी मर्मस्थल को (विवेद) जाने। अथवा—(ये इन्द्रस्य शर्ध आसन्) जो वीर राजा के बलस्वरूप होते हैं वे ही उसके बलयुक्त सैन्य को सञ्चालित करते हैं।

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥९॥

भा०—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त (सवनं) राज्याभिषेक कार्य को (जुषाणः) प्रेम से स्वीकार करता हुआ तू (शश्वते वीर्याय) सनातन से चले आये और चिरकाल तक स्थिर रहने वाले वीर्य के लिये (सोमं) ओषधि रस के समान ही बलकारक राष्ट्रैश्वर्य या वीर्य का (पिब) उपभोग, पालन और पोषण कर । हे (हर्यश्व) बलवान् अश्वों और इन्द्रियों से युक्त ! तू (सरण्युभिः) सरणशील, आगे बढ़ने के इच्छुक (यज्ञैः) सुसंगत, आदरणीय पूज्य सहायकों से (सः) वह तू (आ ववृत्स्व) सर्वत्र वर्त्ताकर, व्यवहार कर, और विद्युत् जिस प्रकार (अपः अर्णा सिसर्षि) अन्तरिक्ष और जलों के बीच गति करती है उसी प्रकार हे वीर ! (अपः) तू आप्त तथा (अर्णा) ज्ञानवान् प्रजाओं को (सिसर्षि) प्राप्त हो । (२) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—मननशील ज्ञानी पुरुष के यज्ञ को करता हुआ अपने नित्य स्थिर (वीर्याय) सन्तान की वृद्धि के लिये शिष्य को रक्खे । (सरण्युभिः) उत्तम उपदेशों से युक्त ज्ञान, दानों और सत्संगों व मैत्रीभावों सहित तू (आ ववृत्स्व) वर्त्ताव कर । (अपः अर्णान्) उत्तम ज्ञान जलों को प्रवाहित कर । इति नवमो वर्गः ॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवी अपः वव्रिवांसं अदेवम् वृत्रं जघन्वान् अपः प्रासृजत्) स्वच्छ जलों को घेरकर विराजमान कान्तिरहित, श्याम मेघ को विद्युत् या वायु आघात करता और बहाने के लिये जलों को उत्पन्न कर देता है । उसी प्रकार हे वीर सेनापते ! (त्वम्) तू (यत् ह) जब

भी (देवीः) उत्तम पुरुष की कामना करने वाली, उत्तम गुणों से युक्त (अपः) आप्त प्रजाओं को (वव्रिवांसं) घेरने वाले (शयानम्) सोते हुए, प्रमादी, (अदेवम्) अदानशील, स्वयं प्रजा को खा जाने वाले, उत्तम गुणों से हीन, पापाचारी (वृत्रं) विघ्नकारी, दुष्ट शत्रु को (चरता वधेन) चलते हुए शस्त्र से (जघन्वान्) मारता हुआ (आजौ सर्त्तवे) संग्राम में वेग से भागने के लिये (अत्यान् इव) जिस प्रकार घोड़ों को (प्र असृजः) आगे बढ़ाता है उसी प्रकार (सर्त्तवे) भाग निकलने और (अपः) जलों के समान वेग से शत्रु सेनाओं को निकल भागने के लिये (प्र असृजः) वाधित कर देता है। (२) परमेश्वर पक्षमें— (अपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु (वृत्रं) निहारिका।

यजा॑म॒ इन्नम॑सा वृ॒द्धमिन्द्रं॑ बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॒ युवा॑नम्।
यस्य॑ प्रि॒ये म॒मतु॑र्य॒ज्ञिय॑स्य॒ न रोद॑सी महि॒मानं॑ म॒माते॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस (यज्ञियस्य) पूजनीय, सत्संगयोग्य, दानशील प्रजापति के योग्य (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (प्रिये रोदसी) कमनीय, प्रासियुक्त (रोदसी) माता पिता, स्वपक्ष और परपक्ष की प्रजाएं भी (न ममतुः) माप नहीं सकतीं, और (न ममाते) निश्चय से जिसकी महिमा का पार नहीं पा सकते उस (वृद्धम्) अनुभव, आयु और ज्ञान में वृद्ध, (बृहन्तम्) बड़े (अजरम्) जरारहित, बलवान्, (युवानम्) बलिष्ठ, (ऋष्वम्) दर्शनीय पुरुष को (नमसा) आदर सत्कार, अन्नादि द्वारा (यजाम) पूजा करें। इसी प्रकार जिस परमेश्वर के महान् सामर्थ्य को आकाश और भूमि दोनों भी नहीं माप सकते और त्रिकाल में भी नहीं माप पाते उस सबसे महान् (अजरं) नित्य, बलवान्, दर्शनीय परमेश्वर की (इत्) ही हम सदा नमस्कारों द्वारा (यजाम) उपासना करें।

इन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ सुकृ॑ता पु॒रूणि॑ व्र॒तानि॑ दे॒वा न मि॑नन्ति॒ विश्वे॑ ।
दा॒धार॒ यः पृ॑थि॒वीं द्याम॒ुतेमां ज॒जान॒ सूर्य॑मु॒षसं॑ सु॒दंसाः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (द्याम् उत इमाम् पृथिवीम्) आकाश और इस भूमि को (दाधार) धारण करता है और जो (सुदंसाः) उत्तम कर्मों का वा उत्तम रीति से समस्त संसार का कार्य करने हारा प्रभु (सूर्यम्) सूर्य और (उपसम्) उपा को अथवा (उपसं सूर्यम्) तापदायी अग्निमय और दीप्तिमय सूर्य को (जजान) उत्पन्न करता है उस (इन्द्रस्य) महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (पुरूणि) बहुतसे (सुकृता) उत्तम रीति से सम्पादित (कर्म) कर्मों को और (व्रतानि) उत्तम रीति से पालन करने योग्य व्रतों, नियमों को (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् लोग और तेजस्वी सूर्यादि भी (न मिनन्ति) उल्लंघन नहीं करते । (२) इसी प्रकार जो पुरुप तेजस्वी शासक और शास्य दोनों को धारण करता और तापदायी या सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्रकट करता है उस शोभन कर्म करने वाले शत्रुहन्ता नायक के उत्तम कर्मों और व्यवस्थाओं को सभी लोग कभी उल्लंघन न करें ।

अद्रो॑घ स॒त्यं तव॒ तन्म॑हि॒त्वं स॒द्यो यज्जा॒तो अपि॑बो ह॒ सोम॑म् ॥
न द्याव॑ इन्द्र त॒वस॑स्त॒ ओजो॒ नाहा॒ न मासाः॑ श॒रदो॑ वरन्त ॥९॥

भा०—हे (अद्रोघ) किसी से भी द्रोह या द्वेष बुद्धि न करनेहारे ! (तव) तेरा (तत्) वह महान् अपरिमित (सत्यं महित्वं) सच्चा महान् सामर्थ्य है (यत्) जिससे तू (जातः) प्रकट होकर (ह) निश्चय से (सोमम्) समस्त ऐश्वर्य और सामर्थ्य को (अपिबः) पालन और उपभोग करता है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (तवसः) बलशाली (ते) तेरे और (ते तवसः) तेरे बल के (ओजः) पराक्रम और प्रताप को (न द्यावः) न सूर्य आदि तेजस्वी लोक, न भूमिगत

प्रजाएँ (न अहा) न दिन (न मासाः) न मास और (न शरदः) न शरद् आदि ऋतु गण वा वर्ष ही (वरन्त) निवारण कर सकते हैं। प्रत्युत तेरे प्रताप को सब मानते हैं, वह स्थिर है। (२) परमेश्वर भी मित्र है वह किसी से द्रोह नहीं करता। वह समस्त महान् सामर्थ्य को धारता है। सूर्यादि लोक, दिन, मास, ऋतु आदि भी उसके महान् बल पराक्रम को समाप्त नहीं कर सकते, वह अनन्त बलशाली है।

त्वं स॒द्यो अ॑पिबो जा॒त इ॑न्द्र॒ मदा॑य॒ सोमं॑ पर॒मे व्यो॑मन्।
यद्ध॒ द्यावा॑पृथि॒वी आवि॑वे॒शीरथा॑ भवः पू॒र्व्यः का॒रुधा॑याः॥१०॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के स्वामिन्! इन्द्रिय सामर्थ्यों के अधिष्ठाता जीवात्मन्! (त्वं) तू (सद्यः) शीघ्र ही (जातः) उत्पन्न होकर वा उत्तम गुणों में प्रकाशित होकर (परमे) सबसे उत्कृष्ट (व्योमन्) विशेष रूप से सर्वत्र व्यापक, सर्वरक्षक परमेश्वर के आश्रय रहकर (मदाय) अति आनन्द लाभ करने के लिये (सोमम्) परमैश्वर्य और ब्रह्मानन्द रस को (अपिवः) उपभोग कर। इसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर! तू (परमे व्योमन्) परम रक्षकस्वरूप में सदा प्रकट होकर (मदाय) परम आनन्द देने के लिये (सोमम् अपिवः) ज्ञानवान् जीव की रक्षा कर। (यत् ह) निश्चय से तू (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि में (आविवेशीः) व्यापक हो रहा है। इसी प्रकार जीव (द्यावापृथिवी) प्राण और अपान वा माता पिता के बीच प्रविष्ट रहता है। तू (अथ) और वह तू (कारुधायाः) समस्त विश्व के विधायक जगदुत्पादक सामर्थ्यों, स्तुतिकर्त्ता विद्वानों और शिल्पियों को भी धारण करने वाला होकर सबसे (पूर्व्यः) पूर्व ही (अभवः) विद्यमान है। (२) इसी प्रकार राजा सब से ऊंचे पद पर स्थित होकर सबके हर्ष के लिये राष्ट्र की रक्षा करे। वह स्व और पर दोनों पक्ष में समान रहे, वह सब शिल्पियों का रक्षक पोषक हो। इति दशमोवर्गः॥

अह॒न्नहि॑ परि॒शया॑न॒मर्ण॑ ओजा॒यमा॑नं तुविजात॒ तव्या॑न् ।
न ते॑ महि॒त्वमनु॑ भूद॒ध द्यौर्यद॒न्यया॑ स्फि॒ग्या॒३॒॑ क्षामव॑स्थाः ॥११॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (अर्णः परिशयानम्) जल में सब प्रकार व्यापक उससे पूर्ण (ओजायमानं अहिं अहन्) बलशाली जलधर मेघ को आघात करता है उसी प्रकार हे (तुविजात) बहुतसों में प्रसिद्ध एवं बहुतसों को अपने समान उत्पन्न करनेहारे वीर ! तू (तव्यान्) बहुत बलवान् होकर (अर्णः परिशयानम्) जल के समान शान्त स्वभाव, सरल और चञ्चल, भयभीत प्रजाजन के चारों ओर घेरा डाल कर पड़े रहने वाले या उसमें गुप्त रूप से छुपे हुए (ओजायमानम्) पराक्रम दिखलाने वाले (अहिम्) आक्रमणकारी शत्रु को (अहन्) विनाश कर । (यत्) जब तू (अन्यया) अपनी एक (स्फिग्या) शक्ति से (क्षाम्) भूमि निवासिनी प्रजा को (अव स्थाः) अवस्थित या व्यवस्थित, वशीभूत करे (अध) तब (द्यौः) ज्ञानप्रकाश से युक्त राजसभा भी (ते महित्वम्) तेरा महान् सामर्थ्य का (न अनु भूत्) अनुकरण नहीं कर सकती ।

य॒ज्ञो हि त॑ इन्द्र॒ वर्ध॑नो॒ भूदु॒त प्रि॒यः सु॒तसो॑मो मि॒येधः॑ ।
य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑व य॒ज्ञियः॒ सन्य॒ज्ञस्ते॒ वज्र॑महि॒हत्य॑ आवत् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (यज्ञः हि) निश्चय से यज्ञ अर्थात् हमारा नाना करादि का देना और त्याग ही (ते) तुझे (वर्धनः) बढ़ाने वाला (उत प्रिय) प्रिय, तृप्त करने वाला (सुतसोमः) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला और (मियेधः) सब दुःखों और संकटों को नाश करने हारा है । हे राजन् ! तू (यज्ञियः) उत्तम पूजा, सत्संग और दान के योग्य (सन्) होकर (यज्ञेन) अपने उत्तम त्याग, सत्संग और मैत्रीभाव से (यज्ञम्) प्रजा के त्याग, संगति और मैत्री-

भाव की रक्षा कर। (ते यज्ञः) अर्थात् तेरा दान, त्याग और मैत्रीभाव ही (अहिहत्ये) अभिमुख खड़े शत्रु को विनाश करने के काम में (वज्रम्) शस्त्रास्त्र बल की (आवत्) रक्षा करता है। (२) (यज्ञः) देवपूजा और परमेश्वर का परम दान और सत्संग ही हे परमेश्वर ! तेरे गुणों को बढ़ाने वाला, सबको प्रिय, जीव को पवित्र करने वाला, परम पवित्र कार्य है। तू सर्वस्तुत्य होकर अपने महान् दान और सखाभाव से ही इस सुसंगत जीव की रक्षा कर अन्धकार को नाश करने के लिये तेरी उपासना और सख्य ही (वज्रम्) अज्ञाननाशक ज्ञान-वैराग्य रूप वज्र की रक्षा करते हैं।

य॒ज्ञेनेन्द्र॒मव॑सा च॑क्रे अ॒र्वागैनं॑ सु॒म्नाय॒ नव्य॑से ववृत्याम्।
यः स्तोमे॑भिर्वावृ॒धे पू॒र्व्येभि॒र्यो म॑ध्य॒मेभि॑रु॒त नूत॑नेभिः॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (पूर्व्येभिः) पूर्व किये गये, (मध्यमेभिः) बीच में किये गये और (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों, कर्मों और सैनिक सहायक दलों में (वावृधे) बढ़ता है (एवं) उस पुरुष को मैं प्रजाजन स्वयं (यज्ञेन) अपने मित्रता, संगठन, प्रबन्ध और करादि दान, मान सत्कार द्वारा और (अवसा) उत्तम रक्षा आदि के निमित्त (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र रूप से (आ चक्रे) स्वीकार करूं, उसे नायक एवं राजा बनाऊं। और (एनं) उसको (अर्वाक्) सबके समक्ष (नव्यसे सुम्नाय) नये से नये सुख, ऐश्वर्य आदि की वृद्धि के लिये ही (आ ववृत्याम्) वरण करूं (२) परमेश्वर के पूर्व के, बीच के और नये स्तुति वचनों से महिमा प्रतीत होती है। उसको उपासना, ज्ञान से (अर्वाक् आचक्रे) साक्षात् करूं और अति रमणीय सुख परमानन्द को प्राप्त करने के लिये वरण करूं।

वि॒वेष॒ यन्मा॑ धि॒षणा॑ ज॒जान॒ स्तवै॑ पु॒रा पार्या॒दिन्द्र॒मह्नः॑।
अंह॑सो॒ यत्र॑ पी॒पर॒द्यथा॑ नो ना॒वेव॒ यान्त॑मु॒भये॑ हवन्ते॥ १४

भा०—(यत्) जब (मा) मुझे यह (धिषणा) उत्तम बुद्धि (वित्रेप) प्राप्त हो और प्रकट हो जाय कि मुझे (पार्यात् अह्नः पुरा) पार लगाने वाले दिन से पूर्ण ही (इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष की (स्तवै) स्तुति करना आवश्यक है तब (यथा) जिस प्रकार से भी हो और (यत्र) जिस काल और जिस देश में भी होऊं वह (नः) हमें (अंहसः) पाप से (पीपरत्) रक्षा करता है। और (नावा इव यान्तम्) नाव से जाते हुए यात्री को जिस प्रकार (उभये हवन्ते) दोनों तटों के लोग पुकारते हैं उसी प्रकार सबको तारने वाले प्रभु के आश्रय से जाने वाले पुरुष को भी (उभये) सांसारिक और पारमार्थिक दोनों क्षेत्रों के लोग (हवन्ते) पुकारते हैं, उसको आदर से देखते हैं।

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥

भा०—(सेक्ता इव) सेचन करने वाला जिस प्रकार (पिवध्यै) वृक्षादि को पानी पिलाने के लिये (कोशं सिसिचे) मेघ को वरसाता है और जिस प्रकार (कलशः आ पूर्णः) कलसा खूब भरा हुआ और दूसरा (सेक्ता) जल धारा सेचन करने वाला पुरुष (पिबध्यै) दूसरे को जलपान कराने के लिये (कोशं सिसिचे) जल प्रदान करता है उसी प्रकार (अस्य) इस प्रजाजन या राजा का (कलशः) कलश, राष्ट्र (स्वाहा) सुखजनक कर आदि प्रदान से उत्तम ऐश्वर्यों से (आपूर्णः) खूब भरा हुआ हो। वह (पिबध्यै) स्वयं और प्रजाजन को पालन और उपभोग करने के लिये (सेक्ता इव) मेघ या सूर्य के समान ही (कोशं सिसिचे) अपने खज़ाने को प्रजा के उपकारार्थ लगादे। अथवा प्रजाजन भी (सेक्ता) अभिषेक करने वाला होकर (कोशं) खज़ाने के समान प्रजा पालक पुरुष को ही (पिवध्यै) अपनी रक्षार्थ (सिसिचे) अभिषेक करे। और (प्रियाः) उसके प्रिय (सोमासः) ऐश्वर्यवान्, अन्य

अभिषिक्त पदाधिकारी जन (इन्द्रम्) इस शत्रुहन्ता पुरुष के (अभि प्रदक्षिणित्) चारों ओर घिरकर (मदाय) अपने हर्ष और तृप्ति या स्तुति के लिये (उ) ही (सम् आववृत्रन्) अच्छी प्रकार घेर लें । इसी प्रकार (इन्द्रम् सोमासः) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को जलयुक्त मेघवत् अभिषिक्त जन तृप्ति लाभ के लिये घेरकर सुरक्षित रक्खें ।

न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळहं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत से प्रजाजनों से रक्षार्थ पुकारे जाने योग्य वीरजन ! (त्वां) तुझको (गभीरः सिन्धुः) गहरी नदी और (न अद्रयः) न बड़े २ पहाड़ ही (सन्तः) विद्यमान रह रहकर (परि वरन्त) दूर कर सकते या रोक सकते हैं । वे तेरे मार्ग में बाधक नहीं हो सकते । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जब तू (इत्था) इस प्रकार से सचमुच (सखिभ्यः) अपने प्रिय सुहृदों के उपकार के लिये (इषितः) चाहा जाकर या प्रेरित या सेनायुक्त होकर तू (दृढम्) दृढ़ (गव्यं) पृथिवी के (ऊर्वम्) निरोधस्थान, रुकावट के या (गव्यम् ऊर्वम्) पृथ्वी के ऊपर के दृढ़ से दृढ़ हिंसक, बाधक शत्रु को भी (अरुजः) तुम तोड़ डालते हो । (२) परमेश्वर का मुकाबला गम्भीर से गम्भीर समुद्र और ऊंचे से ऊंचे पर्वत या मेघ भी नहीं कर सकते ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१७॥११॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३० । २२ ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

[३३]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ नद्यो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पङ्क्तिः । स्वराट् पङ्क्तिः । ७ पङ्क्तिः । २, १० विराट्त्रिष्टुप् । ३, ८, ११, १२ त्रिष्टुप् । ४, ६, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १३ उष्णिक ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

भा०—(पर्व तानाम् उपस्थात्) पर्वतों के बीच में से जिस प्रकार दो नदियां (विपाट् शुतुद्री) अपने तटों को तोड़ती फोड़ती, और अति वेग से बहती हुई (पयसा जवेते) जल से पूर्ण होकर वेग से जाती हैं और जिस प्रकार (उशती) परस्पर कामना करने वाले वेग से दौड़ते २ (अश्वे) दो घोड़ा घोड़ी, (हासमाने) एक दूसरे से स्पर्धा करती हुई (जवेते) वेग से दौड़ रही हों और जिस प्रकार (गावा इव शुभ्रे) धवल वर्ण की दो गौवें वा दोनों गौ और वृषभ (रिहाणे) परस्पर एक दूसरे को चाटती, प्रेम करती हों उसी प्रकार स्त्री और पुरुष परस्पर विवाहित होकर दोनों (पर्वतानाम् उपस्थात्) अपने पालन करने वाले माता पिता गुरुजनों के समीप (उशती) एक दूसरे को हृदय से चाहते हुए, (विपिते) विशेष रूप से बन्धन में बद्ध, (हासमाने) एक एक से गुणों, विद्या और शोभा में स्पर्धा करते हुए वा (हासमाने) एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए होवें, (शुभ्रे) उत्तम शोभा युक्त, शुद्ध वस्त्र और आचरण वाले, (मातरा) माता और पिता के पद पर विराजते हुए, (रिहाणे) उत्तम भोजनादि का आस्वाद लेते हुए वा परस्पर आलिंगन प्रेमादि करते हुए, (विपाट्) एक दूसरे के पाश, फन्दों, ऋणादि के बन्धनों को दूर करने वाले, विविध सुखों को प्राप्त कराने वाले और विविध प्रकार से एक दूसरे को प्रेम-पाशों में बांधने वाले और (शुतुद्री) एक दूसरे के शोकों को दूर करने वाले, अति शीघ्र ही एक दूसरे के प्रेम से द्रवित वा कष्टों से व्यथित होने वाले होकर (पयसा) पुष्टिकारक अन्न दुग्धादि से बालकों के प्रति (जवेते) शीघ्र प्राप्त हों। 'विषिते' विविधं सिते बद्धे। 'हासमाने'—द्रवित हों, प्रेम से बढ़ें। (२) सेना और सेनापति दोनों प्रजा को बंधनों से छुड़ाने से 'विपाट्' हैं। राजा और सेना शीघ्र वेग

से जाने वाली होने से 'शुतुद्री' हैं। हासतिः स्पर्धायां हर्षमाणे वा ॥निरु०॥ 'मातरौ'—माता च पिता च मातरौ। मातृशब्दशेषः छान्दसः। विपाट् विपाटनाद्वा विपाशनाद्वा, विप्रापणाद्वा, पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तद्विपाट् उच्यते। पूर्वमासीदुरुञ्जिरा। निरु०। विपाट्- पट गतौ, पश बाधनस्पर्शनयोः इति ण्यन्तौ विपूर्वौ। शस्य व्रश्चनादि नाषत्वम्। विविधं पटति गच्छति विपाट् इति वा॥ 'शुतुद्री—शुद्राविणी, क्षिप्रद्राविणी, तुन्नेव द्रवति। (सा० निरु०) आशु शुग्द्राविणी वा। शु शीघ्रं तुदति व्यथयति। (द०) तुद्यते व्यथिता भवति इति वा विपाट् शुतुद्री इति उभयत्र सुपो लुक् विपाशौ शुतुद्र्यौ इति। (२) अध्यात्म में—प्राण और अपान वा आत्मा और परमात्मा दोनों ही मृत्यु भय से ग्रस्त वसिष्ठ अर्थात् देह में उत्तम वसु, जीव के पाशों को छिन्न भिन्न करने से 'विपाट्' है और शोक मृत्यु भयादि दूर करने से 'शुतुद्री' हैं। सर्वोत्पादक वा ज्ञानवान् होने से 'माता' है, शुद्धस्वरूप होने से 'शुभ्र' है, कान्ति वा प्रेमबद्ध युक्त होने से 'रुशती' बन्धनमुक्त होने से 'विषिते' और आनन्द युक्त होने से 'हासमाने' हैं। वे दोनों (पयसा) तृप्तिकर आनन्द रस से पूर्ण होकर एक दूसरे के प्रति वेग, प्रेम से द्रवित होते हैं।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रेषिते) सूर्य या मेघ वृष्टि द्वारा अति वेग से प्रेरित होकर (ऊर्मिभिः पिन्वमाने) तरंगों से तट प्रदेशों को सींचती हुई दो महानदियां एक दूसरे से मिलकर (समुद्रं याथः) समुद्र को पहुंच जाती हैं उसी प्रकार स्त्री पुरुष पति पत्नी दोनों (इन्द्रेषिते) 'इन्द्र' अर्थात् अज्ञान के नाश करने वाले विद्वान् पुरुष द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित होकर (प्रसवं भिक्षमाणे) उत्तम सन्तान की एक दूसरे से प्रार्थना और

याचना करते हुए (रथ्या इव) रथ में लगे दो अश्वों के समान वा रथ में बैठे रथी सारथी के समान या रथ में लगे दो चक्रों के समान (अच्छा) परस्पर प्रेमयुक्त होकर (समुद्रं याथः) समुद्र के समान अपार काम्य सुख को प्राप्त करें। वे दोनों (ऊर्मिभिः) प्रेम की उठी तरंगों से (समाराणे) परस्पर सुसंगत होकर वा एक दूसरे को अपने समान भाव से संप्रदान करते हुए और (पिन्वमाने) स्नेहों द्वारा एक दूसरे को सींचते, बढ़ाते वा निषेक करते हुए (शुभ्रे) मन, तन, वाणी से शुद्ध, स्वच्छ वा तेजस्वी होकर रहो और (वाम्) तुम दोनों से (अन्या) एक व्यक्ति (अन्याम्) दूसरी व्यक्ति को (अप्येति) अच्छी प्रकार ऐसे प्राप्त हो कि एक में एक समा जाय। (२) सेना, नायक वा राजा प्रजा (प्रसवं भिक्षमाणे) उत्तम शासन और ऐश्वर्य चाहते हुए अपार ऐश्वर्य को प्राप्त करें। कामो हि समुद्रः। शत० ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥ ३ ॥

भा०—विपाट् माता का वर्णन करते हैं। हम लोग (सुभगाम्) पति द्वारा उत्तम रीति से सुखपूर्वक सेवने योग्य, उत्तम सौभाग्य और ऐश्वर्यादि सुखों की देने वाली, (सिन्धुम्) पति को प्रेम-पाश में बांधने वाली (मातृतमाम्) उत्तम ज्ञानवती वा उत्तम माता के स्वभाव और रूप वाली (विपाशम्) पति को ऋणादि बन्धनों से छुड़ाने वाली, (उर्वीम्) भूमिस्वरूप, बहुत विशाल हृदय वाली स्त्री का (अयासम्) मैं प्राप्त होऊं। और ऐसी ही माता को हम सभी (अगन्म) प्राप्त करें। (मातरा) माता और पिता दोनों ही (वत्सं इव संरिहाणे) बछड़े को प्रेम से चराती गौवों के समान अति स्नेह से युक्त होकर प्रजा सन्तति को (संरिहाणे) अच्छी प्रकार प्रेम करते हुए (समानं योनिम्) एक ही गृह में (अनु) आश्रय लेकर (सं चरन्ती) एक साथ रहते

रहें। (२) सबसे श्रेष्ठ माता परमेश्वर विविध बन्धनों को काटने से 'विपाश्' है। सुख ऐश्वर्यवान् होने से 'सुभगा' है। महान् होने से 'उर्वी' है। मातृवत् पूज्य होने से माता के समान स्त्रीलिंग में कहा गया है। जीव और प्रभु एक दूसरे को मा बच्चे के समान प्रेम करें। जीव भी ज्ञानी होने से 'मा ा' है। उन दोनों का समान योनि, स्वरूप, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, प्रत्यगात्मरूपता है।

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (पयसा पिन्वमानाः नद्यः) जल से भरी पूरी नदियां और देशों को सींचती हुई (देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः) परमेश्वर के बनाये स्थान, समुद्र मार्ग को अनुसरण करती हुई, या (देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः) मेघ से बरसे या सूर्य द्वारा उत्पादित जल को साथ लेकर चलती हुई जाती हैं। उनका (सर्गतक्तः प्रसवः) जलों के द्वारा सुप्रसन्न, वेग से गमन करना (न वर्त्तवे) फिर लौटने के लिये नहीं हो ा इसी प्रकार (वयम्) हम सभी स्त्री पुरुष (एना पयसा) इस अन्न और दूध से अन्न और जल से (पिन्वमानाः) स्वयं और औरों को पुष्ट करते हुए (देवकृतं योनिम्) परमेश्वर और देव अर्थात् विद्वान् द्वारा या प्रिय कामनायोग्य पति द्वारा बनाये गृह को ही (अनु चरन्तीः) अनुकूल होकर प्राप्त होते हैं। हमारा (सर्गतक्तः प्रसवः) सृष्टिनियम से विकसित उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का कार्य (न वर्त्तवे) कभी निवृत्त या समाप्त नहीं हो सकता। तब फिर (विप्रः) विविध कामनाओं को पूर्ण करने हारा विद्वान् पुरुष (किंयुः) किस विशेष कामना को करता हुआ (नद्यः) गुणों और विद्याओं में समृद्ध, रूप-यौवन-सम्पन्न युवतियों को (जोहवीति) स्वीकार किया करता है? उत्तम सन्तान के अतिरिक्त दूसरे किसी और प्रयोजन से विद्वान् लोग स्त्रियों को ग्रहण नहीं

करते। और वह सन्तान का कार्य स्वाभाविक नैसर्गिक कर्म है। स्त्रियें भी सन्तान को दूध आदि से पुष्ट करती हुई सदा पति के गृह में धर्म नियमानुसार आचरण करके रहती हैं।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥५॥१२॥

भा०—हे (ऋतावरीः) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान, न्याय और धन की वरण करने वाली प्रजाओ, सेनाओ! आप लोग (मुहूर्त्तम्) घड़ी भर (एवैः अपनी उत्तम चालों से, गमनागमनादि विशेष व्यापारों से (मे) मेरे (सोम्याय वचसे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, राष्ट्र के हितकारी वचन के श्रवण करने और पालन करने के लिये (उप रमध्वम्) उपराम करो। स्थिर चित्त होकर मेरा वचन सुनो। (बृहती) बहुत बड़ी (मनीषा) मन के ऊपर वश करने वाली बुद्धिमती, स्त्री (सिन्धुम् आ) सिन्धु के समान गंभीर पुरुष की ही (अवस्युः) कामना करती हुई उसको (अच्छ) सन्मुख प्राप्त करके उसके साथ (प्र अह्वे) उत्तम रीति से गुणों, विद्याओं और शोभा में स्पर्धा करती है। और इसी प्रकार (कुशिकस्य) निष्कर्ष रूप में विद्याओं के द्वारा के उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष का (सूनुः) पुत्र के समान शिष्य बलवान् ज्ञानवान् युवक भी (ताम् बृहतीं मनीषां सिन्धुम् अच्छ प्र अह्वे) उस बड़ी मनस्विनी महानदी के समान गंभीर, गति वाली, एवं (सिन्धुम्) गृहस्थ के बन्धनों में बांध लेने वाली स्त्री को ही (अवस्युः) प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ (प्र अह्वे) उसको रूप-गुण-विद्या आदि में उत्तम स्पर्धा करे और उसे अपने समान जानकर आदरपूर्वक स्वीकार करे। (२) इसी प्रकार (बृहती मनीषा अवस्युः सिन्धुम् अह्वे) बड़ी भारी स्तम्भन शक्ति को धारने वाले सेना-समुद्रवत् गम्भीर नायक को अपनी रक्षा की कामना से स्पर्धापूर्वक प्राप्त करे। और (कुशिकस्य सूनुः)

शस्त्रास्त्रकुशल सैन्य बल का संञ्चालक पुरुष (बृहती मनीषा) बड़ी भारी बुद्धि से युक्त होकर (सिन्धुम् अवस्युः प्र अह्वे गच्छ) समुद्रवत् अपार सैन्य बल का रक्षा करने का इच्छुक होकर स्पर्धा पूर्वक प्राप्त करे। 'बृहती, सिन्धुम् मनीषा' आदि पद दीपक वृत्ति से उभयत्र संयोजित होते हैं। (२) अध्यात्म में सत्य ज्ञानसम्पन्न वाणी 'ऋत' का उपदेश करने वाले 'ऋतावरी' हैं। वे (एवैः) ज्ञानों से योग्य वचन उपदेश के लिये (मूहूर्त्त = मुहुः–ऋतम्) वारंवार ऋत अर्थात् सत्यज्ञान को मुझको (उपरमध्वम्) प्रदान करें। वह बड़ी भारी प्रज्ञावती बृहती वेदवाणी (सिन्धुम्) अगाध आनन्द सागर प्रभुका ही उत्तम उपदेश करती है। (कुशिकस्य) कोशस्थ आत्मा का ज्ञाता मैं भी उसी महान् आनन्द सागर की ही (प्र अह्वे) खूब स्तुति करूं। इति द्वादशो वर्गः ॥

इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रद॒द्वज्र॑बाहु॒रपा॑ह॒न्वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म् ।
दे॒वो॑ऽनयत्सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) जिस प्रकार सूर्य या मेघ (वज्रबाहुः) विद्युत् को बाहु के समान आघातकारी शक्ति के समान धारण करके (नदीनां परिधिम्) नदियों को ऊपर तक परिपूर्ण करने वाले (वृत्रं अप अहन्) मेघ को आघात करता है और नदियों को (अरदत्) खन २ कर बना देता है (सुपाणिः सविता) उत्तम किरणों वाला मेघों का उत्पादक प्रेरक सूर्य ही (देवः) तेजस्वी और वृष्टि द्वारा जल देने वाला होता है (प्रसवे) उत्तम जलोत्सर्ग करने पर बड़ी २ नदियां चलती हैं। उसी प्रकार (वज्र-बाहुः) शस्त्र को हाथ में धारण करने और वज्र या शस्त्र युक्त बाहु के तुल्य शत्रु को सदा दण्ड देने वाला क्षत्रिय (इन्द्रः) बल-वान् और ऐश्वर्यवान् होकर (अस्मान्) हम समस्त प्रजाओं और सेनाओं को (अरदत्) लेखन करता, कर्षण या उत्पीड़न, शासन करता है, वही (नदीनां) समृद्ध प्रजाओं के या नाना प्रकार चिल्ल पुकार

करने वाली प्रजाओं के (परिधिम्) सब ओर से रक्षक या घेरने वाले (वृत्रं) बढ़ते हुए शत्रु को भी (अप अहन्) मार कर दूर भगावे। वही (सुपाणिः) शुभ हाथों, उत्तम साधनों से युक्त (देवः) दानशील, विजिगीषु (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अस्मान्) हमको सन्मार्ग में (अनयत्) ले जावे। (तस्य प्रसवे) उसके उत्तम शासन में (वयं) हम (उर्वीः) बहुत संख्या में सुफल समृद्ध होकर (यामः) चलें, प्रयाण करें। (२) गृहस्थ, स्वयंवर पक्षमें—(नदीनां) समृद्धियों के धारक (वृत्रं) दुष्ट विघ्नकारी धनमत्त पुरुष को नाश करने वाला (इन्द्रः) विद्वान् ऐश्वर्यशील पुरुष (अस्मान्) हम उत्तम स्त्रियों के (अरदत्) हृदय पर छाप लगाता है। वह (देवः) कामना योग्य उत्तम तेजस्वी सुन्दर पुरुष हमें (अनयत्) परिणय करे उसी के (प्रसवे) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के कार्य में हम बहुगुणसम्पन्न होकर लगें। जातौ बहु वचनम्। (३) शिल्पी इञ्जीनियर 'इन्द्र' है वह लोह के बने हथियारों से नदियों को खने, नदियों को भरने वाले जल को दूर देशों तक ले जावे। उसके शासन में नदी, नहरें चलें।

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१न्तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥

भा०—(यद् अहिम् विवृश्चत्) सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है वह उसका बड़ा भारी बल कार्य सदा ही उत्तम कहने योग्य है। वह (वज्रेण) विद्युत् द्वारा (परिषदः जघान) चारों तरफ़ स्थित मेघस्थ जलों को आघात करता और (आपः) जल आश्रय चाहते हुए (आयन्) नीचे आ गिरते हैं। उसी प्रकार (यत्) जो वीर पुरुष (अहिम्) अभिमुख स्थित शत्रु को (विवृश्चत्) विविध उपायों से काट गिराता है और (तत्) वह (इन्द्रस्य) इन्द्र का ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती

बलवान् पुरुष का (कर्म) काम और (वीर्यं) बल (शश्वधा) सदा काल ही (प्रवाच्यम्) सबसे उत्तम रूप से कथन करने योग्य है। वह वीर पुरुष ही (परिषदः) चारों ओर घेर के बैठी शत्रु-सेनाओं या छावनियों को (वज्रेण) शस्त्र बल से (वि जघान) विविध प्रकार से आघात करे और (अयनम् इच्छमानाः आपः) स्थान या शरण चाहने वाले प्रजागण (अयनम् इच्छमानाः) विशेष अधिकार चाहने वाले (आपः) समीपतम, आप्त पुरुष ही (आ अयन्) आगे बढ़ें, उन्नत पद प्राप्त करें। गृहस्थ पक्षमें—इन्द्र आचार्य का यह बड़ा उत्तम स्तुत्य कार्य है कि वह अज्ञान का नाश करता है, ज्ञान रूप वज्र से अपने चारों ओर बैठे शिष्य जनों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जलवत् स्वभाव युक्त सौम्य शिष्य भी (अयनं) ज्ञानेच्छुक होकर उसके शरण आते हैं। चारों ओर स्थितों को वह ज्ञान से प्राप्त होता उनके अज्ञान को नाश करता है यह उसका बड़ा स्तुत्य ज्ञानबल या विशेषोपदेश और उत्तम कर्म है।

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

भा०—हे (जरितः) उपदेश करने हारे विद्वन्! हे आज्ञापक! (एतद् वचः) इस वचन को तू (मा अपि मृष्ठाः) कभी सहन मत कर (यत्) कि (ते) तेरे (उत्तरा युगानि) आगे आने वाले वर्षों में (घोषान्) उद्घोषित घोषणाओं को (प्रति) पालन न करें। हे (कारो) क्रियाकुशल पुरुष! (उक्थेषु) प्रशंसनीय उपदेशादि कर्मों में (नः) हमें प्रजाओं स्त्रियों, और सेनाओं को (प्रति जुषस्व) अवश्य प्रेम कर। और (नः) हमें कभी तू (पुरुषत्रा) पुरुषों के बीच (नि कः) निरादर मत कर। (नमः ते) हम तेरे प्रति सदा नमस्कार और आदर भाव दर्शाते हैं।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥९॥

भा०—(ओ) हे (स्वसारः) अपने पति, पालक को स्वयं अपनी इच्छा से प्राप्त करने हारी, स्वयं वरणशील उत्तम स्त्री जनो ! आप लोग (कारवे) उत्तम क्रियाकुशल पुरुष के वचन (शृणोत) सुनो । वह (रथेन) वेग से चलने वाले (अनसा) शकट से (वः) तुमको (दूरात्) दूर देश से भी आकर (ययौ) प्राप्त होवे । आप लोग (सु नमध्वम्) उत्तम रीति से विनयपूर्वक झुक कर रहो । आप लोग (सुपाराः भवत) सुखसे पालन और पूर्ण करने योग्य होकर रहो । और आप लोग विनय से (अधो-अक्षाः) नीचे आंख किये हुए (स्रोत्याभिः) प्रवाहों से (सिन्धवः) वहने वाली नदियों के समान विनय से जाने वाली होकर रहो । अथवा (स्रोत्याभिः) वहने वाली धाराओं से नदियों के समान रजःस्रावों से सदा शुद्ध, नीरोग निर्मल शरीर होकर रहो । (२) प्रजाएं और सेनाएं 'स्व' अर्थात् धन प्राप्तयर्थ शत्रु पर चढ़ाई करने से 'स्वसृ' हैं । वे अपने नेता कर्त्ता के वचन सुनें । वह दूर देशों को रथादि से प्राप्त करें । वे उसके आगे विनय से रहें । वे सुख से शास्य हों । वे नीचे ही उसके अधीन व्यापार करती हुई चालों से (सिन्धवः) नदियों या जलों के समान स्थिर रूप से परम्परा द्वारा चलती चली जावें ।

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥१३॥

भा०—हे (कारो) क्रियाकुशल पुरुष ! हम प्रजागण, सैन्यगण (ते वचांसि) तेरे वचनों को (शृणवाम) सुनें । तू (अनसा रथेन) शकट और रथ से (दूरात्) दूर २ के देशों तक भी जाता और दूर से आ भी जाता है । (पीप्याना इव) जिस प्रकार खूब हृष्ट पुष्ट हुई (योषा) स्त्री (शश्वचै) आलिंगन करने के लिये (नि नंसै) प्रेम से झुकती है और

जिस प्रकार (कन्या मर्याय इव) कमनीय कन्या पुरुष के (शश्वचै) आलिंगन के लिये लज्जाशील उत्सुकता से झुकती है और पुरुष के आलिं-गन को उसके अनुकूल होकर सह लेती है उसी प्रकार हम प्रजास्थ लोग भी (ते) तेरे (शश्वचै) साथ सब प्रकार के सहयोग के लिये (नि नंसै) निरन्तर तेरे अनुकूल रहकर प्रेमपूर्वक तेरा साथ दें। (२) विद्या सम्पादन कर विवाह करने वाला पुरुष भीरथादि से दूर देश से आवे और हृष्ट पुष्ट कमनीय कन्या उस पुरुष को वरने और पत्नी होकर प्रेम पूर्वक उसके अनुकूल होकर, उसके अधीन हो कर रहे। इति त्रयोदशो वर्गः॥

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

भा०—(अङ्ग) हे अभिलाषा करने योग्य स्त्रि! (भरताः) भरण पोषण करने में समर्थ पुरुषो! (यत्) जब (त्वा) तुझको (सम् तरेयुः) अच्छी प्रकार प्राप्त कर अपने मनोरथ में सफल हो जाते हैं तब (गव्यन्) स्तुति, आशीष् वाणी कहता हुआ (इन्द्र-जूतः) विद्वान् पुरुषों से प्रेरित (ग्रामः) विद्वान् जनों का संघ (इषितः) इच्छुक होकर (अर्षात्) प्राप्त हो। (अह) और अनन्तर (सर्गतक्तः) जलों के समान सुप्रसन्न या निसर्गतः सुप्रसन्न उत्तम सन्तति (अर्षात्) प्राप्त हो। मैं (यज्ञिया-नाम्) मैत्री भाव और संग करने के योग्य, उपदेय एवं अभिभावकों द्वारा देने योग्य (वः) तुम स्त्रियों की (सुमतिम्) शुभ मति को (आवृणे) अच्छी प्रकार स्वीकार करूं वा आप लोगों के विषय में सदा शुभ मति, उत्तम बुद्धि रक्खूं। (२) प्रजा राजा पक्ष में—(भरताः) राष्ट्र-पालक जन तुम प्रजा या सेना को अच्छी प्रकार प्राप्त होओ, (इन्द्र-जूतः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक द्वारा प्रेरित इच्छावान् सैन्यसमूह (गव्यम्) भूमि विजय की कामना करता हुआ (अर्षात्) आगे बढ़े। जलों से हरा भरा (प्रसवः) उत्तम अभिषेक हो। (वः यज्ञियानां) करप्रद एवं

मैत्री और सत्संग, सुप्रबन्ध रचना में योग्य तुम लोगों की भी (सुमतिं) उत्तम मति का मैं राजा सदा आदर करूं । (३) अध्यात्म में इन्द्र—आत्मा, ग्रामः प्राणगण ।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार (गव्यवः) उत्तम भूमि के स्वामी (भरताः) प्रजा के पालक पुरुष (सम् अतारिपुः) नदियों को उत्तम उपाय से पार कर जाते हैं और जिस प्रकार (विप्रः) विद्वान् पुरुप (नदीनां) उत्तम उपदेश करने वाली वाणियों के (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान को (सम् अभक्त) अच्छी प्रकार ग्रहण कर लेता है और जिस प्रकार (सुराधाः वक्षणाः) उत्तम रीति से बनाई गई जल बहाने वाली नदियां (इषयन्तीः) अन्न उत्पन्न करती हुई प्रजाओं को पुष्ट करती हैं, पालती है और शीघ्रता से बहती हैं । उसी प्रकार (भरताः) पालन पोषण करने में समर्थ पुरुष (गव्यन्तः) अपने लिये योग्य भूमि, क्षेत्र, स्त्री प्राप्त करके ही (सम् अतारिषुः) इस संसार सागर के कर्त्तव्य-पथ से पार उतर जाते हैं । (विप्रः) मेधावी विद्वान् पुरुष (नदीनाम्) गुणों में सम्पन्न स्त्रियों की (सुमतिम्) शुभ धर्म बुद्धि को (सम् अभक्त) अच्छी प्रकार सेवन करता है । हे उत्तम स्त्रियो ! आप लोग (इषयन्तः) उत्तम अन्न बनाती हुई और (सुराधाः) उत्तम ऐश्वर्यवती होकर (प्र पिन्वध्वम्) अच्छी प्रकार बढ़ो बढ़ाओ । (वक्षणाः आपृणध्वम्) अपने कोखों को सन्तानों से पूर्ण करो । (शीभम् यात) उत्तम रीति से यथाशीघ्र पतियों को प्राप्त करो । (२) इसी प्रकार प्रजाएं और सेनायें भी अन्न ऐश्वर्य चाहती हुई खूब बढ़े बढ़ावें, गाड़ियों को भरें और शीघ्र यातायात करें । भूमि के स्वामी संग्रामों को पार करें, विजयी हों । बुद्धिमान् पुरुष समृद्ध प्रजाओं की सुसम्मति को अपने साथ रक्खें । (३) वाणी के इच्छुक शिष्य ज्ञान प्राप्त कर पार उतरें ।

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
माऽदुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३ ॥ १४ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्रियो ! आप लोग (आपः) उत्तम पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य और (शम्याः) कर्म कुशल होकर (योक्त्राणि) आचार्य द्वारा बांधी गयी मेखला आदि रज्जुओं को (उत् मुञ्चत) त्याग करो । (वः) आप लोगों का (ऊर्मिः) तरंग उत्साह, हृदय का उत्तम भाव (उत् हन्तु) ऊपर उठे । हे वर वधू ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अदुष्कृता) दुष्टाचरण से रहित और (वि-एनसा) अपराधों से रहित शुद्ध चरित्र होकर (अघ्न्यौ) एक दूसरे को पीड़ित न करते हुए, सौंदर्य से (शूनम् आ अरताम्) सुख को प्राप्त करो । दुःख को (मा अरताम्) प्राप्त न होओ । अथवा (योक्त्राणि मा मुञ्चत) परस्पर संयोग के प्रेम बन्धनों का त्याग मत करो । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ११ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ६, ८ भुरिक्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥ १ ॥

भा०—(पूर्भिद्) शत्रुनगरों को तोड़ने हारा (इन्द्रः) शत्रु-नाशक सेनापति सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अर्कैः) किरणों से अन्धकार के समान अपने अर्चनीय आदर योग्य उत्तम २ मन्त्रणाओं से (दासम्) अपने सेवक को (अतिरत्) बढ़ावे और (अर्कैः दासम् अतिरत्) तेजों से प्रजा के नाश करने वाले शत्रु का नाश करे । वह (विदद्वसुः) बसने वाली प्रजाओं से बसे राष्ट्र और ऐश्वर्य को प्राप्त करके (दयमानः)

प्रजा पर दया, रक्षा करता हुआ और (शत्रून् दयमानः) अपने राष्ट्र बल का नाश करने वाले शत्रु जनों का नाश करता हुआ, (ब्रह्मजूतः) ब्राह्मण वर्ग और धनों से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीर और विस्तृत राष्ट्र बल से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (भूरिदात्रः) बहुत अधिक दानशील और शत्रुनाशक होकर (उभे रोदसी) दोनों लोकों को सूर्य के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों का (आ अपृणात्) पालन करे।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! मैं (अमृताय) अमृतत्व वा चिरस्थायी सुख को लाभ करने के लिये (मखस्य) पूजा करने योग्य (तविषस्य) बलवान्, सर्वशक्तिमान् (ते) तेरी (जूतिम्) प्रेरणा और (वाचम्) वाणी को (भूषन्) अलंकृत करता हुआ तुझ को (इयर्मि) प्राप्त होता हूं। हे प्रभो! (मानुषीणां) मननशील और (दैवीनां) दिव्य गुणों से युक्त (विशां) प्रजाओं और (क्षितीनाम्) राज्य में रहने वाली प्रजाओं के बीच में तू ही (पूर्वयावा) सबसे पूर्व आगे बढ़ने वाला पूर्वों के बनाये न्यायपथ पर चलने चलाने हारा है।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥ ३॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (शर्धनीतिः) बलस्वरूप सेना या दण्ड का सञ्चालन करने हारा होकर (वृत्रम्) बढ़ते हुए शत्रु या विघ्नकारी को (अवृणोत्) दूर करे। वह (वर्पणीतिः) समस्त रूपवान् उत्तम पदार्थों को वश करने हारा (मायिनाम्) कपट मायावेशादि करने वालों की चाल को (प्र अमिनात्) अच्छी प्रकार नष्ट करे। (उशधक्)

कान्ति या तेज से जलने या भस्म करने वाला अग्नि जिस प्रकार (वनेषु) जंगलों में लग कर (वि अंसम्) विविध शाखा स्कंधों वाले वृक्ष को (अहन्) नाश कर देता है उसी प्रकार राजा भी (उशधक्) युद्ध की चाह करने वालों को भस्म कर देने वाला तेजस्वी होकर (वनेषु) जंगलों में (व्यंसम्) विविध अंस, स्कन्ध अर्थात् स्कन्धावारों या छावनियों वाले शत्रु को भी (अहन्) विनाश करे। और सूर्य जिस प्रकार (राम्याणाम्) रात्रियों के अन्धकारों के बीच में से (धेनाः) धवल उषाओं या पक्षियों की वाणियों को प्रकट करता है उसी प्रकार वह भी (राम्याणाम्) रमण करने योग्य और प्रजाओं के चित्तों को रमाने वाली भूमियों या इनमें वसी प्रजाओं के बीच में ही (धेनाः) अपनी शासनाज्ञाओं को (आविः अकृणोत्) प्रकट करे।

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः। प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् नायक वीर पुरुष (स्वर्षाः) सबका सुख साधन प्रदान करता हुआ (अहानि जनयन्) दिनों को जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न करता है उसी प्रकार वह भी (अहानि) न नाश होने वाले सैन्यों को प्रकट करता हुआ (अभिष्टिः) सब ओर संगठन करता हुआ (उशिग्भिः) युद्ध की कामना वाली वीर सेनाओं से (पृतनाः) शत्रु सेनाओं को (जिगाय) विजय करे। वह (मनवे) मननशील राज्य की प्रजा के लाभ और रक्षा के लिये (अह्नां केतुम्) दिन के प्रकाशक सूर्य के समान ही (अह्नां केतुम्) अहन्तव्य, बलवान् सैन्यों के ज्ञापक झण्डे के प्रति (प्र अरोचयत्) उनकी सबसे अधिक रुचि और प्रेम उत्पन्न करे। और इस प्रकार (बृहते) बड़े भारी (रणाय) संग्राम विजय के लिये भी (ज्योतिः) तेज और प्रभाव को (अविन्दत्) प्राप्त करे। (२.) परमेश्वर सर्व सुखप्रद है, दिनों को प्रकट करता, सर्व-

प्रिय, सब मनुष्यों पर विजय पाता, मनुष्यों को ज्ञान देता, रमण करने के लिये प्रकाश प्रदान करता है।

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥१५॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने हारा सेनापति (नृवत्) नायक के समान (पूरूणि) बहुत से (नर्या) नायकोचित सामर्थ्यों, सैन्यों और ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ (तुजः) शत्रुओं को मारने में समर्थ, (बर्हणाः) बड़ी २ सेनाओं में भी (आ विवेश) उत्तम पद पर स्थित हो, उनका अध्यक्ष बने। [आङ् अध्यर्थः]। वह (जरित्रे) स्तुतिशील पुरुष को (इमाः) ये नाना प्रकार की (धियः) ज्ञान और कर्मों का (अचेतयत्) गुरु के समान ही ज्ञान करावे। वह (आसाम्) उनके (इमं) इस प्रकार (शुक्रं वर्णम्) शुद्ध उत्तम वर्ण और शीघ्र कार्य करने वाले योग्य कर्त्ता को (प्र अतिरत्) भी पार करे और बढ़ावे। इति पञ्चदशो वर्गः॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, शत्रुदलनकारी वीर पुरुष के (पुरूणि) बहुत से (सुकृता) उत्तम रीति से किये गये, धार्मिक (महानि) बड़े २ (कर्म) करने योग्य कर्त्तव्यों और किये कार्यों को (पनयन्ति) प्रजाजन प्रशंसा करते और उसके गीत गाते हैं। वह राजा (अभिभूत्योजाः) शत्रु पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त वीर पुरुष (वृजनेन) बल से और (मायाभिः) विशेष २ अज्ञेय बुद्धि चातुर्यों से (वृजिनान्) पापाचारी (दस्यून्) प्रजाओं के नाशक दुष्ट पुरुषों को (सं पिपेष) एक साथ ही पीस कर निर्मूल कर दे।

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहनन करने में समर्थ पुरुष (देवेभ्यः) विद्वान् एवं ऐश्वर्य देने वाले प्रजाजनों के हि । के लिये उनसे ही शिक्षा प्राप्त करके (सत्-पतिः) सज्जनों का पालक और (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा होकर (महा युधा) अपने महान् युद्ध बलसे (वरिवः) बड़ा ऐश्वर्य (चकार) प्राप्त करे। (विप्राः कवयः) विद्वान् मेधावी पुरुष (उक्थेभिः) उत्तम २ प्रशंसनीय वचनों से (तानि) उन २ नाना कर्मों को (विवस्वतः सदने) सूर्य के समान तेजस्वी पद पर विराजने वाले उसको (गृणन्ति) उपदेश करें। और उसके किये कर्मों की स्तुति या साधुवाद करें। (२) परमेश्वर सज्जनों का पालक सबको पूरक, महान् सामर्थ्य से देवों, प्राणों और दानशीलों को ऐश्वर्य दे । है । विद्वान्, सूर्य के समान तेजस्वी उस परमेश्वर के रूप में उसके नाना कर्मों का वर्णन करते हैं ।

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (स्वः) सुख और दुष्टों का सन्तापकारी, प्रतापी और (देवीः अपः) दिव्य प्रजागणों को (ससान) धारण करता और अन्यों को देता है और (यः) जो (पृथिवीम् ससान) भूमि को अपने शासन से धारण करता और अन्यों में विभक्त करता है, (उत इमां द्याम्) और इस सबकी रक्षा करने वाली राजसभा या भूमि को (ससान) धारण करता है उस (सत्रसहं) सत्य के बल पर और सत्वोद्वेग से शत्रुओं को पराजित करने वाले (वरेण्यम्) प्रजाओं द्वारा वरण करने और श्रेष्ठ मार्ग में प्रजा को ले चलने हारे (सहोदाम्) दुर्बलों को बल देने वाले (स्वः अपः देवीः च) तेज, विजयेच्छुक असक्त, कुशल, सेना और प्रजाओं को धारण करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा को (अनु) प्राप्त करे (धीरणासः) बुद्धिकौशल, कर्मकौशल से

रक्षा करने वाले वीर और ध्यान स्तुति में रमण करने वाले बुद्धिमान् पुरुष (मदन्ति) हर्ष का अनुभव करते हैं। (२) परमेश्वर पक्ष में स्पष्ट है।

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अत्यान् ससान) अति वेग वाले अश्वों वा अश्वसैन्यों को श्रेणी में विभक्त करे। (उत) और वह (सूर्य) उनके प्रेरक, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ससान) पदों पर नियुक्त कर उनको वेतनादि प्रदान करे। वह (पुरुभोजसं गाम्) बहुत से प्रजाजनों का पालन करने वाली 'गौ' अर्थात् गाय आदि पशु, भूमि और वाणी का (ससान) विभाग एवं प्रदान करे। वह (हिरण्ययम्) सुवर्ण आदि बहुत से ऐश्वर्य से युक्त (भोगम्) उपभोग योग्य गृह, द्रव्य आदि सुख साधन को (ससान) नियमानुसार विभक्त करे। वह (दस्यून् हत्वी) प्रजा के नाश करने वालों को दण्डित करके (आर्यं वर्णम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाव के श्रेष्ठ पुरुषों को (प्र आवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे। (२) परमेश्वर (अत्यान्) वेग से जाने वाले ग्रहों को, सूर्य को, सर्वपालक पृथिवी को, सुवर्णादिमय भोगों को देता, दुष्टों को नाश कर उत्तम पुरुषों की रक्षा करता है।

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम्।
बिभेद बलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अहानि) सभी दिनों, सदा (ओषधीः असनोत्) प्रजा में आरोग्य बढ़ाने के लिये ओषधियों का वितरण करावे। वह (वनस्पतीः असनोत्) स्थान २ पर बड़े, छायादार, फलदार वृक्षों को लगावे। (अन्तरिक्षम् असनोत्) जल का प्रबन्ध करे, स्थान पर जलाशय, प्याऊ आदि बनवावे। (बलं बिभेद) बल अर्थात् सैन्य को विभाग करे, छावनी २ में बांट कर रक्खे। वह (विवाचः)

विविध प्रकार की वाणियों और आज्ञाओं को (नुनुदे) दे, (अथ) और प्रतिस्पर्द्धियों, शत्रुओं का (दमिता) दमन करने वाला (अभवत्) हो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥१६

भा०—व्याख्या देखो (सू० ३२ । १७) ॥ इति षोडशो वर्गः ॥

[३५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ ५ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (युज्यमाना) रथ में लगे (हरी) घोड़ों को वश करके (रथे आ तिष्ठ) रथ पर सवार हो । तू (वायुः न) वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को बलपूर्वक उखाड़ने में समर्थ होकर (नः) हमारे (नियुतः) नियुक्त अश्वसेनाओं को वश करके (अच्छ) अच्छी प्रकार (याहि) युद्धयात्रा कर । तू (अभिसृष्टः) आक्रमण करता हुआ (अस्मे) हमारे (अन्धः) अन्नादि ऐश्वर्य को (पिबासि) पालन और उपभोग कर । हम यह सब (ते मदाय) तेरी प्रसन्नता और हर्ष की वृद्धि के लिये तुझे (स्वाहा) उत्तम, सत्य वाणी से (ररिम) प्रदान करें ।

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि।
द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥

भा०—मैं (पुरुहूताय) बहुत सी प्रजाओं द्वारा बुलाये जाने योग्य

पुरुष के लिये (रथस्य) रथ को (हरी) वेग से ले जाने में समर्थ (सप्ती) उत्तम (अजिरा) वेग से जाने वाले अश्वों को (धूर्षु) रथ को धारण करने वाले धुराओं में (उप युनज्मि) लगावें (यथा) जिससे वह रथ (द्रवत्) वेग से चले। और वे दोनों अश्व (विश्वतः) सब प्रकार से (सम्भृतं) उत्तम युद्धादि साधनों से सुसज्जित (इमं यज्ञम्) इस उत्तम संग्राम और सुसंगति युक्त राष्ट्र-यज्ञ को (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता पुरुष को (चित्) उत्तम रीति से (उप आवहातः) ले जावें और प्राप्त करावें।

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥

भा०—हे (वृषभ) बलशालिन्! हे (स्वधावः) उत्तम अन्न और जलसमृद्धि और आत्म शक्तिसे सम्पन्न मेघके समान दानशील (त्वम्) तू (वृषणा) बलवान् (तपुष्पा) शत्रुके संतापकारी शस्त्रों को पालन करने या शस्त्राघातों से रक्षा करने वाले दोनों अश्वों को (उप नयस्व उ) प्राप्त कर। (शोणौ) रक्त वर्णके दोनों (अश्वा) अश्वों को (इह वि मुच) यहां सुरक्षित स्थान में मुक्त कर और वे दोनों (ग्रसेतां) घास आदि सुख से खावें। तू भी (दिवे दिवे) दिन प्रति दिन (धानाः) अग्निसे पकाये विशेष पुष्टिकारक अन्नों को (अद्धि) खा।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सधमादे) एक साथ हर्षपूर्ण होने के समान संग्राम में मैं (ते) तेरे (आशू) शीघ्रगामी (सखाया) मित्रों के समान सदाके साथी (ब्रह्मयुजा) बहुत साधनैश्वर्य प्राप्त करने वाले (हरी) दो अश्वों को (ब्रह्मणा) जिस प्रकार अन्न घासादि से पुष्ट करके जोड़ा जाता

है उसी प्रकार दो (हरी) सैन्य और राष्ट्र को हरने या सन्मार्ग पर लेजाने वाले दो प्रमुख पुरुषों को (ब्रह्मणा) बड़े ऐश्वर्य प्रदान द्वारा (युनज्मि) नियुक्त करता हूं। तू (रथम्) रथ पर उसके समान रमण करने योग्य या वेग से जाने वाले राष्ट्र वा सैन्य बल पर (स्थिरं) स्थिरतापूर्वक और(सुखं) अनायास (अधितिष्ठन्) अध्यक्ष रूप से शासन करता हुआ (प्रजानन्) उत्तम ज्ञानवान् और (सोमम् विद्वान्) ऐश्वर्यप्राप्ति और राष्ट्र-शासन के कार्य को भलीभाँति जानता हुआ (उप याहि) उसको प्राप्त कर। (२) अध्यात्म में—(हरी) प्राण और अपान हैं। एक साथ हर्ष अनुभव करने का अवसर या स्थान देह है। उसमें अन्न द्वारा प्राणों को नियुक्त कर शरीर रूप रथ में आत्मा सुखसे रहे। (३) अथवा आत्मा परमात्मा दोनों को योग्य विधिसे नियुक्त करूं। साक्षात् आत्मा (रथं) रसस्वरूप परमानन्द को प्राप्त कर परमैश्वर्य को प्राप्त करें।

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥१७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (अन्ये) दूसरे, अपने से भिन्न शत्रुगण (यजमानासः) मैत्री भाव करते हुए (ते) तेरे (वृषणा) बलवान् (वीतपृष्ठा) कान्तियुक्त वा सुरक्षित पीठ वाले, कवचयुक्त (हरी) रथके लेजाने वाले अश्वों और रथसैन्य के नायकों को भी (मा निरीरमन्) कभी निम्न श्रेणी के व्यसनों में न लुभा लेवें। तू (शश्वतः) चिरकाल से शत्रुता करने वालों को (अति आयाहि) अतिक्रमण करके उनको लांघकर आगे बढ़। (वयं) हम (ते) तेरे लिये (सुतेभिः) उत्पादित (सोमैः) ऐश्वर्यों से और (सुतैः सोमैः) अभिषिक्त शासकों द्वारा या निष्पन्न अभिषेकों द्वारा (अरं कृणवाम) खूब अन्नादि की वृद्धि करें। अच्छी प्रकार अभिषेक करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (अयं सोमः) यह समस्त ऐश्वर्य और शासन (तव) तेरा है । तू (अर्वाङ्) इसके नीचे, आश्रयरूप होकर (सुमनाः) शुभ चित्त और ज्ञान से युक्त होकर (अस्य) इसके (शश्वत्तमम्) अति स्थायी पद को (पाहि) सुरक्षित रख और उसका उपभोग कर । (अस्मिन्) इस (यज्ञे) अतिपूज्य, आदरणीय और सबके प्रति मित्रभाव से वर्त्तने योग्य (बर्हिषि) वृद्धिशील परम आसन और प्रजामय राष्ट्र पर (निषद्य) स्थिरता से विराज कर (इमं) इसके (इन्दुम्) स्नेह से आर्द्र आहार के समान ही (जठरे) अपने उत्पादक शासन के भीतर (दधिष्व) धारण कर । अध्यात्म में—'सोम' शिष्य का शुभ चित्त से पालन करे, इस ब्रह्माध्यापन पुण्यदानकार्य में उच्च आसन पर विराज कर (इन्दुम्) स्नेहार्द्र शिष्य का अपने विद्या के गर्भ में लेकर शिष्य को भी, पुत्र को माता के समान उत्पन्न करे ।

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के समक्ष (बर्हिः) यह महान् आकाश या भूलोक (स्तीर्ण) विस्तृत रहता है । (सुतः सोमः) जल निषिक्त होता है । सूर्य के (हरिभ्यां) प्रकाश ताप जलादि लेने और लाने वाले किरणों से ही (अत्तवे) संसार के खाने योग्य (धानाः कृताः) अन्न, दाना उत्पन्न होते हैं, सूर्य का अपना स्थान दूर भी है तो भी वह (पुरु-शाकाय) बहुत शक्तिशाली या बहुतसे हरे शाकादि उत्पन्न करने वाला (वृष्णे मरुत्वते) वर्षणशील वायुओं का सञ्चालक होता है ये अन्न भी उसी के दिये होते हैं, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् !

राजन्! (ते) तेरा यह (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजामय राष्ट्रलोक (स्तीर्णं) अति विस्तृत हो। (ते) तेरे लिये (सोमः) ऐश्वर्य वा अभिषेक भी (सुतः) किया जाय। (ते) तेरे (हरिभ्याम्) उत्तम नायकों द्वारा (अत्तवे) उपभोग के लिये (धानाः) राष्ट्र को धारण करने वाले पुरुष वा पालने योग्य प्रजाएं भी (कृताः) अच्छी प्रकार सुशासित हों, वे अन्नादि के समान उपभोग योग्य हों। (तदोकसे) उस उत्तम स्थान या गृह में निवास करने वाले (पुरुशाकाय) बहुत से सामर्थ्यों से सम्पन्न (वृष्णे) बलवान् राज्यप्रबन्धक (मरुत्वते) वायु तुल्य वीर सैनिकों के स्वामी (तुभ्यं) तेरे और तेरे लिये ही ये (हवींषि) ग्रहण करने और देने योग्य अन्नादि ऐश्वर्य (राता) दिये हुए और तुझे ही दिये जाने योग्य हैं। (२) अध्यात्म में—प्राणों का स्वामी आत्मा 'मरुत्वान्' है। उसके भोजन के लिये ये अन्नादि, धान्य, सोम ओषधिरस और (बर्हिः) प्रजा सन्तानादि हैं। यह गृह 'ओकस्' है, इन्द्रियगण शक्ति है अतः 'पुरुशाक' है।

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः॥८॥

भा०—(पर्वताः आपः गोभिः इमं मधुमन्तं अक्रन्) मेघ और जल, धाराएं, नदियें जिस प्रकार भूमियों से मिलकर इस लोक को जल और अन्न से युक्त कर देते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! राजन्! (नरः) नायकगण (पर्वताः) पालन करने की शक्ति वाले और (आपः) आप्त पुरुष (तुभ्यम्) तेरे लिये, तेरे ही (इमं) इस राष्ट्र को (गोभिः) भूमियों, वाणियों द्वारा हे (ऋष्व) महान्! (मधुमन्तम्) मधुर अन्न और ज्ञान से युक्त (सम् अक्रन्) सुसंस्कृत करें। तू (स्वाः) अपने (पथ्याः) हितकारी मार्गों को (विद्वान्) जानता हुआ (प्र जानन्) उत्तम ज्ञानवान् और (सुमनाः) उत्तम चित्त से

युक्त होकर (तस्य पाहि) उस राष्ट्र का उपभोग और पालन कर। (२) पुरुष भी स्वयं (स्वाः पथ्याः पिबेत्) अपने पथ्य हितकारी पदार्थों को ही खावे पीवे। ज्ञानी, विद्वान् और शुभ चित्त वाला होकर रहे।

याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र॥ ९॥

भा०—(यान् मरुतः) जिन वायु के समान बलवान् पुरुषों को तू (सोमे) अपने ऐश्वर्य की प्राप्ति और अभिषेक के कार्य में (आ अभजः) अपने अधीन नियुक्त करे और जो (त्वाम् अवर्धन्) तुझे बढ़ावें वे (ते गणः) तेरा सहायक दल है (तेभिः) उनके साथ (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (वावशानः) उनको खूब अच्छी प्रकार चाहता हुआ (अग्नेः जिह्वया) अग्नि की ज्वाला के समान अग्रणी नायक विद्वान् पुरुष की वाणी या सब ग्रस जाने वाली शक्ति से (इन्द्र) हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! तू (सोमं पिब) राष्ट्र के ऐश्वर्य को उपभोग और पालन कर। (२) आचार्य शिष्य पक्ष में—अग्नि और इन्द्र आचार्य हैं, मरुद्गण और सोम शिष्य हैं।

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन् विद्वन्! अथवा (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र! तू (स्वधया) अपने धारण और पोषण करने वाली शक्ति से (सुतस्य) निष्पन्न वा अभिषिक्त मुख्य पुरुष के और (अग्नेः वा) अग्नि के समान (जिह्वया) तीव्र ज्वाला रूप तीक्ष्ण वाणी से (सुतस्य पिब पाहि) प्राप्त हुए राज्य का उपभोग और पालन कर। हे (यजत्र) आदर सत्कार और मैत्री के योग्य पुरुष! हे (शक्र) शक्तिशालिन्! तू (अध्वर्योः) अध्वर अर्थात् प्रजा के हिंसन, पीड़न से रहित योग्य पुरुष के (हस्तात्) हाथ और (होतुः) दानशील और

संग्रहशील पुरुष के हाथ से (प्रयतं) अच्छी प्रकार सुसंयत (यज्ञं) और सुसंगत राष्ट्र की रक्षा कर और (हविषः) उत्तम अन्न को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ११।१८

भा०—व्याख्या देखो सू० ३४ । ११ ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३६]

विश्वामित्रः । १० घोर आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (शश्वत् शश्वत) निरन्तर, सदा ही (यादमानः) प्रार्थना किया जाकर (ऊतिभिः) रक्षाकारी पुरुषों और सेना दुर्गादि रक्षा साधनों से (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) उत्तम भरण पोषण करने योग्य प्रजा को (सातये) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ही (सु धाः उ) अच्छी प्रकार, सुखपूर्वक धारण पोषण कर । तू (सुते सुते) राष्ट्र में उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ पर और प्रत्येक पदाभिषेक पर (महद्भिः) बड़े २ (वर्धनेभिः) वृद्धिकारक (कर्मभिः) कर्मों से (वावृधे) बढ़, वृद्धि को प्राप्त कर और उन बड़े २ कर्मों से ही तू (सुश्रुतः) सुप्रसिद्ध (भूत्) हो । (२) आचार्य प्रार्थित होकर अपने शिष्य को नाना शिक्षाओं और आशिषों द्वारा उसको इस (प्रभृतिं) सबसे उत्तम रीति से धारण करने योग्य वाणी को प्रदान करने के लिये शिष्य का पालन कर । तू प्रत्येक शिष्य

पर वृद्धिकारक कर्मों से बढ़ और सुप्रसिद्ध हो। इसी प्रकार विद्वान् शिष्य (यादमानः = याचमानः) विद्यादि याचना करता हुआ (प्रभृतिं) उत्तम धारणीय ज्ञान, वाणी और दीक्षा को सनातन-पुरातन ज्ञान के लाभार्थ धारण करे। प्रत्येक ज्ञान के निमित्त वृद्धिकारक कर्मों से बढ़े और सुश्रुत, बहुश्रुत होवे।

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः॥ २॥

भा०—(प्रदिवः) उत्तम प्रकाश वाले, तेजस्वी, उत्तम कामना वाले (सोमाः) सौम्य स्वभाव के शिष्यगण (विदानाः) ज्ञान लाभ करते हुए (इन्द्राय) अज्ञाननाशक इन्द्र, आचार्य की ही वृद्धि के लिये होते हैं (येभिः) जिनसे वह (विहायाः) विशेष २, विविध विद्याओं का दान करने वाला (वृषपर्वा) वर्षणशील मेघ के समान शिष्यों को पूर्ण और पालन करने वाला गुरु ही (ऋभुः) सत्य ज्ञान से प्रकाशमान महान् हो जाता है। हे (इन्द्र) विद्वन्! गुरो! तू (प्रयम्यमानान्) उत्तम रीति से यम नियमों का पालन करने वाले विद्यार्थी जनों को (प्रतिगृभाय) अपने अधीन ले। और (वृषधूतस्य) ज्ञानरूप जलों के सेचन करने वाले विद्वानों द्वारा अज्ञानों से रहित हुए (वृष्णः) बली, वीर्यवान् शिष्य का (पिब) पालन कर। (२) उत्तम चमकीले ये ऐश्वर्य सब उसी शत्रुहन्ता के लिये हैं। जिन्हों से वही सर्वत्यागी, बलवान् पालक महान् हो जाता है। वह (प्रयम्यमानान्) अच्छी प्रकार संयम किये जाते हुए शत्रुओं को पकड़े, और बलवान् पुरुषों से आलोडित प्रबल राष्ट्र का भोग करे। (३) अध्यात्म में—विरक्त सर्वत्यागी 'विहायाः' है और आकाशवत् व्यापक विशुद्ध परमेश्वर भी 'विहायाः' है। ये सब ऐश्वर्य जीवगण वा आनन्दरस उसी के हैं। उत्तम नियम में स्थित लोकों और प्राणों को वही धारण करता है। वही उस परम बल और प्राण को धारण करता है।

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन् आचार्य! (प्रथमाः) पहले (उत) और (इमे) ये नये दोनों ही (सोमासः) सौम्यगुणयुक्त शिष्यजन (तव घ सुतासः) तेरे ही निश्चय से पुत्र के समान है। तू (पिब) उनका पालन कर और (वर्धस्व) शिष्य परम्परा से सन्तति से पिता के समान बढ़। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! (यथा) जिस प्रकार (पूर्व्यान् सोमान्) पूर्व के आये शिष्यों का तू (अपिबः) पालन करता रहा हे (पन्यो) उपदेष्टः! (अद्य) आज, अब तू (एव) उसी प्रकार (नवीयान् सोमान्) इन नये उत्पन्न विद्यार्थिजनों को भी (पाहि) पालन कर। (२) ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र व्यवहार व्यापार करने हारा होने से भी 'पन्यु' है। (३) राजा भी अभिषिक्त नये पुराने पदाधिकारियों को और उत्पन्न प्रजागण को पुत्रवत् ही पाले और बढ़े। 'उपनयन करने वाला आचार्य तीन रात शिष्य को अपने उदर में रखता है' इसी प्रकार उदर में रखने के ही समान धर्म से जलों के समान 'सोम' विद्यार्थियों का भी सोम ओषधि रसों के साथ उपमानोपमेय भाव सर्वत्र जानना चाहिये। रक्षणार्थ और प्रश्नार्थ दोनों धातुओं को वेद में पिब आदेश होता है और नहीं भी होता है। इस मन्त्र में 'पिब' 'पाहि' दोनों का प्रयोग समान रूप से है। (४) परमेश्वर इन्द्र है जीवगण सोम हैं। उन सबको वह पालन करता है अतएव सबसे बड़ा है। वही स्तुत्य होने से 'पन्यु' है।

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥

भा०—(अमत्रः) सबका सहायक, शत्रुओं पर चढ़ाई करने वाला और शत्रुओं को पीड़ित करने वाला, (महान्) गुणों में महान्, (वृजने)

बल में और (वृजने) दुःखदायी संकटों और अविद्यादि दोषों को दूर करने में (विरप्शी) अधीनों को विविध रूप से आज्ञा और उपदेश करने वाला पुरुष, (उग्रं) बहुत उग्र, भयंकर (शवः) बल और (धृष्णुः) शत्रुपराजयकारी (ओजः) पराक्रम (पत्यते) प्राप्त होता है। (यत्) जब (हर्यश्वम्) वेगवान् अश्वों के स्वामी को (सोमासः) ऐश्वर्य समूह और अभिषिक्त नायकगण (अमन्दन्) हर्षित करते हैं तब (एनं पृथिवी चन) समस्त पृथिवी, उसके निवासी भी (न अह विव्याच) उस तक नहीं पहुंचते, उसकी शक्तियों को सीमित नहीं कर सकते। (२) परमेश्वर महान्, सर्वव्यापक, विविध ज्ञानोपदेष्टा है। उसका ज्ञान, बल सबसे उन्नत सर्वातिशायी है। ज्ञानी जीव, योगीजन उसकी स्तुति करते हैं, पृथिवी भी उसको माप नहीं सकती। वह पृथिवी से भी महान् है। वह सर्व दुःखहारी होने से स्वयं 'हरि' और व्यापक होने से 'अश्व' है।

**म॒हाँ उ॒ग्रो वा॑वृधे वी॒र्या॑य स॒माच॑क्रे वृष॒भः काव्ये॑न।
इन्द्रो॒ भगो॑ वाज॒दा अ॑स्य॒ गाव॒: प्र जा॑यन्ते॒ दक्षि॑णा अस्य पू॒र्वीः ॥ ५ ॥ १९ ॥**

भा०—(महान्) गुणों में महान् (उग्रः) बलवान् पुरुष (वीर्याय) अपने बल वीर्य को बढ़ाने के लिये (वावृधे) और भी बढ़े, वह (वृषभः) बलवान् और ऐश्वर्यों का दान देनेहारा होकर (काव्येन) क्रान्तदर्शी विद्वानों के उपदेश किये शास्त्र से (सम् आचक्रे) अच्छी प्रकार सब कार्यों का अनुष्ठान करे। वह (इन्द्रः) ज्ञान, ऐश्वर्यवान् शत्रुहनन करने में समर्थ (भगः) सबके सेवा करने योग्य (वाजदाः) युद्ध, ज्ञान और बल को देनेहारा हो। (अस्य) उसकी (गावः वाजदाः) गौएं दुग्धादि देने वाली, वाणियें ज्ञान देने वाली, भूमियें अन्न देने वाली (प्रजायन्ते) होवें और (अस्य दक्षिणाः) उसकी ज्ञान, धन आदि दान-

क्रियाएं भी (पूर्वीः) पूर्ण और (वाजदाः) ज्ञान, ऐश्वर्य आदि देने वाली हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (सिन्धवः) जल (प्रसवम्) अपने उत्पादक मेघ या सूर्य को (प्र आयन्) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं और (आपः) जलधाराएं (रथ्या इव) रथ में लगे अश्वों के समान ही जिस प्रकार (समुद्रं जग्मुः) वेग से बहते हुए समुद्र को प्राप्त होते हैं। (अतः चित्) इसी कारण से (इन्द्रः सदसः वरीयान्) इन्द्र सूर्य ही सबसे अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। उसी के द्वारा (दुग्धः) दुहा गया या उत्पादित (अंशुः सोमः) सबके भोजन करने योग्य खाद्य, ओषधिगण (ईम् पृणति) इस समस्त संसार को पालन करता है। इसी प्रकार (यत्) इसके (प्रसवं) उत्तम शासन को प्राप्त कर (सिन्धवः) वेग से जाने वाले अश्वसैन्य (प्र आयन्) आगे बढ़ते हैं और (आपः) आप्त, प्रजागण जिस (समुद्रं) समुद्र के समान गम्भीर पुरुष को प्राप्त होते हैं इसी कारण (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् पुरुष (सदसः वरीयान्) अपने सभाभवन से भी बहुत बड़ा है उसके भी ऊपर शासन करता है। (यद् दुग्धः अंशुः सोमः) जिस द्वारा दुहा गया या पूर्ण किया गया व्यापक ऐश्वर्य या सर्वोपभोग्य राष्ट्र (ईम् पृणति) इस समस्त प्रजागण को पालता है या यह समस्त (सोमः) ऐश्वर्य ही (ईं पृणति) इस राजा को पूर्ण करे। (२) परमेश्वर पक्ष में—(यत्) जिस परमेश्वर से (सिन्धवः) महा नदों के समान प्रवाहित होने वाले निहारिका प्रवाह (प्रसवं प्र आयन्) उत्पत्ति लाभ करते हैं जिस महान् समुद्र के समान अपार प्रभु को (आपः) आप्त जीवगण या सूक्ष्म प्रकृति को व्यापक परमाणुसंघ संगत होते हैं वह परमेश्वर इस (सदसः) सबके प्रतिष्ठा या

आश्रय-स्थान महान् आकाश से भी महान् है (यत् दुग्धः अंशुं ईं पृणाति) उसी परमेश्वर का सब को पूर्ण करने वाला सर्वत्र व्यापक (सोमः) सब का प्रेरक बल इस संसार को पूर्ण कर रहा है। (३) आचार्य पक्ष में—शिष्यगण विद्या योनिसम्बन्ध से बांधने से सिन्धु हैं, प्राप्त होने से 'आपः' हैं। उनका उत्पादक आचार्य ही 'प्रसव' है। वही गम्भीर ज्ञान का समुद्र है वे उसको प्राप्त होते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम 'सदस्' है। वह परिपूर्ण ज्ञानवान् शिष्य ही आचार्य को सेवादि से प्रसन्न करे। (४) अध्यात्म में—सिन्धु, आपः, प्राण हैं। इन्द्र आत्मा। 'सदस्' देह, सोम, ज्ञान वा वीर्य।

समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥

भा०—(सिन्धवः) नदियें (समुद्रेण) समुद्र के साथ मिलकर (सोमं भरन्ति) जिस प्रकार उसमें जल भरती हैं और उसे पूर्ण करती हैं। उसी प्रकार (समुद्रेण) समुद्र के समान अति गम्भीर नायक पुरुष से मिलकर (यादमानाः) उससे ही ऐश्वर्य की याचना या कामना करते हुए (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को बढ़ाने के लिये (सु-सुतं) अच्छी प्रकार से पैदा किये ऐश्वर्य को (भरन्तः) प्राप्त करते हुए (हस्तिनः) सिद्धहस्त, कुशल पुरुष (भरित्रैः) भरण पोषण करने के साधनों से (अंशुं दुहन्ति) सारयुक्त पदार्थ को पूर्ण करते हैं और (पवित्रैः मध्वः) जिस प्रकार अन्नों को छाजों से साफ़ किया जाता है और (धारया मध्वः) जिस प्रकार धारा से जलों को स्वच्छ किया जाता है उसी प्रकार (पवित्रैः) पवित्र आचरणों से और (धारया) उत्तम वाणी से (मध्वः) बलवान् पुरुषों को (पुनन्ति) पवित्र करें। (२) समुद्र रूप पूर्ण विद्या की याचना करते हुए सुसम्बद्ध-शिष्य ज्ञानवान् पुरुष से सुसंगत हों। वे इस आचार्य के उत्तम ज्ञान को धारण करें वा विद्वान्

जन उत्पन्न पुत्रवत् शिष्य को धारण करें। (हस्तिनः) उत्तम सिद्धहस्त कुशल पुरुष पोषक उपायों से शिष्य को पूर्ण करें, पवित्राचरण और वेद-वाणी से पवित्र करें।

ह्र॒दा इ॑व कु॒क्षयः॑ सोम॒धानाः॒ समीं॑ वि॒व्याच॒ सव॑ना पु॒रूणि॑।
अन्ना॒ यदिन्द्रः॑ प्रथ॒मा व्याश॑ वृ॒त्रं ज॑घ॒न्वाँ अ॑वृणीत॒ सोम॑म् ॥८॥

भा०—(ह्रदाः इव सोमधानाः) जलाशय जिस प्रकार अपने भीतर जल रखते हैं उसी प्रकार (कुक्षयः) मनुष्य की कोखें (सोम-धानाः) सोम अर्थात् अन्नों को अपने भीतर रखती हैं उनके समान ही (कुक्षयः) इसी प्रकार सार भाग को अपने पास रखने वाले जन वा कोश भी (सोमधानाः) सोम, ऐश्वर्य को धारण करने वाले हों (यत् इन्द्रः) जो इन्द्र ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता विजिगीषु राजा (वृत्रं जघन्वान्) अपने बढ़ते हुए विघ्नकारी शत्रु को मारता हुआ (सोमं अवृणीत) ऐश्वर्य को अन्न के समान बलकारक रूप से प्राप्त करता है वह (पुरूणि प्रथमा सवना) बहुतसे श्रेष्ठ और विस्तृत यशोजनक ऐश्वर्यों को (सं विव्याच ईम्) सब तरफ़ से अच्छी प्रकार सुरक्षित रूप से प्राप्त करे और (अन्ना) अन्नों के समान ही उन (अन्ना) उपभोग किये जाने पर भी न क्षीण होने वाले अक्षय ऐश्वर्यों को (वि आश) विविध प्रकार से उपभोग करे। (२) आचार्य पक्ष में—(कुक्षयः) सार-भाग को धारण करने वाले विद्याओं के भण्डाररूप विद्वान् जन गंभीर जला-शयों के समान अपने में सोमों, शिष्यों को धारण करते हैं। अज्ञान का नाशक विद्वान् आचार्य जब सोम शिष्य का वरण करता है तब बहुत से (सवना) ज्ञान जिनको उसने प्रथम अन्नों के समान ही अपने में लिया था वह उनको (ईं विव्याच) उस विद्यार्थी जन को ही प्रदान कर देता है।

आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (आ भर) ऐश्वर्य का संग्रह कर, तू राष्ट्र का भरण पोषण कर । और (तत्) तेरे इस सुरक्षित ऐश्वर्य को (माकिः परि स्थात्) कोई व्यक्ति भी न रोक रक्खे । (त्वा हि) तुझे ही (वसूनां वसुपतिं) समस्त ऐश्वर्यों और राष्ट्र में बसने वाले प्रजाओं का 'वसुपति', स्वामी (विद्म) जानते हैं । (यत् ते) जो तेरा (माहिनम्) महान्, आदरणीय (दत्रम् अस्ति) दान, शत्रुच्छेदन और प्रजा रक्षण का सामर्थ्य है तू (तत्) उसको हे (हर्यश्व) वेगवान् अश्व-सैन्यों के स्वामी ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (प्र यन्धि) अच्छी प्रकार प्रदान कर । सब तरफ विभक्त करके और फैला कर रख । (२) वसु, ब्रह्मचारियों के पालक आचार्य 'वसुपति' हैं । वह उसे धारण करे, अन्य कोई उसको विघ्न न हो । आचार्य का सर्वोत्तम दान ज्ञान है वह हम सबको दे ।

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन् (ऋजीषिन्) सरल मानस प्रवृत्ति वाले धार्मिक पुरुष ! हे (शिप्रिन्) सुन्दर मुख नासिका वाले सौम्य पुरुष वा हे तेजस्विन् ! बलवन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! आप (भूरेः) बहुत से (विश्ववारस्य) सबसे वरण करने योग्य, सब संकटों के वारक (रायः) ऐश्वर्य का (अस्मे प्रयन्धि) हमें अच्छी प्रकार दान और विभाग करो । और (अस्मे) हमें (शतं शरदः) सौ बरसों तक (जीवसे) जीवन धारण के लिये (धाः) धारण पोषण कर । या (अस्मे जीवसे शतं शरदः धाः) हमें जीने के लिये सौ बरस की आयु दे, हमें सौ बरस तक जीने दे । और (अस्मे) हमें (शश्वतः वीरान्) चिरस्थायी वीर पुरुष और वीर्यवान् पुत्र (धाः) प्रदान कर ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११।२०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्ववत् । सू० ३४ । ११ ॥

[३७]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७ निचृद्गायत्री । २, ४—६, ८—१० गायत्री । ११ निचृदनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! सेनापते ! (त्वा) तुझको हम (वार्त्रहत्याय) बढ़ते हुए और सत्कर्म से रोकने वाले, विघ्नकारी या नगरों को घेरने वाले शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों के हनन करने वाले और (पृतना-साह्याय) सेनाओं को पराजित करने में समर्थ (शवसे) बल को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये (आ वर्त्तयामसि) प्रवृत्त करते और सर्वत्र स्थापित करते हैं । (२) प्रभो ! विघ्ननिवारण, शत्रुविजय और बलवृद्धि के लिये तेरा पुनः २ चिन्तन करते हैं ।

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्वी पुरुष ! हे (शतक्रतो) अनेक उत्तम प्रज्ञाओं और कर्मों वाले ! (वाघतः) जो वाणी द्वारा दोषों का नाश करने वाले और शास्त्रों और उत्तम उपायों को धारण करने वाले विद्वान् पुरुष हैं (ते) वे (मनः) मन, ज्ञान को और (चक्षुः) आंखों वा दर्शन शक्ति को (अर्वाचीनं) अपने अभिमुख वृद्धिशील (कृण्वन्तु) करें । (२) परमात्मपक्ष में—हे इन्द्र परमेश्वर (वाघतः) विद्वान् लोग अपने मन और भीतरी चक्षु को (ते अर्वाचीनं कृण्वन्तु) तेरे प्रति प्रवृत्त करें ।

नामा॑नि ते शतक्रतो॒ विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे ।
इन्द्रा॑भिमाति॒षाह्ये॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के उत्पादक ! (शतक्रतो) बहुतसी प्रजाओं वाले ! (अभिमातिषाह्ये) अभिमानी शत्रुओं को पराजय करने वाले संग्राम में हम (ते) तेरे (नामानि) बहुत से सार्थक नामों को (विश्वाभिः गीर्भिः) सभी स्तुति, प्रशंसा रूप वाणियों से (ईमहे) सार्थक हुआ चाहते हैं। शतक्रतु, इन्द्र, वृत्रहा, शिप्रिन् इत्यादि नाना गुणदर्शक नामों को शत्रुविजय के कार्य में सफलता प्राप्त होने पर ही राजा को दिये जावें। अन्यथा ये नाम आडम्बरमात्र हैं।

पु॒रु॒ष्टु॒तस्य॒ धाम॑भिः श॒तेन॑ महयामसि ।
इन्द्र॑स्य चर्षणी॒धृतः॑ ॥ ४ ॥

भा०—(पुरुस्तुतस्य) बहुतों से प्रशंसित (चर्षणीधृतः) प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, पीड़न करने वाली सेनाओं को धारण करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष को हम (शतेन धामभिः) सैकड़ों नामों, सैकड़ों पदों से (महयामः) विभूषित करें। (२) अध्यात्म में 'चर्षणी'—इन्द्रियगण।

इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे पुरुहू॒तमुप॑ ब्रुवे ।
भरे॑षु॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(वृत्राय हन्तवे) विघ्नकारी, नगरादि को घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु को दण्डित करने के लिये और (भरेषु) संग्रामों और प्रजा-पोषणकारी कार्यों, यज्ञों में (वाजसातये) ऐश्वर्य के लाभ के लिये (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रस्तुत (इन्द्रं) शत्रुदल के विदारक पुरुष को मैं प्रजाजन (उपब्रुवे) चाहता हूं। (२) अध्यात्म में 'पुरु' इन्द्रियगण, वाज ज्ञान। वृत्र अज्ञान। इत्येकविंशो वर्गः ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुदलन करने हारे ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों बुद्धियों वाले ! (वृत्राय हन्तवे) शत्रु को दण्डित करने के लिये हम प्रजाजन (त्वाम् ईमहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं तू (वाजेषु) संग्रामों में (सासहिः) शत्रुपराजय करने में समर्थ (भव) हो ।

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सु तूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुदलविदारक ! (द्युम्नेषु) ऐश्वर्यों में (पृतनाज्ये) सेनाओं के द्वारा परस्पर संग्राम में (पृत्सु तूर्षु) सेनाओं और सामान्य प्रजाओं को परस्पर हिंसन, पीड़न के अवसरों में और (श्रवःसु च) बलों, ज्ञानों और अन्नादि प्रसिद्धिकारक ऐश्वर्यों के निमित्त (अभिमातिषु) अभिमान करने और आक्रमण करने वाले शत्रुओं में तू (साक्ष्व) उन सबको परास्त कर ।

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओं के दलन करने वाले ! सूर्य के समान प्रतापिन् ! तू (नः) हमारे (ऊतये) रक्षा के लिये (शुष्मिन्तमम्) सबसे अधिक बलवान्, शत्रुशोषणकारी, (द्युम्निनं) यश और ऐश्वर्य वाले (जागृविम्) सदा जागने वाले अत्यन्त सावधान (सोमम्) अभिषिक्त पदाधिकारी, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पाहि) रख । उसको रक्षार्थ नियुक्त कर ।

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं वाले ! (पञ्चसु जनेषु) तेरे पांचों प्रकार के जनों में (ते या इन्द्रियाणि) जो तेरे बल और ऐश्वर्य, तेरे सेवन करने योग्य प्रिय पदार्थ और शरीर में इन्द्रियों के समान राष्ट्र और परराष्ट्र के हिताहित को देखने सुनने आदि का कार्य करने वाले शासक जन हैं हे (इन्द्र) वीर पुरुष (ते) तेरे लिये (तानि आ वृणे) उनको मैं प्राप्त कराऊं। 'पञ्चजन'—चार वर्ण और पांचवें निषाद (सा०) अथवा—राज्यसेना, कोश, दूत, कर्म, न्यायशासन इन पर नियुक्त पञ्च जन। (दया०)

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्।
उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तुझे (श्रवः) अन्न, ज्ञान, यश और (बृहत्) बड़ा भारी (द्युम्नं) ऐश्वर्य (अगन्) प्राप्त हों, तू (दुस्तरम्) दुस्तर, अपार ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को (दधिष्व) धारण कर। हम भी (ते शुष्मं) तेरे शत्रुशोषणकारी बल को (उत् तिरामसि) उत्तम कोटि तक पहुंचा देवें, बढ़ावें।

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ ॥ २२ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! तू (अर्वावतः) समीप के और (परावतः) दूर के भी देश से (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। हे (अद्रिवः) मेघों से युक्त सूर्यवत् विचित्र पुरुषों और शत्रुनाशक आयुधधारी सैन्यों के स्वामिन् ! (यः) जो भी (ते लोकः) तेरा स्थान है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! वीर ! तू (ततः) वहां से ही (आगहि) आ, हमें प्राप्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[३८]

विश्वामित्रगोत्र वाचो वा पुत्रः प्रजापतिरुभौ वा विश्वामित्रो वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १० त्रिष्टुप् । २—५, ८, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । भुरिक् पङ्क्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः॥१॥

भा०—(तष्टा इव मनीषाम्) तक्षक, चतुर शिल्पी जिस प्रकार अपने शिल्प में बुद्धि को प्रकाशित करता है और (पराणि प्रियाणि अभिमर्मृशत्) बहुत से उत्तम उत्तम, प्रिय, मनोहर पदार्थों को बनाना विचारता है और जिस प्रकार (सुधुरः जिहानः वाजी अत्यः न) उत्तम रूपसे रथ को धारण करने वाला वेगसे जाता हुआ अश्व (पराणि प्रियाणि अभिमर्मृशत्) दूरके प्रिय पदार्थों को प्राप्त करा देता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष ! तू भी अपनी (मनीषाम्) मन की इच्छा शक्ति और प्रजाको (दीधय) प्रकाशित कर और (सुधुरः) ज्ञान और अपने कार्य-भार को उत्तम रीति से धारण करता हुआ (जिहानः) आगे बढ़ता हुआ (वाजी) ज्ञान, ऐश्वर्य से युक्त (अत्यः) निरन्तर आगे बढ़ने वाला होकर (पराणि) अति उत्कृष्ट (प्रियाणि) प्रिय सुखों और हितों को (अभिमर्मृशत्) खूब अच्छी प्रकार विचार करे । और मैं (सुमेधाः) उत्तम प्रज्ञावान् बुद्धिशाली होकर (संदृशे) तत्वार्थों को अच्छी प्रकार देखने के लिये (कवीन्) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषों को (इच्छामि) प्राप्त कर ज्ञान के प्रश्न करूं ।

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो३वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२॥

भा०—(कवीनां) क्रान्तदर्शी, दूरगामी प्रजा से युक्त विद्वान् पुरुषों के (जनिम्) जन्मविषयक रहस्य को (इना पृच्छ) स्वामी, प्रभु,

गुरुजनों से पूछे वे (मनोधृतः) मन को वश करने और ज्ञान को धारण करने वाले (सुकृतः) उत्तम कर्मकर्त्ता पुण्यकर्मा लोग ही (द्याम्) ज्ञानप्रकाश और अर्थ प्रकाशक रुचिर वाणी को (तक्षत) प्रकट करते हैं। हे विद्वन्! आचार्य! (उत) और (इमाः) ये (ते) तेरे अधीन (प्रण्यः) उत्तम मार्ग पर स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाली (वर्धमानाः) बढ़ने वाली (मनोवाताः) ज्ञान के द्वारा प्रेरित होकर उत्तम प्रजाएं वा सेनाएं (धर्मणि) सबके धारक पोषक राष्ट्र में और धर्म-मार्ग में (न) शीघ्र ही (ग्मन्) चलें। (२) इस (द्याम्) महान् आकाश को उत्तम कुशल, ज्ञानयुक्त शक्तियों ने बनाया और इन 'कवि' प्रज्ञावान् शक्तियों के (जनिम) मूल उद्भव को इन प्रभुशक्तियों से पूछो। ये बढ़ी हुई शक्तियां ही जगत् को उत्तम रीति से चलाने और निर्माण करने हारी हैं, वे ज्ञानवान् प्रभु से प्रेरित हैं और उसी सर्व-धारक प्रभु के आश्रय में स्वयं चलती हैं।

नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः॥ ३॥

भा०—(अत्र) इस लोक में विद्वान् लोग (सीम्) सब प्रकार के (गुह्या) छिपे रहस्य, विज्ञानों को (नि दधानाः) धारण करते हुए (क्षत्राय) अपने बल और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान अध्यात्म में प्राण और अपान राष्ट्र में स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों को (समञ्जन्) ज्ञान से प्रकाशित करें वे (मात्राभिः) मात्रा अर्थात् ज्ञान सम्मान साधनों से (सं ममिरे) ज्ञान प्राप्त करें, सम्मान प्राप्त करें, (उर्वी) बड़े (मही) पूजनीय (सम्-ऋते) पर-स्पर सत्य व्यवहार से सम्बद्ध, उन दोनों को (संयेमुः) संयम में स्थिर करें, परस्पर सम्बद्ध करें और (धायसे) एक दूसरे को पुष्ट करने के लिये (सं-धुः) एकत्र स्थापित करें। (२) संसार में परमात्मा की महती

शक्तियां गुह्य रहस्यों को धारती हुई बल स्थापन के लिये आकाश और भूमि दोनों को प्रकाशित करती हैं, मात्रा अर्थात् सूक्ष्म २ अवयवों से संसार को रचती हैं, परस्पर संगत बड़ी आकाश भूमि दोनों एक दूसरे को पुष्ट करने लिये धारण करती हैं।

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (स्वरोचिः) अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान सूर्य (श्रियः वसानः चरति) प्रभाओं, कान्तियों को धारण करता हुआ विचरता और (आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषन्) मध्य में विराजते को किरण चारों ओर से सुभूषित करती है। उसी प्रकार राजा, प्रतापी तेजस्वी वीर पुरुष (स्वरोचिः) स्वयं अपने तेज से चमकता हुआ (श्रियः) लक्ष्मियों, ऐश्वर्यों और अपने आश्रित प्रजा और भृत्य सेनाओं को (वसानः) अपने ऊपर आच्छादक वस्त्रों के समान अपनी शोभा और रक्षा के लिये धारण करता हुआ (चरति) विचरे। और (आतिष्ठन्तं) राष्ट्र के ऊपर अध्यक्ष रूप से विराजते हुए को (विश्वे) सभी अधीनस्थ या मित्रजन (परि अभूषन्) उसके चारों ओर उसको सुभूषित करें या उसके चारों ओर रहें। (वृष्णः असुरस्य महत् नाम) जिस प्रकार वर्षणशील मेघ में बहुत अधिक जल हो और वह (विश्व-रूपः) व्यापकरूप होकर (अमृतानि आतस्थौ) जलों को अपने में धारता है उसी प्रकार (वृष्णः) प्रजा पर ऐश्वर्यों और शत्रुजन पर आयुधों की वर्षा करने वाले (असुरस्य) दोषों और दुष्टों को उखाड़ने वाले और राष्ट्र के सञ्चालन करने वाले वा प्राणों में रमने वाले बलवान् पुरुष का (तत् नाम महत्) अलौकिक शत्रुओं को नमाने, दमन करने का भी बहुत बड़ा सामर्थ्य हो। वह (विश्वरूपः) सब प्रकार के गवादि पशुओं का स्वामी होकर सभी (अमृतानि) न मरने वाले,

जीवित जागृत प्राणियों और सुखदायक ऐश्वर्यों पर (आतस्थौ) अधिष्ठित हो, उन पर शासन करे। (२) परमेश्वर स्वयं प्रकाश होने से 'स्वरोचि' है। वह सब कान्तियों सूर्यादि लोकों को धारण करता है, सब उसी पर आश्रित हैं, अन्तर्यामी होकर सबको वेग से प्रेरणा करने से वह 'असुर' है। सुखों के बरसाने से 'वृषन्' है। उसका बड़ा नाम 'कर्म सामर्थ्य' है। वह सर्व विश्वव्यापक होने से 'विश्वरूप' है। वह सब (अमृतानि) अमर जीवों आनन्दों और तत्वों का अध्यक्ष होकर विराजता है।

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे॥५॥२३॥

भा०—(पूर्वः वृषभः असूत) जिस प्रकार जल से पूर्ण मेघ जलधाराओं को उत्पन्न करता है। उसके ही सामर्थ्य से (शुरुधः) वे जलधाराएं (शुरुधः) तृष्णादि को रोकने वाली उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार (पूर्वः) ऐश्वर्य से पूर्ण एवं प्रजा का पालक (वृषभः) बलवान् (ज्यायान्) सबसे अधिक श्रेष्ठ होकर (असूत) शासन करे। (अस्य) इसके शासन में (इमाः) ये (पूर्वीः) पूर्व, परम्परा से प्राप्त (शुरुधः) स्वयं वेग से बढ़कर शत्रुओं को रोकने वाली सेनाएं (सन्ति) हों। इस प्रकार राजा और प्रजा वा राजा और रानी दोनों ही (दिवः) प्रकाशमान, कामनायोग्य (विदथस्य) प्राप्त करने योग्य राज्यैश्वर्य को (नपाता) न गिरने देने वाला, उसके रक्षक होकर (राजाना) अपने २ गुणों और प्रतापों से एक दूसरे का मन अनुरञ्जन करते हुए, तेजों से प्रकाशित होते हुए (धीभिः) धारण करने वाले कर्मों और बुद्धियों से (प्रदिवः) उत्तम कोटि के काम्य और प्रकाशयुक्त विज्ञानों वा ऐश्वर्यों और (क्षत्रं) बलवीर्य, राज्यैश्वर्य को (दधाथे) धारण करें। (२) परमेश्वर पक्षमें—(पूर्वः) सबसे पूर्व विद्यमान और सबसे अधिक पूर्ण परमेश्वर सुखों

का वर्षक, सबसे बड़ा, महान् होकर इस जगत् को उत्पन्न करता है। वे (पूर्वीः शुरुधः अस्य) पूर्ण वा सबसे पूर्व विद्यमान प्रकृति की मात्राएं, जो वेग के कर्म को रोके हुए थीं, निश्चल थीं वा वे परमेश्वर के 'शुच्' अर्थात् दीप्ति, तेज को अपने भीतर धारण करने वाली रहीं। वे भी उसके ही शासन में सदा से रही । आत्मा और परमात्मा ये दोनों (राजाना) स्वप्रकाश होने से राजा हैं। दोनों ही (दिवः विदथस्य नपाता) प्रकाश और ज्ञान को विनष्ट नहीं होने देते। वे दोनों (धीभिः) प्रज्ञाओं और धारणशक्तियों से (प्रदिवः दधाथे) उत्कृष्ट ज्ञानों, कामनाओं और बड़े २ लोकों को धारण करते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजाना) उत्तम गुणों और तेजों से प्रकाशमान, एक दूसरे के मनों को अनुरंजन करने वाले, दिन रात्रि और सूर्य चन्द्र के समान परस्पर उपकारक, राजा प्रजाजनो! आप दोनों मिलकर (त्रीणि) तीन (पुरूणि) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को पालने और पूर्ण करने वाली (विश्वानि) समस्त (सदांसि) सभास्थानों को (विदथे) ज्ञान और ऐश्वर्य के लाभ के लिये (परि भूषथः) ऐसे अलंकृत करो जैसे सूर्य, चन्द्र दोनों तीनों लोकों को अलंकृत करते हैं (अत्र) यहां इन सभाभवनों में (मनसा जगन्वान्) ज्ञान द्वारा आगे बढ़ता हुआ (व्रते) नियम में व्यवस्थित (वायुकेशान्) वायु में खुले अनावृत केशों वाले (गन्धर्वान्) वेदवाणी के धारक विद्वानों और भूमि के धारक शासकों को भी (अपश्यम्) देखूं। (२) आत्मा परमात्मा दोनों स्वप्न, जागरित, सुषुप्ति तथा सृष्टि, प्रलय और मध्य तीनों स्थानों को ज्ञानशक्ति के बल से सुशोभित करते हैं, उन दोनों में से प्रत्येक पर 'वायुकेश' गन्धर्व हैं जिनको मन के द्वारा जाना जाता है। आत्मा में प्राणगण वायुकेश हैं। वे व्याप्त आत्मा के

केशों के समान हैं, वे वाणी के धारक होने से, शरीरधारक होने से गन्धर्व हैं। परमेश्वर में, वायु में व्यापक केश अर्थात् किरणों वाले सूर्यादि भूमि को धारण करते हैं उनको मैं साक्षात् देखूं, उनका रहस्य जानूं।

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥

भा०—(अस्य वृषभस्य धेनोः तत् इत्) यह वरसने वाली, सूर्य को ही रसपान कराने वाली इस मेघमाला का ही सामर्थ्य है कि उसके (नामभिः) जलों से कृषक लोग जिस प्रकार (गोः सक्म्यं ममिरे) पृथिवी से अन्न उत्पन्न करते हैं और भी (अन्यत् अन्यत्) नाना प्रकार के (असुर्यं) मेघ द्वारा उत्पन्न रुई, कपास आदि को पहनते हुए (मायिनः अस्मिन् रूपं नि ममिरे) बुद्धिमान् लोग इस लोक में नाना रूप या रुचिकर पदार्थ उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस (वृषभस्य) वलवान् पुरुष की (धेनोः) वाणी रूप कामधेनु का ही (तद् इत् नु) वह अलौकिक सामर्थ्य है कि इसके (नामभिः) सवको नमाने वाले शासनों से (गोः) इस भूमि की प्रजाओं का (सक्म्यं) समवाय, संगठन (आ ममिरे) बनावें। वे (अन्यत् अन्यत्) भिन्न २ प्रकार के (असुर्यं) वलशाली पुरुषोचित राज्याधिकार को (वसानाः) धारण करते हुए (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (मायिनः) बुद्धिमान् पुरुष (अन्यत् अन्यत् रूपम् नि ममिरे) नाना प्रकार के रूप या रुचिकर पदार्थों का निर्माण करते हैं। (२) परमेश्वर पक्ष में—वह परमेश्वर की कामधेनु वाणी का अलौकिक सामर्थ्य है कि नाम अर्थात् संज्ञापदों से वाणी के सुसम्बद्ध वाक्य को विद्वान् लोग बना लेते हैं। वे उस महान् ज्ञानी के ज्ञान को धारते हुए बुद्धिमान् जन उसके ज्ञान के ही रुचिभेद से नाना रूप प्रकट करते हैं।

तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥

भा०—(याम्) जिस (हिरण्ययीम्) सुवर्णादि धनैश्वर्ययुक्त (अमतिं) कान्ति को समस्त लोक (अशिश्रेत्) सेवन करता है (तत् इत् नु) वह सब निश्चय (मे सवितुः) मुझ सूर्य के समान तेजस्वी, सबके उत्पादक, शासकस्वरूप (मे) मेरी हो । उसका (नकिः) कोई और प्राप्त न कर सके । और जिस प्रकार (योषा जनिमानि वव्रे) स्त्री उत्पन्न सन्तानों को स्वीकार करती और वस्त्रादि से ढांपती है मैं (सुस्तुती) सूर्य समान तेजस्वी पुरुष (सुस्तुती) उत्तम स्तुति या उपदेश से (विश्व-मिन्वे) समस्त विश्व को अन्नादि से संतुष्ट, प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले (रोदसी) सूर्य भूमि के समान स्त्री और पुरुषों को (आ वव्रे) आवरण करूं । शिष्य प्रजा पुत्रादि रूप से वरण करूं । परमेश्वर पक्ष में—जिस तेजोमयी कान्ति या दीप्ति को मनुष्य सेवते हैं वह (नकिः मे) मेरी नहीं प्रत्युत (तत् इत् नु अस्य सवितुः) वह सब उसी प्रभु, सर्वोत्पादक परमेश्वर की है । वह प्रभु परमेश्वर पुत्र पुत्री आदि सन्तानों को माता के समान विश्वव्यापी सूर्य पृथ्वी दोनों के (इव अपि वव्रे) आवरण करता, अपने अंचरे में ढके सा रहता है, उनको प्रशस्त रीति से पालता रहता है ।

युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

भा०—हे मित्र और वरुण ! परस्पर स्नेही और एक दूसरे की रक्षा, संकटनिवारण और प्रेमपूर्वक वरण करने वाले ! स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजावर्गो ! (युवं) तुम दोनों (प्रत्नस्य) पूर्व से चले आये, सनातन (महः) महान् पूजनीय परमेश्वर के बतलाये धर्म की (साधथः) साधना करो (यत्) जिससे (दैवी स्वस्तिः) देव परमेश्वर और विद्वानों द्वारा शुभ कल्याणमय सुख शान्ति हो । आप दोनों (नः) हमारे (परिस्या-

तम्) रक्षक रूप में इर्द गिर्द और कार्यों के ऊपर निरीक्षक रूप से रहो। (गोपाजिह्वस्य) भूमि वेद और वेदवाणी की रक्षा करने वाली जिह्वा अर्थात् वाणी वा आज्ञा को धारण करने वाले (तस्थुषः) स्थित (मायिनः) अति बुद्धिमान् पुरुष के (विरूपा कृतानि) विविध प्रकार के किये कर्मों और बनाये संसार के पदार्थों को (विश्वे मायिनः पश्यन्ति) सभी बुद्धिमान् देखते हैं।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥१०॥२४॥३॥

भा०—व्याख्या देखो (सू० ३२। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[३९]

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६ विराट्त्रिष्टुप्। ३—७ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ८ भुरिक् पङ्क्तिः॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य॥ १॥

भा०—जिस प्रकार (वच्यमाना) उत्तम वचनों से प्रशंसित स्त्री (पतिं) पति को प्राप्त होती और उसी के गुणानुवाद करती है, उसी प्रकार (स्तोमतष्टा) स्तुति-मन्त्रों द्वारा सु-अलंकृत (वच्यमाना) मुख से उच्चारण करने योग्य (मतिः) स्तुति और प्रज्ञा (अच्छ) अपने लक्ष्यभूत (पतिम्) सर्वपालक स्वामी परमेश्वर को (जिगाति) प्राप्त होती और उसी के गुणानुवाद करती है। (या) जो (विदथे जागृविः) उत्सुक परिलाभ के निमित्त उत्सुक जागृत प्रियतमा के समान ही (विदथे) लक्ष्य रूप प्रभु की प्राप्ति और ज्ञान के निमित्त (शस्यमाना) गुरु द्वारा उपदेश की जाती है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! (यत् ते जायते तस्य

विद्धि) जिस प्रकार जो बाद में अपनी हो जाती हैं उत्तम पुरुष उसी को पत्नी रूप से प्राप्त करता है, अपना जानता है उसी प्रकार हे स्वामिन् ! (ते यत् जायते) तेरे ही गुण वर्णन के लिये जो स्तुति और मति (हृदः) हृदय से हो जाती है (तस्य विद्धि) तू उसे जान और स्वीकार कर ।

दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार स्त्री (दिवः चित्) पति की कामना से (आजायमाना) वह पूर्व विद्वानों से संस्कृत होकर 'जाया' हो जाती है और वह (शस्यमाना) पति के गुणों के सम्बन्ध में सखियों द्वारा कही गयी (विदथे जागृविः) पति को प्राप्त करने के निमित्त, जागती-सी रहती है, उत्सुकता के कारण निद्रित नहीं होती और वह जिस प्रकार (अर्जुना भद्रा वस्त्राणि) श्वेत, शुद्ध, सुखकारक, कल्याणकारक सुन्दर वस्त्रों को धारण करती है और वह (सनजा) दानपूर्वक दूसरे की होकर भी (पित्र्या) विवाहकर्त्ता के पिता माता की हितकारिणी और (धीः) विवाहकर्त्ता के द्वारा धारण पोषण करने योग्य हो जाती है । उसी प्रकार (पूर्व्या) हमसे पूर्व के विद्वानों से प्रकट हुई । (दिवः चित्) सूर्य से उषा के समान, ज्ञानप्रकाश से (आजायमाना) सब प्रकार से प्रकट होती हुई (विदथे) इष्ट देव के प्राप्त करने के निमित्त वा यज्ञ में (वि शस्यमाना) विविध प्रकार से स्तुति की जाती हुई (भद्रा) अति कल्याणकारक, सुखप्रद (अर्जुना) दोषरहित (वस्त्रादि) आच्छादक छन्दों को धारण करती हुई (सनजा) सनातन परम पुरुष से उत्पन्न हुई (पित्र्या) माता पिता और वाणी के पालक गुरुजनों में स्थित (सा इयं) वह यह (धीः) धारण करने योग्य वाणी और सन्मति (अस्मे) हमें प्राप्त हो ।

यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (यमसूः यमा असूत) जोड़ा उत्पन्न करने वाली स्त्री जोड़ा पैदा करती है (चित्) उसी प्रकार (यमसूः) संयमवान् ब्रह्मचारियों को उत्पन्न करने और विद्याधाराओं से स्नान कराने वाला आचार्य भी (अत्र) इस लोक में (यमा) पापमार्गों से उपरत, संयमी, जितेन्द्रिय नर-नारियों को (असूत) उत्पन्न करे। वह आचार्य (जिह्वायाः) सब ज्ञानों को अपने भीतर रखने वाली वेदवाणी के (अग्रं) सबसे उन्नत अंश को भी (पतत्) पहुंचे, विद्याशाखा के उपरितम सर्वोपरि ज्ञान को भी प्राप्त करे। (हि) वह (आ अस्थात्) सबसे ऊपर विराजे। नर और नारी दोनों वर्ग (तमोहना) सूर्य चन्द्र वा दिन रात्रि के समान अज्ञान अन्धकार को नाश करने वाले होकर (तपुषः बुध्ने आ इता) मूल आश्रय पर स्थिर होकर आगे बढ़ें। वे दोनों वर्ग बाद में (जाता) विद्या के गर्भ से स्नातकरूप से उत्पन्न होकर (मिथुना वपूंषि) जोड़े २ शरीरों को (सचेते) संगत करें। अर्थात् विद्वान् होकर बाद में गृहस्थ होकर रहें। (२) राष्ट्र का प्रबन्ध करने वाले 'यम' हैं, उनके ऊपर शासक सभा 'यमसू' है वह इस राष्ट्र में उत्तम प्रबन्धकारी जनों का (असूत) शासन करती है। वह (जिह्वायाः अग्रं) वाणी, आज्ञा करने के सर्वोच्च पद को प्राप्त करके सब पर अध्यक्ष होकर रहती है। शत्रु-संतापक बल के आश्रय पर (तमोहना) दुःखों का विनाश करने वाले होकर सब शरीर दो दो होकर, मिल कर रहें। (३) परमेश्वर ही सब जोड़ों को व सूर्य चन्द्रादि को उत्पन्न करने से 'यमसू' है। सूर्यवत् तेजस्वी नर-नारी 'यम' हैं। वह सर्वोत्पादक परमेश्वर वाणी के अग्र, सर्वोच्च पद पर स्थित है, सर्वस्तुत्य है, समस्त तप के मूल आश्रयभूत उस परमेश्वर के आश्रित होकर सब में जोड़े शरीर चल रहे हैं। उसी के आश्रय पर वे अपने शोक-दुःखादि का नाश करते हैं।

नकि॑रेषां निन्दि॒ता मर्त्ये॑षु॒ ये अ॒स्माकं॑ पि॒तरो॒ गोषु॑ यो॒धाः।
इन्द्र॑ एषां दृंहि॒ता माहि॑नावा॒नुद्गो॒त्राणि॑ ससृजे दं॒सना॑वान् ॥४॥

भा०—(अस्माकं) हमारे बीच में से (ये पितरः) जो पालक, रक्षक, माता पिता के समान पूज्य पुरुष (गोषु) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (योधाः) युद्ध करने हारे हैं (एषां) उनकी (निन्दिता) निन्दा करने वाला (नकिः) कोई न हो। (एषां) इनका (दंहिता) दृढ़ करने वाला, उनकी वृद्धि करने वाला, शत्रुहन्ता वीर राजा ही (माहिनावान्) बड़े भारी बल सामर्थ्य का स्वामी हो और वह (दंसनावान्) उत्तम कर्म करने हारा, कुशल पुरुष ही उनके (गोत्राणि) वंशों का (उत् ससृजे) उन्नत करे। आचार्य पक्ष में—हमारे बालक पूज्यों में जो (गोषु योधाः) वेदादि वाणियों में श्रमशील हैं उनका कोई निन्दक न हो। उनका बढ़ाने वाला पूज्य, सत्यकर्मी आचार्य ही उनके गोत्रों को बनाने वाला होता है। इसी आधार पर प्राचीन ऋषियों के गोत्र चले हैं। (३) इसी प्रकार जो (पितरः) व्रतपालक (गोषु योधाः) इन्द्रियग्राह्य विषयों में इन्द्रियों के विजयार्थ युद्ध करते हैं आन्तरिक काम क्रोधादि शत्रुओं से लड़ते हैं उनका निन्दक कोई न हो। परमेश्वर उनको बढ़ाता और उनको (गोत्राणि) इन्द्रियों के रक्षा साधनों को उत्तम दृढ़ करता है। इन्द्रियों का विजय करने से उनका बल वीर्य बढ़ता है।

सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५।२५॥

भा०—(यत्र) जिस आश्रम में (नवग्वैः) नवीन २ ज्ञान वाणी में गति करने वाले नवागत (सखिभिः) एक समान नाम वाले व्रतधारी ब्रह्मचारियों सहित (अभिज्ञु, सत्त्वभिः) आगे को गोड़े किये पालोथी लगाकर बैठने वाले वा (सत्वभिः) सत्कर्म, ज्ञान और बल वीर्यशाली व्रतधारी ब्रह्मचारियों से संगत होकर (इन्द्रः) अध्यात्म या प्रत्यक्ष तत्व को देखने वाला या विद्यार्थियों को, काष्ठों को अग्नि के समान

प्रदीप्त करने वाला आचार्य (गाः अनु ग्मन्) ज्ञानवाणियों का अनुगमन या अभ्यास करता रहता है (तत्) उसी आश्रम में वह विद्वान् (दशभिः दशग्वैः) दशों इन्द्रिय सामर्थ्यों से युक्त दशों प्राणों से युक्त होकर (तमसि) अन्धकार में (क्षियन्तं) विद्यमान (सूर्यं) सूर्य के समान उज्ज्वल (सत्यं) सत्य ज्ञान और सत्य बल को (विवेद) प्राप्त करे। (२) सेनानायक दशों वाणियों, दशों धर्मशास्त्रों को जानने वाले दश विद्वानों के साथ मिलकर अज्ञान अन्धकार में सूर्य के समान चमचमाते अनृत असत्य अज्ञान का नाश करते हुए (सत्यं) सत्य न्यायप्रकाश को प्राप्त करे। राजा सत्य न्याय को प्राप्त करने के लिये 'दशावरा परिषद्' की स्थापना करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष (उस्रियायाम्) दूध दही आदि उत्पन्न करने वाली गौ के समान ही अन्नादि उत्पन्न करने वाली भूमि में ही (सम्भृतम्) अच्छी प्रकार धारण किये हुए (मधु) मधुर अन्नादि खाद्य सामग्री को और (पद्वत् शफवत्) पैरों और खुरों वाले पशु धन को भी (विवेद) प्राप्त करे। और वह (गोः) भूमि के (गुहाहितम्) गुप्त स्थानों में रक्खे (गुह्यं) गोपन करने योग्य (गूढ) गुप्त धन को (अप्सु) आप्त जनों में (नमे) प्रदान करें। और उसको (दक्षिणावान्) कुशल बुद्धिमान् पुरुषों का स्वामी (दक्षिणे हस्ते) दांये बलशाली हाथ, अर्थात् प्रबल पुरुष के अधीन (दधे) सुरक्षित रक्खे।

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरिताद्भीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न होकर (तमसः ज्योतिः वृणीते) अन्धकार से प्रकाश को पृथक् कर देता है उसी प्रकार (विजानन्) विशेष

ज्ञानवान् पुरुष सदा (तमसः) अन्धकार से (ज्योतिः) प्रकाश को, अविद्या से विद्या को (वृणीत) सदा पृथक् २ करे, विवेक करता रहे। हम लोग (दुरिताद् आरे) दुष्टाचरण से पृथक् और (अभीके) भय रहित सत्याचरण में (स्याम) लगे रहें। हे (सोमपाः) ज्ञान और ऐश्वर्य को पान और पालन करनेहारे हे (सोमवृद्ध) ज्ञान और ऐश्वर्य के द्वारा बढ़े हुए, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध और धनाध्यक्ष ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानदर्शिन् ! तू (पुरुतमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, बहुत से शत्रुओं और विघ्नों के नाशक (कारोः) क्रियाकुशल, विद्वान् पुरुष की (इमाः गिरः) इन उपदेश-वाणियों को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर।

ज्योति॑र्य॒ज्ञाय॒ रोद॑सी॒ अनु॑ ष्यादा॒रे स्या॑म दु॒रि॒तस्य॒ भूरेः॑।
भूरि॑ चि॒द्धि तु॒ज॒तो मर्त्य॑स्य सुपा॒रासो॑ वसवो ब॒र्हणा॑वत् ॥ ८॥

भा०—(रोदसी अनु यज्ञाय ज्योतिः) दोनों के परस्पर संगति के लिये जिस प्रकार आकाश और भूमि दोनों के बीच सूर्य रूप ज्योति है उसी प्रकार (यज्ञाय) परस्पर मिलने, मित्र होकर रहने और एक दूसरे के आदर सत्कार और ईश्वर-पूजा के निमित्त भी (रोदसी अनु) राजा प्रजा, पुरुष और स्त्री दोनों को (ज्योतिः अनु स्यात्) ज्ञान का प्रकाश सदा प्राप्त हो। हम लोग (भूरेः) बहुत से (दुरितात्) दुष्टाचरण पापादि से (आरे स्याम) दूर ही रहें। हे (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनो ! (बर्हणावत्) वृद्धि से युक्त (भूरि) बहुत से ऐश्वर्य को (तुजतः मर्त्यस्य) पालन करने वाले मनुष्य के आप लोग भी (सुपारासः) उत्तम रीति से पूर्ण करने, तृप्त करने और पालन करने वाले होकर उसके अनुगामी होकर रहो।

शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ स॒ञ्जितं॒ धना॑नाम् ९।२६।२

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३। २२॥ इति षड्विंशो वर्गः। द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

[४०]

मित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१—४, ६—९ गायत्री। ५ निचृद्गायत्री॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रं त्वा वृष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे।
स पा॑हि॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे आह्लादकारी! प्रजाजन में रमण वाले! हम (त्वा वृषभं) सुख ऐश्वर्यों के वर्षक एवं बलवान् तुझको, को धारण करने वाले! (सुते सोमे) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य, राज्य सन के लिये (हवामहे) प्रार्थना करते हैं। (सः) वह तू (मध्वः) प्रद, मधुर, (अन्धसः) प्राणधारक एवं खाने योग्य अन्न आदि वर्ग का (पाहि) ओषधिरस के समान ही पालन कर और ग कर।

इन्द्र॑ क्रतु॒विदं॑ सु॒तं सोमं॑ हर्य पुरुष्टुत।
पि॒बा वृ॑षस्व॒ तातृ॑पिम्॥ २॥

भा०—हे (पुरुस्तुत इन्द्र) बहुतों से प्रशंसित! हे ऐश्वर्य के इच्छुक! सुतं) उत्पन्न हुए (क्रतुविदं) क्रियाशक्ति और बुद्धि को प्राप्त कराने (सोमं) ओषधि अन्नादि को (हर्य) चाह। और (तातृपिम्) रने वाले प्रिय अन्नादि रस का (पिब) पान कर (वृषस्व) और न् हो।

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।
तिरः स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥

भा०—हे (स्तवान) स्तुतियोग्य ! हे (विश्पते) प्रजाओं के पालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमारे (धितावानम्) अपने विभक्त करने योग्य धन को सुरक्षित रखने वाले, (यज्ञं) परस्पर के मेल, व्यवहार और मैत्रीभाव, संगठन को (विश्वेभिः देवेभिः) सब विद्वानों और वीर विजयेच्छुक पुरुषों द्वारा (तिरः) बढ़ा ।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमे) ये (चन्द्रासः) आह्लादजनक, प्रजा के मनोरञ्जन करने हारे, (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् हृदयों में प्रजा के प्रति आर्द्र, स्नेहभाव रखने वाले (सोमाः) सौम्यगुण युक्त, प्रजा के प्रेरक, (सुताः) नाना पदों पर अभिषिक्त हैं वे (तव क्षयं प्रयन्ति) तेरे ही स्थान पर उत्तम रीति से कार्य करते हैं । (२) हे मनुष्य ! ये उत्पन्न ओषधि आदि सुखजनक हरे सरस पदार्थ तेरे घर और जठर, शरीर में आवें । (३) हे आचार्य ! ये शिष्यगण पुत्रवत् सुखजनक चन्द्रवत् प्रतिदिन बढ़ने वाले तेरे गुरु-गृह में प्राप्त हों ।

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (वरेण्यम्) श्रेष्ठ, (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य और शासन को, उत्तम उत्पन्न अन्नादि को (जठरे) उदर और अपने शासन में (दधिष्व) रख, ये (इन्दवः) ऐश्वर्य (तव) तेरे ही (द्युक्षासः) प्रकाश या तेज को धारण करने वाले हैं या ये चमकने

वाले ऐश्वर्य तेरे ही हैं। (२) राजा (सुतं सोमं) अभिषिक्त अधिकारी को भी अपने अधीन रक्खे। ये तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष भी उसी के अधीन रहें। (३) गुरु आचार्य माता के गर्भ के बालक के समान ही श्रेष्ठ शिष्य को अपने अधीन 'विद्यागर्भ' में रक्खे। इति प्रथमो वर्गः॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥ ६॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तवन और याचना, प्रार्थना करने योग्य! तू (नः) हमारे (सुतं) उत्पादित ऐश्वर्यमय राष्ट्र की (पाहि) रक्षा कर। तू (मधोः) जलवत् ज्ञान की (धाराभिः) धाराओं से (अज्यसे) स्नान या अभिषेक कराया जाता है, उससे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यशः) यह सब यश, बल, वीर्य और अन्नादि ऐश्वर्य (त्वादातम्) तुझ से ही सुशोभित, तेरे द्वारा स्वीकृत, सुरक्षित हो।

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे॥ ७॥

भा०—(वनिनः द्युम्नानि) जिस प्रकार किरणों से युक्त सूर्य के तेज सूर्य को ही प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (वनिनः) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य के स्वामी पुरुष के (द्युम्नानि) समस्त ऐश्वर्य (इन्द्रं) ऐश्वर्य के रक्षक, भूमि के धारक और शत्रु के नाशक पुरुष को ही (अक्षिता) अक्षय होकर (सचन्ते) प्राप्त होते हैं और वह (सोमस्य पीत्वी) उस ऐश्वर्य वा राष्ट्र का पालन और उपभोग करके (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त करता है।

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः॥ ८॥

भा०—हे (वृत्रहन्) बढ़ते विघ्नकारी शत्रु को मारने वाले! तू (नः) हमारे (अर्वावतः) समीप के और (परावतः च) दूर के

देश से भी (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। अथवा दूर वा समीप रहते हुए भी हमें तू प्राप्त हो। तू (नः) हमारी (इमाः गिरः जुषस्व) इन वाणियों, प्रार्थनाओं को प्रेम से स्वीकार कर।

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जब तू (अर्वावतं परावतं च अन्तरा) समीप और दूर के बीच के प्रदेश में भी (हूयसे) आदर से बुलाया जावे (ततः) वहां से तू (इह आगहि) यहां आ।

इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४१]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ यवमध्या गायत्री । २, ३, ५, ९ गायत्री । ४, ७, ८ निचृद्गायत्री । ६ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! हे (अद्रिवः) मेघों सहित सूर्य के समान तेजस्विन्! पर्वत के समान अभेद्य! और मेघों के तुल्य अन्नादि दाता और शस्त्रवर्षी वीर पुरुषों के स्वामिन्! वा शस्त्रों, शस्त्रधारी सैन्य के स्वामिन्! अखण्ड बल वा शासन के स्वामी! तू (हुवानः) आह्वान किया जाकर, आदरपूर्वक बुलाया जाकर (सोमपीतये) ओषधिरसों, अन्नों के समान ऐश्वर्यों के पान, उपभोग और पालन के निमित्त (हरिभ्याम्) अपने दो अश्वों सहित (मद्र्यक्) मेरी ओर, मुझ प्रजाजन को लक्ष्य कर (आ याहि) आ, हमें प्राप्त हो। (२) अध्यात्म में—(अद्रिवः) अखण्ड शक्तियुक्त आत्मा, परमात्मा, हरि, प्राणापान।

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक्।
अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

भा०—(ऋत्वियः होता) जिस प्रकार होता, यज्ञकर्त्ता ऋतु अनुसार यज्ञ करने वाले (आनुषक् बर्हिः स्तृणाति) साथ २ लगे कुशा बिछा देता है उसी प्रकार (सत्तः) उच्च सिंहासन पर विराजता हुआ (होता) राष्ट्रको अपने अधीन लेवे, अधीनस्थ भृत्यों को वेतनादि देने वाला पुरुष भी (ऋत्वियः) उत्तम 'ऋतु' अर्थात् ज्ञान, राजसभा के सदस्यों और राजभ्रातरों के बीच में मुख्य होकर (आनुषक्) अपने अनुकूल होकर अपने से प्रेमभाव से बद्ध होकर (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजाजनों वा राष्ट्र को (तिस्तिरे) विस्तृत करे, बढ़ावे। (प्रातः) प्रातः, प्रारम्भ में ही (अद्रयः) अद्रि के समान अविचल, निर्भय और मेघवत् उदार और सिद्धहस्त पुरुष (अयुज्रन्) नियुक्त हों, राष्ट्र-कार्य में योग दें।

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद।
वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के हिंसक, शूरवीर! हे (ब्रह्मवाहः) महान् धन ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को धारण करने हारे राजन्! (इमा) ये (ब्रह्म) नाना धन और ऐश्वर्य (क्रियन्ते) किये जाते हैं, तू (बर्हिः) इस वृद्धिशील प्रजाजन पर (आसीद) अध्यक्ष होकर विराज। तू (पुरः) समक्ष रक्खे (पुरोडाशम्) प्रेम, आदरपूर्वक प्रदान किये हुए राष्ट्र को (वीहि) प्राप्त हो और अन्न के समान उसका उपभोग, पथ्यापथ्य का विचार करके कर। (२) हे ब्रह्म, वेद को धारण करने वाले विद्वन्! (इमा ब्रह्म क्रियन्ते) इन वेदों का अभ्यास किया जाय, तू आसन पर विराज, उत्तम अन्न का भोजन कर या प्रत्यक्ष समक्ष स्थित शिष्य का पालन कर।

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन्।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवने और स्तुति, प्रार्थना करने

योग्य ! हे (वृत्रहन्) विघ्नकारी, शत्रुओं के नाश करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें और हमारे (एषु) इन (सवनेषु) अभिषेकों, ऐश्वर्यों और (स्तोमेषु) स्तुतियों और स्तुति योग्य (उक्थेषु) उत्तम वचनों और स्तुत्य कार्यों में (रारन्धि) स्वयं रमण कर और हमें रमा।

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम्।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(मतयः) मननशील लोग (सोमपाम्) ऐश्वर्यों के रक्षक, (उरुं) महान् , (शवसस्पतिम्) बलों के पालक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष को (वत्सं मातरः न) बच्चे को माता गौएं जैसे (रिहन्ति) प्रेम से चूमती चाटती हैं उसी प्रकार (रिहन्ति) प्रेम करके सुखी होती हैं। इति तृतीयो वर्गः ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे।
न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह तू (महे राधसे) बड़े भारी धनैश्वर्य लाभ करने और कार्य साधने के लिये तू अपने आप (अन्धसः) अन्न आदि से (मन्दस्व) तृप्ति लाभ कर। तू (स्तोतारं) उपदेशप्रद विद्वान् को (निदे न करः) निन्दा कार्य वा निन्दनीय कार्य के लिये मत कर, उसे उसमें मत लगा।

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयम्) हम (हविष्मन्तः) लेने और देने योग्य अन्नादि पदार्थों से युक्त होकर (त्वायवः) तेरी ही कामना करते हुए तेरी (जरामहे) स्तुति करते हैं। हे (वसो) सबको बसाने वाले (उत) और (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमारा प्रिय हो।

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ्याहि।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

भा०—हे (हरिप्रिय) अश्वों के प्रिय ! (अस्मत्) हमें (आरे मा

वि मुमुचः) दूर वा पास त्याग मत कर । (अर्वाङ् याहि) तू आगे बढ़ । हे ऐश्वर्यवन् ! हे (स्वधावः) स्वयं राष्ट्र को धारण करने की शक्ति के स्वामिन् ! तू (इह मत्स्व) इसी राष्ट्र में हर्षित हो ।

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (केशिना) केशों वाले दो अश्व (त्वां) तुझ (अर्वाञ्चम्) आगे बढ़ने वाले को (सुखे रथे) सुखपूर्वक जाने वाले रथ में लेकर (बर्हिः आसदे) प्रजा पर उत्तम शासनार्थ विराजने के लिये (वहताम्) ले चला करें । वे दोनों (घृतस्नू) तेज को प्रसारित करने वाले हों । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४२]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ गायत्री । २, ३, ८, ९ निचृद्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमारे (गवाशिरम्) गौओं, पशु या जीवों के खाने योग्य (सुतम् सोमम्) उत्पन्न 'सोम' अर्थात् ओषधियों के समान (गवाशिरम्) प्रजाओं द्वारा उपभोग योग्य वा (गवाशिरम्) गौ पृथिवी में स्थित (सुतम् सोमम्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य को (यः ते) जो तेरा (अस्मयुः) हमें चाहने वाला, हमारा हितकारी रथ आदि है उससे (हरिभ्यां) वेगवान् अश्वों से (नः आगहि) हमें प्राप्त हो । आचार्य पक्ष में—(सुतं सोमं) पुत्र तुल्य सौम्य शिष्य जो (गवाशिरम्) वेदवाणी को व्याप रहा है उसको ज्ञान और कर्ममार्ग

में ले जाने वाले उपायों सहित प्राप्त हो। जो शिष्य (ते) तेरा और (अस्मयुः) हम मां बाप को भी चाहने वाला हो।

तमि॑न्द्र॒ मद॒मा ग॑हि ब॒र्हि॒ःष्ठां ग्राव॑भिः सु॒तम्।
कु॒विन्न्व॑स्य तृ॒प्णव॑ः ॥ २॥

भा०—जिसप्रकार (ग्रावभिः सुतम्) मेघों से सींचे गये (बर्हिष्ठां) आकाशस्थ (मदं सुतम्) सर्व हर्षजनक जल को सूर्य पुनः आकर्षण कर लेता है और उस जल से बहुत से जन्तुगण तृप्त होते हैं इसी प्रकार (ग्रावभिः सुतम्) मेघों से सींचे गये (मदं तम्) सबके तृप्तिकारक वा हर्षजनक उस (सुतम्) उत्पन्न अन्न को यह सूर्य प्राप्त हो और इस अन्न से भी बहुत से तृप्त होते हैं। (२) हे आचार्य ! तू (मदं) हर्षजनक (बर्हिष्ठां) आसन पर स्थित (ग्रावभिः सुतम्) विद्वान् उपदेष्टाओं द्वारा उपदिष्ट पुत्र वा शिष्य को प्राप्त हो और (नु अस्य त्वं कुवित् तृप्णवः) तू शीघ्र ही उसको बहुत अधिक तृप्त कर। ज्ञान से तृप्त कर। (२) राजा (ग्रावभिः सुतम्) सैन्य के शस्त्रों द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त होवे। इससे अच्छी प्रकार तृप्त, प्रसन्न हो और अन्यों को तृप्त करे।

इन्द्र॑मि॒त्था गिरो॒ ममाच्छा॑गुरिषि॒ता इ॒तः।
आ॒वृते॒ सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(मम) मेरी (इत्था) इस प्रकार की (गिरः) उत्तम वाणियां (इषिताः) कही गईं (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् वा विद्वान् पुरुष को (आवृते) उत्तम रीति से सुरक्षित, आच्छादित स्थान, राष्ट्र या पुर में (सोमपीतये) शिष्य और राष्ट्रैश्वर्य की रक्षा के लिये (अच्छ अगुः) प्राप्त हों। (२) पक्षान्तर में—अन्नादि पदार्थ वा जल आवृत अर्थात् ढके स्थान में सुरक्षित स्थान में रक्खे जाने का राजा आदि को उपदेश हो।

इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॒ स्तोमै॑रि॒ह ह॑वामहे।
उ॒क्थेभि॑ः कु॒विदा॒गम॑त् ॥ ४ ॥

भा०—हम (उक्थेभिः स्तोमैः) प्रशंसनीय उत्तम वचनों से (सोमस्य पीतये) ओषधि रस, अन्नादि के पान उपभोग आदि के लिये (इन्द्रं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, विद्वान् पुरुष को (हवामहे) बुलावें वह (इह) हमारे पास (कुविद् आगमत्) बहुत २ बार आवे। इसी प्रकार राष्ट्र के पालन के लिये उत्तम बलवान् नायक को उत्तम वचनों से प्रार्थना करें वह बहुत वार हमें प्राप्त हो।

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वाजिनीवसो) वाजिनी अर्थात् उषा को बसाने वाला सूर्य जिस प्रकार जलों को (जठरे) अन्तरिक्ष में धारण कर लेता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न (सोमाः) ऐश्वर्ययुक्त अन्नादि पदार्थ हैं। (तान्) उनको हे (शत-क्रतो) अनेक कर्म और ज्ञानों वाले! तू (जठरे) अपने उदर में और वश में (दधिष्व) धारण कर। (२) राजा बलवती सेना और अन्नवती भूमि को बसाने वाला होने से 'वाजिनीवसु' है। वह अभिषिक्त अधीन राजाओं को अपने वश में रक्खे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! विद्वन्! हे आज्ञापक! हम (त्वा) तुझको (वाजेषु) संग्रामों में शत्रुओं को (धृषं) पराजित करने वाला और (धनञ्जयं) धन को जीत कर लाने वाला ही (विद्म) जानते हैं। (अध) और इसी कारण (ते) तुझसे हम (सुम्नम्) सुखजनक धन की (ईमहे) याचना करते हैं। हे विद्वन्! तुझको ज्ञानों में प्रगल्भ और गौ, सुवर्ण आदि पदक पारितोषिकादि को स्पर्धा-पूर्वक जीत लेने वाला जानते हैं। तुझसे उत्तम ज्ञान की याचना करते हैं।

इ॒मामि॑न्द्र॒ ग॒वाशि॑रं॒ य॒वाशि॑रं च नः पिब ।
आ॒गत्या॒ वृष॑भिः सु॒तम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वृषभिः सुतम्) मेघों से उत्पन्न जल (गवाशिरं) किरणों से ताप द्वारा गृहीत होता है और (यवाशिरं) यव आदि अन्नों से ग्रहण किया जाता है उस जल को प्रथम जिस प्रकार सूर्य पान करता है उसी प्रकार तू भी (वृषभिः सुतम्) बलवान् प्रबन्धक शासकों से उत्पन्न किये (गवाशिरं) गौ, भूमि मेघ से प्रजाओं द्वारा उपयुक्त और (यवाशिरम्) यव अर्थात् शत्रुओं के दूर करने वाले वीर सैन्यों से भुक्तशेष (इमं) इस (नः) हमारे (सुतम्) उत्पन्न ऐश्वर्य या राष्ट्र को (आगत्य) प्राप्त करके (पिब) पालन वा उपभोग कर ।

तुभ्येदि॑न्द्र॒ स्व ओ॒क्ये॒३॒॑ सोमं॑ चोदामि पी॒तये॑ ।
ए॒ष रा॑रन्तु ते हृ॒दि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवन् विद्वन् ! आचार्य ! (तुभ्य इत् स्वे ओक्ये) तेरे अपने स्थान आश्रम में ही मैं इस (सोमं) शिष्य को (पीतये) ब्रह्मचर्य के पालन के लिये (चोदामि) प्रेरित करता हूं। (एषः) वह (ते हृदि) तेरे हृदय में (रारन्तु) रमण करे, तेरे चित्त के अनुकूल होकर रहे, तुझे प्रिय लगे ।

त्वां सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ प्र॒त्नमि॑न्द्र हवामहे ।
कु॒शि॒कासो॑ अव॒स्यवः॑ ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! हम (कुशिकासः) सार को ग्रहण करने में कुशल (अवस्यवः) तेरे अधीन रक्षा, व्रत और प्रजा के पालन और ज्ञान की कामना करते हुए (सुतस्य पीतये) उत्पन्न पुत्र वा शिष्य के पालन और पुत्रवत् प्रजायुक्त राष्ट्र के रक्षण और

ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (प्रत्नं त्वां) पुरातन या प्रथमतः अनुभव-वृद्ध तुझको हम लोग (हवामहे) बुलाते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

[४३]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् पंक्तिः । २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, ८ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (वन्धुरेष्ठाः) बन्धनयुक्त प्रेम सम्बन्ध या प्रबन्ध में स्थित रह कर (प्रदिवः अनु) अपने से प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञान वाले पुरुष के अधीन रहकर (तव इत्) तू अपने ही (सोमपेयम्) ऐश्वर्य भोग को (उप आयाहि) प्राप्त हो। और (प्रिया सखाया) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग दो प्रिय मित्रों को (बर्हिः) सामान्य प्रजा के समीप (उप विमुच) विविध कार्यों में नियुक्त कर। (इमे) ये (हव्य-वाहः) अन्नादि पदार्थों को धारण करने वाले प्रजाजन (त्वाम्) तुझको (उप हवन्ते) पुकारते हैं। „क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः ॥ श० १।३।४।१० ॥ बर्हिः विश् प्रजाएं हैं और राजा के दो प्रियसखा क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ग हैं। उनको न्याय और शासन के लिये प्रजाओं पर नियुक्त करे।

आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद विद्वन् ! तू (पूर्वीः) अपने से पूर्व और समृद्धियों से पूर्ण (चर्षणीः) प्रजाजनों को (अति आयाहि) अतिक्रमण करके, शक्ति आदि में सबसे बढ़कर प्राप्त कर, उनको अपने अधीन कर। तू (अर्यः) स्वामी होकर (हरिभ्याम्) सब प्रजाके दुःखों को

हरने वाले विद्वान् और बलवान् पुरुषों द्वारा (नः) हमारे (आशिषः) उत्तम आशा सूचक वचनों, आशीर्वादों वा इच्छाओं को (उप आयाहि) प्राप्त कर । (सख्यम्) तेरी मित्रता को (जुषाणाः) प्रेम से सेवन करते हुए (स्तोमतष्टाः) उत्तम स्तुति-वचनों से परिष्कृत (इमा हि) ये (मतयः) मननशील विदुषी प्रजाएं और उनकी सभाएं (त्वा हवन्ते) तुझे पुकारें, आदरपूर्वक आमन्त्रित करें । अध्यात्म में—(चर्षणीः) ज्ञानेन्द्रिय गण । (मतयः) प्रजाएं और स्तुतियें ।

आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (सजोषाः) प्रेम-सहित (तूयम्) शीघ्र ही (हरिभिः) प्रजाके कष्टों को हरने वाले, तेजस्वी विद्वानों सहित (नः) हमारे (नमोवृधम्) अन्नादि पदार्थ तथा शत्रु नमाने वाले सैन्य बल को बढ़ाने वाले (यज्ञं) यज्ञ, परस्पर संगतियुक्त राष्ट्र के प्रबन्ध को (आयाहि) आ, प्राप्त हो । (घृतप्रयाः) जल और पुष्टिकारक अन्नादि से सत्कार करने हारा (अहं हि) मैं प्रजागण, (मधूनां) मधुर पदार्थ अन्न और जलों के द्वारा (सधमादे) एक साथ तृप्त होने के सहभोज आदि के अवसर में (त्वा) तुझको (मतिभिः) मननशील पुरुषों सहित (आजोहवीमि)आदर से बुलाता हूं ।

आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (एता हरी) श्वेत, बलवान् अश्व जिस प्रकार रथ को या रथमें विराजते स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाते हैं उसी प्रकार (एता) अखिल विद्याओं में पारंगत या तेरे (आ इता) अधीन आये हुए (वृषणा) वीर्यसेचन में समर्थ, बलवान् , जवान (हरी)

एक दूसरे के बलको प्राप्त करने वाले, (सखाया) परस्पर मित्र (सुधुरा) गृहस्थादि भार को उत्तम रीति से धारण करने वाले (सु-अङ्गा) उत्तम अंगों वाले स्त्री और पुरुष वर्ग (त्वाम् आवहातः) तुझे अपने ऊपर शासक रूप से प्राप्त करें और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (सखा) सबका मित्र होकर (धानावत् सवनं) धारण पोषण करने योग्य प्रजाओं से युक्त ऐश्वर्य का (जुषाणाः) सेवन करता हुआ (सख्युः) अपने मित्र प्रजागण के (वन्दनानि) स्तुति वचनों, उपदेशों को और अभिवादन वचनों को (शृणवद्) सुना करे ।

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५॥

भा०—हे विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! तू (मां) मुझको (कुवित्) बहुत बड़े भारी (जनस्य) जनसमुदाय का (गोपां करसे) रक्षक बना । (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल धर्ममार्ग में चलने और चलाने हारे हे (मघवन्) आदरणीय धनसम्पन्न ! तू मुझको (कुवित् राजानं) बहुतों का राजा (करसे) बना । (मा) मुझको (ऋषिं) मन्त्रार्थ द्वारा विद्वान् और (सुतस्य पपिवांसं) उत्पन्न पुत्र, ऐश्वर्य और राष्ट्र का पालक और भोक्ता बना और (मे) मुझे (कुवित् वस्वः) बहुत बड़े (अमृतस्य) अमृतस्वरूप सुखद (वस्वः) सब में बसने वाले आत्मा और अक्षय ऐश्वर्य की (शिक्षाः) शिक्षा और दान कर ।

आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (बृहन्तः) बड़े २ (हरयः) कार्यभार को वहन करने वाले विद्वान् पुरुष (युजानाः) योग वा मनोयोग द्वारा समाहित चित्त होकर (सधमादः) एक साथ मिलकर, सुप्रसन्न होकर

(त्वा) तुझको (अर्वाग्) सबके सन्मुख (आवहन्तु) आदरपूर्वक बुलावें और धारण करें। (वे) जो (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी (वृषभस्य) बलवान् पुरुष के (द्विता) दोनों ओर रहकर (सूराः) शत्रुओं को मारते हुए (सु-सं-मृष्टासः) शुभ उत्तम प्रकार से शुद्ध एवं विचारवान् होकर (आताः ऋञ्जन्ति) सब दिशाओं में जाते हैं और उनको अपने अधीन वश करते और विजय करते हैं।

इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७॥

भा०—(वृषधूतस्य वृष्णः) जिस प्रकार बलिष्ठ वायुयुक्त सञ्चालित वर्षणशील मेघ या वृष्टिकारक जल को सूर्य पान कर लेता है (यं श्येनः (आ जभार) जिसको शुभ्र किरणगण आहरण कर लेता है, जिसके बल पर वह सूर्य (कृष्टीः) जलों के आकर्षण करने वाले अपने किरणों को भूतल पर गिराता है, जिसके हर्ष या बलपर सूर्य (गोत्राः) पर्वतों को ढांपता, मेघों को दूर कर देता और भूमि को जल से और ओषधियों से ढंक देता है उस जल को सूर्य ही खैंचता है। उसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन्! ऐश्वर्यवन्! शत्रु के हनन करने हारे! तू (वृषधूतस्य) बलवान् पुरुषों को कंपाने वाले (वृष्णः) अति बलशाली, प्रबल राष्ट्र को (पिब) पालन कर। (यं) जिसको (श्येनः) बाज पक्षी के समान निर्बल शत्रुओं पर वेग से जा पड़ने वाला सेनानायक (उशते ते) राज्य की कामना करने वाले तेरे लिये (उत् जभार) शत्रु के हाथों से उद्धार करता है और (यस्य मदे) जिसके प्राप्त कर लेने के हर्ष में (कृष्टीः) कर्षण या पीड़न करने योग्य शत्रु मनुष्यों को (प्र च्यावयसि) अपने पद से गिरा देता है अथवा जिसके दमन करने में राजा (कृष्टीः) किसान प्रजाओं को (प्र) उत्तम रीति से (च्यावयसि) उत्साहित करता है और (यस्य मदे) जिसके लाभ के आनन्द होने पर (गोत्रा) भूमि को (अप ववर्थ)

परास्त करता है या, (गोत्रा अप ववर्थ) पर्वत के समान अभेद्य, स्थिर शत्रुओं को भी उखाड़ फेंकता है ।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३ । मं० २२ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[४४]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अयं) यह (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन (हर्यतः ते) कामनाशील तेरे लिये (हर्यतः अस्तु) स्वयं भी कमनीय वा कामना करने योग्य (अस्तु) हो जिसको (हरिभिः) वेगवान् अश्वादि साधनों तथा दुःखादि हरण करने वाले विद्वान् पुरुषों ने तेरे लिये (सुतः) उत्पन्न कर तुझे प्राप्त कराया है । हे ऐश्वर्यवन् ! तू उसको (जुषाणः) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हुआ (हरिभिः) उन वेगवान् साधनों अश्वों के समान धुरन्धर विद्वानों और शासकों के सहित (नः आगहि) हमें प्राप्त हो और (रथम्) उत्तम रमणयोग्य रथ के समान रमण करने में योग्य (हरितम्) मनोहर राष्ट्र पर (आतिष्ठ) सदा शासन कर, उस पर अध्यक्ष रूप से रह ।

हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वाँश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥

भा०—हे (हर्यन्) अर्थ, काम आदि की कामना करने वाले पुरुष ! (उषसम् अर्चयः) प्रार्थनाशील पुरुष जिस प्रकार उषःकाल को प्राप्त कर अर्चना करता है उसी प्रकार तू भी (उषसम्) गुणों में कमनीय सहचारी को प्राप्त कर, उसकी अर्चना आदर सत्कार कर। हे राजन्! तू भी राज्य की कामना करने हारा होकर (उषसम्) उषा अर्थात् राष्ट्र को वश करने वाली तेजस्विनी और शत्रु को भस्म करदेने वाली सैन्य-शक्ति का (अर्चयः) आदर कर, उसकी आराधना, साधना कर, उसको महत्व दे। हे (हर्यन्) कामनाशील स्त्री तू भी (सूर्यम्) सूर्यके समान तेजस्वी एवं सन्तानोत्पादन में समर्थ पुरुष को (अरोचयः) हृदय से चाह। हे (हर्यन्) ऐश्वर्य की कामना करने वाले प्रजाजन तुम भी (सूर्यम् सूर्यके समान तेजस्वी राजा को (अरोचयः) सदा चाहो। हे (हर्यश्व) वेगवान् अश्वादि साधनों से युक्त राजन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् और (विद्वान्) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारा या विद्यावान् होकर (विश्वा श्रियः अभि) समस्त लक्ष्मियों और सम्पदाओं तथा आश्रित प्रजाओं को प्राप्त करके (वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त हो। इसी प्रकार हे (हर्यश्व) हरणशील इन्द्रियों वाले ! तू भी विद्वान् विवेकी हो कर समस्त सम्पदाओं को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त हो।

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम्।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत्॥ ३ ॥

भा०—(ययोः) जिन (हरितोः) हरणशील आकाश और पृथिवी दोनों के (अन्तः) वीच में (हरिः) जल हरण करने वाला सूर्य या वायु (भूरिभोजनं) बहुत सा खाद्य पदार्थ उत्पन्न करता और (चरन्) स्वयं विचरता है, उन दोनों को (इन्द्रः) सूर्य स्वयं (हरिधायसं) किरणों को धारण करने वाली (द्याम्) आकाश को और (हरिवर्पसम्) हरित वनस्पतियों से हरे रूप वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को भी वह (अधार

यत्) स्वयं धारण करता है। उसी प्रकार (हरिः) शत्रुओं से धनादि आहरण करने वाला प्रबल प्रतापी पुरुष (ययोः अन्तः) जिन राष्ट्रों के बीच (चरत्) स्वयं विचरता है उन दोनों के (भूरि भोजनम्) बहुत से भोग्य ऐश्वर्य और उत्तम पालन कार्य को भी अपने पर धारण करता है। इस प्रकार वह (हरिधायसं द्याम्) वेगवान् अश्वों को धारण करने वाली विजिगीषु सेना या विद्वानों की पोषक राजसभा और (हरिवर्पसम्) सस्यादि से हरित रूप वाली (पृथिवीम्) पृथिवी को भी (अधारयत्) धारण करे।

जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम्।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥

भा०—(हरितः वृषा) तेजस्वी, पीतवर्ण वा नीलवर्ण का, वर्षण करने वाला सूर्य जिस प्रकार (जज्ञानः) उत्पन्न या उदय होकर (रोचनं विश्वम् आभाति) समस्त रुचिकर विश्व को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार (जज्ञानः) प्रकट होकर (हरितः) कान्तियुक्त, सबके मनों को हरने वाला, (वृषा) बलवान् और प्रबन्धकारी पुरुष (विश्वं रोचनम् आभाति) समस्त रुचिकर राष्ट्र में चमकता है। वह (हर्यश्वः) सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी (हरितम्) दीप्तियुक्त (हरिम्) शत्रुओं के प्राणों को हरण करने वाले (वज्रम्) शत्रुओं को दूर हटाने वाले, (आयुधं) उन पर सब ओर से प्रहार करने वाले शस्त्र बल और सैन्य को (बाह्वोः) बाहुओं में हथियार के समान और प्रजाजन को भी अपने हाथों में (धत्त) धारण करे। हरयः इति मनुष्य नाम। निघ० ॥

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम्।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्र) सूर्य जिस प्रकार (हर्यन्तम्) कान्तियुक्त

(अर्जुनं) श्वेत (वज्रं) अन्धकार के निवारक (शुक्रैः अभीवृतम्) किरणों से युक्त प्रकाश को (अप अवृणोत्) प्रकट करता है औरजिस प्रकार (इन्द्रः) तीव्र वायु (हर्यन्तं) अति दीप्तियुक्त (अर्जुनं) पीड़ित करने वाले (शुक्रैः अभीवृतं) जलों से घिरे हुए (वज्रं) विद्युत् रूप वज्र को (अप अवृणोत्) प्रकट करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (हर्यन्तं) अति प्रदीप्त (अर्जुनं) शत्रु-हिंसक (शुक्रैः) शीघ्र कार्य करने वाले चुस्त सैनिकों से व्याप्त (वज्रं) शत्रुनिवारक सैन्य को (अप अवृणोत्) प्रकट करे। और जिस प्रकार (हरिभिः) किरणों और (अद्रिभिः) मेघों से सूर्य (सुतम्) सेचन करने वाले जल को प्रकट करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा (हरिभिः) गतिशील शत्रु के धनों को हरने और प्रजाजनों के मनों को हरने वाले अश्वसैन्यों और (अद्रिभिः) पर्वतों के समान अचल, अभेद्य और मेघों के समान शस्त्र-वर्षी सैन्यों से (सुतम्) उत्पन्न ऐश्वर्यों को (अप अवृणोत्) प्रकट करे। वह (हरिभिः गाः) सूर्य जिस प्रकार जल-हरणशील किरणों से नीचे गिरने वाली जलधाराओं को बरसाता है उसी प्रकार राजा भी (हरिभिः) उत्तम मनुष्यों से (गाः) भूमियों को (आजत) शासन करे। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[४५]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहनन करने हारे राजन् ! सेनापते ! सूर्य जिस प्रकार (मयूररोमभिः) मोर के रोओं के समान चित्र विचित्र हरित नील किरणों से व्यापता है उसी प्रकार तू भी (मयूर-

रोमभिः हरिभिः) मोर के पंखों के समान नीली हरी कलगिएं लगाये (मन्द्रैः) मन्दगति से जाने वाले, अति हर्षोत्पादक (हरिभिः) वेगवान् मनुष्यों सहित (आ याहि) आ, आगे बढ़, सब तरफ़ प्रयाण कर। (पाशिनः विं न) जालिये जिस प्रकार पक्षी को फांस लेते हैं उस प्रकार (त्वा) तुझको (केचित्) कोई भी शत्रुजन (मा नि यमन्) न बांधलें। तू (तान्) उनको (धन्व इव) उत्तम धनुर्धर के समान (अति) पार करके (इहि) प्राप्त हो।

वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हाचिदारुजः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् या वायु (वृत्रखादः) किरणों या वेग से मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है (वलं-रुजः) मेघ को आघात करता है, (अपां दर्मः) जलों को विदीर्ण करता है और (अपां अजः) जलों को नीचे फेंकता है, (अभिस्वरः) जिस प्रकार विद्युत् या सूर्य खूब तेजस्वी, अति गर्जनशील होकर (दृढ़ा चित् आ रुजति) दृढ़ २ पर्वतों या घने मेघों को भी भेद डालता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान्, शत्रुहन्ता राजा (वृत्रखादः) अपने बढ़ते या विघ्नकारी, बाधक शत्रुओं को खा जाने या अन्न जल के समान अपने बल में ही पचा जाने वाला (वलं-रुजः) अपने घेरने वाले शत्रु को प्रबल आक्रमण से तोड़ फोड़ देने वाला (पुरां दर्मः) शत्रुओं के नगरों किलों को तोड़ डालने वाला (अपाम् अजः) पास आये शत्रुओं को उखाड़ देने और अपनी आप्त सेनाओं और प्रजाओं को सन्मार्ग में चलाने हारा (हर्योः) दो घोड़ों के (रथस्य) रथ पर (स्थाता) बैठने वाला, उत्तम रथी, (अभि-स्वरः) अति तेजस्वी, गर्जनावान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (दृढ़ा-चित्) दृढ़ से दृढ़ शत्रु-दलों को भी (आरुजः) अच्छी प्रकार संहार करने में समर्थ हो।

गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ या सूर्य (सु-गो-पाः) उत्तम किरणों या भूमियों का पालक होकर वृष्टि जलों से (गम्भीरान् उदधीन्) गहरे गहरे समुद्रों को भी पुष्ट करता है उसी प्रकार (सुगोपाः) भूमि का पालक होकर तू (गम्भीरान् पुष्यसि) गम्भीर पुरुषों को पुष्ट कर, उनको बल-वान् शक्तिमान् बना और (क्रतुं पुष्यसि) अपने कर्म सामर्थ्य और प्रज्ञा, बुद्धि को भी पुष्ट कर (सुगोपाः) उत्तम गौओं का रक्षक या उत्तम संगोप्ता व्रत पालक और यज्ञपालक पुरुष (क्रतुं पुष्यति) यज्ञ कर्म की रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी (सुगोपाः) इन्द्रियों का, वाणी का उत्तम पालक होकर (क्रतुम् प्रज्ञां पुष्यसि) अपने बल और बुद्धि सामर्थ्य को पुष्ट कर, बढ़ा । जिस प्रकार (सुगोपाः) उत्तम गोपाल (गाः इव) गौओं को पुष्ट करता है उसी प्रकार तू भी (सुगोपाः) उत्तम भूमि का और प्रजाजनों का रक्षक होकर भूमियों उनके निवासी प्रजाओं, वाणियों और आज्ञाओं को पुष्ट, दृढ़ कर । (धेनवः यवसं) जिस प्रकार गौएं चारे को (प्र अश्नन्ति) खूब खाती हैं । और जिस प्रकार (कुल्याः इव ह्रदं) छोटी २ जलधाराएं बड़े जलाशय को व्याप लेती हैं उसके जल को स्वयं ले लेतीं या सब ओर से उसी में आकर मिलती हैं उसी प्रकार हे प्रजाजनो ! तुम भी अपने ऐश्वर्ययुक्त स्वामी का (प्र आशत) अच्छी प्रकार उपयोग करो और उसके ऐश्वर्य, तेज और पराक्रम को अपने में धारण करो और सब ओर से तुम उसमें आश्रय लो ।

आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार पिता या राजा (प्रति जानते) व्यवहार जानने वाले बालिग पुत्र को उसका (अंशं न) अंश, जायदाद का भाग प्रदान

करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (नः) हमें और हममें से (प्रति जानते) तेरे कार्य करने की प्रतिज्ञा करने वाले को (तुजं रयिं आ भर) पालक ऐश्वर्य दान कर । (अङ्की इव) टेढ़ा अंकुशाकार बांस लिये हुए मनुष्य जिस प्रकार (वृक्षं) वृक्ष को और (फलं पक्वं) पके फल को (धुनोति) कंपा २ कर झाड़ लेता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! तू भी (वृक्षं) व्रश्चन करने योग्य, काट गिराने योग्य शत्रु को (धुनुहि) अपने बड़े भारी सैन्य-बल से कंपा डाल और (पक्वं फलम् धुनुहि) परिपक्व फल, अतिपुष्ट, परिणाम, धनैश्वर्य्य ले ले, और उसे भयभीत व परास्त करके तू (सम्पारणं) प्रजा को उत्तम रीति से पालन करने वाले (वसु) ऐश्वर्य को (धुनुहि) ले ले।

स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥५॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! तू (स्वयुः) धन की कामना करने वाला, उसका स्वामी और (स्वराट् असि) 'स्व' अर्थात् अपने ही ऐश्वर्य और कर्म सामर्थ्य से प्रकाशित होने वाला है। कल्याणमार्ग का उपदेश करने वाला और (स्वयशस्तरः) अपने बहुत अधिक यश, कीर्त्ति और अन्न से समृद्ध एवं उससे प्रजा को भी दुःखों से तारने वाला है। (सः) वह तू हे (पुरुस्तुत) बहुतों से प्रशंसा योग्य ! (ओजसा वावृधानः) पराक्रम और शौर्य से बढ़ता हुआ (नः) हमारे बीच (सुश्रवस्तमः) उत्तम कीर्त्ति और ज्ञान से सबसे अधिक यशस्वी और बहुश्रुत (भव) हो ।

इस सूक्त की योजना अध्यात्म में निम्नलिखितदिशा से करनी चाहिये। (१) इन्द्र देह में आत्मा है, विश्वमय विराड् देह में परमेश्वर है। देह में 'हरि' प्राणगण हर्षजनक और तृप्तिजनक होने से मन्द्र और 'मयु' वाक् को उत्पन्न करने वाले मुख्य प्राण के रोमों के समान उसी से उत्पन्न होने वाले होने से आत्मा 'मयूर-रोमा' है। उस आत्मा

के वे प्राणादि अपनी वासनाओं से भोग-पाशों में न जकड़ लें प्रत्युत वह असंग उन सबको अतिक्रमण करे। विश्व में नाना वर्णों की किरणों वाले सूर्यादि अनन्त लोक मयूररोमा हरि हैं वे सब भी उसको बन्धन में नहीं डालते। परमेश्वर सबका रक्षक, व्यापक और प्रकाशक होने से 'वि' है। वह उन सबको अतिक्रमण कर 'धन्व' अन्तरिक्ष को लांघकर सूर्य के समान विराजता है। (२) आत्मा 'वृत्र' अज्ञान का नाश करता देहपुरियों और इन्द्रियों को भेदता, प्राणों को प्रेरित करता है। 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः' (उप०) वा (अपाम् अजः) प्राणों के बीच वह अजन्मा है। प्राण, अपान दो 'हरि' अश्व हैं। उनसे जुड़े 'रथ' रमणसाधन रथ के समान देह पर स्थित देह का अधिष्ठाता आत्मा है। सब तरफ़ इन्द्रियें मन को प्रेरित कर और स्वतःप्रकाश न होने से 'अधिस्वर' हैं। वह दृढ़ से दृढ़ बन्धनों को भी तोड़ डालता है। (३) क्रतुमय देह, गौ, वाणी और इन्द्रियाँ गम्भीर उदधि, प्राण हैं। उनको सुगोपा आत्मा पुष्ट करता है। और वे आत्मा के ऐश्वर्य को भोगते और समुद्र में नदियों के समान उसी में समा जाते हैं। यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय। (उप०) (४) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान करने वाले चक्षु आदि को वह उनका अंश देता है। ज्ञानवान् होने से वह अङ्की है, कर्मफलोत्पादक, वृक्ष के समान यह देह ही वृक्ष है। उसको सञ्चालित कर आ उत्तम पालक पोषक शक्ति वीर्य बल को प्रदान करता है। (५) 'स्वयंभू' होने से 'स्वयु', स्वयं प्रकाश होने से स्वराड्, शोभन वाणी वा इच्छा होने से स्मदिष्टि है। आत्मबल से बलवत्तर है, श्रवण शक्तियुक्त बलवत्तम होने से 'सुश्रवस्तम' है। इति नवमो वर्गः ॥

[४६]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्। २, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युध्मस्य॑ ते वृष॒भस्य॑ स्व॒राज॑ उ॒ग्रस्य॒ यूनः॒ स्थवि॑रस्य॒ घृष्वेः॑ ।
अजू॑र्यतो व॒ज्रिणो॑ वी॒र्या॒३॑णीन्द्र॑ श्रु॒तस्य॑ मह॒तो म॒हानि॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (युध्मस्य) युद्ध करने हारे, (वृषभस्य) बलवान् सब श्रेष्ठ प्रजाओं और शत्रुओं पर ऐश्वर्यों और शस्त्रों को मेघ के समान वर्षण करने वाले (स्वराजः) स्वयं तेज से प्रकाशमान और अपनों का मनोरञ्जन करने वाले (उग्रस्य) भयंकर, बलवान् (यूनः) युवा, बलवान् (स्थविरस्य) ज्ञानादि में वृद्ध वा अति स्थिर (घृष्वेः) शत्रुओं के साथ स्पर्धा करने वाले, संघर्षण करने वाले, (अजूर्यतः) कभी जीर्ण वा हीनबल न होने वाले (वज्रिणः) शस्त्रास्त्र बल के स्वामी, वीर्यवान् (श्रुतस्य) जगत्-प्रसिद्ध (महतः) महान् शक्तिशाली (ते) तेरे (महानि वीर्याणि) बड़े २ बलके वीरोचित कार्य हों । (२) विद्युत् पक्ष में—विद्युत् वेग से प्रहार या धक्का लगाने से 'युध्म' है । जल वर्षण करने से वृषभ, दीप्तिमान् होने से स्वराट्, प्रचण्ड होने से 'उग्र', जलों के घटक तत्वों के विश्लेषण और पुनःमिलन कराने से युवन्, नित्य होने से 'स्थविर', घर्षण द्वारा उत्पन्न होने से 'घृष्वि', बलवान् होने से 'वज्री', व्यापक होने से महान् और गर्जना से या यन्त्रादि द्वारा श्रवण करने योग्य होने से 'श्रुत' है उसके भी बड़े अद्भुत कार्य और (वीर्य) बल होते हैं ।

म॒हाँ अ॑सि महिष॒ वृष्ण्ये॑भिर्धन॒स्पृदु॑ग्र॒ सह॑मानो अ॒न्यान् ।
एको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॒ स यो॒धया॑ च क्ष॒यया॑ च॒ जना॑न् ॥२॥

भा०—हे (महिष) महान् पूजनीय ! तू (धनस्पृत्) धनों, ऐश्वर्यों का सेवन करने वाला, हे (उग्र) बलवन् ! तू (वृष्ण्येभिः) बलवान् पुरुषों बलों और वीर्यों, पराक्रमों से (अन्यान् सहमानः) शत्रु जनों को पराजित करता हुआ (महान् असि) सबसे बड़ा होकर रह । त (एकः) अकेला, अद्वितीय (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त भुवन,

राष्ट्र का राजा हो । (सः) वह तू (जनान् योधय च) अपने मनुष्यों को शत्रुओं से और (क्षयय च) अपने राष्ट्र में बसा भी वा शत्रुओं का क्षय कर । (२) परमेश्वर पक्ष में—वह महान् है, महान् दानी होने से व्यापक एवं पूज्य होने से 'महिष' है । ऐश्वर्यवान् होने से 'धनस्पृत्' है ।

प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (देवेभिः) युद्ध विजय की कामना करने वाले वीरों, व्यवहारज्ञ वैश्यों और तेजस्वी विद्वानों सहित (रोचमानः) अति प्रकाशित होता हुआ (मात्राभिः) विशेष २ परिमाणों या राष्ट्र निर्मात्री प्रजाओं से (प्र रिरिचे) सबसे अधिक बढ़े । वह (विश्वतः) सर्वत्र (अप्रति-इतः) किसी से भी मुक़ाबले पर पराजित न होकर (मज्मना) शत्रुओं को डुबा देने वाले आक्रमणकारी बल से (दिवः) सूर्य से भी (प्र रिरिचे) बढ़ जावे (पृथिव्याः प्र रिरिचे) पृथिवी से भी बढ़े और वह (ऋजीषी) सरल धार्मिक स्वभाव वाला होकर (उरोः महः अन्तरिक्षात्) बड़े भारी अन्तरिक्ष या वायु से भी (प्र रिरिचे) अधिक सामर्थ्यवान् हो जावे । वह सूर्य से अधिक तेजस्वी पृथ्वी से अधिक दृढ़, सर्वाश्रय वायु वा अन्तरिक्ष से अधिक विस्तृत और प्रबल हो । (२) परमेश्वर दिव्य गुणों से प्रकाशमान होकर (मात्राभिः) जगत् को निर्माण करने वाली सर्गकारिणी शक्तियों द्वारा सबसे बड़ा है वह सबसे अप्रतीत, 'अप्रतर्क्य' अविज्ञेय, बल से सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष आकाशादि सबसे महान् है । वह ऋजु, धर्म मार्ग में प्रवर्त्तक होने से 'ऋजीषी' है ।

उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४॥

भा०—(स्रवतः समुद्रं न) बहती नदियां जिस प्रकार समुद्र में (आविशन्ति) प्रवेश कर जाती हैं उसी प्रकार (सुतासः सोमासः) अभिषिक्त शासक जन, (प्रदिवि) उत्कृष्ट न्याय, व्यवहार, विजय कामना की पूर्त्ति के लिये (उरुं) महान्, (गभीरं) गूढ़ आशय वाले गम्भीर, (जनुषा) जन्म से, स्वभाव से ही (अभि उग्रम्) सब प्रकार से उग्र, अभिमुख व्यक्तियों के लिये भीतिप्रद (विश्वव्यचसं) समस्त राष्ट्र में व्यापक शासन प्रभाव वाले, (मतीनाम् अवतम्) मनन करने योग्य ज्ञानों और मननशील मनुष्यों के रक्षक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुहनन में समर्थ पुरुष को (आ विशन्ति) प्राप्त होते हैं और उसके साथ एक हो जाते हैं ।

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता विभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्वध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, बलवन्, शत्रुनाशक राजन् ! सेनापते ! (यं) जिस (सोमं) सोम, राष्ट्र के प्रजागण ऐश्वर्य और जल, अन्नादि पदार्थों को (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों मिलकर (गर्भं माता न) गर्भ को माता के समान (त्वाया) तुझ अपने स्वामी के साथ मिलकर (विभृतः) विशेष रूप से धारण करती हैं (तं) उसी को (अध्वर्यवः) हिंसारहित प्रजापालन का कार्य करने वाले पुरुष (ते पातवा उ) तेरे द्वारा पालन करने के लिये या तेरे ही उपभोग के लिये (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं और (ते) तेरे लिये ही वे उसको (मृजन्ति) शोधते हैं, कण्टकस्वरूप बाधक पुरुषों से रहित भी करते हैं । (२) विद्वान् पुरुष सूर्य रूप इन्द्र से युक्त आकाश, पृथिवी के बीच उत्पन्न जल, ओषधि आदि को (पातवा) पान के लिये ही बढ़ाते और छानते हैं । (३) माता पिता जिस पुत्र को धारण करते हैं पालकजन उसको आचार्य के लिये ही बढ़ावें और शोधें दोषों से रहित करें । इति दशमो वर्गः ॥

[४७]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! शत्रुहन्तः सेनापते ! तू (मरुत्वान्) शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों का स्वामी और उत्तम मनुष्य प्रजाओं का राजा, (वृषभः) सभा द्वारा अग्रणी रूप से चुने जाने योग्य, बलवान्, सुखों, ऐश्वर्यों और शस्त्रों को मेघ के समान शत्रुओं पर वर्षण करने वाला होकर तू (अनु-स्वधम्) अपनी धारण, पालन पोषण करने की शक्ति, अन्नादि ऐश्वर्य के अनुसार ही (रणाय) संग्राम के विजय के लिये और (मदाय) हर्ष, आनन्द लाभ करने को भी (सोमम्) राष्ट्र की प्रजा को पुत्र के समान और राष्ट्र के ऐश्वर्य और जल अन्नादि को धन के समान (पिब) पालन कर और उपभोग कर । और (जठरे मध्वः ऊर्मिम्) पेट में मधुर अन्न वा जल की बड़ी मात्रा के समान तू भी अपने (जठरे) अधीन सुरक्षित राष्ट्र में (मध्वः ऊर्मिम्) जल की धारा और अन्न की अधिक मात्रा को (आसिञ्चस्व) सर्वत्र, सब ओर सींच, प्रवाहित कर । (त्वं) तू ही (प्रदिवः) सब दिनों (सुतानां) उत्पन्न प्रजाओं वा अभिषिक्त पदाधिकारियों के बीच में भी सबसे उत्कृष्ट (राजा असि) राजा है, सबसे अधिक प्रकाशमान है । आचार्य पक्ष में— शिष्य गण 'मरुत्' हैं । रमणीय, उत्तम आनन्द ही 'रण, मद' है । शेष स्पष्ट है । (३) परमेश्वर पक्ष में—सोम जीव । (४) अध्यात्म में—सोम परमेश्वर ।

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य को प्राप्त कराने और करने वाले ! शत्रु हिंसक सेनापते ! राजन् ! तू (सगणः) अपने सैन्यगणों सहित और (मरुद्भिः) वायु के समान तीव्र वेग से वृक्षों के समान शत्रुगणों को कंपा देने वाले वीर पुरुषों के साथ (सजोषाः) समान प्रीतिमान् होकर (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (पिब) पान, उपभोग एवं पालन कर। हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुओं के हिंसक ! तू (वृत्रहा) मेघ के नाश करने वाले सूर्य के समान बाधक विघ्नों और बढ़ते फैलते हुए शत्रु का नाश करने वाला और (विद्वान्) उचित कर्मों, कर्त्तव्यों और नाना विद्याओं को जानने वाला होकर (शत्रून्) शत्रुओं को (जहि) मार, दण्डित कर, (मृधः) संग्रामों और संग्रामकारियों को (अप नुदस्व) दूर भगा। और (नः) हमारे लिये (विश्वतः) सब प्रकार और सब तरफ़ से (अभयं कृणुहि) भयरहित कर।

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! जिस प्रकार ऋतुपाः) ऋतुओं की रक्षा या पालन करने वाला या ऋतुओं द्वारा संसार की रक्षा करने वाला सूर्य (ऋतुभिः सोमम् पाति) ऋतुओं द्वारा ही उत्पन्न एवं समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले जगत् और अन्नादि वनस्पति वर्ग और समस्त चेतन जीव संसार को पालता और रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी (देवेभिः सखिभिः) विद्वान्, विजय कामनाशील, व्यवहारज्ञ मित्रों और (ऋतुभिः) ज्ञानवान् राजसदस्य द्वारा (नः सुतम्) हमारे उत्पन्न किये (सोमं पाहि) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और पुत्र के समान प्रजागण को पालन कर। तू जिन (मरुतः) वीर्यवान् वायु के समान बलवान् तीव्रगामी शत्रुओं को मारने वाले वीरों को (आभजः) प्राप्त करे और जो (त्वा अनु) तेरे अनुकूल और अधीन होकर

(वृत्रम्) शत्रुओं का नाश करें वा दण्डित करें वे ही (तुभ्यम्) तेरे (ओजः) बल पराक्रम को (अदधुः) स्वयं धारण करें, पुष्ट करें ।

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों और प्रजा के दुःखहारी उत्तम अश्वारोही सैन्यों और मनुष्यों के स्वामिन् ! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (त्वा) तुझको (अहिहत्ये) अभिमुख आये शत्रु को विनाश करने के संग्राम-कार्य में, मेघ के हनन या ताड़न कार्य में सूर्य या विद्युत को किरणों के समान (अवर्धन्) बढ़ाते हैं और (ये) जो (शाम्बरे) मेघ के समूह पर सूर्य के समान ही (शाम्बरे) शान्ति के नाशक और प्रजाजन को घेरने और छलने हारे शत्रुजन के संग संग्राम कार्य में और (ये) जो (गविष्टौ) 'गो' अर्थात् वाणी और भूमि के लाभ और विजय के कार्य में (त्वा अवर्धन्) तुझे बढ़ाते हैं, तेरे मान, आदर और बल की वृद्धि करते हैं और (ये) जो (विप्राः) विद्वान् पुरुष (नूनम्) निश्चय से (त्वा अनु मदन्ति) तेरे हर्ष के साथ २ हर्षित होते हैं, तेरे अनुकूल और तेरे अधीन रहकर ही प्रसन्न होते हैं उन (मरुद्भिः) बलवान् वायुवत्, शत्रुमारक वीर पुरुषों सहित (सगणः) सैन्यगण से युक्त होकर (सोमं पिब) ऐश्वर्य और पुत्रवत् राष्ट्र को पालन और उपभोग कर और प्राप्त कर ।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हम (नूतनाय अवसे) नये से नये, सदा नवीन (अवसे) प्रजापालन, ज्ञानलाभ और तृप्तिलाभ आदि कार्यों के लिये (मरुत्वन्तं) वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) स्वयं बलवान्, मेघ वा सूर्य के समान प्रजा पर सुखों और ऐश्वर्यों की तथा शत्रु पर शस्त्रों की वर्षा करने में समर्थ

(वावृधानम्) सब प्रकार से निरन्तर बढ़ने वाले (दिव्यम्) दिव्य, ज्ञान प्रकाश, उत्तम व्यवहार और तेज से युक्त, सबसे कामनायोग्य (शासम्) उत्तम रीति से शासन करने वाले, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (विश्वासाहम्) समस्त शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ, (उग्रम्) शत्रुओं को भय देने वाले, (सहोदाम्) बलप्रद और सैन्य बल से शत्रु-बल का खण्डन करने वाले, (तं) उस उत्तम पुरुष को हम सदा (हुवेम) आदर से बुलावें, उसकी प्रशंसा करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[४८]

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (कनीनः) दीप्तिमान् (वृषभः) वर्षणशील सूर्य (जातः) प्रकट होकर (सुतस्य अन्धसः) उत्पन्न हुए अन्न आदि वनस्पतिगण का (प्रभर्तुम् आवत्) उत्तम रीति से भरण पोषण करने में समर्थ होता है, वह (रसाशिरः सोम्यस्य साधोः पिबति) नाना जलों से अभिषिक्त ओषधिगण के हितकारी, सर्वोत्तम, सर्व कार्यसाधक जल को रश्मियों द्वारा पान करता है उसी प्रकार राजन् ! तू भी (सद्यः) शीघ्र ही वा (साद्यः) सद् संसद्, परिषदादि में श्रेष्ठ (जातः) सब गुणों में सम्पन्न होकर (वृषभः) बलवान् (कनीनः) कान्तिमान्, तेजस्वी, सबके कामना करने योग्य होकर (सुतस्य) उत्पन्न पुत्र के समान प्रजागण को (प्रभर्तुम्) अच्छी प्रकार भरण पोषण करने के लिये (अन्धसः आवत्) अन्न आदि पदार्थों को सुरक्षित करे और प्राप्त करे । और (प्रतिकामं) प्रत्येक उत्तम अभिलाषा के अनुकूल (सोम्यस्य) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र

के हितकारी (साधोः) सन्मार्गस्थित, कार्यसाधक, उत्तम (रसाशिरः) बल को धारण करने वाले या उत्तम जलादि के उपभोक्ता, राष्ट्र की (प्रथमम्) सबसे प्रथम (पिब) पालना कर (यथा ते) जिससे तेरा ही उस पर यथेष्ट स्वामित्व हो। पक्षान्तर में—मनुष्य उत्तम वनस्पतियों के उत्तम रसादि का उपभोक्ता हो।

यज्जाय॑थास्तद॒ह॑रस्य कामे॒ऽशोः पी॒यूष॑मपिबो गिरि॒ष्ठाम्।
तं ते॑ मा॒ता परि॒ योषा॒ जनि॑त्री म॒हः पि॒तुर्दम॒ आसि॑ञ्च॒दग्रे॑ ॥२॥

भा०—हे राजन्! तू (यत्) जब भी (जायथाः) उत्पन्न हो, गुणों से सबके समक्ष प्रकट हो (तत् अहः) उस दिन सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अस्य अंशोः) इस प्राप्त हुए राष्ट्र की (कामे) अभिलाषा के अनुसार इसके (गिरिष्ठाम्) वेद वाणी व व्यवस्था पुस्तक में विद्यमान् (पीयूषम्) हिंसक पुरुषों के नाश करने वाले ज्ञान और बल को (अपिबः) प्राप्त कर। और उसका पालन कर। (तं) उस बल को (ते) तेरी (माता) मान करने वाली, (योषा) तुझ से मिलकर रहने वाली (जनित्री) तुझ।जैसे ऐश्वर्यवान् को उत्पन्न करने वाली पृथिवी या राष्ट्रशक्ति (महः पितुः) बड़े भारी अपने पालक राजा के (दमे) गृह के समान शरण में या राज्य के दमन कार्य में (अग्रे) सब से पहले (आसिञ्चत्) सेचन करे, उक्त बल को पुष्ट करे। सूर्य पक्ष में—सूर्य दिन के समय (गिरिष्ठाम्) मेघस्थ जल को पान करता है। मानो अन्न-उत्पादक माता पृथिवी अपने पालक सूर्य के शासन में रहकर पालक पति के अधीन रहकर स्त्री के समान ही प्रथम अपने उस जल को आसिञ्चन करती है। पृथिवी माता है तो सूर्य पिता है और पृथिवी का पालक होने से पति भी है। सूर्य से उत्पन्न और अनुप्राणित पृथिवी सूर्य की पुत्री के समान होकर भी स्त्री के समान है। इस प्रकार सूर्य 'प्रजापति' का अपनी दुहिता या पुत्री के भोग को बतलाने वाला

चमत्कारी वाक्य स्पष्ट होता है। इसी दृष्टि से कहा है। 'प्रजापति'—'प्रजा का पति' अपनी सन्तानवत् पालनीय प्रजा का ही पति, पालक इसी प्रकार राजा भी जहां पुत्रवत् प्रजा का पालक है वहां उसी का पतिवत् भोक्ता भी है।

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

भा०—पुत्र जिस प्रकार (मातरम् उपस्थाय अन्नम् ऐट्ट) माता को प्राप्त करके अपने खाद्य पदार्थ दुग्ध आदि को मांग लेता है और (ऊधः अभि तिग्म सोमम् अभि अपश्यत्) स्तन को प्राप्त कर उसमें से तीव्र वेग से प्रवाहि सोम या दुग्ध रस को देखता है, पाता है। उसी प्रकार (गृत्सः) ऐश्वर्य की आकांक्षा करने वाला राजा भी (मातरम्) माता, पृथिवी को (उपस्थाय) प्राप्त करके (अन्नम् ऐट्ट) अन्न या भोग्य ऐश्वर्य की याचना करे, राजा राष्ट्रवासिनी प्रजा से अपने निमित्त भोग्य कर आदि मांग ले। वह (ऊधः अभि) अन्तरिक्ष या मेघ के साथ (तिग्मं सोमम् अभि अपश्यत्) तीव्र वेग से प्राप्त होने वाले जल के समान अन्न को भी देखे अर्थात् संवत्सर की वृष्टि के अनुपात में ही प्रजा के वीच कृषि द्वारा उत्पन्न अन्नादि प्राप्ति की सम्भावना करे। वह (गृत्सः) ऐश्वर्य की कामना वाला होकर (अन्यान्) अपने से भिन्न प्रतिकूल शत्रुओं को (प्र यवयन्) अच्छी प्रकार दूर करता हुआ (अचरत्) विचरे और (पुरुध-प्रतीकः) वहुत सी प्रजाओं को धारण पोषण करने के सामर्थ्य से प्रसिद्धि पाकर (महानि) वड़े २ कार्य (चक्रे) करे।

उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिवच्चमूषु ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह राजा, सेनापति (उग्रः) भयंकर, (तुराषाट्) वेगवान् शत्रु वीरों का पराजय करने हारा (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं को

पराजित करने वाले पराक्रम से युक्त (यथावशं) अपने वश करने के सामर्थ्य के अनुसार ही (तन्वं चक्रे) अपने शरीर और राष्ट्र को विस्तृत करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (जनुषा) जन्मसे ही—निसर्ग से ही (त्वष्टारम् अभिभूय) सूर्य को भी पराजित कर उससे भी बढ़कर तेजस्वी होकर (चमूषु) सेनाओं के बल पर (अमुष्य) दूरस्थ शत्रु पुरुष के भी (सोमम् अपिबत्) राष्ट्रैश्वर्य को उपभोग करता है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥५॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३॥ मं० २२॥ इति द्वादशो वर्गः॥

[४९]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पङ्क्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः॥ १॥

भा०—हे विद्वन्! तू उस (महान् इन्द्रम्) महान् इन्द्र की (शंस) स्तुति कर (यस्मिन्) जिसके आश्रय में रहकर (विश्वाः) समस्त (सोमपाः) विद्वान् शिष्य ओषधि वनस्पति अन्न और ऐश्वर्य के रक्षक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यादि जन और (कृष्टयः) कृषि करने वाले प्रजा जन (कामम् आ अव्यन्) कामना योग्य यथेष्ट सुख प्राप्त करते हैं। (यं) जिस (सुक्रतुं) उत्तम धर्म कर्म में कुशल (विभ्वतष्टं) परमेश्वर से उत्पादित या महान् सामर्थ्य से बने हुए बलवान् पुरुष को (धिषणे) नर नारी या आकाश भूमि के समान प्रजा-परिषत् और राज-परिषत् दोनों तथा (देवाः) विद्वान्, व्यवहारज्ञ और युद्ध विजयी लोग (वृत्राणां घनं) बढ़ते हुए बाधक शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (जनयन्त) बनाते हैं।

यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥

भा०—(द्विता) स्व और पर दोनों पक्षों के (पृतनासु) संग्रामों व वीर सेनाओं के बीच (स्वराजं) स्वयं अपने सामर्थ्य से सूर्यवत् प्रकाशमान, स्वयं सबके चित्तों को रञ्जन करने वाले (नृतमं) सर्वश्रेष्ठ (हरिष्ठाम्) सब मनुष्यों और अश्व सेनाओं पर अधिष्ठाता रूप से स्थित, जिस पुरुषोत्तम को (नकिः) कोई भी न (तरति) लांघ सके (यः ह) और जो (सत्वभिः) बलवान् वीर पुरुषों और (शूषैः) बलों या सैन्यों से (इनतमः) सब से उत्तम स्वामी हो वह और (पृथुज्रयाः) बड़े वेग और शक्ति से सम्पन्न होकर (दस्योः) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों के (आयुः अमिनात्) जीवन का नाश करे ।

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥

भा०—वह राजा (सहावा) बलवान् (पृत्सु) स्पर्धायुक्त संग्रामों में मनुष्यों के बीच (तरणिः) सब से अधिक उन्नत, सूर्य के समान तेजस्वी वा (अर्वा न) अश्व के समान वेग से जाने हारा, (रोदसी) नर नारी दोनों के बीच (वि-आनशी) विशेष रूप से व्यापक, सबके हृदय में बसा, सर्वप्रिय, (मेहनावान्) उदारता से देने योग्य धनों से सम्पन्न (कारे) कार्य के अवसर पर (भगः न) ऐश्वर्यवान् के समान (हव्यः) स्तुति करने योग्य (मतीनां) मननशील पुरुषों के बीच उनका (पिता इव) पिता के समान (चारुः) सर्वोत्तम, पालक, (सुहवः) उत्तम रीति से, मान आदर पूर्वक बुलाने योग्य और (वयोधाः) सब को जीवन, बल और ज्ञान का देने वाला हो ।

धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥

भा०—वह राजा (दिवः) तेजस्वी, व्यवहारवान् और कामनावान् (रजसः) सामन्य सभी लोगों का (धर्त्ता) धारण करने वाला (पृष्टः) सब से पूछने योग्य, सब का आज्ञापक, अनुमन्ता (ऊर्ध्वः) सब के ऊपर अधिष्ठित (रथः न) रथ के समान सब को सुरक्षित रूप में उद्देश्य तक पहुंचाने हारा, (वायुः) वायु के समान बलवान्, सबका प्राणवत् प्रिय, जीवनाधार, (वसुभिः) राष्ट्रवासी प्रजाजनों से ही (नियुत्वान्) नियुक्त सेनाओं का स्वामी, सूर्य के समान ही (क्षपां वस्ता) रात्रि के तुल्य राष्ट्र की नाशक शक्तियों को अपने तेज से आच्छादित करने वाला और (सूर्यस्य) सूर्य के तुल्य सर्वप्रेरक तेजस्वी व्यक्तित्व का (जनिता) उत्पादक (धिषणा इव) भूमि और सूर्य दोनों के समान (भागं) कर आदि और (वाजं) बल और अन्न आदि का (विभक्ता) विभाग करने वाला है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥५॥१३

भा०—व्याख्या देखो सू०३२। मं० २२॥ इति त्रयोदशो वर्गः॥

[५०]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ५ त्रिष्टुप्॥ धैवतः स्वरः॥

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः॥१॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार वर्षणशील, वायुओं सहित, किरणों से व्यापक होकर उत्तम रीति से जल को प्राप्त करता और मेघरूप से बरस कर अन्नों से सब को पूर्ण तृप्त करता और अन्न शरीर की अभिलाषा को पूर्ण करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (यस्य)

जिसके अधीन (सोमः) समस्त राष्ट्र का ऐश्वर्य और शासन विद्यमान है वह (तुम्रः) सब प्रकार से विपक्षी को मारने में समर्थ, (वृषभः) बलवान्, (मरुत्वान्) मर्दों अर्थात् मरने मारने वाले वीर पुरुषों का स्वामी होकर भी (स्वाहा) उत्तम, सत्य न्याय क्रिया के अनुकूल एवं शुभ आदरणीय रूप से प्रजा के दिये में से (पिबतु) उस ऐश्वर्य का उपभोग करे। वह (उरुव्यचाः) बहुत अधिक गुणवान्, शक्तिमान् और अधिकारवान् होकर भी (एभिः) इन नाना प्रकार के (अन्नैः) खाद्य पदार्थों से (आपृणताम्) अपने राष्ट्र को पूर्ण करे। और (हविः) उत्तम अन्न ही (अस्य) उस पुरुष के निजी (तन्वः) शरीर की (कामम्) सब प्रकार की अभिलाषा को भी (ऋध्याः) समृद्ध, पूर्ण करे। बड़े धनी मानी क्षत्रिय बलवानों को भी अन्नों से ही अपने देह पुष्ट करने चाहियें, निर्बल जीवों के मांसों से नहीं, यही वेद का आदेश है

आ ते॑ सप॒र्यू ज॒वसे॑ युनज्मि॒ ययो॒रनु॑ प्र॒दिवः॑ श्रु॒ष्टिमावः॑।
इ॒ह त्वा॑ धेयु॒र्हर॑यः सुशिप्र॒ पिबा॒ त्व१॒॑स्य सुषु॑तस्य॒ चारोः॑ ॥२॥

भा०—हे राजन् (सपर्यू जवसे) जिस प्रकार रथ को वेग से चलाने के लिये उसमें दो वेगवान् अश्वों को लगाया जाता है उसी प्रकार (जवसे) वेग से कार्य करने के लिये मैं विद्वान् पुरुष (ते) तेरे अधीन (सपर्यू) दो उत्तम सेवकों को या सभी स्त्री पुरुषों को सेवक रूप से (आ युनज्मि) सब प्रकार से नियुक्त करता हूं। (ययोः अनु) जिनके अनुकूल रहकर तू (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान प्रकाशों, उत्तम कामनाओं, अभिलाषों तथा उत्तम लोकों को और (श्रुष्टिम्) रथ के समान शीघ्र गति को भी (आ अवः) प्राप्त कर। हे (सुशिप्र) उत्तम मुख युक्त सौम्य पुरुष ! (हरयः) उत्तम विद्वान् पुरुष और वीर अश्वसैन्य के बल ही (त्वा) तुझे (इह) इस उत्तम पद या राष्ट्र पर (धेयुः) स्थापित और पुष्ट करें। और (अस्य) (चारोः) सुन्दर उपभोग योग्य

(सु-सुतस्य) उत्तम रीति से शासित, राष्ट्र का उत्तम सुसंस्कृत अन्न के समान (पिबतु) अवश्य पालन और उपभोग कर ।

गोभि॑र्मिमि॒क्षुं द॑धिरे सु॒पार॒मिन्द्रं॒ ज्यैष्ठ्या॑य धाय॑से गृ॒णा॒नाः ।
म॒न्दा॒नः सोमं॑ पपि॒वाँ ऋ॑जीषि॒न्त्सम॒स्मभ्यं॑ पुरु॒धा गा इ॑षण्य ॥३॥

भा०—(गृणानाः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् उपदेष्टा लोग (मिमिक्षुं) मेघ के तुल्य जलवत् सुखों की वृष्टि करने वाले, (सुपारं) उत्तम पालक और पूरक स्वयं तृप्त करने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष का ही (गोभिः) उत्तम वाणियों से, उत्तम रश्मियों से और उत्तम भूमियों द्वारा (धायसे) समस्त राष्ट्रवासी प्रजाजन को धारण पोषण करने के लिये ही (ज्यैष्ठ्याय दधिरे) सबसे बड़े और श्रेष्ठ पद के निमित्त स्थापित करते हैं, उसको प्रधान पद प्रदान करते हैं (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल, सत्यमय न्याय-मार्ग पर प्रजागण को ले चलने वाले वा 'ऋजीष' अर्थात् ऋजु मार्ग के प्रेरक विद्वानों के स्वामिन् ! तू (सोमं पपिवान्) जलपानकर्त्ता सूर्य के तुल्य ही सोम ऐश्वर्य का उपभोक्ता होकर (मन्दानः) खूब तृप्त प्रसन्न होकर (अस्मभ्यं) हमारे लाभ के लिये (पुरुधा) बहुत प्रकार से (गाः) उत्तम वाणियों, भूमियों और गौ आदि पशुओं तथा अधीनस्थ शासक रूप बागडोरों को भी किरणों को सूर्य के समान (सम् इषण्य) अच्छी प्रकार प्रदान कर, प्रेरित कर, सन्मार्ग पर भली प्रकार चला ।

इ॒मं कामं॑ मन्दया॒ गोभि॒रश्वै॑श्च॒न्द्रव॑ता॒ राध॑सा प॒प्रथ॑श्च ।
स्व॒र्यवो॑ म॒तिभि॒स्तुभ्यं॒ विप्रा॒ इन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कुशि॒कासो॑ अक्रन् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (इमं कामं) अपने इस उत्तम अभिलाप को (गोभिः) उत्तम वाणियों, गवादि पशुओं, किरणवत् शासकों से, (अश्वैः) अश्वों, अश्वसैन्यों से, (चन्द्रवता राधसा) सुवर्णादि धन से समृद्ध ऐश्वर्य से (पप्रथः) अपने को और बढ़ा, ख्याति लाभ कर,

और स्वयं तथा अन्यों को भी (मन्दय) प्रसन्न कर। (स्वर्यवः) सुख की कामना करने वाले (वाहः) कार्यभार के धारण करने वाले (कुशिकासः) कुशल (विप्राः) मेधावी, विद्वान् पुरुष (मतिभिः) उत्तम बुद्धियों से (तुभ्यं इमं कामम् अक्रन्) तेरी इस उत्तम अभिलाषा को सुसम्पादित करें।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ५।१४

भा०—व्याख्या देखो सू० ३३। मं० २२॥ इति चतुर्दशो वर्गः॥

[५१]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—४, ७—९ त्रिष्टुप्। ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। १—३ निचृज्जगती। १०, ११ यवमध्या गायत्री। १२ विराड्गायत्री॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे॥ १॥

भा०—(बृहतीः गिरः) बड़ी बड़ी, बड़े ज्ञानों का प्रतिपादन करने वाली, ज्ञानवर्धक वाणियां, वेदमय वाणियां भी (चर्षणीधृतम्) सब मनुष्यों को धारण करने वाले (मघवानम्) ऐश्वर्यवान् (इन्द्रं) शत्रुहन्ता (उक्थ्यम्) स्तुतियोग्य (दिवे दिवे) दिन प्रतिदिन (सुवृक्तिभिः) कुमार्ग से वर्जन करने वाले उत्तम वाक्यों और ऐश्वर्यों के उत्तम न्यायानुसार विभागों से प्रजा को (वावृधानं) बढ़ाने वाले, (पुरुहूतं) बहुतों से पुकारने योग्य, (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विशेष (जरमाणं) स्तुति योग्य वा अन्यों को सन्मार्ग के उपदेश करने वाले पुरुष

वा परमात्मा की (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं, उसके ही गुणों का वर्णन करती हैं।

शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥

भा०—(मे गिरः) मेरी वाणियां, स्तुतियां (शतक्रतुम्) सैकड़ों, अपरिमित प्रज्ञाओं और उत्तम कर्मों वाले (अर्णवम्) समुद्र के समान गम्भीर (शाकिनम्) शक्तिमान् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (वाजसनिम्) ऐश्वर्य, ज्ञान, संग्राम, आदि के दाता, और संविभाग करने वाले, (पूर्भिदं) देहों और शत्रु के गढ़ों के तोड़ने वाले (तूर्णिम्) शीघ्र वेग से जाने वाले (अप्तुरं) प्राणों, आप्तजनों, जलों को सूर्य या विद्युत् के समान प्रेरित करने वाले (धामसाचम्) तेज को धारण करने वाले, (अभिषाचं) साक्षात् प्राप्त होने वाले, (स्वर्विदम्) सबको सुख पहुंचाने वाले वा सूर्यवत् तेज, प्रताप और प्रकाश के प्राप्त कराने वाले (नरं) तेजस्वी पुरुष, परमात्मा वा नायक को (विश्वतः) सब प्रकार से (उप यन्ति) प्राप्त होती हैं। वे उसी का वर्णन करती हैं, उसी की स्तुति करती हैं।

आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि॥३॥

भा०—जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (जरिता) अन्यों को उत्तम २ उपदेशों को देता और (वसोः आकरे) धन के समूह के आश्रय में (पनस्यते) व्यापार व्यवहार करता है, और जो (अनेहसः) पापों से रहित (स्तुभः) स्तुति करने योग्य विद्वानों की (दुवस्यति) सेवा करता है और जो (विवस्वतः सदने) सूर्य के समान तेजस्वी, एवं विविध और विशेष धनैश्वर्य से सम्पन्न राजा के गृह या स्थान, पद पर

स्थित होकर (आ पिप्रिये हि) स्वयं प्रसन्न होता और अन्यों को भी प्रसन्न रखता है हे विद्वान् पुरुष तू उसी (सत्रा-साहम्) सत्य के बल पर शत्रुओं का विजय करने वाले और (अभिमाति-हनम्) अभिमान करने वाले दुष्टों को दण्ड देने वाले राजा या वीर पुरुष के (स्तुहि) गुणों की स्तुति कर। (२) विद्वान् आचार्य के पक्ष में—वसु, अन्तेवासी और बसे गृहस्थ जन के समूह या घर में वह (पनस्यते) उपदेश करता, निष्पाप (स्तुभः) वेदमन्त्रों को उच्चारण करता, सूर्य के पद पर विराज कर सबको तृप्त, ज्ञानपूर्ण करता है, सत्यबलयुक्त वह अभिमानादि भीतरी दुर्व्यसनों को नाश करता है, वह स्तुत्य है।

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (नृणाम्) नायक वीर पुरुषों के बीच (नृतमं) सबसे श्रेष्ठ नायक व पुरुषोत्तम (त्वा) तुझ (वीरम्) वीर को (सबाधः) शत्रुओं और विघ्नों की बाधा करने वाले विद्वान् लोग भी (उक्थैः) उत्तम २ वचनों और (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से (अभि प्र अर्चत) सब प्रकार स्तुति करें। वह राजा बलवान् नायकोत्तम (पुरुमायः) बहुतसी प्रज्ञाओं से सम्पन्न होकर (सहसे) अपने बल की वृद्धि के लिये (नमः संजिहीते) अन्न और शत्रु को नमाने के उत्तम साधन वज्र, खड्ग अस्त्रादि बल को (संजिहीते) अच्छी प्रकार प्राप्त करे। और वह (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश से युक्त ज्ञान व उत्तम कामना से युक्त (अस्य) इस राष्ट्र का (एकः) एकमात्र सर्वोपरि (ईशे) स्वामी है। (२) परमेश्वर को विद्वान् वाणियों और वेद वचनों से स्तुति करें, वह बहुप्रज्ञायुक्त अपने बल से सबके नमस्कारों को प्राप्त होता और (प्रदिवः एकः ईशे) पुरातन अनादि प्रवाह से चले आये इस जगत् का एक अद्वितीय ईश्वर है।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ५।१५

भा०—(अस्य) इस प्रसिद्ध राजा के (पूर्वीः) सनातन से चली आई वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादित (निष्षिधः) निषेध-आज्ञाएं, अनुशासन और कार्य को साधन करने वाली सेनाएं और चेष्टाएं (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच प्रवृत्त हों (पृथिवी) पृथिवी उसके ही लिये (वसूनि पुरु) बहुत से ऐश्वर्यों को (बिभर्त्ति) धारण करती है। और (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के लिये ही (द्यावः) सब भूमियें, सब प्रकाशमान पदार्थ, (ओषधीः) ओषधियें (उत आपः) और नदियें समुद्र आदि (जीरयः) जीर्ण हो जाने वाले मनुष्य और (वनानि) वन, प्रान्त भी (पुरु वसूनि रक्षन्ति) बहुत से ऐश्वर्यों को रखते हैं। अथवा जिस प्रकार पृथिवी, सूर्य, ओषधियां, जल या प्राण गण, मनुष्य वनादि रक्षा करते और ऐश्वर्य रखते हैं उसी प्रकार वह राजा भी ऐश्वर्य धारण करे और सबकी रक्षा करे। (२) परमेश्वर की सनातन वेद-आज्ञाएं मनुष्यों में प्रचलित हैं। पृथिवी, सूर्य, ओषधि, जल, मनुष्य वनादि उसी के ऐश्वर्य को धारते हैं। उसकी ही शक्ति से वे सबको पालते, रक्षा करते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयोधाः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे (हरिवः) मनुष्यों और अश्वादि सैन्यों के स्वामिन्! (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (गिरः) उत्तम ज्ञान-वाणियां, स्तुति-वाणियां और तेरे ही लिये (ब्रह्माणि) उत्तम वर्धनशील धनैश्वर्य (सत्रा दधिरे) सत्य ही से तुझे धारण करते हैं वा तेरे निमित्त इनको अन्य जन धारण करते हैं। तू उनको (जुषस्व) प्रेमपूर्वक सेवन कर। तू ही (नूतनस्य) नये से नये, सर्वोत्तम (अवसः) ज्ञान, अन्न, रक्षादि उपाय का (बोधि) ज्ञान

कर और हे (वसो) सबको सुख शान्ति से बसाने वाले ! हे (सखे) सबके मित्र ! तू ही (जरितृभ्यः) विद्वान् पुरुषों का (आपिः) आप्त बन्धु होकर उनको (वयः धाः) दीर्घ जीवन अन्न और बल का प्रदान कर । (२) परमेश्वर की ही सब स्तुतियां वेद वाणियां वर्णन करती हैं । वह सबका बन्धु, सर्वत्र बसने वाला, सबको ज्ञान, जीवन और बल देता है ।

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मरुत्वः) वीर बलवान् पुरुषों के स्वामिन् ! तू (इह) इस राष्ट्र में (सोमं) ऐश्वर्य और ऐश्वर्य के उत्पादक प्रजा की (पाहि) पालना कर । (यथा) जिससे (शार्याते) शरों, शत्रुहिंसक शस्त्रों के द्वारा प्रयाण करने योग्य संग्राम आदि के अवसर पर भी (सुतस्य) इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का स्व पुत्रादिवत् (अपिबः) पालन कर सके । और उत्पन्न ऐश्वर्य का उपभोग कर सके । हे (शूर) शूर (तव) तेरे (प्रणीती) उत्तम न्याय से और (तव शर्मन्) तेरे सुखकारक शरण में रहते हुए (सुयज्ञाः) उत्तम पूजा सत्कार योग्य और ज्ञान-दानशील (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग (आ विवासन्ति) तेरी सेवा सुश्रूषा करें वा सब देशों से आकर बसें ।

स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जिस कारण से (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् और विजय की कामना वाले वीरगण (जातं त्वां) सब गुणों से प्रसिद्ध तुझको (महे भराय) बड़े भारी संग्राम के लिये (परि अभूषन्) सुशोभित करते और (त्वा परि अभूषन्) तेरे ही इर्द गिर्द रह कर तेरा साथ

देते हैं हे (पुरुहूत) बहुतों से आदरपूर्वक पुकारने योग्य ! (सः) वह तू इस कारण से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (वावशानः) राज्यैश्वर्य और प्रजा की कामना करता हुआ (सखिभिः) अपने मित्र (मरुद्भिः) वीर बलवान् पुरुषों सहित सूर्य के समान तेजस्वी होकर (नः) हमारे (सुतम्) इस दिये हुए उत्पन्न या अभिषेक द्वारा प्रदत्त (सोमम्) राज्यैश्वर्य को (इह) यहां ही रहकर (पाहि) पालन कर और उपभोग कर।

अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे॥९॥

भा०—हे (मरुतः) मनुष्यो ! हे बलवान् पुरुषो ! (अप्तूर्ये) उत्तम कर्मों में प्रेरित करने और प्राप्त प्रजाओं के शासन कार्य में (एषः) यह राजा ही (आपिः) सब ओर से पालक, बन्धु के समान है। आप लोग (दातिवाराः) दान देने योग्य वेतनादि को प्रसन्नता से वरण या स्वीकार करने वाले, वा शत्रु के खण्डन छेदनादि का कार्य स्वीकार करने हारे, शत्रुओं की हिंसा का वारण करने वाले होकर (इन्द्रम् अनु अमन्दन्) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक का अनुगमन करके स्वयं हर्षित होओ। वह (वृत्रखादः) मेघ को स्थिर करने वाले सूर्य के समान ही बढ़ते शत्रु को अपने बाधक बल से खड़ा कर देने या आगे न बढ़ने देने वाला या उसको खा जाने, नाश कर देने हारा यह वीर नायक (तेभिः साकम्) उन उक्त वीर पुरुषों सहित (स्वे सधस्थे) अपने ही एकत्र रहने के स्थान राष्ट्र, नगर भवनादि में स्थित होकर (दाशुषः) ऐश्वर्य देने वाले प्रजा-जन के (सुतम् सोमम्) उत्पन्न, प्राप्त ऐश्वर्य को (पिबतु) भोग करे और पालन करे।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।
पिबा त्व१स्य गिर्वणः॥ १०॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों द्वारा याचना, प्रार्थना और

स्तुति करने योग्य ! हे (राधानां पते) धनों के स्वामिन् ! तू (अस्य) इस राष्ट्र के (इदं) इस (सुतं) उत्पन्न ऐश्वर्य और प्रजाजन को (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (पिव तु) ओषधि रस के समान उपभोग कर या पुत्र के समान अवश्य पालन किया कर ।

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (ते) तेरे (सुते) अभिषेक हो जाने पर, इस शासित राष्ट्र में (स्वधाम् अनु असत्) अन्न आदि स्वशरीर-पोषक वेतनादि प्राप्त करके रहे (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) सुखी और हर्षित करे, तेरे विपरीत न रहे । तू अपने (तन्वं) शरीर और विस्तृत राष्ट्र को भी (नि यच्छ) नियम में रख, जितेन्द्रिय होकर रह और (सोम्यम् आचर) सोम, राष्ट्र के हितकारी कार्य कर अथवा (त्वा सोम्यम् ममत्तु) तुझ ऐश्वर्य योग्य स्वामी पुरुष को हर्षित करे । (२) ओषधिरस भी ऐसा पान करे जो अन्न के अनुकूल रहे, मनुष्य को औषध लेते समय शरीर पर वश रखना चाहिये; कुपथ्य और बेपरवाही से बचना चाहिये ।

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वह सोम, ऐश्वर्य, और बल, शरीर में वीर्य के समान और बलकारी ओषधि रस के समान (ते) तेरे (कुक्ष्योः) दोनों कोखों में, अंगल बगल, (प्र अश्नोतु) खूब व्यापे, बढ़े । (ब्रह्मणा) धनैश्वर्य से वा ब्रह्म, वेदज्ञान बड़े बल से (शिरः) शिरस्थान सर्वोच्चपद को भी (प्र अश्नोतु) प्राप्त करे, हे (शूर) शूरवीर ! वह ऐश्वर्य (राधसे) धन की वृद्धि और शत्रु की साधना या वशीकरण के लिये वह ऐश्वर्य वा राष्ट्र (बाहू) शत्रुओं को बाधित या पीड़ित करने

वाले बाहुओं के समान सैन्यों को (प्र अश्नोतु) अच्छी प्रकार प्राप्त हो। अर्थात् राष्ट्र का धन कुक्षि रूप वैश्यों, शिर रूप ब्राह्मणों और बाहू रूप क्षत्रियों को प्राप्त हो, इनकी वृद्धि के लिये उपयोग किया जावे। इति षोडशो वर्गः॥

[५२]

विश्वामित्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री। २ निचृद्गायत्री। ६ जगती। ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुविनाशक राजन्! तू (नः) हमारे बीच में से (धानावन्तं) रक्षण पालन करने की शक्ति वाले वा अन्न, धनादि ऐश्वर्य वाले, (करम्भिणम्) पुरुषार्थों से युक्त, कर्मण्य (अपूपवन्तं) उत्तम त्यागी और उपासक जितेन्द्रिय, इन्द्रियों के सामर्थ्य से युक्त और (उक्थिनम्) उत्तम प्रवचन योग्य वेदशास्त्र के वेत्ता पुरुष को प्रातः काल ही (जुषस्व) सेवन कर। अन्नादि के स्वामी, वैश्य का अर्थात् बाहू से या कर टैक्सादि से पुष्ट होने वाला क्षत्रिय, अपूप अर्थात् इन्द्रिय या "अप-उप" अप-बुरे व्यवहारों का त्याग "उप" उपासना आदि से युक्त त्यागी भक्तिमान् वेदज्ञ विद्वान् इन का सब से पूर्व आदर सत्कार करना चाहिये।

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च।
तुभ्यं हव्यानि सिस्रते॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! (पुरोडाशं) तू आदरपूर्वक सत्कार, मान पूजा से दिये गये (पचत्यं) पचने में उत्तम, सुपच अन्न का (जुषस्व) सेवन किया कर। और (आ गुरस्व च) उद्यम किया कर, उत्तम अन्न खा और शरीर से व्यायाम किया कर। (तुभ्यं) तेरे ही

लिये ये सब (हव्यानि) खाने योग्य उत्तम पदार्थ (सिस्रते) उत्पन्न होते हैं। उद्यमी और मान आदरपूर्वक उत्तम खाद्य खाने वाले के लिये ही सब उत्तम अन्न हैं। अखाद्यभक्षी और आलसी को वे नसीब नहीं होते।

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

भा०—(वधूयुः) वधू अर्थात् स्त्री का कामना करने वाला, स्त्री का स्वामी (इव) जिस प्रकार (पुरोडाशं योषणाम् घसत् जोषयाते च) आदरपूर्वक दान की गई, स्त्री का ही उपभोग करता और उसको प्रेम-पूर्वक स्वीकार करता है, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू (नः) हमारे (पुरोडाशम्) आदरपूर्वक दिये अन्नादि ऐश्वर्य को (घसः) अन्नवत् उपभोग कर और (नः) हमें और हमारी (गिरः च) वाणियों को (जोषयासे) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। राजा की प्रजा ही, पति की पत्नी के समान है यह बात मन्त्र से लक्षित है।

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः।
इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सनश्रुत) 'सन' अर्थात् सत्यासत्य के विवेक करने वाले पुरुषों से शास्त्र-ज्ञान के श्रवण करने वाले व सत्यासत्य विवेचक ज्ञान का श्रवण करने वाले (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन्! तू (प्रातः-सावे) प्रातः सवन-काल में अर्थात अपने शासन के प्रारम्भ-काल में (नः) हमारे (पुरोडाशम्) आदर पूर्वक दिये ऐश्वर्य को (जुषस्व) प्रेम पूर्वक स्वीकार कर। (ते) तेरा (क्रतुः) प्रजा बल और कर्म सामर्थ्य (बृहन्) बहुत बड़ा है।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम्।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५।१७॥

भा०—(यत्) जब (स्तोता) उत्तम विद्वान् (जरिता) उपदेष्टा (तूर्ण्यर्थः) शीघ्र ही अपने अभिप्राय को प्रकट करनेहारा होकर (वृषायमाणः) बलवान् पुरुष के समान वा वर्षणशील मेघ के समान ज्ञान प्रदान करता हुआ (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (उप ईट्टे) सब को उपदेश करे तब तू भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (माध्यन्दिनस्य) दिन के मध्यकाल के समान प्रखर, तीक्ष्ण तेज से युक्त समय पर होने वाले (सवनस्य) शासन और ऐश्वर्य को (धानाः) धारण और पोषण करनेवाली प्रजाओं और अधीन धारित पोषित सेनाओं को और (पुरोडाशम्) आगे दान मानपूर्वक दिये गये अन्न या राष्ट्र-भाग को (इह) इस राष्ट्र में (चारुम्) उत्तम (कृण्व) कर। इति सप्तदशो वर्गः॥

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः॥६

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! हे नायक ! तू (तृतीये) तीसरे सर्वोत्तम (सवने) शासन में हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य ! सायंकाल में अग्नि जिस प्रकार दिये पुरोडाश को स्वीकार करता है उसी प्रकार (नः) हमारे (आहुतिम्) आदर पूर्वक दिये गये (पुरोडाशम्) अन्न आदि को (मामहस्व) आदर पूर्वक स्वीकार कर। और (धानाः) धारण करने योग्य प्रजाओं को भी अपना। हे (कवे) विद्वान् दीर्घदर्शिन् ! हम लोग (प्रयस्वन्तः) उत्तम अन्नवान् होकर वा प्रयत्नशील होकर (ऋभुमन्तम्) सत्य ज्ञान और सामर्थ्य से प्रकाशित होने वाले शिष्यों और सहयोगियों के स्वामी, (वाजवन्तं) ज्ञानवान् तुझको (उप) प्राप्त होकर हम (धीतिभिः) उत्तम स्तुतियों से (शिक्षेम) ज्ञानैश्वर्य की याचना करें। (४–६) तीनों मन्त्रों में तीन सवन जीवन के तीन काल हैं। ब्रह्मचर्यकाल, यौवनकाल और वार्धक्यकाल। तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इनमें क्रतु अर्थात् प्रज्ञा को बढ़ावे।

इनमें वृष वीर्य सेक्ता होकर अर्थ सम्पादन कर विद्वानों से संग करे, तीसरे में प्राणवान्, ज्ञानवान् होकर अन्यों को शिक्षा दे।

पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्॥ ७॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष! (पूषण्वते) सब को पुष्ट करने वाली पृथ्वी के स्वामी रूप तेरे लिये हम (करम्भम् चकृम) कर्म सामर्थ्य से युक्त क्षात्रबल का सम्पादन करें। (हरिवते) भूमि निवासी प्रजा, मनुष्यों के स्वामी और (हर्यश्वाय) आशुगामी रथादि और अश्वादि के स्वामी तेरे लिये (धानाः चकृम) राष्ट्र को धारण करने योग्य सेनाओं और ऐश्वर्य युक्त प्रजाओं को भी सुसम्पादित करें। हे शूर! तू (विद्वान्) विद्वान् और (वृत्रहा) विघ्न नाशक शत्रुहन्ता होकर (सगणः) गणों सहित और (मरुद्भिः सह) विद्वानों, वीरों से युक्त होकर (अपूपं) माल-पुए के समान समृद्ध वा स्नेहयुक्त वा ऐश्वर्य युक्त (सोमं) राष्ट्र का (पिब) उपभोग कर।

प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम्।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो॥ ८॥ १८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! हे प्रजाजनो! आप लोग (अस्मै नृणां वीरतमाय) सब नायकों में से सबसे श्रेष्ठ इस वीर पुरुष के लिये (धानाः) अन्नों के समान ही परिपोषक शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं को (तूयम्) शीघ्र ही (प्रति भरत) प्रतिदिन प्राप्त कराओ। हे (धृष्णो) धर्षणशील, शत्रुओं का पराजय करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (दिवे दिवे) दिनों दिन (सदृशीः) रूप गुणों में समान पत्नियां जिस प्रकार पतियों की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार बलै-श्वर्य में समान, तेरे अनुरूप प्रजाएं और सेनाएं भी (सोमपेयाय) ऐश्वर्य-

वान् राष्ट्र के पालक और उपभोगकर्त्ता (तुभ्यम्) तुझको प्राप्त हों और तुझे सन्तानादि से पत्नी के समान ही (वर्धन्तु) बढ़ावें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५३]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ १ इन्द्रापर्वतौ । २—१४, २१—२४ इन्द्रः । १५, १६ वाक् । १७—२० रथाङ्गानि देवताः ॥ छन्दः—१, ५, ९, २१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ६, ७, १४, १७, १९, २३, २४ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२, २२ अनुष्टुप् । २० भुरिगनुष्टुप् । १०, १६ निचृज्जगती । १३ निचृद्गायत्री । १८ निचृद्बृहती॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ।

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीः सुवीराः इपः- आवहतः) इन्द्र, सूर्य या विद्युत् और पर्वत सर्व पालक मेघ दोनों रथ अर्थात् वेगवान् जल-धारा से उत्तम वृष्टियों वा अन्नादि को प्राप्त कराते हैं इसी प्रकार हे (इन्द्र-पर्वता) इन्द्र ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः और हे पर्वत ! पर्व २, पोरु २ से बने सैन्य वर्ग के स्वामिन् ! तुम दोनों (बृहता) बड़े भारी (रथेन) वेग से जाने वाले रथसैन्य से (वामीः) अति सुन्दर (सुवीराः) उत्तम वीरों से बनी (इपः) अन्नादि समृद्धियों और सेनाओं को (आवहतम्) धारण करो । आप दोनों (अध्वरेषु) हिंसा आदि से रहित परस्पर प्रतिपालन आदि कार्यों में (हव्यानि) उत्तम २ अन्नादि पदार्थों का (वीतम्) उपभोग करो और (इडया) अन्न एवं सुन्दर वाणी से (मदन्तौ) परस्पर हर्ष अनुभव करते हुए (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से (वर्धेथाम्) बढ़ो ।

तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! धनों के स्वामिन्! तू (कं) सुख पूर्वक और (सु) आदर से (तिष्ठ) स्थिर होकर खड़ा रह। (मा परागाः) दूर मत जा, (त्वा नु) तुझे मैं (सुषुतस्य सोमस्य) उत्तम रीति से उत्पादित, पुत्रवत् प्रिय, सोम अर्थात् ओषधि रस के समान उत्साहवर्धक ऐश्वर्य का (यक्षि) प्रदान करूं। (पुत्रः पितुः न) जिस प्रकार पुत्र पिता के (सिचम् आरभते) वस्त्र का स्पर्श करता है वा निषेक आदि द्वारा उत्पन्न सन्तान भाव का प्रारम्भ करता है। उसी प्रकार हे (शचीवः) शक्ति, सेना और उत्तम वाणी के स्वामिन्! (इन्द्र) शत्रुहन्तः एवं विद्वन्! मैं प्रजाजन भी (स्वादिष्टया) अति अधिक स्वादु, मधुर (गिरा) वाणी से (ते सिचम्) तेरा राज्यपदाभिषेक (आरभे) करूं। (ते) तेरे (सिचम् आरभे) उज्ज्वल वस्त्र का स्पर्श करूं। तेरे वस्त्र प्रान्त को पकड़ूं, तेरा आश्रय ग्रहण करूं। राजा का लम्बा दामन पकड़ना उसका आश्रय ग्रहण करने के समान है। जैसे पुत्र पिता का दामन मीठी तुतलाती वाणी बोल के पकड़ लेता है उसमें ही स्नेहवश घुस जाता है, उसी प्रकार प्रजाजन स्नेहवश राजा के दामन में उसके शासन या छत्रच्छाया में रहें अथवा उसका अभिषेक करें।

शंसा॑वाध्वर्यो॒ प्रति॑ मे गृणी॒हीन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कृणवाव॒ जुष्ट॑म्।
एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सी॒दाथा॑ च भूदु॒क्थमिन्द्रा॑य श॒स्तम् ॥३॥

भा०—हे (अध्वर्यो) शत्रु द्वारा अपना हिंसन, पीड़क न होकर प्रजा के पालन आदि की कामना करने वाले विद्वन्! हम दोनों (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष की वृद्धि के लिये (शंसाव) शुभ, उत्तम बातों का उपदेश करें। तू (मे प्रति गृणीहि) मेरा दिया ज्ञानोपदेश प्रत्येक व्यक्ति को उपदेश कर और (जुष्टम्) प्रेम से सेवन करने योग्य (वाहः) स्तुति-वचन को हम दोनों (कृणवाव) करें। (यजमानस्य) दानशील, पूजा सत्कार करने वाले प्रजागण का (इदं बर्हिः) यह वृद्धिशील राष्ट्र

और राज्यपदासन है। उस पर (आसीद) आ, विराज। (अथ च) और इसके अनन्तर (इन्द्राय) इन्द्र, राजा को या राजा का (उक्थ्यम्) उत्तम उपदेश करने योग्य या स्तुत्य (शस्तं) अनुशासन का (भूत्) हो।

जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ॥ ४॥

भा०—(जाया इत्) स्त्री ही वास्तव में (अस्तं) घर है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (सा इत् उ योनिः) वही वास्तविक रहने का आश्रय स्थान है। (तत् इत्) वहां (युक्ताः हरयः) रथ में लगे अश्वों के समान, समाहित चित्त वाले प्रेमी विद्वान्जन (त्वा वहन्तु) तुझे ले जावें। हम लोग भी (यदा कदा च) जब कभी भी (सोमम्) उत्पन्न करने योग्य पुत्र के तुल्य ऐश्वर्ययुक्त वा अभिषेचनीय तुझको (सुनवाम) सम्पन्न, ईश्वर का स्वामी बनावें या अभिषेक करें तब (अग्निः त्वा) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक और तेजस्वी पुरुष (दूतः) संदेशहर एवं शत्रुओं को संताप देने हारा वीर पुरुष (त्वा) तुझको (अच्छ धन्वाति) प्राप्त हो। राजा की जाया प्रजागण ही घर हैं वही उसका आश्रय वा योनि अर्थात् सन्तान के समान राजा को जन्म देती है। अश्वादि एवं विद्वान् जन उसको प्रजा के पास ही ले जावें। प्रजा जब समृद्धि या समृद्ध राजा को अभिषेक करे ज्ञानी दूत आदि उसके सन्मुख आकर प्रजा की बात कहा करें। उसी प्रकार गृहस्थ पक्ष में—स्त्री ही पुरुष का घर, आश्रय और सन्तानोत्पादक है। विद्वान् उसको स्त्री के प्राप्त करने के लिये प्रेरित करें। जब २ लोग पुत्र को उत्पन्न करने का यत्न करें अर्थात् पुत्रार्थी हों तो अग्नि (आवसथ्य अग्नि) को दूत के समान सन्मुख प्राप्त हों। अग्नि साक्षिक विवाह हुआ करे। तभी उत्तम विवाह से उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५।१९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे पूजनीय धन के स्वामिन् ! तू (परा याहि) दूर देश में गमन कर (च) और (आ याहि च) अपने देश में भी आ । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (ते) तेरे (उभयत्र) दोनों ही स्थानों में (अर्थम्) स्थित प्रयोजन को प्राप्त कर (यत्र) जहां (बृहतः रथस्य) बड़े भारी रमण करने योग्य ऐश्वर्य का (निधानं) ख़ज़ाना हो वहां (रासभस्य वाजिनः) अति हेषा रव करने वाले वेगवान् अश्व का (विमोचनम्) रथ से पृथक् करना या ढीली वागों से जाना उचित है, ऐश्वर्यवान् पुरुषों का दूर या समीप जहां भी ऐश्वर्य प्राप्त हो वहीं प्रसन्न अश्वों द्वारा जाना चाहिये । (२) इसी प्रकार गृहस्थ में जाने वाला पुरुष भी चाहे इह लोक में गृहस्थ होकर रहे या परम-पद की ओर जावे दोनों ओर ही पुरुपार्थ है । उत्तम सुख की जहां स्थिति हो वहां ही इस उपदेष्टव्य ज्ञानवान् आत्मा की बन्धन से विशेष मुक्ति होती है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमम् अपाः) उत्तम सोमादि ओषधि रस का पान कर, ऐश्वर्य का पालन कर । (अस्तं प्र याहि) घर को उत्तम रीति से जाया कर । (ते गृहे) तेरे घर में (जाया) स्त्री (कल्याणीः) कल्याणकारिणी, सुखप्रद, सौभाग्यवती और (सुरणं) सुखपूर्वक रमण करने वाली हो । और तेरे घर में (बृहतः रथस्य निधानं) बड़े रथ और रमणीय पदार्थों को रखने का स्थान एवं ख़ज़ाना हो और

(वाजिनः विमोचनं) अश्व को खोलने का स्थान अस्तबल और (दक्षिणावत्) दक्षिणायुक्त उत्तम यज्ञ आदि हो।

इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७॥

भा०—(इमे) ये (भोजाः) प्रजाओं के पालक, रक्षक (अंगिरसः) देह में प्राणों के तुल्य राष्ट्र में जीवित जागृत एवं अंगारों के सदृश तेजस्वी (विरूपाः) विविध रूपों वाला (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (असुरस्य) बलवान् सेनानायक के (पुत्रासः) पुत्रों के तुल्य (वीराः) वीर, वीर्यवान् बलवान् पुरुष (सहस्रसावे) सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों के लाभ कराने वाले संग्राम में (विश्वामित्राय) सबके स्नेही और सबको मरने से बचाने वाले नायक को (मघानि) नाना प्रकार के ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (आयुः प्रतिरन्त) जीवन की वृद्धि करें या जीवन व्यतीत करें।

रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (मघवा) प्रकाशमान् सूर्य (स्वां तन्वं परि) अपने ही पिण्ड से (मायाः कृण्वानः) नाना माया अर्थात् अद्भुत २ रचना करता हुआ (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप में (परि बोभवीति) व्याप जाता है। (यत्) जो (स्वैः मन्त्रैः) अपने स्तम्भन बलों का ज्ञान कराने वाले, प्रकाशमय किरणों से (यत्) जो (त्रि दिवः) दिन के तीनों काल (मुहूर्त्तम्) प्रतिमुहूर्त्त (परि अगात्) फैलता रहता है और (ऋतावा) अन्न और जल का स्वामी होकर भी (अनृतुपाः) विशेष ऋतु में ही जल का पान नहीं करता प्रत्युत सदा ही जलपान करता है उसी प्रकार (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (स्वां तन्वं परि) अपनी शारीरिक रचना से (यत्) जो वह (अनृतुपाः) विशेष काल का पालन

न करता हुआ, विना किसी विशेष काल की अपेक्षा किये, सदा एक समान (ऋतावा) सत्य ज्ञान का सेवन और ग्रहण करता हुआ (स्वैः मन्त्रैः) अपने मननपूर्वक प्रकटित विचारों से (मुहूर्त्तम्) मुहूर्त्त भर (दिवः त्रिः) दिन में तीनों काल (परि अगात्) परिज्ञान करता रहे। देह को (परि कृण्वानाः) खूब अच्छी प्रकार परिष्कार और सुदृढ़ करता हुआ उसके उपरान्त (मायाः) नाना बुद्धियों को (परि कृण्वानाः) परिष्कृत करता हुआ (रूपं रूपं) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ को (परि बोभवीति) अच्छी प्रकार ज्ञान करे।

म॒हाँ ऋषि॑र्देव॒जा दे॒वजू॒तोऽस्त॑भ्ना॒त्सिन्धु॑मर्ण॒वं नृ॒चक्षाः॑ ।
वि॒श्वामि॑त्रो॒ यदव॑हत्सु॒दास॒मप्रि॑यायत कुशि॒केभि॒रिन्द्रः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (महान्) सामर्थ्य और गुणों में महान् (ऋषिः) मन्त्रों और तत्वार्थों का द्रष्टा (देवजाः) देवों, विद्वानों द्वारा उत्पन्न, उनका शिष्य वा दानशील होकर प्रसिद्ध, (देवजूतः) विद्वानों द्वारा प्रेरित और (नृचक्षाः) समस्त नायकों पर अपनी आज्ञा करने और उनके ऊपर आंख रखने हारा, (विश्वामित्रः) सबका मित्र, सहायक, (सुदासम्) उत्तम दानशील एवं उत्तम रीति से शत्रु को नाश करने वाले वीर पुरुष को (अवहत्) सन्मार्ग पर ले जाता है तब वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (कुशिकेभिः) अति कुशल सहयोगियों सहित (अप्रियायत) सबको प्रिय लगने लगता है।

हं॒सा इ॑व कृणुथ॒ श्लोक॒मद्रि॑भि॒र्मद॑न्तो गी॒र्भिर॑ध्व॒रे सु॒ते सचा॑ ।
दे॒वेभि॑र्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो॒ वि पि॑बध्वं कुशिकाः सो॒म्यं मधु॑ ॥१०॥२०

भा०—जिस प्रकार (हंसाः इव) हँस व पक्षिगण (अद्रिभिः) पर्वतों, मेघों सहित (मदन्तः) अति हर्षित होते हुए (श्लोकं कृण्वन्ति) उत्तम शब्द करते हैं और (सोम्यं मधु पिबन्ति) उत्तम मधुर जल को

पान करते हैं उसी प्रकार हे (हंसाः) परमहंसो ! ज्ञानी पुरुषो ! हे (विप्राः) मेधावी विद्वान् पुरुषो ! हे (ऋषयः) अतीन्द्रिय तत्वों के भी दर्शन करने वाले (नृचक्षसः) और सब पुरुषों पर चक्षु रखने वाले सबके निरीक्षक, (कुशिकाः) सिद्धान्त निष्कर्ष निकालने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (हंसाः) अहंभाव का नाश करने हारे होकर (अद्रिभिः) अपने अविनाशी आत्माओं सहित या मेघ तुल्य सुखवर्षक आत्माओं सहित और (गीर्भिः) वाणियों से (मदन्तः) खूब प्रसन्न होते हुए (अध्वरे सुते) परस्पर के घात प्रतिघात या हिंसादि से रहित यज्ञ के निष्पन्न होने पर उसमें (सोम्यं मधु) सोम ओषधि के रस से युक्त मधुर दुग्धादि के समान (सोम्यं मधु) सोम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के परम ब्रह्मज्ञान रूप मधुर मधु का (देवेभिः सचा) देव, विद्वान् दानशीलों सहित (पिबध्वम्) पान करो । (२) राष्ट्रपक्ष में—(हंसाः) शत्रुओं को हनन करने वाले वीर पुरुष । विंशो वर्गः ॥

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११॥

भा०—हे (कुशिकाः) परराष्ट्र को पीड़ित करने हारे उत्तम कुशल पुरुषो ! आप लोग (उप प्र इत) समीप २ रहकर आगे बढ़ते जाओ । (चेतयध्वम्) स्वयं खूब सावधान होकर रहो और (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि करने के लिये (अश्वं) शीघ्र चलने हारे अश्व को (प्र मुञ्चत) आगे २ छोड़ो । और (सुदासः) उत्तम शत्रुनाशक और उत्तम दान-शील (राजा) राजा (प्राग् , अपाग् , उदग्) पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में स्थित (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को, मेघ को सूर्यवत् (जंघनत्) दण्ड दे । (अथ) अनन्तर (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरे) सर्वश्रेष्ठ भाग में (आ यजाते) सब ओर से सबको एकत्र कर यज्ञ करे । सर्व-

श्रेष्ठ पद पर स्थित होकर सबसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करे। अश्वमेध द्वारा विजय करके बलवान् राजा सबका मित्र होकर रहे।

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्॥ १२॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, परमेश्वर वा राजा (इमे) इन (उभे रोदसी) दोनों भूमि, सूर्य और उनके समान स्त्री-पुरुषों की (रक्षति) रक्षा करता है और जो (इदं) इस (ब्रह्म) महान् ब्रह्माण्ड और धनैश्वर्य की और (भारतं जनं) जो भारती वाणी के उपासक विद्वान् और (भारतं) मनुष्यों के समूह की (रक्षति) रक्षा करता है (तस्य) उस (विश्वामित्रस्य) सबके मित्रस्वरूप परमेश्वर और राजा के (इन्द्रम्) ऐश्वर्य की मैं (अतुष्टवम्) सदा स्तुति करूं।

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
करदिन्नः सुराधसः॥ १३॥

भा०—(विश्वामित्राः) सबके मित्र लोग (वज्रिणे) बलवान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (ब्रह्म) बड़े भारी धनैश्वर्य के विषय में (अरासत) स्तुति करते हैं। वह (नः) हमें (सुराधसः) उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न (करद्) करे।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः॥१४॥

भा०—(ते) वे (कीकटेषु) जो लोग कुत्सित कर्मों को करके जीते वा उत्तम कर्मों को तुच्छ समझते हैं वे लोग वा देश 'किं कृत' वा 'कीकट' हैं उन देशों के (ते) वे निवासी लोग (गावः) गौओं का (किं कृण्वन्ति) क्या उपयोग लेते हैं, कुछ भी उपयोग नहीं लेते। क्योंकि वे (न) न तो (आशिरं) खाने पीने योग्य दूध आदि (दुह्रे) दुहते हैं

और (न घर्मं तपन्ति) न घृत ही तपाते हैं। इस प्रकार हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (प्रमगन्दस्य) मुझे अधिक धन प्राप्त हो इस आशा से अन्यों को देने वाले अथवा अपने धन को आमोद प्रमोद में ही व्यय करने वाले पुरुषों के (वेदः) धन को (नः आभर) हमें प्राप्त करा और (नः) हमारे बीच में जो (नैचाशाखं) नीचे की तरफ़ कुप्रवृत्तियाँ अपनी शाखा अर्थात् शक्तियों का दुरुपयोग करने वाले को तू (रन्धयः) वश कर। ऐश्वर्यवान् व्यापारी वा राजा का यह कर्त्तव्य है कि जिन देशों के लोग गौ आदि का उपयोग न करते हों उन देशों की गौएं व्यापार आदि द्वारा अपने देशों में लावें। और उनका उत्तम उपयोग लेवें। जिन देशों के लोग विलास में रुपये फूंकते हों उनका द्रव्य भी व्यापार द्वारा उनको विलास के पदार्थ देकर अपने देश में खैंच ले। अधिक धनाशा से जो रुपया देते हों उनका धन लेकर भी अपनी सम्पत्ति और व्यापार बढ़ा ले। और जो अपनी शक्ति नीच कुत्सित कार्यों में उपयोग करें उनको दमन करे।

स॒स॒र्परी॒रम॑तिं॒ बाध॑माना बृ॒हन्मि॑माय ज॒मद॑ग्निदत्ता।
आ सूर्य॑स्य दुहि॒ता त॑तान॒ श्रवो॑ दे॒वेष्व॒मृत॑मजु॒र्यम् ॥१५॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य से उत्पन्न कन्यावत् उषा (ससर्परीः) सर्वत्र व्यापने वाली (जमदग्निदत्ता) प्रज्वलित अग्नि वाली किरणों से प्रदान की हुई (बाधमाना) अन्धकार को दूर करती हुई (बृहत् अमतिम् मिमाय) बड़े भारी उत्तम रूप को प्रकट करती है। उसी प्रकार (जमदग्निदत्ता) जमदग्नि अर्थात् चक्षु द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने भीतर धारने वाली, (ससर्परीः) सर्वत्र दूर तक व्यापने वाली, (अमतिं) अज्ञान का नाश करने वाली वाणी (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान को (मिमाय) शब्द द्वारा उत्पन्न करती है। वह (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान प्रकाशक तेजस्वी पुरुष की सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली वाणी

(देवेषु) ज्ञान की कामना करने वाले पुरुषों में (अमृतम्) अमृत, अविनश्वर (अजुर्यम्) कभी हानि को प्राप्त न होने वाले (श्रवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान को (आततान) विस्तृत करती है। (२) इसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा की सब कामना को पूर्ण करने वाली भूमि वा भूमिवासिनी प्रजा (देवेषु) ऐश्वर्य के इच्छुक वीर विजिगीषुओं में अक्षय (अमृतं श्रवः) अन्न और जल प्रदान करती है। वह (जमदग्निदत्ता) प्रज्वलित तेजस्वी अग्निनायक या आग्नेयास्त्रादि के प्रज्वलित करने वाले वीरों से दी गई भूमि (अमतिं बाधमाना) दारिद्र्य को नाश करती हुई (बृहत्) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्रदान करती है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु।
सा पक्ष्या३नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६॥

भा०—(यां) जिस वाणी को (मे) मुझे (पलस्तिजमदग्नयः) वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध, आत्माग्नि को प्रज्वलित करने वाले तेजस्वी पुरुष (ददुः) प्रदान करते हैं (सा) वह (पक्ष्या) पक्षों अर्थात् ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों का हित करने वाली, (ससर्परीः) सुख और ज्ञान को प्राप्त कराने वाली, सर्वत्र व्यापक या शिष्य परम्परा से एक से दूसरे को प्राप्त होने वाली, (पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु) पांचों जनों में उत्पन्न मनुष्यादि प्रजाओं में (नव्यम्) नया (आयुः) जीवन (दधाना) धारण कराती हुई, (एभ्यः) इनको (तूयम्) शीघ्र ही (श्रवः) श्रवण योग्य ज्ञान (अधि-अभरत्) धारण कराती है। (२) इसी प्रकार भूमि पांचों प्रकार की प्रजाओं को (श्रवः) अन्न देती और नया जीवन धारण कराती है।

स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥

भा०—स्त्री और पुरुषो! राजा और प्रजाजन! दोनों (स्थिरौ)

स्थिर, उत्तम स्थितिमान् होकर भी (गावौ) एक दूसरे के पास जाने वाले एक दूसरे को प्राप्त (भवताम्) होओ। अथवा वे दोनों गौ और वृषभ के समान वा रथमें लगे दो बलवान् बैलों के समान सम्भालने में समर्थ होवें। (अक्षः वीडुः) रथ में लगे अक्ष अर्थात् धुरा के समान (अक्षः) तुम पर चक्षु के समानद्रष्टा, सर्वाश्रय पुरुष बलवान् वीर्यवान् हो। (ईषा) रथमें लगे ईषा दण्ड के समान आगे २ चलने वाली या विघ्नों और कष्टकारी बाधक कारणों का नाश करने वाली दर्शनीय स्त्री (मा वि वर्हि) गृह से उत्सन्न न हो, उखड़ न जाय, वह उच्छिन्न हृदय न होजाय। (युगम्) रथ के जुए के समान परस्पर का जोड़ा (मा वि शारि) कभी एक दूसरे से विरुद्ध होकर नष्ट न हो, टूट फूट न पड़े। एक दूसरे का ताड़न न करें। (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् पुरुष (पातल्ये) गिरने वालों को, मर्यादा से च्युत होने वालों को (शरीतोः) विनाश होने से पूर्व ही (ददताम्) योग्य जीवन सामग्री प्रदान करे वा बचावे। हे (अरिष्टनेमे) 'अरिष्ट' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि से रहित मङ्गलमय मार्ग में लेजाने वाले नायक! (नः) हमें तू (अभिसचस्व) सदा प्राप्त हो। राष्ट्रपक्ष में—(गावौ) राजा प्रजा दोनों स्थिर हों, (अक्षः) अध्यक्ष वीर्यवान् हो, (ईषा) शत्रु विपरीत उद्योग-शाली न हो। (युगः) परस्पर के सन्धि सम्बन्ध शिथिल न हों। गिरतों को विनष्ट होने से हिंसक सेना (मा वि वर्हि) बचावे। सन्मार्ग का नायक हमें सब प्रकार से समवाय से संगठित करे।

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् स्वामिन्! हे परमेश्वर! तू (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (बलं धेहि) बल को धारण करा। (नः) हमारे (अनडुत्सु) गौ, बैल आदि प्राणि-वर्गों में (बलं धेहि) बल प्रदान कर। तू (नः) हमारे (तोकाय) पुत्र और (तनयाय)

पौत्रादि के हितार्थ या छोटे बालक और ऊंची उमर के बड़े पुत्रादि और उनके और हमारे (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (बलं) बल प्रदान कराओ। (त्वं हि) तू निश्चय से (बलदाः) बल का देने वाला (असि) है।

अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः॥१९॥

भा०—हे (वीळो) वीर्यवन्! हे (वीळित) विविध प्रजाओं से प्रशंसित एवं दृढ़ीभूत पुरुष तू (खदिरस्य सारम्) खदिर वृक्ष के सार अर्थात् बलयुक्त, दृढ़, (खदिरस्य) शत्रुहिंसक सेना के (सारम्) प्रबल भाग को लक्ष्य करके (अभि वि अयस्व) विशेष रीति से व्यय कर। और (स्पन्दने) कुछ २ चलने के अवसर में (शिंशपायाम्) शीशम के समान दृढ़ रथसैन्य पर स्थिर होकर (ओजः धेहि) बल पराक्रम कर। हे (अक्ष) प्राप्त विद्य! या हे अध्यक्ष पुरुष! हे (वीळो) वीर्यवान् दृढ़ पुरुष! तू (नः) हमें (अस्मात्) इस (यामात्) प्रहर से आगे या इस प्रकार के उत्तम प्रबन्ध से (मा अव जीहिपः) मत वञ्चित रख। (२) अथवा (खदिरस्य सारम् इव ओजः धेहि) खदिर वृक्ष के सार कत्थे वा गोंद के समान ओजात्मक, तमतमाते तेज को धारण करा और (शिंशपायाम् स्पन्दन इव) शिंशपा या सीशम के वृक्ष से निकलने वाले गोंद के समान (अभि सं व्ययस्व) बहुत स्वल्प व्यय कर।

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत्।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात्॥ २०॥ २२॥

भा०—जिस प्रकार 'वनस्पति' काष्ठ का विकार रथ घर पहुंचने, यात्रा समाप्ति और अश्वादि मोचन तक साथ नहीं छोड़ता है उसी प्रकार (अयम्) यह (वनस्पतिः) महावृक्ष के समान किरणों के पालक सूर्य

के समान 'वना' अर्थात् धन में समान भाग लेने वाले वा सेवा करने वालों का पालक, अध्यक्ष, स्वामी (अस्मान्) हमें (मा हाः) कभी त्याग न करे। (मा च रीरिषत्) कभी विनाश न करे। वह (आ अवसै) कार्य समाप्ति तक और (आ विमोचनात्) अवकाश या छुट्टी के अवसर तक भी (आ गृहेभ्यः) घरों तक पहुंच जाने तक भी हमारा साथ त्याग न करे। चाहे सेवक का कार्य समाप्त हो जाय, अवकाश पर हो या घरों में बैठा हो तो भी स्वामी सेवक को न त्यागे और न दण्ड दे। (२) विद्यासेवी शिष्यों का पालक आचार्य गृह पहुंचने, विद्यावसान और गुरु-गृह त्याग तक शिष्य को न त्याग करे, न पीड़ित या दण्डित करे। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (यात्-श्रेष्ठाभिः) शत्रु-हिंसा के कार्य में सबसे उत्तम (बहुलाभिः) बहुतसी (ऊतिभिः) रक्षक सेनाओं से (नः) हमें (जिन्व) विजय कर और प्रसन्न कर। हे (मघवन्) धनैश्वर्यवन् ! हे (शूर) शूरवीर ! (नः) हम से (यः अधरः) जो नीचे रहकर (द्वेष्टि) द्वेष करता है (सः पदीष्ट) वह अच्छी प्रकार नीचे गिरे। और (यम् उ) जिससे हम (द्विष्मः) द्वेष करें (तम् उ) उसको (प्राणः) प्राण (जहातु) त्याग दे।

परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥

भा०—(उखा चित्) जिस प्रकार डेगची (येषन्ती) उबलती हुई (प्रयस्ता) खूब सन्तप्त होकर (फेनम् अस्यति) फेन बाहर फेंकती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) सेनापते ! (उखा) शत्रुको उखाड़ कर फेंकने वाली सेना (येषन्ती) आगे बढ़ती हुई और (प्रयस्ता) अच्छी प्रकार

प्रयास, उद्यम या प्रहार करती हुई (फेनम्) शत्रुहिंसक शस्त्र को (अ-स्यति) शत्रु पर फेंके और (परशुं चित्) लोहार या अग्नि जिस प्रकार फरसे को तपाता है उसी प्रकार वह (परशुं) दूसरे शत्रुकी शीघ्रगामिनी सेना को (वि तपति) विविध उपायों से पीड़ित सन्तप्त करे । (शिम्बलं चित्) सेमर के वृक्ष, शाखा पुष्प वा पत्र के समान शत्रु को सुख से (वि वृश्चति) विविध उपायों से काटदे ।

न साय॑क॒स्य चिकिते जनासो लो॒धं न॑यन्ति॒ पशु॒ मन्य॑मानाः ।
नावा॑जिनं वा॒जिना॑ हासयन्ति॒ न ग॑र्द॒भं पु॒रो अश्वा॑न्नयन्ति ॥२३॥

भा०—(जनासः) जो मनुष्य (सायकस्य) शस्त्रादि के समान प्राणों का अन्त कर देने वाले विनाशक के सम्बन्ध में (न चिकिते) कुछ भी नहीं जानते। वे (मन्यमानाः) अभिमान करते हुए अपने आपको (लोधं पशु) लोभवश हुए पशु के समान आगे लेजाते हैं । (वाजिना) ज्ञानैश्वर्य से युक्त पुरुष से कभी (अवाजिनम्) अज्ञानी पुरुष को लाकर (न हासयन्ति) हँसी नहीं कराते । और बुद्धिमान् पुरुष (अश्वात् पुरः) घोड़े के समक्ष (गर्दभं न नयन्ति) गधे को उसके मुक़ाबले पर नहीं लाते । युद्ध में जिस प्रकार प्राणान्तकारी शस्त्र बल को न जानकर भी अभिमानी सैनिक अपने स्वामी के वेतन के लोभ में पड़कर अपने आपको आगे बढ़ाते हैं । उसी प्रकार मनुष्य प्रायः अपने अन्तकारी मृत्यु के विषय में वे कुछ न जान कर केवल अभिमान से अपने को भावी लोभ में पड़ कर आगे बढ़ाते हैं, परन्तु इतने से भी वे अज्ञानी को ज्ञानी के बराबर नहीं कर सकते अर्थात् वे अभिमान पूर्वक आगे बढ़ने से ज्ञानी नहीं हो जाते ।

इ॒म इ॑न्द्र भर॒तस्य॑ पु॒त्रा अ॑पपि॒त्वं चि॑कितु॒र्न प्र॑पि॒त्वम् ।
हि॒न्वन्त्यश्व॒मर॑णं॒ न नित्यं॒ ज्यावा॑जं॒ परि॑ णयन्त्या॒जौ ॥२४।२३।४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमे) ये (भरतस्य) अपने भरण

पोषण करने वाले स्वामी के (पुत्राः) पुत्र के समान भृत्य, सैनिक लोग (चिकितुः न) ज्ञानवान् पुरुष के समान (अपपित्वम्) दूर हो जाना, भागना या पीछे हटना और (प्रपित्वम्) आगे बढ़ना, अपयान और प्रयाण (हिन्वन्ति) करते हैं। और वे (अरणं) प्रेरित (अश्वं न) अश्व के समान (नित्यं) नित्य (आजौ) संग्राम-काल में (ज्यावाजं) धनुष की डोरी का घोष (परि नयन्ति) आगे पहुंचाते हैं। अथवा वे प्रयाण और अपयान, आगे बढ़ना और पीछे हटना दोनों कार्य (चिकितुः) जानें। (अश्वं हिन्वन्ति) अश्व-सैन्य को आगे बढ़ावें और (ज्यावाजं) शत्रुओं को मारने वाली धनुष की डोरी वा सेना के द्वारा किये जाने वाले बल-कार्य, संग्राम को आगे बढ़ावें। इति त्रयोविंशो वर्गः॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

[५४]

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः॥ विश्वे देवा देवताः॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। ९ भुरिक् पंक्तिः। १२ स्वराट् पंक्तिः। २, ३, ६, ८, १० ११, १३, १४ त्रिष्टुप्। ४, ७, १५, १६, १८, २०, २१ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। १७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १९, २२ विराट्त्रिष्टुप्॥

इ॒मं म॒हे वि॑द॒थ्या॑य शू॒षं शश्व॒त्कृत्व॒ ईड्या॑य॒ प्र ज॑भ्रुः।
शृणो॑तु नो द॒म्येभि॒रनी॑कैः शृ॒णोत्व॒ग्निर्दि॒व्यैरज॑स्रः॥ १॥

भा०—विद्वान् लोग (महे) बड़े आदरणीय (विदथ्याय) ज्ञान और संग्रामकार्य में कुशल (ईड्याय) परम पूजनीय वीर और ज्ञानी पुरुष के (शश्वत्) निरन्तर, सदा से सनातन (इमं शूषं) इस बल का सम्पादन (प्रजभ्रुः) किया करें। वह (अग्निः) अग्रणी नायक (कृत्वः) कर्त्ता होकर (दम्येभिः अनीकैः) दमन करने योग्य सेनाओं से युक्त हो, (नः) हमें (शृणोतु) सुने, हमारी प्रार्थनाएं सुने और (अग्निः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (दिव्यैः) दिव्य तेजों और सैन्यों से

(अजस्त्रः) कभी मारा न जाकर अहिंस्र, अविनाशी होकर (नः शृणोतु) हमारी सुना करे। 'शश्वत्-कृत्वः' इत्येकं पदम्, इति तैत्तिरीयब्राह्मणम् (१ । २८) तथाच सायणः । शश्वत् । कृत्वः । इति पदपाठः ।

महि॑ म॒हे दि॒वे अ॑र्चा पृथि॒व्यै कामो॑ म इ॒च्छञ्च॑रति प्रजा॒नन् ।
ययो॒र्ह॒ स्तोमे॑ वि॒दथे॑षु दे॒वाः स॑प॒र्यवो॑ मा॒दय॑न्ते॒ सचा॒योः ॥ २ ॥

भा०—(ययोः) जिन के (स्तोमे) स्तुति योग्य शासन में (विदथेषु) ज्ञानों और संग्रामों के निमित्त (सपर्यवः देवाः) सेवाकुशल विद्या और धन के अभिलाषी लोग (आयोः सचा) जीवन भर के सम्बन्ध से (मादयन्ते) प्रसन्न रहते हैं हे विद्वन् ! तू (प्रजानन्) ज्ञानवान् होकर उन (महे दिवे) बड़े तेजस्वी सूर्य और (महे पृथिव्यै) पूजनीय पृथिवी के समान तेजस्वी और सर्वाश्रय राजा रानी दोनों का (महि अर्च) बड़ा आदर सत्कार कर। उन दोनों में से (मे कामः) मुझ प्रजाकी अभिलाषा करने हारा (इच्छन्) राजा मुझे चाहता हुआ (चरति) विचरता है।

यु॒वोर्ऋ॒तं रो॑दसी स॒त्यम॑स्तु म॒हे षु णः॑ सुवि॒ताय॒ प्र भू॑तम् ।
इ॒दं दि॒वे नमो॑ अग्ने पृथि॒व्यै स॑प॒र्यामि॒ प्रय॑सा यामि॒ रत्न॑म् ॥३॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के उपकारक स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों को (ऋतम्) एक दूसरे को प्राप्त होने का कारण ज्ञान और धन, आचरण सब (सत्यम् अस्तु) सत्य हो, परस्पर मिथ्याचार, मिथ्या ज्ञान न हो। (नः) हमारे बीच आप दोनों (महे सुविताय) बड़े भारी ऐश्वर्य की प्राप्ति और (सु-इताय) पूजनीय आचार और सुखप्राप्ति के लिये (प्र सु भूतम्) अच्छी प्रकार उत्तम होकर रहो। हे (अग्ने) विद्वन् ! (इदं) यह (नमः) आदर वचन, अन्न आदि (दिवे) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष और (पृथिव्यै) पृथिवी के समान आश्रय सर्वोत्पादक वा उत्तम सन्तानजनक माता के लिये भी हो। मैं उन

दोनों की (प्रयसा) अन्नादि से वा प्रयत्नपूर्वक (सपर्यामि) सेवा करूं और उनसे मैं (रत्नम्) उत्तम धन और रमण करने योग्य सुख सामग्री की (यामि) पुत्रवत् याचना करूं, प्राप्त करूं।

उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋतावरी) सदा सत्य ज्ञान, सत्याचरण और धनैश्वर्य के स्वामी (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले वा प्रजाजनों को धारा को तटों के समान व्यवस्था में रखने वाले और सत्योपदेश करने वाले विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (उतो हि) निश्चय से (पूर्व्याः) पूर्व के विद्वानों में कुशल (सत्यवाचः) सत्य वाणी वाले ऋषि लोग (वां) आप दोनों को (आविविद्रे) आदरपूर्वक प्राप्त करें। हे (पृथिवि) सबके आश्रय और उत्पादक पृथिवी के समान पूज्य देवि ! और (शूरसातौ) शूरवीर पुरुषों के प्राप्त करने योग्य (समिथे) संग्राम में (नरः चित्) सभी उत्तम नेता लोग (वां वेविदानाः) आप दोनों को प्राप्त करते हुए सदा (ववन्दिरे) स्तुति और अभिवादन करें।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(इह) इस संसार में (अद्धात्) साक्षात् सत्य, यथार्थ (कः वेद) कौन जानता है और (कः) कौन (देवान्) विद्वान् और ज्ञान कामना करने वाले शिष्यों को (प्र वोचत्) प्रवचन द्वारा उपदेश करता है। (का) कौनसा (पथ्या) सन्मार्ग (सम् एति) भली प्रकार उद्देश्य तक पहुंचता है। ज्ञाता, प्रवक्ता और सन्मार्ग सभी दुर्लभ हैं। (परेषां) पर, सर्वोत्कृष्ट परम सूक्ष्म (गुह्येषु) गुहा अर्थात् बुद्धि द्वारा जानने योग्य गूढ़ (व्रतेषु) कर्मों में (या) जो (अवमा) अन्तिम चरम आधार-

भूत (सदांसि) आश्रय-स्थान, शरण, [विद्यास्थान वा शास्त्रसिद्धान्त हैं वे (एषाम्) इन विद्वानों को ही (ददृश्रे) दिखाई देते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतस्य योनौ) जलके आश्रयस्थान महान् आकाश में स्थित (नृचक्षाः) सबका द्रष्टा सूर्य (विघृते) विशेष रूप से प्रकाशमान्, विविध रूप से जलों को धारण करने वाली, (मदन्ती) उससे तृप्त करने वाले आकाश और पृथिवी दोनों को (अभि अचष्ट सीम्) सब प्रकार से प्रकाशित करता है (वेः सदनं यथा नाना चक्राते) पक्षी के घोंसले के समान वे दोनों गतिशील व्यापक सूर्य के गृहके समान गमन-स्थान बना रहे हैं और (समानेन क्रतुना) एक जैसे कर्म, वृष्टि, जलदानादि, प्रजापालन आदि कार्य से (संविदाने) परस्पर एक दूसरे के साथ मिले रहते हैं उसी प्रकार (ऋतस्य योनौ) परम सत्कार के आश्रय में विद्यमान (विघृते) विशेष या विभिन्न २ प्रकार से ज्ञान और भौतिक तेज से प्रकाशित होने वाले (मदन्ती) एक दूसरे से या को सुख से तृप्त करते हुए जीव और प्रकृति को (कविः) क्रान्तदर्शी (नृचक्षाः) सब जीवों का द्रष्टा परमेश्वर (सीम्) सब प्रकार से (अभिचष्ट) साक्षात् देखता है। वे दोनों ही (वेः) गतिशील व्यापक आत्मा के और (समानेन क्रतुना) समान कर्म और ज्ञान से (संविदाने) मिल कर (नाना सदनं) नाना प्रकार के स्थान या गृह के समान (चक्राते) बनाते हैं। (२) इसी प्रकार सत्य व्यवहार और ऐश्वर्य से सम्पन्न एक गृह में रहते हुए विशेष तेज से युक्त, हृष्ट, प्रसन्न होते हुए स्त्री-पुरुष जो दोनों आदरपूर्वक समान कर्म और ज्ञान से परस्पर मिल कर रहते हुए (वेः) विद्वान् पुरुष के लिये अपनेको नाना प्रकार से आश्रय बनावें। और उनको

वह क्रान्तदर्शी विद्वान् सब मनुष्यों का उपदेष्टा और द्रष्टा होकर सब प्रकार से उपदेश दे।

स॒मा॒न्या वियु॑ते दू॒रेऽअ॑न्ते ध्रु॒वे प॒दे त॑स्थतु॒र्जाग॒रूके॑ ।
उ॒त स्वसा॑रा युव॒ती भव॑न्ती॒ आदु॑ ब्रुवाते मिथु॒नानि॒ नाम॑ ॥ ७ ॥

भा०—पुनः स्त्री-पुरुषों के स्वभाव कैसे हों ? (समान्या) वे दोनों समान होकर एक दूसरे को प्रसन्न, तृप्त करने वाले, (वियुते) विशेष रूप, भिन्न प्रकृति होकर भी परस्पर संगत, (दूरे-अन्ते) दूर रहकर भी हृदय में बसने से समीप, अथवा (दूरे-अन्ते) दूर चिरकाल के जीवन तक अवसान करने वाले होकर (ध्रुवे पदे) स्थिर स्थान में (जागरूके) सदा जागृत, सावधान होकर (तस्थतुः) रहें। वे दोनों (युवती) युवावस्था को प्राप्त (स्वसारा) स्वयं एक दूसरे को प्राप्त होने वाले अथवा बहिन बहिन या बहिन भाई के समान परस्पर प्रेमयुक्त (भवन्ती) रहते हुए (आत्) तदनन्तर (मिथुनानि नाम) परस्पर मिलकर रहने वाले जोड़ों २ के नाम (ब्रुवाते) कहते हैं, बतलाते हैं। अर्थात् नाना युगल नामों को धारण करते हैं।

विश्वेदे॒ते जनि॑मा॒ सं वि॑विक्तो म॒हो दे॒वान्बिभ्र॑ती॒ न व्य॑थेते ।
एज॑द्ध्रु॒वं प॑त्यते॒ विश्व॒मेकं॒ चर॑त्पत॒त्रि विषु॑णं॒ वि जा॒तम् ॥ ८ ॥

भा०—(एते) वे दोनों, आकाश और पृथिवी के समान स्त्री और पुरुष (विश्वा इत् जनिम) सभी प्रकार के प्राणियों का (संविविक्तः) सम्यक् रीति से विवेचन करें, अथवा (विश्वा जनिमा सं विविक्तः) अपने समस्त पूर्व के जन्मों का अच्छी प्रकार विवेक करें। वे दोनों (महः देवान्) बहुत से दिव्य गुणों, विद्वान् पुरुषों को (बिभ्रती) धारण व पोषण करते हुए भी (न व्यथेते) कभी उद्विग्न, व्यथित या दुखी न हों। (एकम्) एक को तो (विश्वं) यह समस्त (एजत् ध्रुवं) जंगम

और स्थावर (पत्यते) प्राप्त होता है, और दूसरे को (पतत्रि) वेग से जाने वाला, (विपुणम्) सर्वत्र व्याप्त (जातम्) उत्पन्न संसार (विचरत्) विविध रूप से विचरता है या प्राप्त होता है। जैसे पृथिवी में स्थावर जंगम और आकाश में नाना पक्षिगण रहते हैं उसी प्रकार स्त्री का सब स्थावर सम्पत्ति और पशु आदि प्राप्त हों और पुरुष को शेष बाह्य सांसारिक धन्धे हों।

सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः॥ ९॥

भा०—(यत्र) जिसमें (पनितारः) व्यवहार स्तुति और उपदेश करने वाले।(देवासः) ज्ञानदाता विद्वान् जन वा कामनाशील पुरुष भी (एवैः) अपने ज्ञानों सहित (उरौ) बड़े भारी (व्युते पथि) निरावरण, खुले, विस्तृत वा विविध तन्तु सन्तानों से बने हुए मार्ग में रहकर (अन्तः तस्थुः) भीतर गृह में अतिथिवत् विराजते हैं। मैं उस (सना) सनातन, (पुराणम्) अति प्राचीन (नः) अपने (तत्) उस परम (महः) महान् पूजनीय, (पितुः जनितुः जामि) पालक और उत्पादक माता पिताओं के परस्पर सम्बन्ध को (अधि एमि) सदा याद रक्खूं। प्रत्येक विवाहित स्त्री, पुरुष अपने माता पिताओं के स्थिर दाम्पत्य भाव के उस पवित्र सम्बन्ध को स्मरण रक्खा करें जिससे सभी कामनावान् वा विद्वान् जन बड़े संसार मार्ग पर चलते हुए भी उस ज्येष्ठ गृहस्थाश्रम के भीतर वा ऊपर आश्रित होकर गृह के समान रहते हैं। उस आश्रम की महत्ता को जान कर स्त्री पुरुष स्थायी रूप से दाम्पत्य निभावें।

इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः १०।२५

भा०—हे (रोदसी) आकाश और भूमि के समान परस्पर उपकारक,

एक पर एक आवरण, या रक्षा करने हारे, एक दूसरे को रोकने, एक दूसरे की इच्छा से प्राप्त होने वाले स्त्री पुरुषो! मैं आप दोनों के कर्त्तव्य-विषय में ही (इमं स्तोमं) इस वेदोपदेश को (प्रब्रवीमि) अच्छी प्रकार उपदेश करता हूं। और (ऋदूदराः) सत्य को अपने भीतर धारण करने वाले अथवा (ऋदूदराः = मृदूदराः) भीतर से कोमल हृदय वाले, (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि के तुल्य अपने प्रकाश से अज्ञान अन्धकार में भी प्रकाशित करने वाली ज्ञानमयी वाणी को धारण करने वाले (सम्राजः) एक साथ विराज कर समान कान्ति से शोभा देने वाले, (युवानः) युवा, तरुण (आदित्यासः) सूर्यवत् तेजस्वी, अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले, (कवयः) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, ज्ञान और ऐश्वर्य का दान प्रतिदान करने वाले वा व्रत, दीक्षादि को धारने वाले, (पप्रथानः) प्रसिद्धि, सेवा, सन्तति द्वारा विस्तृत होने वाले और (मित्रः वरुणः) परस्पर मित्र, स्नेह भाव से रहने और एक दूसरे को वरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष स्त्री भी (शृणवत्) इस वेदोपदेश को श्रवण करें। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११॥

भा०—हे (सवितः) ज्ञान और वीर्य द्वारा शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न करने हारे विद्वान् पुरुष ! एवं (सवितः) हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! आप (देवेषु) विद्या और सुख की कामना करने वाले शिष्यों और पुत्र-जनों के हित के निमित्त अथवा देवों, विद्वानों में विद्यमान, (श्लोकम्) वेद-वाणी वा ज्ञान-वाणी को (अश्रेः) सेवन कर, उसका अभ्यास कर और (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (सर्वतातिम्) सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य (आसुव) प्रदान कर। (सविता) सर्वप्रकाशक सूर्य जिस प्रकार (हिरण्यपाणिः) हाथों के समान तेजोयुक्त किरणों वाला होने से 'हिरण्यपाणि' है उसी प्रकार तेजोमय धातु 'हिरण्य' को अपने

हाथ में रखने वाला या उस धातु से लोक-व्यवहार करने में समर्थ वा हित और रमणीय वचनों को प्रस्तुत करने वाली वाणी से युक्त ही (सविता) शिष्य पुत्रादि का उत्पादक विद्वान् आचार्य और पिता हो जो (सुजिह्वः) उत्तम वाणी वाला होकर (दिवः विदथे) ज्ञान प्रकाश के लाभ करने में (त्रिः) तीनों प्रकार से या ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों कालों में वा बाल, युवा, वार्धक्य तीनों दशाओं में (पत्यमानः) पति अर्थात् पालक के समान आचरण करता हो। (२) इसी प्रकार सविता पुत्रोत्पादक पिता या पुरुष भी स्त्री का पति होता हुआ धन धान्यवान्, उत्तम मधुर वाक्, दिन में तीन बार यज्ञ में विराजे। प्रातः सायं और मध्याह्न में बलिवैश्वदेव यज्ञ में वेद का अभ्यास करे और सब सुखप्रद पदार्थ लावे।

सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥

भा०—(सुकृत्) उत्तम कार्य करने वाला और कर्मों को उत्तम रीति से करने वाला, (सुपाणिः) उत्तम हस्त वाला, सिद्धहस्त उत्तम पूजनीय व्यवहार और स्तुति वचनों वाला, (स्ववान्) धनैश्वर्य से युक्त और आत्मसामर्थ्य से युक्त, आत्मवान् जितेन्द्रिय (देवः) तेजस्वी, दाता (त्वष्टा) सूर्य, विद्युत् के समान प्रकाशक होकर पुरुष (नः) हमारे (अवसे) ज्ञान, रक्षा और तृप्ति के लिये (तानि) वे नाना प्रकार के पदार्थ (धात्) धारण करावे। हे (ऋभवः) ऋत सत्य वा धनैश्वर्य से प्रकाशित और सामर्थ्ययुक्त होने वाले, अति तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पूषण्वन्तः) पूषा, पृथिवी, वा नाना पोषक पदार्थों के पालक नायकों से युक्त होकर (मादयध्वम्) हमें प्रसन्न करो। (ऊर्ध्व-ग्रावाणः) उपदेष्टा पुरुष को सब से ऊंचा रखने वाले और ग्रावा अर्थात् क्षत्रिय को अपने ऊपर नायक वा अध्यक्ष नियत करने वाले प्रजाजन ही (अध्व-

रम्) अपने में हिंसारहित, शान्तिमय व्यवस्थित समाज को (अतष्ट) बनावें ।

विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥

भा०—(विद्युत्-रथाः) विद्युत् शक्ति से युक्त रथ वाले वा विद्युत् के समान वेग से जाने वाले, (मरुतः) वायुवत् बलवान् (ऋष्टिमन्तः) नाना ज्ञान, गतियों वा शत्रुहिंसक शस्त्रों को धारण करने वाले, (दिवः मर्या) तेजस्वी सूर्य के समान नायक सेनापति एवं कामनावान् पुरुष के अधीन मनुष्य, शत्रुमारक (ऋतजाताः) ज्ञान और धनादि से प्रसिद्ध, (अयासः) ज्ञानवान्, निरन्तर चलने वाले, (यज्ञियासः) परस्पर सत्संग मैत्री आदि करके रहने वाले (तुरासः) वेगवान् पुरुष और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री और वेगवती सेना ये सभी (शृणवन्) सुनें, ज्ञान ग्रहण किया करें और (सहवीरं रयिम्) वीर पुरुषों एवं पुत्रादि से युक्त ऐश्वर्य को (धात) धारण करें ।

विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥

भा०—(स्तोमासः) स्तुतिशील, विद्वान् (अर्काः) सूर्य के समान तेजस्वी और स्तुतिकर्त्ता लोग (भगस्य इव कारिणः) धन के निमित्त कार्यकर्त्ता भृत्य लोगों के समान (पुरुदस्मम्) बहुत से विघ्नों और दुष्ट पुरुषों को नाश करने में समर्थ (विष्णुम्) व्यापक, विस्तृत सामर्थ्य वाले पुरुष को (यामनि) राज्य के नियंत्रण के कार्य में (ग्मन्) प्राप्त करें (यस्य) जिस (उरुक्रमः) महान् आरम्भ वाले, पराक्रमी पुरुष की (ककुहः) सर्व दिशावासी बड़ी २ प्रजाएं भी (पूर्वीः) पूर्ण, समृद्ध वा अपने से पूर्व विद्यमान रहकर भी (युवतयः जनित्रीः) युवती स्त्रियों के सम.न (न मर्धन्ति) पीड़ित नहीं करतीं ।

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५॥२६

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (विश्वैः वीर्यैः) सब प्रकार के बलों से (पत्यमानः) ऐश्वर्यवान् स्वामी पति के समान होता हुआ (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (आ पप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करे । वह (पुरंदरः) शत्रुके गण को तोड़ने और अपने पुर को धारने वाला (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों का नाशक (धृष्णु षेणः) शत्रु पराजयकारी सेना का स्वामी होकर तू (नः) हमें (संगृभ्य) अच्छी प्रकार संग्रह करके (भूरि पश्वः आभर) बहुत पशु सम्पदा प्रदान कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥

भा०—(मे) मुझ प्रजाजन के (पितरौ) पिता के समान राजा और सेनापति और गृह में वर और वधू, पति और पत्नी अपनी प्रजा का पालन करने वाले हों, वे दोनों (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले और मुख पर नाक के समान राष्ट्र में अग्रगण्य पद पर विराजमान हों और (बन्धु पृच्छा) सब मनुष्यों को बन्धु के तुल्य जान कर उनके सुख दुःख पूछने वाले हों । वे दोनों (अश्विनोः) सूर्य चन्द्र वा दिन और रात्रि दोनों के (चारु नाम) उत्तम स्वरूप के तुल्य (सजात्य) जाति के अनुरूप ही नाम, रूप धारण करते हुए (युवं) तुम दोनों (नः) हमें (रयिदौ स्थः) ऐश्वर्य के देने वाले रहो । तुम दोनों (अकवैः) अकुत्सित उत्तम कर्मों से (अदब्धा) कभी पीड़ित न होते हुए (रयीणां दात्रं) ऐश्वर्यों के दान कर्म की (रक्षेथे) रक्षा करो ।

महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥

भा०—हे (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह (महत्) बड़ा (चारु) उत्तम (नाम) स्वरूप और नाम है (यत्) जो (विश्वे) आप सब लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्य-युक्त राजा के अधीन रहकर वा (इन्द्रे) अज्ञान-नाशक आचार्य के अधीन रहकर (देवाः भवथ) धन और विद्या एवं विजय की कामना-वान् हो। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसनीय ! तू (प्रियेभिः) प्रिय (ऋभुभिः) सत्य, ज्ञान वा धनों से समर्थ और प्रकाशित पुरुषों वा शिष्यों सहित (सखा) सबका सुहृत् होकर रह। हे विद्वानो ! हे वीरो ! तुम लोग (नः) हमें (इमां धियं) इस उत्तम बुद्धि वा धारणीय वाणी को (सातये) सत्यासत्य के विवेक और धनादि लाभ के लिये (तक्षत) प्रकट करो।

अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः॥१८॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (यज्ञियासः) यज्ञ करने वाले, परस्पर दान, मैत्री, पूजादि करने वाले होओ और (नः) हमारा (अर्यमा) सूर्य के समान तेजस्वी शत्रु को वश करने वाला, न्यायाधीश वा राजा (अदितिः) अखण्ड शासक वा माता पिता के तुल्य हो। (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ पुरुष के (व्रतानि) कर्म, नियम भी (अदब्धानि) हिंसित न हों। आप सब लोग (नः) हमारे (गन्तोः) गमन करने योग्य मार्ग से (अनपत्यानि) हमारे सन्तानों के अयोग्य पापादि कर्मों को (युयोत) दूर करो। (नः) हमारा (गातुः) भूमि और गृह (प्रजावान्) प्रजाओं से युक्त और (पशुमान् अस्तु) पशुओं से समृद्ध होवे।

देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम्॥१९॥

भा०—(देवानां) देव, ज्ञानों का प्रकाश करने और ऐश्वर्यों क

दान करने और तेजस्वी प्रकाशमान् पदार्थों के बीच में (दूतः) प्रतापी ज्ञानवान् (पुरुध) बहुत से ज्ञानों, धनों को धारण करने वाला, (प्रसूतः) उत्तम ऐश्वर्यवान्, उत्तम ज्ञानादि से अभिषिक्त होकर (अनागान् नः) अपराधों से रहित हम लोगों को (सर्वताता) सब प्रकार से (वोचतु) उपदेश करे। (पृथिवी) पृथिवी के समान माता, (द्यौः) आकाश के समान पिता, (सूर्यः) सूर्य के समान विद्वान् पुरुष, (नक्षत्रैः) नक्षत्रों सहित (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष के समान नित्य गुणों से विराजमान प्रभु (उत आपः) और जलों के समान शान्त स्वभाव के आप्तजन ये सब (नः) हमारी बात (शृणोतु) श्रवण करें। अथवा पृथिवी के समान सर्वाश्रय सर्वोत्पादक, आकाश के समान महान्, जलों के समान शान्तिदायक, सर्वव्यापक सूर्य के समान तेजस्वी, नक्षत्रों सहित अन्तरिक्ष के तुल्य अल्प-वीर्य जीवों वा व्यापक नित्य गुणों सहित सर्वान्तर्यामी परमेश्वर वा नक्षत्रवत् अधीन भृत्यों वा प्रदीप्त गुणों सहित राजा वा न्यायाध्यक्ष हमारे कार्य-व्यवहार श्रवण किया करे और न्याय किया करे।

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०॥

भा०—(वृषणः) मेघों के समान जलवत् सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाले, (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल प्रजाओं का पालन करने वाले वा अर्थिजनों की कामनाओं को मेघों के तुल्य पूर्ण करने वाले, (ध्रुवक्षेमासः) स्थिर होकर रक्षा करने वाले, उच्च स्वभाव वाले (इळया) उत्तम वाणी, भूमि और कामना से (मदन्तः) स्वयं हर्षित एवं प्रसन्न होने वाले विद्वान् जन (नः शृण्वन्तु) हमारे व्यवहार श्रवण करें। (अदितिः) माता पिता के तुल्य अखण्ड शासन वाला राजा (आदित्यैः) अपने अधीन शासकों सहित (शृणोतु) कार्य श्रवण

करे। (मरुतः) विद्वान् शत्रुहन्ता वीर लोग (नः) हमें (भद्रम्) सुखकारक (शर्म) गृह (यच्छन्तु) प्रदान करें।

सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त। भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥

भा०—राष्ट्र में हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (पन्थाः) मार्ग (सदा) सदा (सुगः) सुखपूर्वक जाने योग्य और (पितुमान्) अन्न जल आदि प्राणपालक पदार्थों से युक्त (अस्तु) हो। अथवा (पितुमान् पुरुषः सदा सुगः पन्था इव अस्तु) अन्न का स्वामी, अन्नदाता पुरुष सदा सुखपूर्वक सबसे प्राप्त होने योग्य मार्ग के समान होना चाहिये। हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मध्वा) अन्न, जल और मधु के साथ (ओषधीः) ओषधियों को (संपिपृक्त) मिलाकर उपयोग करो अथवा (मध्वा सह ओषधीरिव यूयं संपिपृक्त) अन्न, जल वा शहद के साथ ओषधियां जिस प्रकार मिलकर अधिक गुणकारी होती हैं उसी प्रकार आप लोग भी मधुर वचनों सहित प्रजाजनों के साथ सम्पर्क करो। (मे भगः) मेरा ऐश्वर्य हो। हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक ! (मे सख्ये) मेरे साथ मित्रता करने पर तू (न मृध्याः) मुझे नष्ट मत कर। स्वयं भी नष्ट न हो। मैं प्रजाजन (पुरुक्षोः) बहुत अन्न के स्वामी तेरे (रायः) ऐश्वर्यों और (सदनं) गृह या शरण को (उत् अश्याम्) उत्तम रीति से प्राप्त करूं और उपभोग करूं। अथवा हे अग्रणी नायक ! तेरी (सख्ये) मित्रता में (मे भगो न मृध्याः) मेरा ऐश्वर्य नष्ट न हो।

स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि। विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः॥२२॥२७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान स्वयं प्रकाशक ! एवं प्रतापिन् ! तू (हव्या) खाने योग्य और स्वीकार करने योग्य उत्तम २

(श्रवांसि) अन्नों को (स्वदस्व) स्वाद ले, उपभोग कर। और तू (हव्या) ग्रहण करने योग्य (श्रवांसि) श्रवण करने योग्य उत्तम २ वचन उपदेश (इषः) उत्तम कामनाएं और इच्छाएं वृष्टि, अन्नादि और शक्ति (सं दिदीहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर उनको (सं मिमीहि) भली प्रकार हमें उपदेश कर। तू (पृत्सु) संग्रामों में (तान् विश्वान्) उन २ समस्त शत्रुओं को (जेषि) विजय कर। (सुमनाः) शुभ चित्त और पूज्य ज्ञान से युक्त होकर (विश्वा अहा) सब दिनों (नः दीदिहि) हमें प्रकाशित कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[५५]

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ उषाः। २—१० अग्निः। ११ अहोरात्रौ। १२—१४ रोदसी। १५ रोदसी द्यानिशौ वा। १६ दिशः। १७—२२ इन्द्रः पर्जन्यात्मा, त्वष्टा वाग्निश्च देवताः ॥ छन्दः— १, २, ६, ७, ९—१२, १६, २२ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ८, १३, १६, २१ त्रिष्टुप्। १४, १५, १८ विराट्त्रिष्टुप्। १७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ५, २० स्वराट् पंक्तिः ॥

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (गोः पदे) आदित्य सूर्य के रूप में (महत् अक्षरं विजज्ञे) बड़ा भारी अविनाशी सामर्थ्य प्रकट होता है (यत्) जिससे (अध) अनन्तर (पूर्वाः उषसः वि ऊषुः) पूर्वकाल की अनादि परम्परा से होने वाली उषाएं भी प्रकट होती रही हैं। और (देवानां) अग्नि विद्युत् आदि चमकने वाले पदार्थों और मेघादि जीवनप्रद पदार्थों के तथा जीवन, भोगादि के कामना वाले जीवों के भी सब (व्रता) कर्म (उप प्र भूषन्) उसी से होते रहते हैं वह (देवानाम्) सब दिव्य पदार्थों

का (एकम्) एक (महत्) बड़ा भारी (असुरत्वम्) प्राणों में रमने वाला, प्राणप्रद सामर्थ्य है। उसी प्रकार (गोः पदे) वाणी के ज्ञान में (महत् अक्षरं) बड़ा भारी अविनश्वर ब्रह्म का ज्ञान प्रकट होता है (यत्) जिससे (पूर्वा उषसः वि ऊषुः) पूर्व या उपासक को प्रिय लगने वाली कान्तियां या ज्ञान-दीप्तियां प्रकट होती हैं। जिस वाणी या अक्षर रूप ब्रह्म से (देवानां) अध्यात्म में प्राणों और विद्वानों के समस्त कर्म भी प्रकट होते हैं। वही विद्वानों का एक बड़ा भारी (असुरत्वम्) प्राणों के भीतर रमनेवाला अद्वितीय ब्रह्म है।

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदुज्ञाः।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् कामनावान् और विजयादि के इच्छुक लोग अथवा मदमत्त, विलासी और आलसी लोग (अत्र) इस लोक में (नः) हम पर (मो सु जुहुरन्त) कभी बलात्कार न करें। हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष! हे विद्वन्! (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, (पितरः) पालक (पदज्ञाः) प्राप्तव्य उत्तम पद को जानने वाले पुरुष भी हम पर (मा जुहुरन्त) प्रहार वा बलात्कार न करें। (पुराण्योः सद्मनोः अन्तः) सनातन से चले आये आकाश और भूमि के समान राजसभा और प्रजा-जनसभा दोनों सभा-भवनों (Houses) के बीच (केतुः) कार्य-व्यवहारों के जानने और जनाने हारे सूर्य वा ध्वजा के समान तेजस्वी और उच्च आदर पद पर स्थित माननीय पुरुष ही (देवानां) सब विद्वानों के बीच (एकम्) एकमात्र (असुरत्वम्) बलवान् पुरुषों के शौर्य का (महत्) सबसे बड़ा अद्वितीय उपलक्षण हो। जो सब में जीवन-ज्योति और उत्साह का देने वाला हो।

वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३ ॥

भा०—(मे) मेरी (कामाः) नाना अभिलाषाएं (पुरुत्रा) आत्मा को तृप्त एवं प्रिय, भोग्य-सुखों द्वारा प्रसन्न करने वाली इन्द्रियों वा बहुत से प्रिय पदार्थों में (वि पतयन्ति) विविध रूपों से जाती हैं। तो भी मैं अभिलाषाओं के पीछे न भाग कर (पूर्व्याणि) पूर्व विद्वानों द्वारा आचरित और उपदेश किये गये कर्मों को (अच्छ) साक्षात् (दीद्ये) करके प्रकाशित होऊं। उनका ही आचरण करूं। हम लोग (समिद्धे अग्नौ) अग्रणी नायक के अच्छी प्रकार तेजस्वी ज्ञानवान् रूप में प्रकट होने पर, उसके प्रकाश में रहकर सदा (ऋतम्) उस सत्य आचार और ज्ञान और परमेश्वर तत्व का (वदेम) उपदेश करें जो (देवानाम्) विद्वानों के लिये (महत्) बड़ा भारी (एकम्) एक अद्वितीय (असुरत्वं) प्राणों में बल उत्पन्न करने वाला है। (२) स्थूलार्थ में—अग्नि के समक्ष हम सत्य प्रतिज्ञा करें, सत्य कहें। यह भाव भी टपकता है।

स॒मा॒नो राजा॒ विभृ॑तः पुरु॒त्रा शये॑ श॒यासु॒ प्रयु॑तो॒ वनानु॑।
अ॒न्या व॒त्सं भर॑ति॒ क्षेति॑ मा॒ता म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (राजा) प्रकाशमान् सूर्य सर्वत्र (समानः) समान भाव से प्रकाशित होने वाला, (शयासु) अव्यक्त रूप में व्यापक दिशा में (शये) व्यापता है। (वना अनुप्रयुतः) किरणों के अनुसार सब दिशाओं में फैलता, विभक्त होता, आकाश और भूमि दोनों में से एक (द्यौः) माता के समान उसको (भरति) अपनी कोख में धारण करती (क्षेति) एक उसके साथ रहती है अर्थात् प्रकाश लेती है। वह सब (देवानां) तेजस्वी पिण्डों के बीच एक अद्वितीय बड़ा भारी अन्धकार को दूर करने वाला बल है और जिस प्रकार अग्नि प्रकाशमान्, नाना पदार्थों में विद्यमान शान्त जलादि पदार्थों में अप्रकट रूप से मानो सोता सा है, (वना अनु प्रयुतः) काष्ठों में विशेष रूप से प्रकट होता, उसको

एक द्यौ या सूर्य धारण करता, माता पृथिवी उसको अपने भीतर रखती, इसी प्रकार (राजा) राजा, सबमें तेजस्वी और प्रजा को अनुरंजन करने वाला, (समानः) समस्त प्रजाओं में सबके प्रति एक समान व्यवहार करने हारा, मान आदर और ज्ञानसम्पन्न (पुरुत्रा) नाना प्रजाओं के बीच (विभृतः) विविध प्रकार से धारण किया जाता है। वह (शयासु) सोती हुई पत्नियों में पति के तुल्य ही (शयासु) प्रसुप्त या शान्तभाव से विद्यमान प्रजाओं के बीच में (शये) स्वयं भी प्रसुप्त या शान्तभाव से रहे। और वह (वना अनु) ऐश्वर्यों के अनुसार वन के तुल्य विभक्त सैन्य-दलों के ऊपर नायक रूप में (प्रयुतः) सर्वोपरि नियुक्त हो। उसके नीचे दो सभाएं हों जिनमें से (अन्या) एक उस (वत्सं) वन्दना करने योग्य, पूज्य सभापति को (वत्सं) बालक को माता बछड़े को गाय के समान (भरति) पुष्ट करती है। दूसरी (माता) प्रजाजन सभा वा भूवासिनी प्रजा उसको (क्षेति) बसाती है। वह (देवानां) तेजस्वी राजाओं वा वीरों के बीच में (एकं महद् असुरत्वम्) एक बड़ी भारी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सत्ता है। अथवा— वह राजा ही (अन्या) अन्य विमाता के समान भी प्रजा को पुत्र के समान (भरति-हरति) पोषण भी कर सकता है वा लूट भी सकता है, और वही (माता) असली माता के समान प्रजा रूप पुत्र को (क्षेति) बसा भी सकता है। (२) परमात्मपक्ष में—परमेश्वर, सज्ज्ञान वा सर्वत्र समान भाव से व्यापक, जीवों में भी व्यापक, शया अर्थात् प्रसुप्त अव्यक्त प्रकृति विकारों में भी अव्यक्त रूप से व्यापक होकर (वना अनु) नाना ऐश्वर्य विभूतियों में भिन्न रूप से प्रकट होता है। उस (वत्सं) व्यापक को चित्प्रकृति भी धारण करती है और (माता) जगदुत्पादक प्रकृति उसके साथ निवास करती है। वह परमेश्वर सब देवों, जीवों के बीच सबसे बड़ा एक अद्वितीय, जीवनप्रद, प्राणों का प्राण, सर्वसंहारक परम तत्व है।

आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥२८॥

भा०—जो राजा (पूर्वासु) पहले प्राप्त हुई प्रजाओं के बीच (आक्षित्) आदरपूर्वक निवास करता है, और (अपराः) वह अन्य प्रजाओं को भी अपने वश करने की नित्य कामना करता है, वह (सद्यः) शीघ्र ही नयी (जातासु) प्राप्त हुई प्रजाओं में और (तरुणीषु) तरुण अर्थात् अपनी समृद्धि शक्ति से पूर्ण प्रजाओं के (अन्तः) बीच रहे जो प्रजाएं (अप्रवीताः) अभी अच्छी प्रकार रक्षित भी नहीं हैं वे भी (अन्तर्वतीः) राष्ट्रसीमा के भीतर होकर (सुवते) ऐश्वर्य से युक्त हो जाती हैं। यह सब (देवानाम्) विद्वान् विजयी पुरुषों का ही (एकम्) एकमात्र (असुरत्वम्) शत्रु को उखाड़ फेंकने का (महत्) बड़ा भारी सामर्थ्य है जिससे उक्त बातें होती हैं। (२) परमेश्वरपक्ष में—परमेश्वर पहली, पिछली, नवजात, तरुण, अन्तर्वत्नी, गर्भिणी और कुमारी सब प्रजाओं में व्यापक और सबको उपदेश करता है। यह परमेश्वर का ही महान् प्राण जीवनप्रद सामर्थ्य है कि जो पहले अप्रवीत अर्थात् पुरुष से असंसृष्ट रहती हैं वे भी बाद में संसृष्ट होकर गर्भवती होकर पुत्रादि प्रसव करती हैं। यह देवों के बीच वही एक प्राणप्रद सामर्थ्य है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—राजा (द्विमाता) राजसभा और प्रजा-सभा दोनों को मातृवत् उत्पादक रखकर (परस्तात्) परे, दूर देश में भी (द्विमाता वत्सः एकः) दो माता पिता के बीच एक बच्चे के समान विना प्रतिबन्ध के विचरे। अथवा 'द्विमाता' एक ज्ञान कराने वाली माता राजसभा दूसरी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेना दोनों का स्वामी अथवा स्वराष्ट्र परराष्ट्र, मित्र शत्रु दोनों का मापने वाला, दोनों

को अपने वश करने वाला राजा दूर देश में भी (शयुः) सुखपूर्वक शयन करता हुआ निर्बन्ध होकर विचर सकता है। (मित्रस्य वरुणस्य) सब प्रजा के मित्र, प्रजा को मरण से बचाने वाले सर्वश्रेष्ठ, सर्वशत्रुवारक, सबसे प्रेमपूर्वक वरण करने योग्य पुरुष के (ता व्रतानि) वे नाना कर्म वह सब (देवानाम् एकम् महत् असुरत्वम्) विजयकामी, वीरों का एक अद्वितीय शत्रुच्छेदक बल है। (२) परमेश्वर पक्ष में—(परस्तात्) हमारे ज्ञानेन्द्रियों वा मन वाणी से परे अव्यक्त रूप में विद्यमान है। प्रकृति और जीव दोनों का जानने वा माता के समान अपने गर्भ में रख कर उनको प्रकट करने हारा है। वह स्वयं (अबन्धनः) बन्धनरहित है। (वत्सः) स्तुति, अभिवादन करने योग्य, परमपूज्य होकर (एकः) अद्वितीय व्याप रहा है। उस सर्वस्नेही, सर्वश्रेष्ठ के नाना अद्भुत कर्म हैं। वह परमेश्वर अद्वितीय, महान् सञ्चालक बल वाला है।

द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७ ॥

भा०—(द्विमाता) भूमि और आकाश दोनों इह और पर-दोनों लोकों का बनाने वाला, (होता) सबको अपने में धारण करने और सब ऐश्वर्यों का देने वाला, (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों और विज्ञान करने योग्य पृथिव्यादि लोकों में (सम्राट्) सम्राट् के समान सब का स्वामी (बुध्नः) सबका आधार होकर (अनु अग्रम्) हरेक पदार्थ की चोटी २ और फुनगी तक में (चरति) विद्युत् के समान व्यापता और (क्षेति) निवास करता है। उसी को लक्ष्य करके (रण्यवाचः) रमणीय वाणी वाले विद्वान् (रण्यानि) रमणीय, मनोहर वाणियां (प्र भरन्ते) खूब प्रस्तुत करते हैं। वही (देवानां महत् एकम् असुरत्वम्) बड़ा भारी एक सर्वप्रेरक बल है। (२) राजा की एक अपनी माता और दूसरी माता पृथिवी है।

शूर॑स्येव॒ युध्य॑तो अन्त॒मस्य॑ प्रती॒चीनं॑ ददृशे॒ विश्व॑मा॒यत् ।
अ॒न्तर्म॒तिश्च॑रति नि॒ष्षिधं॒ गोर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ८ ॥

भा०—(अन्तमस्य शूरस्य इव युध्यतः) अति समीपस्थ युद्ध करते हुए शूरवीर पुरुष के जिस प्रकार (विश्वम् आयत् प्रतीचीनं ददृशे) जो कोई भी आता है वह उससे पराजित होकर पराङ्-मुख चला जाता है उसी प्रकार (अन्तमस्य) सर्वत्र व्यापक परमेश्वर के (अन्तः) भीतर ही यह समस्त (विश्वम्) विश्व (आयत्) आता और (प्रतीचीनं दृश्यते) उसके पीछे उत्पन्न हुआ दिखाई देता है। वह परमेश्वर (मतिः) ज्ञान-स्वरूप, सबका ज्ञाता, मेधावी होकर (चरति) सर्वत्र व्यापता है। वह (देवानाम्) देवों, पृथिव्यादि लोकों, विद्वानों के बीच (एकम्) एकमात्र अद्वितीय, (महत्) सबसे बड़ा (गोः निष्षिधम्) वेद वाणी का निर्गमस्थान, निकास, गतिमान् संसार का प्रभव और बड़ा भारी (असुरत्वम्) जीवन शक्ति देने वाला तत्व है। (२) राजा (मतिः) मननशील होकर (गोः अन्तः) पृथिवी या राष्ट्र के भीतर सब दुःखों को तोड़ने के अधिकार का भोग करे।

नि वे॑वेति पलि॒तो दू॒त आ॑स्व॒न्तर्म॒हांश्च॑रति रोच॒नेन॑ ।
वपूं॑षि॒ बिभ्र॑द॒भि नो॒ वि च॑ष्टे म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (पलितः इव आसु) वृद्ध राजदूत इन प्रजाओं के बीच आता और (रोचनेन महान् चरति) प्रकाश, तेज वा सर्वप्रियता से पूज्य होकर विचरता है और जिस प्रकार सूर्य (पलितः) सब का पालक (दूतः) सन्तापक होकर (नि विवेति) व्यापता (आ अन्तः महान् रोचनेन चरति) इन दिशाओं के बीच महान् सामर्थ्यवान् होकर बड़े भारी प्रकाश से सर्वत्र व्यापता है। वह हमारे (वपूंषि बिभ्रद् नः अभि विचष्टे) हमारे शरीरों को पुष्ट करता हुआ हमें सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार परमेश्वर (पलितः) सबका पालक वा पूर्ण (दूतः) सबसे उपा-

सना करने योग्य (नि विवेति) सबके भीतर व्यापक है। वह (आसु अन्तः) इन सब जीव प्रजाओं के बीच (सबसे महान्) सबसे बड़ा पूजनीय (रोचनेन चरति) प्रकाशरूप होकर व्यापता है, वह (नः) हम सबके (वपूंषि) देहों को (बिभ्रद्) भरण पोषण करता और (नः अभि विचष्टे) हमें सब प्रकार से उपदेश करता और सदा देखता है। वह (देवानां एकम् महत् असुरत्वम्) सब देवों के बीच एक मात्र महान् दोषनाशक जीवनप्रद तत्व परमेश्वर है। (२) इसी प्रकार राजा, पालक, दुष्टों का तापक होकर प्रजाओं में तेज सहित विचरे। सबके देहों को पाले, सबको देखे, सन्मार्ग का उपदेश करे, अद्वितीय बलवान् बने।

विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०।२९॥

भा०—परमेश्वर (विष्णुः) सर्वत्र व्यापक (गोपाः) सबका रक्षक, सूर्यवत् सब गमनशील लोकों का पालक होकर (परमं पाथः पाति) सबसे उत्कृष्ट पाथस् अन्न पृथिवी आदि लोक वा परमपद को पालन करता है। और जो (प्रिया धामानि) प्रिय कमनीय धाम, तेजों नामों को (अमृता) नाशरहित प्रकृति, आकाशादि और जीवों को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी स्वयं प्रकाश हो, (ता) उन (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों को (वेद) जानता है वह (देवानाम्) समस्त देवों, जीवों और पृथिव्यादि लोकों के बीच (महत् एकम् असुरत्वम्) बड़ा अद्वितीय सबका सञ्चालक, प्राणप्रद तत्व है। (२) सूर्य सबका रक्षक, परम सूक्ष्म (पाथः) जल को किरणों से पान करता है। प्रिय तर्पक तेजों और अन्नों को पुष्ट करता है। सब प्राणियों को, भुवनों को प्राप्त होता है, सबसे बड़ा जीवनप्रद है। (३) राजा भी व्यापक शक्ति वाला होने से विष्णु, रक्षक होने से गोपा होकर परमपद

या पालक सैन्य-बल को रक्खे, प्रजा प्रिय तेजों और अमृतमय अन्नों को धारण करे। सबका अग्रणी होकर सबको जाने। एकोनविंशो वर्गः॥

नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत्।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ ११॥

भा०—(श्यावी च यत् अरुषी च) कृष्ण वर्ण की रात्रि और तेजोमयी उषा दोनों जिस प्रकार (स्वसारौ) स्वयं गति करने वाली, दोनों बहनों के समान (यम्या) यम, सूर्य से उत्पन्न होकर या प्राणियों को जागृति और निद्रा में बांधने वाली, (नाना वपूंषि चक्राते) नाना रूप प्रकट करती हैं। (तयोः अन्यत् रोचते) उन दोनों में एक तेज से चमकता और (अन्यत् कृष्णम्) दूसरा कृष्ण अर्थात् अन्धकार स्वरूप है यह सब उस सूर्य के ही किरणों का बड़ा भारी महत्व है। उसी प्रकार (श्यावी) तमोमयी, राजस भाव से संवलित प्रकृति और (अरुषी) सत्ययुक्त अन्तःकरण वाली जीव या चित् सत्ता, दोनों (स्वसारौ) दो बहिनों या भाई बहनों के समान स्वयं अपने सामर्थ्य से गति करते हैं, अनादि सी होकर भी (यम्या) यम, सर्वनियन्ता परमेश्वर के अधीन रह कर ही (नाना वपूंषि) देहों और विकृत पञ्चभूतादि रूपों को बनाते वा उत्पन्न करते हैं। (तयोः) उन दोनों में से (अन्यत्) एक (रोचते) स्वयं प्रकाश आत्मा है और (अन्यत्) दूसरा प्रकृति तत्व (कृष्णम्) तमोमय वा जीव को भोगार्थ अपनी तरफ़ आकर्षण करने वाला है। इन सब देवों या जीवों के बीच वही परम पूज्य प्राणप्रद तत्व का विकास है। (२) राजा के पक्ष में—श्यावी पृथिवी, अरुषी पराक्रम युत तेजस्विनी सेना दोनों बहनें हैं।

माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ १२॥

भा०—(यत्र) जिसके आश्रय पर (माता च दुहिता च)

पृथिवी और आकाश दोनों ही माता और कन्या के समान हैं पृथिवी सब प्राणियों को उत्पन्न करने से, अन्नादि द्वारा पालने से माता है और पृथिवी सबको अन्नादि से पूर्ण करने वा आकाशस्थ मेघ रूप ऊधस से वृष्टि जल का दूध के समान पान करने से दुहिता कन्या है। उसी प्रकार आकाश या सूर्य भी मेघादि का उत्पादक और वृष्टि, अन्न आदि द्वारा प्राणियों को जीवन देने से सबकी माता और सूर्य किरणों द्वारा भूमि जल को क्षीरवत् पान करने से 'दुहिता' कन्यावत् है। वे दोनों ही (धेनू) गौओं के समान दुग्धवत् अन्न, जल और वृष्टि आदि रस प्रदान करती हैं और प्राणियों का पालन पोषण करती हैं। वे दोनों (सबर्दुघे) क्षीरवत् रसों को दोहन करती हुई (समीची) परस्पर मिल कर एक दूसरे को (धापयेते) रस पिलाती हैं। (ऋतस्य सदसि अन्तः) ऋत गतिमान् सूर्य, संसार वा जल और अन्न का आश्रय अन्तरिक्ष के बीच यह सब (देवानां) किरणों के बड़े अद्वितीय बल का ही परिणाम है जिसको मैं (ईळे) वर्णन करता हूं। ठीक उसी प्रकार राजशक्ति और पृथिवी निवासिनी प्रजा दोनों भी माता कन्या के समान परस्पर एक दूसरे को पालें, पोसें, पूर्ण तृप्त करें (ऋतस्य सदसि अन्तः देवानां मध्ये तदेकं महत् असुरत्वम्) न्यायभवन के बीच में यह एक विद्वानों के बीच अद्वितीय, दोषनिवारक सत्य न्याय का बल है कि राजा प्रजा एक दूसरे को पुष्ट करते हैं, उसी की मैं (ईळे) प्रशंसा करता हूं।

अ॒न्यस्या॑ व॒त्सं रि॑ह॒ती मि॑माय॒ कया॑ भु॒वा नि द॑धे धे॒नुरूधः॑ ।
ऋ॒तस्य॒ सा पय॑सापिन्व॒तेळा॑ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ १३ ॥

भा०—(धेनुः) गौ के समान रस बरसाने वाली आकाश या द्यौः (कया भुवा) जलमय भूमि के द्वारा (ऊधः) मेघ को (नि दधे) धारण करती है। उस समय वह जिस प्रकार (अन्यस्याः) अपने से भिन्न, दूसरी पृथिवी के (वत्सं) बछड़े के समान पृथिवी तल से उत्पन्न

मेघ को (रिहती) बछड़े को गौ के समान चाटती हुई उसी के समान वह (मिमाय) विद्युद् गर्जन रूप से ध्वनि करती है । तब (सा इळा) वह भूमि (ऋतस्य पयसा) सूर्य से उत्पन्न या अन्न के उत्पादक और पोषक जल से (अपिन्वत) खूब सिंचती है । यह सब (देवानाम्) सूर्य की किरणों का ही (एकं महत् असुरत्वम्) एक बड़ा भारी जीवनदान करने का विशेष धर्म है । (२) राष्ट्रपक्ष में—विदेशी राजा के रहते हुए हानि दर्शाते हैं । कोई भी (धेनुः) गौ के समान भूमि, भूमिवासिनी प्रजा (अन्यस्याः) दूसरी भूमि के (वत्सं) अभिवादनीय या बसने वाले राजा को (रिहती) प्राप्त कर के यदि (मिमाय) हर्ष की ध्वनि करे तो प्रश्न है कि वह (कया भुवा) किस कारण से (ऊधः निदधे) दुग्ध देने वाले स्तन के समान ऐश्वर्य देने वाला भाग धारण करे । ऐसी दशा में वह विदेशी राजा को किसी भी कारण से धन देने को वाध्य नहीं है, तो भी (ऋतस्य पयसा) सत्य न्याय के पोषक जल से वह (इळा) भूमि (अपिन्वत) सेचन पाकर वृद्धि पा सकती है । अर्थात् विदेशी शासक भी न्याय और सत्य के बल पर पराई भूमि को बढ़ा सकता है । यह 'सत्य न्याय' ही विजिगीषुओं का एक बड़ा भारी बल है ।

पद्या॑ वस्ते पुरु॒रूपा॒ वपूं॑ष्यू॒र्ध्वा त॑स्थौ॒ त्र्यविं॒ रेरि॑हाणा ।
ऋ॒तस्य॒ सद्म॒ वि च॑रामि वि॒द्वान्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१४॥

भा०—(पद्या) पैरों से जाने योग्य या सूर्य के किरणों से प्रकाशित होने योग्य भूमि जो (पुरुरूपा) नाना रूपों के (वपूंषि) शरीरों, शरीरधारियों को (वस्ते) अपने ऊपर धारण करती है और (ऊर्ध्वा) ऊपर की दिशा आकाश (त्र्यविं) तीनों लोकों के रक्षक और प्रकाशक सूर्य को (रेरिहाणा) स्पर्श करती हुआ (तस्थौ) स्थिर रहती है तो यह सब (देवानाम्) सूर्य की किरणों का (महत् एकं) एक बड़े भारी (असुरत्वम्) जल प्रक्षेपक धर्म ही है । उसको ही मैं वास्तव में (ऋतस्य

सद्म) जल, अन्न का और सत्य प्रकाशक तेज का (सद्म) परम आश्रय विद्वान् (वि चरामि) जानता हुआ प्राप्त होऊं । (२) उषापक्ष में—सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने से पद्या है वह बहुत से देहों को आच्छादित करती, उदय होती हुई सूर्य को स्पर्श करती, चाटती, प्रेम करती है ।

पदे॑ इ॒व॒ निहि॑ते द॒स्मे अ॒न्तस्तयो॑र॒न्यद्गुह्य॑मा॒विर॒न्यत् ।
स॒ध्री॒ची॒ना प॒थ्या॒३॒॑ सा विषू॑ची म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ।।१५।।३०

भा०—आकाश और भूमि दोनों (पदे इव) मानों दो चरणों के समान (निहिते) स्थिर हैं, जिनके आश्रय मानों परमेश्वर का विराट् देह संसार स्थित है । वे दोनों (दस्मे) दर्शनीय, अद्भुत हैं वा वे दोनों (दस्मे) क्रम से अन्धकार और धनैश्वर्य का नाश करने वाली हैं । (तयोः अन्तः) उन दोनों के बीच में (अन्यत्) एक आकाश तो (गुह्यम्) गुहा अर्थात् अन्तरिक्ष में व्यापक है और दूसरा पद 'भूमि' (आविः) सर्व प्रकट और सबका रक्षक भी है । इन दोनों में से एक भूमि (सध्रीचीना) सब प्राणियों के साथ रहती और (पथ्या) अन्नादि देने से हितकारिणी वा सदा सूर्य के साथ पतिपरायणा पत्नी के समान रहने वाली और (पथ्या) धर्म पथ से न अतिक्रमण करने वाली सती साध्वी के समान 'पथ्या' स्वक्रान्तिपथ से न विचलित होने वाली है । और (सा) वह आकाश (विषूची) समस्त पदार्थों में व्यापक है । यह सब (देवानाम् एकं महत् असुरत्वम्) सूर्य की किरणों या दिव्य सूर्यादि पिण्डों का बड़ा भारी सामर्थ्य या महिमा है कि दोनों पदार्थ ऐसे हैं । त्रिंशो वर्गः ॥

आ धे॒नवो॑ धुनयन्ता॒मशि॑श्वीः सब॒र्दुघाः॑ शश॒या अप्र॑दुग्धाः ।
नव्या॑ नव्या युव॒तयो॒ भव॑न्तीर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१६॥

भा०—जिस प्रकार (धेनवः) गौओं के समान सौम्य स्वभाव की

(नव्याः नव्याः) नयी नयी, अति मनोहर देह वाली कन्याएं (युवतयः भवन्तीः) युवति दशा को प्राप्त होती हुई (अशिश्वीः) पालक न रहकर (सबर्दुधाः) आनन्द सुख से पूर्ण करती हुई (अप्रदुग्धाः) अन्य से अभुक्त, ब्रह्मचारिणी रहकर (शशयाः) निश्चिन्त रहकर शयन करतीं, हुईं (आ धुनयन्ताम्) इधर उधर जाती, या हृदय में आकर्षण उत्पन्न करती या पतियों के साथ प्रेम सम्बन्ध करती हैं यह (देवानां) उनकी कामना करने वाले पतियों के लिये (एकं महत्) एक बड़ा भी (असुरत्वम्) जीवनप्रद कार्य होता है। इसी प्रकार दिशाएं (धेनवः) मेघ द्वारा रस या जल वर्षा कर लोकों को रस पालन कराती हुईं दुधार गौवों के समान हैं। वे (अशिश्वीः) बड़ी विस्तृत (सबर्दुघाः) जलों, रसों को दोहन पूर्ण और प्रदान करने वाली (शशयाः) व्यापक (अप्रदुग्धाः) किसी द्वारा पूर्ण या न दुही गई, सदा रसपूर्ण (नव्याः नव्याः) सदा नई, मनोहर (युवतयः) लोकों को संग्रह और विभिन्न २ करने वाली होकर रहतीं (देवानां महत् एकं असुरत्वं) सूर्य की किरणों के एक बड़े भारी महान् सामर्थ्य को (आधुनयन्ताम्) प्रकट करतीं, विस्तारतीं वा सर्वत्र नदी के समान जल धारा रूपों में प्रेरित करतीं वा बहाती हैं।

यद॒न्यासु॑ वृष॒भो रोर॑वीति॒ सो अ॒न्यस्मि॑न्यू॒थे नि द॑धाति॒ रेतः॑ ।
स हि क्षपा॑वा॒न्त्स भगः॒ स राजा॑ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१७॥

भा०—१७ से २२ तक मन्त्रों का देवता इन्द्र, पर्जन्यात्मा त्वष्टा और अग्नि है इसलिये यह मन्त्र वृषभ, राजा, मेघ, आत्मा, परमात्मा, सूर्य, शिल्पि और अग्नि, विद्युत् आदि पक्षों में संगत होता है। (१) मेघ पक्षमें—(यत्) जो (वृषभः) वर्षणशील मेघ (अन्यासु वृषभः) गौओं के बीच महा वृषभ के समान (अन्यासु) अन्य दिशाओं में (रोरवीति) गर्जता है। और (अन्यस्मिन्) दूसरे ही (यूथे रेतः) जो यूथ में वीर्य निषेक करते हुए वृषभ के समान ही अन्य दिक्-समूह में

(रेतः) जल को (नि दधाति) बरसाता है। (सः हि) वह निश्चय से (क्षपावान्) जल क्षेपण शक्ति से युक्त रात्रिवत् अन्धकार करने वाला (सः भगः) सबके सेवन और भजन करने और सुख कल्याण करने वाला (सः राजाः) वह विद्युत् से प्रकाशित वा लोक मनोरञ्जन करने वाला है वह भी सूर्य किरणों का एक बड़ा सामर्थ्य ही है। (२) सूर्य के पक्षमें—वह सब दिशाओं में मेघ द्वारा गर्जता अन्यों में जल वर्षाता है या तेज, प्रकाश देता है। वही रात्रि दिन करता, वह ऐश्वर्यवान् सूर्य, तेजस्वी, दीप्तिमान्, वह किरणों के वीच एकमात्र बड़ा तेज प्रकाश का प्रक्षेप्ता है। (३) राजा बलवान् होने से वृषभ है। वह सब प्रजाओं पर हुकम चलाता है या शत्रु पर गर्जता और अपने प्रजासमूह में बल या सुवर्णादि प्रदान करता है। वह शत्रुक्षय-कारिणी 'क्षपा', सेना का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा है। वह सब विजिगीषुओं के वीच बड़ा भारी शत्रु-उच्छेदक बल है।

वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥१८॥

भा०—हे (जनासः) मनुष्यो! हम लोग (वीरस्य) शूरवीर, बलवान् पुरुष के (स्वश्व्यं) उत्तम अश्व या उत्तम अश्वारोही होने की बात का (नु) भी (प्र वोचाम) अच्छी प्रकार वर्णन करें, उसको वैसा होने का उपदेश करें। वे (षोळ्हा युक्ताः) छः छः लग कर भी (पञ्च पञ्च) पांच पांच होकर (आ वहन्ति) रथ को धारण करते हैं। (देवाः) विद्वान् लोग (अस्य) इस रहस्य को (विदुः) जानते और साक्षात् करते हैं। अध्यात्म में वह वीर 'इन्द्र' आत्मा है। इन्द्रियें घोड़े हैं। मन सहित वे छः हैं। परन्तु ज्ञान करने के लिये वे पांच ही प्रकार का ज्ञान करते हैं। यह सब (देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम्) इन्द्रियों का एक बड़ा भारी प्रेरक होने का बल भी उसी इन्द्र आत्मा का है। (२)

संवत्सर इन्द्र सूर्य है उसके ६ ऋतु अश्व हैं। पर हेमन्त शिशिर मिलाकर पांच हो जाते हैं।

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥

भा०—(त्वष्टा) सबका प्रकाशक (देवः) स्वयं प्रकाशमान, सब सुखों का दाता, (सविता) सबका उत्पादक, (विश्वरूपः) सब प्रकार के जीवों और सब लोकों का उत्पन्न करने वाला होकर (प्रजाः) उत्पन्न प्रजाओं को (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (पुपोष) पोषण करता और (पुरुधा) बहुत विध (जजान) उत्पन्न करता है। (इमा च) और ये (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक भी (अस्य) इसके बनाये हैं। (देवानाम्) सब सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थों के वीच वही (एकम्) एक, अद्वितीय (महत्) सबसे बड़ा (असुरत्वम्) प्राणप्रद और प्रेरक बल है। (२) इसी प्रकार राजा सूर्यवत् तेजस्वी, प्रजाओं को नाना प्रकार से पाले, उसी के अधीन ये सब नाना लोक हों।

मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २० ॥

भा०—(वीरः) वह सबका प्रेरक, बलवान्! सर्वशक्तिमान् परमेश्वर (समीची) परस्पर संगत (चम्वा) सब जगत् को अपने भीतर लेने वाली, (मही) बड़ी आकाश और भूमि दोनों को दो सेनाओं को बड़े वीर नायक के समान (सम् ऐरत्) एक साथ चला रहा है। (ते उभे) वे दोनों (अस्य) उसके (वसुना) प्राणियों और लोकों को बसाने के सामर्थ्य और ऐश्वर्य से (नि-ऋष्टे) खूब पूर्ण, व्याप्त हैं। वह सब प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्यों को धारण करता हुआ (शृण्वे) सर्वत्र सुना जाता है। वह ही (देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम्) सूर्यादि देवों का एकमात्र अद्वितीय, बड़ा भारी प्रेरक बल है। राजा दो

परस्पर संगत सेना और भोक्ता, स्त्री पुरुष वर्गों को भी वश करता, वे उसी के ऐश्वर्य से युक्त होती हैं। वह सब विद्वानों और वीरों को सञ्चालन करने में समर्थ है।

इ॒मां च॑ नः पृथि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॑ क्षेति हि॒तमि॑त्रो न राजा॑।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥ २१ ॥

भा०—जो परमेश्वर (विश्वधायाः) विश्व को धारण करने वाला (नः) हमारी (इमां च) इस (पृथिवीं) पृथिवी और उस महान् आकाश को भी (हितमित्रः) हितैषी मित्रों वाले (राजा न) राजा के समान (हितमित्रः) जीवों को मरने से बचाने वाले वायु, सूर्य, मेघादि को धारण करने वाला सर्व तेजस्वी होकर (उपक्षेति) सर्वत्र स्वयं व्यापता और सर्वत्र सब जीवों को बसाता है। उसके अधीन (पुरः-सदः) आगे जाने वाले और (शर्मसदः) गृहों में रहने वाले (वीराः न) राजा के वीर पुरुषों के समान ही (वीराः) विविध गतियों में जाने वाले जीव गण (पुरः सदः) सबके आगे चलने वाले और (शर्मसदः) देह रूप गृहों में रहने वाले हैं। वह प्रभु (देवानाम् महत् एकम् असुरत्वम्) सब सूर्यादि लोकों का एक अद्वितीय सञ्चालक बल है।

नि॒ष्षिध्व॑रीस्त॒ ओष॑धीरु॒तापो॑ र॒यिं त॑ इन्द्र पृथि॒वी बि॑भर्ति।
सखा॑यस्ते वाम॒भाजः॑ स्याम म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म्॥२२॥२१॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! (पृथिवी) यह पृथिवी (निः षिध्वरी) रोगों को दूर करने और सुख मङ्गल करने वाली (ओषधीः) ओषधियों को (बिभर्त्ति) पालती पोषती है। (उत) और (आपः) जलधाराएं भी (ते) तेरे (रयिम्) ऐश्वर्य को धारण करती हैं। (देवानाम्) देव, पृथिवी आदि के बीच तेरा यह (एकम् महत् ऐश्वर्यम्) एक बड़ा भारी ऐश्वर्य है। हम (ते सखायः) तेरे मित्र तेरे (वामभाजः) उत्तम कर्म और ऐश्वर्यादि गुणों को धारण करने

वाले (स्याम) हों। (२) राजा के पक्ष में—पृथिवी और आप्तजन राजा के ऐश्वर्यों और शत्रुतापदायक सेनाओं को धारण करें। इत्येकत्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[५६]

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषयः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ विराट्त्रिष्टुप्। ५, ७ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः॥
अष्टर्चं सूक्तम्॥

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः॥ १॥

भा०—(देवानां) दिव्य पदार्थों, विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच में जो (प्रथमा) पहले (ध्रुवाणि) ध्रुव, स्थिर, नित्य (व्रता) कर्त्तव्य-कर्म और नियम हैं (ता) उनको (न मायिनः) न कुटिल मायावी वा बड़े बुद्धिशील और (न धीराः) न धीर प्रज्ञावान् पुरुष ही (मिनन्ति) उलंघन कर सकते हैं। और (अद्रुहा) परस्पर द्रोह न करने वाली (रोदसी) आकाश और भूमि के तुल्य परस्पर प्रेम युक्त स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य, प्रजा राजा भी उन नियमों को नहीं तोड़ें। और (न) न (तस्थिवांसः) स्थायी रूप से रहने वाले (पर्वताः) पर्वतों के समान अचल एवं प्रजाओं को पालन करने में समर्थ पुरुष भी (वेद्याभिः) प्राप्त करने योग्य प्रजाओं सहित (निनमे) विनय से स्वीकार करने के अवसर में उन व्रतों, कर्मों और धर्मों का उलंघन करें।

पड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (एकः) अकेला, एक सूर्य (अचरन्) स्वयं न चलता हुआ भी स्थिर रहकर (षट् भारान् बिभर्त्ति) सबके पालक पोषक ६ ऋतुओं को धारण करता है। (वर्षिष्ठम् ऋतम्) और खूब वर्षाने वाले जल को (गावः उप आ अगुः) किरणें प्राप्त करती हैं और (अत्याः उपराः) व्यापनशील मेघ (तिस्रः महीः आ तस्थुः) तीनों लोकों को आच्छादित करते हैं और (द्वे गुहा निहिते) तीनों लोकों में से दो अन्तरिक्ष में अदृश्य हो जाती हैं और (एका) एक यह पृथिवी ही (दर्शि) दिखाई देती रहती है। उसी प्रकार एक (अचरन्) स्वयं स्थिर आत्मा पांच इन्द्रिय और छठा मन इन छः (भारान्) विषयों को हरण करने और ज्ञानों के धारक साधनों को (बिभर्त्ति) धारण करता है। (गावः) ये इन्द्रियां विषयों तक जाने से 'गौ' हैं। वे सब (वर्षिष्ठम्) सबसे अधिक बड़े, सूर्यवत् तेजस्वी (ऋतम्) बलस्वरूप, सत्यमय, ज्ञानमय आत्मा को (उप आगुः) प्राप्त होती हैं। (अत्याः) व्यापने वाले या गतिशील (उपराः) विषयों में रमण करने वाले संकल्प विकल्प (तिस्रः महीः) चित्त की तीनों भूमियों को ही व्यापते हैं। (द्वे गुहा निहिते) दो भूमियां बुद्धि में ही स्थित रहती हैं और एक भूमि अर्थात् दशा, स्थिति, जाग्रत् (दर्शि) सर्व प्रत्यक्ष दिखाई देती है। (२) परमेश्वर स्थिर एवं अभोक्ता होकर पांच भूतों और एक महत्तत्व को धारण करता है। (गावः) सब लोकगण उसी सनातन पुरुष को प्राप्त हैं। तीनों लोकों में व्यापक आप व्याप्त है। (द्वे) दोनों कार्य-कारण दशाएं उसी के बुद्धिमय ज्ञान में स्थित हैं। एक कार्य दशा सबको प्रत्यक्ष होती है।

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्॥३॥

भा०—जिस प्रकार (वृषभः) वर्षणशील सूर्य ही (त्रिपाजस्यः) तेज, विद्युत् और अग्नि, अथवा अप्, तेज, वायु और तीनों बलों को धारण

करता है। वह (त्रि उधाः) तीनों प्रकार के मेघों को उत्पन्न करता, सब को पालता है। वह (त्रि-अनीकः) तीनों प्रकार की जीवन शक्ति या ग्रीष्म, वर्षा, शरत् तीन ऋतुओं का स्वामी होकर महान् सामर्थ्य युक्त होकर (पत्यते) पति के समान होता है (शश्वतीनां रेतोधा) बहुत सी भूमियों पर जलप्रद होता है उसी प्रकार परमेश्वर (त्रिपाजस्यः) अग्नि, वायु, जल तीनों बलों को धारण करता है, (वृषभः) सब सुखों का वर्षक (विश्वरूपः) समस्त विश्वके रूप को धारण करने वाला, सब जीवों का उत्पादक और (त्र्युधाः) तीनों लोकों को रस देने वाले स्तनवत् धारण पोषण करने वाला, (प्रजावान्) प्रजाओं का स्वामी (पुरुध) बहुत से लोकों को धारण करता है। वह (माहिनावान्) बहुत से महान् सामर्थ्यों का स्वामी (त्र्यनीकः) प्रकृति के तीनों गुणों को धारण करने वाला होकर (पत्यते) प्रकृति के पति के समान है। (सः) वह (रेतोधा) प्रकृति में अपना वीर्य धारण कराने वाला होकर (शश्वतीनां) सनातन से चली आई प्रजाओं का उत्पादक है।

अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥४॥

भा०—(आसाम्) इन समस्त प्रजा और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच (अभीके) अति समीप, उनमें व्यापक रहकर (पदवीः) उनमें गति उत्पन्न करने वाला और जीव प्रजाओं को प्राप्तव्य उत्तमाधम पद प्राप्त कराने वाला तथा (आदित्यानां) सूर्यादि लोकों का भी सञ्चालक परमात्मा मासों के बीच सूर्य के समान ही (अबोधि) जानने योग्य है। मैं उस परमेश्वर के (चारु नाम) सुन्दर नाम का उच्चारण करूं। (अस्मै चित् आपः) सूर्य के कारण जिस प्रकार जलधाराएं मेघ से निकलती हैं उसी प्रकार (अस्मैचित्) इस परमेश्वर के बल से (देवीः आपः) दिव्य गुणों वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु (अरमन्त) क्रीड़ा करते,

गति करते हैं। और सब प्रजाएं और लोक समूह भी (पृथक्) पृथक् २ अपने २ मार्ग पर (व्रजन्तीः) गमन करते हुए (सीम्) सब प्रकार से उसी परमेश्वर को (परि अवृञ्जन्) आश्रय किये रहती हैं। (२) राजा सब प्रजाओं और तेजस्वी पुरुषों को पदाधिकार देता है। प्रजा उसको उत्तम नाम से पुकारें। सब प्रजाएं (देवीः) उसे चाहती हुई उसके साथ प्रसन्न रहें। अपने मार्ग पर चलती हुई भी उसका आश्रय करें।

त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः॥५॥

भा०—वह परमेश्वर ! (त्री सधस्था) तीनों लोकों को रचता है। हे (सिन्धवः) जल धाराओं के समान प्रवाह से गति करने वाली प्रजाओ ! (कवीनाम्) सब विद्वानों के बीच में (त्रिः) तीन २ प्रकार से (विदथेषु) जानने योग्य पदार्थों में (त्रिमाता) जन्म, स्थान और नाम तीनों का रचने वाला है वही (सम्राट्) बड़े राजा के समान सम्यक् प्रकाशमान, तेजस्वी स्वामी है। वह (ऋतावरीः) 'ऋत' सत्य को धारण करने वाली (योषणाः) सती साध्वी (पत्यमानाः) पति की कामना करने वाली स्त्रियों के समान (तिस्रः) तीन (दिवः) भूमियों को (अप्याः) अन्तरिक्ष में प्राणों के या जीवों के उपयोगी (त्रिः) तीनों प्रकार से (विदथे) वश में किये हुए हैं। (२) इसी प्रकार सम्राट् राजा तीनों प्रकार के लोकों को वश करता, विद्वानों की रक्षा करता, प्रजाओं को संग्राम में वश करता है।

त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः॥६॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक प्रेरक परमेश्वर ! हे राजन् ! तू (दिवेदिवे) दिनों दिन (नः) हमें सूर्य के समान (दिवः) आकाश

से वृष्टिजलों के समान (दिवः) हमारे उत्तम व्यवहार में से (वार्याणि) उत्तम, वरण करने योग्य गुणों और ऐश्वर्यों को (अह्नः त्रिः) दिन में तीन २ वार (आसुव) प्राप्त कराओ । हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! आप (रायः) ऐश्वर्य का (त्रिधातु) तीनों सुवर्ण, रजत, लोह से वने धन को (आसुव) प्रदान करें । हे (त्रातः) रक्षक ! हे (धिषणे) बुद्धिमति राजसभे ! तू (नः) हमें (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (सातये) प्राप्त करने के लिये (धाः) धारण कर ।

त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७॥

भा०—(सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर और राजा (दिवः) ज्ञान-प्रकाश से (राजाना) प्रकाशमान, (मित्रावरुणा) स्नेही और परस्पर वरण करने वाले (सुपाणी) उत्तम हाथ, व्यवहार और वाणी वाले स्त्री पुरुषों को (त्रिः) तीन २ वार (सोषवीति) प्रेरित किया करें । (अस्य) उससे (अस्य चित्) आप्तजन (रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी के समान स्त्री पुरुष और (उर्वी) भूमिनिवासनी प्रजा भी (सवितुः) प्रेरक मुख्य राजाके (सवाय) अभिषेक या ऐश्वर्यवृद्धि के लिये (रत्नं) रमण योग्य उत्तम ऐश्वर्य की (भिक्षन्त) याचना करते हैं ।

त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८॥१॥

भा०—(असुरस्य) सवको जीवन देने वाले, दोषों के नाशक परमेश्वर के और सर्वशत्रुनाशक राजा के (त्रिः उत्तमा) तीन उत्तम (दूनशा) कभी नष्ट न होने वाले (रोचनानि) प्रकाशमान तत्व, सूर्य, विद्युत् और अग्नि हैं । वे तीनों (वीराः) वीरों के तुल्य ही (राजन्ति) प्रकाशित होते हैं । (देवाः) विद्वान् लोग और विजयेच्छु लोग सूर्य

किरणों के समान (ऋतावानः) सत्य, न्याय रूप प्रकाश और शान्ति रूप जल से युक्त (इषिराः) प्रबल इच्छावान् (दूळभासः) दूर तक प्रकाश देने वाले, एवं दुर्दमन करने योग्य, अहिंसक (दिवः) दिन में (त्रिः) तीन वार (विदथे) ज्ञान प्राप्ति और (विदथे) संग्राम में (आ सन्तु) सफल हों। इति प्रथमो वर्गः ॥

[५७]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् । २, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१॥

भा०—(अगोपाम्) अरक्षित (धेनुं) गौ के समान स्वतन्त्र (प्रयुतां) असंख्य ज्ञानों वाली (धेनुं) वाणी को (चरन्तीं) व्याप्त होने वाले (मे मनीषां) मेरी उत्तम प्रज्ञा या मति को (विविक्वान्) विवेकी पुरुष (प्र अविदन्) अच्छी प्रकार प्राप्त करे (या) जो (सद्यः) शीघ्र ही (धासेः) धारण करने वाले को (भूरि) बहुत सुख (दुदुहे) प्रदान करती है। अथवा जो शीघ्र ही बहुत (धासेः) धारण करने योग्य ज्ञान को (दुदुहे) देती और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अग्निः) ज्ञानी, विनयशील और (पनितारः) उपदेश स्तुति और व्यवहार द्वारा उपभोग लेने वाले लोग (अस्याः) इस वाणी के (तत्) इस धारण योग्य ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२॥

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त प्रकाशमान किरण जिस प्रकार (अस्यां) इस पृथिवी पर (रणयन्त) रमण या क्रीड़ा करते हैं वे (दिवः

न) सूर्य प्रकाशों के समान (प्रीताः) प्रिय, एवं जल द्वारा आकाश को पूर्ण करने वाले होकर ही (शशयं) आकाश में व्यापक मेघ को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् और (पूषा) सर्व पोषक पृथिवी (वृषणा) जल वृष्टि करने वाले और (सुहस्ता) सुखपूर्वक, एक दूसरे से प्रसन्न हो (शशयं दुदुह्रे) मेघ और अन्न को उत्पन्न करते हैं। (वसवः) सब प्राणिगण उन किरणों का सुख प्राप्त करते हैं इसी प्रकार (यत् देवाः) जो विद्वान् पुरुष (अस्यां) इस वाणी में (रणयन्त) रमण करते हैं वे (दिवः न प्रीताः) सूर्य के प्रकाशों के समान प्रसन्न होकर वा (दिवः न) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु से (प्रीताः) ज्ञानतृप्त होकर (शशयं सुम्नम् सु दुदुह्रे) अन्तर्हृदयाकाश में व्याप्त सुख को प्रदान करते हैं। और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् विद्वान् वा परमेश्वर और (पूषा) सर्व पोषक, आचार्य दोनों (वृषणा) ज्ञान के वृष्टि करने वाले (सुहस्ता) उत्तम दानशील हाथों से युक्त वा सुप्रसन्न होकर (शशयं सुम्नं दुदुह्रे) सूर्य पृथिवी के समान ही अन्तर्व्याप्त सुख उत्पन्न करते हैं। और हे (वसवः) आचार्य के अधीन निवास करने वाले विद्वान् जनों और घरों में बसे गृहस्थ जनो ! (वः) आप लोगों के (सुम्नम्) उत्तम मननयोग्य ज्ञान और सुख को मैं (अत्र) यहां (अश्याम्) उपभोग करूं। (२) राष्ट्रपक्षमें—इन्द्र राजा, पूषा पृथिवी निवासी प्रजागण दोनों 'सुहस्त' हैं एक युद्ध विद्या में, दूसरे कृषि व्यापार आदि में और कर आदि देने में कुशल वे दोनों और 'वसु' अर्थात् राष्ट्र को बसाने, उसमें बसने वाले सभी सुख, समृद्धि पूर्ण करें।

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन्। अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (जामयः) वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाली ओषधियां (वृष्णः शक्तिम् इच्छन्ति) वर्षने वाले मेघ या सूर्य के सेचन

सामर्थ्य को चाहती हैं और (अस्मिन् गर्भम् जानते) इसके आश्रय ही अपने भीतर पुष्प, फलादि धारण रूप गर्भ हुआ जानती हैं उसी प्रकार (जामयः) जिन स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न हो सके ऐसी (याः) जो युवतियां (वृष्णः) बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष की (शक्तिं) पुत्रोत्पादन सामर्थ्य को (इच्छन्ति) स्वयं प्राप्त करना चाहती हैं वे (नमस्यन्तीः) विनय से उसका आदर सत्कार करती हुई (अस्मिन्) उसके अधीन रहकर ही (गर्भम्) गर्भ धारण करने की (जानते) अनुमति दें, और (धेनवः) गौएं जिस प्रकार (वावशानाः) कामना करती हुई वीर्य सेचक वृषभ की कामना करतीं और उसके द्वारा गर्भ धारण करतीं और बड़ा उत्तम बछड़ा जनती हैं उसी प्रकार (वावशानाः) कामना करती हुई स्त्रियें भी (वपूंषि बिभ्रतं) उत्तम शरीरावयवों को धारण करने वाले (महः) बड़े उत्तम, पूज्य (पुत्रं) पुत्र को (चरन्ति) प्राप्त करती हैं। (२) राष्ट्रपक्ष में—(जामयः) गतिशील, विस्तृत या बहिनों के समान प्रीति युक्त प्रजाएं बलवान् राजा के शक्ति को अपने में रखना चाहती हैं वे उसके अधीन आदर करती हुई उसके (गर्भम्) राष्ट्र ग्रहण या वशीकरण बल को स्वीकार करें। बड़े डील धारण करने वाले उसको ही वे पुत्र के समान प्रिय जानकर प्राप्त करें।

अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४॥

भा०—मैं (मनीषा) उत्तम बुद्धि से (अध्वरे) हिंसारहित परस्पर घात या विनाश न करने वाले कार्य में (ग्राव्णः) उत्तम उपदेष्टा, लोगों को (युजानः) संयुक्त करता हुआ (सुमेके) उत्तम रीति से वीर्य निषेकादि करने में समर्थ (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान युवा स्त्री पुरुष दोनों को (अच्छ विवक्मि) अच्छी प्रकार उपदेश करता हूं। हे पुरुष ! (ते मनवे) तुझ मननशील के लिये (इमाः) ये स्त्रियें (भूरि-

चाराः) वहुत प्रकार के सुख धनादि को चाहती हुई (दर्शताः) दर्शनीय, उत्तम रूप वाली (यजत्राः) सत्संग, मैत्री करने वाली होकर भी (ऊर्ध्वाः) अग्नि की ज्वालाओं के समान ऊपर रहने वाली, आदरणीय ही (भवन्ति) होती हैं ।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥

या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्रानासादय पायया चा मधूनि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वान् स्त्री वा पुरुष ! वा हे परमेश्वर ! (या) जो (ते) तेरी (जिह्वा) वाणी और (मधुमती) मधुर वचनों से युक्त (सुमेधा) उत्तम मननशक्ति से युक्त (उरूची) बहुत से ज्ञानों को धारण करने वाली (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (उच्यते) कही जाती है (तया) उस वाणी और प्रज्ञा से तू (विश्वान्) समस्त (यजत्रान्) पूज्य, सत्संग योग्य पुरुषों को (अवसे) ज्ञान प्राप्त करने और रक्षा के निमित्त (आसादय) प्राप्त कर और उनको (मधूनि) नाना मधुर रसों के समान मधुर वाणी के रस भी (पायय) पान करा ।

या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ।६।२।

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! तेजस्विन् ! (पर्वतस्य इव धारा) पर्वत से निकलती नदी या मेघ से निकलती धारा या मेघ से निकलती वाणी, गर्जना जिस प्रकार (असश्चन्ती) अनासक्त (निःसङ्ग) रहती हुई, (चित्रा) अद्भुत मार्ग से गति करती हुई (पीपयत्) अन्नादि ओषधियों को पुष्ट करती है उसी प्रकार (या) जो (पर्वतस्य) पालन करने वाले, या पर्वों अध्यायों से युक्त ग्रन्थ के समान ज्ञान-

वान् (ते) तेरी (धारा) ज्ञान धारण करने वाली (चित्रा) आश्चर्यकारिणी अद्भुत वाणी या शुभ मति (पीपयत्) सबको तृप्त करती है (ताम्) उस (प्रमतिं) उत्तम कोटि के ज्ञान से युक्त (विश्व-जन्याम्) समस्त जनों की हितकारिणी (सुमतिं) शुभ मति को या शुभ ज्ञानमयी वाणी को (देव) हे विद्वन् ! हे ज्ञानदातः ! हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे ! हे (वसो) अपने अधीन प्रजाओं और शिष्यों का बसाने हारे ! तू (अस्मभ्यं रास्व) हमें प्रदान कर । (२) पालक राजा की धारा, वाणी, हम सैनिकों को बलवान् और शुभ ज्ञानयुक्त सर्वजन हितकारिणी हो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[५८]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ८, ९ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (धेनुः दुहाना) गौ दूध देती है और (दक्षिणायाः अन्तः पुत्रः चरति) दक्षिणा में देने योग्य गौ के साथ बच्छड़ा भी दक्षिणा के बीच में ही जाता है। और जिस प्रकार उषा (धेनुः) सबको रात्रि के अवसान में तुषार विन्दु रूप रस पिलाने हारी (प्रत्नस्य) अति पुरातन सूर्य के (काम्यं) कमनीय रूप को (दुहाना) उत्पन्न करती हुई उ।, प्रभातवेला होती है । उसी प्रकार वाणी रूप कामधेनु (प्रत्नस्य) अति पुरातन सनातन परमेश्वर के (काम्यं) कान्तिमय, सब के कामना योग्य ज्ञानमय स्वरूप एवं हिताहित प्राप्ति-परिहारादि के ज्ञान को (दुहाना) प्रदान करती रहती है । और (दक्षिणायाः) 'रस' अर्थात् कर्म और ज्ञान की स्वामिनी ज्ञानप्रद उस वाणी के (अन्तः) भीतर ही

(पुत्रः) उससे पुत्रवत् उत्पन्न ज्ञानावबोध उसके (अन्तः) उषा के भीतर से उत्पन्न या प्रकट सूर्य-प्रकाश के समान (चरति) प्रकट होता है। और जिस प्रकार (शुभ्रयामा) शुक्ल श्वेत पक्ष की, रात्रि (द्योतनिं) चमकती चांदनी को (आवहति) धारण करती है और जिस प्रकार (शुभ्रयामा) भासमान, चमकते प्रहरोंवाला दिन या उषा (द्योतनिं) सूर्य की दीप्ति को (आवहति) सर्वत्र फैलाता है उसी प्रकार (शुभ्रयामा) अर्थों को भासित करने वाले विस्तार या पदसंन्निवेश से युक्त वाणी (द्योतनिं) अर्थप्रकाश से युक्त विद्या को (आवहति) स्वयं धारती और दूसरों तक पहुंचाती है। जिस प्रकार (उपसः स्तोमः) उषा का मधुर संगीत या उषाकालिक स्तुतिपाठ (अश्विनौ) दिन और रात्रि दोनों को (अजीगः) जगाता, प्रकट करता है उसी प्रकार (उपसः) कान्ति-युक्त तेजस्विनी पापदाहक पवित्र वाणी वेदमयी (अश्विनौ) सूर्य, चन्द्र वा दिन रात्रि तुल्य नरनारियों को (अजीगः) जगावे, जागृत, प्रबुद्ध करे। राष्ट्रपक्ष में—धेनुः सर्व रसदात्री, अन्नदात्री धेनु पृथिवी सर्वश्रेष्ठ राजा को उसका कामना योग्य पदार्थ प्रदान करती है। और वह दानशील वलवती सेना वा प्रजा के बीच में उसके पुत्र के समान निर्भय बिचरे। तब वह (शुभ्रयामा) शुद्ध प्रकाशित पुण्यमय, निर्दोष सुन्दर 'याम' अर्थात् नियम प्रबन्ध से युक्त पृथिवी अपने में प्रकाशक तेजस्वी राजा को धारण करे। इस प्रकार (उपसः) अन्धकार नाशक उषा तुल्य शत्रु संतापकारी सेना या प्रजा का (स्तोमः) समूह या वल अधिकार (अश्विनौ) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी स्त्री पुरुषों, राजा रानी, राजा या सभा दोनों को (अजीगः) जागृत करता, उनको चमकाता या प्राप्त होता है। (२) कमनीय उत्तम स्त्री या वधू के पक्ष में—वधू पुरुष की सब कामनाएं पूर्ण करने से (काम्यं दुहाना धेनुः) कामदुघा धेनु के समान है, वही कार्यकुशल दक्ष प्रजापति गृहस्थ पुरुष की स्वामिनी

होने से दक्षिणा है अथवा यज्ञ के अनन्तर दीजाने वाली दक्षिणा के समान आदरपूर्वक दी जाने योग्य होने से व दक्षिणा है उसके ही भीतर (पुत्रः) वह पुरुष पुत्र रूप से उसके गर्भ में (चरति) आता है। वह (शुभ्रयामा) बधू भासमान, अलंकृत होकर सर्वत्र चान्दनी की सी दीप्ति धारण करती है। उस (उषसः) कमनीय कन्या की (स्तोमः) स्तुति या प्रशंसा ही (अश्विनौ) दोनों वर वधुओं या उसके माता पिताओं को (अजीगः) जागृत, प्रबुद्ध, प्रकट अर्थात् प्रसिद्ध करती है।

सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक्॥ २॥

भा०—(सुयुक् प्रति) जिस प्रकार रथ में जुड़े घोड़े (ऋतेन) गतिमान् रथ से (प्रति वहन्ति) मनुष्य या स्वामी को स्थानान्तर पर ले जाते हैं। उसी प्रकार (सुयुग्) उत्तम रीति से नियुक्त विद्वान् जन वा उत्तम वाणियें हे स्त्री पुरुषो! (वाम् प्रति) तुम दोनों के प्रति (ऋतेन) सत्य के द्वारा (वहन्ति) ज्ञान प्राप्त करावें। (मेधाः) प्रजाएं और प्रज्ञावान् पुरुष (वाम् प्रति) तुम दोनों के प्रति (पितरा इव) माता पिता के समान ही (ऊर्ध्वाः) ऊपर, उच्च पद के योग्य, आदरणीय (भवन्ति) होते हैं। आप दोनों भी (अस्मत्) हमें (पणेः) व्यवहारकुशल और विद्वान् पुरुष की (मनीषाम्) विचारशील बुद्धि का (वि-जरेथाम्) विशेष २ और विविध २ उपदेश करो। हम लोग (युवोः) आप दोनों की (अवः) रक्षा और ज्ञान की वृद्धि करें वा आप दोनों के लिये तृप्तिकारक प्रिय अन्न प्रदान करें। आप (अर्वाक् आयातम्) दोनों हमारे पास आइये।

सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥ ३॥

भा०—हे (दस्रौ) शत्रु, कष्टों और अज्ञानों का नाश करने वाले उत्तम स्त्री पुरुषो ! (सुयुग्भिः) उत्तम रीति से जुड़े हुए (अश्वैः) घोड़ों और (सुवृता) उत्तम चक्र वाले (रथेन) रथ से जिस प्रकार आप दोनों (अवर्त्ति प्रति गमिष्ठा) अप्राप्त, दूरवर्त्ती देश को प्राप्त होते हो उसी प्रकार (अङ्ग अश्विना) हे दिन रात्रि वा सूर्य चन्द्रवत् विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सुयुग्भिः) उत्तम रीति से समाहित (अश्वैः) विषयों के भोक्ता, आशुगामी इन्द्रियों और (सुवृता) उत्तम आचार व्यवहार युक्त (रथेन) देह वा आत्मा से आप लोग (अवर्त्ति गमिष्ठा) अप्राप्य पद को भी प्राप्त करने वाले होकर (अद्रेः) मेघ के समान सब प्रकार ज्ञान की वर्षा करने वाले वा अविनाशी वेद की (इमं श्लोकं) इस पुण्य वाणी का (शृणुतम्) श्रवण किया करो और सदा ध्यान रक्खो कि (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (पुराजाः) पूर्व के उत्पन्न (विप्रासः) विद्वान् जन (किम् आहुः) क्या २ उपदेश करते हैं ।

आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे॥४॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों को (विश्वे जनासः) सभी मनुष्य लोग (आहवन्ते) आदरपूर्वक बुलावें और (कत् चित्) कभी कभी आप दोनों (एवैः) उत्तम ज्ञानयुक्त पुरुषों द्वारा (आमन्येथाम्) उत्तम २ ज्ञान का अभ्यास किया करो और (कत् चित्) कभी कभी (एवैः) उत्तम गमन साधन रथों से (आ गतम्) आया जाया करो । (अग्रे) सब से प्रथम (उस्रः) सूर्य की किरणों के समान उत्तम पद पर पहुंचे हुए विद्वान् पुरुष (मित्रासः) तुम्हारे अति स्नेही मित्रों के सदृश लोग (वां) तुम दोनों को (इमा) इन (गोऋजीका) गाय के दूधसे मिले हुए (मधूनि) अन्नों के समान ही (गोऋजीका) उत्तम

वाणियों से ऋजुता विनय धर्म मार्ग (मधूनि) मधुर ज्ञान (ददुः) दिया करें।

तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वयुक्त सैन्य बल के स्वामी, राजा रानी के समान विद्या में व्यापक सामर्थ्यवान् स्त्री पुरुषो ! हे (मघवाना) ऐश्वर्य के स्वामियो ! (जनेषु) मनुष्यों के बीच में (वां) तुम दोनों का (आङ्गूषः) घोष या उपदेश (रजांसि तिरः) सब लोकों को प्राप्त हो और (वां आंगूषः रजांसि तिरः) तुम दोनों का उपदेश राजस विकारों को दूर करे। अथवा (आङ्गूषः वां रजांसि तिरः) वेद वाणी तुम दोनों के राजसी रजोविकार काम क्रोधादि दोषों को दूर करे और आप दोनों (देवयानैः पथिभिः) देव, विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्गों से (इह आ यातम्) इस पृथिवी पर आओ। हे (दस्रौ) अज्ञानादि के नाशको ! (वां) तुम्हारे लिये ही (इमे) ये (मधूनां) मधुर ज्ञान व अन्नादि पदार्थों के (निधयः) सब खज़ाने हैं। इति तृतीयो वर्गः॥

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः॥६॥

भा०—हे (नरा) नायको ! दोनों उत्तम स्त्री पुरुषो ? (वां) तुम दोनों का परस्पर (सख्यम्) मित्रता (पुराणम् ओकः) अपने पुराने गृह के समान (शिवं) कल्याणकारक हो। (युवोः) तुम दोनों का (द्रविणम्) ऐश्वर्य ज्ञान भी (जह्नाव्याम्) त्यागी पुरुष की दान करने की शैली में व्यय होकर (शिव) कल्याणकारी हो। हम लोग भी (सख्या) अपने मित्रता के भावों को (पुनः) बार २ (शिवानि) कल्याणयुक्त, सुखकर (कृण्वानाः) करते हुए (मध्वा) उत्तम अन्न जलसे (समाना)

एक दूसरे के समान होते हुए (मदेम नु) सब आनन्द और हर्ष को प्राप्त करें।

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् अपने इन्द्रियों को उत्तम अश्वों के समान अपने वश करने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा भविष्य के लिये कर्त्तव्य न टालने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सुदक्षा) उत्तम ज्ञान और कर्म से युक्त, पापाचारों को अग्नि के तुल्य भस्म करने वाले, (वायुना) वायु, प्राणवायु और (नियुद्भिश्च) नियमित नियुक्त अश्वों; इन्द्रियों द्वारा (सुदक्षा) उत्तम बलशाली और (युवाना) जवान, बलवान् (सजोषसा) समान प्रीतियुक्त (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले (अस्रिधा) एक दूसरे के देहों और मानसभावों की हिंसा न करने वाले (सुदानू) उत्तम वचन, धनादि का दान करने वाले होकर (तिरः-अह्न्यम्) विगत या वर्त्तमान में प्राप्त दिन के कमाये (सोमं) ऐश्वर्य को अन्न जल के समान ही (पिबतम्) उपभोग करो।

अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र पालन या अश्वमेध के करने वाले महानुभाव स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों की (इषः) उत्तम कामनाएं और सेनाएं (पुरूचीः) बहुत से पदार्थों और देशों तक पहुंचाने वाली और (गीर्भिः) उत्तम वाणियों द्वारा (यतमानाः) कर्म में प्रवृत्त हुई (अमृध्राः) कभी तिरस्कृत न होकर (परि ईयुः) सब तरफ़ जावें। और (वाम्) तुम दोनों का (ऋतजाः) वेग से उत्पन्न (अद्रिजूतः) मेघ में या पर्वतादि विषम स्थलों में भी वेग से जाने वाला (रथः) रथ

विमान अग्नियान आदि और (ऋतजाः) सत्य से परिष्कृत (अद्रि-जूतः) अविदीर्ण, स्थिर, अविनाशी परमेश्वर की तरफ़ वेग से जाने वाला (वां रथः) तुम दोनों रसस्वरूप आत्मा (सद्यः) शीघ्र ही (द्यावा-पृथिवी परि याति) आकाश और भूमि में भी चले वा प्राण अपान दोनों से परे हैं।

अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९।४॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्यों के स्वामिजनो! नायक, सेनापतियो ! (युवाकुः) तुम्हें प्राप्त होने वाला वा पृथक् २ वा सम्मलित (सोमः) ऐश्वर्य, पुत्र प्रजा आदि तुम दोनों के लिये (मधुसुत्तमः) मधुर रस, अन्न, अभिषेक आदि उत्पन्न करने में सबसे उत्तम सिद्ध हो। आप दोनों उसको (पातम्) पालन करो। आप दोनों (दुरोणे) घर में (आगतम्) आइये। (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (वर्पः) वरण करने योग्य (भूरि) बहुतसा उत्तम ऐश्वर्य (करिक्रत्) उत्पन्न करे और वह (सुतावतः) उत्तम ऐश्वर्य वाले के (निष्कृतम् आगमिष्ठः) घर में प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५९]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ मित्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ६, ९ निचृद्गायत्री। ७, ८ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥

भा०—(मित्रः) जो पुरुष प्रजाओं को मरने से बचावे, स्नेह करे, जिसको सब कोई उत्तम करके जाने, और जो स्नेह से सबकी रक्षा करे

ज्ञवः) परिमित जानु वाले अर्थात् सभ्यतापूर्वक टांगे सिकोड़ कर बैठने वाले वा परिमाण से क़दम बढ़ाने वाले विवेकी पुरुष (पृथिव्याः वरिमन्) भूमि के बड़े भारी, श्रेष्ठ विस्तृत देश में हम लोग (आदित्यस्य) अदिति भूमि के उपकारक स्वामी के तुल्य सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा विद्वान् पुरुष के उपदिष्ट (व्रतम्) ब्रह्मचर्य आदि आश्रमधर्म, नियमों और व्रतादि के अधीन (उप क्षियन्तः) निवास करते हुए (वयं) हम सब (मित्रस्य) मृत्यु से बचाने वाले सर्व स्नेही परमेश्वर, गुरु वा राजा के (सुमतौ) शुभ उत्तम ज्ञान के अधीन (स्याम) रहें ।

अ॒यं मि॒त्रो न॑म॒स्यः॑ सु॒शेवो॒ राजा॑ सुक्ष॒त्रो अ॑जनिष्ट वे॒धाः ।
तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (मित्रः) सर्वस्नेही, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाला (नमस्यः) सबके आदर करने योग्य (राजा) तेज से प्रदीप्त, (सुक्षत्रः) उत्तम क्षात्रबल से सम्पन्न, (वेधाः) कर्मों के विधान करने में दक्ष, विद्वान् (अजनिष्ट) हो । (तस्य) उस (यज्ञियस्य) सत्संग और मैत्री के योग्य महा पुरुष की (सुमतौ) उत्तम मति और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) शुभचित्तता के अधीन (वयं) हम (स्याम) रहें ।

म॒हाँ आ॑दि॒त्यो नम॑सोप॒सद्यो॑ यात॒यज्ज॑नो गृण॒ते सु॒शेवः॑ ।
तस्मा॑ ए॒तत्पन्य॑तमाय॒ जुष्ट॑म॒ग्नौ मि॒त्राय॑ ह॒विरा जु॑होत ॥५॥५॥

भा०—(महान्) गुणों में महान्, पूजनीय (आदित्यः) अदिति पृथिवी का पालक, स्वामी, वा अदिति अर्थात् उत्तम माता पिता और राष्ट्रभूमि का उत्तम पुत्र कहाने योग्य (नमसा) नमस्कार, आदरपूर्वक (उपसद्यः) प्राप्त होने योग्य (यातयज्जनः) प्रजाजनों को अपने २ कार्य व्यापारों में लगाने हारा, सूर्य के समान (सुशेवः) उत्तम सुख देने

वह पुरुष 'मित्र' कहाता है। वह ही (जनान्) सब मनुष्यों को (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (यातयति) नाना प्रकार के यत्न पुरुषार्थ आदि कराता है। वह (मित्रः) सबका स्नेही, सूर्य के समान महान्, परमेश्वर वा राजा (पृथिवीम् उत द्याम) भूमि और आकाश को (दाधार) धारण करता है। (मित्रः) सूर्य के समान वह (कृष्टीः) कृषकों वा सामान्य मनुष्यों को भी (अनिमिषा) रात दिन (अभिचष्टे) देखता है। उस (मित्राय) राष्ट्र, प्रजा के पालक, स्नेही, त्राता के लिये (घृतवत् हव्यं) घृत से युक्त अन्न और तेजोयुक्त अन्य ग्राह्य पदार्थ (जुहोत) प्रदान करो।

प्र स मि॑त्र॒ मर्तो॑ अस्तु॒ प्रय॑स्वा॒न्यस्त॑ आदित्य॒ शिक्ष॑ति व्र॒तेन॑।
न ह॑न्यते॒ न जी॑यते॒ त्वोतो॒ नैन॒मंहो॑ अश्नो॒त्यन्ति॑तो॒ न दू॒रात्॥२॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहवन्! आप्तजन! आचार्य! राजन्! परमेश्वर! (यः) जो पुरुष (ते) तेरे सिखाये, दर्शाये (व्रतेन) नियम कर्म से (शिक्षति) स्वयं शिक्षा ग्रहण करता वा अन्यों को शिक्षा, अन्नादि प्रदान करता है (सः) वह (मर्त्तः) मनुष्य (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील, उत्तम अन्न और ज्ञान का स्वामी (अस्तु) अवश्य होता है। (त्वा ऊतः) तेरे द्वारा सुरक्षित पुरुष (न हन्यते) न कभी मारा जाता, वा दण्डित होता और (न जीयते) न कभी अन्यों से पराजित होता है। (एनम्) इसको (न अन्तिमः) न पास से और (न दूरात्) न दूर से ही कभी (अंहः अश्नोति) पाप ही व्यापता है।

अ॒न॒मी॒वास॒ इळ॑या॒ मद॑न्तो मि॒तज्ञ॑वो॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्याः।
आ॒दि॒त्यस्य॑ व्र॒तमु॑पक्षि॒यन्तो॑ व॒यं मि॒त्रस्य॑ सुम॒तौ स्या॑म॥३॥

भा०—(अनमीवासः) रोगों से रहित (इलया) अन्न, उत्तम वाणी और भूमि के राज्य से (मदन्तः) आनन्द लाभ करते हुए (मित-

वाला पुरुष (गृणते) उपदेश वा अनुशासन करे । (तस्मै) उस (पन्यतमाय) सर्वोत्तम स्तुति करने योग्य (मित्राय) सबको मृत्यु से बचाने वाले, सर्वस्नेही, सत्संग योग्य, शत्रुनाशक पुरुष के लिये (जुष्टम्) प्रेम पूर्वक स्वीकार करने योग्य (हविः) उत्तम ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थ (अग्नौ) उसके अग्रणी ज्ञानी और अग्नि के तुल्य तेजस्वी होने के निमित्त ही (आजुहोत) आदर से प्रदान करो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥

भा०—(चर्षणीधृतः) मनुष्यों को धारण करने वाले, उनके शासक; (देवस्य) दानशील तेजस्वी (मित्रस्य) रक्षक, शत्रुहिंसक, स्नेही पुरुष का (चित्रश्रवस्तमम्) अद्भुत अन्नादि रस तथा उत्तम श्रवणयोग्य, कीर्त्ति और ज्ञान से युक्त (द्युम्नं) ऐश्वर्य और तेज (सानसि) सबके सेवन करने और सबको सुख देने वाला हो ।

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥

भा०—(मित्रः) अन्धकार के नाशक, सूर्य के समान (यः) जो सर्व सुहृत् राजा, प्रभु (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दिवम्) महान् आकाश के विस्तृत एवं विजय की कामना करने वाली सेना और नाना व्यवहारकारिणी प्रजा को (अभि बभूव) अपने वश करने में समर्थ होता है वह (सप्रथाः) प्रसिद्ध कीर्त्ति और विस्तृष्ट राष्ट्र के सहित रहता हुआ (श्रवोभिः) यशों और अन्नों से सम्पन्न (पृथिवीं) पृथिवी को भी (अभि-बभूव) वश करने वाला है। (२) परमेश्वर सर्व सखा है । वह महान् (दिवं) आकाश और सूर्य को महान् सामर्थ्य से बनाता, वश करता है । पृथिवी को अन्नों से पूर्ण करता है, वह विस्तृत जगत् के साथ विद्यमान है ।

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥ ८ ॥

भा०—(अभिष्टिशवसे) सब तरफ़ शासन करने में समर्थ बलशाली (मित्राय) सर्वस्नेही, सर्व रक्षक के लिये ही (पञ्च जनाः) पांचों प्रकार के जन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये प्रजाजन और पांचवां निषाद वर्ग जो राजा द्वारा पदों पर विराजे, ये पांचों वर्ग (येमिरे) उद्यम करें। (सः) वह (देवान् विश्वान्) किरणों को सूर्य के समान, समस्त विद्वानों और वीर विजयोत्सुक वीरों को (बिभर्ति) धारण करता और पालता पोषता है।

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे ।
इषं इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—(मित्रः) सर्वस्नेही, सर्वरक्षक पुरुष (देवेषु) विद्वानों, व्यवहार-कुशलों और (आयुषु) शरणागतों वा आदरपूर्वक एकत्र संगत सभासदों, प्रजा पुरुषों के बीच (वृक्तबर्हिषे जनाय) धान्य, कुशाओं के काट लेने में समर्थ कृषक जन, याज्ञिक लोग और कुशल पुरुष तथा कुशादिवत् कण्टक रूप शत्रुजनों को काटने वाले वीर (जनाय) जन के बढ़ाने के लिये (इषः) अपनी इच्छाओं और प्रेरित सेनाओं को (इष्टव्रताः) अभीष्ट कर्म करने में समर्थ (अकः) करे। इसी प्रकार वह राष्ट्र में धान्य काट लेने वाले कृषकों के लिये वृष्टि जलों और अन्नों को अभीष्ट, मन चाहे कर्म करने में समर्थ करे। वर्षा जलों का यथेष्ट मार्ग से नहरों द्वारा ले जाने का उचित प्रबन्ध करे। (इषः) अन्नों को अभीष्ट कर्म कराने में समर्थ हो। अन्न द्वारा भृत्यों को रखकर उनसे यथेष्ट कर्म करा सके। इति षष्ठो वर्गः ॥

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥

भा०—हे (नरः) नायक, नेता लोगो (उशिजः) नाना ऐश्वर्यों और प्राप्त करने योग्य पदार्थों की आकांक्षा करने वाले लोग (बन्धुता) परस्पर बन्धु रहते हुए (वः) आप लोगों के (मनसा) चित्त और ज्ञान से और (वः वेदसा) आप लोगों के धनैश्वर्य से (इह-इह) इस राष्ट्र या जगत् में स्थान २ पर (तानि) उन नाना ऐश्वर्यों को (अभि-जग्मुः) प्राप्त करें और वे (याभिः) दूर तक जाने वाली (मायाभिः) ज्ञानकारिणी बुद्धियों से युक्त होकर (प्रतिजूतिवर्पसः) शत्रुओं, प्रति-द्वन्द्वी, वेग, बल से युक्त शरीरों वाले, दृढ़ (सौधन्वनाः) उत्तम धनु-र्धारी लोगों के अधीन सैनिक जन (सौधन्वनाः) उत्तम अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ के उपासक कृषकादि वा उत्तम जलप्रद मेघ तुल्य सर्व ज्ञान-प्रद विद्वान् जन (यज्ञियं भागं) यज्ञ, प्रजापति, राजा के द्वारा ग्रहण करने योग्य (भागं) कर बलि को वा (यज्ञियं) परस्पर सत्संग, मैत्री वा आदर से प्राप्त होने वाले अंश को (आनश) प्राप्त करें, भोगें। सुधन्वन ऋषयस्त्रयः पुत्राः ऋभुर्विभ्वा वाज इति। सत्य से अन्न, और धन से चमकने और सामर्थ्यवान् होने वाला पुरुष न्यायाधीश, अन्न पति और धनपति ऋभु हैं। विशेष भूमि का स्वामी वा सामर्थ्यवान् विभ्वा, है (वाजः) संग्रामकरी, बलवान् पुरुष 'वाज' है।

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

भा०—(ऋभवः) खूब प्रकाश से चमकने वाले सूर्य-किरण जिस प्रकार (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (चमसान् अपिंशत) मेघों को रूपवान् बनाते अर्थात् उत्पन्न करते हैं और वे (गाम् अरिणीत) पृथिवी को आच्छादित कर लेते हैं और दिन और रात्रि को उत्पन्न करते हैं और

जिस प्रकार (ऋभवः) ज्ञानपूर्वक कर्म करने में समर्थ शिल्पी लोग (शचीभिः) औज़ारों से (चमसान्) खाने के पात्र थाली, कटोरे, चमचे आदि (अपिंशत) सुन्दर रूप में बनाते हैं। और वे (धिया) बुद्धि से चर्म के बने जूते से (गाम् अरिणीत) पृथ्वी पर चलने का उपाय करते हैं। अथवा चर्म की कृत्रिम गौ आदि पशु बनाते वा चर्म के बने पट्टों आदि से (गाम्) वेग से जाने वाली गाड़ी यन्त्र, चक्र आदि (अरिणीत) चलाते हैं (मनसा) ज्ञान से अश्वों को सधाते वा शिल्प द्वारा रथ के अश्वस्थानी यन्त्र बनाते हैं इससे वे भी (देवत्वम्) विद्वान् पूज्य पद को प्राप्त करते हैं या धन देने योग्य हो जाते हैं इसी प्रकार (ऋभवः) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले (याभिः) जिन (शचीभिः) बुद्धियों, वाणियों और सेना आदि शक्तियों से (चमसान्) मेघ के सदृश शस्त्रास्त्र वर्षा करने वाले वीरों को वा (चमसान्) राष्ट्र के उपभोक्ता अध्यक्षों को (अपिंशत) रूपवान् करते और (चमसान्) भूमि और प्रजा को खा जाने वालों को (अपिंशत) अवयव, अवयव, टुकड़े २ कर देते हैं और (यया धिया) जिस राष्ट्र धारक शक्ति और बुद्धि से (चर्मणः) चर्म की बनी जिह्वा से या चर्म की बनी तांत से (गाम्) वाणी को उच्चारण करते हैं और (चर्मणः गाम् अरिणीत) चर्म की बाण फेंकने वाली डोरी बनाते हैं। और (येन मनसा) जिस मन से (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन (हरी) ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय दोनों प्रकार के देह-रथ में लगे अश्वों को (निर-अतक्षत) प्रकट करते हैं हे विद्वान् लोगो ! उन्हीं शक्तियों, बुद्धियों और मनन सामर्थ्य से आप लोग (देवत्वम्) ज्ञानप्रद विद्वान् के पद को (सम् आनश) अच्छी प्रकार प्राप्त करो।

इन्द्र॑स्य स॒ख्यमृ॒भवः॒ सम॑नशु॒र्मनो॒र्नपा॑तो अ॒पसो॑ दधन्विरे।
सौ॒ध॒न्व॒नासो॑ अमृत॒त्वमेरि॑रे वि॒ष्ट्वी शमी॑भिः सु॒कृतः॑ सुकृ॒त्यया॑॥३॥

भा०—(ऋभवः) सत्य ज्ञान और सत्य न्याय से प्रकाशित और अधिक सामर्थ्यवान् होकर विद्वान् पुरुष (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर वा समृद्ध राजा के (सख्यं) मित्रता को (सम् आनशुः) भली प्रकार प्राप्त करें। और (मनोः नपातः) मननशील मनुष्य और चित्त को न गिरने देने वाले (अपसः) उत्तम कर्मों को (दधन्विरे) धारण करें। वा मननशील दृढ़ मनुष्य के करने योग्य कर्मों को करें। वे (सौधन्वनासः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष के पुत्र वा शिष्य होकर (सुकृत्यया) उत्तम क्रिया व आचरण से (सुकृतः) सदाचारवान् होकर (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों से (विष्ट्वी) परमेश्वर के परमपद को प्रवेश करके (अमृतत्वम्) अमृत मोक्ष पद को (एरिरे) प्राप्त करें। इसी प्रकार उत्तम कर्म कुशल विद्वान् पुरुष (मनोः नपातः अपसः) ज्ञान से उत्पन्न कर्मों को करें और उत्तम साधन सम्पन्न होकर उत्तम क्रिया (Art) से उत्तम काम करें कर्मों से राष्ट्र में स्थान प्राप्त कर अपने अन्न जीविकादि लाभ करें।

**इन्द्रे॑ण याथ स॒रथं॑ सु॒ते सचाँ॒ अथो॒ वशा॑नां भवथा स॒ह श्रि॒या।
न वः॑ प्रति॒मै सु॑कृ॒तानि॑ वाघतः॒ सौध॑न्वना ऋभवो वी॒र्या॑णि च ॥४॥**

भा०—हे (वाघतः) ज्ञान को धारण करने वाले! (सौधन्वनाः) उत्तम शक्तिसम्पन्न! हे (ऋभवः) सत्यज्ञान से बहुत अधिक प्रकाशमान विद्वानो! जिस प्रकार रश्मियां प्रकाशमान सूर्य के साथ जातीं और दीप्तियों की शोभा से युक्त होती हैं। उनके वृष्टि आदि कृत्य और विद्युत आदि बलों का कोई मुक़ाबला नहीं करता, उसी प्रकार आप लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा वा ऐश्वर्य के साथ (सरथं) एक समान रथ में, वा रथादि सम्पन्न राज्य सेनादि को प्राप्त कर (सुते) उत्पन्न ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में (सचा) एक साथ (याथ) प्रयाण करो। (अथो) और (वशानाम्) वश करने वाले, वशी मनुष्यों के

बीच वा कान्तिमान् सूर्यादि की (श्रिया) लक्ष्मी, कान्ति और (वः सुकृतानि) तुम्हारे उत्तम कार्यों के और (वीर्याणि च) तुम्हारे वीरोचित कार्यों, बलों और सामर्थ्यों को कोई भी (प्रतिमै न) मुकाबला या परिमाण न कर सके। (२) परमेश्वर के साथ ही इस देह में अपने ज्ञानाभिषिक्त आत्मा में गमन करो, वशीभूत प्राणों के कान्ति से युक्त होओ, उत्तम कर्म और वीर्य तुम्हारे अप्रतिम हों।

इन्द्र॑ ऋ॒भुभि॑र्वा॒जव॑द्भिः॒ समु॑क्षितं सु॒तं सोम॒मा वृ॑षस्वा॒ गभ॑स्त्योः।
धि॒येषि॒तो म॑घवन्दा॒शुषो॑ गृ॒हे सौ॑धन्व॒नेभि॑ः स॒ह म॑त्स्वा॒ नृभि॑ः॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (ऋभुभिः वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोमं गभस्त्योः) सूर्य जिस प्रकार वेगवान् प्रकाशमय किरणों से संसिक्त जल को या ओषध्यादि को किरणों द्वारा पुष्ट करता है उसी प्रकार तू (वाजवद्भिः ऋभुभिः) ज्ञानवान् और बलवान् विद्वानों और वीर पुरुषों से (समुक्षितं) अच्छी प्रकार सेचित, परिपोषित और परिपालित (सुतं सोमम्) शासित ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (गभस्त्योः) वश करने में समर्थ बाहुओं के बल पर (आवृषस्व) सब प्रकार से परिपुष्ट कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (धिया) बुद्धि से (इषितः) प्रेरित होकर (दाशुषः) दानशील करप्रद प्रजा के (गृहे) ग्रहण करने हारे वश करने वाले पद पर स्थित होकर (सौधन्वनेभिः) उत्तम ज्ञान और धनुष आदि शस्त्र-बल से सम्पन्न (नृभिः) वीर विद्वान् नेताओं सहित (मत्स्व) आनन्द को लाभ कर।

इन्द्र॑ ऋ॒भुमा॒न्वाज॑वान्मत्स्वे॒ह नो॒ऽस्मिन्त्सव॑ने॒ शच्या॑ पुरुष्टुत।
इ॒मानि॒ तुभ्यं॒ स्वस॑राणि येमिरे व्र॒ता दे॒वानां॒ मनु॑षश्च॒ धर्म॑भिः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य ! सूर्य जिस प्रकार प्रकाशवान् और अन्नवान् होकर

सब को आनन्दित करता है उसी प्रकार तू भी (ऋभुमान्) विद्वान् सत्य ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी और (वाजवान्) ऐश्वर्य और बल से युक्त होकर (इह) इस राष्ट्र में (नः) हमारे (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य में अपनी (शच्या) शक्तिशालिनी बुद्धि और सेना से (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। (इमानि) ये (स्वसराणि) दिन जिस प्रकार (देवानां व्रतानि) सूर्य की किरणों के द्वारा करने योग्य होते हैं उसी प्रकार (इमानि) ये (स्वसराणि) स्वयं 'स्व' धन के निमित्त आगे बढ़ने वाले (देवानां) विद्यार्थी पुरुषों और (मनुषश्च) मननशील पुरुषों के (व्रता) व्रत, कर्त्तव्य कर्म (धर्मभिः) धारण करने योग्य राष्ट्र के धारक राज्य नियमों सहित (तुभ्यं) तेरे ही लिये (येमिरे) राष्ट्र को नियन्त्रित करने और तुझे बल देने वाले हों।

इन्द्र॑ ऋ॒भुभि॑र्वा॒जिभि॑र्वा॒जय॑न्नि॒ह स्तोमं॑ जरि॒तुरुप॑ याहि य॒ज्ञिय॑म्।
श॒तं केते॑भिरि॒षिरे॑भिरा॒यवे॑ स॒हस्र॑णीथो अध्व॒रस्य॒ होम॑नि॥७।७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद राजन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (ऋभुभिः) सत्य ज्ञानों और विशाल बलों से चमकने वाले (वाजिभिः) बलवान् पुरुषों से युक्त होकर किरणों से सूर्य के तुल्य (वाजयन्) तेजस्वी बलवान् होकर (जरितुः) उपदेश देने वाले, उपदेष्टा वा आज्ञापक के (यज्ञियं) सत्संग, आदर सत्कार मान प्रतिष्ठा मैत्रीभाव के योग्य (स्तोमं) स्तुत्य पद को (उपयाहि) प्राप्त कर। और (केतेभिः) प्रजाओं और प्रज्ञावान् पुरुषों, (इषिरेभिः) इष्ट मित्रों और प्रजाको सन्मार्ग दिखलाने वालों द्वारा तू (आयवे) मनुष्य के हितार्थ (अध्वरस्य) हिंसारहित और अविनाशी न्याय आदि के (होमनि) स्वीकार योग्य कार्य में (सहस्रनीथः) सहस्रों, अनेकों से प्राप्त एवं अनेक, सहस्रों आज्ञाओं और आज्ञापकों द्वारा सहस्र वाणियों से युक्त होकर (शतं) सौ वर्ष के जीवन को (उपयाहि) प्राप्त हो अथवा (शतं केतेभिः) सैकड़ों विद्वानों से युक्त होकर सहस्रों वाणियों वा स्तुतियों से युक्त हो। इति सप्तमो वर्गः॥

[६१]

विश्वामित्र ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २ विराट्-त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त ! हे (वाजिनि) विज्ञान, बल और अन्न समृद्धि से युक्त ! हे (मघोनि) ऐश्वर्यसम्पन्न तू (प्रचेताः) उत्तम चित्त वाली और उत्तम ज्ञान से युक्त होकर (गृणतः) उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुष के (स्तोमं) स्तुति वचन को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर । हे (देवि) सुखदात्रि ! देवि ! तू (पुराणी) पूर्व नवयौवन वाली (युवतिः) युवती और (पुरन्धिः) बहुत से शुभ गुणों को वा पुर के समान गृह को धारण करने वाली वा अपने पालक पति को धारण करने वाली होकर हे (विश्व-वारे) सबसे उत्तम वरण करने योग्य ! तू (अनुव्रतं चरसि) अनुकूल व्रताचरण करने वाली हो । (२) शत्रु बल को भस्म करने वाली सेना उषा है । बलवती वा युद्धविजयिनी होने से 'वाजिनी' ऐश्वर्य युक्त होने से 'मघोनी' है । वह अपने आज्ञापक की आज्ञा सुने । पुर, राष्ट्र की रक्षिका सेना शत्रु को दूर भगाने वाली होने से 'युवति' है । सब शत्रु को वारण करने से 'विश्ववारा' है, वह नाम के अनुकूल रहकर कार्य करे ।

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

भा०—हे (उषः देवि) कमनीय कान्ति वाली देवि ! तू (सूनृता) शुभ सत्य वचनों को (ईरयन्ती) बोलती हुई (अमर्त्या) साधारण

मनुष्यों से ऊपर असाधारण होकर (चन्द्ररथा) चन्द्र के समान कान्तिमान, सुवर्ण आदि से सजे रथ में बैठकर चन्द्र से युक्त उषा के समान वा चन्द्र तुल्य आह्लादक पति को रमण रूप से प्राप्त कर (विभाहि) विशेष कान्ति से चमक। (सुयमासः अश्वाः) उषा के व्यापक किरणों के समान उत्तम नियन्त्रित अश्व (त्वा आवहन्तु) तुझे दूर स्थान में ले जावें। (ये) जो (पृथुपाजसः) बहुत बड़े बल वाले हैं वे (सुयमासः अश्वाः) उत्तम जितेन्द्रिय अश्व के समान गृहस्थ रथ को उठाने में समर्थ बलवान्, वीर्यवान् पुरुष ही (सुयमासः) उत्तम प्रतिज्ञाबद्ध होकर (हिरण्यवर्णां) सुवर्ण के समान हित एवं रमणीय वर्ण व स्वभाव वाली (त्वा आवहन्तु) तुझे विवाह द्वारा प्राप्त करें।

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (विश्वा भुवनानि प्रतीचीं ऊर्ध्वा अमृतस्य केतुः) समस्त भुवनों को व्यापती हुई उषा जीवमात्र को ज्ञान या चेतना देने वाली सबसे ऊपर रहती है वह (समानम् अर्थं चरणीयमाना चक्रम् आवर्त्तते) एक समान मार्ग में चलती हुई वार वार चक्रवत् आती है उसी प्रकार हे (उषः) कान्तिमति! कमनीय गुणों से चमकने वाली कन्ये! तू (प्रतीची) आदर योग्य पुरुष का आदर सत्कार करती हुई वा प्रत्यक्ष सबके समक्ष आती हुई (विश्वा भुवनानि) सब प्राणियों, मनुष्यों के (ऊर्ध्वा) ऊपर, आदरणीय पद पर स्थित होकर (अमृतस्य केतुः) अमृत के तुल्य जीवन और उत्तम अन्न और जल के गुणों को जानने वाली हो। हे (नव्यसि) सबसे अधिक नवीनतम! अति सुन्दरि! अतिस्तुत्ये! तू अपने पति के साथ (समानम्) मान आदर सहित, एक समान (अर्थं) उद्देश्य को, गृहस्थ जीवन के मार्ग को चलने में (चरणीयमाना) चरण के तुल्य आचरण करती हुई रथ में लगे दो

पहियों में से (चक्रम् इव) एक चक्र के समान (वावृत्स्व) वर्त्ताव किया कर । स्त्री पुरुष दोनों गृहस्थ शरीर के दो चरणों के समान वा गृहस्थ रथ के दो पहियों के समान हैं । पति पत्नी मिलकर एक शरीर वा एक रथ बनते हैं, ऐसा वेद का अभिप्राय है ।

अव॒ स्यूमे॑व चि॒न्वती॑ म॒घोन्यु॒षा या॑ति॒ स्वस॑रस्य॒ पत्नी॑ ।
स्व१॒र्जन॑न्ती सु॒भगा॑ सु॒दंसा॒ आन्ता॑द्दि॒वः प॑प्रथ॒ आ पृ॑थि॒व्याः ॥४॥

भा०—(उषा स्वसरस्य पत्नी स्यूमा इव अवचिन्वती) तन्तु उत्पन्न करने वाली चर्खे की तकली जिस प्रकार (स्व-सरस्य पत्नी सती अवचिनोति) स्वयं आप से आप निकलने वाले सूत की रक्षिका होकर उसको एकत्र करती हुई गति करती है उसी प्रकार (उषा) प्रभात वेला भी (मघोनी) उत्तम प्रकाशयुक्त होकर (स्वसरस्य पत्नी) स्वयं कालगति से चलने वाले वा उत्तम प्रकार से अन्धकार को दूर करने वाले दिन की मालिकन सी होकर (अवचिन्वती) अन्धकार का नाश और प्रकाश किरणों का अवचय या सञ्चय सा करती हुई (स्वः जनन्ती) प्रकाशमान सूर्य को उत्पन्न करती हुई (सुभगा) उत्तम सेवने योग्य, सुखप्रदात्री (सुदंसा) उत्तम स्वरूप वाली, दर्शनीय (दिवः पृथिव्याः आ अन्ताम् पप्रथे) आकाश और पृथिवी की सीमा तक फैल जाती है उसी प्रकार स्त्री (मघोनी) ऐश्वर्ययुक्त (उषा) कमनीय गुणों से युक्त, पति की नित्य शुभ कामना करने वाली (स्वसरस्य) सुख सञ्चारित करने वा स्वयं अभिलाषा युक्त होकर प्राप्त होने वाले पुरुष की (पत्नी) स्वयं पत्नी होकर (स्यूमा इव) तन्तु सन्तान उत्पन्न करने वाली तकली के समान स्वयं भी सन्तान रूप तन्तु सन्तान उत्पन्न करने वाली होकर (अव चिन्वती) विनम्र भाव से गुणों और रत्नों का सञ्चय करती हुई (स्वः जनन्ती) पति को सुख उत्पन्न करती हुई (सुभगा) उत्तम रूप से सुख से सेवनीय, सौभाग्यवती, (सुदंसा) उत्तम कर्म करने वाली, सदाचारिणी (दिवः आ

अन्तात् पृथिव्याः आ अन्तात्) आकाश की परली सीमा और पृथिवी की परली सीमा तक (पप्रथे) प्रख्यात हो। यह सूर्य की कान्ति के समान कमनीय और पृथिवी के समान सबका आश्रय उत्पादक माता हो। (२) उषा, सेना (स्वसरस्य पत्नी) उत्तम शस्त्रप्रक्षेप्ता, पुरुष वा धनुष आदि शस्त्रास्त्रों की पालिका वा अपने सञ्चालक नायक की पत्नी के समान उसकी रक्षिका हो। वह ऐश्वर्यवती होकर शत्रुओं का अवचय, वा अपक्षय करती हुई (स्वः जनन्ती) शत्रुओं के संतापकारी तेजस्वी नायक को प्रकट करती हुई, उत्तम युद्धादि कर्म में निपुण होकर सर्वत्र दिगन्तों तक प्रसिद्ध हो और फैले।

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

भा०—(मधुधा दिविपाजः अश्रेत्) जिस प्रकार 'मधु' आदित्य को धारण करने वाली उषा आकाश में तेज को धारण करती है और जिस प्रकार वह (रण्वसंदृक्) रम्यदर्शना, (रोचना रुरुचे) प्रकाशवती होकर चमकती है उसी प्रकार (मधुधा) पति के निमित्त मधुपर्क को लाती हुई, मधुर वचनों और मधुर रूप, गुण, स्वभाव को धारण करती हुई वा मधु अर्थात् उत्तम अन्न जल को (अश्रेत्) धारण करे और परिपक्व करे (दिवि) अपनी कामना के योग्य पति के आश्रय रहकर (ऊर्ध्व) सबसे ऊपर (रण्वसंदृक्) रमणीय, सम्यक् दृष्टि, सौम्यलोचना होकर (रोचना) सबके हृदय को अच्छी लगती हुई (रुरुचे) सबके मनोनुकूल वर्त्ते। हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के बीच में ऐसी (देवीं) दिव्य गुणों से युक्त (उषसं) पति की कामना करने वाली (सुवृक्तिम्) उत्तम रीति से दुर्गुणों से बचने वाली (विभातीं) विशेष रूप से गुणों से चमकने वाली कन्या वा स्त्री को (वः) आप लोग (अच्छ)

सबके समक्ष (नमसा) आदर सत्कार और अन्नादि से (प्र भरध्वम्) खूब पुष्ट, पूर्ण करो ।

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतावरी) सत्य प्रकाश से युक्त उषा (दिवः अर्कैः अबोधि) सूर्य के तेजों से जगती है वह (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी में (आ अस्थात्) सर्वत्र व्याप जाती है (आयतीम् विभातीं उषसं प्राप्य भिक्षमाणः अग्निः द्रविणं एति) उस व्यापक प्रकाश वाली उषा काल को प्राप्त होकर याचन करता हुआ विनयशील भक्त द्रुत, रसमय ज्ञान को प्राप्त होता है उसी प्रकार (ऋतवरी) सत्य ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्यवती स्त्री (दिवः) कामनावान् पति के (अर्कैः) उत्तम अर्चना योग्य गुणों और प्रशंसा वचनों से ही (अबोधि) जानी जाती है वह (रेवती) उत्तम गुणों और लक्षणों से सम्पन्न, सौभाग्यवती कन्या वा स्त्री (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान अपने माता पिता वा पितृकुल और मातृकुल दोनों में (आ अस्थात्) आदर से प्राप्त हो । हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! हे अग्रणी नायक ! तू (वामं) प्राप्त करने योग्य, उत्तम, (द्रविणं) ऐश्वर्य के समान (आयतीं) आती हुई, (विभाती) विशेष गुणों से चमकती हुई (उषसम्) कमनीय, कान्तिमती कन्या की (भिक्षमाणः) उसके पिता से प्रार्थना करता हुआ (एषि) उसे प्राप्त हो । ययाति आदि उत्तम विद्वान् राजकुमारों ने भी गुणवती कन्या प्राप्त करके भी उनके पिताओं से ही याचना करके प्राप्त किया । वे इतिहास इस मन्त्र की व्याख्या हैं ।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतस्य) प्रकाश और (उषसाम्) उषा या प्रभात वेलाओं के (बुध्ने) मूल में विद्यमान (मही रोदसी) बड़ी भारी आकाश और पृथ्वी दोनों को (इषण्यन्) प्रेरित करने हारा (वृषा) वृष्टियों का कर्त्ता सूर्य जिस प्रकार (आविवेश) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच प्रवेश करता वा प्रकट होता है, उसी प्रकार (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और (उषसाम्) कमनीय कन्याओं के (बुध्ने) आश्रय रूप में उनको (इष-ण्यन्) चाहता हुआ (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष (मही) पूजनीय (रोदसी) माता पिता दोनों को (आ विवेश) आदर पूर्वक प्राप्त हो। जिस प्रकार (मित्रस्य वरुणस्य मही माया) मित्र अर्थात् दिन और वरुण अर्थात् रात्रि दोनों की यह बड़ी शक्ति है कि यह उषा (चन्द्रा इव भानुं) सुवर्णपुञ्जों के समान दीप्ति या सूर्य को (पुरुत्रा) बहु रूप या बहुत से देशों में (विदधे) फैला देती है। उसी प्रकार (मित्रस्य) स्नेह और (वरुणस्य) परस्पर एक दूसरे के वरण करने वाले वर वधू की यह (मही माया) अति पूज्य, उत्कृष्ट बुद्धि है कि वह (पुरुत्र) बहुतों के बीच में (चन्द्रा इव) आह्लादकारिणी कन्या के समान ही (भानुं) कान्तिमान् पुरुष को भी (विदधे) बना देती है। दोनों वर वधू समान हो जाते हैं। अथवा—सखा वरण कर्त्ता पुरुष की ही वह पूज्य मति है उस (भानुं) कान्तिमती कन्या को (चन्द्रा इव) सुवर्णों के पुञ्जों के समान आभूषणों से युक्त बना देती है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६२]

विश्वामित्रः। १६—१८ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ १—३ इन्द्रावरुणौ। ४—६ बृहस्पतिः। ७—९ पूषा। १०—१२ सविता। १३—१५ सोमः। १६—१८ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५, १०, ११, १६ निचृद्गायत्री। ६ त्रिपाद्गायत्री। ७, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १७, १८ गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवन् ! इन्द्र सूर्य, विद्युत् के तुल्य तेजस्विन् ! हे वरुण ! सबके आवरण करने वाले अन्धकार वा रात्रि के तुल्य सबको वश करने वाले सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय पुरुष ! (इमाः) ये (ऊ) ही (वां) तुम दोनों की (मन्यमानाः) जानी गई (भृमयः) भ्रमण की क्रियाएं हैं जो (युवावते) तुम दोनों की रक्षा करने वाले और तुम दोनों को चाहने वाले सज्जन के हित के लिये कभी (तुज्याः न अभूवन्) नाश होने योग्य नहीं हैं । हे (इन्द्रा वरुणा) सूर्य और मेघ के समान राजन् सेनापते ! (वां) तुम दोनों का (त्यत् यशः क्व) वह यश और तेज कहां स्थित है (येन) जिससे आप दोनों (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सिनं) परस्पर प्रेम बांधने वाले बल और अन्न को पुष्ट करते हो ।

अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणौ) सूर्य और मेघ के तुल्य ऐश्वर्यवान् सब दुःखों को वारण करने हारे वा दिन रात की तुल्य प्रधान नायक स्त्री पुरुषो ! (अयम्) यह (वां) तुम दोनों के (रयीयन्) ऐश्वर्य की कामना करने वाला (पुरुतमः) बहुत संख्या वाला है जो (शश्वत्तमम्) सदा तुम दोनों को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (जोहवीति) पुकारता है । आप दोनों (सजोषौ) समान प्रीतियुक्त होकर (मरुद्भिः) वायुगणों के तुल्य बलवान् पुरुषों सहित (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य उत्पादक और आश्रय होकर (मे हवं) मेरे वचन को (शृणुतं) श्रवण करो ।

अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) दिन, रात्रि व सूर्य मेघ के तुल्य नायक जनो ! (अस्मे) हमें (तत्) वह अलौकिक (वसु) ऐश्वर्य (स्यात्) प्राप्त हो । हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! (अस्मे) हमें (सर्व-वीरः) सब वीरों से युक्त (रयिः) गौ पशु हिरण्यादि हो । (वरूत्रीः) शत्रुओं से बचाने वाली सेनाएं (शरणैः) शत्रुनाशक साधनों, अस्त्रों और शस्त्रों से (अवन्तु) रक्षा करें । और (अस्मान्) हमको (होत्रा) प्रदान योग्य और (भारती) सर्वपालक वाणी (दक्षिणाभिः) उत्तम दानों और उदार वाणियों द्वारा (अवन्तु) रक्षा करें ।

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य ।
रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बृहती, वेदवाणी के पालक विद्वान् ! हे महान् ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! तू (नः) हमारे (हव्यानि) दान देने और स्वीकार करने योग्य पदार्थों और वचनों को (जुषस्व) प्रेम से सेवन कर और (दाशुषे) दानशील पुरुष को (रत्नानि) उत्तम, रमणीय धन (रास्व) प्रदान कर । विद्वान् भी ऐसा नियम बनावें कि राज्य में वही लोग धन पावें जो लोकोपकार में दान देने वाले हों ।

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत ।
अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अर्कैः) उत्तम आदर सत्कार मन्त्रों और उत्तम विचारों से (शुचिम्) पवित्र (बृहस्पतिम्) वेद के वाणी के पालक विद्वान् पुरुष वा सर्व ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर को (अध्वरेषु) यज्ञ, विद्याप्राप्ति आदि अहिंसनीय अपीड़नीय कार्यों के

अवसरों पर (नमस्यत) नमस्कार करो, उसका परम आदर सत्कार करो। मैं उससे ही (अनामि) कभी न झुकने वाले (ओजः) बल पराक्रम की (आ चके) प्रार्थना करूं। इति नवमो वर्गः ॥

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् ।
बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥

भा०—(चर्षणीनां) समस्त मनुष्यों के बीच में (वृषभम्) समस्त सुखों की वर्षा करने वाले, बलवान्, सब पर कृपालु (अदाभ्यम्) किसी से न मारने योग्य, सबसे सत्कार पाने योग्य (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ वा श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाले (बृहस्पतिं) वेद वाणी के पालक विद्वान् और महान् ब्रह्माण्ड के स्वामी (विश्वरूपं) समस्त पदार्थों के ज्ञाता एवं समस्त पदार्थों के निर्माता विश्वरूप परमेश्वर को (नमस्यत) नमस्कार करो।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी ।
अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान ! सब प्रकार से सुखों की वर्षा करने वाले सूर्य के समान तेजस्विन् ! मेघ के समान सुखवर्षक ! हे (पूषन्) अन्न वा पृथ्वी के समान सर्वपोषक ! (ते) तेरी (इयं) यह (नव्यसी) अति नवीन, सदा स्तुति योग्य, (सुस्तुतिः) उत्तम स्तुति है। (अस्माभिः) हमसे (तुभ्यं) तेरे लिये यह (शस्यते) सदा कही जाय।

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् ।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥

भा०—(वधूयुः) वधू की कामना करने वाला पुरुष जिस प्रकार (वाजयन्ती) अन्न ऐश्वर्य को चाहने वाली (योषणाम्) स्त्री को प्रेम

से स्वीकार करता है उसी प्रकार हे विद्वन्! हे परमेश्वर! (वाजयन्ती) ज्ञान, सत्यासत्य विवेक करने वाली (मम) मेरी (तां) उस (गिरं) वाणी और (धियं) धारणावती बुद्धि को मन्त्रमय, विचारमय भावना से (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर।

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति।
स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (अभि विपश्यति) प्रत्यक्ष विविध प्रकार से देखता है और (भुवना) समस्त लोकों को (सं पश्यति च) अच्छी प्रकार सम्यग् दृष्टि से देखता है (सः) वह (नः) हमारा (पूषा) पोषक और (अविता) रक्षक है। (२) इसी प्रकार सबको सम्यक् दृष्टि से देखने वाला पुरुष ही हमारा पोषक और रक्षक हो।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरण करता है (सवितुः) सर्वोत्पादक उस (देवस्य) प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वदाता परमेश्वर के (तत्) उस अनुपम (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ (भर्गः) पापों को भून डालने वाले, समस्त कर्म-बन्धनों को भस्म करने वाले तेज को (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें। (२) जो (नः) हमारे (धियः) समस्त कर्मों को सञ्चालित करता उस सर्वप्रेरक देव, दानशील सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उस सर्व शत्रुतापक तेज और प्रजा भृत्यादि पालक (भर्गः) अन्न को (धीमहि) धारण करें।

वेदाश्छन्दांसिसवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेति ॥ अथर्व०॥

वेद, छन्द (मन्त्र) उसी सर्वोत्पादक परमेश्वर के वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ सर्व पापनाशक तेज है जिसको सर्वप्रकाशक परमेश्वर का कवि विद्वान् लोग 'अन्न' अर्थात् अक्षय ऐश्वर्य बतलाते हैं। कर्म ही धी है यही मैं तुझे उपदेश करता हूं कि जिनसे सर्वोत्पादक प्रभु सूर्यवत् प्रेरणा करता हुआ सब जीवों वा लोकों को प्राप्त होता है। इति दशमो वर्गः॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या।
भगस्य रातिमीमहे॥ ११॥

भा०—(वयं) हम लोग (देवस्य) सर्वप्रकाशक, तेजोमय, सर्वैश्वर्यप्रद (सवितुः) सबके प्रेरक और सबके उत्पादक (भगस्य) सबके भजने और सेवने योग्य, कल्याणमय, सुखप्रद परमेश्वर की (रातिम्) दान समृद्धि को (वाजयन्तः) ज्ञान, अन्न, बल और ऐश्वर्य की कामना करने हुए (पुरन्ध्या) बहुत धारण सामर्थ्ययुक्त बुद्धि से (ईमहे) याचना करते हैं।

देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः।
नमस्यन्ति धियेषिताः॥ १२॥

भा०—(विप्राः नरः) विद्वान् लोग (धियेषिताः) बुद्धि और उत्तम कर्मों से प्रेरित होकर और (सुवृक्तिभिः) दोषों को उच्छेदन करने में समर्थ (यज्ञैः) देवपूजन, शास्त्राभ्यास, सत्संग, दान आदि पुण्य कर्मों से (देवं) सर्वप्रकाशक सर्वदाता (सवितारं) सर्वोत्पादक सर्व-प्रेरक परमेश्वर को ही (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं।

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम्।
ऋतस्य योनिमासदम्॥ १३॥

भा०—(सोमः) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष (देवानां) ज्ञान प्रकाश देने वाले, तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों की (गातुवित्) प्रशंसा, उत्तम मार्ग को प्राप्त कर उनके (निष्कृतम्) सर्व साधनसम्पन्न (ऋतस्य) सत्य

ज्ञान के (योनिम्) कारण वा आश्रय और (आसदम्) आकर बैठने के स्थान, आश्रय को (जिगाति) जाता है और वह परम (निष्कृतं) शुद्ध ज्ञान सुख को और सत्य के आश्रय परम प्राप्तव्य को भी प्राप्त करता है।

सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे ।
अनमीवा इषस्करत् ॥ १४ ॥

भा०—(सोमः) चन्द्र के समान रसादि ओषधियों को जानने और बनाने वाला विद्वान् पुरुष (अस्मभ्यम्) हमारे (द्विपदे) दो पांव वाले भृत्यों (चतुष्पदे च पशवे) और चार पैर वाले पशुओं के लिये (अनमीवाः इषः) रोग रहित अन्न (करत्) उत्पन्न करे ।

अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः ।
सोमः सधस्थमासदत् ॥ १५ ॥

भा०—(अस्माकम्) हमारे (आयुः) जीवनों को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (अभिमातीः) शत्रुओं के समान देह के शत्रु रूप रोगों को (सहमानः) विनाश करता हुआ (सोमः) सूर्य का तेज, वायु, चन्द्र वा ओषधिरस और विद्वान् उपदेष्टा (सधस्थम्) हमारे साथ एक स्थान में (आसदत्) आकर रहे ।

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर स्नेह करने और एक दूसरे का वरण करने वाले विवाहित उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (नः) हमारे बीच में (सुक्रतू) उत्तम कर्म और ज्ञान को करते हुए (घृतैः) जलों के समान स्नेहयुक्त आचार विचारों से (गव्यूतिम्) ज्ञान वाणियों के सत्संग को और (मध्वा) मधुर वचनों से (रजांसि) लोकों को (उक्षतम्) सेचन करो। भूमि को जल से सेंचो, स्नेहों से सत्संगों को और मधुर वचन से सामान्य जनों के साथ वर्त्ताव करो ।

उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ १७ ॥

भा०—हे उक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (शुचिव्रता) शुद्ध कर्म करते, शुद्धाचारी होकर (उरुशंसा) बहुत प्रशंसा और प्रशस्त विद्याओं से युक्त (नमोवृधा) 'नमः' परस्पर के आदर सत्कार बल और अन्नादि से बढ़ते बढ़ाते हुए दोनों (द्राघिष्ठाभिः) अति अधिक सामर्थ्य वा पुरुषार्थ से युक्त क्रियाओं से वा बहुत विस्तार वाली सम्पदाओं-भूमियों से और (दक्षस्य मन्हा) बल और ज्ञान के महान् सामर्थ्य से (राजथः) खूब प्रकाशित होओ ।

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
पातं सोममृतावृधा ॥ १८ ॥ ११ ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! (जमदग्नि) प्रज्वलित अग्नि के समान सत्य का प्रकाश करने वाले विज्ञानमय विद्वान् वा चक्षु से विवेक करके (गृणाना) उपदेश करते हुए आप दोनो ! (ऋतस्य योनौ) अन्न से पूर्ण गृह के समान (सीदतम्) विराजो । और दोनों (ऋतवृधा) अन्न के तुल्य नित्य सेवनीय धन वा सत्य के बल से बढ़ते हुए (सोमं) उत्पन्न सन्तान का (पातं) पालन करो (सोमं पातं) ऐश्वर्य का उपभोग करो, उत्तम बल, ओषधिरस का पान करो । इत्येकादशो वर्गः । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

* इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम् *

अथ चतुर्थं मण्डलम्

[१]

वामदेव ऋषिः ॥ १, ५—२० अग्निः । २—४ अग्निर्वा वरुणश्च देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडतिशक्वरी । २ अतिज्जगती । ३ अष्टिः । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ५, १८, २० स्वराट् पंक्तिः । ७, ९, १५, १७, १९ विराट्त्रिष्टुप् । ८, १०, ११, १२, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १३, १४ त्रिष्टुप् ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वां ह्य॑ग्ने सद॒मित्स॑म॒न्यवो॑ दे॒वासो॑ दे॒वम॑र॒तिं न्ये॑रि॒र इति॒ क्रत्वा॑ न्येरि॒रे । अम॑र्त्यं यजत॒ मर्त्ये॒ष्वा दे॒वमादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसं॒ विश्व॒मादे॑वं जनत॒ प्रचे॑तसम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (समन्यवः) ज्ञानवान् और शत्रु को विजय करने के लिये विशेष स्पर्द्धा व क्रोध से युक्त (देवासः) विद्यादि ऐश्वर्यों की कामना करने वाले शिष्य जन वा वीर जन (देवं) सर्व विज्ञान-प्रकाशक, विद्यादाता और विजयेच्छुक, और (अरतिं) प्राप्त होने योग्य, सर्वोपरि, सबसे अधिक मतिमान्, (त्वां) तुझको (हि) ही निश्चय से, (सदम् इत्) अपने शरण वा आश्रय जानकर (नि एरिरे) तुझे प्राप्त होते हैं और प्राप्त हों (इति) इस प्रकार के, तदनुकूल (क्रत्वा) उत्तम आचरण और ज्ञान से ही वे (नि-एरिरे) नियम से सर्वथा तुझे प्राप्त हों और तुझे प्रेरित करें । हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों वा शत्रुओं को मारने वाले वीर भटों के बीच में, (अमर्त्यं) असाधारण मनुष्य और (देवं) ज्ञान प्रकाशक विद्यादाता और ऐश्वर्य दाता विजिगीषु राजा को (आ यजत) सब प्रकार से पूजा सत्कार करो, उसके साथ

मैत्री, सत्संग बनाए रक्खो। और (आदेवं) सब ओर प्रकाश करने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (प्रचेतसं) उत्कृष्ट ज्ञान वाले पुरुष को (जनत) उत्पन्न करो और (विश्वम्) सभी (आदेवं) सर्व प्रकाशक (प्रचेतसम्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (आजनत) अपने में से अधिक प्रसिद्ध करो। (२) (समन्यवः देवाः) ज्ञानवान् विद्वान् लोग परमेश्वर को शरण जानकर प्राप्त हों। इसी प्रकार ज्ञान और कर्म से वे प्राप्त होते हैं। मरणधर्मा मनुष्यों में अमर उत्तम ज्ञानी प्रभु वा आत्मा की वे उपासना करें। उसको सर्व प्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और चित्त वाला जानें और बतलावें।

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम्। ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम्॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! सेनानायक! उत्तम विनीत शिष्य! (सः) वह तू (वरुणम्) दोषों, शत्रुओं और पापों को दूर करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, वरण करने योग्य (भ्रातरम्) भाई बन्धु के समान पालक, प्रजा को भरण पोषण करने में समर्थ पुरुष को (आ ववृत्स्व) आदर पूर्वक स्वीकार कर। उसके अधीन वा अनुकूल रहकर रह। और (देवान्) विद्वान्, दानशाली तेजस्वी पुरुषों की (सुमती) शुभ मति से (अच्छ) प्राप्त करे और (यज्ञवनसं) सत्संग, मैत्री और दान के देने वाले (ज्येष्ठं) सबसे उत्तम (यज्ञवनसं) पूजनीय पद को प्राप्त, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान न्यायाचरण, ऐश्वर्य और अन्नादि के स्वामी, (आदित्यं) सूर्य के समान तेजस्वी और प्रजा से उनके उपकार के लिये करादि लेने वाले, (चर्षणीधृतम्) समस्त मनुष्यों को धारण करने में समर्थ, (राजानं) राजा, सबका मनोरञ्जन करनेवाले (चर्षणीधृतम्) विद्वान् तत्वद्रष्टा पुरुषों द्वारा स्थापित पुरुष को (आववृत्स्व) प्राप्त

होकर उसके अधीन रह । (२) परमेश्वर सबका पालक, बन्धु होने से भ्राता है । (यज्ञवनसं) सब पूजाओं का दाता और स्वीकर्त्ता है (ऋतावानम्) सत्य ज्ञानमय, सर्वाधार, सब मनुष्यों का धारक है । उसको (सुमती) उत्तम ज्ञानपूर्वक प्राप्त करो ।

सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सखे) मित्र, हे सखे ! हे (दस्म) शत्रु के नाश करने हारे नायक ! (रथ्या) रथ के योग्य (रंह्या) वेग से जाने वाले (आशुं चक्रं न) वेगवान् घोड़े जिस प्रकार चक्र को (आ वर्त्तयतः) बराबर चलाते हैं उसी प्रकार तू भी (आशुं) वेग से काम करने वाले, चुस्त (चक्रं) क्रियावान् को (अभि आववृत्स्व) सब प्रकार से प्राप्त कर, उसके अनुकूल रहकर वर्त्ताव कर । हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! तू (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ, वरण करने योग्य, पापों और शत्रुओं के निवारक पुरुष के अधीन और (विश्वभानुषु) समस्त विश्व में सूर्य के समान तेजस्वी (मरुत्सु) मनुष्यों के बल पर ही (सचा) सत्य संयोग और समवाय बल से (मृलीकं) सुखकारी ऐश्वर्य और ज्ञान (विदः) प्राप्त कर । हे (शुशुचान) देदीप्यमान ! तू (तोकाय) पुत्रवत् (तुजे) पालने योग्य सन्तान, प्रजा के हित के लिये (शं कृधि) कल्याण कर और हे (दस्म) दर्शनीय वा दुःखों के नाशक ! तू (अस्मभ्यं शं कृधि (हमारे लिये कल्याण कर, हमें शान्ति प्रदान कर ।

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे ज्ञानवान् पुरुष ! तू (विद्वान्) हम में से विद्वान् है । तू (नः) हमारे (देवस्य) ज्ञान और

ऐश्वर्य को देने वाले (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, पापादि निवारक, आचार्य, राजा और प्रभु परमेश्वर के सम्बन्ध में हमारे (हेडः) क्रोध और अनादर के भावको (अव यासिसीष्ठाः) दूर कर । तू (यजिष्ठः)सबसे अधिक पूज्य, (वह्नितमः) कार्य का भार सहने में सबसे श्रेष्ठ, (शोशुचानः) निरन्तर प्रकाशमान्, तेजस्वी होकर (अस्मात्) हम से (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष के कार्यों, भावों को (प्र मुमुग्धि) दूर कर ।

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! तेजस्विन् ! प्रभो ! (सः) वह (त्वं) तू (नः) हमारे बीच (ऊती) रक्षण, ज्ञान, पालन आदि कर्मों द्वारा (अवमः) हमारे अति समीप और (अस्याः उषसः) इस प्रभात वेला के समान कमनीय, पाप नाशक वेला के (वि उष्टौ) विशेष रूप से प्रकट होने पर तू हमारे (नेदिष्ठः) अति समीप-तम (भव) हो । (तू (नः) हमें (वरुणं) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ, उत्तम पुरुष और पाप-निवारक बल (रराणः) प्रदान करता हुआ (नः) हमें (अव यक्ष्व) अपने अधीन सत्संग और मैत्रीभाव से जोड़ रख । (नः) हमारे (मृळीकं) सुखकारी ज्ञान प्रकाश को (वीहि) प्रकाशित कर । (नः) हमारे लिये (सुहवः) उत्तम पदार्थों का दाता, सुखपूर्वक बुलाने योग्य, सुगृहीत नाम वाला, सुख से पुकारने योग्य, शरण (एधि) हो । इति द्वादशो वर्गः ॥

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥

भा०—(अस्य) इस (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् (देवस्य) मेघ के समान दानशील और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (मर्त्येषु) वीर प्रजाजनों के बीच में (श्रेष्ठा) अति उत्तम और (चित्रतमा) अति

उत्तम और (चित्रतमा) अति आश्चर्यजनक कर्म और (संदृक्) श्रेष्ठ और अद्भुत सम्यक् दृष्टि हो। (देवस्य) अभिलाषी पुरुष को जिस प्रकार (अघ्न्यायाः) गौ का (शुचि) शुद्ध पवित्र (तप्तं) गरम (घृतं) स्तनों से निकला दूध वा तपा, घी और (धेनोः मंहना इव) दानाभिलाषी को जिस प्रकार गो-दान (स्पार्हा) अति अभिलाषा योग्य होता है उसी प्रकार (देवस्य) उस सूर्यवत् तेजस्वी राजा को भी अपनी (अघ्न्यायाः) कभी न मारने योग्य प्रिय, गोवत् पालन करने योग्य प्रजा का (शुचि) शुद्ध, ईमानदारी से प्राप्त, (तप्तं) शत्रुओं को संताप जनक (घृतं) तेज और (धेनोः) गाय के समान सबकी पोषक पृथिवी के (मंहना) दिये नाना ऐश्वर्य भी उसको (स्पार्हा) चाहने योग्य, श्रेष्ठ हों।

त्रिर॑स्य॒ ता प॑र॒मा स॑न्ति स॒त्या स्पा॒र्हा दे॒वस्य॒ जनि॑मान्य॒ग्नेः।
अ॒न॒न्ते अ॒न्तः परि॑वीत॒ आगा॒च्छुचि॑ः शु॒क्रो अ॒र्यो रोरु॑चानः ॥७॥

भा०—(अग्नेः त्रिः परमा सत्या जनिमा) अग्नि के जिस प्रकार तीन प्रकार के परम, सत्य, सर्व हितकारी, बलवान् स्वरूप हैं, अग्नि, विद्युत् और सूर्य उसी प्रकार (अस्य देवस्य) इस ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले विद्वान् पुरुष, और तेजस्वी राजा के भी (त्रिः) तीन प्रकार के (ताः) वे नाना (परमा) उत्तम कोटि के, (सत्या) सत्य, (स्पार्हा) अति उत्तम, चाहने योग्य, (जनिमानि) स्वभावसिद्ध रूप हैं, प्रथम (अनन्ते अन्तः) वह अनन्त आकाश में तेजस्वी सूर्य के समान (अनन्ते) अनन्त परमेश्वर के (अन्तः) बीच में (परिवीतः) सब प्रकार से प्रकाशित और प्रविष्ट हो, उसी में रमने वाला हो। दूसरे, वह (शुक्रः) तेज से युक्त, विद्युत् के समान, (शुचिः) स्वयं शुद्ध पवित्र, अन्यों को शुद्ध करने वाला धार्मिक रूप में (आ गात्) सर्वत्र जाना जाय। तीसरे वह (रोरुचानः) अग्नि के तुल्य कान्तिमान् और सबको रुचिकर होकर (अर्यः) सबका रक्षक, स्वामी हो।

स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष, उत्तम नायक, (दूतः) शत्रुओं का संतापक, सज्जनों का सेवक, (विश्वा सद्मा अभि वष्टि) सूर्य, दीपक वा अग्नि के समान ही सब गृहों, लोकों और पदों को चमकाता है, वह (हिरण्यरथः) लोह, सुवर्णादि के बने रथ वाला, हितकारी, रमणीय, रूपवान् (रंसुजिह्वः) रम्य, मधुर वाणी बोलने हारा, (रोहित्-अश्वः) रक्त वर्ण के वेगवान् घोड़ों वा अग्नि आदि साधनों वाला, (वपुष्यः) उत्तम देह, रूपवान् (विभावा) कान्तिमान् (सदा) नित्य (रण्वः) रमणीय, सुन्दर और (पितुमती इव) अन्नादि वा पालक सभापति से समृद्ध (संसत्) सभा, या भवन के समान सबका पालक हो ।

स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह (यज्ञबन्धुः) उत्तम दान, सत्संग और मैत्री भाव आदि उत्तम कर्मों द्वारा सबका बन्धु, सहायक होकर (मनुषः) मनुष्यों को (चेतयन्) ज्ञानवान् करे, उनको आपत्ति से सचेत करे । (तं) उसको विद्वान् लोग (रशनया) रस्सी या लगाम से जिस प्रकार अश्व को सन्मार्ग पर चलाते हैं उसी प्रकार (मह्या) बड़ी उत्तम, पूजनीय (रशनया) राष्ट्र में व्यापक नीति से या पूज्य परम्परा वा भृत्य परम्परा सहित (प्र नयन्ति) उत्तम रीति से ले जावें । (सः) वह (देवः) तेजस्वी राजा (अस्य) इस राष्ट्र के (दुर्यासु) राज्य-गृहों में वा शत्रु निवारक सेनाओं वा प्रजाओं के बीच (क्षेति) निवास करे और (साधन्) कार्यों को सिद्ध करता हुआ, (मर्तस्य) मनुष्य समूह के लिये (सधनित्वम्) ऐश्वर्यवान् पुरुषों से युक्त राज्य पद को (आप) प्राप्त करे वा धनसम्पन्न पुरुषों के समान उत्तम पद को प्राप्त करे ।

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् १०।१३

भा०—(सः) वह (अग्निः) अग्रणी नायक, तेजस्वी राजा विद्वान् (यत्) जो (अस्य) इस संसार का (देवभक्तं) देव, विद्वान् और अभिलाषुक जीव के सेवन करने योग्य (अच्छ रत्नं) रमणीय ऐश्वर्य, जीवन सुख आदि पदार्थ है उसकी ओर (प्रजानन्) अच्छी प्रकार ज्ञानवान् वह (नः) हमें (तु नयतु) शीघ्र ही ले जावे। जिसको (विश्वे अमृताः) समस्त अमृत, जीवगण (धिया अकृण्वन्) बुद्धिपूर्वक विचार करते हैं (द्यौः) ज्ञान प्रकाश से युक्त (पिता) पालक, आचार्य (जनिता) उत्पन्न करने वाली माता और पिता के तुल्य शिष्य को उत्पन्न करने वाला आचार्य भी जिसको (सत्यम्) सत्य ज्ञान से सेचन करे और बढ़ावे (२) परमेश्वर पक्षमें—वह सबसे उत्कृष्ट ज्ञानवान् उत्तम ऐश्वर्य हमें दे। उस प्रभु को समस्त मुक्त जीवगण ध्यान करते, पिता माता आचार्य आदि सत्य स्वरूप करके धारण करते और अन्यों को उसका उपदेश करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह नायक (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (पस्त्यासु) गृहों में निवास करने वाली प्रजाओं के बीच, घरों में मुख्य पुरुष के समान ही (जायत) रहे। वह (अस्य) इस (महः रजसः) बड़े भारी लोक जन-समूह के (योनौ) आश्रय स्थान (बुध्ने) उसके बांधने या नियन्त्रण करने के पद पर विराजे। वह (अपात्) स्वयं सबका आश्रय होने से पैर के समान अन्य पैर की अपेक्षा न करता हुआ, (अशीर्षा) स्वयं सबसे मुख्य होकर शिर के तुल्य, अन्य शिर की अपेक्षा न करता हुआ (गुहमानः)

सबके बीच अप्रकट रूप से विचार करने वाला, वा सब ओर से संवृत होकर, (अन्ता) अपने अन्तों, सिद्धान्तों या परिणत कार्यों का कार्य-कर्त्ताओं को (वृषभस्य नीडे) वृष्टि, अन्नादि के दाता सूर्य के उत्तम तेजस्वी पद पर स्थित होकर (आयोयुवानः) रश्मियों के समान कार्य में नियुक्त करता हुआ (जायत) रहे । (२) परमेश्वर पक्षमें—वह (पस्त्यासु) समस्त लोकों में और आश्रय भूत प्रकृति विकृतियों में सबका आदिकारण, इस महान् सूर्य के भी परम मूल में आश्रय रूप से विद्यमान् है । वह शिरः पाद आदि अवयवों से रहित, निराकार, निरवयव प्रभु सर्व सुखवर्धक प्रभु के पद पर (अन्ता) सबके समीप हृदय में सदा व्यापक रहता है । अथवा सर्व प्रथम उत्पन्न मेघ या नीहारिका के भी मूल आश्रय में गूढ़ रूप से विद्यमान रहा ।

प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्यँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू प्रथम, (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (योना) गृह में, आचार्य के घरमें और (वृषभस्य नीळे) ज्ञान को मेघ के समान वर्षाने वाले गुरु के आश्रय में रहकर (विपन्या) विशेष उपदेश करने योग्य वेद वाणी के द्वारा (प्रथमं शर्धः) सर्वश्रेष्ठ, बल ज्ञान, ब्रह्मचर्य को (प्र आर्त) अच्छी प्रकार प्राप्त कर । इसी प्रकार हे राजन् ! नायक ! तू (ऋतस्य योना) धनैश्वर्य और ऋत अर्थात् सत्य न्याय के पद और (वृषभस्य नीळे) अर्थात् राज्यप्रबन्ध के शकट को उठाकर ले चलने वाले वृषभ के तुल्य सर्व प्रधान-पद पर स्थित होकर (विपन्या) विविध आज्ञा और व्यवहार चलाने वाली वाणी और नीति से सर्वोत्तम बल को प्राप्त कर । वह तू (स्पार्हः) सबके चाहने योग्य, सर्व प्रिय, (युवा) जवान, बल-वान्, (वपुष्यः) उत्तम शरीर धारण करने वाला, (विभावा) विशेष कान्तिमान् हो । और (सप्त) सात (प्रियासः) प्रिय बन्धुजन (वृष्णे)

उस बलवान् पुरुष के हित के लिये (शर्धः अजनयन्त) बल और सुख उत्पन्न करें। (२) अध्यात्म में—यह जीव 'ऋत' सत्यज्ञान और सर्व सुखवर्षी प्रभु के आश्रय रहकर स्तुति द्वारा सर्वश्रेष्ठ बल प्राप्त करे। वह सर्वस्पृहणीय, सर्वप्रिय, बलवान् शरीर धर तेजःस्वरूप हो। सात प्रिय प्राण उसको ज्ञान बल उत्पन्न करें। (३) प्रभु परमेश्वर सत्य ज्ञान के परम आश्रय सूर्यवत् सर्व सुखवर्षक के पद पर स्थित होकर सर्वोत्तम बल को धारण करता है। वह सर्वस्पृहणीय, बलवान्, सबके देहों में भी व्यापक तेजःस्वरूप है। सर्वतर्क, सात प्रकृति विकृति उसी प्रभु के बल से (अजनयन्त) सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। (४) राजा के पक्षमें—(सप्त प्रियासः) उसको बल में तृप्त, पूर्ण करने वाले सातों प्रिय प्रकृति अमात्य राष्ट्र, कोश दुर्ग, बल आदि उसको (वृष्णे) प्रधान प्रबन्धक के कार्य के लिये समर्थ करते हैं।

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः॥१३॥

भा०—(अत्र) इस लोक वा राष्ट्र में जो (अस्माकम्) हमारे बीच में हमारे ही (पितरः) पालन करने वाले और (मनुष्याः) मननशील पुरुष (ऋतम्) सत्यज्ञान, वेद, ब्रह्मचर्य, वीर्य और धनैश्वर्य को (आशुषाणाः) प्राप्त करते हुए और तपस्या करते हुए (अभि प्र सेदुः) सदा प्रसन्न रहते या कार्यों पर उत्साहपूर्वक जाते हैं, अथवा तपस्या करते हुए (ऋतम् अभि प्र सेदुः) ज्ञान, वेद, ब्रह्मचर्य, वीर्य और धन को प्राप्त करने के लिये प्रस्थान करते हैं, वे (हुवानाः) ज्ञान का दान और प्रतिग्रह करते हुए (अश्मव्रजाः) मेघ के समान ज्ञानवर्षक लोगों की शरण जाने वाले, (सुदुघाः) उत्तम ज्ञान का दोहन करने वाले, (वव्रे अन्तः) आवृत स्थान में स्थित गौओं के समान ही (वव्रे अन्तः) वरण करने योग्य प्रभु परमेश्वर के भीतर ही (उषसः) सब

पापों को दग्ध करने वाली (उस्राः) तेजोमय रश्मियों, दीप्तियों और वाणियों को (उत् आजन्) प्रकट करते और प्राप्त करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार उत्तम गो-पालक लोग (अश्मव्रजाः वव्रे अन्तः स्थिताः उस्राः उद् आजन्) पत्थर की बनी गोशालाओं के बीच में विद्यमान उत्तम दोहने योग्य, बाड़े में स्थित गौओं को हांकते हैं, बाहर करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग (अश्मव्रजाः) व्यापक परमेश्वर की तरफ़ जाने वाली (सुदुघाः) उत्तम सुख रस प्रदान करने वाली आनन्दवर्षिणी, (उस्राः उषसः) स्वयं उत्पन्न होने वाली प्रातः उषा के तुल्य दीप्ति वाली (वव्रे अन्तः) आवृत अन्तःकरण के भीतर स्थित वाणियों को (उत् आजन्) ऊपर प्रकट करें, उच्चारण करें। (२) सेनानायक, राष्ट्रपालक लोग भी (अश्मव्रजाः) शस्त्र धारण करके चलने वाली (सुदुघाः) राष्ट्र को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाली, (उषसः) शत्रुसंतापक, (उस्राः) शत्रु पर चढ़ाई करने वाली सेनाओं को और समृद्ध प्रजाओं को (हुवानाः) आज्ञा देते हुए (वव्रे) सुगुप्त (अन्तः) राष्ट्र के भीतर (उत् आजन्) उत्तम रीति से सञ्चालित करें। (३) अध्यात्म में—(पितरः) प्राणगण।

ते म॑र्मृजत ददृ॒वांसो॒ अद्रिं॒ तदे॑षाम॒न्ये अ॒भितो॒ वि वो॑चन्।
प॒श्वय॑न्त्रासो अ॒भि का॒रम॑र्च॒न्वि॒दन्त॒ ज्योति॑श्चकृ॒पन्त॒ धी॒भिः॥१४॥

भा०—(ते) वे विद्वान् लोग (अद्रिं) मेघ को रश्मियों के समान, अभेद्य अज्ञान को (ददृवांसः) विदारण या छिन्न भिन्न करते हुए (मर्मृजत) अपने को निरन्तर शुद्ध करते रहें। (एषाम्) इनमें से ही (अन्ये) कुछ विद्वान् लोग (अभितः) सब ओर (तत्) उस परमात्मा और आत्मा का (वि वोचन्) विविध प्रकार से उपदेश किया करें। वे (पश्वयन्त्रासः) देखने वाले यन्त्रों से युक्त या नाना यन्त्रों का साक्षात् करने वाले, अथवा देखने वाली इन्द्रियों को अपने अधीन निय-

न्त्रित करने वाले जितेन्द्रिय होकर (कारम् अभि) कर्त्ता, विश्व के निर्माता परमेश्वर को साक्षात् करके (अर्चन्) उसकी स्तुति करें । अथवा (पश्व-यन्त्रासः) नाना देखने के दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से सम्पन्न होकर (कारम् अभि अर्चन्) परमेश्वरीय नाना शिल्पों को प्राप्त करें और उनका उपदेश करें । और (धीभिः) बुद्धियों से (ज्योतिः विदन्त) दूरस्थ नक्षत्रादि ज्योति का ज्ञान करें वा ज्ञानमय ज्योति को (विदन्त) प्राप्त करें, जानें । और (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों से ही (चक्रपन्त) निरन्तर काम करने में समर्थ होवें । (२) वीर पुरुष (ददृवांसः) शत्रुओं को विदारण करते हुए (अद्रिं) वज्रादि शस्त्र को चमकावें । उनमें कुछ आज्ञा देने का काम करें दूसरे पशु के समान यन्त्र बनकर या यन्त्रादि रखकर कर्त्ता मुख्य पुरुष की आज्ञा पालन करें । वे (ज्योतिः) सुवर्णादि वेतन प्राप्त करें और कर्मों, बुद्धियों से सामर्थ्यवान् बनें ।

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५।१४॥

भा०—(गव्यता मनसा) उत्तम ज्ञान-वाणियों को प्राप्त करने की इच्छा वाले चित्त से, नाना वेद-वाणी के तुल्य आचरण करने वाले वेद के तुल्य नित्य ज्ञान से (दृध्रम्) शिष्यों को बढ़ाने वाले (उब्धम्) स्वयं उक्त प्रकार के ज्ञान से पूर्ण वा अन्यों के अज्ञान को नाश करने वाले, (गाः येमानम्) किरणों को सूर्य के तुल्य वाणियों और इन्द्रियों के नियम में रखने वाले (सन्तम्) सत्स्वभाव (अद्रिम्) मेघ के समान ज्ञानवर्षक, पर्वत के समान उच्च प्रकृति वाले, उन्नत, (दृढं) दृढ़, (गोमन्तं) सूर्यवत् ज्ञानरश्मियों और वेदवाणियों के स्वामी, (व्रजं) परम-गन्तव्य वा सर्व विद्या मार्गों में जाने में समर्थ विद्वान आचार्य को (ते नरः) वे शिष्य जन (उशिजः) ज्ञानों की कामना करते हुए (दैव्येन वचसा) देव, ज्ञानदाता के योग्य वचन से आदर पूर्वक (परि

वव्रुः) प्रार्थना करे उसका चारों ओर से घेर कर उसके समीप रहें, और (वि वव्रुः) विविध प्रकार से अपनावें। (२) वीर नायक लोग भी (गव्यता मनसा) उसकी आज्ञा पालन की इच्छा और भूमि-प्राप्ति की इच्छा वाले चित्त से ऐश्वर्य के धारक ऐश्वर्यपूर्ण भूमियों के विजेता, दृढ, भूमि के स्वामी, सर्वोपगम्य पुरुष को देवोचित, वा राजोचित आदर युक्त वचन से नायकरूप से वरें। (३) इसी प्रकार विद्वानजन परमेश्वर को स्तुति वाणी से युक्त चित्त से वरें। (दृधं) वह प्रभु जगत् को धारण करता, (उब्धं) व्यापता है। समस्त लोकों, सूर्यों का नियन्ता, सत् रूप मेघ तुल्य आनन्दघन, दृढ़, सर्वोपगम्य परमपद और (गोमान्) स्वयं जीवों का स्वामी है, सब उसकी स्तुति करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

ते म॑न्वत प्र॒थ॒मं नाम॑ धे॒नोस्त्रिः स॒प्त मा॒तुः प॑र॒माणि॑ विन्दन्।
तज्जा॑न॒तीर॒भ्य॑नूषत॒ व्रा आ॒विर्भु॑वदरु॒णीर्य॒शसा॒ गोः ॥ १६ ॥

भा०—(ते) वे विद्वान् लोग (मातुः) सर्वोत्पादक, सबकी माता (धेनोः) सबकी धारक पोषक, गायके समान मधुर रस पिलाने वाली वाणी के (नाम) नाम या स्वरूप को, माता के नाम को बालकों के समान (प्रथमं) सबसे प्रथम, सर्वश्रेष्ठ करके (त्रिः मन्वत) श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन प्रकारों से ज्ञान करें और वे (मातुः) समस्त ज्ञानों को उपदेश करने वाली वाणी के या सर्वोत्पादक सर्वजननी परमेश्वरी शक्ति के (सप्त) सात वा सर्वव्यापक (परमाणि) परम सर्वोत्कृष्ट रूपों का (विन्दन्) ज्ञान करें। वाणी के ७ रूप सात प्रकार के छन्द, परमेश्वरी शक्ति से युक्त सर्वजननी प्रकृति के सात रूप, पांच भूत, महत् तत्व और अहंकार। अथवा (त्रिः सप्त परमाणि विन्दन्) वे वाणी के २१ रूपों का ज्ञान करते हैं। वेदवाणी के २१ रूप, गायत्री आदि सात, अति जगती आदि सात और कृति आदि सात (जानतीः) ज्ञान से युक्त (व्राः) परमेश्वर को वरण करने और उसको संभजन

कीर्त्तन करने वाली (ग्राः) वाणियें (अरुणीः) रक्त गुण वाली उषाओं के समान ज्ञान प्रकाश वाली होकर (तत्) उसी परमेश्वर महान् आत्मा की (अभि अनूपत) सब प्रकार से स्तुति करती हैं, और वह आत्मा (गोः) वाणी के (यशसा) बल और तेज से ही, रश्मि के बल से सूर्य के तुल्य, इन्द्रियों के बल से जीव आत्मा के तुल्य और भूमि के यश से राजा के तुल्य ही (आविः भुवत्) प्रकट होता है। (२) माता भूमि के सात परम रक्षक, स्वामि, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल ये सात प्रकृतियें हैं। उसका तीन प्रकार से ज्ञान है—भूमि, सुवर्ण सेना अथवा, उसका तीन प्रकार से विचार है—उत्साहशक्ति, मन्त्रशक्ति और प्रभु शक्ति वा प्रचुर अर्थबल ज्ञानयुक्त नायक को वरण करने वाली प्रजाएं उस नामकी स्तुति करती है और वह (गोः यशसा) भूमि या सूर्य के तेज से प्रकट होता है।

नेश॒त्तमो॑ दु॒धि॑तं॒ रोच॑त॒ द्यौरुद्दे॒व्या उ॒षसो॑ भा॒नुर॑र्त ।
आ सूर्यो॑ बृह॒तस्ति॑ष्ठ॒दज्राँ॑ ऋ॒जु मर्ते॑षु वृजि॒ना च॒ पश्य॑न् ॥१७॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर (दुधितं तमः) आकाश में फैला हुआ अन्धकार भी (नेशत्) नष्ट हो जाता है, और (द्यौः रोचत) सूर्य चमकने लगता है; वा दिन या प्रकाश चमकता है। और (देव्याः उपसः) प्रकाश वाली उषा का (भानुः) प्रकाश भी (उत् अर्त्त) उदय को प्राप्त होता है। (सूर्यः) सूर्य (बृहतः) बड़े २ (अज्रान्) प्रकाशनिवारक, दूर २ तक फेंके गये किरणों को (आतिष्ठति) सर्वत्र थामता है, और उन पर विराजता है, उसी प्रकार वाणी के उदय होने पर अन्तःकरण में पूर्ण अज्ञान का तिमिर नाश को प्राप्त होता है, ज्ञान का प्रकाश चमक जाता है और, पापनाशक उषा देवी आत्मशक्ति विवेकख्याति का उदय होता है, भीतरी आत्मा वा विद्वान् सूर्य के तुल्य होकर बड़े २ (अज्रान्) ज्ञान साधनों का अनुष्ठान करता

है या प्राणों की साधना करता है, और तब वह (मर्त्तेषु) मरणधर्मा मनुष्यों या जड़ देहों के बीच (ऋजु) सरल सत् तत्व और (वृजिना) नाना प्रेरक बलों को अथवा ज्ञान वाणी द्वारा धर्म तथा वर्जनीय पाप कर्मों को (पश्यन्) देखने और विवेक करने लगता है। (२) राजा पक्षमें— जब उषादेवी, विजयशालिनी शत्रुदाहक सेना के तेज का उदय होता है तो शत्रु सैन्य नष्ट होता है (द्यौः) विजयिनी सेना या विजय लक्ष्मी चमकती है, सूर्य तुल्य तेजस्वी राजा (अज्रान् = वज्रान्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले बलवान् पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर विराजे और मनुष्यों के बीच पुण्य, पाप का विवेक न्यायपूर्वक करे।

आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम्।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥

भा०—जिस प्रकार सूर्योदय के पश्चात् जागते हुए लोग विविध पदार्थों को देखते और कहते हैं और चमक से युक्त रत्नादि पदार्थ को रख लेते हैं, सभी किरणें सभी गृहों में जाती हैं और सब पदार्थ सत्य देखने और प्रयोग में आता है उसी प्रकार (आत् इत्) इसके अनन्तर और (पश्चा) पीछे भी (बुबुधानाः) निरन्तर बहुत ज्ञान करने वाले, (वि अख्यन्) विविध प्रकार से ज्ञानों का दर्शन करें, और अन्यों को उसका उपदेश करें। (आत् इत्) और अनन्तर (द्युभक्तम्) इच्छापूर्वक प्राप्त किये हुए (रत्नम्) रमणीय ज्ञान को (धारयन्त) धारण करें। (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् गण (विश्वासु दुर्यासु) सब ही घरों में विराजमान हों। हे (मित्र) सर्व स्नेहवान्, प्रजारक्षक ! हे (वरुण) सर्वदुःखवारक ! सर्वश्रेष्ठ राजन् ! (धिये) ज्ञान धारण करने और कर्म करने के लिये (सत्यम्) सदा सत्यज्ञान (अस्तु) प्राप्त हो।

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (शुशुचानम्) सूर्य के समान दीप्तिमान् (अग्निम्) अग्नि के तुल्य कान्तिमान्, तेजस्वी, (विश्वभरसं) समस्त विश्व को पालन पोषण करने वाले (यजिष्ठं) अतिदानशील, सबसे अधिक पूज्य, सत्संग योग्य परमेश्वर को मैं (अच्छ वोचेय) साक्षात् कर उसको अन्यों को उपदेश करता हूं। वह प्रभु (गवां) किरणों के बने (शुचि ऊधः) पवित्र कान्तिमान् प्रभात के समान पवित्र है और गौओं के (ऊधः न शुचि) स्तन मण्डल के समान पवित्र है और (अतृणत्) सब प्रकार के उत्तम रस को प्रदान करता है। वा वह (न अतृणत्) किसी का नाश नहीं करता सबको पालता है (अन्धः न) सोम रस या अन्न के समान (पूतं) अति पवित्र और (अंशोः) सूर्य के तेज से (परिषिक्त) सब प्रकार सेचित और परिवर्धित, व्याप्त है। अर्थात् परमेश्वर गोस्तनों के समान सर्वरसप्रद, अन्न के समान सर्व पोषक और सूर्य के तुल्य तेजः प्रकाशमान या 'अंशु' व्यापक सामर्थ्य से सर्वत्र व्यापक है। (२) इसी प्रकार राजा भी सबका पालन करे।

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः॥२०।१५॥

भा०—वह परमेश्वर (विश्वेषाम् यज्ञियानां) समस्त पूजनीय पदार्थों में (अदितिः) अविनश्वर नित्य है, वह (विश्वेषां) समस्त (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच में (अतिथिः) व्यापक, अतिथि के समान पूज्य और सबका अधिष्ठाता है। वह (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और प्रकाशस्वरूप (देवानां) सब प्रकाशमान पृथिव्यादि लोकों और विद्वान् प्रार्थियों को (अवः) रक्षा, पालन, शरण और ज्ञान (आवृणानः) प्रदान करता हुआ (जातवेदाः) सब उत्पन्न पदार्थों का जानने हारा (सुमृळीकः भवतु) सबको उत्तम सुख देने वाला हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[२]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १६ पंक्तिः । १२ निचृत्पंक्तिः । १४ स्वराट् पंक्तिः । २, ४—७, ६, १३, १५, १७, १८, २० निचृत्-त्रिष्टुप् । ३, १६ त्रिष्टुप् । ८, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप् ॥

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) मरणाधर्मा देहों, मूर्तिमान् पदार्थों और जीवों के बीच (अमृतः) कभी नाश को प्राप्त न होने वाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञानमय, (देवः) प्रकाशस्वरूप, सबका प्रकाशक (देवेषु) सब कामनावान् जीवों के बीच और सूर्यादि तेजस्वी लोकों के बीच (अरतिः) अति ज्ञानवान्, स्वामी रूप से (निधायि) विद्यमान है । वह परमेश्वर होता सब सुखों का देने वाला, (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य, (अग्निः) सबका अग्रणी, सर्वव्यापक, समस्त विश्व के अंग २ में विद्यमान होकर (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (हव्यैः) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों और अन्नादि पदार्थों से (मनुषः) सब मनुष्यों को (शुचध्यै) पवित्र और तेजोयुक्त करने और (ईरयध्यै) प्रेरित करने, सञ्चालित करने में समर्थ है । (२) इसी प्रकार राजा (मर्त्येषु अमृतः) शत्रु मारक सैन्यों के बीच अविनष्ट, (ऋतावा) न्यायी, (अरतिः) सबका प्रेरक स्वामी होकर विराजे । वह दाता, पूज्य, महान् शक्ति राष्ट्र के मनुष्यों को स्वच्छ और सञ्चालित भी करे ।

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (सहसः सूनो) समस्त शक्ति के उत्पन्न करने और चलाने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! (इह) इस संसार में (त्वं)

तू (जातः) प्रकट होकर (नः) हम (जातान्) उत्पन्न हुए (उभयान्) स्थावर, जंगम व पक्ष प्रतिपक्ष स्त्री पुरुष दोनों के (अन्तः) बीच में (दूतः) दो राजपक्षों के बीच दूत के समान साक्षी और दुष्टों का सन्तापक, दण्डदायक होकर (ईयसे) जाना जाता है। तू (ऋष्वः) महान् होकर (ऋजुमुष्कान्) ऋजु, सरल धर्ममार्ग से परिपुष्ट होने वाले (वृषणः) बलवान् (शुक्रांश्च) शीघ्र कार्य करने में समर्थ वा वीर्यवान् तेजस्वी पुरुषों को भी (युयुजानः) योगाभ्यास द्वारा समाहित करता है, उनको प्राप्त होता है। (२) राजा सैन्यबल का सञ्चालक, पुत्रवत् उत्पन्न होकर मित्र रिपु दोनों वर्गों के बीच परन्तप होकर जाना जाय। वह महान् राष्ट्र में धर्मनीति से पुष्ट, बलशाली, आशुकर्म करने में समर्थ, कुशल पुरुषों को नियुक्त करे।

अत्या॑ वृ॒धस्नू॒ रोहि॑ता घृ॒तस्नू॑ ऋ॒तस्य॑ मन्ये॒ मन॑सा॒ जवि॑ष्ठा।
अ॒न्तरी॑यसे अरु॒षा यु॑जा॒नो यु॒ष्मांश्च॑ दे॒वान्विश॒ आ च॒ मर्ता॑न्॥३॥

भा०—जिस प्रकार महारथी (अत्या युजानः) वेगवान् दो घोड़ों को रथ में लगाता हुआ (विशः अन्तः ईयते) प्रजाओं के बीच में प्रवेश करता है उसी प्रकार हे आत्मन् (अत्या) सदा गतिशील, (वृधस्नू) शरीर की वृद्धि करने वाले, (रोहिता) रक्त वर्णवत् तेजस्वी, (घृतस्नू) तेज का सञ्चार कराने वाले, (मनसा जविष्ठा) मन के बल से अति अधिक वेग वाले, (अरुषा) कान्तिमान् वा उद्वेग से रहित, प्राण और अपान दोनों को, (युजानः) योगाभ्यास द्वारा वश करता हुआ तू (युष्मान् देवान्) तुम सब अर्थात् स्वरूप से भिन्न २ ज्ञानप्रकाशक और ग्राह्य विषय के अभिलाषी, इन्द्रियगत प्राणों और (विशः) प्रवेश करने योग्य (मर्त्तान् च) मरणधर्मा शरीरों को भी (आ) पूर्णतया व्याप कर (अन्तः) उनके भीतर (ईयसे) गति करता है। उसको मैं (मन्ये) ज्ञान करता और आत्मा मानता हूं। (२) इसी

प्रकार राष्ट्र में प्रधान पुरुष अपने अधीन (ऋतस्य मनसा) सत्य के ज्ञान वा न्याय, ऐश्वर्य से समृद्धिदायक तेजस्वी, दो प्रधान पुरुषों को प्रधान पद पर नियुक्त करके, वह सब विद्वानों, प्रजाओं और वीर पुरुषों के बीच प्रसिद्ध हो।

अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रिणी नायक! हे ज्ञानवान् विद्वन्! तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्य, और वेगवान् वाहन का स्वामी और (सुरथः) उत्तम रथों का स्वामी (सुराधाः) उत्तम, सुखजनक ऐश्वर्य का स्वामी होकर (सुहविषे जनाय) उत्तम अन्न से समृद्ध प्रजाजन के उपकार के लिये (अर्यमणं) शत्रुओं को वश करने वाले, न्यायाधीश, (वरुणं) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रम्) प्रजा को मरण से बचाने वाले और (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य वाले और (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायु के तुल्य बलवान्, वेगवान् (उत अश्विना) और अश्वों के स्वामी वा सूर्य चन्द्रवत् वा दिन रात्रिवत् एक दूसरे के साथ जीवन मार्ग को बिताने वाले स्त्री पुरुषों या उत्तम वैद्य इन सबको (आवह इत्) प्राप्त करा। (२) अध्यात्म में—अर्यमा समान, वरुण मित्र प्राण, अपान, इन्द्र विष्णु आत्मा मन, मरुत् प्राणगण, अश्विना दोनों चक्षु या नासिकास्थ प्राण, इन सबको जितेन्द्रिय और उत्तम देह रथी धारण करे।

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥५॥१६॥

भा०—हे (असुर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे वीर पुरुष! हे प्राणों में रमण करनेहारे जितेन्द्रिय पुरुष! तू (गोमान्) भूमि का,

गौ आदि सम्पदा का और उत्तम वाणियों और सूर्यवत् रश्मि रूप अधीन पुरुषों का स्वामी हो। हे (अग्ने) ज्ञानवन् अग्रणी नायक! तू (अविमान्) प्राणों और राष्ट्र के रक्षक पुरुषों का, भेड़ आदि पशुओं का स्वामी (अश्वी) अश्वों और देह में अपने भोक्ता प्राणों व इन्द्रियों का स्वामी हो। तू (यज्ञः) सबका आदरणीय, सबके सत्संग करने योग्य, दानशील, (नृवत्-सखा) नायकों से युक्त सैन्यों का परम सुहृत् और (सदम् इत्) सदा ही (अप्रमृष्यः) शत्रु द्वारा कभी पराजित न होने वाला, असह्य विक्रमशाली (इळावान्) उत्तम वाणी और भूमि का स्वामी, (प्रजावान्) प्रजा का स्वामी, (दीर्घः) विस्तृत साधनों वाला, दूर तक शत्रुओं का नाश करने और पहुंचने वाला, (रयिः) ऐश्वर्यों का दान और प्रतिग्रह करने वाला, समृद्ध, (पृथुबुध्नः) आकाश वा सूर्य के समान महान् वा विस्तृत प्रबन्धक (सभावान्) और सभा का स्वामी हो। तू सदा ही उक्त अधिकारों को धारण कर। इति षोडशो वर्गः॥

यस्त॑ इ॒ध्मं ज॒भर॑त्सिष्विदा॒नो मू॒र्धानं॑ वा त॒तप॑ते त्वा॒या।
भुव॒स्तस्य॒ स्वत॑वाँः पा॒युर॑ग्ने॒ विश्व॑स्मात्सी॑मघाय॒त उ॑रुष्य॥६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (यः) जो पुरुष (सिष्विदानः) सबको स्नेह करता हुआ और सबको बन्धन से छुड़ाता हुआ (ते) तेरे (इध्मं) दीप्तिमान् तेज को (जभरत्) धारण करता है, (वा) और जो (त्वाया) तेरी कामना से ही (मूर्धानं) शिर के समान उच्चकोटि के जनसमूह वा नायक पद को (ततपते) निरन्तर संतप्त करता वा शिर को तपाता, अर्थात् तपस्या से शिर के समान उच्च पद प्राप्त करता है तू (स्वतवान्) स्वयं अपने बल से बलशाली, स्वयं प्रवृद्ध होकर (तस्य पायुः भुवः) उसका पालक होता है और (विश्वस्मात्) सब प्रकार के (अघायतः) पापाचरण करने वालों से उसकी (सीम्) सब प्रकार से (उरुष्य) रक्षा कर।

अथवा—हे (ततपते) विस्तृत राष्ट्र के स्वामिन् ! जो (सिष्विदानः) स्नेहवान् वा श्रमी होकर (ते इध्मं मूर्धानं जभरत्) तेरे तेजस्वी शिरोवत् मुख्य पद को धारण करता है (त्वाया) तुझे प्राप्त होता है तू (स्वतवान्) आत्म बलशाली उसकी (भुवः) भूमि की (पायुः) रक्षा करता है और उसको पापाचारियों से बचाता है ।

यस्ते॒ भरा॒दन्नि॑यते चि॒दन्नं॑ नि॒शिष॑न्म॒न्द्रमति॑थिमु॒दीर॑त् ।
आ दे॑व॒युरि॒नध॑ते दुरो॒णे तस्मि॑न्र॒यिर्ध्रु॒वो अ॑स्तु॒ दास्वा॑न् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो पुरुष (ते) तेरे लिये (अन्नियते) भोजन करने के नियत समय में वा अन्न की कामना करने वाले तेरे लिये (अन्नं) अन्न को (चित्) बड़े आदरपूर्वक (निशिषत्) अच्छी प्रकार नाना व्यञ्जनों से विशेष गुणकारी बनाता हुआ उस (मन्द्रम्) अति सुखकारी अन्न को (ते) तेरे उपभोग के लिये (भरात्) लावे, और (अतिथिम्) अतिथि को पूज्य जान कर (उत् ईरत्) उत्तम रीति से उठे वा आदरपूर्वक वचन कहे, वह पुरुष (देवयुः) विद्वानों का प्रिय, एवं शुभ गुणों और उत्तम रश्मियों के स्वामी सूर्यवत् उत्तम प्रिय जनों का स्वामी होकर (इनधते) उसको स्वामिवत् धारण करने वाले (तस्मिन्) उस (दुरोणे) घर में (रयिः) ऐश्वर्य युक्त (ध्रुवः) स्थिर और (दास्वान्) दानशील (अस्तु) हो । (२) हे परमेश्वर जो पुरुष (ते अन्नियते) तेरे निमित्त, अन्नेच्छुक जन को अन्न दान करता, अतिथि का आदर करता है, घर में ईश्वर की कामना से अग्नि को प्रज्वलित करता, अग्निहोत्र करता है उस घर में वह ऐश्वर्यवान्, स्थिर, दानशील होता है ।

यस्त्वा॑ दो॒षा य उ॒षसि॑ प्र॒शंसा॑त्प्रि॒यं वा॑ त्वा कृ॒णव॑ते ह॒विष्मा॑न् ।
अश्वो॒ न स्वे दम॒ आ हे॒म्यावा॒न्तमंह॑सः पीपरो दा॒श्वांस॑म् ॥८॥

भा०—हे ज्ञानवान् परमेश्वर! हे विद्वन्! (यः) जो पुरुष हविष्मान्, अन्न चरु, दान सामग्री और भक्ति आदि से युक्त होकर (दोषा) रात्रि में, सायंकाल और (यः) जो (उषसि) प्रातः प्रभात वेला में (त्वा प्रशंसात्) तेरी स्तुति करता है (वा) और (त्वा) तेरे को लक्ष्य कर (प्रियं) तेरे प्रिय वा अन्यों को प्रिय, तृप्तिकारक कार्य (कृणवते) करता है। तू (स्वे दमे) अपने घर में (हेम्यावान्) जल से शीतल रात्रि से युक्त चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाला और (हेम्यावान्) हेम सुवर्ण को बढ़ाने वाली सम्पदा से युक्त होकर, (हेम्यावान् अश्वः न) सुवर्ण से मढ़ी 'सुन्दर कक्षबंधनी रज्जु वा लगाम आदि से युक्त अश्व के समान स्वयं सुवर्णादि सम्पदा से युक्त उसका भोक्ता होकर (तं दाश्वांसं) उस दानशील पुरुष को (अंहसः) पाप से (आ पीपरः) सब प्रकार से बचाता है। अर्थात् जो मनुष्य प्रातः सायं संध्या अग्निहोत्र करता है वह अपने गृह में सम्पन्न होता है, प्रभु उसको पाप से बचाते हैं।

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक्।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! हे विद्वन्! (यः) जो पुरुष (अमृताय तुभ्यम्) अमृतमय मोक्षस्वरूप तेरे लिये (दाशत्) अपने आप को सौंप देता है और जो (यतस्रुक्) स्रुच् के समान इन्द्रियों को वश करके (त्वे) तेरी (दुवः कृणवते) उपासना, स्तुति करता है (सः) वह (शशमानः) शम, शान्ति का निरन्तर अभ्यास करता हुआ (राया) धनैश्वर्य से (न वि योषत्) कभी वियुक्त नहीं होता और (एनं) उसको (अघयोः) दूसरे पर अत्याचार वा पापाचरण करने की इच्छ वाले दुष्ट, पापी पुरुष का (अंहः) पाप कभी (न परि वरत्) भी नहीं कर सकता। अग्नि के पक्ष में—अग्नि में जो पुरुष (अमृताय) जल के वृष्टि और अन्न की प्राप्ति के लिये हवि घृतादि देता है और स्रक्

स्रुवादि थाम कर जो अग्निहोत्र करता है वह बराबर तीव्र गति से आगे बढ़ता हुआ भी कभी धनैश्वर्य से हीन नहीं होता। और न हत्याकारी पुरुष का पापाचरण आदि उस तक पहुंचता या उसे घेर सकता है।

यस्य॒ त्वम॑ग्ने अध्व॒रं जुजो॑षो दे॒वो मर्त॑स्य॒ सुधि॑तं॒ ररा॑णः।
प्री॒तेद॑स॒द्धोत्रा॒ सा य॑वि॒ष्ठासा॑म॒ यस्य॑ विध॒तो वृ॒धासः॥१०॥१७॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे परमेश्वर प्रकाशस्वरूप! (त्वं देवः) तू दानशील, प्रकाशक होकर (यस्य मर्तस्य) जिस मरणधर्मा मनुष्य के (सुधितम्) उत्तम रूप से धारण करने योग्य ऐश्वर्य को (रराणः) प्रदान करता हुआ तू (यस्य) जिसके (अध्वरं) यज्ञ या अविनश्वर आत्मा को (जुजोष) प्रेम करता है हे (यविष्ठ) अति बलवन्! और हम लोग (विधतः) विधान या जगत् निर्माण करने वाले (यस्य) जिसके (वृधासः) सदा बढ़ाने हारे हों उस पुरुष की (सा) वह (होत्रा) आहुति और वाणी (प्रीता इत् असत्) अवश्य सबको तृप्त प्रसन्न करती है। इति सप्तदशो वर्गः॥

चित्ति॒मचि॑त्तिं चिनव॒द्वि वि॒द्वान्पृ॒ष्ठेव॑ वी॒ता वृ॑जि॒ना च॒ मर्ता॑न्।
रा॒ये च॑ नः स्वप॒त्याय॑ देव॒ दिति॑ च॒ रास्वादि॑तिमुरुष्य॥११॥

भा०—विद्वान् पुरुष (वीता पृष्ठा इव) जिस प्रकार अपने पास आयी भार उठाने में समर्थ पृष्ठों को वा, सेचन, पालन पोषण करने वाले अन्न जलादि पदार्थों को (वि चिनवत्) विशेष रूप से संग्रह करता है उसी प्रकार (विद्वान्) विद्वान् राजा (चित्तिम् अचित्तिम्) संगृहीत और असंगृहीत सञ्चित और असञ्चित शक्तियों को (वि चिनवत्) विशेष रूप से सञ्चय करे। उनको पृथक् २ रक्खे। इसी प्रकार (वृजिना च) अपने शत्रुवारक बलों या सैन्यों को और (मर्त्तान् च) साधारण मनुष्यों को भी विविध रूप से रक्खे। हे (देव)

दानशील पुरुष! (नः) हमें (स्वपत्याय) उत्तम संतान से युक्त (राये) ऐश्वर्य को प्रयोग में लाने के लिये (दितिं च रास्व) दानशीलता या दान देने योग्य पदार्थ या खण्डित होने वाले नश्वर पदार्थ भौतिक ऐश्वर्य प्रदान कर और साथ ही (अदितिम्) न नाश होने वाले या न दान देने योग्य पदार्थों की (उरुष्य) रक्षा कर। राजा के लिये पुण्य का धन चित्ति और अपुण्य पाप से प्राप्त धन अचित्ति है, सैन्य बल चित्ति है, साधारण प्रजाजन अचित्ति है। इसी प्रकार भौतिक नश्वर धन देय होने से वा खण्डित हो जाने से या रुपये पैसे अन्नी दुअन्नी आदि परिमाण में टूटने से 'दिति' रत्न, आदि वा भूमि भवन आदि शामिलात के द्रव्यअ खण्डनीय, अविभाज्य धन 'अदिति' है। विभाज्य धन और अविभाज्य धन दोनों ही उत्तम सन्तान पालनार्थ धन वृद्धि के लिये आवश्यक हैं। अथवा—विद्वान् पुरुष (चित्तिम् अचित्तिम्) चेतनायुक्त और जड़, विज्ञान और अज्ञान को पृथक् २ करे। जिस प्रकार रक्षक (वीता पृष्ठा इव) दृढ़ पीठ वाले और गये बीतों को पृथक् २ करता है इसी प्रकार राजा सैन्यों और साधारण मनुष्यों को भी पृथक् २ रक्खे।

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः॥१२॥

भा०—(अदब्धाः) कभी नाश न होने वाले (कवयः) विद्वान्, बुद्धिमान् दूरदर्शी पुरुष (आयोः) प्राप्त मनुष्य के (दुर्यासु) घरों में (निधारयन्तः) नित्य नियम से व्रतादि धारण कराते हुए (कविम्) विद्वान् पुरुष को (शशासुः) उत्तम उपदेश करते हैं। (अतः) इसलिये हे (अग्ने) अग्रणी नायक! विद्वन्! (त्वं) तू (अर्यः) स्वामी, सबका पालक है। तू (एतान् दृश्यान्) दर्शन करने योग्य (अद्भुतान्) अद्भुत विद्वान् पुरुषों को (पड्भिः) पैरों से या (एवैः) रथादि यानों से प्राप्त होकर (पश्येः) देखा कर उनसे कुशल मंगल पूछा कर सत्संग किया कर।

त्वम॑ग्ने वा॒घते॑ सु॒प्रणी॑तिः सु॒तसो॑माय विध॒ते य॑विष्ठ ।
रत्नं॑ भर शशमा॒नाय॑ घृष्वे पृ॒थुश्च॒न्द्रमव॑से चर्षणि॒प्राः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे (यविष्ठ) सबसे अधिक बलयुक्त ! हे (घृष्वे) दीप्तियुक्त पदार्थों को धर्षण करके विद्युतादि उत्पन्न करने हारे ! वा शत्रुजनों के साथ स्वयं संघर्ष या स्पर्द्धा करने और प्रजाओं में संघर्ष स्पर्द्धा कराने हारे ! (त्वम्) तू (सुप्रणीतिः) उत्तम रीति से सब से बढ़कर नीतिमान्, (पृथुः) विस्तृत बल और राज्य का स्वामी, (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला होकर (सुत-सोमाय) ज्ञान और ऐश्वर्य एवं ओषधि रसादि को उत्पन्न करने वाले, विद्वान्, बलवान् (विधते) सेवा करने वाले और (शशमानाय) सबके दुःखों को या सबकी सीमाओं को लांघने वाले, सबसे अग्रगण्य पुरुष को तू (रत्नम्) रमणीय द्रव्य (भर) प्रदान कर । (अवसे) उसकी रक्षा और तृप्ति के लिये (चन्द्रम्) आह्लादकारक सुवर्णादि धन प्रदान कर ।

अधा॑ ह॒ यद्व॒यम॑ग्ने त्वा॒या प॒ड्भिर्हस्ते॑भिश्चकृ॒मा त॒नूभिः॑ ।
रथं॒ न क्रन्तो॒ अप॑सा भु॒रिजो॑रृ॒तं ये॑मुः सु॒ध्य॑ आशुषा॒णाः ॥१४॥

भा०—(अध ह) बनाने वाले शिल्पी लोग (न) जिस प्रकार (भुरिजोः अपसा) बाहुओं के कर्म या बल से (रथं) रथ को बनाते हैं और (सुध्यः) उत्तम बुद्धिमान् उत्तम कर्म-कुशल (आशुषाणाः) तीव्र गति देने हारे लोग (ऋतम् येमुः) रथ के वेग को भी नियमित करते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! (यत्) जब हम (त्वाया) तेरी हितकामना वा तुझे प्राप्त होने की इच्छा से (पड्भिः) पैरों से, (हस्तेभिः) हाथों से और (तनूभिः) अपने शरीरों से (चकृमा) कार्य करें तब (सुध्यः) उत्तम बुद्धिमान, कर्मकुशल और (आशुषाणाः) शीघ्र ही अपनी शक्ति, धन आदि का उचित विभाग करते हुए पुरुष (भुरिजोः) धारण पोषण

करने में समर्थ बाहुओं और उनके तुल्य राजा प्रजा वा क्षात्रबल के (अपसा) कर्म सामर्थ्य से (क्रन्तः) कर्म करते हुए (रथं) वेगवान् रथ के तुल्य ही (ऋतम्) सत्य, ज्ञान और न्यायाचरण का और राष्ट्र-रूप रथ का (येमुः) प्रबन्ध करें।

अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन्।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः॥१५॥१८॥

भा०—(अध) और (उषसः सप्त विप्राः) जिस प्रकार उषा से सात प्रकार के वा फैलने वाले जगद्व्यापी किरण उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार हम लोग भी (मातुः) प्रथम माता से (अध) और अनन्तर (उषसः) पाप नाशक विद्या की दीप्ति से युक्त अग्नि के तुल्य तेजस्वी (मातुः उषसः) ज्ञानवान् आचार्यरूप माता से हम (सप्त) सातों प्रकार के (विप्राः) विद्वान्, विविध प्रकार से राष्ट्र के पदों को पूर्ण करने करने वाले, (प्रथमा) प्रथम, मुख्य (वेदसः) ज्ञानवान् (जायेमहि) उत्पन्न हों। वे हम (नॄन्) नायक पुरुषों को प्राप्त करें। और हम लोग (दिवः) ज्ञानवान् सूर्यवत् तेजस्वी के (पुत्राः) किरणों के समान (पुत्राः) बहुतों के रक्षक पुत्र (अंङ्गिरसः) अङ्गारों या अग्नि के समान तेजस्वी (भवेम) होवें। और (धनिनं) धनैश्वर्य के स्वामी के प्रति (शुचन्तः) सत्य न्याय, कार्य व्यवहारों में सदा पवित्र, शुद्ध, ईमानदार रहते हुए (अद्रिं) मेघ या पर्वत के तुल्य अभेद्य शत्रु को भी सूर्य की किरणों या विद्युतों के तुल्य (रुजेम) तोड़ डालें। इत्यष्टादशो वर्गः॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्॥१६॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (पितरः) जलों का पान करने वाले सूर्य के किरण गण (ऋतम् आशुषाणाः) जल को वाष्परूप से संविभक्त करते हुए (शुचि दीधितिम् अयन्) शुद्ध तेज और दीप्ति को

प्राप्त करते हैं और (क्षाम भिन्दन्तः) अन्धकार को छिन्न भिन्न करते हुए (अरुणीः) रक्त वर्ण की उषाओं को (अपव्रन्) प्रकट करते हैं, उसी प्रकार (नः) हमारे (पितरः) बालक जन (परासः) पालन करने में कुशल वा बाद में आये और (प्रत्नासः) वृद्ध जन, (ऋतम् आशुषाणाः) सत्य ज्ञान वेद न्याय और अन्न, जल, धनैश्वर्य का विभाग और दान प्रतिदान वा प्राप्ति करते हुए (उक्थशासः) उत्तम वचनों का उपदेश करते हुए (शुचि इत् अयन्) शुद्ध ज्ञान और कर्म वा पद को प्राप्त करें और (दीधितिम्) सबके धारक और प्रकाशक नायक को प्राप्त करें। वे (क्षाम) पृथिवियों को (भिन्दन्तः) अन्न को प्राप्त करने के लिये कृषि वा कूप, कुल्या निर्माणादि द्वारा तोड़ते हुए (अरुणीः) उत्तम वाणियों, भूमियों को (अप व्रन्) प्रकट करें।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥

भा०—(सुकर्माणः) उत्तम कर्म करने हारे (सुरुचः) उत्तम कान्ति और उत्तम रुचि वाले, (देवयन्तः) अपने में शुभ कामनाओं, गुणों और देव अर्थात् तेजस्वी प्रभु की कामना करते हुए (देवाः) विद्वान्, विद्याभिलाषी पुरुष (अयः न) सुवर्ण या लोह को (धमन्तः) अग्नि में जिस प्रकार सुनार धौंकते और स्वच्छ करते हैं उसी प्रकार अपने (जनिम) जन्म अर्थात् इस उत्पन्न होने वाले शरीर को वा शरीरस्थ आत्मा को (धमन्तः) अग्नि रूप आचार्य के अधीन (धमन्तः) धौंकते या 'शब्द' अर्थात् उपदेश ग्रहण करते और व्रत ब्रह्मचर्यादि द्वारा तप से तप्त करते हुए स्वयं (शुचन्तः) अपने को स्वच्छ, तेजस्वी कान्तिमान सुवर्ण के समान कुन्दन बनाते हुए, (अग्निं) अग्नि ज्ञानवान् आचार्य को (ववृधन्तः) बढ़ाते हुए और (ऊर्वं) महान्, अज्ञान के नाशक (इन्द्रं) परमेश्वर्यवान् गुरु वा प्रभु के (परिषदन्तः) चारों ओर भक्ति

पूर्वक विराजते वा उपासना करते हुए (गव्यं) राजा से या भूमिसमूह वा सूर्य से रश्मि समूह के प्रकाश के तुल्य वेद वाणियों के ज्ञान को ही (अग्मन्) प्राप्त करें ।

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८ ॥

भा०—हे (उग्र) बलशालिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (यत्) जब (अन्ति) समीप में (देवानां) ऐश्वर्य के अभिलाषी और विजिगीषु लोगों का (जनिम) जन्म होता है । तब (क्षुमति) अन्न से समृद्ध पुरुष के अधीन जिस प्रकार (पश्वः) पशुओं के (यूथा इव आ अख्यत्) जत्थे के जत्थे दिखाई देते हैं उसी प्रकार तेरे अधीन पशुवत् भृत्यों के भी (यूथा) समूह के समूह दिखाई देते हैं । (मर्त्तानां) शत्रु को मारने वाले मनुष्यों की (चित्) उत्तम २ (उर्वशीः) जंघाओं से लांघने वाली या बड़े राष्ट्रों को वश करने में समर्थ सेनाएं (अकृप्रन्) समर्थ होती हैं । और (अर्यः) स्वामी वा वैश्य जन (चित्) भी (उपरस्य आयोः) वपन किये वीजों के सस्य सम्पत्ति रूप में देने वाले मेघ के कारण जैसे वैश्य (वृधे) बढ़ता है उसी प्रकार (उपरस्य) शत्रु सेना के वपन अर्थात् छेदन करने वाले (आयोः) मनुष्यों का (अर्यः) स्वामी राजा भी (वृधे) बढ़ता है ।

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! हम लोग (ते) तेरे अधीन रहकर (सु अपसः) उत्तम कर्म करने वाले, सदाचारी होकर (अभूम) रहें । (विभातीः उषसः) विशेष दीप्तियुक्त होने वाली प्रभात वेलों को प्राप्त कर जिस प्रकार लोग (ऋतं) प्रकाश को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (विभातीः) विशेष दीप्ति से युक्त (उषसः) कामनानुकूल स्त्रियों को

प्राप्त करके हम (ऋतम् अवस्रन्) सत्य, धर्ममय जीवन व्यतीत करें। इसी प्रकार हे राजन् ! हम (विभाती उषसः) विशेष तेजस्विनी शत्रु-दाहक सेनाएं प्राप्त करके भी (ऋतम्) सत्य ज्ञान को (अवस्रन्) अनुसरण करें। अपने उग्र सैन्य बल से उन्मत्त होकर हम अन्याय न करें। और (अग्निं) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक को भी हम (अनूनं) किसी बात में भी न्यून न रहने देकर पूर्ण (अकर्म) करें और उसको (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (सुश्चन्द्रं अकर्म) उत्तम आह्लाद-दायक और उत्तम सुवर्णादि ऐश्वर्य से युक्त करें। और (मर्मृजतः देवस्य) राष्ट्र के कण्टक शोधन और सत्यासत्य विवेक करने हारे राजा वा राजा द्वारा नियुक्त पुरुष के (चक्षुः) चक्षु को हम (चारु) उत्तम दूरगामी और न्यायपूर्ण निष्पक्षपात (अकर्म) बनाये रक्खें। (२) विद्वान् के अधीन रहकर भी हम सदाचारी हों, सब दिनों सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास करें, अग्नि को सदा पूर्ण तेजोयुक्त करें, अग्निहोत्र करें। विवेकी शुद्धाचारी देव की चक्षु को निष्पक्ष बनाये रक्खें।

एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि॥२०॥१९

भा०—हे (वेधः) कार्य विधान करनेहारे मेधाविन् विद्वन् ! हे नायक पुरुष ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तुझ (कवये) क्रान्तदर्शी चतुर पुरुष के हितार्थ (एता) ये (उचथानि) नाना उत्तम वचन हम (अवोचाम) सदा कहें। और तू (नः) हमारे (ता) उनको (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार और सेवन कर। तू (उत् शोचस्व) उत्तम रीति से सबके ऊपर प्रकाशित हो। (नः) हमें (वस्यसः) उत्तम वसु बसने वालों में सबसे उत्कृष्ट (कृणुहि) बना। हे (पुरुवार) बहुतों से वरण करने योग्य और बहुतों का वारण करने हारे ! तू (नः) हमें (महः) बड़ा भारी (रायः) ऐश्वर्य (प्र यन्धि) प्रदान करे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, १०, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, १३, १४ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ७, ६ त्रिष्टुप् । ४ स्वराड् बृहती । ६, ११, १६ पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वः) अपने (अध्वरस्य) न नष्ट होने वाले और प्रजा को नष्ट न होने देने वाले राज्य के (राजानम्) तेजस्वी (रुद्रं) दुष्टों को रुलाने और गर्जना सहित शत्रु पर धावा करने वाले (होतारं) युद्ध में शत्रुओं को ललकारने और भृत्यादि को वेतनादि देने वाले (रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच सूर्य के समान स्व और पर-पक्षों वा वादि प्रतिवादी वा स्त्री और पुरुष दोनों के बीच में (सत्ययजं) सत्य बल और न्याय के देने वाले वा सत्य प्रतिज्ञा द्वारा दोनों को मिलाने वाले (अग्निं) अग्रणी नायक, अग्नि के तुल्य (हिरण्यरूपम्) हित और रमणीय रूप वाले तेजस्वी पुरुष को (अवसे) राष्ट्र की रक्षा करने के लिये (अचित्तात्) बिना चित्त के, हृदयहीन (तनयिन्तोः) गर्जना करने वाले सैन्य-बल को उत्पन्न करने के (पुरा) पूर्व ही (कृणुध्वम्) स्थापित करो । (२) भौतिक पक्ष में—यज्ञ के बीच में चमकने वाले प्रचण्ड, सर्व सुखप्रद, आकाश भूमि के बीच सत्-विद्यमान् पदार्थों में व्यापक चमकते हुए अग्नि-तत्व को (अचित्तात्) विना काष्ठ चयनादि के (तनयित्नोः) गर्जना वाली विद्युत् से अपने कार्य व्यवहार के लिये उत्पन्न करो । (३) इसी प्रकार ज्ञानदाता, उपदेशक तेजस्वी पुरुष को विना ज्ञान से शून्य पुत्रादि के समक्ष उपदेशार्थ स्थापित करो ।

अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरे रहने के लिये (यं) जिस घर को (वयम्) हम (चकृम) बनावें (अयं) वह (योनिः) घर (पत्ये) पति के हित के लिये (उशती) कामना वाली (सुवासाः) उत्तम वस्त्रों से सुशोभित (जाया इव) स्त्री के समान (उशती सुवासाः) कान्तिमान् और उत्तम रीति से, सुख से रहने योग्य हो। और वह गृह (अर्वाचीनः) आगे से बढ़ा हुआ और (परिवीतः) सब ओर से सुरक्षित हो। उसमें तू भी (अर्वाचीनः) वर्त्तमान में विद्यमान और (परिवीतः) सब प्रकार से सुरक्षित हो। (अ स्वापक) स्वयं परिपक्व या संतापक और बल से युक्त न होकर भी (इमाः) इन (ते) अपनी (प्रतीचीः) विपरीत जाने वाली वा विशेष रूप से तेरे अभिमुख स्थित प्रजाओं को भी प्राप्त कर, उन पर (निषीद) आधिपत्य कर। प्रजाओं को विना सताये तू राज्य कर।

आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वेधः) विद्वन् ! मेधाविन् ! तू (आशृण्वते) आदर से सुनने वाले (अदृपिताय) मोह और अहंकार से रहित, विनीत (नृचक्षसे) अपने नायक, ज्ञान-मार्ग प्रवर्त्तक गुरु को सौम्य वा उत्सुक दृष्टि से देखने वाले (सुमृडीकाय) उत्तम सुखप्रद (देवाय) ज्ञान की कामना करने वाले (अमृताय) शिष्य वा पुत्र रूप से विद्यमान व्यक्ति को (शस्तिम्) अनुशासन या उपदेश (शंस) प्रदान कर। जो (ग्रावा इव) वाणी के उपदेष्टा के समान (सोता) सन्मार्ग में लेजाने हारा (मधुषुत्) मधुर वचन बोलने हारा हो या जो (ग्रावा इव) शिलाखण्ड वा मुसल के समान (सोता) कूट पीट कर अन्नादि पदार्थवत् सार तत्व का देने दर्शाने वाला और (मधुषुत्) मधु और मनन करने योग्य वचन, ज्ञान का प्रदान करता है (यम्) जिसको (ईळे) सभी लोग चाहते और प्रशंसा करते हैं।

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (ऋतचित्) सत्य ज्ञान, वेद, न्याय-प्रकाश और ऐश्वर्य को सञ्चय करने और ज्ञान करने हारा और (स्वाधीः) उत्तम रीति से धारण और पोषण करने हारा है (अतः त्वं चित्) तू ही (नः) हमारे में से (अस्याः) इस प्रजा के (शम्याः) कर्म के (ऋतस्य) यथार्थ ज्ञान को (बोधि) जान और अन्यों को जना । हे विद्वन् ! तू बतला दिया कर कि तेरे (उक्था) उत्तम वचन योग्य वाणियां (सधमाद्यानि) एक साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करने योग्य अवसर (कदा ते) तेरे सम्बन्ध में कब २ होने सम्भव हैं और (ते) तेरे (गृहे) गृह पर (कदा) कब २ (सख्या) मित्रों के सत्संग (कदा) कब २ होने वाले हैं । इन अवसरों पर नवीन ज्ञान पिपासु लोग आवें और लाभ उठाया करें ।

कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू इस बात का भी अच्छी प्रकार ज्ञान रख कि (वरुणाय) प्रजा के वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के लिये (कथा ह) किस प्रकार से, किस हेतु से (तत् ब्रवः) उस परम तत्व का उपदेश करे, (दिवे कथा) ज्ञान प्रकाश से युक्त वा ज्ञान के इच्छुक के लिये कैसे (ब्रवः) उपदेश करे । (नः) हमारे (आगः) अपराध की कब और क्यों (गर्हसे) तू निन्दा करता है । (मित्राय) सबके मित्र, मृत्यु आदि से बचाने वाले और (मीढुषे) मेघवत् सब पर सुखों की वर्षा करने वाले और (पृथिव्यै) पृथिवी और उस पर विशेष रूप से वसने वाली प्रजा को (कथा) किस प्रकार उपदेश करे । (अर्यम्णे, भगाय) और ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये (कत् कत् ब्रवः) कब २ किस २ प्रकार उपदेश करे । इति विंशो वर्गः ॥

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी! तेजस्विन्! विद्वन्! तू (धिष्ण्यासु) धिषण्य बुद्धि या वाणी में श्रेष्ठ प्रजाओं वा सभाओं के बीच (वृधसानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वाताय) वायु के समान (प्रतवसे) प्रबल, (शुभंये) शुभ, कल्याणमार्ग में चलने और अन्यों को चलाने वाले पुरुष के लिये (कत्) किस प्रकार और कब (ब्रवः) कहे, उपदेश करे, (परिज्मने) सब ओर विद्यमान भूमि के स्वामी, (नासत्याय) सदा असत्याचरण से पृथक्, धर्मात्मा और (क्षे) भूमि के स्वामी (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने और सज्जनों को उपदेश करने वाले और (नृघ्ने) शत्रु के नायकों को मारने वाले के लिये (कत् ब्रवः) कैसे और कब कहो इत्यादि का उत्तम ज्ञान करो। यथायोग्य वचन बोलना, उनके यथा योग्य रीति से चलाना, उनके दोष गुणादि दर्शाना ये सब काम अग्रणी पुरुष और विद्वान् को सीखना चाहिये।

कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७ ॥

भा०—(महे) बड़े, पूज्य (पुष्टिम्भराय) पोषणकारी सम्पदा-अन्न पशु आदि को धारण करने वाले (पूष्णे) सबके पोषक पुरुष के वा भूमि के उपकार व वृद्धि के लिये (कथा) किस प्रकार (रेतः) जल के समान धनधान्य वर्धक वचन वा बात कहे। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले वा शिष्यों को उपदेश करने वाले (सुमखाय) उत्तम यज्ञशील और (हविर्दे) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के देने वाले पुरुष के हितार्थ (कत्) कब और किस प्रकार शान्तिमय वचन (ब्रवः) कहो। (विष्णवे) व्यापक शक्तिशाली, (उरुगायाय) बहुतों से प्रशंसित पुरुष के लिये (कत्-रेतः ब्रवः) कब वा किस प्रकार जल के समान शीतल और शान्तिदायक

वचन कहो और हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे अग्रनायक ! (बृहत्ये) बड़ी भारी (शरवे) शत्रुनाशक सेना को (कत् ब्रवः) किस प्रकार वा कब कहो, ये सब यथायोग्य रीति से जानना चाहिये ।

कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥

भा०—हे (जातवेदः) धनों के स्वामिन् ! हे ज्ञानों को जाननेहारे ! तू इस बात का भी अच्छी प्रकार ज्ञान कर कि (मरुताम्) शत्रुओं का मारने वाला, वायु के समान बलवान् पुरुषों के (शर्धाय) बल वृद्धि के लिये और मनुष्यों के (ऋताय) ज्ञान प्रसार और सत्य न्याय तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि को प्राप्त करने के लिये (कथा) किस प्रकार से (प्रति ब्रवः) कहे, और (बृहते सूरे) बड़े भारी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये (पृच्छ्यमानः) पूछा जाकर (कथा) किस रीति से (प्रति ब्रवः) प्रत्युत्तर देवे । (तुराय) अति शीघ्रकारी, वेग से जाने वाले (अदितये) माता, पिता, पुत्र, अखण्ड शासन वाले पुरुष को (कथा प्रति ब्रवः) कैसे प्रत्युत्तर देवें । तू (चिकित्वान्) इन सब बातों का ज्ञान करता हुआ (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य के समान गुरु से वा समस्त कामना योग्य व्यवहारों को (साध) भली प्रकार अभ्यास कर ।

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (गोः) पृथिवी से उत्पन्न (ऋतेन ऋतम्) अन्न या जल के द्वारा (अन्नं) अन्न (नियतम्) नियम से प्राप्त किया जाता है। अर्थात् भूमि पर अन्न का बीज बोकर वा जल सेचन करके उससे अन्न प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (गोः) वाणी के (ऋतेन) सत्य ज्ञान के द्वारा (नियतम्)नियम से विद्यमान (ऋतम्) सत्याचरण को भी मैं (आ ईळे) आदरपूर्वक प्राप्त करूं । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी विद्वन् ! आचार्य नायक

(आमा) जो ज्ञान आदि अभी अपरिपक्व है वह (सचा) परस्पर सत्संग से अन्न के समान ही कालान्तर में (मधुमत्) मधुर गुण सहित (पक्वम्) परिपक्व हो, उसे मैं प्राप्त करूं (कृष्णा सती रुशप्ता धासिना पयसा पीपाय) जिस प्रकार काली गौ अपने श्वेत पुष्टिकारक दूध से बच्चे को पुष्ट करती है उसी प्रकार (एषा) यह (कृष्णा) कृषि योग्य भूमि, (सती) हमें प्राप्त होकर (रुशता) कान्तिमान् (धासिना) सबके धारक और पोषक सूर्य के साथ मिलकर आर (जामर्येण पयसा) उत्पन्न होने वाले प्राणियों को प्राप्त होने और जीवन देने वाले वा 'जाम' भोजन को प्राप्त होने वाले पुष्टिकारक जल और अन्न से (पीपाय) सबको पुष्ट करती है उसी प्रकार यह वाणी (कृष्णा) चित्तों को आकर्षण करने वाली होकर तेजस्वी धारण करने वाले विद्वान् के साथ (जामर्येण पयसा) जाम अर्थात् आस्वादन करने योग्य रस के उत्पादक (पयसा) ज्ञान से (पीपाय) सबको तृप्त करती है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतेन अक्तः वृषभः) जल से पूर्ण बरसने वाला बादल (पृष्ठ्येन पयसा अस्पन्दमानः अचरत्) वर्षण करने योग्य जल से मन्द २ चलता हुआ जाता है वह (वयोधाः) अन्न का पोषण करता हुआ (वृषा) वर्षणशील मेघ (शुक्रं दुदुहे) जल को प्रदान करता है और (अधः) उसका दोहन योग्य स्तनमण्डल तुल्य (पृश्निः) अन्तरिक्ष होता है और जिस प्रकार (ऋतेन अक्तः वृषभः) तेज से युक्त वृष्टिकारक सूर्य (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी होकर (पयसा) आकाश या भूतल पर के जल से युक्त होकर (वयोधाः) किरणों, बलों वा अन्नों का धारक पोषक होकर (अस्पन्दमानः अचरद्) स्वयं न चलता हुआ भी सर्वत्र व्याप्त होजाता है, वह बलवान् (वृषा) सूर्य (शुक्रं दुदुहे)

देदीप्यमान तेज और शुद्ध जल प्रदान करता है उस समय तेजको दोहन के लिये (ऊधः पृश्निः) रात्रि था उपा तेज वर्षाने वाली और 'पृश्नि' आदि सूर्य स्वयं उसमें तेजप्रद होता है (चित्) उसी प्रकार (वृषभः) श्रेष्ठ पुरुष, वलवान् मेव के समान ज्ञान वा सुखों की वर्षा करने वाला (पुमान्) पुरुष और (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक (ऋतेन) सत्य ज्ञान और न्यायप्रकाश वा ऐश्वर्य से (अक्तः) प्रकाशित होकर (पृष्ठ्येन) पृष्ठ, आधार में विद्यमान (पयसा) पुष्टिकारक अन्न वा वलवीर्य से युक्त होकर (अस्पन्दमानः) धर्ममार्ग से विचलित न होकर (वयोधाः) ज्ञान, वल और दीर्घ जीवन को धारण करता हुआ, (वृषा) सुखों का वर्षक, वलवान् एवं उत्तम प्रवन्धक होकर स्वयं (पृश्निः) जल सेचक मेघ, सूर्य वा पृथ्वी के समान और (ऊधः) अन्तरिक्ष वा रात्रि के समान (शुक्रं दुदुहे) तेज को दोहन करे।

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) प्रकाशमान सूर्य की किरणें या वायुगण जिस प्रकार (ऋतेन अद्रिं वि असन्) जल से युक्त मेघ को विविध प्रकार से फेंकते हैं और (भिदन्तः) उसको छिन्न भिन्न करते हुए (गोभिः) सूर्य के व्यापक प्रकाशों से (नवन्त) उसे व्याप देते हैं (उपासं परिसदन्) वे किरण उपाकाल में सर्वत्र फैलते और (अग्नौ जाते स्वः अभवत्) सूर्य के उत्पन्न होने पर प्रकाश और ताप उत्पन्न होता है इसी प्रकार (अङ्गि-रसः) अंगारों के समान तेजस्वी और ज्ञानी पुरुष (ऋतेन) सत्य ज्ञान, न्याय-प्रकाश से (अद्रिम्) मेघ के समान प्रकाश को ढकलेने वाले आवरण को (वि असन्) विशेष रूप से दूर करें और (भिदन्तः) उसे छिन्न भिन्न या विश्लेषण करते हुए (गोभिः) ज्ञानवाणियों से (नवन्त) सत्य का सबको उपदेश करें। इसी प्रकार तेजस्वी वीर पुरुष (ऋतेन)

धनैश्वर्य और तेज, बल से पर्वत के तुल्य अभेद्य शत्रुको उखाड़ फेंके और (गोभिः) धनुषों की डोरियों से वाणों द्वारा उसको छिन्न भिन्न करते हुए (नवन्त) उसका शासन करें। (नरः) विद्वान् और वीर पुरुष (शुनं) सुखपूर्वक (उषासम्) उषा के तुल्य तेजस्वी पुरुष को (परिसदन्) घेर कर बैठें उसकी उपासना करें। विद्वान् लोग प्रातःकाल (शुनं) सुखपूर्वक उपास्य की उपासना करें और वीर लोग (उषासम्) शत्रुदाहक नायक के चारों ओर परिषत् बनाकर बैठे। तब (अग्नौ जाते) जिस प्रकार अग्नि के उत्पन्न होने पर ताप उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अग्नौ जाते) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के प्रकट होने पर (स्वः) सुखमय राज्यैश्वर्य (अभवत्) होता है। उत्तम विद्वान् आचार्य के प्रकट होने पर ज्ञान प्रकाश वा उपदेशमय शब्द प्रकट होता है।

ऋ॒तेन॑ दे॒वीर॒मृता॒ अमृ॑क्ता॒ अर्णो॑भि॒रापो॒ मधु॑मद्भिरग्ने।
वा॒जी न सर्गे॑षु प्रस्तु॒भा॒नः प्र सद॒मित्स्रवि॑तवे दधन्युः ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार (मधुमद्भिः) मधुर गुण वा मधु अर्थात् अन्नों से युक्त (अर्णोभिः) जलों से (आपः) प्राणगण (स्रवितवे) चलने के के लिये (सदम् प्र दधन्युः) अपने आश्रयभूत देह को अच्छी प्रकार धारण करते हैं उसी प्रकार (अमृक्ता) रज आदि से युक्त हुई (देवीः आपः) प्राप्त शुभ गुणों से कान्तमती, पतियों की अभिलाषिणी स्त्रियें (ऋतेन) सत्य के बल से (अमृताः) अमृत तुल्य, सुखजनक होकर (मधुमद्भिः) मधुर गुणों और अन्नादि समृद्धि से युक्त (अर्णोभिः) जलों के तुल्य स्वच्छ शान्तिदायक पुरुषों के संग से (स्रवितवे) संसार चलाने के लिये (सदम्) गृहाश्रम को (प्र दधन्युः) अच्छी प्रकार धारण करें। और (सर्गेषु) जलों के बीच (वाजी न) वेगवान्, विद्युत् जिस प्रकार (प्रस्तुभानः) विशेष गर्जना करता वा शोभा देता है उसी प्रकार (वाजी) ऐश्वर्यवान्, वलवान् पुरुष भी (प्रस्तुभानः) अच्छी प्रकार अर्चित होकर

(सर्गेषु) सर्गों और सन्तानों के हेतु ही (सदम् इत् प्रदधन्यात्) अपने गृहाश्रम को धारण करे । (२) इसी प्रकार राजा की आप प्रजाएं (देवीः) राजा को चाहती हुई या विजयाभिलाषिणी सेनाएं (मधुमद्भिः अर्णोभिः) वेगवान् रथों से (अमृक्ताः) अहिंसित होकर (ऋतेन) बल और धन सहित (स्ववितवे) आगे बढ़ने के लिये ही (सदम् प्र दधन्युः) आसन वृत्ति राजसभा को धारण करें । पूज्य नायक (वाजी न सर्गेषु) युद्धों में वेगवान् अश्व के समान आगे बढ़े ।

मा कस्य॑ य॒क्षं सद॒मिद्धु॒रो गा मा वे॒शस्य॑ प्रमिन॒तो मापेः ।
मा भ्रातु॑रग्ने॒ अनृ॑जोर्ऋ॒णं वे॒र्मा सख्यु॒र्दक्षं॑ रि॒पोर्भु॑जेम ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! तू (कस्य) किसी भी (द्दुरः) बलात्कार करने वाले के (यक्षम्) आदर सत्कार के आडम्बर को और (सदम्) घर को भी (मा गाः) मत प्राप्त कर । तू (प्रमिनतः) हिंसाकारी (वेशस्य) पड़ोसी के (सदम् यक्षं च) घर और संगति (मा गाः) मत प्राप्त कर । इसी प्रकार हिंसक (मापेः) बन्धुजन के भी गृह, संगति आदि मत कर । इसी प्रकार (अनृजोः) कुटिल (भ्रातुः) भाई के (ऋणं मापेः) ऋण या धन का भोग मत कर और (अनृजोः सख्युः) कुटिलाचारी मित्र के भी धन को मत ले । और हम (अनृजोः रिपोः) कुटिल शत्रु के (दक्षं) सैन्य बल को (मा भुजेम) उपभोग न करें ।

रक्षा॑ णो अग्ने॒ तव॒ रक्ष॑णेभी रारक्षा॒णः सु॑मख प्रीणा॒नः ।
प्रति॑ ष्फुर॒ वि रु॑ज वी॒ड्वंहो॑ ज॒हि रक्षो॒ महि॑ चिद्वावृधा॒नम् ॥१४॥

भा०—हे (सुमख) उत्तम त्रुटि रहित यज्ञ करने हारे विद्वन् ! राजन् ! (अग्ने) हे अग्रणी ! तू (तव रक्षणेभिः) अपने रक्षा साधनों से (रारक्षाणः) रक्षा करता हुआ (प्रीणानः) सबको प्रसन्न करता हुआ (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर । और (वीडु अंहः) प्रबल पाप को

(प्रति स्फुर, विरुज) विविध रीति से भंग कर और (वावृधानम्) निरन्तर बढ़ते हुए (महि रक्षः) बड़े भारी विघ्नकारी को (जहि) विनाश कर ।

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्मांण्यंगिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे राजन् ! तू (एभिः अर्कैः) इन मन्त्रों और अर्चना, पूजा सत्कार के योग्य विद्वानों से तू (सुमनाः) उत्तम ज्ञान और चित्त वाला (भव) हो । (इमान् वाजान्) तू इन ऐश्वर्यों और गुणों को हे (शूर) शूरवीर (मन्मभिः) अन्य भी मनन योग्य गुणों के साथ (स्पृश) ग्रहण कर । हे (अंगिरः) तेजस्विन् ! तू (ब्रह्माणि) वृद्धिशील धनों को (जुषस्व) स्वीकार कर । (ते) तेरी (देववाता) विद्वान् पुरुषों द्वारा की गई (शस्तिः) स्तुति वा नसीहत (सं जरेत) अच्छी प्रकार की जाय ।

एता विश्वां विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥२२॥

भा०—हे (वेधः) कार्य करने हारे, हे विशेष धारणावान् कवे ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (तुभ्यं विदुषे) तुझ विद्वान् के लिये (एता) ये (विश्वा) सब (नीथा) सन्मार्ग पर लेजाने वाले (निण्या) निश्चित तत्वार्थ बतलाने वाले, (वचांसि) वचन हैं । अच्छी प्रकार तत्व बतलाने वाले इन (काव्यानि) विद्वानों के बनाये संदर्भ मैं (कवये) क्रान्तदर्शी तेरे हित के लिये (मतिभिः) मनन करने योग्य (उक्थैः) वचनों द्वारा (अशंसिषम्) कहूं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[४]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्नी रक्षोहा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ८ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । १२ निचृत्पंक्तिः । ३, १०, ११, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७, १३ त्रिष्टुप् । १४ स्वराड् बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥

भा०—हे नायक ! तू (प्रसितिम्) उत्तम प्रबन्ध से युक्त पृथ्वी के समान दृढ़ (पाजः) आश्रयभूत बल (कृणुष्व) सम्पादन कर । तू (राजा इव अमवान्) राजा के समान सहायक पुरुषों से युक्त होकर (इभेन) हस्ति बल के साथ वा निर्भय गण के साथ (याहि) प्रयाण कर । तू (तृष्वीम्) अति वेग वाली, वा पियासी मृगी के पीछे भागते शिकारी के समान वा (तृष्वी) जल रहित भूमि के प्रति वेग से जाते हुए मेघ के समान तू भी (तृष्वीम्) वेग से जाने वाली वा (तृष्वीम्) ऐश्वर्य की चाहने वाली, तृष्णालु (प्रसिति) सूत्र के समान परस्पर बन्धी हुई, सुप्रबद्ध सेना के पीछे (द्रूणानः) आता हुआ, (तपिष्ठैः) अत्यधिक सन्तापजनक शस्त्रास्त्रों से (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का (अस्ता असि) उखाड़ फेंकने वाला हो और (विध्य) उनको ताड़ना कर ।

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २ ॥

भा०—हे नायक ! (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! (भ्रमासः आशुया) जिस प्रकार अग्नि के भ्रमणशील या वेग से जाने वाले किरण बड़ी तीव्र गति से दूर तक जाते हैं उसी प्रकार (तव) तेरे (भ्रमासः) भ्रमणशील शस्त्रास्त्र और सैनिकगण (आशुया) अति वेग से (पतन्ति) जावें । तू (धृपता) शत्रु को पराजय करने वाले बल से (शोशुचानः) खूब देदीप्यमान होता हुआ (अनु स्पृश) शत्रुओं के पीछे २ जा । और (जुह्वा) अपनी वाणी से ही (असंदितः) स्वयं अखण्डित और बन्धन रहित रहता हुआ तू (विश्वक्) सब ओर को (तपूंपि) तापजनक अस्त्र शस्त्र (विसृज) चला और (पतङ्गान्) अग्नि की ज्वाला से निकले तापों और स्फुलिङ्गों के समान (पतङ्गान् विसृज) वेग से जाने वाले

अश्वारोहियों और वाणों को छोड़ और (उल्काः) आकाश से गिरने वाले चमकते तारों के समान तू सब ओर अपने चमकते अग्नि-अस्त्र (विसृज) छोड़ ।

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (तूर्णितमः) अति शीघ्रकारी, आलस्य रहित होकर अपने (स्पशः) सिपाहियों, चरों और सत्यासत्य को विवेकपूर्वक देखने वाले पुरुषों को (प्रति विसृज) अपने शत्रु-गृहों और प्रत्येक स्थान में भेज । तू स्वयं (अदब्धः) किसी प्रकार पीड़ित न होकर (अस्याः विशः) इस अधीन प्रजा का (पायुः) पालक (भव) हो । (यः) जो (अघशंसः) पापाचार का प्रशंसक वा पापाचार करने की धमकी देने वाला है (नः दूरे) वह हमसे दूर हो या (यः) जो (अन्ति) समीप में (व्यथिः) प्रजा को व्यथा या पीड़ा देने वाला भेड़िये के तुल्य पुरुष है वह (ते) तुझे (माकिः आदधर्षीत्) कभी भी पराजित न कर सके ।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्य१मित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी सैन्यनायक ! तू (उत् तिष्ठ) उठ, खड़ा हो, सबसे उच्च आसन पर नायक रूप में शत्रुविजय के लिये उद्यत हो । (प्रति आ तनुष्व) शत्रु के विपरीत अपने सैन्य-बल को विस्तृत कर, धनुष आदि तान । हे (तिग्महेते) तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले (अमित्रान्) शत्रुओं को (नि ओषतात्) तू खूब संतप्त कर । वृक्षों को जलाकर अग्नि के समान निर्मूल कर । हे (समिधान) खूब प्रकाशमान तेजस्विन् ! (यः) जो (नः) हमारे बीच में हमसे (अराति) शत्रु भाव (चक्रे) करे (तं) उसको (नीचा) नीचे गिरा कर (शुष्कं अतसं न) सूखे काठ के समान अग्निवत् (धक्षि) जला डाल ।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अवं स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ।५।२३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू (अधि अस्मत्) हम सबसे (ऊर्ध्वः) ऊपर (भव) हो । और (दैव्यानि) देवों, विद्वानों और विजिगीषुओं, व्यवहार-कुशलों से करने योग्य सभी उत्तम कार्यों और देव, जल अग्नि आदि के बने अस्त्र शस्त्रों वा सैन्यों को (आविः कृणुष्व) प्रकट कर । (स्थिरा) स्थिर सैन्यों को (अव तनुहि) अपने अधीन रख । और (यातुजूनां) प्रयाण करने में अति वेग से जाने वाले लोगों के बीच में (जामिम् अजामिम्) अपने बन्धु और अबन्धु को जान । अथवा—(यातुजूनां) चढ़ाई करने के निमित्त वेग से आने वाले शत्रुओं के बीच से (शत्रून्) शत्रुओं को चाहे वे (जामिम् अजामिम्) अपने बन्धु या अबन्धु भी हों उनको (प्रमृणीहि) खूब विनाश कर । और (प्रति विध्य) मुकाबले पर स्थिर होकर ताड़ित कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥६॥

भा०—हे (यविष्ठ) उत्तम युवावस्थायुक्त बलवन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (यः) जो (ईवते) ज्ञानवान् (ब्रह्मणे) वेदज्ञ विद्वान् को (गातुम् ऐरत्) उत्तम वाणी कहता उसका आदर सत्कार करता है वा जो (ईवते) इस जगत् को सञ्चालन करने वाली शक्ति के स्वामी (ब्रह्मणे) महान् परमेश्वर के (गातुम्) प्राप्त करने के मार्ग को (ऐरत्) उपदेश करता है (सः) वह (ते) तेरी (सुमतिं) उत्तम ज्ञान को (जानाति) जानता है । (अस्मै) उसके (विश्वानि सुदिनानि) सब दिन उत्तम सुखकारी होते हैं, उसको (रायः) सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । (द्युम्नानि) सब प्रकार यश और भोग्य अन्न प्राप्त होते हैं वह (अर्यः) स्वामी वा वैश्य के समान (दुरः) अपने सब गृहों को और शत्रु और बाधा के

वारण करने वाली सेनाओं गृह तुल्य प्रजाओं को भी तथा ज्ञान के द्वार-रूप वाणियों को भी (वि अभिद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करे ।

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! हे राजन् वा हे परमेश्वर ! (यः) जो पुरुष (नित्येन) नित्य, स्थायी, न नष्ट होने वाले (हविषा) आह्वान करने योग्य या ग्रहण करने योग्य वेद द्वारा वा उत्तम अन्न से, और (यः) जो (उक्थैः) उत्तम वचनों से (त्वा) तुझको (स्वे) अपने (आयुषि) जीवन में और अपने (दुरोणे) घर या राष्ट्र में (वि प्रीषति) प्रसन्न करने का यत्न करता है (सः इत् सुभगः अस्तु) वह ही उत्तम ऐश्वर्ययुक्त और वह ही (सुदानुः) उत्तम दानशील हो । (अस्मै विश्वा इत् सुदिना) उसके ही सब दिन सुखकारक होते और (सा) उसका ही वह नाना प्रकार की उत्तम संगति और दान, मैत्री आदि प्राप्त और सफल होते हैं । नित्य अग्नि में नियम से जो हवि चरु आदि और वेदमन्त्रों से अग्नि और प्रभु को प्रसन्न करता, सन्ध्या और अग्नि-होत्र करता है और जो विद्वानों को नित्य अन्न से प्रसन्न करता, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेव करता है वह ही उत्तम दानी और उत्तम ऐश्वर्यवान् हो । उसके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं । उसके ही यज्ञ, सत्संग, मैत्री आदि सफल होते हैं । इसी प्रकार जो प्रजा राजा को नियम पूर्वक कर देती है वह समृद्ध उत्तम दानशील वा शत्रुखण्डक होती है, उसके दिन अच्छे और संगठन भी उत्तम होता है ।

अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! मैं प्रजाजन (ते) तेरे (सुमतिं) उत्तम मति वाले, बुद्धिमान् उत्तम ज्ञानी पुरुष का और तेरी उत्तम मति

का (अर्चामि) आदर करूं । (इयं) यह (गीः) वाणी (घोषि) उत्तम शब्दयुक्त होकर (वावाता) सब अज्ञानों का नाश करती हुई (ते अर्वाक्) तेरे प्रति (सं जरताम्) अच्छी प्रकार उपदेश वा स्तुति करे । और (इयं गीः) यह शत्रुपक्ष को निगल जाने वाली (वावाता) शत्रु. पक्ष का निरन्तर विनाश करती हुई सेना (घोषि) घोष, सिंहनाद करती हुई (अर्वाक्) तेरे समक्ष (संजरताम्) शत्रु के जीवन का नाश करे । हम लोग (स्वश्वाः) उत्तम अश्वों (सुरथाः) उत्तम रथों और अश्वबल और रथबल से युक्त होकर (त्वा मर्जयेम) तुझे सुशोभित करें और (अस्मे) हमारे लिये तू (अनुद्यून्) सब दिनों (क्षत्राणि) क्षात्रबल, और ऐश्वर्य धारण कर और हमें धारण करा ।

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! (इह) इस राष्ट्र में, इस लोक में (दोषावस्तः) दिन रात (त्वां दीदिवांसम्) देदीप्यमान तेजस्वी (त्वा) तुझको प्राप्त करके (भूरि) बहुत अधिक (त्मन्) स्वयमेव (उप आचरेत्) तेरी सेना आदर सत्कार और श्रेष्ठाचार करे । और (अनुद्यून्) दिनों दिन हम भी (समनसः) शुभ ज्ञान और चित्त वाले होकर (क्रीडन्तः) पिता के समीप खेलते हुए बालकों के समान (त्वा अभिसपेम) तुझे प्राप्त हों । और (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (द्युम्ना अभितस्थिवांसः) यशों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करके तेरे समीप तेरे सन्मुख स्थित रहते हुए तुझे प्राप्त हों ।

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन । तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ।१०॥२४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! राजन् ! हे प्रभो ! (यः) जो पुरुष (सु-अश्वः) उत्तम अश्व और (सुहिरण्यः) उत्तम धनैश्वर्य से युक्त होकर

(वसुमता रथेन) धन धान्य से सम्पन्न रथ से (त्वा उपयाति) तुझे प्राप्त होता है और (यः) जो (ते) तेरे (आतिथ्यम्) आतिथ्य (अनुषक्) अनुकूल रूप से स्वपदमानानुसार (जुजोषत्) स्वयं स्वीकार करता वा (ते आतिथ्यम् जुजोषत्) तेरा अतिथ्य स्वयं प्रेम से करता है तू (तस्य) उसका (त्राता) रक्षक और (तस्य सखा) उसका मित्र (भवसि) होकर रह। (२) हे परमेश्वर ! जो (सुअश्वः) उत्तम इन्द्रियों से युक्त जितेन्द्रिय और (सुहिरण्यः) उत्तम देह और आत्मवान् होकर तेरी उपासना करे जो तेरा आतिथ्य निरन्तर सेवन करे, तेरी शरण आवे तो तू उसका त्राण करता और उसका सखा बन जाता है।

मह<u>ो</u> रुजामि ब<u>न्धु</u>ता वचो॑भि॒स्तन्मा॑ पि॒तुर्गोत॑मा॒दन्वि॑याय।
त्वं नो॑ अ॒स्य वच॑सश्चिकिद्धि॒ होत॑र्यविष्ठ सुक्रतो॒ दमू॑नाः ॥११॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले ! हे (यविष्ठ) बलशालिन् (वचोभिः) वचनों द्वारा ही प्राप्त होने वाली जो (बन्धुता) सम्बन्ध है उससे मैं (महः) बड़ा भारी शत्रुबल तथा अज्ञान को (रुजामि) नष्ट करने में समर्थ हूं। (तत्) वह सम्बन्ध (पितुः) पालक पिता माता के तुल्य ही (गोतमात्) ज्ञानियों में श्रेष्ठ आचार्य और पुरुषों में श्रेष्ठ वा भूमियों में श्रेष्ठ राजा के पास से शिष्य वा प्रजाजन रूप (माम) मुझको (अनु इयाय) क्रम से प्राप्त हो। हे विद्वन् ! (त्वं) तू (दमूना) अपने चित्त, इन्द्रियों को दमन करने हारा और प्रजा को दमन करने में मनोयोग देने हारा होकर तू (नः) हमें (अस्य वचसः) इस वचन का (चिकिद्धि) ज्ञान करवा कर।

अस्व॑प्नजस्त॒रण॑यः सु॒शेवा॒ अत॑न्द्रासोऽवृ॒का अश्र॑मिष्ठाः।
ते पा॒यवः॑ स॒ध्र्य॑ञ्चो नि॒षद्याग्ने॒ तव॑ नः पान्त्वमूर ॥ १२ ॥

भा०—राजा के भृत्य वा अधीन शासक कैसे हों—हे (अमूर) मूढ़ता आदि दोषों से रहित राजन् ! वे (अस्वप्नजः) कभी न होने

वाले, सदा जागरणशील, सदा सावधान, (तरणयः) नित्य तरुण, जवान, प्रबल, (सुशेवाः) उत्तम सुख देने वाले (अतन्द्रासः) कभी तन्द्रा या विषयों के प्रमाद में न पड़ने वाले, (अवृकाः) चोर वा भेड़ियें के स्वभाव से रहित (अश्रमिष्ठाः) कभी न थकने वाले हों। (ते) वे (पायवः) पालक गण (सध्र्यञ्चः) सदा एक साथ काम करने वाले सहयोगी होकर (निषद्य) अपने २ पदों पर विराज कर (तव) तेरे अधीन जन (नः) हम प्रजा जनों की (पान्तु) रक्षा करें। (२) इसी प्रकार परमेश्वर की शक्तियां भी नित्य जागृत, प्रबल, सूर्यवत् तेजस्वी, सुखप्रद, अविकृत ज्योति वाली अनथक, सहयोगिनी होकर जन्तुओं की पालक हैं। वे हमारी रक्षा करें।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः॥१३॥

भा०—(ये) जो (ते) तेरे (पायवः) नियुक्त रक्षक गण स्वयं (मामतेयं) ममता के भाव से अपनाये हुए (अन्धं) लोचनहीन अज्ञानी प्रजाजन को स्वयं (पश्यन्तः) यथार्थ ज्ञान से देखते हुए (दुरितात्) दुष्टाचरण और दुःखमार्ग में जाने से (अरक्षन्) बचा लेते हैं (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ सर्वैश्वर्य का स्वामी तू (तान्) उन (सुकृतः) शुभ कर्मकारी लोगों को (रक्ष) सुरक्षित रख, उनको नियुक्त कर। जिससे (दिप्सन्तः) हिंसा करने के इच्छुक घात लगाने वाले (रिपवः) शत्रुगण (इत्) भी (न अह) कभी (देभुः) प्रजा का नाश कर सकें।

त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण॥ १४॥

भा०—हे (सत्यताते) सत्य न्याय के विस्तार करने हारे! (वयं) हम लोग (त्वया) तेरे द्वारा (सधन्यः) समान धन के स्वामी होकर

(त्वा ऊता) तेरे द्वारा सुरक्षित रहकर (तव प्रणीती) तेरे बनाये विधान, प्रेम, उत्तम नीति से (वाजान्) ऐश्वर्यों और संग्रामों को (अश्याम) भोगें और विजय करें। हे सत्य रक्षक ! हे न्यायवित्! हे (अह्रयाण) लज्जारहित निर्भीक कार्य करने हारे ! तू (उभा शंसा) दोनों वादियों को (अनुष्ठुया) अपने मनोनुकूल करते हुए (सूदय) सञ्चालित कर।

अया ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम॒ प्रति॒ स्तोमं॑ श॒स्यमा॑नं गृभाय।
दहा॒शसो॑ र॒क्षसः॑ पा॒ह्य१॒॑स्मान्द्रु॒हो नि॒दो मि॑त्रमहो अव॒द्यात्॥१५॥२५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! ज्ञानवन् ! हे तेजस्वी राजन् ! हम लोग (अया) इस (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाली वाणी द्वारा (शस्यमान) प्रशंसा करने योग्य (स्तोमं) स्तुति-वचन वा उपदेश (ते विधेम) तेरे हितार्थ विधान करें। तू उसको (प्रति गृभाय) प्रत्यक्ष सादर ग्रहण कर, मान। तू (अशसः) प्रजाओं को खा जाने वाले वा (अशसः) अप्रशस्त (रक्षसः) कार्य विघ्न करने वाले पुरुष से (अस्मान् पाहि) हमें बचा। हे (मित्रमहः) मित्रों के द्वारा पूजनीय ! हे मित्रों का सत्कर्त्तव्य या मित्रों के द्वारा महान् सामर्थ्यवान् वा सूर्य के समान वा वायुवत् तेजस्विन् ! तू (द्रुहः) द्रोही, देशद्रोही और प्रजा द्रोही, (निदः) निन्दाकारी (अवद्यात्) निन्दा योग्य पुरुष से भी (पाहि) हमारी रक्षा कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

वामदेव ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७, ८, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४, ९, १२, १३, १५ त्रिष्टुप् । १०, १४ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

वैश्वानराय मीळहुषे सजोषाः कथा दाशेम ग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभाय दुपमिन्न रोधः ॥ १ ॥

भा०—जो (बृहद्भाः) सूर्य के समान बड़े भारी तेज वा ज्ञान-प्रकाश से युक्त (अनूनेन) किसी से भी न कम, अति अधिक (बृहता) बहुत बड़े (वक्षथेन) कार्य भार को उठाने या धारण करने के सामर्थ्य से (रोधः न) जलों के तट के समान (उपमित्) इस जगत् को स्वयं जानने, बनाने और चलाने हारा होकर (उप स्तभायत्) संभालता है उस (वैश्वानराय) समस्त जगत् के सञ्चालक, सब मनुष्यों के नायक राजा और विद्वान् (मीळ्हुषे) सूर्य वा मेघ के तुल्य आनन्द ऐश्वर्य सुखों के वर्षक (अग्नये) अग्नि के तुल्य ज्ञानप्रकाशक, अग्रणी, मार्गदर्शक के लिये हम (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (कथा दाशेम) किस प्रकार आत्मसमर्पण करें, करादि दें । दान, मान आदर सत्कार आदि करें ।

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२॥

भा०—(यः) जो (देवः) दानशील, सूर्य के समान प्रकाशक और मेघ के (स्वधावान्) अन्न और जल से युक्त होकर (मर्त्याय मह्यं) मुझ (पाकाय) परिपक्व ज्ञानी, तपस्या युक्त, सुदृढ़ मनुष्य को (इमां रातिं ददौ) इस प्रत्यक्ष दान, ज्ञान धनादि का प्रदान करता है उसकी (मा निन्दत) निन्दा मत करो । वह (गृत्सः) उपदेश देने वाला गुरु, (अमृतः) मृत्यु से रहित, कभी न मरने वाला (विचेताः) विविध ज्ञानों को जानने वाला, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में प्रकाशमान, (नृतमः) सब मनुष्यों वा जीवों में श्रेष्ठ, नरोत्तम, (यह्वः) महान् (अग्निः) सबका नायक, सबका प्रकाशक, अग्निवत् तेजस्वी, स्वप्रकाश है ।

साम॑ द्वि॒बर्हा॒ महि॑ ति॒ग्मभृ॑ष्टिः स॒हस्र॑रेता वृष॒भस्तुवि॑ष्मान् ।
प॒दं न गोरप॑गूळ्हं विवि॒द्वान॒ग्निर्मह्यं॒ प्रेदु॑ वोच॒न्मनी॒षाम् ॥ ३ ॥

भा०—(सहस्ररेताः वृषभः) अनेक जलों से युक्त वर्षणशील मेघ वा सूर्य (द्विबर्हाः) आकाशभूमि दोनों को बढ़ाने वाला, (तिग्मभृष्टिः) तीक्ष्ण प्रकाश ताप से युक्त होकर जिस प्रकार (गोः अपगूळ्हं पदं विविद्वान्) किरणों के स्वरूप प्राप्त करता हुआ चेतना वा ज्ञान देता है उसी प्रकार (द्विबर्हाः) विद्या और विनय दोनों से बढ़ने हारा वा ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दोनों से बढ़ा हुआ वानप्रस्थ कुलपति वा दोनों लोकों से महान् (तिग्मभृष्टिः) तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त, पापों को दग्ध करने में समर्थ, (सहस्ररेताः) अतुल बल वीर्य सम्पन्न, सहस्रों विद्या बलों से युक्त, (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ, (तुविष्मान्) बलवान्, (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नायक या परमेश्वर, (गोः) वाणी और पृथिवी के (अपगूळ्हं) अति अव्यक्त, अप्रकट रूप को (विविद्वान्) विशेष रूप से जानता हुआ, (मह्यं) मुझ प्रजाजन की (मनीषाम्) मन वा ज्ञान की प्रेरक बुद्धि या ज्ञान का (प्रवोचत् इत्) अच्छी प्रकार उपदेश करे ।

प्र ताँ अ॒ग्निर्ब॑भसत्ति॒ग्मज॑म्भ॒स्तपि॑ष्ठेन शो॒चिषा॒ यः सु॒राधाः॑ ।
प्र ये मि॒नन्ति॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ प्रि॒या मि॒त्रस्य॒ चेत॑तो ध्रु॒वाणि॑ ॥४॥

भा०—(ये) जो (वरुणस्य) सबसे वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ और (मित्रस्य) प्रजा को मरने से बचाने वाले, सर्वस्नेही (चेततः) ज्ञानी पुरुष के (ध्रुवाणि) स्थिर, (प्रिया) प्रिय (धाम) स्थान, नाम, देह आदि का (प्रमिनन्ति) नाश करें (तान्) उनको (यः) जो (सुराधाः) उत्तम ऐश्वर्यवान् (अग्निः) अग्रणी नायक (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण, हिंसक आयुधों से सम्पन्न है वह अपने (तपिष्ठेन) अति संतापदायक (शोचिषा) तेज से (बभसत्) प्रदीप्त करे, जलावे, पीड़ित करे ।

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरं ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार (अभ्रातरः योषणः न) पालक पोषक भाई वा पति से रहित स्त्रियें (दुरेवाः) दुःखदायी गति पाकर (गभीरं पदं) गहरे संकट-स्थान पैदा कर लेती हैं और जिस प्रकार (जनयः पतिरिपः) पालक पति की भूमिस्वरूप होकर भी पतिद्वेषिणी स्त्रियें (दुरेवाः) दुष्टाचारिणी होकर (पापासः अनृताः) पापयुक्त असत्य-भाषिणी और (असत्याः) सत्याचरण से रहित होकर (गभीरं पदं अजनत) गहरा संकट या नरक पैदा कर लेती हैं (व्यन्तः) जाते हुए लोग (पापासः) पापाचारी (अनृताः) असत्यवादी (असत्याः) असदाचारी लोग भी जीवन-मार्ग में (इदं) इस प्रत्यक्ष (गभीरं पदम् अजनत) गहरे स्थान, गढ़ा या अधःपतन को प्राप्त करते हैं, वे नीचे गिरते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! हे (पावक) पवित्र करनेहारे ! तू (मे) मुझ (कियते) अल्पज्ञानी, अल्पशक्ति, (अमिनते) व्रत भंग न करने वाले शिष्य, जीव के उपकार के लिये ही (कियते गुरुं भारं न) स्वल्प बल वाले के उपकार के लिये (गुरुं भारं नं) बहुत अधिक भार के समान (गुरुं) उपदेश करने योग्य (भारं) पोषणकारक (मन्म) मनन करने योग्य (बृहत्) बहुत बड़ा (गभीरं) अति गंभीर (यह्वं) महान् (पृष्ठं) प्रश्नों द्वारा जानने योग्य, हृदय में आनन्द वर्षक (सप्त-धातु) सुवर्णादि सात धातुओं से युक्त धन के तुल्य सात प्रकार के छन्दों द्वारा धारण करने योग्य वेद-विज्ञान को (धृषता) अति प्रगल्भ (प्रयसा)

उत्तम प्रयत्न और तृप्तिकारक प्रसन्न-चित्त से (दधाथ) आप धारण करावें मुझे प्रदान करें ।

तमिन्न्वे॒३॒॑व स॒मना॑ स॒मान॑म॒भि क्रत्वा॑ पुन॒ती धी॒तिर॑श्याः ।
स॒सस्य॒ चर्म॒न्नधि॒ चारु॒ पृश्ने॒रग्रे॑ रु॒प आरु॑पितं॒ जबा॑रु ॥ ७ ॥

भा०—हे शिष्यगण ! तू (समना) समान चित्त होकर (पुनती क्रत्वा) पवित्र करने वाले ज्ञान और कर्म के अभ्यास द्वारा (समानम्) अपने तुल्य मित्रवत् (तम् इत् नु एव) उस गुरु को ही (धीतिः सन्) धारणाशील वा अध्ययनशील होकर (अश्याः) उसे मित्र तुल्य जान कर प्राप्त कर । (पृश्नेः ससस्य) पृश्नि नाम मृग के (चर्मन् अधि) चर्म पर स्थित होकर उसके तुल्य ही (ससस्य) ऊपर उठते हुए (पृश्नेः) सूर्य के (चर्मन् अधि) आचरण या व्रत में विद्यमान रहकर (रुपः) ज्ञानाङ्कुर बीजों के रोपने वाले गुरु से तू (आरुपितं) आदर वा प्रेम-पूर्वक वपन किये (जवारु) वेग से या उपदेश पूर्वक बढ़ने वाले ज्ञान को (रुपः आरुपितं जवारु) अंकुरवती भूमि से अति शीघ्र वृद्धिशील अन्न के तुल्य ही (अश्याः) प्राप्त कर। स्त्री पुरुष के पक्ष में—हे स्त्री ! तू (धीतिः) गर्भ वा गृहस्थ धारण करने में समर्थ युवति (समना) समान प्रेममय चित्त वाली होकर (क्रत्वा) मन ज्ञान वा कर्म से वा यज्ञ द्वारा (समानम्-अभि पुनती) अपने समान गुण रूपादि युक्त पुरुष को प्राप्त करती हुई (तम् इत नु एव अश्याः) उसको ही प्राप्त कर । (पृश्नेः) पालक एवं वीर्य सेचन में समर्थ (ससस्य) शयन करते हुए पति के ही (चर्मन्) चर्म या आच्छादन वस्त्र, बिछोने आदि पर (अग्रे) प्रथम तू (रुपः) बीज वपनकर्त्ता पति से (आरुपितं) आदर वा प्रेम से वपन किये (जवारु) स्वयं जीर्ण होकर उत्पन्न होने वाले सन्तान आदि को, भूमि में उत्पन्न अन्न के तुल्य ही (अश्याः) प्राप्त कर ।

प्र॒वाच्यं॒ वच॑सः॒ किं मे॑ अ॒स्य गुहा॑ हि॒तमुप॑ नि॒णिग्व॑दन्ति ।
यदु॒स्रिया॑णा॒मप॒ वारि॑व॒ व्रन्पाति॑ प्रि॒यं रु॒पो अग्रं॑ प॒दं वेः ॥ ८ ॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् आचार्य के (वचसः) वचन के सम्बन्ध में (मे) मेरे लिये (किम् प्रवाच्यं) क्या अद्भुत वा कितना अधिक प्रवचन करने योग्य है जिसे (गुहा हितम्) बुद्धि में स्थित और (निणिक्) अति शुद्ध और शिष्यादि की बुद्धि को विमल करने वाला (उपवदन्ति) बतलाते वा विद्वान् जन उपदेश करते हैं। (उस्रियाणां वाः इव) किरणों या मेघ की जलधाराओं या नदियों के जल के समान (उस्रियाणाम्) स्वयं उठने वाली वाणियों के (यत्) जिस उत्तम साररूप ज्ञान को विद्वान् लोग (अप व्रन्) खोलते वा प्रकट करते हैं। वही (रुपः वेः) बीजोत्पादक पृथिवी और कान्तिमान् सूर्य इन दोनों के तुल्य (रुपः) सन्तति उत्पादक स्त्री और (वेः) कमनीय कामनावान् पुरुष माता वा पिता दोनों के (प्रियं) प्रिय (अग्रं) मुख्य (पदं) पद आदरणीय स्थान को (पाति) पालन करता है। अर्थात् वह आचार्य उनके माता पिता के तुल्य होता है।

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥ ९ ॥

भा०—(इदम् उ) यह ही (त्यत्) वह परम (महि) बड़ा भारी (महाम्) बड़ों के भी बीच में (अनीकं) बलवान् सूर्य रूप तेजःपुञ्ज है (यत् पूर्व्यं) सब से पूर्व विद्यमान् कारणों से उत्पन्न जिसको (उस्रिया गौः) दुधार गौ के तुल्य जलप्रद रश्मि वा गतिशील पृथिवी (सचते) प्राप्त है और जिसको (ऋतस्य पदे) सूक्ष्म जल के आश्रयस्थान आकाश के भी (अधि) ऊपर (दीद्यानं) देदीप्यमान (गुहा) अन्तरिक्ष में (रघुष्यत्) वेग से जाता हुआ (रघुयत्) अति वेग से गमन करने वाले पिण्ड के तुल्य (विवेद) विद्वान् जानता है। इसी प्रकार राजा और विद्वान् भी बड़ों में बड़ा बल है जिसको (गौः) पृथिवी और वाणी गौ के तुल्य पालक को प्राप्त होवे। (ऋतस्य पदे अधि-

दीद्यानं) न्याय वा ज्ञान के परम पद पर प्रकाशमान को बुद्धि में अति तीव्र रूप में शिष्य जन जानें ।

अध॑ द्युता॒नः पि॒त्रोः सचा॒सामनु॑त॒ गुह्यं॒ चारु॒ पृश्नेः॑ ।
मा॒तुष्प॒दे प॑र॒मे अन्ति॒ षद्गोर्वृष्णः॑ शो॒चिषः॒ प्रय॑तस्य जि॒ह्वा ॥१०॥

भा०—(अध) और जिस प्रकार (द्युतानः) प्रकाशमान सूर्य (पित्रोः सचा) जगत् के पालक आकाश और भूमि दोनों के बीच में (सचा) स्थिर होकर (पृश्नेः) अन्तरिक्ष की (गुह्यं) गुहा में स्थित (चारु) उत्तम या व्यापक जल को (आसा) विक्षेपक बल से (अमनुत) स्वयं ग्रहण करता है और (मातुः परमे पदे) अन्तरिक्ष के परम दूरवर्ती स्थान में विद्यमान (वृष्णः) जलवर्षी (शोचिषः) प्रकाशमान (प्रयतस्य) उत्तम यत्नशील, शक्तिशाली सूर्य की (गोः) किरणों की (जिह्वा) जल ग्रहण करने की शक्ति (अन्ति सत्) समीप विद्यमान जल को ग्रहण कर लेती है उसी प्रकार (द्युतानः) प्रकाशमान तेजस्वी शिष्य (पित्रोः सचा) माता पिता के साथ रहकर भी (पृश्नेः) प्रश्न करने योग्य गुरु के (गुह्यं चारु) बुद्धि स्थित उत्तम ज्ञान को (अमनुत) जान ले, (मातुः परमे पदे) माता के समान उत्तम ज्ञाता के भी परम, उत्कृष्ट पद पर स्थित (वृष्णः) ज्ञानवर्षक (शोचिषः) तेजस्वी (प्रयतस्य) अति उत्तम जितेन्द्रिय गुरु के (अन्ति सत्) समीप रहकर उसकी (गोः) वाणी के (चारु गुह्यं) उत्तम गुप्त विज्ञान का भी (जिह्वा) वाणी द्वारा (अमनुत) ज्ञान करले । इति द्वितीयो वर्गः ॥

ऋ॒तं वो॑चे॒ नम॑सा पृ॒च्छ्यमा॑न॒स्तवा॒शसा॑ जातवे॒दो यदी॒दम् ।
त्वम॒स्य क्ष॑यसि॒ यद्ध॒ विश्वं॑ दि॒वि यदु॒ द्रवि॑णं॒ यत्पृ॑थि॒व्याम् ॥११॥

भा०—मैं (नमसा) आदरपूर्वक (आशसा) अति प्रशंसित रूप से (पृच्छ्यमानः) पूछा जाऊं तो अवश्य हे (जातवेदः) विद्वन् !

(यदि इदम्) यह जो भी कुछ है सब (तव) तुझे (ऋतम् वोचे) सत्य ही बतलाऊं। अथवा हे (जातवेदः) परमात्मन् ! तेरे विषय में जब भी मैं आदर से प्रश्न किया जाऊं (तव आशसा) तेरे प्रशस्त ज्ञान से तो (ऋतं वोचे) सत्य वेद ज्ञान का ही उपदेश करूं। हे प्रभो ! (यत् विश्वम्) जो भी समस्त विश्व है, (यद् उ) जो कुछ (दिवि) आकाश में और (यत्) जो भी (पृथिव्याम्) पृथिवी में (द्रविणं) द्रविण, ऐश्वर्यादि और तेज गतिशील, सूर्यादि लोक और जल वायु आदि तत्व और ज्ञान है (अस्य) इसमें (त्वम् क्षयसि) तू ही सर्वत्र बस रहा है, तुझ से कुछ छिपा नहीं, इसलिये झूठ न बोलकर सदा सत्य ही कहूं।

किं नो॑ अ॒स्य द्रवि॑णं॒ कद्ध॒ रत्नं॒ वि नो॑ वोचो जातवेदश्चिकि॒त्वान्।
गुहाध्व॑नः पर॒मं यन्नो॑ अ॒स्य रेकु॑ प॒दं न नि॑दा॒ना अग॑न्म ॥१२॥

भा०—हे (जातवेदः) विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! (अस्य) इस संसार का (नः) हमारे उपयोगी (किं द्रविणं) क्या धन वा यश है (कत् रत्नं) किस २ प्रकार का रमण करने योग्य पदार्थ है ? तू (चिकित्वान्) सब कुछ जानता हुआ ही (नः विवोचः) हमें भी विविध प्रकार से उपदेश कर। (अस्य अध्वनः) इस महान् मार्ग के गन्तव्य प्रभु का (गुहा) बुद्धि में स्थित (परमं) परम, सर्वोत्कृष्ट (यत्) जो (पदम्) ज्ञातव्य स्वरूप (रेकु) संशयास्पद सा है उसको हम (निदानाः) परस्पर की निन्दा करते हुए (न अगन्म) नहीं प्राप्त होते हैं। अथवा नेत्युपमार्थीयः। जो मिथ्यास्वरूप है उसकी (निदानाः) निन्दा करते या अपलाप करते हुए हम (रेकु पदं न अगन्म) सबसे अतिरिक्त सर्वातिशायि परम पद को प्राप्त हों। 'नेतिनेतीत्यात्मा'। उप०॥

का म॒र्यादा॑ व॒युना॒ कद्ध॑ वा॒मम॒च्छा॑ गमेम र॒घवो॒ न वाज॑म्।
क॒दा नो॑ दे॒वीर॒मृत॑स्य॒ पत्नीः॒ सूरो॒ वर्णे॑न ततनन्नु॒षासः॑ ॥ १३ ॥

भा०—(का मर्यादा) क्या मर्यादा है (का वयुना) कौन २ से

करने योग्य कर्त्तव्य हैं और कौन २ से जानने योग्य ज्ञान हैं (रघवः वाजं न) वेगवान् अश्व जिस प्रकार संग्राम को जाते हैं और शीघ्रकर्त्ता अनालसी लोग जिस प्रकार ज्ञान विज्ञान को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हम भी (रघवः) ज्ञानी होकर (कत् ह) कब (वामं वाजं) प्राप्त और सेवन करने योग्य ज्ञानैश्वर्य को (गमेम) प्राप्त करेंगे। (सूरः) सूर्य जिस प्रकार (वर्णेन) उत्तम प्रकाश से (देवीः अमृतस्य पत्नीः उषासः ततनन्) प्रकाश वाली, कान्तिमती, सन्तान की पालक पत्नियों के समान प्रभात वेलाओं को विस्तारित करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! आप (सूरः) प्रेरक होकर (नः) हमारे लिये (कदा) कब (अमृतस्य पत्नीः) अमृत आत्मा की पालक (देवीः) दिव्य प्रकाश से युक्त (उषासः) पापदाहक ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं को और सत्य ज्ञान की पालक वाणियों का (ततनन्) हमारे प्रति प्रकट करेंगे।

अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! (अनिरेण) मन को सुन्दर न लगने वाले, अरुचि कर (फल्ग्वेन) व्यर्थ, निःसार (प्रतीत्येन) विरुद्ध ज्ञान वाले, वाधित, (कृधुना) स्वल्प (वचसा) वचन से (अतृपासः) न तृप्त होने वाले लोग (इह) इस लोक में (ते) तेरे (किम्) किस ज्ञान की (आ वदन्ति) चर्चा करें। वे (अनायुधासः) हथियार के साधनों से रहित, निहत्थों के समान (असता) असत् ज्ञान से (सचन्ताम्) युक्त हो जावेंगे। इसलिये हे विद्वन् ! तू उनको विस्तृत रमणीय, सारवान्, अबाधित, अनन्त वेद का उपदेश कर।

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥३॥

भा०—(अस्य) इस (समिधानस्य) अग्नि वा सूर्यवत् देदीप्य-

मान (वृष्णः) प्रबन्ध करने हारे वा मेघ के तुल्य सुखों के वर्षक (वसोः) प्रजा को वसाने वाले राजा की (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये ही उसके (दमे) गृहवत् राष्ट्र या दमन में (अनीकं) बड़ा सैन्यमय तेज (आ रुरोच) सर्वत्र प्रकाशित हो। वह (रुशत्) तेजस्वी होकर (वसानः) राष्ट्र में रहता हुआ (सुदृशीकरूपः) उत्तम दर्शनीय शरीर होकर (राया पुरुवारः) धनैश्वर्य से बहुतों द्वारा वरण करने योग्य, बहुत से शत्रुओं का वारक होकर (क्षितिः न) भूमि या राष्ट्र के समान ही गंभीर विस्तृत वा शत्रुओं का क्षयकारी होकर (अद्यौत्) प्रकाशित हो। इति तृतीयो वर्गः॥

[६]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ४, ९ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान और धन के देने वाले विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमारे (अध्वरस्य) हिंसा रहित, अन्यों से नाश न किये जाने योग्य, अध्ययनाध्यापन और प्रजा पालन के कार्य में (देवतातौ) विद्वानों और विजयेच्छु, व्यवहार-निपुण लोगों के बीच (यजीयान्) सबसे अधिक आदरणीय, सबका स्नेही, मित्र और सत्संग योग्य होकर (ऊर्ध्वः) सबसे ऊपर अध्यक्ष रूप से (तिष्ठ) विराज। हे (अग्ने) अग्रणी ! विद्वन् ! (त्वं हि) तू ही निश्चय से (विश्वं मन्म) समस्त मनन करने योग्य ज्ञान और स्तम्भन करने योग्य शत्रु-बल को (अभि असि) अपने वश करने में समर्थ हो और (वेधसः) ज्ञानी और कर्म कुशल कर्त्ता की (चित्) भी (मनीषाम्) उत्तम बुद्धि को (प्र तिरसि) बढ़ा।

अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥ २ ॥

भा०—(विक्षु) प्रजाओं के बीच (अग्निः) ज्ञानी और अग्रणी नायक तेजस्वी (अमूरः) मूढ़ता रहित, विद्वान्, (होता) ज्ञानादि का देने वाला, (मन्द्रः) सबको आनन्द देने वाला (विदथेषु) ज्ञानों और धनों को प्राप्त करने के लिये (प्र-चेताः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (नि असादि) विराजे। वह (सविता इव) उत्पादक पिता वा सूर्य के समान (ऊर्ध्वं भानुं) सबसे उत्तर कान्ति को (अश्रेत्) धारण करे और (मेता इव) उत्तम ज्ञानवान् के तुल्य ही (धाम्) ज्ञान प्रकाश और तेज को तथा (धूमम्) अग्नि के तुल्य धूम को, शत्रुओं को कंपा देने वाले सैन्य-बल को (स्तभायत्) अपने वश करे।

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (घृताची) तेज से युक्त उषा वा जल से युक्त रात्रि, (रातिनी) सुख देने वाली होकर (देवतातिम् उत् अनक्ति) प्रकाशमान किरणों वा सूर्य को प्रकट करती है, उसी प्रकार (यता) संयत, नियमों में सुप्रबद्ध वा संयम से रहने वाली ब्रह्मचारिणी, (घृताची) तेज और घृतादि स्नेहयुक्त पदार्थों को सेवने वाली, (सुजूर्णिः) उत्तम रीति से सब कार्य वेग से करने वाली, (रातिनी) बहुतों के दिये दानों वा आशिषों को प्राप्त करने वाली होकर (प्रदक्षिणित्) वेदि में प्रदक्षिणा करती हुई (देवतातिम्) अपने प्रिय कामनायोग्य पतिदेव को (उद् अनक्ति) उद्वाह करे, प्राप्त करे। और जिस प्रकार (उराणः) बहुतों को जीवन देने वाला (स्वरुः) अति प्रतापी सूर्य, (नवजाः न) नव उत्पन्न, बालक के समान (अक्रः) ऊपर उठता हुआ (सुधितः) सुखकारी और (सुमेकः) उत्तम रीति से प्रकाशमान होकर (पश्वः उत् अनक्ति) अपनी किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार (उराणः) बहुत कर्म करने में समर्थ वा बहुतों को जीविका देकर पालने में समर्थ (स्वरुः) आज्ञा

देने वाला वा प्रतापी पुरुष (नवजाः अक्रः न) नव उत्पन्न उदय होते हुए सूर्य के तुल्य (सुधितः) सुखपूर्वक पालित पोषित, सबको सुखकारी, हितकर्त्ता, (सुमेकः) उत्तम तेज से युक्त, उत्तम वीर्यवान् होकर (पश्वः) बहुत से गौ आदि पशुओं को (उत् अनक्ति) प्राप्त करे अर्थात् गवादि सम्पत्ति की वृद्धि करे। (२) इसी प्रकार सुप्रवद्ध, वेगवती, ऐश्वर्यदानों से युक्त, तेजस्विनी सेना (देवतातिम् प्रदक्षिणित्) अपने स्वामी के दायें बलवती होकर रहे। और वह सबका वृत्तिदाता, तेजस्वी, नवजात, उदेता नायक सबका हितैषी तेजस्वी होकर सेनाओं को (पश्वः न) पशुओं को गोपालवत् चलावे और उन पर शासन करे।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात्।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥ ४ ॥

भा०—(स्तीर्णे) प्रकाश से आच्छादित (बर्हिषि) महान् आकाश में (अग्नौ समिधाने) सूर्य या अग्नि के समान विस्तृत वा सुरक्षित (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन में (अग्नौ समिधाने) अग्रणी नेता के अति तेजस्वी होने पर (अध्वर्युः) अपनी अहिंसन वा अपीड़न, अविनाश की इच्छा करने हारा लोक (जुजुषाणः) स्वामी की प्रेमपूर्वक सेवा करता हुआ (ऊर्ध्वः) उन्नत रूप में आदर से (अस्थात्) स्थित रहे। और (अग्निः) तेजस्वी अग्रणी नायक भी (पशुपाः न) पशुओं के पालक गोपाल के समान उनका सब प्रकार से रक्षक और, (होता) उनको ऐश्वर्य देने वाला होकर (उराणः) बहुत बड़े कार्य वा उनके ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (प्रदिवः) सदा से वा उत्तम ज्ञानों, प्रकाशों वा काम्य पदार्थों को (त्रिविष्टि) आकाश में सूर्य के समान (त्रिविष्टि) उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रजाओं पर (परि एति) वश करे।

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट्॥५॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि वा सूर्य (ऋतावा) तेजस्वी (त्मना मितद्रुः) स्वयं अपने से परिमित परिज्ञात गति वाला होता है, और उसके (शोकाः द्रवन्ति) प्रकाश, किरणें वेग से दूर तक जाती हैं (यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते) जब चमकता है, भड़कता है तब सब लोक गति करते और अग्नि से सब प्राणी भय करते हैं उसी प्रकार (होता) सबका दाता और सबको अपने वश करने वाला (अग्निः) तेजस्वी अग्रणी नायक पुरुष (मन्द्रः) सबको हर्षित करने वाला (मधुवचाः) मधुर वाणी बोलने वाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञान और न्याय तथा धनैश्वर्य से युक्त (मितद्रुः) परिमित गति से जाने वाला होकर (त्मना) अपने आप अपने सामर्थ्य से (परि एति) सब तरफ़ गमन करे। (अस्य) उसके वाजिनः न) वेगवान अश्वों, बलवान् पुरुषों के समान ही (शोकाः) प्रकाश, तेज भी (द्रवन्ति) दूर तक जावें। (यत्-अभ्राट्) जब वह तेज से चमकता है तब (विश्वा भुवना) समस्त भुवन, सब लोग (भयन्ते) भयभीत हों। (२) परमेश्वर परिमित सब पदार्थों में व्यापक होने से 'मितद्रु' है। दाता होने से 'होता', ज्ञान प्रकाशस्वरूप होने से, पाप दग्ध करने से 'अग्नि', आनन्द घन होने से 'मन्द्र' है। वेद उसकी मधुर वाणी है, वह सत्य ज्ञानमय है। उसके तेजों के तुल्य वेगवान् सूर्यादि भाग रहे हैं, वह कालाग्नि रूप में जब चमकता है तो सब प्राण, लोक लोकान्तर भय से कांपते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

भद्रा ते॑ अग्ने स्वनीक सं॒दृग्घो॒रस्य॑ स॒तो विषु॑णस्य॒ चारुः॑।
न यत्ते॑ शो॒चिस्तम॑सा॒ वर॑न्त॒ न ध्व॒स्मान॑स्त॒न्वी॒३॒॑ रेप॒ आ धुः॑ ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्रणी! राजन्! विद्वन्! हे (स्वनीक) उत्तम सेना के स्वामिन्! (घोरस्य) घोर, अति भयानक (सतः) और साथ ही अति सज्जन (विषुणस्य) राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्यवान् (ते) आपकी (चारुः) उत्तम (सं-दृक्) समान, निष्पक्षपात

दृष्टि (भद्रा) सबका कल्याण करने वाली हो। (यत्) जिसके कारण (ध्वस्मानः) विध्वंस करने वाले प्रजा-नाशक लोग (ते शोचिः) तेरे तेज को (तमसा) अन्धकार के तुल्य प्रजोत्पीड़न, अन्याय अत्याचारादि से (न वरन्त) नहीं ढक सकते और वे (तन्वि) किसी के या तेरे शरीर पर भी (रेपः) अपना हत्यादि पापमय प्रयोग (न आदधुः) नहीं कर सकते।

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको३ग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥७॥

भा०—(यस्य) जिस (सातुः) दानशील (जनितोः) सर्व सुखोत्पादक पिता के तुल्य राजा वा गुरु को (न अवारि) किसी प्रकार भी वारण न किया जा सके, अथवा जिस दानशील के आगे (जनितोः न अवारि) उत्पादक माता पिता को भी उतना न स्वीकार किये जा सकें और (यस्य) जिस के आगे (इष्टौ) अति प्रिय (मातापितरौ) माता पिता भी (चितन्) आदर योग्य (न अवारि) न स्वीकार किया जा सके, (अध) और वह (मित्रः) प्राणों के समान अति प्रिय, (पावकः) अग्नि के तुल्य पवित्र करने वाला, (सुधितः) उत्तम रीति से स्थापित व हितकारी, (अग्निः) अग्रणी नायक विद्वान् आचार्य और भीतरी आत्मा (मानुषीषु) मननशील मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं में (दीदाय) प्रकाशित होता है।

द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु।
उषर्बुधमथर्यो३न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥ ८ ॥

भा०—(अथर्यः दन्तं शुक्रं स्वासं न) जिस प्रकार स्त्रियें अपने दाँतों को स्वच्छ और अपने मुख को भी स्वच्छ रखती हैं और जिस प्रकार (स्वसारः अग्निं जीजनन्) बहनें अग्नि को जलाती हैं उसी प्रकार (यं) जिस पुरुष को (पञ्च द्विः) दशों दिशाओं की (संवासानाः) एक साथ निवास करती हुई एक स्थान पर एकत्र स्थित होकर (स्वसारः) स्वयं

अपने शासन में बढ़ने वाली प्रजाएं (मानुषीषु विक्षु) मनुष्य प्रजाओं में (अग्निं) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को अग्रणी रूप से (जीजनन्) उत्पन्न करती हैं अथवा (पञ्च स्वसारः यं अग्निं द्विः जीजनन्) पांचों जन, ब्राह्मणादि प्रजाएं जिस अग्रणी नायक को दो वार अपना नायक बनालें तो वे (अथर्यः) स्वयं कभी पीड़ित न होकर (उषर्बुधम्) प्रातःकाल जागने हारे (दन्तं) प्रजा के भोक्ता, (शुक्रं) तेजस्वी शुद्धाचारी (स्वासं) उत्तम सौम्य मुख वाले (परशुं न तिग्मम्) फरसे के समान तीक्ष्ण शत्रुनाशक पुरुष को ही (अग्निं जीजनन्) अपना अग्रणी बनावें।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने ह॒रितो॑ घृत॒स्ना रोहि॑तास ऋ॒ज्वञ्चः॒ स्वञ्चः॑ ।
अ॒रु॒षासो॒ वृष॑ण ऋजुमु॒ष्का आ दे॒वता॑तिमह्वन्त द॒स्माः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! (तव) तेरे (त्ये) वे नाना (हरितः) अश्वों के समान शीघ्रगामी मनुष्य (घृतस्नाः) जल से सदा स्नान करने वाले, (रोहितासः) रक्त वर्ण, तेजस्वी, (ऋज्वञ्चः) सरल, धार्मिक मार्ग से चलने वाले (स्वञ्चः) सुष्ठु उत्तम पूजा के योग्य, (अरुषासः) रोष, क्रोध रहित, सौम्य स्वभाव वाले (वृषणः) बलवान्, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, (ऋजुमुष्काः न) ऋजु सरल धार्मिक नीति से स्वयं पुष्ट होने वाले, (दस्माः) प्रजा के दुःखों का नाश करने वाले पुरुष (देवताति) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पुरुष को (अह्वन्त) बुलावें, अपने दाता राजा की प्रतिस्पर्द्धा करें, गुणों में उसके समान हों।

ये ह॒ त्ये ते॒ सह॑माना अ॒यास॑स्त्वे॒षासो॑ अग्ने अ॒र्चय॒श्चर॑न्ति ।
श्ये॒नासो॒ न दु॑वस॒नासो॒ अर्थं॑ तुविष्व॒णसो॒ मारु॑तं॒ न शर्धः॑ ॥१०॥

भा०— हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! (ये ह) जो (ते) तेरे (सहमानाः) शत्रुओं को पराजित करने वाले, सहनशील, तितिक्षु, (अयासः) वेग से जाने वाले, ज्ञाननिष्ठ, (त्वेषासः) कान्तिमान्, तेजस्वी, (अर्चयः) अग्नि के प्रकाशों वा ज्वालाओं के तुल्य एवं

अर्चना, सत्कार करने योग्य (श्येनासः) श्येन या बाजों के समान वेग से आक्रमण करने वाले वीरों एवं ज्ञान प्राप्त करने हारे, सदाचारी शिष्यों के समान (दुवसनासः) परिचर्या करने वाले उत्तम सेवक, (तुविष्वणासः) नाना प्रकार के घोष करने वाले, नाना स्वरों से वेदपाठी, वीरगण और विद्वान् पुरुष (मारुतं शर्धः न) वायु के तुल्य प्रबल वीरों के सैन्य बल, प्राणों के ब्रह्मचर्य बल और (अर्थं) द्रव्य एवं वेदार्थ और प्राप्य ब्रह्म तत्व को (चरन्ति) प्राप्त हों।

अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥५॥

भा०—हे (समिधान) अग्नि के समान देदीप्यमान ! तेजस्विन् नायक ! हे विद्वन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (ब्रह्म) यह महान् ऐश्वर्य और बड़ा भारी वेद ज्ञान (अकारि) किया गया है । तेरे ही लिये विद्वान् जन (उक्थं शंसति) उत्तम वचन कहे । तू (यजते) सत्संग करने वाले के लिये (उक्थं) उत्तम (वि धाः उ) विधान कर । (मनुषः) मननशील पुरुष (होतारम्) ज्ञान और ऐश्वर्य के दानशील (अग्निं) अग्रणी वा विद्वान् को और (मायोः) मनुष्यों को वा जीवन के हित का (शंसम्) उपदेश करने वाले को (नमस्यन्तः) आदरपूर्वक नमस्कार करते हुए (उशिजः) उसको चाहते हुए (निषेदुः) उसके समीप विराजें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[७]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७, १०, ११ त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । २ स्वराडुष्णिक् । ३ निचृदनुष्टुप् ४, ६ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १ ॥

भा०—जो यह (प्रथमः) सब से श्रेष्ठ, सब से आदि में वर्तमान, (होता) सब सुखों और ऐश्वर्यों का देने वाला, (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य, एवं सबसे अधिक मित्र, सत्संग योग्य (अध्वरेषु) समस्त यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है । (अयम्) उसे (धातृभिः) यज्ञादि कर्मकर्त्ता और ध्यान धारण के करने हारे पुरुष (इह) यहां, इस जगत् में (धायि) सभी हृदय में धारण करते हैं । और (यम्) जिसको (अप्नवानः) उत्तम कर्म करने हारे वा उत्तम रूप, गुण, पुत्र पौत्रादि युक्त (भृगवः) तेजस्वी, पापनाशक पुरुष (चित्रं) अद्भुत (विभ्वं) विभु, महान् व्यापक परमेश्वर को (विशेविशे) प्रत्येक प्रजा के हित के लिये (वनेषु) जंगलों में वा सभी भोग्य ऐश्वर्यों में या तेजस्वी पदार्थों में (विरुरुचुः) विद्युत् अग्नि के समान प्रकट पाते और उसी के तेज का ध्यान करते और स्वयं भी (यम् अप्नवानः विरुरुचुः) जिसको प्राप्त होते हुए विविध प्रकार से शोभित होते हैं ।

अग्ने कुदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजःस्वरूप यह मनुष्य (कदा) कब (देवस्य ते) प्रकाशस्वरूप तेरे (आनुषक्) अनुकूल (भुवत्) होता है । (अध) और (त्वा हि) तुझे निश्चय रूप से (मर्त्तासः) मरणधर्मा मनुष्य लोग कब (विक्षु) सब प्राणि रूप प्रजाओं के बीच में (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य, (चेतनम्) चेतन, सबको ज्ञानवान् करने वाले सबको जीवनदाता रूप से (कदा जगृभ्रिरे) कब ग्रहण करेंगे कब जान पावेंगे । अर्थात् वे समस्त प्राणी तेरे ही जीवनप्रद सामर्थ्य को जानें ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥ गीता अ० ७ ॥ ६ ॥

ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥ ३ ॥

भा०—उस परमेश्वर को विद्वान् लोग (ऋतावानं) सत्य ज्ञान और मूलकारण प्रकृति रूप 'ऋत' या अव्यक्त तत्व के स्वामी (विचेतसं) विविध ज्ञानों से युक्त (स्तृभिः द्यामिव) नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान, नाना आच्छादक वा व्यापक वा रश्मियों से युक्त सूर्य के समान व्यापक गुणों वा नाना सामर्थ्यों से युक्त (पश्यन्तः) देखते हुए (विश्वेषाम्) समस्त (अध्वराणाम्) अविनाशी जीवों और यज्ञों के (दमे दमे) गृह २ में दीपक वा अग्नि के समान प्रत्येक लोक में प्रकाशक रूप से (जगृभ्रिरे) ज्ञान करते हैं ।

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (विवस्वतः) सूर्य से लोग (आशुं) शीघ्रगामी, (दूतं) संतापजनक, (भृगवाणम्) भून देने वाले, (केतुम्) प्रकाश को (आजभ्रुः) प्राप्त करते हैं (यः) जो (विश्वा चर्षणीः अभि) सब देखने वालों को प्राप्त होता है और (विशेविशे) प्रत्येक प्रजा के सुख के लिये होता है उसी प्रकार (आयवः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (यः विश्वाः चर्षणीः अभि) समस्त ज्ञानद्रष्टा पुरुषों में व्यापक है ऐसे (विवस्वतः) सूर्यवत् तेजस्वी परमेश्वर और विद्वान् से (आशुं) व्यापक (दूतं) पापी लोगों को संतप्त करने वाले, (भृगवाणं) पापों को भून देने वाले (केतुं) ज्ञान प्रकाश को (आजभ्रुः) प्राप्त करें जो (विशेविशे) प्रत्येक प्रजाजन के लिये हितकारी हो ।

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् लोग (तम् ईम् होतारं) उस दानशील (चिकित्वांसम्) ज्ञानवान्, रोग दुःख पीड़ा आदि दूर करने में समर्थ, (एवं) रमणीयस्वरूप, (पावकशोचिषं) अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्रकारक तेज से युक्त (यजिष्ठं) अतिदानी, सत्संग योग्य, सर्वमित्र, पुरुष को (सप्तधामभिः) सातों प्रकार के धारण सामर्थ्यों वा प्राणों सहित (निषेदिरे) प्रतिष्ठित करें। उसको गुरु वा स्वामी रूप से प्राप्त कर प्रभु वा विद्वान् स्वयं भी (आनुषक्) उसके अनुकूल होकर उसके समीप स्थिर हो कर विराजें। इति षष्ठो वर्गः ॥

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम्।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥ ६ ॥

भा०—(शश्वतीषु मातृषु) निरन्तर बहते जलों में वा नित्य आकाशादि पदार्थों में और (वने) प्रकाश की किरणों में वा बन, काष्ठ में (आवीतं) सर्वत्र व्याप्त वा प्रकाशित, (अश्रितम्) अन्यों द्वारा असेवित अग्नि या विद्युत् को जिस प्रकार प्राप्त करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग (शश्वतीषु मातृषु) निरन्तर स्थायी माताओं में बालक के तुल्य नित्य जगत् निर्माण करने वाली व्यापक शक्तियों या प्रकृति के परमाणुओं में और (वने) वन में अग्नि के तुल्य वन अर्थात् तेज या सेव्य इस दृश्य जड़ जगत् में (आ वीतम्) सर्वत्र व्याप्त, एवं कान्तिमान्, गतिमान् (अश्रितम्) और स्वयं अन्यों द्वारा न भोगने योग्य, (चित्रं) अद्भुत, एवं सर्वत्र चेतना देने वाले, चिन्मय, (सन्तं) सत्स्वरूप (गुहाहितम्) अन्तरिक्ष में सूर्य या वायु के समान बुद्धि या गूढ़ भाव में स्थित, (सुवेदम्) उत्तम रीति से, एवं सुखपूर्वक और अति आदर पूजा या भक्ति द्वारा जानने, मनन करने और प्राप्त करने योग्य (कूचिद् अर्थिनम्) कहीं भी अभ्यर्थना करने योग्य परमेश्वर की (निषेदिरे) उपासना करते हैं। (२) प्रजागण स्थायी प्रजाओं और ऐश्वर्य में सुरक्षित उत्तम ज्ञानी नायक को प्राप्त करें।

ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जिसको (देवाः) विद्वान् लोग (ससस्य वियुता) स्वप्न या निद्रा के टूट जाने पर (सस्मिन् ऊधन्) और समस्त रात्रि के बीत जाने पर (ऋतस्य धामन्) सत्य ज्ञान के धारण करने वाले तेज के स्वरूप में (रणयन्त) रमण करते और उपदेश करते हैं । वह (महान् अग्निः) महान्, ज्ञानवान् तेजस्वी (रात-हव्यः) समस्त अन्नादि पदार्थों का देनेवाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञान वा मूल प्रकृति का स्वामी, (सदम् इत्) सदा ही, (नमसा) अपने वश करने वाले बल से, शस्त्र-बल से राष्ट्र को राजा के समान (अध्वराय) समस्त संसार कोनाश न होने देने और उसके पालन के लिये (वेः) व्यापता है ।

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (वेः अध्वरस्य) तेजःप्रकाश से युक्त यज्ञ के (दूत्यानि विद्वान्) ताप से होने योग्य कर्मों को प्राप्त करता हुआ (दूतः) स्वयं अति तप्त अग्नि (उराणः) स्वल्प पदार्थ को भी बहुत व्यापक करता हुआ (दिवः आरोधनानि विदुस्तरः) आकाश के ऊपर २ के स्थानों तक में पहुंचा देता और (उभे रोदसी अन्ता संचिकित्वान्) आकाश और भूमि दोनों के मध्य के रोगों को भी भली प्रकार दूर करने वाला होता है । उसी प्रकार विद्वान् राजा (वेः) व्यापक (अध्वरस्य) न विनाश होने योग्य इस राष्ट्र के (दूत्यानि) दूतों द्वारा करने योग्य कार्यों को (विद्वान्) जानता हुआ और (उभे रोदसी अन्तः) मित्र और अरि दोनों पक्षों के बीच (सं चिकित्वान्) भली प्रकार विवेक करता हुआ (प्रदिवः) सदा ही (उराणः) बहुत बड़े कार्य करता हुआ (विदुस्तरः) अति अधिक ज्ञानवान् होकर (दिवः आरोधनानि) भूमि के वश करने योग्य स्थानों

च कार्यों को (दूतः) शत्रुसंतापक होकर (ईयसे) प्राप्त करे। (२) परमेश्वर के पक्ष में—वह इस व्यापक संसार के (दूत्यानि) तापयुक्त अग्नि विद्युत् आदि के समस्त कर्मों को जानता हुआ (उभे रोदसी अन्तः) जड़ चेतन दोनों के बीच स्वयं सम्यग् ज्ञानवान्, (दूतः) सर्वोपास्य, दुष्टों का संतापक, (प्रदिवः) अति पुरातन, नित्य, महान् विश्वकर्मा, परम ज्ञानी होकर (दिवः आरोधनानि) ज्ञान प्रकाश के समस्त लोकों को व्यापता है।

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः॥ ९॥

भा०—जिस प्रकार (रुशतः) देदीप्यमान अग्नि या विद्युत् का (एम) मार्ग (कृष्णं) कोयले के रूप में काला वा आकर्षक होता है, (पुरः भाः) आगे दीप्त होता है (वपुषाम्) देहयुक्त रूपवान् पदार्थों में उसका (एकम् अर्चिः) एक विशेष तेज होता है। उसको (अप्रवीता) विना रगड़ी अरणि या दण्डी, गर्भ में गुप्त रूप से धारण करती है। (जातः) वह प्रकट होकर (दूतः) तापयुक्त हो जाता है उसी प्रकार हे राजन्! (रुशतः) देदीप्यमान, तेजस्वी (ते) तेरा (कृष्णं) शत्रुओं को काटने वाला वा प्रजाओं के चित्तों को आकर्षण करने वाला, (एम) मार्ग या प्रयाण हो, (पुरः) आगे (भाः) कान्ति (वपुषाम्) देहधारी जवानों के बीच (इदम्) यह (एकम्) अद्वितीय (चरिष्णु) चलता फिरता (अर्चिः) पूज्य स्वरूप हो। (यत्) जिस तुझको (अप्रवीता) अन्यों से अभुक्त प्रजा (गर्भं ह) गर्भ को माता के समान (गर्भं) स्वीकारने योग्य वा प्रजा के ऐश्वर्यों को ग्रहण करने वाले तुझको (दधते) धारण करती है और तू (जातः) प्रकट होकर (सद्यः) शीघ्र ही (दूतः भवसि इत् उ) सद्योजात बालक के समान पीड़ा जनक, एवं शत्रुओं को संतापजनक होता है। (२) परमेश्वर (रुशत्) दीप्तिमय

है उसका (एम) ज्ञानमय रूप (कृष्णं) पाप काटने और चित्त हरने वाला है वह सब रूपों में अद्वियीय, अर्चनीय ज्योति है। अभुक्ता प्रकृति उसके तेज को अपने में धारती है, वह प्रकट होकर सर्व बन्धनों का जलाने हारा होता है।

सुद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः १०

भा०—जिस प्रकार (अस्य शोचिः) इस अग्नि के लपट के अनुकूल (वातः अनुवाति) वायु चलता है, और (सद्यः जातस्य ओजः ददृशानं भवति) उत्पन्न होते ही उसका तेज दिखाई देता है वह (अतसेषु तिग्मां जिह्वां वृणक्ति) काष्ठों के बीच तीक्ष्ण लपट को पहुंचाता है और (अन्ना चित् जम्भैः स्थिरा वि दयते) दांतों से अन्न के समान बड़े वृक्षों को भी विनष्ट करती है उसी प्रकार (अस्य) इस तेजस्वी राजा की (शोचिः) तेज को (वातः) वायु के समान बलवान् (यत्) जब वीर जन (अनुवाति) अनुगमन करता है और (सद्यः जातस्य) तुरन्त राजा रूप से प्रकट होते ही उसका (ओजः) बल पराक्रम (ददृशानम्) सबको दीखने लगता है। वह (अतसेषु) वेग से जाने वाले भृत्यों वा सैनिकों के बीच में (तिग्मां) तीक्ष्ण (जिह्वां) वाणी को (वृणक्ति) प्रदान करता है, (जम्भैः अन्ना चित्) दाढ़ों से अन्नों के समान, (जम्भैः) अपने हिंसाकारी शस्त्रास्त्र साधनों से (स्थिरा) स्थिर शत्रुओं को भी (अन्न चित्) भोज्य अन्नों के समान (वि दयते) विविध प्रकारों से खण्डित करता है। (२) विद्युत् के पक्ष में—उसकी चमक के पीछे वायु वहता, उसकी चमक तुरन्त दीखती है, वह (अतसेषु) गतिमान् मेघों या वायुओं में अपनी तीखी जीभ फेंकती है, स्थिर, दृढ़ पर्वतों को भी तोड़ डालती है।

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) विद्युत् (तृपुणा) अपने तीव्र वेग से (अन्ना तृषु ववक्षे) अन्न आदि भोग्य पदार्थों को शीघ्र ढो ले जाता है और अग्नि और तीव्र ताप से चरु आदि को छिन्न भिन्न कर शीघ्र ही दूर २ तक पहुंचा देता है और (दूतं कृणुते) ताप उत्पन्न करता, (वातस्य मेळिं सचते) वायु के साथ संगति प्राप्त करता है, (अर्वा आशुं नं वाजयते) अश्व के समान वेगवान् होकर वेग से जाने वाले रथ को गति देता है। उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक पुरुष (यत्) जब (तृपुणा) अपने शीघ्रगामी साधनों से (अन्ना) राष्ट्र के अन्न आदि प्रजा के उपभोग योग्य पदार्थों को (तृषु) शीघ्र २ (ववक्ष) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाने का प्रबन्ध करे। वह (यह्वः) महान् होकर (तृपुं दूतं कृणुते) वेग से जाने वाला दूत बनावे। (वातस्य) वायुवत् शत्रु जन को समूल उखाड़ फेंकने वाले सैन्यबल के (मेळिं) संगति को (सचते) प्राप्त करे और (नि जूर्वन्) वेग से जाता हुआ (अर्वा आशुं न) रथ को अश्व के समान (आशुं वाजयते) वेगवान् सैन्य को संग्राम में लगावे। इति सप्तमो वर्गः ॥

[८]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६ नृचृद्गायत्री। २, ३, ७ गायत्री। ८ भुरिग्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के बीच (विश्ववेदसं) सब में विद्यमान (हव्यवाहम्) प्राप्य पदार्थों को प्राप्त करने और उन तक पहुंचाने में समर्थ (यजिष्ठं) संग कराने वाले (दूतं) तापजनक वा

दूत के समान दूर संदेश पहुंचाने वाले (अमर्त्यम्) अविनाशी अग्नि का (गिरा) वाणी द्वारा उपदेश कर और (ऋञ्जसे) हे विद्वान् तू उसका भली प्रकार प्रयोग कर। इसी प्रकार आप लोग अपने बीच में (विश्व-वेदसं) सब धनों वा ज्ञानों के स्वामी, हव्य अन्नादि ग्रहण करने वाले उत्तम संदेश लाने वाले मनुष्यों में असाधारण दानशील, सत्संग वा मैत्री भाव से युक्त पुरुष को (गिरा ऋञ्जसे) वाणी द्वारा सत्कार करो। (३) सर्वत्र, सर्वव्यापक, उपास्य, ज्ञानप्रद, अविनाशी, पूज्यतम प्रभु की वाणी द्वारा स्तुति करो।

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः।
स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

भा०—(सः हि) वही (महान्) गुणों में महान् है, वह (वसु-धितिं वेद) ऐश्वर्य का धारण करना और कराना जानता है, वह (दिवः) ज्ञान और प्रकाश का (आरोधनं) सञ्चय और वृद्धि करना जाने। (सः) वह (देवान्) किरणों के समान (देवान्) नाना उत्तम सुखप्रद गुणों, पदार्थों और विद्वानों को (इह) इस जगत् में (आ वक्षति) धारण करे।

स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे।
दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (देवः) दानशील, प्रकाशक, विद्वान् वा विद्यादि की कामनाशील (देवान्) पृथिव्यादि पदार्थों को (आनमं) अपने वश करना (वेद) जाने और वह (देवान् आनमं वेद) ज्ञानदाता विद्वानों को सत्कार नमस्कार करना जाने। वह (ऋतायते) सत्य ज्ञान धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुष के (दमे) घर में (प्रियाणि चित्) नाना प्रिय वचन वा पदार्थ और (वसु) ऐश्वर्य (दाति) प्रदान करे।

स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते।
विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह अग्नि के तुल्य (होता) सबको अपने में ले लेने वाला भोक्ता हो, (सः इत् उ) वह नायक ही विद्वान् (अन्तः) भीतर राष्ट्र आदि में (दूत्यं) दूत के योग्य कर्म को (चिकित्वान्) जानता हुआ और (दिवः) प्रकाश ज्ञान और भूमि के (अरोधनम्) वश करने, सञ्चय और वृद्धि करना (विद्वान्) जानता हुआ (इयते) प्राप्त हो। (२) प्रभु परमेश्वर सर्वदाता होने से 'होता' है वह ज्ञानी, ज्ञानप्रकाश का निरोधक होकर अन्तःकरण में ज्ञानप्रद होकर व्यापता है।

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः।
य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो (हव्यदातिभिः) अन्नादि देने योग्य दानों के द्वारा (अग्नये) ज्ञानी विद्वान् पुरुष को (ददाशुः) दान देते हैं और (ये) जो (ईम्) उसको (पुष्यन्तः) पुष्ट करते हुए (इन्धते) और अधिक प्रदीप्त करते, अधिक विद्यादान करने में समर्थ करते हैं हम लोग (ते स्याम) वे ही अर्थात् उसी प्रकार के धनी और ज्ञानी हों।

ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे।
ये अग्ना दधिरे दुवः ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (अग्ना) अग्नि वा विद्युत् में (दुवः) नाना परिचर्या, प्रयोग (दधिरे) साध लेते हैं (ते राया) वे धन से युक्त होते हैं और (ते) वे (सुवीर्यैः) उत्तम बल वीर्यों से युक्त होकर (ससवांसः) सुख से शयन करते हुए वा नाना ऐश्वर्य भोगते हुए (विशृण्विरे) विविध ज्ञानों का श्रवण करते हैं। (२) (ये अग्नौ दधिरे दुवः) जो विद्यार्थी वा भृत्यादि ज्ञानी आचार्य और नायक के

अधीन रहकर उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं (ते) वे (राया) धन और (ते) वे (सुवीर्यैः) उत्तम बलवीर्यों से सम्पन्न होकर (ससवांसः) सुख से निद्रा लेते वा सुख सेवन करते और वे (विशृण्विरे) विविध ज्ञानों का श्रवण करते हैं वा विविध प्रकारों से प्रख्यात होते हैं ।

अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः ।
अस्मे वाजास ईरताम् ॥ ७ ॥

भा०—(दिवेदिवे) दिनों दिन (अस्मे) हमें (पुरुस्पृहः) बहुतों से अभिलाषा करने योग्य (रायः) नाना ऐश्वर्य (सं चरन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त हों । और (अस्मे) हमें (वाजासः) नाना बल और विज्ञान (ईरताम्) प्राप्त हों ।

स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् ।
अति क्षिप्रेव विध्यति ॥ ८ ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह (विप्रः) विद्वान् (चर्षणीनाम्) ज्ञान, ऐश्वर्य से प्रकाशित करने वाले और (मानुषाणाम्) मननशील मनुष्यों के दुःखों को (शवसा) अपने बल से (क्षिप्रा इव) वेग से जाने वाले बाणों के तुल्य (अति विध्यतु) प्रहार करे और उनको दूर करे । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[९]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, गायत्री । २, ६ विराड्गायत्री । ५ त्रिपादगायत्री । ७, ८ निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे राजन् ! (ई) इस (देवयुं) उत्तम गुणों, विद्वानों और ज्ञान धनादि के दानशील, गुरु और प्रभु को

चाहने वाले (जनम्) पुरुष को (मृळ) सुखी कर। तू (महान् असि) गुणों से महान् और पूजा करने योग्य है। तू (बर्हिः) उत्तम आसन और प्रजाजन पर (आ सदम्) प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये (इयेथ) प्राप्त हो वा प्रतिष्ठा प्राप्त-पुरुष को स्वयं प्राप्त हो।

स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः।
दूतो विश्वेषां भुवत् ॥ २ ॥

भा०—जो (विक्षु) प्रजाओं में (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न (दूतः) शत्रुओं का उपतापक हो और (विश्वेषाम्) सबके बीच (प्रावीः) उत्तम रक्षक, तेजस्वी और विद्यावान् (भुवत्) हो। (सः) वह पुरुष (मानुषीषु) मनुष्य प्रजाओं के बीच (दूळभः = दुर्-दभः) दुर्लभ है वा शत्रुओं द्वारा कठिनता से मारने योग्य बलवान् हो।

स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु।
उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् (होता) उत्तम द्रव्यों, ज्ञानों का दाता, (मन्द्रः) सबको आनन्द देने हारा, (उत पोता) और सबको पवित्र करने वाला होकर (दिविष्टिषु) यज्ञों और नाना काम्य प्रयोगों के अवसर पर (सद्म) अन्यों द्वारा अपने गृह पर (परि णीयते) आदर-पूर्वक ले जाया जावे।

उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे।
उत ब्रह्मा नि षीदति ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (दमे) गृह में (अध्वरे) यज्ञ के अवसर में (ग्नाः) स्त्रियें (उतो गृहपतिः) और गृह का स्वामी, (उत) और (ब्रह्मा) वेद का विद्वान् पुरुष (निषीदति) प्रधान आसन पर विराजे। अथवा (अध्वरे) यज्ञ वा प्रजा के हिंसादि से रहित प्रजा पालन आदि

कार्य में (अग्निः) अग्रणी नायक पुरुष (दमे गृहपतिः) घर में गृह स्वामी के समान (दमे) दमन करने के कार्य में (ग्नाः) वाणियों और शत्रु पर गमन, प्रयाण करने वाली सेनाओं पर (ब्रह्मा) महान् शक्ति-सम्पन्न होकर (निषीदति) उच्च पद पर विराजे। और (ब्रह्मा) विद्वान् पुरुष (ग्नाः निषीदति) वेदवाणियों पर वश कर विराजे।

वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम्।
हव्या च मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! नायक! तू (उपवक्ता) सबको उपदेश करने वाला है। तू (अध्वरीयताम्) हिंसा रहित यज्ञ और अविनश्वर राज्यपालनादि की कामना करने वाले (जनानाम्) मनुष्यों के और (मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों के योग्य (हव्या) उत्तम अन्नों और ज्ञानों की (वेषि) कामना कर और उनको आदर पूर्वक ग्रहण कर।

वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम्।
हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (हव्यं वोढवे यस्य अध्वरं जुजोषः तस्य दूत्यं वेषि) हवि ग्रहण करने के लिये जिसके यज्ञ को प्राप्त होता है उसके यज्ञ में तापजनक रूप को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक वा विद्वन्! तू (यस्य) जिसके (अध्वरं) यज्ञ और राज्य-पालनादि कार्य को (जुजोषः) प्रेम से स्वीकार करता है उसी (मर्तस्य) मनुष्य के (हव्यं वोळ्हवे) ग्रहण करने योग्य कर, अन्नादि पदार्थ को प्राप्त करने के लिये (अस्य) उसके प्रति (दूत्यं) दूत या उत्तम संदेश-हर के समान ज्ञानदाता के कार्य को (वेषि इत् उ) प्राप्त हो।

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः।
अस्माकं शृणुधी हवम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (अंगिरः) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (अध्वरम्) अविनाशी यज्ञ-कार्य को (जोषि) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। तू (अस्माकं यज्ञं) हमारे यज्ञ, दान सत्संग और प्रेम, मैत्रीभाव वा आदर सत्कार को (जोषि) स्वीकार कर और (अस्माकम्) हमारे वचनों का (श्रुधि) श्रवण कर।

परि॑ ते दू॒ळभो॒ रथो॒ऽस्माँ अ॑श्नोतु वि॒श्वतः॑।
येन॒ रक्ष॑सि दा॒शुषः॑ ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (ते) तेरा (दूळभः) न नाश होने वाला, दृढ़ वह (रथः) रथ (अस्मान्) हमें (विश्वतः) सब तरफ़ से (परि अश्नोतु) प्राप्त हो (येन) जिससे तू (दाशुषः) दानशील प्रजा पुरुषों को (रक्षसि) रक्षा करता है। (२) परमेश्वर पक्ष में— उसका वह अविनश्वर (रथः) रस, आनन्द हमें सब प्रकार से मिले जिससे वह आत्मसमर्पक भक्तों की रक्षा करता है। इति नवमो वर्गः ॥

[१०]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ३, ४, ७ भुरिग्गायत्री । ५, ८ स्वराडुष्णिक् । ६ विराडुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ तम॒द्याश्वं॒ न स्तोमैः॒ क्रतुं॒ न भ॒द्रं हृ॑दि॒स्पृश॑म् ।
ऋ॒ध्यामा॑ त॒ ओहैः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! आचार्य ! हे विनयशील शिष्य ! (ते ओहैः) तुझे प्राप्त होने वाले, ज्ञान प्राप्त कराने वाले (स्तोमैः) उत्तम वचनों वेदमन्त्रों से (तं) उस तुझ को (अश्वं न) वहन करने के समर्थ उपकरणों से अश्व के तुल्य ही (ऋध्याम) समृद्ध करें। (हृदिस्पृशम्) हृदय तक को छूने वाले, अति प्रिय (भद्रं) कल्याणकारी, सुखजनक, (क्रतुं न) यज्ञ वा बुद्धि के तुल्य हृदय को प्रिय,

कल्याणकारक, उपकर्त्ता तुझको भी हम (स्तोमैः) उत्तम वचनों, वीर्यों और धन समूहों से (ऋध्याम) समृद्ध करें।

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (साधोः) उत्तम-कार्य साधन में समर्थ (क्रतोः) प्रज्ञा, बुद्धि और (भद्रस्य) कल्याण कारी (दक्षस्य) बल के (अध हि) और (बृहतः) बड़े भारी (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, न्याय और धनैश्वर्य वा राज्य का (रथीः) रथवान्, महा-रथी के समान स्वामी (बभूथ) हो।

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! तू (एभिः) इन (अर्कैः) अर्चना करने योग्य, सत्कार के पात्र पुरुषों सहित (नः) हमारा रक्षक (भव) हो और (स्वः न ज्योतिः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशक हो (नः अर्वाङ् भव) हमारे बीच आगे बढ़ने वाला हो और तू (सुमनाः) उत्तम चित्त और उत्तम ज्ञानवान् होकर (विश्वेभिः अनीकैः) समस्त सैन्यों, बलों सहित हमें प्राप्त हो।

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत् वा अग्नि के समान तेजस्विन् ! हम (ते) तेरे प्रति (आभिः) इन नाना (गीर्भिः) वाणियों, वचनों से (गृणन्तः) तेरे प्रति उपदेश करते हुए (दाशेम) राज्य-कर आदि प्रदान करें। और (ते शुष्माः) शत्रु शोषण करने वाले, बली पराक्रमी सैन्य बल, (दिवः न) विद्युतों वा मेघों के तुल्य (प्र स्तनयन्ति) खूब गर्जते हैं।

तव॑ स्वादि॒ष्ठाग्ने॒ संदृ॑ष्टिरि॒दा चि॒दह्न॑ इ॒दा चि॑द॒क्तोः ।
श्रि॒ये रु॒क्मो न रो॑चत उपा॒के ॥ ५ ॥

भा०—(अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! सूर्य और अग्नि के (रुक्मः न) तेज के समान के वा स्वर्ण के तुल्य (अह्नः चित् अक्तोः चित्) दिन और रात्रि में भी (रुक्मः) तेरा ऐश्वर्यमय तेज और (स्वादिष्ठा) अति अधिक आनन्द ऐश्वर्य भोग का सुख स्वाद देने वाली (संदृष्टिः) सम्यक् दृष्टि, ज्ञान, उत्तम न्याय प्रदर्शन का सामर्थ्य (उपाके) सबके समीप (श्रिये) शोभा और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (रोचते) प्रकाशित हो, चमके, सबको अच्छा लगे ।

घृ॒तं न पू॒तं त॒नूर॑रे॒पाः शुचि॒ हिर॑ण्यम् ।
तत्ते॑ रु॒क्मो न रो॑चत स्वधावः ॥ ६ ॥

भा०—हे (स्वधावः) अन्नों के स्वामी, अन्नदाता ! स्वयं अपने बल से राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन् ! (ते तनूः) तेरा देह और विस्तृत शक्ति, (घृतं न पूतं) जल वा घी के तुल्य पवित्र (शुचि) शुद्ध, कान्तिमान् (हिरण्यम्) सुवर्ण के समान सबको हित-कारी और रमणीय है । (तत्) वह (ते) तेरा देह, (रुक्मः) सुवर्ण और सूर्य के प्रकाश के तुल्य (रोचत) प्रकाशित हो ।

कृ॒तं चि॒द्धि ष्मा॒ सने॑मि द्वेषोऽग्न॑ इ॒नोषि॒ मर्ता॑त् ।
इ॒त्था यज॑मानादृतावः ॥ ७ ॥

भा०—हे (ऋतावः) सत्यज्ञान, सत्य धनैश्वर्य के स्वामिन् ! तू (इत्था) इस प्रकार से, सचमुच, (यजमानात् मर्त्तात्) मैत्री, सत्संग और कर आदि प्रदान करने वाले प्रजाजन से (कृतं) किये गये (द्वेषः) द्वेष को भी (सनेमि) अपने सबको दबाने वाले बल सहित (इनोषि स्म) दूर करते रहो । (चित् ह) उसी प्रकार हम भी करें । वा यही तेरा उत्तम

कार्य है। अथवा (द्वेषः मर्त्तात् यजमानात् च कृतं इनोपि) द्वेषयुक्त पुरुष और करप्रद पुरुष से भी तू (कृतं) उत्पन्न किये धनैश्वर्यादि वा पाप पुण्यादि को प्राप्त होता है। तू मित्र शत्रु अनुयोगी प्रतियोगी सभी के अच्छे बुरे किये का भागी है।

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥ १० ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! राजन्! प्रभो! (नः) हमारी (सख्या) मित्रताएं और (भ्रात्रा) भाईचारे के कार्य (युष्मे देवेषु) तुम व्यवहारकुशल पुरुषों के बीच (शिवा सन्तु) सदा शुभ कल्याणकारी हों, अथवा हे अग्ने (देवेषु) देव, विद्वानों और व्यवहार कुशल पुरुषों के बीच (नः सख्या भ्रात्रा) हमारे भाई और मित्र सहित हमारे सब व्यवहार एवं कार्य नीति (शिवा भवन्तु) शिव, कल्याणकारी हों। और (सा) वह उत्तम नीति ही (सस्मिन्) समस्त (ऊधन्) धन धान्य सम्पन्न (सदने) गृह वा राज्य में (नः) हमें (नाभिः) केन्द्रस्थ नाभि के तुल्य बांधने वाली हो। अर्थात् जिस प्रकार (ऊधन्) एक माता के दूध पर पलने वाले बालकों की एक नाभि, एक भ्रातृ-सम्बन्ध है इसी प्रकार एक (सदने) सभा भवन वा राज्य में या प्रतिष्ठित पद के अधीन रहने वालों की एक (नाभिः) केन्द्र, बंधन या संगठन हो। इति दशमो वर्गः ॥

[११]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता। छन्दः—१, २, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ स्वराड्बृहती। ४ भुरिक्पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिद्रूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! हे (सहसिन्) बलवन् ! (ते) तेरा (भद्रं) कल्याणकारी, अन्यों को सुख देने वाला, (रुशत्) कान्तियुक्त (अनीकम्) मुख और तेज (उपाके) समीप में (सूर्यस्य रुशत् अनीकम् इव) सूर्य के चमचमाते तेज के समान (नक्तया चित्) रात्रि के समय में भी (दृशे) सत्यासत्य दर्शाने के लिये (आ रोचते) सर्वत्र प्रकाशित हो और सबको (ददृशे) दीखे। वह तेरा तेज, मुख वा स्वरूप (अरूक्षितम् अन्नम्) स्निग्ध घृतादि से युक्त अन्न के तुल्य (दृशे) देखने और (रूपे) निरूपण करने में भी (आ रोचते) सब प्रकार से चमके। सबको भला लगे।

वि षा॒ह्यग्ने॑ गृण॒ते म॑नी॒षां खं वेप॑सा तुविजात॒ स्तवा॑नः ।
विश्वे॑भि॒र्यद्वा॒वनः॑ शुक्र दे॒वैस्तन्नो॑ रास्व सुमहो॒ भूरि॒ मन्म॑ ॥२॥

भा०—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध ! कीर्तिमन् ! (अग्ने) हे अग्नि के तुल्य तेज से युक्त ! अग्रणी नायक ! विद्वन् ! शिष्य ! अध्यात्म में—हे बहुत से प्राणों वा शरीरों में उत्पन्न आत्मन् ! तू (स्तवानः) स्तुति किया जाता हुआ वा अन्यों को उपदेश करता हुआ या उपदेश प्राप्त करता हुआ (गृणते) स्तुति करते वा उत्तम वचन वा उपदेश करने वाले विद्वान् के लिये (मनीषां) बुद्धि (खं) इन्द्रिय, कर्ण आदि के छिद्र को (वेपसा) उत्तम कर्म सहित (वि षाहि) खोल, उसके वचन ध्यानपूर्वक सुन। और हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन् ! वीर्यवन् ! तेजस्विन् (यत्) जब तू (विश्वेभिः देवैः) समस्त विद्वानों, विद्या धनादि के अभिलाषियों सहित (वावनः) जो कुछ प्राप्त करे, (नः) हमें भी (तत्) वह (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान वा उत्तम धन (सुमहः) उत्तम महान् राशि में (रास्व) प्रदान कर।

त्वद॑ग्ने॒ काव्या॒ त्वन्म॑नी॒षास्त्वदु॒क्था जा॑यन्ते॒ राध्या॑नि ।
त्वदे॑ति॒ द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा इ॒त्थाधि॑ये दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥ ३ ॥

भा—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (इत्था धिये) इस प्रकार की सत्य बुद्धि वाले (दाशुषे) दानशील (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (काव्या) विद्वानों से बनाये जाने योग्य उत्तम ज्ञान (त्वत्) तुझ से ही उत्पन्न होते हैं। (मनीषाः त्वत्) समस्त उत्तम बुद्धियां (त्वत्) तुझ से प्रकट होती हैं। (राध्यानि) कार्यसाधक और आराध्य उत्तम वचन (त्वत् जायन्ते) तुझसे प्रादुर्भूत होते हैं (वीरपेशाः) वीरों का स्वरूप या वीरों के योग्य सुवर्ण आदि धन और (द्रविणम्) ऐश्वर्य भी सब (त्वत्) तुझ से ही (एति) प्राप्त होता है। राजा, विद्वान् वा प्रभु ही इन समस्त बातों का राष्ट्र में वा लोक में उद्भव है।

त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् राजन् ! विद्वन् ! (त्वत्) तुझसे ही (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान् और वेगवान् (वाजम्भरः) अन्न युद्ध ऐश्वर्य और ज्ञान धारण करने में समर्थ (विहायाः) वेग से जाने वाला, वा महान् (अभिष्टिकृत्) उत्तम यज्ञ, सत्संग, मैत्री वा दान करने वाला (सत्यशुष्मः) सत्य के बल से युक्त पुरुष (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वत्) तुझसे ही (देवजूतः) विद्वानों से प्रेरित होने वाला (मयोभुः) सुख उत्पन्न करने वाला (रयिः) ऐश्वर्य वा (आशुः) वेगवान् (जूजुवान्) वेग से जाने वाला (अर्वा) अश्व उसके तुल्य वेगवान् यन्त्र रथ आदि उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अग्नि से विद्युतादि के वेगयुक्त रथ यन्त्रादि उत्पन्न होते हैं।

त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम्।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हे विद्वन् ! हे गृह-

पते ! हे (अमृत) अविनाशिन् ! (देवयन्तः) शुभ गुणों की कामना करते हुए (मर्त्ताः) मनुष्य (प्रथमं) सब से श्रेष्ठ, सब से प्रथम विद्यमान, (मन्द्रजिह्व) हर्षकारी मधुरवाणी बोलने वाले (द्वेषः युतम्) द्वेष के समस्त भावों से रहित, अजातशत्रुः (दमूनसं) सब को दमन करनेवाले, मन और इन्द्रियों को दमन करने वाले, जितेन्द्रिय (गृहपतिम्) घर के स्वामी (अमूरं) मूढ़ता रहित, (त्वाम्) तुझको (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, कर्मों और स्तुतिवाणियों से (आविवासन्ति) आदरपूर्वक वा साक्षात् सर्वत्र सेवते, स्तुति करते हैं । प्रजातिरमृतम् । शत० ॥ गृह पति सन्तति द्वारा अविनाशी है ।

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ।६।११॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान्, सहनशील पुरुष के पुत्र, उत्तम पिता के पुत्र ! विद्वन् ! एवं हे (सहसः सूनो) शत्रु पराजयकारी बल के प्रेरक सञ्चालक सेनापते ! हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी ! नायक हे (देव) सूर्य के समान प्रकाशक एवं ज्ञान धनादि के देने हारे ! (दोषा) रात्रियें अग्नि वा दीपक के तुल्य तेजस्वी होकर (दोषा) दोषों वा दुर्गुणों वा संकटों के बीच विद्यमान (यं चित्) जिसको भी तू (स्वस्ति) उसके कल्याण के लिये (आसचसे) प्राप्त होता है, स्नेह करता है तू उसके लिये (शिवः) कल्याणकारी मंगल वा शान्तिजनक होता है । इस लिये तू (अस्मत्) हम से भी (अमतिम्) मति रहित अज्ञानी अज्ञान वा भूख प्यास की पीड़ा जिससे प्रेरित होकर मनुष्य पापाचरण करता है । उसे (आरे) दूर कर । (अंह आरे) हमारे पाप को दूर कर । (विश्वां दुर्मतिं) समस्त प्रकार की दुष्ट बुद्धि को भी (आरे) दूर कर (यत्) क्योंकि तू ही (निपासि) सब को सब प्रकार से बचाया करता है । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१२]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ भुरिक् पंक्तिः । ६ पंक्तिः ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

यस्त्वाम॑ग्न इ॒नध॑ते य॒तस्रु॒क्त्रिस्ते॒ अन्नं॑ कृ॒णव॒त्सस्मि॒न्नह॑न् ।
स सु द्यु॒म्नैर॒भ्य॑स्तु प्र॒सक्ष॒त्तव॒ क्रत्वा॑ जातवेदश्चिकि॒त्वान् ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे राजन् ! (यः) जो (यतस्रुक्) स्रुच नामक पात्र को हाथ में लिये यज्ञकर्त्ता जिस प्रकार अग्नि को प्रदीप्त करता है उसी प्रकार जो (यतस्रुक्) बाह्य विषयों की ओर बहने वाली इन्द्रियों को वा प्राणों को वश करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष (त्वाम्) तुझको (इनधते) प्रकाशित करता वा तुझको अपना स्वामी जान कर तेरी सेवा करता है और (सस्मिन्) सब (अहनि) दिनों (ते) तेरे लिये (त्रिः) तीन बार (अन्नं) अन्न (कृणवत्) करता है (सः) वह (सुद्युम्नैः) उत्तम यशों और धनों से (अभि अस्तु) युक्त हो, हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने हारे ! वह (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (तव) तेरे (क्रत्वा) कर्म, सामर्थ्य और ज्ञान से (प्रसक्षत्) युक्त हो वा शत्रुओं को विजय करे । अग्नि वा सेनापति के बल से अर्थात् अग्नि आदि अस्त्रों से शत्रुओं को विजय करे । अग्नि में तीन वार अन्न करना प्रातः सायं और बलि-वैश्वदेव द्वारा अग्नि में आहुति देना है । पूज्य विद्वान् माता पिता, अतिथि को प्रातः मध्याह्न और सायं तीन वार आहार देना ।

इ॒ध्मं यस्ते॑ ज॒भर॑च्छश्रमा॒णो म॒हो अ॑ग्ने॒ अनी॑क॒मा स॑प॒र्यन् ।
स इ॑धा॒नः प्रति॑ दो॒षामु॒षासं॒ पुष्य॑न्र॒यिं स॑चते॒ घ्नन्न॒मित्रा॑न् ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! (यः) जो पुरुष (शश्रमाणः) खूब परिश्रम करता हुआ (इध्मं जभरत्) अग्निहोत्र के

निमित्त यज्ञ काष्ठ लाने के समान ही (ते) तेरे लिये (इध्मं) देदीप्यमान (अनीकम्) तेज वा सैन्य की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (जभरत्) उसे प्राप्त हो, पुष्ट करे (सः) वह (प्रति दोषाम् प्रति उषासम्) प्रति सायंकाल और प्रत्येक रात्रिकाल (इधानः) प्रदीप्त करता हुआ (पुष्यन्) स्वयं पुष्ट होता हुआ और (अमित्रान्) शत्रुओं को नाश करता हुआ (रयिं सचते) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। प्रातः सायं अग्निहोत्र करने का यहां स्पष्ट विधान है। उससे 'रयिं' अर्थात् देह की कान्ति और 'अमित्र' अर्थात् द्वेष भावों का नाश होता है। पूर्व मन्त्र में तीन वार आहुति से तीन वार का अभिप्राय तीन वार अग्निहोत्र नहीं है। प्रत्युत दो वार अग्निहोत्र तीसरी वार बलिवैश्वदेव मात्र है।

अ॒ग्निरी॑शे बृ॒ह॒तः क्ष॒त्रिय॑स्या॒ग्निर्वाज॑स्य प॒र॒मस्य॑ रा॒यः।
द॒धा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते यवि॑ष्ठो॒ व्या॑नु॒षङ्मर्त्या॑य स्व॒धावा॑न् ॥३॥

भा०—अग्नि का स्वरूप बतलाते हैं। (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी अग्र नायक पुरुष ही (बृहतः) बड़े भारी (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय अर्थात् क्षात्र-धर्म युक्त बल का (ईशे) स्वामी है। (अग्निः) वह अग्रणी पुरुष, (परमस्य) सबसे उत्कृष्ट (वाजस्य) बल और (रायः) ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो। वह (यविष्ठः) अति युवा, बलवान् पुरुष (स्वधावान्) अपने राष्ट्र के धारण, पालन करने की शक्ति से युक्त होकर (आनुषक्) सबके अनुकूल होकर, (विधते) सेवा परिचर्या या कर्म करने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के हितार्थ (रत्नं) नाना रमणीय पदार्थ, धन अन्न आदि (वि दधाति) प्रदान करता है।

यच्चि॒द्धि ते॑ पुरुष॒त्रा य॑वि॒ष्ठाचि॑त्तिभिश्चकृ॒मा कच्चि॒दाग॑ः।
कृ॒धी ष्व१॒॑स्माँ अदि॑ते॒रना॑गा॒न्व्येनां॑सि शिश्रथो॒ विष्व॑गग्ने ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! हे (यविष्ठ) अति युवा, बलवान् या पापों को दूर करने हारे! हम लोग (यत् चित् हि)

जो कुछ भी (कत् चित्) और कभी (अचित्तिभिः) अपने अज्ञानों या मूर्खताओं वश (ते) तेरे (पुरुपत्रा) मनुष्यों के बीच में (आगः) अपराध (चकृम) करें तू (अदितेः) अपने अखण्ड शासन और अदीन, किसी के सामने न झुकने वाली व्यवस्था से (अस्मान्) हमें (अनागान्) अपराधों से रहित (कृधि) कर। और (एनांसि) अपराधों को (विश्वक्) सर्व प्रकार से (वि शिश्रथः) विविध प्रकारों से दूर कर।

महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम्।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हम लोग (देवानाम्) विद्वानों और (मर्त्यानाम्) साधारण मनुष्यों के (अभीके) समीप में (महः चित् ऊर्वात् एनसः) बड़े भारी लम्बे चौड़े पाप से भी सदा पृथक् रहें। हम लोग (ते) तेरे (सखायः) मित्र होकर (सदम् इत्) सदा ही (मा रिषाम) कभी पीड़ित न होवें। तू हमारे (तोकाय तनयाय) पुत्र और पौत्रों को भी (शं योः) शान्ति सुख, ताप निवारण (यच्छ) प्रदान कर।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६॥१२॥

भा०—हे (यजत्राः) ज्ञान प्रदान करने एवं सत्संग करने हारे (वसवः) अन्यों को बसाने और स्वयं राष्ट्र में बसनेवाले प्रजाजनो! (यथा) जिस प्रकार (ह) भी हो सके (चित् पदि सितां गौर्यम्) पैरों में बंधी गौ के तुल्य (पदि) ज्ञातव्य विषय में (सिताम्) शब्दार्थ सम्बन्ध से बंधी हुई (त्यां) उस उत्तम (गौर्यं) वाणी को (अमुञ्चत) अन्यों को प्रदान करते हो (एव उ) उसी प्रकार (अस्मत्) हम से (अंहः) पाप को (सु वि मुञ्चत) उत्तम रीति से दूर करो। (नः)

हमारी (प्रतरं) संसार से पार उतारने वाले सुदीर्घ (आयुः) आयु को (प्रतारि) बढ़ाओ । इति द्वादशो वर्गः ॥

[१३]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) सर्व प्रकाशक सूर्य (विभातीनां) विशेष रूप से चमकने वाली (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (रत्नधेयम्) रमणीय, मनोहर (अग्रम्) मुख-भाग को (प्रति अख्यत्) प्रकाशित करता है उसी प्रकार (सुमनाः) उत्तम ज्ञानवान् (अग्निः) अग्रणी, नायक राजा और विद्वान् (विभातीनां) विविध गुणों से और शस्त्रास्त्र तेजों से चमकने वाली (उषसाम्) शत्रुओं को जलाने वाली सेनाओं के (रत्नधेयम्) पुरुष-रत्नों से धारण करने योग्य (अग्रम्) अग्र, प्रमुख भाग को (प्रति अख्यत्) प्रत्येक समय देखें । इसी प्रकार (अग्निः) विद्वान् नायक विविध गुणों से चमकने वाली (उषसाम्) कामना करने वाली कान्तिमती कन्याओं के रत्न धारण करने योग्य मुख भाग को (प्रति अख्यत्) देखे । हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (सुकृतः) उत्तम आचरण करने वाले पुरुष के (दुरोणम्) गृह को (यातम्) जाओ । (सूर्यः) सूर्य के तुल्य (देवः) दानशील तेजस्वी विद्वान् पुरुष (ज्योतिषा सह) अपने ज्ञान ज्योति के साथ (उत् एति) उदय को प्राप्त होता है ।

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्या रोहयन्ति ॥ २ ॥

भा०—(गविषः सत्वा न) जिस प्रकार गौ की कामना करने वाला वृषभ (द्रप्सं दविध्वत्) सींगों पैरों से भूमि के धूलि को धुनता, उछालता है और जिस प्रकार (गविषः सत्वा) गौ अर्थात् पृथिवी की यात्रा करने वाला बलवान् पुरुष वा (सत्वा) गमनकर्त्ता पुरुष (द्रप्सं) आगे भूमि-भाग धूलि को (दविध्वत्) लताड़ता, उड़ाता है उसी प्रकार (सत्वा) वीर्यवान् और प्रयाण करने वाला वीर पुरुष (गविषः) भूमि राज्य की आकांक्षा करता हुआ, (द्रप्सं) भूगोल को (दविध्वत्) कंपावे वा (द्रप्सं) द्रुत गति से जाने वाले वा अच्छी प्रकार पालित पोषित वेतन द्वारा रक्षित योग्य सेना-बल को (दविध्वत्) चालित करे। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर जल वा वायु भी अनुकूल कर्म करते हैं उसी प्रकार (सविता देवः) सूर्य के समान सेना का सञ्चालक विजिगीषु राजा (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (भानुं) तेज को (अश्रेत्) धारण करे। (यत्) जब (सूर्यं) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (दिवि) आकाश तुल्य विस्तृत भूमि के ऊपर (आ रोहयन्ति) विद्वान् लोग उत्तम राजसिंहासन पर स्थापित करते हैं तब (वरुणः) श्रेष्ठ प्रजाजन और (मित्रः) स्नेही, जीवनरक्षक प्रियजन भी उसके (अनु) अनुकूल होकर (व्रतं यन्ति) कर्म का आचरण करते हैं।

यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम्।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (ध्रुवक्षेमाः) स्थिर स्थिति वाले नित्य कारण तत्व स्वयं (अर्थम्) इस गतिशील संसार को (अनवस्यन्तः) प्रकाशित करने में असमर्थ रहते हुए भी (तमसे विपृचे) अन्धकार को दूर करने के लिये (सीम् अकृण्वन्) इस सूर्य को निर्माण करते हैं उसी प्रकार (अर्थम्) द्रव्यैश्वर्य और राष्ट्र को (अनवस्यन्तः) स्वयं रक्षा करने में असमर्थ (ध्रुवक्षेमाः) राष्ट्र में अपना स्थिर रूप से निवास करने वाले

प्रजागण (तमसे) प्रजा के दुःख देने वाले शत्रु के (विपृचे) दूर करने के लिये (विपृचे तमसे) विरोध करने वाले विद्वेषी दुःखदायी शत्रु के निवारण के लिये (यं) जिस तेजस्वी पुरुष को (सीम्) सर्व प्रकार शत्रु का अन्तकारी (अकृण्वन्) बना देते हैं (तं) उस (सूर्यं) सूर्य के समान तेजस्वी और (विश्वस्य जगतः) समस्त जगत् के (स्पशं) द्रष्टा और प्रबन्धक पुरुष को (सप्त यह्वीः हरितः) सात महती दिशाओं, सात अन्धकार नाशक किरणों के तुल्य (यह्वीः) बड़ी वा पुत्र के तुल्य (सप्त) सातों प्रकार की (हरितः) मनुष्य प्रजाएं (वहन्ति) धारण करती हैं। चार आश्रम और तीन वर्ण वा चारों वर्ण और तीन आश्रम, मिलकर ७ प्रकृति हैं। शूद्र सेवक स्वामी के साथ ही ग्रहण हो जाता है पृथक् नहीं। ब्रह्मचर्य वा सन्यास दोनों में से किसी एक का गैरज़िम्मेवार वा संगरहित होने से ग्रहण नहीं भी करने से तीन आश्रम हो जावेंगे। अथवा सात प्रकृतियां राजनीति में प्रसिद्ध हैं। अथवा (सप्त) सर्पणशील, व्यापक विस्तृत प्रजागण या सात दिशाओं वा द्वीपों के वासी प्रजागण (सप्त हरितः) सप्त हरित् हैं ॥

वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वहिष्ठेभिः) जलादि का वहन करने वाले किरणों से (तन्तुम्) विस्तृत (असितं) श्यामवर्ण के (वस्म) आच्छादन करने वाले अन्धकार को (विहरन्) दूर करता हुआ सूर्य गति करता है उसी प्रकार हे (देव) तेजस्विन् राजन् ! तू (वहिष्ठेभिः) दूर तक ढो लेजाने वाले अश्वों और रथ आदि साधनों से (तन्तुम्) विस्तृत वा प्रजा के समान (वस्म) वसने योग्य (असितं) अप्रबद्ध, राष्ट्र को (अवव्ययन्) अपने अधीन करता हुआ (विहरन्) विचरता हुआ (यासि) प्रयाण कर। (अप्सु अन्तः) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार (दविध्वतः) अन्धकार का नाश करने वाले (सूर्यस्य रश्मयः) सूर्य के किरण

(चर्म इव तमः) देह को मृग-चर्म के समान आच्छादन करने वाले अन्धकार को (अव अधुः) नाश कर देते हैं उसी प्रकार (दविध्वतः) शत्रु को कंपा देने वाले (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के (रश्मयः) रश्मिवत् प्रबन्धकर्त्ता लोग (अप्सु अन्तः) आप्त प्रजाओं के बीच (चर्म इव तमः) चर्म के समान दुःखदायी शत्रु वा अविद्या अन्धकार को (अव अधुः) दवावें, दूर करें ।

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—बतलाओ कि (अनायतः) चारों तरफ कहीं से भी न बंधा हुआ, (अनिबद्धः) और न किसी एक स्थान पर ही कहीं बंधा हुआ (उत्तानः) सबसे ऊपर रहता हुआ (अयम्) यह सूर्य (कथा न्यङ् न अवपद्यते) क्यों नहीं नीचे आ गिरता । वह (कया) किस (स्वधया) अपने धारण करने वाली शक्ति से (याति) गति करता है और उसको (कः) कौन देखता है, वह (दिवः) प्रकाश का थामने वाला (समृतः) सर्वत्र व्याप्त होकर (नाकं पाति) आकाशस्थ सबको पालन करता है, इसी प्रकार राजा भी किसी विशेष नियम में न बद्ध होकर वा प्रजा के अति समीप रहकर भी (अनिबद्धः) विशेष नियन्त्रित न होकर वह (उत्तानः) सबसे उच्च आसन पर स्थित होकर भी (कथा न न्यङ् अवपद्यते) किसी रीति से नीचे न गिरे ? वह (कया याति) किस नीति से चले, तो इसका उत्तर है वह (स्वधया याति) अपने राष्ट्र को और 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को धारण पोषण करने वाली नीति से चले तो नहीं गिरता । और वह (कः ददर्शः) स्वयं समस्त कर्त्ता होकर राष्ट्र को देखे, वह (दिवः स्कम्भः) ज्ञानवाली राजसभा वा अपनी चाहने वाली पत्नी तुल्य वा विजयेच्छुक प्रजा वा सेना का (स्कम्भः) खम्भे के समान आधार

होकर (सम्-ऋतः) सम्यक् सत्य ज्ञान और सम्पूर्ण बल वा ऐश्वर्य से युक्त होकर (नाकम्) अत्यन्त सुख सम्पन्न राष्ट्र को (पाति) पालन करे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निर्लिङ्गोक्ता वा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक्पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्तिः । २, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) तेज से युक्त सूर्य (देवः) प्रकाशमान होकर (महोभिः) तेजों से (रोचमानाः) प्रकाशित होने वाली (उषसः) प्रभात वेलाओं को (प्रति अख्यत्) प्रकाशित करता है उसी प्रकार (जातवेदाः) धनों, ऐश्वर्यों का स्वामी (अग्निः) अग्रणी नायक (देवाः) दानशील, (महोभिः) बड़ी २ धन सम्पदाओं से (रोचमानाः) प्रकाशित होने वाली (उषसः) कान्तियुक्त, वा अपने स्वामी की चाहना करने वाली सेनाओं, प्रजाओं को, स्त्री को पति के तुल्य (प्रति अख्यत्) प्रेमपूर्वक देखे। और (नासत्या) वे दोनों परस्पर कभी असत्य व्यवहार न करते हुए सत्य वचन से बद्ध होकर राजा, प्रजा वा पति और पत्नी (उरुगाया) बहुत प्रशंसायुक्त और बहुत पराक्रमी होकर (रथेन) रमण करने योग्य साधन से (नः) हमारे (इमं) इस (यज्ञम्) परस्पर मैत्रीभाव और सत्संग को (अच्छ यातम्) प्राप्त हों।

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

भा०—(सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य जिस प्रकार (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त उत्पन्न जगत् के लिये (ज्योतिः कृण्वन्) प्रकाश करता

हुआ (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर (केतुं) प्रकाश को (अश्रेत्) धारण करता है, और (सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं) आकाश भूमि और अन्तरिक्ष को (आ अप्राः) सब ओर पूर्ण कर देता है। उसी प्रकार (सविता) समस्त राष्ट्र का प्रेरक, सञ्चालक (देवः) तेजस्वी, दानशील राजा वा विद्वान् (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त उत्पन्न प्रजाजनों के हितार्थ (ज्योतिः कृण्वन्) ज्ञान-प्रकाश प्रदान करता हुआ (ऊर्ध्वं) सबके ऊपर श्रेष्ठ (केतुं) ज्ञान को (अश्रेत्) स्वयं धारण करे। और (वि चेकितानः) विशेष रूप से स्वयं सबको देखता और ज्ञान करता हुआ (रश्मिभिः) अधीन शासकों द्वारा (द्यावा पृथिवी) स्त्री पुरुषों विद्वान् और अविद्वान् और (अन्तरिक्षं) अपने भीतरी अन्तःकरण वा अन्तरंग जनों को (आ अप्राः) ज्ञान वा ऐश्वर्य से पूर्ण करे।

आवहंन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना।
प्रबोधयन्ती सुवितायं देव्यु१षा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवी) प्रकाश से युक्त (उषाः) प्रभात वेला (अरुणीः) लाल २ कान्तियों को (आवसन्ती) सर्वत्र पहुंचाती हुई (मही) बड़ी (चित्रा) अद्भुत (रश्मिभिः चेकिताना) किरणों से समस्त प्राणियों को ज्ञानवान्, जागृत करती हुई और (प्रबोधयन्ती) अच्छी प्रकार जगाती हुई (सुविताय) सुख प्राप्ति के लिये (सुयुजा) उत्तम सहयोगी (रथेन) वेगवान् सूर्य के साथ (ईयते) आती है उसी प्रकार (उषाः देवी) पति को चाहने वाली, एवं कान्तिमती विदुषी स्त्री, देवी (अरुणीः आवहन्ती) आरक्त कान्तियों को धारण करती हुई (मही) आदरणीय (चित्रा) अद्भुत गुणोंवाली, (चेकिताना) स्वयं ज्ञानवती होकर (रश्मिभिः) किरणों से (ज्योतिषा) तेज से, (सुविताय) उत्तम ऐश्वर्य वा सुख प्राप्त करने वा उत्तम मार्ग से चलने के लिये

(प्रबोधयन्ती) सबको ज्ञानयुक्त करती हुई (सुयुजा रथेन ईयते) उत्तम अश्वों से युक्त रथ से आवे ।

आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥

भा०—हे (वृषणा) वीर्यवान्, एवं वीर्यनिषेक करने में समर्थ युवा स्त्री पुरुषो ! (उषसः) दिन के प्रभात वेला के समान (वां) तुम दोनों के बीच में (उषसः) कान्तिमती, प्रातः प्रभा के तुल्य पति की कामना करने वाली स्त्री के (वि-उष्टौ) विशेष कामना से युक्त होने पर ही (ते) वे नाना (वहिष्ठाः) भार वहन करने वाले (रथाः अश्वासः) रथ और अश्व गण (वां वहन्तु) तुम दोनों को देशदेशान्तर पहुंचावें । (इमे हि सोमाः) ये समस्त ऐश्वर्य और ओषधि आदि रस (वां) तुम दोनों के लिये (मधुपेयाय) मधुर जल और अन्न के तुल्य खान पान करने योग्य हैं । (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ, परस्पर दान प्रतिदान, सत्संग और मैत्री भाव में आप दोनों (मादयेथाम्) प्रसन्न, हर्षित होकर रहो ।

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥१

भा०—देखो व्याख्या (मं० ४ । १३ । ५ ॥) इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१५]

वामदेव ऋषिः ॥ १—६ अग्निः । ७, ८ सोमकः साहदेव्यः । ९, १० अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ गायत्री । २, ५, ६ विराड गायत्री । ३, ७, ८, ९, १० निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते ।
देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥

भा०—(अध्वरे अग्निः) यज्ञ में अग्नि के समान (अध्वरे) न नाश करने योग्य परस्पर सख्य आदि उत्तम कार्य में (अग्निः) विद्वान् पुरुष, नायक (होता) सब कार्यों का स्वीकार करने वाला (वाजी) ज्ञान, अन्न, जल आदि से युक्त (देवः) तेजस्वी दानशील, विजिगीषु (यज्ञियः) सत्संग, मैत्री आदि के योग्य वा यज्ञ, परमपूज्य प्रजापति पद के योग्य (सन्) सज्जन पुरुष प्राप्त हो तो (देवेषु) वह विद्वान् पुरुषों के बीच (परिणीयते) ऊपर के पद तक प्राप्त कराया जावे। आदर पूर्वक घर आदि में बुलाया और लाया जावे।

परि॑ त्रि॒वि॒ष्ट्य॑ध्व॒रं यात्य॒ग्नी र॒थीरि॑व।
आ दे॒वेषु॒ प्रयो॒ दध॑त् ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष (त्रिविष्टि अध्वरे) तीनों प्रकार से प्रवेश करने योग्य यज्ञ वा हिंसारहित, उत्तम व्यवहार वा पद को (रथीः इव) महारथी के समान (देवेषु) विद्वानों में (प्रयः) प्रीतिकारक वचन (दधत्) प्रयोग करता हुआ (परियाति) प्राप्त होता है। महारथी (देवेषु) विजयकामी सैनिकों में (प्रयः) अन्न वेतनादि प्रदान करता हुआ (त्रिविष्टि अध्वरं परियाति) तीन प्रकार से प्रवेश करने योग्य युद्ध में प्रयाण करता है।

परि॒ वाज॑पतिः क॒विर॒ग्निर्ह॒व्यान्य॑क्रमीत्।
दध॒द्रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ॥ ३ ॥

भा०—(वाजपतिः) अन्न, ऐश्वर्य, संग्राम और बलों व ज्ञानों का पालक (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (दाशुषे) दानशील प्रजाजन में (रत्नानि) रमणीय वचनों और ऐश्वर्यों को (दधत्) प्रदान करता हुआ (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य अन्नों, एवं करों को भी (परि अक्रमीत्) प्राप्त करे। अथवा (हव्यानि) 'हव' अर्थात् युद्ध के योग्य शत्रु-बलों पर (परि अक्रमीत्) चढ़ाई करे।

और (हव्यानि) हव, यज्ञ, आदर सत्कार योग्य पदों वा पदस्थों की (परि अक्रमीत्) परिक्रमा करे उनको स्वयं प्राप्त करे वा आदर करे ।

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते ।
द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (पुरः) आगे (दैववाते) प्रकाशक वायु के संपर्क में (समिध्यते) अधिक प्रकाशित होता है उसी प्रकार (यः) जो (द्युमान्) तेजस्वी (अमित्रदम्भनः) शत्रु का नाश करने में समर्थ है (अयं) वह (दैववाते) देव अर्थात् विजिगीषु पुरुषों के दलों से प्राप्त होने योग्य (सृञ्जये) शत्रु-विजय कार्य में (पुरः) सबके आगे (समिध्यते) प्रकाशित, प्रदीप्त अग्नि के समान प्रज्वलित किया जावे । उसे लोग उत्तेजित और उत्साहित एवं युद्धोपकरण अधिकार आदि से सम्पन्न करें ।

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः ।
तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(अस्य) इस (ईवतः) गमन करने वाले, प्रयाणशील (तिग्मजम्भस्य) तीक्ष्ण, तेजस्वी मुख वाले, (मीळ्हुषः) शत्रु पर शस्त्रादि वर्षण करने में समर्थ मेघ के तुल्य (अग्नेः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, अग्रणी नायक (वीरः) वीर (मर्त्यः) शत्रु मारने में समर्थ पुरुष ही (ईशीत) ऐश्वर्य वा अधिकार का भागी हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् ।
मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—लोग जिस प्रकार (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अर्वन्तं) वेगवान् अश्व को (मर्मृज्यन्ते) खरखरे आदि से साफ़ करते हैं और अलंकारों से सजाते हैं और जिस प्रकार वैद्य (अरुषं) देह में लगे घाव

को नित्य प्रतिदिन (मर्मृज्यन्ते) साफ़ करते हैं और माता पिता जिस प्रकार (शिशुम्) बालक को नित्य प्रति साफ करते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग (सानसिं) सबके सेवन योग्य और दानशील, (अर्वन्तं) शत्रु पर वेग से चढ़ाई करने वाले (अरुपम्) दोष रहित, सूर्य के तुल्य लाल रंग के तेजस्वी (दिवः शिशुम्) भूमि के शासक आज्ञापक पुरुष को नित्यप्रति (मर्मृज्यन्ते) विद्वान् लोग शोधन स्वच्छ दोष रहित करते रहें। अथवा शास्त्र को (दिवः) ज्ञानप्रकाश से सुभूषित करें।

बोधयन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः।
अच्छा न हूत उदरं ॥ ७ ॥

भा०—(हूतः) युद्ध में बुलाया जाकर (यत्) जब मैं (अच्छ) अभिमुख मुक़ाबले पर (न उत् अरम्) नहीं उठ खड़ा होऊं तब (साहदेव्यः) देव विद्वान् वा विजिगीषु सैनिकों को साथ रखने वाले नायकों में उत्तम (कुमारः) शत्रुओं को बुरी तरह से मारने में समर्थ सेनापति (मा) मुझको (हरिभ्याम्) अश्वों से (बोधत्) मेरे कर्त्तव्यों का ज्ञान करावे। शिष्यपक्ष में—(हूतः) उपदेश किया जाकर यदि मैं शिष्य अच्छी प्रकार ज्ञान न करूं, तो 'देव' अर्थात् विद्याभिलाषी वा विद्वान् गुरुओं के सहित रहने वाले विद्यार्थियों में कुशल (कुमारः) कुत्सित आचरण के लिये दण्ड देने वाला गुरु (हरिभ्याम्) मनोहारी और दोषहारी प्रेम और दण्ड वा पठन अभ्यास आदि उपायों से (मा उत् बोधत्) मुझको सावधान करे और ज्ञान प्रदान करे।

उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात्।
प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥

भा०—(उत्) और मैं (साहदेव्यात्) सैनिक वर्ग के सहित नायकों में उत्तम कुशल (कुमारात्) कुत्सित शत्रुओं को मारने वाले वीर पुरुष (त्या) उन (यजता) परस्पर संग (प्रयता) अच्छी प्रकार प्रबद्ध,

प्रयत्नशील (हरी) रथ में लगने वाले अश्वों के तुल्य राष्ट्र वा सैन्य बल से चलने वाले दो प्रधान पुरुषों को (सद्यः) शीघ्र ही (आ ददे) स्वीकार करूं। शिष्यपक्ष में—(त्या यजता प्रयता हरी) वे विद्यादाता, पूज्य, उत्तम यम नियम सम्पन्न विद्वान् आचार्य, उपदेशक वा आचार्य आचार्याणी, 'देव' विद्यार्थी जनों के साथ या विद्यादाता गुरु के साथ रहने वाले (कुमारात्) कुमार से प्रतिज्ञा ग्रहण करें और वह उनसे विद्या ग्रहण करे।

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विनौ देवौ) समस्त विद्याओं में व्यास वा अश्व के तुल्य बलवान् और विद्यामार्ग में वेग से जाने वाले विद्यार्थी के स्वामी (देवौ) ज्ञान के प्रकाशक, विद्यादाता आचार्य आचार्याणी (एषः) यह (वां) तुम दोनों का (कुमारः) कुमार (साहदेव्यः) विद्याभिलाषी शिष्यों और विद्या के प्रकाशक गुरुओं के सदा साथ रहने वाला है। वह (सोमकः) विद्या में पुत्र के तुल्य, स्नातक होकर (दीर्घायुः अस्तु) दीर्घायु हो। हे (देवौ अश्विनौ) विजिगीषु राजा सेनापति ! वीर पुरुषों सहित, शत्रुमारक यह (सोमकः) पदाभिषिक्त नायक गण दीर्घायु हो।

तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम्।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (देवौ अश्विना) विद्या पारंगत, विद्यादाता गुरुजनो ! (युवं) आप दोनों मिलकर (साहदेव्यं) ज्ञानदाता गुरु के साथ रहने वाले (तं) उस (कुमारं) कुमार शिष्य को (दीर्घायुषं कृणोतन) दीर्घायु बनाओ। ब्रह्मचर्य पालन द्वारा उसे चिरंजीवी बनाओ। इसी प्रकार अश्वादि सैन्य के स्वामी सैन्यपति लोग विजिगीषु पुरुषों के साथ सहोद्योगी शत्रुहन्ता राजा को दीर्घायु करें। प्रयाण के समय, दो (अश्विनौ) घुड़सवार नायक के शरीर-रक्षक रूप से भी रहें। इति षोडशो वर्गः ॥

[१६]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ८, ९, १२, १९ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७, १६, १७ विराट् त्रिष्टुप् । २, २१ निचृत्पंक्तिः । ५, १३, १४, १५ स्वराट् पंक्तिः । १०, ११, १८, २० भुरिक्पंक्तिः ॥
विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥

भा०—(ऋजीषी) ऋजु सरल धर्म के मार्ग से स्वयं जाने और प्रजावर्ग वा सैन्यवर्ग को चलाने वाला (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, वीर्यवान् (मघवान्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं से कभी न मारे जाने हारा, वीर पुरुष (नः) हमें (उप आयातु) प्राप्त हो । और (अस्य) इसके (हरयः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले मनुष्य, वीर पुरुष (नः उपद्रवन्तु) वेग से हमारे बीच राजकारण से आते, जाते हों, (तस्मै इत्) उसी की वृद्धि के लिये हम लोग (सुदक्षम्) उत्तम बलशाली, शत्रु को उत्तम रीति से दग्ध कर देने में समर्थ, (अन्धः) अन्न आदि ऐश्वर्य (सुषुम) उत्पन्न करें । वह (गृणानः) गुरु के तुल्य आज्ञाएं करता हुआ (इह)-इस राष्ट्र में (अभिपित्वं) सब प्रकार से प्रजा के पालन का कार्य (करते) करे ।

अवस्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर पुरुष ! (अद्य) आज (सवने) ऐश्वर्य द्वारा अभिषेक करने वा अध्यापन के अवसर में (अन्ते) अन्त में (नः) हमें (मन्दध्यै) हर्षित आनन्द प्रसन्न होने के लिये (अध्वनः अन्तेन) मार्ग की समाप्ति पर अश्वों के समान (अव स्य) मुक्त कर । जिससे हम आनन्द विनोद प्राप्त कर सकें, (वेधाः) विद्वान् उपदेष्टा (चिकितुषे)

ज्ञान प्राप्त करने वाले (असुर्याय) अज्ञान से युक्त विद्यार्थी के (मन्म) मनन करने योग्य (उक्थम्) वचन वेद मन्त्रादि का (उशना इव) कामनावान्, प्रीति युक्त वन्धु के तुल्य (शंसाति) अनुशासन वा प्रवचन करे। अध्यात्म में—(सवने) परमेश्वरोपासना में या संसार में हमें परमेश्वर (अध्वनः अन्ते) संसार मार्ग के अन्त में परमानन्द में आनन्द लाभ करने के लिये मुक्त करे वह परम ज्ञानी प्रभु हम 'असुर्य' लोकवासी अज्ञानी को ज्ञान-वचन वेद का उपदेश करता है।

कुविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः॥ ३॥

भा०—(वृषा) वर्षण करने वाला सूर्य (यत्) जिस प्रकार (सेकं) सेचन करने योग्य जल को (विपिपानः) विविध प्रकारों से पान करता हुआ और (विदथानि निण्यं साधन्) प्राप्त करने योग्य जलों को अन्तरिक्ष में गुप्त रूप से साधता हुआ (वृषा) मेघ जिस प्रकार (सेकं विपिपानः) सेचने योग्य जल की विशेष रूप से रक्षा करता हुआ (अर्चात्) पुनः प्रदान करता है उसी प्रकार मतिमान् पुरुष (निण्यं) गुप्त रूप से, शान्ति पूर्वक (विदथानि साधन्) नाना ज्ञानों को धनों के समान प्राप्त करता हुआ (वृषा) वाद में वलवान् मेघ वा सूर्य तुल्य ज्ञान प्रकाशक तेजस्वी होकर (सेकं विपिपानः) सेचन करने योग्य वीर्य की विशेष रूप से रक्षा करता हुआ ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ और (सेकं) विद्यार्थी जनों के प्रदान करने, अभिसेचन वा स्नान करने वाले, आत्मा को शुद्ध करने वाले ज्ञानरस को (विपिपानः) विशेष रूप से पान करता हुआ (अर्चात्) अपने गुरुजनों का सदा सत्कार करे, सूर्य जिस प्रकार (सप्त दिवः) सात तेजोमय किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी (दिवः) ज्ञान में (सप्त) सात प्रकार के वा ज्ञान के मार्ग में (सप्त) तर्पण करने, आगे वढ़ने वाले (कारून्) क्रिया-

शील विद्वानों को (जीजनन्) विद्यादान देकर प्रकट करे। (गृणन्तः) उपदेश करने वाले गुरु और विद्याभ्यासी शिष्यजन (अह्ना चित्) दिन के तुल्य अविनाशी प्रकाश वेद से (वयुना) नाना ज्ञानों और कर्मों का (चक्रुः) सम्पादन करें। (२) अध्यात्म में—कवि, जीव (विदथानि) कर्म फलों को प्राप्त करता है वह (वृषा) बलवान् धर्ममेघ होकर आनन्द-रस को पान करता हुआ ईश्वरार्चना करे और प्रकाशमान अपने सातों ज्ञान मार्गों को बलवान् करे। वे सातों उसको ज्ञान देने हारे हों (अह्ना) अविनाशी आत्मा के बल से ज्ञान लाभ करें।

स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

भा०—(यत् अर्कैः) जिस प्रकार किरणों से (सुदृशीकं स्वः वेदि) उत्तम देखने और दिखानेवाला तेज, प्रकाश और तापयुक्त तेज प्राप्त होता है (यत्) और जिस प्रकार सूर्य के किरण दिन के समय (महि ज्योतिः) बड़ा भारी प्रकाश (रुरुचुः) प्रदीप्त करते हैं और वह (अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे) अन्धकारमय दुःखकर अंधेरों को नाश कर प्रकाशित करता है उसी प्रकार (यत् अर्कैः) जिसके उत्तम विचारों वा मन्त्रों से (सुदृशीकम्) उत्तम दर्शन करने योग्य (स्वः) ज्ञानप्रकाश और सुख (वेदि) प्राप्त होता है और (यत्) जिसके विचार (वस्तोः) अधीन बसे प्रजा वा शिष्य जन के लिये (महि ज्योतिः रुरुचुः) बड़ा ज्ञानप्रकाश प्रकाशित करते हैं वह (नृतमः) पुरुषोत्तम (अभिष्टौ) प्रार्थना करने पर (नृभ्यः) मनुष्यों को (विचक्षे) विविध प्रकार से उपदेश करे और (अन्धा) अन्धा बना देने वाले (दुधिता) दुःखदायी (तमांसि) अज्ञान अन्धकारों को (चकार) नाश करे।

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥१७॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) मेघ तमस् को विदारण करने वाला सूर्य (अमितं) अविनाशी और अनन्त प्रकाश को (ववक्षे) धारण करता है और (महित्वा रोदसी आ पप्रौ) महान् सामर्थ्य से भूमि और आकाश दोनों को तेज से पूर्ण करता है, (यः विश्वा भुवना अभि बभूव) जो समस्त लोकों में व्यापता है (अस्य महिमा अतः विरेचि) उसका महान् सामर्थ्य इस लोक से बहुत बड़ा है। उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (अमितं) अपरिमित और शत्रुओं से न नाश करने योग्य बल, सामर्थ्य (ववक्षे) धारण करता है (इन्द्रः) विद्वान् आचार्य (अमितं ववक्षे) अविज्ञात तत्व वा अविनाशी वेद-ज्ञान का प्रवचन करे। वह (ऋजीषी) ऋजु सरल मार्ग से प्रजाजनों वा शिष्यजनों को ले जाने हारा, धार्मिक (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य और पूज्यपद से (रोदसी) माता और पिता दोनों के पदों को स्वयं पूर्ण करता है। राजा और आचार्य दोनों प्रजा वा शिष्य के मा बाप के समान है।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ रघुवंशे कालिदासः॥

और (यः) जो (विश्वा) समस्त (भुवना) प्रजाओं को (अभि बभूव) अपने वश करता है (अतः चित्) इसी कारण (अस्य) इसका (महिमा) महान् सामर्थ्य (विरेचि) इस राष्ट्र से कहीं बढ़ कर होता है।

इति सप्तदशो वर्गः॥

विश्वा॑नि श॒क्रो नर्या॑णि वि॒द्वान॒पो रि॑रेच॒ सखि॑भि॒र्निका॑मैः।
अश्मा॑नं चि॒द्ये बि॑भि॒दुर्वचो॑भिर्व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः॥६॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण (वचोभिः) गर्जनों से (अश्मानं) मेघ को (बिभिदुः) छिन्न भिन्न करते हैं और जिस प्रकार (उशिजः) कान्तिमान् किरणगण या विद्युतें (गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) किरणों से युक्त नित्य गतिशील सूर्य या गर्जना रूप वाणीयुक्त मेघ को घेरती है। और जिस प्रकार

(निकामैः सखिभिः) खूब कान्तिमान् सहयोगी किरणों वा मरुतों द्वारा (शक्रः) शक्तिमान् सूर्य (अपः रिरिचे) जलों का अन्तरिक्ष से वर्षाता है उसी प्रकार (ये) जो विद्वान् शक्तिमान् पुरुष (वचोभिः) अपने उत्तम वचनों, आज्ञाओं और प्रवचनों, प्रज्ञाओं से (अश्मानं) प्रस्तर या मेघ के तुल्य दृढ़ प्रजा के भोक्ता राजा को भी (विभिदुः) भेद नीति से तोड़ डालते हैं और जो (उशिजः) धन, मान आदि की कामना करने वाले लोग (गोमन्तं व्रजं) गौओं से पूर्ण वाड़े के तुल्य (गोमन्तं व्रजं) भूमि के स्वामी, सर्वोपगम्य शत्रु के ऊपर जा पड़ने वाले प्रबल नायक को (वि वव्रुः) विशेष रूप से स्वीकार करते हैं उन (निकामैः) नित्य कामनावान् (सखिभिः) मित्रवर्गों सहित (विद्वान्) ज्ञानी (शक्रः) शक्तिमान् राजा (विश्वानि नर्याणि) सब मनुष्यों के हित कार्यों को करे। और (अपः रिरेच) उत्तम २ कर्म करे।

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (वज्रं) अन्धकार का निवारक सूर्य या वेगवान् विद्युत् (अपः वव्रिवांसं) जलों के आवरण करने वाले मेघ को (पराहन्) विनाश करता है और (समुद्रियाणि अर्णांसि प्र एनोः) आकाश के जलों को नीचे गिरा देता है और (शवसा पतिः भवन्) जल से समस्त संसार का पालक होता है उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर, हे (धृष्णो) शत्रुओं को धर्षण, पराजय करने हारे ! तू (शवसा) अपने बल से (पतिः) प्रजा का पालक (भवन्) होकर (समुद्रियाणि अर्णांसि) समुद्र के जलों के तुल्य सेना के दलों को (प्र एनाः) आगे बढ़ा और (ते वज्रं) तेरा वज्र, शस्त्रास्त्र बल (वृत्रं) बढ़ते हुए और (अपः वव्रिवांसम्) प्राप्त प्रजाओं वा राज्य कर्म को रोकते हुए शत्रु को (परा अहन्) दूर मार भगावे। और वह (सचेताः) समान चित्त वाला होकर (पृथिवी)

भूमि के समान सर्वाश्रय होकर (प्र अवत्) आगे बढ़े वा अच्छी प्रकार रक्षा करे अथवा तेरा शस्त्रास्त्र बल ही रक्षा करे और (पृथिवी सचेताः) समस्त पृथिवी की प्रजा समान चित्त होकर (ते वज्रं प्रावत्) तेरी शस्त्रास्त्र बल की रक्षा करे।

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रिं दर्दः) सूर्य, विद्युत् वा वायु मेघ को अपने तेज वा वेग से छिन्न भिन्न कर देता है (सरमा) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत् प्रथम प्रकट होती है। (गोत्रा रुजन्) मेघों को छिन्न भिन्न करता हुआ (वाजम् आदर्षि) अन्न वा जल को प्रदान करता है। इसी प्रकार हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा शरण के लिये पुकारे जाने हारे! राजन्! (यत्) जो तू (अद्रिं) अभेद्य शत्रु को (दर्दः) विदीर्ण करता, और (अपः) आप्त प्रजाजनों का पालन करता है और (ते) तेरी (सरमा) वेग से शत्रु को उखाड़ फेंकने और मारने वाली सेना और (सरमा) उत्तम ज्ञान का उपदेश करने वाली वाणी (ते) तेरे (पूर्व्यम्) पूर्व विद्वानों वा पूर्वजों द्वारा बनाये अधिकार और राज्य-शासन कार्य को (आविः भुवत्) प्रकाशित करे। और तू (अंगिरोभिः) सूर्य की किरणों वा अग्नियों के समान तेजस्वी ज्ञान के प्रकाशक विद्वानों से (गृणानः) उपदेश किया जाता हुआ (गोत्रा रुजन्) पर्वतों वा मेघों को विद्युत् के तुल्य 'गोत्र' अर्थात् भूमि के पालक प्रतिपक्षी राजाओं को (रुजन्) तोड़ता हुआ, (भूरिं वाजम्) बहुत से ऐश्वर्य, संग्राम, परबल वा ऐश्वर्य को (आदर्षि) भेदता वा प्राप्त करता है (सः नः नेता) वह तू हमारा नायक हो।

अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम्।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृमणः) मनुष्यों के हितों और उत्तम नायक पुरुषों में अपना चित्त देने हारे ! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्वर्षाता) सुख, प्रकाश, धन और शत्रु को सन्ताप और अधीनों को आज्ञा वचन प्रदान करता हुआ, (अभिष्टौ) अभीष्ट सिद्धि के लिये (नाधमानं कविं) शरण याचना करते हुए क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष को (अच्छ गाः) प्रभु के तुल्य प्राप्त हो और (नाधमानं कविं अच्छ गाः) विद्यैश्वर्य सम्पन्न विद्वान् को शिष्यवत् प्राप्त हो। अथवा (गाः नाधमानं कविं अच्छ) गौओं, भूमियों और वेद वाणियों या आज्ञाओं की याचना करते हुए विद्वान् तू दाता, गुरु वा शासक होकर प्राप्त हो। तू (द्युम्नहूतौ) धन की प्राप्ति कराने वाले संग्रामादि कार्य में (तम्) उसको (ऊतिभिः) रक्षाकारी सेनादि साधनों से (अच्छ इपणः) आगे बढ़ा। और (मायावान्) कुटिल मायावी (अब्रह्मा) अवेदज्ञ वा विशाल धन बल से रहित (दस्युः) प्रजा-नाशक शत्रु (नि अर्त) सर्वथा नष्ट हो।

आ द॑स्युघ्ना मन॑सा याह्यस्तं भुव॑त्ते कुत्सः॑ सख्ये निका॑मः।
स्वे योनौ॒ नि ष॑दतं सरू॑पा वि वां॑ चिकित्सदृतचिद्ध॒ नारी॑॥१०॥१८॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तू सदा (दस्युघ्ना मनसा) प्रजाविनाशक, दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले चित्त और बल से, विज्ञान से सम्पन्न होकर तू (अस्तं आ याहि) अपने गृह को प्राप्त हो। (कुत्सः) उत्तम उपदेशों का करने वाला विद्वान् और शत्रुओं को काट गिराने में समर्थ वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र सम्पन्न सैन्य (ते सख्ये) तेरे मित्र भाव में (निकामः) पूर्ण कामना युक्त हो। उपदेष्टा विद्वान्, वा सैन्य बल और तू राजा वा सेनापति दोनों (स्वे योनौ) अपने २ स्थान में (सरूपा) रूप, कान्ति, अधिकार को धारण करते हुए (नि सदतम्) उच्चासन पर विराजो। (ऋतचित् नारी) सत्य वचन की प्रतिज्ञा करने वाली स्त्री जिस प्रकार (वि चिकित्सत्) विशेष रूप से विवेक करती और योग्य पुरुष

को प्राप्त होती है उसी प्रकार (ऋतचित् नारी) धन सञ्चय करने वाली नरों, मनुष्यों से युक्त, प्रजायुक्त पृथिवी और सत्य वचन से बद्ध नरों, नायक मनुष्यों से युक्त सेना, (ह) निश्चय से (वां) तुम दोनों को (वि चिकित्सत्) विशेष रूप से आदर योग्य जाने । अथवा—(नारी मनसा दस्युघ्ना) स्त्री वा सेना, प्रजा मन से बुरों का नाश करने वाली हो, तू उसको (आ याहि) प्राप्त हो । (कुत्सः) जो निन्द्य वा निन्दक, नीच पुरुष (ते सख्ये निकामः) तेरे साथ मित्रता करने में निकृष्ट इच्छा वाला हो वह (अस्तं भुवत्) उखड़ जाय । (२) हे स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों में से (नारी) स्त्री (सरूपा ऋतचित् सती वि चिकित्सत्) पति के समान रूप कान्ति वाली और सत्य वचन एवं धन का सञ्चय करने वाली सती, लक्ष्मी होकर विशेष रूप से गृह कार्य जाने । तुम दोनों (स्वे योनौ निषदतं) समान रूप से अपने घर में रहो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यासि॒ कुत्से॑न स॒रथ॑मव॒स्युस्तो॒दो वात॑स्य॒ हर्यो॒रीशा॑नः ।
ऋ॒ज्रा वाजं॒ न गध्यं॒ युयू॑षन्क॒विर्यद॑ह॒न्पार्या॑य भू॒षात् ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (अवस्युः) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ, (वातस्य) प्रचण्ड वायु के तुल्य बलशाली शत्रु को मूल से उखाड़ देने और कंपा देने में समर्थ स्व सैन्य का (तोदः) सञ्चालक और पर-सैन्य का नाशक और (हर्योः) वेगवान् अश्वों के तुल्य स्व और पर राष्ट्र के नायकों का (ईशानः) स्वामी वा (वातस्य हर्योः ईशानः) वायु वेग से जाने वाले रथ के अश्वों का स्वामी होकर (कुत्सेन) वज्र वा शस्त्रास्त्र बल को लेकर (सरथम्) अपने रथ सैन्यों सहित (यासि) प्रयाण कर (न) जिस प्रकार (गध्यं युयूषन् वाजं अहन् पार्याय भवति) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष वेगवान् रथ को प्राप्त करता है और दूर स्थित मार्ग को पार करने में समर्थ होता है उसी प्रकार तू (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (ऋज्रा) ऋजु, सरल, धर्मयुक्त

कार्यों को (वाजं) संग्राम, बल, वेग वा ऐश्वर्य और (गध्यं) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (युयूषन्) प्राप्त करना चाहता हुआ, (अहन्) प्राप्य उद्देश्य तक पहुंच और (पार्याय भूषात्) प्रजा पालन योग्य पद, ऐश्वर्य को प्राप्त करने और शत्रु संकट को पार करने में समर्थ हो।

कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन् ! हे सेनापते ! तू (कुत्साय) वेदों के उपदेश करने वाले ज्ञानी पुरुष के उपकार के लिये वा निन्दित व्यवहार के दमन के लिये (अशुषं) सुखादि से रहित दुःख वा दुःखदायी और अन्यों द्वारा न शोषण होने वाले (शुष्णं) स्वपक्ष का शोषण करने वाले शत्रु को (निबर्हीः) विनाश कर। और (अन्हः प्रपित्वे) अविनाशी, बल प्राप्त हो जाने पर (सहस्रा) हज़ारों, (कुयवम्) कुत्सित यव अर्थात् निन्दित संगी या द्वेषी पुरुष को भी (निबर्हीः) विनाश कर और तू (कुत्स्येन) निन्दित जनों के योग्य, एवं शत्रु को काट गिराने वाले वज्र शस्त्रास्त्र युक्त सैन्य से (सद्यः दस्यून् प्र मृण) बहुत शीघ्र प्रजा के विनाशकों को आगे बढ़कर नाश कर। और (अभीके) समीप या संग्राम में विद्यमान (चक्रं) पर-सैन्य चक्र को (सूरः) सूर्य तुल्य तेजस्वी होकर (प्र वृहतात्) विनाश किया कर।

त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः।
पंचाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (वैदथिनाय) यज्ञवान् वा विज्ञान और ऐश्वर्यवान् प्रजागण के सन्तान रूप (ऋजिश्वने) उत्तम सरल व्यवहारों से बढ़ने वाले, ऋजु, धर्म-मार्ग में चलने वाले इन्द्रियों से युक्त धर्मात्मा के हित के लिये (पिप्रुं) राष्ट्र में फैले हुए (मृगयं) दूसरों के

धनादि खोजने वाले (शुशुवांसं) बल में बढ़ने वाले दुष्ट पुरुष को (रन्धीः) अपने वस कर। और तू अपने (पञ्चाशत्) ५० (सहस्रा) हज़ार (कृष्णा) शत्रु बल का कर्षण करने में समर्थ सैन्यों को (नि वपः) स्थान २ पर रख, और शत्रु के इतने सैन्यों को निर्मूल कर। और (जरिमा) बुढ़ापा (अत्कं न) जिस प्रकार रूप को नाश कर देता है उसी प्रकार तू (पुरः) शत्रुओं के नगरों को (वि दर्दः) विविध प्रकारों से छिन्न भिन्न कर।

सूर॑ उपा॒के त॒न्व१॒॑न्दधा॑नो॒ वि यत्ते॒ चेत्य॒मृत॑स्य॒ वर्पः॑। मृ॒गो न ह॒स्ती तवि॑षीमुषा॒णः सिं॒हो न भी॒म आयु॑धानि॒ बिभ्र॑त् ॥ १४ ॥

भा०—(सूरः उपाके) सूर्य के समीप जिस प्रकार (तन्वं दधानः) अपने विस्तृत रूप को मेघ धारण करता है तब उसका (अमृतस्य वर्पः चेति) जल का बना स्वरूप प्रकट होता है, वह (तविषीम्) बलवती विद्युत् को (उषाणः) प्रदीप्त करता हुआ (मृगः हस्ती न) शुद्ध श्वेत हस्ती के तुल्य वा (आयुधानि बिभ्रत्) विद्युत् प्रहारों को धारण करता हुआ (भीमः सिंहः न) भीषण सिंह के समान भासता है और जिस प्रकार (सूरः) स्वयं सूर्य भी (तन्वं दधानः) व्यापक प्रकाश या सूक्ष्म तेजोमय शक्ति को धारण करता हुआ और उसका (अमृतस्य वर्पः चेति) अविनाशी स्वरूप प्रकट होता है। वह (तविषीम् उषाणः) बड़ी बलवती पृथ्वी को किरणों से दग्ध करता हुआ, हस्तवान् किरणवान् होकर हाथी के तुल्य एवं किरणों से जलवायु को शुद्ध करता हुआ होने से 'मृग' है और शस्त्रों तुल्य किरणों को धारता हुआ भयानक सिंहवत् तेजस्वी है उसी प्रकार (यत्) जब (सूरः) तेजस्वी राजा, सेनापति (उपाके) प्रजा के समीप (तन्वं) तेजस्वी शरीर और विस्तृत सेना को (दधानः) धारण पोषण करता हुआ रहता है (अमृतस्य) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य (ते) तेरा व तेरे सैन्य का (वर्पः) स्वरूप

(चेति) प्रकट होता है, तभी वह (तविषीम्) बलवती, महती सेना को वस्त्र के समान (उपाणः) धारण करता हुआ (मृगः हस्ती न) हाथी पशु के समान विशाल बलवान् एवं (हस्ती) हनन साधनों से सम्पन्न होकर (मृगः) राज्य के कण्टक शोधन करने में समर्थ, और (आयुधानि बिभ्रत्) प्रहार करने योग्य शस्त्रास्त्रों और सैन्यों को धारण पोषण करता हुआ (भीमः सिंहः नः) भयंकर सिंह के समान (वि चेति) प्रतीत होता है ।

इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः॥१५।१९

भा०—(कामाः) ऐश्वर्यादि कामनाओं को करने वाले (वसूयन्तः) धनादि चाहने वाले (स्वर्मीळ्हे) सुख और तेज से युक्त संग्राम के तुल्य (सवने) शासन में (चकानाः) कान्तियुक्त, तेजस्वी पुरुष (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वे (उक्थैः) उत्तम वचनों से (शशमानासः) स्तुति करते हुए (श्रवस्यवः) के श्रवण करने योग्य ज्ञान के अभिलाषी शिष्य के तुल्य स्वयं अन्न, यश की इच्छा करते हुए राजा को गुरुवत् (अग्मन्) प्राप्त हों वह राजा वा प्रजा परस्पर (ओकः न) गुरु गृह के समान हों और (रण्वा) रमणीय, रौनकदार (सुदृशी इव) उत्तम दर्शनीय एक सुलोचना स्त्री के तुल्य (पुष्टिः) पोषक सम्पदा के तुल्य हों । इत्येकोनविंशो वर्गः॥

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः॥१६॥

भा०—(यः) जो (ता) उन २ नाना प्रकार के (पुरूणि) बहुत से (नर्या) मनुष्यों के हित के कार्य (चकार) करता है उस (सुहवं) उत्तम नाम वाले को (इत्) ही हम लोग (इन्द्रं) 'इन्द्र' (हुवेम) कहें वा उत्तम रीति से, सुगृहीत नाम से स्मरण करने योग्य ऐश्वर्यवान्

पुरुष को ही आदरपूर्वक बुलावें। और (यः) जो (मावते जरित्रे) मेरे तुल्य स्तुति करने वाले को (गध्यं चित्) ग्रहण करने योग्य (वाजं) ऐश्वर्य (चित्) भी (मक्षू) बहुत शीघ्र (भरति) प्रदान करता है। वह (स्पार्हराधाः) अभिलाषा करने योग्य धनों का स्वामी भी 'इन्द्र' ही कहाने योग्य है।

ति॒ग्मा यद॒न्तर॒शनि॒: पता॑ति॒ कस्मि॑ञ्चिच्छूर मुहु॒के जना॑नाम्।
घो॒रा यद॑र्य॒ समृ॑ति॒र्भवा॒त्यध॑ स्मा नस्त॒न्वो॑ बोधि गो॒पाः ॥१७॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (यद् अन्तः) जिस के बीच में (तिग्मा अशनिः) तीक्ष्ण वज्राघात वा विद्युत् अस्त्र (पताति) पड़े, ऐसे (जनानाम्) मनुष्यों के (कस्मिन् चित् मुहुके) किसी भी युद्ध में और हे (अर्य) स्वामिन् ! (यद्) जब (घोरा) घोर, अति भयानक (समृतिः) संग्राम (भवाति) होता हो (अध) तब भी तू (गोपाः) रक्षा करने हारा, जितेन्द्रिय एवं वाणी और पृथिवी का रक्षक होकर (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों को (बोधि स्म) अपने ज्ञान में रख अथवा (नः तन्वः) हमारी विस्तृत सेनाओं को सचेत कर।

भुवो॑ऽवि॒ता वा॒मदे॑वस्य धी॒नां भुव॒: सखा॑वृ॒को वाज॑सातौ।
त्वामनु॒ प्रम॑ति॒मा ज॑गन्मोरु॒शंसो॑ जरि॒त्रे वि॒श्वध॑ स्याः ॥ १८ ॥

भा०—हे (विश्वध) समस्त राष्ट्र वा विश्व को धारण करने हारे राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (वामदेवस्य) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य पदार्थों के दाता और उत्तम ज्ञानों के प्रकाशक दानी वा विद्वान् प्रजाजन की (धीनां) बुद्धियों और सत्कर्मों का (अविता) रक्षक और प्रेरक (भुवः) हो। तू (वाजसातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और दान करने के काल में वा युद्धादि में, उसका (अवृकः) चोर के छल कपटादि से रहित सच्चा (सखा) मित्र (भुवः) हो। हम (त्वाम् प्रमतिम् अनु आ ज-

गन्म) तुझ उत्तम ज्ञानवान् का अनुसरण करें । तू (जरित्रे) स्तुतिकर्त्ता वा अध्येता शिष्य को (ऊरुशंसः स्याः) वहुत सी विद्याओं का उपदेश करने वाला हो ।

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे अज्ञाननाशक राजन् ! विद्वन् ! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (एभिः) इन (त्वायुभिः) तुझे चाहने वाले, तेरे प्रेमी (मघवद्भिः) उत्तम धन सम्पन्न (एभिः नृभिः) इन नायक पुरुषों सहित हम (विश्वे) सब लोग (आजौ) युद्ध में (द्युम्नैः द्यावः न) तेजों सहित सूर्य किरणों के तुल्य धनों से सम्पन्न होकर (अर्यः) शत्रुओं को (अभि सन्तः) पराजित करते हुए (पूर्वीः क्षपः शरदः च) पूर्व की पुरातन और आगामी भी वहुत सी रातों और वर्षों तक (मदेम) हर्षयुक्त होकर रहे और आगे भी रहें । अर्थात् सब दिनों, सब वर्षों सुख से रहें ।

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२०॥

भा०—(भृगवः रथं न) लोह आदि धातु को तपा कर नाना पदार्थ वनाने वाले, गतिशील साधनों को धारण करने वाले विद्वान् शिल्पी लोग जिस प्रकार (रथम्) वेग से जाने योग्य रथ को वना कर तैयार करते हैं (एव इत्) उसी प्रकार हम लोग (वृषभाय) वलवान् (वृष्णे) राजा के प्रवन्ध करने में कुशल, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये हम (ब्रह्म अकर्म) महान् ऐश्वर्य उत्पन्न करें, उस महान् सुखों के वर्षक प्रभु के लिये (ब्रह्म) वेद का मनन उच्चारण आदि करें । (यथा) जिससे (नू चित्) शीघ्र ही वह (नः) हमें (सख्या) हमारे मित्र गण से

(वि योषत्) मिलाये रक्खे अथवा (नू चित् नः सख्या वियोषत्) हमारे साथ किये मित्रभावों को पृथक् न करे, न तोड़े। वह (उग्रः) बलवान् (अविता) रक्षक (नः) हमारे (तनूपाः) शरीरों का रक्षक (असत्) बना रहे।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो॒ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।२१।।२०।

भा०—(नु स्तुतः) स्तुति करने योग्य और (नु गृणानः) अन्यों को उपदेश करता हुआ हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (नद्यः न) जलों से नदियों के समान (जरित्रे) स्तुतिशील प्रजाजन और अध्ययनशील विद्यार्थी जन के हितार्थ (इषं) अन्न, वृष्टि एवं कामना को (पीपेः) पूर्ण कर। हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! अश्वों के स्वामिन् सेनापते ! (ते) तेरे लिये (नव्यं) अति उत्तमोत्तम (ब्रह्म) ऐश्वर्य उत्पन्न (अकारि) किया जाय, हम लोग (धिया) ज्ञान वाली बुद्धि और कर्म द्वारा (सदासाः) भृत्यों सहित वा सदा ऐश्वर्य भोक्ता और दानशील होते हुए (रथ्यः) रथों के स्वामी होकर (स्याम) रहें। इति विंशो वर्गः ॥

[१७]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः। ७, ९ भुरिक् पंक्तिः। १४, १६ स्वराट् पंक्तिः। १५ याजुषी पंक्तिः। निचृत्पंक्तिः। २, १२, १३, १७, १८, १९ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ८, १०, ११ त्रिष्टुप्। ४, २० विराट्त्रिष्टुप्॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वं म॒हाँ इन्द्र तुभ्यं ह॒ क्षा अनु॑ क्ष॒त्रं मं॒हना॑ मन्यत॒ द्यौः।
वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान्॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (त्वं) तू (महान्) गुणों और शक्तियों में महान्, पूजनीय है। (क्षाः) भूमिएं और भूमि

निवासी प्रजाएं और (द्यौः) ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान् जन (मंहना) महान् होकर (तुभ्यं क्षत्रं) तुझे ही बल, वीर्य, राज्य को (अनु मन्यत) प्राप्त करने की अनुमति दें, तेरे राज्य को चाहें । सूर्य वा वायु जिस प्रकार (शवसा) बलपूर्वक तेज से (वृत्रं जघन्वान्) मेघ को प्रहार करता है, उसी प्रकार तू (शवसा) सैन्य बल से (वृत्रं) अपने बढ़ते शत्रु को (जघन्वान्) नाश करने हारा हो । और (अहिना) मेघ या सूर्य द्वारा (जग्रसानान्) किरणों द्वारा ग्रस्त हुई (सिन्धून्) बहने वाली जल-धाराओं को विद्युत् जिस प्रकार (सृजः) उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अहिना) आक्रमणकारी शत्रु द्वारा (जग्रसानान्) वशीकृत (सिन्धून्) वेग युक्त सेनाओं को (सृजः) भगा देते हो अथवा (अहिना ग्रसमानान्) आगे बढ़ते बल वा धन बल से शत्रु सेनाओं को ग्रसती हुई स्व सेनाओं को सञ्चालित कर, वा ऐश्वर्य या मेघादि द्वारा अन्नादि प्राप्त करती हुई प्रजाओं को (सृजः) सन्मार्ग में चला ।

तव॑ त्वि॒षो जनि॑मन्रेजत॒ द्यौ रेज॒द्भूमि॑र्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः ।
ऋ॒घा॒यन्त॑ सु॒भ्व१॒ः पर्व॑तास॒ आर्द॒न्धन्वा॑नि स॒रय॑न्त॒ आपः॑ ॥२॥

भा०—हे (जनिमन्) उत्तम जन्म वाले ! हे सब रत्नों और अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि के स्वामिन् ! राजन् ! (तव) तेरे (त्विषः) सूर्यवत् कान्ति, तेज वा प्रताप से (द्यौः रेजत) आकाश कांपता है । और (स्वस्य) तेरे अपने (भियसा) भय से और (मन्योः) क्रोध से (भूमिः) भूमि (रेजत्) कांपे । (सुभ्वः) उत्तम २ वृष्टि, अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करने वाली भूमियां और उत्तम ओषधि आदि जनक (पर्वतासः) पर्वतों के तुल्य मेघ और उत्तम भूमियों के स्वामी, उत्तम सामर्थ्यवान् प्रजापालक जन (ऋघायन्त) तेरे बल से बाधित हों (आर्दन्) प्रजा की पीड़ाओं का नाश करें । वे (धन्वानि) निर्जल स्थलों की तरफ़ (आपः) जलों को (सरयन्त) प्राप्त करावें, नहर, झरने

आदि बहावें। (२) परमेश्वर के पक्ष में—प्रभु के तेज से सूर्य चलता है, उसके भय से और ज्ञान, बल से भूमि चलती है।

भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (वज्रम् इष्णन्) विद्युत् को प्रेरित करता हुआ सूर्य वा प्रबल वायु (गिरिं भिनत्) मेघ को छिन्न भिन्न करता है और (वज्रेण वृत्रं वधीत्) वज्र से सूक्ष्म जल मय मेघ को आघात करता है, और (हतवृष्णीः) ताड़ित हुए वर्षणशील मेघ से युक्त (आपः जवसा सरन्) जलधाराएं वेग से बह निकलती हैं। उसी प्रकार वीर सेनापति वा राजा (सहसानः) शत्रुओं को पराजित करता हुआ, और (ओजः) बल, पराक्रम प्रकट करता हुआ (वज्रम् इष्णन्) शस्त्रास्त्र बल को प्रेरित करता हुआ (गिरिम्) पर्वत तुल्य अचल और मेघ तुल्य शस्त्रास्त्रवर्षी, एवं स्व प्रजा के धनापहारी दुष्ट शत्रु को (शवसा) बल और ज्ञान के द्वारा (भिनत्) भेद नीति से तोड़ फोड़ डाले। (मन्दसानः) स्वयं खूब प्रसन्न रहकर (वज्रेण) शस्त्रास्त्र बल से (वृत्रं) बाधक, नगररोधी और बढ़ते हुए शत्रु को (वधीत्) विनाश करे, दण्डित करे, और (हतवृष्णीः) मारे गये बलवान् पुरुषों के (आपः) रुधर प्रवाह और जलों के समान भय कातर सैन्य भी (जवसा) वेग से (सरन्) भागें।

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (स्वर्यं) आकाश से गिरने योग्य जल को और (सुवज्रम्) उत्तम विद्युत् को जो (सदसः अनपच्युतम् न भूम) अपने मेघ से न च्युत हो, और महान् सामर्थ्य युक्त हो उसको उत्पन्न करता है वह सूर्य स्वयं (द्यौः) तेजोयुक्त, (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान्

(इन्द्रस्य कर्त्ता) मेघ के जल विदारण समर्थ विद्युत् का उत्पादक और (सु अपस्तमः) उत्तम जलों वा कर्मों को उत्पन्न करने वाला और (जनिता) सब ओषधि अन्नादि का उत्पादक (मन्यत) माना जाता है उसी प्रकार हे राजन् ! (यः) जो पुरुष वा सेनानायक (स्वर्यं) शत्रुओं को संताप और घोर शब्द को उत्पन्न करने वाले (ईं) इस (सदसः) अपने स्थान वा पद से (अनपच्युतम्) न फिसलने वाले सुदृढ़, (सुवज्रम्) उत्तम शस्त्रास्त्र और सैन्य बल को (भूम) बहुत मात्रा में (जजान) उत्पन्न करता है (सः) वह (सुवीरः) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, (द्यौः) तेजस्वी, भूलोक (ते इन्द्रस्य) तुझ ऐश्वर्यवान् राजा का (जनिता) उत्पादक (मन्यत) माना जाने योग्य है । वही (कर्त्ता) कार्य करने में समर्थ (सु अपस्तमः) उत्तम कर्मों का करने वाला भी (भूत्) हो । हम भी उसके (सदसः न भूम) सभासद् के समान हों ।

य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) विद्युत् वा सूर्य (एकः इत् भूम प्रच्यावयति) अकेला ही बहुत जल को नीचे गिरा देता है और (कृष्टीनां राजा) जलादि खींचने वाले किरणों और लोकों को आकर्षण करने वाले बलों का (राजा) स्वामी है उसी प्रकार (यः) जो (एक इत्) अकेला ही (भूम) बहुत से शत्रु दल को (प्र च्यावयति) गिराता, संग्रामभूमि से भगा देता है और (भूम प्र च्यावयति) बहुत से राज्यों को सञ्चालित करता है और जो (कृष्टीनां) कर्षणशील कृषक प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, पीड़न करने वाले सैन्यों के बीच (राजा) उनका स्वामी (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित है वही (इन्द्रः) सचमुच 'इन्द्र' अर्थात् अन्न का देने वाला और शत्रुओं को विदारण करने में समर्थ सेनापति है । (विश्वे) समस्त लोक (सत्यम्) सत्याचरणयुक्त, न्यायशील (एनं)

इसको पाकर ही (अनु मदन्ति) उसके साथ हर्षित होते हैं और (मघोनः) ऐश्वर्यवान् (गृणतः) उत्तम उपदेष्टा (देवस्य) दानशील पुरुष के ही (रातिम्) दान को प्राप्त करके ही सब प्रसन्न होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः॥

स॒त्रा सोमा॑ अभवन्न॒स्य विश्वे॑ स॒त्रा मदा॑सो बृह॒तो मदि॑ष्ठाः।
स॒त्राभ॑वो॒ वसु॑पति॒र्वसू॑नां॒ दत्रे॒ विश्वा॑ अधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः॥६॥

भा०—(अस्य) इस राजा वा विद्वान् पुरुष के (सोमाः) पुत्र वा शिष्य एवं अधीन प्रेरित वा अभिषिक्त पदाधिकारी जन सब (सत्रा) सत्य व्यवहार से युक्त, ईमानदार (अभवन्) हों। और (विश्वे) सब प्रजाजन (सत्रा) एक साथ वा सत्य व्यवहार से (मदासः) स्वयं हर्षित होने वाले (बृहतः) बड़े (मदिष्ठाः) खूब आनन्द प्रसन्न हों। (वसूनां) राष्ट्र में वा लोक में बसी प्रजाओं के बीच में (वसुपतिः) सब जीवों और ऐश्वर्यों का स्वामी पुरुष भी (सत्रा अभवः) सत्य व्यवहारवान् हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् अन्न धनों के देनेहारे और शत्रुओं के नाशक राजन्! तू (दत्रे) दान योग्य ऐश्वर्य वा अन्न सुवर्णादि के प्राप्त करने के लिये (विश्वाः) सब प्रकार की (कृष्टीः) कृषि प्रधान प्रजाओं और शत्रुपीड़क सेनाओं को भी (अधिथाः) पालन पोषण कर।

त्वमध॑ प्रथ॒मं जाय॑मा॒नोऽमे॒ विश्वा॑ अधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः।
त्वं प्रति॑ प्र॒वत॑ आ॒शया॑न॒महिं॒ वज्रे॑ण मघव॒न्वि वृ॑श्चः॥७॥

भा०—हे राजन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (जायमानः) अपने बल पराक्रमों द्वारा प्रकट होकर सूर्य के तुल्य (प्रथमम्) सबसे प्रथम (अमे) भय के अवसर पर अथवा (विश्वाः कृष्टीः) समस्त प्रजाओं और सेनाओं का (अमे) गृह में पुत्रों को गृहपति के समान (अधिथाः) धारण पोषण कर (प्रवतः प्रति आशयानम्) उत्तम वा निम्न देशों में जाने वाले (अहिम्) मेघ को सूर्य के समान सर्पवत्

कुटिल वा मुकावले पर आकर आघात करने वाले शत्रु को हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! पूज्य! तू (वज्रेण विवृश्चः) विविध प्रकार से वृक्ष को कुठार के समान शस्त्रास्त्र बल से काट डाल।

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥

भा०—हे प्रजावर्ग! तुम लोग (सत्राहणं) सत्य, न्याय से असत्य अन्यायाचरण को नाश करने वाले, (दधृषिं) दुष्टों को गर्वरहित करने वाले, (तुम्रम्) स्व-सेना को अपने अधीन और पर सेना को परे चलाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (महाम्) बड़े (अपारं) समुद्र के समान अपार, गम्भीर एवं अपरिमित बल विद्या से युक्त, (वृषभं) बलवान् (सुवज्रम्) उत्तम शस्त्रास्त्र से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त करें। (यः) जो (वृत्रं) अपने बढ़ते शत्रु को (हन्ता) दण्ड देता, (उत) और (वाजंसनिता) ऐश्वर्य का दान और यथायोग्य विभाग करता, और (सुराधाः) उत्तम धन से युक्त होकर (मघानि दाता) उत्तम धनों को प्रदान करता है वही (मघवा) मघवा, सच्चा ऐश्वर्यवान् है।

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥

भा०—(अयं) यह (वृतः) मुख्य पद पर वरण किया जाकर (समीचीः) एक साथ आक्रमण करने वाली शत्रु सेनाओं को भी (एकः) अकेला ही (चातयते) विनाश करे। और यह विद्वान् आचार्य, (समीचीः) समान भाव से प्राप्त होने वाली (वृतः) गुरु को घेर बैठने वाली शिष्य पंक्तियों को (चातयते) शिक्षित करे। (यः) जो वीर पुरुष (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (एकः) अकेला, अद्वितीय पराक्रमी (आजिषु) संग्रामों में (शृण्वे) सुना जाता है। (अयं वाजं भरति) वह ज्ञान, धनैश्वर्य को

धारण करता और अन्यों तक पहुंचाता है। (यं सनोति) जिसको सब कोई प्रजाजन कर, दान उपहार रूप में प्रदान करता है, (अस्य सख्ये) उसके मैत्रीभाव में हम (प्रियासः) प्रिय होकर (स्याम) रहें।

अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् १०।२२

भा०—(अध) और (अयं जयन्) यह विजय करता हुआ (उत) और (अयम् घ्नन्) शत्रुओं को दण्ड देता हुआ (शृण्वे) प्रख्यात हो। (उत) और (अयम् युधा) यह युद्ध द्वारा (गाः) भूमियों, उनकी निवासी प्रजाओं को भी (युधागाः इव) प्रहार से पशुओं के समान (प्र कृणुते) अपने वश करके उनको उत्तम बनावे (यदा इन्द्रः) जब ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (सत्यं) सत्य, न्याय के अनुकूल रहकर (मन्युम्) क्रोध (कृणुते) प्रकट करता है तब (दृळहं विश्वे) दृढ़, विश्व भी (अस्मात्) इससे (भयते) भय करता और (एजत्) कांपता है। इति द्वाविंशो वर्गः॥

समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः॥११॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनानायक (गाः सम् अजयत्) समस्त भूमियों को एक साथ विजय कर लेता है (हिरण्या सम् अजयत्) वह समस्त सुवर्णादि धनों को भी विजय करता है वह (अश्विया) अश्वों से युक्त सेनाओं को (सम् अजयत्) अच्छी प्रकार विजय करता है। और वह (पूर्वीः) अपने से पूर्व विद्यमान प्रजाओं को भी विजय करता है, वह (नृतमः) सब नायकों में श्रेष्ठ नायकोत्तम (एभिः शाकैः नृभिः) इन शक्तिशाली नायकों द्वारा (अस्य रायः) इस समस्त ऐश्वर्य का (विभक्ता) विभाग करने और विविध रूपों में सेवन करने वाला और (वस्वः) समस्त बसे राष्ट्र और ऐश्वर्य का (सम्भरश्च) अच्छी प्रकार धारण पोषण करने हारा होता है।

कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२॥

भा०—(यः) जो (मुहुकैः) वार २ कार्य करते हैं ऐसे सहकारी पुरुषों सहित (अस्य) इस राष्ट्र के (शुष्मं) शत्रु शोषक बल को (इयर्त्ति) सञ्चालित करता और (स्तनयद्भिः) गर्जनाशील (अभ्रैः) मेघों से (जूतः) अधिक वेगवान् (वातः) वायु के तुल्य है। (यः) जो (जज्ञान) स्वयं उत्पन्न होता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (मातुः) माता के तुल्य इस पृथ्वी का (कियत् स्वित् अधि एति) कितना अंश प्राप्त करे और (पितुः) पालन करने वाले और (जनितुः) अन्नादि उत्पन्न करने वाले का (कियत्) कितना अंश हो यह विवेक करने योग्य बात है। (२) परमेश्वर पक्ष में—(यः जजान) जो जगत् को उत्पन्न करता है और (मुहुकैः) वार वार जगत् को वनाने वाले विकृतियुक्त कारणों से इस जगत् के बल को चलाता है। वह (इन्द्रः) इन्द्र परमेश्वर (मातुः) प्रकृति के और (पितुः) पालक सूर्य और (जनितुः) प्रकट कारक वायु वा जल के (कियत् स्वित् अधि एति) कितना २ अंश प्राप्त है। यह नहीं कहा जा सकता है।

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥

भा०—जो (मघवा) उत्तम धन से सम्पन्न होकर (समोहं) मोह से युक्त (रेणुं) किये अपराध को (इयर्त्ति) दूर करता है, वही तू (क्षियन्तं) गृह में रहने वाले को (अक्षियन्तं कृणोति) निवास रहित कर देता है, वह (अशिनमान् द्यौः इवः) विद्युत् से युक्त या सूर्य तेज के तुल्य (विभञ्जनुः) शत्रुओं के बल को तोड़ डालने वाला (उत) और (स्तोतारं) स्तुतिशील, विद्वान् उपदेष्टा को (वसौ) धनैश्वर्य में (धात्) स्थापित करे।

अयं च॒क्रमि॑षण॒त्सूर्य॑स्य॒ न्येत॑शं रीरमत्ससृमा॒णम् ।
आ कृ॒ष्ण ईं॑ जुहुरा॒णो जि॑घर्ति त्व॒चो बु॒ध्ने रज॑सो अ॒स्य योनौ॑ १४

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्यवान् पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (चक्रम्) राज्य-चक्र वा सैन्य-चक्र को (इषणत्) चलावे । वह (ससृमाणं) वेग से जाने वाले (एतशं) अश्व सैन्य को (रीरमत्) युद्धादि क्रीड़ा का अभ्यास करावे । (अस्य रजसः) इस लोक के (त्वचः) त्वचा के समान संवरण करने वाले और वाणी या तेज के समान प्रकाशित करने वाले सामर्थ्य के (बुध्ने) आश्रय रूप (योनौ) स्थान वा पद में स्थित होकर अन्तरिक्ष में स्थित (कृष्णः) श्याम वर्ण का मेघ वा सूर्य रश्मियों द्वारा जलाकर्षक जिस प्रकार (जुहुराणः) वक्रगति से चलता हुआ (ईं जिघर्ति) जल को सर्वत्र सेचन करता है उसी प्रकार राजा (कृष्णः) सबका चित्त आकर्षण करता हुआ (जुहुराणः) वक्रगति से प्रत्यक्ष रूप से चेष्टा करता हुआ (ईं जिघर्ति) इसको सर्वत्र ऐश्वर्य से सेचन करे ।

असि॑क्न्यां॒ यज॑मानो॒ न होता॑ ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार (यजमानः न) यजमान दानशील वा ईश्वराराधन करने वाला पुरुष (असिक्न्यां) कृष्ण रात्रि में भी (होता) परमेश्वर का आह्वान करता है, उसका भजन करता है । उसी प्रकार राजा भी (यजमानः) प्रजाजन को अभय, ऐश्वर्यादि प्रदान करता हुआ (असिक्न्यां) रात्रिकाल में भी (होता) राष्ट्र को सुख देता और दुष्टों को दण्ड देता है । इसी प्रकार दानशील राजा (असिक्न्याम्) न सिंचने वाली भूमि में भी मेघ के तुल्य (होता) दानशील, जलादि के सेचन का प्रबन्धक हो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

ग॒व्यन्त॒ इन्द्रं॑ स॒ख्याय॒ विप्रा॑ अश्वा॒यन्तो॒ वृष॑णं वा॒जय॑न्तः ।
ज॒नी॒यन्तो॑ जनि॒दाम॒क्षि॑तोतिमा च्या॑वयामोऽव॒ते न कोश॑म् ॥१६॥

भा०—(अवते न कोशम्) कूप में से जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार कोश अर्थात् जल निकालने वाले डोल को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (गव्यन्तः) गौओं, वाणियों, ज्ञानरश्मियों की इच्छा करते हुए, (अश्वायन्तः) अश्वों की कामना करते हुए और (वाजयन्तः) अन्न, बल, ऐश्वर्य और ज्ञान की कामना करते हुए (जनीयन्तः) अपना उत्तम जन्म और सन्तानजनक स्त्री की कामना करते हुए हम (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त, (वृषणं) बलवान्, मेघवत् सुखों के वर्षक, (जनिदाम) जन्मदाता एवं अपत्योत्पादक वधू के देने वाले और (अक्षितोतिम्) अक्षय रक्षा करने वाले रक्षक पुरुष को (सख्याय) मित्रभाव के लिये (आच्यावयामः) प्राप्त करें और अन्यों को प्राप्त करावें।

त्राता नो बोधि दद्दशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७॥

भा०—वह परमेश्वर राजा वा आचार्य (नः) हमारा (त्राता) रक्षक, (दद्दशानः) देखने हारा, साक्षी, (आपिः) बन्धु, (अभिख्याता) साक्षात् उपदेष्टा, (सोम्यानाम्) सौम्य गुणों से युक्त, उत्तम शिष्यों वा पुत्रों को (मर्डिता) सुख देने वाला, (सखा) सुहृत्, (पिता) पालक, (पितृणाम्) हमारे पालन करने वाले माता पिता, ससुर, चाचा आदि पूज्यों में भी सबसे (पितृतमः) अधिक बड़ा पूज्य पिता, (कर्त्ता) सबको बनाने वाला, (वयोधाः) जीवन, ज्ञान बल का देने वाला है। वह (उशते) कामना करने वाले को (लोकम्) उत्तम लोक, ज्ञान-दर्शन (बोधि) बतलावे। गुरु आत्मा का उपदेश करे, राजा लोक, प्रजाजन की खबर रक्खे। परमेश्वर ज्ञान-आलोक दे।

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयोधाः।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक आचार्य ! तू (सखीयता) अपना उत्तम मित्र चाहने वाले लोगों का (अविता) रक्षक और उत्तम ज्ञान से तृप्त करने वाला (सखा) परम मित्र (बोधि) जाना जाय । तू (स्तुवते) स्तुति प्रार्थना करने वाले को (गृणानः) उपदेश करता हुआ (वयः) ज्ञान, बल (धाः) प्रदान कर । (वयम्) हम लोग (आभिः) इन (शमीभिः) उत्तम शान्तिदायक कर्मों द्वारा (महयन्तः) तेरी पूजा करते हुए (सबाधः) दुःखी एवं विघ्न बाधा से पीड़ित होकर (ते हि) तुझे ही (आचक्रम) सदा बुलावें या तू उनकी (सबाधः) वाधा सहित रहकर भी (बोधि) जान, उनकी ख़बर रख ।

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥

भा०—(यत् ह) जो (एकः) अकेला, अद्वितीय, ही (अप्रतीनि) बे मुकाबले के (भूरीणि) बहुत से (वृत्रा) मेघों के समान नाना विघ्नों को सूर्यवत् (हन्ति) विनाश करता है वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (इन्द्रः) 'इन्द्र' रूप से (स्तुतः) स्तुति करने योग्य है । (जरिता) स्तुति करने वाला विद्वान् (अस्य प्रियः) इसको सदा प्रिय है । और (यस्य शर्मन्) जिसके शरण में रहने वाले को (नकि देवाः) न विद्वान् और (न मर्त्ताः) न साधारण मनुष्य ही वारण करते हैं । राजप्रिय पुरुष के तुल्य भगवत्प्रिय मनुष्य भी सर्वप्रिय हो जाता है ।

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, अज्ञान नाशक आचार्य और प्रभु परमेश्वर (एव) ही (नः) हमारा (मघवा) ऐश्वर्यवान् , पूज्य स्वामी

है। वह (चर्षणीधृत्) सब मनुष्यों को धारण करने वाला (अनर्वा) प्रतिपक्षी अश्वादि से रहित, अपराधी, (विरप्शी) महान् ज्ञानोपदेष्टा होकर (नः) हमें (सत्या करत्) सत्य ज्ञान और अविनश्वर फल प्रदान करे। हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! (त्वं जनुषां) तू जन्म लेने वालों में (राजा) सबका राजा है। तू (अस्मे) हमें और (जरित्रे) स्तुति करने वाले प्रार्थी को भी (माहिनं) बड़ा भारी (श्रवः) अन्न, ज्ञान आदि (अधि धेहि) प्रदान कर, हमारे लिये इन पदार्थों को रख।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥२१॥२४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १६। मं० २१॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१८]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रादिती देवते॥ छन्दः—१, ८, १२ त्रिष्टुप्। ५, ६, ७, ९, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ३, ४ भुरिक् पंक्तिः। १३ स्वराट् पंक्तिः॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः॥१॥

भा०—(अयं) यह (पन्थाः) धर्म-मार्ग (पुराणः) सनातन से (अनुवित्तः) गुरु-परम्परा और वंश-परम्परा द्वारा प्राप्त किया जाता है, (यतः) जिससे (देवाः) नाना भोगों की वा एक दूसरे की कामना करने वाले सामान्य स्त्री पुरुष और ज्ञान प्रकाशक, ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष भी (उत् अजायन्त) उत्पन्न होते रहते हैं और उन्नति को प्राप्त करते रहते हैं। (प्रवृद्धः) बहुत उन्नत पद तक बढ़ा हुआ पुरुष भी (अतः चित्) इसी परम्परा प्राप्त धर्म मार्ग से ही (आ जनिषीष्ट) उत्पन्न होता है इसलिये (अमुया) इस मार्ग से चलते हुए (मातरम्) अपने को उत्पन्न

करने वाली माता वा अपने को ज्ञान देने वाले गुरुरूप माता को (पत्तवे) पहुंचने अर्थात् अपमानित करने का हे पुरुष! (मा कः) यत्न मत कर अर्थात् पुत्रादि उत्पादक परस्पर स्त्री पुरुष के सामान्य धर्म द्वारा माता से सन्तान उत्पन्न करने की चेष्टा न करे। इसी प्रकार गुरु को अपना शिष्यादि बनाने वा अपमान करने का यत्न न करे। बहुत बड़ा होकर भी उसके प्रति विनयशील ही होकर रहे। (२) इसी प्रकार (देवाः) विजिगीषु लोग इसी पुरातन युद्ध मार्ग से उन्नत सिंहासन वा राज्यपद को प्राप्त होते हैं बड़ा आदमी भी इसी मार्ग से होता है, पर तो भी इस विग्रह मार्ग से अपने को राजा बनाने वाली (मातरम्) प्रजा को पददलित करने का यत्न न करे।

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै॥ २॥

भा०—(अहम्) मैं जीव (अतः) इस पूर्वोक्त स्त्री पुरुषों के परस्पर संग द्वारा होने वाले मैथुन धर्म से उत्पन्न होने, जन्म लेने वा मरने के मार्ग से (न निर् अय) नहीं निकल सकता। (तिरश्चता) प्राप्त हुए वा तिर्यक् मार्ग से मनुष्योत्तर पशु पक्षी रूप से उत्पन्न होकर भी (एतत्) यह जन्म जीवन मार्ग (दुर्गहा) बड़े दुःख से, कष्ट से प्राप्त होने और बीतने योग्य होता है। इसलिये मैं चाहता हूं कि (पार्श्वात्) एक पासे से (निः गमानि) निकल जाऊं। अर्थात् जन्म मरण के तांते को छोड़कर किनारे हो जाऊं। चाहता हूं कि (मे) मुझे (बहूनि) बहुत से (कर्त्वानि) कर्म (अकृता) नहीं करने पड़ें। वे विना किये ही रह जायं। इस जीवन में (त्वेन युध्यै) किससे लड़ें और (त्वेन) किस एक से (सं पृच्छै) भली प्रकार पूछें। जीवन-मार्ग के संग्राम में परस्पर युद्ध और पूछताछ लगी है। किससे लड़ें किससे विनयानुनय करें यह सब झमेला है। अच्छा है कि इस संसार-मार्ग के किनारे हो जायं। (२) राज्य

पक्ष में—मैं इस मार्ग से न जाऊं। तिरछे मार्ग से कुटिलतापूर्वक जाने से यह मार्ग या राष्ट्र दुर्ग्राह्य है, वश में नहीं आ सकता। इस मार्ग में वहुत से न करने योग्य भी काम करने पड़ते हैं और एक से लड़े एक से, झुके एक से पूछे, आज्ञा ले इत्यादि का वड़ा प्रतिवंध है। क्या करें? राज्यों की सीमा लांघते समय या तो पूछो या लड़कर घुसो, चाहता हूं कि इस युद्ध-मार्ग से किनारे से ही निकल जाऊं। जहां तक हो सन्धि से ही काम निकल जावे।

प॒रा॒य॒तीं मा॒तर॒मन्व॑चष्ट॒ न नानु॑ गा॒न्यनु॒ नू ग॑मानि।
त्वष्टु॑र्गृ॒हे अ॑पिब॒त्सोम॒मिन्द्रः॑ शत॒धन्यं॑ च॒म्वोः॑ सु॒तस्य॑ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (परायतीं) परलोक जाती हुई (मातरम् अनु अचष्ट) माता को देख कर मोहवश कहता है कि (न न अनुगानि) न मैं इसके पीछे ही चला जाऊं, न? अर्थात् चला ही जाऊं (अनु नु गमानि) क्यों चला जाऊं? न जाऊं। इस प्रकार तर्क से निर्धारण करके वह बाद में (त्वष्टुः गृहे) ज्ञान प्रकाशक गुरु और उत्पादक पिता के घर में (चम्वोः सुतस्य) माता पिता व पुत्र पद पर रहकर (शतधन्यं सोमम्) सैकड़ों धनों से युक्त ऐश्वर्य का (अपिवत्) भोग करता है। उसी प्रकार (इन्द्रः) यह आत्मा जीव (परायतीम्) दूर जाती हुई (मात-रम्) जगत् निर्माण करने वाली माता, प्रकृति को (अनु अचष्ट) विवेक पूर्वक देखे, (न न अनुगानि) क्यों न इसके पीछे अनुगमन करूं (नु अनुगानि) और क्यों इसके पीछे जाय, क्यों प्रकृति वन्धन में पडूं और क्यों न पडूं, ऐसा विवेक प्राप्त करके यह आत्मा (त्वष्टा) संसार के निर्माता प्रभु परमेश्वर के (गृहे) शरण में जाकर (चम्वोः सुतस्य) प्राण और अपान दोनों के वीच में उत्पन्न (सोमम्) अध्यात्म रस का पान करे। राज्यपक्ष में—(परायतीम् मातरम् अनु अचष्ट) राजा अपने से परे जाती, विमुख मातृ तुल्य राष्ट्रशक्ति को भी अनुकूल करके कहे (न न

अनुगानि) तुम्हारे पीछे नहीं चलता ऐसा नहीं (नु अनुगानि) तुम्हारे कहे का अनुसरण ही करता हूं। इस प्रकार राष्ट्र के प्रजावर्ग का अनुनय करके (चम्वोः) स्व पक्ष और पर पक्ष दोनों सेनाओं के बीच (सुतस्य) संघर्ष से उत्पन्न राज्य के (शतधन्यं) सैकड़ों धनों से युक्त (सोमम्) ऐश्वर्य को (त्वष्टुः) तेजस्वी सूर्य के पद पर विराज कर (अपिबत्) उपभोग करे।

किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥

भा०—(यं) जिस (सहस्रं) सर्वातिशय बलशाली आत्मा को मूल प्रकृति (मासः) वर्ष के १२ मासों और (पूर्वी शरदः) पुरातन सब वर्षों प्रकृति माता अथवा स्वयं (मासः) जगत् को बनाने वाली और (पूर्वीः शरदः च) सब पूर्व पूर्व विद्यमान से नाश कारिणी शक्तियां (जभार) धारण करती हैं (सः) वह परम आत्मा (किम्) क्या २ (ऋधक्) विभूति युक्त महान् कार्य (कृणवत्) किया करता है। (अस्य) इसके (प्रतिमानं) मुकाबले का (जातेषु अन्तः) उत्पन्न हुए पदार्थों में से (नहि नु अस्ति) कोई नहीं है (उत) और (ये जनित्वाः) जो भविष्य में उत्पन्न होंगे उनमें से भी इसके बराबरी का कोई नहीं है। (२) राष्ट्रपक्ष में—(यं सहस्रं) जिस शत्रु पराजयकारी बलवान् पुरुष को (मासः) राष्ट्र के निर्माण करने वाली प्रजाएं और (पूर्वीः शरदः) पूर्व विद्यमान हिंसाकारिणी सेनाएं चन्द्र और सूर्य को मास और ऋतुओं के तुल्य (जभार) धारण करती हैं। (किं स ऋधक् कृणवत्) वह क्या बड़े २ कार्य करे कि अभी तक हुए और आगे होने वालों में भी उसकी बराबरी का कोई नहीं हो।

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम्।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः॥५॥२५

भा०—(माता) जगत् को निर्माण करने वाली प्रकृति (इन्द्रं) उस परम दर्शनीय महान् आत्मा को (अवद्यम् इव) वाणी से न कहने योग्य और (वीर्येण) समस्त संसार को विविध प्रकार से गति देने में समर्थ बल से (नि ऋष्टं) पूर्ण (मन्यमाना) मानती हुई (गुहाकः) उसके अपने भीतर अदृश्य रूप से धारण करती (अथ) और अनन्तर वह परमेश्वर (स्वयं) स्व अपने ही महान् सामर्थ्य से (अत्कं वसानः) तेज को धारण करता हुआ, तेजःस्वरूप सूर्य के तुल्य (उत् अस्थात्) सबसे ऊपर विद्यमान रहता है। और विश्व रूप से (जायमानः) प्रकट होता हुआ (रोदसी आ अपृणात्) आकाश और भूमि दोनों को पूर्ण करता और पालता है। (२) मानकारिणी माता बल से युक्त पुत्र के तुल्य यह प्रजा भी (अवद्यं) प्रथम अवन्दनीय सा समझ कर उसको गर्भ के तुल्य अपने भीतर धारण किये रहती है। वह अपने ही तेज को धारण करता हुआ सूर्य के तुल्य उदय होता और (रोदसी) स्व और पर दोनों को पूर्ण करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोशमानाः । एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥

भा०—(ऋतावरीः इव) जिस प्रकार जल से भरी हुई नदियां (अलला भवन्तीः) अव्यक्त ध्वनि से कलकल करती हुई जाती हैं और (ऋतावरीः इव) जिस प्रकार उषाएं (अलला भवन्तीः) पक्षियों की अव्यक्त ध्वनि करती हुई (अर्षन्ति) आती हैं उसी प्रकार (एतत्) ये (ऋतावरीः) 'ऋत' सत्य कारण परमेश्वर की शक्ति को धारण करने वाली सब विकृति में (अलला भवन्तीः) अति मनोहर ध्वनि करती हुई वा अद्भुत आश्चर्यजनक होती हुई (अर्षन्ति) प्रकट होती हैं, और (संक्रोशमानाः) बड़े प्रकट शब्दों से कुछ पुकार रही हैं। हे विद्वान् पुरुष (एताः वि पृच्छ) इनसे तू विशेष रूप से पूछ कि ये (इदं किम्

भनन्ति) यह क्या कह रही हैं। (कम्) क्या (आपः) जलधाराएं (परिधिं) अपने को धारण करने वाले मेघ वा पर्वत को स्वयं (रुजन्ति) तोड़ कर बाहर निकलती हैं ? और क्या (आपः) व्यापक उषाएं अपने धारक (अद्रिं) मेघ तुल्य अन्धकार को स्वयं तोड़ती हैं। उसी प्रकार क्या (आपः) ये समस्त प्राण एवं प्राणी गण (अद्रिं) पर्वतवत् अभेद्य (परिधिम्) अपने धारक इस स्थूल देह या जड़ प्रकृति तत्व को स्वयं (रुजन्ति) पीड़ित एवं भग्न करते हैं। नहीं, जिस प्रकार मेघ से जल-धाराओं को बहा देने में विद्युत्, उषाओं को प्रकट करने में सूर्य कारण है उसी प्रकार इन लोकों, प्राणों और प्राणियों के जड़ प्रकृति से उत्पन्न होने में परमात्मा और आत्मा चेतन कारण हैं। ये सब यही बात बतला रहे हैं। वही चेतन 'इन्द्र' है। (२) राज्य में (ऋतावरीः) धन के बल पर चलने वाली अव्यक्त शब्द करने वाली सेनाएं (संक्रोशमानाः) शत्रु-पक्ष को ललकारती हुई जाती हैं। क्या बतलाती हैं, क्या वे (आपः) जल धारावत् जाने वाली प्रजाएं और सेनाएं स्वयं (अद्रिं परिधिं) पर्वतवत् तुंग परिकोट के तुल्य शत्रु बल या सर्वतोरक्षक (अद्रिं = वज्रं) शस्त्र बल को तोड़ सकती हैं ! नहीं, केवल सेनापति ही तोड़ सकता है।

किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्रस्य) महान् जगत् के द्रष्टा परमेश्वर के विषय में (निविदः) वेद की वाणियां (किम् उ भनन्त) क्या कहती हैं ? यही कि (आपः) प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म परमाणु (अस्मै) इस परमेश्वर के (अवद्यं) न कथन करने योग्य, अलौकिक, अप्रतर्क्य सामर्थ्य को (दिधिषन्त) धारण करते हैं। (मम पुत्रः) मुझ प्रकृति का पुत्र अर्थात् मुझ से प्रकट होने वाला सब जीवों का त्राता परमेश्वर, (महता वधेन) बड़े भारी गतिशील शक्ति से (वृत्रं)

सबको आवरण करने वाले कारण रूप 'तमस् वा सलिल' को (जघन्वान्) मेघ को विद्युत् के तुल्य ताड़ित करता हुआ, प्रेरित करता हुआ (सिन्धून्) जल प्रवाहों के तुल्य अनवरत वेग से जाने वाले रजः प्रवाहों, निहारिका-नदियों को (असृजत्) रचता और चलाता है। (२) राज्य पक्ष में—इस राजा के समान विशेष ज्ञानी लोग क्या कहते हैं ? इसके अकथनीय रूप को (आपः) आप्त प्रजाएं और विद्वान्‌गण, मल को जलों के तुल्य स्वयं अपने में धारण करें। और (वृत्रं) बढ़ते शत्रुओं को प्रजा-माता का पुत्र सेनापति बड़े भारी शस्त्र बल से मार कर (सिन्धून्) वेग युक्त सैन्य दलों, प्रजा पुरुषों को सन्मार्ग में चलावे।

ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (ममत् चन युवतिः) हर्षयुक्त युवती स्त्री के तुल्य प्रकृति तुझ से मिलती हुई या जड़ होने से पृथक् रहती हुई भी (परा आस) तुझ चेतन ब्रह्म से बहुत दूर, भिन्न ही रहती है। (कु-सवा) कुत्सित, निन्दित, दुःख से पूर्ण जगत्-सर्ग को उत्पन्न करने वाली वह प्रकृति (ममत् चन) हर्षयुक्त स्त्री के तुल्य ही (त्वा जगार) तुझे ही मानो निगले हुए है, अव्यक्त रूप में तुझे अपने भीतर छिपाए हुए है। (आपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु भी मानो (ममत् चन) हर्षित होकर ही (शिशवे) शिशु को माताओं के तुल्य सर्वव्यापक तुझको ही (ममृड्युः) प्रसन्न करते हैं। और तू (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा भी (ममत् चित्) हर्षयुक्त पुरुष के तुल्य (सहसा) अपने परम, अतिशायी बल से (उत् अतिष्ठत्) सबके ऊपर विद्यमान है। राजा को उपदेश है। (१) प्रमत्त स्त्री और मदयुक्त प्रजागण तुझको कर्त्तव्य से पराङ्मुख कर दे सकती हैं और (कुषवा) कुत्सित ऐश्वर्य या प्रेरणा युक्त, मद भरी स्त्री वा प्रजा भी (त्वा जगार) तुझे निगल जाय, नष्ट

कर दे। इसलिये उनसे सावधान रह। (२) हर्षयुक्त होते हुए आप्त जन तुझे प्रसन्न करें। तू हर्षयुक्त होकर बल पूर्वक उच्चासन पर विराज।

ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन॥९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ममत् चन) मदयुक्त होकर ही (व्यंसः) विविध स्कन्धों नाना सैन्य कटकों से बलशाली होकर कोई शत्रु (विविधान्) विविध प्रकार से ताड़ता हुआ यदि (ते) तेरे (हनू) हनन करने वाली दायें बायें दोनों ओर की सेनाओं को (अप जघान) विनाश करे तब तू (निविद्धः) खूब ताड़ित होकर उससे (उत्तरः) अधिक बलशाली (बभूवान्) होकर (दासस्य) प्रजा के नाश करने वाले उसके (शिरः) उत्तम अंग मुख्य भाग को (वधेन) शस्त्र बल से (सं पिणक्) अच्छी प्रकार पीस डाल।

गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रं।
अरीळहं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१०॥

भा०—(गृष्टिः) गौ जिस प्रकार (वत्सं वृषभं ससूव) बछड़े और बलवान् बैल को जन्म देती है उसी प्रकार (गृष्टिः) सबको उपदेश करने वाली वेद वाणी (इन्द्रं) उस परमेश्वर को (स्थविरं) सबसे महान्, स्थिर ध्रुव (तवागाम्) सर्वशक्तिमान् (अनाधृष्यम्) सर्वविजयी, (तुम्रम्) सबका प्रेरक (अरीळहं) अविनाशी, (वत्सं) सबमें वसने वाले, (स्वयं गातुं) स्वयं अपने बल से व्यापने वाले (तन्वे) विस्तृत संसार को प्रकट करने के लिये (इच्छमानं) इच्छा रूप संकल्प करने वाले प्रभु को (चरथाय) कर्म फल प्रदान करने के लिये (ससूव) सर्वेश्वर रूप से बतलाती है। (२) और उक्त विशेषणों से युक्त (तन्वे) विस्तृत राष्ट्र के लिये (गातुम्) पृथिवी की कामना करने वाले राजा को

(चरथाय) सर्वत्र विचरने के लिये (ससूव) ऐश्वर्यवान् पदाभिषिक्त करे ।

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥

भा०—और (माता) सबको उत्पन्न करने वाली यह माता पृथिवी (महिषम्) महान् ऐश्वर्य के भोक्ता पुरुष को (अनु अवेनत्) सदा अनुकूल होकर कामना करे, प्रार्थी हो (त्वा) तुझको देखकर हे (पुत्र) दुखों से त्राण करने वाले राजन् ! (अमीदेवाः) ये सब विजयेच्छुक वीर लोग (त्वा) तुझे ही (जहति) प्राप्त होते हैं । (अथ) अनन्तर (वृत्रम्) बढ़ते हुए शत्रु को (हनिष्यन्) मारने की इच्छा करता हुआ, (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष मित्रगण को (अब्रवीत्) आज्ञा दे ! हे (सखे) मित्रगण ! हे (विष्णो) व्यापक शक्ति से युक्त ! तू (वितरं) अच्छी प्रकार (वि क्रमस्व) विक्रम कर । (२) इसी प्रकार माता 'प्रकृति' महान् उस प्रभु को चाहती है ये सब 'देव' पृथिवी, प्राण आदि उस आत्मा से भिन्न होकर प्रकट होते हैं । प्रभु जगत् के आवरक अव्यक्त को गति देता हुआ देहप्रवेशी जीव को उपदेश देता है कि तू विविध योनिमार्ग में संक्रमण कर । (३) माता अपने पूज्य गुरुभक्त पुत्र को चाहती है और कहती है कि यदि तू न पढ़ेगा तो विद्वान् जन तुझे त्याग देंगे । वह अज्ञान का नाश करना चाहता हुआ, आचार्य को बोले—हे सुहृद् विद्याव्यापक आचार्य ! तू (वितरं) विशेष रूप से दुःखतारक ज्ञान प्रारम्भ कर, ब्रह्म ज्ञान दे ।

कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ऐसा तेरा कौनसा शत्रु है (यत्) जो (पादगृह्य) चरणों से पकड़ कर (ते पितरं) तेरे पालक पिता

को (प्र अक्षिणाः) अच्छी प्रकार नाश कर सके। और (कः) कौन है जो (ते मातरम्) तेरी माता को (विधवाम् अचक्रत्) विधवा, पतिहीन कर सके। (चरन्तं) विहार करते हुए और (शयुं त्वाम्) शयन करते हुए भी (त्वाम्) तुझको (कः अजिघांसत्) कौन नाश कर सकता है। और (ते) तेरे (मार्डीके) सुख देने वाले राज्य में (कः देवः) तुझसे दूसरा कौन (देवः) राज्याभिलाषी है जो (अधि आसीत्) अध्यक्ष पद पर स्थित हो सके। तू ही राज्यासन के योग्य है। तू पिताओं के चरण धोकर आशीर्वाद लेकर अपने शत्रुजनों को (प्र अक्षिणाः) विनाश कर। इसी प्रकार पिता और तुझ पर प्रहार करने वाले, तेरा आसन हरने वाले को भी तू नाश कर। (२) अध्यात्म में—जीव परमेश्वर का ज्ञान ग्रहण करके सब दुःखों को दूर करे। कम्पन या चेतन रहित जगन्निर्मातृ प्रकृति को (कः) प्रजापति ही जगस्वरूप में बनाता है। भोक्ता अज्ञानी आत्मा को वह प्रभु ज्ञान देता है। वही उसे परम सुखमय मोक्ष में स्थापित करता है।

अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३॥२६॥५॥

भा०—अध्यात्मदर्शी कहता है (अवर्त्या) जन्म मरण के व्यापार से रहित होकर मैं (शुनः) सुखस्वरूप होकर अथवा (अवर्त्या) पुनः इस संसार में न होने के निमित्त से ही (शुनः) शुख कर परमेश्वर के (आन्त्राणि) ज्ञान कराने वाले गुह्य साधनों को (पेचे) परिपक्व करूं। (देवेषु) पृथिवी सूर्यादि एवं विषय के अभिलाषी इन्द्रियों के बीच में मैं (मर्डितारम्) किसी को भी परम सुख देने वाला (न विविदे) नहीं पाता हूं। अथवा मैं अज्ञानी पुरुष (अवर्त्या) लाचार, अगतिक होकर (शुनः) कुत्ते के समान लोभी आत्मा के (आन्त्राणि) भीतरी आंतों के तुल्य इन (आन्त्राणि) ज्ञान साधन इन्द्रियों को ही (पेचे) परिपक्व किया उन

को तपः-साधना से वश किया और उन (देवेषु) विषयाभिलाषुक प्राणों में से एक को भी सुखप्रद नहीं पाया अनन्तर (जायाम्) इस संसार उत्पन्न करने वाली प्रकृति को भी मैंने (अमहीयमाना) महती परमेश्वरी शक्ति के तुल्य नहीं (अपश्यम्) देखा । इतना ज्ञान कर लेने के अनन्तर (श्येनः) ज्ञानस्वरूप प्रभु परमेश्वर (मे) मुझे (मधु) परम मधुर ब्रह्मज्ञान (आजभार) प्रदान करता है । (२) राज्यपक्ष में—मैं प्रजाजन जब (अवर्त्या) दारिद्र्य प्रेरित होकर कुत्ते के भी आतों का पकाता हूं और प्रमादी लोगों में किसी को भी सुखप्रद नहीं पाता, अपनी स्त्रियों तक की दुर्दशा होती देखूं उस समय (श्येनः) बाज़ के समान वीर पुरुष मेरी रक्षार्थ (मधु) उत्तमअन्न और शत्रुपीड़क बल प्राप्त करावे । इति षड्विंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[१९]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५, ८ त्रिष्टुप् । ४, ६ भुरिक् पंक्तिः । ७, १० पंक्तिः । ११ निचृत्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं को हनन करने हारे ! हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन् ! (अत्र)इस राष्ट्र में (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान्जन (सुहवासः) उत्तम नाम, वचन और ख्यातिमान् वा उत्तम यज्ञ, युद्धादि करने हारे वीर पुरुष (ऊमाः) रक्षक लोग (वृत्रहत्ये) बढ़ते हुए शत्रु को दण्डित करने के लिये (उभे रोदसी) राजा प्रजा दोनों वर्गों में (महां वृद्धम्) गुणों और शक्ति में महान् वृद्ध, पूजनीय (ऋष्वं)

सर्वश्रेष्ठ, सर्वद्रष्टा (एकम्) एक अद्वितीय जानकर (त्वाम् एव) तुझ को (नि वृणते) सब प्रकार से वरण करते हैं। (२) इसी प्रकार सब विद्वान् जन, अद्वितीय प्रभु परमेश्वर को अज्ञान नाश के लिये वरण करते हैं।

अवा॑सृजन्त॒ जिव्र॑यो॒ न दे॒वा भुव॑: स॒म्राळि॑न्द्र स॒त्यया॑निः।
अह॒न्नहिं॒ परि॒शया॑न॒मर्ण॒: प्र व॑र्त॒नीर॑रदो वि॒श्वधे॑नाः ॥ २ ॥

भा०—(जिव्रयः देवाः न) जीवन देने वाले सूर्य-किरण जब (अव असृजन्त) नीचे भूतल पर आते हैं तब (सम्राट् सत्ययोनिः) देदीप्य-मान सूर्य मेघ का उत्पादक होता है और वह (परिशयानम् अहिम् अहन्) फैले हुए मेघ को आघात करता है (अर्णः) जल (विश्वधेनाः वर्त्तनीः अरदः) सबको तृप्त करने वाले जल-मार्गों को बना लेता है उसी प्रकार (जिव्रयः) विजयशील (देवाः) तेजस्वी पुरुष (अव असृजन्त) प्रयाण करें, और (सत्ययोनिः) सत्य न्याय का आश्रय रूप राजा (भुवः) इस भूमि का (सम्राट्) तेजस्वी महाराज हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (परिशयानम्) सर्वत्र फैले (अहिम्) सामने से आघात करने वाले, विघ्नकारी शत्रु को (अहन्) विनाश करे। और (अर्णः) जल के समान शीतल स्वभाव होकर तू (विश्वधेनाः) समस्त जगत को आनन्द से तृप्त करने वाले (वर्त्तनीः) सुखदायक मार्गों, न्याय-शासनों को (प्र अरदः) अच्छी प्रकार बना।

अतृ॑प्णुवन्तं॒ विय॑तमबु॒ध्यमबु॑ध्यमानं सुषु॒पाणमि॑न्द्र।
स॒प्त प्रति॑ प्र॒वत॑ आ॒शया॑न॒महिं॒ वज्रे॑ण॒ वि रि॑णा अप॒र्वन् ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (वज्रेण) तेज से (आशयानम् अहिम्) व्यापक मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! (अपर्वन्) 'पर्व' अर्थात् पालन और पूर्ण बल से रहित अवसर में (सप्त प्रवतः प्रति) अधीनस्थ, नीचे के सातों प्रकृतियों को (आशयानम्) व्यापे हुए, सातों पर अधिकार किये हुए या सातों के प्रति प्रमाद से सोते हुए

और (अतृप्णुवन्तम्) विषय विलासों से तृप्त न होने वाले अति विषय विलासी, (वियतम्) विशृंखल अजितेन्द्रिय, (अबुध्यम्) अज्ञानी, (अबुध्यमानं) चेताने पर भी न चेतने वाले, (सु-सु-पानम्) खूब मदि-रादि पान में मत्त वा (सु-सुपानम्) निरन्तर सोने वाले असावधान, शत्रु को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वज्रेण) शस्त्रास्त्र बल से (वि रिणाः) विविध प्रकार से नाश कर ।

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हा न्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (क्षाम) खोखले (बुध्नं) आकाश को (शवसा) सूक्ष्म तेज से (अक्षोदयत्) भर देता है, (न) और जिस प्रकार (वातः) प्रबल वायु का झंकोरा (तविषीभिः) बलवती विद्युतों वा गतियों से (वाः) जल को छिन्न भिन्न कर बूंद २ कर देता है और (पर्वतानाम्) जिस प्रकार विद्युत् पर्वतों और मेघों के (ककुभः) शिखरों को (अभिनत्) तोड़ डालता है, उसी प्रकार (ओजः उशमानः) बल पराक्रम की कामना करने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुविजयी राजा अपने शत्रु के (क्षाम) कृश, निर्बल (बुध्नं) राज्य प्रबन्ध, बन्धे मोर्चे, गढ़ और आधार को (शवसा) अपने बल से (अक्षोदयत्) चूरा २ कर दे । और (वातः वार् न) जलों को वायु के तुल्य (तविषीभिः) बल-वती सेनाओं से बलवान् होकर (वाः) घेरने वाले शत्रु बल को नष्ट करे । (दृढ़ानि) वह शत्रु के दृढ़, मज़बूत पुरों, और सैन्यों को (औभ्नात्) मटियामेट कर दे और (पर्वतानाम्) पर्वतों वा मेघों के समान दृढ़ और शस्त्रवर्षी शत्रु राजाओं के (ककुभः) श्रेष्ठ २ पुरुषों को (अव-अभिनत्) भेद नीति से तोड़ फोड़ कर नीचे गिरादे ।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्जा ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (जनये गर्भं न) पुत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्रियें जिस प्रकार अपने गर्भ से उत्पन्न बालक को लेने के लिये वेग से आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार (जनयः) युद्ध के करने वाले (गर्भम् अभि प्रदद्रुः) मुख्य पद ग्रहण करने वाले, सैन्यों की वाग्डोर संभालने वाले को लक्ष्य करके आगे की ओर बढ़ें। और (रथा इव) रथों के समान वे (अद्रयः) अभेद्य एवं विशाल शस्त्रधर पुरुष (साकं) एक साथ (प्रययुः) प्रयाण करें। हे राजन् तू (विसृतः) विविध मार्गों वा प्रकारों से चलने वाली सेनाओं वा प्रजाओं को (अतर्पयः) अन्न वेतनादि से तृप्त कर। तू (उर्म्मीन्) ऊपर को उठने वाले वा प्रतिपक्ष को उखाड़ फेंकने वाले लोगों को (उब्ज) नमा, नीचा कर। (त्वं) तू (वृतान्) स्वीकार किये गये (सिन्धून्) महानदों के समान लम्बे शत्रु सैन्यों को (अरिणाः) नाश कर और अपने सैन्यों को सन्मार्ग पर चला। अथवा (विसृतः तर्पय) विविध छोटे नालों को जल से मेघों के तुल्य पूर्ण कर। धीरे जल प्रवाह नहर आदि को चला। इति प्रथमो वर्गः ॥

त्वं म॒हीम॒वनिं॑ वि॒श्वधे॑नां तु॒र्वीत॑ये व॒य्या॑य॒ क्षर॑न्तीम् ।

अर॑मयो॒ नम॒सैज॒दर्णः॑ सुत॒र॒णाँ अ॑कृणोरिन्द्र॒ सिन्धू॑न् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु हनन करने वाले राजन् ! तू (महीम्) बड़ी भारी (विश्वधेनाम्) सबको आनन्द-रस से तृप्त करने वाली (अवनिं) ज्ञान और रक्षा को देने वाली और (तुर्वीतये) शत्रुओं को हिंसा करने वाले और (वय्याय) रक्षा करने यो य दोनों के लिये (क्षरन्तीम्) अन्न रस आदि गोमाता के समान क्षरण करती हुई, देती हुई वाणी और भूमि को (नमसा) विनय से और (नमसा) दुष्टों को नमाने वाले दण्ड से (अरमयः) प्रसन्न कर और जहां (अर्णः) जल (एजत्) चले उन (सिन्धून्) वेग से चलने वाले महानदों को और उनके सदृश वेगगामी सैन्यों को भी (सुतरणान्) सुख से पार करने योग्य (अकृणोः) बना।

प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रः) मेघ वा सूर्य जिस प्रकार वृष्टि द्वारा (प्राग्रुवः) प्रबल वेग से जाने वाली (नभन्वः) आकाश से आने वाली वा करारे तोड़ने वाली, (वक्वा) वक्रगति से जाने वाली (ध्वस्राः) नगरादि का ध्वंस करने वाली, (ऋतज्ञाः) जलोत्पादक नदियों को (अपिन्वत्) सींचता और पूर्ण करता है। उसी प्रकार वह राजा अग्रुवः आगे बढ़ने वाली (नभन्वः) शत्रुओं को मारने वाली (वक्वा) व्यूहादि से वक्रगति चलने वाली, (ध्वस्राः) शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाली, (ऋतज्ञाः) सत्य प्रतिज्ञा वाली (युवतीः) स्त्रियों के तुल्य है उनको (अपिन्वत्) पूर्ण करे। इसी प्रकार (इन्द्रः) पुरुष ऐश्वर्यवान् होकर (अग्रुवः) विवाह के अवसर पर आगे २ चलने वाली, (नभन्वः) पुरुष को अपने प्रेम सम्बन्ध में बांधने वाली, (वक्वा) सुन्दर वचन बोलने वाली अथवा (वक्वा) वक्र, सुन्दर गति वाली, (ध्वस्राः) खेद नाश करने वाली अथवा (ध्वस्राः = अध्वस्रा) सन्मार्ग से चलने वाली (ऋतज्ञाः) सत्य प्रतिज्ञा वाली (युवतीः) स्त्रियों को (प्र अपिन्वत्) वस्त्र, भूषण अन्नादि से पुष्ट करे और वीर्यादि से निषिक्त करे। वह (धन्वानि) मरु वा सूखे स्थल देशों को मेघवत् (ऋषाणान् अज्रान्) पियासे मार्गगामी पथिकों को (अपृणक्) तृप्त करे। और (दं-सु-पत्नीः) राष्ट्र को दमन करने वाले या इन्द्रिय दमनशील वा कार्यकर्त्ता लोगों की पत्नियों को (स्तर्यः) गौओं के समान (अधोक्) पूर्ण करे और (दंसुपत्नीः) दान्त स्वामी को पालन करने वाली भूमियों को गौओं के तुल्य दुहे, उनसे कर आदि प्राप्त करे।

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (वृत्रं) जगत् को घेरने वाले अन्धकार को (जघन्वान्) नाश करके (पूर्वीः उषसः शरदः च) सदा से चली आई उषाओं और शरत् आदि ऋतुओं को (वि असृजत्) विशेष रूप से प्रकट करता है और जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (वृत्रं जघन्वान् सिन्धून् वि असृजत्) मेघ को आघात करके जलधाराओं को प्रकट करता है उसी प्रकार राजा (वृत्रं जघन्वान्) बढ़ते शत्रु वा विघ्नकारी बाधा को नाश करके (पूर्वीः उषसः) पूर्ण, धनादि से पूर्ण, प्रजा की पालक शत्रुओं को भस्म करने वाली और (गूर्त्ताः) उद्यमशील (शरदः) हिंसाकारिणि वीर सेनाओं को (वि असृजत्) विविध प्रकार से चलावे और (सिन्धून्) वेग से चलने वाले नदों के समान सैन्य के रथों, अश्वों को सञ्चालित करे। (इन्द्रः) विद्युत् जिस प्रकार (पृथिव्या) भूमि पर (स्रवितवे) बहने के लिये (सीराः अतृणत्) नदियों को काटता है उसी प्रकार वह शत्रु-हन्ता राजा (बद्धधानाः) वधादि करने वाली (परिस्थिताः) चारों ओर खड़ी शत्रु-सेनाओं को (पृथिव्या) पृथिवी पर (सीराः स्रवितवे) रक्त की धाराएं बहाने के लिये (अतृणत्) मारे।

व॒म्रीभिः॑ पु॒त्रम॒ग्रुवो॑ अ॒दानं॑ नि॒वेश॑नाद्धरिव॒ आ ज॑भर्थ।
व्यं१॒॑धो अ॑ख्य॒दहि॑माद॒दा॒नो निर्भू॑दुख॒च्छित्सम॑रन्त॒ पर्व॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (हरिवः) उत्तम अश्व सैन्यों के स्वामिन्! राजन् (अग्रुवः) नदियें जिस प्रकार (वम्रीभिः) छोटी २ लहरों से (पुत्रं) अपने ही पुत्र रूप तट वा तटस्थ वृक्ष को उसके (निवेशनात्) स्थान से हर लेती हैं उसी प्रकार तू भी (अदानं) कर आदि न देने वाले (पुत्रम्) पुत्र तुल्य प्रिय पुरुष को भी (निवेशनात्) उसके पद से (आ जभर्थ) च्युत कर। (अहिम्) सामने से आक्रमण करने वाले मेघ तुल्य शत्रु को भी (अन्धः इव) अपने अन्न या भोज्य के तुल्य आहार को (वि अख्यत्) देखे। और (उखच्छित्) शत्रु की गति को

काट देने वाले, उसका आक्रमण रोकने वाले (पर्व) पालक सैन्य को (आददानः) लेता हुआ वा (उखच्छित् पर्व) 'उखा' अर्थात् पात्रों को भेद कर तीव्र गति वेग से छेदन करने वाले तीर आदि अस्त्र से निकलने वाले 'पर्व' पोरू वाले वाणों, वन्दूक आदि अस्त्र को (आददानः) लेकर (निर्भूत्) बाहर निकल पड़े, और (सम् अरन्त) समर करे, युद्ध में जुट जावे। 'उखच्छित् पर्व' उखा हंडियां या दृढ़ पात्र में विस्फोटक पदार्थों को बन्द करके विषम घातक प्रयोग करने का वर्णन अथर्ववेद में आया है। 'पर्व' का अर्थ पोरु वाला काण्ड या शर है। वन्दूक, तोप, वाम्ब आदि सभी अस्त्र जो विस्फोटक पदार्थ के वल से अपने स्थान को भेदकर निकलें वे 'उखच्छित्' हैं। अथवा तीव्र गति से छेदन करने वाले तीर धनुर्धर सैन्य का उपलक्षण हैं।

प्र ते॒ पू॒र्वाणि॒ कर॑णानि विप्रावि॒द्वाँ आ॑ह वि॒दुषे॒ करां॑सि ।
यथा॑यथा॒ वृष्ण्या॑नि॒ स्वगू॒र्तापां॑सि राज॒न्नर्याऽवि॑वेषीः ॥ १० ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन्! हे बुद्धिमान् पुरुष! (यथायथा) जिस जिस प्रकार से (आविद्वान्) समस्त विद्याओं का जानने वाला, बहुदर्शी विद्वान् (ते विदुषे) तुझ विद्या लाभ करने वाले के हितार्थ (पूर्वाणि) सनातन से चले आये, पूर्व विद्यमान (करणानि) साधनों और (करांसि) करने योग्य कार्यों का (आह) उपदेश करे उसी प्रकार से हे (राजन्) राजन्! तू (वृष्ण्यानि) वल उत्पादक, वल से साध्य, (स्वगूर्त्ता) अपने ही उद्यम से साधने योग्य (नर्या) मनुष्यों के हितकारी (अपांसि) कर्मों को (आ विवेषीः) आदरपूर्वक स्वयं कर, चाह, और रक्षा कर।

नू ष्टु॒त इ॑न्द्र॒ नू गृ॑णा॒न इषं॑ जरि॒त्रे न॒द्यो॒३॒॑ न पी॑पेः । अका॑रि ते हरिवो॒ ब्रह्म॒ नव्यं॑ धि॒या स्या॑म र॒थ्यः॑ सदा॒साः ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नू स्तुतः) अन्यों से निरन्तर स्तुति करने योग्य और (गृणानः) अन्यों को उत्तम धर्म, न्यायानुकूल वचन

का उपदेश करता हुआ (नद्यः न) नदियें जिस प्रकार अपने तटपर बसे को अन्न आदि से पुष्ट करती हैं उसी प्रकार तू भी (जरित्रे) विद्वान् पुरुष को (इषं) अन्नादि से (पीपेः) पुष्ट कर। हे (हरिवः) उत्तम पुरुषों और अश्वों के स्वामिन्! (ते) तेरे लिये यह (नव्यम्) नया, उत्तम (ब्रह्म) ऐश्वर्य (अकारि) किया जाता है, हम तेरे अधीन (धिया) उत्तम कर्म और उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (सदासाः) भृत्यादि सहित सुख से (रथ्यः) रथादि सम्पन्न होकर (स्याम) रहें। इति द्वितीयो वर्गः॥

[२०]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ८, १० त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। ७, ९ स्वराट् पंक्तिः। ११ निचृत्पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून्॥ १॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (उग्रः) बलवान् (नृपतिः) सब मनुष्यों का पालक, (वज्रबाहुः) बाहुओं में शस्त्रास्त्र एवं बल वीर्य को धारण करने वाला (समत्सु) संग्रामों में (ओजिष्ठेभिः) अति पराक्रमशाली वीर पुरुषों द्वारा (पृतन्यून्) सेना लेकर युद्ध करने की इच्छा करने वाले बड़े २ सेनापतियों को (संगे) एक साथ प्रतिस्पर्धा में (तुर्वणिः) नाश करने हारा (दूरात् आसात्) दूर और समीप से भी (अवसे) हमारी रक्षा के लिये (नः) हमें (यासत्) प्राप्त हो।

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ॥ २॥

भा०—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (अवसे) रक्षा और (राधसे च) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (अर्वाचीनः) वर्त्तमान में भी

वा विनयपूर्वक (हरिभिः) उत्तम पुरुषों सहित (नः अच्छ आयातु) हमें प्राप्त हो। (वज्री) शस्त्रास्त्रों का स्वामी, बल वीर्यवान् (मघवा) धनैश्वर्य से सम्पन्न (विरप्शी) महान् आज्ञापक, (वाजसातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (नः) हमारे (इमं) इस (यज्ञं) यज्ञ, परस्पर संगति, राज्य प्रबन्ध को (अनु तिष्ठाति) विधिपूर्वक चलावे।

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यासि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारे (इमं) इस (यज्ञं) परस्पर के आदर सत्संग, मैत्रीभाव और राज्य-प्रबन्ध को (पुरः दधत्) सबके समक्ष धारण करे। इस प्रकार तू (नः) हमें (क्रतुम्) उत्तम प्रज्ञा या बुद्धि को (सनिष्यसि) प्रदान कर सकेगा। हे (वज्रिन्) वीर्य बल से युक्त! (धनानां सनये) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (वयम्) हम सब (अर्यः) स्वामी होकर (त्वया) तेरे द्वारा (श्वघ्नी इव) कितव वा जुआरी के समान (आजिम्) स्पर्धा के लक्ष्य को (जयेम) विजय करें। 'श्वघ्नी' कितवो भवति। यास्कः निरुक्ते ५। ४। ३॥

उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥

भा०—हे (स्वधावः) अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त! तू (सुमनाः) शोभनचित्त और उत्तम प्रशंसनीय ज्ञान से युक्त होकर (नः) हमारे समीप (सुसुतस्य सोमस्य) उत्तम रीति से पूजा आदरपूर्वक प्रदत्त (सोमस्य) ऐश्वर्य और (प्रतिभृतस्य) प्रत्येक पुरुष से धारण करने योग्य (मध्वः) मधुर अन्न का भी तू ही (पाः) पालन कर एवं उपभोग कर। और (पृष्ठ्येन) पीछे से वा आनन्द सेचक (अन्धसा) जीवनप्रद उस अन्न से तू (संममदः) अच्छी प्रकार हर्षित हो।

वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता।
मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम्॥५॥३

भा०—(यः) जिसकी (नवेभिः ऋषिभिः) नये अध्यापक, अध्येता, ज्ञानद्रष्टा पुरुष भी (ररप्शे) स्तुति करते हैं। जो (पक्वः वृक्षः न) पके वृक्ष के समान परिपक्व मधुर फलों को देने वाला और (सृण्यः जेता न) वेग से जाने वाली सेना, वा आयुधों के सञ्चालन में कुशल पुरुष के तुल्य (जेता) समरविजयी, (योषाम्) युवति को (अभि मन्यमानः) अपनी प्रिय मानने वाले (मर्यः न) पुरुष के समान अपनी प्रजा को अपना मानता हुआ हो। उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (पुरुहूतम्) बहुतों से स्तुत्य पुरुष को (अच्छ विवक्मि) अच्छी प्रकार उपदेश कर वा उसको मैं बहुस्तुत्य 'इन्द्र' नाम से पुकारता हूं। इति तृतीयो वर्गः॥

गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्वः इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम्॥६॥

भा०—(यः) जो (गिरिः न) मेघ या पर्वत के समान (स्वतवान्) अपने गुणों और ऐश्वर्यों से उन्नत (ऋष्वः) महान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (सनात् एव) सदा से (सहसे) परभवकारी बल से (उग्रः जातः) अति उग्र, बलवान् (जातः) रूप से प्रसिद्ध होता है। और जो (भीमः न) अति भयंकर होकर (स्थविरं) अति स्थूल विशाल (वज्रं) बल एवं शस्त्रास्त्र का (आदर्त्ता) आदरपूर्वक स्वीकार करता है, और जो (उद्ना कोशं इव) जल से पूर्ण मेघ के तुल्य (वसुना) धनैश्वर्य से (नि ऋष्टं) पूर्ण (कोशं) खजाने को (आदर्त्ता) धारण करता है वह (इन्द्रः) 'इन्द्र' कहाने योग्य है। उसको मैं 'पुरुहूत इन्द्र' कहता हूं।

न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः॥७॥

भा०—(यस्य) जिसका (जनुषा उ) जन्म से ही (वर्त्ता न अस्ति) निवारण करने वाला कोई नहीं है और जिसके (मघस्य) पूज्य ऐश्वर्य और (राधसः) धन अन्नादि का भी (आमरीता न) नाश करने वाला नहीं। हे (तविषीवः) वलवती सेना के स्वामिन् ! हे (उग्र) वलवन् ! हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुत्य ! तू (उद्वावृषाणः) उत्तम सुखों को मेघवत् वर्षाता हुआ या उत्तम पद पर राज्य-प्रवन्ध करता हुआ (अस्मभ्यं) हमें (रायः) नाना धनों को (दद्धि) प्रदान कर।

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम्।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥८॥

भा०—तू (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (क्षयस्य) रहने के निवास-स्थान राष्ट्र को (ईक्षे) स्वयं देखता है। (उत) और (गोनाम्) गौओं, वाणियों और भूमियों के (व्रजम्) वीच जाने योग्य उत्तम पुर आदि या मार्गों को, गौओं के वाड़े को गोपाल के समान (अपवर्त्तासि) रक्षा करने वा खोलने वाला है। तू (समिथेषु) संग्रामों में (शिक्षा-नरः) सव मनुष्यों का शिक्षक, दण्ड नायक ! और (प्रहावान्) प्रेरणा करने, विजय प्राप्त करने हारा और (वस्वः) धनैश्वर्य, राज्य में वसे प्रजाजन के (भूरिम् राशिम्) वहुत वड़े समूह का (अभिनेता) लाने और ले चलनेहारा उत्तम नायक (असि) है।

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥

भा०—(तत्) वह राजा वा परमेश्वर (शचिष्ठः) सवसे अधिक वुद्धि, शक्ति और वाणी से युक्त ज्ञानमय, सर्व शक्तिमान् वाक् स्वरूप, (कया शच्या) किस वाणी, शक्ति और वुद्धि से युक्त है। उत्तर–(यया) जिससे (ऋष्वः) वह महान् (का चित्) कई अनेक कार्य (मुहु)

वार २ (कृणोति) करता है, और (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वा कर आदि देने वाले प्रजाजन और स्तुतिकर्त्ता विद्वान् धर्मोपदेष्टा के लिये (पुरु अंहः) बहुत सा पाप, अपराध (विचयिष्ठः) खूब दूर कर देता है, (अथ) और उसके बाद (द्रविणं) ऐश्वर्य भी (दधाति) प्रदान करता है।

मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः॥१०॥२१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (नः) तू हमें (मा) मत (मर्धीः) विनाश कर । (दातवे) अपने को तेरे प्रति समर्पण करने वाले जन के लिये (यत् ते) जो तेरा (दातवे) देने योग्य (भूरि) बहुत सा है (तत् आभर) उसी को प्राप्त कर और (नः दद्धि) हमें प्रदान कर । (अस्मिन्) इस (नव्ये) अति उत्तम, (देष्णे) दान योग्य, (शस्ते) अति प्रशस्त (ते) तेरे (उक्थे) वचन में रहते हुए (वयम्) हम लोग (स्तुवन्तः) गुणानुवाद करते हुए, (प्र ब्रवाम) अच्छी प्रकार बतलावें ।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥४॥

भा०—व्याख्या पूर्व सूक्त १९ । ११ में देखो ॥ इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२०]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, १० भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराड् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।

आ या त्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (शूरः) शूरवीर, शत्रुओं के नाश करने में कुशल (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (स्तुतः) गुणों द्वारा प्रशंसित राजा (नः) हमारी (अवसे) रक्षा के लिये (उप आयातु) प्राप्त हो। वह (वावृधानः) बढ़ता हुआ भी (नः) हमारे साथ (सधमात् अस्तु) हर्षों में हर्षित होने वाला हो। (यस्य) जिसकी (पूर्वीः) पहले से विद्यमान वा बल कौशल पूर्ण, राष्ट्र पालन करने में कुशल, (तविषीः) सेनाएं हों और (क्षत्रम्) बल, वीर्य, पराक्रम, क्षात्र बल (द्यौः नः) सूर्य के प्रकाश के समान (अभिभूति) सबको परजित करने वाला होकर (पुष्यात्) स्वयं बढ़े और राष्ट्र को पुष्ट करे।

तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन्।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान् तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः॥२॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य का (क्रतुः) जलाकर्षण, वर्षण आदि कार्य और (कृष्टीः अभि अस्ति) कर्षक प्रजाओं को लक्ष्य कर सुखकारी होता है उसी प्रकार (यस्य) जिसका (क्रतुः) राज्य पालन आदि कर्म (विदथ्यः) यज्ञ, संग्राम, यश और श्री के लाभ के योग्य (सम्राट् न) सर्वत्र प्रकाशमान् सूर्य के तुल्य, (साह्वान्) सबको पराजित करने वाला, (तरुत्रः) दुःखों से तराने वाला (कृष्टीः अभि अस्ति) कर्षणशील, कृषिकर प्रजा के लिये अति सुखकारी और प्रजा का कर्षण अर्थात् पीड़न करने वाले दुष्टों को (अभि अस्ति) पराजित करने वाला होता है हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (तुविद्युम्नस्य) बहुत से ऐश्वर्य के स्वामी, (तुविराधसः) बहुत से साधनों वाले (तस्य इत्) इसके ही (वृष्ण्यानि) प्रजा या सुखों की वर्षा और उनका प्रबन्ध करने वाले बलों और (नॄन्) उसके मुख्य नायकों के (स्तवथ) गुण वर्णन करो।

आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मरुत्वान्) वायुगणों सहित (दिवः) आकाश से सूर्य के समान तेजस्वी होकर (मक्षु) शीघ्र (आयातु) हमें प्राप्त हो, (पृथिव्याः) वह हमें भूमि से सुवर्णादि वा अग्नि के तुल्य (आ) प्राप्त हो, (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से मेघ या विद्युत् के तुल्य प्राप्त हो, (पुरीषात्) जल में से विद्युत्वत् 'पुरीष' अर्थात् ऐश्वर्य में से प्राप्त हो । वह पुरुष (स्वर्नरात्) सूर्यवत् प्रतापी नायक समूह में से (वा) और (परावतः) दूरस्थ देश से और (ऋतस्य सदनात्) सत्य न्याय के परम स्थान से भी (नः) हमारे (अवसे) रक्षा आदि के लिये (आयातु) हमें प्राप्त हो ।

स्थूरस्य॑ रा॒यो बृ॑ह॒तो य ईशे॒ तमु॑ ष्टवाम वि॒दथे॒ष्विन्द्र॑म् ।
यो वा॒युना॒ जय॑ति॒ गोम॑तीषु॒ प्र धृ॑ष्णु॒या नय॑ति॒ वस्यो॒ अच्छ॑ ॥४॥

भा०—(यः) जो वीर पुरुष (बृहतः) बड़े (स्थूरस्य) भारी (रायः) धनैश्वर्य का (ईशे) स्वामी है हम (तम् उ इन्द्रम्) उस शत्रु-हन्ता की (विदथेषु) संग्रामों के अवसरों में (स्तवाम) स्तुति करें । (यः) जो (वायुना) वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले बल से (गोमतीषु) सेनाओं के आधार पर (जयति) विजय करता है और धृष्णुया) शत्रुओं का पराजय, करने वाले सैन्यों को (प्र नयति) आगे बढ़ाता और (वस्यः) अति श्रेष्ठ धन (अच्छ) प्राप्त कराता है ।

उप॒ यो नमो॒ नम॑सि स्तभा॒यन्नियर्ति॒ वाचं॑ ज॒नय॒न्यज॑ध्यै ।
ऋ॒ञ्ज॒सा॒नः पु॑रु॒वार॑ उ॒क्थैरेन्द्रं॑ कृण्वीत॒ सद॑नेषु॒ होता॑ ॥५॥५॥

भा०—(यः) जो राजा (नमसि) अन्यों के आदर सत्कार, शत्रु नमाने का साधन बल और शस्त्रादि के आश्रय पर जो (नमः) स्वयं अन्यों के आदर सत्कार, शत्रु नमाने वाले बल आदि को (स्तभयन्) अपने वश करता हुआ (यजध्यै) दान देने, मैत्री करने और मेल सत्संग

करने के लिये (वाचं जनयन्) उत्तम वाणी को प्रकट करता हुआ (इयर्त्ति) अन्यों को प्रेरित करता है। वह (ऋञ्जसानः) अच्छी प्रकार सबको वश करता हुआ, (पुरुवारः) बहुतों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाला, (होता) सब ऐश्वर्यों का दाता है उसको (सदनेषु) उत्तम पदों पर (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त अध्यक्ष स्वामी (आ कृण्वीत) बनाओ। अथवा (सः उक्थैः इन्द्रं आ कृण्वीत) वह उत्तम उपायों से ऐश्वर्य उत्पन्न करे। इति पञ्चमो वर्गः॥

धिषा यदि धिषुण्यन्तः सरुण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः॥ ६॥

भा०—(यदि) जब (ओशिजस्य) मान धनादि कामना करने वाले पुरुष के (गोहे) गृह में (सदन्तः) उत्तम पदों पर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए दर्बारी लोग (अद्रिम्) शत्रुओं का नाश करने वाले और स्वयं न डरने वाले पुरुष को (धिषा) उत्तम बुद्धि या वाणी से (धिषण्यन्तः) स्तुति करते हुए (तम् सरण्यान्) उसको प्राप्त हों तो (यः) जो (नः) हमारे लिये (संवरणेषु) आच्छादित गूढ़ अन्धकार पूर्ण स्थानों में (वह्निः) अग्नि के समान तेजोमय होकर, नायक होकर हमें ले चलने हारा है। वह (पास्त्यसस्य) गृहों में वसी प्रजा के हितकारक, ऐश्वर्य (होता) देने वाला (दुरोषाः) दुस्तर क्रोध या तेज से युक्त होकर भी हमारे प्रति (दुरोषाः) क्रोध रहित होकर हमें (आ) प्राप्त हो।

सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार (भार्वरस्य वृष्णः) सबके पालक पोषक सूर्य बल (सत्रा स्तुवते भराय) सचमुच स्तुतिकर्त्ता जीवनगण के भरण पोषण के लिये (ईं सिषक्ति) जल सेचन करता है उसी प्रकार (भार्वरस्य वृष्णः) समस्त राष्ट्र को भरण पोषण करने वाले, सबसे बलवान्

पुरुष का (शुष्मः) शत्रु को शोषण करने वाला बल वा उद्योग भी (यत्) जब (ईं) इस राष्ट्र को (सिषक्ति) प्राप्त होता है तो वह (सत्रा) सचमुच था साथ २ (स्तुवते) राजा से प्रार्थना करने वाले प्रजाजन के (भराय) भरण पोषण के लिये ही होना चाहिये। और (औशिजस्य) कान्तिमान् तेजस्वी राजा के (गुहा) बुद्धि में (यत्) जो भी विचार हों और (यत् गोहे) जो एकान्त स्थान में मन्त्रणा भी हों वे (सत्रा) सदा (ईम्) राष्ट्र के (धिये प्र) उत्तम कर्म करने के लिये, (अयसे प्र) उत्तम मार्ग पर बढ़ने के लिये और (मदाय प्र) सबके हर्ष सुख के लिये (षिसक्ति) प्राप्त हो।

वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥८॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् मेघ के द्वार को खोलता है तब जलों के वेगवान् स्रोतों को बढ़ा देता है उसी प्रकार (यत्) जब राजा (पर्वतस्य) पर्वत प्रदेश के (वरांसि) आवृत या घिरे हुए स्थानों को (वि वृण्वे) खोले तब उनमें एकत्र हुए (पयोभिः) जल-राशियों से (अपां) जलों के (जवांसि) वेग से बहने वाले प्रवाहों को (जिन्वे) बढ़ावे। और (यदि) जब (सुध्यः) उत्तम कर्मकर्त्ता लोग (वाजाय) अन्न प्राप्त करने के लिये (वहन्ति) खेत में हल बाहें तब (गोहे) अन्न को बचाने के लिये (गौरस्य गवयस्य) गौर, गवय हरिण और नीलगाय इन खेती नाश करने वाले पशु जातियों का (विदद्) भी ध्यान रक्खें। अथवा—(सुध्यः यदि वाजाय वहन्ति) बुद्धिमान् लोग वेग वृद्धि के लिये रथादि चलावें तब (गौरस्य गवयस्य विदत्) हरिण और नीलगाय के जाति के पशु को भी प्राप्त करें और उनका उपयोग करे। पर्वतों के एकत्र जल ताल आदि के द्वारों को खोल कर कृषि के लिये राजा नहरें बहावे, वेगवान् रथ के लिये मृग, गवयादि का उपयोग करे। तिब्बत, लदाख, अमरीका, रूस

आदि देशों में नीलगाय, (जाक्) और अलपाका, बारहसींगा आदि पशुओं से गाड़ी, बोझा आदि ढोने का कार्य लिया जाता है।

भ॒द्रा ते॒ हस्ता॒ सुकृ॑तो॒त पा॒णी प्र॑य॒न्तारा॑ स्तुव॒ते राध॑ इन्द्र ।
का ते॒ निष॑त्तिः॒ किमु॒ नो म॑मत्सि॒ किं नोदु॑दु ह॒र्षसे॒ दात॒वा उ॑ ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे सब के सुख अन्न आदि देने हारे! (ते हस्ता) तेरे दोनों हाथ (भद्रा) कल्याण और सुख करने वाले, भाग्यशाली, (उत) और (पाणी) दोनों बाहुएं (सुकृता) उत्तम काम करने में कुशल और (स्तुवते) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के उपकार के लिये (राधः) धनैश्वर्य (प्रयन्तारा) अच्छी प्रकार देने हारे हों। तू विचार कर कि (ते निषत्तिः का) तेरी उच्च पद पर क्या स्थिति है उसका क्या प्रयोजन? तू (दातवा) दान देने के लिये भला (किम् उ नो ममत्सि) क्योंकर न प्रसन्न हुआ करे और (किम् उ नो उद् हर्षसे उ) और क्यों न तू खूब हर्षित हो। अर्थात् तू बड़ा राजा है दान के कार्य में तुझे खूब प्रसन्न और हर्षयुक्त उत्साही बने रहना अच्छा है।

ए॒वा वस्व॒ इन्द्रः॑ स॒त्यः स॒म्राड्ढन्ता॑ वृ॒त्रं वरि॑वः पू॒रवे॑ कः ।
पुरु॑ष्टुत॒ क्रत्वा॑ नः शग्धि रा॒यो भ॑क्षी॒य तेऽव॑सो॒ दैव्य॑स्य ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, राजा (सत्यः) सज्जनों के बीच सज्जन, न्यायशील, सत्यधर्म का पालक, (वस्वः) ऐश्वर्य और राष्ट्र में वसी प्रजा का (सम्राट्) महाराजाधिराज, (वृत्रं हन्ता) मेघनाशक विद्युत् के तुल्य विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को दण्डित करने वाला होकर (पूरवे) अपने ऐश्वर्य को पूर्ण करने और अपने बनाये राजनियमों को पालने वाले प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वरिवः कः) नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करे। हे (पुरुस्तुत) बहुतों से प्रशंसित उत्तम राजन्! (नः) हमें (क्रत्वा) हमारे काम और ज्ञान, योग्यता वा कर्म कौशल के अनुसार (रायः) धन या देने योग्य वेतनें (शग्धि) प्रदान कर। मैं प्रजाजन (ते) तुझ

(दैव्यस्य) दानशील पुरुष के (अवसा) रक्षा और उत्तम व्यवहार का (भक्षीय) उपभोग करूं ।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ।११।६।२॥

भा०—देखो व्याख्या पूर्व सूक्त २० । ११ में ॥ इति षष्ठो वर्गः । इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२२]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१॥

भा०—(यत् इन्द्रः) जो ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष, राजा (नः जुजुषे) हमें प्रेम करता है (यत् च वष्टि) जो हमें चाहता है और (यः) जो (शवसा अश्मानं) जल सहित विद्युत् को धारण करने वाले मेघ के समान (शवसा अश्मानं बिभ्रत्) बल सहित वज्र या शस्त्रास्त्र सैन्य को धारण पोषण करता हुआ (ऐति) प्राप्त होता है (तत्) वह (महान्) बड़ा पूजनीय, (शुष्मी) बलवान् होकर (नः) हमारे लिये (ब्रह्म) वेद विज्ञान, बड़ा ऐश्वर्य, (स्तोमं) स्तुति योग्य बल वीर्य, (सोमम्) ऐश्वर्य, पुत्र सन्तान और (उक्था) उत्तम वचन (आ करति चित्) आदर पूर्वक प्रदान करे ।

वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

भा०—(वृषा) बलवान् (उग्रः) शत्रुओं में उद्वेग उत्पन्न करने

वाला, तेजस्वी शक्ति शाली (नृतमः) नायकों में सर्वश्रेष्ठ (शचीवान्) उत्तम शक्ति, प्रज्ञा और समर्थ शक्तिमती प्रजा का स्वामी, (श्रिये) अपनी प्रजा को आश्रय देने और शत्रु को सन्तप्त करने वाली राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये; (ऊर्णाम्) आच्छादन करने वाली ऊनकी बनी (परुष्णीम्) पर्व पर्व पर उग्र वस्त्र के समान (ऊर्णाम्) राष्ट्र को आच्छादन करने घेरने और व्यापने वाली, (परुष्णीम्) प्रति पर्व, स्थान २ पर शत्रु को संताप देने वाली, नाना पर्व अर्थात् विभागों से युक्त उस सेना और प्रजा को (यस्याः) जिसके (पर्वाणि) पालन करने वाले सामर्थ्यों या विभागों को (सख्याय) मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (विव्ये) चाहता और सुरक्षित करता है उसको (उपमाणः) बसाता और धारण करता हुआ (वृषन्धि) बलवान् पुरुषों को धारण करने वाले (चतुरश्रिम्) चार स्कन्धों वाले चतुरंग बल को (बाहुभ्यां) बाहुओं से (अस्यन्) चौधारे खड्ग के समान चलावे ।

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्यामर्मेन रेजयत्प्र भूम ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (देवः) दानशील, सूर्य के समान तेजस्वी (देवतमः) विजिगीषुओं में सर्वश्रेष्ठ, (महद्भिः) बड़े २ (वाजेभिः) अन्नादि ऐश्वर्यों, बलों और (शुष्मैः) शत्रुशोषक सैन्यों से (महः) महान्, पूज्य, और (जायमानः) प्रसिद्ध हो वह (बाह्वोः) बाहुओं में (उशन्तं) कान्ति से चमचमाते (वज्रं) खड्ग को (दधानः) धारण करता हुआ (अमेन) बल से (द्याम्) आकाश को सूर्य के समान प्रताप से (भूम) भूमि को (रेजयत्) कंपावे ।

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (ऋष्वात्) महान् परमेश्वर से (विश्वा रोधांसि)

समस्त उन्नत लोक और (प्रवतः च) अधो लोक (पूर्वीः द्यौः क्षाः) सनातन से चले आये आकाश और भूमि सब (जनिमन्) जन्म लेते हैं और वह उन सबको (रेजत) सञ्चालित करता है। उसी प्रकार (ऋष्वात्) महान् राजा से (विश्वा रोधांसि) नदी के उच्छृंखल प्रवाहों को रोकने वाले तटों के समान प्रजाओं को उच्छृंखलता से रोक देने वाले राज नियम और (पूर्वीः) सनातन से चली आने वाली निम्न या अधीन प्रजाएं और (जनिमन्) उत्पन्न हुए सब प्राणी, (द्यौः क्षाः) ज्ञानप्रकाशयुक्त, तेजस्वी, और भूमि में निवासी सामान्य प्रजाएं भी उसी से स्थिति लाभ करते और उसी से सञ्चालित होते हैं। वह (शुष्मी) बलवान् राजा (गोः) पृथिवी के (मातरा) राजा प्रजा दोनों वर्गों को (आभरति) पुष्ट करे। (वाताः) वायु के समान तीव्र बलशाली वीर और ज्ञानी पुरुष (परिज्मन्) आकाशवत् भूमि में (नृवत्) उत्तम सज्जन और नायक के तुल्य (नोनुवन्त) उत्तम शब्द, उपदेश और गर्जन तर्जनादि करें।

ता तू तं इ॒न्द्र म॒हतो म॒हानि॒ विश्वे॒ष्वित्सव॑नेषु प्र॒वाच्या॑।
यच्छू॑र धृष्णो धृ॒ष॒ता द॑धृ॒ष्वानहिं॒ वज्रे॑ण॒ शव॒सावि॑वेषीः ॥५॥७॥

भा०—(यत्) जब हे (शूर) शूरवीर ! तू (धृषता) शत्रु को पराजय करने में समर्थ (वज्रेण) बलवीर्य से (अहिं) सन्मुख आये शत्रु को (दधृष्वान्) पराजित करता हुआ (शवसा) बल से (आविवेषीः) राष्ट्र को व्याप लेता है, हे (धृष्णो) दृढ़ पुरुष ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तब (ते) तुझ महान् शक्तिशाली पुरुष के (विश्वेषु सवनेषु इत्) समस्त ऐश्वर्य और राज्यशासनादि कार्यों में (ता) वे नाना (महानि) बड़े २ काम ही (प्रवाच्या) उत्कृष्ट रूप से कहे जाने योग्य होते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

ता तू ते॑ स॒त्या तु॑विनृम्ण॒ विश्वा॒ प्र धे॒नवः॑ सिस्रते॒ वृष्ण॒ ऊध्नः॑।
अधा॑ ह॒ त्वद्वृ॑षमणो भिया॒नाः प्र सिन्ध॑वो॒ जव॑सा चक्रमन्त ॥६

भा०—हे (तुविनृम्ण) बहुत धनादि ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (ते) तेरे (तु) तो निश्चय से (ता) वे नाना कार्य (सत्या) सत्य आचरण, न्यायानुसार धर्मानुकूल हों। (ते वृष्णः) वे सब सुख के वर्षण करने वाले, एवं बलवान् तेरे लिये (विश्वा धेनवः) समस्त वाणियें और प्रजागण गौओं के समान (ऊधः) स्तनमण्डल से दुग्ध के समान (प्र सिस्रते) खूब ऐश्वर्य प्रवाहित करें, तुझे दें। अन्तरिक्ष में विद्युतों के समान हे (वृषमणः) बलवान् पुरुष के समान दृढ़ चित्त वाले ! (अध ह) और निश्चय से (त्वत् भियानाः) तेरे से भयभीत होकर (सिन्धवः) महा नदों के तुल्य वेगवान् रथादि सैन्य (जवसा) वेग से (प्र चक्रमन्त) आगे बढ़ें, पराक्रम करें। (२) अध्यात्म में इन्द्र आत्मा, 'सिन्धवः' प्राणगण।

अत्राहं ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७॥

भा०—हे (हरिवः) उत्तम, विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्यों के स्वामिन् ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! (यत्) जब तू (अत्र) इस राज्यकार्य में (दीर्घां प्रसितिम् अनु) बड़ी लम्बी, चिरकाल तक स्थिर रहने वाली राज्य प्रबन्ध-व्यवस्था के अनुकूल (स्यन्दयध्यै) वेग से आगे बढ़ने के लिये (बद्बधानाः) प्रबन्ध करने वाली वा प्रबन्ध में बंधी हुई समितियों और उत्तम प्रजाओं को (सीम् अनु प्रमुचः) सब प्रकार उनके मनोनुकूल मुक्त या स्वतन्त्र कर देता है तब (ताः उ देवीः) वे तुझे कामना करने वाली और ज्ञान-प्रकाश से युक्त प्रजाएं और विदुषी स्त्रियें भी (स्वसारः) परस्पर बहनों के समान प्रेम भाव से रहती हुईं, और (स्वसारः) स्वयं अपने उद्देश्य तक पहुंचती हुई (अवोभिः) राज्य के रक्षण, अन्नादि पदार्थों और प्रेमयुक्त व्यवहारों द्वारा (स्तवन्त) तेरी प्रशंसा करती हैं।

पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८॥

भा०—(मद्यः) हर्षजनक (अंशुः) राज्य प्राप्त कराने वाला बल (सिन्धुः न) महानद के तुल्य (त्वा आपिपीडे) तुझे प्राप्त हो । और (शशमानस्य) उद्वेगों और उपद्रवों को शान्त करने वाले और उत्तम उपदेश करने वा शासन करने वाले और अधार्मिक जनों को उल्लंघन करने वाले प्रबल पुरुष की (शक्तिः) शक्ति और (शमी) कर्म भी (त्वा आ) तुझे प्राप्त हों । (आशुः) शीघ्रगन्ता पुरुष (न) जिस प्रकार (गोः तुव्योजसं रश्मिं या मच्छति तथा) वेग से जाने वाले अश्व वा वलीवर्द के बहुत बल युक्त रास को काबू रखता है उसी प्रकार (आशुः) राष्ट्र का भोक्ता राजा होकर तू भी (शुशुचानस्य) अतितेजस्वी (गोः) पृथिवी राष्ट्र के (तुव्योजसं) बहुत बल से साधने योग्य (रश्मिम्) रासों या बागडोर को (अस्मद्र्यक्) हमारे सन्मुख (यम्याः) निमन्त्रित कर ।

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहुरे) सहनशील ! शत्रु पराजय करने हारे राजन् ! तू (अस्मे) हमारे (सत्रा) सदा अथवा वस्तुतः, (वर्षिष्ठा) बहुत और (ज्येष्ठा) खूब प्रशंसनीय (नृम्णानि) धन और (सहांसि) बल (कृणुहि) बना । (अस्मभ्यं) हमारे (वृत्रा) बढ़ते शत्रुओं को (सुहनानि) सुख से हनन करने योग्य कर और (रन्धि) उनका नाश कर । (वधः वनुषः) हत्या के साधन शस्त्रास्त्र को सेवने वाले (मर्त्यस्य) दुष्ट पुरुष को (जहि) दण्डित कर । अथवा—(वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) मारने वाले मनुष्य के वधादि के साधनों का नाश कर ।

अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वम्) तू (अस्माकम् इत्) हमारे वचन अवश्य (सु श्रृणुहि) अच्छी प्रकार सुना कर। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (चित्रान्) आश्चर्यजनक अभूतपूर्व (वाजान्) ज्ञान धनैश्वर्य और बल (उप माहि) प्रदान कर। (अस्मभ्यम्) हमें (विश्वाः) सब प्रकार की (पुरन्धीः) बहुत से ज्ञानों को धारण करने वाली बुद्धियें और राष्ट्र को धारण करने वाली समृद्धिएं (ईषणः) दे और प्रेरित कर। तू (गोदाः) भूमि, वाणी, ज्ञान-रश्मि और गौ आदि पशुओं को देने हारे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्माकं) हमें (सु बोधि) उत्तम रीति से जान और ज्ञानवान् बना।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० १९। ११ ॥ इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

वामदेव ऋषिः ॥ १—७, ११ इन्द्रः। ८, १० इन्द्र ऋतदेवो वा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ७, ८, ९ २ त्रिष्टुप्। ४, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६ भुरिक् पंक्तिः। ११ निचृत्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥१॥

भा०—(कस्य होतुः) किस ज्ञान और धनादि देने वाले दानशील महापुरुष के (महान्) बड़े भारी (यज्ञं) सत्संग, मैत्रीभाव, उत्तम दान को (जुषाणः) प्रेमपूर्वक सेवन करता हुआ (कथा) किस प्रकार (अवृधत्) बढ़े? उत्तर—जैसे (ऊधः पिबन्) स्तनपान करता हुआ बालक बढ़ता है उसी प्रकार (सोमम् अभि पिबन्) सब तरफ़ से 'सोम' शान्ति

दायक ऐश्वर्य वा ओषधिरस और ज्ञान को पान करता हुआ बढ़े। वह (उशानः) ज्ञान ऐश्वर्यादि की कामना करता हुआ और (जुषमाणः) प्रेमपूर्वक सेवन करता हुआ (ऋष्वः) महान् होकर (अन्धः) उत्तम प्राण धारक अन्न को धारण करे। (शुचते धनाय) आत्मा को पवित्र करने वाले शुद्ध धन को प्राप्त करने के लिये (ववक्षे) ज्ञान का प्रवचन करे वा धनादि को प्राप्त करे। (२) इसी प्रकार इन्द्र, आचार्य (सोमं अभि पिबन्) शिष्य का सब प्रकार से पालन करता हुआ श्रद्धादि से प्राप्त पवित्र धनादि के निमित्त ज्ञान का प्रवचन करे।

को अ॒स्य वी॒रः स॑ध॒मादमाप॒ समानंश सुम॒तिभिः॒ को अ॒स्य।
कद॑स्य चि॒त्रं चि॑किते॒ कदू॒ती वृ॒धे भु॑वच्छशमा॒नस्य॒ यज्योः॑ ॥२॥

भा०—(अस्य) इसके (सधमादम्) साथ आनन्द प्रसन्न होने का अवसर (कः) कौन (आप) प्राप्त करता है। और (अस्य) इसके साथ (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों, विज्ञान और विज्ञानवान् पुरुषों सहित (कः समानंश) कौन सत्संग करता है, मनुष्य जो उसका सत्संग और सहयोग भी करता है वह (अस्य) इसके (चित्रं) अद्भुत सामर्थ्य को (कत्) कब (चिकिते) जान पाता है, (अस्य) इस (यज्योः) सत्संग-योग्य, दाता, परम मित्र एवं (शशमानस्य) उत्तम गुणों में प्रशंसित और अन्यों को शासन करने वा शस्त्रादि का अभ्यास करने वाले पुरुष की (ऊती) रक्षा, ज्ञान और अन्यों को प्रसन्न करने के सामर्थ्य से (वृधे) वृद्धि प्राप्त करने के लिये (कत्) कब (भुवत्) समर्थ होता है।

क॒था शृ॑णोति हू॒यमा॑न॒मिन्द्रः॑ क॒था शृ॒ण्वन्नव॑सामस्य वेद।
का अ॑स्य पू॒र्वीरुप॑मातयो ह क॒थैन॑माहुः॒ पपु॑रिं जरि॒त्रे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रु और अज्ञान का नाश करने वाला वीर राजा और विद्वान् आचार्य, (हूयमानम्) अपने से स्पर्धा करने वाले शत्रु

के वचन और अपने प्रति दिये या सौंपे जाने वाले शिष्य के प्रति (कथा शृणोति) किस प्रकार श्रवण करे। और (शृण्वन्) सुनने वाला पुरुष (अस्य) इस राजा और विद्वान् के (अवसाम्) ज्ञानों और रथादि सामर्थ्यों को (कथा वेद) किस प्रकार जाने। (अस्य) इसकी (पूर्वीः) ऐश्वर्यों से पूर्ण, वहुतसी, पूर्वतः विद्यमान (उपमातयः) समीपस्थ शत्रु हननकारिणी और उसका अपना मान उत्पन्न करने वाली और सम्मति अनुमति देने वाली (का) सेना, प्रजा, और समितियें क्या २ हों, और विद्वान् की 'उपमाति' अर्थात् ज्ञान शक्तियां मान पद आदि क्या २ हों और (एनम्) इसको (जरित्रे) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुष वा प्रजाजन के हितार्थ (पपुरिम्) पालक और पूरक (कथा आहुः) किस प्रकार कहते हैं। यह सव जानने योग्य वातें हैं। उनको जानकर राजा प्रजा, गुरु शिष्य परस्पर यथोचित व्यवहार करें।

कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥४॥

भा०—(सबाधः) वाधा अर्थात् नाना प्रकार की विघ्न वाधाओं से युक्त अथवा 'वाधा' विद्या विलोडन, अनुशीलन, ऊहापोह से युक्त (शशमानः) शम का अभ्यासी उत्तम अनुशासन प्राप्त करता हुआ विद्यार्थी (दीध्यानः) तेजस्वी होकर ध्यान धारणा का अभ्यास करता हुआ (अस्य द्रविणं) इस राजा के ऐश्वर्य और गुरु वा प्रभु के ज्ञान-धन को (कथा अभिनशत्) किस प्रकार साक्षात् प्राप्त करे ? उत्तर—(नवेदाः देवः) विलकुल न जानने वाला विद्या का इच्छुक शिष्य और (नवेदाः) सुवर्णादि धनों से रहित, निर्धन (देवः) धनाभिलाषी, (यत्) जव (मे नमः) मेरे लिये नमस्कार आदि आदर सत्कार को (अभि जुजोषत्) प्रेमपूर्वक आचरण करता है तव वह (ऋतानां) सत्य ज्ञानों और अन्नादि धनों को (जगृभ्वान्) ग्रहण करने वाला (भुवत्) हो जाता है।

कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ५।९

भा०—(देवः) तेजस्वी, सर्व प्रकाशक प्रभु विद्वान् कामनाशील पुरुष (मर्त्तस्य) मनुष्य के (सख्यं) मित्र भाव को (कथा) किस प्रकार से और (कत्) कब (जुजोष) प्राप्त कर सकता है । उत्तर—(अस्याः) इस (उषसः) प्रभात वेला के (व्युष्टौ) विशेष रूप से दीप्तिमान् होने पर अर्थात्—(१) देव परमेश्वर प्रातः वेला में भजन करने पर मनुष्य पर अनुग्रह करता है । (२) दाता कन्या का देने वाला पुरुष कैसे कब सख्य सम्बन्ध प्राप्त करता है, उत्तर—(अस्याः उषसः व्युष्टौ) कामनाशील कमनीय कन्या के विशेष अभिलाषा युक्त हो जाने पर । यदि कन्या बरको न चाहे तो ससुर जमाई का भी प्रेम सम्बन्ध नहीं हो सकता । (३) विद्वान् साधारण मनुष्य का कब और किस प्रकार सख्य प्राप्त करता है (अस्याः उषसः व्युष्टौ) इस पापनाशक, तेजस्विनी वाणी के विशेष रूप से प्रकाशित होने पर । (४) देव, तेजस्वी राजा कब और किस प्रकार मनुष्य प्रजा का सख्य प्रेम प्राप्त करता है उत्तर—(उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने वाली सेनादि शक्ति के विशेष चमक जाने पर । (५) इसी प्रकार (देवः) सूर्य इस मनुष्य का कब और किस प्रकार से अधिक मित्रता या प्रेम का पात्र होता है (उषसः व्युष्टौ) प्रभात वेला के चमकने पर । उस समय प्राभातिक किरणें और वायु सब रोगनाशक स्वास्थ्य प्रद होने से सेवनीय हैं और वही मरणशील प्राणि के परम मित्र जीवन के सहायक हैं । (ये) जो (अस्मिन्) इसके आश्रय पर ही (सुयुजं) शुभ, उत्तम रीति से योग देने वाले (कामं) अभिलाषा को (ततस्रे) विस्तारित करते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (कथा कत् अस्य सख्यं) किस प्रकार और कब मित्रभाव होता है ? उत्तर वही है (उषसः व्युष्टौ) प्रभात वेला के चमकने पर, कान्तिमती कन्या के

अभिलाषा करने पर पापदाहक वाणी के प्रकाश होने पर और प्रभात में। इति नवमो वर्गः ॥

किमादमंत्रं सख्यं सखिभ्यः कुदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः ॥६॥

भा०—हे विद्वन्! स्वामिन्! प्रभो! (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (आत्) अनन्तर (ते) तेरा (किम् कदा सख्यम्) क्या और कब कैसा और किस समय मित्र भाव और किस समय (भ्रात्रं) भाईपने का स्नेह हम (प्र ब्रवाम) बतलावें। उत्तर—(अमत्रं) अपने सहवासी की रक्षा करने वाला, शत्रुओं को पीड़ित करने वाला (अमात्रम्) और असीम (अस्य) इस (सुदृशः) शोभन दृष्टि वाले, उत्तम दर्शनीय प्रभु का (वपुः) शरीर (श्रिये) श्री, शोभा और राज्यलक्ष्मी के धारण करने योग्य हों, और (अस्य सर्गाः) इसके सब उद्योग (स्वः सर्गाः न) सूर्य के उत्पादित समान जल का मेघादि के तुल्य हो। और (गोः) सबके गमन करने योग्य, उत्तम पुरुष की वाणी का स्वरूप भी (चित्रतमम्) अति आश्चर्य-जनक, (गोः इषे) सूर्य की रश्मि का स्वरूप जिस प्रकार अन्न और वृष्टि के लिये होता है उसी प्रकार (इषे) पृथ्वी पर अन्न की वृद्धि और प्रजाओं की कामना पूर्ण करने के लिये हो।

द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७॥

भा०—(उग्रः) शत्रुओं को नाश करने में अति बलवान् पुरुष (द्रुहं) द्रोहकारिणी, (ध्वरसम्) हिंसा करने वाली (अनिन्द्राम्) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राजा से रहित शत्रु सेना को (जिघांसन्) मारने या दण्ड देने की इच्छा करता हुआ, (तुजसे) प्रजा के पालन और शत्रु के नाश के लिये (तिग्मा अनीका) तीक्ष्ण स्वभाव के सैन्यों और शस्त्रास्त्रों को (तेतिक्ते) और अधिक तीक्ष्ण करे। (ऋणयाः ऋणा चित्) जिस प्रकार ऋण शेष करने वाला, अधमर्ण (ऋणा) लिये

ऋण रूप धनों का अन्त कर देता है उसी प्रकार (नः) हमारा (उग्रः) बलवान् राजा (दूरे) दूर विद्यमान (अज्ञाता) अज्ञात (उषसः) उषाओं को सूर्य के समान अज्ञात सन्ताप कारिणी शत्रु सेनाओं को भी (बबाध) पीड़ित करे ।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य ज्ञान वेद की (शुरुधः) अज्ञान को शीघ्र ही रोकने वाली (पूर्वीः) सनातन से चली आई, एवं ज्ञान से पूर्ण वाणियें (सन्ति) हैं । (ऋतस्य धीतिः) सत्य ज्ञान, वेद का अध्ययन, धारण और मनन (वृजिनानि) समस्त पापों को (हन्ति) नाश करता है । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (श्लोकः) वेद वाणी, (शुचमानः) पवित्र करती हुई और स्वयं पवित्र, (बुधानः) उत्तम बोध प्रदान कराती हुई (आयोः) मनुष्य के (बधिरा कर्णौ) बहरे कानों को भी (ततर्द) छेद देती है और उनमें भी प्रवेश करती है अथवा (बधिरा कर्णं) बध, बन्धन कराने वाले शस्त्रादि साधनों को भी नाश करती है । (२) 'ऋत' का अर्थ सत्य, न्याय, यज्ञ और परमेश्वर है । न्याय के उपलक्षण से न्यायाधिपति राजा भी 'ऋत' इस प्रकार न्यायवान् राजा की (शुरुधः पूर्वीः सन्ति) शत्रु को शीघ्र रोकने वाली सेनायें बहुत सी हों । उसकी (धीतिः) राष्ट्र धारण की शक्ति और प्रज्ञा पापों का नाश करे, उसकी वाणी, न्याय शासन सबको विज्ञापित करती हुई, सबको पवित्र करती हुई बहरे कानों के भी भीतर प्रवेश करे । 'शुरुधः' इति पदनाम । आशुरोधनात्, शुग्रोधनाद्वा ॥ 'ऋत' सत्य स्वरूप परमेश्वर की सनातन शक्तियां हैं, उसका ध्यान पापनाशक है उसकी वाणी और स्तुति बधिरों को भी ज्ञान प्रदान करती हैं । अथवा—'ऋतम्' इत्यन्ननाम । अन्न की क्षुधा निवारक और पालक बहुत सी शक्तियां हैं । अन्न का धारण पाप नाशक है, भूखे पाप करते हैं अन्न से

समृद्ध जनों में पाप नहीं आते। अन्न की वार्ता ही (वधिरा) वध करने वाले वा बंधन करने वाले (कर्णा) साधनों को भी (ततर्द) नाश करती है।

ऋतस्य॑ दृळहा धरुणा॑नि सन्ति पुरूणि॑ चन्द्रा वपु॑षे वपूं॑षि।
ऋतेन॑ दीर्घमि॑षणन्त पृक्ष॑ ऋतेन॒ गाव॑ ऋतमा वि॑वेशुः ॥ ९ ॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य के (दृढा) दृढ (धरुणानि) धारक आश्रय (सन्ति) हुआ करते हैं और (ऋतस्य वपुषे) सत्याचरण करने वाले शरीरधारी के (पुरूणि) बहुत से (चन्द्रा) आह्लादजनक (वपूंषि) नाना सहयोगी बन्धुजनों के शरीर भी उसे प्राप्त होते हैं। (ऋतेन) सत्याचरण द्वारा बुद्धिमान् लोग (दीर्घम् पृक्षः) जल से अन्न के तुल्य दीर्घकाल तक अन्नादि जीवन और शान्ति सुख (इषणन्त) प्राप्त करते हैं। (ऋतेन) सत्य ज्ञान वा सत्याचरण से (गावः) वाणियें भी (ऋतम्) सत्य स्वरूप परमेश्वर को (आ विवेशुः) प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार न्यायाचारी के आश्रय दृढ और उसके नाना सुन्दर रूप लोक में प्रकट होते हैं, उसीसे लोग दीर्घ (पृक्षः) सत्संग चाहते हैं उसीसे (गावः) गतिशील जन या प्राणी, न्याय, अन्न और सत्य ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

ऋतं येमा॒न ऋतमिद्व॑नोत्यृतस्य॒ शुष्म॑स्तुर॒या उ॑ गव्युः।
ऋताय॑ पृथ्वी ब॑हुले ग॑भी॒रे ऋताय॑ धे॒नू पर॑मे दु॑हाते ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतं येमानः ऋतम् वनोति) जल को नियन्त्रण में रखने वाला शिल्पी वा कृषक शक्ति वा अन्न को प्राप्त करता है उसी प्रकार (ऋतं) सत्याचरण को (येमानः) नियम पूर्वक पालन करता हुआ (ऋतम् इत्) सत्य बल को ही (वनोति) चाहा करता है। (ऋतस्य शुष्मः) जल वा अन्न का बल जिस प्रकार (तुरया गव्युः) अति शीघ्र भूमि, इन्द्रिय और वाणी को प्राप्त होता है उसी प्रकार (ऋतस्य शुष्मः) सत्याचरण और धन का बल (तुरया) अति शीघ्र ही (गव्युः)

गो अर्थात् वाणी और पार्थिव सम्पदा की वृद्धि करता है। (ऋताय) अन्न और जल के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (पृथ्वी) भूमि और आकाश है उसी प्रकार (ऋताय) सत्य न्यायशील राजा के हितार्थ (पृथ्वी) भूमि और आकाश के समान विस्तृत (बहुले) बहुत ऐश्वर्य देने वाली (गंभीरे) गम्भीर राजवर्ग और प्रजावर्ग (दुहाते) नाना ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। और (ऋताय) यज्ञ के लिये जिस प्रकार (परमे) उत्तम दोनों (धेनू) वाणी और गौ (दुहाते) दूध और ज्ञान प्रदान करती हैं उसी प्रकार (ऋताय) जल युक्त, सत्य युक्त पुरुष और यज्ञादियुक्त राष्ट्र के लिये दोनों लोक, वाणी क्रिया और प्रजा और सेना दोनों ही (परमे) परम (धेनू इव) गौओं के तुल्य (दुहाते) सम्पदाएं प्रदान करती हैं।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥१०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्वसूक्त ॥ इति दशमो वर्गः ॥

[२४]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । २, ८ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । १० निचृदनुष्टुप् ॥ इत्येकादशर्चं सूक्तम् ॥

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१॥

भा०—(का) वह कौनसी (सुस्तुतिः) उत्तम स्तुति है। जो (शवसः) बलों, सैन्यों के (सूनुम्) प्रेरक (अर्वाचीनम्) हमारे प्रति प्रबल, प्रिय (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा वा प्रभु के प्रति

(राधसे) हमें धनैश्वर्य की वृद्धि और आराधना के लिये (आववर्त्तत्) प्रवृत्त करे। अर्थात् राजा में ऐसे कौन से गुण हैं जिनको सुनकर हम भी धन की प्राप्ति के लिये ऐश्वर्यवान् राजा के पास जावें। और वह कौनसी प्रभु की कीर्त्ति है जो हमें आराधना के लिये भगवान् की ओर झुकाती है। हे (जनासः) मनुष्यो! (सः) वह (नः) हमारा (निःष्पिधाम्) बुरे मार्गों से हटाने वाले शासनों और शासकों, आचार मर्यादाओं की (गोपतिः) वाणी या आज्ञाओं, शास्त्र-वचनों का पालक है वही (निष्पिधाम्) सब शासकों में से सबसे ऊंचा (गोपतिः) भूमि का स्वामी है। (सः गृणते) वह विद्वान्, उपदेष्टा पुरुष को (वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को (ददिः हि) निश्चय से दान करनेहारा (वीरः) शूरवीर है।

स वृ॑त्रहत्ये॒ हव्यः॒ ईड्यः॒ स सुष्टु॑त इन्द्रः॒ सत्यरा॑धाः।
स याम॒न्ना म॒घवा॒ मर्त्या॑य ब्रह्मण्य॒ते सुष्व॑ये॒ वरि॑वो धात् ॥२॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष ही, (वृत्र-हत्ये) बढ़ते शत्रुओं के नाश करने के कार्य, संग्राम में (हव्यः) पुकारने योग्य है। (सः) वह (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है। (सः सुस्तुतः) वह उत्तम रूप से प्रशंसित (सत्यराधाः) सत्य न्याय रूप धन का धनी हो। (सः यामन्) वह उत्तम मार्ग में चलने वाला (ब्रह्मण्यते) धर्म पूर्वक धन के चाहने वाले, (सुष्वये) ऐश्वर्य पाने के उद्योग करने वाले (मर्त्याय) मनुष्य को (वरिवः) नाना ऐश्वर्य (आधात्) प्रदान करता है।

तमिन्नरो॒ वि ह्व॑यन्ते समी॒के रि॑रि॒क्वांस॑स्त॒न्व॑: कृण्वत॒ त्राम्।
मि॒थो यत्त्या॒गमु॒भया॑सो॒ अग्म॒न्नर॑स्तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तौ ॥३॥

भा०—(यत्) जिस (त्यागम्) दानशील पुरुष को लक्ष्य कर (नरः) नायक लोग और साधारण जन (उभयासः) दोनों ही एवं पक्ष प्रतिपक्ष दोनों लोग (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र पौत्र के निमित्त

धन, वेतनादि लाभ और परस्पर न्यायानुकूल विभाग के निमित्त (मिथः) परस्पर सह सम्मति करके (अग्मन्) जाते हैं। (रिरिक्कांसः) देहों और करादि धनों का त्याग करने वाले (नरः) वीर और प्रजाजन भी, (समीके) संग्राम में (तम् इत्) उसको ही (वि ह्वयन्ते) विविध प्रकारों से पुकारें और (तन्वः) अपने शरीर का (त्राम्) रक्षक भी उसी को (कृणुत) करें।

क्रतूयन्ति क्षितयो योगं उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४॥

भा०—हे (उग्र) बलवान्! इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! प्रभो! स्वामिन्! (योगे) योगाभ्यास काल में तुझे प्राप्त करने के लिये (क्षितयः) तेरे में ही निवास करने वाले योगीजन (आशुषाणासः) आदर पूर्वक अपने देह का शोषण करते हुए, तपस्वी (अर्णसातौ) ज्ञान और सुख को प्राप्त करने के लिये (क्रतूयन्ति) ज्ञान और कर्म का अनुष्ठान करते हैं। वे (यत्) जब (विशः) तेरे में प्रवेश करने वाले होकर (युध्माः) अपने भीतर। काम क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओं से लड़ते हुए (सं अववृत्रन्त) सब प्रकार से घिर जाते हैं तब वे (नेमे) यम नियम का पालन करने हारे होकर (अभीके) युद्ध में (इन्द्रयन्ते) तुझ ऐश्वर्यवान् प्रभु की कामना करते हैं। (२) इसी प्रकार (क्षितयः) राष्ट्र निवासी (योगे) परस्पर मिलकर सत्संग के अवसर पर (अर्णसातौ) धन, जल अन्नादि के लाभ और संविभाग के निमित्त (मिथः आशुषाणासः) परस्पर शीघ्रता करते हुए (क्रतूयन्ति) उत्तम प्रज्ञा, विवेक चाहते हैं। और (यत्) जब (युध्माः) परस्पर प्रहार करने वाली (विशः) प्रजाएं (सं अववृत्रन्त) परस्पर एक दूसरे को नीचे ऊपर कासा व्यवहार करें परस्पर को दबावें (आत् इत्) तब ही (नेमे) नियन्ता वा कुछ न्यायशील पुरुष (अभीके) अपने समीप (इन्द्रयन्ते) ऐश्वर्यवान् अर्थपति राजा को बनाना चाहते हैं। और उसकी स्थापना करते हैं।

आदिद्ध नेमं इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात्।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ५।११।

भा०—(आत् इत्) अनन्तर (नेमे) कुछ जन (ह) निश्चय से (इन्द्रियं) इन्द्र, आत्मा के ऐश्वर्य को (यजन्ते) प्राप्त करते हैं और (आदित्) अनन्तर (पक्तिः) परिपाक जिस प्रकार (पुरोडाशं) उत्तम अन्न को (रिरिच्यात्) अधिक गुण सम्पन्न कर देता है उसी प्रकार (पक्तिः) ज्ञान और तप की परिपक्वता (पुरोडाशं) प्रस्तुत किये आत्मा को (रिरिच्यात्) अधिक शक्तिशाली बना देता है। (आत् इत्) और अनन्तर (सोमः) शरीर के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला वीर्य या वीर्यवान् पुरुष (असुष्वीन्) प्राणों द्वारा चलने वाले इन्द्रियगण को (वि पपृच्यात्) विषय सम्पर्क से शिथिल करने में समर्थ होता है। (आत् इत्) उसके अनन्तर वह (वृषभं) अन्तःकरण सुखों की वर्षा करने वाले धर्म मेघ रूप प्रभु को (यजध्यै) उपासना करने और प्राप्त करने के लिये (जुजोष) प्रेमपूर्वक चाहने लगता है। (२) राष्ट्रपक्ष में—नियन्ता लोग इन्द्र, राजा के राष्ट्र को सुसंगत सुव्यवस्थित करें। परिपाक उत्तम अन्न को और गुणकारी करे, खेती पके पर काटी जाय। (असुष्वीन्) प्राणी जनों को (सोमः) अन्न, ओषधिरस विशेष रूप से पुष्ट करे और लोग बलवान् ऐश्वर्यदाता, प्रबन्धक को प्राप्त करने में प्रेमभाव दर्शावें। इत्येकादशो वर्गः ॥

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (इत्था) वस्तुतः (सोमम्) अभिषेक, और ऐश्वर्य शासन की (उशते) कामना करने वाले (इन्द्राय) शत्रु नाशकारी, ऐश्वर्यवान्, राजा होने योग्य पुरुष (सुनोति) ऐश्वर्य का पद प्रदान करता है। और जो (अविवेनन्) अपनी विशेष कामना से रहित

होकर ही (सध्रीचीनेन मनसा) साथ लगे, सादर चित्त से (समत्सु) संग्रामों और हर्षादि के अवसरों में (तम् इत् सखायं) उसको ही अपना मित्र (कृणुते) बना लेता है वह (अस्मै) इसको (वरिवः कृणोति) ऐश्वर्य देता और अत्यन्त सेवा करता है। (२) अध्यात्म में—परमेश्वर सर्वाप्तकाम होने से 'उशत्' है। उनके लिये जो अपने 'सोम' जीव को पुत्र वा शिष्य के समान सौंप देता है, वह उसको विभूति देता है, वह जीव स्वयं निष्काम होकर सहयोगी चित्त से उसको ही आनन्दानुभवों में मित्र बना ले।

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः॥ ७॥

भा०—(यः) जो प्रजाजन (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (अद्य) आज के समान सदा (सोमम्) अन्नादि ओषधिरस, ऐश्वर्य (सुनवत्) उत्पन्न करता है, (पक्तीः पचात्) परिपक्व करने योग्य बलवीर्य, विद्या, ज्ञान एवं अन्नादि भी उसी के लिये परिपक्व करे, (उत) और (धानाः) खीलों के समान राष्ट्र को धारण पोषण करने वाली शक्तियों को (भृज्जाति) और भी परिपक्व करता और पीड़ादायकों का सन्तप्त करता है, और (मनायोः) प्रशंसा की कामना करने वाले के (उचथानि) कहने योग्य वचनों की (प्रतिहर्यन्) कामना करता हुआ (इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता, वीर पुरुष (तस्मिन्) उस प्रजा-जन में, उसके आश्रय पर ही (वृषणं) अपने प्रबन्धकारी और ऐश्वर्य सुखों के देने वाले (शुष्मं) बल को धारण करता है।

यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः॥ ८॥

भा०—(यदा) जब (ऋघावा) शत्रुओं को नाश करने में समर्थ राजा (समर्यम्) मरने मारने वाले वीर पुरुषों के एकत्र होने योग्य संग्राम

को (वि अचेत्) विशेष रूप से जान ले (अर्यः) स्वामी होकर (यदा) जब वह (आजिम् दीर्घम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के कार्य को भी लम्बा देर तक चलने वाला (अभि अख्यत्) देखे तब जिस प्रकार (सोमसुद्भिः आनिशितं वृषणं पुरुषं पत्नी दुरोणे अच्छ अचिक्रदत्) अन्न ओषधिरसों से पुष्ट करने वाले उपायज्ञों द्वारा तीक्ष्ण वा अधिक बलवान् किये गये, हृष्ट पुष्ट पुरुष को उसकी पत्नी प्रेम युक्त होकर बुलाती है उसी प्रकार (सोमसुद्भिः) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाले विद्वान् पुरुषों से (आनिशितम्) सब प्रकार से तीक्ष्ण तेजस्वी बनाये गये (वृषणं) बलवान् उत्तम प्रबन्धक पुरुष को (दुरोणे) अति उच्च पद पर (पत्नी) पत्नी के समान राष्ट्रैश्वर्य की पालक और ऐश्वर्यवर्धक प्रजा (अच्छ) आदर पूर्वक (अचिक्रदत्) बुलावे, स्थापित करे ।

भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।

स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९॥

भा०—राजा (भूयसा) बहुत बड़े भारी कार्य से भी (कनीयः) अति स्वल्प (वस्नम् अचरत्) मूल्य प्रजा से प्राप्त करे । वह (पुनः यन्) बार २ प्रयाण करता हुआ भी (अविक्रीतः) प्रजा से वेतन द्वारा अपने आप न बेचा जाकर (अकानिषम्) अति दीप्तियुक्त होवे । (सः) वह प्रजा का रक्षक, राजा (भूयसा) बहुत से बल या त्याग से (कनीयः) राष्ट्र के छोटे से छोटे अंश को भी (न अरिरेचीत्) त्याग न करे, अथवा— प्रजा के बहुत बड़े भाग से अति अल्प अंश को बढ़ने न दे । क्योंकि (दीनाः) गरीब और (दक्षाः) चतुर अमीर लोग सभी उसके (वाणम्) ऐश्वर्य वा आज्ञा को (वि प्र दुहन्ति) विविध प्रकारों से भरते, पूर्ण करते रहते हैं ।

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।

यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥

भा०—(मम) मुझ प्रजा के (इमं इन्द्रं) इस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता

राजा वा सेनापति को (दशभिः) दश (धेनुभिः) गौओं के तुल्य दसों पृथिवियों से या दस गुणा भूमि से भी (कः) कौन (क्रीणाति) ख़रीद सकता है। (यदा वृत्राणि जंघनत्) वह जब बढ़ते शत्रुओं की सेनाओं को मार चुकता है वा नाना ऐश्वर्य प्राप्त करता है (अथ) उसके बाद (एनं) इसको (मे) मुझ प्रजा को (पुनः ददत्) फिर वापस दे देता है। इसी प्रकार राजा भी कहता है (मे इमं इन्द्रम्) मेरे इस राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को (कः दशभिः धेनुभिः क्रीणाति) कौन दसों भूमियों से भी ख़रीद सकता है यह राष्ट्र जब (वृत्राणि जंघनत्) वृद्धिशील ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है तब २ यह (एनं) इस ऐश्वर्य को वह राष्ट्र (मे पुनः ददत्) मुझे ही वार २ सौंप देता है। इति द्वादशो वर्गः॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ११।१२॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्व सूक्त मं० ११॥

[२५]

वामदेव ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृत् पंक्तिः। २, ८ स्वराट् पंक्तिः। ४, ६ भुरिक् पंक्तिः। ३, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे॥ १॥

भा०—(कः) कौन (अद्य) वर्त्तमान में (नर्यः) मनुष्यों वा नायक पुरुषों में सर्वोत्तम, सबका हितकारी है। [उत्तर]—जो (उशन्) उत्तम कामना से युक्त होकर सबको चाहता हुआ (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (सख्यं) प्रेम भाव का (जुजोष) सेवन करता है। [प्रश्न]—(वा) और (कः) कौनसा पुरुष (महे अवसे) बड़ी रक्षा करने में समर्थ है। [उत्तर]—जो (पार्याय) पार पहुंचाने में समर्थ पुरुष के लिये

(समिद्धे अग्नौ) अग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर (सुतसोमः) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करके (ईट्टे) ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥

भा०—(सोम्याय) 'सोम' अर्थात् उत्तम ऐश्वर्यों के योग्य और ज्ञानशान्ति आदि गुणों से युक्त शिष्य पुत्रादि के हितकारी गुरु के आदरार्थ (वचसा) वचन द्वारा (कः नानाम) कौन विनीत होता है ? और (कः) कौन पुरुष (मनायुः) ज्ञान की कामना करता ? (कः) कौन पुरुष (उस्राः) किरणों को सूर्य के तुल्य, गौओं को गोपालक के तुल्य, उत्तम अन्नदात्री भूमियों को राजा के तुल्य (वस्ते) आच्छादित करता है, उनमें रहता और उनका पालन करता है ? (कः) कौन (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, अज्ञानहन्ता गुरु के (युज्यं) सहयोग और सौहार्द की (वष्टि) कामना करता है ? (कः) कौन (सखित्वं वष्टि) उसके मित्र-भाव की कामना करता है, (कः भ्रात्रं वष्टि) कौनउसके साथ भाई-चारा करना चाहता है ? (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् को (ऊती) रक्षा, ज्ञान आदि साधन के लिये (कः वष्टि) कौन चाहता है ? [उत्तर] (मनायुः) ज्ञान का इच्छुक, होकर (यः उस्राः वस्ते) जो वेद वाणियों के ग्रहणार्थ गुरु के अधीन वास करता है।

को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥

भा०—(अद्य) आज वर्त्तमान में (देवानाम्) ज्ञान, ऐश्वर्य के देने वाले गुरुजनों की (अवः) रक्षा को (कः वृणीते) कौन वरण करता है ? (आदित्यान् कः) १२ हों मासों के समान 'अदिति' सूर्य तुल्य तेजस्वी पुरुषों से उत्पन्न विद्वानों और (अदितिं) अदीन, अखण्ड

विद्यावान् तेजस्वी गुरु को (कः वृणीते) कौन वरण करता है ? (अश्विनौ) स्त्री और पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और (अग्निः) अग्रणी नायक, अग्नि तुल्य तेजस्वी पुरुष (कस्य सुतस्य अंशोः) अभिषिक्त, विद्या-निष्णात, पुत्रवत् प्रिय, अपने ही किरण के तुल्य किसके अन्नादि का (अविवेनं) निष्काम होकर (मनसा) प्रिय चित्त से (पिबन्ति) पान करते हैं ? उत्तर—(यः ज्योतिः ईट्टे) जो शिष्यवत् ज्योति, ज्ञान प्रकाश प्राप्त करना चाहता है।

तस्मा॑ अ॒ग्निर्भार॑तः॒ शर्म॑ यंस॒ज्ज्योक्प॑श्या॒त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ।
य इन्द्रा॑य सु॒नवा॒मेत्याह॒ नरे॒ नर्या॑य॒ नृत॑माय नृ॒णाम् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (नरे) सबके प्रणेता (नर्याय) सब मनुष्यों के हितकारी एवं उनमें सबसे कुशल, (नृतमाय) सब नायकों के बीच में सबसे कुशल, (नृणां नृतमाय) सब नायकों के बीच में सबसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु का नाश करने वाले राजा के तुल्य अज्ञान के नाशक गुरु के लिये ही (सुनवाम) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करें वा उसके ज्ञान का सम्पादन करें (इत्याह) इस प्रकार की प्रतिज्ञा करता है और जो (ज्योक्) चिरकाल तक (उत् चरन्तं सूर्यम्) ऊर्ध्व आकाश में विचरते हुए सूर्य के तुल्य गुरु को सदा (पश्यात्) आदर भाव से देखता है (तस्मै) उसको (भारतः) सर्व मनुष्यों का हितकारी (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष वा प्रभु (शर्म) शरण और सुख (यंसत्) प्रदान करता है। (२) जो प्रजागण अपने सर्वश्रेष्ठ राजा के लिये ही अन्नादि ऐश्वर्य उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा करें उसको सूर्यवत् उन्नत देखें (भारतः) प्रजाहितैषी तेजस्वी राजा उस प्रजा को शरण दे। (३) इसी प्रकार जो मनुष्य परमेश्वर की पूजा करने का व्रत करता है और सूर्यवत् सर्वोपरि व्यापक मानता वह प्रभु सर्वव्यापक उसको सुख देता है।

न तं जि॑नन्ति ब॒हवो॒ न द॒भ्रा उ॒र्व॑स्मा॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ।
प्रि॒यः सु॒कृत्प्रि॒य इन्द्रे॑ मना॒युः प्रि॒यः सु॑प्रा॒वीः प्रि॒यो अ॑स्य सो॒मी॥५।१३॥

भा०—(दभ्राः न) अल्प वीर्य के (वहवः) वहुत से भी जिस प्रकार वलवान् पुरुष को नहीं पराजय करते उसी प्रकार (वहवः) वहुत से (दभ्राः) हिंसक शत्रु भी (तं न जिनन्ति) उसको नहीं जीत सकते, (अस्मा) उसको (अदितिः) सूर्य के तुल्य गुरु (उरु) वहुत अधिक (शर्म यंसत्) सुख शरण प्रदान करे। (अस्य) उसका (सुकृत्) उत्तम कर्म करने और उत्तम आचरण करनेवाला (प्रियः) प्रिय होता है (इन्द्रे) अज्ञाननाशक गुरु के अधीन रहकर (मनायुः) ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाला शिष्य (अस्य प्रियः) उसको प्रिय होता है। (सुप्रावीः) उत्तम रीति से वीर्य रक्षा करने वाला जितेन्द्रिय (सोमी) वीर्यवान् शिष्य (अस्य प्रियः) उसका प्रिय होता है। (२) उस पुरुष को वहुत से शत्रु भी नाश नहीं कर सकते जिस को अखण्ड शक्ति प्रजा वा राजा शरण देता है। सदाचारी, ज्ञान का और वीर्य का उत्तम रक्षक और ऐश्वर्यवान् पुरुष उस राजा वा प्रभु को प्रिय हो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः॥ ६॥

भा०—राजा (एषः) वह (सुप्राव्यः) उत्तम रीति से प्रजा को पालन करने में कुशल, (प्राशुषाट्) शीघ्र गामी शत्रुओं को पराजय करने वाला, (वीर) शूरवीर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (सुष्वे) उत्तम रीति से अन्नादि ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के हित के लिये (केवला) अकेला (पक्तिं) सूर्य के तुल्य अन्नादि का परिपाक, शत्रुओं का परिताप (कृणुते) करता है। वह (असुष्वेः) ऐश्वर्य अन्नादि उत्पन्न करने वाले निकम्मे मनुष्य का (न आपिः) न बन्धु है, (न सखा) न मित्र है, (न जामिः) न भाई है। वह (अवाचः) अयोग्य निन्दित वाणी वोलने वाले पुरुष का (अव-हन्ता) नाशकारी होकर (दुष्प्राव्यः) दुःख से प्राप्त करने योग्य है।

न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७॥

भा०—(रेवता) धनवान् (असुन्वता) राज्य के निमित्त ऐश्वर्य उत्पन्न न करने वाले (पणिना) व्यापारी के साथ (सुतपाः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पालक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सख्यं) मित्रभाव की (न संगृणीते) प्रतिज्ञा नहीं करता । (अस्य) ऐसे लोभी धनी के (वेदः) धन को वह (आ खिदति) छीन लेता है, ऐसे (नग्नं) स्तुति-वाणी से रहित या वाणी पर स्थिर न रहने वाले असत्यवादी निर्लज्ज को (हन्ति) दण्ड देता है । (सुष्वये) राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, प्रजाजन के हित के लिये वह राजा (केवलः) अकेला ही, (पक्तये) उत्तम अन्नादि समृद्धि के लिये और शत्रु सन्ताप के लिये (वि भूत्) विविध प्रकार से समर्थ होता है ।

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ८।१४॥

भा०—(परे) उत्तम, बहुत ज्ञानी जन, (अवरे) निकृष्ट कोटि के अल्प ज्ञानी और (मध्यमासः) बीच की श्रेणी के लोग (इन्द्रं हवन्ते) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही पुकारते हैं । (यान्तः) वे प्रयाण करते हुए और (अवसितासः) स्थिर निश्चय वाले भी उसी (इन्द्रं हवन्ते) 'इन्द्र' शत्रुहन्ता पुरुष को याद करते हैं, (क्षियन्तः) राष्ट्र में निवास करने वाले (उत) और (युद्धयमानाः) युद्ध करने हारे और (वाजयन्तः नरः) युद्ध, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल का सम्पादन करने वाले (नरः) वीर नायक जन भी (इन्द्रं हवन्ते) ऐश्वर्यवान् शत्रु दल के विदारक वीर पुरुष को ही पुकारते हैं । (२) सभी राजा के समान परमेश्वर की उपासना करते हैं । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२६]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७ स्वराट् पंक्तिः । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ स्वराट्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर कहता है—(अहं मनुः अभवम्) मैं मननशील समस्त चराचर का ज्ञाता हूं । (अहं सूर्यः च) मैं सूर्य के समान स्वयं प्रकाश सबका प्रेरक हूं, मैं (कक्षीवान्) समस्त लोकों में व्यापक प्रबन्ध कर्तृशक्ति का स्वामी हूं । मैं (विप्रः) मेधावी, विशेष रूप से संसार को पूर्ण करने और ज्ञान, कर्मफल का दाता, (ऋषिः अस्मि) सबका द्रष्टा, ज्ञान का प्रकाशक विद्वान् हूं । (अहम्) मैं (आर्जुनेयं) विद्वान् पुरुष से बनाये (कुत्सं) शस्त्रास्त्र के तुल्य सब विघ्ननाशक और ऋजु मार्ग पर चलने वाले एवं स्तुतियों के करनेवाले विद्वान् भक्त को (ऋञ्जे) अपनाता हूं । (अहं) मैं (कविः) क्रान्तदर्शी (उशनाः) सबको प्रेम से चाहने वाला हूं (मा) मुझ को (पश्यत) साक्षात् करो । परमात्मा इन गुणों से युक्त है । उसके अनुकरण में उसकी गुणों की उपासना करता हुआ प्रार्थना करे (अहं मनुः अभवम्) मैं ज्ञानी होऊं, सूर्यवत् तेजस्वी होऊं, सर्व विद्यावाहिनी बुद्धि का स्वामी, मन्त्रद्रष्टा, विद्वान् होऊं । मैं वीर जनोचित शस्त्र और धर्मात्मोचित ज्ञान स्तुति की साधना करूं । मैं क्रान्तदर्शी और सर्वप्रिय होऊं ।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥

भा०—(अहं) मैं परमेश्वर (अर्याय भूमिम् अददाम) आर्य, श्रेष्ठ पुरुष को 'भूमि' प्रदान करता हूं, मैं राजा श्रेष्ठ पुरुष के हाथ में भूमि दान करूं । मैं गृहपति भूमि रूप कन्या को भी भले के हाथ दूं । मैं परमेश्वर (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के हाथ (वृष्टिम् अददाम्) नाना समृद्धि-वर्षा प्रदान करता हूं । मैं राजा करप्रद राजा के प्रति ऐश्वर्य

खुले हाथ दूं। (अहम्) मैं ही (वावशानाः) कामना करने वाले (अपः) लिङ्ग शरीरों, प्राणों और वायु और जलों को (अनयम्) इस संसार में लाता और चलाता हूं। (देवासः) सूर्यादि लोक और ज्ञानी विद्वान् और कामनाशील जीव (मम) मेरे (केतम् अनु आयन्) ज्ञान वा बुद्धि का अनुसरण करते हैं। (२) जीव वा राजा प्रार्थना करें—मैं सशब्द जलधाराओं को वा सकाम प्रजाजनों को सत्-मार्ग पर चलाऊं, विद्वान् और विजिगीषु मेरे ज्ञान और बुद्धि का अनुगमन करें।

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥

भा०—(अहम्) मैं (सर्वताता) सर्वत्र जगत् में (शततमं) सौवें वर्ष में वर्त्तमान (दिवोदासम्) प्रकाश के देने वाले सूर्य के तुल्य तेजस्वी (अतिथिग्वम्) व्यापक किरणों के तुल्य वाणी को प्रसार करने वाले पुरुष को (यद् आवम्) जब पालन करता हूं तब (शम्वरस्य) शान्ति चाहने वाले उस जीव के (नवतीः नव पुरः) ९९ संख्या वाली पूर्ण वर्षों को (साकं) एक साथ ही (वि ऐरम्) विशेष रूप से सञ्चालित कर चुकता हूं। मनुष्य की सौ वर्ष की आयु का भोग भी परमेश्वर के ही हाथ है। अथवा—इस मन्त्र में आत्मा स्वयं कहता है कि (शम्वरस्य) शान्ति सुखमय अध्यात्म आनन्द का रोकने वाली ९९ नाड़ियों को एक ही साथ दूर किया, प्रकाश ज्ञानदाता व्यापक किरण वाले सूर्य वा तेजस्वी (वेश्यं) वेश अर्थात् उत्तम पद पर वा देह में प्रविष्ट १०० वें आत्मा को मैंने प्राप्त किया।

प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥

भा०—(आशुपत्वा श्येनः यथा श्येनेभ्यः विभ्यः प्र सु विः) जिस प्रकार वेग से गति करने वाला 'श्येन' अर्थात् बाज़ नामक पक्षी अन्य

वाज़ जाति के पक्षियों की अपेक्षा उत्तम कोटि का पक्षी गिना जाता है वह (सुपर्णः अचक्रया स्वधया देवजुष्टम् हव्यं स्वधया मनवे भरत्) उत्तम पक्षों से युक्त होकर अपनी चक्र रहित स्वधा अर्थात् अपने आकाश में थामे रखने की क्रिया से ही मननशील पुरुष को विद्वानों द्वारा सेवित, ग्रहण करने योग्य विज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (श्येनः) श्येन के आकार का बड़ा भारी आकाशयान (प्र आशुपत्वा) खूब वेग से जाने हारा हो, जो (श्येनेभ्यः विभ्यः) अन्य श्येनाकार, उत्तम वेगवान् पक्षियों और आकाशयानों से भी अधिक (प्र सु अस्तु) उत्तम कोटि का सिद्ध हो। (यत्) जो (सुपर्णः) गति करने के उत्तम साधनों से युक्त होकर (अचक्रया) विना चक्र के ही (स्वधया) अपने को आकाश में थामे रखने की शक्ति से (देवजुष्टं हव्यं) उत्तम विद्वानों से प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य (मनवे) ज्ञानी शिल्पी को (हरत्) प्राप्त करावे। (२) अध्यात्म में—'श्येन' आत्मा वा परमात्मा अन्य गतिमान् 'श्येन' प्राणों वा जीवों की अपेक्षा उत्तम है। 'अचक्रा स्वधा' अन्य करण सामग्री से रहित होकर भी स्वसत्ता को धारण करने वाली चिति शक्ति से 'मन्ता' मन वा आत्मा को 'हव्यं' भोग्य ज्ञान, सुख दुःखादि या परमानन्द सुख को प्राप्त कराता है। जो इन्द्रियादि वा विद्वानों से सेवने योग्य होता है। (३) वाज़ के वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला सेनापति भी 'श्येन' है वह सबसे बढ़कर रहे। वह उत्तम रथ वाहनादि से युक्त होकर 'सुपर्ण' है। वह चक्राकार व्यूह के विना ही (स्वधया) अपनी सेना से राजा को 'हव्यं' विजययोग्य ऐश्वर्य प्राप्त करावे।

भर॒द्यदि॒ वि॒रतो॒ वेवि॑जानः प॒थोरु॒णा मनो॑जवा असर्जि।
तूयं॑ य॒यौ मधु॑ना सो॒म्येनो॒त श्रवो॑ विविदे श्ये॒नो अत्र॑ ॥ ५ ॥

भा०—(यदि) जिस प्रकार (विः श्येनः) वेग से युक्त पक्षी वाज, (अतः वेविजानः) इस पृथिवी लोक से पक्षों को कंपाता हुआ

(हरत्) वेग से गमन करता है और (उरुणा पथा मनोजवाः असर्जि) बड़े भारी आकाश-मार्ग से मन के समान वेगवान् हो जाता है और (तूयं ययौ) बहुत शीघ्र ही चला जाता है और (श्रवः विविदे) ख्याति प्राप्त करता या श्रवण योग्य शब्द उत्पन्न करता है उसी प्रकार (यदि) जब (श्येनः) ज्ञानवान् पुरुष (विः) तेजस्वी, वा (विः) संसार के सुखों का भोक्ता होकर (वेविजानः) उद्विग्न होकर उनको कंपादे, फाड़दे, अवधूत, असंग हो जावे वा (विरतः) विषयों से विरत हो जावे और (उरुणा पथा) महान् ज्ञानमार्ग से (भरत्) गति करे तब वह (मनोजवाः असर्जि) मन से ही यथा संकल्पित लोकों को जाने में समर्थ हो जाता है। वह (सोम्येन मधुना) परमानन्द सुख देने वाले मधुर ज्ञान द्वारा (तूयं ययौ) शीघ्र ही उस पद तक पहुंचता है। वह (श्येनः) उत्तम गति प्राप्त करके (अत्र) वहां (श्रवः) श्रवण योग्य परम ज्ञानमय ब्रह्म को प्राप्त करता है। (२) राजा के पक्ष में—(वे विजानः) स्व और पर दोनों पक्षों को कंपाता हुआ पक्षी के समान जब जाता है तब वह मनोवेग से जाने वाली सेनाओं को पैदा करे। (सोम्येन मधुना) ऐश्वर्य प्राप्त करने योग्य सैन्यबल वा ओषध्यादि से युक्त अन्नादि सहित वेग से आगे बढ़े। (अत्र) इस लोक में (श्रवः विविदे) यश और ऐश्वर्य प्राप्त करे। और (श्येनः) प्रशंसनीय आचरण वाला प्रसिद्ध हो।

ऋजीपी श्येनो दद॑मानो अंशुं प॑रावतः शकुनो मन्द्रं मदम्।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय॑ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋजीपी श्येनः शकुनिः अंशुं ददमानः मन्द्रं मदं सोमम् भरत्) सीधी गति से जाने वाला श्येन नाम पक्षी वेग को धारण करता हुआ अतिस्तुत्य मद और वीर्य को धारण करता है। उसी प्रकार (ऋजीपी) सरल, धर्म के मार्ग से जाने वाला (श्येनः) उत्तम आचारणवान् ज्ञानी पुरुष (परावतः) उस परम पद पर स्थित प्रभु से

(अंशुं दद्मानः) उत्तम ज्ञान के प्रकाश को स्वयं धारण करता और अन्यों को प्रदान करता हुआ (शकुनः) अपने को उन्नत पद पर पहुंचाने में समर्थ, शक्तिमान्, शान्तिमान्, शमदम का अभ्यासी पुरुष (मन्द्रं) अति आनन्दजनक, प्रशंसनीय (मदम्) हर्ष और (सोमं) ऐश्वर्य, विभूति, ज्ञान और वीर्य को (अमुष्मात्) उस (उत्तरात्) सबसे उत्कृष्ट परम प्रभु से (आदाय) प्राप्त करके (भरत्) धारण करता है और स्वयं (दद्दहाणः) उत्तरोत्तर दृढ़ और (देववान्) किरणों से युक्त सूर्य के तुल्य तेजस्वी और 'देव' विद्वानों, विद्या के इच्छुक शिष्यों और इन्द्रियों का भी स्वामी हो जाता है। (२) राष्ट्र में—न्याय के सरल मार्ग से जाने और राष्ट्र को पालन और उपभोग करने वाला राजा 'ऋजीपी' है, वाज के समान बलशाली होने से 'श्येन' है वह (परावतः अंशुं दद्मानः) दूर देश से भी कर लेता हुआ ऐश्वर्य धारण करे, अपने से उत्तम ज्ञानी विजीगीषु से सहाय लेकर अपने को दृढ़ और वीर योद्धाओं का स्वामी बनावे।

आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम्।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥ १५ ॥

भा०—(श्येनः यथा सोमम् अभरत्) वाज़ पक्षी जिस प्रकार वेग और वीर्य को धारण करता है, (मदे अरातीः अजहात्) बल के गर्व में शत्रुओं को मारता है उसी प्रकार (श्येनः) वाज़ के तुल्य, वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ राजा, (साकम्) अपने साथ (सहस्रं अयुतं च सवान् आदाय) हज़ारों और लाखों अधीन सैन्यों और ऐश्वर्यों को लेकर (सोमम्) राष्ट्र को धारण करे। (अत्र) इस राष्ट्र में रहकर (पुरन्धिः) समस्त राष्ट्र को एक पुर के समान धारण करे और स्वयं (अमूरः) कभी मोही, प्रमादी न होकर, (मूराः) मूढ़ (अरातीः) शत्रु सेनाओं को (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य के दमन करने के निमित्त (अज-

हात्) प्राणों से वियुक्त करे, मारे । (२) अध्यात्म में—ज्ञानी पुरुष वीर्य सम्पादन करके सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त करे, वह परमानन्द के सुख में मोह रहित होकर समस्त भीतरी शत्रु रूप काम क्रोधादि मोह युक्त वासनाओं का त्याग करें। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२७]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ५ निचृच्छक्वरी ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

भा०—जीव का वर्णन करते हैं। (अहम्) मैं जीव (गर्भे) गर्भ में (नु सन्) प्राप्त होकर ही (एषां) इन (देवानां) चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों के (विश्वा) समस्त (जनिमानि) प्रादुर्भावों, प्रकट रूपों को (अनु अवेदम्) अपने अनुकूल विषयों के ग्रहण करने में सहायक साधन रूप से प्राप्त करता हूं। (आयसीः पुरः) राजा को लोह वा सुवर्ण की बनी दृढ़ नगरियों के समान (मा) मुझ जीव को (शतं) सैकड़ों (आयसीः) आगमन और निर्गमन, आवागमन से युक्त, या चेतना से युक्त (शतं पुरः) सैकड़ों इच्छा पूर्त्ति करने वाली देह रूप नगरियां (अरक्षन्) रक्षा किया करती हैं। (अध) और मैं (श्येनः) उत्तम, प्रशंसनीय गति वाला और ज्ञानयुक्त होकर, घोंसले से बाज़ के समान वा नगर से प्रयाण करने वाले वीर राजा के समान (जवसा) बड़े वेग से (निर्-अदीयम्) निकल जाया करता हूं, मैं देहबन्धन को छोड़ कर निकल जाता और मुक्त हो जाता हूं। राष्ट्रपक्ष में—(एषां देवानां गर्भे नु सन् एषां विश्वा जनिमानि अवेदम्) इन विजियेच्छुक लोगों के बीच में उनको वश

करने के कार्य में रहकर उनके सब सामर्थ्यों को मैं प्राप्त करूं। सैकड़ों दृढ़ नगरी मेरी रक्षा करें मैं वेग से शत्रु पर धावा करूं।

न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण।
ईर्मा पुरंन्धिरजहादरातीरुत वातौं अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (जोषं) संसार को सेवन करते हुए (माम्) मुझको (न घ अप जहार) अपवर्ग की ओर कभी नहीं ले जाता। अथवा—(जोषं) प्रीति युक्त मुझ जीव को वह प्रभु कभी (अप जभार) कुमार्ग में नहीं ले जाता (ईम्) प्रत्युत मैं उस परमेश्वर को लक्ष्य करके (त्वक्षसा) और तेजस्वी (वीर्येण) बल पराक्रम या तप से (ईम् अभि आस) उसकी ओर होता और उसका साक्षात् करता हूं। अथवा—वह परमेश्वर (त्वक्षसा वीर्येण) इस जगत् की रचना करने वाले, तेजो युक्त बल वीर्य से (अभि आस) सब प्रकार और सब ओर से व्याप रहा है। वह (ईर्मा) सब जगत् का सञ्चालक, (पुरन्धिः) राजा के तुल्य इस समस्त विश्व को पुर के समान धारण करने वाला प्रभु (अरातीः) समस्त दुःखादि देने वाले शत्रुओं, बाधाओं या पीड़ाओं को (अजहात्) छुड़ा देता है, (उत्) और (शूशुवानः) वही महान् पुरुष (वातान्) इन प्राणों को (अतरन्) प्रदान करता है अथवा—(ईर्मा) देह का सञ्चालक यह जीव (पुरन्धिः) देह को पुरवत् धारण करता हुआ (अरातीः) काम क्रोधादि सुख न देने वाले शत्रुओं को (अजहात्) छोड़ दे। और (शूशुवानः) स्वयं शक्ति से बढ़ता हुआ (वातान् उत) इन प्राणों को भी युद्ध में बलवान् वीरों को प्रबल राजा के तुल्य (अतरत्) तर जावे, उनके बन्धनों से पार हो जावे। (२) राष्ट्रपक्ष में—(सः) वह राजा मुझ प्रजाप्रेमी जनको (न घ अप जभार) अपहरण न करे न लूटे, वह मुझे शत्रुनाशक तीक्ष्णवीर्य, बल पराक्रम से व्यापे, शत्रु को पराजय करे, वह (ईर्मा) राज्य सञ्चालक, पुरपति, शत्रुओं को दूर करे,

स्वयं बढ़ता हुआ वायु वेग से आक्रमण करने वाले वीरों को बढ़ावे और ऐसे शत्रुओं से स्वयं अधिक बलवान् हो।

अव॒ यच्छ्ये॒नो अस्व॑नी॒दध॒ द्योर्वि यद्यदि॒ वा त॑ ऊ॒हुः पुर॑न्धिम् ।
सृ॒जद्यद॑स्मा॒ अव॑ ह क्षि॒पज्ज्यां कृ॒शानु॑रस्त॒ मन॑सा भु॒रण्यन् ॥३॥

भा०—(यत्) जिस जीव को (श्येनः) उत्तम प्रशंशनीय गमन, आचरण और ज्ञान तप वाला पुरुष वा प्रभु (द्योः) प्रकाशमय ज्ञान का (अव अस्वनीत्) अपने अधीन रख कर उपदेश करता है (यत् यदि) और जब जिस (पुरन्धिम्) देहधारक जीव को (अतः) इस संसार बन्धन से (ते ऊहुः) वे ज्ञानी जन ऊपर उठा लेते हैं और (कृशानुः) अग्नि के तुल्य सब पापों को भस्म कर देने वाला, गुरु या प्रभु (मनसा) ज्ञान के बल से उस (भुरण्यन्) इस जीव का पालन करता है। (अस्ता यथा ज्यां क्षिपत्-अव सृजत्) धनुर्धर जिस प्रकार डोरी चलाता और वाण फेंकता है उसी प्रकार (अस्ता) सब दुःखों बन्धनों को दूर फेंक देने वाला गुरु या प्रभु (अस्मै) इस जीव की (ज्यां) हानि करने वाली अविद्या को (क्षिपत्) दूर करता हुआ (अव सृजत्) उसे बन्धनों से मुक्त करता है। (२) राष्ट्र-पक्ष में—(श्येनः यत् द्योः अव अस्वनीत्) आक्रमक बलवान् राजा जब विजय का डंका बजाता हुआ घोषणा करे। उसको जब अश्व आदि यान नगर से बाहर लेजाते हैं तब (अस्मै कृशानुः) उसका तेजस्वी सेनापति (अस्ता) अस्त्र चालक, सैन्यगण (मनसा पुरण्यन्) चित्त से आगे बढ़ता और उसकी रक्षा करता हुआ (अव सृजत्) वाणों को फेंके (ज्यां अव क्षि-पत्) धनुष की डोरी वा शत्रु नाशकारिणी सेना को आगे बढ़ावे, शत्रु की नाशक सेना को नाश करे, वा (ज्यां अव क्षिपत्) शत्रु की भूमि को आक्रमण कर वश करले।

ऋ॒जि॒प्य ई॒मिन्द्रा॑वतो॒ न भु॒ज्युं श्ये॒नो ज॑भार बृह॒तो अधि॒ ष्णोः ।
अ॒न्तः प॑तत्पत॒त्र्य॑स्य प॒र्णमध॒ याम॑नि॒ प्रसि॑तस्य॒ तद्वेः ॥ ४ ॥

भा०—(श्येनः भुज्युं न) वेगवान् अश्व जिस प्रकार अपने पालक पुरुष को अपने ऊपर चढ़ा कर ले जाता है उसी प्रकार (ऋजिप्यः) धर्मात्मा पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ (श्येनः) उत्तम रीति से गमन, प्रयाण और आचरण करने वाला अध्यात्म ज्ञानी (बृहतः) बड़े भारी (स्नोः) आनन्द वर्षण करने वाले (इन्द्रवतः) ऐश्वर्य युक्त परम पद से (ईम्) इस (भुज्युं) भोक्ता जीव को ही (अधि जभार) धारण करता है, (अध) उसके अनन्तर (यामनि) संयम मार्ग से (प्रसितस्य) अति सुसंयत और उत्तम शुक्रकर्मा हुए (वेः) कान्तिमान् (अस्य) इसका (पतत्रि) इधर उधर जाने वाला (पर्णं) भीतरी साधन मन या अन्तःकरण (वेः पर्णम्) सूर्य की किरण के समान (तत्) उस परमात्म तत्व की ओर ही (पतत्) चला जाता है। (२) राष्ट्रपक्ष में—धर्मात्मा, सदाचारी, बलवान् राजा इस भोग्य राष्ट्र को ऐश्वर्य युक्त (स्नोः) दयायुक्त पद से धारण करे। (अस्य अन्तः पतत्रि पर्णम्) उस तेजस्वी राष्ट्र के प्रबद्ध क़ानून में संयत राजा का भी वेगवान् रथ और पालन बल वा शासन पत्र उस राष्ट्र के भीतर चले।

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मघवा इन्द्रः) जलप्रद सूर्य (गोभिः अक्तम् शुक्रम् अन्धः आपिप्यानं श्वेतं कलशं मध्वः अग्रम् पिबध्यै प्रति धत्) किरणों से व्यक्त हुए जल को और अन्न बढ़ाने वाले मेघ को और जल के श्रेष्ठ अंश को पान कराने के लिये धारण करता है उसी प्रकार (शूरः) शूरवीर, (मघवा) ऐश्वर्यवान् (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (गोभिः अक्तम्) ज्ञानवाणियों द्वारा प्रकाशित होने वाले (श्वेतं) शुभ्र, स्वच्छ, (कलशं) १६ कलाओं से युक्त, इस आत्मा को (आपिप्यानं) तृप्त या वृद्धि करने

वाले (शुक्रम्) तेजो युक्त वीर्य और (अन्धः) जीवन धारण करने वाले अन्न को और (अध्वर्युभिः प्रयतम्) नाश न होने वाले प्राणों और विद्वानों द्वारा प्रदान किये हुए (मध्वः अग्रम्) ब्रह्म ज्ञान के श्रेष्ठ स्वरूप को (मदाय) हर्ष, परमानन्द प्राप्ति के लिये (पिबध्यै) और उसके उपभोगके लिये (प्रति धत्) प्रतिक्षण धारण करे। वह (मदाय पिबध्यै प्रति धत्) हर्षवृद्धि और उपभोग के लिये ही धारण करे (२) उसी प्रकार शूरवीर राजा, उत्तम भूमियों और शासन वाणियों से प्रकट हुए, शुद्ध सदाचार युक्त राष्ट्र रूप ऐश्वर्य से पूर्ण कलशवत् राष्ट्र को जल, अन्न और विद्वानों द्वारा मधुर ज्ञान को सबके सुख और उपभोगार्थ प्रतिक्षण धारण करे। इति षोडशो वर्गः॥

[२८]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ५ पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन ! हे राष्ट्र ! (त्वा युजा) तुझ सहायक से और (तव सख्ये) तेरे मित्रभाव में रहकर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (मनवे) मनुष्यमात्र के हितार्थ सूर्य जिस प्रकार जल धाराएं बरसाता है उसी प्रकार (सस्रुतः अपः कः) जलों को उत्तम रसों से बहने वाला बनावे, नहरें खोले। (अहिम्) मेघ को सूर्यवत्, विघ्नकारी शत्रु आदि वा रुकावट को या सर्पवत् कुटिल जन को (अहन्) दण्ड दे। (सप्त सिन्धून्) चलने वाले वेगवान् अश्वों और अश्वसैन्यों को (अरिणात्) चलावे, (अपि-हिता इव) ढकी हुई सी (खानि) इन्द्रियों को जिस प्रकार आत्मा देह में प्रकट करता है उसी प्रकार (अपिहिता इव खानि) ढके हुए उन्नति के द्वारों को (अप अवृणोत्)

अच्छी प्रकार खोल देवे। (२) अध्यात्म में—सोम, ओषधि आदि रस के सहाय से विद्वान् पुरुष मनुष्य के देह के रुधिरादि प्रवाहों को उत्पन्न करे। रोग को नाशे, सातों प्राणों को गति दे, इन्द्रियच्छिद्रों और रोम-कूपों को स्वच्छ, मल रोधादि से रहित करे।

त्वा युजा नि खिदत्सूर्य॑स्येन्द्र॑श्च॒क्रं सह॑सा स॒द्य इ॑न्दो।
अधि॒ ष्णुना॑ बृह॒ता वर्त॑मानं म॒हो द्रु॒हो अप॑ वि॒श्वायु॑ धायि ॥२॥

भा०—हे (इन्दो) दयार्द्र हृदय! चन्द्र के समान कान्ति और ऐश्वर्य से युक्त प्रजाजन! (इन्द्रः) वायु वा विद्युत् जिस प्रकार जल की सहायता से सूर्य के ज्योतिर्मण्डल को हीनकान्ति बना देता है उसी प्रकार (त्वा युजा) तुझ सहायक से ही (इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने हारा, विद्युत् के समान गर्जन, छेदन भेदन शील, वायु के तुल्य शत्रु-वृक्षों को कंपाने हारा, बलवान् पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य के तुल्य तेजस्वी राजा के भी (चक्रं) राज्य-चक्र को (सहसा) अपने शत्रुविजयी सैन्यबल से (सद्यः) अति शीघ्र (नि खिदत्) बिलकुल हीन दीन कर सकता है। और (बृहता) बहुत बड़े (स्नुना) उपरिस्थित वा दूर २ तक फैलाने वाले सैन्य बल से (अधि वर्त्तमानं) ऊपर अध्यक्ष रूप से कार्य करने वाले (द्रुहः) द्रोही शत्रु के (महः) बड़े (विश्वायु) सर्व जीवन सामर्थ्य, सर्वत्रगामी बल को भी (अप धायि) दूर हटा देने में समर्थ होता है।

अह॒न्निन्द्रो॒ अद॑हद॒ग्निरि॑न्दो पु॒रा दस्यू॑न्म॒ध्यन्दि॑नाद॒भीके॑।
दु॒र्गे दु॑रो॒णे क्रत्वा॒ न या॒तां पु॒रू स॒हस्रा॒ शर्वा॒ नि ब॑र्हीत् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य के तुल्य शत्रुहन्ता राजा (अभीके) संग्राम में (मध्यन्दिनात्) मध्याह्न काल के ताप के समान असह्य प्रताप से (दस्यून्) दुष्ट, प्रजा-नाशक पुरुषों को (अहन्) विनाश करे और वह हे (इन्दो) दयार्द्रस्वभाव, ऐश्वर्यवन् विद्वन् एवं प्रजाजन! (अग्निः)

अग्नि के तुल्य तेजस्वी, अग्रणी नायक भी उसी प्रकार दुष्ट पुरुषों को (अदहत्) भस्म करे। (दुरोणे) घर में (क्रत्वा) यज्ञ से जिस प्रकार मनुष्य (यातां) पीड़ादायक (पुरू सहस्रा शर्वा) बहुत से हज़ारों हिंसाकारी, रोग बाधाओं का नाश करता है (न) उसी प्रकार (दुर्गे) गढ़ में स्थित होकर (क्रत्वा) अपनी प्रज्ञा और कर्म कौशल से ही (यातां) प्रयाण करने वाले पीड़ादायक शत्रुओं के (पुरु सहस्रा शर्वा) अनेक हज़ारों हिंसाकारी सैन्यों वा शस्त्राघातों को (नि बर्हीत्) निवारण करता है। एकः शतं योधयति। पञ्चतन्त्र॥

विश्व॑स्मात्सीमध॒माँ इ॑न्द्र॒ दस्यू॒न्विशो॒ दासी॑रकृणोरप्रश॒स्ताः।
अ॒बा॑धेथा॒मम॑णतं॒ नि शत्रू॒नवि॑न्देथा॒मप॑चितिं॒ वध॒त्रैः॥ ४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुओं का नाश करने वाले राजन्! तू (सीम्) सूर्य के तुल्य होकर (दस्यून्) प्रजा का नाश करने वाले (अधमान्) नीच पुरुषों को (विश्वस्मात्) समस्त राष्ट्र से पृथक् (अकृणोः) कर और उनको दण्ड दे। और (विशः) प्रजाओं को (दासीः अकृणोः) दानशील बना। और (अप्रशस्ताः) जो उत्तम आचार व्यवहार वाली नहीं हैं उनको भी (दासीः विशः अकृणोः) कर देने वाली तथा राष्ट्र में बसने योग्य प्रजा बना। हे विद्वन्! हे राजन्! तुम दोनों मिलकर (शत्रून् नि अबाधेथाम्) शत्रुओं को खूब पीड़ित करो (वधत्रैः) वधकारी शस्त्रों से (नि अमृणतं) खूब मारो और (अपचितिं) पूजा, सत्कार को (अविन्देथाम्) प्राप्त करो।

ए॒वा स॒त्यं म॑घवाना यु॒वं तदिन्द्र॑श्च सोमो॒र्वमश्व्यं॒ गोः।
आद॑र्दृतम॒पि॑हिता॒न्यश्ना॑ रिरि॒चथुः॒ क्षाश्चि॑त्ततृदा॒ना॥ ५॥ १७॥

भा०—हे (सोम) अन्नादि समृद्धि के उत्पन्न करने वाले प्रजाजन! (इन्द्रः च) और ऐश्वर्यवान् राजा (युवं) आप दोनों (मघवाना)

ऐश्वर्य से युक्त होकर (गोः) वाणी के (तत्) उस (सत्यं) सत्य ज्ञान को और (गोः) पृथिवी के (तत्) उस (ऊर्वम्) शत्रुहिंसक (अश्व्यम्) घोड़ों के बने सैन्य को (आदर्दतम्) आदरपूर्वक स्वीकार करो और (क्षाः चित्) भूमियों को प्रजाहिंसक शत्रु-सेनाओं को (तत्र्दाना) कृषि, खनि और युद्ध द्वारा खोदते और तोड़ते हुए (अक्षा) नाना प्रकार के भोग्य अन्न सुवर्णादि ऐश्वर्यों को (रिरिचथुः) प्राप्त करो। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२९]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, २ त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! आप (मन्दसानः) हर्ष-युक्त होकर (वाजेभिः) बलवान् वीरपुरुषों और (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों से (स्तुतः) प्रशंसित होकर (ऊती) रक्षण आदि सामर्थ्य-सहित (नः उप याहि) हमें प्राप्त हों। और तू (अर्यः) सबका स्वामी (सत्यराधाः) सत्य ऐश्वर्यवान्, न्यायशील होकर (आंगूषेभिः) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों द्वारा (गृणानः) स्तुति और उपदेश युक्त होता हुआ, (पूरूणि सवना) बहुत से ऐश्वर्यों को (तिरः चित्) आदरपूर्वक हमें प्राप्त हो।

आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥

भा०—(चिकित्वान् नर्यः) मनुष्यों में उत्तम ज्ञानी पुरुष (सोतृभिः) ऐश्वर्य उत्पन्न करने और अभिषेक आदि करने वाले पुरुषों सहित

(हूयमानः) आदरपूर्वक स्तुति को प्राप्त होता हुआ (आयाति स्म हि) सदैव आता और (यज्ञं) राजा प्रजा के परस्पर संगत व्यवहार और मैत्री, समागम सख्यभाव को (उपयाति) प्राप्त होता है। (यः) जो (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्य से युक्त होकर (अभीरुः) शत्रु से भय नहीं करता वह (मन्यमानः) आदर सत्कार को प्राप्त करता हुआ (सुस्वानेभिः) उत्तम हर्ष ध्वनि युक्त (वीरैः) वीर पुरुषों सहित (ह) निश्चय से (सं मदति) खूब हर्ष आनन्द लाभ करता है।

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! आचार्य! उपदेशक! तू (अस्य) इस वीर पुरुष के (कर्णा) दोनों कानों को (वाजयध्यै) ज्ञान सम्पन्न करने के लिये (मन्दयध्यै) और खूब हर्षित करने के लिये (जुष्टां) विद्वान् सत्पुरुषों से सेवित, प्रजा द्वारा प्रेम युक्त (दिशम्) ज्ञान दिशा को अनुगमन करके लिये (अनु श्रावय प्र श्रावय) अनुकूल और उत्तम उपदेश कर। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (उद् वावृषाणः) ऊर्ध्व स्थित मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करता हुआ एवं उत्तम पद पर स्थित बलवान् प्रबन्धक, (तुविष्मान्) बलवान् पुरुष (नः) हमारे (राधसे) धन और आराध्य सुख के प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये, हमारे राष्ट्र में (सुतीर्था) दुःखों से पार उतारने वाले आचार्य, ब्रह्मचर्य, सत्य भाषणादि युक्त विद्वानों, विद्यामठों और सेतु आदि (करत्) बनावे और (अभयं च) प्रजा को चौर, व्याघ्रादि भय से रहित (करत्) करे।

अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम्।
उप त्मनि दधानो धुर्या३शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

भा०—(यः) जो (त्मनि) अपने अधीन (सहस्राणि शतानि) हज़ार २ और सौ २ के दल-बद्ध (आशून् धुर्या) वेग से जाने वाले

धुरा ढोने योग्य अश्वों और धुरन्धर पुरुषों को (दधानः) धारण और उनको भृत्य रूप से भरण पोषण करता हुआ (वज्रबाहुः) बाहुओं में बलवीर्य, शस्त्रास्त्रादि धारता हुआ, (इत्था) सत्य न्यायानुकूल (नाधमानं) अधिकार याचना करते हुए (ऊती) रक्षा के निमित्त (गृणन्तं हवमानं) स्तुति और प्रार्थना करते हुए (विप्रं) विद्वान् पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होता है, वह राजा प्रजा को अभय करे ।

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! (त्वा उतासः) तेरे द्वारा सुरक्षित (वयं) हम (विप्राः) विद्वान् और (सूरयः) विद्याओं को प्रकाशित करने वाले होकर (गृणन्तः स्याम) उत्तम ज्ञानों का उपदेश करने वाले हों । अथवा (ते गृणन्तः स्याम) तेरी स्तुति करने वाले हों । हम (भेजानासः) तेरा भजन, सेवन करते हुए (आकाय्यस्य) अतिस्तुत्य, एवं सब प्रकार से काया देह को सुखदायी (बृहद्-दिवस्य) अति प्रकाशयुक्त (पुरुक्षोः) बहुत से अन्नादि से युक्त (रायः) धन ज्ञान के (दावने) देने वाले (ते) तेरे हितैषी हों । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३०]

वामदेव ऋषिः ॥ १—८, १२—२४ इन्द्रः । ९—११ इन्द्र उषाश्च देवते ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६, ११, १२, १६, १८, १९, २३ निचृद्गायत्री । २, १०, ७, १३, १४, १५, १७, २१, २२ गायत्री । ४, ६ विराड् गायत्री । २० पिपीलिकामध्या गायत्री । ८, २४ विराडनुष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृत्रहन्) बढ़ते शत्रु और बाधक विघ्नों के नाश करने वाले राजन् ! हे प्रभो ! (त्वत् उत्तरः नकिः) तुझ से बढ़कर, तेरा प्रतिपक्षी कोई नहीं (त्वत् ज्यायान् नकिः अस्ति) तुझ से बड़ा भी कोई नहीं। (यथा त्वम्) जैसा तू है वैसा तेरे सदृश भी (नकिः एव) कोई नहीं है।

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः।
सत्रा महाँ असि श्रुतः॥ २॥

भा०—(सत्रा) बलवान् और सत्य न्याय से युक्त (ते) तेरे (अनु) अधीन रहने वाली (विश्वाः कृष्टयः) समस्त मनुष्य प्रजाएं और शत्रुपीड़न करने वाली सेनाएं भी (चक्रा इव) गाड़ी में लगे पहियों के समान (ववृतुः) तेरे अनुकूल होकर चलें। तू भी (सत्रा) सत्य व्यवहार से ही (महान्) महान्, पूज्य और (श्रुतः) प्रसिद्ध (असि) है।

विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः।
यदहा नक्तमातिरः॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (विश्वे चन देवासः) सभी विजयेच्छुक लोग (अना त्वा) तुझ जीवनदायक को प्राप्त कर (युयुधुः) युद्ध करें (यत्) जिससे (अहा नक्तम्) दिन रात तू शत्रुओं को (आ अतिरः) सब तरफ़ नाश करे।

यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते।
मुषाय इन्द्र सूर्यम्॥ ४॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में (बाधितेभ्यः) शत्रुओं से पीड़ित प्रजाजनों और (युद्धयते) युद्ध करने वाले (कुत्साय) शस्त्रास्त्र से युक्त सैन्य के हितार्थ हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (सूर्यम्) सूर्य के समान

तेजस्वी (चक्रं) पर सैन्य चक्र को (मुषायः) संहार कर और अपने सैन्य चक्र की रक्षा कर ।

यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् ।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—और (यत्र) जिस संग्राम में (ऋघायतः) हिंसा करने वाले (विश्वान् देवान्) समस्त विजिगीषु वीर पुरुषों को (एकः इत्) तू अकेला ही (अयुध्यः) लड़, लड़ा लेने में समर्थ है वह (त्वम्) तू ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (वनून्) अधार्मिक शत्रुओं को (अहन्) विनाश कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् ।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! तू (मर्त्याय) प्रजा पुरुषों और शत्रु-मारक सैन्य जन के हितार्थ (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी राजचक्र को भी (अरिणाः) सञ्चालित करे वहां (शचीभिः) सेनाओं और आज्ञा वा शासनवाणियों द्वारा (एतशम्) अपने अश्व, सैन्य समृद्ध राष्ट्र को (प्रावः) अच्छी प्रकार रक्षा कर ।

किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः ।
अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥

भा०—(वृत्रहन्) हे आवरणकारी अन्धकारों वा मेघों के तुल्य नगरादि को रोधने वाले शत्रुओं और विघ्नों का नाश करने वाले राजन् ! (आत् उत किम्) और क्या ! आप तो (मन्युमत्तमः असि) सबसे अधिक मन्यु अर्थात् दुष्टों पर कोप धारण करने वाले हो, (अत्र अह) निश्चय से इस राष्ट्र में आप (दानुम् अतिरः) दानशील राष्ट्र को बढ़ाओ और प्रजा के छेदक भेदक दस्यु को नाश करो ।

एतद्घेदुत वीर्य१मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन् ! (एतत् घ इत् उत) और यह भी तू ही (पौंस्यम्) पुरुषोचित (वीर्यम्) बल वीर्य पराक्रम (चकर्थ) कर (यत्) कि जिस प्रकार सूर्य (दिवः दुहितरं) प्रकाश से उत्पन्न उषा को प्राप्त होता वा उसका नाश करता है उसी प्रकार तू भी (दुर्हणायुवं) बड़ी कठिनता से नाश करने योग्य प्रबल शत्रुनायक की कामना करने वाली (स्त्रियं) संघात बना कर आक्रमण करने वाली शत्रु सेना को (वधीः) विनाश कर और (दिवः) शत्रु विजिगीषा को (दुहितरं) पूर्ण करने वाली (दुर्हणायुवं) कठिनता से वध योग्य, प्रबल नायक को चाहने वाली (स्त्रियं) प्रबल संघात वाली स्वसेना को (दिवः दुहितरं) कामना को पूर्ण करने वाली स्त्री के समान ही प्रिय जानकर पति के तुल्य (वधीः) तू प्राप्त कर । हन हिंसागत्योः । अत्र श्लेषमुखेना--र्थद्वयमप्युपयुज्यते ॥

दिवश्चिद् घा दुहितरं महान्महीयमानाम् ।
उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥

भा०—(दिवः दुहितरं चित् उषासं सं पिणक्) जिस प्रकार सूर्य महान् प्रकाश से उत्पन्न, प्रकाश को दोहन करने या देने वाली उषा को अच्छी प्रकार छितरा बितरा देता, धूली के समान आकाश भर में फैला देता और प्रकट कर देता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! तू (दिवः) विजय की कामना करने वाले राजा की (दुहितरं) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली (महीयमानाम्) अति विशाल, पूज्य (उषासम्) शत्रु को भस्म करने वाली कान्तिमती, तेजस्विनी पर-सेना को (सं पिणक्) अच्छी प्रकार पीस कर चूर्ण कर, नष्ट कर और स्व-सेना को (सं पिणक्) अच्छी प्रकार खण्ड २ करके दूर

तक फैला, प्रकाशित करे। राजा प्रेमपूर्वक स्वसेना को नियन्त्रित कर युद्धादि कार्यों में उससे खूब काम ले अथवा (सं पिणक् = संपृणक् वर्णव्यत्ययः) अच्छी प्रकार उससे संपर्क बनाये रहे।

अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—जब (वृषा) सुखों का वर्षक, बलवान् सूर्य (सीम्) सब प्रकार से, सब ओर से (शिश्नथत्) व्याप लेता है, प्रकाश की किरणें फेंकता है, तब जिस प्रकार (संपिष्टात् अनसः विभ्युषी अप सरत्) टूटते फूटते रथ से भयभीत वधू निकल भागे उसी प्रकार वह उषा भी (संपिष्टात्) खूब सञ्चूर्णित और सर्वतो व्याप्त (अनसः) जीवनप्रद सूर्य रूप रथ से ही (अप सरत्) निकल भागती है। उसी प्रकार (वृषा) शत्रुओं पर अनवरत बाणों, शस्त्रास्त्रों की वर्षा वाला और सेना और राष्ट्र का उत्तम प्रबन्ध करने हारा बलवान् राजा (यत्) जब (सीम्) सब ओर से (शिश्नथत्) पर सेना को निष्पीड़ित करके शिथिल, लाचार कर देता है तो वह (उषा) दाहकारिणी सेना (सम्पिष्टात् अनसः) अच्छी प्रकार चूर्णित शकर रथादि व्यूह से (विभ्युषी) भय करती हुई (अप सरत्) भाग जाती है। (२) अध्यात्म में—उषा चिति शक्ति, वृषा प्रभु, धर्ममेघ, 'अनः' देह। इति विंशो वर्गः ॥

एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या ।
ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

भा०—(अस्याः) इस सन्मुख खड़ी शत्रु सेना का (अनः) शकट रथादि समूह वा शकट के तुल्य सुदृढ़ व्यूह (विपाश्या) विविध रूप से पाटने वाली अपनी सेना से (सुसंपिष्टं शये) खूब चूर्णित, छिन्न भिन्न होकर, निश्चेष्ट होकर पड़ जाय, तब वह (परावतः) दूर २ देशों को (ससार) भाग जाय। (२) अध्यात्म में 'विपाशी' मुक्ति।

उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।
परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मायया) अपने बुद्धि बल से (अधि क्षमि) पृथ्वी पर (वितस्थानाम्) विविध प्रकारों से स्थिति प्राप्त करने वाली प्रजा को (विबाल्यं) विविध बल कार्य करने में समर्थ (सिन्धुं) वेग से युक्त महानद के तुल्य सैन्य समुद्र के (अधि परि स्थाः) ऊपर अध्यक्ष रूप से स्थित हो । और विविध देशों में जाने वाली नदी और बल से जाने वाले नदों पर भी वश कर ।

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य सम्पिणक् ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन् ! (यत्) जो तू (अस्य) इस शत्रु के (पुरः) नगरों को (संपिणक्) नष्ट करे (उत) और (शुष्णस्य) शत्रु के शोषक बल का (धृष्णुया) धर्षक होकर (वेदनम्) धन को भी (अभि प्रमृक्षः) बलात् विजय कर ।

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥

भा०—सूर्य, वायु या विद्युत् जिस प्रकार (बृहतः पर्वतात् दासं कौलितरं शम्बरं अधि अवाहन्) बड़े भारी मेघ या पर्वत से जलप्रद मेघ या जल को विताड़ित करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) शत्रु के हनन करने वाले ! तू (उत) भी (बृहतः पर्वतात् अधि) बड़े भारी पालक पुरुषों के पोरु २ से बने दण्डबल वा सैन्य के भी ऊपर विद्यमान अध्यक्ष, (दासं) दानशील और अपने प्रजा वा सैन्य को नाश करने वाले (कौलितरम्) कुल अर्थात् नाना जन समूह गृह परिवारों में श्रेष्ठ (शम्ब-

रम्) शान्ति के नाशक उपद्रवी शत्रु को (अव अहन्) नीचे गिरा कर मार, पदच्युति का दण्ड दे।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः।
अधि पञ्च प्रधीरिव ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—(उत) और (वर्चिनः) अन्न, धन, सम्पदावान् (दासस्य) प्रजा के नाशकारी शत्रु के (सहस्राणि) हज़ारों और (शता) सैकड़ों सैन्यों को भी (अवधीः) विनाश कर और (दासस्य) दानशील, सेवकतुल्य और (वर्चिनः) धनधान्य से समृद्ध प्रजाजन वा राष्ट्र की (सहस्राणि शता पञ्च) हज़ारों और सैकड़ों पांचों प्रकार के जनों को (प्रधीः इव) नाभि के चारों अलग परिधियों के समान रक्षकों के तुल्य (अधि अवधीः) अध्यक्ष होकर प्राप्त हो, उनका पालन कर। अध्यात्म में 'पञ्चप्रधी' पांच इन्द्रियें हैं। राष्ट्र में पञ्चजन। इत्येकविंशो वर्गः॥

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः।
उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (उक्थेषु) प्रशंसनीय कार्यों में (उत) भी (त्यं) उस (अग्रुवः पुत्रम् इव) अग्रगण्य, विवाहित पत्नी के पुत्र के तुल्य उत्तम जानकर (अग्रुवः) अग्रगामिनी सेना के (पुत्रम्) दुःखों से बहुतों को त्राण करने वाले, (परावृक्तं) स्वयं व्यसनों से रहित पुरुष को (आभजत्) प्राप्त करे।

उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः।
इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥

भा०—(शचीपतिः) सेना और व्यवस्थापक वाणी का पालक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (विद्वान्) ज्ञानवान् वा राज्यश्री को लाभ करने वाला पुरुष (तुर्वश-यदू) धर्म, अर्थ, काम मोक्ष चतुर्वर्गों की कामना करने वाले यत्नशील प्रजास्थ स्त्री पुरुष दोनों वर्गों को जो (अस्नातारौ) स्नात,

अभिषिक्त या कृतकृत्य न हुए हों अथवा (तुर्वश-यदू) शत्रुओं को मारने वाले क्षत्रिय और उद्यमशील व्यवसायी क्षत्रिय और वैश्य दोनों, जो पदाभिषिक्त न हुए हों उन दोनों को (अपारयत्) पालन करे और संकट से पार करके कृतकृत्य करे। वेद वाणी का विद्वान् पुरुष आचार्य (तुर्वशा-यदू) शीघ्र इन्द्रियों के वशकारी जितेन्द्रिय और विद्याभ्यास में यत्नवान् दोनों प्रकार के विद्यार्थी जनों को जो विद्याव्रत स्नातक न हुए उनको (अपारयत्) विद्या और व्रत के पार करे।

उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥

भा०—(उत) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अर्णा-चित्ररथा) जल में चित्र विचित्र आश्चर्यजनक रथ चलाने वाले (आर्या) श्रेष्ठ आचार वाले (त्या) उन दोनों मित्र और शत्रु जनों को भी (सरयोः पारतः) प्रशस्त वेग से जाने वाले सैन्यबल के पालक व पूर्ण सामर्थ्य से (अवधीः) विनाश कर और (२) हे विद्वन्! (आर्या) उत्तम सु-स्वभाव (अर्णा-चित्ररथा) जल सागर के तुल्य विज्ञान में चित्र विचित्र रूप से रमण करने वा वेग से जाने वाले दोनों प्रकार के विद्यार्थी जनों को (सद्यः) शीघ्र ही (सरयेः) उत्तम ज्ञान से युक्त वेद ज्ञान के (पारतः) पार (अवधीः) पहुंचा।

अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन्।
न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) आवरणकारी अज्ञान और विघ्न को नाश करने हारे और शत्रुनाशक राजन्! यदि तू (अन्धं) लोचनहीन, अज्ञानी, प्रजा के दुःखों के न देखने वाले, प्रजा के सुख दुःखों की उपेक्षा करने वाले, असमीक्ष्यकारी और (श्रोणं च) बहरे, प्रजा की पीड़ायुक्त चींख पुकारों को न सुनने वाले (द्वा) दोनों प्रकार के (जहिता) प्रजा

को त्यागने वाले दुष्ट राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (अनुनयः) अपने अनुकूल करके सन्मार्ग पर चलावे तो (ते) तेरे (तत्) अपूर्व (सुम्नम्) सुखयुक्त राष्ट्र और यश को (न अष्टवे) कोई भी प्राप्त न कर सके अथवा—हे पुरुष ! यदि अन्धों और बहरों को, जिनको बन्धुओं ने छोड़ दिया है, सन्मार्ग दिखावे तो यह पुण्य कार्य तेरा अन्यों के द्वारा भोगने को न हो, वह तुझे अद्वितीय पुण्य हो।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्।
दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥ २२ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (दिवोदासाय) प्रकाश के इच्छुक प्रजा के लिये (अश्मन्मयीनां पुराम् शतं वि आस्यत्) मेघों से बनी जलधाराओं को नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार (दाशुषे) करादि देने वाले (दिवः दासाय) भूमि का सेवन करने वाले प्रजा के उपकार के लिये (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (अश्मन्मयीनां) पत्थरों की बनी, दृढ़ (पुरां) शत्रु नगरियों को (वि आस्यत्) विविध प्रकार से तोड़ फोड़ दे। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः।
दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु हनन करने वाला राजा, (मायया) अपनी शक्ति और बल से (दासानां) प्रजा के नाश करने वाले शत्रुओं के (त्रिशतं सहस्रा) तीन सौ हजार [३००,०००] सैन्यों को (दभीतये) विनाश करने के लिये (हथैः) दूर तक व्यापने वा हनन करने वाले अस्त्रों, शस्त्रों और अन्यान्य साधनों से (अस्वापयत्) सुला दे, पृथ्वी पर गिरा दे।

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने हारे (इन्द्र)

ऐश्वर्यकारक ! राजन् ! (यः) जो तू (ता) उन (विश्वानि) सब शत्रु-सैन्यों को (चिच्युषे) रणस्थान से विचलित करता और स्वसैन्यों को सञ्चालित करता है, (सः उ उत) वह तू निश्चय से (समानः) सूर्य-वत् तेजस्वी, माननीय, निष्पक्षपात (गोपतिः) भूमि का स्वामी (असि) है। (२) इन्द्र गोपति वेदवाणी का स्वामी विद्वान् समस्त अज्ञानों को दूर करता है।

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।
अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥

भा०—(उत) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (पौंस्यम्) सब मनुष्यों के बीच, उनके हितकर, पुरुषोचित (इन्द्रियं) बल, सामर्थ्य और ऐश्वर्य (करिष्याः) करता है (नूनं) निश्चय से (तत् उसको (अद्य) वर्त्तमान में भी (नकिः आमिनत्) कोई नाश नहीं कर सकता।

वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४॥२३॥

भा०—हे (आदुरे) सब ओर शत्रुओं के नाश करने वाले ! अथवा हे आदर करने योग्य राजन् ! (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, और सर्वस्वामिवत् मान पाने योग्य न्यायकारी शासक, (देवः) ज्ञान और सत्य न्याय का देने वाला पुरुष (ते) तुझे (वामं-वामं ददातु) सब उत्तम २ ऐश्वर्य प्रदान करे। (पूषा देवः) सर्वपोषक प्रजाजन, वा कर संग्राहक अध्यक्ष वा पृथ्वी का प्रबन्धक भी (ते वामं ददातु) तुझे उत्तम ऐश्वर्य दे और (भगः) ऐश्वर्य का स्वामी सुख, कल्याण का कर्त्ता अध्यक्ष भी तुझे (वामं ददातु) कमनीय, सेवन योग्य ऐश्वर्य प्रदान करे। और वे तीनों अध्यक्षजन (करूळती) कटे दांतों वाले हों अर्थात् राजा के कर आदि ऐश्वर्य में से स्वयं काट कर खाने वाले न हों। न्यायाधीश,

कराध्यक्ष और कोषाध्यक्ष तीनों ही ऐसे हों जो अर्थदण्ड, कर और कोष के द्रव्य को न खा सकें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[३१]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, ९, १०, १४ गायत्री। २, ६, १२, १३, १५ निचृद्गायत्री। ३ त्रिपाद्गायत्री। ४, ५ विराड्गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (कया ऊती) किस रक्षा, ज्ञान और तृप्तिकारक साधन से और (कया) किस (शचिष्ठया) सब से उत्तम शक्ति, वाणी और बुद्धि से और (कया वृता) किस व्यवहार से (नः) हमारे लिये (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म स्वभाव वाला, आदर सत्कार, पूजा योग्य, (सदावृधः) सदा स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने हारा और (सखा) सब का मित्र (आभुवत्) रूप से विद्यमान हो। उत्तर—(कया) सुखप्रद रक्षा, वाणी और व्यवहार से।

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! (कः) वह कौन है जो (सत्यः) सज्जनों का हितैषी, उन सब से उत्तम (मदानां) आनन्दकारक पदार्थों और (अन्धसः) अन्नादि का (मंहिष्ठः) अत्यन्त दानशील होकर (त्वा मत्सत्) मुझे आनन्द उल्लास से युक्त करता है। और (दृढा) शत्रु के दृढ़ दुर्गों और (वसु) नाना धनों को (आरुजे) तोड़ने और प्राप्त करने के लिये (चित्) भी उत्साहित करता है। उत्तर—(सत्यः) सत्य न्याय।

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (ऊतिभिः) रक्षाओं और ज्ञानों से और तृप्तिकारक, सुखजनक क्रियाओं से (सखीनाम्) मित्र और (जरितृणाम्) स्तुति करने वाले (नः) हम लोगों का तू (शतं) सैकड़ों प्रकारों से और सौ बरस तक (अविता) रक्षक (अभि भवासि) बना रह ।

अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः ।
नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अश्व (अर्वतः) गतिशील रथ के (वृत्तम् चक्रम् न अभि आवर्तयति) दृढ़ चक्र को चलाने में समर्थ है उसी प्रकार हे राजन्! तू (चर्षणीनाम्) ज्ञान सत्य के देखने वाले विद्वानों और हलादि कर्षक प्रजाओं के और (नः वृत्तं चक्रम्) हमारे दृढ़ चक्र, राष्ट्र और राजचक्र को (अभि आ ववृत्स्व) अच्छी प्रकार संचालित कर ।

प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि ।
अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—और (हि) निश्चय से हे राजन् ! हे प्रभो ! (क्रतूनां) यज्ञों, उत्तम बुद्धि और कर्मों के (प्रवता) निम्न, विनययुक्त वा उत्तम मार्ग से (पदा-इव) पैरों के सदृश ज्ञान द्वारा (आ गच्छसि) प्राप्त हो और (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के अधीन (सचा) सदा साथ रहकर मैं (अभक्षि) सदा भोग करूं वा तेरा भजन करूं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे ।
अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो (ते) तेरे (मन्यवः) मननशील पुरुष (सं दधन्विरे) एक साथ मिल कर धारण करते

हैं और (यत्) जो भी वे (चक्राणि) करने योग्य कर्मों को (सं दध-न्विरे) एक साथ अपने ऊपर उठाते हैं वे (अध त्वे) भी तेरे ही आश्रय-तेरे ही अधीन रहकर करते हैं, (अध सूर्ये) और जिस प्रकार सूर्य में किरणें स्थित होकर वे ताप और प्रकाश धारते हैं उसी प्रकार वे सूर्य-सदृश पुरुष तेरे अधीन रहकर ज्ञान और कर्मों को धारण करें ।

उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते ।
दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (हि) भी हे (शचीपते) प्रज्ञा कर्म शक्ति और सेना के पालक ! स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! आत्मन् ! (त्वाम्) तुझ को विद्वान् लोग (दातारम्) दानशील (मघवानम्) ऐश्वर्यवान् और (अविदीधयुम्) भूतादि में द्रव्यनाश न करने वाला ही (आहुः) बतलाते हैं । वैसा ही वे अन्यों को रहने का उपदेश करते हैं ।

उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते ।
पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥

भा०— (उत स्म) और हे राजन् ! तू (सद्यः इत्) शीघ्र ही, (शशमानाय) अन्यों को उत्तम वचनों का अनुशासन या शिक्षा करने वाले, स्वयं प्रशंसित आचारवान्, विद्यावान् (सुन्वते) अन्यों को और स्वयं भी ज्ञान और धनैश्वर्य का सम्पादन करने कराने वाले को (परि) आदरपूर्वक (पुरु वसु) बहुत सा जीवनोपयोगी धन (मंहसे) प्रदान करता है, एवं तू किया कर ।

नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः ।
न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! (आमुरः) चारों ओर से आघात करने वाले और रोग पीड़ादिजनक लोग (ते शतं चन राधः) तेरे सैकड़ों ऐश्वर्यों को भी (नहि वरन्त स्म) कभी निवारण नहीं कर सकते वा नहीं प्राप्त कर

सकते, (च्यौत्नानि) नाना बल कार्यों को (करिष्यतः) करना चाहने वाले तेरे बलों को भी वे नहीं रोक सकते।

अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! (ते शतं ऊतयः) तेरे सैकड़ों शिक्षा और ज्ञान के कर्म (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें, हमें प्राप्त हों, हमें उज्ज्वल करें, और हमें आनन्द प्रसन्न करें। (ते सहस्रम् ऊतयः अस्मान् अवन्तु) तेरी सहस्रों रक्षाएं, विद्याएं, और चालें हमारी रक्षा करें, ज्ञान दें और (ते विश्वाः अभिष्टयः अस्मान् अवन्तु) तेरी समस्त उत्तम अभिलाषाएं और प्रेरणाएं और उत्तम मैत्री, सख्यादि हमें पालन करें। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये।
महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (इह) इस संसार में (अस्मान्) हमको (सख्याय) मित्रता, (स्वस्तये) सुखपूर्वक कल्याण जीवन और (महः दिवित्मते राये) बड़े भारी न्याय, प्रकाश आदि से युक्त, समुज्ज्वल धन सम्पदादि की प्राप्ति और वृद्धि के लिये (वृणीष्व) मित्र, भृत्य और सहायक रूप से स्वीकार कर।

अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! तू (अस्मान्) हमें (विश्वहा) सदा, (परीणसा राया) बहुत सी धन-सम्पदा से (अविड्ढि) युक्त कर और (विश्वाभिः ऊतिभिः अस्मान् अविड्ढि) सब प्रकार की रक्षाकारिणी सेनाओं सहित हम में प्रवेश कर, हम में बस।

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! तू (नवाभिः ऊतिभिः) नये २ रक्षा साधनों और नई २ आविष्कृत विद्याओं से (अस्मभ्यं) हमारे उपकार के लिये (तान्) उन (गोमतः) गौओं के (व्रजान्) वाड़ों के तुल्य रश्मियों, ज्ञान-वाणियों और भूमियों के समूहों को (अस्ता इव) गृहों के समान (अप वृधि) खोल दे, प्रकट कर ।

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः ।
गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (अस्माकं) हमारा (धृष्णुया) शत्रुओं को पराजय करने वाला, दृढ़, (द्युमान्) दीप्ति युक्त (अनपच्युतः) नाश से रहित (गव्युः) उत्तम गमन साधनों और (अश्वयुः) उत्तम शीघ्रगामी, अश्वादि, यन्त्रकलादि से युक्त (रथः) रथ और काम क्रोध को जीतने वाला, तेजोयुक्त अविनाशी, धर्म मार्ग में दृढ़, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों का स्वामी (रथः) रसस्वरूप, वा देह से देहान्तर जाने वाला आत्मा (ईयते) अच्छी प्रकार से गमन करे, जाना जावे ।

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य ।
वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! सूर्य जिस प्रकार (वर्षिष्ठं द्याम् उपरि करोति) प्रचुर जल वर्षाने वाला प्रकाश सर्वोपरि रहकर करता है उसी प्रकार तू भी (अस्माकं) हमारा (उत्तमं श्रवः) उत्तम ज्ञान, यश, ऐश्वर्य और (देवेषु) विद्वानों और धनाभिलाषियों के बीच में (वर्षिष्ठं द्याम्) सर्वोत्तम कामना (कृधि) पूर्ण कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[३२]

वामदेव ऋषिः ॥ १—२२ इन्द्रः । २३, २४ इन्द्राश्वौ देवते ॥ १, ८, ९, १०, १४, १६, १८; २२, २३ गायत्री । २, ४, ७ विराड्गायत्री । ३, ५,

६, १२, १३, १५, १६, २०, २१ निचृद्गायत्री । ११ पिपीलिकामध्या गायत्री । १७ पादनिचृद्गायत्री । २४ स्वराडार्ची गायत्री ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ तू न॑ इन्द्र वृत्रहन्न॒स्माक॑म॒र्धमा ग॑हि ।
म॒हान्म॒हीभि॑रू॒तिभि॑: ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रुओं, विघ्नों और अज्ञान के नाश करने हारे ! तू (नः) हमें (तु) शीघ्र ही प्राप्त हो और (महीभिः ऊतिभिः महान्) बड़ी रक्षा कारिणी शक्तियों से महान् तू (अस्माकम् अर्धम्) हमारे समीप, हमारे समृद्ध राष्ट्र को (आगहि) प्राप्त हो ।

भृमि॑श्चिद् घासि तूतु॑जि॒रा चि॑त्र चि॒त्रिणी॒ष्वा ।
चि॒त्रं कृ॑णोष्यू॒तये॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (चित्र) पूजनीय ! हे अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाव ! तू (भृमिः) भ्रमणशील (चित्) होकर भी (चित्रिणीषु) आश्चर्यजनक कार्य करने वाली वा चित्र विचित्र, विविध सेनाओं और प्रजाओं में (तूतुजिः) सबका पालक होकर (ऊतये) रक्षा, गमन, कान्ति, स्वामित्व, धन प्राप्ति, दान, प्रजा वृद्धि आदि कार्यों के लिये (चित्रं) विविध प्रकार का धन ज्ञान और बल (दधासि) धारण कर और (चित्रं कृणोषि) अद्भुत कार्य भी कर ।

द॒भ्रेभि॑श्चि॒च्छशी॑यांसं॒ हंसि॒ व्राध॑न्त॒मोज॑सा ।
सखि॑भि॒र्ये त्वे सचा॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (दभ्रेभिः) अल्प संख्य वा अल्प बल वाले (सखिभिः) मित्रों से मिलकर (ओजसा) पराक्रम से (शशीयांसं) धर्म मर्यादा और तेरी भूमि सीमा को लांघकर जाने वाले (व्राधन्तं) प्रजा के नाश करने वाले दुष्ट पुरुष को तू (दभ्रेभिः) हिंसा करने में

कुशल उन (सखिभिः) मित्रों सहित (ये त्वा सचा) जो तेरे अधीन तेरे सदा साथ रहते हैं (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (हंसि) दण्डित कर। 'दभ्रेभिः सखिभिः ओजसा' इत्यादि पद दीपक न्याय से उभयत्र लग सकते हैं। अर्थात् दल बल सहित शत्रु के साथ जुटकर परास्त कर।

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः।
अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! (वयम्) हम लोग (त्वे सचा) तेरे अधीन समवाय बनाकर रहें। (वयं) हम (त्वा अभि नोनुमः) तुझे आदर नमस्कार करें। तू (अस्मान् अस्मान् इत्) हम सब को बार २ (उत् अव) उत्तम रीति से रक्षा कर और उन्नत पद पर पहुंचा। हमें उत्कण्ठित होकर चाहा कर।

स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः।
अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) पर्वतों के तुल्य दानशील और दृढ़ पुरुषों के स्वामिन्! तू (सः नः) वह (चित्राभिः) अद्भुत, विविध, (अनवद्याभिः) अनिन्दित, (अनाधृष्टाभिः) शत्रुओं से पराजित न होने और धर्षण वा अपमानित न होने योग्य (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं, कामनायोग्य विभूतियों और तृप्तिकारक सुखसम्पदाओं और समृद्धिकारक प्रिय प्रजाओं सहित (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः।
युजा वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वावतः) तेरे सदृश (गोमतः) भूमि, वाणी और इन्द्रियों से सम्पन्न, तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशमान् पुरुष

के हम लोग (घृष्वये वाजाय) प्रतिपक्षियों से संघर्ष करने और बल, ऐश्वर्य, ज्ञान और संग्राम विजय के लिये (युजः सु भूयामो) सदा अच्छे सहायक, सहयोगी होवें।

त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः।
स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! आत्मन्! (त्वं हि) तू ही निश्चय से (एकः) अकेला, अद्वितीय (गोमतः वाजस्य) पृथिवी, वाणी इन्द्रियादि पशु सम्पदा से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल, अन्न आदि का (ईशिषे) स्वामी है। (सः) वह तू (नः) हमें (महीम् इषम्) बड़ी भारी अन्न आदि सम्पदा (यन्धि) प्रदान कर और (नः इषम् यंधि) हमारी सेना को संयत कर।

न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम्।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों द्वारा सेवनीय, स्तुत्य, प्रार्थनीय राजन्! प्रभो! विद्वन्! (यत्) क्योंकि तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर ही (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वानों को (मघम्) ऐश्वर्य (दित्ससि) प्रदान करता है, इसलिये लोग (त्वा) तुझे (अन्यथा) और किसी प्रयोजन से (न वरन्ते) नहीं वरण करते, वे दान ग्रहणार्थ ही याचना करते हैं।

अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने।
इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! राजन्! विद्वन्! (घृष्वये वाजाय) अति घर्षण को प्राप्त, वादविवादादि से परिष्कृत, (वाजाय) वेग, बल, विद्युतादि शक्ति, प्रदीप्त धन और शुद्ध ज्ञान और अन्न के प्राप्त करने के

लिये (गोतमाः) उत्तम भूमि के स्वामी, वाणी के ज्ञाता और विद्वान् पुरुष एवं बैलों वाले कृषक जन (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (गिरा) वाणी से (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य करके (प्र अनूषत) खूब स्तुति करते हैं।

प्र ते वोचाम वीर्या३या मन्दसान आरुजः।
पुरो दासीरभीत्य ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन्! सेनापते! (याः) जिन (दासीः) राष्ट्र के नाशकारी शत्रु की (पुरः) नगरियों को (अभीत्य) आक्रमण करके (मन्दसानः) अति प्रसन्नता पूर्वक (आ अरुजः) सब तरफ़ों से तोड़ दे हम विद्वान् जन (ते) तेरे उन (वीर्या) बल पराक्रम के कार्यों को (प्र वोचाम) अच्छी प्रकार वर्णन करें, तुझे उनका उपदेश, प्रवचन करें। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा प्रार्थना करने या सेवने, सत्कार करने योग्य राजन्! विद्वन्! (सुतेषु) पुत्रों के तुल्य, ऐश्वर्ययुक्त, अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्रों में (यानि पौंस्या) जिन पौरुष युक्त कर्मों को तू (चकर्थ) करे (वेधसः) विद्वान् लोग (ता) उन २ तेरे नाना कर्मों का (ते गृणन्ति) तुझे उपदेश करें।

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः।
ऐषु धा वीरवद्यशः ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार (गोतमाः सूर्ये मेघे वा स्तोमवाहसः अवीवृधन्त सः एषु यशः आदधाति) उत्तम गौ, बैल आदिवाले किसान सूर्य या मेघ के निमित्त वा आश्रय रहकर स्तुति करते और प्रचुर अन्न पाते हैं और वह उनमें उत्तम अन्न देता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (स्तोमवाहसः) स्तुतियों, उत्तम प्रजा समूहों, बलवीर्यों को धारण करने वाले

विद्वान् (गोतमाः) भूमि, वाणी के स्वामी जन (त्वे) तेरे आश्रित रह कर (अवीवृधन्त) बढ़ें और तू (एषु) उनमें (वीरवत् यशः) वीर पुरुषों से युक्त यश, अन्न (आ धाः) धारण कर।

यश्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यः) जो (त्वं) तू (शश्वतां चित्) अनादि सनातन से चले आये सत् तत्वों में परमेश्वर के तुल्य पहले से चली आई बहुत सी प्रजाओं के बीच (साधारणः असि) सबको समान रूप से निष्पक्षपात होकर धारण करने हारा है (तं त्वा) उस तुझको (वयं) हम (हवामहे) पुकारते स्तुति करते और राजा रूप से स्वीकार करते हैं।

अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः ।
सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में समस्त प्रजागण को बसाने हारे राजन् ! हे शिष्यों को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य ! हे देह में बसने हारे आत्मन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे द्रष्टः ! तू (सोमपाः) अन्नादि ओषधि के तुल्य समस्त ऐश्वर्यों का पान, उपभोग करने हारा, सोमवत् प्रजाओं वा शिष्यों का पालक है। तू (अर्वाचीनः) हमें प्राप्त होकर (अस्मे) हमारे (अन्धसः) अन्न और (सोमानाम्) ऐश्वर्यों के उपभोग से (सु मत्स्व) अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर।

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु ।
अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मतीनां) मननशील, मतिमान् (अस्माकं) हम लोगों के वा हम में से मतिमान् पुरुषों का (स्तोमः)

समूह वा उनका स्तुतियुक्त उत्तम वचन (त्वा) तुझे (यच्छतु) नियम में बांधे। तू (हरी) राष्ट्र स्त्री-पुरुष दोनों वर्गों को रथ में लगे अश्वों के तुल्य (अर्वाग् आ वर्त्तय) मर्यादा में चला।

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ १६ ॥ २९ ॥

भा०—हे राजन्! तू (नः) हमारे (पुरोळाशं) आदर सत्कार पूर्वक दिये और उत्तम रीति से बनाये अन्न को (घसः) उपभोग कर। और (वधूयुः इव) वधू प्राप्त करने की कामना वाला पुरुष जिस प्रकार (योषणाम्) प्रेम युक्त स्त्री को प्रेम से स्वीकार करता है उसी प्रकार तू भी (नः) हमारी (गिरः च) वाणियों को भी (जोषयासे) स्वीकार कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे।
शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७ ॥

भा०—हम (युक्तानां) जुते हुए (व्यतीनां) विशेष वेग से जाने वाले अश्वों और नियुक्त वेतन पर रक्खी रक्षा करने वाली सेनाओं, भोगादि प्राप्त करने वाली प्रजाओं के बीच (सहस्रं) सर्व सहनशील, बलवान् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा या राज्य की हम (ईमहे) याचना करते हैं कि (सोमस्य) ओषधि अन्नादि के (खार्यः शतं) सैकड़ों मन हमें प्राप्त हों।

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन्! धनाधिपते! (ते) तेरी (सहस्रा शता गवाम्) हज़ारों, सैकड़ों गौओं, भूमियों और वाणियों को (वयम्) हम लोग (आ च्यावयामसि) प्राप्त करें। (ते) तेरा (राधः) ऐश्वर्य (अस्मत्रा एतु) हमें प्राप्त हो। हमारे ऊपर तेरा ऐश्वर्य निर्भर हो।

दश॑ ते क॒लशा॑नां॒ हिर॑ण्यानामधीमहि ।
भू॒रि॒दा अ॑सि वृत्रहन् ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रु, विघ्नों और अज्ञानों को नाश करने हारे ! राजन् एवं विद्वन् ! तू (भूरिदाः असि) बहुत देनेहारा है। (ते) तेरे (हिरण्यानां) हित और रमणीय, धनपूर्ण (कलशानां दश) दश कलशों के सदृश हितकारी मनोहर वेदवाणियों, दश मण्डलों को हम (अधीमहि) धारण करें, स्वाध्याय कर मनन और चिन्तन करें।

भूरि॑दा भूरि॑ देहि नो॒ मा द॒भ्रं भूर्या भ॑र ।
भूरि॒ घेदि॑न्द्र दित्ससि ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (घ) निश्चय से (भूरि दित्ससि) बहुतसा ऐश्वर्य हमें देना चाहा करता है। तू (भूरिदाः) बहुत धन ज्ञानादि का प्रदाता होकर (नः) हमें (भूरि देहि) बहुत दे, (मा दभ्रं) स्वल्प धन एवं पीड़ादायक धन मत दे। (भूरि आ भर) बहुत २ ऐश्वर्य, ज्ञान प्राप्त करा।

भू॒रि॒दा ह्यसि॑ श्रु॒तः पु॑रु॒त्रा शू॑र वृत्रहन् ।
आ नो॑ भजस्व॒ राध॑सि ॥ २१ ॥

भा०—हे (शूर वृत्रहन्) शूरवीर, विघ्नकारी दुष्टों के नाश करने हारे ! तू (भूरिदा हि) बहुत ऐश्वर्यादि देने हारा (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है। तू (नः) हमें (राधसि) अपने धन में (आ भजस्व) स्वीकार कर, हमें भी उसमें भागी बना।

प्र ते॑ ब॒भ्रू वि॑चक्षण॒ शंसा॑मि गोषणो नपात् ।
माभ्यां॒ गा अनु॑ शिश्रथः ॥ २२ ॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष ज्ञान को देखने हारे ! हे (गो-सनः)

वेदवाणी और पृथिवी के दान करने हारे ! हे (नपात्) स्वयं न गिरने और अन्यों को न गिरने देने हारे ! (ते) तेरे (बभ्रू) सबको भरण पोषण करने वाले विद्वान् दया शील स्त्री पुरुषों की, माता पिताओं की और अश्ववत् राष्ट्ररथ को लेजाने वालों की (प्रशंसामि) खूब प्रशंसा करता हूं तू (आभ्याम्) इन दोनों से शिक्षित होकर (गाः) वाणियों और राष्ट्र की भूमियों वा गौओं के तुल्य धनादि के देने वाली प्रजाओं के प्रति (मा अनु शिश्रथः) अपने को शिथिल मतकर । और प्रजाओं को भी शिथिल, उदासीन और स्नेहहीन मत होने दे ।

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके ।
बभ्रू यामेषु शोभते ॥ २३ ॥

भा०—(यामेषु) गमन करने योग्य मार्गों में जिस प्रकार (बभ्रू) लाल रंग के दो घोड़े (अर्भके द्रुपदे विद्रधे शोभते) छोटे से दृढ़ खूंटे में बंधे शोभा पाते हैं उसी प्रकार (यामेषु) यम नियम के पालन के कार्यों में (बभ्रू) तेजस्वी स्त्री पुरुष वर्ग, शिष्य और आचार्य दोनों (अर्भके) छोटे (विद्रधे) दृढ़ (नवे) नये, अतिस्तुत्य (द्रुपदे) खूंटे के तुल्य स्थिर व्रत में (शोभेते) शोभा पाते हैं और वे दोनों (कनीनका-इव) आँखों की दो पुतलियों के समान परस्पर प्रेम अनुराग से युक्त भी हों (२) इसी प्रकार (यामेषु) राष्ट्र संयमन आदि कार्यों में राजा प्रजा भी परस्पर मिली आँखों की पुतलियों के तुल्य इस नये, दृढ़, बालवत् पोषणीय, राज्य कार्य में एक दूसरे के पोषक हो । (३) गृह में स्त्री पुरुष अनुरक्त पुतलियों के सदृश एक छोटे से धर्म या बालक रूप खूंटे से बन्धे रहकर भी आठों पहरों (बभ्रू) एक दूसरे के पोषक और रक्त वर्ण, सुप्रसन्न चित्त बने रहकर शोभा देते हैं ।

अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे ।
बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥ २४ ॥ ३० ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! आपके (बभ्रू) राष्ट्र का भरण पोषण करनेवाले शासक वर्गों की दोनों श्रेणियें सधे अश्वों के समान (यामेषु) गमन योग्य उत्तम मार्गों में (अस्त्रिधा) प्रजा के हिंसक न हों। और वे (उस्रयाम्णे) बैलों से जाने वाले या (अनुस्रयाम्णे) बिना बैलों से जाने वाले मुझ प्रजाजन का भी (अरम्) बहुत २ सुख देने वाले हो। उसी प्रकार किरणों से युक्त, उससे विरहित शीतोष्ण देश में भी वे (बभ्रू) मेरे पालने वाले हों। इति त्रिंशो वर्गः॥ इति तृतीयोऽनुवाकः। इति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[३३]

वामदेव ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ११ त्रिष्टुप्। ३, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ७, ८ भुरिक् पंक्तिः। ९ स्वराट् पंक्तिः॥

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः॥१॥

भा०—जिस प्रकार (अपसः) क्रियाशील गतिशील जलादि के परमाणु (तरणिभिः) गति देने वाले (एवैः) साधनों, सूर्य किरणादि से और (वातजूताः) वायु से प्रेरित होकर (द्यां परि बभूवुः) आकाश में चढ़ जाते हैं उसी प्रकार जो (अपसः) कर्म करने वाले मनुष्य (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने वाले (एवैः) दूर तक या उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले साधनों या सहायकों से युक्त होकर (वातजूताः) वायु के समान प्रबल शक्तिमान् और ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा प्रेरित होकर (सद्यः) शीघ्र ही (द्यां परि बभूवुः) ज्ञान को प्राप्त होते हैं जो बलवान्

राजशक्ति से प्रेरित होकर (द्यां) भूमि को प्राप्त करते हैं मैं उन (ऋभुभ्यः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले शिक्षित मनुष्यों के हितार्थ (दूतम् इव वाचम्) वाणी को दूत के समान (इष्ये) कहता हूं। और (उपस्तिरे) उसके अभिप्राय को सर्वत्र फैलाने के लिये (श्वैतरीं) अति शुद्ध ज्ञानमयी (धेनुम्) ज्ञान धारण करने वाली वाणी और बुद्धि को (ईडे) प्राप्त होऊं और उसको अन्यों के प्रति प्रस्तुत करूं।

यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥

भा०—(ऋभवः) सत्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन (यदा) जब (पितृभ्याम्) माता और पिता से उनकी (परिविष्टी) परिचर्या और (वेषणा) विद्या प्राप्ति की साधना, और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों द्वारा (अरम्) बहुत अधिक (अक्रन्) परिश्रम करते हैं (आत् इत्) तभी वे (देवानाम्) विद्वान्, विद्या आदिदाता गुरु जनों के (सख्यम्) मित्रभाव को प्राप्त करते हैं और वे (धीरासः) बुद्धिमान्, ध्यान धारणा वाले होकर (मनायै) मनन करने योग्य विद्या की (पुष्टिम्) वृद्धि को (अवहन्) धारण करते हैं। (२) अध्यात्म में—'ऋभु' प्राण हैं।

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम्॥३॥

भा०—(पुनः) और (ये) जो (यूपा इव) 'यूप' अर्थात् स्तम्भों के समान दृढ़ (युवानौ पितरौ) युवा माता पिता को (सना) उत्तम दानशील, (जरणा) जीर्ण, वृद्ध और (शयाना) मृत्युशय्या पर सोने वाला (चक्रुः) कर देते हैं अर्थात् जो माता पिता की वृद्धावस्था और मृत्यु पर्यन्त सेवा करते हैं (ते) वे (वाजः) बलवान्, ज्ञानवान्,

(विभ्वा) बड़े भारी ज्ञान से वा व्यापक, शक्तिमान् परमेश्वर के अनुग्रह से युक्त, (ऋभुः) और ऋत, सत्य ज्ञान से प्रकाशित, अति तेजस्वी ये सभी (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान्, गुरु आदि अज्ञान नाशक जनों वाले, (मधु-प्सरसः) मधुर, सौम्यमुख एवं मधु, ज्ञान और उत्तम अन्न जल का उपयोग करने वाले, सात्विक पुरुष (नः यज्ञम् अवन्तु) हमारे यज्ञ, मैत्रीभाव, सत्संगति, ज्ञान, धनादि के दानादान और गुरु जनों के पूजा सत्कार आदि कर्मों की (अवन्तु) रक्षा करें। (२) राष्ट्र में तीन प्रकार के मुख्य व्यक्ति हों (१) 'वाज' जो बलवान् हों, (२) विभ्वा विशेष सामर्थ्य और ऐश्वर्यवान्, सत्तावान्, (३) 'ऋभु' सत्य न्यायवान् वे सब अपने अपने ऊपर इन्द्र राजा को धारण करें। मधु मक्खियों से संगृहीत मधु के तुल्य समस्त प्रजा से संगृहीत करके उसपर ही अपना उपयोग वेतनादि प्राप्त करें। वे राष्ट्र के राजा प्रजा व्यवहार, संगति आदि की रक्षा करें।

यत्संवत्संमृभवो गामरक्षन्यत्संवत्संमृभवा मा अपिंशन्।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥

भा०—(यत्) जिन कर्मों से (ऋभवः) सत्य ज्ञान से युक्त विद्वान् जन (संवत्सम् गाम्) बछड़े से संयुक्त गौ के समान कहने योग्य अभिप्राय, वाच्य अर्थ से युक्त वाणी की (अरक्षन्) रक्षा करते हैं और (ऋभवः) सत्यज्ञान के द्वारा अधिक सामर्थ्यवान् होने वाले विद्वान्जन (यत्) जिन उपायों से (संवत्सम्) वन्दन करने या कहने योग्य, तत्व के सहित वर्त्तमान् (माः) प्रजाओं, ज्ञानों को (अपिंशन्) प्रकट करते हैं और (यत्) जिन उपायों से (अस्याः) इस वेद वाणी की (भासः) नाना अर्थ प्रकाशक कान्तियों को (संवत्सम्) उत्तम प्रकार से कहने योग्य गुरु के अधीन रहकर प्राप्त करने योग्य तत्व ज्ञान सहित (अभरन्) धारण करते हैं (ताभिः) उन

(शमीभिः) शान्तिदायक तप, वैराग्य, स्वाध्याय आदि कर्मों से विद्वान् लोग (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं। (२) राष्ट्र में 'ऋत' सत्य न्याय के प्रकाशक जन (संवत्सम्) राष्ट्र में बसे प्रजाजन सहित भूमि की रक्षा जिन उपायों से करें, उन सहित राष्ट्र-निर्माण करने वाली ज्ञान समितियों को बनावें, इस भूमि के तेजोयुक्त रत्नादि पदार्थों को उनके ज्ञाता सहित भरण करें, उन कर्मों द्वारा वे परम सुख प्राप्त करें और शत्रु रोगादि से मृत्यु को दूर कर दीर्घायु का भोग करें।

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥१॥

भा०—(ज्येष्ठः) सबसे श्रेष्ठ पुरुष (आह) कहता है कि (द्वा चमसा करः) अर्थ और काम इन ही भोग करने योग्य दो पुरुषार्थों का सम्पादन करो (इति) बस, और (कनीयान्) उससे अधिक दीप्तिमान् पुरुष (आह) कहता है कि (त्रीन् कृणवाम इति) हम लोग धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों का सम्पादन करें। (कनिष्ठः आह) सबसे अधिक दीप्तिमान् तेजस्वी पुरुष कहता है कि (चतुरः करः इति) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को सम्पादन करो। (त्वष्टा) समस्त विश्व का बनाने वाला, अज्ञान का नाशक तेजस्वी गुरु हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य से खूब प्रकाशित, और सामर्थ्य युक्त पुरुषो! (वः) आप लोगों के (तत् वचः) उस वचन की (पनयत्) प्रशंसा करे। इति प्रथमो वर्गः ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः। मनु० २। २२४॥

बुभूक्षून् प्रत्युपदेशो न मुमूक्षून्। मुमुक्षूणां तु मोक्ष एव श्रेयान् इति षष्ठे वक्ष्यते। इति कुल्लूकभट्टः।

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानाँश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सत्यम् ऊचुः) सत्य बोलें (एव हि) उसी प्रकार वे (सत्यम् अनु चक्रुः) सत्य ज्ञान के अनुसार ही कर्म करें । (ऋभवः स्वधाम्) अति प्रकाशमान सूर्य के किरण जिस प्रकार जल को ग्रहण करते हैं उसी प्रकार (ऋभवः) 'ऋत' अर्थात् सत्य ज्ञान, तेज और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन (एताम् स्वधाम्) इस सत्यमयी 'स्वधा' आत्मा की धारण पोषण शक्ति को (जग्मुः) प्राप्त हों । (ददृश्वान्) सत्य का दर्शन करने वाला (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष (अह एव) निश्चय से, सदा ही (चतुरः चमसान्) भोग करने योग्य धर्म अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को ही मेघ के तुल्य, भोग्य पदार्थों के दाता, अन्नवत् और (विभ्राजमानान्) विशेष कान्ति से चमकते हुए देखें और उनकी (अवेनत्) कामना करे ।

द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार से (अगोह्यस्य आतिथ्ये) प्रत्यक्ष प्रकाशमान् सूर्य के आधिपत्य में (ससन्तः ऋभवः) विद्यमान प्रकाश की किरणें (द्वादश द्यून् रणन्) १२ हों मास रौनकदार बनाते हैं, (सुक्षेत्रा अकृण्वन्) खेतों को उत्तम कर देते हैं, (सिन्धून् अनयन्) जलधाराएं प्राप्त कराते हैं, और जिस प्रकार (धन्व ओषधीः अतिष्ठन्) स्थल में ओषधियां और (निम्नम् आपः) नीचे भाग में जल चले जाते हैं उसी प्रकार (ऋभवः) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और बड़े विक्रम तेज से प्रकाशित होने वाले या बहुसंख्यक विद्वान् जन, (अगोह्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी, चिरकाल तक अप्रकट रूप से न रह सकने वाले, स्वयं अपने गुणों से प्रकाशमान पुरुष के (आतिथ्ये) अतिथिवत् आदर सत्कार में वा आधिपत्य में

(ससन्तः) सुख से रहते हुए (द्वादश द्यून्) १२ मास के दिनों में (रणन्) आनन्द प्रसन्न हों, (सुक्षेत्राणि) उत्तम २ क्षेत्र (अकृण्वन्) बनावें। उनमें (सिन्धून्) जल प्रवाहों को (अनयन्त) ले जावें, (धन्व) स्थल भाग पर (ओषधीः) अन्नादि ओषधियें (अतिष्ठन्) खड़ी हों और (आपः निम्नम्) गहरे तालाव आदि स्थान में जल जमा रहें (२) अध्यात्म में— जिसको ढांप न सके ऐसा अपरिमित प्रभु 'अगोह्य' है। ऋभु जीव उसके पूजा सत्कार में १२ हों मास प्रसन्न होकर सुख से रहते हैं, वे स्तुति प्रार्थना व ज्ञानविद्या का अभ्यास करें। अपने उत्तम आत्मा वा देहों को प्राप्त करें, जन्म सफल करें, (सिन्धून्) प्राणों को और नाड़ियों को व्यवस्था में रक्खें।

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम्।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः॥८॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (सुवृतं) सुख से चलने योग्य सुखपूर्वक वर्त्तने वाला, (नरेष्ठां) ले जाने वाले चक्र या अश्वादि के तुल्य प्रधान नायक पुरुष पर आश्रित वा मनुष्यों के बैठने योग्य (रथं) रथ और उसके समान राष्ट्र को (चक्रुः) बनाते हैं। और (ये) जो (धेनुं) गौ के तुल्य कामदुघा, (विश्वजुवं) सब प्रकार के ज्ञानों से युक्त और (विश्वरूपाम्) सब प्रकार के पदार्थों का वर्णन करने वाली वाणी को (चक्रुः) प्रकट करते हैं (ते) वे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से सुशोभित और सत्य ज्ञान के प्रकाशक विद्वान् लोग (सु-अवसः) उत्तम रक्षादि साधन से युक्त (सु-अपसः) उत्तम कर्म करने वाले, (सुहस्ताः) उत्तम हाथों वाले, सिद्धहस्त, कर्मकुशल होकर शिल्पियों के तुल्य (नः) हमारे लिये (रयिं) नाना ऐश्वर्य (आ तक्षन्तु) उत्पन्न करें।

अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा॥९॥

भा०—(देवः) दानशील, धनादि देने वाले पुरुष (क्रत्वा) कर्म

और (मनसा) ज्ञान से (दीध्यानः) चमकते हुए (एषाम्) इन शिल्पी आदि विद्वानों के (अपः) कर्मों को (अभि अजुषन्त) प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। (वाजः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् और अन्नादिसमृद्ध (सुकर्मा) उत्तम कर्मकुशल पुरुष (देवानाम्) इनकी कामना करने वाले विद्वानों वा प्रजाओं के पालन में (अभवत्) समर्थ हो। और (ऋभुक्षाः) महान् तेजस्वी होकर रहने वाला पुरुष (इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता सेनापति वा राजा के पद पर स्थित हो। (विभ्वा) व्यापक शक्ति, विशेष सामर्थ्य से युक्त पुरुष (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ और दुष्टों के वारण करने के पद पर नियुक्त हो।

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् १०

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (मेधया) अपनी बुद्धि से और (उक्था) उत्तम वचनों से (मदन्तः) स्वयं हर्षित होते हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (हरी) रथादि ले चलाने में समर्थ अग्नि जलों को भी (अश्वा) अश्वों के समान (सुयुजा) रथादि में लगने योग्य (चक्रुः) बना लेते हैं, और जो (हरी अश्वा सुयुजा चक्रुः) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये स्त्री पुरुष दोनों को रथ के अश्वों के समान उत्तम रीति से सहयोगी साथी बनाते हैं। (ते) वे (ऋभवः) सत्यज्ञानी विद्वान् लोग (मित्रं न) मित्र के तुल्य (क्षेमयन्तः) कल्याण, क्षेम की कामना करते हुए (अस्मे) हमारे लिये, हमें (रायस्पोषं) ऐश्वर्य की पुष्टि और (द्रविणानि) नाना धन (धत्त) प्रदान करें।

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ।११।२॥

भा०— ऋभवः) विद्वान् लोग (वः) आप लोगों को (अह्नः) दिन में सूर्य के किरणों के तुल्य (पीतिम् उत मदम्) उत्तम जल और

हर्षदायी और तृप्तिकारक अन्न (धुः) प्रदान करें। क्या (देवाः) विद्वान् पुरुष मेघ सूर्यादि के समान (ऋते) अन्न, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के लिये (श्रान्तस्य) श्रम करने वाले पुरुषार्थी के (सख्याय) मित्रभाव के लिये नहीं होते हैं ? होते ही हैं। (ते) वे (ऋभवः) महान् तेजस्वी लोग, (अस्मिन्) इस (तृतीये) तीसरे, सर्वोत्कृष्ट (सवने) ऐश्वर्ययुक्त, उच्च पद में या 'तृतीय सवन' अर्थात् आयु के तृतीय भाग, ५० से ऊपर के वयस् में स्थित होकर भी (नूनम्) निश्चय से (अस्मे) हमें (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (दधात) प्रदान करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३४]

वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । ३, ११ स्वराट् पंक्तिः । भुरिक् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१॥

भा०—(ऋभुः) सत्य ज्ञान, बल और न्यायादि से प्रकाशमान् (विभ्वा) व्यापक सामर्थ्य से युक्त (वाजः) बलवान् अन्नों का स्वामी और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष ये सब भी (इयं) इस (नः यज्ञं) हमारे यज्ञ, परस्पर के सत्संग, मैत्रीभाव, दान-प्रतिदान के कार्य को (रत्न-धेया) रमणीय, ज्ञान, सुख और ऐश्वर्य तथा वृद्धि के लिये (उप यात) प्राप्त हों। हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (धिषणा) मति और वाणी (देवी) ज्ञान देने और तत्वों को प्रकाशित करने में समर्थ होकर (अह्नाम्) दिनों में सूर्य की दीप्ति के तुल्य बहुत दिनों तक (पीतिम् अधात्) ज्ञानरस का पान करे और (मदाः)

आनन्द और आत्मा के तृप्ति योग (वः सम् अग्मत) आप लोगों को सदा प्राप्त होवें ।

विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से चमकने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (जन्मनः) जन्म से (विदानासः) ज्ञान लाभ करते हुए (उत) और (वाजरत्नाः) बल, ज्ञान, ऐश्वर्यादि के 'रत्न' अर्थात् रमण करने योग्य उत्तम सुख प्राप्त करते हुए (ऋतुभिः) ज्ञानवान् पुरुषों सहित वा (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के अनुसार (मादयध्वम्) स्वयं और अन्यों को भी प्रसन्न करो । (वः मदाः सम् अग्मत) आप लोगों को सब प्रकार के हर्षकर ऐश्वर्य प्राप्त हों और (वः पुरंधिः) आप लोगों को पुरादि धारण करने वाला राजा, वा गृहादि धारण करने वाली स्त्री प्राप्त हो । आप लोग (अस्मे) हमें (सुवीराम् रयिम्) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य को (आ ईरयध्वम्) सब प्रकारों से प्राप्त कराओ ।

अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने और बड़ा होने वाले विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (अयम्) यह (यज्ञः) परस्पर विद्या ऐश्वर्यादि का दान-प्रतिदान, सत्संग, मैत्री और ईश्वरोपासना आदि (अकारि) किया जावे (यम्) जिसको आप लोग स्वयं (प्रदिवः) सदा वा उत्तम ज्ञान-प्रकाश उत्तम कामना और व्यवहारों से युक्त होकर (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के तुल्य (आ दधिध्वे) सब प्रकार से धारण करो । हे (वाजाः) ज्ञानैश्वर्य-बलों से युक्त पुरुषो ! (वः) आप लोगों में से जो उस यज्ञ को (अच्छ) उत्तम रीति से आदरपूर्वक

(जुजुषाणासः) प्रेम पूर्वक सेवन और स्वीकार करते हुए (प्र अस्थुः) उन्नति की ओर बढ़ते हैं (विश्वे) वे सभी (अग्रिया उत वाजाः अभूत) अग्र, मुख्य पद के योग्य हो जाते हैं।

अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) नायक तुल्य उत्तम पुरुषो ! हे (वाजाः) बलवान्, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् पुरुषो ! हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान और तेज से प्रकाशित होने वाले विद्वान् तेजस्वी पुरुषो ! (विधते) उत्तम श्रेष्ठ काम करने वाले, उत्तम रीति से सेवा करने वाले और (दाशुषे) ज्ञान आदि देने वाले, (मर्त्याय) मनुष्य के लिये तो (वः) आप लोगों का (रत्नधेयम्) समस्त रत्न, रमणीय पदार्थों का दान (अभूद् उ) होना चाहिये। मैं परमेश्वर वा मुख्य पुरुष जो कुछ (वः ददे) आपको ज्ञान धनैश्वर्यादि प्रदान करूं आप लोग उस (महि) अति पूजनीय (तृतीयं) सबसे उत्कृष्ट (सवनं) ऐश्वर्य को (मदाय) अपने हर्ष आनन्द की वृद्धि के लिये (पिबत) उत्तम रस के तुल्य पान करो। उसका रसास्वाद लेते हुए उसका उपयोग करें और उससे तृप्त, सुखी और पुष्ट होवे।

आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥३॥

भा०—हे (वाजाः) विज्ञान ऐश्वर्य और बल से युक्त (ऋभुक्षाः) और गुणों से महान् पुरुषो ! आप लोग (महः) अति उत्तम (द्रविणसः) धन विद्या का (गृणानाः) उपदेश करते हुए (नः उप यात) हमें प्राप्त होवें। (अह्नाम् अभि-पित्वे) दिनों के समाप्ति के अवसर में (इमा) ये (पीतयः) उत्तम दुग्ध आदि पान करने योग्य पदार्थ (अस्तं नवस्वः-इव) नये २ सुख प्राप्त करने वाले लोग जैसे घर को आते हैं वा नव-

प्रसूता गौएं जैसे आप से आप गृह को आजाती हैं वैसे तुम्हें (आ ग्मन्) नित्य प्राप्त हों । इति तृतीयो वर्गः ॥

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (नमसा हूयमानाः) अन्न द्वारा आहुति प्राप्त करके देह में प्राण गण (शवसः नपातः यज्ञं यान्ति) देह के बल को न गिरने देने वाले होकर जीवन यज्ञ को या आत्मा को प्राप्त हैं वे (इन्द्रवन्तः मध्वः पिबन्ति) इन्द्र आत्मा से युक्त होकर मधुर अन्न का उपभोग करते हैं, उसी प्रकार हे (सूरयः) सूर्य के तुल्य तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नमसा) आदर सत्कार पूर्वक (हूयमानाः) बुलाये जाकर, आदर सत्कार पूर्वक दान दिये जाकर और परस्पर सत्कारपूर्वक प्रतिस्पर्द्धा—एक दूसरे से गुणों में अधिक बढ़ने की इच्छा—करते हुए और (शवसः नपातः) अपने बल वीर्य को न गिरने देते हुए, स्खलित न करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए (इमं यज्ञम्) इस श्रेष्ठ कर्म, यज्ञ, परस्पर संगति, दान-प्रतिदान, अध्ययन, अध्यापन मैत्री, सौहार्द आदि को (उप-आतन) प्राप्त करो । (सजोषसः) परस्पर समान प्रीतियुक्त होकर (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अज्ञाननाशक विद्वान् से युक्त होकर वा स्वयं 'इन्द्रवान्' अर्थात् आत्मवान् और ऐश्वर्यवान् होकर (यस्य च) जिसके पास से आप लोग (मध्वः) मधुर ज्ञान रस का (पात) पान करें (तस्य) उसको (रत्नधाः स्थ) उत्तम २ ऐश्वर्य देने वाले होवो ।

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवन् ! तू (वरुणेन) उत्तम पुरुषार्थ और श्रेष्ठ पुरुष से (सजोषाः) समान प्रीति युक्त होकर

(सोमं पाहि) ओषधि, अन्नादि पदार्थ, ऐश्वर्य और ज्ञान का उपभोग कर और इनका पालन कर। हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति योग्य वा ज्ञान वाणियों को अन्य शिष्यों को विभक्त करने वा देने हारे विद्वान् पुरुष! तू (मरुद्भिः) वायुओं के तुल्य गतिशील, तीव्र बुद्धियुक्त, अनालसी शिष्यों से (सजोषाः) समान प्रीति युक्त होकर (सोमं पाहि) ज्ञान की रक्षा कर। राजा वायु तुल्य वलवान् शत्रु-कम्पी सैन्यों से मिल-कर राष्ट्र-ऐश्वर्य की रक्षा करें। हे ऐश्वर्यवन्! तू (अग्रेपाभिः) आगे के मुख्य पदों का पालन करने वाले और (ऋतु-पाभिः) सत्य ज्ञान, सत्य धर्मों वाले, और प्राणों के पालक और 'ऋतु' अर्थात् वर्ष के वसन्तादि, नाना विभागों के तुल्य प्रजा का पालन करने वाले शासकों से (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर और (रत्नधाभिः) रमणीय रत्नों को धारण करने वाली (ग्नाः-पत्नीभिः) गमन करने योग्य, उत्तम पत्नियों और ऐश्वर्यधारक, प्रयाण करने में कुशल राष्ट्र की पालक सेनादि शक्तियों से (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (सोमं पाहि) तू गृहस्थ के तुल्य अन्नादिवत् ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

स॒जोष॑स आ॒दि॒त्यैर्मा॑दयध्वं स॒जोष॑स ऋभवः॒ पर्व॑तेभिः।
स॒जोष॑सो॒ दैव्ये॑ना सवि॒त्रा स॒जोष॑सः॒ सिन्धु॑भी रत्न॒धेभिः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान्, महान् पुरुषो! आप लोग (आदित्यैः सजोषसः मादयध्वम्) सूर्य के समान तेजस्वी, परस्पर आदान-प्रति-दान में कुशल व्यापारियों वा 'अदिति' अर्थात् पृथिवी के स्वामियों वा १२ मासों के सुखों से युक्त होकर आनन्द-लाभ करो। आप लोग (पर्वतेभिः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के तुल्य उदार, दानशील, शस्त्रवर्षी वीरों के साथ (सजोषसः मादयध्वम्) समान प्रीतियुक्त होकर हर्षित होओ। आप लोग (दैव्येन सवित्रा सजोषसः मादयध्वम्) देव, प्रकाशमान पिण्डों के वीच उत्तम प्रकाशयुक्त सविता सूर्य के तुल्य ज्ञान

के अभिलाषुक शिष्यों के हितकारी, आचार्य वा तेजस्वी विद्वान् के साथ प्रीतियुक्त होकर प्रसन्न रहो। और आप लोग (रत्नधेभिः सिन्धुभिः सजोषसः मादयध्वम्) समुद्रों के समान रत्नों के धारण और प्रदान करने वाले उत्तम गम्भीर पुरुषों से प्रीतियुक्त आनन्दित होकर रहो।

ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥

भा०—(ये) जो (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होकर विद्वान् लोग (अश्विनौ) सूर्य चन्द्र के तुल्य वा रात्रि दिन के समान जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (ततक्षुः) तैयार करते हैं। (ये पितरा) जो विद्वान् पुरुष माता और पिता दोनों की (ततक्षुः) सेवा करते हैं (ये ऊती धेनुं ततक्षुः) जो अपनी रक्षा और ज्ञान, तृप्ति और तेजस्विता के लिये गौ के तुल्य वाणी और पृथ्वी का अभ्यास और रक्षण करते हैं। (ये अश्वा) जो उत्तम अश्वों को तैयार करते हैं, जो (अंसत्रा) कन्धों को बचाने वाले कवच बनाते हैं, (ये ऋधक् रोदसी चक्रुः) जो आकाश और पृथ्वी दोनों का यथार्थ रूप से ज्ञान करते और (ये) जो (विभ्वः नरः) सामर्थ्यवान् पुरुष (सु-अपत्यानि चक्रुः) उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे 'ऋभु' कहाने योग्य हैं। और वे ही अग्रगण्य मुख्य पदों का उपभोग करते हुए हमें उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य दें।

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
ते अग्रेपा ऋभवो मंदसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥

भा०—(ये) जो लोग (गोमन्तम्) गौ आदि पशु और पृथ्वी आदि से युक्त (वाजवन्तं) अन्नादि से युक्त, (सुवीरम्) उत्तम वीर रक्षकों से युक्त और (वसुमन्तम्) उत्तम बसने बसाने वाले राजा प्रजादि जीव वर्गों से युक्त (पुरुक्षुम्) बहुत से अन्न सस्यादि से सम्पन्न (रयिम्) ऐश्वर्य को (धत्थ) आप लोग धारण करते हैं (ते) वे आप

लोग (ऋभवः) उत्तम, सत्य ज्ञान और न्याय से प्रकाशित होने वाले हो। और (ये च रातिं गृणन्ति) जो दानधर्म का उपदेश करते हैं या दानशील प्रजा शिष्यादि को सदुपदेश करते हैं। वे आप लोग (अ-ग्रेपाः) आगे से रक्षा करने वाले प्रमुख (मन्दसानाः) स्वयं आनन्द प्रसन्न और औरों को आनन्दित करते हुए (अस्मे) हमारे निमित्त (रयिं धत्त) ऐश्वर्य प्रदान करें।

नापाभूत न वोऽतीतृपामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन्।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः॥११॥४॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान और तेज के वल पर महान् सामर्थ्यवान् पुरुषो! आप लोग (न अप भूत) हमसे दूर मत हुआ करें। (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर सुसंगत, आदर सत्कार, मैत्रीभावादि से पूर्ण व्यवहार में आप सब लोग (अनिःशस्ताः) अनिन्दित हों। (वः) आप लोगों को (न अतीतृपाम) कभी न तरसावें। आप लोग (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा और (मरुद्भिः) वायुवत् वलवान् पुरुषों सहित (सं मदथ) अच्छी प्रकार आनन्दित होवो। हे (देवाः) दानशील पुरुषो! आप लोग (रत्न-धेयाय) उत्तम रमणीय धन लेने की इच्छा करो तो (राजभिः) राजा के समान पुरुषों सहित (सं मदथ) अच्छी प्रकार हर्ष अनुभव करो। इति चतुर्थो वर्गः॥

[३५]

वामदेव ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः॥१॥

भा०—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धन की आकांक्षा एवं सेवन करने वाले स्वच्छ, अन्तरिक्ष में किरणों के समान, उत्तम भूमिभाग के स्वामी जनो ! हे उत्तम धनुष आदि अस्त्रों को धारण करने वालो ! उत्तम वीर्य बलयुक्त, पराक्रमशील पुरुषो ! हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान, तेज, न्याय से प्रकाशित होने वालो, बहुत अधिक समर्थ और बहुत संख्या में विद्यमान प्रजा और सेना के पुरुषो ! आप लोग (शवसः) बलवान् और (नपातः) अपने को–अपने पक्ष को नीचे न गिरने देने वाले होकर (इह उपयात) इस राष्ट्र में प्राप्त होओ । (अस्मिन् सवने) इस राज्य कार्य में ही (वः) आप लोगों का (रत्न-धेयम्) उत्तम धनैश्वर्य है । और (वः मदासः) आप लोगों के सब हर्ष, सुखादि भी (इन्द्रम् अनु गमन्तु) ऐश्वर्य युक्त-जन वा राष्ट्र के अनुसार ही प्राप्त हों । उसके अधीन हों, उच्छृंखल न हों ।

आग॑न्नृभूणामि॒ह र॑त्न॒धेय॒मभू॒त्सोम॑स्य॒ सुषु॑तस्य पी॒तिः ।
सु॒कृ॒त्यया॒ यत्स्व॑प॒स्यया॑ चँ॒ एकं॑ विच॒क्र च॑म॒सं च॑तु॒र्धा ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस कारण से (सुकृत्यया स्वपस्यया) उत्तम आचरण और शोभन कर्मों को करने की प्रवृत्ति से ही विद्वान् लोग (एकं चमसं) सुख प्राप्तिरूप एक पुरुषार्थ को ही (चतुर्धा) चार प्रकार का (वि चक्र) विभाग या परिणाम कर देते हैं । जैसे शिल्पी लोग एक ही रथ को उत्तम क्रिया कौशल से चार प्रकार का बना देते हैं जिससे यह रथ ऊपर, नीचे, बीच में और तिरछा भी गति कर सकता है । इससे (ऋभूणाम्) सत्य के बल से समर्थ विद्वानों का (इह) इस जगत् में (रत्नधेयम् आ अगन्) ऐश्वर्य प्राप्त होता है । और (सु-सुतस्य सोमस्य) उत्तम रीति से उत्पादित ऐश्वर्य का (पीतिः) पान, उपभोग व पालन भी अन्न ओषध्यादि वा प्रजा के समान धर्मानुसार ही (अभूत्) हो । राजाओं का एक चमस अर्थात् उपभोगपात्र प्रजा वा राष्ट्र, वर्ण भेद से चार प्रकार का हो जाता है, शत्रुसैन्य को निगल जाने वाला सैन्य

रथ, गज, वाजि, पदाति भेद से चार प्रकार का चतुरंग हो जाता है, मेघ से उत्पन्न जल का रश्मियों द्वारा चार प्रकार का परिणाम होता है कन्द-मूल-फूल फलादि जीव शरीर और जल, विद्युत्, अन्न, ओपधि है।

व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान् सत्यज्ञानी पुरुषो! आप लोग (एकं) एक (चमसं) चमस, उपभोग्य पात्र को (चतुर्धा वि अकृणोत) चार रूपों में प्रकट करो। और ज्ञान प्राप्त करने के लिये आप (सखे वि शिक्ष इति अब्रवीत) हे मित्र विशेष ज्ञान प्राप्त कर इस प्रकार कहा करो। (अथ) इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेने के अनन्तर आप लोग हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित और (सुहस्ताः) उत्तम कर्मकुशल! हे (वाजाः) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि से युक्त पुरुषो! (अमृतस्य पन्थाम्) अमृत आत्मतत्व ज्ञान के मार्ग को और (देवानां गणम्) उत्तम दान-शील, ज्ञानप्रकाशक विद्वानों को भी (एत) प्राप्त होवे। जैसे एक मेघ किरणों द्वारा चार रूपों में छिन्न भिन्न हो जाता है उसी प्रकार विद्वान्जन एक प्रजासंघ को चार वर्णों में, एक जीवन को चार आश्रमों में और एक चमस-कर्म यज्ञ को होत्र आदि भेद से चार भेद में और एक प्रकृति तत्व को अग्नि, जल, पृथिवी, वायु रूप से विकृत, एक पुरुषार्थ को चार पुरुषार्थों में, एक सैन्य को चार अंगों में और एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋक्, साम, यजु, ब्रह्म, इन चार प्रकारों में उपदेश करें।

किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥

भा०—चमस का स्वरूप—(एषः चमसः) यह पूर्वोक्त 'चमस' (किंमयः स्वित्) किस पदार्थ का बना हुआ (आस) है (यं) जिसको (काव्येन) क्रान्तदर्शी विद्वानों का कौशल (चतुरः) चार रूपों में

(वि चक्र) विभक्त या परिणत कर देता है। हे (ऋभवः) ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग (मदाय) आनन्द लाभ के लिये, (सवनं) उत्तम ऐश्वर्य, कार्यसिध्यर्थ कर्म, यज्ञ, अपत्यादि (सुनुध्वं) उत्पन्न करो और (मधुनः सोम्यस्य पात) सोम, परमानन्द से युक्त मधुर ब्रह्म रस वा अन्नादि का पान, उपभोग करो। प्रश्न—यह पूर्वोक्त चमस किस पदार्थ का बना ? कैसा है ? उत्तर—चमस 'किं-मय' है अर्थात् तुच्छ बल को उखाड़ फेंकने वाला सैन्य, तुच्छ अज्ञान का नाशक ज्ञानस्वरूप, 'किं' प्रश्न के योग्य ब्रह्म ज्ञान का उपदेशप्रद 'वेद' है।

शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य, न्याय, ज्ञान से प्रकाशवान् पुरुषो ! हे (वाज-रत्नाः) ज्ञान, अन्नैश्वर्यादि रमणीय पदार्थों के स्वामियो ! आप लोग (शच्या) शची, शक्तिशालिनी बुद्धि, वाणी, शक्ति और सेनादि के बल से ही (चमसं) भोगयोग्य या भोगप्रद पदार्थ राष्ट्रादि को (देवपानम्) विद्वान्, विजिगीषु आदि से उपभोग करने योग्य (कर्त्त) करो। और आप लोग (शच्या) वाणी और बुद्धि के बल से ही (इन्द्रवाहौ हरी) ऐश्वर्यवान् राजा को वहन करने, उसको अपने पर धारण करने वाले अश्वों के तुल्य सन्मार्ग पर चलने वाले स्त्री पुरुषों को (धनुतरौ अतष्ट) शीघ्रगामी बनाते हो। (२) शिल्पी लोग भी वेगवान् रथ कृत्रिम अश्वादि को बुद्धि से बनावें, उत्तम २ वस्त्र बनावें, सूर्य की किरणें जल वायु को जगत् का पालक और अन्न को प्राणदायक बनाते हैं, प्रकाश ताप को तीव्र वेगगामी करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान के प्रकाशक, हे (वृषणः) बलवान् सुखों के वर्षक, हे (वाजासः) बलवान् ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (मन्दसानाः) हर्षानन्द लाभ के इच्छुक जनो ! (यः) जो (अह्नाम् अभि-पित्वे) दिनों के अवसान में (वः) आप लोगों के लिये (तीव्रं) अति उत्तम, सर्वातिशायी, (सवनं) ऐश्वर्य (मदाय) आनन्द हर्ष लाभ के लिये (सुनोति) उत्पन्न करता है (तस्मै) उसकी वृद्धि के लिये आप लोग भी (सर्व-वीरम्) समस्त प्रकार के वीरों, पुत्रों और प्राणों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ तक्षत) उत्पन्न करो ।

प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखींर्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७॥

भा०—हे (हर्यश्व) तीव्र वेगवान् अश्वों के स्वामिन् ! हे जलहरण-शील किरणों से प्रकाश फैलाने वाले सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (प्रातः) प्रातःकाल जीवन वा राज्यप्राप्ति के प्रारम्भ काल में (सुतम् अपिबः) देह में उत्पन्न बल वीर्य का पालन और ऐश्वर्य का उपभोग कर । (ते) तेरा (सवनं) उत्तम ऐश्वर्य (माध्यन्दिनं) मध्याह्न समय के प्रखर सूर्य के समान (केवलं) सबसे अद्वितीय हो । उस समय (रत्नधेभिः ऋभुभिः) उत्तम प्रकाशयुक्त किरणों से जिस प्रकार सूर्य जल का पान करता है उसी प्रकार तू भी (रत्नधेभिः) हे आचार्य ! रत्नरूप वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी शिष्यों और हे राजन् (यान्) जिनको तू (सुकृत्या) उत्तम कर्म से अपना (सखीन् चकृषे) सखा, मित्र बना लेता है (रत्न-धेभिः) ऐश्वर्यों वा रत्नों को धारण करने वाले उन (ऋभुभिः) तेजस्वी पुरुषों सहित (सवनं सं पिबस्व) ज्ञान का पान और ऐश्वर्य का उपभोग कर ।

ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥

भा० —(ये) जो (देवासः) उत्तम सुख की कामना करने वाले विद्वान् पुरुष (सुकृत्या) उत्तम आचरण से (श्येनाः इव) तीव्र पक्षियों के समान ऊंचे चढ़ने वाले, उत्तम पद या मार्ग की ओर जाने वाले प्रशंसनीय आचरण (अभवत) हो जाते हैं वे (दिवि अधि) ज्ञानमय प्रभु परमेश्वर में, मोक्ष में, ज्ञानमय प्रकाश में और पृथिवी के ऊपर (निषेदुः) आदर से विराजते हैं । हे (शवसः नपात्) बल वीर्य का नाश न होने देने हारे बलवान् , ज्ञानवान् पुरुषो ! वा बल वा ज्ञान द्वारा उत्पन्न वीरो ! विद्वान् शिष्यो ! हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुर्धरो ! उत्तम मनोभूमि पर आरूढ साधको ! (ते) वे आप लोग (रत्नं धात) रमणीय, वीर्य का धारण पालन करो, ऐश्वर्य को धारो और (अमृतासः) अविनाशी, मुक्त, दीर्घ-जीवी, दृढ़ (अभवत) होओ ।

यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९॥६॥

भा०—हे (सुहस्ताः) उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीरो ! हे उत्तम कर्म करने में कुशल हाथों वा विघ्ननाशक साधनों वाले ! सिद्ध हस्त विद्वानो ! आप लोग (स्वपस्या) उत्तम कर्म करने की इच्छा से (यत्) जब (तृतीयं) तीसरे सर्वश्रेष्ठ कोटि के (रत्न-धेयम्) रमणीय वीर्य धारण के कार्य अर्थात् ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य को (अकृणुध्वम्) कर लो इसी प्रकार व हे वीरो ! अब तुम सब श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त करलो (तत्) तब हे (ऋभवः) विद्वानो ! हे वीरो ! सत्य, न्याय से शोभा पाने वालो ! (वः) तुम्हारा (एतत्) यह (परि सिक्तम् अस्तु) सन्तानार्थ निषिक्त हो और ऐश्वर्य समस्त राज्य में प्रजा की वृद्धि के लिये मेघ के जल के तुल्य सर्वोपकारार्थ दान दिया जाय । और आप लोग स्वयं (इन्द्रियेभिः मदेभिः) इन्द्र आत्मा के द्वारा प्राप्त अध्यात्म आनन्दों से (सं पिबध्वम्) उसका उपभोग और पालन करो । हे वीरो ! तुम उस

ऐश्वर्य को (इन्द्रियेभिः मदेभिः) इन्द्रियों के दमनों सहित वा इन्द्र, राजा द्वारा प्रदत्त तृप्तिकारक भोजन वेतनादि रूप से उसका उपभोग करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

[३६]

वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ विराट् जगती । ७ जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः । महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (अनश्वः अनभीपुः त्रिचक्रः रथः) विना अश्व, विना लगाम का तीन चक्रों का रथ जो (रजः परि वर्त्तते) सर्वत्र लोकों वा अन्तरिक्ष में घूम सके वह (उक्थ्यः) स्तुति योग्य, उत्तम होता है और उससे शिल्पियों की बड़ी भारी प्रशंसा होती है उसी प्रकार हे (ऋभवः) विद्वान् मेधावी पुरुषो ! (रथः) रमण करने वाला आत्मा वा यह रथ रूप देह उसी प्रकार (अनश्वः) अश्व के सदृश बाह्य गति-साधन से रहित वा स्वयं आत्मा, (अनश्वः) भोक्ता न होकर, (अनभीपुः) लगाम् आदि बाह्य नियन्त्रण साधनों से रहित, (त्रिचक्रः) मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय अथवा मन, प्राण और विज्ञान इन तीन कारकों से युक्त होकर (रजः परिवर्त्तते) लोकान्तरों में वा प्रकृति के रजस्तत्व को प्राप्त होकर देहादि से आवृत होता है। (यत् च) जो आप लोग (द्याम् पृथिवीम् च पुष्यथ) सूर्य-रश्मियों के समान आकाश व पृथिवी, ज्ञानवान् पुरुषों और सामान्य लोकों को भी पुष्ट करते हैं (तत्) वह (वः) आप लोगों के (देव्यस्य) विद्वानों के योग्य ज्ञान की (महत्) बड़ा भारी (प्रवाचनम्) उत्तम ख्याति और उपदेश है।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥

भा०—(ये) जो (सुचेतसः) उत्तम चित्त वाले और उत्तम ज्ञानवान् होकर (मनसः परि ध्यया) मन के विशेष चिन्तना वा ज्ञान विशेष अभ्यास से (अवि-ह्वरन्तं) कुटिल गति से न जाने वाले (सुवृत, उत्तम रीति से चलने वाले (रथं चक्रुः) रथ को बनाते हैं । अध्यात्म में— जो उत्तम ज्ञानवान् और शुभ चित्त से युक्त ज्ञानी पुरुष (ध्यया) संध्या अर्थात् ध्यान के अभ्यास से (मनसः परि) मन से भी परे विद्यमान (अवि-ह्वरन्तं) अकुटिल, ऋजु (सुवृतं) उत्तम आचारवान् (रथं) रस-स्वरूप आत्मा को (चक्रुः) बना लेते हैं उसकी साधना करते हैं । हे (ऋभवः) सत्य ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो ! हे (वाजाः) बलवान् ऐश्वर्यवान् पुरुषो ! (तान् उ नु वः) उन आप लोगों को (अस्य सवनस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (आ वेदयामसि) निवेदन वा प्रार्थना करते हैं ।

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३॥

भा०—हे (वाजाः) ऐश्वर्य, बल से युक्त हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान और तेजों से युक्त ! हे (विभ्वः) विशेष ऐश्वर्य वा विद्यादि से युक्त विद्वान् जनो ! (यत्) जो तुम लोग (जिव्री) जरावस्था को प्राप्त (सन्ता) हुए (सना जुरा) तप, दान आदि से वृद्ध (पितरा) माता पिता वा उनके तुल्य वृद्ध पुरुषों को (चरथाय) ज्ञान वितरण और जीवन यापन के लिये (पुनः युवाना तक्षथ) पुनः युवाओं के तुल्य अधिक सामर्थ्य और उत्साह से युक्त, शक्तिमान् बना देते हो (वः) आप लोगों का (तत्) वही (सु-प्र-वाचनम्) उत्तम ख्याति और उत्तम विद्या-

भ्यास है और वही आप लोगों का (देवेषु) विद्वान् विद्यादाताओं के बीच (महित्वनम्) महान् कर्त्तव्य है।

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥

भा०—अध्यात्म में—हे (वाजाः ऋभवः) वल धारण करने वाले और ऋत अर्थात् अन्न से उत्पन्न होने और चमकने वाले प्राणो! (वः तत् उक्थ्यम्) आप लोगों का यही वचनीय, स्तुतियोग्य कर्म है कि आप लोग (एकं चमसं चतुर्वयं विचक्र) बाह्य पदार्थों के भोगने वाले एक अन्तःकरण को चार २ शाखा वाला प्रकट कर देते हो, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये एक ही अन्तःकरण के चार रूप प्राणशक्ति से ही होते हैं। अथवा—प्राणों द्वारा ही एक भोग्य जीवन 'चतुर्वय' अर्थात् चार अवस्थाओं वाला हो जाता है, बाल, यौवन, सम्पूर्णता (किञ्चित्-परिहाणि) वार्धक्य। और आप प्राणगण (धीतिभिः) ध्यान और धारणाओं द्वारा (चर्मणः) चर्म आदि की बनी जिह्वा, तालु, मुखादि अवयवों से (गाम् निर् अरिणीत) व्यक्त वाणी को प्रकट करते हो। (अथ) और (देवेषु) बाह्य विषयों के ज्ञान की कामना करने वाले इन्द्रियों में (श्रुष्टी) अति शीघ्रतापूर्वक, वा अन्न द्वारा (अमृतत्वम्) चैतन्य (आनश) प्राप्त कराते हो। (२) विद्वान् एक राष्ट्र को ४ भागों में बांटते हैं, भूमि को गोचर्म से विभक्त करते, ['गो चर्म' एक माप है जैसे एक वर्ग गज], विद्वानों और वीरों में दीर्घ जीवन उत्पन्न करते हो यह आपका बड़ा महत्त्व का कार्य है।

ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५॥७॥

भा०—(वाजश्रुतासः) ज्ञान को श्रवण करने वाले और अन्नादि ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध होने वाले विद्वान् एवं वीर (नरः) नायक, अग्रगण्य जः

(यम्) जिस ऐश्वर्य को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं वह (रयिः) ऐश्वर्य (ऋभुतः) महान् सत्य ज्ञान से प्रकाशित गुरु वा प्रभु से प्राप्त होकर (प्रथमश्रवस्तमः) सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम श्रवण करने योग्य वेद है । (सः) वह वेदाख्य ज्ञान (विचर्षणिः) विविध गूढ़ रहस्य को दिखाने वाला है । (यं) जिसको हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अवथ) रक्षा करते हो और वह (विभ्वतष्टः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों वा व्यापक परमेश्वर द्वारा प्रकट किया है । और (विदथेषु) यज्ञों और ज्ञान प्राप्ति के अवसरों पर (प्र-वाच्यः) गुरु द्वारा शिष्यों के प्रति प्रवचन द्वारा उपदेश करने योग्य होता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ६

भा०—(यत्) जिसको (वाजः विभ्वा ऋभवः) बलवान् , ऐश्वर्यवान् पुरुष विशेष सामर्थ्य और विद्यावान् पुरुष और ज्ञान तेज, और सत्य के बल से तेजस्वी पुरुष (आविषुः) रक्षा करते, प्राप्त होते, ज्ञानादि से पूर्ण करते हैं (सः वाजी) वह ऐश्वर्यवान् (अर्वा) अश्व के समान बलवान् , अन्यों को उद्देश्य तक पहुंचाने वाला और शत्रुओं का नाशक होता है । (वचस्यया ऋषिः) उत्तम वाणी और स्तुति से मन्त्रार्थों का देखने वाला (सः) वह (शूरः) शूरवीर, (अस्ता) अस्त्रों से शत्रु को पराजय करने वाला, (पृतनासु दुरः-तरः) सेनाओं के बीच कठिनता से विजय करने योग्य होता है । (सः रायः पोषं दधे) ऐश्वर्य की समृद्धि को धारण करता और (सः सु-वीर्यं दधे) वह उत्तम वीर्य, बल को धारण करता है ।

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ७

भा०—हे (वाजाः) बलवान् और बुद्धि में तीव्र वेग वाले शिष्य जनो ! हे (ऋभवः) सत्य-ज्ञान से प्रकाशित होने वालो ! जिसके द्वारा (वः) आप लोगों को (श्रेष्ठं पेशः) सबसे उत्तम स्वरूप (दर्शतं) दर्शनीय (धायि) धारण किया जाय और जिससे तुम्हारे बीच उत्तम, सर्वश्रेष्ठ (स्तोमः धायि) वेदोपदेश स्थिर किया जा सके, आप लोग (तं जुजुष्टन) उसकी प्रेम से सेवा किया करो । और जो लोग (धीरासः) धीर पुरुष, ध्यानवान् और (कवयः) विद्वान् , क्रान्तदर्शी (विपश्चितः) ज्ञानों कर्मों को जानने वाले मेधावी हैं (तान्) उनको लक्ष्य करके हम (वः) आप लोगों को (एना ब्रह्मणा) इस वेद ज्ञान, ब्रह्मचर्यादि के निमित्त (आवेदयामसि) बतलावें और आप लोग भी (धीरासः कवयः स्थ) वीर और विद्वान् हो जाओ ।

यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८॥

भा०—हे (विद्वांसः ऋभवः) विद्वान् महोदयो ! (यूयं) आप लोग (धिषणाभ्यः परि) बुद्धियों से विचार कर (विश्वा नर्याणि भोजनानि तक्षत) सब प्रकार के लोकोपकारक भोजनों और भोग्य पदार्थों का निर्माण करो । और (द्युमन्तं वाजं) तेजस्वी प्रकाशयुक्त ज्ञान, बल और (वृषं शुष्मम्) बलवान् पुरुषों के बल रूप (उत्तमं रयिम्) उत्तम ऐश्वर्य को भी तैयार करो ।

इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥९॥८॥

भा०—(ऋभवः) सत्य, न्याय और तेज विद्यादि से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इह) इस राष्ट्र में (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (रराणाः) प्रदान करते हुए (इह रयिं रराणाः) इस लोक में उत्तम ऐश्वर्य देते हुए और (इह श्रवः रराणा) इस लोक में

उत्तम अन्न और ज्ञान का पान करते हुए (नः तक्षत) हमें व्यवस्थित और उत्तम बनाओ। और (येन) जिससे (वयम्) हम लोग (अन्यान् अति) और सबको अतिक्रमण करके (चितयेम) ज्ञानवान् होवें। और (तं चित्रं वाजं) उस, अद्भुत वा पूज्य ज्ञान और ऐश्वर्य को (नः दद) हमें प्रदान करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३७]

वामदेव ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ ५, ७ अनुष्टुप् ॥ ६ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उप॑ नो वाजा अध्व॒रमृ॑भुक्षा॒ देवा॑ या॒त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ।
यथा॑ य॒ज्ञं मनु॑षो वि॒क्ष्वा॒३॑सु द॑धि॒ध्वे र॑ण्वाः सु॒दिने॒ष्वह्ना॑म् ॥१॥

भा०—हे (वाजाः) बलवान् पुरुषो ! हे (ऋभुक्षाः) बड़े लोगो ! हे (देवाः) दानशील विद्वान् लोगो ! आप लोग (देवयानैः पथिभिः) विद्वानों से जाने योग्य उत्तम मार्गों और गमन साधन रथादि से (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसारहित और किसी से न नाश होने वाले यज्ञ और दृढ़ राष्ट्र को (उप यात) प्राप्त होओ। और आप लोग (मनुषः रण्वाः) मननशील और रमणीय, मनोहर आचरण करते हुए (अह्नाम् सु-दिनेषु) दिनों के बीच उत्तम दिनों में (आसु विक्षु) इन प्रजाओं में (यथा) यथावत् (दधिध्वे) परस्पर के दान प्रतिदान, लेन देन, संगति, मैत्री आदि को धारण करो, स्थापित किये रहो।

ते वो॑ हृ॒दे मन॑से सन्तु य॒ज्ञा जुष्टा॑सो अ॒द्य घृ॒तनि॑र्णिजो गुः ।
प्र वः॑ सु॒तासो॑ हरयन्त पू॒र्णाः क्रत्वे॒ दक्षा॑य हर्षयन्त पी॒ताः ॥२॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के (ते) वे (यज्ञाः) यज्ञ आदि उत्तम कर्म, परस्पर के मित्रतादि के भाव एवं दान सत्कार आदि

सत्कर्म और पूजनीय पुरुष भी, (अद्य) वर्त्तमान में (घृतनिर्णिजः) घृत वा जलादि के संसर्ग से शुद्ध पवित्र और (जुष्टासः) प्रेमपूर्वक सेवन करने योग्य होकर (गुः) प्राप्त हों। और वे (हृदे मनसे सन्तु) हृदय को प्रिय और मन, विचारशील चित्त को भी सन्तुष्ट करने वाले हों। हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (सुतासः) उत्पन्न किये सन्तान और ऐश्वर्य सब (पूर्णाः) पालित पोषित और गुणों से पूर्ण होकर (वः हरयन्त) तुम्हारी कामना करें, तुम्हें प्रेम से चाहें। और वे (पीताः) पिये जाकर वा पालित, सुरक्षित रहकर (क्रत्वे दक्षाय) उत्तम ज्ञान, कर्म और बल उत्साह की वृद्धि के लिये (हर्षयन्त) सदा प्रसन्न चित्त होकर रहें, अन्यों को ज्ञान-उत्साहादि से प्रसन्न करें।

त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजाः) ज्ञानवान् (ऋभुक्षणः) महान् तेजस्वी पूज्य पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (स्तोमः) वचन समूह, स्तुति उपदेश (यथा) जिस प्रकार (त्रि-उदयं देव-हितं ददे) तीनों प्रकार के अभ्युदय के देने वाले विद्वानों के हितकारी सुख का प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं भी (स्तोमः) स्तुतिकर्त्ता, प्रवक्ता होकर तीनों अभ्युदयकारी हितवचन (वः ददे) आप लोगों को दूं। और जिस प्रकार (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के सदृश (उपरासु विक्षु) समीप बसी प्रजाओं के बीच मैं (सोमम् जुह्वे) अन्नादि पदार्थ दूं उसी प्रकार (बृहद्-दिवेषु) बड़े २ ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में मैं (सचा) संगत होकर (युष्मे सोमं जुह्वे) आप लोगों को भी अन्न, ऐश्वर्यादि प्रदान करूं।

पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रस्य सूनो) ज्ञानवान्, विद्वान् और बलवान् शत्रुहन्ता

राजा के पुत्र के समान प्रिय ! और हे (शवसः नपातः) बल और ज्ञान के द्वारा अपने आपको उससे बांधने वाले वा बल का नाश न होने देने वाले शिष्य एवं सैनिक वीर पुरुषो ! आप लोग (पीवो अश्वाः) खूब हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, (शुचद्रथाः) कान्तिमान् रथों वाले, (अयः-शिप्राः वाजिनः) मुख में वा नाक पर लोहे वा सोने की बनी लगाम वा पट्टी को धारण करने वाले वेगवान् अश्वों के तुल्य वीर भी (अयः-शिप्राः वाजिनः) स्वर्णादि के बने कुण्डलादि आभूषणों को गण्डस्थल पर धारण करने वाले और बलवान् , ऐश्वर्यवान् (सुनिष्काः) कण्ठ में उत्तम सुवर्ण पदकादि धारण करने वाले, (भूत हि) हुआ करें। इसी प्रकार आचार्य के अधीन शिष्यगण बलवान् इन्द्रियों वाले, शुद्ध पवित्र देह वाले, ज्ञानमय वेद को मुख में धारण करने वाले, ज्ञानवान् उत्तम निष्काम कर्म करने वाले हों। (वः) वह आप लोगों के बीच (अग्रियम्) आगे का मुख्य पद (अनु मदाय) अनुकूल रहकर हर्ष प्राप्त करने के लिये (चेति) जाना जाता है। हे विद्वानो ! (वः अग्रियं मदाय अनुचेति) आप लोगों का अग्रिम ब्रह्मचर्य आश्रम इन्द्रिय-दमन के लिये उपयुक्त जाना जाता है।

ऋभुमृ॑भुक्षणो र॒यिं वाजे॑ वा॒जिन्त॑मं॒ युज॑म्।
इन्द्र॑स्वन्तं हवामहे सदा॒सात॑मम॒श्विन॑म् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) महोदयो ! हम लोग (वाजे) ज्ञान और बल के कार्य में, संग्रामादि के निमित्त (ऋभुम् रयिम्) बहुत अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करें। और (ऋभुम्) बहुत अधिक तेजस्वी, सत्य, ज्ञान, तेज से चमकने वाले, (रयिं) ऐश्वर्यवान् (वाजिन्तमम्) उत्तम वेगवान् अश्वादि साधनों के स्वामी, (युजम्) सबके संयोजक, सबके चित्तों का समाधान करने वाले, (इन्द्रस्वन्तं) ऐश्वर्य के स्वामी, सदा दानशील, (अश्विनम्) उत्तम अश्वों के स्वामी को (हवामहे) प्राप्त करें। इसी

प्रकार श्रेष्ठ ज्ञानी, सब शंकाओं के समाधाता, सदा ज्ञानप्रद, उत्तम जितेन्द्रिय, इन्द्र पदयुक्त पुरुष को ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वीकार करें। इति नवमो वर्गः ॥

सेदृ॑भवो॒ यमव॑थ यू॒यमिन्द्र॑श्च॒ मर्त्य॑म् ।
स धी॒भिर॑स्तु॒ सनि॑ता मे॒धसा॑ता॒ सो अर्व॑ता ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषो ! (यम् मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (यूयम् इन्द्रः च अवथ) तुम और ऐश्वर्यवान् राजा रक्षा करते हैं या चाहते हैं वस्तुतः (सः इत्) वही श्रेष्ठ है। वही (धीभिः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों से (सनिता) सत्यासत्य का विवेक करने वाला, अन्यों को ज्ञानैश्वर्य देने वाला (अस्तु) हो और (मेधसाता) पवित्र यज्ञ के करने, पवित्र अन्न के देने और धर्म के संग्राम में (सः) वही (अर्वता) उत्तम ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम अश्व के सहित हो।

वि नो॑ वाजा ऋभुक्षणः प॒थश्चि॑तन॒ यष्ट॑वे ।
अ॒स्मभ्यं॑ सूरयः स्तु॒ता विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (वाजाः) ज्ञान और बल से युक्त (ऋभुक्षणः) गुणों में महान् और (स्तुताः सूरयः) प्रशंसित विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (यष्टवे) दान, मैत्री, सत्संग, देवपूजन आदि सत्कर्म करने के लिये उत्तम २ (पथः चितन) मार्गों का उपदेश करो, जानो। और (अस्मभ्यं) हम में (तरीषणि) संसार-सागर से पार उतरने का सामर्थ्य और (विश्वा आशाः) हमारी समस्त उत्तम आकांक्षाओं को पूर्ण करो। अथवा—सब दिशाओं को बलपूर्वक पार कर जाने के सामर्थ्य का उपदेश करो।

तं नो॑ वाजा ऋभुक्षण॒ इन्द्र॒ नास॑त्या र॒यिम् ।
सम॑श्वं॑ चर्ष॒णिभ्य॒ आ पु॒रु श॑स्त म॒घत्त॑ये ॥ ८ ॥ १० ॥

भा०—हे (वाजाः) दानशील, ऐश्वर्यवान् लोगो ! हे (ऋभुक्षणः) बड़े लोगो ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे (नासत्या) असत्याचरण न

करने हारे सभापति, न्यायपति ! आप लोग (नः चर्षणिभ्यः) हम लोगों को (तं अश्वं रयिं) उस महान् धन की (सम् आ शस्त) अच्छी प्रकार प्रशंसा व उपदेश करें । जो (पुरु) बहुतों को पालन करने में समर्थ और (मघत्तये) उत्तम धन दान करने के लिये हो । इति दशमो वर्गः ॥

[३८]

वामदेव ऋषिः ॥ १ द्यावापृथिव्यौ । २-१० दधिक्रा देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् पंक्तिः । ६ भुरिक् पांक्तिः । २, ३ त्रिष्टुप् । ५, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥

भा०—(या) जिन उत्तम पदार्थों को (त्रसदस्युः) दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाला और भयभीत शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला वीर सेनापति (नितोशे) प्रदान करता है हे (द्यावा-पृथिव्यौ) राजा और प्रजाजनो ! वे (दात्रा) दान योग्य (पूर्वा) पूर्व विद्यमान सभी पदार्थ (वाम् हि) निश्चय से तुम दोनों के ही हैं । क्योंकि, आप दोनों ही (क्षेत्रासां उर्वरासां घनं ददथुः) रणक्षेत्र वा कृषि क्षेत्रों को प्राप्त करने वाली और श्रेष्ठ धन प्रद भूमि को प्राप्त कराने वाला शत्रुनाशक सैन्यबल प्रस्तुत करते हो । आप दोनों ही (दस्युभ्यः) प्रजानाशक दुष्ट पुरुषों को नाश करने के लिये (उग्रम् घनं) उग्र आयुध और (अभिभूतिम् ददथुः) पराजय प्रदान करते हो ।

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार स्त्री पुरुष (वाजिनं दधिक्राम् श्येनम् आशुं ददथुः)

वेगवान्, वलवान्, पीठ पर लेकर चलने वाले, उत्तम चाल वाले, तीव्र वेगवान् अश्व को पालते पोसते हैं उसी प्रकार राजा-प्रजावर्ग भी (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान्, वलवान्, (पुरु-निः-षिध्वानं) वहुत से शत्रुओं को परे हटा देने वाले, (दधिक्राम्) राष्ट्र को धारण करने वाले, सर्वातिशायी वल से आगे वढ़ने वाले, (विश्वकृष्टिं) समस्त कृषक और शत्रुकर्षक प्रजाओं, सेनाओं के स्वामी (ऋजिप्यं) सरल धार्मिक जनों के पालकों में उत्तम, (श्येनम्) श्येन पक्षी के समान वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले वा उत्तम आचरणवान्, उत्तम ज्ञानयुक्त (प्रुषित-प्सुम्) स्निग्ध सात्विक और परिपक्व पदार्थों के भोजन करने वाले, (आशुं) वेगवान्, चुस्त, (चर्कृत्यम्) कार्य करने में कुशल वा (अर्यः शूरं) शत्रुओं के प्रति शूरवीर (नृपतिं न) प्रजास्थ पुरुषों के पालक के तुल्य नायकों के भी पालक पुरुष को (ददथुः) सब ऐश्वर्य प्रदान करें और अपने ऊपर धारण करें ।

यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (पड्भिः द्रवन्तं रथतुरं विश्वः हर्षमाणः मदति) पैरों से दौड़ते हुए रथ में लगे तेज अश्व को देखकर सभी प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करते हैं उसी प्रकार (प्रवता इव द्रवन्तं) नीचे मार्ग से वेग से वहते जल के समान (सीम् द्रवन्तं पड्भिः) गमन साधनों से सब तरफ द्रुतगति से जाने वाले (गृध्यन्तं) अन्य राष्ट्रों की विजय कामना करते हुए (मेधयुं न शूरं) संग्राम के इच्छुक, उत्साही शूरवीर के सदृश और (ध्रजन्तम्) वेग से जाने वाले (वातम् इव) वायु के समान (रथ-तुरम्) रथ से वेग से जाने वाले महारथी को राजा प्रजा दोनों धारण करें और उसको देख प्रसन्न हों ।

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४॥

भा०—(यः) जो (समत्सु) संग्रामों में (गध्या) परस्पर मिलने वाले उभय पक्ष के वीरों को (आरुन्धानः) सब प्रकार से रोकता रहता है और जो (सनुतरः चरति) सबसे अधिक दानशील वा विवेकी होकर आचरण करता है, जो (गोषु गच्छन्) भूमियों और ज्ञान वाणियों में विचरता हुआ, (आविः-ऋजीकः) सरल धर्म मार्गों को साक्षात् प्रकट करता हुआ (विदथा विचिक्यत्) नाना ज्ञानों और धनों को खूब अच्छी प्रकार जान लेता और प्राप्त कर लेता है, वह पुरुष (आपः आयोः अरतिम् परि-तिरः) आप्त पुरुष या प्राप्त प्रजाजन के दुःखों को दूर करता है ।

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥११॥

भा०—(भरेषु = हरेषु वस्त्रमथिं तायुम् न अनुक्रोशन्ति) चोरियों के होने पर जिस प्रकार वस्त्रादि पदार्थों को बलात् हर ले जाने वाले चोर को लक्ष्य कर के लोग नाना प्रकार से कोसते उसी प्रकार (भरेषु) संग्राम के कार्यों में (क्षितयः) राष्ट्रवासी लोग (वस्त्रमथिं) रहने के मकान आदि वास योग्य पदार्थों के नाश करने वाले चोरवत् (एनं) इस राजा को भी (अनुक्रोशन्ति) बुरा भला कहा करते हैं और (श्येनं न जसुरिं) पक्षियों का नाश करने वाले श्येन पक्षी के तुल्य वेग से (श्रवः) अन्न और (पशुमत् च यूथम्) पशुओं से समृद्ध रेवड़ को (अच्छ) लक्ष्य करके (नीचायमानं) नीचता का आचरण करने वाले (जसुरिं) श्येनवत् प्रजा पर आक्रमण करने वाले हिंसक राजा को भी (अनु क्रोशन्ति) उसके कार्यों के लिये प्रजाजन बुरा भला कहते हैं। स्तुतिपक्षमें—वस्त्रहर चोर के समान (वस्त्रमथिं) ढांपलेने वाले मेघ को किरणों से मथने वाले, सूर्यवत् आवरणकारी, शत्रु सैन्य का मथन करने वाले (एनं

अभि) इस विजयी राजा को देखकर संग्रामों में (क्षितयः) राष्ट्र वासी प्रजाजन (अनु क्रोशन्ति) उसके अनुकूल होकर उसकी स्तुति करते हैं। इसी प्रकार (श्येनं) प्रशंसनीय ज्ञान और कर्माचरण वाले (नीचायमानं) नीचे झुकने वाले, विनयशील और (श्रवः) श्रवणयोग्य ज्ञान और कीर्त्ति तथा (पशुमत् यूथम्) पशुओं से युक्त यूथ, वा विषयों के देखने वाले चक्षु आदि इन्द्रिय गणों को लक्ष्य कर के भी उसकी ही स्तुति करते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

उत स्मा॑सु प्र॒थ॒मः स॑रि॒ष्यन्नि वे॑वेति॒ श्रेणि॑भी रथा॑नां ।
स्र॒जं॑ कृ॒ण्वा॒नो जन्यो॒ न शुभ्वा॑ रे॒णुं रेरि॑हत्कि॒रणं॑ दद॒श्वान् ॥६॥

भा०—(उत स्म) और (आसु) जो सेनाओं के बीच (रथानां श्रेणिभिः) रथों की पंक्तियों सहित (सरिष्यन् इव) शत्रु पर आक्रमण करने की इच्छा करता हुआ (नि वेवेति) सब प्रकार से तमतमाता है और जिस प्रकार सूर्य (जन्यः) प्रकट होता (जन्यं) सब जनों का हितकर (शुभ्वा) अति शोभायमान रूप से (किरणं ददश्वान्) किरणों को प्रदान करता हुआ (स्रजं कृण्वानः) सर्ग वा व्यापक किरणों को प्रकट करता हुआ, (रेणुं) रेणु (रेरिहत्) रेणु २ व्याप लेता है। वा जिस प्रकार (किरणं ददश्वान् शुभ्वा स्रजं कृण्वानः जन्यः रेणुं रेरिहत्) मुंह में लगे लोहखण्ड वा लगाम को चबाता हुआ, श्वेत, सजासजाया, माला पहने घोड़ा धूल उड़ाता या चाटता है उसी प्रकार प्रतापी राजा, (जन्यः) सब जनों में श्रेष्ठ, सर्वहितकारी, सबसे अधिक उत्तम रूप से प्रकट होने वाला, (शुभ्वा) शोभायमान, शुभ गुणकर्मसम्पन्न और (स्रजं कृण्वानः) माला धारण करके (जन्यः न) वधू के अभिलाषी वर के तुल्य सज धज कर (किरणं ददश्वान्) तेज को धारण करता हुआ वा शत्रु को तितर बितर कर देने वाले शस्त्रास्त्र वर्ग को धारण करता हुआ, (रेणुं रेरिहत्) अपने सैन्य द्वारा धूलि को उड़ावे, अथवा रेणु अर्थात् हिंसक दुष्ट और तुच्छ जन को नाश करे।

उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥

भा०—(वाजी सहुरिः समर्ये तन्वा शुश्रूषमाणाः तुरंयतीषु तुरयन् ऋजुम् ऋञ्जन् भ्रुवोः अधिकुरुते) जिस प्रकार वेगवान् अश्व सहनशील होकर संग्राम में अपने शरीर से सेवा करता हुआ वेग से जाने वाली सेनाओं के बीच वेग से जाता हुआ, धूल उड़ाता हुआ, अपने भौंहों के ऊपर भी धूल डाल लेता है उसी प्रकार (स्यः) जो (वाजी) ऐश्वर्य-वान्, बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष (ऋतावा) अन्न, धन तेज और ज्ञान से सम्पन्न होकर (समर्ये) संग्राम में और उत्तम, समान पुरुषों के सहयोग में, अन्तेवासी या और सुहृदों के बीच (तन्वा) अपने देह से (शुश्रूषमाणः) देश वा गुरु आदि की शुश्रूषा करता हुआ, वेदादि सत् शास्त्रों के श्रवण करने की इच्छा करता हुआ, (तुरं यतीषु) वेग से जाने वाली सेनाओं और प्रयत्नशील प्रजाओं के बीच (तुरं तुरयन्) वेगवान् रथादि साधनों का वेग से चलाता हुआ, (रेणुम् ऋञ्जन्) धूलि के समान तुच्छ शत्रु-दल को वश करता हुआ (भ्रुवोः अधि) भौंहों के सञ्चालन मात्र से, आंख के इशारे भर से, उन पर भौंहों के वक्र क्रोधभाव दर्शानेमात्र से (अधि किरते) उनपर खूब शास्त्रास्त्र वर्षा करता है।

उत स्म॒स्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८॥

भा०—(द्योः तन्यतोः इव) जिस प्रकार चमचमाती घातक विजुली से लोग डरते हैं उसी प्रकार (अस्य) उस (द्योः) विजयशील, (ऋ-घायतः) शत्रु की हिंसा करने हारे, (अभियुजः) आमक्रणकारी सेना-पति से शत्रु लोग (भयन्ते) भय करते हैं! (यदा) जब वह (सीम्) सब ओर स्थित (सहस्रम्) समस्त हज़ारों शत्रु सैन्यों के मुक़ाबले पर

(अभि अयोधीत्) डट कर सब पर प्रहार करता और सब से एक साथ युद्ध करता है, तब वह (ऋञ्जन्) शत्रुओं को वश करता हुआ (दुर्वर्तुः) कठिनता से वरण करने योग्य और (भीमः) अति भयंकर (भवति स्म) हो जाता है ।

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और जिस प्रकार (जनाः कृषिप्रः जूतिं पनयन्ति) लोग कर्षण करने योग्य रथादि को पूर्ण करने वाला उसको अंगभूत होकर जुते हुए अश्व के वेग को कार्य व्यवहार में लाते और उसकी स्तुति करते हैं और जिस प्रकार (आशोः अभिभूतिम्) व्यापक विद्युत् के सर्वत्र व्यापन गुण को विद्वान् जन कार्य में लाते और वर्णन करते हैं और जिस प्रकार (वि यन्तः) विविध मार्गों वा उपायों से जाने वाले लोग (समिथे-एनम् आहुः) प्राप्त होने पर कहते हैं कि वह (दधिक्राः सहस्रैः परा असरत्) धारण करके ले चलने में समर्थ विद्युत् या अश्वादि हजारों मील के वेगों से दूर तक जाने में समर्थ होता है उसी प्रकार (जनाः) लोग (उत) भी (अस्य) इस (कृष्टिप्रः) 'कृष्टि' अर्थात् जनों और राष्ट्रवासी प्रजा जनों को ऐश्वर्य समृद्धि से पूर्ण करने हारे राजा के (जूतिम्) वेगयुक्त आक्रमणकारिणी वेगवती सेना की और (आशोः) अति वेगवान् शीघ्रकारी इसके (अभिभूतिम्) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य की (पनयन्ति) स्तुति करते और उसका सदुपयोग करते हैं । और (वियन्तः) विविध मार्गों और चालों से जाने वाले वीर लोग (समिथे) संग्राम के अवसर पर एनम् आहुः) उसके विषय मे कहते हैं कि (दधिक्राः) सबको अपने वश में धारण करके शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष ही (सहस्रैः) शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले सहस्रों वा बलवान् सैन्यों सहित (परा असरत्) दूर तक आक्रमण करने में समर्थ है ।

आ द॑धि॒क्राः शव॑सा॒ पञ्च॑ कृ॒ष्टीः सूर्य॑ इव॒ ज्योति॑षा॒पस्त॑तान ।
स॒ह॒स्र॒साः श॑त॒सा वा॒ज्यर्वा॑ पृ॒णक्तु॒ मध्वा॒ समि॒मा वचां॑सि १०।१२

भा—(सूर्य इव ज्योतिषा अपः ततान) सूर्य जिस प्रकार प्रकाश या तेज के बल से जलमय मेघों को विस्तारित करता है, उसी प्रकार (दधिक्राः) राष्ट्र को धारण करके शत्रु पर आक्रमण करने या उसको रथवत् चलाने में कुशल पुरुष (शवसा) अपने बल से (पञ्च कृष्टीः) पांचों प्रजाजनों को (आ ततान) विस्तृत करे और वश करे। वह (सहस्र-साः) सहस्रों को देने वाला और (शत-साः) सैकड़ों का दाता, (वाजी) अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्यादि का स्वामी (अर्वा) शत्रुहिंसक होकर भी (इमा वचांशि) इन वचनों को (मध्वा) मधुर गुण से (सं मृणक्तु) युक्त करे। (२) ज्ञान धारण करके अन्यों को उपदेश करने से विद्वान् पुरुष भी 'दधिक्राः' है। वह ज्ञान ज्योति से सबको व्यापे, वचनों के मधुर ज्ञान से युक्त करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

[३९]

वामदेव ऋषिः ॥ दधिक्रा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ स्वराट् पंक्तिः । ६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ॒शुं द॑धि॒क्रां तमु॒ नु ष्ट॑वाम दि॒वस्पृ॑थि॒व्या उ॒त च॑र्किराम ।
उ॒च्छन्ती॒र्माम॒षसः॑ सूदय॒न्त्वति॒ विश्वा॑नि दुरि॒तानि॑ पर्षन् ॥ १ ॥

भा०—(आशुं) वेगवान् (दधिक्राम्) धारण करके पीठ पर लेकर चलने में समर्थ अश्व के तुल्य (दिवः पृथिव्याः दधिक्राम्) आकाश और भूमि दोनों को धारण करने वाले और चलाने वाले (तम् अनु) उस परमे[श्वर] की ही निश्चय से हम स्तुति करें (उत) और (तम् अनु चर्किर[ाम]) उसके गुणों को सर्वत्र फैलावें। (उच्छन्तीः) अन्धकार को दूर करती हुई

(उषसः) प्रभात वेलाओं के समान ज्ञान-दीप्तियां और धार्मिक अग्नियें (माम् सूदयन्तु) मुझे अपना रस प्रदान करें, और वे मुझे (विश्वानि दुरितानि पर्षन्) समस्त बुराइयों से पार करें। (२) राष्ट्रपक्ष में—राष्ट्र का धारक, सञ्चालक विद्वान् 'दधिक्रा' है। राजा जो तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुषों और सामान्य भूमि निवासी प्रजा दोनों को धारण करता है, शत्रु दाहक सेनाएं मुझ राष्ट्र प्रजा को ऐश्वर्य दें और सब दुःखदायी संकटों से पार करें। अथवा उत्तरार्ध मन्त्र राजा का सेनाओं या प्रजाओं के प्रति है, कि वे प्रभात-वेला के समान (उच्छन्तीः) मनोभावों को प्रकट करती हुई (माम् सूदयन्तु) मुझ राजा का अभिषेक करें, और सब पापों से पार करें।

महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥

भा०—(दधि-क्राव्णः) ज्ञानैश्वर्य के धारक विद्वानों की कामना करने वाले (पुरु-वारस्य) बहुत सों से वरण करने योग्य (वृष्णः) मेघवत् प्रजा पर सुखों की वृष्टि करने वाले पुरुष के (अर्वतः) विद्वानों और (क्रतुप्राः) उसके ज्ञानों और यज्ञों को पूर्ण करने वाले (महः) बड़े २ पुरुषों की मैं सेवा (चर्कर्मि) सेवा करता हूं अथवा, मैं ज्ञानपूरक पुरुष, उस महान् शत्रुहिंसक की सेवा करूं (यं) जिसको (मित्रावरुणा) दिन रात जिस प्रकार सूर्य को धारण करते और प्राण उदान जिस प्रकार देह में आत्मा को धारण करते हैं उसी प्रकार मित्र और वरुण, न्यायपति और सेनापति दोनों (दीदिवांसं) तेजस्वी (अग्निन्) अग्नि के तुल्य, और (ततुरिम्) शीघ्र कार्यकारी, अप्रमादी पुरुष अग्रणी नायक रूप से (पूरुभ्यः) समृद्ध प्रजाजनों के हितार्थ (ददथुः) देते हैं।

व२ अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ।
(अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण स वरुणेना सजोषाः ॥३

भा०—(यः) जो पुरुष (अश्वस्य) विद्याओं में व्यापक, बलवान्

(दधिक्राव्णः) व्रत धारण करने वालों को आगे के सत्पथ पर चलाने वाले परमेश्वर वा आचार्य की (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के प्रज्वलित होने पर और (उषसः व्युष्टौ) उषा के समान जीवन के प्रभात, बाल्यकाल के खिलने के अवसर में (अकारीत्) सेवा और शुश्रूषा करता है (तम्) उसको (अदितिः) माता पिता व बन्धुवर्ग वा ब्रह्मचर्य का अखण्ड व्रती वा सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् (अनागसं) पापरहित (कृणोतु) करे और वह (मित्रेण) मित्र, स्नेही वर्ग और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ (सजोषाः) प्रेमपूर्वक रहता है । (२) परमेश्वर पक्ष में—दधिक्रावा अदिति मित्र वरुण सब प्रभु के नाम हैं, अग्नि प्रज्वलित कर यज्ञ में और प्रभात वेला में उस व्यापक सबके धारक प्रभु की उपासना करता है, अखण्ड प्रभु उसको आपद्-रहित करता है वह परमेश्वर मित्र, और वरणीय रूप से प्रेम करता है ।

दधिक्राव्ण इष ऊर्जो मुहो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जिस (दधिक्राव्णः) विश्व के धारक पञ्चमहाभूतों को भी धारण करने वाले परमेश्वर की (इषः) सर्वप्रेरक शक्ति और (ऊर्जः) बल का (भद्रम् नाम) कल्याणकारी स्वरूप हम (मरुताम्) प्राणों के बीच वा विद्वानों के बीच (अमन्महि) ज्ञान करें उसी (वरुणं मित्रम् अग्निम् इन्द्रं वज्र-बाहुम्) सर्वश्रेष्ठ, सबके मित्र, सबके प्रकाशक, सर्वैश्वर्यवान् , ज्ञान से समस्त अज्ञान का नाश करने वाले परमेश्वर को हम (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (हवामहे) स्तुति करें । (२) अन्नादि के स्वामी, पराक्रमी राष्ट्रधारक नायकों के भी सञ्चालक पुरुष के सर्व-सुखकारी स्वरूप को हम पहचानें । उस सर्वश्रेष्ठ, सबके मित्र, नायक, तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् सर्वशक्तिधर को हम प्रजाजन अपने कल्याण के लिये स्वीकार करें ।

इन्द्र॑मि॒वेदु॒भये॒ वि ह्व॑यन्त उ॒दीरा॑णा य॒ज्ञमु॑पप्र॒यन्तः॑ ।
द॒धि॒क्रामु॒ सूद॑नं॒ मर्त्या॑य द॒दथु॑र्मित्रावरुणा नो॒ अश्व॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(उद् ईराणाः) उद्योग करने वाले और (यज्ञम् उप-प्रयन्तः) यज्ञ को, वा उपास्य इष्ट देव की उपासना करने वाले वा युद्धोपयोगी संघ बना कर स्थित प्रजाजन (उभये) दोनों ही (इन्द्रम् इव इत्) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और उसके समान अन्य ऐश्वर्यवान् को ही (वि ह्वयन्ते) विविध प्रकार से पुकारते, याद करते और स्पर्धा करते हैं। और (मित्रा वरुणा) हे दिन और रात्रि के तुल्य मित्र और वरुण, सर्व स्नेही और सर्व श्रेष्ठ पुरुषो ! आप दोनों ही (नः) हमारे (मर्त्याय) मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये (सूदन् उ ददथुः) सब प्रकार के सुख समृद्धि के दाता वा अभिषेक योग्य (दधिक्राम्) सर्व-धारण कर्त्ता अध्यक्षों से बढ़कर और उनके सञ्चालक पुरुष का हमें (ददथुः) प्रदान करो।

द॒धि॒क्राव्णो॑ अकारिषं जि॒ष्णोरश्व॑स्य वा॒जिनः॑ ।
सु॒र॒भि नो॒ मुखा॑ कर॒त्प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥ ६ ॥ १३ ॥

भा०—मैं (दधिक्राव्णः) न्याय मार्ग पर चलने वाले वा सर्व-धारक सर्वचालक, (जिष्णोः) सर्वविजयी (अश्वस्य) सर्वव्यापक, सबके उत्तम गुणों के धारक, (वाजिनः) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्, ईश्वर और राजा के (अकारिषं) उपासना और आज्ञा का पालन करूं। वह (नः) हमारे (मुखा) चक्षु आदि इन्द्रिय रूप मुख्य अंगों को (सुरभि करत्) उत्तम कर्म करने में समर्थ, दृढ़ (करत्) करे। और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों की (प्र तारिषत्) खूब वृद्धि करे। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[४०]

वामदेव ऋषिः ॥ १-४ दधिक्रावा । ५ सूर्यश्च देवता ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥

भा०—हम प्रजागण (दधिक्राव्णः) विश्व को धारण करने वाले मूल कारणों को प्रेरित करने वाले परमेश्वर के समान (इत् उ) ही सदा राष्ट्रधारक अध्यक्षों के सञ्चालक राजा के गुणों को सर्वत्र फैलावें। राजा चाहे कि (विश्वाः इत्) समस्त (उषसः) चाहने वाली, कामनाशील प्रजाएं और तेजस्विनी सेनाएं (माम्) मुझ राजा का (सूदयन्तु) अभिषेक करें, ऐश्वर्यों से सेच कर वृक्षवत् बढ़ावें। और हम (अपाम्) आप्त-जनों के (अग्नेः) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् के (उषसः) कान्तिमती वा कामनावाली विदुषी स्त्री या शत्रुदाहक सेना के, (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के, और (बृहस्पतेः) बड़े भारी राष्ट्र पालक और वेदज्ञ विद्वान् के और (आङ्गिरसस्य) प्राणों के बीच स्थित आत्मवत् मुख्य तेजस्वी पुरुष के और (जिष्णोः) विजयशील पुरुष के (चर्किराम) गुणों को सर्वत्र फैलावें। (२) परमेश्वर पक्ष में—उसके गुणों को फैलावें सब नये दिन मुझे बढ़ावें। (अपाम्) सब में व्यापक (अग्नेः) सबके प्रकाशक (उषसः) सब पापों के दाहक (सूर्यस्य) सूर्यवत् स्वयं प्रकाश, तेजोमय (बृहस्पतेः) महान् ब्रह्माण्ड के पालक (आङ्गिरसस्य) तेजस्वियों में अति तेजस्वी, (जिष्णोः) सर्वातिशायी परमेश्वर के गुणों का हम स्तवन करें और अन्यों को भी उपदेश दें।

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥

भा०—परमेश्वर और राजा के समान गुण हैं। वह प्रभु परमेश्वर (सत्वा) सर्वव्यापक, (भरिषः) सबको धारण पोषण करने वाला, (गविषः) ज्ञान वाणियों को प्रेरणा करने वाला, (दुवन्यसत्) अपने

सेवक भक्तजनों को चाहने वाला (तुरण्यसत्) अति वेग से जाने वाले विद्युत् प्रकाशादि पदार्थों में भी व्यापक है, वह (इषः) अन्नों वृष्टियों और (उषसः) प्रभात वेलाओं के सूर्य के तुल्य (इषः) समस्त कामना और (उषसः) पापनाशक, ज्ञान प्रकाशों को प्रदान करे। वह (सत्यः) समस्त सत् कारणों में विद्यमान, सत्य स्वरूप (द्रवः) सर्व व्यापक, रस के समान सब में वहता हुआ, (द्रवरः) समस्त द्रव पदार्थों वा स्नेहादि रसों का भी प्रदाता, (पतङ्गरः) सदा गतिशील वायु, अग्नि आदि में भी शक्ति को देने वाला, (दधिक्रावा) जगत् के धारक तत्वों का चलाने और सबको स्वयं धारण कर समस्त जगत् को चलाने वाला है। वह हमें (इषम्) अन्न, उत्तम इच्छा (ऊर्जम्) बल और (स्वः) सुख और परम उपदेश (जनत्) उत्पन्न करे। (२) राजा (सत्वा) बलवान्, प्रजा पालक, भूमियों का शासक, सेवकों के बीच स्थित (इषः) सेनाओं और चाहने वाली उत्तम प्रजाओं को वेग से चलाने वाला, (सत्यः) सज्जनों में सर्वोत्तम, सत्य न्यायपरायण (द्रवरः) दयार्द्र, (द्रवरः) स्नेह से दान देने वाला, (पतङ्गरः) वायु वा अग्निवत् प्रकाश वा जीवन का दाता, (दधिक्रावाः) धारक अध्यक्षों का सञ्चालक हो। वह (इषम् ऊर्जं स्वः जनत्) राष्ट्र में अन्न, बल और सुख शान्ति उत्पन्न करे।

उत स्मा॑स्य॒ द्रव॑तस्तुरण्य॒तः प॒र्णं न वेर॑नु॑ वाति प्रग॒र्धिनः॑।
श्ये॒नस्ये॑व॒ ध्रज॑तो अङ्क॒सं परि॑ दधि॒क्राव्णः॑ स॒होर्जा तरि॑त्रतः॥३॥

भा०—(तुरण्यतः वेः पर्णं न) जिस प्रकार वेग से जाने वाले पक्षी वा वाण का पंख उसके पीछे वायु-वेग से जाते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस (द्रवतः) वेग से शत्रु पर चढ़ाई करते हुए (तुरण्यतः) अति शीघ्र-गामी अश्वों से आगे बढ़ते हुए, (प्रगर्धिनः) अति उत्तमता से राष्ट्र को लेने की कांक्षा करते हुए (वेः) कान्तिमान तेजस्वी इस राजा के (उत स्म) भी (पर्णम् अनु वाति) अनुकूल पालक बल, सैन्य आदि चले। (ध्रजतः

श्येनस्य इव अङ्कसं) वेग से जाते हुए श्येन के जिस प्रकार छाती के ऊपर (पर्णम्) पंख चिपट जाते हैं उसी प्रकार (श्येनस्य) प्रशंसनीय प्रयाण करने वाले वा उत्तम आचरणशील (ध्रजतः) वेग से आगे बढ़ते हुए, (दधिक्राव्णः) धारक पोषकों के सञ्चालक और (ऊर्जा सह) बल पूर्वक (तरित्रतः) स्वयं पार हो जाने और राष्ट्र को भी संकट से पार उतारने वाले पुरुष के (अंकसं परि) लक्षणानुसार, पदानुसार ही (पर्णं) पालक बल सैन्यादि हों (२) इसी प्रकार (द्रवतः प्रगर्धिनः वे पर्णं अनु वाति) शरीर से शरीरान्तर में जाने वाले कामनाशील जीव के 'पर्णं' गमन साधन, कर्म, धर्माधर्म उसके साथ जाता है। (ऊर्जा सह तरित्रतः) ब्रह्म ज्ञान के साथ संसार बन्धनों से पार उतरते हुए के(श्येनस्य ध्रजतः) अति वेग से जाने वाले ज्ञानी पुरुष का (अङ्कसं परि) ज्ञान सर्वोपरि रहता है।

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि। क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥

भा०—(ग्रीवायां बद्धः अपिकक्षे आसनि बद्धः वाजी क्षिपणिं तुरण्यति) गर्दन, कमर और मुंह में बंधा हुआ वेगवान् अश्व जिस प्रकार शीघ्रता से ले जाने वाले सवार को वेग से ले जाता है। वा (क्षिपणिं तुरण्यति) सञ्चालनी कशा को देखकर वह वेग से भागता है। उसी प्रकार (स्यः वाजी) वह ज्ञानवान् जीव (ग्रीवायां बद्धः) निगलने वाली भोग कामना वा गर्दन, (अपिकक्षे) पार्श्व और (आसनि) मुख आदि देहावयवों में बद्ध होकर भी (क्षिपणिं) सब अज्ञान बन्धनों को दूर फेंक देने वाली ज्ञान मुद्रा को प्राप्त कर (तुरण्यति) वेग से आगे बढ़ता है। और जिस प्रकार (दधिक्राः अनु सं तवीत्वत्) अपनी पीठ पर लेकर चलने वाला अश्व बराबर वेग में चलता रहता है और (पथाम् अंकसि) मार्गों के सब चिह्नों को पार कर जाता है उसी प्रकार (दधिक्राः) ध्यान वेग से आगे बढ़ने वाला ज्ञानी

पुरुष (क्रतुम् अनु संतवीत्वत्) कर्म और प्रज्ञा के अनुसार आगे बढ़े और (पथाम्) ज्ञान मार्गों के (अंकासि) स्वरूपों को (अनु आ पनीफणत्) क्रम से प्राप्त करे और बराबर आगे बढ़ता जाय ।

हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥१४॥

भा०—वह आत्मा कैसा है । (हंसः) हंस के समान नीर क्षीरवत् सत्यासत्य का विवेकी और स्वयं बन्धनों का नाशक, (शुचि-सद्) शुद्धस्वरूप में विद्यमान, (अन्तरिक्ष-सत्) वायु के तुल्य अन्तरिक्ष या अन्तरात्मा चित्त के भी भीतर विद्यमान, (होता) सुख दुःखों का भोक्ता, (वेदिषद्) वेदि में होता के तुल्य सुख दुःख प्राप्त कराने वाली देह भूमि में विराजमान, (अतिथिः) अतिथि के समान घर से घर में घूमने वाले परिव्राजकवत् , (दुरोण-सद्) गृह में गृहपति के तुल्य विराजने वाला, (नृ-सद्) नायकों में मुख्याध्यक्ष के तुल्य देह के नेता प्राणगण में विराजमान, (वर-सद्) वरण करने योग्य अन्न के तुल्य परम श्रेष्ठ ब्रह्म में विराजमान, (व्योम-सद्) आकाश में स्थित सूर्य वा वायु के तुल्य, विविध रक्षा से युक्त परमेश्वर की शरण में विद्यमान, (अब्जाः) जलों में अनायास प्रकट कमलवत् प्राणों में शक्ति रूप से प्रकट, (गोजाः) गौओं में गो-रस और किरणों में प्रकाश के तुल्य ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञान रूप से प्रकट, (ऋतजाः) सत्य में स्थित, (अद्रिजाः) मेघों में जलवत् अखण्ड ब्रह्म में स्थित, स्वयं (ऋतम्) अन्न के तुल्य ज्ञानमय ब्रह्म का लाभ करे । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४१]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ९, ११ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ पंक्तिः । ८, १० स्वराट् पंक्तिः ॥

एकादशं सूक्तम् ॥

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! हे वरण करने योग्य और दुःखों के वारण करने हारे जनो ! (वाम्) तुम दोनों में से (कः) कौन ऐसा है जो (स्तोमः) स्तुति करने योग्य (हविष्मान्) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का स्वामी, (होता न) दानशील के समान (अमृतः) अमर, दीर्घजीवी होकर (सुम्नम्) सुख वा उत्तम रीति से मनन करने योग्य ज्ञान को (आप) प्राप्त करे। वा स्तुत्य, अन्नादि समृद्ध, दाता, दीर्घजीवी होकर (वां सुम्नम् आप) तुम दोनों के सुख आनन्द को कौन प्राप्त करता है ? [उत्तर] (यः) जो (क्रतुमान्) कर्म और ज्ञान से युक्त (नमस्वान्) अन्नादि दातव्य पदार्थों और नमस्कार, सत्कार आदि साधनों से विनयशील होकर हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र और वरुण ! हे अज्ञाननाशक हे दुःखवारक विद्वानो ! (वां हृदि) आप दोनों के हृदय में (पस्पर्शत्) स्पर्श करे, हृदय में हृदय मिलाकर एक चित्त, प्रिय, प्रेमपात्र हो जावे वह (अस्मद् उक्तः) हम से भी प्रशंसा-योग्य होता है। इन्द्र और वरुण गुरुजन हैं। [प्रश्न] उनके विद्यानन्द वा ज्ञान को कौन आयुष्मान् त्यागी (स्तोमः) स्तुत्य, उपदेष्टव्य शिष्य प्राप्त कर सकता है ! [उत्तर] जो (नमस्वान्) अति विनयशील प्रज्ञा-वान् एवं क्रियावान् होकर उनके हृदय में स्पर्श करे, उनके चित्त को पकड़ ले। वही उनके मननयोग्य ज्ञान को प्राप्त करता है। गुरु शिष्य दोनों हृदय स्पर्श करके एक दूसरे का चित्त ग्रहण करते हैं ऐसी 'पद्धति' वेदा-रम्भ काल में होती है। (२) ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' पुरुष है। वरण करने से पतिव्रता स्त्री 'वरुण' है। प्रश्न है कि आप दोनों में से कौन स्तुत्य, अन्नादि का स्वामी दीर्घायु, त्यागी होकर सुख पाता है। [उत्तर] आप दोनों में से जो प्रज्ञावान्, क्रियावान्, अन्नादि से युक्त और

सत्कार विनयादि से युक्त एक दूसरे का हृदय स्पर्श कर लें वही आप दोनों में से सुख पा सकता है। इस प्रकार स्त्री पुरुषों में से दोनों विवाह में परस्पर हृदय स्पर्श करते हैं। प्रेमी रहकर ही वे एक दूसरे का सुख पा सकते हैं। गुरु शिष्य दोनों में सूर्यवद् गुरु 'इन्द्र' और वरण करने से शिष्य 'वरुण' है। राजा 'इन्द्र' और वरण करने से प्रजा 'वरुण' है। सूर्य 'इन्द्र' पृथ्वी वा जल 'वरुण' है। दिन 'इन्द्र' रात्रि वरुण है। प्राण 'इन्द्र' और अपान 'वरुण' है। अध्यात्म में प्राणवान का सुख वह अन्नवान् भोक्ता आत्मा वा साधक पाता है जो ज्ञानवान् क्रियाक्षम होकर 'हृदय' यन्त्र पर वश करता है।

इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान्।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र-वरुणा) पूर्व कहे प्रकार के इन्द्र और वरुण! ऐश्वर्ययुक्त एवं वरण करने योग्य और एक दूसरे का वरण करने वाले जनो! हे ((देवौ) ज्ञान के प्रकाश, विद्या एवं सत्संग के अभिलाषी जनो! आप दोनों को (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य. (सख्याय) मित्र भाव की वृद्धि के लिये (प्रयस्वान्) अति उत्तम रीति से यत्नवान् होकर आप दोनों को (आपी चक्रे) एक दूसरे को प्राप्त करने वाला बन्धु बनाता है (सः) वह (समिथेषु शत्रून्) संग्रामों में शत्रुओं और परस्पर मिलने के अवसरों में (वृत्रा) विघ्नों को (हन्ति) विनाश करता है और (सः) वही (महद्भिः अवोभिः) बड़े २ रक्षाकारी साधनों, ज्ञानों, और अन्नादि तृप्तिकारक उपायों से (प्र शृण्वे) खूब प्रसिद्ध हो जाता है।

इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण! ऐश्वर्यवन्! और एक दूसरे को प्रेम से स्वीकार करने वाले स्त्री पुरुषो! राजा प्रजा-

जनो ! (ता) वे आप दोनों ! (शशमानेभ्यः नृभ्यः) उत्तम ज्ञान का अनुशासन या उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों और प्रधान नायकों को (रत्नं) उत्तम रत्न, रमण करने योग्य ज्ञान अन्न आदि का (धेष्ठा) देने वाले होओ। (यदि) जब कि साथ ही आप दोनों (सखाया) एक दूसरे के मित्र रहते हुए (सोमैः) उत्पन्न किये हुए (सुतेभिः) पुत्रों सहित, और उत्पन्न किये ऐश्वर्यों सहित (सुप्रयसा) उत्तम प्रयत्न और उत्तम अन्नादि से (मादयैते) स्वयं आनन्द लाभ करो और औरों को भी सुखी करो।

इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम्।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) शत्रु हनन करने वाले, हे दुष्टों के निवारण करने वाले (युवं) आप दोनों ! (उग्रा) बलवान् होओ। और (यः) जो (नः) हम में से, (दुरेवः) दुराचारी, दुष्ट कर्म करने वाला, (वृकतिः) चोर वा भेड़िये के समान छली, (दभीतिः) हत्याकारी हो (अस्मिन्) उस पर (दिद्युम्) चमकता (ओजिष्ठं वज्रम्) अति तेजस्वी शस्त्र (नि वधिष्टम्) प्रहार करो। और (तस्मिन्) उस पर ही (अभिभूति ओजः) परपराजयकारी पराक्रम भी (मिमाथाम्) करो। और अध्यात्म में ओजिष्ठ वज्र, तप, ज्ञान, वैराग्य है।

इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ५।१५॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवन् और वरण करने योग्य जनो ! (धेनोः वृषभा इव प्रेतारा) जिस प्रकार वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ गौ को प्राप्त करते हैं और (सा गौः यवसा इव गत्वी सहस्रधारा पयसा दुहीयत्) वह गौ अन्न भुस आदि से युक्त होकर सहस्रों धार वाली होकर

दूध से घर को भरपूर करती, बहुत दूध दुहाती है और जिस प्रकार (धेनोः प्रेतारा वृषभा इव) अपने में धारण करने वा दो बलवान् बैलगाड़ी के आगे आकर जुड़ते हैं और (मही गौः) बड़ी गाड़ी (सहस्रधारा) सहस्रों अन्नादि पदार्थों को धारण करने वाली होकर (पयसा नः दुहीयत्) अन्न से घर भर देती है । उसी प्रकार (धेनोः) समस्त ज्ञानों को धारण करने, सब आनन्द रसों का पान कराने वाली (धियः) धारणा-वती बुद्धि और वाणी को (प्रेतारौ) प्राप्त करने वाले और उसके प्रकृष्ट, सर्वोत्तम रहस्य तक पहुंचाने वाले (युवं भूतम्) आप दोनो होवो । (सा) वह (मही) अति पूज्य (गौः) अर्थों का ज्ञान कराने वाली वाणी और भूमि (यवसौ इव) प्रत्येक तत्व को पृथक् २ विवेक से (गत्वी) प्राप्त होकर (सहस्रधारा) सहस्रों वाणियों से युक्त होकर (पयसा) पोषक ज्ञान रस से (नः दुहीयत्) हमें पूर्ण करे । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (परितक्म्यायाम्) रात्रि काल व्यतीत हो जाने पर (दृशीके) दर्शनीय प्रकाश के देने में (उर्वरासु) बहुत अधिक वरणीय प्रभात वेलाओं में (सूरः अवोभिः दस्मो भवति) सूर्य प्रदीप्तियों सहित अन्धकार का नाश करने वाला होता है और जिस प्रकार (परितक्म्यायाम्) अन्नाभाव से सर्वत्र कष्ट साध्य संकट वेला में (पौंस्ये) पुरुषों के हितकारी अन्न प्रदान करने में (उर्वरासु वृषणः च) उर्वरा, अन्नोत्पादक भूमियों में वर्षणशील मेघ (अवोभिः दस्मा भवति) तृप्तिकारक अन्नों द्वारा संकट क्षुधा, अकाल आदि का नाश करने वाला होता है उसी प्रकार हे (इन्द्रा वरुणा) सूर्यवत् शत्रुहन्तः ! मेघवत् सब कष्टों के वारक ! राजा अमात्यजनो ! (उर्वरासु) अन्नोत्पादक भूमियों और प्रजोत्पादक दाराओं, ऐश्वर्योत्पादक प्रजाजनों और ज्ञानाङ्कुरोत्पादक शिष्य-मतियों में,

(दृशीके) दर्शनीय, ज्ञान, प्रकाश (पौंस्ये) दर्शन बल, पौरुष और (तोके हिते तनये) हितकारी पुत्र पौत्र आदि के रक्षा के निमित्त भी (परितक्म्यायाम्) सब तरफ़ कष्टापन्न दशा में भी (अत्र) इस राष्ट्र में (अवोभिः) राष्ट्र की रक्षा करने वाले सैन्यादि साधनों से (दस्मा) विघ्नों और शत्रुओं के नाश करने वाले (स्याताम्) होवो। (२) स्त्री पुरुष, पति पत्नी, सूर्य और मेघवत् वीर्यवान् और निषेक समर्थ हों, पुरुष उर्वरा दाराओं में दर्शनीय, वीर्ययुक्त पुमान् पुत्र संतति के निमित्त आधीन करें और रोगादि की कष्ट दशा में भी वे दोनों गृहों में रहकर समस्त (अवोभिः) अन्न आदि रक्षा तृप्ति आदि के साधनों से दुःखों का नाश करते रहें।

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (प्रियाय) प्रिय पुत्र को प्राप्त करने के लिये (पितरा इव) माता और पिता (प्रभूती) उत्तम धन धान्यादि से सम्पन्न, (स्वापी) उत्तम रीति से, आदर पूर्वक एक दूसरे को प्राप्त होने वाले उत्तम बन्धु (मंहिष्ठा) अति दानशील, (शंभू) एक दूसरे के कल्याणकारक होकर (सख्याय भवतः) परम सखिभाव, प्रेम भाव निभाने के लिये होते हैं उसी प्रकार हम लोग (गविषः) वाणियों और उत्तम भूमियों को प्राप्त करने की इच्छा वाले शिष्य और वीर जन (पूर्व्याय अवसे) पूर्व जनों से प्राप्त किये ज्ञान की प्राप्ति और पूर्व राजाओं से स्थापित राष्ट्र-रक्षा के लिये (प्रभूती) उत्तम सामर्थ्यवान्, (स्वापी) प्रजा के प्रति उत्तम बन्धु, (मंहिष्ठा) अति दानशील, (शंभू) शान्ति-दायक, कल्याणकारी (शूरा) शूरवीर (युवाम्) तुम दोनों गुरु, उप-देशक और राजा और अमात्य को (प्रियाय सख्याय) अतिप्रिय, प्रीति

कारक मित्र भाव की वृद्धि के लिये (परि वृणीमहे) सब प्रकार से स्वीकार करते, वरण करते वा घेर कर बैठते हैं ।

ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जंग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे वरण योग्य श्रेष्ठ पुरुषो ! जिस प्रकार सेनाएं (आजिं न जग्मुः) संग्राम को लक्ष्य करके आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार हे (सुदानू) उत्तम दानशील पुरुषो ! (वां) आप दोनों की (धियः) बुद्धियें और क्रियाएं (युवयूः) और आप दोनों को प्रेम से चाहने वाली (धियः) आप दोनों की पोषक प्रजाएं भी (अवसे) रक्षा के लिये (वाजयन्तीः) अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त होकर (आजिं जग्मुः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले और सब ओर विजयशील पुरुष को प्राप्त हों । और जिस प्रकार (गावः सोमम् श्रिये न) गो-दुग्ध अधिक कान्ति उत्पन्न करने के लिये सोम आदि ओषधि को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (गावः) भूमियें और गो-पशु आदि सम्प्रदाएं (श्रिये) अधिक ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (सोमम् उप आस्थुः) ऐश्वर्यवान् वा अभिषिक्त राजा को प्राप्त हों । और (गावः) ज्ञान वाणियें (सोमम्) सोम्य ब्रह्मचारी शिष्य को उसकी तेज सम्पत्ति बढ़ाने के लिये प्राप्त हों। (मे) मेरी (गिरः) वाणियें और (मे मनीषाः) बुद्धियां भी (इन्द्रं वरुणं उप अस्थुः) ऐश्वर्यवान् और सर्व दुःखहारी राजा और प्रभु को प्राप्त हों, उसकी उपासना, स्तुति करें ।

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (वस्वः) धन को (जोष्टारः) चाहने वाले सेवक लोग (इन्द्रं उप अस्थुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के पास उपस्थित होते हैं और जिस

प्रकार (रघ्वी) लघु अवस्था वाली प्रजाएं, कुमार कुमारी, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणियें (श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्न वा श्रवण योग्य ज्ञान की याचना करती हुईं (इन्द्रं) अज्ञाननाशक तत्वदर्शी के पास पहुंचती हैं उसी प्रकार (मे) मेरी (इमाः) ये (मनीषाः) मन की इच्छाएं, (द्रविणम्) ज्ञान की (इच्छमानाः) कामना करती हुईं (इन्द्रं वरुणम्) परमैश्वर्यवान् और सबसे वरण करनेयोग्य सर्वश्रेष्ठ प्रभु एवं आचार्य को (अग्मन्) प्राप्त हों। (२) राष्ट्रपक्ष में—(वस्वः) राष्ट्र में वसने वाली प्रजाएं और (रघ्वीः) वेग से जाने वाली सेनाएं भी और (मनीषाः) मननशील विद्वान् मनस्वी प्रजाएं (जोष्टारः) प्रेम से सेवा करने वाली होकर (श्रवसः भिक्षमाणाः द्रविणम्-इच्छमानाः) अन्न और ऐश्वर्य की कामना करती हुईं (इमम् इन्द्रं वरुणं उप अस्थुः) इस ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ, सर्व वरणीय, शत्रुवारक राजा वा सेनापति को प्राप्त हों। (३) जिस प्रकार याचक धनी से धन और शिष्य गुरु से ज्ञान की याचना करते हैं उसी प्रकार हमारे चित्त वा बुद्धियां भगवान् से ज्ञान, धन और यश, अन्नादि की याचना करें।

अश्व्य॑स्य॒ त्मना॒ रथ्य॑स्य पु॒ष्टेर्नित्य॑स्य रा॒यः पत॑यः स्याम।
ता च॑क्रा॒णा ऊ॒तिभि॒र्नव्य॑सीभिरस्म॒त्रा रायो॑ नि॒युत॑ः सचन्ताम् १०

भा०—हम लोग (अश्व्यस्य) अश्वों से युक्त और (रथ्यस्य) रथों से युक्त (पुष्टेः) पोषक (नित्यस्य रायः) नित्य, चिरस्थायी, धन के (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (पतयः) पालक, स्वामी, (स्याम) होवें। (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (नव्यसीभिः) नये से नये (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (चक्राणा) काम करने वाले हों। और (अस्मत्रा) हमें (नियुतः रायः) लक्षों धन (सचन्ताम्) प्राप्त हों।

आ नो॑ बृहन्ता बृह॒तीभि॑रू॒ती इन्द्र॑ या॒तं व॑रुण॒ वाज॑सातौ।
यद्दि॒द्यव॒ः पृत॑नासु प्र॒क्रीळा॒न्तस्य॑ वां स्याम सनि॒तार॑ आ॒जेः ११।१६

भा०—हे (इन्द्र वरुण) ऐश्वर्यवन् ! हे सर्वश्रेष्ठ ! हे शत्रुहन्तः हे शत्रुवारक ! आप दोनों (बृहन्ता) बड़े शक्तिशाली हो । आप दोनों (वाजसातौ) संग्राम, अन्न और ऐश्वर्य के लाभ वा विभाग के अवसर में (नः आयातम्) हमें प्राप्त होओ । (यत्) जब (दिद्यवः) चमचमाते शस्त्र और शस्त्रधारी सैनिक लोग एवं विद्याविनय-सम्पन्न जन (पृतनासु) सेनाओं और मनुष्यों के बीच (प्रकीळान्) नाना उत्कृष्ट युद्ध क्रीड़ाएं करें तब (तस्य वां आजेः) आप दोनों के उस संग्राम के हम (सनितारः) भागी (स्याम) होवें । इति षोडशो वर्गः ॥

[४२]

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषिः ॥ १—६ आत्मा । ७—१० इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । ५ निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

मम॑ द्वि॒ता रा॒ष्ट्रं क्ष॒त्रिय॑स्य वि॒श्वायो॒र्विश्वे॑ अ॒मृता॒ यथा॑ नः ।
क्रतुं॑ सचन्ते॒ वरु॑णस्य दे॒वा राजा॑मि कृ॒ष्टेरु॑प॒मस्य॑ व॒व्रेः ॥ १ ॥

भा०—राजा के कर्त्तव्य । (विश्वायोः) सब मनुष्यों के स्वामी (क्षत्रियस्य) बलवान् क्षत्रिय का (राष्ट्रम्) राष्ट्र अर्थात् (द्विता) राजा प्रजा दोनों ऐसे रहें (यथा) जिससे (नः) हमारे (विश्वे) सब लोग (अमृताः) दीर्घायु अमर हों । (देवाः) दानशील, विजिगीषु और धनार्थी लोग (वरुणस्य) सब दुःखों के वारक, एवं सबसे उत्तम वरण करने योग्य प्रधान पुरुष के (क्रतुं) ज्ञान और उपदिष्ट कर्म को (सचन्ते) एक मत होकर स्वीकार करें, उसका अनुकरण करें और (उपमस्य) समीपस्थ (वव्रेः) सुरूप वा मुझे राजा वरण करने वाले (कृष्टेः) प्रजाजन का मैं (राजामि) राजा बनूं । उनके द्वारा मैं शोभा प्राप्त करूं । अथवा

(उपमस्य वव्रेः) समीपस्थ शत्रुवारक (कृष्टेः) शत्रु को कर्षण, पीडन करने में समर्थ वा हृदयहारी बल के द्वारा मैं (राजामि) खूब प्रदीप्त होऊं।

अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥

भा०—(अहं वरुणः) मैं सबसे श्रेष्ठ, सबके द्वारा प्रधान वरे जाने योग्य, प्रजा के सब दुःखों और शत्रुओं को वारण करने और सब में ऐश्वर्य का उचित विभाग करने वाला (राजा) राजा होऊं। (मह्यम्) मेरे लिये ही (देवाः) सब मनुष्य प्रजाएं कर देने वाले और विजयोत्सुक, एवं विद्वान् लोग (तानि) उन २ नाना प्रकार के (असुर्याणि) जीवन देने और प्राण शक्ति में रमनेवाले बलवान् पुरुषों के योग्य (प्रथमा) श्रेष्ठ २ धनैश्वर्यों, बलों और ज्ञानों को (अधारयन्त) धारण करें। वे (वरुणस्य क्रतुं सचन्ते) अपने वृत राजा के कार्य और मति के साथ सहमति करके रहें। मैं (उपमस्य वव्रेः) समीपस्थ प्रिय वरणशील (कृष्टेः) शत्रुपीड़क, भूमि कृषक दोनों प्रकार की प्रजा का (राजामि) राजा बनूं। (२) परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ होने से वरुण है। उसके ही बलों को सब सूर्य अग्नि आदि धारण करते हैं। वह सब रूपवान् देहावृत जीवों के बीच शोभता है।

अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥

भा०—(अहम्) मैं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य सर्वसंकट निवारक होकर (ते) उन दोनों (ऊर्वी) विशाल, (गभीरे) गम्भीर, (सुमेके) उत्तम रीति से एक दूसरे का सेचन, अभिषेक वा वृद्धि करने वाले (रजसी) दोनों लोकों को (त्वष्टा इव रोदसी) आकाश और भूमि को सूर्य के तुल्य (महित्वा) महान् साम-

र्य से (ऐरयम्) सञ्चालित करूं और (विश्वा भुवनानि) समस्त कार्यों को जानता हुआ (धारयं च) धारण करूं । (२) परमेश्वर ही इन्द्र, वरुण है वही महान् सुरक्षित, भूमि आकाश दोनों को महान् सामर्थ्य से चलाता और धारण करता है ।

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥ ४ ॥

भा०—(अहम्) मैं राजा ही (उक्षमाणाः अपः) सेचन करने वाले जलों को सूर्यवत्, राष्ट्र की वृद्धि करने वाली आप्त प्रजाओं को (अपिन्वम्) सेचन करता हूं, उनकी भी वृद्धि करता हूं । और (ऋतस्य) ऋत, सत्यन्याय के (सदने) आसन पर स्थित होकर मैं (दिवं) इस पृथ्वी को वा प्रजा के प्रकाशमान व्यवहार और तेज को (धारयम्) धारण करता हूं । (अदितेः) माता के (पुत्रः) पुत्र के समान अखण्ड शासन वाली भूमि का पुत्र, उसके दुःखों को पुत्र के समान दूर करने वाला होकर (ऋतेन) सत्य न्याय के बल से और धनैश्वर्य से ही (ऋतावा) सत्य का स्वामी और ऐश्वर्य का स्वामी होकर (त्रिधातु भूम वि प्रथयत्) तीन धातु के नाना प्रकार के द्रव्यों को विविध प्रकार से प्रचरित करे । 'आत्मा' अहंकारवान् देह को बढ़ाने वाले (अपः) प्राणों को बलवान् करता है (ऋतस्य) अन्न के आश्रय पर (दिवं) कामना या इच्छाशक्ति को धारण करता है । (अदितेः) अखण्ड अविनाशी आत्मा का पुत्र, प्राण (ऋतेन) अन्न के द्वारा पुष्ट होकर (त्रिधातु) तीन धातु वात पित्त कफ से बने शरीरों को विविध प्रकार से प्रकट करता है । (३) परमेश्वर जल बरसाने वाले जलों को अन्तरिक्ष से बरसाता है, वह सत्य के बल पर (दिवं) सूर्य को धारण करता है । अविनाशी शक्ति का रक्षक प्रभु सत्य और तेज, जल और अन्न से ज्ञानवान्, बल-

चान् ऐश्वर्यवान् होकर त्रिगुणात्मक संसार वा कारण प्रकृति को विविध रूप से फैलाता, प्रकट करता है।

मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५॥१७॥

भा०—(सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों, अश्व सैन्यों के स्वामी (नरः) नेता नायक लोग (वाजयन्तः) ऐश्वर्य, बल और अन्न की कामना करते हुए (वृताः) अपने अधीन प्रजाजनों से वरण किये जाकर (सम्-अरणे) संग्राम और एकत्र होने के स्थान में (मां हवन्ते) मुझको पुकारते, मुझे आदर पूर्वक प्रधान पद पर स्वीकर करते हैं। (अहम्) मैं (मघवा) उत्तम धनैश्वर्य का स्वामी, प्रभु होकर (आजिम् कृणोमि) संग्राम करता हूं। और (अहम्) मैं (अभिभूत्योजाः) समस्त ऐश्वर्यों और पराक्रमों का स्वामी, दुष्ट शत्रुओं को पराजय करने वाले पराक्रम का करने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा होकर (रेणुम्) प्रजा के नाशकारी शत्रु को धूल के समान उड़ा देता हूं और (रेणुम् इयर्मि) धूलि के कणों के तुल्य अगणित प्रजाजन को वा सैन्यों को प्राप्त करता हूं। (२) मुझ परमेश्वर को सब लोग एकत्र होकर स्मरण करते हैं। मैं सर्वविजयी विजय प्रदान करता, समस्त (रेणुम्) लोकों और धूलि के कण २ में व्याप्त हूं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥

भा०—मैं राजा ही (ता) उन नाना (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकरम्) करता हूं। और (अप्रतीतं) किसी से मुकाबला न किया जाकर (मां) मुझको और मेरे (दैव्यं सहः) विजिगीषु राजा के योग्य शत्रु पराजयकारी बल को (नकिः वरते) कोई भी वारण नहीं करता।

और (यत्) जिस (मा) मुझको (सोमासः) नाना ऐश्वर्य और (यत्) जिसको (उक्था) नाना स्तुति वचन (ममदन्) हर्षित करते हैं उस मुझ से (उभे) दोनों (अपार) अपार, अगणित (रजसी) स्वपक्ष परपक्ष के सैन्य और प्रजाजन (भयेते) भय करते हैं। (२) मैं परमेश्वर समस्त लोकों को बनाता। मैं 'विश्वकर्मा' हूं। मेरे (अप्रतीतं) अप्रज्ञात, देव, सूर्यादि में विद्यमान बल और स्वरूप को सब सर्वोपरि मानते हैं, उसकी स्पर्द्धा कोई नहीं करता, सब उत्पन्न पदार्थ जीवादि और सब स्तुति मुझे प्रसन्न करते, दोनों अपार आकाश और भूमि मुझ से भय करते हुए मेरी शक्ति से चल रहे हैं।

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥

भा०—हे राजन्! (ता विश्वा भुवनानि) वे नाना समस्त उत्पन्न पदार्थ राष्ट्र के उत्पन्न जीवगण को (तस्य ते विदुः) उस तेरे ही अधीन जानते हैं। हे (वेधः) राज्यकर्त्तः! हे विद्वन्! तू (वरुणाय) सब कष्टों के वारक सर्वश्रेष्ठ, सर्व वरणीय राजा को (ता) इन नाना कार्यों का (प्र ब्रवीषि) अच्छी प्रकार उपदेश कर। हे राजन्! (त्वं) तू (वृत्राणि) बढ़ते शत्रुओं को और विघ्नों को (जघन्वान्) मारता हुआ और सब धनों को प्राप्त करता हुआ मेघों को आघात करते हुए वज्र के तुल्य (शृण्विषे) सर्वत्र सुना जाय। (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक! (वृतान्) सुरक्षित या व्यवहारकुशल (सिन्धून्) वेगवान् अश्वादि सैन्यों व मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य (अरिणाः) प्रेरित कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—विद्वान् लोग सब लोक उस परमेश्वर के ही जानते हैं। वह परमेश्वर विधाता ही उन सब ज्ञानों का श्रेष्ठ जनों को उपदेश करता है। वही विघ्नों, दुष्टों का नाश करता सुना जाता है, वही वेगवान् नदों, समुद्रादि को चला रहा है।

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥

भा०—(दौर्गहे) शत्रु जिसको बड़ी कठिनता से विजय कर सके ऐसे किले या राष्ट्र के (बध्यमाने) बंध जाने, प्रबंध द्वारा सुव्यवस्थित करने पर (सप्त ऋषयः) देह में शिरस्थ प्राणों के तुल्य सात प्रकार के (ते ऋषयः) वे आप्त विद्वान् पुरुष ही (अत्र) इस राष्ट्र में (अस्माकम्) हमारे (पितरः) पालक (आसन्) होते हैं । (ते) वे ही (त्रसदस्युम्) दस्युओं को भयभीत करने वाले और भयभीत शत्रुओं को उखाड़ देने वाले (अस्याः इन्द्रं न) इस भूमि के स्वामी सूर्य के तुल्य तेजस्वी (वृत्रतुरम्) विघ्नकारी गणों के नाशक (अर्धदेवम्) राष्ट्र के समृद्ध अंश की कामना वाले वा सबके बराबर राष्ट्र का आधा अंश लेने हारे बलवान् पुरुष को (आ अयजन्त) आदर पूर्वक प्राप्त करते हैं । (२) अध्यात्म में—दौर्गह देह है । उसमें जीव बद्ध है उसके सातों शिरस्थ प्राण ऋषि हैं । वे ही आत्मा की उपासना स्वामिवत् करते हैं ।

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे वरुण, सर्वश्रेष्ठ ! सब संकटों और शत्रुओं के वारण करने हारे ! (पुरुकुत्सानी) बहुत से वज्रधर सैनिकों को ले जाने वाली बड़ी भारी सेना (हव्येभिः) स्वीकार करने योग्य नमस्कार आदि आदर वचनों और अन्नों द्वारा (वाम् अदाशत्) आप दोनों को आदर प्रदान करती है । (अथ) उसके बाद आप दोनों भी (त्रसदस्युं) दुष्ट शत्रुओं को भयकारी (वृत्रहणं) विघ्नकारियों के नाशक (अर्ध-देवम्) आधे जगत् के प्रकाशक सूर्यवत् तेजस्वी, वा समृद्ध राष्ट्र के इच्छुक (राजानम्) सर्वप्रकाशक

राजा को (अस्या) इस भूमि के शासनार्थ पति रूप से (ददथुः) प्रदान करता है ।

राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् १०।१८।

भा०—(गावः यवसेन) गौ आदि पशु बुस आदि से जिस प्रकार खूब प्रसन्न और तृप्त होते हैं । उसी प्रकार (वयं) हम लोग (देवाः) दानशील, तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (हव्येन) दान देने वा लेने योग्य ज्ञान वा धन आदि से (राया) ऐश्वर्य से (ससवांसः) सुखपूर्वक रहते हुए (मदेम) सुखी हों । हे उक्त दोनों विद्वान् जनो ! (युवं) आप दोनों (विश्व-हा) सर्वदा, (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण (अनपस्फुरन्तीम्) न तड़पती गौ के समान कष्टों से पीड़ित न होती हुई (तां धेनुम्) उस सर्वैश्वर्य-दुघा, प्रजा, भूमि और उत्तम दृढ़ निश्चय प्रज्ञा को देने वाली वाणी को (धत्तम्) धारण पोषण करो और अन्यों को प्रदान करो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[४३]

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, त्रिष्टुप् । २, ३, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥

भा०—स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन करते हैं । (कः उ श्रवत्) कौन है जो स्तुतियों और उत्तम वाणियों को श्रवण करता है । और (यज्ञियानां) यज्ञ अर्थात् दान, मान, सत्कार और देववत् पूजा के योग्य पुरुषों में से (कतमः) कौन दानशील वा कामनाशील, विज-

येच्छुक, है जो (वन्दारु) वन्दना योग्य, उत्तम स्तुति वचन को (जुषाते) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है। और (अमृतेषु) दीर्घजीवी, अमृत, अमरण-धर्मा पुरुषों में से (कस्य) किसके (हृदि) हृदय में (प्रेष्ठाम्) अति प्रिय (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति से युक्त (सु-हव्याम्) उत्तम रीति से आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य (देवीम्) शुभ कामना वाली विदुषी स्त्री को (श्रेषाम) लगावें अर्थात् उत्तम सुशील, कन्यारत्न को किसकी हृदयंगमा प्रियतमा बनावें।

को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत॥ २॥

भा०—(यम्) जिसको (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष की (दुहिता) पुत्री, उषा या प्रभात वेला के समान कान्तिमती, उज्ज्वल गुण-रूप वाली कन्या (अवृणीत) पति रूप से वरण करे। ऐसे (कम्) किस (द्रवद्-अश्वम्) अति तीव्र वेग से जाने वाले अश्वों से युक्त (रथम्) रथ के समान (द्रवत्-अश्वम्) द्रुत, प्रेम-पूर्ण आत्मा वाले (रथं) रमण योग्य पुरुष को (आहुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं। (कः मृळाति) कौन पुरुष कन्या को सुख देने में समर्थ है, (कतमः) कौनसा (आ-गमिष्ठः) आने वालों में सबसे श्रेष्ठ, आदर योग्य है, (देवानाम् उ) कन्या को चाहने वाले विद्वान् वरों में से भी (कतमः) कौनसा (शं-भविष्ठः) सबसे अधिक कल्याण और सुख को देने वाला है। यह निर्णय करके उसी पुरुष को कन्या वरण करे।

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम्।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा॥३॥

भा०—(परितक्म्यायाम्) रात्रि के व्यतीत हो जाने पर जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य (ईवतः द्यून्) गुज़रते हुए गतिशील प्रकाशों को प्राप्त होता

और (शक्तिं न) उत्तरोत्तर शक्तिवान् (शक्ति गच्छति) अधिक सामर्थ्य को भी प्राप्त करता है। उसी प्रकार हे वर, वधू! हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों भी (ईवतः द्यून्) आगामी दिवसों में (परितक्म्यायाम्) सब तरफ़ से कष्ट वा उपहास वाली सृष्टि में या वेला में (मक्षू हि) शीघ्र ही (शक्तिं गच्छथः स्म) अधिकाधिक शक्ति को प्राप्त करो। कितनी ही संकट दशा हो वा लोक-हंसाई हो तो भी आप दोनों उत्तरोत्तर शक्ति प्राप्त करते जाओ। आप दोनों (दिव्या सुपर्णा) सूर्य से उत्पन्न दिव्य दो रश्मियों के तुल्य (दिवः आ जाता) एक दूसरे की कामना से आदरपूर्वक एक दूसरे के आश्रय पर रहते हुए। (दिव्या सुपर्णा) दिव्य कान्तियुक्त शुभ, सुखकारी पालन शक्ति से युक्त होकर (शचीनां) उत्तम शक्तियों, वाणियों और बुद्धियों के बीच में भी (कया) अति सुखमयी मति या वाणी से (शचिष्ठा) अतिशय शक्ति और वाणी से युक्त, सबसे श्रेष्ठ (भवथः) होकर रहो। शक्ति युक्त होने से स्त्री पुरुष दोनों 'शची' हैं, वे उत्तम वाणी, मति होने से सब स्त्री पुरुषों में उत्तम होवें।

का वां भूदुप॑माति॒ः कया॑ न॒ आश्वि॑ना गमथो हू॒यमा॑ना।
को वां॑ म॒हश्चि॒त्त्यज॑सो अ॒भीक॑ उरु॒ष्यतं॑ माध्वी दस्रा न ऊ॒ती॥४॥

भा०—हे वर वधू! विवाहित स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों की (का) कौनसी (उपमातिः भूत्) उपमा हो। हे (अश्विना) एक दूसरे के लिये 'अश्व' अर्थात् भोक्ता आत्मा से युक्त वा शुभ गुणों से युक्त स्त्री पुरुषो! या उत्तम अश्वों पर आरूढ़ वर वधू! आप दोनों (कया) किस वाणी से (हूयमाना) स्तुति किये जाकर (नः आगमथः) हमें प्राप्त होते हो। हमारे बीच में प्रेमपूर्वक रहो। (वां) आप दोनों के बीच में (कः) कौन (महः चित् त्यजसः) सबसे बड़ा पूज्य त्यागी है। आप दोनों (माध्वी) मधुर वचनों वा गुणों से युक्त (दस्रा) दुःखों के नाशक

होकर (नः उती) हमें अपने ज्ञान, रक्षा, अन्नादि तृप्तिकारक साधन से (अभीके) समीप रहकर (उरुष्यतम्) रक्षा करो।

उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम्।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥

भा०—(वां) आप दोनों का (रथः) रथ (द्याम्) पृथिवी को (उरु नक्षति) खूब व्यापे, भूमि पर वेग से चले, और (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का रथ (समुद्राद् अभि आ नक्षत्) समुद्र तक भी जावे। विद्वान् लोग (माध्वी) मधुर गुणों से युक्त (वां) आप दोनों पर (मध्वा) मधुर अन्न से (मधु प्रुषायन्) मधुर पदार्थों की वृष्टि करें। (वाम्) आप दोनों को (पृक्षः) प्रेम से सम्बद्ध जन (सीम्) सब ओर से प्राप्त हों और (पक्वाः वां सीं भुरजन्त) परिपक्व ज्ञान वाले विद्या-वयो-वृद्ध जन आप दोनों को सब ओर से प्राप्त हों। इसी प्रकार अन्न फल, समृद्धियां भी प्राप्त हों।

सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन्।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥

भा०—(सिन्धुः) नदी वा समुद्र के समान ज्ञानप्रवाह और गंभीर अगाध ज्ञान वाला पुरुष (वां) आप दोनों को (रसया) उत्तम वाणी से (असिञ्चत्) अभिषिक्त करे, विद्वान् बनाकर स्नातक बनावे। और (वयः) कान्तिमान्, रक्षाकारी (अरुषासः) दोषरहित, दीप्ति-युक्त जन (घृणा) दीप्ति और स्नेह से (परि ग्मन्) किरणों के तुल्य तुम्हें प्राप्त हों और (वाम्) तुम दोनों का (यानं) गमन-साधन रथादि वा संसार मार्ग का गमन (तत् उ) उसी प्रकार पूर्वप्राप्त शिक्षानुसार, (अजिरं) शीघ्रतायुक्त वा हानिरहित (सुचेति) जाना जाय। (येन) जिससे आप दोनों (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति के सदा (पती भवथः)

परिपालक होकर रहो। कभी हीन आचारवान् होकर कलङ्कित न होकर सदा तेजस्वी बने रहो। सूर्य की कान्ति सत्यता है। सदा सचाई पर दृढ़ रहो।

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥१९॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! (इह इह) इस जगत् में स्थान २ पर (यत्) जो व्यवहार, वाणी वा (सुमतिः) उत्तम ज्ञान वाली बुद्धि, (समना वां) समान चित्त वाले तुम दोनों को (पपृक्षे) सुसंगत करे, परस्पर प्रेम से सम्बद्ध कर मिलाये रक्खे (सा इयम्) वह यह शुभ मति (अस्मे) हमें भी प्राप्त हो। हमारे कल्याण के लिये हो। हे (वाजरत्ना) ज्ञान, अन्न, ऐश्वर्यादि में रमण करने वाले स्त्री पुरुषो! (युवं) आप दोनों (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष की (उरुष्यतम्) सदा रक्षा करो। हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो! दोनों की (कामः) परस्पर की कामना (युवद्रिक् श्रितः ह) आप दोनों में एक दूसरे को सदा प्राप्त होकर एक दूसरे पर आश्रित हो। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[४४]

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी। अश्विनौ देवते छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। भुरिक् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) पूर्वोक्त रूप से अश्व अर्थात् अपनी इन्द्रियों को उत्तम अश्वों के समान अपने वश करने वाले पुरुषो! (अद्य) आज

(वयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों के (तम्) उस (रथम्) रथ और रथ के तुल्य इस देह का (हुवेम) उत्तम रीति से वर्णन करें जो (पृथुज्रयाम्) अति विस्तृत गति वाला, बहुत काल तक जीने में समर्थ (गोः सम्-गतिम्) वाणी और इन्द्रियों से चिरकाल तक अच्छी प्रकार से युक्त रहे। और (वन्धुरायुः सूर्याम्) आधार काष्ठ वाला रथ जिस प्रकार 'सूर्या' अर्थात् कान्तिमती नव वधू को अपने में धारण करता है उसी प्रकार जो देह रूप रथ (वन्धुर युः) उत्तम २ भोगों की कामना करता हुआ भी (सूर्याम्) सूर्य की उषाकालिक प्रसन्न मुख कान्ति को (वहति) धारण करे और जो (गिर्वाहसम्) वाणी को धारण करने वाले (पुरु-तमम्) 'पुरु' अर्थात् इन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ, (वसूयुम्) देह में बसे इन्द्रियों के स्वामी आत्मा को भी, वधूसहित वर के समान चिरकाल तक धारण करें।

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

भा०—हे (दिवः नपाता) परस्पर की कामना से एक दूसरे को बांधने वालो! वा हे ज्ञान और परस्पर कामना को न गिरने देने वाले सदाप्रिय स्त्री पुरुषो, दम्पति जनो! हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय! स्त्री पुरुषो! तुम दोनों (देवता) दिव्य गुणों से युक्त, लेन देन, परस्पर इच्छा पूर्ति आदि कार्यों में कुशल होकर (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (तां) उस (श्रियम्) लक्ष्मी को (वनथः) प्राप्त करो और (यत्) जब (ककुहासः) उत्तम अश्व (रथे) रथ में लगाकर (वां वहन्ति) तुम दोनों को वहन करते हैं (वा उत्तम श्रेष्ठ जन वा सर्व दिशावासी जन तुमको (रथे) रमणीय कार्य में धारण करें तब (पृक्षः) अन्नादि से तुल्य आपस के उत्तम सम्पर्क, सम्बन्ध, स्नेह आदि (युवोः) तुम दोनों के (वपुः) शरीरों को (सचन्ते) सुखकर हों।

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों में से (अद्य) आज (कः) कौन (रातहव्यः) दान देने योग्य अन्नादि उपभोग, और उत्पन्न पुत्रादि के पालन के लिये (करते) यत्न करता है। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, बल, धनादि के (पूर्व्याय) पूर्व विद्वानों से निर्धारित किये (वनुषे) विभाग और सेवन के लिये (कः) कौन (करते) यत्न करता है और (कः येमानः) कौन यम नियम पालक आप दोनों को या आप दोनों में से (नमः आ ववर्तत्) उत्तम अन्न, आदर आदि का व्यवहार करे। वह परस्पर के कर्त्तव्य अवश्य जानते रहो।

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम्।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले, सत्य प्रतिज्ञा वाले स्त्री पुरुषो ! (हिरण्ययेन रथेन) लोह सुवर्णादि से जटित रथ से जिस प्रकार उत्तम परिषदादि में जाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (इमं यज्ञम्) इस परस्पर के संगति से बने गृहस्थ रूप पवित्र यज्ञ को (हिरण्ययेन) परस्पर हितकारी और रमणीय आचरण से बने (रथेन) एक दूसरे को रमाने वाले व्यवहार से (उपयातम्) प्राप्त होवो। (सोमस्य) सोम अर्थात् उत्तम सन्तान के निमित्त (मधुनः) मधुर दुग्ध, अन्न आदि ओषधि का (पिबाथः) पान करो। और (विधते जनाय) कर्त्ता पुरुष के वंश में सञ्चालन के लिये (रत्नं) दोनों मिल कर पुत्र 'रत्न' को (दधथः) आधान वा धारण करो।

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (हिरण्ययेन सुवृता रथेन दिवः पृथिव्याः यतः) राजा अमात्य या राजा रानी उत्तम सुवर्णादि से सुशोभित, उत्तम रीति से चलने वाले रथ से आकाश और पृथिवी के मार्ग से जाते हैं उसी प्रकार हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों भी (हिरण्ययेन) हितकारी और मनोहारी (सुवृता) आदरणीय उत्तम आचार से युक्त (रथेन) शुभ व्यवहार से (दिवः पृथिव्याः) ज्ञान मार्ग से और पृथिवी के मार्ग से (नः अच्छ आ यातम्) हमें प्राप्त होवो। तुम दोनों का (यत्) जो (पूर्व-नाभिः) पूर्व विद्यमान माता पिता गुरुजनादि द्वारा बनाया सम्बन्ध (सं ददे) तुम दोनों को एकत्र बांध रहा है (वाम्) आप दोनों के उस प्रेम दाम्पत्य सम्बन्ध को (देवयन्तः) नाना कामनाओं से प्रेरित (अन्ये) अन्य, स्वार्थी लोग (मा नियमन्) न रोकें, विच्छिन्न, विघ्नयुक्त न करें।

नू नो॑ र॒यिं पु॑रु॒वीरं॑ बृ॒हन्तं॒ दस्रा॒ मिमा॑थामु॒भये॑ष्व॒स्मे ।
नरो॒ यद्वा॑मश्विना॒ स्तोम॒माव॑न्त्स॒धस्तु॑तिमाज॒मी॒ळ्हासो॑ अग्मन् ॥६॥

भा०—हे (दस्रा) परस्पर के कष्टों को दूर करने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मे) हमारी वृद्धि और कल्याण के लिये (उभयेषु) राजा प्रजा वा स्त्री-वर्ग और पुरुष-वर्ग दोनों के निमित्त (पुरुवीरं) बहुत से वीरों वा पुत्रों से युक्त (बृहन्तं रयिं नु मिमाथाम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य उत्पन्न करो। (यत्) क्योंकि (आजमीढासः नरः) 'अज' अर्थात् अविनाशी आत्माओं में वा दुष्ट वृत्तियों को परे फेंकने वाले जितेन्द्रियों में मेघ तुल्य ज्ञान की वृष्टि करने वाले विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों के लिये (स्तोमं) उत्तम उपदेश (आवन्) करते और (सह स्तुतिं आ अग्मन्) एक साथ ही स्तुति उपदेश, धर्म आदि का विधान करते हैं।

इ॒हेह॒ यद्वां॑ सम॒ना प॑पृ॒क्षे सेयम॒स्मे सु॑म॒तिर्वा॑जरत्ना ।
उ॒रु॒ष्यतं॑ जरि॒तारं॑ यु॒वं ह॑ श्रि॒तः कामो॑ नासत्या युव॒द्रिक् ॥७।२०॥

भा०—व्याख्या देखो पूर्व सूक्त की ७ वीं ऋचा। इति विंशो वर्गः ॥

[४५]

वामदेव ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४ जगती । ५ निचृज्जगती । ६ विराड् जगती । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि । पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥

भा०—गृहस्थ पक्ष में—(भानुः सानवि उत् इयर्ति) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य पर्वत के शिखर पर से ऊपर उगता है, उसी प्रकार (एषः—स्यः) यह वह (भानुः) तेजस्वी पुरुष (उत् इयर्ति) उदय को प्राप्त हो। और जिस प्रकार (दिवः परिज्मा रथः) भूमि पर वेग से जाने वाला रथ जोड़ा जाता है उसी प्रकार (अस्य) इसका (रथः) रमणशील उत्तम आत्मा या गृहस्थ रूप रथ भी (दिवः) उसकी कामना करने वाली स्त्री के प्रति (परिज्मा) जाने वाले (सानवि) उन्नत कर्त्तव्य पालन के निमित्त, उच्च उद्देश्य से (युज्यते) जुड़े । (अस्मिन्) इस गृहस्थ रूप रथ में (पृक्षासः) परस्पर सम्बद्ध, स्नेह से युक्त (त्रयः) तीन (मिथुनाः) परस्पर जुड़े हुए जन (अधि रप्शते) विराजते हैं और (तुरीयः) चौथा (दृतिः) मेघ के समान ज्ञान का वर्षक, विद्वान् पुरुष (मधुनः) अन्नवत् ज्ञान का (विरप्शते) विविध प्रकार से उपदेश करता है । अथवा वह (मधुनः दृतिः) मधुर मधु वा जल से भरे चर्मपात्र के समान ज्ञान से पूर्ण सर्वोपरि विराजे । 'त्रयः मिथुनाः'—त्रिष्वपि पदार्थेषु मिथुनशब्दस्तैत्तिरीयके दृश्यते । माता पिता पुत्रस्तदेतन्मिथुनमिति । तै० ब्रा० १।६।३॥ गृहस्थ में गृहपति के आश्रय तीन जन माता, पिता, पुत्र हैं उसपर चौथा 'दृति' अर्थात् मेघ के तुल्य सर्वोपकारक परिव्राजक वा विद्वान् पुरोहित वा आचार्य है । जिस प्रकार सूर्य ऊपर उठे तो जल,

वायु, तेज तीनों मिलते हैं और मेघ चौथा सम्पन्न होता है उसी प्रकार राजा वा गृहपति उदय हो माता, पिता, पुत्र और राजा प्रजा और ऐश्वर्य विराजते और चौथा विद्वान् पापनाशक और राष्ट्र में सेनापति शत्रु-विदारक सर्वोपरि विराजता है।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः व्युष्टिषु) प्रभात वेला के प्रकट होने की वेलाओं में (मधुमन्तः) तेज से वा आदित्य से युक्त (रथाः) रसोत्पादक (अश्वासः) आशुगामी, आकाश में फैलने वाले किरण (परिवृतम् तमः) चारों तरफ फैले अन्धकार को (आ अप ऊर्णुवन्तः) सर्वत्र दूर करते हुए और (शुक्रम्) शुद्ध प्रदीप्त (स्वः) प्रकाश (आ तन्वन्तः) फैलाते हुए (उद् ईरते) प्रकट होते हैं उसी प्रकार हे गृहस्थ स्त्री पुरुषो! (उषसः वि-उष्टिषु) उषाकाल अर्थात् जीवन की प्रभात वेला के विविध प्रकार से प्रकट होते हुए, ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास आदि के काल में (वाम्) तुम दोनों के हितार्थ (मधुमन्तः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न (पृक्षासः) मेघ तुल्य ज्ञानाभिषेक करने वाले (रथाः) रथवत् ज्ञान मार्ग में दूर तक ले जाने वाले रम्य-स्वभाव (अश्वासः) शुभ गुणों से व्याप्त, अश्व वा सूर्य के समान बलवान् तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (परीवृतं) चारों तरफ घिरे (तमः) शोक दुःख और अज्ञान को (अप ऊर्णुवन्तः) दूर करते हुए (शुक्रं न स्वः) वीर्य, बल वा जलवत् ज्ञानोपदेश को भी (आ तन्वन्तः) सर्वत्र फैलाते हुए (रजः उत् ईरते) समस्त लोकों या राजस भावों के भी ऊपर उठते हैं। (२) इसी प्रकार गृहस्थ उषावत् कमनीय कन्या के विविध गृहस्थोचित कामनाओं व व्यवहारों के उदय होने पर (पृक्षासः मधुमन्तः) मधुर गुणयुक्त अन्न (तमः अपोर्णुवन्तः शुक्रं तन्वन्तः रजः उत् ईरते) खेद वा भूख आदि दुःख दशा

को दूर करते हुए, वीर्य बल उत्पन्न करते हुए सब राजस भावों के ऊपर उठें, सत्व को उत्पन्न करें।

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम्।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना॥३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मधुपेभिः आसभिः) अन्न, जल को पान करने के अभ्यासी मुखों से (मध्वः) नाना मधुर जल और अन्नों का ही (पिबतम्) पान करो। इसी प्रकार (मधुपेभिः आसभिः) मधुर, सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले (आसभिः) मुखों अर्थात् कान, आंख, नाक आदि ज्ञान-ग्रहणशील द्वारों से (मधु) ज्ञान को प्राप्त करो। (उत) और (मधुने) अन्न के प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार रथ, गाड़ी आदि जोड़ी जाती है उसी प्रकार (मधुने) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (प्रियं रथम्) अति प्रिय, रसस्वरूप और परम रमणीय आत्मा को योग द्वारा समाहित वा परस्पर प्रेमवश मिलाये रक्खो। और (मधुना) जल और अन्न से जिस प्रकार (पथः वर्तनिं आजिन्वथः) मार्ग को तैयार कर लिया जाता है, उसी प्रकार (मधुना) वेद ज्ञान से (पथः) संसार मार्ग में (आ वर्तनिं) वार २ के आवागमन को (जिन्वथः) वश करो। जिस प्रकार यात्रा में (अश्विनौ) रथ पर स्थित स्वामी-स्वामिनी वा स्वामी-सारथी दोनों (मधुमन्तं दृतिं वहेथे) अन्न वा जल से भरे पात्रों को रखते हैं जिससे मार्ग के भूख प्यास की निवृत्ति होती है उसी प्रकार विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (मधुमन्तं) उत्तम ज्ञान से युक्त (दृतिम्) सब संकटों और संशयों के काटने वाले शास्त्र वेद का (वहेथे) धारण किया करें।

हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ४

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार (वां) तुम दोनों के (हंसासः) अश्व (मधुमन्तः) मधुर रूप और अति वेग से युक्त, (अस्रिधः) अपीड़ित, (हिरण्यपर्णाः) सुवर्ण लोहादि के बने पक्षो, वा चलने के साधन (उहुवः) शकट गाड़ी आदि को ढोने वाले होवें उसी प्रकार (वां) आप दोनों के हितार्थ (हंसासः) राजहंसों के समान स्वच्छ, निर्लेप, शुद्धाचारवान्, अहंकार आदि दोनों से युक्त जितेन्द्रिय सदा (मधुमन्तः) मधुर आत्मज्ञान और वेदज्ञान से सम्पन्न हों। वे (अस्रिधः) कभी पीड़ित न हों, वे सदा (हिरण्यपर्णाः) हितकारी और रमणीय पालन और ज्ञान साधनों से युक्त, वा सुवर्ण के सदृश कान्तिमान् पांख वाले राजहंसों के समान, (हिरण्यपर्णाः) हिरण्य अर्थात् आत्मा की शक्ति का ज्ञान वा पालन करने वाले, (उहुवः) अन्यों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले, (उषर्बुधः) प्रभात काल, ब्राह्म मुहूर्त्त में जागने वाले और जीवन के उषाकाल, शैशव वा कौमार काल में ज्ञानार्जन करने वाले, (उदप्रुतः) जल से और ज्ञान से स्नान करने वाले, (मन्दिनः) सदा हृष्ट प्रसन्न, (मन्दि-निः-स्पृशः) आनन्दमय परमेश्वर को योग द्वारा प्राप्त करने वाले हों। (मध्वः मक्षः न) मधु मक्खी जिस प्रकार मधु को प्राप्त करती है उसी प्रकार आप लोग भी (मध्वः) ज्ञान के (सवनानि) नाना ऐश्वर्यों और ज्ञान-यज्ञों को (गच्छथः) प्राप्त किया करो।

स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥

भा०—(यत् निक्तहस्तः तरणिः अद्रिभिः मधुमन्तं सोमं सुषाव) जिस प्रकार शुद्ध किरणों वाला सूर्य मेघों द्वारा मधुर रस से युक्त ओषधि गण को सींचता है, और जिस प्रकार (निक्तहस्तः विचक्षणः अद्रिभिः मधुमन्तं सोमं सुषाव) यज्ञ में शुद्ध पवित्र हाथों वाला विद्वान् अध्वर्यु शिलाखण्डों से मधुर रस युक्त सोम रस को बनाता है, उसी प्रकार

(यत्) जब (निक्तहस्तः) शुद्ध पवित्र साधनों से युक्त, (तरणिः) संसार-मार्ग से पार जाने में समर्थ (विचक्षणः) विशेष ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुष (अद्रिभिः) मेघवत् उदार गुरुजनों से वा पर्वत के समान अभेद्य व्रतादि साधनों से (मधुमन्तं सोमम्) ज्ञान सम्पन्न आत्मा को (सुषाव) ज्ञान से अभिषिक्त निष्णात वा ऐश्वर्य सम्पन्न कर लेता है, तब हे (अश्विना) शुभ गुणों से युक्त जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (प्रति वस्तोः) प्रति दिन (सु-अध्वरासः) उत्तम यज्ञ के करने वाले, दृढ़ (मधुमन्तः) ज्ञान-सम्पन्न (अग्नयः) उत्तम ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष, (उस्राः) किरणों के तुल्य प्रकाशवान् होकर (जरन्ते) उपदेश करें ।

आ॒के॒नि॒पासो॒ अह॑भि॒र्दवि॑ध्वतः॒ स्व१॒॑र्ण शु॒क्रं त॒न्वन्त॒ आ रजः॑ ।
सूर॑श्चि॒दश्वा॑न्युयुजा॒न ई॑यते॒ विश्वाँ॒ अनु॑ स्व॒धया॑ चेतथस्प॒थः ॥६॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार (सूरः अश्वान् युयुजानः ईयते) सूर्य अपने व्यापक किरणों को सर्वत्र फैलाता हुआ आकाश में गति करता है, और (अहभिः दविध्वतः आकेनिपासः रजः स्वः न शुक्रं आतन्वन्तः भवन्ति) दिन के समयों में तीव्र वेग से आने वाले समीप २ गिरने वा जल पान करने वाले किरण ही अति दीप्त ताप के तुल्य या सूर्य के समान ही उज्ज्वल प्रकाश वा जल को उत्पन्न करते हैं, (स्वधया अनु विश्वान् चेतयन्ति) अन्न और जल से सबको चेतना देते हैं उसी प्रकार (सूरः) तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (अश्वान्) अश्वों, अश्ववान् रथों और विद्यादि शुभ गुणों से युक्त शिष्यों को और अध्यात्म में अपने इन्द्रियगण को (युयुजानः) सत्-कार्य में नियुक्त करता और योग से वश करता हुआ (ईयते) आगे बढ़ता है । और (आकेनिपासः) समीप में रहने वा समस्त सुख-मय ब्रह्मानन्द का पान करने वाले (दविध्वतः) पाप मलादि को दूर करने वाले बलवान्, अवधूतपाप्मा पुरुष (अहभिः) दिनों दिन (स्वः न) ज्ञानोपदेश के समान (शुक्रं) वीर्यरक्षा, ब्रह्मचर्य और शुक्र शुद्धाचार

को और (रजः) तेज को (आतन्वन्तः) सर्वत्र अनुष्ठान करते हैं। (अनु) उनके अनुकूल रहकर ही हे नर-नारी जनो ! आप लोग भी (स्वधया) ज्ञान, शक्तिसम्पन्न होकर (विश्वान् पथः) समस्त कर्त्तव्य-मार्गों को (चेतथः) जानो।

प्र वा॒मवोचमश्विना धियं॒धा रथः॒ स्वश्वो॑ अ॒जरो॒ यो अस्ति॑।
येन॑ स॒द्यः परि॒ रजां॑सि या॒थो ह॒विष्म॑न्तं त॒रणिं॑ भो॒जमच्छ॑ ॥७।२१।४

भा०—जिस प्रकार (रथः धियन्धाः सु-अश्वः अजरः) रथ, नाना गति को धारण करने वाला, उत्तम अश्व से युक्त और दृढ़ हो (येन सद्यः रजांसि परि याथः) जिससे रथी सारथी बहुत से लोकों, देशों को पारकर लेते हैं, वह (हविष्मान् तरणिः भोजः) नाना ग्राह्य पदार्थों से युक्त, वेग-गामी, सुरक्षा से युक्त होता है, विद्वान् शिल्पी उसकी रचना का अश्व के स्वामियों को उपदेश करता है उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (रथः) अति रमण करने योग्य आनन्दमय आत्मा (धियं-धाः) धारणावती बुद्धि और कर्मों का धारण करने वाला, (सु-अश्वः) उत्तम मन इन्द्रियों से युक्त, (अजरः) अविनाशी, जरा से रहित और वाणी द्वारा न कथन करने योग्य, अवाच्य (अस्ति) है (येन) जिसके द्वारा (सद्यः) शीघ्र ही (रजांसि) समस्त लोकों, समस्त राजसविकारों को (परियाथः) आप पारकर सकते हो, मैं विद्वान् पुरुष उस (हविष्मन्तं) भक्तिमान् (तरणिं) सबको भवसागर से पार उतारने में समर्थ, (भोजम्) सबके पालक और स्वयं ऐश्वर्य के भोक्ता आत्मा को ही (अच्छ) लक्ष्य करके (वाम्) आप दोनों को (प्र अवोचम्) उपदेश करूं। एकोनविंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[४६]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ५, ६ ७ गायत्री। ४ निचृद्गायत्री ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु ।
त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् और स्वतः ज्ञानवान्, अमाद-आलस्य रहित पुरुष ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से (पूर्वपाः) पूर्व नियत धर्मों और पूर्ण ज्ञानी और पूर्व विद्यमान माता पिता गुरु आदि का पालक (असि) हो । तू (दिविष्टिषु) ज्ञान-प्रकाश, कामनादि के प्राप्ति, ज्ञान आदि कार्यों में (सुतं) उत्तम रीति से उत्पन्न किये (मधूनां अग्रं) अन्नों, जलों और ज्ञानों में से उत्तम अन्न जल, ज्ञान आदि का (पिब) पान कर ।

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवान् एवं बलवान् पुरुष ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् और शत्रुहन्तः ! तुम दोनों (सुतस्य) उत्पन्न, ऐश्वर्यमय राष्ट्र को प्राप्त कर तृप्त होवो । हे (वायो) बलवान् पुरुष ! तू (नियुत्वान्) नियुक्त, अधीन, नाना अश्वारोही सैनिकों का स्वामी और (इन्द्र-सारथिः) ऐश्वर्यवान् पुरुष का सारथि के समान सहायक होकर (नः) हमें (शतेन अभिष्टिभिः) सैकड़ों अभिलषित कार्यों से राष्ट्र का उपभोग कर ।

आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः ।
वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे वायुवद् बलवान् पुरुष ! (वां) आप दोनों के (सोमपीतये) राष्ट्रैश्वर्य के उपभोग और पालन के लिये (सहस्रं हरयः) सहस्रों मनुष्य (प्रयः) अन्न आदि तृप्तिकारक पदार्थ (अभि वहन्तु) प्राप्त करावें ।

रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरं ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! दोनों आप (हिरण्य-वन्धुरम्) लोह सुवर्ण आदि से बने, जड़े, दृढ़ आश्रयकाष्ठ से युक्त (दिवि-स्पृशं) पृथ्वी पर स्पर्शमात्र करने वाले, वा चलते समय न गड़ने वाले, वा वेग से आकाश से बात करने वाले (स्वध्वरं) उत्तम रीति से भीतर बैठे पुरुष पर बाहर का आघात, लगने आदि की आशंका से रहित, सुरक्षित, दृढ़ (रथं) रथ पर (आ स्थाथः) आदरपूर्वक बैठा करो। और सर्वत्र यात्रा किया करो। 'दिव्' शब्द से पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों का ग्रहण होता है इसलिये तीनों स्थानों में चलने वाले दृढ़ यानों का वर्णन कर दिया।

रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम्।
इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् राजन् ! सेनापते ! आप दोनों (पृथु-पाजसा रथेन) बड़े भारी बलशाली, बड़े विस्तृत पाद रूप चक्रों से युक्त, वेगवान् रथ से (दाश्वांसम्) दानशील प्रजाजन को (उप गच्छतम्) प्राप्त हो और (इह आगतम्) इस राष्ट्र में आया जाया करो।

इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा।
पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) राजन् ! हे बलवन् ! हे सेनापते ! (अयं) यह (सुतः) उत्पन्न पुत्रतुल्य ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजन है। आप दोनों सूर्य और वायु के तुल्य (स-जोषसा) समान भाव से प्रीतियुक्त होकर (देवेभिः) विद्वान्, विजियेच्छुक ब्राह्मणों और क्षत्रियों सहित (दाशुषः) करादि देने वाले प्रजावर्ग के (गृहे) गृह के समान राष्ट्र में रहते हुए (तं पिबतम्) उसका उपभोग और पालन करो।

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् ।
इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) विद्युत् वा सूर्य और पवन के समान तेजस्वी और बलवान् राजा और अमात्य, राजा वा सेनापति, नर नारी युगल जनो ! (इह) इस स्थान वा काल में (वां) आप दोनों का (प्रयाणं) उत्तम रीति से जाना (अस्तु) हो और (इह विमोचनम्) इस स्थान में आप दोनों का अश्वादि को रथ से पृथक् करने का स्थान हो। और (इह) इस स्थान में (वां) आप दोनों का (सोमपीतये) ऐश्वर्य, सुखादि भोगने वा अन्न जलादि पान करने के लिये स्थान हो । राजा, अमात्य, नरनारी आदि सभी का, जाने, विश्राम करने खाने आदि सभी का स्थान और काल नियमपूर्वक विभक्त होना चाहिये । इसी प्रकार आचार्य 'इन्द्र' है तो वायुवत् अप्रमादी, सर्वत्र जा २ कर विद्या ग्रहण करने वाले शिष्यगण 'वायु' हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[४७]

वामदेव ऋषिः ॥ १ वायुः । २—४ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, ३ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान सर्वोपकारक, बलवान् एवं ज्ञानवान् पुरुष वा प्रभो ! आचार्य ! मैं (दिविष्टिषु) ज्ञानप्रकाशक प्राप्त करने की साधनाओं में लगकर (शुक्रः) अति शुद्ध, तेजस्वी और जल के समान पवित्र और (शुक्रः) ब्रह्मचर्यादि से बल-वीर्यवान् होकर (ते मध्वः अग्रं) तेरे ज्ञान के सर्वोत्तम भाग को (अयामि) प्राप्त

करूं। हे (देव) सर्वप्रकाशक, ज्ञान बल आदि के देने वाले! तू (स्पार्हः) अति स्पृहा, प्रेम वा अभिलाषा करने योग्य है। तू (सोमपीतये) शिष्य के पालन, एवं अन्नादि रसों के उपभोग के लिये (नियुत्वता) अश्वों से युक्त रथ से और विजितेन्द्रिय चित्त से (आयाहि) हमें प्राप्त हो। शिक्षण कार्य में आचार्य गुरु आदि को जितेन्द्रिय होना आवश्यक है।

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक्॥ २॥

भा०—(इन्द्रः च वायो) हे इन्द्र! अज्ञान के नाशक, हे बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष! आप दोनों (एषां सोमानां) इन सौम्य भाव के शिष्यों की (पीतिम् अर्हथः) पालना करने योग्य हो। (आपः न) जल जिस प्रकार (सध्र्यक्) एक साथ ही (निम्नम्) नीचे के प्रदेश में आ बहते हैं इसी प्रकार (इन्दवः) द्रुतगति से आने वाले, प्रेमार्द्रहृदय शिष्य जन (युवां हि यन्ति) तुम दोनों को अवश्य प्राप्त हों। ज्ञान धनादि का दाता 'इन्द्र' और बल आदि का शिक्षक 'वायु'। इसी प्रकार राजा 'इन्द्र' और सेनापति 'वायु'। प्रेरणा योग्य सैनिक वा पदाभिषिक्त माण्डलिक और अन्नवत् प्रजा रूप सोम का पालन करें। वे आश्रय, रक्षा और वृत्ति से प्रेरित होकर स्वभावतः उनको प्राप्त होते हैं।

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये॥ ३॥

भा०—हे (वायो इन्द्रः च) हे महाबल सेनापते और हे राजन्! तुम दोनों (शुष्मिणा) बलवान् और (शवसः) सैन्य बल के पालक और (नियुत्वन्तः) नियुक्त हज़ारों लाखों सैन्य जनों सहित (सरथं) रथ सहित (नः ऊतये) हमारी रक्षा और (सोमपीतये) राष्ट्र-ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४॥२३॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक युगल ! हे (इन्द्रवायु) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवान् पुरुष ! हे (यज्ञवाहसा) परस्पर सत्संग मैत्रीभाव, दान-प्रतिदान आदि व्यवहार को धारण करने वालो ! (या) जो (वां) आप दोनों के (पुरु-स्पृहः) बहुतों को प्रिय और बहुत से धनों की चाहना करने वाले, (नियुतः) अधीन नियुक्त लक्षों जन, अश्वादि हैं (ता) उन सबको (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये (नि यच्छतम्) नियम में सुव्यस्थित रक्खो। अध्यात्म में—सूर्य और वायु, अग्नि तत्व और प्राण; इन दो प्रभु की शक्तियों के रूप में प्रभु का स्मरण है। सोम जीवगण हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४८]

वामदेव ऋषिः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३, ४, ५ भुरिगनुष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (विपः न) बुद्धिमान् (अर्यः) स्वामी या वैश्य जन (रायः) धनों की (वेति) रक्षा करता है उसी प्रकार हे (वायो) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष ! विद्वान् आचार्य और राजन् ! तू भी (विपः) बुद्धिमान् और शत्रुओं का कंपाने हारा, पाप-मलों को कम्पित कर त्यागने वाला (अर्यः) इन्द्रियगण और प्रजाओं का स्वामी होकर (अवीताः) अरक्षित (होत्राः) ग्रहण करने और आश्रय देने योग्य, भोग्य पदार्थों के समान उपभोग करने योग्य प्रजाओं की (विहि) रक्षा कर। हे आचार्य ! तू (होत्राः अवीताः) अगतिक, अज्ञानी अप्र-

दीप्त शिष्यवत् स्वीकार करने योग्य शिष्यों को (विहि) ज्ञान दीप्ति से प्रकाशित कर। (सुतस्य पीतये) प्रजा वा शिष्य जन को पुत्रवत् पालन करने और राष्ट्रैश्वर्य को ओषधि रस के तुल्य उपभोग करने के लिये (चन्द्रेण रथेन) आह्लादकारी रमणीय रथ और उपदेश से (आ याहि) प्राप्त हो।

नि॒र्यु॒वा॒णो अश॑स्ती॒र्नि॒युत्वाँ॒ इन्द्र॑सारथिः।
वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ बलवान्! तू (इन्द्र-सारथिः) ऐश्वर्यवान् राजा को सहायक बना कर (चन्द्रेण रथेन) सुवर्ण के बने रथ एवं सर्वाह्लादक, सर्वप्रिय व्यवहार से (नियुत्वान्) अपने अधीन नाना नियुक्त सैन्यों, अश्वों और भृत्यादि का स्वामी होकर (अशस्तीः) परस्पर हिंसा न करने वाली सौम्य स्वभाव, (निर्युवाणः) बलवान् पुरुषों से रहित वा नाना युवकों से युक्त प्रजाओं को (सुतस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग और रक्षा के लिये (आ याहि) प्राप्त कर।

अनु॑ कृ॒ष्णे वसु॑धिती ये॒माते॒ वि॒श्वपे॑शसा।
वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—(कृष्णे) एक दूसरे का आकर्षण करने वाले (वसुधिती) बसने वाले और बसने योग्य लोकों को धारण करने वाले (विश्व-पेशसा) समस्त विश्व के रूप आकाश और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार वायु व्यापता है उसी प्रकार हे (वायो) वायु के तुल्य व्यापक सामर्थ्य से युक्त बलवान् पुरुष! (कृष्णे) राष्ट्र में कृषि करने वाली और शत्रु का कर्षण और पीड़न करने वाली (विश्वपेशसा) सब प्रकार के द्रव्यों को धारण करने वाली (वसुधिती) बसे जनों को अन्न से और रक्षा से पालन

पोषण करने वाली होकर (अनुयेमाते) एक दूसरे के अनुकूल होकर नियम व्यवस्था में रहें। और तू (सुतस्य पीतये) उन दोनों को ऐश्वर्य के उपभोग और पुत्रवत् उनके पालन के लिये कटिबद्ध होकर (चन्द्रेण रथेन आयाहि) सुवर्ण लोहादि के बने रथ से सर्वाह्लादक रमणीय, सर्वप्रिय व्यवहार से उन दोनों को प्राप्त हो, अपने वश कर।

वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (वायो) बलवान्, वृक्षों को वायुवत्, शत्रुओं को निर्मूल करने में समर्थ पुरुष ! (त्वा) तुझको (नवतिः नव) ९९ या ९ × ९० = ८१० (युक्तासः) नियुक्त अधीन भृत्य, (मनोयुजः) तेरे साथ मनोयोग देकर (त्वा वहन्तु) तुझको अपने ऊपर अध्यक्ष रूप से धारण करें। तू १०० में से एक अध्यक्ष हो, तू शताध्यक्ष हो अथवा ९० की ९ टुकड़ियों के ९ अध्यक्षों सहित दसवां अध्यक्ष होकर सहस्राध्यक्ष वा सहस्र सैन्यपति हो। तू (सुतस्य पीतये चन्द्रेण रथेन आयाहि) राष्ट्रैश्वर्य के रक्षार्थ, धनैश्वर्य से युक्त रथ सैन्य से वा आह्लादक रम्य व्यवहार से राष्ट्र को प्राप्त हो।

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम्।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५॥२४॥

भा०—पूर्वोक्त कथन को विशद करते हैं। हे (वायो) वायुवत् शत्रूच्छेदक राजन् ! तू (पोष्याणां) पोषण करने योग्य वेतन-बद्ध भृत्य (हरीणां) मनुष्यों के (शतं) सौ के दल को (युवस्व) मिलाकर रख और उनपर शासन कर। (उत वा) और (सहस्रिणः) हज़ारों के स्वामी (ते) तेरा (रथः) रथ वा रथ-सैन्य (पाजसा) बलपूर्वक (आया तु) आवे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[४९]

वामदेव ऋषिः ॥ इन्द्राबृहस्पती देवते । छन्दः—निचृद्गायत्री । २, ३, ४, ५, ६ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

इदं वा॑मा॒स्ये॑ ह॒विः प्रि॒यमि॑न्द्राबृहस्पती ।
उ॒क्थं मद॑श्च शस्यते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् इन्द्र ! राजन् ! हे बृहती वेद वाणी के पालक विद्वान् पुरुषो! (वाम् आस्ये) आप दोनों के 'आस्य' अर्थात् मुख में (इदं) यह (प्रियं) प्रिय, तृप्तिकारक (हविः) उपादेय अन्न ग्राह्य वचन, ज्ञान, (प्रियम् उक्थं) और प्रिय, प्रीतिकारक वचन (मदश्च) और तृप्तिकारक हर्ष और (दमः) दम, दमन का अभ्यास (शस्यते) प्रशंसा करने योग्य हो। क्षत्रिय के पास उत्तम ऐश्वर्य और दमन बल हो, ब्राह्मण के पास उत्तम सात्विक अन्न, ज्ञानमय वचन और जितेन्द्रियता हो।

अ॒यं वां॒ परि॑ षिच्यते॒ सोम॑ इन्द्राबृहस्पती ।
चारु॒र्मदा॑य पी॒तये॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे महान् राष्ट्र वा बड़े भारी बल के पालक, बड़ी वाणी वेद के पालक राजन्, विद्वन् ! (अयं सोमः) यह राष्ट्रमय ऐश्वर्य और सोम्यस्वभाव युक्त शिष्य (वाम्) आप दोनों के अधीन रहने हारा होकर (परि षिच्यते) पात्र में जल के तुल्य परिषेक या अभिषेक, स्नान द्वारा आदर किया जाता है, राजा का अभिषेक और विद्याव्रती को स्नातक बनाया जाता है, वह (मदाय) आनन्द लाभ और इन्द्रिय-दमन अर्थात् ब्रह्मचर्य के निमित्त और (पीतये) राष्ट्र के उपभोग के लिये और व्रत के पालन के लिये (चारुः) उत्तम व्रताचरण करने में कुशल हो।

आ नं इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे वाणी के पालक जनो ! हे राजन्, विद्वन् ! आप दोनों (सोमपा) ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान का उपभोग या पान करने वाले राष्ट्र और शिष्य का पालन करने वाले हो। (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् पुरुष और ज्ञानद्रष्टा विद्वान् दोनों ही आप (सोमपीतये) ज्ञान और ऐश्वर्य के पान और राष्ट्र और शिष्य के पालन वा अन्नादि प्राप्त करने के लिये (नः गृहम्) हमारे गृह को (आ गच्छतम्) आइये ।

अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् ।
अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् राजन् ! बृहती सेना, प्रजा वा वेदवाणी के पालक और स्वामिन् विद्वन् ! (अस्मे) हमें (शतग्विनं) सैकड़ों भूमियों, गौ और वेदवाणियों से युक्त (अश्वावन्तं) अश्वों, अश्व सेना और उत्तम, सुयश, इन्द्रिय-दमन युक्त (सहस्रिणं) सहस्रों ऐश्वर्यों सहस्र ज्ञानों, सामवेद युक्त वा बलवान् महाव्रत रूप (रयिं) ऐश्वर्य का (धत्तं) पालन और धारण कराओ। 'शतग्वी' 'सहस्री' दोनों पद शतर्चि, सहस्रों मन्त्र युक्त वेद ज्ञान के उपलक्षक हैं ।

इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे वेदज्ञ विद्वन् ! (अस्य सोमस्य पीतये) इस 'सोम' के पान, उपभोग और राष्ट्र वा शिष्य आदि के पालन के लिये, (वयम्) हम (गीर्भिः) स्तुतियों और वाणियों द्वारा (सुते) अभिषिक्त हो जाने पर या उसके निमित्त आप दोनों को (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें ।

सोम॑मिन्द्राबृहस्पती॒ पिब॑तं दा॒शुषो॑ गृ॒हे ।
मा॒दये॑था॒ तदो॑कसा ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-बृहस्पती) ऐश्वर्यवन् ! हे वेदज्ञ विद्वान् ! वा बृहत् = महान् राष्ट्र के पालक बलाध्यक्ष ! आप दोनों (दाशुषः) आत्म समर्पक शिष्य वा प्रजाजन के (गृहे) गृह में (सोमं) उत्तम अन्नादि ऐश्वर्य का उपभोग और गृह में उत्पन्न पुत्र या शिष्य का (पिबतं) पालन करो । और (तदोकसा) उसके आश्रय स्थान में रहकर ही (मादयेथाम्) दोनों हर्षित होवो, अन्यों को हर्षित करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५०]

वामदेव ऋषिः ॥ १—९ बृहस्पतिः । १०, ११ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—
१—३, ६, ७, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ४, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १०
त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

यस्त॒स्तम्भ॒ सह॑सा॒ वि ज्मो अन्ता॒न्बृह॒स्पति॑स्त्रिषध॒स्थो रवे॑ण ।
तं प्र॒त्नास॒ ऋष॑यो॒ दीध्या॑नाः पु॒रो विप्रा॑ दधिरे म॒न्द्रजि॑ह्वम् ॥१॥

भा०—प्रथम परमेश्वर और आचार्य वा विद्वान् पुरोहित का वर्णन करते हैं । (यः) जो परमेश्वर (सहसा) बलपूर्वक (ज्मः अन्तान्) पृथिवी के पर्यन्त भागों को (रवेण) अपनी आज्ञा से (तस्तम्भ) वश करता है वही (त्रि-सधस्थः) तीनों लोकों में व्यापक (बृहस्पतिः) महान् पालक, परमेश्वर है । (तं) उस (मन्द्र-जिह्वम्) आनन्ददायक, वेद-वाणी के स्वामी परमेश्वर को (प्रत्नासः) पूर्व के वेदार्थ-द्रष्टा (विप्राः ऋषयः) मेधावी ऋषिजन (दीध्यानाः) प्रकाशित करते वा ध्यान करते हुए (पुरः दधिरे) अपने समक्ष साक्षी रूप से स्थापित करते रहते हैं ।

(२) इसी प्रकार जो पुरुष बल से पृथिवी के सीमान्त भागों को भी वश करे वह (त्रि-सधस्थः) तीनों शक्तियों में समान रूप से स्थित होकर (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का पालक पुरुष 'बृहस्पति' है। (तं मन्द्र-जिह्वं) उस सबको सन्तुष्ट आनन्दित करने वाली वाणी के वक्ता राजा को (प्रत्नासः ऋषयः) वृद्ध विद्वान् जन (दीध्यानाः) अधिक तेजस्वी, उज्ज्वल रूप से प्रतिष्ठित करते हुए (पुरः दधिरे) सबसे आगे प्रमुख पद पर स्थापित करें। (३) इसी प्रकार जो वेदज्ञ विद्वान् अपने (रवेण) आदेश से भूमि के प्रान्तों तक का शासन करे वा (ज्मः अन्तान् तस्तम्भ) वाणी के ही सिद्धान्तों को स्थिर रूप से कहे उत्तम (ऋषयः) तर्क वितर्कशील (दीध्यानाः) अर्थ का प्रकाश करते हुए (विप्राः) मेधावी शिष्यजन, उस आनन्दप्रद, सुखद वाणी के वक्ता विद्वान् को (पुरः दधिरे) समक्ष गुरु पद पर वा पुरोहित रूप से स्थापित करें।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो (धुनेतयः) कंपा देने वाली, दिल दहला देने वाली चालें वा चेष्टाएं करने वाले क्रूर या वीर जन (मदन्तः) हर्ष और तृप्ति अनुभव करते हुए (नः) हमारे बीच में (सुप्रकेतम्) उत्तम ज्ञानवान् पूज्य, पुरुष को (अभि ततस्रे) प्राप्त कर सतावें या उसके चारों ओर रहें तब हे (बृहस्पते) वेद वाणी के पालक विद्वन्! और बड़े राष्ट्र के पालक राजन्! तू (पृषन्तं) प्रेम स्नेह से सबको मेघ के समान सुख सेचन करते हुए (सृप्रम्) आगे बढ़ने वाले (अदब्धं) न नाश हुए, (ऊर्वं) दुष्टों के नाश करने वाले, (अस्य) उक्त ज्ञानवन् पुरुष के (योनिम्) आश्रय रूप गृह, क्षात्र बल की (रक्षतात्) रक्षा कर।

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ३

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े ज्ञान वाणी और बड़े राष्ट्र के पालक ! विद्वन् ! एवं राजन् ! (या) जो (ते) तेरी (परमा) सर्वोत्कृष्ट (परावत्) दूर देश तक व्यापने वाली नीति, मर्यादा या सीमा है, (अतः) उसके भीतर जो (ऋतस्पृशः) सत्य धर्म पालन करने वाले वा धन, अन्न आदि उत्पन्न करने वाले (ते आ निषेदुः) तेरे अधीन, तेरे समीप, माण्डलिक आदि बसें वा आकर विराजें वे (खाताः) खने गये (अवताः) कूपों के समान गंभीर, (अद्रिदुग्धाः) पर्वत के तुल्य अप्रकम्प, शस्त्र बल द्वारा वा मेघवत् दयार्द्र विद्वान् पुरुषों द्वारा दोहे वा पूर्ण किये जाकर (तुभ्यं) तेरे लिये (मध्वः) मधुर अन्न और धन की (विरप्शम्) महान् राशि को (अभितः) सब ओर से (श्चोतन्ति) प्रदान करें। जिस प्रकार खने गये कूप, तड़ाग आदि मेघ वा गिरि पर्वतादि की धारा से पूर्ण होकर बहुत जल देते हैं उसी प्रकार बड़े राष्ट्र पालक को उसके राज्य की सीमा के भीतर के धनी, कृषक, व ज्ञानी लोग भी शस्त्र-बल, प्रेम, कर आदि के वश होकर वा मेघों और विद्वानों करके अन्न ज्ञानादि से पूर्ण होकर राजा के भी अन्नादि धन की वृद्धि करें। इसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष ! जो ज्ञान की परम सीमा है वहां तक पहुंचे हुए धर्मात्मा लोग भी तेरे लिये कूपादि के तुल्य आदर-पूर्ण होकर मधुर ज्ञान रस की बड़ी राशि प्रदान करें।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी ज्ञान का पालक वेद और वेदज्ञ विद्वान् स्वयं (प्रथमं जायमानः) सबसे प्रथम सर्वोत्कृष्ट प्रकट होता हुआ, (महः ज्योतिषः) बड़े भारी प्रकाश के (परमे व्योमन्) परम स्थान ज्ञानकोटि में स्थित है। वह (सप्त-आस्यः) सात छन्द रूप सात मुखों वाला, (तुवि-जातः) बहुत से विद्वानों में प्रकट, एवं प्रसिद्ध

होकर (रवेण) शब्द, उपदेश द्वारा (सप्त-रश्मिः) सात रश्मियों वाले सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश को फैलाता हुआ, (तमांसि) सब अविद्या अन्धकारों को (अधमत्) विनाश करे। (२) परमेश्वर सबसे प्रथम विद्यमान, बड़े तेज के परम कोटि पर है। उसके सात दिशा सात मुख हैं, वह बड़े शब्द, वेद ज्ञान से सब अज्ञानों को दूर करता है। (३) बड़े राष्ट्र का पालक तेज से सर्वोच्च हो। राजनीतिगत सात प्रकृति उसके सात मुख हैं। वह सूर्यवत् तेजस्वी होकर आवरक शत्रु सैन्यों के समान दूर करे। (४) अध्यात्म में सात प्राण सात 'आस्य' हैं।

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥२६॥

भा०—राष्ट्रपालक राजा और वेदज्ञ विद्वान् का पृथक् २ कर्त्तव्य एक ही मन्त्र से बतलाते हैं। (सः बृहस्पतिः) वह बड़े भारी राष्ट्र का पालक (सु-स्तुभा) उत्तम रीति से शत्रुहिंसा करने में समर्थ, (ऋक्वता) वाणी के पालक (गणेन) सैन्य दल से और (सु-स्तुभा) उत्तम रीति से कंपाने वाले, (ऋक्वता) उत्तम वाणी से युक्त (रवेण) आज्ञा से (फलिगं वलं रुरोज) फल वाले, शस्त्रों सहित आक्रमण करने वाले बलशाली, नगररोधी शत्रु का भंग करे। और (हव्य-सूदः) अन्न रत्न आदि उपादेय ऐश्वर्य को प्रचुर मात्रा में देने वाली (उस्रियाः) नाना भोग देने वाली, (वावशतीः) निरन्तर कामनाशील, प्रजाओं और सेनाओं को (कनिक्रदत्) खूब गर्जता हुआ, घोषणा करता हुआ (उत् आजत्) उत्तम रीति से गौ आदि पशु संघ के समान अधीन कर उत्तम मार्ग से चलावे। विद्वान् वेदज्ञ क्या करे ? वह भी (सु-स्तुभा ऋक्वता गणेन) उत्तम स्तुतियुक्त ऋचाओं वाले मन्त्र के समूह से और (रवेण) उनके घोष से (फलिगं वलं) भेद बुद्धि से व्यापने वाले आवरक मोह कामादि अज्ञान को तोड़ डाले। और (हव्य-सूदः वावशतीः उस्रियाः कनिक्रदद् उदा-

जत्) ज्ञान रस के देने वाली सुन्दर वाणियों का अध्ययन करता हुआ उनका उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करे और अन्यों को ज्ञान प्रदान करे ।

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (एव) इस प्रकार (पित्रे) सर्वपालक (विश्व-देवाय) समस्त विश्व के प्रकाशक, सब को जीवन, अन्न, ऐश्वर्य देने वाले, सबके उपास्य देव (वृष्णे) सब सुखों के वर्षक, सर्व-प्रबन्धक, सबसे महान् पुरुष परमेश्वर की (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से और (नमसा) नमस्कार पूर्वक और (हविर्भिः) उत्तम अन्नों और वचनों से (विधेम) भक्ति करें । इस प्रकार सर्व पालक, सब से अधिक विद्वान् पितृतुल्य, आचार्य ज्ञानवर्षक की और सब के दाता, पालक पितृतुल्य राजा की हम सत्संगों, नमस्कारों और भेटों आदि से सेवा करें । हे (बृह-स्पते) बड़े राष्ट्र और ज्ञान के पालक (वयं) हम (सु-प्रजाः) उत्तम प्रजा से युक्त (वीरवन्तः) उत्तम वीरों वा पुत्रों से युक्त और (रयीणां पतयः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्याम) होवें ।

स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजं ॥ ७ ॥

भा०—(सः इत्) वह परमेश्वर ही (राजा) राजा के समान सर्व विश्व का स्वामी, सर्वप्रकाशक और तेजोमय स्वप्रकाश, (शुष्मेण) सर्व शोषक, प्रखर तेज और (वीर्येण) सब गति देने वाले बल से (विश्वा) समस्त (प्रतिजन्यानि) प्रत्यक्ष उत्पन्न होने वाले पदार्थों में (अधि तस्थौ) व्यापक है । (यः) जो परमेश्वर (सु-भृतम्) उत्तम रीति से विश्व के पोषक (बृहस्पतिम्) बड़े ब्रह्माण्ड के पालक सूर्यादि लोक को भी (बिभर्त्ति) धारण करता है और (पूर्वभाजं) सब से पूर्वके विद्यमान उपार्जित ज्ञानों

को सेवन करने वाले विद्वान् पुरुष को भी (वल्गूयति) उपदेश करता और (वन्दते) उसको चाहता है इसी प्रकार (यः) जो राजा (सुभृतं बृहस्पतिं बिभर्त्ति) बहुत बड़े जनराष्ट्र के पालक, उत्तम पोषक पुरुष को धारण करता है (पूर्वभाजं वल्गूयति वन्दते च) पूर्व विद्यमान वृद्ध पुरुषों के सेवने योग्य धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष का सत्कार और स्तुति अभिवादन करता है, जो सब प्रतिपक्षी जनों के संग्रामों पर शत्रु-क्षोभक बल से वश करता है (स इत् राजा) वही राजा होने योग्य है।

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्। तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥

भा०—(सः इत्) वह परमेश्वर राजा के समान (स्वे) अपने (सुधिते ओकसि) सुरक्षित जगत्-रूप स्थान वा महान् आकाश में (क्षेति) निवास करता है, व्यापक है (तस्मै) उसकी (विश्वदानीम्) सदा (इडा) वेद वाणी (पिन्वते) सब पर ज्ञान का वर्षण करती और सबको अन्न वा भूमिवत् पुष्ट करती है। (तस्मै) उसके आदर के लिये (विशः)सभी प्रजाएं (स्वयम् एव) आप से आप ही (नमन्ते) प्रेम और भक्ति से झुकते हैं। (यस्मिन्) जिस (राजनि) स्वप्रकाशक, सर्वप्रकाशक परमेश्वर में (पूर्वः ब्रह्मा) अनादि, सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी वेदज्ञ विद्वान् (एति) प्राप्त होता है। (२) राजा के पक्ष में—जिस राजा के रहते हुए वेदज्ञ विद्वान् पूर्व, सर्वश्रेष्ठ होकर उत्तम पद पाता है। जो स्व-रक्षित देश में निवास करता है उसको (इडा) सब भूमियां पुष्ट करती हैं, सब प्रजाएं उसके आगे झुकती हैं।

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या। अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर राजा के तुल्य ही (अवस्यवे ब्रह्मणे)

रक्षा चाहने वाले ब्रह्मज्ञानी पुरुष को (वरिवः कृणोति) धन प्रदान करता है जो (राजा) स्वयं सूर्यवत् सब का प्रकाशक है (तम्) उसको सब (देवाः) देव, विद्वान् गण प्रकाशक किरणों के तुल्य (अवन्ति) प्राप्त होते हैं और उसका ज्ञान और उसको प्रेम करते हैं। वह स्वयं (अप्रतीतः) प्रत्येक साधारण पुरुष से वा प्रत्यक्ष इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है, तो भी (प्रति-जन्या या स-जन्या धनानि) वह प्रत्येक उत्पन्न होने वाले और समान, एक साथ रहने वाले जीवों के हितकारी समस्त ऐश्वर्यों को (सं जयति) अच्छी प्रकार वश करता है। (२) राजा के पक्ष में—जो (अप्रतीतः) किसी से मुक़ाबला न किया जाकर, अद्वितीय बलशाली राजा होकर (प्रति-जन्या स-जन्या धनानि सं जयति) प्रतिपक्षी और समान कोटि के जनों के धनों का विजय करता है। (अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति) रक्षार्थी ब्राह्मण वर्ग का आदर करता है, (देवाः) दानशील व्यवहारज्ञ, सम्पन्न जन और विजयेच्छुक सैन्य गण (तम् अवन्ति) उसकी रक्षा करते वा उसकी शरण जाते हैं।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १०

भा०—(इन्द्रः च बृहस्पते) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे वेदवाणी और महान् राष्ट्र के पालक! आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संग, सेवन, सहयोग और राज्यकार्य में (मन्दसाना) हर्ष, प्रसाद अनुभव करते हुए (वृषण्वसू) ज्ञान धन आदि के वर्षाने वाले और बलवान् प्रबन्धक पुरुष को राज्य में बसाने वाले एवं बसे प्रजा जनों के बीच स्वयं बलवान् होकर (सोमं पिबतं) पुत्र वा शिष्यवत् राज्य का पालन करें। और ओषधिरस के समान अति स्वल्प मात्रा में और गुणकारी रूप से (पिबतं) उसका उपभोग करो। आप दोनों (अस्मे) हमें (सर्ववीरं) सब प्रकार के वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिं) धन को (नि यच्छतम्) प्रदान करो और

हमारे उक्त राष्ट्र धन की नियम व्यवस्था करो, उसको नष्ट न होने दो। और (स्वाभुवः) स्वयं आपसे आप उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्य और प्रेमयुक्त समृद्ध प्रजाजन (वां विशन्तु) तुम दोनों को प्राप्त करें, आप दोनों के अधीन रहें। अध्यात्म में—इन्द्र जीव, बृहस्पति प्रभु, वे दोनों वसु अर्थात् लोकों और प्राणों में सुख आनन्दादि का वर्षण करने से 'वृषण्वसू' हैं।

बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः॥११॥२७॥७

भा०—हे (बृहस्पते) वेदविद्या के पालक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक राजन्! आप दोनों (सचा) सत्यपूर्वक सदा साथ रह कर (नः वर्धतम्) हमें बढ़ाओ। (वां) आप दोनों की (सा) वह, उत्तम (सु-मतिः) शुभ मति, ज्ञान वा उत्तम ज्ञान वाली परिषद् (अस्मे) हमारे हित के लिये (भूतु) होवे। आप लोग (धियः) प्रजा और कर्मों तथा राष्ट्र की धारक प्रजाओं को (अविष्टम्) पालन करो (पुरं-धीः) देहवत् पुर को धारण करने वा बहुत से ऐश्वर्य और ज्ञानों के धारण करने वाली प्रजाओं वा सेनाओं को, (जिगृतम्) सदा सचेत, सावधान बनाओ और उत्तम उपदेश किया करो। और आप दोनों (अर्यः) स्वामी के तुल्य होकर वा (वनुषाम्) संविभाग करने योग्य ऐश्वर्यों वा करों को (अरातीः) न देने वाली (अर्यः) शत्रुसेनाओं को (जजस्तम्) विनाश किया करो। इति सप्तविंशो वर्गः॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[५१]

वामदेव ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, ५, ८ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ९, ११ निचृत्-त्रिष्टुप्। २ पंक्तिः। १० भुरिक्-पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (पुरुतमं) सबसे अधिक आकाश देश को पूरने वाला सूर्य प्रकाश (पुरस्तात्) प्राची दिशा में (वयुनावत्) सब ज्ञानों, कर्मों से युक्त, सर्वप्रकाशक होकर (तमसः अस्थात्) रात्रि के अन्धकार में से ऊपर उठता है और (दिवः दुहितरः विभातीः उषसः) देदीप्यमान सूर्य की कन्याओं के समान, वा प्रकाश से जगत् को पूरने और प्रकाश देने वाली, स्वप्रकाश युक्त उषा-वेलाएं (जनाय गातुं कृणवत्) मनुष्यों के लिये पृथिवी को प्रकट करती हैं उसी प्रकार (इदम् उ) यह (त्यत्) वह प्रसिद्ध (पुरुतमं) समस्त विद्याओं से सब से अधिक पूर्ण (ज्योतिः) सर्व ज्ञान-प्रकाशक, वेदमय तेज है, जो (तमसः) दुःखदायी अज्ञान से भिन्न, (पुरस्तात्) सबसे पूर्व विद्यमान, सब से श्रेष्ठ और (वयुना-वित्) उत्तम ज्ञान और कर्मोपदेश से युक्त होकर (अस्थात्) सदा के लिये स्थिर है। (नूनं) निश्चय से (दिवः) सर्व ज्ञानमय, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की (दुहितरः) कन्याओं के तुल्य, वा उससे उत्पन्न अथवा ज्ञान रस को प्रदान करने वाली, (विभातीः) विविध ज्ञानों का प्रकाश करने वाली, (उषसः) पापों को दग्ध करने वाली वेद वाणियां (जनाय) समस्त मनुष्य मात्र के लिये (गातुं) जानने योग्य ज्ञान और मार्ग को (कृणवत्) प्रकट कर देती हैं।

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अध्वरे) यज्ञ में (मिताः इव स्वरवः) गड़े हुए वा माप कर बनाये गये यूपांश स्थिर होते हैं और जिस प्रकार (अध्वरेषु) यज्ञों के निमित्त (स्वरवः) अति तेज से युक्त (मिताः इव) परिमित काल तक स्थिर (चित्राः उषसः) अद्भुत, सुन्दर उषाएं (पुरस्तात्)

पूर्व दिशा में (अस्थुः) प्रकट होती हैं और वे (शुचयः) शुद्ध, (पावकाः) पवित्र होकर (व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः) वर्जनेयोग्य रात्रि के अन्धकार वा अन्धकार से ढंके गृह के द्वारों को प्रकट करती हुई (वि अव्रन्) व्याप लेती हैं उसी प्रकार (चित्राः) अद्भुत रूप, गुण, कर्म, स्वभाव और उत्तम आभूषण, वस्त्रादि से सुन्दर, चित्र विचित्र, (उपसः) कान्ति, कामना से युक्त कमनीय, (पुरस्तात्) आगे (मिताः इव) विद्या से ज्ञानयुक्त, (स्वरवः) उत्तम तेजस्विनी, विदुषी कन्याएं (अध्वरेषु) हिंसा से रहित, श्रेष्ठ यज्ञों में (व्रजस्य तमसः उच्छन्तीः) गृह के अन्धकारयुक्त द्वारों को प्रकाशित करती हुई (शुचयः) शुद्ध स्वच्छाचारवाली, (पावकाः) पवित्र एवं शोधक यज्ञ अग्नि, आर्त्तवादि से शुद्ध होकर (वि अव्रन्) विशेष रूप से पति का वरण करें। और हे ब्रह्मचारी तुम भी ऐसी ही कमनीय कन्याओं का वरण किया करो। (२) वेदवाणियों के पक्ष में—वेदवाणियां पूज्य होने से चित्र हैं, स्वयंप्रकाश एवं शब्दमय होने से 'स्वरु' हैं। 'व्रज' अर्थात् ज्ञान और कर्ममय मार्गों वा द्वारों को प्रकाशित करती हैं।

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥

भा०—(पणयः) स्तुतिकर्त्ता लोग जो (अबुध्यमानाः) स्वयं स्तुति पाठ का ज्ञान नहीं करते हैं वे जिस प्रकार (तमसः अचित्रे विमध्ये) ज्ञानरहित अन्धकार के बीच में (ससन्तु) सोते हैं, मग्न रहते हैं उसी प्रकार (पणयः) स्तुत्य स्त्रियां और व्यवहारवान् गृहस्थ जन भी (अबुध्यमानाः) रात्रि काल में न जागती हुई (तमसः) अन्धकार के (अचित्रे मध्ये) चेतना रहित गाढ़ निद्रा के बीच (ससन्तु) सोते हैं जिस प्रकार (उपसः) प्रातः वेलाएं (उच्छन्तीः) प्रकट होती हुई (भोजान् चितयन्त) भोक्ता प्राणियों को जगाती हैं उसी प्रकार (उपसः मघोनीः) कान्तियुक्त श्रीसम्पन्न स्त्रियां वा समृद्ध प्रजाएं भी (उच्छन्तीः)

विशेष रूप से गुणों को प्रकट करती हुई (राधो-देयाय) धनों के दान के लिये (भोजान्) अपने पालक पतियों रक्षक वा राजाओं को (चितयन्त) सदा सचेत करती रहें । उनको ऐश्वर्य दान के लिये चेताती रहें ।

कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः यामः सनयः अद्य नवः वा कुविद् भवति) उषा का अतिपुरातन भी गमनमार्ग प्रत्येक आज के दिन नया हो जाता है उसी प्रकार हे (देवीः उषसः) उत्तम, कमनीय पतिप्रिय देवियो ! (वः) आप लोगों का (यामः) प्राप्त करने वाला वा विवाह करने वाला पति (कुवित्) महान्, (सनयः) रथ के समान सनातन मार्ग से चलने वाला, (नवः) नव तरुण ही (बभूयात्) हो । (येन) जिससे आप लोग (नवग्वे) नव अर्थात् स्तुत्य वाणियों वा सदा तरुण इन्द्रिय गण से युक्त, (दशग्वे) दशों दिशाओं में भूमि के स्वामी वा दशों इन्द्रियों के दमनकारी, जितेन्द्रिय (अंगिरे) अग्नि वा सूर्य के तुल्य तेजस्वी वा प्राण के समान (सप्तास्ये) मुख पर सातों प्राण, आंख, नाक, कान मुखादि अंग, एवं उनकी अविकल शक्तियों से युक्त पति के अधीन रह कर (रेवतीः) स्वयं धन सम्पन्न होकर (रेवत्) सम्पन्न जीवन की (ऊष) कामना करो, सुख से रहो । फलतः पति दृष्टिहीन, बधिर, गूंगा, आदि न हो, उसकी वाणी उत्तम ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय आदि भी सब ठीक हों । (२) वेदवाणियों का 'याम' गन्तव्य परम वेद्य पद 'ब्रह्म' नव अर्थात् स्तुत्य है और 'सनय' अर्थात् सनातन है । वह वाणियां जितेन्द्रिय, अविकल पुरुष में प्रकट होती हैं ।

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥१॥

भा०—(देवीः उषसः ससन्तं जीवं प्रबोधयन्तीः यथा ऋतयुग्भिः

अश्वैः भुवनानि परि प्रयान्ति) जिस प्रकार प्रकाश से युक्त प्रभात बेलाएं सोते हुए जीव गण को जगाती हुई तेजयुक्त किरणों से समस्त लोकों में दूर२ तक चली जाती हैं उसी प्रकार हे (उषसः देवीः) पति आदि की कामना करने वाली देवियो ! गृह-पत्नियो ! (यूयं) आप लोग भी (ऋतयुग्भिः-अश्वैः) वेगयुक्त अश्वों से दूर २ के स्थानों तक, (ऋतयुग्भिः अश्वैः) सत्य मार्ग से युक्त भोक्ता या उत्तम गुणों से युक्त अश्ववत् बलवान् पति जनों से युक्त होकर (सद्यः) शीघ्र ही (भुवनानि) उत्तम २ गृहों को (परि प्रयाथ) प्राप्त होवो । वहां (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान ही (द्विपात्) दोपाये, भृत्यों और बन्धुजनों तथा (चतुष्पात्) चौपाये गौ आदि पशु (ससन्तं) सोते हुए (जीवं) जीवगण को (चरथाय) कर्म करने के लिये (प्र-बोधयन्तीः) जगाती रहो । इसी प्रकार हे पुरुषो ! तुम भी (ऋतयुग्भिः अश्वैः) बलयुक्त अंगों से युक्त होकर (देवीः परिप्रयाथ) उत्तम कामना युक्त स्त्रियों को प्राप्त करो । (२) वेदवाणियां ऋतयुग् अश्व, अर्थात् सत्य में समाहित चित्त वाले विद्याव्याप्त विद्वान् द्वारा सर्वत्र फैलाई जाती हैं। सोते हुए अज्ञानी जनों को उत्तम बोध देती हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

क्व॑ स्वि॒दासां॒ कत॒मा पु॑रा॒णी यया॑ वि॒धाना॑ विद॒धुर्ऋ॒भूणा॑म् ।
शुभं॒ यच्छु॒भ्रा उ॒षस॒श्चर॑न्ति॒ न वि ज्ञा॑यन्ते स॒दृशी॑रजु॒र्याः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (शुभ्राः उषसः शुभं चरन्ति) दीप्तिमती प्रभात वेलाएं दीप्ति युक्त उज्वल प्रकाश करती हैं, वे सब (सदृशीः सत्यः अजुर्याः) एक समान रहकर पुरानी नहीं मालूम होतीं और (आसां कतमा पुराणी) उन उषाओं के बीच में कौन सी पुरानी है और (क्व-स्वित्) वह वेला कहां रहती है ? (यया) जिससे (ऋभवः) प्रकाश से दीप्त किरणें अपने (विधाना विदधुः) नाना प्रकाश, ताप आदि कर्म करते हैं उसी प्रकार (यत्) जो (शुभ्राः) दीप्तियुक्त, आभूषण एवं लावण्य, तेज आदि से उज्ज्वल, (उषसः) कान्तिमती उत्तम कन्याएं (अजुर्याः) वयस और

बल वीर्य की हानि न करती हुई, ब्रह्मचारिणी रहकर (सदृशीः) बल वीर्य में अपने पतियों के तुल्य रहकर (शुभं) शुभ, विवाहादि शोभा युक्त कार्य करती हैं। वे (न विज्ञायन्ते) विपरीति नहीं जानी जातीं। (आसां पुराणी कतमा) उनमें से कौन श्रेष्ठ वा आयु में बड़ी है (यथा) जिसके साथ विद्वान जन् (ऋभूणां) विद्वानों के बनाये (विधाना विदधुः) यज्ञादि अनेक अनुष्ठानों को (क्वस्विद्) किस २ दशा में और कहां २ (विदधुः) करते हैं। अर्थात् ब्रह्मचारिणी स्त्रियें सदृश पति को प्राप्त होकर बलवती, दीर्घायु सर्वत्र साथ देने वाली हों। (२) वेदवाणियां भी ज्ञानमय होने से शुभ्र हैं, वे उत्तम ज्ञान देती हैं। पुरातन हैं। जिससे विद्वान् यज्ञादि अनुष्ठान नाना स्थानों पर करते रहते हैं। सब से पुरानी कौन २ यह नहीं जाना जासकता। सब सदृश हैं, वे रूप से 'अजुर्या' नित्य हैं।

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप॥७॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) प्रभात बेलाएं (भद्राः) सुखकारिणी, (अभिष्टि-द्युम्ना) सर्वप्रकार फैलने वाले प्रकाश से युक्त, (ऋत-जात-सत्याः) तेज से सत्य पदार्थों का प्रकाश करने वाली होती हैं। (यासु ईजानः उक्थैः शशमानः स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणम् आप) जिनमें प्रातः यज्ञ अर्थात् वेदमन्त्रों से ईश्वर की स्तुति करने वाला, स्तुतिशील वेदमन्त्रपाठी पुरुष शीघ्र ही अभीष्ट धन और ज्ञान प्राप्त करता है उसी प्रकार जो (उषसः) कमनीय उत्तम कन्याएं भी (पुरा) पूर्व जीवन में (अभिष्टि द्युम्नाः) इच्छानुसार धनैश्वर्य प्राप्त करने वाली (ऋतजात-सत्याः) 'ऋत' अर्थात् यज्ञ और धर्ममार्ग में सत्यप्रतिज्ञा को प्रकट करने वाली होती हैं (ताः) वही निश्चय से (भद्राः) उत्तम सुख-कारिणी और कल्याणकारिणी, सौभाग्यवती होती हैं। (यासु) जिन्हों में

वा जिन्हों के संग (ईजानः) यज्ञ करता हुआ, जिन्हों में अपने सर्वस्व को देता हुआ, वा जिन्हों से संगति करता हुआ (शशमानः) शमादि साधनों का अभ्यासी वा प्रशंसित पुरुष (उक्थैः) उत्तम वचनों से (स्तुवन्) उनकी स्तुति (शंसम्) और प्रशंसा करता हुआ, (सद्यः) शीघ्र ही (द्रविणं) ऐश्वर्य (आप) प्राप्त करता है। विद्वान् पुरुष ऐसी उत्तम स्त्रियों से ही गृहाश्रम का सम्पादन करे। (२) वेदवाणी पक्ष में—वे इष्ट सत्य का प्रकाश करतीं और वेदद्वारा सत्य को प्रकट करती हैं। जिनसे यज्ञ करता हुआ, सूक्तों से स्तुति कीर्त्तन करता हुआ विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥

भा०—(देवीः उषसः गवां सर्गाः न सदसः बुधानाः) तेज युक्त जगत् की प्रकाशक उषाएं गौओं अर्थात् रश्मियों की बनी हुई, गृहों को चमकाती हुई (ऋतस्य जरन्ते) सत्य प्रकाशमान सूर्य की कथा कहती हैं, (समना) एक साथ मिलकर आगे (पुरस्तात् आ चरन्ति) पूर्व दिशा में फैलती हैं उसी प्रकार (ताः) वे (उषसः) कमनीय, सुन्दर, उत्तम कामना वाली स्त्रियां (पुरस्तात् सबके समक्ष (समना) एक चित्त होकर (समानतः) अपने समान गुण वाले पुरुषों से (समना) संगत एवं समानयुक्त होकर (पप्रथानाः) अपने उत्तम गुण, रूप, वैभव और प्रजाओं का विस्तार करती हुई, (देवीः) उत्तम स्त्रियें (सदसः बुधानाः) उपस्थित सभ्य जनों को सम्बोधन करती हुई (गवां सर्गाः न) उस समय प्रतिज्ञा-वाणियों को उत्पन्न करने वाले उत्तम वक्ताओं के तुल्य (ऋतस्य जरन्ते) सत्य प्रतिज्ञावचन युक्त वेद मन्त्रों का (गवां सर्गाः न) वाणियों के उत्पादक विद्वानों के तुल्य ही (जरन्ते) उच्चारण करें। ऐसी ज्ञान वाली, उदात्त गुणवती कन्याओं से विवाह करें। (२) वेदवाणियां भी

ज्ञानवती होने से 'स-मना' हैं। वे प्रथम गुरु के समीप स्थित शिष्यों को ज्ञान का बोध कराती हैं।

ता इन्न्वे॑३व स॑म॒ना स॑मा॒नीरमी॑तवर्णा उ॒षस॑श्चरन्ति।
गू॒हन्ती॒रभ्व॒मसि॑तं॒ रुश॑द्भिः शु॒क्रास्त॒नूभि॒ः शुच॑यो रु॒चा॒नाः ॥९॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः समानीः अमीतवर्णाः समना चरन्ति) उषाएं एक रूप से अपने रूप रंग का नाश न करती हुई एक समान आगे बढ़ती हैं। और (रुशद्भिः रुचानाः शुचयः शुक्राः अभ्वं असितं गूहन्तीः) दीप्तियों से चमकती हुई स्वयं उज्ज्वल शुद्ध रूप से रात्रि के कृष्ण अन्धकार के साथ मानों आलिंगन करती हैं उसी प्रकार (ताः) वे (समनाः) स्त्रियां अपने पतियों के साथ समान चित्तवाली (समानीः) पतियों के समान गुण, रूप, मान आदर से युक्त, (अमीत-वर्णाः) अपने वर्ण धर्म का लोप न करने वाली (उषसः) कान्ति युक्त और पतियों की हृदय से कामना करने वाली, (शुचयः) शुद्ध चरित्र, (रुशद्भिः) कामना और कान्ति से युक्त, उज्ज्वल (तनूभिः) देहों से (रुचानाः) अन्यों को रुचि कर वा मनोहर प्रतीत होती हुई (असितं) अन्य से न बंधे हुए, अपने से एकमात्र सम्बन्ध (अभ्वम्) एवं विद्या, कुल, गुण और बल में बड़े आदरणीय पति को (गूहन्तीः) अंगीकार करती हुई (चरन्ति) सदाचार से वर्त्तें (ताः इत् नु) उनको ही विवाह में ग्रहण करें। (२) वेदवाणियोंके पक्ष में—वे सब को, समान रूप से ज्ञान देने से 'समना' हैं, शुद्ध पवित्र हैं, उत्तम यज्ञों से स्वयं (शुक्राः) प्रापक शुक्र, शुद्ध रूप है जिनमें अज्ञानियों की कृति नहीं मिल पाई। वे (अमीतवर्णाः) अनश्वर अक्षर संनिवेश वाली, नित्य हैं, वे (असितं अभ्वं) बन्धनरहित महान् परमेश्वर को अपने उज्ज्वल रूपों से बतलाती हुई (चरन्ति) गुरु से शिष्य को प्राप्त होती हैं।

र॒यिं दि॑वो दुहितरो विभा॒तीः प्र॒जाव॑न्तं यच्छता॒स्मासु॑ देवीः।
स्यो॒ना॒दा वः॑ प्रति॒बुध्य॑माना सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥ १० ॥

भा०—(दिवः दुहितरः विभातीः देवीः रयिं यच्छन्ति) प्रकाश को देने वाली वा सूर्य की कन्याओं के तुल्य उषाएं प्रकाश प्रदान करती हैं उसी प्रकार हे (दिवः दुहितरः) कामनाओं को पूर्ण करने वाली (विभातीः) विशेष कान्ति से युक्त हे (देवीः) उत्तम स्त्रियो ! आप (अस्मासु) हमें (प्रजावन्तम्) प्रजा, पुत्रादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (यच्छत) प्रदान करो। (स्योनात्) सुख युक्त गृह से (वः) आप लोगों को अपना अभिप्राय (प्रतिबुध्यमानाः) भली प्रकार जान व जना कर वा उत्तम रीति से शिक्षित करके ही हम लोग (सुवीर्यस्य) उत्तम वीर्य और बल के (पतयः) बालक (स्याम) हों। (२) वेदवाणियां ज्ञान प्रदान करने से 'दिवः दुहिता' हैं। अर्थ प्रकाशक होने से 'देवी' हैं। वे (स्योनात्) आनन्दमय प्रभु से प्राप्त होकर हमें प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान करावें और हम (सुवीर्यस्य पतयः) उत्तम वीर्य के पालक, ब्रह्मचारी हों।

तद्वो॑ दिवो दुहितरो विभा॒तीरुप॑ ब्रुव उषसो य॒ज्ञके॑तुः।
व॒यं स्या॑म य॒शसो॒ जने॑षु॒ तद् द्यौश्च॑ ध॒त्तां पृ॑थि॒वी च॑ दे॒वी॥११॥२॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञकेतुः दिवः दुहितरः विभातीः उषसः उपब्रूते) यज्ञ का जानने हारा, वा उपास्य प्रभु को जानने वाला योगी ज्ञान प्रकाश का देने वाली, सूर्य की कन्या के तुल्य दीप्तियुक्त उषाओं और विशोका प्रज्ञाओं को लक्ष्य कर स्तुति करते हैं। उसी प्रकार (यज्ञकेतुः) परस्पर सत्संग, मान-आदर, सत्कार और परस्पर दान-प्रतिदान को भली प्रकार जानने वाला, होकर मैं (दिवः दुहितरः) कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ, (विभातीः) विविध गुणों से प्रकाश युक्त, (उषसः) कमनीय (वः) आप देवी जनों को वा आपके सम्बन्धों में (तत् उप ब्रुवे) वह वचन कहता हूं जिससे (वयं) हम सब (जनेषु) मनुष्यों के बीच (यशसः) यशस्वी (स्याम) हों। (तत्) मेरे कहे उस वचन को (द्यौः च) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष और (देवी पृथिवी च) पृथिवी

के समान सुख, सन्तान, अन्नादि देने वाली सर्वाश्रय स्त्री दोनों (धत्तां) धारण करें और एक दूसरे को उस प्रकार का प्रतिज्ञा वचन प्रदान करें और पालन करें। (२) वेदवाणियों के उच्चारण से यज्ञ का और उपास्य देव परमेश्वर का ज्ञानी पुरुष उपासन करें, उस ब्रह्म की उपासना करें। हम सब में यशस्वी हों। उसी परम ब्रह्म की शक्ति को सूर्य और पृथिवी भी धारण करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[५२]

वामदेव ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ६ निचृद्गायत्री। ५, ७ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

भा०— जिस प्रकार (दिवः दुहिता) सूर्य की कन्या के समान वा तेज से आकाश और भूमि को भर देने वाली उषा (सूनरी = सु-नरी) उत्तम रीति से सूर्य की अग्रगामिनी होकर (जनी) सब पदार्थों को प्रकट करती हुई, अन्धकार को दूर करती हुई (प्रति अदर्शि) प्रत्यक्ष सबको दिखाई देती है उसी प्रकार (स्या) वह (जनी) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ वा (जनी) स्त्री, (सू-नरी) उत्तम नायिका होकर (स्वसुः परि) अपनी अन्य भगिनी जन के समीप या उनसे भी अधिक (वि उच्छन्ती) विविध प्रकार से शोकादि खेदों को हरती और गुणों को प्रकट करती हुई (दिवः) कामना युक्त पतिकी मनोकामना को (दुहिता) पूर्ण करने वाली होकर (प्रति अदर्शि) दिखाई दे।

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) उषा, प्रभात वेला (अश्विनोः)

दिन और रात्रि के बीच में उनकी (सखा) मित्र, सखी के तुल्य या उनके आख्यान वा नाम से उषा का ग्रहण होता है। वह (ऋतावरी) तेज से युक्त (गवां माता) किरणों को माता के समान जनने वाली, (अरुषी) तेजस्वी, ललाई लिये हुए, (अश्वा इव) घोड़ी के तुल्य (चित्रा) अद्भुत रूप वाली होती है। उसी प्रकार (उषाः) गृहस्थ में बसने वाली, वा पति की नित्य कामना करने वाली, स्त्री भी (अश्विनोः) देह के भोक्ता इन्द्रिय रूप अश्वों के स्वामी जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों में (सखा-अभूद्) मित्र के तुल्य एक ही समान नाम और कीर्त्ति से कहलाने योग्य है। अर्थात् दम्पति में पति के नाम से ही स्त्री को बुलाया जाना उचित है। वह (ऋतावरी) सत्य व्यवहार वाली, व्यवहार में सच्ची, (गवां माता) उत्तम वेदवाणियों की जानने वाली, वा (गवां माता) गौ आदि पशुओं को भी माता के समान स्नेह से पालन करने वाली वा गौ से उत्पन्न दुग्ध, घृत, नवनीत, क्षीर, पायस आदि पदार्थों को उत्तम रीति से बनाने में कुशल हो। वह (अरुषी) आरक्त, स्वस्थ, एवं राग से रञ्जित, प्रेम से युक्त और पति वा सन्तान के प्रति रोष से रहित हो। वह (अश्वा इव) शीघ्र-गामिनी घोड़ी के समान गृहस्थ रथ को वा अश्व-जाति के बलवान् पुरुष के तुल्य बल वीर्य सामर्थ्य वाली, (चित्रा) अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाली ज्ञान, मान, आदर से युक्त हो।

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (उषः) प्रभात वेला के समान तू पूर्वोक्त प्रकार से (अश्विनोः सखा असि) दिन रात्रिवत् मिथुन युगल में से सखा, मित्रतुल्य सहायक है। (उत) और (गवां माता असि) गौओं की मातृवत् पालक, दूध, खीर, मलाई, मठा, मखन, घी आदि पदार्थों

की उत्पादक और ज्ञान युक्त वाणियों की जानने वाली हो। (उत वस्वः) धन और बसने योग्य घर की तू (ईशिषे) मालिकन हो।

यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥

भा०—हे (चिकिवित्) उत्तम रीति से बालकों को ज्ञान कराने वाली, और उनको रोगादि से मुक्त करने हारी ! हे (सुनृतावरि) उत्तम वचन बोलने वाली और उत्तम अन्न की स्वामिनी ! हम (स्तोमैः) उत्तम २ प्रशंसा वचनों से (यवयद्-द्वेषसं) द्वेष के भावों और द्वेष करने वाले अप्रिय, अप्रीतिजनक पदार्थों और पुरुषों को दूर करने वाली (त्वा प्रति अभुत्स्महि) तुझको प्रत्येक कार्य का बोध करावें।

प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥ ५ ॥

भा०—जब (उषाः उरु-ज्रयः आ अप्राः) प्रभात वेला, उषा बहुत तेज को पूर्ण करती है तब जिस प्रकार (भद्राः गवां सर्गाः न) सुख-दायिनी, कल्याणकारिणी गौओं वा वाणियों की रचना के तुल्य (रश्मयः प्रति अदृक्षत) रश्मियें देखने में आती हैं उसी प्रकार जब, (उषा) पति की प्रिया, कमनीय गुणों से युक्त स्त्री (उरु) बहुत (ज्रयः) तेज, वीर्य को (आ अप्राः) आदरपूर्वक धारण कर लेती है तब (गवां) जंगम सन्तानों की (सर्गाः) नाना सृष्टियां भी (रश्मयः न) उषाकी किरणों के तुल्य ही (भद्राः) सुखदायिनी, कल्याण गुण से युक्त (प्रति अदृक्षत) देखी जाती हैं। पति पत्नी के प्रेमपूर्वक निषेक द्वारा गर्भ आहित होने पर सन्तान उज्वल गुणयुक्त, उत्तम होती हैं।

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः।
उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (विभावरी आपप्रुषी तमः ज्योतिषा वि आवः, अनु स्वधाम् अवति) कान्ति से युक्त प्रभात वेला, उषा, व्यापती हुई या प्रकाश से अन्धकार को दूर करती है और अपने पीछे 'स्वधा' अर्थात् अपने को धारण करने वाले सूर्य को भी सुरक्षित रखती और प्रकट करती है उसी प्रकार हे (विभावरि) विशेष कान्ति से युक्त एवं विशेष विचार और क्रिया शक्ति से सम्पन्न स्त्री ! तू (ज्योतिषा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (आ-पप्रुषी) सर्वत्र पूर्ण करती हुई (तमः वि आवः) शोक और दुःखों के अन्धकार को दूर कर। और हे (उषः) कान्तिमति कमनीये ! तू (स्वधाम्) अपने धारक, वा स्व अर्थात् धनैश्वर्य के धारक पति के (अनु-अव) अनुकूल होकर उसका अनुगमन कर, उसकी आज्ञाकारिणी हो। वा (स्वधाम् अनु अव) अनुकूल अन्नादि पदार्थ की रक्षा कर।

आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम्।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा शुक्रेण शोचिषा रश्मिभिः द्याम् अन्तरिक्षम् उरु च आतनोति) प्रभात वेला शुद्ध कान्ति से और किरणों से प्रकाश को विशाल अन्तरिक्ष में फैलाती है उसी प्रकार हे (उषः) कमनीय स्त्री ! विदुषि ! तू भी (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) प्रकाश से और (रश्मिभिः) उत्तम किरणों वा प्रेम-बन्धनों से (द्याम्) अपने कमनीय और (अन्तरिक्षम्) अपने अन्तःकरण में बसे (उरु) बहुत अधिक (प्रियं) प्रिय पति को (आ तनोषि) आदरपूर्वक स्वीकार कर, उसमें व्याप।

'उषा' सूर्य की वह तीव्र तापयुक्त शक्ति है जो दाह या प्रचण्ड ताप उत्पन्न करती है। उसके दृष्टान्त से तेजस्वी राजा की प्रचण्ड शक्ति का वर्णन भी इस सूक्त में किया गया है। ताप शक्ति का वर्णन जैसे—(१) प्रकाश की उत्पादक, पूरक, प्रकाश किरणों से स्वतः उत्पन्न होने वाली होने से 'दिवः दुहिता' है। (२) अति घाम वा ताप के

अनन्तर जल उत्पन्न होने से गतिमान जल रूप सर्गों की उत्पादक होने से (गवां माता) है। इसी से (ऋतावरी) जलोत्पादक वा अन्नोत्पादक भी है। (३) वही वसु, सूर्य की तीव्र शक्ति होने से स्वामिनी है। (४) नाना रोगहारक होने से ताप शक्ति 'चिकित्वत्' है। अप्रीतिकारक, रोगकारी कीटाणुओं को नाश करने से 'यवयद्-द्वेषस्' है। उसकी प्रतीति हमें (स्तोमैः) बहुत से किरणगणों से होती है। (५) वह ताप शक्ति (उरु-ज्रयः) बहुत अधिक जीर्णकारी रोगहर शोषक ताप को धारती है, उसके बाद ही सुखकारक वृष्टि जल उत्पन्न होते हैं। (६) वही पहले (तमः आपप्रुषी) तेज से काने बादलों को उत्पन्न कर (स्वधाम्) अन्न जल को उत्पन्न करती है। वही ताप शक्ति (शोचिषा) तेज से और (शुक्रेण) जल से और रश्मियों से आकाश, अन्तरिक्ष और भूतल को पूर्ण करती है। इति तृतीयो वर्गः॥

[५३]

वामदेव ऋषिः॥ सविता देवता॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती॥ २ विराड् जगती। ४ स्वराड् जगती। ५ जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः॥१॥

भा०— जिस प्रकार (असुरस्य) प्राणों के देने वाले (सवितुः देवस्य वार्यम् महत्) प्रकाशवान् सूर्य का जलों के उत्पन्न करने में समर्थ बड़ा भारी तेज है। (येन छर्दिः यच्छति) जिस तेज से वह स्वयं सबको गृह या आश्रय देता है और स्वयं भी (देवः अक्तुभिः महान् उद् अयान्) वह सूर्य प्रकाश युक्त किरणों से सब दिन स्वयं उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार हम लोग भी (प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञानवान् (असुरस्य) सब के प्राणों के दाता वा शत्रुओं को वायु के तुल्य उखाड़ देने वाले

(सवितुः) सर्वोत्पादक ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, (देवस्य) प्रभु, राजा वा विजिगीषु के (तत् महत् वार्यम्) उस महान् शत्रुवारक और वरण करने योग्य बल ऐश्वर्य का (वृणीमहे) वरण करें प्राप्त करें (येन) जिससे वह (त्मना) स्वयं (दाशुषे) कर आदि देने वाले प्रजा जन को (छर्दिः-यच्छन्ति) गृह के समान शरण प्रदान करता है । वह (देवः) विजिगीषु, व्यवहारकुशल, विद्वान् पुरुष (अक्तुभिः) प्रकाशक, कमनीय गुणों से (महान्) महान्, आदर योग्य होकर दिनों दिन (उत् अयान्) उदय को प्राप्त हो और (नः तत् यच्छति) हमें भी वही ऐश्वर्य और तेज प्रदान करे ।

दि॒वो ध॒र्त्ता भुव॑नस्य प्र॒जाप॑तिः पि॒शङ्गं॑ द्रा॒पिं प्रति॑ मुञ्चते क॒विः ।
वि॒च॒क्ष॒णः प्र॒थय॑न्नापृ॒णन्नु॒र्वजी॑जनत्सवि॒ता सु॒म्नमु॒क्थ्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक परमेश्वर और प्रजा के द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला, प्रजापालक राजा और विद्यासम्बन्ध से प्रजापति आचार्य, सूर्य के तुल्य ही (दिवः धर्त्ता) ज्ञान, प्रकाश और विजय कामना को धारण करता हुआ (भुवनस्य) 'भुवन' समस्त लोकों का पालनकर्त्ता है । वह (कविः) क्रान्तदर्शी, अन्तर्यामी होकर भी सेनापतिवत् (पिशङ्गं) पीले, उज्वल (द्रापिं) सुवर्णमय कवच के तुल्य उज्वल स्वप्रकाशमय रूप को (प्रतिमुञ्चते) धारण करता है । वह (विचक्षणः) विविध पदार्थों, लोकों और विद्याओं का द्रष्टा (उरु) विस्तृत ज्ञान वा जगत् को (प्रथयत्) फैलाता हुआ, (आपृणन्) सबको पूर्ण एवं पालन करता हुआ (सुम्नम्) सुखकारी (उक्थम्) प्रशंसा योग्य ज्ञान-प्रवचन को भी (अजीजनत्) उत्पन्न करता है । (२) सेनापति वा राजा सुखकर वचन वा आज्ञा देता है, राष्ट्र को फैलाता और पालता है वह सुवर्णमय उज्ज्वल कवच को पहनता है । प्रति पूर्वो मुचिर्धारणे । यथा तमग्रीवः प्रत्यमुञ्चत् । अधारयद् इत्यर्थः ।

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे। प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (दिव्या पार्थिवा रजांसि आ अप्रात्) आकाश और पृथिवी के समस्त लोकों, स्थानों को व्याप लेता है, वह (देवः) प्रकाशमान सूर्य (अक्तुभिः जगत् सवीमनि निवेशयन् सविता बाहू अस्राक्) अपने प्रकाशक और वर्षक रश्मियों और मेघों से जगत् को प्रकाश और ऐश्वर्य में स्थापित करता और प्रेरित करता हुआ अपनी बाहुतुल्य दोनों शक्तियों को आगे निरन्तर प्रकट करता है उसी प्रकार (देवः) तेजोमय, सर्व सुखों का दाता और सब ज्ञानों का प्रकाशक, प्रभु परमेश्वर (दिव्यानि रजांसि) आकाश में स्थित समस्त तेजोमय सूर्यों, समस्त अग्निमय लोकों और (पार्थिवा रजांसि) पृथिवी रूप, जीवसर्ग के आश्रय योग्य लोकों को (आ अप्राः) सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है। वह (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (जगत्) इस जगत् को (अक्तुभिः) प्रकट करने, वर्षाने और चमकाने वाले ज्ञान, जल, और अग्नि, प्रकाश आदि साधनों से (सवीमनि) अपने शासन, जगद्-उत्पादन के कार्य में (निवेशयन्) स्थापित करता हुआ और (प्र-सुवन्) आगे भी निरन्तर उसको उत्पन्न करता हुआ अपने धारक और उत्पादक दोनों (बाहू) शक्तियों को दो बाहुओं के तुल्य (प्र अस्राक्) बराबर प्रकट करता जाता है और (स्वायधर्मणे) और अपने ईश्वरीय धर्म-व्यवस्था को प्रकट करने के लिये वह (देवः) सर्व-ज्ञान-प्रकाशक प्रभु (श्लोकं कृणुते) वेद-वाणी को प्रकट करता है। (२) राजा अपने राष्ट्र के धर्म या कानून-व्यवस्था के लिये धर्मशास्त्र को प्रकट करता है, अपने शासन में सब जगत् को बसाता और चलाता है और (बाहू प्र अस्राक्) दोनों बाहुओं अर्थात् ब्रह्म, क्षत्र दोनों को आगे बढ़ावे।

अदा॑भ्यो॒ भुव॑नानि प्रचा॒क॑शद्व्र॒तानि॑ दे॒वः स॑वि॒ताभि र॑क्षते ।
प्रास्रा॑ग्बा॒हू भुव॑नस्य प्र॒जाभ्यो॑ धृ॒तव्र॑तो म॒हो अज्म॑स्य राजति ४

भा०—जिस प्रकार सूर्य (भुवनानि प्र-चाकशत्) समस्त लोकों को प्रकाशित करता है। (व्रतानि अभि रक्षते) सबके व्रतों, कर्मों की रक्षा करता है, (महः अज्मस्य राजति) बड़े भारी जगत् में स्वयं चमकता है उसी प्रकार परमेश्वर (अदाभ्यः) स्वयं कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होकर अविनाशी, (देवः) सब सुखों का दाता, (सविता) सर्वोत्पादक है वह (भुवनानि प्र-चाकशत्) समस्त लोकों, उत्पन्न जन्तुओं को अच्छी प्रकार प्रकाश और ज्ञान, वा चेतना से प्रकाशित करता है। वही (व्रतानि) सब कर्त्तव्यों की (अभिरक्षते) रक्षा करता है। इसी कारण (धृत-व्रतः) सब व्रतों का धारण करने वाला, (अज्मस्य भुवनस्य) आकाश में संचालित, संसार के बीच (राजति) राजा के तुल्य विराजता है। और (भुवनस्य प्र-जाभ्यः) समस्त जगत् की प्रजाओं के लिये (बाहू) पिता के तुल्य दोनों बाहुओं को (प्र अस्राक्) आगे बढ़ाता है। प्रकाशक और व्रतपालक, जीवनदायक दोनों बाहुएं पिता परमात्मा की हैं। (२) राजा भी सबके व्रतों, धर्मों और कर्त्तव्यों को प्रकाशित करे और उन धर्मों की रक्षा करे। तभी वह धृतव्रत होता है। वह प्रेम और पालन के दोनों बल पिता की बाहुओं के तुल्य प्रजाओं के हितार्थ फैलावे।

त्रिर॒न्तरि॑क्षं सवि॒ता म॑हित्व॒ना त्री रजां॑सि परि॒भूस्त्रीणि॑ रोच॒ना ।
ति॒स्रो दिवः॑ पृथि॒वीस्ति॒स्र इ॑न्वति त्रि॒भिर्व्र॒तैर॒भि नो॑ रक्षति॒ त्मना॑ ५

भा०—(सविता) सूर्य के समान तेजस्वी और सब का उत्पादक परमेश्वर (परिभूः) सर्वव्यापक है। वह (अन्तरिक्षं) भीतर बाहर व्याप्त आकाश को भी (त्रिः) तीनों प्रकारों से (इन्वति) व्यापता है वह अपने (महित्वना) महान् सामर्थ्य से, (रजांसि) समस्त लोकों को

(त्रिः) तीन बार वा तीनों प्रकार के लोकों को (त्रीणि रोचना) तीन प्रकार के तेजस्वी, दीप्तिमान् पदार्थों और (तिस्रः) तीनों प्रकार के (दिवः) तेजों को और (तिस्रः पृथिवीः) तीनों प्रकार की भूमियों को (इन्वति) व्यापता है। वह (त्रिभिः) तीन प्रकारों के (व्रतैः) कर्मों वा नियमों से (त्मना) स्वयं (नः) हमें (अभि रक्षति) सब प्रकार से रक्षा करता है। तीन प्रकार के अन्तरिक्ष—महान् आकाश, मध्याकाश और हृदयाकाश। तीन प्रकार के रजस् या लोक–ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक भूलोक वा सात्विक, राजस वा तामस जन। तीन प्रकार के रोचन पदार्थ, सूर्य, चन्द्र अग्नि वा सूर्य, अग्नि, विद्युत् तीन। (दिवः) प्रकाश अर्थात् रक्त नील, पीत। तीन प्रकार के व्रत सृष्टि, स्थिति, संहार। तीन भूमियें सूर्य, वायु वा अन्तरिक्ष और यह भूमि। (२) इसी प्रकार राजा आकाश, गृह और भूगर्भ में प्रवेश कर सके, उत्तम मध्यम निकृष्ट श्रेणियों के लोकों को वश करे, धन, ज्ञान और प्रजाजन तीनों को प्राप्त करे, तीनों तेज प्रभुसत्ता, जनसत्ता और मन्त्रसत्ता तीनों शक्तियों को प्राप्त करे और तीन पृथिवी सम, वन, पर्वत तीनों पर राज्य करे। तीन व्रत, आत्मसंयम, जनसंयम, और अरिसंयम तीनों प्रकार की व्यवस्थाओं से राष्ट्र की रक्षा करे।

बृहत्सु॑म्नः प्रसवी॒ता नि॒वेश॑नो॒ जग॑तः स्था॒तुरु॒भय॑स्य॒ यो व॒शी।
स नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता शर्म॑ यच्छत्व॒स्मे क्षया॑य त्रि॒वरू॑थ॒मंह॑सः ॥६॥

भा०—वह परमेश्वर (बृहत्सुम्नः) बड़े भारी सुख आनन्द का स्वामी (प्रसवीता = प्रसविता) समस्त संसार को उत्तम रीति से उत्पन्न करने, शासन करने और सञ्चालन करने हारा, (निवेशनः) सब को यथास्थान स्थापित करने वाला, (जगतः) जंगम, गतिशील चर और (स्थातुः) स्थिर, अचल स्थावर (उभयस्य) दोनों प्रकार की सृष्टि को (यः-वशी) जो वश करने वाला है, (सः) वह (देवः सविता) सब का दाता, सर्वोत्पादक, प्रभु (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख प्रदान करे। और

(अस्मे) हमारे (क्षयाय) निवास के लिये (अंहसः) पाप और आघात से (त्रि-वरूथम्) विविध प्रकारों से बचाने में समर्थ गृह वा शरण (यच्छतु) प्रदान करे । (२) राजा भी राष्ट्र को (निवेशनः) बसाने वाला स्थावर, जंगम सब सम्पत्ति का वशकर्त्ता, प्रजा को सुख दे और निवास के त्रिविध तापवारक और पापवारक गृह वा शरण प्रदान करे ।

आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु७।४

भा०—(देवः सविता) प्रकाशमान् सूर्य जिस प्रकार ऋतुओं द्वारा बसे जगत् को बढ़ाता है । उत्तम प्रजा और अन्न देता, दिन और रात हमारी वृद्धि करता है उसी प्रकार (देवः) सब सुखों को देने और समस्त सूर्यादि को प्रकाशित करने वाला (सविता) सबका उत्पादक और सञ्चालक परमेश्वर (क्षयं) जगत् में बसे सर्ग को (ऋतुभिः) प्राणों के बल से (वर्धतु) बढ़ावे । वह (क्षपाभिः अहभिः च) दिन और रात सदा (नः जिन्वतु) हमें बढ़ावे । और (अस्मे) हमें (प्रजावन्तं) उत्तम सन्तति से युक्त (रयिम् सम् इन्वतु) ऐश्वर्य प्रदान करे । (२) देव अर्थात् राजा (ऋतुभिः) सदस्यों और राज-बन्धुओं सहित आवे, राष्ट्र को बसावे । हमारी उत्तम प्रजा और सेना का पालन करे । (अहभिः क्षपाभिः) न मरने वाले वीरों शत्रु-नायकों और क्षयकारिणी सेनाओं से विजय करे, बढ़े, हमें उत्तम प्रजायुक्त धन दे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५४]

वामदेव ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत्-त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत्१

भा०—(देवः) स्वयं ज्ञानवान् ज्ञानों, धनों और सुखों का दाता, (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राजा, परमात्मा और विद्वान् आचार्य (नु) निश्चय से (नः) हमारा (वन्द्यः) स्तुति योग्य (अभूत्) हो। वह (अन्हः) दिन के (इदानीम्) इस काल में भी (नृभिः) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा (उपवाच्यः) उपासना और स्तुति करने योग्य है। (यः) जो (मानवेभ्यः) समस्त मननशील पुरुषों और शिष्यों के हितार्थ (रत्ना) नाना रत्न, उत्तम ऐश्वर्य, सुखप्रद ज्ञान (वि भजति) विविध प्रकार से विभक्त करता है। वही प्रभु, राजा और आचार्य (नः) हमें और हमारे बीच (श्रेष्ठं द्रविणं) सब से उत्तम ऐश्वर्य (यथा) यथा-पूर्व, यथाकर्म और यथायोग्य (दधत्) प्रदान करे।

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः॥ २॥

भा०—हे (सवितः) सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! तू (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) यज्ञ, उपासना और भक्ति करने में श्रेष्ठ, विद्वान्, तेजस्वी, पुरुषों के हितार्थ (उत्तमम् भागम्) सबसे उत्तम सेवन करने योग्य, (अमृतत्वं) अमृतस्वरूप, मोक्ष, सुख (सुवसि) प्रदान करता है। और (आत् इत्) अनन्तर (दामानं) दानशील राजा, जीवित चित्त वाले तपस्वी, एवं अपने को प्रभु के प्रति सौंप देने वाले पुरुष को (वि ऊर्णुषे) विविध प्रकार से अच्छादित करता है. और (मानुषेभ्यः) समस्त मननशील पुरुषों के हितार्थ (अनूचीना जीविता) अनुकूल सुखप्रद जीवन प्रदान करता है।

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः॥ ३॥

भा०—हे परमात्मन् ! हे राजन् ! हम लोग (अचित्ती) विना ज्ञान

के, स्वयं (दीनैः) वेतनादि देने योग्य भृत्यों और (दक्षैः) कुशल पुरुषों और (प्रभूती) प्रचुर विभूतिमान् और (पुरुषत्वता) बहुत से पुरुषों से युक्त सैन्य से भी हम (दैव्ये जने) विद्वानों में कुशल वा ईश्वर-भक्त और राजा से नियुक्त (जने) पुरुष के प्रति और (देवेषु) विद्वानों और (मानुषेषु) साधारण मनुष्यों के ऊपर भी (यत्) जो अपराध करें हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो ! सञ्चालक राजन् ! (त्वं) तू (नः) हमें (अत्र) इस अवसर में (अनागसः) अपराध रहित (सुवतात्) कर । राजा अज्ञान से किये अपराधों को क्षमा करे, शेषों पर यथोचित दण्ड देकर प्रजा को अपराधों से रहित करे ।

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (दैव्यस्य) प्रकाशमान 'देव' अर्थात् किरणों वा प्रकाशों के स्वामी (सवितुः) सूर्य का (तत्) वह महान् सामर्थ्य (न प्रमिये) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, (यत्) जो (विश्वं भुवनं धारयिष्यति) समस्त संसार को बराबर धारण करता और भविष्य में भी धारण करता रहेगा, जो (पृथिव्याः वरिमन्) भूमि के विशाल पृष्ठ पर और (दिवः वर्ष्मन्) आकाश के भी वर्षणकारी मेघ में (सु-अंगुरिः) उत्तम उंगुलियों वाले, उत्तम साधनों वाले, पुरुष के समान उत्तम प्रकाशवान् किरणों से सम्पन्न सूर्य (सुवति) जल और अन्न को उत्पन्न करता है (अस्य तत् सत्यम्) उसका यह सब सामर्थ्य सत्य है । उसी प्रकार (दैव्यस्य सवितुः) सूर्यादि के स्वामी, सर्वोत्पादक परमेश्वर का (तत् न प्रमिये) वह महान् सामर्थ्य भी कभी नाश को प्राप्त नहीं होता (यत् विश्वं भुवनं) जो समस्त उत्पन्न जगत् को धारण करता और आगे भी करेगा । (यत्) और जो (पृथिव्या वरिमन् दिवः वर्ष्मन्) भूमि और आकाश के महान् पृष्ठ पर (सुअङ्गुरिः) उत्तम हस्तवान्, कुशल शिल्पी

के समान (आ सुवति) मेघ, अन्न, जीवगण सूर्यादि लोक (आसुवति) सब को उत्पन्न करता है (तत् अस्य सत्यम्) वह सब परमेश्वर का बनाया जगत् और उत्पादक सामर्थ्य 'सत्य' है, मिथ्या नहीं और सत् कारण प्रकृति, जीव और ब्रह्म इनके द्वारा उत्पन्न होता है ।

इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते॥५॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! (बृहद्भ्यः) बड़े २ (पर्वतेभ्यः) मेघों को जिस प्रकार सूर्य (पस्त्यावतः इन्द्रज्येष्ठान् क्षयान् सुवति) जल धाराओं से युक्त विद्युद्, वायु आदि बड़े २ शक्तिमान तत्वों वाले अन्तरिक्षादि प्रदेश प्रदान करता है उसी प्रकार तू भी (पर्वतेभ्यः) प्रजा के पालनकारी सामर्थ्यों से युक्त (बृहद्भ्यः) बड़े, बड़े (एभ्यः) इन पुरुषों को (इन्द्रज्येष्ठान्) राजा वा सेनापति आदि सर्वश्रेष्ठ पदों से युक्त नाना (पस्त्यावतः) निवास गृहों से युक्त (क्षयान्) स्थान उत्तम पद (सुवाति) प्रदान करता है। हे (सवितः) सूर्यवत् तेजस्विन् ! राजन् ! वे (पतयन्तः) प्रजा के पालक, सेनापाल, अश्वपाल, पशुपाल, वनपाल आदि नाना अध्यक्ष पदों पर कार्य करते हुए (यथायथा) जैसे २ भी (वि येमिरे) विशेष प्रकार से प्रजा का नियन्त्रण वा व्यवस्थापन करते हैं (एव-एव) उसी २ प्रकार (ते) वे सब (ते) तेरे ही (सवाय) शासन और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (तस्थुः) विराजें ।

ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ६।५

भा०—हे (सवितः) सर्वशासक ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् वा प्रभो ! (ये) जो (सवासः) उत्तम ऐश्वर्यवान् ! अभिषिक्त पदाधिकारी लोग (दिवे दिवे) दिनों दिन (त्रिः) तीन बार वा तीनों प्रकार से (ते) तेरे

(सौभगम्) सुखदायी ऐश्वर्य को (आसुवन्ति) सब प्रकार से बढ़ाते हैं उन (आदित्यैः) बारह मासों से सूर्य के तुल्य (इन्द्रः) तेजस्वी शत्रु-हन्ता और (अद्भिः सिन्धुः न) जलों से पूर्ण महानद, सागर वा आकाश के तुल्य वेगवान् विशाल और सौख्य वृष्टि आदि का दाता (अदितिः) अदीन अखण्डित शासक और (द्यावापृथिवी) सूर्य, भूमि के तुल्य माता पिता होकर (नः) हमें तू (शर्म यंसत्) सुख शरण प्रदान कर (२) ये सब उत्पन्न पदार्थ परमेश्वर के ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं । वह प्रभु हमें सुख शरण दे ।

[५५]

वामदेव ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ भुरिक् पंक्तिः । ६, ७ स्वराट् पंक्तिः । ८, ९ विराड्गायत्री । १० गायत्री ॥

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः॥१॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे सब के स्नेहिन् ! मृत्यु से बचाने हारे ! हे (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले जनो ! (वः) आप लोगों मे से (कः) कौन आप लोगों का (त्राता) रक्षक है । और (कः) कौन (वरूता) आप लोगों को अपनाने और विभाग कर २ रखने वाला है हे (द्यावाभूमी) आकाश वा सूर्य और भूमि के समान आकाश जल, अन्न और आश्रय देने वाले माता और पिता ! हे (अदिते) अनुल्लंघनीय आज्ञा वाले माता पिता ! आप दोनों (नः) हमें (सहीयसः मर्तात्) बहुत बलवान् मनुष्य से (त्रासीथाम्) बचावें । हे (देवः) विद्वान् और दान-शील पुरुषो ! (अध्वरे) यज्ञादि कार्य में (कः) कौन आप लोगों को (वरिवः धाति) धनैश्वर्य प्रदान करता है ।

प्र ये धामा॑नि पू॒र्व्याण्यर्चा॒न्वि यदु॒च्छान्वि॑यो॒तारो॒ अमू॑राः ।
वि॒धा॒तारो॒ वि ते द॑धु॒रज॑स्रा ऋ॒तधी॑तयो रुरुचन्त द॒स्माः ॥२॥

भा०—(ये) जो (पूर्व्याणि) अपने पूर्व पुरुषों से प्राप्त किये (धामानि) जन्म, नाम, स्थानों, पदों को (प्र अर्चान्) आदर पूर्वक देखते हैं और (यत्) जो उनको (वि उच्छान्) विविध प्रकारों से प्रकट करते हैं (ते) वे (वि-योतारः) विविध प्रकारों के संकटों से छुड़ाने वाले (अमूराः) मोहरहित, ज्ञानवान्, (वि-धातारः) विविध कर्मों को करने वाले (अजस्राः) अहिंसक (ऋत-धीतयः) सत्य व्रतों को धारण करने वाले होकर (वि दधुः) विविध कर्म करते और वे (दस्माः) दुःखों के नाशक होकर (रुरुचन्त) सब के चित्तों को भले लगते हैं और सबकी दृष्टियों में तेजस्वी सूर्यवत् चमकते, शोभा पाते हैं ।

प्र प॒स्त्या॒३॑मदि॑तिं॒ सिन्धु॑म॒र्कैः स्व॒स्तिमी॑ळे स॒ख्याय॑ दे॒वीम् ।
उ॒भे यथा॑ नो॒ अह॑नी नि॒पात॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ कर॒ताम॑द॑ब्धे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (पस्त्याम्) साक्षात् गृहस्वरूप, (अदितिम्) माता स्वरूप, (सिन्धुम्) प्रेम सम्बन्ध से बांधने वाली, (सख्याय) मित्र भाव के लिये (स्वस्ति) सुख कल्याण करने वाली, स्त्री का (अर्कैः) आदर सत्कार युक्त वचनों से (ईळे) सत्कार-सन्मान करूं । जिससे (नः) हमारे बीच में (उषासा-नक्ता) दिन रात्रि के समान कामना युक्त स्त्री और अव्यक्त भाव वाला पुरुष (उभे) दोनों ही (अहनी) जीवन में पीड़ित, दुखी न रहते हुए (अदब्धे) अहिंसित, चिरजीव होकर (निपातः) एक दूसरे की नित्य रक्षा करते रहें ।

व्य॑र्य॒मा वरु॑णश्चेति॒ पन्था॑मि॒षस्पतिः॑ सुवि॒तं गा॒तुम॒ग्निः ।
इन्द्रा॑विष्णू नृ॒वदु॒ षु स्तवा॑ना॒ शर्म॑ नो यन्त॒मम॑वद्वरू॑थम् ॥ ४ ॥

भा०—(अर्यमा) दुष्टों को संयम में रखने वाला जितेन्द्रिय औ

न्यायशील (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (पन्थाम्) मार्ग को (विचेति) विशेष रूप से जनाता है। और (इषः पतिः अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी, नायक अन्न का स्वामी और कामनाओं का पालक होकर (सुवितं) सुख से चलने योग्य (गातुम्) मार्ग और (सुवितम् गातुम्) सुख सौभाग्य से सम्पन्न भूमि को (विचेति) प्राप्त करे, भली प्रकार जाने। (इन्द्र-विष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य वाले विद्युत् और वायु के तुल्य दीप्ति और बल से युक्त स्त्री पुरुष (नृवत्) नायकों के तुल्य (नः) हमारे बीच में (सु स्तुवाना) उत्तम स्तुति के पात्र होते हुए (अमवत्) सुख सामग्री और सहायकों से युक्त (वरूथम्) गृह और (शर्म) शरण (यन्तम्) प्राप्त करें और उसकी व्यवस्था करें।

आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥६॥

भा०—मैं वधू (मरुताम्) वायुओं के तुल्य बलवान् विद्वान् पुरुषों के बीच (पर्वतस्य) मेघ के समान पालक, सुखों के देने वाले, एवं स्थिर (देवस्य) कामना करने करने वाले, तेजस्वी, सुखदाता (भगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् (त्रातुः) दुःखों से पालन करने वाले तुझ पुरुष के (अवांसि) रक्षाओं, प्रिय पदार्थों और अन्नों को मैं (अव्रि) वरण करती हूं। वह (मित्रः) मित्र के तुल्य अति स्नेही (पतिः) पति, पालक (नः) हमें (जन्यात्) आगे होने वाले या जन समूह में होने वाले (अंहसः) पाप और दुःख से (पात्) बचावे। (उत) और वह (मित्रियात्) मित्र जनों से होने वाले दुराचारादि अकर्म से भी (उरुष्येत्) रक्षा करे।

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥ ६ ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (संचरणे) चलने में (सनिष्यवः) जल को विभक्त कर लेने वाली (नद्यः) नदियें (घर्म-स्वरसः) बहते जलों से पूर्ण होकर, दूर जाकर (समुद्रम् अप व्रन्) समुद्र को ही वरण करती हैं। उसी प्रकार (सनिष्यवः) नाना द्रव्य, एवं ऐश्वर्य को चाहने वाली, (नद्यः) नदियों के तुल्य सुख समृद्धि से युक्त स्त्रियें भी (संचरणे) समान पद पर आचरण करने वा साथ मिल कर धर्मानुष्ठान करने के लिये (समुद्रं) समुद्र के समान गंभीर एवं अपार उदार पुरुष के प्रति (घर्म-स्वरसः) अति दीप्त उज्वल स्वर से प्रसन्नता युक्त होकर (अप-व्रन्) उसके प्रति अपने प्रेम भाव प्रकट करें और लोग (अप्येभिः इष्टैः) आप्त जनों के योग्य इष्ट उत्तम वचनों और आदर सत्कारों से और (बुध्न्येन अहिना) आकाश में स्थित मेघ या सूर्य के तुल्य शान्तिप्रद वा तेजस्वी वर के मिष से (रोदसी नु) आकाश और पृथिवी के तुल्य वर वधू दोनों की ही (स्तुवीत) स्तुति करें।

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः॥ ७॥

भा०—(देवी) उत्तम गुणों से युक्त स्त्री (अदितिः) अखण्ड चरित्र रहती हुई (नः) हमें (देवैः) अपने उत्तम गुणों से, किरणों से सूर्य के तुल्य (नि पातु) गृह जनों को पालन करे। (देवः) कामनावान् व्यवहारज्ञ पुरुष (त्राता) पालक होकर (अप्र-युच्छन्) किसी प्रकार प्रमाद न करता हुआ (त्रायताम्) सब बन्धुजन की पालना करे। हमें भी (मित्रस्य) स्नेही मित्र (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ और (अग्नेः) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त पुरुष के (सानु धासिम्) उपभोग योग्य और दान देने योग्य धारक पोषक अन्न आदि वृत्ति को (प्रमियं नहि अर्हामसि) कभी नाश न करना चाहिये।

अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य ।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ८ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष (वसव्यस्य) गृहों में वसने वाले लोगों के अति हितकारी ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी हो । वह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (महः सौभगस्य) वड़े उत्तम सौभाग्य का (ईशे) स्वामी हो । वह (तानि) उन धनों और सौभाग्यों का (अस्मभ्यं) हमें (रासते) प्रदान करे ।

उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु ।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥

भा०—हे (उषः) उषावत् कमनीय कान्ति से युक्त विदुषि ! हे (मघोनि) उत्तम धन समृद्धि से सम्पन्न ! हे (सूनृते) उत्तम ज्ञान और वाणी बोलने और उत्तम अन्न उपयोग करने हारी ! हे (वाजिनी-वति) वलशालिनी शक्ति वा क्रिया तथा ज्ञान युक्त विद्या से युक्त तू (अस्मभ्यम्) हमें (पुरु) वहुत से (वार्या) वरण करने योग्य ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त करा ।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—(सविता) सबका उत्पादक सूर्यवत् तेजस्वी (भगः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सव दुःखों व कष्टों का वारक (मित्रः) सब का स्नेही, प्रजा को मरने से वचाने वाला, (अर्यमा) न्यायकारी और शत्रुओं को नियम में रखने वाला, (इन्द्रः) विद्युत् और वायु के समान वलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष (तत्) उन उन नाना प्रकार के (राधसा) कार्य साधक धनसहित (सु गमत्) सुखपूर्वक प्राप्त हो । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५६]

वामदेव ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, २, त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः ॥ ५ निचृद्गायत्री । ६ विराड् गायत्री । ७ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

म॒ही द्यावा॑पृथि॒वी इ॒ह ज्येष्ठे॑ रु॒चा भ॑वतां शु॒चय॑द्भिर॒र्कैः ।
यत्सीं॒ वरि॑ष्ठे बृह॒ती वि॑मि॒न्वन्रु॒वद्धो॒क्षा प॑प्रथा॒नेभि॒रेवैः॑ ॥ १ ॥

भा०—(इह) इस संसार में जिस प्रकार (द्यावापृथिवी मही शुचयद्भिः अर्कैः रुचा ज्येष्ठे भवताम्) सूर्य और पृथिवी दोनों बड़ी होकर पवित्रकारी तेजों से कान्ति से सर्वोत्तम होते हैं । उसी प्रकार सूर्य-पृथिवी वत् पुरुष और स्त्री, (मही) गुणों में आदरणीय होकर (शुचयद्भिः अर्कैः) पवित्र करने वाले वेदमन्त्रों और अन्नों से और (रुचा) कान्ति और उत्तम रुचि से (ज्येष्ठे) सब से उत्तम (भवताम्) होकर रहें । और जिस प्रकार (उक्षा) जल सेचन करने और सब को धारण करने वाला मेघ (वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् पथानेभिः एवैः रुवत्) बड़ी २ सूर्य पृथिवी उन दोनों को व्यापता हुआ व्यापक तेजों और वायुओं द्वारा ध्वनित करता है उसी प्रकार (उक्षा) ज्ञान धाराओं का सब पर समान भाव से सेचन करने वाला विद्वान् पुरुष (यत्) जो (सीम्) सब प्रकार से (वरिष्ठे बृहती) सब से अधिक वरणीय, बड़े २ दोनों स्त्री और पुरुष को (विमिन्वन्) विशेष रूप से ज्ञानवान् करता हुआ (पप्रथानेभिः) अति विस्तृत (एवैः) ज्ञानों वा अर्थज्ञापक वचनों से (रुवत्) उपदेश करे । (२) इसी प्रकार प्रजा वा राजा भी पृथिवी सूर्य के तुल्य समृद्धि-ऐश्वर्य और परस्पर की रुचि से युक्त हों । बलवान् राजा वा नेता उभय पक्षों को आज्ञापक शासनों से आदेश करे ।

देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य और पृथिवी के समान वर और वधू, स्त्री और पुरुष दोनों (देवी) स्वयं उत्तम गुणों के प्रकाशक, उत्तम व्यवहारों की कामना करने वाले, (यजत्रैः देवेभिः) सत्संगयोग्य, दानशील, और आदरणीय, पूज्य विद्वानों के साथ सदा (यजते) सत्संग करने वाले (अमिनती) एक दूसरे की वा सन्तानों और परस्पर गृहीत सद्व्रतों को पीड़ित न करते हुए (उक्षमणे) परस्पर निषेक आदि व्यवहार करते, एक दूसरे को बढ़ाते और गृहस्थभार का वहन करते हुए (तस्थतुः) स्थिर होकर रहें। वे दोनों (ऋत-वरी) सत्य, ज्ञान और धनके मालिक न होकर, (अद्रुहा) एक दूसरे का प्रोत्साहन करते हुए, (देव-पुत्रे) उत्तम विद्वान् माता पिता और आचार्य के पुत्र वा शिष्य होकर (शुचयद्भिः) पवित्र कारक (अर्कैः) मन्त्रों, तेजों और अन्नों से (यज्ञस्य नेत्री तस्थतुः) परस्पर के समर्पण वा संग से वने गृहस्थ कर्म के नायक होकर विराजें । (२) इसी प्रकार का व्यवहार राजा प्रजा भी करें।

स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥

भा०—(सः इत् सु-अपाः) वह परमेश्वर ही शुभ कर्म करने वाला, विश्वकर्मा होकर (भुवनेषु) समस्त लोकों में (आस) विद्यमान, व्यापक है (यः इमे) जो इन दोनों (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी को (जजान) उत्पन्न करता है। और (सः इत्) वह ही (धीरः) सब की बुद्धियों में रमण करने वाला, समस्त संसार को धारण करने वाला है, जो (उर्वी) इन दोनों विशाल, (गभीरे) गंभीर (सुमेके) सुरूप, सुसम्बद्ध, (अवंशे) वंशादि स्थूल आधार के विना ही रहने वाले

(रजसी) दोनों लोकों को (शच्या) अपनी बड़ी भारी शक्ति से (सम् ऐरत्) भली प्रकार चला रहा है। (२) उसी प्रकार समस्त लोकों में वही (सु-अपाः) उत्तम आचारवान् पुरुष ही है जो इन वर वधू पुरुष स्त्री को (जजान) परस्पर विवाहित करे। वे इन गंभीर (रजसी) एक दूसरे का वा सबका मनोरंजन करने वाले रागयुक्त, (सुमेके) उत्तम रीति से वीर्यसेचन में समर्थ वा सुन्दर स्वरूप (अवंशे) आगे की सन्तान रूप वंश परम्परा से रहित, निःसन्तान दोनों को (धीरः) बुद्धिमान् विद्वान् (शच्या) वेदवाणी से (सम् ऐरत्) एक साथ सुसंगत कर सन्मार्ग पर सञ्चालित करे। दोनों विवाहित कर सत्पथ पर चलावे।

नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

भा०—(नु) निश्चय से स्त्री और पुरुष दोनों (रोदसी) सूर्य पृथिवी के तुल्य एक दूसरे को रोकने वाले, प्रेमपूर्वक वचन कहने वाले, और एक दूसरे के प्रेमवश, सुखों, दुःखों हर्षों और विषादों में एक दूसरे के लिये रोने वा रुलाने वाले होवो। वे दोनों (सजोषाः) समान नीति भाव से प्रीति युक्त होकर (बृहद्भिः) बड़े बड़े, (पत्नीवद्भिः) पालक स्त्री पत्नी, वा मालिकन से युक्त (वरूथैः) गृहों से (इषयन्ती) बहुत अन्नादि संग्रह करते हुए (उरूची) बहुत ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हुए (यजते) परस्पर संगत रह कर (विश्वे) एक दूसरे के हृदय में प्रविष्ट होकर (नि पातं) प्रजाओं, पशुओं और भृत्यों का पालन करें। जिससे हम लोग (धिया) बुद्धि और धारण पोषण आदि उत्तम कर्म से (रथ्यः) उत्तम रथादि से युक्त और (सदासाः) उत्तम सेवकों से युक्त (स्याम) हों।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों सूर्य और पृथिवी के समान ही (द्यवी) ज्ञान वा हर्ष प्रकाश से एक दूसरे को स्तुति गुणों से प्रकाशित करने वाले, एक दूसरे की कामना करने वाले और (शुची) एक दूसरे के प्रति स्वच्छ, सद् विचारवान्, ईमानदार होकर रहो। (वां) आप दोनों को (अभि) लक्ष्य करके हम लोग (उप-स्तुतिं प्र भरामहे) कथोपकथन, दृष्टान्त प्रतिदृष्टान्त से उपदेश प्रस्तुत करते हैं। और (प्र-शस्तये) आप लोगों की कीर्त्ति के लिये हम (उप-स्तुतिं प्र-भरामहे) वे सब उत्तम वचन कहते हैं। आप दोनों उस पर आचरण करो।

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों एक दूसरे को अपने (तन्वा पुनाने) विस्तृत तेज और जल से पवित्र करते (स्वेन दक्षेण राजथः) अपने २ दाहक तेज प्रकाश और भीतरी अग्नि के बल से प्रकाशित होते वा राजा रानी के तुल्य आचरण करते हैं और (सनात्) सनातन काल से, सृष्टि के आरम्भ से अनन्त काल तक (ऋतम् ऊह्याथे) इस जगत् को वा तेज, जल वा अन्न को धारण करते हैं वा परस्पर के संग रूप यज्ञ को धारते हैं। उसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों (मिथः) एक दूसरे को (तन्वा) शरीर से सम्पर्क द्वारा (पुनाना) पवित्र करते हुए (स्वेन दक्षेण) अपने विद्या, बुद्धि और धन बल से (राजथः) शोभा पावें। और (सनात्) सनातन से प्राप्त (ऋतम्) सत्य ज्ञान वेद, पैतृक धन और धार्मिक सत्य व्यवहार को (ऊह्याथे) धारण करो।

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों (मही) एक दूसरे के प्रति और अन्यों की दृष्टि में भी आदर योग्य होकर (तरन्ती) एक दूसरे के सहाय से सब कष्टों को

पार करते हुए (ऋतम्) अन्न, धन, ज्ञान और तेज को (पिप्रती) पूर्ण रूप धारण करते हुए (मित्रस्य) परस्पर के स्नेह करने वाले अपने सहचर व्यक्ति को (साधथः) प्राप्त हों, एक दूसरे को साधें, एक दूसरे का कार्य करें। और (यज्ञं परि) यज्ञ में परिक्रमा करके (नि सेदथुः) विराजें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[५७]

वामदेव ऋषिः ॥ १—३ क्षेत्रपतिः । ४ शुनः । ५, ८ शुनासीरौ । ६, ७ सीता देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७ अनुष्टुप् । २, ३, ८ त्रिष्टुप् । ५ पुर-उष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥

भा०—(क्षेत्रस्य) निवास करने योग्य गृह, वीज वपन करने योग्य क्षेत्र के तुल्य गृहपत्नी के (पतिना) पालक, (हितेन) स्थापित हितकारी एवं प्रेम, कर्त्तव्य में बद्ध के सदृश पुरुष से ही (वयम्) हम (गाम्) गौ, भूमि, इन्द्रियों और गवादि पशु गण, (अश्वं) कर्मेन्द्रिय अश्वादि साधन और (पोषयित्नु) पोषक धन, अन्नादि सब (जयामसि) प्राप्त करते हैं (सः) वह (नः) हमें (ईदृशे) ऐसे पद पर विराज कर (आ मृडाति) सब प्रकार से सुखी करे।

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार क्षेत्र का स्वामी कृषक व जमींदार, भूस्वामी अन्न समृद्धि को प्राप्त करता और औरों को देता है उसी प्रकार हे (क्षेत्रस्य पते) स्त्री गृह आदि निवास योग्य पदार्थों के पालक पुरुष ! (पयः धेनुः इव) गौ को दूध के तुल्य (अस्मासु) हमें (मधुमन्तम् ऊर्मम्) मधुर

अन्न, वचन आदि से युक्त उत्तम आनन्द को (धुक्ष्व) प्रदान कर । वह (घृतम्-इव सु-पूतम्) घी के तुल्य उत्तम रीति से छने हुए शुद्ध पवित्र (मधु-श्चुतम्) मधुर सुख देने वाले उत्तम पदार्थ को प्रदान कर और (नः) हमें (ऋतस्य पतयः) सत्य ज्ञान वेद और धनैश्वर्य के पालक, सत्य वचन और अन्न के पालक जन (मृडयन्तु) सुखी करें ।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

भा०—(नः) हमारे लिये (ओषधीः) ओषधि गण (मधुमतीः सन्तु) मधुर गुण वाली हों । (द्यावः) सब भूमियें (मधुमतीः सन्तु) अन्नों से युक्त हों । (आपः मधुमतीः सन्तु) जल धाराएं, नदियें सब मधुर जल वाली हों । (नः अन्तरिक्षं मधुमत् अस्तु) हमारे लिये अन्तरिक्ष मधुर जल से युक्त हो । (नः क्षेत्रस्य पतिः) हमारे खेत का पालक और हमारे में से स्त्रियों, गृहों के पालक पुरुष (मधुमान् अस्तु) अन्नों से युक्त हों । हम (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए (एतं अनु चरेम) गृहपति के अनुकूल होकर रहें, उसकी आज्ञा में और उसकी सुविधानुसार रहें । क्षेत्रस्य पतिः—क्षेत्रं क्षियतेर्निवासकर्मणः तस्य पाता पालयिता वा तस्यैषा भवति । क्षेत्रस्य पतिनेत्यादि० निरु० १० । २ । १ ॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥

भा०—(वाहाः) हल वाहने वाले बैल, अश्व आदि पशु (शुनं) सुखपूर्वक हल चलावें, (नरः शुनं कृषन्तु) मनुष्य भी सुखपूर्वक हल वाहें । (लाङ्गलं शुनं कृषतु) हल भी सुख से क्षेत्र को खोदे । (वरत्राः) रस्सियां (शुनं) सुखपूर्वक (बध्यन्ताम्) पशुओं को बांधी जावें । हे पुरुषो ! तू (अष्ट्राम्) चाबुक को भी (शुनं) सुखपूर्वक (उत्

इङ्गय) चला । अध्यात्म में—वाह इन्द्रिय गण, नर आत्मा, लाङ्गल चित्त, वरत्रा शुभ वासनाएं ।

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (शुनासीरौ) 'शुन' सुखप्रद अन्नादि पदार्थ और 'सीर' अर्थात् हल के स्वामी क्षेत्रपति और भृत्य, भर्त्तव्य स्त्री पुत्र, सेवकादि जनो ! आप दोनों (यत्) जो (दिवि) भूमि पर (पयः) पोषणकारी अन्न को आकाश में जल को सूर्य और वायु के तुल्य (चक्रथुः) उत्पन्न करते हो वे दोनों (इमां) इस (वाचम्) वाणी को (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक कार्य व्यवहार में लाओ । और (तेन) उससे (माम्) मुझ प्रजाजन को भी (उप सिञ्चतम्) जल से वृक्षादि के समान अन्नादि से बढ़ाओ ।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगासांसि यथा नः सुफलासंसि ॥ ६ ॥

भा०—हे (सीते) हल के अग्रभाग, फाली ! हे (सु-भगे) उत्तम ऐश्वर्यवति ! तू (अर्वाची) भूतल के नीचे जाने हारी (भव) हो । (त्वा वन्दामहे) तेरे ऐसे गुणों का हम वर्णन करें (यथा) जिससे तू (नः सुभगा असिस) सुख सौभाग्य देने वाली हो और (यथा-नः सुफला असिस) जिस प्रकार तू हमें उत्तम अन्न समृद्धि रूप फल देने वाली हो । हल की फाली से उत्तम रूप से खेत जोतने पर ही फसल की उत्तमता निर्भर है । इसलिये हल की फाली के नाना गुणों का अनुशीलन करना चाहिये । (२) गृह पक्ष में—हे (सीते = सिते) प्रेमपाश में बद्ध एवं शुभ्र गुणों से युक्त ! (सुभगे) सौभाग्यवति स्त्री ! तू (अर्वाची भव) हमारे प्रति आकृष्ट हो (त्वा वन्दामहे) तेरे गुण वर्णन और सत्कार करें । जिससे उत्तम ऐश्वर्य और अंग, उत्तम रूप और कुल युक्त और उत्तम

सन्तान वाली हो। स्त्री के उत्पादक अंगों का दोपरहित होना ही सन्तान की उत्तमता में कारण है। प्रेम से बंधने वाली स्त्री सीता है। सुखपूर्वक सेवने, पति को सुख देने और कल्याण गुणों से युक्त स्त्री 'सुभगा' है।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥ ७॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष वा भूमि में जल देने वाला, भूमि को हल से विदारण करने वाला कृषक जन (सीतां निगृह्णातु) हल की फाली को अच्छी प्रकार दबाकर पकड़े। (ताम्) इस हल की फाली को (पूषा) भूमि (अनु यच्छतु) अनुकूल होकर ग्रहण करे। तब (सा) वह भूमि (पयस्वती) जल और अन्न से पूर्ण होकर (उत्तराम् उत्तराम् समाम्) उत्तरोत्तर प्रतिवर्ष (दुहाम्) दूध को गौ के समान अन्नादि समृद्धि को प्रदान करती हैं। (२) इन्द्र ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष प्रिय स्त्री का पाणि ग्रहण करे, पोषक पति उसके अनुकूल होकर (यच्छतु) विवाह करे। वह (पयस्वती) उत्तम अन्न और दुग्धवती होकर आगे के वर्षों में प्रजा सन्तानादि से गृह को पूर्ण करे।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ८।९

भा०—(नः फालाः) हमारी हल की फालियां (भूमिं) भूमि को (शुनं) सुखपूर्वक (वि कृषन्तु) विविध प्रकार आड़े बांके खोदें। (कीनाशाः) किसान लोग (वाहैः) बैलों और घोड़ों से (शुनम्) सुखपूर्वक (यन्तु) चलें। (पर्जन्यः) मेघ (मधुना) मधुर अन्न से और (पयोभिः) जलों से पूर्ण होकर बरसे। और (शुनासीराः) सुखपूर्वक हल चलाने वाले कृषक स्त्री पुरुष (शुनम्) सुखप्रद अन्न (अस्मासु) हम सब प्रजाओं के बीच (धत्तम्) धारण करें और दें। इति नवमो वर्गः॥

[५८]

वामदेव ऋषिः ॥ अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा देवताः ॥ छन्दः— निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८, ९, १० त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ४ अनुष्टुप् । ६, ७ निचृदनुष्टुप् । ११ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृदुष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (समुद्रात् मधुमान् ऊर्मिः उत् आरत्) समुद्र से जलमय तरंग ऊपर आता है उसी प्रकार (समुद्रात्) समुद्र के तुल्य अति विशाल महान् आकाश से (मधुमान् ऊर्मिः) तेजोमय, शक्तिमय, ऊपर गति करने वाला सूर्य (उत् आरत्) उदय को प्राप्त होता है । उसी प्रकार (समुद्रात्) जलमय समुद्र से (मधुमान् ऊर्मिः) जल से भरा तरंगवत् मेघ भी (उत् आरत्) ऊपर उठता है । प्रजागण के समुद्र से (मधुमान्) शत्रुकंपन और शत्रु-संतापक बल से युक्त (ऊर्मिः) सर्वो-परि उनको उन्मूलन करने वाला वीर पुरुष (उत् आरत्) उदय को प्राप्त होता है । जिस प्रकार समुद्र से उठा जल (अंशुना) सूर्य के किरण-समूह से (अमृतत्वं) अमृत रूप जलभाव वा अन्नभाव को (सम-आनट्) प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार मेघ भी बरसकर अमृत अन्न वा जल में परिणत होता है । सूर्य भी अपने किरण से 'अमृत' अर्थात् जीवन रूप में बदल जाता है । (यत्) जो (घृतस्य) जल, घृत वा तेज का (गुह्यं नाम अस्ति) गुप्त, अप्रकट स्वरूप है, अग्नि में पड़ा घी जिस प्रकार प्रकाशयुक्त अग्नि आदि की ज्वाला बन जाता है आकाश का जल जिस प्रकार विद्युत् की ज्वाला रूप से प्रकट होता है उसी प्रकार (घृतस्य) तेज का (गुह्यं नाम) गुप्त, व्यापक रूप (यत् अस्ति) जो है वह (देवानाम्) सूर्य आदि प्रकाशवान् पदार्थों की (जिह्वा) रसादि

ग्रहण करने की शक्ति रूप है। (अमृतस्य नाभिः) जिस प्रकार जल प्राण वा जीवन को बांधने वाला है उसी प्रकार वह तेज भी जीवन को बांधने वाला है। घृतादि के पक्ष में—वे पदार्थ (अमृतस्य नाभिः) दीर्घ जीवन के मूल आश्रय हैं। परमेश्वर, गृहपति, जीवन, मेघ आदि पक्षों की स्पष्टता के लिये देखो (यजुर्वेद अ० १७। मं० ८९)। (२) ज्ञानपक्ष में—समुद्र के समान गंभीर गुरु विद्वान् से (मधुमान् ऊर्मिः) ज्ञानमय या ऋग्वेदमय उत्तम ज्ञान वा शब्दमय शास्त्र प्रकट होता है वह (अंशुना) शिष्य के साथ मिलकर अमृत, चिरस्थायी हो जाता है। वा वह व्यापक ब्रह्म के साथ मिलकर मोक्ष का सा सुख देता है। (घृतस्य) प्रकाशमय ज्ञान का (गुह्यं) बुद्धि में स्थित जो रूप है वह (देवानां जिह्वा) इन्द्रिय गण के बीच वा विद्वानों की वाणी से प्रकट होता है और वही ज्ञान (अमृतस्य नाभिः) मोक्ष का आश्रय है।

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥ २ ॥

भा०—जिस ज्ञान को (चतुःशृङ्गः) अज्ञान के नाशकारी चार वेद-मय ज्ञानों को धारण करता हुआ (ब्रह्मा) वेदज्ञ पुरुष (शस्यमानम्) गुरु से उपदेश किये हुए को (उप शृणवत्) गुरु के समीप बैठकर श्रवण करता है और जिसको (चतुःशृंगः) चार सींगों वाले मृग के तुल्य, अन्धकार रूप अज्ञान के नाशक एवं (गौरः) उत्तम वेदवाणी में रमण करने वाला विद्वान् ही (अवमीत्) धाराप्रवाह से उपदेश करे। (अस्मिन् यज्ञे) इस प्रकार के 'यज्ञ' अर्थात् परस्पर के पवित्र सत्संग और ब्रह्म ज्ञानमय वेद के दान-प्रतिदान कर्म द्वारा हम (घृतस्य) इस ज्ञान को (प्र ब्रवाम) सदा अच्छी रीति से अन्यों को उपदेश करें और स्वयं भी (नमोभिः) बड़ों के प्रति आदर-सत्कार, सेवा-शुश्रूषा, भेंट

पूजा अन्न-दक्षिणादि द्वारा (धारयाम) धारण करें। यज्ञ, घृत के पक्ष में—हम ज्ञान-घृत का वह उत्तम स्वरूप जानें जिसको अन्नों सहित यज्ञ में प्राप्त करें। यज्ञ में पढ़े मन्त्रों को ब्रह्मा श्रवण करे। चतुर्वेदविद् विद्वान् वा चतुर्वेद रूप चार अंगों से युक्त वाङ्मय यज्ञशील मृगवत् है, वह वेद का उपदेश करे या घृत का अग्नि में आहुति दें।

च॒त्वारि॒ शृङ्गा॒ त्रयो॑ अस्य॒ पादा॒ द्वे शी॒र्षे स॒प्त हस्ता॑सो अ॒स्य।
त्रिधा॑ ब॒द्धो वृ॑ष॒भो रो॑रवीति म॒हो दे॒वो मर्त्याँ॒ आ वि॑वेश ॥३॥

भा०—यज्ञपुरुष वा वेदविद् विद्वान् का वर्णन करते हैं (अस्य) इस के (चत्वारि शृङ्गा) चार सींग हैं, (अस्य त्रयः पादाः) इसके तीन पाद अर्थात् चरण हैं। (द्वे शीर्षे) दो सिर हैं। (अस्य हस्तासः) सप्त) इसके हाथ सात हैं। वह (त्रिधा बद्धः) तीन प्रकार से बंधा है वह (वृषभः रोरवीति) बरसते मेघ के तुल्य वा बलवान् सांड के समान ऋषभ स्वर से (रोरवीति) शब्द करता है, वह (महः देवः) महान् विद्वान् (मर्त्यान् आविवेश) मनुष्यों के बीच में प्रवेश करता है। अज्ञान नाशक चार वेद चार शृंग के समान हैं। ऋग्, यजुः और साम गान ये तीन प्रकार के उसके तीन चरण हैं, अभ्युदय और निःश्रेयस् ये दो सिर हैं, मुख्य ध्येय हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरण और आत्मा ये हाथ अर्थात् साधन हैं। वह वाणी, कर्म्म और मन तीनों के नियमों में बंधा है। (२) यज्ञमय पुरुष के पक्ष में—निरुक्त यास्क के अनुसार चार वेद चार सींग, तीन सवन तीन चरण हैं, सात हाथ सात छन्द, दो सिर दो सिरे प्राय-णीय और उदयनीय। वह मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प, तीनों से बद्ध है वह सर्वसुखवर्षी यज्ञ सब मनुष्यों को प्राप्त है। प्राणमय आत्मा पक्षमें—अन्तः करण चतुष्टय ४ सींग, मन, वाणी, काय तीन पाद, प्राण उदान दो सिर, सात शीर्षगत अंग सात हाथ, शिर, कण्ठ, नाभि, तीन स्थान पर बद्ध है। वह बलवान् प्राण सब में विद्यमान है। सूर्य पक्ष में क्रम से—चार दिशा,

तीन चातुर्मास्य ऋतु, दो अयन, सात मास; तीन लोकों में बद्ध होकर संवत्सर रूप होकर व्याप रहा है। राजा, यज्ञ, शब्द, आत्मा, परमात्मा आदि पक्षों में विवरण देखो (यजु० अ० १७।८१)।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥

भा०—(पणिभिः) व्यवहारकुशल विद्वान् पुरुषों ने जिस प्रकार घी को (त्रिधा हितम्) तीन भेदों से प्राप्त किया है । दूध, दही और घी और (देवासः) घृत के इच्छुक, विद्वान् जन उस (घृतम्) घृत अर्थात् द्रवीभूत (गवि) गोदुग्ध में ही (गुह्यमानं) छुपे हुए पदार्थ को (अनु अविन्दन्) अनुकूल साधनों से प्राप्त कर लेते हैं। जिस प्रकार (पणिभिः) विद्वानों द्वारा तीनों रूपों से धारण किये गये (देवासः) सूर्य के रश्मिगण या विद्वान् गण (गवि गुह्यमानं) सूर्य या रश्मियों में छुपे हुए (घृतं) तेज को (अनु अविन्दन्) अनुकूल साधनों से प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (पणिभिः) उपदेष्टा और अभ्यासकर्त्ता शिष्य जनों द्वारा (त्रिधा हितम्) ऋग्, यजुष्, सामगान इन तीन भेदों से व्यवस्थित, (घृतम्) आहुति में पड़कर अग्नि को चमकाने वाले घृत के समान शिष्य गण के ज्ञानयुक्त आत्मा को चमकाने वाले (देवासः) अर्थप्रकाशक गुरु जन विद्या के इच्छुक शिष्य जन (गवि गुह्यमानं) वेद वाणी में निगूढ़ रूप से विद्यमान, ज्ञान को (अनु अविन्दन्) लक्षण प्रमाणों द्वारा परीक्षा कर विवेकपूर्वक ग्रहण करें और जिस प्रकार (एकं) एक 'घृत' अर्थात् जल को (इन्द्रः जजान) जलप्रद मेघ उत्पन्न करता है, (सूर्यः एकं) सूर्य एक प्रकार के वाष्प रूप जल को मेघ रूप में प्रकट करता है, वायु गण मिलकर (स्वधया) अपने पोषण बल से वा जल के द्वारा या अन्न रूप में (वेनात्) कान्तिमय विद्युत्, चन्द्र या सूर्य से ही प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार एक ज्ञान को (इन्द्रः जजान) साक्षात् द्रष्टा

ऋषि जन प्रकट करते, ज्ञान करते हैं । (सूर्यः एकं जजान) एक प्रकार के ज्ञान को सूर्य के समान अर्थ प्रकाशक विद्वान् जानता वा प्रकट करता है । और (एकं) एक प्रकार ज्ञान को (वेनात्) कान्तिमय तेजस्वी जन से (स्वधया) आत्मा के धारणा शक्ति या उपासना द्वारा (निः स्ततक्षुः) प्राप्त करते हैं ।

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे । घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये आसाम् ॥५॥१०॥

भा०—जिस प्रकार (समुद्रात्) आकाश वा मेघ से (घृतस्य धाराः अर्षन्ति) जल की धाराएं आती हैं और वे (शत-व्रजाः) सैकड़ों मार्गों से बहती हैं । और (आसाम् मध्ये) इनके बीच में (हिरण्ययः वेतसः) सुवर्ण के रंग का चमकता हुआ दण्ड के समान विद्युत्-दण्ड दिखाई देता है उसी प्रकार (एता) ये (घृतस्य) गुरु से शिष्य के प्रति बहने वाले वा आत्मा, अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाले ज्ञानप्रकाश की (धाराः) वाणियें (हृद्यात्) हृदय के (समुद्रात्) अगाध समुद्र से (अर्षन्ति) निकलती हैं और वे (शत-व्रजाः) सैकड़ों अर्थों का अवगम वा बोध कराती हैं । वे (रिपुणा) राग-द्वेष आदि मल से युक्त, मलिन, चित्त, द्रोही व्यक्ति से (अवचक्षे) साक्षात् करने के योग्य नहीं हैं । उनका अर्थ गुरुद्रोही व्यक्ति नहीं समझ सकता । और मैं (आसाम्) उनके (मध्ये) बीच में (हिरण्ययः) घृत की धाराओं के बीच अग्नि-ज्वाला के समान प्रकाशित होकर स्वयं भी सर्वहितकारी, सबको सुखी करने वाला (वेतसः) तेजस्वी, ज्ञानवान् होकर (अभि चाकशीमि) उनको साक्षात् करूं और उनका अन्यों के प्रति प्रकाश करूं ।

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६ ॥

भा०—ये (धेनाः) वाणियां (अन्तः) भीतर अन्तःकरण में (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से (पूयमानाः) पवित्र होती हुई (सरितः न) नदियों के समान (सम्यक्) भली प्रकार अर्थ का प्रकाश करती हुई (स्रवन्ति) वहती हैं, अनायास बाहर आती हैं। (घृतस्य) अर्थ का प्रकाश करने वाले स्वप्रकाश ज्ञान के (एते ऊर्मयः) तरंग, उल्लास, (ऊर्मयः इव) जल तरङ्गों के समान ही (क्षिपणोः ईषमाणाः) प्रेरक गुरु से प्रेरित होकर ऐसे (अर्षन्ति) वेग से निकलती हैं जैसे (क्षिपणोः) व्याध से (ईषमाणाः) भयभीत हुए (मृगाः इव) मृग जिस प्रकार वेग से भागते हैं।

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥

भा०—(सिन्धोः इव घृतस्य धाराः) जिस प्रकार नदी के जल की धाराएं (यह्वाः शूघनासः प्राध्वने पतयन्ति) बड़ी होकर वेग से जाती हुई गमन करती हैं, उसी प्रकार (घृतस्य धाराः) अर्थप्रकाशक ज्ञान की वाणियां भी (शू-घनासः) वेग से निकलती हुई, (यह्वाः) अर्थ में गम्भीर, (वात-प्रमियः) ज्ञानवान् पुरुष से अच्छी प्रकार उपदेश की हुई (प्र-अध्वने) उत्कृष्ट मार्ग में ले जाने के लिये (पतयन्ति) प्रभु के समान आचरण करती हैं, स्वामिवत् उन्नत मार्ग में चलने का आदेश करती हैं। और जिस प्रकार (अरुषः वाजी न) अति रुचिर वर्ण का वेगवान् अश्व (काष्ठाः भिन्दन्) दिशाओं को पार करता हुआ (ऊर्मिभिः पिन्वमानः) तरंगों से परिपुष्ट होता हुआ जाता है उसी प्रकार (वाजी) ज्ञानैश्वर्य से सम्पन्न पुरुष (अरुषः) दीप्तिमान् एवं रोग आदि से रहित (काष्ठाः) काष्ठों को अग्नि के तुल्य वा कुठार के समान (काष्ठाः) कुत्सित चित्त वृत्तियों को (भिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (ऊर्मिभिः) उन्नत वासनाओं से (पिन्वमानः) बढ़ता हुआ (प्राध्वने) उत्तम मार्ग,

मोक्ष के लिये (पतयति) प्रयाण करता है। (२) उसी प्रकार (घृतस्य धाराः) तेज और उत्कृष्ट ज्ञान के धारण करने वाले (यह्वाः) महान् पुरुष (वात-प्रमियः) ज्ञानतत्व के उपदेष्टा, (शू-घनासः) अति शीघ्रता से आगे बढ़ते वा बाधाओं को दूर करते हुए सिन्धु की धाराओं के समान ही (प्र-अध्वने पतयन्ति) उत्तम २ मार्ग में सेनानायकों के तुल्य वीरता से आगे बढ़ते हैं।

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥८॥

भा०—(समना-इव) वर या प्रियतम पति के साथ एक चित्त, (कल्याण्यः योषाः स्मयमानासः) सुन्दर मङ्गल चिह्नों से अलंकृत, मुसकराती हुईं सुप्रसन्न स्त्रियां (अग्निम् अभि प्रवन्त) अग्नि के चारों ओर गति करती, फेरे लेती हैं। और (ताः) उनको (जातवेदः जुषाणः हर्यति) प्रेमयुक्त, ज्ञानवान् वा धनवान् वर कामना करता है। और जिस प्रकार (घृतस्य धाराः अग्निम् अभि प्रवन्त) घी की धाराएं यज्ञ में अग्नि के प्रति पड़ती हैं (ताः समिधः नसन्त) वे समिधाओं को प्राप्त होती हैं। और (ताः जातवेदः हर्यति) उनको अग्नि स्वीकार करता है। उसी प्रकार (घृतस्य धाराः) अर्थप्रकाशक ज्ञान की वाणियें (समना) उत्तम मनन करने योग्य ज्ञान से युक्त, (कल्याण्यः) विश्व का कल्याण करने वाली, (स्मयमानासः) हर्ष उत्पन्न करती हुई, (अग्निम् अभि) विनयशील पुरुष का साक्षात् (प्रवन्त) प्राप्त होती हैं। वे (समिधः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाले शिष्यों को वा वे स्वयं अच्छी प्रकार प्रकाशित होती हुईं (नसन्त) प्राप्त होती हैं। (ताः) उनको (जातवेदाः) ज्ञानवान् पुरुष (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हर्यति) सदा कामना करता है।

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते॥९॥

भा०—(यत्र सोमः सूयते) जहां सोम नाम ओषधि का सवन होता है अर्थात् सोमयाग होता है, (यत्र यज्ञः) वा जहां यज्ञ होता है वहां (कन्याः-इव) जिस प्रकार कन्याएं (अञ्जि अञ्जानाः) अपने कान्ति-युक्त रूप और आभूषणादिक को प्रकट करती हुईं (वहतुम् एतवा) विवाहकर्त्ता प्रिय पति को प्राप्त करने के लिये (तत् अभि पवन्ते) यज्ञ में सबके समक्ष आती हैं और जिस प्रकार सोमयाग-यज्ञादि में (घृतस्य धाराः अञ्जि अञ्जानाः) घी की धाराएं कान्ति सी चमकती हुईं (वहतुम्) घृत लेने वाले अग्नि को प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार (यत्र सोमः सूयते) जहां सौम्य गुण युक्त शिष्य विद्या के गर्भ से उत्पन्न होता है (यत्र यज्ञः) जहां ज्ञान का दान और प्रतिग्रह है (तत्) वहां (घृतस्य धाराः) ज्ञान की वाणियां (अञ्जि अञ्जानाः) अपना अर्थ-प्रकाशक रूप प्रकट करती हुईं (वहतुम् एतवा) वहन या धारण करने में समर्थ शिष्य को प्राप्त होने के लिये (तत् अभि पवन्ते) उसके प्रति जाती हैं, मैं उनका (अभि चाकशीमि) प्रकाशित करूं और साक्षात् करूं।

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! हे उत्तम शिष्यगण ! आप लोग (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति वा उपदेश को (अभि अर्षत) गुरु के समक्ष बैठ कर प्राप्त करो और उसी प्रकार (गव्यम्) गो दुग्ध के तुल्य आप लोग (गव्यम्) वाणी के भीतर विद्यमान ज्ञान प्राप्त करो। और (आजिम्) उत्तम लक्ष्य को प्राप्त करो। आप विद्वान् लोग (अस्मासु) हम में (भद्रा द्रविणानि) कल्याणकारी, सुखप्रद ज्ञान-ऐश्वर्य (धत्त) प्राप्त कराइये। (इमं) इस (यज्ञं) परस्पर के ज्ञान दान को हमें (देवता) आप देव, विद्वान् गण (नयत) प्राप्त कराइये। (घृतस्य धाराः) अग्नि

पर घृत की धाराओं के तुल्य ज्ञान की वाणियां (मधुमत्) मधुर ज्ञान से युक्त होकर (पवन्ते) हमें पवित्र करें और प्राप्त हों ।

धाम॑न्ते॒ विश्वं॒ भुव॑न॒मधि॑ श्रि॒तम॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्य१॒॑न्तरायु॑षि ।
अ॒पामनी॑के समि॒थे य आभृ॑त॒स्तम॑श्याम॒ मधु॑मन्तं त ऊ॒र्मिम् ॥११॥११॥५॥४॥

भा०—हे परमेश्वर (ते धामन्) तेरे आश्रय पर (विश्वं भुवनम् अधिश्रितम्) समस्त जगत् स्थित है। और (ते) तेरा (यः) जो महान् प्रेरक बल (समुद्रे अन्तः) समुद्र के भीतर, (हृदि) हृदय में, (आयुषि अन्तः) जीवन के निमित्त प्राण में, (अपाम् अनीके) जलों के संघात में और (समिथे) जीव गण के संग्राम में (आभृतः) प्रकट होता है, हम लोग तेरे (ते) उस (ऊर्मिम्) महान् प्रेरक (मधुमन्तं) ज्ञान, अन्न, तेज, बल आदि सम्पन्न महान् शक्ति को (अश्याम) प्राप्त करें, जाने। इत्येकादशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

* इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् *

अथ पञ्चमं मण्डलम्

[१]

बुधगविष्ठिरावात्रेयावृषी ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ७, १० त्रिष्टुप् । ५, ८ स्वराट् पंक्तिः । ९ पंक्तिः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वा इ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आयतीम् इव धेनुम्) आती हुई गौ का आश्रय करके (जनानाम् अग्निः समिधा प्रति अबोधि) मनुष्यों का यज्ञाग्नि जगता है उसी प्रकार (उषासम् आयतीम्) आती हुई कान्तियुक्त उषा, प्रभात बेला को देखकर (जनानां) मनुष्यों के बीच में उनकी (समिधा) समिधा से यज्ञाग्नि (प्रति अबोधि) प्रत्येक गृहमें जगे, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति प्रातः सूर्योदय वेला में यज्ञ करे और इसी प्रकार (आयतीम् धेनुम्-इव उषासम्) आदरपूर्वक प्रकट होती हुई, ज्ञान-रस को देने वाली मातृ-तुल्य गुरुवाणी को उद्देश्य करके इसको लेने के अभिप्राय से (जनानां) उत्पन्न या प्रकट हुए शिष्य जनों की (समिधा) समिधा से (अग्निः-प्रति अबोधि) आचार्य का अग्नि प्रतिदिन और प्रत्येक शिष्य द्वारा जगना चाहिये। वा (जनानां मध्ये समिधा अग्निः) नव उत्पन्न पुत्रवत् शिष्यों के बीच गुरु रूप अग्नि प्रति प्रभात वेला में स्वयं समान तेज से सूर्यवत् उपदेश द्वारा ज्ञान करे (प्रति उपासम् अबोधि) प्रति दिन प्रकाश करे। जिस प्रकार (यह्वाः इव) बड़े २ वृक्ष (वयाम्

उज्जिहानाः) शाखाओं को दूर २ तक ऊंची ओर फैलाते हुए (नाकम्-अच्छ प्र सिस्रते) आकाश की ओर खूब ऊंचे बढ़ जाते हैं और जिस प्रकार (यह्वा भानवः) बड़े सूर्य किरण (वयाम् प्र उज्जिहानाः) कान्ति को विस्तारते हुए (नाकं प्र सिस्रते) आकाश में खूब दूर २ तक फैल जाते हैं उसी प्रकार (यह्वाः) बड़े आदमी (भानवः) कान्ति से चमकते हुए तेजस्वी, विद्वान् पुरुष और कुल भी (वयाम्) अपनी शाखा प्रशाखा सम्पत्ति आदि वा वेद की गुरूपदेश से प्राप्त शाखा प्रशाखा को भी (प्र-उत्, जिहानाः) अच्छी प्रकार फैलाते वा उत्तम पात्र में प्रदान करते हुए (नाकम् अच्छ) सब दुःखों से रहित स्वर्ग वा मोक्ष लोक को (प्र-सिस्रते) प्राप्त हों। (२) गृहपक्ष में—गौ के समान (आयतीम्) आदरपूर्व विवाहबन्धन में बंधती हुई (उपासम्) कमनीय कान्ति वाली वधू को प्राप्त करने के लिये जनों के बीच आवसथ्याग्नि जले, बड़ी उमर के तेजस्वी ब्रह्मचारी लोग सन्तति, शाखा-प्रशाखा फैलाते हुए सूर्यवत् वा वृक्षवत् उच्च आकाश वा मोक्ष, स्वर्गादि उत्तम पद लोक वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करें। (३) इसी प्रकार (अग्निः) सूर्य उषा को आगे करके जैसे तेज से चमकता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी आचार्य (धेनुम्) वाणी को आगे करके उत्तम तेज से चमके।

अबो॑धि॒ होता॑ य॒जथा॑य दे॒वानू॒र्ध्वो अ॒ग्निः सु॒मनाः॑ प्रा॒तर॑स्थात्।
समि॑द्धस्य॒ रुश॑ददर्शि॒ पाजो॑ म॒हान्दे॒वस्तम॑सो॒ निर॑मोचि ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) प्रकाशस्वरूप अग्नि वा सूर्य (ऊर्ध्वः) सब से ऊंचे पद पर विराजता है, (होता) प्रकाशदाता वा मेघादि द्वारा जलदाता होकर (देवान् यजथाय) इच्छुक प्राणियों को वा प्रकाशादि किरणों को देने के लिये (अबोधि) प्रकाशित होता है। उसी प्रकार (सुमनाः) उत्तम ज्ञानवान् (अग्निः) अग्नि वा सूर्यवत् तेजस्वी (होता) ज्ञान के देने और लेने हारा (देवान् यजथाय) विद्या के अभिलाषी शिष्य

जनों के प्रति विद्यादि देने और सत्संग करने के लिये (अबोधि) स्वयं ज्ञानवान् हो । वह सूर्य के तुल्य ही (प्रातः) जीवन के प्रभात काल, ब्रह्मचर्य आश्रम में (ऊर्ध्वः) उन्नत (अस्थात्) स्थिति प्राप्त करे । (समिद्धस्य) विद्या, व्रत आदि से तेजस्वी हुए उसका (रुशत् पाजः) अति उज्ज्वल बल वीर्य (अदर्शि) सूर्य के तेज के समान सब को दीखे । वह (महान्) गुणों में महान्, आदरयोग्य होकर (देवः) विद्या का दाता और विद्या का अभिलाषी गुरु वा शिष्य होकर (तमसः) अविद्यान्धकार से (निर् अमोचि) स्वयं और अन्यों को भी मुक्त करे ।

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (शुचिः अग्निः) दीप्तिमान् यज्ञाग्नि वा सूर्य (शुचिभिः गोभिः) दीप्तियुक्त किरणों से (अङ्क्ते) प्रकट होता, चमकता है, और (गणस्य) समस्त पदार्थों वा प्राणियों के बीच (रशनाम्) व्याप्त शक्ति वा अन्न को (अजीगः) ग्रहण करता, वश करता है, और (आत्) उसके अनन्तर (वाजयन्ती) उत्साह उत्पन्न करने वाली, यज्ञ में (दक्षिणा) दक्षिणा और भूमि में अन्न समृद्धि (युज्यते) प्राप्त होती है और (उत्तानाम्) उतान पड़ी अन्नशालिनी भूमि को वह स्वयं सूर्य (ऊर्ध्वः) उच्च स्थान अन्तरिक्ष में स्थिर रहकर (जुहूभिः) रस ग्रहण करने वाली किरणों और जल देने वाली मेघ-मालाओं से (अधयत्) खूब रस पान स्वयं करता और इसको कराता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजस्वी राजा वा ज्ञानवान् विद्वान् गुरु और विनीत शिष्य, (शुचिभिः गोभिः) शुद्ध पवित्र वेद-वाणियों और निष्पाप इन्द्रियों से युक्त होकर स्वयं (शुचिः) तेजस्वी, शुद्ध, पवित्र होकर (अङ्क्ते) तेजस्वी होता और विद्या से स्नान करता है, (यत् ईम्) और जब वह इस (गणस्य) शिष्य गण वा साधारण जनसमूह, सैन्य समूह की नायकवत् (रशनाम्)

बागडोर को (अजीगः) अपने वश में करता है (आत्) तभी (वाजयन्ती) ऐश्वर्य, युद्ध-सामर्थ्य और ज्ञान को समृद्ध करती हुई (दक्षिणा) बलवती क्रियाशक्ति, (युज्यते) प्राप्त होती है। इस दशा में वह (ऊर्ध्वः) सबसे उत्कृष्ट पद पर स्थित एवं सावधान होकर (उत्तानाम्) उत्तान उत्सुक भूमि, राष्ट्र की प्रजा या ऊपर हाथ जोड़े शिष्य मण्डली को (जुहूभिः) वाणियों द्वारा (अधयत्) शासन करे, ज्ञानोपदेश करे। इसी प्रकार शिष्यगण भी (उत्तानाम्) उत्तम या गुरु के कण्ठ से उद्गत वेदवाणी को (जुहूभिः) ज्ञान-ग्रहणकारिणी मानस वृत्तियों और मुखगत वाणियों से (अधयत्) ज्ञान का पान करें, ग्रहण करें।

अ॒ग्निमच्छा॑ देव॒यतां॒ मनां॑सि॒ चक्षूं॑षीव॒ सूर्ये॒ सं च॑रन्ति।
यदीं॑ सु॒वाते॑ उ॒षसा॒ विरू॑पे श्वे॒तो॑ वा॒जी जा॑यते॒ अग्रे॒ अह्ना॑म् ॥४॥

भा०—(उषसा विरूपे) भिन्न २ रूप के दिन और रात्रि जिस प्रकार (सुवाते) उत्पन्न करते हैं और (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (श्वेतः) श्वेत सूर्य (जायते) उत्पन्न होता है, उसी प्रकार (यत्) जब (उषसा) एक दूसरे को भलीभांति चाहने वाले (विरूपे) भिन्न २ रूप के या विशेष कान्तियुक्त, सुरूप माता पिता (ईं सुवाते) इस पुत्र को उत्पन्न करते हैं तब (अह्नाम् अग्रे) जीवन के दिनों के पूर्व भाग में (वाजी जायते) बलयुक्त पुत्र उत्पन्न होता है। और इसी प्रकार जब (उषसा विरूपे) विविध रूपों से युक्त पाप अज्ञान के दाहक, आचार्य और सावित्री (ईं सुवाते) इस शिष्य को उत्पन्न करते हैं तब भी (अह्नां अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में सूर्य के तुल्य, जीवन के प्रथम भाग में (श्वेतः वाजी जायते) शुद्ध, आचारवान्, ज्ञानयुक्त, बलवान् शिष्य उत्पन्न होता है। उसी प्रकार विद्वान् और अविद्वानों के बीच (श्वेतः वाजी) सूर्यवत् तेजस्वी, संग्रामविजयी बलवान् राजा उत्पन्न होता है। (देवयतां चक्षूंषि इव) प्रकाश की किरणों की कामना करने वाले मनुष्यों की आंखें जिस प्रकार (सूर्ये सं-

चरन्ति) सूर्य के आधार पर आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार (देवयतां) ज्ञान प्रकाश की कामना करने वाले पुरुषों के (मनांसि) मन भी (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानी, विद्वान्, तेजस्वी पुरुष और परमेश्वर को (अच्छ संचरन्ति) भली प्रकार प्राप्त होते हैं।

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ ५ ॥

भा०—(अह्नां अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में जिस प्रकार (अरुषः) उज्ज्वल वर्ण से युक्त (अग्निः) सूर्य और अग्नि (वनेषु हितः) किरणों और काष्ठों में स्थित होकर (जेन्यः हि) सर्व विजयी और उत्पन्न या प्रादुर्भाव होने के सामर्थ्य से युक्त होकर (जनिष्ट) प्रकट होता है, और वह (सप्त रत्ना) सातों प्रकार के उत्तम प्रकाश युक्त किरणों, सात प्रकार की ज्वालाओं को (हितेषु) हितैषियों में (दधानः) धारण कराता है उसी प्रकार (जेन्यः) विजयशील, (अरुषः) रोषरहित, तेजस्वी, ब्रह्मचारी (अह्नां अग्रे) जीवन के पूर्व भाग में (वनेषु) वनों वा वनस्थों के बीच में (हितः) परिपालित होकर (जनिष्ट) विद्या में जन्म ग्रहण करता है (हितेषु) हितकारी और राज्य के (वनेषु हितः) विभाग करने योग्य, ऐश्वर्यों या प्राप्तव्यपदों पर स्थापित होकर (अह्नां अग्रे) अहन्तव्य, प्रजाओं और बलवान् पुरुषों के मुख्य पद पर स्थित होकर प्रादुर्भूत होता है। वह (अग्निः) सर्वाग्रणी ज्ञानी (दमे दमे) घर २ में (यजीयान्) अति दानशील और (होता) सबसे कर वा विज्ञान का गृहीता होकर (सप्त-रत्ना दधानः) सातों प्रकार के रमणीय, रत्न, अन्न आदि, वा शिरोगत चक्षु, नाक, कान मुख आदि प्राणगण और सातों रत्न, ऐश्वर्यादि को (दधानः) वश वा धारण करता हुआ (नि ससाद) स्थिरता से विराजे।

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उलोके।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ ६ ॥ १२

भा०—(यजीयान्) विद्या ऐश्वर्य आदि का अच्छी प्रकार देने वाला एवं सत्संग करने योग्य (अग्निः) ज्ञानवान् , विद्वान् और तेजस्वी पुरुष और विनयशील शिष्य (मातुः उपस्थे) माता की गोद में बालक के समान (मातुः उपस्थे) पृथिवी के ऊपर वा ज्ञानवान् आचार्य के समीप (सुरभौ लोके उ) और उत्तम कर्म आचरण करने वाले लोक समूह में (नि असीदत्) विराजे । और वह (युवा) जवान, बलवान् (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान् (पुरुनिःष्ठः) इन्द्रियों के बीच निष्ठावान् , जितेन्द्रिय और पालनीय प्रजाजनों के बीच स्थिर होकर (ऋतावा) सत्य ज्ञान, अन्न और न्यायशासन से युक्त होकर (कृष्टीनां धर्त्ता) विषयों में खैंचने वाले इन्द्रियगण और कृषक प्रजाजनों का धारक पालक होकर (उत मध्ये-इद्धः) उनके बीच में प्रदीप्त अग्नि वा सूर्य के समान तेजस्वी होकर (नि असीदत्) विराजे । इति द्वादशो वर्गः ॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

भा०—जिस प्रकार लोग (अध्वरेषु साधुम्) यज्ञों में, कार्य साधक अग्नि को लोग (नमोभिः ईडते) अन्नों, हव्यों से वा नमस्कार युक्त वचनों से स्तुति करते हैं और (घृतेन मृजन्ति) अन्नादि चरुसम्पन्न अग्नि को घी से चमका देते हैं उसी प्रकार (अध्वरेषु) हिंसा से रहित, प्राणियों के पालनादि उत्तम कर्मों में (साधु) क्रियाकुशल (त्यं) इस (विप्रम्) विद्वान् (अग्निं) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी (होतारम्) सबको वश करने और ऐश्वर्य, अधिकार पद आदि के देने वाले पुरुष को लोग (नमोभिः) नमस्कार वचनों से (ईडते) आदर करें, जिस प्रकार अग्नि वा सूर्य (ऋतेन रोदसी आ ततान) जल वा तेज से आकाश और पृथिवी को पूर्ण करता है उसी प्रकार (यः) जो (रोदसी) माता पिता और राजा प्रजा दोनों को (ऋतेन) सत्य ज्ञान, अन्न वा प्रजा, न्याय-शासन

द्वारा (आ ततान) स्थिर बनाये रखता है उस (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानी, ऐश्वर्यवान् पुरुष को लोग भी (घृतेन) घृत आदि पोषक पदार्थ, ज्ञान आदि प्रकाश से (नित्यं) सदा (मृजन्ति) परिष्कृत, अलंकृत करें। (२) ज्ञानवान् सर्वैश्वर्य के दाता अग्नि, परमेश्वर की लोग अर्चना करें। जो सत्यमय तेज से दोनों लोकों को फैलाता है उस नित्य, ज्ञानमय प्रभु को स्नेह से वा तेज से ही हृदय में (मृजन्ति) शुद्ध करते, उसका विवेक करते हैं।

मा॒र्जा॒ल्यो॑ मृज्यते॒ स्वे दमू॑नाः कविप्रश॒स्तो अति॑थिः शि॒वो नः॑।
स॒हस्र॑शृङ्गो वृष॒भस्तदो॑जा विश्वाँ॑ अग्ने॒ सह॑सा॒ प्रास्य॒न्यान् ॥८॥

भा०—(मार्जाल्यः) सबको शोधने हारा, सूर्य वा अग्नि जिस प्रकार (दमूनाः) सबको प्रकाश देता हुआ (स्वे मृज्यते) अपने प्रकाश के आधार पर परिशुद्ध रहता, उसे शोधने के लिये अन्य शोधक की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार (मार्जाल्यः) अन्यों को ज्ञान-दीक्षा आदि से पवित्र करने वाला (कवि-प्रशस्तः) विद्वान्, कान्तदर्शी पुरुषों से प्रशंसित और शिक्षित, (दमूनाः) दानशील एवं जितेन्द्रियचित्त होकर (स्वे मृज्यते) अपने ही आप पवित्र होता है, वह अपने आप ही सद् गुणों से अलंकृत होता है। वह (नः अतिथिः) हम सबका पूज्य और (शिवः) मङ्गलकारी हो। वह तू (सहस्रशृङ्गः) सहस्रों सींगों के तुल्य किरणों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी (वृषभः) बलवान् मेघ के तुल्य सुखों का वर्षक और (तदोजः) अपने पराक्रम से सम्पन्न होकर हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्रणी नायक! (सहसा) अपने सर्वोपरि बल से (अस्मान्-प्र असि) अन्य अपने से भिन्न वा विपरीत सबसे उत्कृष्ट हो। (२) परमेश्वर स्वयंप्रकाश, स्वतः शुद्ध पवित्र होकर अन्यों का पावन है अतः 'मार्जाल्य' है। विद्वान् उसकी स्तुति करते हैं। सर्वातिशायी होने से 'अतिथि'

है, मङ्गलमय होने से 'शिव' है। वह सब अन्यों से उत्कृष्ट है, वह (तदोजः) स्वयं ओजः-स्वरूप है।

प्र स॒द्यो अ॑ग्ने॒ अत्ये॑ष्य॒न्याना॒विर्यस्मै॒ चारु॑तमो ब॒भूथ॑।
ई॒ळेन्यो॑ वपु॒ष्यो॑ वि॒भावा॑ प्रि॒यो वि॒शामति॑थि॒र्मानु॑षीणाम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ! तू (अन्यान्) अन्यों को (सद्यः) शीघ्र ही (प्र एषि) पार कर उनसे बढ़ जाता और (अति एषि) उनको अतिक्रमण कर जाता है। और (यस्मै) जिसके उपकार के लिये तू (चारु-तमः) सबसे उत्तम, सुन्दर वा देश-देशान्तर में चलने हारा होकर प्राप्त (बभूथ) होता है वह भी तेरे साथ (ईडेन्यः) वाणी द्वारा सत्कार करने योग्य, (वपुष्यः) उत्तम शोभा युक्त, (विभावा) विविध कान्ति से युक्त और (मानुषीणाम् विशाम्) मननशील, मानव प्रजाओं का (प्रियः अतिथिः) प्रिय, अतिथि के तुल्य सर्वोपरि पद पर स्थित होजाता है।

तुभ्यं॑ भरन्ति क्षि॒तयो॑ यविष्ठ ब॒लिम॑ग्ने॒ अन्ति॑त॒ ओत दू॒रात्।
आ भन्दि॑ष्ठस्य सुम॒तिं चि॑किद्धि बृ॒हत्ते॑ अग्ने॒ महि॒ शर्म॑ भ॒द्रम् ॥ १

भा०—हे (यविष्ठ) अति बलवान् ! अति युवा पुरुष (तुभ्यम्) तेरे हितार्थ (क्षितयः) राष्ट्र में बसे वा नाना भूमि निवासी प्रजाजन, नाना देश (अन्तितः उत दूरात्) समीप और दूर से भी (बलिम्) कर वा भोज्य, भोग्य, अन्न ऐश्वर्यादि समृद्धि (भरन्ति) लाते और देते हैं। तू (भन्दिष्ठस्य) अति कल्याण प्रिय जन को (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान का (चिकिद्धि) सब प्रकार से उपदेश कर। हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तेरा (शर्म) गृह (बृहत्) बड़ा (महि) पूज्य और (भद्रम्) सुखकर, कल्याणकारी हो।

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम्।
विद्वान्पथीनामुर्व१न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ११ ॥

भा०—हे (भानुमः) सूर्य के तुल्य तेजस्विन्! हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशक, अग्रणी पुरुष! नायक! तू (अद्य) आज (यजतेभिः) उत्तम रीति से सुसंगत अश्वादि से युक्त (समन्तम्) सर्वाङ्ग-सुदृढ़ (रथम्) रथपर (आ तिष्ठ) विराज। सूर्य जिस प्रकार जलादि ग्रहण करने के लिये अपनी किरणों को विशाल अन्तरिक्ष पार करके भी पृथिवी तक भेजता है तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (पथीनाम्) मार्गों के (उरु-अन्तरिक्षम्) बड़े भारी अन्तर या फासले को लांघकर (देवान्) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को (हविः-अद्याय) अन्न और ज्ञानादि प्राप्त करने के लिये (आ वक्षि) दूर २ देशों में ले जा।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् १२।१३

भा०—हम लोग (मेध्याय) पवित्र वा उत्तम अन्नादि सत्कार और सत्संग के योग्य, (कवये) क्रान्तदर्शी, ज्ञानवान्, मेधावी, (वृषभाय) बलवान्, मेघवत् निष्पक्षपात होकर ज्ञान के देने वाले (वृष्णे) बलिष्ठ पुरुष के लिये (वन्दारु वचः) वन्दनायोग्य, वचन नमस्कार आदि सदा (अवोचाम) कहा करें। जिस प्रकार (गविष्ठिरः) रश्मियों पर स्थित पुरुष (दिवित्र अग्नौ इव स्तोमम् रुक्मम् उरु व्यञ्चम् अश्रेत्) आकाश में स्थित सूर्य में उत्तम विशाल विविध दिशागामी प्रकाश को प्रकट करता है उसी प्रकार (गविष्ठिरः) वेदवाणी के निमित्त स्थिर चित्त होने वाला शिष्य जन (नमसा) आदर युक्त वचनों सहित (अग्नौ) ज्ञानवान्, मार्गदर्शी आचार्य के अधीन रहकर (उरु) विशाल (व्यञ्चम्) विविध यज्ञों को दर्शाने वाले (रुक्मम्) रुचि कर (स्तोमं) वेदमन्त्र समूह को (अश्रेत्) प्राप्त करे।
इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२]

कुमार आत्रेयो वृशो वा जार उभौ वा। २, ९ वृशो जार ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ७, ८ त्रिष्टुप्। ४, ५, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पांक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। १२ निचृदतिजगती॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ॥ १॥

भा०—आचार्य, शिष्य राजा और पृथिवी का वर्णन माता पुत्र के दृष्टान्त से करते हैं। जिस प्रकार (युवतिः माता) जवान माता (समुब्धं) सम्पूर्णांग (कुमारं) बालक को (गुहा) गृह या अपने गर्भ में (बिभर्ति) धारण पोषण करती है और स्नेह वश (पित्रे न ददाति) पालन पोषाणार्थ पिता को नहीं देती उसी प्रकार (माता) सर्वोत्पादक पृथिवी (कुमारं) शत्रुजनों को बुरी तरह से मारने वाले (समुब्धम्) समुन्नत, सर्वाङ्ग पुरुष को (गुहा बिभर्ति) अपने गूढ स्थानों में धारण करती है और उसे (पित्रे) पालक पिता वा कृषकादि के अधीन नहीं (ददाति) देती, उस प्रकार (माता) ज्ञानवान् मातृवत् पूज्य शिष्य को योग्य बना देने वाला आचार्य भी (समुब्धं कुमारं) अच्छी प्रकार विद्या से पूर्ण कुमार शिष्य को भी (गुहा बिभर्त्ति) अपने ही गर्भ के तुल्य सुरक्षित विद्या गर्भ वा अधीनता में धारण करता है, उसको (पित्रे) उसके पालक, माता पिता के हाथ नहीं सौंपता। (अस्य) सुरक्षित राजा और व्रती कुमार के (अनीकम्) सैन्य बल और तेज को भी (जनासः) साधारण जन (न मिनत्) नाश नहीं कर सकते। प्रत्युत वे भी (अरतौ) अरमण योग्य, असह्य रूप में संग्रामादि के अवसर या विपत्ति काल में उसको ही (पुरः) आगे अग्रणी पद पर (निहितम्) स्थित (पश्यन्ति) देखते हैं।

कमे॒तं त्वं यु॑वते कुमा॒रं पेषी॑ बिभर्षि॒ महि॑षी जजान।
पू॒र्वीर्हि गर्भः॑ श॒रदो॑ व॒वर्धाप॑श्यं जा॒तं यदसू॑त मा॒ता ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई (पेषी) पति के पास जाने वाली स्त्री, पति से संगता, वा दूध पान कराने वाली स्त्री ((कुमारं बिभर्त्ति) बालक को गर्भ में धारण करती और बाद में उसे पोषण करती है। (यत् माता असूत तत् जातं पश्यन्ति) और जब गर्भस्थ बालक को माता जानती है तब उत्पन्न बालक को सब कोई देखते हैं और वह (पूर्वीः शरदः ववर्ध) अपने पूर्व अर्थात् प्रारम्भ की आयु के वर्षों में बढ़ता है उसी प्रकार हे (युवते) विद्या बल आदि का मिश्रण करने हारी माता के तुल्य पृथिवी! (त्वम्) तू (एतं) इस (कं) किसी (कुमारं) शत्रुओं को बुरी तरह से मारने वाले वीर पुरुष को भी (पेषी सती बिभर्षि) अति दान-शील होकर धारण करती है और फिर (महिषी सती) तू उसकी रानी के तुल्य होकर ही (जजान) उसको उत्पन्न करती है। तू (माता) माता के तुल्य होकर (यत् असूत) उसको जब उत्पन्न करती है तब मैं प्रजाजन भी (जातं) उत्पन्न बालक के तुल्य ही प्रकट रूप में प्रसिद्ध, रूप गुणों में विख्यात हुआ (अपश्यं) देखूं। वह (गर्भः) राष्ट्र को वश करने में समर्थ नव राजा भी नवजात शिशु के तुल्य ही (पूर्वीः शरदः-हि ववर्ध) अपने प्रथम वर्षों में खूब बढ़े। (२) इसी प्रकार यत्नशील कुमार अतिज्ञानदात्री वेदमाता कुमार को धारण करती। माता के तुल्य पैदा करती है। उसको विद्वान् देखते हैं वह अपने पूर्व के प्रथम २५ वर्षों तक वृद्धि को प्राप्त हो।

हिर॑ण्यदन्तं॒ शुचि॑वर्णमा॒रात्क्षेत्रा॑दपश्य॒मायु॑धा मि॒मान॑म्।
द॒दा॒नो अ॑स्मा अ॒मृतं॑ वि॒पृक्व॒त्किं माम॑नि॒न्द्राः कृ॑णवन्ननु॒क्थाः ३

भा०—जिस प्रकार (क्षेत्रात्) मूल स्थान, काष्ठ से (शुचिवर्णं हिरण्यदन्तं) शुद्ध वर्ण वाले स्वर्णतुल्य दन्त के समान ज्वाला युक्त अग्नि को

सब देखते हैं अथवा जिस प्रकार (क्षेत्रात्) उत्पन्न होने के स्थान रूप माता के शरीर से उत्पन्न हुए (हिरण्यदन्तं) चमकती धातु चांदी के तुल्य दन्त वाले (शुचिवर्णं) शुद्ध कान्तिमान् रंगवाले सुन्दर बालक को प्रेम से लोग देखते हैं उसी प्रकार मैं प्रजाजन भी (क्षेत्रात्) युद्ध क्षेत्र के (आरात्) दूर और समीप (आयुधा मिमानं) नाना अस्त्रों शस्त्रों को चलाते हुए (हिरण्यदन्तं) लोह के बने शस्त्र वाले, (शुचिवर्णम्) शुद्ध, उज्ज्वल वर्ण वाले, राजा वा नायक को (अपश्यम्) देखूं। वह सदा (अस्मा) इस प्रजाजन के (विपृक्वत्) पापादि को दूर करने वाले वीर वा विद्वान् पुरुषों से युक्त (अमृतं) अविनाशी बल वा ऐश्वर्य (ददानः) देता रहा करे। तब (माम्) मेरे प्रति (अनुक्थाः) अशिक्षित, अप्रशस्त (अनिन्द्राः) ऐश्वर्य और उत्तम शत्रुहन्ता राजा से रहित, शत्रु जन (किं कृणवन्) क्या बिगाड़ कर सकते हैं। 'विपृक्-वत्'—विपृचौ वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्। इति यजुः ॥

क्षेत्रा॑दपश्यं सनु॒तश्चर॑न्तं सु॒मद्यू॒थं न पु॒रु शोभ॑मानम्।
न ता अ॑गृभ्र॒न्नज॑निष्ट॒ हि षः पलि॑क्नी॒रिद्यु॑व॒तयो॑ भवन्ति ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (क्षेत्रात् चरन्तं शोभमानं बालकं) अपने उत्पत्ति क्षेत्र मातृ-शरीर से उत्पन्न हुए पुत्र को बाहर आते लोग देखते हैं और उसको (न ताः अगृभ्रन्) माताएं जब अधिक काल तक गर्भ में धारण नहीं कर सकतीं और (सः हि सुमत् अजनिष्ट) वह स्वयं ही अनायास उत्पन्न होता है, इसी प्रकार (युवतयः पलिक्नीः इत् भवन्ति) युवति माताएं भी बच्चा जनते २ स्वयं ही वृद्धा होजाती हैं इसी प्रकार (क्षेत्रात्) युद्ध क्षेत्र से (सनुतः) छुपे २, सुरक्षित रूप में (पुरु शोभमानं) बहुत अधिक शोभा से युक्त (यूथं न) सैन्य वा गौओं के समूह के समान ही (चरन्तं) विचरते हुए वीर पुरुष को मैं प्रजाजन (अपश्यम्) देखूं। उसको (ताः) वे परराष्ट्र की सेनाएं भी (न अगृभ्रन्)

पकड़ न सकें। और उसकी निज प्रजाएं (पलिक्नीः इत्) वृद्धाओं के के समान निर्बल रहकर भी (युवतयः भवन्ति) युवतियों के समान हृष्ट पुष्ट होजावें। और इसी प्रकार पर-सेनाएं (युवतयः पलिक्नीः इत् भवन्ति) जवान, हृष्ट पुष्ट भी वृद्धा के समान निर्बल एवं वृद्ध होजावें।

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (येषां) जिन लोगों के बीच (गोपाः) अरणः नु आस) जितेन्द्रिय पुरुष नहीं होता है उन मनुष्यों को सम्पत्तियों से च्युत करते हैं उसी प्रकार (येषां) जिनके बीच कोई भी (गोपाः) भूमिपति (अरणः चित्) और स्वामी भी (न आस) नहीं है वे (के) कौन हैं जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी प्रजाजन के (मर्यकं) मनुष्यों या रक्षक पुरुष को (गोभिः) भूमियों से (वि च्यवन्त) पृथक् कर सकते हैं। (ये ईम्) जो शत्रुगण उसको (जगृभुः) पकड़ भी लेते हैं (अव सृजन्तु) उससे दबकर वे छोड़ दें। वह (चिकित्वान्) ज्ञानी (नः) हमें (पश्वः) पशुपाल के समान रक्षक होकर (उप अजाति) सदा हमारे समीप रह कर हमें सन्मार्ग में चलावे।

वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥१४॥

भा०—(मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच में (अरातयः) अपना धन दूसरों को उपभोग के लिये न देने वाले लोग जिन (ब्रह्माणि) बहुत धनों को (नि दधुः) गाड़ कर, गुप्त रूप से रक्खें वे नाना धन और (अत्रेः) स्वयं भी धन का उपभोग न करने वाले कंजूस या केवल संग्रही के धन वा (अत्रेः ब्रह्माणि) विविध तापों और एषणाओं से मुक्त, त्यागी संन्यासी पुरुष के धन और वेद के ज्ञानोपदेश (वसां जनानां) राष्ट्र में बसने वाले

जनों के बीच (राजानम्) राजा और उनके (वसतिं) नगर वा गृह के समान बसाने वाले आश्रयदाता पुरुष को (अवसृजन्तु) सब प्रकार के बन्धनों से छुड़ावें। और (तं निन्दितारः) उस राजा की निन्दा करने वाले लोग (निन्द्यासः) निन्दा करने योग्य (भवन्तु) हों। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

भा०—राजा का कर्त्तव्य। जिस प्रकार हे राजन्! हे परमात्मन्! तू (शुनःशेपं चित्) सुख के प्राप्त करने वाले (नि-दितम्) खूब कर्म बंधनों से बंधे या निन्दित जीव को भी (सहस्रात्) सहस्रों वा अति दृढ़, मोहजनक बन्धन से (अमुञ्चः) मुक्त कर देते हो (हि) क्योंकि वह (अशमिष्ट हि) स्तुति करता वा प्राकृतिक भोगों और पापाचारों से शान्त, उपरत हो जाता है। (एव) इसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञान प्रकाशक वा प्रकाशस्वरूप प्रभो! और अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजन्! हे (होतः) ज्ञान और ऐश्वर्य-पदाधिकार देने वाले! हे (चिकित्वः) ज्ञानवन्, औरों के चेताने वा अन्यों के भवरोग और राष्ट्र के शत्रु वा दुष्ट पुरुषों को रोगों के तुल्य ही दूर करनेहारे! तू (इह तु) यहां इस न्यायासन पर (नि-सद्य) सर्वोपरि विराज कर (अस्मत्) हम से (पाशान्) बन्धनों को (वि मुमुग्धि) विशेष रूप से दूर कर।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! अग्रणी! राजन्! (हृणीयमानः) क्रोध या तिरस्कार करता हुआ तू (मत्) मुझ से (हि) कभी (अप ऐयेः) तू परे, कुमार्ग में भी जा सकता है। इसलिये जो (देवानां) विद्वानों के (व्रत-पाः) व्रतों, कर्त्तव्यों का पालन करने करानेहारा (विद्वान्

इन्द्रः) ज्ञानवान् , तत्वद्रष्टा, न्यायशासक पुरुष (मे प्रोवाच) मुझे सत्कर्मों का उपदेश करता है वह ही (त्वा अनुचचक्ष) तुझे भी तेरे अनुकूल कर्त्तव्यों का उपदेश करे। (तेन अनु शिष्टः) उससे अनुशासित होकर (अहम् आ अगाम्) मैं आगे, आदर पूर्वक बढ़ता हूं। प्रजाओं के उत्तम शासक शिक्षक विद्वान् ही राजाओं के भी शासक वा शिक्षक होने चाहियें। जो दोनों को उत्पथ जाने से रोकें। मदवश राजा उत्पथ हो जावे तो प्रजा उसको विद्वान् इन्द्र, न्यायाधीश से ही दण्ड दिला सकती है।

वि ज्योति॑षा बृह॒ता भा॑त्य॒ग्निरा॒विर्विश्वा॑नि कृणुते महि॒त्वा ।
प्रादे॑वीर्मा॒याः स॑हते दु॒रेवाः॒ शिशी॑ते॒ शृङ्गे॒ रक्ष॑से वि॒निक्षे॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अग्नि) अग्नि वा सूर्य जिस प्रकार (बृहता ज्योतिषा वि भाति) बड़े भारी प्रकाश से चमकता और (महित्वा) बड़े भारी सामर्थ्य से (विश्वानि आविः कृणुते) सब पदार्थों को प्रकट कर देता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक और विद्वान् पुरुष (बृहता) बड़े भारी (ज्योतिषा) ज्ञान और तेज से (वि भाति) विविध प्रकार से चमके और (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (विश्वानि) सब सत्य ज्ञानों और ज्ञातव्य पदार्थों को प्रकाशित करे। वह (महित्वा) महान् तेजः-प्रभाव से ही (अदेवीः) देव, सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् उत्तम पुरुषों से भिन्न बुरे लोगों की (दुरेवाः) दुःखदायक और दुर्गम (मायाः) छल कपटादियुक्त अन्धकार से होने वाली दुश्चेष्टाओं को (सहते) पराजित करता है, उनको चलने या सफल होने नहीं देता, और वह (शृङ्गे) प्रकट और अप्रकट अपने दुष्टों के नाशकारी साधनों को (रक्षसे) विघ्न-कारी पुरुषों के (विनिक्षे) विनाश करने के लिये (शिशीते) तीक्ष्ण करे।

उ॒त स्वा॒नासो॑ दि॒वि ष॑न्त्व॒ग्नेस्ति॒ग्मायु॑धा॒ रक्ष॑से॒ हन्त॒वा उ॑ ।
मदे॑ चिदस्य॒ प्र रु॑जन्ति॒ भामा॒ न व॑रन्ते परि॒बाधो॒ अदे॑वीः ॥ १० ॥

भा०—(उत) और (अग्नेः) ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष के (स्वानासः) उपदेश भरे वचन, उपदेष्टा जन और आज्ञा वचन अग्नि के चटचटा शब्दों के तुल्य (दिवि) ज्ञान के निमित्त (सन्तु) हों। और उसके (तिग्मायुधाः) तीक्ष्ण शस्त्रों को धारण करने वाले, वीर पुरुष (रक्षसे) दुष्ट पुरुष के हनन करने के लिये ही (सन्तु) हों। (अस्य मदे) इसके दमनकारी शासन में स्थित (भामाः) क्रोधयुक्त वीर जन (अदेवीः परिबाधः) बुरे आदमियों की खड़ी की हुई बाधा और विघ्नकारी चेष्टाओं को (प्र रुजन्ति) खूब कुचल डालें और बाधक सेनाएं उसको (न वरन्ते) निवारण न कर सकें।

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥ ११ ॥

भा०—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध, कीर्त्तिमान् प्रभो! राजन्! (सु-अपाः न) उत्तम कर्म कुशल, कारीगर जिस प्रकार (रथं) उत्तम सुसम्बद्ध रथ बनाता है उसी प्रकार (ते) तेरे लिये (एतं) इस (स्तोमं) उपदेश युक्त स्तुत्य वचन को मैं (विप्रः) विद्वान् (धीरः) ध्यानवान् बुद्धिमान् पुरुष (अतक्षम्) प्रकट करता हूं। हे (अग्ने) ज्ञानवन् प्रभो! हे तेजस्विन्! राजन्! हे (देव) देव! (यदि इत्) यदि (त्वं) तू (प्रति हर्याः) इसे स्वीकार करे तो हम (स्वर्वतीः) नाना सुखों से युक्त (अपः) ज्ञानों, कर्मों और आप्त प्रजाओं को भी (एना) इस उत्तम उपदेश द्वारा (जयेम) विजय करें। उन पर वश करें और उनके हृदय खींचलें।

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (वेदः अशत्रु सम् अजाति) तेज को विना रोकके समस्त रूपों से सब ओर फेंकता है। उसी प्रकार (तुवि-ग्रीवः) बहुत सी गर्दनों, अर्थात् राज्यभार वाहक धुरन्धर समर्थ पुरुषों से सहायवान् होकर (वृषभः) बलवान् अग्रणी (अर्यः) स्वामी पुरुष (अशत्रु) शत्रुरहित, निष्कण्टक शत्रु के (वेदः) धनैश्वर्य को (सम्-अजाति) समान रूप से प्रदान करता है। (इति) इसी कारण से (इमम्) उस पुरुष को (अमृताः) दीर्घायु, वृद्ध जन (अग्निम् अवोचन्) 'अग्नि' कहते हैं वह (बर्हिष्मते) वृद्धिशील प्रजा के स्वामी (मनवे) मननशील पुरुष को (शर्म यंसत्) सुख शरण प्रदान करता है। और (हविष्मते) अन्नादि से समृद्ध (मनवे) पुरुष को (शर्म यंसत्) सुख प्रदान करता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[३]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। ११ भुरिक् पंक्तिः। २, ३, ५, ६, १२ निचृत्-त्रिष्टुप्। ४, १० त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप् ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! राजन्! ज्ञानवन् गुरो! हे परमेश्वर! (यत्) क्योंकि तू (वरुणः) सर्व-श्रेष्ठ, सब कष्टों का निवारक (जायसे) है। और (यत्) जो तू (समिद्धः) अति दीप्त, उत्तेजित और उग्र होकर भी (मित्रः भवसि) सबका स्नेही और सबको मरने से बचाने वाला ही बना रहता है। इस-लिये हे (सहसः पुत्र) बलवान् पुरुष के पुत्र वा बल की एकमात्र मूर्त्ति! तू (विश्वे देवाः) सब विद्वान् और नाना कामनावान् जन

(त्वे) तेरे ही पर आश्रित रहते हैं। (त्वम्) तू भी (दाशुषे मर्त्याय) कर आदि देने वाले वा आत्मसमर्पक मनुष्य के लिये (इन्द्रः) उसके विघ्नों का नाशक और सूर्य वा मेघ के तुल्य ऐश्वर्य का दाता है।

त्वम॑र्य॒मा भ॑वसि॒ यत्क॒नीनां॒ नाम॑ स्वधाव॒न्गुह्यं॑ बिभर्षि।
अ॒ञ्जन्ति॑ मि॒त्रं सुधि॑तं॒ न गोभि॒र्यद्दम्प॑ती॒ सम॑नसा कृ॒णोषि॑ ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! जिस प्रकार अग्नि (कनीनां अर्यमा) कान्तियुक्त सुन्दर आभूषण वस्त्रादि से युक्त, सौभाग्यवती एवं पति की कामना करने वाली कन्याओं का 'अर्यमा' अर्थात् स्वामी के तुल्य न्यायानुसार योग्य पात्र में देने वाला होता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी (कनीनां) तेजस्विनी सेनाओं और ऐश्वर्य एवं रक्षा चाहने वाली प्रजाओं का (अर्यमा) न्यायकारी स्वामी और शत्रुओं का नियन्ता (भवसि) होता है। हे (स्वधावन्) आत्मशक्ति, और स्व अर्थात् धनादि धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! पत्नी के गुप्त भाषणादि को धारण करने में समर्थ पति के तुल्य ही तू स्वयं (गुह्यं) बुद्धि और रक्षा के अनुकूल अपने (नाम) शत्रु नमाने के बल को भी (बिभर्षि) धारण करता है। (सुधितं) सुखपूर्वक आसन पर बैठे (मित्रं) अर्थात् स्नेहयुक्त पुरुष के प्रति कन्या के बन्धुजन जिस प्रकार (गोभिः न) गौके दुग्ध रस मधु आदि द्वारा (अञ्जन्ति) अपना आदर भाव प्रकट करते हैं और जिस प्रकार (सुधितं) अच्छी प्रकार कुण्ड में आहुति किये अग्नि को (गोभिः अञ्जन्ति) गो-दुग्ध के विकार रूप घृतों से अधिक प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार (सुधितम्) उत्तम रीति से स्थापित (मित्रं) सर्वस्नेही, सबको मृत्यु से बचाने वाले राजा को (गोभिः) गोदुग्ध दधि मधु आदि वा, उत्तम वाणियों, गवादि पशु सम्पदाओं और भूमियों से (अञ्जन्ति) आदर सत्कार युक्त करें। (यत्) क्योंकि तू ही (दम्पती) पति और पत्नी को (समनसा) आवसथ्य अग्नि के तुल्य एक मन वाला (कृणोषि) करता है।

यदि राजा की व्यवस्था न हो तो पति-पत्नी सम्बन्ध भी स्थिर न रह सके अन्यत्र भी वेद मन्त्रों में—सं जास्पत्यं सुयमम् आ कृणुष्व । यजु० ॥ हे राजन् ! पति-पत्नी के सम्बन्ध को सुदृढ़ कर ।

तव॑ श्रि॒ये म॒रुतो॑ मर्जयन्त॒ रुद्र॒ यत्ते॒ जनि॑म॒ चारु॑ चि॒त्रम् ।
प॒दं यद्विष्णो॑रुप॒मं नि॒धायि॒ तेन॑ पासि॒ गुह्यं॒ नाम॒ गोना॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले, उनको भस्मसात् करने और उनको मर्यादा में रोक रखने हारे तेजस्विन् ! जिस प्रकार (मरुतः अग्नेः चित्तं जनिम श्रिये मर्जयन्त) वायुगण अग्नि के अद्भुत रूप को और अधिक शोभा वा कान्ति की वृद्धि के लिये अधिक प्रदीप्त कर देते हैं उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् और वायुवद् बलवान् पुरुष (यत् ते) जो तेरा (चारु) सुन्दर (चित्रम्) अद्भुत (जनिम) जन्म या देह है उसको (श्रिये) ऐश्वर्य, शोभा की वृद्धि के लिये और अधिक (मर्जयन्त) अभिषेक, अलंकार आदि द्वारा शुद्ध पवित्र और अलंकृत करें । (यत्) जिस कारण (ते पदम्) तेरा पद, (विष्णोः उपमं) व्यापक, तेजस्वी सूर्य और वायु के तुल्य (निधायि) निहित है इस कारण (तेन) उस पद या अधिकार से तू (गोनाम् गुह्यं) किरणों के गुप्त रूप को सूर्यवत् और मेघस्थ जलधाराओं के गुप्त रूप को आकाशस्थ वायु के तुल्य ही (गोनाम्) भूमियों और उनमें बसी प्रजाओं के (गुह्यं नाम) गुप्त, वश-कारक बल को (पासि) पालन कर ।

तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त ।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर्दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः ॥ ४ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! हे ऐश्वर्य के देने हारे ! हे देव ! (सुदृशः देवाः) अच्छी प्रकार तत्व को देखने वाले विद्वान् पुरुष (तव श्रिया) तेरी सेना, शोभा और ऐश्वर्य से ही (पुरु अमृतं दधानाः)

बहुत प्रकार के अमृत, अन्न, जल और उत्तम प्रजा और दीर्घ जीवन को धारण करते हुए (सपन्त) समवाय बना कर, मिलकर रहें । (आयोः) दीर्घ जीवन की (उशिजः) कामना करने वाले (मनुषः) मनुष्य गण (शंसम्) अति प्रशंसनीय वचन और पुरस्कार योग्य द्रव्य को (दशस्यन्तः) आदर पूर्वक प्रदान करते हुए (होतारम्) सर्वैश्वर्य के दाता (अग्निम्) तेजस्वी, अग्रणी नायक को प्राप्त होकर स्वयं भी (नि सेदुः) उत्तम आसनों वा अपने २ पदों पर विराजें ।

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः पुरो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! हे तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वत् पूर्वः) तेरे से पूर्व, तेरे से उत्कृष्ट दूसरा कोई (होता) दान देने और प्रजाओं को अपने अधीन रखकर अपनाने वाला (न अस्ति) नहीं है । और हे (स्वधावः) ऐश्वर्य और अन्न के स्वामिन् ! (त्वत् यजीयान्) तेरे से अधिक बड़ा सत्संग योग्य और (काव्यैः) विद्वानों के किये उत्तम स्तुति-वचनों द्वारा सत्कार, प्रशंसा और उपदेशों के द्वारा आदर योग्य सत्पात्र भी (न अस्ति) नहीं है । (च) और (यस्याः विशः) जिस प्रजा का भी तू (अतिथिः भवासि) अतिथि के तुल्य पूज्य और अध्यक्ष रूप से शासक होता है (सः) वह तू हे (देव) तेजस्विन् ! हे दातः ! (यज्ञेन) दान, सत्संग द्वारा ही उस प्रजा के (मर्त्तान्) मनुष्यों को (वनवत्) अपना ऐश्वर्य समान रूप से विभक्त कर देता है ।

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६॥१६॥

भा०—हे (सहसः पुत्र) बल के स्वरूप ! हे शक्ति के पालक ! (अग्ने) अग्रणी नायक तेजस्विन् ! (वसूयवः) धनों की कामना करते हुए और (हविषा) करने योग्य उत्तम भक्ष्य और उत्तम वचन से

(बुध्यमानाः) ज्ञानवान् होते हुए (वयम्) हम लोग (त्वा ऊताः) तेरे द्वारा रक्षित होकर (वनुयाम) ऐश्वर्यों का भोग और दान किया करें। और (वयं) हम लोग (समर्ये) संग्राम में और (विदथेषु) यज्ञों और ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति और ग्रहण, दान आदि कार्यों में (अह्नाम्) सब दिनों (वनुयाम) लगे रहें। और (वयं) हम लोग (राया) धनैश्वर्य के बल पर (मर्त्तान्) सब प्रकार के मनुष्यों को सेवक, सहायक आदि रूपों में (वनुयाम) प्राप्त करते रहें।

यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७॥

भा०—(यः) जो पुरुष (नः) हमारे बीच में (एनः) अपराध (अभि भराति) करे राजा (अघशंसे) उस पापाचारण करने वाले चोर पुरुष पर (अघम् अधि दधात) खूब कठोर दण्ड दे। हे (चिकित्वः) तत्वज्ञ, राज्य से रोगों के तुल्य दुष्टों को दूर करने हारे! (नः) हमारे बीच (यः) जो भी (द्वयेन) बाहर और भीतर, प्रकाश और अप्रकाश दोनों रीति से (नः मर्चयति) हमें पीड़ित करता है तू उनकी (एताम् अभिशस्ति) इस प्रकार सब ओर की हिंसा वा फौज़दारी को (जहि) दण्डित कर।

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥

भा०—(व्युषि पूर्वे दूतं अग्निं कृण्वानाः हव्यैः अयजन्त, इध्यमानः वसुभिः संस्थे अग्निः ईयसे) जिस प्रकार विभोर काल में वृद्धजन संताप-जनक अग्नि को उत्पन्न करते हुए घृत अन्नादि हवियों से यज्ञ करते हैं और वह अपने बसने योग्य काष्ठों से चमकता हुआ अग्नि गृह में प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् अग्रणी नायक! हे (देव) तेजस्विन्! (अस्याः) इस प्रजा के (वि-उषि) विशेष प्रबल कामना

होजाने पर (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, वृद्ध प्रजाजन (त्वाम्) तुझ को (दूतं) परिचर्या योग्य और शत्रुसंतापक प्रतापी (कृण्वानाः) बनाते हुए (हव्यैः) उत्तम ग्राह्य ऐश्वर्यों से (अयजन्त) तेरा आदर सत्कार करते हैं (यत्) जो तू (देवः) दानशील वा तेजस्वी होकर ही (वसुभिः) धनैश्वर्यों और राष्ट्र में बसे प्रजाजनों (मर्त्तैः) और शत्रुमारक वीर पुरुषों से (इध्यमानाः) बहुत तेजस्वी होकर (रयीणां संस्थे) ऐश्वर्यों के एक-मात्र आश्रय रूप इस राष्ट्र में (ईयसे) प्राप्त है।

अव॑ स्पृधि पि॒तरं॒ योधि॑ वि॒द्वान्पु॒त्रो यस्ते॑ सहसः सून ऊ॒हे।
क॒दा चि॑कित्वो अ॒भि च॑क्षसे॒ नोऽग्ने॑ क॒दाँ ऋ॑त॒चिद्या॑तयासे ॥९॥

भा०—(सहसः सूनो) बलवान् ब्रह्मचर्यपूर्वक बलवीर्य के पालक पिता के पुत्र के तुल्य वा राष्ट्रपालक, शत्रुमारक बल, सैन्य के सञ्चालक राजन् ! (अहं ते ऊहे) मैं तेरे लिये सदा यह विचार करता हूं कि (यः) जो तू (पुत्रः) पुत्र या बहुतों का पालक है वह तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (कदा) कब (पितरं) अपने पालक पिता को पुनः देखना (अव स्पृधि) चाहेगा और (कदा अव योधि) कब उनको कष्टों से छुड़ावेगा। हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू (नः अभिचक्षसे) हमें कब उत्तम उपदेश करेगा और (ऋतचित् सन् कदा नः यातयासे) सत्य ज्ञान का संचय करने हारा तू हमें तेजस्वी सूर्य के तुल्य कब सन्मार्ग पर चलावेगा। (२) इसी प्रकार हे राजन् ! (सहसः सूनो) बल सैन्य के प्रेरक, चालक (अग्ने) नायक ! (यः) जो (पुत्रः) पुत्र के समान प्रजाजन (त्वां पितरं विद्वान्) तुझे अपने पिता के तुल्य जानता हुआ (सं अव स्पृधि) तुझे खूब चाहता है और (त्वां अव योधि) तुझे सब संकटों से दूर रखता है वह (ते कदा ऊहे) तुझे कब अपने ऊपर अध्यक्ष रूप से धारण करे। तू हमें कब २ देखे और कब २ सन्मार्ग पर चलावे। (३) अथवा—इसकी उभयथा योजना है। (हे सहसः सूनो ! यः ते पुत्रः प्रजाजनः त्वां पितरं

विद्वान् अव स्पृधि स्पर्धते, अव योधि च दुःखात् पृथक् कुरुते यः च ऊहे करादि भारं वहति। तमेव हे राजन्! त्वं पितरं स्वपालकं प्रजाजनं पुत्रः पुत्रवत् सन् अवस्पृधि आपूरय, अव योधि शत्रुभिः सह युध्यस्व, संकटाद्वा मोचय) जो तेरा पुत्र तुल्य प्रजाजन तुझे पिता तुल्य जानता हुआ तुझे चाहता है, तुझे संकट से परे रखता है, तेरे शासन को अपने ऊपर रखता है, हे राजन्! तू भी अपने पालक उस प्रजाजन को उसके पुत्र के तुल्य ही पूर्ण कर वा चाह, उसके लिये शत्रुओं से लड़ वा संकट दूर कर। तू (कदा) कभी हमें देखा कर और (कदा) कभी २, समय २ पर (ऋतचित्) सत्य न्याय का ज्ञापक होकर (नः यातयासे) हमें सन्मार्ग पर चला।

भूरि॒ नाम॒ वन्द॑मानो दधाति पि॒ता व॑सो॒ यदि॒ तज्जो॒षया॑से।
कु॒विद्दे॒वस्य॒ सह॑सा चका॒नः सु॒म्नम॒ग्निर्व॑नते वावृधा॒नः ॥ १० ॥

भा०—हे (वसो) वसो! राष्ट्र को बसाने वाले राजन्! (यदि) यदि तू (तत्) उस (नाम) बड़े कान्तियुक्त नाम वा शत्रु को नमाने वाले बल को (जोषयासे) चाहे तो (पिता) पालक पिता जिस प्रकार पुत्र का उत्तम नाम रखता है उसी प्रकार (पिता) पालक प्रजाजन भी (भूरि) बहुत २ तेरी स्तुति करता और आदरपूर्वक विनय भाव दर्शाता हुआ तेरे (भूरि नाम दधाति) बहुत से राजा, नृप, भूपति आदि नाम रख देता है और स्वयं भी (भूरि नाम) बहुत सा शत्रुनमनकारी बल धारण करता है। (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी नायक (कुवित्) बहुधा (देवस्य) अपने को चाहने वाले और कर आदि देने वाले देशवासी जन के (सुम्नम्) सुख की (चकानः) कामना करता हुआ स्वयं भी (वावृधानः) बराबर बढ़ता हुआ (वनते) स्वयं भी सुख को प्राप्त करता और औरों को भी देता है। इसी प्रकार हे वसो! हे प्रजाजन! यदि तू चाहे तो तेरा (पिता) पालक राजा स्तुति प्राप्त करके तेरे

बहुत से स्वरूपों वा नाम अर्थात् बलों वा पदों को धारण करता है। अर्थात् प्रजा की इच्छानुसार राजा अपने सैन्यादि बढ़ावे।

त्वम॒ङ्ग ज॑रि॒तारं॑ यविष्ठ॒ विश्वा॑न्यग्ने दुरि॒ताति॑ पर्षि।
स्ते॒ना अ॑दृश्रन्रि॒पवो॒ जना॒सोऽज्ञा॑तकेता वृजि॒ना अ॑भूवन् ॥११॥

भा०—(अङ्ग अग्ने) हे ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! अग्नि के तुल्य प्रताप वाले ! हे (यविष्ठ) बलिष्ठ ! खूब तरुण ! (त्वं) तू (विश्वानि) सब प्रकार के (दुरिता) पापाचारों और दुर्गम संकटों को (अति) पार करके (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् पुरुष को (पर्षि) पालन कर। जो (स्तेनाः) चोर और (रिपवः) शत्रुगण (अदृश्रन्) दिखाई दें। और जो (अज्ञातकेताः) अज्ञात कुलशील, अज्ञात स्थान में रहने वाले, वा ज्ञान शून्य (जनासः) मनुष्य होते हैं वे भी (वृजिनाः) वर्जन करने योग्य ही (अभूवन्) होते हैं। उनसे भी अपने स्तुतिकर्त्ता, सपक्ष प्रजाजन की रक्षा करे। (२) इसी प्रकार अग्नि आचार्य (जरितारं) विद्या पढ़ने वाले शिष्य की हर प्रकार से रक्षा करे। बहुत से लोग ठग, चोर, पापी अज्ञानी होते हैं जो बालकों को ठगते वा गिराते हैं।

इ॒मे यामा॑सस्त्व॒द्रिग॑भूव॒न्वस॑वे वा॒ तदिदागो॑ अवाचि।
नाहा॒यम॒ग्निर॒भिश॑स्तये॒ नो न रीष॑ते वावृधा॒नः परा॑दात् १२।१७

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् वा आचार्य! (इमे) ये (यामासः) यम नियमों के पालक शिष्यजन और शरण में जाने वाले वा नियम-व्यवस्था में बद्ध प्रजाजन वा नियमबद्ध सैन्य गण (वसवे) वसे राष्ट्र में वा अन्तेवासी के हितार्थ वा बसाने वाले राजा वा आचार्य के ही निमित्त वा (वसवे) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये ही (त्वद्-रिक् अभूवन्) तेरे ही से यत्नशील, तेरे ही अधीन होते हैं। अतः (तत् इत् आगः) वह सब अपराध (वसवे) प्रजा को बसाने वाले का ही (अवाचि)

कहाजाता है । इसलिये (अयम् अग्निः) वह अग्रणी नेता पुरुष (नः) हमें (अभिशस्तये) परस्पर हिंसा आदि अपराध के लिये हिंसा करने वाले के हाथ (न परा दात्) न त्यागदे और स्वयं (वावृधानः) बढ़ता हुआ भी हमें (रीपते न परा दात्) हिंसक के हाथों न सौंप दे । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[४]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १०, ११ भुरिक् पंक्तिः । स्वराट् पंक्तिः । २, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वाम॑ग्ने॒ वसु॑पतिं॒ वसू॑नाम॒भि प्र म॑न्दे अध्व॒रेषु॑ राजन् ।
त्वया॒ वाजं॑ वाज॒यन्तो॑ जयेमा॒भि ष्या॑म पृत्सु॒तीर्मर्त्या॑नाम् ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! हे (राजन्) हे प्रकाशमान राजन् ! (वसूनां) वसे जनों के बीच (वसुपतिम्) धनपति (त्वाम्) तुझ को मैं (अध्वरेषु) यज्ञों में अग्निवत् हिंसारहित प्रजा पालनादि कार्यों में स्थित देख कर (प्र मन्दे) तेरे गुणानुवाद करता हूं । हम प्रजाजन (त्वया) तुझ द्वारा (वाजं वाजयन्त) संग्राम विजय करते हुए (जयेम) विजय प्राप्त करें । और (मर्त्यानाम्) हमें मारने वाले मनुष्यों की (पृत्सुतीः) सेनाओं को हम (अभि स्याम) पराजित करें ।

ह॒व्य॒वाळ॒ग्निर॒जरः॑ पि॒ता नो॑ वि॒भुर्वि॒भावा॑ सु॒दृशी॑को अ॒स्मे ।
सु॒गा॒र्ह॒प॒त्याः समिषो॑ दिदीह्यस्म॒द्र्य१॒॑क्सं मि॑मीहि॒ श्रवां॑सि ॥२॥

भा०—(हव्यवाट्) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला (अग्निः) अग्रणी अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (अजरः) कभी नाश न होने वाला (नः पिता) हमारा पालक हो । वह (विभुः) विशेष सामर्थ्य-

वान् (विभावा) दीप्तिमान् (सुदृशीकः) उत्तम द्रष्टा, उत्तम अध्यक्ष (अस्मे) हमारे कल्याण के लिये हो। वह तू हे राजन्! (सुगार्हपत्याः) उत्तम गृहपति के योग्य (इषः) अन्नों को (सं दिदीहि) प्रदान कर। और (अस्मद्रयक्) हमें प्राप्त होने वाले (श्रवांसि) अन्नों और ज्ञानों को (सं मिमीहि) अच्छी प्रकार सेचन कर, वढ़ा। (२) परमेश्वर अजर, अमर, पालक, व्यापक, तेजःस्वरूप, उत्तम इष्ट है। वह हमें कामनाएं, ज्ञान अन्नादि देता है।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोप (कविं) कान्तदर्शी (शुचिं) शुद्ध, स्वच्छ आचारणवान्, ईमानदार, धार्मिक, तेजस्वी, (पावकं) पवित्र करने वाले, (घृतपृष्ठम्) तेज और स्नेह से पूर्ण रूप वाले (अग्निं) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, (होतारं) दानशील, (विश्वविदम्) सर्वज्ञानी पुरुष को (विशां) प्रजाओं का (विश्पतिं) प्रजापति (दधिध्वे) बनाओ। (सः) वह ही (वार्याणि) नाना उत्तम ऐश्वर्य (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषुओं और कामनावान् पुरुषों में (वनते) यथोचित रूप से विभाग करता है। (२) परमेश्वर सर्वज्ञ, प्रजापति, शुद्ध, पवित्र, पतितपावन, तेजोमय है, वही सब सूर्यादि में अन्धकार-निवारक तेज देता है।

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानः) सूर्य की किरणों से प्रयत्नवान् वा क्रियावान् होकर अग्नि (समिधं) काष्ठ को ग्रहण करता और (हविः-अद्याय) चरु आदि को भस्म करने के लिये (देवान् वहति) किरणों वा ज्वालाओं को धारण करता है उसी प्रकार हे (अग्ने)

अग्नि के तुल्य शत्रुओं को प्रखर प्रताप से भस्म करने हारे! तू (इडया) वाणी और भूमिवासिनी प्रजा से (सजोषाः) समान रूप से सेवित एवं प्रेमयुक्त होकर (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की रश्मियों के तुल्य अपने अधीन शासकों सहित (यतमानः) सदा यत्न करता हुआ (नः समिधं जुषस्व) हमारे सहयोगी तेज, बल, ओज, पराक्रम को भी प्राप्त कर और हे (जातवेदः) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष! तू (नः) हमारे (हविः-अद्याय) खाने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (नः) हममें से (देवान्) तेजस्वी पुरुषों को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर और उनको (वक्षि च) अपने ऊपर ले, अर्थात् उनका पालन पोषण अपने पर ले।

जुष्टो दमू॑ना॒ अति॑थिर्दुरो॒ण इ॒मं नो॑ य॒ज्ञमुप॑ याहि वि॒द्वान्।
विश्वा॑ अग्ने अभि॒युजो॑ वि॒हत्या॑ शत्रूय॒तामा भ॑रा॒ भोज॑नानि॥५॥१८

भा०—जिस प्रकार गृह में अग्नि यज्ञ को प्राप्त होता है और सब दोषों को दूर करके भोजन प्राप्त करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! विनयशालिन्! तू (दमूनाः) जितेन्द्रिय और (जुष्टः) हमारे प्रेमपात्र, (अतिथिः) अतिथि के तुल्य पूज्य, एवं सबको अतिक्रमण करके सर्वोपरि विराजमान (विद्वान्) विद्वान्, ज्ञानी होकर (दुरोणे) गृह में (नः) हमारे (इमं यज्ञम्) इस आदर-सत्कार, भेंट आदि को (उपयाहि) प्राप्त कर। और (विश्वाः अभि-युजः) समस्त आक्रमण करने वाली सेनाओं को (वि-हत्य) विविध उपायों से दण्डित करके, मार कर (शत्रूयताम्) शत्रुओं के समान व्यवहार करने वालों के (भोजनानि) खाने और रक्षा करने के साधनों और शस्त्रास्त्रों को भी (आ भर) छीन ला॥

इत्यष्टादशो वर्गः॥

व॒धेन॒ दस्युं॒ प्र हि चा॒तय॑स्व॒ वयः॑ कृण्वा॒नस्त॒न्वे॒३॒॑ स्वायै॑।
पिप॑र्षि॒ यत्स॑हसस्पुत्र दे॒वान्त्सो अ॑ग्ने पाहि नृतम॒ वाजे॑ अ॒स्मान्॥६॥

भा०—हे (सहसः पुत्रः) शत्रुपराजयकारी, देशपालक बलवान्

पिता के पुत्र के समान स्वयं उस द्वारा सुरक्षित और संवर्धित राजन् ! तू (वधेन) शस्त्र बल से (दस्युं) नाशकारी दुष्ट पुरुष को (प्र चातयस्व) अच्छी प्रकार नाश कर । और (स्वायै तन्वे) अपने शरीर का (वयः कृण्वानः) बल खूब बढ़ाता हुआ (यत्) जो तू (देवान् पिपर्षि) कामना युक्त, व्यवहारवान् और युद्ध-विजयेच्छु लोगों को पालन करता, (सः) वह तू हे (नृतम) श्रेष्ठ पुरुष ! (अग्ने) हे तेजस्विन् ! (अस्मान्) हमें (वाजे) संग्राम में (पाहि) पालन कर ।

व॒यं ते॑ अग्न उ॒क्थैर्वि॑धेम व॒यं ह॒व्यैः पा॑वक भद्रशोचे ।
अ॒स्मे र॒यिं वि॒श्ववा॑रं॒ समि॑न्वा॒स्मे विश्वा॑नि॒ द्रवि॑णानि धेहि ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (वयः) हम (उक्थैः विधेम) उत्तम वचनों से तेरी स्तुति करें । हे (पावक) राज्य को पापों से रहित, पवित्र करने हारे ! हे (भद्रशोचे) कल्याणकारी तेज वाले ! (वयं) हम (ते) तेरी (हव्यैः) अन्न धन आदि उत्तम पदार्थों से परिचर्या करें । तू (अस्मे) हमें (विश्ववारं) सब से वरण करने योग्य (रयिं) ऐश्वर्य (समिन्व) प्राप्त करा । (अस्मे) हमें (विश्वानि द्रविणानि) सब प्रकार के धन (धेहि) प्रदान कर ।

अ॒स्माक॑मग्ने अध्व॒रं जु॑षस्व॒ सह॑सः सूनो त्रिषधस्थ ह॒व्यम् ।
व॒यं दे॒वेषु॑ सु॒कृतः॑ स्याम॒ शर्म॑णा नस्त्रि॒वरू॑थेन पाहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! तू (अस्माकं) हमारे बीच (अध्वरं) हिंसा से रहित पालक पद को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर । हे (सहसः सूनो) शत्रु-पराजयकारी सैन्य-बल के सञ्चालक ! हे (त्रि-सधस्थ) जल, स्थल पर्वत तीनों स्थानों पर स्थित वा प्रजा, भृत्य और स्वजन तीनों के साथ निष्पक्षपात होकर रहने वाले ! तू (अस्माकं-हव्यं जुषस्व) हमारे ऐश्वर्य को प्राप्त कर । (वयं देवेषु) हम विद्वानों के बीच (सुकृतः स्याम) उत्तम कर्म करने वाले हों और तू (त्रिवरूथेन

शर्मणा) तीनों तापों, गर्मी, सर्दी, वर्षा तीनों के निवारक गृह, वा शत्रु-नाशक तीनों प्रकार के सैन्य से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर ।

विश्वा॑नि नो दु॒र्गहा॑ जातवेदः॒ सिन्धुं॒ न ना॒वा दु॑रि॒ताति॑ पर्षि ।
अग्ने॑ अत्रि॒वन्नम॑सा गृणा॒नो॑ऽस्माकं॑ बोध्यवि॒ता त॒नूना॑म् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अत्रिवत् अग्ने) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजाओं और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! वा शत्रुओं को खा जाने, समाप्त कर देने वाले सैन्यों के स्वामिन् ! वा राष्ट्र के भोक्ता के तुल्य ! तेजस्विन् ! हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के प्राप्त करने हारे ! (सिन्धुं नावा न) बड़ी नदी वा समुद्र को नौका या जहाज के तुल्य तू (नः) हमें (विश्वानि) समस्त (दुरिता अति पर्षि) दुखदायी संकटों वा पापों से पार कर । तू (नमसा गृणानः) नमस्कार वचन से स्तुति किया जाता हुआ (अस्माकं तनूनां) हमारे शरीरों का (अविता बोधि) रक्षक होकर सदा सावधान रह ।

यस्त्वा॑ हृ॒दा की॒रिणा॒ मन्य॑मा॒नोऽम॑र्त्यं॒ मर्त्यो॒ जोह॑वीमि ।
जात॑वेदो॒ यशो॑ अ॒स्मासु॑ धेहि प्र॒जाभि॑रग्ने अमृत॒त्वम॑श्याम् ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो मैं (मर्त्यः) मरणधर्मा एवं शत्रुओं का मारने वाला साधारण पुरुष (त्वा अमर्त्यं) तुझ अमर्त्य अर्थात् असाधारण पुरुष को (कीरिणा हृदा) स्तुतिशील चित्त से (मन्यमानः) मान, आदर करता हुआ (जोहवीमि) पुकारता, प्रार्थना करता हूं वह तू हे (जातवेदः) उत्पन्न समस्त प्रजाजनों के जानने हारे वा ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (अस्मासु) हम में (यशः धेहि) अन्न और कीर्त्ति प्रदान कर । हे (अग्ने) नायक ! मैं राष्ट्रवासी प्रजाजन भी (प्रजाभिः) सन्तानों से (अमृतत्वम्) अमृत, अविनाशी स्वरूप को (अश्याम्) प्राप्त करूं सन्तति वा वंशपरम्परा रूप से मैं सदा स्थिर बना रहूं ।

यस्मै॒ त्वं सु॒कृते॑ जातवेद उ लो॒कम॑ग्ने कृ॒णवः॑ स्यो॒नम् ।
अ॒श्विनं॒ स पु॒त्रिणं॑ वी॒रव॑न्तं॒ गोम॑न्तं र॒यिं न॑शते स्व॒स्ति ॥ ११ ॥ १९

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले ! हे (अग्ने) अग्रणी नायक, राजन् ! (त्वं) तू (अस्मै सुकृते) जिस उत्तम कर्म करने वाले को (स्योनं लोकं कृणवः) सुखदायक लोक या स्थान प्रदान करता है (सः) वह (अश्विनं) उत्तम अश्व, (पुत्रिणं) पुत्र और (गोमन्तं) और गवादि समृद्धि (वीरवन्तं) वीर पुरुष से सम्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य को (स्वस्तिनशते) सुखपूर्वक प्राप्त करता है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ आप्री देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६, ७, ९, १० गायत्री । ३, ८ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या गायत्री २ आर्च्युष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

भा०—(सुसमिद्धाय) खूब अच्छी प्रकार प्रदीप्त, तेजस्वी (शोचिषे) शुद्ध पवित्र करने वाले (जातवेदसे) धन, ज्ञानसम्पन्न और ऐश्वर्य के उत्पादक (अग्नये) अग्नि के सदृश तेजस्वी, अग्रणी विद्वान् वा विनीत पुरुष के लिये (तीव्रं घृतं) अग्नि को तीव्र करने वाले घृत के समान उसकी शक्ति और सामर्थ्य की वृद्धि करने वाले घृतयुक्त अन्न, तेज के दायक ज्ञान और प्रकाश को (जुहोतन) प्रदान करो ।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः ।
कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥

भा०—(मधुहस्त्यः) मधुर अन्नादि उपभोग्य, सुखदायी पदार्थों को अपने हाथ में वा वश करलेने में कुशल, (कविः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (अदाभ्यः) कभी पीड़ित नहीं होता । और वह (नराशंसः) सब मनुष्यों

के बीच सबसे प्रशंसायोग्य और उनका उपदेष्टा होकर (इमं यज्ञम्) इस परस्पर के देने लेने योग्य ज्ञानोपदेश को (सु सूदति) अच्छी प्रकार धारा के रूप से प्रवाहित करता है।

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (ईडितः) स्तुति करने योग्य है ।। तू (इह) यहां इस लोक वा राष्ट्र में (ऊतये) रक्षा और उपभोग के लिये (सुखैः रथेभिः) सुखकारक रम्य पदार्थों वा रथ, यान आदि साधनों से (चित्रं) अद्भुत (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुषों और नाना ऐश्वर्यों को (आ वह) विद्युत् वा अग्नि के तुल्य प्राप्त करा ।

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत ।
भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान शरीरवत् राष्ट्र की रक्षा करने वाले वीर पुरुषों द्वारा वा राष्ट्र पर आच्छादन आवरण करने वाले अथवा ऊन के समान अतिमृदु, सुखकारी एवं स्वयं राष्ट्र का रक्षक होकर शत्रु वा दुष्टों का मानमर्दन करने वाले ! हे (शुभ्र) शुभ ऐश्वर्यों के दाता, अलंकृत, तेजस्विन्, शुद्धाचरणशील ! तुझ को (ऊर्णम्रदाः अर्कः अभि-अनूषत) ऊर्णवत् आच्छादक, रक्षक जनों द्वारा शत्रुनाशक और अज्ञान-नाशक, (अर्काः) अर्चना वा स्तुतिशील विद्वान् जन और सूर्यवत् वा किरणवत् प्रखर तेजस्वी नायक लोग तेरी सब ओर स्तुति करते वा उपदेश करते हैं। तू (वि प्रथस्व) विविध रूप से बढ़, फैल और ख्यातिमान् हो (नः) हमारे (सातये) उचित धनैश्वर्य विभाग के लिये (भव) नियुक्त हो ।

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा नं ऊतयें ।
प्रप्रं यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—हे (देवीः) विजय चाहने वाली, ऐश्वर्यों की कामना करने वाली (द्वारः) द्वारों के तुल्य दुष्टों और शत्रुओं का बाहर ही वारण कर देने वाली वीर सेनाओ ! आप लोग (सु-प्रायणाः) उत्तम उत्तम 'अयन' अर्थात् पदाधिकार वा स्व २ नियत स्थान और आगे की गति धारण करते हुए (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (वि श्रयध्वम्) विविध प्रकारों से राष्ट्र की सेवा करो। और (यज्ञं) दानशील, सत्संगयोग्य एवं पूज्य राजा वा राज्य-प्रबन्ध को (प्र-प्र पृणीतन) खूब पूर्ण, समृद्ध एवं प्रसन्न करो। अथवा, हे पुरुषो ! (सु-प्रायणाः) उत्तम गृहों से युक्त होकर आप लोग हमारे चिरकाल रक्षार्थ ही (सु-प्रायणाः) उत्तम गमनयोग्य, सुखजनक (देवीः वि श्रयध्वम्) उत्तम स्त्रियों को आश्रय दो, यज्ञ, गृहाश्रम को पूर्ण करो।

सुप्रतीके वयोवृधां यह्वी ऋतस्यं मातरां ।
दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-प्रतीके) उत्तम ज्ञानयुक्त, (वयोवृधा) ज्ञान, आयु और बल के बढ़ाने वाले (यह्वी) बड़े, पूज्य (ऋतस्य) अन्न, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के (मातरा) स्वयं जानने और औरों को उपदेश करने वा माता पिता के तुल्य अन्न देने वाले हो। हम लोग आप दोनों को (तेषाम् उषासम्) रात्रि और दिन के तुल्य सबको सुखदायक और प्रकाश-ज्ञानदाता जान करके (ईमहे) प्राप्त होते और ज्ञानादि की याचना करते हैं।

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः ।
इमं नो यज्ञमा गंतम् ॥ ७ ॥

भा०—(दैव्या होतारा) विद्वानों, ज्ञान, धनादि की कामना वाले शिष्यों और उत्तम गुणों से कुशल दानशील, धनी, ज्ञानी स्त्री पुरुषो वा आप दोनों (वातस्य पत्मन्) प्रबल वायु के मार्ग में स्थित मेघ विद्युत् के तुल्य बलवान् , और ज्ञानवान् पुरुष के योग्य मार्ग में जाते हुए (ईडिता) प्रशंसा के पात्र हो। आप लोग (मनुषः) मनुष्यों को और (नः इमं यज्ञम्) हमारे इस सत्संग को (आगतम्) प्राप्त होवो।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ ८॥

भा०—(इडा) उत्तम स्तुतियोग्य विद्या, (सरस्वती) उत्तम ज्ञानमयी वाणी और (मही) बड़ी विशाल भूमि इन तीनों के समान (इडा) स्तुत्य, उत्तम इच्छा वाली, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी और (मही) आदर योग्य, गुणों में पूज्य (तिस्रः) तीनों प्रकार की (देवीः) स्त्रियां, प्रजाएं वा सभाएं (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करने वाली हों और वे (अस्रिधः) हिंसा आदि न करती हुई (बर्हिः) वृद्धि युक्त आसन वा प्रजामय राष्ट्र पर (सीदन्तु) विराजें।

शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना।
यज्ञेयज्ञे न उदव॥ ९॥

भा०—हे (त्वष्टः) सब दुःखों को काटने हारे! हे तेजस्विन्! हे शिल्पज्ञ! तू (शिवः) कल्याणकारी, (विभुः) व्यापक सामर्थ्य वाला (उत) और (पोषः) सर्वपोषक होकर (इह आ गहि) यहां आ और (यज्ञे-यज्ञे) प्रत्येक आदर-सत्संग योग्य व्यवहार में (नः उत् अव) हमारे बीच उत्तम पद पर स्थित होकर हमारी रक्षा कर।

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि।
तत्र हव्यानि गामय॥ १०॥

भा०—हे (वनस्पते) वनों अर्थात् किरणों के पालक, सूर्य के तुल्य तेजस्विन्! वा महावृक्ष वट आदि के तुल्य आश्रित जनों के पालक! तू (यत्र) जहां भी (देवानां) विद्वान् उत्तम पुरुषों के (गुह्या) बुद्धि में स्थित, बुद्धिपूर्वक (नामानि) उत्तम बल वा रूपों, चिह्नों को (वेत्थ) जाने (तत्र) वहां (हव्यानि) देने वा लेने योग्य द्रव्यादि साधनों को (गामय) प्राप्त करा।

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः।
स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥ २१ ॥

भा०——(अग्नये हविः स्वाहा) ज्ञानवान्, तेजस्वी, अग्रणी विद्वन् पुरुष के लिये अन्न उत्तम रीति से आदरपूर्वक वाणी से प्रदान करो। (वरुणाय हविः स्वाहा) दुःखों, कष्टों के वारक श्रेष्ठ पुरुष को अन्न उत्तम प्रकार से सुखदायक वाणी सहित सादर प्रदान करो। (इन्द्राय हविः स्वाहा) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को उत्तम अन्न आदरपूर्वक प्रदान करो। (मरुद्भ्यः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायु-वेग से जाने वाले (देवेभ्यः) ज्ञान, धन के इच्छुक वा दानशील विद्वान् मनुष्यों को (हविः) ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थ, ज्ञान, धन, अन्न आदि सब उत्तम रीति से आदर व प्रेमपूर्वक (स्वाहा) प्रदान किया जावे।

[६]

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८, ९ निचृत्पंक्तिः। २, ५ पंक्तिः। ७ विराट् पंक्तिः। ३, ४ स्वराड्बृहती। ६, १० भुरिग्बृहती ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

भा०—मैं (तम्) उसको (अग्निं मन्ये) 'अग्नि' मानता हूं, उसको

'अग्नि' अर्थात् अग्रणी और ज्ञानवान् पुरुष मानता हूं वा उस नायक वा विद्वान् को मैं मानता, अर्थात् आदरपूर्वक माननीय समझता हूं (यः वसुः) जो स्वयं 'वसु' अर्थात् २४ वर्ष तक न्यून से न्यून आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वसे, वा अपने अधीन अन्यों को अन्तेवासी वा प्रजा रूप में राजावत् बसाने हारा है। (यत् अस्तं) जिसको गृहसा जानकर वा जिस के घर में (धेनवः) गौएं (यन्ति) प्राप्त हों, (यं अस्तं) जिसको गृहसमान शरण जानकर या जिस के घर में, (अर्वन्तः) गतिमान् अश्व, वा विद्वान् जन, (आशवः) वेग से चलने वाले पदार्थ रथ आदि, और (नित्यासः वाजिनः) सदा ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त पुरुष (यं अस्तं यन्ति) जिसको शरण जानकर प्राप्त होते हैं। हे विद्वन्! हे नायक! तू (स्तोतृभ्यः) विद्योपदेष्टा पुरुषों को (इषम् आ भर) वृष्टि को सूर्य के तुल्य अन्न और कामना योग्य पदार्थ प्राप्त करा। हे नायक! तू विद्वानों के हितार्थ (इषम्) सेनादि का भी सञ्चालन कर।

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर २

भा०—(यः वसुः) जो स्वयं आचार्य के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करता और जो विद्वान् अपने अधीन अन्यों को यम नियम से वसाता है, (यम् धेनवः सम् आयन्ति) जिसको प्रजागण गौओं के तुल्य समृद्ध और एकत्र होकर प्राप्त होते हैं (यं रघुद्रुवः अर्वन्तः सम्) जिसको वेग से जाने वाले अश्व और अश्वारोही गण एक साथ मिलकर प्राप्त होते हैं और (सु-जातासः सूरयः) उत्तम प्रकार से विद्या आदि शुभ गुणों में विख्यात विद्वान् भी मिलकर (यं सम् आयन्ति) जिसका सत्संग करते हैं (सः अग्निः) वह नायक, अग्रणी, ज्ञान का प्रकाशक मार्ग में अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष 'अग्नि' है। हे ऐसे नायक पुरुष! तू (स्तोतृभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (इषम् आ भर) अन्नादि इच्छायोग्य पदार्थ प्राप्त करा। अथवा

हे मनुष्य ! तू ऐसे उपदेष्टा विद्वानों के लिये अन्नादि पदार्थ आदरपूर्वक ला, उनका सत्कार कर।

अ॒ग्निर्हि वा॒जिनं॑ वि॒शे ददा॑ति वि॒श्वच॑र्षणिः ।
अ॒ग्नी रा॒ये स्वा॒भुवं॒ स प्री॒तो या॑ति॒ वार्य॒मिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥३॥

भा०—(अग्निः हि) वह वस्तुतः अग्रणी नायक होने योग्य है जो (विश्व-चर्षणिः) सब अधीन पुरुषों को अग्नि के समान ज्ञान-प्रकाश से यथार्थ तत्व का दर्शन करावे और उन पर निरीक्षण रक्खे, वही (विशे) अपने अधीन बसी प्रजाओं को (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान् पुरुष (ददाति) प्रदान करता है। अर्थात् स्वयं उनको प्राप्त होकर उनकी बलवान् ज्ञानी पुरुष की आवश्यकता को पूर्ण करता, (सः) वह (अग्निः) विद्वान् नेता प्रसन्न होकर (स्वाभुवं) सब ओर से सुखपूर्वक आप से आप अनायास, उत्पन्न होने वाले (वार्यम्) वरण करने योग्य ऐश्वर्य को (राये) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (याति) प्राप्त करता है। हे विद्वन् नायक ! तू इस प्रकार सम्पन्न होकर (स्तोतृभ्यः इषम् आ भर) विद्वान् उपदेष्टा पुरुषों को अन्न आदि काम्य पदार्थ प्राप्त करा।

आ ते॑ अग्न इधीमहि द्यु॒मन्तं॑ देवा॒जर॑म् ।
यद्ध॒ स्या ते॒ पनी॑यसी स॒मिद्दी॒दय॑ति॒ द्यवीषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥४॥

भा०—हे (देव) देव ! दानशील ! सर्वार्थ-प्रकाशक ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नेतः ! हम लोग (ते) तेरे (द्युमन्तं) दीप्ति युक्त (अजरं) न नाश होने वाले, सदा पूर्णज्ञान कोष या स्वरूप को (आ इधीमहि) हम आदरपूर्वक अधिक प्रदीप्त करें, सर्वत्र प्रचारित करें (यत्) क्योंकि (ते) तेरी ही (पनीयसी) सब से अधिक उत्तम उपदेश देने वाली (सम्-इत्) अग्नि में लगी समिधा के तुल्य अच्छी प्रकार अर्थों का प्रकाश करने वाली (स्या) वह वाणी (ह) निश्चय से (द्यवि) ज्ञान

प्रकाश करने के अवसर में (दीदयति) खूब प्रकाशित होती है। तू (स्तोतृभ्यः) अध्येता जनों को (इषम् आ भर) उत्तम अन्न और इष्ट ज्ञान सब प्रकार से प्रेम आदर से प्राप्त करा।

आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विः शु॒क्रस्य॑ शोचिषस्पते। सुश्च॑न्द्र॒ दस्म॒ विश्प॑ते॒ हव्य॑वा॒ट् तुभ्यं॑ हूयत॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥५॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तेजस्वी विद्वन्! हे (शोचिषः पते) तेज और प्रकाश, पवित्रकारक ज्ञान के पालक! विद्वन्! (ते) तेरे लिये (हविः) उत्तम ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ (ऋचा) उत्तम प्रशंसा, आदर वा ज्ञान की प्रकाशक वाणी से हवनाग्नि में मन्त्र से हवि के समान (आ) प्रदान किया जाता है! हे (सुश्चन्द्र) उत्तम सुवर्णादि और आल्हादक गुणों से युक्त! हे (दस्म) दुःख और अज्ञान के नाशक! हे (विश्-पते) प्रजाओं के पालक! हे (हव्य-वाट्) अन्नादि पदार्थों को स्वीकार करने हारे! (तुभ्यं हविः हूयते) तेरे हितार्थ अन्नादि प्रदान किया जाता है। हे विद्वन्! तू (स्तोतृभ्यः) विद्याध्येता जनों व स्तुतिकर्त्ता वा अध्यापकों के लिये (इषं) ज्ञान अन्नादि इच्छा योग्य पदार्थ (आभर) प्राप्त करा। इति द्वाविंशो वर्गः॥

प्रो त्ये अ॒ग्नयो॒ऽग्निषु॒ विश्वं॑ पुष्यन्ति॒ वार्य॑म्।
ते हि॑न्विरे॒ त इ॑न्विरे॒ त इ॑षण्यन्त्यानु॒षगिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ६

भा०—जिस प्रकार (अग्नयः अग्निषु वार्यं पुष्यन्ति) ये सामान्य अग्नियें उन सूर्य आदि अग्नियों के आश्रय ही इस जगत् को पुष्ट करते हैं और जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थों के आधार पर ही उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (त्ये) वे (अग्नयः) अग्रणी नेता लोग (अग्निषु) अपने अग्रनायक पूर्वगामी विद्वान् पुरुषों के आश्रय और उनके अधीन रहकर (विश्वं वार्यम्) समस्त वरणीय उत्तम

ज्ञान, धन की वृद्धि करते हैं। (ते) वे ही (हिन्विरे) औरों को प्रसन्न तृप्त और पुष्ट करते, और (ते इन्विरे) विद्याओं में आगे बढ़ते और (ते) वे ही (आनुषक्) सदा प्रकृति के अनुकूल, एवं एक दूसरे का विरोध न करके एक दूसरे के प्रति प्रेमपूर्वक रहकर (इषण्यन्ति) अन्नादि इच्छानुकूल पदार्थों की कामना करते हैं। हे विद्वन्! तू (स्तोतृभ्यः) ऐसे विद्वानों को (इषम् आ भर) अन्न वा ज्ञान प्राप्त करा।

तव॒ त्य अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ महि॑ व्राधन्त वा॒जिनः॑।
ये पत्व॑भिः श॒फानां॑ व्र॒जा भु॒रन्त॒ गोना॒मिषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ७

भा०—जिस प्रकार (अर्चयः वाजिनः व्राधन्त) अग्नि की ज्वालायें अन्न आदि चरु खाकर बढ़ती हैं और वे (गोनां व्रजा भुरन्त) रश्मियों के समूहों को पुष्ट करती, बढ़ाती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! विद्वन्! और राजन्! प्रभो! (तव) तेरे (त्ये) वे (अर्चयः) अर्चना वा उपासना करने वाले (वाजिनः) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् लोग वा वेग से जाने वाले अश्वारोही गण, (शफानां पत्वभिः) समवेत शब्दों या वर्णों के बने पदों के अभ्यासों द्वारा (गोनां व्रजा भुरन्त) वेद-वाणियों के समूहों को प्राप्त करते हैं। वीर पुरुष (शफानां पत्वभिः) अश्वों के क़दमों के आगे बढ़ने से भूमियों के समूहों को जीतते वा पशु सम्पदाओं को जीतते हैं। वीरगण (शफानां) आक्रोश, आह्वान वा ललकार वाले सैन्यों के आक्रमणों से भूमि समूहों का विजय करते हैं। (स्तोतृभ्यः इषम् आभर) हे विद्वन्! राजन्! तू उन अध्येता वा स्तुतिकर्त्ताओं को अन्न, ज्ञान, धनादि पदार्थ प्राप्त करा।

नवा॑ नो अग्न॒ आ भ॑र स्तो॒तृभ्यः॑ सुक्षि॒तीरिषः॑।
ते स्या॑म॒ य आ॑नृ॒चुस्त्वादू॑तासो॒ दमे॑दम॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ८

भा०—जिस प्रकार अग्नि विद्वानों को (सुक्षितीः इषः) उत्तम भूमि में उत्पन्न अन्न प्रदान करता है, और विद्वान् लोग घर २ में उसी को

तापप्रद रूप से प्राप्त करके ज्वलित करते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! नायक ! तू (नः स्तोतृभ्यः) हमारे विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुषों को (सुक्षितीः) उत्तम निवास योग्य (इषः) इच्छानुकूल अन्नादि सामिग्री और उत्तम भूमियों में उत्पन्न अन्न और उत्तम निवास गृह वा भूमि की स्वामिनी प्रजाएं (आ भर) प्राप्त करा। (ये) जो (त्वा-दूतासः) तुझ को उपास्य, या प्रमुख बनाकर (दमे-दमे) प्रत्येक दमन या शासन के कार्य में या प्रतिगृह (आनृचुः) तेरी स्तुति और आदर करते हैं वे हम (ते स्याम) तेरे ही उपासक वा अनुगामी होकर रहें, तू उन (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) उन स्तुतिशील पुरुषों को अन्नादि प्राप्त करा।

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

भा०—हे (सु-चन्द्र) शोभन, सुखकारी आह्लादक, स्वर्णादि सम्पत्तियुक्त नायक ! जिस प्रकार होता (आसनि) अग्नि-मुख में (उभे सर्पिषः दर्वी श्रीणीषे) दो घी से पूर्ण चमस रखकर तपाता है उसी प्रकार तू (सर्पिषः) आगे बढ़ने वाले सैन्य वल की (दर्वी) शत्रुओं को विदारण करने वाली दो पलटनों को (आसनि) व्यूह के मुख में या शत्रुओं को उखाड़ देने के कार्य में (श्रीणीषे) खूब पका, अभ्यस्त कर, स्थापित कर वा सेवा में नियुक्त कर। (उतो) और हे (शवसः पते) वल, सैन्य के पालक सेनापते ! तू (उक्थेषु) उत्तम प्रशंसायोग्य पदों पर (नः) हमें (उत् पुपूर्याः) उत्तम रीति से पूर्ण कर। (स्तोतृभ्यः इषम् आ भर) विद्वानों और प्रशंसकों को अन्न आदि आजीविका प्रदान कर।

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक्।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥२३

भा०—(एवां) इस प्रकार विद्वान् लोग ही (गीर्भिः) उत्तम

वाणियों, (यज्ञेभिः) दान, मान, आदर सत्कारों से (अग्निम्) तेजस्वी अग्रणी, ज्ञानी, पुरुष को (आनुपक्) अपने अनुकूल करके (अजुः यमुः) प्राप्त करते और नियम में व्यवस्थित कर लेते हैं। वह (अस्मे) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम बल (उत) और (त्यत्) वह (आशु-अश्व्यम्) शीघ्र वेग युक्त अश्व सैन्य वा बलवान् इन्द्रियों वाला तपोवल ब्रह्मचर्य (दधत्) धारण करावे। वह तू (स्तोतृभ्यः) अध्येताओं और स्तुति कर्त्ताओं को (इषम् आ भर) ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करा। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७]

इष आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ४, ५, ८, ९ निचृदनुष्टुप्। ६, ७ स्वराडुष्णिक्। निचृद्बृहती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सखा॑यः॒ सं वः॑ स॒म्यञ्च॒मिषं॒ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑ ।
वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) एक ही समान नाम से पुकारे जाने योग्य मित्र गण ! (नः क्षितीनाम्) राष्ट्र में बसने वाले आप लोगों के बीच में (अग्नये) अग्रणी, ज्ञानवान् (वर्षिष्ठाय) सबसे बड़े बलवान्, सबको प्रबन्ध में बांधने वाले, (ऊर्जः नप्त्रे) बल पराक्रम युक्त सैन्य के प्रबन्धक (सहस्वते) शत्रु पराजयकारी सैन्य के स्वामी के पद के लिये आप लोग (सम्यञ्चम्) सम्यक् प्रकार से उत्तम (इषं) सबके प्रेरक (स्तोमं) स्तुति योग्य पुरुष को (सम् जनयन्ति) सब मिलकर संस्थापित करो।

कुत्रा॑ चि॒द्यस्य॒ समृ॑तौ र॒ण्वा नरो॑ नृ॒षद॑ने ।
अर्ह॑न्तश्चि॒द्यमि॑न्ध॒ते सं॑ज॒नय॑न्ति ज॒न्तवः॑ ॥ २ ॥

भा०—कैसे को नायक वा अग्रणी चुनें। (नरः) विद्वान् लोग (नृ-सदने) प्रमुख पुरुषों की बैठक या सभा में (यस्य सम्-ऋतौ) जिस को

प्राप्त करके, वा जिसके निष्पक्षपात सत्य ज्ञानयुक्त मति में रहकर (कुत्र-चित्) कहीं भी हों वा किसी भी कार्य में हे (रण्वाः) सुप्रसन्न ही रहते हों और वे (अर्हन्तः चित्) पूजा योग्य, उत्तम लोग (यम् इन्धते) जिसको यज्ञाग्नि के तुल्य ही प्रज्वलित करते हैं, (जन्तवः) सब जने जिसको (सं जनयन्ति) मिलकर नायक वा प्रमुख बनाते हैं वही उत्तम पुरुष नायक वा प्रमुख 'दैशिक' होने योग्य है ।

सं यदि॒षो वना॑महे॒ सं ह॒व्या मानु॑षाणाम् ।
उ॒त द्यु॒म्नस्य॒ शव॑स ऋ॒तस्य॑ र॒श्मिमा द॑दे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने (शवसा) तेज से (ऋतस्य रश्मिम्) जल के ग्रहण करने वाले किरण को धारण करता है उससे प्राणी जन (इषः हव्या) अन्नादि खाद्य पदार्थ वा वृष्टियां प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (यत्) जिस पुरुष से हम लोग (इषः) अन्न आदि इच्छा योग्य पदार्थ और सैन्यादि और (मानुषाणां हव्या) मनुष्यों के योग्य पदार्थ (वना-महे) प्राप्त करते हैं और (यत्) जो (शवसा) अपने बल पराक्रम से (द्युम्नस्य) ऐश्वर्य और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान वा न्याय के (रश्मिम्) बागडोर को (आददे) संभालता है वही उत्तम 'अग्नि' अर्थात् अग्रणी, नायक है ।

स स्मा॑ कृणोति के॒तुमा नक्तं॑ चिद्दू॒र आ स॒ते ।
पा॒व॒को यद्वन॒स्पती॒न्प्र स्मा॑ मि॒नात्य॒जरः॑ ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (अजरः पावकः वनस्पतीन्) स्वयं अवि-नाशी होकर बड़े वृक्षों को जला देता है और (सते नक्तं दूरे केतुम् आकृ-णोति) दूर विद्यमान पुरुष के लिये भी रात को दूर तक प्रकाश कर देता है और जिस प्रकार सूर्य स्वयं (अजरः) कभी जीर्ण वा हीन तेज न होकर भी (पावकः) जल मलादि को पवित्र करने वाला होकर (वनस्पतीन् प्र मिनाति) जलों और किरणों को वा पालक रश्मियों को दूर तक फेंकता

है, (सते) विद्यमान जगत् के उपकार के लिये (नक्तं) रात्रिके अन्धकार को (दूरे कृणोति, केतुम् आ कृणोति) दूर करता और प्रकाश को सर्वत्र फैला देता है उसी प्रकार (सः स्म) वह नायक पुरुष भी (पावकः) राष्ट्र का शोधक, होकर स्वयं (अजरः) अविनाशी होकर भी (वनस्पतीन् प्र मितानि) भोग्य पदार्थों के पालक बड़े बड़े शत्रु राजाओं को भी वायुवत् प्रचण्ड होकर उखाड़ देता है। और (सते) प्राप्त हुए राष्ट्र के हित के लिये (नक्तं चित्) रात्रि को सूर्य वत् (दूरे) दूर करता और (केतुम्) अपना ज्ञापक झण्डा (आ कृणुते) सर्वत्र फैलाता है।

अ॒व॑ स्म॒ यस्य॒ वेष॑णे॒ स्वेदं॑ प॒थिषु॒ जुह्व॑ति ।
अ॒भीम॑ह॒ स्वजे॑न्यं॒ भूमा॑ पृ॒ष्ठेव॑ रुरुहुः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा सूर्य के (वेषणे) ताप के सेवने या व्यापने पर (पथिषु) मार्गों में चलने वाले लोग (स्वेदं जुह्वति) पसीना छोड़ते हैं और जिस प्रकार उनसे उत्पन्न ज्वाला वा किरणादि पिता की पीठ पर पुत्रों के तुल्य, उसके ही पृष्ठ पर स्थित रहते हैं उसी प्रकार (यस्य वेषणे) जिसके राज्य या प्रताप के फैलने, वा करने में लोग (पथिषु) उत्तम मार्गों में वा युद्ध मार्गों में (स्वेदं) अपना ऐहिक सर्वस्व तन, धन, (अव जुह्वति स्म) आहुति कर देते हैं और (यस्य स्व-जेन्यं) जिसका स्वयं उत्पन्न किया राष्ट्र वा स्वबाहु वीर्य से विजय किया (भूम) बहुत बड़ा राष्ट्र बहुतसी प्रजाएं उसके पुत्र के तुल्य होकर (ईम् अह पृष्ठा इव) उसके ही पीठों पर (आ रुरुहुः) चढ़ जाते, उसका ही आश्रय लेते हैं, वह अग्रणी नायक 'अग्नि' है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

यं मर्त्यः॑ पुरु॒स्पृहं॑ वि॒दद्विश्व॑स्य॒ धाय॑से ।
प्र स्वाद॑नं पितू॒नामस्त॑तातिं चिदा॒यवे॑ ॥ ६ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार मनुष्य (पितूनां स्वादनं अस्ततातिं) अन्नों को स्वादु बना देने वाले और गृह के कल्याणकारी अग्नि को सबके

पोषणार्थ प्राप्त करता है उसी प्रकार (पुरु-स्पृहम्) सब मनुष्यों को प्रेम करने वाले, (पितूनां) उत्तम अन्नों के (स्वादनं) खिलाने वाले, (आयवे चित् अस्ततातिं) प्रत्येक शरणागत पुरुष की रक्षा के लिये गृह के तुल्य कल्याणकारी (यं) जिस पुरुष को (मर्त्यः) जन साधारण (प्र विदत्) अच्छी प्रकार प्राप्त करता और उच्चकोटि का जानता है वही प्रमुख नायक होने योग्य है।

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः॥ ७॥

भा०—(न) जिस प्रकार (हिरि श्मश्रुः) पीली किरण रूप मूंछ दाढ़ी वाला सूर्य, (ऋभुः) अति तेजस्वी होकर (आ-क्षितं धन्व) सर्वत्र फैले जल वा अन्तरिक्ष को (आ दाति) सब प्रकार वाष्प करके खण्डित करता वा व्याप लेता है, (पशुः) प्रकाश द्वारा दर्शाता है। उसी प्रकार (सः) वह राजा वा नायक (दाता) शत्रु बल का खण्डन और अपने ऐश्वर्य का दान करने वाला पुरुष (पशुः न) उत्तम द्रष्टा, विवेकी पुरुष के समान (हि) ही (आ-क्षितं धन्व) चारों ओर बसे भूमि प्रदेश को (आ दाति) सर्वत्र ग्रामों, क्षेत्रों में विभक्त करे, और प्रदान करे, बांट दे। और वह (हिरि-श्मश्रुः) तेजस्वी, चमकीले केश मूंछ दाढ़ी वाला (शुचि-दन्) शुद्ध स्वच्छ दांतों से सुशोभित (ऋभुः) सत्य ज्ञान से चमकने वाला, (अनिभृष्ट-तविषिः) शत्रु द्वारा अपीड़ित बलवान् सैन्य का स्वामी हो।

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम्॥ ८॥

भा०—(शुचिः स्वधितिः अत्रिवत् रीयते) जिस प्रकार काष्ठों को खा जाने वाले अग्नि के लिये शुद्ध चमकती धार वाली कुल्हाड़ी चलती है, उसी प्रकार (यस्मै) जिसको (अत्रिवत्) भोक्ता के तुल्य स्वामी

वा त्रिविध एषणाओं से रहित त्यागी के समान निःस्वार्थ जान कर उसके लिये (शुचिः) शुद्ध चित्त वाली (स्वधितिः) स्वयं अपने को वा 'स्व' अर्थात् धन समृद्धि धारण करने वाली प्रजा शुद्ध पवित्र, सती साध्वी पत्नी के समान अनन्यभाव से (प्र रीयते) भली प्रकार से प्राप्त होती है और (यत्) जिसकी (माता) सबकी उत्पादक माता पृथिवी (सु-सूषीः) उत्तम जननी, माता के तुल्य उत्तम रीति से ऐश्वर्य देने और अभिषेक करने वाली होकर (भगं क्राणा) सब प्रकार के ऐश्वर्य उत्पन्न करती हुई (आनशे) जिसे प्राप्त होती है वही उत्तम नायक है।

आ यस्ते॑ सर्पिरासु॒तेऽग्ने॒ शमस्ति॒ धाय॑से ।
ऐषु॑ द्यु॒म्नमु॒त श्रव॒ आ चि॒त्तं मर्त्ये॑षु धाः ॥ ९ ॥

भा०—(सर्पिरासुते) जिस प्रकार स्तुतिशील घी को अन्नवत् खाने वाला अग्नि है उसी प्रकार राजा वा नायक भी सर्पणशील अग्रयायी, अनुयायी जनों द्वारा 'आसुति' अर्थात् सब ओर से ऐश्वर्य और अभिषेक प्राप्त करने वाला वा घृतादि युक्त पदार्थों को भोजन करने वाला है। वैसे हे (सर्पिः-आसुते) जनों से अभिषिक्त! श्रेष्ठ अन्न के भोक्तः! हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! नायक! (यः) जो (ते) तेरे (धायसे) सब राष्ट्र को पोषण करने के लिये (शम् अस्ति) शान्तिदायक है तू उसको पालन कर। (एषु द्युम्नम् आ धाः) इन राष्ट्र के वासी जनों में धनैश्वर्य प्रदान कर। (उत एषु मर्त्येषु) इन मनुष्यों में (श्रवः आ धाः) अन्न, श्रवण योग्य ज्ञान धारण करा और (चित्तं आ धाः) ज्ञानयुक्त सहृदय चित्त धारण करा।

इति॑ चि॒न्मन्युम॒ध्रिज॒स्त्वादा॑त॒मा प॒शुं द॑दे ।
आद॑ग्ने॒ अपृ॑ण॒तोऽत्रिः॑ सासह्या॒द्दस्यू॑नि॒षः सा॑सह्या॒न्नॄन् १०।२५

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! जो पुरुष (अध्रिजः) अधृष्य, असह्य होकर वा इन्द्रियों और राष्ट्र के उत्तम धारकों में प्रसिद्ध

होकर प्रदान किये (मन्युम्) ज्ञान और उग्र बल को (पशुम्) दर्शक प्रकाश वा दम्य पशु के तुल्य धारण करता है वह (अत्रिः) तीनों ऐषणा और तीनों दुःखों से रहित होकर (अपृणतः) पालन वा प्रसन्न न करने वाले, अपालक (दस्यून्) विनाशकारी बाह्य और भीतरी शत्रुओं को भी (सासह्यात्) वश कर लेता है और वही (इषः) अपनी इच्छाओं और कामनावान् प्रजाओं को भी (नॄन्) नायक मनुष्यों के तुल्य ही (सासह्यात्) वश करता है, उनपर विजय पा लेता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[८]

इष आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ४, ७ निचृज्जगती । ६ विराड्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

त्वाम॑ग्न ऋ॒ताय॑वः॒ समी॑धिरे प्र॒त्नं प्र॒त्नास॑ ऊ॒तये॑ सहस्कृत ।
पु॒रु॒श्च॒न्द्रं य॑ज॒तं वि॒श्वधा॑यसं॒ दमू॑नसं गृ॒हप॑तिं॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतायवः अग्निं समिन्धते) तेज के वा अन्न और ऐश्वर्य के इच्छुक यज्ञाग्नि वा विद्युत्-अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे (सहस्कृत) बाधाओं को पराजित करने वाले, बल का सम्पादन करने हारे विद्वन्! (प्रत्नासः) अति पुराने, सनातन से प्राप्त (ऋतायवः) सत्य ज्ञान से युक्त वेद, वेदज्ञ विद्वान् जन (ऊतये) ज्ञान और रक्षा के लिये (पुरु-चन्द्रं) बहुतों को चन्द्रवत् आह्लादक, बहुत सुवर्ण आदि के स्वामी, (यजतं) पूज्य, दानी (विश्व-धायसं) समस्त विश्व के पालक, सबके पोषक, (दमूनसम्) जितेन्द्रिय, मन को वश करने वाले, (गृहपतिम्) गृह के पालक, (वरेण्यम्) सबसे वरण करने योग्य, वा उत्तम मार्ग में ले जाने वाले (त्वाम्) तुझ को (सम् ईधिरे) अच्छी प्रकार प्रकाशित करें।

त्वाम॑ग्ने॒ अति॑थिं पू॒र्व्यं विशः॑ शो॒चिष्के॑शं गृ॒हप॑तिं॒ नि षे॑दिरे ।
बृ॒हत्के॑तुं पु॒रुरू॑पं धन॒स्पृतं॑ सु॒शर्मा॑णं॒ स्वव॑सं जर॒द्विष॑म् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि तेजोमय होने से वा गीला न होने से अग्नि है, व्यापक होने से 'अतिथि' है। किरणों वा ज्वालाओं को केशों के समान धारण करने से 'शोचिष्केश' है, दीप वा चूल्हे की आग के रूप में गृह का पालक होने से 'गृहपति' है। बहुत प्रकाश होने वा बड़ी धूमध्वजा होने से 'बृहत्केतु' है, नाना रुचिकर रूप होने से 'पुरुरूप', ऐश्वर्य धन देने से 'धनस्पृत्', अच्छी प्रकार रोग जन्तुओं का नाशक होने से 'सुशर्मा' और देहों और जन्तुओं की आग्नेयास्त्रादि से रक्षा करने से 'सु-अवस्', सर्पादि के विष का नाशक होने से 'जरद्-विष' है और लोग उसी को स्थापित करते और आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! (विशः) लोग जो तेरे अधीन तेरे आश्रय में प्रवेश करते हैं वे (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य सर्वार्पण से सत्कार योग्य, (पूर्व्यम्) पूर्वाचार्यों से उपदिष्ट वा सबसे प्रथम अग्रसर, सबसे पूर्व भोजनादि सत्कार पाने योग्य, (शोचिः-केशं) तेजों किरणों को केशवत् धारण करने वाले वा गुह्यांगों में केश-लोमों को वीर्यस्खलनादि द्वारा अपवित्र न करने वाले, निष्ठ ब्रह्मचारी, (गृह-पतिम्) गृह के स्वामी, (बृहत्-केतुम्) बड़े ज्ञान वा ध्वजा वाले (पुरु-रूपं) जयों के बीच उत्तम रूपवान् (धन-स्पृहं) ऐश्वर्य की कामना करने वाले, (सु-शर्माणं) उत्तम सुख, गृह से युक्त (सु-अवसं) उत्तम रक्षक वा ज्ञानी (जरद्विषं) शत्रु रूप विष को शमन करने वाले, वा व्यापक विस्तृत ज्ञान में उपदेश करने वाले (त्वाम्) तुझको प्राप्त करके (नि षेदिरे) उत्तम आसन पर स्थापित करें और स्वयं भी नियम से व्यवस्थित हों। (२) सूर्य, विद्युत् मेघ द्वारा जल गिराने से 'जरद्विष' है वा वह भी विषापहारी हैं।

त्वाम॑ग्ने॒ मानु॑षीरीळते॒ विशो॑ होत्रा॒विदं॒ विवि॑चिं रत्न॒धात॑मम् ।
गुहा॒ सन्तं॑ सुभग वि॒श्वद॑र्शतं तुवि॒ष्व॒णसं॑ सु॒यजं॑ घृत॒श्रिय॑म् ॥३॥

भा०—यह अग्नि, आहुति लेने से होत्रावित्! पदार्थों को पृथक् २ विश्लिष्ट करने से 'विविचि' है, रत्नों का धारक, रम्य प्रकाश का पोषक होने से 'रत्नधा', घृत का पाक या सेवन करने से 'घृतश्री' है। उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रतापवन्! विद्वन्! राजन्! (मानुषीः विशः) मनुष्य प्रजाएं (होत्रा विदं) उत्तम वेद वाणी जो गुरु द्वारा शिष्य के प्रति देने और शिष्य द्वारा गुरु से लेने योग्य होने से 'होत्रा' है उसको जानने वाले (विविचिम्) सत्-असत्, अर्थ-अनर्थ, धर्माधर्म का विवेक करने वाले, (रत्न-धातमम्) रमणीय गुणों और उत्तम रत्नों और राष्ट्र में, गृह में, नररत्न, पुत्ररत्न, स्त्री-रत्न आदि को उत्तम रीति से धारण वा पोषण करने हारे, (गुहा सन्तं) बुद्धि, वाणी में सुरक्षित, गृह में विद्यमान, (विश्व-दर्शतं) सबको देखनेवाले वा सब में दर्शनीय (तुवि-स्वनसं) बहुत अधिक उपदेशमय शब्दों को जानने वाले, (सु-यजं) उत्तम दानशील, सत्संगयोग्य, (घृत-श्रियम्) दीप्तिमय कान्ति शोभा से युक्त (त्वाम्) तुझ को ही हे (सुभग) ऐश्वर्य वाले! (ईडते) चाहते हैं।

त्वाम॑ग्ने धर्णसिं विश्वधा व॒यं गी॒र्भिर्गृ॒णन्तो॒ नम॒सोप॑ सेदिम।
स नो॑ जुषस्व समिधा॒नो अ॑ङ्गिरो दे॒वो मर्त॑स्य य॒शसा॑ सु॒दीतिभिः॑॥४॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! (वयं) हम लोग (धर्णसिं) अन्य सबको धारण करने वाले, (त्वाम्) तुझ को (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नमसा) नमस्कार आदर वचन से (विश्व-धा) सब प्रकार से (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (अंगिरः) अंगों में रस वा बलवत् रोगों के समान पापों और दुष्टों को भस्म करनेहारे (सः) वह तू (देवः) प्रकाशमान, तेजस्वी, (मर्तस्य यशसा) मनुष्यों के उचित यश, अन्न और (सुदीतिभिः) उत्तम कान्तियों से (सम्-इधानः) खूब प्रदीप्त होकर अग्नि के समान (नः जुषस्व) हमें प्रेम कर।

त्वम॑ग्ने पुरुरूपो॑ विशेवि॑शे वयो॑ दधासि प्रत्नथा॑ पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सह॑सा वि रा॑जसि त्विषिः सा ते॑ तित्विषाणस्य नाधृषे॑५

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे तेजस्वी विद्वन् ! राजन् ! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों में प्रशंसित! (त्वम्) तू (पुरु-रूपः) बहुतों के बीच रुचि-कर एवं रूपवान् दर्शनीय होकर (विशे-विशे) प्रत्येक प्रजा के हितार्थ उनको (वयः) दीर्घ जीवन और अन्न, बल आदि (दधासि) धारण कराता है । उनको (पुरूणि अन्ना) बहुत अन्न, खाद्य पदार्थ भी प्रदान करता है और जिस (सहसा) बल से तू (वि राजसि) सूर्यवत् प्रकाशित होता है, सो वह (तित्विषाणस्य) निरन्तर चमकने वाले (ते) तेरी (त्विषिः) तीक्ष्ण कान्ति (न अधृषे) कभी पराजित होने के लिये नहीं है ।

त्वाम॑ग्ने समिधानं य॑विष्ठ्य देवा दूतं च॑क्रिरे हव्यवाह॑नम् ।
उरुज्रय॑सं घृतयो॑निमाहु॑तं त्वेषं चक्षु॑र्दधिरे चोदयन्म॑ति ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! हे (यविष्ठ्य) अति बलवन् ! (देवाः) विद्वान् लोग (सम्-इधानं) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले, (हव्य-वाहनं) ग्राह्य गुणों के धारण करने वाले (त्वां) तुझ को (दूतं) दूत के समान अपना प्रमुख (चक्रिरे) बनाते हैं। और (उरुज्रयसं) अति वेगवान्, बलवान् (घृतयोनिम्) तेजस्वी पदपर स्थित, (त्वेषं) कान्तिमान् , (आहुतं) आदर पूर्वक स्वीकृत, (त्वाम्) तुझ को ही (चोदयन्-मति) बुद्धि और ज्ञान का प्रेरक (चक्षुः) आंख के समान यथार्थ ज्ञान का देने वाला, जान (दधिरे) धारण करते हैं, तुझे स्थापित करते हैं । (२) अग्नि घृत से प्रज्वलित होने से 'घृतयोनि' है और विद्युत् जलाश्रित वा जलों को मिश्रण करने से घृतयोनि है ।

त्वाम॑ग्ने प्र॒दिव॒ आहु॑तं घृ॒तैः सु॑म्ना॒यवः॑ सु॒षमि॒धा समी॑धिरे ।
स वा॑वृधा॒न ओष॑धीभिरु॒क्षि॒तो॒३॑ऽभि ज्रयां॑सि॒ पार्थि॑वा॒ वि ति॑ष्ठसे
॥ ७ ॥ २६ ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृतैः आहुतं सु-समिधा) घृतों से आहुति प्राप्त अग्नि को उत्तम समिधा से प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! (प्र-दिवः) उत्तम ज्ञान प्रकाश, और व्यवहार के लिये (घृतैः आ-हुतम्) स्नेहों से सिक्त, (त्वाम्) तुझ को (सुम्नायवः) सुख चाहने वाले लोग (सु-समिधा) उत्तम दीप्ति से (समीधिवरे) खूब प्रकाशित करें । (सः) वह तू (ओषधीभिः) उत्तम यव, अन्न, सोम, सुगन्धयुक्त रोगनाशक ओषधियों से (उक्षितः) पालित पोषित होकर काष्ठों, चरुओं से बढ़े अग्नि के तुल्य (वावृधानः) बराबर बढ़ता हुआ, (पार्थिवा) पृथिवी के स्वामियों के योग्य (ज्रयांसि) वेग युक्त, बलशाली कर्मों को (वि तिष्ठसे) विविध प्रकार से कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

* इति तृतीयोऽष्टकः समाप्तः *

इति श्रीप्रतिष्ठितविद्यालंकार–मीमांसातीर्थ–श्री पं० जयदेवशर्मणा कृते ऋग्वेदालोकभाष्ये तृतीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽष्टकः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः

ओ३म् । त्वाम॑ग्ने ह॒विष्म॑न्तो दे॒वं मर्ता॑स ईळते ।
मन्ये॑ त्वा जा॒तवे॑दसं॒ स ह॒व्या व॑क्ष्यानु॒षक् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (हविष्मन्तः) उत्तम, अन्न धन, ज्ञान आदि दान देने योग्य पदार्थों के स्वामी (मर्त्तासः) लोग भी (त्वां देवं) तुझ सर्वप्रकाशक, सर्वदाता की (ईडते) स्तुति करते और तुझे चाहते हैं । (जातवेदसं) उत्तम ज्ञान, धन के स्वामी, और उत्पन्न चराचर के ज्ञाता, वा सब से विदित (त्वा) तुझ को (मन्ये) मैं भी जानूं और आदरपूर्वक मान करूं । (सः) वह तू (हव्या) लेने और देने योग्य अन्नों, धनों को (आनुषक् वक्षि) अपने अनुकूल करके, निन्तर धारण कर और हमें वे पदार्थ निरन्तर (वक्षि) प्राप्त करा और ज्ञानमय ग्राह्य वचनों का उपदेश कर ।

अ॒ग्निर्होता॒ दास्व॑त॒ः क्षय॑स्य वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
सं य॒ज्ञास॒श्चर॑न्ति॒ यं सं वाजा॑सः श्रव॒स्यव॑ः ॥ २ ॥

भा०—(यं) जिसको (यज्ञासः) समस्त उपासक और सत्संगी पुरुष (सं चरन्ति) प्राप्त होते हैं और (यं) जिसको (श्रवस्यवः) अन्न, ज्ञान और यश की कामना करने वाले (वाजासः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् और युद्धकुशल, वेगवान् अश्व सैन्यादि (सं चरन्ति) अच्छी प्रकार प्राप्त होकर उसके साथ विचरते हैं वह (अग्निः) अग्रणी नायक पुरुष (वृक्त-बर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र प्रजाजन को नाना प्रकार से विभक्त करने वाले

(दास्वतः) नाना ऐश्वर्यों के देने वाले वा नाना दासादि भृत्यों से सम्पन्न (क्षयस्य) निवास करने योग्य, सर्वाश्रय, शरण, गृह, वैभव आदि का (होता) देने वाला हो ।

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्त्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (अरणी) दो अरणी नाम की लकड़ियां (सु-अध्वरं नवं अग्निं जनिष्ट) उत्तम यज्ञयोग्य स्तुत्य अग्नि को उत्पन्न करती हैं (उत) और जिस प्रकार (अरणी) परस्पर सुसंगत माता पिता (नवं शिशुं जनिष्ट) नये बालक को उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार (मानुषीणां) मननशील मनुष्य (विशां) प्रजाओं के (धर्त्तारं) धारण करने वाले, (नवं) स्तुत्य (यं) जिस (अग्निं) अग्रणी (सु-अध्वरम्) उत्तम रीति से प्रजा को नाश न होने देने वाले, अहिंसक पालक राजा को भी (अरणी) परस्पर संगत राज-परिषद् और प्रजा-परिषद् मिलकर (जनिष्ट स्म) उत्पन्न करे, प्रकट करे ।

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

भा०—(ह्वार्याणाम् पुत्रः न) कुटिलगामी सर्पों का बच्चा जिस प्रकार (दुर्गृभीयते) बड़ी कठिनता से पकड़ में आता है, और जिस प्रकार अग्नि अति दाहक स्वभाव होने से कठिनता से पकड़ा जाता है और जिस प्रकार अग्नि (वना दग्धा) वनों को भस्म करता है, और जिस प्रकार (यवसे पशुः न) घास चारा खाने के लिये पशु उत्सुक होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, अग्नि तुल्य तेजस्विन् ! नायक ! तू भी (ह्वार्याणाम्) कुटिल, वक्र गति से जाने वाले सैन्यों का (पुत्रः) बहुत बड़ा पालक होकर (दुर्-गृभीयसे) शत्रुओं के हाथ बड़ी कठिनाई से आ । वे तुझे सहज ही वश नहीं कर सकें, (यः) जो तू (वना इव) जंगलों को अग्नि के तुल्य ही

(पुरु) बहुत से शत्रुओं को (दग्धा) भस्मसात् करने वाला हो, और (यवसे) शत्रुओं को नाश करने के निमित्त तू (पशुः) उत्तम द्रष्टा, विवेकी होकर रह वा शत्रुओं को भी तृणों को पशु के तुल्य विवेकी होकर उपभोग कर ।

अध॑ स्म॒ यस्या॒र्चय॑: स॒म्यक् सं॒यन्ति॑ धू॒मिन॑: ॥
यदी॒मह॑ त्रि॒तो दि॒व्युप॒ ध्माते॑व॒ धम॑ति॒ शिशी॑ते ध्मा॒तरी॑ यथा ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (धूमिनः अर्चयः सम्यक् सं यन्ति) धूम वाले अग्नि की ज्वालाएं अच्छी प्रकार एक साथ ही उठती हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस (धूमिनः) शत्रु को कंपा देने वाले सैन्य बल के स्वामी के (अर्चयः) ज्वालावत् तीक्ष्ण एवं आदर योग्य सैन्य जन (सम्यक्) अच्छी प्रकार व्यवस्थित होकर (सं यन्ति) एक साथ गति करते हैं (यत्) और (यथा) जिस प्रकार (ध्मातरि सति) धौंकने वाले के रहते हुए स्वयं अग्नि (शिशीते) तीक्ष्ण होता है और स्वयं (ध्माता इव) धौंकने वाला या उत्तेजक होकर (धमति) और अधिक भड़कता है उसी प्रकार (यत्) जो पुरुष (ईम्) सब प्रकार से (त्रितः) सब दुःखों से और सब विद्याओं के पार पहुंचा हुआ, सर्वोपरि विराजमान होकर (दिवि) आकाश में सूर्यवत् विद्या और विजयादि के कामना के निमित्त (ध्माता इव) शब्दसंयोगकारी गुरुवत् अर्थात् आज्ञापक वा उत्तेजक वा प्रेरक होकर (धमति) सबको उत्तेजित करे, जो (ध्मातरि) अन्य के उत्तेजक होने पर स्वयं भी (शिशीते) तीक्ष्ण, असह्य होता है वही उत्तम 'अग्नि' अर्थात् नायक होने योग्य है ।

तवा॒हम॑ग्न ऊ॒तिभि॑र्मि॒त्रस्य॑ च॒ प्रश॑स्तिभिः ।
द्वे॒षो॒युतो॒ न दु॑रि॒ता तु॒र्याम॒ मर्त्या॑नाम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! राजन् ! (अहम्) मैं (तव) तेरे (ऊतिभिः) रक्षा और ज्ञानयुक्त उपायों और (मित्र-

स्व:) स्नेहवान् और मृत्यु से बचाने वाले तेरे (प्र-शस्तिभिः) उत्तम शासनों से युक्त होऊं। और हम सब (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (द्वेषः-युतः) द्वेषयुक्त शत्रुओं के समान (दुरिता) दुर्गम मार्गों और दुष्टाचरणों, पापादि कर्मों को तेरे (ऊतिभिः) रक्षा साधनों और उत्तम शासनों से ही (तुर्याम) पार करें।

तं नो॑ अग्ने अ॒भी नरो॑ र॒यिं स॑हस्व॒ आ भ॑र।
स क्षे॑पय॒त्स पो॑पय॒द्भुव॒द्वाज॑स्य सा॒तय॑ उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ७।१

भा०—हे (सहस्वः) वलशालिन् (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! (सः) वह तू (नः नरः) हमारा नायक होकर (नः) हमें (तम् रयिम्) वह ऐश्वर्य (अभि आ भर) प्राप्त करा (सः) वह तू (क्षेपयत्) हमें सन्मार्ग से चला और शत्रुओं को उखाड़। (सः पोपयत्) हमें परिपुष्ट कर (पृत्सु) संग्रामों में (नः) हमारे (वाजस्य सातये) अन्नादि ऐश्वर्यादि, वल की प्राप्ति और (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (एधि) हो। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०]

गय आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृदनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। २, ३ भुरिगुष्णिक्। ४ स्वराड्बृहती। ७ निचृत् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्न॒ ओजि॑ष्ठ॒मा भ॑र द्यु॒म्नम॒स्मभ्य॑मध्रिगो।
प्र नो॑ रा॒या परी॑णसा॒ रत्सि॒ वाजा॑य॒ पन्था॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने, अग्नि के तुल्य ज्ञानमार्ग के दिखाने वाले विद्वन् ! हे (अध्रिगो) न धारण करने योग्य, असह्य वल पराक्रम वाले ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ओजिष्ठम्) उत्तम वल पराक्रम युक्त (द्युम्नम्) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। और (परीणसा) वहुत अधिक (राया) ऐश्वर्य के साथ २ ((नः) हमारे (वाजाय) वल

और ज्ञान की वृद्धि के उचित (पन्थाम्) मार्ग को भी (प्र रत्सि) अच्छी प्रकार बना।

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना।
त्वे असुर्य१मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः॥ २॥

भा०—हे (अद्भुत) अभूत पूर्व, अपूर्व बलशालिन्! हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! तू (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से और (दक्षस्य) चतुर पुरुष के (मंहना) दान और महान् सामर्थ्य से बड़ा हो। तू (यज्ञियः) आदर सत्कार के योग्य (मित्रः नः) सर्वस्नेही सखा के समान (असुर्यं) असुरों के नाशक बल का (क्राणा) सम्पादन करता हुआ पुरुष (त्वे) तेरे आश्रय पर (आ अरुहत्) आगे बढ़े।

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! हे विद्वन्! हे प्रभो! (ये) जो (सूरयः) विद्वान् (नरः) नेता लोग (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुति-वचनों और ज्ञानों से अपने (मघानि) उत्तम धनों को (प्र आनशुः) प्राप्त करते हैं उन (नः) हमारे (एषां) उन लोगों के (गयं पुष्टिं च) प्राण और पोषक और पुत्र, गृह आदि और पोषक, पशु आदि समृद्धि को (वर्धय) बढ़ा।

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना॥ ४

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक! (चन्द्र) आह्लादक (ते) तुझे (अश्वराधसः) अश्वों को साधने वाले, उत्तम वीर पुरुष और (गिरः) उत्तम स्तुतियां और उत्तम स्तुतिकर्त्ता जन भी (शुम्भन्ति) सुशोभित करें और (शुष्मिणः नरः) वे बलवान् नायक लोग (शुष्मेभिः) अपने बलों से युक्त होकर (दिवः चित् ते) सूर्य के समान तेजस्वी तुझ

को सुशोभित करें (येषां) जिनकी (बृहत् सुकीर्त्तिः) बड़ी उत्तम कीर्त्ति (त्मना बोधति) आप से आप अपना बोध कराती है।

तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ भ्राज॑न्तो यन्ति धृष्णु॒या।
परि॑ज्मानो॒ न वि॒द्युतः॑ स्वा॒नो र॒थो न वा॑ज॒युः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! (तव) तेरे (त्ये) वे (धृष्णुया) शत्रुओं का पराजय करने वाले (भ्राजन्तः) सूर्य के समान चमकने वाले वीर पुरुष (अर्चयः) तेरी पूजा करने वाले या स्वयं आदर सत्कार योग्य होकर (यन्ति) आगे बढ़ें। वे (परि-ज्मानः) चारों ओर की भूमि के स्वामी होकर (वि-द्युतः) विद्युतों के समान तेजस्वी हों और (रथः नः) वेगवान् रथ के समान (स्वानः) शब्द करते हुए और (वाजयुः) संग्राम की कामना करने हारे हों।

नू नो॑ अग्न ऊ॒तये॑ स॒बाध॑सश्च रा॒तये॑।
अ॒स्माका॑सश्च सू॒रयो॒ विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (सबाधसः) शत्रुपीड़क उपायों में कुशल, (अस्माकासः) हमारे वीर लोग (नः ऊतये) हमारी रक्षा (रातये च) और ऐश्वर्य दान के लिये हों। और (सूरयः) विद्वान् लोग भी (विश्वाः आशाः) सब दिशाओं और सब कामनाओं को (तरीषणि) पार करने में समर्थ हों।

त्वं नो॑ अग्ने अङ्गिरः स्तु॒तः स्तवा॑न॒ आ भ॑र। होत॑र्विभ्वा॒सहं॑ र॒यिं स्तो॒तृभ्यः॒ स्तव॑से च न उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥ ७ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! हे (अङ्गिरः) प्राणप्रिय ! तेजस्विन् ! (त्वं) तू (स्तुतः) प्रशंसित और शिक्षित होकर और (स्तवानः) अन्यों को विद्या आदि का उपदेश करता हुआ (नः) हमें (विभ्व-सहं) बड़ों २ को पराजित करने वाले (रयिम्)

ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। और (नः स्तोतृभ्यः) हमारे बीच में स्तुति-कर्त्ता विद्वान् उपदेष्टाओं को भी (स्तवसे) उत्तम ज्ञानोपदेश करने के निमित्त (रयिम् आ भर) धन प्रदान कर और (पृत्सु) संग्रामों वा प्रजाओं के बीच में (च) भी (नः वृधे) हमारी बढ़ती के लिये (एधि) हो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[११]

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृज्जगती । ४, ६ विराड्जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे । घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः सुदक्षः) आग अच्छी जलाने में समर्थ, (जनस्य गोपाः) मनुष्य का रक्षक, (सु-विताय) सुख से मार्ग गमन में सहायक (घृत-प्रतीकः) घृत से उज्ज्वल या तेज से प्रतीत होने वाला, (दिवि-स्पृशा बृहता द्युमत् शुचिः) प्रकाशप्रद बड़े तेज से चमकने वाला, पवित्रकारक होकर (वि भाति) चमकता है उसी प्रकार (सु-दक्षः) उत्तम क्रियाकुशल (अग्निः) तेजस्वी, अग्रणी पुरुष भी (जनस्य गोपाः) सर्व साधारण प्रजा जन का पालक, रक्षक (जागृविः) जागरणशील, सावधान (अजनिष्ट) हो। वह (नव्यसे) स्तुत्य पद प्राप्त करने और (सुविताय) सुख से मार्ग पर गमन करने के लिये सहायक हो। वह (घृत-प्रतीकः) तेज से युक्त मुख वाला (दिवि-स्पृशा) ज्ञानप्रकाश के आश्रय पर सूक्ष्मतत्व तक पहुंचने वाले (बृहता) बड़े भारी सामर्थ्य से, गगनस्पर्शी तेज से सूर्य के समान (शुचिः) स्वयं शुद्ध पवित्र चित्त होकर (भरतेभ्यः) अपने पालक पोषक मनुष्यों के हित के लिये (वि भाति) विविध प्रकार से विराजे।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः॥२॥

भा०—(नरः) विद्वान् लोग (त्रि-सधस्थे) एक साथ बैठने के तीनों स्थानों, सभा भवनों में (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर के मिलने, सत्संग करने, सम्मति देने आदि व्यवस्था के (केतुम्) जानने और जनाने वाले (पुरः-हितम्) सब से आगे प्रधान पद पर स्थित (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानयुक्त, (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ और (इन्द्रेण) सूर्य, विद्युत् के तुल्य तेजस्वी, ऐश्वर्य-वान् राजा और (देवैः) अन्य विद्वान् पुरुषों के साथ (स-रथम्) समान रथ में जाने वाले सर्वमान्य पुरुष को (सम्-ईधिरे) एक साथ मिल-कर या अग्नि के तुल्य प्रदीप्त करें उसको उचित साधनों और (स्तुतियों द्वारा उत्साहित करें । (सः) वह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म कुशल, प्रज्ञा-वान् पुरुष (होता) अन्यों को वेतनादि देने और स्वयं पदादि के स्वीकार करने वाला होकर (बर्हिषि) वृद्धियुक्त प्रधान आसन या प्रजा जन के ऊपर (यजथाय) राष्ट्र में संगति या व्यवस्था करने के लिये (नि सी-दत्) अध्यक्ष रूप से विराजे ।

असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३॥

भा०—(मात्रोः असं-मृष्टः) जिस प्रकार अग्नि अपने उत्पादक काष्ठों से विना स्पर्श किये ही उत्पन्न होता है वा बालक जिस प्रकार अपने माता पिता से प्रथम (असं-मृष्टः) अशुद्ध अर्थात् कान्तिरहित, वा असंस्कृत, संस्कार-रहित ही उत्पन्न होता है और बाद में मन्त्र, यज्ञादि द्वारा संस्कार किया जाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, विद्वान् पुरुष आप भी (असं-मृष्टः) अशुद्ध, उपनयन आदि ब्राह्म संस्कारों से रहित ही (जायसे) उत्पन्न होते हैं और फिर (विवस्वतः) सूर्यवत् प्रकाशक, विविध वसु, ब्रह्मचारियों के स्वामी आचार्य से आप विद्या पढ़ कर (शुचिः) पवित्र,

आचारवान् (मन्द्रः) प्रशंसित एवं सुशिक्षित, (जायसे) उत्पन्न होते हो और (उत् अति-ष्ठाः) उत्तम पद पर स्थित होते हो। हे (आहुत) आदर पूर्वक सब ओर से आचार्य द्वारा गृहीत एवं आदृत ! जिस प्रकार यज्ञकर्त्ता लोग अग्नि को घी से बढ़ाते हैं उसी प्रकार विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (घृतेन) आसेचन वा प्रदान योग्य ज्ञानैश्वर्य से (अवर्धयन्) बढ़ावें और (धूमः केतुः दिवि श्रितः) जिस प्रकार अग्नि का धूम ध्वजा-वत् आकाश में रहता है उसी प्रकार (ते) तेरा (धूमः) पापाचारों और शत्रुओं को धुन देने, कंपा देने वाला (केतुः) ज्ञान (दिवि श्रितः) प्रकाश युक्त परमेश्वर या मन में स्थित होकर (अभवत्) रहे ।

अ॒ग्निर्नो॑ य॒ज्ञमुप॑ वेतु साधु॒याग्निं नरो॒ वि भ॑रन्ते गृ॒हेगृ॑हे ।
अ॒ग्निर्दू॒तो अ॑भवद्धव्य॒वाह॑नो॒ऽग्निं वृ॑णा॒ना वृ॑णते क॒विक्र॑तुम् ॥४॥

भा०—(साधुया) सब कार्यों को साधने वाले, (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् पुरुष (नः यज्ञम्) हमारे सुसंगत यज्ञ, राष्ट्र-व्यवस्था में, यज्ञ में अग्निवत् ही (उप वेतु) प्राप्त हो। (नरः) उत्तम नायक पुरुष ऐसे (अग्निं) अग्नि को यज्ञाग्निवत् (गृहे गृहे वि भरन्ते) प्रति गृह में रक्खें और उसका पालन पोषण किया करें। (हव्य-वाहनः) ग्राह्य खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला (अग्निः) ज्ञानी पुरुष अग्नि के तुल्य ही (दूतः) शत्रु-संतापक, लोकसेवक, उपदेशक और संदेशहारक (अभवत्) हो। (वृणानाः) वरण करने वाले जन भी (कविक्रतुम्) क्रान्तदर्शी दूरगामी बुद्धि वाले (अग्निम्) ज्ञानी, तेजस्वी नायक पुरुष को ही (वृणते) वरण करें, योग्य को ही नायक चुनें।

तुभ्ये॒दम॑ग्ने॒ मधु॑मत्तमं॒ वच॒स्तुभ्यं॑ मनी॒षा इ॒यम॑स्तु॒ शं हृ॒दे ।
त्वां गिरः॒ सिन्धु॑मिवा॒वनी॑र्म॒हीरा पृ॑णन्ति॒ शव॑सा व॒र्धय॑न्ति च ५

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे विनीत स्वभाव ! हे अग्रणी नायक ! हे प्रभो ! (इदम्) वह (मधुमत्-तमं वचः) मधुरता से युक्त वचन

(तुभ्यम् इत्) तेरे ही लिये है । (इयम् मनीषा) यह बुद्धि या ज्ञान वा मन की प्रेरणा भी (तुभ्यं हृदे शम् अस्तु) तेरे हृदय को शान्तिदायक हो । (महीः अवनीः सिन्धुम् इव) जिस प्रकार बड़ी भूमियां या नदियां अपने जलों से समुद्र को ही पूर्ण करती है । उसी प्रकार (गिरः) वाणियां भी (त्वां आ पृणन्ति) तुझ को पूर्ण बना रही हैं और (शवसा) ज्ञान और बल से (त्वां वर्धयन्ति च) तुझ को ही बढ़ा रही हैं । तेरे ज्ञान और महान् सामर्थ्य को बढ़ाती, प्रकट करती हैं ।

त्वाम॑ग्ने॒ अङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत्त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः॥६॥३

भा०—(वने-वने शिश्रियाणं गुहा-हितम् अंगिरसः अनु अविन्दन्) जिस प्रकार प्रत्येक काष्ठ में विद्यमान अग्नि को भी अग्नि जलाने में कुशल पुरुष अरणियों के बीच छिद्र रूप गुहा में ही उसको अनुकूल साधनों से प्राप्त करते हैं (सः मथ्यमानः जायते तं सहसः पुत्रम् आहुः) वह अग्नि मथा जाकर ही प्राप्त होता है, और उसको बल से उत्पन्न पुत्रवत् ही प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! आत्मन् ! (अंगिरसः) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष वा प्राण विद्या के नेता लोग (वने-वने) प्रत्येक वन अर्थात् सेवने योग्य ऐश्वर्य धनादि वा उत्तम पद पर (शिश्रियाणं) आश्रय लेने वाले (गुहा हितम्) गुप्त, सुरक्षित स्थान में स्थित (त्वाम्) तुझ को (अनु अविन्दन्) तेरे अनुकूल होकर प्राप्त हों । (सः) वह तू (मथ्यमानः) अति स्पर्द्धा द्वारा मथित होकर खूब वाद-विवाद के अनन्तर (जायसे) प्रकट होता है । हे (अङ्गिरः) प्राणवत् प्रिय ! हे अंगों में रस वा बलवत् राष्ट्र में प्रबल पुरुष ! (सहसः पुत्रम्) बल, सैन्य को एक मात्र कष्टों से बचाने वाले (त्वाम्) तुझ को ही विद्वान् लोग (महत् सहः) बड़ा भारी बल (आहुः)बतलाया करते हैं। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१२]

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्राग्नये॑ बृह॒ते य॒ज्ञिया॑य ऋ॒तस्य॒ वृष्णे॒ असु॑राय॒ मन्म॑ ।
घृ॒तं न य॒ज्ञ आ॒स्ये॒३॒॑ सुपू॑तं॒ गिरं॑ भरे वृष॒भाय॑ प्र॒तीची॑म् ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य वृष्णे असुराय यज्ञे सुपूतं घृतं न) जिस प्रकार जल वर्षाने वाले, सबको प्राणप्रद मेघ की वृद्धि के लिये उत्तम रीति से पवित्र घृत यज्ञ में प्रदान करूं उसी प्रकार मैं (बृहते) सबसे बड़े, (यज्ञियाय) यज्ञ, दान, सत्संग देववत् पूजा के योग्य (ऋतस्य) सत्य ज्ञान अन्न वा धन के (वृष्णे) वर्षण करने अर्थात् उदारता से निष्पक्षपात होकर प्रदान करने वाले, (असुराय) सबको जीवनवृत्ति देने वाले और प्राणों में या समीप बसने वाले अन्तेवासियों में विद्यादान करने वाले, (वृषभाय) सर्व-पुरुषोत्तम (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष राजा और आचार्य के (आस्ये) मुख में विद्यमान (प्रतीचीम्) अपने सन्मुख स्थित अन्य पुरुष को प्राप्त होने वाली (गिरं) अपने वश वा आज्ञामय वाणी और (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान को (भरे) ग्रहण करूं और धारण करूं, विद्वानों से पवित्र ज्ञानोपदेश प्राप्त करूं ।

ऋ॒तं चि॑कित्व ऋ॒तमिच्चि॑किद्ध्यृ॒तस्य॒ धारा॒ अनु॑ तृन्धि पू॒र्वीः ।
नाहं या॒तुं सह॑सा॒ न द्व॒येन॑ ऋ॒तं स॑पाम्यरु॒षस्य॒ वृष्णः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! तू (ऋतम्-ऋतम् इत्) सत्य ही सत्य (चिकिद्धि) ज्ञान कर । और (पूर्वीः ऋतस्य धाराः) पूर्व एवं ज्ञान से पूर्ण और पूर्वाचार्यों की उपदिष्ट, सनातन से चली आई सत्य ज्ञान की वेद वाणियों को (अनु तृन्धि) प्रति दिन गुरु-उपदेश के अनुकूल रहकर

विच्छिन्न कर, उनको खोल २ कर उनका रहस्य प्राप्त कर (अहं) मैं (अरुपस्य) रोषरहित सौम्य (वृष्णः) बड़े मेघवत् ज्ञानवर्षक गुरु आचार्य के (ऋतम्) सत्योपदेश को (यातुं) प्राप्त करने को (सहसा) बलपूर्वक (न सपामि) नहीं समझ सकता। और (द्वयेन) दो प्रकार के झूठ सच मिले, दुरंगे, छलमय व्यवहार से ही (नपामि) ज्ञान को प्राप्त कर सकता हूं, प्रत्युत विनयपूर्वक गुरु का अनुवर्त्तन करके ही ज्ञान को प्राप्त करूं।

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः॥ ३॥

भा०—(भुवः नवेदाः ऋतेन कया ऋतयन्) भूमि को प्राप्त न करने वाला, भूमिरहित पुरुष केवल जल से भला किस प्रकार अन्न प्राप्त कर सकता है? इसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! आचार्य! आप (नव्यः) उत्तम २, नये २ ज्ञानों को प्राप्त करने वाले और नये २ शिष्यों के हितकारी होकर भी (भुवः न-वेदः) ज्ञान-बीजों को उत्पन्न करने योग्य शिष्य रूप भूमि को विना प्राप्त किये ही भला (कया) किस उपाय से (उचथस्य) उपदेश करने योग्य वेद के (ऋतेन) सत्य ज्ञान से (ऋतयन्) अन्यों को सत्य ज्ञानयुक्त कर सकते हो। आप (देवः) सब ज्ञानों के देने वाले सूर्य वा राजा के तुल्य तेजस्वी और (ऋतूनां) ऋतुओं के बीच स्थित सूर्यवत् समस्त सत्य ज्ञानों और प्राणों के (ऋतु-पाः) पालक हैं। आप (मे वेद) मुझे प्राप्त कीजिये, मुझ शिष्य को ज्ञानोपदेश प्रदान करने की उचित भूमि जानिये। (अहं) मैं शिष्य (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य और (सनितुः) सुखपूर्वक सेवा करने वाले शिष्य के (पतिं) पालक गुरु को (न वेद) नहीं पाता हूं। (२) मैंने आप को पाया आप मुझे प्राप्त करें। हे राजन्! तू विना भूमि राज्य पाये किस युक्ति से केवल आज्ञावचन या विधान से शासन कर सकता है। तू समस्त (ऋतूनां) राजसभा के

सदस्यों का पति होकर मुझ प्रजा को प्राप्त कर। और मुझे ऐश्वर्य और सेवक जन का पालक नहीं मिलता।

के ते॑ अग्ने रि॒पवे॒ बन्ध॑नासः॒ के पा॒यवः॑ सनिषन्त द्यु॒मन्तः॑।
के धा॒सिम॑ग्ने॒ अनृ॑तस्य पान्ति॒ क आस॑तो॒ वच॑सः सन्ति गो॒पाः॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तीक्ष्ण ! राजन् ! हे आचार्य (ते रिपवे) तेरे शत्रु के (बन्धनासः के) बांधने वाले कौन, वा क्या २ बन्धनोपाय हैं ? और (ते के पायवः) तेरे कौन २ से रक्षाकारी वा क्या २ रक्षोपाय हैं। (के द्युमन्तः सनिषन्त) कौन २ तेजस्वी लोग तेरी सेवा करते हैं। हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तेरे शासन में (के) कौन २ हैं जो (अनृतस्य धासिम् पान्ति) असत्य व्यवहार के धारण करने वाले को बचाते हैं। और (के) कौन ऐसे हैं जो (असतः वचसः गोपाः) असत्य वचन या आज्ञा का असत् पालन करते हैं। विद्वान् पुरुष भी, यें जानें उनके अज्ञान, मोह क्रोधादि में बांधने वाले कौन हैं कौन २ रक्षक गुरुजन उसे विद्या देते, कौन असत्य छल कपट को पालते और असत्-वचन या मिथ्योपदेश देते हैं। इसका विवेक करके मनुष्य सत्योपदेष्टा जनों को प्राप्त करे।

सखा॑यस्ते॒ विषु॑णा अग्न ए॒ते शि॒वासः॒ सन्तो॒ अशि॑वा अभूवन्।
अधू॑र्षत स्व॒यमे॒ते वचो॑भिर्ऋजूय॒ते वृ॑जि॒नानि॑ ब्रु॒वन्तः॑॥५॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् आचार्य ! हे तेजस्विन् राजन् ! (ते एते) तेरे ये (विपुणाः) विविध विद्याओं से सम्पन्न (सखायः) सखा, मित्र जन (शिवासः) सबके कल्याण करने वाले (सन्तः) सज्जन ही होते हैं। और जो (अशिवाः) कल्याणकारक नहीं हैं और (ऋजूयते) सरल धर्माचरण करने वाले पुरुष को (वृजिनानि) वर्जने योग्य पापाचारों वा असत् मार्गों का (ब्रुवन्तः) उपदेश करते रहते हैं (एतं) वे सब (स्वयम्) आप से आप (वचोभिः) अपने ही वचनों से (अधूर्षत) नाश को प्राप्त हों।

यस्ते॑ अग्ने॒ नम॑सा य॒ज्ञमीट्ट॑ ऋ॒तं स पा॑त्यरु॒षस्य॒ वृष्णः॑ ।
तस्य॒ क्षयः॑ पृ॒थुरा सा॒धुरे॑तु प्र॒सस्रा॑णस्य॒ नहु॑षस्य॒ शेषः॑ ॥६॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! राजन्! हे ज्ञानवन्! विद्वन्! (यः) जो (अरुषस्य) तेजस्वी, अहिंसक, रोषरहित, प्रेमयुक्त (वृष्णः) मेघवत् ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले, उदार (ते) तेरे (यज्ञम्) सत्संग को (नमसा ईट्टे) आदर विनय से प्राप्त करता है (सः) वही (ऋतम्) धन और ज्ञान-समृद्धि को (पाति) पाता और रखता है। (तस्य प्र-सस्राणस्य) तेरी परिचर्या करते हुए उसका (क्षयः पृथुः) रहने का भी विशाल गृह और उस (नहुषस्य) पुरुष को (शेषः साधुः) पुत्र आदि भी उत्तम (आ एतु) प्राप्त होता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१३]

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अर्च॑न्तस्त्वा हवाम॒हेऽर्च॑न्त॒: समि॑धीमहि ।
अग्ने॒ अर्च॑न्त ऊ॒तये॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे राजन्! हम लोग (अर्चन्तः अर्चन्तः) निरन्तर तेरी सेवा शुश्रूषा करते हुए, (त्वा हवामहे) तुझे स्वीकार करते हैं, तुझे अपनाते हैं और (त्वा समिधीमहि) यज्ञाग्निवत् तुझे हम अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं। (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये तेरा प्रकाश विस्तार करते, तुझे तेजस्वी बनाते, अपने हृदय में प्रज्वलित करते हैं।

अ॒ग्नेः स्तोमं॑ मनामहे सि॒ध्रम॒द्य दि॑वि॒स्पृशः॑ ।
दे॒वस्य॑ द्रविण॒स्यवः॑ ॥ २ ॥

भा०—हम (द्रविणस्यवः) ऐश्वर्य और ज्ञान की कामना करने वाले होकर (दिवि-स्पृशः) आकाश में व्यापक, सूर्यवत् तेजस्वी और ज्ञान

प्रकाशमय प्रभु से सुखानन्द का अनुभव करने वाले, (देवस्य) ज्ञानप्रद सर्वप्रकाशक, तेजोमय, (अग्नेः) अग्निवत् तेजस्वी, पापशोधक, विद्वान् गुरु और राजा का (सिध्रं) सर्वकार्यसाधक एवं नित्य सिद्ध, (स्तोमं) स्तुति योग्य वचन और ज्ञानोपदेश का (मनामहे) मनन करें ।

अ॒ग्निर्जु॑षत नो॒ गिरो॒ होता॒ यो मानु॑षे॒ष्वा ।
स य॑क्ष॒द्दैव्यं॒ जन॑म् ॥ ३ ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक, और (मानुषेषु) मनुष्यों में (होता) सब ज्ञानों और ऐश्वर्यों का देने वाला है वह (नः गिरः) हमारी वाणियों को (आ जुषत) आदरपूर्वक प्रेम से स्वीकार करे । (सः) वह (दैव्यं जनम्) विद्वानों के हितकारी लोगों का भी (यक्षत्) आदर करता और उनको सुख, ज्ञान, ऐश्वर्यादि दान करे ।

त्वम॑ग्ने स॒प्रथा॑ असि॒ जुष्टो॒ होता॒ वरे॑ण्यः ।
त्वया॑ य॒ज्ञं वि त॑न्वते ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान आगे रहकर सन्मार्ग पर ले चलने हारे नायक विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (सप्रथाः असि) प्रसिद्ध कीर्त्तिमान् और सब प्रकार से बड़ा है । तू (जुष्टः) सब से प्रेमपूर्वक आदर योग्य, (होता) सब सुखों का दाता, और (वरेण्यः) सब से श्रेष्ठ, वरने योग्य, वा श्रेष्ठ मार्ग में ले चलने हारा है । (त्वया) तुझ साक्षी द्वारा विद्वान् लोग (यज्ञं) यज्ञ, परस्पर संगति और दान-प्रतिदान (वितन्वते) नाना प्रकार से करते हैं ।

त्वाम॑ग्ने वाज॒सात॑मं॒ विप्रा॑ वर्ध॑न्ति॒ सुष्टु॑तम् ।
स नो॑ रास्व सु॒वीर्य॑म् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! विद्वन् ! प्रभो (विप्राः) मेधावी विद्वान् लोग (सु-स्तुतम्) उत्तम स्तुति योग्य, (वाज-सातमं)

ज्ञान, ऐश्वर्य बल आदि के दायक, विभाजकों में सर्वोत्तम (त्वाम्) तुझ को ही (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। (सः) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम बल वीर्य (रास्व) प्रदान कर।

अग्ने नेमिर॒राँ इ॑व दे॒वाँस्त्वं प॑रि॒भूर॑सि।
आ राध॑श्चि॒त्रमृ॑ञ्जसे ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—(नेमिः अरान् इव परिभूः) परिधि जिस प्रकार चक्र के अरों से सब ओर से लगी रहती है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (देवान्) विद्या, धन आदि के इच्छुक जनों के (परिभूः असिः) ऊपर सब का रक्षक हो, तू (चित्रम् राधः) अद्भुत ऐश्वर्य (आ ऋञ्जसे) सब प्रकार से प्रदान करता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

(१४)

सुतम्भर आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६ निचृद् गायत्री। २ विराडगायत्री। ३ गायत्री ॥ षड्‌ृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नो अम॑र्त्यम्।
ह॒व्या दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ १ ॥

भा०—जो (नः) हमारे (हव्या) ग्रहण करने और देने योग्य ज्ञान, अन्नादि नाना पदार्थों को (देवेषु) दिव्य पदार्थों और विद्वानों उन पदार्थों की कामना करने वालों में (दधत्) धारण करता, उनको देता है, उस (अमर्त्यम्) असाधारण (अग्नि) अग्रणी, तेजस्वी नायक वा विद्वान् वा शिष्य को (स्तोमेन) गुण-प्रशंसा और उत्तम उपदेश द्वारा (समिधानः) अग्नि के समान उज्ज्वल, प्रदीप्त करता हुआ (बोधय) ज्ञानवान कर। (२) परमेश्वर हम कामनाशील पुरुषों को सब कुछ देता है, उस अमर ज्ञानी को स्तुति से हृदय में जागृत करके अपने को ज्ञानवान् करें।

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २ ॥

भा०—(मानुषे जने) मनुष्यों में (यजिष्ठं) सब से बड़े दानी और पूज्य, सत्संग योग्य, (अमर्त्यं) मरणरहित (देवं) दानशील, तेजस्वी, सर्वप्रकाशक (तं) उसको (अध्वरेषु) हिंसादि से रहित, यज्ञ, प्रजापालनादि कार्यों में (मर्ताः) सर्व साधारण लोग (ईडते) चाहते और स्तुति करते हैं ।

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता ।
अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (शश्वन्तः) उत्तम स्तुतिशील जन (हव्यायवोढवे) हव्य चरु आदि उत्तम पदार्थों को अपने में भस्म कर सर्वत्र फैला देने के लिये (घृत-श्चुता स्रुचा) घृत चुआ देने वाले स्रुचा नाम पात्र से (देवं ईडते) तेजोमय देदीप्यमान अग्नि को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (शश्वन्तः) नित्य जीव गण और विद्वान् लोग (घृत-श्चुता) तेज को देने वाले (स्रुचा) 'स्रुच' गतिशील प्राण के द्वारा (हव्याय वोढवे) खाद्य पदार्थ को अपने भीतर लेने के लिये) जाठराग्नि को, और (घृत-श्चुता स्रुता हव्याय वोढवे) तेज और जल के बरसने वाले सूर्य और मेघ द्वारा अन्न जल के प्राप्त कराने के लिये (तं) उस तेजोमय सूर्य की ही (ईडते) प्रशंसा करते उसको ही मुख्य कारण बतलाते हैं, और ज्ञान प्रकाश के देने वाली वाणी द्वारा 'हव्य' ग्राह्य ज्ञान प्रदान करने के लिये (तं) उस पूज्य आचार्य की अर्चना करें ।

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।
अविन्दद्गा अपः स्वः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) आग जिस प्रकार (जातः) प्रकट होकर (अरोचत) खूब प्रकाशित होता है और (ज्योतिषा तमः घ्नन्) प्रकाश से अन्ध-

कार को नाश करता हुआ, (गाः अपः स्वः अविन्दद्) किरणों, जलों और प्रकाश को प्राप्त करता है इसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी पुरुष (जातः) प्रसिद्ध होकर (दस्यून् घ्नन्) दुष्टों का नाश करता हुआ (अरोचत) सबको प्रिय लगे, (गाः) भूमियों को, (अपः) उत्तम कर्मों और प्रजाओं को और (स्वः) सुख ऐश्वर्यों को भी (अविन्दत्) प्राप्त करे।

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत।
वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! और (ईडेन्यं) पूजनीय, (घृत-पृष्ठं) तेजस्वी वा जलवत् शीतल वचनों वाले, (अग्नि) ज्ञानी पुरुष की (सपर्यत) पूजा करो। वह (वेतु) हमें प्राप्त हो और (मे हवं शृणवत्) मेरे स्तुति वा प्रार्थनावचन को श्रवण करे।

अग्निं घृतेन वावृधु स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—विद्वान लोग, (घृतेन अग्निम्) घी से अग्नि के तुल्य (विश्व-चर्षणिम्) सब के द्रष्टा, सब के प्रकाशक और सब मनुष्यों के स्वामी की (स्तोमेभिः) स्तोत्रों, स्तुति वचनों तथा (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यानाभ्यासों और (वचस्युभिः) उत्तम वचनों से (वावृधुः) बढ़ावें। इति षष्ठो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[१५]

वरुण आङ्गिरस ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ५ स्वराट् पंक्तिः। २, ४ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः॥१॥

भा०—मैं (कवये) क्रान्तदर्शी, दीर्घ ज्ञानवान् (वेद्याय) ज्ञान को धारण करने कराने में उत्तम (पूर्व्याय) पूर्व विद्वानों, हितैषी,

वा उनसे विद्या प्राप्त करने वाले, (यशसे) यशस्वी पुरुष की (गिरं) उपदेश वाणी को (प्र भरे) धारण करूं अथवा उसकी स्तुति वा उसका वर्णन करूं । (घृत-प्रसत्तः) अग्नि जिस प्रकार घृत से तीव्र होकर खूब काष्ठों को भस्म करता है, उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी घृत अर्थात् अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि जलों वा अभिषेचन योग्य जलों से उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होता है, वह (असुरः) शत्रुओं को बलपूर्वक उखाड़ने वाला, (सु-शेवः) उत्तम सेवनीय, उत्तम सुखदाता, (रायः धर्त्ता) ऐश्वर्यों को धारण करने वाला, (वस्वः) अपने अधीन बसे भृत्य, शिष्यादि का (धरुणः) धारक, आश्रय और (अग्निः) अग्रणी और अग्निवत् प्रकाशक और तेजस्वी हो ।

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो लोग (दिवः धरुणे) सूर्य के धारण करने वाले वा ज्ञान के धारक (धर्मन्) धर्मस्वरूप परम पद में (सेदुषः) स्थिर होने वाले विद्वान् पुरुषों को और (जातैः सह अजातान् नॄन्) प्रसिद्ध पुरुषों के साथ अप्रसिद्ध पुरुषों को भी (अभि ननक्षुः) प्राप्त होते हैं वे (यज्ञस्य) परम पूज्य, संगति योग्य, (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट, विविध प्रकार से सब की रक्षा करने वाले, (शाके) शक्तिशाली पद पर स्थित होकर (धरुणे) सब के धारक आश्रय रूप (ऋतं) सत्य न्यायमय तेज को (ऋतेन) सत्यमय वेद से (धारयन्त) धारण करें ।

अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३ ॥

भा०—(अंहः-युवः) पापों को दूर करने वाले वीर पुरुष (पूर्व्याय) अपने पूर्व, मुख्य पद के योग्य पुरुष के हितार्थ (तन्वः) अपने शरीर के (महत्) बड़े भारी (दुः-तरम्) दुस्तर, अजेय (वयः) बल

को (वि तन्वते) विविध उपायों से प्राप्त करें। (सः) वह अग्रणी नायक पुरुष (नव-जातः) नया ही प्रसिद्ध, नवाभिषिक्त होकर (संवतः) समवाय बनाकर आने वाले शत्रुओं को (तुतुर्यात्) विनाश करे। अपने पक्ष के लोग (सिंहं क्रुद्धं न) क्रुद्ध सिंह के तुल्य पराक्रमी पुरुष के (परि स्थुः) चारों ओर खड़े रहें।

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार जठर अग्नि, (माता इव धायसे चक्षसे च जनं जनं भरसे) सब मनुष्यों को पालन पोषण करने और चक्षु द्वारा दिखाने के लिये होता और सब को पालता, पुष्ट करता है, वह (वयः वयः जरसे) प्रत्येक अन्न को जीर्ण करता, (त्मना विपुरूपः जिगाति) स्वयं नाना रूप होकर देह में व्यापता है उसी प्रकार (यत्) जो तू विद्वान् नायक पुरुष (पप्रथानः) अति विस्तृत विख्यात होकर (जनं जनं) प्रत्येक राष्ट्रवासी पुरुष को (माता-इव) माता के तुल्य (भरसे) पालता है, और (धायसे) उनको तू धारण पोषण करने और (चक्षसे च) उनको देखने के लिये भी समर्थ होता है और जो तू (दधानः) प्रजा जन को धारण करता हुआ (वयः वयः) प्रत्येक प्रकार के बल और ज्ञान का (जरसे) उपदेश करता है, और (त्मना) स्वयं (विपु-रूपः) नाना रूप होकर (परि जिगासि) सब को प्राप्त करता और नाना प्रकार से उपदेश करता है।

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ ॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार (शवसः उरुं अन्तं) बल की विशाल अग्नि या विद्युत् की परली सीमा को और (रायः धरुणं) ऐश्वर्य के धारक और (दोघं) सुखदायक रूप का (वाजः पाति) वेग पालन करता है या

विद्युत् अर्थात् तीव्र वेगवान् अग्नि के बल की पराकाष्ठा है, उसी प्रकार हे राजन् (वाजः) संग्राम और ऐश्वर्य ही (ते) तेरे (शवसः) बल पराक्रम और सैन्य बल के (उरुम्) बड़ी (अन्तं) चरम सीमा को (पातु) सुरक्षित रक्खे । इसी प्रकार हे (देव) दानशील राजन् ! (वाजः) बलवान् और ज्ञानी पुरुष ही (ते रायः) तेरे ऐश्वर्य के (दीर्घं धरुणं) सम्पूर्ण सुखदायक आश्रय की रक्षा करे । हे राजन् ! जिस प्रकार (महः राये) बड़े भारी धन को लेने के लिये (तायुः न) चोर गुफा या घर में पैर धरता है उसी प्रकार साहसी और सावधान होकर तू भी (महः राये) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (गुहा) बुद्धि और रक्षार्थ गुहा गर्भ में (पदं दधानः) अपना मार्ग रखता हुआ, और स्वयं (चितयन्) स्वयं सब बातों को जानता हुआ (अत्रिम्) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजा जन को (अस्पः) प्रसन्न, खुश रख । अथवा (अत्रिम्) अपने राष्ट्र को खाने वाले नाशक शत्रु को (अस्पः) पार कर, सावधानी से शत्रुओं के बल को लांघ जा । इति सप्तमो वर्गः ॥

[१६]

पूरुरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् । ५ बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥

भा०—जैसे अग्नि को (भानवे) तेज या प्रकाश के लिये (मर्त्तासः मित्रं न पुरः दधिरे) मनुष्य मित्र तुल्य जान कर अपने आगे रखते हैं । उसी प्रकार (यं) जिस विद्वान् पुरुष को (मर्त्तासः) सब मनुष्य (मित्रं न) मित्र के तुल्य जानकर (प्रशस्तिभिः) उत्तम शासनों, अधिकारों सहित वा उत्तम स्तुति वचनों सहित (पुरः दधिरे) सब के आगे प्रमुख

पद पर स्थापित करते हैं, उस (भानवे) तेजोमय, सर्वप्रकाशक, (अग्नये) सब के अग्रणी पुरुष के (बृहद् वयः) बड़े भारी ज्ञान और बल का (अर्च) आदर कर ।

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

भा०—(अग्निः भगः न वारम् ऋण्वति) सूर्य जिस प्रकार वरणी उत्तम जल वा प्रकाश को देता है उसी प्रकार (सः अग्निः) वह अग्रणी नायक पुरुष (जनानां) मनुष्यों की (बाह्वोः) बाहुओं में (दक्षस्य होता) बल को देने और जनों के बाहुओं के बल को अपने अधीन रखने वाला होकर (आनुषक्) निरन्तर (भगः न भगः) सूर्यवत् ऐश्वर्यवान् होकर (हव्यं वारम्) ग्रहण करने योग्य वरणीय धनैश्वर्यवत् ज्ञान को (वि ऋण्वति) विविध प्रकार से देता, विभक्त करता है ।

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३ ॥

भा०—(तुवि-ष्वणि) बल पूर्वक बहुत ऐश्वर्यों के सेवन करने और बहुतों पर अपनी आज्ञा चलाने वाले (यस्मिन् अर्ये) जिस स्वामी में (विश्वा) सब प्रजाएं (शुष्मम् आदधुः) बल को धारण कराती हैं (अस्य) इस (मघोनः) धन-सम्पन्न (वृद्ध-शोचिषः) अति तेजस्वी पुरुष के (स्तोमं) शासन वा स्तुति कर्म में (सख्ये) मित्र भाव में रहें ।

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥

भा०—जो (एषां) इन वीर पुरुषों के (सु-वीर्यस्य मंहना) उत्तम वीर्य, पराक्रम के महान् सामर्थ्य से ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू भी बलवान् हो । ((यह्वं न रोदसी) महान् सूर्य पर, पृथिवी और आकाश-

वत् राजा और प्रजा वर्ग दोनों (तम् इत्) उस तुझ (यवं) महान् पर ही आश्रय लेकर (अवः परि बभूवतुः) अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर।
ये व॒यं ये च॑ सू॒रय॑ः स्व॒स्ति धाम॑हे॒ सचो॒तैधि॑ पृत्सु नो॑ वृ॒धे ५।८

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (नः एहि) हमें प्राप्त हो! तू (गृणानः) हमें उपदेश करता हुआ स्वयं स्तुति योग्य होकर (नः वार्यम् आभर) हमें उत्तम ज्ञान और धन प्रदान कर। और (ये वयं ये च सूरयः) जो हम और अन्य विद्वान् पुरुष हैं वे सब (सचा) मिल कर (स्वस्ति धामहे) सुख शान्ति, कल्याण को धारण करें और तू (पृत्सु) संग्रामों में (नः वृधे एधि) हमारी वृद्धि के लिये यत्नवान् हो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[१७]

पूरुरात्रेय ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्। २ अनुष्टुप्। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ विराडनुष्टुप्। ५ भुरिग्बृहती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

आ य॒ज्ञैर्दे॑व॒ मर्त्य॑ इ॒त्था तव्यां॑सम॒ूतये॑।
अ॒ग्निं कृ॒ते स्व॑ध्व॒रे पू॒रुरी॑ळीता॒वसे॑॥ १॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! (मर्त्यः) मनुष्य लोग (ऊतये) रक्षा और (अवसे) विद्या ज्ञान के लिये (तव्यांसम् अग्निं) बलवान् और ज्ञानवान्, प्रमुख पुरुष का (सु-अध्वरे कृते) उत्तम हिंसारहित प्रजा पालनादि कर्म के निमित्त (यज्ञैः) उत्तम आदर सत्कारों द्वारा (ईडीत) मान आदर करें और उसे सदा चाहा करें।

अस्य॒ हि स्वय॑शस्तर आ॒सा वि॑धर्म॒न्मन्य॑से।
तं नाकं॑ चि॒त्रशो॑चिषं म॒न्द्रं प॒रो म॑नी॒षया॑॥ २॥

भा०—हे (विधर्मन्) विशेष रूप से धर्म का अनुष्ठान करने हारे! तू (अस्य आसा) इसके आसन, मुख या शासन से (स्वयशस्तरः)

अपने आप अधिक यशस्वी होकर भी (मन्यसे) मान वा मनन कर। अथवा तू (स्व-यश-स्तरः) अपने यशोगान से तरा देने वाले इस प्रभु का तू मान वा मनन कर। तू (तं) उसको (मनीषया) अपनी बुद्धि से (नाकं) दुःखों से रहित, (चित्र-शोचिषं) अद्भुत कान्ति वाले (मन्द्रं) आनन्ददायक रूप को (आसा मनीषया च परः) मुख, वाणी और बुद्धि से भी परे विद्यमान उसको (मन्यसे) जान वा मनन कर।

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (तुजः) पालन करने में समर्थ और (गिरा) उपदेशप्रद वाणी से (अयुक्त) स्वयं युक्त होता और औरों को भी युक्त करता है, (यस्य दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी जिसके (रेतसा) बल से (बृहत् अर्चयः) ज्वाला और किरणों के तुल्य तेजस्वी अर्चनीय अन्य शासक गण भी (शोचन्ति) प्रकाशित होते हैं (अस्य) उसके (अर्चिषा) ज्ञानमय आदरणीय प्रकाश से (असौ उ वै) वह शिष्य भी निश्चय से (आ युक्त) युक्त होता है।

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

भा०—(विचेतसः) विशेष ज्ञानवान् (दस्मस्य) प्रजा के दुखों के नाशक (अस्य) उस राजा वा विद्वान् के (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म, विद्या और पराक्रम से (रथे वसु आ) रथ आदि सैन्य बल और रमणीय वचन के द्वारा सब ओर से धन तथा समीपवासी शिष्य वा प्रजाजन आते हैं। (अध) और अनन्तर (विश्वासु विक्षु) समस्त प्रजाओं में (हव्यः) स्तुत्य और यज्ञ युद्धादिकुशल विद्वान् वा राजा (प्र शस्यते) प्रशंसा प्राप्त करता है, उत्तम पद पाता है।

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

भा०—(नः) हमारे बीच (सूरयः) विद्वान् और तेजस्वी लोग (आसा) मुख द्वारा उपदेश करके और (आसा) उपवेशन तथा स्थिति प्राप्त करके (वार्यम्) उत्तम धन और ज्ञान को (सचन्त) प्राप्त करते हैं। हे विद्वन्! राजन्! तू (ऊर्जः) बल पराक्रम और बल वीर्य को (न-पात्) न गिरने देकर, नष्ट न होने देकर उसको (अभीष्टये) अपने इष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये (पाहि) उसकी रक्षा कर। (स्वस्तये) सुख, कल्याण की प्राप्ति के लिये (शग्धि) तू शक्तिशाली बन (उत) और (पृत्सु) संग्रामों और मनुष्यों के बीच में तू (नः) हमारे (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) समर्थ हो। इति नवमो वर्गः ॥

[१८]

द्वितो मृक्तवाहा आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ भुरिगुष्णिक् । ५ भुरिग्-बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तेषु) मरणधर्मा, सामान्य मनुष्यों में, (अमर्त्यः) अमर, चिरंजीव असाधारण भोक्ता होकर योग्य पदार्थों में आत्मा के तुल्य (विश्वानि) सब प्रकार के (हव्या) ऐश्वर्य (रण्यति) चाहता और भोगता है, वह (अतिथिः) शत्रु कुलों पर आक्रमण करने हारा (पुरुः-प्रियः) बहुतों का प्रिय होकर (विशः) सब को बसाने वाला, राजा (प्रातः स्तवेत) सब से प्रथम अपनी प्रजाओं को उत्तम आज्ञा करे और वह भी (प्रातः स्तवेत) प्रातः स्मरण करने योग्य है। (२) परमेश्वर सर्वप्रिय, अतिथिवत् आदरणीय है।

द्वितार्य मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥ २ ॥

भा०—हे (अमर्त्य) असाधारण पुरुष ! हे दीर्घजीविन् ! विद्वन् ! जो (ते) तेरे अधीन (आनुषक्) तेरे से निरन्तर सम्बद्ध शिष्य (स्तोता-चित्) विद्या का अभ्यास करता है, (सः इन्दुं धत्ते) वह तेरे प्रवाहित ज्ञान रस को ओषधि रस के तुल्य ही धारण करता है, (स्वस्य दक्षस्य मंहना) अपने दाहक बल के महान् सामर्थ्य से जिस प्रकार अग्नि (इन्दुं) प्रकाश को चाहता है इसी प्रकार (द्विताय मृक्त-वाहसे) दो जनों को प्राप्त, उपनीत, शुद्ध विद्या के ग्रहण करने वाले शिष्य के उपकारार्थ (स्वस्य दक्षस्य मंहना) अपने अज्ञानदाहक ज्ञान के महान् सामर्थ्य से (सः) वह आचार्य भी (इन्दुं धत्ते) अपने ज्ञान को धारण करावे । (२) इसी प्रकार जीव शुद्ध ज्ञान का धारक आचार्य और प्रभु की शरण में प्राप्त वा ज्ञान-कर्म में निष्ठ जीव 'मृक्तवाह' और 'द्वित' है, वह निरन्तर स्तुति करे। प्रभु, ऐश्वर्यमय परमेश्वर जीव का रक्षा करता है ।

तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्वदावन्) व्यापक विज्ञान आदि गुणों के दाता तीव्र अश्व, अश्व सैन्य व्यापक राष्ट्र के देने वाले राजन् ! प्रभो ! (येषां) जिन वीर पुरुषों का (रथः) रथ और देह (अरिष्टः) अपीड़ित, सुखपूर्वक (वि ईयते) विविध मार्गों में गति करता है, (तेषाम्) उन (वः) आप (मघोनाम्) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के बीच में (तम्) उस (दीर्घायु-शोचिषम्) दीर्घायु से देदीप्यमान, वृद्ध तेजस्वी पुरुष को मैं प्रजाजन (गिरा हुवे) उत्तम वाणी से सत्कार करूं ।

चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

भा०—(येषु) जिन में (चित्रा दीधितिः) आश्चर्यकारी धारण करने योग्य वाणी है। और (ये) जो (आसन्) मुख में (उक्था पान्ति) उत्तम २ वेद वचनों की रक्षा करते हैं और जो (स्वर्णरे) सूर्यवत् तेजस्वी नायक पुरुष के अधीन (स्तीर्णम् बर्हिः) विस्तृत राष्ट्र प्रजाजन को और (श्रवांसि दधिरे) नाना ऐश्वर्यों को धारण करते हैं, वा जो गुरु के अधीन बिछे (बर्हिः) आसन वा श्रवणीय विद्योपदेशों को (दधिरे) धारण करते हैं उनके गुरु वा नायक पुरुष का हम आदर करें।

ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥१०॥

भा०—(ये) जो (मे) मुझे (सध-स्तुति) एक साथ, एक समान वर्णन करने योग्य (अश्वानां द्युमत् पञ्च-शतम्) अश्ववत् वेगयुक्त रथादि पदार्थों के ५०० का दल (ददुः) प्रदान करते या अपने अधीन शासन करते हैं, हे (अमृत) दीर्घजीविन् ! हे आयुष्मन् ! हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू उन (मघोनाम्) उत्तम धनैश्वर्यसम्पन्न (नृणां) पुरुषों का (महिः) बड़ा (बृहत्) अति विशाल (नृवत्) बहुत से नायकों और नृसैन्य से युक्त (श्रवः) अन्न आदि ऐश्वर्य वा प्रसिद्ध सैन्य (कृधि) बना। दशमो वर्गः ॥

[१९]

वव्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २ निचृद्-गायत्री । ३ अनुष्टुप् । ४ भुरिगुष्णिक् । ५ निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत।
उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥

भा०—(वव्रेः) रूपवान् देह की (अवस्थाः) ज्यों २ अवस्थाएं (अभि प्र जायन्ते) उत्तरोत्तर आती जाती हैं त्यों २ (वव्रिः) देहवान्

पुरुष वा गुरुरूप से स्वीकार करने वाला शिष्य (वव्रेः) शिष्य को अंगीकार करने वाले गुरुजन से (प्र चिकेत) उत्तम २ ज्ञान प्राप्त करता जाय। वह (मातुः उपस्थे) माता की गोद में बालक के समान उत्तरोत्तर ज्ञानदाता गुरु के समीप ही रहकर (वि चष्टे) विविध विद्याओं का दर्शन और पठन, कथोपकथन, अभ्यास आदि करे।

वव्रिरिति रूप नाम। अत्र तद्वतो ग्रहणम्।

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति।
आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

भा०—जो (चितयन्तः) उत्तम ज्ञान सम्पादन करते हुए लोग (वि जुहुरे) विविध प्रकार से परस्पर लेते और देते रहते हैं और (अनिमिषं) रात दिन वा विना आंखें झपके, सावधान वा निश्छल रह कर (नृम्णं पान्ति) धनैश्वर्य और ज्ञान की रक्षा करते हैं वे ही (दृढां पुरं) दृढ़ नगरी में (आ विविशुः) प्रवेश करते हैं।

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥

भा०—(श्वैत्रेयस्य) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ के जल से जिस प्रकार (कृष्टयः जन्तवः) किसान लोग, प्रजाएं तथा नाना जन्तुगण (द्युमत् वर्धन्त) खूब अच्छी प्रकार बढ़ते हैं उसी प्रकार मेघ के तुल्य दानशील राजा वा गुरु की (कृष्टयः) प्रजाएं भी (द्युमत् आ वर्धन्त) खूब वृद्धि को प्राप्त होती हैं। और (वाजयुः मघवानः) जिस प्रकार अन्नाभिलाषी जन जल से अन्न समृद्धि प्राप्त करता और वृद्धि को प्राप्त करता, वह भी स्वयं (निष्क-ग्रीवः) सुवर्णादि के आभूषण गले में पहरे, (बृहद्-उक्थः) बहुत उत्तम वचन कहने वाला और (वाजयुः) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य की कामना करने वाला वा उसका स्वामी होकर (एना

मध्वा) इस मधुर अन्न-सम्पदा और मधुर वचन और शत्रुनाशक बल से (वर्धते) बढ़ता है।

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार बालक (जाम्योः सचा) उत्पन्न करने वाले माता पिता के बीच में स्थित (प्रियं अजामि काम्यं) प्रिय निर्दोष कामना करने योग्य (दुग्धं न) दुग्ध को प्राप्त करके बढ़ता है और जिस प्रकार (जाम्योः सचा घर्मः न) भूमि और आकाश दोनों के बीच में सेचनसमर्थ मेघ वा सूर्य ,(दुग्धं काम्यं प्राप्य वर्धते) उत्तम जल को पाकर बढ़ता है, और जिस प्रकार (वाज-जठरः) अन्न को पेट में पचाने वाला पुरुष बढ़ता है उसी प्रकार (घर्मः न) सूर्यवत् तेजस्वी, (वाज-जठरः) ऐश्वर्य को अपने वश कर भोगने वाला, (अ-दब्धः) शत्रुओं से पीड़ित न होकर (शश्वतः) नित्य न्याय से स्थिर, (दभः) दुष्टों को दण्ड देने वाला होकर (जाम्योः सचा) बहिन-भाईवत् व भगिनीवत् विराजने वाली धर्मसभा, राजसभा वा प्रजासभा और राजसभा इन दोनों के (सचा) बीच समान भाव से मध्यस्थ होकर (दुग्धं न) दूध के तुल्य हर्षादि से प्राप्त (काम्यं) कामना करने योग्य (प्रियं) सर्व प्रिय (अजामि) निर्दोष निर्णय को प्राप्त करके निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता है।

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥११॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (भस्मना वायुना) भस्म अर्थात् प्रकाश और वायु से (सं वेविदानः) अच्छी प्रकार आत्मलाभ करता हुआ, (क्रीड़न् आभुवः) खेलता सा है। (वक्षणे स्थाः वक्ष्यः तिग्माः न) उसके बीच में स्थित ज्वालाएं जिस प्रकार तीखी होती हैं उसी प्रकार हे (रश्मे) किरणवत् वा सूर्यवत् प्रकाशक तेजस्विन् ! हे रस्से के समान

दुष्टों के दमन, राज्य का प्रबन्ध करने हारे ! तू भी (भस्मना) अति तेजस्वी (वायुना) ज्ञान युक्त वा वायुवत् वेगयुक्त सैन्य से (सं-वेविदानः) अच्छी प्रकार बल प्राप्त करके (नः) हमारे बीच (क्रीड़न्) आनन्द विनोद करता हुआ वा हमारे लिये युद्धक्रीड़ा करता हुआ (आ भुवः) आदरयुक्त हो । (अस्य) इस नायक के (ताः) वे नाना (वक्षणे-स्थाः) आज्ञा और राज्य भार को धारण करने के कार्य में स्थित (वक्ष्यः) सेनाएं (सु-संशिताः) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण, (तिग्माः) तीखी ज्वालाओं के समान ही (धृषजः) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ एवं प्रसिद्ध (सन्) हों । इत्येकादशो वर्गः ॥

[२०]

प्रयस्वन्त अत्रय ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रमुख नायक ! हे (वाज-सातम) ज्ञान और ऐश्वर्य को देने में सर्वश्रेष्ठ ! (त्वं) तू (यम्) जिस (रयिम्) धन सम्पदा को (मन्यसे चित्) स्वयं उत्तम जानता है (तं) उस (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य कीर्त्तिदायक (युजम्) हित में लगाने वाले, उत्तम फलप्रद, सहायकारी ऐश्वर्य और ज्ञान का (नः) हमें (देवत्रा) विद्वानों के बीच, वाह्य कामनायुक्त शिष्य जन को (गीर्भिः पनय) उत्तम वाणियों से उपदेश कर ।

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे नायक ! (ये) जो (वृद्धाः) धन,

मान, ज्ञान आदि से सम्पन्न वा आयु, ज्ञान और बल आदि से वृद्ध सम्पन्न होकर भी (ते) तेरे (उग्रस्य शवसः) शत्रुभयकारी, उग्र बल को देख कर भी (न ईं ईरयन्ति) नहीं कांपते, विचलित नहीं होते (ते) वे (अन्य-व्रतस्य) शत्रुवत् द्वेष तुल्य काम करने वाले (द्वेषः) द्वेष और (ह्वरः) कौटिल्य को (अप सश्चिरे) दूर करते हैं।

होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम्।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे नायक! अग्रणी, प्रमुख पुरुष! (दक्षस्य) बल और ज्ञान के (साधनम्) उत्पन्न करने और उसको वश करने वाले (होतारं) दानशील (त्वा) तुझ को दाहक बलप्रद अग्निवत् हम लोग (प्र-यस्वन्तः) प्रयत्नशील होकर (वृणीमहे) वरण करते हैं। और (पूर्व्यम्) पूर्व के विद्वान् गुरु जनों द्वारा शिक्षित एक पूर्व, सब से प्रथम आदर पाने योग्य, तुझ को हम (यज्ञेषु) यज्ञों, परस्पर के सत्संगों में (गिरा) वाणी द्वारा (हवामहे) आदर से बुलावें और स्तुति करें। (२) ज्ञानप्रद, सर्वैश्वर्यप्रद, सब से पूर्व विद्यमान प्रभु की हम वाणी से स्तुति करें, उसी को हम चाहें।

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे। राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ ४ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सहसावन्) शत्रु का पराजय करने वाले बल से सम्पन्न! विद्वन्! राजन्! (इत्था) ऐसी रीति से (दिवे दिवे) दिनों दिन तेरे (राये) ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (ते ऋताय) तेरे धन और ज्ञान की वृद्धि और प्राप्ति करने के लिये, (ते ऊतये) तेरी रक्षा करने के लिये (यथा) जैसे भी हो हम यत्न करें और (गोभिः) उत्तम वाणियों और भूमियों सहित होकर हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्मशील! (सध-मादः स्याम)

हम सब एक साथ हर्ष युक्त हों और (वीरैः) वीरों और पुत्रों सहित होकर (सध-मादः स्याम) एक साथ हर्षित होकर रहें। इति द्वादशो वर्गः॥

[२१]

सस आत्रेय ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् । ३ स्वराडुष्णिक् । ४ निचृद्बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि ! विद्युत् ! (त्वा) तुझ को हम (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के तुल्य (नि धीमहि) अन्नादि में स्थापित करें, और (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य ही जान कर (सम् इधीमहि) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करें। हे (अंगिरः) प्राणवत् प्रिय और प्रीतियुक्त अंशों वाले अग्ने ! तू भी (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के तुल्य ही (देवयते) प्रकाश आदि पदार्थों को चाहने वाले को (देवान्) किरण, प्रकाश आदि दिव्य पदार्थ (यज) दे, प्राप्त करा। (२) हे अग्रणी नायक, (मनुष्वत्) मनुष्यों के बल से युक्त बल को उत्तम पद पर स्थापित करें, तुझे अधिक बलवान् बनावें। तू (देवयते) देवों के प्रिय प्रजा जन के हितार्थ (देवान्) विजयेच्छुक वीरों और व्यवहार कुशल पुरुषों को (यज) संगत कर, राष्ट्र रख और उनका सत्संग कर, उनका दान मान सत्कार कर।

त्वं हि मानुषे जने अग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी ! (हि) निश्चय से (त्वं) तू (मानुषे जने) मननशील मनुष्य पर (सु-प्रीतः) सुप्रसन्न होकर (इध्यसे) अग्निवान् ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित होता है। हे (सु-जात) उत्तम पुत्रवत् सुखपूर्वक उत्तम गुणों से प्रसिद्ध जन !

(सर्पिआसुते) द्रव रूप घृत से आदीप्त, अग्निवत् गुरु से शिष्य के प्रति प्राप्त होने वाले ज्ञान से प्रकाशित विद्वन् ! (आनुषक्) निरन्तर (स्रुच) प्राण और इह लोक भी (त्वा यन्ति) तुझे अनुकूल होकर प्राप्त होते हैं ।

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वे) समस्त (स-जोषसः) समान रूप से प्रीति और सेवा करने वाले, (देवासः) विद्वान् जन, विद्याभिलाषी और विजयेच्छुक पुरुष (त्वाम्) तुझ को (दूतम्) दूतवत् संदेशहर (अक्रत) बनावें । और हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! वे (यज्ञेषु) सत्संगों में (सपर्यन्तः) आदर सत्कार करते हुए (देवं त्वां) प्रकाशमान, विजिगीषु तेजस्वी तुझ को (ईडते) स्तुति करते और चाहते हैं ।

देवं वो देवयज्ययाऽग्निमीळीत मर्त्यः । समिद्धः शुक्रदीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो (वः) आप लोगों के बीच (देवं) सब ज्ञान के प्रकाशक (अग्निम्) अग्रणी तेजस्वी पुरुष को (मर्त्यः) बल-प्रजाजन (देव-यज्यया) तेजस्वी राजा के योग्य सत्कार से (ईडते) आदर सत्कार करें और उसे चाहें । हे (शुक्र) तेजस्विन् ! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप्त, तेजस्वी होकर (दीदिहि) प्रकाशित हो और (ऋतस्य योनिम्) सत्य, न्याय, ज्ञान-ऐश्वर्य के प्रधान पद को (आ असदः) प्राप्त हो, उस पर विराज और तू (ससस्य) प्रशंसायोग्य, शासक, प्रधान पुरुष के (योनिम्) आश्रय योग्य पद को (आ असदः) आदरपूर्वक प्राप्त हो । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२२]

आत्रय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् छन्दः २, ३ स्वराडुष्णिक् । ४ बृहती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥

भा०—हे (विश्वसामन्) समस्त सामों, गायनों के जानने वाले, हे समस्त पुरुषों द्वारा किये साम अर्थात् प्रार्थना-वचनों के स्वीकार और सब के प्रति 'साम' अर्थात् प्रिय मधुर वचनों का प्रयोग करनेवाले विद्वन्! (यः) जो (अध्वरेषु) हिंसा प्रजापीड़नादि से रहित प्रजापालन या शासन आदि कार्यों में (ईड्यः) स्तुति योग्य (होता) ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाले (विशि) प्रजा में (मन्द्र-तमः) अति आनन्दयुक्त एवं स्तुत्य है, उस (पावकशोचिषे) पापनिवारक, सर्वशोधक, ज्ञान-ज्योति के स्वामी, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष का तू (अत्रिवत्) विद्यमान व्यक्ति के तुल्य ही (अर्च) आदर सत्कार कर अर्थात् परोक्ष में भी उसका आदर करे ।

न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥

भा०—(अद्य) आज, (देवव्यचस्तमः) प्रकाशमान् देव, सूर्य के प्रकाशवत् दूर २ तक व्यापक, (यज्ञः) सबका पूज्य पुरुष (आनुषक्) निरन्तर सबके अनुकूल होकर (प्र एतु) प्रधान पद को प्राप्त हो। हे विद्वान् लोगो! आप लोग (जातवेदसम्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक अग्नि के समान ही प्रत्येक तत्व को जाननेवाले, विद्वान् और ऐश्वर्यवान्, (देवम्) तेजस्वी (ऋत्विजम्) ऋतु २ में सूर्यवत् राजसभासदों में पूज्य, (अग्निं) अग्रणी पुरुष को (नि दधात) प्रतिष्ठित करो। (२) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वैश्वर्यवान् होने से परमेश्वर 'जातवेदा' है। प्राणों में भी बल देने से 'ऋत्विक्', सब पृथिव्यादि दिव्य पदार्थों में व्यापक होने से 'देव-व्यचस्तम' वही सर्वपूज्य 'यज्ञ' है, वह सबसे बड़ा है; उसकी प्रतिष्ठा, पूजा करो ।

चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! नायक ! प्रभो ! (वरेण्यस्य) सबसे श्रेष्ठ, वरण करने योग्य, वा श्रेष्ठ मार्ग में ले जाने वाले, (श्रवसः) सर्व रक्षक, (ते) तेरे शरण (इयानासः) आते हुए (मर्त्तासः) मनुष्य हम लोग (ऊतये) ज्ञान और रक्षा के लिये (चिकित्विन्-मनसं) विज्ञान युक्त विद्वानों के समान ज्ञान और मनन शक्ति वाले (त्वा देवं) तुझ तेजस्वी को हम (अमन्महि) मान आदर करते हैं ।

अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ४।११

भा०—हे (सहस्य) शत्रुपराजयकारी सैन्य बल के बीच में सुयोग्य सेनापते ! (अग्ने) अग्निवत् प्रतापिन् ! अग्रणी नायक ! तू (अस्य चिकिद्धि) इस राष्ट्र के सम्बन्ध में उत्तम रीति से जान और (नः) हमारे (इदं वचः चिकिद्धि) इस राष्ट्र के सम्बन्ध में उत्तम रीति से जान। हे (सुशिप्र) उत्तम मुखनासिका वाले, हे सौम्य ! हे (दम्पते) स्त्री के पति के तुल्य पृथ्वी की प्रजा के स्वामिन् ! (अत्रयः) यहां, इस राष्ट्र के निवासी विद्वान् जन (तं त्वां) उस प्रसिद्ध तुझको (स्तोमैः) उत्तम स्तुत्य वचनों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं और (अत्रयः) तीनों तापों तथा काम, क्रोध, लोभ तीनों से रहित लोग (त्वा) तुझे (गीर्भिः) वाणियों से (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

(२३)

द्युम्नो विश्वचर्षणिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृत्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वाः) समस्त (चर्षणीः) प्रजाओं का और शत्रुओं का कर्षण या पीड़न करने वाली सेनाओं को भी (वाजेषु) ऐश्वर्यों और संग्रामों के बल पर (आसा) अपने आज्ञाकारी मुख वा प्रमुख पद से (अभि सासहत्) सबके सन्मुख, सर्वोपरि विजयी होता है, वह तू हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तेजस्विन् ! (द्युम्नस्य) यश वा ऐश्वर्य को (सहन्तं) जीतने वाले सैन्यगण और (प्रासहा रयिं) सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर और हमें प्राप्त करा ।

तम॑ग्ने पृतना॒षहं॑ र॒यिं स॑हस्व॒ आ भ॑र ।

त्वं हि स॒त्यो अद्भु॑तो दा॒ता वाज॑स्य॒ गोम॑तः ॥ २ ॥

भा०—हे (सहस्वः) शत्रुविजयी बल, सैन्य के स्वामिन् ! (अग्ने) अग्रणी, तेजस्विन् ! नायक ! (त्वं हि) तू निश्चय से (सत्यः) सज्जनों के प्रति व्यवहारकुशल, सत्यशील, (अद्भुतः) आश्चर्यकारी, (गोमतः) भूमि और गौ आदि पशुओं से समृद्ध, (वाजस्य) ऐश्वर्य का (दाता) दान देने हारा है । तू (पृतना-सहं) सेनाओं को वश करने वाले (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा ।

विश्वे॒ हि त्वा॑ स॒जोष॑सो॒ जना॑सो वृ॒क्तब॑र्हिषः ।

होता॑रं॒ सद्म॑सु प्रि॒यं व्यन्ति॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! हे अग्रणी नायक ! (विश्वे) समस्त (स-जोषसः) समान प्रीति एवं सेवा करने वाले (वृक्त-बर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र का संविभाग करने में कुशल (जनासः) पुरुष (होतारं) दानशील, (प्रियं) सर्वप्रिय (त्वां) तुझको (व्यन्ति) प्राप्त होते और (सद्मसु) राजभवनों में (पुरु) बहुत प्रकार के (वार्या) उत्तम धनों को भी (व्यन्ति) प्राप्त करते, भोगते और सुरक्षित रखते हैं ।

स हि ष्मा॑ वि॒श्वच॑र्षणिर॒भिमा॑ति॒ सहो॑ द॒धे ।
अग्न॑ ए॒षु क्षये॒ष्वा रे॒वन्नः॑ शुक्र दीदिहि द्यु॒मत्पा॑वक दीदिहि ४॥१५

भा०—(सः विश्व-चर्षणिः) वह सबका द्रष्टा होकर (अभिमाति) समस्त शत्रुओं को पराजय करने योग्य, एवं अभिमान योग्य (सहः) प्रबल सैन्य को (दधे) धारण करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! (एषु क्षयेषु) इन निवास योग्य भवनों में या पदों पर रहता हुआ तू हे (शुक्र) शुद्धाचरण वाले! हे तेजोयुक्त! तू (नः) हमारे (रेवत्) उत्तम धन से युक्त राष्ट्र को (दीदिहि) प्रकाशित कर और हे (पावक) पवित्रकारक, कण्टक-शोधन विधि से राज्य को निष्कण्टक करने हारे! तू स्वयं हमें (द्युमत्) तेजोयुक्त ऐश्वर्य (दीदिहि) प्रदान कर। स्वयं यशस्वी होकर प्रकाशित हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

(२४)

बन्धुः सुबन्धुः श्रतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा ऋषयः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २ पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहत्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती। ३, ४ पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः॥ १, २॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी नायक! हे ज्ञानवन् राजन्! प्रभो! विद्वन्! (त्वं) तू (नः) हमारे (अन्तमः) सदा समीप रहने वाला, सबसे अन्त, चरम, सर्वोत्कृष्ट सीमा पर स्थित, परम प्रमाण, उत्तम सिद्ध वचनों को जानने और उपदेश करने वाला, (उत) और (त्राता) रक्षक और (वरूथ्यः) उत्तम गृहों में निवास करने वाला वा उत्तम सेनासंघों का हितैषी, व उत्तम रक्षा-साधनों से सम्पन्न (भव) हो। तू स्वयं (वसुः) प्रजाओं, लोकों को बसाने वाला, (वसु-श्रवाः) शिष्यों द्वारा गुरुवत् आदर से श्रवण करने योग्य, वा ऐश्वर्यों से यशस्वी, होकर तू (अच्छ) भली प्रकार (उत्तमं रयिं नक्षि)

उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कर और हमें भी (दाः) प्रदान कर। (२) परमेश्वर वसे जीवों से श्रवण मनन करने योग्य एवं सर्वत्र व्यापक है। अतः 'वसु' और 'वसुश्रवाः' है।

स नो॑ बोधि श्रुधी हव॑मुरुष्या णो॑ अघाय॒तः सम॑स्मात्।
तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः ॥३,४॥१६॥

भा०—हे (शोचिष्ठ) सबसे अधिक तेजस्विन्! (सः) वह तू (नः) हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर। (नः हवम्) हमारे वचन को (श्रुधि) श्रवण कर। (नः) हमें (समस्मात् अघायतः) सब प्रकार के पापाचार करने वाले दुष्ट जनों से (उरुष्य) बचा। हे (दीदिवः) सत्य के प्रकाशक! (नूनम्) निश्चय से हम लोग (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने और (सखिभ्यः) अपने मित्रजनों के हितार्थ (त्वा ईमहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

(२५)

वसूयव आत्रेया ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृदनुष्टुप्। २, ५, ६, ९ अनुष्टुप्। ३, ७ विराडनुष्टुप्। ४ भुरिगुष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा॑ वो अ॒ग्निमव॑से दे॒वं गा॑सि॒ स नो॒ वसुः॑।
रास॑त्पु॒त्र ऋ॑षू॒णामृ॒ताबा॑ पर्षति द्वि॒षः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! (वः) हमें (अवसे) रक्षा करने के लिये (अग्निम्) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्वी (देवं) सर्वप्रकाशक, विजिगीषु, व्यवहारज्ञ पुरुष का (अच्छ गासि) अच्छी प्रकार उपदेश कर। (सः) वह (नः) हमारा (वसुः) बसाने वाला हो। वह (ऋषूणाम् पुत्रः) वेदार्थ द्रष्टा विद्वानों के बीच पुत्र के समान, विनयशील वा बहुतों का रक्षक होकर (ऋतावा) सत्य न्याय और धन का स्वामी होकर (रासत्) धन प्रदान करे। (द्विषः) और अप्रीतियुक्त शत्रु जनों

को पार करे, उन पर विजय लाभ करे। परमेश्वर वेदार्थ द्रष्टा, आत्मदर्शी बहुत से विद्वानों को सब दुःखों से बचाने वाला होने से उनका 'पुत्र' है। पुरु त्रायते इति पुत्रः। निरु० ॥

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥

भा०—(देवासः चित् ईधिरे सः सत्यः) जिस प्रकार किरणगण सूर्य को अति प्रदीप्त करते हैं और वह सदा सत्य है इसी प्रकार (पूर्वे देवासः) पूर्व के तेजस्वी, विद्वान्गण और (देवासः) सूर्यादि लोक भी (यम्) जिसको (ईधिरे) बतलाते और प्रकाशित करते हैं (सः हि सत्यः) वह ही निश्चय से सत्यस्वरूप, सर्व सत् पदार्थों में व्यापक, उनका आश्रय, सत् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है। उस (होतारम्) सर्वदाता (मन्द्र-जिह्वम्) आनन्दप्रद वाणी के बोलने हारे, (सु-दीतिभिः) उत्तम दीप्तियों से युक्त (विभाव-सुम्) उत्तम कान्ति युक्त ऐश्वर्य के स्वामी को समस्त देव, विद्वान्, विजयेच्छुक धनार्थी और ज्ञानार्थीजन (ईधिरे) प्रकाशित करते हैं। उसका गुण वर्णन करते हैं।

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! प्रतापिन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (वरिष्ठया) सर्वोत्तम (धीती) धारणायुक्त शक्ति और (श्रेष्ठया) श्रेष्ठ (सु-मत्या) उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि से और (सुवृक्तिभिः) उत्तम पापादि के वर्जने योग्य दमनकारी शक्तियों से युक्त कर और हे (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ ! (नः रायः दीदिहि) हमें नाना ऐश्वर्य प्रदान कर।

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन्।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष ही (देवेषु) प्रकाश-

युक्त सूर्यादि पदार्थों में अग्नि के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों में (राजति) राजवत् प्रकाशित होता है। वह (अग्निः) अग्रणी नायक ही (मर्त्तेषु) मरणधर्मा जीवों के भीतर जाठर अग्नि के तुल्य उनके भीतर भी (आ-विशन्) आदर पूर्वक प्रवेश करता, उनमें बल सञ्चार करता है। वह (अग्निः) अग्रणी, सबके आगे विनयशील होकर (नः) हमारा (हव्य-वाहनः) यज्ञाग्नि वा मन्त्र में लगे अग्नि, विद्युत् आदि के तुल्य (हव्य-वाहनः) ग्रहण योग्य पदार्थों को वहन या धारण करने वाला है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस (अग्निं) अग्रणी, नायक, नर श्रेष्ठ की (धीभिः) उत्तम कर्मों और स्तुतियों से (सपर्यत) सेवा शुश्रूषा करो। (२) परमेश्वर सर्वत्र विराजता सबके हृदयों में व्यापक, सबको धारता है, उसका स्तुतियों से भजन पूजन करो।

अ॒ग्निस्तु॒विश्र॑वस्तमं तु॒विब्र॑ह्माणमुत्त॒मम्।
अ॒तूर्तं॑ श्राव॒यत्प॑तिं पु॒त्रं द॑दाति दा॒शुषे॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(अग्निः) विद्वान्, आचार्य एवं अग्रणी नायक वा परमेश्वर जन (दाशुषे) दानशील पुरुष को (तुविश्रवस्तमम्) बहुत प्रकार के अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों से युक्त, और (तुवि-ब्रह्माणम्) बहुत से विद्वान् पुरुषों, धनों और वेद ज्ञानों से युक्त, (उत्तमं) उत्तम (अतूर्त्तं) अपी-ड़ित, दीर्घायु (श्रावयत्-पतिं) ज्ञानोपदेश श्रवण कराने वाले पालक से युक्त विद्वान् वा उपदेष्टाओं का पालक, (पुत्रं) उत्तम पुत्र (ददाति) प्रदान करता है। आचार्य और राजा दोनों प्रजाओं के पुत्रों को ज्ञानवान्, विद्वान्, दीर्घायु और रोगादि से अपीड़ित स्वस्थ बलवान् किया करें। इति सप्तदशोवर्गः॥

अ॒ग्निर्द॑दाति॒ सत्प॑तिं सा॒साह॒ यो यु॒धा नृभिः॑।
अ॒ग्निरत्यं॑ रघु॒ष्यदं॒ जेता॑रमप॑राजितम् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (युधा) युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करने वाले सैन्य वा शस्त्र बल से और (नृभिः) वीर नायक पुरुषों सहित (स-

साह) शत्रुओं को पराजित करता है (अग्निः) अग्रणी नायक राजा वा प्रभु, ऐसे (सत्पतिम्) सज्जनों का प्रतिपालक पुरुष (ददाति) प्रदान करे। वही (अग्निः) अग्र नायक राष्ट्र को (रघु-स्यदं) वेग से जाने वाला (अत्यं) सर्वातिशायी, वेगवान् अश्व सैन्य और (अपराजितम्) कभी न हारने वाला (जेतारम्) विजेता सेनापति दे।

यद्वाहिष्ठं तद॒ग्नये॑ बृ॒हद॑र्च विभावसो ।
महि॑षीव॒ त्वद्र॒यिस्त्वद्वाजा॒ उदी॑रते ॥ ७ ॥

भा०—(यद्) जो भी (वाहिष्ठम्) सबसे अधिक उत्तरदायित्व को अपने कन्धों पर उठाने वाला पद है (तत्) वह सम्मान पद (अग्नये) अग्नि के तुल्य तेजस्वी नायक को प्रदान किया जाता है। इस लिये हे (विभावसो) विविध कान्तियों को अपने में ऐश्वर्यवत् धारण करने वाले तेजस्वी पुरुष ! तू (बृहद्-अर्च) बड़ा भारी आदर सत्कार प्राप्त कर। (महिषी इव) रानी के तुल्य ही (त्वत्) तुझ से (रयिः) सुख देने वाला धनैश्वर्य (उत् ईरते) उत्पन्न होता, (वाजाः) समस्त बल सैन्यादि भी (त्वत्) तुझ से ही (उत् ईरते) उत्पन्न होते और तेरे ही उपभोग में आते हैं।

तव॑ द्यु॒मन्तो॑ अ॒र्चयो॒ ग्रावे॑वोच्यते बृ॒हत् ।
उ॒तो ते॑ तन्य॒तुर्य॑था स्वा॒नो अ॑र्त॒ त्मना॑ दि॒वः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! (तव) तेरे (अर्चयः) अग्नि वा सूर्य के से ज्वाला वा किरणें (द्युमन्तः) बहुत प्रकाश वाले हों। तेरा (बृहत्) बड़ा भारी यश, बल या स्वरूप (ग्रावा इव) मेघ वा पर्वत के समान विशाल एवं शस्त्रास्त्रबल, शिलावत् शत्रुओं को चकनाचूर करने वाला (उच्यते) कहा जाता है। (उतो) और (यथा) जिस प्रकार (दिवः) बिजली का (तन्यतुः) गर्जन हो उसका (ते स्वानः) तेरा महान् शब्द या घोष, आज्ञा-वचन आदि (अर्त्त) उत्पन्न हो।

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥१८॥

भा०—(वसूयवः) धन की अभिलाषा करने वाले हम प्रजाजन (सहसानं) सबको पराजय करने वाले (अग्निं) अग्रणी नायक को (एव) अवश्य इस प्रकार ही (ववन्दिम) स्तुति करें । (सः) वह (सु-क्रतुः) उत्तम कार्यकुशल पुरुष (नः) हमें (नावा इव) नौका से नदी के तुल्य (द्विषः) शत्रुओं के (अति पर्षत्) पार करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

(२६)

वसूयव आत्रेया ऋषयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९ गायत्री । २, ३, ४, ५, ६, ८ निचृद्गायत्री । ७ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रगण्य पद पर विराजमान आचार्य ! राजन् ! प्रभो ! हे (पावक) पाप को दूर कर तेजस्विता, ज्ञान और पुण्य आचार से पवित्र करने हारे ! आप (रोचिषा) सबको प्रिय लगने वाले तेज और (मन्द्रया) आनन्दप्रद, गंभीर, स्तुत्य (जिह्वया) वाणी से हे (देव) अर्थों के प्रकाशक गुरो ! हे तेजस्विन् ! विजिगीषो ! हे स्वयं प्रकाश प्रभो ! (देवान्) वीरों, विद्वान्, विद्याभिलाषी शिष्यों को (वक्षि) धारण करो और (यक्षि च) संगत करो मिलाओ और उनको ज्ञान और बल प्रदान करो । (२) अग्नि, विद्युत्, तेज, प्रकाशमयी ज्वाला से दिव्य पदार्थों, किरणों को धारता संगत करता और प्रकाश देता है ।

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशं ।
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृतस्नुः चित्रभानुः) घृत-स्रवण से युक्त अग्नि

अद्भुत, अधिक प्रकाश से युक्त होता है और (वीतये देवान् आवहति) प्रकाश के लिये किरणों को धारण करता है, उसी प्रकार सूर्य भी मेघ जल से वा प्रकाश से जगत् को पवित्र करता है वह प्रकाश और जगत्-रक्षा के लिये किरणों वा मेघ, वायु, विद्युतादि दिव्य पदार्थों को सर्वत्र धारता है उसी प्रकार हे (घृतस्नो) ज्ञान-जल से शिष्यादि के अन्तःकरणों को पवित्र करनेहारे ! हे (चित्रभानो) अद्भुत कान्ति, दीप्ति, विद्या-प्रकाशों से युक्त विद्वन् ! प्रभो ! (स्वः-दृशं) सुख वा ज्ञान-प्रकाश को स्वयं देखने और अन्यों को दर्शाने वाले (तं त्वा) उस तुझ को हम (ईमहे) प्रार्थना करते हैं । तू (देवान्) विद्याभिलाषी जनों को (वीतये) व्रत-रक्षा और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करने के लिये (आ वह) सब प्रकार से धारण कर ।

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे विद्वन् मेधाविन् ! (अग्ने) हे ज्ञानवन् ! अग्नि के तुल्य प्रकाश वाले ! (अध्वरे) इस हिंसारहित प्रजापालन वा अध्ययन-अध्यापनादि कार्य में (बृहन्तं) महान् शक्तिशाली (वीतिहोत्रं) रक्षा, कान्ति, दीप्ति के निमित्त ग्रहण करने योग्य वा दीप्ति और रक्षा का दान देने वाले (द्युमन्तं) तेजस्वी (त्वा) तुझ को हम अग्निवत् ही (सम् इधीमहे) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करें, तुझे अधिक तेजस्वी, ख्यातिमान् और शक्तिशाली बनावें ।

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये ।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानयुक्त ! अग्निवत् तेजस्विन् ! ग्राह्य प्रकाश को देने के लिये किरणों सहित आने वाले सूर्य के तुल्य आप भी (हव्य-दातये) उत्तम, देने और स्वीकार करने योग्य ज्ञान ऐश्वर्य के देने के लिये

(विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्या वा धन के अभिलाषी वा विद्वान् उत्तम जनों सहित (आगहि) आइये । (होतारं त्वा) दान देने हारे तुझ उदार पुरुष को हम (वृणीमहे) सर्वाश्रय रूप से स्वीकार करें ।

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (सुन्वते यजमानाय) यज्ञ करने एवं ऐश्वर्य वा धन उत्पन्न करते हुए और संगति, मैत्री करने और कर आदि देने वाले प्रजाजन के हितार्थ तू (सुवीर्य) उत्तम बल पराक्रम को (आ वह) सब प्रकार से धारण कर और (देवैः) विद्वानों के साथ मिलकर (बर्हिषि) आसन एवं वृद्धिशील प्रजाजन वा इस लोक पर (आ सत्सि) आदरपूर्वक विराजमान हो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि ।
देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥

भा०—(समिधानः अग्निः सहस्रजित्) खूब प्रदीप्त अग्नि जिस प्रकार सहस्रों सैन्यों को जीतता, सहस्रों रोगों पर वश करता और (देवानां दूतः) प्रकाशों, किरणों सहित प्रतापयुक्त एवं दूतवत् संदेश को भी दूर देश तक पहुंचाने वाला है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू भी (सम्-इधानः) अच्छी प्रकार प्रदीप्त, तेजस्वी होकर (सहस्रजित्) सहस्रों बलवान् शत्रुओं को जीतने वाला हो । तू (धर्माणि) समस्त धर्मयुक्त कर्मों को (पुष्यसि) पुष्ट करता है । तू (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच उनका (उक्थ्यः) स्तुति योग्य, उत्तम वचन कहने हारा (दूतः) संदेश-हर और प्रतापी हो ।

न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् ।
दधाता देवमृत्विजम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग, (जात-वेदसम्) ऐश्वर्य के

स्वामी, प्रत्येक पदार्थ के ज्ञाता, (होत्र-वाहं) उत्तम वाणी और आदर से दानयोग्य पदार्थों को धारण करने वाले (यविष्ठयम्) सब युवा पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ, (ऋत्विजम्) ऋतु में वा प्रत्येक राजकीय सभ्य से संगति करने हारे (देवम्) तेजस्वी (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को (नि दधात) उच्च पद पर स्थापित करो ।

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ।
स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥

भा०—(देव-व्यचस्तमः) विद्वानों में विविधविद्याओं में सब से अधिक गति वाला, (यज्ञः) सत्संगति करने योग्य पुरुष (आनुषग्) निरन्तर (प्र एतु) आगे उत्तम पद पर आवे और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (आसदे) उसके विराजने के लिये (बर्हिः) वृद्धियुक्त श्रेष्ठ आसन (स्तृणीत) बिछाओ ।

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—(मरुतः) विद्वान् मनुष्य, वायुवत् बलवान् वीर पुरुष, (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुष वा अध्यापक और उपदेशक, (मित्रः) मित्र वर्ग और (वरुणः) दुष्टों के वारण करने वाले श्रेष्ठ जन ये सभी (इदं) इस उत्तम आसन को (आ सीदन्तु) आदर पूर्वक प्राप्त करें । और (देवासः) सभी उत्तम जन (सर्वया विशा) सब प्रकार की प्रजा सहित (आ सीदन्तु) आकर विराजें । इति विंशो वर्गः ॥

(२७)

त्र्यरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्सय अश्वमेधश्च भारतोऽग्निर्वा ऋषयः ॥ १—५ अग्निः । ६ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ५, ६ भुरिगुष्णिक् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥

भा०—(सत्पतिः) सज्जनों का पालक, (चेतिष्ठः) सब से अधिक ज्ञानवान्, (असुरः) बलवान् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, (मघोनः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (चिकेत) अच्छी प्रकार जाने । वह (मे) मुझ प्रजाजन के हितार्थ (अनस्वन्ता गावा) शकट आदि से युक्त दो बैलों को जिस प्रकार सारथी चलाता है उसी प्रकार वह मेरे उत्तम नायकों से युक्त राज्य को (मामहे) चलावे । वह (त्रैवृष्णः) शास्य, शासक जन और राजसभा इन तीनों में सूर्यवत् बलवान् प्रबन्धकर्त्ता और (त्र्यरुणः) आदि, मध्य, अन्त तीनों दशाओं में तेजस्वी होकर हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितकारिन् ! (सहस्रैः दशभिः) दस सहस्र किरणों से सूर्यवत् तेजस्वी होकर दस हजार सैन्य बलों सहित (चिकेत) सब पर शासन करे, राष्ट्र के पीड़ाकारियों का नाश करे । (२) विद्वान् आचार्य (दशभिः सहस्रैः) वेद के दस सहस्र वेदवाणिमय मन्त्रों से शिष्यों को ज्ञानवान् करे । वह (अनस्वन्ता गावा) शकट से युक्त बैलों के तुल्य कार्यनिर्वाहक यज्ञ वा गृहस्थ रूप भार से युक्त स्त्री पुरुष दोनों को (मामहे) ज्ञान प्रदान करे ।

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२॥

भा०—(यः) जो पुरुष (मे) मुझे (गोनां) गौओं, वेद वाणियों वा भूमियों की (शता च विंशतिं च) बीसों सौ देता है और जो (सुधुरा) सुख से शकट को धारण करने वाले (युक्ता) जुते हुए (हरी च) और दूर तक ले जाने वाले अश्व, बैलों के जोड़े और उनके समान धुरन्धर स्त्री पुरुष मुझ राष्ट्र को प्रदान करता है, हे (वैश्वानर अग्ने) समस्त मनुष्यों के हितकारिन् नायक ! तू (सु-स्तुतः) उत्तम रीति से स्तुति

योग्य होकर (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ उस (त्र्यरुणाय) तीनों कालों वा तीनों पदों पर शोभा देने वाले पुरुष को (शर्म) सुख वा उत्तम गृह आदि आश्रय (यच्छ) प्रदान कर। राजा ज्ञान वाणी के उपदेष्टा उत्तम युवा युवति को तैयार करने वाले आचार्य आदि को राज्य में अच्छा आश्रय दें। ऐसे गुरु दलपति 'त्र्यरुण' हैं। वे तीनों आश्रमों में सूर्यवत् ज्ञान से प्रकाशित होते हैं।

एवा तैं अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (यः) जो (ते सुमतिं) तेरी उत्तम मति और (नवमं) नये उत्तम ज्ञान को (चकानः) चाहता हूं उस (नविष्ठाय) उस अति नवीन (मे) मुझ बालक को आप (त्र्यरुणः) तीनों में अरुण अर्थात् तीनों वेद विद्याओं, मन, वाणी और शरीर तीनों के तपों के पारंगत, वा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तीनों आश्रमों से उत्तीर्ण, इह लोक, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों प्रकाश से व्याप्त, तीनों से परे विद्यमान सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (तुविजातस्य) बहुत से नायक पुरुषों वा प्रजाजनों में प्रसिद्ध यशस्वी गुरु की (युक्तेन) दत्तचित्त से (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों से सेवित, वा उपदिष्ट (गिरः) वेदवाणियों का (अभि गृणाति) उपदेश करता है वह (त्रसदस्युः) दुष्ट भावों को भयभीत करने वाला, वा भयभीत शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार करने वाले शूरवीर के तुल्य निर्भय होकर आ, हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (नविष्ठाय) अति नवीन, एवं स्तुत्य शिष्य को (ते सुमतिं) तेरी अपनी शुभ मति और ज्ञान (एव) और (नवमं) नये से नया उपदेश (चकानः) प्रेम पूर्वक चाहता हुआ गुरु तुझे (अभि-गृणाति) उपदेश करे। गुरु वा आचार्य के ज्ञानोपदेश से अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि एवं कुशिक्षा, कुव्यसनादि परे भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं इससे वह 'त्रसदस्यु' है।

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! आचार्य ! (यः) जो (अश्वमेधाय) अश्व के समान वल युक्त जीवन तथा विद्यामार्ग पर चलने की दृढ़ बुद्धि से युक्त एवं पवित्र शरीर अथवा यज्ञ वा युद्ध के लिये सन्नद्ध अश्व के समान सदा सज्ज और (सूरये) विद्वान् पुरुप के लिये (मे) यह मेरा है (इति) इस प्रकार से (प्रवोचति) कहता है वह तू (यते) यत्नवान् शिष्य को (ऋचा) ऋग्वेद के मन्त्रगण से (सनिं ददत्) विभाग करने और सेवन करने योग्य उत्तम ज्ञान प्रदान करे । वह आप (ऋतायते) सत्य ज्ञान को चाहने वाले मुझे (मेधाम् ददत्) उत्तम बुद्धि प्रदान करे वह भी शिष्य को (मे इति प्र-वोचति) अपना कर ही ज्ञान का प्रवचन करे ।

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५ ॥

भा०—(उक्षणः) विद्योपदेश करने और ज्ञान से सेचन करने वाले (यस्य) जिस गुरु के (शतम्) सैकड़ों (परुषाः) कठोर, एवं वास्तविक क्रोध से रहित, प्रेममय वचन (मा उत् हर्षन्ति) मुझको उत्साहित करते हैं उस (अश्व-मेधस्य) राष्ट्र पालक राजा के तुल्य गुरु के (दानाः) ज्ञान प्रदान करने वाले उपदेश भी (त्र्याशिरः) बालक, युवा, वृद्ध तीनों, द्वारा वा वसु, रुद्र, आदित्य तीनों से उपभोग करने योग्य, (सोमाः इवः) ऐश्वर्यों के तुल्य होते हैं । (२) जिस नायक को सैकड़ों कठोर जीवी (उक्षणः) बलवान् पदाधिकारी उत्साहित करते उस (अश्व-मेधस्य) राजा सेनापति या राष्ट्र के (दानाः) शत्रु नाशक वा पालक वीरजन भी (सोमाः इव) अभिषिक्त जनों के समान तीनों प्रकार के ऐश्वर्यों वा वर्णों के भोक्ता होते हैं ।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) विद्युत् वायु और अग्नि दोनों तत्व जिस प्रकार (दिवि बृहत् सूर्यम् इव) आकाश में बड़े भारी सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों, (शतदाव्नि) सैकड़ों ऐश्वर्य देने वाले (अश्वमेधे) अश्वमेध अर्थात् राष्ट्र में (सुवीर्यम्) वल युक्त, (बृहत्) बड़ा भारी (सूर्यम् अजरम्) तेज से युक्त अविनाशी, (क्षत्रं) सैन्य वल (धारयतम्) धारण करो । इत्येकविंशो वर्गः ॥

(२८)

विश्ववारात्रेयी ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (समिद्धः) खूब देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि वा अग्नि से युक्त सूर्य (दिवि) प्रकाश और आकाश में (शोचिः) दीप्ति कान्ति या प्रकाशमय विद्युत् को (अश्रेत्) धारण करता है और (उषसम् प्रत्यङ्) उषाकाल को प्राप्त होकर (उर्विया वि भाति) खूब प्रकाशित होता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक, विद्वान् तेजस्वी युवा पुरुष (दिवि समिद्धः) ज्ञान-प्रकाश विद्या, एवं विजय कामना में खूब देदीप्त होकर (शोचिः अश्रेत्) प्रखर तेज को धारण करे । वह (उषसम् प्रति-अङ्) कामना से युक्त प्रजा को प्राप्त होकर (उर्विया वि भाति) खूब चमके, इसी प्रकार युवक विद्या एवं कामना वा कान्ति

से उत्तेजित होकर तेज को धारे और कामनायुक्त उसकी अभिलाषिणी स्त्री को प्राप्त कर सुशोभित हो। जिस प्रकार (विश्व-वारा घृताची) समस्त जनों से वरणीय, एवं समस्त विश्व के अन्धकारों को दूर करने वाली तेज से युक्त उषा (देवान् ईडाना) तेजोमय, प्रकाश किरणों को प्रस्तुत करती हुई (प्राची एति) आगे २ बढ़ती हुई या पूर्व दिशा में आती है, उसी प्रकार (विश्व-वारा) समस्त शत्रुओं और अनभीष्ट जनों का वरण या तिरस्कार करती हुई (घृताची) तेजस्विनी, या घृतादि स्नेहयुक्त पदार्थ को देह पर मले सुन्दर, सुशोभित होकर (देवान् ईडाना) विद्वानों की स्तुति करती हुई या अभीष्ट गुण युक्त प्रियजनों को और (नमोभिः) विनय सत्कारों से चाहती हुई, सत्कार करती हुई, (हविषा) उत्तम ऐश्वर्य सहित (प्राची) उत्तम पद को प्राप्त या आगे प्रस्तुत विदुषी स्त्री एवं राजा के प्रजाजन भी (एति) आगे आवे और अपने पालक पति का वरण करे। इस प्रकार प्रजाजन का नायकवरण और वरवर्णिनी स्त्री का पतिवरण दोनों समान रूप से सूर्य उषा, अग्नि उषा दृष्टान्त से वर्णित हैं।

स॒मि॒ध्यमा॑नो अ॒मृत॑स्य राजसि ह॒विष्कृ॒ण्वन्तं॑ सचसे स्व॒स्तये॑।
विश्वं॒ स ध॑त्ते॒ द्रवि॑णं॒ यमिन्व॑स्याति॒थ्यम॑ग्ने॒ नि च॑ धत्त॒ इत्पु॒रः २

भा०—(समिध्यमानः अमृतस्य राजसि) जिस प्रकार सूर्य खूब प्रकाशित होता हुआ मेघोपयोगी 'अमृत' अर्थात् जल और उससे उत्पन्न अन्न में प्रकाशित होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष वा राजन्! (समिध्यमानः) तू खूब तेजस्वी होकर (अमृतस्य) उत्तम सत्कारोपयोगी जल, दीर्घायु वा ज्ञान से खूब प्रकाशित हो। तू (स्व-स्तये) सुख शान्ति के प्राप्त करने के लिये (हविः कृण्वन्तम्) अन्न आदि उत्पन्न करने और भोज्य द्रव्य सिद्ध करने वाले को (सचसे) आदरपूर्वक प्राप्त होता है। हे विद्वन्! राजन्! तू (यम्) जिसको प्राप्त होकर (अतिथ्यम्) आतिथ्य (इन्वसि) लाभ करता है (सः)

वह मनुष्य (विश्वं द्रविणं) समस्त ऐश्वर्य (धत्ते) धारण करता है, और वही (पुरः) तेरे समक्ष आतिथ्य भोग्य (नि धत्ते च) पदार्थ आदि भी रखता है।

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्, तेजस्विन् नायक ! तू (महते सौभगाय) बड़े भारी धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (शर्ध) शत्रुओं का पराजय कर, अथवा हे (शर्ध) बलवन् ! (तव द्युम्नानि) तेरे धनैश्वर्य (उत्तमानि) उत्तम और (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य, सुख समृद्धि की वृद्धि के लिये (सन्तु) हों। तू (जास्पत्यं) स्त्री और पुरुषों के पति पत्नी के सम्बन्ध को (सुयमम्) सुखपूर्वक बंधने योग्य, सुदृढ़ (सं आकृणुष्व) उत्तम रीति से संस्कारपूर्वक करा, (शत्रूयताम्) शत्रुवत् व्यवहार करने वाले के (महांसि) तेजः पराक्रमों, बड़े सैन्यों को (अभि तिष्ठ) पराजित कर।

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम्।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (प्र-महसः) बड़े भारी तेजस्वी (समिद्धस्य) खूब देदीप्यमान (तव) तेरी (श्रियम्) शोभा या सम्पदा की मैं (वन्दे) प्रशंसा करता हूं। तू (वृषभः) बलवान्, प्रजा के प्रति सुखों को मेघवत् वर्षाने हारा और (द्युम्नवान् असि) तेज और ऐश्वर्य का स्वामी है। तू (अध्वरेषु) यज्ञों में अग्निवत् हिंसारहित प्रजापालन, न्यायशासन आदि कार्यों में (इध्यसे) खूब प्रकाशित, प्रसिद्ध तेजस्वी बन।

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर।
त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! हे (आहुत) आदर पूर्वक स्वीकृत एवं कर आदि देने के पात्र रूप ! हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञ-शील ! हिंसादि रहित, न्याय से प्रजा पालनादि करनेवाले एवं उत्तम अहिं-सक ! तू (समिद्धः) खूब प्रकाशित, तेजस्वी होकर भी (देवान् यक्षि) विद्वानों को दान दे, वीर कामनायुक्त पुरुषों को भृति दे और उनका सत्संग और आदर कर । क्योंकि (त्वं) तू (हि) निश्चय से (हव्य-वाड् असि) ग्राह्य और दान योग्य ऐश्वर्यों, अन्नादि पदार्थों को धारण करने और औरों को देने हारा है ।

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे ।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अध्वरे प्रयति) प्रयत्न से साध्य हिंसादि-रहित प्रजापालनादि यज्ञ में (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को (आ जुहोत) आदर पूर्वक बुलाओ । (दुवस्यत) उसका आदर सत्कार और सेवा शुश्रूषा करो । और (हव्य-वाहनम्) ग्राह्य और दान योग्य पदार्थों के धारण करने वाले को ही (वृणीध्वम्) उत्तमासन के लिये वरण करो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२९]

गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः ॥ १—८, ६—१५ इन्द्रः । ९ इन्द्र उशना वा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । ८ स्वराट् पंक्तिः । २, ४, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ९, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२, १३, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मनुषः) मननशील जन (अ-

र्यमा) शत्रुओं को संयम वा बन्धन करने वाले (त्री) तीन् और (दिव्या) दिव्य गुणों से युक्त (रोचना) प्रकाश करने वाले (त्री) तीन साधनों को (देवताता) देवों, विद्वानों के उचित कार्यव्यवहार में (धारयन्त) धारण करें। अर्थात् दुष्टों को संयमन करने के लिये उनके पास तीन साधन, मन्त्रबल, सैन्यबल और ऐश्वर्यबल हों और ज्ञान-प्रकाश करने के लिये तीन वेदों के जानने वाले वा राजसभा, धर्मसभा, और विद्या-सभा तीन हों। वे (मरुतः) मनुष्य (पूतदक्षाः) पवित्र बल से युक्त होकर (त्वा अर्चन्ति) तेरी ही पूजा वा मान की वृद्धि करें। और (त्वम्) तू (धीरः) ज्ञान, बुद्धि वा कर्मकुशल, धैर्यवान् राष्ट्र शक्ति को धारण करने वाला होकर (एषाम्) इनको (ऋषिः) मन्त्रार्थ दिखाने वाला, इनका मार्ग सञ्चालक होकर (असि) रह। (२) शिष्यजन आचार्य के अधीन रहकर मन, वाणी, काम तीनों के संयम करने के बल धारण करें, तीन वेद वा तीन ज्ञानप्रकाशक वाणी, इन्द्रियों और मन, शब्द, अर्थ और उनमें सम्बन्ध का ज्ञान करें। वे गुरु की अर्चना करें वह उनका ऋषि हो। (३) सर्व द्रष्टा होने से परमेश्वर ऋषि, ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्द्र' है और सर्वधारक होने से 'धीर' है। जीवगण मरण धर्मा होने से 'मरुत्' हैं। वे पवित्र ज्ञान-बल पाकर प्रभु की अर्चना करें, तीनों संयम बलों और तीन दिव्य ज्योतियों को अग्निवत्, विद्युत्, सूर्यवत् धारण करें।

अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २ ॥

भा०—(सुतस्य) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को (पपिवांसं) भोग वा पालन करने वाले (मन्दसानं) स्तुति योग्य एवं सुसन्तुष्ट (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा का (मरुतः) विद्वान् लोग और बलवान् वीरजन (यत्) जब (अनु आ अर्चन्) निरन्तर उसके अनुकूल होकर उसका आदर सत्कार करते हैं तब वह भी (वज्रम्) शत्रु

निवारक शस्त्र बल और वीर्य, पराक्रम को (आ दत्त) धारण करता है, (यत्) जब वह (अहिं) अभिमुख युद्धार्थ आये शत्रु और मेघ को विद्युत् वा सूर्यवत् (अभिहन्) मुकाबले पर मारता है, तब जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (यह्वीः अपः) बड़ी २ जलधाराएं चला देते हैं उसी प्रकार वह बड़ी आप्त प्रजाओं, सेनाओं की (यह्वीः) बड़ी २ पंक्तियों को (सर्त्तवा असृजत्) सरण या आक्रमण करने के लिये प्रेरित करे अथवा (अपः) आप्त या प्राप्त प्रजाओं को (यह्वीः) अपने पुत्रों के तुल्य (सर्त्तवा) सन्मार्ग में चलने के लिये प्रेरण करे।

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और (ब्रह्माणः मरुतः) चारों वेद विद्याओं को जानने वाले विद्वान् और वायुवत् तीव्रवेग से शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ वीर पुरुष तथा हे इन्द्र ! तू (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, सूर्य वा विद्युत् के तुल्य प्रतापी, तेजस्वी राजा (मे) मेरे (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम पुत्रवत् पालन करने योग्य एवं अभिषेकादि द्वारा संम्पादित (सोमस्य) ऐश्वर्य का (पेयाः) पालन और उपभोग कर। (तत्) वह राष्ट्र ही उस का (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर आदि है। उसके निमित्त यह राजा (मनुषे) मनुष्यों के उपकारार्थ (गाः) नाना देश भूमियों को (अविन्दत्) प्राप्त करे और (अहिं) सामने आये बाधक शत्रु मेघ को सूर्य, वायु वा विद्युत्वत् (अहन्) प्रहार कर दण्ड दे और (इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता राजा ही (अस्य पपिवान्) इस राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग और पालन करने वाला हो।

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४ ॥

भा०—राजा (आत्) अनन्तर, (रोदसी) पृथिवी और आकाश

दोनों को सूर्यवत् एक दूसरे को बलपूर्वक रोक रखने में समर्थ तुल्य बल स्वपक्ष और परपक्ष की दोनों सेनाओं को (वितरम्) विशेष रूप से अच्छी प्रकार (वि स्कभायत्) विविध उपायों से थामले। (चित् मृगं भियसे कः) जिस प्रकार सिंह मृग को भय देने के लिये गर्जना करता है उसी प्रकार वह राजा भी (सं विव्यानः) अच्छी प्रकार मिल कर आगे बढ़ता हुआ शत्रु को (भियसे) डराने के लिये उसको (मृगं कः) मृग के समान भीरु करे अथवा वह (भियसे) शत्रु को भयभीत करने के लिये अपने आप को (मृगं कः) सिंहवत् बना लेवे। इस प्रकार वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (जिगर्त्तिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले शत्रु को (अप जर्गुराणः) दूर भगाता हुआ (श्वसन्तं) हांपते हुए, (तं) उस (दानवं) प्रजानाशक दुष्ट पुरुष वा शत्रुजन का (प्रति अव हन्) मुकाबला करे, सबके समक्ष नीचे गिरा कर दण्ड दे, मारे।

अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम्।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः॥५॥२३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन्! (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् जन और वीरजन, राष्ट्र के वासी मनुष्यगण (तुभ्यम्) तुझे (क्रत्वा अनु) कर्म के अनुसार (सोम-पेयम्) राष्ट्रैश्वर्य का उपभोग योग्य अंश (अददुः) प्रदान करें। (अध) और (यत्) जब तू (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी तेरे (पुरः) आगे (पतन्तीः) चलने हारी, एवं ऐश्वर्य से समृद्ध होती हुई (हरितः) तीव्र वेग से जाने वाली सेनाओं, (उपराः) समीप में विद्यमान (सतीः) प्राप्त प्रजाओं को भी (एतशे) सूर्यवत् तेजस्वी, अश्ववत् बलवान् पुरुष के उपभोग के लिये या उसके अधीन (कः) करे। राजा विजित राष्ट्रों और आगे चलने वाली सेनाओं को उत्तम, योग्य, तेजस्वी पुरुष के अधीन करे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

नव यद॑स्य नव॒तिं च॑ भो॒गान्त्साकं वज्रे॑ण म॒घवा॑ विवृ॒श्चत् ।
अर्च॒न्तीन्द्रं॑ म॒रुतः॑ स॒धस्थे॒ त्रैष्टु॑भेन॒ वच॑सा वाधत॒ द्याम् ॥६॥

भा०—(मघवा) उत्तम धन-सम्पदा का स्वामी (अस्य) इस प्रजाजन या राष्ट्र के (नव नवतिं च भोगान्) ९९ भोग योग्य, पालन करने योग्य और प्रजाओं का पालन करने वाले नगरों और नाना भोग्य पदार्थों को (वज्रेण साकं) अपने शस्त्रास्त्र बल के साथ २ उसके साहाय्य उसी प्रकार (विवृश्चत्) तैयार करावे जैसे विश्वकर्मा शिल्पी अपने बसौले से सेना के उपयोगी पदार्थों को बनाता है। (मरुतः) सब मनुष्य (सधस्थे) एक साथ बैठने के स्थान में (इन्द्रं) शत्रुघाती समृद्धिमान् पराक्रमी पुरुष की (अर्चन्ति) स्तुति करें और (त्रैष्टुभेन वचसा) तीनों मान्य परिषदों द्वारा प्रस्तुत प्रशंसित (वचसा) राजकीय शासन से (द्यां) पृथिवी का (बाधत) शासन करे।

सखा॒ सख्ये॑ अपच॒त्तूय॑म॒ग्निर॒स्य क्रत्वा॑ महि॒षा त्री श॒तानि॑ ।
त्री सा॒कमिन्द्रो॒ मनु॑षः॒ सरां॑सि सु॒तं पि॑बद्वृत्र॒हत्या॑य॒ सोम॑म् ॥७॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, ज्ञानवान् विद्वान् नायक पुरुष (सखा) मित्र होकर (तूयम्) अति शीघ्र ही (अस्य क्रत्वा) इस राजा या सेनापति की बुद्धि या कर्म के निमित्त या उसके अनुसार (त्री शतानि महिषा) तीन सौ बड़े २ बलवान् पुरुषों को (अपचत्) परिपक्व करे, कार्य में खूब सु-अभ्यस्त करे, उनको राज्य के कार्य में खूब सुदृढ़ करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (साकम्) सबके साथ मिलकर (मनुषः) मननशील प्रजाजन के (त्री सरांसि) तीन 'सरस्' अर्थात् उत्तम ज्ञान वाली तीन परिषदों वा तीन प्रकार अभिसरण करने वाले सैन्यों को (अपचत्) परिपक्व करे और पालन करे। और इस प्रकार (वृत्र हत्याय) बढ़ते शत्रु जन वा अज्ञान को नाश करने के लिये प्रजाजन को (सुतम्) पुत्रवत् (अपिबत्) पालन करे और (सोमं)

ऐश्वर्यमय राष्ट्र को ओषधि रस के समान गुणकारी रूप से (अपिवत्) पान या पालन उपभोग करे। तीन २ सौ जवानों को सधाने वाले गुरु या नायक 'अग्नि' हों। सृ गतौ, षद्लृ गतौ दोनों समानार्थक हैं। अतः सरस्, सदस् दोनों समानार्थक हैं।

त्री यच्छ॒ता म॑हि॒षाणा॑म॒घो मास्त्री सरां॑सि म॒घवा॑ सो॒म्यापाः॑।
का॒रं न विश्वे॑ अह्वन्त दे॒वा भर॒मिन्द्रा॑य॒ यदहिं॑ ज॒घान॑॥ ८॥

भा०—हे राजन्! (यत्) जो तू (महिषाणां) बड़े, बल, ऐश्वर्य स्वामी लोगों के (त्री शता) तीन सौ जनों का स्वयं (अघः) अक्षत, अदण्डनीय और (माः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ होकर (आपाः) पालन करता है और (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (त्री) तीन (सोम्या) सोम, राष्ट्रैश्वर्य के हितैषी (सरांसि) उत्तमज्ञान बल सम्पन्न परिषदों को भी (आपाः) पालन करता है (यद्) जो (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त पद को प्राप्त करने के लिये (अहिं जघान) मुकाबले पर आये शत्रु को दण्डित करता है तब उसी करण (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् पुरुष (भरम्) सबके भरण पोषण करने वाले तुझको (कारं न) समर्थ कार्यकर्त्ता सा जानकर (अह्वन्त) आदर से बुलावें और स्तुति करें।

उ॒शना॒ यत्स॑ह॒स्यै॒३॑रया॑तं गृ॒हमि॑न्द्र जूजु॒वाने॑भि॒रश्वैः॑।
व॒न्वा॒नो अत्र॑ स॒रथं॑ ययाथ॒ कुत्से॑न दे॒वैरव॑नो॒र्ह॒ शुष्ण॑म्॥ ९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! राजन्! तू (उशनाः) स्वयं ऐश्वर्य समृद्धि की कामना करता हुआ और सैन्य जन दोनों (यत्) जब (जुजुवानेभिः) वेगवान् (अश्वैः) घुड़सवारों सहित (गृहम् अयातम्) अपने घर को आते हो, तब तू (अत्र) इस राष्ट्र में (वन्वानः) ऐश्वर्य का भोग करता हुआ, (सरथं) रथ सैन्य के साथ (ययाथ) प्रयाण कर और (कुत्सेन) शस्त्र बल और (देवैः) विद्वानों और वीर

पुरुषों सहित (शुष्णम्) शत्रुशोषक सैन्य बल की (अवनोः) रक्षा कर और (शुपाम्) प्रजाशोषक दुष्ट जनो का (अवनोः) विनाश कर, दण्डित कर।

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः १०॥२४

भा०—हे राजन् ! तू (सूर्यस्य) सूर्य समान तेजस्वी राजा के (अन्यत् चक्रम्) एक चक्र को (कुत्साय) वज्र, शस्त्रास्त्र वल के धारण के लिये (प्र अवृहः) खूब उन्नत कर, आगे बढ़ा और (अन्यत्) दूसरे सैन्यचक्र को (वरिवः यातवे) धनैश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (अकः) तैयार कर। (अनासः) नाक मुख रहित, प्रमुख नायक रहित, (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को वा प्रत्यक्ष अपराध के कारण कुछ भी अपनी रक्षार्थ न कह सकने वाले दुष्ट पुरुषों को (वधेन) शस्त्र द्वारा वध करके (अमृणः) विनाश कर और (मृध्रवाचः) हिंस्र, पीड़ाकारी, मर्मवेधी वचन बोलने वालों को (दुर्योणे नि आवृणक्) कारागार में वन्द करके रख। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११॥

भा०—हे राजन् ! (गौरिवीतेः) वाणी को प्रकाशित करने वाले वाग्मी जन के (स्तोमासः) उत्तम स्तुति वचन तथा उसके अधीन (स्तोमासः) प्रशंसित वीर समूह (पिप्रुम्) पालन और राष्ट्र को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाले (त्वा) तुझ को (अवर्धन्) सदा बढ़ावें। तू (वैदथिनाय) संग्राम, धन तथा ज्ञान को प्राप्त करने वाले जनों के उपकार के लिये (अरन्धयः) शत्रु का नाश कर। (ऋजिश्वा) सरल स्वभाव के कुत्ते के समान भोजनमात्र से प्रेमबद्ध होकर भृत्यजन (त्वाम्) तुझ को (सख्याय आ चक्रे) मित्र भाव के लिये स्वीकार करें। तू (पक्तीः) पकाने या परिपक्व, सु-अभ्यस्त करने योग्य नाना पदार्थों वा कार्यों को (पचन्)

पकाता वा दृढ़ करता हुआ (अस्य) इस राष्ट्र के (सोमम्) ऐश्वर्य का (अपिबः) पालन और उपभोग कर ।

नवंग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशंग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२॥

भा०—(नवग्वासः) विद्या के मार्ग में नये ही गमन करने वाले (सुत-सोमासः) पुत्रवत् सावित्री में उत्पन्न सौम्य शिष्य गण (दश-ग्वासः) दशों इन्द्रियों को विजय करके (इन्द्रं) अज्ञान के विदारण और तत्व के साक्षात् करने वाले गुरु को (अर्कैः) अर्चना करने योग्य शुश्रूषा, स्तुति वचन आदि उपायों से देववत् (अभि अर्चन्ति) सब प्रकार से आदर सत्कार करते हैं । (चित् नरः अपिधानवन्तं गव्यम् ऊर्वम् यथा-अप व्रन्) जिस प्रकार लोग ढकनेदार गोदुग्ध से पूर्ण बड़े पात्र को खोलते हैं और उसमें से अभीष्ट गोरस लेकर पान करते हैं उसी प्रकार (शशमानाः नरः) उसकी प्रशंसा स्तुति करने वाले वा निरन्तर उत्तम से उत्तम पद पर वेग से प्रसन्नता पूर्वक जाते हुऐ छात्र लोग (अपि धान-वन्तं) आच्छादन से युक्त (ऊर्वम्) अज्ञाननाशक (गव्यं) वेद वाणी के पात्र रूप (तं) उस आचार्य को भी (अप व्रन्) अपने प्रति खोलें, उसे प्रसन्न कर उसका ज्ञान प्राप्त करें । इसी प्रकार नव २ स्तुतिकर्त्ता, जिते-न्द्रिय लोग परमेश्वर की स्तुति करें । स्तुत्य, विघ्ननाशक मानो आवरण में छुपे गुह्य परमेश्वर को शमादि के अभ्यासी, उन्नतिशील भक्त जन अपने प्रति प्रकाशित करें अपने और उपास्य के बीच के आवरण को दूर करें । हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । (२) नव भूमिपति एवं दश ग्रामाधिपति राजा का आदर करें, उत्तम जन ही भूमि के महान् शत्रुहन्ता स्वामी को पर्दे के पीछे न रख कर अपने प्रति खोलें उसका विशेष परिचय प्राप्त करें ।

कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम, पूज्य, दानयोग्य ऐश्वर्य एवं ज्ञान से सम्पन्न प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरी मैं (कथो नु) किस प्रकार (परि चराणि) सेवा करूं ! हे (शविष्ठ) सर्वशक्तिमन् ! तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (या वीर्या चकर्थ) जिन बलों, वा अधिकारों को प्राप्त करता है, (या चो) और जिन बलयुक्त कार्यों या शक्तियों को (नु) शीघ्र ही (नव्या) नये रूप से (कृणवः) प्राप्त करता है, (ते ता) तेरे उन अधिकारों और बलयुक्त कार्यों का हम लोग (विदथेषु) यज्ञ, संग्राम, और ज्ञानोपदेशादि के अवसरों में (प्र ब्रवाम) अच्छी प्रकार कहें, अन्यों को उपदेश करें। (२) परमेश्वर के जो महान् जगत् आदि कार्य उसने बनाये और जिनको वह बनाता ही जाता है उनकी हम सदा चर्चा किया करें।

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः १४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अपरीतः) विना किसी से सहाय प्राप्त किये, किसी से विना रुके, (जनुषा वीर्येण) जन्मसिद्ध स्वाभाविक, बल वा अधिकार से (एता विश्वा भूरि) ये समस्त बहुत से कार्यों को (चकृवान्) करता हुआ (दधृष्वान्) शत्रुओं का धर्षण वा पराजय करता हुआ, (या चित् नु) और जिन २ कार्यों को भी तू (कृणवः) करे (ते अस्याः तविष्याः) तेरी इस बड़ी शक्ति या बलवती सेना का दूसरा (दधृष्वान् वर्त्ता च नास्ति) पराजयकारी और वशकारी भी नहीं है। तू ही सब से मुख्य प्रबल विजेता होकर रह। (२) परमेश्वर जन्म से रहित होकर अपने बल से समस्त विश्वों को बनाता जा रहा है। वह सर्व शक्तिशाली होने से वज्री है। उसकी बड़ी शक्ति का धारक, और वारक दूसरा इस जगत् में नहीं है। वह अद्वितीय है।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् १५।२९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! (या) जिन (नव्या) अति उत्तम स्तुत्य, (ब्रह्म) धनों, ऐश्वर्यों को हम (अकर्म) उत्पन्न करें और (या क्रियमाणा) जो किये जारहे हैं उन सब को तू (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर। मैं (अपाः) उत्तम काम करने हारा (धीरः) बुद्धिमान् होकर (वसूयुः) सब को बसाने वाले तेरी कामना करता हुआ, और धन का स्वामी होकर (सुकृता) उत्तम रीति से बनाये (भद्रा) सुखकारी (वस्त्रा इव) वस्त्रों के समान वा (रथेन) रथ के समान रमणीय (अतक्षम्) बनाऊं। प्रजा जन नाना शिल्प आदि बनावें, ऐश्वर्यवान् राजा उपभोग करे, प्रजा समृद्ध हो। (२) परमेश्वर की हम सब स्तुति करें। वह उन्हें स्वीकार करे। ये उस सब में बसे आत्मा का अभिलाषी सदाचारी होकर उत्तम कर्मों को वस्त्र वा रथवत् सावधानी से किया करूं। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[३०]

बभ्रुरात्रेय ऋषिः॥ इन्द्र ऋणञ्चयश्च देवता॥ छन्दः—१, ५, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। १० विराट् त्रिष्टुप्। ७, ११, १२ त्रिष्टुप्। ६, १३ पंक्तिः। १४ स्वराट् पंक्तिः। १५ भुरिक् पंक्तिः॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

क्व१स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती॥१॥

भा०—(स्यः वीरः) वह विविध प्रकार से गति या सञ्चालन उत्पन्न करने वाला विद्युत् तत्व (क्व) कहां विद्यमान है? (हरिभ्याम् ईयमानम्) गति करने वाले दो तत्वों से प्रकट होने वाले (सुख-रथम्) सुखकारी रथ को चलाने वा सुख से आकाश [ईथर] में वेग से जाने वाले (इन्द्रं कः अपश्यत्) 'इन्द्र' विद्युत् को कौन देखता है? (यः) जो विद्युत् तत्व (वज्री) अति बलवान् होकर (राया) अपने ऐश्वर्य से

(सुत-सोमम्) रसादि साधन करने वाले को चाहता हुआ (पुरुहूतः) नाना प्रकार से वर्णित या प्राप्त किया जाकर (ऊती) अपने वेग से (तत्-ओकः गंता) उन २ नाना स्थानों को प्राप्त होता है। (२) राजा के पक्ष में—(स्यः वीरः क्व) वह वीर कहां हैं ? (हरिभ्याम् ईयमानं सुख-रथम् इन्द्रं कः अपश्यत्) घोड़ों से लेजाये जाते हुए सुखप्रद रथ पर सवार उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को कौन देखता है ? अर्थात् कौन ऐसा ऐश्वर्य, मान पाता है ? [उत्तर] वही पुरुष इस राजोचित सुख को प्राप्त करता है (यः) जो (वज्री) बलवान् शस्त्र बल का स्वामी होकर (राया) ऐश्वर्य से (सुत-सोमम्) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र के प्रजा जन को पुत्र-शिष्यवत् (इच्छन्) चाहता हुआ (पुरुहूतः) बहुत सी प्रजाओं से आदर पूर्वक बुलाया जाकर (ऊती) रक्षा सामर्थ्य, या शक्ति से युक्त हो कर (तत् ओकः गन्ता) इस परम, उत्तम पद को प्राप्त करता है। (३) आत्मा इन्द्र है, सुख पूर्वक इन्द्रियों में रमण करने से सुख-रथ है। प्राण अपान हरि हैं। ज्ञान से वज्री है। वह ज्ञान बल से उस परम पद को प्राप्त करता है।

अवा॑चचक्षं प॒दम॑स्य स॒स्वरु॒ग्रं नि॑धा॒तुरन्वा॑यमि॒च्छन् ।
अपृ॑च्छम॒न्याँ उ॒त ते म॑ आहु॒रिन्द्रं॒ नरो॑ बुबुधा॒ना अ॑शेम ॥ २ ॥

भा०—मैं (अस्य) इस (निधातुः) समस्त संसार को नियम में धारण करने वाले और प्रकृति के भीतर बीज निधान करने या उत्पन्न करने वाले परमेश्वर का (स-स्वः) परम सुख युक्त तेजोमय और वाङ्मय (उग्रम्) दुष्टों के लिये अति भयप्रद (पदम्) स्वरूप को मैं (अव चचक्षम्) निरन्तर विनयपूर्वक दर्शन करूं। और उसी को (इच्छन्) चाहता हुआ (अनु आयम्) निरन्तर प्राप्त होऊं। अथवा (तस्य आयम् अनु इच्छन्) उस प्रभु को प्राप्त करने की नित्य अभिलाषा करता हुआ (अन्यान् अपृच्छम्) मैं और विद्वानों से प्रश्न करूं। (उत) और (ते) वे (मे-

आहुः) मुझे उपदेश करे कि (बुबुधानाः नरः) ज्ञान करते हुए हम ज्ञानी, प्रबुद्ध लोग ही (इन्द्रं अशेम) 'इन्द्र' परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हैं।

प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे विद्वन् ! (सुते) पुत्रवत् पालनीय प्रजाजन एवं ऐश्वर्यों के प्राप्त होने पर (या ते कृतानि) तेरे हित के जो कर्त्तव्य हैं (यानि) जो कर्त्तव्य तुझे (नः जुजोषः) हमारे हितार्थ प्रेमपूर्वक करने चाहियें (वयं) हम उनको (ते प्रब्रवाम नु) तेरे लिये अवश्य कहें ! तुझे बतलावें। (अविद्वान्) ज्ञान से रहित पुरुष को चाहिये कि वह (वेदद्) ज्ञान प्राप्त करे और (शृणवत् च) वह सदा गुरु से उपदेश श्रवण किया करे। क्योंकि (अयं) यह पुरुष (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर ही (मघवा) ऐश्वर्यवान् (सर्वसेनः) सब प्रकार की सेनाओं का स्वामी होता और (वहते) राष्ट्र आदि के कार्यों को अपने ऊपर उठाता है।

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन् ! हे शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (जातः) विद्यासम्पन्न और ऐश्वर्यसमृद्धि से प्रसिद्ध होकर भी अपने (मनः) मन और ज्ञान को (स्थिरं चकृषे) स्थिर, निश्चित कर। क्योंकि एकाग्र चित्त होकर मनुष्य (एकः) अकेला भी (भूयसः चित्) बहुत से लोगों के भी मुकाबले पर (वेषीत्) जाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार सूर्य (शवसा अश्मानं दिद्युतः) अपने तेजो बल से मेघ को चमका देता है उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू भी (शवसा) अपने बाहु बल

वा सैन्यबल और ज्ञानबल से (अश्मानं) व्यापक सैन्य वा शस्त्र बल को (विद्युतः) प्रकाशित और प्रकम्पित कर और (उस्रियाणाम् गवाम्) सूर्य जिस प्रकार ऊपर निकलने वाली किरणों को लाभ करता है उसी प्रकार तू भी उन्नति पथ पर जाने वाली (गवाम्) भूमियों और उन्नति का ओर ले जाने वाली वेदवाणियों का लाभ और ज्ञान कर उनको अपने वश कर। उनका अभ्यास कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—जिस समय हे प्रभु तुम प्रकट होते हो तो उपासक का मन स्थिर कर देते हो। वह अकेला तब बहुत से बाधक कारणों का मुकाबला कर लेता है, आत्मा को प्रकाशित कर लेता और ऊर्ध्वगामी किरणों वा उच्च वेदमय ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है।

परो यत्त्वं पर॒म आ॒जनि॑ष्ठाः परा॒वति॑ श्रु॒त्यं॑ नाम॒ बिभ्र॑त्।
अत॑श्चि॒दिन्द्रा॑दभयन्त दे॒वा विश्वा॑ अ॒पो अ॑जयद्दा॒सप॑त्नीः॥५।२६॥

भा०—हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! विद्युत्वत् तेजस्विन्! (यत्) जो (त्वं) तू (परमः) सब से उत्कृष्ट, अधिक शक्तिशाली होकर (परः) दूर तक भी (आ अजनिष्ठाः) आदर से सर्वत्र प्रसिद्ध होता है, और (परावति) दूर देश में भी (श्रुत्यं) श्रवण करने योग्य (नाम बिभ्रत्) नाम को धारण करता है। (अतः चित्) इसीलिये (इन्द्राद्) विद्युत् के तुल्य अति तीव्र और बलवान् तुझ से (देवाः) सब विद्वान्, प्रजाजन, विजिगीषु वा धनार्थी लोग भी (अभयन्त) भय करते हैं और वह राजा (विश्वाः दासपत्नीः) समस्त नाशकारी शत्रुजनों, भृत्यजनों को अपना पति बनाने वाली, उसके अधीन स्थित सेनाओं और (अपः) आप्त प्रजाओं को (अजयत्) विजय करता है, तू सबसे उत्कृष्ट पद पर विराजता है। (२) विद्युत् परम स्थान मेघ में उत्पन्न होता, दूर से गर्जन रूप में श्रवण द्वारा जाना जाता है, सब प्रकाश उससे न्यून होकर उससे

दब जाते हैं, वह जल देने वाले मेघों को पालक बनाने वाली जल धाराओं पर विजय पाता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार (सुशेवाः मरुतः अर्चन्ति अन्धः सुन्वन्ति) उत्तम सुखकारी वायु चलते हैं और अन्न को भूमि पर उत्पन्न करते हैं और (इन्द्रः अपः आशयानम् ओहानम् अहिम् मायाभिः सक्षत्) विद्युत् वा सूर्य अन्तरिक्ष या सूक्ष्म जलों में विद्यमान गतिशील मेघ को अपनी शक्तियों से व्यापता है उसी प्रकार हे राजन्! हे विद्वन्! (एते मरुतः) ये बलवान् वीर पुरुष, व्यापारीजन, और विद्वान् प्रजाजन, (सुशेवाः) उत्तम सुखसमृद्ध होकर (तुभ्य इत) तेरे लिये ही (अर्कं) अर्चनायोग्य सत्कारादि वचन (अर्चन्ति) कहते हैं और (अन्धः सुन्वन्ति) तेरे लिये ही भूमि में अन्न और उत्तम २ भोजन उत्पन्न करते और तैयार करते हैं। तू (इन्द्रः) विद्युत् के समान उग्र होकर (मायाभिः) अपनी हिंसाकारी शक्तियों से सम्पन्न होकर उनसे (अपः आशयानम्) आप्त प्रजाजनों के बीच गुप्त रूप से छुपे (ओहानम्) सत् कर्म पथ का त्याग करने वाले, (मायिनम्) कुटिल मायावी, (अहिम्) सर्पवत् हिंसक अभिमुख आये दुष्ट वा शत्रुजन को (प्रसक्षत्) बलात् नाश करे।

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त! आप (सञ्चकानः) प्रजा से प्रशंसित एवं प्रजा की स्वयं कामना करता हुआ, (गवा दानम् इन्वन्) 'गौ' के तुल्य दुग्धवत् भूमि से करादि अन्न ऐश्वर्य दान को प्रजा से प्राप्त करता और (जनुषा) अपनी प्रसिद्धि वा स्वभाव से ही (मृधः)

संग्रामकारी शत्रुओं को (सु) सुखपूर्वक (वि अहन्) विविध उपायों से मारे। और (यत्) जो राजा (मनवे) मनुष्य प्रजा के हित के लिये (गातुम्) भूमि को (इच्छन्) चाहा करता है वह तभी (अत्र) इस राष्ट्र में (न-मुचेः) कभी विना दण्ड दिये न छोड़ने योग्य (दासस्य) प्रजा के विनाशकारी शत्रु या दुष्ट पुरुष का (शिरः) शिर (अवर्त्तयः) काट डालता है। अथवा—(मनवे गातुम् इच्छन्) ज्ञानयुक्त प्रजाजन के लिये भूमि चाहने वाला राजा (न-मुचेः) अपना संग न छोड़ने वाले स्वामिभक्त (दासस्य) दास, भृत्यजन के (शिरः अवर्त्तयः) शिर को मुकुट पगड़ी आदि से सुशोभित करता है।

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्। अश्मानं चित्स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः राजन्! सेनापते! (नमुचेः दासस्य शिरः मथायन्) जिस प्रकार जल न त्यागने वाले मेघ के शिर, अर्थात् उत्तम भाग को छिन्न भिन्न करता हुआ सूर्य (मरुद्भ्यः प्रवर्त्तमानं स्वर्यं अश्मानम् चक्रिया इव रोदसी प्रवर्त्तयति) वायुओं के संघर्ष से उत्पन्न होने वाले अति शब्दकारी विद्युत् को दो चक्रों के बीच लगे धुरे के समान आकाश और भूमि के बीच घुमा देता है, उसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन्! सेनापते! तू (माम् युजं हि अकृथाः) मुझको अपना सहायक बना ले। (आत्) अनन्तर (नमुचेः) जीता न छोड़ने योग्य (दासस्य शिरः मथायन्) नाशकारी शत्रु के शिर को कुचलता हुआ (अश्मानं चित्) विद्युत् के समान व्यापक (स्वर्यं) शत्रु को उपताप वा पीड़ा देने वाले और (वर्त्तमानं) आगे बढ़ते हुए सैन्यबल, आग्नेयास्त्रादि को (मरुद्भ्यः) अपने वीरों के हितार्थ (प्र वर्त्तयः) आगे बढ़ा और (रोदसी) एक दूसरे को रोकने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को (चक्रिया इव) दो चक्रों के तुल्य चला।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥

भा०—(दासः) नाशकारी शत्रु जिन (आयुधानि) शस्त्र-बलों को (चक्रे) बनाता है वे (स्त्रियः हि) स्त्रियों के समान भीरु और निर्बल हैं । (अस्य) उसकी (अबलाः) बल रहित (सेनाः) सेनाएं (मा) मेरे प्रति (किं करन्) क्या कर सकती हैं ? (अस्य) इस शत्रु के (उभे) दोनों (धेने) पोषक सेनाओं को राजा (अन्तः अख्यत्) भीतर तक खूब अच्छी प्रकार देख ले । (अथ) और उसके बाद (इन्द्रः) बलवान् सेनापति या राजा (युधये) युद्ध करने के लिये (दस्युम् प्रति) दुष्ट शत्रु को लक्ष्य करके (उप प्र ऐत्) उसके प्रति प्रयाण करे ।

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् १०।२५

भा०—(यत्) जो भूमि या राष्ट्र (इह इह) यहां यहां, अनेक स्थानों पर की अपने (वत्सैः) भीतर वसने वाले प्रजाजनों से, बछड़ों से गौवों के समान (वियुताः आसन्) वियुक्त हों, वे (गावः) भूमियां या रियासतें (अभितः) सब ओर से आकर (अत्र) इस राजा के अधीन (सम् नवन्त) एक साथ मिलकर रहें । (अस्य) इस राजा के (शाकैः) शक्तिशाली सैन्यों से सहायवान् होकर (यत्) जब (सु-सुताः सोमासः) उत्तम आदरपूर्वक अभिषिक्त, पुत्रवत् पालित अध्यक्षजन (ईम् अमन्दन्) उसको प्रार्थना करें तब वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पराक्रमी राजा (ताः सम् असृजत्) उन सबको मिलाकर एक बड़ी शक्ति बनाले । इति सप्तविंशो वर्गः॥

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (सोमाः) ऐश्वर्य युक्त अध्यक्ष जन (बभ्रु-धूताः) अपने भरण पोषण करने वाले स्वामी से प्रेरित एवं भययुक्त

होकर (ईम्) अपने प्रबल स्वामी की (अमन्दन्) स्तुति करते हैं तब वह (वृषभः) बलवान् धुरन्धर पुरुष (सदनेषु) नाना सभाओं के बीच या नाना अधिकारपदों पर (अरोरवीत्) आज्ञाएं प्रकट करे। (अस्य) इस राष्ट्र का (पपिवान्) पालनकर्त्ता और उपभोक्ता (पुरन्दरः इन्द्रः) शत्रु गणों से लड़ने में समर्थ बलवान् राजा (उस्रियाणाम् गवाम्) उत्तम २ फलोत्पादक भूमियों को (पुनः अदात्) वार २ प्रदान करे। उनको अध्यक्षों में विभक्त करे। अथवा वह उत्तम रूप से निकलने वाली उदात्त वाणियों वा आज्ञाओं को पुनः २ प्रदान करे।

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥

भा०—(गवां चत्वारि सहस्रा ददतः सूर्यस्य रुशमाः) चार हज़ार किरणें देने वाले सूर्य के दीप्ति किरण जिस प्रकार (इदं भद्रम् अक्रन्)यह सब कल्याणमय सुखदायक प्रकाश उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! नायक ! (गवां चत्वारि सहस्रा ददतः) चार हज़ार आज्ञा-वाणियों या अध्यक्षों को इतनी भूमियां प्रदान करते हुए राजा के अधीन अथवा (ददतः) दानशील राजा के (गवां चत्वारि सहस्रा) किरणों के तुल्य उसके चार सहस्र (रुशमाः) शत्रु हिंसक सैन्य (इदं भद्रम् अक्रन्) यह सुखकारी राज्यप्रबन्ध बनावें। और हम (नृणां नृतमस्य) नायकों में श्रेष्ठ नायक राजा के भृत्यजन (ऋणञ्चयस्य) धन संग्रही राजा के (मघानि) उत्तम धनों को (प्रयता) प्रयत्न करके उद्योग पूर्वक (प्रति अग्रभीष्म) स्वीकार करें।

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥ १३ ॥

भा०—लोग (गवां सहस्रैः) हज़ारों गौवों से (अस्तं) घर को जिस प्रकार (सुपेशसम्) उत्तम धनधान्य युक्त, सुरूप, सुन्दर बना लेते

हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (रुशमासः) तेजस्वी वीर पुरुष (गवां सहस्रैः) सहस्रों भूमियों से (मा) मुझ राष्ट्र वासी प्रजा-जन को (सुपेशसं) उत्तम सुवर्णादि से सम्पन्न (अव सृजन्ति) करें। (अक्तोः व्युष्टौ यथा सुतासः इन्द्रम् अममन्दुः) रात्रि के अनन्तर प्रातः उषाकाल होने पर जिस प्रकार बच्चे पिता को प्रसन्न करते हैं उसी प्रकार (परितक्म्यायाः व्युष्टौ) सब तरफ़ आनन्द प्रसन्नता की वेला के आगमन पर (तीव्राः) तीव्र (सुतासः) अभिषिक्त वीर पुरुष भी (इन्द्रम् अममन्दुः) अपने राजा को प्रसन्न करें।

औच्छ॒त्सा रात्री॒ परि॑तक्म्या॒याँ ऋ॑ण॒ञ्च॒ये राज॑नि रु॒शमा॑नाम्।
अत्यो॒ न वा॒जी र॒घुर॒ज्यमा॑नो ब॒भ्रुश्च॒त्वार्य॑सनत्स॒हस्रा॑ ॥१४॥

भा०—(रुशमानां) शत्रुनाशकारी वीर पुरुषों को (ऋणञ्चये राजनि) धन संग्रही राजा के रहते हुए (या) जो प्रजा (परितक्म्यायां) सब प्रकार के आनन्द प्रमोदों से पूर्ण होती है (सा) वह (रात्री) रात्रि के समान सुखदायक होकर भी (औच्छत्) सूर्य से रात्रिवत् ही और अधिक प्रकाशित हो जाती है। (वाजी अत्यः न) वेगवान् अश्ववत् सूर्य के तुल्य ही वह राजा ऐश्वर्यवान् और सबको अति-क्रमण करके (रघुः) वेग से उन्नति-पथ पर जाने वाला (बभ्रुः) प्रजा का धारक पोषक और (अज्यमानः) स्वयं प्रकाशित होकर (चत्वारि सहस्रा) चारों सहस्रों भूमियों, ऐश्वर्यों या अध्यक्षों को सहस्रों किरणों को सूर्यवत् (असनत्) उपभोग करता है, उनपर अधिपति होकर रहता है।

चतुः॑सह॒स्रं गव्य॑स्य प॒श्वः प्रत्य॑ग्रभीष्म रु॒शमे॑ष्वग्ने।
घ॒र्मश्चि॑त्त॒प्तः प्र॒वृजे॒ य आसी॑दय॒स्मय॒स्तम्वादा॑म॒ विप्राः॑ ॥१५।२८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हम प्रजाजन (गव्यस्य अश्वः चतुः सहस्रं) सबको दिखाने वाले प्रकाशक चार सहस्र

किरणों को हम प्रत्यक्ष ग्रहण करते हैं उसी प्रकार प्रजाजन हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक! हे राजा (गव्यस्य पश्वः चतुः सहस्रं) चार हजार गवादि रूप पशु के तुल्य तेरे अधीन रहने वाले (गव्यस्य पश्वः) भूमि के हितकारी प्रजा के कार्यव्यवहारों को देखने वाले हैं हम उन से (प्रति अग्रभीष्म) प्रत्येक को स्वीकार करें। और (यः) जो (अयस्मयः) सुवर्णादि से सम्पन्न वा लोह के बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न होकर (धर्मः चित्) तेजस्वी सूर्य के समान (तप्तः) तप कर (प्रवृजे) शत्रु को दूर भगा देने में (आसीत्) समर्थ हो हे (विप्राः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुषो! हम (तम् उ आदाम्) उसको ही अपना नायक स्वीकार करें। इस सूक्त में 'सहस्र' शब्द अनेक वाचक है। चारों दिशाओं की अपेक्षा वे चार सहस्र कह दिये हैं अर्थात् चारों दिशाओं में विस्तृत हज़ारों। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[३१]

अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ १—८, १०—१३ इन्द्रः । ८ इन्द्रः कुत्सो वा । ८ इन्द्र उशना वा । ९ इन्द्रः कुत्सश्च देवते ॥ छन्दः—१, २, ५, ७, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १० त्रिष्टुप् । १३ विराट्त्रिष्टुप् । ८, १२ स्वराट् पंक्तिः ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

**इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१॥**

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा सेनापति (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (यम्) जिस भी (वाजयन्तम्) संग्राम् करने वाले रथ सैन्य के प्रमुख पद पर रथवत् (अधि अस्थात्) अधिष्ठाता होकर विराजे वह सेनानायक सारथि के तुल्य ही उस (रथाय) रथ के सञ्चालन के लिये अपने को (प्रवतं करोति) सबसे अधिक योग्य बनावे और रथ सैन्य के लिये उत्तम कर्त्तव्य-पथ भी तैयार करे। क्योंकि वह (गोपाः)

भूमिपति, किरणपति सूर्य के समान, वा गोपाल के समान ही (पश्वः भूमा इव) सैन्य समूहों को पशुओं के रेवड़ वा प्रकाश-किरण समूहों के तुल्य ही (वि उनोति) विविध दिशाओं में प्रेरित करता है। वह (अरिष्टः) स्वयं शत्रु से न मारा जा कर (सिषासन्) सैन्यों को विभाग करना, धन प्राप्त करना चाहता हुआ, सबसे (प्रथमः) मुख्य होकर (याति) प्रयाण करता है।

आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्व सैन्यों के स्वामिन्! हे (हरिवः) मनुष्यों के राजन्! स्वामिन्! तू (आ द्रव) सब तरफ़ जा, (प्र द्रव) आगे बढ़। (मा वि वेनः) कभी विपरीत, धर्मविरुद्ध कामना मत कर। हे (पिशङ्गराते) सुवर्ण के दान देने और करादि में भी सुवर्ण एवं परिपक्व धान्य लेने हारे! तू (नः अभि सचस्व) हम से समवाय बनाकर रह। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तत् अन्यत्) तुझ से दूसरा (वस्यः) श्रेष्ठ धनस्वामी भी (नहि अस्ति) नहीं है। आप ही (अमेनान् चित्) स्त्री रहित पुरुषों को भी (जनिवतः) उत्तम स्त्री युक्त (चकर्थ) करो। अर्थात् राजा अविवाहितों को विवाहित करने का प्रबन्ध करे। जिससे राष्ट्र की जन सम्पदा की वृद्धि हो।

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (सहसः उत् आ अजनिष्ट) तेजस्वी सूर्य से उषा का तेज प्रकट होता है, और वह (विश्वा इन्द्रियाणि देदिष्ट) समस्त चक्षुओं को सब पदार्थ दिखाता है (सुदुघाः प्र अचोदयत्) प्रकाश से पूर्ण करने वाली किरणों को आगे बढ़ाता और उनको ही (वव्रे अन्तः) अपने भीतर धारण करता और (ज्योतिषा संववृत्वत् तमः वि अवः)

अपने तेज से ही सबको ढक लेने वाले अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार (यत्) जो राजा (सहसः) अपने शत्रुपराजयकारी बल से स्वयं (सहः) शत्रु विजयी होकर (उत् आ अर्जनिष्ट) उदय को प्राप्त होता, उन्नत पद को प्राप्त करता है, वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, सूर्यवत् प्रतापी पुरुष (विश्वा इन्द्रियाणि) समस्त इन्द्रियों को आत्मा के समान, समस्त इन्द्रोचित, राजोचित ऐश्वर्यों को शत्रुहननकारी सैन्य बलों को भी (देदिष्ट) अपने वश करे। वह (वव्रे अन्तः) वरण करने वाले राष्ट्र के भीतर रहकर (सुदुघाः) गोष्ठ में स्थित दुधार गौओं के तुल्य राष्ट्र में विद्यमान सुसम्पन्न ऐश्वर्यप्रद प्रजाओं को (प्र अचोदयत्) अच्छी प्रकार शासन करे। और (ज्योतिषा) अपने तेज से (संववृत्वत् तमः) व्यापक शोक, खेदादि अज्ञान वा दुख को (वि अवः) दूर करे।

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतसी प्रजाओं द्वारा आदर पूर्वक सेनापति या राजा रूप से स्वीकृत राजन्! (अनवः) मनुष्य (ते अश्वाय) तेरे अश्व के लिये रथसैन्य (तक्षन्) तैयार करें। (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी (ते द्युमन्तं) तेरे लिये तेजस्वी (वज्रं तक्षत्) शस्त्र तैयार करें। इस प्रकार (इन्द्रं महयन्तः ब्रह्माणः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता पुरुष को वेदज्ञ विद्वान् धनी पुरुष (अर्कैः महयन्तः) अर्चना योग्य उत्तम स्तुति-वचनों और उत्तम अन्नों से सत्कार करते हुए (अहये हन्तवा) अभि-मुख खड़े शत्रु के मारने के लिये (अवर्धयन्) बढ़ावें, उसे अधिक शक्तिशाली करें। वाग्मी लोग उसे वचनों से और सम्पन्न पुरुष राशन आदि खाद्य सामग्री से उसे पुष्ट करें।

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ५।२९

भा०—(यत्) जो (वृषणः) शत्रु पर शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने वाले बलवान् वीर पुरुष हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! सेनापते ! (वृष्णे ते) तुझ बलवान् सेनापति के (अर्कम्) स्तुति योग्य पद को (अर्चान्) आदर करते हैं और (ये ग्रावाणः) जो स्तुतिकर्त्ता वा शस्त्रधारी क्षत्रिय लोग और (यत् सजोषाः अदितिः) जो समान प्रीति वाली अदीन, अपने मनोभाव प्रकट करने में स्वतन्त्र भूमिवासी प्रजा है और (ये) जो (पवयः) चक्रधारायें या वेगवान् सैन्य हैं (अनश्वासः) अश्वों से रहित, (अरथाः) रथों से रहित रहकर भी (इन्द्रेषिताः) अपने तेजस्वी सेनापति से प्रेरित, सञ्चालित होकर (दस्यून् अभि अवर्त्तन्त) दुष्ट शत्रुओं तक पहुंचें। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (शक्तीवः) शक्तिशालिन् ! (यः) जो तू (उभे रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि दोनों को जिस प्रकार धारण करता है उसी प्रकार (उभे रोदसी) एक दूसरे को रोक रखने वाली राजशक्ति और प्रजाशक्ति दोनों को (वि भर) विविध उपायों से धारण, पालन करता है, (मनवे) मनुष्यों के हितार्थ (दानुचित्राः अपः जयन्) दान योग्य पदार्थों से अद्भुत रूप से समृद्ध (अपः) आप्त प्रजाओं को भी धारण करता है इसलिये मैं विद्वान् जन (ते) तेरे (पूर्वाणि) पूर्व के पुरुषाओं से स्वीकृत (करणानि) कर्त्तव्य और (या नूतना चकर्थ) जो तू नये २ कार्य करे उन सबका मैं (प्र प्र वोचं) अच्छी प्रकार उपदेश करूं।

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः॥७॥

भा०—हे (विप्र) विविध ऐश्वर्यों वा उपायों से राष्ट्र को पूर्ण करने

वाले ! विद्वन् ! राजन् ! (यत्) जो तू (अहिम्) सन्मुख आये वा सूर्यवत् कुटिल दुष्ट पुरुष को (घ्नन्) मारता हुआ (अत्र) उस राष्ट्र में (ओजः) अपना पराक्रम बल (अमिमीथः) तैयार करता है, (शुष्णस्य चित्) शत्रु के शोपण या संताप करने वाले बल के समान ही (मायाः) शत्रु नाशकारी शक्तियों और बुद्धियों को भी (परि अगृभ्णाः) सब प्रकार से धारण करता है, और (प्रपित्वं) प्राप्य उद्देश्य को आगे (यन्) प्राप्त करता हुआ (दस्यून् अप असेधः) नाशकारी दुष्टों को दूर करता है, हे (दस्म) शत्रुनाशक राजन् ! (तत् इत्) यह ही (ते करणं) तेरा प्रधान कर्त्तव्य है ।

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (त्वम् पारः) तू प्रजा का उत्तम पालक और संकटों से तारक होकर (यादवे) यत्नशील और (तुर्वशाय) शत्रु हिंसक एवं धर्मार्थ काम मोक्ष चारों की कामना करने वाले प्रजाजन की समृद्धि के लिये (सुदघाः) उत्तम अन्नादि देने वाली जलधारा और ज्ञान दोहन करने वाले आप्त जनों को (अरमयः) खूब प्रसन्न स्वच्छ रख उनको जगह २ लेजा । तू (अयातम्) शत्रुओं से न प्राप्त होने योग्य (उग्रम्) अति प्रबल (कुत्सम् आवहः) शत्रुओं के अंगों को काटने में समर्थ तीक्ष्ण शस्त्र बल को धारण कर । और (उशनाः देवाः) कामना युक्त विजयार्थी मनुष्य (ह) भी (वां ह) सैन्य बल और उसके प्रति तुम दोनों को (सम् अरन्त) सदा सुप्रसन्न रक्खें ।

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९॥

भा०—हे (इन्द्राकुत्सा) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! हे कुत्स ! शत्रु का नाश करने वाले क्षत्रबल ! अथवा हे वेदों के उपदेष्टः ! (रथेन वहमाना)

रथ से जाते हुए (वाम्) आप दोनों को (अत्याः अपि) अश्व गण भी (कर्णे वहन्तु) अपने कान पर धारण करें। आप की आज्ञाएं कान लगा कर सुनें। आप दोनों (सीम्) सब ओर से (अद्रयः) प्राप्त प्रजाजनों के हित के लिये ही (निर्धमथः) उनके बीच से दुष्ट पुरुष को निकाल बाहर करो और (सधस्थात्) साथ रहने वाले (मघोनः हृदः) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र के मध्य भाग से भी (तमांसि निर्वरथः) सब प्रकार के अन्धकारों को दूर करो।

वात॑स्य यु॒क्तान्त्सु॒युज॑श्चि॒दश्वा॑न्क॒विश्चि॑दे॒षो अ॑जगन्नव॒स्युः ।
विश्वे॑ ते॒ अत्र॑ म॒रुत॒: सखा॑य॒ इन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि॒ तवि॑षीमवर्धन् ॥१०।३०॥

भा०—(कविः चित्) जिस प्रकार विद्वान् पुरुष (अवस्युः वातस्य सुयुजः युक्तान् अश्वान्) गमन करने की इच्छा वाला होकर वायु के बल से सुख से जुड़ने वाले, जुते अश्वों वा आशुगामी यन्त्रों को (अजगन्) प्राप्त करता और चलाता है। उस समय सब वायु ही उसके मित्र सहायक होते हैं। उसी प्रकार (अवस्युः) प्रजा की रक्षा करने की इच्छा वाला, रक्षक (एषः) वह राजा (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (सुयुजः) उत्तम मनोयोग देने वाले, (वातस्य) वायुवद् बलवान् पुरुष के अधीन (युक्तान्) नियुक्त पुरुषों को (अजगन्) प्राप्त करे, (अत्र) इस राज्य कार्य में (ते विश्वे मरुतः) वे सब मनुष्य हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सखायः) मित्र होकर (ते ब्रह्माणि तविषीम् अवर्धन्) तेरे धनों, ज्ञानों और बलवती सेना की भी वृद्धि करें। इति त्रिंशो वर्गः ॥

सूर॑श्चि॒द्रथं॒ परि॑तक्म्याया॒ं पूर्वं॑ कर॒दुप॑रं जूजु॒वांस॑म् ।
भर॑च्च॒क्रमेत॑श॒: सं रि॑णाति पु॒रो दध॑त्सनिष्यति॒ क्रतुं॑ नः ॥ ११ ॥

भा०—(सूरः चित्) जिस प्रकार कोई विद्वान् (परितक्म्यायां) चारों तरफ़ कठिनाई से जाने योग्य भूमि में (उपरं जूजुवांसं रथं पूर्वं

करत्) मेघ तक वेग से जाने वाले रथ का निर्माण करता है, उसमें (एतशः चक्रम्) अश्व के समान उसके स्थानापन्न एक चक्र (Fly wheel) ही उस रथ को (भरत्) गति देता है। वह (सं रिणाति) अच्छी प्रकार चलता है और (पुरः क्रतुं दधत्) रथ के अगले भाग में क्रियोत्पादक यन्त्र वा ऐञ्जिन बनाता है। उसी प्रकार (सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (परितक्म्यायाम्) सब तरफ़ से आपत्ति युक्त संग्रामादि वेला में (पूर्वम्) सबसे पहले (उपरं जूजुवांसं) मेघ तक वेग से जाने वाले (रथं) रथ सैन्य (करत्) तैयार करे। स्वयं (एतशः) अश्व के तुल्य अग्रगामी होकर (चक्रं भरत्) सैन्य चक्र को धारण करे। (सः क्रतुं दधत् पुरः सं रिणाति) वह प्रज्ञा को धारण करके आगे रहकर चले, (नः सनिष्यति) वह हम प्रजाजनों को विभक्त करे। अध्यात्म में—सुख दुःख देने वाली प्रकृति 'परितक्म्या' है, उससे उपराम, मृत्यु को प्राप्त होने वाला रथ देह है उसे प्रभु बनाता है। एतश, आत्मा है। पहले वह कर्म करता है। अनन्तर उसी का फल भोगता है।

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन्।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२ ॥

भा०—हे (जनाः) प्रजाजनो! (अयम् इन्द्रः) यह ऐश्वर्यवान्, राजा और विद्वान् (सखायं) अपने मित्र (सुत-सोमम्) पुत्रवत् प्रिय, राष्ट्र को (इच्छन्) हृदय से चाहता (अभिचक्षे) उसको देखने और उपदेश करने के लिये (आ जगाम) सब ओर जाया करे। (ग्रावा) ज्ञान का उपदेश करने वाला विद्वान् और शिला के समान दुष्टों का मुख मर्दन करने वाला क्षत्रिय (वदन्) उपदेश करता हुआ और आज्ञा प्रदान करता हुआ, (वेदिं) प्राप्त भूमि को (भ्रियाते) पालन करें (यस्य) जिसकी (जीरं) प्रेरणा को समस्त (अध्वर्यवः) अपनी हिंसा वा नाश न चाहने वाले प्रजा जन सदा (चरन्ति) आचरण करें, मानें।

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥३१॥

भा०—हे राजन् ! (ये मर्त्ताः) जो मनुष्य (ते) तुझे (चाकनन्त) चाहते हैं (ते) वे तुझे (चाकनन्त नु) सदा चाहते ही रहें । हे (अमृत) दीर्घायो ! हे चिरंजीव ! आयुष्मन् ! (ते) वे लोग (ते अंहः) तेरे पाप को (मो आरन्) प्राप्त न हों । (उत) और तू (यज्यून्) उत्तम यज्ञशील, दानशील, सत्संगी पुरुषों का (वावन्धि) सेवन कर उनका सत्संग कर । (उत) और तू (तेषु ओजः धेहि) उनमें अपना तेज, बल पराक्रम (धेहि) स्थापित कर (येषु जनेषु) जिन लोगों में रहते हुए हम (ते स्याम) तेरे ही होकर रहें । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[३२]

गातुरात्रेय ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ६, ११ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, १०, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ८ स्वराट् पंक्तिः । भुरिक् पंक्तिः ॥
द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अर्दर्रुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन् राजन् ! जिस प्रकार सूर्य (उत्सम् अदर्दः) ऊपर आकाश में स्थित मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार तू (उत्सं) उत्तम रीति से बहने वाले झरने, कूप आदि राष्ट्र में (अदर्दः) खना, जिस प्रकार सूर्य (खानि वि असृजः) मेघस्थ अन्तरिक्ष छिद्रों को बनाता और उनमें प्रवेश करता है उसी प्रकार तू (खानि) अपनी इन्द्रियों को (वि असृजः) विविध मार्गों में प्रेरित कर । (बद्धधानान् अर्णवान् अरम्णाः) सूर्य जिस प्रकार सुप्रबद्ध वा बार २ ताड़ित जलमय मेघों वा पर्वतों को ताड़ता वा, नदी तडागादि को सुभूषित करता है इसी प्रकार (त्वम्) तू भी (अर्णवान्) जल से युक्त नदी, जल या सागरों,

और धनादि पतियों को (बद्बधानान्) खूब सुप्रबद्ध कर (अरम्णाः) उनको प्रसन्न कर । जिस प्रकार सूर्य (महान्तं पर्वतं वि वः) बड़े भारी जगत्-पालक मेघ को विच्छिन्न करता है उसी प्रकार तू भी बड़े भारी पालक पुरुष को (वि वः) विविध उपायों से प्रसिद्ध कर । जिस प्रकार विद्युत् वा सूर्य (धाराः विसृज) जलधाराओं को प्रकट करता है उसी प्रकार तू आज्ञा वा उपदेश वाणियों को और राष्ट्र में जलधाराओं को विविध प्रकार से बना । (दानवं अव हन्) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् जलदाता मेघ को प्रहार कर नीचे गिराता, बरसाता है उसी प्रकार राजा तेजस्वी होकर (दानवं) राजनियमों और धर्म मर्यादाओं को भङ्ग करने वाले दुष्ट जन को (अवहन्) नीचे गिरा कर दण्ड दे, ऐसे व्यक्ति को पदच्युत और समाजच्युत करे और पीड़न भी करे ।

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥

भा०—(बद्धधानान् उत्सान्) जिस प्रकार खेतिहर बंधे हुए, पक्के कुओं को (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार (अरंहत्) चलाता है वा सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार (ऋतुभिः बद्धधानान् उत्सान् अरंहत्) ऋतु ग्रीष्मादि या अनावृष्टि आदि के कारण बंधे या रुके हुए उत्स अर्थात् जल-धारा नद नदियों या मेघस्थ जलधाराओं को चलाता है और (पर्वतस्य ऊधः शयानं अहिम् जघन्वान् तविषीम् धत्ते) मेघ या पर्वत के जलधारक भाग को और आकाश में निश्चल स्थित मेघ को जिस प्रकार प्रहार करता हुआ सूर्य या विद्युत् बलवती शक्ति को धारण करता है उसी प्रकार हे (वज्रिन्) बलवन् ! शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन्! राजन्! सेनापते ! (त्वम्) हे तू (ऋतुभिः) राजसभा के विद्वान् सदस्यों से मिलकर उनकी अनुमति से (बद्बधानान् उत्सान्) बंधे हुए कूप, तड़ाग और बहते झरने और बंधों आदि जल स्थानों को (अरंहः) चला, उनमें नहरें या यन्त्रादि

लगाकर उनको चालू कर वा (ऋतुभिः) उनको गमनशील यन्त्रों में चालित कर। हे (वज्रिन्) वज्रवत् लौहादि के यन्त्रों, शस्त्रों व अस्त्रों के स्वामिन् ! तू (तविषीम्) अति बलवती, गज-पर्वतभेदिनी शक्ति को भी धारण कर। और (पर्वतस्य ऊधः) पर्वत के जलाधार स्थान को और (अयुतं) लाखों करोड़ों मन (शयानं) गंभीर प्रसुप्त (अहिं) जल को (जघन्वान्) सुरंगादि से भेद कर उसको गति देता हुआ, नदी नहर, नल आदि द्वारा चला, उनको प्राप्त कर। इसी प्रकार हे राजन् ! तू (तविषीम् अधत्थाः) बलवती सेना को धारण कर, उसकी पालना कर, इस कारण तू (ऋतुभिः) सदस्यों से भी मिलकर (बद्बधानान् उत्सान् अरंहः) नियम में बंधे हुए उत्तम पुरुषों को सन्मार्ग में चला। तू (पर्वतस्य ऊधः) पर्वतवत् जल के पालक, शत्रु शासक के जलवत् जीवन या अन्न के धारक स्थान और (अहिं अयुतं शयानं) संमुख आये लाखों की फौज सहित पड़े शत्रु को (जघन्वान्) मारने वाला हो।

त्यस्य॑ चिन्मह॒तो निर्मृ॒गस्य॒ वध॑र्जघान॒ तवि॑षीभि॒रिन्द्रः॑।
य एक॒ इद॑प्र॒तिर्मन्य॑मान॒ आद॒स्माद॒न्यो अ॑जनिष्ट॒ तव्या॑न् ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रु पद को तोड़ने हारा पुरुष (त्यस्य) उस (महतः) महान् (मृगस्य चित्) सिंहवत् पराक्रमी पुरुष के भी (वधः) शस्त्र बल को अपनी (तविषीभिः) प्रबल सेनाओं से (जघान) मार गिरावे। (यः) जो (एकः) अकेला (अन्यः) शत्रु भी (अप्रतिः) अपने को अद्वितीय (मन्यमानः) मान रहा है (आत्) अनन्तर (अस्मात् अन्यः) उससे भिन्न दूसरा राजा (तव्यान्) अधिक बलवान् रूप में (अजनिष्ट) प्रकट हो।

त्यं चि॑दे॒षां स्व॒धया॒ मद॑न्तं मि॒हो नपा॑तं सु॒वृधं॑ तमो॒गाम्।
वृष॑प्रभर्मा दान॒वस्य॒ भामं॒ वज्रे॑ण व॒ज्री नि ज॑घान॒ शुष्ण॑म् ॥४॥

भा०—(एषा) इन लोकों व प्रजाओं के बीच (स्वधया मदन्तं) जल और अन्न से हर्षित करने वाले, (मिहः नपातम्) वृष्टि को न गिरने देने वाले, (तमोगां) अन्धकार रूप नीलता को प्राप्त मेघ को जिस प्रकार सूर्य (वज्रेण) विद्युत् द्वारा (नि जघान) ताड़ित करता है (चित्) उसी प्रकार (एषां) इन वीर प्रजावर्गों के बीच (त्यं) उस (स्वधया मदन्तं) अपने सैन्यवर्ग को अन्न से तृप्त करते और स्वयं अपने धन की धारणा शक्ति से (मदन्तं) हर्षित होते हुए और (मिहः न पातम्) ऐश्वर्य की वृष्टि न करने वाले (तमो-गाम्) अज्ञानान्धकार को प्राप्त (सु-वृधं) खूब बढ़ने वाले, (दानवस्य भामं) दुष्ट पुरुष के क्रोध वा क्रुद्ध सैन्य और (शुष्णम्) प्रजा के प्राण पोषक बल को (वज्री) शस्त्रास्त्र बल से सम्पन्न राजा (वृष-प्र-भर्मा सन्) बलवान्, प्रबन्धकर्त्ता और शस्त्रवर्षी चतुर वीर पुरुषों का भरण पोषण कर्त्ता होकर (नि जघान) बराबर नाश करता रहे ।

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सु-क्षत्र) उत्तम वीर्य वा बल से सम्पन्न राजन् ! (त्वं) तू (क्रतुभिः) अपनी प्रज्ञा या बुद्धियों से, (अमर्षणः) निर्बल मर्म स्थानों से रहित (अस्य) इस सन्मुख उपस्थित शत्रुजन के (नि-सत्तम्) निश्चित रूप से विदित (त्यं मर्म) उस मर्म को (विदत्) जान ले (यत्) जिससे (मदस्य प्रभृता) मद के अधिक बढ़ जाने से (युयुत्सन्तं) युद्ध की इच्छा करते हुए उसको तू (तमसि हर्म्ये) अन्धकारवत् कष्टदायी और उसके बल, पद के हरने वाले कारागार या बड़े प्रासाद में भी उसे (धाः) वन्दी कर रख । अथवा युद्ध करना चाहते हुए को भी तू (मदस्य प्रभृता) तृप्तिकारक अन्न के बल पर (तमसि हर्म्ये धाः) रात्रिवत् सुखदायी प्रासाद में ही पड़े रहने दे । वह विलास में फंसा रहे तू उसके मर्म अपने हाथ में लिये रह ।

त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥३२॥

भा०—जिस प्रकार विद्युत् (कत्पयं असूर्ये तमसि शयानं वावृधानं) सुखकारी जल वाले, अंधकार में विद्यमान और फैलते हुए मेघ को ताड़ता। (इत्था चित्) इसी प्रकार (कत्पयम्) सुख पूर्वक जलान्न का सेवन करने वाले वा संख्या में कई एक (असूर्ये तमसि) सूर्यरहित, छाया-च्छादित अन्धकार में पड़े और (वावृधानम्) बराबर बढ़ते हुए (त्यम्) उस शत्रुजन को भी (सुतस्य मन्दानः) अभिषेक में प्राप्त ऐश्वर्य के कारण तृप्त और प्रसन्न होकर (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति, (उच्चैः अपगूर्य) शस्त्रास्त्र बल उद्यत करके खूब सावधानी से (जघान) नाश करे। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (दानवाय महते वज्रम् उद् यमिष्ट) जलादि देने वाले मेघ को छिन्न भिन्न करने के लिये वल रूप प्रताप को सर्वोपरि धारण करता है उसी प्रकार (यत्) जो (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (महते दानवाय) बड़े भारी दानशील प्रजाजन के पालन और प्रजा नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के लिये (सहः) शत्रु पराजयकारी (अप्रतीतम्) अन्यों से अज्ञात, और अन्यों से प्रतीकार न करने योग्य भारी सैन्य बल को (उद्-यमिष्ट) सदा तैयार रखता है, और जो (वज्रस्य प्रभृतौ) 'वज्र' अर्थात् शत्रुवारक शस्त्रबल के प्रहार करते ही शत्रु को (ददाभ) नाश कर डालता है, वह अवश्य अपने शत्रु को (विश्वस्य जन्तोः) समस्त प्राणियों के (अधमं चकार) नीचे गिरा देता है।

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् वा प्रबल वायु (अर्णं) जलमय (मधुपं) जल वा अन्न के पालक, (शयानं) निश्चेष्ट, (असिन्वम्) अबद्ध, (वव्रम्) व्यापक, (अत्रं) निरन्तर गतिशील (मृध्र-वाचम्) हिंसाकरी विद्युन्मय वाणी से युक्त मेघ को (महता वधेन) बड़े विद्युन्मय आघात से (आदृद्) सब प्रकार से खण्डित करता है, (चित्) उसी प्रकार (उग्रः) बलवान्, प्रचण्ड राजा (त्यं) उस (अर्णं) जलवत् गंभीर वा धन के स्वामी, (मधुपं) 'मधु' अर्थात् अन्न, जल, राष्ट्र के उपभोक्ता वा सैन्यबल के पालक (असिन्वं) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ वा असि अर्थात् शस्त्र बल में स्तुति योग्य, (वव्रं) सब से वरणीय परन्तु (शयानं) लोकहित में उदासीन बलवान्, अचेत (अत्रं) अपनी प्रजा के भक्षक (अपादम्) पैररहित, भागने में असमर्थ, लाचार (मृध्रवाचं) हिंसक, दुःखद वाणी बोलने वाले, कटुभाषी दुष्ट पुरुष को (दुर्योणे) दुःखदायी स्थान में बन्द करके (महता वधेन) बड़े भारी शस्त्र या दण्ड से (आवृणक्) दण्डित करे।

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९॥

भा०—(कः) कौन (अस्य) इस प्रबल राजा के (शुष्मं) शत्रुशोषक बल, सुखसमृद्धि और (तविषीं) बलवती सेना को (वराते) अपने वश कर सकता वा उसका वारण कर सकता है। वह (एकः) अकेला ही (अप्रतीतः) अप्रत्यक्ष रूप से वा अद्वितीय रूप से सर्वोपरि होकर (धना भरते) सब धन समृद्धियों को प्राप्त कर धारण करता है। (इमे देवी) ये दोनों यश, धन वा विजय की चाहने वाली सेना (अस्य) इस (ज्रयसः) वेगवान्, विजयी (इन्द्रस्य) राजा के (ओजसः) बल पराक्रम के (भियसा) भय से (जिहाते) सत्पक्ष पर चलती हैं।

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०॥

भा०—(युवते इन्द्राय, स्वधाव्ने उशती इव येमे) जिस प्रकार युवा ऐश्वर्य युक्त, अन्नादि समृद्धि, धनैश्वर्य और अपने शरीर को धारण पालन करने के सामर्थ्य से युक्त पुरुष के लिये कामना करती हुई स्त्री उससे विवाह कर लेती है, उसी प्रकार (अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, (युवते) युवावस्थापन्न, वा (युवते) सत्य असत्य का विवेक करने वाले (स्वधाव्ने) अन्न और ऐश्वर्य के स्वामी इस राजा के लिये (स्वधितिः देवी) अपने 'स्व' को धारण करने वाली शस्त्र शक्ति, और (गातुः) गमन करने योग्य भूमि, दोनों (नि जिहीते) विनीत होकर प्राप्त होतीं और (येमे) उसको स्वस्वाभिभाव सम्बन्ध से बांध लेती अर्थात् उसे अपना स्वामी बना लेती हैं और आप उसकी पत्नी के समान भोग्य होकर उसके अधीन रहती हैं। (यत्) जब उसका (ओजः) बल पराक्रम (आभिः) इन प्रजाओं के साथ (सं येमे) उनको अच्छी प्रकार बांध लेता है तब (अनु) उसके अनुकुल होकर (क्षितयः सं नवन्त) समस्त भूमि निवासी मनुष्य उसके आगे झुकते हैं।

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषावस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥

भा०—मैं (त्वा एकं नु) तुझ अकेले को ही (सत्पतिं) सज्जनों का पालक, (पाञ्चजन्यं) पांचों जन, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और शासक वर्ग अर्थात् निषाद इन पाचों के हितकारी (जनेषु जातम्) सब मनुष्यों में प्रसिद्ध, (यशसं) यशस्वी, (शृणोमि) सुनता हूं। (मे) मुझ प्रजा के (नविष्ठं इन्द्रम्) अतिस्तुत्य, सदा नवीन, अति रमणीय ऐश्वर्ययुक्त स्वामी को (आशसः) आदरपूर्वक स्तुति करने वाले और नाना कामनाओं से युक्त लोग (हवमानासः) आदरपूर्वक अपना प्रभु

स्वीकार करते हुए (दोषा वस्तोः) दिन और रात (तं जगृभ्रे) उसको पकड़े रहें, उसको अपना आश्रय बनाये रहें और अपनाये रहें। इसी प्रकार स्त्री भी चाहा करे कि मैं अपने पति को सर्व हितकारी, प्रसिद्ध, यशस्वी होता हुआ सुनूं। वह सदा ऐश्वर्यवान् स्तुतियोग्य रहे, उत्तम विद्वान् जन सदा उसको आश्रय किये रहें।

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि। किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥ ३३ ॥ १ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! (एव हि) इस प्रकार ही मैं सदा (ऋतुथा) सत्य ज्ञान के अनुसार वा उचित ऋतुओं के अनुसार (यातयन्तम्) सूर्यवत् समस्त प्रजा जनों को यत्न उद्योग करते कराते हुए और (विप्रेभ्यः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों को (मघा ददतं) नाना धन प्रदान करते हुए (शृणोमि) श्रवण करूं। हे राजन्! (ये) जो (त्वाया) तेरे आश्रय ही अपना (कामम्) समस्त अभिलषित (निदधुः) रखते हैं, तुझ पर ही भरोसा किये हैं वे वस्तुतः (ते सखायः) तेरे मित्र हैं। वे (ब्रह्माणः) बड़े वेदज्ञ विद्वान् जन (ते किं गृहते) तेरा ले भी क्या लेते हैं! वे तेरे अधीन त्यागवृत्ति से रहकर अन्न वस्त्र पर ही जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार स्त्री भी अपने पति को (ऋतुथा यातयन्तं) ऋतु पर सन्तानोत्पत्ति करने वाला, दानशील सुने, उत्तम गृहस्थ के विद्वान् पुरुष हितैषी होते हैं वे गृहस्थों पर आश्रित रह कर अन्न वस्त्रादि लेकर भी कुछ नहीं लेते। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमे मण्डले द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः। तृतीयोऽनुवाकः

[३३]

संवरणः प्राजापत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, पंक्तिः । ३ निचृत्पंक्तिः । ४, १० भुरिक्पंक्तिः । ५, ६ स्वराट्पंक्तिः । ८ त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

महि॑ म॒हे त॒वसे॑ दीध्ये॒ नॄनिन्द्रा॑ये॒त्था त॒वसे॒ अत॑व्यान् ।
यो अ॑स्मै सुम॒तिं वाज॑सातौ स्तु॒तो जने॑ सम॒र्य॑श्चि॒केत॑ ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो राजा (वाजसातौ) ऐश्वर्य लाभ और संग्राम विजय के लिये (स्तुतः समर्यः) प्रस्तुत होकर मरने वा मारने वाले वीर पुरुषों सहित (अस्मै जने) इस राष्ट्र के वासी जनों के ऊपर शासक होकर (सुमतिं चिकेत) उत्तम बुद्धि, सन्मति जानता और अन्यों को तदनुसार चलाने में समर्थ है (इत्था) ऐसे (तवसे इन्द्राय) बलवान् ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन (अतव्यान् नॄन्) निर्बल पुरुषों को भी मैं (महे तवसे) बड़ा भारी बल सम्पादन करने के लिये (महि दीध्ये) पर्याप्त शक्तिशाली जानता, मानता हूं। उत्तम चतुर, ज्ञानी नायक के अधीन निर्बल जन भी पर्याप्त सबल होकर बड़ा भारी कार्य करने में समर्थ होते हैं। अथवा जो (तवसे इन्द्राय अतव्यान् समर्यः स्तुतः वाजसातौ सुमतिं चिकेत अस्मै महे तवसे महि नॄन् दीध्ये) बड़े बल और ऐश्वर्य पद के लिये यत्नवान् होकर बहुत से मर्दों के सहित संग्राम करने की मति जानता है उसके बड़े बलसैन्य के लिये भी बड़े २ नायकों को आवश्यक जानता हूं।

स त्वं न॑ इन्द्र धि॒यसा॒नो अ॒र्कैर्हरी॑णां वृष॒न्योक्त्र॑मश्रेः ।
या इ॒त्था म॑घव॒न्ननु॒ जोषं॒ वक्षो॑ अ॒भि प्रार्यः स॑क्षि॒ जना॑न् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह (त्वं) तू (धियसानः)

राज्य कार्यों की चिन्ता करता तू (अर्कैः) अर्चना योग्य, उत्तम साधनों से (हरीणां योक्त्रम्) अश्वों के जोड़ने को सारथी के समान समस्त (हरीणां) राज्य कार्यों के सञ्चालक अध्यक्ष मनुष्यों को (योक्त्रम् अश्रेः) योजन, परस्पर संयोग वा उनको नियुक्त वा आश्रय देकर, उत्तम पुरुषों को उत्तम पदों पर नियुक्त कर। हे (वृषन्) राज्य प्रवन्ध करने हारे वलवान् राजन्! हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! (इत्था) इस प्रकार से तू (याः) जिन प्रजाओं का भार (अनुजोषं) प्रतिदिन प्रेमपूर्वक (वक्षः) अपने ऊपर लेता उन (जनान् अभि) मनुष्यों के प्रति तू (अर्यः) स्वामिवत् (प्र सक्षि) खूब सुदृढ़ समवाय युक्त होकर रह।

न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन्।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (ऋष्व) महापुरुष! (यत्) जो (अयुक्तासः) तेरे साथ योग न करें और जो (न ते) तेरे भी होकर न रहें। और जो (अब्रह्मता) धन हीनता है, वह (ते अस्मद्) तेरे प्रजा रूप हम लोगों से (अभि) परे रहें हे (वज्रहस्त) शक्ति और बल को अपने वश या हाथ में रखने वाले! तू (रथम् अधि तिष्ठ) जिस रथ पर आरूढ़ हो (तं) उसके (रश्मिं) रासों को (स्वश्वः) उत्तम अश्वारोही के तुल्य (यमसे) नियन्त्रण में रख। रथ के समान ही राज्य की वागडोर को अच्छी प्रकार सम्भाल।

पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो (ते) तेरे (उक्था) उत्तम प्रशंसनीय कार्य हैं जिनको तू (गवे) गवादि पशु और भूमि की उन्नति के लिये (उर्वरासु युध्यन् चकर्थ) उपजाऊ भूमियों के निमित्त युद्ध करता हुआ करे, तब तू (वृषा) मेघवत् वर्षणशील होकर (सूर्याय)

सूर्यवत् तेजस्वी पद के योग्य (स्वे ओकसि) अपने पद पर रहकर (समत्सु) संग्रामों में (दासस्य चित् नाम ततक्षे) जल देने वाले मेघ के तुल्य उदार दाता और राष्ट्र के सेवक रूप से नाम या ख्याति को उत्पन्न कर।

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (ये च) और जो (नरः) नायक लोग (ते शर्धः जज्ञानाः) तेरे बल को पैदा करने वाले और जो (याताः च रथाः) प्राप्त वा प्रयाणशील रथ हैं और (ते वयं) वे हम ही तेरे हों। हे (अहिशुष्म) अग्रगामी या सर्वतो मुख जाने वाले बल के स्वामिन् ! (भगः न हव्यः) ऐश्वर्यवान् तुझ स्वामी के तुल्य स्तुत्य (प्रभृथेषु चारुः) उत्तम रीति से भरण करने योग्य परिजनों में सबसे श्रेष्ठ, (हव्यः) स्तुति योग्य (सत्वा) बलवान्; सात्विक पुरुष (अस्मान् आ जगम्यात्) हमें प्राप्त हो। इति प्रथमो वर्गः ॥

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे हि) तेरे अधीन रहने वाला, (ओजः) बल पराक्रम (पपृक्षेण्यम्) सदा सबके प्रश्न का विषय बना रहे, और (त्वे नृम्णानि च) तेरे अधीन नाना प्रकार के ऐश्वर्य भी (पपृक्षेण्यानि) प्रश्न योग्य एवं प्रजाओं के पोषक होकर रहें। वे अपार हों। (त्वे नृतमानः) तेरे अधीन नाचता हुआ, अर्थात् तेरे इशारे पर चलता हुआ मनुष्य भी (अमर्त्तः) साधारण मनुष्य से भिन्न होकर रहे। (सः) वह तू (एनीं वसवानः) श्वेत शुक्लवर्णा, गौर, सदाचारिणी और प्राप्त होने योग्य मन्तव्या स्त्रीवत् उपभोग्य प्रजा को प्राप्त कर (वसवानः) उसे बसाता हुआ और उसमें वसुपति के समान रहता

हुआ, तू (नः) हमें (रयिं दाः) धनैश्वर्य प्रदान कर। और प्रजागण (तुवि-मघस्य) बहुत धनाढ्य (अर्यः) तुझ स्वामी के (दानम्) दान की (प्र स्तुषे) खूब स्तुति करूं। और तू (अर्यः सन् तुवि-मघस्य दानं प्र स्तुषे) स्वामी होकर बहुत धन समृद्ध राष्ट्र की अच्छी प्रकार स्तुति कर।

एवा न॑ इन्द्रोतिभि॑रव पाहि गृ॑णतः शूर कारून्।
उत त्वचं॒ दद॑तो वाज॑सातौ पिप्रीहि मध्वः सुषु॑तस्य॒ चारोः॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (एव) इस प्रकार तू (नः) हमें (अव) रक्षा कर। (गृणतः) उपदेश करने वाले विद्वानों और (कारून्) क्रियाकुशल शिल्पियों को हे (शूर) शूरवीर तू (पाहि) पालन कर। हे राजन् (उत) और (त्वचं) अपने शरीर की (वाजसातौ ददतः) संग्राम और अन्नोत्पादन, कृषि आदि के कार्य में लगाने वाले पुरुषों को (चारोः) उत्तम, गमनशील (सुसुतस्य) उत्तम रीति से तैयार किये (मध्वः) अन्न और जल से (पिप्रीहि) पूर्ण कर। शूरवीरों को उत्तम शशन और कृषकों को बहता जल देकर सन्तुष्ट कर।

उत त्ये मा॑ पौरुकुत्स्यस्य॑ सूरेस्त्रसद॑स्योर्हिरणिनो ररा॑णाः।
वह॑न्तु मा दश॒ श्येता॑सो अस्य गैरिक्षितस्य॒ क्रतु॑भिर्नु स॑श्चे॥८॥

भा०—(उत) और (पौरुकुत्स्यस्य) बहुत सी सैन्य समुदाय वा शस्त्रधर सैनिकों के अध्यक्ष (सूरेः) विद्वान् (त्रसदस्योः) भय त्रस्त शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले वा दस्युओं को भयभीत करने वाले (हिरणिनः) सुवर्णादि ऐश्वर्य के स्वामी के (रराणाः) अति चपल, क्रीड़ा से चलने वाले (त्ये) वे (श्येतासः) श्वेत, शुक्लवर्ण दशों अश्व-सैन्य (मा वहन्तु) मुझ राष्ट्र के कार्य-भार को धारण करें। और (अस्य) इस (गैरिक्षितस्य) पर्वतादि दुर्ग के निवासी वा वाणी आज्ञा आदि या वेद या परस्पर की स्थिर शर्त्तों की मर्यादा में रहने वाले (अस्य) इस राजा

के (क्रतुभिः) उत्तम कर्मों और ज्ञानों से मैं (नु) अवश्य शीघ्र ही (सश्चे) उत्तम रूप से प्रबन्ध युक्त हो जाऊं।

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और (मारुत-अश्वस्य) वायु वेग से जाने वाले अश्वों के स्वामी (विदथस्य) नाना ऐश्वर्य वा राज्यासन प्राप्त करने वाले राजा के (रातौ) दान में (त्ये) वे (शोणाः) लाल वर्ण के वा अति गति शील, (क्रत्वा मघासः) कार्य और बुद्धि से उत्तम धन प्राप्त करने वाले भृत्य जन और (सहस्रा च्यवतानः) हज़ारों ऐश्वर्यों का दान करने वाला राजा और (ददानः) आभरण देने वाला (अर्यः) स्वामी ये सभी (मा) मुझे (वपुषे आनूकं न मे) मेरे राष्ट्रमय शरीर को देह को–अनुरूप आभूषण के तुल्य (अर्चत्) सुशोभित करते हैं।

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् १०।२

भा०—(गावः व्रजं न) गौएं जिस प्रकार गोशाला को प्राप्त होती हैं और (ऋषेः संवरणस्य प्रयताः गावः व्रजं न) मन्त्रार्थद्रष्टा गुरु की प्रदान की वाणियां जिस प्रकार समीप आये शिष्य को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (ध्वन्यस्य) उत्तम ध्वनि करने वाले, ठीक खरी आवाज़ देने वाले (लक्ष्मण्यस्य) राज-मुद्रा चिह्न से अंकित (रायः मह्ना) धनैश्वर्य के महान् सामर्थ्य से (संवरणस्य) मिल कर वरण किये गये राजा और वरण करने वाले प्रजाजन की (सुरुचः) उत्तम रुचि कर, सबको रुचने वाली मनोहर (यतानाः) यत्नशील (गावः) भूमियां और आज्ञावाणियां या धाराएं (प्रयताः) सुप्रबद्ध और अच्छी प्रकार नियत रूप होकर (व्रजं अपि ग्मन्) मार्ग और संसार को प्राप्त करें। अर्थात् भूमियों में मार्ग हों, आज्ञाओं का प्रसार हो।

[३४]

संवरणः प्राजापत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ९ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृज्जगती । ३, ७ जगती । ८ विराड्जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥

भा०—(अजरा) जीर्ण न होने वाली, (स्वर्वती) सुख साधनों से समृद्ध, (स्वधा) स्वयं अपने को धारण करने वाली, अपने में धन को धारने वाली, राष्ट्रवासिनी प्रजा जरारहित युवति स्त्री के समान ही (अजात-शत्रुम्) शत्रुरहित, अप्रतिद्वन्द्वी (दस्मम्) विघ्नों के विनाशक पुरुष को (ईयते) प्राप्त होती है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पुरु-स्तुताय) बहुतों से प्रशंसित (ब्रह्म-वाहसे) धन और ज्ञान को धारण करने वाले, विद्वान् और सम्पन्न पुरुष के आदरार्थ (सुनोतन) उत्तम ऐश्वर्यादि उत्पन्न करो, (पचत) उत्तम भोजन का पाक बनाओ और (प्रतरं) खूब अच्छी प्रकार दुःख संकटादि से तरने और दूर जाने के साधन नाव, रथादि (दधातन) अपने पास रक्खो और बनाओ। (२) गृहस्थ पक्ष में—पति को सुख देने वाली स्त्री 'स्वर्वती' गर्भ धारण में समर्थ 'स्वधा' जरारहित युवति 'अजरा' है वह दर्शनीय सुन्दर पुरुष को प्राप्त हो। ज्ञानी वीर्यवान् पुरुष 'ब्रह्म-वाहस्' है उसके बलवृद्धयर्थ उत्तम स्नानाभिषेक और उत्तम भोजन पाक हो, उसी को (प्रतरं) संसार-सागर के तरण का साधन स्त्री प्रदान करो।

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२॥

भा०—(यः) जो राजा (सोमेन) ऐश्वर्य वा अन्न से उदर के

तुल्य (जठरम्) अपने राष्ट्र के भीतरी भाग को (आ अपिप्रत) सब ओर से भर लेता है। वह (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्नादि से (अमन्दत) खूब तृप्ति और आनन्द लाभ करे। और (यत्) जो (ईम्) सब ओर केवल (हन्तवे मृगाय महावधः) हननशील हिंसक सिंह के पेट भरने के लिये अन्य जीवों के भारी वध के सदृश शत्रु राजा वा स्वयं हिंसाव्यसनी राजा की सन्तुष्टि के लिये भारी जनसंहार हो तो ऐसे (सहस्रभृष्टिम्) हजारों जनों और जीवों को आग से भून देने वाले (वधं) हत्याकाण्ड संग्रामादि को, (उशनाः) समस्त प्राणियों को सुखी चाहने वाला, उनका प्यारा दयार्द्र हृदय राजा वा तेजस्वी विद्वान् अवश्य (यमत्) रोक दे। ऐसे जनसंहार न होने दे (२) इसी प्रकार यदि धनाढ्य लोग अपना पेट अन्नों के रसों और वनस्पतियों से पूर्ण कर लेते हैं वे जीवन का अधिक सुख पाते हैं, यह जो मृग को मारने के लिये भारी शिकार, वध की आयोजना होती है इस मांस के कारवार में सहस्रों जीव अग्नि पर भुन जाते हैं ऐसे हत्याकाण्ड को जीवों के प्रति दयाशील राजा आवश्य रोक दे।

यो अ॒स्मै घ्रं॒स उ॒त वा॒ य ऊध॑नि॒ सोमं॑ सु॒नोति॒ भव॑ति द्यु॒माँ अह॑। अपा॑प श॒क्रस्त॑त॒नुष्टि॑मूहति त॒नूशु॑भ्रं म॒घवा॒ यः क॑वा॒सखः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (घ्रंसे) दिन के समय (उत वा) अथवा (यः ऊधनि) रात्रि या प्रातः समय में अर्थात् दिन रात (अस्मै) इस राष्ट्र की वृद्धि के लिये (सोमं सुनोति) देह में औषध, जल या पुष्टिकर वीर्य के समान ऐश्वर्य को उत्पन्न करता, उसकी सेवन या वृद्धि करता है वह (अह) निश्चय से (द्युमान्) तेजस्वी (भवति) हो जाता है। (यः) जो पुरुष (कवासखः) विद्वान् पुरुषों का मित्र (मघवा) ऐश्वर्यवान् और (शक्रः) शक्तिशाली होकर (तनूशुभ्रं) देह में वा राष्ट्र

में शोभाजनक (ततनुष्टिम्) शक्ति की (ऊहति) वृद्धि करता है वह (अ-अप) सब रोगों और शत्रुओं को सदा दूर भगा देता है। अथवा (मघवा शक्रः) शक्तिमान् ईश्वर (ततनुष्टिम् अप ऊहति) विस्तृत शक्ति और कामना वाले तथा (तनुशुभ्रं) देह को सजाने वाले अभिमानी को (यः कवासखः) जो कुत्सित मित्रों वाला, कुसङ्गी है उसको भी (अप ऊहति) नष्ट कर देता है।

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते। वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः॥४॥

भा०—(शक्रः) शक्तिशाली राजा (यस्य पितरम्) जिसके पिता को, (यस्य मातरं) जिसकी माता को वा (यस्य भ्रातरं) जिसके भाई को भी (अवधीत्) मारे या दण्ड दे और वह (अतः न ईषते) उससे भय न खावे वह (यतङ्करः) सदा उसे बांधने हारा वा यत्नशील रहकर (यस्य प्रयता इत् उ वेति) उसको अच्छी प्रकार संयमन या वश करने की कामना करता रहे। वह (वस्वः आकरः) ऐश्वर्य को सब ओर से संग्रह करने में कुशल होकर (किल्बिषात्) पाप या पापी पुरुष से (न ईषते) कभी भय न खावे, प्रत्युत सदा उसको नाश करने में लगा रहे।

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन। जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे॥५॥२६॥

भा०—जो पुरुष अपने (पञ्चभिः) पांचों इन्द्रियों से और (दशभिः) दशों प्राणों से भी युक्त होकर (आरभं) कार्य करने का उद्योग (न वष्टि) नहीं करना चाहता उस (असुन्वता) निरुद्योगी, कुछ भी धन अन्नादि पैदा न करने वाले, निकम्मे और (पुष्यता चन) केवल मोटे ताजे पुरुष से भी (न सचते) विद्वान् पुरुष मैत्रीभाव नहीं करता। ऐसे व्यक्ति को तो (धुनिः) शत्रुओं को कँपा देने में समर्थ पुरुष (जिनाति वा) अवश्य तिरस्कार करे (वा) अथवा (हन्ति इत्) ऐसे पुरुष

को अवश्य दण्ड दे। (गोमति व्रजे) वाणियों से युक्त सबसे आदरपूर्वक प्राप्तव्य गुरु तथा रश्मियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी और पृथिवी के स्वामी तथा शत्रु पर चढ़ने वाले सेनापति के अधीन रहने वाले (देवयुम्) शुभ गुण तथा विद्वानों और राजा की कामना करने वाले प्रिय पुरुष को (भजति) राजा आदर पूर्वक रक्खे।

वि॒त्व॒क्ष॒णः सम॑ृतौ च॒क्रमा॑स॒जोऽसु॑न्वतो॒ विषु॑णः सुन्व॒तो वृ॒धः।
इन्द्रो॒ विश्व॑स्य दमि॒ता वि॒भीष॑णो यथाव॒शं न॑यति॒ दास॒मार्यः॑॥६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (आर्यः) स्वामी, (सम्-ऋतौ) संग्राम में तथा एकत्र होने के स्थान सभा आदि में (वित्वक्षणः) विद्युत्वत् विविध प्रकार से शत्रुओं को छेदन भेदन करने हारा (वि-त्वक्-सनः) विविध या विशेष वस्त्रादि आवरणों को पहनने हारा वा सभादि में विविध विद्याओं के रहस्य खोलकर बतलाने हारा हो। सूर्य जिस प्रकार (चक्र-मासजः) संवत्सर चक्र वा मास २ में प्रकट होता है उसी प्रकार राजा भी, (चक्रम्-आसजः) राज-चक्र वा सैन्यचक्र के मुख स्थान पर प्रकट हो वा सैन्यादि चक्र को अति स्नेह करने वाला, तत्सम्बन्धी कार्यों में तन्मय हो। वह (असुन्वतः) निकम्मे, अपुरुषार्थी पुरुष का (वि-पुणः) विरोधी और (सुन्वतः) ऐश्वर्य-उत्पादक पुरुषार्थी पुरुष का (वृधः) बढ़ाने वाला हो। वह (विभीषणः) विशेष रूप से भीषण होकर भी (विश्वस्य दमिता) समस्त राज्य का दमन करने हारा होकर (दासम्) सेवक जन, भृत्य तथा प्रजानाशक शत्रुजन को भी (यथावशं) यथाशक्ति (नयति) सन्मार्ग पर चलावे।

समीं॑ प॒णेर॑जति॒ भोज॑नं मु॒षे वि दा॒शुषे॑ भजति सू॒नरं॒ वसु॑। दु॒र्गे च॒न ध्रि॑यते॒ विश्व॒ आ पु॒रु जनो॒ यो अ॑स्य॒ तवि॑षी॒मचु॑क्रुधत्॥७॥

भा०—राजा (पणेः) स्तुति करने योग्य और व्यवहारकुशल

पुरुष के (भोजनं) भोजन और पालन को (सम् अजति) प्राप्त कराता है। और (मुपे) चोर के लिये (वि) उससे विपरीत दण्ड करता है, उसको भोजन और शरीर-रक्षा के विपरीत भूखों मारता और शस्त्रास्त्र से भी दण्डित करता है। और (दाशुषे) दानशील, आत्मसमर्पक प्रजा के हितार्थ (सूनरं) उत्तम नायकों से युक्त (वसु) वसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को (वि भजति) यथायोग्य रूप से विभक्त करता, पात्रानुरूप दान करता है। और (यः) जो (अस्य) इस राजा की (तविषी) बलवती शक्ति को (अचुक्रुधत्) क्रोधित कर दे वह (पुरु जनः) बहुत से लोग भी (विश्वे) सब (दुर्गे चन आध्रियते) दुर्ग के बीच क़ैद कर रख दिये जाते हैं।

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (जनौ) दो मनुष्य, दो जनपदवासी नायक (सुधनौ) खूब धन से समृद्ध और (विश्व-शर्धसौ) सब प्रकार के शस्त्रास्त्र बलों से सुदृढ़ हो जायँ तो (मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (शुभ्रिषु) नाना रत्न और शोभादायी दृश्यों से सम्पन्न (गोषु) भूमियों की रक्षा के निमित्त उन दोनों को (सम् अवेत्) परस्पर मिलाकर सन्धि पूर्वक रक्खे, उत्तम राज्य की भूमियों का संहार उनके परस्पर युद्ध से न होने दे। (अन्यम्) अपने से भिन्न शत्रु को भी (युजम् अकृत) अपना सहायक बनाले। यदि वह सामपूर्वक सहयोग न करे तो जिस प्रकार (प्रवेपनी धुनिः सत्वभिः गव्यं ईं उत्सृजते) वेग से चलने वाली नदी वेगों से चलकर भूमि के हितकर जल प्रदान करती है उसी प्रकार बलवान् राजा भी (धुनिः) शत्रु को कंपा देने में समर्थ होकर (प्र-वेपनी) खूब कंपा देने वाली सैन्य शक्ति के द्वारा (ईं) उसको प्रहार कर

(सत्वभिः) अपने बलवान् वीरों से (गव्यम्) भूमि से प्राप्त समस्त धन (उत्सृजते) उससे छीन ले ।

स॒ह॒स्र॒सामा॑ग्निवेशिं गृणीषे॒ शत्रि॑मग्न उप॒मां के॒तुम॒र्यः ।
तस्मा॒ आपः॑ सं॒यतः॑ पीपयन्त॒ तस्मि॑न्क्ष॒त्रम॑मव॒त्त्वेष॑मस्तु ॥९॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! सेनापते वा विद्वन् ! जो (अर्यः) स्वयं स्वामी होकर भी (सहस्रसाम्) सहस्रों सुखों के देने वाले (आग्निवेशिम्) अग्नि के अधीन निवासिनी प्रजाओं के हितार्थ (शत्रिम्) दुःखों के नाशकारी (उपमां) दृष्टान्त स्वरूप, आदर्श, (केतुम्) ज्ञान का (गृणीषे) उपदेश करे तो (तस्मै) उसको (संयतः) सुप्रबद्ध जल-धाराओं के सदृश आप्त प्रजाजन (पीपयन्त) खूब समृद्ध करती हैं और (तस्मिन्) उसके अधीन (क्षत्रम्) बलशाली क्षत्रसैन्य बल (अमवत्) सहायक वा गृह के समान सुख देने वाला और (त्वेषम्) तेज के तुल्य प्रतापी (अस्तु) हो । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३५]

प्रभूवसुराङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् । ४, ५, ६ स्वराडुष्णिक् । ८ भुरिग्बृहती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

यस्ते॒ साधि॑ष्ठोऽव॑स॒ इन्द्र॒ क्रतु॒ष्टमा भ॑र ।
अ॒स्मभ्यं॑ चर्ष॒णी॒सहं॒ सस्निं॒ वाजे॑षु दु॒ष्टर॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक राजन् ! गुरो ! (यः) जो (ते) तेरा (साधिष्ठः) अति उत्तम, कार्य साधक, (क्रतुः) कर्मकौशल और ज्ञान है (तम्) उस (चर्षणीसहं) सब मनुष्यों को जीतने वाले (सस्निं) अतिपवित्र और अन्यों को पवित्र, पापरहित करने वाले (वाजेषु) संग्रामादि में (दुस्तरम्) अपार सामर्थ्य को

(अस्मभ्यम् आ भर) हमें प्राप्त करावे और हमारे लिये उसको धारण कर और प्रयोग कर।

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जा (ते) तेरी (चतस्रः) साम, दान, भेद, और दण्ड ये चार वृत्तियां और (शूर यत् तिस्रः सन्ति) हे शूरवीर पुरुष! जो तेरी तीन सभाएं वा दण्ड, धन और मन्त्र ये तीन शक्तियां हैं (यद् वा) और जो (क्षितीनाम् अवः) प्रजाओं के रक्षणार्थ पांच सहायक, साधन, उपाय और देश और काल की अनुकूलतायें हैं (तत्) उन सबको (नः) हमारे लिये तू (सु आ भर) सब प्रकार से प्राप्त करा। अथवा—(क्षितीनां चतस्रः तिस्रः पञ्च वा तत् नः आभर) प्रजाओं के बीच चार वर्ण अथवा आन्वीक्षिकी, त्रयी वार्ता और दण्डनीति ये चार विद्याएं तीन महासभाएं और पांच विभाग व पञ्चाङ्ग सिद्धि हैं उनको हमारे लिये स्थिर कर।

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः॥ ३॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! मेघवत् प्रजापक्ष सुख समृद्धि की वर्षा करने हारे! हे उत्तम प्रबन्धक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः राजन्! तू (आभूमिः) चारों ओर विद्यमान भूमियों से और चारों ओर स्थित वीर वा उत्तम शक्तिशाली सहायकों से युक्त होकर (वृष-जूतिः) मेघों के आगमन वा बैलों को उत्तम रीति से जोतने वाला और बलवान् पुरुषों को वेग से युद्धादि में भेजने वाला और (तुर्वणिः) वेगवान् वीर पुरुषों को धनादि देने हारा भी (जज्ञिषे) हो। (वृषन्तमस्य ते) सर्वोत्तम बलवान् सुप्रबन्धक तेरे (वरेण्यं) वरण योग्य, उत्तम (अवः) रक्षा कार्य को हम (हूमहे) प्रात करें, चाहें।

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! बलवन्! तू (वृषा हि असि) सूर्य या मेघ के तुल्य प्रजापर सुखों को वर्षा करने हारा हो। तू (राधसे) धन सम्पदा की वृद्धि के लिये (जज्ञिषे) सदा कटिबद्ध रह। (ते शवः वृष्णि) तेरा बल सुखों की वर्षा करनेवाला वा प्रजा का प्रबन्धक हो। (ते मनः) तेरा मन (स्व-क्षत्रं) स्वयं बलसम्पन्न, और (धृषत्) शत्रुओं को तुच्छ समझने वाला प्रगल्भ हो और (ते पौंस्यम्) तेरा पौरुष (सत्राहम्) सत्य के बल पर वा शत्रु संघ को भी नाश करने वाला हो।

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन्! हे (अद्रिवः) अभेद्य कवच और शस्त्रबल के स्वामिन्! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं वाले हे (शवसः पते) सैन्यादि बल के स्वामिन्! (त्वं) तू (तम्) उस (अमित्रयन्तम्) शत्रु के तुल्य आचरण वाले (मर्त्यः) मारने योग्य जन को लक्ष्य करके (सर्वरथा नियाहि) समस्त रथ सैन्य सहित प्रयाण कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥

भा०—(वृत्रहन्तम) हे बढ़ते शत्रु को मारने में सब से अधिक समर्थ! हे (उग्र) भीषण! (वृक्त-बर्हिषः जनासः) इस लोक या भूमि को परस्पर विभक्त और सेवन करने वाले लोग (पूर्वीषु पूर्व्यम्) पूर्व विद्यमान प्रजाओं में भी सर्व प्रथम सत्कार योग्य (त्वाम् इत्) तुझ को ही (वाजसातये) ऐश्वर्य को विभक्त करने और संग्राम विजय के लिये (हवन्ते) आदरपूर्वक बुलाते हैं।

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (दुस्तरं) बड़ी कठिनता से पराजित होने वाले, सुदृढ़, (आजिषु) संग्रामों में (पुरो-यावानम्) आगे २ चलने वाले (धने धने) प्रत्येक धन लाभ के अवसर या प्रत्येक संग्राम में (स-यावानं) अन्य रथों के साथ समान वेग से जाने वाले (वाजयन्तम्) संग्राम करते हुए (रथं) रथ, या रथारोही की (अव) रक्षा का उपाय कर। अग्रगामी पंक्तिबद्ध रथसैन्य की दायें बायें और पीछे के आक्रमण से भी रक्षा कर और रथ को भी तीनों ओर से सुरक्षित कर।

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ८।६

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन् राजन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (रथम्) रथ के समान रमण करने योग्य राष्ट्र को (पुरं-ध्या) पुर को धारण करने वाली नीति से (अव) रक्षा कर और (आ इहि) हमें आ, प्राप्त हो। हे (शविष्ठ) अति बलवन् ! (वयम्) हम लोग (दिवि) इस पृथिवी पर (वार्यं) धारण करने योग्य, सर्वोत्तम (श्रवः) धन, ज्ञान और यश (दधीमहि) प्राप्त करें। और (दिवि) उत्तम शासन, उत्तम व्यवहार और उत्तम मनोकामना में रहकर (स्तोमं) उत्तम स्तुति अध्ययन, शास्त्र आदि का (मनामहे) मनन करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[३६]

प्रभूवसुरांगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ६ त्रिष्टुप् । ३ जगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (वसूनां) राष्ट्र में वसे प्रजा जनों, में (रयीणां दामनः) ऐश्वर्यों के देने वाली प्रजाओं को (चिकेतत्) जाने और जो (वसूनां दातुं चिकेतत्) ऐश्वर्यों को स्वयं देना भी जानता है (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (आ गमत्) आवे, हमें प्राप्त हो । (धन्वचरः तृषाणः वंसगः चकमानः यथा जलं पिबति) जिस प्रकार मरुभूमि में विचरने वाला पियासा बैल जल चाहता हुआ, जलपान करता है उसी प्रकार राजा भी (धन्व-चरः) धनुष के बल पर विचरण करता हुआ (वंस-गः) सत्यासत्य विवेकी पुरुषों के बीच स्थित एवं उत्तम आचारवान् (तृषाणः) पिपासितवत् (चकमानः) अर्थ की कामना करता हुआ (दुग्धम्) प्रजा से प्राप्त (अंशुम्) अपने भाग को (पिबतु) गौ के वत्स के समान ही स्वल्प मात्रा में उपभोग करे और पूर्णसमृद्ध व्यापक राष्ट्र का पालन करे ।

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों और अश्व सैन्यों के स्वामिन् ! (शूर) शूरवीर ! जिस प्रकार (हनू) मुख पर लगे मुख नासिका वा दोनों जबाड़े (शिप्रे) सुन्दर प्रतीत हों उसी प्रकार (ते हनू) तेरी हननकारिणी सेनाएं दायें बायें (शिप्रे) मुख पर लगी नासिकाओं वा जबाड़ों के तुल्य अग्रगामी और दृढ़ हों । (सोमः न) सोमलता जिस प्रकार (पर्वतस्य पृष्ठे) पर्वत के पीठ पर ही (रुहत्) उत्पन्न होता और बड़ा होता है उसी प्रकार (पर्वतस्य पृष्ठे) पालक शासक वा पर्व पर्व से युक्त सैन्यबल वा शस्त्रबल के ही ऊपर (सोमः) ऐश्वर्य भी (रुहत्) उत्पन्न होता और बढ़ता है । (अर्वतः न हिन्वन्) अश्वों को चलाने वाला

सारथि जिस प्रकार अश्वों के पीछे २ रहकर उसको सन्मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार (त्वा अनु) तेरे पीछे रहकर हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित, वा प्रधान पद पर प्रस्तुत राजन्! (विश्वे) हम सब (गीर्भिः) उत्तम वाणियों से (मदेम) आनन्द लाभ करें वा तेरी स्तुति करें।

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः॥३॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों से युक्त सूर्य के समान तेजस्विन्! शस्त्रास्त्र बल के स्वामिन्! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित एवं स्वीकृत! (रथाद् वृत्तं चक्रं न) रथ से पृथक् हुए चक्र के समान (मे अमतेः) मुझ ज्ञानरहित प्रजाजन का (मनः) मन (भिया वेपते) भय से कांपता है। हे (सदा-वृध) प्रजा के सदा बढ़ानेहारे! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! (कुवत् जरिता) बड़े २ स्तुतिकर्त्ता और (पुरु-वसुः) बहुत से धनों से सम्पन्न, या बहुत से वासियों से सम्पन्न राष्ट्र (त्वा) तुझको (अधि स्तोषन्) अपने ऊपर अध्यक्ष होने के लिये प्रस्ताव करें।

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (एषः) यह (ग्रावा इव) शिला के समान शत्रु को कुचल देने वाले क्षात्रवर्ग के समान ही (जरिता) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् भी (बृहद् आशुषाणः) बड़े भारी ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करता हुआ, (ते वाचं) तेरे हितकारी वाणी को (इयर्त्ति) प्राप्त हो और तुझे उपदेश करे। हे (मघवन्) ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू भी (बृहद् आशुषाणः) बड़ा राष्ट्र प्राप्त करता हुआ (सव्येन) बायें से (रायः प्रयंसि) ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार सुरक्षित करता है तो (दक्षिणित्) दायें से भी (प्र यंसि) अच्छी प्रकार दान किया कर। हे

(हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (मा वि वेनः) इससे विपरीत आचरण की कभी कामना न कर। राजा की दो बाहुएं हैं क्षत्रियगण और ब्राह्मण वर्ग। वह एक के बल पर राष्ट्र की रक्षा, प्रबन्ध करता, तथा एक के द्वारा उसका सदुपभोग करता है।

वृषा॑ त्वा॒ वृष॑णं वर्धतु॒ द्यौर्वृषा॒ वृष॑भ्यां वहसे॒ हरि॑भ्याम् ।
स नो॒ वृषा॒ वृष॑रथः सुशिप्र॒ वृष॑क्रतो॒ वृषा॑ वज्रि॒न्भरे॑ धाः ॥५॥

भा०—(वृषा द्यौः) राज्यप्रबन्ध में कुशल सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (वृषणं त्वा वर्धतु) बलवान् तुझको बढ़ावे। तू (वृषभ्यां हरिभ्यां) बलवान् अश्वों से (वहसे) धारण किया जाय ! हे (सुशिप्र) उत्तम मुख नासिका वाले ! हे सुमुख ! (सः) वह तू भी (वृषा) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता और (वृषरथः) बलवान् अश्वों से युक्त रथ वाला हो। हे (वृषक्रतो) बलवान् पुरुषों के तुल्य वीरता के कर्म करने वाले ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् शस्त्र बल के स्वामिन् ! तू (वृषा) बलवान् होकर ही (भरे) संग्राम में पालन पोषण में (नः धाः) हमें परिपुष्ट कर।

यो रोहि॑तौ वा॒जिनौ॑ वा॒जिनी॑वान्त्रि॒भिः श॒तैः सच॑माना॒वदि॑ष्ट ।
यूने॒ सम॑स्मै क्षि॒तयो॑ नमन्तां श्रु॒तर॑थाय मरुतो दुवो॒या ॥६॥७॥

भा०—(यः) जो (वाजिनीवान्) संग्रामकारिणी सेना का स्वामी होकर (त्रिभिः शतैः) तीन सौ जवानों, सैन्य दलों के साथ (सचमानौ) समवाय बना कर रहने वाले (रोहितौ वाजिनौ) सूर्यवत् तेजस्वी बलवान् दो अध्यक्षों को (आदिष्ट) आज्ञा देता है (अस्मै यूने) उस युवा, (श्रुतरथा) प्रसिद्ध महारथी के आदर के लिये (क्षितयः) सामान्य प्रजाजन और (मरुतः) वायुवत् तीव्र वेग से जाने वाले और शत्रु को मारने वाले वीरगण भी (दुवोया) उसकी सेवा परिचर्या करते हुए (सं नमन्ताम्) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक झुकें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[३७]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो कोई (इति आह) ऐसा कह देता है कि हम (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता महाराज के लिये ही (सुनवाम) समस्त ऐश्वर्य उत्पन्न करते हैं (तस्मै) उसके लिये (उषसः) शत्रु को दग्ध कर देने वाली सेनायें भी (अमृध्राः) अहिंसक होकर (वि उच्छान्) विविध रूपों में प्रकट होती हैं । वह राजा (सूर्यस्य) सूर्य के प्रखर तेज से युक्त होकर (सं यतते) यत्न करता है, वह संग्राम और शत्रु-विजय किया करे और वह (घृत-पृष्ठः) घृत को प्राप्त करके अति उज्ज्वल होने वाले अग्नि और मेघमय जल को स्पर्श करने वाली विद्युत् के तुल्य तेजस्वी (सु-अञ्चाः) उत्तम रीति से पूजनीय होकर (आजुह्वानः) शत्रुओं को आह्वान करता, ललकारता हुआ (सं यतते) युद्धादि उद्योग किया करे ।

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (इषिरम्) इच्छानुकूल, अभिलषित कार्य को (ग्रावाणः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं को कुचल डालने वाले शस्त्र-धर वीर सैन्यबल (वदन्ति) बतलाते और (यस्य) जिसके (सिन्धुं) समुद्र के समान विस्तृत, प्रबल वेग से जाने वाले वा सुप्रबद्ध सैन्य वा प्रजा के सागर को (अध्वर्युः) राष्ट्र को मरने से बचाने में कुशल नायक (हविषा) अन्न वृत्ति या कर संग्रहादि उपायों से (अव अयत्) अपने

अधीन नियम में रखता है वह राजा (समिद्धाग्निः) अग्नि के समान अति देदीप्त होकर (स्तीर्णं बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र को विस्तृत करके (युक्त-ग्रावा) अपने देश में उत्तम विद्वानों और प्रबल पुरुषों को नियुक्त तथा (सुतसोमः) ऐश्वर्य को प्राप्त करके अथवा (सुतसोमः) पुत्रवत् राज्य को पालता हुआ (जराते) शासन करे ।

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३॥

भा०—(यः) जो पुरुष (ईम्) इस (इषिराम्) इच्छा से युक्त स्त्री को (महिषीम्) अपनी रानी वा अति सौभाग्यवती जानकर (वहाते) उससे विवाह करता है उसी पुरुष को जिस प्रकार (इयं वधूः) वह नव-वधू भी (पतिम् इच्छन्ती) अपना पति चाहती हुई (एति) उसे प्राप्त होती है । इसी प्रकार (यः) जो वीर पुरुष (इषिराम्) इष्ट ऐश्वर्य देनेवाली वा इच्छावती (महिषीम्) बड़े भारी ऐश्वर्य को देने और सेवने वाली इस भूमि का भार (वहाते) अपने कन्धों पर उठाता है वह वधूवत् उसको (पतिम् इच्छन्ती) अपना पति, पालक, स्वामी बनाना चाहती हुई उसे ही प्राप्त होती है । वह राष्ट्र प्रजा (अस्य) इस राजा का (आ श्रवस्यात्) यश चाहे । (आघोषात् च) प्रजा उसकी घोषणा भी सर्वत्र करे । और (सहस्रा पुरू) सहस्रों प्रजाजन (परि) उसके अधीन (वर्त्तयाते) रहें ।

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

भा०—(सः) वह (राजा) राजा (न व्यथते) भय या पीड़ा को कभी प्राप्त नहीं होता (यस्मिन्) जिसके शासन करते हुए (इन्द्रः) सूर्य और विद्युत् (तीव्रं) अति तीक्ष्ण होकर (गो-सखायं) भूमि के मित्र भूत वा किरणों के साथ मित्रवत् वाष्प होकर ऊपर जाने वाले

(सोमं) जल को (पिबति) पान करता है। और (यस्मिन्) जिसके अधीन (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति और ऐश्वर्यवान् सम्पन्न भूमिपति लोग भी (गो-सखायं) वाणी या वचन के अनुसार वा भूमिवासी प्रजा के मित्रवत् उपकारक (सोमं पिबति) राष्ट्र का पालन करता है। और जिस राज्य में (इन्द्रः) विद्युत् (वृत्रं) मेघ को (सत्वनैः) बलवत् प्रहारों से (अजति) कंपाता, (हन्ति) ताड़ित करता और (क्षितीः क्षेति) मनुष्यों को देवमातृक भूमियों में बसाता है और उसके तुल्य ही राजा स्वयं भी (वृत्रं) बढ़ते हुए शत्रु को (सत्वनैः) प्रबल वीरों से (अजति) उखाड़ता और (हन्ति) दण्डित करता है, (क्षितीः क्षेति) अपनी भूमियों और प्रजाओं को बसाता है। वह स्वयं राजा भी विद्युत्वत् ही (सुभगः) उत्तम सौभाग्यशाली ऐश्वर्यवान् होकर (नाम पुष्यन्) अपने नाम को पुष्ट करता, प्रसिद्धि पाता और राष्ट्र को भी पुष्ट करता है।

पुष्या॒त्क्षेमे॑ अ॒भि योगे॑ भवात्यु॒भे वृतौ॑ सं॒यती॒ सं ज॑याति।
प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒यो अ॒ग्ना भ॑वाति॒ य इन्द्रा॑य सु॒तसो॑मो॒ ददा॑शत् ५।८

भा०—(यः) जो राजा (सुत-सोमः) ऐश्वर्य प्राप्त करके भी (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद की वृद्धि के लिये (ददाशत्) अपने ऐश्वर्य का दान वा त्याग करता है वह राजा (क्षेमे) प्रजा के रक्षण कार्य में (पुष्यात्) पुष्ट होता है, और (योगे) अलब्ध राज्य को प्राप्त करने के लिये शत्रुओं को (अभि भवाति) तिरस्कृत करता है, (वृतौ) शत्रु के वारण करने के निमित्त (संयती उभे) स्व और पर दोनों सम्मिलित सेनाओं को भी (सं जयाति) जीत लेता है। वह (सूर्ये प्रियः) सूर्य के समान तेजस्वी पदपर स्थित होकर भी सब का प्रिय होता है और (अग्नौ प्रियः भवाति) अग्निवत् तेजस्वी और अग्रणी नायक पद पर रह कर भी सर्व-प्रिय होता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३८]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । २, ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (उरोः राधसः) बहुत भारी ऐश्वर्य का यह (विभ्वी रातिः) बड़ा भारी दान है । हे (शतक्रतो) अनेक उत्तम प्रज्ञा और कर्म करने हारे ! हे (विश्वचर्षणे) सब मनुष्यों के स्वामिन् ! वा हे सब देखने योग्य न्याय व्यवहार को देखने हारे ! हे (सु-क्षत्र) उत्तम बल और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (अध) और तू (नः) हमें (द्युम्ना) अनेक धन (मंहय) प्रदान कर ।

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥

भा०—हे (हिरण्यवर्ण) सुवर्ण को वरण करने हारे ऐश्वर्याभिलाषिन् ! हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! (यद्) जो पुरुष (श्रवाय्यं) श्रवण योग्य कीर्त्तिजनक (इषं) अन्न या बल को (दधिषे) धारण करता है उस (दीर्घश्रुत्तमम्) दीर्घ काल तक उत्तम ज्ञान के श्रवण करने वाले बहुश्रुत और (दुस्तरम्) शत्रुओं से अपराजित पुरुष को (पप्रथे) और भी विस्तृत प्रसिद्ध कर वा जो यशोजनक अन्नबल आदि की वृद्धि करे उस बहुश्रुत पुरुष का तू पालन कर ।

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शस्त्रबल के मेघवद् उन्नत पर्वतयुक्त भूमि के और अद्रिवद् अभेद्य दुर्गादि के स्वामिन् ! (ये ते) जो तेरे

(शुष्मासः) शत्रु का शोषण करनेवाले सैन्यगण सूर्य की रश्मियों के तुल्य हैं वे (मेंहना) शत्रु पर शर वर्षा करने के सामर्थ्य से युक्त होकर भी (केतसापः) संकेत मात्र से संव वनाने में कुशल और संकेत पर चलने हारे हों। (उभौ देवौ) दोनों तेजस्वी (दिवः) दिनवत् राजसभा का प्रकाशक आकाश, सूर्य और (ग्मः) भूमि का प्रकाशक राजा तू दोनों ही (अभिष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये और चारों तरफ़ जलवत् ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये, (राजथः) प्रकाशित होते हो।

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन्।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥

भा०—(उतो) और हे (वृत्र-हन्) वर्धमान, नगरोपरोधी शत्रु को दण्ड देने में समर्थ राजन्! (तव) तेरे (अस्य) इस (कस्य चित्) किसी (दक्षस्य) शत्रुदाहक सामर्थ्य का ही यह (नः) हमारा उत्तम राष्ट्र परिणाम है। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लाभ के लिये ही (नृमणस्यसे) धन की अभिलाषा करता है। तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये ही (नृम्णम् आ भर) ऐश्वर्य को प्राप्त किया कर।

नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म और बुद्धियों के स्वामिन्! तेरी (आभिः) इन (अभिष्टिभिः) उत्तम अभिलाषाओं के साथ २ (तव-शर्मन्) तेरे सुखकारक, गृह के तुल्य सुख-शान्तिदायक राज्य में रहकर हम लोग हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सुगोपाः स्याम) इन्द्रियों गौओं के उत्तम पालक, जितेन्द्रिय और पशुसम्पन्न हों। हे (शूर) शूरवीर हम लोग (सुगोपाः स्याम) उत्तम भूमि वाले और गृहपत्नी प्रजा आदि के पालक भी हों। इति नवमो वर्गः॥

[३९]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २, ३ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडुष्णिक् । ५ बृहती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) सूर्यवत् अभेद्य एवं मेघों के समान उदार पुरुषों और दृढ़ सैनिकों के स्वामिन् ! हे (चित्र) पूज्य ! अद्भुत गुण कर्म स्वभाव ! हे (विदद्-वसो) प्राप्त धन के स्वामिन् ! हे प्राप्त करने और ज्ञान करने वालों को बसाने और उनमें बसने वाले वा उनके धनों और प्राणों के स्वामिन् ! (मेहना) जिस प्रकार सूर्य वृष्टि लाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यद्) जो (मेहना) उत्तम दान देने वा वृष्टि-वत उदारता से देने योग्य धन वा ज्ञान है वह (त्वादातम्) सब तेरे ही द्वारा देने योग्य है । उन सबका माता तू है (नः) हमें (तत्) वह (राधः) धनैश्वर्य तू (उभया-हस्ति) दोनों हाथों से (आ भर) प्राप्त करा अर्थात् तू उदारता पूर्वक दोनों हाथों से और हम आदरपूर्वक दोनों हाथों से लें । देने लेने दोनों कार्यों में दोनों हाथों का व्यापार हो ।

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (यत्) जो (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ और उत्तम मार्ग में लेजाने वाला (द्युक्षं) अन्न और धन (मन्यसे) मानता वा जानता हो (तत्) वह तू (आ भर) लेआ । (अकूपारस्य तस्य) जिसका परिणाम बुरा नहीं हो ऐसे वा समुद्रवत् अपार उस धनैश्वर्य को भी (वयम्) हम लोग (ते दावने) तुझ दाता का (विद्याम) जानते हैं ।

यत्ते॑ दि॒त्सु प्र॒राध्यं॒ मनो॒ अस्ति॑ श्रु॒तं बृ॒हत् ।
तेन॑ दृ॒ळ्हा चि॑दद्रिव॒ आ वाजं॑ दर्षि सा॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) सूर्यवत् मेघ तुल्य शस्त्रधरों वा दानशीलों के स्वामिन् ! (यत्) जो (ते) तेरा (दित्सु) दान करने का इच्छुक (प्र-राध्यं) अति स्तुत्य एवं कार्यसाधक (श्रुतं) विख्यात और बहुश्रुत (बृहत्) बहुत बड़ा (मनः अस्ति) मन और ज्ञान है, (तेन) उससे तू (दृढ़ा चित्) दृढ़ से दृढ़ दुर्गों को (आदर्षि) तोड़ सकता है और (सातये) सत्यासत्य, वा धर्माधर्म के विवेक के लिये (दृढा चित् आ दर्षि) दृढ़ संग्रामों को भी जीतता है ।

मंहि॑ष्ठं वो म॒घोनां॒ राजा॑नं चर्षणी॒नाम् ।
इन्द्र॒मुप॒ प्रश॑स्तये पू॒र्वीभि॑र्जुजुषे॒ गिरः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! (मघोनां वः) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न आप (चर्षणीनां) ज्ञानवान् पुरुषों के बीच (मंहिष्ठं) अति दानशील और (राजानम्) अति तेजस्वी राजा (इन्द्रं) शत्रुहन्ता पुरुष को (प्रशस्तये) अच्छी प्रकार शासन करने और उसको उपदेश करने के लिये (गिरः) उत्तम उपदेष्टा वाग्मी लोग (पूर्वीभिः) पूर्व की वेद वाणियों द्वारा (उपजुजुषे) प्रेमपूर्वक उपदेश करें और उसको ज्ञान का सेवन करावें । (२) परमेश्वर की उपासना के लिये वाणीविद् जन पूर्व गुरुओं द्वारा दृष्ट और उपदिष्ट प्राचीन वेद वाणियों से स्तुति करें ।

अ॒स्मा इत्काव्यं॒ वच॑ उ॒क्थमिन्द्रा॑य॒ शंस्य॑म्
तस्मा॑ उ॒ ब्रह्म॑वाहसे॒ गिरो॑ वर्ध॒न्त्यत्र॑यो॒ गिरः॑ शुम्भ॒न्त्यत्र॑यः॥५॥१०॥

भा०—(अस्मै इत् इन्द्राय) उस ही महान् ऐश्वर्यवान्, सूर्यवत् तेजस्वी के लिये (काव्यं वचः) कवियों का उत्तम वचन (शंस्यं) कहने योग्य होता है । (अत्रयः) इस राष्ट्र में रहने वा त्रिविधि दुखों से रहित

(गिरः) उपदेष्टा और उत्तम वेदवाणियें भी (तस्मै उ ब्रह्मवाहसे) उसी धनैश्वर्य और बृहत् राष्ट्र के धारण करने वाले की शक्तियों को (व-र्धन्ति) बढ़ाते हैं और (अत्रयः गिरः) तीनों प्रकार के दोषों से रहित वाणियां भी उसको ही (शुम्भन्ति) सुशोभित करती हैं । (२) विशाल जगत् के धारक प्रभु की महिमा को ही समस्त वाणियें और वाग्मी जन बढ़ाते और सुशोभित करते हैं । उसी को लक्ष्य करके ही यह सब वाणियों का वाग्-विलास है । इति दशमो वर्गः ॥

[४०]

अत्रिर्ऋषिः ॥ १—४ इन्द्रः । ५ सूर्यः । ६—९ अत्रिर्देवता ॥ छन्दः- १ निचृदुष्णिक् । २, ३ उष्णिक् । ९ स्वराडुष्णिक् । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमपते) समस्त ऐश्वर्य के पालक ! हे (वृषन्) उत्तम प्रबन्धकर्त्तः ! हे (वृत्रहन्तम) अति अधिक शत्रुओं के मारने हारे, हे विघ्ननाशक ! (वृषभिः अद्रिभिः) वर्षणशील मेघों से जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न जगत् को पालन करता है उसी प्रकार तू भी हे राजन् ! (वृषभिः अद्रिभिः) उत्तम प्रबन्धक और दृढ़ शस्त्रधर पुरुषों सहित (सुतं सोमं) पुत्रवत् राष्ट्र को वा अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को (आ याहि) प्राप्त कर और (पिब) उसका पालन और उपभोग कर ।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥

भा०—(ग्रावा वृषा) पत्थर या शिला जिस प्रकार अपने नीचे आये पदार्थों को कुचल देता है उसी प्रकार शत्रुओं को कुचलने वाला

शस्त्रबल, वा (ग्रावा) अधीन शिष्यों वा भृत्यों को उपदेश वा आज्ञा देने वाला नायक पुरुष (वृषा) मेघ के समान शस्त्रवर्षी, ज्ञानवर्षी, और प्रबन्धकर्त्ता हो। (मदः) प्रजाओं का दमन करने वाला पुरुष भी (वृषा) बलवान् हो। (सोमः वृषा) अभिषेक योग्य पुरुष भी बलवान् हो (अयं सुतः) यह ऐसा पुरुष अभिषेक किया जावे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वृत्रहन्तम) शत्रुओं के उत्तम नाशक। हे (वृषन्) बलवन्! तू इन बलवान् पुरुषों से राष्ट्र का पालन और उपभोग कर।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बल, वीर्य और शस्त्रबल के स्वामिन्! (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत रक्षण शक्तियों से युक्त (त्वा) तुझ (वृषणं) बलवान् पुरुष को ही (हुवे) मैं प्रजाजन स्वीकार करूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वृषन्) बलवन्! हे (वृत्रहन्तम) उत्तम शत्रुदलनकारिन्! तू (वृषभिः) बलवान् पुरुषों सहित (वृषा) स्वयं बलवान् रहकर (सोमं पिब) राष्ट्रैश्वर्य का पालन और उपभोग कर।

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः॥४॥

भा०—(ऋजीषी) धर्म मार्ग में सदा स्वयं रहने की इच्छा करने और औरों को चलाने हारा, (वज्री) शत्रुवारक सैन्यबल का स्वामी, (वृषभः) मेघवत् सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान्, हृष्ट पुष्ट, (तुराषाट्) वेग से आने वाले, हिंसक शत्रुओं को पराजित करने वाला (वृत्रहा) बढ़ते और काटते, छेदते दुष्ट पुरुषों वा शत्रुओं को दण्ड देने हारा, (सोमपावा) ऐश्वर्यों का पालक और उनका ओषधि, अन्न आदिवत् उपभोक्ता

(इन्द्रः) सूर्यवत्, शत्रुहन्ता, तेजस्वी (राजा) राजा (शुष्मी) बड़े भारी बल का स्वामी होकर, (युक्त्वा) समाहित, एकाग्र चित्त होकर वा अपने अधीन भृत्यों को रथ में अश्वों के समान नियुक्त कर। (हरिभ्याम्) अश्वों सहित वा दो उत्तम पुरुषों से सहायवान् होकर (अर्वाङ् उप यासत्) सन्मुख आवे। और (माध्यन्दिने सवने) दिन के मध्यकाल दोपहर में तपते सूर्य के समान अति प्रतापयुक्त दशा में अभिषेक हो जाने पर वह (मत्सत्) खूब प्रसन्न हो और औरों को भी हर्षित करे।

यत्त्वा॑ सूर्य॒ स्व॑र्भा॒नुस्तम॒साविध्य॑दासु॒रः ।

अक्षे॑त्रवि॒द्यथा॑ मु॒ग्धो भुव॑नान्यदीधयुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(स्वर्भानुः) 'स्वः', सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला (आसुरः) स्वयं अप्रकाशित पिण्ड, अन्यों से प्रकाशित होने वाला चन्द्रादि आकाशीय पिण्ड जब (तमसा) अपने अन्धकारमय भाग से (अविध्यत्) वेध करता है, अर्थात् दोनों एक रेखा में आ जाते हैं तब (भुवनानि) समस्त अन्य नक्षत्र आदि लोक भी (अदीधयुः) ऐसे चमकते दिखाई देते हैं (यथा) जिससे (अक्षेत्रवित्) क्षेत्र मापन की विद्या रेखागणित वा ज्यामिति को न जानने हारा पुरुष (मुग्धः) मोह में पड़ जाता है कि यह क्या बात हुई, वह यह नहीं जानता कि चन्द्र ही सूर्य के आगे आ गया है, बड़े सूर्य को भी चन्द्र का बिम्ब आच्छादित कर लेता है। उसी प्रकार जब (आसुरः) कोई बलवान् पुरुष हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्वी राजन्! (स्वः-भानुः) प्रकाश वा प्रताप से प्रतापी होकर (त्वा तमसा अविध्यत्) तुझे कष्टदायी बल से ताड़े तब (भुवनानि) सामान्य लोक भी ऐसे (अदीधयुः) आश्चर्यचकित हो जाते हैं (यथा) कि (अक्षेत्रवित्) क्षेत्र, अर्थात् निवास योग्य भूमि को प्राप्त न करने वाला जन प्रायः (मुग्धः) मोहयुक्त हो जाता है। ऐसे आक्रमणकारी को भी तू दबा कर अनाश्रित जनों को आश्रय दे। इत्येकादशो वर्गः ॥

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन्।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्दुदत्रिः ॥ ६ ॥

भा०—(स्वर्भानोः) सूर्य के प्रकाशित, स्वयम् अप्रकाश चन्द्र आदि पिण्ड की (दिवः) सूर्य से (अवः) उरे या नीचे की ओर ही (वर्त्तमानाः) रह जाने वाली (मायाः) अन्धकार की रेखाओं को सूर्य (अव अहन्) नीचे की ओर ही प्रेरित करता है। (अप व्रतेन) स्वतः क्रिया शून्य, (तमसा) अन्धकार से (सूर्यं गूढं) छुपे हुए सूर्य को (अत्रिः) इस भूलोक का वासी जन (तुरीयेण ब्रह्मणा) तीनों लोकों से परे विद्यमान 'ब्रह्म' अर्थात् विशाल तेज से ही उसको (अविन्दत्) देख रहा होता है। ठीक उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सूर्यवत् तेजस्विन्! (अध यत्) जब (दिवः अवः वर्त्तमानाः) सूर्यवत् तेजस्वी विजिगीषु तेरे से परे दूर २ रहने वाली (स्वः भानोः) प्रतापी शत्रु की (मायाः) अद्भुत मायाओं और चालों को भी तू (अव अहन्) मार गिराता है तब (अपव्रतेन तमसा गूढं सूर्यं) क्रियाकौशल से रहित खेदादि से आच्छादित तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को भी (अत्रिः) इस राष्ट्र का वासी जन (तुरीयेण) सर्वातिशायी (ब्रह्मणा) बड़े भारी बल और ऐश्वर्य से ही (अविन्दत्) प्राप्त करता है।

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! (अत्र) इस राष्ट्र में (सन्तं) विद्यमान (इमं मां तव) इस तेरी प्रजा रूप मुझ को (द्रुग्धः) द्रोही शत्रु (इरस्या) अन्न की इच्छा से, अन्न समृद्धि के लोभ से वशीभूत होकर भी (भियसा) तेरे भय से भयभीत रहकर (मा नि गारीत्) मत निगल जावे। (त्वं मित्रः असि) तू ही हमारा मित्र अर्थात् हमें मरण से बचाने वाला है। तू ही (सत्य-राधाः) सत्य, न्याय का धनी है। तू (राजा) राजा और

(वरुणः च) शत्रु को वारण करने हारा सेनापति (तौ) वे आप दोनों ही (इह) इस राष्ट्र में (मे) मेरी (अवतं) रक्षा करें।

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः संपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्। अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्॥८॥

भा०—(युयुजानः) नाना प्रकार के योग अर्थात् सन्धि आदि उपाय करने वाला (ब्रह्मा) बड़े भारी राष्ट्र और धन का स्वामी, (कीरिणा) शत्रु पर फेंके जाने वाले शस्त्र बल से युक्त होकर (ग्राव्णः) शिलावत् शत्रुमर्दन करने वाले प्रबल दृढ़ (देवान्) विजयेच्छुक पुरुषों को (सपर्यन्) आदर सत्कार करता हुआ और उनको (नमसा) अन्न से, विनय से (उप शिक्षन्) शिक्षित करता हुआ, (अत्रिः) इस राष्ट्र का भोक्ता राजा वा प्रजा जन (सूर्यस्य दिवि) सूर्य के प्रकाशवत् तेजस्वी राजा के न्याय प्रकाश में (चक्षुः) यथार्थ दर्शन करने वाला विवेक (अदधात्) धारण करे और वह राजा और प्रजाजन भी (स्वर्भानोः मायाः) प्रताप से चमकने वाले शत्रु की मायाओं को (अप अघुक्षत्) दूर करे। इसी प्रकार (युयुजानः ब्रह्मा) समाहित एवं अन्यों के प्रज्ञानों और संदेहों का समाधान करने वाला वेदज्ञ विद्वान् (कीरिणा) उदारता से वाणी द्वारा वितरण योग्य वचन द्वारा (देवान् ग्राव्णः सपर्यन्) विद्या के अभिलाषी और ज्ञान के पिपासु जनों को आदरपूर्वक देता हुआ (नमसा) दण्ड सहित (उप शिक्षन्) उनको शिक्षा देता हुआ, स्वयं (अत्रिः) त्रिविध तापों और मन, वाक् काय के त्रिविध दोषों से रहित होकर (सूर्यस्य दिवि) सूर्यवत् सबको प्रकाश, वेद वा प्रभु के दिये वेद-ज्ञान-प्रकाश में (चक्षुः आधात्) शिष्यों के ज्ञान चक्षुओं को स्थिर कर देता है। और (स्वर्भानोः) केवल सुख की प्रतीति कराने वाले राग, मोह की (मायाः) मायाओं, प्रवचनों खोटी बुद्धि, वासनाओं को (अवजुघुक्षत्) दूर करे।

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥ १२ ॥

भा०—(यं सूर्यं) जिस सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (स्वर्भानुः) सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित, चन्द्र वा मेघ के समान परोपजीवी (आसुरः) बलवान् शत्रु (तमसः) अन्धकारवत् अन्यों के आंख मूंद कर पाप या छल से (अविध्यत्) प्रहार करे तो (अत्रयः) उसी स्थान के लोग (तम्) उस तेजस्वी राजा को (अनु अविन्दन्) पुनः अपनावें और (अन्ये) दूसरे लोग (नहि अशक्नुवन्) उसे नहीं अपना सकते । उसकी पूर्व प्रजाएं ही उसको बलवान् शत्रु से बचा और पुनः स्थापित भी कर सकती हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

[४१]

अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १५, १८ त्रिष्टुप् । ४, १३ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ७, ८, १४, १९ पंक्तिः । ५, ९, १०, ११, १२ भुरिक् पंक्तिः । २० याजुषी पंक्तिः । १६ जगती । १७ निचृज्जगती ॥
विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् १

भा०—हे (मित्रावरुणौ) मित्र, सबको स्नेह दृष्टि से देखने हारे, सबके हितैषी ! हे वरुण, शत्रु के वारण करने हारे श्रेष्ठ पुरुष ! (कः नु) कौनसा है जो (वां) आप दोनों को (ऋतायन्) सत्य, न्याय, बल और धन को प्राप्त करने का इच्छुक होकर प्राप्त होता है आप दोनों इस बात का सदा ध्यान रक्खो और आप (महतः दिवः) बड़े तेजस्वी, राजा (वा) और (पार्थिवस्य) पृथिवी निवासी प्रजावर्ग के (वा) और (ऋतस्य वा सदसि) ज्ञान वा सत्य न्याय के भवन में स्थित होकर

(दे) प्रकाशित होकर (यज्ञायते) परस्पर सत्संग चाहने वाले राष्ट्र के हितार्थ (नः) हमें और हमारे (वाजान्) ऐश्वर्यों को भी (पशुपः न) पशुओं के समान ही (त्रासीथाम्) रक्षा किया करो। अर्थात् प्रत्येक रक्षार्थी और न्यायार्थी के लिये राजा के न्याय और पुलिस का विभाग न्यायरक्षा के लिये सदा सन्नद्ध रहना चाहिये।

ते नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अ॑र्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतो॑ जुषन्त।
नमो॑भिर्वा॒ ये दध॑ते सुवृ॒क्तिं स्तोमं॑ रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ स॒जोषा॑ः ॥२॥

भा०—(मित्रः) सर्वप्रिय, सर्वस्नेही, न्यायाधीश, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, दुष्टवारक दण्डाध्यक्ष, (अर्यमा) न्यायकारी, शत्रुनियन्ता, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (ऋभुक्षाः) बड़ा विद्वान् पुरुष (आयुः) प्राणाचार्य, और (मरुतः) उत्तम वैश्यजन वा प्रजावर्ग, वायुवद् बली वीरजन सभी (ते) वे (नः जुषन्त) हम प्रजाजनों को प्रेमपूर्वक चाहें। (ये) जो (मीढुषे) वर्षणकारी (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के हितार्थ (सजोषाः) समान रूप से सेवा करने वाले होकर (स्तोमं दधते) उत्तम स्तुति वा संघबल को धारण करते और जो उसके हितार्थ ही (नमोभिः) शत्रु को नमाने वाले साधनों सहित (सुवृक्तिं) शत्रु को वर्जने की उत्तम शक्ति को भी (दधते) धारण करते हैं (ते) वे वीर पुरुष भी (नः जुषन्त) हमसे प्रेम करें। वे भी प्रजा के द्वेषी न हों।

आ वां॒ येष्ठा॑श्विना हु॒वध्यै॒ वात॑स्य पत्म॒न्रथ्य॑स्य पु॒ष्टौ।
उ॒त वा॑ दि॒वो असु॑राय॒ मन्म॒ प्रान्धां॑सीव॒ यज्य॑वे भरध्वम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री और पुरुषो! पति और पत्नी! (वां) आप दोनों को मैं (येष्ठौ) अति नियम में रहने वाले होने के लिये (आहुवध्यै) उपदेश करता हूं। आप दोनों (वातस्य पत्मन्) वायु अर्थात् प्राण के निरन्तर चलने और (रथ्यस्य पुष्टौ) रथ के योग्य अश्व

के समान आत्मा को पुष्ट करने में (उत वा) और (दिवः असुराय) ज्ञान प्रकाश को जीवनवत् देने वाले (यज्यवे) दानशील पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य उत्तम ज्ञान और (अन्धांसि) अन्न (प्र भरध्वम्) प्राप्त करो । स्त्री पुरुष लोग अपने जीवन, आत्मा के पोषणार्थ ज्ञान और अन्न संग्रह किया करें ।

प्र सुक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४ ॥

भा०—(आशु-अश्वतमाः प्रभृते आजिं न) जिस प्रकार अति वेगवान् अश्वारोही लोग शत्रु पर प्रहार करने के लिये संग्राम में वेग से जाते हैं उसी प्रकार (प्र-भृथे) राज्य को अच्छी प्रकार भरण पोषण वा पालन के कार्य में भी (सक्षणः) अति सहनशील, शत्रुपराजयकारी, सावधान, समवायवान् (दिव्यः) तेजस्वी (कण्व-होता) विद्वान् पुरुषों को देने वाला, वा विद्वानों से उपदेश किया गया, (त्रितः) मन, वाणी और देह तीनों में स्थिर, तीनों विद्याओं में निष्णात, शत्रु, मित्र, उदासीन तीनों में प्रसिद्ध, (दिवः सजोषाः) विजय कामना को चाहने वाला, (वातः) वायुवद् बलशाली, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी और (पूषा) सर्वपोषक (भगः) ऐश्वर्य सम्पन्न ये सब प्रकार के पुरुष (विश्व-भोजाः) समस्त राष्ट्र के पालन करने हारे लोग (आशु-अश्वतमाः) अति वेगयुक्त अश्वों पर चढ़कर (प्र जग्मुः) जाया करें । युद्धवत् ही राष्ट्र के कार्यों में सब लोग वेग से ही जाया आया करें, विलम्ब न किया करें ।

प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५॥१३॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! आप लोग (वः) अपने लिये (युक्ताश्वं) अश्व जोड़ कर ले जाने योग्य (रयिम्) प्रचुर

धन को (प्र भरध्वम्) खूब प्राप्त करो। आप लोग (रायः) ऐश्वर्य को (एषे अवसे) प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के लिये (धीः दधीत) नाना उपाय, तदवीर करो और बहुत से यत्न करो। (ये) जो (वः) आप लोगों में से (तुराणां) अति शीघ्रगामी रथों और शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (एवाः) गमन साधन रथ आदि से युक्त हैं वे और जो (औशिजस्य) 'उशिक्' अर्थात् कामना करने वाले ऐश्वर्यों के इच्छुक पुरुष की कामना के योग्य उत्तम धन का (सुशेवः होता) उत्तम सुख समृद्धि से युक्त दानशील पुरुष (एवैः) नाना रथादि साधनों से (रयिं भरन्तु) अपने ऐश्वर्य को प्राप्त किया करें। और (धीः दधतु) नाना उपाय और उद्योग किया करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वः) अपने लिये (रथयुजं) रथ में जुड़ने वाले अश्व के स्थान पर (वायुं) वायु तुल्य वेगवान् साधन को (प्र कृणुध्वम्) अच्छी प्रकार लगाओ। (अर्कैः) उत्तम अर्चना करने योग्य पदार्थों और मन्त्रों से (पनितारम्) स्तुति, उपदेश और व्यवहार करने वाले (विप्रं) विद्वान् और विविध धनपूरक और (देवं) ज्ञान के दाता और ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष का (प्र कुरुत) आदर करो। (अत्र) इस राष्ट्र में (इषुध्यवः) नाना ऐश्वर्यों को चाहने वाली, नाना देशों को जाने वाली और वाण आदि अस्त्रों से युद्ध करने वाली (ऋतसापः) धन और ज्ञान का सञ्चय करने वाली (पुरन्धीः) राष्ट्र को धारण करने वाली प्रजाओं, सेनाओं और (वस्वीः) घर को बसाने वाली (पत्नीः) पत्नियों, विवाहित स्त्रियों के तुल्य (वस्वीः पत्नीः) ऐश्वर्य युक्त, राष्ट्र में बसी, राष्ट्र-पालक शक्तियों, सेनाओं को भी (धिये) उत्तम कर्म यज्ञादि सम्पादन के लिये (आ धुः) आदर पूर्वक धारण करो।

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ७ ॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन और रात्रि के तुल्य प्रकट, कामना युक्त और अप्रकट कामना वा लज्जाभाव से युक्त होकर रहने वाले स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर (विदुषी इव) विद्वान् स्त्री पुरुषों के तुल्य ही (मर्त्याय) मनुष्य मात्र के उत्पन्न करने और परोपकार करने के लिये (विश्वम् यज्ञम्) समस्त प्रकार के यज्ञ अर्थात् पञ्चयज्ञ महायज्ञ और परस्पर के सत्संग और आदर सत्कार आदि कर्म (आवहतः) धारण किया करें । वे दोनों (दिवः) ज्ञान, प्रकाश और कामना के (चितयद्भिः) बतलाने वाले (अर्कैः) उत्तम वचनों से (यह्वी) महान् होकर (प्रवहतः) आगे बढ़ें और (वन्द्येभिः) स्तुति योग्य (शूषैः) सुखों और बलों से युक्त हों । हे स्त्री पुरुषो ! (वः उप एषे) मैं ऐसे आप दोनों को प्राप्त होऊं । अपने राष्ट्र में चाहूं ।

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीरोषधी राय एषे ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (रराणः) सदा दानशील होकर (वः) आप लोगों में से (पोष्यावतः नॄन्) अपने अधीन पोष्य, स्त्री पुत्र भृत्य परिजन, याचक अतिथि आदि के स्वामी उत्तम पुरुषों का (अभि अर्चे) आदर करूं । और (त्वष्टारं) तेजस्वी और शिल्पकार, (वास्तोष्पतिम्) गृह, निवासस्थान आदि के पालक पुरुष का (अभि अर्चे) आदर करूं और मैं (रायः एषे) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (धन्यः) धन सम्पदा को बढ़ाने वाला, (सजोषः) समान प्रीतियुक्त, (धिषणा = अधि-सना) उत्तम प्रज्ञाओं और अधिष्ठात्री होकर अन्न आदि देने वाली तथा रानी बन कर भोग करने वाली स्त्रियों, प्रजाओं और (वनस्पतीः) ऐश्वर्यों की पालक, वट आदि के समान सर्वाश्रय दात्री, (ओषधीः)

ओषधियों और ताप, तेज को धारण करने वाली सेनाओं को भी (नमोभिः) अन्नों, आदर सत्कारों और शस्त्रादि अधिकार प्रदानों द्वारा (अभि अर्चे) सदा आदर करूं ।

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥

भा०—जिस प्रकार (पर्वताः तुजे तने स्वैतवः वसवः) विस्तृत राष्ट्र में पर्वत अर्थात् पालन करने, धन देने वाले और प्रजाओं को वसाने वाले होते हैं और जिस प्रकार मेघ प्रजा के पालन में स्वयं आने वाले होकर प्रजा को बसाने हारे होते हैं उसी प्रकार (पर्वताः) पालनकारी साधनों से युक्त बड़े लोग भी (तने) विस्तृत राष्ट्र में रह कर (नः तुजे) हमें ऐश्वर्य देने , पालने में (स्वैतवः) स्वयं आगे आने वाले, अग्रसर और धन प्राप्त करने वा कराने वाले और (वसवः) स्वयं बसने और प्रजाओं को बसाने वाले (वीराः न) वीर पुरुषों के समान सदा उत्साही हों । (पनितः) प्रशंसनीय, व्यवहारकुशल, (आप्त्यः) आप्त पुरुषों का हितकारी, (यजतः) दानशील, सब के साथ प्रेम सौहार्द से वर्त्तने वाला, (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी पुरुष (नः अभिष्टौ) हमारे अभीष्ट कार्य में (नः) हमारे (शंसं) स्तुत्य ज्ञान और ऐश्वर्य को (वर्धात्) बढ़ावे ।

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना १०।१४

भा०—मैं (वृष्णः) बरसने वाले (भूम्यस्य) भूमि के हितकारी मेघ के (गर्भः) मध्य भाग में रहने वाले और (अपां नपातम्) जलों को न गिरने देने वाले वा उनसे उत्पन्न (सुवृक्ति) और उनको उत्तम रीति से विभक्त करने वाले वैद्युत अग्नि को लक्ष्य कर (अस्तोषि) उपदेश करता हूं कि वह (अग्निः) तेजयुक्त अग्नि (एतरि शूषैः न) रथ पर

चढ़े सेनापति के तुल्य बल युक्त प्रहारों से (गृणीते) शब्द करता है। और वह (शोचिष्केशः) दीप्तियुक्त केशों के समान ज्वालाओं से युक्त तेजस्वी, भौम अग्निवत् (वना नि रिणाति) वनों के समान जलों में व्यापता है उसी प्रकार मैं (वृष्णः) अति बलशाली (भूम्यस्य) भूमि पर स्थित राष्ट्र के (गर्भं) ग्रहण या वश करने वाले (अपां नपातम्) आप्त प्रजाजनों को नीचे न गिरने देने वाले उनको पुत्रवत् प्रिय, (सुवृक्ति) उत्तम धन वा न्याय के विभाजक का मैं (अस्तोपि) गुण वर्णन करता हूं। वह (त्रितः) तीनों उत्तम, मध्यम और अधम, और विजगीषु और उदासीन तीनों प्रकार के लोगों से ऊपर रहकर (अग्निः) सब का अग्रणी होकर (ऋषैः) सुखकारी वचनों और शत्रुशोषक बलों से (गृणीते) सब पर शासन करता है वह (शोचिष्केशः) सूर्य या अग्नि के तुल्य तेजोयुक्त केशवत् दीप्तियों से युक्त होकर (वना) शत्रु के सैन्यों को वनों के अग्निवत् (नि रिणाति) दग्ध कर देता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥ ११ ॥

भा०—हम लोग (महे) बड़े, माननीय, (रुद्रियाय) शत्रुओं को रोकने में समर्थ राजा के पुत्र के तुल्य, प्रिय सैन्यों और विद्याओं का उपदेष्टा आचार्य के पुत्र वा उससे विद्या प्राप्त करने वाले विद्वान् और (चिकितुषे भगाय) ज्ञान से युक्त सेवने योग्य सत् पुरुष की (राये) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि के लिये (कथा) किस प्रकार से और (कत्) किस २ अवसर में (ब्रवाम)उससे प्रार्थना निवेदन आदि करें। यह हम सदा जानें। और (आपः) जल और आप्त पुरुष (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियां और प्रतापिनी सेनाएं (द्यौः) सूर्य और तेजस्वी पुरुष (वना) वन, सूर्य की किरणें और ऐश्वर्य और (वृक्षकेशाः गिरयः) वृक्षों को केशवत् धारण करण करने वाले पर्वत और वृक्षों के केश वा जटा

के तुल्य लम्बी जटा केश धारण करने वाले जटिल जन, (गिरयः) वृद्ध उपदेष्टा जन अथवा (वृक्षकेशाः) वृक्षवत् काटने योग्य केशों का अन्त कर देने वाले ज्ञान वृद्ध गुरुजन (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२ ॥

भा०—(ऊर्जांपतिः) अन्नों और बलों का स्वामी (नः) हमारी (गिरः) वाणियों को (शृणोतु) सुने। और अपनी वाणियें और आज्ञाएं हमें सुनावे। (सः) वह (नभः) राष्ट्र का प्रबन्ध करने वाला, (तरीयान्) सबसे अधिक बलवान् (इषिरः) सब से प्राप्त करने योग्य, अग्रगामी, (परिज्मा) चारों तरफ की भूमियों का अध्यक्ष हो। (पुरः न) उत्तम नगरियों के तुल्य (शुभ्राः) दीप्तियुक्त (आपः) आप्त जन भी (अद्रेः परिस्रुचः आपः न) मेघ से बहने वाली जल-धाराओं के तुल्य स्वयं (बबृहाणस्य) सदा वृद्धिशील, (अद्रेः) अभेद्य, एवं मेघवत् उदार, शस्त्र बल के स्वामी के (परि स्रुचः) अधीन, उसकी आज्ञा में चलने वाली सेनाएं वा लोक वा (आपः) आप्त प्रजाएं भी (शृण्वन्तु) शासक राजा की उत्तम आज्ञाएं सुनें।

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

भा०—हे (महान्तः) बड़े, पूज्य पुरुषो ! (ये) जो (वः) आप लोगों में से (एवाः) ज्ञानवान् (दस्माः) शत्रुओं और अज्ञानों का नाश करने वाले और (वार्यं) वरण करने योग्य, उत्तम ज्ञान वा ऐश्वर्य धारण करने वाले और (वयः चन दधानाः) बल, अन्न को भी धारण करते हैं वे (सुभ्वः) उत्तम भूमि के स्वामी वा उत्तम सामर्थ्यवान् होकर (वधस्नैः) शस्त्रों सहित (अनुयतं) अपने अनुकूल रहकर यत्न करने वाले

(मर्त्तं) शत्रुमारक युवा मनुष्य को (शुभा) शोभा या उत्साह पूर्वक संचालन की रीति से (आ अव यन्ति) अपने अधीन रख कर चलाते हैं। उनको ही हम (ब्रवाम) प्रजागण अपना दुःख सुख कहें और वे (विद चित्) स्वयं प्रजा के सुख दुःखों को भी जानें।

आ दैव्या॑नि॒ पार्थि॑वानि॒ जन्मा॒पश्चाच्छा॑ सुमखाय वोचम्।
वर्धन्तां॒ द्यावो॒ गिर॑श्च॒न्द्राग्रा॑ उ॒दा व॑र्धन्ताम॒भिषा॑ता॒ अर्णाः॥१४॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष (सुमखाय) उत्तम यज्ञशील पुरुष को उन्नति के लिये (दैव्यानि) देव अर्थात् राजा, विद्वानों तथा सूर्य आदि तेजोमय पदार्थों के और (पार्थिवानि) पृथिवी के स्वामियों और पृथिवीस्थ महान् २ पदार्थों के (जन्म) उत्पन्न होने और (अपः च) उनके कर्म और उपभोगों का (अच्छ) भली प्रकार (आवोचं) सर्वत्र उपदेश करूं। (उदा अभिषाताः) जल से पूरित (अर्णाः) जलमय मेघों, जलाशयों समुद्रों के तुल्य ही (द्यावः) अति प्रकाशयुक्त, ज्ञान वाली (चन्द्राग्राः) चन्द्रवत् आह्लादकारी नायकादि से युक्त (गिरः) वाणियें (वर्धन्ताम्) खूब बढ़ें।

प॒देप॑दे मे जरि॒मा नि धा॑यि॒ वरू॑त्री वा श॒क्रा या पा॒युभि॑श्च।
सिष॑क्तु मा॒ता म॒ही र॒सा नः॒ स्मत्सू॒रिभि॑र्ऋजु॒हस्त॑ ऋजु॒वनिः॥१५॥

भा०—(मे) मेरे (पदे-पदे) प्रत्येक प्राप्त करने योग्य, और जाने योग्य स्थान में (वरूत्री) शत्रुओं का वरण करने वाली (शक्रा) शक्तिशालिनी, (जरिमा) शत्रुओं का नाश करने वाली सेना (या) जो (पायुभिः च) उत्तम रक्षकों और रक्षासाधनों से युक्त हो (निधायि) स्थापित हो। और (माता) माता के समान सबको उत्पन्न और पालन करने वाली (मही) भूमि (रसा) जल और रसवान् पदार्थों से पूर्ण होकर (नः) हमें (सिषक्तु) सुख दे। और वह (सूरिभिः) उत्तम

विद्वानों से ही (ऋजु-हस्ता) सरल, धार्मिक, सिद्धहस्त हाथों वा कार्य-कर्त्ताओं वाली और (ऋजु-वनिः) सरल, धर्मयुक्त पुरुषों को नाना पदार्थ देने वाली हो। (२) इसी प्रकार हमारी वाणी पद पद पर पवित्र कार्यों से उत्तम शक्तिशालिनी हो, वह माता के समान, ज्ञानप्रद, सरस, धर्म से अधर्म का नाश करने वाली, धर्म का विवेक करने वाली हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ। मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६ ॥

भा०—जो (मरुतः) विद्वान् पुरुष (अच्छोक्तौ) अभिमुख उपस्थित शुश्रूषु जनों के प्रति उपदेश करने में (प्र-श्रवसः) उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान से सम्पन्न हैं वे (मरुतः प्र-श्रवसः) उत्तम अन्नोत्पादक जलप्रद वायुओं के तुल्य होते हैं। उन (मरुतः) विद्वान् (सुदानून्) उत्तम ज्ञान देने वाले मेघवत् उदार पुरुषों के (अच्छोक्तौ) उनके अच्छे उपदेश के निमित्त (नमसा) आदरपूर्वक हम (कथा) किस प्रकार (दाशेम) देवें, यह बात हमें अच्छी प्रकार जाननी चाहिये। जिस प्रकार (बुध्न्यः अहिः) अन्तरिक्ष में स्थित मेघ अपने प्रबल विद्युत् आघात से प्रजाओं का नाश कर सकता है उसी प्रकार (बुध्न्यः) ज्ञान मार्ग में ले जाने वाला (अहिः) संमुखस्थ विद्वान् भी (नः) हमें (रिषे) हिंसा या विनाश के लिये (मा धात्) न दे। प्रत्युत वह (अस्माकं) हमारे (उपमाति-वनिः) ज्ञान देने वाला ही (भूत्) हो।

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः। अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥ १७ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! हे (देवासः) दानशील,

सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी पुरुषो ! (मर्त्यः) मनुष्य (चित् नु) जिस प्रकार (पशुमत्यै प्रजायै) पशु आदि से समृद्ध, प्रजा की वृद्धि के लिये भी (वः) आप लोगों की (शिवां) कल्याणकारिणी (जरां) वाणी को (आ वनते) आदर से सेवन करे उसी प्रकार (मर्त्यः) मनुष्य (वः) आप लोगों की (धासिम्) धारण-पालनकारिणी शक्ति को भी (आ वनते) आदर से सेवन करे उसी प्रकार (मर्त्यः) मनुष्य (वः) आप लोगों की (धासिम्) धारण पालनकारिणी शक्ति को भी (आ-वनते) सब प्रकार से प्राप्त करे। (अत्र) इस राष्ट्र वा लोक में (निर्ऋतिः) रोगादि कष्ट ही प्रायः (अस्याः तन्वः) इस देह के (धासिम्) पुष्टि और (जरां चित्) दीर्घकालिक जरावस्था को भी (जग्रसीत) ग्रस लेती है इसलिये हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस रोगादि कष्ट को सदा दूर किया करो।

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे (वसवः) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों वा प्रजाओं को बसाने वाले अधिकारी पुरुषो ! वा किरणों के तुल्य तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! हम (गोः शसा) वाणी के अनुशासन और पृथ्वी के शासन द्वारा (ऊर्जयन्तीम्) बल पराक्रम को बढ़ाने वाली (इषम्) अन्न और प्रेरणा को और (सुमतिम्) उत्तम प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त करें, उसका सदुपभोग करें। (सा) वह (देवी) सुख देने वाली, (सुदानुः) उत्तम दानशील प्रज्ञा विदुषी के तुल्य ही (द्रवन्ती) प्रत्येक को प्राप्त होती हुई (सुविताय) सुख प्राप्त कराने के लिये (प्रति गम्याः) प्रत्येक को प्राप्त हो।

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥ १९ ॥

भा०—(इडा) यह भूमि और स्तुति योग्य, उपदेश वाणी (नः) हमारे (यूथस्य) पशु आदि समूह और हमारे शिष्यादि समूह की (माता स्मत्) उत्तम ज्ञानदात्री, और उत्पादक माता के समान ही है। जिस प्रकार भूमि (नदीभिः) जल पूर्ण नदियों से (उर्वशी) बहुतों से कामना करने योग्य, सुन्दर होती है उसी प्रकार वाणी भी (नदीभिः) उपदेशप्रद वाणियों से (उर्वशी) बहुतों को वश करने वाली होती है। वह सदा (गृणातु) शब्दकारिणी विद्युत् के तुल्य सदा उपदेश करे। (वा) उसी प्रकार (बृहद्-दिवा) अधिक ज्ञान प्रकाश से युक्त (उर्वशी) बहुत सी प्रजाओं को वश करने वाली (गृणाना) ज्ञान का उपदेश करती हुई माता के समान ही वाणी (प्र-भृथस्य आयोः) अच्छी प्रकार धारण किये हुए बालक के तुल्य शिष्य आदि को (अभि ऊर्णुवाना) वस्त्रादि से आच्छादित करती हुई ही (गृणातु) ज्ञान का उपदेश किया करती है इस प्रकार सावित्री वेदवाणी उत्तम माता के तुल्य ही है।

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥ २० ॥ १६ ॥

भा०—(ऊर्जव्यस्य) अन्न और बल पराक्रम से प्रकाशित और (पुष्टेः) पोषण करने वाले राजा के अधीन हमारा राष्ट्र (सिषक्तु) खूब बल और संगठन, समवाय को प्राप्त करे। इति षोडशो वर्गः ॥

[४२]

अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ६, ११, १२, १५, १६, १८ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ७, ८, ९, १३, १४ त्रिष्टुप् । १७ याजुषी पंक्तिः । १० भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (शन्तमा) अति शान्तिकारक (दीधिती

उत्तम ज्ञान का प्रकाश करती हुई (गीः) वाणी (वरुणं) श्रेष्ठ (मित्रं) सबके स्नेही (भगम्) सेवा योग्य, ऐश्वर्यवान् और (अदितिम्) अखण्डित व्रत और शासन के पालक पुरुष को प्राप्त होती है तू भी उसको (नूनम् अश्याः) अवश्य प्राप्त कर। वह वाणी, (पृषद् योनिः) मेघ के तुल्य सुख-वर्षणकारी अन्तरात्मा में उत्पन्न होती और (पञ्चहोता) पांचों प्राणों द्वारा गृहीत ज्ञान को अपने में लेने हारी है। उसको ऐसा पुरुष (शृणोतु) सुने जिसका (अतूर्त्तपन्थाः) ज्ञान-मार्ग विनष्ट न हुआ हो, जो (असुरः) बलवान् और प्राणों के सुख में रमण करता हो और (मयोभुः) सब सुखों का आश्रय स्थान हो। (२) राष्ट्र में अहिंसित मार्ग वाला, बलवान्, सुखप्रद राजा प्रजा की ऐसे वाणी को सुने जो (पृषद्-योनिः) परिषद् या 'जूरी' से उत्पन्न हो और पांच व्यक्ति, पञ्च जन उसको स्वीकार करें।

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम्।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २ ॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड शासन करने वाली परिषत् और दीनतारहित प्रजावर्ग (मे) मेरे (स्तोमम्) बलवीर्य, वचन, अधिकार और जन समूह को (प्रति जगृभ्यात्) ऐसे स्वीकार करे जैसे (हृद्यं) हृदयहारी (सुशेवं) उत्तम सुखजनक (सूनुं माता न) पुत्र को माता स्वीकार करती है। (यत् मयोभु) जो सुखजनक (ब्रह्म) धन, बल वा ज्ञान (देवहितं) विद्वानों के हितकारी और (प्रियम्) अति प्रिय (अस्ति) है उसको (अहं) मैं (मित्रे) सर्वस्नेही और (वरुणे) सर्व दुःखवारक, श्रेष्ठ नायक स्वामी के अधीन रहकर प्राप्त करूं।

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥

भा०—हे राष्ट्रवासी जनो! (कवीनाम्) दूरदर्शी विद्वान् पुरुषों

में से (कवितमं) सबसे उत्तम विद्वान् को (उत्-ईरय) सबसे उत्तम पद प्राप्त करने की प्रेरणा करो। (एनम्) उसको (मध्वा घृतेन) मधुर शोभाजनक ज्ञान वा जल से (अभि-उनत्त) अभिषेक करो। (सः) वह (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक और धनों का दाता और (सविता) सब ऐश्वर्यों का उत्पादक होकर (नः) हमें (हितानि) हितकारी (प्रयता) प्रयत्न से प्राप्त करने योग्य (चन्द्राणि) आह्लाद-जनक सुवर्ण आदि धन (वसूनि) और बसने योग्य नाना पदार्थ भी (सुवाति) प्रदान करे।

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥

भा०—हे (हरिवः) उत्तम मनुष्यों के स्वामिन्! हे अश्वादि सैन्य के स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (मनसा) उत्तम मन और (गोभिः) उत्तम वाणियों, भूमियों और इन्द्रियों से (यत् देवहितं अस्ति) जो विद्वानों वा हम कामनाशील पुरुषों को हितकारक है या विद्वानों में स्थित ज्ञानादि है उसे (सं नेषि) प्राप्त करा। (नः) हमें (सूरिभिः) विद्वानों से हितकारी ज्ञान (सं नेषि) प्राप्त करा। हमें (स्वस्ति) सुखदायक प्रकार से (देव-हितंयद् यद् अस्ति) जो भी दिव्य पदार्थों में ग्राह्य तत्व हो वह (सं नेषि) अच्छी प्रकार प्राप्त करा। हमें तू (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान और धन से भी जो (देवहितं अस्ति) दान-शील पुरुषों के योग्य हो वह प्राप्त करा। और (यज्ञियानां) पूजा सत्कार के योग्य (देवानां सुमत्या) विद्वान् पुरुषों की उत्तम बुद्धि द्वारा भी हमें (देव-हितं) विद्वानों में विद्यमान ज्ञान (सं नेषि) प्राप्त करा।

देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम्।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ५।१७॥

भा०—(देवः) दानशील, ज्ञान और धन का देने वाला, (भगः)

सेवने योग्य ऐश्वर्यवान्, (सविता) पदार्थों और जीवों का उत्पादक वा सन्मार्ग में चलाने हारा, (अंशः) धनों का न्यायोचित विभाग करने वाला, (वृत्रस्य) बढ़ते हुए शत्रु के विद्यमान राष्ट्र के (धनानां) ऐश्वर्यों का (संजितः) विजय करने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (ऋभुक्षा) महान् शक्ति-शाली (वाजः) ज्ञानवान् बलवान् ऐश्वर्यवान्, (उतवा) और (पुरन्धिः) पुर को धारण करने वाला पुराध्यक्ष, वा पूर्वसंचित विद्याओं वा सम्पदाओं को धारने वाला वा स्त्रीवत् गृहतुल्य राष्ट्र का धारक ये सब (अमृतासः) अविनाशी, दीर्घजीवी और (तुरासः) अति शीघ्रकारी, अप्रमादी होकर (नः अवन्तु) हम प्रजा जनों की रक्षा करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

म॒रुत्व॑तो॒ अप्र॑तीतस्य जि॒ष्णोरजू॑र्यत॒ः प्र ब्र॑वामा कृ॒तानि॑ ।
न ते॒ पूर्वे॑ मघव॒न्नाप॑रासो॒ न वी॒र्यं१॒॑ नूत॑न॒ः कश्च॒नाप॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ! (मरुत्वतः) उत्तम, बलवान्, शत्रुनाशक पुरुषों के स्वामी, (अप्रततीस्य) अप्रतीयमान साम-र्थ्य वाले, (जिष्णोः) विजयशील, (अजूर्यतः) कभी निर्बल वा क्षीण न होने वाले, (ते) तेरे वा तुझ ऐसे (कृतानि) कर्त्तव्यों का (प्रब्र-वाम) उत्तम उपदेश करें कि (न पूर्वे) न पहले के और (न अवरासः) न तेरे पीछे आने वाले लोग और (न नूतनः कश्चन) न कोई नया ही पुरुष (ते वीर्यम् आप) तेरा बल प्राप्त कर सके।

उप॑ स्तुहि प्रथ॒मं र॑त्न॒धेयं॒ बृह॒स्पतिं॑ सनि॒तारं॒ धना॑नाम् ।
यः शंस॑ते स्तुव॒ते शम्भ॑विष्ठः पु॒रू॒वसु॑रा॒गम॒ज्जोहु॑वानम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (प्रथमम्) सबसे श्रेष्ठ, (रत्नधेयं) रमणीय, मनोहर गुणों को धारण करने वाले, (बृहस्पतिम्) बड़े भारी ज्ञान, वेद वाणी वा बड़े राष्ट्र के पालक और (धनानां सनितारम्) धनों का न्यायपूर्वक पात्रापात्र विवेक सहित देने और विभाग करने वाले

उस (जोहुवानम्) आदरपूर्वक बुलाने योग्य उसको (उप स्तुहि) सब के समक्ष प्रस्तुत कर (यः) जो (शंसते स्तुवते) प्रशंसा और स्तुति प्रार्थना करने वाले को (शंभविष्ठः) सबसे अधिक शान्ति सुख देने वाला और (पुरुवसु) बहुत से ऐश्वर्यों वा बसे प्रजा जनों का स्वामी होकर हमें (आगमत्) प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति को प्रस्ताव और समर्थन करके अग्रणी पद पर नियुक्त करना चाहिये।

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः॥८॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े राष्ट्र और वेदज्ञान के पालक ! स्वामिन् ! (ये) जो (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षोपायों से (सचमानाः) सुसम्बद्ध होकर (मघवानः) ऐश्वर्यवान्, (सुवीराः) स्वयं उत्तम वीर और उत्तम पुत्रों और वीरों के स्वामी हो जाते हैं और (ये) जो (अश्वदाः) घोड़े के पालक वा दाता (उत वा) और (ये) जो (गोदाः) गौओं और भूमियों के पालक और दाता हैं वे (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होते हैं और (तेषु रायः) उनमें सब ऐश्वर्य विराजते हैं।

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व॥ ९॥

भा०—हे राजन् ! (ये) जो लोग (नः) हमारे (उक्थैः) उत्तम वचनों से प्रेरित होकर भी (नः अपृणन्तः) हमें सम्पदाओं से नहीं पूर्ण करते हुए स्वयं ही (भुञ्जते) भोग करते रहते हैं (एषां) उनके (वित्तम्) धन को तू (वि-सर्माणम्) विनाशशील (कृणुहि) कर। (प्र-सवे) तेरे शासन या उत्तम ऐश्वर्य में रहकर भी (अपव्रतान्) उत्तम कर्मों से रहित (वावृधानान्) बढ़ते हुए, (ब्रह्म-द्विषः) धन वा वेद ज्ञान से द्वेष करने वाले मूर्खों, शत्रुओं को (सूर्यात्) सूर्य के प्रकाश से (यवयस्व) पृथक् कर, उनको कारागारादि में डाल।

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात। यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः॥१०॥१८

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् बलवान् पुरुषो ! (यः) जो पुरुष (देववीतौ) विद्वान्, उत्तम पुरुषों के रक्षा के कार्य में (रक्षसः) विघ्न करने वाले दुष्ट पुरुषों को (ओहते) लगावें, और (यः) जो (शशमानस्य) प्रशंसनीय पुरुष के (शमीं) उत्तम कर्म की (निन्दात्) निन्दा करे और जो (सिष्विदानः) स्नेहवश वा व्यर्थ क्लेश आदि सहकर भी (तुच्छान् कामान् कुरुते) क्षुद्र पुरुषों की सी अभिलाषाएं करें ऐसे निन्दित क्षुद्र बुद्धि पुरुष को आप लोग (अचक्रेभिः) चक्र अर्थात् राज्य-चक्र वा सैन्य-चक्रों से रहित, अधिकारशून्य पदों, वचनों से (नि यात) नीचे गिराओ, दण्डित करो।

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य। यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥ ११॥

भा०—(यः) जो (स्विषुः) उत्तम बाणों वाला उत्तम इच्छावान् (सुधन्वा) उत्तम धनुष का स्वामी और उत्तम जल वाला, है जो (विश्वस्य भेषजस्य) सब प्रकार के औषध का (क्षयति) स्वामी है, उस (रुद्रं) दुष्टों को रुलाने वाले और रोगों को दूर करनेवाले, (देवम्) विजिगीषु, विद्वान्, ज्ञानवान् दानशील, (असुरं) बलवान् और प्राण-प्रद पुरुष को (महे सौमनसाय) बड़े भारी सुख, शान्ति युक्त चित्त बनाये रखने के लिये (यक्ष्व) आदर करो और उसकी (नमोभिः) आदर सत्कारों, अन्नों और शस्त्रों सहित (दुवस्य) परिचर्या कर। उत्तम धनुर्धर और बाणवान् पुरुष दुष्टों को रुलाने से रुद्र है, वैद्य रोग दूर करने से रुद्र (रुग्-द्र) है। वैद्य की इच्छा और जल सदा उत्तम, स्वच्छ, रोग-रहित हों, वह विद्वान् और प्राणों में बल देने वाला हो। धनुर्धारी, के

बाण, धनुष उत्तम हों, सब कष्टहर ऐश्वर्य का स्वामी, विजिगीषु बलवान् हो।

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥

भा०—(ये) जो (दमूनसः) दानशील, मन को दमन करने वाले (अपसः) उत्तम कर्मकुशल (सु-हस्ताः) उत्तम सिद्धहस्त पुरुष और (वृष्णः) बलवान् पुरुष की (पत्नीः) स्त्रियों के तुल्य (नद्यः) नदियें, जिनको (विभ्वतष्टाः) अधिक शक्तिशाली शिल्पियों ने बनाया है। (बृहद्-दिवा) बड़ी दीप्ति से युक्त (सरस्वती) वाणी के तुल्य अति वेगवती विद्युत् (उत) और (राका) सुख देने वाली स्त्री, ये सब (शुभ्राः) शुभ्रवर्ण सुशोभित और (दशस्यन्तीः) इष्ट कामनाओं को देने वाली होकर (वरिवस्यन्तु) हमें सम्पन्न करें और हम उनका सेवन करें, उनको प्राप्त कर सुख लाभ करें।

प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

भा०—जिस प्रकार (आहनाः) अभिगन्ता पुरुष (दुहितुः वक्षणासु रूपा मिनानः) कामना पूर्ण करने हारी स्त्री की नाड़ियों में उत्तम पुत्रादि को उत्पन्न करता हुआ (इदं अकृणोत्) ये सब गृहस्थादि करता है उसी प्रकार (यः) जो इन्द्र विद्युत्वत् बलशाली, (आहनाः) आघात करने हारा शिल्पी, वा राजा, (दुहितुः वक्षणासु) सब प्रकार के जल अन्न आदि रस देने वाली भूमि के ऊपर बहती नदियों के आधार पर (रूपा मिमानः) नाना रुचिकर पदार्थों को उत्पन्न करता हुआ (नः इदं (अकृणोत्) हमारे लिये यह सब कुछ करता है। उस (सु-शरणाय) उत्तम प्रजा के शरण देने वाले (महे) उत्तम राजा की (जायमानां)

प्रकट हुई (नव्यसीं) अति नव्य, उत्तम, (मेधां) बुद्धि और (गिरं) वाणी को (प्र सु भरे) अच्छे प्रकार से पुष्ट करूं। उसके निमित्त उत्तम वाणी का प्रयोग करूं। (२) वह सुखशरण, प्रभु है जो सर्वत्र व्यापक होने से 'आहना' है। सकल दोग्ध्री प्रकृति के भीतर से वह नाना रूप रच कर इस जगत् को उत्पन्न करता है, उस प्रभु के ज्ञान के लिये मैं उत्तम बुद्धि और स्तुति करूं।

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥

भा०—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्तः ! तू (सु-स्तुतिः) उत्तम स्तुति-कर्त्ता होकर (स्तनयन्तं) मेघवत् गर्जनाशील, (रुवन्तम्) उत्तम उपदेश देते हुए, (इडस्पतिं) भूमि और वाणी की पालना करने वाले, उस विद्वान् को (प्र अश्याः) आदरपूर्वक प्राप्त हो (यः) जो (अब्दिमान्) मेघ के तुल्य ही जलवत् ज्ञानों और कर्मों का उपदेश देने वाला, (उदनिमान्) जल के तुल्य ही उत्तम पद पर ले जाने वाले कर्म से युक्त होकर (विद्युता) विद्युत्वत् दीप्ति या तेज से युक्त होकर (उक्षमाणः) शिष्यों को ज्ञान जल से स्नान कराता हुआ (रोदसी इयर्त्ति) आकाश और भूमिवत् राजा प्रजा वर्गों को समान रूप से प्राप्त होता है।

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥

भा०—(एषः स्तोमः) यह स्तुति योग्य, उत्तम बल वा अधिकार (मारुतं शर्धः) और यह वायु वेग से आक्रमण करने वाला सैन्य बल (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने और शत्रु को रोकने वाले प्रबल सेनानायक के (युवन्यून्) जवानों के दलपतियों और (सूनून्) सैन्यों के सञ्चालक नायकों को (अच्छ) भली प्रकार (उत् अश्याः) उत्तम रीति से

प्राप्त हो। (स्वस्ति) सुख, कल्याणकारक (मा) मुझे (राये) धन प्राप्त करने का (कामः) उत्तम संकल्प (हवते) प्राप्त हो ! हे विद्वन् ! तू (अयासः) जाने वाले (पृषद्-अश्वान्) वाण वर्षी, बलवान् अश्वारोहियों, हृष्ट पुष्ट अश्वों से युक्त रथों का (उपस्तुहि) स्तुति उपदेश कर। प्रजा वर्ग को जब धन-समृद्धि की अभिलाषा हो तब अधिकार उत्तम नायकों को प्राप्त हों और विद्वान् लोग उत्तम वेगवान् रथादि का उपदेश करें जिससे व्यापार की तीव्र वृद्धि हो।

प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥

भा०—(एषः स्तोमः) यह अधिकार सूचक वचन (राये) ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (पृथिवीम्, अन्तरिक्षम्, वनस्पतीः, ओषधीः प्र अश्याः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियों और ओषधियों को भी अच्छी प्रकार व्यापे, वे भी अधिकार में हों, राजा उनसे कर संग्रह कर राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ा सके। (देवः-देवः) प्रत्येक करप्रद पुरुष, (मह्यं) मुझ राजा के लिये (सुहवः) सुखपूर्वक उत्तम कर देने वाला (भूतु) हो, अर्थात् कर वसूली में राजा को कठिनाई न पड़े। (पृथिवी माता) पृथिवी या उसमें रहने वाली जनता माता के समान हितकारिणी होकर (नः) हमें (दुर्मतौ) दुष्ट संकल्प में (मा धात्) न रक्खें, अर्थात् प्रजा के अप-व्यवहार राजा को कठोर और अत्याचारी न बना देवें।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् वा विजिगीषु, धनेच्छुक, एवं दान-शील पुरुषो ! हम सभी लोग (उरौ) बहुत बड़े (अनिबाधे) सर्वथा पीड़ा और बाधारहित, सर्वतः सुखी एवं कलहहीन, निर्विघ्न, भद्र राष्ट्र में (स्याम) रहें।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥१९॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) विद्वान् स्त्री पुरुष, अध्यापक उपदेशक वा रथी और सारथि इनके (नूतनेन) नये, (मयोभुवा) सुखकारी (अवसा) रक्षण, और (सु-प्रणीती) उत्तम, सुखकर नीति से (गमेम) जीवनमार्ग तय करें । वे दोनों मिलकर (नः) हमें (रयिम् आ वहतम्) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें, वे (वीरान्) वीरों को (विश्वानि) समस्त प्रकार के (अमृतानि सौभगानि) अविनश्वर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें । एकोनविंशो वर्गः ॥

[४३]

अत्रिर्ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ६, ८, ९, १७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, १०, ११, १२, १५ त्रिष्टुप् । ७, १३ विराट् त्रिष्टुप् । १४ भुरिक्पंक्तिः । १६ याजुषी पंक्तिः ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१॥

भा०—(मध्वा पयसा) मधुर दुग्ध से पूर्ण (धेनवः) गौएं, तथा (मध्वा पयसा) मधुर जल से युक्त (तूर्ण्यर्थाः) अतिशीघ्र गमन करने वाले जल, यानादि से युक्त नदियें, और (मध्वा पयसा) मधुर आनन्दजनक ज्ञान से युक्त, शीघ्र ही समझ में आने वाले अर्थों से युक्त वाणियां और (मध्वा) मधुर अन्न से समृद्ध (अमर्धन्तीः) अहिंसक प्रजाएं (नः उप आयन्तु) हमें प्राप्त हों । (जरिता) विद्वान् उपदेष्टा, (विप्रः) विद्वान् पुरुष (महे राये) बड़े ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (सप्त) सात प्रकार की (मयोभुवः) सुखजनक, (बृहतीः) बड़ी आदरणीय वाणियों,

भूमियों, पशुओं और सात प्रकार की प्रजाओं वा प्रकृतियों का (जोहवीति) उपदेश करे। षडङ्गयुक्त वेदवाणी सप्त वाणी हैं।

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२॥

भा०—मैं (अमृध्रे) अहिंसक, (सु-स्तुती) उत्तम स्तुति योग्य (द्यावा) ज्ञानप्रकाश से युक्त (पृथिवी) भूमि के समान आश्रयप्रद, (मधुवचाः) मधुर वचन बोलने वाली (सु-हस्ता) सुखकारी हाथों वाले पिता और माता दोनों को (नमसा) आदर सत्कार से (वर्त्तयध्यै) वर्त्ताव किया करूं और वे दोनों (पिता माता) पिता और माता (नः) हमें (भरे-भरे) प्रत्येक भरण पोषण के कार्य में (यशसा) यश से और अन्न से (अविष्टाम्) हमारी रक्षा करें। इसी प्रकार माता पिता के तुल्य राजा और राजसभा दोनों प्रत्येक युद्ध-यशोजनक कार्य से राष्ट्र की रक्षा करें।

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम्।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के किरण (मधूनि चकृवांसः) जलों को उत्पन्न करते हुए प्रथम (वायवे चारु शुक्रम् भरन्ति) वायु के लिये ही सञ्चरणशील सूक्ष्म जल हर लेते हैं उसी प्रकार हे (अध्वर्यवः) अपनी मृत्यु न चाहने वाले जीवनाकांक्षी लोगो! (मधूनि चकृवांसः) उत्तम अन्न और जलों को उत्पन्न करते हुए (चारुशुक्रम्) उत्तम आप लोग शुद्ध, कान्तिकृत् अन्न रस को (वायवे) वायु तुल्य बलशाली, एवं ज्ञानवान् राजा वा विद्वान् के उपभोग के लिये (प्र भरत) आदरपूर्वक लाया करो हे (देव) राजन्! हे विद्वन्! सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः) हमें (होता इव) दाता के समान (पाहि) पालन कर। और हम (ते मदाय) तेरी तृप्ति के लिये (अस्य मध्वः) इस अन्न का अंश (ररिम) देते हैं।

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे दो (शमितारा) शान्तिपूर्वक कार्य करने वाले (सु-हस्ता) उत्तम हाथों से युक्त (बाहू) बाहुएं (अद्रिं) शिलाखण्ड को या दृढ़ शस्त्र को पकड़ते हैं, और जिस प्रकार (दश क्षिपः अद्रिं युञ्जते) दसों अंगुलियां शिलाखण्ड या शस्त्र का प्रयोग करती हैं, उसी प्रकार (यौ) जो दो अधिकारी (बाहू) शत्रुओं को पीड़ा देने हारे हों वे और (सोमस्य) ऐश्वर्य को (शमितारौ) शान्ति से सम्पादन करने वाले, (सु-हस्ता) उत्तम कुशल हाथोंवाले, सिद्धहस्त होकर (अद्रिं) पर्व-वान् दृढ़ सैन्य बल का प्रयोग करें। और (दश क्षिपः) दसों शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेनाएं भी (युञ्जते) उनका सहयोग करें। जिस प्रकार (सु-गभस्तिः) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य (गिरि-ष्ठां मध्वः रसं दुदुहे) मेघ में स्थित भूमि या जल के रस को प्रदान करता है उसी प्रकार (अंशुः) सूर्यवत् भागग्राही (सु-गभस्तिः) उत्तम बाहुशाली पुरुष (गिरि-ष्ठां) पर्वत वा मेघ में स्थित (मध्वः) मधुर अर्थात् पृथ्वी के (रसं) रस अर्थात् सारभूत (चनिश्चदद्) आह्लादकारी रत्न सुव-र्णादि (शुक्रम्) शुद्ध कान्तिमान् पदार्थ को (दुदुहे) प्राप्त करे।

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥२०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (क्रत्वे) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और (दक्षाय) बल बढ़ाने के लिये, और (बृहते मदाय) तेरे बड़े धन वृद्धि, आनन्द सुख और सन्तोष के लिये (ते जुजुषा-णाय) प्रेम से सेवन करने वाले तेरे लिये (सोमः) यह सब ऐश्वर्य रस, अन्नादि के तुल्य ही (असावि) उत्पन्न किया जाता है। तू (योगे रथे) जोड़ने योग्य दृढ़ रथ में (सुधुरा) उत्तम धारणशील, दृढ़

(हरी) दो अश्वों को लगाकर (हूयमानः) अन्यों से स्पर्द्धा करता हुआ, (अर्वाक्) हमें प्राप्त हो और (प्रिया कृणुहि) हमारे लिये प्रिय हित कार्य कर। इति विंशो वर्गः ॥

आ नो॑ म॒हीम॒रम॑तिं स॒जोषा॒ ग्नां दे॒वीं नम॑सा रा॒तह॑व्याम्।
मधो॒र्मदा॑य बृह॒तीमृ॑त॒ज्ञामाग्ने॑ वह प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवन्! विद्वन्! (ग्नां देवीं) गमन योग्य उत्तम स्त्री के तुल्य ही (नः) हमारी, (महीं) आदरणीय (अरमतिम्) अति आनन्ददायक, अति ज्ञानयुक्त, विषयों में न रमण करने वाली (ग्नां) ज्ञान को प्राप्त करने वाली, (नमसा) आप, विनयपूर्वक (रातहव्याम्) दान योग्य अन्न आदि प्रदान करने वाली (बृहतीं) बड़ी, (ऋतज्ञाम्) सत्य ज्ञान बतलाने वाली, वाणी को तू (सजोषाः) समान प्रीति युक्त होकर (मधोः मदाय) अन्नवत् वेदमय ज्ञान से तृप्त होने के लिये (देवयानैः पथिभिः) विद्वानों से गमन करने योग्य मार्गों से (आवह) प्राप्त कर। और उसी प्रकार अन्यों को भी प्राप्त करा। इसी प्रकार अग्रणी राजा (ग्नां) प्रयाण करने वाली विजयेच्छुक सेना को सर्व साधन सम्पन्न कर, बड़ी सेना को राजोचित प्रयाण मार्गों से ऐश्वर्य से तृप्त होने के लिये आगे बढ़ावे।

अ॒ञ्जन्ति॒ यं प्र॒थय॑न्तो॒ न विप्रा॑ व॒पाव॑न्तं॒ नाग्निना॒ तप॑न्तः।
पि॒तुर्न पु॒त्र उ॒पसि॒ प्रेष्ठ॒ आ घ॒र्मो अ॒ग्निमृ॒तय॑न्नसादि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार किरण गण (वपावन्तं सूर्यं अञ्जन्ति) वीजोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य को प्रकट कर और (अग्निना तपन्तः) अग्नि द्वारा तपाते हैं (न) उसी प्रकार (विप्राः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (यं) जिस (वपावन्तं) अज्ञानवत् शत्रु का नाश करने की शक्ति और सन्तानपरम्परा, या पुत्रवत् प्रजा और उत्तम सेना पैदा करने की आर्थिक शक्ति से युक्त पुरुष को (प्रथयन्तः) प्रसिद्ध करते हुए, (अञ्जन्ति)

खूब प्रकाशित करते हैं। और जिसको उत्तम पात्र के तुल्य दृढ़ करने के लिये (अग्निना तपन्तः) अग्निवत् तेजस्वी नायक पुरुष या पद द्वारा तपाते, दृढ़ करते, और अधिक तेजस्वी बनाते हुए (अञ्जन्ति) और अधिक प्रकाशित करते हैं वह (घर्मः) दीप्तिमान् सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पितुः उपसि पुत्रः न प्रेष्ठः) पिता के समीप पुत्र के तुल्य अतिप्रिय होकर (अग्निम् ऋतयन्) अग्रणी नायक पद को सत्य न्याय द्वारा प्राप्त करता हुआ (आ असादि) आगे बढ़ता है। (२) लोक में (वपावन्तं) सन्तानोत्पादक शक्ति से युक्त पुरुष को अग्नि से तपाते, यज्ञ कराते वा आचार्याधीन ब्रह्मचर्य पालन कराते हैं। वह पिता के पुत्रवत् अति प्रिय होकर अग्नि की यज्ञ में स्थापना करता है। अर्थात् विवाहित होकर बसाता है। विद्वान् गण उसको आंजते, समावर्त्तनादि द्वारा सुसज्जित करते हैं।

अच्छा॑ म॒ही बृ॑ह॒ती शन्त॑मा॒ गीर्दू॒तो न ग॑न्त्व॒श्विना॑ हु॒वध्यै॑।
म॒यो॒भुवा॑ स॒रथा या॑तम॒र्वाग्ग॒न्तं नि॒धिं धुर॒मा॒णिर्न नाभि॑म् ॥८॥

भा०—(दूतः नः) उत्तम संदेशहर दूत के समान (मही बृहती) पूज्य, उत्तम वेदमयी (शन्तमा गीः) अति शान्तिकरी वाणी (अश्विना) हुवध्यै) उत्तम स्त्री पुरुषों को ज्ञान देने और परस्पर को बुलाने आदि कार्य के लिये (गन्तु) प्राप्त हो। वे दोनों विद्वान् स्त्री पुरुष सदा (सरथा) एक समान रथ में विराजते हुए रथी सारथि के तुल्य (मयोभुवा) सुख प्राप्त करते हुए (यातं) आगे जीवन-पथ पर बढ़ें। (अर्वाग्) विनीत होकर (आणिः धुरं नाभिम् न) कीला जिस प्रकार भार धारक नाभि को प्राप्त होता है उसी प्रकार वे दोनों (निधिम् गन्तम्) निधि, मूल 'आधार' ऐश्वर्यमय सर्वोत्तम, सर्वाश्रय गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हों।

प्र त॒व्यसो॒ नम॑उक्तिं तु॒रस्या॒हं पू॒ष्ण उ॒त वा॒योर॑दिक्षि।
या राध॑सा चोदि॒तारा॑ मती॒नां या वाज॑स्य द्रविणो॒दा उ॒त त्मन्॥९॥

भा०—(अहम्) मैं (तव्यस्य) बलवान् (तुरस्य) अति शीघ्र-कारी, (पूष्णः) पुष्टिकारक, सर्वपोषक और (वायोः) वायु के समान अति बलवान् प्राणप्रद पुरुषों के लिये (नमः उक्ति अदिक्षि) आदर सत्कार, अधिकारसूचक उत्तम वचन का प्रयोग करूं। (या) जो दोनों (राधसा) धन के द्वारा (मतीनां) मननशील, ज्ञानवान् पुरुषों को (चोदितारा) शुभ कार्य और उन्नति के मार्ग पर उत्साहित करने वाले, (उत) और (त्मन्) अपने राष्ट्र कार्य में (वाजस्य) अन्न संग्रास और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (द्रविणो-दौ) धन प्रदान करने वाले हों।

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती॥१०॥२१॥

भा०—हे (जातवेदः) नाना धन ऐश्वर्यों के कारण प्रसिद्ध ऐश्वर्य-वन्! हे वेदमय ज्ञान के द्वारा प्रसिद्ध विद्वन्! आचार्य! तू (विश्वान् मरुतः) समस्त वीर, बलवान् पुरुषों और शिष्यों को (नामभिः आ वक्षि) उत्तम नाना नामों से धारण कर। उनको उत्तम २ नाम, पद और अधिकार देकर स्थापित कर। और उनको (रूपेभिः आहुवानः नाना रुचिकर पदार्थों या रूपों, पोशाकों से अपनाता और अपने अधीन रखता हुआ, (आ वक्षि) आदरपूर्वक धारण कर, अपने अधीन रख। हे (मरुतः) राष्ट्र के प्राणस्वरूप, वीरपुरुषो! आप लोग (विश्वे) सभी (ऊती) राष्ट्र की रक्षा के लिये हों। आप (विश्वे) सब लोग (जरितुः) उपदेष्टा और आज्ञापक पुरुष की (गिरः यज्ञं गन्तं) वाणी के सहयोग को प्राप्त होओ और (सुस्तुतिं च गन्तं) उत्तम स्तुति और उपदेश को प्राप्त करो॥ विद्यार्थी जन वायुवत् सदा जागरणशील, सावधान होने से 'मरुत्' हैं॥ वायुवत् तीव्र वा शत्रुमारक होने से सैनिक 'मरुत्' हैं। वायु वेग से समुद्रों में जाने से वैश्यगण व यानादि 'मरुत्' हैं। उनको उनका प्रमुख व्यक्ति नामों से संकेत करे, रक्खे, नाना पदार्थों से पूर्ण करे, वे उसकी आज्ञा पालें।

आ नो॑ दि॒वो बृ॑ह॒तः पर्व॑ता॒दा सर॑स्वती यज॒ता ग॑न्तु य॒ज्ञम् ।
हवं॑ दे॒वी जु॑जुषा॒णा घृ॒ताची॑ श॒ग्मां नो॒ वाच॑मुश॒ती शृ॑णोतु ॥११॥

भा०—(बृहतः पर्वतात् सरस्वती) बड़े भारी पर्वत से जिस प्रकार वेगवती जल भरी नदी आती है उसी प्रकार (बृहतः दिवः) बड़े भारी तेजस्वी और ज्ञानप्रकाशक विद्वान् से (यजता सरस्वती) दान देने और सत्संग से प्राप्त करने योग्य वाणी (नः यज्ञम्) हमारे सत्सङ्ग वा आत्मा को (आ गन्तु) प्राप्त हो । हमें ज्ञानदायक वाणी मिले । और (घृताची) घृत, जल, तेज आदि धारण करने वाली, (जुजुषाणा देवी) प्रेम करने वाली स्त्री (नः हवम्) हमारे यज्ञ को प्राप्त हो, वह (उशती) उत्तम कामना से युक्त होकर प्रेमपूर्वक (नः) हमारी (शग्मां वाचं शृणोतु) सुखप्रद वाणी को सुने ।

आ वे॒धसं॒ नील॑पृष्ठं बृ॒हन्तं॒ बृह॒स्पतिं॒ सद॑ने सादयध्वम् ।
सा॒दद्यो॑निं॒ दम॒ आ दी॑दि॒वांसं॒ हिर॑ण्यवर्णमरु॒षं स॑पेम ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वेधसं) विद्वान्, उत्तम कर्म करने में कुशल, (नील-पृष्ठं) श्याम रूप मेघ के समान प्रचुर द्रव्य दान करने वाले, वा (नील-पृष्ठं) अपनी पीठ पर अन्यों को आश्रय देने वाले (बृहन्तं) बड़े (बृहस्पतिम्) वेदवाणी और बड़े राष्ट्र के पालक पुरुष को (सदने) उत्तम गृह वा उत्तम पद पर (सादयध्वम्) स्थापित करो । इसी प्रकार (दमे) दण्डाधिकार के पद पर भी (सादद्-योनिम्) सभाभवन में न्यायासन पर विराजने वाले (दीदिवांसं) तेजस्वी और सत्य न्याय निर्णय देने वाले, (हिरण्य-वर्णम्) सुवर्णवत् शुद्ध, निष्कपट हित और रुचिकर वर्णों वा अक्षरों, पदों का प्रयोग करने वाले वा तेजस्वी, (अरुषम्) रोष, क्रोध से रहित शान्त स्वभाव, पुरुष को हम (सपेम) प्राप्त कर अपने को संगठित कर एकत्र होकर रहें । न्यायशील राजा को पाकर प्रजा संगठित होकर रहे ।

आ ध॒र्ण॒सिर्बृ॒हद्दि॑वो॒ ररा॑णो॒ विश्वे॑भिर्ग॒न्त्वोम॑भिर्हुवा॒नः।
ग्ना वसा॑न॒ ओष॑धी॒रमृ॑ध्रस्त्रि॒धातु॑शृङ्गो वृष॒भो व॑यो॒धाः॥ १३॥

भा०—(धर्णसिः) राष्ट्र के कार्य-भार को धारण करने वाला, (बृहद्दिवः) बड़े भारी तेज को सूर्यवत् धारण करने और देने वाला, (रराणः) दानशील, (वृषभः) धार्मिक (त्रिधातु-शृङ्गः) तीनों धातुओं के से बड़े सींगों से सुशोभित बड़े वृषभ के सदृश सुदृढ़, तीनों धातुओं की वाणों की किरणों से सुशोभित, एवं तीन धातु ताम्र, लोह, सुवर्ण आदि के बने हिंसाकारक शस्त्रास्त्रों से युक्त (वयोधाः) बल, दीर्घ आयु और ज्ञान को धारण करने वाला, (अमृध्रः) प्रजाओं की हिंसा न करने वाला, अहिंसक, दयालु पुरुष (आहुवानः) आदर पूर्वक बुलाया जाकर वा आमन्त्रित होकर (ग्नाः) गमनशील जंगम प्रजाओं और (ओषधीः) अन्न, लता, वृक्ष आदि स्थावर प्रजाओं को भी (वसानः) बसाता हुआ, उनकी भली प्रकार अपने राष्ट्र में रक्षा करता हुआ, एवं (ग्नाः) गमन करने योग्य भूमियों, प्रजाओं और स्त्रियों की एवं (ओषधीः) कान्ति, तेज और शत्रुदाहक सामर्थ्य को धारण करने वाली सेनाओं को भी बसाता हुआ, (ओमभिः) रक्षा साधनों सहित (आ गन्तु) हमें प्राप्त हो।

मा॒तुष्प॒दे प॑र॒मे शु॒क्र आ॒योर्वि॑प॒न्यवो॑ रास्प॒रासो॑ अग्मन्।
सु॒शेव्यं॒ नम॑सा रा॒तह॑व्याः॒ शिशुं॑ मृजन्त्या॒यवो॒ न वा॒से॥ १४॥

भा०—(विपन्यवः) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाले गुरु विद्वान् और व्यवहार कुशल और (रास्पिरासः) धनैश्वर्य को पूर्ण करने वाले वैश्यजन (नमसा) आदर विनय से और राजा के नवाने वाले प्रबल तेज से बाधित होकर (रातहव्याः) ज्ञान और धन आदि देकर (सुशेव्यम्) सुख से सेवने योग्य, सुखप्रद, प्रधान पुरुष को (वासे) वसने योग्य राष्ट्र में (वासे आयवः शिशुं न) घर में ज्ञानी लोग जिस प्रकार बालक को स्वच्छ रखकर सजाते और स्वच्छ रखते हैं उसी प्रकार

(आयवः) सभी मनुष्य (शिशुं) उस प्रशंसनीय एवं शासनकुशल पुरुष को (मृजन्ति) अभिषेक करावें । और (मातुः परमे पदे) माता के सर्वोच्च पद गृह में जिसमें विद्यमान बालक को देखने, आशीर्वाद आदि देने जिस प्रकार लोग घर पर आते हैं । उसी प्रकार (मातुः परमे पदे) माता, पिता के सदृश, सर्वोत्कृष्ट परम पद पर स्थित अथवा माता, पृथिवी के परम सर्वोच्च पद राज सिंहासन पर स्थित (शुक्रे) अति तेजस्वी, शुद्ध वेश वा कर्त्तव्य में विराजने वाले (आयोः) दीर्घायु पुरुष को (आ अग्मन्) प्राप्त हों ।

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशवान्, स्वयंप्रकाशक तेजस्विन् प्रभो ! राजन् ! (तुभ्यम् बृहते) तेरे महान् (बृहत् वयः) बड़े भारी बल, ज्ञान और दीप्ति को (धियाजुराः) बुद्धि और कर्म, ज्ञान और अनुभव में वृद्ध हुए (मिथुनासः) स्त्री और पुरुष जन (सचन्त) एक साथ मिलकर बैठें । तू (देवः-देवः) सदा दानशील और सर्वप्रकाशक होकर (मह्यं) मेरे लिये (सु-हवः) उत्तम पूज्य दानी और स्तुतियोग्य (भूतु) हो (माता पृथिवी) माता पृथिवी, पृथिवी तुल्य विशाल हृदय से युक्त होकर एवं मातृसदृश सर्वाश्रय आचार्यादि भी (दुर्मतौ) दुःखदायी बुरी मति में (नः) हमें (मा धात्) न रहने दें । हमें बुरी सीख और उलटी अकल न दें ।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १६ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान्, व्यवहारकुशल एवं दानी, विजयी, वीर पुरुषो ! हम लोग (उरौ) बड़े, विशाल (अनिबाधे) बाधा, पीड़ा, कष्टादि से सर्वथा रहित राष्ट्र में (स्याम) रहें ।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि १७॥२२

भा०—हम लोग (अश्विनोः) अश्वयुक्त सारथि और रथी इनके (नूतनेन) सदा नवीन, सदा तैयार, शुद्ध (अवसा) रक्षा करने वाले बल सैन्यादि से और (मयोभुवा) सुखोत्पादक ऐश्वर्य से युक्त होकर (सुप्र-णीतौ) उत्तम सुखकारक धर्मानुकूल नीति में ही (सं-गमेम) अच्छी प्रकार सत्संगी होकर चलें। हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (रयिम् आ वहतम्) ऐश्वर्य धारण करो और (वीरान् आ वहतम्) वीर, बलवान् पुत्र धारण करो और (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) अविनाशी दीर्घ जीवनप्रद (सौभगानि) सुखप्रद ऐश्वर्य, सुख-सौभाग्य भी (आ वहतम्) सब प्रकार से प्राप्त करो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[४४]

अवत्सारः काश्यप अन्ये च सदापृणबाहुवृक्तादयो दृष्टलिंगा ऋषयः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, १३ विराड्जगती। २, ३, ४, ५, ६ निचृज्जगती। ८, ९, १२ जगती। ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १०, ११ स्वराट् त्रिष्टुप्। १४ विराट् त्रिष्टुप्। १५ त्रिष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे॥ १॥

भा०—हे राजन् ! (यासु) जिन प्रजाओं के बीच रहकर (अनु वर्धसे) तू प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता रहता है, और (यासु) जिनके बीच में से तू (प्रतीचीनम्) शत्रु के प्रति निर्भयता से जाने वाले, (आशुं) शीघ्रगामी (जयन्तम्) विजय प्राप्त करने वाले,

(वृजनं) शत्रु के वारक बल, सैन्य को भी (गिरा) अपनी वाणी के बल से (दोहसे) दोहता है, सार रूप से प्राप्त करता है, (तम्) उस (प्रत्नथा) अति उत्तम, दृढ़ पुरातन के समान (पूर्वथा) पूर्ववत् (विश्वथा) सर्वस्व के तुल्य (ज्येष्ठतातिं) सर्वश्रेष्ठ (बर्हिषदम्) वृद्धिशील राष्ट्र में विद्यमान, (स्वर्विदम्) सुख के प्राप्त करने और कराने वाले ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र की तू सदा (दोहसे वर्धसे) दोहन किया कर और बढ़ाया कर। इसी प्रकार राष्ट्र का प्रजाजन भी ऐसे वृद्धिकर राजा को बढ़ाया करे।

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते २

भा०—(विरोचमानः स्वः ककुभाम् मध्ये यथा सुदृशीः उपरस्य-श्रिये करोति तथा) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार दिशाओं के बीच विशेष तेज से चमकता हुआ, उत्तम रीति से दिखाने वाली दीप्तियों को मेघ की शोभा उत्पन्न करने के लिये ही धारण करता है इसी प्रकार हे राजन्! तू भी (अचोदते) प्रेरणा न करने वाले, स्वयं शासित होने वाले राष्ट्र की (श्रिये) लक्ष्मी वृद्धि के लिये, तू (स्वः) शत्रु संतापक होकर (ककु-भाम्) दिशाओं के बीच (विरोचमानः) विविध प्रकारों से सबके चित्तों को अच्छा लगता हुआ (याः) जिन (उपरस्य) मेघवत् दानशील विदुषी एवं (सुदृशीः) उत्तम रीति से देखने और अन्यों को उत्तम ज्ञान दिखाने वाली आप्त प्रजाओं को (श्रिये) अपनी शोभा और आश्रय के लिये धारण करता है तू उन द्वारा ही (सुगोपाः असि) राष्ट्र का उत्तम पालक हो, हे (सु-क्रतो) उत्तम ज्ञान और कर्मकुशल राजन्! तु (मा-याभिः) अपनी प्रजाओं, बुद्धियों से (परः) सर्वोत्कृष्ट होकर भी (न दभाय) राष्ट्र के नाश करने के लिये न हो। प्रत्युत (ते नाम) तेरा नाम, यश और नमाने वाला बल (ऋते) सत्य ज्ञान और न्याय के आश्रय पर ही (आस) स्थिर हो। इत्येकविंशो वर्गः॥

अत्यं हुविः संचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥

भा०—जो (बर्हिः अनु प्रसर्स्राणः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजा जन के अनुकूल रहकर और उत्कृष्ट पद की ओर बढ़ता रहता है जो स्वयं (वृषा) बलवान् होकर भी (शिशुः) बालकवत् (मध्ये) प्रजा जनों के बीच सब से रक्षा करने योग्य, सब से प्रशंसनीय, सब का शासक, (युवा) शत्रु मित्र का भेद करने वाला, (अजरः) अविनाशी (वि-स्रुहा) रोगवत् त्रिविध शत्रुओं का नाशक होकर (हितः) ओषधिवत् सब का हितकारी होता है (सः) वह (सहोभरिः) बल, सैन्य द्वारा राष्ट्र का पालक (होता) दानशील, और (अरिष्ट-गातुः) भूमि वासी प्रजाजनों को विना पीड़ा दिये ही अविघ्न मार्ग से जाता हुआ (अत्यं) सब से अधिक, उत्तम (सत् च) स्थायी, और (धातु च) पुष्टिकारक (हविः) अन्न कर आदि (सचते) प्राप्त करता है। शिशुः—शेतेः शंसतेर्वा ।

प्र वं एते सुयुजो यामंन्निष्टये नीचीरमुष्मैं यम्यं ऋतावृधः।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (सु-युजः) रथ में जुते उत्तम अश्व (यम्यः) नियन्ता सारथी के वश होकर (यमन्) मार्ग में चलते हुए (नीची-अमुष्यै ऋतावृधः) नीचे अर्थात् विनय से चलते हुए भी उसका सुख बढ़ाते हैं उसी प्रकार (एते) ये (वः) आप लोगों में से जो लोग (सुयुजः) उत्तम पदों पर नियुक्त होकर नायक का सहयोग करते हुए (ऋतावृधः) राष्ट्र के धन, सत्य न्याय की वृद्धि करते हुए, (इष्टये) इष्ट सुख प्राप्त करने के लिये (यस्य नीचीः) जिस नायक के अधीन रहकर (अमुष्यै) उस अमुक नायक के हित के लिये होते हैं वह (क्रिविः) सर्वकर्त्ता पुरुष ही सूर्य के समान (अभीशुभिः) किरणों के तुल्य अपने (सुमन्तुभिः)

उत्तम और (सर्व-शासैः) सब शासकों से (प्रवणे नामानि) नियन्ता नीचे भूमियों में स्थित जलवत् उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में विद्यमान रहकर नाना पदार्थों को कर रूप में (मुषायति) अदृश्य रूप से ग्रहण करे।

सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे॥५॥२२॥

भा०—हे (ऋजुगाथ) ऋजु, सरल, सत्य धर्म का उपदेश करने वाले विद्वान्, धर्म नीति में प्रजा को लेजाने हारे राजन्! तू (सु-स्वरुः) उत्तम तेजस्वी और उत्तम उपदेष्टा होकर (चित्त-गर्भासु) प्रेमयुक्त चित्त को ग्रहण करने वाली प्रजाओं के बीच में (वयाकिनं) अल्प बल वाले (सुते-गृभम्) अपने पुत्रवत् ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में गर्भवत् सावधानी से पालन करने योग्य जन को (तरुभिः) वृक्षों के तुल्य स्थिर मूल वाले, शत्रु नाशक वीर पुरुषों से (संजर्भुराणः) पालन करता हुआ, तू (धार-वाकेषु) राष्ट्र धारक उपदेष्टा पुरुषों के बीच (शोभसे) शोभा को प्राप्त करता है, तू (अध्वरे) राष्ट्र को नाश न होने देने के कार्य में सदा (जीवः) प्राण स्वरूप होकर (पत्नीः) राष्ट्र के पालन करने वाली शक्तियों तथा गृह में स्थित स्त्रियों के तुल्य प्रजाओं को भी (अभि वर्धस्व) सब प्रकार से बढ़ा, पालन कर।

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः॥६॥

भा०—(यादृग् एव) जैसा ही (ददृशे) साक्षात् किया जाता है (तादृग् उच्यते) वैसा ही यहां वर्णन किया जाता है। वह यह कि जिस प्रकार वृक्ष (अप्सु छायया दधिरे) जलों पर पोषित होकर अपनी छाया से सब जनों को अपने नीचे सुख देते हैं उसी प्रकार शासक लोग भी (अप्सु) आप्त अधीन प्रजाओं के ऊपर रहकर भी (सिध्रया) मंगल-कारिणी, सुखप्रद (छायया) अपनी छत्रछाया से (अस्मभ्यं) हमारी इस (उरुषाम् महीम्) बहुत सुख समृद्धि देने वाली भूमि को (दधिरे)

पालन करें और वे (ऋथः) वेगवान् रहकर (बृहत्) बहुत बड़े (सु-वीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (अनप-च्युतम्) कभी संग्राम में न भागने वाले (सहः) शत्रुविजयी बल को भी (दधिरे) धारण करें।

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (कविः) अति दूरदर्शी (अग्रुः) अग्रणी, नायक (जनिवान्) उत्तम जन्म वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करके (समर्यता मनसा) युद्ध करने की इच्छा से युक्त चित्त से (स्पृधः अति वेति) अपने सब स्पर्धालु शत्रुओं से बढ़जावे। वह (स्व-वसुः) अपनों में रहने और अपनों को बसाने हारा होकर (रक्षन्तं) रक्षा करते हुए, (घ्रंसं) अति देदीप्यमान तेजस्वी पुरुष को (वनवत्) प्राप्त करे और (अस्माकं) हमारे (गयं) गृह, और (शर्म) सुख को (वनवत्) प्रदान करे।

ज्यायाँसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत्॥८॥

भा०—(यासु ते नाम) जिन सेनाओं में तेरा यश वा दमनकारी शासन प्रतिष्ठित हो और (यादृश्मिन् धायि) जिस प्रकार के राजा के अधीन वह तेरा (नाम) शत्रुको नमाने वाला बल (धायि) परिपुष्ट होता और स्थिर रहता है, (तम्) उस राजा का (अपस्यया) उत्तम कर्म या सेवा के द्वारा वह प्रजा जन (विदत्) प्राप्त करे, क्योंकि (यः उ) जो प्रजावर्ग भी (स्वयं वहते) स्वयं समस्त कार्य भार को धारण करता है (स अरं करत्) वह ही बहुत ऐश्वर्य वा सुख उत्पन्न करता है। वह प्रजावर्ग ऐसे पुरुष के अधीन रहकर ही (अस्य) इस (यतुनस्य) यत्नशील पुरुष के (केतुना) ज्ञान के द्वारा (ज्यायांसं) अति श्रेष्ठ (ऋषिस्वरं चरति) द्रष्टा विद्वान् पुरुषों के उपदिष्ट ज्ञान को भी प्राप्त कराता है।

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता। अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥

भा०—(यस्मिन्) जिस राष्ट्र में या जिस नायक के अधीन रहकर (आयता) अति विस्तृत राज्य के क्षेत्र और विस्तृत भूमि वा वाणी (सवनं) ऐश्वर्य वा और भक्ति भाव को (न रिष्यति) नाश नहीं होने देती और (अग्रिमा) श्रेष्ठ, सर्वप्रथम, उत्तम वाणी (आसाम्) उन प्रजाओं के बीच (समुद्रम्) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य गंभीर और सर्वोपरि छायाकारी पुरुष को (अव तस्थे) प्राप्त हो (अत्र) उसके विषय में (क्रवणस्य) कर्म कुशल पुरुष के भी (हार्दि न रेजते) हृदय के भाव विचलित नहीं होते (यत्र) और जिसके विषय में (पूत-बन्धनी) पवित्र गुणों से गुथी (मतिः) बुद्धि (विद्यते) सदा बनी रहती है वही उत्तम पद को प्राप्त होने योग्य है ।

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः। अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह ही नायक होने योग्य है । जो (क्षत्रस्य) वीर्य-वान्, प्रजा को नाश होने से बचाने वाले, (मनसस्य) उत्तम चित्तवान् एवं मननशील, (एव-वदस्य) आगे जाने योग्य मार्ग का उपदेश करने वाले (यजतस्य) दानशील, सत्संगी, पूज्य (सध्रेः) सदा साथ देने वाले, (अवत्सारस्य) राष्ट्र की रक्षा करने वालों के बीच में स्वयं सार-वान्, बलशाली वा उन पालक पुरुषों के बने उत्तम सैन्य बल के स्वयं भी नायक के (शविष्ठं) अति बलशाली (विदुषा चित् अर्ध्यम्) विद्वान् पुरुषों से भी समृद्ध, (वाजं) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य को (चित्तिभिः) उत्तम सञ्चित समृद्धियों, ज्ञानों और (रण्वभिः) रमणीय विचारों और उत्त धनों, भवनों और कर्मों से (स्पृणवाम) और भी समृद्ध करें ।

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः।
संमन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११ ॥

भा०—(आसाम्) इन समस्त प्रजाओं और सेनाओं के बीच में जो (श्येनः) बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाला वा उत्तम चाल, आचरणवान् और गमन करने हारा (अदितिः) माता पिता के तुल्य प्रजा का पालक, पुत्र के समान बड़ों का सेवक और अखण्ड शासनकारी, अविचल, अखण्डित व्रत और प्रकृति वाला, (कक्ष्यः) उत्तम कसे कसाये अश्व के समान उत्तम पेटियों से सुशोभित, (मदः) सबका आनन्द करने वाला है उस (मायिनः) बुद्धिमान्, (यजतस्य) पूजनीय, सत्संगयोग्य, दानशील एवं (विश्व-वारस्य) सब शत्रुओं के वारण करने वाले और सबसे वरण करने योग्य पुरुष के (अन्ति) समीप रहकर (ते) वे अन्य लोग भी (वि-सानं) विशेष रूप से भोगने योग्य पद और (परि-पानं) सबकी रक्षा करने वाले पद को (विदुः) प्राप्त करते और (अन्यम्-अन्यम्) और और भी अधिकार को (सम्-एतवे) प्राप्त करने के लिये (अर्थयन्ति) उससे याचना किया करते हैं।

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः॥१२॥

भा०—वह राजा (सदा-पृणः) सदा प्रजा को तृप्त और पूर्ण करने वाला, (यजतः) दानशील और सत्संगति उत्पन्न करने योग्य, (बाहु-वृक्तः) बाहुबल से शत्रुबल का छेदन भेदन करने में कुशल, (श्रुत-वित्) गुरु से उपदिष्ट ज्ञान को जानने वाला, वेदज्ञ होकर (वः) आप लोगों के बीच में (सचा) सबके साथ मिलकर (तर्यः) सबको कष्टों, से पार उतारने में समर्थ एवं शत्रु नाशक है वही (द्विषः) अप्रीति-कारक पदार्थों और नाशक शत्रुजनों को (वि वधीत्) विविध प्रकार से दण्डित करे। (सः) वह (उभा वरा) दोनों प्रकार के वरण करने

योग्य ऐहिक और पारमार्थिक सुखों को (प्रति एति) प्राप्त हो और जाने। (भाति च) और स्वयं सूर्यवत् चमके। (यद्) और वह ही (ईम् गणं) इस प्रजा या सैन्यगण को (सु-प्र-यावभिः) उत्तम प्रयाणकारी वीर पुरुषों के साहाय्य से (भजते) सेवन करे।

सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥

भा०—जो पुरुष (धेनुः) गौ के समान (रसवत् पयः) रस से युक्त पुष्टिकारक दुग्धवत् अन्न को (शिश्रिये) धारण करता है और जो (न स्वपन्) आलस्य, प्रमाद न करता हुआ, (अनु-ब्रुवाणः) प्रतिदिन प्रवचन और पाठ करता हुआ (अधि-एति) अध्ययन और स्मरण करता है वही (सुतं-भरः) प्रजा को पुत्र के समान भरण पोषण करने में समर्थ (यजमानस्य) दानशील प्रजा का (सत्-पतिः) उत्तम पालक, और (विश्वासाम् धियाम्) समस्त ज्ञानों और कर्मों का (ऊधः) उत्तम धारक, और (उत्-अञ्चनः) ज्ञानों का पात्रवत् उत्तम रीति से प्राप्त करने और उत्तम पद को प्राप्त करने हारा होता है।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥

भा०—(यः) जो (जागार) जागता रहता है (तम् ऋचः कामयन्ते) ऋग्वेद के मन्त्रगण वा उत्तम स्तुति अर्चना सत्कार आदि भी उसको ही चाहते हैं। (यः जागार) जो जो अविद्या निद्रा से जाग जाता है (तम् उ) उसको ही (सामानि) सामवेद के नाना गायन भेद, वा सबके समान व्यवहार (यन्ति) प्राप्त होते हैं। (यः जागार) जो जागा रहता है, जो सावधान रहता है (तम्) उसको ही (अयं सोमः) यह सोम, ओषधिगण और ऐश्वर्य पुत्रवत् प्रजागण (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (तव सख्ये) तेरे मित्र भाव में ही (नि-ओकाः अस्मि) अपना निश्चित निवास बना कर रहता हूं।

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः १५।२५।२

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष ही (जागार) सदा सावधान रहता है, (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्रगण और समस्त स्तुति आदर आदि (तम् कामयन्ते) उसको ही चाहते हैं। (अग्निः जागार) अग्नि के समान ज्ञान का प्रकाशक पुरुष ही सदा जागृत, सावधान रहता है। (तम् उ) उसको ही (सामानि यन्ति) सामवेद के गायन और सबके समान व्यवहार, उत्तम वचन प्राप्त होते हैं। (अग्निः) अग्नि, के तुल्य तेजस्वी और विद्वान् पुरुष (जागार) सदा सावधान रहता है (तम् अयम् सोमः आह) उसको ही यह ऐश्वर्य और ओषधिगण पुत्र व प्रजागण, कहता है कि (अहम् तव सख्ये) मैं तेरे मैत्रीभाव में (नि-ओकाः) नियत स्थान बना कर रहता हूं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४५]

सदापृण आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ पंक्तिः । ५, ९, ११ भुरिक् पंक्तिः । ८, १० स्वराड् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः अद्रिम्) सूर्य के प्रकाश मेघ को छिन्न भिन्न करते हैं उसी प्रकार (विदाः) ज्ञानवान् और (दिवः) उत्तम कामनावान् पुरुष (उक्थैः) उत्तम वेदविहित वचनों और कर्मों से (अद्रिम्) मेघवत् आचरण करने वाले वा अभेद्य अज्ञान को (वि स्यन्) विविध उपायों से नाश करें। (आयत्याः उषसः) बाद में आने वाली प्रभात वेलाओं के समान ही (अर्चिनः) उत्तम वेद मन्त्रों के द्रष्टा जन,

(उद्-गुः) उदय को प्राप्त हों, वे (व्रजिनीः) वर्त्तन योग्य क्रियाओं और गमन करने योग्य पद्धतियों को (उत् अप आवृत) दूर करें और प्रकट करें। (स्वः उत् गात्) सूर्य के समान तेजस्वी, उपदेष्टा पुरुष उत्तम मार्ग में जायें, आयुदय को प्राप्त हों, वह (देवः) सूर्य वा मेघवत् दानशील, तेजस्वी और ज्ञान का प्रकाशक होकर (दुरः मानुषीः) गृह के द्वारों के तुल्य मननशील प्रजाओं को (विः आवः) विविध प्रकार से आवरण करें, उनके मन को अपनी ओर अधिक खींचे।

वि सूर्यो॑ अ॒मतिं॒ न श्रियं॑ सा॒ दोर्वा॒द्गवां॑ मा॒ता जा॒न॒ती गा॑त् ।
धन्व॑र्णसो न॒द्य१ः॒ खादो॑अर्णाः स्थू॒णेव॑ सुमि॑ता दृंहत॒ द्यौः ॥२॥

भा०—विद्वान् पुरुष और राजा को चाहिये कि (सूर्यः अमतिं न) रूप अर्थात् तेज को जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र विभक्त कर देता है उसी प्रकार वह (श्रियं वि सात्) ऐश्वर्य को सर्वत्र प्रजाओं में विभक्त करे और विद्वान् (अमतिं वि सात्) अज्ञान को विविध उपायों से अन्धकारवत् नाश करे। वह (माता) विदुषी माता के तुल्य दयालु होकर स्वयं (गवां माता) नाना किरणों, नाना वाणियों, वा भूमियों के उत्पादक सूर्यवत् निर्माता और ज्ञाता होकर (ऊर्वात्) बड़े भारी आकाशवत् ऊंचे रहकर भी सबको (गात्) प्राप्त हो। जिस प्रकार (नद्यः) नदियां (धन्वर्णसः) गति युक्त जल से पूर्ण होकर (खादः-अर्णाः) खाने पीने योग्य जल वाली होती हैं उसी प्रकार (नद्यः) समृद्ध, प्रजाएं और उपदेष्टा जन (धन्व-अर्णसः) स्थान २ पर उत्तम ज्ञानवान् और (खादः-अर्णाः) भक्षण योग्य अन्न जलों से समृद्ध हों। और (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष भी प्रजाओं को चाहता हुआ (समिता स्थूणा इव) घर में उत्तम रीति से लगी आधार-बल्ली या स्तम्भ के समान (दृंहत) दृढ़ हो और राष्ट्र प्रजा को धारण करने में समर्थ हो।

अ॒स्मा उ॒क्थाय॒ पर्व॑तस्य॒ गर्भो॑ म॒हीनां॑ ज॒नुषे॑ पू॒र्व्याय॑ ।
वि पर्व॑तो॒ जिही॑त॒ साध॑त॒ द्यौरा॒विवा॑सन्तो दसयन्त॒ भूम॑ ॥३॥

भा०—(गर्भः जनुषे) जिस प्रकार गर्भ उत्पन्न होने के लिये ही (विजिहीत) विशेष रूप से गति करता है उसी प्रकार (पर्वतस्य) मेघ के तुल्य पर्व अर्थात् पालन आदि साधनों से युक्त पिता तुल्य आचार्य के (गर्भः) शिष्य ज्ञानग्राहक (पूर्व्याय) पूर्व के विद्वानों द्वारा उपदिष्ट (उक्थाय) प्रशंसनीय, वेदमय (अस्मै) इस, उत्तम (जनुषे) जन्म लाभ करने के लिये (महीनां) माता के तुल्य आदरणीय गुरु जनों के बीच (वि जिहीत) विशेष रूप से जावे । (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं विद्या की कामना करता हुआ वह स्वयं (पर्वतः) मेघ वा पर्वत के समान, ही दृढ़ और बलवान् होकर (वि जिहीत) विविध स्थानों पर जावे और (वि साधत) विविध विद्याओं और शक्तियों की साधना करे । इसी प्रकार (महीनां गर्भः) इन भूमियों का रक्षक राजा भी (अस्मै उक्थस्य पर्वतस्य पूर्व्याय जनुषे) इस प्रशंसनीय पर्व युक्त सैन्यबल के उत्तम लाभ के लिये स्वयं (पर्वतः सन् वि जिहीत वि साधत) मेघवत् पालक होकर विविध देशों में जाये और उनको विशेष रूप से साधे, वश करे, इस प्रकार हम लोग (आ विवासन्तः) गुरुओं की सेवा शुश्रूषा करते हुए (भूम दसयन्त) अज्ञान दुःख आदि का सदा नाश करते रहें ।

सूक्तैर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र-अग्नी) ऐश्वर्यवान् विद्युत् और अग्नि के तुल्य तेजस्वी और ज्ञान प्रकाश करनेहारे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (अवसे) रक्षा और ज्ञान लाभ करने के लिये (देव-जुष्टैः) विद्वानों से सेवित (उक्थेभिः) वेदमय उत्तम (सूक्तेभिः वचोभिः) सूक्तों और वचनों से (हुवध्यै) ज्ञान प्राप्त करने के लिये (सु-यज्ञाः) उत्तम सत्संग योग्य (कवयः) विद्वान् और (मरुतः) सामान्य लोग भी (आ विवासन्तः) एक दूसरे की सेवा शुश्रूषा तथा विविध विद्याओं का प्रकाश करते हुए (यजन्ति स्म) ज्ञान दें, लें और सत्संग किया करें ।

एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥२६॥

भा०—(एतो) आओ, हम सब लोग (नु अद्य) शीघ्र ही सब (सु-ध्यः) उत्तम ज्ञानवान् और कर्म करने वाले और राष्ट्र को उत्तम रीति से धारण करनेवाले (भवाम) बनें । और (दुच्छुनाः) जो दुखदायी लोग हैं, उनको (वरीयः) खूब अच्छी प्रकार (अभि भवाम) नाश करें । अथवा हम लोग ही (दुच्छुनाः सन्तः) दुष्ट, बिगड़े कटखने कुत्तों के समान निर्भय होकर (वरीयः) अच्छी प्रकार शत्रुओं को (प्र मिनवाम) आगे बढ़कर नाश करें । इस प्रकार (सनुतः) सदा हम (द्वेषांसि) अप्रीति कर शत्रुओं को (आरे दधाम) दूर करें और (प्राञ्चः) आगे बढ़कर (यजमानम्) ज्ञान और धन को देने वाले सत्संगतिशील पुरुष को (अच्छ अयाम) प्राप्त हों । षड्विंशो वर्गः ॥

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! आप लोग (आ इत) आइये और हम लोग (धियं) ऐसी बुद्धि और कर्म (कृणवाम) करें (या) जो (माता) माता के तुल्य (गो-व्रजं) ज्ञानमय किरण और वेद वाणी के समूह को (अप ऋणुत) खोल २ कर स्पष्ट करें । उसके अभिप्राय को सबके सामने खोलकर रक्खें । (यया) जिससे (मनुः) मननशील पुरुष (विशि-शिप्रं) प्रजा में विद्यमान ज्ञानी तेजस्वी, सुमुख, सौम्यपुरुष को (जिगाय) जीतता अर्थात् अपने वश करता उसके मन को हरता है और (यया) जिस से (वङ्कुः वणिग्) धन की कामना करने वाला, वैश्य जन (पुरीषम् आप) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ।

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७ ॥

भा०—(अत्र) इस यज्ञ, अध्ययनाध्यापन एवं शास्त्र जो अनुशासन काल में (अद्रिः) मेघवत् निष्पक्षपात होकर विद्वान् पुरुष (हस्तयतः) हाथ पैर आदि को वश करने वाले जितेन्द्रिय हो कर (अनूनोत्) अन्यों को ऐसा उपदेश करे (येन) जिस से (दशमासः) दस महीने तक (नवग्वाः) नवीन मार्ग पर गमन करने वाले भी (आ अर्चन्) अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करें। (ऋतं यती सरमा) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने में यत्नशील बुद्धि (गाः) वाणियों को (अविन्दत) प्राप्त करे। और (अङ्गिराः) ज्ञानवान् पुरुष (विश्वानि सत्याः) सब सत्य ज्ञानों को (चकार) प्रकट करे।

विश्वे॑ अ॒स्या व्यु॒षि माहि॑नायाः सं यद्गोभि॒रङ्गि॑रसो॒ नव॑न्त।
उत्स॑ आसां पर॒मे स॒धस्थ॑ ऋ॒तस्य॑ प॒था स॒रमा॑ विद॒द्गाः ॥८॥

भा०—(यत्) जो (विश्वे अंगिरसः) समस्त विद्वान् लोग (व्युषि) प्रभात वेला में वायुएं जिस प्रकार सूर्य की किरणों के साथ संगत होते हैं उसी प्रकार (अस्याः) (इस महिनायाः) अति उत्तम तेजस्विनी परमेश्वरी शक्ति के (वि-उषि) विशेष प्रकट होने पर (गोभिः) वेदवाणियों से (सं नवन्त) उसकी अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं (आसां) उन वाणियों का (उत्सः) उत्तम स्रोत (सधस्थे) परम स्थान में है। (सरमा) उत्तम ज्ञान को देने वाली बुद्धि (ऋतस्य पथा) जहां सत्य ज्ञान रूप प्रकाशमय वेदोपदिष्ट मार्ग से चल कर (गाः विदत्) वेद वाणियों को भली प्रकार जानें।

आ सूर्यो॑ यातु स॒प्ताश्वः॒ क्षेत्रं॒ यद॑स्योर्वि॒या दी॑र्घया॒थे।
र॒घुः श्ये॒नः प॑तय॒दन्धो॒ अच्छा॒ युवा॑ क॒विर्दी॑दय॒द्गोषु॒ गच्छ॑न् ॥९॥

भा०—(सूर्य) के समान तेजस्वी पुरुष (सप्त-अश्वः) वेगवान् अश्वों से युक्त होकर (क्षेत्रम्) उस रणक्षेत्र को (आ यातु) प्राप्त करे (यत्) जो (अस्य) इसके (दीर्घ-याथे उर्विया) लम्बे प्रयाण करने के

लिये भी बहुत बड़ा है। वह (रघुः) वेगवान् (श्येनः) उत्तम गतिशील, सदाचारी वा बाज के समान (युवा) बलवान् (कविः) विद्वान् के तुल्य दीर्घदर्शी होकर (गोषु गच्छन्) अपनी भूमियों में गमन करता हुआ भी (अन्धः अच्छ पतयत्) राष्ट्र-धारक ऐश्वर्य का स्वामी बने और (दीदयत्) अच्छी प्रकार चमके अध्यात्म में सात प्राणों से युक्त आत्मा 'सूर्य ससाश्व' है। यह आत्मा क्षेत्र है। परमानन्द अन्धस् है। विद्वान् वेदवाणियों में विचरे।

आ सूर्यो॑ अरुहच्छु॒क्रमर्णो॒ऽयु॑क्त॒ यद्ध॒रितो॑ वी॒तपृ॑ष्ठाः।
उ॒द्ना न नाव॑मनयन्त॒ धीरा॑ आशृ॒ण्वती॒रापो॑ अ॒र्वाग॑तिष्ठन्॥१०॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (शुक्रम् अर्णः अरुहत्) अतिदीप्त वा सूक्ष्म जल को ऊपर उठाता है और (वीतपृष्ठाः हरितः अयुक्त) कान्ति युक्त रूप वाली जल हरने वाली मेघमालाओं, वायुओं वा किरणों का योग करता है तब (आपः अर्वाग् अतिष्ठन्) जलधाराएं भी मेघ से नीचे आ जाती हैं उसी प्रकार जब (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (शुक्रम् अर्णः आ अरुहत्) शुद्ध कान्तियुक्त ऐश्वर्य को आदरपूर्वक प्राप्त कर सिंहासन पर विराजता है और (वीतपृष्ठाः) कान्तियुक्त चमकीली पीठ वाले (हरितः यत् अयुक्त) किरणों के समान घोड़ों को जब रथ में जोड़ता है, तब (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (उद्ना नावं न) जल-मार्ग में से नौका के समान (उद्ना) उत्तम मार्ग से उस राजा को (अनयन्त) ले चलें। और (आश्रृण्वतीः आपः) राजा की आज्ञाओं को आदर से श्रवण करने वाली अन्य प्रजाएं उसके (अर्वाक्-अतिष्ठन्) अधीन होकर रहें।

धियं॑ वो अ॒प्सु द॑धिषे स्व॒र्षां ययात॑र॒न्दश॑ मा॒सो नव॑ग्वाः।
अ॒या धि॒या स्या॑म दे॒वगो॑पा अ॒या धि॒या तु॑तु॒र्यामात्यंहः॑ ॥११॥२७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मैं (वः) आप लोगों की प्रदान की (स्वर्षान्) सुखप्रद (धियं) उस बुद्धि वा कर्म को (दधिषे) धारण

करूं (यया) जिससे (नवग्वाः) नवीन, उत्तम गति वाले, सदाचारी जन (दश-मासः) दस महीनों को (अतरन्) व्यतीत करते हैं। हम लोग (अया धिया) उसी धारणावती बुद्धि से (देवगोपाः स्याम) विद्वानों, व्यवहारज्ञों विजिगीपुओं, शुभ उत्तम गुणों और इन्द्रियों के पालक (स्याम) हों और (अया धिया) इसी बुद्धि या कर्म से हम (अंहः अति तुतुर्याम) पाप कर्म और उसके दुष्फल को अतिक्रमण कर उसका नाश करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४६]

प्रतिक्षत्र आत्रेय ऋषिः ॥ १—६ विश्वेदेवाः । ७, ८ देवपत्न्यो देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिग्जगती । ३, ५, ६ निचृज्जगती । ४, ७ जगती । २, ८ निचृत्पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् । नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१॥

भा०—गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश। जिस प्रकार (धुरि हयः न अवस्युम् प्रतरणीम् वहति) अश्व धुर में लगकर गतिशील गाड़ी को ढो ले जाता है उसी प्रकार मैं भी (हयः) गमन करने वाला प्रेरक कर्त्ता (विद्वान्) और ज्ञानवान् और धनवान् होकर (अयुजि धुरि) जिसका अभी किसी के साथ संयोग न हुआ हो और गृहस्थ को धारण करने में समर्थ हो ऐसी स्त्री को प्राप्त करने की (वश्मि) कामना करूं और (प्रतरणीम्) नौका के समान संसार मार्ग से तरा देने वाली (अवस्युवम्) सन्तानादि की रक्षा करने में कुशल वा (स्वयं) अपने आप पति से (अवस्युं) अपनी रक्षा या पालन, प्रीति, तृप्ति, वचन, श्रवण, अर्थयाचन, आलिंगन, वृद्धि, ताड़ना और भागग्रहण की कामना करनेवाली उस स्त्री को (वहामि) विवाह द्वारा धारणा करूं, उसका पालन पोषणादि का भार

अपने पर लूं। (अस्याः) उसको (पुनः) फिर (विमुचं न वश्मि) त्याग करने की कभी इच्छा भी न करूं। और पुनः (आवृतं न वश्मि) उसका अपने सन्मुख रहते २ अन्य से वरण, वा उस द्वारा अपने से अतिरिक्त अन्य पुरुष को वरण करना अथवा (न आवृतं) उससे कोई व्यवहार छुपा हुआ (न वश्मि) न करना चाहूं (पुरः एता) आगे २ चलने वाला (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष वा स्त्री ऐश्वर्य का लाभ करने वाला वोढा पुरुष ही (पथः) समस्त मार्गों को (ऋजु) सरलता से धर्मपूर्वक (नेषति) ले जाने में समर्थ है।

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्, विद्वन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष, हे उत्तम पद के लिये वरने योग्य और प्रजा के कष्टों को वारण करने वाले! हे (मित्र) स्नेही! हे प्रजा को मरण से बचाने वाले, प्रजा के प्राण, जीवन, धनादि के पालक! हे (देवाः) विद्वान् व्यवहारकुशल, विजिगीषु पुरुषो! हे (मारुत) वायु वेग से युक्त वीरगण! हे विद्वान् पुरुष जनो! हे (विष्णो) व्यापक, सर्वप्रिय पुरुष! आप सब लोग (शर्धः प्र यन्त) बल प्राप्त करो। और (नासत्या) कभी परस्पर असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य! (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला सेनापति विद्याओं का उपदेशक गुरु (अध) और (पूषा) प्रजापोषक, (भगः) ऐश्वर्यवान् (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवाली विदुषी स्त्री ये सब भी (ग्नाः जुषन्त) उत्तम गमन योग्य वाणियों, भूमियों तथा गमनयोग्य पद्धतियों का प्रेमपूर्वक सेवन एवं प्रयोग करें।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥

भा०—मैं (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अग्निवत् तेजस्वी वा ज्ञानी पुरुषों को, विद्युत् और अग्नि को, (मित्रावरुणा) स्नेहवान् व श्रेष्ठ, पुरुषों को, देह में प्राण और अपान को, (अदितिम्) अखण्ड शासनकर्त्ता राजा, पृथिवी, माता, पिता पुत्र को (स्वः) तेजस्वी, सूर्य और उपदेष्टा वा सुखजनक पुरुष को (पृथिवीं द्यां) पृथिवी, और आकाश और उनके तुल्य माता वा पिता को (मरुतः) विद्वानों, वीर पुरुषों और नाना प्राणगण वा वायुगण को (पर्वतान्) मेघों वा पहाड़ों तथा पालन शक्ति से युक्त नायकों और (अपः) जलों और आप्त पुरुषों को, (विष्णुं) व्यापक शक्तिशाली सम्राट्, और व्यापक आकाश को, (पूषणं) सर्व पोषक वायु तथा पोषक पुरुष को, (ब्रह्मणः पतिम्) बड़े धन, बड़े राष्ट्र और वेदज्ञान के पालक को (नृशंसं) सेवा करने योग्य उपदेष्टा एवं प्रशंसनीय ऐश्वर्यवान् पुरुष को और (सवितारम्) उत्पादक पिता को (ऊतये) रक्षा, ज्ञानप्राप्ति और व्यवहार, तृप्ति आदि नाना प्रयोजनों के लिये (हुवे) प्राप्त करूं।

उ॒त नो॒ विष्णु॑रु॒त वातो॑ अ॒स्रिधो॑ द्रविणो॒दा उ॒त सोमो॒ मय॑स्करत् ।
उ॒त ऋ॒भव॑ उ॒त रा॒ये नो॑ अ॒श्विनो॒त त्वष्टो॒त विभ्वानु॑ मंसते ॥४॥

भा०—(उत) और (नः) हमें (विष्णुः) व्यापक शक्ति वाला राजा और विद्याओं का वेत्ता विद्वान्, (उत) और (वातः) वायुवत् पराक्रमी, (अस्रिधः) अहिंसक (द्रविणोः-दाः) धनदाता, (उत) और (सोमः) उत्तम ओषधिगण, और ऐश्वर्य, व पुत्र शिष्य आदि (नः) हमें (मयः करत्) सुख प्रदान करें। (उत) और (ऋभवः) सत्य न्याय आचरण से प्रकाशित होने वाले, अति तेजस्वी पुरुष (उत अश्विना) और विद्वान् स्त्री पुरुष (उत) और (त्वष्टा) तेजस्वी, एवं शिल्पकर्त्ता (उत) और (विभ्वा) अन्यविशोध सामर्थ्यवान् पुरुष ये सभी (नः) हमें (राये) ऐश्वर्य लाभ के लिये (अनु मंसते) अनुमति दिया करें, वे उत्तम उपाय तथा सम्मतियां सुझाते रहा करें।

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य-मण्डल, लिमिटेड्, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २००० | सं० १९९१ वि० | मूल्य ६) रुपये

मुद्रक—
दी फाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर.

ऋग्वेद विषय सूची

तृतीयेऽष्टके । पञ्चमे मण्डले

(सप्तचत्वारिंशत्सूक्तादारभ्य)

तृतीयोऽध्यायः (पृ० १–६२)

सू० [४७]—माता के कर्त्तव्य । माता का नवयुवति कन्या का उपदेश । (२) पुत्र पुत्रियों को माता का उपदेश । (४) जीव की उत्पत्ति का रहस्य । (५) शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । (६) सन्तति के प्रति स्त्रियों का कर्त्तव्य । सन्तान बनाने मे माता के उत्तम संकल्पों की आवश्यकता । (७) वर वधू, माता पिताओं को उपदेश । (पृ० १–५)

सू० [४८] – राजसभा और सेना का योग्य नायक वरने का कर्त्तव्य । (२) नायक के कर्त्तव्य । (३) सूर्य के किरणों के तुल्य अधीनों की नियुक्ति । (४) परशु और राष्ट्र के आभूषणवत् सैन्य, शस्त्रबल की स्थिति । (५) वृत राजा का पितावत् कर्त्तव्य । (पृ० ६–८)

सू० [४९]—पितावत् शासकों के कर्त्तव्य । (२) तेजस्वी नायक का आदरणीय पद । (३) सर्वपोषक की दानशीलता का कर्त्तव्य । (४) अहिंसक दयाशील राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (पृ० ९–११)

सू० [५०]—विद्वानों वीरों को उत्तम मित्र और धनैश्वर्य प्राप्ति का उपदेश । (२) समवाय बनाने का उपदेश । (३) सैन्यों, स्त्रियों और

शिष्टो का आदर करने का उपदेश। (४) प्रजापालक के गुण। (५) रथाध्यक्ष, सेनाध्यक्षो से शान्ति सुख की आशा। (पृ० ११–१३)

सू० [५१]—राजा वा शासक का पुत्रवत् प्रजा के पालन का कर्त्तव्य। (२) धर्मात्माओ को प्रजापालन मे योग देने का उपदेश। (३) विद्वान् का कर्त्तव्य। (४) प्रजा के पुत्रवत् पालक शासक के अभिषेक का प्रस्ताव। (५) उसका मधुपर्कादि से आदर। (६) विद्वान् बलवान्, जनों को आमन्त्रण। (७) शासको, शिष्यो के कर्त्तव्य। अन्न के गुण। (८–१०) राजा प्रजा का गुरु शिष्यवत् कर्त्तव्य। (११) राजा के कल्याण की प्रार्थना। (१२–१४) विद्वानो शिल्पियो, तथा भौतिक शक्तियों से भी कल्याण–याचना (१५) उत्तम आचरण और सत्संग का उपदेश। (पृ० १३–१९)

सू० [५२]—राजा, अधिनायक के कर्त्तव्य। (२) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य, प्रजारक्षण। (३) वायुवत् उनके कर्त्तव्य। (४) वायुवत् शत्रुविजय का उपदेश। (५) वीरो के सत्संग का उपदेश। (६) बिजुलीयुक्त वायुओ के तुल्य शस्त्रास्त्रयुक्त वीर सेनाओ के कर्त्तव्य। (७–८) वायुवत् वीरो के बल (९) उनकी परुष्णी अर्थात् पालन नीति। शत्रुभेदन का उपदेश। (१०) अन्तःपथ, अनुपथ आदि नाना मार्गो मे विचरने का उपदेश। (११) वायुवत् वीर विद्वान् वैश्यो के कर्त्तव्य। (१२) कूपवत् राजा वा प्रभु का आश्रय। (१३) वीरो का आदर। (१४–१५) उनके साथ उत्सुकता से भेंट करने का उपदेश। (१६) राजा वा आचार्य का पिता माता का पद। (१७) नियन्त्रित सेना बल से शक्ति और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। (पृ० १९–२६)

सू० [५३]—वायुओं, प्राणो, विद्वानो, और मनुष्यो की उत्पत्ति का रहस्य। उनका नियोक्ता कौन ? (२) रथी वीरो का प्रयाण, (३–४) उत्तम वीर तेजस्वी, पुरुषों से उपदेश की प्रार्थना। (५) नायको

के बिजुली मेघादिवत् गुण। (७) जलप्रवाह, अश्व, नदी, वायु आदि दृष्टान्त से वैश्यों के कर्त्तव्य। (९) परिहारयोग्य स्थान। (१०) वीरों के पीछे अनुगमन। (११-१२) उन्नति के निमित्त उपदेश। (१४) निन्दाओं की परवाह न करके आगे बढ़ने की प्रार्थना। (१५-१६) तेजस्वी होने आदि की प्रार्थना। (पृ० २७-३४)

सू० [५४]—विद्वानों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में वृष्टि लाने वाले वायुओं, मेघों और बिजुलियों की भौतिकविद्या का वर्णन। उनके दृष्टान्तों से नाना प्रकार के उपदेश। (६) चोरी का निषेध। (७) कृषि व्यपारादि की आज्ञा। (११) वीरों की पोशाक और उनका तेजः स्वरूप। चमकते मेघोंवत् शत्रु पर वीरों के आक्रमण की आज्ञा। (१४) साम-उपाय का उपदेश। (पृ० ३४-४३)

सू० [५५]—मरुतों, वीरों का वर्णन उनके कर्त्तव्य। (पृ० ४३-४८)

सू० [५६]—मरुतों, वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। (१) वीरों का स्वर्णपदकों से सजना। (२) उनको उत्साहित करना। (३) मेघ-मालावत् प्रजा, सेना और सूर्य वा ऋक्ष के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य। (४) वीरों का वर्णन। (५) प्रमुख नायक। (६) योग्य पुरुषों की नियुक्ति। (७) उनके कर्त्तव्य और योग्य आदर। (पृ० ४८-५३)

सू० [५७]—वीरों विद्वानों, के कर्त्तव्य। मरुतों का वर्णन। (१०) श्रेष्ठ रथों का उपभोग। (२) उत्तम वीरों को उपदेश। 'पृश्नि मातरों' का रहस्य। (३) मेघमालाओं और वायुओं के दृष्टान्त से उनका वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ५३-५८)

सू० [५८]—वीरों, विद्वानों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य। (२) उत्तम नायक। (३) जलदाही, वृष्टिप्राप्त वायुगणवत् उनका वर्णन। (४) रक्षक होने योग्य पुरुषों के गुण। (५) अरों के दृष्टान्त से उनको उपदेश।

(६) वर्षते मेघो की तुल्यता से वर्णन । (७) वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० ५८—६२)

सू० [५९]— मरुतो का वर्णन । वीरो, विद्वानो के कर्त्तव्य । (१) मेघोवत् उनके कर्त्तव्य । (२) शोभा और ऐश्वर्य के निमित्त बल धारण का उपदेश । सूर्यवत् नायक का वर्णन । (५) वीरों को सुव्यवस्थित होकर युद्ध करने का उपदेश । (६) ऊंचे लक्ष्य तक पहुचने का उपदेश । (७) मेघवत् वीरो को कर्त्तव्योपदेश । (८) राजा, सेनाओं और स्त्रियो के कर्त्तव्य । (पृ० ६२—६७)

सू० [६०]—मरुतो के दृष्टान्त से वीरो, विद्वानो का वर्णन । (१) प्रजा की उत्तम अभिलाषा । (४) विवाहित वरो के तुल्य सुदृढ़, सुन्दर होने का उपदेश । (५) भ्रातृवत् समान रूप से उनको रहने का उपदेश । (६) सन्तोष का उपदेश । (७) ऐश्वर्य दान का उपदेश । (८) राजा को विद्वान् होने का उपदेश । (पृ० ६७—७२)

सू० [६१]—मरुतों के दृष्टान्त से प्रजाजनो, वीरो, विद्वानो के कर्त्तव्यों का वर्णन । (१०) परस्पर कुशलप्रश्न व्यवहार का उपदेश । अध्यात्म मे—प्राणों का वर्णन । (३) अंगो को बांधने का उपदेश । (४) दूर देश मे विवाह और यात्रा और ब्रह्मचर्य का उपदेश । (५) स्त्री को वीर, जितेन्द्रिय पुरुष के वरण का उपदेश । (६) उत्तम स्त्री का वर्णन । उसको उत्तम २ उपदेश । (८) प्रशस्त और अप्रशस्त दोनो की गृहस्थ दृष्टि से विवेचना । (९) दाम्पत्य के लिये प्रेमपूर्वक वरण का उपदेश । (१७) ससार सागर से पार उतारने वाले सार्थी की प्रशंसा (११—१२) विद्वान् यशस्वी सफल गृहस्थ (१३—१६) सज्जनों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (१७) दूत का कार्य । विद्युत् यन्त्रो से दूर देश मे व्याख्यानों को पहुचाने और यानो द्वारा मेल—सर्विस का उपदेश । (१८) विद्वान् के प्रति उपयुक्त विनय । (१९) रथी का सामर्थ्य । (पृ० ७२—८०)

सू० [६२]—मित्र और वरुण। (१) सूर्यवत् राजा-प्रजा वर्गों को सत्य व्यवहार का उपदेश। (२) राजा प्रजावर्ग, पुरुष शिष्यों को उपदेश। (३) भूमि सूर्यवत् स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (४) श्रेष्ठ प्रमुख पुरुषों के कर्त्तव्य। उनका न्यायासन पर रथवत् आरोहण। (६) राजा अमात्य, स्त्री पुरुषों को भवन और स्तम्भवत् रहने का उपदेश। (७) प्रमुख की स्तम्भ और कशा के समान स्थिति। शालावत् सेना का कर्त्तव्य। (८) देह में प्राण उदानवत् सभा-सेनाध्यक्षों के वर्णन। (पृ० ८०–८५)॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ८५–१७९)

सू० [६३]—मित्र और वरुण। (१) देह में प्राण उदानवत्, गृह में पतिपत्नीवत्, रथी सारथिवत् राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (२) राजा अमात्य के कर्त्तव्य। (३) वायु सूर्यवत् उनके कर्त्तव्य। (४) सूर्य विद्युत्वत् उनके कर्त्तव्य। (५) विद्युतों के तुल्य वीरों की गति। (६) मेघवत् गुरु और वायुवत् शिष्यों के व्यवहार। 'पर्जन्य' का रहस्य और उसके गूढ़ार्थ। (७) सभा सेनाध्यक्षों को उपदेश। (पृ० ८४–९०)

सू० [६४]—मित्र वरुण। वरुण, राजा। (२) ब्राह्मण क्षात्रवर्ग के कर्त्तव्य। ऐश्वर्यवानों के कर्त्तव्य। (पृ० ९०–९२)

सू० [६५]—मित्र वरुण। गुरु शिष्य के कर्त्तव्य। (३) गुरु शिष्यवत् सैन्य और नायक का व्यवहार। (४–६) मित्र का लक्ष्य। (पृ० ९३–९५)

सू० [६६]—मित्र और वरुण। ज्ञानप्रद गुरु और आचार शिक्षक आचार्य का वर्णन। (३) मार्ग पार करने के लिये रथ में अग्नि जलवत् राष्ट्र में न्याय और शासन विभागों का वर्णन। (४) स्त्री पुरुषों को ज्ञानोपार्जन का उपदेश। (६) बहुपाय्य स्वराज्य के लिये यत्न का उपदेश। (पृ० ९५–९८)

(६) निष्पाप होकर ऐश्वर्य धारण की प्रार्थना। (७) सर्वपाल सविता प्रभु का वरण (८) सर्वोपास्य सर्वसाक्षी प्रभु (९) सर्वगुरु प्रभु। (पृ० १४६–१४८)

सू० [८३]—पर्जन्य मेघवत् राष्ट्रपालक का वर्णन। (२) शत्रु पराजयकारी का मेघवत् वर्णन। उसका शत्रु वध का भयंकर कार्य। (३) सैन्यप्रबन्धक, एवं सारथिवत् विचेता का मेघवत् रूप। (४) बरसते मेघ के साथ युद्ध का विशिष्ट वर्णन। और उसके सत्फल। (५) सर्व-पोषक राजा और मेघ। (६) धारावान् मेघ और सेनाध्यक्ष। (७) वर्षते मेघवत् राष्ट्र पोषक राजा के कर्त्तव्य। उत्तम न्याय व्यवस्था का आदर्श। (८) मेघवत् कोश वृद्धि और सद् व्यय का उपदेश (९) मेघ-वत् उदार सर्वप्रिय राजा। (१०) मेघवत् परविजयी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १४९–१५६)

सू० [८४]—पृथिवी के तुल्य माता का वर्णन। (२) उसका पति के प्रति कर्त्तव्य। (३) उसका भूमिवत् राजशक्ति के तुल्य वर्णन। (पृ० १५६–१५७)

सू० [८५]—वरुण, सर्वश्रेष्ठ प्रभु। (२) राजा के राष्ट्रोपयोगी कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (३) प्रजा का कष्टवारक सम्राट्, वरुण, (४) राजा के भूमि सेचन के कर्त्तव्य। उसके वीरोचित कार्य। (५) मेघवत का पालन। सर्वप्राणपति, महान् असुर, निर्माता, माता प्रभु। (६) सर्व देवमय प्रभु। (७) पापमोचन की प्रार्थना (पृ० १५७–१६२)

सू० [८६]—इन्द्र, अग्नि। विद्युत अग्निवत नायक, अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (३) उनका स्वरूप राजा और विद्वान। (५) दोनों एक दूसरे के पूरक है। (पृ० १६३–१६५)

सू० [८७]—मरुद् गण। मनुष्यों के कर्त्तव्यों का उपदेश।

मरुत्वान् प्रभु का वर्णन। उत्तमो का आदर, सत्सग और गुरु जनो से ज्ञानप्राप्ति का उपदेश। (३) विद्वानो का कर्त्तव्य ज्ञानप्रसार। (४) सेनापति का वर्णन। (५) अग्निवत्, वायुवत् वीर पुरुपो का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० १६५–१७१)

इति पञ्चमं मण्डलम्

अथ षष्ठं मण्डलम्

सू० [१]—अग्नि। अग्निवत् तेजस्वी वीर विद्वान् के कर्त्तव्य। पक्षान्तर मे प्रभु से प्रार्थना। (२) अनुगामी जनो, के कर्त्तव्य। (६) उपासना का प्रकार। (७) नायक के कर्त्तव्य, प्रजा का चित्तरञ्जन। (८) विश्पति राजा और ईश्वर। उसकी उपासना। (९) ईश्वर भक्त को सत्फल (१०) अग्निहोत्र की सत्कार से तुलना। प्रभु से सन्मति की याचना। (११) ईश्वर से ज्ञानो की प्रार्थना। राजा, विद्वान् 'अग्नि' है। (१२) उसका 'वसु' रूप। (१३) ऐश्वर्यों की याचना। इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ (पृ० १६२–१७९)

पञ्चमोऽध्यायः (पृ० १७९–२६१)

सू० [२]—अग्निवत् तेजस्वी पुरुष और पक्षान्तर मे ईश्वर का वर्णन। उसकी उपासना, प्रार्थना, स्तुति। (५) यज्ञ और उपासना। (६) अग्नि और ईश्वर का औपम्य। (७) सर्वव्यापक सर्वेश्वर। (८) राजा आत्मा विद्वान् सबका समान रूप से वर्णन। (१०) विश्पति का स्वरूप। (१२) ससार से तरने के लिये ज्ञान की याचना। (पृ० १७९–१८४)

सू० [३]—विद्वान्, राजा, प्रभु इनका समान रूप से वर्णन। उपासना का सत्फल। (२) अग्निहोत्र, वा यज्ञ का सत्फल। (३) सूर्य-

वत् ज्ञानवान् प्रभु। (४) विद्वान् राजा का परशु, आज्य, नियारिया और अग्निवत कर्त्तव्य। (५) उसको असंग होकर धनुर्धर वा श्येन पक्षी-वत् कर्त्तव्यपालक होने का उपदेश। (६) उत्तम उपदेष्टा, सन्मार्गदर्शक के कर्त्तव्य। (७) सूर्यवत् सैन्यपति के पालन का राजा का कर्त्तव्य। (पृ० १८४-१८९)

सू० [४]—अग्नि। नायक होने योग्य गुण। (३) परमेश्वर सर्व स्तुत्य, सब तेजो का धारक, पावन, सर्व बन्धन शिथिल करता है। (४) राजावत् परमेश्वर का शासन। (५) प्रमुख नायक। (६) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (७) उसका वरण। (८) परमात्मा से निर्विघ्न मार्ग से ले जाने की प्रार्थना। पक्षान्तर मे राजा के कर्त्तव्य। (पृ०१८९-१९३)

सू० [५]—उत्तम राजा का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (पृ० १९३-१९६)

सू० [६]—जिज्ञासु का ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानप्रद गुरु के समीप पहुंचना। (२) वीर नायक का कर्त्तव्य। (३) दिग्विजयी वीरों का विजय। उनको अग्नि से उपमा। (४) उत्तम शासकों का करसंग्रह और उच्च पद। (५) शासन और शत्रु नाश। (६) सूर्य के प्रकाश प्रसार-वत् राजा का राज्यप्रसार। (पृ० १९७-२००)

सू० [७]—वैश्वानर। तेजस्वी व अग्नि, सूर्यवत् नायक का स्थापन। उसके कर्त्तव्य। (६) पक्षान्तर मे सर्वहितैषी प्रभु का वर्णन। प्रभु, सर्वकर्त्ता, सर्वप्रकाशक है। (पृ० २००-२०४)

सू० [८]—वैश्वानर। आचार्य और व्रतपाल ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) आचार्य का स्त्री पुरुषों को दो चर्मदण्डों के तुल्य संयोजन। (४) जलों और मेघों मे यन्त्रो मे विजुली के तुल्य प्रजाओं में से तेजस्वी राजा का उपसंग्रहण। (५) परशु से वृक्षवत दुष्टों के नाश का उपदेश। (६)उसके अन्य कर्त्तव्य। तीनों सभाओं के सभापति से रक्षा की प्रार्थना। (पृ० २०४-२०८)

सू० [९]—वैश्वानर । रात्रि-दिनवत् राजा प्रजा वा वर वधू के कर्त्तव्य । वैश्वानर राजा के गृह मे बालकवत् अनुरंजक होने की स्थिति । (२) पिता से बढकर पुत्रवत् विद्वान् की स्थिति । यज्ञपक्ष में ब्रह्मवाद के पक्षो का स्पष्टीकरण । (४) जीव का वर्णन । जीव नश्वर देहो में अमर ज्योति । पक्षान्तर मे नश्वर लोको मे ईश्वर तत्व । (५) देह मे मन की स्थिति । (६) इन्द्रिय नमन आदि की चेतनवत् स्थिति । (७) इन्द्रियो का आश्रय आत्मा (पृ० २०८–२१३)

सू० [१०]—विद्वान् नायक का साक्षिवत् स्थापन । प्रभु की साक्षिवत् स्थिति । (२) तेजस्वी के मातृवत् कर्त्तव्य । (३) गोपाल वत् प्रजावल । (४) तमोनिवारक सूर्यवत् गुरु का कार्य । (५) राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य । (पृ० २१३–२१७)

सू० [११]—प्रमुख नायक के कर्त्तव्य । (२) देह की गृहस्थ से तुलना । (३) स्वयंवरण का प्रचार । (४) अग्नि तुल्य वर का रूप । (५) गृहस्थ यज्ञ । (पृ० २१७–२२२)

सू० [१२]—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और विद्वान् गृहपति का वर्णन । (२) उसको यज्ञ का उपदेश । (३) घोड़ो पर चाबुक के समान राजा वा नायक की स्थिति । उसे अद्रोही, चुस्त होनेका उपदेश । (४) नायक के अग्नि, अश्व, पिता के समान कर्त्तव्य । उसे वनस्पति भोजी 'द्रुन्न' होने का उपदेश । (५) द्रुवत् विद्युत् का वर्णन, उसके सदृश प्रजानुरंजक राजा के कर्त्तव्य । (६) राजा प्रजा को निन्दनीय जनों से बचावे । (पृ० २२२–२२६)

सू० [१३]—(१) वृक्ष से शाखावत् सूर्य से वृष्टियो के समान राजा से राज-सभासदाओ का विकास । (२) अग्नि से प्रकाश और जाठराग्नि से प्राणों के तुल्य राजा से न्याय की उत्पत्ति । (३) सूर्य से जल, मेघ, अन्नवत् राजा से राज्यों की वृद्धि । (४) उसकी तीक्ष्ण-तेज-

स्विता और स्वामित्व। (५) राजा के बल ऐश्वर्यादि धारण करने के प्रयोजन, दुष्टों का निग्रह, और प्रजाहित। (६) राजा, और प्रभु से धन, पुत्र ऐश्वर्यादि की प्रार्थना। (पृ० २२६–२३०)

सू० [१४]—अग्निवत् गुरु के अधीन विद्याभ्यास से ज्ञान का वृद्धि। (२) विद्वान् अग्नि का स्वरूप। वह यथार्थ ज्ञान प्रकाश करने से 'अग्नि' है। (३) धन, सम्पदा के लिये स्पर्धा करने वाले क्षत्रिय और वैश्य दोनो का स्वामी विद्वान् ब्राह्मण है। (४) क्षत्राग्नि तेजस्वी नायक का सर्वोत्तम दान शत्रुभयकारी बल है। (५) ज्ञानबल से निन्दको पर विजय लाभ (६) प्रभु से शुभ ज्ञान, उत्तम भूमि, ऐश्वर्य की याचना, पापों और शत्रुओ को पार करने की याचना। (पृ० २३०–२३२)

सू० [१५]—वेद के भोजन से ज्ञान की वृद्धि। प्रातः जागने का रहस्य। जीवन के प्रथम भाग-ब्रह्मचर्य मे पालन का उपदेश। (२) वनस्पति रूप आचार्याग्नि के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् गुरुवत् राज्याश्रमी राजा के कर्त्तव्य। वीतहव्य का रहस्य। (४) विद्वान् की सेवा और पूजा। (५) स्तुत्य प्रभु का रूप। (६) अग्नि-परिचार्यवत् प्रभु-परिचर्या का वर्णन। (७) उपासनाओं द्वारा यज्ञाग्निहोत्र-उपासना और गुरु-उपासना। (८) अमृत, विश्पति विभु की उपासना। (९) तिमंजिले भवन के समानत्रिविध तापवारक प्रभु। (१०) ज्ञानी प्रभु की गुरुवद् उपासना। (११) गुरु के कर्त्तव्य। (१२) राजा के गुरुवत और गुरु के राजावत कर्त्तव्य। (१३) 'जातवेदा' का लक्षण। 'अग्नि' का लक्षण, उसके होता, गृहपति आदि अन्वर्थ नाम। (१४) परमेश्वर, राजा का यज्ञकर्त्ता और अग्नि के तुल्य वर्णन। (१५) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्यों का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव। (१६) विद्वान् और सेनापति के कर्त्तव्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव। (१७) संघर्ष द्वारा मथ कर उत्पादित विद्युत या अग्नि के तुल्य परस्पर विवाद

संघर्ष द्वारा विद्वान् नायक की उत्पत्ति। (१८) उसका लक्ष्य राज्य यज्ञ का धारण और उत्तम कर्माचरण। (२०) सर्वहितार्थ यज्ञाग्निवत् विद्वान् नायक का आधान। जिससे वह तीक्ष्ण तेज से शासन करे। (पृ० २३२–२४४)

सू० [१६]—ज्ञानमय जगदीश्वर की स्तुति। विद्वान् की जनता मे स्थिति। (२) विद्वान् के कर्त्तव्य। वेदोपदेष्टा प्रभु। (३) सन्मार्ग-दर्शी प्रभु, ज्ञानी। (४) उसकी सगुण निर्गुण, उपासना के प्रकार। (५) पात्रप्रद विवेकी प्रभु। (६) दूतवत् प्रभु। (७) स्तुत्य प्रभु। अनुकरणीय प्रभु। (९) मनु, वह्नि, अग्नि, सर्वाश्रय ज्ञानी प्रभु। (१०) ज्ञान की पुकार। राजसभा मे राजा को प्रधान पद की प्राप्ति। (११) ज्ञानाग्नि का यज्ञाग्निवत् प्रज्वालन। (१२) प्रकाशवत् ज्ञानवितरण। (१३) मेघस्थ अग्निवत् शिरोमणि विद्वान् की स्थिति। उसकी उत्पत्ति और कर्त्तव्य। पक्षान्तर मे आत्माग्नि का मथन। (१४) अथवा दध्यङ् ऋषि के अग्नि मथन का रहस्योद्भेद। (१४) पाथ्य वृषा, मेघवत् प्राण का वर्णन। दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (१६) उपदेष्टा की चन्द्रवत् वृद्धि। (१७) उत्तम बल प्राप्ति का उपदेश। (१८) राजकार्यों पर राजा की आंख रहने की आवश्यकता। वा समर्थ राजा का लक्षण। (१९) सत्पति का लक्षण। दिवोदास का रहस्य। (२०) अनवृह्म अग्नि राजा। (२१) राजा को राज्य विस्तार का उपदेश। (२२) अग्रणी के गुण स्तवन, उपदेश। (२३) विद्युत्वत् विद्वान् अध्यक्ष, उसकी दीर्घायु। (२४) राजा का कर्त्तव्य गृहस्थो का बसाना। (२४) राजा विद्वान् और प्रभु का सम्यग् दर्शन सर्वलोक-हितार्थ है। (२६) उसका कर्त्तव्य पापों से प्रजा की रक्षा। (२६) आत्मसमर्पक की ब्रह्मप्राप्ति। (२७) प्रभु, स्वामी के सच्चे सैनिक। (२८) प्रजाभक्षकों का नाश, राजा का कर्त्तव्य। (२९) दुष्टो का उत्पीडन (३०) पापो और पापियों से प्रजा का पालन। (३१) दुष्टों का मूलोच्छेदन। (३२) हमारे विरोधी दुष्ट

पुरुष को वचन द्वारा दण्डित करना या वाक्छेदन करने का दण्ड। (३३) अन्न-बलधारियो के हाथ से ऐश्वर्य की याचना। (३२) जल सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (३५) परमेश्वर। माता के गर्भ में बालकवत् राज्य गर्भ मे राजा की स्थिति। और सभाभवन के मुख्यासन पर पिता के पिता (पितामह) पदकी प्राप्ति। (३६) धन, ज्ञानप्रद जातवेदा का स्वरूप। (३७) सम्यग् दृष्टि वाले ज्ञानी के पास से ज्ञानोपार्जन। (३८) धूप में तप्त की छायावत् प्रभु शरण प्राप्ति। (३९) बलवान् राजा का शत्रुपुर भेदन। (४०) प्रजा का राजा के प्रति मातृतुल्य स्नेह। (४१) योग्य की योग्य पद आदर प्राप्ति। (४२) उसका योग्य पद पर स्थापन। (४३) उत्तमो की उत्तम कार्यों मे नियुक्ति। (४४) राष्ट्र पालनार्थ राजा का सैन्य धारण। (४५) उसकी सर्वोच्च स्थिति और चमकने का उपदेश। (४६) सर्वोच्च की आदर पूजा करने का प्रकार। (४७) राजा के अधीन जनो के गुण। (४८) अग्रासन योग्य जन के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति, दुष्ट नाश। (पृ० २४४–२६१) इति पञ्चमोऽध्यायः॥

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० २६२–३२८)

सू० [१७]—शत्रु दमन के साथ राष्ट्र में कृषि की वृद्धि का उपदेश। (२) राजा के सद्गुण। (३) उसके कर्त्तव्य। (४) उसका अभिषेक। (५) उषावत् सूर्य के तुल्य राजा प्रजा का अभ्युदय। (६) प्रजा की वृद्धि के नाना द्वार खोलने का उपदेश। (७) बृहत् सैन्य धारण और प्रजा के शासन का उपदेश। (८) गुरुवत् राजा का वरण। (९) राजा के दो भय, उनसे विनीत प्रजा। (१०) राजा के बल के ५ गुण, भयकारी सर्वनाश मे समर्थ तीक्ष्ण, सुखद, सर्वाश्रय योग्य (११) सूर्यवत् राजा के दो कार्य १ अन्नवत् शत्रुपाक, २ सरोवरपूरक मेघवत् राष्ट्र के ज्ञानी बली, धनी तीनो प्रजावर्गों का समृद्धि योग। (१२) मेघस्थ जलवत् बल का प्रयोग और प्रजाजन का सन्मार्ग पर ले चलना। (१३)

ऐसे राजा का वरण। (१४) उसका कर्त्तव्य। (१५) उत्तम प्रार्थना। (पृ० २६१–२६९)

सू० [१८]—स्तुत्य स्वामी, प्रभु। (२–३) एक ईश्वर की स्तुति। उसका वेदोपदेश। (४) स्वामी का महान् भीतिप्रद शासनबल। उसका कार्य शत्रु का नाश। (६) राजा के अनेक उत्तम कर्त्तव्य। (७) सर्वोपरि राजा के गुण। (८) प्रजा के सुखार्थ प्रजा के भक्षकों का दमन। (९) महारथी होने का उपदेश। उसको कर्त्तव्य का उपदेश। (१०) बिजुलीवत् शत्रुओं का नाश। (११) दुष्टों को धनापहार का दण्ड। (१२) अद्वितीय बलशाली, प्रभु और राजा का वर्णन। (१३) राजा को उपदेश। शासन, दान, उन्नयन, शक्तिवर्धन। (१४–१५) प्रधान के स्तुत्य कार्य। (पृ० २६९–२७६)

सू० [१९]—शरीर में प्राणवत् राजा की स्थिति। वह सहायकों से बढ़े। (२) उसके कर्त्तव्य। (३) पशुपालवत् प्रजा का पालक। (४) सदाचारी प्रजा होने के उद्देश्य से राजा की स्थापना। (५) राजा के उत्तम गुण। (६–९) उसके कर्त्तव्य। प्रजा का शक्तिवर्धन (१०–१३) अभ्युदयादि। प्रजा की नाना कामनाएं। (पृ० २७६–२८२)

सू० [२०]—राजा के गुण। (२) विद्युत्वत् राजा का समवाय बना कर शत्रुहनन। (३) राजा के उत्तम गुण। (४) दशावरा परिपत्पति का बलशाली पद। उसका प्रभाव। (५) राजा महारथी। (६) राजा, सेनापति का कर्त्तव्य, नमुचि के शिरोमथन का रहस्य। शुष्ण के वध का रहस्य। (७) 'पिप्रु' शत्रु का रूप। उस का दमन। अहार्य धन का दान। (८) राष्ट्रमाता का बालकवत् सुपुत्र राजा। शासनार्थ उत्तम उपकरण, दशावरा, हस्ती यान, सैन्य बल, आदि का ग्रहण। (९) न्यायासन पर विराजे अधिकारी के कर्त्तव्य। (१०) उत्तम सैन्यशिक्षा। (११) राजा के पितातुल्य कर्त्तव्य।

(१२) जलधारावत् प्रजाओं का सन्मार्ग में प्रवर्त्तन । राजा का आदर । धुनि, चुमुरि के हनन का रहस्य । (पृ० २८२–२८६)

सू० [२१]—प्रभु का महान् ऐश्वर्य । (३) प्रभु के अनुग्रहेच्छुओं का अहिंसा महाव्रत । (४) प्रभु का सर्वश्रेष्ठ रूप, (५) वह सर्वज्ञ है । (६) उसके प्राप्त्यर्थ दीक्षा, स्तुति आदि । ईश्वर का सर्वातिशायी बल । पक्षान्तर में इन्द्र, जीव और रक्षस् विघ्नों का वर्णन । (८) इन्द्र, राजा को उपदेश । (९) उसके कर्त्तव्य । (१०) बहुशक्तिशाली प्रभु का वर्णन । उसके प्रति प्रार्थना । (पृ० २८९–२९५)

सू० [२२]—इन्द्र की अर्चना । (२) उसके सत्संगी । उसके पितृगण । (३) राजा के अधिकार का निरूपण । (५) उसको अधिकार दान । कर्त्तव्य शिक्षण । (७) सर्वधारक प्रभु । (८–११) पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य । (पृ० २९५–३००)

सू० [२३]—राजा की निःसंग स्थिति । उसके उत्तम २ कर्त्तव्य । (५) स्तुत्य प्रभु । (७) ऐश्वर्यवान् के कर्त्तव्य । (९) सभा सदस्यों द्वारा राजा का अभिषेक । (१०) अभिषिक्त के कर्त्तव्य । (पृ३००–३०५)

सू० [२४]—प्रजा के पुत्रवत् पालक राजा के कर्त्तव्य । (२) उसकी शक्तियों की शाखावत् वृद्धि । (३–४) गौओं और बछड़ों के तुल्य और प्रभु राजा की शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं की स्थिति । (५) राजा का सर्वप्रिय रूप । (६) नदीवत् प्रजाओं के स्वभाव । (७) उस प्रभु की महती शक्ति । (८) मेघवत् शस्त्रवर्षी बल । (९) पितावत् राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ३०६–३११)

सू० [२६]—रक्षक स्वामी के कर्त्तव्य । (२) प्रजा की संकटों में रक्षा । (३) पीडाकारियों का नाश । (४) उत्तम न्यायकर्त्ता का पद इन्द्र । (५) सर्वोपरि शासक । (६) न्यायानुसार विभाजक इन्द्र पद । (७) त्राता दुष्टसंहारक (पृ० ३११–३१५)

सू० [२६]—प्रजा सेवकादिभक्त इन्द्र । उसका दुष्टदमन का कर्त्तव्य । (पृ० ३१५–३१६)

सू० [२७]—राज्यैश्वर्य की रक्षा और दुष्ट दमन के उपायों का उपदेश । (२) न्याय का उपदेश । (३) इन्द्र का अज्ञेय ऐश्वर्य । (४) उसका सर्वभयकारी बल । (५) शिष्य को शिक्षा, ताडना के समान राजा का शासन । 'हरियूपीया' का रहस्य । (६) राजा की २००० सेना और सैन्यो के कर्त्तव्य । (७) राजा की शत्रु-उच्छेदक नीति । (८) राजसभा के २० सदस्यो का विधान । (पृ० ३१९–३२४)

सू० [२८]—गौओ के दृष्टान्त से कुलवधुओं का वर्णन । (२) राजा का प्रजाजन को खजाने के समान रक्षा करने का कर्त्तव्य । (३) अचोर्य धन । (४) ज्ञानी इन्द्र की अहिंस्य गौएं, वाणियें है । (५) इन्द्र से राजा, गृहपति, विद्वान् से भूमि, गौ वाणी दान करने की याचना । (६) गौओ और वाणियो के उत्तम गुणों की तुलना । (७) गौओ वाणियों के तुल्य व्यवहार और प्रकृति । (पृ० ३२४–३२८) इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्याय. (पृ० ३२८–४१२)

सू० [२९]—महत्त्वाकांक्षियो को इन्द्र, गुरु, आदि की शरण जाने का उपदेश । (२) प्रधान पुरुष, इन्द्र की योग्यता । (३) उसकी सूर्यवत् स्थिति । (४) राजा के उत्तम गुण, 'सोम', "धाना", 'पक्ति' 'ब्रह्मकार' आदि का स्पष्टीकरण । (५) सर्वरक्षक महाप्रभु । (६) अनुपम बलशाली इन्द्र । (पृ० ३२८–३३१)

सू० [३०]—सूर्य पृथिवीवत् राजा भूमि का प्रकाश्य-प्रकाशक भाव । सूर्यवत् उसका महान् प्रभाव । (२) उसका महान् अविनाशी, दर्शनीय सामर्थ्य । (३) विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य । (४) सूर्यवत्

अनुपम प्रभु। राजा के कर्त्तव्य। (५) शत्रु विजय, सेना-उत्पादन का उपदेश। (पृ० ३३१–३३४)

सू० [३१]—रयिपति इन्द्र। उसका प्रस्ताव अनुमोदन, वाद-विवाद द्वारा निर्वाचन। (२) उसके सद्गुण। विद्युत्वद् भयकारी बल। (३) इन्द्र कृपक का वर्णन। राजचक्र प्रवर्त्तन। दुष्टनाश। प्रजा की शिक्षा का प्रबन्ध करने का उपदेश। (५) गुरुजन संग का उपदेश (पृ०३३४–३३७)

सू० [३२]—स्तुत्य, महान् इन्द्र का उपस्तवन। (२) उसके सूर्यवत् कर्त्तव्य। (३) गुरु शिष्यों और वीरो आदि को सभ्यता, शिष्टाचार का उपदेश। उनको एक साथ काम करने की शिक्षा। (४) पंक्तिबद्ध पुरुवीर सेनाओं का उपदेश। (५) सेनापति और अध्यक्ष के सेनाओं को नदी-सागर दृष्टान्त से प्राप्त होने का उपदेश। (पृ०३३७–३४०)

सू० [३३]—उत्तम उदार, बलवान् राजा का कर्त्तव्य। (४) उसको प्रजा का रक्षार्थ आह्वान। उसका प्रजा के प्रति उचित भाव। (पृ० ३४०–३४३)

सू० [३४]—समस्त वाणियों, स्तुतियों, प्रवचनों का एक मात्र पात्र प्रभु 'इन्द्र'। (२) वह रथवत सर्वाश्रय, उपास्य है। (३) सर्वस्तुत्य शान्तिदायक प्रभु। अमावास्या में सूर्य में चन्द्रवत् परमात्मा में जीव की एकता। मरु में जलों के तुल्य यज्ञों से प्रभु की महिमा की वृद्धि। (पृ० ३४३–३४५)

सू० [३५)—राजा के जानने और करने योग्य कर्त्तव्यों का उपदेश। (५) विद्वानों की सेवा, आदर का उपदेश। (पृ० ३४५–३४७)

सू० [३६]—ऐश्वर्यों के न्यायानुसार विभक्त करने वाले अधिकार और कर्त्तव्य। (३) उसकी बलवती विभूति। (४) उसको दान का उपदेश। (५) प्रजा के प्रति सावधान कान वाला, सर्वप्रिय होने का उपदेश। (पृ० ३४८–३५०)

(१८) राजा और जीवात्मा का वर्णन। (२०) मार्गरहित क्षेत्र में मार्ग के ज्ञान की प्रार्थना। मार्गरहित क्षेत्र की अध्यात्म व्याख्या। (२१) राजा का सूर्यवत् शासन। (२२) राजा की मेघवत् स्थिति। उसके ऐश्वर्य का मेघ जल के समान उपभोग। (२३) राजा का विभूतिदान (२६) राजा का वनस्पति रूप। राजा के नाना कर्त्तव्य। (२८) इन्द्र का वज्र। उसका उपभोग। (३०) इन्द्र की दुन्दुभि। राजा का दुन्दुभि रूप, उसका उपयोग। (पृ० ३९५–४१२)

अष्टमोऽध्यायः (पृ० ४१२–४८९)

सू० [४८]—जातवेदाः प्रभु की स्तुति। राजा के कर्त्तव्य। (५) मथित अग्नि के समान राजा का प्रकट होना। (६) सधूम अग्निवत् राजा का स्वरूप। (८) अग्निवद् गृहपति। (९) वसु, आचार्य, गृहपति अग्नि। उससे उचित याचना, प्रार्थना। (१०) विश्वदोहस्, विश्व भोजस्, वेदवाणी का गोवत् दोहन। (१४) इन्द्र का वरुण, अर्यमा, विष्णु रूप। (१५) विद्वान् शासक के कर्त्तव्य। (१७) उसकी वनस्पतिवत् स्थिति। राजा का अच्छिद्र पात्रवत् सख्य। उससे प्रार्थनाएं। (२१) तेजस्वी का लक्षण। (२२) सूर्य भूमिवत् राजा प्रजा। (पृ० ४१२–४२२)

सू० [४९]—ब्रह्म, क्षत्र के कर्त्तव्य। (३) रात्रि दिनवत् शिष्य शिष्याओं के कर्त्तव्य। (४) विदुषी स्त्री और विद्वान् को उपदेश। पक्षान्तर में योगी को उपदेश। (६) मेघ वायुवत् स्त्री पुरुषों को उपदेश। (१२) व्यापक प्रभु की स्तुति प्रार्थना। (पृ० ४२३–४३०)

सू० [५०]—देवी अदिति। (२) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् राजा के कर्त्तव्य। सूर्य भूमिवत् स्त्री पुरुषों को उपदेश। (४) विद्वानों के कर्त्तव्य। (६) विद्वान् गुरु की अर्चना (७) आप्तजनों के कर्त्तव्य। (८) तेजस्वी रक्षक के कर्त्तव्य। (९) अधीन के कर्त्तव्य। (१०)

विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (११) दानशील पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ४३०–४३८)

सू० [५१]—मित्र रूप स्त्री पुरुषो के कर्त्तव्य। (२) विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन। (४) उत्तम नायकों का वर्णन। (५) उत्तम माता पिता, भाई आदि से प्रार्थना। (६) उत्तम पुरुषों से प्रार्थना। (८) पूज्यो का आदर। वीर बलवानों के कर्त्तव्य। (११) उत्तम रक्षक। (१२) ज्ञानी, गुरु और रश्मियों के गुण। (१३) सत्पति, उसके कर्त्तव्य। (१५) राजाधीन वीरों के कर्त्तव्य। (१६) परम पन्था प्रभु। (पृ० ४३८–४४७)

सू० [५२]—उत्तम यज्ञशील का अभ्युदय। (२) दुष्ट पुरुषो के प्रति वीरों के कर्त्तव्य। (३) राजा का कर्त्तव्य। (४) मनुष्य के उत्तम रक्षक। (६) उत्तम पिता आचार्य इन्द्र (७) विद्वानो की अर्चना। उनसे निवेदन। (८) सूर्य पर्जन्यवत् पिता और आचार्य। (१७) यज्ञवत् विद्वान् की अर्चना। (पृ० ४४७–४५५)

सू० [५३]—पथस्पति पूषा। विद्वान् राजा। उसके कर्त्तव्य। (४) दुष्टों का दमन। (७) व्यवहार पत्र लेखनादि का उपदेश। चाबुकवत् वाणी का प्रयोग। (पृ० ४५५–४५८)

सू० [५४]—पूषा विद्वान् आचार्य। उसका सत्संग। (३) पूषा राजा के कर्त्तव्य। (८) उससे न्याय की याचना। (पृ० ४५८–४६१)

सू० [५५]—पूषा राजा। ऐश्वर्यवान् मित्र, आदेष्टा। (५) सूर्य वत् प्रकाशक। 'स्वसुर्जार', 'मातुर्दिधिषु' का रहस्य। (६) रथ के अश्वों के समान अमात्यों के कर्त्तव्य (पृ० ४६१–४६३)

सू० [५६]—प्रजापोषक पूषा राजा। अयाचित दाता प्रभु। (२) सत्पति इन्द्र। आत्मा। (३) रथीतम। उसके नाना कर्त्तव्य। प्रजा के निवेदन। (पृ० ४६४–४६६)

इति चतुर्थोऽष्टकः

पञ्चमोऽष्टकः

सू० [६५]—उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (५) कन्या के प्रति विद्वानों के उपदेश और वर प्राप्ति। (पृ० ५०७—५११)

सू० [६६]—देह का वर्णन। (२) विद्वानों मरुतों के कर्त्तव्य। (३) उत्तम सन्तानोत्पादन का उपदेश। (६) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य रक्षा आदि। (७) वायुओं द्वारा विना अश्वादि के रथ के समान जीवन का निष्पाप मार्ग। (८) वीरों से रक्षित नायक का अनुपम बल। (९) वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य। अग्निवत् नायक और वीरों का वायुवत् वर्णन। सेनानायक का आदर सत्कार। (पृ० ५११—५१७)

सू० [६७]—मित्र वरुण। स्नेही दुःखवारक प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) मित्र-वरुण वरवधू के कर्त्तव्य। उनको गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेक उपदेश। (पृ० ५१७—५२३)

सू० [६८]—इन्द्र वरुण, युगल प्रमुख पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) इन्द्र वरुण की व्याख्या। (१०) इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुषों का वर्णन। (पृ० ५२३—५२८)

सू० [६९]—इन्द्र विष्णु। सूर्य विद्युत्वत् राजा प्रजा वर्गों के परस्पर कर्त्तव्य। (२) सूर्य विद्युत्वत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (३) सभापति सेनापति के कर्त्तव्य। (४) ऐश्वर्य और जनसंघशक्ति अर्थात कोश और दण्डाध्यक्षों को उपदेश। (५) राजा विद्वान् दोनों के पराक्रम और (७) ऐश्वर्य की वृद्धि और उत्पत्ति का उपदेश। उक्त सबको अन्न ऐश्वर्य से पेट भरने का उपदेश। (८) अपरिमित ज्ञान, बल ऐश्वर्य प्रकट करने की प्रेरणा। (पृ० ५२८—५३२)

सू० [७०]—द्यावा पृथिवी, भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू वा स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। वे स्नेही, आश्रय योग्य, विशाल हृदय, मधुर अन्न वचन के दाता, बलवान् हों। (२) वे सूर्य भूमि वा जल-अन्न सम्पन्न, शुद्धाचार, दानी उत्तम सन्तति के माता पिता

हों। (३) दोनों में आदर्श पुरुष का वर्णन। (४) दोनों का आदर्श पारस्परिक कर्त्तव्य। (पृ० ५३२–५३६)

सू० [७१]—सविता। सूर्यवत् उत्तम निपुण राजा के कर्त्तव्य। (३) वह प्रजा के प्राणों की रक्षा करे। स्वयं सत्यवान् हो। (४) अपराध को न सहे। (५) सुप्रसन्न रहे, (६) प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करे (पृ० ५३६–५३९)

सू० [७२]—इन्द्र सोम। सूर्य चन्द्रवत् स्त्री पुरुषों, गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य, वे प्रभु को जानें। अज्ञान को दूर करें, निन्दय व्यवहारों का नाश करें। (२) युवा युवति को बसावे। माता भूमि का आदर करें, पक्षान्तर में आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य, (३) आचार्य और विद्युत्-पवन परस्पर सहायकों के कर्त्तव्य। (४) परिपक्व वीर्य से सन्तान उत्पन्न करे। (५) धनादि उपार्जन करें। (पृ० ५३९–५४२)

सू० [७३]—गृहपति परमेश्वर पिता और राष्ट्रपालक राजा। (२) वीर राजा का वर्णन। (३) बड़े राष्ट्र के स्वामी के कर्त्तव्य। (पृ० ५४२–५४४)

सू० [७४]—सोम रुद्र। चन्द्र और वैद्य वा औषधि और वैद्यवत् शत्रु-रोगनाशक राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। जल और अग्नि के तुल्य वैद्यों को आरोग्यरक्षार्थ औषध संग्रह का उपदेश। (पृ० ५४४–५४५)

सू० [७५]—संग्राम सूक्त। युद्धोपकरण, कवच, धनुष, धनुष की डोरी, धनुष कोटि, तरकस, सारथि, रासें, अश्व, रथ रक्षक, बाण, कशा हाथ का रक्षक चर्म आदि २ पदार्थों के वर्णन तथा उनके महत्व। (२) धनुष के बल से संग्राम विजय का उपदेश। (३) प्रिय स्त्रीवत् धनुष डोरी का वर्णन। संग्राम पार करने की सहायक डोरी (४) माता पिता के समान धनुष कोटियों और पार्श्ववर्त्ती सेनाओं का वर्णन। (५) बहु-

पुत्र पितावत् तरकस का वर्णन । संग्राम विजय मे उसके साथ पीठ पीछे लगे वीर की तुलना । (६) रासों का महत्व, अध्यात्म मे आत्मा रथी का वर्णन । (७) शत्रुविजयी वीरों का वर्णन । (८) युद्ध रथ । (९) सेनाध्यक्ष पितरो का वर्णन । (१०) विद्वान् ब्राह्मण पितरों का वर्णन । वाणो का वर्णन । पक्षान्तर मे भूमि और भूमिपालो का महत्व पूर्ण वर्णन । (१२) वाणवत् सरल पुरुष का वर्णन । (१३) अश्व चालक कशा का वर्णन । (१४) सूर्यवत् हस्तत्राण और वीर पुरुष का वर्णन । (१५) विष से बुझे बाण तथा सुन्दर स्त्री का वर्णन । (१६) छोडे हुए बाणवत् सेना का वर्णन । (१७) विद्यार्थियो के तुल्य बाणों का वर्णन । (१८) वीर का कवच धारग । (पृ० ५४५–५५५)

इति षष्ठं मण्डलम्

अथ सप्तमं मण्डलम्

सू० [१]—मथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निवत् परस्पर विचार विवाद द्वारा दूरदर्शी प्रधान नायक का निर्णय । (२) ऐसे दूरदर्शी पुरुष को चुनने के प्रयोजनों का कर्त्तव्य । (३) नायक के गुण । (४) विद्वान् तेजस्वियों के कर्त्तव्य । (५) यन्त्ररथवत् सर्वाग्रणी । (६) वरवत प्रधान नायक का वर्णन । (७) उसके कर्त्तव्य, वह परुषभाषी को दण्ड दे । (८) सेना, दण्ड को तीक्ष्ण करे । (९) पिताओंवत् शासक जन एवं सेना पुरुष । (१०) उनके कर्त्तव्य । (११) प्रधान नायक का वरण । (१२) उसके कर्त्तव्य । (१५) उत्तम रक्षक अग्नि, नायक । (१६) उसकी यज्ञाग्नि से तुलना । (१७) उससे अग्निहोत्रवत व्यवहार । (१९–२०) प्रजा के आवश्यक निवेदन । राजा के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य । (पृ० ५५७–५६८)

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् शासक नायक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य।। (२) उत्तम विद्वानों का सत्कार। (३) उत्तम कार्य के लिये सच्चे, कुशल, स्तुत्य पुरुष का वरण। (४) यज्ञवत् सदाचार शिक्षण। (५) विद्वानों के वीरों के तुल्य कर्त्तव्य। (६) दिन रात्रिवत् युवा युवति जन के कर्त्तव्य। (७) उनके कर्त्तव्य। (८) विदुषी देवियों के कर्त्तव्य। (९) प्रजा काम गृहस्थों को उपदेश। (१०) सूर्य वनस्पतिवत् राजा के कर्त्तव्य। पाचकवत् नायक के कर्त्तव्य। शमिता अग्नि का स्वरूप। (११) अग्निवत् सेना नायक का वर्णन। उसकी सुपुत्रवती माता से तुलना। (पृ० ५६८–५७४)

सू० [३]—सूर्य अग्नि विद्युत्वत् तेजस्वी दूतवत् प्रमुख पुरुष के कर्त्तव्य। (२) प्रयाणशील राजा की अग्नि और सैन्य की प्रबल वात से तुलना। अश्व अग्नि राजा का समान वर्णन। अध्यात्म मे—आत्मा अश्व। (३) अग्नि की लपटों के तुल्य राजा के अन्यवीरों का वर्णन। (४) जठराग्निवत् राजा का राष्ट्र शासन का कर्त्तव्य। (५) अग्निवत् अश्ववत् सेनानायक का वर्णन। विद्वानों को नायक के प्रति कर्त्तव्य। (६) तेजस्वी, विद्वान् और सेनापति का वर्णन। (७) अग्निवत् नायक की परिचर्या। (८) नायक की रक्षा का कार्य। (९) शस्त्रधारा के तुल्य राजा की शक्ति। (१०) प्रजा के विनय। (पृ० ५७४–५८०)

सू० [४]—अग्निवत् राजा शासक की परिचर्या और उसके कर्त्तव्य। (२) माता से उत्पन्न बालकवत् उसका स्वरूप। (३) सेना नायक के गुण। (४) अग्निवत् उसकी स्थापना। (५) उसके कर्त्तव्य। देवकृत योनिप्राप्ति का रहस्य। (६) ज्ञानी को मोक्ष प्राप्ति। अनालसी होने का उपदेश। (७) पराये धन और पुत्र का निषेध। (८) उस से सुख प्राप्त नहीं होता। (९) राजा से उत्तम आशंसा। (पृ० ५८०–५८५)

सू० [५]—यज्ञाग्निवत् शासक की परिचर्या। वैश्वानर प्रभु का वर्णन। (३) मुक्तिदाता प्रभु। (४) सर्व व्यापक प्रभु। (५) उसकी शरण प्राप्ति। (६) उससे प्रार्थनाएं। (पृ० ५८५–५९०)

सू० [६]—बलवान् पुरुष की सूर्य-विद्युत्वत् प्रशंसा। (२) उसके उत्तम कर्त्तव्य। (३) अयज्ञशीलों को तिरस्कार करने का उपदेश। (४) नायक के अन्य कर्त्तव्य। (६) ज्ञानप्रद पितामातावत् वैश्वानर। (७) दानशील वैश्वानर। (पृ० ५९०–५९३)

सू० [७]—विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य। (४) गार्हपत्य अग्नि-वत् उसकी स्थापना। (५) वृतवर अग्नि। (६) ज्ञानी के सत्य ज्ञान का सद् उपयोग। अतः उसका वरण। उत्तम वसु वसिष्ठ जन। (पृ० ५९३–५९७)

सू० [८]—उदयशील सूर्यवत् आहवनीय अग्नि। उसके समान शासक स्वामी। उसकी होमवत् परिचर्या और संदीपन। (२) अग्निवत् राजा का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ५९७–६०१)

सू० [९] उदयशील सूर्यवत् नाना प्रद गुरु अग्नि। उसके कर्त्तव्य। उसका पवित्र करने का कर्त्तव्य। (३) सूर्यवत् सभापति का कर्त्तव्य। (४) किरणों से सूर्यवत् वेदवाणियों से पावन प्रभु का ज्ञान। (५) विद्वान् का दूतपद। (६) विद्वान् का विद्योपदेश कर्त्तव्य। (पृ०६०१–६०५)

सू० [१०]—सूर्यवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। वह सबको प्रबुद्ध करे। अग्निवत् वरणीय वर का वर्णन। तद्वत् आचार्य का वरण। (४) विद्वान् का कर्त्तव्य। ईश्वर का ज्ञान प्रसार। पक्षान्तर में राजा का विद्या प्रचार का कर्त्तव्य। (५) चन्द्रवत् प्रधान राजा का सर्व प्रिय होना। (पृ० ६०५–६०८)

सू० [११]—जीवों का सुखप्रद स्वामी राजा। शत्रुनाशक दूतवत शासक। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ६०८–६१०)

सू० [१२]—विद्युत अग्नि का वर्णन। उसके तुल्य प्रभु स्वामी के कर्त्तव्य। (३) वही वरुण, मित्र है। (पृ० ६१२–६१३)

सू० [१३]—सर्वहितैषी वैश्वानर प्रभु की स्तुति । (२) उससे मुक्ति की याचना । (३) ज्ञान की याचना । (पृ० ६१२–६१३)

सू० [१४]—अग्निवत् ज्ञानी की अर्चना । (पृ० ६१४–६१५)

सू० [१५]—यज्ञवत् विद्वान् की परिचर्या । उससे उत्तम २ प्रार्थनाएं । ज्ञानी पुरुषों से ज्ञान प्रकाश की याचना । (९) प्रभु की उपासना और प्रार्थना । (१४) राजा रानी को उपदेश । (१६) राजा से पापाचारी को दण्डित करने का निवेदन । (पृ० ६१५–६२०)

सू० [१६]—तेजस्वी बलवान् का आदर सत्कार का उपदेश । (२) सुब्रह्मा, वेदज्ञ का आदर । (३) उसका तेजस्वी सूर्य और अग्निवत् स्वरूप । (५) गृहपति अग्नि । (६) उससे नाना प्रार्थनाएं । (११) द्रविणोदा ऐश्वर्यप्रद प्रभु, कर्मफल-प्रद है । वही सर्वाश्रय वरण योग्य है । (पृ० ६२०–६२६)

सू० [१७]—यज्ञाग्निवत् विद्वान् शासक के कर्त्तव्य । (पृ० ६२५–६२८)

सू० [१८]—राजा और अग्निवत् विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (४) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । राजा गोपति । (६) श्रम और श्रमिक द्रव्य की व्यवस्था का उत्तम फल । (७) उत्तम राजपुरुषों का आकार प्रकार । (८) दुर्बुद्धि और कुमार्गी के लक्षण । (९) वशी राजा के सत्फल । (१०) गोपाल और गौओं के तुल्य प्रभु और जीवगण इसी प्रकार प्रजा राजा । (११) राज समिति के २१ सदस्य । (१२) शत्रु साधन । (१५) राजा के वीर जन । (१६) राजा का अपना कर्त्तव्य । (१७) 'इन्द्र' पदस्थ राजा के कर्त्तव्य । (१८) अधीनस्थों के कर्त्तव्य । (२०) प्रजाओं के कर्त्तव्य । (२२) उत्तम राजा के दो अधिकारी । (२३) ४ वेदज्ञों के कर्त्तव्य । (२४) तीक्ष्ण राजा के कर्त्तव्य । सुदास, दिवोदास, पैजवन आदि का रहस्य । (पृ० ६२८–६४१)

सू० [१९]—तीक्ष्णशृंग वृषभ के समान इन्द्रपदस्थ उत्तम शासक का वर्णन । उसका दुष्टों के दमन करने का कार्य । (२) मुख्य पद के योग्य गुण । उसके प्रयोजन । शत्रु विनाश का उपदेश । राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य । कुत्स, शुष्ण, कुयव, वीतहव्य, सुदास, पौरुकुत्सि, वृत्र, चुमुरि, धुनि, नमुचि, कौन है ? (५) इन्द्र का ९९ पुरी भेदन और नमुचिवध का रहस्य । (पृ० ६४१–६४६) इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सू० [२०]—उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य । उससे प्रजा की नाना प्रार्थनाएं । उसके महान् कर्त्तव्य । (५) सेना नायक के कर्त्तव्य । (७ बड़ों का छोटों को शिक्षा देने का उपदेश । उसी प्रकार राजा का पद (८) करप्रद प्रजा की रक्षा का कर्त्तव्य । प्रजा के अधिकार । (पृ० ६४७–६५१)

सू० [२१]—भूमि से अन्न उत्पन्न करने का उपदेश करने का राजा का कर्त्तव्य । विद्वानों के कर्त्तव्य । सूर्य विद्युत् के तुल्य राजा का प्रजा को सन्मार्ग में चलाने के कर्त्तव्य । वह शत्रु और दुष्टों के कार्यों को गुप्त रूप से पता लगाकर दण्डित करे । दुष्ट का भी जन यज्ञादि में विघ्न न करे । राजा सबको पराजित करे । (७) सैन्यादि के कर्त्तव्य । (८) उत्तम रक्षक की पुकार । (९) रक्षक उत्तम सखा । प्रजा को अभय प्राप्त हो । (पृ० ६५१–६५६)

सू० [२२]—सूर्य मेघवत् शासकों के कर्त्तव्य । राजा का सोमपान राष्ट्रपालन । (२) वृत्रहनन शत्रुनाश । (३) अन्नोत्पत्ति, वस्त्रज्ञान, धन प्राप्ति । (४) मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन । (५) राजा की वाणियों की अवहेलना न कर उसकी कीर्त्ति कहना । (६) स्तुत्य राजा । (७) राजा का अधिकार । (८) विद्वान् जन वेदार्थ का प्रकाश करें । (पृ० ६५६–६६०)

सू० [२३]—वसिष्ठ विद्वान्, और राजा का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (२) आज्ञापक सेनापति की आज्ञा का वर्णन। पापो के रक्षक राजा। (३) सेनापति के कर्त्तव्य। (४) आप्त विद्वान् प्रजाओ के कर्त्तव्य। (५) रक्षक का वर्णन। (६) उत्तम रक्षक का समादर। (पृ० ६६०–६६३)

सू० [२४]—रक्षक का मानपद। (२) उत्तम गृहपतिवत् राष्ट्र-पति का वर्णन। (३) उसके कर्त्तव्य। पुत्रवत् प्रजापालन। (४) प्रजा की विपत्तियो को दूर करना। (५) अभिषेक का प्रयोजन। सूर्य-वत् शासक पद। (६) उसका कर्त्तव्य प्रजा को समृद्ध करना। (पृ० ६६३–६६६)

सू० [२५]—देशरक्षार्थ सेनाओं का युद्ध, शस्त्रसञ्चालन और शस्त्र का उद्यम (२) शत्रुओ का रोगवत् नाश करने का उपदेश। (३) हिंसक दुष्ट का नाश और विजेता को प्रशंसा प्राप्त हो। (४) राजा का प्रजा को आश्रय। राजा का समवाय बनाना। सब शस्त्रादि बल शासन की वृद्धि के लिये हो। (पृ० ६६६–६६९)

सू० [२६]—'असुत सोम इन्द्र को हर्ष नहीं देता' उसकी व्याख्या सोम और इन्द्र के परस्पर सम्बन्धो का रहस्य स्पष्टीकरण। सोम, प्रजा-जन, ऐश्वर्य, ओषधि रस आदि, इन्द्र राजा, आत्मा, गुरु आदि। अभिषिक्त शास्ता के कर्त्तव्य। (४) इन्द्र का सर्वोपरि पद। उसके न्यायशासन कर्त्तव्य। कृषिवृद्ध्यर्थ मेघवत् प्रजावृद्ध्यर्थ राजा की स्तुति। (पृ० ६६९–६७२)

सू० [२७]—राजा की आवश्यकता। प्रभु का स्मरण और प्रार्थना। (२) वह हमारे लिये धन और ज्ञान के द्वार खोले। (३) राजा के अधिकार। (४) राजा का धन, बल दोनों पर नियन्त्रण ही प्रजा को सुख दे सकता है। (५) प्रजा का सेवक राजा। (पृ० ६७२–६७४)

सू० [२८]—उत्तम विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य। वे प्रजा की बात सुनें। (२) ज्ञान धन का रक्षक राजा। उसका घोर वज्र और वह स्वयं असह्य हो। (३) शासकों का शासन करे, कर न देने वालों को दण्ड दे। बड़े धन बल का स्वामी हो। (४) न्याय का उत्तम दाता हो। (५) वही उत्तम रक्षक 'इन्द्र' पद योग्य है। (पृ० ६७५–६७७)

सू० [२९]—उत्तम ऐश्वर्य का दाता राजा। (२) चतुर्वेदज्ञ शासक पद के योग्य है। वही सुख दे सकता है। (३) विद्या का अलंकार, विद्वान् से विनय। (४) गुरुस्वीकरण। (५) वही गुरु 'इन्द्र' पद योग्य है। (पृ० ६७७–६७९)

सू० [३०]—'इन्द्र' ऐश्वर्य का स्वामी और बलशाली है। (२) सेनापति होने योग्य पुरुष। उसको तदुचित आदेश। (पृ० ६७९–६८१)

सू० [३१]—वीर्यपालक ब्रह्मचारी, ब्रह्मज्ञान पिपासु मुमुक्षु, ऐश्वर्यपालक राजा सब 'सोमपावन्' हैं उनका विवरण, उनका आदर, उनके अधिकार और कर्त्तव्य। (४) वसु, इन्द्र से विनय। (५) वह दुष्ट के निमित्त प्रजा को पीड़ित न करे। (७) प्रजा के कवचवत राजा। (८) सूर्याधीन आकाश पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों को सम्बद्ध रखने वाला राजा। 'स्वधावरी रोदसी' की व्याख्या। (८) राजा सदा स्तुत्य हो। (९) सबका आदरणीय हो। (१०) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्य। (११) विद्वानों का कर्त्तव्य। वे मर्यादा न तोड़ें। (१२) सेनाओं और वाणियों के कर्त्तव्य। (पृ० ६८१–६८६)

सू० [३२]—राजा के कर्त्तव्य। वह विषयविलास में रत न होकर प्रजा के सुखों में सुखी रहे। (२) विद्वानों का मधु मक्खी के के समान मधुव्रत। (३) रथवत प्रभु में उनकी मनःकामना। (३) धनार्थी का पुत्रवत् पिता तुल्य प्रभु का स्मरण। (४) राष्ट्र धारणार्थ शासक को राजा नियुक्त करे। (५) वह राजा की प्रजा के कष्टों को सुने।

(६) राजा के गम्भीर शासनों के पालक की वृद्धि। (७) राजा के विविध धन का भोग प्रजा को प्राप्त हो। (८) इन्द्रार्थ सोमसवन अर्थात् राष्ट्रपति पद पर वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक। उसका समारम्भ। (९) वीर्यवान् पुरुषों को उपदेश। वे परस्पर का नाश न करके महान् ऐश्वर्य के लिये यत्नशील हों। (१०) प्रभुरक्षित का अपार बल। (१२) बड़ा अधिकारी वह जो अपने बल को प्रभु के निमित्त व्यय करे। (१३) उत्तम मन्त्र, रक्षा का उपदेश। प्रभुभक्त को ही धर्मबन्धन तराते हैं। (१४) प्रभुभक्त का अपार बल। (१५) प्रभु राजा का वैभव। (१६) युद्धों में भी सहायक प्रभु ही है। (१७) धन का स्वामी होकर मनुष्य क्या करे? विद्वानों का पालन। (१९) पूज्यों को धन दे। सर्वोपरि पालक प्रभु। (२०) राष्ट्रतारक राजा, संसारतारक प्रभु। (२१) दुष्ट को न धन और न शक्ति मिले। वे दोनों भक्त को मिलें! (२२) ईश्वर के प्रति वात्सल्य प्रेम। (२३) अनुपम, अपूर्व सर्वातिशायी प्रभु। (२५) शत्रुओं को दूर करने की प्रार्थना। (२६) पालक गुरु ज्ञानप्रकाश की याचना। (२७) पापमोचन की प्रार्थना। (पृ० ६८६—६९६)

सू० [३३]—मार्गदर्शी विद्वानों से सादर प्रार्थना। (२) उनका सादर वरण, उनसे उत्तम २ प्रार्थनाएं। उनके कर्त्तव्य। (६) उनका संप्रेरक दण्डवत् कर्त्तव्य। (७) प्रकाश मार्ग से जाने वाली प्रजाओं का श्रेय। उत्तम विद्वान् मार्गदर्शी हों। (८) वे ही सद्-गृहस्थ हों। (१०) जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य। विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप। (११) मैत्रावरुण, वसिष्ठ और उर्वशी का रहस्य। उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, मित्र वरुण, प्राण अपान। (१२) माता आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना। (१३) लड़का लड़की दोनों का गुरुगृह-वास और व्रत-स्नान। (१४) उत्तम आचार्य वसिष्ठ। उसका शिक्षण। (पृ० ६९७–७०५)

सू० [२४]—(१) विदुषी स्त्री। (२) आप्त स्त्रियों के कर्त्तव्य। (३) आप्त प्रजाजनों का कृषि आदि कार्य। (४) नायक का कर्त्तव्य। सन्मार्ग पर बढ़ने का उपदेश। (६) ध्वजावत् वीर का स्थापन। स्त्रियों को ज्ञानवान् उत्तम पुत्रधारण का उपदेश। (७) पृथिवीवत् स्त्री के कर्त्तव्य। आचार्य का अहिंसाव्रती होकर शिष्यों का आह्वान। (१०) सूर्यवत् शासक का कर्म। (११) जलवत् राजा का कर्त्तव्य। (१२) विद्वान् जनों के रक्षण आदि कर्त्तव्य। (१४) नायक कैसा हो। (१५) मित्र होने योग्य मेघ सूर्यवत् पुरुष। (१६) उनकी स्तुति। बुध्न्य अहि, मेघवत् सर्वाधार पुरुष। (१९) क्षत्रतापन। (२०) तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य। (२१) धनवानों के कर्त्तव्य। (२४) सूर्य भूमिवत् सैन्य, और सेनापति आदि के कर्त्तव्य। (२५) अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ७०६–७१३)

सू० [२५]—शान्तिसूक्त, समस्त भौतिक तत्वों से शान्ति प्राप्त करने की प्रार्थना। (पृ० ७१३–७२०)

चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ७२०–८९०)

सू० [२६]—गुरुगृह में ज्ञानोपार्जन। (२) मित्रवरुण, प्राण उदान, माता पितावत् सभा-सेनाध्यक्ष और प्रभु और जीव। (३) श्रेष्ठ पुरुष का कर्त्तव्य उत्तम उपदेष्टा और न्यायी शासक का वरण। उसको अधिकार। (६) सप्तमी वाणी का वर्णन। (७) विद्वानों का सत्संग (८) विद्वानों की प्रतिष्ठा। प्रभु की स्तुति। (पृ० ७२०–७२४)

सू० [२७]—तेजस्वी पुरुष क्या करें। (३) विद्वान् न्यायकर्त्ता का कर्त्तव्य। (४) विद्वान् का अतिथ्य। (५) उससे नाना प्रश्न। (७) चतुराश्रमी का दीर्घजीवन। अश्व-वेग राजा और परिव्राजक। (८) ऐश्वर्यादि की याचना। (पृ० ७२४–७२८)

सू० [२८]—उत्तम वसु, मेध्य, और स्तुत्य प्रभु। परमेश्वर से

सू० [४८]—ज्ञानी शिल्पी पुरुषों के कर्त्तव्य। यान, रथ, युद्ध-शस्त्र यन्त्र आदि निर्माण। (पृ० ७५६—७५७)

सू० [४९]—मेघ, वृष्टिविद्या। आपः द्वारा सैनापत्य अभिषेक। (२) नाना जलधारावत् प्रजाओं के नाना विभाग। (२) द्विव्य खनित्रिम और पावक तीन प्रकार की प्रजाएं। (३) सत्यानृत विवेकी वरुण का आश्रय प्रजाएं। अभिषेक कारिणी प्रजाओं के कर्त्तव्य। (पृ० ७५७—७६०)

सू० [५०]—मित्रावरुण, माता पितावत् विद्वान् रक्षक जन। विष चिकित्सा। नाना विषों को गुप्त प्रकृति और उनका प्रतिकार। (पृ० ७६०—७६३)

सू० [५१]—अदिति ईश्वर के उपासकों के ज्ञान का सत्संग उनके कर्त्तव्य। (पृ० ७६४—७६५)

सू० [५२]—ब्रह्मचर्यनिष्ठ विद्वानों के कर्त्तव्य। उनका ज्ञान प्रसार और रक्षा का कार्य। (पृ० ७६५—७६६)

सू० [५३] भूमि सूर्यवत् विद्वान् माता पिताओं का कर्त्तव्य। (पृ० ७६६—७६८)

सू० [५४]—वास्तोष्पति, राष्ट्रपति, गृहपति, परमेश्वर। उसके कर्त्तव्य। उसका तारकवत् वर्णन, उससे प्रार्थना। (पृ०७६८—७६९)

सू० [५५]—गृहपति, राष्ट्रपति, देहपति, वास्तोष्पति। सारमेय विद्वान् पहरेदार का वर्णन। (३) नगररक्षक सैन्य जन (पोलिस) के कर्त्तव्य। (४) सैन्य का शत्रु के प्रति कर्त्तव्य। (५) उनके शासन में राष्ट्र प्रजा को सुख (६) उत्तम गृहवत देहनिर्माण। सबके सुख पूर्वक रहने सोने का प्रबन्ध। (पृ० ७६९—७७२)

सू० [५६] रुद्र सेनापति के वीरजन। आचार्य के जितेन्द्रिय शिष्यों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (७) जीवों के जन्म मरणादि का विज्ञान।

(६) योग्य भूमियों स्त्रियो को सदुपदेश। सेनानायक के उत्तम गुण और योग्यता। (९) वीरों विद्वानो के वायुओ के तुल्य कर्त्तव्य। (पृ० ७७३–७८३)

सू० [५७–५८]—विद्वानो और वीरों के मेघ लाने वाले वायुगण के तुल्य कर्त्तव्य, (२) अध्यक्षों के कर्त्तव्य, उनको उत्तम २ उपदेश। (पृ० ७८३–७८६)

सू० [५९]—विद्वानो वीरो के कर्त्तव्य। (६) मधुवत् करसंग्रह, भिक्षासंग्रह का उपदेश। न्यायोपार्जित धन ग्रहण का उपदेश। (७) रसोंवत् वीरो तथा परिव्राजको का वर्णन। (८) दुष्टों का दमन। (९) सान्तपन अग्नि, विद्वान् ब्राह्मण का वर्णन। (१०) गृहस्थ सज्जनो का वर्णन। (१२) मुक्ति की प्रार्थना। त्र्यम्बक् का रहस्य। (पृ० ७८९–७९४)

सू० [६०]—सूर्य, न्याय शास्ता के प्रति प्रार्थना। उसके महत्व-पूर्ण कर्त्तव्य, सर्व श्रेष्ठ वरुण, मित्रादि का वर्णन। उनके अधीन रथ शासकों के लक्षण। स्त्रियों का आदर। उनके अनादरकारी को दण्ड। शासको की समिति और सत्संग का वर्णन। मित्र वरुण, माता पितावत् सभा सेनाध्यक्षों से प्रार्थना। (पृ० ७९४–८००)

इति पञ्चमेऽष्टके चतुर्थोऽध्यायः॥

शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

पृष्ठं	पंक्ति.	अशुद्धं	शुद्धम्
७	८	प्रप्त	प्राप्त
२१	८	निरन्त	निरन्तर
९७	२	अग्नि यम	अग्नि जल
१०३	१५	वृपभासः	वृपभासः
१६५	१५	अद्यवत्	अन्नवत्
१८०	१८	वृक्ष के प्राप्त	वृक्ष के समान प्राप्त
२०६	१२	नश	नाश
२२४	१२	पुरुष की भी	पुरुष भी
२३२	८	सुदिप्तात	सुदिप्ति
२३५	१६	चितयन्ता	चितयन्त्या
३०१	२३	निसंगत को	निःसंग होकर
३२२	२१	कवचधारी	कवचधारी
३७२	६	तत्वदर्शी	तत्वदर्शी
४८३	१४	हे (इयम्)	(इयम्)
४८२	१८	फरता	करती
५३२	३	चल	बल
५२२	२४	दाताा	दाता
५२६	१०	(इत	(उत
५९८	४	चावक	चातुक
६३४	२	'वत्र	'वत्र'
६८४	७	मन्मतनी	मन्मतनी

* ओ३म् *

ऋग्वेद-संहिता

अथ तृतीयेऽष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

(पञ्चमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके)

[४७]

प्रतिरथ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ७ त्रिष्टुप् ॥ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१॥

भा०—माता के कर्त्तव्य ! (मही माता) पूज्य माता (प्र-युञ्जती) उत्तम प्रयोग अर्थात् सन्तानों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई (दिवः) कामना योग्य पति के लिये (दुहितुः) दूर मे विवाह करने योग्य कन्या को (ब्रुवाणा) उपदेश करती हुई (दिवः) सूर्य से उत्पन्न उषा के समान और (बोधयन्ती) उसे अज्ञान निद्रा से जगाती, ज्ञानवान् बनाती हुई (एति) प्राप्त होती है । और वह (युवतिः) यौवन दशा को प्राप्त होकर (आ-विवासन्ती) अपने नाना गुणों का प्रकाश करती हुई (मनीषा) स्वयं अपनी बुद्धि से, (पितृभ्यः) अपने चाचा, मामा, श्वशुर आदि पालक

पुरुषों के (सदने) गृह में भी (आ जोहुवाना) आदरपूर्वक बुलाई जाकर (गुति) प्राप्त हो। वहां भी वह अपना सदा मान बनाये रक्खे।

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम्।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः॥२॥

भा०—(अजिरासः) कभी न नाश होने वाले, वा वेगवान् (तद् अपः ईयमानाः) उस प्रभु परमेश्वर के उपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए और (अमृतस्य) अमृतमय मोक्षस्वरूप प्रभु के (नाभिम्) बांधने वाले प्रेम वा प्रभु पर (आ-तस्थिवांसः) स्थित (अनन्तासः) अनन्त, (उरवः) और बड़े २ (पन्थाः) मार्ग (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध मे (विश्वतः परियन्ति) सब तरफ जारहे हैं। हे पुत्रि ! वा पुत्र ! तू उनको जान। अथवा—(तदप ईय-मानाः) उस गृहस्थाश्रम कर्म को प्राप्त होने वाले (अमृतस्य नाभिम् आ-तस्थिवासम्) प्रजा सन्तति के बांधने वाले आश्रय पर स्थित हों।

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ॥३॥

भा०—हे पुत्रि ! मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह (उक्षा) वीर्य सेचन एवं गृहस्थ धारण करने में समर्थ हो। वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, समान भाव से स्त्री के सहयोग मे रह कर स्वयं और उस को प्रमोद, रति आदि करने मे समर्थ और (अरुषः) स्वयं तेजस्वी और स्त्री पर अनुग्रह बुद्धि वा रोष न करने हारा हो। वह (सुपर्णः) उत्तम पालन करने वाला होकर अपने (पूर्वस्य पितुः) पूर्वक पिता के (योनिम्) गृह को (आविवेश) प्रविष्ट होता है अर्थात पुरुष अपने पिता के गृह का स्वामी हुआ करता है। (दिवः मध्ये निहितः पृश्निः) जिस प्रकार आकाश के बीच मे स्थित सूर्य (अश्मा) व्यापक होकर (वि चक्रमे

विविध कार्य करता और (रजसः अन्तौ पाति) समस्त संसार के अन्तों, छोरो का भी पालन करता है इसी प्रकार पुरुष भी (दिवः मध्ये) पृथिवी के बीच (दिवः मध्ये) व्यवहार मे और (दिवः मध्ये) कामना योग्य अपनी स्त्री के हृदय मे (निहित.) स्थिर होकर (पृश्निः) मेघवत् रस वर्षण, वीर्य निषेक करने मे समर्थ और (अश्मा) शिला के समान दृढ़ एवं भोक्ता होकर, वा मेघवत् दानशील होकर (वि चक्रमे) विविध प्रकार से आगे क़दम बढ़ावे और (रजसः अन्तौ) रजोभाव की दोनो सीमाओ की (पाति) रक्षा करे। अर्थात् यौवन के आदि और अन्त वा गर्भ काल के आदि अन्त दोनो सीमाओ के बीच काल मे अपने और अपने पत्नी के जीवन, बल-वीर्य की रक्षा करे। अथवा (रजस. अन्तौ) लोको के दोनो अन्त अर्थात् दोनो मूल कारण रज और वीर्य वा परिमाम रूप पुत्र और पुत्री दोनो की समान भाव से रक्षा करे।

च॒त्वार॑ ईं बिभ्रति क्षेम॒यन्तो॒ दश॒ गर्भं॑ च॒रसे॑ धापयन्ते।
त्रि॒धात॑वः पर॒मा अ॑स्य॒ गावो॑ दि॒वश्च॑रन्ति॒ परि॑ स॒द्यो अन्ता॑न्॥४॥

भा०—जीवकी उत्पत्ति का रहस्य। जिस प्रकार (चत्वारः) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि चारों तत्व (क्षेमयन्तः) सबका कुशल क्षेम करते हुए (ईं गर्भं) इस अन्तरिक्षगत मेघ को (बिभ्रति) पुष्ट करते और (दश) दशों दिशाएं (चरसे) उसको विचरण के लिये (धापयन्ते धारण करती हैं और (अस्य) इस सूर्य के (परमा) उत्कृष्ट (त्रि-धातवः) तीनों लोको का धारण पोषण करने वाले (गावः) किरण (सद्यः) शीघ्र ही (दिव. अन्तान् परि चरन्ति) पृथ्वी वा आकाश के दूर २ की सीमाओ तक फैलते है उसी प्रकार (ईम् गर्भम्) इस गर्भ गत जीवको (क्षेमयन्तः) उसकी क्षेम, रक्षा, कुशल चाहते हुए, चारों वर्ण वा चारों आश्रम (बिभ्रति) पुष्ट करते हैं। और (चरसे) कर्म फल भोग के लिये (दश धापयन्ते) दशों प्राण उसको पुष्ट करते है (अस्य)

इस जीवात्मा की (परया) सर्वोत्कृष्ट (गावः) किरणवत् इन्द्रियें (त्रि-धातवः) उस आत्मा को गर्भ, जीवन और मरणोत्तर, तीनों कालों मे धारण करती है। वे (सद्यः) सब दिनों (दिवः अन्तान्) प्रकाश-मय मोक्ष या कामना योग्य भोगक्षेत्र की समस्त सीमाओं तक (परि-चरन्ति) उस आत्मा की सेवा करती है, उसके साथ रहती और सुख दुःख का ज्ञान कराती है।

इ॒दं वपु॒र्निव॑चनं जनास॒श्चर॑न्ति॒ यन्न॒द्य॑स्त॒स्थुराप॑ः।
द्वे यदीं॑ बिभृ॒तो मा॒तुर॒न्ये इ॒हेह॑ जा॒ते य॒म्या॒३॒॑सब॑न्धू ॥ ५ ॥

भा०—शरीर की उत्पत्ति का रहस्य। हे (जनासः) मनुष्यो! (इदं) यह (वपुः) बीजद्वारा वपन करने योग्य शरीर (निवचनम्) निश्चय मे प्रवचन और श्रवण करने योग्य है। (यत्) जिसमे (आपः) जल-मय रुधिर की नाड़ियां (नद्यः) इस पृथ्वी पर चलती नदियों के तुल्य (चरन्ति) गति कर रही हैं। (यत्) जो (द्वे) दो (ईम्) इस शरीर को (मातुः) माता के गर्भाशय में (बिभृतः) धारण करते हैं वे दोनों (अन्ये) भिन्न भिन्न प्रकृतियां है और वे दोनो (इह इह जाते) इस ओर, इस पुरुष वा स्त्री-शरीरों मे उत्पन्न होते और वे दोनों (यम्या) एक दूसरे को बांधने वाले वा (यम्या) रात्रि दिनवत् और (स-बन्धू) एक दूसरे के साथ बंधने वाले होते हैं। मातृ-गर्भ मे वीर्य कीट और डिम्बकोश दोनों मिलकर शरीर बनाते हैं।

वि त॑न्वते॒ धियो॑ अस्मा॒ अपां॑सि॒ वस्त्रा॑ पु॒त्राय॑ मा॒तरो॑ वयन्ति।
उ॒प॒प्र॒क्षे वृष॑णो॒ मोद॑माना दि॒वस्प॒था व॒ध्वो॑ य॒न्त्यच्छ॑ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मातरः) माताएं (पुत्राय) अपने पुत्र को पहनाने के लिये (वस्त्रा वयन्ति) वस्त्रों को एक २ तन्तु करके बुनती है। उसी प्रकार वे (अस्मै) इस पुत्र या सन्तान के लिये (धियः)

संकल्प विकल्प तथा (अपांसि) नाना प्रकार के उत्तम कर्म (वि तन्वते) किया करे। माताओ के उत्तम कर्म और संकल्प ही सन्तान की रक्षा, पालन पोषण करते और उनको जीवन काल मे सद्गुणो से सुशोभित करते है। (वध्वः) उत्तम वधुएं (अस्मै) इस पुत्र के लाभ के लिये ही (वृषणः उप प्रक्षे) बलवान्, वीर्य सेचन मे समर्थ पुरुषो के समीप आलिंगन करने के लिये (दिवः पथा) पुत्र कामना के आनन्दप्रद और हर्षोद्रेक के मार्ग से (मोदमानाः) अति प्रसन्नता अनुभव करती हुई (अच्छ यन्ति) उन्हे प्राप्त होती है। अथवा (दिवः वृषणः उपप्रक्षे पथा यन्ति) वीर्यवान् पुरुष के आलिंगन करने के लिये विवाहित स्त्रियें तेजस्वी पति के ही पीछे उसके मार्ग से जाती है। पुत्राभिलाषा सर्वत्र विद्यमान है, तब हे माताओ ! उसको उत्तम बनाने के लिये तुम सदा उत्तम कर्म और उत्तम संकल्प किया करो।

तद॑स्तु मित्रावरुणा तद॑ग्ने शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु श॒स्तम्।
अ॒शी॒महि॑ गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय ॥७॥ १ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) एक दूसरे को स्नेह करने वालो ! हे एक दूसरे को वरण करनेवाले परस्पर के मित्र वर वधू ! माता पिता जनो ! हे (अग्ने) विद्वन् ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इदम्) यह ऐसा उपदेश (शस्तम्) आप बराबर किया करो और (तत्) वह (शं योः अस्तु) शान्तिकारक और दुःखनाशक हो। (उत) और हम लोग (गाधम् अशीमहि) मनचाहा ऐश्वर्य पदार्थ भोग करे (उत) और (प्रतिष्ठाम् अशीमति) प्रतिष्ठा, वंश की स्थिरता और कीर्त्ति प्राप्त करे। (दिवे) ज्ञान और तेज प्राप्त करने के लिये (बृहते) बड़े भारी (सादने) उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये हम (नमः अशीमहि) विनय, बल, तेज प्राप्त करे। इति प्रथमो वर्गः ॥

[४८]

प्रतिभानुरात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् । आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १

भा०—(वयं) हम लोग (कत् उ) कब (प्रियाय) प्रिय, (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये, (महे) बड़े (स्व-क्षत्राय) अपने बल और (स्व-यशसे) अपने यश से युक्त राज्य वा राजा की वृद्धि के लिये (मनामहे) स्वीकार करें, (यत् अभ्रे आ वृणाना मायिनी अपः आ वितनोति) जिस प्रकार विद्युत् शक्तिशालिनी होकर मेघ में व्यापक होकर जलों को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार (मायिनी) बुद्धि से युक्त वा शत्रुनाशक शक्ति से युक्त राजसभा वा सम्पन्न सेना, (आ-मेन्यस्य) चारों ओर से माप लेने योग्य (रजसः) लोक समूह, या राष्ट्र के बीच में (अभ्रे) मेघ तुल्य उदार नायक के अधीन (आ वृणाना) सर्वत्र शासकों का वरण करती हुई (अपः) राज्य कार्य को (वि तनोति) विविध रूप से करे । अर्थात् बड़े राजा सम्राट् का अभ्युदय तभी चाहे जब कोई राजसभा समस्त राष्ट्र में अधीन शासकों का चुनाव करके राज्य कार्य करने को उद्यत हो ।

ता अंत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः । अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥

भा०—(देवयुः जनः) विद्वान, व्यवहारज्ञ, और तेजस्वी विजयशील पुरुषों को कामना करने वाला, वा ऐसे पुरुषों का स्वामी जिन (पूर्वाभिः) समृद्ध एवं पूर्व विद्यमान प्रजाओं से (प्रतिरते) स्वयं बढ़ता है और (अपाचीः) दूर विद्यमान (अपराः) अन्य शत्रु-सेनाओं को

(अपो, अप एजते) दूर से दूर ही भगा देता है और जिनसे वह (वीरवक्षणम्) वीर पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य या वीरों के धारण करने के (वयुनं) कर्म वा विज्ञान को (समान्या वृतया) समान रूप से मान करने योग्य, एवं वरण की गयी सहचरी जीवनसंगिनी स्त्री के तुल्य प्रजा के द्वारा चुनी गयी, समान रूप से सब के आदर से युक्त राजसभा द्वारा (विश्वं रजः) समस्त लोक समूह को (आतिरते) अपने अधीन कर उसकी वृद्धि करता है (ताः) उन शक्तिशालिनी प्रजाओ सेनाओं या समृद्धियो को (अत्नत) प्रप्त करो ।

आ ग्राव॑भिरह॒न्ये॑भिर॒क्तुभि॒र्वरि॑ष्ठं॒ वज्र॒मा जि॑घर्ति मा॒यिनि॑ ।
श॒तं वा॒ यस्य॑ प्र॒चर॒न्त्स्वे दमे॑ संव॒र्तय॑न्तो॒ वि च॑ वर्तय॒न्नहा॑ ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य की किरणे सैकड़ो, सहस्रों (अहा संवर्तयन्तः प्रचरन् वि वर्तयन्) होकर भी दिन को प्रकट करते और विविध रूपो को दर्शाते हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस राष्ट्रपति के (स्वे दमे) अपने गृह तुल्य शत्रुदमनकारी शासन मे (शतं वा प्र-चरन्) सैकड़ो पुरुष अच्छी प्रकार गमनागमन करते है, और (अहा) उत्तम, स्थिर कार्यों को (संवर्तयन्तः) अच्छी प्रकार करते हुए (वि वर्तयन् च) विविध प्रकार से आजीविकादि व्यवहार करते है वह राजा नायक (मायिनि) कुटिल मायावी पुरुष के निमित्त (अहन्येभिः अक्तुभिः) दिन और रात, दोनो कालो मे पृथक् २ रूप से नियुक्त (ग्रावभिः) दृढ़ शक्तियो से अपने (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, शत्रु के वारण करने में समर्थ (वज्रम्) शस्त्र-बल को (आ जिघर्ति) प्रदीप्त रक्खे ।

ताम॑स्य री॒तिं प॑र॒शोरि॑व॒ प्रत्यनी॑कमख्यं भु॒जे अ॑स्य॒ वर्प॑सः ।
सचा॒ यदि॑ पितु॒मन्ता॑मिव॒ क्षयं॒ रत्नं॒ दधा॑ति॒ भर॑हूतये वि॒शे ॥४॥

भा०—(अस्य वर्पसः) इस, नाना रूप के प्राणियों से युक्त, सुन्दर

राष्ट्र के (भुजे) भोग करने और पालन करने के लिये मैं (अस्य) इस राजा के (अनीकं) सैन्य बल को, (परशोः रीतिम् इव प्रति अख्यम्) परशु अर्थात् कुल्हाड़े के धार के समान ही देखता हूं। (यदि) क्योंकि वह (विशे) प्रजा के पालन करने के लिये उस सैन्य को (सचा) सदा अपने साथ (पितुमन्तं रत्नं क्षयम् इव) अन्न से समृद्ध सुन्दर गृह अन्नादि समृद्धि सम्पन्न रत्न सम्पदा के समान (दधाति) धारण करता है, और (भर-हूतये) संग्राम में शत्रु को ललकारने के लिये उस सैन्य को (पितुमन्तं) पालक जनों से युक्त (क्षयं) शत्रु का नाश करने वाले सैन्य को (रत्नं इव) रत्नादि आभूषण वत् (सचा) सदा अपने साथ समवाय बनाकर (दधाति) रखता और उसको पालता है। कुल्हाड़ी को भी मनुष्य अपने शत्रु के नाश, अपनी रक्षा और अन्न फलादि को प्राप्त करने का साधन बनाता है उसी प्रकार राजा की सेना है।

स जि॒ह्वया॒ चतु॑रनीक ऋञ्जते॒ चारु॒ वसा॑नो॒ वरु॑णो॒ यत॒न्नरि॑म्।
न तस्य॑ विद्म पुरुष॒त्वता॑ व॒यं यतो॒ भगः॑ सवि॒ता दाति॒ वार्य॑म् ॥५॥२॥

भा०—(सः वरुणः) वह प्रजा के दुःखों, को वारण करने में समर्थ और प्रजा द्वारा सर्वश्रेष्ठ वरण किया हुआ राजा (चारु वसानः) सुन्दर वस्त्र धारण करता हुआ, (अरिं यतन्) शत्रु को वश करता हुआ (जिह्वया) अपनी वाणी या आज्ञा के बल से ही (चतुरनीकः सन्) चतुर्मुख, एवं चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त होकर (ऋञ्जते) कार्य साधन कर, राज्य सञ्चालन करे। हम (तस्य) उसके (पुरुषत्वता न विद्म) पुरुषार्थ को नहीं जान सकते, (यत) जिससे वह (भगः) सबसे अधिक सेवनीय, ऐश्वर्यवान् और (सविता) सबका प्रेरक और उत्पादक पिता के तुल्य होकर (वार्यम् दाति) समस्त ऐश्वर्य का दान करता और निवारण करने योग्य शत्रु का नाश भी करता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४९]

प्रतिप्रभ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१॥

भा०—(अद्य) आज हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के बीच (देवं) दानशील, तेजस्वी, (सवितारं) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, पितावत् पूज्य (भगं) ऐश्वर्य युक्त और (आयोः) मनुष्यमात्र को (रत्नं विभजन्तं) उत्तम बल, ऐश्वर्य न्यायानुसार बांटते हुए को (आ ईषे) आदर पूर्वक प्राप्त होऊं और मैं (सखीयन्) मित्र के समान आचरण करता हुआ (दिवे दिवे) दिनों दिन (अश्विना चित्) दिन वा रात्रि या सूर्य चन्द्र के तुल्य (पुरु-भुजा) बहुतों के पालन करने वाले (नरा) उत्तम नेता स्वरूप (वाम्) आप दोनों राजा रानी, पति पत्नी वा राजा सचिव दोनों को (आ ववृत्याम्) उत्तम व्यवहार मे नियुक्त करूं ।

प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (असुरस्य) सबको जीवन देने वाले मेघ के (प्रयाणं प्रति) आगमन को प्रत्यक्ष रूप से (विद्वान्) जानता हुआ (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (सवितारं) जिस प्रकार उसके उत्पादक (देवं) तेजस्वी सूर्य की महिमा का वर्णन करता है उसी प्रकार (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले सैन्य बल के (प्रयाणं प्रति विद्वान्) प्रयाण को प्रत्यक्ष रूप से जान कर तू उसके (सवितारं) प्रेरक (देवं) विजिगीषु राजा वा सेनापति का (सूक्तैः) उत्तम आदर युक्त वचनों से (दुवस्य) सत्कार कर । (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम् नमसा विजा-

नन् उपब्रुवीत) जिस प्रकार मनुष्य मात्र को सर्वोत्तम सुख या तेज प्रदान करने वाले सूर्य से अन्न आदि पाकर मनुष्य सूर्य के गुण वर्णन करता है उसी प्रकार (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम्) मनुष्य के न्यायानुकूल उत्तमोत्तम रत्न, धनादि का विभाग करते हुए राजा को भी मनुष्य (विजानन्) विशेष जान कर उसके प्रति (नमसा उप ब्रुवीत) आदरपूर्वक आवेदनादि करे ।

अदत्रया दयते वार्य्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः॥३॥

भा०—(पूषा) सबका पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान् ! (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्ता पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होकर, (अदत्रया वार्य्याणि) खाने योग्य अन्नों को और धनों को (दयते) दान करे, और रक्षा भी करे । वह (उस्रः) किरणों के तुल्य सहायकों को (वस्ते) अपने अधीन सुरक्षित रक्खे । (इन्द्रः) ऐश्वर्य पुरुष, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्य वाला, (वरुणः) उदानवत् उत्तम वरण योग्य और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (दस्माः) ये सब दुःखों का नाश करने हारे होकर (भद्रा अहानि) सुखकारी दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करें ।

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनुग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः॥४॥

भा०—(सविता) सूर्य (अनर्वा) अहिंसक रूप होकर (नः वरूथं) हमारे गृह को प्राप्त हो, इसी प्रकार अहिंसक, तेजस्वी पुरुष हमारे राष्ट्र को प्राप्त हो, (सिन्धवः) नदियें, बहती जल-धाराएं (इषयन्तः) वेग से बहती हुई (तत् अनुग्मन्) उसके पीछे आवें । उसी प्रकार तेजस्वी सेनापति के पीछे २ बाणादि साधते हुए (सिन्धवः) सैन्य प्रवाह चलें । (यत्) जैसा कि (अध्वरस्य) अहिंसनीय, राष्ट्र या राज्य कार्य का (होता)

धारक राजा (उपवोचे) आज्ञा करे उसी प्रकार हम प्रजा गण (वाज-रत्नाः) अन्न और उत्तम रत्नो के स्वामी, और (रायः पतयः) धन के मालिक (स्याम) हो ।

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (सूक्तवाचः) उत्तम वाणी बोलने वाले, लोग (मित्रे वरुणे) स्नेही, श्रेष्ठ पुरुष के अधीन (वसुभ्यः) बसने वाले पुरुषों को (ईवत् नमः अदुः) ज्ञान और रक्षा सहित अन्न, वीर्य, और विनय की शिक्षा प्रदान करते है वे आप विद्वान् पुरुष ही (दिवः पृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (वरीयः) उत्तम २ (अभ्वं) बड़े भारी धन, और तेज को (कृणुत) उत्पन्न करे और वह (अवैतु) हमे प्राप्त हो । और (अवसा) रक्षा, और ज्ञान से हम (मदेम) सदा अनन्दित हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

[५०]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक् । २ निचृदुष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक् । ४, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सुख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! वीर पुरुषो ! (विश्व· मर्त्त·) सब मनुष्य (नेतुः देवस्य) नायक, तेजस्वी विद्वान्, और विजिगीषु, दानशील, व्यवहारज्ञ राजा की (सख्यम्) मित्रता (वुरीत) चाहो । (विश्वः) सभी (राये) धन की (इषुध्यति) इच्छा करे, या धन की प्राप्ति के लिये बाण आदि धारण करें, (पुष्यसे) पुष्ट होने के लिये सभी लोग (द्युम्नं) धन को (वृणीत) प्राप्त करो । अथवा हे प्रजा जनो ! आप लोग (द्युम्नं वृणीत) ऐश्वर्य

प्राप्त करो और उसका विभाग करो । हे राजन् (तेन त्वं पुष्यसे) उस धन से तू भी पुष्ट हो ।

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।

ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) विजिगीषो! विद्वन् ! राजन् !हे (नेतः) नायक (ते ते) वे तेरे ही अधीन हों (ये च) जो भी (इमान्) इन समस्त तेजों को (अनुशसे) तेरे अनुगामी होकर शासन करने के लिये नियुक्त हों । (हि) क्योंकि और (ते) वे लोग (राया) धन द्वारा तेरे साथ सम्बद्ध हों अर्थात् वेतनादि से बंधे । और (ते हि) वे (आपृचे) परस्पर के सम्बन्धों से बंधे रहने के लिये भी समवाय बनावें। उसी प्रकार हम प्रजा वर्ग भी (सचथ्यैः) उन समवायों के उत्तम नेताओं से मिल कर (सचेमहि) दृढ़ समवाय बना कर रहें ।

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।

आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अतः) इस कारण से वा इस राष्ट्र में हे राजन् ! (नः) हमारे (नॄन्) नेता पुरुषों को, हमारे (अतिथीन्) मान्य परिव्राजक, अतिथियों को, और (नः पत्नीः) हमारी स्त्रियों और सेनाओं को, (दशस्यत) उत्तम रीति से आदर सत्कार करो, और (आरे) अपने समीप स्थित (पथेष्ठां) सन्मार्ग में स्थित (विश्वं) सबका आदर सत्कार करो । और (यूयुविः) सब शत्रुओं को दूर करने हारा और सत्यासत्य का विवेकी पुरुष (द्विषः) शत्रुओं को (युयोतु) दूर करे ।

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः ।

नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र में, (द्रोण्य पशुः) शीघ्रगामी जन्तुओं में

सर्वश्रेष्ठ पशु के समान वेग से आगे बढने वाला, एवं (द्रोण्यः) राष्ट्र मे उत्तम (पशु) स्वयं व्यवहारो का द्रष्टा और अन्यो को उत्तम मार्ग दिखाने वाला (वह्नि) कार्य भार को उठाने मे समर्थ नेता (अभि-हितः) अभिषिक्त होकर (दुद्रवत्) मार्ग पर चलता और राष्ट्र का संचालन करता है वहां वह स्वयं (नृमणाः) सब मनुष्यो के मन के अनुकूल और (वीर-पस्त्यः) वीर पुरुषो को अपने गृह वा प्रजाओ के तुल्य वा पुत्रो के तुल्य प्रजाओ का पालक हो, वह (धीरा इव) बुद्धिमती माता के समान (अर्णा सनिता) धनो और अन्नो का देने और वेतनादि रूप मे न्यायपूर्वक विभाग करने वाला हो।

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥४॥

भा०—हे (देव) दानशील पुरुष! तेजस्विन्! राजन्! (ते) तेरा (एषः) यह (रथस्पतिः) रथो का स्वामी, सेना का स्वामी, महारथी नेता (शं) शान्ति कराने वाला और तेरा (रयिः) ऐश्वर्य का स्वामी भी (शं) शान्ति सुख देने वाला हो और शान्तिपूर्वक (राये) और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हो, (स्वस्तये) वह सब राष्ट्र के सुख समृद्धि और कल्याण के लिये हो। हम लोग (इषः-स्तुतः) सेनाओ, आज्ञाओ और उत्तम इच्छाओ द्वारा प्रशंसित और (देव-स्तुतः) विद्वानों मे स्तुति योग्य तेरे से (मनामहे) यही प्रार्थना करते है ऐसा ही चाहते है। अथवा हे राजन् (हे इषस्तुतः देवस्तुतः मनामहे) तेरे सेनाओ के शिक्षको और सैनिको के शिक्षकों का भी हम आदर करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५१]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ गायत्री। २, ३, ४ निचृद्गायत्री। ५, ८, ९, १० निचृदुष्णिक्। ६ उष्णिक्। ७ विराडुष्णिक्। ११ निचृत्त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप्। १३ पङ्क्तिः। १४, १५ अनुष्टुप्।

प्राप्त करो और उसका विभाग करो। हे राजन् (तेन त्वं पुष्यसे) उस धन से तू भी पुष्ट हो।

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे।
ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः॥ २॥

भा०—हे (देव) विजिगीषो! विद्वन्! राजन्! हे (नेतः) नायक (ते ते) वे तेरे ही अधीन हों (ये च) जो भी (इमान्) इन समस्त तेजों को (अनुशसे) तेरे अनुगामी होकर शासन करने के लिये नियुक्त हो। (हि) क्योंकि और (ते) वे लोग (राया) धन द्वारा तेरे साथ सम्बद्ध हो अर्थात् वेतनादि से बधे। और (ते हि) वे (आपृचे) परस्पर के सम्बन्धों से बंधे रहने के लिये भी समवाय बनावें। उसी प्रकार हम प्रजा वर्ग भी (सचथ्यैः) उन समवायो के उत्तम नेताओं से मिल कर (सचेमहि) दृढ़ समवाय बना कर रहें।

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः॥ ३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (अतः) इस कारण से वा इस राष्ट्र मे हे राजन्! (नः) हमारे (नॄन्) नेता पुरुषो को, हमारे (अतिथीन्) मान्य परिव्राजक, अतिथियों को, और (नः पत्नीः) हमारी स्त्रियो और सेनाओ को, (दशस्यत) उत्तम रीति से आदर सत्कार करो, और (आरे) अपने समीप स्थित (पथेष्ठां) सन्मार्ग मे स्थित (विश्वं) सबका आदर सत्कार करो। और (यूयुविः) सब शत्रुओं को दूर करने हारा और सत्यासत्य का विवेकी पुरुष (द्विषः) शत्रुओं को (युयोतु) दूर करे।

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता॥ ४॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र मे, (द्रोण्यः पशुः) शीघ्रगामी जन्तुओं मे

सर्वश्रेष्ठ पशु के समान वेग से आगे बढने वाला, एवं (द्रोण्यः) राष्ट्र मे उत्तम (पशुः) स्वयं व्यवहारो का द्रष्टा और अन्यो को उत्तम मार्ग दिखाने वाला (वह्निः) कार्य भार को उठाने मे समर्थ नेता (अभि-हितः) अभिषिक्त होकर (दुद्रवत्) मार्ग पर चलता और राष्ट्र का संचालन करता है वहां वह स्वयं (नृमणाः) सब मनुष्यो के मन के अनुकूल और (वीर-पस्त्यः) वीर पुरुषो को अपने गृह वा प्रजाओ के तुल्य वा पुत्रो के तुल्य प्रजाओ का पालक हो, वह (धीरा इव) बुद्धिमती माता के समान (अर्णा सनिता) धनो और अन्नो का देने और वेतनादि रूप मे न्यायपूर्वक विभाग करने वाला हो।

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥४॥

भा०—हे (देव) दानशील पुरुष! तेजस्विन्! राजन्! (ते) तेरा (एषः) यह (रथस्पतिः) रथो का स्वामी, सेना का स्वामी, महारथी नेता (शं) शान्ति कराने वाला और तेरा (रयिः) ऐश्वर्य का स्वामी भी (शं) शान्ति सुख देने वाला हो और शान्तिपूर्वक (राये) और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हो, (स्वस्तये) वह सब राष्ट्र के सुख समृद्धि और कल्याण के लिये हों। हम लोग (इषः-स्तुतः) सेनाओ, आज्ञाओं और उत्तम इच्छाओ द्वारा प्रशंसित और (देव-स्तुतः) विद्वानों मे स्तुति योग्य तेरे से (मनामहे) यही प्रार्थना करते है ऐसा ही चाहते है। अथवा हे राजन् (हे इषस्तुतः देवस्तुतः मनामहे) तेरे सेनाओ के शिक्षको और सैनिकों के शिक्षकों का भी हम आदर करते है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५१]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ गायत्री। २, ३, ४ निचृद्गायत्री। ५, ८, ९, १० निचृदुष्णिक्। ६ उष्णिक्। ७ विराडुष्णिक्। ११ निचृत्त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप्। १३ पङ्क्तिः। १४, १५ अनुष्टुप्।

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि ।
देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक अग्निवत् तेजस्विन्! राजन्! तू (विश्वेभिः) समस्त (ऊमैः) रक्षा-साधनों और रक्षकों सहित (सुतस्य पीतये) उत्तम ओषधि के रसके समान राष्ट्र से प्राप्त ऐश्वर्य, एवं शासित राज्यपद के उपयोग के लिये और उत्पन्न किये निज पुत्रवत् प्रजावर्ग के पालन करने के लिये और (हव्य-दातये) देने योग्य अन्न, धन, अधिकार आदि देने के लिये (देवेभिः) उत्तम विद्वानों, व्यवहार-कुशल पुरुषों सहित (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् ।
अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्यधर्माणः) सत्य न्याय को अपना धर्म जानकर उसको धारण करने और पालन करने वाले धर्मात्मा जनो! आप लोग (ऋत-धीतये) ऐश्वर्य के धारण, सत्य ज्ञान और न्याय के पालन के लिये (अध्वरम्) हिंसा और विनाश से रहित, प्रजा पालन के कार्य में (आ गत) आओ और योग दो । और (अग्ने. जिह्वया) अग्रणी, तेजस्वी नायक की वाणी से (पिबत) राष्ट्र का उपयोग वा पालन करो ।

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि ।
देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (विप्र) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों से स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने हारे! हे (सन्त्य) विवेक, प्रीतिपूर्वक विभाग, दान और वर्तमान व्यवहार में कुशल! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य को पालन और उपभोग के लिये (प्रात-यावभि. विप्रेभिः) प्रात. सबसे

पूर्व उद्देश्य पर पहुंचने वाले, धनादि पूरक. उत्तम मतिमान् पुरुषो सहित (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

अयं सोमश्चमूसुतोऽमत्रे परि षिच्यते।
प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त वृद्धि और (वायवे) वायु के तुल्य शत्रु को उखाड़ने मे समर्थ पद के लिये (प्रियः) प्रिय, उत्सुक, (अयं सोमः) यह अभिषेक योग्य पुरुष (चमू-सुतः) सेनाओं पर अभिषिक्त और सेनाओ का पुत्रवत् पालक है। उसका (अमत्रे) दुःख-दायी कष्ट से त्राण करने वाले रक्षक पद पर (परि सिच्यते) अभिषेक किया जाना उचित है।

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवान्! ज्ञान और बलकी कामना करने हारे विद्वन्! बलवन्! तू (वीतये) प्रजा की रक्षा, अपनी कान्ति और तृप्ति के लिये और (हव्य-दातये) दान योग्य उत्तम पदार्थ देने के लिये भी (आ याहि) आ, (प्रयः अभि पिब) उत्तम जल, और अन्न, दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थ पान कर और (सुतस्य अन्धसः) उत्तम रीति से बनाये अन्न का उपभोग कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन्! विद्वन्! आप और (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् पुरुष! आप दोनों (सुतानां) उत्तम रीति से बने पदार्थों और अधीन अभिषिक्त पदाधिकारियो वा सामन्तो का (पीतिम्) पान, उपभोग और पालन (अर्हथः) करने योग्य है। आप दोनो (अरेपसौ) निष्पाप होकर

(प्रयः अभि) उत्तम अन्न प्राप्त कर (तान् जुषेथां) उन उत्तम ऐश्वर्य युक्त पदार्थों का भी सेवन करो।

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

भा०—(सुताः) उत्पन्न हुए पुत्रवत् पालित और अभिषेक द्वारा सत्कृत, (दध्याशिरः) पद को धारण करने के विशेष सामर्थ्य, बल पराक्रम से युक्त, (सोमासः) सौम्य शासक जन (इन्द्राय वायवे) ऐश्वर्यवान्, बलवान् नायक के (प्रयः अभि) अति प्रिय कार्य को लक्ष्य करके (निम्नं सिन्धवः न) वहते जल जैसे नीचे को जाते है वैसे ही वेग से (यन्ति) जावें, (२) सोम और शिष्य पुत्र गण, इन्द्र, पिता और वायु गुरु दोनों के प्रिय कार्य के निमित्त दौड़ कर जावें और करें (३) दधि आदि खाद्य पदार्थों से युक्त सुसंस्कृत अन्न आदि पदार्थ ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुषो के प्रिय तृप्ति वेग से करें।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत्वत् व्यापक और तीव्र सामर्थ्य वाले शब्द और प्रकाश के समान ज्ञान-तेज का प्रकाश करने वाले विद्वन्! राजन्! तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषो मे (सजूः) समानभाव से प्रीति युक्त होकर और (अश्विभ्याम्) अश्वों वा अपने इन्द्रिय गणों

के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों से (सजूः) समान प्रीतियुक्त होकर, (आ याहि) आ, और (अत्रिवत्) त्रिविध दोषों और त्रिविध पापों वा तापों से रहित पुरुष के समान होकर (सुते) पुत्रतुल्य प्रजागण वा शिष्यगण के निमित्त (रण) ज्ञान का उपदेश कर। [२] (मित्रा-वरुणाभ्यां सजूः) स्नेहवान मित्र और उत्तम पुरुषों के साथ (सोमेन) ऐश्वर्य युक्त (विष्णुना) व्यापक सामर्थ्यवान् नायक से मिलकर हे विद्वन् तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) यहां ही विद्यमान प्र-त्यक्ष गुरु के तुल्य हमें उपदेश कर। [३] (आदित्यैः वसुभिः सजूः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों और २५ वर्ष तक गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले विद्वानों के साथ और (इन्द्रेण वायुना) ऐश्वर्यवान्, पुरुषों के साथ प्रीति युक्त होकर (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रि वत्-सुते रण) उत्तम ऐश्वर्य भोक्ता के तुल्य प्रभुवत् हम को ऐश्वर्य के निमित्त उपदेश कर।

**स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑।
स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ११**

भा०—(अश्विना) अध्यापक, उपदेशक, स्त्री और पुरुष, दिन और रात, सूर्य और चन्द्र और प्राण और अपान वे दो दो, (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमें सुख दे, हमारा कल्याण करे। (भगः स्वस्ति) ऐश्वर्य, और उसका स्वामी, और सेवन करने योग्य वायु हमे सुख दे। (देवी अदितिः) सूर्य, सूर्य-वत् तेजस्वी पुरुष और अखण्ड शासक राजा (अनर्वणः) अप्रतिम होकर (स्वस्ति) हमारा कल्याण करे। (पूषा असुरः) पुष्टिकारक प्राण, जीवन देने वाला अन्न और मेघ (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे। (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी, पिता और माता दोनों (सचेतुना) उत्तम प्रकाश चेतना और ज्ञान से हमारा (स्वस्ति) कल्याण करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः १२

भा०—हम लोग (स्वस्तये) सुख प्राप्त करने और सौभाग्य, कल्याण की वृद्धि के लिये (वायुम्) वायु के समान बलवान् वीर पुरुष ज्ञान के अभिलाषुक, (सोमं) अभिषेक योग्य राजा, शिष्य और ज्ञानवान् पुरुष के (उप ब्रवामहे) समीप जाकर अपना प्रार्थनावचन, प्रवचन और स्तुति वचन कहें । (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त विश्व का पालक है वह भी हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे । हम सर्वप्रेरक और सर्वोत्पादक सर्वैश्वर्यवान् उसकी स्तुति करते हैं । (सर्वगणं) सब गणों के स्वामी बृहस्पति (स्वस्तये) बड़े भारी राष्ट्र और वेदवाणी के पालक विद्वान् की हम कल्याण के लिये स्तुति करें । (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी तथा १२ मास भी (नः) हमारे (स्वस्तये भवन्तु) कल्याण के लिये हों ।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥

भा०—(विश्वेदेवाः) समस्त तेजस्वी पदार्थ, सूर्य के किरण, विद्वान् गण और हमारे इन्द्रिय गण (अद्य) वर्त्तमान में (नः स्वस्तये भवन्तु) हमारे कल्याण के लिये हमें प्राप्त हों । (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी, सब का नेता, (वसुः) सब में बसने वाला वा सबको बसाने वाला (अग्निः) अग्नि, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष और परमात्मा (नः स्वस्तये) हमारे सुख-कल्याण के लिये हो । (ऋभवः) सत्य तेज से प्रकाशमान, एवं शिल्पी जन (देवाः) व्यवहारकुशल, नाना कामनाओं से युक्त पुरुष (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों । (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, ज्ञान का उपदेश करने वाला (स्वस्ति) सुखपूर्वक (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे ।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

भा०—हे (पथ्ये रेवति) जीवन-मार्ग में सुखकारिणी ! हे धनैश्वर्य-वति ! तू (मित्रावरुणौ) प्राण अपान के तुल्य (स्वस्ति) सुख कल्याण (कृधि) कर । (इन्द्रः च अग्निः च) विद्युत् और अग्निवत् ऐश्वर्यवान् ज्ञान-वान् पुरुष दोनों (स्वस्ति) कल्याण करें । हे (अदिते) अखण्डित चरित्र आदि से युक्त तू (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कर ।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (पन्थाम्) उत्तम मार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (अनु-चरेम) एक दूसरे के पीछे चलें । और (सूर्या-चन्द्रमसौ-इव) हम स्त्री पुरुष सूर्य और चन्द्र के समान अन्यों को सुख देने के लिये उत्तम आचरण का अनुष्ठान करें । (पुनः) वार २ हम लोग (ददता) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले और (अघ्नता) व्यर्थ ताड़न, हिंसा और कठोर दण्ड न देने वाले (जानता) ज्ञानवान् पुरुष से (संगमेमहि) मिला करें, उसका सत्संग किया करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १५ विराडनुष्टुप् । २, ७, १० निचृदनुष्टुप् । ६ पंक्ति । ३, ९, ११ विराडुष्णिक् । ८, १२, १३ अनुष्टुप् । १४ बृहती । १६ निचृद्बृहती । १७ बृहती ॥

सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

भा०—हे (श्यावाश्व) श्यामकर्ण, शिखा से सज्जित अश्वों के स्वा-मिन् ! (ये) जो (अद्रोघम्) द्रोह से रहित, (अनु-स्वधम्) अपनी २

धारण शक्ति या अन्न, वेतनादि के अनुसार रहकर (यज्ञियाः) यज्ञ, परस्पर मिलकर रहने और कर वेतनादि के दान के योग्य होकर (अवः) अन्न, ज्ञान और ख्याति लाभ कर । (मदन्ति) प्रसन्न होते और सन्तोष लाभ करते हैं । उन (ऋक्वभिः मरुद्भिः) सत्कार करने वाले और सत्कार करने योग्य वायुवत् बलवान् और व्यवहारकुशल पुरुषों से (धृष्णुया) दृढता पूर्वक (प्र अर्च) खूब तेजस्वी बन ।

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

भा०—(ते हि) और वे (धृष्णुया) दृढ़, शत्रुओं का धर्षण करने वाले वीर पुरुष (स्थिरस्य) स्थायी (शवसः) बल के (सखायः) मित्र होकर (सन्ति) रहते है । (ते) वे (यामन्) प्रयाण काल में ही (धृषद्विनः) शत्रु का धर्षण करने वाले, बल उत्साह से युक्त होकर (शश्वतः) बहुत से प्रजा गण को (तना) अपने विस्तृत बल और धन से (आ पान्ति) सब प्रकार से रक्षा करते हैं ।

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे वीर पुरुष (स्पन्द्रासः) कुछ शनैः २ आगे बढ़ने हारे (उक्षणः) सेचन समर्थ मेघों और सूर्य की किरणों के समान (शर्वरीः) रात्रिवत् अपने पक्ष का नाश करने वाली शत्रु सेनाओं को (अति स्कन्दन्ति) अतिक्रमण कर जाते है, वा (उक्षाण न शर्वरीः अति स्कन्दन्ति) जिस प्रकार सांड गौओं को प्राप्त कर उनमें वीर्य आहित करता है, उसी प्रकार शनैः २ गतिशील वायुगण रात्रि-काल में जल प्रच्युत करते या अन्तरिक्ष को जलयुक्त करते है । (अध) और हम (मरुताम्) उन वीर पुरुषों की (दिवि) व्यवहार, तेज और विजयेच्छा में (महः क्षमा च) बड़े सामर्थ्य और सहनशीलता को (मन्महे) स्वीकार करें ।

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजागण ! (ये) जो (विश्वे) समस्त जन (रिषः) हिंसा से (मानुषा युगा पान्ति) मनुष्यों के जोड़ों अर्थात् समस्त स्त्री पुरुषों की रक्षा करते हैं (वः) उन आप लोगों के बीच (मरुत्सु) वायुवत् तीव्रगामी, शत्रुओं को मारने वाले एवं विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर ही (वः) आप लोगों के (धृष्णुया) शत्रु को पराजय करने वाला, और दृढ (स्तोमं) बल, वीर्य, ज्ञान और (यज्ञं च) परस्पर संगति और मैत्रीभाव को (दधीमहि) धारण करें ।

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) नायक पुरुष (अर्हन्तः) योग्य पदों के योग्य, (सु-दानवः) उत्तम दानशील और शत्रुओं को सुखपूर्वक खण्डित करने वाले. (असामि-शवसः) बहुत पूर्ण बलशाली है उन (यज्ञिये-भ्यः) यज्ञ, परस्पर दान, सत्संग के योग्य (मरुद्भ्यः) उत्तम विद्वानों और वीर पुरुषों के (दिवः) परस्पर के ज्ञान-प्रकाश, तथा व्यवहार के (यज्ञं) देन लेन प्रार्थना, और सत्संग को (प्र अर्च) अच्छी प्रकार चला, प्राप्त कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ६

भा०—(एनान् मरुतः अनु जज्झतीरिव विद्युतः) जिस प्रकार तीव्र वेग वाले वायु गण के पीछे २ शब्द करने वाली, और गर्जना वाली जल-धाराएं और बिजुलियां उत्पन्न होती हैं (एनान् मरुत अनु) इन वेग-वान् सैनिकों के पीछे २ (विद्युत) विशेष दीप्तियुक्त और (जज्झती)

गर्जना करने वाली तोपें और शक्तिमान् विद्युदस्त्र चले। (ऋष्वाः नरः) बड़े २ नायक गण (रुक्मैः) कान्तियुक्त अस्त्रों और (युधा) युद्ध या शत्रु पर प्रहार करने वाले बल से युक्त, (ऋष्टीः) अपनी २ सेनाओं को (आ-असृक्षत) आगे २ ले चलें। इस प्रकार विजिगीषु राजा (भानुः) सूर्य-वत् तेजस्वी होकर (दिवः) किरणों के तुल्य कामना योग्य विजयों को (त्मना अर्त्त) अपने सामर्थ्य से ही प्राप्त करें।

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (पार्थिवा) पृथिवी के हितकारी वायुगण के तुल्य बलवान् (पार्थिवा) राजा गण पृथिवी पर प्रसिद्ध होकर (ये उरौ-अन्तरिक्षे) और जो विशाल अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के भीतर (आ ववृधन्त) सब प्रकार से वृद्धि प्राप्त करते हैं वे ही (नदीनां वृजने) समृद्ध प्रजाओं के कार्य व्यवहार में और (महः दिवः सधस्थे) बड़े तेजस्वी सूर्य के पर-मोच्च पद के तुल्य सर्वोच्च पद पर भी (ववृधन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम्।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (सत्य-शवसम्) सत्य ज्ञान और बल से युक्त (ऋभ्वसम्) सत्य से या बडे तेज से प्रकाशित और सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त (मारुतं शर्धः) वायु के तुल्य उत्तम वीर पुरुषों के बल को (उत् शंस) उत्तम रीति से बतला, उसके लाभ और गुणों का वर्णन कर। (ते) वे (नर) नायक पुरुष (शुभे) राष्ट्र की शोभा के लिये (स्पन्द्रा.) शनैः २ आगे बढ़ने हारे होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (प्र युजत स्म) उत्तम २ कार्य एवं प्रयोग करते हैं। अध्यात्म में—विद्वान लोग कल्याण के लिये शनै. २ आगे २ बढ़ते हुए अपने आप से (प्र युजत) उत्तम समाधि योग करें।

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

भा०—(उत स्म) और (ते) वे वीर पुरुष (परुष्ण्याम्) पालक साधनों से युक्त, तेजस्विनी, अति गहन राष्ट्र रक्षा या राजनीति मे (ऊर्णाः) अच्छी प्रकार कवचो से अच्छादित होकर या युद्ध की विषम गति मे (शुन्ध्युवः) शुद्ध आचारवान् होकर (वसत) रहे । (उत) और (रथानां पव्या) रथों की चक्र-धारा के तुल्य महारथियो की वज्र शक्ति से वे (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (अद्रिं भिन्दन्ति) मेघ को सूर्य या विद्युत् के तुल्य पर्वतवत् अचल शत्रु को भी भेद दे ।

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—(विस्तारः) विविध प्रकार से विस्तृत देश तथा उसमे रहने वाले प्रजा वर्ग (मह्यं) मुझे (एतेभिः नामभिः) इन २ नामो या रूपों से (यज्ञम् ओहते) यज्ञ, अर्थात् सुप्रबन्ध को धारण करे । वे (आ-पथयः) सब ओर जाने वाले मार्गों से युक्त, (वि-पथयः) विशेष मार्ग वाले (अन्तः-पथा) भीतर, भूगर्भ के बीच २ मे से जाने योग्य मार्ग वाले और (अनु-पथाः) बड़े २ मार्गो मे आ मिलने वाले गौण मार्गों के भी स्वामी हो । इति नवमो वर्गः ॥

अध नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अध पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

भा०—(अध) और (नियुतः नरः) नाना पदों पर नियुक्त वा लक्षों की सख्या मे नायक गण (नि ओहते) नियत पद को धारण करते है । वे (अध) भी (पारावताः) दूर २ देशो तक जाकर भी (चित्रा) अद्भुत, (दर्श्या) दर्शनीय, (रूपाणि) रूपों वा पदार्थों को (ओहते) धारण करते है । और स्वयं भी देश से देशान्तरो मे व्यापारी होकर नाना पदार्थ लेजाते है ।

छन्दस्तुभः कुभन्यव उत्सुमा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

भा०—(ये) जो मेरे राष्ट्र में जिस प्रकार (कुभन्यवः) जल के इच्छुक जन (उत्सम् आ नृतुः) कूप को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (छन्दस्तुभः) वेद मन्त्रों का उपदेश करने वाले (कीरिणः) स्तुतिकर्त्ता जन भी (उत्सम् आ) उत्तम पद के भोक्ता राजा वा प्रभु को प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त करें । (ते) वे (चित्) कोई भी हो तो भी वे (तायवः न) चोरों के समान न होकर (दृशि त्विषे च) यथार्थ दर्शन करने और तेज की वृद्धि के लिये वे (ऊमाः) उत्तम रक्षक हों । इसी प्रकार वीर पुरुष भी (छन्दःस्तुभः) युद्ध को नाना गति से शत्रु दल को मारने वाले, (कीरिणः) उखाड़ने वाले, (कुभन्यवः) धनार्थी हों वे कूपवत् गंभीर नाम को प्राप्त कर प्रसन्न हो ।

ये ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (ऋष्वाः) महान् उदार हृदय, (ऋष्टि-विद्युतः) शस्त्रों से विशेष रूप से चमकने वाले, शस्त्रों मे विद्युत् का प्रयोग करने वाले या विद्युत् के विशेष ज्ञानी (कवयः) क्रान्तदर्शी, (वेधसः) नाना पदार्थों को शिल्पद्वारा निर्माण करने मे कुशल, विद्वान् और बुद्धिमान् होते हैं हे (ऋषे) वेदार्थ को जानने के उत्सुक शिष्य एवं साक्षात् ज्ञाता पुरुष ! (तं मारुतं गणं) उन, वायुस्वभाव, बलशाली, अप्रमादी, और ज्ञानी जनो को (गिरा) उत्तम वेद वाणी, और न्याययुक्त वचन से (नमस्य) आदर कर और (रमय) आनन्दित कर ।

अच्छ॑ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

भा०—(योषणा मित्रं न) जिस प्रकार स्त्री अपने स्नेह करने वाले प्रिय पति के अभिमुख होती है उसी प्रकार हे (ऋषे) विद्वन् ! तू (दाना) आदर सत्कार पूर्वक अन्न वस्त्र आदि नाना दान देने योग्य पदार्थों सहित (मारुतं गणं) उत्तम विद्वान् वा वीर जनों के समूह को भी (अच्छ) आदर से प्राप्त कर । हे (धृष्णवः) बल बुद्धि से प्रतिस्पर्धी का धर्षण करने हारे (वा) और (दिवः) विजय के उत्सुक एवं धनादि की कामना करने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (धीभिः) उत्तम स्तुतियों, ज्ञानों और कर्मों द्वारा (स्तुताः) प्रशंसित, उपदिष्ट वा शिक्षित होकर (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (दाना इषण्यत) दान दिये गये धनों को प्राप्त किया करो । अध्यात्म में—हे विद्वन् ! तू (मारुतं गणं) प्राण गण को मित्रवत् अन्नादि दोनों से पुष्ट कर । हे प्राणगण ! बलवान् होकर तुम बुद्धि, कर्म से प्रयुक्त होकर ग्राह्य विषय ग्रहण करो ।

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

भा०—(वक्षणा न) नदी जिस प्रकार (दाना सचते) जलों को प्राप्त करती है और (वक्षणा न दाना) विवाह करने योग्य वधू जिस प्रकार नाना धनों को वा (देवान्) काम्य पुरुषों, वरों को अभिमुख प्राप्त करती है उसी प्रकार (एषां) इन वीर और राष्ट्र में बसे प्रजाजनों के बीच (मन्वानः) मननशील पुरुष ही (देवान्) श्रेष्ठ, वीर, व्यवहारप्रिय पुरुषों को (अच्छा) अभिमुख होकर प्राप्त करे । (याम-श्रुतेभिः) प्रति प्रहर श्रवण करने वाले, वा यम नियमों के पालन करते हुए वेदादि का गुरुमुख से श्रवण कर चुकने वाले, (अञ्जिभिः) अपने गुणों का प्रकाश करने वाले, तेजस्वी (सूरिभिः) विद्वानों सहित (दाना सचेत) नाना दान योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करे और विद्वानों को प्रदान भी करे ।

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम्।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

भा०—(ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (मे) मुझे (बन्ध्वेषे) बन्धुवत् चाहते हुए (गां वोचन्त) वाणी का उपदेश करते है वे (पृश्निम्) पालन करने वाले विद्वान् आचार्य और भूमि को भी (मातरम् वोचन्त) माता बतलाते है (अध) और वे (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष (इष्मिणम्) बलवान् और ज्ञानवान् (इन्द्रम्) शत्रुओं को रुलाने वाले राजा और ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु को ही (पितरं वोचन्त) 'पिता' नाम से कहते है। (२) (सूरयः) सूर्य की किरण वा शक्तियें जीवों के परम बन्धु 'इष्' वृष्टि और अन्न को उत्पन्न करने के लिये (गां) भूमि और (पृश्निं) सूर्य को (मातरं वोचन्त) सब की माता बतलाते है (अध) और (इष्मिणं) अन्न सम्पदा से सम्पन्न (रुद्रं) पशु पालक कृषक जन और वृष्टियुक्त मेघ को (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष एवं प्रबल वायु भी (पितरं) सब प्रजाओ का पालक पिता (वोचन्त) बतलाते है।

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे १७।१०

भा०—(मे) मेरे (सप्त सप्त) सात सात (शाकिनः) शक्तिशाली नायक गण (एकम्-एका) एक एक से मिलकर (शता) सैकड़ों ऐश्वर्य (मे ददुः) मुझे प्रदान करे। (यमुनायाम् अधि) नियन्त्रण करने वाली सेना वा राष्ट्र नीति पर अधिकार करके मै (श्रुतम्) प्रसिद्ध, कीर्त्तिजनक (गव्यं राधः) श्रवण करने योग्य, वाणी द्वारा प्राप्त करने योग्य, वाङ्मय ज्ञान सम्पदा के तुल्य, (गव्यं राध) भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य को (उत मृजे) उत्तम रीति से शुद्धतापूर्वक प्राप्त करूं और (अश्व्यं राधः नि मृजे) अश्व अर्थात राष्ट्रसम्बन्धी सैन्य बल को अच्छी प्रकार स्वच्छ, शत्रुहीन, निष्कण्टक करूं। इति दशमो वर्गः ॥

[५३]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री । ८, १२ गायत्री । २ निचृद्बृहती । ९ स्वराड्बृहती । १४ बृहती । ३ अनुष्टुप् । ४, ५ उष्णिक् । १०, १५ विराडुष्णिक् । ११ निचृदुष्णिक् । ६, १६ पङ्क्तिः । ७, १३ निचृत्पङ्क्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ १ ॥

भा०—(कः) कौन (एषां मरुताम्) इन वायुओ, प्राणो और मनुष्यो के (जानम्) उत्पत्ति के रहस्य को (वेद) जानता है (वा) और (कः) कौन इनके (सुम्नेषु) समस्त सुखो के बीच भोक्ता रूप से (आस) स्थिर रूप मे विद्यमान रहता है ? [उत्तर] (पुरा यत्) जो इन सबसे पूर्व, इन सबके बीच (किलास्यः) निश्चित रूप से प्रमुख होकर वा स्थिर वाणी वाला होकर इन को (युयुज्रे) कार्य मे नियुक्त करता, वश कर समाहित करता, वा जो उनको (किलास्यः) अश्वो के समान देह मे प्राणो को, राष्ट्र मे अधीन भृत्यो को युद्ध मे सैनिको को वा यन्त्रो मे वायुओ को प्रयोग करता है वही इनके (जानं वेद) उत्पत्ति के रहस्य को भी जानता है ।

एतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥

भा० —(रथेषु तस्थुषः) रथों पर विराजमान (एतान्) इन वीर विजिगीषु, वायुवत् शत्रुओ को उखाड़ने मे समर्थ पुरुषो को (कः शुश्राव) कौन अपनी आज्ञा सुनाता है ? और वे (कथा) किस प्रकार (ययुः) प्रयाण करें ? (कस्मै अनु सस्रुः) वे किसके अभ्युदय के लिये आगे बढ़े ? [उत्तर] वे (आपयः) बन्धु के तुल्य प्राप्त होकर (सुदासे) उत्तम

दानशील वृत्तिदाता स्वामी के लिये वा उत्तम भृत्यों के स्वामी के अधीन रहकर (इडाभिः सह) अन्नों सहित (वृष्टयः इव) जल वृष्टियों के तुल्य रथों पर विराजें, युद्ध में आगे बढ़ें और स्वामी के लिये शर-वर्षण, शत्रूच्छेदन करते हुए आगे बढ़ें । वृष्टिः अश्नतेश्छेदनकर्मणः ॥

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) उत्तम नायक, (मर्याः) मरणधर्मा, (अरेपसः) निष्पाप, निर्लेप, निष्काम, होकर (द्युभिः) तेजों और (विभिः) कान्तिमय, ज्ञानयुक्त रथों या अश्वों से (उप आययुः) हमारे समीप आवें (ते) वे (मे) मुझे (आहुः) उपदेश करें । (इमान् पश्यन्) उन उत्तम पुरुषों को देखकर हे मनुष्य ! तू (इति) इसी प्रकार से (स्तुहि) स्तुति वचन और प्रार्थना किया कर ।

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
आया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो पुरुष (अञ्जिषु) अपने द्योतक विशेष चिह्नों, प्रकट पोशाकों वा उत्तम गुणों में (स्व-भानवः) स्वयं अपनी कान्ति से युक्त हैं (ये वाशीषु स्व-भानवः) जो अपनी वाणियों में और शस्त्र प्रयोगों में अपने बल और कौशल से चमकने वाले हैं और जो (स्रक्षु) मालाओं और मणियों और (रुक्मेषु) स्वर्ण के आभूषणों के बीच में भी और (खादिषु) उत्तम भोजनों के प्राप्त होने पर वा शास्त्रों में भी (स्व भानवः) स्वयं अपने तेज से चमकने वाले तेजस्वी हैं, जो रूप, वस्त्र, शस्त्र, माला, स्वर्णाभरणादि बाह्य साधनों के होते हुए भी स्वतः तेजस्वी हैं और जो (रथेषु) रथों, महारथियों और (धन्वसु) धनुर्धारियों में भी (आयाः) सिंहनाद सुनाने वाले वा गुणों द्वारा प्रसिद्ध वा स्थिरता में

सबके आधारभूत है (ते मे आहुः) वे मुझे उत्तम उपदेश करें। वे हर्ष की वृद्धि के लिये उत्तम रथों, तेजों सहित मुझे प्राप्त हों।

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यतीः द्यावः अनु वृष्टीः इव) जिस प्रकार चलती हुई बिजुलियों या व्यापारयुक्त सूर्य प्रकाशों के पश्चात् जल वृष्टियों को जीवगण अपने हर्ष-प्रमोद के लिये प्राप्त करते है उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषो ! हे (जीर-दानवः) प्राणियों या प्रजाजनों को जीवन प्रदान करनेवाले उत्तम परोपकारी रक्षक पुरुषो ! मै (युष्माकं रथान् अनु) आप लोगों के रथों को अपने अनुकूल (मुदे) सबके सुख के लिये (अनु दधे) धारण करूं।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सु-दानवः) उत्तम रीति से जल देने मे कुशल वायु गण (दिवः कोशम् अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष से जल-गर्भित मेघ को बरसाते है, (पर्जन्यं वि सृजन्ति) मेघ को रचते है और (धन्वना वृष्टयः अनु यन्ति) जल सहित, अन्तरिक्ष मार्ग से जल बृष्टियां आती है उसी प्रकार (यं) जिस (कोशम्) सुवर्णादि के कोश को (सु-दानवः) उत्तम दानशील (नरः) पुरुष (दिवः) अपने व्यापार, युद्धादि विजय से (अचुच्यवुः) सब ओर से प्राप्त करते है और (पर्जन्यं) मेघवत् धनार्जन करने वाले पुरुष को (वि सृजन्ति) विविध प्रकार से उन्नत करते, (यं अनु) जिसके पीछे २ वर्षाओं के तुल्य शूरवीर होकर (धन्वना यन्ति) धनुष, शस्त्रास्त्र लेकर चलते है वह पुरुष उनका नायक होने योग्य है। वह ही उनके उद्भव को जानता है।

करने वाले (अद्रेः) मेघ के समान नाना विद्याओं के रसों का पान या पालन करने वाले (अद्रेः) आदर योग्य (विप्रस्य) मेधावी (अर्चत.) अर्चना करने योग्य विद्वान् के (हवम्) उपदेश और (मनीषाम्) बुद्धि का (बोध) ज्ञान कर और (इमा) इन (दुवांसि) नाना सेवाओं को (अन्तमा कृण्व) समीप कर ।

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! (विद्वान्) मैं विद्वान् होकर भी (ते गिरः) तेरी वाणियो का (न अपि मृष्ये) त्याग न करूं । (तुरस्य) अति शीघ्र कार्यकर्त्ता, और शत्रुओं के हिंसक (असुर्यस्य) बलवानों मे श्रेष्ठ तेरे (सु-स्तु तिम्) उत्तम स्तुति को भी (न अपि मृष्ये) त्याग न करूं । हे राजन् ! मैं (ते नाम) तेरे नाम या शत्रु को दबाने के सामर्थ्य को ही (स्व-यशः) अपनी कीर्त्ति या बल (वि वक्मि) कहूं ।

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त ! (ते) तेरे (भूरि हि सवना) बहुत से ऐश्वर्य (मानुषेषु) मनुष्यों मे है । (मनीषी) बुद्धिमान् पुरुष (त्वाम् इत् हवते) तेरी ही स्तुति करता है, तुझे ही पुकारता है । तू (अस्मत्) हम से (ज्योक् माकः) विद्वान् पुरुष को वा अपने आपको चिरकाल के लिये दूर मत कर ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर शत्रुहिंसक ! (तुभ्यं इत इमा सवना) ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही उपभोग के लिये और तेरे ही अधिकार मे हों ।

(तुभ्यं वर्धना) तुझे ही बढाने वाले (विश्वा ब्रह्माणि) ये समस्त धन, अन्न और वेद वचन मैं (कृणोमि) करता हूं। हे राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (नृभिः) मनुष्यों से (हव्यः) स्तुति योग्य, स्वीकार करने योग्य, और (विश्वधा असि) समस्त विश्व को धारण करने हारा है।

नू चि॒न्नु ते॒ मन्य॑मानस्य द॒स्मोद॑श्नुवन्ति महि॒मान॑मुग्र।
न वी॒र्य॑मिन्द्र ते॒ न राधः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय! हे शत्रुहिंसक! हे (उग्र) शत्रु-भयजनक राजन्! प्रभो! (मन्यमानस्य) मान करने योग्य (ते) तेरे (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (नु चित् नु) अवश्य सज्जन लोग (उत् अश्नुवन्ति) उत्तमता से प्राप्त करें। परन्तु शत्रु जन (ते महिमानम् न उद् अश्नुवन्तु) तेरे महान् सामर्थ्य को न पा सकें और वे (न ते वीर्यम्, न ते राधः) न तेरे बल और न तेरे ऐश्वर्य को प्राप्त करें। वे तेरे से अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् कभी भी न हो।

ये च॒ पूर्वे॒ ऋष॑यो॒ ये च॒ नूत्ना॒ इन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि ज॒नय॑न्त॒ विप्राः॑।
अ॒स्मे ते॑ सन्तु स॒ख्या शि॒वानि॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥९।६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे आचार्य विद्वन्! (ये च ऋषयः) जो मन्त्रार्थों और उत्तम सत्य सत्य ज्ञानों के देखने वाले, (पूर्वे) पूर्व काल के, वृद्ध, गुरुजन और (ये च नूत्नाः) जो नये शिष्य जन, नव-शिक्षित (विप्रा.) विद्वान् पुरुष हैं वे (ब्रह्माणि जनयन्त) वेद मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करें। हे विद्वन्! राजन् (ते) तेरी (सख्यानि) मित्रता के कार्य (अस्मे) हमारे लिये (शिवानि) कल्याणकारक हों। (यूयम्) आप लोग हे विद्वान् ऋपिजनो! (न.) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभि. पात) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

[२३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६ भुरिक्पङ्क्तिः । ४ स्वराट् पङ्क्तिः। २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्ऋच सूक्तम् ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) प्रजा को उत्तम रीति से वसाने और उनमें स्वयं भी अच्छी प्रकार वसने हारे उत्तम वसो! राजन्! प्रजाजन! विद्वन्! तू (श्रवस्या) धन, अन्न, और यश की कामना से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (उद् ऐरत उ) उत्तम रीति से उपदेश कर। हे विद्वन्! तू (श्रवस्या) ज्ञानोपदेश की कामना से (ब्रह्माणि उद् ऐरत) वेद मन्त्रों का उत्तम उपदेश कर। हे राजन्! हे उत्तम प्रजावर्ग! तू (समर्ये) संग्राम में वा मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान, सभा आदि में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर पुरुष का (महय) आदर सत्कार, विशेष सम्मान कर। हे उत्तम शिष्यवर्ग! (सम् अर्ये) उत्तम ज्ञानोपार्जन के निमित्त (इन्द्रं महय) आचार्य का समान, पूजन किया कर। (यः) जो राजा (उप-श्रोता) प्रजाओं के कष्टों को ध्यान से श्रवण करने वाला (शवसा) बलपूर्वक (ईवत) समीप आने वाले (मे) मेरे उपकारार्थ (विश्वानि वचांसि) समस्त उत्तम वचन, व आज्ञाएं (आ ततान) प्रदान करता है अथवा (यः शवसा विश्वानि वचांसि आततान) जो बल के साथ सब प्रकार के आज्ञा वचन विस्तारित करता है वह (ईवत. मे वचांसि उप-श्रोता) शरण में आये मेरे वचनों को भी ध्यान से श्रवण करने हारा हो। इसी प्रकार जो विद्वान् (शवसा वचांसि आततान) ज्ञानपूर्वक वचन कहे वह प्राप्त शिष्य के वचनों को भी श्रवण करे।

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (देवजामिः घोषः) जलदाता मेघ की गर्जना होती है और (विवाचि) विविध मध्यमा वाक् विद्युत् के गर्जते हुए (शुरुधः) शीघ्र आने वाली ओषधियां खूब बढ़ती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! (यत्) जब (देव-जामिः) 'देव' व्यवहारवान्, और विजयेच्छु पुरुषो मे रहने वाला (घोषः) घोष, या वाणी उठती है उस समय (वि-वाचि) विविध या विशेष वाणी के प्रवक्ता पुरुष के अधीन (शुरुधः) शीघ्र ही शत्रुओ को रोकने मे समर्थ वीरजन (इरज्यन्त) आगे बढ़ते है। (जनेषु) मनुष्यो मे कोई भी (स्वम् आयुः) अपना जीवन सुरक्षित (नहि चिकिते) नही जानता तब हे राजन् ! तू ही (तानि इत् अहांसि) उन नाना प्रकार के पापाचारो से (अस्मान् अतिपर्षि) हमे पार करता है।

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्टस्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

भा०—(हरिभ्यां रथं) जिस प्रकार दो अश्वो से रथ को जोड़ा जाता है उसी प्रकार मैं भी (हरिभ्याम्) दो उत्तम विद्वान् पुरुषो मे (रथम्) सुख देने वाले राष्ट्र को (युजे) युक्त करूं और समस्त प्रजा वर्ग (ब्रह्माणि जुजुषाणम्) नाना धनो को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यवान् पुरुष का (उप अस्थुः) आश्रय लेते है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाली उभय पक्ष की सेनाओ को (वि बाधिष्ट) विविध प्रकार से वश करे। और वह (अप्रति) बे-मुकाबला होकर (वृत्राणिजघन्वान्) शत्रुओ का नाश करे और धनों को प्राप्त करे।

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥

भा०—(स्तर्यः गावः न) जिस प्रकार सुरक्षित गौएं गृहस्थ को (पिप्युः) बढ़ाती है (आपः चित्) और जिस प्रकार जलवत् देह मे बहती रक्तधाराएं शरीर की वृद्धि करती है। उसी प्रकार (आपः) आप्त विद्वान् और प्रजाएं (स्तर्यः) शत्रुहिंसक और देश की रक्षा करने वाली सेनाएं तथा (गावः) गौएं, वा भूमियें भी देश को (पिप्युः) बढ़ाती, समृद्ध करती है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं की जीवन हानि करने वाले वीर पुरुष (ते ऋतं रक्षन्) तेरे सत्य न्याय, ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करे। (त्वं) तू (नः) हमारे (नियुतः) लक्षों प्रजाजनों को, नियुक्त भृत्यो को, तथा (नियुत) अश्व-सैन्यो को भी (वायुः) वायु अर्थात् प्राणवत् प्रिय होकर, वा वायु के समान बल से शत्रु को उखाड़नें मे समर्थ होकर (अच्छ याहि) प्राप्त हो। और (धीभिः) अपने कर्मों और सम्मतियों से (वाजान्) ऐश्वर्यो को (वि दयसे) विविध प्रकार से दे और (वाजान् वि दयसे) वेगवान् अश्वों को विविध प्रकार से पालन कर, और संग्रामो को कर। ज्ञानवान् पुरुषों पर (वि दयसे) विशेष दया कृपा कर।

ते त्वा मदा॑ इन्द्र मादयन्तु शु॒ष्मिणं॑ तुवि॒राध॑सं जरि॒त्रे।
एको॑ देव॒त्रा दय॑से॒ हि मर्ता॑न॒स्मिञ्छू॑र॒ सव॑ने मादयस्व ॥ ५ ॥

भा०—(हि) जिस कारण से हे (शूर) शूरवीर ! तू (देवत्रा) विजयशील और विद्वान् पुरुषों के बीच, वा उनका त्राता होकर (एकः) अकेला, अद्वितीय होकर (मर्तान् दयसे) सब मनुष्यो को जीवन देता, उन पर विशेष कृपा करता, उनकी रक्षा करता है (जरित्रे) विद्वान विद्योपदेष्टा के लिये (तुवि-राधस) बहुत सा धन प्रदान करने वाले (शुष्मिणं) बलशाली, (त्वा) तुझको हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन ! (ते) वे (मदा) तृप्तिकारक नाना पदार्थ, और (मदा) हर्षयुक्त नाना सुभट (मादयन्तु) तृप्त और प्रसन्न करे।

तृतृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

भा०—(यथा क्षोदसा रजः ततृदानाः सिन्धवः रज प्रसस्रुः) जिस प्रकार जल से करारों की मट्टी तोड़ते हुए जल प्रवाह बहते है और (यथा धेनवः क्षोदसा रजः ततृदानाः प्रसस्रुः) जिस प्रकार गौवें भूमिमय प्रदेश मे धूलि उड़ाती हुई आगे बढ़ती है और जिस प्रकार (विमोचने) खुले स्वच्छन्द छोड़ देने पर (अश्वा इव) छोड़े (अध्वनः) मार्गों में (स्यन्नाः) वेगवान् होकर (रजः ततृदानाः) धूल उड़ाते हुए (प्रसस्रुः) आगे बढ़ते है और जिस प्रकार (एन्यः) नदियां (रजः ततृदानाः) धूल या मट्टी काटती हुई (वि वर्त्तन्ते) विविध मार्गों से आती है उसी प्रकार वायुगण (क्षोदसा रजः ततृदानाः प्र सस्रु.) जल सहित अन्तरिक्ष चीरते हुए वेग मे चलते और (विवर्त्तन्ते) विविध रूप से बहते है उसी प्रकार व्यापारी और वीर जन भी (क्षोदसा) जल मार्ग से (रजः ततृदानाः) भूलोक को पार करते हुए (प्र सस्रुः) दूर देशों मे जाते और (वि वर्त्तन्ते) विविध वार्त्ता व्यापारादि करे और वीर पुरुष (क्षोदसा रज' ततृदानाः) वेग से शत्रु जन को काटते हुए आगे बढ़ें और (वि-मोचने) भाग छूटने पर (विवर्त्तन्ते) विविध मार्गों पर गमन करे । विविध व्यूहादि वनावे । विविध चालें चलें ।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुत.) प्रजाजनो ! हे व्यापारी वर्ग के प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग वायुवत् (दिवः) भूमि और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (उत) और (अमात्) गृह और (परावत) दूर २ के देश से भी (आ यात) आया जाया करो । (मा अवस्थात) किसी स्थान पर रुककर मत पड़े रहा करो ।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥७॥

भा०—(वसिष्ठासः) राष्ट्र मे बसे उत्तम प्रजाजन (एव) निश्चय से (वृषणं) बलवान्, मेघवत् वा सूर्यवत् शत्रु पर शरो और प्रजा पर सुखो की वर्षा करने वाले (वज्र-बाहुम्) शस्त्रास्त्र बल और शक्ति को बाहुओ मे, अपने वश मे रखने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को (अर्कैः) नाना अर्चना योग्य उपायो से (अभि-अर्चन्ति) सत्कार करते है। (सः स्तुत.) वह प्रशंसित शासक (नः) हमारे (वीरवत्) वीर पुरुषो से युक्त सैन्य और (गोमत्) भूमियों से युक्त राष्ट्र की (पातु) रक्षा करे। और हे वीर पुरुषो (नः) हमे (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (पात) पालन करो। इति सप्तमो वर्गः॥

[२४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्च सूक्तम् ॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सदने) विराजने योग्य उत्तम सभा गृह आदि स्थान में (ते) तेरा (योनिः) गृहवत् स्थान (अकारि) बने। हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशसित ! तू (तम्) उस पद या स्थान को (नृभिः) नायकों सहित (आ याहि) प्राप्त कर। और उस मुख्य पद को प्राप्त कर (प्र याहि) प्रयाण कर। (यथा) जिस प्रकार से भी हो उस प्रकार से तू (न.) हमारा (अविता) रक्षक (अस.) हो। (न वृधे च) हमारे वृद्धि के लिये तू (वसूनि आ ददः) नाना ऐश्वर्य प्रदान और ग्रहण कर। तू (सोमैः च) सौम्य पुरुषो, उत्तम ऐश्वर्यो और नाना ओषधि रसो से (ममद) हर्ष प्राप्त कर, तृप्त हो और सुखी रह।

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

भा०—(इयम्) यह (सु-वृक्तिः) उत्तम सद् व्यवहार और उत्तम सेवा करने वाली (मनीषा) मन से प्रिय, मनोहारिणी, (विसृष्ट-धेना) विविध उत्तम वाणी बोलने वाली स्त्री (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (जोहुवती) प्राप्त करती हुई (परि-सिक्ता) गर्भाशय में निषिक्त (मधूनि) वीर्यों को (भरते) धारण करती है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने हारे ! (ते मनः गृभीतं) तेरा मन उस स्त्री द्वारा ग्रहण किया जाय। तेरा (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोम.) पुत्र (द्वि-बर्हाः) माता पिता दोनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त और दोनों को बढ़ाने हारा हो। इसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! राष्ट्र में (मधूनि परिषिक्ता) नाना जल सिंचे। (द्विबर्हाः) मेघ और पृथिवी दोनों से बढ़ने वाला (सोम. सुतः) ओषधिगण उत्पन्न हो। राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों को बढ़ाने वाला राजा अभिषेक को प्राप्त हो। (ते मन. गृभीतम्) तेरा मन राष्ट्र में लगे। (सु-वृक्तिः) उत्तम रीति से विभक्त (इयम्) यह भूमि (विसृष्ट-धेना) नाना शासनाज्ञा से युक्त होकर (मनीषा) मनभावनी होकर (इन्द्रं जोहुवती) राजा को पुकारती, अपनाती और करादि देती हुई, (भरते) समस्त प्रजाजन को अपने में धारण करती, पालती है।

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल धार्मिक मार्ग में समस्त प्रजाओं को चलाने हारे ! तू (सोम-पेयाय) पुत्रवत् प्रजा के पालन करने, और ऐश्वर्यों का ओषधिरसवत् उपभोग करने के लिये (दिवः पृथिव्याः) उत्तम व्यवहार, विजय कामना और भूमि के लिये (नः) हमारे (इदं बर्हि) इस वृद्धिकारक प्रजावर्ग को (आ याहि) प्राप्त हो। (हरयः)

प्रजास्थ पुरुष (तवसं) बलवान् (मद्यूत्रम्) मेरे प्रति आदरपूर्वक आने वाले (त्वा) तुझ को (मदाय) तेरी प्रसन्नता के लिये (आङ्गूषं अच्छ वहन्तु) उत्तम स्तुतियुक्त वचन प्रदान करे।

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) मनुष्यो में सर्वश्रेष्ठ! अश्ववत् राज्य रथ के सञ्चालक! राजन्! तू (नः) हमारे (ब्रह्म जुषाणः) धन, अन्न और वेद ज्ञान को प्रेमपूर्वक स्वीकार और सेवन करता हुआ (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षा साधनो से (नः) हमे (आयाहि) प्राप्त हो। हे (सु-शिप्र) उत्तम मुकुटधारिन्! शोभित मुखावयव, सौम्य मुख! तू (स्थविरेभिः) विद्या और आयु मे वृद्ध पुरुषो सहित, शत्रुओं और दुःखों तथा दैवी, मानुषी विपत्तियों को (वरीवृजत्) सदा दूर किया कर। और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अस्मे) हमारे लिये (वृषणं) बलवान् (शुष्मम्) शत्रु शोषक सैन्य को (दधत्) निरन्तर धारण कर।

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥५॥

भा०—(वाहे धुरि अत्यः न) रथ को उठाने वाले धुरा मे जिस प्रकार अश्व लगाया जाता है उसी प्रकार (वाहे धुरि) राष्ट्र को धारण, पोषण और सञ्चालन करने वाले पद पर (महे उग्राय) महान्, बल-वान् पुरुष के लिये (एष. स्तोम) यह स्तुत्य व्यवहार, वा अधिकार (वाजयन् इव) उसको अधिक बल और ऐश्वर्य देता हुआ (अधायि) नियत किया जाता है। (वसूना मध्ये दिवि अर्क) पृथिव्यादि वसुओं के बीच आकाश मे सूर्य के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वसूनाम्)

बसे प्रजाजनों, विद्वानों, प्रजापालक शासकों के बीच (अयम् अर्कः) यह अर्चना योग्य पद या अधिकार, मान आदर सत्कार (त्वाम् ईट्टे) तुझे ही ऐश्वर्य प्रदान करता है। तू (नः) हमें प्रकाशवत् (द्याम्) ज्ञान, उत्तम व्यवहार और (श्रोमतं) श्रवण योग्य यश भी (धाः) धारण करा।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।६।८।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (नः) हमें तू (वार्यस्य) उत्तम धनैश्वर्य से (पूर्धि) पूर्ण कर। (ते) तेरी (महीं) अति पूज्य, (सुमतिं) उत्तम ज्ञान को अच्छी प्रकार प्राप्त करें। तू (मघवद्भ्यः) उत्तम धन युक्तों को (सुवीराम्) शुभ पुत्रों से युक्त (इषं) अन्न समृद्धि (पिन्व) दे। हे सम्पन्न पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम सुखदायक उपायों से हमारी सदा रक्षा, पालन करो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[२५]

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृत्पङ्क्तिः। २ विराट् पङ्क्तिः। ४ पङ्क्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षड्‌चं सूक्तम्॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत्॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) शत्रु नाश करने में कठोर! (यत्) जब (महते) तुझ महान् की (समन्यवः) क्रोध से युक्त वा एक समान मन्यु, क्रोध और गर्व से पूर्ण (सेनाः) सेनाएं (ऊती) अपने देश की रक्षा के लिये (सम्-अरन्त) अच्छी प्रकार आगे बढ़ें वा युद्ध करें तब (नर्यस्य) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ एवं सबके हितकारी (ते) तेरे (बाह्वोः) बाहुओं में (दिद्युत्) चमकता शस्त्रास्त्र (पताति)

शत्रु पर वेग से पड़े और (ते मनः) तेरा चित्त (विश्वद्र्यग् मा विचारीत्) सब तरफ न जाय। अथवा—(ते बाह्वोः दिद्युत् मा पताति) तेरी बाहुओं का तेजस्वी अस्त्र नीचे न गिरे, प्रत्युत (ते मनः विश्वद्र्यग् विचारीत्) तेरा चित्त, विवेक सब ओर जाये। सब ओर से सावधान रहे कि तेरा बल तेरे हाथों से भ्रष्ट होकर न निकल जावे।

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ॑अभि ये नो॒ मर्तासो अमन्ति॑।
आरे तं शंसं॑ कृणुहि निनित्सोरा नो॑ भर सम्भरणं॒ वसू॑नाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ये) जो (मर्तासः) मनुष्य (नः) हमें (अमन्ति) रोगों के समान पीडा देते हैं उन (अमित्रान्) हम से न स्नेह करने वाले शत्रुओं को (दुर्गे) दुर्ग या नगर के प्रकोट में बैठ कर (अभि श्नथिहि) मुकाबला करके मार। (निनित्सोः) निन्दा करने वाले से (आरे) दूर रह कर ही (नः) हमारी (तं शंसं कृणुहि) वह प्रशंसनीय विजय कर और (नः) हमें (वसूनाम्) नाना ऐश्वर्यों का (सम्भरणं आ भर) समूह लादे। वा (नः वसूना सम्भरणं आ भर) हमारे राष्ट्र वासियों, और शासकों को अच्छी प्रकार पालन पोषण कर।

शतं ते॑ शिप्रिन्नूतयः॑ सुदासे॑ सहस्रं॒ शंसा॑ उत रा॒तिर॑स्तु।
ज॒हि वध॑र्व॒नुषो॒ मर्त्य॑स्या॒स्मे द्यु॒म्नमधि॒ रत्नं॑ च धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुख नासिका, सुन्दर ठोढी वाले! सौम्य मुख! वा उत्तम मुकुटयुक्त राजन्! (सु-दासे) उत्तम दानी पुरुष के लिये (ते) तेरी (शतं) सैकड़ों (ऊतयः) रक्षायें हों। और (सहस्र शंसाः) सहस्रों प्रशंसाएं हों और (सहस्र रातिः अस्तु) हजारों दान हों। हे राजन्! तू (वनुषः मर्त्यस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष के (वधः) हिंसाकारी साधनों को (जहि) नष्ट कर। और (अस्मे)

हमे (द्युम्नम्) यश और (रत्नं च) उत्तम धन (अधि धेहि) बहुत अधिक दे ।

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! (विश्वा इत् अहानि) मै सब दिनों (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी के (क्रत्वे) कर्म करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अस्मि) रहूं । हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुनाशक ! मैं सब दिनो (त्वावतः अवितुः) तेरे जैसे रक्षक के ही (रातौ) दिये दान के ऊपर (अस्मि) वृत्ति करूं । हे (तविषीव.) बलवती सेना के स्वामिन् ! हे शक्तिमन् ! तू सब दिनो (उग्रः) शत्रुओं के लिये भयजनक मेरे लिये (ओकः कृणुष्व) उत्तम स्थान और सेना का उत्तम समवाय बना । हे (हरिवः) अश्वों, अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (न मर्धीः) हमे मत मार, हिंसा मत कर ।

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५॥

भा०—(इन्द्रे) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन ही (हर्यश्वाय) उस नरश्रेष्ठ, वेगवान् अश्व सैन्य के स्वामी के विजय लाभ के लिये (एते) ये (कुत्साः) शस्त्रास्त्र समूह, शत्रु के काटने वाले वीर पुरुष और (कुत्सा) संशयों के काटने वाले या नाना उत्तम स्तुतियां और नाना शिल्पों के करने वाले जन भी (देव-जूतम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों से प्रेरित, वा उनके अभिलषित (शूषम्) सुखकारी (सहः) शत्रुपराजयकारी बल को (इयानाः) प्राप्त करते हुए रहें । और हम ही (वयम्) हम लोग भी (तरुत्राः) सबको दुःखों, कष्टों से तारते और बचाते हुए (वाजम् सनुयाम) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल और धन प्राप्त करें और

अन्यों को भी दान करें। हे (शूर) शूरवीर ! तू (सत्रा) सदा, न्याय और सत्य के अनुसार (वृत्रा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (सुहना कुरु) सुख से नाश करने योग्य कर। और (वृत्रा सुहना कुरु) धनैश्वर्य भी सुप्राप्य बना। राजा ऐसा प्रबन्ध करे जिससे दुष्ट सुगमतासे दण्डित हो सकें और प्रजाजन ईमानदारी से सहज ही धन प्राप्त कर सकें।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।६।९।

भा०—व्याख्या देखो (सू० २४। मं० ६)॥ इति नवमो वर्गः॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥
पञ्चर्चं सूक्तम्॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः॥ १॥

भा०—(असुतः सोमः) जिस प्रकार विना तैयार किया हुआ ओषधि रस (इन्द्रम्) इन्द्रिय युक्त जीव को (न ममाद) हर्ष या सुख नहीं देता और (असुतः सोमः) न उत्पन्न हुआ पुत्र वा अस्नातक शिष्य (इन्द्रं न ममाद) गृह स्वामी, सम्पन्न पुरुष वा आचार्य को भी हर्षित नहीं करता, उसी प्रकार (असुतः) ऐश्वर्यरहित (सोमः) राष्ट्र (इन्द्रम् न ममाद) राजा को सुखी नहीं कर सकता। (अब्रह्माण सुतासः) वेदज्ञान से रहित शिष्य वा पुत्र (मघवानम्) पूज्य धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को भी हर्ष नहीं देते, उसी प्रकार (अब्रह्माण) निर्धन, धनसम्पदा न देने वाले उत्पन्न जन वा पदार्थ भी (मघवानं न ममदुः) धनाढ्य पुरुषको प्रसन्न नहीं करते। (यत् जुजोषत्) जो प्रेम से सेवन करे मैं (तस्मै) उसी के लिये (उक्थं जनये) उत्तम वचन प्रकट करूं (यथा) जिससे

हमे (द्युम्नम्) यश और (रत्नं च) उत्तम धन (अधि धेहि) बहुत अधिक दे।

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! प्रभो! (विश्वा इत् अहानि) मैं सब दिनों (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी के (क्रत्वे) कर्म करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अस्मि) रहूं। हे (शूर) शूरवीर! शत्रुनाशक! मैं सब दिनों (त्वावतः अवितुः) तेरे जैसे रक्षक के ही (रातौ) दिये दान के ऊपर (अस्मि) वृत्ति करूं। हे (तविषीव.) बलवती सेना के स्वामिन्! हे शक्तिमन्! तू सब दिनों (उग्रः) शत्रुओं के लिये भयजनक मेरे लिये (ओकः कृणुष्व) उत्तम स्थान और सेना का उत्तम समवाय बना। हे (हरिवः) अश्वों, अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन्! तू (न मर्धीः) हमें मत मार, हिंसा मत कर।

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५॥

भा०—(इन्द्रे) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन ही (हर्यश्वाय) उस नरश्रेष्ठ, वेगवान् अश्व सैन्य के स्वामी के विजय लाभ के लिये (एते) ये (कुत्साः) शस्त्रास्त्र समूह, शत्रु के काटने वाले वीर पुरुष और (कुत्सा.) संशयों के काटने वाले वा नाना उत्तम स्तुतियां और नाना शिल्पों के करने वाले जन भी (देव-जूतम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों से प्रेरित, वा उनके अभिलषित (शूषम्) सुखकारी (सहः) शत्रुपराजयकारी बल को (इयानाः) प्राप्त करते हुए रहें। और ऐसे ही (वयम्) हम लोग भी (तरुत्राः) सबको दुःखों, कष्टों से तारते और बचाते हुए (वाजम् सनुयाम) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल और धन प्राप्त करें और

अन्यो को भी दान करें। हे (शूर) शूरवीर! तू (सत्रा) सदा, न्याय और सत्य के अनुसार (वृत्रा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो को (सुहना कुरु) सुख से नाश करने योग्य कर। और (वृत्रा सुहना कुरु) धनैश्वर्य भी सुप्राप्य बना। राजा ऐसा प्रबन्ध करे जिससे दुष्ट सुगमतासे दण्डित हो सके और प्रजाजन ईमानदारी से सहज ही धन प्राप्त कर सके।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते मही सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।६।९।

भा०—व्याख्या देखो (सू० २४। मं० ६)॥ इति नवमो वर्गः॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः॥ १॥

भा०—(असुतः सोमः) जिस प्रकार विना तैयार किया हुआ ओषधि रस (इन्द्रम्) इन्द्रिय युक्त जीव को (न ममाद) हर्ष या सुख नहीं देता और (असुतः सोमः) न उत्पन्न हुआ पुत्र वा अस्नातक शिष्य (इन्द्र न ममाद) गृह स्वामी, सम्पन्न पुरुष वा आचार्य को भी हर्षित नहीं करता, उसी प्रकार (असुतः) ऐश्वर्यरहित (सोम.) राष्ट्र (इन्द्रम् न ममाद) राजा को सुखी नहीं कर सकता। (अब्रह्माण सुतासः) वेदज्ञान मे रहित शिष्य वा पुत्र (मघवानम्) पूज्य धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को भी हर्ष नहीं देते, उसी प्रकार (अब्रह्माण.) निर्धन, धनसम्पदा न देने वाले उत्पन्न जन वा पदार्थ भी (मघवानं न ममदु.) धनाढ्य पुरुषको प्रसन्न नहीं करते। (यत् जुजोषत्) जो प्रेम से सेवन करे मैं (तस्मै) उसी के लिये (उक्थ जनये) उत्तम वचन प्रकट करूं (यथा) जिससे

वह (नः नवीयः) हमारा उत्तम वचन (नृवत्) उत्तम पुरुष के समान (शृणवत्) श्रवण करे।

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

भा०—(उक्थे-उक्थे) प्रत्येक उत्तम, उपदेश करने योग्य व्यवहार ज्ञान में (सोमः) शिष्य (इन्द्रं ममाद) उत्तम आचार्य को हर्ष देने वाला हो, प्रत्येक उत्तम ज्ञान के लिये शिष्य गुरु को प्रसन्न करे। (नीथे-नीथे) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले प्रत्येक मार्ग वा सत्य व्यवहार, उत्तम २ वचन मे (सुतासः) उत्पन्न शिष्य वा पुत्रजन भी (मघवानं) दान योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को प्रसन्न करे। इसी प्रकार (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पुत्रवत् राजा को प्रसन्न करे। प्रत्येक न्याययुक्त व्यवहारो में वे प्रजाजन ऐश्वर्यवान् राजा को हृष्ट, संतुष्ट रक्खे। (समान-दक्षाः पुत्राः सबाधः पितरं न) समान वल से युक्त पुत्र जिस प्रकार पीड़ा-युक्त पिता को (अवसे हवन्ते) उसकी रक्षा के लिये प्राप्त होते है वा (सबाधः पुत्राः पितरं अवसे हवन्ते) पीड़ायुक्त पुत्र अपनी रक्षा के लिये पिता को पुकारते हैं उसी प्रकार (यत् ईम्) जब भी प्रजाजन (सबाधः) पीड़ा से पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही (पितरं) अपने पालक राजा को (समान-दक्षाः) समान बलशाली होकर (अवसे हवन्ते) अपनी रक्षा के लिये पुकारें। इसी प्रकार जब राजा (सबाधः) पीड़ा युक्त, संकट में हो तो वे (अवसे) उसकी रक्षा करने के लिये उसे (हवन्त) अपनावें।

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (सुतेषु) अपने उत्पन्न ... में

मा वो॑ र॒साऽनि॑तभा कु॒भा क्रुमु॒र्मा वः॒ सिन्धु॒र्नि री॑रमत् ।
मा वः॒ परि॑ ष्ठात्स॒रयुः॑ पुरी॒षिण्य॒स्मे इत्सु॒म्नम॑स्तु वः ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! व्यापारियो और वीर पुरुषो ! (अनितभा) जिस भूमि या गहरी नदी आदि जलमयी खाई मे सूर्य की कान्ति न जाती हो, (कुभा) वा कान्ति या दीप्ति बुरी, न्यून, अति कष्टदायी रूप से पड़े ऐसी (रसा) भूमि वा नदी (वः) आप लोगो को (मा नीरीरमत्) कभी निरन्तर विहार के योग्य न हो। इसी प्रकार (क्रुमुः सिन्धुः) ऊंची तरङ्गे फेकने वाला महानद वा सागर भी (मा निरीरमत) निरन्त निवास के लिये न हो। (पुरीषिणी सरयुः) जल वाली नदी या नहर (वः परि-स्थात्) आप लोगो के आगे बाधक रूप से न आये। (अस्मे इत् वः) हम और आप सब लोगो को सदा (सुम्नम् अस्तु) सुख प्राप्त हो।

तं वः॒ शर्धं॒ रथा॑नां त्वे॒षं ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनाम् ।
अनु॒ प्र य॑न्ति वृ॒ष्टयः॑ ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों मे से (मारुतं गणं) मनुष्यो के समूह और वायुवत् वेग से शत्रुओ का मूलोच्छेद करने वाले पुरुषो का और उनके (नव्यसीनां रथानां) नये से नये रथो का (गणं) गण और (वः शर्धं) आप लोगो के बड़े भारी बल या शरीरादि धारण करने वाले सैन्य बल के (अनु) पीछे (वृष्टयः अनु प्रयन्ति) वायु गण के साथ २ आने वाली जल वृष्टियो के समान (अनु प्रयन्ति) अच्छी प्रकार आया जाया करे।

शर्धं॑शर्धं व एषां॒ व्रातं॑व्रातं ग॒णंग॑णं सुश॒स्तिभिः॑ ।
अनु॑ क्रामेम धी॒तिभिः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(वः एषां) इन आप लोगों के (शर्धं शर्धं) बल २ को (व्रातं व्रातं) समूह २ को और (गणं गणं) गण गण को हम लोग (सु-शस्ति-भिः) उत्तम २ नाम, प्रशंसा वचनो और शासनो और (धीतिभिः) उत्तम

और विद्वान् जन (सुतेषु) अभिषिक्त पुरुषों मे (यानि) जिन २ नाना (अन्या) भिन्न २ उपदेश्य वचनो का (ब्रुवन्ति) उपदेश करते है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् , राजा (ता) उन २ उत्तम कर्मों को (नूनम्) अवश्य (चकार) करे, और (कृणवत्) अन्य अन्य भी उत्तम कर्म किया करे। (एकः) एक (पतिः) पति जिस प्रकार (जनीः इव) पुत्रोत्पादक धर्मदाराओं को (नि मामृजे) प्रथम ही दोष रहित कर लेता है इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय, (सर्वाः समानः) उत्तम मान आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान, निष्पक्ष होकर समस्त (पुरः) समक्ष आये प्रजाओ को (सु) अच्छी प्रकार (नि मामृजे) पापाचरणो से शुद्ध पवित्र करे। जनीः—दारावद्बहुवचनं, जात्याख्यायां वा।

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (पूर्वीः) सदा से विद्यमान (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर अति शीघ्र कार्य करने वाली वा मिलकर शत्रु का नाश करने वाली, (ऊतयः) रक्षाएं, वा रक्षाकारणी सेनाएं, शक्तियें (अस्मे) हमें (भद्राणि) सुखजनक, (प्रियाणि) प्रिय ऐश्वर्य (सश्चत) प्राप्त कराती हैं वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा (एकः) एक अद्वितीय, (तरणिः) सबको संकटों से पार उतारने वाला, (मघानां विभक्ता) नाना ऐश्वर्यों का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला है (तम् एव आहुः) उसका ही लोग उपदेश करते है (उत तम् एव शृण्वे) और उसको ही मैं गुरुजनों से उपदेश कथाओं द्वारा श्रवण करूं वा उसके प्रति ही मैं कान देकर उसके ज्ञान, आज्ञा वचनादि सुनूं।

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति। सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(सुते) अन्न को उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीना)

वह (नः नवीयः) हमारा उत्तम वचन (नृवत्) उत्तम पुरुष के समान (शृणवत्) श्रवण करे ।

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

भा०—(उक्थे-उक्थे) प्रत्येक उत्तम, उपदेश करने योग्य व्यवहार ज्ञान में (सोमः) शिष्य (इन्द्रं ममाद) उत्तम आचार्य को हर्ष देने वाला हो, प्रत्येक उत्तम ज्ञान के लिये शिष्य गुरु को प्रसन्न करे । (नीथे-नीथे) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले प्रत्येक मार्ग वा सत्य व्यवहार, उत्तम २ वचन मे (सुतासः) उत्पन्न शिष्य वा पुत्रजन भी (मघवानं) दान योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को प्रसन्न करे । इसी प्रकार (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पुत्रवत् राजा को प्रसन्न करे । प्रत्येक न्याययुक्त व्यवहारों मे वे प्रजाजन ऐश्वर्यवान् राजा को हृष्ट, संतुष्ट रक्खें । (समान-दक्षाः पुत्राः सवाधः पितरं न) समान बल से युक्त पुत्र जिस प्रकार पीड़ा-युक्त पिता को (अवसे हवन्ते) उसकी रक्षा के लिये प्राप्त होते हैं वा (सबाधः पुत्राः पितरं अवसे हवन्ते) पीड़ायुक्त पुत्र अपनी रक्षा के लिये पिता को पुकारते हैं उसी प्रकार (यत् ईम्) जब भी प्रजाजन (सबाधः) पीड़ा से पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही (पितरं) अपने पालक राजा को (समान-दक्षाः) समान बलशाली होकर (अवसे हवन्ते) अपनी रक्षा के लिये पुकारें । इसी प्रकार जब राजा (सबाधः) पीड़ा युक्त, संकट में हो तो वे (अवसे) उसकी रक्षा करने के लिये उसे (हवन्त) अपनावें ।

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (सुतेषु) अपने उत्पन्न [illegible]त्रों में

और विद्वान् जन (सुतेषु) अभिषिक्त पुरुषों मे (यानि) जिन २ नाना (अन्या) भिन्न २ उपदेश्य वचनो का (ब्रुवन्ति) उपदेश करते है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा (ता) उन २ उत्तम कर्मों को (नूनम्) अवश्य (चकार) करे, और (कृणवत्) अन्य अन्य भी उत्तम कर्म किया करे। (एकः) एक (पतिः) पति जिस प्रकार (जनीः इव) पुत्रोत्पादक धर्मदाराओ को (नि मामृजे) प्रथम ही दोष रहित कर लेता है इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय, (सर्वाः समानः) उत्तम मान आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान, निष्पक्ष होकर समस्त (पुरः) समक्ष आये प्रजाओ को (सु) अच्छी प्रकार (नि मामृजे) पापाचरणो से शुद्ध पवित्र करे। जनीः—दारावद्बहुवचनं, जात्याख्यायां वा।

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (पूर्वीः) सदा से विद्यमान (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर अति शीघ्र कार्य करने वाली वा मिलकर शत्रु का नाश करने वाली, (ऊतयः) रक्षाएं, वा रक्षाकारणी सेनाएं, शक्तिये (अस्मे) हमें (भद्राणि) सुखजनक, (प्रियाणि) प्रिय ऐश्वर्य (सश्चत) प्राप्त कराती हैं वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा (एकः) एक अद्वितीय, (तरणिः) सबको संकटों से पार उतारने वाला, (मघानां विभक्ता) नाना ऐश्वर्यों का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला है (तम् एव आहुः) उसका ही लोग उपदेश करते है (उत तम् एव शृण्वे) और उसको ही मैं गुरुजनों से उपदेश कथाओं द्वारा श्रवण करूं वा उसके प्रति ही मै कान देकर उसके ज्ञान, आज्ञा वचनादि सुनूं।

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति। सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(सुते) अन्न को उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीना)

खेतियों के वृद्ध्यर्थ (वृषभं) वर्षण करने वाले मेघ की विद्वान् जनस्तुति करते है और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीनां) खेती करने हारो के बीच (वृषभं) बलवान् बैल की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (वसिष्ठः) देश में वसने वाले उत्तम जन (सुते) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के निमित्त, और (ऊतये) रक्षा के लिये भी (कृष्टीनां) मनुष्यों के बीच (वृषभं) सर्वश्रेष्ठ (इन्द्रं) शत्रुहन्ता और ऐश्वर्य युक्त पुरुष की (गृणाति) स्तुति करता है। इसी प्रकार (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षार्थ उस राजा को उपदेश भी करे। हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू (नः) हमें (सहस्रिणः वाजान्) सहस्रों सुखों से युक्त ऐश्वर्य (उप माहि) प्रदान कर। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम २ उपायों से रक्षा करे। इति दशमो वर्गः ॥

[२७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं॒ नरो॑ ने॒मधि॑ता हवन्ते॒ यत्पार्या॑ यु॒नज॑ते॒ धिय॒स्ताः ।
शूरो॒ नृषा॑ता॒ शव॑सश्चका॒न आ गोम॑ति व्र॒जे भ॑जा॒ त्वं नः॑ ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् को (नेम-धिता) संग्राम में (नरः) मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं, (यत्) जो (पार्याः) पालन करने योग्य (धियः) और धारण पोषण योग्य प्रजाएं उस ऐश्वर्यवान् राजा का (युनजते) सहयोग करती है, हे राजन् ! तू वह (शूरः) शूरवीर (नृ-साता) मनुष्यों को विभक्त करने वाला, (शवसः चकानः) बल की कामना करता हुआ (ताः) उन २ मनुष्यों और उन प्रजाओं को और (नः) हमें भी (गोमति व्रजे) उत्तम वाणियों से युक्त परम प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग वा ब्रह्मपद में और (गोमति व्रजे) भूमियों से

युक्त उत्तम राज्य मे (आ भज) हमे रख और हम पर अनुग्रह कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—जिसको सब स्वीकार करते (पार्याः धियः युञ्जते) जिसको परम पद को प्राप्त होने वाली बुद्धियां, योग द्वारा प्राप्त करती है वह प्रभु हममे हो, उन मनुष्यो और उन बुद्धियो का (गोमतिं व्रजे) वाणियो से युक्त परम गन्तव्य ज्ञानमार्ग मे (आ भज) रक्खे और अनुग्रह करे।

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शुष्मः अस्ति) बल है, वह तू (सखिभ्य.) मित्र (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यो को (शिक्ष) प्रदान कर। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! (त्वं हि) तू निश्चय से (वि-चेताः) विशेष ज्ञानवान् होकर (परि-वृत राधः नः) छुपे धन के समान ही (दृढा) दृढ़ दुर्गों और परम ज्ञान को भी (अप वृधि) खोलकर हमे प्रदान कर।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्र.) शत्रुओं का नाशक पुरुष (राजा) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्या विनय से प्रकाशित और (जगत) जगत् या जंगम संसार और (चर्षणीनाम्) मनुष्यो का भी स्वामी हो। (अधि क्षमि) पृथिवी पर (यत्) जो भी (विषु-रूपं) विविध प्रकार का धन है वह भी उसी का है। (तत.) उसमे से ही वह (दाशुषे) दानशील पुरुष को भी (वसूनि ददाति) नाना धन देता है। वह (उपस्तुत) प्रशंसित होकर (अर्वाक्) हमे प्राप्त होकर (राध चोदत्) धन प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

खेतियों के वृद्ध्यर्थ (वृषभं) वर्षण करने वाले मेघ की विद्वान् जनस्तुति करते है और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीनां) खेती करने हारों के बीच (वृषभं) बलवान् बैल की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (वसिष्ठः) देश में बसने वाले उत्तम जन (सुते) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के निमित्त, और (ऊतये) रक्षा के लिये भी (कृष्टीनां) मनुष्यों के बीच (वृषभं) सर्वश्रेष्ठ (इन्द्रं) शत्रुहन्ता और ऐश्वर्य युक्त पुरुष की (गृणाति) स्तुति करता है। इसी प्रकार (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षार्थ उस राजा को उपदेश भी करे। हे विद्वन्! हे राजन्! तू (नः) हमे (सहस्रिणः वाजान्) सहस्रो सुखों से युक्त ऐश्वर्य (उप माहि) प्रदान कर। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम २ उपायो से रक्षा करे। इति दशमो वर्गः॥

[२७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रं नरो॑ ने॒मधि॑ता हवन्ते॒ यत्पार्या॑ यु॒नज॑ते॒ धिय॒स्ताः।
शूरो॑ नृषा॑ता शव॑सश्चका॒न आ गोम॑ति व्र॒जे भ॑जा॒ त्वं नः॑॥ १॥

भा०—(यत्) जो (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् को (नेमधिता) संग्राम में (नरः) मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं, (यत्) जो (पार्याः) पालन करने योग्य (धियः) और धारण पोषण योग्य प्रजाएं उस ऐश्वर्यवान् राजा का (युनजते) सहयोग करतं है, हे राजन्! वह (शूरः) शूरवीर (नृ-साता) मनुष्यों को विभक्त करने वाला, (शवसः चकानः) बल की कामना करता हुआ (ताः) उन २ मनुष्यो और उन प्रजाओं को और (नः) हमे भी (गोमति व्रजे) उत्तम वाणियों से युक्त परम प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग वा ब्रह्मपद मे और (गोमति व्रजे) भूमियों मे

युक्त उत्तम राज्य में (आ भज) हमे रख और हम पर अनुग्रह कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—जिसको सब स्वीकार करते (पार्याः धियः युञ्जते) जिसको परम पद को प्राप्त होने वाली बुद्धियां, योग द्वारा प्राप्त करती है वह प्रभु हममे हो, उन मनुष्यो और उन बुद्धियो का (गोमति व्रजे) वाणियो से युक्त परम गन्तव्य ज्ञानमार्ग मे (आ भज) रक्खे और अनुग्रह करे।

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शुष्मः अस्ति) बल है, वह तू (सखिभ्य) मित्र (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यो को (शिक्ष) प्रदान कर। हे (पुरुहूत) बहुतो से प्रशंसित ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! (त्वं हि) तू निश्चय से (वि-चेता.) विशेष ज्ञानवान् होकर (परि-वृतं राधः नः) छुपे धन के समान ही (दृढ़ा) दृढ़ दुर्गों और परम ज्ञान को भी (अप वृधि) खोलकर हमे प्रदान कर।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओ का नाशक पुरुष (राजा) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्या विनय से प्रकाशित और (जगतः) जगत् या जंगम संसार और (चर्षणीनाम्) मनुष्यो का भी स्वामी हो। (अधि क्षमि) पृथिवी पर (यत्) जो भी (विषु-रूपं) विविध प्रकार का धन है वह भी उसी का है। (ततः) उसमे से ही वह (दाशुषे) दानशील पुरुष को भी (वसूनि ददाति) नाना धन देता है। वह (उप-स्तुत) प्रशंसित होकर (अर्वाक्) हमे प्राप्त होकर (राध चोदत्) धन प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४॥

भा०—(यस्य) जिसकी (अभि-वीता) तेज से युक्त, प्रजा का रक्षण करने वाली, (दक्षिणा) दानशीलता और क्रिया सामर्थ्य, (अनूना) किसी से भी न्यून नही होकर (सखिभ्यः नृभ्यः) मित्र जनों के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य को (पीपाय) बढ़ाती है (नु चित्) वह पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (मघवा) उत्तम धन, ज्ञान का स्वामी (दानः) दान करता हुआ (नः) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये और (स-हूती) समान रूप से सबको देने की नीति से (वाजं) बल और ऐश्वर्य को (नि यमते) नियन्त्रित करता, और प्रदान करता है। राजा प्रजा की रक्षा मे और समान मूल्य पदार्थों के विनिमय से धन और बल दोनो को नियम मे रक्खे। तब उसका अप्रतिम धन, दानशक्ति और क्रिया सामर्थ्य प्रजा को सुख दे सकते है।

नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नु) शीघ्र ही (राये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और उसकी वृद्धि करने के लिये (नः वरिवः कृधि) हम प्रजाजनो की सेवा कर। प्रजा के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये राजा भी प्रजा की सेवा करे। हम भी (ते मनः) तेरे मन को (मघाय) उत्तम आदर योग्य प्रशसनीय उपाय से प्राप्त हुए धन के लिये ही (आ ववृत्याम) आकर्षण करें। आदरपूर्वक बार २ व्यवहार युक्त करें। हे विद्वान् वीर पुरुषो ! (गोमत्) गौओ और भूमियों से युक्त (अश्ववत्) अश्वों से युक्त, (रथवत्) रथों से सम्पन्न ऐश्वर्य का (व्यन्तः) उपभोग, रक्षण और प्राप्ति करते हुए (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनो से (नः पात) हमारी रक्षा करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[२८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ स्वराट्पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा वि हवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य और साक्षात् विद्योपदेश देने हारे राजन् ! आचार्य ! प्रभो ! तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (नः ब्रह्म उप याहि) हमारा बड़ा राष्ट्र और धन प्राप्त कर । हे विद्वन् ! तू हमे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करा । (ते) तेरे अधीन (हरयः) अश्वारोही गण और नियुक्त मनुष्य (अर्वाञ्चः) विनयशील और (युक्ताः) मनोयोग देने वाले हो । (विश्वे चित् मर्त्ताः हि) समस्त मनुष्य निश्चय से (त्वा वि हवन्त) तुझे विविध प्रकार से पुकारते है । हे (विश्वमिन्व) सबके प्रेरक, सर्वज्ञ, सर्वप्रिय ! तू (अस्माकम् इत्) हमारा वचन अवश्य (शृणुहि) श्रवण कर ।

हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! दुष्टनाशक ! (ते महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (हवं) उत्तम वाणी के व्यवहार, तथा यज्ञ और संग्राम को भी (वि आनड्) व्याप्त है । (यत्) जिससे हे (शवसिन्) बलवन् ! तू (ऋषीणाम्) ऋषियो, वेदज्ञ विद्वानों के (हवं, ब्रह्म) स्तुत्य ब्रह्मज्ञान और देश के धन को भी (पासि) रक्षा करता है । हे (उग्र) तेजस्विन् ! (यत्) जो (वज्र हस्ते दधिषे) शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में धारण करता है वह तू (घोरः सन्) शत्रु को मारने मे समर्थ होकर (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से (अषाढः) अन्यो के लिये असह्य (जनिष्ठाः) होजाता है । अथवा (अषाढः) असह्य, न पराजित होने वाली सेनाओ को प्रकट करता है ।

तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न्त्सं यन्नॄन्न रोद॑सी नि॒नेथ॑ ।
म॒हे क्ष॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञेऽतू॑तुजिं चि॒त्तूतु॑जिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

भा०—(रोदसी न) सूर्य जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी के पदार्थों को सन्मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार (यत्) जो पुरुष-(जोहुवानात्) निरन्तर आदर से बुलाने, पुकारने वाले, और आदरपूर्वक राज्य के नाना पदों पर बुलाये गये (नॄन्) नायक पुरुषों को (सं निनेथ) अच्छी प्रकार सन्मार्ग पर चलाता है और जो (तूतुजिः) शत्रुओं का नाशक और प्रजा का पालक होकर (अतूतुजिं) अपनी अहिंसक प्रजा और कर न देने वाले शत्रु का (अशिश्नत्) शासन करता है वह तू (हि) निश्चय से (महे क्षत्राय) बड़े भारी क्षात्र बल, और धन प्राप्त करने और (महे शवसे) बड़े भारी बल, सैन्य बल का सञ्चालन करने के लिये (जज्ञे) समर्थ होता है ।

ए॒भिर्न॑ इन्द्रा॒हभि॑र्दशस्य दुर्मि॒त्रासो॒ हि क्षि॒तयः॒ पव॑न्ते ।
प्रति॒ यच्चष्टे॒ अनृ॑तमने॒ना अव॑ द्वि॒ता वरु॑णो मा॒यी नः॑ सात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) सत्य न्याय के देखने हारे राजन् ! (नः) हमारे (दुः-मित्रासः) दुष्ट मित्र और (क्षितयः) हमारे साथ रहने वाले लोग (हि) भी (पवन्ते) तुझे प्राप्त होते हैं । तू (एभिः अहभिः) इन कुछ दिनों में, शीघ्र (दशस्य) न्याय को प्रदान कर । (यः) जो तू (अनृतम्) असत्य को (प्रतिचष्टे) प्रत्याख्यान करता है वह तू (अनेनाः) पाप रहित, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (मायी) बुद्धिमान् होकर (द्विता) सत्य और असत्य इन दोनों के बीच (नः अव सात्) हमारा निर्णय कर ।

वो॒चेमेदिन्द्रं॑ म॒घवा॑नमेनं म॒हो रा॒यो राध॑सो॒ यद्दद॑न्नः ।
यो अर्च॑तो॒ ब्रह्म॑कृति॒मवि॑ष्ठो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥१२॥

भा०—(यत्) जो (महः रायः) बड़े २ ऐश्वर्य (नः ददत्) हमें प्रदान करता है (एनं मघवानम्) उस ऐश्वर्यों के स्वामी को हम (इन्द्रम्

उत्तम कर्मों से (अनु क्रमेम) अनुक्रमण करें, अर्थात् आपके बल के कार्यो व्रताचरणों, मिल कर किये कार्यों और गणना योग्य संघों का हम उत्तम ख्यातियों और कर्मों से अनुगमन और अनुकरण करें।

कस्मा॑ अ॒द्य सुजा॑ताय रा॒तह॑व्याय॒ प्र य॑युः।

ए॒ना याम॑न म॒रुतः॥ १२॥

भा०—(मरुतः) उत्तम मनुष्य (अद्य) आज (सुजाताय) उत्तम विद्या आदि गुणो से सुसम्पन्न (रातहव्याय) दातव्य गुरुदक्षिणा देने वाले दानशील (कस्मै) किस उत्तम पुरुष के दर्शन वा पूजा सत्कार के लिये (एना यामेन) इस मार्ग से, (प्र ययुः) जाते हैं [उत्तर] उस (कस्मै) सुखरूप (सु-जाताय) उत्तम, सर्व पूज्य रूप से प्रसिद्ध, सब ज्ञानादि के दाता परमेश्वर की उपासना के लिये (मरुतः) विद्वान् गण और अध्यात्म में प्राण गण (एना यामेन) इस पूर्वोपदिष्ट याम अर्थात् नियत, व्यवस्थित विधि से (प्र ययुः) आगे उन्नति मार्ग पर बढ़े।

येन॑ तो॒काय॒ तन॑याय धा॒न्यं१॒॑ बीजं॒ वह॑ध्वे॒ अक्षि॑तम्।

अ॒स्मभ्यं॒ तद्ध॑त्तन॒ यद्व॒ ईम॑हे॒ राधो॑ वि॒श्वायु॒ सौभ॑गम्॥ १३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (येन) जिस प्रकार से आप लोग (तोकाय) उत्तम पुत्र और (तनयाय) अगली संतति पौत्र आदि को प्राप्त करने के लिये (धान्यं) आधान योग्य, (अक्षितम्) अक्षय, अमोघ (बीजं) बीज को (वहध्वे) धारण करते हो (तत्) उसको (अस्मभ्यम्) हम प्रजा जनों के कल्याण के लिये ही (धत्तन) धारण करो और हमें भी धारण कराओ। जिस (राधः) उत्तम ऐश्वर्य की हम (वः) आप लोगों से (ईमहे) याचना करते हैं वह (विश्वायु) समस्त जीवन पर्यन्त (सौभगम्) उत्तम सेवन करने योग्य, सुख कल्याणजनक हो। उसको आप धारण करो और कराओ।

इत् वोचेम) ऐश्वर्यवान्, 'इन्द्र' ही नाम से पुकारें। और (यः) जो (अर्चतः) अपने सत्कार करने वालों को (ब्रह्म-कृतिम्) धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के प्रयत्न वा साधन देता वही (अविष्ठः) सबसे उत्तम रक्षक है। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमे सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से पालन करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[२९]

वसिष्ठ ऋषि. ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट्पङ्क्तिः । ३ पांक्तिः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं सोम॑ इन्द्र॒ तुभ्यं॑ सुन्व॒ आ तु प्र या॑हि हरिव॒स्तदो॑काः ।
पिबा॒ त्व१॒॑स्य सुषु॑तस्य॒ चारो॒र्ददो॑ म॒घानि॑ मघवन्निया॒नः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (सुन्वे) उत्पन्न किया जाता है। हे (हरिवः) उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (तदोका) तू उस श्रेष्ठ गृह मे निवास करता हुआ (तु) भी (आ याहि) हमे प्राप्त हो और (प्र याहि) प्रयाण कर। (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम रीति से उत्पन्न राष्ट्र के ऐश्वर्य तथा प्रजाजन को (तु) भी (पिब) उपभोग और पालन कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्राप्त होता हुआ तू हमे (मघानि) उत्तम ऐश्वर्य (दद) प्रदान कर।

ब्रह्म॑न्वीर॒ ब्रह्म॑कृतिं जुषा॒णो॑ऽर्वाची॒नो हरि॑भिर्याहि॒ तूय॑म् ।
अ॒स्मिन्नू॒ षु सव॑ने मादयस्वोप॒ ब्रह्मा॑णि शृणव इ॒मा नः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! चारों वेदों के जानने हारे ! हे (वीर) विविध विद्याओं का उपदेश करने हारे ! हे महान् राष्ट्र के पालक ! हे शूरवीर राजन् ! तू (ब्रह्मकृति) परमेश्वर के बनाये जगत् को, हे वीर ! तू बड़े राष्ट्र के कार्य को (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हरिभिः)

उत्तम पुरुषों सहित (अर्वाचीनः) अब भी (तूयम् याहि) शीघ्र प्राप्त हो। (अस्मिन् सवने) इस ऐश्वर्यमय यज्ञ, वा राष्ट्र शासन के कार्य में (नु सु मादयस्व) शीघ्र ही तू स्वयं प्रसन्न होकर अन्यों को भी सुखी कर। और (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम वेद-वचनों को (उप श्रृणवः) श्रवण कर।

का ते॑ अ॒स्त्यरं॑कृतिः सू॒क्तैः क॒दा नू॒नं ते॑ मघव॒न्दा॒शेम।
विश्वा॑ म॒तीरा त॑तने त्वा॒याधा॑ म इन्द्र शृणवो॒ हवे॒मा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम और दातव्य ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामिन्! (ते) तेरी (सूक्तैः) उत्तम वचनों और वेदविद्या के प्रवचनों से (का अरंकृतिः अस्ति) क्या ही, कैसी उत्तम शोभा है। वे उत्तम वचन और विद्या के गुप्त रहस्य तुझे आभूषण के समान सुशोभित करते है। हे ऐश्वर्यवन्! हम शिष्यगण (ते) तेरे लिये (नूनं) सत्य कहो, आज्ञा करो (कदा दाशेम) कब २ उपहार गुरु दक्षिणादि प्रदान करें (त्वाया) तुझ से ही हमारी (विश्वाः मतीः) सब बुद्धियां (आ ततने) विस्तृत ज्ञान वाली होती है। (अध) और हे (इन्द्र) अखिल ज्ञानप्रद! (मे इमा हवा) मेरे ये ग्राह्य पदार्थ और प्रार्थना के वचन (श्रणवः) श्रवण करो और (हवा) ग्राह्य ज्ञानोपदेश (मे श्रणवः) मुझे श्रवण कराओ।

उ॒तो घा॒ ते पु॑रु॒ष्या॒३॒॑ इदा॑स॒न्येषां॒ पूर्वे॑षा॒मशृ॑णो॒र्ऋषी॑णाम्।
अधा॒हं त्वा॑ मघवञ्जोहवीमि॒ त्वं न॑ इन्द्रासि॒ प्रम॑तिः पि॒तेव॑ ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्या के ऐश्वर्य का दान करने हारे! (उतो घ) और (येषाम्) जिन (पूर्वेषां ऋषीणाम्) पूर्व के विद्यमान सत्य ज्ञान के द्रष्टा गुरुजनों के ज्ञान को तू (अश्रृणोः) श्रवण करता रह। (ते इत्) वे भी निश्चय से (पुरुष्याः आसन्) पुरुषों में उत्तम, मनुष्यों के हितकारी ही थे। हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनवन्! (अध) और (अहं) मैं (त्वा) तुझे (जोहवीमि) अपना गुरु स्वीकार करता हूं, (त्वं) तू

(प्रमति.) उत्तम ज्ञान और बुद्धि वाला होकर (नः पिता इव असि) हमारे पालक पिता के समान है ।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः । यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८ । मं० ५ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४, ५ स्वराट् पङ्क्तिः ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य । महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! राजन् ! हे प्रभो ! तू (शवसा) बल और ज्ञान सहित या उसके द्वारा (नः आयाहि) हमे प्राप्त हो । हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्य) इस (रायः) धनैश्वर्य का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो । वा, (अस्य वृधः रायः भव) इस बढ़ाने और बढ़ने वाले ऐश्वर्य का स्वामी हो । हे (सुवज्र) उत्तम वीर्यवन् ! हे (शूर) शत्रुनाशन ! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! जीवों के पालक ! तू (महे नृम्णाय) बड़े भारी धनैश्वर्य और (महि क्षत्राय) बड़े भारी शत्रुनाशक राष्ट्र और (पौंस्याय) पौरुष, बल के प्राप्त करने के लिये उद्यत हो ।

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ । त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (शूराः) शूरवीर पुरुष (वि वाचि) विविध वाणियों के प्रयोग करने के अवसर अर्थात् संग्राम मे और स्तुतिकाल मे (हव्य) पुकारने और स्तुति करने योग्य (त्वा उ) तुझको ही (हवन्ते)

पुकारते और स्तुति करते हैं। (तनूषु) शरीरों में (सूर्यस्य सातौ) सूर्य नाम दक्षिण नासागत प्राण के प्राप्त होने पर आवेश में अथवा (तनूषु) अंगों में सूर्य के समान तेज के प्राप्त करने के निमित्त भी (त्वा उ हवन्ते) तेरी ही स्तुति करते है।। (त्वं विश्वेषु जनेषु) तू सब मनुष्यो मे (सेन्यः) सेना नायक होने योग्य है। और (त्वं) तू (वृत्राणि) वढ़ते शत्रु सैन्यों को (सु हन्तु) अच्छी प्रकार दण्डित कर और (रन्धय) वश कर अथवा (सुहन्तु रन्धय) उत्तम हनन साधनों से शत्रुओं का नाश कर।

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु।
न्य१ग्निः सीदुदसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (सुदिना) शुभ दिनो को (वि उच्छान्) खूब प्रकाशित कर (दधे) धारण करता है (केतुम् दधे) ज्ञान प्रकाशक को भी धारण करता है, वह (सुभगाय देवान् हुवानः होता न) सुख, कल्याण के लिये किरणों को देता हुआ यज्ञ मे देवताओं को हवि देता या आह्वान करते हुए होता या अग्नि के समान प्रतीत होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! तू भी (सुदिना अहा) शुभ दिनों को प्राप्त कर (व्युच्छान् देवान् दधः) खूब तेजस्वी उज्ज्वल वीर पुरुषों और शुभ गुणों को धारण कर और (समत्सु) संग्राम के अवसरों मे (उपमं) आदर्श रूप (केतुम्) ध्वजा वा ज्ञापक चिह्न को (दधः) धारण कर। तू (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और (असुरः न) प्राणवत् सर्वत्र सबको जीवन देने वाला वा वायुवत् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर (होता) सबको वृत्ति देने वाला होकर (देवान्) विजयेच्छुक, वीर पुरुषों को (सु-भगाय) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (हुवान) बुलाता, उनको स्वीकार करता तथा युद्धाग्नि मे होता के तुल्य मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ (नि सीदत्) विराजे। (२) विद्वान् (उपमं केतुम् दधत्) सर्वोपमायोग्य ज्ञान धारण करे। (देवान् हुवानः) ज्ञानेच्छुकों को ज्ञान

प्रदान करता हुआ (अग्निः असुरः न निसीदत्) अग्निवत् सुप्रकाशक और वायुवत् सर्वप्रिय होकर विराजे ।

वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर दर्दतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! हे (देव) दानशील ! (मघानि) नाना ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (ते) तेरी (ये च स्तवन्त) जो लोग स्तुति करते है (ते) वे और (वयम्) हम (स्वाभुवः) उत्तम रीति से समृद्ध और सामर्थ्यवान् होकर (जरणाम्) उत्तम स्तुति और दीर्घ आयु को (अश्नवन्त) प्राप्त हो । तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषो को (उपमं वरूथं) उत्तम गृह और कष्टवारक सैन्य (यच्छ) प्रदान कर ।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
योऽर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५।१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८ । मं० ५ ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१ विराड्गायत्री । २, ८ गायत्री । ६, ७, ९ निचृद्गायत्री । ३, ४, ५ आर्च्युष्णिक् । १०, ११ भुरिगनुष्टुप् । १२ अनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र लोगो ! आप लोग (सोमपाव्ने) सोम पान करने वाले यजमान, 'सोम' अर्थात् वीर्य का पालन वा रक्षण करने वाले ब्रह्मचारी, 'सोम' अर्थात् शिष्य और पुत्र के पालन करने वाले गृहपति और आचार्य, तथा 'सोम' ऐश्वर्य और अन्न के पालक, राजन्य और वैश्य तथा 'सोम' ब्रह्मज्ञान के पान करने वाले मुमुक्षु और सोम अर्थात्

उत्पन्न जगत् के पालक परमेश्वर (हर्यश्वाय) मनुष्यों मे श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, वेगवान् अश्वो के स्वामी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अन्नदाता, भूमिपालक, आत्मा आदि के लिये (मादनं) अतिहर्षजनक सुखदायी (प्र गायत) वचन का उपदेश करो वा उसके गुणो का वर्णन किया करो ।

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

भा०—(सु-दानवे) उत्तम दान देने हारे (सत्य राधसे) सत्य ज्ञान और न्याय के धनी पुरुष की प्रशंसा के लिये मैं (उक्थं) उत्तम वचन (शंसे) अवश्य कहूँ । (यथा) जिस प्रकार (नरः) लोग उसके लिये (द्युक्षं) उत्तम अन्न आदि का सत्कार करते है वैसे ही हम लोग उसका (द्युक्षं चकृम) सत्कार किया करें ।

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे लिये (वाज-युः) अन्न, ज्ञान, बल वेग आदि की कामना करने वाला, (गव्यु) भूमि, इन्द्रिय सामर्थ्य, वाणी आदि चाहने वाला हो । हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धि के स्वामिन् ! हे (वसो) सब मे बसने और बसाने हारे ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) ऐश्वर्य एवं हित, रमणीय कार्य को चाहने वाला हो । अथवा हे राजन् ! विद्वन् ! तू हमारा बल, ऐश्वर्य, भूमि, वाणी, सुवर्णादि का स्वामी है ।

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे जितेन्द्रिय ! हे (वृषन्) बलवन् ! सुखों के देने वाले ! हे (वसो) बसने और बसाने वाले ! (वयम्)

हम लोग (त्वायवः) तेरी कामना करते हुए, तुझे चाहते हुए (अभि प्र नोनुमः) खूब स्तुति और आदर विनय करते हैं (अस्य तु नः विद्धि) तू हमारी इस अभिलाषा को जान ।

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हमें (निदे) निन्दक (वक्तवे) गर्हित, (अराव्णे) अदानशील, अराति, शत्रु के हित के लिये (मा रन्धीः) मत दण्डित कर, उसके अधीन भी मत कर, और (मम त्वे अपि क्रतुः) मेरी जो तेरे में सद् बुद्धि है उसे भी तू नष्ट मत होने दे ।

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! (त्वं) तू (स-प्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (वर्म असि) कवच के समान रक्षक, और (पुरः योधः च) आगे बढ़कर युद्ध करने हारा भी है । (त्वया युजा) तुझ सहायक से मैं (प्रति ब्रुवे) शत्रु का उत्तर दूं ।

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः ।
मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुदलविदारक ! जिस प्रकार सूर्य के अधीन (स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते) जल और अन्न से युक्त आकाश और पृथिवी दोनों परस्पर स्थिर हैं उसी प्रकार (यस्य ते सहः) जिस तेरे बल के (अनु) अनुकूल रहकर (स्वधावरी रोदसी) अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त स्त्री पुरुष, वा राजा प्रजा वा राष्ट्र और सेनावर्ग दोनों ही (मम्नाते) परस्पर मिलकर रहते हैं वह तू (महान् असि) गुणों और बलों में महान् हो ।

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी।
नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (मरुत्वती) बलवान् मनुष्यों वाली, (स-यावरी) तेरे साथ प्रयाण करने वाली (द्युभिः सह) तेजो, और धनों के साथ बढ़ती हुई, (वाणी) शत्रुहिंसक वाक् आदि शस्त्रों से सम्पन्न सेना (तं त्वा परि भुवत्) उस तुझको सदा घेरे रहे, वह सदा तेरी आज्ञाकारिणी हो। और तुझको (मरुत्वती वाणी) मनुष्यों की स्तुति उत्तम गुणों सहित वाणी प्राप्त हो। और विद्वान् को (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजो, उत्तम गुणों और काम्य फलों से युक्त (स-यावरी) सदा साथ विद्यमान (मरुत्वती) उत्तम विद्वानों से प्राप्त (वाणी) वाणी, वेदविद्या, (परि भुवत्) सुशोभित करे।

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि।
सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! (ऊर्ध्वासः) जो उत्तम कोटि के (इन्दवः) समस्त ऐश्वर्य, एवं ऐश्वर्ययुक्त, आनन्दित जन हैं वे (द्यवि) इस पृथिवी पर (त्वा दस्मम्) शत्रुनाशक तुझ को ही (उप-भुवन्) प्राप्त हों और (त्वा अनु भुवन्) तेरे अनुकूल हों। (कृष्टयः) सब प्रजाजन (ते सं नमन्त) तेरे लिये विनय से झुकें।

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (वः) अपने में से (महि-वृधे) बड़ों के बढ़ाने वाले, बड़ों का आदर सत्कार करने वाले, (महे) स्वयं गुणों में महान् के आदरार्थ (प्र भरध्वम्) उत्तम २ पदार्थ प्रस्तुत करो। और (प्र चेतसे) उत्तम चित्त वाले शिष्य और उत्तम ज्ञान वाले विद्वान् के लिये (सुमति) शुभ मति और उत्तम ज्ञान (प्र कृणुध्वम्) अच्छी प्रकार

सम्पादन करो। उसको ज्ञान प्राप्त करने के उत्तम से उत्तम साधन प्रदान करो। हे राजन्! विद्वन्! (त्वं) तू (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों का धन और विद्या, बल से पूर्ण करने वाला होकर (पूर्वीः विशः) पिता पितामहादि से प्राप्त प्रजाओं को (प्र चर) प्राप्त कर। उसमें अपना अधिकार फैला और हे विद्वन्! तू उनमें परिव्राजक होकर ज्ञान प्रसार कर।

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः॥ ११॥

भा०—(उरु व्यचसे) बड़े विश्व में व्यापक (महिने) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुति और (ब्रह्म जनयन्त) वेदमन्त्र प्रकट करते हैं। (धीराः) वे उसी के ध्यान में मग्न होकर (तस्य व्रतानि) उसके निमित्त करने योग्य धर्म कार्यों का (न मिनन्ति) कभी नाश नहीं करते। इसी प्रकार बड़े राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्य वाले महान् राजा के लिये विद्वान् लोग (सु-वृक्तिम्) उत्तम शत्रुवर्जक और पापनिवारक साधन और (ब्रह्म) ऐश्वर्य को उत्पन्न करें उसके बनाये (व्रतानि) कर्त्तव्य नियमों का नाश न करें।

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन्॥ १२॥ १६॥

भा०—(वाणीः) बाणवत् शत्रुनाशक सेनाएं (अनुत्त-मन्युम्) मन्यु, शत्रु को उच्छिन्न करने के प्रबल संकल्प से युक्त (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (राजानं) तेजस्वी राजा को (सत्रा) अपने साथ (सहध्यै) शत्रु को पराजय करने के लिये (दधिरे) धारण करें। हे प्रजाजन! (हर्यश्वाय) मनुष्यों में, अश्व के समान बलवान्, वेगवान्, श्रेष्ठ पुरुष की वृद्धि के लिये (आपीन्) अपने आप्त बन्धु जनों को भी (सं बर्हय) अच्छी प्रकार बढ़ा, उनको उत्साहित कर। (२) (वाणीः) उत्तम स्तुतियां, वा याचना

प्रार्थना करने वाली प्रजाएं भी, (अनुत्त-मन्युम्) क्रोध रहित, प्रसन्न राजा वा प्रभु को, अन्तः और बाह्य शत्रु के विजय के लिये धारण करें। उसके ही प्राप्त जनों को बढ़ावें। इति षोडशो वर्गः ॥

[३२]

वासिष्ठः। २६ वासिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, २४ विराड् बृहती। ६, ८, १२, १६, १८, २६ निचृद्बृहती। ११, २७ बृहती। १७, २५ भुरिग्बृहती। २१ स्वराड्बृहती। २, ६ पङ्क्तिः। ५, १३, १५, १६, २३ निचृत्पङ्क्तिः। ३ साम्नी पंक्तिः। ७ विराट् पङ्क्तिः। १०, १४ भुरिगनुष्टुप्। २०, २२ स्वराडनुष्टुप् ॥ सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! (वाघतः) विद्वान् लोग भी (अस्मत् आरे) हम से दूर (त्वा मो सु निरीरमन्) तुझे आनन्द विनोद में न रमने दें। (आरात्तात् चित्) दूर रहता हुआ भी तू (नः सधमादं आ गहि) हमारे साथ आनन्द हर्ष करने के निमित्त प्राप्त हो। (इह वा) और इस राष्ट्र वा जगत् में (सन्) रहकर (नः उप श्रुधि) हमारे वचन श्रवण कर।

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! हे प्रभो! परमेश्वर! (इमे ब्रह्म कृतः) ये अन्न, धन और वेद द्वारा स्तुति करने वाले लोग (मधौ मक्षः न) मधु, वा मधुर पदार्थ पर मधुमक्खी के समान (ते सुते) तेरे ऐश्वर्य या शासन में (आसते) प्रेम पूर्वक विराजते हैं। और (जरितारः) उपदेष्टा, स्तुतिशील (वसूयवः) धन प्राण और नाना लोकों की कामना वाले लोग (रथे न पादम्) रथ में पैर के समान (इन्द्रे कामम् आदधुः) ऐश्वर्यप्रद, परमैश्वर्ययुक्त तुझ प्रभु में ही अपनी समस्त कामना वा अभिलाषा को स्थिर करते हैं।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (निदः) निन्दा करने वाले पुरुषो को (अति इयाम) अतिक्रमण करें । उनकी निन्दाओं की परवाह न करके आगे उन्नति मार्ग पर बढ़ें । (स्वस्तिभिः) सुख-जनक कल्याणकारी उपायों से (अवद्यम्) निन्दनीय कार्य को (हित्वा) छोड़ कर (अरातीः) शत्रुओं को (तिरः अति इयाम) तिरस्कार कर उन से भी आगे बढ़े, उन पर विजय प्राप्त करें । (आपः वृष्ट्वी) जलों की वर्षा कर (शं) शान्तिकारक, सुखजनक (योः) दुःख वारक (भेषजम्) औषध आदि को प्राप्त करें और (सह स्याम) सदा अपने लोगों के साथ सुख से बने रहें ।

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

भा०—हे (समह) पूजा सत्कार योग्य जन ! और हे (नरः) नायक (मरुतः) वीर पुरुषो ! (यं त्रायध्वे) आप लोग जिस की रक्षा करते हो (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) उत्तम विद्वान् और तेजस्वी तथा दानशील, व्यवहारकुशल (असति) हो जाता है । (ते) वैसे ही वे हम भी उत्तम विद्वान्, दानी, तेजस्वी आदि (स्याम) हो जावें ।

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वा इव सखीरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥१३॥

भा०—हे विद्वान् शासक ! तू (स्तुवतः) उत्तम स्तुति करने और उपदेश करने वाले (भोजान्) प्रजा के पालक पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर, उनके प्रति अपने उत्तम वचन कह । वे प्रजाजन (अस्य या-मनि) इसके उत्तम शासन में (यवसे गावः न) अन्नादि उपभोग वा

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

भा०—मै (रायस्कामः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ, (पितरं पुत्रः न) पिता को पुत्र के समान (सु-दक्षिणं) उत्तम दानशील, उत्तम क्रिया-सामर्थ्यवान् , (वज्रहस्तं) बलवीर्य सम्पन्न, बल से शत्रु को मारने वाले राजा को अपना (पितरं) पालक (हुवे) स्वीकार करता हूं ।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघु० ॥

इमं इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥

भा०—(इमे) ये (दध्याशिरः) राष्ट्र को धारण करने और उसका उपभोग करने वाले (सोमासः) ऐश्वर्य युक्त तेरे शासक जन (सुन्विरे) प्रजाओ का शासन करे । हे (वज्रहस्त) बलवीर्य को हाथों मे धारण करने हारे राजन् ! (पीतये) राष्ट्र को पालन करने के लिये (तान् आ याहि) उनको प्राप्त कर और (हरिभ्याम्) उत्तम अश्वो से तू (ओक. आयाहि) अपने गृह, भवन को आ । इसी प्रकार ध्यान धारणा वाले जन प्रभु की आराधना करते है । वह उनके आनन्द देने और रक्षा करने के लिये प्राप्त है ।

श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५॥१७॥

भा०—(वसूनां) बसे हुए प्रजाजनो की (गिर.) वाणियो को जो राजा (श्रुत्कर्ण.) श्रवण करने वाले सावधान कानों से (श्रवत्) सुने, वही (ईयते) आदरपूर्वक प्रार्थना किया जाता है । वह (नः गिरः चित् नु) हमारी वाणियों को (मर्धिषत्) चाहे । (सद्यः चित्) अति शीघ्र (यः) जो (शता सहस्राणि) सैकड़ों और सहस्रों को (ददत्)

प्रदान करे। (दित्सन्तम्) दान देना चाहने वाले को (न किः आ मिनत्) कोई भी पीड़ित या दुखी न करे।

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति॥ ६॥

भा०—(यः) जो पुरुष है (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे! और धनों के प्राप्त करने हारे राजन्! (यः) जो (ते) तेरे (गभीरा) गम्भीर (सवना) शासनों, आदेशों को (सुनोति) करता और (आ-धावति च) आगे वेग से बढ़ता है (सः) वह (वीरः) विविध विद्या और बल से युक्त पुरुष (इन्द्रेण) ऐश्वर्य और (नृभिः) उत्तम नायकों सहित (अप्रतिष्कुतः) सबसे बढ़कर (शुशुवे) होजाता है।

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम्॥ ७॥

भा०—(यत्) जो तू (शर्धतः) बलवान् शत्रुओं को (सम् अ-जासि) एक साथ उखाड़ने मे समर्थ हो, और (शर्धतः सम् अजासि) बलवान् उत्साहवान् पुरुषों को सम्यक् मार्ग मे एक साथ ही सेनावत् सञ्चालित करता है, वह तू (मघोनां) उत्तम धन धान्य वाले, पुरुषों के (वरूथं) गृह के समान शरण योग्य, रक्षक (भव) हो। हम (त्वाहतस्य) तेरे से मारे गये (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (वेदनं) धन सम्पद् को (वि भजेमहि) विविध प्रकार से बांट ले और सेवन करे, (दुःनशः) तू कठिनता से नाश होने योग्य, सुदृढ़ होकर हमारे (गयम् आ भर) गृह को प्राप्त करा और (नः गृहम् आ भर) हमारे गृह को पूर्ण कर।

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सोमपाव्ने) 'सोम' ओषधिरस का पान करने वाले के लिये (सोमम् सुनोत) उत्तम ओषधिरस उत्पन्न करो। इसी प्रकार (सोमपाव्ने) ऐश्वर्य को पालन करने मे समर्थ (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणे) बलवान् पुरुष के लिये (सोमं) ऐश्वर्य (सुनोत) उत्पन्न करो और उक्त वीर्यवान् 'इन्द्र' पद के लिये वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक करो। (अवसे) तृप्ति के लिये (पक्तीः) नाना पकने योग्य अन्नों को (पचत इत्) पकाओ। (पृणन् इत्) सबको पालन और पूर्ण करने वाला ही (मयः पृणते) सबको सुख प्रदान करता है।

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोमिनः) 'सोम' धनैश्वर्य, वीर्य अन्नादि के पालक जनो ! आप लोग (मा स्रेधत) विनाश और परस्पर का नाश मत करो। (महे राये) बड़े भारी धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और (आ-तुजे) सब प्रकार के बल प्राप्त करने कराने वाले के लिये सर्वतः पालक ऐश्वर्य के लिये (दक्षत) सदा यत्न करते रहो। (तरणिः इत्) सब संकटो को पार करने वाला और शीघ्रकारी पुरुषार्थी पुरुष ही (जयति) विजय प्राप्त करता है और (पुष्यति) पुष्ट, समृद्ध हो जाता है। (देवासः) विद्वान् पुरुष और उत्तम गुण भी (कवत्नवे) कुत्सित आचार वाले पुरुष के हित के लिये (न) नहीं होते।

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१०॥१८॥

भा०—(यस्य) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् , शत्रुहन्ता, तत्वदर्शी वीर, विद्वान् और प्रभु (अविता) रक्षक है यस्य (मरुत) जिसके रक्षक और शिक्षक प्राणवत् प्रिय और वायुवद् बलवान् विद्वान् जन हैं (स.) वह विद्वान् पुरुष (गोमति व्रजे) वाणियों से युक्त प्राप्तव्य ज्ञान

मार्ग मे (गमत्) जाता और (स गोमति व्रजे) वह नाना भूमियों और गवादि पशुओं से सम्पन्न प्राप्तव्य पद को (गमत्) प्राप्त करता है। (सु-दासः) उत्तम दान देने वाले के (रथं) रथ को (नकिः परि आस) कोई पलट नहीं सकता और (न रीरमत्) वह अन्यों को सुख नहीं दे सकता, न स्वयं सुख पाता है।

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यस्य भुवः) जिसकी भूमि की (त्वम् अविता) तू रक्षा करता (वाजयन्) ऐश्वर्य अन्न आदि की कामना करता रहता है वह (मर्त्यः) मनुष्य (वाजं गमत्) ऐश्वर्य अन्नादि (गमत्) प्राप्त करता है इसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यस्य भुवः) जिस उत्पन्न हुए के प्राणों का तू रक्षक है वह (वाजयन् मर्त्यः) मनुष्य बल, अन्न और ज्ञान की कामना करता हुआ अवश्य (वाजं गमत्) बल, अन्न और ज्ञान प्राप्त करता है। हे (शूर) शत्रुनाशक ! वीर स्वामिन् ! तू (अस्माकम्) हमारा और हमारे (नृणाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों का और हे प्रभो ! (अस्माकं नृणाम् रथानाम्) हमारी इन्द्रियों और रमण योग्य देहों का भी (अविता) रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे और हमारा विचार रख।

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥

भा०—(यः) जो पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, सूर्य के समान तेजस्वी (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी और अश्व सैन्यों का स्वामी होकर (सोमिनि) बल, वीर्य, और ऐश्वर्यवान् पुरुष में (दक्षं दधाति) अपना ज्ञान और कर्म बल धारण करा सकता है। (जिग्युषः न)

विजेता के समान (अस्य इत् नु) उसका (अंशः धनं न) भाग वा धन (उद्रिच्यते) सबसे अधिक होता है।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यज्ञियेषु) पूजा सत्कार करने योग्य जनो और (यज्ञियेषु) यज्ञ, दान, सत्संग प्रजापालन आदि व्यवहारो मे (अखर्वं) बहुत अधिक (सु-धितम्) उत्तम रीति से रक्षित, विहित, हितकारी, (सुपेशसं) उत्तम रूप से युक्त, भव्य, (मन्त्रं) मन्त्र को (आ दधात) सब ओर से धारण करो। (पूर्वीः चन) पूर्व के भी (प्र-सितयः) उत्तम प्रेमबन्धन (तं तरन्ति) उसको प्राप्त होते है (य) जो पुरुष (कर्मणा) अपने सत्कर्म से (इन्द्रे भुवत्) परम ऐश्वर्य-वान् राजा या प्रभु परमेश्वर मे दत्तचित्त रहता है।

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिपासति ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वा वसुम्) तुझ से ऐश्वर्य पाने वाले और (त्वा वसुम्) तुझ मे ही बसने वा रमने और तेरे अधीन रहने वाले (तं) उस पुरुष को (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (आ दधर्षति) तिरस्कार कर सकता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे (पार्ये दिवि) पालन योग्य व्यवहार और संसार से पार उतारने और संकटो से बचाने वाले ज्ञान-प्रकाश में (श्रद्धा इत्) सत्य धारण ही है जिससे प्रेरित होकर (वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष (वाजं-सिपासति) अन्न, ज्ञान व ऐश्वर्य का भोग करता है।

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥ १९ ॥

भा०—(ये) जो लोग (प्रिया वसु) प्रिय धन (ददति) प्रदान

नः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को ही (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं का
अपने ऐश्वर्य और ग्राम आदि कार्यों वा धनों को प्राप्त करने के उद्योगों में
(वः) आप लो नित्य प्रेरित किया कर। हे (हरि-अश्व) हे उत्तम वलवान्
सित (सुद्र वं) न् (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति और न्याय-
सुद्रवं नेमिम्) (सूरिभिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से (विश्वा
नमाऊं। उसको कार के दुःखजनक कारणों और दुष्टाचारों को (तरेम)
न दुःष्टुती मत

सुशाक्रिरिन्म वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
स्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (अवमं वसु)
स्तुति अर्थात् धन वा प्रजा का पालक धन, गौ, अन्न, भूमि, वस्त्रादि
(स्वधन्तं) मं वसु) मध्यम कोटि का धन, चान्दी, सोना आदि सिक्के के
मिलता। औ पदार्थों के विनिमय का माध्यम बन सके जिससे (तां पुष्यसि)
सामर्थ्य भी पुष्ट करता है वह सब (तव इत्) तेरा ही है और (परमस्य)
(यत्) जो विश्वस्य) समस्त ऐश्वर्य के द्वारा (सत्रा) तू अपने सत्य
व्यवहार मे के वल से (राजसि) राजा के समान है। (गोषु) सब भूमियों
देने की (करने के लिये (त्वा) तुझे (नकिः वृण्वते) भला कौन स्वीकार
अभि त्वां सभी तुझे सर्वेश्वर स्वीकार करते हैं। अथवा-(नकिः त्वा वृण्वते)
ईशानमस्यो पर कोई नहीं रोक सकता।

भा० वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः।
तुही गोअ विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥

स्थावर ०—(ये) जो (ईम्) सब ओर (आजयः भवन्ति) संग्राम
निर्माता उनमें सर्वत्र (त्वं) तू ही (विश्वस्य धनदाः श्रुतः असि) सबका
तेरे प्रति हारा प्रसिद्ध है। हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित ! (अयं)
अथात् विश्वः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी में रहने वाला राजवर्ग और
गवाले दे

ावर्ग (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ (तव नाम) स्व के स्वामी के
ाने वाले शासन और तेरे ही अधीन आजीविका, रते है।
हता है। निष्यते।

दिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। ामहे ॥ २३ ॥
ोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय दे के देने हारे

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जिस प्र त्वावान्) तेरे
ः) जितने भी धनैश्वर्य का (त्वम्) तू स्वामी है (ए स्वी, शुद्ध (न
(अहम्) मैं भी (ईशीय) ऐश्वर्य का स्वामी हो जा (न जातः)
ो) शत्रुकर्षण करने वाले बसी प्रजाजनो के स्वामिन् (वाजिनः)
े वाले! मैं उस धन से (स्तोतारम् इत्) स्तुति करने ो और अश्व,
दिधिषेय) पालन करूं। मैं अपना धन (पापत्वाय) र भूमियो के
द्ध के लिये (न रासीय) कभी न दूं।

ात्यमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन

भा०—मैं ऐश्वर्यवान् होकर (दिवे दिवे) प्रति दिन (कुह जत धन के
ही भी विद्यमान वा कुछ भी प्राप्त करने योग्य (महयते) ऐश्वर्यो का
रुप के आदरार्थ (राय) नाना धन (शिक्षेयम् इत्) दिया येक पालन
(मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (त्वत् अन्यत्) तुझसे दूसरा (न करने योग्य
वसीयः) श्रेष्ठ (आप्यं) बन्धु और (पिता चन) पालक र (कनी-
स्ति) नही है। आ भर)

राणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥२०

भा०—(तरणि इत्) संकट से तारने वाला, वा शीघ्रता ॥
रने मे कुशल पुरुष ही (युजा पुरन्ध्या) नगर को धारण करने (नः
ीति वा नगररक्षक (युजा) सहायक वर्ग से (वाजं सिष) हमें

अपने ऐश्वर्य और
(वः) आप लो
सित (सुद्रवं)
सुद्रवं नेमिम्)
नमाऊं। उसको
न दुःष्टुती मर्त्
सुशक्तिरिन्म
भा०—
स्तुति अर्थात्
(स्त्रेधन्तं)
मिलता। औ
सामर्थ्य भी
(यत्) जो
व्यवहार मे
देने की (
अभि त्वा
ईशानमस्य
भाव
दुही गौ
स्थावर च
निर्माता
तेरे प्रति
अथान

बल को न्यायपूर्वक विभक्त करता है। हे प्रजाजनो! मैं गों मे से (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त (पुरुहूतं) बहुतों मे प्रशं उत्तम, स्थिर पुरुष को (गिरा) वाणी से (तष्टा इव शिल्पी से बनाई काष्ठमय चक्र की धार के तुल्य (नमे) विनयशील करूं।

र्यो विन्दते वसु न स्त्रेधन्तं रयिर्नशत्।
यच्चन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (दुःस्तुती) दुष्ट पुरुष की स्तुति, सेवा, बुरी निन्दा से (वसु न विन्दते) धन को प्राप्त नहीं करता। हिंसक पुरुष को (रयिः) ऐश्वर्य (न नशत्) कभी नहीं र उसको (सुशक्तिः इत् न नशत्) उत्तम प्रशंसनीय शक्ति, प्राप्त नहीं होता। हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! (पार्ये दिवि) पालने और पूर्ण करने योग्य कामनायोग्य (मावते) मेरे जैसे याचक को (देष्णं) देने योग्य धन सुशक्ति इत् तुभ्यम्) उत्तम शक्ति भी तेरी ही है।

शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

—हे (शूर) दुष्टों के नाशक! (अदुग्धाः धेनवः इव) न ों के समान हम लोग (अस्य जगतः) इस जंगम और (तस्थुषः) ल और अचल संसार के (ईशानम्) स्वामी, सत्वात्मक और (स्वर्दृशं त्वाम्) सर्वद्रष्टा तुझको वा सुख आनन्द दर्शन के लिये (अभि नोनुमः) हम झुकते हैं। तेरी प्रेम से स्तुति करते हैं। जिस प्रकार न दुही गौएं प्रेम से अपना दुग्ध सर्वस्व देने के लिये प्रति नमती हैं उसी प्रकार हम प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करने

के लिये झुके। हम प्रजाजन भी दुःखी अकिञ्चन तुझ सर्वस्व के स्वामी के प्रति पुत्र, धन, अन्नादि सुख प्राप्तयर्थ झुकते और स्तुति करते है।

न त्वावाँ अ॒न्यो दि॒व्यो न पार्थि॑वो न जा॒तो न ज॑निष्यते।
अ॒श्वा॒यन्तो॑ मघवन्निन्द्र वा॒जिनो॑ ग॒व्यन्त॑स्त्वा हवामहे॥ २३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अन्न जल, धनादि के देने हारे राजन्! प्रभो! (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! (त्वावान्) तेरे जैसा, (अन्यः) दूसरा, (न दिव्यः) न ज्ञानवान्, तेजस्वी, शुद्ध (न पार्थिव) न दूसरा कोई इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। ऐसा (न जातः) अभी तक न उत्पन्न हुआ (न जनिष्यते) न पैदा होगा। हम (वाजिनः) ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि से युक्त, (अश्वायन्तः) उत्तम विद्वानो और अश्व, राष्ट्र, अश्वसैन्य के इच्छुक और (गव्यन्तः) गौ, वाणियों और भूमियो के इच्छुक होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति प्रार्थना करते है।

अ॒भी ष॒तस्तदा भ॒रेन्द्र॒ ज्याय॒ः कनी॑यसः।
पु॒रू॒वसु॒र्हि म॑घवन्त्स॒नादसि॒ भरे॑भरे च॒ हव्यः॥ २४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त! हे (मघवन्) पूजित धन के स्वामिन्! तू (पुरूवसुः) बहुतों को बसाने वाला, बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी और (सनात्) सनातन से (भरे भरे च हव्यः) प्रत्येक पालन करने योग्य, कार्य, यज्ञ, संग्रामादि मे भी पुकारने और स्तुति करने योग्य (असि) है। तू (सतः) सत्स्वरूप, (ज्यायः) महान् और (कनीयसः) अति दीप्तियुक्त, अति सूक्ष्म उस परम तत्व का ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा।

परा॑ णुदस्व मघवन्न॒मित्रा॑न्त्सु॒वेदा॑ नो॒ वसू॑ कृधि।
अ॒स्माकं॑ बोध्यवि॒ता म॑हाध॒ने भवा॑ वृ॒धः सखी॑नाम्॥ २५॥

भा०—हे (मघवन्) परम पूजित धन के स्वामिन्! तू (नः अमित्रान्) हमारे शत्रुओ को (परा नुदस्व) दूर कर और (नः) हमें

(वसू) नाना ऐश्वर्य (सुवेदा कृधि) सुख से प्राप्त करने योग्य कर। अथवा हे (सु-वेदाः) उत्तम धनाध्यक्ष ! तू (नः वसू कृधि) हमें उत्तम धन प्रदान कर। (महा-धने) संग्राम के अवसर पर वा भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, तू (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक हो (बोधि) हमे चेताता रह। और (अस्माकं सखीनाम्) हम मित्रो और हमारे मित्रों का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो। 'सुवेदाः' 'सुवेदा' उभावपि पदपाठौ।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥

भा०—(पिता) पालक, गुरु और आचार्य (पुत्रेभ्यः) पुत्रों और शिष्यो को (यथा) जिस प्रकार (क्रतुं) ज्ञान का उपदेश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमे भी (क्रतुम् आ भर) धर्म युक्त उत्तम बुद्धि प्रदान कर। (अस्मिन् यामनि) इस वर्त्तमान समय मे, यज्ञ और संसारमार्ग मे हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! एवं प्रजाद्वारा स्वीकृत ! तू (नः शिक्ष) हमे ज्ञान दे जिससे (जीवाः) हम सब जीवगण, जीवित रहकर (ज्योतिः अशीमहि) परम प्रकाश-स्वरूप ज्ञानमय तुझको प्राप्त हों।

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि॥ २७ ॥ २१ ॥

भा०—(नः) हमें (अज्ञाताः) अज्ञात (वृजनाः) वर्जन करने योग्य, हिंसक, (दुराध्यः) दुःख से ध्यान करने योग्य, दुःखदायी चिन्ताजनक और (अशिवासः) अकल्याणकारी बुरे लोग (मा अव क्रमुः) मत रौंदे। हे (शूर) दुष्टों के नाशक (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (प्रवतः) अति विनीत होकर (शश्वती अपः) अनादि काल मे प्राप्त वा बहुत से कर्मबन्धनों को नदियों के समान (अति तरामसि) पार कर जावें। इत्येकविंशो वर्गः॥

वृत्ति आजीविका के लिये गौओं के समान सुशील होकर (रणन्) आ
से जीवन व्यतीत करते हैं। (यतः) जिस कारण से (पूर्वान्
सखीन्) पूर्वकाल के मित्रों के समान प्रेम से वर्त्ताव करने वालों को
(अनु ह्वये) आदर से बुलाया जाता है ! उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् !
(कामिनः) उत्तम विद्या धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुषों को
(गृणीहि) अपने पास बुला और उनको सत् उपदेश किया कर।

[५४]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ३, ७, १२ जगती।
विराड्जगती। ६ भुरिग्जगती। ११, १५ निचृज्जगती। ४, ८, १० भुरिक्
त्रिष्टुप्। ५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

प्र शर्धा॑य॒ मारु॑ताय॒ स्वभा॑नव इ॒मां वाच॑मनजा पर्वत॒च्युते॑।
घ॒र्म॒स्तुभे॑ दि॒व आ पृ॑ष्ठ॒यज्व॑ने द्यु॒म्नश्र॑वसे॒ महि॑ नृ॒म्णम॑र्चत ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मारुताय) वायु के समान प्रबल, शत्रुनाशक पुरुषों के (स्व-भानवे) स्वयं देदीप्यमान (पर्वत-च्युते) मेघ वा पर्वत के समान प्रबल शत्रु को भी छिन्न भिन्न करने वा उखाड़ देने में समर्थ, (शर्धाय) बल को बढ़ाने और प्राप्त करने के लिये (इमां) इस (वाचं) वेद वाणी का (मारुताय) मनुष्यों के समूह को (अनज) उपदेश करो। (दिवः घर्म-स्तुभे) सूर्यवत् तेजस्वी, पुरुष के तेज को स्तुति या उपासना करने वाले (पृष्ठ-यज्वने) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को भी ज्ञान का दान करने वा पीठ पीछे भी गुरुजनों का आदर सत्कार करने वाले (द्युम्न श्रवसे) यश, धन और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न पुरुष को (महि नृम्णम्) मनुष्यों से पुनः अभ्यास करने योग्य बड़े भारी ज्ञान और मनुष्यों के मनोभिलषित धन राशि का (अर्चत) आदर पूर्वक दान किया करो।

[३३]

सस्तत्रो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा सवादः ॥ १—९ वसिष्ठपुत्राः । १०–१४ वसिष्ठ ऋषि. ॥ त एव देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ७, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् पङ्क्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

भा०—(श्वित्यञ्चः) वृद्धि को प्राप्त, उन्नत (दक्षिणतःकपर्दाः) दायें भाग में जटा जूट रखने वाले (धियं-जिन्वासः) ज्ञान और उत्तम मति को स्वयं प्राप्त और उत्तम काम करने वाले (वसिष्ठा) उत्तम ब्रह्मचारी, विद्वान् वसुगण (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे सदा आनन्दित करें। और वे (अवितवे) रक्षा और ज्ञान प्रदान करने के लिये (दूरात्) दूर देश से भी प्राप्त हों। उन (नॄन्) उत्तम मार्गों में ले जाने वाले उत्तम पुरुषों को मैं (बर्हिष.) वृद्धियुक्त आसन से (उत् तिष्ठन्) उठ कर (परि वोचे) आदर युक्त वचन सत्कार करूं। अथवा उन (बर्हिषः) वृद्धिशील अन्यों को बढ़ाने वाले विद्वानों का सत्कार करूं।

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् २

भा०—विद्वान् लोग (वैशन्तम्) राष्ट्र में प्रविष्ट प्रजा के हितकारी (उग्रम्) बलवान् (पान्तम्) पालन करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (सुतेन) धर्म से उत्पन्न ऐश्वर्य के बल से (दूरात्) दूर देश से भी (तिर. अनयन्) अपने समीप ले आते हैं उन (वसिष्ठान्) राष्ट्र में बसे उत्तम पुरुषों को (पाश-द्युम्नस्य) धन के पाश में फँसे वैश्यवर्ग और (वायतस्य) विज्ञानवान् पुरुषों और (वायतस्य) तेज और रक्षा से युक्त क्षात्रवर्ग के (सुतात् सोमात्) उत्तम अन्न ऐश्वर्य और ज्ञान से

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अवृणीत) वरण करे। उनका मान, आदर, सत्कार करे।

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) राष्ट्र मे बसे उत्तम प्रजाजनो! वा अपने बाहुबल से प्रजा को सुखपूर्वक उत्तम रीति से बसाने वाले वीर पुरुषो! वा आचार्य के अधीन खूब ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर विद्याभ्यास करने हारे जनो! (वः एभिः) आप लोगो मे से ही इन कुछ जनों की सहायता से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सिन्धुं नु कं ततार इत्) बड़े भारी समुद्र को भी पार करे, (एभिः) इन विशेष जनो सहित (भेदं नु कं ततार एव इत्) फूट डालने वाले वा मेघवत् शत्रु को भी पार करे। (वः ब्रह्मणा) आप लोगो के बल, धन और ज्ञान से ही वह (दाशराज्ञे) सुख देने वाले राजा के लिये (एव नु कं) भी (सुदासं) उत्तमदानशील प्रजा की (प्रावत्) रक्षा करे।

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) उत्तम जनो! आप लोग (वः) अपने (पितॄणाम्) पालक जनों के (अव्ययं) कभी नाश न होने वाले उस (अक्षम्) व्यापक और सत्यदर्शक ज्ञान-ऐश्वर्य (ब्रह्मणा) बल और महान् बल को (न किल रिषाथ) नाश न करे प्रत्युत ऐश्वर्य से (जुष्टी) प्रेमपूर्वक (अदधात) धारण करो (यत्) जिस (शुष्मं) बल को हे (वसिष्ठाः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन रहने वाले और राष्ट्र मे बसने वाले जनो! आप लोग (बृहतः रवेण) बड़े भारी आघोष के साथ (शक्वरीषु) शक्ति युक्त सेनाओं और (इन्द्रे) ऐश्वर्य युक्त राजा मे या उनके अधीन रहकर (अदधात) धारण करते रहो।

उद्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम्॥५॥२२

भा०—(वृतासः) वरण किये गये (तृष्णजः) तृष्णा अर्थात् उत्तम फल वा धन आदि की कामना से युक्त (नाथितासः) धनादि की याचना करने वाले, लोग (दाशराज्ञे) दानशीलो मे तेजस्वी राजा के लिये (द्याम् इव द्याम्) सूर्य के समान तेज या उसकी कामना या भूमि को (उद् अदीधयुः) उत्तम रीति से धारण करे। (स्तुवतः) स्तुति करने वाले (वसिष्ठस्य) बसे उत्तम प्रजाजन की (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्य-वान् सूर्यवत् तेजस्वी राजा भी (अश्रोत्) श्रवण करे और वह (तृत्सुभ्यः) शत्रुओं का नाश करने वाले सैनिको के लिये भी (उरुम् लोकम्) वहुत वड़ा स्थान (अकृणोत्) प्रदान करे।

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त॥६॥

भा०—(दण्डा इव परिच्छिन्ना गो-अजनासः) दण्ड जिस प्रकार शाखा से कट कर भी पशु आदि को हांकने के लिये उत्तम होते हैं इसी प्रकार (परि-छिन्नाः) सव प्रकार कटे छटे, सुभूषित, सकुशल, (भरताः) प्रजापालक (अर्भकासः) वालको के समान निर्द्वेष, निर्मोह, स्वच्छ हृदय वा (अर्भकाः = ऋभवः) सत्य न्याय से प्रकाशित जन, दण्डों के समान ही (दण्डा.) दुष्टो के दमन करने वाले (गो-अजनासः) भूमियों को शासन करने वाले (आसन्) हो। (वसिष्ठः) सवसे उत्तम प्रजा को वसाने वाला राजा, इनका (पुर-एता) अग्रयायी नायक (अभवत्) हो और (आत् इत्) अनन्तर (तृत्सूनां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषो की ही यह (विशः) समस्त प्रजाएं (अप्रथन्त) प्रसिद्ध होती है। अथवा—जो (अर्भकास.) वालकवत् वा अल्प बुद्धि वल वाले (भरता) भरण पोषण योग्य मनुष्य (परिच्छिन्ना) सव ओर से घिरे हुए, सुरक्षित

(दण्डाः इव) दण्डों के समान (गो-अजनासः) वाणी के अभ्यास में अप्रगल्भ हों (तृत्सूना) अनादर योग्य अल्पमान वाले जनों का (पुरः एता वसिष्ठः अभवत्) अग्रयायी नायक उत्तम विद्वान् हो तब वे (विशः) उसके अधीन रहकर उसकी प्रजा रूप से प्रसिद्ध होते हैं।

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

भा०—(त्रयः) तीन (भुवनेषु) उत्पन्न हुए लोकों में उनके निमित्त (रेतः) जल, तेज, वीर्य को (कृण्वन्ति) उत्पन्न करते है और (तिस्रः) तीन प्रकार की (अर्याः प्रजाः) श्रेष्ठ प्रजाएं (ज्योतिः-अग्राः) प्रकाश को मुख्य रूप से प्राप्त होने वाली होती हैं (त्रयः) तीनो (घर्मासः) तेजस्वी, वीर्यवान् ही (उषसं) उषा को सूर्यवत् कामना योग्य भूमि वा शक्ति को (सचन्ते) प्राप्त करते है (तान् सर्वान् इत्) उन सब को ही (वसिष्ठाः अनु विदुः) विद्वान् ब्रह्मचारी अच्छी प्रकार जानते और प्राप्त करते हैं। लोक में सूर्य, विद्युत् ओर अग्नि तीनों (रेतः) प्रजोत्पादक तेज को उत्पन्न करते और सूर्य वायु और भूमि तीनो प्रजोत्पादक प्रकाश, प्राणाधार जल और अन्न को उत्पन्न करते है, तीनो प्रकार की श्रेष्ठ प्रजाएं, जेरज अण्डज और उद्भिज तीनों ही (ज्योतिरग्रा) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली होती है (त्रयः घर्मासः) तीनों तेजो युक्त सूर्य, अग्नि, विद्युत् वा (घर्मासः) रोचक सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष (उषसं) दाहक तापशक्ति और उषाकाल, और कान्ति तथा कामना योग्य स्त्री को प्राप्त करते है। उन सब पदों को (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी जन ही (अनु विदुः) प्राप्त करते है।

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) विद्वान्, ब्रह्मचारी लोगो! हे राष्ट्र में बस

जनों में श्रेष्ठ जनो ! (एषां) इन (वः) आप लोगों का (वक्षथः) रोष, तेज और वचनोपदेश, (सूर्यस्य ज्योतिः इव) सूर्य के तेज के समान असह्य और यथार्थ तत्व का प्रकाशक हो। (महिमा) महान् सामर्थ्य (समुद्रस्य इव गभीरः) समुद्र के समान गंभीर हो। (प्र-जवः) उत्तम वेग भी (वातस्य इव) वायु के समान अदम्य हो और (वः) आप लोगो का (स्तोमः) बलवीर्य, अधिकार तथा उत्तम स्तुत्य चरित भी ऐसा हो जो (अन्येन) दूसरे असमर्थ निर्बल पुरुष से (अन्वेतवे न), अनुकरण न किया जासके, वह भी सर्वोत्तम हो।

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

भा०—(ते इत् वसिष्ठाः) वे ही पूर्ण ब्रह्मचारी, गुरु के अधीन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार कर्म करने हारे विद्वान् जन (यमेन) नियन्त्रण करने वाले आचार्य वा परमेश्वर द्वारा (ततं) विस्तारित (परिधि) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञान, व्रत और दीक्षादि को (वयन्तः) प्राप्त होते और उसका पालन करते हुए (अप्सरसः उप-सेदुः) गृहाश्रम मे स्त्रियों को प्राप्त करें। अथवा, वे विद्वान् जन ही (अप्सरसः) प्राप्त प्रजा जनो मे और उत्तम कर्म मार्गों पर विचरते हुए (अप्सरसः) आकाश में विचरते हुए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु और मेघादि के तुल्य ही उपकारक होकर हमें प्राप्त हों। (त इत्) वे ही (हृदयस्य) हृदय के (प्रकेतैः) उत्तम ज्ञानो से सहस्रों अंकुरों, शास्त्र ज्ञानों से युक्त (निण्यं) निश्चित ज्ञान को (अभि सञ्चरन्ति) प्राप्त कर विचरें। इसी प्रकार राज्य मे बसे उत्तम वीर पुरुष भी (यमेन ततं) नियन्ता राजा की बनाई (परिधि) नगर के दीवार की (वयन्तः) रक्षा करते हुए, (प्रकेतैः) उत्तम संकेतो से (सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखाओं वाले (निण्यं) सुगुप्त दुर्ग वा राष्ट्र में (अभि सञ्चरन्ति) सर्वत्र

विचरें। वे ही (अप्सरसः उप सेदुः) प्रजाओं में विचरते हुए सदा अपने कर्त्तव्यों में उपस्थित हों। इसी प्रकार ये सब 'वसिष्ठ' जन वसुओं प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा, जीव गण हैं जो नियन्ता प्रभु के बनाये 'परिधि' मर्यादा को पालन करते हुए (अप्सरसः) आकाश में या प्राप्त शरीरों, कर्मों और प्रकृति के घटक परमाणुओं या लिंग शरीरों में विचरते हुए (उप-सेदुः) इन शरीरों में प्राप्त होते हैं। वे ही हृदय, अन्तःकरण स्थित प्रज्ञानों से अप्रकट सहस्र शाखा वाले संसार के मार्गों पर विचरते हैं।

वि॒द्युतो॒ ज्योतिः॒ परि॑ सं॒जिहा॑नं मि॒त्रावरु॑णा॒ यदप॑श्यतां त्वा।
तत्ते॒ जन्मो॒तैकं॑ वसिष्ठा॒गस्त्यो॒ यत्त्वा॑ वि॒श आ॑ज॒भार॑॥१०॥२३॥

भा०—जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य बतलाते हैं। हे (वसिष्ठ) देह में बसे प्राणों में से सबसे श्रेष्ठ जीव! (विद्युतः ज्योतिः) विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्तिमात्र को (परि संजिहानं) सब प्रकार से धारण करने वाले तुझको (यत्) जब (मित्रा वरुणौ) सूर्य चन्द्रवत्, प्राण अपान वा माता पिता दोनों, (त्वा अपश्यताम्) तुझको देखते हैं (तत्) तब, वह (ते) तेरा (जन्मः) जन्म होता है (उत) और (एकं) एक जन्म तब होता है (यत्) जब (अगस्त्यः) सूर्य (त्वा) तुझको (विश) प्रवेश योग्य देहों में, वा आचार्य प्रजाओं में राजा के समान (आजभार) प्राप्त कराता है। विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप—"तस्यैष आदेशो यदेतत् विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीतिन्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः॥ केनोपनिषत्।" आत्मा के नाना जन्मों का रहस्य देखो ऐतरेयोपनिषत् अ० २। ख० १॥ जैसे सूक्ष्म जीव के दो जन्म हैं एक पुरुष देह से स्त्री देह में आना, दूसरा स्त्री देह से संसार में प्रकट होना उसी प्रकार इस मनुष्य के दो जन्म हैं, एक मनुष्य योनि में जन्म लेना दूसरा आचार्य गृह में विद्या माता से जन्म लेना।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥

भा०—हे (वसिष्ठ) देह मे बसे प्राणो मे सर्वश्रेष्ठ जीव ! (उत) और तू (मैत्रावरुणः) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनो का स्वामी (असि) है । हे (ब्रह्मन्) वृद्धिशील जीव ! तू (उर्वश्याः) अति कान्तिमती, तैजस, सात्विक विकार से युक्त वा 'उरु' अति विस्तृत व्यापक प्रकृति के ऊपर (मनसः) मनन शक्ति द्वारा (अधि-जातः) भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है । (दैव्येन) समस्त किरणो के समस्त शक्तियो के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी (ब्रह्मणा) महान्, परम ब्रह्म परमेश्वर से (स्कन्नं) प्रदत्त (द्रप्सं) वीर्य के समान (त्वा) तुझको (देवाः) समस्त दिव्य शक्तियां (पुष्करे) पुष्टिकारक तत्व मे (अददन्त) धारण करती है । श्वेताश्वतर मे विविध ब्रह्म का वर्णन है वह यहां उर्वशी, वसिष्ठ, और ब्रह्म तीनो रूप है । उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, और ब्रह्म परमेश्वर । (२) इसी प्रकार यह जीव प्राणी भी परस्पर प्रेमी और एक दूसरे को वरण करने वाले वर वधू, माता पिता से उत्पन्न होने से मैत्रावरुण है । वह माता पिता के गृह से उत्पन्न होकर (उर्वश्या) बड़ी भारी वेदविद्या के अभ्यास से (ब्रह्मन्) वेदज्ञान (मनसः) मननशील ज्ञानवान् आचार्य से (जातः) उत्पन्न होता है । फिर वह (दैव्येन ब्रह्मणा) देव, विद्येच्छु शिष्यों के हितैषी चतुर्वेदवित् आचार्य से (स्कन्नः) विसर्जित (द्रप्सः) कान्तियुक्त, तेजस्वी पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (पुष्करे) पुष्टिकारक, सर्वाश्रमपोषक गृहाश्रम मे (अददन्त) नियुक्त करते हैं ।

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

भा०—माता और आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना—जिस प्रकार (यमेन) सर्वनियन्ता परमेश्वर से (ततं) फैलाये या बनाये

(परिधिं) धारक रक्षक देह सांसारिक जीवन को (वयिष्यन्) पट के समान स्वयं अपने कर्मों द्वारा बिनता, या बनाता और उसको प्राप्त होना चाहता हुआ (वसिष्ठः) उत्तम वसु जीव (अप्सरसः परि जज्ञे) स्त्री के शरीर से परिपुष्ट होकर प्रकट होता है उसी प्रकार (वसिष्ठः) गुरु के अधीन वास कर रहने वाला उत्तम वसु ब्रह्मचारी भी (यमेन) नियन्ता आचार्य से (ततं) विस्तारित, प्रकाशित (परिधि) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञानमय शास्त्रपट को (वयिष्यन्) प्राप्त, रक्षण और विस्तृत करना चाहता हुआ (अप्सरसः) अन्तरिक्षचारी वायु के समान ज्ञानवान् पुरुष वा आप्त जनों की व्याप्त विद्या से (परि जज्ञे) उत्पन्न होता है। (सः) वह (प्र-केतः) उत्तम ज्ञानी और (उभयस्य) पाप और पुण्य, इह लोक और परलोक दोनों को (प्र-विद्वान्) भली प्रकार जानता हुआ, (सहस्र-दानः) सहस्रों का दान देने वाला, परमैश्वर्य का स्वामी हो। (उत वा) अथवा (स-दानः) दानशील पुरुषों के दिये दान से अलंकृत भिक्षु, ब्राह्मण हो। अर्थात् विद्वान् होने के अनन्तर धनी और त्यागी दोनों में से एक यथेच्छ होकर रह सकता है।

सत्रे ह॑ जाताविषि॒ता नमो॑भिः कु॒म्भे रेतः॑ सिषिचतुः समा॒नम् ।
ततो॑ ह॒ मान॒ उदि॑याय॒ मध्या॒त्ततो॑ जा॒तमृषि॑माहु॒र्वसि॑ष्ठम् ॥१३॥

भा०—(सत्रे) दीर्घ वेदाध्ययन रूप यज्ञ वा गुरु के सदन, आश्रम गृह में (जातौ) उत्पन्न हुए कुमार और कुमारी, दोनों (इषिता) एक दूसरे की इच्छा करने वाले होकर (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (कुम्भे रेतः) कलश में रक्खे जल से (समान) मानसहित, वा एक समान (सिषिचतु) अभिषेक वा स्नान करें, अथवा वे दोनों (समानं) एक दूसरे के समान, परिपक्व (रेत) वीर्य को (कुम्भे) घट में जल के समान गर्भ में वीर्य का (सिषिचतु) सेचन करें। (ततः मध्यात्) उन दोनों के बीच से (मानः) उत्तम परिमाणयुक्त बालक (उत्

इयाय) उत्पन्न होता है (ततः) उससे अनन्तर उसको (ऋषिम्) प्राप्त जीव को (वसिष्ठम् आहुः) वसिष्ठ कहते हैं। ठीक इसी प्रकार सत्र मे स्थित गुरु आचार्य, घर मे नलवत् पात्र मे ज्ञान-जल का प्रदान करते है। (ततः) तब (मानः) ज्ञानवान् पुरुष उत्पन्न होता है। उसको विद्वान् जन 'वसिष्ठ ऋषि' उत्तम विद्वान्, ब्रह्मचारी कहते है।

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे । उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः १४।२४।२।

भा०—जो विद्वान् (अग्रे) सबसे पूर्व, (बिभ्रत्) स्वयं ज्ञान को धारण करता हुआ (प्र वदाति) उत्तम प्रवचन करता है वह (ग्रावाणं) मेघ के समान ज्ञान-जल को धारण करने वाले (उक्थ-भृत) ऋग्वेद के धारण करने और (साम-भृतं) सामवेद के धारण करने वाले विद्वान् शिष्य को भी (बिभर्ति) धारण करता है। वही (वसिष्ठः) वसु, ब्रह्मचारियो मे सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है। हे (प्र-तृदः) तीनों आश्रमो को अन्नादि देने वाले गृहस्थो ! वा हे (प्रतृदः) खण्ड २ कर वेद का अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियो ! जब वह (वः आगच्छति) तुम्हे प्राप्त हो तब आप लोग (एनं) उसकी (सुमनस्यमानाः) शुभ संकल्पयुक्त होकर (उप आध्वम्) उपासना कर, उसके समीप बैठकर ज्ञान ग्रहण करो। अथवा—वह वसिष्ठ ही अध्याय, वा पद, प्रकृति प्रत्ययादि विच्छिन्न २ कर पढाने हारा, वा संशयो का छेत्ता ज्ञानी पुरुष 'प्रतृद' है वह जब आवे तब सब उसकी उपासना कर ज्ञान-लाभ करे। इसी प्रकार सबमें बसा महान् आत्मा प्रभु 'वसिष्ठ' है। वही सबसे (अग्रे प्र वदाति) प्रथम उपदेश करता है। उक्थ, साम आदि के धारक, उपदेष्टा वेद को स्वयं धारण करता है। हे जनो ! आप उसकी उपासना करे। इति चतुर्विंशो वर्गः। द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[३४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—१५, १८—२५ विश्वे देवाः। १६ अहिः। १७ अहि-

र्बुध्न्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, १२, १३, १४, १६, १९, २० भुरिगार्चीगायत्री । ३, ४, १७ आर्ची गायत्री । ६, ७, ८, ९, १०, ११, १५, १८, २१ निचृत्त्रिपादगायत्री । २२, २४ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । २३ आर्षी त्रिष्टुप् । २५ विराडार्षी त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम् ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥

भा०—(वाजी) वेगवान् (रथः) रथ (सु-तष्टः) उत्तम रीति से शिल्पी द्वारा निर्मित होकर जिस प्रकार (मनीषाः एति) मनोऽनुकूल गतियें करता है उसी प्रकार (सु-तष्टः) उत्तम रीति से अध्यापित, (वाजी) ज्ञानी पुरुष और (शुक्रा) शुद्ध अन्तःकरणवाली, शुद्धाचार युक्त (देवी) उत्तम विदुषी स्त्री भी (अस्मत्) हमसे (मनीषाः) उत्तम उत्तम बुद्धियों को (एतु) प्राप्त करे ।

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥

भा०—(अधः क्षरन्तीः आपः) मेघ से नीचे गिरती जलधाराएं जिस प्रकार (दिवः) आकाश से (जनित्रं) अपनी उत्पत्ति और (पृथिव्याः जनित्रं) पृथिवी, अन्न की उत्पत्ति का कारण होती है उसी प्रकार (अधः क्षरन्तीः) नीचे के अंगों से स्रवित वा ऋतु से होने वाली नवयुवति (अपः) आप्त, स्त्रियें (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और (पृथिव्याः) पृथिवी के समान बीजों को अंकुरित करने वाली उत्तम माता से ही (जनित्रं) उत्तम सन्तान के जन्म को जानें और (शृण्वन्ति) वैसा ही उपदेश गुरुजनों से श्रवण करें । नवयौवन के लक्षण प्रकट होने पर उत्तम सन्तान उत्पन्न होने की विद्या को वे भली प्रकार जानें और शिक्षा प्राप्त करें ।

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥

भा०—(वृत्रेषु) मेघों में (आपः चित्) जलधाराएं जिस प्रकार (अस्मै) इस सूर्य के बल से (पृथ्वीः) भूमियों को (पिन्वन्त)

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों में से जो (उदन्यवः) वायुओं के तुल्य जलवत् उत्तम ज्ञान को ग्रहण करने के इच्छुक, (तविषाः) बलवान्, (वयोवृधः) ज्ञान, बल, आयु की वृद्धि करने वाले, (अश्व-युजः) प्रबल अश्वों को रथ में लगाने वाले एवं योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगाने तथा इन्द्रिय गण को अपने वश में करने वाले, (परि-ज्रयः) सर्वत्र, सब ओर जाने में समर्थ, हों, और जो (विद्युता) बिजुली से, (सं दधति) यन्त्रों का संधान करते, अथवा विशेष कान्ति वा ज्ञान दीप्ति से युक्त विद्वान् पुरुष के साथ (स दधति) प्रेम से मिलकर ज्ञान धारण करते हैं, जो (त्रितः) तीनों से (वाशति) ज्ञानोपदेश ग्रहण करते, मन्त्रों का पाठ करते, (स्वरन्ति) और स्वरसहित गान करते हैं वे (आपः) आप्त पुरुष (अवना) भूमि पर (परिज्रयः) जल-धाराओं के समान सर्वत्र गमन करें और शान्ति प्रदान करें । (२) वायुगण, बलशाली, सूर्य ताप से भूमिस्थ जल को ग्रहण करने वाले, अन्न को बढ़ाने वाले, विद्युत् से मिलने वाले होकर गर्जते हैं उनके साथ, जल वृष्टियां भूमि पर गिरती है ।

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः विद्युन्म-हसः) वायु गण बिजुली की कान्ति से चमकने वाले, (अश्म-दिद्यवः) मेघ को प्रकाशित करने वाले, (वात-त्विषः) प्रबल वायु से चमकने वाले (पर्वत-च्युतः) मेघों को डुलाने वाले होते हैं और वे (अब्दया मुहुः ह्रादुनीवृतः) जल देने वाली मेघ माला से युक्त, गर्जती बिजली को उत्पन्न करने वाले और (स्तनयद्-अमाः) गर्जते मेघ के साथ रहते हैं उसी प्रकार (नरः) उत्तम नायक गण एवं

सींचती है और (वृत्रेषु) मेघों के ऊपर (उग्रः) उग्र बल की प्रचण्ड वायुएं (मंसन्ते) प्रहार करते है (चित्) उसी प्रकार (अस्मै) इस राजा के निमित्त ही (आपः) नहरें या आप्त प्रजाजन (पृथ्वीः पिन्वन्त) भूमियों को सींचते, उस पर कृषि आदि करते और (शूराः) शूरवीर पुरुष (वृत्रेषु) विघ्नकारी पुरुषों पर और नाना धनों के निमित्त (मंसन्ते) उद्योग करते हैं ।

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अस्मै) इस नायक के ही लिये (धूर्षु) धुराओं मे (अश्वान्) अश्वों को (दधात) धारण करो । (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् ही (वज्री) हाथ में वज्र, बल, वीर्य, शस्त्रास्त्र सैन्य को धारण करने और (हिरण्य-बाहुः) सुवर्णादि धन को अपने बाहुबल से रखने वाला है ।

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (अह इव) और आप लोग (यज्ञं अभि) पूजनीय प्रभु, सत्संग, यज्ञ आदि को लक्ष्य कर (प्र स्थात) आगे बढ़ो । (याता इव) यात्री या जाने वाले पुरुष के समान (त्मना) आत्म सामर्थ्य से (पत्मन्) सन्मार्ग पर (हिनोत) आगे बढ़ो ।

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (समत्सु) संग्राम के अवसरों मे (त्मना) अपने सामर्थ्य से (यज्ञं) पूज्य नायक को (हिनोत) बढ़ाओ । (जनाय) साधारण प्रजाजन के हितार्थ (केतुं) ध्वजा के समान सबके आज्ञापक (वीरम्) वीर और नाना विद्योपदेष्टा पुरुष को (दधात) स्थापित करो । उसको पुष्ट करो । (२) हे स्त्रीजनो ! (समत्सु) हर्षयुक्त अवसरों मे (त्मना) अपनी देह से (यज्ञं) संगतियोग्य गृह्य कार्य वा पति को (हिनोत) बढाओ । और (जनाय) पुत्रोत्पादन के लिये (केतुं वीरं दधात)

विद्वान्, रोगरहित, वीर्यवान् पुरुष को धारण करो तथा (जनाय) अपने पति के लिये (वीरं केतं दधात) ज्ञानवान् पुत्र को धारण करो।

उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥

भा०—(भानुः न) जिस प्रकार सूर्य के बल से कान्ति ऊपर उठती है उसी प्रकार (अस्य शुष्मात्) इस नायक के बल से (भानुः) कान्ति या तेजवत् उसके आश्रित प्रजा (उत् आर्त्त) उन्नति को प्राप्त होती है। (पृथिवी न) पृथिवी के समान विदुषी स्त्री भी (भूम भारं) बहुत भारी भार, प्रजाओं के पालन पोषण का भार (बिभर्त्ति) धारण करती और भरण पोषण करती है।

ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! मैं (अयातुः) अन्यत्र कहीं भी न जाकर, वा किसी को भी पीडा न देता हुआ, अहिंसाव्रती होकर (देवान्) विद्या, धनादि की कामना करने वाले शिष्यों को (ह्वयामि) प्रेमपूर्वक बुलाता हूं। मैं (ऋतेन) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार के द्वारा (साधन्) साधना करता हुआ (धियं दधामि) ज्ञान प्रदान करूं और कर्म करूं। इसी प्रकार हे विद्वन्! मैं शिष्य भी विद्वानों को प्रार्थना करूं कि मैं स्थिर होकर सत्य निष्ठापूर्वक साधना करता हुआ (धियं) ज्ञान, और कर्म को धारण करूं।

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥९॥

भा०—हे जनो! आप लोग (वः) अपनी (देवीं धियं) दिव्य मति को (अभि दधिध्वं) धारण करो। और (वः) अपनी वाणी को भी (देवत्रा वाचम्) विद्वानों में विद्यमान उत्तम वाणी के समान बनाओ।

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१०।२५॥

भा०—(उग्रः) प्रचण्ड (वरुणः) सूर्य जिस प्रकार (नदीनां पाथः आ चष्टे) नदियों के जल को खींच लेता है उसी प्रकार (सहस्र-

चक्षा) सहस्रों आज्ञा-वचन कहने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (उग्रः) बलवान् होकर (नदीनां) समृद्ध (आसां) इन प्रजाओं के (पाथः) पालनकारक राज्य व्यवहार को (आ चष्टे) स्वयं देखता है। इसी प्रकार सूर्यवत् सहस्रचक्षु प्रभु इन जीव प्रजाओं के सब व्यवहारों को देखता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥

भा०—वरुण, अर्थात् जल जिस प्रकार (नदीनां पेशः) नदियों के स्वरूप को बनाता है, उसी प्रकार यह (राजा) राजा (राष्ट्रानां) राष्ट्रों और समृद्ध प्रजाओं के (पेशः) उत्तम समृद्धि रूप को बनाता, और (अस्मै) उसका (विश्वायु) सर्वगामी, (अनुत्तम्) अबाधित, (क्षत्रं) बल वीर्य होता है।

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (अस्मान्) हमें (विश्वासु विक्षु) समस्त प्रजाओं में (अविष्टो) रक्षा करो। और (शंसं कृणोत) हमें उत्तम उपदेश करो। (निनित्सोः अद्युं कृणोत) निन्दा करने वाले के सब काम को अन्धकार युक्त करो।

व्येतु दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (दिद्युत्) खूब चमकता हुआ प्रकाश (वि एतु) विविध दिशाओं में फैले। (द्विषाम् अशेवा) शत्रुओं को नाना दुःख प्राप्त हों। (तनूनाम्) देह धारियों के (रपः) दुःख अपराधों को आप लोग (विश्वक्) सब प्रकार से (युयोत) पृथक् करो।

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥

भा०—(अग्नि) ज्ञानवन्, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नमोभि) अन्नादि पदार्थों से तथा शस्त्रों से (नः) हमारी रक्षा करे। वह (हव्यान) ग्राह्य, भक्ष्य पदार्थों को खाने वाला, (प्रेष्ठः) सर्व प्रिय हो। (अस्मै)

उसके लिये (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) किया जावे। और वह भी इस राष्ट्र के वासी प्रजा जन के लिये उत्तम व्यवहार करे।

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (देवेभिः सजूः) किरणों पृथिव्यादि तत्त्वों के सहित वर्त्तमान अग्नि वा सूर्य के समान (अपां नपातं) जलों को न गिरने देने वाले, मेघवत् उपकारक प्रजाओं को वा प्राणों को नाश न होने देने वाले पुरुष को अपना (सखायं कृध्वम्) मित्र बनाओ। वह (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारक (अस्तु) हो।

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (बुध्ने) अन्तरिक्ष मे (अब्जाम्) जलों के उत्पादक (अहिम्) सूर्य को कहा जाता है वही सूर्य (नदीनां रजःसु सीदन्) नदी के जलों या कण २ मे भी विराजता है। उसी प्रकार मैं (उक्थैः) उत्तम वचनों से (अब्जाम्) आप्त जनों के बीच प्रसिद्ध, (अहिम्) शत्रुओं के नाशक पुरुष के (बुध्ने) प्रजा के ऊपर आकाश-वत् सर्वप्रबन्धक पद पर (गृणीषे) प्रस्तुत करूं। वह (नदीनां) समृद्ध प्रजाओं के बीच (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त लोगों और वैभवों मे (सीदन्) विराजे।

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥१७॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) आकाशस्थ मेघ के समान (बुध्न्य) उदार, बुध विद्वान् पुरुषों द्वारा सन्मार्ग पर सञ्चालित, वा आकाश मे स्थित, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (नः) हमें (रिषे) हिंसा पीडा के लिये वा हिंसक लाभ के लिये (मा धात्) न रख छोडे। (अस्य ऋतायोः) इस सत्य व्यव-हार, अन्न और धनाभिलाषी राजा का (यज्ञ) दान, सगति, आदि (मा स्रिधत्) नष्ट न हो।

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥

भा०—विद्वान् लोग, (नः) हमारे (एषु नृषु) इन नेता पुरुषो मे (श्रवः) यश, बल, अन्न आदि (धुः) धारण करावे । और वे लोग (शर्धन्तः) उत्साह करते हुए (राये) धन प्राप्त करने के लिये (अर्यः = अरीन्) शत्रुओ को लक्ष्य कर, उन पर (प्र यन्तु) चढाई करें ।

तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥

भा०—(एषाम्) इन उत्तम नायकों के (अमैः) सहायक सैन्य बलो से युक्त होकर (महा-सेनासः) बड़ी सेनाओ के स्वामी लोग (भूमा स्वः न) भुवनो को सूर्य के समान प्रचण्ड होकर (शत्रुं तपन्ति) शत्रु को तपावे । अथवा इनके बलो से राजा लोग शत्रुओ को तपावे, हम भी बड़ी सेना के स्वामी हों ।

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् २०।२६॥

भा०—(यत्) जब (पत्नीः) स्त्रियें (नः) हमे (अच्छ आ गमन्ति) भली प्रकार प्राप्त हो तब (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (सु-पाणिः) उत्तम व्यवहारज्ञ होकर (वीरान्) वीर पुरुषो तथा हमारे पुत्रो की भी (दधातु) रक्षा करे। उनको राष्ट्र-रक्षा पर नियुक्त करे। इति षड्विंशो वर्गः ॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

भा०—(अरमतिः) अति बुद्धिमान् (वसूयुः) प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी, (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुति वचन, और स्तुत्य कार्य के (प्रति) प्रति (जुषेत) प्रेम करे और वह (अस्मे स्यात्) हमारे हितार्थ प्रीतिमान् हो ।

ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः २२

भा०—(रातिषाचः) दानयोग्य वृत्ति या भृति को लक्ष्य कर, वा उसके द्वारा सहस्रों जनो को अपने साथ बांधने वाले धनाढ्य राजा लोग (नः) हमे (ता) वे नाना प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्य (रासन्)

प्रदान करें। (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली न्यायसभा तथा पुलिस, और (वरुणानी) स्वयं वृत श्रेष्ठ राजा की पालक शासन सभा भी (नः आ शृणोतु) हमारी सब बातें सुने। (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (वरूत्रीभिः) उत्तम, दुःखवारक सेनाओं और नीतियों से (नः) हमारा (सु-शरणः) उत्तम शरण (अस्तु) हो। वह (सु-दत्रः) उत्तम दानशील पुरुष (रायः वि दधातु) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे।

तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३॥

भा०—(तत् रायः) वे नाना ऐश्वर्य (नः) हमारी रक्षा करें (पर्वता) पर्वत, मेघ और पालनकारी साधनों से सम्पन्न जन हमारी रक्षा करें। (ततः आपः) वे जल, प्राणगण और आप्तजन और (तत् रातिषाचः) वे भृति या दान ग्रहण करने वाले और (ओषधीः उत द्यौः) ओषधियां और सूर्य, (वनस्पतिभिः सजोषाः पृथिवी) वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, और (उभे रोदसी) दोनों आकाश और भूमि ये सब (नः परि पासत) हमारी रक्षा करें।

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै॥२४॥

भा०—(तत् उर्वी रोदसी) वे दोनों विशाल दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, सेनानायक और सूर्य और भूमि के समान स्त्री पुरुष भी (अनु जिहातम्) एक दूसरे के अनुकूल होकर प्राप्त हों। (द्युक्षः) प्रकाशों का धारक सूर्यवत् तेजस्वी, और (इन्द्र-सखा) ऐश्वर्यवान् का मित्र (वरुणः) दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा (अनु) अनुकूल रहे। (ये सहासः मरुतः) जो शत्रुविजयी, तपस्वी, वीर विद्वान् पुरुष हैं वे (विश्वे) सब भी (अनु) अनुकूल हों। हम लोग (रायः धियध्यै) ऐश्वर्य को धारण करने के लिये (धरुणं) सुरक्षित पात्रवत (स्याम) हों।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५।२७

भा०—(वनिनः) किरणो और भोग्य ऐश्वर्यो के स्वामी तेजस्वी, सम्पन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) प्रजा का वृत राजा, (मित्रः) स्नेही, (अग्निः) विद्वान् और अग्नि, (आपः) जल और आप्तजन, (ओषधीः) वन की ओषधियें ये सब (नः) हमे (तत्) वह अलौकिक सुख (जुषन्त) प्राप्त करावे, जिससे हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् के समीप (शर्मन् स्याम) सुख से रहे । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभि पात) हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५, ११, १२ त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ९ विराट्त्रिष्टुप् । १३, १४ भुरिक्पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥१॥

भा०—(वाजसातौ) ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) अन्नो और रक्षा साधनों द्वारा (नः शं भवताम्) हमें शान्तिदायक हों । इन्द्र राजा, और ऐश्वर्यवान् अग्निवत् तेजस्वी दोनो वर्ग तृप्तिदायक अन्न, रक्षासाधन, सैन्य, और ज्ञानों से हमे सुख शान्ति-दायक हो । (रात हव्या) ग्रहण करने और देने योग्य जल अन्नादि पदार्थो को प्राप्त करने वाले (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् और दल, तथा सेना-पति और राजा दोनो (नः शं) हमे शान्तिदायक हो । (इन्द्रासोमा शम्) इन्द्र आचार्य, सोम शिष्य गण, और विद्युत् ओषधिगण, (शम्)

हमे शान्तिदायक हों। वे दोनों ही (सुविताय) सुखमय जीवन और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये भी शान्तिदायक और दुःख दूर करने वाले हों। (इन्द्रा-पूषणा) विद्युत् और वायु दोनो भी (नः शं) हमे शान्तिदायक हो।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु २

भा०—(भगः न शम्) ऐश्वर्य हमें सुखकारी हो। (शंसः नः शम् उ) उपदेश, अनुशासन, स्तुति, और उपदेष्टा जन हमे अवश्य शान्ति सुख दे। (पुरन्धिः) बहुत से पदार्थों का धारक आकाश, देहधारक बुद्धि, पुरधारक, राजा, आदि (नः शम्) हमे शान्तिदायक हों। (रायः शम् उ सन्तु) ऐश्वर्य, नाना धन हमे शान्ति दे। (सु-यमस्य) उत्तम नियन्ता, शासक, और (सत्यस्य शंसः) सत्य का उपदेष्टा (नः शम्) हमें सुखकर हो। (पुरु-जातः) बहुतों मे प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शं अस्तु) हमे शान्ति सुख का देने वाला हो।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥३॥

भा०—(धाता नः शम्) पोषक वर्ग हमे शान्ति दे। (धर्त्ता नः शम् उ) धारण करने वाला, हमे सुख शान्ति दे। (उरूची) बहुत से पदार्थ प्राप्त कराने वाली भूमि, (नः) हमे (स्वधाभिः) अन्नों और जलों से (शंभवतु) शान्तिदायक हो। (बृहती रोदसी शं) बड़े, वृद्धिशील, सूर्य और अन्तरिक्ष दोनो (शं) शान्तिदायक हों। (अद्रिः नः शम्) मेघ और पर्वत हमे शान्ति दे। (देवानां) देव, विद्वानों के (सु-हवानि) सम्बोधन करके किये गये उत्तम २ उपदेश वा उत्तम वचन भी (नः शंसन्तु) हमे शान्तिदायक हों।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शं।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥

भा०—(ज्योतिः अनीकः) तेज को सैन्य के समान धारण करने वाला (अग्निः) आग और उसके समान तेजस्वी सैन्य वा मुख वाला राजा और विद्वान् पुरुष (नः शम्) हमे सुखकारी हो । (मित्रा वरुणौ न शं) प्राण और उदान तथा एक दूसरे के स्नेही और एक दूसरे का वरण करनेवाले (अश्विना) रथी सारथी के समान उत्तम अश्वो के समान इन्द्रियो के स्वामी, जितेन्द्रिय, स्त्री पुरुष (नः शं) हमे शान्तिदायक हो (सुकृतां) पुण्यात्माओ के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः शं) हमे शान्ति दे । (इषिरः वातः) सदा गमनशील वायु और सर्वप्रेरक वायुवत् वलवान् पुरुष (नः शं अभि वातु) हमें शान्तिदायक होकर सब ओर वहे ।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ५।२८

भा०—(पूर्वहूतौ) पूर्व के विद्वानों के उत्तम स्तुति या प्रशंसा के योग्य कार्य मे संलग्न (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि वा विद्युत् और भूमिवत् स्त्री पुरुष दोनों (नः शं) हमे शान्तिदायक हो । (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (नः) हमे (दृशये) उत्तम रीति से देखने के लिये (शम् अस्तु) शान्तिदायक हो, (वनिनः ओषधीः) वनकी ओषधियें (नः शं भवन्तु) हमे शान्तिदायक हो । (रजस पतिः) समस्त लोको का पालक (जिष्णुः) विजयशील पुरुष भी (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

भा०—(वसुभिः) प्राणियों को वसने के स्थान रूप पृथिवी आदि उपग्रह, ग्रहो सहित (देवः) तेजस्वी सर्वप्रकाशक (इन्द्रः) अन्धकारनाशक मेघोत्पादक जलदायक सूर्य और प्रजाजनों सहित राजा, ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (नः शं) हमे शान्ति सुख दे । (आदित्येभिः) वर्ष के

मासों सहित (वरुणः) जल संघ, समुद्रादि और आदित्यसम तेजस्वी पुरुषों सहित (वरुणः) श्रेष्ठ राजा (सु-शंसः) उत्तम शासक, आज्ञापक और स्तुत्य होकर (शम्) सबको सुखकारी हो । (रुद्रेभिः) प्राणों सहित (रुद्रः) जीव, दुष्टों के रुलाने वाले सैन्यों सहित सेनापति (जलाषः) सन्ताप का नाशक जलवत् सुखों का दाता होकर (नः शम्) हमे शान्ति दे । (ग्नाभिः त्वष्टा) वाणियों सहित विद्वान् और उत्तम गृहपतियों सहित गृहस्थी जन भी (नः) हमारे (शं) शान्तिदायक (शृणोतु) वचन श्रवण करे ।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—(सोमः) चन्द्र, पुत्र, शिष्य, प्रजाजन और ओषधि वर्ग (नः शं भवतु) हमे शान्तिदायक हो । (ब्रह्म) वेद, धन, ज्ञान, बल, अन्न, (नः शं) हमें शान्तिजनक हो । (ग्रावाणः) मेघगण, उदार विद्वान्, उपदेष्टा जन (नः शं) हमें शान्तिदायक हों । (यज्ञाः शम् उ सन्तु) यज्ञ, देवपूजन, विद्वत्सत्कार, सत्संग हमे शान्तिदायक हो । (स्वरूणां मितयः) अर्थप्रकाशक शब्दों के ज्ञान वा छन्द (नः शं भवन्तु) हमे शान्तिदायक हों । (प्र-स्वः) उत्पन्न होने वाली ओषधियां, उत्तम सन्तानजनक स्त्रियां (नः शं) हमे शान्तिदायक हों (वेदिः शम् उ अस्तु) वेदि, यज्ञकुण्डादि, भूमि, स्त्री, आदि हमें शान्तिदायक हो ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—(उरुचक्षाः) बहुत से सम्यग् ज्ञान दर्शनों का कर्त्ता तेजस्वी (सूर्यः) सूर्यवत् सर्वप्रकाशक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शं उदेतु) शान्तिदायक होकर उदय को प्राप्त हो । (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाएं (नः शं भवन्तु) हमे शान्तिदायक हों । (ध्रुवयः पर्वताः)

वृत्ति आजीविका के लिये गौओं के समान सुशील होकर (रणन्) आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। (यतः) जिस कारण से (पूर्वान् इव सखीन्) पूर्वकाल के मित्रों के समान प्रेम से वर्त्ताव करने वालों को ही (अनु ह्वये) आदर से बुलाया जाता है ! उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू (कामिनः) उत्तम विद्या धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुषों को भी (गृणीहि) अपने पास बुला और उनको सत् उपदेश किया कर।

[५४]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ३, ७, १२ जगती। २ विराड्जगती। ६ भुरिग्जगती। ११, १५ निचृज्जगती। ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मारुताय) वायु के समान प्रबल, शत्रुनाशक पुरुषो के (स्व-भानवे) स्वयं देदीप्यमान (पर्वत-च्युते) मेघ वा पर्वत के समान प्रबल शत्रु को भी छिन्न भिन्न करने वा उखाड़ देने में समर्थ, (शर्धाय) बल को बढ़ाने और प्राप्त करने के लिये (इमां) इस (वाचं) वेद वाणी का (मारुताय) मनुष्यों के समूह को (अनज) उपदेश करो। (दिवः घर्म-स्तुभे) सूर्यवत् तेजस्वी, पुरुष के तेज को स्तुति या उपासना करने वाले (पृष्ठ-यज्वने) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को भी ज्ञान का दान करने वा पीठ पीछे भी गुरुजनों का आदर सत्कार करने वाले (द्युम्न श्रवसे) यश, धन और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न पुरुष को (महि नृम्णम्) मनुष्यों से पुनः अभ्यास करने योग्य बड़े भारी ज्ञान और मनुष्यों के मनोभिलषित धन राशि का (अर्चत) आदर पूर्वक दान किया करो।

ध्रुव स्थिर पर्वत (नः शं भवन्तु) हमे शान्तिदायक हो। (सिन्धवः नः शम्) नदियो के जलप्रवाह हमे सुखकारी हों। और (आपः शम् उ सन्तु) जल हमे सुखकारी हो।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ९

भा०—(अदितिः) अखण्ड व्रत पालन करने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और माता पिता, पुत्रादि (व्रतेभिः) सत्कर्मों से (नः शम्) हमे सुख शान्तिदायक हो। (स्वर्काः मरुतः) उत्तम विचारवान् विद्वान् पुरुष प्राणवत् प्रिय होकर (नः) हमे (शं भवन्तु) शान्तिदायक हो। (विष्णु नः शम्) व्यापक परमेश्वर हमे शान्ति दे। (पूषा नः शम् उ अस्तु) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार, सर्वपोषक प्रभु वा राजा भी हमे सुखकारी हो। (भवित्र नः शम्) भवितव्य जो आगे होने को है वह भी हमे सुख दे। (वायुः शम् उ अस्तु) वायु हमे शान्तिदायक हो।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूपसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः १०।२९

भा०—(त्रायमाण) रक्षा करता हुआ (सविता) सबका प्रेरक, सबका उत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (देवः) सब सुखो का देने वाला प्रभु (नः शं) हमे शान्ति दे। (विभातीः) विशेष कान्ति से चमकती हुई (उपसः) प्रभात वेलाएं (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (पर्जन्य) शत्रुओ को पराजय करने मे समर्थ राजा और प्रजाओं को तृप्त करने वाला, एवं जलो का दाता मेघ (न) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शं भवतु) शान्ति सुख का दाता हो। (क्षेत्रस्य पतिः) निवास करने योग्य क्षेत्र, देश और देह का पालन करने वाला राजा वा प्रभु परमेश्वर (शंभुः) सदा शान्ति सुख का देने वाला (नः शम्) हमें शान्ति देवे। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑ ११

भा०—(विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (देवाः) ज्ञान, ऐश्वर्य के देने वाले होकर (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (सरस्वती) विद्या, सुशिक्षायुक्त वाणी, उत्तम २ (धीभिः) प्रज्ञाओं (सह) सहित (शं अस्तु) हमें शान्तिदायक हो । (अभिषाच. शम्) आभ्यन्तर से सम्बन्ध रखने वाले हमें शान्ति दें । (रातिषाचः शम् उ) बाह्य पदार्थों के लेने से सम्बन्ध रखने वाले जन भी हमें शान्ति दें । (दिव्य) दिव्य (पार्थिवाः) और पृथिवीस्थ पदार्थ (नः शम्) हमें सुख दें । और (अप्या) जल में उत्पन्न, मुक्ता और नौका आदि पदार्थ (नः शं) हमें सुख दें ।

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं नः॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१२॥

भा०—(सत्यस्य पतयः नः शम् भवन्तु) सत्य व्यवहार, सत्य धर्म के पालक हमें शान्ति दें । (अर्वन्तः) अश्व (न. शं) हमें सुख दें । (गाव शम् उ सन्तु) गौएं हमें शान्तिदायक हों । (सुकृत) उत्तम कार्य करने वाले धर्मात्मा (सु-हस्ताः) कार्य, शिल्पादि साधने में सिद्धहस्त, प्रशस्त (ऋभवः) शिल्पी और तेजस्वी, सत्यज्ञानी पुरुष (नः शं) हमें सुख दें । (हवेषु) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों में (पितरः) माता पिता, पालक आचार्य, राजादि जन (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों ।

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्यः१॒ शं स॑मु॒द्रः ।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पा ॥ १३ ॥

भा०—(एक-पाद्) सब जगत् को एक पाद या चरण में धारण करने वाला, (अज) कभी उत्पन्न न होने वाला, नित्य (देव) सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु (नः शम् अस्तु) हमें शान्ति सुख दे ।

(अहिः बुध्न्यः नः शम्) अन्तरिक्ष मे उत्पन्न मेघ हमे शान्ति दे। (समुद्रः शम्) सागर और आकाश हमे शान्ति दे । (अपां) जलो के बीच मे (नपात्) चरण रहित नौका (पेरुः) पार उतारने वाला होकर (नः शं) हमे शान्तिदायक हो । (देव-गोपाः) इन्द्रियो, शुभ गुणो और मनुष्यो का रक्षक (पृश्निः) आकाशवत् महान् सबको सुखो का वर्षक ज्ञानी (नः) हमे शान्ति दे ।

आ दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्ते॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः ।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः ॥१४॥

भा०—(आदित्याः) ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचारी (रुद्राः) ४४ वर्ष तक के ब्रह्मचर्यवान् और (वसवः) २४ वर्ष तक के ब्रह्मचारी (इदं) इस (नवीयः) उत्तम (क्रियमाणं ब्रह्म) उपदेश किये जाते, धन अन्न और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करे । (दिव्याः) उत्तम कमनीय गुणादि मे प्रसिद्ध (पार्थिवासः) पृथिवी मे प्रसिद्ध (गो-जाताः) वाणी से सुशिक्षित, विद्वान् तेजस्वी जन (उत) और (ये) जो (यज्ञियासः) यज्ञकर्त्ता, सेवा सत्संगादि योग्य पुरुष है वे सव (नः शृण्वन्तु) हमारे वचन श्रवण किया करे । हमारे प्रश्न सुन समाधान करें ।

ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः । ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ।१५।३०।३॥

भा०—(ये) जो (यज्ञियानां देवानां) यज्ञ करने हारे, उत्तम विद्वानों में भी (यज्ञियाः) दान, मान सत्कार करने योग्य है । (मनोः) जो मननशील विद्वान् का (यजत्राः) सत्संग करने वाले (अमृताः) दीर्घायु, जीवन युक्त (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने वाले है (ते) वे (नः अद्य) आज (उरु-गायम्) वहुत से उपदिष्ट, और कीर्त्तित ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें । हे विद्वान् जनो ! (यूयं न स्वस्तिभिः सदा-

पात) तुम लोग हमें सदा कल्याणकारी उपायों से सुरक्षित करो । इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः । १, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य सदनात्) सत्य ज्ञान प्राप्त करने के स्थान, गुरु गृह से हमें (ब्रह्म प्र एतु) उत्तम वेदज्ञान प्राप्त हो । (सूर्यः) सूर्य अपनी (रश्मिभिः) रश्मियों से (गाः) भूमियों को (वि ससृजे) विशेष गुण से युक्त बनावे । (पृथिवी) पृथ्वी, (उर्वी) विशाल होकर भी (सानुना) उन्नत प्रदेश से (वि सस्रे) विशेष जानी जाती है । (अग्नि) अग्नि भी (पृथु) बहुत अधिक विस्तृत (प्रतीकं) प्रतीति कराने वाला प्रकाश (अधि एधे) चमकाता है उसी प्रकार सूर्यवत् विद्वान् वाणियां प्रकट करे, माता अपने उत्पन्न पुत्र से विशेष ख्याति लाभ करे, अग्निवत् विद्वान् सबको प्रतीति कराने वाला ज्ञान प्रकाशित करे ।

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण, स्नेह युक्त और दुःखवारक शरीर में प्राण उदान और गृह में माता पितावत् सभा सेना पद जनो ! हे (असुरा) बलवान् जनो ! मैं (वां) आप दोनों की (नवीयः) अति नवीन, स्तुत्य (सुवृक्तिम्) दुःख अज्ञान के निवारक (इषम्) इ [illegible]

वा अन्न को करूं। (वाम्) आप दोनो मे से (अन्य.) एक तो (इनः) स्वामी (पदवीः) पद को प्राप्त (अदब्धः) अविनाशी है। (मित्रः) सर्वस्नेही (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (जनं च यतति) प्रत्येक जन को उद्यम कराता है। इसी प्रकार मित्र परमेश्वर है और वरुण जीव है। परमेश्वर जगत् का स्वामी, परम पद रूप से ज्ञानी, अविनाशी, सर्वोपदेष्टा है। दूसरा जीव भी प्राणो का स्वामी होने से 'इन', ज्ञान प्राप्त करने से पदवी, प्रत्येक जन्तु को सञ्चालित करता है।

**आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद्वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥**

भा०—(वृषभः) श्रेष्ठ बलवान् पुरुष (सस्मिन्) अन्तरिक्ष मे मेघ के समान (ऊधन्) उषाकाल मे सूर्य के समान तेजस्वी होकर (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (महः दिवः) बड़े भारी प्रकाश, ज्ञान या लोक व्यवहार के (सदने) स्थान, राजसभा, लोकसभा और गुरु-गृह में (अचिक्रदत्) प्राप्त हो, अन्यो को उपदेश करे। (वातस्य ध्रजतः इत्याः सूदाः न रन्ते) वेग से जाते हुए वायु की गतियों मे जिस प्रकार वर्षाशील मेघ विहरते है उसी प्रकार (वातस्य) वायु के समान बलवान् (ध्रजत) वेग से जावे हुए उस सेनापति के (इत्याः) गमनों को प्राप्त (सूदा.) उत्तम करप्रद प्रजाएं (धेनवः) गौओ के समान (रन्ते) सुखी होती है और (अपीपयन्त) आप बढ़ती और राजा को भी समृद्ध करती है।

**गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥**

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरे (एता) इन दोनो (धायू) धारक पोषक (सु-रथा) उत्तम रथ वाले (प्रिया) प्रिय (हरी) अश्वो के समान बलवान् मुख्य नायक

वा स्त्री पुरुषों को (गिरा) वेद वाणी से (युनजत्) सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और (यः) जो (रिथतः) हिंसक जनों को (प्र मिनाति) दण्डित करता है उस (मन्युम्) मननशील (सु-क्रतुम्) उत्तम ज्ञानवान् कर्मवान् (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुनियामक पुरुष को मैं (आ ववृत्याम्) प्राप्त करूं। अध्यात्म में—हे इन्द्र ! आत्मन् ! प्रभो ! जो योगी तेरे प्रति देह में स्थित, प्राण अपान रूप घोड़ों को योगद्वारा युक्त करता है जो मारने वाले के प्रति भी अपने मन्यु, क्रोध को मारता है अक्रोधी, क्षमावान् रहता है उस उत्तमकर्मा काम क्रोधादि, अन्तः-शत्रु के विजयी को मैं प्राप्त करूं।

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन्।
वि पृक्षो बाबधे नृभि स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य धामन्) सत्य या न्याय के भवन में (स्वे) उसके अपने जन (नमस्विनः) नमस्कार युक्त, अति विनीत होकर (अस्य) इस रुद्र के (सख्यं) मित्रभाव और (वयः च) जीवन वृत्ति को भी (यजन्ते) प्राप्त करते हैं वह (नृभिः स्तवानः) मनुष्यों से स्तुति किया जाता हुआ (पृक्षः) अन्नादि को (वि बाबधे) विविध प्रकार से व्यवस्था करता है। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले उस महापुरुष को (इदं) उस प्रकार (प्रेष्ठ) अतिप्रिय, अतिश्रेष्ठ (नमः) अधिकार वा शक्ति प्राप्त हो। इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः॥६॥

भा०—जिस प्रकार (स्वेन पयसा पीप्याना) अपने जल से परिपूर्ण होकर (सु-धाराः) उत्तम जलधाराएं (सु स्वयन्त) खूब वेग से गमन करती हैं और उनमें (सरस्वती) अति वेग से चलने वाली (सप्तथी) आगे बढ़ने वाली (सिन्धु-माता) प्रवाह से बहते जलों की जननी

लेने वाली सबकी माता के समान होती है। वे सब (साकं वावशाना) एक साथ मिलकर गर्जती हुई जाती है उसी प्रकार (सरस्वती) वाणी, (सप्तथी) छः मन सहित ज्ञानेन्द्रियो के बीच सातवी (सिन्धुमाता) प्राणमय स्रोतो की माता के समान है। और शेष सब भी मिलकर (सु-दुघाः) उत्तम ज्ञान से आत्मा को पूर्ण करने वाली (सु-धाराः) उत्तम धारणा वा उत्तम वाणी से युक्त होकर (स्वेन पयसा) अपने ज्ञान से आत्मा को (पीप्यानाः) पुष्ट करती हुई (सुस्रयन्त) सुखपूर्वक कार्य करती है। वे (यशसः) बलयुक्त आत्मा के अधीन (साकं) एक साथ ही (वावशानाः) विषयो की कामना करती हुई (आ) प्राप्त होती है उसी प्रकार (सु-धाराः) उत्तम वाणी से युक्त विदुषी स्त्रियें भी (स्वेन पयसा) अपने बल से बढ़ती हुई सन्मार्ग से जावे। (यशसः) बलवीर्य को चाहती हुई एक साथ मिलकर उद्योग करे। उनमे प्रशस्त ज्ञान वाली माता के समान वर्त्ते।

उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (त्ये मरुतः) वे विद्वान् (वाजिनः) ज्ञान और बल ऐश्वर्य से सम्पन्न मनुष्य (मन्दसानाः) अति प्रसन्न रहते हुए (नः) हमारे (धियं तोकं च) बुद्धियो, कर्मो और सन्तानो की भी (अवन्तु) रक्षा करें। (ते) वे (नः) हमारे (अक्षरा) न नाश होने वाली वाणी (चरन्ती) प्राप्त होती हुई (मा नः) हमे न (परि ख्यत्) त्याग दे।

प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं१न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ८

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (व.) अपनी (महीम्) पूज्य वाणी को (अरमति) अति अधिक बुद्धि को (प्र कृणुध्वम्) खूब बढ़ाओ। और (विदथ्य) सग्राम मे कुशल (वीरं न) वीर पुरुष के समान

(पूषणं) पोषक पुरुष को (प्र कृणुध्वम्) मान सत्कार से बढ़ाओ। (भग) ऐश्वर्यवान् पुरुष की और (धियः) ज्ञान और कर्म के (अवितारं) रक्षा करने वाले की (प्र कृणध्वम्) प्रतिष्ठा करो। (अस्याः सातौ) इस वाणी को प्राप्त करने के लिये वा इसके प्राप्त होजाने पर (वाजम्) ज्ञान, (राति-षाचं) परस्पर दान-प्रतिदान से सम्बद्ध (पुरन्धिम्) नाना ज्ञानों के धारक विद्वान् का भी (प्र कृणुध्वम्) आदर करो।

अच्छायं वो मरुतः श्लोकं एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो! (अयं) यह (नः) आप लोगो की (श्लोकः) उत्तम शिक्षा और वाणी (अवोभिः) रक्षा साधनों, सैन्यादि से (निसिक्त-पाम्) अभिषिक्त माण्डलिकों तथा निषिक्त गर्भों के पालन करने वाले दयालु (विष्णुम्) सर्वव्यापक शक्तिमान् को लक्ष्य करके (अच्छ एतु) उसे प्राप्त हो। और यह स्तुति उनको भी (अच्छ एतु) प्राप्त हो जो (प्रजायै गृणते) प्रजा को उपदेश दे और (वयः धु) जो लोग बल और दीर्घ जीवन धारण करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा किया करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। २, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ८ विराट् त्रिष्टुप्। ४ निचृत्पंक्तिः। ६ स्वराट्पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥१॥

भा०—हे (वाजाः) विज्ञान ऐश्वर्य और बलशाली जनो! हे (ऋभुक्षण) महान् तेज, प्रकाश से चमकने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषो! (( )

तुम लोगों को (रथः) अति रमणीय, रसस्वरूप (अमृक्तः) अविनाशी (वाहिष्ठः) रथ के समान सबको उद्देश्य तक उठाकर पहुंचा देने में सर्वश्रेष्ठ ही (आ वहतु) सब प्रकार से आप लोगो को धारण करे वही (स्तवध्यै) स्तुति योग्य है । हे (सु-शिप्राः) सौम्य मुखो वाले जनो ! (सवनेषु) उत्तम यज्ञादि कर्मो के अवसरो मे आप लोग (महभिः) बड़े महत्व युक्त (त्रिपृष्ठैः सोमैः) तीन २ रूपो वाले ऐश्वर्यो, अन्नो और ज्ञानो से (मदे) आनन्द मे (अभि पृणध्वम्) सबको पूर्ण करो ।

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् २

भा०—हे (स्वर्दृशः) सुख, आनन्द का साक्षात् करने वाले (ऋभुक्षणः) सत्य प्रकाश से चमकने वाले विद्वानो ! (यूयं) आप लोग (मघवत्सु) उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषो मे (अमृक्तं) कभी नाश न होने योग्य (रत्नम्) अति सुन्दर विद्यामय धन (ह) अवश्य (धत्थ) धारण कराया करो । आप लोग (स्वधावन्तः) उत्तम अन्न के स्वामी होकर (यज्ञेषु) यज्ञो मे (स पिबध्वम्) सब मिलकर उत्तम रसका पान करो । और (मतिभिः) उत्तम ज्ञानों से (नः) हमारे (राधासि) नाना धनो को (वि दयध्वम्) विशेष रूप से रक्षित करे और दे ।

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (महः) बडे, बहुत, और (अर्भस्य) थोडे से भी (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग करने मे तू (देष्णं) देने योग्य वा उपदेश करने योग्य ज्ञान का (उवोचिथ हि) अवश्य उपदेश कर । (वसुना पूर्णा ते गभस्ती) धन से भरे पूरे तेरे बाहुओं को (वसव्या) धन को उचित विभाग करने का उपदेश करने वाली (सूनृता) उत्तम न्याययुक्त वाणी (न नियमते) दान करने से

नहीं रोकती। वह वाणी तो स्वल्प और अधिक धन देने और विभक्त करने के लिये उत्तम पात्रापात्र के विवेक का उपदेश करती है।

त्वमि॑न्द्र स्व॒यशा॑ ऋभु॒क्षा वाजो॒ न सा॒धुरस्त॑मे॒ष्यृक्वा॑।
व॒यं नु ते॑ दा॒श्वांस॑: स्याम॒ ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॑ हरिवो॒ वसि॑ष्ठाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! प्रभो! (त्वम्) तू (ऋभुक्षाः) सत्य ज्ञान से दीप्तियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने हारा, स्वयं न्यायपूर्वक धन का उपभोग करने वाला (वाज न) ज्ञानवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (साधुः) सत्कर्मनिष्ठ, साधक, (ऋका) वेद मन्त्रों का ज्ञाता, उत्तम जनों का सत्कार करने हारा होकर (अस्तम् एषि) गृह को प्राप्त होता है। हे (हरिवः) जितेन्द्रिय, हे मनुष्यों के स्वामिन्! (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र ही (ब्रह्म दाश्वांसः) ज्ञान, अन्न, धन के देने वाले जन (ते) तेरे लिये (कृण्वन्तः) सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी (स्याम) हों।

स॒नि॒तासि॑ प्र॒वतो॑ दा॒शुषे॑ चि॒द्याभि॒र्विवे॑षो हर्यश्व धी॒भिः।
व॒वन्मा नु ते॒ युज्या॑भिरू॒ती क॒दा न॑ इन्द्र रा॒य आ द॑शस्येः ॥५॥३॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान्, हरणशील अश्वों वाले! एवं हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन्! (येभि) जिन (धीभि) ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से (विवेषः) सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (प्रवतः) उत्तम गुण युक्त (रायः) ऐश्वर्य (सनितासि) प्रदान करने हारा है। (ते) तेरी (युज्याभि.) नियुक्त, आज्ञाकारी (ऊती) सेनाओं तथा (ऊती) रक्षण नीति से प्रजान्वित होकर (न नु ववन्म) तेरी याचना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (न) हमें (राय) वे नाना ऐश्वर्य (कदा दशस्ये) कब दान करेगा? । इति तृतीयो वर्गः ॥

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों मे से जो (उदन्यवः) वायुओं के तुल्य जलवत् उत्तम ज्ञान को ग्रहण करने के इच्छुक, (तविषाः) बलवान्, (वयोवृधः) ज्ञान, बल, आयु की वृद्धि करने वाले, (अश्व-युजः) प्रबल अश्वों को रथ मे लगाने वाले एवं योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा मे लगाने तथा इन्द्रिय गण को अपने वश में करने वाले, (परि-ज्रयः) सर्वत्र, सब ओर जाने मे समर्थ, हों, और जो (विद्युता) बिजुली से, (सं दधति) यन्त्रों का संधान करते, अथवा विशेष कान्ति वा ज्ञान दीप्ति से युक्त विद्वान् पुरुष के साथ (स दधति) प्रेम से मिलकर ज्ञान धारण करते है, जो (त्रितः) तीनों से (वाशति) ज्ञानोपदेश ग्रहण करते, मन्त्रो का पाठ करते, (स्वरन्ति) और स्वरसहित गान करते है वे (आपः) आप्त पुरुष (अवना) भूमि पर (परिज्रयः) जल-धाराओं के समान सर्वत्र गमन करें और शान्ति प्रदान करें। (२) वायुगण, बलशाली, सूर्य ताप से भूमिस्थ जल को ग्रहण करने वाले, अन्न को बढ़ाने वाले, विद्युत् से मिलने वाले होकर गर्जते है उनके साथ, जल वृष्टियां भूमि पर गिरती है ।

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः विद्युन्म-हसः) वायु गण बिजुली की कान्ति से चमकने वाले, (अश्म-दिद्यवः) मेघ को प्रकाशित करने वाले, (वात त्विषः) प्रबल वायु से चमकने वाले (पर्वत-च्युतः) मेघों को डुलाने वाले होते है और वे (अब्दया मुहः ह्रादुनीवृतः) जल देने वाली मेघ माला से युक्त, गर्जती बिजली को उत्पन्न करने वाले और (स्तनयद्-अमाः) गर्जते मेघ के साथ रहते है उसी प्रकार (नरः) उत्तम नायक गण एवं

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हम (वेधसः) विद्वान् पुरुषों को (वासयसि इव) अपने राष्ट्र मे बसाता रहा है । तू (नः) हमारे (वचसः) वचनों को (कदा) कब (बुबोधः) समझेगा ? (वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान समर्थ बलवान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष (तात्या धिया) व्यापक परमेश्वर मे निष्ठ बुद्धि और त्याग युक्त कर्म से प्रेरित होकर (नः अस्तं) हमारे घर मे कब (सुवीरं-रयिं) उत्तम पुत्रों और वीरों से युक्त धन और (पृक्षः) शान्तिदायक, अन्न को (नि उहीत) प्राप्त करावे ।

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) उत्तम स्त्री (चित्) जिस प्रकार (निर्ऋतिः) नित्य रमण करने वाली, सदा सुप्रसन्न रहकर अपने स्वामी को प्राप्त होकर (ईशे) स्वामिनी होजाती है उसी प्रकार (देवी) दिव्य गुणों से युक्त (निर्ऋतिः) भूमि (यम् अभि) जिसको प्राप्त कर (ईशे) ऐश्वर्यवती होजाती है (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् को (शरदः सुपृक्षः) उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष (नक्षन्तः) प्राप्त होते हैं और (मर्त्ताः) मनुष्य (य) जिसको (अस्ववेशं) अपने गृहादि से रहित, परिव्राजक (कृण्वन्त) करते हैं वह (त्रिबन्धुः) तीनों आश्रमों का बन्धु, परम मित्र होकर (जरद्-अष्टिम्) वृद्धावस्था को (उपेति) प्राप्त हो । इसी प्रकार राजा को भी सब प्रजाजन 'अस्व-वेश' करते हैं । राजा का न अपना कोई जन, न अपना कोई गृह हो । राष्ट्र ही उसका गृह और प्रत्येक व्यक्ति उसका 'स्व' है ।

नहीं रोकती। वह वाणी तो स्वल्प और अधिक धन देने और विभक्त करने के लिये उत्तम पात्रापात्र के विवेक का उपदेश करती है।

त्वमिन्द्र स्वयंशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (ऋभुक्षाः) सत्य ज्ञान से दीप्तियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने हारा, स्वयं न्यायपूर्वक धन का उपभोग करने वाला (वाजः न) ज्ञानवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (साधुः) सत्कर्मनिष्ठ, साधक, (ऋक्वा) वेद मन्त्रों का ज्ञाता, उत्तम जनों का सत्कार करने हारा होकर (अस्तम् एषि) गृह को प्राप्त होता है। हे (हरिवः) जितेन्द्रिय, हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र ही (ब्रह्म दाश्वांसः) ज्ञान, अन्न, धन के देने वाले जन (ते) तेरे लिये (कृण्वन्तः) सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी (स्याम) हों।

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ५।३॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान्, हरणशील अश्वों वाले ! एवं हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (येभि) जिन (धीभिः) ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से (विवेषः) सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (प्रवतः) उत्तम गुण युक्त (रायः) ऐश्वर्य (सनितासि) प्रदान करने हारा है। (ते) तेरी (युज्याभिः) नियुक्त, आज्ञाकारी (ऊती) सेनाओं तथा (ऊती) रक्षण नीति से प्रभावित होकर (ते नु ववन्म) तेरी याचना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (न) हमें (रायः) वे नाना ऐश्वर्य (कदा दशस्येः) कब दान करेगा ? । इति तृतीयो वर्गः ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हम (वेधसः) विद्वान् पुरुषो को (वासयसि इव) अपने राष्ट्र मे बसाता रहा है । तू (नः) हमारे (वचसः) वचनो को (कदा) कब (बुबोधः) समझेगा ? (वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान समर्थ बलवान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष (तात्या धिया) व्यापक परमेश्वर मे निष्ठ बुद्धि और त्याग युक्त कर्म से प्रेरित होकर (नः अस्तं) हमारे घर मे कब (सुवीरं-रयिं) उत्तम पुत्रो और वीरो से युक्त धन और (पृक्षः) शान्तिदायक, अन्न को (नि उहीत) प्राप्त करावे ।

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) उत्तम स्त्री (चित्) जिस प्रकार (निर्ऋतिः) नित्य रमण करने वाली, सदा सुप्रसन्न रहकर अपने स्वामी को प्राप्त होकर (ईशे) स्वामिनी होजाती है उसी प्रकार (देवी) दिव्य गुणो से युक्त (निर्ऋतिः) भूमि (यम् अभि) जिसको प्राप्त कर (ईशे) ऐश्वर्यवती होजाती है (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् को (शरदः सुपृक्ष) उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष (नक्षन्तः) प्राप्त होते है और (मर्त्ताः) मनुष्य (यं) जिसको (अस्ववेश) अपने गृहादि से रहित, परिव्राजक (कृण्वन्त) करते है वह (त्रिबन्धुः) तीनों आश्रमो का बन्धु, परम मित्र होकर (जरद्-अष्टिम्) वृद्धावस्था को (उपेति) प्राप्त हो । इसी प्रकार राजा को भी सब प्रजाजन 'अस्व-वेश' करते है । राजा का न अपना कोई जन, न अपना कोई गृह हो । राष्ट्र ही उसका गृह और प्रत्येक व्यक्ति उसका 'स्व' है ।

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ईश्वर ! (नः) हमे (स्तवध्यै) स्तुति करने और स्तुति प्राप्त करने के लिये (राधांसि आ यन्तु) नाना धन प्राप्त हो और (पर्वतस्य) मेघ के समान दानशील पुरुष के (रायः) नाना ऐश्वर्य (रातौ) दान करने के निमित्त (नः आयन्तु) हमे प्राप्त हों। (दिव्यः) शुद्ध, (पायु) रक्षक (नः) हमे सदा (सिषक्तु) सुखों से युक्त करे। हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप लोग (न.) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभि· पात) उत्तम कल्याणकारी साधनो मे रक्षा करो। इति चतुर्थो वर्ग ॥

[३८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—६ सविता। ६ सविता भगो वा। ७, ८ वाजिनो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६ स्वराट् पंक्तिः। ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ इत्यष्टर्चं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ १ ॥

भा०—(स्यः देवः सवितः) वह सब सुखो और ऐश्वर्यों का देने वाला, सब जगत को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) हितकारी और रमणीय सुखप्रद, तेजोमय (अमतिम्) उत्तम रूप युक्त लक्ष्मी को (अशिश्रेत्) धारण करता है उसको हम (उत ययाम) उद्यम करके प्राप्त करे। (य·) जो (भग· वसु·) २४ वर्ष का ब्रह्मचारी होकर (पुरु रत्ना दधाति) बहुत से उत्तम गुणो, बलो और ज्ञानों को धारण करता है (नून) निश्चय से वही (हव्य) स्तुति योग्य और (भगः) सेवनीय, ऐश्वर्यवान् है।

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवान ॥२॥

भा०—हे (सवितः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे ! सब ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (उत् तिष्ठ) सब से ऊपर के पद पर विराजमान हो। तू (अस्य) इस जीव, प्रजाजन के दुःखो को (श्रुधि) श्रवण कर। हे (हिरण्यपाणे) हित, रमणीय व्यवहार वाले ! और समस्त तेज और ऐश्वर्यो के स्वामिन् ! तू (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, सत् कारण और अन्न, धन, जीवनादि को (प्र-भृतौ) उत्तम रीति से धारण करने के निमित्त (उर्वीम्) विशाल, (अमतिम्) उत्तम रूप वाली सुन्दर (पृथ्वीम्) भूमि को (वि सृजानः) विविध प्रकार का रचता हुआ और (मर्त्त-भोजन) मरणशील प्राणियो के लिये भोजन और रक्षा साधन को (आसुवान.) सर्वत्र सब ओर पैदा करता हुआ तू सबसे ऊपर विराजमान हो।

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ३

भा०—(यम्) जिसको (विश्वे वसवः) सब वसने योग्य पृथ्वी आदि लोक और प्राणी (आ गृणन्ति) सब ओर आदर से स्तुति करते है वह (देव) सब सुखो का दाता और (सविता) सबका उत्पादक (अपि स्तुत. अस्तु) खूब स्तुति करने योग्य है। (स) वह (नमस्यः) सबसे नमस्कार करने योग्य (नः) हमे (स्तोमान्) स्तुति योग्य वेद मन्त्रो का और (चनः) अन्न का भी (आधात्) उपदेश करता और प्रदान करता है। वह (विश्वेभि पायुभिः) समस्त पालन साधनो से (सूरीन्) पुरुषो की (नि पातु) अच्छी प्रकार रक्षा करे।

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः॥४॥

भा०—(देवस्य) सर्व प्रकाशक, सर्व सुखदाता (सवितु) सर्व

जगदुत्पादक प्रभु के (सवं) शासन, ऐश्वर्य को (जुषाणा) सेवन करती हुई (देवी) अन्नादि को देने वाली (अदितिः) यह पृथिवी, और प्रकृति उत्तम देवी पत्नी के समान (यम् अभि गृणाति) जिसका गुणानुवाद करती है। और (यम् अभि सम्राजः वरुणः) जिसकी स्तुति श्रेष्ठ पुरुष सम्राट् चक्रवर्ती राजे और (मित्रासः) मित्रगण तथा (सजोषाः अर्यमा) न्यायकारी न्यायाधीश ये सब भी समान प्रीतियुक्त होकर करते हैं हे पुरुषो ! (सः नः चन धात्) वह हमें सब अन्न दे और (पायुभिः नि पातु) वह नाना साधनों से हमारी रक्षा करे।

अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो हम लोग (मिथः) परस्पर मिलकर (वनुषः) ज्ञानैश्वर्य के दाता (दिवः) सूर्यवत तेजस्वी, प्रकाशस्वरूप (पृथिव्याः) भूमि के समान विशाल (राति-षाच.) दानदाता प्रभु की (रातिम्) दान सम्पदा को (सपन्ते) मिलकर प्राप्त करते हैं वे (उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न या स्थित मेघ के समान उदार प्रभु (नः शृणोतु) हमारी विनय सुने। और वह (वरूत्री) श्रेष्ठ माता के समान (एक-धेनुभि) एक वाणी से बद्ध सहायकों द्वारा (नः नि पातु) हमारी रक्षा करे।

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥

भा०—(देवस्य) सर्वैश्वर्य के दाता (सवितुः) सर्व शासक, सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर के (रत्नम्) रमणीय, उत्तम (भगम्) ऐश्वर्य को (इयानः) प्राप्त करता हुआ (उग्रः) बलवान (जास्पति) प्रजा का पालक (तत्) उसे (नः अनु मंसीष्ट) हमें शक्ति प्रदान करे। (अध) इस प्रकार (अनुग्रः) निर्बल पुरुष भी (अवसे) अपनी

रक्षा के लिये जिस (रत्नं) उत्तम (भगं) ऐश्वर्य की (जोहवीति) याचना करता है वह भी उसे (याति) प्राप्त कर लेता है।

शं नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः।
ज॒म्भय॒न्तोऽहि॒ वृकं॒ रक्षां॑सि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः॥ ७॥

भा०—(देवताता) विद्वानो द्वारा करने योग्य यज्ञादि कार्यो और विजयेच्छुक वीरो से करने योग्य (हवेषु) यज्ञो और युद्धो मे (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् (मितद्रवः) परिमित गति से आगे बढनेवाले (स्वर्काः) उत्तम अन्न, प्रार्थना और तेज से युक्त पुरुष (नः शं भवन्तु) हमे शान्ति सुख के देने वाले हो। वे (अहि) सर्प के समान कुटिल (वृकं) चोर स्वभाव के पुरुष को और (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को भी (जम्भयन्तः) मारते और दबाते हुए (सनेमि) सदा (अस्मत्) हम से (अमीवाः) रोगो को और दुःखदायी शत्रुओ को भी (युयवन्) छुड़ावे।

वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒ धने॑षु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः॑ पिबत मा॒दय॑ध्वं तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॥८॥५॥

भा०—हे (वाजिनः) बल, वीर्य, ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (विप्राः) विविध विद्याओ मे पूर्ण, बुद्धिमान् जनो ! (अमृताः) दीर्घायु, ब्रह्मज्ञ, और हे (ऋत-ज्ञाः) सत्य, वेद और ऐश्वर्य तत्व के ज्ञाता जनो ! आप लोग (वाजे-वाजे) प्रत्येक संग्राम मे (न. अवत) हमारी रक्षा करो। (न धनेषु) हमारे धनो के आश्रय पर (अस्य मध्व. पिबत) इस मधुर सुख और अन्न का उपभोग और पालन करो। (मादयध्वं) स्वयं तृप्त होकर भी सदा प्रसन्न रहो। और (तृप्ता) तृप्त होकर (देव-यानै.) विद्वानो और उत्तम जनो के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों मे (यात) जाया करो। इति पञ्चमो वर्ग ॥

[३९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ स्वराट्त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व अर्थात् उदात्त मार्ग से जाने वाला (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (वस्वः) अधीन बसाने वाले आचार्य वा प्रभु की (सुमतिम्) शुभमति, ज्ञान का (अश्रेत्) सेवन करे। (प्रतीची) प्रत्यक्ष मे प्राप्त (जूर्णिः) वृद्धावस्था (देवतातिम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी कार्य मे (एति) लगे। (अद्री) अनिन्दित, स्त्री पुरुष (रथ्या इव) रथ मे जुड़े अश्वों के समान (ऋतम्) सत्यमय सन्मार्ग का (भेजाते) सेवन करें। (इषितः) इच्छावान् पुरुष (होता न) दाता वा गृहीत के समान (यजाति) दान तथा सत्सग करे, धन दे और ज्ञान ले।

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२॥

भा०—(एषाम्) इन प्रजाजनो के बीच (सु-प्रयाः) उत्तम अन्नादि सम्पन्न, उत्तम रीति से प्रसन्न तृप्त करने वाला (बर्हिः) उनको बढाने और स्वयं बढने वाला पुरुष ही उनको (प्र वावृजे) उत्तम मार्ग से गमन करावे। (एषाम्) इनके बीच स्त्री पुरुष दोनो (वीरिटे) अन्तरिक्ष मे सूर्य चन्द्र के समान (विश्पती इव) प्रजापालक राजा रानी के तुल्य (इयाते) व्यवहार करें। (अक्तोः उषसः पूर्वहूतौ) रात्रि और दिन दोनों के पूर्वागमन-काल में (वायुः) वायु के समान प्राण प्रिय और (पूषा) पृथ्वी के समान पोषक स्त्री और पुरुष (नियुत्वान्) नियुक्त भृत्यादि के स्वामी होकर (विशाम् स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये कार्य करें।

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य॥३॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र मे बसे जनो ! (अत्र) इस राष्ट्र मे आप लोग (ज्मया) भूमि के बीच मे (रमन्त) आनन्द प्रसन्न रहो। हे (शुभ्राः) सुशोभित (देवाः) स्त्री पुरुषो ! आप (उरौ) विशाल (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे नक्षत्रो या वायुओ के तुल्य (मर्जयन्त) सब व्यवहारो को स्वच्छ शुद्ध करो। हे (उरु-ज्रयः) बड़े २ मार्गो के ऊपर चलने हारे आप लोग (अर्वाक्) हमारी ओर (पथः) अपने गन्तव्य (मार्ग कृणुध्वं) मार्ग बनावे। (जग्मुषः) जाने वाले आप लोगो के प्रति (नः) हमारे (अस्यदूतस्य) इस दूत के वचनो को (श्रोत) श्रवण करो।

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्॥४॥

भा०—(ते) वे (ऊमाः) रक्षक (देवाः) विद्वान् पुरुष (विश्वे) समस्त (यज्ञियासः) यज्ञ के करने वाले (यज्ञेषु) हमारे यज्ञो मे (हि) अवश्य (सधस्थं अभि सन्ति) एक साथ विराजने योग्य सभा स्थान मे प्राप्त हो। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (तान् उशतः) उन चाहने वाले पुरुषो और (भगं) ऐश्वर्यवान्, (नासत्या) कभी असत्य भाषण न करने वाले, सत्याचारी पुरुषो और (पुरन्धिम्) बहुत सुखो के धारक, वा पुर के रक्षक आदि जनो को (श्रुष्टी) शीघ्र ही (यक्षि) आदर सत्कार किया कर।

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम्।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम्॥५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दिवः) विद्युत् सूर्य आदि के और (पृथिव्या) पृथिवी के सम्बन्ध की (गिरः) ज्ञान वाणियो को (आ वह) धारण कर। तू (मित्रं) मित्र, प्राण वायु (वरुणं) उदान वायु (इन्द्र)

आत्मा और (अग्निम्) जाठर अग्नि और (अर्यमणम्) स्वामिवत् नियन्ता मन और (अदितिं) अविनाशी (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर को (आ वह) धारण कर । (एषां सरस्वती) इन सबके सम्बन्ध की वेदवाणी से हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मादयन्ताम्) स्वयं प्रसन्न होवो अन्यों को भी प्रसन्न करो ।

र॒रे ह॒व्यं म॒तिभि॑र्य॒ज्ञिया॑ना॒ं नक्ष॒त्कामं॒ मर्त्या॑ना॒मसि॑न्वन् ।
धाता॑ र॒यिम॑विद॒स्यं स॒दासां॑ स॒क्षीम॑हि॒ युज्ये॑भि॒र्नु दे॒वैः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (यज्ञियान्) यज्ञ के योग्य, पूजा सत्कारोचित जनों के (हव्यं) योग्य अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (मतिभिः) सद् बुद्धियों और ज्ञानवान् पुरुषों से प्रेरित होकर (ररे) दिया करूं। (यज्ञियानां मर्त्यानाम्) आदर योग्य मनुष्यों की भी (कामं) अभिलाषा को (नक्षन्) प्राप्त होओ । जो विद्वान् लोग (असिन्वन्) हमें प्रेमादि से बांधते हैं उन (युज्येभिः) सदा सहयोगी (देवैः) विद्वानों, के साथ (सक्षीमहि) मिल जुल कर रहें । और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (सदासां) सदा सेवन करने योग्य (अविदस्यं) अविनाशी (रयिम्) ऐश्वर्य को (धात) धारण करो ।

नू रोद॑सी अ॒भिष्टु॑ते॒ वसि॑ष्ठैर्ऋ॒तावा॑नो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निः ।
यच्छ॑न्तु च॒न्द्रा उ॑प॒मं नो॑ अ॒र्कं यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ७।६

भा०—(वसिष्ठैः) उत्तम विद्वान् पुरुषों द्वारा (रोदसी) सूर्य भूमि के तुल्य व्यवहार युक्त स्त्री पुरुषों की (अभि स्तुते) अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और (ऋतावानः) सत्य धारण, न्याय, ऐश्वर्य के स्वामी (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान् और (अग्नि) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, सभी (चन्द्राः) आह्लादकारी होकर (नः) हमें (उपमं) ज्ञान और (अर्कं) उत्तम सत्कार (यच्छन्तु) प्रदान करें । हे विद्वान् जनो !

विद्वान् पुरुष भी (विद्युत्-महसः) विशेष द्युति कान्ति से चमकने वाले हो, वे (अश्म-दिद्यवः) व्यापक प्रभु वा आत्मा में चमकने वाले, और 'अश्म' अर्थात् शत्रुनाशक आयुधों से चमकने वाले, (वात-त्विषः) सूर्य की कान्ति को प्राप्त, (पर्वत-च्युतः) बड़े २ पर्वतवत् अचल शत्रु को भी रणच्युत करने वाले हो । वे (अब्दया) आप्त जनों की दानशील क्रिया से युक्त होकर (ह्रादुनीवृतः) आह्लादकारिणी वाणी से वर्त्तने वाले हों और वे (स्तनयद्-अमाः) अपने गृहों को उत्तम घोषों, वाद्यादि के शब्दों से गुंजाते हुए (रभसाः) वेग से आक्रमण करने वाले (उद्-ओजसः) उत्तम बल पराक्रमशाली होवें ।

व्य१क्तून्रुद्रा व्यहा॑नि शिक्वसो व्य१न्तरि॑क्षं॒ वि रजां॑सि धूतयः ।
वि यदज्राँ॒ अज॑थ॒ नाव॑ ईं यथा॒ वि दु॒र्गाणि॑ मरुतो॒ नाह॑ रिष्यथ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायुगण (शिक्वसः धूतयः भवन्ति) शक्तिशाली और वृक्षादि सब पदार्थों को कंपाने वाले होते है वे सब रातें, सब दिनों (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में (रजांसि) समस्त लोकों को वा धूलियों को और (अज्रान्) मेघों को (वि-अजथ) विविध प्रकार से उड़ाते है, उसी प्रकार आप लोग (अक्तून् अहानि वि अजथ) सब दिनों सब रातों और विविध रूप से जाते हो, और आप लोग (रुद्राः) दुष्टों को रुलानेहारे (शिक्वसः) शक्तिशाली, और (धूतयः) सब शत्रुओं को कंपाते हुए (अन्तरिक्षं) मध्य में विद्यमान देश को और (रजांसि वि) समस्त प्रजा जनों को और (अज्रान् वि अजथ) बड़े २ योद्धाओं को विविध उपायों से उखाड़ फेंक दिया करें । और (यथा नावः ईं)नौकाओं को वायु गण चलाते है उसी प्रकार आप विद्वान् लोग (दुर्गाणि वि अजथ) दुःख से गमन करने योग्य विषमताओं को दूर करो और (अह) तिस पर भी (न रिष्यथ) स्वयं नष्ट नहीं होवो ।

(यूयं) आप सब लोग (नः) हमारी (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें । इति पष्ठो वर्गः ॥

[४०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ३ भुरिक्पंक्तिः । ६ विराट्पंक्तिः । २, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

भा०—(ओ) हे विद्वानो ! (विदथ्या) यज्ञादि कार्यों और संग्रामों में होने योग्य (श्रुष्टिः) शीघ्रकारिता (तुराणां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (स्तोमं) समूह को (प्रति समेतु) प्रति पुरुष प्राप्त हो, ऐसे (स्तोमं) जन समूह या सैन्य को हम (दधीमहि) धारण करें । (यद् देवः) जो दानशील, तेजस्वी (सविता) सूर्यवत् सर्वाज्ञापक पुरुष (अद्य सुवाति) आज शासन करता और ऐश्वर्य प्रदान करता है (अस्य) उसके (विभागे) विशेष इस व्यवहार में हम भी (रत्निनः स्याम) उत्तम धनादि सम्पन्न हों ।

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही, मित्र (वरुण) जलवत् श्रेष्ठ पुरुष, (रोदसी च) आकाश और पृथिवी के तुल्य स्त्री और पुरुष और (इन्द्रः अर्यमा) सूर्य और मेघ के तुल्य राजा और न्यायाधीश (नः) हमें (तत्) वह नाना प्रकार का (द्यु-भक्तम्) बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य ऐश्वर्य (ददातु) प्रदान करे । (अदितिः देवी) अन्नदात्री भूमि के तुल्य विदुषी, अखण्ड व्रतचारिणी स्त्री, (भगः च वायुः च) ऐश्वर्यवान् और बलवान् सूर्य और वायु के तुल्य तेजस्वी बलवान् पुरुष (यत्

रेक्णः) जो धन और बल वीर्य (नि-युवैते) अच्छी प्रकार परस्पर मिल कर उत्पन्न करते हैं उसका हमें भी (दिदेष्टु) विद्वान् पुरुष उपदेश करे।

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुत.) वायु तुल्य बलवान्, शत्रुओं को मारने हारे वीर मनुष्यो ! हे (पृषदश्वा.) सिञ्चन किये जलाग्नि से वेग पूर्वक जाने हारे वा (पृषदश्वा.) हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले सैन्य जनो ! आप लोग (यं मर्त्यं अवाथ) जिस मनुष्य की रक्षा करते हो (सः इत् उग्रः अस्तु) वह ही बलवान्, शत्रुओं को भयभीत करने में समर्थ हो। (उत) और (ईम्) सब ओर से (तस्य सरस्वती) उसकी उत्तम वाणी और वेगवती सेना (अग्निः) अग्नि के समान अर्थ की प्रकाशक, शत्रु को दग्ध करने वाली हो जिसको (जुनन्ति) विद्वान् लोग सन्मार्ग पर चलाते हैं (तस्य रायः) उसके ऐश्वर्यों को कोई (पर्येता न अस्ति) छीन कर लेने वाला नहीं होता।

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (हि) ही निश्चय से (वरुण) सर्वश्रेष्ठ पुरुष (नेता) सबका नायक होता है। (मित्रः) सर्व स्नेही (अर्यमा) शत्रुनियन्ता और (राजा न.) अन्य राजागण उसके अधीन (अप. धुः) नाना काम अपने कन्धों ले लेते हैं। (सुहवा) उत्तम ज्ञान से युक्त (देवी) उत्तम अन्नादि देने वाली एवं विदुषी (अदिति.) अखण्ड चरित्र वाली, भूमिवत् माता और (अनर्वा) अश्वादि से रहित यन्त्रमय रथपर जाने वाला अथवा (अनर्वा) अहिंसक पुरुष (ते) वे सब (अंह·) पाप और कष्ट से (अरिष्टान्) विना पीड़ित हुए (नः) हमें (अति पर्षन्) पार करें।

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेपस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) तेजोमय, सुखप्रदाता (मीढुषः) वीर्यसेक्ता, बलवान् पिता के तुल्य, (विष्णोः) व्यापक बल शाली, (एपस्य) सबके चाहने योग्य, सर्वप्रिय (हविर्भिः प्रभृथे) ग्राह्य अन्नों या आज्ञा-वचनों द्वारा उत्तम रीति से परिपोषित इस जगत् वा राष्ट्र में अन्य सब (वयाः) शाखा के समान हैं। (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला वह ही (रुद्रियं महित्वं विदे) रुद्र होने योग्य महान् सामर्थ्य को प्राप्त करता है। हे (अश्विनौ) स्त्रीपुरुषो ! सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी जनो ! (इरावत् वर्त्तिः) अन्नादि से समृद्ध गृह को तुम लोग (यासिष्टं) प्राप्त करो।

मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन्।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥६॥

भा०—हे (आघृणे) सब ओर दीप्ति वाले तेजस्विन् ! (पूषन्) सर्वपोषक ! तू (अत्र) इस राष्ट्र में (मा इरस्य) विनाश मत कर। (यत्) जो (वरूत्री) वरण करने योग्य विदुषी स्त्री और जो (रातिषाचः च) दानशील पुरुष भी (रासन्) प्रदान करते हैं वे (मयः-भुवः) शान्ति सुख के दाता (नः अर्वन्तः) हमें प्राप्त होकर (नः निपान्तु) हमारी रक्षा करें। और (परि-ज्मा) पृथ्वी पर शासक (वातः) वायु के समान बलवान् होकर मेघवत् (वृष्टिं ददातु) प्रजा को समस्त सुखों की वृष्टि प्रदान करे।

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३९। ७॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[४१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ लिङ्गोक्ताः । २—६ भगः । ७ उषा देवता ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २, ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ४ पङ्क्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्रं॑ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ ।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रं हु॑वेम ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (प्रातः) प्रभात समय में ही (अग्निम्) अग्नि के समान तेजःस्वरूप प्रभु की (हवामहे) स्तुति करें । हम (प्रातः इन्द्रम् हवामहे) प्रातःकाल ही विद्युत् वा सूर्य के समान सर्व प्रकाशक परमेश्वर वा आत्मा की उपासना किया करें । (मित्रा वरुणा) प्राण और उदान दोनों को (प्रातः) प्रातःकाल में ही हम प्राणायाम द्वारा अपने वश करें । (अश्विना प्रातः) वैद्य, अध्यापक और देह में सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्रातः ही सेवन करें । (भगं) ऐश्वर्यमय, भजने योग्य (पूषणं) सर्वपोषक वायु का (प्रातः) प्रभात में सेवन करें । (ब्रह्मणः पतिम्) वेद, ब्रह्माण्ड और समस्त ऐश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर और वेदोपदेष्टा विद्वान् को शिष्य और (सोमम्) ओषधि की रोगी और आचार्य की शिष्य और (रुद्रं) पापियों को रुलाने वाले प्रभु की भक्तजन, उपासक (प्रातः हुवेम) प्रातःकाल ही सेवा और शुश्रूषा करें ।

प्रा॒त॒र्जितं॒ भग॑मु॒ग्रं हु॑वेम व॒यं पु॒त्रमदि॑ते॒र्यो वि॑ध॒र्ता ।
आ॒ध्रश्चि॒द्यं मन्य॑मानस्तु॒रश्चि॒द्राजा॑ चि॒द्यं भगं॑ भ॒क्षीत्याह॑ ॥२॥

भा०—(प्रातःजितम्) प्रभात वेला में ही सबसे अधिक उत्कर्ष प्राप्त करने योग्य (भगं) सेवने योग्य (उग्रं) दुष्टों को भयकारी, (पुत्रं) बहुतों के रक्षक प्रभु की (वयं) हम (हुवेम) स्तुति करें, (यः) जो (अदितेः) अखण्ड, प्रकृति सूर्य को और (विधर्त्ता) विविध लोकों को धारण करता है (यं मन्यमानः) जिसका मनन करता हुआ

(आध्र॰ चित्) अन्यो से धारण पोपण योग्य दरिद्र भी और (यं) जिस (भगं) ऐश्वर्यवान् सेव्य प्रभु को (तुरः चित्) शीघ्रकारी (राजा चित्) राजा भी (भक्षि) मैं भजन करता हू (इति आह) ऐसा ही कहता है। जिसकी उपासना करने से कोई निपेध नहीं करता है।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! हे (प्रणेतः) उत्तम मार्ग मे लेजाने हारे ! हे (भग) सेवन योग्य, हे (सत्य राध) सत् पदार्थों मे विद्यमान कारणरूप प्रकृति और सत्यज्ञान वेद के धनी, उसको वश करने हारे, हे (भग) ऐश्वर्य-सुखदात॰ ! आप (नः) हमारी (इमां) इस (धियम्) बुद्धि को (उत् अव) ऊपर की ओर ले चलो, उन्नत करो। (नः ददत्) हमे दान करते हुए हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमे (गोभिः अश्वै.) गौओं, वाणियों इन्द्रियगणो और अश्वो से (प्र जनय) उत्तम बनाइये ! जिससे हे (भग) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (नृभिः) उत्तम पुरुषों के साथ मिलकर (नृवन्तः) उत्तम मनुष्यो के सहयोगी होकर (प्र स्याम) उत्तम वनें।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(उत इदानीं) और इस समय, (उत प्र-पित्वे) औरऐश्वर्य प्राप्त होने पर, सूर्य के आगमन काल में और (अह्नाम् मध्ये) दिनों के बीच में (उत) और (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय-काल में या (उत्-इता) अस्तकाल मे भी हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् हम (भगवन्तः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्यान) होकर रहे। और सदा हम (देवाना) विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषो की (सु-मतो) शुभ मति के अधीन (स्याम) रहे।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥

भा०—(भगः एव) सबको भजन करने योग्य सर्व कल्याणकारक प्रभु ही (भगवान् अस्तु) सब ऐश्वर्यों का स्वामी हो। हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (तेन) उस परम स्वामी से ही (वयं) हम सब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों। हे (भग) सेवा करने योग्य ! (सर्व इत्) सबही (त्वां तं) उस तुझको (जोहवीती) पुकारता है, (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तू ही (इह) इस लोक में यहां (पुरः-एता भव) हमारा अग्रगामी हो।

सम॑ध्वरायो॒षसो॑ नमन्त दधि॒क्रावे॑व॒ शुच॑ये प॒दाय॑।
अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भगं॑ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ आ व॑हन्तु ॥६॥

भा०—(उषसः) सब प्रातःकाल के अवसरों में आप लोग (अध्वराय) हिंसा रहित और कभी नाश या निष्फल न होने वाले यज्ञ, उपासनादि कर्म के लिये और (शुचये) शुद्ध, पवित्र, (पदाय) प्राप्तव्य परम प्रभु को प्राप्त करने के लिये (दधिक्रावा इव) अपने ऊपर बोझ लेकर चलने वाले अश्व के समान ही दृढ़ कमर कसकर, उद्देश्य को धारण करके आगे पैर बढ़ाते हुए (सं नमन्त) अच्छी प्रकार झुको। (अश्वाः रथं न) अश्व जिस प्रकार रथ को लेजाते हैं उसी प्रकार (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् लोग (अर्वाचीनं) साक्षात् करणीय (वसु-विदं) नाना ऐश्वर्यों, लोकों, जीवों को प्राप्त और उनसे प्राप्त करने योग्य (भग) ऐश्वर्यमय, प्रभु तक (नः आवहन्तु) हमें पहुंचावें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥८

भा०—(उषासः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः) जिस प्रकार प्रभात वेलाएं सूर्य से युक्त, किरणों से युक्त, उत्तम वायु से युक्त होकर

भद्र अर्थात् कल्याण और सुख देती है उसी प्रकार (उषास:) कान्ति-युक्त, कामनायुक्त, प्रिय स्त्रियें भी (अश्वावतीः) उत्तम भोक्ता पुरुष से सनाथ, (गोमतीः) उत्तम वाणियों को धारण करने वाली, (वीर-वतीः) उत्तम पुत्र युक्त होकर (न: सदम्) हमारे घर को (उच्छन्तु) प्रभात वेलाओं के समान नित्य प्रति प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) गृह में दीप्तिवत् जल और ज्ञानप्रकाश को पूर्ण करती हुई (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार हृष्ट पुष्ट, तृप्त होकर रहें। हे विदुषी स्त्रियो ! (यूयं) आप सब (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा कल्याण उपायों से रक्षा करो। इत्यष्टमो वर्ग. ॥

[४२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ६ निचृत्पंक्तिः ॥ षड्‌ृच सूक्तम् ॥

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) देह में प्राणवत्, तेजस्वी (ब्रह्माण:) वेद के जानने हारे पुरुष (प्र नक्षन्त) आया करें। (क्रन्दनुः नभन्यस्य) जिस प्रकार मेघ वायु के वेग को प्राप्त करता है या विद्युत् अन्तरिक्षस्थ मेघ को व्यापती है उसी प्रकार (क्रन्दनुः) उपदेष्टा पुरुष (नभन्यस्य) स्तुति करने योग्य प्रभु के ज्ञान का (वेतु) प्रकाश करे। विद्युत्वत् रोदनशील कोमल प्रकृति या विदुषी स्त्री (नभन्यस्य) सम्बन्ध योग्य पुरुष का आश्रय प्राप्त करे। (उदप्रुत:) जल से भरी नदियों के समान (धेनव) वाणियां और गौएं (प्र नवन्त) प्रभु की स्तुति करें। और इस प्रकार (अद्री) मेघ वा पर्वतवत् स्थिर स्त्री पुरुष (अध्वरस्य पेशः) अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को (प्र युज्याताम्) सम्पन्न करें।

सुगस्ते॑ अग्ने॒ सन॑वित्तो॒ अध्वा॑ युक्ष्वा सु॒ते ह॒रितो॑ रो॒हित॑श्च ।
ये वा॒ सद्म॑न्नरु॒षा वी॑र॒वाहो॑ हु॒वे दे॒वानां॒ जनि॑मानि स॒त्तः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! विद्वन्! (ते) तेरा (सनवित्तः) सनातन से वेद द्वारा जाना गया (अध्वा) मार्ग (सुगः) सुख से गमन करने योग्य है। तू भी (सुते) उत्पन्न इस जगत् में वा ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये रथ में (हरितः रोहितः च) लाल, अश्वों को (युक्ष्व) नियुक्त कर। (ये वा अरुपाः वीरवाहः) जो अरुण वर्ण वीरों को पीठ पर लेने वाले हों (देवानां जनिमानि) उन विद्वानों और वीरों के जन्मों की मैं (सत्तः) स्थिर होकर प्रशंसा करूं। (२) गृहस्थ पक्ष में—(सुते) पुत्र के निमित्त (रोहितः च हरितः) तेजस्विनी, लतावत् वृद्धिशील, काम्य स्त्रियों को विवाह धर्म में नियुक्त कर। जो स्त्री पुरुष (अरुपाः) रोष रहित (वीरवाहः) पुत्रों के लालन पालन का भार उठा सकें उन कामवान् पुरुषों के उत्पन्न सन्तानों को मैं (सत्तः) स्थिर गृहपति सदा (हुवे) प्रशंसा करूं। या मैं आसनस्थ होकर उनको उपदेश करूं।

स॒मु वो॑ य॒ज्ञं म॑हय॒न्नमो॑भिः॒ प्र होता॑ म॒न्द्रो रि॑रिच उपा॒के ।
यज॑स्व॒ सु पु॑र्वणीक दे॒वाना य॒ज्ञिया॑म॒रम॑तिं ववृत्याः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो! (वः) आप लोगों में (मन्द्रः) अति स्तुत्य (होता) विद्वान् उपदेष्टा (नमोभिः) हव्यों और नमस्कार योग्य मन्त्रों से (यज्ञं) उपास्य, यज्ञमय परमेश्वर की (महयन्) पूजा करता हुआ (उपाके) हमारे समीप रहकर (प्र रिरिचे) पापों से पृथक् रहता है। हे (पुर्वणीक) बहुत से सैन्यों, बलों के स्वामिन्! तू (देवान् सुयजस्व) विद्वान् पुरुषों का आदर सहित सत्संग कर। उनको दान दे और (यज्ञियाम्) यज्ञ, करने, प्रभु की ध्यानोपासना करने की और सत्संगोचित

(अरमति) उत्तम बुद्धि को (आ ववृत्याः) सब प्रकार स्वीकार और उसका व्यवहार मे प्रयोग कर ।

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै॥४॥

भा०—अतिथि यज्ञ । (यदा) जब (वीरस्य) वीर, क्षत्रिय और (रेवतः) धनाढ्य वैश्य के (दुरोणे) गृह मे (अतिथिः) पूज्य अतिथि, भ्रमणशील विद्वान्, परिव्राजक, ब्राह्मण (स्योनशीः) सुख से रहे और प्राप्त हो, वह (दमे) गृह मे (सु-धितः) सुखपूर्वक धारित (अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (सुप्रीतः) सुप्रसन्न होकर (इयत्यै) सुख चाहने वाली (विशे) प्रजा के लिये (वार्यं आ-दाति) उत्तम ज्ञान प्रदान करता और उसके हित के लिये ही स्वयं भी (वार्यम् आ दाति) वरणीय हविष्यवत् धनादि ग्रहण करता है ।

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! (नः इम अध्वर) तू हमारे इस यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर। (मरुत्सु) मनुष्यो और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा मे भी (नः) हमारे (अध्वरं यशस कृधि) यज्ञ को कीर्त्तियुक्त कर। (नक्ता उपास॰) रात और दिन, सदा, (उशन्ता) परस्पर चाहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही परस्पर को वरण करने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषो को (इह भज) इस स्थान पर धर्मोपदेश दे, सत्संग कर। तू (बर्हि सदताम्) उत्तमासन पर विराज ।

एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥९॥

भा०—(वसिष्ठ॰) उत्तम विद्वान् (रायः काम) ऐश्वर्यों की इच्छा वाला होकर (विश्वप्स्न्यस्य) समस्त रूपों में वर्तमान, सर्वत्र

विद्यमान अग्नि आदि तत्व के (सहस्यं) बलोत्पादक (अग्नि) अग्नि या विद्युत् तत्व के गुणों का (स्तौत्) उपदेश करे। और (अस्मे) हमारे (इषं रयिम् वाजम् पप्रथद्) अन्न, धन, बल आदि का विस्तार करे। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमे कल्याणकारक उपायों से सदा सुरक्षित रखिये। इसी प्रकार मनुष्य भी ऐश्वर्य का इच्छुक विश्वरूप भगवान् के तेजोमय रूप की स्तुति उपासना करे। इच्छा, बल, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करे। इति नवमो वर्गः ॥

[४३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता. ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ५ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ य॒ज्ञेषु॑ देव॒यन्तो॑ अर्च॒न्द्यावा॒ नमो॑भिः पृथि॒वी इ॒षध्यै॑ ।
येषां॒ ब्रह्मा॒ण्यस॑मानि॒ विप्रा॒ विष्व॑ग्वि॒यन्ति॑ व॒निनो॒ न शाखाः॑ ॥१॥

भा०—(यज्ञेषु) सत्संगों, देवपूजा, दान आदि कार्यों मे (व.) आप लोगों के बीच (द्यावा पृथिवी) आकाश या सूर्य और भूमि दोनों को (इषध्यै) चाहने और जानने के लिये (देवयन्तः) विद्वानों और परमेश्वर की (नमोभिः) विनयों और अन्नादि से (प्र अर्चन्) अच्छी प्रकार अर्चना करते है (येषां) जिनके (ब्रह्माणि) ज्ञान, वेद-वचन और धनैश्वर्य (असमानि) सबसे अधिक है वे (विप्रा.) विद्वान् पुरुष (वनिनः शाखा. न) सूर्य की आकाश मे फैली किरणों वा वृक्ष की शाखाओं के समान (विश्वग् वियन्ति) सब ओर जाते है।

प्र य॒ज्ञ ए॑तु॒ हेत्वो॒ न सप्ति॒रुद्य॑च्छध्वं॒ सम॑नसो घृ॒ताचीः॑ ।
स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिर॑ध्व॒राय॑ सा॒धूर्ध्वा शो॒चींषि॑ देव॒यून्य॑स्थुः ॥ २ ॥

भा०—(हेत्व सप्ति. न) वेगवान् अश्व के समान (यज्ञ प्र एतु) यज्ञ प्राप्त हो, वह उत्तम रीति से चले। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ।५।१४।

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् प्रजा जनो ! हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह अलौकिक (वीर्य) बल पराक्रम (महित्वनम्) बड़ा भारी है। जिस प्रकार (सूर्यः न) सूर्य भी अपने (योजनम्) सब तक पहुचने वाले (दीर्घं ततान) प्रकाश को दूर २ तक विस्तृत करता है और जिस प्रकार (एताः) वेग से जाने वाले अश्व (यामे) मार्ग मे (योजनं) योजन भर दूरी निकल जाते है उसी प्रकार आप लोग भी (योजनम्) अपने २ प्रयोजन तथा उद्योग धन्धो के साथ अपना लगाव बनाते रहे, और (अगृभीत-शोचिषः) अग्नि की ज्वाला के समान असह्य तेज वाले होकर (यामे) राज्यादि के नियन्त्रण मे अपना (योजनं) लगाव बनाये रक्खो। और (अनश्वदां गिरिम्) किरणो को बाहर न जाने देने वाले मेघ को जिस प्रकार सूर्य छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अनश्वदाम् गिरिम्) अश्व सैन्य को मार्ग न देने वाले पर्वत के समान अचलवत् दृढ़ शत्रु को आक्रमण करते हुए (नि अयातन) सर्वथा पीड़ित करो।

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ६

भा०—हे (मरुतः) वायु के तुल्य बलपूर्वक शत्रुओ के कंपा देने वाले कर्मनिष्ठ वीर एवं विद्वान् जनो ! (यत्) जिस प्रकार जब (शर्धः) सूर्य का तेज (अभ्राजि) खूब तपता है तब वायुगण का बल भी (अर्णस मोषथ) जल को हर लेता है उसी प्रकार जब राजा या सेनापति का (शर्धः) शरादि शस्त्रों का धारक शत्रुहिंसक बल (अभ्राजि) शत्रु को परितप्त करता है और चमकता है तब वह आप लोगों का बल, सैन्य (अर्णस मोषथ) धनैश्वर्य से युक्त शत्रु का अनायास हर लेता है। (कप-

(समनसः) एकचित्त होकर (घृताचीः उद्यच्छध्वम्) घृत से युक्त स्रुवे उठाओ। अथवा आप लोग एक चित्त होकर (उद्यच्छध्वम्) उद्यम करो। और आप लोग (घृताची·) जलो से युक्त मेघमालाओ को (बर्हिः) आकाश मे (स्तृणीत) आच्छादित करो। (साधु) अच्छी प्रकार (अध्वराय) यज्ञ की (देवयूनि) दीप्तियुक्त (शोचींषि) ज्वालाएं (ऊर्ध्वा अस्थुः) ऊंचे उठे। (२) (यज्ञः) पूज्य राजा अश्व के समान बलवान् होकर प्राप्त हो, आप लोग एकचित्त (घृताचीः) तेजस्विनी सेनाओ को उठाओ। (बर्हिः स्तृणीत) राष्ट्र, प्रजाजन का विस्तार करो (देवयूनि शोचींषि) विजयेच्छु पुरुषो की ज्वालाएं (अध्वराय) राष्ट्र के पालनरूप यज्ञ के लिये वा शत्रु से न हिंसित होने के लिये खूब उठ खड़ी हो।

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३॥

भा०—(विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) भरण-पोषणयोग्य पुत्र जिस प्रकार माता को प्राप्त होते है उसी प्रकार (विभृत्राः) विशेष रूप से भृति द्वारा रक्षित राजपुरुष (पुत्रास· न) राजा के पुत्रो के समान प्रिय होकर (मातरं) उत्पादक मातृभूमि को प्राप्त होकर (देवासः) विजयेच्छु जन (बर्हिष) वृद्धिशील राष्ट्र तथा प्रजाजन के (सानौ) समुन्नत पदो पर (सदन्तु) विराजे। (विश्वाची) समस्त जनो की बनी सभा (विदथ्याम्) संग्राम सम्बन्धिनी नीति को (आ अनक्तु) सर्वत्र प्रकट करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! (देवताता) यज्ञ और युद्ध मे (नः मृधः) हमारे हिंसकों को (मा कः) मत उत्पन्न कर।

ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥४॥

भा०—(ते) वे (यजत्रा) एकत्र संगत, वा राजा के भृति, दान

के पात्र जन (ऋतस्य) सत्य वचन, और धन की (सुदुघाः धाराः दुहानाः) उत्तम रीति से सुख से पूर्ण करने वाली वाणियों का प्रयोग करते हुए (जोपम्) प्रीतिपूर्वक (आ सीपपन्त) परस्पर शपथ करें। और (वः वसूनां) वसने वाले आप लोगों में से (महे) पूज्य (ज्येष्ठं) सब से बड़े को (अद्य) आज आप (समनसः) समान चित्त होकर (आ गन्तन) प्राप्त होओ और (यति स्थ) सदा यत्न में लगे रहो।

एवा नो॑ अग्ने वि॒क्ष्वा द॑शस्य॒ त्वया॑ व॒यं स॑हसाव॒न्नास्क्राः॑।
रा॒या यु॒जा स॑ध॒मादो॒ अरि॑ष्टा यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ५।१०

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! नायक ! तेजस्विन् ! तू (एव) अवश्य (विक्षु) प्रजाओं में (आ दशस्य) सब ओर दान कर। सबके प्रति उदार हो। (त्वया युजा वयं) तुझ सहयोगी से मिलकर हम (आस्क्राः) सब प्रकार से मानो खरीदे भृत्यवत् हो और (अरिष्टाः सध-मादः) अहिंसित, अपीडित और (राया) एक साथ (सध-मादः) प्रसन्न होकर रहें। हे विद्वान् वीर पुरुषो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) धन से आप लोग हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो। इति दशमो वर्गः ॥

[४४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ लिङ्गोक्ता देवता ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २, ३ निचृत्रिष्टुप् । ४, ५ पंक्तिः ॥

द॒धि॒क्रां वः॑ प्रथ॒मम॒श्विनो॒षस॑म॒ग्निं समि॑द्धं॒ भग॑मू॒तये॑ हुवे।
इन्द्रं॒ विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑मादि॒त्यान्द्यावा॑पृथि॒वी अ॒पः स्वः॑ १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों में से (दधिक्राम्) शिष्यों को धारण कर उनको उपदेश देने वाले (प्रथमम्) सबसे प्रथम, (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाश कर (उपसम्) प्रभात वेला के समान

कान्तियुक्त (समिद्धं अग्निम्) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदरपूर्वक स्वीकार करूं। मैं (इन्द्रम्) विद्युत्, (विष्णुं) व्यापक शक्ति वाले, (पूषणं) पोषक ओषधिवर्ग, (ब्रह्मणः पतिम्) अन्न धनादि के पालक और (आदित्यान्) १२ मासो (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी और (अपः) जलो और (स्व॒ः) सूर्य प्रकाश और सुख को भी (हुवे) प्राप्त करूं।

द॒धि॒क्राम्ु नम॑सा बो॒धय॑न्त उ॒दीरा॑णा य॒ज्ञमु॑पप्र॒यन्त॑ः।
इळां॑ दे॒वीं ब॒र्हिषि॑ सा॒दय॑न्तो॒ऽश्विना॒ विप्रा॑ सु॒हवा॑ हुवेम ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (दधिक्राम्) राज्य के कार्य भार को अपने ऊपर लेने वालो को सन्मार्ग पर चलाने वाले सारथिवत् राजा को (नमसा बोधयन्तः) विनय से निवेदन करते हुए (उद्-ईराणाः) उत्तम ज्ञान वा उत्तम २ उपदेश देते हुए, (यज्ञम् उप प्रयन्तः) सत्संगति और यज्ञ वा, पूज्य पुरुष के समीप जाते हुए, (बर्हिषि) वृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र मे बसे प्रजाजन मे (देवी) उत्तम गुण युक्त (इळां) वाणी की (सादयन्तः) व्यवस्था करते हुए हम लोग (सु-हवा) उत्तम वचन बोलने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् (अश्विना) रथी सारथिवत् सहयोगी स्त्री पुरुषो को हम (हुवेम) प्राप्त करे और उनकी प्रशंसा करे।

द॒धि॒क्रावा॑णं बुबुधा॒नो अ॒ग्निमुप॑ ब्रुव उ॒षसं॒ सूर्यं॒ गाम्।
ब्र॒ध्नं मं॑श्च॒तोर्वरु॑णस्य ब॒भ्रुं ते विश्वा॒स्मद्दु॑रि॒ता या॑वयन्तु ॥३॥

भा०—(बुबुधानः) निरन्तर ज्ञानवान् रहकर मै (दधि क्रावाणं) धारण करने वाले, रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगन्ता, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (उषस) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त (गाम्) पृथिवी के समान गतिमान् (मंश्चत वरुणस्य)

के पात्र जन (ऋतस्य) सत्य वचन, और धन की (सुदुघाः धाराः दुहानाः) उत्तम रीति से सुख से पूर्ण करने वाली वाणियों का प्रयोग करते हुए (जोषम्) प्रीतिपूर्वक (आ सीषपन्त) परस्पर शपथ करें। और (वः वसूनां) वसने वाले आप लोगों में से (महे) पूज्य (ज्येष्ठं) सब से बड़े को (अद्य) आज आप (समनसः) समान चित्त होकर (आ गन्तन) प्राप्त होओ और (यति स्थ) सदा यत्न में लगे रहो।

एवा नो॑ अग्ने विक्ष्वा द॑शस्य त्वया॑ व॒यं स॑हसावन्नास्क्राः॑।
रा॒या यु॒जा स॑ध॒मादो॑ अरि॑ष्टा यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥५।१०

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! नायक! तेजस्विन्! तू (एव) अवश्य (विक्षु) प्रजाओं में (आ दशस्य) सब ओर दान कर। सबके प्रति उदार हो। (त्वया युजा वयं) तुझ सहयोगी से मिलकर हम (आस्क्राः) सब प्रकार से मानो खरीदे भृत्यवत् हों और (अरिष्टाः सध-मादः) अहिंसित, अपीडित और (राया) एक साथ (सध-मादः) प्रसन्न होकर रहें। हे विद्वान् वीर पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) धन से आप लोग हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो। इति दशमो वर्गः॥

[४४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ लिङ्गोक्ता देवता॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ पङ्क्तिः॥

द॒धि॒क्रां वः॑ प्रथ॒मम॒श्विनो॒षस॑म॒ग्निं समि॑द्धं॒ भग॑मू॒तये॑ हुवे।
इन्द्रं॒ विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑मादि॒त्यान्द्यावा॑पृथि॒वी अ॒पः स्वः॑॥१

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मैं (वः) आप लोगों में से (दधिक्राम्) शिष्यों को धारण कर उनको उपदेश देने वाले (प्रथमम्) सबसे प्रथम, (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाश कर (उषसम्) प्रभात वेला के समान

कान्तियुक्त (समिद्धं अग्निम्) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदरपूर्वक स्वीकार करूं। मै (इन्द्रम्) विद्युत्, (विष्णुं) व्यापक शक्ति वाले, (पूषणं) पोषक ओषधिवर्ग, (ब्रह्मणः पतिम्) अन्न धनादि के पालक और (आदित्यान्) १२ मासों (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी और (अपः) जलो और (स्वः) सूर्य प्रकाश और सुख को भी (हुवे) प्राप्त करूं।

दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (दधिक्राम्) राज्य के कार्य भार को अपने ऊपर लेने वालो को सन्मार्ग पर चलाने वाले सारथिवत् राजा को (नमसा बोधयन्तः) विनय से निवेदन करते हुए (उद्-ईराणाः) उत्तम ज्ञान वा उत्तम २ उपदेश देते हुए, (यज्ञम् उप प्रयन्तः) सत्संगति और यज्ञ वा, पूज्य पुरुष के समीप जाते हुए, (बर्हिषि) वृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र मे बसे प्रजाजन मे (देवीं) उत्तम गुण युक्त (इळां) वाणी की (सादयन्तः) व्यवस्था करते हुए हम लोग (सु-हवा) उत्तम वचन बोलने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् (अश्विना) रथी सारथिवत् सहयोगी स्त्री पुरुषो को हम (हुवेम) प्राप्त करे और उनकी प्रशंसा करे।

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम्।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ॥३॥

भा०—(बुबुधानः) निरन्तर ज्ञानवान् रहकर मै (दधि क्रावाणं) धारण करने वाले, रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगन्ता, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (उषसं) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त (गाम्) पृथिवी के समान गतिमान् (मंश्चतः वरुणस्य)

अभिमान करने वाले के नाशकारी वा विद्वानों से ज्ञानादि के याचक श्रेष्ठ राजा के (बभ्रुं) भरण पोषण करने वाले (ब्रध्नं) महान्, आकाश वा सूर्य के समान अन्यों को अपने में बांधने वाले ऐसे २ पुरुषों से मैं (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूं कि (ते) वे (अस्मत्) हम से (विश्वा दुरिता यावयन्तु) सब प्रकार की बुराइयां दूर करें।

द॒धि॒क्रावा॑ प्रथ॒मो वा॒ज्यर्वाग्रे॒ रथा॑नां भवति प्रजा॒नन्।
सं॒वि॒दा॒न उ॒षसा॒ सूर्ये॑णादि॒त्येभि॒र्वसु॑भि॒रङ्गि॑रोभिः ॥ ४ ॥

भा०—दधिक्रावा का स्वरूप। (रथानाम् अग्रे वाजी) रथों के आगे जिस प्रकार वेगवान् अश्व मुख्य होता है वह भी (दधिक्रावा) रथी सारथी, तथा अन्यों को धारण करने वाले रथों को धारण करने से 'दधि-क्रावा' है उसी प्रकार (प्र-जानन्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष भी (रथानां) समस्त रमणीय, व्यवहारों के (अग्रे) अग्र या मुख्य पदपर (प्रथमः) सर्व, प्रथम, सर्वश्रेष्ठ (भवति) होता है वह भी (दधिक्रावा) कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाले जिम्मेवार पुरुषों को उपदेश देकर ठीक राह पर ले चलने से 'दधिक्रावा' कहाता है। वह (उषसा) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त, दुष्टों के दाहक शक्तिमान् (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी राजा (आदित्येभिः) १२ मासों के समान नाना प्रकृति के विद्वान् अमात्य सदस्यों से, (वसुभिः) वा प्रजा में बसे, ब्रह्मचारी आठ विद्वानों से और (अंगिरोभिः) अंगारों के समान तेजस्वी, वा अंग अर्थात् देह में रमने वाले, बलस्वरूप प्राणोंवत् देश के प्रिय पुरुषों से (संविदानः) भली प्रकार ज्ञान की वृद्धि करता रहे।

आ नो॑ द॒धि॒क्राः प॒थ्या॑मनक्त्वृ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑त॒वा उ॑।
शृ॒णोतु॑ नो॒ दैव्यं॒ शर्धो॑ अ॒ग्निः शृ॒ण्वन्तु॒ विश्वे॑ महि॒षा अमू॑राः ॥५॥११

भा०—जिस प्रकार (दधिक्रा) रथ वा मनुष्यों को पीठ पर धर कर चलने में समर्थ अश्व मार्ग चलते हुए अच्छी चाल प्रकट करता है उसी

प्रकार (नः) हममें से (दधि क्राः) सब सहयोगी जनो को अपने ज़िम्मे लेकर आगे बढ़ने वाला पुरुष (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य, न्याय के मार्ग को स्वयं चलने और औरो को चलाने के लिये ये (नः) हमारे लिये (पध्याम्) धर्मयुक्त, हितकारिणी नीति को (अनक्तु) प्रकट करे। वह सन्मार्ग प्रकट करने से ही (अग्नि:) अग्नि के समान प्रकाशक होकर (नः) हमारे (दैव्यं) मनुष्यो के हितकारी (शर्धः) बल को (शृणोतु) श्रवण करे, जाने और इसी प्रकार (विश्वे) समस्त (अमूरा) मोह रहित ज्ञानी (महिषाः) बडे लोग भी (शृण्वन्तु) हमारे कार्यो को सुने। इत्येकादशो वर्ग: ॥

[४५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १ ॥

भा०—(सविता देव:) प्रकाशक सूर्य के समान (सविता) सब का प्रेरक तेजस्वी पुरुष (अन्तरिक्ष प्राः) आकाश को व्यापने वाला, (सु-रत्नः) उत्तम रत्नो के समान रमणीय गुणो को धारण करने वाला, (अश्वैः वहमान:) अश्वो के समान विद्वानों की सहायता से कार्य-भार को उठाता हुआ (आ यातु) आवे। वह (हस्ते) अपने हाथ मे (पुरूणि) बहुत से (नर्या) मनुष्यो के हितार्थ नाना पदार्थों को (दधानः) धारण करता हुआ और (नि-वेशयन् च) सबको बसाता और (प्र सुवन् च) उत्तम रीति से शासन करता हुआ हमें प्राप्त हो। वैसा ही हम भी (भूम) हो। अथवा वह (भूम प्रसुवन् च) बहुत से ऐश्वर्यो को उत्पन्न करता हुआ हमे प्राप्त हो।

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२॥

भा०—(अस्य) इसकी (शिथिरा) शिथिल, दृढ़ (बृहन्ता) बड़ी २ (हिरण्यया) सुवर्ण से मण्डित (बाहू) बाहुएं (दिवः अन्तान्) समस्त कामना और विजय योग्य व्यवहारों के पार तक (उत् अनष्टाम्) उत्तम रीति से पहुंचती हैं। (नूनं) निश्चय से (अस्य) इसका (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य (पनिष्ट) स्तुति योग्य होता है कि (सूरः चित्) विद्वान् पुरुष भी (अस्मै) इसकी (अपस्याम्) कर्माभिलाषा में (अनु दात्) सहयोग देता है। (२) परमेश्वर—सर्वोत्पादक सविता की बाहुओं के समान निग्रहानुग्रह की शक्तियां समस्त आकाश के दूर २ तक फैली हैं। उसकी महिमा गाई जाती है, सूर्य भी उसी की कर्मशक्ति के पीछे २ चलता है।

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

भा०—(सः देवः सविता) वह सर्वसुखदाता शासक, ऐश्वर्यवान् राजा (सहावा) बलवान् (वसु-पतिः) धनों का स्वामी होकर (वसूनि) नाना धनों को (साविषत्) उत्पन्न करे। (उरूचीं) बहुत पदार्थों को प्राप्त करने वाली (अमतिम्) उत्तम रूप की नीति को (वि-श्रयमाणः) विशेष रूप से आश्रय लेता हुआ (नः) हमें (मर्त्त-भोजनं) मनुष्यों से भोगने योग्य ऐश्वर्य और मनुष्यों का पालन, शासन, न्याय (रासते) प्रदान करे।

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१२

भा०—(इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियां (सु-जिह्वं) उत्तम वाणी बोलने वाले (पूर्ण-गभस्तिम्) पूर्ण रश्मियों से युक्त सूर्य के समान

पूरे परिमाण की बाहुओं वाले, तेजस्वी, (सुपाणिम्) उत्तम हाथों वाले वा उत्तम व्यवहारवान्, (सवितारं) शासक, आज्ञापक, ऐश्वर्यवान् पुरुष की (ईडते) प्रशंसा करती है अर्थात् उत्तम वाणियें ही उत्तम विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुष की प्रशंसा का कारण होती है। वह विद्वान् पुरुष (अस्मे) हमे (चित्रं) अद्भुत (वयः) ज्ञान और बल (दधातु) प्रदान करे। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमे (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनो से पालन करे। इति द्वादशो वर्गः॥

(४६)

वसिष्ठ ऋषिः॥ रुद्रो देवता॥ छन्दः—२ निचृत्त्रिष्टुप्। १ विराड्जगती। ३ निचृज्जगती। ४ स्वराट्पङ्क्तिः॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः॥ १॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियें, (स्थिर धन्वने) स्थिर धनुष वाले, दृढ़ लक्ष्यभेदी (क्षिप्रेषवे) तीव्रवेग से वाण चलाने मे चतुर (देवाय) विजय की कामना वाले (स्वधाव्ने) अपने राष्ट्र, अपने जन और अपने तन आदि की रक्षा करने मे कुशल, (अषाढ़ाय) शत्रुओ से अपराजित (सहमानाय) शत्रुओ को पराजित करने वाले (वेधसे) कार्यों के विधान करने वाले, (तिग्मा युधाय) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रो के स्वामी (रुद्राय) दुष्टो को रुलाने वाले सेनापति, राजा के प्रति (भरत) कहो। और वह (नः) हमारे निवेदन (शृणोतु) सुना करे।

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव॥ २॥

भा०—(सः) वह राजा या सेनापति (क्षम्यस्य) क्षमा योग्य

था इस भूमि में रहने योग्य (जन्मनः) प्राणी या जनों के (क्षयेण) निवास और ऐश्वर्य और (दिव्यस्य) आकाश से होने वाले (क्षयेण) वृष्टि आदि ऐश्वर्य तथा (साम्राज्येन) बड़े भारी साम्राज्य से (हि) निश्चय से (चेतति) जाना जाय। वा ऐश्वर्य और साम्राज्य के नाते ही सबको जाने। हे राजन्! तू (अवन्तीः अवन्) रक्षा करने वाली सेनाओं और प्रजाओं की रक्षा करता हुआ (नः) हमारे (दुरः) बनाये द्वारों के (उपचर) समीप आ। हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और रोगों को दूर करने हारे विद्वन्! (नः) हमारे (जासु) अपत्यादि प्रजाओं के बीच तू (अनमीवः) रोगरहित और अन्यों के रोगों से मुक्त करने वाला (भव) हो। अथवा वैद्य (क्षम्यस्य जन्मनः) भूमि पर उत्पन्न पदार्थों को (क्षयेण चेतति) व्यवहार या उनके रोग-नाशक सामर्थ्य से जाने और (दिव्यस्य जन्मनः) आकाश में उत्पन्न मेघ, जल, नक्षत्र, वायु आदि का ज्ञान (साम्राज्येन) सूर्यादि के आकाशविज्ञान से करे। (अवन्तीः) रोगों से बचाने वाली ओषधियों को (उप चर) प्राप्त कर (न दुरः) हमें दुख देने वाले रोगों का उपचार कर। जिससे (नः) हमारा (जासु) पीड़ा देने वाला रोग (अनमीव) पीड़ादायक न हो।

या ते॑ दि॒द्युदव॑सृष्टा दि॒वस्परि॑ क्ष्म॒या चर॑ति॒ परि॒ सा वृ॑णक्तु नः।
स॒हस्रं॑ ते स्वपिवात भेष॒जा मा न॑स्तो॒केषु॒ तन॑येषु रीरिषः ॥३॥

भा०—हे (सु-अपिवात) उत्तम रीति से शत्रुओं को वायु के प्रचण्ड वेग के सदृश वेगयुक्त आक्रमण से दूर करने हारे (या) जो (ते) तेरी (दिद्युत्) चमचमाती, तीक्ष्ण सेना (दिवः परि) विजय कामना से सब ओर (अवसृष्टा) छोड़ी हुई (क्ष्मया) भूमि के साथ (परि च-रति) सब ओर जाती है (सा नः) वह हमें (परि वृणक्तु) कष्ट न दे। हे विद्वन्! (ते) तेरी (सहस्रं भेषजा) सहस्रों ओषधियां हैं। तू (न

ना इव वृक्षम्) जिस प्रकार कंपादेने वाले वायु के झोंके वृक्ष को गिरा देते हैं वा जिस प्रकार कृमिगण वृक्ष को भीतर २ खोखला कर देते हैं उसी प्रकार हे वीरो ! आप (वेधसः) कार्यकर्त्ता मतिमान् लोग भी (कपनाः) शत्रु को कंपाते हुए (वृक्षं) काट गिराने योग्य शत्रु को (मोपथाः) उसका धनैश्वर्य सर्वस्व हर कर खोखला कर दो। और आप लोग परस्पर (सजोषसः) समान प्रीति से युक्त होकर (चक्षुः इव) मार्गदर्शक आंख के समान (सुगं यन्तम्) सुखप्रद मार्ग पर जाने वाले (अरमतिम्) अति ज्ञानवान् पुरुष को (अनु) अनुकूल रूप से (नेपथ) सत् मार्ग पर लेजाओ। अथवा—हे मनुष्यो ! (यत् अर्णसं मोपथ) यदि तुम धन चुराओगे तो तुम्हारे लिये (वेधसः शर्धः अभ्राजि) दण्ड-विधान कर्त्ता राजा का बल दण्ड देने के लिये चमक उठे, वह तुम्हे दण्ड दे। (कपना इव वृक्षं) झोंको के समान वृक्षवत् तुम्हें ताड़ित करे, (चक्षुः इव अरमतिं सुगं यन्तम् अनु नेपथ) आंख के समान मार्गदर्शी सन्मार्ग पर जाने वाले विद्वान् पुरुष के अनुकूल होकर अपने को चलावो।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति। नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् जनो ! (यं वा) जिस (ऋषि) सर्वद्रष्टा, वेदार्थज्ञानी विद्वान् पुरुष वा (राजानम्) तेजस्वी, पुरुष को (सु-सूदथ) तुम लोग सुख वा आदरपूर्वक प्राप्त होते हो, जिसकी उपासना वा सत्संग करते हो, (सः) वह (न जीयते) कभी पराजित नहीं होता, (न हन्यते) कभी मारा नहीं जाता, (न स्रेधति) न नाश को प्राप्त होता है, (न व्यथते) न कभी पीड़ित होता है, (न रिष्यति) न हिंसा करता है। (अस्य राय)

तोकेषु) हमारे बच्चों और (तनयेषु) पुत्रों पर (मा रीरिषः) हिंसा का प्रयोग मत कर ।

मा नो॑ वधी रुद्र॒ मा परा॑ दा॒ मा ते॑ भूम॒ प्रसि॑तौ हीळि॒तस्य॑ ।
आ नो॑ भज ब॒र्हिषि॑ जीवशं॒से यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः।४।१३

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और प्रजा के दुःखों को दूर करने वाले ! तू (नः मा वधीः) हमे मत मार, मत दण्डित कर। (मा परा दाः) हमे त्याग मत कर, परे मत कर। हम (हीडितस्य) क्रुद्ध हुए (ते) तेरे (प्रसितौ) बन्धनागार मे (मा भूम) न हो। तू (जीव शंसे) जीवित जनो से प्रशंसनीय (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र मे (नः) हमे (आ भज) प्राप्त हो। हे विद्वान् जनो ! (यूयं) आप सब (नः) हमे (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम साधनो से सदा पालन करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । विराट्त्रिष्टुप् । ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आपो॒ यं वः॑ प्रथ॒मं दे॑व॒यन्त॑ इन्द्र॒पान॑मू॒र्मिमकृ॑ण्वते॒ळः ।
तं वो॑ व॒यं शुचि॑मरि॒प्रम॒द्य घृ॑त॒प्रुषं॒ मधु॑मन्तं वनेम ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवयन्तः) सूर्यवत् रश्मियें (इडः) अन्न या भूमि के (ऊर्मिम्) ऊपर उठने वाले जलों के अंश को (इन्द्र-पानम् अकुर्वत) सूर्य द्वारा पान करने योग्य करते है उसी प्रकार हे (आपः) विद्वान् प्रजाओ ! (देवयन्तः) देव अर्थात् राजा के समान आचरण करते हुए राजपुरुष (वः) आप लोगों मे से (यं) जिस (प्रथमं) अग्रगण्य (ऊर्मिम्) तरंग के समान उन्नत पुरुष को (इडः) भूमि और वाणी के ऊपर (इन्द्र-पानं) राजावत् पालक रूप से (अकु-

वंत) नियत करते है (वयं) हम लोग (तं) उस (शुचिम्) शुद्ध, धार्मिक (अरि-प्रम्) निष्पाप (घृत-प्रुषं) जल से अभिषिक्त (मधुमन्त) मधुर स्वभाव वाले पुरुष को (अद्य) आज हम (वनेम) सेवन करें, प्राप्त हों, उसी से प्रार्थना करें ।

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा, सेनापति, (वसुभिः) बसे प्रजाजनों के साथ (मादयते) सबको प्रसन्न करता है, हे (आपः) आप्त जनो ! (तं वः ऊर्मिम्) आप लोगो के उस उत्तम उन्नत (मधुमत्तमं) अति मधुर गुणो से युक्त, अति बलवान् अंश ऐश्वर्य वा पुरुष वर्ग को (आशु-हेमा) सेना, रथों वा अश्वों को अति शीघ्र प्रेरणा करने वाला (अपां नपात्) जलो के बीच नाव के समान तारक, प्रजाओ को नीचे न गिरने देने और प्रबन्ध मे बांधने हारा पुरुष (अवतु) बचावे । हे विद्वानो ! (वः) आप लोगो के उस ज्ञानमय या ऐश्वर्यमय अंश को हम (देवयन्तः) कामना करते हुए (अश्याम) प्राप्त करें ।

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ३

भा०—(शत-पवित्राः) सैकड़ों रश्मियो से पवित्र (देवीः) दिव्य गुणयुक्त जलांश (स्वधया) अन्नांश से (मदन्तीः) प्रजाओ को तृप्त करते हुए (देवानां) सूर्य-रश्मियों के (पाथः अपियन्ति) मार्ग को प्राप्त करते है । इसी प्रकार (शत-पवित्राः) सैकड़ों उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली (देवीः) विदुषी, उत्तम स्त्रिया (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तीः) आनन्द लाभ करती हुई (देवानां) उत्तम विद्वान् पुरुषों के (पाथः)

पालन योग्य ऐश्वर्य को (अपियन्ति) प्राप्त करती है। (ताः) वे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त अपने पति के (व्रतानि) कर्मों को (न मिनन्ति) नाश नहीं करतीं। (सिन्धुभ्यः) पुरुषों को सम्बन्धों से बांधने वाली उन स्त्रियों के भी (घृतवत्) घृत से युक्त (हव्यं)जलों का खाद्य अन्नों का उत्पादक अंग 'इन्द्रपान' अर्थात् जीवों के उपभोग योग्य इस अंश को रश्मियें उत्पन्न करती है। (२)विद्वान् लोग प्रजाओं और भूमि के श्रेष्ठ अंश को 'इन्द्र-पान' अर्थात् राजोपभोग्य करते हैं। इसी प्रकार शिष्यवत् विद्या की कामनायुक्त पुरुष आप्त जनों की (इडः ऊर्मिम्) वाणी के उत्तम अंश को (इन्द्र-पानम् अकृण्वत) उत्तम जीवों में से रसवत् पान करने योग्य वा इन्द्र आचार्य द्वारा पान करने योग्य ज्ञान का अभ्यास करें।

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१४

भा०—(सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) अपनी किरणों से जिस प्रकार जलों को (आततान) फैला कर आकाश में व्यापक कर देता है और (याभ्यः) जिन जलों के लिये (इन्द्रः) विद्युत् (ऊर्मिम्) गमन योग्य (गातुम्) मार्ग को (अरदद्) वनाता है, उसी प्रकार (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों के समान अपने अधीन शासकों से (याः आततान) जिन आप्त प्रजाओं को विस्तृत करता है। और (याभ्यः) जिन प्रजाओं के हित के लिये (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऊर्मिम्) उन्नत भूमि को (अरदत्) कृषि द्वारा सम्पन्न करता है। अथवा (याभ्यः अद्भयः) जिन जल-धाराओं के लिये राजा भूमि खुदवा कर नहरें बनवाता है (ते) वे (सिन्धव) नदियां वा जलधाराएं (व.) हमें (वरिव. धातन) उत्तम धन प्रदान करें। हे उत्तम प्रजाजनों (ते) वे (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम कल्याणजनक उपायों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ ऋभवः । ४ ऋभवो विश्वेदेवा वा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक्पंक्तिः । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) सत्य ज्ञान वा महान् ऐश्वर्य का सेवन और पालन करने वाले बड़े पुरुषो ! हे (वाजाः) ज्ञानी पुरुषो ! हे (मघवानः) प्रशस्त धनों के स्वामी जनो ! हे (नरः) उत्तम नायको ! आप लोग (सुतस्य) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य से (अस्मे) हमें (मादयध्वम्) खूब प्रसन्न, सुखी करो । (वः) आप लोगों में से (अर्वाच.) नये नये (क्रतवः न विभ्वः) बुद्धिमान एवं विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष (यातां) यात्री जनों के लिये (नर्यं रथं) सब मनुष्यों को सुखदायी रथ (वर्त्तयन्तु) चलाया करें ।

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२॥

भा०—(वः) आप लोगों में से (ऋभुः) सत्य व्यवहार, यज्ञ, धन और बल से चमकने वाला वा महान् सामर्थ्यवान् पुरुष (ऋभुभिः) उसी प्रकार सत्य धनादि से समृद्ध, अधिक सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर और (वाजः) बलवान् पुरुष भी (वाज-सातौ) युद्ध काल में (अस्मान् अवतु) हमारी रक्षा करे । हम लोग (विभ्व॰) विशेष बलशाली होकर (विभुभि.) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर (शवसा) अपने बल से (शवांसि) शत्रु के सैन्यों को (अभि स्याम) पराजित करें । और (युजा) सहयोगी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा के साथ मिलकर (वृत्र तरुषेम) बढ़ते हुए शत्रु को नाश करें ।

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम् ३

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (ऋभु-क्षाः) अति तेजस्वी पुरुषों को अपने अधीन बसाने हारा (वाजः) संग्राम-कुशल (अर्यः) स्वामी, (शत्रोः मिथत्या) शत्रु के मारने के लिये (विभ्वान्) बड़े २ सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त करे । और वे सब मिलकर (नृम्णम्) धनैश्वर्य को (वि कृण्वन्) विविध प्रकारों से उत्पन्न करें । (उपर-ताति) मेघादि के समान शरवर्षी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध काल में (ते चित् हि) वे ही (विश्वान् अर्यः) सब बढ़ते शत्रुओं को मारें और (शासा) शासन और शस्त्र-बल से (पूर्वीः) अपने से पूर्व विद्यमान सेनाओं को भी (अभि सन्ति) मात करें ।

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥१५॥

भा०—(देवासः) विद्वान्, दानशील पुरुष (नः) हमारे (वरिवः) उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि (कर्त्तन) करें । (विश्वे देवासः) सब वीर पुरुष (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः अवसे भूत) हमारी रक्षा के लिये तैयार रहें । (वसवः) समस्त वसु, बसे प्रजाजन, बसाने वाले शासक और पृथिवी, वायु सूर्यादि (अस्मे) हमें (इषं ददीरन्) अन्न और इच्छानुकूल ऐश्वर्य प्रदान करें । हे विद्वानो ! (यूय) आप सब लोग (नः सदा स्वस्तिभि पात) हमारा सदा कल्याणकारी उपायों द्वारा पालन करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

(४९)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

भा०—(समुद्र-ज्येष्ठाः) एक साथ ऊपर उठने वाले, उत्तम मेघों मे स्थित, (देवीः आपः) उत्तम जल (अनिविशमानाः) कहीं भी स्थिर न रहते हुए, (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः) अन्तरिक्ष के बीच मे से पवित्र करते हुए (यन्ति) आते है । (याः) जिनको (वज्री इन्द्रः) तीव्र बल से युक्त विद्युत् वा सूर्य (वृषभः) और वर्षणशील मेघ या वायु (रराद) छिन्न भिन्न करता है । (ताः आपः) वे जल (इह) इस पृथिवी पर (माम्) मुझ बसे प्रजाजनों को (अवन्तु) रक्षा करते हैं । इसी प्रकार (देवीः आपः) उत्तम आप्त प्रजाएं और सेनाएं (समुद्र-ज्येष्ठाः) समुद्र के समान अपार धन-बलशाली पुरुष को बड़ा मानने वाली (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः) अभिषेक योग्य जल के बीच स्वयं पवित्र हुई या सेनापति को पवित्र करती हुई कहीं भी स्थिर स्थान को न प्राप्त होकर प्राप्त होती हैं उनको बलशाली राजा ही (ररादः) वश करता है, वे राष्ट्र जन की रक्षा करें ।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

भा०—(याः) जो (आपः) जल (दिव्याः) आकाश में उत्पन्न, या सूर्य विद्युतादि से उत्पन्न (उत वा) और जो (स्रवन्ति) बहती है जो (खनित्रिमाः) खोदकर प्राप्त की जाये (उत वा) और (याः स्वयं-जाः) जो स्वयं आप से आप भूमि से उत्पन्न हुई हो, (याः) जो (समुद्रार्थाः) समुद्र आकाश से आने वाली या नदी रूप मे समुद्र को जाने वाले, (शुचयः) शुद्ध (पावकाः) पवित्र करने वाली (आपः) जलधाराएं है वे (देवीः) उत्तम गुणों से युक्त होकर (इह माम् अवन्तु) इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें । इसी प्रकार आप्त प्रजाएं भी लोक व्यवहारों, विद्याविज्ञान

मे कुशल 'दिव्य' है । 'खनि' खान आदि की रक्षक 'खनित्रिम' या कृषि, कूप, खननादि से जीने वाली 'खनित्रिम' है । स्वयं अपने व्यवसाय या धन से बढ़ने वाले 'स्वयंजा' समुद्रवत् गम्भीर पुरुष के लिये अपने को सौंपने वाले भृत्यजन, ईमानदार और (पावकाः) अग्निवत् अन्यों को उपदेश ज्ञानादि से पवित्र करने वाले गुरु आदि सभी मुझ प्रजा वा राजा की यहां इस राष्ट्र वा राष्ट्रपति पद पर मेरी रक्षा करें ।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

भा०—(यासां मध्ये) जिन जलों या प्रजाजनों के बीच में अभिषिक्त होकर (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा द्वारा स्वयंवृत राजा (जनानाम्) सब मनुष्यों के (सत्यानृते) सत्य और झूठ दोनों का (अवपश्यन्) विवेक करता हुआ (याति) प्राप्त होता है । वे (मधुश्चुतः) मधुर गुणों से युक्त, (शुचयः) शुद्ध और (याः) जो (पावकाः) पवित्र करने वाली हैं (ताः देवीः आपः) वे उत्तम गुणयुक्त जलधाराएं और विद्वान् प्रजाएं (माम् अवन्तु) मुझ राजा वा प्रजाजन का पालन करें ।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥१६॥

भा०—(यासु) जिन जलों वा प्रजाओं के बीच (वरुणः) प्रजाओं द्वारा वरण किया गया पुरुष अभिषिक्त होकर (राजा) राजा बन जाता है । (यासु सोम.) जिनके बीच में नाना ओषधिवर्ग, तथा सौम्य स्वभाव के विद्वान् हैं (यासु) जिन के बल पर (विश्वे देवा) सब मनुष्य (ऊर्जम् मदन्ति) अन्न से तृप्ति लाभ करते, और बल प्राप्त करते हैं (यासु) जिनके बीच में (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के बीच हितकारी (अग्नि) अग्निवत् तेजस्वी नेता (प्रविष्ट.) प्रविष्ट है (ता आप देवी)

वे आप्त दिव्य गुण युक्त जल और प्रजाजन (माम् इह अवन्तु) मुझे इस लोक में रक्षा करें। इति षोडशो वर्गः ॥

(५०)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ मित्रावरुणौ । २ अग्निः । ३ विश्वेदेवाः ॥ ४ नद्यो देवताः ॥
छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । २ निचृज्जगती । ४ भुरिग्जगती ॥
चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् और कष्टों के निवारण करने वाले जनो ! (इह) इस लोक में आप दोनों माता पिता के समान (माम् रक्षतम्) मेरी रक्षा करें। (कुलाययत्) घर, या स्थान घेर कर संघ बना कर रहने वाला वा कुत्सित रूप प्राप्त कराने वाला, और (वि-श्वयत्) विविध रूपों में फैलने और विविध प्रकार से शोथ प्रगट करने वाला रोग, विषादि पदार्थ (न. मा आगन्) हमें प्राप्त न हो। (अजकावं) 'अजक' अर्थात् भेड बकरियों के समान छोटे जन्तुओं को खा जाने वाले (दुर्दृशीकं) कठिनता से दीखने वाले अजगरादिवत् नाशकारी जन्तु को मैं (तिरः दधे) दूर करूं। (त्सरुः) कुटिलचारी सर्प आदि (पद्येन रपसा) पैर से होने वाले दोष द्वारा (मां मा विदत्) मुझे प्राप्त न हो। कुटिलचारी सर्पादि मेरे पैर में न काट खावे। इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा का प्रयोग विष दूर करने में पूर्वाचार्यों ने लिखा है। इस दृष्टि से इस मन्त्र में आये 'मित्र' शब्द से स्नेहयुक्त घृत और 'वरुण' शब्द से 'जीरे' का ग्रहण होता है। दोनों के गुण देखिये राजनिघण्टु में—गोघृतं—"वातपित्त विषापहम्"। 'जीरक शुक्ल'—'कृमिघ्नी विषहन्त्री च'॥ अथवा—जो पदार्थ विषादि का योग हो जाने पर

भी जीव को मरण से बचा सकें वे 'मित्र' तथा जो पदार्थ कष्टो का पहले ही वारण कर सके, जिनकी उपस्थिति मे रोगकारी जन्तु वा सर्प, वृश्चिक, दंश, मशकादि दूर भाग जायं वे पदार्थ 'वरुण' वर्ग मे रखने योग्य है। इसी प्रकार विष भी दो प्रकार के हैं। एक 'कुलाययत्' जो देह मे कुत्सित रूप लावे, दूसरा 'वि-श्वयत्' जो विविध शोथ उत्पन्न करे। इसी प्रकार रोगकारी जन्तु दो प्रकार के है एक बड़ी सर्प जाति अजगरादि, और 'अजकाव', दूसरे दुर्दशीक जो कठिनता से दृष्टिगोचर हो। प्रायः ये सब वर्ग कुटिल या छद्मगति से जाने से 'त्सरु' है। वे प्रायः (पद्येन रपसा) पैर के अपराध से मनुष्यो पर आघात करते है। सांप बिच्छू आदि पर पैर आजाने से वे काट खाते है।

यद्विजामुन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः २

भा०—(यत्) जो (वन्दनं) देह को जकड़ने वाला विष (विजामन्) विविध पीडा के उत्पत्ति स्थान रूप पेट या (परुषि) पोरु या सन्धि स्थान पर (भुवत्) उत्पन्न होता है और जो (अष्ठीवन्तौ) स्थूल अस्थि से युक्त गोडो और (कुल्फौ) पैर के टखनो को (परि देहत्) सुजा दे, (तत्) उस विषमय रोग को (अग्निः) अग्नि तत्व (शोचत्) सन्तप्त करता हुआ (इतः बाधताम्) इस देह से दूर करे। (त्सरुः) छद्म गति से छुए देह मे फैलने वाला रोग (पद्येन रपसा) पैर मे विद्यमान दुखदायी रोग रूप से (मा मां विदत्) मुझे प्राप्त न हो। अर्थात् सन्धिवात, गठिया आदि मुझे न हो। 'अग्नि' शब्द से अग्नि तत्व, सूर्यताप, अग्नि बीज, रसटोक्स, ब्रायोनिया आदि आग्नेय पदार्थ लिये जाते है।

अग्निकः चित्रक। अग्निको भल्लातकः। अग्निज अग्निजारः। अग्निगर्भा तेजस्विनी। अग्निगर्भ सूर्यकान्त। अग्निजिह्वा कलिकारी, अग्नि ज्वाला धातकी महाराष्ट्री च। अग्निदमनी। अग्नि धमनो निम्बः। अग्नि-

भासा ज्योतिष्मती । अग्निमन्थः । अग्निवल्लभः राजा सर्वकश्च । अग्नि वीर्यम् सुवर्णम् । अग्निसंभवः कसुम्भम् । अग्नि सहायः परावतः । अग्नि-सारो रसाञ्जनम् । अग्निकालः चित्रकः भल्लूतकः सुवर्णं च । इत्येते सर्वे पदार्था वातदोपशमनाः भवन्ति । एतेषां गुणाः आयुर्वेद वैद्यकग्रन्थेषु द्रष्टव्याः ।

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम्।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ३

भा०—(यत् विषम्) जो जल या रस (शल्मलौ भवति) शाल्मलि वर्ग के वृक्षों मे होता है (यत् विषम् नदीषु) जो जल, वा रस नदियों में होता है, (यत् विषम्) जो रस (ओषधिभ्यः परि जायते) ओषधियों से उत्पन्न होता है, (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् जन (तत्) उस नाना प्रकार के जलों या रसो को (इतः) इन २ स्थानों से (निः सुवन्तु) ले लिया करे और चिकित्सा का कार्य करें । जिससे (त्सरुः) छुपी चाल का रोग (मां) मुझे (पद्येन रपसा) आने वाले पापाचरण से वा चरणादि के अपराध से (मा विदत्) न प्राप्त हो । बड़, पीपल, गूलर आदि का दुग्ध रस आदि भी वातनाशक, सूजाक, सिफ़लिसादि रोगों के भयंकर विषों का नाश करते हैं इसी प्रकार नाना नदियों और ओषधियों के रसों से आने वाले सब प्रकार के कष्ट, ज्वर, कुष्ठ, पामा आदि रोग नष्ट होते है ।

याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥ १७ ॥

भा०—(याः) जो नदियां (प्रवतः) दूर २ देशो तक जाने वाली, (याः निवत) जो नीचे की ओर बहने वाली, (याः उद्वतः) जो ऊंचे की ओर जाने वाली, (उदन्वती) जो प्रचुर जल वाली, (याः च अनु-

उसके धनादि ऐश्वर्य (न उप दस्यन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होते ! और (न ऊतयः उप दस्यन्ति) न उसके रक्षा साधन ही कभी नष्ट होते है ।

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवी मध्वो अन्धसा ॥८

भा०—जिस प्रकार जब (इनासः अस्वरन्) सूर्य के किरण अतितापयुक्त होते है (कबन्धिनः मरुतः उत्सं पिन्वन्ति) जल से भरे वायुगण मेघ आदि जलाशय को जल से पूर्ण करते है और (पृथिवी मध्वः अन्धसा वि उन्दन्ति) पृथिवी को मधुर जल और अन्न से गीला करते है । उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के मनुष्यो ! एवं वीर पुरुषो ! आप लोग (नियुत्वन्तः) अश्वो और अधीन नियुक्त पुरुषो तथा लक्षों सहायक पुरुषों के स्वामी होकर (ग्रामजितः) जन समूहो, ग्रामों, देशो को जीतने वाले होवे । (अर्यमणः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं शत्रुओं को नियन्त्रण करने मे समर्थ न्यायकारी (नरः) नायक और (कबन्धिनः) उत्तम हृष्टपुष्ट देह वाले होकर (यत् इनासः अस्वरन्) जब स्वामीगण अपना स्वर ऊंचा करे, आज्ञा प्रदान करे तब (उत्सं पिन्वन्ति) उत्तम पद के धारक नायक को पुष्ट करे, उसके साथ सहोद्योगी हो । और (पृथिवी) भूमिको (मध्वः अन्धसः) अन्न जल के उत्तम अंश से (वि उन्दन्ति) ये सम्पन्न करें, उत्तम कृषि व्यापार आदि से ऐश्वर्य की वृद्धि करे ।

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥

भा०—(प्र-यद्भ्यः) प्रयत्नशील (मरुद्भ्यः) बलशाली वीर पुरुषों के लाभ के लिये (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (प्र-वत्वती) उत्तम फलो से युक्त होती है, एवं उनके आगे झुकती है । उनके लिये ही (द्यौः प्रवत्वती) यह विशाल आकाश वा सूर्य भी उत्तम सुखदायक होकर झुकता है । (अन्तरिक्ष्याः पथ्याः) मध्य आकाश के मार्ग भी उनके लिये (प्रव-

दकाः) और जो जलरहित या अल्प जल की नदियां है (ताः) वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पयसा) उत्तम जल से देश को सीचती हुई (शिवाः भवन्तु) कल्याणकारी हो (देवीः) सुखप्रद, अन्नादि देने वाली हो और (अशिपदाः) भोजनार्थ सब प्रकार के अन्नोत्पादक हों और (सर्वाः नद्यः) सब नदिये (अशिमिदाः भवन्तु) अहिंसाकारिणी हों । अध्यात्म मे—(१) (कुलाययत्) कुलाय अर्थात् अहंकारादि कृति को उत्पन्न करने वाला और (विश्वयत्) विश्व को वनाने वाला प्रधान प्रकृतितत्व (नः मा आगन्) हमे प्राप्त न हो । 'मित्र' और 'वरुण' प्राण और उदान गुरुजन मेरी रक्षा करे । (अजकावं) 'अजक' आत्माओ के समूह का रक्षक परब्रह्म (दुर्दशीकं) बड़ी कठिनता से देखे जाने योग्य है । तो भी मैं उसे (तिरः) सदा विद्यमान के समान वा सब से तीर्ण, पृथक् रूप मे (दधे) धारण करूं । जिससे (त्सरुः) ब्रह्मचारी, कुटिल काम क्रोधादि (पद्येना रपसा मा विदत्) आचार सम्बन्धी पाप से हमे प्राप्त न हो । (२) जो आप (विजामन्) विविध जन्म लेने मे और पर्व पर बाधक होता है, जो (अष्ठीवन्ती परिकुल्फौ च) अस्थि वाले (कुल्फौ = कुलपौ) प्राणगणों के पालक स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के देहों में (परि रेहत्) व्यापता है 'अग्निः' ज्ञानी पुरुष प्रभु उस अज्ञान दोष को इसी जन्म मे नाश करे । (३) जो (विषम्) विविध बन्धनों को काटने मे समर्थ ज्ञान-शान्तिप्रद (नदीषु) उपदेष्टा गुरुओं मे हो या प्रभु में हो और जो बल वा ज्ञान (ओषधीभ्यः) पापदाहक तेज को धारण करने वाली प्रजाओ मे है सब विद्वान् उस ज्ञान को ओषधि रसवत मेरे लिये प्राप्त करावे । (४) इसी प्रकार उत्तम, मध्यम, निकृष्ट ज्ञानवान् अज्ञानवान् सभी मनुष्य प्रजाएं सुख कल्याणकारिणी हों, ज्ञान अन्नादि दें, सब (अशि-पदा.) अन्न देने वाली और (अशिमिदा) अहिंसक हों । इति सप्तदशो वर्ग. ॥

(५१)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
तृच सूक्तम् ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥१॥

भा०—(आदित्यानाम्) 'अदिति' अखण्ड और अदीन परमेश्वर के उपासक, प्रजाओं को अपनी शरण मे लेने वाले उत्तम पुरुषों के (नूतनेन अवसा) अति उत्तम ज्ञान से और (शन्तमेन शर्मणा) अति शान्तिदायक गृहवत् देह से हम (सक्षीमहि) अपने आपको सम्बद्ध करें । वे (तुरासः) अति शीघ्रकारी, (श्रोपमाणाः) हमारे दुःख-सुख, विनयादि को सुनते हुए हमारे (इमं यज्ञ) इस उत्तम सत्संग ज्ञान दान आदि सम्बन्ध को (अनागास्त्वे) हमे पाप रहित करने और (अदितित्वे) अखण्ड बनाये रखने के लिये (दधतु) सदा स्थिर रक्खें ।

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२॥

भा०—(आदित्यासः) पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान्, 'आदिति' प्रभु परमेश्वर के उपासक स्वयं (अदितिः) यह भूमि या, माता पितादि, (मित्र) स्नेही जन, (अर्यमा) न्यायकारी दुष्टो का नियन्ता (वरुणः) श्रेष्ठ जन, (रजिष्ठः) अति धर्मात्मा, वे सब (अस्माक) हमारे (भुवनस्य) समस्त लोग (गोपाः) रक्षक (सन्तु) हों । वे (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (अद्य) आज (सोमम् पिबन्तु) ओषधि रस के समान अपने को सदा स्वस्थ रखने के लिये अल्प मात्रा में ही सदा ऐश्वर्य का भोग करें ।

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१८

भा०—(विश्वे आदित्या) समस्त बारह मासों के समान नाना सुखप्रद विद्वान् (विश्वे मरुतः) समस्त वायुगण, समस्त मनुष्य, (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् पुरुष, और पृथिवी आदि लोक, (विश्वे ऋभवः च) समस्त सत्य और तेज से प्रकाशित जन (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी, (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, ये सब (तुष्टुवानाः) स्तुति किये जायं। हे स्वजनो! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब लोग हमे उत्तम कल्याणकारी साधनो से सदा पालन करे ।

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट्पंक्तिः । २ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम्

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ १ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ब्रह्मचारी निष्ठ पुरुषो ! हम लोग भी (अदितय) अखण्ड बलशाली (स्याम) हों । हे (वसव) गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने हारे विद्वान् पुरुषो आप लोग, (देवत्रा) विद्वानों और (मर्त्यत्रा) मनुष्यो के बीच (पूः) नगरी के समान सब के रक्षक होओ । हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और श्रेष्ठ जनो ! हम लोग (सनन्त) ऐश्वर्य को प्राप्ति वा भोग करते हुए भी (सनेम) दान किया करे । हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् माता पिता जनो ! हम (भवन्त) उत्तम सामर्थ्यवान् होकर (भवेम) सदा रहें ।

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मावो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही और (वरुणः) दुःखों और पापों के वारक श्रेष्ठजन और (गोपाः) रक्षक जन (नः) हमें (तत् शर्म मामहन्त) वह नाना सुख प्रदान करें । (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रों को भी सुख दें । (वः) आप लोगों में रहते हुए हम (अन्य-जातम् एनः) औरों से उत्पन्न अपराध, या पाप का (मा भुजेम) भोग न करें । हे (वसवः) वसे विद्वान् जनो ! (एत् चयध्वे) जिसको आप लोग नाश करो (तत मा कर्म) वह काम हम न करें ।

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ३।१९

भा०—(तुरण्यवः) शीघ्र कर्म करने में कुशल, अप्रमादी, (अंगिरसः) देह में प्राणवत् राष्ट्र में तेजस्वी पुरुष (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वसुखदाता प्रभु को (इयानाः) स्मरण करते हुए उसके (रत्नं) परमैश्वर्यमय राज्य-रूप रत्न को प्राप्त करें । (तत्) वह ही (नः) हमारा (यजत्रः) अति पूज्य, सर्व सुखदाता (महान्) बड़ा (पिता च) पालक पिता है । (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (समनसः) एक-समान चित्त होकर (जुषन्त) प्रेम से वर्त्ताव करें । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यो देवते ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥

भा०—(द्यावा पृथिवी) भूमि और सूर्य के समान (बृहती)

बड़ी, (यजत्रे) सत्संग करने योग्य, पूज्य (देव-पुत्रे) विद्वान् पुत्रों के माता पिताओं को मैं (यज्ञैः) दान, मान, सत्कारों से, और (नमोभिः) नमस्कारों से (सबाधः) जब २ बाधा या पीड़ा युक्त होऊं (ईडे) उनकी पूजा करूं। (त्ये चित् मही) उन दोनों पूज्यों को (पूर्वे) पूर्व के (गृणन्तः) उपदेश देने वाले (कवयः) विद्वान् पुरुष (पुरः दधिरे) सदा अपने सन्मुख, पूज्य पद पर स्थापित करते रहे हैं।

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (पूर्वजे पितरौ) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित होकर विद्वान् हुए (ऋतस्य सदने) सत्य व्यवहार के आश्रय रूप (पितरा) माता पिताओं को (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिस्तुत्य वाणियों से (प्र कृणुध्वम्) विशेष आदरयुक्त करो, उनके प्रति आदरयुक्त वचनों का प्रयोग किया करो। हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि के समान अन्न, जल, तेज और आश्रय से प्रजा का पालन करनेवाले माता पिताओ! आप लोग (नः) हमें (दैव्येन जनेन) विद्वान् पुरुषों से शिक्षित जनों के साथ (वा. महि वरूथं) अपने बड़े भारी घर को (आ यातं) प्राप्त होओ।

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।२०

भा०—हे (द्यावा पृथिवी) भूमि सूर्य वा भूमि विद्युत् के तुल्य माता पिताओ! (सु-दासे) आप दोनों उत्तम भृत्यों और उत्तम दानशील गुणों से युक्त होओ। अथवा उत्तम दानशील पुरुष के लिये (वा) आप दोनों के (पुरूणि रत्न-धेयानि) बहुत से सुन्दर ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (यत्) जो भी (अस्कृधोयु) बहुत अधिक जीवनप्रद (असत) हो वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो। (यूयं) आप सब लोग (स्वस्तिभिः)

उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। 'अस्कृधोयु'—अस्कृधोयुरकृध्वायुः। कृध्विति ह्रस्व नाम। निकृत्तं भवति। इति विंशो वर्गः॥

[५४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ वास्तोष्पतिर्देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

वास्तो॑ष्पते॒ प्रति॑ जानीह्य॒स्मान्त्स्वा॑वे॒शो अ॑नमी॒वो भ॑वा नः।
यत्त्वेम॑हे॒ प्रति॒ तन्नो॑ जुषस्व॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे॥१॥

भा०—हे (वास्तोः) वास करने योग्य गृह और राष्ट्र के (पते) पालक! गृहपते! राजन्! तू (अस्मान् प्रति जानीहि) हम मे प्रत्येक को जान वा प्रतिज्ञा पूर्वक हमारे प्रति व्यवहार किया कर। (नः) हमारे प्रति (सु आवेशः) उत्तम भावों और वर्त्तावों वाला तथा (स्व-आवेशः) अपने ही गृह के समान प्रेम से वर्त्तने वाला और (अनमीवः) रोगादि से पीड़ा न होने देने वाला (भव) हो। (यत् त्वा ईमहे) जो हम तेरे समीप आते और तुझ से याचना करते हैं (नः तत् प्रति जुषस्व) वह तू हमारे प्रति मान दर्शा और प्रदान कर। (नः द्विपदे शम्, नः चतुष्पदे शम्) हमारे दो पाये भृत्य पुत्रादि और चौ पाये गाय, भैंस अश्व आदि का भी कल्याणकारी हो।

वास्तो॑ष्पते प्र॒तर॑णो न एधि गय॒स्फानो॒ गोभि॒रश्वे॑भिरिन्दो।
अ॒जरा॑सस्ते स॒ख्ये स्या॑म पि॒तेव॑ पु॒त्रान्प्रति॑ नो जुषस्व॥२॥

भा०—हे (वस्तोः पते) निवास करने के योग्य देह, गृह, और राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! और राजन्! तू (नः) हमारा (प्र-तरण) नाव के समान संकट से पार उतारने वाला और (गय-स्फान) गृह, प्राण और धन का बढ़ाने वाला (एधि) हो। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्!

चन्द्रवत् आह्लादक! तू (नः) हमे (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और अश्वो सहित प्राप्त हो। (ते सख्ये) तेरे मित्र-भाव मे हम (अजरासः) जरा, वृद्धावस्था से रहित, सदा उत्साह और बल से युक्त होकर रहे। (नः) हम से तू (पिता इव पुत्रान्) पुत्रो को पिता के समान (जुषस्व) प्रेम कर।

वास्तो॑ष्पते श॒ग्मया॑ सं॒सदा॑ ते सक्षी॒महि॑ र॒ण्वया॑ गातु॒मत्या॑।
पा॒हि क्षेम॑ उ॒त योगे॒ वरं॑ नो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ३।२१

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक! (ते) तेरी (रण्वा) अति रमणीय (शग्मया) सुखदायक (गातु-मत्या) उत्तम वाणी और उत्तम भूमि से युक्त (सं-सदा) सहवास और सभा से हम लोग (सक्षीमहि) सदा सम्बन्ध बनाये रक्खे। (क्षेमे) रक्षा-कार्य और (योगे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने मे (नः) हमारी (वरं) अच्छी प्रकार (पाहि) रक्षा करो वा (नः वरं पाहि) हमारे धन की रक्षा करो। हे विद्वान् जनो! (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा किया करे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[५५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १ वास्तोष्पतिः। २—८ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री। २,३,४ बृहती। ५,७ अनुष्टुप्। ६,८ निचृदनुष्टुप्। अष्टर्चं सूक्तम्॥

अ॒मी॒व॒हा वा॑स्तोष्पते॒ विश्वा॑ रू॒पाण्या॑वि॒शन्।
सखा॑ सु॒शेव॑ एधि नः॥ १॥

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! राजन्! तेरे अधीन (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के नाना रूप अर्थात् जीवगण बसते है। तू (अमीव-हा) सब प्रकार के रोगों, कष्टों का नाशक

और (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (नः) हमारा (सखा एधि) मित्र होकर रह ।

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥

भा०—हे (अर्जुन) धनादि के उत्तम रीति से उपार्जन करने वाले ! हे प्रतियत्नशील ! हे शुभ्र ! विद्वन् ! हे (सारमेय) सारवान्, बलवान् बलयुक्त एवं बहुमूल्य पदार्थों का मान-प्रतिमान करने और उनसे जाने जाने योग्य ! हे (पिशङ्ग) तेजस्विन् ! तू (दतः) अपने दांतों और अन्यों को खण्डित करने वाले शस्त्रों को (यच्छसे) नियम में रख । (बप्सतः) खाते हुए मनुष्यों के दांत जिस प्रकार (स्रक्वेषु उप) ओंठो के पास चमकते हैं उसी प्रकार (स्रक्वेषु) वने नगरों के पास (बप्सतः) राष्ट्र का भोग करते हुए तेरे (ऋष्टयः) शस्त्र-अस्त्रादि, (वि इव भ्राजन्त) विशेष रूप से चमकते हैं । (नि सु स्वप) हे बलवान् राजा के प्रजाजन ! तू अच्छी प्रकार सुख की निद्रा ले ।

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥

भा०—हे (सारमेय) उत्तम बल को धारण करने वाली सेना के उत्तम जन ! तू (स्तेनं) चोर और (तस्करं) उस निन्द्य कार्य को करने वाले डाकू के (राय) पास पहुंच और उसे पकड़ । (पुनः सर) तू उस पर बार २ आक्रमण कर । तू (इन्द्रस्य स्तोतॄन्) राजा के प्रति उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों को (किं रायसि) क्यों पकड़ता है । (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमारे प्रति दुष्ट कुत्ते के समान क्यों कष्ट पीड़ा देता है, तू (नि सु स्वप) नियमपूर्वक सुख से निद्रा ले और अन्यों को भी सुख से सोने दे ।

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (सू करस्य) उत्तम कार्य करने वाले को (दर्दृहि) खूब बढा । (सूकरस्य = सु-करस्य) उत्तम रीति से वश करने योग्य, सुसाध्य शत्रु को (दर्दृहि) विदीर्ण कर । उसमे अच्छी प्रकार भेद नीति का प्रयोग कर । और (सूकर) उत्तम युद्धकर्त्ता शत्रुजन (तव दर्दृहि) तेरे राष्ट्र मे भी भेदन करने मे समर्थ है । तू (स्तोतॄन्) उत्तम विद्वानो के प्रति (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रायसि) दान दिया कर । (अस्मान् किम् दुच्छुनायसे) हमारे प्रति क्यो दुष्ट कुत्ते के समान दुर्व्यवहार करता है, (नि सु स्वप) तू सदा सावधान रहकर सुख की निद्रा सोया कर ।

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
सुसन्तु सर्वे ज्ञातयः स स्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥

भा०—राष्ट्र और गृह के उत्तमप्र वन्ध रहने पर (माता सस्तु) माता सुख की नीद सोवे । (पिता सस्तु) पिता भी सुख की नीद सोवे । (श्वा सस्तु) कुत्ता आदि रखवारे भी सुख से सोवें । (विश्पति सस्तु) प्रजाओं का स्वामी राजा भी सुख से सोवे । (सर्वे ज्ञातय. ससन्तु) सब सम्बन्धी जन भी सुख से सोवें । (अयम्) यह (अभित. जन.) चारो ओर वसा प्रजाजन भी (सस्तु) सुख से सोवे ।

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

भा०—(यः आस्ते) जो वैठा हो (यः च चरति) जो चलता है, (य जन.) जो मनुष्य (न) हमे (पश्यति) देखता हो (तेषां) उन सबके (अक्षाणि) आंखो आदि इन्द्रियो को हम (संहन्म) अच्छी प्रकार निमीलित करें जिससे वाहर के भीतर, भीतर के वाहर वालों को नहीं देख पावे ।

ऐसे (यथा) जैसे (इदं हर्म्यं) यह उत्तम भवन बना है (तथा) उसी प्रकार हम भी घर बनावें ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रात सहस्र-शृङ्गः) समुद्र से सहस्रों किरणों वाले उगते सूर्य के समान (यः) जो तेजस्वी पुरुष (वृषभः) बलवान्, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला होकर (उत् आचरत्) उत्तम पद पर विराज कर न्यायानुकूल वर्त्तता है, (तेन सहस्येन) उस बलवान् पुरुष के सहयोग से (वयं) हम (जनान्) सब प्रजाजनों को (नि स्वापयामसि) सुख की निद्रा सोने दिया करें ।

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥२२॥ ३ ॥

भा०—(याः नारीः) जो स्त्रियां (प्रोष्ठे-शयाः) आंगन या उत्तम भवन पर सोती है (या वह्ये-शयाः) रथ आदि मे सोती है (या तल्प-शीवरीः) जो उत्तम सेजों मे सोती है और (याः पुण्यगन्धाः स्त्रियः) जो पुण्य, उत्तम गन्ध वाली, शुभ-लक्षणा स्त्रियां है (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापयामसि) सुख की नींद सोने दे । ऐसा उत्तम राज्य और गृह का प्रबन्ध करें । अनुक्रमणिका मे इस सूक्त को 'उपनिषत्' लिखा है । अतः अध्यात्म योजना देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य कां०४सू०५। मं०१,२,६॥
इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची गायत्री । २, ६, ७, ९ भुरिगार्ची गायत्री । ३, ४, ५ प्राजापत्या बृहती । ८, १० आर्च्युष्णिक् । ११

त्वती) उत्तम फलदायक और उनके समक्ष निम्न हो जाते हैं उनके लिये (पर्वताः) पर्वत भी (प्रवत्वन्तः) अपने सिर झुका लेने वाले एवं (जीरदानवः) जीवनोपयोगी जल ओषधि अन्न आदि देने वाले हो जाते हैं।

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः। न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ १०।

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजा जनो ! हे व्यापारियो ! यत् जब आप लोग (स-भरसः) एक समान रूप से पालन पोषण करते हुए, समान होकर युद्धादि करते हुए, (स्वः नरः) सबके सुख, तेज वा पराक्रम के मार्ग मे आगे जाने वाले, और (दिवः नरः) ज्ञान प्रकाश के नायक वा स्वयं धनादि की कामनाशील पुरुष होकर (सूर्ये उदिते) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (मदथ) खूब प्रसन्न होते हो उस समय भी (अह) निश्चय से (वः अश्वाः) आप लोगों के घोड़े (सिस्रतः) चलते २ भी (न श्रथयन्त) शिथिल न हों, और आप लोग (अस्य अध्वनः) इस बड़े भारी मार्ग के (पारम् अश्नुथ) पार पहुंच जाते हैं।

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः। अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ११

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगो के (अंसेषु) कन्धों पर (ऋष्टयः) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र सजे, (पत्सु) पैरों मे (खादयः) भोक्ता जनों के समान नाना भोग्य पदार्थ प्राप्त हो, वा स्थिरता युक्त जूते आदि हों (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) सुवर्ण के आभूषण हों। वे (रथे शुभः) रथों पर सुशोभित हों वे (अग्नि-भ्राजसः) अग्नि के समान कान्ति और प्रताप से युक्त होकर (गभस्त्योः) बाहुओं मे (विद्युतः) विशेष चमक वाले शस्त्र अस्त्र धारण करें और (शीर्षसु) सिरों पर (वि-तताः) विविध

निचृदार्च्युष्णिक् १०, १३, १५, १८, १९, २१ निचृत्त्रिष्टुप्। १७, २० त्रिष्टुप्। २२, २३, २५ विराट् त्रिष्टुप्। २४ पंक्तिः। १४, १६ स्वराट्पंक्तिः॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम्॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः॥ १॥

भा०—(ईम्) सब प्रकार से (वि-अक्ताः) विशेष रूप से तेजस्वी, कान्तियुक्त, कमनीय गुणों से सम्पन्न, (सनीडाः) एक ही समान स्थान में रहने वाले, (रुद्रस्य) दुःखों, कष्टों को दूर करने वाले, दुष्टों के रुलाने वाले, प्रभु, परमेश्वर, विद्योपदेष्टा आचार्य के (के मर्याः) कौन विशेष मनुष्य (नरः) उत्तम नायक और (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों वाले वा जितेन्द्रिय हैं। (२) रुद्र, सेनापति के नायक विशेष कान्तियुक्त, (स-नीडाः) नीले तुर्रे वाले, (मर्याः) शत्रु को मारने मे समर्थ, उत्तम घुड़सवार सब ओर रहे। (३) रुद्र परमेश्वर के (नरः) जीव (स-नीडाः) देह सहित, मरणधर्मा, उत्तम इन्द्रियों से सम्पन्न हैं।

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम्॥ २॥

भा०—(एषां) इन जीवों के (जनूंषि) जन्मों को (नकिः वेद हि) निश्चय से कोई भी नहीं जानता। (अङ्ग) हे विद्वन्! (ते) वे सब (मिथः) स्त्री पुरुष, नर मादा परस्पर मिलकर (जनित्रम्) जन्म (विद्रे) प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार सेनापति सैन्य भटों की जन्म जाति कौन जाने? वे परस्पर मिलकर अपना सैन्य रूप प्रकट करते हैं।

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन्॥३॥

भा०—वे जीवगण (मिथः) परस्पर (स्वपूभिः) अपने साथ सोने वाली अथवा (स्वपूभि = स्व-भूभिः) अपने उत्पन्न होने योग्य भूमियों से (मिथः) परस्पर मिलकर (अभि वपन्त) परस्पर सन्मुख होकर बीज वपन करते हैं। वे (वात-स्वनसः) वायु के समान प्राण के बल पर ध्वनि करने वाले (श्येनाः) बाजपक्षी के समान एक देह मे

दूसरे देह में जाने वाले होकर भी (अस्पृध्रन्) परस्पर स्पर्द्धा करते है, भोग्य पदार्थों मे ममता करते है । (२) वीर सैनिक (मिथः) परस्पर मिलकर (स्वपूभिः) अपने शस्त्रो से (अभि वपन्त) सन्मुख शत्रुओं का छेदन करते और (वात स्वनसः) वायुवत् गर्जन करते हुए (श्येना॰) वाज के समान आक्रमण करते हुए (अस्पृध्रन्) शत्रु के साथ स्पर्द्धा करते, उससे वल मे वढ़ने और जीतने का यत्न करते है ।

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥

भा०—(पृश्निः) सेचन करने वाला सूर्य और (मही) भूमि (यत्) जिस प्रकार से (ऊधः) जलधारक मेव को (जभार) धारण करता है इसी प्रकार (पृश्निः) वीर्यसेक्ता पुरुष और (मही) पूज्य माता (यत्) जो मिलकर वालक और उसके पान के लिये (ऊधः) स्तनादि धरती है (एतानि निण्या) इन सत्य सिद्धान्तो को (धीरः) वुद्धिमान् पुरुष (चिकेत) अवश्य जाने ।

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५॥

भा०—(सा) वह (विट्) प्रजावर्ग (मरुद्भि॰) वायुवत् वलवान् विद्वान् पुरुषों से ही (सु वीरा) उत्तम वीरो वाली (अस्तु) हो । वह (सनात्) सदा (सहन्ती) शत्रु को पराजित करती हुई आर (नृम्णं पुष्यन्ती) धनैश्वर्य को पुष्ट, समृद्ध करती हुई रहे । इसी प्रकार स्त्री मे पुत्र रूप से पति प्रवेश करता है इससे वह 'विट्' है । वह भी गृहस्थ का भार सहती हुई, धन की वृद्दि करती हुई उत्तम पुत्रों से सुपुत्रा हो।

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

भा०—इसी प्रकार राजा की प्रजाएं और गृहस्थ मे स्त्रियें और सेनापति की सेनाएं भी (येष्ठा॰) अपने लक्ष्य की ओर जाने मे उत्तम, (शुभा) कान्तियुक्त, कल्याणकारिणी (शोभिष्ठा॰) उत्तम रीति मे सुशोभित

(श्रिया) उत्तम लक्ष्मी से (सं-मिश्लाः) संयुक्त वा (श्रिया) आश्रय करने योग्य सहचर, सहचरी से युक्त (ओजोभिः) बल पराक्रमों से (उग्राः) सदा बलवान् हो। वे (यामं येष्ठा.) उत्तम नियम, प्रबन्ध, विवाहादि बन्धनो को प्राप्त हो।

उ॒ग्रं व॒ ओजः॑ स्थि॒रा शवां॒स्यधा॑ म॒रुद्भि॑र्ग॒णस्तुवि॑ष्मान् ॥७॥

भा०—हे विद्वानो, वीरो, प्रजाजनो वा जीवो ! (वः) आप लोगो का (ओजः) बल पराक्रम (उग्रं) उन्नत कोटि का, शत्रुओ को भयप्रद, गम्भीर और (वः शवासि स्थिरा) आप लोगो का बल स्थिर और (मरुद्भिः सहगणः) बलवान् वीरो, प्राणो तथा विद्वानो सहित गण (तुविष्मान्) बलवान् हो।

शु॒भ्रो व॒: शुष्म॒: क्रुध्मी॒ मनां॑सि॒ धुनि॒र्मुनि॑रिव॒ शर्ध॑स्य धृ॒ष्णोः ८

भा०—हे वीर प्रजाजनो ! विद्वानो एवं जीवो ! (वः) आप लोगो का (शुष्मः) बल, बलवान् देह (शुभ्रः) शोभायुक्त, प्रशंसनीय हो। आप लोगो के (मनासि) मन (क्रुध्मी) दुष्टो के प्रति क्रोधयुक्त हो। और (शर्धस्य) आप लोगो के बलवान् और (धृष्णोः) शत्रुपराजयकारी सैन्य का (धुनि.) सञ्चालक शत्रुओ और अधीनस्थो को कंपाने हारा, प्रभाववान् नायक (मुनिः इव) मननशील विद्वान् के समान गम्भीर विचारशील हो। सेना का नायक ओछा और अति कटुभाषी, क्षुद्रमति न हो।

सने॑म्य॒स्मद्यु॒योत॑ दि॒द्युं मा वो॑ दुर्म॒तिरि॒ह प्रण॑ङ् नः ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् वीर जनो ! (अस्मत्) हम से अपना (सनेमि) चक्रधारा से युक्त (दिद्युम्) चमचमाते तेजस्वी शस्त्र बल को (युयोत) सदा पृथक् रक्खो। और (वः) आप लोगों की (दुर्मति.) दुष्ट बुद्धि (न) हमे और (न. मति. व॰) हमारी दुष्टमति आपको (मा प्रणक्) कभी प्राप्त न हो, एक दूसरे का विनाश भी न करे।

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः॥१०॥२३॥

भा०—(यत् नाम) जो उत्तम, नाम, कीर्त्ति वा अन्न (वः मरुतः) प्राणवत् प्रिय आप लोगों को (तृपत्) तृप्त करे, सुखी, प्रसन्न करे हे (वावशानाः) उत्तम अन्न, यशादि की कामना करने वाले सज्जनो ! मैं कुशल (तुराणां) अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, शत्रुहिंसक (वः) आप लोगों के लिये वही (प्रिया नाम) प्रिय नाम वा अन्नादि पदार्थ (आ हुवे) आदर पूर्वक कहूँ और प्रदान करूं। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ११

भा०—हे वीर ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (स्वायुधासः) उत्तम शस्त्रास्त्र सम्पन्न, (इष्मिणः) उत्तम अन्न के स्वामी, (सु-निष्काः) उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने और उनको पदकादि रूप मे शोभार्थ धारण करने वाले (उत) और (स्वयं) स्वयं (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करने वाले होओ। अध्यात्म मे—हे उत्तम जीवो ! आप लोग (स्वायुधासः = स्व-आयुधासः) उत्तम हथियारो वाले वा स्वयं अपने काम क्रोध आदि दुष्ट भीतरी शत्रुओं से लड़ने हारे (इष्मिणः) उत्तम इच्छा शक्ति से युक्त (सु-निष्काः) सुखपूर्वक देह से निष्क्रमण करने में समर्थ, और केवल देहमात्र से अलंकृत हो।

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः १२

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (हव्या) खाने और लेने देने के सब पदार्थ (शुची) शुद्ध पवित्र हों। मैं (शुचिभ्यः) शुद्ध पवित्र पदार्थों और स्वच्छ हृदय के पुरुषों से उनकी वृद्धि के लिये (शुचि अध्वरं) शुद्ध पवित्र अहिंसक यज्ञ की (हिनोमि) वृद्धि करता हूं। (ऋत-सापः) सत्य के आधार पर प्रतिज्ञाबद्ध होने वाले (शुचि-जन्मानः) शुद्ध पवित्र जन्म धारण करने वाले (शुचयः) कर्म, नाणी

मे शुद्ध, (पावकाः) पवित्र, अग्निवत् तेजस्वी, पुरुष (ऋतेन) सत्य ज्ञान से ही (सत्यम् आयन्) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार को प्राप्त होते हैं।

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः १३

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगो के (अंसेषु) कन्धो पर (खादयः) उत्तम शस्त्र और (वक्षःसु) छातियो पर (रुक्माः) कान्तियुक्त आभूषण (उप शिश्रियाणाः) शोभा दे रहे हो। आप लोग (वृष्टिभिः विद्युत. न) वर्षाओ से विजुलियों के समान (आयुधै.) उत्तम हथियारों से (रुचानाः) चमकते हुए (स्वधाम्) जलवत् अन्न और अपने राष्ट्र भूमि के (अनु यच्छमानाः) अनुसार उसको वश करते हुए सुख से विजय करो।

वक्षः। सुरुक्माः इति सायणाभिमतः पदपाठः ॥

प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥

भा०—(बुध्न्याः) आकाश में उत्पन्न मेघ जिस प्रकार (महांसि नामानि प्र ईरते) तेज और बहुत अधिक जलों को नीचे प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (बुध्न्याः) उच्च पद के योग्य, सर्वाश्रय योग्य (प्र-यज्यव) उत्तम यज्ञ दानशील पुरुषो ! आप लोग भी (महांसि) देने योग्य (नामानि) अन्नों को (प्र तिरध्वम्) उत्तम रीति से बढ़ाओ और दान किया करो। हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (एतम्) इस (गृहमेधीयं) गृहस्थो से प्राप्त वा गृह के निर्वाह योग्य (सहस्रिय भागम्) सहस्रो ग्रामों वा गृहों से प्राप्त करादि अंश को (जुषध्वम्) प्रेम पूर्वक स्वीकार करो।

यदि॑ स्तु॒तस्य॑ मरुतो अधी॒थेत्था विप्र॑स्य वा॒जिनो॒ हवी॑मन् ।
म॒क्षू रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य दात॒ नू चि॒द्यम॒न्य आ॒दभ॒दरा॑वा ॥१५।२४॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान दृढ़ बलवान्, प्राणों के समान प्रिय वीरो और विद्याप्रेमी, आलस्य रहित शिष्य जनो ! आप लोग (यदि) यदि (वाजिनः) ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् और (विप्रस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (हवीमन्) देने योग्य उत्तम ज्ञान और धन के लेने देने के व्यवहार में (इत्था) सत्य २ (स्तुतस्य) उपदिष्ट शास्त्र का (अधीथ) स्मरण रक्खो। (यम्) जिस धनादि को (अन्यः) दूसरा (अरावा) शत्रु वा वचनादि से रहित मूकजन (नू चित् आदभत्) अवश्य विनाश कर देवे ऐसे (रायः) प्रदेय धन ज्ञानादि को आप लोग (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्यवान् सुदृढ़, ब्रह्मचारी के हाथ (दात) प्रदान किया करो। विद्वानों को चाहिये कि गुरूपदिष्ट शास्त्र को अच्छी प्रकार याद रक्खें और विद्वान् उत्तम ब्रह्मचारी, विविध विद्योपदेश के योग्य पात्र में ही ज्ञान प्रदान करें। क्योंकि ज्ञान का (अरावा) अन्यों को प्रवचन द्वारा न देने वाला अवश्य नाश कर देता है। इसी प्रकार मनुष्यों को चाहिये धन के लेन देन में अपना २ इकरार स्मरण रक्खें। अपना धन भी बलवान् की रक्षा में रक्खें जिससे दूसरा शत्रु नष्ट न कर दे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अत्या॑सो॒ न ये म॒रुतः॒ स्वञ्चो॑ यक्ष॒दृशो॒ न शु॒भय॑न्त॒ मर्याः॑ ।
ते ह॑र्म्ये॒ष्ठाः शिश॑वो॒ न शु॒भ्रा व॒त्सासो॒ न प्र॑क्री॒ळिनः॑ पयो॒धाः ॥१६

भा०—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य, वायु के तुल्य बलवान् और प्राणों के समान प्रिय (अत्यासः न) निरन्तर गति करने वाले अश्वों के समान (सु-अञ्चः) उत्तम आचरण करने और उत्तम आदर योग्य होवें (मर्याः) मनुष्य (यक्षदृशः न) पूज्य जनों को दर्शन करने वालों के समान (शुभयन्त) सदा उत्तम वस्त्रालंकार धारण कर सजें और सदा शुभ, उत्तम आचरण किया करें। और (ते) वे (हर्म्येष्ठाः) बड़े २

महलों में रहकर भी (शिशवः न शुभ्राः) बालकों के समान स्वच्छ निष्पाप आचार वाले और (वत्सासः न) गाय के बछड़ों के समान सदा (प्र-क्रीडिनः) खूब खेलने, विनोद करने के स्वभाव वाले और (पयः-धाः) दूध, अन्नादि के पीने खाने वाले हों।

दुशस्यन्तो नो मुरुतो मृळन्तु वरिवुस्यन्तो रोदसी सुमेके।
आरे गोहा नृहा वुधो वो अस्तु सुम्नेभिरुस्मे वसवो नमध्वम् १७

भा०—(मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुष (दशस्यन्तः) दान देते हुए और (सुमेके) उत्तम पूज्य (रोदसी) माता पिताओं की (वरिवस्यन्तः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (नः मृडयन्तु) हमें सुख प्रदान करें। (गोहा) गौ आदि पशु समूह का मारने वाला गोहत्यारा और (नृहा) मनुष्यों को मारने वाला (वः) आप लोगों से (आरे) दूर हो और (वध. अस्तु) वध वा दण्ड करने योग्य हो।

आ वो होता जोहवीति सुत्तः सुत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः १८

भा०—हे (मरुतः) वीरो! विद्वान् पुरुषो! (होता) उत्तम दाता, (गृणानः) उपदेश करने हारा (सत्तः) उत्तमासन पर विराज कर (सत्राची) सत्य से युक्त वा एक साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य (राति) दान, ज्ञान वा ऐश्वर्य को (जोहवीति) प्रदान करता है और जो (ईवत.) जल से युक्त (वृषण· गोपा.) मेघ के रक्षक वायु के समान (ईवत) धनशाली, (वृषण·) बलवान् पुरुष का (गोपा.) रक्षक है (स) वह (अद्वयावी) भीतर बाहर दो भाव न करता हुआ, निष्कपट होकर (उक्थै) उत्तम वचनों से (व) आप लोगों के प्रति (हवते) ज्ञान प्रदान करे और आप लोगों को आदर से बुलावे।

इमे तुरं मुरुतो रामयन्तीमे सहुः सहस आ नमन्ति।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर और प्राणवत् प्रिय विद्वान् लोग (तुरं) शीघ्र ही वा शीघ्रकार्य करने मे कुशल, शत्रुओं को मारने वाले राजा को (रमयन्ति) सदा प्रसन्न रखते है और (इमे) ये (सहः) अपने बल से (सहसः) बलवान् शत्रुओं को भी (आ नमन्ति) झुका लेते है। वा (सहसः सहः आ नमन्ति) बलवान् राजा के बल के आगे झुकते है। वा (सहसः बलं आ नमन्ति) बलवान् शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य वा धनुष को अपने अधीन रखते और नमाते है। (इमे) ये (वनुष्यतः) हिंसक वा क्रोधी से (शंसं नि पान्ति) प्रशंसनीय जन को बचा लेते हैं। (अररुषे) अदानी और अतिक्रोधी जन के विशेष दमन के लिये वे (गुरु द्वेषः) बड़ा भारी द्वेष अप्रीतिकर व्यवहार (दधन्ति) करते है।

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे २०।२५।

भा०— हे (वरुण) वर्षणशील, मेघों को लाने वाले वायुओं के तुल्य बलवान् पुरुषो! (इमे) ये (मरुतः) वायुगण जिस प्रकार (रध्रं चित् जुनन्ति) दृढ़ वृक्ष को भी हला देते है। उसी प्रकार आप लोग भी (रध्रं) वश करने योग्य प्रबल, समृद्धिमान् पुरुष को भी सन्मार्ग पर चलाओ। और (वसवः) पृथिवी आदि लोक जिस प्रकार (भृमिं) धारक सूर्य के प्रकाश का सेवन करते है उसी प्रकार आप लोग (भृमिं) अपने भरण पोषण करने वाले स्वामी तथा (भृमि) भ्रमणशील, विद्वान् परिव्राजक का भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करे। आप लोग (तमांसि) सूर्य की किरणों के समान अन्धकारो को (अप बाधध्व) शत्रुओं और खेदजनक मोह आदि को भी दूर करो। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति २१

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगों को (दात्रात्) दान करने से (मा निर् अराम) कभी न रोकें, और (वः दात्रात् मा निर् अराम) आप लोगों के प्रति देने से हम कभी स्वयं न रुकें। हे (रथ्यः) उत्तम अश्वारोही जनो ! (विभागे) धन के विभाग से (नः पश्चात् मा दध्म) आप लोगों को पीछे न रक्खें। हे (वृषणः) बलवान्, सुखवर्षक उदार जनो ! (वः यत् ईम् सुजातम् अस्ति) आप लोगों का जो भी उत्तम द्रव्य है उसे (वसव्ये) धन सम्बन्धी (स्पार्हे) अभिलाषा योग्य पदार्थ के निमित्त (नः आ भजतन) हमें प्राप्त करो।

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२॥

भा०—(यत्) जो (जनासः) मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं के बीच में (शूराः) शूरवीर होकर (यह्वीषु ओषधीषु) बड़ी और बहुत सी ओषधियों में से (मन्युभिः) नाना ज्ञानों द्वारा (संहनन्त) नाना ओषधियों को मिलाते हैं हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! वे आप लोग (रुद्रियासः) रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन (पृतनासु अर्यः) सेनाओं में स्वामी के समान (नः त्रातारः भूत) हमारे रक्षक होओ। वीरों के पक्ष में—प्रजाओं में जो (संयत्) युद्ध क्षेत्र में (शूराः) शूरवीर (जनासः) जन (मन्युभिः हनन्त) क्रोधों से प्रेरित होकर आघात करते हैं वे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुष के जन, और (अर्यः) स्वामी स्वयं भी (पृतनासु नः त्रातारः भूत स्म) संग्रामों में हमारे रक्षक होवें।

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, बलवान् पुरुषो ! (या) जिन कर्मों

का (वः) आप लोगों के हितार्थ (पुरा चित्) पहले ही (शस्यन्ते) उपदेश किया गया है उन (पित्र्याणि) माता पिता की सेवा और पालक जनोचित (उक्थानि) प्रशंसनीय कर्मों को आप (भूरि) खूब (चक्र) किया करो। (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् पुरुषों से ही (साढा) शत्रु को पराजय करने वाला और (अर्वा मरुद्भि· यथा वाजं सनिता) जैसे अश्व प्राण के बल से वेग को प्राप्त करता है उसी प्रकार (अर्वा) शत्रुहिंसक पुरुष ही (मरुद्भिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से ही (वाजं सनिता) संग्राम करने में समर्थ होता है।

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! हे प्राणवत् प्रिय-जनो ! (वीरः) शूरवीर और विविध विद्याओं का प्रवक्ता पुरुष और हमारा पुत्र (अस्मे) हमारे उपकारार्थ (शुष्मी अस्तु) बलवान् हो। (यः) जो (असुरः) उत्तम प्राणों के बल पर रमण करता हुआ (असुरः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ बलवान् होकर (जनानां) मनुष्यों का (विधर्त्ता) विशेष रूप से धारण पालन करने में समर्थ हो। (येन) और जिसके द्वारा हम (सु-क्षितये) उत्तम भूमि को प्राप्त करने के लिये (अपः) जलों के समान शत्रु और कर्मबन्धनों को और (अप·) आप्त, धर्मदाराओं को भी (तरेम) तरें, उनको प्राप्त कर गृहस्थ को सफल करें। (अध) और (स्वम् ओकः) अपने गृह को प्राप्त कर (वः अभि स्याम) आप लोगों के कृतज्ञ होकर रहें। समुद्रों में उत्तम भूमि प्राप्त करने के लिये विशेष दिशा में जहाज़ को लेजाने वाला विशेष वेगवान् प्रबल वायु भी 'वीर' है जिसके बलपर हम (अपः तरेम) समुद्री जलों को पार करने में समर्थ होते हैं और (स्वम् ओकः अभि स्याम) पुन विदेशादि भ्रमण के बाद अपने गृह को कुशल से प्राप्त करते हैं।

प्रकार से मढ़ी वा बुनी हुई (हिरण्ययीः) सुवर्ण वा लोह की बनी (शिप्राः) पगड़ियां हों।

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ।
समच्यन्त वृजनाऽतित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः॥१२

भा०—जिस प्रकार (मरुतः पिप्पलं वि धुन्वन्ति) वायु गण मेघ स्थ जल को कंपाते है, (अगृभीत-शोचिषं नाकं वि-धुन्वन्ति) जिसके तेज को कोई पकड़ न सके ऐसे विद्युन्मय मेघ को भी वे कंपा देते है तब (वृजना सम् अच्यन्त) जल एकत्र हो जाते है और (वृजना अतित्विषन्त) आकाश के भाग खूब चमक उठते है, (ऋतायवः घोषं स्वरन्ति) जल युक्त मेघ गर्जन भी करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के वीर, व्यापारी एवं विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अर्यः) स्वामी, राजा के तुल्य ही (तं) उस (अगृभीत-शोचिषं) अग्निवत् असह्य तेज को धारण करने वाले (नाकम्) अति सुखमय, (रुशत्) चमचमाते, (पिप्पलं) ऐश्वर्यवान् शत्रु को भी (वि धूनुथ) विशेष रूप से कंपावे। (ऋतायवः) अन्न, ज्ञान और धन के इच्छुक लोग पद पद पर (सम् अच्यन्त) अच्छी प्रकार सत्संग किया करें, (वृजना) अपने गमनयोग्य मार्गों को (अतित्विषन्त) खूब प्रकाशित करे और स्वयं भी प्रकाशित हों। और (ऋतायवः) सत्य, ज्ञान, धन के इच्छुक पुरुष भी (यत् विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) जिसके उपदेश आज्ञावचन को प्राप्त करते है उसको प्रसन्न वा प्राप्त करो।

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्योः वयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्योः यथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम्॥ १३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु वत् देश से देशान्तर को जाने वाले वैश्य प्रजा जनो ! हे (विचेतसः) विविध प्रकार के ज्ञान वाले पुरुषो ! हे

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५।२६

भा०—(तत्) वह (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् आदि (वरुणः) जल का स्वामी, (मित्रः) मित्र, (अग्निः) अग्नि, (आपः) जल, और (ओषधीः वनिनः) औषधियें और वन के वृक्ष सब (नः जुषन्त) हमें सुख प्रदान करें । हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् पुरुषों के समीप (शर्मन् स्याम) सुख से रहें । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम लोग हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—२,४ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) प्रबल वायुगण (उर्वी रोदसी रेजयन्ति) विशाल भूमि और अन्तरिक्ष दोनों को कंपाते हैं और (यत् अयासुः) जब चलते हैं तब (उत्सं पिन्वन्ति) मेघ को बरसाते हैं उसी प्रकार (उग्राः) बलवान् पुरुष (यत् अयासुः) जब चलते वा प्राप्त होते हैं (उर्वी) बड़ी (रोदसी) सेनापतियों के अधीन स्थित उभयपक्ष की सेनाओं को (रेजयन्ति) कंपाते, भयभीत करते हैं, और (उत्सं) ऊपर उठने वाले विजेता को (पिन्वन्ति) जलों से अभिषिक्त करते हैं । हे (यजत्राः) दानशील पूज्य सत्संगति युक्त जनो ! हे (मध्वः) मनन शील, हर्षकारी जनो ! (वः) आप लोगों का (मारुतं नाम) मनुष्यों का सा नाम, सामर्थ्य है आप लोग (यज्ञेषु) यज्ञों और युद्धों में (शवसा) बल और ज्ञान से (प्र मदन्ति) हर्षित होते और उत्तम उपदेश करते हो।

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् जनो ! आप लोग (निचेतारः हि) उत्तम धनों और ज्ञानों के संग्रहशील और (यजमानस्य) दान शील के (मन्म) अभिमत वस्तु (गृणन्त) उपदेश देने वाले को (पिप्रियाणाः) प्रसन्न करते हुए आप लोग (प्रणेतारः) उत्तम कर्म कुशल होकर (अस्माकं विदथेषु) हमारे यज्ञों मे (वीतये) रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (बर्हिः) उत्तमासन पर (आसदत) विराजो । इसी प्रकार उत्तम नायक और उत्तम संग्रही जन संग्रामों, धनादि लाभों के लिये (बर्हिः) प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजें ।

नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥३॥

भा०—(यथा इमे) जिस प्रकार ये (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर मनुष्य (रुक्मैः) कान्तियुक्त (आयुधैः) हथियारों और (तनूभिः) शरीरों से (भ्राजन्ते) चमकते हैं (एतावत्) उतने (अन्ये मरुतः न) भ्राजन्ते) और दूसरे मनुष्य नहीं चमकते । ये (विश्व-पिशः) सर्वाङ्ग सुन्दर जन (रोदसी पिशानाः) आकाश और भूमि दोनों को सुशोभित करते हुए सूर्य किरणों के समान (समानम् अञ्जि) एक समान दीप्ति-युक्त चिह्न को (शुभे कम्) शोभा के लिये (अञ्जते) प्रकट करते हैं ।

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ४

भा०—हे (मरुत) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (सा दिद्युत्) चमकती हुई उज्ज्वल नीति (ऋधक् अस्तु) सदा सच्ची हो (यत्) यदि चाहे हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता) पुरुष होने से (आगः कराम) अपराध भी करें । हे (यजत्राः) पूज्य जनो !

(तस्याम्) उस नीति मे रहकर (वः मा अपि भूम) आप लोगो के प्रति अपराधी न हो । (वः चनिष्ठा) आप लोगो की अन्न ऐश्वर्यादि युक्त (सुमतिः अस्मे अस्तु) उत्तम मति हमारे लिये हो ।

कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥५॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! (कृते चित् अत्र) इस संसार मे अपने किये कर्म और करने योग्य कर्त्तव्य मे ही (रणन्त) सुख लाभ करो । आप लोग (अनवद्यास) अनिन्दित उत्तम धर्म करने वाले, उत्तम कीर्त्तियुक्त (शुचय) शुद्ध पवित्र आचारवान्, ईमानदार (पावका) अन्यो को भी पवित्र करने वाले होओ । हे (यजत्राः) उत्तम संगति योग्य, ज्ञान मान देने वाले सज्जनो ! आप लोग (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियो और ज्ञानो से (नः अवत) हमारी रक्षा करो । आप लोग (वाजेभिः) अन्नो से (पुष्यसे) हमे पुष्ट करने के लिये (प्र तिरत) बढाओ ।

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥६॥

भा०—हे (मरुतः नर) उत्तम नायक जनो ! आप लोग (विश्वेभिः नामभिः) सब प्रकार के उत्तम नामों से (स्तुतास) प्रशंसित और शिक्षित होकर (हवींषि) उत्तम ज्ञान और नाना ऐश्वर्य (उप व्यन्तु) प्राप्त करे । (नः) हमारी प्रजाओ को (अमृतस्य ददात) अमृत, अन्न, दीर्घ जीवन प्रदान करो । (उत) और (रायः) उत्तम ऐश्वर्य (सूनृता) शुभ वचन और (मघानि) उत्तम धन (जिगृत) प्रदान करो ।

आ स्तुतासो मरुतो विश्वं ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥२७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो ! आप (विश्वे) सब (सर्वताता) सबके सुखकारक कार्य में (स्तुतासः) प्रशंसित होकर (ऊती) उत्तम रक्षा सहित (सूरीन्) विद्वानों की (आ जिगात) आदरपूर्वक प्रशंसा करो । (ये) जो (शतिनः) सैकड़ों, असंख्य बलों या ग्रामों के स्वामी होकर (त्मना) स्वयं (नः) हमें (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वे (यूयं) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

(५८)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६ भुरिक्पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र सा॑क॒मुक्षे॑ अर्चता ग॒णाय॒ यो दैव्य॑स्य॒ धाम्न॒स्तुवि॑ष्मान् ।
उ॒त क्षो॑दन्ति॒ रोद॑सी महि॒त्वा नक्ष॑न्ते॒ नाकं॒ निर्ऋ॑तेरवं॒शात् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! (यः) जो (दैव्यस्य) देवों, विद्वान् तेजस्वी, दानशील, विजिगीषु पद के योग्य (धाम्नः) नाम, स्थान और जन्म के कारण (तुविष्मान्) सबसे अधिक बलशाली है, उन एक साथ अभिषिक्त होने वाले वा राजा का स्वयं एक साथ मिलकर अभिषेक करने वाले (गणाय) वीर प्रमुख जन का (प्र अर्चत) अच्छी प्रकार आदर करो । जिस प्रकार वायुगण (महित्वा) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों में (क्षोदन्ति) जल ही जल करके शान्ति सुख बरसाते हैं उसी प्रकार (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से (रोदसी) राजा और प्रजा वर्ग में (क्षोदन्ति) जल के समान आचरण करते, सबको शान्ति सुख से तृप्त करते हैं वा (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से जो प्रजा जन (रोदसी क्षोदन्ति) दुष्टों के रुलाने वाले, रुद्र सेनापति की सेनाओं का अवयव बनते हैं, स्वयं सेनाओं के अंग प्रत्यंग के घटक हैं वा जो (रोदसी

क्षोदन्ति) भूमि को अन्नोत्पत्ति के लिये तोड़ते है और (निः-ऋतेः) सर्व दु:खमय संसार कष्ट और (अवंशात्) सन्तानरहित होने आदि दुःखो से दूर होकर खूब सुखी, सुसन्तान होकर (नाकं नक्षन्ते) दु खरहित सुख-मय लोक को प्राप्त होते है। उनका भी आप लोग आदर सत्कार करो।

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण की उत्पत्ति (त्वेष्येण) प्रखर तेज से है और वे ताप पाकर बड़े वेग से प्रकट होते है कि सब कोई कांप जाते है, उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् वीर जनो! (ये) जो आप लोग (त्वेष्येण) अति तीक्ष्ण तेज से और (महोभिः) वडे २ गुणो और (ओजसा) वडे वल पराक्रम से युक्त होकर (भीमास') अति भयंकर और (तुवि-मन्यवः) अति क्रोध युक्त और बहुज्ञान युक्त (अयासः) आगे बढ़ने वाले हो (व जनूः चित्) आप लोगो की उत्पादक माताएं, वा प्रकृतिये भी (प्र सन्ति) उत्तम कोटि की है। (यामन्) अपने २ मार्ग मे चलते हुए भी (विश्वः) सभी (स्वर्दृक्) सुख से देखने वाले कुशल के इच्छुक, लोग (वः भयते) आप लोगों से अधर्म करने से भय करते है।

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥

भा०—जो (मरुत·) वीर और विद्वान् जन (मघवद्भ्य') ऐश्वर्य-वान् लोगो के हितार्थ (बृहत् वय·) बहुत बडा जीवन, अन्न और बल (दधात) धारण करते है और जो (नः) हमारी (सु-स्तुति) उत्तम स्तुति को (जुजोषन् इत्) अति प्रेम से सेवन करते है और जो (गत) प्राप्त होकर (अध्वा) मार्ग के समान (जन्तु न वितिराति) प्राणि को नाश नहीं करता प्रत्युत विशेष रूप से बढाता है, वह (स्पार्हाभि ऊतिभि)

स्पृहणीय, उत्तम उपायों से (नः प्र तिरेत) हमें भी बढ़ावे। हम सब उनका आदर सत्कार किया करें।

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

भा०—हे (धूतयः) भोग-वासनाओं और कर्मबंधनों को कँपा कर शिथिल कर देने वाले विद्वान् जनो ! और शत्रुओं को कँपा देने वाले वीर पुरुषो ! (युष्मा-ऊतः विप्रः) तुम लोगों से सुरक्षित विद्वान् पुरुष जिससे (शतस्वी) सैकड़ों धनों का स्वामी और सैकड़ों को अपना बन्धु बना लेने हारा हो। और जिससे (युष्मा-ऊतः अर्वा) आप लोगों से सुरक्षित अश्वारोही वीर पुरुष (स-हुरिः) शत्रु-पराजयकारी, सहनशील, और (सहस्री) सहस्रों ऐश्वर्यों और सहस्रों पुरुषों का स्वामी, सहस्र-पति होता है। और जिससे (युष्मा-ऊतः सम्राड्) आप लोगों से सुरक्षित महाराजा होकर (वृत्रम् उत हन्ति) बढ़ते शत्रु को भी नाश करता और (वृत्रं हन्ति) धन को प्राप्त करता है हे विद्वानो और वीरो ! (वः) आप लोगों का (तत्) ऐसा ही (देष्णम्) दान हो।

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥

भा०—मैं (मीढुषः) वर्षणशील, नाना सुखों के दाता, (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुष के अधीन रहने वाले (तान्) उन नाना वीर जनों को (आ विवासे) बड़े आदर से राष्ट्र में बसाऊं। उनकी सेवा सत्कार करूं वे (मरुतः) शत्रुओं के हन्ता लोग (नः) हमें (पुनः) वार २ (नंसन्ते) विनयपूर्वक प्राप्त हों। (यत्) जिस (सस्वर्ता) उपतापजनक शब्द से, या अप्रकट रूप से (यद् आविः) वा जिससे प्रकट, रूप से वे (जिहीडिरे) क्रोधित हों वा हमारा अनादर करें

(तुराणाम्) अति शीघ्रकारी वा अपराधियो के दण्डकर्त्ता जनो के (तद् एनं) उस अपराध को हम (अव ईमहे) दूर करे ।

प्र सा वा॑चि सुष्टु॒तिर्म॒घोना॑मि॒दं सू॒क्तं म॒रुतो॑ जुषन्त ।
आ॒राच्चि॒द्द्वेषो॑ वृषणो युयोत यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ सदा॑ नः ६।२८

भा०—(मघोनां) उत्तम आदर योग्य धन, ऐश्वर्य के स्वामी जनों की (सा सु-स्तुति) वह उत्तम स्तुति (प्र-वाचि) अच्छी प्रकार कही जाती है। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इदं) इस प्रकार के (सूक्तम्) उत्तम वचन (जुषन्त) सेवन किया करे। हे (वृषभः) वलवान् पुरुषो ! आप लोग (द्वेषः) द्वेपी शत्रुओ और द्वेष भावो को भी (आरात् चित् युयोत) दूर ही पृथक् करो । और (स्वस्तिभि) उत्तम सुखकारी साधनो से (सदा न यूयं पात) सदा हमे आप लोग बचाइये ।

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–११ मरुतः। १२ रुद्रो देवता, मृत्युविमोचनी ॥ छन्दः १ निचृद् बृहती । ३ बृहती । ६ स्वराड् बृहती । २ पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ५, १२ अनुष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ९, १० गायत्री । ११ निचृद्गायत्री ॥

यं त्राय॑ध्व इ॒दमि॑दं॒ देवा॑सो॒ यं च॒ नय॑थ ।
तस्मा॑ अग्ने॒ वरु॑ण॒ मित्रार्य॑म॒न्मरु॑त॒ शर्म॑ यच्छत ॥ १ ॥

भा०—हे (देवास) विद्वान् जनो ! आप लोग (य त्राय ध्वे) जिस २ की भी रक्षा करते हो और (यं च) जिसको (इदम् इदम्) यह सन्मार्ग है, यह सत् कृत्य है इस प्रकार स्पष्ट वतला २ कर (नयथ च) सन्मार्ग मे और सत्कर्म मे प्रवृत्त कराते हो, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे (मित्र) स्नेहवन ! हे (अर्यमन्) शत्रुओं और दुष्टो के नियन्त ! हे (मरुत) विद्वान प्रजाजनो ! आप

उसको अवश्य (शर्म यच्छत) शान्ति प्रदान करो। अर्थात् उसको कभी धोखा दे, कुमार्ग पर डाल कर संकट में मत डालो।

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (प्रिये अहनि) प्रिय, मनोहर किसी दिन (ईजानः) यज्ञ वा आप लोगों का सत्संग करता हुआ पुरुष (वः) आप लोगों को (वराय) स्वीकार करने के लिये (महीः इषः दाशति) अपनी उत्तम २ इच्छाएं प्रकट करता और बड़े पूज्य अन्नादि समृद्धियों वा सैन्य का प्रदान करता है वह (युष्माकं अवसा) आप लोगों के ही ज्ञान और बल से (द्विषः) अप्रीतिकर भावों और शत्रुओं को (तरति) पार कर जाता है। (सः) और वह (क्षयं) अपने ऐश्वर्य को (प्र तिरते) खूब बढ़ा लेता है।

नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कामिनः) उत्तम संकल्प और शुभ इच्छा से युक्त होकर (विश्वे) सब (सचा) एक साथ मिलकर (अस्माकं सुते) हमारे ऐश्वर्य के बल पर (अस्माकम् पिबत) हमारा ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करो। (वः चरमं चन) आप लोगों में से अन्तिम को भी (वसिष्ठः) श्रेष्ठ वसु राजा (न परिमंसते) त्याज्य नहीं समझता। प्रत्युत सबको आदर और प्रेम से देखता है। सभी लोग उत्साह पूर्वक राजा के राज्य-प्रजाजन की रक्षा में सदा तत्पर रहो।

नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! आप लोग (यस्मै अराध्वम्) जिसको सुखादि प्रदान करते हो (वः ऊतिः) आप लोगो की रक्षाकारिणी सेनादि (पृतनासु) मनुष्यो और संग्रामो के वीच मे भी (नहि मर्धति) उसको नाश नहीं करती । (वः सुमतिः नवीयसी) आप लोगो की उत्तम से उत्तम शुभमति (अभि आवत्) प्राप्त हो । आप लोग (पिपीषवः) प्रजा के पालन करने की इच्छा से युक्त होकर (तूयं) शीघ्र ही (यात) प्रयाण करो और (आयात) आओ जाओ ।

ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।

इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥

भा०—(ओ) हे (मरुतः) वीरो और विद्वान् पुरुषो ! हे (घृष्विराधसः) एक दूसरे से वढ़ने वाले, सम्बद्ध धनैश्वर्य से सम्पन्न, आप लोग (पीतये) उपभोग के लिये (अन्धांसि) नाना प्रकार के अन्नो को (सु यातन) सुखपूर्वक प्राप्त करो । मै (इमा) ये नाना प्रकार के (हव्या) खाने और लेने देने योग्य द्रव्यादि (ररे) प्रदान करता हू । (हि कं) आप लोग (अन्यत्र) और अन्य स्थान मे (मो सु गन्तन) मत जाइये। मेरे राष्ट्र मे सुख से रहिये ।

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।

अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर, प्रजाजनो ! (नः बर्हिः आसदत च) आप लोग हमारे वृद्धियुक्त गृह, आसन और यज्ञ आदि को प्राप्त होओ और उत्तमासन पर विराजो (नः) हमे (स्पार्हाणि) चाहने योग्य, उत्तम, (वसु) धनो को (दातवे) देने के लिये (नः) हमें (अविता च) प्राप्त हों हमारी रक्षा करे । आप लोग (अस्रेधन्तः) प्रजा का नाश न करते हुए, अहिंसक रहकर (सौम्ये मधौ) सोम, आदि ओषधिरस मे युक्त मधु के समान विद्वानो के योग्य आनन्ददायक इस राष्ट्र मे और उत्तम

बलदायक अन्नादि के ऊपर (इह) इस गृहादि मे (स्वाहा) उत्तम सत्कार, सुवचन और सुखपूर्वक अभ्यवहार एवं अपने न्यायोचित उपार्जित धन द्वारा (मादयाध्वै) आनन्द लाभ करिये ।

सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ७

भा०—(सस्वः) गुप्त भाव से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि सुगुप्त रखने वाले वा (सस्वः) एक समान तेज, एक समान शब्द और एक समान ऐश्वर्यादि रखने वाले, (तन्वः शुम्भमानाः) अपने देहों आत्माओं को उत्तम गुणों और आभरणों से अलंकृत करने वाले (नीलपृष्ठाः) श्यामवर्ण की पीठ वाले (हंसासः चित्) हंसों के समान, (नीलपृष्ठाः) नील, श्याम या काले वर्ण की पोशाकों वाले, वा कृष्ण मृगछाला पहने (हंसास) हंसवत् विवेकी, अन्तःशत्रु और वाहरी शत्रुओं को मारने वाले वा ध्येय तक पहुंचाने हारे, (आपप्तन्) आवें । वे (रण्वाः नरः न) रणकुशल नायकों के समान (सवने) ऐश्वर्यमय राष्ट्र या सेनापति के उत्तम शासन मे (मदन्तः) आनन्दपूर्वक रहते हुए (अभितः) सब ओर (विश्वशर्धः) समस्त बल को (मा अभितः) मेरे चारों ओर (नि षेद) बनाये रक्खो ॥ 'नीलपृष्ठा'— काली या नीली पोशाकें जैसे ग्रेजुएटों, वकीलों के गौन हों ।

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानों और वीर जनो ! (यः) जो (नः) हमारे बीच मे (दुर्हृणायुः) दुःखदायी, क्रोध करने वाला, दुष्ट हृदय का पुरुष, हमारे (चित्तानि) अन्तःकरणों को (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (अभि जिघांसति) आघात करता या हृदयों को चोट पहुंचाना चाहता है (सः) वह (द्रुहः पाशान्) द्रोही के योग्य फांसों या बन्धनों को

(रथ्यः) महारथियो ! रथ के स्वामी जनो ! हम लोग (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये (वयस्वतः) अन्न, जीवन और बल से युक्त (रायः) धनैश्वर्य के स्वामी (स्याम) हों। हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् प्रजा जनो ! (अस्मे) हमारे बीच मे (यः) जो पुरुष (तिष्यः यथा) सूर्य के समान (न शुच्छति) कभी प्रमाद नहीं करता, उस (सहस्रियं) सहस्रों वीरों, धनों और सेनाओं के स्वामी पुरुष को तुम लोग सदा (दिवः) कामना करते हुए (ररन्त) अच्छी प्रकार प्रसन्न करते रहो।

यूयं र॒यिं म॑रुतः स्पा॒र्हवी॑रं यू॒यमृषि॑मवथ॒ साम॑विप्रम्।
यु॒यमर्व॑न्तं भर॒ताय॒ वाजं॑ यू॒यं ध॑त्थ॒ राजा॑नं श्रु॒ष्टिम॑न्त॒म् ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) पुरुषार्थी, व्यवहारज्ञ एवं वीर पुरुषो ! आप लोग (स्पार्ह-वीरं) वीर पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को और (साम-विप्रम्) सामों को जानने वाले विद्वान् एवं 'साम' उपाय द्वारा राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने मे समर्थ, (ऋषिम्) मन्त्रार्थ वेत्ता, द्रष्टा पुरुष को (अवथ) सुरक्षित रक्खो, उसको प्राप्त एवं सुप्रसन्न करो। और (भरताय) राष्ट्र के प्रजा जनो को भरण पोषण करने के लिये (अर्वन्तं) शत्रु का नाश करने वाले पुरुष एवं (वाजं) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्य को भी (यूयं धत्थ) आप लोग धारण करो। और (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने वाले अन्न सम्पत्ति के स्वामी (राजानं) राजा, तेजस्वी पुरुष को भी (धत्थ) पुष्ट करो।

तद्वो॑ यामि॒ द्रवि॑णं सद्यऊतयो॒ येन॒ स्व१र्ण त॒तना॑म॒ नॄँर॒भि।
इ॒दं सु मे॑ मरुतो हर्यता॒ वचो॒ यस्य॒ तरे॑म॒ तर॑सा श॒तं हिमाः॑ १५।१६

भा०—हे (सद्य-ऊतयः) अति शीघ्र रक्षा, ज्ञान, गमन प्राप्ति करने मे कुशल, (मरुतः) पुरुषार्थी लोगो ! मैं (वः) तुम्हारा (तत्) उस प्रकार का (द्रविणं) धनैश्वर्य (यामि) चाहता हू (येन) जिससे हम सब लोग (नॄन् अभि) सब मनुष्यों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान,

(प्रति मुचीष्ट) धारण करे। और (तम्) उसको (तपिष्ठेन हन्मना) अति तापदायक हथियार से (हन्तन) दण्डित करो।

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

भा०—हे (मरुत) उत्तम मनुष्यो ! हे (सान्तपनाः) उत्तम तप करने वाले जनो ! आप लोग (इदं हविः) यह उत्तम अन्न (जजुष्टन) प्रेम से सेवन करो। हे (रिशादसः = रिशात्–असः, रिश — अदस.) हिंसकों को नाश करने वाले जनो ! (युष्माक·ऊती) तुम लोगो की उत्तम रक्षा से ही हम लोग भी उत्तम अन्नादि का लाभ करे।

एष ह वै सान्तपनोऽग्निर्यद् ब्राह्मणः। यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनप्लावनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स·सान्तपन ॥ गो० पू० २। २३॥ जिस विद्वान् ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन समावर्त्तनादि तक संस्कार हो चुके हों और अग्निहोत्र व्रतचर्यादि ठीक पालन किये हो वह 'सान्तपन' कहाता है।

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन। युष्माकोती सुदानवः १०

भा०—हे (गृहमेधासः) गृह मे उत्तम बुद्धि रखने वाले, वा गृह में यज्ञ करने हारे उत्तम गृहस्थ जनो ! हे (मरुत·) मनुष्यो ! आप लोग (आ गत) आइये। (मा अपभूतन) हमसे दूर मत होइये। हे (सु-दानवः) उत्तम दानयुक्त, एवं दानशील पुरुषो ! (युष्माक ऊती) आप लोगो की रक्षा, ज्ञान और सत्कार से ही हम भी प्रसन्न हो।

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः। यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

भा०—हे (स्वतवस) स्वयं अपने शरीर आत्मा और धनैश्वर्य से बलशाली पुरुषो ! हे (कवयः) क्रान्तदर्शी जनो ! हे (सूर्यत्वच) सूर्य के समान देह की कान्ति वाले तेजस्वी, उज्ज्वल पुरुषो ! हे (मरुत) विद्वान्, वीर जनो ! मै (व.) आप लोगों को (इह इह) इस २ कार्य और पद

बलदायक अन्नादि के ऊपर (इह) इस गृहादि में (स्वाहा) उत्तम सत्कार, सुवचन और सुखपूर्वक अभ्यवहार एवं अपने न्यायोचित उपार्जित धन द्वारा (मादयाध्वै) आनन्द लाभ करिये ।

सुस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ७

भा०—(सस्वः) गुप्त भाव से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि सुगुप्त रखने वाले वा (सस्व.) एक समान तेज, एक समान शब्द और एक समान ऐश्वर्यादि रखने वाले, (तन्वः शुम्भमानाः) अपने देहों आत्माओं को उत्तम गुणों और आभरणों से अलंकृत करने वाले (नीलपृष्ठाः) श्यामवर्ण की पीठ वाले (हंसासः चित्) हंसों के समान, (नीलपृष्ठाः) नील, श्याम या काले वर्ण की पोशाकों वाले, वा कृष्ण मृगछाला पहने (हंसासः) हंसवत् विवेकी, अन्तःशत्रु और बाहरी शत्रुओं को मारने वाले वा ध्येय तक पहुचाने हारे, (आपपप्तन्) आवें । वे (रण्वाः नरः न) रणकुशल नायकों के समान (सवने) ऐश्वर्यमय राष्ट्र या सेनापति के उत्तम शासन में (मदन्तः) आनन्दपूर्वक रहते हुए (अभितः) सब ओर (विश्वशर्ध.) समस्त बल को (मा अभितः) मेरे चारों ओर (नि षेद) बनाये रक्खो ॥ 'नीलपृष्ठाः'— काली या नीली पोशाकें जैसे ग्रेजुएटों, वकीलों के गौन हों ।

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानों और वीर जनो ! (य.) जो (नः) हमारे बीच में (दुर्हृणायुः) दुःखदायी, क्रोध करने वाला, दुष्ट हृदय का पुरुष, हमारे (चित्तानि) अन्त.करणों को (तिर.) तिरस्कारपूर्वक (अभि जिघांसति) आघात करता या हृदयों को चोट पहुंचाना चाहता है (सः) वह (द्रुहः पाशान्) द्रोही के योग्य फांसों या बन्धनों को

(प्रति मुचीष्ट) धारण करे । और (तम्) उसको (तपिष्ठेन हन्मना) अति तापदायक हथियार से (हन्तन) दण्डित करो ।

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

भा०—हे (मरुतः) उत्तम मनुष्यो ! हे (सान्तपनाः) उत्तम तप करने वाले जनो ! आप लोग (इदं हविः) यह उत्तम अन्न (जजुष्टन) प्रेम से सेवन करो । हे (रिशादसः = रिशात्—असः, रिश—अदसः) हिंसको को नाश करने वाले जनो ! (युष्माक-ऊती) तुम लोगो की उत्तम रक्षा से ही हम लोग भी उत्तम अन्नादि का लाभ करें ।

एष ह वै सान्तपनोऽग्निर्यद् ब्राह्मणः । यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनप्लावनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स-सान्तपनः ॥ गो० पू० २ । २३ ॥ जिस विद्वान् ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन समावर्त्तनादि तक संस्कार हो चुके हों और अग्निहोत्र व्रतचर्यादि ठीक पालन किये हो वह 'सान्तपन' कहाता है ।

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः १०

भा०—हे (गृहमेधासः) गृह मे उत्तम बुद्धि रखने वाले, वा गृह में यज्ञ करने हारे उत्तम गृहस्थ जनो ! हे (मरुतः) मनुष्यो ! आप लोग (आ गत) आइये । (मा अपभूतन) हमसे दूर मत होइये । हे (सु-दानवः) उत्तम दानयुक्त, एवं दानशील पुरुषो ! (युष्माक-ऊती) आप लोगो की रक्षा, ज्ञान और सत्कार से ही हम भी प्रसन्न हों ।

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

भा०—हे (स्वतवसः) स्वयं अपने शरीर आत्मा और धनैश्वर्य से बलशाली पुरुषो ! हे (कवयः) क्रान्तदर्शी जनो ! हे (सूर्य-त्वचः) सूर्य के समान देह की कान्ति वाले तेजस्वी, उज्ज्वल पुरुषो ! हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो ! मैं (वः) आप लोगों को (इह इह) इस २ कार्य और पद

के निमित्त (आवृणे) वरण करता हूं। आप लोग (यज्ञं) यज्ञ को (आ गत) आकर प्राप्त हों और (मा अप भूतन) हमसे दूर न होवें।

त्र्य॑म्बकं यजामहे सु॒गन्धिं॑ पुष्टि॒वर्ध॑नम्।
उ॒र्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नान्मृ॒त्योर्मु॑क्षीय॒ माऽमृता॑त् ॥ १२ ॥ ३० ॥ ४ ॥

भा०—(त्र्यम्बकं) तीनों शब्दमय वेदों का उपदेश करने वाले, वा तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीनों वर्णों के उपदेष्टा रक्षक द्विपात् चतुष्पात् और सरीसृप तीनों के माता के समान पालक, (सु-गन्धिं) उत्तम गन्ध से युक्त, उत्तम कुलोत्पन्न, शत्रुओं के उत्तम रीति से नाशक वा शुभ पुण्यमय गन्ध वाले, सत्कर्मा, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि, समृद्धि को बढ़ाने वाले पूज्य पुरुष वा प्रभु की हम (यजामहे) सदा उपासना और पूजा करते हैं। मैं (मृत्योः) मृत्यु के (बन्धनात्) बन्धन से (उर्वारुकम् इव) खरबूजे के फल के समान (मुक्षीय) मुक्त होऊं और मैं (अमृतात्) अमृतमय मोक्ष सुख वा दीर्घ जीवन से (मा मुक्षीय) पृथक् न होऊं।

(त्र्यम्बक)—अबि शब्दार्थः। अम्बति शब्दायते इत्यम्बः, अम्बकः। त्रयाणां अम्बकः त्र्यम्बकः। 'सुगन्धिः'—गन्ध हिंसने। शोभनः शरीरगंधः पुण्यगन्धो वा यस्यासौ सुगन्धिः। यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गंधो वाति एव पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वातीति श्रुतेः। सायण।

[६०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ सूर्यः। २—१२ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः। ९ विराट् पङ्क्तिः। १० स्वराट् पंक्तिः। २, ३, ४, ६, ७, १० निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ८, ११ त्रिष्टुप् ॥

यद॒द्य सू॑र्य ब्र॒वोऽना॑गा उ॒द्यन्मि॒त्राय॒ वरु॑णाय स॒त्यम्।
व॒यं दे॑व॒त्राऽदि॑ते स्याम॒ तव॑ प्रि॒यासो॑ अर्यमन्गृ॒णन्तः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन्! हे (अदिते) अविनाशिन्! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन्! तू (अनागाः) अपराधों और छल कपटादि पापों से रहित होकर (मित्राय) स्नेहवान् और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के प्रति (उत् अद्य) जो आज के समान सदा ही (उत् यन्) उत्तम पद को प्राप्त होता हुआ (सत्यं ब्रवः) सत्य का ही उपदेश करता है, (देवत्रा) विद्वान् मनुष्यों के बीच (वयं) हम लोग (तव) तेरे ही दिये (सत्यं) सत्य ज्ञान का (गृणन्तः) उपदेश करते हुए एवं तेरे शासन में सत्य भाषण करते हुए (तव प्रियासः स्याम) तेरे प्रिय होकर रहें।

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) परस्पर के स्नेही और एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री पुरुषो! (ज्मन् सूर्यः) भूमि पर, या अन्तरिक्ष में सूर्य के समान (एषः स्यः) वह यह प्रसिद्ध तेजस्वी (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः च) स्थावर और जंगम का (गोपाः) रक्षक (मर्तेषु) मनुष्यों में (ऋजु) सरल धार्मिक कार्यों और (वृजिना) पापों को भी (पश्यन्) न्यायपूर्वक देखता हुआ (उभे अभि) स्त्री और पुरुष, वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति (उद् एति) उदय को प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥३॥

भा०—(सधस्थात्) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार सूर्य (सप्त हरितः) सातों जलाहरण करने वाली किरणों को (अयुक्त) नियुक्त करता है। और जिस प्रकार (घृताचीः हरितः) तेज से युक्त वा जल से युक्त किरणें वा रात्रियां वा दिशाएं (ईं वहन्ति) उस सूर्य को धारण करती

है उसी प्रकार वह राजा (सप्त हरितः) राष्ट्र के सात प्रकार के राज काज चलाने वाले उन अमात्य प्रकृतियों का (सधस्थात्) मिलकर बैठने के सभास्थान से शासन करता हुआ (अयुक्त) उचित २ कार्यों में नियुक्त करे (याः) जो (घृताचीः) तेज और स्नेह से युक्त होकर (सूर्यं वहन्ति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को धारण करते हैं । (यः) जो राजा (युवाकुः) तुम दोनों की शुभ कामना करता हुआ, हे (मित्रा-वरुणौ) प्राण उदान के समान राष्ट्र के आधार रूप स्त्री पुरुषो ! (यूथा इव) गौओं के यूथों को ग्वाले के समान समस्त (धामानि) स्थानों और पदों को तथा (जनिमानि) सब प्राणियों, जनों और कार्यों को भी (सं चष्टे) अच्छी प्रकार देखता है ।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ४

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप लोगों के लाभार्थ ही (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) जल से युक्त मेघ ऊपर आकाश में उठते हैं, उसी प्रकार (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) मधुर गुणयुक्त अन्न भूमि पर उत्पन्न होते हैं । सूर्य जिस प्रकार (शुक्रम् अर्णः अरुहत्) शुद्ध जल को ऊपर उठाता है उसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा शुद्ध निष्पाप धन वा प्राप्तव्य पद को (आ अरुहत्) प्राप्त करे । (यस्मै) जिसके हितार्थ (आदित्याः) १२ मासों के सदृश नाना रूप में सर्वोपकारक विद्वान् तेजस्वी १२ सचिव (अध्वनः) राज-कार्यों के नाना मार्ग (रदन्ति) बनाते हैं वही (स-जोषाः) समान रूप से सबको प्रिय, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरने योग्य हो ।

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥

भा०—(इमे) ये उक्त विद्वान् जन और (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ राजा ये सब (भूरेः) बहुत बडे (अनृतस्य) असत्य को भी (चेतारः) विवेक द्वारा छान बीन करने वाले (हि सन्ति) अवश्य हो। (दुरोणे) गृह मे पुत्र जिस प्रकार धन की वृद्धि करते है उसी प्रकार (दुरोणे) अन्यो से दुष्प्राप्य पद पर स्थित हो कर, वा (इह) इस राष्ट्र मे भी (अदितेः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के अधीन उसके (पुत्राः) पुत्रो के समान आज्ञाकारी (शग्मासः) सुखकारक और (अदब्धाः) प्रजाओ की हिंसा न करने और शत्रुओ से स्वयं भी पीडित न होने वाले होकर (ऋतस्य वावृधु) सत्य न्याय और धन की सदा वृद्धि करे।

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥६॥१॥

भा०—(इमे) ये (मित्रः) सर्वस्नेह, (वरुणः) राजा और (दूड-भासः) दूर २ तक चमकने वाले प्रसिद्ध, कीर्त्तिमान् और प्रतापी पुरुष (दक्षैः) अपने कर्मों और ज्ञानो से (अचेतसं चित्) ज्ञान रहित को भी (चितयन्ति) ज्ञानवान् करते है। (अपि) और (सु-चेतसं) उत्तम चित्त वा ज्ञान वाली (क्रतुं) बुद्धि वा कर्म का (वतन्त) सेवन करते हुए (सु-पथा) उत्तम मार्ग से (अंहः तिरः चित्) पाप को दूर करते और अन्यो को सन्मार्ग से (नयन्ति) लेजाते है। इति प्रथमो वर्गः॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७॥

भा०—(इमे) ये (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों को (चिकित्वांसः) जानने वाले, विद्वान् लोग (अनिमिषाः) कभी आंखे न झपकते हुए, सदा सब कार्यों मे सचेत, आलस्य रहित होकर

(अचेतसम्) अज्ञानी पुरुष को भी (प्र-व्राजे चित्) उत्तम गन्तव्य मार्ग में (नयन्ति) लेजाते है। (प्र-व्राजे) मार्ग में जाते हुए भी जैसे (नद्य. गाधम्) नदी का गहरा जल (अस्ति) हुआ करता है वे विद्वान् लोग (अस्य) इस (विष्पितस्य) दूर २ तक फैले हुए विघ्न रूप अथाह जल से भी (नः पारं पर्षन्) हमें पार करें।

यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः॥ ८॥

भा०—(यत्) जो (अदितिः) विदुषी माता और विद्वान् पिता के तुल्य अखण्ड शासक राजा, (मित्रः) मित्र, स्नेही, (वरुणः) सर्वोपरि उत्तम पुरुष ये सब (सुदासे) उत्तम करादि के दाता प्रजाजन के हितार्थ वा वृत्ति आदि देने वाले मुख्य राजा के लिये (भद्रं) कल्याणकारी सुख (यच्छन्ति) प्रदान करते हैं। (तस्मिन्) उसके अधीन हम अपने (तोकं तनयं आ दधानाः) पुत्र पौत्रादि का पालन पोषण करते हुए (तुरासः) अति शीघ्रकारी होकर (देव-हेडनं) विद्वानों के अनादर और क्रोधजनक कोई काम (मा कर्म) कभी न करें।

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम्॥ ९॥

भा०—जो व्यक्ति (होत्राभिः) उत्तम वाणियों से (वेदिम्) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली यज्ञ वेदी, विदुषी स्त्री और भूमि को (अव-यजेत) प्राप्त नहीं करता, उसका उत्तम रीति से आदर सत्कार नहीं करता (सः) वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ जनों से विनाशित, दण्डित होकर (काः चित् रिपः अव यजेत) कई प्रकार के कष्ट प्राप्त करता है। अर्थात् जो (होत्राभिः) दान आदान क्रिया और सत्कार युक्त वाणियों से (वेदि) सुखप्रद स्त्री, यज्ञ वेदी, भूमि आदि का सत्संग करता है वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ पुरुषों

से धारित होकर (काः चित् रिपः अव) कई प्रकार के नाना दुःखों और पीड़ाओं से युक्त रहता है। (अर्यमा) न्यायकारी दुष्टों का नियन्ता, हे (वृषणाः) बलवान् स्त्री पुरुषो! (द्वेषोभिः परि वृणक्तु) द्वेषकारी दुष्ट जनों से हमें दूर रक्खे। और (सु-दासे) सुखप्रद, उत्तम दानशील पुरुष को (उरुं लोकं) विशाल स्थान प्रदान करे।

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥

भा०—(एषां) इन उक्त बलवान् राष्ट्रसञ्चालक प्रधान पुरुषों की (सम्-ऋतिः) एक साथ मिलकर हुई संगति, सम्मति आदि सदा (सस्वः चित्) गुप्त और (त्वेषी) अति तीक्ष्ण, तेजस्विनी हो। वे लोग (अपीच्येन) अति सुन्दर, सुगुप्त, सुदृढ़ (सहसा) बल से (सहन्ते) शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ होते हैं। हे (वृषणः) बलवान् पुरुषो! (युष्मद्भिया) आप लोगों से भयपूर्वक (रेजमानाः) कांपते हुए शत्रुजन हों। और आप लोगों के (दक्षस्य महिना चित्) बल के महान् सामर्थ्य से ही आप लोग (नः मृडत) हमें सुखी करें।

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणे) विद्वान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हितार्थ वा ज्ञान और धन के प्राप्त्यर्थ (सुमतिम्) शुभ कल्याणकारी ज्ञान और बुद्धि (आ यजाते) प्राप्त करता है, और जो (वाजस्य) बल, ज्ञान और (परमस्य रायः सातौ) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य के लाभ के लिये (सुमतिम् आ यजाते) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष का सत्संग और उपासना करता है (मघवानः अर्यः) उत्तम पूज्य ज्ञान धनादि सम्पन्न पुरुष उसको (मन्युं सीक्षन्त) ज्ञान प्रदान करते और (क्षयाय) रहने और

उसकी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (उरु) बहुत (सु-धातु) उत्तम भरण पोषण, उत्तम गृह और उत्तम सोना चान्दी का आभूषण, वेतन, वृत्ति आदि (चक्रिरे) प्रदान करते हैं ।

इ॒यं दे॑व पु॒रोहि॑ति॒र्यु॒वभ्यां॑ य॒ज्ञेषु॑ मित्रावरुणावकारि ।
विश्वा॑नि दु॒र्गा पि॑पृतं ति॒रो नो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥१२॥२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त श्रेष्ठ उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे माता पिता के तुल्य सभा सेनापति जनो ! हे (देवा) विद्वानो ! (यज्ञेषु) सत्सगो, और यज्ञो मे, (इयं) यह (युवभ्यां) आप दोनो के लिये (पुरः-हितः अकारि) आदर पूर्वक उत्तम वस्तुओ की भेट की जाती है । आप लोग (विश्वानि) समस्त (दुर्गा) दुर्गम, विषम कष्टो को भी (तिरः) दूर करके हमे (पिपृतं) पालन करो । और (यूय) आप सब लोग (नः स्वस्तिभि. सदा पात) हमारा उत्तम २ साधनो से सदा पालन किया करो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

जल, वा प्रकाशवत् (ततनाम) फैला दें, जो सबके लिये उपयोगी सुख-कारी हो। (यस्य तरसा) जिसके बल पर हम (शतं हिमाः) सौ वर्ष जीवन (तरेम) पार कर लें। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मे) मेरे (इदं वचः) इस वचन को (सु हर्यत) अच्छी प्रकार इच्छापूर्वक ग्रहण करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५५]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ५ जगती । २, ४, ७, ८ निचृज्जगती । ६ विराड् जगती । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रयज्यवो मुरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

भा०—(प्र-यज्यवः) उत्तम ज्ञान के प्रदान करने वाले, उत्तम सत्संग, मैत्री, सौहार्द, मान, सत्कार उत्तम पदार्थ की याचना के योग्य, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते अस्त्रों, से सुशोभित, एवं अति प्रकाशयुक्त मति वाले, (रुक्म-वक्षसः) सुवर्ण के आभूषणों को छाती पर धारण करनेवाले, एवं सबको रुचिकर कान्तिमान् तेज को धारने वाले, तेजस्वी, विद्वान् और वीर पुरुष (बृहत् वयः दधिरे) बड़ा भारी बल, ज्ञान और बड़ी आयु धारण करे। (सु-यमेभिः अश्वैः) उत्तम रीति से काबू किये अश्वो के समान, उत्तम नियमो के पालन द्वारा वश किये गये (आशुभिः अश्वैः) शीघ्रगामी, अप्रमादी इन्द्रियो और पुरुषो द्वारा तक भली प्रकार उद्देश्य को (इयन्ते) प्राप्त होते है। (शुभं यातम्) शुभ, धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वालो के (अनु) पीछे (रथाः) उत्तम रथ व आनन्द प्राप्ति के समस्त साधन भी (अवृत्सत) स्वयं प्राप्त हो जाते है।

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥२॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार से (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (विद) प्राप्त कर सको और जिस प्रकार से बडे भारी ज्ञान को प्राप्त कर सको उस प्रकार से आप लोग (स्वयं) अपने आप, (तविषी) बड़ी भारी सेना व शक्ति को (दधिध्वे) धारण करो। और आप लोग (महान्तः) बड़े भारी सामर्थ्यवान् होकर (उर्विया) खूब बहुत अधिक (विराजथ) सुशोभित होवो। (ओजसा) बल पराक्रम से आप लोग (अन्तरिक्षं) वायुओं के समान आकाश को वा राष्ट्र के समस्त भीतरी भाग को (वि ममिरे) विविध प्रकार से मापो और उसको वश करो, और (अन्तरिक्षं वि मिमरे) अन्तरिक्ष भाग को विमान द्वारा प्राप्त होओ, इस प्रकार (शुभं याताम्) शुभ, सन्मार्ग पर जाने वालों के (रथाः) रथ वा देहादि सत् साधन भी (अनु अवृत्सत) उत्तरोत्तर अनुकूल होकर रहें और वृद्धि को प्राप्त हो।

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥३॥

भा०—(साकं जाताः) एक साथ उत्पन्न वा प्रसिद्ध, (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान् एवं उत्तम भूमियों के स्वामी, (साकम् उक्षिताः) एक साथ ही अभिषेक को प्राप्त हुए, (नरः) सेना नायक जन (श्रिये चित्) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (प्रतरं) खूब सहोद्योग से अच्छी प्रकार (आ ववृधुः) सब ओर वृद्धि को प्राप्त हो। वे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्य किरणों के समान (विरोकिणः) विविध रुचि, कान्ति एवं विविध प्रवृत्तियो वाले (प्रतरं वावृधुः) खूब बढ़ें एवं उन्नति करें। (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ और रमण योग्य आत्मा निरन्तर अनुकूल होकर रहते और वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

अध्यात्म में—प्राणगण के विषय में देखो अथर्ववेद (कां० ९।१४।१६) में आये 'साकंजों' का वर्णन।

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥४॥

भा०—हे (मरुत) विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों का (महित्वनं) महान् सामर्थ्य (आ-भूषेण्यम्) आप लोगों को सब प्रकार से आभूषण के तुल्य शोभाजनक, एवं सर्वत्र, सब ओर कार्य करने में सामर्थ्यप्रद हो। और (व चक्षणं) आप लोगों का वचन और ज्ञान दर्शन भी (दिदृक्षेण्यम्) दर्शनीय और सत्य ज्ञान का दर्शाने वाला, (सूर्यस्य इव चक्षणं) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य हो। (उतो) और आप लोग प्राणों के समान प्रिय होकर (अस्मान्) हमें (अमृतत्वे) अमृत, नाशरहित, दीर्घायु युक्त परम जीवन एवं मोक्ष सुख में (दधातन) स्थापित करो! (शुभं याताम्) सन्मार्ग पर जाने वाले आप लोगों के (रथाः) रमणीय आत्मा, रथ के तुल्य रस रूप आनन्दमय आत्मा (अनु अवृत्सत) निरन्तर सुखपूर्वक रहे और उन्नति की ओर बढ़े।

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ५॥१७

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो! जिस प्रकार (मरुतः पुरीषिणः समुद्रतः वृष्टिं उत् ईरयन्ति) वायुगण जल सम्पन्न होकर समुद्र से वृष्टि को उठा कर लाते और वर्षाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (पुरीषिणः) स्वयं ऐश्वर्य सम्पन्न होकर (समुद्रतः) समुद्र से (वृष्टिम्) ऐश्वर्य की वृष्टि का (उत् ईरयथ) उठाकर लाओ। समुद्र से खूब व्यापार द्वारा रत्न मुक्ता आदि ऐश्वर्य प्राप्त करो और (वर्षयथ) प्रजाजनों पर बरसा दो, समान रूप से निष्पक्षपात होकर विभक्त करो। (वः) आप लोगों की (दस्राः) दुःखों के नाश करने वाली (धेनव) गौएं वा वाणियें (न उपदस्यन्ति)

कभी नाश को प्राप्त न होवें। (शुभं यातम्) धर्मानुकूल सत्य पथ पर चलने वाले आप लोगों के रथ (अनु अवृत्सत) प्रति दिन आगे बढ़ें और वृद्धि प्राप्त करें वा आप लोग भी सन्मार्ग पर जाने वाले के पीछे चलें।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥६॥

भा०—(यत्) जब आप लोग हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (धूर्षु) रथों को धारण करने वाले धुरों में (अश्वान्) शीघ्रगामी अश्वों एवं (पृषतीः) शस्त्रवर्षणशील सेनाओं की (अयुग्ध्वम्) योजना करो और (हिरण्ययान् अत्कान्) सुवर्ण वा लोह आदि धातु के बने कवचों को (प्रति अमुग्ध्वम्) धारण करो और तुम (विश्वाः इत् स्पृधः) समस्त स्पर्धाशील शत्रुओं को (वि अस्यथ) विशेष रूप से उखाड़ डालो। (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर शोभा पूर्वक जाने वालों के रथ निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ें।

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्र) जहां (अचिध्वं) पूजा सत्कार प्राप्त करो वा जहां तक जा सको, (तत्) उस स्थान तक (गच्छथ इत् उ) अवश्य जाओ ! (वः) आप लोगों को (पर्वताः न वरन्त) पहाड़ भी न रोक सकें और (न नद्यः वरन्त) न नदियें रोक सकें, ये आपके मार्ग में बाधक न हों। (उत) और आप लोग (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों स्थानों पर (परि याथन) परिभ्रमण करो। (शुभं याताम्) उत्तम रीति से जाने वाले आप लोगों के (रथाः अनु अवृत्सत) रथ यान विमान आदि अनुकूल रूप से चला करें।

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।८।

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र मे रहने हारे प्रजा जनो एवं गृहस्थ मे जाने हारे विद्वानो ! हे आचार्य के अधीन वसने वाले विद्यार्थी जनो। एवं प्रजाओं के राष्ट्र मे वसने हारे वीर पुरुषो ! हे (मरुतः) वलवान् पुरुषो! (यत् पूर्व्यम्) जो पूर्व के विद्वानों और पुरुषो से अभ्यस्त ज्ञान और संचित धन है, (यत् च नूतनं) जो नया, प्राप्त ज्ञान वा धन है और (यत् उच्यते) जिसका उपदेश किया जाता है, (यत् शस्यते) जो अन्य विद्वानों द्वारा शास्त्र रूप मे अनुशासन किया जाता है, हे (न वेदसः) न जानने और न प्राप्त करने हारे धनहीन और ज्ञानहीन पुरुषो ! आप लोग (तस्य विश्वस्य) उस सब ज्ञान वा धन के स्वामी (भवथ) होवो। (शुभं याताम्) शुभ उद्देश्य को लक्ष्य करके जाने वाले पूर्व के सब पुरुषों के पीछे २ आप लोगो के (रथाः) रथवत् शरीर और आत्मा (अनु अवृत्सत) अनुगमन करे। वा, आप लोग सुप्रसन्न होकर रथों के तुल्य पूर्वों के वनाये मार्ग से चला करो।

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म वहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ९

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (मृळत) सुखी करो। (मा वधिष्टन) हमारा वध मत करो, हमें पीड़ित मत करो। (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वहुलं शर्म) वहुत सुख, गृह शरण आदि (वि यन्तन) विविध प्रकारों से दिया करो। (स्तोत्रस्य सख्यस्य) उत्तम प्रशंसनीय मैत्रीभाव को (अधि गातन) सर्वोपरि उपदेश किया करो। (शुभं याताम् अनु) शुभ मार्ग वा उद्देश्य पर जाने वालों के (अनु) पीछे २ (रथाः) उत्तम रथों के समान सन्मार्ग पर (अवृत्सत) सदा चलते रहा करो।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति ॥

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् १०॥१८

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (अस्मान् वस्यः अच्छ नयत) हमें उत्तम धन प्राप्त कराओ, वा उत्तम ऐश्वर्य तक हमें पहुंचाओ वा (वस्यः अस्मान्) हम उत्तम ब्रह्मचारियों वा राष्ट्र के उत्तम वसने वाले वा उत्तम धन सम्पन्न हम लोगों को (अच्छ नयतः) आदर पूर्वक उत्तम मार्ग में ले चलो । और (गृणानाः) उत्तम उपदेश करते हुए आप लोग हमें (अंहतिभ्यः) पापों से (निः नयत) बचा कर लेते चलो । (यजत्राः) दान देने और मान आदर सत्संग आदि करने योग्य पूज्य पुरुषो ! (नः) हमारे (हव्यदातिम्) आदर पूर्वक देने योग्य अन्न वस्त्र आदि के दान को प्रेम से (जुषध्वम्) सेवन किया करो । और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बने रहें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृद्बृहती । ४ विराड्बृहती । ८, ९ बृहती । ३ विराट् पङ्क्तिः । ६, ७ निचृत्पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! प्रधान पुरुष जनो ! (दिवः चित् रोचनात्) कान्तिमान् सूर्य से अधिकृत (मरुतां गणम्) वायुओं के समान (रोचनात्) सबको रुचिकर और सबको प्रसन्न करने वाले, सर्व-

प्रिय, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (अधि) अधिकृत, उसके अधीन (शर्धन्तम्) बलवान्, सैन्यवत् शूरवीर, (अंजिभिः) अपने २ वर्णों को अभिव्यक्त करने वाले (रुक्मेभिः) रुचिकर स्वर्णमय, पदकों, पदसूचक चिह्नों, वा टाइटिलों से (पिष्टं) सुशोभित (मरुताम् गणम्) मनुष्यों, विद्वानों, सैनिक एवं वैश्य प्रजाजनों के गण तथा (विशः गणम्) प्रजा के समूह को (अद्य) आज, विशेष २ अवसर पर (अव ह्वये) विनयपूर्वक बुलाता हूं ।

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक पुरुष ! तू (हृदा) अन्तःकरण से (यथा चित् मन्यसे) जैसे भी उत्तम जाने (तत् इत्) वे ही (आशसः) उत्तम स्तुति योग्य, अधिकार पद पर रहकर शासन करने वाले वा (मे आशसः) मेरे अधीन रहकर शासन करने वाले, और मुझे चाहने वाले हैं वे (मे जग्मुः) मुझे प्राप्त हों । और हे नायक ! नेतः (ये) जो (ते नेदिष्टं) तेरे अति समीप (हवनानि) देने योग्य कर आदि, और लेने योग्य वेतनादि (आ गमन्) प्राप्त कराते और लेते हैं (तान्) उन (भीम-सं-दृशः) भयंकर रूप से दीखने वाले, विशाल आकार के प्रचण्ड पुरुषों को भी (वर्ध) बढ़ा, प्रोत्साहित कर और पद की वृद्धि कर । राजा अपने अधीन, नायकों द्वारा उत्तम, शासकों और प्रचण्ड सैनिकों को रक्खे, उन्हें वेतन दे, उनसे करादि संग्रह करे और शासन करे ।

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥

भा०—(मीढुष्मती पराहता, मदन्ती) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर सबको हर्ष देती हुई आती है उसी प्रकार (मीढुष्मती) बाण वर्षा और ऐश्वर्यों की वर्षा करने में

समर्थ, योग्य, बलवान् प्रजापोषक स्वामी की भी (पृथिवी) पृथिवी वासिनी प्रजा (परा-हता) शत्रु सेना से ताड़ित होकर (मदन्ती) हर्ष-युक्त होती हुई (अस्मत्) हम शासक जनों को (आ एति) प्राप्त होती है। हे (मरुतः) प्रजाजनो, विद्वानो वा वीर पुरुषो ! (वः) आप लोग (अमः) सहायक, शरण योग्य, गृह के समान आश्रय दाता पुरुष (अमः) शत्रु से न मारे जाने वाला, शत्रु को पीडित करने में समर्थ, अप्रतिम, ऐश्वर्य वा बलशाली, (ऋक्षः न) सूर्यवत तेजस्वी, सदा अर्चनीय, वेदाज्ञाओं का पालक, वा ऋक्ष अर्थात् रीछ के समान भयंकर, बलशाली, (शिमीवान्) कर्मण्य, (दुध्रः) शत्रु से अजेय, (गौः इव) महा वृषभ के समान (भीमयुः) भयप्रद होकर प्रयाण करने हारा। वा (गो॰ न भीमयुः) गमनशील अश्व के समान भी प्रचण्ड वेग से जाने हारा हो।

नि ये रिणन्त्योज॑सा वृथा गावो॒ न दु॒र्धुर॑ः ।
अश्मा॑नं चि॒त्स्व॒र्यं॑१ पर्व॑तं गि॒रिं प्र च्या॑वयन्ति॒ याम॑भिः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (गावः न) अश्वों या बैलों के समान (दुर्धुरः) कठिनता से वश आने वाले, प्रचण्ड होकर (ओजसा) पराक्रम से (वृथा) अनायास ही (नि रिणन्ति) शत्रुओं को नाश करते है। वे (यामभिः) अपने प्रयाणों, या चढ़ाइयो द्वारा (स्वर्यं अश्मान) गर्जते मेघ के समान और (पर्वतं) पर्वत के समान अचल, उन्नत (गिरिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले या गर्जते शत्रु को भी (प्र च्या वयन्ति) अस्थिर कर देते हैं। अथवा—(स्वर्यं चित् अश्मानं) शब्द-कारी, और संतापकारी 'अश्म', विद्युत् वा वज्र के समान ही (गिरि पर्वतं) मेघ और पर्वतवत् गर्जते, एवं पालन करने वाले अपने राजा को भी (प्र च्यावयन्ति) उत्तम रीति से चलाते उत्तम पद को पहुंचाते हैं।

उत्ति॑ष्ठ नू॒नमे॑षां॒ स्तोमैः॒ समु॑क्षितानाम् ।
म॒रुतां॑ पुरु॒तम॒मपू॑र्व्यं॒ गवां॒ सर्ग॑मिव ह्वये ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तू (एषाम्) इन (समुक्षितानाम्) अच्छी प्रकार से अभिषिक्त, (मरुतां) वायुवत् बलवान् पुरुषों के (स्तोमैः) उत्तम बलवीर्यो द्वारा (नूनम्) निश्चय से (उत् तिष्ठ) सब से उच्च पद पर विराज । मैं तुझको (गवां सर्गम् इव) गौओ के बीच मे सृष्टि उत्पादक वृषभ के समान वा (गवां सर्गम्) समस्त वाणियों, आज्ञाओ का दाता, एवं समस्त भूमिवासी प्रजाओ के बीच, विधाता, शासक और (पुरुतमम्) सब प्रजाओं मे श्रेष्ठ, (अपूर्व्यम्) अपूर्व, सर्वोत्कृष्ट पद के योग्य (ह्वये) कहता हूं । उत्तम पद के योग्य बतलाता हूं । (२) हे विद्वान् ! शिष्य ! तू सम्यक् स्नात, निष्णात विद्वानों के (स्तोमैः) उपदेशों से ऊंचा उठ । पूर्व के जनो से अप्राप्त सर्वश्रेष्ठ, वाणियो के उत्पन्न पुत्रवत् वा सूर्य की किरणो से उत्पन्न जलवत् जानकर तुझको (ह्वये) मैं गुरु उपदेश करूं । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरु॑षी रथे॑ युङ्ग्ध्वं रथे॑षु रो॒हितः॑ ।
युङ्ग्ध्वं हरी॑ अजि॒रा धु॒रि वोळ्ह॑वे॒ वहि॑ष्ठा धु॒रि वोळ्ह॑वे ॥६॥

भा०— हे विद्वान्, वीर, एवं शिल्पी जनो ! आप लोग (रथे) रथ मे (अरुषी.) लाल वर्ण की घोड़ियों के समान (रथे) रमण करने योग्य गृहस्थ आदि उत्तम कार्यों मे (अरुषीः) दीप्तियुक्त, तेजस्विनी, रोषरहित प्रजाओ को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो । (रथेषु रोहित.) रथो मे लाल घोड़ो के तुल्य उत्तम २ कार्य मे (रोहितः) तेजस्वी पुरुषों को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो । (वोढवे धुरि) वहन करने अर्थात् काम का भार या ज़िम्मेवारी अपने ऊपर उठाकर चलने वाले पुरुष के कार्य के धारण करने के मुख्य पद पर (धुरि हरी) रथ के धुरा मे दो अश्वों के समान दो उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों को (युङ्ग्ध्वम्) नियुक्त करो, उनमें एक मुख्य और एक सचिव हो । इसी प्रकार (वोढवे धुरि वहिष्ठा) वहन या कार्यसञ्चालन करने वाले के स्थान पर दोनों योग्य

पुरुष (वहिष्ठा) कार्य को आगे बढ़ाने और ले चलने में सबसे उत्तम होने चाहियें।

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (अरुषः) तेजस्वी और रोष से रहित, अक्रोधी, (तुवि-स्वनिः) बहुत उच्च ध्वनि करने में समर्थ, (दर्शतः) दर्शनीय रूप और गुणों वाला (स्यः वाजी) वह ज्ञान और शक्ति तथा ऐश्वर्य का स्वामी राजा वा प्रधान, बलवान् अश्व के समान समर्थ पुरुष (इह धायि स्म) इस कार्य में स्थापित किया जाय। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे वैश्य जनो ! (वः) जो आप लोगों के (यामेषु) आने जाने के मार्गों और प्रजा के नियन्त्रण के कार्यों में कोई नियुक्त पुरुष एवं रथ में जुता अश्वादि भी (चिरं मा करत्) विलम्ब न किया करे। (रथेषु) रथों में लगे अश्व के समान आप लोग (तं) उसको (रथेषु) रमण योग्य, एवं शीघ्रता से करने योग्य कार्यों में (प्र चोदत) अच्छी प्रकार प्रेरित करो।

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मारुतं) वायु के बल वा वेग से चलने वाले (श्रवस्युम् रथं) यशोजनक, वा श्रवण योग्य शब्द वा विशेष ध्वनि से युक्त (रथम्) रथ को (आ हुवामहे) उत्तरोत्तर उन्नत रूप में बनाना चाहें। (यस्मिन्) जिसमें (सुरणानि) उत्तम रमण, आनन्द-विनोद एवं उत्तम युद्ध क्रीड़ा आदि (बिभ्रती) करते हुए (रोदसी) दुष्ट को रुलाने वाले पालक सूर्य पृथिवीवत् राज प्रजा वर्ग सचा, एक साथ (मरुत्सु) मनुष्यों के बीच (तस्थौ) विराजें। अथवा। (मारुतं) मनुष्यों के हितकारी, (श्रवस्युम्) उत्तम उपदेश

योग्य वा कीर्त्ति जनक उत्तमोत्तम राष्ट्र रूप रथ पर चढ़कर उत्तम रूप मे रमण करते हुए (सचा) सुख से प्रजावर्ग के साथ रहें ।

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ९।२०।४

भा०—हे प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (रथे शुभं) रथ मे शोभा पाने वाले, (त्वेषम्) अति दीप्ति युक्त (पनस्युं) स्तुत्य, (शर्धम्) बल, सैन्य को मैं (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूं । (यस्मिन्) जिसमे (सुजाता) उत्तम, कार्यों से प्रसिद्ध (मीढुषी) शत्रु पर शर आदि बरसाने वाली सेना (मरुत्सु मीढुषी) वायुओं पर आश्रित बरसती घटा के तुल्य (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य (महीयते) मान आदर प्राप्त करती है । इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५७]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती । २, ६ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्-त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सुजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले, शत्रुओं को रोकने वाले, और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान् एवं शत्रुहन्ता नायक को अपना स्वामी बनाकर, (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त, समान रूप मे अधिकारों और ऐश्वर्यों का भोग करते हुए (हिरण्यरथा) सुवर्ण लोह आदि धातुओं के बने रथों पर स्थित होकर (सुविताय = सु-इताय) सुख मे जाने वा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ गन्तन) आया

पुरुष (वहिष्ठा) कार्य को आगे बढ़ाने और ले चलने में सबसे उत्तम होने चाहियें।

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (अरुषः) तेजस्वी और रोष से रहित, अक्रोधी, (तुवि-स्वनिः) बहुत उच्च ध्वनि करने में समर्थ, (दर्शतः) दर्शनीय रूप और गुणों वाला (स्यः वाजी) वह ज्ञान और शक्ति तथा ऐश्वर्य का स्वामी राजा वा प्रधान, बलवान् अश्व के समान समर्थ पुरुष (इह धायि स्म) इस कार्य में स्थापित किया जाय। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे वैश्य जनो ! (वः) जो आप लोगों के (यामेषु) आने जाने के मार्गों और प्रजा के नियन्त्रण के कार्यों में कोई नियुक्त पुरुष एवं रथ में जुता अश्वादि भी (चिरं मा करत्) विलम्ब न किया करे। (रथेषु) रथों में लगे अश्व के समान आप लोग (तं) उसको (रथेषु) रमण योग्य, एवं शीघ्रता से करने योग्य कार्यों में (प्र चोदत) अच्छी प्रकार प्रेरित करो।

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मारुतं) वायु के बल वा वेग से चलने वाले (श्रवस्युम् रथं) यशोजनक, वा श्रवण योग्य शब्द वा विशेष ध्वनि से युक्त (रथम्) रथ को (आ हुवामहे) उत्तरोत्तर उन्नत रूप में बनाना चाहें। (यस्मिन्) जिसमें (सुरणानि) उत्तम रमण, आनन्द-विनोद एवं उत्तम युद्ध क्रीड़ा आदि (बिभ्रती) करते हुए (रोदसी) दुष्ट को रुलाने वाले पालक सूर्य पृथिवीवत् राज प्रजा वर्ग सचा, एक साथ (मरुत्सु) मनुष्यों के बीच (तस्थौ) विराजे। अथवा। (मारुतं) मनुष्यों के हितकारी, (श्रवस्युम्) उत्तम उपदेश

योग्य वा कीर्त्ति जनक उत्तमोत्तम राष्ट्र रूप रथ पर चढ़कर उत्तम रूप मे रमण करते हुए (सचा) सुख से प्रजावर्ग के साथ रहे ।

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ९।२०।४

भा०—हे प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (रथेशुभं) रथ मे शोभा पाने वाले, (त्वेषम्) अति दीप्ति युक्त (पनस्युं) स्तुत्य, (शर्धम्) बल, सैन्य को मैं (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाता हू । (यस्मिन्) जिसमे (सुजाता) उत्तम, कार्यों से प्रसिद्ध (मीढुषी) शत्रु पर शर आदि बरसाने वाली सेना (मरुत्सु मीढुषी) वायुओ पर आश्रित बरसती घटा के तुल्य (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य (महीयते) मान आदर प्राप्त करती है । इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाक ॥

[५७]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती । २, ६ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्-त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले, शत्रुओं को रोकने वाले, और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान् एवं शत्रुहन्ता नायक को अपना स्वामी बनाकर, (सजोपस) समान प्रीतियुक्त, समान रूप से अधिकारों और ऐश्वर्यों का भोग करते हुए (हिरण्यरथा) सुवर्ण लोह आदि धातुओं के बने रथों पर स्थित होकर (सुविताय = सु-इताय) सुख से जाने वा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ गन्तन) आया

जाया करो। (इमं) यह (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत्) हमसे और (दिवः) हमारी शुभ कामना (वः) आप लोगों को (प्रति हर्यते) निरन्तर ऐसे प्राप्त हो जैसे (उदन्यवे तृष्णजे) जल के इच्छुक, पियासे पुरुष के लिये (उत्साः) कूप की जलधाराएं वा (दिवः उत्साः) आकाश से जलधाराएं प्राप्त हों। अर्थात हमारे शुभ संकल्पों के लिये आप सदा उत्सुक रहा करें।

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् २

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो, शिल्पि जनो और वीर पुरुषो! आप लोग (वाशीमन्तः) उत्तम वाणियों, शिल्प साधनों से युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) ज्ञान और युद्धोपयोगी शक्तियों से युक्त, (मनीषिणः) मन को यथेष्ट विषय में प्रेरने वाले, जितेन्द्रिय, मनस्वी, ज्ञान के इच्छुक, (सु-धन्वानः) उत्तम धनुर्धर, (इषु-मन्तः) बाणों से सम्पन्न, (नि-षङ्गिणः) तर्कस और खाण्डे वाले, (सु अश्वाः) उत्तम अश्वारोही, (सु-रथाः) उत्तम रथारोही, (सु-आयुधा) उत्तम हथियारों से सजे, और (पृश्नि-मातरः) आदित्य के समान तेजस्वी वेद, गुरु वा राजा, अन्तरिक्ष के समान आश्रयदाता और भूमि के समान अन्नप्रद स्वामी को माता के समान मानने वाले होवो। आप लोग (शुभं) शुभ, शोभाजनक, उत्तम मार्ग को या युद्धकर्म को लक्ष्य करके (याथन) प्रयाण करो। पक्षान्तर में— वायुगण (पृश्नि मातरः) सेचक मेघों के उत्पादक हैं। वे (शुभं याथन) सर्वत्र जल प्राप्त करावें।

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३॥

भा०—हे (पृश्निमातरः) पृथिवी माता वा तेजस्वी ज्ञानी वा वीर पुरुष को मातृसमान जान उसके पुत्र बनो! वीर पुरुषो! विद्वानो!

आप लोग (यद्) जब (उग्राः) ऊग्र, बलवान्, होकर (पृषतीः) चित्र विचित्र, जल वर्षाने वाली मेघघटाओं के समान अश्वों और सेनाओं को (शुभे) जल प्रदान के तुल्य उत्तम कर्म, शरवर्षण के निमित्त (अयुङ्ध्वम्) रथ, युद्धादि कार्यों में लगाते हो तब (द्याम्) कामना योग्य तेजस्वी नायक पुरुष को (धुनुथ) प्राप्त होते हो, (द्यां धुनुथ) पृथिवी को वा अन्तरिक्ष और विजिगीषु शत्रु को और (पर्वतान्) पर्वत वत् दृढ, अचल शत्रु जनों को भी (धूनुथ) कंपा देते हो। हे (यामनः) यान करने हारो ! (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना) वायुओं में वनों के समान (वना) शत्रु के वन्वत् सैन्य समूह (निजिहते) पराजित होकर कांपते, एव रण छोड़ कर भागते हैं। आप लोग (पृथिवी) समस्त भूमण्डल को (कोपयथ) विक्षुब्ध करने में समर्थ होते रहे।

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ४

भा०—(वात-त्विषः) वायु वा प्राण के समान विद्युत् वा उत्तम तीक्ष्ण कान्ति को धारण करने वाले, (वर्ष-निर्णिजः) वर्षा तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने हारे जलों द्वारा पदाभिषिक्त (यमाः इवः) संयम के पालक तपस्वियों के समान, इन्द्रियों के नियन्ता (सु सदृशः) उत्तम रीति से सबको एक समान देखने वाले, (सु-पेशसः) उत्तम रूपवान्, (पिशङ्गाश्वाः) पीले घोड़ों वाले, (अरुणाश्वाः) और लाल घोड़ों वाले, (प्र-त्वक्षसः) अच्छी प्रकार शत्रुओं का छेदन भेदन करने में समर्थ और (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (द्यौ इव) सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी वा नायक के तुल्य (उरवः) महान् पराक्रमी हों। और वे —

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ५।२१

भा०—पूर्वमन्त्र में कहे वीर पुरुष (पुरु-द्रप्साः) वायुओं के समान अपने में जलवत् बहुत प्रकार के बलों, वीर्यों को धारण करने वाले, (अ-ञ्जिमन्त.) नाना कामनाओं और अभिव्यञ्जक चिन्हों को धारण करने वाले (सु-दानवः) उत्तम जलवत् धनैश्वर्यों के दान करने और शत्रु खण्डन और प्रजाओं का पालन करने वाले, (त्वेष-सन्दृशः) कान्ति वा तेज से समान रूप से दर्शनीय, (अनवभ्र-राधसः) धनैश्वर्यों को नाश न होने देने वाले, सदा सम्पन्न, (जनुषा) जन्म से ही (स्वभावतः सुजातासः) माता और गुरु जनों से जन्म, और विद्या जन्म प्राप्त कर उत्पन्न वा प्रसिद्ध हुए, (रुक्म-वक्षसः) छाती पर सुवर्ण के आभूषण धारण करते हुए, (दिवः अर्काः) सूर्य के किरणों के तुल्य, तेजस्वी, पूज्य, होकर (अमृतं नाम) अमृत, अविनाशी मार्गों को (वि भेजिरे) धारण करें। (२) वायु गण (वर्ष-निर्णिजः) वर्षा द्वारा जगत् को धोने वाले वा वर्षाओं के दोष को दूर कर शुद्ध करने वाले, (पुरु द्रप्साः) बहुत जलों वाले, (त्वेष-संदृशः) विद्युत् दीप्ति से ज्ञात होने वाले, (अमृतं) जल और प्राण जीवन को धारण करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋष्टयो॑ वो मरुतो॒ अंस॑योरधि॒ सह॒ ओजो॑ बा॒ह्वोर्वो॒ बलं॑ हि॒तम्।
नृ॒म्णा शी॒र्षस्वायु॑धा॒ रथे॑षु॒ वो॒ विश्वा॑ वः॒ श्रीरधि॑ त॒नूषु॑ पिपिशे ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् शूरवीर पुरुषो! (वः अंसयोः अधि) आप लोगों के कंधों पर (ऋष्टयः) शत्रुनाशक हथियार हों और (वः बाह्वोः) आप लोगों की बाहुओं में (सहः) शत्रु को पराजय करने में समर्थ (ओजः बल) पराक्रम और बल (हितम्) विद्यमान हों। और (शीर्षसु) आप लोगों के शिरों पर (नृम्णा) मनुष्यों को अच्छा लगाने वाले मुकुट, पगड़ी आदि हों और (वः रथेषु) आप लोगों के रथों पर (आयुधानि) शस्त्र अस्त्र, हों, और (व तनूषु अधि) आप लोगों के शरीरों पर (विश्वा श्रीः पिपिशे) समस्त प्रकार की लक्ष्मी, विराज कर सुशोभित करे।

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो और विद्वानो ! आप लोग (गोमत्) गौओं (अश्वावत्) अश्वो और (रथवत्) रथों से सम्पन्न और (चन्द्रवत्) सुवर्णादि से युक्त (सुवीरं) उत्तम पुत्रो और वीरों से सेवित, (राधः) ऐश्वर्य (नः दद) हमे प्राप्त कराओ । हे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले 'रुद्र' सेनापति के हितैषी जनो ! (नः प्रशस्तिं कृणुत) आप लोग हमारा शासन उत्तम रीति से करो । हम लोग (वः) आप लोगो के (दैव्यस्य) देव, तेजस्वी राजा के द्वारा अनुशासित (अवसः) रक्षा आदि प्रबन्ध का (भक्षीय) अच्छी प्रकार भोग करें ।

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२२॥

भा०—(हये) हे (नरः) नायक, नेता पुरुषो ! हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् शत्रुओ को मारने और शरीर से युद्धादि जीवन संकटों में स्वयं भी मरने वाले ! वीरो ! विद्वानो ! आप लोग (तुवि-मघासः) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी, (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतज्ञाः) सत्य ज्ञान को जानने वाले, (सत्यश्रुतः) सत्य ज्ञान को श्रवण करने वाले, (कवयः) दूरदर्शी, मेधावी, (युवानः) जवान, (बृहद्-गिरयः) बड़े उपदेष्टा और (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान और ऐश्वर्य को (उक्षमाणाः) वहन करने वाले होकर (नः मृडत) हमे सुखी बनाओ । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५८]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ = निचृत्-त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसीनां) नयी, नयी, सदा नवीन, प्रजाओं में विद्य मान (एषां) इन मनुष्यों के (तविषीमन्तं) बल से युक्त (मारुतं गणं) शत्रुओं को मारने वाले प्रबल गण के विषय में—(स्तुषे) मैं उपदेश करता हूं (ये) जो (आशु-अश्वाः) तीव्र वेगवान् अश्वों अश्वारोहियों के स्वामी हों और जो (स्व-राजः) स्वयं तेज से देदीप्यमान होकर (अमवत्) बलवीर्य के तुल्य (अमृतस्य) दीर्घ आयु को (वहन्त) धारण करते हुए (ईशिरे) ऐश्वर्य प्राप्त करते और शासन करते हैं ।

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२॥

भा०—हे (विप्र) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे राजन् विद्वन्! मेधाविन्! तू (त्वेषं) दीप्तिमान्, (तवसं) बलवान्, (खादि-हस्तं) हाथों में कटक आदि आभूषण तथा, वज्र, तलवार आदि लिये, सशस्त्र, (धुनि-व्रतं) शत्रु को कंपाने का कार्य करने वाले, अथवा जल प्रवाह के समान एक समान रूप से जाने वाले, (मायिनम्) उत्तम बुद्धियों से सम्पन्न, (दातिवारम्) दान, को प्रेम और श्रद्धा से स्वीकार करने वाले, (गण) गण्य, मान्य पुरुषों को (वन्दस्व) अभिवादन कर और उनके गुणों की प्रशंसा किया कर । और (ये) जो लोग राष्ट्र में (मयो-भुवः) सुख शान्ति उत्पन्न करने हारे (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (अमिता) अनन्त पराक्रम और ज्ञान से सम्पन्न हों उनको और जो (तुवि-राधस नॄन) बहुत आराधना करने वाले या बहुत ऐश्वर्य वाले नायक पुरुष हों उनको भी (वन्दस्व) आदर पूर्वक नमस्कार कर । वेद ने मानवों में आदरणीय सभी गुणों को दर्शाने वाले नाना विशेषण

दर्शाएं है, उन नाना गुणो से युक्त नाना प्रकार के पुरुषो का मान आदर करना चाहिये ।

आ वो यन्तूद्वाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (ये) जो (विश्वे मरुत.) सब मनुष्य वायु गण के समान (वृष्टि) वर्षा के तुल्य ऐश्वर्य, धन, सम्पदा का वर्षण (जुनन्ति) करते है वे (उद्-वाहसः) जलो को नाना स्थानो पर पहुंचाने वाले जल-विद्यावित्, जल, नहर कूप आदि के शिल्पीजन (वः) तुम लोगो को (आ यन्तु) प्राप्त हो। हे (मरुतः) विज्ञानवान् पुरुषो ! (यः अयं) यह जो (सम्-इद्ध) खूब तेजस्वी (अग्निः) अग्नि के तुल्य, अग्रणी, ज्ञानप्रकाशक और प्रताप से युक्त वीर और विद्वान् पुरुष है वे आप (कवयः) विद्वान् बुद्धिमान् (युवानाः) युवा पुरुषो ! (एतं जुषध्वम्) उसका नित्य सेवन किया करो ।

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यजत्रा.) यज्ञशील, पुरुषो ! परस्पर संगत स्त्री पुरुषो ! मैत्री और संघ बनाकर रहने वाले प्रजाजनो ! (यूयम्) आप लोग, (इर्यं) शत्रुओ को कपाने और भृत्यो व अधीनों को सन्मार्ग मे चलाने वाले (विभ्वतष्टं) मेधावी ज्ञानवान् पुरुषो द्वारा उपदेश, ताडना, शिक्षा विषयादि द्वारा तैयार किये वा उनके बीच तीव्र प्रज्ञायुक्त, पुरुष को (जनाय) प्रजाजन के हित के लिये (राजानम्) तेजस्वी (जनयथा) बनाओ। ऐसे को अपना रक्षक बनाओ। हे (मरुत) मनुष्यो ! (बाहु-जूत) बाहुबलशाली, (मुष्टि-हा) मुक्को से ही शत्रु को मार देने वाला, वा राष्ट्र मे से मुष्टि अर्थात् चोरी आदि का नाश कर देने वाला, वा

(मुष्टिहा) मुट्ठी के समान संघ बना कर रहने वाले पांचों प्रजाओं द्वारा शत्रु को दण्डित करने वाला पुरुष (युष्मत् एति) तुम लोगों के बीच में से ही आता, प्रकट होता है और (सद्-अश्वः) उत्तम अश्वों का स्वामी, और जितेन्द्रिय (सु-वीरः) उत्तम वीर्यवान्, वीर सैन्य पुरुष भी (युष्मत्-एति) तुम में से ही उत्पन्न होता है ।

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः॥५॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः अचरमा) वायु गण अनन्त, (अकवाः) अकुत्सित विमल जल वाले, (पृश्नेः पुत्राः) सूर्य के पुत्र और पृथिवी के पुरुषों के पालक (स्वया मत्या) अपनी शक्ति से (संमिमिक्षुः) खूब वर्षा करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) हे वीर मनुष्यो ! आप लोग (अराः इव) चक्र में लगे आरों या दण्डों के समान (अचरमाः) एक दूसरे के ऐसे पीछे रहा कि कोई अन्तिम, अरक्षित प्रतीत न हो अर्थात् चक्रव्यूह बना कर रहो । और आप लोग (महोभिः) तेजों और महान् सामर्थ्यों से (अहा इव) दिनों के समान प्रकाशित होकर (अकवाः) परस्पर कभी कुत्सित वचन न कहते हुए, अनल्प सामर्थ्यवान् होकर (प्र प्र जायन्ते) बराबर एक दूसरे के पीछे आते जाया करो ऐसे आप लोग (पृश्नेः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा और अन्नदात्री भूमि और मेघवत् निष्पक्षपात गुरु और सेक्ता पिता के (पुत्राः) पुत्र होकर (उपमासः) सभी एक दूसरे के तुल्य एवं अन्यों के आगे उपमा या उत्तम दृष्टान्त होने योग्य, सर्वानुकरणीय, (रभिष्ठाः) अति अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, वेगवान्, बलवान् होकर (स्वया मत्या) अपनी बुद्धि और शक्ति से (सं मिमिक्षुः) परस्पर मिल कर शत्रु पर शरवर्षण, गृहस्थ में निषेक, एवं राष्ट्र में राज्याभिषेक, और प्रजावर्ग में क्षेत्रादि सेक और परस्पर की वृद्धि किया करो ।

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्त्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥

भा०—(मरुतः पृषतीभिः) वायु गण जिस प्रकार जल सेचन करने वाली मेघ-घटाओ से और (वीडु-पविभिः) बलवान् वज्राघातो से प्रहार करते हैं, तब (आप· क्षोदन्ते) जल बून्द २ मे फट २ कर आते है और (वनानि रिणते) वृक्ष-वनो को आघात करते है और (उस्त्रियः वृषभः) किरणो का स्वामी वर्षणशील (द्यौः) सूर्य और (उस्त्रियः) पृथिवी का हितैपी मेघ रूप से गर्जता है । उसी प्रकार हे (मरुत) वीर विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जब आप लोग (पृषतीभिः) शत्रु पर शरवर्षण करने वाली सैन्य घटाओ और मद सेचन करने वाली गज घटाओ तथा (अश्वैः) वेगवान् अश्वो से और (वीडु-पविभिः) दृढ़ चक्र धार वाले (रथेभि) रथो से (प्रायासिष्ट) प्रयाण करते और तुम्हारा नेता भी उक्त साधनो सहित प्रयाण करता है, तब (आपः) आप्त, प्रजा गण (क्षोदन्ते) धनैश्वर्यादि से बरसते है, और (वनानि रिणते) सैन्य जन और ऐश्वर्य प्राप्त होते है और (उस्त्रियः) भूमि का हितैपी, वा किरणो मे तेजस्वी, (द्यौः) सूर्य के समान प्रकाशमान वीर पुरुष (अव क्रन्दतु) गर्जना करे ।

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्या युयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

भा०—(एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट) वायुओ के चलने पर जिस प्रकार पृथिवी भी अति विस्तृत क्षेत्र है उसी प्रकार (एषां यामन्) इन वीर पुरुषो के शासन और प्रयाण करने के काल में (पृथिवी) यह भूमि (प्रथिष्ट) अति विस्तृत और प्रसिद्ध हो । (भर्त्ता यथा स्वं शव· गर्भं दधाति) स्त्री का पति जिस प्रकार अपने वीर्य को गर्भ रूप से धारण कराता है उस प्रकार वायु गण भी (स्वं शवः) अपने जल रूप (गर्भं)

गृहीत अंश को अन्तरिक्ष में धारण कराते हैं उसी प्रकार वीर पुरुष भी (भर्त्ता इव) अपने पालक राजा के समान ही (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य (स्वम् इत् शवः) अपने धन और बल को (धुः) धारण करें जिस प्रकर (धुर्याः) धारक वायु गण (वातान् युयुज्रे) वायु के झकोरों का लगाते हैं उसी प्रकार (धुर्याः) सैन्यों और राष्ट्र के धारण करने में समर्थ, कुशल पुरुष (वातान् अश्वान्) वायुवत् तीव्रगामी अश्वों को (युयुज्रे) रथ में जोड़े । और (रुद्रियासः) दुष्टों को रुलाने वाले वीरजन (वर्ष) वर्षा के तुल्य ही प्रस्वेद को (स्वेदं चक्रिरे) उत्पन्न करें अर्थात् श्रमपूर्वक धनोपार्जन और विजय करें ।

ह॒ये नरो॒ मरु॑तो मृ॒ळता॑ न॒स्तुवी॑मघासो॒ अमृ॑ता॒ ऋत॑ज्ञाः ।
सत्य॑श्रुतः॒ कव॑यो॒ युवा॑नो॒ बृह॑द्गिरयो बृ॒हदु॒क्षमा॑णाः ॥८॥२३॥

भा०—हे (मरुतः नरः) वायुवत् बलवान्, प्राणवत् प्रिय, नायक पुरुषो ! आप लोग (तुवि मघासः) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी (अमृताः) दीर्घायु और (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले होकर (नः मृडत) हमें सदा सुखी करो । आप लोग (सत्य-श्रुतः) सत्य ज्ञान का श्रवण करने वाले, (कवयः) क्रान्तदर्शी, (युवानः) सदा जवान, शक्तिमान्, (बृहद्-गिरयः) गुणों में बड़े, पर्वत वा मेघ के तुल्य सुखों की धारा बहाने वाले और (उक्षमाणाः) वायुओं के तुल्य क्षेत्रों में जल वीर्यादि सेचन करते हुए (बृहत्) बहुत सा धन धान्य, प्रजा, ऐश्वर्य भी प्राप्त करो ।

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती । २, ३, ६ निचृज्जगती । ५ जगती । ७ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥

प्र वः॑ स्पळक्र॑न्त्सुवि॒ताय॑ दा॒वनेऽर्चा॑ दि॒वे प्र पृ॑थि॒व्या ऋ॒तं भ॑रे ।
उ॒क्षन्ते॒ अश्वा॒न्तरु॑षन्त॒ आ रजोऽनु॒ स्वं भा॒नुं श्र॑थयन्ते अर्ण॒वैः ॥

भा०—हे राजन् ! जो वीर पुरुष एवं प्रजा के लोग (सुविताय) उत्तम मार्ग में सुखपूर्वक जाने के लिये, सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये और (दावने दिवे) दानशील तेजस्वी पुरुष राजा के लिये और (पृथिव्यै) और पृथिवी वा उसके वासी जनों और अज्ञानी आश्रित जनों के (भरे) भरण पोषण वा संग्रामादि के लिये (ऋतम् प्र अक्रन्) जल, अन्न उत्पन्न करते और सत्य न्याय की व्यवस्था वा प्रयाण करते है, हे राजन् ! तू (स्पट्) सर्वद्रष्टा, सर्वाध्यक्ष होकर भी उनका (प्र अर्च) अच्छी प्रकार आदर-सत्कार किया कर। इसी प्रकार जो वीर, प्रजा जन (अश्वान् उक्षन्ते) अश्वों को सेचते या अश्व सैन्यों को संचालित करते है, उनका भरण पोषण, वर्धन आदि का भार अपने ऊपर लेते है, और जो (रजः) समस्त लोक को (तरुपन्त) व्यापते, दुनियां भर में जाते आते रहते है, और जो (अर्णवैः) जल भरे समुद्रों वा नदियों द्वारा (अनु) निरन्तर (स्वं भानुं) अपने तेज वा देदीप्यमान धनैश्वर्य को (श्रथयन्ते) सञ्चित करते हैं उन व्यपारी और यान-कुशल लोगों का भी तू (प्र अर्च) अच्छी प्रकार आदर कर। ये वायुगण (दिवे पृथिव्यै ऋतम् अक्रन्) आकाश से जल और पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करते है (अश्वान्) मेघों वा सूर्य किरणों को धारते, उन द्वारा वृष्टि कराते, (रजः) अन्तरिक्षों में वेग से जाते, जलों सहित (भानुं) सूर्य प्रकाश को शिथिल, सह्य कर देते है।

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन वायुवत् बलवान् पुरुषों के (भियसा) भय से (भूमि.) भूमि (नौः न) नाव के समान (एजति) कांपती है। और (अमात यती) घर से निकलती हुई (व्यथिः) दुःखों से पीडित हुई स्त्री के तुल्य यह (पूर्णा) जल से पूर्ण, या सर्वपालक अन्तरिक्ष परराष्ट्र

भूमि भी (क्षरति) अश्रुवत् जल वर्षण करती है । (ये) जो विद्वान् और वीर पुरुष (दूरे-दृशः) दूरवीक्षणादि यन्त्रों से दूर देशों तक देखने में समर्थ एवं बुद्धिपूर्वक दूर भविष्य को भी देख लेने वाले हैं वे (एमभिः) ज्ञानों से, मार्गों से, और अपने गमन, आचरणादि से (चितयन्त) अन्यों को सेचत करें और (नर.) वे नायक जन (अन्तः महे विदथे) भीतरी, बड़े भारी ज्ञान और यज्ञ सग्रामादि में भी (येतिरे) यत्नशील हों ।

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥

भा०—हे (नरः) उत्तम नायको ! हे विद्वान् पुरुषो ! (गवाम्-इव शृङ्गम् उत्तमम्) जिस प्रकार गौवों का सींग सब से ऊंचा तथा (श्रियसे) उसके शरीर की शोभा के लिये भी होता है उसी प्रकार आप लोगों का (उत्तमम्) सबसे उत्तम (शृङ्गम्) शत्रु को मारने वाला शस्त्रास्त्र बल भी (श्रियसे) प्रजा को आश्रय देने और शोभा, लक्ष्मी की वृद्धि के लिये हो । (रजसः विसर्जने सूर्यम् चक्षुः) प्रकाश और जल के देने के लिये जिस प्रकार सूर्य ही सर्वप्रकाशक है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! (रजसः विसर्जने) राजस भावों के त्याग और अन्य लोगों के विविध मार्गों में चलाने के लिये आप लोगों का (चक्षुः) सत्य तत्वदर्शी दर्शन ही सूर्यवत् प्रकाशक हो । और आप लोग (अत्याः इव) वेगवान् अश्वों के समान (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, उत्तम क्षेत्र से उत्पन्न, उत्तम भूमियों के स्वामी और (चारवः) उत्तम मार्ग में चलने वाले (स्थन) होवो । और आप लोग (श्रियसे) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (मर्याः इव) सामान्य मनुष्यों के समान होवो, (चेतथ) सदा सावधान रहो, पदाधिकार के मद में अपव्ययी और उपेक्षाकारी मत होवो ।

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुवितायं दावने ॥४॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो ! (महतां व:) आप बड़े सामर्थ्यवान् लोगो के (महान्ति) बड़े २ विज्ञान आदि सामर्थ्यों को (कः) कौन (उत् अश्नवत्) पा सकता है । आप लोगो के (काव्या) विद्वानो द्वारा कहे कार्यों, विद्वान् बुद्धिमान् पुरुषो द्वारा बनाये शस्त्रों का भी पार (कः) कौन पा सकता है, (पौंस्या) और आप लोगो के पौरुष, पराक्रमो को भी (कः ह) कौन मुकाबला कर सकता है । (यूयं ह) आप लोग (भूमिं) भूमि को (किरणं न) सूर्य के प्रकाशक किरण के समान (प्र रेजथ) उत्पन्न और विचलित कर सकते हो । (यत्) आप लोग (सुविताय) ऐश्वर्यवान् दाता, स्वामी की वृद्धि के लिये (प्र भरध्वे) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण तथा शत्रु पर प्रहार करते हो। वे भरण पोषण द्वारा प्रजा को उन्नत और प्रहारो द्वारा शत्रु को विचलित करते है ।

अश्वा॑ इ॒वेद॑रु॒षास॒: सब॑न्धव॒: शूरा॑ इव प्र॒युध॒: प्रोत यु॑युधुः ।
मर्या॑ इव सु॒वृधो॑ वावृधु॒र्नर॒: सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒: प्र मि॑नन्ति वृ॒ष्टिभि॑: ॥५॥

भा०—वे वीर और विद्वान् पुरुष (अश्वाः इव) वेगवान् घोड़ो वा घुटसवारो के समान (अरुषासः) लाल वर्णों की पोषाको वाले, वा तेजस्वी अथवा रोषरहित, (स-बन्धवः) समान रूप से परस्पर बन्धुवत् वा एक ही नायक के अधीन एक साथ समान रूप से बंधे हुए, वे (शूराः इव) शूरवीर योद्धाओ के समान (प्र-युधः) अच्छी प्रकार प्रहार करने मे समर्थ होकर (युयुधुः) युद्ध करे । वे (नरः) नायक पुरुष (मर्याः इव) मनुष्यो के समान (सु-वृधः) प्रजाओ की वृद्धि करते हुए स्वयं भी (ववृधुः) बढे । (वृष्टिभि:) वर्षाओ से जिस प्रकार वायुगण (सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति) सूर्यादि के प्रकाशक तेज को नष्ट करती है उसी प्रकार वे भी (वृष्टिभिः) शस्त्रास्त्र वर्षाओं द्वारा संग्राम मे (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी शत्रु जन के (चक्षुः) आंखो को (प्र मिनन्ति) अच्छी प्रकार नाश करे ।

ते अ॑ज्येष्ठा अक॑निष्ठास उ॒द्भिदो॒ऽम॑ध्यमासो॒ मह॑सा॒ वि वा॑वृधुः ।
सु॒जा॒तासो॑ ज॒नुषा॒ पृश्नि॑मातरो दि॒वो मर्या॒ आ नो॒ अच्छा॑ जिगातन ६

भा०—(ते) वे (अज्येष्ठाः) ज्येष्ठ, अपने से बड़े पुरुष से पृथक् (अकनिष्ठासः) बहुत छोटे व्यक्तियों से पृथक् और (अमध्यमासः) मध्यम, समान व्यक्तियों से पृथक्, निर्मम (उद्भिदः) पृथ्वी को फोड कर उत्पन्न होने वाले वृक्षों के समान सदा ऊंचे लक्ष्य को भेदने वाले, अथवा उत्तम फल उत्पन्न करने वाले, उत्तम मनुष्य (महसा) महान् सामर्थ्य से (वि व-वृधुः) विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त करें । वे (सु जातासः) उत्तम ऐश्वर्य आदि गुणों से प्रसिद्ध (जनुषा) जन्म से, स्वभावतः (पृश्नि-मातरः) सूर्य से उत्पन्न किरणों के समान सर्वपोषक, भूमि-माता के पुत्र एवं ज्ञान, पोषक आचार्य के पुत्र तुल्य वीर जन (दिवः) नाना कामनाओं को करने वाले (मर्याः) मनुष्य (नः) हमे (अच्छ जिगातन) उत्तम रीति से प्राप्त हों ।

वयो॒ न ये श्रेणीः॑ प॒प्तुरोज॒सान्ता॑न्दि॒वो बृ॑ह॒तः सानु॑न॒स्परि॑ ।
अश्वा॑स एषामु॒भये॒ यथा॑ वि॒दुः प्र पर्व॑तस्य नभ॒नूँर॑चुच्यवुः ॥७॥

भा०—जो वायुवत् बलवान् वीर सैनिक गण (वयः) पक्षियों वा सूर्य की किरणों के समान (श्रेणीः) श्रेणियां या पंक्तियें बनाकर (पप्तुः) प्रयाण करते और (ओजसा) बल पराक्रम से (बृहतः दिवः) बडे २ व्यव-हारों वा बड़ी कामनाओं को और (सानुनः परि) अन्न शिखर वत् भोगने योग्य उत्तम पद के ऊपर भी प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार वायु गण (पर्वतस्य नभनून् अचूच्यवुः) मेघ की गर्जती जल-धारों और वज्रों को चलाते वा गिराते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इनके (उभये) दोनों प्रकार के (अश्वासः) अश्वारोही जन (यथा विदुः) जैसा भी जानते और ऐश्व-र्यादि प्राप्त करते हैं तदनुसार, (पर्वतस्य) अपने परिपालक राजा वा सेना-पति के (नभनून्) आज्ञा के वचनों को (प्र अचुच्युवु) अच्छी प्रकार

पालन करते है। पूर्वार्ध मे कहे इनके अश्वो को दो प्रकार जानें एक जो पंक्ति-बद्ध होकर चले दूसरे जो मुख्य पद पर स्थित हो वा स्वयं व्यवहार व्यापार एवं नाना कार्यों मे नियुक्त होकर पृथक् २ जावे। नभन्त्रः इति नदी नाम।

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥२४॥

भा०—(द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (नः वीतये) ज्ञान से प्रकाशित करने और पालन के लिये (मिमातु) हमे प्राप्त हो, हमे उन्नत बनावे। और (अदितिः) पृथिवी जिस प्रकार (वीतये) खाने के लिये अन्न को पैदा करती है उसी प्रकार अखण्ड शासक राजा वा माता और पिता (नः वीतये) हमारे तेज और भोजनादि के लिये उपाय करे। (उषसः) प्रभात बेलाओ के समान कान्तिमती, प्रिय स्त्रिये (दानु-चित्राः) नाना देने योग्य आभूषणों से चित्र विचित्र, मनोहर होकर (सं यतन्ताम्) पुरुषो के साथ उद्योग किया करे। अथवा—(उषसः) शत्रु दग्ध करने वाली तेजस्विनी सेनाएं (दानु-चित्राः) छेदन भेदन करने वाले हथियारो से अद्भुत आश्चर्यकारिणी होकर (सं यतन्ताम्) मिल कर विजय का उद्योग किया करे। हे (ऋषे) द्रष्टः ! सर्वाध्यक्ष ! (एते) ये (गृणानाः मरुतः) स्तुति योग्य एवं अन्यों का उपदेश करने वाले वीर और विद्वान् पुरुष, (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले सेनापति तथा सर्वोपदेष्टा आचार्य के (दिव्यं कोशम्) दिव्य खड्ग तथा दिव्य ज्ञानमय कोश को (अचुच्युवु.) आगे बढ़ कर प्रयोग मे लावें। इति चतुर्विंशो वर्ग. ॥

[६०]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो मरुतो वाग्निश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। विराट् त्रिष्टुप्। ७, ८ जगती ॥ ष्टर्चं सूक्तम् ॥

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१॥

भा०—मै प्रजाजन (सु-अवसं) उत्तम रक्षा करने वाले (अग्निम्) ऐसे अग्रणी पुरुष को (नमोभिः) आदर सत्कारों से (ईडे) अपने ऊपर अधिकारी बनाना चाहता हूं जो (प्र-सत्तः) उत्कृष्ट पद पर विराज कर (नः) हमारे (कृतं) किये कामो को (वि चयत्) विवेक पूर्वक जाने, अच्छे बुरे का अच्छी प्रकार विवेक करे। और (वाजयद्भिः रथैः) संग्राम करने वाले रथों से जिस प्रकार (मरुतां स्तोमम् भरे) शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों का गण संग्राम मे अच्छी प्रकार समृद्ध होता है, उसी प्रकार मैं प्रजाजन (भरे) अपने पालन पोषण के निमित्त (वाजयद्भिः रथैः) अन्न ऐश्वर्यादि के लिये गमन करने वाले रथों, यानों से (प्र-दक्षिणिन्) खूब पृथिवी भर के देशों का चक्कर लगाता हुआ (मरुतां स्तोमम्) राष्ट्रवासी मनुष्यो के समूह को (प्र ऋध्याम्) अच्छी प्रकार समृद्ध करूं। अथवा—(वाजयद्भिः रथैः इव प्र भरे) संग्राम-कारी यानो से जिस प्रकार शत्रुओं पर प्रहार करूं उसी प्रकार धनैश्वर्यादि से लदी गाड़ियों से मै खूब (प्र भरे) अपनों को पुष्ट करूं वा खूब समृद्धि अपने देश में लाऊं। और (प्र-दक्षिणित्) आदर पूर्वक प्रदक्षिणा करता हुआ (मरुतां स्तोमम् ऋध्याम्) विद्वानो के उपदेश स्तुत्य गुणों को अच्छी प्रकार बढ़ाऊं, अधिक सफल और उच्च करूं।

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् २

भा०—(ये) जो (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने और सबको उपदेश करने वाले वीरजन, विद्वान् जन (सुखेषु रथेषु) सुखजनक रथों मे और (श्रुतासु पृषतीषु) चित्र विचित्र अश्वों और हृदय, अन्तःकरण मे

ज्ञान का रस वर्षाने वाली, श्रवण योग्य विद्याओं में (आतस्थुः) विराजते हैं उन (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना चित्) सूर्य की किरणों के समान तीक्ष्ण, (उग्राः) वेग से चलने वाले वायु के समान शत्रुगण भी (नि जिहते) नीचे हो जाते हैं, विनीत हो जाते हैं। (पृथिवी चित् रेजते) पृथिवी के समान उसमें निवासिनी प्रजा भी कांपती है, उसका आतङ्क और आदर मानती है, (पर्वतः चित् रेजते) पर्वत या मेघ के तुल्य ऊंचा राजा घोर योद्धा शत्रु भी कांपता, विचलित हो जाता है।

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर, विद्वान् पुरुषो ! (वः स्वने) आपका गर्जन और उपदेश होने पर (पर्वतः चित्) मेघ वा पर्वत के तुल्य (वृद्धः) बल शक्ति में बढ़ा हुआ शत्रु भी (महि बिभाय) बहुत अधिक भयभीत होता है। (दिवः चित् सानु) आकाश के उच्च भाग के समान (दिवः सानु) तेजस्वी, और धनार्थी पुरुष का भी शिखर, शिर आदि कांप जाता है, वह भी अस्थिरबुद्धि हो जाता है। हे (मरुत.) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! (यत) जब आप लोग (ऋष्टि-मन्तः) शस्त्रों और उत्तम ज्ञानों से सम्पन्न होकर (क्रीडथ) विहार, विनोद करते हो तब जिस प्रकार वायु वेगों से जलधाराएं मेघ से एक साथ नीचे आ उतरती हैं उसी प्रकार आप लोग भी (आपः) जल धाराओं के समान, आप्त, (सध्र्यञ्चः) एक साथ गमन करते हुए (धवध्वे) शत्रुगण को कंपाओ और आगे बढ़ो।

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वरा इव रैवतासः) जिस प्रकार विवाह योग्य वर लोग धन सम्पन्न, होकर (तन्वः) शरीरों को (हिरण्यैः)

सुवर्ण के आभूषणो से और (स्वधाभिः) अन्नों से (पिपिश्रे) अपने को सजाते और अंग २ को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (रैवतासः) धन-धान्य और पशु सम्पत्ति से सम्पन्न होकर (हिरण्यैः स्वधाभिः) हित और रमणीय गुणों, सुवर्णादि आभूषणो और अपने देह की धारक शक्ति और अन्नों से (तन्वः पिपिश्रे) अपने शरीर के प्रत्येक अंग को सुन्दर और दृढ़ करो। और आप लोग (श्रेयांसः) अति श्रेष्ठ और (तवसः) बलशाली होकर (रथेषु) रथो पर आरूढ़ होकर और (तनूषु) अपने देहो में सुशोभित रहकर (श्रिये) धन समृद्धि और शोभा की वृद्धि के लिये (महांसि सत्रा) बड़े २ युद्ध और बड़े २ यज्ञ, अधिवेशन आदि (चक्रिरे) करें।

अ॒ज्ये॒ष्ठासो॒ अक॑निष्ठास ए॒ते सं भ्रात॑रो वावृधुः॒ सौभ॑गाय।
युवा॑ पि॒ता स्वपा॑ रु॒द्र ए॑षां सु॒दुघा॒ पृश्निः॑ सु॒दिना॑ म॒रुद्भ्यः॑ ॥ ५ ॥

भा०—(एते) ये मनुष्य, समस्त विद्वान् और वीरगण, (अज्येष्ठासः) परस्पर न एक दूसरे से बड़े और (अकनिष्ठासः) न एक दूसरे से छोटे, एक समान, मान-आदर, पदाधिकार से युक्त होकर (भ्रातरः) भाइयो के समान एक दूसरे को पुष्ट करते हुए (सौभगाय) सौभाग्य, अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (वावृधुः) खूब बढ़े। (एषां) इनका (पिता) पालन करने वाला (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, उनको दूर करने में समर्थ, एवं उत्तम उपदेष्टा, और (युवा) सदा बलशाली, (सु-अपाः) उत्तम सुखजनक कर्मों का करने वाला वा (स्व-पा) अपने बन्धुवत् वा परिजनों की वा ऐश्वर्य की रक्षा करने हारा है। (मरुद्भ्यः) इन वायुवत् बलवान् और कर्मण्य प्रजावर्गों के लिये (पृश्नि) सूर्य, आकाश और पृथिवी, (सु-दुघा) गौ के समान सुख पदार्थ देने वाली, और जलवर्षी और अन्नदात्री हो और (सुदिना) सूर्य उत्तम दिन प्रकट करने हारा हो। इसी प्रकार 'वायु' अर्थात् ज्ञान की कामना

करने वाले शिष्यगण 'मरुत्' है वे समान रूप से भ्रातृवत् रहें, उनका पिता आचार्य और विद्वान् वेदवित्, उत्तम ज्ञान-रस देने हारा हो।

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, वीर, ज्ञानी पुरुषो! आप लोग जो (यत् उत्तमे यत् मध्यमे यत् वा अवमे) जो, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (दिवि) व्यवहार वा काम्य कर्मों मे, या पदो या स्थानो पर (स्थ) रहते हो वहां भी आप लोग (सु-भगासः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर रहो। (हे रुद्रा उत वा हे अग्ने) हे दुष्टो को रुलाने वालो! और हे अग्नि के समान तेजस्विन् नायक! हम लोग (यत् यजाम) जो कुछ दें वा आप लोगो का आदर सत्कार करें आप लोग (अस्य हविपः) इस देने योग्य अन्न आदि को (नु) सदा (न. वित्तात्) हमारा आदर पूर्वक स्वीकर करें।

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो! आप (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के धनों के स्वामी (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष आप (दिवः) ज्ञान प्रकाश तेज की कामना करते हुए (उत्तरात्) अपने से उत्कृष्ट (दिवः) ज्ञानयुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (स्नुभिः) अन्य उत्तम इच्छावान् पुरुषो सहित वा ज्ञान के उपदेशो द्वारा (यत अधि वहध्वे) जो अधिकार वा ज्ञान प्राप्त करते हो, (ते) वे आप लोग (मन्दसानाः) आनन्द प्रसन्न (धुनयः) बाह्य और भीतरी शत्रुओं को कंपाते, दूर करते हुए (रिपादस) हिंसक प्राणियो का नाश करते हुए (यजमानाय) ज्ञान आदि का दान, उत्तम गुणो की याचना और सत्संग आदि करने

वाले तथा (सुन्वते) अन्न ऐश्वर्यादि देने वाले पुरुष की वृद्धि के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य (धत्त) प्रदान करो।

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ८।२५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितैषिन्! सबके नायक! हे विद्वान् आचार्य ! तू (शुभयद्भिः) शोभायुक्त, शुभ मार्ग से जाने वाले, (ऋक्वभिः) वेदज्ञ, (गणश्रिभिः) गण की शोभा धारण करने वाले पुरुषों से (मन्दसानः) आनन्दित, होता हुआ (सोमं पिब) ऐश्वर्य का उपभोग कर और (पावकेभिः) अन्यों को पवित्र करने वाले, अग्नि के समान कण्टकशोधन करने हारे (विश्वमिन्वेभिः) समस्त विश्व को प्रसन्न करने वाले, वीर विद्वान् (आयुभिः) पुरुषों सहित तू (प्रदिवा केतुना) अति तेजस्वी ध्वजा वा उत्तम व्यवहार युक्त अति पुरातन सर्वज्ञापक, ज्ञानमय वेद से (सजूः) समान रूप से सुशोभित होकर तू (सोमं पिब) सौम्य शिष्यगण एवं राजगण का पालन कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ १—४, ११—१६ मरुत । ५—८ शशीयसी तरन्तमहिषी । ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः । १० तरन्तो वैददश्विः । १७—१९ रथवीतिर्दार्भ्यो देवताः ॥ छन्दः—१—४, ६—८, १०—१९ गायत्री । ५ अनुष्टुप् । ९ सतोबृहती ॥ एकोनविंशत्यृच सूक्तम् ॥

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय।
परमस्याः परावतः ॥ १ ॥

भा०—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार कुशल प्रश्न आदि व्यवहार करना चाहिये इसका उपदेश करते हैं। हे (नरः) विद्वान् पुरुषो ! आप

लोग (के स्थ) कौन है। (ये) जो (श्रेष्ठतमाः) अति श्रेष्ठ है वे (एक. एकः) आप एक एक करके (परमस्याः) परम, सर्वोत्तम वहुत ही (परावतः) दूर की सीमा से (आयय) आया करते है। दूर २ के देश से आने वाले एक २ व्यक्ति का भी आदरपूर्वक आतिथ्य करना चाहिये। उनका नाम पूछते रहना चाहिये।

क्व॑ वोऽश्वाः क्वा॒३भीश॑वः कुथं शे॑क कुथा य॑य।
पृष्ठे सदो॑ नुसोर्यमः॥ २॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (वः) आप लोगो के (अश्वाः क्व) अश्व कहां हैं? (अभीशवः क्व) वाग डोर कहां है। (कथं शेक) किस प्रकार आप शीघ्र गमन करने मे समर्थ होते है। (कथा यय) किस प्रकार से गमन करते हो? (पृष्ठे सदः) पीठ पर किस प्रकार बैठने का साज है! (नसोर्यमः) नासिकाओ मे नाथ के समान पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथी कहां है! अध्यात्म मे—(१) ये मरुत गण लोग जीव हैं, श्रेयो मार्ग मे स्थित होने से श्रेष्ठतम है, अकेला जीव संसार मे जन्मता है, परम धाम से आता है सही पर वह जीव क्या है? (२) उनके 'अश्व' प्राणादि अभीशु। वासनादि कहां रहते है किस प्रकार वे शरीर धारण मे समर्थ होते हैं किस प्रकार वे गति करते है? इन प्राणगण की पृष्ठ देश मे किस प्रकार से स्थिति है नासिका छिद्रो में किस प्रकार उनका नियन्त्रण है? अर्थात् जीवो और प्राणो का इस देह मे जीवन, प्राण-ग्रहण आदि का क्या रहस्य है?

ज॒घने॒ चोद॑ एषां वि स॒क्थानि॒ नरो॑ यमुः।
पु॒त्रकृ॒थे न जन॑यः॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार अश्वों के (जघने चोदः) जघन अर्थात् चूतड भाग पर कशा का प्रहार होता है उसी प्रकार (एषां) इन मनुष्यों और वीर पुरुषो के (जघने) निरन्तर गमन कार्य और हनन कार्य मे भी

(चोदः) प्रेरक पुरुष नियुक्त हो। वे लोग इस अवसर पर (सकथानि वि यमुः) अपने घुटने से टखने तक की टांगों को विशेष प्रकार से बांध लिया करें। और जिस प्रकार (पुत्र-कृथे न) पुत्र उत्पन्न करने के लिये (जनयः) स्त्री वा पुरुष लोग (वि यमुः) विशेष रूप से नियमपूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध होकर परस्पर विवाहित हो जाते है उसी प्रकार ये मनुष्य भी (पुत्र-कृथे) पुत्रादि के लिये, (सकथानि वि यमुः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये विशेष २ नियमों से बद्ध हो।

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः।
अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वीरासः) वीर पुरुषो! हे (मर्यासः) शत्रुओं को मारने वाले सैनिक जनो! जिस प्रकार (भद्र-जानयः) सुखकारी स्त्री को प्राप्त करने वाले पुरुष दूर २ देश तक जाते और दूर देश मे विवाह करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भद्र-जानयः) सुखकारी पदार्थों को जानने और पैदा करने हारे होकर (परा एतन) दूर देशो तक जाया करो और जिस प्रकार विवाहेच्छुक जन (अग्नि-तपः) यथा पूर्ववयस मे अग्नि अर्थात् आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्यादि तप करके रहते है उसी प्रकार आप लोग भी (अग्नि-तपः) अग्रणी पुरुष के आधीन प्रतापी एव अग्नि वा शत्रु को तपाने वाले (असथ) हुआ करो।

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (श्यावाश्व स्तुताय) श्यामकर्ण या लाल, काले, तैलिये रंग के अश्वों द्वारा प्रशंसित अथवा जितेन्द्रिय होने से प्रशंसित (वीराय) वीर्यवान् पुरुष को (दोः) अपनी भुजा (उप बर्बृहत्) सिरहाने के समान देती है वह स्त्री वीर पुरुष से विवाह करके (अश्व्यं) अश्वो (गव्यं) गौओं से युक्त (पशुम्) नाना पशु सम्पदा

को और (शतावयम्) सैकड़ों भेड़ों के धन को भी (सनत्) निरन्तर भोग करती है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी।
अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥

भा०—(त्वा) वह स्त्री जो (वस्यसी) उत्तम धन सम्पन्न है वह (पुंसः शशीयसी भवति) पुरुष को समस्त संकटों से पार करनेहारी, प्रशंसनीय है। वह (अदेवत्रात्) जो मनुष्य देव अर्थात् अपने भीतर उत्तम उज्वल गुणों और विद्वान् पुरुषों की रक्षा नहीं करता, और (अराधसः) आराधना नहीं करता वा धन से हीन है उससे पृथक् रहे।

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।
देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री ! (जसुरि) पीडा देने वाले, (तृष्यन्तं) तृष्णातुर और (कामिनं) कामी पुरुष को (वि वि) विपरीत भाव से (जानाति) जान लेती है वह अपने (मनः) मन को (देवत्रा कृणुते) देव, दानशील, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों में लगा देती है। और वह पीडक, तृष्णातुर, लोभी, विषयासक्त कामी पुरुष को न वर कर उत्तम पुरुषों में अपना पति वरण करे।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः।
स वैरदेय इत्समः ॥ ८ ॥

भा०—(उत घ) और जो (पुमान्) पुरुष (नेमः) गृहस्थ में स्त्री का अर्धाङ्ग है वह पुरुष (अस्तुतः) अप्रशस्त, गुणहीन है और वह जो (पणिः) प्रशंसनीय विद्यादि गुणों से युक्त है वे दोनों भी (वैरदेये) परस्पर वैर अर्थात् कलह पालने के कार्य में, अथवा (वैर-देये) वीर्य द्वारा पुत्र के दान करने के कार्य में स्त्री पुरुषों में (समः इत्) दोनों समान हैं (इति ब्रुवे) मैं ऐसा कहता वा जानता हूं। कलह उत्पन्न होजाने पर

मूर्ख पण्डित दोनों समान रूप से अप्रिय हो जाते है, इसी प्रकार पुत्र प्राप्ति के लिये भी मूर्ख और विद्वान् गुणहीन और गुणाढ्य प्रेम भाव बने रहने पर पुत्र लाभ के कार्य मे समान ही स्त्री का आधा अंग बने रहते है।

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥

भा०—(युवतिः) जवान स्त्री (ममन्दुषी) हृष्ट, प्रसन्न चित्त होकर (रोहिता) लोहित, वर्ण के उत्तम वैवाहिक वस्त्र धारण करती हुई, अनुरागवती होकर (पुरुमीढाय) बहुत से पुत्रों का निषेक करने मे समर्थ, बहुत वीर्यवान् (श्यावाय) स्वयं भी रक्तवर्ण, अश्व के समान दृढ़, हृष्ट पुष्ट उज्ज्वल वर्ण (विप्राय) विद्वान् (दीर्घयशसे) महा यशस्वी (मे) मेरे लिये (वर्त्तनिम्) अपने मार्ग वा व्यवहार को (अरपत्) आलाप द्वारा कहे तब दोनो स्त्री पुरुष (रोहित) रक्त वर्ण के, परस्परानुरक्त होकर (वि येमतुः) विशेष रूप से दाम्पत्य सम्बन्ध मे बंध जाते है।

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथाददत्।
तरन्त इव मंहना ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (मंहना) बडे भारी नाव द्वारा (तरन्तः इव) समुद्र के पार उतार देने वाले नाविक के समान अपने महान् सामर्थ्य या दानशीलता से संसार के सागर से पार उतारने हारा होकर (वैददश्विः) अश्वों इन्द्रियो को अपने वश करता है वह जितेन्द्रिय पुरुष ही (मे) मुझे (धेनूनां शतं) मानो सैकडो दुधार गौवें तथा उत्तम २ वाणियां देता है।

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (अत्र) इस लोक मे (श्रवांसि) श्रवण करने योग्य ज्ञानों, अन्नों और कीर्तियो को (दधिरे) श्रवण करते हैं और (म-

दिरं) हर्षजनक (मधु) अन्न और ज्ञान का (पिवन्तः) पान करते है वे (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वो से रथ के समान अपने (आशुभिः) वेग से जाने वाले दृढ अंगो द्वारा (ईं) इस गृहस्थ रूप रथ को भी (वहन्ते) धारण करते है ।

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥ १२ ॥

भा०—(दिवि उपरि रुक्मः इव) आकाश मे उपर जिस प्रकार अति रुचिकर तेजस्वी सूर्य प्रकाशमान होता है और उसकी (श्रिया रोदसी) कान्ति से आकाश और पृथिवी दोनों प्रकाशित होते है उसी प्रकार (येषां श्रिया) जिनकी लक्ष्मी और कान्ति से (रोदसी) ये समस्त स्त्री और पुरुष (अधि) अधिक शोभा पाते है और जो वे ही (रथेषु) रथो मे और रमण योग्य गृहस्थ कार्यों मे भी (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकते हैं ।

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः ।
शुभंयावाप्रतिष्कुत ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण (त्वेप-रथः) दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा वेग से जाने हारा होता है तथा वह (अप्रतिष्कुतः) किसी से भी उसकी शक्ति वाधित नही होती और वह (शुभं-यावा) जल वृष्टि प्राप्त कराता है उसी प्रकार (युवा मारुतः गण.) युवावस्था मे मनुष्य होते है । (सः) वह भी (त्वेप-रथः) अति चमकीले रथ में चढकर (अनेद्य) अनिन्दनीय, भव्य वेश. उत्तम आचारवान् सज्जन हो । एवं (शुभं-यावा) शोभा युक्त होकर शुभ धर्मयुक्त मार्ग पर चले। एव (अप्रति-स्कुत) अन्यो से स्पर्द्धा मे अपराजित, सुदृढ हो । (२) प्राणो का गण (त्वेप-रथः) तेजोमय आत्मा मे गति करता है । जल के आश्रय गति करता है ।

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।
ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥

भा०—वायु गण के समान जो (धूतयः) वृक्षों के तुल्य हरे भरे
हृष्ट पुष्ट, शत्रुओं को कंपाने वाले (ऋत-जाताः) सत्य न्याय, व्यवहार,
ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के लिये प्रसिद्ध और (अरेपसः) निष्पाप पुरुष
(यत्र) जिस विशेष कार्य मे प्रसन्न रहते है उसको (नूनम्) निश्चय
पूर्वक (किः वेद) कौन जान सकता है (२) अध्यात्म मे शरीर को
संचालित करने से 'धूतयः' और अन्न जल से उत्पन्न वा प्रादुर्भूत होने से
'ऋतजात' है उनके रमण के आधार स्थान को विरला ही जाना करता है ।

यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वि-पन्यवः) विशेष मेधावी और विविध स्तुत्य व्यव-
हारवान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (मर्तम्) मनुष्य को (प्र-णेतारः)
उत्तम मार्गों में चलाने हारे (याम-हूतिषु) आप लोगों पर नियन्त्रण
करने वाले सेनापति की आज्ञाओं को (श्रोतारः) सुनने हारे हैं, वे आप
लोग (इत्था धिया) इसी प्रकार की उत्तम बुद्धि से विचार कर ठीक २
कार्य सम्पादन करें । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

भा०—हे (यज्ञियासः) दानशील, यज्ञ कर्म करने हारे, सत्संग
योग्य (रिशादसः) हिंसकों के नाशक, (पुरु-चन्द्राः) बहुत सी धन
सम्पदाओं के स्वामियो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमारे लिये (का-
म्या वसूनि) नाना कामना करने योग्य ऐश्वर्यों को (आ ववृत्तन) पुनः २
प्राप्त करो और उनको व्यवहार में लाओ ।

एतं मे स्तोमसूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥

भा०—हे (ऊर्म्ये) रात्रि के समान सुखदायिनी, उत्तम ऊंचे से शब्द बोलनेहारी ! हे (देवि) तेजस्विनि ! विद्युत् ! (रथीः इव) रथी जिस प्रकार (स्तोम वहति गिरश्च परा वहति) नाना धान्य आदि पदार्थों को और दूसरों के वचनों या संदेशों को भी देशान्तर तक ले जाता है उसी प्रकार तू भी (दार्भ्याय) 'दर्भ' अर्थात् शत्रुओं को विदारण करने में कुशल वा शत्रु हिंसकों में श्रेष्ठ नायक के लिये (मे एतं स्तोमं) मेरे इस स्तुति-वचन और (गिरः) उत्तम वाणियों को (परा वह) दूर तक प्राप्त करा । यान, रथ, गाड़ी आदि जैसे सामान ढोने तथा चिट्ठी पत्री ले जाने के अर्थात् 'मेल' सर्विस् के भी काम आते हैं । उसी प्रकार विद्युत् के यन्त्र भी लम्बे व्याख्यानों को एक देश से दूर २ देश तक पहुंचाते हैं ।

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥

भा०—(सुत-सोमे) जिसने ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान प्राप्त किया और (रथवीतौ) रथ के द्वारा आदरपूर्वक गृहों पर प्राप्त हो ऐसे आदर-णीय पुरुष के प्रति ऐसी प्रार्थना करे कि हे विद्वन् ! (मे इति वोचतात्) मुझ श्रोताजन को ऐसा सत्योपदेश कीजिये कि (मे कामः) मेरी श्रवण करने की अभिलाषा (न अप वेति) कभी दूर नहीं हो ।

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु ।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥ २९ ॥

भा०—(एषः) यह (रथवीतिः) रथों से प्राप्त होने वाला (म-घवा) उत्तम धनधान्य सम्पन्न पुरुष (गोमतीः अनु) उत्तम भूमियों और वाणियों से युक्त दाराओं को प्राप्त कर (अनुक्षेति) धर्मानुकूल होकर रहे और (पर्वतेषु) पर्वतों वा मेघों के तुल्य उत्तम उत्तम, ऊंचे और

आकाश व्यापी भवनों और यानों में (अप-श्रितः) स्थित एवं दूर देशों तक जाने हारा हो । एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६२]

श्रुतिविदात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् । ७, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतम्) सत्यस्वरूप सूर्य का मण्डल (ऋतेन अपहितं) तेज से आच्छादित है, (यत्र) जिस सूर्य के आश्रित रह कर नाना ग्रह उपग्रह आदि (सूर्यस्य) सूर्य के ही (दश शता अश्वान् विमुचन्ति) हजारों किरणों को विविध रूप से धारण करते और प्रतिक्षिप्त करते है और जिस सूर्य के आश्रय ही वे (सह तस्थुः) एक साथ मिलकर स्थित है (तत्) वह (एक) एक (देवानां) तेजो युक्त, (वपुषां श्रेष्ठं) पिण्डो मे सर्वश्रेष्ठ, (ध्रुवं) स्थिर, निश्चल सूर्य है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजावर्गो ! (वां) आप दोनो वर्गों का (ध्रुवं) स्थिर (ऋतम्) सत्य व्यवहार भी (ऋतेन) सत्य वेद, ज्ञान से (अपिहितम्) आच्छादित तन्मय हो । (यत्र) जिस प्रधान नायक के आश्रय पर (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के (दश शता अश्वान् विमुचन्ति) हजारों घुड़सवार दौड रहे हैं और (सह तस्थुः) सब एक साथ विद्यमान रहते है (तत् एकं) उस एक को (वपुषां देवानां) देहधारी मनुष्यों के बीच (श्रेष्ठं) सर्व श्रेष्ठ रूप मे (अपश्यम्) देखता हूं । वही (ऋतम् ध्रुवं) सत्य परमैश्वर्य, न्यायरूप है ।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥२॥

भा०—जिस प्रकार दिन और रात्रि, मित्र और वरुण इन दोनों का (तत् महित्वम्) यही महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) सूर्य (अहभिः तस्थुषीः दुदुह्रे) तेजो द्वारा समस्त स्थानो, शरीरो को रस प्रदान करता है दिन रात्रि दोनो (विश्वाः स्वसरस्य धेनाः पिन्वथ) सूर्य की सब रश्मियो को प्राप्त करते है उन दोनो का (एकः पविः अनु आ ववर्त्त) एक ही प्रकार का क्रम प्रतिदिन चक्र-धारा के समान पुन. २ आता है। उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) मित्र एक दूसरे के स्नेही, रक्षक और हे 'वरुण' एक दूसरे को वरण करने हारे स्त्री पुरुषो! शिष्य अध्यापको! राजा-प्रजा वर्गो! (वां) आप दोनो का (तत्) वह (सु-महित्वम्) यही सर्वश्रेष्ठ महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) बाहुवत् बलवान् पुरुष ही (तस्थुषीः) स्थिर प्रजाओ को (अहभिः) अविनाशी बलो से (दुदुह्रे) ऐश्वर्य पूर्ण करने मे समर्थ होता है। और आप दोनो (स्वसरस्य) अपने ही सामर्थ्य से आगे बढ़ने वाले नायक को (विश्वाः धेनाः पिन्वथः) समस्त वाणियों को प्रेमपूर्वक प्राप्त करें, और (वाम्) तुम दोनो का (एकः पविः) एकही पवित्र मार्ग, एक ही वाणी, एक ही बल (अनु आववर्त) प्रति दिन रहे. कभी भेदभाव न हो।

अधा॑रयतं पृथि॒वीमु॒त द्यां मित्र॑राजाना वरुणा॒ महो॑भिः।
व॒र्धय॑त॒मोष॑धीः॒ पिन्व॑तं॒ गा अव॑ वृ॒ष्टिं सृ॑जतं जीरदानू॥ ३॥

भा०—(मित्र-राजाना) मित्र बने हुए राजाओ वा राजा रानी के समान विराजने वालो! एवं (वरुणा) परस्पर एक दूसरे को वरण करने वालो! (पृथिवीम् उत द्यां) भूमि और सूर्य को जिस प्रकार अग्नि और जल धारण करते है उसी प्रकार आप दोनो (पृथिवीम्) प्रजोत्पादक भूमि स्त्री (उत द्याम्) और कामनायुक्त व्यवहारज्ञ, तेजस्वी पुरुष दोनो को (महोभिः) बडे उत्तम शुभ विचारों से (अधारयतम्) धारण करो अर्थात तुम दोनो स्त्रीपुरुष परस्पर अपने को बीज को वपनार्थ भूमि और तेजस्वी,

वीजप्रद जानकर धारण करें। आप दोनों (ओषधीः) अन्न आदि ओष-धियों तथा 'ओष' अर्थात् दाहकारी अग्नि को धारण करने वाले तेजस्वी, वीर पुरुषों और विद्वानों को (वर्धयतम्) बढ़ावे, (गाः पिन्वतम्) भूमियों को सेचें, वाणियों को प्रयोग करें, गौओं को पुष्ट करें, और दोनों (जीर-दानू) जगत् को जीवन देने हारे होकर (वृष्टिं अव सृजतम्) मेघ वा सूर्य के तुल्य सुखों की वर्षा किया करें।

आ वामश्वा॑सः सुयुजो॑ वहन्तु य॒तर॑श्मय॒ उप॑ यन्त्व॒र्वाक्।
घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिग॒नु॑ वर्तते वा॒मुप॒ सिन्ध॑वः प्र॒दिवि॑ क्षरन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों को (सु युजः) उत्तम रीति से जुते हुए (अश्वासः) घोड़े, उनके समान (सु युजः अश्वासः) उत्तम रीति से नियुक्त विद्या आदि शुभ गुणों में व्याप्त जन (वां) आप दोनो को (आ वहन्तु) आदर पूर्वक सर्वत्र ले जावे। और (यत रश्मयः) वे कसी लगामों वाले अश्व वा अश्वों के लगामों को वश करने वाले सारथि लोग और उनके समान अपने अधीनस्थो तथा शक्तियों को संयम करने वाले पुरुष भी (अर्वाक् उप यन्तु) आप दोनो के समीप प्राप्त हों। (वां) आप दोनों को (घृतस्य) घी के बने शोधक उबटन के समान तेज का (निर्णिग्) शुद्ध रूप (वाम् अनु वर्तते) आप दोनों को प्राप्त हो। और (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञानप्रकाश के निमित्त (सिन्धवः) ज्ञान के समुद्र जन (वाम् उप क्षरन्ति) मेघों के समान आप लोगों के प्रति ज्ञान जलों से वर्षा करें, आपको सेचें।

अनु॑ श्रु॒ताम॒मतिं॒ वर्ध॑दु॒र्वीं ब॒र्हिरि॑व॒ यजु॑षा॒ रक्ष॑माणा।
नम॑स्वन्ता धृतद॒क्षाधि॒ गर्ते॒ मित्रास॑थे वरु॒णेळा॑स्व॒न्तः ॥५॥३०॥

भा०—हे (मित्र वरुण) एक दूसरे के स्नेही और परस्पर वरण करने हारे, हे जगत् को मरण से बचाने वाले एवं श्रेष्ठ पुरुषो ! आप

दोनो (श्रुताम् अनु) श्रवण की गई ज्ञानपद्धति के अनुरूप ही (अमतिम् वर्धत्) अपने उत्तम सौम्य रूप को बढ़ाते हुए, (यजुषा बर्हिः इव) यजुर्वेद से यज्ञ के समान (यजुषा) परस्पर की संगति, और दान, आदर सत्कार, संघबल से (बर्हिः इव) बसे लोकों के समान ही (उर्वी रक्षमाणा) विशाल पृथिवी की रक्षा करते हुए (नमस्वन्ता) एक दूसरे का आदर करने वाले वा अन्नों के स्वामी और (धृत-दक्षा) बलवान् होकर (गर्ते अधि) रथ मे और सभा के न्यायासन पर (इडासु अन्त') वाणियों और अपने अधीन भूमियो के बीच (आसाथे) विराजा करो। इति त्रिंशो वर्गः ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं विभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥

भा—हे (वरुणा) दोनों श्रेष्ठ जनो! दुःखों को वारण करने वाले! सभा के स्वामियो, राजा अमात्यो! स्त्री पुरुषो! आप दोनो (अक्र-वि-हस्ता) अहिंसक एवं अकृपण, दयालु दानशील हाथ वाले होकर (सुकृते) उत्तम पुण्यकार्य की वृद्धि के लिये (परस्पा) एक दूसरे की रक्षा करते हुए भी (इडासु) भूमियों, वाणियो और आदर सत्कार की क्रियाओ के (अन्तः) बीच (यं त्रासाथे) जिसकी रक्षा करते वा जिसको भय दिलाते हो, हे (राजाना) तेजस्वी राजपद पर विराजने वालो! उस शत्रु तथा (क्षत्रम्) बलशाली सैन्य को (अहृणीयमाना) क्रोधरहित होकर (सह द्वौ) दोनो साथ मिल कर (सहस्र-स्थूणं) सहस्रों वा दृढ स्तम्भों से युक्त विशाल भवन के समान महान् राष्ट्र को भी (विभृथः) निरन्तर परिपुष्ट करो।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥

भा०—(अस्य) इस राष्ट्र वा क्षात्रबल का स्वरूप (हिरण्य-

निर्णिग्) सुवर्ण के समान कान्तिमान् एवं राष्ट्र के लिये हितकारी और सुन्दर रमणीय हो। (अस्य) इस क्षात्रबल का (अयः) प्राप्त करने और चलाने वाला प्रधान पुरुष ही (स्थूणा) मुख्यकीलक वा प्रधान स्तम्भ के समान है। (अश्वाजनी इव) घोड़े को हांकने वाली चाबुक के समान वह प्रधान नायक ही (दिवि) विजय के निमित्त (अश्वा-जनी) अश्वों से बने सैन्य और राष्ट्र की संञ्चालन करने वाली सेना के तुल्य (विभ्राजते) विविध रूपों मे चमकता है। स्तम्भ को जिस प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) कल्याणकारी क्षेत्र मे अथवा (तिल्विले) स्नेहयुक्त चिकनी मिट्टी वाले भूमि में (निमिता) बनी शाला सुखप्रद होती है उसी प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) सुखप्रद क्षेत्र और स्नेहयुक्त वाणी से युक्त व्यवहार के आश्रय पर (निमिता) वश की हुई सेना भी हो। इस प्रकार हम लोग (अधिगर्त्यस्य मध्वः) घर में रक्खे अन्न के समान अश्व रक्षादि सैन्य से प्राप्त बल और ऐश्वर्य का (सनेम) भोग करें।

हिर॑ण्यरूपमु॒षसो॒ व्यु॑ष्टा॒वयः॑स्थूण॒मुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
आ रो॑हथो वरुण मित्र॒ गर्त॒मत॑श्चक्षाथे॒ अदि॑तिं॒ दिति॑ं च ॥८॥

भा०—हे (वरुण हे मित्र) शरीर में प्राण उदान के समान, राष्ट्र मे शत्रु का वारण करने और प्रजा के प्रति स्नेह करनेवाले आप दोनों राजा अमात्य! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय होजाने पर और (उषसः) उषा के (व्युष्टौ) अच्छी प्रकार निकल जाने पर जिस प्रकार स्त्री पुरुष (अयःस्थूणा) सुवर्ण या लोह के बने कील या स्तम्भ से युक्त (हिरण्य-रूपम्) हित और रमणीय एवं स्वर्णमय (गर्त्तम्) गृह के तुल्य रथ पर (आरोहथः) चढ़ते और (दितिम् अदितिम् च चक्षाथे) अदिति माता, पिता, पुत्र आदि और 'दिति' देने और रक्षा करने योग्य भृत्यादि सब को देखते हैं। उसी प्रकार आप दोनों भी (सूर्यस्य उदिता) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय होने पर और (उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सर्व

वशकारिणी सेनाबल के प्रकट होने पर तुम दोनो सभा, सेना के अध्यक्ष जनो! (हिरण्य-रूप) सुवर्णादि से रूपवान् ऐश्वर्य युक्त (अयः-स्थूणं) सुवर्ण धन के प्रबल स्तम्भ पर आश्रित तथा हितकारी, रमणीय, लोहखण्डादि पर अवलम्बित कान्तिमय, (गर्तम्) सभास्थल तथा युद्ध रथ पर (आरोहथः) आरोहण करो और वहां न्यायकारी सभापति तथा सेना नायक के पद पर विराजो और (अतः) तदनन्तर (अदितिम्) अखण्ड-नीय सत्य तथा (दितिम्) दिति अर्थात् खण्डनीय असत्य पक्ष को तथा (अदिति) अखण्डनीय प्रबल मित्र वा शत्रु और (दितिम्) खण्डनीय वा पालनीय शत्रु वा मित्र को (चक्षाथे) देखो, उनका विवेकपूर्वक निर्णय करो।

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ।९।३१।३॥

भा—हे (गोपा) राष्ट्र की रक्षा करने हारे, (मित्रा वरुणा) स्नेह युक्त, प्रजाजन को मरने से बचाने वाले, एवं श्रेष्ठ, शत्रुवारक सभापति सेनापति एवं राजा अमात्य जनो! (यत्) जो बहुत बड़ा, (अच्छिद्रं) छिद्र, मर्मादि से रहित, (शर्म) शरणदायक दुर्ग आदि सुखप्रद स्थान हो (अतिविधे न) जिसे अतिक्रमण करके शत्रु प्रजा को पीड़ित और और ताड़ित न कर सकें, हे (सुदानू) उत्तम दानशील, तथा शत्रुनाशक जनो! (तेन) वैसे गृह दुर्ग आदि उपाय से (नः अविष्टम्) हमारी रक्षा करो। हम लोग (जिगीवांसः) विजय करते हुए (सिषासन्तः) ऐश्वर्यों का परस्पर विभाग करते हुए (स्याम) सुख से रहें। इति एकत्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

[६३]

अर्चनाना आत्रेय ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २, ४, ७ निचृज्जगती। ३, ५, ६ जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः॥१॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य व्यवहार, सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और तेज के (गोपौ) रक्षक, (सत्य-धर्माणा) सत्य धर्म का पालन करने वाले (परमे व्योमनि) सर्वोत्कृष्ट रक्षक, आकाशवत् व्यापक, परमेश्वर पर आश्रित वा सर्वोच्च पद पर स्थित होकर (रथम् अधि तिथष्ठः) रमण करने योग्य रथवत् राष्ट्र का शासन करने के लिये उसके अध्यक्ष पद पर विराजे और उसका संचालन रथी सारथिवत् करें। हे (मित्रावरुणा) शरीर में प्राण उदान वत् एवं गृह में पतिपत्नीवत् एक दूसरे के स्नेह और एक दूसरे को स्व स्वामिभाव से वरण करने वाले होकर वे (युवं) आप दोनों (अत्र) इस राष्ट्र मे (सम् अवथः) जिस प्रजा जन की रक्षा करते हो (तस्मै) उसको (दिवः) आकाश या अन्तरिक्ष से (मधुमत् वृष्टिः) जलमय वृष्टि के समान (दिवः) तेजस्वी क्षात्रवर्ग और ज्ञानमय ब्राह्मण वर्ग और कामना योग्य व्यवहारवित् वैश्य वर्ग से (मधुमत् वृष्टिः) ज्ञान, बल और अन्नमय वर्षा (पिन्वते) प्रजाजन की पुष्टि और वृद्धि करे।

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः २

भा०—हे (मित्रा वरुणा) वायु सूर्य के समान राजन्! अमात्य! परस्पर मिलकर प्रजा को मृत्यु से बचाने और दुष्टों का वारण करने वाले आप दोनों (अस्य भुवनस्य) इस जगत् को (सम्राजौ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करने वाले (विदथे) ज्ञान, व्यवहार और धनैश्वर्य लाभ में (स्वर्दृशा) उत्तम सुख, उत्तम प्रकाश को देखने वाले होकर (राजथः) विराजते हो। हम लोग (वां) आप दोनों से (वृष्टिम्) उत्तम वृष्टि और (राधः) धन ऐश्वर्य और (अमृतत्वं च) अमृतत्व, दीर्घ जीवन, रक्षा-

की (ईमहे) याचना करते है, आप दोनों के (तन्यवः) विस्तृत शक्ति-मान् लोग (द्यावा वृथिवी वि चरन्ति) किरणों के समान आकाश और पृथिवी मे विचरते है।

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी। चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) प्रजाओं के स्नेही और उनके द्वारा वरण करने योग्य पुरुषो ! आप वायु सूर्य दोनो के समान (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, (उग्रा) बलवान्, (वृषभा) जलो के समान प्रजा पर काम्य सुखो की वर्षा करने वाले, (दिवः पृथिव्याः दिवस्पती) आकाशवत् विस्तृत पृथिवी के भी पालक (वि-चर्षणी) प्रजा के विविध व्यवहारों से देखने वाले, विविध प्रजाओ के स्वामी, होकर (चित्रेभिः) नाना, अद्भुत (अभ्रैः) मेघो के तुल्य आप्त प्रजाओ की रक्षा करने वाले नायको सहित (उप तिष्ठथः) विराजते हो। और (रवं द्यां) गर्जन, आज्ञा वचन और विजुली के प्रकाश के समान तेज प्रकट करते हो, और (असुरस्य मायया) मेघ के तुल्य बलवान् क्षात्र सैन्य की शक्ति और बुद्धि से (वर्षयथः) नाना सुखो की प्रजा पर वृष्टि करते हो।

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्। तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) देह मे प्राण और उदानवत् राष्ट्र मे राजा और सचिव ! प्रजा के स्नेही और श्रेष्ठ पदपर वरण करने योग्य ! जिस प्रकार (दिवि सूर्यः ज्योतिः) आकाश मे सूर्य और विद्युत (चित्रम् आयुधम्) चित्रमय धनुषाकार होता है और (अभ्रेण वृष्ट्या तं गृहथ) मेघ और वृष्टि द्वारा उसको आच्छादित करते है और (मधुमन्त-

द्रप्साः ईरते) जलमय रस बहते हैं उसी प्रकार हे (मित्रा वरुणा) राजा और अमात्य, सभा सेनापतियो ! (वां) आप दोनों की (दिवि) विद्वानों की राजपरिषत् और संग्राम में विजय कार्य, वा राज-प्रजा व्यवहार में (माया श्रिता) बुद्धि संलग्न तथा स्थिर रहे । आप लोगों का (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप तथा (चित्रम्) आश्चर्य करने वाला (आयुधम्) शस्त्रबल (दिवि चरति) पृथिवी पर विचरे । (तम्) उस प्रताप को आप लोग (अभ्रेण वृष्ट्या) मेघवत् प्रजा के पोषक स्वरूप तथा प्रजा पर नाना सुखों के वर्षण द्वारा (गूहथः) संवृत रक्खो । हे (पर्जन्य) प्रजाओं को ऐश्वर्य देने हारे ! मेघवत् उदार जन ! राजन् ! तेरे (मधुमन्तः) अन्नादि समृद्धि से सम्पन्न (द्रप्साः) अन्यों को मोह में डाल देने वाले आप्त जन जल स्रोतों के समान (दिवि ईरते) पृथिवी पर सर्वत्र विचरें ।

रथं युञ्जते मुरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तुन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सूर्य पवन के समान मित्र, सबको प्रिय, जीवनदाता और सर्वश्रेष्ठ, दुःखवारक पुरुषो ! (मरुतः) विद्वान् लोग (शुभे) कल्याण के लिये (सुखं) सुखप्रद (रथं) रथ को (शूरः न) शूरवीर के समान (युञ्जते) जोड़ते और (गविष्टिषु) किरणों के प्राप्त होने पर जिस प्रकार (चित्रा रजांसि) विविध नाना अद्भुत लोक और (तन्यवः) नाना विद्युतें (वि चरन्ति) विविध दिशा में चलती हैं उसी प्रकार राष्ट्र में (गविष्टिषु) भूमियों को प्राप्त करने के लिये शूरवीर (चित्रा रजांसि) विविध और अद्भुत शूरवीर लोग और (तन्यवः) गर्जनशील विद्युत् अस्त्र (वि चरन्ति) चलते हैं । हे (सम्राजा) सेना व सभा के स्वामी जनो ! (नः दिवः) हम ऐश्वर्यादि की कामना करने वालों को (पयसा) मेघ के समस्त पोषणकारी जल अन्नादि से (उक्षतम्) सींचो, पुष्ट करो ।

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और एक दूसरे को वरण करने हारे गुरु शिष्यजनो ! (पर्जन्यः यथा त्विपीमतीं इरावतीं चित्रां वाचं वदति) मेघ जिस प्रकार विद्युत् और जल से युक्त अद्भुत गर्जना करता है उसी प्रकार लोकोपकारार्थ (पर्जन्यः) पिता के समान उत्पादक, ज्ञान से तृप्त करने वाला आचार्य, (चित्राम्) आश्चर्यजनक, ज्ञान देने वाली (त्विपीमतीम्) उत्तम विद्या प्रकाश से युक्त, (इरावतीम्) जलवत् स्नेहयुक्त (वाचं वदति) वाणी का उपदेश करे । हे (मरुतः) वायुओं के समान आलस्य रहित शिष्यजनो ! आप लोग (मायया) बुद्धि से (अभ्रा) मेघों के समान ज्ञानजल से पूर्ण होकर (सु वसत) सुख पूर्वक रहो । (अरुणाम्) अरुण, तेजस्विनी, (अरेपसम्) अपराध पापादि से रहित (द्याम्) कामना, ज्ञान प्रकाश को (वर्षयतम्) आप दोनों एक दूसरे के प्रति सेचन करो, उसकी वृद्धि करो । 'पर्जन्यः'—पर्जन्यस्तृपेरा-द्यन्तविपर्ययस्य, तर्पयिता जन्यः । परो जेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम् । इति यास्कः ॥ निरु० अ० १० । १ । १० ॥ इसी प्रकार राष्ट्र में—सभा सेनापति 'मित्रावरुण' है । उनमें (पर्जन्यः = परोजेता) 'पर्जन्य' उत्कृष्ट विजेता नायक है । वह अद्भुत ओजस्विनी वाणी बोले, (मरुतः) सैन्यगण मेघों के समान शरवर्षी होकर रणाकाश को घेरें और (द्यां) कान्तियुक्त निष्काम विजय करें ।

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७॥

भा०—हे (विपश्चिता मित्रा वरुणा) विद्वान् सर्वस्नेही एवं सर्व-श्रेष्ठ न्यायाधीश, सेनापति जनो ! आप दोनों (असुरस्य मायया) प्राणों के देने वाले मेघ वा सूर्य के समान जीवनप्रद बलवान् पुरुष की कार्य-

कर्त्री शक्ति और ज्ञानवती बुद्धि से और (धर्मणा) धारण करने में समर्थ बल से (व्रता) समस्त उत्तम कर्मों, सत्य भाषण आदि नियमों को (रक्षेथे) पालन किया करो। (ऋतेन) सत्य ज्ञान और धनैश्वर्य और तेज से (विश्वं भुवनं) समस्त लोक को प्रदीप्त करो। (दिवि सूर्यम्) आकाश मे (सूर्यम्) सूर्य के समान, (दिवि) इस भूमि मे भी तेजस्वी (चित्र्यं) अद्भुत शक्तियों से युक्त (रथं) विमान, रथ आदि गमनागमन के साधन को (आ धत्थः) धारण करो। (२) हे गुरु शिष्यो! एवं विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग (दिवि) ज्ञानप्रकाश के निमित्त (चित्र्यं रथं सूर्यम्) ज्ञानप्रद रमणीय, आनन्दप्रद तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करो। इति प्रथमो वर्गः ॥

[६४]

अर्चनाना ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्द —१, २ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ भुरिगुष्णिक् । ४ उष्णिक् । ७ निचृत् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वरु॑णं वो रि॒शाद॑समृ॒चा मि॒त्रं ह॑वामहे ।
परि॑ व्र॒जेव॑ बा॒ह्वोर्ज॑ग॒न्वांसा॒ स्व॑र्णरम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (वः) आप लोगों के बीच मे (वरुणं) शत्रुओं के वारक, सबमे से वरण करने योग्य, (मित्रं) सर्वस्नेही, प्रजा को नाश होने से बचाने वाले और (व्रजा-इव) ज्ञानपूर्वक विचरण करने वाले विद्वान् संन्यासी के समान (बाह्वोः) बाहुओं के बल से (परि-जगन्वांसा) सर्वत्र गमन करने वाले सभा व सेना के अध्यक्षो! तथा (स्वःनरम्) प्रतापयुक्त सैन्यबल के नायक, सुखप्रद नेता को भी (ऋचा हवामहे) उत्तम स्तुति तथा आदरपूर्वक बुलावें, स्वीकार करें।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण एवं क्षात्र वर्गो ! पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मै) इस (अर्चते) स्तुति करने हारे प्रजाजन को (बाहवा) अपने शत्रु-बाधक बाहुबल और अज्ञान-बाधक (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से (जार्यं) स्तुति करने योग्य, दुःखों को जीर्ण करने वाला (शेवं) सुख (प्र यन्तम्) प्रदान करो । और मैं विद्वान् प्रजाजन (वां) आप दोनो के (जार्यं) स्तुत्य कार्य की (विश्वासु आसु) समस्त भूमियों से (जोगुवे) प्रशंसा करूं वा उपदेश करूं ।

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (प्रियस्य) सर्व प्रिय (अहिंसानस्य) अहिंसक (मित्रस्य) सर्वस्नेही पुरुष के (शर्मणि) शरण में सज्जन (यत् गतिम्) जिस उत्तम ज्ञान वा सद्गति का (सश्चिरे) लाभ करते हैं, (नूनम्) निश्चय से मैं भी उस (गति) ज्ञान और सद्गति को (अश्याम्) प्राप्त करूं । और मैं भी (मित्रस्य पथा) उसी स्नेहवान्, परम मित्र के सन्मार्ग से (यायाम्) गमन करूं ।

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण ! हे सर्वस्नेही ! हे सर्व श्रेष्ठ जनो ! (मघोनां) धन सम्पन्न, धनदानी और (स्तोतॄणां च) ज्ञान सम्पन्न उपदेष्टा लोगों के (क्षये) गृह में (यत् ह स्पूर्धसे) जो स्पर्धा करने योग्य उत्तम धन और ज्ञान (उपमं) सर्वोपमायोग्य हो, उसे मैं

(युवाभ्याम्) आप दोनों की सहायता से, (धेयाम्) प्रदान और पुष्ट करूं और स्वयं भी धारण करूं।

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहवान् पुरुष! हे (वरुणः च) श्रेष्ठ जन! आप दोनों, (सधस्थे) समान निवास स्थान में रहकर (मघोनां) उत्तम ऐश्वर्यवान् और (सखीनां) मित्र रूप हम लोगों को (वृधसे) बढ़ाने के लिये (नः) हमारे (स्वे क्षये) अपने गृह में आकर (सुदीतिभिः) उत्तम दीप्तियुक्त सम्पत्तियों तथा उत्तम दानशील क्रियाओं सहित हमें (आ) प्राप्त होवो।

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त! हे (वरुण) दुःखों के वारण करने हारे! (युवं) आप दोनों (नः) हमारे (क्षत्रं) बल और (बृहत्) महान् राष्ट्र को (बिभृथः) धारण और परिपुष्ट करते हो! और (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि (स्वस्तये) कल्याण के लिये और (वाजसातये) धनैश्वर्य, जल और संग्रामकारी बल को प्राप्त करने के लिये (उरु कृतम्) बहुत प्रयत्न करो। अथवा—(नः उरुकृतं बिभृथः) हमारे बड़े भारी किये यत्न को भी धारण वा पुष्ट करो।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ७।२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ जनो! आप दोनों (रुशद्-गवि) प्रदीप्त किरणों से युक्त (देव-क्षत्रे) प्रकाश के धनी सूर्य के आश्रय से जिस प्रकार उषा प्रकट होती है उसी प्रकार (रुशद्-गवि) दीप्तियुक्त अरुण अश्वों, पक्वान्न की कान्ति से युक्त भूमियों के स्वामी एवं

सत्पदार्थों के पालन करने वाले, (ऋता-वृधा) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले और (जने-जने) प्रत्येक जन समूह में (ऋतावाना) सत्योपदेश को प्रदान करने और सत्य ज्ञान, सत्य व्रत को धारण करने वाले हों।

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा।
स्वश्वासः सुचेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥ ३ ॥

भा०—(स्वश्वासः दावने वाजान् अभि) जिस प्रकार उत्तम अश्वारोही गण आजीविका देने वाले स्वामी के लिये संग्रामों को लक्ष्य करके आगे बढ़ते है उसी प्रकार (सु-चेतुना) उत्तम ज्ञानसहित (स्वश्वासः) उत्तम इन्द्रियों वाले, जितेन्द्रिय, लोग (दावने) ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजन के यशोवृद्धि के लिये (वाजान् अभि) ज्ञानों को उद्देश्य करके आगे बढ़े। जिस प्रकार राष्ट्रवासी जन सैन्य और नायक दोनों (अवसे उपब्रूते) रक्षा की प्रार्थना करता है उसी प्रकार (इयानः) प्राप्त होने वाला नव शिष्य मैं (ता वाम्) उन दोनों (पूर्वा) पूर्व विद्यमान आप्त मान्य जनों को (अवसे) ज्ञान देने और रक्षा के निमित्त (सचा) एक साथ, (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूं।

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् मित्र वही है जो (अंहोः चित् क्षयाय) पाप से पृथक् रहने के लिये अथवा (अंहोः चित् क्षयाय) पाप और पापाचारी के नाश करने के लिये (गातुं) वाणी का (उरु) खूब (वनते) प्रदान करता है। राष्ट्र में वही मित्र है जो परस्पर हत्या कलह आदि पाप से रहित होकर निवास करने के लिये (गातुं वनते) पृथिवी का न्याय पूर्वक विभाग कर देता है। (मित्रस्य) सबसे स्नेह करने वाले (प्रतूर्वत) अति शीघ्र कार्य करने में कुशल और (विधतः) विशेष विधान अर्थात्

धर्म मर्यादा स्थिर करने वाले पुरुष की (हि) निश्चय से (सु-मतिः अस्ति) सदा शुभ मति हो। अथवा शीघ्रकारी (विधतः) परिचर्या करने वाले स्नेही शिष्य की उत्तम बुद्धि होती है।

व॒यं मि॒त्रस्याव॑सि स्याम॑ स॒प्रथ॑स्तमे ।
अ॒ने॒ह॒स॒स्त्वोत॑यः स॒त्रा वरु॑णशेषसः ॥ ५ ॥

भा०—(वयम्) हम सब लोग (मित्रस्य) स्नेहवान् एवं अज्ञान रूप मृत्यु के गढ़े से बचाने वाले गुरु के (सप्रथस्तमे) अति विस्तार युक्त (अवसि) ज्ञान और रक्षा मे (सत्रा) सदा सत्य व्रत के पालक (अनेहसः) अहिंसक, पापरहित (वरुण-शेपसः) श्रेष्ठ दुःखवारक पुरुष के पुत्र के समान, एवं श्रेष्ठ पुत्रो वाले (त्वा ऊतयः) तुझ द्वारा रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने हारे होकर (स्याम) रहे।

यु॒वं मि॑त्रे॒मं जन॒ं यत॑थ॒ः सं च॑ नयथः ।
मा म॒घोन॒ः परि॑ ख्यत॒ं मो अ॒स्माक॒मृषी॑णां गोपी॒थे न॑ उरुष्य-तम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा) स्नेह करने वाले उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा अध्यापक उपदेशक जनो ! आप लोग (युवं) दोनों (इमं जनं) इस शिष्यजन को (यतथः) यत्नपूर्वक प्रेरणा करो। और (सं नयथः च) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में ले जाओ ! (अस्माकं) हमारे बीच मे (मघोनः) दान योग्य उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (ऋषीणां गो-पीथेन) वेदार्थ विज्ञ, विद्वान् पुरुषो की वाणियों के पान करने के कार्य से (मा परि ख्यतम्) कभी वञ्चित न करो। ज्ञान देने के निमित्त उनका तिरस्कार न करो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[६६]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,५,६ विराडनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३, ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

आ चिकिताना सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

भा०—हे (चिकितान) ज्ञानयुक्त विद्वान् पुरुष ! हे (मर्त्त) मनुष्य ! तू (सु-क्रतू) कर्म करने वाले, उत्तम प्रज्ञायुक्त (रिशादसा) दुष्टों के नाश करने वाले, (देवौ) दो ज्ञान प्रकाशक पुरुषों को (वरुणाय) श्रेष्ठ, (ऋत-पेशसे) सत्य ज्ञान के धनी (प्रयसे) प्रयत्नवान् (महे) बड़े पुरुष के उपकार के लिये (आ दधीत) आदरपूर्वक स्थापित कर । एक ज्ञान दान करे, एक आचार सुधारे । एक सन्मार्ग में प्रेम से प्रवृत्त करे, एक ताड़ना से दुष्ट मार्ग से वारण करे ।

ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (अविह्रुतं) कुटिलता से रहित (असुर्यं) प्राणवान् जन्तुओं के हितकारक (क्षत्रम्) बल को (सम्यक्) अच्छी प्रकार (आशाते) वश करने में समर्थ होते हैं (अध) और उन द्वारा ही (व्रता इव) कर्त्तव्य कर्म के समान (दर्शतम्) दर्शनीय आदर्श (मानुषं) मनुष्यों का (स्वः न) परम सुखकारी राष्ट्र (धायि) धारण किया जाता है । वे मनुष्यों के हितकारी सुखजनक राज्य को भी अपना कर्त्तव्य समझकर पालन करते हैं ।

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥

भा०—(एषाम् रथानाम्) इन उत्तम, वेगवान् रथों के (ऊर्वी गव्यूतिम्) बड़े मार्ग को (एषे) चलने के लिये (ता वाम्) उन आप दोनों को ही अग्नि जलवत् मुख्य प्रवर्त्तक (मनामहे) स्वीकार करते हैं और (रात-हव्यस्य) अन्न आदि भोज्य पदार्थ देने वाले स्वामी

की (सुस्तुति दधृक्) उत्तम स्तुति, को भी धारण करने वाले आप दोनो को ही (स्तोमैः मनामहे) उत्तम स्तुत्य वचनो द्वारा स्वीकर करते है। अग्नि, यम दोनो तत्व जिस प्रकार रथो के दीर्घ मार्ग चलने में कारण होते है राष्ट्र मे प्रजाओ के भी दीर्घ काल तक निभने मे मुख्य दो बल न्याय, और शासन-विभाग कारण है। वे प्रधान राजा की उत्तम कीर्त्ति को धारते है। देह मे प्राण, अपान दीर्घ जीवन के कारण है वे आत्मा के स्तुत्य शक्ति के धारक है। इन जीवो के लिये बड़ी (गव्यूति) ज्ञान वाणियो की प्राप्ति मे गुरु-शिष्यपरम्परा ही मुख्य कारण है। वे दोनो ज्ञानप्रद प्रभु परमेश्वर के उत्तम स्तुति रूप, उपदिष्ट वेद को धारण करने वाले हो।

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—(अध हि) और (पूत-दक्षसा) पवित्र बल को धारण करने वाले (युवं) आप दोनो (दक्षस्य) बल के (पूर्भिः) पूर्ण करने वाले शिष्यो सहित (अद्भुता) अद्भुत (काव्या) विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषो के द्वारा ज्ञान करने योग्य ज्ञानो का (जनानां) मनुष्यो के हितार्थ (केतुना) ज्ञापक शास्त्र द्वारा (नि चेकेथे) निरन्तर ज्ञान करो, उसका बराबर अभ्यास किया करो।

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पृथिवी) पृथिवी के समान ज्ञान को विस्तार करने हारी विदुषी स्त्री (श्रवः) पृथिवी पर अन्न के समान जीवन देने वाला (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियो का (तत्) वह (ऋतं) सत्यमय (बृहत्) बड़ा भारी (श्रवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान है जिसको मेघो के समान विद्वान् जन (यामभिः) आठो प्रहर (पृथु) बड़े विस्तृत रूप से (अति) खूब (क्षरन्ति) बरसाते है। हे (ज्रयसानौ) ज्ञानमार्ग

से जाने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उसको अन्नवत् (अरं) खूब प्राप्त करो और उपभोग लो ।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्रा वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा) परस्पर स्नेहवान् स्त्री पुरुषो ! हे (ईय-चक्षसा) ज्ञान करने योग्य दर्शन वा कथन करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धुजन हैं वे और (वयं च) हम भी (सूरयः) समस्त विद्वान् जन मिलकर (व्यचिष्ठे) अति विस्तृत (बाहुपाय्ये) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के निमित्त (आ यतेमहि) सब प्रकार से यत्नवान् होते रहें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६७]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥

भा०—हे (देवा) दानशील, तेजस्वी, हे (आदित्या) भूमि के पुत्रवत् हितकारी, हे (वरुण मित्र अर्यमन्) दुष्टों के वारक, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले, स्नेहयुक्त ! शत्रुओं और प्रजाजनों का नियन्त्रण करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (बृहत्) बड़े भारी (क्षत्रं) बल सैन्य को (यजतं) प्राप्त करो । और (वर्षिष्ठं) उत्तम ऐश्वर्यदायक, शत्रु पर अस्त्र वर्षी तथा राज्य का उत्तम प्रबन्ध करने में समर्थ (क्षत्रं) बल सम्पत्ति को (आशाथे) प्राप्त करो ।

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ, शत्रुवारक, प्रजा से मुख्य पद पर वरण करने योग्य, हे स्नेहयुक्त जनो ! आप दोनो (यत्) जब (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय तथा सुवर्णादि के बने, तेजोयुक्त गृह, पदासन तथा कारण को (आ सदथः) सब प्रकार से विराजते और वश करते हो तब आप (चर्षणीनां धर्त्तारा) प्रकाशक किरणो को धारण करने वाले सूर्य, विद्युत् के समान (चर्षणीनां धर्त्तारा) समस्त विद्वान् मनुष्यों को धारण करने वाले और (रिशादसा) दुष्टो को नाश करने मे समर्थ होकर (चर्षणीनां सुम्नं यन्तम्) मनुष्यो को सुख प्रदान करो ।

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य उत्तम धनों, ज्ञानो वेतनादि का विभाग करने वाला सर्वश्रेष्ठ राजा, (मित्रः) सर्व स्नेही, और (अर्यमा) न्यायाधीश, (विश्वे) समस्त (विश्व-वेदसः) समस्त धनो, ज्ञानों को जानने वाले विद्वान् पुरुष (व्रता) कर्त्तव्यो, कर्मो को (पदा इव) अवश्य रखने योग्य पदों, कदमो या ज्ञान साधनो वा अर्थबोधक पदों के समान (सश्चिरे) करते है । वे (मर्त्यं) मनुष्यमात्र को (रिषः) हिंसक, दुष्ट पुरुष से वा नाश होने से (पान्ति) बचाते है ।

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

भा०—(ते हि) और वे निश्चय मे (सत्याः) सत्याचरणशील, (ऋतस्पृशः) तेजस्वी, (ऋतावानः) ऐश्वर्यवान् (सु-नीथाः) उत्तम वेद वाणी के बोलने हारे, (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (जने जने) (अंहः चित्) पाप से भी मुक्त होकर (उरु-चक्रयः) बहुत बडे २ कार्य करने वाले हों ।

को नु वाँ मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा० —हे (मित्र) स्नेहयुक्त प्रजा को मरण से बचानेहारे ! हे (वरुण) दुखनाशक, वरणीय जनो ! (वाम्) तुम दोनो को (तनूनां) देह धारियो मे से (कः) कौन जन (अस्तुतः) अप्रशंसित, अनुपदिष्ट, मूर्ख पुरुष (एषते) प्राप्त हो सकता है । जो (मतिः) मननशील पुरुष (अत्रिभ्यः)तीनो प्रकार के दोषो और दुःखो से रहित विद्वानों से (एषते) ज्ञान प्राप्त करता है वही (मतिः) मतिमान् होकर (वाम् एषते) तुम दोनो के पद को प्राप्त करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६८]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने (मित्राय) स्नेही और (वरुणाय) दुःखो के वारण करने वाले, (महि क्षत्रौ) बड़े बलशाली, (विपा) विविध प्रकारो से पालन करने वाले, (बृहत् ऋत) बड़े भारी सत्यमय न्याय और ऐश्वर्य को देने वाले या उनकी रक्षा करने वाले दोनो को (गिरा) वाणी द्वारा (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो।

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृत-योनी) जल और स्निग्ध पदार्थ से उत्पन्न होने वाले वैद्युत् और भौम अग्नि दोनो (सम्राजा) अच्छी प्रकार चम-

कते हैं और (देवेषु प्रशस्ता) प्रकाशमान् पदार्थों मे उत्तम हो उसी प्रकार (या) जो दोनो (घृत-योनी) तेज या दीप्ति के आश्रय पर रहने वाले (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी (मित्र' वरुणः च) स्नेही, सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ सभा व सेना के (उभा) दोनो अध्यक्ष हैं वे (देवा) दानशील दोनो पुरुष (देवेषु) उपस्थित विद्वानो और विजिगीषु पुरुषो के दोनो वर्गों मे (प्रशस्ता) उत्तम प्रशंसनीय हो ।

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों सभा व सेना के अध्यक्ष जनो ! (नः) हमारे (महः) बड़े भारी (पार्थिवस्य) पृथिवी और (दिव्यस्य) न्याय व्यवहार, वार्त्ता आदि व्यापारो से प्राप्त (रायः) धन के ऊपर (शक्तम्) शक्तिमान् बनो । (वां) आप दोनो का (देवेषु) दानशील, व्यवहारकुशल और तेजस्वी पुरुषों मे (महि क्षत्रं) बड़ा भारी बल विद्यमान है ।

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों (अद्रुहा) परस्पर कभी द्रोह न करते हुए (देवा) तेजस्वी, दानशील, एक दूसरे की सत्कामना करते हुए (ऋतम् ऋतेन सपन्ता) ऐश्वर्य को सत्य व्यवहार और न्याय से प्राप्त करते हुए (इषिरम् दक्षम्) इच्छानुकूल सबको शासन करने वाले, सर्व प्रेरक बल और ज्ञान को (आशाते) प्राप्त करो और (वर्धेते) बढ़ो, वृद्धि को प्राप्त होओ ।

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि और दीप्ति से युक्त और (रीत्यापा) जल प्रवाह करने वाले होकर (दानु-

मत्याः इषः पती) भूमि के पालक होकर (बृहन्तं गर्त्तम् आशाते) बड़े भारी सूर्य वा मेघ को व्यापते है उसी प्रकार 'मित्र' और वरुण न्यायाधीश और सेनापति, दोनों (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि के समान तेजस्वी (रीत्यापा) ज्ञान और गति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करने वाले, होकर (दानु-मत्याः) देने योग्य नाना ऐश्वर्यों की स्वामिनी, राज्यशक्ति वा पृथिवी के (इषः पती) अन्नादि के स्वामी तथा शासक, बल के पालन करने वाले होकर (बृहन्तं गर्त्तम्) बड़े भारी सभापति के पद तथा महान् रथ को (आशाते) प्राप्त करते है। 'गर्तः' सभास्थाणु', रथश्च। इति षष्ठो वर्गः॥

[६९]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ४ विराट् त्रिष्टुप्॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

त्री रो॑च॒ना व॑रुण॒ त्रीँरु॒त द्यून्त्रीणि॑ मित्र धारयथो॒ रजां॑सि।
वा॒वृ॒धा॒नाव॒मतिं॑ क्ष॒त्रिय॒स्यानु॑ व्र॒तं रक्ष॑माणावजु॒र्यम्॥ १॥

भा०—हे (वरुण) दुष्टो के वारण करने वाले! हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय, सर्वस्नेही न्यायकारिन्! आप दोनों (त्री रोचना) अग्नि, सूर्य और विद्युत् तीनों दीप्तिमान् पदार्थों के तुल्य सर्वप्रकाशक तीनों वेदों के ज्ञानो को (उत) और (त्रीन्) तीन (द्यून्) प्रकाशो के समान तीनों प्रकारों के व्यवहारो को और (त्रीणि रजांसि) तीनों वर्णो के लोगों को (धारयथः) धारण करते हो। आप दोनो (क्षत्रियस्य) बलवान् क्षत्रिय के (अमतिम्) रूप को (वावृधानौ) बढाते हुए और (अजुर्यम्) कभी नाश न होने वाले, स्थिर (व्रतं) कार्य व्रत की (अनु रक्षमाणौ) सबके अनुकूल, उत्तरोत्तर, प्रतिदिन रक्षा करते हुए सबों को धारण करते हो।

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (इरावतीः धेनवः) दूध वाली गौवे (मधुमद् दुह्रे) मधुर रसयुक्त दूध देती है और जिस प्रकार (इरावतीः सिन्धवः मधुमत् दुह्रे) जल से पूर्ण नदियें अन्न से युक्त जल-राशि वा जल से युक्त अन्न प्रदान करती है उसी प्रकार हे (मित्र वरुण) सर्वप्रिय न्यायाधीश, सभापते ! हे दुष्टो के वारक, सेनापते ! (वाम्) आप दोनो की (धेनवः) वाणियां (इरावती) रस से युक्त और अपने अधीन पुरुषों को प्रेरणा करने वाली होकर (मधुमत्) ज्ञान और बल से युक्त ऐश्वर्यों को उत्पन्न करे और (वां सिन्धवः) आप लोगो की प्रेरणा शक्ति वाली, वेग से जाने वाली और प्रजागण को उत्तम प्रबन्ध मे बांधने वाली आज्ञाएं और सेनाएं (मधुमत् दुह्रे) मधुर फल एवं बलयुक्त राष्ट्र को प्रदान करती है । जिस प्रकार (तिसृणाम् धिषणानाम्) सूर्य, आकाश और पृथिवी तीन लोको के बीच मे (त्रयः वृषभासः रेतो-धाः द्युमन्तः वि तस्थु) तीन बलवान् वर्षणशील, जल, वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी सूर्य विद्युत् और अग्नि वा अग्नि, वायु और जल तीनो विशेष रूप से विराजते है उसी प्रकार (तिसृणा) तीन (धिषणानाम्) अध्यक्ष होकर आज्ञा प्रदान करने वाली राष्ट्रधारक, तीन सभाओ के ऊपर (त्रयः) तीन (वृषभा) बलवान् , उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, धर्मानुकूल शासन से चमकने वाले (रेतोधाः) बल वीर्य को धारण करने वाले, (द्युमन्तः) तेजस्वी, व्यवहार कुशल, इच्छाशक्ति से युक्त, प्रधान पुरुष (वि तस्थु) विशेष रूप से स्थित हों ।

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥

भा०—मै (प्रातः) प्रभात काल मे और जीवन के प्रभात काल अर्थात्

प्रथम चतुर्थांश जीवनकाल २५ वर्ष की आयु तक (देवीम् अदितिम्) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश देने वाली, और भूमि के समान अन्न और ज्ञान देने वाली माता और आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी को (जोहवीमि) निश्चयपूर्वक स्वीकार करूं, आदरपूर्वक उसको ग्रहण करूं उसी प्रकार उसको मैं (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदयकाल में, (मध्यन्दिने) मध्याह्न-काल में भी आदरपूर्वक प्राप्त करूं। अर्थात् यौवन में भी उसकी उपेक्षा वा निरादर न कर अभ्यास करता रहूं। इसी प्रकार राज्य के उदयकाल में अन्नदात्री भूमि का मैं प्रजाजन आदर करूं, सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय और उसके मध्याह्नवत् तपने पर भी भूमि अर्थात् उसमें बसी प्रजा को ही आदर पूर्वक देखूं। मै (राये) दान देने योग्य ज्ञान एवं धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (मित्रा वरुणा) स्नेही और वरण करने योग्य आचार्य, उपदेष्टा और प्रजा के स्नेही, न्यायाधीश और दुष्टवारक, सेनापति दोनो को माता पिता के सदृश जान कर (सर्वताता) सबके हितार्थ, तथा (तोकाय तनयाय शंयोः) पुत्र पौत्र के तुल्य पालनीय, सैन्यगण और सामान्य प्रजा गण के सुख-कल्याण और दुःख निवारण के लिये हम उनको (ईडे) चाहें, उनकी स्तुति करें और स्वीकार करें।

या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥७॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ-जनो! (याः) जो आप दोनो (रोचनस्य) तेजस्वी, सूर्यवत ज्ञान प्रकाश से युक्त, सर्वप्रिय एवं (पार्थिवस्य) पृथिवी पर रहने वाले समस्त (रजसः) लोकों को (धर्त्तारा) धारण करने वाले, (दिव्या) ज्ञान प्रकाश मे और विजिगीषा, व्यवहार आदि मे प्रौढ, (आदित्या) ज्ञान और कर आदि लेने और देने में तथा भूमि और सरस्वती के वश करने मे चतुर हो उन (वां) आप दोनों के (अमृता) कभी नाश न होने वाले

(ध्रुवाणि व्रतानि) स्थिर व्रतों, कर्मों को (देवाः) ज्ञानाभिलाषी शिष्य और ऐश्वर्याभिलाषी प्रजाजन (न आमिनन्त) कभी खण्डित नहीं करते। इति सप्तमो वर्गः ॥

[७०]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (मित्र वरुण) स्नेहवान्! हे श्रेष्ठ पुरुषो! (नूनं) निश्चय ही (वां अवः) आप दोनो का ज्ञान और रमण सामर्थ्य, प्रेम और बल, (पुरु-उरुणा अस्ति चित् हि) बहुत प्रकार का महान् और उत्तम है। मैं (वां) आप दोनों के (सु-मतिम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान को (वंसि) प्राप्त करूं।

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

भा०—(ते वयम्) वे हम लोग (अद्रुह्वाणा) कभी द्रोह न करने वाले, (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, और दुःख से बचाने वाले वा रोते हुए आदमियों द्वारा शरण रूप में प्राप्त करने योग्य (ता वां) उन आप दोनों के (इषम्) शासन को हम अपने (धायसे) पोषण और रक्षा के लिये अन्नवत् (अश्याम) उपभोग करें।

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने और पीड़ितों को शरण देने वाले मित्र और वरुण! सभा सेना के अध्यक्षो! आप दोनों (नः) हम प्रजाओं को (पायुभि.) नाना रक्षा साधनों से (उत) तथा (सुत्रात्रा)

उत्तम पालक दण्ड विधान से (पातं) पालन करो और (त्रायेथाम्) संकटों से बचाओ। हम स्वयं (तनूभिः) अपने शरीरों से तथा पुत्र पौत्रों तथा विस्तृत सैन्यादि से (दस्यून् तुर्याम्) दुष्ट, हिंसक पुरुषों का नाश करें।

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अद्भुत-क्रतू) आश्चर्यजनक बुद्धि और कर्म से सम्पन्न स्नेही और वरणीय उत्तम पुरुषो! हम (कस्य) किसी का भी (यक्षं) दान दिया धन आदि (तनूभिः) अपने शरीरों से (मा भुजेम) कभी भोग न करें और (शेषसा मा) अपने पुत्र से प्राप्त धन का भी भोग न करें, (मा तनसा) पौत्र का दिया धन भी हम भोग न करें। इसी प्रकार हम अपत्य और पौत्रादि द्वारा भी अन्य किसी का दिया धन न भोगें अर्थात् हमारे पुत्र पौत्रादि भी किसी अन्य के दिये धन का भोग न करें। वे भी स्वबाहूपार्जित धन पर ही जीवन व्यतीत करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[७१]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ तृच सूक्तम्।

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा।
उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) शत्रुओं के वारण और प्रजाओं को प्रेम करने हारो! आप दोनों (रिशादसा) दुष्टों का नाश करने वाले, और (बर्हणा) प्रजाओं की ऐश्वर्य, रक्षा, पालन आदि से वृद्धि करने वाले हो, आप दोनों (नः) हमारे (इमं) इस (चारुम्) उत्तम (अध्वरम्) हिंसारहित, प्रजा के पालक, यज्ञ, राष्ट्र को (आ उप गन्तम्) सदा आदर पूर्वक प्राप्त होवो।

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) वरुण अर्थात् श्रेष्ठ पदार्थो, ज्ञानो और गुणो के प्रदान करने वाले हे स्नेहवान्, मृत्यु आदि से बचाने वाले, (प्र-चेतसा) प्रकृष्ट ज्ञान से सम्पन्न पुरुषो ! हे (ईशाना) सामर्थ्यवान् जनो ! आप लोग (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र के (हि) निश्चय से (राजथः) राजा के तुल्य विराजते हो। आप दोनो (धियः) हज़ारो समस्त कर्मो और ज्ञानों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ, पुष्ट करो।

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ और स्नेहवान् जनो ! स्त्री पुरुषो ! आप लोग (दाशुषः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य के देने वाले (अस्य-सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालन और उपभोग के लिये (नः) हमारे (सुतम्) बनाये इस यज्ञ, वा राष्ट्र वा अभिषिक्त नृपति आदि को (उप आ गतम्) प्राप्त होवो। इति नवमो वर्गः ॥

[७२]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ उष्णिक् छन्दः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—(वयं) हम लोग (मित्रे वरुणे) स्नेहयुक्त, और श्रेष्ठ पुरुष के अधीन रहकर (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियो द्वारा (अत्रिवत्) तीनो दुःखो से रहित यहां की ही प्रजा के समान (जुहुमः) यज्ञ आदि कार्यो मे त्याग वा कर प्रदान करें तथा उत्तम ऐश्वर्य का भोग करें। हे स्नेहयुक्त एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनो (सोम पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और

राजा के पुत्रवत् पालन करने के लिये (बर्हिषु) आसन और वृद्धिशील प्रजा के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) स्थिर होकर विराजो।

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।

नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेहयुक्त, प्रेम और आदर से एक दूसरे को योग्य कार्य के लिये वरण करने वाले और वरण करने योग्य ! एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनो (धर्मणा व्रतेन) धर्मानुकूल व्रताचरण से (ध्रुव-क्षेमा) स्थिर रक्षण और कल्याण युक्त तथा (यातयत्-जना) मनुष्यों को सन्मार्ग पर यत्नशील बनाते हुए (सोम-पीतये) अन्न जल आदि ऐश्वर्य के भोग एवं पालन के लिये (बर्हिषि) आसन एवं वृद्धिशील राष्ट्र-प्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) नियमपूर्वक विराजो।

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।

नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—(मित्रः च) स्नेहवान्, प्रिय एवं (वरुणः च) वरण करने योग्य उक्त दोनों प्रकार के वर्ग (इष्टये) अभीष्ट कल्याण एवं सुख प्राप्ति के लिये (नः) हमारे (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म यज्ञ, संगति, याचना प्रार्थना आदि को (जुषेताम्) प्रेम पूर्वक सेवन वा स्वीकार करें। और (सोम-पीतये) अन्न, ओषधिरस आदि के सेवन के लिये (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतां) विराजो। इसी प्रकार (सोमपीतये बर्हिः नि सदताम्) ऐश्वर्यादि उपभोग वा प्रजापालन के लिये वृद्धिशील प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराजो। इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[७३]

पौर आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः— १, २, ४, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप् । १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारिथी के समान एक ही गृहस्थ रथपर विराजने वाले वा आशु अर्थात् शीघ्र गमन करनेवाले साधनो के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनो (परावति स्थः) कभी दूसरे देश मे रहो, (यत् अर्वावति स्थः) और जो कभी निकट देश मे भी रहते हो (यत् वा) वा (पुरुभुजा) बहुत से जनो के पालक एवं बहुत ऐश्वर्यो के भोक्ता होकर (पुरुस्थः) बहुत से प्रदेशो मे रहे हो (यत् अन्तरिक्षः स्थ) और जो कभी आप दो अन्तरिक्ष मे विमानादि द्वारा विचरे हो वे २ आप लोग दूर निकट, एव नाना देशो और अन्तरिक्षादि मे विचरने वाले स्त्री पुरुषो ! आप सब लोग (अद्य आयातम्) आज हमे प्राप्त होवो ।

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

भा०—(त्या) वे आप दोनो (पुरुभूतमा) बहुत से प्रजाजनो मे उत्तम सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्य पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले, बहुतो के उत्तम आश्रय रूप और (पुरू दंसासि) नाना कर्मों को (बिभ्रता) धारण करने वाले (वरस्या) अति श्रेष्ठ, परस्पर को वरण करने वाले आप दोनो को मैं (इह) इस अवसर मे (यामि) प्राप्त होता हूं और (अध्रिगू) भूमि पर, अधिकारवान् , एवं मार्ग गगन मे दूर २ देशो तक जाने वाले (तुवि -तमा) अति बलवान्, प्रचुर धन के स्वामी आप दोनो को मैं (हुवे) आदर पूर्वक बुलाता हू ।

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनो (ईर्मा) ससार मार्ग पर जानेवाले युगल स्त्री पुरुष

(रथस्य चक्रम्) रथ के चक्र के तुल्य (वपुषे वपुः) एक शरीर के सहारे के लिये (अन्यत् वपुः) उससे भिन्न दूसरे शरीर को जानकर परस्पर को (येमथुः) नियन्त्रित करते, नियम में बांधते और विवाह बन्धन में बांधते हो। उसी प्रकार (अन्य.) अन्य भिन्न २ प्रकार के (नाहुषा युगा) परस्पर बन्धन में बंधने वाले मनुष्यों के जोड़ों को (परिदीयथः) चलाते और (मह्ना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (परि दीयथः) बसाते और संचालित कर रहे हो। अर्थात् सर्वत्र जीव संसार में रथ चक्रवत् एक स्त्री शरीर दूसरे पुरुष शरीर का संगी होकर नर मादा संसार चला रहे हैं।

तदू षु वा॑मे॒ना कृ॒तं विश्वा॒ यद्वा॒मनु॒ष्टवे॑।
नाना॑ जा॒ताव॑रे॒पसा॒ सम॒स्मे बन्धु॒मेय॑थुः ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो (यत्) जो काम (वाम्) आप दोनों के (अनु स्तवे) अनुकूल रूप से स्तुति करने योग्य है, जिसका मैं आप को उपदेश करता हूं (तत् विश्वा) वे समस्त काम आप दोनों (एना) इस विधि से (कृतम्) करो। और दोनों (अरेपसा) पापरहित होकर (नानाजातौ) भिन्न २ वंश में उत्पन्न होकर वा भिन्न २ स्त्री पुरुष पृथक् पृथक् अपने २ गुणों में प्रसिद्ध होकर भी (अस्मे) हमारे वृद्धि के लिये (बन्धुम्) बन्धन को (सम् आ ईयथुः) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

आ यद्वां॑ सू॒र्या रथं॒ तिष्ठ॑द्रघु॒ष्यदं॒ सदा॑।
परि॑ वामरु॒षा वयो॑ घृ॒णा व॑रन्त आ॒तपः॑ ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (वा) आप वर वधू दोनों में से (सूर्या) उषा के समान कान्तिमती, सूर्यवत् तेजस्विनी, उत्तम ऐश्वर्यवती, सन्तान उत्पादन करने में समर्थ स्त्री सदा (रघु-स्यदं) वेग से जाने वाले (रथम्) रथवत् रमण करने योग्य गृहस्थ आश्रम को (अतिष्ठत्) धारण करती है, तब ही वर वधू ! (वाम् परि) आप दोनों के ऊपर (अरुषाः) दीप्ति

युक्त (घृणा) जल सेचन करने वाले (आतप) खूब तपने वाले सूर्य किरण जिस प्रकार (आवरन्त) आवरण करते या पडते हैं उसी प्रकार गृहस्थ में आप दोनो के ऊपर (अरुपाः) रोष रहित, सौम्य (घृणा) ज्ञान, स्नेह का प्रवाह बहाने वाले, तथा स्नेह के सेचन एवं उस द्वारा पोषण करने वाले, (आतपः) सब प्रकार से तपस्वी, जन (आ वरन्त) तुम को आवृत करें, तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें प्राप्त हों। इत्येकादशो वर्गः ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥

भा०—हे (नरा) दोनों स्त्री पुरुषो ! हे (नासत्या) असत्य आचरण न करने वालो ! (यत्) जो (वाम्) आप दोनो के (घर्मं) सेचने योग्य वा तेजोयुक्त (अरेपसं) पापरहित कर्म को (आस्ना) मुख द्वारा (भुरण्यति) उपदेश करता है, वह (अत्रिः) तीनो तापों और तीनों दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (सुम्नेन चेतसा) उत्तम मननशील, शुभ चित्त से ही (युवोः चिकेतति) आप दोनो को ज्ञान का उपदेश करे।

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) शीघ्र चलने वाले अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुषो ! (यत् अत्रिः) जो भोक्ता, एवं इस लोक में विद्यमान पुरुष (दंसोभिः) नाना कार्यों से (आ ववर्त्तति) आजीविका सम्पादन करता है वह (उग्रः) बलवान् पुरुष (वां) आप दोनों में से (ककुहः) श्रेष्ठ, (सन्तनिः) वंश का विस्तार करने वाला और (यामेषु) समस्त मार्गों पर (ययिः) जाने में स्वतन्त्र (शृण्वे) सुना जाय, प्रसिद्ध हो। या जो (अत्रिः) विद्वान् आप दोनो को धर्मों के उपदेशों से युक्त करता है वह महान् उग्र, आचार्य (यामेषु ययिः) नियमादि पालन कार्यों में ले जाने वाला हो।

मध्वं ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्संमुद्राति पर्षथः पुक्वाः पृक्षों भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मधूयुवा) मधुर पदार्थों को परस्पर मिलाने वाले, जल, तेज और अन्न, के मिश्रण और विश्लेपण करने वाले हे (रुद्रा) दुष्ट पुरुषों को रुलाने वाले उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यत्) जब (रुद्रा) गर्जन पूर्वक द्रवण होने वाली (पिप्युषी) अन्नादि को बढ़ाने वाली जल-वृष्टि (मध्वः सिषक्ति) अन्नों को सींचती है, इधर आप दोनों (समुद्रा) अन्तरिक्षों और समुद्रों को भी (अति पर्षथः) पार कर लिया करो, और (पक्वा पृक्षः) पके सुमधुर अन्न (वाम् भरन्त) तुम दोनों को पालन पोषण करें । देश में जल वृष्टि से अन्न बढ़े, स्त्री पुरुष समुद्रों पार व्यापार करें । उत्तम खेती पके, लोग उन अन्नों से पुष्ट होवें ।

सुत्यमिद्वा उं अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों को उत्तम स्वामियों के समान रथी सारथिवत् इन्द्रियों को दमन करने हारे उत्तम स्त्री पुरुषो ! (सत्यम् इत् वा) निश्चय से आप दोनों को लोग जो (मयः-भुवा आहुः) सुख उत्पन्न करने वाले (आहु.) बतलाते हैं सो (सत्यम् इत् वा उ) निश्चय से ठीक ही है । (ता) वे आप दोनों (यामन्) संयम और परस्पर के विवाह आदि बन्धन पूर्वक एक दूसरे को कर्त्तव्य में बांधने के निमित्त याम-हूतमा) संयमशील पुरुषों को आदरपूर्वक गुरु रूप से स्वीकार करने वालों से श्रेष्ठ होकर विवाह करो और (यामनि) उस संयम युक्त विवाह बन्धन में दोनों (आ मृडयत्-तमा) एक दूसरे को प्राप्त होकर अति अधिक सुखी करने वालो बनो ।

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तत्ताम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(या) जिन (ब्रह्माणि) धनो, ज्ञानो और उत्तम अन्नों को हम (रथान् इव) रथों और नाना रम्य पदार्थों के समान (तक्षाम) उत्पन्न करते और बनाते है वे (अश्विभ्यां) जितेन्द्रिय रथी सारथिवत् राजा रानी, गृहपति पत्नी आदि स्त्री पुरुषो को (वर्धना) बढ़ाने वाले होकर (शन्तमा) अत्यन्त शान्तिदायक (सन्तु) हो। हम आप दोनो का (बृहत् नमः) बड़ा उत्तम आदरसूचक नमस्कार का वचन (अवोचाम) कहा करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[७४]

आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, १० विराडनुष्टुप्। ३ अनुष्टुप्। ४, ५, ६, ६ निचृदनुष्टुप्। ७ विराडुष्णिक्। ८ निचृदुष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कूष्ठो॑ देवावश्विना॒द्या दि॒वो म॑नावसू।
तच्छ्र॑वथो वृषण्वसू अत्रि॑र्वा॒मा वि॑वासति ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवौ) दानशील, सत्य वचन को प्रकाशित करने वाले, एक दूसरे की कामना करने वाले होकर (कू-स्थः) भूमि पर विराजते हो। आप दोनों (दिवः) उत्तम व्यवहार, ज्ञान प्रकाश और उत्तम कामना के (मनावसू) मन और ज्ञान को वसु अर्थात् धन रूप से रखने और (दिवः मनावसू) तेजोमय प्रभु के ज्ञान के धनी होवो। हे (वृषण्वसू) हे वृषन् ! हे वसु ! हे वीर्यसेचक पुरुष, एवं पुरुष को अपने आश्रय वसाने वाली स्त्री ! तुम दोनों (तत्) उस ज्ञानोपदेश का सदा (श्रवथः) श्रवण किया करो जिसको (अत्रिः) त्रिविध दुःखों से पारंगत और गृहस्थ वा तीन वर्णों से भिन्न चतुर्थाश्रमी विद्वान् (वाम्) आप दोनो को (आ विवासति) आदर पूर्वक उपदेश करे।

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

भा०—परस्पर प्रश्न करने की रीति । हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो (त्या कुह आयतथः) वे आप दोनों किस स्थान में यत्नवान् होकर रहते हो । (कुह) किस गुरु-आश्रम में (नु) भला आप दोनों (दिवि) ज्ञान प्राप्ति के निमित्त (श्रुतौ) विद्योपदेश श्रवण किये हो ? हे (देवा) परस्पर की कामना से युक्त एवं दोनों विद्वान् तेजस्वी पुरुषो ! आप अब (कस्मिन् जने) किस जन समूह मे (आ यतथः) विद्या प्रचार आदि का यत्न करते हो । (वां) आप दोनो की (नदीनाम्) समृद्ध वाणियों और सम्पत्तियो का (कः) कौन (सचा) सहयोगी है ?

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (कं याथः) किसको लक्ष्यकर जाते हो । (कं ह गच्छथः) किसके पास जाते हो । (कम् अच्छ) किसके प्रति (रथम् युञ्जाथे) जाने के लिये उत्तम यान जोड़ते हो। वा किस (रथम्) उद्देश्य वा लक्ष्य को रखकर योगाभ्यास किया करते हो । (कस्य) किस रमणीय के (ब्रह्माणि) वेद-वचनों, धनों और अन्नों का (रण्यथः) प्रसन्नता पूर्वक उपभोग करते हो । (वयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों को (इष्टये) यज्ञ एवं स्व-अभिलाषा के लिये (उश्मसि) चाहते हैं । कं । ह । जग्मथः ।" इति पदपाठगतः पाठः ।

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

भा०—हे (पौर) पुर के निवासी वा हे मनुष्य की सन्तान स्त्री प जनो ! आप लोग (पौराय) पुर के निवासी जनों के हित के लिये द-प्रुतं) जल से अभिषिक्त, (पौरम्) 'पुर' अर्थात् नगर निवासी

जनों के हितैषी, (ईम्) इस (सिहम् इव) सिंह के समान तेजस्वी पुरुष को (गृभीत-तातये) हाथ में लिये राष्ट्र के कल्याण के लिये और (द्रुहः) शत्रु से द्रोह अर्थात् संग्राम, लड़ाई-झगड़े के (पदे) कार्य पर वा मुख्य नायक पद पर (जिन्वथः) अभिषिक्त करो, स्थापित करो।

प्र च्यवा॑नाज्जुजु॒रुषो॑ व॒व्रिमत्कं॒ न मु॑ञ्चथः ।
युवा॒ यदी॑ कृ॒थः पुन॒रा काम॑मृण्वे व॒ध्वः॑ ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे उत्तम पुरुषो ! वा सेना, सभा के अध्यक्ष जनो ! आप लोग (जुजुरुषः) जरावस्था को प्राप्त (च्यवानात्) निरन्तर क्षीण होते जाने वाले पुरुष से (वव्रिम्) वरण करने योग्य पद वा अधिकार को (अत्कं न) रूप या कवच के समान (प्र मुञ्चथः) परित्याग करा दो। और (पुनः) फिर उस स्थान पर (युवा) जवान पुरुष जिस प्रकार (वध्वः कामम्) वधू के कामना योग्य रूप को (ऋण्वे) प्राप्त करता है उसी प्रकार (यदि युवा) जवान बलवान्, पुरुष (वध्वः) 'वधू' अर्थात् कार्य भार वहन करने की शक्ति के (कामं) कान्तियुक्त पद को (ऋण्वे) प्राप्त करे, तो उसी को आप दोनों (पुन वव्रिम् कृथः) पुनः उस वरण करने योग्य नायकत्व पद पर ही नियुक्त करें। जैसे बूढ़े असमर्थ आदमी से सेना में कवच ले लिया जाता है और जो कवच को उठा सके उस पुरुष को पुनः दे दिया जाता है इसी प्रकार वरणयोग्य नायक पद भी बूढ़े से ले लिया करो और (युवा यदि वध्वः कामं ऋण्वे) जवान यदि कार्य-भार को धारण करने की इच्छा करे तो उसको (कृथ) उस पद पर नियत करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अस्ति॒ हि वा॑मि॒ह स्तो॒ता स्मसि॑ वां सं॒दृशि॑ श्रि॒ये ।
नू श्रु॒तं म॒ आ ग॑तम॒वो॑भिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

भा०—हे सभा वा सेना के अध्यक्ष जनो (वाम्) आप दोनों का (स्तोता) उत्तम उपदेश करने और आज्ञा करने वाला भी (इह) इस

राष्ट्र मे (अस्ति हि) हो। और हम (वां) आप दोनो के (श्रिये) लक्ष्मी, शोभा वा सम्पत्ति की वृद्धि या आश्रय प्राप्ति के लिये, आप के (संदृशि) उत्तम दर्शन या अध्यक्षता वा निष्पक्षपात शासन मे (स्मसि) रहे। आप दोनों (मे नु श्रुतम्) हमारे वचन सुनिये। हे (वाजिनी-वसू) संग्रामकारिणी सेना और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त वा ज्ञानवान् पुरुषों से युक्त राजसभा के बीच स्वयं विराजने वा उसको बसाने वा उसको धनवत् पालने वाले अध्यक्ष जनो! आप लोग (अवोभिः) उत्तम रक्षा साधनों सहित (आ गतम्) हमारे समीप आइये।

को वा॑म॒द्य पु॑रू॒णामा व॑व्ने॒ मर्त्या॑नाम्।
को विप्रो॑ विप्रवाहसा॒ को य॒ज्ञैर्वा॑जिनीवसू ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्र-वाहसा) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओ से अपने को पूर्ण करने वाले शिष्यों को धारण करने वाले! एवं (वाजिनी-वसू) ऐश्वर्य, संग्राम, बल और ज्ञान से युक्त सेना और वाणी को बसाने, उनको द्रव्यवत् पालने वाले सेनापति राजा और आचार्य जनो! (अद्य) आज (पुरूणाम् मर्त्यानाम्) मरणशील वा शत्रुओ को मारने वाले मनुष्यो मे से (कः वाम् वव्ने) कौन आप दोनो की सेवा करता है, (कः विप्रः) कौन विद्वान् और कौन पुरुष (यज्ञैः) आदर सत्कारो, दानो प्रार्थना वचनों और सत्संग आदि से (वां वव्ने) तुम दोनो से वर्त्ताव, प्रार्थनादि करता है, इसका सदा विचार रक्खो।

आ वां॒ रथो॒ रथा॑नां॒ येष्ठो॑ यात्वश्विना।
पु॒रू चि॑दस्म॒युस्ति॒र आ॑ङ्गू॒षो मर्त्ये॒ष्वा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! अश्वादि सैन्यों के स्वामि जनो! (रथानां येष्ठः) अन्य रथों मे चलने मे सबसे उत्तम (वां रथः) आप दोनों का रथ (आ यातु) आवे। (मर्त्येषु) मनुष्यों मे (पुरु चित् तिरः) बहुत से ऐश्वर्यों को प्राप्त करने

वाला आप दोनो का (अस्मयुः) हमें प्राप्त होने वाला (आङ्गूषः) उत्तम उपदेश भी (आ यातु) हमें प्राप्त हो।

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥

भा०—(मधु-युवा) मधुर जल, अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने योग्य वा जल, अन्नवत् परस्पर मिलने वाले आदरणीय स्त्री पुरुषो ! (अस्माक) हमारी (चर्कृतिः) सत्कार क्रिया (वाम् शम् उ सु अस्तु) आप दोनों को शान्तिदायक हो। आप (विचेतसा) विशेष ज्ञानयुक्त होकर (श्येना इव) बाजो के समान (विभिः) आकाशगामी रथो से (अर्वाचीना) हमारे सन्मुख (दीयतम्) आवो और जावो।

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अश्वों वा विद्वानों के स्वामियो ! रथी सारथिवत् राष्ट्र के अध्यक्ष सभा-सेनाध्यक्षो ! आप दोनो (यत् कर्हि चित्) जहां कहीं भी होवो। (इम) इस (हवम्) ग्रहण करने योग्य और देने योग्य वेद के सत्य ज्ञानमय वचन को (शुश्रूयातम्) सुनते और सुनाते रहो। (वा) आप दोनों को (वस्वीः) अध्यापक उपदेशक के अधीन वसने वाली शिष्य मण्डलियों के समान राष्ट्र में वसने वाली प्रजाएं (भुजः) आप दोनो के पालन करने वाली वा राष्ट्र का भोग करने वाली होकर (सु पृञ्चन्ति) आप दोनों से भली प्रकार सम्बद्ध होती हैं। वे (वा) आप दोनों के साथ (उ सु) उत्तम रीति से (पृचः) सदा सम्पर्क बनाये रक्खें और आप को सुख देती रहें। इसी प्रकार गुरु शिष्य सदा इस ज्ञान को सुनते सुनाते रहें, शिष्य जन वा प्रजाएं उनको पालन करें और प्रेम से उनका सत्संग करती रहें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७५]

अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ पङ्क्तिः । २, ४, ६, ७, ८ निचृत्पंक्तिः । ५ स्वराट्पंक्तिः । ९ विराट्पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति॑ प्रि॒यत॑मं॒ रथं॒ वृष॑णं वसु॒वाह॑नम् ।
स्तो॒ता वा॑मश्विना॒वृषि॒: स्तोमे॑न॒ प्रति॑ भूषति॒ माध्वी॒ मम॑ श्रुतं॒ हव॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्वादि साधनो के स्वामी विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (ऋषिः = ऋं गति सिनाति यः) गति अर्थात् क्रिया और ज्ञानशक्ति को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ विद्वान् पुरुष, (वृषणं) खूब बलवान्, सुखप्रद और अच्छी प्रकार सुप्रबन्ध से युक्त (वसु-वाहनम्) धन को लाने लेजाने मे समर्थ वा अपने मे बैठने वालो को उठाकर दूर लेजाने मे समर्थ (प्रियतमं रथं) अति प्रिय रथ एवं रमण करने योग्य रसरूप वा देने योग्य ज्ञान वचन को (स्तोमेन) उसके सम्बन्ध मे उपदेश करने योग्य ज्ञानरहस्य के साथ ही (वाम् प्रति भूषति) आप दोनो को प्रत्यक्ष रूप मे देता और आपको अलङ्कृत करता और कहता है हे (माध्वी) मधुर वचन बोलने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा ग्रहण करने योग्य अध्ययनादि वचन श्रवण करो ।

अ॒त्याया॑तमश्विना ति॒रो विश्वा॑ अ॒हं सना॑ ।
दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी॒ सुषु॑म्ना॒ सिन्धु॑वाहसा॒ माध्वी॒ मम॑ श्रुतं॒ हव॑म् २

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! एवं अश्वादि वेगयुक्त साधनो से सम्पन्न जनो ! (अहं) मैं (सना) सनातन से प्राप्त (विश्वा) समस्त (तिरः) सर्वतः श्रेष्ठ विद्यमान ज्ञान को प्राप्त करता हूं । आप दोनों (दस्रा) दुःखो के नाश करने मे समर्थ (हिरण्य-वर्तनी) हित और रमणीय मार्ग पर चलते हुए, (सु-सुम्ना) उत्तम सुख से युक्त

(सिन्धु-वाहसा) प्रवाह से बहने वाली नदी के द्वारा अपनी नौका को लेजाने वाले केवट के समान सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञान देने वाले गुरु को प्राप्त हो कर (माध्वी) मधुर ज्ञान को मधुकरों के समान सेवन करते हुए (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण योग्य और दातव्य ज्ञानोपदेश का (श्रुतम्) श्रवग करो।

आ नो॒ रत्ना॑नि॒ बिभ्र॑ताव॒श्विना॒ गच्छ॑तं यु॒वम्।
रुद्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी जुषा॒णा वा॑जिनीवसू॒ माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं हव॑म् ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों, इन्द्रियों और आशुगामी साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो! (युवम्) आप दोनों (रत्नानि) रमणीय सुन्दर गुणों और रत्नों को (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (नः आ गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, पीड़ा को दूर करने वाले (हिरण्य-वर्त्तनी) हित रमणीय मार्ग से जाने वाले, (वाजिनी-वसू) ज्ञानयुक्त वाणी के निमित्त गुरु के अधीन व्रतपूर्वक वसने वाले आप दोनों (जुषाणा) प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (माध्वी) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर (मम हवं) मेरे ज्ञानोपदेश को (श्रुतम्) श्रवण करो।

सु॒ष्टुभो॑ वां वृषण्वसू॒ रथे॒ वाणी॒च्याहि॑ता।
उ॒त वां॑ क॒कुहो॑ मृ॒गः पृक्षः॑ कृणोति वापु॒षो माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं हव॑म् ४

भा०—हे (वृषण्वसू) मेघवत् ज्ञान वर्षण करने वाले आचार्य के अधीन व्रत पालनार्थ अन्तेवासी होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो! (सु-स्तुभः) उत्तम उपदेष्टा की (वाणीची) वाणी (वां रथे) आप दोनों के रमणीय आत्मा में (आ-हिता) अच्छी प्रकार धारण की जावे। (उत) और (ककुहः) महान् (मृगः) आत्मा, आचरणादि का शोधन करने वाला गुरु (वापुषः) शरीर देने वाले पिता के समान (वां) आप दोनों का (पृक्षः) सम्पर्क जोड़ने वाले अन्नवत् ज्ञान का (कृणोति) उपदेश करता है। हे आप दोनों (माध्वी) मधु, अन्नवत् ज्ञान संग्रही होकर (मम हव श्रुतम्) मेरा वचनोपदेश श्रवण करो।

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता । विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(रथ्या अश्विनौ इषिरा विभिः च्यवानम् यातः) जिस प्रकार महारथी सारथि दोनों अश्वों को प्रेरणा करते हुए वेग से जाने वाले अश्वों द्वारा आते, शत्रु के प्रति प्रयाण करते हैं उसी प्रकार उत्साह से युक्त जितेन्द्रिय हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (बोधिन्मनसा) ज्ञानयुक्त चित्त वाले और (हवन-श्रुता) ग्राह्य गुरूपदेश को श्रवण करने वाले, (रथ्या) उत्तम देह और आत्मा से युक्त, (इषिरा) प्रबल, उत्तम इच्छावान् , होकर (च्यवानम्) ज्ञानवृद्ध (अद्वयाविनम्) द्वन्द्व भाव अर्थात् बाहर कुछ और भीतर कुछ इस प्रकार के भावों से रहित, निष्कपट, निष्पक्षपात व्यवहार करने वाले गुरु को (विभिः) अपने कान्ति और गति से युक्त अवयवों सहित (नि याथः) नम्रतापूर्वक प्राप्त होवो । (माध्वी) मधु-संग्रही भ्रमरों के समान ज्ञान को संग्रह करते हुए (मम हवं श्रुतम्) मेरा ग्राह्य उपदेश श्रवण करो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ६

भा०—हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! (अश्वासः प्रुषित-प्सवः वयः सुम्नेभिः वां वहन्ति) जिस प्रकार अन्नादि खाने वाले, नाना रूप एवं इन्धन, तैल, जल, कोयला आदि को दग्ध करने वाले, वेगवान् अश्व, रथ यन्त्रादि वेगवान् होकर सुखों सहित तुम दोनो को दूर देश तक पहुंचा देते हैं उसी प्रकार (मनः-युजः) मन रूप रासों से जुते (अश्वासः) ये इन्द्रिय, प्राण गण (वयः) स्वयं कान्ति वा दीप्ति से युक्त होकर (वां) आप दोनो को (वीतये) सुख भोगने के निमित्त (सुम्नेभिः) सुखों सहित (वहन्तु) धारण करें अथवा, (वां वयः पीतये सुम्नेभिः वहन्तु) आप दोनो के जीवन को सुखों सहित उपभोग करने के लिये धारण करें । (माध्वी)

अन्न, मधु आदिवत् ज्ञान संग्रही आप दोनो (मम हवं श्रुतम्) मेरा उपदेश श्रवण करो।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

भा०—(अश्विनौ) हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों (इह) इस लोक मे (आ गच्छतम्) आदर पूर्वक आइये। हे (नासत्या) परस्पर कभी असत्याचरण न करने वाले! आप दोनों (मा वि वेनतम्) कभी विरुद्ध कामना न करो। आप दोनो (अर्यमा) स्वामी होकर (तिरः चित् वर्त्तिः) प्राप्त आजीविका के कार्य मार्ग को वा गृह को (अदाभ्या) अहिंसित अपीडित होकर (परि यातम्) जाओ। (मम हवम्) मेरे उपदेश को (माध्वी श्रुतम्) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर श्रवण करो।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

भा०—हे (शुभस्पती अश्विना) कल्याणकारी व्यवहार के पालन करने वाले जितेन्द्रिय, उत्तम अश्व रथ के स्वामी स्त्री पुरुषो! (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संगति द्वारा करने योग्य यज्ञ मे (अदाभ्या) कभी पीड़ित न होकर (युवं) तुम दोनों (जरितारं) उत्तम उपदेष्टा (अवस्युं) ज्ञान और रक्षा करने वाले (गृणन्त) उपदेश करते हुए विद्वान् के (उप) समीप (भूपथ) प्राप्त होवो। (माध्वी मम श्रुतं हवम्) मधुवत् अन्न और ज्ञान के संग्रही होकर मेरे वचन श्रवण करो।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ९।१६

भा०—गृहस्थ-रथ। (उषा रुशत् पशुः अभूत्) जिस प्रकार उषा चमकने जगत् को रूप दिखाने वाले किरणों से युक्त होती है और (अग्नि

अधायि) विद्वानों द्वारा अग्नि आधान किया जाता है उसी प्रकार जब (उषा) कान्तिमती, कामना करने वाली स्त्री, (रुशत् पशुः) दीप्ति युक्त तेजस्वी, उत्तम पशुसम्पदा से युक्त, अथवा उत्तम अंगों वाली होती है और (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक पुरुष (रुशत् पशुः) तेजस्वी अंगो वाला हो तब वह (ऋत्वियः) ऋतु काल में गमन करता हुआ (अधायि) गर्भ रूप से स्थित हो। हे (वृषण्वसू) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष एवं उसके अधीन रहने वाली स्त्री (वां) तुम दोनों का (रथः) सुखपूर्वक रमण अर्थात् उपभोग करने योग्य गृहस्थ रूप रथ (अमर्त्यः) कभी न नाश होने योग्य रूप से (अयोजि) रथवत् ही जुड़े, हे (दस्रौ) दर्शनीय, हे कर्म करने वाले, हे परस्पर दुःख नाशक आप दोनों (माध्वी मम हवं श्रुतम्) उत्तम अन्न, मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर मेरे उपदेश श्रवण करो। इति षोडशो वर्गः ॥

(७६)

अत्रिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ भा॑त्य॒ग्निरु॒षसा॒मनी॑क॒मुद्विप्रा॑णां देव॒या वाचो॑ अस्थुः ।
अ॒र्वाञ्चा॑ नू॒नं र॑थ्ये॒ह या॑तं पीपि॒वांस॑मश्विना घ॒र्मम॒च्छ ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः उषसाम् अनीकम्) जब सूर्य उषाओं के मुखवत् प्रकाशित होता है और (विप्राणाम्) विद्वान् पुरुषों की (देवयाः) ईश्वर को लक्ष्य कर निकलने वाली (वाचः) वाणियां (उत् अस्थुः) उत्पन्न होती है उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत् एक गृहस्थ रथ पर स्थित स्त्री पुरुषो ! (उषासम्) शत्रुओं के दल को दग्ध करने वाली, राष्ट्र को वश करने वाली सेनाओं के (अनीकम्) समूह को प्राप्त कर उनका प्रमुख (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (आ भाति)

सूर्यवत् सब तरफ़ प्रकाशित होता है। उस समय (विप्राणां) विद्वानों की (देवयाः वाचः) तेजस्वी, दानशील विजिगीषु को लक्ष्य करके निकलने वाली वाणियां (उद् अस्थुः) उत्पन्न होती हैं। अतः हे स्त्री पुरुषो! (नूनं) निश्चय से (रथ्या) रथ पर स्थित महारथियों के समान आप दोनों (अर्वाञ्चा) अश्व के बल से जाने वाले होकर (इह) इसी राष्ट्र में (पीपिवांसम्) अच्छी प्रकार बढ़ने वाले, अन्यों को बढ़ाने वाले (घर्मम्) तेजस्वी, सुखों को सेचन करने में समर्थ, मेघ वा सूर्यवत् निष्पक्ष, दानशील विद्वान् पुरुष वा गृह्य यज्ञ, प्रभु वा राजा को (अच्छ यातम्) भली प्रकार प्राप्त होवो।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥

भा० -(अश्विना) नाना उत्तम पदार्थों के भोक्ता जनो! इन्द्रियों के स्वामियो! रथि सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषो! आप दोनों (संस्कृतं) उत्तम रीति से किये कार्य को (नः प्र-मिमीतः) नहीं विनाश करते। वा, आप दोनों उत्तम संस्कार युक्त पुत्रादि को (न प्रमिमीतः) क्यों नहीं उत्पन्न करते? (नूनम्) निश्चय से आप लोग (इह) इस लोक में (अन्ति) एक दूसरे के अति समीप (गमिष्ठा) प्राप्त होकर (उपस्तुता) प्रशंसित होते हो। (दिवा) दिन के समय (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (अवसा) उत्तम रक्षा, ज्ञान और प्रीति के साथ (आ-गमिष्ठा) एक दूसरे के पास जाने वाले होवो और (दाशुषे) दानशील विद्वान् के उपकार के लिये (अवर्ति प्रति) अन्न आजीविका और मार्गादि से रहित बेचारे पुरुष के प्रति (शम्भविष्ठा) कल्याण करने में समर्थ होवो।

उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत्

हैं। उसी प्रकार जो स्त्री पुरुष (अरुरुपः गृध्रात्) अति क्रोधी और लोभी पुरुष से पृथक् रहकर (पुरा) जीवन के पूर्व काल में (पिबातः) ज्ञान का पान और व्रत का पालन करते हैं उन (प्रातर्यावाणः) जीवन की प्रभात वेला में गुरु के समीप जाने वाले स्त्री पुरुषों का सत्संग और आदर करो। वे दोनों प्रातः यज्ञ करते हैं पूर्व ज्ञान वेद के विद्वान् उनकी प्रशंसा करते हैं।

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम्।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

भा०—हे प्रजा जनो! (अश्विना) अश्वादि के नायकों और उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषों का (प्रातः) दिन के पूर्व काल में (सायम्) और सायं समय में भी (यजध्वम्) सत्संग किया करो। और उनको (हिनोतं) प्रसन्न, तृप्त करो, बढ़ाया करो (देवयाः) विद्वान् पुरुषों के आदर करने योग्य पदार्थ (अजुष्टम् न अस्ति) प्रीति से सेवन करने के अयोग्य (न) नहीं होता प्रत्युत देव जन आदर से दिये को सदा ही प्रेम से स्वीकार करते हैं। (उत) और जो (अस्मत्) हम से (अन्यः) दूसरा कोई भी (यजते) उत्तम ज्ञान दान करता है और (वि अवः च) विशेष रूप से हमें प्रेम पूर्वक अन्नादि देता या तृप्त करता है वह भी (पूर्वः पूर्वः) हम से पूर्व पूर्व अर्थात् वयस् और विद्या में वृद्ध पुरुष भी (यजमानः) दान सत्संग यज्ञादि करने वाला (वनीयान्) अति उत्तम रीति से सेवा करने योग्य होता है, वह भी आदर करने योग्य है।

हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो! (हिरण्य-त्वङ्) सुवर्ण या लोह के आवरण से युक्त, दृढ (मधुवर्णः) मधु के समान चिकने, सुन्दर रंग वाले (घृतस्नुः) तेल आदि स्निग्ध पदार्थ से शुद्ध, नित्य

स्वच्छ, (पृक्ष· बृहत्) अन्न आदि पदार्थों को लेजाने वाला, बड़ा (रथः) रथ (वाम् वर्त्तते) आप दोनो के प्रयोग मे आवे। उसमे (मनोजवाः) मन के संकल्पमात्र से वेग से जाने वाले, स्वल्प प्रयास से ही अति शीघ्र चलने वाले (वातरंहाः) वायु के वेग से युक्त अश्व, यन्त्रादि हो। (येन) जिस रथ से आप दोनो (विश्वा) समस्त (दुरितानि) दुर्गम स्थानों और कष्टो को (अति याथः) पार करने मे समर्थ होवो।

यो भूयिंष्ठं नासंत्याभ्यां विवेष चनिंष्ठं पित्वो ररंते विभागे।
स तोकर्मस्य पीपर्च्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुंतुर्यात् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष, (नासत्याभ्याम्) कभी असत्य व्यवहार न रखने वाले स्त्री पुरुषों के लिये (भूयिष्ठं) बहुत अधिक और (चनिष्ठं) उत्तमोत्तम अन्न (विवेष) प्रदान करता है और (वि-भागे) विविध प्रकार मे विभक्त करने के निमित्त (पित्वः) अन्न का (ररते) दान करता है (सः) वह (शमीभिः) अपने शान्तिजनक कर्मों से (अस्य) इस राष्ट्र के (तोकम्) पुत्र के समान प्रजाजन को ही (पीपरत्) पालन करता है, और (अनूर्ध्व-भासः) ऊपर को उठने वाली दीप्तियों से रहित, अग्नि आदि से रहित, अथवा अतेजस्वी, अल्पदीप्ति अग्निवत् स्वल्प शक्ति वाले दीन जन वा राष्ट्र के (सदम्) प्राप्त दुःख वा नाशकारी कष्ट को (इत्) ही (तुतुर्यात्) नाश किया करे।

समश्विनोरवंसा नूतंनेन मयोभुवां सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभंगानि ॥५॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सूक्त ७६ का ५ वां मन्त्र।
इत्यष्टादशो वर्गः ॥

(७८)

सप्तवध्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते। ७, ९ गर्भस्राविणी उपनिषत् ॥ छन्दः—
१, २, ३ उष्णिक्। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६ अनुष्टुप्। ७, ८, ९ निचृद-
नुष्टुप् ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनो (इह) इस गृहस्थाश्रम मे रथीवत् होकर (आगच्छतम्) आया करो। हे (नासत्या) कभी असत्याचरण और अधर्म युक्त कार्य न करते हुए, सदा सत्यपूर्वक परस्पर के व्यवहारों को करते हुए (मा वि वेनतम्) एक दूसरे के विपरीत कभी इच्छा मत किया करो। प्रत्युत (सुतान् उप) अपने उत्पन्न पुत्रों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हंसौ इव) हंस हंसिनी युगल के समान (आ पततम्) आया करो।

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथि वा दो अश्वारोहियो के समान एक साथ मार्ग चलने वाले वर वधू, स्त्री पुरुषो! जिस प्रकार (यवसम्) घास, यव आदि धान्य को लक्ष्य करके (हरिणौ इव गौरौ इव) दो हरिण और दो गौर मृग जाते है और जिस प्रकार जलो की ओर (हंसौ इव) दो हंस जाते हैं उसी प्रकार (सुतान् उप आ पततम्) पुत्रों, ऐश्वर्यों एवं ओषधिरसों को लक्ष्य कर आप दोनों भी जाया आया करो।

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे (वाजिनीवसू) ज्ञान-ऐश्वर्य बल आदि से युक्त कर्म करने मे निष्ठ आप दोनों (इष्टये) देवपूजन, दान, सत्संग मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सौहार्द, सत्संग आदि का (जुषेथाम्) सेवन प्रेमपूर्वक किया करो। (सुतान् उप हंसौ इव आ पततम्) पुत्रों और

उत्पन्न आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये दो हंसों के समान सहयोगी होकर (हंसौ) एक साथ मार्ग पर गमन करते हुए जाया करो ।

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥१९॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो (अत्रिः) तीनों प्रकार के दुःखों वा दोषों से रहित, वा (अत्रिः) इसी राष्ट्र या आश्रम का वासी जन वा शिष्य (नाधमाना इव योषा) याचना, आशा वा कामना करती हुई, स्त्री के समान अति विनीत, और तन्मय होकर (ऋबीसम् अवरोहन्) तेजो रहित, सरल रूप से झुककर विनम्र होकर(वाम् अजोहवीत्) आप दोनों को बुलावे । तब आप दोनों (श्येनस्य चित्) बाज के से (जवसा) वेग से (नूतनेन) नूतन (शंतमेन) अति शान्तिदायक रूप से (आ गच्छतम्) प्राप्त होइये । (ऋबीसम्) अपगतभासम् अपहृतभासम्, अन्तर्हितभासं, गतभासं वा ॥ निरु० ६ । ६ । ७ ॥ स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से जो (अत्रिः) भोक्ता पुरुष है वह (ऋबीसं) दीपक से प्रकाशित गृह को प्राप्त हो और (योषा) स्त्री भी (नाधमाना इव) ऐश्वर्य या पुत्रादि की कामना करती हुई (अजोहवीत्) पति को स्वीकार करे । वे दोनों (श्येनस्य चित् जवसा) शान्तियुक्त नये प्रेम से गृह में आकर मिलें । एकोनविंशो वर्गः ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य जलों, किरणों के स्वामी, मेघ वा सूर्यवत् ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे महावृक्षवत् आश्रित याचक, सेवक जनों के पालन करने वाले ! (सूष्यन्त्याः इव) प्रसव करने वाली स्त्री की (योनिः) योनि जिस प्रकार प्रसव-काल में विवृत होकर सुन्दर बालक को जन्म देती है हे आचार्य ! आप भी इसी प्रकार (वि जिहीष्व) विवृत होओ ।

और शिष्य रूप पुत्र को आप विद्या-गर्भ मे रखकर गुरुगृह से जन्म देते हो। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् आचार्य उपदेशक जनो ! (मे) मुझे (हवं) उत्तम देने योग्य ज्ञानोपदेश (श्रुतं) श्रवण कराओ और (सप्त-वध्रिम्) सातो ज्ञान मार्गों मे वंधे हुए अर्थात् आंख, नाक, मुख, कान, इन सातो द्वारो को वश करनेवाले मुझको (वि मुञ्चतम्) वन्धन से मुक्त करो। वा उपनयन द्वारा स्वीकार करें। जो विद्यार्थी उक्त सातों इन्द्रियों पर वश करे, अथवा वह आंख, नाक, कान, त्वचा वाणी और मन इन सातो इन्द्रियो पर वश करके उनको 'वध्रि' अर्थात् उद्वेगरहित करके विद्याभ्यास करे, वह 'सप्त-वध्रि' कहाता है। जिस प्रकार वधिया बैल निर्मद शान्त, सरल होकर विनय से रहता है उसी प्रकार शिष्य भी इन सातो इन्द्रियों को दमन करके विनीत, शान्त सरल होकर रहे। गर्भ मे आने वाले जीव के सातो प्राण निर्बल, प्रसुप्त रूप से होते है ऐसे बीज रूप जीव को स्त्री-पुरुष धारण करें।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या मे व्याप्त चित्त वालो ! अथवा विद्या मे व्याप्त होने वाले शिष्य जनो के स्वामी पालक, अध्यापक, आचार्य जनो ! (भीताय) संसार के संकटो से भयभीत हुए, (नाधमानाय) शरण की याचना करते हुए, (सप्त-वध्रये) सातो उच्छृखल इन्द्रियो को वधिया बैल के समान शान्त, सरल, विनीत रखने वाले, (ऋषये) ज्ञानको जानने के लिये उत्सुक विद्यार्थी के उपकार के लिये (युवं) आप दोनो (मायाभि) बुद्धियो तथा उपदेशमय, शब्दमय वाणियो से (वृक्षम्) उच्छेद करने योग्य अज्ञान को (सम् च) अच्छी प्रकार से और (वि च) विविध प्रकार से (अचथः) दूर करो। अथवा (वृक्षं) वृक्षवत् स्थिर भूमि पर बैठे हुए मुझको (सम् अचथः) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और (वि अचथ) विशेष रूप से

ग्रहण करो। (२) जन्मान्तराकाक्षी जीव को उत्पन्न करने के लिये स्त्री पुरुष दोनो नाना स्नेहयुक्त क्रियाओ से गृहस्थ आश्रम को प्रेमपूर्वक लता जैसे वृक्ष को प्राप्त हो वैसे परस्पर मिले। इस सूक्त के १, २, ३ मन्त्रो मे पुत्रो को लक्ष्य कर वर वधू दोनो को मिल कर ज्ञान का उपदेश है आचार्य के प्रसवकारिणी माता के समान बालक शिष्य को उत्पन्न करने का वर्णन पूर्व मन्त्र मे कहा है अब बालक की उत्पत्ति को शिष्य की उत्पत्ति से दर्शाते है।

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥ ७॥

भा०—७-९ गर्भस्राविणी उपनिषत्। (यथा) जिस प्रकार से (वातः) वायु (सर्वतः) सब ओर से (पुष्करिणीं) पोखरिणी वा कमलिनी को (समिङ्गयति) अच्छी प्रकार कंपाता है उसी प्रकार शरीर का अपान वायु गर्भस्थ बालक को (पुष्करिणीं) पुष्ट करने वाली जल भरी थैली को कम्पित करता है। (एव) इसी प्रकार से (गर्भः) गर्भगत बालक (एजतु) कांपे, शनै २ स्पन्दन करे। और इसी प्रकार (दशमास्यः) वह दश मास मे पूर्ण होकर (निः एतु) बाहर निकल आवे। आचार्य 'वात' है, पोषक वाणी पुष्करिणी माता है, गृहीत शिष्य गर्भ है। दश मास तक पुष्ट बालकवत् दशो प्राणो से पूर्ण, सर्वाङ्ग बालक 'दशमास्य' है।

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा॥ ८॥

भा०—(यथा वातः) जिस प्रकार वायु (एजति) वेग से चलता है, (यथा वन) और जैसे वन स्वयं वायु के झोकों से कांपता है वा जिस प्रकार (समुद्रः एजति) समुद्र कांपता है। (एव) इसी प्रकार हे (दशमास्य) दश मास मे परिपक्व होने वाले गर्भ! तू (जरायुणा सह)

जेर के साथ (अव इहि) नीचे आजा। गर्भ में अपान का बल, जल तथा बालक होते हैं उनके तीन उपमान है समुद्र, वन और वात।

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—(कुमारः) बालक (मातरि अधि) माता के भीतर अधिकार पूर्वक अर्थात् माता के शरीर पर अपना विशेष प्रभाव रखता हुआ (दश-मासान् शशयानः) दस मास तक सुखपूर्वक प्रसुप्त रूप से रहता हुआ (जीवः) जीवित रूप में (अक्षतः) किसी प्रकार की चोट, आघात, अंग-भंग को प्राप्त न होकर (जीवः) जीव (जीवन्त्याः अधि) जीती हुई माता से (निर आ एतु) बाहर आ जावे। इति विंशो वर्गः ॥

[७९]

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री। २, ३, ७ भुरिग्बृहती। १० स्वराड् बृहती। ४, ५, ८ पंक्तिः। ६, ९ निचृत्-पंक्तिः ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, पति और पुत्रों की प्रेम से कामना करने हारी! विदुषी स्त्री! (अद्य) आज, सदा तू (दिवित्मती) दीप्तियुक्त, ज्ञान, उत्तम व्यवहार और कान्ति, उत्तम पदार्थों की कामना से युक्त होकर (नः) हमें (महे राये) बड़े भारी ऐश्वर्य और प्राप्त करने योग्य उद्देश्य के लिये (बोधयः) जगाया कर। हे (अश्व-सूनृते) भोक्ता पति वा हृदय में व्यापक पुरुष के प्रति उत्तम वाणी

बोलने हारी, वा 'अश्व' अर्थात् भोजन करने वालों को 'सूनृत' अर्थात् अन्न देने वाली ! वा 'अश्व' व्याप्त, हृदयंगम, महत्त्वयुक्त वाणी, अन्न आदि की स्वामिनि ! हे (सुजाते) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध ! माता पिता के उत्तम गुणों से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु सन्तान रूप से उत्तम सन्ततियों को उत्पन्न करने हारी ! तू (सत्य-श्रवसि) सत्य अर्थात् सात्विक अन्न, सत्यश्रवण योग्य ज्ञान और सत्य कीर्त्ति के निमित्त (यथाचित) जैसे भी हो उस रीति से (नः अबोधयः) हमें सचेत किया कर । यह कान्त समित उपदेश करने का वर्णन है । वाणी पक्ष में—(अश्वसूनृते) विद्या के मार्ग में वेग से जाने वाले विद्वान् की वाणी ! तू (नः) हमारे (सुजाते) उत्तम रीति से ब्राह्म आदि संस्कार में उत्पन्न पुत्र रूप (वाय्ये) शिष्य रूप से सन्ततिवत उत्पन्न सत्य प्रतिज्ञ बालक में जैसे हो तू मातृवत ज्ञान प्रदान कर ।

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न, उसकी पुत्रीवत् उषा के तुल्य शुभ्र (दिवः दुहितः) कामनावान् पति की कामनाओं को पूर्ण करने वाली वा दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! वा दूर देशों में सेवादि द्वारा पति का हित करने हारी ! (या) जो तू (शौचद्रथे) कान्ति युक्त रथ वाले सूर्य व तेजस्वी एवं शुद्ध आत्मा वाले, शुद्ध कान्ति-युक्त रमणीय (सुनीथे) उत्तम वाणी युक्त और उत्तम न्यायाचरण करने वाले पुरुष के अधीन (वि औच्छः) अपने गुणों को विविध प्रकार से प्रकट कर । हे (सहीयसि) अति सहनशीले ! हे (सत्यश्रवसि) सात्विक अन्न और सात्विक सत्य ज्ञान और यश से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु रूप से सन्तान उत्पन्न करने हारी ! हे (सु-जाते) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध ! हे (अश्व-सूनृते) [illegible]

के प्रति उत्तम वाणी और अन्न प्रस्तुत करने वाली ! हे (सुनीथे) उत्तम वाणी और नीति व्यवहार तथा उत्तम मार्ग पर चलने हारी ! हे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त रमणीय सुन्दर रूप से युक्त, उत्तम रथ पर चढने हारी वधू ! तू अपने अनुकूल (सुनीथे) उत्तम वाणी, व्यवहार और मार्ग पर चलने हारे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त देह वाले, तेजस्वी, उत्तम रथ पर स्थित, उत्तम रमणीय भव्य व्यवहारवान् (सहीयसि) अति सहनशील बलवान् दृढ, (सत्य-श्रवसि) सत्यप्रतिज्ञ, सत्य ज्ञानवान् , कीर्त्तिमान् (वाय्ये) सन्तान के उत्पादन करने मे समर्थ (सुजाते) उत्तम गुणो से प्रसिद्ध, अपने माता पिता के उत्तम पुत्र, (अश्वसूनृते) विद्याओ मे पारगत, विद्वानो तथा अश्ववत् भोक्ता राजा, के समान उत्तम वाणी बोलने हारे पुरुष के अधीन रहकर और उसी के निमित्त (वि उच्छ) विविध प्रकार से अपने गुणो और कामनाओ को प्रकट कर ।

इस मन्त्र मे 'सुनीथे शौचद्रथे, सहीयसि, सत्यश्रवसि, वाय्ये, अश्वसूनृते' ये सब विशेषण पद विभक्ति श्लेष द्वारा दीपकालंकार से सम्बोधन रूप से स्त्री के प्रति तथा और आश्रय निमित्त रूप से पति के प्रति लगते है । इस प्रकार योग्य स्त्री को तदनुरूप पति प्राप्त करने का उपदेश करते है । यही रीति समस्त सूक्त में समझनी चाहिये ।

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

भा०—हे (दुहितः) कन्ये ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् तेजस्वी पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा सूर्यवत् उत्तम विद्वान् की कन्ये ! तू (भरद्-वसुः) धन सम्पदा को अपने गृह मे लाने हारी वा पितृगृह से लेजाने हारी और (भरद्-वसुः) बसाने वाले पति आदि का मातृवत् भरण पोषण करने हारी होकर (नः) हमारे आगे (सा) वह तू (वि उच्छ) उषावत् अपने गुणो का प्रकाश कर (यः) जो (सहीयसि)

सत्यश्रवसि, वाय्ये, सुजाते, अश्वसूनृते वि औच्छः) हे सहनशील, हे सत्यप्रतिज्ञे, हे उत्तम सन्तानोत्पादक ! हे सुपुत्रि ! हे शुभवाणि ! तू बलवान् सत्य प्रतिज्ञ, उत्तम सन्ततिजनक, शुभगुणवान् और विद्वान् पुरुष के अधीन रहकर (वि औच्छः) विशेष रूप से गुणों को प्रकट कर। अर्थात् उत्तम कन्या को अपने गुणों की परीक्षा देना आवश्यक है।

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ४

भा०—हे (विभावरि) विशेष कान्ति से युक्त ! उषावत् सुन्दरि ! हे (सुजाते) उत्तम कन्ये ! हे (अश्वसूनृते) उत्तम महत्वयुक्त वाणी बोलने हारी ! अश्ववत दृढ़ बलवान् पुरुष के प्रति सुख से गमन करनेहारी (ये) जो (वह्नयः) अग्निवत् तेजस्वी, गृहस्थ-भार को वहन करने में समर्थ विवाहेच्छुक पुरुष (स्तोमैः) उत्तम प्रशंसनीय वचनों से (त्वा-अभि) तुझे लक्ष्य करके (गृणन्ति) बात करते हैं हे (मघोनि) उत्तम धनों की स्वामिनि ! वे भी तुझे प्राप्त कर (मघैः) ऐश्वर्यों से (सु-श्रियः) उत्तम शोभा और लक्ष्मीयुक्त और (दामन्वन्तः) दानशील तथा (सुरातयः) उत्तम मित्र, पुत्र और अभिलषित पदार्थ द्रव्य आदि शुभ दान की इच्छा से युक्त हो। 'रातिः' मित्रमिति कपर्दी। पुत्र इत्येके अभिलषितार्थ इति सायणः।

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ।५।२१॥

भा०—हे (सुजाते) सुपुत्रि ! हे (अश्व-सूनृते) विद्वान् के तुल्य उत्तम वाणी बोलने हारी विदुषी ! (यत चित् हि) जो भी (ते गणाः) तेरे सेवक जन (वष्टयः) नाना धनों की अभिलाषा करने वाले हैं (इमे) वे भी (अह्रयं राधः) लज्जा वा सकोच से रहित होकर प्राप्त करने योग्य उत्तम धन (ददत) देने वाले पुरुषों को (मघत्तये) उत्तम धन देने के

लिये हों (परि च्छदयन्ति चित्) उनको आच्छादित करे, उनकी सेवा करे उनकी राह मे खड़े रहे। और उनकी (परि दधुः) सब प्रकार से सेवा करे, और रक्षा वा पोषण करे। इत्येकविंशो वर्गः ॥

एषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से युक्त उत्तम पुत्रि ! हे (अश्वसूनृते) बलवान् वा विद्वान् पुरुषो के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! कमनीये ! हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्य, सौम्य से युक्त सौभाग्यवति ! (ये) जो (मघवानः) स्वयं धनसम्पन्न होकर (नः) हमे (अह्रया) बिना लज्जा वा संकोच के प्राप्त करने योग्य (राधांसि) ज्ञान आदि धनों को (अरासत) दान करते है (एषु) उन (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच मे रहकर तू (वीरवत्) उत्तम पुत्रादि से युक्त (यशः) कीर्त्ति, अन्न, धन आदि को (आधाः) सब प्रकार से धारण कर और उनमे (यशः) श्रद्धा से अन्न आदि प्रदान कर।

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते॥७॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणो से प्रसिद्ध ! हे (अश्वसूनृते) विद्वानो के प्रति शुभ ज्ञानयुक्त वाणी बोलने और उनसे ग्रहण करने तथा उनको उत्तम अन्न देने हारी उत्तम विदुषि ! (ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (अश्व्या) अश्वो से युक्त और (गव्या) गौओ से युक्त या अश्वो गौओ के हितकारी (राधांसि) धनो को (भजन्त) सेवन करते उनको अपने व्यवहार मे लाते हैं हे (मघोनि) सौभाग्य लक्ष्मीवाली ! (उषः) हे कान्तियुक्त ! तू (तेभ्यः) उनको (बृहत्) बड़ा (द्युम्नं) धन और (यशः आ वह) यश प्राप्त करा।

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ८

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणों से युक्त उत्तम पुत्रों की माता ! हे (अश्व-सूनृते) उत्तम पुरुषों के प्रति उनके तुल्य उत्तम वचन बोलने हारी ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् प्रिय पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी ज्ञानी पिता वा आचार्य की पुत्रि ! तू (सूर्यस्य) सूर्य की (शुक्रैः) शुद्ध (शोचद्भिः) कान्ति-वाली, प्रकाशयुक्त (अर्चिभिः) कान्तियों और (रश्मिभिः) किरणों के साथ २ (शुक्रैः शोचद्भिः अर्चिभिः) शुद्ध कान्ति युक्त अग्नि ज्वालाओं से और पवित्र करने वाले सत्कारोचित जलों से (नः) हमारी (गोमती इषः) उत्तम दुग्ध आदि से युक्त अन्न और शुभ वाणी से युक्त उत्तम कामनाओं, सत अभिलाषाओं को (आ वह) प्राप्त कर और करा ।

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ९

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणवती पुत्रि ! हे (अश्व-सूनृते) उत्तम विद्वानों को उत्तम वाणी से सत्कार करने हारी ! हे (दिवः दुहितः) अन्नादि की कामना वाले याचकादि के मनोरथों को पूर्ण करने वाली ! वा गृहस्थ व्यवहार के लिये दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! तू (वि उच्छ) अपने विविध गुणों को प्रकट कर और (अपः) गृह के आवश्यक कार्यों को (चिरं मा तनुथाः) देर लगाकर मत किया कर । (स्तेनं रिपुं) चोर शत्रु को (यथा) जिस प्रकार (सूरः तपाति) सूर्य-वत् तेजस्वी पुरुष सन्ताप, पीड़ा देता है उसी प्रकार (त्वा इत्) तुझे भी (सूरः) तेजस्वी पुरुष (अर्चिषा) क्रोध आदि से (न तपाति) न पीड़ित करे ।

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि । या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (वि-भावरि) विशेष कान्ति से प्रकाशित होने वाली ! हे (सु-जाते) शुभ गुणों से युक्त हे शुभ सन्तान वाली ! हे (अश्व-सूनृते) विद्वान् बलवान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी और अन्न देनेहारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! हे कमनीये ! पापों को दग्ध कर देने हारी ! तू क्या (एतावद् वा इत् दातुम् अर्हसि) इतना ही केवल देने योग्य है । (वा) अथवा (भूयः दातुम् अर्हसि) तू अधिक भी देने में समर्थ है । इस बात का सदा विचार रख । (या) जो तू (उच्छन्ती) अपने दानशीलता आदि सद्‌गुणों का प्रकाश करती हुई (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टाओं के लिये (न प्र-मीयसे) कभी मृत्यु, वा विषाद को प्राप्त न हो । अर्थात् शक्ति से अधिक दे देने पर स्वयं पीड़ित न हुआ करे, प्रत्युत अपनी शक्ति को देखकर ही विद्वानों को दान आदि दिया करे जिससे वह आगे भी यथाशक्ति देती रह सके । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

(८०)

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (विप्रासः द्युत-द्यामानं अरुणप्सुं स्वः आवहन्तीं देवीम् उषसं मतिभिः जरन्ते) विद्वान् पुरुष आकाश को चमकाने वाली, रंग लिये, प्रकाश को लाने वाली, तेजो युक्त उषा, प्रभात वेला को प्राप्त कर (प्रति) प्रतिदिन स्तुतियों से भगवान् की स्तुति करते हैं उसी

प्रकार (घृत-द्यामानम्) कामनावान्, व्यवहारवित् तेजस्वी पति को अथवा इस पृथिवी को अपने गुणों से चमका देने वाली, (ऋतेन) सत्य ज्ञान, तेज और धनैश्वर्य से (बृहतीम्) बड़ी, सबको बढ़ाने वाली, (ऋताव-रीम्) अन्न धनादि से सम्पन्न, (अरुणप्सुम्) लाल, तेजोयुक्त रूपवती (वि-भातीम्) विशेष गुणों से सबके मन को अच्छी लगने हारी, (देवीम्) विदुषी, दानशील, (स्वः आहवन्तीम्) ग्राह्य सुखों को प्राप्त कराने वाली, (उपस) कान्तियुक्त, कमनीय, एवं पति आदि सम्बन्धियों को हृदय से चाहने वाली, स्त्री के प्रति (विप्रासः) विद्वान् लोग सदा ही (मतिभिः) स्तुतियों से (जरन्ते) प्रत्येक बात में उसकी प्रशंसा करते हैं।

एषा जनं॑ दर्श॒ता बो॒धय॑न्ती सु॒गान्प॒थः कृ॑ण्व॒ती या॒त्यग्रे॑ ।
बृ॒ह॒द्र॒था बृ॑ह॒ती वि॑श्वमि॒न्वोषा ज्योति॑र्यच्छ॒त्यग्रे॒ अह्ना॑म् ॥ २ ॥

भा०—(एषा उषा) यह प्रभात वेला जिस प्रकार (दर्शता) देखने योग्य होकर (जनं बोधयन्ती) जन्तु मात्र को जगाती हुई (पथः सुगान् कृण्वती) मार्गों को सुगम, सुखदायक करती हुई (अग्रे) आगे २ बढ़ती चली जाती है। उसी प्रकार (एषा) यह (उषा) कान्तिमती, कमनीय गुणों वाली, पति की कामना करने वाली उत्तम स्त्री भी (दर्शता) दर्श-नीय रूप, गुणों से युक्त होकर (जनं बोधयन्ती) सनन्न मनुष्यों को सन्मार्ग और धर्म कर्मों का बोध कराती हुई मनुष्य या वृत पति के (पथ) जीवन के भावी मार्गों को (सुगान्) सुख पूर्वक गमन करने योग्य (कृण्वती) बनाती हुई (अग्रे याति) आगे आगे चलती है। विवाह के अवसर पर स्त्री परिक्रमा में जो आगे २ जाती है वह भी पति के संकट मार्गों को मानो सुगम कर देने के लिये स्वयं उन पर प्रथम चलने का अभिनय करती है। और जिस प्रकार उषा (बृहद्रथा) बड़े भारी रम-णीय प्रकाश से युक्त, (बृहती) स्वयं बड़ी विस्तृत, (विश्वमिन्वा) विश्व भर में व्याप्त होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (ज्योतिर्-

च्छति) सबको प्रकाश देती है उसी प्रकार वह स्त्री भी (बृहद्-रथा) बड़े रथ पर चढकर पतिलोक को जाने वाली, वा (बृहद्-रथा) बड़े रमणीय, सुन्दर रूप और कर्म करने वाली, (बृहती) कुल को बढ़ाने वाली होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में, मध्याह्न के पूर्व ही (ज्योतिः यच्छति) उत्तम अन्न प्रदान करे ।

एषा गोभिर॑रु॒णेभि॑र्युजा॒नास्रे॑धन्ती र॒यिमप्रा॑यु चक्रे ।
प॒थो रद॑न्ती सुवि॒ताय॑ दे॒वी पु॑रुष्टु॒ता वि॒श्ववा॑रा॒ वि भा॑ति ॥३॥

भा०—जिस प्रकार उषा (अरुणेभिः गोभिः) लाल किरणों से (युजाना) संयोग करती हुई (रयिम् अप्रायु चक्रे) प्रकाश को स्थायी कर देती है और (सुविताय) सुख से जाने के लिये (पथः रदन्ती) मार्गों को चमकाती हुई (विश्ववारा विभाति) सबसे वरण योग्य होकर चमकती है उसी प्रकार (एषा देवी) यह विदुषी स्त्री भी (अरुणेभि गोभिः) अपनी अनुराग युक्त वाणियों से (युजाना) सब बातों का समाधान करती हुई, (रयिम्) गृह के ऐश्वर्य को (अप्रायु) कभी नष्ट न होने देने वाला (चक्रे) बनावे । वह (सुविताय) सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये (पथः) स्वयं उत्तम २ मार्गों को (रदन्ती) बनाती हुई (पुरु स्तुता) बहुतों से प्रशंसित होकर (विश्व-वारा) सबसे वरण करने योग्य, सर्वप्रिय, सब संकटों का वारण करने और सबको अन्नादि विभाग करने वाली होकर (वि भाति) विविध प्रकार से सबको अच्छी लगे ।

ए॒षा व्ये॑नी भवति द्वि॒बर्हा॑ आवि॒ष्कृण्वा॒ना त॒न्वं॑ पु॒रस्ता॑त् ।
ऋ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑ति सा॒धु प्र॑जान॒तीव॒ न दिशो॑ मिनाति ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (वि एनी भवति) विशेष रूप से श्वेत प्रकाश वाली, होती है, और वह (द्वि-बर्हा) रात्रि दिन दोनों से बढ़ने वाली, (पुरस्तात् तन्वं आविः कृण्वानः) आगे अपने विस्तृत प्रकाश को

प्रकट करती हुई (ऋतस्य पन्थाम् अनु एति) तेज या सूर्य के मार्ग का प्रति दिन अनुगमन करती है और (न दिशः मिनाति) मानो दिशाओं को मापती सी है अथवा दिशाओं का भी नाश नहीं करती। उसी प्रकार (एषा) यह विदुषी स्त्री, भी (वि एनी) विशेष रूप से हरिणी के समान उत्तम चक्षु वाली, अति वेगवती एवं गुणो मे शुभ्र, (भवति) हो। वह (द्वि-बर्हाः) दोनो कुलो को बढ़ाने वाली हो। वह (पुरस्तात्) पति के आगे (तन्वम्) अपने देह को (आविः-कृण्वाना) प्रकट करती हुई, पति के आगे २ चलती हुई, (ऋतस्य) सत्याचरण एव वेद के उपदिष्ट सत्य के (पन्थाम्) मार्ग का (अनु एति) अनुगमन करे। वह (साधु) भली प्रकार (दिशः प्र जानती इव) दिशाओ, कर्त्तव्यों को भली प्रकार जानती हुई (ऋतस्य पन्थाम् न मिनाति) कर्म के मार्ग का नाश नही करे।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार प्रभात वेला (शुभ्रा) कान्ति मे शुभ्र वर्ण की (नः दृशये ऊर्ध्वा अस्थात्) हमे दिखाने के लिये ऊंचे विराजती है, और (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् तेज को दोहने और दूर तक फैलाने वाली (तमांसि अप बाधमाना) अन्धकारो को दूर करती हुई (ज्योतिषा आगात्) ज्योतिर्मय सूर्य के साथ आती है उसी प्रकार (एषा) यह (दिवः दुहिता) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ पिता की पुत्री एवं पति, भाई, पिता आदि की उत्तम कामनाओ और अभिलाषाओ को पूर्ण करने वाली, (दुहिता) दूर देश मे विवाहने योग्य, (उषा) कान्तिमती, कमनीय कन्या, (शुभ्रा) सुशोभित रूपवाली होकर (तन्वः विदाना) अपने अंगो को भली प्रकार साधती हुई (स्नाती) विशेष संस्कारार्थ स्नान कर शुद्ध होती हुई (न दृशये) हमारी दृष्टि को प्रसन्न करने के

लिये (ऊर्ध्वा इव अस्थात्) उत्तम पद पर सदा स्थित आदर योग्य सी बनी रहे। वह (द्वेषः) द्वेष के भावों तथा (तमांसि) दुःखकर शोकादि को भी (अप बाधमाना) दूर करती हुई दीपक के समान अन्धकारों को हटाती हुई (ज्योतिषा) विद्या और गुणों के प्रकाश सहित (आ अगात्) आवे।

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥२३॥

भा०—(दिवः दुहिता) प्रकाशों से जगत् को पूर्ण करने वाली, सूर्य की पुत्री के तुल्य उषा, (प्रतीची) अभिमुख आती हुई, (भद्रा) सुखप्रद, (अप्सः निरणीते) रूप को प्रकट करती है (वार्याणि वि ऊर्ण्वती) उत्तम प्रकाशों को धारे हुए, (पूर्वथा) पूर्व दिशा में (पुनः) वार २ (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है। उसी प्रकार (एषा) यह (दुहिता) कन्या वा पति आदि के प्रति प्रेम कामनाओं को प्रकट करने वाली, जीवन में दूर तक भी हिताचरण करने वाली, दूर देश में विवाहित कन्या, (नॄन् प्रति योषा इव) मनुष्यों के प्रति युवती स्त्री के समान ही (अप्सः) अपने उत्तम रूप को (नि रिणीते) प्रकट करे। वह (दाशुषे) अन्न वस्त्र, हृदयादि देने वाले पति के लिये (वार्याणि) उत्तम पहनने योग्य वस्त्रों को (वि ऊर्ण्वती) विशेष रूप से धारण करती हुई, अथवा उसके लिये (वार्याणि) वरण करने योग्य गुणों, वचनों को प्रकाशित करती हुई (युवतिः) नव युवति (पूर्वथा) प्रथम (पुनः ज्योतिः अकः) वार २ अग्नि को प्रदीप्त करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[८१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्द —१, ५ जगती । २ विराड् जगती । ४ निचृज्जगती । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

भा०—परमात्मा का वर्णन। (विप्राः) विद्वान् लोग उससे (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) स्तुत्य, ज्ञानवान्, अनन्त विद्या के सागर (विप्रस्य) विशेष रूप से जगत् में पूर्ण, परमेश्वर के बीच अपने (मनः युञ्जते) मन को योग द्वारा लगाते हैं। और वे (धियः) अपने बुद्धियों कर्मों को भी उसीसे (युञ्जते) जोड़ते हैं। वह (एकः इत) अकेला ही (वयुनवित्) समस्त ज्ञानों और लोकों को जानने और धारण करने वाला, (होत्रा विदधे) समस्त वाणियों को धारण करता और वेद वाणियों का प्रकाश करता, तथा (होत्राः) जगत् को धारण करने वाली समस्त शक्तियों को विशेष रूप से धारण करता है, (देवस्य) उस सर्वप्रकाशक (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर की (मही) बड़ी भारी (परिष्टुतिः) स्तुति, महिमा है।

अथवा—['होत्राः' इति 'विप्राः' इत्यस्य विशेषणम्।] ज्ञानादि के देने और लेने वाले विद्वान् भी मन ज्ञान और कर्मों का सम्बन्ध उसी प्रभु से करते हैं। वे उसी के निमित्त संकल्प विकल्प, तर्क करते, ज्ञान प्राप्त करते, यज्ञ दानादि करते हैं। अथवा—[होत्रा, इति वाङ्नाम।] वे विद्वान् उस प्रभु के ही वर्णन में ही (होत्रा युञ्जते) अपनी वाणियों का प्रयोग करते हैं। अथवा—[विप्राः विपश्चितः बृहतः विप्रस्य मनः युञ्जते, धियः युञ्जते होत्राश्च युञ्जते। एक इत् वयुनवित् मनो विदधे, धियो विदधे, होत्राः विदधे] विद्वान् लोग उस महान् ज्ञानवान् प्रभु के ज्ञानमय मन के साथ अपना मन उसकी धारणावती बुद्धियों के साथ अपनी बुद्धियों और उसके अनुकरणीय महान् कर्मों के साथ अपने कर्मों का योग करें, समाधान करें दोनों को परस्पर एक दूसरे के अनुकूल करें। वही समस्त ज्ञानों, बुद्धियों और वाणियों और कर्मों का विधान करता है। उस सर्वोत्पादक की ही बड़ी भारी (परिष्टुति) महिमा का उपदेश है।

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑ मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्यो॒ऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥२॥

भा०—(कविः) सबसे अधिक बुद्धि वाला, परमज्ञानवान् परमेश्वर (विश्वा रूपाणि) समस्त रूपवान् पदार्थों को (प्रतिमुञ्चते) प्रतिक्षण धारण करता है। वह ही, (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् समस्त जीवों के हित के लिये (भद्रं) सुखजनक, कल्याणमय जगत् को (प्र प्रसावीत्) उत्पन्न करता है। वह ही (सविता) समस्त जगत् का उत्पादक पिता, (नाकम् वि अख्यत्) दुःख से रहित सुख को प्रकट करता है, वह (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ, वरने योग्य, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा (उषसः प्र-याणम् अनु) उषाकाल के गमन के पश्चात् उगने वाले सूर्य के समान और (उषसः प्रयाणम् अनु) शत्रु को दग्ध करने वाली सेना के प्रयाण करने के बाद सिंहासन पर विराजने वाले सम्राट् के समान (उषसः प्रयाणम् अनु) सब पापों को भस्म कर देने वाली विशेष प्रज्ञा के उत्तम रीति से प्राप्त होने के अनन्तर (अनु विराजति) उत्तरोत्तर हृदय में प्रकाशित होता है।

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा ।
यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ३

भा०—(यस्य) जिस (देवस्य) सर्वप्रकाशक, तेजस्वी, सब सुखों के देने वाले परमेश्वर के (प्र-याणम्) उत्तम प्राप्तव्य, और सबको संचालन करने वाले (महिमानम्) महान् पराक्रम का (अन्ये देवाः) और समस्त विद्वान् एवं नाना दिव्य पदार्थ एवं कामना करने वाले मनुष्य (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (अनु ययुः) अनु गमन करते हैं (यः) जो (एतशः) शुभ्र शुक्ल वर्ण वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापक (देवः) सर्व-प्रकाशक, (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (पार्थिवानि) पृथिवी के समस्त पदार्थों और (रजांसि) अन्तरिक्ष और

आकाश के समस्त लोकों को भी (वि-ममे) जानता और बनाता है । (सः एतशः) वही सर्वव्यापक, तेजोमय सबके उपासना करने योग्य है । जिस सेनापति वा मुख्य नायक राजा के पयान के अनन्तर अन्य विजिगीषु सैनिक वा सामन्त चलते हैं जो समस्त पार्थिव ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है वह सामर्थ्य से ही देव, सूर्यवत् तेजस्वी (एतशः) महारथी वा शुक्र वर्णवान् शुभ्रकर्मा सर्वगुण विभूषित है ।

उत यासि सवितुस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि । उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

भा०—(उत) और हे (सवितः) जगत् के उत्पन्न करने हारे प्रभो ! तू (त्रीणि रोचना) तीनों प्रकाशमान् सूर्य, विद्युत, अग्नि इनमें (यासि) व्याप्त है, तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ भी (सम् उच्यसि) विद्यमान है । (उत) और तू ही सूर्यवत् (रात्री) महा प्रलय रात्रि को (उभयतः परीयसे) दोनों ओर से व्यापता है, उसके आदि में भी तू और अन्त में भी तू, जगत् का उत्पादक और संहारक भी तू ही है । (उत) और तू ही हे (देव) सर्वप्रकाशक ! सर्वदातः ! (धर्मभिः) जगत् को धारण करने वाले बलों से, कानूनों और नियमों से राजा के तुल्य (मित्रः भवसि) सबका स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने हारा है ।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः । उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ५।२४

भा०—हे (देव) देव ! सर्व सुखों के देने हारे ! तेजोमय ! सर्व प्रकाशक ! (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही (प्र-सवस्य) इस संसार को उत्पन्न करने के लिये (ईशिषे) पूर्ण समर्थ है । (उत) और (त्वम् एव उत यामभिः पूषा भवसि) तू अकेला ही, सब नियमों द्वारा सब का पोषक हो रहा है । (उत) और (इदं) इस समस्त (भुवनं)

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑ मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्यो॒ऽनु प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥२॥

भा०—(कविः) सबसे अधिक बुद्धि वाला, परमज्ञानवान् परमेश्वर (विश्वा रूपाणि) समस्त रूपवान् पदार्थों को (प्रतिमुञ्चते) प्रतिक्षण धारण करता है । वह ही, (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् समस्त जीवों के हित के लिये (भद्रं) सुखजनक, कल्याणमय जगत् को (प्र प्रसावीत्) उत्पन्न करता है । वह ही (सविता) समस्त जगत् का उत्पादक पिता, (नाकम् वि अख्यत्) दुःख से रहित सुख को प्रकट करता है, वह (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ, वरने योग्य, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा (उपसः प्र-याणम् अनु) उषाकाल के गमन के पश्चात् उगने वाले सूर्य के समान और (उषसः प्रयाणम् अनु) शत्रु को दग्ध करने वाली सेना के प्रयाण करने के बाद सिंहासन पर विराजने वाले सम्राट् के समान (उषसः प्रयाणम् अनु) सब पापों को भस्म कर देने वाली विशेष प्रज्ञा के उत्तम रीति से प्राप्त होने के अनन्तर (अनु विराजति) उत्तरोत्तर हृदय में प्रकाशित होता है ।

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा ।
यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ३

भा०—(यस्य) जिस (देवस्य) सर्वप्रकाशक, तेजस्वी, सब सुखों के देने वाले परमेश्वर के (प्र-याणम्) उत्तम प्राप्तव्य, और सबको संचालन करने वाले (महिमानम्) महान् पराक्रम का (अन्ये देवाः) और समस्त विद्वान् एवं नाना दिव्य पदार्थ एवं कामना करने वाले मनुष्य (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (अनु ययुः) अनु गमन करते हैं (यः) जो (एतशः) शुभ्र शुक्ल वर्ण वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापक (देवः) सर्व-प्रकाशक, (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (पार्थिवानि) पृथिवी के समस्त पदार्थों और (रजांसि) अन्तरिक्ष और

आकाश के समस्त लोकों को भी (वि-ममे) जानता और बनाता है । (सः एतशः) वही सर्वव्यापक, तेजोमय सबके उपासना करने योग्य है । जिस सेनापति वा मुख्य नायक राजा के पयान के अनन्तर अन्य विजिगीषु सैनिक वा सामन्त चलते हैं जो समस्त पार्थिव ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है वह सामर्थ्य से ही देव, सूर्यवत् तेजस्वी (एतशः) महारथी वा शुक्र वर्णवान् शुभ्रकर्मा सर्वगुण विभूषित है ।

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि। उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

भा०—(उत) और हे (सवितः) जगत् के उत्पन्न करने हारे प्रभो ! तू (त्रीणि रोचना) तीनों प्रकाशमान् सूर्य, विद्युत, अग्नि इनमें (यासि) व्याप्त है, तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ भी (सम् उच्यसि) विद्यमान है । (उत) और तू ही सूर्यवत् (रात्री) महा प्रलय रात्रि को (उभयतः परीयसे) दोनों ओर से व्यापता है, उसके आदि में भी तू और अन्त मे भी तू, जगत् का उत्पादक और संहारक भी तू ही है । (उत) और तू ही हे (देव) सर्वप्रकाशक ! सर्वदातः ! (धर्मभिः) जगत् को धारण करने वाले बलों से, कानूनों और नियमों से राजा के तुल्य (मित्रः भवसि) सबका स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने हारा है ।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः । उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ५।२४

भा०—हे (देव) देव ! सर्व सुखों के देने हारे ! तेजोमय ! सर्व प्रकाशक ! (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही (प्र-सवस्य) इस संसार को उत्पन्न करने के लिये (ईशिषे) पूर्ण समर्थ है । (उत) और (त्वम् एकः इत यामभिः पूषा भवसि) तू अकेला ही, सब नियमों द्वारा सब का पोषक हो रहा है । (उत) और (इदं) इस समस्त (भुवनं)

लोक को (विराजसि) प्रकाशित करता है और विविध रूप से उस पर राजा के तुल्य शासन भी करता है। हे (सवित.) सबके उत्पादक प्रभो! (श्याव-अश्वः) ज्ञानवान् आत्मा वाला अथवा प्रदीप्त किरणों वाला सूर्य भी (ते) तेरे (स्तोमम् आनशे) स्तुति योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ९ निचृद्गायत्री । ३, ५, ६, ७ गायत्री । ८ विराड्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तत्स॑वि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम् ।
श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं॒ तुरं॒ भग॑स्य धीमहि ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम (सवितः) सबके उत्पादक (देवस्य) सर्वप्रकाशक, सर्वप्रद, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, परमेश्वर के (तत्) उस सर्वोत्तम (भोजनम्) पालन और भोग्य ऐश्वर्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें और (भगस्य) सकल ऐश्वर्य युक्त, सर्व सेवनीय उस प्रभु के (श्रेष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (सर्वधातमम्) सबसे अधिक उत्तम, सबके धारक पोषक (तुरं) अविद्यादि दोषनाशक बल को (धीमहि) धारण करें।

अस्य॒ हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम् ।
न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य सवितुः) इस सर्वैश्वर्यवान्, सर्वजनक प्रभु के (स्वयशः-तरम्) अपने ही सर्वोत्कृष्ट यश और वीर्य वाले (प्रियम्) अतिप्रिय (स्वराज्यं) राज्य के समान अपने तेज को (कत् चन) कोई भी, कभी भी (न मिनन्ति) नहीं नाश कर सकते हैं।

स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ।
तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—जो (सविता) सर्वोत्पादक (भगः सन्) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु है वह (दाशुषे) दानशील दाता पुरुष के हितार्थ (रत्नानि) नाना रमण करने योग्य ऐश्वर्यों को (सुवाति) प्रदान करता है (तं) उस (भागं) सेवा करने योग्य, भजनीय एवं भग अर्थात् ऐश्वर्यों के स्वामी (चित्रम्) अद्भुत आश्चर्यकारी को लक्ष्य करके हम (ईमहे) याचना करते है।

अद्या नो॑ देव सवितः प्र॒जाव॑त्सावीः॒ सौभ॑गम् ।
परा॑ दुः॒ष्वप्न्यं॑ सुव ॥ ४ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (देव) ज्योतिर्मय! (नः) हमें (सौभगम्) उत्तम समृद्धि, (प्रजावत्) प्रजा के समान (सावीः) प्रदान कर, हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! (नः) हमारे (दुःस्वप्न्यं) बुरे स्वप्न आने के कारण को (परा सुव) दूर कर।

विश्वा॑नि देव सवित॒र्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो ! हे (देव) सर्व सुखों के दातः ! परमेश्वर ! (विश्वानि दुरितानि) सब दुःखों को (परा सुव) दूर करो और (यद् भद्रं) जो कल्याणकारक सुखजनक हो (तत् नः आ सुव) वह हमे प्रदान करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अना॑गसो॒ अदि॑तये दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे ।
विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (देवस्य सवितुः) दानशील, सर्वप्रकाशक, तेजस्वी (सवितु) सूर्यवत् सर्वोत्पादक प्रभु के (सवे) परमैश्वर्यरूप शासन में रहकर (अदितये) माता, पिता, पुत्र, बन्धु आदि सम्बन्धी जन तथा भूमि आदि के हितार्थ (अनागसः) अपराध एवं पापाचरण से रहित होकर (विश्वा वामानि) सब प्राप्त करने, सेवन करने और दान करने योग्य ऐश्वर्यों को (धीमहि) धारण करें।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम् ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (विश्वदेवं) विश्व के प्रकाशक, सबके दाता और सर्वोपास्य, समस्त शुभ गुणो के धारक, सर्वकाम्य, सर्वविजयी, सर्वव्यवहारकुशल, (सत्पति) समस्त सज्जनो और सत्पदार्थों के पालक (सत्य-सवं) सत्यैश्वर्य युक्त, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, पिता परमेश्वर की (आ वृणीमहे) सब प्रकार से भक्ति करें ।

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता उभे अहनी अप्रयुच्छन् पुरः एति) सूर्य दिन रात्रि दोनों के पूर्व प्रमादरहित होकर आता है उसी प्रकार (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (देवः) सर्वप्रकाशक, सर्वसुखदाता (सु-आधीः) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति मे, मातृगर्भ मे पिता के समान अव्यय बीज का आधान करने वाला प्रभु (इमे) इन (अहनी) कभी नाश न होने वाले जीव और प्रकृति (उभे) दोनो अनादि पदार्थों के (पुरः) पूर्व ही (अप्रयुच्छन्) संतत प्रमाद-रहित सर्व साक्षी होकर (एति) व्याप्त रहता है । वही परमेश्वर सबको उपासना करने योग्य है ।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (इमा) इन (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए स्थावर और जंगम जीवों को (श्लोकेन) विद्वान् उपदेष्टा के समान वेद वाणी द्वारा (आ श्रावयति) सर्वत्र ज्ञानोपदेश करता है और (प्र सुवाति) उत्तम रीति से आचार्यवत् उनको उत्तम जन्म देता है वही

(८३)

अत्रिर्ऋषिः । पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती । ५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १० भुरिक् पङ्क्तिः । ९ निचृदनुष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा॑ वद त॒वसं॑ गी॒र्भिरा॒भिः स्तु॒हि प॒र्जन्यं॒ नम॒सा वि॑वास ।
कनि॑क्रदद्वृष॒भो जी॒रदा॑नू॒ रेतो॑ दधा॒त्योष॑धीषु॒ गर्भ॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (तवसं) बलवान् (पर्जन्य) शत्रुओं को पराजय करने मे समर्थ, और मेघ के तुल्य प्रजाओं को समृद्धि सुखों से तृप्त और जनों का हित करनेवाले पुरुष के (स्तुहि) गुणों का वर्णन किया कर और (अच्छ वद) उसका उपदेश कर जो वस्तुतः मेघ के समान समस्त संसार को (नमसा) अन्न से और शासन दण्ड से (वि-वास) विविध प्रकार से बसाता है, जो (वृषभः) बड़े बैल के समान बलवान्, वर्षणशील मेघ के तुल्य (कनिक्रदत्) गर्जता और (जीर-दानुः) जलवत् जीवनसाधन प्रदान करता हुआ (ओषधीषु) वृक्षों और लताओं के समान शत्रुसंतापक बल को धारण करने वाली सेनाओं में (रेतः) जलवत् बल (दधाति) धारण कराता है । और (गर्भम् दधाति) उनके ही बल पर गृहीत राष्ट्र का पालन करता है । मेघ भी वनस्पतियों पर जल बरसाता और उनमें फल प्रसवार्थ गर्भ धारण करता है, एवं पृथिवी पर नाना ओषधियों के उत्पादनार्थ गर्भ धारण कराता है ।

वि वृ॒क्षान् ह॑न्त्यु॒त ह॑न्ति र॒क्षसो॒ विश्वं॑ बिभाय॒ भुव॑नं म॒हाव॑धात् ।
उ॒तानां॑गा ईषते॒ वृष्ण्या॑वतो॒ यत्प॒र्जन्य॑ः स्त॒नय॒न् हन्ति॑ दु॒ष्कृत॑ः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति) मेघ गर्जता हुआ दुष्कार्य, अकाल, दुर्भिक्ष आदि को नाश करता है जो (भुवनं

हन्ति) जल को आघात कर बरसाता है । ((वृष्ण्यवतः ईषते) बरसाने वाले मेघ खण्डो को प्रेरता है उसी प्रकार (यत्) जो (पर्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने और प्रजाओं को सुख समृद्धि से तृप्त करने वाला, मेघ तुल्य उदार राजा वा विद्वान् पुरुष, (स्तनयन्) गर्जता हुआ, उपदेश करता हुआ (दुः-कृतः) दुष्टाचरण करने वाले, प्रजाओं को दुःख देने वाले दुष्ट पुरुषों और बुरे कर्मों का भी (हन्ति) नाश करता है वह (वृक्षान्) काट कर उखाड़ देने योग्य, वा भूमि पर कब्जा करनेवाले उच्छेद्य शत्रुओं को (वि हन्ति) विविध उपायों से नाश करे, (उत) और (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और भावो का (वि हन्ति) विघात करे । और उनको भी नाश करे जिनके (महावधात्) बड़े नाशकारी हत्याकाण्ड से (विश्वं भुवनं बिभाय) समस्त संसार डरता है, अथवा जिसके (महावधात्) बड़ा हिंसाकारी घोर शस्त्रास्त्र बल से जगत् भय खाता है, (उत) और वह (अनागाः) दोष अपराध आदि से रहित होकर (वृष्ण्यवतः) शस्त्रवर्षी, बलवान् शत्रुओं को भी (ईषते) नाश करता और प्रकम्पित करता है ।

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह । दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः नभः वर्ष्यं कुरुते) मेघ अन्तरिक्ष को वृष्टि करने वाला बना देता है, (वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते) वर्षा के दूत सदृश शीतल वायुओं को प्रकट करता है, (सिंहस्य स्तनथा उत् ईरते) सिंहवत् गर्जनाएं होती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (पर्जन्यः) शत्रु पराजयकारी, प्रजा को समृद्ध करने वाला राजा (वर्ष्यम्) वृष अर्थात बलवान् शस्त्रवर्षी वीर भटों से बने सैन्य को (नभः) सुप्रबद्ध (कृणुते) करता है और (रथी इव) जिस प्रकार कोचवान् (कशया) हण्टर से (अश्वान् अभिक्षिपति) घोड़ों को हांकता है, और मेघ जिस प्रकार

(कशया अश्वान् अभिक्षिपन्) दीप्ति युक्त विद्युल्लता से मेघ एवं वेग युक्त वायुओ को ताड़ता है उसी प्रकार (रथी) वह महारथी, (कशया) अपनी वाणी से ही (अश्वान्) वेग से जाने वाले अपने अश्व सैन्यो को (अभिक्षिपन्) सब ओर शीघ्र भेजता हुआ और (वर्प्यान्) वर्षों मे वृद्ध (दूतान्) शत्रुसंतापक एवं उत्तम कुशल अनुभवी पुरुषों को अपना दूत (आविः कृणुते) बनाता है। उसी समय, (सिंहस्य) सिंह के समान पराक्रमशाली वीर जनो के (स्तनथाः) गर्जन शब्द (दूरात्) दूर से (उत् ईरते) उठते, सुनाई देते है।

प्र वा॒ता वान्ति॑ प॒तय॑न्ति वि॒द्युत॒ उदोष॑धी॒र्जिह॑ते॒ पिन्व॑ते॒ स्वः॑ ।
इरा॒ विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय जायते॒ यत्प॒र्जन्यः॑ पृ॒थि॒वीं रेत॒साव॑ति ॥४॥

भा०—(यत्) जब (पर्जन्यः) समस्त विश्व को जल और अन्न से तृप्त और समस्त जन्तुओ का हित करने वाला मेघ (रेतसा पृथिवीं अवति) जल से भूमि को खूब तृप्त कर देता है, उस समय, (वाताः प्र वान्ति) वायुगण खूब बहते हैं, (विद्युतः पतयन्ति) बिजुलिये गिरती है, (ओषधीः उत् जिहते) ओषधि-वनस्पतियां उत्पन्न होती है। (स्वः पिन्वते) अन्तरिक्ष से जल झरता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त संसार के लिये (इरा जायते) जल और अन्न उत्पन्न होता है। इसी प्रकार (पर्जन्यः) शत्रुविजयी राजा जब (रेतसा) अपने बल वीर्य, पराक्रम से तथा जल की नहरो से (पृथिवीम् अवति) राष्ट्र भूमि की रक्षा करता और सींचता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायु के समान बलवान् सेनापतिगण वेग से जाते है, (विद्युतः) विशेष दीप्ति युक्त अस्त्रादि (पतयन्ति) चलते है, और (वाताः प्र वान्ति) वायु वेग से जाने वाले रथ, व्योमयान आदि एवं व्यापारी जन वेग से जाते आते है और (विद्युत) विशेष दीप्तियुक्त समृद्धियें (पतयन्ति) राष्ट्र ऐश्वर्य को बढ़ाती है, (विद्युत पतयन्ति) विशेष द्युतियुक्त स्त्रियें पति की कामना करती है विवाहित

हन्ति) जल को आघात कर बरसाता है । ((वृष्ण्यवतः ईषते) बरसाने वाले मेघ खण्डों को प्रेरता है उसी प्रकार (यत्) जो (पर्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने और प्रजाओं को सुख समृद्धि से तृप्त करने वाला, मेघ तुल्य उदार राजा वा विद्वान् पुरुष, (स्तनयन्) गर्जता हुआ, उपदेश करता हुआ (दुःकृतः) दुष्टाचरण करने वाले, प्रजाओं को दुःख देने वाले दुष्ट पुरुषों और बुरे कर्मों का भी (हन्ति) नाश करता है वह (वृक्षान्) काट कर उखाड़ देने योग्य, वा भूमि पर कब्जा करनेवाले उच्छेद्य शत्रुओं को (वि हन्ति) विविध उपायों से नाश करे, (उत) और (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो और भावो का (वि हन्ति) विघात करे । और उनको भी नाश करे जिनके (महावधात्) बड़े नाशकारी हत्याकाण्ड से (विश्वं भुवनं विभाय) समस्त संसार डरता है, अथवा जिसके (महावधात्) बड़ा हिंसाकारी घोर शस्त्रास्त्र बल से जगत् भय खाता है, (उत) और वह (अनागाः) दोष अपराध आदि से रहित होकर (वृष्ण्यवतः) शस्त्रवर्षी, बलवान् शत्रुओं को भी (ईषते) नाश करता और प्रकम्पित करता है ।

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह । दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः नभः वर्ष्यं कुरुते) मेघ अन्तरिक्ष को वृष्टि करने वाला बना देता है, (वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते) वर्षा के दूत सदृश शीतल वायुओं को प्रकट करता है, (सिंहस्य स्तनथा उत् ईरते) सिंहवत् गर्जनाएं होती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (पर्जन्यः) शत्रु पराजयकारी, प्रजा को समृद्ध करने वाला राजा (वर्ष्यम्) वृष अर्थात् बलवान् शस्त्रवर्षी वीर भटों से बने सैन्य को (नभः) सुप्रबद्ध (कृणुते) करता है और (रथी इव) जिस प्रकार कोचवान् (कशया) हण्टर से (अश्वान् अभिक्षिपति) घोड़ों को हांकता है, और मेघ जिस प्रकार

(कशया अश्वान् अभिक्षिपन्) दीप्ति युक्त विद्युल्लता से मेघ एवं वेग युक्त वायुओ को ताड़ता है उसी प्रकार (रथी) वह महारथी, (कशया) अपनी वाणी से ही (अश्वान्) वेग से जाने वाले अपने अश्व सैन्यो को (अभिक्षिपन्) सब ओर शीघ्र भेजता हुआ और (वर्ष्यान्) वर्षों मे वृद्ध (दूतान्) शत्रुसंतापक एवं उत्तम कुशल अनुभवी पुरुषो को अपना दूत (आविः कृणुते) बनाता है। उसी समय, (सिंहस्य) सिंह के समान पराक्रमशाली वीर जनो के (स्तनथाः) गर्जन शब्द (दूरात्) दूर से (उत् ईरते) उठते, सुनाई देते है।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

भा०—(यत्) जब (पर्जन्यः) समस्त विश्व को जल और अन्न से तृप्त और समस्त जन्तुओ का हित करने वाला मेघ (रेतसा पृथिवीं अवति) जल से भूमि को खूब तृप्त कर देता है, उस समय, (वाताः प्र वान्ति) वायुगण खूब बहते है, (विद्युतः पतयन्ति) बिजुलिये गिरती है, (ओषधीः उत् जिहते) ओषधि-वनस्पतियां उत्पन्न होती है। (स्वः पिन्वते) अन्तरिक्ष से जल झरता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त संसार के लिये (इरा जायते) जल और अन्न उत्पन्न होता है। इसी प्रकार (पर्जन्यः) शत्रुविजयी राजा जब (रेतसा) अपने बल वीर्य, पराक्रम से तथा जल की नहरो से (पृथिवीम् अवति) राष्ट्र भूमि की रक्षा करता और सींचता है, तब (वाता प्र वान्ति) वायु के समान बलवान् सेनापतिगण वेग से जाते है, (विद्युतः) विशेष दीप्ति युक्त अग्न्यादि (पतयन्ति) चलते है, और (वाता. प्र वान्ति) वायु वेग से जाने वाले रथ, व्योमयान आदि एवं व्यापारी जन वेग से जाते आते है और (विद्युत) विशेष दीप्तियुक्त समृद्धियें (पतयन्ति) राष्ट्र ऐश्वर्य को बढ़ाती है (विद्युत पतयन्ति) विशेष द्युतियुक्त स्त्रियें पति की कामना करती है [illegible]

हो गृहस्थ बसाती हैं। (ओषधीः उत् जिहते) तेज धारण करने वाली सेनाएं ओषधिवत् ही उठ खड़ी होती है। और प्रजाएं उन्नति के मार्ग पर गमन करती है। (स्वः पिन्वते) राष्ट्र समस्त सुखो को उत्पन्न करता है, और आकाश जल यथासमय वर्षाता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त प्रजाजन के लिये (इरा जायते) अन्न भी पर्याप्त मात्रा मे उत्पन्न होता है।

यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति ।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः॒ स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ ५।२७

भा०—जिस प्रकार मेघ के वृष्टि कर्म होने पर (पृथिवी नंनमीति) पृथिवी के रजोरेणु नीचे आ जाते है और (शफ़वत् जर्भुरीति) खुरो वाले गौ आदि पशु पुष्ट होते है और (विश्वरूपाः ओषधीः) सब प्रकार की ओषधि वनस्पतिएं पुष्ट होती है और (महि शर्म यच्छति) मेघ प्रजाओं को भारी सुख देता है उसी प्रकार हे (पर्जन्य) शत्रु-विजय-कारिन्! हे प्रजाओ के पोषक! (यस्य) जिस तेरे (व्रते) प्रजापालन रूप कर्म के अधीन (पृथिवी) समस्त भूमण्डल (नन्नमीति) विनय से झुकता है, और (यस्य व्रते) जिसके व्रत अर्थात् प्रजापालन करने पर (शफ्फवत्) खुरो वाले पशुगण भी (जर्भुरीति) खूब पालित पोषित होते है। (यस्य व्रते) जिसके प्रजापालन करने पर (विश्वरूपा ओषधीः) सब रूपवती, तेज वा वीर्य को धारण करने वाली स्त्रियें भी (जर्भुरीति) उचित रीति से पालित पोषित होती है। (सः) वह तू हे राजन्! (नः) हम प्रजाजनो को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छ) प्रदान कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धाराः॑ ।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुने॒ह्यपो नि॑षि॒ञ्चन्नसु॑रः पि॒ता नः॑ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुत दिवः वृष्टि रान्ति) वायुगण अन्तरिक्ष

से वृष्टि मे प्रदान करते हैं और (वृष्णः धारा प्र पिन्वत) बरसने वाले मेघ की जल धाराओ को बरसाते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे लिये (दिवः) व्यापार, व्यवहार से (वृष्टि) ऐश्वर्य की समृद्धि, पुष्टि, (ररीध्वम्) प्रदान किया करो । और (वृष्ण.) राष्ट्र का प्रबन्ध करने मे कुशल (अश्वस्य) अश्ववत् हृष्ट पुष्ट और राष्ट्र के भोक्ता राजा के (धाराः) आज्ञा वाणियो को और अश्व सैन्य की 'धारा' नाम विशेष चालो को (प्र पिन्वत) खूब परिपुष्ट करो (स्तनयित्नुना असुरः निषिञ्चन् अर्वाङ् एति) जिस प्रकार मेघ वर्षता हुआ गर्जनशील विद्युत् के साथ आता है उसी प्रकार (नः पिता) हमारा पितावत् पालन करने वाला राजा (अपः) राज्यकर्म को और आप्त प्रजाजनों को (नि सिञ्चन्) सर्व प्रकार से पुष्ट करता हुआ (स्तनयित्नुना) उपदेश करने वाले विद्वान् वा गर्जनशील योद्धाजन वा अस्त्र समूह के साथ (अर्वाङ् एति) हमे प्राप्त हो ।

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सुकर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥

भा०—मेघ (यथा क्रन्दति गर्भम् आधत्ते, उदन्वता रथेन परिदयति, विषितं न्यञ्चं दृतिं सुकर्षति, उद्वत. निपादाः समा भवन्ति तथा) जिस प्रकार गर्जता है, विद्युत् चमकाता है, जलमय रम्य रूप से आकाश मे व्यापता है, नीचे आ उतरते हुए विदीर्ण मशक समान अपने 'दृति' अर्थात् जल पूर्ण भाग को अच्छी प्रकार बन्धन रहित सा करके खोल देता है और ऊंचे और निम्न खड्डो वाले सब प्रदेश जलमय होकर एक समान हो जाते हैं, उसी प्रकार हे राजन् ! प्रजापालक पुरुष ! तू (अभि क्रन्द) स्वय सब ओर गर्जना कर, अपनी घोषणाएं दे (स्तनय) घोर नाद कर, अथवा स्तन के समान मेघ जिस प्रकार संतति-पालनार्थ दूध से भरता वा पुष्ट हो जाता है उसी प्रकार मेघ भी प्रजापोषणार्थ जल

से भर कर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे राजन् तू भी प्रजापालनार्थ (स्तनय) स्तनवत् उत्तम परिपोषक अन्न आदि देने में समर्थ, समृद्ध, पुष्ट होजा। तू (गर्भम् आधाः) गृहीत राष्ट्र का पालन पोषण कर, राष्ट्र को अपने गर्भ अर्थात् वश में सुरक्षित रख। (उदन्वता रथेन परिदीयाः) बलशाली रथ सैन्य से राष्ट्र की सब ओर से रक्षा कर वा उस प्रकार के सैन्यसहित राष्ट्र मे बस और राष्ट्र को बसा वा शत्रु का नाश कर। (न्यञ्चं) नीचे विनय से झुकने वाले (वि-षितं) बन्धनादि से मुक्त वा विशेष रूप के नियम-प्रबन्धादि से प्रबद्ध, (दृतिं) शत्रु बल को विदारण करने में समर्थ सैन्य बल को (सुकर्ष) अच्छी प्रकार सञ्चालित कर और विनीत, बन्धन युक्त, (दृतिं) भयप्रद शत्रु बल को (सुकर्ष) खूब निर्बल कर जिससे (उदन्वतः) उत्कृष्ट बल वाले और (नि-पादाः) निम्न स्थान पर स्थित सभी प्रजाजन भी (समाः भवन्तु) न्याय दृष्टि से समान हो जांय। उत्तम पदस्थ निम्नों को न सता सकें। 'सुकर्ष'—'स कर्षन् महती सेना॥ रघु०॥यश्च सेनां विकर्षति ॥ महाभा० इत्यादि प्रयोगेषु कृषधातोः सैन्यस्य नायकवत् सञ्चालनार्थे प्रयोगेऽतिप्राचीनः।

म॒हान्तं॒ कोश॒मुद॑चा॒ नि षि॑ञ्च॒ स्यन्द॑न्तां कु॒ल्या विषि॑ताः पु॒रस्ता॑त्। घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी व्यु॑न्धि सुप्रपा॒णं भ॑वत्व॒घ्न्याभ्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ (महान्तं कोशम् उत् अञ्चति) बड़ी भारी जल राशि को अपने भीतर उठाता है, (वि सिञ्चति) उसे बरसाता है, (स्यन्दन्ति कुल्या विषिताः) बहुतसी धारा निर्बन्ध होकर छूट बहती हैं और मेघ, आकाश और भूमि दोनो को (घृतेन व्युनत्ति) जल से आर्द्र कर देता है (अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवति) गौ आदि पशुओं के पीने के लिये बहुत जल हो जाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (महान्तं कोशम्) बड़े भारी कोश, ख़जाने को (उद् अच) उन्नत कर, और बहुत बलवान् (कोशं) खड्ग अर्थात् शस्त्र बल तथा धन को उत्पन्न कर, (नि सिञ्च) उस कोश

को शस्त्र को प्रजागण और शत्रु पर बरसादे, जिससे (पुरस्तात्) आगे (वि-सिताः) कटी (कुल्याः) राष्ट्र मे जल का और रण मे रक्त की नहरे (स्यन्दन्ताम्) वह जावे और (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनो को (घृतेन) स्नेह से (वि-उन्धि) आर्द्र कर, वे दोनो प्रेम से एक दूसरे पर कृपालु और अनुरक्त रहे । (अघ्न्याभ्यः) गौओ के समान अहिंसनीय प्रजाओ के लिये (सुप्रपाणं) उत्तम सुखजनक पालन की व्यवस्था (भवतु) हो ।

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पर्जन्य) शत्रुओ के विजेता और प्रजाओ को समृद्धि से तृप्त करने हारे ! (यत्) जब तू मेघ के समान (कनिक्रदत्) गर्जता और (स्तनयन्) विद्युत् के समान कट कटाता अथवा (स्तनयत्) स्तन के समान मधुर सुखों की वृष्टि करता हुआ (दुष्कृतः हन्ति) दुष्टाचारियो का नाश करता है तब (इदं विश्वं) यह विश्व (यत् किं च) जो कुछ भी (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी पर स्थावर जंगम सृष्टि है वह (प्रति मोदते) तुझे देख प्रसन्न होती है ।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (वर्षम् अवर्षीः) मेघ बरसता है (धन्वानि वर्षम् अव०) मरुस्थलो और अन्तरिक्ष प्रदेशो को अतिक्रमण करता हुआ भी वृष्टि को धारण करता है, (ओषधीः भोजनाय अजीजन) ओषधियो को सब जन्तुओ के भोजन के निमित्त उत्पन्न करता है (प्रजाभ्यः मनीषाम् विदः) प्रजाओ से प्रशंसा प्राप्त करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अति एतवा उ) अपने शत्रुगण को अतिक्रमण करने और उनसे बद

जाने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (गृभाय) ग्रहण कर और (वर्षम् अकः) शर वृष्टि कर । (अवर्षीः) प्रजाओं पर सुखों की वृष्टि कर और (भोजनाय) प्रजाओं के भोग और भोजन के निमित्त (ओषधीः) अन्न शाक आदि वनस्पतियां (अजीजनः) राष्ट्र में उत्पन्न कर और (भोजनाय) स्वयं राष्ट्र को भोगने और पालन करने के लिये (ओषधीः जनय) शत्रुदाहक पराक्रम को धारण करने वाली सेनाओं को भी प्रकट कर। (उत् कम्) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं की भी (मनीषाम्) उत्तम सम्मति को (विदः) प्राप्त कर लिया कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८४]

अत्रिर्ऋषिः । पृथिवी देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (पर्वतानां मह्ना) पर्वतों और मेघों के महान् सामर्थ्य से (खिद्रं बिभर्त्ति, भूमिं च जिनोषि) दीन प्रजा को पालती और भूमि को जल धाराओं और नदियों से सींचती है उसी प्रकार हे (पृथिवि) पृथिवी के समान विशाल हृदय वाली ! हे (प्रवत्वति) उत्तम गुणों वाली ! हे (महिनि) पूज्ये ! दानशीले महान् सामर्थ्य वाली ! तू भी (पर्वतानां मह्ना) मेघ या पर्वतों के तुल्य उदार और पालन सामर्थ्यों से युक्त पुरुषों का पालन कर, और अपनी (भूमिं) अन्न-सस्योत्पादक भूमि और सन्तत्युत्पादक अंग को भी (प्र जिनोषि) उत्तम रीति से सींच और उत्तम प्रजा उत्पन्न कर ।

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

भा०—हे (विचारिणि) विचार करने वाली स्त्रि ! वा राजसभे ! (स्तोमास·) उत्तम विद्वान् पुरुष (अक्तुभिः) सब दिन (त्वा प्रति स्तोभन्ति) तेरी स्तुति, प्रशंसा करें। (या) जो तू पृथिवी के समान हे (अर्जुनि) उषा के तुल्य कमनीये ! शुद्धाचरण वाली ! एवं प्रकाशवन् अर्थ सञ्च करने हारी ! तू (हेषन्तं वाजं न) हिनहिनाते अश्व के समान गर्जते (पेरुं) मेघ को पृथिवी के समान, पालक पुरुष, अर्धांग सुप्रसन्न और पूरक पति को (अस्यसि) सन्मार्ग में प्रेरित करती, ऊपर उठाती है। उसके अभ्युदय, और यश का कारण होती है।

दृळ्हा चि॒द्या वन॒स्पती॑न्क्ष्म॒या दर्ध॒र्ष्योज॑सा ।
यत्ते॑ अ॒भ्रस्य॑ वि॒द्युतो॑ दि॒वो वर्ष॑न्ति वृ॒ष्टयः॑ ॥ ३ ॥ २९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (दृढ़ा चित्) दृढ़ होकर (क्ष्मया) सामर्थ्य से (ओजसा) और बल से (वनस्पतीन् दर्धर्त्ति) बड़े २ वृक्षों को धारे रहती है उसी प्रकार हे स्त्री वा राजशक्ति (या) जो तू (दृढा) दृढ रहकर (वनस्पतीन्) ऐश्वर्यों के पालक महावृक्षवत् आश्रय दाता पुरुषों को (ओजसा) पराक्रम, तेज से और (क्ष्मया) क्षमाशीलता से वा भूमि के बल से (दर्धर्षि) धारण कर रही है और (यत्) जो (ते) तेरे (अभ्रस्य) मेघवत् सुखप्रद धन की (विद्युत·) विशेष कान्ति वाली (वृष्टय·) सुखों की वृष्टियें (दिवः) आकाश में मेघ की बिजुली युक्त वर्षाओं के समान तेरी कामना और सद्व्यवहार से (वर्षन्ति) बरसती हैं इससे तू अतिपूज्य है। इति एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो सेनापति (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी राष्ट्रपति पद की प्राप्ति के लिये (शमिता इव) विघ्न शमन करने वाले के समान (वि जघान) विघ्नों का नाश करता है और (चर्म) बिछाने योग्य मृग छाला के समान (पृथिवीम्) पृथिवी को (शमिता इव) शमसाधक योगाभ्यासी के समान ही (उपस्तिरे) विस्तृत कर अपना आश्रय बनाता है उसपर विजय करता है। उस (सम्राजे) सम्राट् (वरुणाय) दुष्टों और उपद्रवों के निवारण करने में समर्थ श्रेष्ठ जनों के रक्षक गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य शास्त्रों में निष्णात एवं जगत् प्रसिद्ध पुरुष के लिये (बृहत् अर्च) बहुत बड़ा सत्कार कर और (गभीरं) गम्भीर अर्थ वाला, (प्रियं) प्रिय, मनोहर (ब्रह्म) ज्ञान वर्धक, सर्वोत्तम ज्ञान का उसे उपदेश कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—हे विद्वन्! तू सबके सम्राट्, दुःखवारक, सर्वप्रसिद्ध, सूर्यवत् स्वयं प्रकाश उस प्रभुकी उपासना कर, प्रिय वेद का अभ्यास कर। प्रभु सर्वत्र व्यापक है और भूमि को बिछौने के समान बिछाये है।

वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २ ॥

भा०—वह (वरुणः) उत्तम पद के लिये वरण करने योग्य राजा (वनेषु) सूर्यवत् भोग्य पदार्थों वा वन उपवनों में (अन्तरिक्षं) जल को (वि ततान) विविध उपायों से प्रसारित करे। (अर्वत्सु वाजम्) अश्वों में वेग और अश्व सैन्यों के आधार पर संग्राम की (अदधात्) तैयारी या योजना करे। (उस्रियासु पयः) गौओं में पुष्टि कारक दूध, भूमियों में जल और अन्न को (अदधात्) पुष्ट करे और जो (हृत्सु) हृदयों में

(क्रतुं) ज्ञान को (अदधात्) स्थापित करे, (अप्सु अग्निम्) जलों में अग्निवत् प्रजाओं में ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को नेता को (अदधात्) नियत करे। वह (दिवि सूर्यम् अदधात्) आकाश में सूर्य के समान इस पृथिवी में तेजस्वी पुरुष को और ज्ञान रक्षा में सर्वप्रकाशक विद्वान् को प्रधान पद पर स्थापित करे, और (अद्रौ सोमम् अदधात्) मेघ में जल और पर्वत पर ओषधिवत् शस्त्र बल पर ऐश्वर्य को पुष्ट वा धारण करे। (२) परमेश्वर ने सूक्ष्म जलों में या वृक्षों के ऊपर भी आकाश ताना है, अश्वों में वेग, गौओं में दूध, भूमियों में जल, अन्न, हृदय में कर्म और ज्ञान सामर्थ्य, समुद्रों में बडवानल, वा रसों में विद्युत्, आकाश में सूर्य, मेघों में जल, पर्वतों पर सोम आदि ओषधि वर्ग बनाया है। वही 'वरुण' सर्वोपास्य है।

नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) प्रजा के कष्टों का वारण करने वाला सम्राट् राजा (कवन्ध) जल को (नीचीनवारं) नीचे के स्थानों में नाना धाराओं में विभक्त होकर बहने वाला करे। अर्थात् पर्वत आदि उच्च स्थलों में स्थित जल को नीचे के प्रदेशों में नहरों या नलों द्वारा वहाकर सेचन आदि का प्रवन्ध करे। वह (रोदसी) आकाश और भूमि, शासक और शास्य वर्ग दोनों के बीच (अन्तरिक्षम्) अन्तःकरण में बसने वाला, जलवत् पारस्परिक स्नेह उत्पन्न करे। (तेन) उससे (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त 'भुवन', भूगोल का राजा (वृष्टि भूम यवं न) जौ के बड़े और बहुत से यव के खेतों को वृष्टि के समान सुखदायक होकर (भूम) बहुत से प्रजाजनों को (वि-उनत्ति) विविध उपायों से स्नेहार्द्र करे। (२) परमेश्वर मेघ जलआदि बनाता विश्व का राजा होकर सबके हृदयों को स्नेहार्द्र करता वरुण जलों से सेचता है।

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥

भा०—(यदा) जिस समय (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, प्रजा के उपद्रवों और कष्टों का वारक राजा (दुग्धं) गौ से दूध के समान पृथिवी से अन्न (वृष्टि) प्राप्त करना चाहे (आत्-इत्) तब वह (पृथिवीम्) अति विस्तृत भूमि को (उत) और (द्याम्) आकाश को (अभ्रेण) मेघ से (उनत्ति) जलों द्वारा गीला करे । अर्थात् यज्ञ और वर्षा के उपायों से आकाश मे मेघो को उत्पन्न करे और नहरो मेघो से भूमि सेचने का प्रबन्ध करे । हे (वीराः) वीर पुरुषो ! आप लोग (तविषीयन्तः) सेनाएं बनाते हुए (पर्वतासः) पर्वतो के समान अचल और मेघो के समान शर वर्षी होकर (वसत) रहो और दुष्टों को (श्रथयन्त) शिथिल करते रहो । जिससे प्रजा सुख से रहे । इसी प्रकार जब राजा प्रजा से ऐश्वर्य दोहना चाहे, तो वह शत्रु की भूमि को रक्त से और स्व प्रजा को स्नेह से और (द्यां) तेजस्वी शासक वर्ग को भी स्नेहार्द्र करे । वीर युद्ध मे अचल एवं शर वर्षी हों प्रजा के आश्रय हों । (२) वरुण, परमेश्वर भूमि के वृष्टि और आकाश को जल से गीला करता है, जब चाहता है अन्नादि से पूर्ण करता है । मेघ और वायु बलयुक्त और विद्युत् युक्त होकर आकाश को आच्छादित करते है ।

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

भा०—मैं (असुरस्य) मेघ के व्रत को पालन करने वाले (श्रुतस्य) जगत् प्रसिद्ध, वेदों के विद्वान्, बहुश्रुत (वरुणस्य) प्रजा के दुखों को वरण करने वाले, सर्वश्रेष्ठ पुरुष की (इमाम् महीं मायां) इस बड़ी, आदरणीय बुद्धि का (सु-प्रवोचम्) उत्तम रीति से सब लोगों को उपदेश करूं । (यः) जो राजा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे (तस्थिवान्)

स्थित वायु के समान स्वयं बलवान् और निर्बल, वा वादी प्रतिवादियों के बीच न्यायासन पर विराज कर (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी रूप, प्रभाव या न्याय-प्रकाश से (मानेन इव पृथिवी) मापने के दण्ड से जैसे भूमि को मापा जाता है उसी प्रकार जो (मानेन) सर्वमान्य न्याय-दण्ड से (पृथिवीं ममे) भूमि का शासन करता है। (२) परमेश्वर सर्वप्राणप्रद होने से 'असुर' है, उसकी बड़ी भारी यह 'मान' अर्थात् निर्माण शक्ति है जो अन्तरिक्ष में सूर्य के साथ पृथिवी को भी मानदण्ड से मापने के समान (मानेन) निर्माण कौशल से स्वयं मापता, व्यापता और बनाता भी है। अर्थात् वही माता और वही पिता है।

इ॒मामू॒ नु क॒वित॑मस्य मा॒यां म॒हीं दे॒वस्य॒ नकि॒रा द॑धर्ष ।
एकं॒ यदु॒द्ना न पृ॒णन्त्येनी॑रासि॒ञ्चन्ती॑र॒वन॑यः समु॒द्रम् ॥ ६ ॥

भा०—(कवि-तमस्य) समस्त क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच में सर्व-श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, सर्वविजयी, तेजस्वी राजा और प्रभु की (इमाम् उ नु मही मायाम्) इस बड़ी भारी बुद्धि और निर्माण-चातुरी को (नकिः आ दधर्ष) कोई भी तिरस्कार नहीं कर सकता, (यत्) कि (एनीः अवनयः) जिस प्रकार सदा बहती हुई नदियें भी (आ सिञ्चन्तीः) सब ओर से जल सेचती हुई भी (समुद्रं उद्ना न पृणन्ति) समुद्र को जल से नहीं भर पाती उसी प्रकार (एनीः) सब ओर से प्राप्त, (अवनयः) ये भूमिवासिनी प्रजाएं या भूमियें भी (एकं समुद्रं) एक समुद्र के समान अथाह बलशाली राजा को (आ सिञ्चन्तीः) सब प्रकार से सेचती हुई, अभिषेक करती हुई भी (न पृणन्ति) ऐश्वर्य से पूर्ण नहीं कर पाती।

अ॒र्य॒म्यं॑ वरुण मि॒त्र्यं॑ वा॒ सखा॑यं वा॒ सद॒मिद्भ्रात॑रं वा ।
वे॒शं वा॒ नित्यं॑ वरुणा॒रणं॑ वा॒ यत्सी॒माग॑श्चकृ॒मा शि॑श्र॒थस्तत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) सम्राट्, राजन्! सर्वश्रेष्ठ प्रभो! हम

(अर्यम्यं) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को वंधन मे बाधने वाले, पोलीस वा न्यायकारी, न्यायाधीश, (मित्र्यं) सर्वस्नेही ब्राह्मणगण, (सखायं वा) समान नाम पद वाले मित्रवर्ग, (सदम्) साथ वैठने वाले (भ्रातरं वा) भाई के प्रति (वा) अथवा (वेशं) सबके प्रवेश योग्य या सभास्थान वा गृह वा राष्ट्र मे अन्य देशों से आने जाने वाले वैश्य वर्ग या निकटवर्त्ती पड़ोसी और (अरणं वा) जो अपने से रण नहीं करते, उनके प्रति (यत् सीम् आगः चकृम) जो कभी अपराध करे ह राजन् ! तू (तत्) उसको और उसी समय (नित्यं शिश्रथः) सदा शिथिल करता रह, उस अपराध पर नियन्त्रण करके हमें अपराध न करने दिया कर। (२) परमेश्वर भी हमे उन सब पापों से बचावे ।

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ८।३

भा०—(दीवि न कितवासः) द्यूत कार्य मे जूआ खोर लोग जिस प्रकार योंही निराधार छल कपट से एक दूसरे पर दोष आरोप करते हैं उसी प्रकार जो (कितवासः) तेरा क्या है ? इस प्रकार डरा धमका कर अन्यों का माल झपट लेने वाले छली लोग भी (यत् रिरिपुः) जो हम पर चोरी आदि का मिथ्या दोपारोप करें (यद् वा घ सत्यम्) और जो सचमुच हमारा कसूर हो, (उत) और (यत् न विद्म) जिस अपराध को हम नहीं जानते और कर बैठते हैं (ता सर्वा) उन सब अपराधों को हे (देव) दण्ड देने हारे ! हे (वरुण) दुष्टवारक ! तू (शिथिरा इव) ढीला सा (वि ष्य) करके हमसे छुड़ा दे । राष्ट्र के पाप की प्रवृत्तियों को सदा दबाते रहने से वे ढीली पड़कर प्रजा में से आप मे आप, डाल से फल के समान या वंधी रस्सी के समान छूट जाय (अध) और (ते) तेरे हम (प्रियासः स्याम) प्रिय हों । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[८६]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ४, ५ स्वराडुष्णिक् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ६ विराट् पूर्वानुष्टुप् ॥

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्नि, अग्रणी नायक ! और हे इन्द्र, ज्ञान को साक्षात् दिखाने, अज्ञान को भेदने वा दूर भगा देने वाले ! हे अग्ने, पाप को दग्ध करने वाले ! आप दोनों (वाजेषु) संग्रामों में विद्युत और अग्नि वा सेनापति और नायक के तुल्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के अवसरों में (यम् मर्त्यम् अवथ) जिस मनुष्य को रक्षा करते और तृप्त करते हो और अन्नों पर जिसको पालते हो (सः) वह (दृढा चित्) बड़े २ दृढ शत्रु सैन्यों को वीर पुरुष के समान, दृढ़, जटिल अवसरों को (प्र भेदति) ऐसे भेदकर पार हो जाता है, जैसे (त्रितः) तीनों वेद विद्याओं में पारंगत पुरुष (द्युम्नाः वाणीः प्र भेदति) यशोजनक, उत्तम ज्ञानप्रकाशक व वेदवाणियों के मर्मों को भेदकर, भली प्रकार जानकर, इस अज्ञान-सागर से पार उतर जाता है ।

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (पृतनासु) सेनाओं के बीच सेनापति और नायक के समान (पृतनासु दुस्तरा) मनुष्यों के बीच में रहते हुए, मान-आदर, शक्ति और ज्ञान में लांघे नहीं जा सकते, (या) और जो दोनों (श्रवाय्या) प्रशंसनीय हैं (या च) और जो दोनों (पञ्च) पांचों प्रकार की (चर्षणीः अभि) ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर मन और आत्मा के तुल्य प्रजाओं के ऊपर राजा और संचालक

है (ता इन्द्राग्नी) उन दोनो ऐश्वर्य युक्त और अग्निवत् तेजस्वी समस्त पुरुषो को हम (हवामहे) आदरपूर्वक स्वीकार करते है।

तयोरिदमवच्छ्रवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥

भा०—इन्द्र-अग्नि का स्वरूप दर्शाते है। (तयोः) उन दोनो का (शवः) बल और ज्ञान (अमवत्) गृह के समान शरण देने वाला और उन दोनों (मघोनोः) दानयोग्य धन और ज्ञान के स्वामियों की (तिग्मा दिद्युत्) तीक्ष्ण शस्त्र और ज्ञान वाणी होती है, (गभस्त्योः) बाहुओ के समान राष्ट्र वा अधीन शिष्य को ग्रहण करने हारे राजा आचार्य दोनो का (शवः) शक्ति, वाणी रूप बल (द्रुणा) रथ तथा वेग से (गवां वृत्रघ्ने) वाणियों और भूमियो के बाधक शत्रु और अज्ञान के नाश करनेवाले (प्रति आ ईषते) बाधक कारणो का नाश करता है। विद्वान् का ज्ञान और बलवान् राजा का बल दोनों राष्ट्र की दो बाहुओ के समान है वह दोनो का बल क्रम से शत्रु और अज्ञान का नाश करता है। एक द्रुतगामी ज्ञान से दूसरा द्रुतगामी रथ या काष्ठ के बने रथ या धनुष से।

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुविदारक राजन्! और हे अग्ने! ज्ञान से विद्याओं का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुष! हम लोग (वाम्) आप दोनो के (रथानाम्) रथो और रमणीय, ज्ञान रसो के (एषे) प्राप्त करने के लिये आप दोनो को (हवामहे) हम बुलाते है। आप दोनो (तुरस्य) शत्रुनाशक, अज्ञानविघातक सैन्य और ज्ञान के (पती) पालक है। और (विद्वांसा) ब्रह्मवेत्ता और राष्ट्र लाभ करने वाले, (गिर्वणस्तमा) उत्तम वाणियो का सेवन करने वाले हो।

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥

भा०—आप (अनु द्यन्) सब दिनो (वृधन्तौ) बढ़ते हुए (देवौ) दानशील तथा तेजस्वी, (अदभा) अहिंसनीय है, (अर्हन्ता) स्वयं पूज्य और अन्यों का सत्कार करने वाले, (ता) उन आप दोनो (देवौ) ज्ञान और धनादि सुख के दाताओ को (मर्ताय) मनुष्यो के हित के लिये मैं (अशा इव) एक ही पदार्थ के दो पूरक भागो के समान (पुरः दधे) अपने समक्ष रखता हूं ।

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ६।३२

भा०—(इन्द्राग्निभ्याम् एव) उन दोनो ऐश्वर्यवान् शत्रुविदारक इन्द्र और अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक क्षत्र और ब्रह्म दोनो से (एव) ही (अद्रिभि पूत घृत न) मेघो से प्राप्त जल तथा (अद्रिभिः पूतं घृत न) प्रस्तर खण्डों से कुटे छने द्रवित हुए ओपधि रस के समान (हव्यं) खाने योग्य (शूष्यं) बलकारक अन्नवत् ज्ञान और बल प्राप्त होते है । (ता) वे दोनो (गृणत्सु सूरिषु) उपदेश करने वाले विद्वानों मे (बृहत श्रव) बड़ा भारी श्रवण करने योग्य ज्ञान और यश और अन्न (बृहत रयिम्) बड़ा भारी धन (दिधृतम्) धारण करे और वे (गृणत्सु इषं दिधृतम्) उपदेष्टा जनों के निमित्त (इष) प्रबल इच्छा प्रेरणा या शासन बल, अन्न और सैन्य को भी (दिधृतम्) धारण करें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[८७]

प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒याम॑रुत् ।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खाद॑ये त॒वसे॑ भ॒न्दद॑िष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से ॥ १ ॥

भा०—जो (गिरिजाः) वाणी मे प्रसिद्ध और (एवया-मरुत्) उत्तम गमन करने योग्य मार्गो पर जाने और पहुंचाने वाला और वायु के समान बलवान् ज्ञानी पुरुष है उस (महे) महान् (मरुत्वते) मनुष्यों के स्वामी, (विष्णवे) विविध विद्याओं के प्रवाह बहाने वाले, व्यापक सामर्थ्यवान् प्रभु पुरुष के आदर के लिये, उसको प्राप्त करने के लिये (व') आप लोगो की (मतयः) बुद्धियां (प्र यन्तु) सदा आगे बढ़े । हे विद्वान् पुरुषो ! (वः मतयः) आप लोगों मे से जो मननशील ज्ञानी पुरुष है वे भी उक्त स्वामी के प्राप्त करने के लिये प्रयत्नवान् हो । और वे (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये, (प्र-यज्यवे) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य (सु-खादये) उत्तम रीति से ऐश्वर्यों के भोक्ता, (तवसे) सर्वशक्तिमान् (भन्दिष्टये) कल्याणकारी दान, सत्संगादि से युक्त, (धुनि-व्रताय) दुष्टो को कंपा देने वाले कर्म करने मे समर्थ है उसके आदरार्थ आप लोगो की बुद्धियां, वा आप मे से बुद्धिमान् जन (प्र यन्तु) आगे बढ़े । (२) परमेश्वर सब जीवों का स्वामी होने से 'मरुत्वान्' है । वेद मे प्रसिद्ध होने से 'गिरिजाः', ज्ञान मार्ग पर जाने वाले जीवो का स्वामी वा प्राणो का प्राण होने से 'एवयामरुत्' है । वह बलमय होने से 'शर्धः' सर्वैश्वर्य दाता होने से 'प्रयज्यु' सर्व जगत् का संहारक होने से 'सुखादि' सब जगत् को अपने कर्म से सञ्चालक होने से 'धुनिव्रत' है । उसकी (शवसे) ज्ञान बलादि प्राप्ति के लिये उपासना करो । उसकी स्तुति करो ।

प्र ये जा॒ता म॑हि॒ना ये च॒ नु स्व॒यं प्र वि॒द्मना॑ ब्रु॒वत॑ एव॒याम॑रुत् ।
क्रत्वा॒ तद्वो॑ मरुतो॒ नाधृ॒षे शवो॑ दा॒ना म॒ह्ना तदे॑षा॒मधृ॑ष्टासो॒ नाद्र॑यः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुत) वीर वा विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो आप लोग (महिना विघ्नना जात) बड़े भारी ज्ञान सामर्थ्य से प्रसिद्ध है और (ये च नु स्वयं विघ्नना कत्वा प्र ब्रुवते) जो स्वयं अपने ज्ञान बल से और कर्म द्वारा भी अन्यो को उत्तम उपदेश करते है (तत् वः) उन आप लोगो के (शवः) बल को (एवयामरुत्) मार्गो वा यान साधनो से जाने वाला मै सामान्य मनुष्य कभी (न आधृषे) तिरस्कार न करूं। हे सामान्य जनो ! आप लोग भी (एषाम्) इन आपके (महा दाना) बड़े भारी विद्यादि दान से (शवः) सदा ज्ञान प्राप्त करके (अधृष्टासः) कभी भी ढीठ, न रहकर विनीत (अद्रयः) मेघ के समान विनम्र होकर अन्यो को धन, ज्ञान आदि देने वाले होवो।

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्। न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष (बृहतः दिवः) बडे तेजस्वी सूर्यवत् ज्ञान प्रकाशक गुरु से (शृण्विरे) ज्ञान श्रवण करते है और (एव-यामरुत्) शिष्य जनो को ज्ञान मार्ग से ले जाने हारे गुरु की (गिरा) वाणी से ही (सु-शुक्वान) उत्तम रीति से शुद्ध कान्तियुक्त होकर (सु-भ्व) उत्तम सामर्थ्यवान्, ज्ञान वीजो के लिये उत्तम भूमिवत है और (येषां सधस्थे) जिनके साथ रहने मे (इरी) उनका सञ्चालक गुरु भी (न ईष्टे) कभी इनको भय या त्रास उत्पन्न नही करता, वे आप लोग (अग्नय. न) अग मे विनयी, एवं अग्निवत् तेजस्वी, (स्व-विद्युत) स्वयं विशेष दीप्तियुक्त और (धुनीनाम्) उत्तम वाणियों के, वा (स्पन्द्रास अथवा स्पन्द्रासः प्र) प्रेरित करने वाले ज्ञान रस को वहाने वाले होवो

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।

यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥

भा०—सेनापति का वर्णन (सः उरुक्रमः) वह महान् पराक्रमी (एवयामरुत्) गमन साधन रथों से जाने वाले शत्रुमारक, बलवान् पुरुषों का सेनापति (समानस्मात् सदसः) समान, अनुरूप, अपने महागृह से (निश्चक्रमे) निष्क्रमण करता है। वह (शेवृधः) सुख बढ़ाने वाले (विष्पर्धसः) विशेष स्पर्धा से युक्त (विमहसः) विशेष महान् सामर्थ्य वाले पुरुषों को अश्वों के समान (त्मना) अपने बल से (यदा) जब (अधि अयुक्त) उनको अध्यक्ष रूप से नियुक्त करता है तब वह (स्नुभिः) उन अभिषिक्त (नृभिः) नायकों से (जिगाति) विजय प्राप्त करता है। (२) इसी प्रकार बालक निष्क्रमण काल में अपने अल्प प्राणों को वश करे।

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्। येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—वह (अमवान्) बलवान् (एवयामरुत्) पूर्वोक्त वेग से जाने वाले वीर सैनिकों का स्वामी (वृषा) मेघवत् शरवर्षी, वृषभवत् बलवान् प्रबन्धकर्त्ता, (त्वेषः) तेजस्वी, (ययिः) प्रयाणशील, (तविषः) बलवान् होकर (स्वन.) भारी शब्द के समान वा उपदेष्टा के समान हो (रेजयत्) वह आप लोगों को सञ्चालित करे। (येन) जिसके साथ आप लोग (स्व-रोचिषः) स्वयं कान्तिमान् (स्थाः-रश्मानः) स्थिर किरणों के समान वा स्थिर स्वायत्त बागडोर वाले, (हिरण्यया) स्वर्णवत् कान्ति युक्त, (सु-आयुधासः) अपने शस्त्रबल धारण करते हुए, (इष्मिण.) धनुष बाणवान् होकर (असहन्त) विजय कर्म करें। (ऋञ्जत) और अपना कार्य सम्पन्न करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ।

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्। स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृद्ध-शवसः) अति अधिक बढ़े हुए बलशाली वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (महिमा) महान् सामर्थ्य (अपारः) अपार है। उसको कोई शत्रु लांघ नहीं सकता। (वः) आप लोगों के (त्वेषं) अति तीक्ष्ण तेज और (शवः) बल को (एवयामरुत्) रथादि से प्रयाण करने वाले मरुद् वीरों का स्वामी सदा (अवतु) रक्षा करे और उसको पूर्ण, तृप्त, सुप्रसन्न करता रहे। आप लोग (अग्नयः न) अग्नियों तथा ज्ञानवान् पुरुषों के समान (शुशुक्वांसः) सदा तेजस्वी, कान्तिमान् होकर स्वामी के (प्रसितौ) उत्तम बन्धन और उत्तम नियन्त्रण तथा उसके (सदृशि) सम्यक् प्रकार के निरीक्षण से (स्थातारः) स्थिर रूप से नियत होकर (स्थन) रहा करो। और (ते) वे आप लोग (नः) हमें (निदः) निन्दा करने, निकृष्ट नीति से छेदन भेदन करने वाले, दुःखदायी शत्रु से (उरुष्यत) रक्षा किया करो।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत्। दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥

भा०—(येषाम्) जिन (अद्भुत-एनसाम्) अपराधरहित, निष्पाप जनों के (महः शर्धांसि) बड़े शत्रु हिंसक बल, सैन्य आदि हैं और जिनके (अज्मेषु) संग्रामों के अवसरों पर (दीर्घं) अति दीर्घ, (पृथु) विस्तृत, (पार्थिवम्) पृथिवीमय, वा पृथिवी पर बना हुआ (सद्म) घर है (ते) वे (रुद्रासः) दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने हारे, सज्जनों को उत्तम उपदेश करने हारे वीर और विद्वान् जन (यथा) जिस प्रकार

(सुमखाः) उत्तम यज्ञशील (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (तुविद्युम्ना.) बहुत प्रकाशमान् होकर (एवयामरुत्) रथादि साधनों से जाने वाले वीर पुरुषों तथा ज्ञान मार्गों से जाने वाले विद्वान् पुरुषों की रक्षा करें उसी प्रकार वे भी हमारी रक्षा करें ।

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् तीव्र वेग से जाने वाले वीरो ! प्रजाजनो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अद्वेषः) द्वेषरहित होकर (नः गातुम्) हमारी वाणी को श्रवण करो । हमारी (गातुम् एतन) भूमि को प्राप्त करो । (एवयामरुत्) पूर्वोक्त प्रकार से रथगामी वीरों वाले (जरितुः) उपदेष्टा, आज्ञापक पुरुष के (हवं) आह्वान का (श्रोता) श्रवण करो । हे (समन्यवः) समान ज्ञान और उग्रता, मन्यु क्रोधवान् पुरुषो ! आप लोग (रथ्यः न) रथी योद्धाओं के समान (स-मन्यव.) क्रोध से प्रचण्ड होकर (विष्णोः) व्यापक शक्तिमान् राजा के (महः) बडे २ (दंसना) कर्मों को करो और (सनुतः) सदा (द्वेषांसि अप युयोतन) द्वेष भावों, शत्रुओं को दूर करो ।

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥ ३४ ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे (यज्ञियाः) यज्ञ, दान आदि सत्कार और सत्संग करने योग्य विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (यज्ञं गन्त) यज्ञ, आदर, सत्कार, सत्संग एवं देवपूजन आदि कर्म के अवसर पर प्राप्त होवो । हे

(एवयामरुत्) उत्तम रथों से जाने वाले पुरुषों के स्वामी के (सुशर्मि) उत्तम कर्म बतलाने वाले, (अरक्षः) विघ्नों से रहित (हवम्) आज्ञा वचन को (श्रोत) श्रवण करो। (यूयं) आप लोग (तस्य प्रचेतसः) उस उत्कृष्ट चित्त और ज्ञान से युक्त पुरुष के (व्योमनि) विविध रक्षाओं से सम्पन्न राज्य में (ज्येष्ठासः) बड़े भाइयों के समान और (पर्वतासः न) मेघ या पर्वत के तुल्य उदार और अचल, सहिष्णु होकर (दुर्धर्त्तवः) दुःखदायी कष्टों को भी सहारते हुए (स्यात) अचल होकर स्थिर रहो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः। इति षष्ठोऽध्यायः। इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति विद्यालंकार मीमांसातीर्थविरुदालंकृतेन श्री पं० जयदेवशर्मणा विरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

[१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पंक्तिः । २ स्वराट् पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ इति त्रयोदशर्चं मनोतासूक्तम् ॥

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! वीर एवं विद्वन् ! हे अग्रणी ! प्रभो ! (त्वं हि) क्योंकि तू (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ, सबसे प्रथम, अति प्रसिद्ध, (मनोता) ज्ञान और अन्यों के मनों को अपने में बांध लेने वाला, मन के समान अति वेग से जाने में समर्थ है । इसलिये हे (दस्म) दुःखों और अज्ञान के नाशक ! (अस्याः धियः) इस ज्ञान और कर्म का तू (होता) अन्यों को उपदेश करने वाला (अभवः) हो । (त्वं) तू (सीम्) सब प्रकार से हे (वृषन्) बलवन् ! मेघवत् ज्ञान का दान करने हारे ! तू (सहः) सहनशील, बल को और उसको (विश्वस्मै) सब प्रकार के (सहसे) बल पराक्रम को करने और (सहध्यै) विघ्न, बाधा एवं शत्रुजन को पराजित करने के लिये अपने बल को (दुस्तरीतु) अजेय, दुःसाध्य (अकृणोः) बना ।

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥२॥

भा०—(अध) और हे विद्वन् ! हे वीर नायक ! हे प्रभो ! तू (यजीयान्) सबसे उत्तम पूज्य, दानी, सत्संगी और (होता)

सबके भक्ति श्रद्धा प्रेम आदि से कहे वचनों, और दिये उपहारों को भी स्वीकार करने हारा होकर (इडः पदे) भूमि को प्राप्त करने के उत्तम पद पर वाणी के बीच में (नि असीदः) विराजमान् है । तू (ईड्यः) सबसे स्तुति करने योग्य होकर (इषयन्) सबको चाहता हुआ, सबको इष्ट प्रदान करता रह । (देवयन्तः नरः तं त्वा) उस तुझ सर्वप्रकाशक दान-शील की कामना करते हुए नायक लोग (चितयन्तः) तेरा ज्ञान लाभ करता हुआ (महो राये) बड़े भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वा अनु ग्मन्) तेरा ही अनुगमन करते हैं ।

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै॒स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वे) तेरे अधीन, तुझ में ही रमते हुए, तेरे ही आश्रित (जागृवांसः) तेरे ही निमित्त सदा जागते हुए, सावधान जन (रयि) दानशील तुझ को ही सर्वस्व जानकर तेरा ही (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं । वे (बहुभिः) बहुत से (वसव्यैः) शिष्यवत् अधीन वसने वाले प्रजावत् पुरुषों सहित (वृता इव यन्त) सन्मार्ग पर सदा सत्-पथ से जाते हुए का (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं । वे (विश्वहा) सदा ही (रुशन्तः) चमकते हुए (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान (दर्शतं) सबको ज्ञान प्रकाश दर्शाने वाले, स्वयं दर्शनीय (बृहन्त) महान (वपावन्त) बीज पैदा कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति वाले एवं शत्रुवत विघ्नों को छेदन भेदन शक्ति से सम्पन्न (दीदिवांस) तेजस्वी पुरुष का अनुगमन करते हैं ।

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ४ ॥

भा०—(देवस्य) समस्त सुखों के देने और समस्त ज्ञानों के

सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर के (पदं) ज्ञान करने और (श्रवः) श्रवण करने योग्य स्वरूप को (नमसा) नमस्कार, विनय पूर्वक (व्यन्तः) प्राप्त करते हुए (श्रवस्यवः) श्रवण योग्य ज्ञान के अभिलाषी जन उस (अमृक्तम्) परम पवित्र स्वरूप को (आयन्) प्राप्त करते हैं । वे परमेश्वर के (यज्ञियानि नामानि) यज्ञ अर्थात् उपासना योग्य नाना नामों को (दधिरे) धरते, उसका नाना नामों से स्मरण करते हैं, वे (भद्रायां) सुख और कल्याण करने वाले (सं-दृष्टौ) सम्यक् दृष्टि में विराजते हुए (रणयन्त) अति आनन्द लाभ करते हैं । (२) देव दाता राजा वा स्वामी के पद वा चरण का आदर करते हुए (श्रवस्यव) अन्न, आजीविका के इच्छुक लोग (अमृक्तं श्रवः) पवित्र अन्न को पाते हैं । वे उसके नाना आदरणीय पूज्य नाम धरते और सुखकारी प्रेममय संदृष्टि रखकर सुखी रहें । परस्पर भेद भाव दुर्दृष्टि न किया करें ।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ५।३५

भा०—(पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर हे राजन् ! हे परमेश्वर ! (क्षितयः) बसने वाले जीव और प्रजागण ! (त्वा वर्धन्ति) तुझे ही बढ़ाते हैं । तेरे ही यश की वृद्धि करते हैं । (रायः त्वा) समस्त ऐश्वर्य भी तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा ही गौरव बतलाते हैं । (जनानां उभयासः) मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों वर्ग भी तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा ही यशोगान करते हैं । तू ही (सदम् इत्) सदा ही वा आश्रय गृह के समान (मनुष्याणां त्राता) मनुष्यों का रक्षक और (तरणे) संसार-सागर को पार करने के निमित्त (चेत्यः) उत्तम दान देने हारा, (भूः) है । और तू ही (पिता माता) पिता माता के तुल्य पालक और उत्पादक है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् विद्वान् नेता आचार्य और प्रभु, परमेश्वर (सपर्येण्यः) सदा पूजा, उपासना, सत्कार, सेवा करने योग्य है। वह (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (होता) ज्ञान और सुखों का देने वाला और (यजीयान्) दान, सत्संग, मैत्रीभाव आदि करने में सबसे श्रेष्ठ होकर (नि ससाद) विराजता है। वह (मन्द्रः) स्तुत्य और आनन्द-प्रद है। हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! (तं) उस (दीदिवांसं) देदीप्यमान अग्निवत् स्वयं प्रकाश तेजस्वी (त्वां) आप को (दमे) घर में वा इन्द्रियों के दमन करने वा प्रजाशासन के निमित्त (ज्ञु-बाधः) घुटने मोड़कर (नमसा) विनयपूर्वक नमस्कार करते हुए (उप सदेम) समीप बैठें, तेरी उपासना करें।

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वयंप्रकाश! ज्ञानवन्! विद्वन्! नेतः! (वयं) हम लोग (सुम्नायवः) अपना सुख चाहते हुए और (देवयन्तः) तुझे चाहते हुए (सुध्यः) उत्तम सद्बुद्धि वाले होकर (त्वा ईमहे) तुझे प्राप्त करते, तुझ से (दिवः ईमहे) अपनी २ कामनाएं याचना करते हैं। (त्वं) तू (बृहता रोचनेन) बड़े भारी प्रकाश से सूर्य के समान (दीद्यानः) चमकता हुआ (विशः) समस्त प्रजाओं को (दिवः) नाना प्रकाशों के समान उनकी समस्त कामनाओं को (अनयः) प्राप्त कराता है, हमें भी प्राप्त करा।

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८

भा०—हम लोग (शश्वतीनां) सदा विद्यमान, स्थायी जीवों वा (विशां विश्पतिं) समस्त प्रजाओं के बीच में प्रजाओं के पालक प्रजापति और (चर्षणीनां) समस्त ज्ञानदर्शी, विद्वान् मनुष्यों के बीच (वृषभ) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्व-श्रेष्ठ, मेघवत उदार, बलवान् (नितोशनं) समस्त दुःखों और बाधक शत्रुओं के नाशने वाले (प्रेति-इषणिम्) प्राप्त पदार्थों के देने और चाहने वाले, अथवा (प्र-इति-इषणं) उत्तम पद को प्राप्त करने की सदा इच्छा करने और अन्यों को प्रेरणा करने वाले (इषयन्तं) और अन्यों को उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले, वा अन्नवत् पुष्ट करने वाले, (पावकं) परम पावन, (राजन्तम्) राजा के समान तेजस्वी देदीप्यमान (रयीणां) नाना ऐश्वर्यों, बलों और भोग्य सुखों के (यजतं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् नायक विद्वान्, प्रभु को हम सदा (ईमहे) प्राप्त हों और उसी की प्रार्थना, उपासना करें।

सो अ॑ग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आन॑ट् समिधा॑ हव्यदा॑तिम् ।
य आहु॑तिं परि वेदा॒ नमो॑भिर्विश्वेत्स वामा द॑धते त्वोतः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् प्रभो ! (यः) जो पुरुष (ते) तेरी (समिधा) समिधा सहित अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार देदीप्यमान, तेरे गुणों को प्रकाशित करने वाली स्तुति से (हव्य-दातिम्) अन्नादि दान क्रिया के तुल्य उत्तम वचन प्रदान (आनट्) करता है (सः) वह (ईजे) यज्ञ करता है, तेरा सत्संग करता है (सः शशये) वह तेरी स्तुति प्रार्थना करता है वह शान्ति लाभ करता है। और (यः) जो (नमोभिः) नमस्कारों सहित तेरे निमित्त (आहुति परिवेद) सब प्रकार के दान देता वा (नमोभिः) विनय सत्कारों सहित (ते आहुति परि वेद) तेरे नाम की पुकार करता है (स इत्) वह भी (त्वा-उतः) तेरे से सुरक्षित रहकर (विश्वा वामा) समस्त उत्तम ऐश्वर्य (दधते) धारण करता है।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१०॥

भा०—(नमोभि , समिधा हव्यैः) जिस प्रकार अग्नि को अन्नो. समिधाओं और हवन योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र क्रिया की जाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! हम लोग (अस्मै) इस (महे) महान्, गुणो से पूज्य (ते) तेरी (नमोभिः) उत्तम अन्नो, नमस्कारो और विनयपूर्वक सत्कारो से (समिधा) अच्छी प्रकार से चमकने वाली विद्या (उत) और (हव्यैः) उत्तम अन्नो, वचनो से (महि विधेम) बड़ा भारी सत्कार किया करें। और (वेदी) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली इस भूमि मे हे (सहसः सूनो) शत्रुपराभवकारी सैन्यबल के सञ्चालक राजन् ! विद्वन् ! हम लोग (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियो और (उक्थैः) उत्तम उपदेशों द्वारा प्रेरित होकर (ते) तेरी प्रदान की (भद्रायां सुमतौ) कल्याणकारिणी शुभमति के अधीन रहकर सदा (आ यतेम) सर्वत्र प्रयत्न करते रहें ।

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥

भा०—(यः) जो प्रभु (रोदसी) आकाशस्थ समस्त पिण्डो और इस पृथिवी को (भासा) अपने प्रकाश से (आ वि ततन्थ) सब ओर विविध प्रकारो से व्याप रहा है और उनको विविध २ प्रकार का बनाता है जो (श्रवोभि) गुरुजनो द्वारा श्रवण करने योग्य ज्ञानमय वेदवचनों द्वारा (श्रवस्य.) श्रवण करने योग्य है, जो (बृहद्भि वाजै) बड़े ज्ञानों, बलों और ऐश्वर्यों से (तरुत्र) संसार के संकटों से पार उतारने वाला है वह (स्थविरेभि) ज्ञान और अनुभव से वृद्ध पुरुषों और (रेवद्भि) ऐश्वर्यवान् पुरुषों द्वारा हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (अस्मे) हमारे

लिये (वि तरं) विशेष रूप से (वि भाहि) प्रकाशित हो। और (वितरं वि भाहि) हमें विशेष रूप से पार होने का उत्तम उपाय प्रकाशित कर। (२) राजा अपने विशेष तेज से राजा प्रजावर्ग दोनों को या सेनापति रूप दुष्टनाशक की सेनाओं को विशेष रूप से फैलाता है, कीर्त्ति मे प्रसिद्ध शत्रुहिंसक, बहुत से अन्नो वा बलवान् वृद्धों और लखपतियों मे हमे चमकाता है वही अग्निवत् मुख्य पद पाने योग्य है।

नृवद्वसो सद॒मिद्धे॑ह्य॒स्मे भूरि॑ तो॒काय॒ तन॑याय प॒श्वः।
पू॒र्वीरिषो॑ बृह॒तीरा॒रेअ॑घा अ॒स्मे भ॒द्रा सौ॑श्रव॒सानि॑ सन्तु ॥१२॥

भा०—हे (वसो) जगत् को बसाने हारे प्रभो ! राष्ट्र, नगरादि के बसाने हारे राजन् ! (अस्मे तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र पौत्र के लिये और (नृवत् सदम्) मनुष्यों, भृत्यों से युक्त घर, उत्तम नायकों से युक्त राजसभा को (धेहि) प्रदान कर और (अस्मे) हमें (भूरि पश्वः धेहि) बहुत से पशु प्रदान कर। और (अस्मे) हमें (पूर्वीः इषः) समृद्ध, अन्न, (बृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाएं और बड़ी २ सेनाएं जो (आरे-अघाः) पापों और पापियों को दूर भगादें, प्राप्त हो (अस्मे) हमारे (भद्रा) सुखदायक, कल्याणजनक (सौश्रवसानि) उत्तम अन्न, ज्ञान और कीर्त्तियुक्त ऐश्वर्य (सन्तु) हो।

पु॒रूण्य॑ग्ने पुरु॒धा त्वा॒या वसू॑नि राजन्व॒सुता॑ ते अश्याम्।
पु॒रूणि॒ हि त्वे पु॑रुवार॒ सन्त्यग्ने॒ वसु॑ विध॒ते राज॑नि॒ त्वे १३।३६।४।

भा०—हे (राजन्) राजन् ! प्रभो ! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (पुरूणि वसूनि) ऐश्वर्य बहुत प्रकार के है। इसी कारण (ते वसुता) तेरा राष्ट्र को बसा देने वाला सामर्थ्य और तेरा स्वामित्व भी (पुरुधा) बहुत से प्रजाजनों को धारण पोषण करने मे समर्थ है। इसलिये मैं प्रजाजन (ते) तेरे ऐश्वर्यों का (अश्या-

म्) भोग करूं। हे (पुरुवार) बहुत से वरणीय धनों के स्वामिन् ! बहुतों से वरण करने योग्य, बहुत से दुष्टों को वारण करने में समर्थ ! (त्वे हि) तुझ अकेले के अधीन ही (पुरूणि) बहुत से (वसूनि) ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (त्वे राजनि) तुझ राजा के अधीन रहकर हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (विधते) विविध उत्तम शिल्प रचने और विधान बनाने वा विधान की यथार्थ रचना और पालन करने, कराने वाले पुरुष के लिये ही (ते वसु) तेरा समस्त धन या बसा हुआ ऐश्वर्य हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ भुरिगुष्णिक् । २ स्वराडुष्णिक् । ७ निचृदुष्णिक् । ८ उष्णिक् । ३, ४ अनुष्टुप् । ५, ९, १० निचृदनुष्टुप् । ११ भुरिगतिजगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ! जिस प्रकार (क्षैतवत्) पृथिवी (यशः पत्यते) अन्न ऐश्वर्य को खूब बढ़ाती है, उसी प्रकार तू भी (यशः पत्यसे) अन्न और यश का पतिवत् स्वामी हो, अथवा (क्षैतवत् यशः पत्यसे) भूमि में उत्पन्न अन्न और महत भूमि से प्राप्त यश कीर्त्ति से भी (पत्यसे) समृद्ध हो। तू (मित्रः न) स्नेही मित्र के समान और मरण से बचाने वाले जल वा सूर्य के समान (यशः पत्यसे) अन्न और तेज का स्वामी हो। हे (विचर्षणे) विशेष रूप से राष्ट्रों वा ज्ञान को देखने हारे ! (त्वं) तू (श्रवः) अन्न और ज्ञान को (पुष्टिं न) शरीर पोषक अन्न वा पशु सम्पदा के समान ही (पुष्यसि) पुष्ट किया कर। (२) हे (विश्वचर्षणे वसो) सबके द्रष्टा

सब में बसे अन्तर्यामिन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तू (क्षैतवत् यशः) पार्थिव अन्न के समान ही (मित्रः न) मित्रवत् सूर्यवत् पालक है। तू हमारे ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ा।

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः॥ २॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (चर्षणयः) समस्त मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से, और (गीर्भिः) वाणियों से, (त्वां हि ईडते स्म) तेरी ही स्तुति करते और तुझे चाहते हैं। (अवृकः) चोरी कुटिलता आदि से रहित (वाजी) वेगवान्, बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् प्रजाजन (त्वां) तुझे (याति) प्राप्त होता है। तू (रजस्तूः) समस्त लोकों का प्रेरक और (विश्वचर्षणिः) समस्त विश्व का द्रष्टा है।

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे॥ ३॥

भा०—विद्वन्! राजन्! प्रभो! (दिवः नरः) नाना कामनाएं व आशाएं करने वाले जन और ज्ञान प्रकाश, व्यवहार और विजिगीषा आदि के प्रमुख नायक, जन (सजोषः) समान प्रीति से युक्त होकर (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर संगति और मान सत्कार के ज्ञापक (त्वा) तुझको ही यज्ञ के ध्वजा रूप अग्नि के तुल्य (इन्धते) बराबर प्रदीप्त करते हैं तुझे ही त्यागों से बढ़ाते हैं। (यत् ह) क्योंकि (स्यः मानुषः जनः) वह मननशील मनुष्यगण, (सुम्नायुः) सुख की कामना करता हुआ (अध्वरे) हिंसा आदि दोषों से रहित यज्ञ उपासनादि कर्म में, (जुह्वे) तेरे प्रति अपने को प्रदान करता और (त्वा जुह्वे) तुझे पुकारता, और स्वीकार करता है। स-जोषसः । त्वा । इति पदपाठः॥

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति॥ ४॥

भा०—(यः मर्तः) जो मनुष्य (सुदानवे) उत्तम दानशील (ते) तेरे निमित्त स्वयं (ऋधत्) समृद्ध हो और (धिया) बुद्धि, ज्ञान और कर्म से (ते शशमते) तेरी ही स्तुति करता और तेरे लिये ही स्वयं शान्ति धारण करता है। हे प्रभो ! स्वामिन् ! (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा, और तेरे दिये ज्ञान सामर्थ्य से (बृहतः) बड़ी २ (दिवः) कामनाओं को, (बृहत दिव) बड़े २ लोकों को और (बृहत. दिव) बडे २ सूर्यों को और (द्विषः) शत्रुओं को भी (अंहः न) पाप के समान (तरति) पार कर जाता है, उनसे कहीं आगे बढ जाता है।

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! हे अग्निवन देह को चेतन करने हारे आत्मन् ! (समिधा) काष्ठ सहित (आहुति) आहुति अग्नि में दी जाती है और वह बढता है उसी प्रकार (य. मर्त्य.) जो मरणधर्मा मनुष्य (ते) तेरे लिये (समिधा) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले जल वायु के साथ २ (आहुतिम्) आदर श्रद्धा पूर्वक खाने योग्य अन्न, आदि और (आहुति) आदर पूर्वक वचन, स्तुति आदि (निशित) खूब सूक्ष्म, और प्रभावजनक रूप से (नशत) प्रदान करता है। (स) वह (वयावन्तं क्षयम्) शाखा वाले वृक्ष के समान कर चरणादि से युक्त इस देह को. (शतायुषम्) सौ वर्ष तक (पुष्यति) पुष्ट कर लेता है अर्थात पूर्ण जीवन जी लेता है। इति प्रथमो वर्ग॰ ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आतत. ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥

भा०—(धूम दिवि) जिस प्रकार अग्नि का धूम और (श्वेत) ... आकाश मे फैलता है उसी प्रकार हे (पावक) अग्नि के समान

राष्ट्र को, देह को और चित्तों को पवित्र करने हारे राजन् ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (ते) तेरा (शुक्रः) अति शुद्ध, कान्तिमय, (त्वेष.) तीक्ष्ण तेज, प्रताप और (धूमः) शत्रुओं, रोगों और पापों को कपा देने वा दूर करने वाला सामर्थ्य (दिवि) भूमि राजसभा और मनो कामना में (ऋण्वति) व्यापता है और (त्वं) तू स्वयं (शुक्रः) कान्तिमान् (आततः) सर्वत्र व्यापक, (सूरः न) सूर्य के समान (द्युता) कान्ति से और (कृपा) कर्म सामर्थ्य से वा करुणा से (रोचसे हि) प्रकाशित होता और सबके चित्तों को अच्छा प्रतीत होता है ! सब तुझे तेरी कान्ति और कृपा के कारण चाहते हैं ।

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (अधा हि) तू निश्चय से (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य और (अतिथि') अतिथि के समान पूज्य, सबको अतिक्रमण करके स्थित, सर्वोपरि और (नः प्रियः) हमारा प्यारा (असि) है । तू (पुरि इव जूर्यः) नगरी में रहने वाले वृद्ध, हितोपदेष्टा पुरुष के समान वा (रण्वः) रण-कुशल राजा के समान वा (सूनुः न) गृह में विद्यमान पुत्र के समान (रण्व') रमणीय, सुखप्रद, (जूर्यः) हितोपदेष्टा, और (सूनुः) सबका प्रेरक और (त्रययाय्यः) तीनों लोकों में व्यापक है । वृद्ध पुरुष तीनों आश्रमों वा बाल्य, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होने से 'त्रययाय्य' है । राजा मित्र, शत्रु, उदासीन वा आगे, पीछे और मध्य में आक्रमण करने वाले तीनों पर प्रयाण करने में समर्थ होने से 'त्रययाय्य' है । पुत्र माता आचार्य और यज्ञ वेदी तीनों में जन्म लाभ करने से 'त्रययाय्य' है, विद्वान् विद्या, तप, और कर्म वा तीनों वेदों में निष्ठ होने से 'त्रययाय्य' है ।

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (क्रत्वा द्रोणे अज्यसे) अग्नि संघर्षण की क्रियासे वा यज्ञ कर्म से वृक्ष के विकार रूप अरणी काष्ठ मे वा कुण्डपात्र मे प्रकट होता है उसीप्रकार हे विद्वन्! राजन्! आत्मन्! परमेश्वर! तू भी (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से (द्रोणे) जाने योग्य सन्मार्ग मे राष्ट्र मे और समस्त विश्व मे (अज्यसे) प्रकाशित होता है। तू (वाजी न) वेगवान् अश्व के समान (कृत्व्य.) समस्त कर्मों का करने हारा है। तू (परिज्मा इव) सब तरफ जाने वाले वायु के समान (स्वधा) जीवन देने वाला, ऐश्वर्य का पोषक, धारक, तू (गय॰) प्राणवत्, गृहवत्, (अत्यः न) वेगवान् अश्ववत् व्यापक, सर्वातिशायी और (शिशुः) बालक के समान शुद्ध पवित्र और प्रशस्ताचरणवान् एवं (ह्वार्यः) कुटिल पुरुषो का नाश करने वाला है। जीव स्वयं देह का धारक होने से 'स्वधा' है।

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! विद्वन्! प्रभो! परमेश्वर! (यवसे पशु न) घास के निमित्त पशु के समान बुभुक्षित सा होकर (अच्युता त्या चित) कभी च्युत न होने वाले उन समस्त लोकों को भी वृक्षों को अग्निवत प्रलयकाल मे ग्रस लेता है। और जिस प्रकार (शिक्वसः) दीप्तियुक्त अग्नि के (धामा वना वृश्चन्ति) तेज ज्वालाएं वनों को भस्म कर देती हैं उसी प्रकार हे (अजर) अविनाशी! प्रभो! (शिक्वस) प्रकाशवान्, शक्तिशाली (ते) तेरे (यत् धामा) जो तेज, और धारण सामर्थ्य हैं वे (वना) भोगने योग्य समस्त लोकों का (वृश्चन्ति) विनाश कर देते हैं। (२) उसी प्रकार तेजस्वी राजा के धारक सैन्यादि बल शत्रु के सैन्यों को काट गिराते हैं।

वेपि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
सुमृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरीयताम् विशाम्) यज्ञ करने वाले प्रजाओं के (दमे) गृह मे (होता) विद्वान् होता के समान दाता होकर (वेपि) प्रकाशित हो । (विश्पते) प्रजा के पालक ! तू उनको (समृधः कृणु) समृद्ध कर । और हे (अङ्गिरः) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (हव्यम्) अन्न आहुतिवत् ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न आदि पदार्थ और स्तुत्य वचन को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर ।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेहवान् मित्रो का आदर करने वाले ! हे (देव) दानशील ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (देवान् नः) हम कामना-युक्त अर्थियो को (रोदस्योः) माता पिता के समान जनों का (सुमति) शुभ ज्ञान हमें (वोचः) उपदेश कर । तू (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि, उत्तम निवास स्थान को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (वीहि) प्राप्त कर, प्रकाशित कर । तू (दिवः नॄन्) कामनायुक्त पुरुषो को प्राप्त कर । (द्विपः, अंहांसि) शत्रुओ को, और पापो को और (दुरिता) बुरे कर्मों को भी हम (तरेम) पार करे । (तव अवसा) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (ता) उनको (तरेम) तर जावे और (तरेम) सदा तर जाया करें । राजा सूर्यवत् तेजस्वी होने से वा मित्रो का आदर करने से 'मित्रमहा' है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (सः) वह (ऋतपाः) सत्य का पालक, धर्मात्मा (ऋते-जाः) सत्य ज्ञान में जन्म लाभ करने वाला, (देवयुः) शुभ गुणों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाला पुरुष (क्षेषत्) दीर्घ जीवन प्राप्त करता, इस लोक में रहता और (ते ज्योतिः नशते) तेरे परम ज्ञानमय प्रकाश को प्राप्त करता है। हे (देव) राजन् ! प्रभो ! (यं) जिस (मर्त्तम्) मनुष्य को (सजोषाः) प्रेम से युक्त (वरुणः) सब दुःखों का वारक, सर्वश्रेष्ठ (त्वं) तू (मित्रेण) स्नेहवान् मित्र सहित (त्यजसा) दान से (पासि) पालन करता और (अंहः) पाप नाशक करता है वही परम ज्योति लाभ करता है।

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष (यज्ञेभिः) दान, देवपूजन और सत्संगों से (ईजे) यज्ञ करता है, (शमीभिः शशमे) उत्तम कर्मों से अपने को शान्त करता है वा उत्तम शान्तिजनक उपायों और स्तुतियों से अपने को शान्त करता या प्रभु की स्तुति करता है और जो (ऋधद्वाराय) सम्पन्न, समृद्ध करने वाले धनों और व्यवहारों से युक्त (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष के हित के लिये (ददाश) अग्नि में आहुति के तुल्य ही दान करता है (एव चन) इस प्रकार निश्चय से (तं) उसको (यशसाम् अजुष्टिः) यशों और अन्नों का अभाव (न नशते) प्राप्त नहीं होता, (न मर्त्तं) उस मनुष्य को (अंहः न नशते) पाप भी स्पर्श नहीं करता और उसको (प्रदृप्तिः न नशते) भारी दर्प, घमण्ड का मोह भी नहीं होता। अथवा यशों का अभाव पाप का दर्प आदि उसे नष्ट नहीं कर सकते।

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३॥

भा०—(यस्य) जिसका (दृशतिः) दर्शन, सत्य ज्ञान वा दृष्टि (सूरः न) सूर्य के समान सत्य अर्थ को प्रकाशित करने वाली (अरेपा) पापों से रहित (भीमा) असज्जनों को भय देने वाली है। और (यत्) (शुचतः) अग्नि के समान चमकते हुए जिसको (धी) उत्तम बुद्धि और कर्म (आ एति) सब ओर से प्राप्त होता है, (अक्तोः) सब पदार्थों को स्पष्ट कर देने वाले और (शुरुधः न) अन्धकार के नाशक तेजस्वी सूर्य के समान ही उस (हेषस्वतः) गंभीर गर्जनावत् वाणी बोलने हारे (ते) तुझ उपदेष्टा का (कुत्रचित्) कहीं भी हो वहां ही (रण्व) अति रमण योग्य (वनेजाः) काष्ठ में अग्निवत्, किरणों में सूर्यवत् ही उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य वा शान्तिदायक वन में उत्पन्न (वसतिः) निवास होता है।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् वा राजा का (एम) ज्ञान और मार्ग (तिग्मं चित्) सूर्य के प्रकाश के समान अतितीक्ष्ण हो और (वर्णः महि) रूप, आकार महान् विशाल और (भसत्) चमकने वाला, तेजस्वी हो, वह स्वयं (अश्वः न) वेगवान् अश्व के समान (आसा) मुख से (यमसान) यम अर्थात् संयम का सेवन करनेवाला वाचंयम तथा मिताहारी, निर्लोभ हो, वह (परशुः न) फरसे के समान अज्ञान के नाश करने में (जिह्वां) अपनी तीक्ष्ण वाणी का धार के समान (वि-जेहमानः) विविध प्रकार से प्रयोग करता हुआ (द्रविः न) ताप से धातु गला कर शोधने वाले स्वर्णकार के समान (द्रावयति) समस्त मलों वा शत्रुओं को पिघला कर दूर कर देता है वह ही अग्नि के समान (दारु) काष्ठवत् अपना छेदन

भेदन करने वालों के सैन्य वा भय मोहादि जनक वा हृदयविदारक शोकादि को भी (धक्षत्) भस्म कर देता है ।

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतियो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(असिष्यन् अस्ता इव) जिस प्रकार वाण फेकने वाला धनुर्धर वाण धनुष में लगाकर शत्रु के प्रति फेकता है उसी प्रकार (स इत्) वह विद्वान् भी (असिष्यन्) बन्धन मे बंधता हुआ (प्रति धात्) उसको सामर्थ्य पूर्वक सहे और प्रतिकार करे। जिस प्रकार शिल्पी (अयसः धारां शिशीते) लोहे की धार को तेज़ करता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (धाराम्) वाणी को (शिशीत) तीक्ष्ण करे, बार बार २ अभ्यास से तीव्र, कुशलवचन बनावे। (यः) जो (अरतिः) आगे जाने वाला, वा कहीं एक स्थान पर भी आसक्त न होकर असंग हो, वह (चित्र-ध्रजतिः) अद्भुत वेगवान् गति वाला होकर (अक्तोः) रात्रि काल में (द्रुसद्वा वेः न) वृक्ष पर विराजने वाले पक्षी के समान (रघु-पत्म-जंहाः) लघु तुच्छ २ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ देता है अथवा वह (अक्तोः वेः न) रात्रि के प्रकाशक सूर्य के तुल्य, तेजस्वी होकर (द्रुसद्वा) रथ से जाने वाले, रथवान् पुरुष के समान (रघु-पत्म-जंहाः) वेग से सुदूर मार्गों को जाने मे समर्थ होता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (अरुषः) रोष रहित होकर भी (दिवा नक्तं) रात दिन (ईम्) इस जगत को सूर्यवत सन्मार्ग पर चलाता, जो (अमर्त्यः) असाधारण मनुष्य होकर (नॄन्) मनुष्यों का शासन करता है, और जो (अरुषः) मर्म स्थानों पर [illegible] करके (दिवा) तेज, ज्ञान

प्रकाश से (नॄन्) मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाता है (सः) वह पुरुष ही (रेभः न) सूर्यवत् उत्तम ज्ञानों का उपदेष्टा, स्वयं पूज्य होकर भी अन्यों का सत्कार करने वाला होकर (उस्राः प्रति वस्ते) किरणों के तुल्य स्वयं ऊपर को निकलने वाली वाणियों को धारण करता है, और वह (मित्र-महाः) मित्रों, स्नेही जनों का आदर करने हारा (शोचिषा) अग्नि के समान दीप्ति युक्त वाणी से ही (रारपीति) उत्तम उपदेश किया करता है।

दि॒वो न यस्य॑ विध॒तो नवी॑नो॒द्वृषा॑ रु॒क्ष ओष॑धीषु नूनोत् ।
घृणा॒ न यो ध्रज॑सा॒ पत्म॑ना॒ यन्ना रोद॑सी॒ वसु॑ना॒ दं सु॒पत्नी॑ ॥७॥

भा०—(दिवः न) तेजस्वी सूर्य के समान (विधतः) विधान करते हुए, कर्म करते हुए या उपदेश करते हुए (यस्य) जिसके (नवी-नोत्) उत्तम उपदेश ध्वनित होता है, और जो स्वयं (वृषा) वर्षणशील मेघ के तुल्य (रुक्षः) कान्तिमान् वा उन्नत पद पर आरूढ़ होकर (ओ-षधीषु) वनस्पतियों के तुल्य प्रजाओं और सेनाओं पर (नूनोत्) आज्ञा वा शासन करता है। और (यः) जो (घृणा) दीप्ति और (ध्रजसा) वेग से युक्त होकर (पत्मना) उत्तम मार्ग से (यन्) जाता हुआ (वसुना) ऐश्वर्य से (सु-पत्नी) सुख से राष्ट्र का पालन करने वाले, (रोदसी) शत्रुओं को रुलाने वाले, सेनापति और सैन्य दोनों को उत्तम पुत्रादि के पालक पति पत्नी के समान ही (दम्) दमन करता वा दानशील होकर पुष्ट करता है।

धायो॑भिर्वा॒ यो युज्ये॑भिर॒र्कैर्वि॒द्युन्न द॑विद्यो॒त्स्वेभि॒ः शुष्मैः॑ ।
शर्धो॑ वा॒ यो म॒रुतां॑ त॒तक्ष॑ ऋ॒भुर्न त्वे॒षो र॑भसा॒नो अ॑द्यौत् ॥८।४॥

भा०—(यः) जो (विद्युत् न) विशेष कान्तियुक्त सूर्य या बिजुली के समान (अर्कैः) अर्चना करने योग्य, मान सत्कार के पात्र, (युज्येभि) -कार्यों में नियुक्त करने योग्य, (धायोभिः) कार्यभारों को उत्तम

रीति से धारण करने वाले अधीनस्थ पुरुषों से किरणों के समान और (स्वेभिः) अपने (शुष्मैः) शत्रुशोषक बली और सैन्यों से (दविद्योत्) निरन्तर चमका करता है, और (यः) जो (मरुताम्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषों के (शर्धः) सैन्य वा बल को (ततक्ष) तैय्यार करता है वह (ऋभुः न) बहुत अधिक तेज से चमकने वाले, महान् सूर्य के समान (त्वेषः) तीक्ष्ण कान्ति से युक्त (रभसानः) वेगवान्, कार्यकुशल होकर (अद्यौत्) चमकता है। इति चतुर्थो वर्गः॥

[४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ५, ६, ७ भुरिक् पङ्क्तिः। ३, ४ निचृत् पङ्क्तिः। ८ पङ्क्तिः। अष्टर्चं सूक्तम्।

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान्॥१॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मननशील विद्वान् मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से (देवताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञ के अवसर पर (यजाति) यज्ञ करता, यथायोग्य सत्कार, दान आदि करता है। हे (होतः) दान देने वाले! हे (सहसः सूनो) शत्रु पराजयकारी सैन्य बल के सञ्चालक सेनापते बल के देने वाले! हे (अग्ने) विद्वन् अग्र नायक! हे प्रभो! तू भी (एव) उसी प्रकार (अद्य) आज (देवान्) धनैश्वर्यादि कामना करने वाले (उशतः) तुझे चाहते हुए (समानान्) पदाधिकार में समान ऐश्वर्य वाले वा मन सहित रहने वाले (नः) हम लोगों को (समना) संग्राम वा यज्ञादि के अवसर पर (यक्षि) उत्तम वेतन सुख ऐश्वर्यादि देता और मान सत्कार करता है, तू ही हमारा नायक होने योग्य है।

स नो॑ वि॒भावा॑ च॒क्षणि॒र्न वस्तो॑र॒ग्निर्व॒न्दारु॒ वेद्य॒श्चनो॑ धात् ।
वि॒श्वायु॒र्यो अ॒मृतो॒ मर्त्ये॑षूष॒र्भुद्भू॒दति॑थिर्जा॒तवे॑दाः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वायुः) सबको जीवन देने वाला, (अमृतः) अमरणधर्मा, मृत्युरहित, निर्भय, (मर्त्येषु) मरणशील, मनुष्यों जीवों के बीच में (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सर्वव्यापक (जात-वेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का उत्पादक, समस्त उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता है (सः) वह (विभावा) विशेष कान्ति से युक्त (चक्षणिः) सबका द्रष्टा (अग्निः) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश (वेद्यः) बुद्धि वा ज्ञान से जानने योग्य वा शरणयोग्य प्रभु, स्वामी और विद्वान् (वस्तोः) वसने के निमित्त, सब दिन (नः) हमें (वन्दारु) उत्तम स्तुति करने योग्य (चनः) अन्न और ज्ञान (धात्) देवे ।

द्यावो॒ न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः ।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒कोऽश्न॑स्य चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (अभ्वं) महान् सामर्थ्य को (द्यावः न) ये समस्त चमकने वाले सूर्य, नक्षत्र आदि गण, किरणों के समान (पनयन्ति) स्तुति करते हैं और जो (सूर्यः न) सूर्य के समान (शुक्रः) कान्तिमान् स्वयं तेजःस्वरूप होकर (भासांसि) समस्त ज्योतियों को (वस्ते) आच्छादित या वस्त्रों को पुरुष के समान धारण करता है । (यः) जो (अजरः) जरा मरणादि से रहित (पावकः) सबको पवित्र करने वाला, अग्निवत् तेजस्वी, परम पावन होकर (वि इनोति) विविध प्रकार से व्यापता है, वह ही अग्नि जिस प्रकार (अश्नस्य पूर्व्याणि शिश्नथत्) भोजन के दृढ़ रूपों को शिथिल कर देता है उसी प्रकार वह परमेश्वर (अश्नस्य) भोक्ता जीव के भोग्य कर्म फलादि के (पूर्व्याणि) पूर्व के किये कर्म बन्धनों को (शिश्नथत्) शिथिल कर देता है ।

व॒ग्मा हि सू॑नो॒ अस्य॑द्म॒सद्वा॑ च॒क्रे अ॒ग्निर्ज॒नुषाज्मान्न॑म् ।
स त्वं न॑ ऊर्जसन॒ ऊर्जं॑ धा॒ राजे॑व जेरवृ॒के क्षे॑ष्य॒न्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूनो) समस्त जगत् उत्पादक और सञ्चालक ! तू (वग्मा) वन्दना करने योग्य और सब मनुष्यो को उपदेश करने हारा (असि) है । तू ही (अद्मसद्वा) समस्त भोगने योग्य कर्म फलो पर अधिष्ठातृ रूप से भाजनो मे अग्नि के तुल्य स्वादप्रद होकर विराजता है । तू ही (अग्नि) सर्वप्रकाशक होकर (जनुषा) जन्म द्वारा (अज्म) प्राप्त करने योग्य (अन्न) अन्नवत् भोग्य फल को (चक्रे) जीवों के लिये बनाता है । (स.) वह (त्व) तू (ऊर्जसनः) अन्नो बलो का देने हारा होकर (नः) हमे सब प्रकार के (ऊर्ज) अन्न (धा.) प्रदान कर । और तू (राजा इव) राजा के समान (जे.) विजय कर, (अवृके अन्त.) भेड़िये के समान चोर, क्रूर पुरुषों से रहित निर्विघ्न राष्ट्र मे बसने वाले राजा के समान ही तू (अवृके अन्त.) चोरी, कुटिलतादि से रहित अन्त करण मे (क्षेषि) निवास किया कर ।

निति॑क्ति॒ यो वा॑र॒णमन्न॒मत्ति॑ वा॒युर्न राष्ट्र्यत्ये॑त्य॒क्तून् ।
तु॒र्याम॒ यस्त॑ आ॒दिशा॒मरा॑ती॒रत्यो॒ न हु॒तः पत॑तः परि॒ह्रुत् ॥५॥५॥

भा०—(यः) जो राजा (वारणम्) शत्रुओं को दूर भगा देने मे समर्थ सैन्य बल को (नितिक्ति) खूब तीक्ष्ण बनाये रखता है । और (अन्नम्) भोग्य ऐश्वर्य का अन्न के समान (अत्ति) भोग करता है या जो (नितिक्ति) खूब तीव्र, बलदायक (वारण) उत्तम रोगनाशक अन्न खाता है जो (राष्ट्री) राष्ट्र का स्वामी (वायु न) वायु के समान बलवान् होकर (अक्तून्) सब दिनो वा रात्रियो का सूर्य के समान समस्त तेजस्वी पुरुषो को (अति एति) अतिक्रमण कर जाता है । हे नायक प्रभो ! (य) जो तू वेगवान् अश्व के समान वक्र या कुटिल होकर (परिह्रुत) सर्वत्र वक्र गति से गमन करता है उन ([illegible])

चौदिशो (पतत. ते) प्रयाण करते हुए तेरे (अरातीः) शत्रुओं को हम (तुर्याम) विनाश करें। या तेरे चारों दिशाओं में स्थित शत्रुओं का नाश करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ६

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार (सूर्यः भानुमद्भिः अर्कैः) सूर्य प्रकाशयुक्त होकर (भासा रोदसी वि ततन्थ) दीप्ति से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है और (पत्मन् अक्त. दीयन् शोचिषा तमांसि परि नयत्) आकाश मार्ग से गमन करता हुआ प्रकाश से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार राजा भी (भानुमद्भिः अर्कैः) सूर्य प्रकाश से पके अन्नो और तेजस्वी, पूज्य पुरुषो सहित (भासा) अपने तेज से शास्य और शासक दोनो वर्गों को (आ ततन्थ वि ततन्थ) व्याप ले और विशेष रूप से विस्तृत करे और (औशिज. न) कान्तिमान् सूर्य के समान ही कामनावान् प्रजावर्ग का हितकारी होकर (पत्मन् दीयन्) सन्मार्ग से गमन करता हुआ (चित्रः) अद्भुत विस्मयकारी और (अक्तः) तेजस्वी होकर (शोचिषा) विद्या के प्रकाश से (तमांसि) अज्ञान, शोक, दारिद्र आदि अन्धकारो को (परि नयत्) प्रजावर्ग से दूर करे।

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रभो! तेजस्विन्! (अर्कशोकैः) अर्चना करने योग्य, सूर्यवत प्रकाशो से (मन्द्रतमम्) अति आनन्दजनक, अति प्रशंसनीय, (त्वां हि) तुझको ही हम (ववृमहे) वरण करते है। तू (न.) हमारे वचनों का (महि श्रोषि) खूब श्रवण कर।

(इन्द्रं न) विद्युत् के समान (शवसा) बल से सम्पन्न (देवता) तेजस्वी, वा मेघवत् दानशील और (शवसा वायुम्) बल से वायुवत् शत्रु और दुःखो को उखाड़ फेकने वाले वा (शवसा वायुम्) ज्ञान व अन्न से वायुवत् जीवन देने हारे प्राणप्रिय (त्वां) तुझको (नृतमाः) श्रेष्ठ पुरुष (राधसा) धनैश्वर्य और आराधना द्वारा (गृणन्ति) पूर्ण करते और प्रसन्न करते हैं ।

नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! तेजस्वी राजन् ! पापदाहक प्रभो ! तू (नू) शीघ्र ही (नः) हमे (अवृकेभिः पथिभिः) चोरो से रहित मार्गों से (रायः) धनैश्वर्यों तक (स्वस्ति) कुशलतापूर्वक (वेषि) पहुचा । और (अंहः पर्षि) पाप से पार कर । तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों और (गृणते) उपदेष्टा गुरुजन वा स्तुति करने वाले को (ता सुम्नं) नाना प्रकार के सुख (रासि) प्रदान करता है । उन्हे प्राप्त करके हम भी (सुवीराः) उत्तम वीरों और पुत्रो से सम्पन्न होकर (शत-हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न हो । इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८ त्रिष्टुप् । २, ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्पङ्क्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (यः) जो (प्रचेताः) उत्तम चित्त और ज्ञान वाला, (पुरुवारः) बहुत से प्रजाजनों वा रक्षकों से वरण करने

योग्य, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करने हारा होकर (विश्व-वाराणि) समस्त लोकों से स्वीकार करने योग्य (द्रविणानि) ऐश्वर्यों और ज्ञानों को (इन्वति) प्रदान करता है ऐसे (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित, प्रेम युक्त हितकारी वाणी बोलने हारे (मतिभिः यविष्ठम्) उत्तम प्रज्ञाओं से युक्त और बुद्धिमान्, बलवान् पुरुष को (वः) आप लोगों के लिये, वा आप लोगों में से ही (सहसः सूनुम्) बल के सञ्चालक और उत्पादक (हुवे) होने की प्रार्थना करता हूं ।

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥

भा०—(क्षामा इव) जिस प्रकार भूमि उत्तम राजा के अधीन रहकर (विश्वा भुवनानि सौभगानि धत्ते) समस्त लोकों और समस्त ऐश्वर्यों को धारण करती है उसी प्रकार (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (यज्ञियासः) परस्पर सत्संग, मेल जोल से रहने वाले प्रजाजन (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पन्न प्राणियों और (सौभगानि) सुख-जनक ऐश्वर्यों को (दधिरे) धारण करते हैं हे (होतः) दाता राजन् ! हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों के स्वामिन् ! वे सब लोग (दोषा वस्तोः) दिन और रात्रि (वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को (त्वे) तुझे ही (एरिरे) दे देते हैं ।

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (आसु विक्षु) इन प्रजाओं के बीच में (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से (प्रदिवः) उत्तम २ कामनाओं को (सीद) प्राप्त कर, उत्तम २ ज्ञानवान् पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजमान हो । और (वार्याणाम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनों का (रथीः) प्राप्त करने

वाला और (वार्याणाम्) पदाधिकारो के निमित्त चुनने योग्य उत्तम नायकों के बीच मे तू ही (रथीः अभवः) महारथी के समान उत्तम सेनापति हो। हे (चिकित्वः) विद्वन्! तू (विधते) सेवा करने वाले भृत्यजन को (वसूनि) नाना ऐश्वर्य, (आनुषक्) निरन्तर (वि इनोषि) विविध रूपों से दिया कर। (अतः) इसी कारण तू राजा बन।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (यः) जो (सनुत्यः) निश्चित रूप से छुप कर (नः अभिदासत्) हमारा नाश करे, और (अन्तरः) भीतर आकर (वनुष्यात्) मारे, (तम्) उसको (अजरेभिः) बलवान् (तव स्वेभिः) तू अपने ही निज पुरुषों और (अजरेभि) वृद्धावस्था से रहित (वृषभिः) प्रबन्धक, बलवान् पुरुषों द्वारा (तपसा) अपने सन्तापक सामर्थ्य और तप से (तप) तपा, सन्तप्त कर और शुद्ध कर। हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य! मित्रों के पूजक! बड़े मित्रों वाले! तू (तपसा) तपःसामर्थ्य से स्वयं भी (तपस्वान्) तपस्वी होकर (तप) तपस्या कर।

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥ ५॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक और उत्पादक स्वामिन्! (यः) जो पुरुष (यज्ञेन) यज्ञ, दान, सत्संग आदि से और (उक्थैः अर्केभिः) वेदमन्त्रों, उत्तम वचनों और स्तुत्य पदों से (समिधा) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए (ते) तेरी वृद्धि के लिये (ददाशत्) अग्नि में आहुति के समान अपना अन्न, कर आदि प्रदान करता है, हे (अमृत) अमरणधर्मा, बलवान् राजन्! (सः) वह (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानवान्

पुरुष (राया) धन से (द्युम्नेन) यश और (शवसा) बल और ज्ञान से (वि-भाति) विशेष रूप से चमकता है ।

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तेजस्विन् नायक ! तू (तूयम्) शीघ्र ही (सहसा) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य से (सहस्वान्) बलवान् होकर (स्पृधः) संग्राम की स्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को बलपूर्वक (बाधस्व) पीड़ित कर और (इषितः) सेना आदि से सम्पन्न होकर (सः) वह तू (तत्) वह कार्य (कृधि) कर (यत्) जिससे तू (द्युभिः अक्तः) प्रकाश युक्त किरणों से चमकने वाले सूर्य के समान (द्युभिः अक्तः) तेजस्वी पुरुषों से स्नेहवान् होकर (वचोभिः शस्यसे) उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर सके । तू (जरितुः) उत्तम उपदेष्टा ज्ञानवृद्ध पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य (घोषि) वेद वाणी के अनुकूल उपदेश को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक सेवन किया कर ।

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७॥७॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हम लोग (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहते हुए (तं कामम्) उस २ कामना योग्य उत्तम पदार्थ का (अश्याम) भोग करें । हे (रयिव॰) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (सु-वीरम्) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिम् अश्याम) ऐश्वर्य का भोग करें । हम (वाजयन्तः) बल और धन की कामना करते हुए (ते वाजम्) तेरे अन्न और बल का (अश्याम) भोग करें और (ते अजराजरं) तेरे अविनाशी (द्युम्नम्) ऐश्वर्य का (अश्याम) भोग करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसा) अति नवीन, अति स्तुत्य (यज्ञेन) परस्पर के सम्बन्ध, या दान प्रतिदान द्वारा (गातुम्) सन्मार्ग और उत्तम भूमि और (अवः) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करना (इच्छन्) चाहता हुआ जन (सहसः सूनुम्) बल के सम्पादक, वा सञ्चालक (वृश्चद्-वनम्) वनों को काट डालने में समर्थ परशु या अग्नि के समान तीक्ष्ण अज्ञान वा शत्रु के नाशक (कृष्ण-यामम्) आकर्षण करने वाले, यम नियम-व्यवस्था से सम्पन्न (रुशन्तं) अति तेजस्वी, (होतारं) ऐश्वर्य वा ज्ञान के दाता, (दिव्यं) कामना करने योग्य, पुरुष के पास (वीती) इच्छापूर्वक (अच्छ जिगाति) जावे ।

स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥

भा०—(पावकः अग्निः पृथूनि भर्वन् अनुयाति) जिस प्रकार अग्नि बहुत बड़े २ काष्ठों को जलाता हुआ उनकी ही ओर जाता है उसी प्रकार (यः) जो (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी, सबको पवित्र करने वाला, (पुरुतमः) बहुतों में श्रेष्ठ सबको पालन पोषण और तृप्त करने हारा, (भर्वन्) शत्रुओं को दग्ध करता और प्रजाओं को पालन करता हुआ (अग्नि) अग्रणी पुरुष (पृथूनि पुरूणि) बड़े २ और बहुत से सैन्यों के (अनुयाति) पीछे २ चलता है । (स) वह (श्वितान)

पुरुष (राया) धन से (द्युम्नेन) यश और (शवसा) बल और ज्ञान से (वि-भाति) विशेष रूप से चमकता है ।

स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तेजस्विन् नायक ! तू (तूयम्) शीघ्र ही (सहसा) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य से (सहस्वान्) बलवान होकर (स्पृधः) संग्राम की स्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को बलपूर्वक (बाधस्व) पीड़ित कर और (इषितः) सेना आदि से सम्पन्न होकर (सः) वह तू (तत्) वह कार्य (कृधि) कर (यत्) जिससे तू (द्युभिः अक्तः) प्रकाश युक्त किरणों से चमकने वाले सूर्य के समान (द्युभिः अक्तः) तेजस्वी पुरुषों से स्नेहवान् होकर (वचोभिः शस्यसे) उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर सके । तू (जरितुः) उत्तम उपदेष्टा, ज्ञानवृद्ध पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य (घोषि) वेद वाणी के अनुकूल उपदेश को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक सेवन किया कर ।

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७॥७॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हम लोग (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहते हुए (तं कामम्) उस २ कामना योग्य उत्तम पदार्थ का (अश्याम) भोग करें । हे (रयिवः) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (सु-वीरम्) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिम् अश्याम) ऐश्वर्य का भोग करें । हम (वाजयन्तः) बल और धन की कामना करते हुए (ते वाजम्) तेरे अन्न और बल का (अश्याम) भोग करें और (ते अजराजरं) तेरे अविनाशी (द्युम्नम्) ऐश्वर्य का (अश्याम) भोग करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसा) अति नवीन, अति स्तुत्य (यज्ञेन) परस्पर के सम्बन्ध, या दान प्रतिदान द्वारा (गातुम्) सन्मार्ग और उत्तम भूमि और (अवः) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करना (इच्छन्) चाहता हुआ जन (सहसः सूनुम्) बल के सम्पादक, वा सञ्चालक (वृश्चद्-वनम्) वनों को काट डालने मे समर्थ परशु या अग्नि के समान तीक्ष्ण अज्ञान वा शत्रु के नाशक (कृष्ण-यामम्) आकर्षण करने वाले, यम नियम-व्यवस्था से सम्पन्न (रुशन्तं) अति तेजस्वी, (होतारं) ऐश्वर्य वा ज्ञान के दाता, (दिव्यं) कामना करने योग्य, पुरुष के पास (वीती) इच्छापूर्वक (अच्छ जिगाति) जावे ।

स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥

भा०—(पावकः अग्निः पृथूनि भर्वन् अनुयाति) जिस प्रकार अग्नि बहुत बडे २ काष्ठों को जलाता हुआ उनकी ही ओर जाता है उसी प्रकार (यः) जो (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी, सबको पवित्र करने वाला, (पुरुतमः) बहुतों में श्रेष्ठ सबको पालन पोषण और तृप्त करने हारा, (भर्वन्) शत्रुओं को दग्ध करता और प्रजाओं को पालन करता हुआ (अग्निः) अग्रणी पुरुष (पृथूनि पुरूणि) बडे २ और बहुत से सैन्यों के (अनुयाति) पीछे २ चलता है । (सः) वह (श्वितानः)

विद्युत् के समान अति श्वेत वर्ण, (तन्यतुः) गर्जनाशील, (रोचनस्थाः) सर्वप्रिय पद पर विराजने वाला, (अजरेभिः) जरारहित, जवान, (नानदद्भिः) मेघवत् अति समृद्ध और गर्जनाशील अधीन नायकों के साथ मिलकर स्वयं (यविष्ठः) अति बलवान् होकर (पृथूनि पुरूणि भर्वन् अनुयाति) बड़े २ बहुत शत्रु सैन्यों को भस्म करता हुआ अनुगमन करता है।

वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् अन्यों को प्रकाशित करने वाले विद्वन्! शत्रुओं को भस्म करने हारे नायक! (वात-जूतासः शुचय भामासः) अग्नि के वायु से प्रेरित, कान्तियुक्त ज्वालासमूह जिस प्रकार सब ओर निकलते है उसी प्रकार (ते) तेरे (शुचयः) शुद्ध, ईमानदार, (भामासः) क्रोध या उग्रता से युक्त, (वात-जूतासः) वायुवत् प्रचण्ड वेग से प्रेरित वीर लोग (शुचे) तेज या शुद्ध व्यवहार प्राप्त करने के लिये (विश्वक्) सब ओर (विचरन्ति) विचरते है। और वे (तुवि-म्रक्षासः) बहुतों से मेल करते हुए, (दिव्याः) तेजस्वी, (नवग्वाः) नयी से नयी, भूमि और चाल चलते हुए, (धृपता) शत्रु पराजयकारी बल से (वना रुजन्त) शत्रु सैन्य के दलों को, फरसे से वनों के समान छिन्न भिन्न करते हुए (वना वनन्ति) नाना ऐश्वर्यों का उपभोग करते हैं।

ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४॥

भा०—हे नायक! हे (शुचिष्मः) शुद्ध कान्तियुक्त तेजस्विन्! वा शुद्ध व्यवहार वाले! (ये) जो (ते) तेरे (विषितासः) विशेष रूप से

वन्धन या प्रवन्ध मे वंधे हुए (अश्वा:) अश्वो के समान आशुगामी अश्व सैन्य वा घुडसवार शासक और भूमि के भोक्ता ज़मीदार लोग (क्षां वपन्ति) भूमि का छेदन भेदन करते, उस पर खेतियो को बोते वा काटते है या प्रजा से धन उगाहते है वे (शुक्रासः) शीघ्र कार्य करने हारे, शुद्ध और (शुचयः) स्वेच्छाचार वाले, सदाचारी और ईमानदार हों। (अध) और (ते उर्विया भ्रमः) विशाल भ्रमणशील या भरण पोषणकारी बल सामर्थ्य (पृश्नेः सानु अधि) भूमि के उच्च भाग, ऐश्वर्ययुक्त भाग पर पर्वत, शिखर पर मेघवत् विराजकर (यातयमानः) दुष्टों को दण्ड देता हुआ (विभाति) विशेष कान्ति से चमके।

अर्ध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥ ५ ॥

भा०—(सृजाना अशनिः) उत्पन्न होती हुई विद्युत् की जिह्वा (वृष्णः) वरसते और (गो-सु-युधः) भूमि पर प्रहार करते मेघ से निकलती जीभ के समान (पापतीति) वेग से जाती है उसी प्रकार (गो-सु-युधः) भूमि के निमित्त युद्ध करने हारे (वृष्णः) बलवान् पुरुष की (जिह्वा) वाणी भी (पापतीति) बराबर आगे जाती है। वह (शूरस्य) शूरवीर पुरुष की (प्र-सितिः) प्रवन्धक शक्ति और (क्षातिः) शत्रु को नाश करने वाली शक्ति, दोनों ही (दुर्वर्तुः) वारण नहीं की जा सकती। (भीमः) इस प्रकार वह भयानक, राजा (वनानि दयते) ऐश्वर्यों वा भोग्य राष्ट्रों या स्वसैन्य दलों को पालता और (वनानि दयते) शत्रु सैन्य समूहो को नष्ट करता है। 'प्रसिति' अर्थात् प्रवन्धक शक्ति से पालता और 'क्षाति' अर्थात् विनाशक शक्ति से नाश करता है। इसी प्रकार (गो-सु-युधः) वाणी से युद्ध करने वाले तार्किक विद्वान् की वाणी विद्युत् के समान (सृजाना) नयी रचना करती हुई चलती है, वह उत्तम वन्धनयुक्त, सुग्रथित, दोषरहित हो।

आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (भानुना) तेज से (पार्थिवानि ज्रयांसि आ ततन्थ) पृथिवी पर के पदार्थों को सब दूर प्रकाशित करता है उसी प्रकार उत्तम विद्वान् नायक पुरुष भी (महः) बड़े भारी (तोदस्य) शत्रु को व्यापने वाले सैन्य के (धृषता) पराजयकारी सैन्य के (भानुना) तेज से (पार्थिवान्) पृथिवी के (ज्रयांसि) प्राप्तव्य राष्ट्रों, ऐश्वर्यों को (आततन्थ) सब ओर फैलावे। (सः) वह तू (सहोभिः) अपने प्रबल सैन्यों से (भया) भय देने वाले कारणों को (अप बाधस्व) दूर करे, स्वयं (वनुष्यन्) राष्ट्र का सेवन वा उपभोग करता हुआ (वनुषः) हिंसाकारी (स्पृधः) संग्रामकारी शत्रुओं को (नि जूर्व) अच्छी प्रकार नष्ट करे।

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥८॥

भा०—हे (चित्र) आश्चर्य कर्म करने हारे! विद्वन् राजन्! (सः) वह तू हे (चित्र-क्षत्र) आश्चर्यकारी वीर्य बल और राज्य के स्वामिन्! तू (अस्मे) हमें (चित्रम्) अद्भुत (चित्र-तमम्) सबसे अधिक संग्रह करने योग्य (वयो-धाम्) जीवन के पालन करने वाले, बलप्रद, अन्नप्रद, (चन्द्रं) आह्लादकारी (पुरु-वीरं) बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य और (बृहन्तं) बड़े भारी (चन्द्रं) आह्लादकारी सुवर्णादि को भी (चन्द्राभिः) आह्लादकारिणी, सुखजनक वाणियों सहित (गृणते युवस्व) उपदेष्टा पुरुष को प्रदान कर। इत्यष्टमो वर्गः॥

[७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ७ स्वराट्त्रिष्टुप्। ३ निचृत्पङ्क्तिः। ४ स्वराट् पङ्क्तिः। ५ पङ्क्तिः। ६ जगती॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) प्रकाश या आकाश के (मूर्धानं) मूर्धा वा शिरवत् मुख्य केन्द्र, सूर्य के समान सर्वोपरि विराजमान, (पृथिव्या अरतिम्) पृथिवी के स्वामी, (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, (ऋते जातम्) सत्यज्ञान, व्यवहार, न्यायशासन और ऐश्वर्यादि मे प्रसिद्ध पुरुष को (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी अग्र नेता रूप से (आ जनयन्त) बनावे । और वे (कविं) क्रान्तदर्शी विद्वान्, मेधावी, (सम्राजम्) अच्छी प्रकार तेज से चमकने वाले, सम्राट् (जनानां) मनुष्यो के बीच में (अतिथिम्) सबसे अधिक आदर योग्य पुरुष को (आसन्) मुखवत् मुख्य पद पर वा अपना प्रमुख (पात्रम्) पालक रक्षक (आ जनयन्त) बनाया करे । (२) परमेश्वर सूर्यादि प्रकाशमान, पृथिवी आदि अप्रकाशमान लोकों का प्रमुख स्वामी है, वह कवि, सम्राट् सर्वव्यापक परम पूज्य है । उसी को देव, विद्वान् जन अपना पालक करके जानते जनाते है ।

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी (यज्ञानां नाभि) सब प्रकार के लेन देन और परस्पर के मेल जोल आदि के नाभिवत् मुख्य केन्द्र, (रयीणां सदनम्) सब ऐश्वर्यों के आश्रय, (महाम्) बड़े २ लोगों से (आहावम्) स्पर्धा करने वाले, वा बड़ों २ को आदर से बुलाने में समर्थ या सबको अन्नादि देने हारे गृहवत् आश्रय पुरुष को प्राप्त कर उसके समक्ष (अभि सं नवन्त) आदर से झुकते है । (अध्वराणां रथ्यम्) यज्ञों वा संग्रामों के बीच महारथी और (यज्ञस्य) यज्ञ, दान, संगति आदि के (केतुम्) ज्ञापक, ध्वजा के

तुल्य सर्वसाक्षी, पुरुष को ही (देवाः) विद्वान् लोग (आ जनयन्त) सर्वत्र प्रसिद्ध करें।

त्वद्विप्रो॑ जायते वा॒ज्य॑ग्ने त्व॒द्वीरा॑सो अभिमाति॒षाहः॑ ।
वैश्वा॑नर॒ त्वम॒स्मासु॑ धेहि॒ वसू॑नि राजन्त्स्पृह॒याय्या॑णि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, परंतप ! हे ज्ञानयुक्त विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (त्वत्) तुझ से ही (विप्रः) विप्र, विद्वान् पुरुष (वाजी) बलवान् और अन्नैश्वर्यवान् (जायते) होता है। (त्वत) तुझ से ही अधिकार प्राप्त करके (वीरासः) वीर पुरुष (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने हारे उत्पन्न होते हैं। हे (वैश्वानर) समस्त नायकों के नायक ! (त्वं) तू ही (अस्मासु) हममें (स्पृहयाय्याणि) चाहने योग्य नाना (वसूनि) ऐश्वर्य (धेहि) धारण करा, हमें प्रदान कर।

त्वां विश्वे॑ अमृत॒ जाय॑मानं॒ शिशुं॒ न दे॒वा अ॒भि सं न॑वन्ते ।
तव॒ क्रतु॑भिरमृत॒त्वमा॑य॒न्वैश्वा॑नर॒ यत्पि॒त्रोरदी॑देः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः) दानशील सम्बन्धीजन जिस प्रकार (जायमानं शिशुं न) उत्पन्न होते हुए नवबालक को (अभि सं नवन्ते) लक्ष्यकर आशीर्वादादि के निमित्त उसके प्रति प्रेम से झुकते है उसी प्रकार हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यो के नायक ! हे (अमृत) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले ! (यत्) जब तू (पित्रोः) पालक माता पिताओ, एवं पिता वा गुरुजन दोनों के बीच और दोनो के अधीन उत्तम रूप, गुणों और विद्यादि से (अदीदेः) प्रकाशित हो (देवाः) देव, विद्वान् लोग तुझ (जायमानं) उदय होते हुए, (शिशुं त्वां) प्रशंसनीय तुझको (अभि सं नवन्ते) आदरपूर्वक झुकते हैं। वे (तव क्रतुभि) तेरे कर्मों और ज्ञानों से ही (अमृतत्वम् आयन्) अमृत, अविनाशी सत्ता को प्राप्त हों।

वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यो मे विद्यादि उत्तम गुणो से नायक होने योग्य ! (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो तू (पित्रोः) माता पिता विद्या और आचार्य उनके समीप (जायमानः) जन्म ग्रहण करता हुआ, अरणियों मे अग्नि के समान (अह्लाम्) सब दिनो के करने योग्य (वयुनेषु) कर्मों और ज्ञानो मे (केतुम् अविन्दः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त करता है (तव) तेरे (महानि व्रतानि) बड़े २ कार्यों और व्रताचरणों को (नकि आदधर्ष) कोई भी नाश नहीं कर सके ।

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना । तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६ ॥

भा०—(वैश्वानरस्य दिवः केतुना या सानूनि विमितानि) सब मनुष्यों के हितकारी सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार उच्च २ स्थल विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (वैश्वानरस्य) समस्त जीवो के हितकारी प्रभु के (दिवः) तेजःस्वरूप, कामना योग्य (अमृतस्य) मोक्ष रूप अमृत के स्वरूप (चक्षसा) सर्वप्रकाशक (केतुना) ज्ञान से (सानूनि) समस्त भोग्य ऐश्वर्य युक्त पदार्थ (वि-मितानि) विशेष रूप से बने हैं । (तस्य इत् मूर्धनि) उसके ही शिर पर, उसके ही आश्रय (विश्वा भुवना) समस्त लोक (वयाः इव) उसकी शाखाओ के समान (अधि रुरुहुः) स्थित हैं । और उसी के शिर पर उसी के आश्रय (सप्त विस्रुहः) सात प्रवाहो के समान सात विकृतियां या सातो प्रकार के विसरणशील जीव सर्ग वा सात प्रकृति विकार (अधि रुरुहुः) स्थित है । (२) अध्यात्म मे—अमृत, अविनाशी जीव के दर्शन सामर्थ्य से समस्त इन्द्रिये बनी है और उसी के शिर मे शाखावत् सात प्राण हैं । विद्वान्

पक्ष में (सप्त विस्रुहः) सात छन्दोमय वाणियें उसके मस्तिष्क में रहती हैं ।

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि द्विवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ७।९

भा०—(यः) जो (वैश्वानरः) समस्त प्राणियों और पदार्थों में व्यापक, सबका सञ्चालक परमेश्वर (सु-क्रतुः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (रजांसि) समस्त लोकों को (वि अमिमीत) विविध प्रकार से बनाता है और जो (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दिवः रोचना वि अमिमीत) आकाश के या प्रकाश से युक्त चमकने वाले सूर्यादि लोकों को किरणोंवत् विविध रूप से बनाता है (यः) जो (विश्वा भुवनानि परि पप्रथे) समस्त उत्पन्न हुए लोकों को सब ओर फैलाये है, वह (अदब्धः) कभी नाश न होने वाला (गोपाः) समस्त भूमियो, गतिशील सूर्यों और जन्तुओं का पालक और (अमृतस्य) अमृत, जीव प्रकृति आदि तत्वों का (रक्षिता) रक्षक है । इति नवमो वर्गः ॥

[८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती । ६ विराड् जगती । २, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥१॥

भा०—(पृक्षस्य) स्नेहवान्, विद्यादान आदि सम्बन्धों से सम्पर्क करने वाले, (वृष्णः) मेघ के समान ज्ञानोपदेश को देनेवाले, बलवान् , (अरुषस्य) तेजस्वी, रोष वा हिंसा से रहित (जात-वेदसः) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, समस्त धनों के स्वामी पुरुष के (विदथा) ज्ञानों और

प्राप्ति साधनों और (सहः) सहनशीलता और बल की (नु) भी अवश्य हम (प्र वोचम्) स्तुति करें, और उत्तम गुणों वाले पुरुष को बल वृद्धि और ज्ञानों का उपदेश करें। (वैश्वानराय अग्नये) सबके नायक अग्रणी पुरुष की (नव्यसी मतिः) अति स्तुत्य बुद्धि और वाणी (शुचिः) अति पवित्र शुद्ध रूप से (चारुः) अति सुन्दर होकर (सोम इव पवते) ओषधि रस के तुल्य दुःखनाशक होकर प्रकट होती है।

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान्, विद्वान्, विनीत शिष्य (परमे) सबसे उत्कृष्ट (व्योमनि) विशेष रूप से रक्षा करने वाले, आकाशवत् विशाल, ज्ञानवान् गुरु के अधीन आकाश में सूर्य के तुल्य (जायमानः) जन्म लेता हुआ (व्रत-पाः) व्रतों का पालक होकर (व्रतानि) नाना व्रतों का (अरक्षत) पालन करे। वह (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, उत्तम कर्मकुशल पुरुष (वैश्वानरः) सबका हितैषी सब शिष्यगण को सन्मार्ग पर ले जाने वाला आचार्य होकर (अन्तरिक्षम्) रसवत् भीतर विद्यमान ज्ञान को (वि अमिमीत) विशेष रूप से ज्ञान करे। और (महिना) बड़े सामर्थ्य से (नाकम्) सुख को (अस्पृशत्) प्राप्त करे और अन्यों को प्राप्त करावे।

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (रोदसी वि-अस्तभ्नात्) आकाश और पृथिवी दोनों को थामता है, (ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत्) प्रकाश से अन्धकार को लुप्त कर देता है, (चर्मणी इव धिषणे वि अवर्त्तयत्) दो चमड़ों के समान सबके धारक अन्तरिक्ष, पृथिवी दोनों को

विशेष व्यापारवान् करता है (विश्वम् वृष्णयम् अधत्त) वर्षण योग्य जल को धारण करता है उसी प्रकार (वैश्वानरः) समस्त शिष्यगण को सन्मार्ग पर ले जानेहारा गुरु वा विद्वान् पुरुष (मित्रः) सबको स्नेह करने वाला होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् नर नारी दोनों को (वि अस्तभ्नात्) विशेष नियमों में स्थिर करे। वह (अद्भुतः) आश्चर्य-कारक, (ज्योतिषा) ज्ञान ज्योति से (तमः) शोक, अज्ञान रूप अन्धकार को (अन्तः-वावत्) लुप्त (अकृणोत्) करे। वह (धिषणे) व्रतों और आश्रमों के धारण करने वाले स्त्री पुरुषों को (चर्मणी इव) सूत्रों से दो चर्मों के समान मिला, एवं ग्रथित कर (वि-अवर्त्तयत्) विशेष कार्यों में प्रवृत्त करे। वह (वैश्वानरः) सबका नायक, होकर (विश्वम् वृष्ण्यम्) सब बलों को (अधत्त) धारण करे, करावे। (२) वह परमेश्वर सूर्य पृथिवी आदि को धारण करता, अन्धकार को सूर्य प्रकाश से नश करता। आकाश भूमि को घुमाता, सब बलों और विश्व को धारता है।

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् लोग (अपाम् उपस्थे अग्निम् अगृभ्णत) जलों और मेघों में से भी विद्युत् और अग्नि को ग्रहण करते हैं और (मातरिश्वा दूतः परावतः विवस्वतः अग्निम् वैश्वानरम् अभरत्) ज्ञान वा अग्नि विद्या का वेत्ता पुरुष दूर स्थित सूर्य से भी वैश्वानर अग्नि को यन्त्र द्वारा संग्रह कर लेता है उसी प्रकार (अपाम् उपस्थे) आप्त जनों के बीच में (विशः) वैश्यजन वा प्रजाएं (महिषाः) बड़े भारी ऐश्वर्य को देती हुई (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (राजानम्) तेजस्वी राजा को (उप तस्थुः) प्राप्त हों, उसके समीप आवें। (मातरिश्वा) भूमि पर वेग से जाने में समर्थ (दूत) शत्रुओं को सन्ताप देने वाला विद्वान् पुरुष (परावतः) दूर देश के भी (विवस्वत.) विविध वसु अर्थात्

ऐश्वर्यों और प्रजाओं से समृद्ध देश से (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी नायक (वैश्वानरं) सबके नायक, पुरुष को (आ अभरत्) प्राप्त करे ।

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (युगे युगे) प्रति वर्ष, (गृणद्भ्यः) उपदेश देने वाले विद्वानों को (विदथ्यं) युद्ध, यज्ञ आदि से उत्पन्न होने वाले (रयिं) ऐश्वर्य और (यशसं) अन्न और यश एवं (नव्यसी) अति स्तुत्य, नयी से नयी, शुभ वाणी, और सत्कार क्रिया को (धेहि) दिया और किया कर । हे (राजन्) राजन् ! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंक देने हारे ! जैसे (पव्या इव वनिनं) वज्र या कुठार से वन के वृक्ष को काट डाला जाता है और जैसे (तेजसा वनिनं न) तेज से जल युक्त मेघ को छिन्न भिन्न किया जाता है उसी प्रकार (पव्या) चक्र की धारा वा तलवार से और (तेजसा) तीक्ष्ण तेज से (अघ-शसं) पाप की बात कहने वाले वा पाप हत्यादि करने वाले चोर डाकू वा (वनिनं) वन में छुपे हिंसक पुरुष को (नीचा निवृश्च) नीचे गिराकर काट डाल ।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे अग्रणी नायक ! तू (अस्माकम्) हमारे बीच मे जो (मघवत्सु) धन ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न पुरुष हैं उनमें (अनामि) कभी न झुकने वाले, अखूट (क्षत्रम्) धनैश्वर्य और (अजरम्) अविनाशी, जरावस्था से, रहित, सदा जवान, शत्रु को उखाड, फेंकने वाला (सुवीर्यम्) उत्तम बल-वीर्य (धारय) धारण करा । हे (अग्ने) तेजस्विन् (वैश्वानर) सबके नायक ! (वयं) हम

(तव ऊतिभिः) तेरी रक्षा साधन, सेनाओं और तेरे उपस्थित किये साधनों से (शतिनं सहस्रिणं वाजम्) सैकड़ों और सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य को (जयेम) विजय करलें ।

अद॑ब्धेभि॒स्तव॑ गो॒पाभि॑रिष्टे॒ऽस्माकं॑ पाहि त्रिषधस्थ सू॒रीन् ।
रक्षा॑ च नो द॒दुषां॒ शर्धो॑ अग्ने॒ वैश्वा॑नर॒ प्र च॑ तारीः स्तवा॑नः ७।१०॥

भा०—हे (त्रि-सधस्थ) तीनों सभा स्थानों के स्वामिन् ! तू (इष्टे) तेरे अपने अभिलषित कार्य में लगे (अस्माकम्) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों की (अदब्धेभिः गोपाभिः) न नाश होने वाले, दृढ़ रक्षकों द्वारा सदा (पाहि) रक्षा किया करे । (नः) हमारे (ददुषां) करादि देने वाले प्रजाजनों के (शर्धः) बल की (रक्ष) रक्षा कर । हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के नायक ! तू (स्तवानः) प्रशंसित होकर (प्र तारीः च) सबको दुःखों से भली प्रकार पार कर । इति दशमो वर्गः ॥

[९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४ पंक्तिः । ७ भुरिग्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अह॑श्च कृ॒ष्णमह॒रर्जु॑नं च॒ वि व॑र्तेते॒ रज॑सी वे॒द्याभिः॑ ।
वैश्वा॒न॒रो जाय॑मानो॒ न राजावा॑तिर॒ज्ज्योति॑षा॒ग्निस्तमां॑सि ॥१॥

भा०—(कृष्णं च अहः) काला दिन अर्थात् रात्रि, और (अर्जुनं च अहः) श्वेत, प्रकाशित दिन दोनों (वेद्याभिः) स्वयं जानने योग्य नाना घटनाओं सहित (रजसी) सबका मनोरञ्जन करते हुए (वि वर्त्तेते) वार २ आते हैं और (वैश्वानरः अग्निः) सबका नायक सञ्चालक

सूर्य (राजानम्) राजा के समान देदीप्यमान होकर (ज्योतिषा तमांसि अव अतिरत्) तेज से अन्धकारो को दूर करता है उसी प्रकार (रजसी) एक दूसरो के मनो को अनुरञ्जन करने वाले राजा, प्रजा वा स्त्री पुरुष लोग (वेद्याभिः) जानने योग्य कर्मों या 'वेदि', यज्ञवेदि पर प्रतिज्ञा रूप से करने योग्य क्रियाओ द्वारा दिन रात्रि के समान विविध व्यवहार करें और (वैश्वानरः) सबका नायक राष्ट्र में राजा, एवं गृहस्थ मे बालक, गृह मे आहवनीय अग्नि, गृहपति और हृदय मे परमेश्वर तेज से समस्त शोक अज्ञानादि अन्धकारों को दूर करे ।

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २ ॥

भा०—(अहं) मै (न तन्तुं वि जानामि) न तन्तु वा तनना ही जानता हूं और (न ओतुम्) न बुनना अथवा न वरनी ही जानता हूं और (न) न उसको जानता हूं (यं) जिसको (समरे) समर में गमन करने योग्य परम लक्ष्य के निमित्त (अतमानाः) जाते हुए (वयन्ति) बुनते हैं। इस विषय में (कस्य स्वित् पुत्रः परः) किसी का अति ज्ञानी पुत्र (अवरेण पित्रा) उरे के, अल्प ज्ञानी पिता के द्वारा, (परः) और उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर इस रहस्य के विषय में (वक्त्वानि वदाति) उपदेश करने योग्य वचनो का उपदेश कर सकता है। कोई ही ऐसा विलक्षण पुत्र उत्पन्न होता है जो अपने पिता वा गुरु से शिक्षा पाकर अपने पिता वा गुरु से भी अधिक ज्ञानवान् होकर ब्रह्मतत्व आदि वातों को यथार्थ रूप से वतला सके। नही तो हम जीवो में इतना अज्ञान है कि हम अरनी-वरनी और वस्त्रादि कुछ भी नहीं जानने वाले अनाडी के समान साधन, उपासना और साध्य कुछ भी नहीं जानते। और पैदा हो जाते है। याज्ञिको के मत से—यज्ञ रूप वस्त्र है गायत्री आदि छन्द 'तन्तु' हैं, अध्वर्यु के कर्म 'ओतु' है, देवयजन स्थान 'समर' हैं,

उनमें उन सबका उपदेष्टा कोई ही होता है। ब्रह्मवादियों के मत से— यह जगत् प्रपञ्च रूप और दुर्विज्ञेय है, इसमें आकाशादि सूक्ष्म पञ्चभूत तन्तु है और स्थूल पञ्चभूत 'ओतु' है, संसारी जीव इस संसार 'समर' में निरन्तर जाते हुए क्या करते हैं यह पता नहीं लगता। इस रहस्य को कोई ही ज्ञानी बता सकता है। वैश्वानर प्रभु का रहस्य वही जाने।

स इत्तन्तुं स वि जा॑नात्योतुं स वक्त्वा॑न्यृतुथा व॑दाति ।
य ईं चिके॑तदमृत॑स्य गोपा अवश्चर॑न्परो अन्येन॒ पश्य॑न् ॥३॥

भा०–(सः इत्) वह ही (तन्तुं) तन्तु को जानता है और (सः ओतुं विजानाति) वही 'ओतु' अर्थात् बरनी को भी जानता है, (सः) वह ही (ऋतुथा) समय २ पर और प्रति ज्ञानयोग्य काल में (वक्त्वानि) उपदेश करने योग्य वचनों का भी (वदाति) उपदेश करता है। (यः गोपाः) जो सबका रक्षक, (पर) सबसे उत्कृष्ट होकर (अन्येन) दूसरे के द्वारा (अमृतस्य पश्यन्) अविनाशी आत्मा का साक्षात् करता हुआ, उसको देखता हुआ भी (अवः चरन्) इस लोक में व्यापता हुआ (ईं चिकेतत्) इस रहस्य को जान लेता है। अर्थात् जो विद्वान् अपने से 'अन्य' गुरु द्वारा (अवः) इसके अधीन रहता हुआ ज्ञान का साक्षात् करले, वही उस अमृत अविनाशी तत्त्व का ज्ञान करता है, वह साधन, साध्य आदि भी जानता है। वही समय २ पर उपदेश भी करता है।

अयं होता॑ प्रथमः पश्य॑तेममिदं ज्योति॑रमृतं मर्त्ये॑षु ।
अयं स ज॑ज्ञे ध्रुव आ निष॒त्तोऽम॑र्त्यस्तन्वा॒३ वर्ध॑मानः ॥ ४ ॥

भा०—जीव का वर्णन—हे विद्वान् पुरुषो! (अयं हि) यह ही (प्रथम होता) सबसे उत्तम समस्त सुखों का ग्रहण करने और देने वाला है (इमं पश्यत) इसको साक्षात् किया करो। (मर्त्येषु) मर जाने वाले

देहो मे (इदं अमृतं ज्योतिः) यह कभी नाश न होने वाली 'ज्योति' है। अर्थात् यह चेतन ज्योति कभी नाश को प्राप्त नही होती। (अयं) यह (सः) वह (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, (तन्वा वर्धमानः) शरीर से बढता हुआ (ध्रुवः) सदा स्थिर, नित्य होकर भी (आ नि-सत्तः) शरीर या गर्भ में स्थिर होकर (जज्ञे) जन्म लेता है। ईश्वर पक्ष मे—वह सब का स्वामी, इन मरणधर्मा जीवो मे ज्योति है। जो सर्वश्रेष्ठ 'होता' सब सुखों का दाता है वह ध्रुव, कूटस्थ, अमृत, (तन्वा) अति विस्तृत ब्रह्माण्ड से भी कही बढ़ा हुआ है, (आ नि-सत्तः) सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है। (स जज्ञे) वही समस्त संसार को पैदा करता है।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥

भा०—इस देह मे (दृशये) दर्शन करने के लिये (ध्रुवं) स्थिर नित्य (ज्योतिः) ज्योति, सुख दुःखादि का प्रकाश करने वाला, स्वयं प्रकाश आत्मा (नि-हितं) स्थित है। जो (कम्) स्वयं सुखमय कर्त्तारूप है। और (पतयत्सु) गति करने वाले वा अपने २ स्थान पर अपनी वृत्तियो के स्वामी के समान वर्त्तने वाले अध्यक्षों के तुल्य इन प्राणों वा विषयों की ओर दौड़ते हुए इन्द्रियों के बीच मे या उनके ऊपर घोड़ों पर सारथि के समान, (अन्तः) देह के ही भीतर (जविष्ठं) अति वेग से युक्त (मनः) ज्ञान करने का साधन 'मन' भी स्थित है (विश्वे-देवा) सब विषयों की कामना करने वाले इन्द्रियगण वा प्राण, (सम-नस) मन के सहित मिलकर (सकेताः) ज्ञानयुक्त से होकर (एकम् क्रतुम् अभि) एक ही कर्त्ता आत्मा की ओर (वि यन्ति) विशेष रूप से जाते हैं। वे स्वयं मन सहित होकर चेतनवन् देख, सुनकर भी उसी एक कर्त्ता आत्मा को प्राप्त होते है, उसी को अपना ज्ञान भी देते हैं। सब इन्द्रिय पृथक् २ होकर भी एक ही भोक्ता आत्मा को बतलाती हैं। "अस्ति

आत्मा दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥" न्यायसूत्र । ३ । २ । १ ॥ ये देव प्राणगण ही नर है उनका स्वामी जीवात्मा ही 'वैश्वानर' है ।

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ६

भा०—(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे दोनो कान विविध दिशाओं को जाते है, और (चक्षुः वि पतयति) आंख भी विविध प्रकार से जाती वा ये विविध प्रकार से स्वामिवत् स्वतन्त्र से होकर कार्य करते है, कान स्वयं सुनते और आखें स्वयं देख लेती हैं । और (यत्) जो (ज्योति.) सबका प्रकाशक और दीपक वा सूर्यवत् स्वयं प्रकाश स्वरूप (इदं) यह प्रत्यक्ष, अनुभववेद्य (हृदये आ-हितम्) हृदय मे रक्खा है, यह भी इस शरीर मे (वि पतयति) विशेष रूप से स्वामी होकर शासन करता है । और (मे मनः) मेरा मनन करने वाला मन भी (दूरे आधीः) दूर २ देश के पदार्थों का भी निरन्तर ध्यान करता हुआ (वि चरति) विविध प्रकार से विचार करता है, तो फिर इस रहस्य के विषय मे मै (कि स्विद् वक्ष्यामि) वाणी द्वारा क्या और क्योकर कहूं, (किम् उ नु मनिष्ये) मै क्या और क्योकर मनन कर सकूं ।

विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वप्रकाश, एवं अग्रणी ! (भियानाः) भय से व्याकुल (विश्वे देवा.) समस्त विषयाभिलाषी इन्द्रियगण (तमसि) अन्धकार मे (तस्थिवासम्) स्थित दीपक के समान चमकने वाले (त्वाम्) तुझको (अनमस्यन्) नमस्कार करते है, तेरी ही ओर झुकते है, तेरी शरण मे आते है । अर्थात् जैसे अन्धकार के समय सब लोग भयभीत होकर वनादि मे अग्नि या दीपक

की शरण लेते हैं, अज्ञान दशा में गुरु की शरण लेते और प्रजाजन दस्यु आदि से भयभीत होकर प्रतापी पुरुष की शरण लेते, उसके आगे झुकते है उसी प्रकार ये इन्द्रियगण मानो मृत्यु या शक्तिरहितता से भय करके पुनः अपनी चेतना लेने के लिये आत्मा के ही शरण जाते है। (वैश्वानरः) समस्त प्राणों में स्थित, सब का सञ्चालक, सब मनुष्यो से विद्यमान वह आत्मा ही (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा करने के लिये हमे (अवतु) प्राप्त हो। वह (अमर्त्यः) अविनाशी आत्मा, ही (नः ऊतये नः अवतु) हमारी रक्षा के निमित्त हमे सदा प्राप्त है। (२) इसी प्रकार पापों से भयभीत विद्वान् जन सर्व प्रभु परमात्मा को प्राप्त करे। वह अपनी रक्षा शक्ति से हमारी रक्षा करे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ४ आर्षी पांक्तः । २, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ७ प्राजापत्या बृहती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (यज्ञे प्रयति) प्रयत्न साध्य सत्संग, देवपूजा, और दान आदि सत्कर्म करने के अवसर मे और (अध्वरे) हिंसादि से रहित प्रजापालन आदि कर्म मे (वः) अपने और अपने में से (मन्द्रं) स्तुति योग्य, (दिव्यं) ज्ञान में कुशल, तेजस्वी, (अग्निम्) स्वयं प्रकाश, ज्ञानवान्, और अग्रणी पुरुष को (वः पुरः) अपने आगे साक्षी रूप से (दधिध्वम्) स्थापित करो। उपासना काल मे प्रभु को सर्वसाक्षी उपास्य जानो, यज्ञादि कर्म में विद्वान् को पुरोहित बनाओ और प्रजा-शासनादि कार्य में प्रतापी नायक को आगे प्रधान पद पर

स्थापित करो। (सः हि) वह निश्चय से (वि-भावा) विशेष कान्ति-युक्त, विशेष रूप से सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला (जात वेदा॰) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला और ऐश्वर्यों का स्वामी है। वह (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (नः) हमारे (पुरः) समक्ष साक्षी होकर (सु-अध्वरा) उत्तम, अहिंसनीय, प्रजापालनादि सत्कार्यों का (करति) सम्पादन करे।

तमु॑ द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने॑ अ॒ग्निभि॒र्मनु॑ष इधा॒नः।
स्तोमं॒ यम॑स्मै म॒मते॑व शू॒षं घृ॒तं न शुचि॑ म॒तयः॑ पवन्ते ॥ २ ॥

भा॰—हे (द्युमः) कान्तिमन्! हे सूर्यवत् तेजस्विन् हे 'द्यु' अर्थात् पृथिवी और उत्तम कामना सद्-व्यवहार आदि के स्वामिन्! हे (पुर्वणीक) बहुत सी सेनाओं के स्वामिन्! हे (पुरु-अनीक) बहुत संमुखों वाले, बहुत से वक्ता विद्वानों वा सैन्यों के स्वामिन्! हे (होतः) अधीनों को अन्न वेतनादि देने वाले! दातः! हे (अग्ने) अग्रणी, स्वयंप्रकाश! शत्रु को दग्ध करने वाले प्रतापिन्! तू (अग्निभिः) अग्निवत् तेजस्वी, अपने अंगों में नमने वाले, विनयशील भृत्यो, ज्ञानवान् विद्वानों द्वारा (इधानः) स्वयं अवयवों, वा प्रकाशों से अग्नि के समान, चमकता हुआ, (तम् उ स्तोमं) उस स्तुति-वचन को सुन वा स्तुत्य पद उत्तम सैन्य बल को ग्रहण कर (यम्) जिस (शूषं) सुखकारी वचन को या शत्रुशोषक शुद्ध, पवित्र, धार्मिक बल को, (मतयः) बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार (पवन्ते) स्वच्छ रूप से प्रकट करते हैं जिस प्रकार (ममता इव शूषं शुचिं घृतं न) माता, या बुद्धिमती स्त्री, बलकारी, शुद्ध तेजस्कर दुग्ध, घृत, जलादि को स्वच्छ करती, प्रदान करती हैं।

पी॒पाय॒ स श्रव॑सा मर्त्ये॑षु यो अ॒ग्नये॑ द॒दाश॒ विप्र॑ उ॒क्थैः।
चि॒त्राभि॒स्तमू॒तिभि॑श्चि॒त्रशो॑चिर्व्र॒जस्य॑ सा॒ता गोम॑तो दधाति ॥३॥

भा०—(यः विप्रः) जो विद्वान् पुरुष (अग्नये) अग्रणी और विद्वान् पुरुष को (उक्थैः) उत्तम आदर योग्य वचनो से अग्नि मे आहुति के समान (ददाश) देने योग्य पदार्थ ज्ञानादि प्रदान करता है (स·) वह (मर्त्येषु) मनुष्यो के वीच मे (पीपाय) वृद्धि को प्राप्त होता है। (चित्र-शोचिः) अद्भुत कान्ति वाला, तेजस्वी पुरुष (तम्) उस दानशील विद्वान् को (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत २ रक्षा साधनो से (पीपाय) वढ़ाता है और (गो-पतेः व्रजस्य) गौओ वाले अर्थात् गो समूह के (साता) सेवनीय ऐश्वर्य के ऊपर (दधाति) उसको पुष्ट करता है, उसका उसे स्वामी वना देता है। प्रजाजन राजा को करादि देता है वह उसको अन्न सम्पदा से वढ़ाता है। उस प्रजाजन को वह तेजस्वी पुरुष उत्तम रक्षा-साधनों से वढाता और गवादि पशु समृद्धि के बल पर या वाणी, शासनाज्ञा से युक्त गमनयोग्य न्याय मार्ग के (सातौ) ठीक प्रकार से प्रदान करने पर पालता पोपता है। (२) जो शिष्य गुरु को उत्तम वचनो सहित अपने को आचार्य के अधीन सौंप देता है वह (श्रवसा) श्रवणीय ज्ञान से स्वयं वड़ता है वह उसे नाना विद्याओ से वढाता और वेद वाणियो वाले प्राप्य वेदमय साहित्य के अनुशासन मे धारण करता है।

आ यः प॒प्रौ जाय॑मान उ॒र्वी दू॑रे॒दृशा॑ भा॒सा कृ॒ष्णाध्वा॑।
अध॑ ब॒हु चि॒त्तम॒ ऊर्म्या॑यास्ति॒रः शो॒चिषा॑ ददृशे पाव॒कः ॥४॥

भा०—अग्नि वा सूर्य (दूरे-दृशा भासा उर्वी आ पप्रौ) दूर से दीखने वाली कान्ति से आकाश पृथिवी को पूर्ण कर देता है (अध ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिपा तिरः ददृशे) और जिस प्रकार वह रात्रि के बहुत बहुत से अन्धकार को अपनी कान्ति से दूर कर देता है उसी प्रकार (कृष्ण अध्वा) संसार-मार्ग पर सुख से जाने हारा, कृतकृत्य (य) जो पुरुष (जायमान·) उदित होते सूर्य के समान प्रकट होकर अपने (दूरे-दृशा भासा) दूरदर्शी ज्ञान प्रकाश से, (उर्वी) अपने माता पिता और

बड़े स्त्री पुरुषों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है, वह (पावकः) सबको पवित्र करने हारा, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (ऊर्म्यायाः) उत्तम ज्ञान सम्पादन करने में लग्न जनता के (बहु चित् तमः) बहुत से अज्ञान अन्धकार को (शोचिषा) ज्ञान दीप्ति से (तिरः ददृशे) दूर करके यथार्थ पदार्थ का दर्शन कराता है।

नू न॑श्चि॒त्रं पु॑रु॒वाजा॑भिरू॒ती अग्ने॑ र॒यिं म॑घव॒द्भ्यश्च॑ धेहि।
ये राध॑सा॒ श्रव॑सा॒ चात्य॒न्यान्त्सु॒वीर्ये॑भिश्चा॒भि सन्ति॒ जना॑न् ॥५॥

भा०—(ये) जो लोग (राधसा) धनैश्वर्य, ईश्वराराधन और कार्य साधन से और (श्रवसा) यश और ज्ञान से और (सु-वीर्येभिः च) उत्तम वीर्यवान् पुरुषों, बलयुक्त कार्यों और सामर्थ्यों से भी (जनान्) साधारण जनों से (अभि सन्ति) बढ़ जाते हैं, हे (अग्ने) अग्रणी नायक! एवं हे तेजस्विन्! तू उन (मघवद्भ्यः) दान करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों के स्वामियों से (च) भी (चित्रं रयिम्) आश्चर्यजनक ऐश्वर्य (पुरु-वाजाभिः ऊती) बहुत अन्न और बलवाली भूमियों, सेना और रक्षाकारी उपायों से (नः) हमें (धेहि) प्रदान कर और हमें पालन पोषण कर। अर्थात् राजा को चाहिये कि धनवानों के धनों से भूमियों और सेनाओं को पुष्ट करे और उन द्वारा सामान्य प्रजाओं का पालन और पोषण करने की व्यवस्था करे।

इ॒मं य॒ज्ञं चनो॑ धा अग्न उ॒शन्यं त॑ आसा॒नो जु॑हु॒ते ह॒विष्मा॑न्।
भ॒रद्वा॑जेषु दधिषे सुवृ॒क्तिमवी॒र्वाज॑स्य॒ गध्य॑स्य सा॒तौ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (हविष्मान् उशन् आसानः जुहुते, अग्निः यज्ञं चनः दधाति) अन्न चरु का स्वामी सुख कामना युक्त होकर अग्नि में हवि होमता और वह अग्नि यज्ञ और अन्नादि हवि को स्वीकार करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक तेजस्विन्! (हविष्मान्) अन्नादि देने योग्य कर आदि से युक्त प्रजाजन (आसानः) सुखपूर्वक राष्ट्र में

रहता हुआ, और (उशन्) तुझे चाहता हुआ और तुझ से शुभ आशाएं चाहता हुआ (यं ते जुहुते) जिस पदार्थ को तेरी वृद्धि के लिये देता है तू (इमं यज्ञ) इस दिये दान, और पूजा सत्कार को और (चनः) अन्नादि पदार्थ को (उशन् धाः) कामनावान् होकर ही धारण कर। तू (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्यों, अन्नों और वलो, सैन्यो को धारण करने वाले प्रवल पुरुषो के आश्रय ही (सु-वृक्तिम्) राष्ट्र में उत्तम मार्ग और शत्रु सेना का सुख से वर्जन करने वाली शक्ति सेना को भी (दधिषे) धारण पालन कर। (गध्यस्य) सभी के चाहने योग्य ऐश्वर्य की (सातौ) संग्राम के वल पर प्राप्त करने वा प्रजाजनो मे यथोचित रीति से विभाग कर देने के लिये (अवीः) रक्षा कर।

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१७॥१२॥

भा०—हे राजन्! हे स्वामिन्! तू (द्वेषांसि) द्वेष के भावो को तथा द्वेष करने वाले शत्रुजनो को (वि इनुहि) दूर कर (इडां) हमारी अभिलाषा करने योग्य, भूमि और उत्तम वाणी को (वर्धय) वढा और हम सव (सुवीराः) उत्तर वीर और उत्तम पुत्रादि से युक्त होकर (शत-हिमाः) सौ २ हेमन्तों, सौ सौ वरसो तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न होकर रहे। इति द्वादशो वर्गः॥

[११]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट्त्रिष्टुप्। २ निचृत्पांक्तिः। षडृचं सूक्तम्॥

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने वाधो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः॥१॥

भा०—हे (होतः) देने हारे! तू (यजीयन्) सवसे वडा देने हारा, और तू ही (इषितः) हमारे इच्छाओं का विषय, प्रिय है।

(इषितः सन्) हम लोगों से प्रेरित एवं प्रार्थित होकर हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! तू (मरुताम्) मनुष्यों के (वाधः) बुरे मार्ग से रोकने और (प्रयुक्ति) उत्तम कर्म मे लगाने वाला ज्ञान-बल और कर्म-बल (यजस्व) प्रदान कर और वह बल हमे दे और (नः होत्राय) हमें देने और हमें अपने अधीन लेने के निमित्त ही (मित्रावरुणा) स्नेहवान्, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले श्रेष्ठ और दुष्टो का वारण करने वाले पुरुषो को और (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, एवं नासिका स्थान अर्थात् अग्रपद पर विराजने योग्य, (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य सबको ज्ञान का प्रकाश और आश्रय तथा, जीवन अन्न देने वाले स्त्री पुरुषों को (आववृत्या) सब प्रकार के कार्यों मे आदर पूर्वक नियुक्त कर और पुनः उनको अपने कार्य मे लगा।

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥२॥

भा०—इस देह की गृहस्थ से तुलना। जिस प्रकार (देवः) बलप्रद आत्मा अग्निवत् (मर्त्येषु अन्तः अध्रुक्) मरणशील देहों के बीच मे देहो का द्रोह या नाश न करता हुआ, (मन्द्रतम.) आनन्द जनक एवं स्फूर्त्ति जनक (वह्निः) शरीर को वहन करने मे समर्थ होकर (पावकया जुह्वा) पवित्रकारक, शरीरशोधक अन्न ग्रहण करने वाली शक्ति से (स्वा तन्व यजते) अपने शरीर मे यज्ञ करता है, उसी प्रकार हे (अग्न) अग्नि के समान तेजस्विन् ! (त्वं) तू (होता) अन्नादि का दाता, (मन्द्र-तमः) अति स्तुत्य, एवं अपने अधीनो को हर्षित करता और स्वयं अति प्रसन्न रहता हुआ, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करता हुआ, (देवः) दानशील, तेजस्वी, सत्य ज्ञान का प्रकाशक होकर (मर्त्येषु विदथा अन्तः) मनुष्यों के बीच मे, यज्ञ मे (वह्नि') गृहस्थ के भार को वहन करने मे समर्थ होकर, (पावकया जुहा) अति पवित्र

करने वाली, आहुति अर्थात् वीर्याधान करने योग्य, वा प्रेमोपहारादि देने की पात्ररूप पत्नी के साथ तू (तव स्वां तन्वं यजस्व) अपने देह को संगत कर, अपना देह उससे मिलाकर पति पत्नी भाव से एक देह होकर रह, और (आसा) मुख अर्थात् वाणी द्वारा भी (यजस्व) उसको अपने साथ मिला। प्रेम प्रतिज्ञादि वचनो द्वारा मिला। (२) इसी प्रकार 'अग्निवत्' तेजस्वी नायक राजा, अद्रोही दाता सदा प्रसन्न प्रकृति हो, (पावकया जुह्वा) दोष शोधक, देने योग्य, वाणी और मुख से अपने अपने देह के समान राष्ट्र रूप देह को प्राप्त कर।

धन्या॑ चि॒द्धि त्वे धि॒षणा॒ वष्टि॒ प्र दे॒वाञ्जन्म॑ गृण॒ते यज॑ध्यै ।
वेपि॑ष्ठो॒ अङ्गि॑रसां॒ यद्ध॒ विप्रो॒ मधु॑ छ॒न्दो भन॑ति रे॒भ इ॒ष्टौ ॥३॥

भा०—स्वयं वरण का प्रकार। (यद् ह) जब (विप्रः) विविध विद्याओ और ऐश्वर्यों मे पूर्ण, बुद्धिमान् (रेभः) विद्वान् उत्तम वचनों को कहने वाला पुरुप (इष्टौ) यज्ञ में, वा सत्संग के निमित्त (मधु) मधु के समान मधुर, मनोहर ((छन्दः) अपनी स्वतन्त्र इच्छा को (वदति) कहता है और (अंगिरसां मध्ये वेपिष्टः) अंगारो के बीच मे कम्पनशील अग्नि के समान विद्वानो के बीच मे (वेपिष्ठः) सबसे उत्तम वेद मन्त्र, उपदेशादि का उच्चारण करता है, हे विवाह करने हारे पुरुप ! (यजध्यै) संगति लाभ करने के निमित्त (देवान्) कन्या के दान करने वालो, उसके पिता, भाई, माता आदि के तथा अन्य विद्वान् पुरुपो के प्रति अपना (जन्म गृणते) जन्म काल तथा गोत्र, वंश आदि का उच्चारण करते हुए (त्वे) तुझे (धिपणा) गृहस्थ धारण करने मे समर्थ, और स्वयं पोपण योग्य (धन्या) धनैश्वर्य देने की योग्य पात्री, सौभाग्यवती स्त्री (चित् हि) भी (प्र वष्टि) अच्छी प्रकार कामना करे। (२) इसी प्रकार तेजस्वी पुरुषों से (वेपिष्ठ:) शत्रुओं को कंपा देने वाला, आज्ञापक, मधुर

इच्छा को प्रकट करे, वीरों के प्रति अपना स्वरूप बतलावे तब पालने योग्य धन समृद्ध प्रजा उसको अपना पति, स्वामी बनाना चाहती है।

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥

भा०—अग्नि तुल्य वर का स्वरूप—जिस प्रकार अग्नि (वि-भावा) विशेष कान्ति से युक्त होता है, उसको (पञ्च-जनाः रात-हव्या अञ्जन्ति) पांचों जन, काष्ठ आदि उसमें देकर प्रकाशित करते है उसी (यं) जिस वरणीय (सु-प्रयसम्) उत्तम प्रयत्नशील उद्योगी को (पञ्च जनाः) पांचों प्रकार के जन (रात-हव्या) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य पदार्थों को देकर (आयुं न) अभ्यागत अतिथि वा अपने प्रिय जीवन प्राण के तुल्य (नमसा) आदर पूर्वक नमस्कार और अन्नादि सत्कार द्वारा (अञ्जन्ति) सुशोभित करते, और चाहते है, वह (अपाकः) अन्यों को सन्तापकारी न होता हुआ (सु अदिद्युतत्) अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त होकर (ऊरुची) बहुत आदरयुक्त (रोदसी) अपनी रुचि से तेरे समीप आने वाली पत्नी के साथ (यजस्व) संगति लाभ कर। लोक रीति से वर के लाल कपड़े उसकी अग्नि की तुल्यता को बतलाते हैं। अग्नि, 'काम' और वीर्य वा तेज का प्रतिनिधि है। (२) इसी प्रकार जिसको पांचो जन आदर करें वह तेजस्वी प्रजा को सन्ताप न देता हुआ चमके, (रोदसी) विस्तृत राज प्रजावर्गों को प्राप्त करे। 'रोदसी'—रुद्रस्य पत्नी, 'रुद्रः', रुचा कान्त्या द्रवति आगच्छति।

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥

भा०—गृहस्थ यज्ञ का वर्णन। गृहाश्रम की यज्ञ से तुलना। जिस

प्रकार (नमसा बर्हिः वृञ्जे) कुशादि अन्न के साथ यज्ञ मे भी काटकर वेदी पर लाया और बिछाया जाता है, और (सु वृक्तिः घृतवती स्रुक् अयामि) उत्तम रीति से त्यागने योग्य घीसे भरी स्रुक्, बहती धार वा स्रुक् नाम पात्र अग्नि मे थामा जाता है तब (यज्ञः अश्रायि) यज्ञ वेदि मे स्थिर होता है, उसी प्रकार (यत्) जिस समय (अग्नौ) अग्निवत् तेजस्वी, विनयशील, अग्रनायक पुरुष के निमित्त (नमसा) उत्तम अन्न और विनय नमस्कारादि सत्कार द्वारा (बर्हिः) उसको आदर बढ़ाने वाला, आसन (वृञ्जे ह) दिया जाता है, तब (सु-वृक्तिः) उत्तम गति वाली उत्तम रीति से पति का वरण करने वाली, या सुखपूर्वक पिता द्वारा वरके हाथों मे देने योग्य (घृतवती) घृत के समान स्नेह से युक्त वा देहपर घृत का अभ्यंग किये, वा तेजस्विनी, अर्घ्य, पाद्य, जलादि से युक्त, सुन्दर सजी वधू (अयामि) विवाह द्वारा बंधती है, विवाही जाती है। वह (सद्म) अपने आश्रय रूप पति वा पति के गृह को भी (अभ्यक्षि) प्राप्त होती है, और उसी समय (यज्ञः) पत्नी के साथ संगति लाभ करने वाला, उसको धन वीर्यादि का दाता पुरुष भी (पृथिव्याः सदने स्वामी इव) पृथिवी के गृह मे स्वामी के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के तुल्य स्त्री को (सदने) प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम मे (सूर्येचक्षुः न) सूर्य के प्रकाश से युक्त चक्षु के समान (अश्रायि) स्थित होता है। वधू पति को अपना गृह समझ उस पर आश्रय करे और पुरुष उसको योग्य भूमि जान उसी को अपना गृह जाने, उसमें आश्रय ले, दोनों एक दूसरे के लिये प्रकाश और चक्षु के समान उपकार्य उपकारक, प्रकाश्य प्रकाशक और द्रष्टा और दर्शक हों।

द॒श॒स्या नः॑ पुर्वणीक होत॒र्दे॒वेभि॑रग्ने अ॒ग्निभि॑रिधा॒नः।
रा॒यः सू॑नो सहसो वावसा॒ना अति॑ स्रसेम वृ॒जनं॒ नांहः॑॥६॥१३॥

भा०—हे (पुर्वणीक) बहुत सी कान्तियों या शोभाओं से युक्त

मुख वाले ! सुमुख ! हे (होतः) वधू को अन्न, धन, वस्त्रादि देने, और कन्या को स्वयं स्वीकार करने हारे ! हे (अग्ने) अग्नि के समान कान्तिमान्! तू (अग्निभिः) अग्नि के समान उज्ज्वल (देवेभिः) किरणों से सूर्य के समान उत्तम गुणों से (इधानः) प्रकाशित होता हुआ (नः) हमें (रायः) दान देने योग्य ऐश्वर्य (दशस्य) प्रदान कर । हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं बल के उत्पादक ! (वावसानाः) अपने को अच्छी प्रकार कवच, वस्त्रादि से आच्छादित करते, वा बचाते हुए सुरक्षित रूप से हम (वृजनं न) वर्जन करने योग्य शत्रु वा गन्तव्य मार्ग के समान ही (अंहः) पाप को भी (अति स्वसेम) पार कर जावें । उसी प्रकार अग्रणी नायक तेजस्वी, विजयेच्छु पुरुषों सहित देदीप्त होकर हम प्रजाजनों को ऐश्वर्य दे, हम कवचादि से अच्छादित होकर पापवत् शत्रु को पार करें । बहुत से सैन्यों का स्वामी 'पुर्वणीक' है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत्-त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥

भा०—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और गृहपति विद्वान् का वर्णन । जिस प्रकार (यजध्यै बर्हिषः मध्ये बलस्य सूनुः राड् अग्निः दुरोणे सूर्यः न ततान) यज्ञ के निमित्त बिछे कुशामय आस्तरणों के बीच में बल द्वारा उत्पन्न चमकने वाला अग्नि गृह में सूर्य के समान अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक, एवं विद्वान् (रोदसी यजध्यै) स्त्री पुरुषों और राजा प्रजा वर्गों को परस्पर संगत करने के लिये स्वयं (होता) दानशील होकर (तोदस्य) शत्रुजनों को और पीडादायी

(बर्हिषः मध्ये) वृद्धिशील बिछे, कुशामय आस्तरणादि के बीच मे (दुरोणे) अन्य प्रतिस्पर्धियों से न प्राप्त न होने योग्य उत्तम आसन वा पद पर या दुर्ग मे स्थित होकर (सः) वह (राट्) तेजस्वी सम्राट् (सहसः सूनु) शत्रु पर भयकारी सैन्य का सञ्चालक और (ऋतावा) सत्य न्याय का पालक होकर (दूरात्) दूर से ही (सूर्यः न) सूर्य के समान (शोचिषा ततान) अपनी कान्ति से अपने राज्य को फैलावे ।

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील, हे पूज्य ! सत्संग योग्य विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (सर्वताता) सर्वहितकारी (द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष और सुखदात्री भूमि (अपाके) अपरिपक्व बुद्धि बल वाले (त्वे यस्मिन्) जिस तुझे (हव्या मघानि) उत्तम २ ग्रहण योग्य नाना (मानुषा) मनुष्यों के उपकारक ऐश्वर्य (आ दक्षन्) प्रदान करती है और तुझे बलवान् बनाती है वह तू (त्रि-सधस्थः) तीन सभाओ मे स्थित होकर (तत-रुष.) सबको संकटों से तारने वाले सूर्य के समान (जंहः) सर्वत्र वेग से जाता हुआ (मानुषा मघानि हव्या यजध्यै यक्षत्) मनुष्यों के हितकर ऐश्वर्यों और नाना खाद्य अन्नों को देने के लिये यत्न किया कर ।

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्नवृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि का (अरतिः तेजिष्ठा) वन या जंगल मे लगना ही अति तीक्ष्ण है और जैसे अग्नि (अध्वन् न तोदः) हण्टर के समान मार्ग मे बढता है उसी प्रकार (यस्य) जिसका (अरति.) आगमन ही (तेजिष्ठा) अति तेज वा प्रभाव से युक्त और जो (राट्) स्वयं तेजस्वी

सम्राट् होकर (तोदः) पशुओं पर चाबुक के समान (अध्वन्) मार्ग मे (वृधसानः) चलने वाले प्रजाजनों को आगे बढ़ाने वाला, उनको उन्नति पथ पर लेजाने हारा होकर (अद्यौत्) चमकता है, वह (अद्रोघः) प्रजा का द्रोह न करने हारा होकर (त्मन्) अपने आप मे ही स्वत (द्रविता न) वेग से जाते रथ के समान वेगवान् होकर (ओषधीषु) ओषधियों मे अग्निवत् प्रजाओं मे (अवर्त्रः) किसी से निवारण न किया जाकर (चेतति) सबको चेताता है ।

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(एतरि दमे न) आने वा प्रवेश करने योग्य गृह मे जिस प्रकार (अग्निः स्तवे) सबसे प्रथम अग्नि रख यज्ञ किया जाता है वा (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर से मङ्गल प्रार्थना की जाती है उसी प्रकार (जात-वेदाः) ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्रणी पुरुष की भी (अस्माकेभिः) हमारे (शूषैः) बल और सुखकारी वचनों से (स्तवे) स्तुति योग्य (दमे) दमन या शासन कार्य मे प्रशंसनीय हो । (द्र्वन्न क्रत्वा यज्ञैः जारयायि) काष्ठों को अन्न के समान खाने वाला अग्नि जिस प्रकार उत्तम यज्ञ और यज्ञांगों से स्तुति किया जाता है, और (अर्वा न क्रत्वा) और जिस प्रकार वेगवती क्रिया के कारण अश्व प्रशंसनीय होता है, और जिस प्रकार (पिता इव) पिता के समान उत्तम सन्तान का उत्पादक नर उत्तम सन्तानों के कारण प्रशंसनीय होता है उसी प्रकार राजा वा गृहपति (द्रु-अन्नः) वनस्पतियों के फल पत्रादि और अन्न का भोग करता हुआ (क्रत्वा) क्रियाशीलता और बुद्धि के द्वारा (उस्र वन्वन्) भूमियों, दाराओं और वाणियों का सेवन करता हुआ (पिता इव) पालक पिता के समान ही (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों, दानों और सत्संगों आदि से (जारयायि) स्तुति किया जाता है ।

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५॥

भा०—यह अग्नि या विद्युत् (यत् भासः तक्षत्) जिन दीप्तियो को पैदा करता है और जो यह (पृथ्वीम् अनुयाति) विद्युत् भूमि की ओर वेग से चला जाता है लोग (अस्य भासः पनयन्ति) इसकी दीप्तियो की प्रशंसा करते है और जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् (स्यन्द्रः) जलवत् (विषितः) बन्धनयुक्त होकर बहने वाला, गतिशील, (धवीयान्) शरीर को स्पर्श करते ही कंपा देने वाला, (तायुः न ऋणः) चोर के समान चुप चाप निकल भागने वाला, (धन्वा अति राट्) अन्तरिक्ष मे खूब चमकता है। उसी प्रकार यह राजा (यत् भासः वृथा तक्षत्) जब तेज अनायास उत्पन्न कर लेता है और तो भी (पृथ्वीम् अनुयाति) पृथ्वी अर्थात् देसवासिनी प्रजा का ही अनुगमन करता है, (अध) तब लोग (अस्य) इसके (भासः) तेजो कान्तियो या चमकते गुणो की (पनयन्ति) प्रशंसा किया करते है । (यः) जो राजा (स्यन्द्रः) वेग से रथादि से जाने मे कुशल, (वि-सित.) स्वतः बन्धन से मुक्त या विशेष राज नियमों से बद्ध, (धवीयान्) शत्रुओ को कंपा देने वाला वा प्रजा या पृथ्वी रूप पत्नी का सबसे उत्तम पति होकर भी (तायुः न) चोर के समान अलक्षित भाव से पृथ्वी का भोग वा प्रजा का वर्धन करने वाला होकर (धन्वा) धनुष के बल से (अति राट्) सब से अधिक तेजस्वी राजा होकर चमकता है ।

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१४॥

भा०—हे (अर्वन्) शत्रुओं के नाश करने हारे ! हे अश्व के समान नियुक्त होकर राष्ट्र-रथ के सञ्चालक ! महारथिन् ! धुरन्धर ! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! परंतप ! (अग्निभिः) आगे जाने वाले नाना नायको, किरणो वा ज्वालाओ से सूर्य वा अग्नि के समान

(इधानः) खूब देदीप्यमान होकर, (त्वं) तू (निदायाः) निन्दित प्रजा वा निन्दा से (नः) हम लोगों को (वेपि)दूर रख । (नः रायः वेपि) हमारे उत्तम ऐश्वर्यों, धनों की कामना कर, वा उनकी निन्दित जनता वा निन्दित क्रिया से नष्ट होने से (वेपि) रक्षा कर । तू (दुच्छुनाः) दुःख-दायी कुत्ते के समान काटने वाली, वा सुख की नाशक परसेनाओं, वा बुरी जनताओं को (वि यासि) विशेष रूप से चढ़ाई कर, विविध प्रकार से नाश कर, जिससे हम (सुवीराः) उत्तम वीरों और सन्तानों सहित (शतहिमाः मदेम) सौ २ वर्ष की आयु वाले होकर आनन्द से जीवन व्यतीत करें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २ स्वराट् पंक्तिः । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्च सूक्तम् ॥

त्वद्विश्वा॑ सुभग॒ सौभ॑गा॒न्यग्ने॒ वि य॑न्ति व॒निनो॒ न व॒याः ।
श्रु॒ष्टी र॒यिर्वाजो॑ वृत्र॒तूर्ये॑ दि॒वो वृ॒ष्टिरीड्यो॑ री॒तिर॒पाम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् से (विश्वा सौभगानि) समस्त सुखजनक ऐश्वर्य (वनिनः न वयाः) वृक्ष से शाखाओं के तुल्य उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार हे (सुभग) उत्तम, ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (विश्वा सौभगानि) समस्त सौभाग्य (वनिन वयाः न) वृक्ष से शाखाओं के समान (वियन्ति) विविध प्रकार से निकलते हैं। अथवा—(वयाः न) पक्षी जिस प्रकार (वनिनः) समस्त सुखों को वृक्ष से (वियन्ति) प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (वनिनः त्वत) ऐश्वर्यवान् तुझ से ही (वयाः) तेरे शाखा के समान राष्ट्र के सब भाग (विश्वा सौभगानि) समस्त सौभाग्य सुख (वि यन्ति) विशेष रूप से वा विविध प्रकार से प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार (श्रुष्टि' रयिः वृत्रतूर्ये

दिवः वृष्टिः अपां रीतिः अग्नेः वनिनः च) अन्न, देह, मेघ, विद्युत्, वृष्टि और जलों की धारा आदि सब ही तेजस्वी सूर्य और विद्युत् से ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार हे राजन्! (श्रुष्टिः) अन्न समृद्धि, (रायः) ऐश्वर्य, सम्पदा, (वृत्रतूर्ये) शत्रु के नाश करने के निमित्त (वाजः) बल, सैन्य आदि (वृष्टिः) शस्त्र-वर्षण और प्रजा पर समस्त सुखों की वृष्टि और (अपां रीतिः) आप्त पुरुषों का आगमन, प्रजाओं का सन्मार्ग में चलना और राष्ट्र में जल धाराओं, नहरों का वहना, आदि सब (दिवः त्वत्) सर्व कामना योग्य, सूर्यवत् तेजस्वी तुझ से ही उत्पन्न होता है।

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रत्नम् इषे) सुन्दर प्रकाश को दूर तक फेंकता, वा देता है, (परिज्मा इव दस्मवर्चाः क्षयति) वायु या प्राण के समान क्षीण तेज होकर वा अन्न को देह में क्षय करता हुआ जाठराग्नि रूप से निवास करता है। (ऋतस्य मित्रः) और जल को मित्रवत् स्नेह से चाहता है, (भूरेः क्षत्ता) बहुत से सुख का दाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (भगः) स्वयं ऐश्वर्यवान् सेवने योग्य होकर (नः) हमारे लिये (रत्नम्) रमणीय ऐश्वर्य को (आ इषे हि) सब ओर से देता, चाहता वा प्राप्त करता है। तू (दस्मवर्चाः) शत्रुओं के नाशकारी तेज से युक्त होकर (परि-ज्मा इव) सर्वत्रगामी वायुवत् (परि-ज्मा) भूमि पर शासक होकर (क्षयसि) शत्रु का नाश करता और प्रजा को बसाता है। और तू (मित्रः न) मरण या नाश होने से बचाने वाला सूर्यवत् (बृहतः ऋतस्य) बड़े भारी न्याय, सत्य ज्ञान रूप प्रकाश का (क्षत्ता असि) देने वाला है। और हे विद्वन्! तेजस्विन्! दात! तू (भूरेः वामस्य) बहुत से सुन्दर संभोग्य ऐश्वर्य का भी (क्षत्ता असि) देने वाला हो।

स सत्प॑तिः शव॑सा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो॒ वि प॒णेर्भ॑र्ति॒ वाज॑म् ।
यं त्वं प्र॑चेत ऋतजात रा॒या स॒जोषा॒ नप्त्रा॒पां हि॒नोषि॑ ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य रूप अग्नि (सत्पतिः) जलों का स्वामी होकर (शवसा वाजम् वि भर्त्ति) जल से अन्न का पोषण करता है, (ऋत-जातः) वह अन्नों को उत्पन्न करके (अपां नप्त्रा) जलों को आकाश से न गिरने देने वाले जलवाहक मेघ द्वारा ही बढ़ाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) हे (प्रचेतः) प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञानवन् ! हे विद्वन् ! हे उत्तम धन के संग्रहीता राजन् ! तू (ऋत-जातः) ज्ञान और ऐश्वर्य मे प्रसिद्ध होकर (राया) ऐश्वर्य से और (अपां नप्त्रा) आप्तजनो, प्रजाओं के सुप्रबन्ध करने वाले, वा उनको सन्मार्ग से न गिरने देने वाले विद्वानो तथा जल धाराओं को बांधने वाले शिल्पीजन से (सजोषाः) प्रेमपूर्वक मिलकर (यं हिनोषि) तू जिसको बढ़ा देता है वह हे सूर्य वा अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (सत्पतिः) सज्जनों का पालक, होकर (शवसा) बल से (वृत्रम् हन्ति) विघ्नकारी और बढते हुए शत्रु को नाश कर । और (विप्र) विद्वान् मेधावी जिस प्रकार (पणेः वाजम् शवसा वि भर्त्ति) स्तुत्य, पाठशील शिष्य के ज्ञान को अपने ज्ञान से बढाता है उसी प्रकार तू भी (विप्रः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा (पणेः) व्यवहारशील वैश्य जन के (वाजम्) ऐश्वर्य को (वि भर्त्ति) विविध प्रकारो से पूर्ण करता, समृद्ध करता है ।

यस्ते॑ सूनो सहसो गी॒र्भिरु॒क्थैर्य॒ज्ञैर्मर्तो॒ निशि॑तिं वे॒द्याऽन॑ट् ।
विश्वं॒ स दे॑व॒ प्रति॒ वार॑मग्ने ध॒त्ते धा॒न्यं१॒॑ पत्य॑ते वस॒व्यैः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (यः) जो (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों से (उक्थैः) उत्तम वचनो से, (यज्ञैः) उत्तम सत्संगो और सत्कारों से (वेद्या) वेदिवत् पृथिवी से (निशितिम्) अग्नि के समान तेरी तीक्ष्णता को

(आनट्) प्राप्त करता वा तुझे कराता है (वः) वह हे (देव) दातः, हे तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! (सः) वह (विश्वं वारम् प्रति धत्ते) समस्त वरण योग्य धन को धारण करता, और (विश्वं वारं प्रति-धत्ते) सब निवारणीय शत्रु सैन्य का मुक़ाबला करता और (वारं प्रति-धत्ते) शत्रु वारक सैन्य बल को प्रतिक्षण धारण करता है। और वह (वसव्यैः) ऐश्वर्यों से (पत्यते) बलधारी स्वामी हो जाता है।

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शवसा) अपने बल से (वृकाय) भेडिये वा चोर के समान (जसुरये) प्रजा के नाशकारी (अरये) शत्रु को पकड़ने और नाश करने के लिये (भूरि) बहुत भारी (पश्वः वयः) अश्व आदि पशु वा द्रष्टा, अध्यक्ष का बल (कृणोषि) सम्पादन करता है। वह तू हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) शत्रुपराजयकारी, बलवान् वीर पुरुष के पुत्र ! हे बलवान् क्षत्रबल सैन्य के सञ्चालक ! तू (नृभ्यः) उत्तम नेता पुरुषों और प्रजाजनों के हितार्थ (ता) वे वे नाना (सौश्रवसा) उत्तम २ अन्न, कीर्त्ति आदि से युक्त (सुवीरा) उत्तम पुत्र, वीर भृत्यादि से सम्पन्न ऐश्वर्य (पुष्यसे) राष्ट्र को परिपुष्ट करने के लिये (धाः) धारण कर।

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१५

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) सैन्य बल के सञ्चालक ! तू (विहायाः) महान् होकर (नः) हमारा (वद्मा) उपदेष्टा हो। और (नः) हमें (वाजि) अन्न, बल, ऐश्वर्यादि सम्पन्न धन तथा (तोकं) वंश को बढ़ाने और दुःख के नाश करने वाले

पुत्र तथा (तनयम्) पौत्र सन्तान (दाः) दे । अथवा—[वाजिनः इत्येकं पदम्] हममे से अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त बलवान् जन को पुत्र पौत्रादि दे । वा हमे (वाजिनः) ज्ञानी और बलवान् नाना पुरुष तथा पुत्र सन्तान प्रदान कर । मैं (विश्वाभिः गीर्भिः) समस्त उत्तम वाणियो से (पूर्त्तिम् अभि अश्याम्) पूर्णता को प्राप्त करूं । हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द लाभ करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिगुष्णिक् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् । ६ भुरिगतिजगती ॥ षड्च सूक्तम् ॥

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥

भा०—(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (धीतिभिः) उत्तम कर्मो से और अपने कर्म करने के अंगो से और धाराओं वा अध्ययनों से (अग्नौ) ज्ञानी मार्ग नेता पुरुष के अधीन रहकर (दुवः) उपासना या सेवा करता और (धियं जुजोष) उत्तम कर्म का आचरण और उत्तम ज्ञान का अभ्यास करता है (सः नु) वह शीघ्र ही (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान अपने से बडे ज्ञानी गुरुजनो का हितैषी और उनकी विद्या से सुभूषित होकर (प्र भसत्) खूब चमक जाता है । और वह (अवसे) अपने जीवन रक्षा करने के लिये (इषं) उत्तम अन्न और बल भी (वुरीत) प्राप्त करता है ।

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् अग्नि का स्वरूप ! (अग्निः इत् हि) वह अग्नि ही है जो (प्र-चेताः) उत्तम ज्ञान से युक्त और अन्यों को उत्तम ज्ञान से

ज्ञानवान् करता तथा स्वयं उदार हृदय वाला है । (अग्निः) वह 'अग्नि' कहाने योग्य है जो (ऋषिः) सत्य यथार्थ ज्ञान का दर्शन करने हारा और (वेधस्तमः) सबसे अधिक बुद्धिमान् एवं कर्म करने और विधान, निर्माण करने मे कुशल है ।

नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (नाना) बहुत से (आयवः) लोग (व्रतैः) अपने उत्तम कर्मों से (अव्रतम्) कर्महीन, व्रतादि रहित (दस्युम्) प्रजानाशक पुरुष को (सीक्षन्तः) पराजित करते और (तूर्वन्तः) उसका नाश करते हुए (अर्यः रायः अवसे) शत्रु के धन की प्राप्ति, और स्वामी के धन की रक्षा करने के लिये (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं । अथवा (रायः अवसे स्पर्धन्ते त्वं तेषामर्यः) जो धन के प्राप्ति करने के लिये स्पर्धा करते है तू उनका स्वामी हो ।

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥

भा०—तेजस्वी नायक क्या प्रस्तुत करता है ? (अग्नि) अग्नि, विद्युत् आग्नेय अस्त्रादि द्वारा सुसज्जित नायक हमें (अप्साम्) समस्त प्रजाओ के तथा उत्तम कर्मों को (वीरं) विशेष रूप से उत्साहित करने और स्वयं करने वाला, वीर (ऋतीषह) शत्रुओं के पराजय करने वाला, ऐसा (सत्पतिम्) सज्जनों का पालक पुरुष (ददाति) देता है (यस्य शवसा) जिसके बल से (शत्रवः त्रसन्ति) शत्रु लोग भय खाते रहते है और (सञ्चक्षि) अच्छी प्रकार देखते रहने पर उसके समक्ष (भिया) भय से कांपते रहते हैं ।

अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥

भा०—(अग्निः हि) अग्रणी नायक या ज्ञानवान् पुरुष ही (देवः) तेजस्वी होकर (विद्मना) ज्ञान के बल से (निदः) निन्दकों का (सहावा) पराजय करता हुआ (मर्त्तम्) मनुष्यमात्र की (उरुष्यति) रक्षा करता है। वह स्वयं (अवृतः) विना किसी के वरण किये हुए या विना कुछ चेष्टा किये भी (यस्य) जिसके (रयिः) ऐश्वर्य और बल (वाजेषु अवृतः) संग्राम करने के अवसरों पर छुपा नहीं रहता।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः। वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २। मन्त्र ११ ॥ हे (मित्रमहः अग्ने) मित्रों के पूजने योग्य ! हे मित्रों द्वारा आदृत ! हे बड़े २ मित्रों वाले, स्नेहवान् पुरुषों के तुल्य महान्, हे (देव) दानशील ! ज्ञानवान् नायक ! तू (नः देवम् अच्छ रोदस्योः सुमतिं वोचः) हम उत्तम वा तुझे चाहने वाले, हमें और सूर्य पृथिवी के तुल्य परस्पर उपकारबद्ध गृहस्थ स्त्री पुरुषों वा राजा प्रजावर्गों के योग्य शुभ ज्ञान उपदेश कर। (स्वस्ति) कल्याणकारी (सुक्षितिं) उत्तम निवास वा उत्तम भूमि को (वीहि) प्राप्त कर, उसे चाह और प्रकाशित वा उपभोग कर (दिवः नॄन्) कामना करने वाले पुरुषों को चाह। (द्विषः अंहांसि, दुरिता तरेम) हम शत्रुओं को, पापों को, और दुष्टाचरणों को लांघ जाएं, (ता) उन नाना पदार्थों से पार हो जावें, (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा और कामना से हम (तरेम) तर जावें। इति षोडशो वर्गः ॥

[१५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृज्जगती। ३ निचृदतिजगती। ७ जगती। ८ विराड्जगती। ४, १४

भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, १०, ११, १६, १९ त्रिष्टुप् । १३ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृदतिशक्करी । १२ पङ्क्तिः । १५ ब्राह्मी बृहती । १७ विराडनुष्टुप् । १८ स्वराडनुष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (वः) अपने लोगों में से जो (दिवः) ज्ञान प्रकाश के कारण (जनुषा) स्वभाव से (शुचिः) शुद्ध पवित्र है जो (स्वयं गर्भः) विद्यादि ग्रहण करने मे समर्थ होकर (अच्युतम्) अविनाशी, स्थिर नित्य वेद ज्ञान को (आ अत्ति) सब प्रकार से भोगता है, और (वेति इत्) स्वयं विद्या से चमकता है (इमम्) उस (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, (उषः-बुधम्) प्रातःकाल स्वयं जागने वाले, यज्ञाग्निवत् वा सूर्यवत् तेजस्वी, अन्यों को प्रभात, वा जीवन के प्रभात वेला बाल्य और कौमार दशा मे ज्ञान द्वारा प्रबुद्ध करता है उस (विश्वासां विशाम्) आश्रम मे प्रविष्ट समस्त शिष्यो को (पतिम्) प्रजावत् पालन करने वाले गुरु की (गिरा ऋञ्जसे) विनीत वाणी से सेवा किया कर । अध्यात्म में 'अच्युत', 'वीतहव्य' जीव है । उसको अपने मे लै लेने हारा तेजोमय अग्नि 'प्रभु' है । उसकी वाणी से स्तुति कर ।

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२॥

भा०—(ऊर्ध्व-शोचिषम्) अग्नि के समान ऊपर उठती कान्ति वाले (ईड्यम्) पूज्य, वाणी उपदेश के योग्य, विद्या के इच्छुक पुरुष को (वनस्पतौ) सूर्यवत् विद्यायाचक, विद्यार्थी जनो के पालक आचार्य के अधीन रहते हुए नाना (भृगवः) वेद वाणियों को धारण करने वाले (यम्) जिसको (सुधितं दधुः) उत्तम रूप से सुरक्षित रखते हैं (सः

त्वं) वह आप हे (अद्भुत) महाशय ! (वीतहव्ये) दान करने और आदर से ग्रहण करने योग्य ज्ञान के देने वाले गुरु के अधीन ही (सुप्रीतः) अति प्रसन्न होकर (प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओ और उपदेश वचनों से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (महयसे) पूजा आदर वचनों को प्राप्त हो । ऐश्वर्यों का पालक पद 'वनस्पति' उस पर पूज्य तेजस्वी पुरुप भी (भृगवः) गो रक्षक और वाणी के धारण करने वाले विद्वान् और भूमि के धारक सामन्तजन जिसकी पुष्टि रक्षा करते है वह तू महान् ! सुप्रसन्न होकर उत्तम शासनो से दिनो दिन आदर को प्राप्त कर ।

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुपः । रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—(सहसः सूनो) वलवान्, सहनशील तपस्वी पुरुप के पुत्रवत् (सः त्वं) वह तू (दक्षस्य) वल, तेज और कर्म सामर्थ्य को (वृधः) वढ़ाने हारा और (अन्तरस्य) भीतर के (परस्य तरुपः) हिंसाकारी काम आदि अन्तः शत्रु का भी (अर्यः) अभ्यन्तर स्वामी (भू) हो । तू (मर्त्येषु) मनुष्यो के वीच (वीत-हव्याय) अपने देय भाग के स्वतः देने वाले प्रजाजन के हितार्थ (सप्रथः) अति विस्तृत (छर्दिः यच्छ) गृह, शरण प्रदान कर । इसी प्रकार (भरद्वाजाय) वाज, ज्ञान, ऐश्वर्य के धरने और ला २ कर संग्रह करने वाले पुरुप को भी (सप्रथः छर्दिः यच्छ) अति विस्तृत शरण प्रदान कर । राजा भी निष्कपट, अचौर, शत्रुदाहक वल का वढ़ाने वाला, हिंसक शत्रु का नाशक स्वामी हो, वह (सहस) वल का सञ्चालक 'वीतहव्य' करप्रद प्रजाजन और (भरद्वाजाय) संग्राम, वल, अन्न के पालक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सवको शरण दे ।

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् । विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वानो ! (वः) आप लोगो के बीच मे (द्युतानं) सदा चमकने वाले (अतिथि) सर्वत्र व्यापक और अतिथिवत् पूज्य (स्वः-नरम्) सुखमय मार्ग मे ले जाने हारे, (मनुपः होतारं) मनुष्य को सब कुछ देने हारे (सु-अध्वरम्) उत्तम, यज्ञ के पालक, स्वय कभी नाश न होने वाले (द्युक्ष-वचसं) कान्तिवत् उज्ज्वल वाणी को कहने वाले (विप्रं) विविध ज्ञानो से पूर्ण विद्वान् के तुल्य (सु-वृक्तिभिः) उत्तम २ प्रशसाओ द्वारा (हव्य-वाहम्) हव्य, अन्नादि पदार्थों के धारक, अग्निवत् तेजस्वी, (अरति) अतिज्ञानी, (देवं) प्रकाशस्वरूप गुरु की और प्रभु की (ऋञ्जसे) सेवा किया कर। उत्तम यज्ञमय होने से परमेश्वर 'स्वध्वर', प्रकाशस्वरूप होने से 'द्युतान', आनन्दप्रद, ज्ञानप्रद होने से 'स्वर्नर', अन्नादि देने से 'हव्यवाह्' है उसको हे जीव तू भक्ति स्तुति से सेवा कर।

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ५।१७

भा०—(यः) जो (पावकया) अन्यों को पवित्र कर देने वाली अग्नि के तुल्य, तीव्र सन्तापजनक (चितयन्त्या) ज्ञान देने वाली, (कृपा) कृपा, सामर्थ्य या शक्ति से (भानुना उषसः न) कान्ति से उषाकालो के समान, वा (उषसः भानुना) प्रभात वेला के समान (क्षामन्) भूमि पर (आ रुरुचे) सर्वत्र सबको अच्छा लगता और प्रकाशित होता है, और (यः) जो (घृणे रणे) खूब चमकते रण मे (यामन्) प्रयाण काल या मार्ग मे (तूर्वन्) शत्रुओ का नाश करता हुआ (एतशस्य) अश्व के स्वामी, महारथी (नृ) के समान और (ततृषाणः न) प्यासे के समान (अजरः) जरा रहित बलवान् होकर (आ रुरुचे) सब प्रकार से चमकता है। उस स्वामी प्रभु की तू स्तुति किया कर। परमेश्वर परम पावनी ज्ञानमयी कृपा से सर्वत्र चमकता है वह अजर, अमर है तो भी

जल के प्यासे सूर्य के तुल्य वा रण में वीरवत् पापों का नाश करता है। उसकी स्तुति कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

अ॒ग्निम॑ग्निं वः स॒मिधा॑ दुवस्यत प्रि॒यंप्रि॑यं वो॒ अति॑थिं गृणी॒षणि॑। उप॑ वो गी॒र्भिर॒मृतं॑ विवासत दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि वार्यं॑ दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि नो॒ दुवः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् भक्त जनो! (वः) आप लोग अपने मे (अग्निम् अग्निम्) अग्नि के समान स्वप्रकाश, अति तेजस्वी प्रभु को अग्नि को समिधा से जैसे, वैसे (दुवस्यत) उपासना करो (वः) अपने (गृणीषणि) स्तुति के कार्य मे एकमात्र लक्ष्यभूत (अतिथिम्) सर्वव्यापक, पूज्य (प्रियं-प्रियम्) अति प्रिय उस प्रभु की ही सेवा करो। (वः) आप लोग अपने में (अमृतम्) अमृत, अविनाशी रूप से विद्यमान आत्मा को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (उप विवासत) उपासना किया करो। (देवः) सर्वदाता, तेजोमय परमेश्वर (देवेषु) अपने कामनावान् भक्तों में ही (वार्यं वनते) उत्तम ऐश्वर्य देता और (नः दुवः वनते हि) वही निश्चय से हमारी सेवा, परिचर्या और स्तुति आदि भी स्वीकार करता है।

समि॑द्धम॒ग्निं स॒मिधा॑ गि॒रा गृ॑णे॒ शुचिं॑ पाव॒कं पु॒रो अ॑ध्व॒रे ध्रु॒वम्। विप्रं॒ होता॑रं पुरु॒वार॑म॒द्रुहं॑ क॒विं सु॒म्नैरी॑महे जा॒तवे॑दसम् ॥ ७ ॥

भा०—(अध्वरे यथा समिधा समिद्धं अग्नि पुरः गृणे) यज्ञ में जिस प्रकार समिधा से चमकते हुए अग्नि को पुरः स्थापित करके परमेश्वर की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित (गिरा) वाणी से (समिद्धम्) अच्छी प्रकार प्रकाशित (अग्निम्) ज्ञानवान् (ध्रुवं) स्थिर, (पावक) दोषों को दूर करके पवित्र करने वाले, (शुचि) शुद्धचित्त प्रभु वा विद्वान् को (अध्वरे) हिंसा आदि से रहित, ज्ञानमय यज्ञ में (पुरः) समक्ष रख उसकी (गृणे) स्तुति

करूं। और (जात-वेदसम्) ज्ञानो के स्वामी, (विप्रम्) विविध विद्याओ से हमे पूर्ण करने वाले (पुरु-वारम्) बहुतो से वरण करने और बहुतो के बहुत से कष्टो का निवारण करने वाले, (अद्रुहं) द्रोहरहित, (होतारं) ज्ञानैश्वर्य के दाता (कवि) क्रान्तदर्शी, विद्वान् प्रभु को (सुम्नैः) शुभ, उत्तम मनन योग्य वचनो और मन्त्रो से हम (ईमहे) प्रार्थना किया करे।

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! (दूतं) दुःखों को दूर करने वाले, शत्रु को सताप देने वाले, (अमृतम्) अविनाशी, (हव्यवाह) ग्रहण करने योग्य, उत्तम स्तुतिवचन, अन्नादि के स्वीकार करने वाले, (पायुम्) पवित्रकारक (ईड्यम्) स्तुति योग्य (जागृविम्) सदा जागृत, चैतन्य (विभुं) विशेष सामर्थ्य से युक्त, व्यापक (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालक (त्वा) तुझ प्रभु को (देवासः च मर्त्तासः च) विद्वान् जन और साधारण मनुष्य भी (युगे-युगे) प्रतिदिन, प्रतिवर्ष, प्रति युग, (दधिरे) धारण करते, और ध्यान मे धरते तथा (नमसा) नमस्कार पूर्वक (नि षेदिरे) उपासना करते रहते हैं और आगे भी नमस्कार द्वारा उपासना करते रहा करे।

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ९

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! सर्व प्रकाशक! प्रभो परमेश्वर! तू (उभयान् अनु) विद्वान् और अविद्वान् दोनो प्रकार के मनुष्यो को हितकारी, उनके (व्रता अनु) कर्मों के अनुसार (विभूषन्) व्यवस्था करता हुआ (देवानां) दिव्य समस्त पदार्थों और विद्वानो के बीच मे सबसे उपासित, होकर (रजसी) आकाश और भूमि

दोनों लोकों में (सम् ईयसे) व्याप्त हो रहा है। (यत्) जिस (ते धीतिम्) तेरा ध्यान और (सुमतिम्) शुभ मति, शुभ ज्ञान को (आ वृणीमहे) हम आदरपूर्वक वरण करते हैं। हे प्रभो ! (अध) और तू (नः) हमारे लिये (त्रि-वरूथः) तीन मंजिलों वाले घर के समान (त्रि-वरूथः) मन, वाणी, काय तीनों से वरण करने योग्य, वा तीनों प्रकार के दुःखों का वारण करने वाला होकर (नः शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो।

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०।१८

भा०—(तम्) उस (सुप्रतीकं) सुख रूप में प्रतीत होने वाले (सुदृशं) उत्तम द्रष्टा, (स्वञ्चम्) सुख प्राप्त होने और पूजन करने योग्य, (विदुस्तरं) बहुत अधिक विद्वान्, ज्ञानी प्रभु को हम (अविद्वांसः) अविद्वान् जन (सपेम) प्राप्त हों, (सः विद्वान्) वह ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी प्रभु (विश्वा वयुनानि) समस्त ज्ञानों को प्रदान करता है। वह ही (अमृतेषु) अमर अविनाशी हम जीवों के निमित्त (हव्यम्) सदा ग्रहण करने योग्य पवित्र ज्ञान का (प्र वोचत्) उत्तम रीति से उपदेश करता है। (२) हम (सुप्रतीकं) उत्तम मुख वाले सौम्य मुख, शुभ नेत्र वाले, सुपूज्य विद्वान् के पास (सपेम) एक होकर बैठें, वह हमें सब ज्ञानों का उपदेश करे।

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया॥११॥

भा०—हे प्रभो ! विद्वन् ! हे अग्ने) ज्ञानवन् हे तेजस्विन् ! (यः) जो (ते कवये) तुझ क्रान्तदर्शी, परम ज्ञानवान् पुरुष के (धीतिं) धारण करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है हे (शूर) शूरवीर, पापों के नाशक ! (तं पासि) तू उसका पालन करता है, (उत) और (त) उसको

ही (पिपर्षि) पालन पोषण करता है, और हे प्रभो ! विद्वन् ! जो पुरुष तेरे निमित्त (यज्ञस्य निशिति वा) पूजा का आदर सत्कार की तीव्रता और (उद्-इतिं वा) उद्गमन, उत्तम मार्ग की ओर बढ़ना और पूज्य के प्रति अभ्युत्थान अर्थात् आदर पूर्वक खड़े होने आदि सत्कार को भी (आनट्) करता है, तू (तम् इत्) उसको ही (शवसा उत राया) बल और धन दोनों से ही (पृणक्षि) पालन करता है ।

त्वम॑ग्ने वनुष्य॒तो नि पा॑हि॒ त्वमु॑ नः सहसावन्नव॒द्यात् ।
सं त्वा॑ ध्वस्म॒न्वद॒भ्ये॑तु॒ पाथः॒ सं र॒यिः स्पृ॑ह॒याय्यः॑ सह॒स्री॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्नि के समान दुष्टों को दग्ध करने हारे ! प्रभो विद्वन् ! राजन् ! (त्वम्) तू (वनुष्यतः) याचना, प्रार्थना करते हुए (नः) हमें (अवद्यात्) निन्दा योग्य पापाचरण के मार्ग से जाने से (नि पाहि) सब प्रकार से रक्षा कर । हे (सहसावन्) बलशालिन् ! (त्वम् उ) तू ही (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से रक्षा कर । (ध्वस्मन्वत् पाथः) पापों और दुष्टों का ध्वंस करने वाला (पाथः) मार्ग और पालन सामर्थ्य (त्वा अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो । और (त्वां) तुझे (स्पृहयाय्यः) सबसे चाहने योग्य, (सहस्री) सहस्रों सुखों को देने वाला, सब प्रकार का (रयिः) ऐश्वर्य भी (सम् अभ्येतु) प्राप्त हो । और तेरे द्वारा वही पालन का सुख और ऐश्वर्य हमे भी प्राप्त हो ।

अ॒ग्निर्होता॑ गृ॒हप॑तिः॒ स राजा॒ विश्वा॑ वेद॒ जनि॑मा जा॒तवे॑दाः ।
दे॒वाना॑मु॒त यो मर्त्या॑नां॒ यजि॑ष्ठः॒ स प्र य॑जतामृ॒तावा॑ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (देवानाम्) प्रकाश करने वाले सूर्य आदि लोकों और ज्ञानैश्वर्य के देने वाले विद्वानों, ऐश्वर्यवानों और कामना वाले (मर्त्यानां) मरणशील मनुष्यों और अन्य प्राणधारियों को (विश्वा) समस्त

(जनिमा) उत्पत्ति के रहस्यो को (वेद) जानता है (सः) वही (जात-वेदाः) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने हारा होने से ही 'जात वेदाः' है । (सः) वह (यजताम् यजिष्ठः) दानशीलो मे सबसे बडा दानशील, (ऋत-वा) ज्ञान, सत्य न्याय, तेज और धनैश्वर्य का स्वामी परमेश्वर (अग्निः) सबका अग्रणी, सबसे पूर्व विद्यमान होने से अग्निवत् स्वप्रकाशक है और अन्यो को प्रकाशित करने से 'अग्नि' है । (सः होता) वही स्वयं सबका दाता और सबको अपने मे आहुति करने वाला होने से 'होता' है और वही (गृहपतिः) गृह स्वामी के समान विश्व का पालक होने से 'गृहपति' है (सः राजा) और वही राष्ट्र मे राजा के समान समस्त ब्रह्माण्ड का राजा है । 'अग्नि' देवता वाले मन्त्रों मे प्रायः सर्वत्र अग्नि, विद्युत् तत्व के वर्णन के साथ २ गृहपति, राष्ट्रपति नायक राजा और कुलपति आचार्य विद्वान् और परमेश्वर का समान वाक्यरचना से ही वर्णन किया गया है । जिनका स्पष्टीकरण स्थान २ पर किया गया है ।

अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश ! एव अन्यो को प्रकाशित करने हारे ! हे (पावक-शोचे) पवित्र करने वाले तेज प्रकाश से युक्त ! हे (होतः) यज्ञ के होता के समान अपने ऐश्वर्य, बल, ज्ञान आदि के दान करने हारे ! (यज्वा) उत्तम दानशील और सगति, परस्पर मेल करने हारा होकर (अध्वरस्य विशः) यज्ञवत् न नाश करने योग्य प्रजाजन को (त्वं हि वेः) तू सदा हृदय से चाहा कर और उसकी रक्षा किया कर । (यत्) जब या जो तू (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि भूः) विशेष शक्तिशाली होता है तब तू (ऋता) ऐश्वर्यों को (यजासि) स्वयं प्राप्त करता और औरो को भी देने मे समर्थ होता है । और तभी हे (यविष्ठ) अति जवान ! बलवन् (या ते हव्या)

जो तेरे भोग करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थ है उनको भी तू (अद्य) आज के समान सदा ही (आ वह) प्राप्त कर और अन्यो को प्राप्त करा। इस मन्त्र मे परमेश्वर और राजा का यज्ञकर्त्ता, होता और अग्नि के समान वर्णन है।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै। अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम॥ १५॥ १९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! यज्ञकर्त्ता पुरुष जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) उत्तम तृप्तिकारक अन्नों को सब प्रकार से सावधानी से देखता और विद्वान् जिस प्रकार (सुधितानि प्रयासि अभि ख्यः) सुख से धारण करने योग्य ज्ञानों का उपदेश करता है उसी प्रकार तू भी हे प्रभो! राजन्! (सुधितानि) सुख से, उत्तम प्रकार से धारण करने योग्य (प्रयांसि) उत्तम २ प्रयत्नों और प्रयाससाध्य कार्यों और प्रयासशील सैन्यों को (अभि ख्यः) सब प्रकार से स्वयं देखा कर। और जैसे प्रजाजन (रोदसी इव यजध्यै त्वा दधीत) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य स्त्री पुरुषो को परस्पर सुसंगत करने के लिये अग्नि का साक्षी रूप से आधान करते है उसी प्रकार शासक शास्य और राजप्रजावर्ग दोनों को परस्पर सुसंगत करने के लिये (त्वा दधीत) तुझ राजा, प्रभु को साक्षी रूप से (नि दधीत) मध्यस्थवत् स्थापित करे। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (वाजसातौ) ज्ञान, बल, और धन के लाभ काल मे, और उनको प्राप्त करने के निमित्त एवं संग्राम के अवसर मे भी (अव) रक्षा कर। हम हे (अग्ने) ज्ञानवन्! सब दुःखो के नाशक (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा-सामर्थ्यादि से हम (विश्वानि दुरिता) सब प्रकार के दुष्टाचरण और दुःखदायी कर्मो से (तरेम)

पार हो और (ता तरेम) उन अनेक विघ्नो को पार करे और (तरेम) अवश्य ही पार करें ।

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६ ॥

भा०—हे (सु-अनीक) उत्तम मुख वाले, सुन्दर ! सौम्य, सुभूषित मुख वाले ! सुमधुरभाषिन् ! विद्वन् ! हे उत्तम बल, सैन्य के स्वामिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विनयशील ! तू (प्रथमः) सबसे प्रथम, श्रेष्ठ है । तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वानो, वीरों और मनुष्यो के साथ (ऊर्णावन्तं योनिम्) ऊन के बने आसन, वस्त्रादि सम्पन्न, तथा प्रजा को उत्तम रीति से आच्छादन, रक्षा करने वाले को (कुलायिनं) गृहोपयोगी, नाना द्रव्यों से समृद्ध, सर्वाश्रयप्रद, (घृतवन्तं) घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से पूर्ण गृह वा राष्ट्र को (सीद) प्राप्त कर उस पर शासन कर । और (यजमानाय) कर आदि देने वाले प्रजाजन के (यज्ञं) संगतियुक्त राजसभा आदि के कार्य को, यजमान के यज्ञ को अग्नि वा अध्वर्यु के समान (साधु नय) भली प्रकार चला ।

इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (वेधसः अथर्ववद् अग्निं मन्थन्ति) विद्वान, बुद्धिमान् पुरुष 'अथर्व' वेद मे लिखे प्रमाणे वा अहिंसक, ईश्वरोपासक विद्वान् के समान (अग्नि मन्थन्ति) आग या विद्युत् को मथकर, रगड़कर पैदा करते है और (श्याव्याभ्यः आ नयन्) रात्रि के अन्धकारो को दूर करने के लिये प्रकाशक चिह्नो के समान सब पदार्थ को दिखाने वाले दीपक रूप अग्नि को लाते है उसी प्रकार (इमम् उ त्यम्) उस (अथर्ववत्) अथर्ववेद मे जैसा प्रधान पुरुष को चुनाव करने का प्रकार बतलाया है उसी प्रकार वा अहिंसक, सर्वपालक, प्रजापति के तुल्य (अग्नि)

अग्रणी, प्रधान पुरुष को (मन्थन्ति) समस्त प्रजावर्ग मे से दही मे से मक्खन के समान, खूब गुण दोष विवेचन और वादानुवाद के बाद मथ कर सारवत् प्राप्त करते हैं और (यम्) जिस (अमूरं) मोहरहित, निष्पक्षपात, अहिंसक और सदोत्साही को (अंकूयन्तं) चिह्न वा अपने द्योतक आदर्श ध्वजा के तुल्य श्रेष्ठ पुरुष को (श्याव्याभ्यः) अज्ञान युक्त प्रजाओ, सम्पन्न समृद्ध सेनाओं के हितार्थ (आनयन्) प्राप्त करें और उसे उत्तम पद प्राप्त करावे। (२) अध्यात्म मे तपस्वीजन इस देह को अरणि करके ध्यान योग के अभ्यास से आत्मा रूप अग्नि को, दधि से घृतवत् प्राप्त करते है। वह अज्ञान की घोर रात्रियो मे प्रकाश करता है।

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृश ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक! विद्वन्! प्रभो! तू (स्वस्तये) कल्याण करने के लिये (सर्वताता) सबके हितार्थ सर्वत्र और (देव-वीतये) उत्तम गुणों का प्रकाश करने और उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (जनिष्व) उत्पन्न वा प्रकट हो। तू (ऋत-वृधः) सत्य-ज्ञान, न्यायव्यवहार और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (अमृतान्) दीर्घायु (देवान्) मनुष्यों को (आ वक्षि) सब स्थानों से प्राप्त कर और धारण कर। (देवेषु) उन विद्वानों, वीरो और धनार्थी व्यवहारकुशल पुरुषों के आश्रय पर (यज्ञं पिस्पृशः) राज्यपालन रूप यज्ञ को धारण कर, दान आदि उत्तम कार्य कर। दातव्य पदार्थ को स्पर्श करना यह मुहावरा दान देने अर्थ मे प्रयुक्त होता है जैसे—'स्पर्शयता घटोघ्नी' रघु०।

व॒यमु॑ त्वा गृहपते जनाना॒मग्ने॒ अक॑र्म स॒मिधा॑ बृ॒हन्त॑म्।
अ॒स्थू॒रि नो॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु ति॒ग्मेन॑ न॒स्तेज॑सा सं शिशाधि ॥ १९ ॥ २० ॥ १ ॥

भा०—(समिधा बृहन्तम्) जिस प्रकार लोग अग्नि को समिधा द्वारा

बढ़ाते है उसी प्रकार हे (गृहपते) गृह के उपासक ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्, नायक ! अंग या देह के नेता आत्मा के तुल्य ! (वयम् उ) हम अवश्य (त्वा) तुझको (जनानाम्) सब मनुष्यों के हितार्थ (सम्-इधा) सम्यक्, समर्थ तेज और ज्ञान से (बृहन्तम् अकर्म्म) वृद्धिशील, महान् बनावें। जिससे (नः) हमारे (गार्हपत्यानि) गृहपति के समस्त कार्य, (अस्थूरि) निर्विघ्न (सन्तु) हों। और तू (तिग्मेन तेजसा) तीक्ष्ण प्रकाश से अग्निवत् ही तीक्ष्ण प्रभाव से (नः) हमे (सं शिशाधि) सन्मार्ग में अच्छी प्रकार शासन कर ॥ इति विंशो वर्गः। इति षष्ठे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१६]

४८ भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७ आर्ची उष्णिक्। २, ३, ४, ५, ८, ९, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचृद्गायत्री। १०, १९, २०, २२, २३, २९, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१ गायत्री। २६, ३० विराड्-गायत्री। १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप्। ४३, ४५ निचृत्-त्रिष्टुप्। २७ आर्चीपङ्क्तिः। ४६ भुरिक् पंक्तिः। ४७, ४८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टाचत्वारिंशदृच सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने य॒ज्ञानां॒ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः।
दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानमय जगदीश्वर ! विद्वन् ! (विश्वेषां) समस्त (यज्ञानां) दान देने योग्य पदार्थों का (होता) देने वाला, समस्त पूजनीय पदार्थों मे सबसे बडा दानी होकर (विश्वेषां हितः) सब का हितकारी, सबके बीच में प्रधान रूप से स्थित है, तू (देवेभिः) विद्वानों द्वारा (मानुषे जने) मननशील मनुष्य मात्र में प्रतिष्ठित है। तू सबका पूज्य है।

स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (सः) वह तू (मन्द्राभिः) स्तुति योग्य, आह्लादजनक (जिह्वाभिः) वाणियों से (अध्वरे) अविनाशी यज्ञ में (महः यज) बड़ों का सदा सत्कार कर और (देवान्) विद्वान् पुरुषों के प्रति (आ वक्षि) आदरपूर्वक वचन बोल और (आ यक्षि च) आदर से दान दे । (२) हे प्रभो ! आह्लादकारिणी वेदवाणियों से बड़े दिव्य गुणों का हमें उपदेश कर और हमें अपने से सदा संगत कर ।

वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! ज्ञानमय, प्रकाशस्वरूप ! हे (वेधः) विधातः ! विधानकर्त्तः ! हे मेधाविन् ! हे (देव) दानशील ! हे (सुक्रतो) शुभ कर्म करने और उत्तम प्रज्ञा वाले सुमते ! तू (अञ्जसा) अपने प्रकाशक तेज से (अध्वनः) बड़े मार्गों और (पथः) पगदण्डियों या उपमार्गों को भी (वेत्थ हि) निश्चय से जानता है । हमें भी सन्मार्ग में लेजा ।

त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ।
ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! (भरतः) मनुष्यमात्र (शुनम्) सुखप्रद, सर्वव्यापक (त्वाम्) तुझको (द्विता) अर्थात् सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारों से ही (वाजिभिः) ज्ञानयुक्त उपायों से (ईळे) उपासना करे । और (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियम्) पूज्य तुझ को (ईजे) प्राप्त होता है ।

त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत् के समान चमकने हारे स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमा वार्या) इन नाना उत्तम २ धनों को (पुरु) बहुत सी मात्रा मे (सुन्वते) ऐश्वर्य प्राप्त करने मे यत्नवान् (दिवः दासाय) सूर्यवत् तेजस्वी, आचार्य के सेवक के समान (भरद्वाजाय) अन्न बल आदि के धारण करने वाले (दाशुषे) समर्पक भक्त जन को देता है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् ।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अमर्त्य) अविनाशी ! तू (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति को (शृण्वन्) श्रवण करता हुआ (दूत.) दूत के समान व शत्रुसंतापक होकर (दैव्यं) दिव्य पदार्थों के जानने वाले (जनं) मनुष्य को (आ वह) आदर से प्राप्त हो, उसे धारण कर ।

त्वामग्ने स्वाध्यो॒३ मर्तासो देववीतये ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (देव-वीतये) शुभ गुणो को प्राप्त करने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञो, सत्संगो मे (स्वाध्यः) उत्तम रीति से ध्यान और आधान करने वाले (मर्त्तासः) मनुष्य (त्वां देव ईटते) तुझ देव, दाता की स्तुति करते है ।

तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः ।
विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (सु-दानव) उत्तम ज्ञान धन आदि दान देने वा लेने हारे और (विश्वे) समस्त (कामिन.) उत्तम कामनावान् पुरुष (तव संदृशम्) तेरे सम्यक् तत्वदर्शन, यथार्थ ज्ञान (उत) और (क्रतुम्) कर्म को भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते है । तू उनको (प्र यक्षि) ज्ञान और कर्म का उपदेश प्रदान करता है ।

त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वं) तू (होता) सब सुखों का देने हारा, (मनु) ज्ञानवान्, मननशील, मान करने योग्य, (वह्निः) कार्य-भार को अपने कन्धों पर लेने हारा है । तू (विदुस्तरः) सबसे अधिक विद्वान् होने से (आसा) मुख से उपदेश द्वारा या मुखवत् मुख्यस्थान प्राप्त करके (दिवः विशः) सुख की कामना करने वाली प्रजाओं को (यक्षि) संगत कर और ज्ञानोपदेश और व्यवस्था प्रदान कर ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! अग्निवत् तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! तू (गृणानः) उपदेश देता हुआ (वीतये) हम प्रजाजनों, शिष्यों वा उपासकों को रक्षा करने, ज्ञान से प्रकाशित करने और (हव्यदातये) देने योग्य ज्ञानैश्वर्य आदि प्रदान करने के लिये (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (होता) दानशील तू (बर्हिषि) वृद्धि, मान आदर युक्त आसन, प्रजाजन वा राज्य सभा मे (नि सत्सि) नियत होकर विराज । परमेश्वर (बर्हिषि) प्रत्येक यज्ञ वा वृद्धिशील प्रत्येक चेतन २ मे विराजता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अंगिरः) अंगारों मे विद्यमान अग्नि के समान अति तेजस्विन् ! (समिद्भिः घृतेन) काष्ठों से और घृत से अग्नि के तुल्य ही हम (तं त्वा) उस तुझको (समिद्भिः) अच्छी प्रकार प्रकाश युक्त वचनों और (घृतेन) आदरार्थ दिये जाने योग्य जल, अन्न, स्नेह आदि से (वर्धया-

मसि) बढ़ावें। हे (यविष्ठ्य) अति युवन्, सदा बलशालिन्! तू (बृहत्) महान् होकर (समिद्भिः घृतेन) उत्तम प्रकाशों और तेजोमय ज्ञान से (शोच) खूब प्रकाशित हो।

स नः॑ पृथु श्र॒वाय्य॒मच्छा॑ देव विवाससि।
बृ॒हद॑ग्ने सु॒वीर्य॑म् ॥ १२ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञान देने हारे विद्वन्! हे (अग्ने) अन्धकार में अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारे! (सः) वह तू (नः) हमें (पृथु) बहुत बड़ा विस्तृत (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य और (बृहत्) बड़ा भारी (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, बल के देने वाला, ज्ञान और तप (अच्छ विवाससि) अच्छी प्रकार प्राप्त कराओ।

त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत।
मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑ ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अथर्वा) वायु (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के मूर्धा अर्थात् शिरोभाग, ऊपर या सब से ऊपर विद्यमान (पुष्क-रात्) सबको पुष्ट करने वाले, अन्तरिक्ष, मेघ से (अग्निम् निर् अम-न्थत) विद्युत् रूप अग्नि को मथकर विद्युत् को प्रकट करता है उसी प्रकार (वाघतः) विद्वान् लोग भी हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! (त्वाम्) तुझको (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के शिरो रूप से विद्य-मान (पुष्करात्) सबके पोषणकारक सूर्य या मेघ से (त्वाम् निर् अम-न्थत) सार रूप से तुझको मथ कर प्राप्त करें। और विद्वान् लोग (अ-थर्वा) अहिंसक, प्रजापालक विद्वान् हे (अग्ने) अग्रणी नायक! सर्वोपरि विद्यमान, सर्वपोषक कृषक प्रजाजन में से ही (त्वाम् निर् अमन्थत) तुझ नायक को सारवान् जानकर वाद विवाद के अनन्तर प्राप्त करें। (२) अहिंसा महाव्रत का पालक 'अथर्वा' योगीजन इस देह के शिरो-

भाग कपाल मे से अरणियो से आग के समान, आत्मा रूप अग्नि को ध्यान निर्मथन द्वारा प्राप्त करें।

स्वदेहमरणिं कृत्वा आत्मानञ्चोत्तरारणिम्।
ध्यानानिर्मथनाभ्यासात् पश्येद्देवं निगूढवत्॥ श्वेता०॥

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषि॑: पु॒त्र ई॑धे अथ॑र्वणः।
वृ॒त्र॒हणं॑ पुरन्द॒रम्॥ १४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! हे आत्मन्! (अथर्वणः) प्रजा का नाश न होने देने वाले सर्वपालक पुरुष का (पुत्रः) प्रतिनिधि पुरुष जो वहुतसो की रक्षा करने मे समर्थ है और (दध्यङ्) राष्ट्र को धारण करने मे समर्थ और (ऋषिः) यथार्थ धर्माधर्म, सत्यासत्य का विवेचक हो, वह (तम् त्वाम्) उस तुझ (वृत्रहणं) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं के नाशक और (पुरं-दरम्) शत्रुपुरों के तोड़ने हारे को (ईधे) और भी प्रकाशित करे, तुझे अधिक शक्तिशाली बनावे। (२) अथर्वा आचार्य का (दध्यङ् ऋषि) ज्ञानधारक एवं ध्यानाभ्यासी शिष्य तुझे साक्षात् करे। आत्मा या परमात्मा अज्ञानान्धकार का नाशक होने से वृत्रहा और ज्ञान वल से देहवन्धनाश करने से पुरन्दर है। (३) अथर्वा वायु का पुत्र मेघ विद्युत् को चमकाता है।

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम्।
ध॒न॒ञ्ज॒यं रणे॑रणे॥ १५॥ २३॥

भा०—जिस प्रकार (पाथ्य' वृषाः समीधे) जल युक्त, वरसता मेघ विद्युत् को चमकाता है। उसी प्रकार हे नायक! (पाथ्यः) धर्म पथ पर आरूढ (वृषा) वलवान्, प्रवन्धकुशल पुरुष (रणे रणे) प्रत्येक रण मे, (धन-जयम्) धनो, ऐश्वर्यों का विजय करने वाले, (दस्युहन्तमम्) प्रजानाशक डाकुओं के नाश करने हारे (तम् त्वाम् उ) उस

तुझ को (समीधे) अच्छी प्रकार प्रकाशित, तेजस्वी बनावे। अध्यात्म में 'पाथ्यः वृषा' प्राण। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! तू (आ इहि उ) आ, (ते) तुझे मैं (इत्था) इस २ प्रकार की सत्य वेदवाणियों और (इतराः गिरः) अन्यान्य लौकिक वाणियों का भी (ब्रवाणि) उपदेश करूं। तू (एभिः) इन (इन्दुभिः) ओषधियों से देह के समान और चन्द्रकलाओं से पूर्णचन्द्र के समान ऐश्वर्यों से (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त हो।

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्।
तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे नायक! (ते मनः) तेरा मन (यत्र क्व च) जहां कहीं भी चाहे वहां ही तू (उत्तरम्) उत्कृष्ट (दक्षं दधसे) बल धारण कर। और (तत्र) वहां (सदः कृणवसे) अपना आश्रय, राज भवन, सभाभवन आदि बना। (२) योगी जिस किसी विषय में चाहे मन को लगावे, वहां ज्ञान वा बल प्राप्त करे और उसमें स्थिति प्राप्त करे।

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो।
अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने और राष्ट्र को बसाने हारे! प्रजा-जन एवं राजन्! (ते) तेरे लिये (नेमाना) अन्नों और तेरे आगे झुकने वाले, स्वल्प बल वाले प्रजाजनों को (पूर्तम्) पूर्ण करने वाला बल (नहि अक्षि-पत् भुवत्) आंख से परे जाने वाला न हो। वह सदा तेरे निरीक्षण में ही रहे। (अथ) और तू (दुवः वनवसे) सब प्रकार की सेवाएं

और शत्रुतापकारी सेनाओं को भी प्राप्त कर। 'अक्षिपत्' इति दया० सम्मतः पदपाठः। (ते नेमानां पूर्त्तम् ते नहि अक्षिपत्) अन्नादि भोग्य पदार्थों वा तुच्छ पुरुषों का पूर्ण करना वा पालन करने का भार तुझे न उखाड़ फेंके प्रत्युत वह (ते भुवत्) तुझे शक्तिशाली बनावे।

आग्निरंगामि भार॑तो वृत्र॒हा पु॑रु॒चेत॑नः।
दिवो॑दासस्य॒ सत्प॑तिः॥ १९॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) भौतिक, देह मे जाठर रूप से, लोक मे सौर तेज रूप से (भारतः) सबका भरण पोषण करता है, (वृत्रहा) जीवन के विघ्नकारी कारणो और अन्धकारो का नाशक है (दिव॰ दासस्य सत्पति) प्रकाश देने वाले पदार्थों का पालक होता है उसी प्रकार (भारत॰) 'भरत' अर्थात् मनुष्यो का हितकारी, उनका पोषक, हितैषी, (वृत्रहा) शत्रुओ को नाश करने वाला, (पुरु-चेतनः) बहुतो को चेताने, और ज्ञान देने वाला, (अग्निः) अग्रणी नायक और तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (आ अगामि) प्राप्त हो। वह (दिवः दासस्य) ज्ञान प्रकाश, वा कामना योग्य पदार्थ के देने वाले गुरु और सेवकादि जनो का (सत्पति॰) उत्तम पालक हो। (२) आत्मा, देह का पोषक, प्रति मनुष्य स्थित होने से भारत, पुरु इन्द्रियो को चेतन करने वाला, कामपूरक देह का उत्तम स्वामी है।

स हि विश्वाति पार्थि॑वा र॒यिं दाश॑न्महित्व॒ना।
व॒न्वन्नवा॑तो अस्तृ॑तः॥ २०॥ २४॥

भा०—(स॰ हि) वह निश्चय से (विश्वानि पार्थिवा) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्यों को (अति) अतिक्रमण करने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (दाशत्) दे। और (अवात) कभी शत्रुरूप प्रतिकूल वायु से भी न झुककर (अस्तृत॰) कभी मारा न जाकर सुख से उस ऐश्वर्य को स्वय भी (वन्वन्) भोग करता रहे।

(२) भौतिक अग्नि सूर्य ही सब रत्न सुवर्णादि को उत्पन्न करता, कभी न बुझता, न नाश होता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता ।
बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

भा०—(प्रत्नवत्) पुरातन, पहले के प्रतापी नायकों के समान, हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! राजन् ! (सः) वह तू (नवीयसे) नये से नये, अति श्रेष्ठ, (द्युम्नेन) धन और यश से (भानुना) प्रकाश वा तेज से सूर्य के समान (संयता) अच्छी प्रकार प्रबन्ध करने वाले सैन्य बल से (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (ततन्थ) विस्तृत कर ।

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! जो (वः) आप लोगों में से (वेधसे) विद्वान् पुरुष के लिये (स्तोमं गाय) उपदेश देता, और (यज्ञं अर्च च) दान योग्य पदार्थ आदर से देता है, उसी (अग्नये) अग्रणी नायक, विद्वान् और (वः) आप लोगों में से (वेधसे) कार्यों के विधान करने में कुशल, बुद्धिमान् पुरुष के आदरार्थ आप लोग भी (स्तोमं यज्ञं अर्च च गाय च) स्तुति युक्त वचन कहो और दान, मान से पूजा -सत्कार आदि करो ।

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो (होता) उचित पदार्थ का लेने और देने और आदरपूर्वक अन्यों को बुलाने, सत्कार करने हारा, (कवि-क्रतुः) पुरुष कैसे कर्म और बुद्धि को धारने वाला, (दूतः) दूत और (हव्य-वाहनः) विद्युत-वत् हव्य, अन्नों, वक्तव्य वचनों को धारने वाला है, वह विद्वान् पुरुष ही (मानुषा युगा) मनुष्यों के जोड़े, स्त्री पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर

(सीदत्) विराजे । (२) इसी प्रकार जो विद्वान् (दूतः) तपस्वी, (हव्य-वाहनः) ज्ञान और अन्न का भोक्ता है, वह बहुत मानुष वर्षों तक जीता है ।

ता राजा॑ना शुचि॑व्रतादि॒त्यान्मारु॑तं ग॒णम् ।
वसो॒ यक्षी॒ह रोद॑सी ॥ २४ ॥

भा०—हे (वसो) सबके बसाने हारे ! तू (शुचि-व्रता राजाना) शुद्ध आचरण वाले, राजा के तुल्य कान्तिमान्, तेजस्वी (रोदसी) सूर्य पृथ्वी के समान पति पत्नी, वर वधू जनो को और (आदित्यान्) सूर्य की किरणो वा बारह मासो के समान सबको सुख देने वाले (आदित्यान् = अदितेः पुत्रान्) भूमि के पालक जनों और (मारुतं जनम्) वायुवत् बलवान्, शत्रुमारक वीरो के समूह तथा सामान्य मनुष्यो को भी (इह) इस अपने राष्ट्र में (यक्षि) एकत्र बसा ।

वस्वी॑ ते अग्ने॒ सन्दृ॑ष्टिरिषय॒ते मर्त्या॑य ।
ऊर्जो॑ नपाद॒मृत॑स्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा अग्नि का (संदृष्टिः) अच्छी प्रकार देखना वा प्रकाशित होना मनुष्यमात्र को बसाता है, (इषयते) अन्न देता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे तेजस्वी पुरुष ! हे प्रकाशस्वरूप ! हे (ऊर्जः नपात्) अन्न और बल को न गिरने देने हारे, उस के धारक ! (अमृतस्य) अविनाशी, हे दीर्घायु ! (ते) तेरा (सम्-दृष्टिः) सम्यक् दर्शन ही (वस्वी) सबको बसाने वाला होकर (मर्त्याय इषयते) मनुष्यमात्र को अन्नवत् पुष्ट करता और प्रेरित करता है । (२) अविनाशी प्रभु का सम्यग् दर्शन मनुष्यमात्र को अन्नवत् पालता, संसार भर को सञ्चालित कर रहा है । यदि ह्यहं न वर्त्तेय जातु कर्मण्यतन्द्रितः । उत्सीदेयुरिमे लोकाः ॥ गीता० ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! जो पुरुष (अद्य) आज, तेरे प्रति (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से अपने को (दाः) प्रदान कर देता, तुझ पर अपने को न्योछावर कर देता है, वह (त्वा वन्वन्) तेरा भजन और सेवन करता हुआ (श्रेष्ठः) सबसे श्रेष्ठ, विद्यावान्, और (सुरेक्णः) उत्तम धनवान् (अस्तु) हो और वही (मर्तः) मनुष्य (सुवृक्तिम् त्वाम् आनशे) सुखपूर्वक दुःखों के छुड़ाने वाले तुझ को प्राप्त करता है वा (सुवृक्तिम् आनशे) उत्तम मार्ग को पाता है ।

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! स्वप्रकाश ! (अरातीः अर्यः इव) न दान देनेवाले कृपणों को जिस प्रकार धनस्वामी अपने वैभव से लांघ जाता है उसी प्रकार जो (अराती· अर्यः) करादि न देने वाले शत्रुओं को (तरन्तः) पार करते हुए और (वन्वन्तः) उनका नाश करते हुए, (त्वा उताः) तुझ से सुरक्षित रहते हैं (ते ते) वे तेरे अधीन जन (इषयन्तः) अन्न की कामना करते हुए या तेरी सेना बने हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन प्राप्त करते हैं ।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८ ॥

भा०—(अग्निः) सूर्य वा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेज से, (विश्वम् अत्रिणं) समस्त प्रजाभक्षक दुष्ट जन को (नि यासत) नाश करे । वह (अग्निः) तेजस्वी नायक (रयिम्) ऐश्वर्य (वनते) प्राप्त करता है ।

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥

भा०—हे (जातवेदः) धनस्वामिन् ! हे ज्ञानवन् ! हे (विचर्षणे) विविध मनुष्यों के स्वामिन् ! हे विशेष रूप से तत्वज्ञान के देखने हारे ! तू (सु-वीरं) उत्तम पुत्रों, वीरों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर और हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करने में समर्थ ! तू (रक्षांसि) दुष्ट, विघ्नकारी पुरुषों को (जहि) नाश कर, उनको दण्ड दे।

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (ब्रह्मणः कवे) वेद के उपदेश देने हारे विद्वन् ! या हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! (त्वं) तू (नः) हमें और (नः ब्रह्मणः) हमारे विद्वान् ब्राह्मणों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा और (अघायतः) हम पर अत्याचार करने वाले से भी (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति ।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्निवत् दुष्ट पुरुष को दग्ध कर देने हारे ! (यः) जो (दुरेवः) दुष्ट आचरण करने वाला, दुःखदायक, कर्म करने वाला, (मर्त्तः) मनुष्य (नः वधाय) हमारे नाश करने के लिये (आ दाशति) सब प्रकार से यत्न करता और हमें पकड़ता या अपनाता है, (तस्मात् अंहसः) उस पापी पुरुष से (नः पाहि) हमें बचा।

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् ।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! हे शत्रुओं को खण्डित करने और

विजय करने हारे राजन्! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (नः) हमे (जिघांसति) मारना चाहता हो (त्वं) तू (दुष्कृतम्) उस दुष्टाचरण करने वाले पापी पुरुष को (जिह्वया) वाणी या आज्ञा द्वारा (परि बाधस्व) विनाश कर।

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य।
अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३ ॥

भा०—हे (सहन्त्य) बलवन्, शत्रुओं को पराजित करने हारे! (अग्ने) हे तेजस्विन्! अग्रणी नायक! तू (भरद्वाजाय) अन्न और बल के धारण करने वाले प्रजाजन को (सप्रथः शर्म) विस्तृत शरण (यच्छ) दे और (वरेण्यं वसु) श्रेष्ठ धन, और वसने योग्य भूमि आदि प्रदान कर।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥

भा०—जल जिस प्रकार (वृत्राणि जंघनत्) बढ़ते मेघों को प्राप्त करता है और जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य या विद्युत् (वृत्राणि जघनत्) मेघों पर प्रहार करता है, उसी प्रकार हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन्! शीघ्र कार्य करने हारे! तेजस्विन्! कर्मकुशल! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप्त, तेजस्वी और (आहुतः) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य प्रजाजनों द्वारा संवर्धित, पुष्ट और आदर सत्कार पाकर तथा (आहुतः = आहूतः) शत्रुओं द्वारा ललकारा जाकर (विपन्यया) विशेष व्यवहार कुशल, वार्त्ता, वाणी से (द्रविणस्युः) धन की कामना करता हुआ (वृत्राणि जघनत्) धनों को प्राप्त करे और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करे।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥ २७ ॥

भा०—(मातुः योनिम् सीदन् गर्भे स्थित) माता के गर्भाशय में

पहुचकर वहां ही स्थित गर्भस्थ बालक जिस प्रकार पुष्टि पाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू (मातुः गर्भे) माता पृथ्वी के 'गर्भ' अर्थात् बीच मे या स्वगृहीत राष्ट्र मे (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य-न्याय के घर, सभा-भवन मे अध्यक्ष पद पर बैठता हुआ (अक्षरे) अविनाशी स्थिर पद पर (दिद्युतानः) आकाश मे सूर्यवत् चमकता हुआ (पितुः पिता) पिता का भी पिता होकर विराज । (२) यह अग्नि जीव अक्षय मातृतुल्य ज्ञानवान् जगन्निर्माता परमेश्वर के परम पद में विराजता हुआ मोक्ष सुख भोगे ।

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों के लाभ करने वाले, वा धन-सम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओ के देखने हारे ! स्वामिन् ! (यत्) जो (दिवि) पृथिवी पर वा प्रकाश मे (दीदयत्) चमकता है या जिससे मनुष्य पृथिवी मे, वा ज्ञान, और कान्ति में चमके, ऐसा (प्रजा-वत्) प्रजा, पुत्र शिष्यादि से युक्त (ब्रह्म) वेद ज्ञान, अन्न और धन (आ भर) प्राप्त कर और अन्यों को भी प्राप्त करा ।

उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) सहनशीलता, या विजयकारी बल से सम्पन्न ! (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! हम लोग (प्रयस्वन्तः) उत्तम यत्न-शील होकर (रण्वसन्दृशं त्वा उप) उत्तम, सम्यक् दर्शन वाले तेरे समीप रहकर (गिरः) वाणियों का (ससृज्महे) ज्ञान लाभ करें वा हे परमेश्वर ! हम यत्नशील होकर तुझ अतिरमणीय रूप को लक्ष्य कर स्तुति करें ।

उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥ ३८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! (हिरण्य-सन्दृशः) हित और रमणीय वा तेजोयुक्त सम्यक् दर्शन अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न वा सुवर्णादि धनों से अच्छे रूपवान्, सुसज्जित दीखने वाले (ते) तुझ (घृणेः) कान्तियुक्त, सूर्यवत् तेजस्वी और कृपालु (शर्म) शरण में (वयम्) हम सन्तप्त जन (छायाम् इव) छाया के समान ही (उप-अगन्म) प्राप्त करें और शान्ति सुख लाभ करें।

य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३९ ॥

भा०—(तिग्मशृंगं वसगः न) जिस प्रकार तीखे सींगों वाला साँड (पुरः रुजति) आगे के पदार्थों को तोडता है वा जिस प्रकार तीखी किरणों वाला सूर्य मेघादि के आवरण को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (उग्रः इव) प्रबल वायु के समान शर अर्थात् बाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर (पुरः रुरोजिथ) शत्रु के पुरों को तोड़ता है। वह तू (वंसगः) सेवनीय ऐश्वर्य को प्राप्त हो।

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरं ॥ ४० ॥ २८ ॥

भा०—(खादिनं) खाने में संलग्न (जातं शिशुं न) उत्पन्न बालक को जिस प्रकार (हस्ते बिभ्रति) हाथों में लेते हैं उसी प्रकार (य) जिस (स्वध्वरं) उत्तम हिंसारहित, प्रजापालनादि कर्म करने वाले (विशाम्) प्रजाओं के बीच में (यं) जिस (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक को प्रजा जन (हस्ते) शत्रु को नाश करने और दुष्टों को हनन या दण्ड करने वाले बल के ऊपर (खादिन) वज्रधर, आयुधसम्पन्न और (शिशुं जातं) उत्तम प्रशंसनीय आचार वाले, प्रसिद्ध पुरुष को (बिभ्रति) परिपुष्ट करते हैं वही उत्तम राजा है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥ ४१ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! आप लोग (देव-वीतये) विद्वानों की रक्षा, शुभ गुणो की प्राप्ति, और विजयाभिलाषी और व्यवहारवान्, नाना कामनावान् प्रजाओं के रक्षण के लिये (देवं) ज्ञान वा धन के देनेहारे तेजस्वी (वसु-वित्तमम्) प्रजाओ को और ऐश्वर्यों को भली प्रकार लाभ करने वाले पुरुष को (प्र भरत) अच्छी प्रकार पुष्ट करो और वह (स्वे योनौ) अपने उचित स्थान पर (आ निषीदतु) आदरपूर्वक विराजे ।

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् ।
स्योन आ गृहपतिम् ॥ ४२ ॥

भा०—(जात-वेदसि) नाना विद्याओ में प्रसिद्ध गुरु के अधीन (आ-जातम्) सब प्रकार से विद्या से सम्पन्न (प्रियं) प्रिय (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य (गृहपतिम्) गृह के पालक के समान विद्वान् वा राजा को (स्योने) सुखकारी, पद वा आसन पर (आ) आदरपूर्वक स्थापित करो ।

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी तेजस्वी नायक ! (ये हि) जो भी (तव) तेरे (अश्वासः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले, (साधव) कार्य साधन मे चतुर पुरुष (मन्यवे) तेरे मन्यु अर्थात् शत्रु के प्रति सग्रामादि वा तेरे (अभिमत) उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये (अरं वहन्ति) खूब कार्य-भार उठाते हैं उन को तू (युक्ष्व) उचित स्थान पर नियुक्त कर ।

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (नः अच्छ याहि) हमें भली प्रकार से प्राप्त हो। (वीतये) हमारे उपभोग और रक्षा करने के लिये (प्र यासि) उत्तम अन्नों और उत्तम यत्नवान् कर्मों व सैन्यों को (आ वह) धारण कर और (देवान्) विद्वान्, विजयाभिलाषी, वीर और तेजस्वी पुरुषों को (सोमपीतये) ऐश्वर्य के प्राप्त करने और पालन करने के लिये (आ वह) तू प्राप्त कर ।

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा वि भाह्यजर ॥ ४५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (भारत) प्रजा के पोषण करने हारे एवं मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (द्युमत्) कान्तियुक्त (अजस्रेण) अविनाशी, निरन्तर चमकने वाले तेज से (उत् दविद्युतत्) सूर्य के समान सब से ऊंचा रह-कर प्रकाशित हो । हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक ! हे (अजर) जरादि दोषों से रहित युवा, बलवान् ! हे शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले ! तू (शोचा) कान्ति से (वि भाहि) विविध प्रकार से चमक और प्रजाओं को अच्छा लग । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६ ॥

भा०—(यः) जो (मर्तः) मनुष्य (वीती) कामना से (देव) उत्तम कामना युक्त, तेजोमय, सर्वसुखदाता, प्रभु की (दुवस्येत) सेवा करता है, और जो पुरुष (हविष्मान्) अन्नादि उत्तम सामग्री से सम्पन्न होकर (अध्वरे अग्निम्) यज्ञ में विद्यमान अग्नि के तुल्य अहिंसायोग्य उत्तम कर्मों में ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष का (ईळीत) आदर सत्कार करता है वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य माता पिताओं के भी

ऊपर विद्यमान (होतारं) ज्ञान दान करने वाले (सत्य-यजं) सज्जनों के उचित सत्य आचार, सत्य न्याय के देने वाले आचार्य और प्रभु को (उत्तानहस्तः) ऊपर हाथ उठाकर (नमसा) आदरपूर्वक झुक कर (आविवासेत्) उसकी सेवा करे, उसका मान पूजा करे। गुरु, राजा, न्यायपति, पिता और ईश्वर सबके लिये समान रूप से आदर करे।

आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विर्हृ॒दा त॒ष्टं भ॑रामसि ।
ते ते॑ भवन्तू॒क्षण॑ ऋष॒भासो॑ व॒शा उ॒त ॥ ४७ ॥

भा०— हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानमय ! हे स्वप्रकाश ! (ते) तेरे लिये हम (ऋचा) उत्तम मन्त्र से, उत्तम आदर से युक्त वचन सहित, (हृदा) हृदय से (तष्टम्) सुसंस्कृत (हविः) ग्राह्य, अन्न (आ भरामसि) प्रस्तुत करे (ते) तेरे कार्य के लिये (ते) वे सब (उक्षणः) कार्य-भार उठाने वाले तथा वीर्यसेचन मे समर्थ, बलवान् पशु और मनुष्य, (ऋषभासः) सत्य न्याय से कान्तिमान्, नरश्रेष्ठ पुरुष (उत वशाः) राष्ट्रों को वश करने वाले अधिकारी, (वशाः) तुझे चाहने वाली प्रजाएं (ते भवन्तु) तेरे अधीन हों।

अ॒ग्निं दे॒वासो॑ अग्रि॒यमि॒न्धते॑ वृत्र॒हन्त॑मम् ।
येना॒ वसू॒न्याभृ॑ता तृ॒ळ्हा रक्षां॑सि वा॒जिना॑ ॥ ४८ ॥ ३० ॥ ५ ॥

भा०—(देवासः) विजयाभिलाषी वीर पुरुष (वृत्रहन्तमम्) बढ़ते, विघ्नकारी शत्रुओं के नाश करने मे सब से बढ़ के (अग्रियम्) अग्रासन प्राप्त करने योग्य (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी, अग्रणी उस पुरुष को (इन्धते) अति प्रकाशित और प्रदीप्त करते हैं (येन वाजिना) जो संग्रामचतुर और ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न पुरुष (वसूनि आभृता) नाना धन लाता और (रक्षांसि तृळ्हा) दुष्टों को नाश कर चुकता है।

इति त्रिंशो वर्गः । इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ११ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ९, १०, १२, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । १३ स्वराट् पङ्क्तिः । १५ आर्च्युष्णिक् ॥

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्र को हनन-साधन रूप से अपने वश में रखने हारे ! हे (धृष्णो) शत्रुओं का बलपूर्वक मान भङ्ग करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शत्रुओं का उद्विग्न करने में समर्थ ! बलवन् ! (यः) जो तू (शवोभिः) अपने बलों से (वृत्रम्) मेघ को सूर्य के समान बढ़ते हुए शत्रु को और (विश्वा अमित्रिया) समस्त अमित्र भाव से रहने वाले जनों को (वि वधिषः) विविध प्रकारों से दण्डित करते हो वे आप (यम्) जिस (ऊर्वं) हिंसनीय शत्रु का (तर्दः) नाश करते और (गव्यं) भूमि के हितकारी कृषि आदि (महि) श्रेष्ठ कर्म का (गृणानः) उपदेश करते हुए आप उस (सोमम्) ऐश्वर्य का (पिब) उपभोग करो और पालन करो ।

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (ऋजीषी) सरल स्वभाव, धर्म मार्ग पर अन्यों को प्रेरित करने वाला, (तरुत्रः) सब दुःखों से स्वयं पार, और अन्यों को नाशकों से बचाने वाला और वृक्षवत् अपने अधीनों को छाया-वत् आश्रय देने वाला है और (यः) जो (शिप्रवान्) उत्तम मुख, नासिका वाला, सुन्दर सौम्य मुख वा मुकुटधारी है (यः मतीनां म-

वृषभः) मननशील विद्वानों के बीच सर्वश्रेष्ठ (यः गोत्रभिद्) पर्वतों को विद्युत् के समान, भूमि के पालक राजाओं को भेदन करने में समर्थ और (यः) जो (हरिष्ठाः) अश्वों, अश्वसैन्यों और मनुष्यों पर अध्यक्ष रूप से स्थित है, (सः ईं पाहि) वह तू इस राष्ट्र को पालन कर। और (सः) वह तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (चित्रान्) अद्भुत २ (वाजान्) संग्रामकारी बलवान् परसैन्यों को (अभि तृन्धि) युद्ध द्वारा विनाश कर।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं और अज्ञान के नाश करने हारे राजन् ! विद्वन् ! तू (प्रत्नथा) पुरातन, (ब्रह्म) वेदज्ञान और पूर्वजों के धनों को (पाहि) सुरक्षित कर। वह (त्वा मन्दतु) तुझे नित्य उपदेश दे, एवं प्रसन्न करे। तू उसका (श्रुधि) श्रवण कर। (उत) और (गीर्भिः) वेदवाणियों तथा उपदेष्टा विद्वान् जनों द्वारा (वावृधस्व) नित्य बढ़ा कर। तू (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्य के समान अपने तेजस्वी रूप को प्रकट कर। (इषः पीपिहि) अन्नों का पान कर अथवा (इषः) इष्ट जनों वा अधीन सेनाओं की (पीपिहि) वृद्धि कर। (शत्रून् जहि) शत्रुओं का नाश कर। (गाः अभि) जो अपनी भूमियों पर आक्रमण करें उनको (तृन्धि) काट गिरा। (२) विद्वान् जन ज्ञान-वाणियों से बढ़े, तेजोमय आत्मा का साक्षात् करें, इष्ट वासनाओं को बढ़ावे और बाधक वासना कामादि अन्तःशत्रुओं का नाश करे, आनन्द रसदात्री चित्तभूमियों में स्थित कामादि को समूल काटे।

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रु के नाश करने हारे ! (ते) वे (इमे) ये (मदा) अति हर्षदायक और तेरी स्तुति करने वाले, तुझे

सन्तुष्ट करने वाले और स्वयं तुझ से वृत्ति पाकर तृप्त होने वाले, (पीताः) पालन किये गये, (मत्सरासः) हर्ष पूर्वक आगे बढ़ने वाले, (द्युमन्तम्) तेजस्वी (त्वा) तुझ (महाम्) महान् , (अनूनं) किसी से अन्यून, सबसे अधिक (तवसं) बलवान्, (विभूतिं) विशेष सामर्थ्य युक्त (प्रसाहम्) उत्तम बलशाली, शत्रु पराजय करने वाले (त्वा) तुझ को (उक्षन्त) सीचें, तेरा अभिषेक करें, तुझे बढ़ावें। और तुझे (जहृषन्त) सदा प्रसन्न किया करें।

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसः परि स्वात् ५।१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जिस प्रकार उदय होकर अपने तेजस्वी रूप को और उषा को प्रकट करता, दृढ़ अन्धकारों को दूर करता, पृथिवियों पर बड़े मेघ को प्रेरित करता है वा विद्युत् को फेंकता है उसी प्रकार (मन्दसानः) स्वयं प्रसन्न एवं प्रजा की कामना करता हुआ, (येभिः) जिन उपायों से (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को और (उषसम्) उषा के समान कान्तियुक्त, वा कामनावान् प्रजा वा, शत्रु देहकारी सेना को (अवासयः) अपने राष्ट्र में बसावे, और (दृढानि) दृढ़ शत्रु-सैन्यों को (अपदर्द्रत्) दूर करने में समर्थ होता है, उन ही उपायों से तू (महाम्) बड़े गुणों में महान्, (सन्तं) सज्जन (अद्रिम्) निर्भय, मेघवत् प्रजा पर कृपालु, न विदीर्ण होने वाले, दृढ़, (अच्युतम्) धर्म से और मार्ग से च्युत न होने वाले, ब्राह्मण वर्ग और क्षात्र, शस्त्र बल को (गाः परि) भूमियों पर, सब ओर (स्वात् सदसः परि) अपने राजभवन या राजधानी से दूर २ तक (नुत्थाः) भेजा कर। जिससे वह सर्वत्र ज्ञान का प्रसार और राष्ट्र की वृद्धि किया करें। इति प्रथमो वर्गः॥

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान्॥६॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (तव क्रत्वा) तेरी बुद्धि से और (तव दसनाभिः) तेरे नाना कर्मों से, (आमासु) बुद्धि और बल मे अपरिपक्क प्रजाओं के बीच तू अपने (पक्कं) परिपक्क बल और ज्ञान को (शच्या) अपनी शक्ति और वाणी द्वारा (नि दीधः) स्थापित कर। (उस्रियाभ्यः) किरणो के लिये वा गौओ के लिये जिस प्रकार द्वार खोले जाते है उसी प्रकार (उस्रियाभ्य) उन्नतिशील प्रजाओ के हित के लिये (दुरः) नाना द्वार, तथा विघ्ननिवारक उपाय, (वि और्णोः) प्रकट कर, खोल, और तू (अंगिरस्वान्) प्राणों और तेजस्वी पुरुषो का स्वामी होकर (ऊर्वात्) हिंसाकारी शत्रु से अपनी (गाः) समस्त भूमियों को (त्रि असृजः) मुक्त कर, छुडा ॥

पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! आप (महि दंसः) बड़े भारी कर्म-कौशल से (उर्वीम् क्षां पप्राथ) बड़ी भारी भूमि को विविध ऐश्वर्यो से पूर्ण करो और आप (ऋष्वः) महान् होकर (उर्वीं द्याम्) बड़ी भारी ज्ञानप्रकाश से युक्त राजसभा को वा शत्रु विजय करने वाली सेना को और (बृहत्) बड़े भारी राज्य को भी (उप स्तभाय) थाम। (ऋतस्य) सत्य न्याय के बल पर (यह्वीः) बड़ी, वा अपने पुत्रों के समान (मातरा) सबकी माता, पिता के तुल्य माननीय, (प्रत्ने) सनातन से विद्यमान, (देवपुत्रे) विद्वान्, बलवान् उत्तम पुरुषों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाली, (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य परस्पर सम्बद्ध स्त्री पुरुषों तथा राज प्रजावर्ग दोनो को तू (अधारयः) धारण कर। (७) हे परमेश्वर तू महान् है। तू अपने बडे सामर्थ्य से (ऊर्वीः द्यां क्षा पप्राथ) भूमि और आकाश को रचता और थामता है। (देवपुत्रे) तेजस्वी सूर्यादि के भी उत्पादक, सनातन से मातृ पितृवत् जगत के उत्पादक आकाश भूमि को भी धारण करता है।

अध॑ त्वा॒ विश्वे॑ पु॒र इ॑न्द्र दे॒वा एकं॑ त॒वसं॑ दधिरे॒ भरा॑य ।
अदे॑वो॒ यद॒भ्यौहि॑ष्ट दे॒वान्त्स्व॑र्षाता वृणत॒ इन्द्र॒मत्र॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो (यद्) जब (अ-देवाः) उत्तम प्रकाश आदि गुणों से रहित, तामसी पुरुष स्वभाव से (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (अभि औहिष्ट) प्राप्त होकर उनके बीच नाना तर्क वितर्क करे तब (स्वः साता) वे उत्तम उपदेश को प्राप्त करने के निमित्त (अत्र) इस लोक मे (इन्द्रम्) अज्ञाननाशक विद्वान् गुरु को (वृणते) प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार जब (अदेवः) अराजक मनुष्यों का अहित पुरुष (देवान् अभि औहिष्ट) मनुष्यों पर आक्रमण करे तब वे (स्वर्षाता) सुख प्राप्त करने और संग्राम करने के लिये (इन्द्रम् वृणुते) शत्रुहन्ता सेनापति को वरण करे (अध) और उसी निमित्त (विश्वे देवाः) सब मनुष्य, (एकं) एक, अद्वितीय (तवसं) बलवान्, (त्वा) तुझको, (भराय) अपने पालन पोषण और संग्राम करने के लिये (पुरः दधिरे) तुझे आगे स्थापित करें।

अध॒ द्यौश्चि॑त्ते॒ अप॒ सा नु वज्रा॑द्द्वि॒तान॑मद्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः ।
अहिं॒ यदिन्द्रो॑ अ॒भ्योह॑सानं॒ नि चि॑द्वि॒श्वायुः॑ श॒यथे॑ ज॒घान॑ ॥९॥

भा०—(यत्) जो (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (ओहसानम् अहिम् अभि) सम्मुख आते हुए शत्रु को (शयथे चित्) उसको सुला देने के लिये मानो, (नि जघान) विनाश कर सकता है, (अध) तब (द्यौः चित्) भूमि या आकाश के समान ही (सा) वह प्रजा, हे इन्द्र ! राजन् ! (ते) तेरे समक्ष (द्विता अनयत्) दोनो प्रकार से झुके। एक तो (वज्राद् भियसा) वज्र अर्थात् शस्त्र के भय से दूसरे (मन्योः भियसा) क्रोध के भय से।

अध॒ त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र॒ वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृतच्छ॒ताश्रि॑म् ।
निका॑मम॒रम॑णसं॒ येन॒ नव॑न्त॒महिं॒ सं पि॑णगृजीषिन् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(अध) और हे (ऋजीपिन्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर अन्यों को चलाने वाले ! और स्वयं भी धर्मानुकूल कामना करने हारे ! (ते महः) तेरे महान् (उग्रं) भयंकर (सहस्र-भृष्टि) हज़ारो को एक ही वार मे भून देने वाले, (शताश्रिम्) सैकड़ो के ऊपर आश्रित या सैकड़ो को नाश करने वाले, (अरमणसं) शत्रुओ को अच्छा न लगने वाले (निकासं) यथेष्ट रूप से (वज्रं) शस्त्र बल को (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी (ववृतत्) बनावे। (येन) जिससे तू (नवन्तम्) स्तुतिशील अति नम्र (अहिम्) शत्रु को, गर्जते मेघ को विद्युत् के समान (संपिणक्) अच्छी प्रकार दण्डित करे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

वर्धान्यं विश्वे मुरुतः सुजोषाः पचच्छुतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम्।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥११॥

भा०—(यं) जिसको (विश्वे मरुतः) सब वीर एवं प्रजा के पुरुष (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (वर्धान्) बढ़ाते है (पूषा) सबका पोषक सूर्य, पृथिवी, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (शतं) सौ, सैकडो, अनेक, (महिषान्) बडे, और श्रेष्ठ भोग्य अन्न, फल पदार्थों के देने वाले, वृक्षो, और खेतो को (पचत्) परिपक्व करता है, और (विष्णुः) व्यापक (धावन्) निरन्तर वेग से चलने हारा वायु (त्रीणि सरांसि) तीनों जाने योग्य लोको को (धावन्) दौड़ता या जाता या उनको पवित्र करता हुआ, (अस्मै) इस उचित राज्य के नायक (वृत्रहणम्) विघ्नकारी शत्रुओं के नाशक, (मदिरम्) हर्षजनक (अंशुम्) तेज को भी प्रदान करता है।

आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम्।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक राजन् ! जिस प्रकार सूर्य (नदीनां) नदियो के (अपां) जलों के (ऊर्मिम्) ऊपर गये

अंश को (महिः क्षोदः) बड़े भारी अति क्षुद्र २ कणिका रूप मे विद्यमान (वृतं) मेघ से आच्छादित और (परि स्थितम्) आकाश मे सर्वत्र व्याप्त (असृजः) करता है, और वही (प्रवतः अनु) नीचे के देशों की ओर (तासां पन्थाम्) उन जलो का मार्ग कर देता है और (समुद्रम् प्रति अपसः नीचीः प्र अर्दयः) समुद्र के प्रति उनके वेगो को नीचे की ओर ही वेग से कर देता है वही जल बहकर फिर समुद्र मे मिल जाते है उसी प्रकार (नदीनाम् अपाम्) समृद्धिशाली आप्त प्रजाओं के महि) बड़े भारी (वृतं) सुरक्षित और (ऊर्मिम्) उन्नत, और (परि स्थितम्) सब ओर विराजते (क्षोदः) बल को (असृजः) प्राप्त कर। और (प्रवतः अनु) उत्तम उद्देश्यो के प्रति हे (इन्द्र) राजन् ! (तासाम् पन्थाम् असृज.) उन प्रजाओं को मार्ग बना तथा (समुद्रम् प्रति) समुद्र के समान महान् अखिलाश्रय, परमेश्वर के प्रति उनके (अपसः प्रार्दशयः) कर्मों को प्रेरित कर।

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।
सुवीरं त्वा स्वायुध सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥

भा०—(एव) इस प्रकार (ता विश्वा) उन २ समस्त कर्मो को (चकृवांसम्) करते हुए, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य युक्त, (महान्) महान्, (उग्रम्) उग्र, वलवान्, (अजुर्यम्) बुढापे से रहित, सदा युवा, (सहोदाम्) बलप्रद (सुवीरं) उत्तम वीर, (स्वायुधम्) उत्तम शस्त्रास्त्र से सम्पन्न, पुरुष को प्रजा (अवसे) रक्षा, पालन और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (आववृत्यात्) सब प्रकार से प्राप्त करे और वह (नव्यम्) उत्तम से उत्तम (ब्रह्म) महान्, बल, धन और अन्नादि को प्राप्त करे।

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (स) वह तू (द्युमत) दीप्ति,

कान्ति आदि से युक्त (नः) हमे (वाजाय) बलैश्वर्य प्राप्त करने, (श्रवसे) अन्न, कीर्त्ति और ज्ञान प्राप्त करने और (इषे) इष्ट वाञ्छित सुख प्राप्त करने और (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (धेहि) धारण और पालन कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (नृवृतः सूरीन्) मनुष्यो के स्वामियो और विद्वानो को (भरद्वाजे) अन्नादि से भरण पोषण करने के काम मे और (दिवि) राजसभा और न्यायव्यवहार के कार्य मे (धेहि) नियुक्त कर। हे ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमे (पार्ये) संकटो से पार करने मे समर्थ (एधि) हो।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥३॥

भा०—(अया) इस रीति से हम (देव-हितम्) मनुष्यो के हितकारी, एवं विद्वान् पुरुषों से दिये तथा वीर पुरुषो से प्राप्त (वाज) ज्ञान और ऐश्वर्य, अन्न आदि पदार्थ को (सनेम) स्वयं सेवन करें और औरो को भी दान करे। इस प्रकार हम लोग (सु-वीराः) उत्तम पुत्र पौत्रादिवान् होकर, (शत-हिमाः) सौ वर्षो तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न होकर रहे। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, १४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप्। ७, १० विराट् त्रिष्टुप्। १२ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, १५ भुरिक्पंक्तिः। ५ स्वराट्पंक्ति। ६ ब्राह्म्युष्णिक् ॥

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं का पराभव करने मे समर्थ, पराक्रमशाली हो और जो (अवातः) स्वय न मारा

जाकर भी (पुरु-हूतः) बहुतों से स्तुति योग्य और पुकारा जाकर (वन्वन्) शत्रुओं का नाश करता हो (तम् उ) उस की अवश्य तू (स्तुहि) स्तुति कर। तू उस ही (चर्षणीनां वृषभम्) मनुष्यो मे सबसे श्रेष्ठ (अषाढं) पराजित न होने वाले, (उग्रं) बलवान् (सहमानम्) शत्रुओं को पराजय करने वाले पुरुष को (गीर्भिः) उत्तम २ वाणियों से (वर्ध) बढ़ा।

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (युध्मः) युद्ध करने मे चतुर, (सत्वा) बलवान् , (खजकृत्) नाना संग्रामों को करने वाला, (समद्वा = सम्—अद्वा) उत्तम अन्न का भोक्ता, अथवा, सबके साथ आनन्द प्रसन्न रहने वाला, (तुवि-म्रक्षः) बहुत सी प्रजाओं को स्नेह करने हारा, निष्पक्षपात, (नदनुमान्) गर्जनाशील, उपदेष्टा, (ऋजीषी) सरल ऋजु व्यवहार मार्ग मे प्रेरणा करने वाला, (बृहद्रेणुः) बहुत से हिंसक वीर पुरुषों का स्वामी, (मानुषीणाम् कृष्टीनाम्) मननशील प्रजाओं के बीच (एकः) अकेला, अद्वितीय (च्यवनः) उनका नेता, और (सहावा) बलवान् (अभवत्) हो।

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोच ॥३॥

भा०—(त्वं ह) तू निश्चय से, (त्यत्) वह है जो (एकः) अकेला, अद्वितीय ही (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुषों के हितार्थ (दस्यून् अदमय) दुष्ट प्रजानाशक पुरुषों का दमन करे और (कृष्टीः अवनोः) कृषि करने वाली अहिंसक प्रजाओं का सेवन कर। (तत् ते वीर्यं अस्ति स्वित्) तेरा वह अद्वितीय बल है भी (न स्विद् अस्ति) या नहीं है

(तत्) इस बात को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू (ऋतुथा) अवसर २ पर (वि वोच.) विविध प्रकार से बतलाया कर।

सद्दिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहिष्ठ) बहुत बलशालिन् ! (तुरतः तुरस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष को मारने वाले वा शीघ्र अश्वादि बल को शीघ्रता से चलाने वाले (तुवि-जातस्य) बहुतों मे प्रसिद्ध, (ते) तेरा (सहः सत् हि) शत्रु पराभवकारी बल निश्चय से विद्यमान ही रहता है। (इति मन्ये) मैं यह स्वीकार करता हू। (अरध्रस्य) स्वयं शत्रुओं के वश न आने वाले, वा अहिंसक (रध्रतुर.) हिंसकों के नाश करने वाले (तवसः) बड़े बलवान् (उग्रस्य) भयंकर तेरा (तवीयः) अति अधिक (उग्रम्) बड़ा भयंकर बल (बभूव) हो।

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५।४॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! (न.) हमारा (युष्मे) तुम्हारे साथ (प्रत्नं सख्यम्) सदातन से चला आया मैत्रीभाव (अस्तु) बना रहे। (इत्था) इस प्रकार (वदद्भिः) प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचन बोलते हुए (अंगिरोभिः) तेजस्वी पुरुषों की सहायता से तू (वलम्) नगर घेरने वाले (इषन्तं) सैन्य सञ्चालित करते हुए शत्रु को–मेघ को सूर्य के समान (हन्) नाश करे। (अस्य) नाश करने हारे ! उसके तू (पुर वि ऋणो.) नगरों का नाश कर और (विश्वा. दुरः वि ऋणः) अपने समस्त शत्रुवारक सेनाओं को विविध दिशाओं में भेज, वा (अस्य विश्वाः पुर वि ऋणो) इसके दूर के समस्त द्वारों को तोड डाल। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों के द्वारा वा उत्तम स्तुतियों से (हव्यः अस्ति) प्रशंसनीय, आदर करने योग्य हो, वह (महति वृत्रतूर्ये) बड़े भारी दुष्ट नाशकारी संग्राम में (उग्रः) बलवान्, और (ईशानकृत् अस्ति) सामर्थ्यवान् पुरुषों को अधिकारी बनाने हारा हो। (सः) वह (तनये) पुत्रों में (तोकसाता) धनादि का न्यायपूर्वक विभाजक और (सः) वह (वज्री) दण्डधारी (समत्सु) संग्रामों और एक साथ हर्ष के अवसर उत्सवादि काल में (वितन्तसाय्यः अभवत्) विविध प्रकार के शत्रुओं का नाशकारी और राष्ट्र सम्पत्तिका विस्तार करने वाला हो।

स मुज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र संर्स्रे।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह राजा स्वयं (मज्मना) बलसे और (अमर्त्येन नाम्ना) और अपने असाधारण शत्रु को नमाने वाले सामर्थ्य से (मानुषाणां जनिम) मनुष्यों के जनसमूह वा मानुष जन्म को (अति प्रसर्से) लांघ जावे। (सः) वह (द्युम्नेन) यश से (स शवसा) वह बल से और (उत राया) धन से, और (सः वीर्येण) वह वीर्य से (नृतम) सब मनुष्यों मे श्रेष्ठ और (सम्-ओकाः) सब से उत्तम पद, और स्थान को प्राप्त करे।

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशकारी राजा सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर (पिप्रुं) अपना धन भरने वाले, (शम्बरं) मेघवत् शान्तिकारक सुखों के आह्लादक, (शुष्णम्) प्रजा के रक्तशोषक (चुमुरिम्) प्रजा के सर्वस्व खा जाने वाले और (धुनिम् च) उसको भय से कंपाने वाले दुष्ट जनों को भी (वृणक्) नाश करता है, और जो (पुरां)

पूर्ण ऐश्वर्यों के (च्यौत्नाय) प्राप्त करने (शयथाय नू चित्) प्रजाओं के सुखपूर्वक सोने के लिये उक्त दुष्टों का नाश करता है, (यः न मुहे) जो कभी मोह में नहीं पड़ता, (न मिथू जनः भूत्) जो कभी असत्य-वादी पुरुष नहीं होता (सः) वह ही (सुमन्तु नाम भूत्) उत्तम मनन-शील नाम से प्रसिद्ध होता है ।

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (उत्-अवता) उत्तम मार्ग पर चलने हारे, (त्वक्षसा) शत्रुओं का नाश करने वाले (पन्यसा) अतिस्तुत्य व्यवहार से तू (वृत्रहत्याय) अपने बढ़ते और विघ्नकारी शत्रुओं के नाश के लिये (रथम् तिष्ठ) रथ पर सवार हो । और (दक्षिणत्र हस्ते) दायें हाथ में (वज्रम् धिष्व) शस्त्र ग्रहण कर । हे (पुरुदत्र) नाना दान योग्य धनों के स्वामिन् ! तू (मायाः अभि प्रमन्द) उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होकर हर्षित और तेजस्वी हो । मन्दतिर्ज्वलित-कर्मा पठित ॥

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरयं ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥५॥

भा०—(अग्निः शुष्कं वनं न) आग जिस प्रकार सूखे वन को भस्म-सात् कर देती है, और जिस प्रकार (भीमा अशनि न) भयंकर विजुली पड़कर वृक्षादि को जलाती है और प्रहार करती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) इन्द्र (य) जो तू (रुरोज) शत्रु बल को भङ्ग करता (अध्वनयत्) घोर नाद करता, और (दुरिता) दुष्ट आचारों को भी (दम्भयत् च) विनाश करता है, वह तू हे शत्रुहन्त. ! (हेति) आघातकारी होकर स्वय (गम्भीरया) अति बलवती, गम्भीर नाद करने वाली (ऋष्वया)

बड़ी भारी, शक्ति से युक्त होकर (रक्षः नि धक्षि) दुष्ट पुरुष को भस्म कर डाल। इति पञ्चमो वर्गः॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः॥११॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक ! और बलवान् पिता के पुत्र ! वा बल पराक्रम के द्वारा स्वयं उत्पन्न ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (यस्य) जिस (योतोः) प्राप्त होने योग्य धन का (अदेव) अदानशील पुरुष (ईशे) स्वामी बना हुआ है उस धन को तू (आ याहि) अवश्य प्राप्त कर और हे (इन्द्र) दुष्टनाशक ! हे (तुवि द्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (तुवि-वाजेभिः) बहुत से वेगवान् अश्वादि साधनों से (पथिभिः) उत्तम मार्गों से और (राया) ऐश्वर्य के बल से (सहस्रं अर्वाक् आ याहि) हज़ारों प्रकार के धनों और ऐश्वर्यों को साक्षात् प्राप्त हो।

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः॥१२॥

भा०—(तुवि-द्युम्नस्य) बहुत ऐश्वर्यवान्, (स्थविरस्य) स्थिर, दीर्घजीवी, (घृष्वेः) शत्रुओं का घर्षण करने, उनसे टक्कर लेकर उनको निर्बल कर देने वाले, (पुरु-मायस्य) बहुत बुद्धि वाले, चतुर, (सह्योः) सहनशील पुरुष का (महिमा) महान् सामर्थ्य (दिवः ररप्शे) उस महान् आकाश, तेजस्वी सूर्य से भी बढ़ जाता है, और (पृथिव्याः प्र ररप्शे) पृथिवी से भी अधिक होता है। (अस्य शत्रुः न अस्ति) उसका कोई शत्रु नहीं होता। (नः प्रति-मानम् अस्ति) न उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी, उसके समान, उसका मुक़ाबला करने वाला ही होता है। और (न प्रति-ष्टि) न उसके मुक़ाबले पर खड़ा होने वाला होता है वा न उसका कोई आश्रय होता है, प्रत्युत वही सबका आश्रय होता है। (२) राजम-

श्वर तेजःस्वरूप, ऐश्वर्यवान् होने से 'तुविद्युम्न' है, सनातन कूटस्थ होने से 'स्थविर', कालक्रम से सब पदार्थों के घर्षण वा संहार करने से 'घृष्वि' और जीवों को उपदेश करने, बनाने और बहुप्रज्ञ होने से 'पुरुमाय' और बलशाली होने से 'सह्य' है। उसकी महिमा आकाश, सूर्य, पृथ्वी आदि से कहीं महान् है। उसका न कोई शत्रु, न प्रतिमा, न माप, और न आश्रय है वही सबका आश्रय है।

प्र तत्ते॑ अ॒द्या कर॑णं कृ॒तं भू॒त्कुत्सं॒ यदा॒युम॑तिथि॒ग्वम॑स्मै ।
पु॒रू स॒हस्रा॒ नि शि॑शा अ॒भि क्षामुत्तू॒र्वया॑णं धृष॒ता नि॑नेथ ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन्! (यत्) जो तू (अस्मै) इस राष्ट्र के हित के लिये (पुरु) बहुत से (कुत्सं) शस्त्र समूह को (नि शिशाः) शासन कर और (पुरु आयुम् नि शिशाः) बहुत से मनुष्यों को अपने अधीन शासन कर और (पुरु अतिथिग्वम् नि शिशाः) बहुत से अतिथियों को प्राप्त होने वाले सत्कारयोग्य धन प्रदान कर (पुरू सहस्रा नि शिशाः) बहुत से हज़ारों धनों, बलों को भी शासन करता, और (धृषता) शत्रु को पराजय करने वाले बल से (तूर्व-याणं) शीघ्र यान वाले (क्षाम्) राष्ट्र निवासी प्रजाजन को (अभि उत् निनेथ) ऊपर उठाता, उन्नति की ओर ले जाता, वा उत्तम पद प्रदान करता है (अद्य) आज भी (ते) तेरा (तत्) यह (करणं) करना वा (कृतम्) किया हुआ कर्म भी (प्र भूत्) उत्तम सामर्थ्य को बढ़ाने वाला है। (२) परमेश्वर का यह महान् प्रभुता का कार्य है कि वह इस जीव को ज्ञानवज्र, दीर्घ जीवन, और इन्द्रिय देता है। सहस्रों सुख देता है और उसे शीघ्रगामिनी भूमि, नरदेह देना, वा उसको उत्तम पद की ओर ले जाता है।

अनु॒ त्वाहि॑घ्ने॒ अध॑ देव दे॒वा मद॒न्विश्वे॑ क॒वित॑मं कवी॒नाम् ।
करो॒ यत्र॒ वरि॑वो बाधि॒ताय॑ दि॒वे जना॑य त॒न्वे॑ गृणा॒नः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देव) राजन् ! दानशील ! तेजस्विन् ! (यत्र) जहां (बाधिताय) पीड़ित, दुःखित और (दिवे) कामना, युक्त, इच्छुक (जनाय तन्वे) प्रजाजन के शरीर के सुख के लिये (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ तू ही (वरिवः) उत्तम धन तथा सेवा (करः) करने हारा है उस देश मे (कवीनां कवितमम्) विद्वान् क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुषो मे श्रेष्ठ विद्वान् (त्वा) तुझको ही (विश्वे देवाः) समस्त प्रजा के मनुष्य प्राप्त करके (अहि-घ्ने) शत्रु के नाश करने के लिये वा मेघनाशक सूर्यवत् तेजस्वी पद प्राप्त करने के लिये (अनु मदत्) तेरे अनुकूल रहकर प्रसन्न होते है और (त्वा अनुमदन्) तेरी ही स्तुति करते है, तुझे ही प्रधान पद के लिये प्रस्तुत और समर्थन करते है। दुःखित जनो के सुखार्थ सेवा और धनार्पण करने हारे, त्यागी, देश-सेवक को ही प्रधान पद पर प्रस्तुत करना चाहिये।

अनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी तत्त॒ ओजोऽम॑र्त्या जिहत इन्द्र दे॒वाः ।
कृ॒ष्वा कृ॑त्नो॒ अकृ॑तं॒ यत्ते॒ अस्त्यु॒क्थं नवी॑यो जनयस्व य॒ज्ञैः ॥१५॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्नो के देने वाले ! (अमर्त्या) न मरने वाले, दीर्घजीवी (देवाः) विद्वान् और दानशील प्रजाजन, (द्यावापृथिवी अनु) सूर्य और पृथिवी का अनुकरण करते हुए (ते तत) तेरे उस (ओजः) पराक्रम को (अनु जिहत) प्राप्त करें। (यत् ते) और जो (ते) तेरा (अकृतं) न किया हुआ काम (अस्ति) है हे (कृत्नो) करने वाले पुरुष ! तू उसको भी (कृष्व) करले। और (यज्ञैः) परस्पर आदर सत्कार और सत्संगो द्वारा (नवीयः) अति स्तुत्य, उत्तमोत्तम (उक्थं जनयस्व) वचन, वेद ज्ञानमय उपदेश को प्रकट कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१९]

म॒हाँ इन्द्रो॑ नृ॒वदा च॑र्षणि॒प्रा उ॒त द्वि॒बर्हा॑ अ॒मिनः॒ सहो॑भिः।
अ॒स्म॒द्र्य॑ग्वावृधे वी॒र्या॑योरुः पृ॒थुः सुकृ॑तः क॒र्तृभि॑र्भूत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्र) सूर्य जिस प्रकार (नृवत्) शरीर के नायक प्राणो और रश्मियो से युक्त है (चर्षणिप्राः) दर्शन कराने वाले आंखों को प्रकाश से पूर्ण करता है। (द्वि बर्हाः) अन्तरिक्ष और वायु दोनो से बढने हारा, (वीर्याय) बल की वृद्धि के लिये होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष, (महान्) महान् हो। वह (नृवत्) नायक पुरुषो का स्वामी, और (चर्षणि प्राः) प्रजाओं को सुख समृद्धि से पूर्ण करने वाला, (सहोभिः) बलवान् सैन्य वर्ग से (अमिनः) सहायक वर्ग का स्वामी, शत्रु का पीड़क और और प्रजा का अहिंसक (उत) और (द्वि-बर्हाः) सपक्ष विपक्ष, वा प्रजा वा शासक दोनो वर्गों से बढ़ने वाला, एव दोनो पक्षो को बढ़ाने वाला, होकर (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति कृपा-युक्त होकर (वीर्याय) अपने बल बढ़ाने के लिये (ववृधे) खूब बढे। वह (कर्तृभिः) उत्तम कार्य करने वाले सहायको सहित (सुकृतः) उत्तम कर्म करने हारा, (उरुः) महान् और (पृथुः) विशाल शक्ति-सम्पन्न (भूत्) हो।

इन्द्र॑मे॒व धि॒षणा॑ सा॒तये॑ धाद्बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॒ युवा॑नम्।
अषा॑ळ्हेन॒ शव॑सा शूशु॒वांसं॑ स॒द्यश्चि॒द्यो वा॑वृ॒धे अ॒सा॑मि ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (सद्यः चित्) बहुत शीघ्र, वा सदा ही, (असामि) बहुत अधिक (ववृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (बृहन्तम्) महान् (अजरम्) अविनाशी, (युवानम्) तरुण, (अषाढेन शवसा) असह्य, बल से (शूशुवांसम्) फैलने बढने बढाने वाले, राष्ट्र को व्यापने वाले, पुरुष को प्रजाजन (धिषणा) कर्म और बुद्धि से (सातये धात्) राज्य भोग करने के लिये सर्वोपरि स्थापित करे। (२) उस परमैश्वर्यवान, महान, अजर, अविनाशी नित्य, तरुण महान

पराक्रम से व्यापक पूर्ण वृद्धियुक्त परमेश्वर को (धिषणा) बुद्धि (सातये धात्) भजन करने के लिये धारण करे ।

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू अपने (पृथू) अति विशाल (करस्ना) नाना कर्मों को करने वाले वा, आर्य जनों को शुद्ध, निर्दोष करने वाले (गभस्ती) ग्रहणशील, बाहुओं को (बहुला) बहुत धन प्राप्त करने वाला, बना और उनसे हमें (श्रवांसि) नाना प्रकार के अन्न, धन, यश और ज्ञानादि (सं मिमीहि) सम्मानपूर्वक प्रदान कर । (पशुपा-पश्वः यूथा इव) पशुओं का पालक पुरुष जिस प्रकार पशुओं के यूथों को (आवर्त्तते) अपने वश करता है उसी प्रकार (आजौ) संग्राम काल में तू (दमूनाः) दमनशील जितेन्द्रियचित्त होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ ववृत्स्व) आ और हमारी रक्षा कर ।

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! प्रजाजनो ! (नूनं) निश्चय से हम लोग (वः) आप लोगों में से (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील, (चतिनम्) शत्रु के नाशक, पुरुष को (अस्य शाकैः) उसकी शक्तियों और सामर्थ्यों से (वाजयन्तः) संग्रामों और ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (इह तं हुवेम) उस राष्ट्र में उसको प्राप्त करें । और (यथाचित्) जिस प्रकार (पूर्वे) पूर्व के (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा, (अनेद्याः) अनिन्दित आचरण (अनवद्याः) स्वच्छ पवित्र, (अरिष्टाः) अहिंसित जीवन होकर (आसुः) रहे हों वैसे ही हम भी उत्तम आचार चरित्र वाले होकर रहें ।

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥

भा०—(सः) वह (हि) निश्चय से (धृत-व्रतः) व्रत, उत्तम कर्म करने के दृढ निश्चयों, प्रतिज्ञाओं को धारण करने वाला, (धन दाः) धन देने वाला, (सोम-वृद्धः) ऐश्वर्य और अन्नादि से परिपुष्ट पुरुष (वामस्य वसुनः) सुन्दर, उपभोग योग्य ऐश्वर्य का स्वामी और (पुरुक्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी हो । (समुद्रे सिन्धवः न) समुद्र में नदियों के समान (अस्मिन्) उसमें (पथ्याः रायः) सन्मार्गों से आने वाले ऐश्वर्य (यादमानाः) निरन्तर आते हुए (सं जग्मिरे) एकत्र हो जावें । इति सप्तमो वर्गः ॥

शविष्ठं न॒ आ भ॑र शूर॒ शव॒ ओजि॑ष्ठ॒मोजो॑ अभिभूत उ॒ग्रम् ।
विश्वा॑ द्यु॒म्ना वृष्ण्या॒ मानु॑षाणाम॒स्मभ्यं॑ दा हरिवो माद॒यध्यै॑ ॥६॥

भा०—हे (शूर) शत्रुओं को नाश करने में कुशल ! वीर पुरुष ! (अभि-भूते) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ! तू (ओजिष्ठम्) सब जनों से श्रेष्ठ और (उग्रम्) अति उग्र (ओजः) पराक्रम और (शविष्ठं शवः) सब से अधिक उत्तम (नः आभर) हमें प्राप्त करा हे (हरिव) मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (मादयध्यै) आनन्द पूर्वक उपभोग करने के लिये, उनको सुखी और आनन्दित करने के लिये (विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) बलवान् पुरुषों के उचित एवं बलजनक, (द्युम्ना) धन, मान, और यश, (अस्मभ्यं दाः) हमें प्रदान कर ।

यस्ते॒ मदः॑ पृतना॒षाळमृ॑ध्र॒ इन्द्र॒ तं न॒ आ भ॑र शूशु॒वांस॑म् ।
येन॑ तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तौ मं॑सी॒महि॑ जिगी॒वांस॒स्त्वोताः॑ ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मद) अतिहर्ष, उपदेश वा हर्षकारी, उपदेष्टा (पृतनाषाट्) मनुष्यों वा सेनाओं को विजय करने में समर्थ और (अमृध्रः) कभी नाश न होने योग्य है, (येन) जिसके द्वारा हम (त्वोता) तुझ से सुरक्षित रहकर (जिगीवांस) विजयशील होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र पौत्र के प्राप्त होने,

और धन विभाग के कार्य में ठीक ज्ञान वा न्याय व्यवहार जान सके (तं) उस (शुशूवांसं) उत्तम गुणों से युक्त, सर्वोत्तम न्यायकर्त्ता पुरुष को (नः आभर) हमें प्राप्त करा।

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः (वृषणं) बलवान्, उत्तम प्रबन्ध करने में चतुर, (शुष्मम्) शत्रुओं को शोषण करने वाले, सुखप्रद, (धनस्पृतं) धन को पूर्ण करने वाले, (शूशुवांसम्) अति उत्तम, प्रचुर, (सु-दक्षम्) उत्तम व्यवहारकुशल, और बलवान् पुरुष (नः भर) हमें प्रदान कर। (येन) जिसके द्वारा (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षा कार्यों से सुरक्षित रहकर हम (पृतनासु) संग्रामों मे (जामीन् अजामीन्) क्या बन्धु रूप और क्या बन्धुओं से भिन्न (शत्रून्) समस्त शत्रुओं को (वंसाम) विनाश करें वा उनका (पृतनासु वंसाम) मनुष्यों के बीच न्यायपूर्वक विभाग करें।

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ते) तेरा (वृषभः) बलवान् (शुष्मः) शत्रुओं को शोषण करने मे समर्थ, (वृषभः) धर्म से तेजस्वी, बलवान्, पुरुष (पश्चात) पीछे से (उत्तरात्) बायें से वैसे ही (अधरात्) नीचे से, (पुरस्तात) आगे से ((आ एतु) आवे। वह (विश्वतः) सब ओर से (आ एतु) आवे, (अभि एतु) आगे बढ़े, (सम् एतु) ठीक प्रकार से चले। हे राजन्! तू (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (अर्वाङ्) हमारे साथ हमें प्राप्त होने वाले (स्वर्वत्) सुखयुक्त, तेज सम्पन्न, उत्तम उपदेशपूर्ण (द्युम्न) धन, यश, ज्ञानप्रकाश, (धेहि) धारण कर और करा।

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे सूर्यवत् तेजस्विन्! विद्वन्! (ते) तेरे (नृवत्) उत्तम नेता पुरुषो से युक्त, उत्तम भृत्यादि सम्पन्न (वामं) उत्तम धन और ज्ञान को हम लोग (नृ-तमाभिः) उत्तम पुरुषो से सेवन करने योग्य (ऊती) क्रियाओ, रीतियों और (श्रोमतेभिः) उत्तम पुरुषो से श्रवण करने योग्य वचनो से (वंसीमहि) हम प्राप्त करें। हे (राजन्) उत्तम गुणो से प्रकाशमान! तू (उभयस्य वस्वः) दोनो प्रकार के धनों, अर्थात् राष्ट्र मे वसने वाले प्रजा रूप धन और उपभोग योग्य ऐश्वर्य सुवर्णादि धन को भी (ईक्षे हि) निश्चय से देखता है। तू (महि) वड़ा (स्थूरं) स्थिर और (बृहन्तम्) महान् (रत्नं) रमण, सबको प्रसन्न करने योग्य, उत्तम नर रत्न को रत्नवत् (धाः) स्वयं धारण कर और राष्ट्र मे स्थापित कर।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥

भा०—हम लोग (अवसे) रक्षा कार्य के लिये, ज्ञान प्राप्त करने के लिये (मरुत्वन्तम्) वायु के गुणों से युक्त सूर्यवत् तेजस्वी एव मनुष्यों, वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) मेघवत् सुखों के वर्षण करने वाले, बैल के समान राज्य शकट को उठाने में समर्थ, (वावृधानं) स्वय बढने वाले (अकवारिम्) शत्रु भी जिसकी निन्दा न करते हों, ऐसे (दिव्यम्) ज्ञान और तेज मे प्रसिद्ध, (शासम्) शस्त्र बल के तुल्य शासक, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्ता, (विश्वसाहम्) सबको पराजित करने वाले, सब कष्टो को सहने वाले, (उग्रम्) बलवान् (सहोदाम्) बलप्रद, (त) उस पुरुष को (इह) इस राष्ट्र मे उच्चपद पर (नूतनाय) सर्वस्तुत्य, सदा नये से नये, (अवसे) रक्षा कार्य और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (हुवेम) आदर पूर्वक प्राप्त करें।

जनं॑ वज्रि॒न्महि॑ चि॒न्मन्य॑मानमे॒भ्यो नृभ्यो॑ रन्धया॒ येष्वस्मि॑ ।
अधा॒ हि त्वा॑ पृथि॒व्यां शूर॑सातौ॒ हवा॑महे॒ तन॑ये॒ गोष्व॒प्सु ॥१२॥

भा०—हे (वज्रिन्) शत्रुओं के वर्जन करने मे समर्थ ! अस्त्र बल के स्वामिन् ! एवं हे अज्ञान के वर्जन मे समर्थ ज्ञान के पालक ! मैं (येषु अस्मि) जिनके बीच में रहता हूं (एभ्यः नृभ्यः) उन उत्तम जनों के हित के लिये (मन्यमानं जनं) अभिमान करने हारे पुरुष को (रन्धय) वश कर और उसी प्रकार (महिचित्) बड़े भारी, पूजनीय (मन्यमानं) अन्यों से मान आदर पाने योग्य (जनं) उत्तम मनुष्य को (रंधयः) अच्छी प्रकार आदर सत्कारपूर्वक आराधना कर। (अध हि) और हम (पृथिव्याम्) इस भूमि पर (शूर-सातौ) शूरवीरों के एकत्र होने योग्य महासंग्राम मे (तनये, गोषु, अप्सु) पुत्र, गौ आदि पशु और प्राणों के निमित्त हम (त्वा हवामहे) तुझे प्राप्त करें।

व॒यं त॑ ए॒भिः पु॑रुहूत स॒ख्यैः शत्रो॑ः शत्रो॒रुत्त॑र॒ इत्स्या॑म ।
घ्नन्तो॑ वृ॒त्राण्यु॒भया॑नि शूर रा॒या म॑देम बृह॒ता त्वोता॑ः ॥१३॥८॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे और प्रशंसा किये गये ! राजन् ! (वयम्) हम (ते एभिः सख्येभिः) तेरे इन मित्रता के कार्यों से हम (शत्रोः शत्रोः) प्रत्येक प्रकार के शत्रु से (उत्तरे) ऊपर, उसको विजय करने में सफल (स्याम) हों, और हे (शूर) शूरवीर ! हम (उभयानि वृत्राणि) दोनों प्रकार के 'वृत्र' अर्थात् विघ्नकारी पुरुषों और वरण करने योग्य धनों को (घ्नन्तः) विनाश और प्राप्त करते हुए (बृहता) बड़े भारी (राया) ऐश्वर्य से (त्वा-ऊताः) तेरे द्वारा रक्षा पाकर (मदेम) सुखमय जीवन व्यतीत करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

द्यौर्न य इ॑न्द्राभि भूमा॒र्यस्त॒स्थौ र॒यिः शव॑सा पृ॒त्सु जना॑न् ।
तं नः॑ स॒हस्र॑भरमुर्व॒रासां॑ द॒द्धि सू॑नो सहसो वृत्र॒तुर॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यः) जो (रयि) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष (शवसा) बल से (पृत्सु) सङ्ग्रामों मे (अर्य. जनान्) शत्रु लोगों के (अभि तस्थौ) मुक़ाबले पर खडा हो सके (अर्यः) स्वामी, (द्यौः न) सूर्य के समान तेजस्वी और (भूम) पृथिवी के समान बलवान् हो। हे (सहस. सूनो) बलवान् सैन्य के सञ्चालक तू ऐसे (वृत्र-तुरम्) दुष्ट विघ्नकारी शत्रु जन के नाशक (सहस्र-भरम्) सहस्रों धनों के लाने वाले, सहस्रों पुरुषों के भरण पोषण करने मे समर्थ (उर्वरासाम्) अन्नादि के उत्पादक, उर्वरा उत्तम भूमियों के भोक्ता (तं) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को (न दद्धि) हमें दे।

दि॒वो न तुभ्य॒मन्वि॑न्द्र स॒त्रासु॒र्यं॑ दे॒वेभि॑र्धायि॒ विश्व॑म् ।
अहि॒ यद्वृ॒त्रम॒पो व॑व्रि॒वांसं॒ हन्नृ॑जीषि॒न्विष्णु॑ना सचा॒नः ॥ २ ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (अपः वव्रिवांसं) जलों को अपने गुप्त रूप से रखने वाले (अहि) मेघ को (विष्णुना सचानः) व्यापक वायु वा सूर्य से मिलकर (ऋजीषीन्) सरल रेखा मे जाने वाला विद्युत् (हन्) व्यापता या आघात करता है। तब (देवेभिः दिव. असुर्यं विश्वम् धायि) कामनावान् मनुष्य आकाश के समस्त मेघस्थ जल को प्राप्त करते हैं, वा सूर्य के किरण ही आकाश मे मेघस्थ जल को अपने मे धारण करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्त. ! (यत) जब (अप. वव्रिवासम्) आप्त प्रजाजनों को घेर लेने वाले, (अहिम्) सन्मुख आये, सर्पवत् कुटिल, व अवध्य, बलवान्, (वृत्रम्) समृद्ध शत्रु को तू (विष्णुना) व्यापक. विस्तृत सैन्य बल से (सचान) समवाय बनाकर (अहन्) मारता है, तब हे (ऋजीषन्) सरल मार्ग मे

प्रजाओं को सञ्चालित करने हारे राजन्! तव (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (विश्वम् असुर्यम्) समस्त असुरों को नाश करने वाले बल को, और (असुर्यं) असुरों से प्राप्त ऐश्वर्य को (देवेभिः) मनुष्य, (सचा अनुधायि) सदा निरन्तर धारण और पोषण करते हैं।

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वासाम् पुराम्) शत्रु के नगरियों के (दर्त्नुम्) तोड़ने फोड़ने में समर्थ अस्त्र बल को (आवत्) प्राप्त करले वह (तूर्वन्) समस्त शत्रु का नाश करता हुआ, (तवसः) स्वयं बलवान् (ओजीयान्) सब में अधिक पराक्रमी, (तवीयान्) सबसे अधिक बल शाली, (कृत-ब्रह्मा) बहुत धन, और अन्न सम्पदा को सम्पादन करके (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वृद्ध-महाः) वृद्धों का आदर करने हारा हो। वह ही (सोम्यस्य) ऐश्वर्य से प्राप्त होने योग्य (मधुनः) मधुर सुखों का भोक्ता (राजा अभवत्) राजा हो।

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अत्र) इस राष्ट्र में (अर्क-सातौ) अर्चनीय, पूज्य पुरुषों के सेवा करने के निमित्त और (अर्क-सातौ) सूर्य-वत् तेजस्वी पुरुष का आश्रय, तथा 'अर्क', अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति वा विभाग के लिये (दश-ओणये) दशों को अपने में न्यून करने हारे सर्वश्रेष्ठ, दशावरा परिषत् के स्वामी (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष के लिये (पणयः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् वा व्यवहार चतुर पुरुष (शतैः) सैकड़ों की संख्या में (अप-द्रन्) दूर २ तक जाया करें। (वधैः) वधकारी शस्त्रों से भी (शुष्णस्य) बलवान (पित्वः) सम-

पालक (अशुषः) शत्रु द्वारा कभी शोषण, या कृश न किये जाने वाले, वा प्रजा का रक्त शोषण न करने हारे राजा की (मायाः) बुद्धियों वा शक्तियों के (किंचन) कुछ लवमात्र भी कोई (न अरिरेचीत्) कम नहीं कर सकता।

म॒हो द्रु॒हो अप॑ वि॒श्वायु॑ धायि॒ वज्र॑स्य॒ यत्पत॑ने॒ पादि॒ शुष्णः॑।
उ॒रु ष स॒रथं॒ सार॑थये क॒रिन्द्रः॒ कुत्सा॑य॒ सूर्य॑स्य सा॒तौ ॥५॥९॥

भा०—(यत्) जो राजा (शुष्णः वज्रस्य) बलवान् शस्त्रबल के (पतने) बढजाने पर (द्रुहः) द्रोही शत्रु के (महः) बडे भारी (विश्वायु) समस्त बल को (अप धायि) नीचे गिरा देता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा (सूर्यस्य सातौ) सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (सारथये) अपने सारथी, और (कुत्साय) शस्त्रों और शस्त्रबल की रक्षा और वृद्धि के लिये, (उरु सरथं) एकही रथ पर पर्याप्त उद्योग (कः) करे। इति नवमो वर्गः ॥

प्र श्ये॒नो न म॑दि॒रम॒ंशुम॑स्मै॒ शिरो॑ दा॒सस्य॒ नमु॑चेर्मथा॒यन्।
प्राव॒न्नमीं॑ सा॒प्यं स॒सन्तं॑ पृ॒णग्रा॒या समि॒षा सं स्व॒स्ति ॥ ६ ॥

भा०—बलवान् राजा (दासस्य) प्रजा के नाशक दुष्ट, (नमुचेः) अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ने वाले, अथवा दण्ड से न मुक्त करने योग्य, दुराग्रही, अवश्य दण्डनीय, शत्रु के (शिरः) शिर को (मथायन्) मथता, विनाश करता हुआ, (श्येनः) उत्तम गति या उत्तम आचरणवान्, वा बाज के समान वेग से आक्रमण करने वाला, सेनापति (अस्मै) इस राष्ट्र की वृद्धि के लिये (मदिरम् अंशुम्) तृप्तिकारक अन्न को (प्र) अच्छी प्रकार ग्रहण करे, और (साप्यं) अपने साथ सन्धिपूर्वक समवाय बनाकर रहने वाले, (ससन्तं) शान्त सोते के समान आगे लेटे, (नमीं) आगे झुकने वाले या (नमीं ससन्तं) नम्र होकर रहने वाले

शत्रु की भी (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे। और उसको (राया-संपृणक्) धन से संयुक्त करे, और (इषा स्वस्ति संपृणक्) अच्छी प्रकार सुख से उसकी इच्छा या अभिलाषा, सेना आदि से संयुक्त करे, उसे धन, सैन्य आदि की सहायता भी करे।

वि पिप्रोरहिंमायस्य दृळहाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शस्त्रबल के धारण करने हारे! तू (अहि-मायस्य) सर्प वा मेघ के समान माया करने वाले, (पिप्रोः) अपना पेट पूरने वाले शत्रु के (दृढाः पुरः) दृढ नगरियों को भी (शवसा) बलपूर्वक (न दर्दः) क्यों न तोड़े ? हे (सुदामन्) उत्तम दानशील तू (ऋजिश्वने) सरल धार्मिक गुणों को बढ़ाने वाले अथवा 'ऋजु' सरल, धर्म मार्ग पर चलने वाले अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय, (दाशुषे) कर आदि देने वाले धार्मिक प्रजाजन को (अप्रमृष्यम् दात्र तत् रेक्णः दाः) ऐसा धन दे जिसको कोई बलात् भी न छीन सके।

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥८॥

भा०—(मातुः द्योतनाय न इयध्यै उपसृजे) माता के प्रकाशित या प्रफुल्लित करने के लिये जिस प्रकार बालक उसके पास आने का यत्न करता है उसी प्रकार (सः) वह राजा (मातुः द्योतनाय) मातृ समान अपनी राष्ट्र भूमि को चमकाने के लिये और (इयध्यै) उसे प्राप्त करने लिये (वेतसुं) राज्य को अपने वश करने वाले शासन दण्ड, को (दश-मायम्) दशगुणा वृद्धि देने वाले, दशवर्षापरिपन्न को, (दशोणिम्) दशों दिशाओं को वश करने में समर्थ सेनापति को (तूतुजिम) शत्रुओं के नाशकारी (तुग्रम्) बल को अपने अधीन करने वाले सैन्य और

(इयध्यै) गमनागमन के लिये (इभं) और हस्ति को (शश्वत्) सदा (उप सृज) ग्रहण करे, अपना कार्य सम्पादन करे।

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह राजा (गभस्तौ) हाथ मे (वज्रं बिभ्रत्) शस्त्र वा राजदण्ड धारण किये, (अप्रतीतः) शत्रुओ से अज्ञात रहकर वा अन्यो से (अप्रति-इत.) मुक़ाबले पर भी न जीता जाकर (ईं स्पृधः वनते) इन अपने से स्पर्धा करने वाले शत्रुओ को विनाश करे, वा परस्पर स्पर्धा करनेवाले वादिप्रतिवादियों के धन आदि का न्यायपूर्वक विभाग करे। (अस्ता इव गर्त्ते अधि हरी अतिष्ठत) जिस प्रकार शूरवीर धनुर्धर पुरुष रथ पर चढ़कर अपने दोनों अश्वों पर शासन करता है उसी प्रकार राजा (गर्त्ते अधि) न्यायासन पर विराज कर (हरी अधि तिष्ठत्) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के मनुष्यो पर शासन करे। उस समय (ऋष्वम् इन्द्रम्) उस महान्, पूज्य, इन्द्रासन पर विराजते राजा को (वचोयुजा) वाणियो से परस्पर पर अभियोग करने वाले दो वकील सत्य निर्णय पर पहुचावे। इसी प्रकार वह राजा (गर्ते अधि हरी तिष्ठन्) रथ पर सवार होकर अश्वों पर वश करे, और वाणी द्वारा अन्यों को कार्य में लगाने में समर्थ वा राजा के आज्ञाकारी दो विद्वान् जन उस महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र वा राष्ट्रपति को (वहत.) धारण करे, उसका कार्य सम्पादन करें।

सनेम तेऽवसा नव्यं इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओ को मारने हारे ! (यत) जो तू (सप्त) सात (शारदी.) हिंसक शत्रु की (पुरः) नगरियों को

(शर्म दर्त) अपने बल से विनाश करता है, और (पुरुकुत्साय) बहुत से शस्त्र समूहों को धारण करने वाले सेनापति की (दासीः) शत्रु नाश-कारिणी सेनाओं को (शिक्षन्) उत्तम युद्ध शिक्षा देता और वेतनादि देता हुआ शत्रुओं को (हन्) दण्ड देता है, उस (ते) तेरे (अवसा) रक्षा सामर्थ्य से हम (नव्यः) सदा उत्तम से उत्तम सम्पदाओं को (सनेम) प्राप्त करें। और (पूरवः) मनुष्यगण (यज्ञैः) उत्तम आदर सत्कारों द्वारा (एना) इन नाना सम्पदाओं की (प्र स्तवन्त) खूब स्तुति, प्रशंसा, चर्चा किया करें।

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (उशने काव्याय) कामना करने वाले विद्वान् या अति पूज्य (पित्रे) पिता के तुल्य ज्ञान-दाता पुरुष के उपकारार्थ, (स्वं नपातम्) कभी नष्ट न होने वाला, अपना धन और (नववास्त्वं) उत्तम से उत्तम नवीन रहने का घर और पहरने का वस्त्र और (अनुदेयं) बाद में भी देने योग्य विदाई (परा-ददाथ) दान दिया कर। इस प्रकार (वृधः वरिवस्यन्) अपने से बड़ों की सेवा करता हुआ, (त्वं) तू (पूर्व्यः भूः) अपने पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में वृद्ध जनों का हितकारी और श्रेष्ठ पुरुष हो।

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

भा०—(धुनिः धुनिमतीः अपः ऋणोः सीरा न स्रवन्तीः) मेघों को कंपाने वाला वायु कम्पनकारी विद्युतों से युक्त मेघस्थ जलों को बहती धाराओं के समान बहाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते! (त्वं) तू (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने हारा होकर (धुनिमतीः अपः)

स्तुतिशील आप्त प्रजाओं को (सीराः स्रवन्तीः न) बहती धाराओं के समान (ऋणोः) अपने अनुकूल चला । (यत्) जो हे वीर ! (शूर) शूर तू स्वयं (समुद्रं पर्षि) समुद्रवत् संकट को पार कर, (तुर्वशुं) शीघ्र वश आने वाले (यदुम्) यत्नवान् प्रजाजन को भी (स्वस्ति पारय) सुखपूर्वक पार कर ।

तव॑ ह॒ त्यदि॑न्द्र॒ विश्व॑मा॒जौ स॒स्तो धुनी॒ चुमु॑री॒ या ह॒ सिष्व॑प् ।
दीद॑य॒दित्तुभ्यं॒ सोमे॑भिः सु॒न्वन्द॒भीति॑रि॒ध्मभृ॑तिः प॒क्थ्य१॒॑र्कैः॥१३॥१०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (तव ह त्यत् विश्वम्) यह सब तेरा ही सामर्थ्य है कि (आजौ) युद्ध काल मे भी जो तेरी (धुनी चुमुरी) शत्रु को कंपा देने और राष्ट्र को भोग करने वाले सामर्थ्य हैं तू उन दोनो को (सस्त) सुला देते अर्थात् उनको मन्द कर देते हो । और जो (दभीतिः) नाश करने हारा, होकर (इध्मभृतिः) लकडी से अपना भरण पोषण करने वाला, अग्नि के समान तेज मात्र धारण करने वाला, (पक्थी) परिपाक करने वाला, तेजस्वी पुरुष (अर्कैः सोमेभि) अन्नो और जलो से (तुभ्यं) तेरा (सुन्वन्) सत्कार करता हुआ (दीदयत्) प्रकाशित करे तू उसको सुखी कर । इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ९, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ स्वराड्बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इ॒मा उ॑ त्वा पुरु॒तम॑स्य का॒रोर्हव्यं॑ वीर॒ हव्या॑ हवन्ते ।
धियो॑ रथे॒ष्ठाम॒जरं॒ नवी॑यो र॒यिर्विभू॑तिरीयते वच॒स्या ॥ १ ॥

भा०—हे (वीर) विविध उपायो से प्रजा को उपदेश देने हारे एवं सत्कर्मों मे लगाने हारे ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (इमा) ये

(हव्याः) उत्तम स्तुति करने वाली, प्रजाएं (पुरु-तमस्य) बहुतो श्रेष्ठ, (कारोः) विद्वान्, कर्त्ता, विधाता पुरुष के (हव्यं) स्तुति योग्य कर्म की (हवन्ते) स्तुति किया करते है। (धियः) उत्तम बुद्धियां और (अजरं) अक्षय (नवीयः) अति उत्तम कर्म नये से नया ज्ञान, (रयि) ऐश्वर्य, (वचस्या) वचनीय, (विभूतिः) विशेष सामर्थ्य ये सब उत्तम वस्तुएं हे वीर ! स्तुत्य (रथेष्ठां त्वा) रथ पर स्थित तुझको (ईयन) प्राप्त हो।

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

भा०—(यस्य) जिस (पुरु-मायस्य) नाना प्रकार के निर्माण सामर्थ्यों, नाना शक्तियों और बुद्धियों से सम्पन्न परमेश्वर का (महित्वम्) महान् सामर्थ्य (दिवम् अति रिरिचे) सूर्य से बढ कर है और जो (पृथिव्या अति रिरिचे) पृथिवी से भी बडा है। (यः विदान) जो ज्ञानवान् है, (तम् उ) उस (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् , (गिर्वाहसं) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य, (यज्ञ-वृद्धम्) उपासना और आदर सत्कारों, दानों आदि से परिपुष्ट, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (स्तुषे) स्तुति कर।

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (इत्) ही (अवयुन) जिसमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता ऐसे घोर (तम) अन्धकार को (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (वयुन-वत् चकार) अभिव्यक्त, ज्ञान योग्य कर देता है। हे (स्वधाव) स्वयं धारण शक्ति के स्वामिन् ! हे प्रभो ! (मर्त्ता) मरणधर्मा ये जीव (अमृतस्य ते) जरा मरण रहित, अविनाशी तेरे (धाम) तेजोमय जगत् के धारण करने वाले सामर्थ्य को (इयक्षन्त) प्राप्त होना चाहते हुए (कदा) कभी भी (न मिनन्ति) हिंसा नहीं

करते। प्रत्युत प्रभु परमेश्वर को साक्षात् करने के लिये वे अहिसा महाव्रत का पालन करते है।

यस्ता चुकार स कुहं स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते युज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतुमः स होता ॥४॥

भा०—(य) जो (ता) वे नाना जगत्-सर्जन आदि कर्म (चकार) करता है (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह स्विद्) कहा है। वह (कम् जनं आ चरति) किस मनुष्य को प्राप्त होता है? (कासु विक्षु च चिरति) वह किन प्रजाओ मे व्यापता है? हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (कः यज्ञः) वह कौनसा उपासना का प्रकार है जो (मनसे शम्) चित्त को शान्ति दायक है? (कः अर्कः) कौनसा अर्चना करने का उपाय है जो (वराय) श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के लिये है? हे प्रभो! (सः) वह (होता) सब का दाता (कतमः) कौन सबमे श्रेष्ठ है? उत्तर—(कतम) वह परम सुखस्वरूप है। वही सब से श्रेष्ठ जगत् का विधाता व्यापक, सर्वपूज्य है।

इदा हि ते वेविपतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५।११॥

भा०—हे परमेश्वर! हे (पुरुहूत) बहुतो से स्तुति किये हुए! हे (पुरुकृत्) बहुत से लोको को बनाने हारे! (ये) जो (पुराजा.) पूर्वकाल मे उत्पन्न हुए, (प्रत्नास) अति पुरातन, (मध्यमासः) मध्यकाल मे उत्पन्न (उत) और (नूतनास) नये विद्वान् (इदा हि) इस समय भी (वेविपत ते) सर्वव्यापक तेरे (सखायः) मित्र ही है! हे (पुरुहूत) बहुतो से प्रशंसित! (उत) और तू (अवमस्य) अब से अर्थात अन्तिम और आगे के सबको (बोधि) जानता है। इत्येकादशो वर्गः॥

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् । प्रभो ! (अवरासः) बाद के उत्पन्न जीव गण, (तं) उस परम वेद्य को (पृच्छन्त.) आदरपूर्वक प्रश्न द्वारा जानने की इच्छा करते हुए, (ते) तेरे ही (प्रत्ना) सनातन से चले आये, (पराणि) उत्तम २ (श्रुत्या) श्रवणीय गुरु-उपदेशादि वा वेद द्वारा जानने योग्य कर्मो, स्वरूपो को (अनु) जानने और करने को लक्ष्य करके (येमुः) यम नियम, दीक्षा बन्धनादि करते है। हे (वीर) विविध विद्याओ के उपदेश करने हारे, विविध लोको के सञ्चालक ! (ब्रह्मवाहः) ज्ञानरूप धन को धारण करने वाले हम लोग (त्वा यात् एव विद्म) जितना ही तुझ को जानते है (तात् एव) उतना ही (महन्तं) बड़ा महान् पाकर तेरी (अर्चामसि) अर्चना करते है ।

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! (रक्षस) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष का (पाज) बल (महि जज्ञानम्) बडे भारी रूप मे प्रकट होने वाले (त्वा अभि वि-तस्थे) तेरे प्रति विविध प्रकार से विरोध मे खडा हो, तब तू (तत) उसके (अभि) मुक़ाबले पर (तिष्ठ) खडा होजा । हे (धृष्णो !) शत्रुओं को पराजय करने हारे ! और तू (तव) अपने (प्रत्नेन) सदा-तन (युज्येन) सहायक (सख्या) मित्रवत् (वज्रेण) शस्त्रबल से (ता) उन सबको (अपनुदस्व) दूर कर । (२) अध्यात्म मे इन्द्र जीव है । विघ्नकारी, सत्कार्यो मे बाधक काम क्रोधादि 'रक्षस्' है । उनका बल बार २ बाधक होकर उपस्थित होता है । वह अपने सनातन सखा 'वज्र', अज्ञान दुःखादि के नाशक प्रभु परमेश्वर की सहायता से उसको दूर करे ।

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्या॒३॒पिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वीर) वीर! विविध लोकों के चलाने हारे प्रभो! वा शूरवीर राजन्! हे (कारुधायः) विद्वान् स्तोता जनो तथा शिल्पकर्त्ता जनो के पालक पोषक प्रभो! राजन्! (सः) वह तू (ब्रह्मण्यतः) धनेच्छुक और परम ब्रह्म ज्ञान वा ब्रह्मपद की कामना करने वाले (नूतनस्य) नये (मुमुक्षु) पुरुष के (श्रुधि) वचन को श्रवण कर। (त्वं हि) तू (प्रदिवि) उत्तम कामना के निमित्त सदा (पितृणां) पालक पिताओं का भी (आपिः) परम बन्धु है। और तू ही (शश्वत्) सदा काल से (सु-हव.) सुखपूर्वक बुलाने और प्रार्थना करने योग्य होकर (इष्टो आ बभूथ) यज्ञ, सत्संग मे मान-आदरपूर्वक प्राप्त होता है।

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च॥ ९॥

भा०—हे विद्वन्! हे प्रभो! हे राजन्! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (वरुणं) रात्रिको, श्रेष्ठ पुरुष और शत्रुवारक जन को, (मित्रम्) दिन को, और सर्व स्नेही ब्राह्मण को, (मरुतः) वायुओ, को, विद्वानों को, वीर पुरुषों को और व्यापारी पुरुषों को, (अद्य) आज, सदा (प्र कृष्व) उत्तम बना। और (न अवसे) हमारी रक्षा के लिये (पूषण) पृथ्वी को और पोषक वर्ग को, (विष्णुम्) व्यापक वायु वा विद्युत् को, और प्रजा मे प्रभावशाली को, (अग्निम्) अग्नि तत्व को, अग्रणी, विद्वान् को, (पुरन्धिम्) देहपुर वासी पुरुष के धारक बुद्धि को, स्त्री को और राष्ट्र के धारक शक्तिमान् राजा को, (सवितारम्) सर्वोत्पादक पिता, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को, और (ओषधीः) ओषधियों को और शत्रु तापक तेज धरने वाली सेनाओं को, और (पर्वतान् च)

मेघों, पर्वतो को और पालन कर्त्ता, मेघवत् उदार तथा पर्वतवत् अचल पुरुषो को भी (प्र कृध्व) उत्तम रूप से सामर्थ्यवान् और सुखदायक बना।

इम उं त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति १०

भा०—हे (पुरुशाक) बहुत सी शक्तियो के स्वामिन्! हे (प्रयज्यो) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य, उत्तम पूजनीय प्रभो! (इमे जरितारः) ये स्तुतिशील विद्वान् जन (अर्कैः) उत्तम अर्चना योग्य वेद मन्त्रो, स्तुतियो से (त्वा अभि अर्चन्ति) तेरी ही अर्चना करते है। (आ हुवतः) अपने आत्मा को तेरे प्रति आहुतिवत् अर्पण करने वाले और तुझे आदर पूर्वक बुलाने वालो को भी तू (आहुवान) अपने प्रति बुलाता और अपने को उनके तई देता हुआ उनका वचन (आ श्रुधि) आदरपूर्वक श्रवण कर। हे (अमृत) अमृतस्वरूप! अविनाशिन्! (त्वावान्) तेरे जैसा (त्वत् अन्य न अस्ति) तेरे से भिन्न दूसरा नही है।

नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (ऋत सापः) सत्य वचन के आधार पर दृढता से समवाय बनाने वाले, सत्य पर दृढ (अग्निजिह्वाः) अग्नि की ज्वाला के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली वाणी को बोलने वाले, (आसुः) है और (ये) जो (मनु) मननशील (उपरं) सर्वोपरि विराजमान, मेघवत् उदारता मे निष्पक्षपात होकर दान देने वाले को (दसाय) अज्ञान वा शत्रु का नाश करने के लिये (चक्रुः) नियुक्त करते हैं उन (यजत्रैः) दानशील, सत्संगी और पूजा के योग्य, (विश्वेभिः) समस्त पुरुषों के साथ या उन द्वारा हे (सहसः सूनो) बल

वान् पुत्र, बल, सैन्य के सञ्चालक ! तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उप याहि) प्राप्त कर ।

स नो॑ बोधि पुरए॒ता सु॒गेषू॒त दु॒र्गेषु॑ पथि॒कृद्वि॒दानः॑ ।
ये अश्र॑मास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठा॒स्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म् ॥१२॥१२

भा०—(सः) वह तू (विदान.) ज्ञानवान् (पथि-कृत्) मार्ग बनाने हारा, (सुगेषु) सुगम और (दुः-गेषु) विषम स्थानो मे (उत) भी (पुरः-एता) आगे चलने वाला नायक होकर (नः बोधि) हमे उत्तम ज्ञान दे, सन्मार्ग का उपदेश दे । (ये) जो (अश्रमासः) कभी न थकने वाले, (उरव) बडे (वहिष्ठाः) उत्तम वहन करने वाले अश्व के समान सुदृढ, धुरन्धर पुरुष है (तेभि) उन द्वारा हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! तू (न) हमे (अभि-वाजम्) ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम आदि कार्यों की ओर (वक्षि) ले चल । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्ति । १० पंक्तिः । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

य एक॒ इद्धव्य॑श्चर्षणी॒नामिन्द्रं॒ तं गी॒र्भिर॒भ्य॑र्च आ॒भिः ।
यः पत्य॑ते वृष॒भो वृष्ण्या॑वान्त्स॒त्यः सत्वा॑ पुरुमा॒यः सह॑स्वान् ॥१॥

भा०—(यः) जो (एक इत्) एक अद्वितीय ही (चर्षणीनाम् हव्य) मनुष्यों के बीच मे सबके पुकारने योग्य है (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् की (आभि) इन (गीर्भि) वेद वाणियों वा उत्तम वचनों से (अभि अर्चे) प्रतिक्षण साक्षात् अर्चना करूं । (यः) जो (वृषभ) सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखो का देने वाला, (वृष्ण्य-वान्) बलवान् पुरुषों के उचित बलो का स्वामी, है वह स्वयं भी (सत्य) सत्य व्यवहार वाला,

न्यायशील, (सत्वा) बलवान्, (पुरु-मायः) बहुत सी प्रज्ञाओं वा वाणियों का ज्ञाता, और (सहस्वान्) बलवान् है ।

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

भा०—(नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व के पालक, माता पिता और गुरुजन (नवग्वाः) नये से नये अति स्तुत्य, रम्य भूमियों, वाणियों और गतियों वाले, (सप्त) देह में सात प्राणों के समान, (विप्रासः) बुद्धिमान् पुरुष (अभि वाजयन्तः) एक साथ ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (नक्षत् दाभं) प्राप्त या राष्ट्र में और फैलते हुए शत्रु और सेना को नाश करने वाले, (ततुरि) अति शीघ्र कार्य सम्पादन करने वाले, (पर्वते-ष्ठाम्) मेघ में विद्यमान, विद्युत के समान तेजस्वी, धर्ममेघ दशा में विराजमान, (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित वाणी वाले (शविष्ठम्) अति बलवान् (तम्) उसको प्राप्त करें, उसके पास जाकर सत्संग लाभ करें।

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारे मनुष्यों के स्वामिन् ! (यः) जो (अस्कृधोयुः) कभी न खुटने वाला, (अजरः) अविनाशी, (स्वर्वान्) सुखप्रद ऐश्वर्य है वह तू (मादयध्यै) सुख प्राप्त करने के लिये (तम् आभर) उसे प्राप्त करा । (अस्य) इस (पुरु वीरस्य) बहुत से पुत्र, भृत्य, वीर जनों से युक्त (नृवतः) उत्तम नायक वाले, (पुरु क्षोः) बहुत अन्न सम्पदा से पूर्ण, (रायः) धन की हम (ईमहे) याचना करते हैं ।

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरे (यदि) जिस (सुम्नम्) सुख या उत्तम विचारणीय ज्ञान को (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा वा अध्येता जन (आनशुः) ज्ञान करते या पाते है (तत्) उसे (नः) हमे भी तू (वि वोचः) स्पष्ट रूप से उपदेश कर। हे (दुध्र) शत्रु से न हारने वाले ! हे (पुरु-हूत) बहुतो से अपनाये हुए ! हे (पुरु-वसो) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (असुर-घ्नः) दुष्ट असुरो के हनन करने वाले (ते) तेरा (भागः) कौन भाग और (कि वयः) क्या बल वा अधिकार है उसे तू पहचान।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥१३॥

भा०—(यस्य) जिस मनुष्य की (वेपी) सत्कर्म सहित व भक्ति भाव से कांपती हुई, (वक्वरी) उत्तम वचन कहने वाली, (गीः) वाणी (वज्र-हस्तं) शस्त्र हाथ मे लिये, (रथे-स्थाम्) रथ पर खड़े, (इन्द्रं) शत्रुहन्ता (तं) उस अलौकिक कर्त्ता, वीर पुरुष के विषय मे (पृच्छन्ती) नाना प्रश्न पूछती हुई (गातुम् इषे) जाना चाहती है, वह (तुवि-ग्राभम्) बहुतों को वश करने वाले (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से लोको के बनाने वाले, (रभः-दाम्) बल, शक्ति के दाता, (तुम्रम्) शत्रुओं को ग्लानि युक्त कर देने वाले संकटों के नाशक को (अच्छ नक्षते) भली प्रकर प्राप्त होता है, उसका साक्षात् करता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

भा०—हे (स्वतवः) स्वयं बलशालिन ! 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य के बल से युक्त ! हे (स्वोजः) स्वय अपने ओज, बल, पराक्रम वाले ! वा 'स्व' धन के बल पर या उसके लिये विशेष पराक्रम करने में समर्थ ! हे

(विरप्शिन्) गुणों मे महान् ! परमेश्वर वा राजन् ! (त्वं) तू (अया ह मायया) इस अद्भुत निर्माणकर्त्री शक्ति, प्रकृति वा ज्ञानकर्त्री बुद्धि और (मनोजुवः) मन के समान वेग वाले (पर्वतेन) पोरु, पोरु, खण्ड २ मे विद्यमान बल से तू (ववृधानं) अपने बढते शत्रु, को विनाश कर । और (च्युतां) शत्रु का मान भंग करने वाले, (अच्युता चित्) न डोलने वाले, (वीडिता) वीर्यवान् , बलवान् , (दृढा) दृढ शत्रु नगरो वा सैन्यो को भी (रुज') तोड़ डाल । वह प्रभु महान परमेश्वर हमारे अभेद्य, दृढ वासनामय कुसस्कार, मोहादि शत्रुओ का नाश करे ।

तं वो॑ धि॒या नव्य॑स्या॒ शवि॑ष्ठं प्र॒त्नं प्र॑त्न॒वत्प॑रितंस॒यध्यै॑ ।
स नो॑ वक्षदनिमा॒नः सु॒वह्मेन्द्रो॒ विश्वा॒न्यति॑ दु॒र्गहा॑णि ॥ ७ ॥

भा०—(तं) उस (शविष्ठं) अति बलशाली, (प्रत्न) सनातन पुरुष को (नव्यस्या) नयी से नयी, अति रमणीय (धिया) वाणी और कर्म से (वः) आप लोगों के हित (परितंसयध्यै) सब प्रकार से सुशोभित करने के लिये, उसका उत्तम वर्णन करने के लिये (प्रत्न-वत्) पूर्व के विद्वानो के समान ही यत्न करता हू । (स) वह (अनि-मानः) अविज्ञेय, परिमाणरहित, महान्, (इन्द्र) ऐश्वर्यवान प्रभु (सु-वह्मा) सुखपूर्वक समस्त जगत् को वहन कर रहा है । वह (विश्वानि) समस्त (दुर्गहानि) दुःख मे प्राप्त करने योग्य सकटो मे भी (नः अतिवक्षत्) हमे और आप सबको भी उत्तम सवारी के समान पार पहुचा दे ।

आ जना॑य॒ द्रुह्व॑णे॒ पार्थि॑वानि दि॒व्यानि॑ दीपयो॒ऽन्तरि॑क्षा ।
तपा॑ वृषन्वि॒श्वतः॑ शो॒चिषा॒ तान्ब्र॑ह्म॒द्विषे॑ शोचय॒ क्षाम॒पश्च॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवान् ! उत्तम प्रबन्ध करने हारे प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! तू (पार्थिवानि) पृथिवी के और (दिव्यानि) आकाश

के और (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सब पदार्थों को (आ दीपय) सब प्रकार से चमकाता है, तू (ब्रह्मद्विषे) परमेश्वर, वेदज्ञ और अन्नादि के द्वेषी, (द्रुह्वणे) और द्रोही (जनाय) वेदज्ञ मनुष्यो के लिये इन सब पदार्थों को (तप) संतप्त, दुःखदायी कर (तान्) उसको (शोचिषा) अपने तेजस से (विश्वतः शोचय) सब ओर से दग्ध कर। उस ब्रह्म से द्वेष करने वाले के लिये (क्षाम् अपः च शोचय) भूमि और जलो को भी संतप्त कर। प्रभु के द्वेषी पुरुष को ये सब भी पदार्थ सुखदायी न होकर कष्टदायी होते है।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! तू (त्वेपसन्दृक्) कान्तियुक्त न्याय प्रकाश से सम्यक् दर्शन, यथार्थ विवेक करने वाला होकर (दिव्यस्य पार्थिवस्य राजा भुवः) दिव्य उत्तम पृथिवी के समस्त जनो और ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (अजुर्य) अविनाशिन्! तू (दक्षिणे हस्ते) दाये हाथ मे (वज्र धिष्व) वज्र, बल या धैर्य को धारण कर। तू (विश्वा) समस्त (माया:) उत्तम विद्याओ बुद्धियो को (विदयसे) विविध प्रकार से दे और उनकी रक्षा कर। उसी प्रकार तू अपने शस्त्र बल से (माया वि दयसे) शत्रु की कपटयुक्त चालो को विविध प्रकार से नाश कर।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यया) जिस बुद्धि वा शक्ति से (दासानि) मनुष्यो के नाश करने वाले (वृत्रा) विघ्नकारी कुलों वा धनो को (आर्याणि) उत्तम श्रेष्ठ, सदाचार युक्त कुल, वा 'अर्य'

अर्थात् स्वामी के उपभोग योग्य (करः) बना देता है, और हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र के स्वामिन्! हे बलशालिन्! और जिस बुद्धि वा शक्ति से तू (नाहुषाणि) मनुष्यों के कुलों वा धनो को (सु-तुका) उत्तम, सुखपूर्वक वृद्धिशील कर देता है, और (वृत्रा सु-तुकानि) विघ्नकारी जनों का सुख पूर्वक मारने योग्य करता है, तू (नः) हमारे लिये उस (संयतम् स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, अच्छी प्रकार प्रजा को नियमादि में बांधने वाली, और अच्छी प्रकार यत्न करने वाली कर। और (शत्रु तूर्वम्) शत्रु के नाश करने के लिये (अमृध्राम्) न नाश होने वाली (बृहतीम्) बड़े भारी सेना को भी बना।

स नो॑ नि॒युद्भिः॑ पुरुहूत वेधो वि॒श्ववा॑राभि॒रा ग॑हि प्रयज्यो।
न या अदे॑वो॒ वर॑ते॒ न दे॒व आभि॑र्याहि॒ तूय॒मा म॑द्र्य॒द्रिक् ११॥१४

भा०— हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित! हे (वेधः) विधान, धाता वा राजनियमों के बनानेहारे! विद्वन्! हे (प्रयज्यो) उत्तम पूज्य! सत्संग योग्य उत्तम न्याय वा विद्या आदि के दात ! राजन्! (सः) वह तू (विश्व-वाराभिः) सबकी रक्षा करने वाली (नियुद्भिः) निरन्तर युद्ध करने वाली, ऐसी सेनाओं और अश्ववत् सदा नियुक्त रहने वाले भृत्यादि सहित तू (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो ! (या) जिनको (न अदेव) न तो अदानशील (वरते) निवारण कर सके और (न देवः) न विजयेच्छुक शत्रु वा केवल चाहने वाला ही (वरते) प्राप्त कर सके, (आभिः) उनसे तू (मद्र्यद्रिक्) मेरे प्रति (तूयम) शीघ्र ही (आ याहि) आ। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२३]

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम पूजित ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (यत् वा) जब भी तू (बाह्वोः) शत्रु को पीडन करने वाली दो बाहुओं के समान दाये बाये की दो विशाल सेनाओ मे (वज्रं) शत्रु को वर्जन करने वाले शस्त्र बल को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (युक्ताभ्यां हरिभ्य.म्) जुते दो अश्वो से महारथी के समान (युक्ताभ्या हरिभ्याम्) अधीन नियुक्त प्रजा के स्त्री पुरुषो सहित (यासि) प्रयाण करता है तब तू (स्तोमे) स्तुतियोग्य, (उक्थे) उत्तम प्रशंसनीय वचन के (शस्यमाने) कहे जाते हुए, (ब्रह्मणि) उत्तम, महान् ऐश्वर्य मे तथा (सोमे) सर्वप्रेरक, राजपद पर (सुते) अभिषिक्त होने पर भी (निमिश्ल.) तू उसमे नि.सक्त होकर रह । वह सब ऐश्वर्य का ठाठ तुझे गर्वयुक्त और विलासी न बनावे ।

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२॥

भा०—(यद् वा) और जब तू (पार्ये दिवि) सबसे उत्कृष्ट, दूर तक फैलने वाले, तेज मे (वृत्र-हत्ये) विघ्नकारियों के नाश करने और (शूर-सातौ) शूरवीर पुरुषो के लाभ कर लेने पर (सु-ष्विम्) उत्तम ऐश्वर्योत्पादक राष्ट्र को भी (अवसि) प्राप्त कर ले, (यद्वा) और जब (बिभ्युष·) भयभीत (दक्षस्य) व्यवहारकुशल प्रजा को (शर्धत) नाश करने वाले (दस्यून्) शत्रु, दुष्ट पुरुषो को भी स्वय (अबिभ्यत्) भय रहित होकर भी (अरन्धय) वश कर सके तो भी हे राजन् ! तू (निमिश्ल सन् राज्य शाधि) निसंगत को राज्य का शासन, प्रजा का पालन शत्रु का नाश करता रहा कर ।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित्॥३॥

भा०—(प्र-नेनीः) उत्तम उद्देश्य की ओर लेजाने हारा (उग्रः) बलवान् पुरुष (ऊती) रक्षा, उत्तम उपाय और सन्मार्ग से (सुतं) उत्पन्न अभिषेक द्वारा प्राप्त, (सोमं) राष्ट्र को और (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् (पाता) पालन करने हारा पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर राजा (अस्तु) बने। वह (सु-स्वये वीराय) उत्तम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले वीर पुरुषों के लिये (लोकं कर्त्ता) उत्तम स्थान बनावे (कीरये चित) उत्तम विद्वान् (स्तुवते) उपदेष्टा पुरुष के लिये भी (वसु) उत्तम गृह, धन आदि का (दाता अस्तु) देने वाला हो।

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः॥४॥

भा०—वह राजा (हरिभ्यां) अश्वों से रथवान् पुरुष के समान (हरिभ्यां) राष्ट्र में विद्यमान उत्तम स्त्री पुरुषों द्वारा, व उनके हितार्थ अथवा उत्तम दो विद्वानों द्वारा (इयन्ति सवना) इतने, नाना शासनोचित कार्यों, ऐश्वर्यों को (गन्ता) प्राप्त होने वाला, (वज्र बभ्रि) शस्त्र बल को धारण करने वाला, (सोम पपिः) अन्न और ऐश्वर्य का भोक्ता और पालक (गाः ददिः) उत्तम वाणियों और भूमियों का दान करने वाला हो। वह (सर्व वीरं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त (नर्यं) नायक पुरुष के अधीन और राष्ट्र में बसे मनुष्यों का हितकारी (वीरं) वीर सैन्य वा पुत्र का (कर्त्ता) उत्पन्न करने वाला हो। वह (स्तोमवाहाः) स्तुति वचनों और स्तुत्य पदाधिकार को धारण करने हारा होकर (गृणतः हवं श्रोता) उपदेष्टा और निवेदक जन के उत्तम वचनों और पुकार का श्रवण करने वाला हो।

अस्मै व॒यं यद्वा॒वान॒ तद्वि॑विष्म॒ इन्द्रा॑य॒ यो नः॑ प्र॒दिवो॒ अप॒स्कः ।
सु॒ते सोमे॑ स्तु॒मसि॒ शंस॑दु॒क्थेन्द्रा॑य॒ ब्रह्म॒ वर्ध॑नं॒ यथास॑त् ॥५॥१५॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारी (प्र-दिवः) उत्तम २ कामनाओं को पूर्ण करने के लिये वा सनातन, अनादि काल से (अपः कः) नाना कर्म करता है वह (यत् ववान) जो भी चाहता है (तत् विविष्मः) हम वह २ प्राप्त करें । (वयं) हम (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवान् के लिये (सुते सोमे) ऐश्वर्य, अन्न और उत्पन्न पुत्र आदि प्राप्त होने पर अवश्य (स्तुमसि) स्तुति करें । मनुष्य को चाहिये कि (इन्द्राय) उस परमेश्वर के (उक्था) स्तुतियां अवश्य (शंसत्) किया करे, (यथा) जिससे कि हमारा (ब्रह्म) बृहत् ज्ञान और धन, अन्न और जीव आत्मा आदि जो प्राप्त किया है वह (वर्धनम्) स्वयं वृद्धिशील, हमें बढ़ती देने हारा (असत्) हो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ब्रह्मा॑णि॒ हि च॑कृ॒षे वर्ध॑नानि॒ ताव॑त्त इन्द्र म॒तिभि॑र्विविष्मः ।
सु॒ते सोमे॑ सुतपाः॒ शन्त॑मानि॒ रान्द्र्या॑ क्रियास्म॒ वक्ष॑णानि य॒ज्ञैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हि) निश्चय से (ब्रह्माणि) धनैश्वर्यों और अन्नों को मेघ के समान सदा (वर्धनानि) बढ़ने वाला (चकृषे) करता है, उनको निरन्तर बढ़ाता है । (तावत्) इसी कारण से (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (मतिभि.) अपनी बुद्धियों द्वारा (ते) तेरे सामर्थ्यों को (विविष्म) प्राप्त करें । हे (सु-तपा) समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों, तथा ऐश्वर्य अन्नादि के पुत्रवत् पालन तथा उपभोग करने हारे ! (सुते सोमे) अन्न ऐश्वर्य वा सौम्य पुत्रादि के उत्पन्न होने पर भी हम (शं-तमानि) अति शान्तिदायक, (रान्द्र्या) हर्षजनक (वक्षणानि) स्तुति वचन, (यज्ञैः) ईश्वरोपासना, विद्वत्सत्कार और अतिथि, दान आदि उत्तम कर्मों सहित किया किया करें, तुम सामान्य-

ऐश्वर्य तथा सन्तान की वृद्धि मनुष्य परमेश्वर की स्तुति, दान, यज्ञ, विद्वत्सत्कार किया करे ।

स नो॑ बोधि पुरो॒ळाशं॒ ररा॑णः पिबा॒ तु सोमं॒ गो ऋ॑जीकमिन्द्र ।
एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदो॒रुं कृ॑धि त्वाय॒त उ॑ लो॒कम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! धनाढ्य पुरुष ! वह तू (रराणः) अति प्रसन्न होकर एवं (पुरोडासं रराणः) अन्न प्रदान करता हुआ, (गो-ऋजीकम्) गोरस, दूध आदि संस्कृत, तथा (गो-ऋजीकं) और इन्द्रियों को ऋजु, सरल, सौम्य स्वभाव बनाने वाले तथा (गो-ऋजीकं) वाणी, से संस्कृत, प्रशस्त और भूमि आदि से सुसम्पन्न (सोमम्) अन्न, ऐश्वर्य और पुत्रादि का (पिब) स्वयं पान तथा पालन कर । और तू (यजमानस्य) दान देने वाले, यज्ञशील पुरुष के योग्य (इदं बर्हिः) वृद्धि प्रतिष्ठाजनक इस उत्तम आसन पर (सीद) विराज । (त्वा यतः) तुझे चाहने वाले प्रियजन के लिये (लोकं) स्थान को (उरुं कृधि) विशाल कर ।

स म॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु ।
प्रेमे ह॒वासः॑ पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वे॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्त ! हे विद्या और कर्म में कुशल द्रष्टः ! (इमे यज्ञासः) ये यज्ञ, दान सत्संग, देवपूजा आदि सत्कर्म, (त्वा) तुझे (प्र अश्नुवन्तु) प्राप्त हों । (इमे हवासः) ये दान और आदान अर्थात् देने लेने योग्य ज्ञान, अन्न, धन, उत्तम वचन स्तुति आदि पदार्थ (त्वा पुरु-हूतम) बहुत से स्तुति प्राप्त तुझको प्राप्त होवें । (इयं धीः) यह उत्तम बुद्धि और कर्मकुशलता तथा राष्ट्र धारण पालन पोषण की शक्ति (अवसे) रक्षा, ज्ञान, प्रीति आदि के लिये (आ) प्राप्त हो । तू (यम्याः) उत्तम रीति से प्रसन्न कर । (स

वह तू हे (उग्र) बलशालिन् ! (अनु जोषम्) प्रेमपूर्वक (मन्दस्व) आनन्द, प्रसन्न रह ।

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥९॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! सभा आदि स्थलों पर एक समान ख्याति वालो ! आप लोग (वः) अपने (सुतेषु) ऐश्वर्यों और उत्पादित अन्नों के आधार पर (सोमेभिः) अन्न आदि ऐश्वर्यवर्धक पदार्थों और उत्तम पुरुषों द्वारा (भोजम्) अन्नों द्वारा भोक्ता पुरुष के समान इस राष्ट्रभोक्ता और पालक (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, और सम्यक् द्रष्टा पुरुष को (ईम्) जल से (सं पृणत) अच्छी प्रकार अभिषिक्त, और पूर्ण ऐश्वर्यवान् करो । (यथा) जिससे (तस्मै) उसको (नः भराय) हमारे पालन पोषण के लिये (कुवित्) बहुत साधन तथा अन्न धनादि सम्पदा (असति) हो । (सु-स्विम्) उत्तम रीति से अन्न, और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (अवसे) रक्षा करने के लिये (न मृधाति) उनका नाश नहीं करे ।

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता १०।१६।२

भा०—(इन्द्र एव इत्) वह शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, इस राष्ट्र को न्यायपूर्वक देखने वाला पुरुष ही (सुते सोमे) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र मे (क्षयत्) निवास करे । और (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्य, और अन्न, ज्ञान आदि को धारण करने वाले मनुष्यों के निमित्त (मघोन) ऐश्वर्यवान् सम्पन्न लोगों को भी पालन करे । (यथा) जिससे (इन्द्रः) वह राजा (जरित्रे) विद्वान् जनों के हित के लिये (सूरिः) उत्तम शासक (उत) तथा (विश्व-वारस्य रायः दाता) सबको स्वीकार करने योग्य, उत्तम धनो का दाता (असत्) हो । इति षोडशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ५, ६ पङ्क्तिः । ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ९ ब्राह्मी बृहती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता सैन्य बल (वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, मेघवत् उदार प्रबन्ध (मदः) अति प्रसन्न, (श्लोकः) पुण्य कीर्त्तिमान् , (सोमेषु) सौम्य स्वभाव के पुरुषों के बीच मे (सचा) समवाय बनाकर रहने वाला (सु तपाः) प्रजा को पुत्र के समान पालन करने और (सु तपाः) उत्तम तपस्वी और शत्रुओं को खूब तपाने हारा, (ऋजीषी) ऋजु, धर्म पूर्वक सरल मार्ग से प्रजा को ले जाने हारा (अर्चत्र्य) अर्चना करने योग्य, पूज्य, (मघवा) धनसम्पन्न (द्युक्षः) तेजस्वी, (राजा) राजा (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों के हित के लिये (गिराम्) उपदेष्टा विद्वानों के (उक्थैः) उत्तम वचनों से उपदेश प्राप्त कर वह (अक्षितोति) अक्षय, अनन्त रक्षा सामर्थ्य वाला हो ।

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् २

भा०—(ततुरिः) शत्रुओं को नाश करने वाला, (वी) विविध बलों का स्वामी, तेजस्वी, रक्षक, वीर, (विचेता.) विविध ज्ञानों का जानने हारा, विशेष चित्त से युक्त, (नर्य) नायकों और मनुष्यों मे श्रेष्ठ, उनका हितैषी, (गृणत) उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष के (हव) ग्रहण करने योग्य उपदेश-वचन को तथा निवेदन करने वाले प्रजाजन की पुकार को

आह्वान को (श्रोता) सुनने हारा राजा (उरु-ऊतिः) बड़ी रक्षा सामर्थ्य वाला हो। वह (वसुः) राष्ट्र को बसाने वाला, (नराशंसः) सब मनुष्यों मे उत्तम स्तुति योग्य (कारु-धाया.) शिल्पी तथा विद्वान् जनों का पालक पोषक, (वाजी) बलवान् पुरुष (स्तुत॰) प्रशंसित और नायक पद पर प्रस्तुत होकर (विदथे) सग्रामादि के अवसर पर (वाजम् दाति) ऐश्वर्य और बल को देता है।

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

भा०—(चक्रयो. अक्षः न) गाडी के पहियो मे जिस प्रकार धुरा लगा रहता है वह उसके समस्त भार को सहता और चलता है उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर ! हे शत्रुओ के नाशक ! राजन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (बृहन्) बडा भारी (अक्ष॰) तेज और व्यापक बल, (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच मे सूर्य के प्रकाश वा परमेश्वरी शक्ति के समान स्व और पर राष्ट्रों तथा शासक और शास्य वर्गों मे (ते मह्ना) तेरे महान् सामर्थ्य से, (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (वयाः) ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियां और व्यापक सामर्थ्य और शाखा संस्थाएं, तेजस्वी पुरुष गण (वृक्षस्य वया नु) वृक्ष की शाखाओ के समान (वि रुरुहुः) विविध दिशाओं मे विविध प्रकारों से उत्पन्न हो, बढ़ें और फलें फूलें। (२) राष्ट्र मे राजा का शासन, निरीक्षण आदि चक्रों में अक्ष के समान लगकर उसे धारण करता है और सब शासक जन उसकी शाखावत् हैं।

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

भा०—हे (पुरुशाक) नाना शक्तियो के स्वामिन ! (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणी.) जिस प्रकार गौओं के चलने के मार्ग अच्छी प्रकार

चलने योग्य होते है और (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओ के दूध की वहती धारें अच्छी प्रकार सुख से खाने योग्य होती हैं उसी प्रकार (ते शचीवतः) तुझ शक्तिशाली, वाणी प्रज्ञा तथा शक्ति वाली सेना के स्वामी के (शाकाः) शक्तिशाली पुरुष तथा शक्ति के कार्य भी (संचरणीः) उत्तम रीति से चलने वाले, सदाचारी, और सुखदायक हो। हे (सुदामन्) उत्तम नियमो मे बांधने हारे ! (वत्सानां तन्तयः न) बछड़ो को बांधने की रस्सियां जिस प्रकार कुछ ढीली रहकर भी बछड़ों को कष्ट न पहुचाती हुई उनके लाभ के लिये होती है उसी प्रकार (वत्सानां) राष्ट्र मे वसी प्रजाओं के (तन्तयः) विस्तृत राजनियम तथा (शाकाः) तेरे शक्ति के कार्य भी (अदामानः) स्वतः बन्धनरहित होकर भी (दामन्वन्तः) उत्तम वन्धनों से वद्ध प्रजा को उत्तम रीति से बांधने मे समर्थ हो।

अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसंच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्र॰) ऐश्वर्यवान् राजा ! (अद्य) आज (अन्यत् कर्वरम्) और ही काम (श्वः अन्यत् कर्वरम) और कल दूसरा ही काम (सत च असत्) व्यक्त और अव्यक्त, प्रकट और अप्रकट रूप से (आचक्रि॰) नित्य करनेवाला हो। और वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नः) हम प्रजाओं को (मित्रः) मृत्यु भय से रक्षा करने वाला, स्नेहवान, और (वरुणः च) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखो, कष्टों, विघ्नों का वारण करने में समर्थ और (पूषा) सबका पोषक होकर (वशस्य) हमारे कामना योग्य फल का (पर्येता) प्राप्त कराने वाला (अस्ति) हो और राजा (वशस्य पर्येता अस्ति) वश मे आये राष्ट्र को अच्छी प्रकार वश करने मे समर्थ हो। (२) परमेश्वर भी व्यक्त, अव्यक्त नित्य २ कर्म करता रहता है वही मित्र, वरुण, पूषा है वही सब का स्वामी, सब जगत मे व्यापक [illegible]

और वही काम्य सुखों का दाता है। (२) इन्द्र जीव (सत् च असत् च) अच्छे बुरे नाना कर्म करता है। परमेश्वर ही काम्य-फलों का दाता है।
इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥

भा०—(पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पहाड के पीठ से जिस प्रकार जलधाराएं काठ आदि किसी पदार्थ को भी नीचे ले आती है उसी प्रकार (आप) आप्त प्रजाएं भी (त्वत्) तुझ उच्च पुरुष के पास से (उक्थेभिः यज्ञैः) उत्तम, प्रशंसनीय स्तुति-वचनों और यज्ञ-कर्मों तथा सत्सगों, दानों द्वारा, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अपने अभिलषित पदार्थ (अनयन्त) प्राप्त करते हैं। (अश्वाः आजिं न जग्मुः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व वा अश्वारोही गण उत्तम स्तुतियों से राजा वा सेनापति का बल बढाते हुए संग्राम में जाते है उसी प्रकार हे प्रभो ! हे (गिर्वाहः) वाणियों द्वारा प्राप्त करने योग्य, समस्त स्तुतियों को धारण करनेहारे ! (अश्वाः) विद्याओं में प्रवीण, वड़े मनुष्य भी (त्वाभिः) उस परम पूज्य तुझको (सुस्तुतिभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (वाजयन्तः) अपने ज्ञान का विषय बनाते हुए, तेरा ज्ञान लाभ करते हुए (आजिं जग्मुः) अपने गन्तव्य, परम लक्ष्य को प्राप्त होते हैं।

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥

भा०—(यं इन्द्रम्) जिस महान् शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् महान् आत्मा को (न शरदः) न वर्षगण, (न मासाः) न वर्ष के मास और (न द्यावः) न दिन ही (अव कर्शयन्ति) कृश कर सकते हैं, (अस्य) इस (वृद्धस्य) महान् की (तनूः) व्यापक शक्ति, (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से और (उक्थैः च) उत्तम वचनों द्वारा (शस्यमाना चित्) वर्णन की जाकर भी (वर्धताम्) अङ्गों में देर के समान बराबर बढ़ती ही है।

उसी प्रकार जिस राजा को वर्ष, मास, दिन आदि वा हिंसक सेनाएं, ज्ञानवान् पुरुष और तेजस्वी लोग कृश न करें, न घटावें उसकी व्यापक राष्ट्र-रूप तनु भी उत्तम (स्तोमैः) उपदेष्टा पुरुषों द्वारा (शस्यमाना) उपदेश की जाकर शिष्य की बुद्धि के समान बराबर बढ़े ।

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् स्वामी (दस्यु-जूताय) दुष्ट, प्रजा के नाशकारी पुरुषों से सेवित (वीडवे) बलवान् पुरुष के हित (न नमते) नहीं झुकता, (न स्थिराय) न स्थिर, दृढ़ पुरुष के आगे झुकता और (न शर्धते) बल प्रकट करने वाले के आगे ही झुकता है । वह (न स्तवान्) न ऐसे ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा ही करता है, इस (इन्द्र) वैभव शाली, महान् शत्रुहन्ता पुरुष के (अज्रा) शत्रुओं को उखाड़ के फेंकने वाले शस्त्रास्त्र बल भी (गिरयः चित्) मेघों के समान लगातार बरसने वाले तथा पर्वत के तुल्य अभेद्य, दृढ और (ऋष्वाः) महान् होते हैं । (अस्मै) इसके लिये (गम्भीरे चित्) गहरे से गहरे समुद्र में भी (गाधम् भवति) थाह होती है । (२) परमेश्वर की समस्त लोकों को संचालन करनेवाली महती शक्तियां 'अज्र' हैं, वह स्तुत्य होने से 'गिरि' है ।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था उ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम ॥९॥

भा०—हे (अमत्रिन्) बलशालिन् ! हे (सुतपावन) प्रजा जन को पुत्र के समान पालन करने वाले ! वा ऐश्वर्य के रक्षक राजन् ! हे (सुत पावन्) उत्पन्न जगत् के रक्षक और पालन करने हारे प्रभो ! तू (गम्भीरेण) गम्भीर, और (उरुणा) महान् विस्तीर्ण, सामर्थ्य से (नः इषः) हमारी कामनाओं को और (वाजान्) बलों, अन्नों, ज्ञानों को (प्र यन्धि) [illegible] । वा (न वाजान् प्र इष) हमारे ऐश्वर्यों को न चाह । (नः वाजान्

प्र यन्धि) हमारे बलो को नियम मे रख। वा, (नः इषः प्रयन्धि) हमे अन्न, और इष्ट बुद्धि आदि प्रदान कर और (वाजान् प्र यन्धि) बहुत से ऐश्वर्य दे। वा (इषः प्रयन्धि, वाजान् प्रयन्धि) हमारी सेनाओ और बलवान् पुरुषो को उत्तम नियन्त्रण मे रख। और तू (नक्तोः) रात्रि के (वि-उष्टौ) प्रभात होने के काल मे तथा (परितक्म्यायाम्) रात्रि काल मे वा, अति कष्टमयी दशा मे भी, (अरिषण्यन्) स्वयं प्रजाओ का पीडन न करता हुआ, (ऊती) अपने रक्षा बल से (ऊर्ध्वः उ सु स्थाः) सब से ऊचा होकर रह।

सचस्व नायमवसे अभीके इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभीके) संग्राम मे (अवसे) रक्षा करने के लिये (नायम्) नायक पुरुष को तथा सन्मार्ग मे प्रवृत्त कराने वाले न्याय को (सचस्व) प्राप्त कर। और (इतः) इस समीप आये (रिपः) हिंसक शत्रु से (पाहि) रक्षा कर। (च) और (एनम्) इस प्रजाजन की (अमा च अरण्ये च) घर मे और जंगल मे भी (रिपः) हिंसक, चोर, दस्यु वा व्याघ्रादि से (पाहि) रक्षा कर जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्रादि सहित (शत-हिमाः मदेम) सौ वर्षो तक आनन्द, सुखमय जीवन लाभ करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पङ्क्तिः। ३ भुरिक् पङ्क्ति। २, ७, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ६ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥ १ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) तेजस्विन्! (या ते) जो तेरी (ऊति अवमा) रक्षा निकृष्ट,

उसी प्रकार जिस राजा को वर्ष, मास, दिन आदि वा हिंसक सेनाएं, ज्ञानवान् पुरुष और तेजस्वी लोग कृश न करें, न घटावें उसकी व्यापक राष्ट्र-रूप तनु भी उत्तम (स्तोमैः) उपदेष्टा पुरुषों द्वारा (शस्यमाना) उपदेश की जाकर शिष्य की बुद्धि के समान बराबर बढ़े ।

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै॥८॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् स्वामी (दस्यु-जूताय) दुष्ट, प्रजा के नाशकारी पुरुषों से सेवित (वीडवे) बलवान् पुरुष के हित (न नमते) नहीं झुकता, (न स्थिराय) न स्थिर, दृढ़ पुरुष के आगे झुकता और (न शर्धते) बल प्रकट करने वाले के आगे ही झुकता है । वह (न स्तवान्) न ऐसे ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा ही करता है, इस (इन्द्र) वैभवशाली, महान् शत्रुहन्ता पुरुष के (अज्राः) शत्रुओं को उखाड़ के फेंकने वाले शस्त्रास्त्र बल भी (गिरयः चित्) मेघों के समान लगातार बरसने वाले तथा पर्वत के तुल्य अभेद्य, दृढ और (ऋष्वाः) महान् होते हैं । (अस्मै) इसके लिये (गम्भीरे चित्) गहरे से गहरे समुद्र में भी (गाधम् भवति) थाह होती है । (२) परमेश्वर की समस्त लोकों को संचालन करनेवाली महती शक्तियां 'अज्र' हैं, वह स्तुत्य होने से 'गिरि' है ।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥

भा०—हे (अमत्रिन्) बलशालिन् ! हे (सुतपावन्) प्रजा जन को पुत्र के समान पालन करने वाले ! वा ऐश्वर्य के रक्षक राजन् ! हे (सुतपावन्) उत्पन्न जगत् के रक्षक और पालन करने हारे प्रभो ! तू (गम्भीरेण) गंभीर, और (उरुणा) महान विस्तीर्ण, सामर्थ्य से (नः इषः) हमारी कामनाओं को और (वाजान्) बलों, अन्नों, ज्ञानों को (प्र यन्धि) [illegible] (नः वाजान् प्र इषः) हमारे ऐश्वर्यों को न चाहे। (नः वाजान्

प्र यन्धि) हमारे बलो को नियम मे रख। वा, (नः इषः प्रयन्धि) हमे अन्न, और इष्ट बुद्धि आदि प्रदान कर और (वाजान् प्र यन्धि) बहुत से ऐश्वर्य दे। वा (इषः प्रयन्धि, वाजान् प्रयन्धि) हमारी सेनाओ और बलवान् पुरुषो को उत्तम नियन्त्रण मे रख। और तू (नक्तोः) रात्रि के (वि-उष्टौ) प्रभात होने के काल मे तथा (परितक्म्यायाम्) रात्रि काल मे वा, अति कष्टमयी दशा मे भी, (अरिषण्यन्) स्वयं प्रजाओ का पीडन न करता हुआ, (ऊती) अपने रक्षा बल से (ऊर्ध्वः उ सु स्थाः) सब से ऊचा होकर रह।

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभीके) संग्राम मे (अवसे) रक्षा करने के लिये (नायम्) नायक पुरुष को तथा सन्मार्ग मे प्रवृत्त कराने वाले न्याय को (सचस्व) प्राप्त कर। और (इतः) इस समीप आये (रिषः) हिंसक शत्रु से (पाहि) रक्षा कर। (च) और (एनम्) इस प्रजाजन की (अमा च अरण्ये च) घर मे और जंगल मे भी (रिषः) हिंसक, चोर, दस्यु वा व्याघ्रादि से (पाहि) रक्षा कर जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्रादि सहित (शत-हिमाः मदेम) सौ वर्षो तक आनन्द, सुखमय जीवन लाभ करे। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[२५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ पंक्ति। ३ भुरिक् पंक्ति। २, ७, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ६ त्रिष्टुप॥ नवर्चं सूक्तम्॥

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र॥ १॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) तेजस्विन्! (या ते) जो तेरी (ऊति अवमा) रक्षा निकृष्ट,

अति तुच्छ, (परमा) जो रक्षा सर्वोत्कृष्ट, (या) जो रक्षा (मध्यमा) मध्यम कोटि की (अस्ति) है। (ताभिः) उन रक्षाओं से (वृत्र हत्ये) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुजनों के घात करने योग्य संग्राम में (एभिः वाजैः महान्) इन ऐश्वर्यों और बलों से महान् होकर (ताभिः) उन रक्षा साधनों और सेनाओं से (नः सु अवीः उ) हमारी अवश्य और अच्छी प्रकार रक्षा किया कर।

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! तू (आभिः) इन (अमित्रस्य) शत्रु की (मिथतीः) हिंसा करती हुई (स्पृधः) सेनाओं को (मन्युम्) कोप कर के (व्यथय) पीड़ित कर। स्वयं (अरिषण्यन्) अपनी प्रजा का विनाश न करता हुआ (आभिः) इन सेनाओं द्वारा (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध स्थानों पर विद्यमान (अभियुजः) आक्रमण करने वाले की (दासीः) प्रजा का नाश करने वाली सेनाओं को (अव तारीः) विनाश कर और (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुष की (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध प्रकार की (दासीः विशः) भृत्य वा दास के समान सेवा करने वाली प्रजाओं को (अव तारीः) संकट से पार कर।

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! (ये) जो लोग (जामयः) बन्धुओं के समान स्नेही वा भार्याओं के समान आज्ञाकारी, (उत) और (ये) जो (अजामयः) सपत्नी वा सौतें या अबन्धु जनों के समान, निःस्नेह हैं और जो (अर्वाचीनासः) अब के, वा हमारे प्रति आने वाले, (वनुषः) अपने धन वेतन

आदि देनेवाले स्वामियों के प्रति (युयुज्रे) योग देते वा उनके विरोध में आक्रमण या षड्यन्त्र करते हैं (त्वम्) तू (एषां) इन के (विथुरा) पीड़ादायक (शवांसि) बलों को (जहि) विनाश कर और (वृष्ण्यानि) बलशाली सैन्यों को (कृणुहि) सम्पादन कर और (पराचा जहि) पराङ्मुख शत्रुओं को भी नाश कर।

शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते॥ ४॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (तनूरुचा) अपनी देह की कान्ति में चमकने वाले दो पुरुष (तरुषि) एक दूसरे को मारने के निमित्त (कृण्वैते) युद्ध करते और एक दूसरे को मारते हैं उसी प्रकार दो प्रबल राजा भी (तनू-रुचा) विस्तृत सेनाओं वा विस्तृत राष्ट्र सम्पदा से शोभावान् होकर (तरुषि) संग्राम-काल में (शरीरैः) बहुत से शरीरधारी सैन्यों सहित (कृण्वैते) उद्योग करें। तब (शूरः शूरं वा) एक शूरवीर पुरुष दूसरे शूरवीर को (वनते) मारता, है, एक दूसरे को सेवता भी है। इसी प्रकार (यत्) जब (तोके) पुत्र, (तनये) पौत्र, (वा गोषु) वा गौओं, और (अप्सु उर्वरासु) पुत्र वा अन्नादि को उत्पन्न करने वाली उपजाऊ प्राप्त स्त्रियों और भूमियों के निमित्त (क्रन्दमानौ) परस्पर आक्षेप करते हुए, (यत् वि ब्रवैते) परस्पर विवाद करते हैं तब भी तू ही उनके ऊपर न्यायकर्त्ता के समान विद्यमान रह।

नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि॥५॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! राजन्! (त्वा) तेरे से अधिक (नहि शूरः) न कोई शूरवीर (न तुरः) न कोई हिंसक, (न धृष्णुः) न कोई शत्रुपराजयकारी, (न योधः) न कोई योद्धा, (मन्यमानः) अभिमानी होकर (युयोध) युद्ध कर सकता है, (एषाम्) इनमें से (त्वा

प्रति नकिः अस्ति) तेरे मुकाबले पर कोई भी नहीं है। तू ही (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न वा प्रसिद्ध (तानि) उन २ नाना सैन्यों के (अभि असि) मुकाबले पर समर्थ है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते॥६॥

भा०—(यदि) जो दोनों (वृत्रे) विघ्न उपस्थित होने पर (वा) अथवा (नृवति क्षये वा) मनुष्यों से युक्त भृत्यादि सहित गृह के निमित्त (व्यचस्वन्ता) विविध वा एक दूसरे के विपरीत आते हुए, (वितन्तसैते) विशेष रूप से विवाद करते हैं या एक दूसरे से लड़ते हैं और (यदि) जब (वेधसः) विद्वान् लोग (समिथे) संग्राम में (हवन्ते) निर्णय करने के लिये बुलाते हैं तब जो (उभयोः) दोनों के बीच (नृम्णम् अयोः) धन का ठीक २ प्रकार विभाग कर देता है (सः पत्यते) वह दोनों का स्वामी होने योग्य होता है।

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः॥७॥

भा०—(अध) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (यत) जब (ते चर्षणयः) तेरे प्रजाजन (एजान् स्म) भय से कांपें तो उनका तू (त्राता भव) रक्षक हो, (उत) और तू (वरूता भव) उनके दुःखों को दूर करने हारा हो। (ये) जो (अस्माकासः) हमारे (नृतमासः) श्रेष्ठ नायक और (सूरयः) विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (पुरः) नगरों को (दधिरे) धारण करते हैं या हमारे आगे ज्ञान और बल को धारण करते, साक्षी रूप से रहते हैं उनका भी तू (अर्यः) स्वामी, रक्षक (भव) हो।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये॥८॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील ! हे पूज्य ! सगतियोग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वृत्रहत्ये) बढते, विघ्नकारी शत्रु को नाश करने के कार्य मे (ते महे इन्द्रियाय) तेरे बडे भारी ऐश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये, (देवेभिः) विजय कामना करने और कर आदि देने वाले प्रजाजन और ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष (ते) तेरे निमित्त (विश्वम् अनु दायि) सभी कुछ देते है। और वे (नृषह्ये) संग्राम मे वे (क्षत्रम् अनु दायि) बल प्रदान करते है। (ते सहः अनु दायि) तुझे शत्रु पराजयकारी शक्ति प्रदान करते है।

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥२०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले ! तू (एव) इस प्रकार (समत्सु) युद्ध के अवसरों पर (नः) हमारे (स्पृधः) प्रतिस्पर्धा करने वाले शत्रुओं को (सम् अज) अच्छी प्रकार उखाड फेंक, और (स्पृध सम् अज) स्पृहा अर्थात् प्रेम करने वालों को मिला। (अदेवीः मिथती.) ऐश्वर्य वा कर आदि न देने वाली, तथा परस्पर नाश करने वाली सेनाओ और प्रजाओ को (रारन्धि) वश कर। हम (ते अवसा) तेरे रक्षा सामर्थ्य से (नूनम्) निश्चयपूर्वक (गृणन्त) तेरी स्तुति करते हुए (भरद्-वाजा.) ज्ञान और ऐश्वर्यका धारण करने वाले होकर (वस्तो) राष्ट्र मे बसने का सुख (विद्याम) प्राप्त करें। इति विंशो वर्ग.॥

[२६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः । २ निचृत् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (महः वाजस्य सातौ) बडे भारी अन्न, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने, विभाग करने और प्रयोग करने के निमित्त, (ववृधाणः) तेरा बल बढ़ाते और अभिषेक करते हुए (त्वा) तुझे (हुयामसि) बुलाते हैं। (यत्) जब (विशः) प्रजाएं (शूर-सातौ) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम के निमित्त संग्राम के उपरान्त या उनको नाना पारितोषिकादि रूप से विशेष द्रव्य विभाग करने के निमित्त (सम् अयन्त) एक स्थान पर एकत्र हों तब तू (पार्ये अहन्) सर्व-पालनीय, अन्तिम या नियत दिन पर (नः) हमें (उग्र अवः) उत्तम, तेजयुक्त पालन, योग्य अन्न वेतन आदि, (दाः) प्रदान कर।

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन्॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाजिनेयः वाजी) ज्ञान से युक्त माता पिता वा आचार्य का पुत्र, शिक्षित विद्वान् पुरुष (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी ज्ञान को प्राप्त करने और विभाग करने के लिये गुरु को (हवते) स्वीकार करता है उसी प्रकार (वाजिनेयः) 'वाजिनी' अर्थात् बलवती सेना के योग्य (वाजी) बलवान् शूरवीर पुरुष भी (महः) उत्तम, देने योग्य, (गध्यस्य) सबको प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) ऐश्वर्य या अन्न, वेतनादि के (सातौ) प्राप्त करने के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वां हवते) तुझ स्वामी को अपनाता है। इसी प्रकार (गोषु) भूमि को विजय करने के निमित्त (युध्यन्) युद्ध करता हुआ वीर पुरुष (मुष्टि-हा) मुट्ठी के समान पांचों का समवाय या संघ बना कर शत्रु को नाश करने में समर्थ वा (मुष्टि-हा) 'मुष्टि', चोरी आदि उपद्रवों का नाशक पुरुष भी (वृत्रेषु) बढ़ते शत्रु रूप विघ्नों के बीच या नाना धनों को प्राप्त करने के लिये भी (त्वां सत्पतिं) तुझको ही सत्पालक

और (त्वां तरुत्रं) तुझको वृक्षवत् आश्रयदाता, रक्षक, वा संकटो से पार पहुंचाने वाला (चष्टे) देखता वा कहता है ।

त्वं कुविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं अर्कसातौ) अन्न, और स्तुत्य, सूर्यवत् तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (कविम्) दूरदर्शी विद्वान्, को (चोदयः) प्रेरित कर और (त्वं) तू (कुत्साय) राष्ट्र के शस्त्रास्त्र बल को धारण करने और (दाशुषे) कर आदि देने वाले प्रजाजन के पालन के लिये (शुष्णं) शत्रुशोषक बल को (वर्क्) नाना विभागो मे विभक्त कर और (शुष्णं वर्क्) प्रजाशोषक दुष्ट जन वा दोषयुक्त व्यवस्था को नाश कर। और (अतिथिग्वाय) अतिथिवत् पूज्य पुरुषो की गौ, गव्य दूध, घी तथा वाणी आदि से सत्कार करने वाले पुरुष के लिये (शंस्यं करिष्यन्) प्रशंसनीय कार्य करना चाहता हुआ (त्वं) तू (अमर्मणः) मर्म स्थल से रहित, अति दृढ़ शत्रु के (शिरः) शिर के समान मुख्य अंग को ही (परा हन्) परास्त कर ।

त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (योधं) युद्ध करने वाले (ऋष्वं) महान् (रथं) रथ तथा रथ सैन्य को (भरः) अच्छी प्रकार से प्राप्त और पालन कर । (युध्यन्तं) युद्ध करते हुए (दशद्युम्) दशो दिशाओ मे चमकने वाले तेजस्वी, (वृषभं) शरवर्षी योद्धाजन को (आवः) आदरपूर्वक तृप्त, सन्तुष्ट कर। (वेतसवे) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले राष्ट्र के लिये (सचा) साथ ही समवाय बनाकर (त्वं) तू (तुग्रं) बल वा सैन्य लेकर चढाई करने वाले शत्रु को (अहन्) दण्डित कर और (गृणन्त तुजिम्) स्तुति वा उपदेश करते हुए दानशील विद्या के दाता विद्वान् उपदेष्टा को तू (तूतो) बढा ।

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे (शूर) वीर पुरुष ! (कः) कर । (यत्) जो तू (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों शत्रुसैन्यों को दलन करता है वह (त्वं) तू (बर्हणा) वृद्धिशील वा समृद्ध बल से (तत्) वह नाना वा (उक्थं) प्रशंसनीय (गिरेः दास शम्बरं) मेघ के बीच विद्यमान शान्तिदायक जल को जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (अव हन्ति) नीचे गिराता है उसी प्रकार (गिरेः) पर्वत के बीच मे (दासं) प्रजाजनों का नाश करने वाले (शम्बरं) शान्ति-नाशक शत्रुजन को तू (अव हन्) नीचे मार गिरा । अथवा (गिरेः दासं) मेघवत् निष्पक्षपात गुरु के सेवकवत् (शम्बरं) शान्तिकारक उत्तम शिष्यवत् प्रजाजन को (अव हन्) अवगत कर अर्थात् उसे यथार्थ ज्ञान दे वा उसको दण्डादि द्वारा दोषों से मुक्त कर । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (श्रद्धाभिः) सत्य धारणाओं और (सोमैः) सौम्य स्वभाव के पुरुषों या ऐश्वर्यों के साथ (मन्दसानः) प्रसन्न होता हुआ (दभीतये) शत्रु के नाश करने के लिये (चुमुरिम्) प्रजा को खाजाने वाले दुष्टगण को (सिष्वप्) सुला दे । और (पिठीनसे) 'पिठी' हिंसाकारिणी और शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को क्लेश देने वाली, शक्ति को नाक के समान मुख्य रूप से धारण करने वाले शक्तिशाली नायक पुरुष को (त्वं) तू (रजिं) सैन्य पंक्ति वा स्वयं उसकी 'नाक' वा अग्रणी होकर रहने वाले वा राज्यशक्ति को (दशस्यन्) देता हुआ, (षष्टि सहस्रा) ६० हाज़र शत्रुओं को भी (शच्या) समवाय बल से युक्त सेना और स्थिर बुद्धि द्वारा (हन्) विनाश कर ।

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अहचन) मै भी (तव) तेरे (तत्) उस (ज्यायः) महान्, (सुम्नम्) सुखप्रद (ओजः) पराक्रम का उन (सूरिभिः) विद्वानो के सहित (आनश्याम्) उपभोग करू । हे (शविष्ठ) अत्यन्त शक्तिशालिन् ! हे (सधवीर) वीरो सहित (यत् नहुषा) जो लोग, (त्रिवरूथेन) शीत, उष्ण, वर्षा तीनो से बचाने वाले, गृह के स्वामी रूप अथवा त्रिविध दुःखो के वारक (त्वया) तुझ से (वीरा) वीर्यवान् होकर (स्तवन्ते) तेरा गुण गान करते है !

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८॥२२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (महिन) महान् ! पूज्य ! (वयम्) हम लोग (अस्याम्) इस (ते) तेरी (द्युम्न-हूतौ) धन के निमित्त आदरपूर्वक पुकार तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करने के निमित्त (ते-प्रेष्ठाः) तेरे अति प्रिय (सखायः स्याम) मित्र होकर रहे । (वृत्राणा) बढते और विघ्न करने वाले शत्रुओ के (घने) हनन और (धनानाम् सनये) धनों को प्रजा मे यथोचित विभाग के लिये (प्रातर्दनिः) शत्रुओं को अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करने वाले सैन्य बल का स्वामी पुरुष हो, (श्रेष्ठ) सबमे उत्तम, प्रशंसनीय (क्षत्र-श्री. अस्तु) बल वीर्य और क्षात्र शक्ति की उत्तम शोभा से युक्त वा बल का आश्रय हो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १—७ इन्द्रः । ८ अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७, ८ त्रिष्टुप् । ६ आर्ची उष्णिक् ॥

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शक्तिशाली, शत्रु-हन्ता पुरुष (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य को प्राप्त कर उसके हर्ष वा उसको दमन कर लेने के निमित्त (कि चकार) क्या करे? (अस्यपीतौ) इसके उपभोग और पालन के निमित्त (किं चकार) क्या करे? (अस्य सख्ये) इसकी मित्रता की वृद्धि के लिये वह (कि चकार) क्या २ उपाय करे? (वा) और (ये) जो (अस्य) इसके (निषदि) राज्यासन पर विराजने पर (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं वे प्रजाजन (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये भी (किं विविद्रे) क्या २ लाभ करें और वे क्या २ कर्त्तव्य जानें? इसका उत्तर अगली ऋचा में है।

सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य के आनन्द पूर्वक लाभ करने और दमन, शासन करने में (सद् चकार) सत्य, न्यायपूर्वक उत्तम कार्य ही करे। (अस्य पीतौ) इसके उपभोग और पालन करने के निमित्त (सत् उ चकार) 'सत्' अर्थात् प्रमाद रहित होकर यथोचित् उत्तम प्रबन्ध करे। (अस्य सख्ये) उसका मैत्री-भाव बनाये रखने के लिये (सत् चकार) सदा सत्य, न्यायोचित शुभ कर्म किया करे। (ये वा अस्य निषदि) और जो इसके सिंहासन पर विराजने मे (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं (ते) वे भी (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये सभी (सत् सत उ विविद्रे) उत्तम, उत्तम फल तथा शुभ पुरस्कार आदि लाभ करें।

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म।
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (ते महिमनः) तेरे महान् सामर्थ्य के विषय मे हम (नहि नु सं विद्म) कुछ भी नहीं जानते है। और तेरे (मघवत्त्वस्य न सं विद्म) तेरे महान् ऐश्वर्य के विषय मे भी कुछ नही जानते। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते नूतनस्य) तेरे नये से नये (राधसः राधसः) धन ऐश्वर्य और आराधना योग्य उत्तम गुण-राशि को भी (न सं विद्म) हम नही जानते। हे ऐश्वर्यवन् ! (ते इन्द्रियं) तेरा महान् ऐश्वर्यमय स्वरूप और बल भी (नकिः ददृशे) किसी को गोचर नही होता।

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (ते वर-शिखस्य एतत् त्यत्) उत्तम शिखा वाले तेरा वह प्रसिद्ध सर्वप्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) महान् ऐश्वर्य और बल (अचेति) जाना जाता है (येन) जिससे तू (अवधीः) शत्रुओ का नाश करता है। (यत्) और जो (ते) तेरे (नि-हतस्य) प्रहार किये गये (वज्रस्य) शस्त्र के (शुष्मात्) बल और (स्वनात्) शब्द से भी (परमः शेषः) बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा भी (ददार) भयभीत होता है।

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥२३॥

भा०—जब (हरि-यूपीयायाम्) वह मनुष्यों को गुणों मे मुग्ध करने वाली विद्या के निमित्त (पूर्वे अर्धे) पूर्व के उत्तम काल मे (अपर) दूसरा भी (भियसा दर्त) भय से भीत हो, इस प्रकार से वह (वृचीवत) अज्ञाननाशक विद्या वाले शिष्यों को (हन्) ताड़ना करे। तब (वर-शिखस्य) उत्तम, शिखा

धारण करने वाले (वृचीवतः) अविद्या के छेदन करने वाली उत्तम इच्छा से युक्त विद्यार्थी का (शेपः) शासन करने द्वारा (इन्द्रः) उत्तम आचार्य (चायमानाय) सत्कार करने वाले (अभ्यावर्त्तिने) समीप रहने वाले अन्तेवासी शिष्य को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (वधीत्) दण्ड भी दे, उसकी यथोचित् ताड़ना भी करे। (२) इसी प्रकार (हरियूपीयायाम्) मनुष्यों के स्वामी राजा की पालन करने वाली नीति मे लगे (वृचीवतः) प्रजा के उच्छेद करने वाली शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुषो को राजा (पूर्वे अर्धे) अपने समृद्ध शासन के पूर्व काल मे ही (अपरः) उत्तम राजा (भियसा) भयजनक उपाय से (हन्) उनको ताड़ना करे और (दर्त) भयभीत करे। (वर-शिखस्य अभ्यावर्त्तिने चायमानाय शिक्षन्) समीप प्राप्त अनुकूल अपने सत्कार करने वाले प्रजाजन के हितार्थ उनको (वर-शिखस्य शेप इव शिक्षन्) उत्तम शिखा या तुर्रे वाले प्रमुख नायक के पुत्रवत् सद्-व्यवहार की शिक्षा देता हुआ (इन्द्रः) राजा (वधीत्) दण्डित किया करे। अर्थात् राजा प्रजाजन को पुत्रवत् प्रेम करता हुआ भी हित से ही उनको दण्डित करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रिंशच्छ॑तं व॒र्मिण॑ इन्द्र सा॒कं य॒व्याव॑त्यां पुरुहूत श्रव॒स्या।
वृ॒चीव॑न्तः॒ शर॑वे॒ पत्य॑माना॒: पात्रा॑ भिन्दा॒ना न्य॒र्थान्या॑यन् ॥६॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत सी प्रजाओं से पुकारे वा प्रशंसा किये गये (इन्द्र) शत्रुहन्तः राजन्! (यव्या-वत्यां) शत्रुओं को दूर करने मे कुशल पुरुषों से बनी सेना के बीच मे (साकं) एक साथ ही (त्रिंशत शतं) तीन सहस्र ३००० (वर्मिणः) कवचधारी (वृचीवन्त) शत्रूच्छेदक शस्त्र, वा तलवार को लिये हुए (शरवे) शत्रुओं को नाश करने के लिये (पत्यमानाः) जाते हुए वा (शरवे पत्यमाना) शर, हिंसक शस्त्रादि पर पूर्ण वश करते हुए वीर पुरुष (श्रवस्या) यश, धन, ऐश्वर्यादि की कामना मे (पात्रा भिन्दानाः) शत्रु के बचाव के साधनों

को भेदते हुए, (नि-अर्थानि) अपने निश्चित प्रयोजनों को (आयन्) प्राप्त करें।

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस राजा की (गावौ) 'गौ' वाणी और शस्त्रों को चलाने वाली सेना, वाक् शक्ति और शस्त्रशक्ति दोनों (अरुषा) रोषरहित और देदीप्यमान (सु-यवस्यू) उत्तम रीति से यवस्, चारे आदि चाहने वाली दो गौओं के समान (सु-यवस्यू) सुखदायक विवेक और शत्रूच्छेद चाहती हुई (रेरिहाणा) उत्तम सुखास्वाद कराती हुई, (अन्तः उ) राष्ट्र के मध्य में (चरतः) विचरती है (सः) वह (दैव-वाताय) देव, सूर्यवत् तेजस्वी और प्रचण्ड वात के समान शत्रुओं को वृक्षवत् उखाड़ फेंकने वाले बलवान् राजा के राज्यपद को प्राप्त करने और (सृञ्जयाय) आगन्तुक शत्रुओं के विजय करने के लिये (वृचीवतः) उच्छेदक शक्ति वाले वीर सैनिकों को (शिक्षन्) युद्ध की शिक्षा वा अन्नवृत्ति देता हुआ (तुर्वशं परादात्) हिंसक शत्रु को पराजित करे।

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८॥२४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (सम्राट्) सर्वोपरि तेजस्वी पुरुष, (अभ्यावर्त्ती) शत्रु के प्रति सन्मुख आकर लड़ने वाला (चायमानः) पूजा सत्कार प्राप्त करता हुआ (द्वयान् रथिन) दोनों प्रकार के रथ वाले, (वधूमत॰) या रथ को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ (विंशति गा॰) बीस बैलों, वा वेगवान् अश्वों के समान उत्तम कुशल धुरन्धर पुरुषों को (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (मह्य ददाति) मुझ प्रजा के हितार्थ प्रदान करे। (पार्थवान्) बड़े भारी राष्ट्र के स्वामी राजाओं की

(इयं दक्षिणा) यह बलवती सेना, या शक्ति (दूनाशा) कभी नाश को प्राप्त नहीं हो। बड़ा राजा प्रजा में शासन भार को उठाने के लिये २० प्रधान पुरुष नियत करे। यह बीस धुरन्धरों की राजसभा 'दक्षिणा' नाम की है। वह बड़ी प्रबल हो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १, ३—८ गावः । २, ८ गाव इन्द्रो वा देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ४ जगती । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥

भा०—(गावः) गौएं तथा गृहस्थ में सुशील वधुएं (अस्मे आ अग्मन्) हमें अच्छी प्रकार से प्राप्त हों, (भद्रम् अक्रन्) वे हमारा कल्याण करें। (गोष्ठे) गोशाला में गौएं, (इह) और इसके समान वधूजन गृह में (सीदन्तु) विराजें और (अस्मे रणयन्तु) हमें आनन्द प्रसन्न करें और स्वयं भी आनन्द प्रसन्न होकर रहें। वे (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (पुरु-रूपाः) बहुत उत्तम रूप वाली (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त स्वामी के लिये (पूर्वीः) श्रेष्ठतम, (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान कान्ति वाली एवं पतियों को चाहने वाली (दुहानाः) कामना पूर्ण करने वाली (स्युः) हों। इसी प्रकार (गावः) वाणियां और भूमियां भी हमें प्राप्त हों, हमें सुख दें (गोष्ठे) भूमि पर स्थित राजा के अधीन हमें सुप्रसन्न करें, वे उत्तम प्रजायुक्त बहुत पदार्थों से सम्पन्न नाना सुखैश्वर्य देने वाली हों।

इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (यज्वने) यज्ञशील, दान देने वाले और आदर सत्कार करने वाले (पृणते च) राष्ट्र के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले प्रजाजन को (शिक्षति) शिष्य वा पुत्रवत् शिक्षा दे और (उप ददाति इत्) प्राप्त कर बहुत धन प्रदान भी करे। और वह (स्वं) प्रजा के अपने धन को (न मुषायति) चोरी से ग्रहण नहीं करता, प्रत्युत (भूयः भूय) और भी अधिकाधिक (अस्य रयिम् वर्धयन् इत्) उसके धनैश्वर्य को बढ़ाता हुआ ही (देव-युम्) दाता, तेजस्वी राजा को चाहने वाले प्रजाजन को पिता वा गुरु के समान ही (अभिन्ने खिल्ये) अपने से अभिन्न अंश मे अथवा शत्रु आदि से न टूटने योग्य भू प्रदेश दुर्गादि के बीच मे (नि दधाति) उसको अपने उत्तम धन के समान सुरक्षित रखे।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ३

भा०—(याभिः) जिन मे (गोपति) गौवो, वेदवाणियो, विद्याओ वा भूमियों से उनका पालक (देवान्) कामनाशील मनुष्यों को (यजते) सत्कार करता और उनको (ददाति च) ज्ञान वा धन रूप मे प्रदान करता है (ताभिः) उनके (सह) साथ (इत्) ही वह (ज्योग् सचते) चिर काल तक भी रहता है, (ताः) वे भूमियां, वाणियां, विद्यायें, (न नशन्ति) कभी नष्ट नहीं होतीं। (तस्करः ता न दभाति) चोर भी उनको नहीं चुराता और (आसाम्) उनको (व्यथिः अमित्रः) कष्टदायी, शत्रु भी (न आदधर्षति) बलात्कार से नहीं छीन सकता।

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ४

भा०—(ताः गावः) उन वेद वाणियों को (अर्वा) हिंसक वा अश्व के समान केवल पशु, (रेणुक-काटः) धूल मे भरे कुत्सित कूप के समान

नीरस पुरुष भी (न अश्नुते) प्राप्त नहीं कर सकता, और जो (संस्कृतत्रम् न उप यन्ति) शुद्ध संस्कृत, ज्ञान की रक्षा करने वाले विद्वान् के समीप नहीं जाते वे भी (ताः अभि न) उनको प्राप्त नहीं करते, परन्तु जो (उरु-गायम्) महान् ज्ञान के उपदेश करने वाले, भय से रहित पुरुष को (उप यन्ति) प्राप्त करते हैं वे लोग (तस्य मर्तस्य यज्वनः) उस सत्संगयोग्य, ज्ञानदाता पुरुष की (ताः) उन वाणियों को (अनु) विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं। (तस्य गावः विचरन्ति) उसकी वाणियां गौओं के समान सुख से विविध रूपों में विचरती, प्रकाशित होती हैं।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥५

भा०—(प्रथमस्य) सर्वश्रेष्ठ (सोमस्य) ऐश्वर्य, अन्नादि का (भक्षः) सेवन करने वाला वा विद्वान् शिष्य की सेवा योग्य विद्वान् (मे गावः अच्छान्) मुझे गौओं और ज्ञानयुक्त विद्याओं को प्रदान करे। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मे गावः) मुझे गौएं, ज्ञानवाणियें दे। (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) शत्रुहन्ता राजा मुझे भूमियां प्रदान करे। हे (जनासः) लोगो ! सुनो। (याः इमाः गावः) ये जो गौएं, वेदवाणियां और भूमियां हैं (स इन्द्रः) वही परमैश्वर्य है। मैं (हृदा मनसा) हृदय और मन से उत्तम और उचित जानकर ऐसे ही (इन्द्रं चित्) ऐश्वर्य को ही (इच्छामि) प्राप्त करना चाहता हूं।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु॥६॥

भा०—(कृशं चित् मेदयथ) जिस प्रकार दूध कृश पुरुष को मोटा कर देता है उसी प्रकार हे (गावः) वेदवाणियो ! (यूयं) तुम (कृशं) तपस्वी पुरुष को (मेदयथ) अन्यों के प्रति स्नेहयुक्त कर देते हो हे

भूमियो ! तुम (कृशं चित्) शत्रु के कर्शन करने मे समर्थ राजा को (मेद-यथ) स्नेहवान् बनाती हो । और जिस प्रकार गौवे अपने दूध से (श्रीरं चित्) शोभारहित, कान्तिहीन, दुबले पतले को (सुप्रतीकं) सुन्दर मुख वाला कर देती है, उसी प्रकार हे वेदविद्याओ तुम सभी (अश्रीरं) शोभाहीन, कुरूप को भी (सु-प्रतीकम्) सौम्य मुख और उत्तम ज्ञान से युक्त कर देती हो । हे पृथिवियो ! तुम (अश्रीरं) श्रीरहित, राज्यलक्ष्मी से हीन राजा को (सु-प्रतीकं) सुख से शत्रु के प्रति जाने मे समर्थ, बल-शाली बना देती हो । हे (भद्रवाचः) कल्याणवाणियो ! जिस प्रकार गौवे (गृहं भद्रं कृण्वन्ति) घर को सुखयुक्त बनाती है उसी प्रकार तुम भी (गृहं भद्रं कृणुथ) घर को और ग्रहण करने योग्य ज्ञान को सुख-दायक, सुगम बना देती हो । (वः) तुम्हारा (वयः) बल, ज्ञान आदि (सभासु) सभास्थलों मे (बृहत् उच्यते) बहुत बड़ा कहा जाता है ।

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) रोक रखने वाले गवाले का दण्ड (प्रजावतीः) उत्तम बछडो वाली (सु-यवसं रिशन्ती) उन जौ आदि खाने वाली, (शुद्धा अप: सु प्र-पाणे पिबन्ती) शुद्ध जलो को उत्तम घाट पर पीती हुई गौओं को (परि वृङ्क्ते) सब ओर से बचाये रखता है । उसी प्रकार (रुद्रस्य हेति) दुष्टों को रुलाने वाले राजा का शस्त्र बल (प्रजावतीः) प्रजाओ से युक्त (सु-यवसं रिशन्ती) उत्तम अन्न का भोग करती हुई (शुद्धा अप) शुद्ध जलों का (सु-प्र-पाणे) उत्तम पालक के अधीन (पिबन्ती) उपभोग करती हुई भूमियों की (परि वृज्या) हे राजन् ! तू अच्छी प्रकार रक्षा कर । हे गौवत भूमियो ! (व स्तेन मा ईशत) चोर तुम पर शासन न करे (मा अघ-शंस) पापी पुरुष तुम पर आधिपत्य न करे । उपदेष्टा पुरुष 'रुद्र' है । उसका दण्ड देना विद्याओं

की रक्षा करता है, विद्याएं भी उत्तम शिष्यों से प्रजावती है। वे (सुप्र-पाणे) उत्तम ज्ञान, वीर्य, वल ब्रह्मचारी में उत्तम (अपः) कर्म का पालन कराती है, उन वाणियों पर कोई चौर स्वभाव का पापी पुरुष भी अधिकार न करे।

उपेदमुपपर्चनमासु गोपूप पृच्यताम्।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥ २५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (रेतसि ऋषभस्य गोषु उपपर्चनम्) उत्तम वीर्य के निमित्त गौओं का सांड के साथ सम्पर्क होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) विद्यादातः ! विद्वन् ! (तव वीर्ये) तेरे ज्ञान सामर्थ्य के ऊपर (आसु) इन (गोषु) वेद वाणियों के निमित्त (इदम्) यह (उप-पर्चनम्) उत्तम सम्बन्ध (उप पृच्यताम्) जुड़े। इसी प्रकार बलवान् राजा के बाहु बल पर भूमियों पर राजा का प्रभुत्व स्थिर हो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

[२६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ७ भुरिक्पङ्क्तिः ८ ब्राह्मी उष्णिक् ॥

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (महः यन्तः) बड़े २ पदों वा लक्ष्यों को

प्राप्त होते हुए और (सुमतये चकानाः) शुभ मति, ज्ञान की कामना करते हुए, (वः नरः) आप लोगो मे से उत्तम नेता पुरुप (सख्याय) मित्रभाव के लिये (इन्द्रं सेपुः) ऐश्वर्यवान् राजा वा विद्वान् उपदेष्टा को प्राप्त करे । (वज्र हस्तः) शस्त्रबल को अपने हाथ मे रखने वाला राजा और पापो से वर्जन करने वाले दण्ड को अपने हाथो देने वाला, गुरु, (महः दाता अस्ति) बड़ा भारी दाता है । आप लोग उसी (महाम् रण्वम्) महान् रमणीय, सत्य और उत्तम उपदेष्टा का (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (यजध्वम्) आदर सत्कार और सत्संग करो ।

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ।२।

भा०—(यस्मिन् हस्ते) जिस प्रबल हाथ के नीचे (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी नायक जन (आ मिमिक्षुः) सब ओर से एकत्र होते है और (यस्मिन् हिरण्यये रथे) जिस हितकारी, रमणीय, सबको अच्छा लगने वाले 'रथ' अर्थात् महारथी पुरुष के अधीन (रथे-ष्ठाः) रथ पर विराजने वाले अन्य महारथी (आ मिमिक्षुः) सम्बन्धित रहकर राष्ट्र की वृद्धि करते है और जिन (स्थूरयोः) विशाल (गभस्त्योः) बाहुओ मे (रश्मयः) रासें, बागडोर (आ मिमिक्षु) मिलकर रहती है । और (अध्वन्) जिस मार्ग में (अश्वासः) प्रबल अश्वो के समान (वृषणः) बलवान् पुरुष भी (युजाना.) नियुक्त होकर (आ मिमिक्षुः) मिलकर राष्ट्र की वृद्धि करते है वही प्रधान पुरुष सबका (इन्द्र.) स्वामी वा राजा होने योग्य है ।

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (ते पादौ) तेरे दोनों चरणों की, लोग (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि और आश्रय प्राप्त करने के लिये (दुव आ मिमिक्षु) सेवा

करते है उसको आदरपूर्वक पखारते है। हे (नृतो) नायक! तू (धृष्णुः) शत्रु को पराजित करने वाला, (वज्री) शस्त्रबल का स्वामी, (शवसा) शक्ति से (दक्षिणावान्) उत्तम बलवती सेना और दानशक्ति से सम्पन्न होकर और (सुरभिः) उत्तम रीति से कार्य करने मे समर्थ कर देने वाले, सुदृढ़, (अत्कं) वस्त्र वा कवचों को (वसानः) पहने हुए, (दृशे) सब को सन्मार्ग दिखाने के लिये वा सबकी आँखों के लिये (स्व' न) सूर्य के समान प्रकाश देने हारा और (इषिरः) सन्मार्ग में चलने हारा (बभूथ) हो।

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रधान नायक की अधीनता मे (सः) वह (सुतः) उत्पन्न हुआ पुत्रवत्, वा अभिषिक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान्, सौम्य, प्रजाजन (आ मिश्लतमः) सब प्रकार मिला हुआ, तुल्य परस्पर प्रेम युक्त (भूत्) होजाता है, (यस्मिन् पक्ति') जिसके अधीन गृह वा क्षेत्र मे भोजन अन्न का उत्तम रीति से परिपाक (पच्यते) हो और (धानाः सन्ति) जिसके अधीन रहकर धान की खीलो के सदृश उज्ज्वल चरित्र वाली प्रजाएं ऐश्वर्य को धारण करने मे समर्थ हो उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा को (नरः) नायक (ब्रह्मकारा) धन, अन्न और वेद ज्ञान के करने मे दक्ष पुरुष (स्तुवन्तः) स्तुति करते और (उक्था शंसन्तः) उत्तम स्तुत्य वचन कहते हुए (देव वाततमा) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा प्रभु के अति समीप पहुंच जाते है। अध्यात्म मे वही 'इन्द्र' आत्मा है जिसमे सोम, परमानन्दरस, 'पक्ति' तप, परिपाक और 'धाना' ध्यान धारणाएं हो जिसकी ब्रह्मज्ञानी स्तुति, उपदेश करते हुए उपास्य देव के अति समीपतम, तन्मय होजाते है।

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥

भा—(अस्य) इस महान् प्रभु के (शवसः) बल और ज्ञान की (अन्तः) कोई सीमा (न धायि) नहीं कही जा सकती। वह (महित्वा) अपने महान सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि दोनो को (वि वावधे तु) विविध प्रकार से बांधे ही रहता है। वह (सूरिः) सबका सञ्चालक, विद्वान् (तूतुजानः) सब विघ्न-बाधाओं को नाश करने वाला, सब प्रकार के सुख देने वाला होकर (सम्-ईजमानः) सबसे संगत होकर, सबको उत्तम दान करता हुआ (यूथा इव अप्सु) पशु समूहो को जलो पर गवाले के समान (अप्सु ताः ऊती. आपृणाति) उन आकाश और पृथिवीस्थ समस्त लोकों को रक्षा अन्नादि से खूब तृप्त करता, उनको पूर्ण करता है।

एवेदिन्द्रः सुहवं ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६।१॥

भा०—(एव इन्द्रः इत्) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, प्रभु भी (सुहवः) सुख से स्तुति, उपासना और आह्वान करने योग्य, (ऋष्वः) महान् (अस्तु) हो, वह (ऊती) रक्षादि साधनो से या (अनूती) उन साधनो के अभाव मे भी (हिरि-शिप्रः) मनोहारी मुख नाक वाला वा सुन्दर मुकुट वाला और (सत्वा) उत्तम बलशाली हो। उस प्रकार (हि) निश्चय से वह (असमात्योजा जात) बल पराक्रम मे अनुपम होकर (पुरू च वृत्रा) बहुत मे विघ्नकारियो और (दस्यून्) दुष्ट, प्रजा-त्रासकारी लोगो को (नि हनति) सर्वथा नष्ट करे। इति प्रथमो वर्ग ॥

(३०)

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। छन्दः—१, २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्।
पङ्क्तिः। ५ भुरिगुष्णिक्। पञ्चर्चं सूक्तम्

भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥

भा०—(इन्द्रः पृथिव्याः अर्धम् प्रति भवति) सूर्य पृथिवी के आधे के प्रति प्रकाश करता है, (पृथिवी दिवः अर्धम् प्रति) और पृथिवी प्रकाश के आधे ही अंश को ग्रहण करती है परन्तु तो भी (उभे) दोनों मिलकर (रोदसी) आकाश और पृथिवी मिलकर रहते हैं उन दोनों में से (इन्द्रः) सूर्य ही (प्र रिरिचे) अधिक शक्तिशाली है, (उभे रोदसी· प्रति) आकाश और पृथिवी दोनो को व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्र·) तेजस्वी राजा (दिवः पृथिव्याः) आकाश और पृथिवीवत् विजयिनी सेना· वा राजविद्वत्-सभा और पृथिवीवासी प्रजा दोनो से (प्र रिरिचे) बहुत बड़ा है। (उभे रोदसी अस्य अर्धम् प्रति) रुद्र और रुद्रपत्नी, सेनापति और सेना, शासक वर्ग और शास्य प्रजाजन दोनो भी इसके आधे या समृद्ध ऐश्वर्य के बराबर है। वह (एकः) अकेला (अजुर्य·) कभी नाश को प्राप्त न होकर (वीर्याय) अपने बल वृद्धि के हित, (भूय इत् वावृधे) बहुत ही वृद्धि करे, और वह (वसूनि) नाना ऐश्वर्यों से बसे प्राणियों की (दयते) रक्षा करे।

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥

भा०—(अध) और मैं (अस्य) उसके (असुर्यम्) बल को (बृहत) बड़ा भारी (मन्ये) जानता हूं और (यानि) जिन (उर्विया) बड़े २ (सद्मानि) लोकों को यह (सुक्रतुः) उत्तम कर्त्ता पुरुष (विधात) बनाता है, और (दाधार) धारण करता है उनको (नकि·) कोई भी नहीं (आ मिनाति) नष्ट कर सकता। इसी कारण वह (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (दर्शत भूत) दर्शनीय होता है।

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) जिस प्रकार विद्युत् (नदीनाम् अपः अरद.) नदियो के जल को मेघ से छिन्न भिन्न करता है, और (यत्) जो (आभ्यः) इनके जाने के लिये (गातुम्) मार्ग या पृथिवी स्थल को (अरदः) विदीर्ण करता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू (नदीनाम्) समृद्धिशालिनी प्रजाओ के (अद्य चित्) नित्य ही, आज के समान, (तत् अप. अरदः) उन उन नाना कर्मों का विलेखन कर । (आभ्यः) उनके हितार्थ (गातुम्) सन्मार्ग, और भूमियो को (अरदः) खोद, सन्मार्ग बना, नदी जलो के लिये, नहरे और अन्नोत्पत्ति के लिये कृषि द्वारा भूमि का विलेखन कर । (पर्वताः) मेघ, के समान प्रजापालक जन (अद्म-सदः न) अन्नादि भोग्य पदार्थों के उपभोग के लिये बैठने वाले जनो के समान (अद्म-सद.) राजा के दिये अन्न, वृत्ति को प्राप्त कर (नि सेदुः) पदो पर विराजे, इस प्रकार हे (सु-क्रतो) शुभ, उत्तम कर्म करने हारे ! (त्वया) तेरे द्वारा (रजांसि) समस्त जन और लोक (दृढ़ानि) कर्त्तव्यपरायण, दृढ़, बलवान् हो ।

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(तत् सत्यम् इत्) यह बात सर्वथा सत्य है, कि (त्वा-वान् अन्य न अस्ति) तेरे जैसा दूसरा और नहीं है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वन् ! तेरे जैसा (न देव· न मर्त्य. ज्यायान्) न देव और मर्त्य ही तुझ से बड़ा है । (परि-शयानम्) सब ओर फैले (अहि) मेघ को जिस प्रकार विद्युत्, सूर्य (अहन्) छिन्न भिन्न करता है, और (अर्ण. अव असृज) जल को नीचे गिराता है और (अप. समुद्रम् अच्छ अवासृज) जलो को समुद्र या अन्तरिक्ष की ओर बहा देता या मेघ रूप मे उठा देता है उसी

प्रकार हे राजन् ! तू भी (परि-शयानम्) शान्त रूप से फैले (अहि) आगे आये शत्रु को (अहन्) नाश करे । (अर्णः) धन को उत्पन्न करे और (अपः अच्छ समुद्रम्) आप्त प्रजाओं को समुद्र के समान गंभीर पुरुष के प्रति सौंप दे ।

त्वम॒पो वि दुरो॒ विषू॑ची॒रिन्द्र॑ दृ॒ळ्हम॑रुजः॒ पर्व॑तस्य ।
राजा॑भवो॒ जग॑तश्चर्षणी॒नां सा॒कं सूर्यं॑ ज॒नय॒न्द्यामु॒षास॑म् ॥५॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! जिस प्रकार सूर्य मेघ के जलों को सब ओर वर्षाता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू (अपः) अपनी आप्त प्रजाओं को (दुरः) शत्रुसंतापक सेनाओ को (विषूचीः वि) विविध दिशाओ मे भेज, और (पर्वतस्य) मेघ वा पर्वत के तुल्य शर-वर्षी, और अचल शत्रु के (दृढम्) दृढ़ सैन्य को (वि अरुजः) विविध प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर । तू (सूर्यम्) सूर्य, (द्याम्) तेज और (उषासम्) प्रभात वेला के समान सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, कान्तिमती स्त्री वा कामनावान् प्रजा और 'उषा' अर्थात् शत्रु को भस्म करने वाली सेना को (जनयन्) प्रकट करता हुआ (जगतः चर्षणीनाम्) जगत् भर के मनुष्यो के बीच में (राजा अभवः) सर्वोत्कृष्ट तेजस्वी राजा होकर रह । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३१]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ३ पंक्तिः । ४ निचृदतिशक्वरी । ५ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभू॒रेको॑ रयिपते रयी॒णामा हस्त॑योरधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः ।
वि तो॒के अ॒प्सु तन॑ये च॒ सूरेऽवो॑चन्त चर्ष॒णयो॒ विवा॑चः ॥१॥

भा०—हे (रयिपते) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (रयीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों का (एकः) अकेला ही स्वामी (अभूः) है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-

वन् ! तू (हस्तयोः) अपने हाथो मे (कृष्टीः) कृषिकारिणी समस्त प्रजाओ और शत्रुओ का कर्षण, विनाश करने वाली समस्त सेनाओं को भी (अधिथाः) धारण कर, उनका स्वामी बना रह । (चर्पणयः) ये मनुष्य (अप्सु) अन्तरिक्ष मे सूर्य के सदृश (अप्सु) प्रजाजनो मे (सूरे) सब के संचालक (तोके तनये च) पुत्र, पौत्र आदि के सम्बन्ध मे (वि वाचः) विविध प्रकार के वचन, विविध बाते, वा स्तुतियां (वि अवोचन्त) विविध प्रकार से कहे, अथवा (चर्पणयः) न्याय, राज्यशासन के द्रष्टा विद्वान् पुरुप (वि-वाचः) विशेप वाणियो के ज्ञानी अमुक के पुत्र, अमुक के पौत्र, तेजस्वी पुरुप के सम्बन्ध मे विविध प्रकार से विवाद करके निर्णय करें कि कौन सभापति वा राजा हो । अथवा विद्वान् जन पुत्र पौत्रादि मे तथा (सूरे) नायक तेजस्वी पुरुप मे (वि-वाचः अवोचन्त) विविध विद्याओ का उपदेश करे ।

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वत् भिया) तुझ से भयभीत होकर, तेरे शासन मे (विश्वा पार्थिवानि) समस्त पृथिवी के जन्तु (अच्युता) स्वय नष्ट न होकर भी (रजांसि चित् च्याव-यन्ते) अन्य लोको को भी मार्ग पर जाने देते हैं, वे एक दूसरे का नाश नहीं करते । (ते अज्मन्) तेरे बडे भारी बल के अधीन (द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी के तुल्य समस्त नर नारी, (पर्वतासः) पर्वतों या मेघों के तुल्य बडे २ प्रजापालक जन और (वनानि) जंगल, वा सेव्य नाना ऐश्वर्य (विश्वं दृढं) सब पदार्थ स्थिर रहकर भी विद्युत् के समान (भयते) भय करता है, तेरा शासन स्वीकार करता है । विद्युत् के प्रहार से जैसे मेघ (पार्थिवानि रजांसि) पृथिवी से लिये जलो को नीचे गिरा देते हैं । सब उसके भय से कांपते हैं ।

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्युत के समान तेजस्विन् ! शत्रुहन्तः ! हे (इन्द्र) भूमि के विदारक ! कृषक ! (त्वं) तू (कुत्सेन) वज्र या हथियार, हल के बल से (अशुषम् शुष्णम्) कभी न सूखने वाले, अपार जल के बल को प्राप्त करके (गविष्टौ) बैलो, तथा भूमि की इष्टि अर्थात् प्राप्ति और उसमे बीज वपन आदि करके (कु-यवं) कुत्सित जौ आदि धान्य उत्पन्न करने के दोष को (अभि यु-ध्य) दूर कर । और उत्तम अन्न प्राप्त कर । इसी प्रकार हे राजन् ! तू शस्त्र बल से अपार बल प्राप्त करके (गविष्टौ) भूमि को प्राप्त करने के लिये (कुयवं) कुत्सित अन्न खाने वाले अथवा कुत्सित उपायो से प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट जन का (अभि युध्य) बराबर मुक़ाबला किया कर । (अध) और (प्रपित्वे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (सूर्यस्य दश रपांसि) सूर्य के दसो हननकारी बलों को (मुषायः) प्राप्त कर और (चक्रम् अविवेः) राष्ट्र मे चक्र का सञ्चालन कर अथवा (सूर्यस्य चक्रम्) सूर्य के चक्र या बिम्ब या ग्रह चक्र के समान अपने राज चक्र को (मुषायः) उसके अनुकरण मे चला वा (मुषायः = पुषायः) पुष्ट कर । (रपांसि अविवेः) हनन साधन सैन्यों को सञ्चालित कर तथा (रपांसि) पापकारी दुष्ट पुरुषो को (दश) नष्ट कर, वा (दश अविवेः) दशो दिशाओं से दूर कर ।

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (शचीवः) शक्तिशालिन् ! हे बुद्धिमन ! हे (सु-तक्रे, सुत-क्रे) सुप्रसन्न ! हे उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत ! उत्तम वेतन पर बद्ध अथवा उत्तम ऐश्वर्यों मे अन्यो और अन्यो के श्रमो को अपने लिए

खरीदने मे समर्थ (त्वं) तू (शम्बरस्य) शान्ति के नाशक (दस्योः) प्रजा के नाशकारी, दुष्ट एवं शत्रु के (शतानि) सैकड़ो और (अप्रतीनि) अप्रतीत, न मालूम देने वाली, गुप्त स्थानो और (पुरः) नगरियो, वस्तियो को भी (अव जघन्थ) पता लगा और नाश कर। (यत्र) जिस राष्ट्र मे तू (सुन्वते) ऐश्वर्य बढ़ाने वा अभिषेक करने वाले (दिवः दासाय) तेजस्वी सूर्यवत् तेरे पास भृत्यवत् सेवक प्रजाजनों को और (गृणते) उपदेश करने वाले (भरद्-वाजाय) ज्ञानधारक विद्वान् पुरुप को तू (वसूनि अशिक्षः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे वहां तू सुख से विराज ।

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमातिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः॥५॥३॥

भा०—हे (सत्य-सत्वन्) सत्यपालक बलवान् पुरुषों के स्वामिन् ! हे सत्य अन्तःकरण और बल वाले ! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्यशालिन् ! तू (महते रणाय) बडे भारी संग्राम के लिये (भीमम्) भयजनक (रथम्) रथ वा रथ सैन्य पर (आ तिष्ठ) बैठ, उस पर शासन कर। हे (प्र-पथिन्) उत्तम मार्ग चलने हारे वा उत्तम अश्व यानादि के स्वामिन् ! तू (अवसा) रक्षा, बल तथो ज्ञान सहित (मद्रिक्) मेरे समीप (उप याहि) प्राप्त हो और (चर्पणिभ्यः) विद्वान्, ज्ञानद्रष्टा पुरुपो से (प्र श्रुत च) उत्तम २ वचन सुना कर (चर्पणिभ्यः प्र श्रावय च) मनुष्यों के हितार्थ उत्तम ज्ञानो को सुनाया भी कर। इति तृतीयो वर्ग ॥

[३२]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पङ्क्तिः । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ५ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥

भा०—मैं (अस्मै) इस (महे) महान्, (तवसे) बलवान् (तुराय) वेग से कार्य करने वाले, अप्रमादी, (वीराय) विविध ज्ञानों के उपदेष्टा, विविध शत्रुओं को कम्पित करने वाले, (विरप्शिने) अति प्रशस्त, विशेष रूप से, और विविध प्रकारों से स्तुति के योग्य, (वज्रिणे) शक्तिशाली, (स्थविराय) स्थिर, वृद्ध, कूटस्थ प्रभु के (अपूर्व्या) अपूर्व, सबसे आदि, परम पुरुष के योग्य (पुरुतमानि) अति श्रेष्ठ, बहुत से (शंतमानि) अति शान्तिदायक, (वचांसि) वचनों को मैं (आसा) मुख से (तक्षम्) उच्चारण किया करूं।

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् तथा बलवान् पुरुष (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष द्वारा (कवीनाम्) क्रान्तदर्शी विद्वानों के (मातरा) माता पिता, उत्पादक राष्ट्र के नर नारी जनों को (अवासयत्) सुखपूर्वक बसावे, अर्थात् भावी में उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता बनने वाले बालक बालिकाओं की राजा तेजस्वी गुरु के समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने की व्यवस्था करे। और वह स्वामी वा गुरु (गृणानः) उपदेश करता हुआ (अद्रिं रुजत्) अभेद्य अज्ञान को, मेघ को सूर्यवत नाश करे। जिस प्रकार (वावशानः) कान्ति से चमकता हुआ सूर्य (सु-आधीभिः ऋक्वभिः उस्रियाणां निदानम् उत् असृजत्) उत्तम जलधारक तेजोयुक्त किरणों द्वारा कान्तियों का और मेघों द्वारा जल-धाराओं का दान कराता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वह (वावशानः) निरन्तर कामना करता या चाहता हुआ, स्नेहवान् होकर (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यान और धारणा वाले विद्वानों, (ऋक्वभिः) अर्चना योग्य, उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुषों द्वारा (उस्रियाणाम्) ज्ञान-वाणियों के (निदानम्) निश्चित रूप दान (उद् असृजत्) करे, इसी प्रकार राजा, सूर्यवत तेजस्वी पुरुष द्वारा

(अद्रि) अभेद्य शत्रु का नाश करता हुआ, शासन करे, विद्वानो के माता पिता रूप सभा, सभापति दोनो की स्थापना करे। उत्तम बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषो से (उस्त्रियाणां निदानम्) वाणियो के निर्णय, तथा भूमियों के सुप्रबन्ध (उत् असृजत्) उत्तम रीति से करे।

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ३

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (ऋक्वभिः) पूजा करने योग्य प्रशंसनीय, (वह्निभिः) कार्य भार को अपने ऊपर लेने मे समर्थ, (मित-ज्ञुभिः) जानुओ को सिकोड कर वैठने वाले, सुसभ्य वा, परिमित, नपे हुए जानु या गोड़े बढ़ाने वाले, एक चाल से चलने वाले, (सखिभिः) एक समान नाम वा ख्याति वाले वीरो वा विद्वान् जनो के साथ (सखीयन्) मित्रवत् आचरण करता हुआ, (शश्वत्) सदा (गोषु) भूमियो और वेद-वाणियो को प्राप्त करने के निमित्त, (पुरु-कृत्वा) बहुत से कर्म करने हारा विद्वान् पुरुष (जिगाय) विजय करे और उनके सहाय से ही वह (पुरोहा) शत्रु के पुरो का नाश करने हारा वा आगे आने वाले शत्रु को मारने हारा, (कविः) दूरदर्शी पुरुष स्वयं (कविः सन्) क्रान्तदर्शी होकर (दृढाः पुरः रुरोज) शत्रु की दृढ नगरियों को तोडे। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष समवयस्क विद्वान् उपदेष्टाओं से मित्रभाव करके सदा विजय लाभ करे, और स्वय क्रान्तदर्शी, तत्वज्ञानी होकर (पुरः) इन देहबन्धनों का नाश करे।

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुवितायु प्र याहि ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह राजा तू सदा (नीव्याभिः) प्राप्त करने योग्य उद्देश्यो को लक्ष्य मे रखने वाली वा 'नीवी' अर्थात नामावलि या पङ्क्तियों में सुव्यवस्थित सेनाओ तथा (महद्भिः वाजेभिः) बडे २ ज्ञानवान्, और

बलवान् पुरुषों तथा (महद्भिः शुष्मैः) बड़े २ बलो सहित (जरितारम्) स्तुतिशील तथा, स्वपक्ष को हानि करने वाले शत्रु जन को क्रम से पालन और हनन के लिये (अच्छ) सन्मुख होकर प्राप्त हो । हे (वृषभ) बलवन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों, और आज्ञाओ के देने वाले और स्तुतियों के योग्य ! तू (क्षितीनाम् सुविताय) प्रजाओं के सुख प्राप्त और ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये (पुरु-वीराभिः) बहुत से वीर पुरुषों से बनी सेनाओं सहित (प्र याहि) आगे बढ़ ।

स सर्गे॑ण॒ शव॑सा त॒क्तो अत्यै॑र॒प इन्द्रो॑ दक्षिण॒तस्तु॑रा॒षाट् ।
इ॒त्था सृ॑जा॒ना अन॑पावृ॒दर्थं॑ दि॒वेदि॑वे विविषुरप्रमृ॒ष्यम् ॥५॥४॥

भा०—(इन्द्रः सर्गेण तक्तः) जिस प्रकार विद्युत् वा वायु जल से पूर्ण होकर (दक्षिणतः अत्यैः) दक्षिण से वेग से आने वाले मेघों या वायुओं द्वारा (अपः सृजति) जलों को बरसाता है और वे (सृजाना दिवे दिवे अनपावृत् अर्थं विविषुः) उत्पन्न होकर दिनों दिन पुनः न लौटने योग्य गन्तव्य सागर को प्राप्त होजाते हैं उसी प्रकार (सः) वह वीर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (तुराषाट्) अपने वेग-वती सेना वा वेगयुक्त हिंसक भटों से शत्रुओं को विजय करने वाला होकर (सर्गेण) प्रजावत् (शवसा) सैन्य बल से (तक्तः) सुप्रसन्न, हृष्ट पुष्ट होकर (अत्यैः) वेगवान् अश्वगण सहित (अपः) आप्त प्रजावर्ग को प्राप्त करे । (इत्था) इस प्रकार से वे (सृजानाः) प्राप्त होती हुई प्रजाएं (दिवेदिवे) दिनों दिन (अनपावृत्) प्रत्यक्ष रूप से (अप्रमृष्यं अर्थं विविषुः) शत्रु से पराजय न होने वाले शरण योग्य पुरुष को प्राप्त करें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३२]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्पंक्तिः । ४ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यः) जो तू (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, (मदः) अतिहर्ष युक्त, (सु-अभिष्टिः) उत्तम आदरणीय रूप से प्राप्त, (दास्वान्) उत्तम दानों का दाता है, और (यः) जो तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी है, हे (वृषन्) बलवन् ! हे उत्तम प्रबन्धकर्त्तः ! वह तू (नः) हमे (तम्) उस नाना ऐश्वर्य हर्ष आदि को प्रदान कर। वह तू (सौवश्व्यं) उत्तम अश्व सैन्य के कारण प्राप्त होने योग्य यश को (वनवत्) प्राप्त कर, तू (समत्सु) संग्रामो मे (वनवत्) विघ्नों का नाश करे, और धनो को प्राप्त करे, और (अमित्रान् ससहत्) शत्रुओं का पराजय करे।

त्वां हीइन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वि वाचः) विविध विद्यायुक्त वाणियों को जानने वाले, वा विविध भाषाओं को बोलने वाले, नाना देश वासी, (चर्षणयः) मनुष्य (शूरसातौ) शूर पुरुषों द्वारा सेवन योग्य संग्राम मे (अवसे) रक्षा के निमित्त (त्वां हि) तुझ को ही (हवन्ते) पुकारते, वा रक्षक रूप से स्वीकार करते है। तू (विप्रेभिः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा ही (पणीन्) उत्तम, प्रशंसित, एवं व्यवहारवान् पुरुषो को भी (वि-अशायः) विशेष रूप से सुख की नींद सुला, वे तेरी रक्षा मे सुख से निश्चिन्त होकर रात बितावे। (त्वा-उताः) तुझ से सुरक्षित रहकर (इत्) ही (अर्वाः) अश्व के तुल्य वेग से जाने आने हारा पुरुष भी (वाजम्) अन्न ऐश्वर्यादि का (सनिता) भोग करता है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तान्) उन (उभयान्) दोनो प्रकार के (अमित्रान्) शत्रु और (दासा) सेवकों को (वृत्राणि) धनों और (आर्या) स्वामियों, वैश्यों के योग्य ऐश्वर्यों को भी प्राप्त कर। हे (शूर) हे शूरवीर ! तू विवेक से (सुधितेभिः वना इव) कुठारों से जंगल के वृक्षों के समान (अत्कैः) अपने बलों द्वारा शत्रुओं को (वधीः) विनाश कर और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हे (नृणां नृतम) नायकों में से उत्तम नायक तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (आ दर्षि) सब ओर से विदीर्ण कर और (दासा अर्यः) सेवक श्रेष्ठ जनों को (आदर्षि) आदर कर।

स त्वं न॑ इन्द्राक॑वाभिरू॒ती सखा॑ वि॒श्वायु॑रवि॒ता वृ॒धे भूः॑ ।
स्व॑र्षाता॒ यद्ध्वया॑मसि त्वा॒ युध्य॑न्तो ने॒मधि॑ता पृ॒त्सु शू॑र ॥४॥

भा०—हे शूर ! (यत्) जब (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम लोग (स्वः साता) सुख प्राप्त करने के लिये (पृत्सु) संग्रामों में (नेमधिता) आधे ऐश्वर्य को धारण करनेवाले होकर (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अकवाभिः) अनिन्दित वाणियों तथा (ऊती) रक्षा सामर्थ्य से (नः सखा) हमारा मित्र (विश्वायुः) सब मनुष्यों का स्वामी, (अविता) पालक और (वृधे भू) हमारी वृद्धि करने के लिये समर्थ आश्रय होता है।

नू॒नं न॑ इन्द्राप॒राय॑ च स्या॒ भवा॑ मृळी॒क उ॒त नो॑ अ॒भिष्टौ॑ ।
इ॒त्था गृ॒णन्तो॑ म॒हिन॑स्य॒ शर्म॑न्दि॒वि ष्या॑म॒ पार्ये॑ गो॒षत॑माः ॥५॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! दुःखविदारक ! तू (नूनं) निश्चय से (अपराय) दूसरे के लिये भी (मृळीक) दयार्द्र, सुख कर (स्याः) हो। (उत) और (नः) हमें (अभिष्टौ) प्राप्त होने पर भी (मृळीक भव) सुखकारी हो। (इत्था) इस प्रकार (गृणन्तः) स्तुति करते हुए

हम (महिनस्य) महान् सामर्थ्यवान् तेरे (दिवि) कान्तियुक्त, कमनीय, सुन्दर, (पार्ये) सब को पूर्ण करनेवाले और पालक (शर्मन्) सुखमय शरण मे (गोस-तमा.) उत्तम ज्ञानवाणी, गवादि पशुओ और भूमियो का सुख सेवन करने वाले (स्याम) हों । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३४]

शुनहोत्र ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

सं च॒ त्वे ज॒ग्मुर्गिर॑ इन्द्र पू॒र्वीर्वि च॑ त्वद्य॑न्ति वि॒भ्वो॑ मनी॒षाः ।
पु॒रा नू॒नं च॑ स्तु॒तय॒ ऋषी॑णां पस्पृ॒ध्र इन्द्रे॒ अध्यु॑क्था॒र्का ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन् ! प्रभो ! (पूर्वी.) सबसे पूर्व की, उत्तम, (गिर.) वाणिया (त्वे) तुझ मे ही (संजग्मु.) संगत, चरितार्थ होती हैं, तुझ मे ही समन्वित होती है, और (विभ्वः मनीषा) विशेष समर्थ बुद्धियां भी (त्वत् वियन्ति च) तुझ से विशेष रूप मे प्रकट होती हैं । (इन्द्रे अधि) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त ही (ऋषीणां स्तुतय च) मन्त्रार्थ द्रष्टाओ की स्तुतियां, प्रवचन, (उक्थ-अर्का) उत्तम अर्चना योग्य वचन (नूनं) अवश्य (पस्पृध्रे) एक दूसरे की स्पर्धा करते, वे सब एक दूसरे से उत्तम जंचते हैं ।

पु॒रु॒हू॒तो यः पु॑रुगू॒र्त ऋभ्वाँ॒ एकः॑ पुरुप्रश॒स्तो अस्ति॑ य॒ज्ञैः ।
रथो॒ न म॒हे शव॑से युजा॒नो॒३॒॑ऽस्माभि॒रिन्द्रो॑ अनु॒माद्यो॑ भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पुरुहूत.) बहुतों से स्तुति किया गया, (पुरु-गूर्त) बहुतों से उद्यम किया गया, अर्थात् जिसके निमित्त बहुत से उद्यम करते हैं, (य) जो (ऋभ्वा) सत्य के बल पर महान् (यज्ञै) यज्ञों और ईश्वरपूजा अर्चनादि द्वारा (पुरु-प्रशस्त) बहुतो से अच्छी प्रकार स्तुति किया जाता है, वह (महे) बडे (शवसे) बल की वृद्धि के लिये

(अस्माभिः युजानः) हम लोगों से योग द्वारा, उपासित (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, (रथः न) महान् रथ के समान (अनुमाद्यः भूत्) प्रति दिन स्तुति योग्य और हर्ष अनुभव कराने हारा हो।

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै॥३॥

भा०—(यं) जिसको (धीतयः) नाना कार्यस्तुतिये भी (न हिंसन्ति) कष्ट नहीं देती और (न वाणीः) न नाना वाणियां या याचनाएं भी विघ्न करती है। और वे (अभि वर्धयन्तीः इत्) इसको बढ़ाती हुई (इन्द्रं नक्षन्ति) ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही व्यापती है, उसमे ही चरितार्थ होती है। (यदि शतं स्तोतार, यत् सहस्रं स्तोतार) चाहे सौ स्तुतिकर्त्ता वा सहस्र स्तुतिकर्त्ता हो तो भी जब वे (गिर्वणसं गृणन्ति) समस्त स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाले, उस प्रभु की ही स्तुति करते हैं (तत्) तो भी यह सब अर्चनादिक (अस्मै) इस जीव को (शं) शान्तिदायक ही होता है।

अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः॥४॥

भा०—(दिवि इन्द्रे मासा यथा सोमः मिमिक्षे) आकाश तेजोमय सूर्य मे जिस प्रकार 'सोम' अर्थात् चन्द्र एक मास के बाद (मिमिक्षे) उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार (एतत् सोम) यह उत्पन्न होने वाला जीव, विद्वान् पुरुष, (अस्मै) अपने सुधार के लिये ही अपने जीव को भी (दिवि इन्द्रे) कामना योग्य ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर मे (अर्चा एव) अर्चना द्वारा ही, (सं मिमिक्षे) मिल जाता है, इसी प्रकार यह जीव भी (नि अयामि) नम्र, विनीत होकर प्राप्त हो। (धन्वन्) अन्तरिक्ष या मरुस्थल मे जैसे (आपः सम् अभि ववृधुः) जल [illegible] को

वढाते या शक्ति युक्त करते है उसी प्रकार (आप.) आप्त प्रजाजन (सत्रा) सदा (यज्ञै.) यज्ञो द्वारा (हवनानि वावृधुः) हवनो को बढ़ाते है, उसी प्रकार हम यज्ञो द्वारा उस प्रभु का यश वढ़ावे ।

अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥६॥

भा०—(मतिभि.) मननशील विद्वान पुरुषो द्वारा (अस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के लिये (एतत्) यह (महि) महत्व पूर्ण, (आगूषम्) ग्रहण करने योग्य, (स्तोत्रं) स्तुति वचन (अवाचि) कहा या उपदेश किया जावे (यथा) जिससे (महति) बड़े भारी (वृत्र-तूर्ये) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो के नाश करने वाले संग्राम के अवसर मे (इन्द्र) वह ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (विश्वायु) पूर्णायु, सर्वत्र पहुचने मे समर्थ, समस्त मनुष्यों का स्वामी, (अविता) सबका रक्षक (वृधः च असत्) सबका बढ़ाने हारा हो । इति षष्ठो वर्गः ॥

(३५)

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! तेरे (रथ-क्षयाणि) रथो मे वा रमण, योग्य साधन, उत्तम प्रासाद आदि स्थानो मे निवास करने के कार्य (कदा भुवन) कब होंगे, और (स्तोत्रे) स्तुतियोग्य कार्य मे अथवा स्तुति उपदेश करने वाले विद्वान् जन को (सहस्रपोष्यं ब्रह्म) सहस्रों को पोषण करने वाला धन (दा) देवे, (राया) और धनैश्वर्य से युक्त (अस्य) इस राष्ट्र के (स्तोम) स्तुत्य पद वा जन संघ को (कदा वासय) कब बसावे

अलङ्कृत करे, और (कदा) कब २ (वाजरत्नाः) अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि रमणीय पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (धियः) नाना कर्म तू (करसि) करे। इत्यादि सब विवेकपूर्वक समय नियत कर।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कर्हि स्वित् तत्) कब ऐसा हो (यत्) कि तू (वीरैः नृभिः) वीर पुरुषों से (वीरान् नीडयासे) वीर को मिलावे और (कर्हि स्वित् आजीन् जय) कब संग्रामों को विजय करे। और कब (त्रिधातु) स्वर्ण, रजत और लोह से युक्त (गाः) भूमियों पर (अधि जयसि) जीत कर अधिकार करे। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मे) हम प्रजाजन के उपकार करने के लिये (गोषु) उत्तम भूमियों में (स्वर्वत् द्युम्नं) सुख से युक्त, सुखप्रद धन (धेहि) अन्न उपन्न करावे। इत्यादि सब बातों का ठीक २ काल जान।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३॥

भा०—हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (कर्हि स्वित्) कब २ (जरित्रे) विद्वान् पुरुषों को (विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः) समस्त प्रकार के अन्न, धन आदि प्रदान करे। (कदा) कब २ (धियः) नाना कर्मों, प्रज्ञाओं तथा उनके करने वाले बुद्धिमान् पुरुषों को (नियुतः न) अपने अधीन नियुक्त पुरुषों या अश्वों के समान (युवसे) कार्य में लगावे, और (कदा) कब २ (गो-मघा) भूमियों के धनस्वरूप (हवनानि) ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न, कर आदि पदार्थों को (गच्छाः) प्राप्त करे। इत्यादि का ठीक ठीक काल नियत कर।

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥

भा०—(स.) वह तू (जरित्रे) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के लिये (गो-मघा) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्य, भूमि, राज्य, धन, (अश्व-चन्द्रा) वेग से जाने वाले अश्व आदि आह्लादकारक (वाज-श्रवस.) वल कारक अन्नो से युक्त (पृक्ष.) प्राप्त करने योग्य नाना पदार्थ, (अधि धेहि) अपने अधिकार में रख और प्रदान कर। तू (इप.) नाना अन्नो को (पिपीहि) पान कर, (इप. पिपीहि) आज्ञा वशवर्ती सेनाओ का पालन कर। (इप पिपीहि) कामना योग्य प्रजाओ की वृद्धि कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सु-दुघा धेनुम्) उत्तम रीति से दोहने योग्य गौ के तुल्य इस भूमि और वाणी को और (सु-रुच·) उत्तम कान्तियुक्त तथा रुचिकारक पदार्थों को (भरद्-वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य संग्रह करने वाले पुरुषो के अधीन (रुरुच्याः) उनको अधिक रुचिकर बना।

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! तू (यत्) जब (दुरः) द्वारों तथा शत्रुवारक सेनाओ को (वि गृणीषे) विविध प्रकार से आज्ञाएं देवे तब (शूर) शूरवीर होकर (नूनं) निश्चय से (वृजनम्) जाने के मार्ग को (अन्यथा चित्) विपरीत (मा आगृणीषे) कभी मत बतला। (शुक्र दुघस्य) जल को दोहन करने वाले मेघ के सदृश शुक्र या श्वेत कान्ति के धन या यश का दोहन करने वाले राजा की (धेनो) विद्युत के समान, वाणी, वा गौ के तुल्य भूमि से उत्पन्न (ब्रह्मणा) अन्न के तुल्य वृद्धिशील धन से हे (विप्र) विद्वन् ! तू (अङ्गिरसान) अंगारे के समान तेजस्वी, देह मे प्राणो के तुल्य, राष्ट्र मे बसे विद्वान शक्तिशाली पुरुषो को (अरम्) खूब अच्छी प्रकार से (निर् जिन्व) सब प्रकार से तृप्त कर, उनको बढा। इति सप्तमो वर्गः ॥

[३६]

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ भुरिक् पंक्तिः । स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

स॒त्रा मदा॑स॒स्तव॑ वि॒श्वज॑न्याः स॒त्रा रायोऽध॒ ये पार्थि॑वासः ।
स॒त्रा वाजा॑नामभवो विभ॒क्ता यद्दे॒वेषु॑ धा॒रय॑था असु॒र्य॑म् ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो तू (देवेषु) समस्त तेजस्वी पुरुषों के बीच में किरणों के बीच सूर्य के समान (असुर्यम्) सबके प्राणों के हितकारी बल, अन्नादि को (धारयथाः) धारण करता है, अतः तू (वाजानाम्) ऐश्वर्यों, अन्नों का (सत्रा विभक्ता अभवः) सत्यपूर्वक विभाग करने वाला हो । (तव मदासः = दमासः) तेरे समस्त हर्ष करने वाले कार्य और राष्ट्र दमनकारी उपाय (सत्रा) सदा वा सचमुच (विश्व-जन्या) समस्त जनों के हितकारी हों । (अध ये) और जो (पार्थिवासः रायः) पृथिवी के ऊपर प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्य हों वे भी (सत्रा) सदा, सचमुच (विश्व-जन्याः) सर्वजन हितकारी हों ।

अनु॑ प्र ये॑जे॒ जन॒ ओजो॑ अस्य स॒त्रा द॑धिरे॒ अनु॑ वी॒र्या॑य ।
स्यू॒म॒गृभे॑ दु॒धये॒ऽर्व॑ते च॒ क्रतुं॑ वृञ्ज॒न्त्यपि॑ वृत्र॒हत्ये॑ ॥ २ ॥

भा०—(अस्य ओजः) इसके बल पराक्रम को (जनः) मनुष्य लोग (अनु येजे) प्रति दिन आदर से देखे, और (प्र येजे) उत्तम रीति से स्वीकार करे । (अस्य वीर्याय) इसके बल बढ़ाने के लिये (सत्रा अनु दधिरे) सदा सत्य व्यवहारों को धारण करे । (अपि) और (वृत्र-हत्ये) वारण करने योग्य, बढ़ते शत्रु को नाश करने के लिये (स्यूम-गृभे) एक दूसरे से सम्बद्ध, दृढ़ सैन्य को वश करने वाले (दुधये) शत्रुहिंसक (अर्वते) आगे बढ़ने वाले वीर पुरुष के योग्य (क्रतुं) कर्म को (वृञ्जन्ति) किया करें ।

तं स॒ध्रीची॑रू॒तयो॒ वृष्ण्या॑नि॒ पौंस्या॑नि नि॒युतः॑ सश्चु॒रिन्द्र॑म् ।
स॒मु॒द्रं न सिन्ध॑व उ॒क्थशु॑ष्मा उरु॒व्यच॑सं॒ गिर॒ आ वि॑शन्ति ॥३॥

भा०—(तं) उस (इन्द्रम्) सत्य न्याय और ऐश्वर्य को धारण करने वाले पुरुष को (ऊतयः) रक्षा करने वाले समस्त सैन्यादि साधन, (सध्रीची·) एक साथ चलने वाली सेनाएं और (वृष्ण्यानि पौंस्यानि) बलशाली पुरुषो के बने सैन्य और (नियुतः) नियुक्त, लाखो, जन, (सश्चु·) प्राप्त होते है और (उक्थ-शुष्माः गिरः) उत्तम प्रशंसनीय· बल से युक्त वा वचन २ मे बल धारण करने वाली वाणियां (उरु-व्यचसं) उस महान, पराक्रमी पुरुष को (सिन्धव· समुद्रं न) समुद्र को नदियो के समान (आ विशन्ति) प्राप्त होकर उसमे आश्रय लेती हैं ।

स रा॒यस्खामुप॑ सृजा गृणा॒नः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॒ त्वमि॑न्द्र॒ वस्वः॑ ।
पति॑र्बभू॒थास॑मो॒ जना॑ना॒मेको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॑ ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वम्) तू (गृणान) हमे उपदेश करता हुआ और हम से स्तुति प्राप्त करता हुआ, (पुरु-चन्द्रस्य) बहुतों को सुखी करने वाले (वस्वः) धनों और (राय) देने लेने योग्य ऐश्वर्य की (खाम्) खुदी नहर के समान (उप सृज) बनाकर बहा दे । तू (जनानां) मनुष्यों के बीच मे (असम) अनुपम, (एकः) अद्वितीय (पति) पालक और (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त ससार का राजा (बभूव) हो ।

स तु श्रु॑धि॒ श्रुत्या॒ यो दु॑वो॒युर्द्यौर्न भूमा॒भि रायो॑ अ॒र्यः ।
असो॒ यथा॑ नः॒ शव॑सा चका॒नो यु॒गेयु॑गे॒ वय॑सा॒ चेकि॑तानः ॥५॥८॥

भा०—(य) जो (द्यौ न) सूर्य के समान तेजस्वी (दुवोयु) परिचर्या की कामना करता हुआ, (भूम राय अभि) बहुत बडे ऐश्वर्य को प्राप्त कर (अर्य) सबका स्वामी है (स) वह तू (श्रुत्या)

श्रवण करने योग्य, प्रजाओं के वचनों को (श्रुधि तु) अवश्य श्रवण कर (यथा) जिससे तू (युगे युगे) प्रति वर्ष, (वयसा) दीर्घ आयु (शवसा) और बल, ज्ञान से (चकानः) कान्ति युक्त और (चेकितान.) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारा प्रिय (असः) हो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[३७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत्पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य॥ १॥

भा०—हे (उग्र) उद्वेगजनक बलवन्! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (युक्तासः हरयः) नियुक्त मनुष्य अश्वों के समान (ते) तेरे (विश्ववारं) सबों से वरण करने योग्य (रथं) रथवत् रमण करने योग्य राष्ट्र चक्र को (वहन्तु) धारण करें। (स्वर्वान्) सुख और उत्तम उपदेश ज्ञान से युक्त (कीरिः) विद्वान् पुरुष (त्वा हवते) तुझे उपदेश दे वा विद्वान् जन तुझे स्वीकार करे। (अद्य) आज (ते) तेरे (सधमाद.) साथ हर्षित और प्रसन्न होने वाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध हों।

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा॥२॥

भा०—(हरयः) मनुष्य (द्रोणे) राष्ट्र में रहते हुए (कर्म) किसी भी उपयोगी कर्म को (प्र अग्मन्) अच्छी प्रकार करें। वे (पुनानास) पवित्र, स्वच्छ रहते हुए (ऋज्यन्त. अभूवन्) ऋजु, सरल धर्मानुकूल आचरण करते हुए रहें। (न॰) हममें से (इन्द्र) ऐश्वर्यवान, समृद्ध पुरुष (पूर्व्य.) पूर्व, सबसे प्रथम पूजा प्राप्त करने योग्य, या पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों द्वारा नियत हो। वह (अस्य) इस राष्ट्र को (पपीयात्)

निरन्तर पालन और उसको उपभोग तथा समृद्ध करे। वह (द्युक्ष:) आकाश के समान भूमि के राज्य को विस्तृत करनेहारा, व सूर्यवत् चमकने वाला, तेजस्वी पुरुष राजा होकर (सोम्यस्य) सोम, राज्यैश्वर्य पद के योग्य (मदस्य) आनन्द, हर्ष, तृप्ति, सुख उपभोग का (पपीयान्) लाभ करे।

आ सस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३॥

भा०—(रथ्यास: अश्वा:) रथ में लगने योग्य अश्वों के समान उत्तम धुरन्धर विद्वान् जन (शवसानम् इन्द्रम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् राजा को (अच्छ आ-सस्राणासः) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हुए, (ऋज्यन्त:) ऋजु, सरल सीधे, धार्मिक मार्ग पर गमन करते हुए (श्रवः अभि वहेयु:) ऐश्वर्य, उत्तम कीर्त्ति प्राप्त करावें और वह (नू चित्) अति शीघ्र ही (सु-चक्रे) उत्तम चक्र युक्त रथ के समान उत्तम राज्य चक्र में (वायो:) वायु के समान बलवान्, सबके प्राणप्रद (अमृतं) अविनाशी दीर्घायु, पद को प्राप्त कर (नु) दुःखों को (वि दस्येत्) नष्ट करे। अथवा (नूचित् इति निषेधे) वह उस अविनाशी पद का नाश न करे। अध्यात्म में—आत्मा के 'अश्व' प्राणगण हैं देह सुचक्र है। इसको अन्न, बल और ज्ञान प्राप्त करावें। जिससे वह आत्मा 'वायुवत्' जीवनप्रद, ज्ञानमय प्रभु के अमृतपद को प्राप्त कर दुःखों का नाश करे।

वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४ ॥

भा०—(मघोनाम्) धन सम्पन्न पुरुषों में से (वरिष्ठः) सबसे उत्तम वरने योग्य, एवं सबसे श्रेष्ठ, दुःखों को दूर करने वाला और (तुवि-कूर्मितम) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाला, पुरुष ही

(इन्द्रः) इन्द्र, ऐश्वर्य के राजपद के योग्य होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (दक्षिणाम्) दक्ष, अर्थात् बल से युक्त, बलवती, उस सञ्चालक शक्ति सैन्यादि और बलप्रद अन्न धनादि को भी (इयर्त्ति) प्राप्त होता और चलाता है। हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! (यया) जिससे (अंहः) पाप अपराध आदि को (परि यासि) दूर करता है। हे (धृष्णो) दुष्टों का दमन करने हारे ! तू (यया) जिस महती शक्ति द्वारा (सूरीन्) उत्तम विद्वानों को (मघा दयसे) दान करने योग्य धनों, अन्नों को देता और पालता है। (२) इसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष ही बहुत से कर्म करके दक्षिणा देता है। जिससे वह पाप को नाश करता और विद्वान् को धन अन्नादि देकर पालता है।

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५॥९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (स्थविरस्य) स्थिर और बड़े (वाजस्य) अन्न, धन, बल का (दाता) देने वाला हो। वही (इन्द्रः) विद्या आदि का दाता, आचार्य (वृद्ध-महाः) वृद्धों द्वारा भी सत्कार करने योग्य होकर (गीर्भिः) उत्तम उपदेश योग्य वाणियों से (वर्धताम्) राष्ट्र की वृद्धि करे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (हनिष्ठः) खूब दण्ड देने वाला (अस्तु) हो। वह (सूरिः) विद्वान् पुरुष (तूतुजानः) दुष्टों का निरन्तर नाश करता, और सज्जनों को दान देता हुआ (सत्वा) बलवान् सात्विक पुरुष (ता) उन नाना धनों को पूर्ण करे और दे। इति नवमो वर्गः ॥

(३८)

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अपादित उदु नश्चित्रतमो मही भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

भा०—(चित्र-तम) अति आश्चर्यजनक कार्य करने हारा, अति पूज्य, सबसे उत्तम ज्ञानदाता, राजा और विद्वान् पुरुष (नः) हमे (इतः) प्राप्त होकर (अपात् उत् उ) सदा पालन करे। वह (मही) पूज्य, बड़ी (द्युमतीम्) तेजोयुक्त (इन्द्र-हूतिम्) ऐश्वर्य की देने वाली भूमि और ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान् द्वारा उपदेश करने योग्य वाणी को भी (भर्षत्) पालन और धारण करे। वह (सु-दानुः) उत्तम दाता होकर (दैव्यस्य जनस्य) मनुष्यो और राजा के हितकारी प्रजाजन के (यामम्) नियन्त्रण करने के शासन कार्य मे (पन्यसीं धीतिं) स्तुति योग्य धारण, सामर्थ्य, स्तुति प्राप्त करे और (रातिं) दानशीलता को भी (वनते) सेवन करे, दान योग्य धन प्रदान करे। परमेश्वर वा आत्मापक्ष मे—(अपात्) पाद आदि अवयवो से रहित वह अद्भुतकर्मा है वह, द्युलोक सहित भूमि को धारण करता है, इत्यादि।

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

भा०—(दूरात् चित्) दूर देश से (आ) आकर (वसतः) शिष्य रूप से रहने वाले (अस्य) इस उपस्थित शिष्य जन के (कर्णा) दोनो कानो को (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (घोषात्) वेद मे (ब्रुवाणः) ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् (तन्यति) अधिक विस्तृत करे, उसको अधिक ज्ञानवान् बनावे। (इयम् देव-हूति.) यह विद्वान् पुरुष का विद्यादान वा देव अर्थात् विद्या की कामना करने वाले शिष्य जन की प्रार्थना (इन्द्रम्) उस विद्यादाता के आचार्य के प्रति (ऋच्यमाना) स्तुति करती हुई (मद्र्यक्) मुझ शिष्य के प्रति (एनम्

आववृत्यात्) उस गुरु को आवर्त्तन करे, मेरे प्रति उसका ध्यान और स्नेह आकर्षण करे।

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ३

भा०—हे विद्वान् लोगो! (वः) आप लोगों के बीच (परमया) सबसे उत्तम (धिया) बुद्धि और कर्म से युक्त (पुराजाम्) पूर्व उत्पन्न, (अजरम्) हानिरहित, (इन्द्रम्) ज्ञानप्रद गुरु को मैं (अर्कैः) आदर सत्कार योग्य उपचारों से (अभि अनूषि) साक्षात् स्तुति उपासना करूं। (अस्मिन्) इसके अधीन रहकर विद्वान् शिष्य जन (ब्रह्म) वेदज्ञान और (गिरः च) उपदेशयोग्य विद्या, वाणियों को (दधिरे) धारण करे। और (इन्द्रे अधि) उस विद्या-ऐश्वर्य के धारण करने कराने वाले गुरु की अध्यक्षता में (स्तोमः) उपदेश योग्य ज्ञान, वेदमय कोष, (वर्धत्) बड़ा भारी हो जाता है। (२) वह परमेश्वर, परम शक्ति ज्ञान से सम्पन्न, सनातन, अजर, अमर है। उसकी मन्त्रों से स्तुति करूं। वह महान् बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और वेद वाणियों, स्तुतियों को धारण करता है।

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा विद्वान् को (यज्ञः) परस्पर का सत्संग, आदर, मान, प्रतिष्ठा, और करादि देना, (वर्धात्) बढ़ाता है, (यं सोमः वर्धात्) जिसको सौम्य विद्वान् शिष्य, पुत्र, ऐश्वर्य, ओषधि अन्नादि, बढ़ाते हैं, और जिसको (ब्रह्म) बड़ा धन, बड़ा ज्ञान, बड़ा राष्ट्र तथा (गिरः) वाणियां और (मन्म उक्थ च) मनन करने योग्य उत्तम २ वचन भी (वर्धान्त) बढ़ाते हैं। (अक्तोः यामन्) रात्रि के बीतने या सर्वप्रकाशक सूर्य के आगमन पर (एनम् उषसः) उस सूर्य को उषाओं के समान (उषस)

शत्रु को दग्ध करने वा सन्तप्त, पीडित करने वाली सेनाएं (अक्तोः यामन्) तेजस्वी राजा के प्रयाण के समय मे 'अक्तु' अर्थात् स्नेहयुक्त राष्ट्र के शासन काल मे (वर्ध अह) निश्चय से बढाता है। और (मासाः) मास (शरद) वर्ष और (द्यावः) दिन मे वर्ष के अवयव ये (इन्द्रं वर्धान्) उसके ऐश्वर्य को बढावे। गुरु और शिष्य के पक्ष मे—सोम शिष्य है, 'यज्ञ' अर्थात् ज्ञान का दान, वेदवाणियां, मननयोग्य वचन को बढ़ाते है। और प्रातः सायं, दिन रात, मास, ऋतु, वर्ष आदि विद्यार्थी को बालकवत् बढ़ावे।

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (सहसे) बल की वृद्धि के लिये (असामि जज्ञानं) पूर्ण होते हुए और (राधसे) आराधना और (श्रुताय च) श्रवण योग्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (वावृधानं) बढ़ते हुए (महाम्) महान् (उग्रम्) उत्तम पुरुष को (आ विवासेम) सब प्रकार परिचर्या करे (नूनम्) निश्चय मे हम (अवसे) ज्ञान और रक्षा प्राप्त करने के लिये (वृत्र-तूर्येषु) विघ्नकारी अज्ञान, काम क्रोधादि व्यसनों और शत्रुओं का नाश करने के कार्यों के निमित्त भी हे (विप्र) विद्वन्! उस महापुरुष को ही (आ विवासेम) आश्रय रूप मे स्वीकार, उसकी सेवा करें। इति दशमो वर्गः ॥

[३९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

भा०—गुरु शिष्य प्रकरण। हे (देव) विद्या की अभिलाषा करने हारे विद्यार्थिन्! तू (गृणते) उपदेश करने वाले गुरु के (गो-अग्राः इपः) उत्तम वाणियों से युक्त प्रेरणाओं अर्थात् उपदेशों को (युवस्व) प्राप्त कर और उस (मन्द्रस्य) स्तुति योग्य, (कवेः) क्रान्तदर्शी, (दिव्यस्य) ज्ञान प्रकाश में निष्ठ, (वह्नेः) विद्या को धारण करने वाले, (विप्रमन्मनः) विद्वान् मेधावी पुरुष के मनन योग्य ज्ञान को धारण करने वाले, (सचनस्य) सत्संग योग्य (मध्वः वचनस्य) मधुर वचन का सार (नः अपाः) हमें भी पान करा।

अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उशानः ऋतयुग् इन्द्रः ऋतधीतिभि' वलस्य-सानु रुजत्, पणीन् अभि योधत्) कान्तिमान्, तेजोयुक्त सूर्य वा विद्युत्, जलधारक किरणों से व्यापक मेघ के उच्च भाग को छिन्न भिन्न करता है, स्तुत्य व्यवहारों को गर्जनाओं सहित करता, है उसी प्रकार (अयम्) यह (उशानः) विद्याओं की कामना करने वाला, (युजानः) विद्याभ्यास में मनोयोग देने वाला विद्यार्थी जन (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान के भीतर योग देने वाला हो, और (ऋत-धीतिभिः) ज्ञान को धारण करने के उपायों से (अद्रि परि उस्राः) मेघवत् ज्ञानवर्षण करने वाले गुरु के प्रति अपनी इन्द्रिय वृत्तियों को (युजानः) लगाने वाला हो। वह (इन्द्रः) अज्ञान का नाश करने में समर्थ विद्वान्, गुरु (अरुग्ण) न टूटे हुए (वलस्य) व्यापक (सानु) अज्ञान के प्रबल अंश को (रुजत्) छिन्न भिन्न करे, विद्या के कठिन मर्मों को खोले। वह (वचोभिः) उत्तम वचनों द्वारा (पणीन प्रति) अपने विद्यार्थियों को लक्ष्य कर उनके प्रति (अभि योधत्) युक्ति प्रतियुक्तियों से आक्षेप प्रत्याक्षेप करे, वादविवाद द्वारा सिद्धान्तों की शिक्षा दे। अर्थात गुरु स्वयं वीर के

समान विद्यार्थी के लिये सब कठिन स्थलों को सरल कर दिया करे। तो साथ ही (अयम् उशानः) यह गुरु भी (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान का योग कराने वाला होकर (ऋत-धीतिभिः) सत्य ज्ञान धारण कराने वाली क्रियाओ से (अद्रि परि उस्राः युजानः) अपने अभीत, निर्भय शिष्य के प्रति किरणोवत् वाणियो को प्रदान करता हुआ रहे।

अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान को नाश करने और ज्ञान के देनेहारे! सूर्यवत् तेजस्विन् गुरो! (इन्द्र. अक्तून् दोषा वस्तोः शरदः वि अद्योतयत्) जिस प्रकार चन्द्र रातो को सदा सब वर्षों मे ही प्रकाशित करता है, उसी प्रकार (अयम्) यह (इन्दुः) चन्द्रवत् आल्हादकारी गुरु भी (दोषा वस्तो) रात दिन (शरदः) छहो शरद आदि ऋतुओ मे भी (अद्युत. अक्तून्) ज्ञान की दीप्ति से रहित रात्रिवत् अज्ञात विद्या-स्थलो को (वि अद्योतयत्) विशेष रूप से प्रकाशित करा करे। जिस प्रकार उषाएं (अह्नां केतुम् अदधुः) दिनो को चमकाने वाले सूर्य को धारण करती है उसी प्रकार (उषासः) विद्या की कामना करने वाले जितेन्द्रिय विद्यार्थी जन सूर्यवत तेजस्वी, (अह्नां) न ताडना योग्य शिष्यों को (केतुम्) ज्ञान देने वाले गुरु को (अदधुः) धारण करें, उसको गुरुवत् स्वीकार करे। और जिस प्रकार सूर्य (शुचि-जन्मन. उषस चकार) शुद्ध पवित्र जन्मवाली उषाओ को उत्पन्न करता है उसी प्रकार वह गुरु भी (उषस) विद्या के इच्छुक शिष्यो के (शुचि-जन्मन. चकार) शुद्ध पवित्र विद्या माता मे शुद्ध पवित्र जन्म ग्रहण करने वाला बना देता है, अर्थात विद्वान् बना कर उनको ज्ञानमय पवित्र जन्म देता है।

अयं रोचयदरुचो रुचानो३ऽयं वासयद्व्यृ१तेन पूर्वीः।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥

भा०—(रुचानः अरुच. रोचयत्) जिस प्रकार सूर्य स्वयं कान्ति से चमकता हुआ कान्ति से रहित चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार (अयम्) यह विद्वान् उपदेष्टा गुरु, स्वयं (रुचानः) तेजस्वी होकर (अरुचः) विद्या प्रकाश से रहित जनों को (रोचयत्) विद्या प्रकाश से प्रकाशित करे। (अयं) यह (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान प्रजाओं के समान ही नवीन विद्यार्थी जनों को (ऋतेन) सत्योपदेश के निमित्त (वासयत्) अपने अधीन बसावे, रखे। (अयम्) वह (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ज्ञान से पूर्ण करने हारा विद्वान् (स्वः विदा नाभिना) तेजोमय, उपदेश को प्राप्त करने वाले 'नाभि' अर्थात् सम्बन्ध से (ऋत-युग्भिः) सत्य ज्ञान का योग करा देने वाले (अश्वैः) उत्तम विद्वान् सहायक अध्यापकों द्वारा (ईयते) आगे बढ़ता है।

नू गृ॒णा॒नो गृ॑ण॒ते प्र॑त्न राज॒न्निषः॑ पिन्व वसु॒देया॑य पू॒र्वीः ।
अ॒प ओष॑धीरवि॒षा वना॑नि॒ गा अर्व॑तो॒ नॄनृ॒चसे॑ रिरीहि ॥५॥११॥

भा०—हे (प्रत्न राजन्) दीर्घायु ! विद्या प्रकाश से प्रकाशयुक्त ! विद्वन् ! हे राजन् ! तू (नू) अवश्य (गृणते गृणानः) प्रार्थना करने वाले को विद्योपदेश प्रदान करता हुआ (वसुदेयाय) द्रव्य देने में समर्थ जनों को भी (पूर्वीः इषः पिन्व) पूर्व की वेद वाणियों से तृप्त किया कर। और तू (ऋचसे) उत्तम काम के लिये (अप.) उत्तम जल (ओषधीः) नाना ओषधियां, (अविषा) विषों से रहित (वनानि) जल और वन के पदार्थ तथा (गाः अर्वतः) गौ और अश्व आदि पशु (रिरीहि) देना चाहा कर। इत्येकादशो वर्गः ॥

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी विमुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन् एवं विद्वन्! (तुभ्यं सुतः मदाय) जिस प्रकार उत्पन्न पुत्र हर्ष लाभ के लिये होता है उसी प्रकार यह उत्पन्न प्रजाजन, तथा ऐश्वर्य समूह तेरे ही हर्ष, प्रसन्नता एवं सुख के लिये है। तू उसका (पिब) पालन कर और ऐश्वर्य का उपभोग अन्न के समान किया कर। अर्थात् जैसे ओषधि आदि अन्न रस का पान पुष्टि के लिये किया जाता है उसी प्रकार प्रजा की समृद्धि का उपभोग अपनी शक्ति को पुष्ट करने के लिये कर, भोग विलासादि व्यसन तो उसको पुष्ट न करके निर्बल कर देते हैं अतः राजा का व्यसनो द्वारा भोग-विलास करना उचित नही है। हे राजन्! इसी प्रकार (तुभ्यं सुतः मदाय) तेरा राज्याभिषेक हर्ष के लिये हो, और तू प्रजा का (पिब) पालन कर, (अव स्य) तू प्रजा को दुःखो से छुडा। (सखाया हरी) मित्रवत् विद्यमान (हरी) स्त्री पुरुषो वा राजा प्रजा के वर्गों को रथ मे जुते अश्वो के समान (वि मुच) विशेष रूप से बन्धनमुक्त, स्वतन्त्र जीवनवृत्ति वाला कर। (उत) और तू (गणे) प्रजागण के ऊपर (आ निषद्य) आदर पूर्वक धर्मासन पर विराज कर (प्र गाय) उत्तम २ उपदेश किया कर और उत्तम रीति से आज्ञाएं दिया कर। (अथ) और (गृणते यज्ञाय) उपदेश करने वाले सत्संग और आदर करने योग्य पुरुष को (वयः धा.) उत्तम अन्न, और बल प्रदान कर।

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥

भा०—हे (विरप्शिन्) महान्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (जज्ञान) प्रकट या प्रसिद्ध होता हुआ तू (मदाय) हर्षित और तृप्त पूर्ण होने के लिये और (क्रत्वे) अपने कर्म सामर्थ्य को बढाने के

लिये (यस्य अपिवः) जिस ऐश्वर्य का तू उपभोग और पालन करता है (अस्य पिव) वाद मे भी तू उसी राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करता रह। (अस्यै ते) इस तेरी वृद्धि के लिये ही (गावः) गौएं, वाणियें और भूमियें (नरः) उत्तम नायक, (आपः) राष्ट्र में जल, मेघ, कूप, नदी, तडाग आदि, तथा आप्त प्रजाजन, (अद्रिः) मेघ, पर्वत तथा शस्त्रवल सव।(तम् इन्दुं) उस ऐश्वर्य को (पीतये) पालन और उपभोग करने के लिये ही। (सम् अह्वन्) एकत्र प्राप्त हो।

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ॥
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुवितायं महे नः ॥ ३ ।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के खूब प्रदीप्त हो जाने के समान (अग्नौ) अग्रणी नायक के (सम-इद्धे) अति प्रज्वलित, तेजस्वी हो जाने पर (सोमे सुते) राष्ट्र ऐश्वर्य के अभिषेक द्वारा प्राप्त हो जाने पर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (त्वा) तुझको (वहिष्ठाः) अपने ऊपर धारण करने वाले वा राज्य-भार को वहन करने मे अत्यन्त कुशल (हरयः) विद्वान् मनुष्य उत्तम अश्वों के समान ही (त्वा/वहन्तु) तुझे सन्मार्ग पर ले जावे। मै प्रजाजन (त्वायता मनसा) तुझे चाहने वाले चित्त से (जोहवीमि) निरन्तर पुकारता हूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले ! तू (नः महे सुविताय) हमारे वड़े भारी उत्तम शासन वा ऐश्वर्य भाव की वृद्धि करने के लिये हमें (आ याहि) प्राप्त हो।

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३वयो धात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (शश्वत) निरन्तर (उशता) प्रजा को चाहने वाले (मनसा) चित्त से (आ याहि) प्राप्त हो। तू (महा मनसा) वडे उदार चित्त ज्ञान मे युक्त होकर (सोम पेयम)

पुत्र वा शिष्यवत् पालन करने योग्य राष्ट्र-ऐश्वर्य रूप रक्षायोग्य धन को (ययाथ) प्राप्त कर । (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम वेदोपदेशों को स्वयं शिष्यवत् (उप शृणवः) ध्यानपूर्वक श्रवण कर । (अध) और (यज्ञः) सत्संग, आदर सत्कार तथा प्रजा का कर आदि देना, और दानवान् प्रजाजन भी (ते तन्वे) तेरे शरीर और विस्तृत राष्ट्र के लिये (वयः धात्) उत्तम अन्न और बल प्रदान करे, तुझे पुष्ट करे ।

यदि॑न्द्र दि॒वि पार्ये॒ यदृध॒ग्यद्वा॒ स्वे सद॑ने॒ यत्र॒ वासि॑ ।
अतो॑ नो य॒ज्ञमव॑से नि॒युत्वा॑न्त्स॒जोषाः॑ पाहि गिर्वणो म॒रुद्भिः॑ ॥५॥१२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (यत्) जब (पार्ये) पालन करने योग्य (दिवि) तेजस्वी, और सबको रुचने वाले कमनीय, राज्यपद वा आसन पर और (यत्) जब (ऋधक् वा) उससे पृथक् भी हो, (यद् वा) अथवा जब तुम (स्वे सदने) अपने आसन वा गृह में (यत्र वा असि) या जहां कहीं, जिस स्थिति में भी हो (अतः) वहां से ही हे (गिर्वण) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! आप (नियुत्वान्) लक्षों सेनाओं, नियुक्त भृत्यों तथा अश्व सैन्य के स्वामी होकर (स-जोषा) प्रीतिपूर्वक (मरुद्भि) वायुवत् बलवान् मनुष्यों सहित (अवसे) रक्षा करने के लिये (नः यज्ञं पाहि) हमारे यज्ञ, राष्ट्र का पालन कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

[४१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अहे॑ळमान॒ उप॑ याहि य॒ज्ञं तुभ्यं॑ पवन्त॒ इन्द॑वः सु॒तासः॑ ।
गावो॒ न व॑ज्रि॒न्त्स्वमोको॒ अच्छेन्द्रा ग॑हि प्रथ॒मो य॒ज्ञिया॑नाम् ॥१॥

म्परत्) हमारी रक्षा कर। अथवा, हे (अध्वर्यो) अहिंसक राजन् ! तू (अस्मै अस्मै सुतम् प्र भर) उस २ नाना प्रजाजन के लिये उत्तम ऐश्वर्य अच्छी प्रकार प्राप्त कर। और (समस्य जेन्यस्य शर्धतः) समस्त विजय करने वाले (अभिशस्तेः) प्रशंसनीय बल को भी (अन्धसः) अन्न की (कुवित्) बहुत प्रकारों से (अवस्परत) पालना कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य मदे) जिसके हर्ष में (दिवः दासाय) ज्ञान और तेज के देने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये तू (त्यत्) उस (शम्बरम्) मेघ के समान गर्जते शत्रु को (रन्धयः) वश करता है (सः अयम्) वह यह (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) बलकारक अन्नादि ओषधि रस के तुल्य ऐश्वर्य (ते) तेरे ही लिये है। तू (पिब) उसे पान वा पालन कर।

यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यस्य) जिसके (तीव्रसुतम्) तीव्र, वेग से कार्य करनेवाले, अप्रमादी पुरुषों से शासित, (मदम्) हर्षदायक (मध्यम् अन्तम्) राष्ट्र के मध्य और सीमाप्रान्त की भी तू (रक्षसे) रक्षा करने में समर्थ है (अयं. स. सोमः) वह यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रजाजन (ते सुतः) तेरे ही पुत्रवत् है। तेरे लिये ही वह (सुतः) अन्न वा ओषधि रसवत् तैयार वा अभिषेक किया गया है। तू उसका (पिब)

पुत्रवत् पालन कर वा, ओषधि अन्नादिवत् उपभोग कर। उससे अपनी रक्षा और पोषण कर।

यस्य॒ गा अ॒न्तरश्म॑नो॒ मदे॑ दृ॒ळ्हा अ॒वासृ॑जः।

अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! (यस्य मदे) जिसके आनन्द, हर्ष के लिये (अश्मनः अन्त.) शस्त्र बल के भीतर (दृढ़ाः) दृढ़तया सुरक्षित (गाः) भूमियों को तू (अवासृजः) अपने अधीन शासन करता है (अयं) यह (सः) वह (सोमः) ओषधि रसवत् ऐश्वर्य युक्त राज्य है (ते सुत) तेरे लिये ही मुझे अभिषेक प्राप्त है। तू (पिब) उसका पालन और उपभोग कर।

यस्य॑ मन्दा॒नो अन्ध॑सो॒ माघो॑नं दधि॒षे शव॑ः।

अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑ ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (अन्धसः) प्राण धारण करने वाले, अन्नवत् पोषक राष्ट्र के बल पर (मन्दानः) तू अति हृष्ट प्रसन्न होता हुआ, (माघोनं शवः) ऐश्वर्यवान् होने योग्य बल को (दधिषे) धारण करता हे (अयं सः सोम.) यह वह ऐश्वर्यमय राष्ट्र (ते सुतः) तेरा पुत्रवत् है। तू (पिब) उसका पालन कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४४]

यो र॑यिवो र॒यिन्त॑मो यो द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्नव॑त्तमः ।
सोम॑: सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मद॑: ॥ १ ॥

भा०—हे (रयिवः) धन ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (स्वधा-पते) अन्न और धन धारण करने वाले बल के पालक ! (यः सोमः) जो ऐश्वर्य (ते) तेरा (रयिन्तमः) सबसे उत्तम और (द्युम्नैः) नाना प्रकार के धनों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यंत समृद्ध है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) सम्पन्न (सः ते मदः अस्ति) वह तुझे आनन्द देने वाला हो।

यः श॒ग्मस्तु॑विश॒ग्म ते॒ रा॒यो दा॒मा म॑ती॒नाम् ।
सोम॑: सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मद॑: ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शग्म) बहुत से सुखों से पूर्ण प्रभो ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शग्मः) शान्तिदायक, (सोम) ऐश्वर्य, युक्त राष्ट्र (मतीनाम्) मननशील, बुद्धिमान् पुरुषों को (रायः दामा) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है हे (स्वधापते) हे अन्नपते ! वह सब राष्ट्रैश्वर्य (ते सुतः) तेरे लिये समृद्ध होकर (मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो।

येन॑ वृ॒द्धो न शव॑सा तु॒रो न स्वाभि॑रू॒तिभि॑: ।
सोम॑: सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मद॑: ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस के बल से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (शवसा) बल से (वृद्धः न) बड़े हुए के समान और जिस ऐश्वर्य से तू (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी रक्षाकारिणी सेनाओं से (तुरः न) शत्रुओं को हिंसक के समान मारने वाला होता है हे (स्वधापते) स्वयं अपने ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति के पालक ! (सः सोमः) वह तेरा अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य वा राष्ट्रधन (सुतः) तुझे प्राप्त हो और वह (ते मदः अस्ति) तुझे अति हर्षदायक हो।

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मै (वः) आप लोगों को (त्यम् उ) उस (अप्रहणं) अन्याय से किसी को भी दण्डित न करने वाले, (शवसः पतिम्) समस्त सैन्य-बल और ज्ञान के पालक, (इन्द्रम्) दुष्टो के नाशक, तत्वदर्शी, (विश्वसाहम्) सब को पराजय करने वाले, (मंहिष्ठं) अति दानशील, (विश्वचर्षणिं) समस्त जगत् के द्रष्टा, और समस्त मनुष्यो के स्वामी (वरं) नेता, पुरुष, प्रभु को मैं (इन्द्रं गृणीषे) इन्द्र नाम से उपदेश करता हूं । वही सबका स्तुत्य, सर्वैश्वर्यवान् और आश्रय करने योग्य है ।

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(यं) जिसके (तुरस्य) शत्रुहिंसक सैन्य-बल और (राधसः) कार्यसाधक भृत्य वर्ग और ऐश्वर्य के (पतिम्) पालक पुरुष को (गिरः) स्तुति वाणियां वा उत्तम वाग्मी पुरुष (वर्धयन्ति) बढ़ाते है (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा जन, तथा स्त्री और पुरुष वर्ग दोनों (तत् इत् शुष्मं नु) उस ही शत्रुपोषक, बलशाली पुरुष की (सपर्यतः) सेवा करते है और (अस्य इत्) उसके ही (नु शुष्मं वर्धयन्ति) बल को नित्य बढ़ाया करते है । इति षोडशो वर्गः ॥

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस बलवान् पुरुष के (ऊतय.) रक्षा करने के साधन, शस्त्र-अस्त्र बल आदि उपाय (विप·) स्वयं ज्ञानवान् पुरुषों के समान ज्ञानपूर्वक चलते है और (यत्) जो (सक्षित) एकही स्थान

पर रहकर (वि रोहन्ति) विशेष रूप से वृद्धि पाते हैं। (तत्) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु नाशक स्वामी के (उक्थस्य) प्रशंसनीय बल के (वर्हणा) बढ़ने से ही (वः उप-स्तृणीषणि) आप लोगों की भी उत्तम वचन योग्य, छत के समान रक्षक या उपस्तरण बिछौने के समान सुखदायक हो।

अविंदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्त्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥

भा०—(नवीयान्) सब से अधिक स्तुत्य पुरुष (पपानः) राष्ट्र का पालन करता हुआ (मित्रः) प्रजा को मरण से बचाने वाला और सबका स्नेही होकर (दक्षं अविदत्) बल प्राप्त करे और (वस्वः अचैत्) नाना धनों का सञ्चय करे। (वह ससवान्) उत्तम अन्न का स्वामी होकर (स्तौलाभिः धौतरीभिः) बड़ी २, शत्रुओं को कंपा देने वाली सेनाओं द्वारा (उरुष्या) प्रजा वा राष्ट्र की रक्षा करने की इच्छा से (सखिभ्यः) अपने मित्र वर्गों का भी (पायुः अभवत्) पालक हो।

ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन्।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८॥

भा०—(ऋतस्य पथि) सत्य के मार्ग में रह कर (वेधाः) विधान करने में कुशल, विद्वान् न्यायपति (अपायि) राष्ट्र के स्वामी के समान पालन करे। और (देवासः) कामनाशील सभी मनुष्य (श्रिये) अपनी लक्ष्मी को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये (मनांसि) अपने चित्त (अक्रन्) बनाये रक्खे। वे सदा उत्तम सम्पदा पाने और बढ़ाने की इच्छा करते रहें। (वेन्यः) कान्तिमान् तेजस्वी, राज्य और शासन बल की कामना करने हारा विजिगीषु पुरुष सूर्य के समान (महः वचोभिः) बड़े, उत्तम वचनों से (नाम दधानः) अपनी ख्याति धारण करता हुआ, (दृशये) देखने

योग्य अपने (वपु.) सुन्दर रूप को सूर्यवत् ही (वि आवः) विशेष रूप से प्रगट करे ।

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि॥९॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (अस्मे) हम मे (द्युमत्तमं) उत्तम तेज, और विद्या प्रकाश से युक्त (दक्षं) बल (धेहि) धारण करा। और (जनानां) मनुष्यो के बीच मे (पूर्वीः अरातीः) पूर्व की विद्यमान न देने की तुच्छ, कृपण आदतों को (सेध) दूर कर । और (शचीभिः) उत्तम बुद्धियों, शक्तियो तथा वाणियों द्वारा (वर्षीयः वयः) अति उत्तम, बहुत वर्षों तक स्थिर रहने वाला जीवन और बल (कृणुहि) कर, जिससे प्रजाएं दीर्घायु हो । और (धनस्य) धन के (सातौ) न्यायपूर्वक विभाग करने के निमित्त तू (अस्मान् अविड्ढि) हम में प्रवेश कर, हम पर अध्यक्ष होकर रह ।

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! धन के स्वामिन् ! (इन्द्र) हे शत्रुहन्तः ! (हरिवः) हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (तुभ्यम् इत्) तेरे ही हितैषी (अभूम) हों । (तू दात्रे) दानशील पुरुष के लिये (मा वि वेनः) कभी विपरीत कामना मत कर । (मर्त्यत्रा) मनुष्यों मे से कोई भी दूसरा (आपिः) तुझ से अतिरिक्त बन्धु (नकिः ददृशे) दिखाई नही देता । (किम् अङ्ग) हे स्वामिन् ! और क्या कहे ? (त्वा) तुझको सब विद्वान् जन (रध्र-चोदनं आहुः) अपने वशीभूत, अधीन व्यक्तियों को उत्तम शिक्षा देने वाला बतलाते है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निःषिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणत ॥११॥

भा०—(हे वृषभ) बलवान् पुरुष ! तू (न.) हमें (जस्वने) नाश कर देने वाले दुष्ट पुरुष के हाथ (मा ररीथाः) मत पड़ने दे। (ते रेवत') तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष के (सख्ये) मित्रभाव में रहते हुए हम लोग (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हो, और न एक दूसरे का विनाश करें। (जनेषु) मनुष्यों में हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पूर्वीः) पूर्व से चली आई, सनातन (निःषिधः) बुरे मार्ग से निषेध करने वाली मर्यादाओं को (ररीथाः) हमें बार २ बतला। (असुष्वीन्) जो ऐश्वर्य की वृद्धि और सवन, यज्ञ, उपासना, कर आदि दान, और स्नान तथा तेरा अभिषेक न करने वाले जन हैं उनको (जहि) दण्डित कर। (अपृणत.) अपने सन्तानों को पालन पोषण न करने वाले तथा अपने वचन व्रत का पालन न करने वालों को (प्र वृह) उखाड़ डाल।

उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः॥१२॥

भा०—(इन्द्रः अभ्राणि इव) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् मेघों को गर्जता हुआ ऊपर उठाता है इसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (स्तनयन्) गर्जता हुआ। (अश्वानि गव्यानि राधांसि) अश्वों, गौवों और भूमियों के धनों को (उत् इयर्ति) उन्नत करता है। हे राजन् ! (त्वम्) तू (कारुधायाः) विद्वानों और शिल्पियों का धारण, पोषण करने वाला (प्र-दिवः) सबके द्वारा कामना करने योग्य (असि) है। (अदामानः) अदानशील, बन्धनरहित, उच्छृङ्खल पुरुष (त्वा) तुझे और तेरे (मघोनः) राज्य में ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (मा दभन्) विनाश न करें।

अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा का नाश करने वाले ! अहिंसक (वीर)

वीर पुरुष ! तू (महे) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (सुतानाम्) ऐश्वर्यों को अथवा उत्पन्न पुत्रों के समान राष्ट्र में उत्पन्न प्रजाओं को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर । (सः) वह तू (हि) निश्चय से (अस्य) इस राज्य और समस्त ऐश्वर्य का (राजा) राजा है । (यः) जो तू (पूर्व्याभिः) पूर्व की (उत) और (नूतनाभिः) नयी २ (ऋषीणाम्) तत्वदर्शी (गृणताम्) उपदेष्टा पुरुषों की (गीर्भिः) वाणियों से (ववृधे) अधिक वृद्धि प्राप्त करे ।

अस्य मदे॑ पु॒रु वर्पां॑सि वि॒द्वानिन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ती ज॑घान ।
तमु॒ प्र हो॑षि॒ मधु॑मन्तमस्मै॒ सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॒ पिब॑ध्यै ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः वृत्राणि जघान) सूर्य या विद्युत् मेघों को आघात करता है और (मदे) तृप्तिकारक, जल के आधार पर (पुरु वर्पांसि करोति) ओषधि वनस्पतियों के नाना प्रकार के रूपों को उत्पन्न करता है और विद्वान् पुरुष उसी प्रकार (वीराय) विविध सुखों या जलों के दाता (शिप्रिणे) बलवान् के पान के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधुर पदार्थों से युक्त ओषधि समूह को अग्नि में आहुति करता है उसी प्रकार (विद्वान् इन्द्रः) ज्ञानवान् राजा (अस्य मदे) इस राष्ट्र के तृप्तिकारक हर्षजनक ऐश्वर्य या दमन-शासन के बल पर ही (वृत्राणि) विघ्नकारी समस्त शत्रुओं को (अप्रति) विना रोक के (जघान) नाश करे । और (पुरु वर्पांसि) बहुतसे प्रजा के शरीरों की रक्षा करे । हे प्रजावर्ग तू (अस्मै) इस (शिप्रिणे) मुकुटधारी, समुग्र (वीराय) वीर पुरुष के (पिबध्यै) पान करने के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधु से युक्त ओषधि रस के समान (तम्) वह नाना अन्नादि युक्त ऐश्वर्य (प्रहोषि) अच्छी प्रकार प्रदान कर ।

पाता॑ सु॒तमिन्द्रो॑ अस्तु॒ सोमं॑ ह॒न्ता वृ॒त्रं वज्रे॑ण मन्दसा॒नः ।
गन्ता॑ य॒ज्ञं प॑रा॒वत॑श्चिद॒च्छा वसु॑र्धी॒नाम॑वि॒ता का॒रुधा॑याः ॥१५॥८

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुहन्ता पुरुष ही (सुतं पाता) उत्पन्न हुए अन्न आदि ऐश्वर्य का भोक्ता तथा प्रजाओं का पुत्रवत् पालन-कर्त्ता (अस्तु) हो। वही (सोमं) उत्तम ऐश्वर्य का भोक्ता हो। वह (मन्द-सानः) अति हृष्ट होकर (वज्रेण) शस्त्रबल से (वृत्रं) मेघ को सूर्यवत् अपने बढ़ते शत्रु को (हन्ता) नाश करने वाला हो। वह (परावतः चित्) दूर देश से भी (यज्ञं) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों तथा पूज्य सत्संग योग्य पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होने वाला हो। वह (वसुः) प्रजा के बसाने हारा (कारु-धायाः) विद्वानों और शिल्पियों का पोषण करने वाला होकर (धीनाम्) उत्तम ज्ञानों और उत्तम कर्म कौशलों वा धन्धों का भी (अविता) रक्षक हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

इ॒दं त्यत्पात्र॑मिन्द्र॒पान॒मिन्द्र॑स्य प्रि॒यम॒मृत॑मपायि ।
मत्स॒द्यथा॑ सौमन॒साय॑ दे॒वं व्य१॒॑स्मद् द्वेषो॑ युयव॒द्व्यंहः॑ ॥१६॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (इदं) यह शरीर ही (प्रियम्) प्रिय (इन्द्र-पानं पात्रम्) जीव और जीव को प्राप्त इन्द्रियादि भोगों के उपभोग का साधन है। इससे ही वह साधना करके (अमृतम् अपायि) अमृत मोक्ष रस का भी पान करता है और वह (देवं प्रति सौमनसाय मत्सत्) प्रभु परमेश्वर के प्रति शुभ चित्त रहने के लिये ही चाहता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के स्वामी राजा का (इदं त्यत्) यह भी एक अद्भुत उत्तम (इन्द्र-पानम्) ऐश्वर्यपद की रक्षा करने वाला (पात्रं) पालक साधन है जिससे (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अमृत तुल्य सुख (अपायि) प्राप्त किया जाता है। वह प्रजाजन (देवं) उस तेजस्वी पुरुष को (सौमनसाय) शुभ चित्त बनाये रखने के लिये (मत्सत्) सदा आनन्दित किया करे। वह राजा भी (अस्मत्) हम प्रजाजन से (द्वेषः) द्वेष भाव को (वि युयवत्) पृथक् करे और वह हम से (अंहः वि) पाप को भी दूर करे।

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च॥१७॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! तू (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, उत्साहवान् होकर (एना) पूर्व कहे राष्ट्रपालक बल से (शत्रून् जहि) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जामिम्) अपने सम्बन्धी और (अजामिम्) सम्बन्ध रहित (अमित्रान्) स्नेह न करने वालो को तथा (अभि-सेनान्) सेनारहित सामने आने वाले और (आ-देदिशानान्) सन्मुख सेनाओ वा प्रजाओ पर आदेश चलाने वाले शत्रुओ को भी (परा जहि) दण्डित कर, दूर हटा । और हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! उनको (प्र मृण च) अच्छी प्रकार नाश कर और (प्र जहि च) खूब दण्ड दे, मार ।

आ सु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्त ! (नः) हमारी (आसु पृत्सु) इन संग्रामो मे वा वीरजनो की सेनाओं के बल पर (अस्मभ्यं) हमारे सुख के लिये (महि) बहुत बड़ा (सुगं) सुख जान कर (वरिवः) धनैश्वर्य (कः) पैदा कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अपां) प्राप्त प्रजाओं के (तोकस्य तनयस्य) पुत्र पौत्र के सुख के लिये ही (जेषे) विजय कर । और (नः) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (अर्धं कृणुहि) समृद्धि प्रदान कर ।

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु॥१९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन ! (वृषणः) बलवान उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (हरयः) मनुष्य (वृषरथासः) बलवान् रथों वाले (वृषरश्मयः) बलवान् रश्मियों वाले ... आदि

सैन्यों के स्वामी, महारथी, (वृष-रश्मयः) प्रबन्ध करने मे समर्थ रश्मियों अर्थात् बागडोरों वाले उत्तम प्रबन्धक, नियम, मर्यादाओं से सम्पन्न, (अत्याः) सब से उत्तम, पुरुष अश्वों के समान दृढ़ (युजानः) तेरा सहयोग देने वाले (अस्मत्राञ्चः) हम लोगों में पूजनीय और (वज्रवाहः) खड्ग का नित्य धारण करने वाले, (वृषणः) बलवान्, पुरुष भी (वृष्णे) बलकारक (मदाय) तृप्ति और हर्ष के लिये (सुयुजः) उत्तम मनोयोग देते हुए (त्वां वहन्तु) तुझको अपने ऊपर धारण करें।

आ ते॑ वृष॒न्वृष॑णो॒ द्रोण॑मस्थुर्घृत॒प्रुषो॒ नोर्मयो॒ मद॑न्तः।
इन्द्र॒ प्र तुभ्यं॒ वृष॑भिः सु॒ताना॒ं वृष्णे॑ भरन्ति वृष॒भाय॒ सोम॑म् २०।१९

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! (घृतप्रुषः ऊर्मयः न) जल वर्षाने वाले जल तरंगों के समान (मदन्तः) अति हर्षित, उत्साहवान्, (वृषणः) मेघों के समान शस्त्रवर्षी, बलवान् (ते) तेरे वीर जन (द्रोणम्) रथ और राष्ट्र पर (आ अस्थुः) विराजें। और वे (वृषभिः) बलयुक्त सैन्यों से (सुतानां) उत्पन्न किये ऐश्वर्यों में से हे (इन्द्र) शत्रुहन्त.! (तुभ्यं) तुझ (वृषभाय) सर्वश्रेष्ठ (वृष्णे) सुखों के दाता के लिये (सोमम् प्र भरन्ति) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

वृषा॑सि दि॒वो वृ॑ष॒भः पृ॑थि॒व्या वृषा॒ सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम्।
वृष्णे॑ त॒ इन्दु॑र्वृषभ पीपाय स्वा॒दू रसो॑ मधु॒पेयो॒ वरा॑य॥ २॥

भा०—हे राजन्! तू (दिवः वृषा असि) प्रकाश के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी है। तू (पृथिव्याः वृषभ) पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। तू (सिन्धूनां वृषा) मेघवत् जलों का सेचन करने हारा है। तू (स्तियानां वृषभः असि) संघ बना कर रहने वाली सेनाओं और प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ है। हे (वृषभ) सुखों की प्रजा पर मेघवत् वर्षा करने हारे (वृष्णे) बलवान् (वराय) श्रेष्ठ, वरण करने योग्य पुरुष

के पान करने के लिये यह (इन्दुः) ऐश्वर्य युक्त (स्वादुः) आनन्ददायक (मधुपेयः रसः) मधुर, शहद आदि के साथ मिलाकर खाने योग्य रस, वर को मधुपर्क आदि के तुल्य ही आदरार्थ (ते पीपाय) तुझे प्राप्त हो।

अ॒यं दे॒वः सह॑सा॒ जाय॑मान॒ इन्द्रे॑ण यु॒जा प॒णिम॑स्तभायत्।
अ॒यं स्वस्य॑ पि॒तुरायु॑धा॒नीन्दु॑रमुष्णा॒दशि॑वस्य मा॒याः ॥ २२ ॥

भा०—(अयं) यह (देवः) तेजस्वी, पुरुष (सहसा) अपने बल से (जायमानः) प्रकट होकर (इन्द्रेण युजा) ऐश्वर्ययुक्त सहायक के साथ मिलकर (पणिम्) स्तुत्य व्यवहार और व्यवहार कुशल प्रजावर्ग को (अस्तभायत्) स्थिर करे, उसे शासन करे। और (अयं) वह (इन्दुः) स्वयं आर्द्र-हृदय एवं ऐश्वर्य युक्त चन्द्र के समान आह्लादक होकर (स्वस्य पितुः) अपने पालक पिता के (आयुधानि) शस्त्रों अस्त्रों को (अस्तभायत्) स्थिरता से धारण करे। और (अशिवस्य मायाः) अमङ्गलजनक शत्रु के छल कपटयुक्त चालों को (अमुष्णात्) दूर करे।

अ॒यम॑कृणोदु॒षसः॑ सु॒पत्नी॑र॒यं सूर्ये॑ अदधा॒ज्ज्योति॑र॒न्तः।
अ॒यं त्रि॒धातु॑ दि॒वि रो॑च॒नेषु॑ त्रि॒तेषु॑ विन्दद॒मृतं॒ निगू॑ळ्हम् ॥२३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (उषसः अकृणोत्) तेजोयुक्त प्रभात वेलाओं को प्रकट करता है उसी प्रकार (अयम्) यह तेजस्वी पुरुष (उषसः) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सेनाओं को (सु-पत्नीः) राष्ट्र की उत्तम पालक रूप से (अकृणोत्) तैयार करे। और वह (उषसः) कान्ति और कामना से युक्त स्त्रियों को (सु-पत्नीः) उत्तम गृहपत्नी होने का अधिकार दे। (सूर्ये अन्तः ज्योतिः) सूर्य के भीतर विद्यमान तेज के समान प्रखर तेज को वह (अदधात) धारण करे। और (अयं) वह (त्रितेषु रोचनेषु) तीनों प्रकाशमान अग्नि, विद्युत, सूर्य उनमें (नि-गूढं) गुप्त रूप से विद्यमान (त्रि-धातु अमृतम्) तीनों तत्त्वों को धारण करने

वाले अमृत के समान (दिवि) पृथिवी में भी (त्रितेषु) उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों स्थानों पर शोभा देने वाले पुरुषों मे (नि-गूढं त्रिधातु अमृतं विन्दत) छिपे तीनों प्रकार के प्रजाजन को धारण करने वाले अमृत वल को प्राप्त करे।

अ॒यं द्यावा॑पृथि॒वी वि ष्क॑भायद॒यं रथ॑मयुनक्स॒प्तर॑श्मिम्।
अ॒यं गोषु॒ शच्या॑ प॒क्वम॒न्तः सोमो॑ दाधार॒ दश॑यन्त्र॒मुत्स॑म् २४।२०

भा०—(द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार प्रभु परमेश्वर (वि स्कभायत्) विविध प्रकार से थाम रहा है उसी प्रकार (अयम्) यह राजा भी (द्यावा पृथिवी) तेजस्वी पुरुषों और भूमि वासी अन्य प्रजाओं को (वि स्कभायत्) विविध उपायों से वश करे। (सप्त-रश्मि रथम्) उसी प्रकार सात किरणों वाले सूर्य के समान सात रासों से युक्त रथ, वा सात प्रकृतियों से युक्त सर्व सुखप्रद राज्य को (अयुनक्) वश करे। (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु जैसे (शच्या) वाणी द्वारा (गोषु) वेदवाणियों के भीतर (पक्वम्) परिपक्व ज्ञान को (दाधार) धारण कराता है और जिस प्रकार वह सर्वप्रेरक (दशयन्त्रम् उत्सम्) दश यन्त्रों से युक्त कूप के समान दशों दिशाओं से नियन्त्रित (उत्सम्) इस जगत् को धारण करता है उसी प्रकार (अयं) यह (सोमः) अभिषेक योग्य राजा (शच्या) अपनी शक्ति वा आज्ञा के बल पर (गोषु अन्तः) भूमियों के बीच (पक्वम्) पके धान्य को (दाधार) ग्रहण करे, और (दश-यन्त्रम् उत्सम् दाधार) दश यन्त्रों से युक्त कूप आदि भी बनवावे। वा राष्ट्र को (दश-यन्त्रम् उत्सम्) दश विद्वानों द्वारा नियन्त्रित उत्तम राष्ट्र को धारण करे। अध्यात्म मे दश, यन्त्र उत्स, यह देह दश इन्द्रियगण से युक्त है। इसमें इन्द्र आत्मा है। इति विंशो वर्गः॥

[४५]

शयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः॥ १—३० इन्द्रः। ३१—३३ बृबुस्तक्षा देवता॥

छन्दः—१, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२, २३, २४, २८, ३०, ३२ गायत्री। ४, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १५, १६, १७, १८, १९, २५, २६, २९ निचृद्गायत्री। ५, ६, २७ विराड्गायत्री। ३१ आर्च्युष्णिक्। ३३ अनुष्टुप्॥ त्रयस्त्रिंशदृच सूक्तम्॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।
इन्द्रः स नो युवा सखा॥ १॥

भा०—(यः) जो पुरुष (परावतः) दूर देश से भी (तुर्वशं यदुम्) हिंसक मनुष्यो को अथवा हिंसक सैन्यगण और यत्नशील प्रजावर्ग दोनों को, अथवा चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले यत्नशील प्रजावर्ग को (सुनीती) उत्तम नीति, न्याय से (आ अनयत्) अच्छी प्रकार सत् मार्ग से ले जाता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (युवा) बलवान् पुरुष (नः सखा) हमारा मित्र हो।

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता।
इन्द्रो जेता हितं धनम्॥ २॥

भा०—जो राजा (अविप्रे चित्) अविद्वान्, बालक आदि मे भी (वयः चित्) उत्तम जीवन और ज्ञान (दधात्) धारण कराता, और (अनाशुना अर्वता चित्) वेग से न जाने वाले अश्व सैन्य से भी (हितं धनं जेता) सुखकारी धन को विजय कर लेता है वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा होने योग्य है।

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः॥ ३॥

भा०—(अस्य) इस राजा के ईश्वर के समान ही (महीः प्रणीतयः) बड़ी उत्तम २ नीतियें और (पूर्वीः) सनातन से चली आई वेदोपदिष्ट (प्रशस्तयः) उत्तम शासन विधान हों। (अस्य ऊतयः) उसके अनेक रक्षा आदि के साधन कभी (न क्षीयन्ते) क्षीण न हों।

सखा॑यो ब्रह्म॑वाहसेऽर्च॑त॒ प्र च॑ गायत ।
स हि नः॒ प्रम॑तिर्म॒ही ॥ ४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो! आप लोग (ब्रह्म-वाहसे) वेद, ज्ञान को प्राप्त कराने वा धारण करने वाले विद्वान् वा प्रभु और धनैश्वर्य को प्राप्त करने या धारने वाले राजा की (प्र अर्चत) उत्तम रीति से सत्कार पूजा करो, और (प्र गायत च) उसकी उत्तम से उत्तम स्तुति प्रशंसा करो। (सः हि) वह ही (नः) हमारे बीच (मही) उत्तम वाणी और (प्र-मतिः) उत्तम बुद्धि को धारण करता है।

त्वमेक॑स्य वृत्रहन्नवि॒ता द्वयो॑रसि ।
उ॒तेदृशे॒ यथा॑ व॒यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्यवत् शत्रु को हनन करने हारे राजन्! (त्वम्) तू (एकस्य) एक का (उत) और (द्वयोः) दोनों का भी (अविता असि) रक्षक हो (उत) और (ईदृशे) ऐसे अवसर पर भी रक्षक हो (यथा) जैसे (वयम्) हम तुम्हारे रक्षक होते हैं। इत्येक विंशो वर्गः ॥

नय॒सीद्वति॒ द्विषः॑ कृ॒णोष्यु॑क्थशं॒सिनः॑ ।
नृभिः॑ सु॒वीर॑ उच्यसे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू प्रजाजन को (द्विषः अति नयसि) शत्रुओं तथा अन्य संकटों से भी पार अवश्य पहुंचाता है। तू (द्विषः उक्थ-शंसिनः कृणोषि) द्वेषयुक्त जनों को भी उत्तम वचन कहने वाला बनाता है। तेरे गुणगण से मुग्ध होकर शत्रु जन भी तेरी स्तुति करें। तू (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (सु-वीरः) उत्तम वीर और विविध विद्याओं का उपदेष्टा (उच्यसे) कहा जाता है।

ब्र॒ह्माणं॒ ब्रह्म॑वाहसं गी॒र्भिः सखा॑यमृ॒ग्मिय॑म् ।
गां न दो॒हसे॑ हुवे ॥ ७ ॥

भा०—(दोहसे गां न) दूध दोहने के लिये जिस प्रकार गौ को प्रेम से बुलाते है उसी प्रकार मैं (ब्रह्म-वाहसं) वेद ज्ञान को धारण करने वाले (ऋग्मियं) ऋचाओ के वेत्ता, स्तुतियो के योग्य पात्र, (सखायं) सब के मित्र रूप, (ब्रह्माणं) बड़े वेदज्ञ विद्वान् पुरुष को (दोहसे) ज्ञान रस प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदर से बुलाऊं।

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता।
वीरस्य पृतनासहः ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिस (वीरस्य) विविध विद्या के उपदेष्टा तथा विविध प्रजाओ के आज्ञापक (पृतनासह·) शत्रुओ को पराजय करने वाले वीर के (हस्तयोः) हाथों मे (विश्वानि वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नि ऊचु) बतलाते है (तस्य द्विता) उस पुरुष के प्रति माता पिता, और गुरु दोनो प्रकार का भाव विद्यमान रहे।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघु० ॥

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते।
वृह माया अनानत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रधर ! हे (शचीपते) शक्ति, वाणी के पालक ! हे (अनानत) शत्रुजन के आगे कभी न झुकने हारे ! तू (जनानां) शत्रु लोगो को (दृढानि) दृढ़दुर्गों और सैन्यों को तथा (मायाः) छल कपट के व्यवहारो को भी (वि वृह) उन्मूलन कर।

तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते।
अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (सत्य) सज्जनो मे सर्वश्रेष्ट, सत्यभाषण आदि व्यवहार करने हारे ! हे (सोमपा) ओषधिरस का पान करनेवाले, ऐश्वर्य,

राष्ट्र प्रजा को प्रजा वा शिष्यवत् पालन करने वाले ! हे (वाजानां पते) बलों, ज्ञानों, अन्नों और संग्रामों के पालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु-हन्तः ! हम लोग (अवस्यवः) यश, अन्न, उपदेश आदि के इच्छुक जन (त्वा तम् उ) उस तुझ को ही (अहूमहि) पुकारते है, तुझ से विनय करते, तेरी स्तुति करते है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने।
हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो तू (पुरा) पहले भी (हव्यः आसिथ)स्तुति योग्य रहा, (यः वा) और जो तू (नूनं) अब भी (हिते धने) हितकारी धन, ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर भी (हव्यः) प्रजाओं के स्तुति-योग्य है (सः) वह तू (हवं श्रुधि) हमारी स्तुति प्रार्थना को सुन।

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान्।
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (धीभिः) उत्तम कर्मों और बुद्धियों द्वारा (अर्वद्भिः) अपने शत्रु-नाशक वीरपुरुषों और अश्वो से (अर्वतः) शत्रु के वीरों, अश्वो तथा (श्रवाय्यान्) अति प्रसिद्ध, (वाजान्) संग्रामों और ऐश्वर्यों को तथा (हितं धनम्) हितकारी धन को (जेष्म) विजय करें।

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते।
भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वीर) वीर पुरुष ! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हिते धने) हितकारी, सुख-जनक धन प्राप्त करने के निमित्त (भरे) संग्राम और प्रजा के भरण पोषण के कार्य मे (वितन्तसाय्यः) सबका विजय करने हारा है।

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति ।
तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्डित करने वाले ! (या) जो (ते) तेरी (मक्षू जवस्तमा ऊतिः) अतिशीघ्र वेग से युक्त, गति, रक्षण, ज्ञान आदि क्रिया (असति) है (तया) उससे तू (नः) हमारा (रथम्) रथ के तुल्य सबको सुख देने वाले राष्ट्र को (हिनुहि) प्रेरित कर ।

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना ।
जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (जिष्णो) विजय करने हारे ! तू (रथीतमः) सर्वश्रेष्ठ महारथी होकर (अस्माकेन) हमारे (अभि-युग्वना) शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ (रथेन) रथ सैन्य से (हितं धनं जेषि) सुखकर धन को उत्तम रीति से प्राप्त कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः ।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (य) जो (एकः इत्) अकेला ही अन्य की विना सहायता के (कृष्टीनां विचर्षणिः) कृषियों को देखने वाले किसान के समान (कृष्टीनां) समस्त प्रजाओं का (विचर्षणिः) विशेष रूप से देखनेवाला और उनको विविध प्रकार से अपनी ओर आकर्षण करने वाला होकर (वृष-क्रतुः) बलवती प्रज्ञा और बलयुक्त कर्म वाला, (पतिः) सब का पालक (जज्ञे) प्रकट वा प्रसिद्ध हो (तम् उ स्तुहि) तू उसकी ही स्तुति कर ।

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा ।
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (गृणताम् इत्) अन्यो का उपदेश करने वाले विद्वानो तथा स्तुतिशील पुरुषो का (आपिः इत्) वास्तव बन्धु (आसिथ) हो और (ऊती) उत्तम रक्षा और ज्ञान से (शिवः) कल्याणकारक (सखा) परम मित्र हो (सः) वह (त्वं) आप (नः मृडय) हमें सुखी करो।

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः।
सासहीष्ठा अभि स्पृधः॥ १८॥

भा०—हे (वज्रिवः) वज्र अर्थात् शस्त्र वा शत्रु के वर्जन करने वाले बलो से युक्त पुरुषो के स्वामिन् ! तू (रक्षो-हत्याय) दुष्ट पुरुषो के नाश करने के लिये (गभस्त्योः) बाहुओ मे (वज्रं धिष्व) शस्त्रवत् बल वीर्य को धारण कर। और (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली शत्रुसेनाओ को (अभि ससहिष्ठाः) मुक़ाबले पर पराजित कर।

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्।
ब्रह्मवाहस्तमं हुवे॥ १९॥

भा०—मैं (रयीणां युजं) धनों और बलों के दाता, (प्रत्नं) पुराने, वृद्ध, (सखायं) मित्र, (कीरि-चोदनम्) विद्यार्थियो और स्तुतिकर्त्ताओ को उपदेश करने वाले (ब्रह्मवाहः-तमम्) सबसे उत्तम वेद विज्ञान वा धन को धारण एवं प्राप्त कराने वाले आप की (हुवे) आदरपूर्वक प्रार्थना करूं।

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः॥ २०॥ २४॥

भा०—(सः हि) वह ही (एकः) अकेला, अद्वितीय, (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवी के (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पत्यते) प्राप्त होता और उन पर स्वामित्व करता है और वही (गिर्वणः-तमः) सबसे अधिक

प्रशंसनीय और (अध्रि-गु) वे रोक जाने वाला, तथा सत्य गति वाला होता है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

स नो॑ नि॒युद्भि॒रा पृ॑ण॒ कामं॒ वाजे॑भिर॒श्विभि॑ः।
गोम॑द्भि॒र्गोप॑ते धृ॒षत्॥ २१॥

भा०—हे (गोपते) वाणियो के पालक विद्वन्! पृथ्वी के पालक राजन्! इन्द्रियो के पालक जितेन्द्रिय! गवादि पशुओं के पालक वैश्य वर्ग! तुम (धृषत्) प्रगल्भ होकर (नियुद्भिः) अपने अधीन नियुक्त अश्वादि सैन्यो से, (वाजेभिः) वलों, वीर्यों, वेगयुक्त संग्रामो और ज्ञान अन्नादि से और (अश्विभिः) वलवान् वीरों से (गोमद्भिः) वाणी और भूमि के स्वामी विद्वानों और भूमि वालो से (सः) वह तू (नः) हमारे (कामम् आपृण) मनोरथ को पूर्ण कर।

तद्वो॑ गाय सु॒ते सचा॑ पुरुहू॒ताय॒ सत्व॑ने।
शं यद्गवे॒ न शा॒किने॑॥ २२॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (वः सुते) आप लोगो के उत्पन्न इस जगत् में वा अन्न, धन, पुत्र, ऐश्वर्यादि के प्राप्त होने पर आप (सचा) सब एक साथ मिलकर (तत्) उस (सत्वने) सत्ववान्, वलवान्, शुद्ध अन्तःकरण वाले (पुरुहूताय) वहुतों से प्रशंसित, (गवेन शाकिने) वडे वैल के समान शक्तिमान् सर्वव्यापक, ज्ञानी की (गाय) स्तुति करो। (यत्) जो (शं) तुम्हें शान्ति प्रदान करे।

न घा॒ वसु॒र्नि य॑मते दा॒नं वाज॑स्य॒ गोम॑तः।
यत्सी॒मुप॒ श्रव॒द् गिर॑ः॥ २३॥

भा०—(यत् वसु) जो गुरु के अधीन अन्तेवासी होकर (सीम) सबसे (गिर उप श्रवत्) वेदवाणियों का श्रवण करे। वह (गोमत वाजस्य) वाणी युक्त ज्ञान का (दानं न घ नि यमते) शिष्यों से दान देना न रोके। प्रत्युत शिष्यो को ज्ञान दिया करे। इसी प्रकार (यत्

सीम् गिरः उपश्रवत्) जो राजा वा ऐश्वर्यवान् पुरुष सबसे अपने विषय में उत्तम स्तुतियां सुने वह (वसुः) प्रजा का बसाने हारा, (गोमतः वाजस्य दानं न घ नि यमते) उत्तम सत्कार योग्य वाणी से युक्त ऐश्वर्य के दान को कभी न रोके ।

कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (दस्युहा) दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला प्रबल राजा (कुवित्सस्य) बहुत से विवेकपूर्वक धन विभाग वा न्याय करने वाले अति विवेकी पुरुष के (गोमन्तं व्रजं) वाणी से युक्त उत्तम मार्ग को (प्र गमत्) अच्छी प्रकार जाता है वह सन्-मार्गगामी राजा ही (नः) हमें (शचीभिः) उत्तम वाणियों, प्रज्ञाओं और शक्तियों से (अप वरत्) हमारे कष्ट दूर करता हुआ हमें अपनावे ।

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।
इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने वत्स को देख कर हंभारती है उसी प्रकार हे (शतक्रतो) अनन्त प्रज्ञाओं से से सम्पन्न ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः मातरः) उत्तम ज्ञान करने वाले (गिरः) उत्तम उत्तम उपदेष्टाजन, वा उनकी वाणियां (त्वा उ अभि प्र नोनवुः) तेरी ही स्तुति करती है । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।
अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥

भा०—हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेष्टः ! विद्वन् ! और हे विविध प्रकारों से शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष ! (तव सख्यं) तेरी मित्रता (दूनाशं) कभी नाश न होने वाली हो । तू (गव्यते गौः असि) गौ, भूमि, उत्तम वाणी को चाहने वाले के लिये गौ, भूमि, वाणियों के

समान ही, पुष्टिकारक अन्नवत् और आह्लाद देने वाला हो। और (अश्वायते अश्वः भव) वेगवान् अश्व आदि के चाहने वाले के लिये तू स्वयं अश्व के समान संकट से पार करने मे समर्थ हो।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे।
न स्तोतारं निदे करः॥ २७॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (सः) वह आप (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (तन्वा) शरीर से (अन्धसः मन्दस्व) अन्न के द्वारा अति प्रसन्न रह और अन्यो को भी (तन्वा अन्धसः मन्दस्व) देह के निमित्त अन्न से ही तृप्त कर। (स्तोतारं) उत्तम ज्ञानोपदेष्टा पुरुष को (निदे न करः) निन्दक पुरुष के अधीन मत कर।

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः।
वत्सं गावो न धेनवः॥ २८॥

भा०—हे (गिर्वणः) विद्यायुक्त वाणियों से प्रशंसनीय, एवं उनका सेवन करने हारे विद्वन्! राजन्! प्रभो! (धेनवः गावः वत्सं न) दूध देने वाली गौएं जिस प्रकार अपने बछडे को बड़े प्रेम से प्राप्त करती है उसी प्रकार (इमाः गिरः) ये उत्तम वाणियें (सुते-सुते) जब २ और जहां भी जगत् उत्पन्न होता है वहां वा, प्रत्येक ऐश्वर्य के उत्पन्न होने पर (त्वा उ नक्षन्ते) तुझे ही प्राप्त होती हैं। अर्थात तब २ तू ही स्तुतियो और विद्याओं का भाजन होता है।

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि।
वाजेभिर्वाजयताम्॥ २९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (वाजेभिः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और बलों द्वारा (वाजयताम्) बल, ऐश्वर्य और ज्ञानों की प्राप्ति करने के इच्छुक (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत से विद्वान् पुरुषों के (विवाचि) विविध प्रकार के वाग्

व्यापार होने के अवसर में (गिरः त्वाः नक्षन्ते) नाना उत्तम वाणियां तुझे ही प्राप्त हों।

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः।
अस्मान्राये महे हिनु ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! प्रभो! विद्वन्! (अस्माकम्) हमारा (वाहिष्ठः) उत्तम कार्य वहन करने में समर्थ, (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अन्तमः) तेरे अति समीपतम होकर (ते भूतु) तेरी वृद्धि के लिये हो। इसी प्रकार (ते स्तोमः अस्माकम् अन्तमः वाहिष्ठः भूतु) तेरा स्तुति योग्य उपदेश, वल आदि द्वारा अति निकटतम उन्नतिप्रापक हो। तू (अस्मान्) हमें (महे राये हिनु) वड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये आगे वढ़ा।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्।
उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥

भा०—(पणीनां) विद्वान् पुरुषों के वीच मे (बृबुः) संशयो का उच्छेदन करने वाला विद्वान् और (पणीनां) व्यवहारज्ञ व्यापारी पुरुषो के बीच में (बृबुः) काट २ कर नये पदार्थ बनाने वाला शिल्पी तथा शत्रुओं का उच्छेदक वीर पुरुष (गाङ्ग्यः कक्षः न) वेगवती नदी के तट के समान (वर्षिष्ठे मूर्धन्) दानशील, सर्वोच्च, महान्, शिरोवत् उन्नत पद पर (उरुः) महान् होकर (अधि अस्थात्) प्रतिष्ठित हो।

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी।
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (यस्य) जिस की (सहस्रिणी) सहस्रो ऐश्वर्य युक्त सुखो वाली (भद्रा रातिः) कल्याणमय दान क्रिया (वायोः) वायु की शीतल धारा के समान (सद्यः) अति शीघ्र (दानाय) दान देने के लिये (मंहते) वढ़ती है (सः उरुः गाङ्ग्यः कक्षः न मूर्धन्

अधि स्थात्) वह दुःख संकटों का काटने वाला महापुरुष नदी के ऊंचे तट के समान सबके शिरपर विराजता है ।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥ २६ ॥

भा०—(तत् वः) वह ही हमारा (आर्यः) उत्तम स्वामी होने योग्य है जिस (बृबुं) शत्रुनाशक, संशय, संकट काटने वाले (सहस्र-दातमं) हजारों के देने वाले और (सहस्र-सातमं) सहस्रों के विभाग करने वाले को (विश्वे कारवः सदा आगृणन्ति) समस्त विद्वान् जन नित्य आदर से स्तुति करते हैं । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[४६]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रः प्रगाथ वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ५,७ स्वराडनुष्टुप् । २ स्वराड्बृहती । ३,४ भुरिग्बृहती । ८,६ विराड्बृहती । ११ निचृद्बृहती । १३ बृहती । ६ ब्राह्मी गायत्री । १० पङ्क्तिः । १२,१४ विराट् पङ्क्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्त ! (कारवः) विद्वान और शिल्पीजन, (वाजस्य साता) धन और बल के प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हि हवामहे) तुझ को ही आदर से पुकारते एवं तेरा आश्रय ग्रहण करते हैं । (वृत्रेषु) विघ्नकारी शत्रुओं के बीच में भी (सत्पतिं त्वाम्) सत्पुरुषों के पालक तुझको ही पुकारते हैं । और (नरः) नायक पुरुष भी (अर्वतः काष्ठासु) अश्वों को दूर दिशाओं के देशों तक पहुंचाने के लिये सारथि के समान अध्यक्ष तुझको ही प्राप्त करें ।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मुहः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सुत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रबल को अपने हाथ अर्थात् वश मे रखने वाले ! हे (अद्रिवः) मेघ वा पर्वत के समान शस्त्रवर्षी और अचल वीरो के स्वामिन् ! हे (चित्र) आश्चर्यबलयुक्त ! तू (धृष्णुया) प्रगल्भ वाणी से (महः) उत्तम, २ (स्तवानः) हमे उपदेश और आदेश करता हुआ (जिग्युषे) विजयशील, पुरुष के लिये (वाजं) वेगयुक्त अश्व, और पारितोषिक रूप से ऐश्वर्यादि के समान (नः) हमे भी (गाम्) गौ, भूमि, (रथ्यम्) रथ योग्य अश्व को (सत्रा) सदा, सत्य ज्ञान वा न्याय से (सं किर) अच्छी प्रकार चला और हमे प्रदान कर।

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (सत्राहा) सब दिनो, वा (सत्राहा) सत्य बल से शत्रुओ का नाश करने में समर्थ, (विचर्षणिः) विश्व का विविध प्रकार से द्रष्टा है (वयम्) हम (तम्) उसको (इन्द्रं हूमहे) 'इन्द्र' नाम से पुकारते है। और उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को अपनी रक्षा के लिये पुकारे। हे (सत्पते) सज्जनो के पालक ! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत से धनों के स्वामिन् ! हे (सहस्र-मुष्क) सहस्रों को पुष्ट करने वाले ! और असंख्य वीर्यो, बलो से युक्त ! तू (समत्सु) संग्रामो के अवसरो पर (नः वृधे भव) हमारी वृद्धि के लिये हो।

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥

भा०—(ऋचीषम) हे स्तुति-अनुरूप गुण कर्मों और स्वभाव वाले !

राजन् ! वेद मन्त्रो मे बतलाये गुणो धर्मों के अनुरूप भगवन् ! (घृपौ) घर्पण और (मीढे) वर्पणकाल मे (वृपभा इव) जिस प्रकार मेघो को विद्युत (वाधते) पीडित करता है उसी प्रकार तू भी (घृपौ) परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्धा के अवसर तथा ।(मीढे) शत्रु पर निरन्तर वाणवर्पा तथा प्रजा पर निरन्तर ऐश्वर्यों की वर्पा तथा भूमियों पर जल सेचनादि के निमित्त (मन्युना) क्रोध, और ज्ञानपूर्वक (वृपभा इव जनान्) मेघ तुल्य शरवर्पी एवं वलवान् सांडो के समान दृढ नरपुंगवो को भी (वाधसे) तू पीड़ित वा दण्डित करने मे समर्थ है । हे राजन् ! हे प्रभो ! तू (मह-धने) वड़े ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त होने वाले संग्राम के अवसर मे (तनूपु) प्रजाओं के शरीरो, (अप्सु) प्राणों और (सूर्ये) सूर्य मे क्रम से आत्मा, जीवन और प्रकाश वा प्रताप के तुल्य होकर (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक और ज्ञानदाता होकर हमे (वोधि) ज्ञानवान् कर, हमे चेता ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (वज्र-हस्त) वल वीर्य को वाहु मे धारण करने हारे ! हे (चित्र) आश्चर्यजनक कार्य करने हारे ! हे (सु-शिप्र) सुन्दर मुख नासिका एवं उत्तम मुकुट धारण करने हारे ! (येन) जिससे तू (इमे) इन दोनो (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर सम्बद्ध राजवर्ग या स्त्री पुरुषो को (आ प्राः) सब ओर से परिपूर्ण कर सके, तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमे वही ((ज्येष्ठ) अत्यन्त अधिक, सर्वोत्तम (ओजिष्ठ) अति वलकारी, (पपुरि) नित्य तृप्त और पूर्ण करने वाला, (श्रवः) अन्न और ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

त्वामुग्रमवसे चर्पणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुपहान्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (देवेषु) विद्वानों और विजय की कामना करने वालों के बीच मे (चर्षणी-सहम्) समस्त मनुष्यों को पराजय करने वाले (उग्रं त्वाम्) बलवान् तुझको (हूमहे) हम पुकारते है। तू (नः) हमें (विथुरा) पीड़ा देने वाले (पिब्दना) पीस कर नष्ट कर देने योग्य वा, न समझ में आने वाली, अप्रकट या कृष्ट भाषा बोलने वाले, अपने से भिन्न भाषा-भाषी, (अमित्रान्) शत्रुओं को तू (नः) हमारे लिये (सुसहान् कृधि) सुगमता से विजय करने योग्य कर ।

यदि॑न्द्र॒ नाहु॑षी॒ष्वाँ ओजो॑ नृ॒म्णं च॑ कृ॒ष्टिषु॑ ।
यद्वा॒ पञ्च॑ क्षि॒ती॒नां द्यु॒म्नमा भ॑र स॒त्रा विश्वा॑नि॒ पौंस्या॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नाहुषीषु कृष्टिषु) मनुष्य प्रजाओं में (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल पराक्रम और धनैश्वर्य है और (यत्) जो भी (पञ्च-क्षितीनां द्युम्नं) पांचो प्रकार की राष्ट्रवासिनी प्रजाओं वा भूमियों का तेज और ऐश्वर्य है और (सत्रा) सत्य (विश्वानि पौंस्या) सब प्रकार के पुरुषार्थोपयोगी बल हैं उन सबको (आ भर) तू स्वयं प्राप्त कर और हमें भी प्राप्त करा ।

यद्वा॑ तृ॒क्षौ म॑घवन्द्रु॒ह्यावा जने॒ यत्पू॒रौ कच्च॒ वृष्ण्य॑म् ।
अ॒स्मभ्यं॒ तद्रि॑रीहि॒ सं नृ॒पाह्येऽमित्रा॑न्पृ॒त्सु तु॒र्वणे॑ ॥ ८ ॥

भा०—(यत् वा कत् च) जो कोई भी (वृष्ण्यम्) बल (तृक्षौ जने) बलवान् मनुष्यो मे (द्रुह्यौ वा जने) परस्पर द्रोह करने वाले मनुष्यों में वा जो बल (पूरौ वा जने) एक दूसरे का पालन करने वाले पुरुषों में हो, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तत्) वह बल तू (अमित्रान् तुर्वणे) शत्रुओं को नाश करने के लिये और (नृपाह्ये) मनुष्यों को वश करने के निमित्त और (पृत्सु) संग्रामो के अवसरो पर (अस्मभ्यं) हमें (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे ।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र ऐश्वर्यवन्) आप (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् धनाढ्यों और (मह्यं च) मेरे लिये भी (त्रि धातु) तीन धातु, सुवर्ण, रजत, लोह आदि से युक्त (त्रि-वरूथं) तीनो ऋतुओ मे वरणीय, तीनो प्रकार के कष्टो के वारक, (स्वस्तिमत्) सुख, मंगलयुक्त (शरणम्) शरण देने वाले, आश्रय योग्य (छर्दिः) घर (प्र यच्छ) प्रदान कर । (एभ्यः) इन प्रजाजनो के हितार्थ (दिद्युम् यवय) ज्ञान, प्रकाश प्राप्त कराओ और दीप्तियुक्त शस्त्रादि दूर करो ।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ १०॥२८॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों के सेवन करने हारे ! (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ये) जो लोग (गव्यता मनसा) भूमि की इच्छा वाले मन से (शत्रुम्) शत्रु को (धृष्णुया) दृढ और प्रगल्भ होकर (आ दभुः) विनाश करते और (अभि प्र घ्नन्ति) सब प्रकार से दण्डित करते है, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हम लोगो के तू सदा (तनू-पाः) शरीरो का रक्षक और (अन्तमः) सदा निकटवर्त्ती (भव) हो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्त ! ऐश्वर्यवर्धक ! (अध) और त (नः) हमारे (वृधे) वृद्धि के लिये (भवन्त) सदा यत्नवान् होकर रह । और (युधि) युद्धकाल में (यत्) जब कि (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष आकाश में (पतन्ति) पंखों से उड़े (तिग्म मूर्धान)

तीक्ष्ण सिरो से युक्त (दिद्युवः) वाण (पतयन्ति) पड़ रहे हों तब (अव) रक्षा कर। वा तेजस्वी अन्तरिक्ष से (पर्णिनः) अन्तरिक्ष मे पक्षियों के समान (दिद्यवः) तीक्ष्ण (तिग्म-मूर्धानः) तीक्ष्ण शिर के टोप पहने, (युधि पतयन्ति) युद्ध में दौड़ रहे हों तब भी (नः नायम् अव) हमारे नायक की रक्षा कर।

यत्र शूरा॑सस्तन्वो॑ वितन्व॒ते प्रि॒या शर्म॑ पि॒तॄणाम् ।
अध॑ स्मा यच्छ त॒न्वे॒३॒॑ तने॑ च छ॒र्दिर॒चित्तं॑ या॒वय॒ द्वेषः॑ ॥ १२ ॥

भा०—(यत्र) जहां (शूरासः) शूरवीर पुरुष (पितृणाम्) अपने पालक माता पिता और गुरुओ के (तन्वः) शरीर के सुख के (प्रिया शर्म) प्रिय गृहादि सुखकारक पदार्थों का (वि तन्वते) विस्तार करते है ऐसे राष्ट्र मे हे राजन् ! विद्वन् ! (अध स्म) आप भी हमारे (तन्वे तने) शरीर और पुत्र आदि विस्तृत कुल के निमित्त (छर्दिः यच्छ) उत्तम गृह प्रदान कर। और (अचित्तं द्वेषः यवय) चित्त रहित, निर्दयता युक्त वा अज्ञान से युक्त द्वेष को दूर करो।

यदि॑न्द्र॒ सर्गे॒ अर्व॑तश्चो॒दया॑से महाध॒ने ।
अ॒स॒मने॒ अध्व॑नि वृजि॒ने प॒थि श्ये॒नाँ इ॑व श्रवस्य॒तः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! (यत्) जब (सर्गे) करने योग्य वा प्रयाण करने योग्य (महाधने) संग्राम मे और (असमने) विषम, वा संग्राम से भिन्न अवसर मे भी (वृजिने) बलयुक्त सैन्य और (पथि अध्वनि) गमन करने योग्य मार्ग मे (श्येनान् इव) बाजो के समान अति वेगवान् (श्रवस्यत) यश के अभिलाषी (अर्वतः) अवसरो को (चोदयासे) अपनी आज्ञा पर चलाता है, वह तू हमे सदा शरण दे।

सिन्धूँ॑रिव प्रव॒ण आ॑शु॒या य॒तो यदि॒ क्लोश॒मनु॒ ष्वणि॑ ।
आ ये वयो॒ न वर्वृ॑त॒त्यामि॑षि गृभी॒ता बा॒ह्वोर्गवि॑ ॥ १४ ॥ २९ ॥

भा०—(प्रवणे सिन्धून् इव) जिस प्रकार नीचे प्रदेश मे नदियां वहती है और जिस प्रकार (स्वनि क्रोशम् अनु वयः न) खटका होनेपर भय पाकर पक्षिगण वेग से भागते है (बाह्वोः गृभीताः गवि आभिषि वयः न) बाहुओ मे संकुचित हुए पक्षीगण मृत गौ के मांस के निमित्त वेग से झपटते है उसी प्रकार (आशुया) वेग से युक्त (स्वनि) नायक की आवाज़ पर (क्रोशम् अनु) कोस पर कोस, वा शत्रु या मित्र के आह्वान के साथ २ (यतः) जाते हुए (सिन्धून्) वेगवान् अश्वा-रोही वीरो को (गवि) भूमि विजय के निमित्त (बाह्वोः गृभीताः) रासो को हाथ मे पकड़े (ये) जो (आ ववृतति) पुनः आक्रमण करते है तू उनकी भी रक्षा कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४७]

गर्ग ऋषिः ॥ १—५ सोमः । ६—१९, २०, २१—३१ इन्द्रः । २० लिंगोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः । २६—२८ रथ । २९—३१ दुन्दुभिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, २१, २२, २८ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २६, ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ९, १२, १३, २९, ३१ भुरिक् पंक्तिः । १४, १७ स्वराट् पंक्तिः । २३ आसुरी पंक्तिः । १९ बृहती । २४, २५ विराड्गायत्री ॥ एकत्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतोन्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्य और ओषधि अन्नादि का उत्तम रस और विद्वज्जन समूह वा बल (किल) अवश्य (स्वादुः) इक्षु के समान स्वाद-युक्त, सुखजनक (मधुमान्) मधुर स्वाद से युक्त ओषधि रसवत् ही मधुर और गुणकारी, (उत अयं तीव्रः) और यह तीव्र रस वाले ओषधि रस के

समान ही वेग से कार्य करने वाला हो, (किल अयं रसवान् उत) और वह निश्चय से रस अर्थात् बलयुक्त भी हो (उतो नु) और (अस्य-पपिवांसम् इन्द्रम्) जिस प्रकार ओषधि को पान करने वाले पुरुष को बल की प्रतिस्पर्द्धा मे कोई नहीं जीतता है उसी प्रकार (अस्य) इस ऐश्वर्य वा विद्वान् प्रजामय राष्ट्र के (पपिवांसम्) पालन करने वाले (इन्द्रं) समृद्ध राजा को भी (आहवेषु) युद्धों मे (कश्चन न) कोई भी नहीं (सहते) पराजित कर सके ।

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३हन् ॥२॥

भा०—(अयं) यह सोम अर्थात् ऐश्वर्य, बल, और विद्वत्समूह देने वाला, (इह) इस राज्य शासन मे वा लोक में (मदिष्ठः) अतिहर्ष-दायक और तृप्तिकारक (आस) होता है (यस्य) जिसके द्वारा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक, (वृत्र-हत्ये) मेघ के विनाश करने वाले सूर्य के तुल्य शत्रु के नाश के अवसर में (ममाद) अति प्रसन्न होता है । (यः) जो (शम्बरस्य) मेघ के समान ही प्रजा के सुखों के विनाशक शत्रु के (नवतिं नव) ९९ प्रकार के (च्यौत्ना) बलो और चालो को भी (वि अहन्) विविध उपायों से विनाश करता है ।

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥

भा०—(अयं) यह ओषधिरस जिस प्रकार (पीतः वाचम् उत् इयर्ति) पान किया जाकर उत्तम वाक्-शक्ति को उत्पन्न करता है, और (अयम्) जिस प्रकार ओषधिरस (उशतीम् मनीषाम् अजीगः) कामना करने योग्य, उत्तम प्रजा या बुद्धि को जागृत करता है उसी प्रकार (अयं) यह विद्वज्जन वा सौम्य प्रजाजन (पीतः) पालित पोषित होकर

(वाचम् इत् इयर्ति) वेदमय, ज्ञानवाणी का उपदेश करता है। (उशतीम्) उत्तम कमनीय (मनीषाम्) बुद्धि, मति को (अजीग:) अन्यों को प्राप्त कराता और जगाता है। और जिस प्रकार ओषधि रस के बल से (धीरः) बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष (याभ्य: आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे परे कोई भुवन नहीं उन (षड् उर्वीः अमिमीत) छहों विशाल चराचर लोक-सृष्टियों, प्रकृति की विकृतियों को भी जान लेता है उसी प्रकार (अय) यह राजा भी (धीरः) धैर्यवान् होकर उस विद्वज्जन के द्वारा (षट् उर्वीः) उन छः बड़ी, प्रजा संस्थाओं या राजप्रकृतियों को भी (अमिमीत) अपने अधीन कर लेता है (याभ्यः आरे) जिनसे परे या जिनसे निकट (कत् चन भुवनं न) कोई भी लोक नहीं है। षड् उर्वी:—प्रकृति के पांच भूत, पांच विकृति और महत्तत्व, अथवा पांच इन्द्रिय, तन्मात्रा और छठा मानस तत्व। राजतन्त्र स्वपक्ष की षड् प्रकृतियां स्वामी के अतिरिक्त अमात्यादि, वा षड् गुण, अथवा द्वादश राजचक्र में स्वपक्ष परपक्ष के छ. छ. सुहृदादि।

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥ ४ ॥

भा०—व्यापक सोम तत्व का वर्णन। (अयं सोमः) यह वह सोम, सबका उत्पादक, सबका प्रेरक पदार्थ या बल है (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमाणं) श्रेष्ठ और बड़प्पन को (अकृणोत) बनाता है, (अयं सः) यह वह पदार्थ है जो (दिवः वर्ष्माणं) सूर्य या आकाश के वृष्टिकारक सामर्थ्य और (वर्ष्माणं) दृढ़त्व या समस्त लोकों के बन्धन वा नियन्त्रण करने वाले सामर्थ्य को (अकृणोत) उत्पन्न करता है। (अयं) यह (तिसृषु) तीनों (प्रवत्सु) ऊपर नीचे की भूमियों में भी (पीयूषं) जल तत्व को और (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष व जल को भी वायुवत् (दाधार) धारण करता है।

सोमः— स्वा वै मे एषा तस्मात्सोमो नाम । श० ३ । ९ ४ । २२ ॥ श्रीर्वै सोमः । श० ४ । १ । ३९ ॥ राजा वै सोमः श० १४ । १ । ३ । १२ । सोमो राजा राजपतिः । तै २ । ५ । ६ । ३ ॥ अयं वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः । कौ० ४ । ४ ॥ क्षत्रं सोमः । २ । ३८ ॥ अन्नं सोमः कौ० ९ । ६ ॥ उत्तमं वा एतत् हविर्यत् सोमः । श० १२ । ८ । २ । १२॥ प्राणः सोमः श० ७ । ३ । १ । २ ॥ रेतः सोमः । कौ० १३ । ७ ॥ एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो । राजा ऐ० १ । १३ ॥ सोमो वै ब्राह्मणः । ता० २३ । १६ । ५ ॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा तै० १ । ३ । ३४ ॥ इन उद्धरणो से सोम शब्द से आत्मा, ऐश्वर्य, राजा, विद्वान् क्षत्रियबल, अन्न, प्राण, वीर्य, प्रजा, विद्वान्, सभापति, ब्राह्मण और वीर्यवान् पुरुष-ये सब 'सोम' कहाते हैं ।

अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्यामस्तभ्नाद्वृषभो मरुत्वान् ।५।३०।

भा०—जिस प्रकार (शुक्रसद्मनाम्) जल वा तेज का आश्रय या ओस और प्रकाश रूप फैला देने वाली उषाओ के (अनेको) प्रमुख भाग में (अयम्) यह सूर्य (चित्र-दृशीकम् अर्णः विदत्) आश्चर्य से देखने योग्य जल वा तेज को प्राप्त कराता है उसी प्रकार (अयम्) यह तेजस्वी राजा या क्षत्र वर्ग भी (शुक्र-सद्मनाम्) उत्तम गृह बना कर रहने वाली (उपसाम्) उसको चाहने वाली प्रजाओ वा शत्रु को भस्म करने वाली प्रजाओ के (अनीके) प्रमुख भाग वा दल सैन्य मे (चित्रं दृशीकम् अर्णः) अद्भुत दर्शनीय तेज को (विदत्) प्राप्त करे और करावे । (अयं) और वह (मरुत्वान्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषो और प्रजा वर्गो का स्वामी, (वृषभः) मेघवत् वा सूर्यवत् ही प्रजा पर सुखो की वर्षा करने वाला होकर (महता स्कम्भनेन द्याम्) बड़े भारी थामने वाले सूबल सेर्य जिस प्रकार आकाश के चन्द्रादि पिण्डो को धारण करता है

इसी प्रकार (महता स्कम्भनेन) बडे भारी थामने के बल से (महान्) महान् होकर (द्याम् अस्तभ्नात्) चाहने वाली प्रजा वा पृथिवी को अपने वश करे। (२) इसी प्रकार गृहपति कामना योग्य शुद्ध गृह मे वसने वाली दाराओ के सहयोग मे (अर्णः) धन प्राप्त करे। बलवान् वीर्य सेचन मे समर्थ और दृढ प्राणवान् होकर बडे बल से बलवान् होकर (द्याम्) नाना कामना वाली पत्नी को धारण करे। इति त्रिंशो वर्गः ॥

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शूर) शूरवीर ! (धृषत्) शत्रुओं को धर्षण करने मे समर्थ होकर (वसूनाम् समरे) राष्ट्र मे बसे प्रजाजन के संगम स्थान तथा (वसूनां समरे) राष्ट्र बसाने वाले अन्य राजाओं के संग्राम मे विघ्नकारी वा बढते शत्रु का नाशकारी होकर (कलशे) पात्र में रक्खे जल के समान (कलशे) राष्ट्र मे विद्यमान (सोमम्) सर्व शासकपद तथा ऐश्वर्य को (पिब) पान कर, उपभोग वा पालन कर। सूर्य जिस प्रकार (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न मे प्रखर ताप वाला होकर जल सेचता है उसी प्रकार तू भी (सवने) अभिषेक काल वा शासन-कार्य मे तीक्ष्ण होकर (आ वृषस्व) सर्वत्र उत्तम प्रबन्ध कर। और (रयिस्थान) ऐश्वर्य का आश्रय होकर (अस्मासु) हम मे भी (रयिम् धेहि) ऐश्वर्य स्थापन कर।

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमें (पुरएता इव) अग्रगामी नायक के समान (प्र पश्य) अच्छी प्रकार देख, हमारे सुख दुःख का अच्छी प्रकार विचार कर। (नः) हमें (वस्यः)

श्रेष्ठ धन (प्रतरं) सब दुःखों से पार करने वाला (अच्छ प्र नय) अच्छी प्रकार हमें दे । तू (सुपारः) उत्तम पूर्ण और पालन करने हारा होकर (अति पारयः भव) सब संकटों से पार करने वाला हो । और तू (नः) हमारे भी (सु-नीतिः) उत्तम सुखकारक नीति वाला और (वाम-नीतिः) सुन्दर नीति वाला (भव) हो ।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (नः) हमे (उरु) बड़े भारी (लोकं) उत्तम लोक, अभ्युदय और ज्ञानमय प्रकाश को (अनु नेपि) प्राप्त करा । तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमे (स्ववंत्) सुखयुक्त (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश और (स्वस्ति) सुख कल्याण (अनु नेषि) प्राप्त करा । हे राजन् ! हम लोग (ते) तुझ (स्थविरस्य) वृद्ध, अनुभवी की (ऋष्वा) बड़े २ (बाहू) बाहुओं को (बृहन्ता) बड़े शरणदायक आश्रयवत् (उपस्थेयाम) प्राप्त करें ।

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्न के देने हारे ! तू (वरिष्ठे) बहुत बड़े और अति उत्तम (वन्धुरे) प्रेमयुक्त वन्धन मे (नः आधाः) हमे रख । और उत्तम प्रवन्धयुक्त राष्ट्र मे हमे स्थापित कर । और (वहिष्ठयोः) खूब सुख से वहन करने मे समर्थ (अश्वयोः) दो घोडों के आश्रय पर जिस प्रकार रथ को सुख से ले जाते हैं उसी प्रकार (वहिष्ठयोः) राज्य कार्य-भार को वहन करने वाले दो उत्तम पुरुषों के आश्रय पर हे (शतावन्) सैकडों ऐश्वर्यों व सैकडों वीरों के स्वामिन् ! शतक्रतो ! शतपते ! (इषां) सेनाओं मे से (वर्षिष्ठाम् इषम्), खूब शरवर्षा करने वाली बहुत बड़ी सेना को (आ वक्षि) धारण कर । और (इषं वर्षि-

ष्ठाम् इषम्) अन्नों के बीच में से बहुत बड़े हुए अन्न सम्पदा को हमें प्रदान कर। हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (अर्यः) स्वामी (नः रायः) हमारे धनों को (मा तारीत्) विनष्ट न कर।

इन्द्र॑ मृ॒ळ मह्यं॑ जी॒वातु॑मिच्छ चो॒दय॒ धिय॒मय॑सो॒ न धारा॑म्।
यत्किं॒चाहं त्वा॒युरि॒दं वदा॑मि॒ तज्जु॑षस्व कृ॒धि मा॑ दे॒ववन्तम् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सब सुखों के देने हारे ! प्रभो ! तू (मह्य मृड) मुझे सुखी कर और (मह्य जीवातुम् इच्छ) मेरे दीर्घ जीवन की इच्छा कर। (मह्यं धियं धारां च) बुद्धि और वाणी दोनों को (अयसः धाराम् न) लोहे के बने शस्त्र की धारा के समान अति तीव्र और तीक्ष्ण बनाकर (चोदय) उनको सन्मार्ग में चला। (अहं) मैं (त्वायुः) तेरी कामना करता हुआ (यत् किं च इदं वदामि) यह जो कुछ भी तेरे समक्ष कहूं (तत् जुषस्व) उसे तू स्वीकार कर और (मा) मुझे (देववन्तं) उत्तम गुणवान् और उत्तम मनुष्यों का स्वामी (कृधि) कर। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मवि॒तार॒मिन्द्रं॒ हवे॑हवे सु॒हवं॒ शूर॒मिन्द्र॑म्।
ह्वया॑मि श॒क्रं पु॑रुहू॒तमिन्द्रं॑ स्व॒स्ति नो॑ म॒घवा॑ धा॒त्विन्द्रः॑ ॥११॥

भा०—मैं प्रजाजन (त्रातारम्) त्राण करने वाले, पालक (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (अवितारम् इन्द्रम्) ज्ञान रक्षादि देने वाले अविद्या आदि दोषों के नाशक, (शूरम्) शत्रुहिंसक (इन्द्रम्) सेना के स्वामी, (सुहवं) उत्तम नाम वाले वा उत्तम स्पर्धाकारी पुरुष को (हवे हवे) प्रति संग्राम में (ह्वयामि) पुकारता हूं। और (शक्रं) शक्तिशाली (पुरुहूतं) बहुतों से आदर पाने योग्य (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शुभ गुण-धारी पुरुष को भी मैं 'इन्द्र' नाम से ही पुकारता हूं। और (मघवा) उत्तम धनवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः स्वस्ति धातु) हमें कल्याण सुख प्रदान करे।

श्रेष्ठ धन (प्रतरं) सब दुःखों से पार करने वाला (अच्छ प्र नय) अच्छी प्रकार हमे दे। तू (सुपारः) उत्तम पूर्ण और पालन करने हारा होकर (अति पारयः भव) सब संकटों से पार करने वाला हो। और तू (नः) हमारे भी (सु-नीतिः) उत्तम सुखकारक नीति वाला और (वाम-नीतिः) सुन्दर नीति वाला (भव) हो।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू (नः) हमे (उरु) बड़े भारी (लोकं) उत्तम लोक, अभ्युदय और ज्ञानमय प्रकाश को (अनु नेषि) प्राप्त करा। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमे (स्वर्वत्) सुखयुक्त (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश और (स्वस्ति) सुख कल्याण (अनु नेषि) प्राप्त करा। हे राजन्! हम लोग (ते) तुझ (स्थविरस्य) वृद्ध, अनुभवी की (ऋष्वा) बड़े २ (बाहू) बाहुओं को (बृहन्ता) बड़े शरणदायक आश्रयवत् (उपस्थेयाम) प्राप्त करें।

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अन्न के देने हारे! तू (वरिष्ठे) बहुत बड़े और अति उत्तम (वन्धुरे) प्रेमयुक्त बन्धन मे (नः आधाः) हमे रख। और उत्तम प्रबन्धयुक्त राष्ट्र मे हमे स्थापित कर। और (वहिष्ठयोः) खूब सुख से वहन करने मे समर्थ (अश्वयोः) दो घोड़ों के आश्रय पर जिस प्रकार रथ को सुख से ले जाते हैं उसी प्रकार (वहिष्ठयोः) राज्य कार्य-भार को वहन करने वाले दो उत्तम पुरुषों के आश्रय पर हे (शतावन्) सैकड़ो ऐश्वर्यों व सैकड़ों वीरों के स्वामिन्! शतक्रतो! शतपते! (इषां) सेनाओं मे से (वर्षिष्ठाम् इषम्), खूब शरवर्षा करने वाली बहुत बड़ी सेना को (आ वक्षि) धारण कर। और (इष वर्षि-

ष्ठाम् इषम्) अन्नों के बीच में से बहुत बड़े हुए अन्न सम्पदा को हमें प्रदान कर। हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (अर्य) स्वामी (नः रायः) हमारे धनों को (मा तारीत्) विनष्ट न कर।

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥१०॥३१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सब सुखों के देने हारे ! प्रभो ! तू (मह्यं मृड) मुझे सुखी कर और (मह्यं जीवातुम् इच्छ) मेरे दीर्घ जीवन की इच्छा कर। (मह्यं धियं धारां च) बुद्धि और वाणी दोनों को (अयसः धाराम् न) लोहे के बने शस्त्र की धारा के समान अति तीव्र और तीक्ष्ण बनाकर (चोदय) उनको सन्मार्ग में चला। (अहं) मैं (त्वायुः) तेरी कामना करता हुआ (यत् किं च इदं वदामि) यह जो कुछ भी तेरे समक्ष कहूं (तत् जुषस्व) उसे तू स्वीकार कर और (मा) मुझे (देववन्तं) उत्तम गुणवान् और उत्तम मनुष्यों का स्वामी (कृधि) कर। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥११॥

भा०—मैं प्रजाजन (त्रातारम्) त्राण करने वाले, पालक (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (अवितारम् इन्द्रम्) ज्ञान रक्षादि देने वाले अविद्या आदि दोषों के नाशक, (शूरम्) शत्रुहिंसक (इन्द्रम्) सेना के स्वामी, (सुहवम्) उत्तम नाम वाले वा उत्तम संग्रामकर्त्ता पुरुष को (हवे हवे) प्रति संग्राम में (ह्वयामि) पुकारता हूं। और (शक्रं) शक्तिशाली (पुरुहूतं) बहुतों से आदर करने योग्य (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् गुरु गुणधारी पुरुष को भी मैं 'इन्द्र' नाम से ही पुकारता हूं। और (मघवा) उत्तम धनवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः स्वस्ति धातु) हमें कल्याण सुख प्रदान करे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता, दुष्टों का विदारक राजा, सेनापति (सु-त्रामा) प्रजा का सुख से, और उत्तम रीति से पालन करने वाला, (स्व-वान्) अपने नाना बन्धु भृत्यादि से युक्त और 'स्व' अर्थात् नाना धनों का स्वामी (सु-मृडीकः) उत्तम सुखप्रद, कृपालु, (अवोभि) उत्तम रक्षा साधनों, ज्ञानों और तृप्तिकारक अन्नों से (विश्व-वेदा) समस्त ज्ञानों को जानने और समस्त धनों को प्राप्त करने वाला (भवतु) हो। वह (द्वेषः बाधतां) समस्त द्वेष करने वाले शत्रुओं को पीड़ित करे और (अभयं कृणोतु) हमें भय से रहित करे। जिससे हम सब (सु-वीर्यस्य पतयः) उत्तम बल वीर्य के पालक, स्वामी हों।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) दान सत्कार, मान पूजा आदि के योग्य, पुरुष के (सु-मतौ) शुभ बुद्धि और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) उत्तम मनन और ज्ञानयुक्त व्यवहार के (अपि स्याम) अधीन रहें। उसकी उत्तम सलाह और सद्विचार के अधीन रहें। (सः) वह (सु-त्रामा) सुखपूर्वक प्रजा के रक्षक (स्व-वान्) धन, भृत्य आदि वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे द्वेष) हमारे में द्वेष करने वालों को (आरात् चित्) दूर से ही (सनुत) सदा, (युयोतु) हमसे दूर कर दिया करे।

अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ऊर्मि प्रवतः न) जल राशि, या नद स्रोत, वा जल-तरंग जिस प्रकार नीचे प्रदेशों की ओर जाते हैं उसी प्रकार

(गिरः) स्तुतिकर्त्ताओं की वाणियां, और विद्वान् जन, (ब्रह्माणि) समस्त वेद और धनैश्वर्य, (नि-युतः) लक्षों की संख्या में वा (नि-युत) तेरे अधीन रहकर युद्ध करने वाले, वा अधीन नियुक्त अश्वादि जन, (त्वे) तेरे अधीन ही (अव धवन्ते) चलते हैं तुझको पति के समान स्वीकार करते हैं। तू भी हे (वज्रिन्) बलवन्! (पुरूणि सवनानि) बहुत से ऐश्वर्यों को (ऊरु राधः न) बहुत से धन के समान और (अपः) आप्त प्रजाजनों को (गाः) भूमियों, उत्तम वाणियों और (इन्द्रम्) आह्लादक दयालु पुरुषों को भी (सं युवसे) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है।

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत्।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥३२॥

भा०—(यत्) जो (मघवा) देने योग्य ऐश्वर्य का स्वामी (उग्रम् इत्) उग्र, बलवान्, समर्थ पुरुष को ही (विश्वहा) सदा (अवेत्) प्राप्त करता है, और जिस प्रकार (पादौ प्रहरन् इव) पैरों को चलाता हुआ पुरुष (पूर्वम् अपरं अन्यम्-अन्यम् कृणोति) पहले पैर को पीछे और दूसरे को आगे करता है उसी प्रकार जो (शचीभिः) अपनी बुद्धियों, शक्तियों और वाणियों द्वारा (पूर्वम् अपरम् अन्यम्-अन्यम्) पूर्व विद्यमान पदाधिकारी को पद से च्युत और पद पर अनियुक्त, पश्चात् आये नव युवक पुरुष को पद पर नियुक्त करता अथवा सैन्य सञ्चालन करते हुए आगे के जनों को पीछे और पीछे वालों को आगे करता रहता है, (कः ईं स्तवत्) उसको कौन वर्णन या उपदेश कर सकता है, (कः पृणात्) और उसको कौन प्रसन्न कर सकता है और उसका (कः यजाते) कौन सङ्ग साथ दे सकता है? यह कह जावे। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥

भा०—(वीर) वीर पुरुष (उग्रम् उग्रम्) प्रत्येक उग्र, तेजस्वी

पुरुष को (दमायन्) दमन करता हुआ, और (अन्यम् अन्यम्) भिन्न २, नाना व्यक्तियों को (अति नेनीयमानः) एक दूसरे से बढ़ाता हुआ, (एधमान-द्विट्) अपने से बढ़ते हुए, प्रतिस्पर्धी शत्रु से द्वेष करता हुआ (उभयस्य राजा) शासकवर्ग और शास्यवर्ग दोनों के बीच चमकता हुआ, दोनों का राजा होकर (विशः) अपने शासन में प्रविष्ट, या बसे हुए (मनुष्यान्) मनुष्यों को वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यप्रद पुरुष (चोष्कूयते) बुलाता है, अपने अधीन उन पर शासन करता है।

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, अन्यों को वृत्ति आदि धन देकर पालने वाला राजा (पूर्वेषां) अपने से पूर्व विद्यमान बड़े अनुभवी लोगों के (सख्या) सख्य अर्थात् मित्रता के बल से वह (अनानुभूतीः) अपनी अनुभवशून्यताओं वा अज्ञात बातों को (वितर्तुराणः) विविध प्रकार से विनाश करता हुआ अपने अज्ञानों को (परावृणक्ति) दूर करता है। और (अपरेभिः) अन्य नाना पुरुषों के साथ मिल कर भी (अनानुभूतीः) अनुभवरहित सामर्थ्यहीन, असहृदय जनों को भी (अव-धून्वानः) दूर करता हुआ (एति) आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह सूर्य के समान (पूर्वीः शरदः) अपने पूर्व की आयु के वर्षों को (तर्तरीति) व्यतीत करे।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥

भा०—राजा और जीवात्मा का वर्णन। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप अर्थात् प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का (प्रति रूपं) प्रतिनिधि (बभूव) हो। (अस्य) इस राजा का (तत्) वह रूप (प्रति-चक्षणाय) प्रत्यक्ष में देखने और कहने के लिये है। (इन्द्र)

वह ऐश्वर्यवान् पुरुष (मायाभिः) अपनी नाना बुद्धियों और नाना शक्तियों से (पुरु-रूपः ईयते) बहुत प्रकार का जाना जाता है । क्योंकि (अस्य) इसके अधीन (शता दश) हजारों (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) नियुक्त रहते है । इसी प्रकार (इन्द्रः) जीवात्मा भी विद्युत् के समान (रूपं-रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक प्राणि के रूप मे तदाकार होकर विराजता है । (तत् अस्य रूपं प्रति चक्षणाय) उसका वह रूप सबको प्रकट नहीं है वह प्रत्येक के लिये गुरु द्वारा कथन करने और अध्यात्म दृष्टि से देखने योग्य है । वह जीवात्मा (मायाभि) नाना बुद्धियों, संकल्पो से ही (पुरु-रूपः ईयते) नाना रूप का जाना जाता है । (अस्य) इसके शासन मे, देह में ही (दश शता हरयः) दस सैकड़ो प्राणगण अश्वों वा भृत्यों के समान (युक्ताः) जुड़ कर ज्ञानतन्तु, तथा शक्तितन्तुओं के रूप में काम करते हैं ।

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

भा०—जिस प्रकार (रथे) रथ मे (हरिता) वेग से जाने वाले अश्वों को (युजान) लगाता हुआ रथी विराजता है उसी प्रकार राजा भी (रथे) अपने रमणीय, उत्तम राष्ट्र मे (हरिता) कार्य भार उठा सकने मे समर्थ संचालकों को (युजानः) नियुक्त करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी सूर्य के समान चमकता हुआ (इह) इस लोक मे (भूरि राजति) बहुत अधिक प्रकाशित होता है । यदि वह इतना तेजस्वी न हो तो (कः) कौन अतेजस्वी पुरुष (विश्वाहा) सब दिनों (द्विषत पक्ष) शत्रु को सन्तप्त करने हारा होकर (आसते) विराज सकता है । (उत) और (आसीनेषु सूरिषु) विद्वानों के विराजते हुए उनके बीच मे भी कौन तेजस्वी होकर सिंहासन पर विराज सकता है । (इ) इसी प्रकार (त्वष्टा) अति सूक्ष्म, कर्त्ता जीव (रथे) इस देह में (हरिता) विषयों का हरण

करने वाले इन्द्रियों को (युजानः) जोड़ता हुआ वा योगी आत्मा (हरिता) प्राण अपान दोनो को दो अश्वों के समान ही योगद्वारा वश करता हुआ (सूरिषु आसीनेषु) देह के प्रेरक प्राणों के विराजते हुए भी (द्विषत. पक्षः विराजते) अप्रीतियुक्त द्वन्द्वों का भी ग्रहण करता रहता है।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२०॥३३

भा०—हे (देवा.) विद्वान् पुरुषो ! यह (भूमिः) भूमि (उर्वी सती) बहुत बड़ी होती हुई (अंहू-रणा) आने वाले प्राणियो से रण अर्थात् परस्पर युद्ध और रमण क्रीडा आदि करने योग्य (अभूत्) होती रही है। इस भूमि मे हम लोग (अगव्यूति क्षेत्रम्) विना मार्ग के क्षेत्र या निवासार्थ भूमि को यदि (आगन्म) प्राप्त हो तो हे (बृहस्पते) राष्ट्र के स्वामिन् ! तू (गविष्टौ) भूमि के प्राप्त करने पर (प्र चिकित्स) अच्छी प्रकार गुण दोष आदि जान। (इत्था) इस प्रकार (सते जरित्रे) उत्तम सज्जन विद्वान् पुरुष के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (पन्थाम् प्र चिकित्स) मार्ग का भी ज्ञान कर। (२) अध्यात्म मे महती प्रकृति तमोमय होने से पापमयी होती है। जीव इस देह रूप ऐसे क्षेत्र मे आजाता है जहां उसे जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का मार्ग नही मिलता। इसलिये विद्वान जन मार्ग का उपदेश किया करे। इति त्रयस्त्रिंशो वर्ग. ॥

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (जाः) उत्पन्न हुआ सूर्य (दिवे दिवे) प्रति दिन (सदृशीः कृष्णाः) एक समान काली रात्रियों को (अप असेधत्) दूर करता है और (अन्यम् अर्धं) दूसरे आधे को (असेधत्) प्राप्त करता है और जिस प्रकार (वृषभ.) वर्षा का मूल कारण सूर्य

(उद-व्रजे) जल के गमनयोग्य मार्ग आकाश मे (वस्नयन्ता) रहना चाहते हुए (वर्चिन शम्बरं च) तेजोमय मेघ और जल दोनो को (अहन्) आघात करता है उसी प्रकार राजा भी (जाः) प्रकट होकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) एक समान (कृष्णाः) घोर प्रजाकर्षण, प्रजा-पीडनकारिणी शत्रु सेनाओ को (सद्मन) अपने स्थान से (अप असेधत) दूर करे और (अन्यम्) दूसरे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र को (असेधत्) प्राप्त करे। वह (वृषभ) बलवान् होकर (उद-व्रजे) जल के मार्ग नदी आदि के तटो पर (वर्चिनं) तेजस्वी (शम्बरं) शान्तिनाशक (वस्न-यन्ता दासा) नाना आच्छादन, तथा वस्त्र एवं निवासादि चाहने वाले (दासा) प्रजानाशक शत्रु स्त्री पुरुषो को (अहन्) दण्डित करे।

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

भा०— हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (प्र स्तोकः इत् नु) तेरी उत्तम स्तुति करने वाला प्रजाजन ही (ते) तुझे (राधसः) धनै-श्वर्य से पूर्ण (दश कोशयी) कोशो या खजानो से भरी पूरी दस भूमियो और (दश वाजिन.) बल, वेग, अन्न धनादि से युक्त दशो प्रकार के पदार्थो को भी (अदात्) प्रदान करता है। (दिव-दासात) ज्ञानप्रकाश और भूमि को तेरे हाथ सौंप देने वाले दाता ब्राह्मणवर्ग से प्राप्त (अतिथि-ग्वस्य) अतिथिवत् पूज्य होकर सम्मानयोग्य वाणी या गौ, भूमि को प्राप्त करने वाले तेरे ही (राधः) धनैश्वर्य को हम लोग (शाम्बर वसु) मेघ से बरसे जल के समान समग्र रूप से (प्रति अग्रभीष्म) हम प्राप्त करे। प्रजा राजा को सब प्रकार का ऐश्वर्य दे। ब्राह्मणवर्ग राजा को अतिथिवत् पूज्य जान कर उसके हाथ भूमि ऐसे ही सौंपता है जैसे सूर्य मेघ को भूमि देता है। तब उस राजा के ऐश्वर्य का प्रजाजन ऐसे ही उपयोग करे जैसे वे मेघ के जल का उपयोग करते है।

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥

भा०—मैं (दिवः-दासात्) कामना करने योग्य ज्ञानप्रकाश और भूमि आदि के नाना पदार्थों के देने वाले से (दश अश्वान्) दश अश्व (दश) दश (कोषान्) कोश (दश अधि-भोजना) दस प्रकार के उत्तम २ भोजन और (वस्त्रा) पहनने के वस्त्र (दशो हिरण्य-पिण्डान्) दस सुवर्णादि के पिण्ड भी (असानिषम्) प्राप्त करूं । (२) अध्यात्म में— अश्व इन्द्रियें, दश कोश अन्नमयादि पांच, अन्तःकरणचतुष्ट, और आत्मा इन्द्रियों के दश अर्थ, दशधा गात्र दश पिण्ड ।

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः ।
अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥

भा०—(अश्वथः) अश्वों, अश्व सैन्यों का स्वामी, राष्ट्र का भोक्ता राजा (अथर्वभ्यः) अहिंसक और राज्य के पालक विद्वान् शासको के उपयोग के लिये (प्रष्टि-मतः) स्वतन्त्र इच्छा से रहित, पूछ कर काम करने के स्वभाव वाले, अधीन (दश रथान्) दस रथों, रथ सैन्यो को और (शतं च गाः) सौ भूमियां या सौ बैल (पायवे) उत्तम पालक अध्यक्ष के लिये (अदात्) देवे ।

महि राधो विश्वजन्यं दधाना-
न्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(सार्ञ्जयः) नाना न्याययुक्त राज्य-कार्यों को करने मे समर्थ पुरुषों का अधिपति राजा (विश्वजन्यं) सर्वजनहितकारी (महि राधः) बडे भारी धन को (दधानान्) धारण करने वाले (भरद्वाजान्) ऐश्वर्य अन्नादि के द्वारा प्रजा का पालन करने मे समर्थ ज्ञानी पुरुषों को (अभि अयष्ट) आदर पूर्वक प्रदान करे । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो हि भू॒या अ॒स्मत्स॑खा प्र॒तर॑णः सु॒वीरः॑ ।
गोभिः॒ सन्न॑द्धो असि वी॒ळय॑स्वास्था॒ता ते॑ जयतु॒ जेत्वा॑नि ॥२६॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणो के पालक सूर्य के समान तेजस्विन्! सेवनीय ऐश्वर्य के पालक! वा शत्रुहिंसक सैन्य के स्वामिन्! राजन्! विद्वन्! तू (वीडु-अङ्गः) शरीर और राज्य के सुदृढ़ अंगो वाला, (प्रतरण.) नौकावत् वा रथवत् संकटो से पार उतारने, मार्ग पार कराने वाला (सु-वीरः) उत्तम वीर होकर (अस्मत् सखा भूया·) हमारा मित्र और हमको अपना मित्र बनाये रखने वाला हो । हे राजन् तू (सन्नद्ध) अच्छी प्रकार तैयार होकर (गोभि·) वाण के फेकने वाली डोरियों से. (वीडयस्व, वीरयस्व) वीर कर्मकर शत्रुओं पर वाण फेंक । वा हे राजन् तू (संनद्ध·) अच्छी प्रकार कस कसाकर, सुसज्जित होकर (गोभिः) उत्तम वाणियों और भूमियों से (वीडयस्व) अपने को अधिक दृढ़ कर । हे विद्वन्! तू (गोभि वीडयस्व वि-ईरयस्व) विविध विद्याओ का उपदेश कर । तू (आ-स्थाता असि) अध्यक्ष होकर विराज और (ते) तेरे अधीन सैन्य वर्ग (जेत्वानि जयतु) विजय करने योग्य शत्रु सैन्यो को विजय करे ।

दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ पर्याभृ॑तं॒ सहः॑ ।
अ॒पामो॒ज्मानं॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ॥२७॥

भा०—(दिव) सूर्य वा आकाश से और (पृथिव्या·) पृथिवी से (परि उद्भृत ओज) प्राप्त और उत्पन्न हुए तेज, और अन्न तथा (वनस्पतिभ्य.) वनस्पतियो से (परि आभृतं) प्राप्त किये (सह.) उत्तम बल को हे राजन्! तू (यज) एकत्र प्राप्त कर । और (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभि) किरणो से (आवृतम्) आच्छादित (अपाम ओज्मान) जलो के बल रूप (वज्र) विद्युत रूप तेज और (रथ) उत्तम यानादि को भी (हविषा) ग्रहण करने के साधनों द्वारा (यज) सुसंगत कर । इसी प्रकार हे राजन्! तू (हविष·) अन्न आदि के कर पर

नित्य, सदा आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम वचन, वा अन्न वस्त्रादि भी (आ जुहुयाम) आदरपूर्वक दिया करें और (मियेधे) पवित्र यज्ञादि के अवसर पर भी (वहतू) कार्य या गृहस्थाश्रम के भार को धारण करने वाले विवाहित वर वधू या यजमान पुरोहित (उभा) दोनों को भी (आ कृण्वन्तः) सन्मुख करते हुए (त्वे आ जुहुयाम) अग्निवत् तुझ मे दान आदि दें।

इमो अ॑ग्ने वी॒तत॑मानि ह॒व्याज॑स्रो वक्षि दे॒वता॑ति॒मच्छ॑ ।
प्रति॑ न ईं सुर॒भीणि॑ व्यन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! प्रतापयुक्त ! विद्वन्, ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि (देवतातिम् हव्या वहति) यज्ञ को प्राप्त कर उसमे हव्य चरु आदि ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (इमा) ये (वीत-तमानि) उक्त कामना योग्य (हव्या) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (वक्षि) धारण कर और (वीत-तमानि हव्या) खूब ज्ञानप्रकाशक, कामना योग्य, सुन्दर, ग्राह्य ज्ञानों का (वक्षि) धारण कर, दूसरों तक पहुंचा और उपदेश कर। तू (अजस्रः) अहिंसित, अपीडित होकर (देवतातिम् अच्छ) शुभ गुणों को प्राप्त कर और (नः) हमे (सुरभीणि) उत्तम शक्तिप्रद अन्न (ईम्) सब प्रकार से (प्रति व्यन्तु) प्रति दिन प्राप्त हों।

मा नो॑ अग्ने॒ऽवीर॑ते॒ परा॑ दा दु॒र्वास॒सेऽम॑तये॒ मा नो॑ अ॒स्यै ।
मा नः॑ क्षु॒धे मा र॒क्षस॑ ऋतावो॒ मा नो॒ दमे॒ मा वन॒ आ जु॑हूर्थाः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! हे प्रभो ! (नः) हमे (अवीरते) वीरों से रहित सैन्य मे, वा देश मे, (मा परा दाः) मत छोड़। (दुर्वाससे) बुरे, मैले कुचैले वस्त्र पहनने के लिये वा मलिन वस्त्र धारण करने वाले के लाभ के लिये और (अस्यै अमतये) इस मूढता या मति रहित मूर्ख पुरुष के सुख के लिये (नः मा परा दाः) हमें

मत त्याग अर्थात् तू हमे मैला कुचैला और मूढ मत रहने दे और न मैले कुचैले और मूर्ख के पल्ले डाल। हे विद्वन्! (क्षुधे नः मा परा दाः) भूख से पीड़ित होने के लिये या भूखे के आगे भी हमे मत डाल हे (ऋतावः) सत्य, न्यायशील! ऐश्वर्यवन्! तू हमे (रक्षसे मा परा दाः) दुष्ट राक्षस पुरुष के सुख के लिये भी मत त्याग। (नः) हमे (दमे मा आ जुहूर्थाः) घर मे भी पीड़ित न होने दे और (नः वने मा आ जुहूर्थाः) हमे वन मे भी मत त्याग।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०।२६

भा०—हे (देव) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले! (अग्ने) अग्निवत् तत्व को प्रकाशित करने हारे विद्वन्! (त्वं) तू (मे) मेरे हित के लिये (ब्रह्माणि) उत्तम २ ज्ञानमय वेदमन्त्रों का (उत् शशाधि) उत्तम रीति से शासन कर। हे विद्वन्! तू (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हितार्थ भी (ब्रह्माणि उत् शशाधि) ज्ञानमय वेद मन्त्रो का उपदेश कर और (सु-सूदः) दुःखों को दूर कर। हम (उभयास) विद्वान् और अविद्वान् दोनों जन (ते रातौ आ स्याम) तेरे दान मे समर्थ हों। हे विद्वान् जनो! (यूयम्) आप सब लोग (नः) हमें सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणजनक साधनो से (पात) रक्षा करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ् मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् २१

भा०—जिस प्रकार (सहसः सूनुः अग्नि रण्वसंदृक् सुदीती दीप्यते) बलपूर्वक उत्पन्न किया अग्नि, विद्युत, उत्तम कान्ति से चमकता और रम्य रूप से दीपता और रम्य पदार्थों को दिखाता है। वह (मा अधक्) हमे भस्म न करे और (मा वि दासीत्) किसी प्रकार पीड़ा न पहुंचावे

उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष! (त्वं) तू (सु-हवः) उत्तम दानशील, और उत्तम गुणों और पदार्थों का ग्रहण और भोजन करने हारा वा शुभ नामा तथा (रण्व-संदृक्) रमणीय, रूप से दीखने और उत्तम सुखजनक उपायों वा रम्य आत्मतत्व को ठीक प्रकार से सम्यक्-दृष्टि से देखने हारा हो। हे (सहसः सूनो) बलवान् वीर्यवान् पुरुष के पुत्र! एवं उत्तम बल सैन्यादि के संचालक! तू (सुदीती) उत्तम दीप्ति से (दिदीहि) चमक और सबको प्रिय लग। (सचा) सम्बन्ध से (त्वे तनये) तेरे सदृश पुत्र रहने पर तू अपने पितृजनों को (मा आ धक्) दग्ध न कर, अपने दुराचरणों और कुलक्षणों से माता पिता को न सता। इसी प्रकार (वीरः नर्यः) हमारा पुत्र वीर और मनुष्यों का हितकारी होकर (मा वि दासीत्) विनष्ट न हो।

मा नो॑ अग्ने दुर्भृ॒तये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॒ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः।
मा ते॑ अ॒स्मान्दु॑र्म॒तयो॑ भृ॒माच्चि॑द्दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन्! तू (सचा) हमारा सहयोगी होकर (देवेद्धेषु अग्निषु) उत्तम विद्वान् पुरुषों वा उत्तम गुणों से प्रदीप्त हुए अग्निवत् तेजस्वी पुरुषों के होते हुए भी (नः) हमें (दुर्भृतये) दुःख वा कष्ट से अपना भरण पोषण करने के लिये, वा दुःख से भरण पोषण करने वाले कुस्वामी की सेवा के लिये (मा प्र वोचः) कभी मत कह। हे (सहसः सूनो) बलवान् के पुत्र! बल के सञ्चालक! (देवस्य) तेजस्वी वा आखेट, द्यूत, रति आदि क्रीडाशील (ते दुर्मतयः) तेरी दुष्ट बुद्धि या, दुर्विचार (भृमात् चित्) भ्रम से, भूल कर भी (अस्मान् मा नशन्त) हमें प्राप्त न हों अर्थात् राजा के दुर्व्यसन प्रजा में न आवें और न उनको कष्टदायक हों। भूल कर भी राजा अपने व्यसनों से प्रजा को पीडित न करे। प्रजा के कन्धे चढ़कर अपने दुर्व्यसनों की पूर्त्ति न करे।

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अमर्त्ये) न मरने वाले, अविनाशी आत्मा वा परमेश्वर मे (हव्यम्) अग्नि मे हव्य के समान देने योग्य चित्त की (आ जुहोति) आहुति देता है हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम बल-शालिन् ! स्वप्रकाश अग्ने ! (सः मर्त्तः) वह मनुष्य (रेवान्) रयि अर्थात् भौतिक देहांश का उत्तम स्वामी होकर रहता है । (यं) जिस परमेश्वर को (सूरिः) विद्वान् ज्ञानी और (अर्थी) अभ्यर्थना करने वाला, अर्थार्थी, वा ज्ञानार्थी कामनायुक्त पुरुष (पृच्छमानः) विद्वानों से ब्रह्म विषयक शक्तियो, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का देने हारा पुरुष (वसु-वनिं) उत्तम ऐश्वर्य, समस्त जीवगणो को (दधाति) न्यायानुसार प्रदान करता है । उसी प्रकार हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! राजन् ! जो तुझे विशेष जानकर कर आदि देता है वह राष्ट्रवासी जन धनसम्पन्न हो जाता है । (सः) और वह अर्थी, धनार्थी और न्यायार्थी उसके पास धर्म वा व्यवहार विषयक प्रश्न करता हुआ आता है, वह देवस्वरूप राजा उसके धनादि का न्यायपूर्वक विभाग करे ।

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (नः) हमारे (सुवितस्य) सुख-दायक कल्याणहित का (विद्वान्) जानने हारा, (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषो के लाभ के लिये (बृहन्तं रयिम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त कर और धारण कर । हे (सहसावन्) बल से राष्ट्र पर प्रभुत्व करने हारे ! (येन) जिस ऐश्वर्य से (वयम्) हम (अविक्षितास) विना क्षीण हुए (मदेम) प्रसन्न हो और (आयुषा) दीर्घ जीवन मे युक्त और (सु-वीराः) उत्तम वीर और उत्तम पुत्रों वाले हों ।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२७॥१

भा०—व्याख्या देखो (मं० ७ । सू० १ । मन्त्र २०) इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आप्र देवता ॥ छन्दः—१, ६ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ६, ७, ८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! अग्रणी पुरुष ! तू (नः) हमारे (समिधम्) काष्ठ को अग्नि के समान अच्छी प्रकार मिलकर तेजस्वी होने के साधन को (जुषस्व) प्राप्त कर, तेजस्वी बन । (अद्य) आज (बृहत्) बड़े भारी (यजतं) संगति या परस्पर के सम्मिलित सम्मेलन को (शोच) उज्ज्वल, सुशोभित कर । और धूम के समान (धूमम्) शत्रु को कंपित करने वाले सामर्थ्य को (ऋण्वन्) प्रदान करता हुआ, (स्तूपैः) रश्मियों से सूर्य के समान प्रतापी होकर (स्तूपैः) स्तुत्य गुणों से (दिव्यं सानु) कान्तियुक्त ऐश्वर्य वा उत्तम पद को (उपस्पृश) प्राप्त कर । और (रश्मिभिः) रश्मियों से (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेज को (सं ततनः) विस्तारित कर ।

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२॥

भा०—(ये) जो (सु-क्रतवः) उत्तम कर्म करने वाले (शुचयः) शुद्ध आचार-चरित्रवान् (धियं-धाः) उत्तम कार्यों और उत्तम बुद्धि को धारण करने वाले, (देवाः) विद्वान् पुरुष (उभयानि) शरीर और आत्मा दोनों को पुष्ट करने वाले, (हव्या) ग्राह्य पदार्थ, अन्नों और ज्ञानो का (स्वदन्ति) आस्वाद लेते है (एषाम्) उनकी और (यज्ञैः) उत्तम यज्ञो दानो, आदर सत्कारो से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य (नराशंसस्य) मनुष्यों से स्तुति योग्य पुरुष के (महिमानम्) बड़े भारी सामर्थ्य की हम (उप स्तोषाम) स्तुति करें, उनके गुणो का सर्वत्र वर्णन और उपदेश किया करें ।

ई॒ळेन्यं॑ वो॒ असु॑रं सु॒दक्ष॑म॒न्तर्दू॒तं रोद॑सी स॒त्यवा॑चम् ।
म॒नु॒ष्वद॒ग्निं मनु॑ना॒ समि॑द्धं॒ सम॑ध्व॒राय॒ सद॒मिन्म॑हेम ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (नः) आप लोगों मे से (ईडेन्यम्) स्तुति योग्य, (असुरं) मेघ के समान जीवन-प्राण के देने वाले, बलवान्, (सुदक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अग्निवत् तेजस्वी, (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश दोनों के बीच (दूतम्) सूर्यवत् प्रतापी, (सत्य-वाचम्) सत्य वाणी के बोलने वाले, (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के समान (अग्नि) अग्रणी ज्ञानी, (मनुना) मननशील पुरुषों द्वारा वा ज्ञान मे (समिद्धं) अच्छी प्रकार अग्नि के समान ही प्रज्वलित वा प्रसिद्ध पुरुष को (अध्वराय) हिंसा से रहित, प्रजापालन, अध्ययनाध्यापनादि उत्तम कार्य के लिये, अग्नि के तुल्य ही (सदम्-इत्) सदा ही (स महेम) अच्छी प्रकार आदर सत्कार करें ।

स॒प॒र्यवो॒ भर॑माणा अ॒भि॒ज्ञु प्र वृ॑ञ्जते॒ नम॑सा ब॒र्हिर॒ग्नौ ।
आ॒जुह्वा॑ना घृ॒तपृ॑ष्ठं॒ पृष॑द्व॒दध्व॑र्यवो ह॒विषा॑ मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अध्वर्यवः) यज्ञ करने वाले विद्वान, (घृत-

पृष्ठं आ-जुह्वानाः) घृत से सिंचे, एवं तेजोयुक्त अग्नि में आहुति करते हुए (अभि-ज्ञु) आगे गोडे किये, पालथी मार कर बैठते और (नमसा) अन्नादि से युक्त (बर्हिः अग्नौ प्र वृञ्जते) चरु को अग्नि मे त्यागते है उसी प्रकार (सपर्यवः) सेवा-परिचर्या करने वाले, (बर्हिः) बृद्धिशील प्रजा को (भरमाणा) भरण पोषण करते हुए, (अभि-ज्ञु) अपने अभिमुख गोड़े किये, सभ्यतापूर्वक आसन पर विराज कर, (अग्नौ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर, (नमसा) वज्र, वा बल वीर्य के द्वारा (प्र वृञ्जते) उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक धनादि का विभाग करते है। और आप (घृत-पृष्ठं) तेजस्वी पुरुष को (आजुह्वानाः) आदर पूर्वक अपना अध्यक्ष स्वीकार करते हुए (पृषद्-वत) सेचनकारी मेघो के समान (हविषा) ग्राह्य ज्ञान से अपने को (मर्जयध्वम्) शुद्धाचारवान् बनाओ।

स्वाध्यो३वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥५॥१॥

भा०—(पूर्वी मातरा) पूर्व विद्यमान माता और पिता (शिशुं न) दोनों जिस प्रकार बालक को (रिहाणे) नाना भोज्य पदार्थ का आस्वादन कराते हुए उसको (समङ्क्तः) अच्छी प्रकार अभ्यङ्ग-मर्दनादि से चमकाते है और (समनेषु) संग्रामों मे जिस प्रकार (अग्रुवः) आगे २ बढ़ने वाली सेनाएं (सम् अंजन्) अपने नायक के गुणो को चमकार्ती, उसको प्रसिद्ध करती हैं उसी प्रकार (देवयन्त) विद्वानो को चाहने वाले (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान और चिन्ता करने वाले, (देवताता) विद्वानों के करने योग्य उत्तम कार्य मे (रथयु) वीर रथी के समान (दुरः अशिश्रयुः) उत्तम द्वारो का आश्रय लेते है। इति प्रथमो वर्गः॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम्॥ ६॥

भा०—(सुदुघा-इव धेनुः) उत्तम दूध देने वाली गौ और वाणी के समान कल्याणकारक (दिव्ये योषणे) उत्तम गुणयुक्त युवा युवतीजन (उषासानक्ता न) दिन रात्रि के समान (बर्हि-सदा) उत्तम आसन पर विराजने वाले (पुरु-हूते) बहुतो से प्रशंसित, (मघोनी) ऐश्वर्यवान्, और (यज्ञिये) दान, सत्सग योग्य होकर (सुविताय) कल्याण और उत्तम सन्तान को प्राप्त करने के लिये (श्रयेताम्) परस्पर का आश्रय ले।

विप्रा॑ य॒ज्ञेषु॒ मानु॑षेषु का॒रू मन्ये॑ वां जा॒तवे॑दसा॒ यज॑ध्यै ।
ऊ॒र्ध्वं नो॑ अध्व॒रं कृ॒तं हवे॑षु॒ ता दे॒वेषु॑ वनथो॒ वार्या॑णि ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्रा) विविध विद्यायुक्त, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (मानुषेषु यज्ञेषु) मनुष्यो के यज्ञो मे (कारू) उत्तम कर्मशील, (जातवेदसा) ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त आप दोनो को (यजध्यै) प्रतिष्ठा करने योग्य (मन्ये) मानता हू । आप लोग (नः) हमारे बीच यज्ञ को (देवेषु) विद्वानो के बीच और (हवेषु) ग्रहण योग्य आश्रमो मे से भी अपने (अध्वरं) हिंसारहित एवं अविनाशी यज्ञ भी (ऊर्ध्वं कृतम्) सबसे श्रेष्ठ करो । और (ता) उन नाना प्रकार के (वार्याणि) वरण योग्य धनो को (वनथ) प्राप्त करो ।

आ भार॑ती॒ भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः ।
सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स॑दन्तु ॥ ८ ॥

भा०—(भारती) सब शास्त्रो को अपने में धारण करने वाली, सर्वपालक, विद्या माता के समान वेद वाणी (भारतीभि) विदुषी स्त्रियों के साथ और (इडा) स्तुति योग्य वाणी (मनुष्यै देवै) साधारण मनुष्यो और विशेष विद्वानो के साथ और (सरस्वती) विज्ञान युक्त वाणी (सारस्वतेभि) विज्ञान युक्त वाणी के विद्वानों से (सजोषा) समान प्रीतियुक्त हो । (तिस्र देवी) तीनो प्रकार की विदुषी स्त्रियां (इदं

बर्हिः सदन्तु) इस वृद्धियुक्त राष्ट्र मे वाक्, मन, प्राण शक्तियों के समान देह मे (अर्वाक् सदन्तु) सबके समक्ष आदर प्राप्त करें ।

तन्नस्तुरीपमध पोपयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

भा०—हे (देव) कामनायुक्त ! पुत्र की इच्छा करने और वीर्य-दान देने मे समर्थ ! हे (त्वष्टः) तेजस्विन् ! हे प्रजा उत्पन्न करने हारे ! तू (रराणः) पत्नी के साथ रमण करता हुआ (नः) हमारे उपकार के लिये (तत्) उस (तुरीपम्) विनाश से बचानेवाले (पोपयित्नु) शरीर को पुष्ट करने वाले वीर्य को (वि स्यस्व) त्याग कर (यत्) जिससे (कर्मण्यः) कर्म करने मे कुशल (सु-दक्षः) उत्तम चतुर, (युक्त-ग्रावा) विद्वानों का उपासक (देवकामः) विद्वानों का प्रिय, (वीरः) पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है । इसी प्रकार (त्वष्टा) राज्य का कर्त्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वह हिंसकों से बचाने वाले राष्ट्रपोषक सैन्यबल को जोड़कर (रराणः) रमण करता हुआ, गर्जन सहित शत्रु पर अस्त्र छोडे । जिस से कर्मकुशल वीर पुरुष (युक्त-ग्रावा) क्षात्रबल और शस्त्रादि मे युक्त होकर अपने दाता स्वामी का प्रिय होसके ।

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान (वनस्पते) महावृक्ष, वटादि के समान आश्रित, शरण धनादि के याचकों के पालक ! राजन् ! एवं शत्रुओं के हिंसक सैन्य जनों के पति सेनापते ! (देवान्) सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार तू भी (देवान्) उत्तम गुणों को, ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों को और अग्नि, जल, पृथिवी आदि दिव्य तत्त्वों को तथा विद्या धनादि की कामना करने वाले शिष्यादि

जनो को भी (उप अव सृज) अपने समीप और अपने अधीन रख, उनको सन्मार्ग मे चला, तथा उपभोग कर। (शमिता हविः सूदयाति) पाचक जिस प्रकार अन्न को पकाता और रसयुक्त करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि ही ऐसा है जो हमे (शमिता) शान्ति, सुख कल्याण का करने वाला होकर (हविः) ग्राह्य अन्नादि पदार्थ, को (सूदयाति) पकाता है, वही (हविः) देह मे मुख के मार्ग से ग्रहण किये अन्न को रस बना कर देह के अंग २ मे (सूदयाति) प्रवाहित करता है। इसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (शमिता) प्रजा वा राष्ट्र मे शान्तिकारक होकर (हविः सूदयाति) अन्न, कर आदि को ग्रहण कर विभक्त करे। (सः इत् होता) वही, 'होता' देने और लेने मे समर्थ (सत्य-तरः) सत्य, न्याय के बल से स्वयं सर्व श्रेष्ठ, एवं अन्यों को अज्ञान, दुःखो से पार करने वाला, होकर (यजाति) ज्ञान, न्याय और धनका यथोचित रूप से प्रदान करे, (यथा) क्योंकि वही (देवानां) देव, उत्तम गुणो, विद्वानो और विद्या के इच्छुक शिष्य, आदि के भी (जनमानि) यथार्थ रूपो, तथा जन्मो आदि को (वेद) जानता है।

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः। बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥२॥

भा०—(समिधानः अग्निः यथा इन्द्रेण देवैः तुरेभिः अर्वाट् आ याति) अच्छी प्रकार दीप्तियुत अग्नि वा सूर्य-प्रकाश जिस प्रकार विद्युत्, मेघ और जलादि देने वाले वायुगण तथा दीप्ति युक्त प्रकाशो, रोगनाशक और अतिवेगयुक्त गुणो सहित (स-रथ) समान रंगरूप मे हमे प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! नायक! तू भी (समिधानः) अच्छी प्रकार तेजस्वी होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र और (तुरेभिः) शत्रु बल के नाशक और आशु कार्य करने वाले वीरो, (देवैः) उत्तम विद्वानो सहित (अर्वाट् आयाहि) हमे विनय

युक्त होकर वा (अर्वाङ्) अश्वादि से युक्त होकर आ, प्राप्त हो। (बर्हिः न) कुशा के आसन पर विद्वान् के समान (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन के ऊपर (आस्ताम्) विराजे। वह (स्वाहा) उत्तम वचन, सत्य क्रिया और शुभ से (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रों की माता के समान, (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन स्वभाव वाली हो। और (देवाः) देव, विद्वान्गण (अमृता.) राज्यों में दीर्घायु, मृत्युभय से रहित, होकर (मादयन्ताम्) स्वयं सुखी हो और अन्यों को भी सुखी करे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, १० विराट्त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक् पंक्तिः ॥

दशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं वो॑ दे॒वम॒ग्निभिः॑ स॒जोषा॒ यजि॑ष्ठं दू॒तम॑ध्व॒रे कृ॑णुध्वम्।
यो मर्त्ये॑षु॒ निध्रु॑विर्ऋ॒तावा॒ तपु॑र्मूर्धा घृ॒तान्नः॑ पाव॒कः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों, मनुष्यों के बीच (निध्रुविः) नित्य, ध्रुव, स्थायीरूप से वर्त्तमान (ऋतावा) सत्य, न्याय प्रकाश और धनैश्वर्यादि का स्वयं भोक्ता, और अन्यों को उचित रूप से देने वाला, (तपुःमूर्धा) सूर्य अग्नि, वा विद्युत् के समान दुष्टों को सन्ताप देने के सामर्थ्य में सर्वोत्कृष्ट (घृतान्नः) अग्नि जिस प्रकार घृत को अन्नवत् ग्रहण करता, उसी प्रकार जो घृत से युक्त अन्न का भोजन करता है। और (पावक) प्रजा के आचार व्यवहारों को पवित्र करता है एवं (स-जोषाः) समान भावसे सब के प्रति प्रीतियुक्त हो (व) आप लोगों के बीच में उस (देवम्) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ, दानशील, ज्ञानप्रकाशक (यजिष्ठं) अतिपूज्य, सत्सङ्ग

योग्य, (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि तुल्य ही हिंसारहित, प्रजापालना अध्ययनाध्यापन, विद्याग्रहण आदि कार्यों मे (दूतम्) सेवा के योग्य, (कृणुध्वम्) बनाओ । ऐसे ही विद्वान् को राजा लोग भी दूतवत् प्रमुख वक्ता रूप से नियत करे ।

प्रोथ॒दश्वो॒ न यव॑सेऽवि॒ष्यन्य॒दा म॒हः सं॒वर॑णा॒द्व्यस्था॑त् ।
आद॑स्य॒ वातो॒ अनु॑ वाति शो॒चिरध॑ स्म ते॒ व्रज॑नं कृ॒ष्णम॑स्ति २

भा०—(अविष्यन्) तृप्ति चाहता हुआ (अश्वः) अश्व (यवसे) घास चारे के लिये (न) जिस प्रकार (प्रोथत्) हर्षध्वनि करता, हिनहिनाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अविष्यन्) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ (यवसे) शत्रु को छिन्न भिन्न करने के कार्य के लिए (प्रोथत्) उत्तम गर्जना करता हुआ (यदा) जब (महः संवरणात्) बड़े भारी रक्षास्थान, प्रकोट से (वि अस्थात्) विशेष रूप से प्रस्थान करे (आत्) अनन्तर (अस्य शोचिः अनु) उसके तेज के साथ साथ अग्नि की ज्वाला के पीछे २ (वातः) वायुवत् प्रबल वृक्षों को उखाड देने वाले आंधी के समान प्रबल सैन्य समूह (अनु-वाति) जाता है (अध) तब हे राजन् ! सेनापते ! (ते व्रजनं) तेरा गमन करना (कृष्णम् अस्ति) बड़ा चित्ताकर्षक एवं शत्रुओं के मूल का टदेने वाला होता है । अश्व, अग्नि और राजा इन तीनो पक्षो मे श्लेष-विवरण पूर्वक सरल व्याख्या देखो यजुर्वेद, आलोक भाष्य (अ० १६।६२)। अध्यात्म मे—व्यापक होने से परमेश्वर वा आत्मा, 'अश्व' है । दृश्य जगत् उसका हिरण्यमय संवरण है, वह जब उसके दूर होने पर प्रकट होता है, उसके तेज के साथ साथ यह वात, वायु, प्राण भी चलता है उसकी (व्रजन) प्राप्ति ही (कृष्णम्) आकर्षक, अति आनन्दप्रद और सब दुःख बन्धनो को काटने मे समर्थ है ।

उद्यस्य॑ ते॒ नव॑जातस्य॒ वृष्णोऽग्ने॒ चर॑न्त्य॒जरा॑ इधा॒नाः ।
अच्छा॒ द्याम॑रु॒षो धू॒म ए॑ति॒ सं दू॒तो अ॑ग्न॒ ईय॑से॒ हि दे॒वान् ॥३॥

युक्त होकर वा (अर्वाङ्) अश्वादि से युक्त होकर आ, प्राप्त हो। (बर्हिः न) कुशा के आसन पर विद्वान् के समान (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन के ऊपर (आस्ताम्) विराजे। वह (स्वाहा) उत्तम वचन, सत्य क्रिया और शुभ से (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रों की माता के समान, (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन स्वभाव वाली हो। और (देवाः) देव, विद्वान्गण (अमृताः) राज्यों में दीर्घायु, मृत्युभय से रहित, होकर (मादयन्ताम्) स्वयं सुखी हो और अन्यों को भी सुखी करे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९, १० विराट्त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक् पंक्तिः ॥

दशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं वो॑ दे॒वम॒ग्निभि॑: स॒जोषा॒ यजि॑ष्ठं दू॒तम॑ध्व॒रे कृ॑णुध्वम्।
यो मर्त्ये॑षु॒ निध्रु॑विर्ऋ॒ताव॒ा तपु॑र्मूर्धा घृ॒तान्न॑: पाव॒कः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों, मनुष्यों के बीच (निध्रुविः) नित्य, ध्रुव, स्थायीरूप से वर्त्तमान (ऋतावा) सत्य, न्याय प्रकाश और धनैश्वर्यादि का स्वयं भोक्ता, और अन्यों को उचित रूप मे देने वाला, (तपुःमूर्धा) सूर्य अग्नि, वा विद्युत् के समान दुष्टों को सन्ताप देने के सामर्थ्य मे सर्वोत्कृष्ट (घृतान्नः) अग्नि जिस प्रकार घृत को अन्नवत् ग्रहण करता, उसी प्रकार जो घृत से युक्त अन्न का भोजन करता है। और (पावकः) प्रजा के आचार व्यवहारों को पवित्र करता है एवं (स-जोषाः) समान भावसे सब के प्रति प्रीतियुक्त हो (वः) आप लोगों के बीच मे उस (देवम्) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ, दानशील, ज्ञानप्रकाशक (यजिष्ठं) अतिपूज्य, सत्संग

योग्य, (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि तुल्य ही हिंसारहित, प्रजापालना अध्ययनाध्यापन, विद्याग्रहण आदि कार्यों मे (दूतम्) सेवा के योग्य, (कृणुध्वम्) बनाओ । ऐसे ही विद्वान् को राजा लोग भी दूतवत् प्रमुख वक्ता रूप से नियत करें ।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति २

भा०—(अविष्यन्) तृप्ति चाहता हुआ (अश्वः) अश्व (यवसे) घास चारे के लिये (न) जिस प्रकार (प्रोथत्) हर्षध्वनि करता, हिनहिनाता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अविष्यन्) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ (यवसे) शत्रु को छिन्न भिन्न करने के कार्य के लिए (प्रोथत्) उत्तम गर्जना करता हुआ (यदा) जब (महः संवरणात्) बड़े भारी रक्षास्थान, प्रकोट से (वि अस्थात्) विशेष रूप से प्रस्थान करे (आत्) अनन्तर (अस्य शोचिः अनु) उसके तेज के साथ साथ अग्नि की ज्वाला के पीछे २ (वातः) वायुवत् प्रबल वृक्षों को उखाड देने वाले आंधी के समान प्रबल सैन्य समूह (अनु-वाति) जाता है (अध) तब हे राजन् ! सेनापते ! (ते व्रजनं) तेरा गमन करना (कृष्णम् अस्ति) बड़ा चित्ताकर्षक एवं शत्रुओं के मूल का टदेने वाला होता है । अश्व, अग्नि और राजा इन तीनों पक्षों में श्लेष-विवरण पूर्वक सरल व्याख्या देखो यजुर्वेद, आलोक भाष्य (अ० १६।६२)। अध्यात्म में—व्यापक होने से परमेश्वर वा आत्मा, 'अश्व' है । दृश्य जगत् उसका हिरण्यमय संवरण है, वह जब उसके दूर होने पर प्रकट होता है, उसके तेज के साथ साथ यह वात, वायु, प्राण भी चलता है उसकी (व्रजनं) प्राप्ति ही (कृष्णम्) आकर्षक, अति आनन्दप्रद और सब दुःख बन्धनों को काटने मे समर्थ है ।

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (नवजातस्य अजराः इधाना उत् चरन्ति) नये उत्पन्न अग्नि से गतिशील जलते लपट ऊपर उठते हैं (द्याम् धूमः अच्छ एति) आकाश की ओर धूम उठता है, (दूतः सन् देवान् ईयसे) अति सन्तापदायक तप्त होकर किरणों को प्रकट करता है इसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! विद्वन् ! (यस्य नवजातस्य) जिस नये, विद्वान् या पदाधिकारी रूप से बने (वृष्णः) सुखों के वर्षक, बलवान्, प्रबन्धक (ते) तेरे (इधाना.) तेजस्वी (अजराः) शत्रु कण्टकों को उखाड देने वाले पुरुष (उत्-चरन्ति) उत्तम पद पर नियुक्त होकर राष्ट्र मे विचरते है वह तू (धूमः) शत्रुओ को कंपा देने वाला, रोषरहित, तेजस्वी होकर (द्याम् अच्छ एति) सूर्यवत् तेजस्वी उच्च पद को प्राप्त होता है। वह ही हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (दूत.) शत्रुओ को सन्तापदायी होकर ही (देवान्) विद्वान् पुरुषो को (सम् ईयसे) अच्छी तरह से प्राप्त हो ।

वि यस्य॑ ते पृथि॒व्यां पाजो॒ अश्रे॑त्तृ॒षु यदन्ना॑ स॒मवृ॑क्त॒ जम्भैः॑ ।
सेने॑व सृ॒ष्टा प्रसि॑तिष्ट एति॒ यवं॒ न द॑स्म जु॒ह्वा॑ विवक्षि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (पाजः तृषु वि अश्रेत्) शीघ्र ही पृथिवी मे विविध दिशाओं मे फैल जाता है, जैसे जाठराग्नि (जम्भैः अन्ना सम् अवृक्त) दाता द्वारा अन्नो को ग्रहण कर समस्त शरीर मे फैला देता है, जैसे अग्नि की (प्रसिति·) ज्वाला या विद्युत् की (प्रसितिः) उत्तम जकड या आकर्षण (सेना इव) सेना के समान फैलता है और जैसे वह (जुह्वा) ज्वाला से चमकता वा यवादिको को भस्म करता है। उसी प्रकार हे राजन् ! सेनापते ! (यस्य ते) जिस तेरा (पाजः) बल (तृषु) अतिशीघ्र (पृथिव्याम् वि अश्रेत्) इस पृथिवी पर विविध प्रकार से विराजता है, (यत्) जो (जम्भै) अन्नो को दातों के समान हिंसाकारी शस्त्रों अस्त्रों के बल से अन्नवत् भोग्य देशो को (सम् अवृक्त)

पृथक् २ विभक्त करता है। (ते प्रसितः) तेरा उत्तम प्रबन्ध, व्यवस्था (सेना इव सृष्टा) सेना के समान ही उत्तम व्यवस्थित होकर (एति) प्राप्त होता है। वह तू (जुह्वा) अपनी वाणी से (यवं) यव को मुख के समान खाद्य या विनाश्य शत्रु का हे (दस्म) शत्रुनाशक! (विवेक्षि) नाश करता है।

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः॥५॥

भा०—(नरः) मनुष्य (अत्यं न) अश्व को जिस प्रकार (मर्जयन्तः) खरखरे से नित्य सायं प्रातः साफ़ करते और उसको स्वच्छ कर रखते है उसी प्रकार (नि-शिशानाः नरः) खूब तीक्ष्ण करने वाले मनुष्य (तम्) उस (यविष्ठम्) युवा के समान अति बलशाली (अतिथिम्) व्यापक (अग्निम्) अग्नि वा विद्युत् को (दोषा उषसि) रात्रि-काल और प्रातः-काल मे (मर्जयन्त इत्) सदा स्वच्छ रक्खे, और घर्षण द्वारा प्रकट करे। (आहुतस्य) एकत्र एक स्थान पर सब ओर से सुरक्षित (वृष्णः) बलवान्, (अस्य) इसके (शोचि) कान्ति को (योनौ) गृह में (दीदाय) मनुष्यवत् प्रकाशित कर। इसी प्रकार (नरः) उत्तम पुरुष (दोषा उषसि) रात दिन, प्रातः साय (यविष्ठं अतिथिं तम् अग्निम्) युवा, बलवान् अतथिवत् पूज्य, सर्वोपरि विराजमान उस अग्रणीनायक को (नि-शिशानाः) निरन्तर तीक्ष्ण, एवं कर्म व्यवहार चतुर करते हुए उसे (मर्जयन्त) सदा शुद्ध, स्वच्छ आचारवान् बनाये रक्खें। (आहुतस्य अस्य वृष्णः) आदरपूर्वक स्वीकर किये इस बलवान् पुरुष का (शोचि) तेज (योनौ) उसके उपयुक्त पद पर ही (दीदाय) प्रकाश करे। इति तृ० व०॥

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम्॥६॥

भा०—हे (स्वनीक) सुन्दर मुख वाले! सुमुख! विद्वन्! हे

उत्तम सैन्य वाले ! सेनापते ! राजन् ! (यत्) जो तू (रुक्मः) कान्तिमान्, सूर्य के समान (उपाके) सबके समीप (रोचसे) सबको रुचिकर प्रतीत होता है, सबके मन भाता है (ते प्रतीकं) तेरा प्रतीति कराने वाला, ज्ञान और बल उत्तम हो और तेरी (सु-सन्दृक्) उत्तम शुभ दृष्टि हो। (ते शुष्मः) तेरा बल, (दिवः न तन्यतुः न) आकाश सूर्य या मेघ विद्युत् के समान (एति) प्राप्त होता है। और तू (सूरः न चित्र) सूर्य के समान आश्चर्यकारक होकर (भानुम् प्रति चक्षि) अपने तेज को प्रकट करे।

यथा॑ वः॒ स्वाहा॒ग्नये॒ दाशे॑म॒ परीळा॑भिर्घृ॒तव॑द्भिश्च ह॒व्यैः।
तेभि॑र्नो अग्ने॒ अमि॑तै॒र्महो॑भिः श॒तं पू॒र्भिराय॑सीभि॒र्नि पा॑हि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (इडाभिः घृतवद्भिः हव्यैः च अग्नये स्वाहा) अन्नो, और घृतयुक्त आहुति योग्य पदार्थों से अग्नि के लिये आहुति दी जाती है, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगो के बीच मे (अग्नये) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक और अग्नि पद पर स्थित होकर सन्मार्ग पर ले जाने वाले पुरुष के लिये हम लोग (इडाभिः) उत्तम वाणियो से और (घृतवद्भिः) घृत से युक्त हव्यो अर्थात् भोजन करने योग्य अन्नों से (परि दाशेम) उसका सत्कार करे। हे (अग्ने) अग्रणी ! विद्वन् ! तू (तेभिः) उन २, नाना (अमितैः) अपरिमित (महोभिः) तेजो से और (शतम्) सैकडो (आयसीभिः पूर्भिः) लोह की बनी दृढ़ नगरियों से (नि पाहि) अच्छी प्रकार राष्ट्र की रक्षा कर।

या वा॑ ते॒ सन्ति॑ दा॒शुषे॒ अधृ॑ष्टा॒ गिरो॑ वा॒ याभि॑र्नृ॒वती॑रुरु॒ष्याः।
ताभि॑र्नः सूनो सहसो॒ नि पा॑हि॒ स्मत्सू॒रीञ्ज॑रि॒तॄञ्जा॑तवेदः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! (वा) और (या) जो (ते दाशुषे) तुझ विद्या और न्याय के दाता की (अधृष्टा) निरादर करने के

अयोग्य, आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य, विनययुक्त (गिरः) वाणियां वा तेरी जो वाणियां (दाशुषे) करादि देने वाले, तुझ पर अपने को त्यागने वाले प्रजाजन के हित के लिये है (वा) अथवा (याभिः) जिनसे (नृवतीः) उत्तम नायकों वाली सेनाओं और प्रजाओं को (उरुष्या.) रक्षा करता है, हे (सहस. सूनो) बलशाली सैन्य के चालक ! हे (जात-वेदः) ज्ञानवन् विद्वन् वा ऐश्वर्यवन् ! तू (ताभि) उनसे (नः) हमारे (जरितॄन्) उपदेश करने वाले (सूरीन्) विद्वानों को (नि पाहि) अच्छी प्रकार पालन कर ।

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जो (पूता इव स्वधितिः) शुद्ध स्वच्छ शस्त्र की धार के समान (शुचिः) कान्तियुक्त, (निर्गात्) अपने गृह से निकले, और (स्वया कृपा) अपनी कृपा, वा सामर्थ्य और (तन्वा) देह से (रोचमानः) अग्निवत् तेज से चमकता है, (यः) जो (मात्रोः) माता पिता के बीच (उशेन्यः) कामना करने योग्य पुत्र के समान (आ जनिष्ट) स्नेहपूर्वक अरणियों के बीच अग्नि के समान ही प्रकट होता है, वह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मों को करता हुआ (पावकः) अग्नि-वत् पवित्र करने वाला होकर (देव-यज्याय) विद्वानों के आदर तथा सत्संग के लिये यत्नशील रहे ।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥४

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (नः) हमारे (एता) इन नाना (सौभगानि) सुखजनक, उत्तम ऐश्वर्यों को (दिदीहि)प्रका-शित कर । हम लोग (अपि) अवश्य (सुचेतसं) उत्तम चित्त वाले

(क्रतुम्) बुद्धि को (वतेम) प्राप्त करें । (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील और (गृणते) उपदेश-कुशल पुरुष के लिये (विश्वा च) सब प्रकार के सौभाग्य (सन्तु) हो और हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी कर्मों से (नः) हमारी (सदा पात) सदा रक्षा करो।

[४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ८, ६ पंक्तिः । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । १० विराट्त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः शुक्रार्य भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों में से (यः) जो (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने के लिये और (अग्नये) ज्ञानवान् परमेश्वर की उपासना करने और अग्नि मे आहुति देने के लिये (सु-पूतं) शुद्ध पवित्र (हव्यं) आहुति देने योग्य अन्नादि पदार्थ और (मतिं) उत्तम बुद्धि को (जिगाति) प्राप्त करता है, और (यः) जो (दैव्यानि) विद्वानों और (मानुषा) साधारण मनुष्यो के (विश्वानि) समस्त (जनूंषि) जन्मो को भी (अन्तः) अपने भीतर (जिगाति) प्राप्त कर लेता है। उस विद्वान् के लिये आप भी (हव्यं) उत्तम पदार्थ (प्र भरध्वम्) प्राप्त कराओ।

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (मातुः अजनिष्ट) माता से बालक के समान

विमल दन्तो वाला, स्वच्छ मुख हो और (वना) सूर्यवत् किरणों को (युवते) प्राप्त करता है और वह (समित् चित्) काष्ठों को अग्नि के समान (सद्य.) शीघ्र ही (भूरि चित् अन्ना) नाना प्रकार के अन्नों, वा भोग्य ऐश्वर्यों का (अत्ति) भोग करता है ।

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) विद्वान् पुरुष की (संसदि) सभा वा (अनीके) सैन्य मे (यं) जिस नायक को (मर्त्तासः) मनुष्य (श्येतं) शुद्ध चरित्र जान कर (जगृभ्रे) स्वीकार करते हैं (यः) जो (पौरुषेयीम् गृभम्) पुरुषों के व्यवहार योग्य पदार्थों के लेने देने की विधि का (नि उवोच) नियमित रीति से उपदेश करता है और जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (आयवे) राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (दुरोकम्) शत्रुओं से दु.ख से सेवने योग्य राष्ट्र वा सैन्य बल को (शुशोच) चमका देता है वही सेनानायक वा राजा होने योग्य है ।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्नि) अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार के बीच भी ज्ञान का प्रकाश करने हारा, (कवि) विद्वान्, क्रान्तदर्शी, (प्रचेता) उत्तम ज्ञान, उत्कृष्ट चित्त वाला, (अमृत) दीर्घायु, (अकविषु) अविद्वानों के बीच (नि धायि) स्थापित हो । (स.) वह (न) हमे (अत्र) इस लोक मे (मा जुहुर) विनाश न करे, हमसे कुटिल वर्त्ताव न करे । हे अग्ने, तेजस्विन् ! (त्वे) तेरे अधीन हम लोग (सदा) सदा (सु-मनस') शुभ चित्त वाले होकर (स्याम) रहें ।

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५॥ ६॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवकृतं योनिमाससाद) विद्वानों द्वारा स्थापन योग्य स्थान कुण्ड आदि मे स्थापित होता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) कर्म वा यज्ञद्वारा जीवों को संकट से पार करता और (ओषधीः वनिनः भूमिः च बिभर्ति) इसको ओषधियां और वन के वृक्ष अरणि आदि, और भूमि आदि धारण करते है उसी प्रकार (यः) जो विद्वान् तेजस्वी पुरुष (देवकृतं) विद्याभिलाषी विद्यार्थियों के लिये बनाये (योनि) गृह पाठशालादि को (आ ससाद) प्राप्त होता है, (च) और जिस प्रकार समस्त विश्व के धारक अग्नि को (ओषधयः वनिनः भूमिः च) ओषधियें अपने रस में, और वन के वृक्ष काष्ठादि, आग के रूप में और भूमि अपने गर्भ मे ज्वालामुखी आदि से प्रकट होने वाली अग्नि को धारण करते है उसी प्रकार (विश्व-धायसं) समस्त ज्ञान के पालन करने वाले (तम्) उसको (वनिनः) वनस्थ, वानप्रस्थी विद्वान् जन (ओषधीः च भूमिः च गर्भं) गर्भ को ओषधियो और उत्पादक भूमि के माता के समान (बिभर्त्ति) धारण करते और पालते पोषते है। वह भी उन सबको पालन पोषण करे इसी प्रकार जो वीर तेजस्वी पुरुष (देवकृतं योनिम् आससाद) विद्वानों से दिये पद को प्राप्त करता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) अपने कर्म सामर्थ्य से जीवित मनुष्यो को संकट से पार करता, उस (विश्व-धायसं) समस्त राष्ट्र के धारक पोषक, उनको दूध पिलाने वाली माता की तरह पालक पोषक राजा को (ओषधीः) बल वीर्य धारण करने वाली सेनाएं और (वनिनः) तेजस्वी, धनी, और शस्त्रधर लोग और (भूमि च) और भूमि राष्ट्र, ये सब पुष्ट करते और वह भी उनको (बिभर्त्ति) पालन पोषण करता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

ईशे ह्य॒ग्निर॒मृत॑स्य॒ भूरे॒रीशे॑ रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य॒ दातोः॑ ।
मा त्वा॑ व॒यं स॑हसावन्न॒वीरा॒ माप्स॑वः॒ परि॑ षदाम॒ मादु॑वः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः अमृतस्य ईशे) अग्नि, विद्युत्, या सूर्य जिस प्रकार

अमृत, जल, अन्न वा जीवन का प्रभु है, वह उसको उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (हि) निश्चय से (भूरेः अमृतस्य) बडे भारी मोक्षमय अमृत को (ईशे) प्राप्त करे और वह (भूरेः रायः) बहुत धन, ऐश्वर्य और (सु-वीर्यस्य) बहुत उत्तम बल (भूरेः दातोः) बहुत अधिक दान को भी (ईशे) करने मे समर्थ हो। हे (सहसावन्) बहुत बलयुक्त (वयम्) हम लोग (अवीराः) पुत्र सन्तानादि से रहित, बल युक्त प्राणो से रहित और वीरता से रहित होकर (त्वा मा परि सदाम) तेरे इर्द गिर्द न बैठे रहे। और हम (अप्सवः) केवल दर्शनीय रूप ही बनकर (मा परि सदाम) न बैठे रहे। और (मा अदुवः) और हम सेवा परिचर्या से रहित, निकम्मे होकर भी न रहे। अर्थात् हम तेरे अधीन वीर रूपवान्, कर्मण्य और उत्तम सेवक होकर रहे।

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥

भा०—(अरणस्य) ऋण से रहित, पुरुष का (रेक्णः) धन (परि-सद्यम्) पर्याप्त होता है, इसलिये हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन्! हम लोग (नित्यस्य) नित्य, स्थायी (अरणस्य) ऋण और रण, संग्राम, लडाई झगडे आदि से मुक्त (रायः) धनैश्वर्य के भी (पतयः) स्वामी (स्याम) हों। क्योकि ऋण लिया और लडाई झगडे मे पड़ा हुआ धन स्थायी नहीं होता। वह पराया होने से हाथ से निकल जाता है। इसी प्रकार (अरणस्य) जिसके उत्पन्न करने मे रमण अर्थात् स्वयं वीर्याधान नहीं किया ऐसे पुरुष का (रेक्णः) अन्य के वीर्य सेचन से उत्पन्न सन्तान भी (परि-सद्यं) त्याज्य ही होता है। क्यो? क्योकि (अन्य-जातम् शेषः) दूसरे से प्राप्त किया धन और पुत्र दोनो ही (न अस्ति) नहीं के बराबर है। इसलिये हे विद्वन्! पराये का धन और पराये का पुत्र तो (अचेतानस्य) ना समझ आदि का होता है। अविद्वान्, अप्रयत्नशील पुरुष दूसरे के धन और

पुत्र को अपना समझ बैठते हैं। वस्तुतः हे विद्वन्! तू (पथः मा वि दुक्षः) सन्मार्गों को दूषित मत कर। अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने और परिश्रम से धनोपार्जन करने आदि के शास्त्रीय उपायों पर दोषारोपण मत कर। अथवा (अचेतानस्य) अनजान, नाबालिग के (पथः) प्राप्त करने योग्य धनादि को (मा वि दुक्षः) दूषित मत कर, उस पर भी अपना हक आदि जमाने की टेढ़ी चाल न कर। अथवा (परिषद्यं रेक्णः अन्यजातं च शेषः न अस्ति) परिषद् अर्थात् जन सभा का रुपया और दूसरे से उत्पन्न पुत्र दोनों ही नहीं के समान हैं। वे अपने नहीं होते। हम (अरणस्य नित्यस्य रेक्णः पतयः स्याम) झगड़े, विवाद से रहित स्थायी धन के स्वामी हों। (अचेतानस्य पथः मा वि दुक्षः) अनजान मूर्ख के मार्गों को पाखण्डादि से दूषित मत करो (स्वा० दया०)॥

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः॥ ८॥

भा०—(अरणः) जो सुन्दर, उत्तम रूप, एवं गुण स्वभाव वाला न हो वा जो ऋण दूर न कर सके ऐसा (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (अन्योदर्यः) दूसरे के पेट से उत्पन्न हुआ सन्तान (मनसा उ ग्रभाय मन्तवै नहि) मन से भी अपनालेने की नहीं सोचनी चाहिये। परक्षेत्र में उत्पन्न पुत्र चाहे कितना ही सुखद हो तो भी उससे पितृऋण नहीं उतरता इसलिये उसको चित्त से कभी अपना न मानना चाहिये। (अध चित्) और (सः पुत्रः) वह पुत्र ही (ओकः इत् एति) गृह को प्राप्त करता है, जिसको पुत्र बनाया जाता है वह तो गृहादि सम्पत्ति का स्वामी होता है इसलिये पराये को पुत्र बना लेने पर पराया ही घर का स्वामी होजाता है। यह अनर्थ है, इसलिये (नः) हमें (नव्यः) स्तुति योग्य, उत्तम, (वाजी) बलवान् (अभिषाड्) शत्रुओं को पराजय करने वाला पुत्र (एतु) प्राप्त हो।

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! राजन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् परंतप ! (त्वं) तू (नः) हमे (वनुष्यतः) हिंसाकारी और (अवद्यात्) निन्दनीय कर्मों, पुरुषों और जन्तुओं से (नि पाहि) निरन्तर रक्षा कर । ((ध्वस्मन्वत्) दोषों से रहित (पाथः) पथ और (ध्वस्मन्-वन् पाथः) शत्रुओं का नाश करने के सामर्थ्य वाला, राष्ट्र-पालक बल (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो । (स्पृहयाय्यः रयिः) सब से चाहने योग्य धन भी (सहस्री) सहस्रों की संख्या में, अपरिमित (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो ।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः१० ६

भा०—व्याख्या देखो सू० ३ मन्त्र १० ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥१॥

भा०—(यः) जो (विश्वेषाम्) समस्त (अमृतानाम्) नाश न होने वाले अग्नि आकाश आदि नित्य पदार्थों और जीवात्माओं के (उपस्थे) समीप में (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों से उपासित, सब में विद्यमान है और जो (जागृवद्भिः) अविद्या की नीद त्याग कर जागने वाले ज्ञानी पुरुषों से उपासित होता और (ववृधे) सबको बढ़ाता, और स्वयं भी

सबसे महान् है। उस (दिवः पृथिव्याः अरतये) सूर्य और पृथिवी मे व्यापक, उनके भी स्वामी, (तवसे) अनन्त बलशाली, (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासना के लिये (गिरं प्र भरध्वम्) वाणी का प्रयोग करो, उसकी स्तुति प्रार्थना किया करो।

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥ २ ॥

भा०—जो (अग्निः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश, महान् आत्मा, (दिवि पृथिव्यां) तेजस्वी पदार्थ सूर्य आदि, और पृथिवी आदि प्रकाश रहित पदार्थों मे भी (धायि) अग्निवत् उनको धारण करता है, जो (सिन्धूनां नेता) बहने वाले प्रवाहो, वेग से गति करने वाले सूर्यादि का भी संचालक है जो (स्तियानाम् वृषभः) अप् अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच विद्यमान और अनन्त बलशाली, उनको नियम, व्यवहार मे बांधने वाला है, (सः) वह (अग्नि.) सबका अग्र नायक, सर्वोत्तम संचालक ही (वैश्वानरः) सबको ठीक २ मार्ग मे चलाने वाला होने से 'वैश्वानर' कहाता है। वही प्रभु (मानुषीः विश) समस्त मनुष्य प्रजाओं को भी (अभि वि भाति) प्रकाशित करता और उनमे स्वयं भी प्रकाशित होता है। वह समस्त मनुष्यों मे विद्यमान होने से भी 'वैश्वानर' है। वह(वरेण) सर्वश्रेष्ठ स्वभाव से ही (वावृधानः) सदा सबको बढाने हारा है। स्वयं भी सबसे महान् है।

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के हृदयों मे विराजमान, सबके हितू! हे (अग्ने) सबके पूर्व विद्यमान! अग्निवत् स्वयं-प्रकाश, सर्वप्रकाशक (यत) जो (पूरवे) मनुष्यमात्र के लिये (शोशु-चानः) प्रकाशक ज्ञानरूप मे प्रकाश करता हुआ, (पुरः दरयन्) ज्ञान

वज्र से देह रूप आत्मा के पुरों अर्थात् देह-बन्धनों को काटता हुआ (अदीदेः) ज्ञान को प्रकाशित करता है (त्वद् भिया) तेरे ही भय से (असिक्नीः) रात्रि के समान अन्धकारमय दशाओं को प्राप्त (विशः) जीव प्रजाएं भी (असमना) एक समान चित्त न होकर (भोजनानि जहतीः) नाना भोग्य पदार्थों को त्याग कर (आयन्) तेरी शरण आती है। वीर राजा के पक्ष में—वीर राजा तेजस्वी होकर (पुर दरयन् अदीदे) शत्रु के किलो, नगरों को तोड़ता हुआ प्रताप से चमकता है उस में भय से शत्रु सेनाएं भोजनों तक त्याग कर (असमना) संग्राम छोड़ कर (असिक्नीः आयन्) अन्धकारमय गुफाओं का आश्रय लेती है।

तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक! हे (वैश्वानर) समस्त संसार के चलाने हारे, (त्रि धातु) तीनों गुणों को धारण करने वाली, परम सूक्ष्मत व प्रकृति और (पृथिवी उत द्यौ) पृथिवी अर्थात् प्रकाशसहित समस्त पदार्थ भी (तव व्रतम्) तेरी ही कर्म-व्यवस्था को (सचन्ते) धारण करते हैं। वे तेरे ही सर्वोपरि शक्ति के आश्रय पर उसमें नित्य सम्बद्ध हैं। हे प्रभो! (त्वं) तू (भासा) अपनी दीप्ति से (रोदसी) भूमि और आकाश, सर्वत्र (आ ततन्थ) व्याप रहा है। तू (अजस्रेण) अविनाशी, निरन्तर स्थिर रहने वाले (शोचिषा) प्रकाश, तेज से सूर्यवत् (शोशुचान) प्रकाशमान रहता है।

त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥५॥७॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप! सूर्यवत् तेजस्विन्! (वावशाना) चाहती हुई (हरितः) दिशावासी प्रजाएं (गिरः) वेद

वाणियों और (घृताचीः धुनयः) समुद्र को जलयुक्त नदियो के समान (कृष्टीनां पतिम्) समस्त प्रजाओं, मनुष्यों के पालक, (रथ्यम्) रथयोग्य अश्व वा सारथिवत् (रयीणां) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले (उषसाम्) प्रभात वेलाओं और (अह्नाम्) दिनों के (केतुम्) प्रकट करने वाले सूर्य के समान (उषसां केतुम्) पापों, दुर्भावों को भस्म करने एवं कामना करने वालों के ज्ञापक (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के सञ्चालक सर्व हितू (त्वाम्) तुझ परमेश्वर को (सचन्ते) प्राप्त होते है । इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वे असुर्यं१ वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेह करने वालों से पूज्य और उनका स्वयं भी आदर करने वाले ! प्रभो ! (वसवः) बसने वाले जीवगण (त्वे) तेरे ही में (असुर्यं) मेघ मे विद्यमान परम उदार सामर्थ्य को (नि ऋण्वन्) सब प्रकार से साधते है, वे (ते हि) निश्चय से तो तेरे (क्रतुं जुषन्त) कर्म और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेमपूर्वक सेवन करते है । (त्वं) तू हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (आर्याय) सज्जन, श्रेष्ठ, एवं कर्मण्य और स्वामी होने योग्य पुरुष के लिये (उरु) बहुत भारी (ज्योतिः जनयन्) ज्ञानप्रकाश करता हुआ (ओकसः) उसके समवाय या निवासस्थान, देह से (दस्यून्) दुष्टों, दुष्टभावों और जनों को भी (आ अजः) दूर करता है ।

स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह तू हे परमेश्वर ! (परमे) सबसे उत्कृष्ट, (व्योमन्) विशेष रक्षा करने वाले पद पर (जायमानः) सर्व रक्षक रूप से प्रकट होता हुआ (वायुः न) प्राण के तुल्य या जीवनाधार वायु के

समान (पाथ॰) समस्त विश्व का पालन करता है और (सद्य॰) संकट मे तुरन्त, विना विलम्ब के (परि पासि) सब प्रकार से बचा लेता है। हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न भुवनो, प्राणियो और समस्त पदार्थो के जानने हारे प्रभो! तू (भुवना) समस्त लोको को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ और (अपत्याय) पुत्र के समान समस्त जीव ससार को (अभि क्रत्) ज्ञान का मेघ वा विद्युत्वत् निष्पक्षपात रूप से गर्जनवर्षणादिवत् उपदेश करता हुआ और उनके (दशस्यान्) सुख सामग्री, दीर्घायु, भोग्य और भोग शक्ति प्रदान करता हुआ (परि पासि) सबको पालन करता है।

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (द्युमतीम् इषम् ईरयति) आकाश से आने वाली विद्युत् सूर्य के तेज से युक्त वृष्टि को प्रेरित करती है इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजःस्वरूप! हे (जातवेदः) मतिमन्! दुष्टो को संतप्त करने हारे प्रभो! आप (अस्मे) हमारे भले के लिये (ताम्) उस (द्युमतीम्) कामना योग्य (इषम्) अन्न-समृद्धि को (ईरयस्व) प्रदान कर। हे (वैश्वानर) सब मनुष्यो के भीतर बसने वाले! तू (यया) जिस भी प्रकार से (राधः पिन्वसि) धन की वृष्टि करता है हे (विश्ववार) सब के वरने योग्य और सब सकटों को दूर करने हारे आप (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य को (पृथु श्रवः) बहुत बड़ा यश, अन्न और ज्ञान (पिन्वसि) प्रदान करता है।

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश! ज्ञानवन्! आप (नः) हमसे मे

(मघवद्भ्यः) उत्तम पूजनीय पापादिरहित, सात्विक ऐश्वर्य वाले पुरुष को (तं) उस नाना प्रकार के (पुरुक्षुम्) बहुत प्रकार के अन्नों से सम्पन्न (रयिम्) ऐश्वर्य और (श्रुत्यं वाजं) श्रवण करने योग्य ज्ञान (युवस्व) प्रदान कर, हे (वैश्वानर) सर्व मनुष्यों के हित करने वाले प्रभो! आप (रुद्रेभिः) पृथिवी अग्नि आदि हव्यों और (वसुभिः) प्राणों सहित (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः) हमें (महि) बड़ी (शर्म यच्छ) शान्ति और सुखमय शरण (यच्छ) प्रदान कर। इत्यष्टमो वर्गः॥

[६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्पंक्तिः। ३, ७ भुरिक् पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि॥१॥

भा०—(असुरस्य) बलवान्, मेघ के समान उदार (सम्राजः) सर्वत्र समान भाव से, और अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी, (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के बीच, उनके लिये (अनु-माद्यस्य) उसके हर्ष में अन्यों को भी हर्षित होने योग्य (तवसः) बलवान (पुंसः) पुरुष की (इन्द्रस्य इव) सूर्य, विद्युत्, वायु के समान ही (प्रशस्ति) उत्तम प्रशंसा और (कृतानि) उनके समान उसके कर्त्तव्य कर्मों को (वन्दे) वर्णन करता हूं। और (दारु) शत्रु-सैन्यों, दुःखों और शत्रु-नगरों के विदारण करने वाले, तथा दुष्टों के भयदाता की (वन्दमान) स्तुति करता हुआ मैं (विवक्मि) उनके विशेष २ गुणों और कर्त्तव्यों का भी वर्णन करता हूं। यहां यह भी स्पष्ट है कि, सम्राट्, बलवान्, उत्तम पुरुष का वर्णन भी वेद में 'इन्द्र' के समान ही किया गया है।

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (रोदस्योः) सूर्य पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनो के बीच मे (कविम्) अति बुद्धिमान्, (केतुम्) ज्ञानवान्, अन्यो को सन्मार्ग बतलाने वाले, (धासिम्) अन्नवत् पालक पोषक, (भानुम्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी (राज्यम्) राजा के पद के योग्य और (श) प्रजाओ को शान्तिदायक और कल्याणकारक पुरुष को (हिन्वन्ति) प्राप्त होते और उसको बढ़ाते है । (अद्रेः) मेघ के समान, उदार वा प्रबल शस्त्रास्त्र बल से सम्पन्न, (पुरन्दरस्य) शत्रु के नगरो को तोड़ने वाले, (अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी, पुरुष के (पूर्व्यं) पूर्व के जनो से किये, वा उपदेश किये, श्रेष्ठ २ (महानि) बड़े २ आदर योग्य (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्मो का (आ विवासे) वर्णन करता हू ।

न्यक्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥३॥

भा०—(पूर्वः) सब से मुख्य, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (अक्रतून्) कर्महीन और प्रजाहीन, मूर्ख, (ग्रथिनः) कुटलाचारी, वा अज्ञान में बंधे (मृध्रवाचः) दूसरो के पीड़ा देने वाले, असत्य वाणी बोलने वाले, (पणीन्) व्यवहारी, और (अश्रद्धान्) सत्य वचन, कर्मादि को धारण न करने वाले, (अवृधान्) दूसरो को न बढ़ने देने वाले, (अयज्ञान्) यज्ञ, सत्संग, अग्निहोत्र, दान, उपासनादि से रहित, और (तान्) उन २ नाना (अपरान्) अन्य २ (अयज्यून्) अन्यो का सत्कार न करने वाले लोगो को (प्र विवाय, निचकार) दूर करे और पराजित करे ।

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्नि गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अपाचीने) नीचे के वा दूर के (तमसि)

अन्धकार में (मदन्ती) सुखी व मत्त रहने वाली प्रजाओं को अपनी (शचीभिः) शक्तियों, वाणियों और किरणों से सूर्य के समान (नृतमः) पुरुषोत्तम (प्राचीः चकार) आगे और उत्तम पद की ओर अग्रसर करता है (तम्) उस (वस्वः ईशानम्) बसे समस्त संसार और ऐश्वर्य के स्वामी, (पृतन्यून्) सेनाओं को चाहने वाले, उनके स्वामियों को भी (दमयन्तम्) दमन करते हुए (अनानतं) अति विनयी, (अग्निम्) अग्रणी सेनानायक पुरुष के (गृणीषे) गुण वर्णन करता हूं । (२) इसी प्रकार परमेश्वर अपनी वेद वाणियों से नीचे कोटि के तमोगुण में वर्त्तमान प्रजाओं को भी उन्नत करता है, वह सब का ईशान, स्वामी है, उसकी मैं स्तुति करूं ।

यो दे॒ह्यो॒३॑ अन॑मयद्वध॒स्नैर्यो अ॒र्यप॑त्नीरु॒षस॑श्च॒कार॑ ।
स नि॒रुध्या॒ नहु॑षो य॒ह्वो अ॒ग्निर्विश॑श्चक्रे बलि॒हृतः॒ सहो॑भिः ॥५॥

भा०—(यः) जो (देह्यः) कर आदि द्वारा बढाने योग्य, देह में आत्मा के समान राष्ट्र में बसने वाला, (बधस्नैः) बध, दण्डादि से राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ, निष्कण्टक करने वाले राजभृत्यों, न्यायाधीश आदि शासकों द्वारा (अनमयत्) दुष्टों को दबाता और (वधस्नैः अनमयत्) बधकारी शस्त्रों द्वारा शत्रु-कण्टकों को मार्ग से साफ करने वाले सैन्यों में शत्रु को नमाता है और जो सुरम्य व्यवस्था द्वारा (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों को (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान सुभूषित, (चकार) करता है, अर्थात् जिसके शासन में विवाहित स्त्रियों का सौभाग्य स्थिर रहता है, (सः) वह (यह्वः) महान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी स्वयं (नहुषः) सत्य नियम में बद्ध होकर (विशः निरुध्य) प्रजाओं को नियमों में नियन्त्रित करके (सहोभिः) शत्रु-पराजयकारी बलों से शत्रुओं को भी (बलिहृतः चक्रे) कर देने वाला बनाता है ।

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य शर्मन्) जिसके सुखप्रद गृहवत् शरण में रहकर (विश्वे जनासः) समस्त मनुष्य, (सुमतिं भिक्षमाणाः) उत्तम मति, ज्ञान की याचना करते हुए (एवैः) ज्ञानों और शुभ गुणों सहित (उप तस्थुः) विराजते हैं। वह (वैश्वानरः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में सूर्य के समान (पित्रोः) माता और पिता दोनों के (उप-स्थम्) समीप, दोनों के तुल्य आदरणीय (वरम्) श्रेष्ठ पद को (आ ससाद) प्राप्त करता है।

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥९॥

भा०—(सूर्यस्य उदिता वैश्वानरः) जिस प्रकार सूर्य के उदयकाल में अग्नि ही (बुध्न्या वसूनि आ ददे) अन्तरिक्ष में छाये अन्धकारों को ग्रस लेता है (दिवः पृथिव्याः आ ददे) आकाश और पृथिवी के अन्धकारों को भी हर लेता है उसी प्रकार (देवः) दानशील, (वैश्वानर) सब मनुष्यों का हितैषी पुरुष (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान अपने अभ्युदयकाल में (बुध्न्या वसूनि) भृत्यादि को कार्यों में बांधने वाले ऐश्वर्यों को (आ ददे) प्राप्त करे। और वह (अवरात् समुद्रात) उरे के समीपवर्ती समुद्र से और (परस्मात्) दूरस्थ समुद्र तट से, भी (दिवः, पृथिव्याः) व्यवहार, व्यापार से, तथा (पृथिव्या) पृथिवी से भी धन और अन्न, रत्नादि नाना पदार्थ (आ, आ, आ ददे) पुनः पुनः प्राप्त करे। इति नवमो वर्गः ॥

[७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ स्वराट् पङ्क्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ।

प्र वो॑ दे॒वं चि॑त्सहसा॒नम॒ग्निमश्वं॒ न वा॒जिनं॑ हिषे॒ नमो॑भिः ।
भवा॑ नो दू॒तो अ॑ध्व॒रस्य॑ वि॒द्वान्त्मना॑ दे॒वेषु॑ विविदे मि॒तद्रुः॑ ॥१॥

भा०—(वाजिनं अश्वं नमोभिः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व को विनम्र करने के लिये कशादि (चाबुक) साधनों से प्रेरित किया जाता है और जिस प्रकार उसको (नमोभिः) अन्नों से बढ़ाते, पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के बीच (देवं चित्) सूर्यवत् तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी, ज्ञानप्रकाशक, (सहसानम्) बलवान् (अश्वम्) राष्ट्र के भोक्ता, (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुष का भी (नमोभिः प्र हिषे) उत्तम आदर सत्कारों से प्रेरित, प्रार्थित करें और शस्त्रादि से उसे बढ़ावें । हे विद्वन्! राजन् ! तू (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (मित-द्रुः) परिमित भय वाला, (देवेषु) विद्वान् श्रेष्ठ पुरुषों के बीच (विविदे) विदित हो, प्रसिद्धि और परिचय प्राप्त कर और तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारे (अध्वरस्य) यज्ञ, अविनाश्य कर्तव्य का (दूतः) अग्निवत् प्रकाशक (भव) हो ।

आ या॑ह्यग्ने प॒थ्या॒३॒॑ अनु॒ स्वा म॒न्द्रो दे॒वानां॑ स॒ख्यं जु॑षा॒णः ।
आ सानु॒ शुष्मै॑र्न॒दय॑न्पृथि॒व्या जम्भे॑भि॒र्विश्व॑मु॒शध॒ग्वना॑नि ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (देवानां सख्यं) विद्वान्, तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक किरणवत् विद्वानों के (सख्यं) मित्र भाव को (जुषाणः) प्राप्त करता हुआ (मन्द्रः) सबको हर्ष देता हुआ (स्वाः) अपनी (पथ्याः) धर्म मार्ग पर चलने वाली प्रजाओं को (अनु आयाहि) अनुकूल रूप से प्राप्त कर, हमें प्राप्त हो और सिंह वा मेघवत् (पृथिव्याः सानु) पृथिवी के उच्चतम उन्नत प्रदेश को भी (शुष्मैः) अपने बलों से (नदयन्) गुंजित वा समृद्ध करता हुआ (जम्भेभिः)अपने शत्रु-नाशक उपायों से (विश्वम्) समस्त राष्ट्र और (वनानि) ऐश्वर्यों को भी (उश-धक्) काष्ठों को अग्निवत् चाहे और उपभोग करे ।

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार (प्राचीनः यज्ञः) प्राङ्मुख यज्ञ (सुधितम् बर्हिः) अच्छी प्रकार बिछे कुशासनादि चाहता उसी प्रकार (प्राचीनः) उत्तम पद पर प्राप्त (यज्ञः) सत्संग और आदर योग्य (अग्निः), अग्रणी तेजस्वी पुरुष आदर सत्कार प्राप्त कर (बर्हिः अग्निः च) हविद्रव्य को अग्नि के समान (होता) स्वयं ग्रहण करके (प्रीणीते) तृप्त होता है। हे (यविष्ठ) बलशालिन्, अति तरुण! तू (यतः) जिनसे (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है वे (मातरा) माता पिता (विश्व-वारे) सब सुखों के देने वाले, सब प्रकार से वरण योग्य, परम पूज्य होते है, उन दोनों को तू (आ हुवानः) आदरपूर्वक स्तुति करता हुआ (सुशेवः) उनको सुख देने वाला हो।

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम्।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा॥ ४॥

भा०—(ये) जो (एषाम्) इन प्रजावर्गों मे से (वि-चेतसः) विविध और विशेष ज्ञान वाले (मानुषासः) मनुष्य है वे (सद्यः) शीघ्र (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि के समान तेजस्वी एवं (रथिरं) रथ-सैन्य के संचालन का स्वामी (जनन्त) बनावें। (दुरोणे अग्निः) दुःख से चढने योग्य अन्तरिक्ष मे, दूर जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार वह भी (दुरोणे) गृह मे (अग्निः) गार्हपत्य अग्नि को स्थापन किया जाता है (विशां विश्पतिः) प्रजाओं का स्वामी, (विशा दुरोणे) प्रजा के गृहस्थवत् राष्ट्र में (मन्द्रा) सबको अनन्दप्रद हो। (मधुवचाः) मधुरभाषी (ऋतावा) सत्य न्याय का सेवन करने वाला पुरुष (अधायि) राजा पद पर स्थापित हो।

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम्॥५॥

भा०—जिस प्रकार (नृसदने अग्निः विधर्त्ता) मनुष्यों के रहने के स्थान में अग्नि स्थापित होकर विविध सुखों को धारण करता है उसी प्रकार (वह्निः) पत्नी से विवाह करने वाला, (वृतः) पत्नी द्वारा स्वयं वृत (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नृ-सदने) नर नारी दोनो के रहने योग्य गृह में (ब्रह्मा) प्रजा की वृद्धि करने हारा होकर (आ जगन्वान्) आदर पूर्वक आकर (असादि) विराजे। और जो स्वयं (द्यौः) सूर्य के समान है और (पृथिवी) गृहस्थ का आश्रय होने से पृथिवी के तुल्य है इसी प्रकार स्त्री भी कामना योग्य होने से 'द्यौ' और सन्तान की उत्पादक भूमि के होने से पृथिवी के तुल्य है इसी प्रकार दोनों ही पद (यं वावृधाते) जिसको बढ़ाते हैं, (यं) जिसको (होता) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष भी (विश्ववारं) संघसे वरण करने योग्य जानकर (यजति) प्राप्त होता और ज्ञान प्रदान करता है। इसी प्रकार 'वृत' अर्थात् वरण किया राजा भी राज्य-भार को अपने कन्धों पर उठाने से 'वह्नि' है। वह बड़ा होने से 'ब्रह्मा', अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है, वह राज्य भार को विशेष रूप से धारण करने वाला हो। (यं) जिसको (द्यौः पृथिवी च) ज्ञानी अज्ञानी वा शासक और शास्य दोनो वर्ग बढ़ावें, और ज्ञान और अधिकार को दाता जन प्राप्त होते और जिसको शक्ति और अधिकार देते है।

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन्।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥८॥

भा०—(ये) जो (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी लोग (वारं) वरणीय, श्रेष्ठ (मन्त्रम्) विचार, राष्ट्रचालक मन्त्रणा को (अतक्षन्) प्रकट करते हैं (एते) वे (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (विश्वम्) सब विश्व को (आ अतिरन्त) सब प्रकार से बढाते हैं और (ये) जो (श्रोषमाणाः) स्वयं ज्ञान का श्रवण करते कराते हुए, (विशः) सब प्रजाओं को (प्र तिरन्त) बढाते है और (ये) जो (मे) मुझे (अस्य ऋतस्य) इस, सत्य

विज्ञान और न्याय को (आदीधयन्) प्रकाशित करते है । वे ही (विश्वम् आतिरन्त) सब को पालन करते है और वे ही सबको दु खों से पार करते है ।

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।१०

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं बलशाली सैन्य के स्वामिन् ! हम (वसिष्ठाः) उत्तम वसु होकर (वसूनाम् ईशानम्) गुरु के अधीन वास करके ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करने वाले, वा राष्ट्र मे बसाने वाले प्रजाजनो के (ईशान) स्वामी (त्वाम्) तुझ से (ईमहे) हम यह प्रार्थना करते है कि (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टा, स्तुतिशील और (मघवद्भ्यः) उत्तम धन सम्पन्नो के लिये (इषं आनट्) उनके इच्छानुरूप ज्ञान और धन प्रदान कर और हे उत्तम विद्वानों और आढ्य पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभि.) कल्याणकारी साधनो से (सदा नः पात) हमारी सदा रक्षा करे । वसन्ति आचार्याधीनं ब्रह्मचर्यमिति वसवः तेषु उत्तमाः वसिष्ठाः । वसन्ति गृहेषु इति वसव. पितरः । तेषु उत्तमा वसिष्ठा. । इति दशमो वर्गः ॥

[८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द.—१, ७ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ निचृत्त्रिष्टुप् २, ३, ४, ६ त्रिष्टुप् ॥

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥

भा०—(अग्नि.) जिस प्रकार सूर्य (उषसाम् अग्रे) प्रभात वेलाओं के पूर्व भाग मे (आ अशोचि) प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (अग्नि) वह

आहवनीय अग्नि भी (उपसाम् अग्रे अशोचि) प्रभात वेलाओं के पूर्व के अंश मे ही प्रदीप्त होना उचित है। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतम्) जिसका प्रज्वलित स्वरूप तेज से व्याप्त, सूर्य विम्ब के समान (घृतेन आहुतम्) घृत से आहुत होकर चमकता है (सबाधः नरः) बाधा अर्थात् पीडा रोगादि से व्यथित लोग उसको (हव्येभिः) नाना प्रकार के अग्नि मे जलने योग्य ओपधि अन्नों से (ईडते) तृप्त करते है, रोगपीड़ित होकर जन रोगनाश के लिये नाना ओपधियो की आहुति करते है (सः राजा अर्यः) वह अग्नि प्रदीप्त होकर स्वामी के समान (नमोभिः सम् इन्धे) उत्तम अन्नों से खूब प्रदीप्त हो। इसी प्रकार (उपसाम् अग्रे) कामना युक्त धन रक्षादि, चाहने वाली प्रजाओं और शत्रु दाहक सेनाओं के बीच मे अग्र, मुख्य पद पर (अग्निः) अग्रणी नायक (आ अशोचि) खूब प्रदीप्त हो, वह अपने को सदा स्वच्छ, निष्पाप और शुचि, अर्थात् अर्थ, कामादि से भी च्छस्व होकर रहे। (यस्य) जिसकी (प्रतीका) प्रतीति कराने वाला सैन्य (घृतेन) तेज से (आहुतम्) युक्त हो। और जिसकी (सबाधः नरः हव्येभिः ईडते) दुष्टो से पीड़ित होकर प्रजा के लोग उसको देने योग्य नाना भेटो, करो, वा दण्डों से उसको प्रसन्न करते है। वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नमोभिः) अन्नो से वैश्य के समान और आदर सत्कारो से ज्ञानी पुरुप के समान (राजा) तेजस्वी राजा (नमोभि:) शत्रु नमाने के उपाय रूप शस्त्रास्त्र बलो से (समिन्धे) खूब प्रदीप्त होता है।

अ॒यमु॑ ष्य सु॒मर्हाँ अवे॒दि होता॑ म॒न्द्रो मनु॑षो य॒ह्वो अ॒ग्निः।
वि भा अ॑कः ससृजा॒नः पृ॑थि॒व्यां कृ॒ष्णप॑वि॒रोष॑धीभिर्ववक्षे ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः कृष्ण-पविः ओपधीभिः ववक्षे) आग काले मार्ग वाला है उसे ओपधियां धारण करती हैं। उसी प्रकार (मनुष्यः) मननशील मनुष्य, भी (यह्व) महान् पूज्य (अग्निः)

अग्नि के समान तेजस्वी है जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (कृष्ण-पविः) श्याम धारावाले वा शत्रु को काटने वाले शस्त्रास्त्र से युक्त है। उसे (ओषधीभिः) तीक्ष्ण शत्रुबल को दग्ध करने वाले सैन्यगण (ववक्षे) धारण करते है। वह (ससृजानः) अग्नि के समान उत्पन्न होकर, (ससृजान.) स्वयं कार्य करता हुआ (भाः वि अकः) नाना प्रकार से या विशेष रूप से कान्तियें, तेज प्रकट करता है (अयम् उ स्यः) वह ही यह (होता) महान् राज्य को स्वीकार करने और सहस्रों को वृत्ति देने वाला और (मन्द्रः) सब को सुखी करने वाला होकर (सु-महान् अवेदि) खूब बड़ा जाना जाता है।

कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! अग्रणी, मुख्यपद को प्राप्त राजन्! तू (कया) किस रीति नीति से (नः वि वसः) हमें विविध प्रकार से रक्षा करते हो? और (काम् सुवृक्तिम्) किस उत्तम संविभाग की (स्वधां) ऐश्वर्य एवं स्वराष्ट्र को धारण करने वाली नीति को आप (शस्यमानः) स्तुति योग्य होकर (ऋणव.) प्राप्त होते हो। हे (सुदत्र) उत्तम दानशील! हम लोग (दुस्तरस्य रायः) अपार ऐश्वर्य के (पतयः) स्वामी और (वन्तारा) सेवन करने वाले (कदा) कब (भवेम) हों और (दु.स्तरस्य) बल विद्या में अपार (साधो.) सज्जन पुरुष के हम भी (वन्तार. कदा भवेम) सेवक कब हों।

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

भा०—(यत) जो (भा) दीप्तिमान् होकर (सूर्य. न रोचते) सूर्य के समान प्रकाशित होता, (बृहन्) महान्, होकर (अयम्)

वह (भरतस्य) मनुष्यमात्र का (अग्निः) अग्नि के समान मार्ग-दर्शक प्रकाशक रूप से (प्र-प्र शृण्वे) उच्च पद पर विख्यात होकर सुना जाता और उनके सुख दुःख निवेदनादि सुनता है। (यः) जो (पृतनासु) मनुष्यों में (पूरुम्) पालक जनों को (अभि तस्थौ) प्राप्त कर ऊपर अध्यक्ष रूप से विराजता है और वह (द्युतानः) दीप्तियुक्त होकर (दैव्यः) देव, विद्वानों मे प्रशंसित (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य और सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि विराजने वाला होकर (शुशोच) चमकता है।

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वे) तेरे निमित्त (भूरि) बहुत से (आहवनानि) सत्कार पूर्वक नियन्त्रण (असन् इत्) हों। तू (विश्वेभिः अनीकैः) सब सैन्यों से युक्त और (सुमनाः) उत्तम चित्त वाला (भुवः) हो। हे (सुजात) उत्तम गुणो से प्रख्यात ! तू (स्तुतः-चित्) प्रशंसित और (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ भी (शृण्विषे) अन्यों के वचनों का श्रवण किया कर और (स्वयं) अपने आप (तन्वं वर्धस्व) शरीरवत् अपने राष्ट्र और विस्तृत ज्ञानकी वृद्धि किया कर।

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (द्वि-बर्हाः) विद्या और नियम, ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष (अग्नये) अग्रगण्य पुरुष की उन्नति के लिये (शत-साः) सैकड़ों ज्ञानों को देने वाला होकर (सं-सहस्रम्) सहस्रों, अपरिमित ऐश्वर्यों और ज्ञानो के देने वाला (इदं वचः) इस

प्रकार का वचन (उत् जनिपीष्ट) उत्पन्न करे, कहे (यत्) जो (स्तोतृभ्यः) विद्वानो के लिये (आपये) आप्तजन, बन्धु वर्ग के लिये (शं भवाति) शान्तिदायक हो और जो (द्युमत्) शुभ कामनायुक्त, (अमीव-चातनं) रोगादिनाशक और (रक्षः-हा) दुष्ट पुरुषो का नाशकारी हो ।

नू त्वाम॑ग्न ईमहे॒ वसि॑ष्ठा ई॒शा॒नं सू॑नो सहसो॒ वसू॑नाम् ।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य आनड्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ७।११

भा०—व्याख्या देखो (सू० ७ । म० ७) । इत्येकादशो वर्गः ॥

[९]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिः ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

अबो॑धि जा॒र उ॒षसा॑मु॒पस्था॒द्धोता॑ म॒न्द्रः क॒वित॑मः पाव॒कः ।
द॒धा॑ति के॒तुमु॒भय॑स्य ज॒न्तोर्ह॒व्या दे॒वेषु॒ द्रवि॑णं सु॒कृत्सु॑ ॥ १ ॥

भा०—(जारः) रात्रि को जीर्ण कर देने वाला सूर्य जिस प्रकार (उपसाम् उपस्थात्) प्रभात वेलाओ के बीच मे प्रकट होकर (अबोधि) सबको प्रबुद्ध करता, (उभयस्य जन्तोः) दोपाये, चौपाये दोनो को (केतुम्) प्रकाश वा चेतना देता है, उसी प्रकार (उपसाम् उपस्थात्) हृदय से चाहने वाले शिष्यों वा प्रजाओं के बीच (जारः) उत्तम उपदेश करने हारा पुरुष (अबोधि) अन्यों को ज्ञान से बोधित करे । वह (होता) उत्तम ज्ञान का देने वाला (मन्द्रः) उत्तम हर्षजनक, (कवि-तमः) श्रेष्ठ विद्वान्, (पावकः) शोधक अग्नि के समान सबको पवित्र करने वाला होता है । वह (उभयस्य जन्तोः) ज्ञानी अज्ञानी दोनो प्रकार के, वा पशु व मनुष्य, दोनो वा इहलोक वा परलोक को जाने वाले दोनो प्रकार के (जन्तोः) प्राणियों को (केतुम्) ज्ञान का

प्रकाश (दधाति) प्रदान करता है । वह (देवेषु) विद्वानों और ज्ञान की कामना करने वालों और (सुकृत्सु) उच्च आचारवान् सुकर्मा पुरुषों में (हव्या) ग्रहण करने योग्य अन्न, वचनादि तथा (द्रविणं) धन भी (दधाति) प्रदान करे ।

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (राम्याणां तमः दमूनाः तिरः ददृशे) रात्रियों के अन्धकार को दूर करके अग्नि वा सूर्य दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो (दमूनाः) दान में अपना चित्त देने वाला, जितेन्द्रिय, मन को जीतने वाला, (होता) दाता, (मन्द्रः) सब को प्रसन्न करने वाला पुरुष (नः) हमारे (पुरु-भोजसं) बहुतों को पालने वाले, और बहुत से ऐश्वर्यों को भोगने वाले (अर्कं) पूज्य पुरुष को (वि पुनानः) विशेष रूप से पवित्र रूप से अभिषिक्त वा स्थापित करता हुआ (पणीनां) व्यवहार करने वाले प्रजागणों के (पुरः) नाना द्वारों था व्यवहार के मार्गों को (वि पुनानः) न्यायमर्यादा से स्वच्छ, निष्कण्टक करता हुआ (राम्याणाम्) रमण करने योग्य (विशां तम. तिरः ददृशे) प्रजाओं के अज्ञान, अधर्म वा पाप को दूर करके स्वयं अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी रूप से दीखता है (सः सुक्रतुः) वही पुरुष शुभ कर्म और उत्तम बुद्धिवाला है ।

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (चित्र-भानुः) अद्भुत कान्तिवाला सूर्य (उषसाम् अग्रे भाति) प्रभात वेलाओं के अग्रभाग में चमकता है और जिस प्रकार विद्युत् (अपाम्) जलों के (गर्भः) बीच गर्भित होकर

(प्र-स्वः) उत्तम रीति से ओषधियों को उत्पन्न करने वाली भूमियो और ओषधियो मे भी (आ विवेश) प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार (अमूरः) कभी नाश न होने वाला, एवं (अमूरः) अमूढ़, मोह अज्ञान से रहित, (कविः) क्रान्तदर्शी, (अदितिः) अदीन, उत्साही, (विवस्वान्) सूर्यवत् नाना किरणो के सदृश वसुओ, प्रजाओं का स्वामी, (सु-संसत्) उत्तम राजसभा का स्वामी, (मित्रः) प्रजा को मारने या विनाश होने से बचाने वाला, सबका स्नेही, न्यायशील, (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य, सबको अतिक्रमणकर सर्वोपरि विराजमान, (शिवः) सब का कल्याणकारी हो। वह (नः) हमारे बीच मे (उपसाम्) शत्रु और पापो को भस्म करने वाले सैन्यो के आगे सेनानायकवत् प्रकाशित हो और वह (अपां) आप्त प्रजाओं को (गर्भः) अपने वश मे लेने हारा होकर (प्र-स्वः) उत्तम धनवान् होकर (प्रस्वः = प्रसुवः) प्रभूत ऐश्वर्यवान्, प्रजाओं के भीतर प्रजापति गृहपति के समान ही (आविवेश) प्रविष्ट होता है।

ई॒ळेन्यो॑ वो॒ मनु॑षो यु॒गेषु॑ समन॒गा अ॑शुचज्जा॒तवे॑दाः ।
सु॒स॒न्दृशा॑ भा॒नुना॒ यो वि॒भाति॒ प्रति॒ गावः॑ समिधा॒नं बु॑धन्त ॥४॥

भा०—हे मनुष्यो ! जो (युगेषु) वर्षों में (समनगाः) संग्रामो मे जाने वाला, (जातवेदाः) धनाढ्य, और विद्यावान्, (वः) आप सब (मनुषः) मनुष्यों को (अशुचत) शुद्ध पवित्र करता है वह (ईडेन्यः) स्तुति योग्य है। और (यः) जो (भानुना) तेज मे सूर्य के समान (सु-सन्दृशा) उत्तम सम्यक् दर्शन, यथार्थ ज्ञान प्रकाश मे (वि भाति) स्वयं प्रकाशित होता है (गावः) किरणें जिस प्रकार (समिधानं) चमकते सूर्य का बोध कराती है उसी प्रकार (गावः) वेद-वाणियां भी (समिधानं प्रति) अच्छी प्रकार सम्यक् ज्ञान से प्रकाशमान पुरुष को (प्रति बुधन्त) प्रत्येक पदार्थ का प्रत्यक्ष बोध कराती है।

अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, प्रतापशालिन्! तू (दूत्यं याहि) अग्नि के समान ही शत्रु संतापन के सामर्थ्य को प्राप्त हो, तो भी (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (मा रिषण्यः) दण्डित मत कर और शुभ गुणों का नाश मत कर। (ब्रह्म-कृता गणेन) धन, अन्न और ज्ञान को उत्पन्न करने वाले 'गण' अर्थात् नाना साधनों से (सरस्वतीम्) वेद वाणी को, (मरुतः) प्रजाओं के व्यापारी पुरुषों को और (अश्विना) प्रजा के उत्तम स्त्री पुरुषों, अश्वारोही, रथी सारथी जनों और (अपः) आप्त पुरुषों के साथ (अच्छ यक्षि) भली प्रकार सत्संग कर। (रत्नधेयाय) रमणीय गुणों और पदार्थों को धारण करने के लिये (विश्वान् देवान्) समस्त प्रकार के विद्वान् पुरुषों का (यक्षि) सत्संग कर।

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरंन्धिम्।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्निवत् तेजस्विन्! (वसिष्ठः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन उत्तम वसु ब्रह्मचारी (त्वा जरूथ) तुझ विद्या और वयस् मे वृद्ध एवं उत्तम ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (हन्) प्राप्त हो। वह विद्वान् होकर (राये) धन को प्राप्त करने के लिये (पुरन्धिम्) बहुत से धनों को धारने वाले आढय पुरुष को (यक्षि) प्राप्त करे। हे (जातवेदः) विद्वन्! हे धनवन्! तू (पुरु-नीथा) बहुत सी वाणियों और बहुत से मार्गों व उपायों से सम्पन्न होकर (जरस्व) अन्यों को विद्या का उपदेश कर और स्वयं बड़ा हो। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा शुभ कल्याणकारी साधनों से पालन करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप ॥
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (जारः) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (पृथु-पजः आश्रेद्) महान् तेज धारण करता है, (शोशुचानः दविद्युतत्) खूब तेजस्वी होकर चमकता है उसी प्रकार (जारः) विद्या का उपदेष्टा, (उषः न) उषा वा प्रभात काल के समान (पृथु-पाजः) वडे भारी वल और अन्न को (अश्रेत्) प्राप्त करे । वह (शोशुचानः) स्वय तेजस्वी होकर अन्यो को भी शुद्ध करता हुआ (दविद्युतत्) स्वयं प्रकाशित हो, सब को प्रकाशित करे । वह (शुचिः) शुद्धचित्त, धर्मात्मा, (वृषा) बलवान् सब पर सुखो की वर्षा करने हारा, उत्तम प्रवन्धक (हरिः) पुरुष (आ भाति) सब प्रकार से प्रकाशित हो । वह (धियः) कर्त्तव्यो, ज्ञानो और बुद्धियों को (हिन्वानः) उपदेश करता हुआ (उशतीः) विद्या धनादि की अभिलाषा करने वाली प्रजाओ को (अजीगः) प्रबुद्ध करे ।

स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद्दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (वस्तोः स्वः न) दिन के समय कान्ति युक्त किरणों के बीच सूर्य के समान (उषसाम्) कामना युक्त प्रजाओ और शत्रुओं को दग्ध करने वाली सेनाओ के बीच (अरोचि) सबको अच्छा लगता है । (यज्ञं तन्वाना उशिजः न) यज्ञ करने वाले धनादि के इच्छुक ऋत्विजों के समान (उशिजः) विद्या धनादि की कामना करने वाले पुरुष भी (यज्ञं तन्वानाः) सत्सग

करते हुए (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें और वह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवः) ज्ञानदाता, सर्व अज्ञात तत्वों का प्रकाशित करने वाला, (विद्वान्) विद्वान् (देव-यावा) ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर वा अन्यो को शुभ गुण प्राप्त कराने वाला, (वनिष्ठः) ज्ञान ऐश्वर्यादि का उदारता से विभाग करता हुआ (जन्मानि) नाना उत्तम जन्मों, रूपों वा उत्तम जन्म ग्रहण करने हारे शिष्य जनों को (आ वि द्रवत्) आदर पूर्वक विशेष रूप से प्राप्त करे ।

अच्छा गिरो॑ म॒तयो॑ देव॒यन्ती॑र॒ग्निं य॑न्ति॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणाः ।
सु॒स॒न्दृशं॑ सु॒प्रती॑कं॒ स्वञ्चं॑ हव्य॒वाह॑मर॒तिं मानु॑षाणाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (द्रविणं भिक्षमाणाः मानुषाणाम् अरतिं यन्ति) द्रविण, धन के याचक लोग मनुष्यो के स्वामी को प्राप्त होते है । और जिस प्रकार (गिरः) उत्तम वाणियां, (मतयः) उत्तम बुद्धियां (देवयन्तीः) प्रभु की कामना करती हुई (भिक्षमाणः) धन, यज्ञादि की प्रार्थना करती हुई प्रभु को लक्ष्य कर जाती है उसी प्रकार (गिरः) उत्तम स्तुतिशील (मतयः) मननशील कन्याएं भी (देवयन्तीः) देव, दानशील, कामना योग्य पति की कामना करती हुई (द्रविणं भिक्षमाण) धन, यश, एवं पुत्रादि की याचना करती हुई (सुसन्दृशं) उत्तम, समान रूप से सुन्दर दीखने वाले, (सुप्रतीकम्) सुमुख, (स्वञ्चम्) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य (हव्य-वाहम्) ग्राह्य और देय, ऐश्वर्य, अन्न वस्त्रादि प्राप्त कराने वाले (अरतिम्) स्वामी को (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच मे (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को एवं (अग्निम्) यज्ञाग्नि को भी (यन्ति) प्राप्त करती है । उसी प्रकार (गिरः मतयः देवयन्तः) उत्तम वक्ता, मतिमान्, विद्वान् की कामना युक्त शिष्यादि, वा प्रजाएं (सुसंदृशम्) उत्तम ज्ञान, न्याय आदि के द्रष्टा, पूज्य (अग्नि) अग्र नेता, पुरुष को आचार्य, वा राजा रूप से प्राप्त होते है ।

विद्वानों का आदर सत्कार सत्संगादि करने के लिये सदा तत्पर एवं (क्षपावान्) रात्रियों के स्वामी चन्द्र के समान अह्लादकारक और (क्षपावान्) शत्रुओं को नाश करने वाली सेनाओं का स्वामी (अभवन्) हो। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[११]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः। २, ४ भुरिक्पंक्तिः। ३ विराट्त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्

म॒हाँ अ॑स्यध्व॒रस्य॑ प्रके॒तो न ऋ॒ते त्वद॒मृता॑ मादयन्ते।
आ विश्वे॑भिः स॒रथं॑ याहि दे॒वैर्न्य॑ग्ने॒ होता॑ प्रथ॒मः स॑दे॒ह॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! प्रभो! तू (अध्वरस्य) सब प्रकार के व्यवहार का (प्र-केतः) बतलाने वाला और (महान् असि) गुणों में महान् है। (त्वद् ऋते) तेरे विना (अमृताः) जीवित जीव (न मादयन्ते) प्रसन्न नहीं हो सकते, तेरे विना सुख का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। तू (विश्वेभिः देवैः) समस्त उत्तम मनुष्यों सहित (सरथं आयाहि) अपने रथों, सुखों, सहित आ, (होता) तू सब के सुखों का दाता (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (इह सद) यहां विराज।

त्वामी॑ळते अजि॒रं दू॒त्या॑य ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मिन्मानु॑षासः।
यस्य॑ दे॒वैरास॑दो ब॒र्हिर॒ग्नेऽहा॑न्यस्मै सु॒दिना॑ भवन्ति॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (हविष्मन्तः मानुषासः) अन्नादि साधनों वाले मनुष्य (सदम् इत्) स्थिरता से विराजने वाले (अजिरम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले (त्वाम्) तुझको (दूत्याय) उत्तम दूत कर्म और शत्रु संतापन के कार्य के लिए (ईडते) प्रार्थना करते और चाहते है। (यस्य) जिसका (बर्हिः) बड़ा राष्ट्र (देवैः आ सदः) विद्वान् पुरुषों द्वारा शासित होता है, (अस्मै) उसके ही (अहानि)

सब दिन (सुदिना भवन्ति) उत्तम होते है। या जिस विद्वान् का वृद्धिकारक ज्ञान विद्या के इच्छुक विद्वानो द्वारा ग्राह्य होता है वे उस दिन सुखदायक होते है।

त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् प्रकाशक! (त्वे अन्तः) तेरे शासन मे (दाशुषे मर्त्याय) वृत्ति आदि देने वाले मनुष्य के (वसूनि) ऐश्वर्यो को विद्वान् लोग (अक्तोः) दिन वा रात्रि मे भी (त्रिः) तीन वार (प्रचिकितुः) अच्छी प्रकार चेत लेवे। तू मनुष्वत्) मनुष्यों के समान विचारवान् होकर ही (देवान् यक्षि) शुभ गुणों और उत्तम पुरुषो से संगत हो। (नः) हमारा (दूतः) दूत, शत्रुसंतापक होकर (अभिशस्ति-पावा) दुरपवाद वा शत्रु-प्रहार से बचाने वाला वा हम प्रशंसितो का रक्षक (भव) हो।

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥ ४॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार (बृहतः अध्वरस्य ईशे) बड़े भारी यज्ञ को कराने में समर्थ है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणीनायक, तेजस्वी पुरुष (बृहतः अध्वरस्य) बड़े भारी हिंसारहित यज्ञ का (ईशे) प्रभु है। (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ही (कृतस्य) स्वच्छ किये (विश्वस्य) सब प्रकार के (हविषः) अन्न वा धन का (ईशे) स्वामी है। (अस्य) इसके उपदेश किये (क्रतुम्) काम और इसके ज्ञान को (हि) निश्चय से (वसवः) ब्रह्मचारी लोग (जुषन्त) सेवन करते हैं (अथ) और देवाः) विद्वान् लोग भी (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों को धारण करने वाले इसको (दधिरे) धारण करें।

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (अद्याय) खाने के लिये (हविः आ वह) उत्तम अन्न प्राप्त करा। अथवा (हविः-अद्याय) उत्तम अन्नादि भोजन कराने के लिये (देवान् आ वह) उत्तम विद्वान् पुरुषों को प्राप्त कर। (इह) इस राष्ट्र मे (इन्द्र-ज्येष्ठासः) राजा को अपना मुख्य मानने वाले प्रजाजन (मादयन्ताम्) यहां प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करें। हे विद्वन्, राजन्, (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) विद्वान्, पुरुषों के आश्रय पर (धेहि) स्थापित कर। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) तुम सब लोग (नः) हमे (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः पात) सुख कल्याणकर साधनो से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। पंक्तिः ॥ तृच सूक्तम् ॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

भा०—(स्वे दुरोणे) अपने गृह, अग्नि कुण्ड मे (समिद्धः) प्रदीप्त अग्नि के समान (यः) जो पुरुष वा प्रभु (स्वे दुरोणे) अपने गृह वा परम पद में (सम्-इद्धः सम् दीदाय) सर्वत्र समान रूप से प्रकाशित हो रहा है उस (यविष्टं) अति बलवान् वा परमाणु २ को विद्युत् के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ, (महा) बड़े भारी उर्वी (रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथिवी के बीच (चित्र-भानुम्) अद्भुत

कान्तिमान्, सूर्यवत् स्वयं प्रकाशित हो अन्यों को भी प्रकाशित करने वाले, (विश्वत. प्रत्यञ्चम्) सर्वत्र प्रत्येक पदार्थ मे व्यापक (सु-आहुतम्) उत्तम रीति से स्वीकृत एवं आदरपूर्वक वर्णन करने योग्य, सुप्रकाशित प्रभु को (अगन्म) प्राप्त हो।

स महा विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः॥ २॥

भा०—(दमे) गृह मे (अग्नि.) प्रज्वलित अग्नि के समान (दमे) समस्त ससार को दमन करने मे सर्वत्र प्रकाश करने हारा (जात-वेदाः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (स्तवे) स्तुति करने पर (महा) अपने महान् सामर्थ्य से (सः) वह (विश्वा दुरितानि) सब प्रकारों के दुष्टाचारो और दुःखों को (साह्वान्) पराजित करने हारा है। (सः) वह (न.) हम (गृणत.) स्तुति करने वालों को (अवद्यात् दुरितात्) निन्दनीय पापाचार से (रक्षिषत्) बचावे और (उत्) वह (नः मघोनः) धन सम्पन्न हुए हमे भी निन्द्य पापाचार से बचावे।

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वप्रकाश प्रभो! (त्वं वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सबसे चाहने, वरने योग्य और सब दुःखों के वारण करने और सबको जीवन, आत्मधनादि का न्यायपूर्वक विभाग करने से तू 'वरुण' है। (उत मित्रः) और तू ही सबको स्नेह करने और सब जीवों को मृत्यु से बचाने वाला होने से 'मित्र' है। (वसिष्ठा.) उत्तम वसु, विद्याओं में निवास करने, रमने वाले विद्वान् (मतिभि.) अपनी मननशील बुद्धियो और वाणियों से (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढाते है, तेरी स्तुति कर तेरा गुण सर्वत्र फैलाते हैं। (त्वे) तेरे मे ही

समस्त (वसु) ऐश्वर्य (सु-सननानि) उत्तमरीति से देने योग्य (सन्तु) हों। हे विद्वानो ! (यूयम्) आप लोग (नः) हमे (स्वस्तिभि. पात) सुख कल्याणजनक उपायों से रक्षा करो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पङ्क्तिः। ३ भुरिक्पङ्क्तिः ॥

प्राग्नये॑ विश्व॒शुचे॑ धिय॒न्धेऽसुर॒घ्ने मन्म॑ धी॒तिं भ॑रध्वम्।
भरे॑ ह॒विर्न ब॒र्हिषि॑ प्रीणा॒नो वै॑श्वान॒राय॒ यत॑ये मती॒नाम्॥ १॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विश्व-शुचे) सब जगत् को प्रकाशित और पवित्र करने वाले और (विश्व-शुचे) सब के प्रति शुद्ध अन्तःकरण वाले, (धियन्धे) उत्तम बुद्धि, ज्ञान और कर्म को धारण करने, कराने वाले, (असुरघ्ने) दुष्टों का नाश, तिरस्कार करने वाले (मतीनां यतये) ज्ञान बुद्धियों के देने वाले एवं मननशील पुरुषों के बीच संयम से रहकर ईश्वर प्राप्ति और जगत् के सुधार का यत्न करने वाले, (वैश्वानराय)- समस्त मनुष्यों के हितकारी, सर्वनायक रूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (बर्हिषि अग्नये) यज्ञ मे अग्नि के लिये (हविः न) हवि के समान (मन्म धीतिम् भरे) मननयोग्य, उत्तम संकल्प और स्तुति प्रस्तुत करता हूं।

त्वम॑ग्ने शो॒चिषा॒ शोशु॑चान॒ आ रोद॑सी अपृणा॒ जाय॑मानः।
त्वं दे॒वाँ अ॒भिश॑स्तेरमुञ्चो॒ वैश्वा॑नर जातवेदो महि॒त्वा॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि या सूर्य (जायमानः) प्रकट होता हुआ (शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणात्) स्वयं प्रदीप्त होकर आकाश, पृथिवी दोनों को तेज से पूर्ण कर देता है उसी प्रकार तू भी (जायमान)

प्रकट होकर (शोशुचानः) शुद्ध पवित्र होकर (शोचिषा) अपने तेज से (रोदसी) स्त्री पुरुषों को (अपृणाः) पूर्ण कर। (त्वं) तू (देवान्) उत्तम मनुष्यो को हे (जातवेदः) विद्यावन् ! (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (अभि-शस्तेः) अभिमुख प्रशंसा करने वाले दम्भी और सन्मुख शस्त्रादि के प्रयोक्ता घातक से, मिथ्याभियोगी पुरुष से (अमुञ्चः) छुड़ा।

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१६

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! अग्निवत् तेजस्विन् ! संन्यासिन् ! जिस प्रकार अग्नि (जातः भुवना वि-अख्यः) उत्पन्न होकर नाना उत्पन्न पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तू भी (जातः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होकर (भुवना) नाना ज्ञानो को (वि-अख्यः) विशेष रूप से उपदेश कर। तू (परिज्मा) सब ओर भ्रमण करने वाला होकर (गोपा. पशून् न) गौओ का पालक जिस प्रकार पशुओं को दण्ड के बल से सीधे रास्ते चलाता है उसी प्रकार पशु सदृश अज्ञानी जनो का (गोपा.) रक्षक होकर (इर्यः) उनको सन्मार्ग मे चलाने वाला है। (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के हितैषिन् ! सब के बीच सत्य ज्ञानका, प्रकाश करने हारे ! तू (ब्रह्मणे) प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (गातुम्) सन्मार्ग (विन्द) प्राप्त कर, उसी का उपदेश कर। हे विद्वान् लोगो ! (यूयं) आप लोग भी (स्वस्तिभि.) उत्तम, उपायों मे (न. पात) हमारी रक्षा करो। राज्य मे राजा और विश्व में परमेश्वर भी त्याग वृत्ति से सब के रक्षक और सत्पथ में चलाने से सबके द्रष्टा, पालक, है। राजा (ब्रह्मणे) धनैश्वर्य की प्राप्ति के मार्ग को सदा जाने, जनावे। राजा के चमकते पीले केसरिये वस्त्र और संन्यासी के गेरुए वस्त्र अग्नि के अनुकरण मे होते हैं। इति षोडशो वर्ग. ॥

[१४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥

स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः ।
ह॒विर्भिः॑ शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नये देवहूतिभिः समिधा हविर्भिः सह वयं नमस्विनः सन्तः दाशेम) अग्नि मे परमेश्वर की स्तुतियों, काष्ठों, और चरुओं सहित अन्नयुक्त वा नमस्कार श्रद्धा विनयादि से युक्त होकर चरु आदि त्यागते है उसी प्रकार (वयम्) हम लोग (जातवेदसे) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी, और उत्पन्न विद्या-व्रतस्नातकों, वा निष्ठ पुरुषो मे विद्यमान, (देवाय) पूज्य, ज्ञानप्रद, जीवनप्रद (शुक्रशोचिषे) शुद्ध, तेज, एवं वीर्य की तेजोमयी कान्ति से युक्त, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के आदर सत्कार के लिये (नमस्विनः) उत्तम अन्न वाले और अति विनय आदि साधनो से युक्त होकर (देव-हूतिभिः) विद्वान् और इष्ट देव के प्रति आदर पूर्वक कहने योग्य वाणियो से और (हविर्भिः) उत्तम अन्नो सहित (वयं दाशेम) उसकी हम सेवा शुश्रूषा करे ।

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र ।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! जिस प्रकार हम लोग (समिधा सुस्तुती, घृतेन, हविषा दाशेम) अग्नि की परिचर्या, काष्ठ उत्तम मन्त्रस्तुति, घी, और हवि, अन्नमय पुरोडाश आदि द्वारा करते है उसी प्रकार (वयम्) हम हे विद्वन् ! (ते) तेरी सेवा (समिधा) अच्छी प्रकार गुणों के प्रकाशन, प्रोत्साहन मे (विधेम) करे, हे (यजत्र) ज्ञान के देने हारे ! हे सत्संगयोग्य ! हम (ते सुस्तुती दाशेम) तेरी उत्तम

स्तुति द्वारा सत्कार करें। हे (अध्वरस्य होतः) यज्ञ के होता के समान अहिंसामय व्यवहार का उपदेश देने, अहिंसा व्रत को स्वीकार करने हारे! हे (देव) विद्वन्! तेजस्विन्! हे (भद्र-शोचे) कल्याण, सुखमय मार्ग के प्रकाशक! (वयम्) हम (घृतेन हविषा विधेम) घी और हविष्य, सात्विक अन्न से तेरा आदर सत्कार करें।

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ३।१७

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! ज्ञानप्रकाशक! तू (नः) हमारे (वषट्-कृति = अवसत्कृति जुषाणः) आदर सत्कार को प्रेम पूर्वक स्वीकार करता हुआ (देवेभिः) अपने उत्तम गुणो और विद्वानों सहित, किरणों सहित सूर्य के समान (नः) हमारे (देव-हूतिम्) विद्वानो की आमन्त्रित सभा को (आ उप याहि) प्राप्त हो। (देवाय तुभ्यम्) तुझ विद्वान् के उपकारार्थ हम (दाशतः) सदा आदर सहित देने और सेवा करने वाले (स्याम) हों। हे विद्वान् त्यागी पुरुषो! (यूयं न सदा स्वस्तिभिः पात) आप सब सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा कीजिये। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ७, १०, १२, १४ विराट् गायत्री। २, ४, ५, ६, ९, १३ गायत्री। ८ निचृद्गायत्री। ११, १५ आर्च्युष्णिक्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

उ॒प॒सद्या॑य मी॒ळ्हुष॑ आ॒स्ये॑ जुहुता ह॒विः।
यो नो॒ नेदि॑ष्ठमाप्य॑म्॥ १॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारे (नेदिष्टम्) अति समीप (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य, बन्धुत्व, सौहार्द आदि प्राप्त करता उस

(उप-सद्याय) उपासना करने योग्य (मीढुषे) सुख और शान्ति के वर्षक विद्वान् पुरुष के (आस्ये) मुख में (हविः) अन्न का (जुहुत) त्याग करो। उसका अन्नादि ग्राह्य और दान योग्य पदार्थों से सत्कार करो।

यः पञ्च चर्षणीर॒भि नि॑ष॒साद॒ दमे॑दमे।
क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (युवा) युवा, बलवान् (गृहपतिः) गृह का पालक, गृहस्थ और गृह के समान राष्ट्र का पालक राजा (कविः) क्रान्त-दर्शी विद्वान् (दमे-दमे) गृह गृह में एवं इन्द्रियों के और मन के विषयों से दमन करने तथा, राष्ट्र में दुष्टों को दमन करने के कार्य में (पञ्च-चर्षणीः) पांचों प्रकार के प्रजाओं तथा (पञ्च चर्षणीः) पांचो विषयों के द्रष्टा पांचों इन्द्रियो पर (अभि नि-ससाद) अध्यक्षरूप से विराजता है वही उपास्य एवं शरण और सत्संग योग्य है।

स नो॒ वेदो॑ अ॒मात्य॑म॒ग्नी र॑क्षतु वि॒श्वतः॑।
उ॒तास्मान्पा॒त्वंह॑सः ॥ ३ ॥

भा०—(सः अग्निः) वह अग्रणी, विद्वान् पुरुष (नः) हमारी और (अमात्यं) हमारे साथी मित्र वा पुत्र की और (न वेदम्) हमारे धन की भी (विश्वतः) सब प्रकार से रक्षा करे। (उत) और वह (अस्मान्) हमें (अंहसः) पापाचरण से भी (पातु) रक्षा करे।

नवं॒ नु स्तोम॑म॒ग्नये॑ दि॒वः श्ये॒नाय॑ जीजनम्।
वस्वः॑ कु॒विद्व॒नाति॑ नः ॥ ४ ॥

भा०—जो (नः) हमें (कुवित्) बहुत अधिक (वस्वः) धन की मात्रा (वनाति) प्रदान करता है उस (दिवः) शुभ कामना और विजय की पूर्त्ति के लिये (श्येनाय) श्येन, बाज के समान वेग से और उत्तम गति से जाने वाले (अग्नये) तेजस्वी, पुरुष के लिये (नवं स्तोमं) उत्तम स्तुतिवचन (जीजनम्) कहूं।

स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा।
अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यज्ञस्य अग्रे शोचतः अग्नेः यथा श्रियः दृशे स्पार्हा) यज्ञ के अग्र भाग, मे जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि की कान्तियां देखने के लिये हृदयहारिणी होती है उसी प्रकार (यज्ञस्य) ज्ञान, धन आदि के दान-प्रतिदान और छोटे बड़ों के सत्संगादि योग्य व्यवहार के (अग्रे) प्रथम साक्षी रूप मे (शोचतः) तेजस्वी, व्यवहार को सदा स्वच्छ, निश्चल बनाये रखने वाले (वीरवतः) वीरो, विद्वानो के स्वामी (यस्य) जिसकी (स्पार्हाः श्रियः) स्पृहा करने योग्य उत्तम सम्पदाये (दृशे) देखने योग्य है उसी प्रकार उसका (रयि) ऐश्वर्य और बल भी देखने योग्य हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः।
यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (यजिष्ठः) अतिपूज्य एवं दानशील,(हव्यवाहन) ग्राह्य, स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (स.) वह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (इमाम्) इस (नः) हमारे किये (वषट्-कृतिम्) सत्कार को (वेतु) प्राप्त करे और इसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (नः) हमारी वाणियो और सत्कार को (जुषत) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो।

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि।
सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्पते) प्रजाओं के पालक ! हे (देव) दानशील ! प्रकाशक तेजस्विन् ! हे (आ-हुत) आदरपूर्वक निमन्त्रित ! हे (अग्ने) अग्रणी, अग्र, मुख्य पद के योग्य ! हे (नक्ष्य) प्राप्त होने योग्य, शरण्य !

विद्वन् ! हम (त्वा) तुझको (द्युमन्तं) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, उत्तम कामनावान्, (सुवीरम्) उत्तम वीर्यवान् जानकर (धीमहि) तुझे धारण करते और ध्यान करते हैं।

क्षप॑ उ॒स्रश्च॑ दीदिहि स्वग्नय॒स्त्वया॑ व॒यम् ।
सु॒वीर॒स्त्वम॑स्म॒युः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (क्षपः उस्रः च) दिन और रात्रि को भी (दीदिहि) स्वयं प्रकाशित हो और उनको भी सूर्य, दीपकवत् प्रकाशित कर। (त्वया) तेरे से ही (वयम्) हम लोग (सु-अग्नय:) उत्तम अग्नियुक्त, उत्तम नेता वाले हों। और (त्वम्) तू (सु-वीरः) उत्तम वीर पुरुषों का स्वामी तथा (अस्मयुः) हम लोगों को प्रिय हो।

उप॑ त्वा सा॒तये॒ नरो॒ विप्रा॑सो यन्ति धी॒तिभिः॑ ।
उपाक्ष॑रा सह॒स्रिणी॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (विप्रः नरः) विद्वान्, बुद्धिमान् मनुष्य (धीतिभिः) अंगुलियों से जैसे (अक्षरा उप यन्ति) अक्षरों को लिखते हैं और (धीतिभिः) अध्ययनादि क्रियाओं द्वारा (अक्षरा) अविनाशिनी (सहस्रिणी) सहस्रों वेद मन्त्रों से युक्त वेदवाणी को (उप यन्ति) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे (धीतिभिः) उत्तम कामों और धारण पालन की शक्तियों से वा (धीतिभिः) विनय से बद्ध अंगुलियों से (सातये) तेरा सम्यक् भजन और अपने अभीष्ट लाभ के लिये (त्वा उप यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं।

अ॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति शु॒क्रशो॑चि॒रम॑र्त्यः ।
शुचिः॑ पाव॒क ईड्यः॑ ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी (शुक्र-शोचि) शुद्ध तेज वाला, (शुचिः) धर्मात्मा, स्वच्छाचारवाला, (पावकः) स्वयं पवित्र, अन्यों को पवित्र करने वाला पुरुष (ईड्यः) स्तुति और आदर करने

योग्य है। वह (अमर्त्यः) अन्य साधारण मनुष्यों से भिन्न, उनसे अधिक होकर ही (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (सेधति) वश करता है।

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो।
भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (सः) वह तू (ईशानः) सबका स्वामी है। तू (नः) हमे (राधांसि) नाना प्रकर के धनैश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमे (वार्यम् दातु) उत्तम धन प्रदान करे। अथवा (दातु वार्यं आ भर) देने योग्य धन प्राप्त करावे।

त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः।
दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू और (देवः सविता च) प्रकाशमान सूर्यवत् उत्तम दानशील, सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान्, (दितिः च) दुःखों, कष्टों को नाश करने वाली नीति और हल आदि से कर्षित भूमि ये सब (वार्यम् दाति) उत्तम धन प्रदान करे।

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! तू (नः) हमे (अंहसः रक्ष) पाप और पापी पुरुष से बचा। हे (देव) तेजस्विन् ! अभय-दातः ! तू (रीषत) हिंसकों को स्वयं (अजरः) उखाड़ने में समर्थ एवं जरारहित, बलवान् होकर (तपिष्ठैः) अति सन्तापदायक उपायों से (प्रति दह स्म) एक २ करके दग्ध कर, समूल नाश कर।

अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये।
पूर्भवा शतभुजिः ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और हे राजन् और राज्ञि ! जिस प्रकार (नृ-पीतये) मनुष्यों के पालन करने के लिये तू (अनाधृष्टः) शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होता उसी प्रकार हे रानी ! तू भी (अनाधृष्टा उ नृ-पीतये) मनुष्यों में नारियों की रक्षा करने के लिये कभी पराजित न हो। और (आयसी पूः) लोह की बनी प्रकोट के समान (शत-भुजिः) सैकड़ों की पालक, पालिका, (भव) हो।

त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः।
दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (दोषावस्तः) रात्रि और दिन (नः) हमे (अहसः पाहि) पाप से बचा। हे अहिसंनीय ! तू (नः) हमें (अघायतः) हम पर पापाचार करना चाहने वाले पुरुष से (दिवा नक्तम्) दिन और रात (पाहि) बचाया कर। इति विंशो वर्गः ॥

[१६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् ॥ ११ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिग्बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४, ६, १० बृहती । ६, ८, १२ निचृत्पङ्क्तिः ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों के (ऊर्जः नपातम्) बल से उत्पन्न, एवं अन्न, बल, वीर्य, पराक्रम का नाश न होने देने वाले, ब्रह्मचारी (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (प्रियम्) प्रिय, (चेतिष्ठम्) ज्ञान के उपदेष्टा, (अरतिम्) सुखदायक, विषयों में अशक्त (स्वध्वरम्) उत्तम हिंसा रहित कर्त्तव्यों के पालक, (विश्वस्य) सबके (दूतम्) शुभ सन्देश-हर (अमृतम्) अविनाशी दीर्घजीवी,

पुरुष को (एना मनसा) इस प्रकार के अन्न आदि सत्कार, विनय, आदर, शक्ति, अधिकार से (आ हुवे) आमन्त्रित करता हूं।

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (अरुषा) तेज से युक्त अश्वों के समान (विश्व-भोजसा) समस्त विश्व के पालक, जल और अग्नि तत्व को (योजते) रथ मे संयुक्त करता है (सः स्वाहुतः) वह उत्तम रीति से आदृत (दुद्रवत्) अति वेग से जाने मे समर्थ होता है। इसी प्रकार वह (सु-ब्रह्मा) उत्तम वेदो का ज्ञाता विद्वान् और उत्तम धन-सम्पन्न राजा, (यज्ञः) पूजनीय, (सु-शमी) सुकर्मा और उत्तम, शम का साधक (वसूनां जनानां) वसी प्रजाओ मे से (देवं) सुख देने वाले (राधः) ऐश्वर्य को भी (दुद्रवत्) प्राप्त होता है। (२) इसी प्रकार जो 'विश्व' नाम जीवात्मा के पालक अश्ववत् नियुक्त प्राण अपान दोनो को (योजते) योग द्वारा वश करता है वह (सु-आहुतः) उत्तम ज्ञानी, यष्टा, सुकर्मा, होकर वसु, जीवों के आराध्य परम देव को प्राप्त होता है।

उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (आजुह्वानस्य मीढुषः) आहुति दिये गये, घी से सींचे गये (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) ज्वाला (उत् अस्थात्) ऊपर को उठती है और (अरुपासः धूमासः दिवि स्पृशः उत् अस्थुः) चमकते आकाश को छूने वाले धूम गण ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) अग्नि को (नरः समिन्धते) उत्तम पुरुष प्रज्वलित करते हैं इसी प्रकार (आ-जुह्वानस्य) अपनी किरणो से जल को ग्रहण करने वाले (मीढुषः) वृष्टि करने वाले (अस्य) इस सूर्य का (शोचिः) प्रकाश (उत् अस्थात)

सब से ऊपर विद्यमान रहता है। और उसके (दिविस्पृशः) आकाश भर में व्यापक (अरुपासः) अति देदीप्यमान (धूमासः) धूम के समान ज्वाला पटल (उत्) ऊपर उठते है उस (अग्निम्) तेजस्वी, अग्निमय सूर्य के (नरः) प्रकाश लाने वाले किरण (सम् इन्धते) प्रदीप्त करते है उसी प्रकार (आ-जुह्वानस्य) सबको वेतन देने और सब से कर आदि लेने वाले (मीढुषः) वीर्यवान्, दानशील पुरुष का (शचिः उत् अस्थात्) पवित्र तेज सर्वोपरि विराजता है। उसके (अरुपासः) दोषरहित, तेजस्वी, (दिवि-स्पृशः) व्यवहार, तेज, युद्ध, कांक्षादि में चतुर (धूमासः) शत्रु को कंपा देने वाले वीर पुरुष (उत्) सर्वोपरि विराजते है और ऐसे ही (नरः) नायकगण (अग्निम्) अग्रणी नायक को (सम् इन्धते) खूब चमकाते और प्रदीप्त करते है।

तं त्वा॑ दू॒तं कृ॑ण्महे य॒शस्त॑मं दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह ।
विश्वा॑ सूनो सहसो मर्त॒भोज॑ना रास्व॒ तद्यत्त्वेम॑हे ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि या विद्युत्, सर्व व्यापक होने से 'शयस्तम' वा 'यशस्तम' है अति संताप जनक होने से 'दूत' है, बल-उत्पादक होने से और बलपूर्वक रगड़ से उत्पन्न होने से 'सहस:-सूनु' है वह मनुष्यों का (मर्त्त-भोजना) भोजन पकाता नाना भोग्य पदार्थ प्रस्तुत करता है वह (वीतये) प्रकाश के लिये (देवान् आ वहति) किरणों को धारण करता है। उसी प्रकार हे राजन्! (तं) उस (त्वा) तुझ (यशस्तमं) वीर्यवान् और कीर्त्तिमान् पुरुष को ही हम (दूतं) समस्त दुष्टों को दण्ड द्वारा पीड़ित करने और सबको शुभ सन्देश, आदेशादि देने वाला प्रमुख रूप से (कृण्महे) बनाते है तू (वीतये) राष्ट्र की रक्षा के लिये (देवान्) उत्तम व्यवहारज्ञ, विजयेच्छुक, तेजस्वी, दानशील पुरुषों को (आवह) धारण कर। हे (सहसः सूनो) बल, बिजली, सैन्य के सञ्चालक तू ही (विश्वा) समस्त (मर्त्तभोजना) मनुष्यों के नाना भोग योग्य

वृत्ति ऐश्वर्यादि पदार्थ (रास्व) प्रदान कर (यत्) जो २ हम (त्वा (ईमहे) तुझ से मांगे । अर्थात् राजा प्रजा की सभी उपयुक्त मांगों को स्वीकार कर देवे ।

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार गार्हपत्य रूप से गृहपति एवं रोग नाशक होने से भी गृह का पालक, (अध्वरे होता) यज्ञ मे हवि गृहण करने से 'होता,' वायु जलादि को पवित्र करने से 'पोता', है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (त्वम्) तू (गृहपतिः) गृहपति, गृहस्थ और हे राजन् ! तू राष्ट्र को भी गृहवत् पालन करने वाला (अध्वरे) अहिंसक, प्रजापालक पद पर स्थित होकर (होता) सबको सब प्रकार के सुख, अन्न, वेतनादि देने वाला, और करादि लेने वाला है । (त्वं पोता) न्याय व्यवहार और उत्तम व्यवस्था से राज्य शासन और धर्म-व्यवहार को शोधने वाला है । हे (विश्ववार) समस्त संकटों को धारण करने हारे ! तू (प्रचेताः) सबसे उन्नतचित्त और ज्ञान वाला होकर (वार्यम्) श्रेष्ठ धन का (यक्षि) प्रदान करता और प्राप्त करता है । अथवा (वार्यम्) शत्रु आदि का कष्ट निवारण करने वाले सैन्यादि को (यक्षि) संगत कराता और (वेपि च) पालता भी है ।

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥२१॥

भा०—हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और शुभ बुद्धि वाले पुरुष ! (हि) जिससे (त्वं रत्नधा असि) तू रमण करने योग्य, उत्तम धनों को धारण करता है, इस से तू (यजमानाय) परोपकारार्थ दान, यज्ञादि करने वाले पुरुष के लिये (रत्नं कृधि) उत्तम धन उत्पन्न कर । और

(नः)हमारे (विश्वम् ऋत्विजं) समस्त ऋतु अनुकूल यज्ञ करने और संगति करने वाले को (ऋते) यज्ञ, धर्म व्यवहार और धनोपार्जन के कार्य में (आ शिशीहि) सब प्रकार से तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित कर और उसको भी उत्साहित कर (यः) जो (सु-शंसः) उत्तम प्रशंसा योग्य होकर (दक्षते) बढ़ता है, कुशल होकर कार्य्य करता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वे अ॑ग्ने स्वाहुत प्रि॒यासः॑ सन्तु सू॒रयः॑ ।
य॒न्तारो॒ ये म॒घवा॑नो॒ जना॑नामू॒र्वान्दय॑न्त॒ गोना॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (स्वाहुत) उत्तम रीति से आमन्त्रित होने योग्य (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ये) जो (मघवानः) अधिक धनैश्वर्यवान्, (यन्ता) नियम व्यवस्था करने मे कुशल पुरुष (जनानां गोनाम्) मनुष्यो के पशुओं, भूमियों और इन्द्रियो के (ऊर्वान्) पालकों की (दयन्त) रक्षा करते है ऐसे (सूरयः प्रियासः सन्तु) विद्वान् जन तेरे अधीन तेरे अति प्रिय होकर रहे ।

येषा॒मिळा॑ घृ॒तह॑स्ता दुरो॒ण आँ अपि॑ प्रा॒ता नि॒षीद॑ति ।
तांस्त्रा॑यस्व सहस्य द्रु॒हो नि॒दो यच्छा॑ नः॒ शर्म॑ दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥

भा०—(येषां) जिन पुरुषों के (दुरोणे) घर मे (इला) पूज्य देवी, आदर सत्कार और शुभ कामना का पात्र होकर (घृतहस्ता) पूज्यों का आदर सत्कार करने के निमित्त जलपात्र हाथ मे लिये (प्राता) पूर्ण पात्र होकर (अपि निषीदति) विराजती है, हे (सहस्य) बलवन् ! तू (तान् त्रायस्व) उनकी रक्षा कर और (द्रुहः) द्रोही और (निद) निन्दकों को (आ अपि यच्छ) निग्रह कर और तू (दीर्घश्रुत) दीर्घ काल तक ज्ञान श्रवण करने हारा होकर (नः) हमे (शर्म यच्छ) सुख प्रदान करे ।

का

स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (सः) वह तू (वह्निः) राज्य कार्य-भार को उठाने वाला, धुरन्धर पुरुष (मन्द्रया जिह्वया) सब को हर्ष देने वाली वाणी और (आसा) हर्षप्रद मुख से तू (विदुःन्तरः) सबसे उत्तम विद्वान् होकर (नः मघवद्भ्यः) हमारे धनाढ्य पुरुषों को (रयिम् आ वह) ऐश्वर्य और बल प्राप्त करा और (हव्य-दातिं च) अन्न के विनाश या त्रुटि को (सूदय) दूर कर अर्थात् हमारे यहां ग्राह्य अन्न धनादि का टोटा कभी न हो ।

ये राधांसि दद्त्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥ १० ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अतियुवा, बलशालिन् ! (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) अन्न, यश, और ज्ञान की (कामेन) अभिलाषा से (राधांसि) नाना धन, (अश्व्या) अश्वों के नाना सैन्य और (मघा) नाना प्रकार के पूजा सत्कार (ददति) प्रदान करते हैं तू (तान्) उनको (पर्तृभिः) पालक और पूरक जनों से और (शतं पूर्भिः) सैकड़ों नगरियों या प्रकोटों आदि उपायों से (पिपृहि) पालन और पूर्ण कर ।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ ११ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (देवः) सब सुखों का दाता ही (वः) आप लोगों को (द्रविणोदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्य देता है । वह (पूर्णाम्) पूर्ण (आसिचम्) आहुति (विवष्टि) चाहता है । (वा) अथवा (उप पृणध्वम्) उसकी उपासना करो (आत् इत्) अनन्तर वही (देवः) दाता प्रभु ((वः) आप लोगों के (ओहते) कर्मों का विवेचना करता और नाना कर्म-फल प्रदान करता है ।

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥ २२ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (होतारं) विद्या के ग्रहण करने और शिष्यो व जनो के प्रदान करने वाले (अध्वरस्य) अहिंसामय यज्ञ के (प्र-चेतसम्) उत्तम ज्ञाता, पुरुष को (वह्निम् अकृण्वत) अग्नि के समान कार्य का बोझ उठाने वाला, आश्रय बनावें । वह (अग्नि) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (विधते) विशेष कर्म करने वाले को (रत्नं) उत्तम सुखकारी फल (दधाति) प्रदान करता और वही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (सु-वीर्यम् दधाति) उत्तम वीर्य, बल प्रदान करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ आर्च्युष्णिक् । २ साम्नी त्रिष्टुप् । ५ साम्नी पांक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! आप (सु-समिधा) उत्तम काष्ठ से जैसे अग्नि चमकता है उसी प्रकार उत्तम तेज, और सत्कर्म, विद्या प्रकाश से (समिद्धः भव) चमका कर । (उत) और (उर्विया बर्हिः) जिस प्रकार यज्ञ में बहुत कुशा बिछती है वा जैसे सूर्य वा यज्ञाग्नि प्रचुर जल पृथ्वी पर बरसाता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (उर्विया) बहुत (बर्हिः) वृद्धिशील ज्ञान और प्रजाजन को (विस्तृणीताम्) विस्तृत करे ।

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! (उत) और (द्वार) वेग से जाने वाली, शत्रु का वारण करने वाली सेनाएं (उशती.) तुझे निर-

न्तर चाहती हुई देवियो के समान (वि श्रयन्ताम्) विशेष रूप से अपने स्वामी का आश्रय ले। (उत) और (उशतः देवान्) तुझे चाहते विद्वान् पुरुषो को भी तू (इह) इस स्थान मे (आ वह) प्राप्त करा आदर पूर्वक बुला।

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (हविषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थ से (वीहि) विद्वानो की रक्षा कर और (देवान् यक्षि) विद्वानो का आदर सत्कार कर। हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान वाले! तू (सु-अध्वरा कृणुहि) उत्तम हिंसारहित, एवं नष्ट न होने वाले श्रेष्ठ कर्म कर।

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥

भा०—(जातवेदा:) ऐश्वर्य और ज्ञान वाला पुरुष (सु-अध्वरा करति) उत्तम २ यज्ञ करे। वह (देवान् यक्षत्) विद्वानो का सत्संग और सत्कार करे वह (अमृतान् पिप्रयत्) मरण रहित, जीवित पुरुषो को अन्नों से पालन करे।

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥५॥

भा०—हे (प्रचेत) उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त वाले पुरुष! तू (विश्वा वार्याणि) सब प्रकार के वरण करने योग्य धन, ज्ञान आदि पदार्थ (नः वंस्व) हमे प्रदान कर। और (अद्य) आज, (न. आशिष.) हमारी सब अभिलाषाएं (सत्या भवन्तु) सत्य, उत्तम फलदायक हो।

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (ते) वे (देवास.) विद्वान् लोग (ऊर्ज.) बल पराक्रम का नाश न होने देने वाले (हव्यवाह) उत्तम वचनों, गुणो और पदार्थो के धारक (त्वाम् उ) तुम को ही (दधिरे) पुष्ट करते है सर्वस्व तुझे ही प्रदान करते है।

ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना ।
वि दध इयानः ॥ ७ ॥ २३ ॥ १ ॥

भा०—जो तू (नः इयानः) हमें प्राप्त होकर (महः रत्ना
तम २ पदार्थ (विदधे) बनाता, और उत्तम २ कर्मों का विधान,
न करता है (ते देवाय) तुझ विद्वान्, के लिये हम सदा (दाशतः स्याम)
सब कुछ देने वाले हों। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—२१ इन्द्रः । २२—२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तु-
तिर्देवता ॥ छन्दः—१, १७, २१ पङ्क्तिः । २, ४, ११, २२ भुरिक् पङ्क्तिः ।
८, १३, १४ स्वराट् पङ्क्तिः । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, १२, १६,
१९, २० निचृत्त्रिष्टुप् । ९, १०, १५, १८, २३, २४, २५ त्रिष्टुप् ॥
पञ्चविंशत्यृच सूक्तम् ॥

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (नः पितरः चित्) हमारे
पिता, माता, अन्य मान्य बन्धुजन (चित्) और (जरितारः) ज्ञानो-
पदेष्टा गुरुजन भी (त्वेह) तुझ पर ही आश्रय पाकर (विश्वा वामा)
सब उत्तम २ फलों की (असन्वन्) याचना करते और पाते हैं, तू ही
(वनिष्ठः) सब से श्रेष्ठ देने हारा है। (त्वे गावः) तेरे ही अधीन गौएं
(सु-दुघा.) उत्तम दूध देने हारी, (त्वे हि अश्वा) तेरे ही अधीन अश्व
हैं। (त्वं वसु देवयते) विद्वानों और शुभ गुणों के इच्छुक को तू ही
ऐश्वर्य देता है।

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन्गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥

भा०—हे विद्वन् ! (जनिभिः) उत्पन्न प्रजाओ सहित तू (राजा इव) राजा के समान (क्षेपि) निवास कर और तू (विदुः) विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी, उत्तम काव्यनिर्माण में चतुर एवं उपदेष्टा होकर (अभि अत्र क्षेपि) सर्वत्र सबको अनुशासन कर । और हे (मघवन्) उत्तम पूज्य विद्याधन के धनी ! तू (कविः सन्) विद्वान् कवि होकर (पिशा) उत्तम रूप से (गिरः शिशीहि) उत्तम वाणियो को प्रकट कर । और (त्वायतः अस्मान्) तेरी सदा शुभ कामना करते हुए हमे तू (गोभिः) गौओ, भूमियो और (अश्वैः) अश्वों से (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने, बसाने और उसकी रक्षा करने के लिये (शिशीहि) सम्पन्न, एवं उत्साहित और तीक्ष्ण कर ।

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः गिरः) ये वाणियां (देवयन्तीः) विद्वानों को चाहती हुई उनके योग्य (मन्द्राः) हर्ष देने वाली (पस्पृधानास) एक दूसरे से बढ़ कर (त्वा उ) तुझ को ही (उप स्थुः) प्राप्त हों । (ते) तेरी (अर्वाची) नवीन (पथ्या) सन्मार्ग पर चलने वाली सत्-नीति (राये एतु) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमे प्राप्त हो । हम लोग (ते सुमतौ) तेरी उत्तम सम्मति और (शर्मन्) तेरी शरण मे (स्याम) सुख से रहे ।

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुयवसे धेनुं न दुदुक्षन) उत्तम अन्न, चारे आदि के ऊपर गौ का पालक गौ को खूब दुहने की इच्छा करता है इसी प्रकार हे राजन् ! (वसिष्ठः) राज्य मे बसने वाला उत्तम प्रजाजन (सूय-

वसे) उत्तम अन्न सम्पदा के निमित्त (त्वा) तुझ को गौ के समान (दुदुक्षन्) दोहने, अर्थात् तुझ से बहुतसा ऐश्वर्य लेने वा तुझे समृद्धि से पूर्ण करना चाहता हुआ (ब्रह्माणि) नाना बल, धन, अन्न और ज्ञान (उप ससृजे) उत्पन्न करता, प्राप्त करता है । अर्थात् स्वामी राजा से ऐश्वर्य प्राप्त करने और राजा को समृद्ध करने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्ग क्रम से नाना प्रकार के ज्ञानो, धनो, बलों और अन्नो को उत्पन्न करे । हे स्वामिन् ! (विश्वः) समस्त जन (त्वाम् इत्) तुझ को ही (मे गोपतिम्) मेरा 'गोपति', भूमिपति (आह) कहे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमारे (सुमतिं) उत्तम सम्मति को (अच्छ गन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त करे ।

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥५॥२४

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक राजा (सुदासे) उत्तम करप्रद प्रजाजन के लिये वा उत्तम देने लेने के व्यवहार के लिये (पप्रथाना अर्णांसि) दूर तक फैले जलो को भी सेतु, नौकादि द्वारा (गाधानि) परिमित एवं (सुपारा) सुख से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करे । वह (नव्यः) स्तुति योग्य राजा (सिन्धूनां) नदियों के समान प्रवाह से चलने वाली, एवं उत्तम प्रबन्ध से बंधी प्रजाओं में से (शर्धन्तं) बलात्कार करते हुए (शिम्युम्) कर्म करने वाले को (उचथस्य) आज्ञा वचन कहने वाले के आगे (शाप) शाप अर्थात आक्रोश या दुर्वचन कहने योग्य, निन्दनीय करे । और (अशस्ती) निन्दित लोगों को (अकृणोत्) दण्ड दे । अर्थात् जो 'शिम्यु' कर्मकर है वह यदि 'उचथ' अर्थात् अपने ऊपर आज्ञा देने वाले के समक्ष (शर्धन्तं) बल दिखावे, आज्ञा का पालन न करके उल्लंघन करे तो वह 'शाप' अर्थात कठोर वचनों का पात्र हो, वह डांटा जाय, और दण्ड भी पावे, इसी

प्रकार प्रजाओं मे (अशस्तीः) निन्दित लोगो को भी राजा दण्ड दे। अन्न (अकृणोत्) करे। कृड् हिंसायाम् इत्यस्य रूपम्॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः॥ ६॥

भा०—(यक्षुः) दान देने और आदर सत्कार करने वाला (तुर्वशः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारो का अभिलाषी, वा अन्य को अतिशीघ्र अपने वश करने मे समर्थ पुरुष (पुरोडा· इत् आसीत्) द्रव्य के पहले या आगे कर देने वाला हो। जो चाहता है कि मै आदर से दान करूं या कर्मकर लोगो को अपने वश कर शीघ्र काम कराऊं उसे चाहिये वह पहले समक्ष द्रव्य देना ठहरा दे, तब (राये मत्स्यास·) जिस प्रकार मत्स्य अन्नादि लेने के लिये जल मे वेग से दौड़ते है उसी प्रकार (राये) धनैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (मत्स्यास·) अति प्रसन्न चित्त होकर लोग (अनीव निशिताः) बहुत ही तेज हो जायेगे। और (भृगव·) वेद वाणी को धारण करने वाले विद्वान्, भूमिधारक भूमिपति क्षत्रिय और गवादिपालक वैश्य तथा (द्रुह्यव· च) परस्पर के द्रोही या विरोधी स्पर्धालु लोग भी (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य करने लगेगे। (विषूचोः) आगे रक्खे धन के कारण विरुद्ध अर्थात् एक दूसरे को विपरीत जनों मे से (सखा) मित्र भी (सखायम् अतरत) अपने मित्र को पार कर जाता है मित्र भी मित्र से बढ जाना चाहता है। इस प्रकार की स्पर्धा मे राजा के काम बहुत शीघ्र हो जा सकते है।

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ७

भा०—(पक्थास) परिपक्व ज्ञान और परिपक्व उमर वाले वृद्ध जन (भलानस·) उत्तम नासिका वाले सौम्य, सुमुख जन वा (भल-अनस·) उत्तम रथो, शकटों पर स्थित (अलिनास) सुन्दर नाक वाले

या जो तप में बहुत निष्ठ या (अलिनासः अलीनाः) लीन अर्थात् कार्य व्यग्र, या आसक्त न हो, (विषाणिनः) सींग के समान हाथ में सदा शस्त्र रखने वाले, वीर, (शिवासः) सब के मंगलकारी लोग (अभनन्त) जब २ उत्तम उपदेश, संदेशादि कहा करें। (यः) जो (सधमाः) एक समान स्थान या पद पर मान पाकर (आर्यस्य) उत्तम पुरुष के (गव्या) भूमि विषय का राज्य कार्यों को (अनयत्) चलाने में समर्थ है वह सेनापति होकर (तृत्सुभ्यः) हिंसक पुरुषों के विनाश के लिये (युधा) युद्ध के हेतु (नॄन् अजगन्) उत्तम नायकों को प्राप्त करे।

दुराध्यो॒३॒ऽअदि॑तिं स्रे॒वय॑न्तोऽचे॒तसो॒ वि ज॑गृभ्रे॒ परु॑ष्णीम्।
म॒ह्नावि॑व्यक्पृथि॒वीं पत्य॑मानः प॒शुष्क॒विर॑शय॒च्चाय॑मानः ॥ ८ ॥

भा०—(दुराध्यः) दुष्ट बुद्धि वाले, दुष्ट आचार वाले (अचेतसः) बिना चित्त के और अज्ञानी (अदितिम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष वा उसकी अखण्ड, (परुष्णीम्) पालन करने वाली अति दीप्तियुक्त तेजस्विनी नीति को (स्रेवयन्तः) उल्लंघन करते हुए (वि जगृभ्रे) विग्रह विरोध किया करते हैं। (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (चायमानः) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (कवि) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष (पृथिवीं पत्यमानः) पृथिवी का स्वामी होता हुआ (अविव्यक्) पृथ्वी पर अपना अधिकार प्राप्त करता है। और (पशुः) पशु के समान मूर्ख राजा (चायमानः) वृद्धियुक्त होकर भी (पत्यमानः) गिराया जाकर (पृथिवीम् अशयत्) भूमि पर पशु के समान सोता है, मारा जाता है।

ई॒युरर्थं॒ न न्य॒र्थं परु॑ष्णीमा॒शुश्च॒नेद॑भिपि॒त्वं ज॑गाम।
सु॒दास॒ इन्द्रः॑ सु॒तुकाँ॑ अ॒मित्रा॒नर॑न्धय॒न्मानु॑षे॒ वध्रि॑वाचः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (सुदासः) उत्तम भृत्य वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (मानुषे) बहुत मनुष्यों से करने योग्य संग्रामों में (वध्रि-

वाचः) हिंसायुक्त, परुष भाषण करने वाले (सु-तुकान्) खूब हिंसक (अमित्रान्) शत्रुओं को (अरन्धयत्) दण्डित करता और वश करता है और इसी प्रकार वह राजा (मानुषे) मनुष्यों से बसे इस राष्ट्र में (वध्रि-वाचः) निर्बल वाणियों वाले, वा वृद्धिकारक उत्तम विद्वानों और (सु-तुकान्) उत्तम बालक, व पुत्रों वाले प्रजाजनों को (अरन्धयत्) वश करता है। तब वह (आशुः) शीघ्रकारी होकर (अभिपित्वं) अपने प्राप्त होने योग्य लक्ष्य वा अभिमत ऐश्वर्य को (जगाम) प्राप्त करता है। तब ही सब लोग भी (अर्थं न) अपने इष्ट धन के समान (न्यर्थं) निश्चित लक्ष्य को और (परुष्णीम्) पालक नीति और दीप्तियुक्त तीक्ष्णदण्ड नीति को (ईयु.) प्राप्त होते हैं।

ई॒युर्गावो॒ न यव॑सा॒दगो॑पा यथाकृ॒तम॒भि मि॒त्रं चि॒तासः॑ ।
पृश्नि॑गाव॒ः पृश्नि॑निप्रेषितास॒ः श्रु॒ष्टिं च॑क्रुर्नि॒युतो॑ र॒न्तय॑श्च ॥ १० ॥२५॥

भा०—(अगोपा. गाव. न) रक्षक से रहित, विना ग्वाले की गौएं जिस प्रकार (यवसात्) भुस, अन्नादि के हेतु ही (ईयु') स्वामी के गृह में आ जाती हैं उसी प्रकार (चितास.) चेतना युक्त जीवगण भी (यथा-कृतम्) अपने किये कर्म के अनुसार ही (मित्रम् अभि ईयुः) अपने स्नेह करने वाले, वा जीवन मे बचाने वाले प्रभु को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार (पृश्नि-गाव') 'पृश्नि' अर्थात् सूर्य मे उत्पन्न नाना वर्ण की किरणें (पृश्नि-निप्रेपितासः) पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष से प्रेरित होकर (श्रुष्टिं चक्रु.) वर्षा द्वारा अन्न उत्पन्न करती हैं और जिस प्रकार (पृश्नि-गाव.) नाना वर्ण के बैल (पृश्नि-निप्रेपितासः) विद्वान् पुरुषों द्वारा खेत में चलाये गये (श्रुष्टि चक्र.) अन्न को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-गाव) भूमि रूप गौवें, (पृश्नि-निप्रेपितास) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित या शासित होकर (श्रुष्टि चक्रु) अन्न सम्पत्ति को उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार

(नियुतः) लक्षों नियुक्त सेनादि, अश्वारोही, पुरुष तथा (रन्तयः) रमण करने वाले सुप्रसन्न प्रजाजन भी (श्रुष्टिं चक्रुः) सम्पदा को उत्पन्न करते वा वायुवत् (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य सम्पादन करते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥ ११ ॥

भा०—(न्यस्तः) निश्चितरूप से स्थापित (यः) जो (राजा) तेजस्वी राजा, (वैकर्णयोः) विविध कानों वाले दोनों पक्षों के बीच (एकं च विंशतिं च) एक और बीस अर्थात् इक्कीस, (जनान्) विद्वान् मनुष्यों को (श्रवस्या) श्रवण योग्य राज्य-कार्यों को सुनने के लिये अपना सभासद् बनाता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रु (एषाम्) इन इक्कीसों का (सर्गम्) एक सर्ग अर्थात् समिति या सब (अकृणोत्) बना लेता है। वह (सद्मन्) अपने भवन में विराजता हुआ भी (दस्मः) शत्रु नाश करने में समर्थ (शूरः) शूरवीर पुरुष (बर्हिः) कुश तृण के समान बढ़ते शत्रु को (नि शिशाति) नाश करता है।

राजा २० सभासदों की अमात्यसभा बनावे आप उनमें इक्कीसवां हो। उनके दो पक्ष (वैकर्ण) हों उन इक्कीसों का एक 'सर्ग' (body) या एक रचना (Constitution) हो।

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र या लोक में हे राजन्! (ये) जो (त्वायन्तः) तेरी चाहना करते हुए, (त्वा सख्यं) तुझ मित्र को (सख्याय) अपना मित्र बनाने के लिये (वृणानाः) चुनते हुए (त्वा अनु अमदन्) तेरी ही प्रसन्नता में प्रसन्न होते हैं (अध) तू भी (वज्र-बाहुः) 'वज्र' अर्थात् शस्त्रास्त्र बल और वीर्य को बाहुओं में धारण

करता हुआ (अप्सु) आप्त प्रजाओ के बीच में (श्रुतं) प्रसिद्ध, बहु-श्रुत, (कवष) उपदेष्टा, विद्वान् (वृद्धम्) विद्या वयोवृद्ध पुरुष को (अनु वृणक्) अपने अनुकूल करता, उसके हृदय को प्रसन्न करता और (द्रुह्युम् निवृणक्) द्रोह करने वाले को दूर करता है।

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३॥

भा०—जब भी (सद्यः) शीघ्र ही (विश्वा) सब (दृंहितानि) अपने सैन्य दृढ हो। (इन्द्रः) आत्मा जिस प्रकार (सहसा) अपने प्राण बल से (एषां) इन जीव शरीरो के (सप्त पुरः वि दर्दः) सात इन्द्रिय, ज्ञानपूरक छिद्रो को भेदता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा भी (एषां) इन शत्रु जनों को (सप्त पुरः) सातो प्रकार के दुर्गो को (वि दर्दः) विविध प्रकार से भेदे, नष्ट करे। आत्मा जिस प्रकार 'अनु' अर्थात् प्राणी जीव के योग्य इस देह के (गयम्) प्राण का (वि भाक्) देह भर मे विभक्त करता है उसी प्रकार राजा (आनवस्य) अनु अर्थात् मनुष्यो के रहने योग्य राष्ट्र के (गयं) प्रजाजन को ((वि भाक्) विभक्त करे और (तृत्सवे) हिंसक पुरुष को राष्ट्र से हटाने के लिये हम लोग (मृध्र-वाचः) हिंसक, दुःखदायी वाणी बोलने वाले (पूरुं) मनुष्य समूह को (जेष्म) जय करे।

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

भा०—(गव्यव) गौ आदि पशु और भूमियो की चाहना करने वाले (अनव) मनुष्य युद्धार्थी लोग भी जो (षष्टि शता, अधि षष्टि षट्) साठ सौ अर्थात् ६ सहस्र और छः सहस्रो पर ६६ अधिक संख्या मे (दुवोयु) सेवको के स्वामी के सुख के लिये (नि सुषुपु) बड़े

सुख से सोते हैं, इसी प्रकार (द्रुह्यवाचः षट् सहस्रा अधि षष्टिः षट्) द्रोह करने वाले विरोधी लोग भी ६०६६ संख्या मे (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (अधि सुषुपुः) भूमि पर पड़े सोते हैं। अर्थात् मारे जाते हैं, (विश्वा इत्) ये सब (इन्द्रस्य कृतानि वीर्या) ऐश्वर्ययुक्त, शत्रुहन्ता राजा के ही करने योग्य कार्य है। अर्थात् दोनों ओर से ६।६ सहस्रो की सेनाओं का खड़े होना, छावनी मे पड़े रहना, लड़ना, मारे जाना आदि कार्य राजाओ के निमित्त ही होते है।

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे १५।२६

भा०—(एते) ये (तृत्सवः) हिंसाकारी, सैन्य में भर्त्ती हुए सिपाही लोग (वेविषाणा) शत्रु सैन्य मे फैलते हुए (सृष्टा. आपः न) वर्षा से उत्पन्न जलों के समान (नीचीः अधवन्त) नीचे की भूमियो मे वेग से जाते है, वा (नीचीः) नीच गुण की दुष्ट सेनाओ को (अधुवन्त) कंपाते, भयभीत करते है। और (दुर्मित्रास) दुष्ट मित्र, (मिमानाः) हिंसा करते हुए भी (प्रकलवित्) उक्त संख्या जानने वाले (सुदासे) या उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम दानशील राजा के हितार्थ (भोजना जहुः) अपने भोजनवत् समस्त भोग्य सुखों को भी त्यागते है। इति षड्विंशो वर्गः॥

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वीरस्य अर्धम्) वीरों, और विद्वान् पुरुषों के बढ़ाने वाले (शृतपाम्) परिपक्व, दुग्धादि उत्तम पदार्थों के पीने वाले पुरुष को (क्षाम् अभि) भूमि को प्राप्त करने के लिये (नुनुदे) प्रेरित करता है और (अनिन्द्र शर्धन्तम्) इन्द्र के

विरोधी बल को बढ़ाते हुए पुरुष को भी (परा नुनुदे) दूर करने मे समर्थ होता है। वह ऐश्वर्यवान् (मन्युमः) मन्यु करने वालो का नाशक होकर ही (मन्युम्) क्रोध (मिमाय) करता है वा क्रोधयुक्त पुरुष का नाश करने मे समर्थ होता है वह (पत्यमान) स्वयं राष्ट्र की प्रजा का पति, पालक, स्वामी होकर (वर्तनि) व्यवहार योग्य न्यायमार्ग तथा (पथः) सन्मार्गों को (भेजे) सेवन करे।

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अवं स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

भा०—वह 'इन्द्र' पद पर स्थित राजा, (आध्रेण चित्) सब प्रकार से रक्षित सैन्य बल (तत् उ) उस समस्त राष्ट्र को (एकं चकार) एक द्वितीय साम्राज्य बना लेता है। (पेत्वेन) अश्व सैन्य या पालक बल के सामर्थ्य से (सिंह्यं चित्) सिंह के समान शत्रु को भी (आजघान) आघात करे। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वेश्या) भीतर दुर्गादि में भी प्रवेश करने वाली सूची व्यूहादि के आकार की तीक्ष्ण सेना से (स्रक्तीः) मालाओं के समान लम्बी और राष्ट्र को घेरने वाली शत्रु सेनाओं (आवृश्चत्) वनों को परशु के समान काट गिरावे। और (सुदासे) उत्तम, शुभ कल्याण दान देने वाले, प्रजा वर्ग को (विश्वा भोजना) सब प्रकार के रक्षा के साधन और भोग्य ऐश्वर्य भी (प्रायच्छत्) प्रदान करे।

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र १८

भा०—हे राजन्! (ते) तेरे (शश्वन्तः शत्रवः) सदा के शत्रु लोग (शर्धतः) बलवान् (भेदस्य) भेद नीति में कुशल (ते) तेरे अधीन (रारधुः) वश हों। और तेरे ही द्वारा वे (रन्धिं विन्द) विनाश को प्राप्त हों और (यः) जो (स्तुवतः) प्रार्थना स्तुति आदि करते हुए

(मर्त्तान्) मनुष्यों अथवा (मर्त्तान् स्तुवतः) मनुष्यों के प्रति उत्तम उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुषों के प्रति (एनः कृणोति) पाप, अपराध करता है, (तस्मिन्) उस दुष्ट पुरुष पर भी हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन्! राजन् ! तू (वज्रं जहि) शस्त्र या दण्ड का प्रयोग कर।

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥

भा०—(यमुना) प्रजाओं को नियन्त्रण करने वाली नीति, और नियन्त्रण करने वाले जन और (तृत्सवः च) शत्रुओं के नाश करने मे कुशल वीर सैनिक लोग, और जो (अत्र) इस राष्ट्र मे (सर्वताता) सर्वहितकारी कार्य मे (भेदं) परस्पर के 'भेद' अर्थात् फूट को (प्र मुषायत्) नष्ट करते, एकता, संगठन, और परस्पर प्रेम को बढ़ाते है और (अजासः) शत्रुओं को उखाड़ फेकने वाले, और (शिग्रवः) अन्यो को न पता चलने वाले संकेत शब्द बोलने वाले या अस्पष्ट, भाषा बोलने वाले, विदेशी और (यक्षवः च) राजा से संगति, या सन्धि करके रहने वाले ये सभी लोग (इन्द्रं आवत्) ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करें और वे (बलि जभ्रुः) अर्थात् कर लावें, इसके अतिरिक्त वे (शीर्षाणि) शिरःस्थानीय, प्रमुख २ (अश्व्यानि) अश्वो के बड़े बड़े २ सैन्यों को भी (जभ्रुः) धारण करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् २०।२७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी वा तेरे (सुमतय) शुभ बुद्धियां और उत्तम बुद्धिमान् पुरुष (संचक्षे न) गिने और वर्णन नहीं किये जा सकते। इसी प्रकार हे राजन् (ते रायः न संचक्षे) तेरे ऐश्वर्य भी वर्णन, नहीं किये जा सकते। वे वर्णनातीत और गणनातीत है।

(पूर्वाः उपस न नूत्ना) जिस प्रकार नई प्रभात वेलाएं पूर्व की प्रभात वेलाओ के समान ही होती है उसी प्रकार (उपस) तुझे चाहने वाली प्रजाएं भी (पूर्वाः न नूत्नाः) पूर्व प्रजाओ के समान ही नयी भी तुझे चाहे । तू (मान्यमानं) मान्य पुरुषो के सत्कार करने वाले (देवकं) विद्वान् जनो को (जघन्थ) प्राप्त हो और (मान्यमानं) अभिमान करने वाले (देवक) क्षुद्र व्यवहारी, और क्षुद्र कामुक एवं जूआखोर लोगो को (जघन्थ) दण्डित कर । और (त्मना) अपने ही सामर्थ्य से (बृहत) बड़े से बड़े के (सम्बरम्) मेघ के समान सूर्यवत् शान्तिनाशक आवरण को (भेत्) छिन्न भिन्न कर । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् २१

भा०—(ये) जो लोग (त्वाया) तेरी कामना वा नीति से (गृहात्) गृह से निकल कर भी (अममदुः) बराबर प्रसन्न रहते है और (पराशरः) दुष्टों का नाशक (शत-यातु) सैकड़ो वीरो को साथ लेकर चलने वाला वा सैकड़ो दुष्टों को दण्डित करने वाला (वसिष्ठः) सर्वश्रेष्ठ जन, अर्थात् प्रमुख प्रजाजन ये सब और (ये) जो (ते भोजस्य) तुझ पालक राष्ट्र भोक्ता के (सख्यं) मित्र भाव को (न मृषन्त) नही भूलते या सहन नहीं करते और उन (सूरिभ्यः) विद्वानो के तू (सुदिना) शुभ दिन (वि उच्छान्) प्रकट कर जिसमे वे और अधिक हर्षित हों ।

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (होता इव सद्म) दानशील पुरुष जिस प्रकार सभाभवन को प्राप्त होता है उसी प्रकार मै भी (अर्हन्) सत्कार को प्राप्त होकर (रेभन्) उपदेश, करता हुआ (पैजवनस्य) स्पर्धा करने योग्य वेग, गति, आचार व्यवहार वाले अनु-

करणीय चरित्रवान् पुरुष के पुत्र (सु-दासः) उत्तम दानशील पुरुष के (दानं) दिये सात्विक दान (सद्म पर्येमि) अपने प्रतिष्ठित गृह के समान ही प्राप्त करूं। इसी प्रकार (नप्तुः) प्रजाओं का उत्तम प्रबन्ध करने वाले (देव-वतः) विद्वानो, वीरों और व्यवहारवान् पुरुषों के (सु-दासः) उत्तम दानशीलराजा के (द्वे शते) दो सौ (गोः) भूमि के (वधू-मन्ता) 'वधू' अर्थात् राज्य के भार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त, (द्वा रथा) दो रथ, रथवान् नायक जनों को भी मैं प्रजा-जन प्राप्त करूं। अध्यात्म मे—सर्वातिशायी, सर्वप्रद प्रभु पैजवन सुदास है। सर्व प्रबन्धक एवं बन्धु होने मे नप्ता है। प्रति वर्ष दो अयन, जीवन में २०० है। यह शरीर और लिङ्ग शरीर दो (चित्) वधू युक्त रथ है। प्रभु के सब दिये दानों को मै स्तुतिपूर्वक ग्रहण करता हूं।

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति २३

भा०—(पैजवनस्य) उत्तम आचरण, क्षमावान् प्रभु के (स्मद्दिष्टयः) उत्तम दर्शन वाले, (कृशनिनः) धनादि सम्पन्न (दानाः) दानशील (ऋज्रासः) सरल धार्मिक व्यवहारवान्, (पृथिविष्ठाः) पृथिवी पर विद्यमान (चत्वारः) चार (सुदासः) उत्तम सुख देने वाले हैं। वे (मा तोकं) पुत्रवत् पालनीय मुझ को (निरेके) शङ्कारहित सन्मार्ग में (वहन्ति) यज्ञ में चार ऋत्विजों और मार्ग में, रथ में नियुक्त चार अश्वों के समान लेजावें और वे (मा) मुझ को (तोकाय) उत्तम सन्तान और (श्रवसे) उत्तम यश प्राप्त करने के लिये (वहन्ति) सन्मार्ग पर चलावें। ये चार प्रभु के चार वेद और राजा के राज्य मे चार वेदज्ञ विद्वान् हों।

यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

भा०—(यस्य श्रवः) जिस पुरुष का ज्ञान, यश वा ऐश्वर्य (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथ्वी के बीच तेज को सूर्य के समान (शीर्ष्णे-शीर्ष्णे) प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये (वि वभाज) विभक्त किया जाता है। जिसको(स्रवतः सप्त) वेग से चलने वाले सातो, देह मे प्राणो के समान राष्ट्र के सातो विभाग, या सर्पणशील वेगवान् अश्वादि सैन्य (इन्द्रं न) अपने आत्मा वा राजा के समान (गृणन्ति) वतलाते है वह (युधि-आमधिम् अथवा युध्या-मधि = मदिम्) युद्ध मे पीड़ादायक वा युद्ध के मद वाले शत्रु को (अभीके) संग्राम मे (नि अशिशात्) खूब शासन करे, उसको पराजित करे।

इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥२८॥

भा०—हे (नरः) नायक (मरुतः) वलवान्, वायुवत् सर्वप्रिय मनुष्यो ! (दिव. दासम्) ज्ञान-प्रकाश, सत्य व्यवहार के उपदेश देने वाले पुरुष को (पितरम्) पिता के समान (अनुसश्चत) जानकर उसका अनुकरण और सेवा, आज्ञा पालन आदि करो। (सु-दासः) शुभ ज्ञान और उत्तम द्रव्य के देने वाले (पैजवनस्य) उत्तम आचारवान् पुरुष के (केतम्) गृह और ज्ञान को (अविष्टन) प्राप्त करो, उसकी रक्षा करो। (दुवोयु) उत्तम शुश्रूषा के अभिलाषी स्वामी वा गुरुजन के (दूनाशं) अविनाशी, (अजरं) नित्य, स्थायी, (क्षत्रं) वलवीर्य को प्राप्त करो। इत्यष्टाविंशो वर्ग. ॥

[१९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ५ त्रिष्टुप्। ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ७, ९, १० विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्पङ्क्ति.। ४ पङ्क्तिः। ८, ११ भुरिक् पङ्क्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भा०—(यः) जो राजा (तिग्म-शृङ्गः वृषभः न) तीक्ष्ण सींगों वाले बड़े सांड के समान वा तीक्ष्ण विद्युत् रूप हननसाधन से युक्त, वर्षणशील मेघ के समान (भीमः) भयंकर, (तिग्म-शृंग) तीक्ष्ण शस्त्र-बल से युक्त राजा (एकः) अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः) समस्त मनुष्यों को (प्र च्यावयति) उत्तम रीति से चलाने में समर्थ होता है। और (यः) जो (शश्वतः) बहुत से (अदाशुषः) कर आदि न देने वाले शत्रु का, और (गयस्य) अपत्यवत् अपने प्रजाजन का भी (प्रयन्ता) अच्छा शासक है और वह तू (सुष्वि-तराय) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष को (वेदः प्रयन्ता असि) ज्ञान और धन को देने वाला है। अथवा—वेद (सुष्वि-तराय) ज्ञान के प्रति उत्तम मार्ग में चलाने वाले आचार्य के निमित्त (गयस्य अदाशुषः प्रयन्तासि) अपने पुत्र को समर्पित न करने वाले को दण्ड देने हारा हो।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं ह) तू निश्चय ही (त्यत् कुत्सम्) उस शत्रु को काट गिराने वाले शस्त्र बल को (आवः) प्राप्त कर। (शुश्रूषमाणः) उत्तम ज्ञान और प्रजा की प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनता हुआ (तन्वा) विस्तृत राष्ट्रबल वा सैन्य बल से (अस्मै आर्जुनेयाय) इस पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये (दासं) प्रजा के नाशक, (शुष्णं) प्रजा को शोषण करने वाले (कु-यवम्) निन्दित अन्न खाने वाले वा कुत्सित उपायों से मारने योग्य पुरुष को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (अरन्धयः) दण्डित और विनाश कर।

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।

प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु को पराजय करने हारे ! राजन् ! (त्वं) तू (धृषता) प्रगल्भ शत्रुविजयी शस्त्र बल से और (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त प्रकार के रक्षा साधनों से (वीत-हव्यम्) अन्नादि पदार्थों के रक्षक (सु-दासम्) उत्तम दानशील, वा उत्तम भृत्य वर्ग के स्वामी की (प्र आवः) रक्षा कर । तू (पौरु-कुत्सिम्) बहुत से शस्त्रो के धारण करने वाले सैन्य के नायक (त्रसदस्युम्) दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाले, वीर (पूरुम्) पुरुष को (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओ के नाश करने के अवसरो और (क्षेत्र-सातौ) रणक्षेत्र को प्राप्त करने और क्षेत्र अर्थात् भूमियों के न्यायोचित विभाग के लिये भी (प्र अवः) प्रधान, मुख्य पद पर स्थापित करो ।

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) उत्तम वेग से जाने वाले अश्वो के स्वामिन् ! वा हरि अर्थात् मनुष्यो, के स्वामिन् ! हे (नृमणः) उत्तम अधि नायकों मे अपना मन, चित्त देने हारे ! वा मनुष्यों के मनों, चित्तों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (देव-वीतौ) शुभगुणों, वीरों, विद्वानो को प्राप्त कराने वाले कार्य, उनकी रक्षा, के लिये तथा देव, विजिगीषु जनों के आने और चमकने, विघ्नों, के स्थान युद्ध के बीच, (भूरिणि) बहुत से (वृत्राणि) बाधक शत्रुओं को (हसि) विनाश कर । और (त्वं) तू (चुमुरिम्) प्रजा का अन्न, धन सर्वस्व चुराने वाले, और (धुनिम्) प्रजा को भय से कपाने वाले को (दभीतये) शत्रु नाश करने के सद् उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये ही, (सु-हन्तु) अच्छी प्रकार दण्ड दे और (नि स्वापः) सदा के लिये सुला दे, अर्थात् उनको समूल नाश कर ।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहन् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५॥२९॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रास्त्र-बल को हाथों में धारण करने वाले, वीर्यवन् ! बलवन् ! (तव) तेरे (तानि) वे नाना प्रकार के (च्यौत्नानि) प्रजावर्गों, वा सैन्यों के संचालित करने और शत्रु को पदच्युत करने वाले सामर्थ्य हों (यत्) कि तू (सद्यः) शीघ्र ही (नव नवतिं पुरः) ९९ (निन्यानवे) शत्रु-नगरों को भी (अहन्) नाश करने में समर्थ हो और स्वयं (निवेशने) अपने आप वसने के लिये (शततमाम्) सौवीं नगरी को (आविवेषीः) व्यापकर, अधिकार करके रह । (वृत्रं) बढ़ते हुए विघ्नकारी (नमुचिम्) अपनी दुष्टता को न छोडने वाले वा अपराध करने पर विना दण्ड के न छोडने योग्य, कैद करने योग्य शत्रु को भी अवश्य (अहन्) दण्ड देने में समर्थ हो । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (सना) सदा से चले आये (ता) वे २ अपूर्व (भोजनानि) नाना भोग्य ऐश्वर्य हैं वे (रात-हव्याय) समस्त ग्राह्य ऐश्वर्यों को प्रदान करने और रक्षा करने वाले (दाशुषे) दानशील, (सु-दासे) उत्तम भृत्यवत् आज्ञापालक एवं उत्तम कर देने वाले प्रजाजन के हित के लिये हो । और (दाशुषे सु-दासे) सर्वप्रद, सुखदाता (वृष्णे) सुखों की वर्षा करने वाले, मेघवत् उदार, पुरुष के रथ में (वृषणा) विद्या और कर्म कौशल से बलवान् पुरुषों को (युनज्मि) युक्त करता हूं जोड़ता हूं, जिससे कि हे (पुरु-शाक) बहुत शक्तिशालिन् ! (ते ब्रह्माणि) तेरे नाना वेदज्ञ कुल (वाजं व्यन्तु) अन्न का भोजन करें अथवा इसी प्रकार (ते ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) ब्रह्मण्य कुल तेरे लिये ज्ञान को (व्यन्तु) प्रदीप्त करें, वा (ब्रह्माणि) वेद मन्त्र (वाज) तेरे ज्ञान को प्रकाशित करें और तेरे (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यप्रद धन, ज्ञानवान् पुरुष को प्रधान बनावें ।

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! (ते) तेरी (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से प्राप्त प्रजा मे हम लोग (अघाय) पाप या हत्यादि अपराध के लिये (परादै मा भूम) त्याग देने योग्य न हो। तू (न) हमे (अवृकेभिः) चोर, डाकू, भेड़िये के स्वभाव से रहित (वरूथैः) शत्रुवारक सैन्यो द्वारा (नः) हमे (त्रायस्व) रक्षा कर । हम (सूरिषु) विद्वान् पुरुषो के बीच (तव प्रियासः) तेरे प्रिय (स्याम) होकर रहे ।

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! हम (नरः) नायक (सखायः) तेरे ही मित्र होकर (अभिष्टौ) अभीष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिये (ते प्रियासः इत्) तेरे प्रिय होकर ही (मदेम) आनन्दित रहे। (अतिथिग्वाय) अतिथियो को प्राप्त होकर उनके आदर सत्कार के लिये (तुर्वशं) निकट रहने वाले और (याद्वं) मनुष्यों को (निशिशीहि) तीक्ष्ण कर । वे अतिथि के सत्कार के लिये समीप के पडोसी भी सदा सहयोगी होवे ।

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन और पूज्य ज्ञान के स्वामिन् ! (ते) तेरी अभिमत नीति मे (सद्यः चित् नु) बहुत शीघ्र ही (नरः) उत्तम पुरुष (उक्थशासः) उत्तम वेद वचनो का अनुशासन और अध्ययन करने वाले (उक्था) उत्तम मन्त्रो का (शंसन्ति) उपदेश करते है, और (ये) जो (हवेभिः) आदर सत्कारों सहित, (ते पणीन्)

तुझे उत्तम व्यवहारवान् और स्तुत्य पुरुष (अदाशन्) प्रदान करते हैं। (तस्मै) उस (युज्याय) सहयोग के योग्य हे विद्वान् पुरुष ! तू (अस्मान्) हमें ही (वृणीष्व) योग्य कार्यकर्त्ता जानकर वरण कर। अर्थात् हम ही राजा के योग्य कार्यों में अपने को समर्पित करें।

एते स्तोमा॒ न॒रां नृ॑तम॒ तुभ्य॑मस्म॒द्र्य॑ञ्चो॒ दद॑तो म॒घानि॑।
तेषा॑मिन्द्र वृत्र॒हत्ये॑ शि॒वो भूः॒ सखा॑ च॒ शूरो॑ऽवि॒ता च॑ नृ॒णाम् १०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एते अस्मद्र्यञ्चः) हमें प्राप्त (नरां स्तोमाः) उत्तम पुरुषों के वचन समूह वा स्तुत्यजन समूह (हे नृतम) नरश्रेष्ठ ! (मघानि ददतः) नाना ऐश्वर्य देते रहते हैं। तू (तेषाम्) उनके (वृत्र-हत्ये) शत्रुनाशक संग्राम में (शिव भूः) कल्याणकारी हो। तू (नृणाम्) सब मनुष्यों का (सखा शूरः च) मित्र और शूरवीर (भूः) हो (अविता च) और रक्षक भी (भूः) हो।

नू इ॑न्द्र शूर॒ स्तव॑मान ऊ॒ती ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधस्व। उप॑ नो॒ वाजा॑न्मिमी॒ह्युप॒ स्तीन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः॥११॥३०॥२॥

भा०—हे (इन्द्र शूर) ऐश्वर्यवन् ! हे शूरवीर ! तू (स्तवमानः) अपने सैन्यों के उत्साह की प्रशंसा करता हुआ (ब्रह्म जूतः) बड़े धनों और बड़े राष्ट्र से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीरवत् प्रिय विस्तृत राष्ट्र से (वावृधस्व) बढ, वृद्धि को प्राप्त हो। (नः) हमें (वाजान्) बहुत से ऐश्वर्य (उप मिमीहि) प्राप्त करा और (ऊतीन्) संघ बने शत्रुओं को (उप मिमीहि) उखाड़ फेंक। हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी सदा शुभ, सुखदायक उपायों से रक्षा किया करो। इति त्रिंशो वर्गः॥ इति द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

[२०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ८, ९ त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

उ॒ग्रो ज॑ज्ञे वी॒र्या॑य स्व॒धावा॒ञ्चक्रि॒रपो॒ नर्यो॒ यत्क॑रि॒ष्यन् ।
जग्मि॒र्युवा॑ नृ॒षद॑न॒मवो॑भिस्त्रा॒ता न॒ इन्द्र॒ एन॑सो म॒हश्चि॑त् ॥१॥

भा०—(यः) जो (उग्रः) तेजस्वी पुरुष (स्वधावान्) अन्न, आदि से सम्पन्न वा आत्मा को धारण पोषण करने के उपायो का स्वामी, होकर (वीर्याय) बल सम्पादन करने के लिये (जज्ञे) समर्थ होता है वह (चक्रिः) कर्म करने मे कुशल, (अपः करिष्यन्) सूर्य जिस प्रकार वृष्टि जलो को उत्पन्न करना चाहता हुआ तपता है उसी प्रकार (अप करिष्यन्) उत्तम कार्य करना चाहता हुआ (नृ-सदनं जग्मिः) नायक के विराजने योग्य, या उत्तम पुरुपो के सभा भवन आदि को प्राप्त होकर (युवा) बलवान् पुरुप (महः चित् एनसः) बड़े भारी पापाचरण से (नः) हमे (अवोभिः) नाना ज्ञानों और रक्षा साधनो द्वारा (त्राता) बचाने हारा हो ।

हन्ता॑ वृ॒त्रमिन्द्रः॒ शूशु॑वानः॒ प्रावी॒न्नु वी॒रो ज॑रि॒तार॑मू॒ती ।
कर्ता॑ सु॒दासे॒ अह॒ वा उ॑ लो॒कं दाता॒ वसु॒ मुहु॒रा दा॒शुषे॑ भूत् ॥२॥

भा०—(इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्वी राजा (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वृत्रं हन्ता) मेघ के समान विघ्नकारक दुष्ट का अवश्य नाश करे । वह (वीरः) वीर (ऊती) रक्षा मे (जरितारम्) स्तुति, प्रार्थना करने वाले को (प्र अवीत् नु) शीघ्र ही रक्षा करे । (अह-वा उ) और (सुदासे) उत्तम दानशील पुरुप के हित के लिये (लोकं)

दर्शनीय, उत्तम उपकार वा उत्तम जन्म का (कर्त्ता) करने वाला हो और (दाशुषे) अपने आप को देने वाले पुरुष के पालनार्थ (मुहुः) वार २ (वसु दाता भूत्) नाना ऐश्वर्यों को देने वाला हो ।

युध्मो अ॑न॒र्वा ख॑ज॒कृत्स॒मद्वा॒ शूरः॑ सत्रा॒षाड् ज॒नुषे॒मषा॑ळ्हः ।
व्या॑स॒ इन्द्रः॒ पृत॑नाः॒ स्वोजा॒ अधा॒ विश्वं॑ शत्रू॒यन्तं॑ जघान ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (युध्मः) उत्तम योद्धा, (अनर्वा) अहिंसक वा जिसके समान दूसरा कोई सवार न हो, (खजकृत्) संग्राम करने में कुशल, (समद्वा) मद अर्थात् उत्तेजना वा हर्ष से युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला, (सत्राषाड्) बहुत से यज्ञों, का कर्त्ता वा सत्य व्यवहार से विजय करने वाला, (ईम् जनुषा अषाढः) और सब प्रकार से, स्वभाव से किसी से पराजित न होने वाला हो । वह (सु-ओजाः) उत्तम बल-पराक्रमशील होकर (आसे) स्वयं मुखवत् प्रमुख स्थान पर विराजकर (पृतना. वि जघान) सब मनुष्यो को प्राप्त करे (अध) और (पृतनाः) शत्रु सेनाओं तथा (विश्वम् शत्रूयन्तं) शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब का (वि जघान) विविध उपायो से नाश करे ।

उ॒भे चि॑दिन्द्र॒ रोद॑सी महि॒त्वा प॑प्राथ॒ तवि॑षीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्र॒मिन्द्रो॒ हरि॑वा॒न्मिमि॑क्ष॒न्त्सम॑न्धसा॒ मदे॑षु॒ वा उ॑वोच ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! आप (तुविष्मः) बहुत बलवान् होकर (तविषीभिः) बलशालिनी, सेनाओं से (उभे रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी दोनों के समान अति विस्तृत राजवर्ग प्रजावर्ग, शासक और शास्य देश दोनों को (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (पप्राथ) विस्तृत कर । (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी होकर (वज्रम्) अपने शस्त्रास्त्र बल को (अन्धसा) अन्न सम्पदा से (नि मिमिक्षन्) खूब पुष्ट करता

हुआ (मदेषु) तथा युद्ध के अवसरो मे (वा) भी (सम् उवोच) अच्छी प्रकार समवाय बनावे ।

वृषा जजान् वृषणं रणाय् तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५।१॥

भा०—(यः) जो (सेनानी.) सेना का नायक (गवेषणः) भूमि राज्य का अभिलाषी, (सत्वा) बलवान् (नृभ्य. इनः अस्ति) मनुष्यो का स्वामी राजा है (सः धृष्णुः) वह शत्रुओ को पराजय करने वाला होता है । (तम् वृषणम्) उस बलवान् पुरुष को (रणाय) रणादि शूरवीरता के कार्य के लिये (वृषा) वीर्य सेचन मे समर्थ बलवान् पुरुष ही (जजान) उत्पन्न करता है और (चित्) उसी प्रकार (नर्य) मनुष्यों से श्रेष्ठ उस पुरुष को (नारी) उत्तम स्त्री ही (सुसूव) कोख से जनती है । स्त्री पुरुष ऐसे ही नररत्न को सदा उत्पन्न करे जो सेनानायक बलवान् शत्रुपराजयकारी, संग्रामविजयी हो । इति प्रथमो वर्गः ॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥

भा०—जो मनुष्य (अस्य) इस स्वामी के (घोरं मन.) घोर, अति आर्द्र, दयाशील, मन, अन्त करण को (आविवासात्) सेवता है, उसके अभिप्रायानुसार कार्य करता है (सः जन.) वह मनुष्य कभी (न भ्रेषते) च्युत नही होता, (न रेषत्) कभी नष्ट नही होता और (य) जो (यज्ञैः) यज्ञ, उपासना पूजादि उपायो से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्रभु मे (दुवांसि दधते) प्रार्थनादि करते है (स) वह (ऋत-पा) सत्य व्रतो का पालक और (ऋतेजा) सत्य में निष्ठ होकर (राये क्षयत्) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये निरन्तर अच्छी प्रकार रहता है ।

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यत्) जो (पूर्वः) पूर्व विद्यमान जीवन, और ज्ञान के अनुभवी, (अपराय) दूसरे के लिये (देष्णम् शिक्षन्) देने योग्य ज्ञान वा धन देता वा (कनीयसः) छोटों से (ज्यायान्) बड़ा होकर भी (अयत्) प्राप्त करता है वा (अमृतः) अमृत, दीर्घायु, ज्ञानी, मुमुक्षु होकर (दूरम् इत् पर्यासीत) दूर ही रहता है, हे (मित्र) पूज्य ! तू (नः) हमें वह (चित्र्यं रायः) आश्चर्यजनक अद्भुत संग्रह योग्य (रयिम् आभर) ऐश्वर्य, ज्ञान प्रदान कर ।

यस्ते इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (अद्रिवः) मेघ तुल्य शत्रुओं पर शस्त्रवर्षण करने हारे वीर पुरुषों के स्वामिन् ! (यः) जो (ते) तेरा (प्रियः जनः) प्रिय, प्रजाजन (ददाशद्) कर आदि देवे, वह (निरेके) निःशंक व्यवहार में (ते सखा) तेरा मित्र, होकर (असत्) रहे । (वयम्) हम लोग (ते) तेरी (अस्यां) इस (सुमतौ) शुभ मति में (चनिष्ठाः) अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों और (अघ्नतः) न हिंसा करने वाले तुझ पालक के (नृ-पीते) उत्तम नायकों द्वारा पालन करने वाले (वरूथे) सैन्य या शासन में हम घर के समान हुए (स्याम) सुख से रहें ।

एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ९

भा०—हे प्रजाजन ! (एषः) यः (स्तोमः) स्तुत्य, प्रशंसायोग्य (वृषा) बलवान् राजा (ते अचिक्रदत्) तुझे आदर से बुलावे (उत) और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! बिना किसी प्रकार का कष्ट पाये (अक्रपिष्ट) सब सामर्थ्य प्राप्त करे । (ते रायः कामः) तेरे लिये ऐश्वर्य की कामना

करने वाला पुरुष (जरितारं) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा रूप तुझ को (आगन्) प्राप्त हो और (अंग शक्ति) हे शक्तिशालिन् ! तू (नः वस्वः) हमारे धन पर (आ शकः) सब प्रकार से शक्ति या अधिकार प्राप्त कर । अर्थात् प्रजा धनाभिलाषी होकर राजा को प्राप्त करे । राजा के ऐश्वर्य का उपभोग करे और राजा प्रजा के धन पर अपना स्वत्व समझे ।

स नं इन्द्र त्वयंताया इषे धास्त्मनां च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदां नः १०॥२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! (नः) हम लोगो मे से (ये) जो (त्मना) अपने सामर्थ्य से (मघवानः) उत्तम धन सम्पन्न होकर (जुनन्ति) तुझे प्राप्त होते है उनको भी तू (त्वयताया) तेरे से सुप्रबद्ध (इषे) उत्तम प्रेरणा के लिये (धाः) धारण कर । (जरित्रे) उत्तम विद्वान् के लिये (ते) तेरी (वस्वी) ऐश्वर्ययुक्त (शक्तिः) दान शक्ति (सु अस्तु) खूब अधिक हो । (यूयम्) तुम लोग हे विद्वानो (नः सदा) हमे सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी उपायो से पालन करो । 'वस्वीषु' इत्येकं पदं सायणाभिमतं पदपाठेन विरुध्यते । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[२१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् । २, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७ भुरिक्पंक्तिः । ४, ५ स्वराट् पांक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

असांवि देवं गोऋंजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रों जनुषेमुवोच ।
बोधांमसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधां नः स्तोममन्धंसो मदेषु ॥१॥

भा०—(गोऋजीकं) भूमि से सरलता से, न्याय धर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला, (देव) सुखप्रद वा व्यवहार योग्य (अन्ध) अन्न आदि पदार्थ (असावि) उत्पन्न होता है । (अस्मिन्) उस पर (इन्द्रः

ईम् उवोच) जिस प्रकार सूर्य या मेघ जल प्रदान करता और बढ़ाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (जनुषा) स्वभावतः (अस्मिन् नि उवोच) उस अन्न के निमित्त सब प्रकार के उपायों को प्राप्त करावे और बढ़ावे। हे (हर्यश्व) मनुष्यों में श्रेष्ठ! हम (यज्ञैः) सत्कारों से (त्वा बोधामसि) तुझे तेरा कर्त्तव्य बतलाते हैं (अन्धसः मदेषु) अन्न आदि प्राणधारक पदार्थों के सुखों के निमित्त तू (नः) हमें (स्तोमम्) स्तुत्यवचन का (बोध) बोध करा। उनके प्राप्त करने के लिये उत्तम २ उपाय और व्यवस्था का उपदेश कर।

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥ २ ॥

भा०—(सोम-मादः) अन्न, ऐश्वर्य और बलवीर्य से हर्ष युक्त, प्रसन्न, और (दुध्र-वाचः) दुर्धर बड़ी कठिनता से धारण करने योग्य वाणी के स्वामी, शासक लोग (यज्ञ) आदर, सत्कार, यज्ञ, विद्वत्संग और परस्पर के दृढ़ संघ को (प्र यन्ति) प्राप्त करते हैं, (बर्हिः विपयन्ति) उत्तम वृद्धिशील पद वा आसन को प्राप्त करते और (विदथे) यज्ञ वा संग्राम में वा ज्ञान-व्यवहार में विशेष रूप से रहते हैं। वे (यशसः गृभात्) यशोजनक घर से निकल कर (वृषणः) बलवान् पुरुष (नृषाचः) मनुष्यों का समवाय बनाकर (दूरे-उपब्दः) दूर २ देशों तक अपनी वाणी वा वक्तव्य पहुंचाते और (नि भ्रियन्ते) निरन्तर आदर प्राप्त करते हैं।

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (अहिना परिस्थिता) मेघ रूप से या सूर्य द्वारा सर्वत्र व्यापक होकर विद्यमान (अपः) जल परमाणुओं को (स्रवितवै अकः) नीचे बहने के लिये प्रवृत्त करता है।

उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शूर) शूरवीर ! (त्वम्) तू (पूर्वीः) समृद्धि से पूर्ण (अहिना परि स्थिताः) अग्रगन्ता नायक से अधिष्ठित (अप') आप्त प्रजाओं को (स्त्रवितवै अकः) सन्मार्ग पर चलने के लिये तैयार करता और (अहिना परिस्थिता) अभिमुख आकर हनन करने वाले शत्रु के अधीन स्थित शत्रु सेनाओं को (अपः) जलों के समान (स्त्रवितवै अकः) वहने या भाग जाने को वाधित कर । (त्वत् धेनाः) तेरी वाणियां (रथ्य' न) रथारोही वीरों वा रथ के अश्वों के समान वेग से वा (वावक्रे) वक्रता पूर्वक सौन्दर्य से निकले, प्रकट हो । और (विश्वा) समस्त (कृत्रिमाणि) कृत्रिम, अपने २ स्वार्थ-कारणों से बने मित्र और शत्रुजन (भीपा रेजन्ते) भय से कांपे ।

भीमो विवेषा युधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (आयुधेभिः) शस्त्रों करके (भीमः) भयानक, (एषां)इन शत्रुजनों के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों से करने योग्य, उनके हितकारी (अपांसि) कर्मों को (विद्वान्) जानता हुआ, (विवेष) शत्रुओं के भीतर उनके एक २ काम मे व्याप जाय और सब पता लगावे । वह (जर्हृषाणः) हृष्ट प्रसन्न होकर शत्रुओं के (पुर.) नगरियों को (वि दूधोत्) विविध प्रकार से कंपा डाले । (वज्र-हस्तः) हाथों में सैन्यबल लिये (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि जघान) विविध प्रकार से शत्रुओं को दण्डित करे ।

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (यातव.)

पीड़ा देने वाले, वा आक्रमणकारी लोग (नः न जुजुवुः) हम तक न पहुंचें, हमारा घात न करें। हे (शविष्ठ) बलशालिन्! (वेद्याभिः) ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं से वे पीड़ादायक लोग (नः वन्दना) हमारे स्तुत्य उपदेश योग्य उत्तम कार्यों तक भी (न जुजुवुः) न पहुंचे, न नाश करें। (अर्यः) स्वामी, राजा (विपुणस्य जन्तोः) विस्तृत फैले प्रजाजन को (शर्धत्) उत्साहित करे और (शिश्न-देवाः) उपस्थेन्द्रिय से क्रीड़ा विलास करने वाले, कामी, नीच पुरुष (नः) हमारे (ऋतं) सत्य व्यवहार, धर्म्म, कर्म्म, वेद ज्ञान, यज्ञ, और हमारे अन्न जल को भी (मा अपि गुः) प्राप्त न हों। इति तृतीयो वर्गः ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः राजन्! हे (इन्द्र) जीवात्मन्! (अध) और तू (क्रत्वा) उत्तम ज्ञान और कर्म के सामर्थ्य से (ज्मन्) इस पृथिवी पर (रजांसि) समस्त लोकों और समस्त राजस भावों को (अभि भूः) पराजित कर। (रजांसि) वे लोग (ते) तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (न विव्यङ्) न प्राप्त कर सकें। तू (स्वेन शवसा हि) अपने ही बल से (वृत्रं) आवरणकारी अज्ञान और विघ्नकारी शत्रु को (जघन्थ) विनाश कर। (शत्रुः) शत्रु, तेरा नाश करने वाला, (ते अन्तं) तेरा अन्त (युधा) युद्ध द्वारा (न विविदत्) न पासके।

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! स्वामिन्! (असुर्याय क्षत्राय) मेघ में उत्पन्न जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार अन्नाभिलाषी जन नाना यत्न करते

मित्र, स्नेही और (महिना) तेरे महान् सामर्थ्य से (नमोः वृधासः) नमस्कार, विनय, अन्न और शस्त्र बल से बढ़ने और बढ़ाने हारे (स्याम) हो। (समीके) रण मे (ते) तेरे (अवसा) रक्षण सामर्थ्य से ही प्रजास्थ पुरुष (अभीतिम् वन्वन्तु) अभय प्राप्त करे और (अभि-इतिम् वन्वन्तु) अभिगमन, अर्थात् अभिमुख प्रयाण करे और (वनुषां शवासि) हिंसक शत्रुओ के बलो के प्रति (अभि-इतिम् वन्वन्तु) प्रयाण करे और उनके आक्रमण को नाश करे। तू उनका (अर्यः) स्वामी होकर रक्षा कर।

स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २० (म० १०) इति चतुर्थो वर्गः॥

[२२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—भुरिगुष्णिक्। २, ७ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। ६, ८ विराडनुष्टुप्। ४ आर्ची पङ्क्तिः। ९ विराट् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा॥१॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रि·) मेघ, जिस अन्न को उत्पन्न करता है उसको सूर्य अपनी किरणो से पान करता है उसी प्रकार (अद्रिः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और शत्रु द्वारा दीर्ण, खण्डित, या छिन्न भिन्न न होने वाले, दृढ, हे (हर्यश्व) उत्तम सैन्य के स्वामिन् वा उत्तम मनुष्यो को अश्वो के समान अपने राष्ट्र-रथ मे लगाने हारे सुव्यवस्थित सैन्य बल! (यं) जिस (सोमम्) अन्नवत् उपभोग्य ऐश्वर्य को (ते) तेरे लिये (अद्रिः) मेघ व मेघवत् उदार शस्त्र बल (सुषाव) उत्पन्न करता है तू उसको (सोमम्) अन्न रस और ओषधि रस के समान (पिब) उपभोग कर। वह

तुझे बल दे और तेरे लिये शक्तिकारक हो। वह (त्वा मन्दतु) तुझे हर्षित करे। और (सोतुः बाहुभ्यां सुयतः) सञ्चालक सारथि के बाहुओ से उत्तम प्रकार से नियन्त्रित (अर्वा न) अश्व के समान तू भी (सोतुः) उत्तम मार्ग मे सञ्चालन करने वाले पुरुष के (बाहुभ्यां) कुमार्ग से रोकने वाले ज्ञान और कर्मरूप बाहुओ से (सु-यतः) उत्तम रूप से नियन्त्रित होकर तू (सोमम् पिब) इस राष्ट्ररूप ऐश्वर्य का पुत्र वा शिष्यवत् पालन कर।

यस्ते॒ मदो॒ युज्य॒श्चारु॒रस्ति॒ येन॑ वृ॒त्राणि॑ हर्यश्व॒ हंसि॑।
स त्वामि॑न्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगयुक्त अश्वो के स्वामिन्! हे मनुष्यों को अश्वों के समान सन्मार्ग पर चलाने हारे! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) सहयोग देने योग्य, (चारुः) उत्तम (मदः) हर्ष (अस्ति) है और (येन) जिससे तू (वृत्राणि) मेघो को सूर्यवत् शत्रुओ को (हंसि) विनाश करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (प्रभूवसो) प्रचुर ऐश्वर्य के स्वामिन्! (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) अति हर्षयुक्त बनावे।

बोधा॒ सु मे॑ मघव॒न्वाच॒मेमां यां ते॒ वसि॑ष्ठो अर्च॑ति॒ प्रश॑स्तिम्।
इ॒मा ब्रह्म॑ सध॒मादे॑ जुषस्व ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (याम्) जिस (प्रशस्तिम्) उत्तम प्रशंसा योग्य (ते) तेरी (वाचम्) वाणी का (वसिष्ठः) उत्तम वसु, विद्वान् (सु अर्चति) आदर कर रहा है तू (इमाम्) उसको (सु बोध) अच्छी प्रकार जान। (इमा ब्रह्म) तू इन ज्ञानों, अन्नों और धनों को (सध-मादे) एक साथ मिलकर हर्ष मनाने के अवसर मे (जुषस्व) सेवन कर।

श्रु॒धी हवं॑ विपिपा॒नस्याद्रे॒र्बोधा॒ विप्र॒स्यार्च॑तो मनी॒षाम्।
कृ॒ष्वा दुवां॒स्यन्त॑मा॒ सचे॒मा ॥ ४ ॥

भा०—(वि-पिपानस्य) विविध प्रकार के रसो को अपने भीतर पालन

(इन्द्रस्य वज्रं) ऐश्वर्यवान शत्रुहन्ता राजा के शस्त्रबल और (रथं) रथ या नाभि को जो (गोभिः परि आवृतम्) भूमियों से घिरा हो जिसके अधीन नाना देश हों उनको (यज) प्राप्त कर। वह राजा का बल कैसा हो—(दिवः परिभृतम्) सूर्य से निकले तेज के समान विद्वान् तेजस्वी पुरुष वर्ग से प्राप्त (ओजः) पराक्रमस्वरूप हो और जो (पृथिव्याः परि उद्-भृतं) भूमि से उत्पन्न अन्न के समान परिपोषक, प्रजा बल, और (वनस्पतिभ्यः परि आभृतम्) बड़े वृक्षों के समान प्रजा के आश्रयप्रद शत्रु हिंसक सैन्य के पालक नायकों द्वारा एकत्र किया गया (सहः) शत्रु पराजयकारी बल है उसको और (अपाम् ओज्मानम्) आप्त प्रजा वर्गों के पराक्रम को भी (यज) एकत्र संगत कर।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभि॑ः।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥२८॥

भा०—इन्द्र का वज्र। हे (देव) विजय के इच्छुक! हे (रथ) रम्यस्वभाव! वा रथवत् राष्ट्र के प्रजापालन को अपने कन्धों लेकर चलने हारे राजन्! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र का (वज्रः) बल पराक्रम रूप है! तू (मरुताम् अनीकम्) समस्त मनुष्यों का सैन्यबल प्रमुख, एवं बलशाली है। तू (मित्रस्य गर्भः) मित्र राजवर्ग के अध्यक्ष में स्थित उनको भी अपने वश करने वाला है, तू (वरुणस्य नाभिः) श्रेष्ठ, पुरुष वर्ग का 'नाभि' अर्थात् उनके बीच केन्द्र के समान उनको अपने से सम्बद्ध करने वाला है। (सः) वह तू (नः) हमारी (इमां) इस (हव्य-दातिम्) ग्रहण करने योग्य भेट आदि के दान को (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हव्या) ग्राह्य पदार्थों को (प्रति गृभाय) ग्रहण कर।

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त्।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥ २९ ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) द्वन्द्व युद्ध में सबसे अधिक प्रकाशित वीर ! हे नक्कारे के समान गर्जने हारे ! हे वृक्ष को कुठार के समान शत्रुको छिन्न भिन्न करने वाले ! अथवा हे शत्रुओं को नाश करने हारे ! तू (पृथिवीम्) भूमिवासी (उत द्याम्) तेजस्विनी वा ऐश्वर्यादि को चाहने वाली वा व्यापार करने में लगी प्रजा को (उप श्वासय) आश्वासन और उनको प्राणवत् जीवन वृत्ति प्रदान कर । (ते) तेरे अधीन (पुरुत्रा) बहुत प्रकार के (जगत्) गतिशील नाना जंगम प्राणिगण (वि स्थित) विविध प्रकार से स्थित होकर (मनुतां) तेरा मान करे । (सः) वह तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक भूमि पर कृषि अन्न के उत्पादक समृद्ध प्रजावर्ग (देवैः) विद्वान् पुरुषों से (सजूः) मिलकर उनके सहयोग से (शत्रून्) शत्रुओं को (दूराद् दवीयः) दूर से भी दूर तक (अपसेध) भगादे ।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ३०

भा०—हे (दुन्दुभे) नक्कारे के समान घोर गर्जन करने हारे ! तू शत्रुओं को (आ क्रन्दय) खूब ललकार और रुला । तू (नः) हममें (बलं ओजः) बल और पराक्रम (आ धाः) धारण करा । और (दुरिता) बुरे व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ तू (नि स्तनिहि) गर्जना कर । (इतः) इस राष्ट्र में से (दुच्छुनाः) हमें दुःखदायी दुष्ट कुत्तों के स्वभाव वाले, वा हमारे दुःखों को सुख मानने वाले दुष्टजनों को (अप प्रोथ) दूर मार भगा । तू (इन्द्रस्य) विद्युत् के (मुष्टिः) मुक्के के समान शत्रुसंहारक वा समृद्ध राष्ट्र का सुदृढ़ संगठित बल (असि) है । वह तू सदा (वीडयस्व) पराक्रम किया कर ।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (अमूः) उन और (इमाः) इन अपनी और पराई सेनाओं को (आ अज) दूर हटा और भेज (प्रति वर्त्तय, आवर्त्तय च) परे लौटा दे और अपनी ओर लौटा ले । पराई सेनाओं को परे करदे और अपनी सेनाओं को वापस लौटा ले । (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा से युक्त नक्कारा जिस प्रकार गर्जता है उसी प्रकार तू राजा (वावदीति) बराबर अपनी सेनाओं को आज्ञा दे । (नः) हमारे (नरः) नायक जन (अश्व-पर्णाः) अश्वों पर चढ़कर वेग से जाने वाले (सञ्चरन्ति) एक साथ मिलकर गमन करें और (अस्माकं रथिनः) हमारे रथारोही लोग (जयन्तु) विजय प्राप्त करें । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

* इति सप्तमोऽध्यायः *

अष्टमोऽध्यायः

[४८]

शयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ तृणपाणिक पृश्निसूक्त ॥ १—१० अग्निः । ११, १२, २०, २१ मरुतः । १३—१५ मरुतो लिंगोक्ता देवता वा । १६—१९ पूषा । २२ पृश्निर्द्यावाभूमी वा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १४ बृहती । ३, १९ विराड्बृहती । १०, १२, १७ भुरिग्बृहती । २ आर्ची जगती । १५ निचृदतिजगती । ६, २१ त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ भुरिगनुष्टुप् । २० स्वराडनुष्टुप् । २२ अनुष्टुप् । ११, १६ उष्णिक् । १३, १८ निचृदुष्णिक् ॥ द्वाविंशत्यृच सूक्तम् ॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् जिज्ञासु पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ, परस्पर के सत्संग के अवसर पर (वः) आप लोगों के प्रति

(गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे अग्नये) अग्नि के समान सब पापों और पापियों को भस्म कर देने वाले, क्रियाकुशल, दक्ष, व्यवहारज्ञ स्वामी या प्रभु के (अमृतम्) अविनाशी स्वरूप का (प्र-प्र) निरन्तर वर्णन उत्तम पद के लिये प्रस्ताव किया करें। हे जिज्ञासु जनो ! मैं भी उसी (जात-वेदसं) समस्त ज्ञानों के जानने वाले सब ऐश्वर्यों के स्वामी को (प्रियं मित्रं न) प्रिय मित्र के तुल्य ही (प्र-प्र शंसिषम्) अच्छी प्रकार प्रशंसा करूं।

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हिन) वह निश्चय से (अस्मयुः) हमारा प्रिय स्वामी, (तनूनाम्) हमारे शरीरों का (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो। वह (वृध भुवत्) हमारा बढ़ाने हारा और (त्राता) पालक भी (भुवत्) हो। हम उस (ऊर्जः नपातम्) बल के पुत्र, बलवान् पिता के पुत्र, बल को नष्ट न होने देने वाले नायक को प्रस्तुत करके (हव्य-दातये) कर आदि ग्राह्य पदार्थों को देने के लिये तैयार रहें और अपना अंश नियम से उसे (दाशेम) देते रहें।

वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान चमकने हारे तेजस्विन् ! तू (हि) क्योंकि (वृषा) सुखों का सेचक वर्षण करने हारा और (अर्चिषा) विद्युतवत् कान्ति से (वि भासि) प्रकाशित होता है तू (अजर) कभी जीर्ण न होने वाला, अविनाशी, (महान्) महान्, (अजस्रेण) निरन्तर, अविनाशी, (शोचिषा) तेज से (शोशुचत्) चमकता हुआ है (शुचे) शुद्ध स्वभाव ! तू (सुदीतिभिः) उत्तम कान्तियों से स्वयं (सु दीदिहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर।

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! (मह) बडे (देवान्) किरणों को सूर्यवत् (यजसि) संगत करते हो, उत और (दंसना) नाना कर्मों को भी (यक्षि) संगत करते हो, (तव क्रत्वा) तेरे कर्म सामर्थ्य और प्रजा वल से (आनुषक्) निरन्तर हम भी (यक्षि) यज्ञ करें, परस्पर मिलकर रहें । तू (सीम्) सब ओर से (अवसे) रक्षा के लिये (अर्वाचः कृणुहि) बड़े देवों, विद्वानों को हमे प्राप्त करा । और (वाजा) नाना ऐश्वर्यों को (रास्व) प्रदान कर (उत उ) और (वंस्व) न्यायपूर्वक विभक्त कर ।

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आपः) समुद्र के जल, (अद्रयः) मेघ (वना) सूर्य के किरण और काष्ठ (ऋतस्य गर्भम्) तेज को अपने भीतर धारण करने वाले अग्नि को (पिप्रति) अपने मे विद्युत्, तेज, ताप आदि रूप मे धारण करते है और (यः) जो (नृभिः सहसा मथित जायते) मनुष्यो से बलपूर्वक मथा जाकर प्रकट होता है वह (पृथिव्याः अधि) पृथिवी के ऊपर और (अधि सानवि) अन्तरिक्ष के ऊपर भी विराजता है उसी प्रकार (यम्) जिस (ऋतस्य गर्भम्) सत्य न्याय व्यवहार को अपने मे धारण करने वाले पुरुष को (आप) आप्तजन, (अद्रयः) मेघवत् वा पर्वत तुल्य उदार, अचल, क्षत्रिय वीर पुरुष और (वना) शत्रुहिंसक सैन्यगण, (पिप्रति) प्रसन्न करते वा पूर्ण करते है जिसकी शक्ति को बढ़ाते है, और (य) जो (नृभि) नायक पुरुषों द्वारा (मथित) परस्पर वाद विवाद द्वारा निर्णय पाकर (सहसा)

अपने शत्रुविजयी बल के कारण (जायते) प्रकट होता है, वह (पृथिव्या. अधि सानवि) पृथिवी के उच्च पद पर उदयाचल पर सूर्य के तुल्य विराजता है । इति प्रथमो वर्ग. ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि । तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥

भा०—जिस प्रकार जो अग्नि (भानुना) सूर्यस्थ प्रकाश से (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनो को (आ पप्रौ) सब तरफ व्याप लेता है, और जो (धूमेन दिवि धावते) धूम से आकाश मे ऊपर जाता है या जो (दिवि) दूर आकाश मे (धूमेन धावते) धूमाकार होकर नीहारिका रूप से गति करता है । और जो (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली रातों मे (तमः तिरः) अन्धकार को दूर करके (आ ददृशे) सब दूर तक दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो नायक, (अरुष.) तेजस्वी, शत्रुओं के मर्मों पर आघात करने वाला पुरुष (भानुना) अपने तेज से (रोदसी उभे) अपनी और शत्रु दोनो की सेनाओ वा भूमियो को (आपप्रौ) व्याप लेता है और जो (धूमेन) शत्रु को कंपा देने वाले सामर्थ्य से (दिवि) भूमि पर (धावते) वेग से आक्रमण करता है । (श्यावासु ऊर्म्यासु) श्याम वर्ण की सस्य श्यामला भूमियो मे (तम. तिर.) शत्रु दल को अन्धकारवत् दूर करके (वृषा) सूर्यवत् वा मेघवत् (आ) विराजता है, वही (अरुष) तेजस्वी, रोष रहित (वृषा) बलवान्, राज्य का प्रबन्धक और सुखों की प्रजा पर वृष्टि करने वाला राजा (श्यावाः) समृद्ध प्रजाओ को (आपप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करता है ।

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! जिस प्रकार अग्नि (बृहद्भिः अर्चिभिः) बड़ी ज्वालाओ से और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! (महः) बड़े (देवान्) किरणों को सूर्यवत् (यजसि) संगत करते हो, उत और (दंसना) नाना कर्मों को भी (यक्षि) संगत करते हो, (तव क्रत्वा) तेरे कर्म सामर्थ्य और प्रजा बल से (आनुषक्) निरन्तर हम भी (यक्षि) यज्ञ करें, परस्पर मिलकर रहें । तू (सीम्) सब ओर से (अवसे) रक्षा के लिये (अर्वाचः कृणुहि) बड़े देवों, विद्वानों को हमें प्राप्त करा । और (वाजा) नाना ऐश्वर्यों को (रास्व) प्रदान कर (उत उ) और (वंस्व) न्यायपूर्वक विभक्त कर ।

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आप) समुद्र के जल, (अद्रयः) मेघ (वना) सूर्य के किरण और काष्ठ (ऋतस्य गर्भम्) तेज को अपने भीतर धारण करने वाले अग्नि को (पिप्रति) अपने में विद्युत्, तेज, ताप आदि रूप मे धारण करते है और (यः) जो (नृभिः सहसा मथितः जायते) मनुष्यो से बलपूर्वक मथा जाकर प्रकट होता है वह (पृथिव्याः अधि) पृथिवी के ऊपर और (अधि सानवि) अन्तरिक्ष के ऊपर भी विराजता है उसी प्रकार (यम्) जिस (ऋतस्य गर्भम्) सत्य न्याय व्यवहार को अपने मे धारण करने वाले पुरुष को (आपः) आप्तजन, (अद्रयः) मेघवत् वा पर्वत तुल्य उदार, अचल, क्षत्रिय वीर पुरुष और (वना) शत्रुहिंसक सैन्यगण, (पिप्रति) प्रसन्न करते वा पूर्ण करते हैं जिसकी शक्ति को बढ़ाते है, और (यः) जो (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (मथितः) परस्पर वाद विवाद द्वारा निर्णय पाकर (सहसा)

अपने शत्रुविजयी बल के कारण (जायते) प्रकट होता है, वह (पृथिव्याः अधि सानवि) पृथिवी के उच्च पद पर उदयाचल पर सूर्य के तुल्य विराजता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि । तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥

भा०—जिस प्रकार जो अग्नि (भानुना) सूर्यस्थ प्रकाश से (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनो को (आ पप्रौ) सब तरफ व्याप लेता है, और जो (धूमेन दिवि धावते) धूम से आकाश मे ऊपर जाता है या जो (दिवि) दूर आकाश मे (धूमेन धावते) धूमाकार होकर नीहारिका रूप मे गति करता है । और जो (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली रातों मे (तमः तिरः) अन्धकार को दूर करके (आ ददृशे) सब दूर तक दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो नायक, (अरुष) तेजस्वी, शत्रुओं के मर्मों पर आघात करने वाला पुरुष (भानुना) अपने तेज से (रोदसी उभे) अपनी और शत्रु दोनो की सेनाओं या भूमियो को (आपप्रौ) व्याप लेता है और जो (धूमेन) शत्रु को कंपा देने वाले सामर्थ्य से (दिवि) भूमि पर (धावते) वेग से आक्रमण करता है । (श्यावासु ऊर्म्यासु) श्याम वर्ण की सस्य श्यामला भूमियों मे (तमः तिरः) शत्रु दल को अन्धकारवत् दूर करके (वृषा) सूर्यवत् वा मेघवत् (आ) विराजता है, वही (अरुष) तेजस्वी, रोष रहित (वृषा) बलवान्, राज्य का प्रबन्धक और सुखों की प्रजा पर वृष्टि करने हारा राजा (श्यावाः) समस्त प्रजाओं को (आपप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करता है ।

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! जिस प्रकार अग्नि (बृहद्भिः अर्चिभिः) बड़ी ज्वालाओं से और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध

निर्मल प्रकाश से (समिधानः) प्रकाशमान होता है उसी प्रकार हे (देव) तेजस्विन् ! दानशील विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (बृहद्भिः) बड़े भारी (अर्चिभिः) अर्चना करने योग्य गुणों और सहायकों से और (शुक्रेण) शुद्ध, निर्मल (शोचिषा) तेज से (भरद्वाजे) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि को धारण करते हुए राष्ट्र वा शिष्यादि में (समिधानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ विराज । हे (यविष्ठ्य) अति बल-शालिन् ! हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन् ! सदाचारिन् ! तू (रेवत्) अन्नादि सम्पन्न होकर (नः दीदिहि) हमें भी प्रकाशित कर । हे (पावक) अग्निवत् पवित्र करनेहारे ! तू (द्युमत्) ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर (नः दीदिहि) हमें भी प्रकाशित कर, हमें भी तेजस्वी और ज्ञानवान् कर ।

विश्वा॑सां गृ॒हप॑तिर्वि॒शाम॑सि॒ त्वम॑ग्ने॒ मानु॑षीणाम् । श॒तं पू॒र्भिर्य॑-विष्ठ पा॒ह्यंह॑सः समे॒द्धारं॑ श॒तं हिमाः॑ स्तो॒तृभ्यो॒ ये च॒ दद॑ति ।८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी ! प्रभो ! राजन् ! पुरुष ! (त्वम्) तू (मानुषीणाम् विश्वासां विशाम्) समस्त मानुष प्रजाओं के बीच, (गृहपतिः असि) गृह स्वामी के समान, एवं उनके गृहों, घरों व स्त्री पुत्रादि का भी पालक है । हे (यविष्ठ) अति बलशालिन् ! अति तरुण ! हे अति शत्रुहिंसक ! (ये च ददति) जो तुझे कर आदि देते हैं उनको और (समेद्धारं) तुझे चमकाने और बढ़ाने वाले प्रजावर्ग को भी (पूर्भिः) उत्तम, पालक, नगर प्रकोट आदि साधनों से (शतं हिमाः) सौ २ वर्षों तक, पूर्ण आयु भर उनकी (अंहसः पाहि) पाप और हत्याकारी जन्तु, शत्रु आदि से रक्षा कर । (स्तोतृभ्यः) उपदेष्टाओं के हितार्थ उनके (समेद्धारं) बढ़ाने वाले को भी (शतं हिमाः पाहि) सौ बरसों तक पालन कर ।

त्वं न॑श्चि॒त्र ऊ॒त्या वसो॒ राधां॑सि चोदय ।
अ॒स्य रा॒यस्त्वम॑ग्ने र॒थीर॑सि वि॒दा गा॒धं तु॒चे तु नः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजाओ को भूमि पर बसाने वाले राजन् ! सबको बसाने और सब मे बसने वाले प्रभो ! शिष्यादि को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य ! गृहपते ! पितः ! (त्वं) तू (ऊत्या) रक्षा और ज्ञान सामर्थ्य से, वा उसके साथ २ (नः राधांसि) हमे नाना ऐश्वर्य (चोदय) प्रदान कर । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक ! तू (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य का (रथीः असि) महारथी के तुल्य स्वामी है । तू (नः तुचे तु) हमारे पुत्रादि के लिये भी (गाधं विदाः) प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और बुद्धि प्राप्त करा और (चोदय) उनको सन्मार्ग मे प्रेरित कर ।

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥२॥

भा०—हे (अग्ने) आगे सन्मार्ग पर ले चलने हारे ! नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (अदब्धैः) अहिंसक, दम्भादि वृत्तियों से रहित, (अप्रयुत्वभिः) कभी भी पृथक् न होने वाले, सदा के संगी, (पर्तृभिः) पालक पुरुषों द्वारा (तनयं तोकं) पुत्र पौत्रवत प्रजाजन को (पर्षि) पालन, और ज्ञान धनादि से पूर्ण कर । और (नः) हमारे (दैव्या) विद्वानो के प्रति उत्पन्न हुए (हेळांसि) अनादर और क्रोध आदि के भावो को (च) और (अदेवानि ह्वरांसि) हमारे अविद्वानों दुष्टों के योग्य कुटिल कर्मो को भी (युयोधि) हम से दूर कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११॥

भा०—जिस प्रकार लोग (सबर्दुघाम् अनपस्फुराम् धेनुम् आ अजन्ति, (आ सृजन्ति) दूध देने वाली, न मारने योग्य गौ को प्राप्त करते हैं और दुग्ध दधि आदि से पुष्ट करते हैं हे (सखायः) स्नेही मित्रो !

आप लोग भी उसी प्रकार (सबर्दुघाम्) ज्ञानरस, और सुखदायक अन्न आदि को दोहन करने वाली, (अनपस्फुराम्) कभी नाश न होने वाली, अविनाश्य (धेनुम्) वेद वाणी और भूमि की (नव्यसा) नये और स्तुत्य उपाय, अध्ययनाध्यापन तथा हलाकर्षणादि से (आ अजध्वम्) प्राप्त करो और भूमि को जोड़ो, और उत्तम (वचः आ सृजध्वम्) वचन बोलो। भूमि से (वचः = पचः) परिपक्व अन्न पैदा करो।

या शर्धा॑य॒ मारु॑ताय॒ स्वभा॑नवे॒ श्रवोऽमृ॑त्यु॒ धुक्ष॑त ।

या मृ॑ळी॒के म॒रुतां॑ तु॒राणां॒ या सु॒म्नैरे॑व॒याव॑री ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (या) जो भूमि गौ के समान ही (स्व-भानवे) धनैश्वर्य के तेज से स्वयं चमकने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (शर्धाय) बलवान् शरीरादि के धारक, शत्रुहिंसक, (मारुताय) मनुष्यों के स्वामी राजा, वा मनुष्यों के बसे राष्ट्र के लिये (अमृत्यु श्रवः) कभी न मरने वाले नित्य, एवं मृत्यु से रहित, क्षुधा रूप मृत्यु के नाशक, यश और अन्न को (धुक्षत) प्रदान करती है और (या) जो (मरुतां) मनुष्यों और (तुराणां) क्षिप्रकारी, शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (मृडीके) सुखदायी राजा के अधीन वा सुखकारी कार्य में लगी हो (या) और जो (सुम्नैः) सुखकारी कार्यों से (एव-यावरी) वेगयुक्त अश्वों, उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होती है उस भूमि को प्राप्त करो। (२) इसी प्रकार वाणी 'स्व' प्रकाश वाले (मारुताय) प्राण के लिये और बल के लिये अमृत ज्ञान प्राप्त करावे जो मनुष्यों के सुख के निमित्त है, जो (सुम्नै.) उत्तम ज्ञानी जनों द्वारा उपायों से प्राप्त होता है उस ज्ञान वाणी को प्राप्त करो।

भ॒रद्वा॑जाया॒व॑ धुक्षत द्वि॒ता ।

धे॒नुं च॑ वि॒श्वदो॑हस॒मिषं॑ च वि॒श्वभो॑जसम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! वह पूर्व कही वेदवाणी, विदुषी स्त्री और पृथ्वी रूप गौ, (भरद्-वाजाय) ज्ञान और ऐश्वर्य को धारण करने वाले

के लिये (द्विता) दोनों ही पदार्थ (अव धुक्षत) प्रेमपूर्वक नम्र होकर देती है, एक तो (विश्वदोहसं धेनुं च) वह समस्त सुख देने वाली वाणी का उपदेश करती है और (विश्वभोजसम् इषं च) समस्त विश्व का पालन करने और सबके भोजन करने योग्य अन्न भी प्रदान करती है। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी उस समस्त सुखों के देने वाली और सुख का पालन करने वाली दोनों प्रकार की (धेनुं) वाणी और गोवत् भूमि का और (इषं च) इष्टतम अन्न और सेनादि का (अव धुक्षत) दोहन करो और ऐश्वर्यादि प्राप्त करो।

तं व॒ इन्द्रं॒ न सु॒क्रतुं॒ वरु॑णमिव मा॒यिन॑म्।
अ॒र्य॒मणं॒ न म॒न्द्रं सृ॒प्रभो॑जसं॒ विष्णुं॒ न स्तु॑ष आ॒दिशे॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (आदिशे) शासन-कार्य करने के लिये (इन्द्रं न) विद्युत् के समान (सु-क्रतुं) उत्तम कर्मकुशल, (वरुणम्) इन सबको आवरण करने में समर्थ जालिया के तुल्य हिंसक के नाशक (मायिनम्) प्रज्ञावान्, बुद्धिचतुर (अर्यमणं न) शत्रुओं को या मनुष्यों को नियम में बांधने वाले न्यायकारी पुरुष के समान (मन्द्रं) अति स्तुत्य, और (विष्णु न) व्यापक सामर्थ्य वाले प्रभु के समान (सृप्र-भोजसं) प्राप्त हुए शरणागत की रक्षा करने वाले (तं) उस पुरुष की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं। ऐसे पुरुष को ही राजपद प्रदान करने का प्रस्ताव करूं। परमेश्वर पक्ष में—'न' 'च' के अर्थ में है।

त्वे॒षं शर्धो॒ न मारु॑तं तुवि॒ष्वण्य॑न॒र्वाणं॑ पू॒षणं॒ सं यथा॑ श॒ता।
सं स॒हस्रा॒ कारि॑षच्चर्ष॒णिभ्य॒ आँ आ॒विर्गू॒ळ्हा वसू॑ करत्
सु॒वेदा॑ नो॒ वसू॑ करत् ॥ १५ ॥

भा०—(सुवेदा) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (तुविष्वणि) बहुत भारी शब्द करने वाला (त्वेषं) [illegible] (शर्धः) [illegible],

आप लोग भी उसी प्रकार (सबर्दुघाम्) ज्ञानरस, और सुखदायक अन्न आदि को दोहन करने वाली, (अनपस्फुराम्) कभी नाश न होने वाली, अविनाश्य (धेनुम्) वेद वाणी और भूमि की (नव्यसा) नये और स्तुत्य उपाय, अध्ययनाध्यापन तथा हलाकर्षणादि से (आ अजध्वम्) प्राप्त करो और भूमि को जोड़ो, और उत्तम (वचः आ सृजध्वम्) वचन बोलो। भूमि से (वचः = पचः) परिपक्व अन्न पैदा करो।

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी॥ १२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (या) जो भूमि गौ के समान ही (स्व-भानवे) धनैश्वर्य के तेज से स्वयं चमकने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (शर्धाय) बलवान् शरीरादि के धारक, शत्रुहिंसक, (मारुताय) मनुष्यों के स्वामी राजा, वा मनुष्यों के बसे राष्ट्र के लिये (अमृत्यु श्रवः) कभी न मरने वाले नित्य, एवं मृत्यु से रहित, क्षुधा रूप मृत्यु के नाशक, यश और अन्न को (धुक्षत) प्रदान करती है और (या) जो (मरुतां) मनुष्यों और (तुराणां) क्षिप्रकारी, शत्रुहिंसक वीर पुरुषो के (मृळीके) सुखदायी राजा के अधीन वा सुखकारी कार्य में लगी हो (या) और जो (सुम्नैः) सुखकारी कार्यों से (एव-यावरी) वेगयुक्त अश्वों, उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होती है उस भूमि को प्राप्त करो। (२) इसी प्रकार वाणी 'स्व' प्रकाश वाले (मारुताय) प्राण के लिये और बल के लिये अमृत ज्ञान प्राप्त करावे जो मनुष्यों के सुख के निमित्त है, जो (सुम्नैः) उत्तम ज्ञानी जनों द्वारा उपायों से प्राप्त होता है उस ज्ञान वाणी को प्राप्त करो।

भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम्॥ १३॥

भा०—हे विद्वान् जनो! वह पूर्व कही वेदवाणी, विदुषी स्त्री और पृथ्वी रूप गौ, (भरद्-वाजाय) ज्ञान और ऐश्वर्य को धारण करने वाले

के लिये (द्विता) दोनो ही पदार्थ (अव धुक्षत) प्रेमपूर्वक नम्र होकर देती है, एक तो (विश्वदोहसं धेनुं च) वह समस्त सुख देने वाली वाणी का उपदेश करती है और (विश्वभोजसम् इषं च) समस्त विश्व का पालन करने और सबके भोजन करने योग्य अन्न भी प्रदान करती है। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी उस समस्त सुखो के देने वाली और सुख का पालन करने वाली दोनो प्रकार की (धेनुं) वाणी और गोवत् भूमि का और (इषं च) इष्टतम अन्न और सेनादि का (अव धुक्षत) दोहन करो और ऐश्वर्यादि प्राप्त करो।

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम्।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मै (आदिशे) शासन-कार्य करने के लिये (इन्द्रं न) विद्युत् के समान (सु-क्रतुं) उत्तम कर्मकुशल, (वरुणम्) इन सबको आवरण करने में समर्थ जालिया के तुल्य हिंसक के नाशक (मायिनम्) प्रज्ञावान्, बुद्धिचतुर (अर्यमणं न) शत्रुओ को वा मनुष्यों को नियम मे बांधने वाले न्यायकारी पुरुष के समान (मन्द्रं) अति स्तुत्य, और (विष्णुं न) व्यापक सामर्थ्य वाले प्रभु के समान (सृप्र-भोजसं) प्राप्त हुए शरणागत की रक्षा करने वाले (तं) उस पुरुष की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हू। ऐसे पुरुष को ही राजपद ग्रहण करने का प्रस्ताव करूं। परमेश्वर पक्ष मे—'न' 'च' के अर्थ में है।

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्
सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥

भा०—(सुवेदा) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (तुविष्वणि) बहुत भारी शब्द करने वाला (त्वेष) अतिदीप्तियुक्त (शर्धः) शत्रुहिंसक,

बलशाली शस्त्र (मारुतं शर्धः न) वायुओं के प्रबल बल के समान घोर शब्दकारी (कारिषत्) बनवाये और वह (अनर्वाणं करत्) अश्वादि से रहित सामान्य प्रजावर्ग को भी राष्ट्र का पोषक (पूषण) पोषण करने वाला बनावे। (यथा) जिससे, वह (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हित के लिये (शता) सैकड़ो और (सहस्रा) हज़ारों (वसू) ऐश्वर्यों को (सम् कारिषत्) संग्रह करे उनको संस्कृत करे, और (सु-वेदाः) उत्तम वैज्ञानिक पुरुष (नः) हमारे लिये सैकड़ों सहस्रों (गूढा वसू) गूढ गुप्त रूप से विद्यमान ऐश्वर्यों को भी (आविः करत्) प्रकट करे।

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे।
अघा अर्यो अरातयः।॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषण करने हारे! हे (आ-घृणे) सब दूर तक तेजस्विन्! वा सब प्रकार से दयाशील! तू (मा आ द्रव) मुझे आदरपूर्वक प्राप्त हो। (उप द्रव) अति समीप आ। (अपि-कर्णे) तेरे कान के समीप (शंसिषम्) तुझे मै उपदेश करता हूं। तू (अर्यः) प्रजा का स्वामी होकर (अरातयः) कर न देने वाले उच्छृङ्खलों और अन्यों को धन न देने वाले दुष्टजनों को (अघाः) दण्डित कर। इति तृतीयो वर्गः॥

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! तू (काकं-बीरम्) काक आदि नाना पक्षियों को भरण पोषण करने वाले (वनस्पतिम्) वट आदि बड़े वृक्ष के तुल्य (काकं-बीरम्) क्षुद्र या छोटे जनों के पालक पुरुष को (मा उद् वृह) मत उखाड़ और मत काट। (अशस्तीः) अप्रशंसित तथा अयुक्त वचन बोलने वालों को बुरी घासों के समान (वि नीनशः हि) अवश्य विनष्ट करदे। तू (सूरः) प्रजा का शासक, विद्वान् सूर्यवत् तेजस्वी होकर भी (वेः चन ग्रीवाः आदधते) व्याध लोग जिस प्रकार पक्षियों की गरदन

पकड लेते है और उसको दुःख देते है तू (एवा) उस प्रकार (आ चन) हमारी कभी गर्दन मत पकड (उत) और (मा अहः) हमे मत मार ।

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! (दधन्वतः) धारण करने वाले, (अच्छिद्रस्य) छिद्ररहित (दृतेः) पात्र के समान (दधन्वतः) प्रजा का भरण पोषण और पालन करते हुए (अच्छिद्रस्य) त्रुटिरहित, प्रजा का व्यर्थ छेदन भेदन न करने वाले और (दधन्वतः)अति धनवान्, अति धनुर्धर और भूमि के स्वामी (दृतेः) शत्रु सैन्य को विदारण और भयभीत करने वाले की (सख्यम्) मित्रता (अवृकम् अस्तु) भेड़िये के समान छल कपट से युक्त दिल काटनेवाली न हो ।

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषक ! तू (मर्त्यैः) मनुष्यों सहित (परः) सबका पालक और तृप्तिकारक (असि) है (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी से (देवैः समः असि) विद्वान्, तेजस्वी तथा व्यवहारवान्, धनाढ्य पुरुषों के समान है । तू (पृतनासु) संग्राम के अवसरों, मनुष्यों वा सेनाओं के बीच मे (नः अभि ख्य) हमें सब प्रकार से देख और (यथा पुरा) पहले के समान ही (नूनं) अवश्य (त्वं नः अव) तू हमारी रक्षा किया कर ।

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

भा०—(हे धूतय) शत्रुओं को कंपाने और भीतरी दोषों को त्यागने वारे, (प्रयज्यवः) उत्तम दान, यज्ञ और सत्संग करने वाले, (मरुतः)

विद्वान् पुरुषो ! (वामस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, व्यवहारज्ञ, और तेजस्वी, (वा) और (ईशानस्य) यज्ञशील (मर्त्यस्य) मनुष्य की (सूनृता) उत्तम सत्यवाणी और (प्र-नीति.) उत्तम नीति (वामी अस्तु) सबको सुन्दर लगने वाली, प्रिय हो।

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः। त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥

भा०—(द्याम् परि सूर्यः नः) आकाश मे जिस प्रकार सूर्य उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार जो (देवः) तेजस्वी, विजिगीषु राजा (द्यां परि एति) भूमि पर विचरता है, और (यस्य चित् सद्यः चर्कृतिः) जिसका कर्म सामर्थ्य शीघ्र ही फल देता है, वह पुरुष तेजस्वी होता है। उसके अधीन ही (मरुतः) वीर मनुष्य (त्वेषं) अति दीप्तियुक्त (शव॰) बल और (वृत्रहं नाम) शत्रु हननकारी नाम, ख्याति और (यज्ञिय) यज्ञ, आत्मत्याग और परस्पर संगठन से उत्पन्न (शवः) बल को भी (दधिरे) धारण करें, क्योंकि (वृत्रहं शव.) विघ्नकारी एवं बढ़ते शत्रु को नाश कर देने वाला बल ही (ज्येष्ठं) सब से बड़ा, श्रेष्ठ होता है।

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (द्यौः सकृत् अजायत) सूर्य जिस प्रकार एक वार ही उत्पन्न होता है, (भूमिः सकृत् अजायत) और भूमि भी एक ही वार उत्पन्न होती है। (पृश्न्या. दुग्धं पय सकृत्) भूमि से दोहन करने योग्य अन्न तथा अन्तरिक्ष से दोहन करने योग्य वृष्टि का जल भी वर्ष मे एक ही वार होता है। (अन्यः) दूसरा जो होता भी है वह (न अनु जायते) उसके समान नहीं पैदा होता। उससे न्यून गुण वाला ही होता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष एक ही वार अभिषिक्त हो, भूमि भी उसको एक वार ही वरले। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४९]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, ११ त्रिष्टुप् । ५, ६, ६, १३ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १२ विराट्त्रिष्टुप् । २, १४ स्वराट् पांक्तिः । ७ ब्राह्मचुष्णिक् । १५ अतिजगती । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः॥१॥

भा०—(सुव्रतं) उत्तम व्रत, धारण करने वाले, उत्तमकर्मा, (जनं) उत्पन्न बालक, शिष्य वा प्रजाजन को (नव्यसीभि॰ गीर्भि॰) नयी से नयी, अति उत्तम विद्याओं वा वाणियों से (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) सुख प्रदान करते हुए स्नेहयुक्त और कुपथ से वारण करने वाले मित्र, वरुण, अध्यापक और उपदेशक एवं मित्र और वरुण, ब्राह्मण और क्षत्रिय जन, दोनों की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, संकटों का वारण करने वाला, (मित्रः) स्नेही वा प्रजा को मरण से बचाने वाला, (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष, तीनों ही (सु-क्षत्रासः) उत्तम, वीर्य, क्षात्रबल और धन से युक्त है। (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते इह) वे यहां हमारे प्रार्थना वचन (श्रुवन्तु) श्रवण करें।

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

भा०—(विशः विशः) प्रत्येक प्रजा में (ईड्यम्) स्तुति योग्य, (अध्वरेषु) हिंसारहित, अविनाश योग्य, स्थायी कार्य-व्यवहारों में, (अदृप्त-क्रतुम्) बुद्धि में मोहित न होने वाला, कर्म करने पर गर्व रहित, (युवत्योः) युवा युवति दोनों के बीच (दिव॰) अति कमनीय, तेजस्विनी, एक पुत्र की कामना करने वाली स्त्री और (सहसः) बलवान् पुरुष दोनों के (सूनुम्) पुत्र (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (अरतिम्)

विषय में न रमने वाले, जितेन्द्रिय, (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ के परस्पर संगति, लेन देन के व्यवहार के ज्ञापक, प्रमुख चिह्न रूप और (अरुषं) रोष रहित, सौम्य पुरुष को (यजध्यै) आदर सत्कार करने के लिये उसकी स्तुति करूं।

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३॥

भा०—(अरुपस्य) जिस प्रकार अति प्रदीप्त सूर्य के (दुहितरा) पुत्र पुत्रियों के समान (विरूपे) एक दूसरे से भिन्न रूप के होकर भी उनमे से (अन्या) एक (स्तृभिः पिपिशे) नक्षत्रो से सुशोभित होती है, और (अन्या सूरः) दूसरे को सूर्य प्रकाशित करता है, वे दोनो जिस प्रकार (मिथः-तुरा) परस्पर मिलने को त्वरावान् होते हुए (पावके) अति पवित्र रूप होकर (वि-चरन्ती) विविध रूप में गति करते हुए रहते है उसी प्रकार (अरुपस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञानवान् आचार्य के (दुहितरा) ज्ञान का अच्छी प्रकार दोहन करने वाले, शिष्य शिष्या, (वि रूपे) भिन्न २ कान्तियो वाले, स्त्री पुरुष हों, उनमें से (अन्या) एक (स्तृभि) नाना आच्छादक वस्त्रों से (पिपिशे) सजे (अन्या सूरः) अन्य स्वयं सूर्यवत् तेजस्वी कान्तिमान् हों। वे दोनों (पावके) अति पवित्र आचारवान् होकर (मिथः-तुरा) एक दूसरे से मिलने के लिये अति त्वरावान् अति उत्सुक (वि-चरन्ती) विविध व्रतादि का आचरण करते हुए हों। वे दोनों (ऋच्यमाने) स्तुति योग्य होते हुए (श्रुतं मन्म) श्रवण किये गये, मनन योग्य ज्ञान को (नक्षतः) सदा प्राप्त हों। अथवा—(पावके (मिथस्तुरा विचरन्ती) पावक, पापशोधक अग्नि की साक्ष्य मे परस्पर उत्सुक होकर विविध व्रत, प्रतिज्ञादि करते हुए, (श्रुतं मन्म) वेदोपदिष्ट ज्ञान कर्म का आचरण करें।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥

भा०—(मनीषा वायुम्) जिस प्रकार बुद्धि या मति, चित्त की वृत्ति ज्ञान या चेतनायुक्त आत्मा को प्राप्त होती है उसी प्रकार (बृहती मनीषा) बड़ी, बुद्धिमती, मन की प्रबल इच्छा वाली स्त्री (बृहद्-रयि) बड़े ऐश्वर्य युक्त, (विश्व-वार) सब प्रकार से वरण करने योग्य (रथ-प्राम्) रथ से आने वाले (वायुम्) वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय पुरुष को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र इयक्षति) प्राप्त हो । हे (प्र-यज्यो) उत्तम सम्बन्ध मे बंधने हारे पुरुष ! तू (कविः) विद्वान् और (द्युतद्-यामा) चमचमाते रथ वाला, (नियुतः) तेरे साथ सब प्रकार से मिलने वाली स्त्री का (पत्यमानः) पति होना चाहता हुआ तू (कविम्) विदुषी, बुद्धिमती स्त्री को (प्र इयक्षसि) अच्छी प्रकार प्राप्त कर । (२) योगी पक्ष मे—(बृहती मनीषा) बड़ा भारी ज्ञान, उस (बृहद्रयिं विश्ववारं रथ-प्राम्) महान् ऐश्वर्यवान् सर्व वरणीय ब्रह्माण्ड मे व्यापक प्रभु को प्राप्त है । हे (प्र-यज्यो) उत्तम ईश्वरोपासक ! तू विद्वान् होकर (द्युतद्-यामा) यम नियमों द्वारा तेजस्वी होकर (नियुतः पत्यमानः) इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय होकर तू (कविम्) उत्त क्रान्तप्रज्ञ प्रभु की ही (प्र यक्षसि) अच्छी प्रकार उपासना किया कर ।

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥४॥

भा०—(यत् रथः) जो रमणीय, सुखजनक व्यवहार (वि-रुक्मान्) विविध रुचियों से समृद्ध, (मनसा युजानः) चित्त से जुड़ने वाला है (येन) जिससे (नरा) स्त्री और पुरुष दोनों (न-असत्या) कभी परस्पर असत्याचरण न करते हुए वा नासिका अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हुए, (तनयाय त्मने च) पुत्र लाभ और अपने जीवन या

आत्मा के हितार्थ (वर्त्तिः याथः) जीवन-मार्ग व्यतीत करते है वह (विरुक्मान् रथः) विशेष कान्तिमान् रथ के समान आश्रय (मे वपु च्छदयन्) मेरे शरीर को आश्रय, वल देता हुआ उसकी रक्षा करे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्य-वाता वृषभा) पर्जन्य अर्थात् मेघ को लाने वाले और वर्षा करने वाले दो प्रकार के सूर्य वायु या मेघ और वायु दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के लिये (अप्यानि पुरीषाणि जिन्वतः) समुद्र के जलों को लाते हैं उसी प्रकार हे (वृषभा) वीर्य सेचन मे समर्थ, नर-श्रेष्ठ, वलवान् स्त्री पुरुषो ! और (पर्जन्य-वाता) मेघ वायु के समान सुखवर्षक और प्राणवत् प्रिय ! आप दोनो (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर उत्पन्न (अप्यानि) जलो से उत्पन्न (पुरीषाणि) नाना ऐश्वर्यों को (जिन्वतम्) प्राप्त करो। हे (कवयः) विद्वान् लोगो ! (यस्य सत्य-श्रुतः) सत्योपदेश का श्रवण करने वाले जिस विद्वान् की (गीर्भिः) वाणियो से (जगतः) जंगम संसार का और (स्थातः) स्थावर ससार का भी ज्ञान होता है आप लोग उसके (आ) अधीन ही (जगत्) इस जंगम संसार को (कृणुध्वम्) करो।

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

भा०—(पावीरवी) आचारादि को पवित्र करने वाली, (कन्या) कान्तिमती, कन्या (चित्रायुः) आश्चर्यजनक आगमन, वा जीवन वाली, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त, (वीरपत्नी) वीर पुरुष की स्त्री, (ग्नाभिः) वेद वाणियों से (धियं धात्) यज्ञ आदि कर्म करे। वह (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (गृणते) मुझे स्तुति करने वाले को (दुराधर्षं) दृढ (शरणं) गृह और (शर्म) सुख (यंसत्) प्रदान करे।

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥

भा०—(पूषा) सबका पोषण करने वाला पोषक, सहायक जन, (कामेन कृतः) अपनी कामना से प्रेरित होकर (वचस्या) उत्तम वचन युक्त वाणी से (पथः-पथः) प्रत्येक मार्ग मे (परिपतिं अर्कम् अभ्यानड्) पालक स्वामी से प्राप्त होने वाले अन्न वा आदर योग्य पद को प्राप्त करे। (सः) वह (नः) हमे (चन्द्राग्राः) आह्लादजनक वचनो और स्वर्णादि पदार्थों सहित (शुरुधः = आशु-रुधः, शुग्-रुधः) अति शीघ्र हृदय को पापादि प्रवृत्तियो को रोकने वाली वा शोकादि की नाशक वाणियो का (रासत्) उपदेश करे, और वह (धियं-धियं) प्रत्येक कार्य और प्रत्येक ज्ञान को (प्र सीसधाति) अच्छी प्रकार करे।

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥

भा०—(होता) दानशील (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् (वि-भा-वा) विशेष कान्तिमान्, होकर भी (प्रथम-भाजं) प्रथम, पूज्यो का सेवन करने वाले, (यशसं) यशस्वी, (वयोधां) बल, ज्ञान, दीर्घायु के धारण करने कराने वाले, (सुपाणि) उत्तम हाथ वाले, उत्तम व्यवहारवान् (देवम्) दानशील, ज्ञानदाता, (सु-गभस्तिम्) सूर्यवत् उत्तम बाहु वाले और उत्तम किरणवान्, सुप्रकाशक, (ऋभ्वम्) अति तेजस्वी, सत्य ज्ञान से युक्त (यजतं) सत्सग योग्य, (त्वष्टारं) संशयादि के छेत्ता, सूर्यवत प्रकाशक (पस्त्यानां) गृहो, वा प्रजाओ के बीच (सु-हवं) सुगृहीत नामधेय गुरजन का (यक्षत) सत्कार करे और उत्तम भेट अन्न आदि प्रदान करे। स्नातक गृह मे प्रवेश कर लेने या स्वय जगत मे उच्च पदस्थ होकर भी गुरजन व प्रभु का सदा आदर और उसकी उपासना, करता रहे।

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्य (आभिः गीर्भिः) इन नाना वाणियों से (भुवनस्य पितरं) समस्त संसार के पालक (रुद्रं) रोगों, दुःखों को दूर करने वाले, प्रभु परमेश्वर को (दिवा) दिन के समय और उसी (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले प्रभु को (अक्तौ) रात्रि के समय भी (वर्धय) सदा बढ़ा, सदा उसकी स्तुति कर । और हम (कविना) विद्वान् पुरुष द्वारा (इषितासः) प्रेरित होकर (बृहन्तम्) महान् (ऋष्वम्) दर्शनीय (अजरम्) अविनाशी, (सु-सुम्नम्) उत्तम सुखमय प्रभु को ही (ऋधक् हुवेम) सत्य स्वरूप मे स्तुति किया करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ११

भा०—(अङ्गिरस्वत् मरुतः चित् अचित्रं जिन्वन्ति) दीप्ति युक्त किरणों के समान वायुगण जिस प्रकार नाना ओषधि आदि से रहित क्षेत्र को जल बरसा कर तृप्त करते हैं उसी प्रकार हे (युवानः कवयः) युवा विद्वान् पुरुषो ! हे (नरः) नेता जनो ! आप लोग भी (अंगिरस्वत्) अग्नियों, किरणों या प्राणों के तुल्य (नक्षन्तः) स्थान २ पर जाते हुए (अचित्रं हि जिन्वथ) साधारण जन को ज्ञान से तृप्त करो और (वृधन्तः) बढ़ते, बढ़ाते हुए. (यज्ञियासः) उत्तम आदर सत्कार के योग्य होकर (गृणतः) उपदेश करने वाले पुरुष की (वरस्यां) उत्तम वाणी को (गन्त) ग्रहण करो ।

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥

भा०—(पशुरक्षिः अस्तम् यूथा इव) पशुओं की रक्षा करने वाला,

पशुपालक जिस प्रकार अपने पशुओ के रेवडो को अपने घर को हांक ले जाता है उसी प्रकार तू (वीराय) वीर, विविध विद्या के दाता, (तवसे) बलवान्, (तुराय) शत्रु हिसक पुरुष के लिये (प्र अर्ज) स्तुतिये प्रकट कर, वा (यूथा प्र अज) जन समूहो को उत्तम मार्ग मे चल । (नाकं स्तृभि· न) अन्तरिक्ष जिस प्रकार नक्षत्रो से मण्डित होता है उसी प्रकार (सः विप·) वह विद्वान् भी (श्रुतस्य) श्रवण करने योग्य (तन्वि स्तृभिः) शरीर पर उत्तम आच्छादक वस्त्रो से सुशोभित होकर (श्रुतस्य वचनस्य) श्रवण योग्य, उत्तम वचन का (पिस्पृशति) निरन्तर श्रवण किया करे ।

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३तना च ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (बाधिताय मनवे) कर्म बन्धनो से पीडित मनुष्य के मनन, ज्ञान वाले, चेतना से युक्त जीवगण के उपकार के लिये (त्रिः चित् पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव आदि लोक (वि ममे) विरचता है, हे प्रभो ! (तस्य ते) उस तेरे (उपदद्य माने) दिये गये (शर्मन्) सुख, शरण मे हम (तना) विस्तृत (राया) ऐश्वर्य और (तन्वा) शरीर से (मदेम) सुखी हो ।

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥

भा०—(बुध्न्य· अहि) अन्तरिक्ष मे उत्पन्न मेघ और (पर्वत·) पालन पूर्ण करने वाला मेघ, वा पर्वत (सविता) और सूर्य (न) हमे (तत् तत् तत्) नाना प्रकार का (चनः) अन्न (अद्भिः) जलो और (अर्कै·) सूर्य किरणो सहित (धात्) प्रदान करे । (तत्) वह

(राति-साचः) दानशील पुरुष (भगः) ऐश्वर्यवान्, और (पुरन्धिः) जगत् को एक पुर के समान धारण करने वाला प्रभु वा (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा (वनः) अन्न को (अभि जिन्वतु) खूब वृद्धि करे और (राये प्रजिन्व) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये अन्न को खूब बढ़ावें ।

नू नो॑ र॒यिं र॒थ्यं॑ चर्षणि॒प्रां पु॑रु॒वीरं॑ म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पाम् ।
क्षयं॑ दाता॒जरं॒ येन॒ जना॒न्त्स्पृधो॒ अदे॑वीर॒भि च॒ क्रमा॑म॒
विश॒ आदे॑वीर॒भ्य१॒॑श्नवा॑म ॥ १५ ॥ ७ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (नः) हमें (रथ्यं) रथ आदि के योग्य (चर्षणिप्राम्) मनुष्यों को पूर्ण करने वाले (पुरुवीरं) बहुत से वीर पुरुषों से युक्त, (महः ऋतस्य) बड़े धनैश्वर्य के (गोपाम्) रक्षक (अजरं) अविनाशी (क्षयं) गृह, दुर्ग (नः) हमें (दात) प्रदान करो, (येन) जिससे हम (स्पृधः जनान्) स्पर्धा करने वाले मनुष्यो को और (अदेवीः) देव अर्थात् शुभ गुणों और उत्तम मनुष्यो से रहित दुष्ट प्रजाओं को (अभि क्रमाम) पराजित करें और (अदेवीः) सब प्रकार से उत्तम गुणो से युक्त शुभ प्रजाओ को (अभि अश्नवाम) प्राप्त करें । इति सप्तमो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५०]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, १३ विराट्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ९ पंक्ति । १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५ निचृत्पङ्क्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

हु॒वे वो॑ दे॒वीमदि॑तिं॒ नमो॑भिर्मृळी॒काय॒ वरु॑णं मि॒त्रम॒ग्निम् ।
अ॒भि॒क्ष॒दाम॑र्य॒मणं॑ सु॒शेवं॑ त्रा॒तॄन्दे॒वान्त्स॑वि॒तारं॒ भगं॑ च ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो मैं (वः) आप लोगों के (मृडीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) अदीन, अपराधीन, स्वतन्त्र, अखण्डित चरित्र वाली ब्रह्मचारिणी (देवीम्) तेजस्विनी स्त्री को (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (हुवे) अपने यहां बुलाऊं, निमन्त्रित करूं। इसी प्रकार (वरुण) दुःखों, कष्टों को वारण करने वाले (मित्रम्) स्नेहवान्, सुहृद्, (अग्निम्)अग्रणी,तेजस्वी,ज्ञानी,(अभिक्ष-दाम्,अभि-क्षदाम् = अभिक्षदाम्) कुपात्र में भिक्षा न देने वाले वा शत्रुओं को उनके मुकाबले पर मारने वाले, (अर्यमण) शत्रुओं को नियम में बांधने वाले, न्यायकारी, (सु-शेव) उत्तम सुखदाता, (सवितार) सूर्यवत् तेजस्वी और उत्पादक पिता, माता, गुरु, और (भगं) सेवने योग्य ऐश्वर्यवान् पुरुष और (त्रातॄन् देवान्) पालक वीरजन और व्यवहार कुशल पुरुष को भी मैं (नमोभिः हुवे) आदर युक्त वचनों और सत्कारों से बुलाऊं।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान्।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्ववन्तो यजता अग्निजिह्वाः॥२॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (सु-महः) उत्तम तेज युक्त (दक्ष-पितॄन्) दाहक सामर्थ्य, ताप से युक्त (सु-ज्योतिषः) उत्तम कान्तियुक्त (देवान्) किरणों को प्राप्त है उसी प्रकार हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! तू भी (सु-ज्योतिष) उत्तम ज्ञान प्रकाश से युक्त, (दक्ष-पितॄन्) चतुर माता पिता और गुरुजनों (देवान्) ज्ञान, धन, अन्न, वस्त्रादि के दाता (स-महः) उत्तम उन पूजनीय पुरुषों को तू (अनागास्त्वे) अपराध और पाप से मुक्त होने के लिये (वीहि) प्राप्त हो (ये) जो (द्वि-जन्मानः) माता पिता और गुरु द्वारा जो जन्म प्राप्त होकर द्विज, हों, (ऋत-सापः) सत्य वचन और ज्ञान में सम्बन्ध बनाने वाले, सत्यवादी (सत्याः) सत्य कर्मा, (यजता) सत्संग योग्य, दानी, और (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि के समान वाणी द्वारा यथार्थ बात को प्रका-

शित करने वाले और (स्वर्वन्तः) सुख और उत्तम उपदेशमय ज्ञान को धारण करने वाले है ।

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी या आकाश और पृथिवी के समान प्रजा और राजा तथा माता पिता जनो ! आप दोनों (उरु क्षत्रम् करथः) बहुत बड़ा बल उत्पन्न करो । हे (रोदसी) एक दूसरे का सन्मार्ग वा धर्म मर्यादा मे रोकने वा बांधने वाले स्त्री पुरुषो ! हे (सु-सुम्ने) सुख से रहने वालो ! आप दोनो (बृहत् शरणं) बडा गृह (करथः) बनाओ । हे (धिषणे) धारण पोषण करने वाले जनो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (यथा महः वरिव. करथः) जिस प्रकार बडा भारी धन और सेवादि करते है उसी प्रकार (नः क्षयाय) हमारे रहने के लिये (अनेहः) पाप हत्यादि से रहित गृह, राज्य प्रबन्धादि करो ।

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥

भा०—(यत् ईम्) जो कोई (अर्भे महति वा) छोटे वा बडे कार्य वा पद पर (हितासः) नियुक्त है ऐसे (रुद्रस्य सूनव·) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के अधीन चलने वाले, उसके पुत्रवत् आज्ञापालक (वसवः) राष्ट्र मे बसे और अन्यो को बसाने वाले, (अधृष्टाः) अप्रगल्भ, विनीत है, वे (अद्य) आज (नः आ नमन्ताम्) हमे विनयपूर्वक प्राप्त हो । हम उन (देवान्) विद्वान् वा विजयेच्छुक (मरुतः) मनुष्यों को (बाधे) संग्राम, वा पीडा दुःखादि के अवसर पर (अह्वाम) बुलाया करे । वे हमें उस कष्ट से पार करे ।

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥८॥

भा०—जिस प्रकार (पूषा मरुत्सु देवी रोदसी मिम्यक्ष सिपक्ति च) सूर्य वायुओं के आश्रय पर ही आकाश और पृथिवी दोनो को वृष्टि आदि से सींचता है, उसी प्रकार (येषु) जिन विद्वानो और वीर पुरुषों का आश्रय लेकर (अभ्यर्ध-यज्वा) अपना उत्तम समृद्ध भाग देने वाला, (पूषा) प्रजा-पालक राजा (रोदसी देवी) रुद्र, दुष्टों के रुलाने वाले राजा वा सेनापति को विजयशील और सर्व सुखदात्री, सेना और प्रजा दोनो (मिम्यक्ष) ऐश्वर्य का सेचन करता, और (सिपक्ति) दोनो को परस्पर मिलाये रखता है, और (यत् ह) जो (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुष (प्र-विक्ते) अच्छी प्रकार से निर्णय किये गये, विवेचित (अध्वनि) मार्ग में (रेजन्ते) गमन करते हैं हे मनुष्यो ! (भूमौ) इस भूमि पर आप उनका (हवं श्रुत्वा) उपदेश श्रवण करके ही (याथ) सन्मार्ग पर चलो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

अ॒भि त्यं वी॒रं गिर्व॑णसम॒र्चेन्द्रं॒ ब्रह्म॑णा जरित॒र्नवे॑न ।
श्रव॒दिद्धव॒मुप॑ च॒ स्तवा॑नो॒ रास॒द्वाजाँ॒ उप॑ म॒हो गृ॑णा॒नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (जरितः) उपदेश करने वाले विद्वन् ! जो (गृणानः) उपदेश करता हुआ (महः वाजान् उप रासत्) बड़े २ उत्तम ज्ञानों का उपदेश करता और (स्तवानः) स्तुति का उपदेश किया जाता हुआ (त्यम्) उस ग्राह्य ज्ञान का (उप श्रवत् च) गुरु के समीप श्रवण भी करता है (त्यं वीरम्) उस वीर, विविध विद्या के उपदेष्टा, (गिर्वणसं) वाणियों के प्रदाता, (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानद्रष्टा आचार्य को (नवेन ब्रह्मणा) नये, नव उत्पन्न अन्न और धन से प्रथम विद्वान् उपदेष्टा गुरु की अर्चना करनी चाहिये । वे विद्वान् ज्ञान का उपदेश किया करें ।

ओमा॑नमापो मानुषी॒रमृ॑क्तं॒ धात॑ तो॒काय॒ तन॑याय॒ शं योः ।
यू॒यं हि ष्ठा भि॒षजो॑ मा॒तृत॑मा॒ विश्व॑स्य स्था॒तुर्जग॑तो॒ जनि॑त्रीः ॥ ७ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनो ! आप लोग (ओमानं) रक्षा आदि

करने वाले, पुरुष को और (मानुषीः) मनुष्य प्रजा और (अमृक्तं) अशुद्ध जन को भी जलवत् स्वच्छ करके (धात) धारण पोषण करो। और (तोकाय तनयाय) छोटी उमर वाले पुत्र के लिये मातावत् (शं) शान्ति प्रदान और दुःख दूर करो। (यूयं) आप लोग (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः) स्थावर और जंगम दोनों की (जनित्रीः) पैदा करने वाली (मातृतमाः) उत्तम माताओं के समान (भिषजः स्थ) सब रोगों को दूर करने वाले होओ। जल जिस प्रकार स्थावर और वृक्षादि जंगम जीवों को उत्पन्न करते और सर्व रोग हरते, शान्ति देते, पीड़ा हरते अशुद्ध को स्वच्छ करते अन्न को बढ़ाते और उत्तम माता के समान हैं। उसी प्रकार आप्त जन वैद्यवर, और माताएं स्त्रियें भी, रक्षक को बचावे, अशुद्ध को शुद्ध करें, पुत्रों को शान्ति दें, उत्तम सन्तान और अन्य वनस्पति आदि को उत्पन्न करें। ज्ञानवान् प्रमाता होने से विद्वान् 'मातृतम' है। स्थावर जंगम सबका ज्ञान प्रकट करने वा विज्ञानपूर्वक उत्पन्न करने से दोनों के 'जनित्री' हैं।

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात्। यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

भा०—(देवः) ज्ञान और धन का देने वाला, (सविता) पितावत् उत्पादक सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रायमाणः) प्रजा की रक्षा करने वाला, (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण आदि धन को अपने हाथ में रखने वाला, (यजतः) पूज्य पुरुष (नः आजगम्यात्) हमें प्राप्त हो। (यः) जो (दत्रवान्) दान योग्य धन का स्वामी, सूर्य के समान (उषसः प्रतीकं न) प्रभात वेला के समान प्रतीति-कर वचन तथा (वार्याणि) उत्तम धन और ज्ञान भी (दाशुषे) आत्मसमर्पक प्रजाजन को (वि उर्णुते) प्रकट करता है।

उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) शत्रु को पराजय करने में समर्थ, सैन्य बल के संचालक ! बलवान् पिता के शिष्य वा पुत्र ! (त्वं) तू (अद्य) आज (अस्मिन् अध्वरे) इस हिंसारहित प्रजापालनादि कार्य मे (देवान्) उत्तम गुणो वा पुरुषों को (नः आववृत्याः) हमे प्राप्त करा । (उत) और मैं (सदम्) सदा, वा (सदम्) प्राप्त करने योग्य अंश को प्राप्त करके (ते रातौ स्याम्) तेरी दी वृत्ति के अधीन रहूं और (तव अवसा) तेरी रक्षा और अन्नादि से हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सुवीरः स्याम्) उत्तम वीर, और उत्तम सन्तानयुक्त होऊं ।

उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१०॥९॥

भा०—(उत) और (अङ्ग) हे (नासत्या) असत्याचरण करने वाले, सत्य मार्ग पर सबको लेजाने हारे (विप्रा) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (त्या युवम्) वे आप दोनों (मे) मेरे (हवम्) ग्राह्य पदार्थ, वचन अन्नादि को (जग्म्यातम्) प्राप्त करो । (अत्रिं न) सूर्य चन्द्र दोनों जिस प्रकार (अत्रि) इस लोक में रहने वाले जनों को (महः तमसः मोचयत) बड़े अन्धकार से मुक्त करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (अत्रि) इस लोक या स्थान में विद्यमान मनको (महः तमसः) बड़े अज्ञान रूप अन्धकार से और (दुरितात्) दुष्ट अधर्माचरण से भी (अमुमुक्तम्) सदा छुटाते रहो । हे (नरा) उत्तम नर नारियो ! उत्तम मार्ग में ले जाने हारे आप दानो (अभीके) सदा समीप रह कर (तूर्वतम्) दुष्ट जन वा दुर्गुणों का नाश करो । इति नवमो वर्गः ॥

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ११

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमे (द्युमतः) दीप्तियुक्त, (वाजवतः) बलयुक्त, (नृवतः) उत्तम भृत्यादि वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत से अन्नादि से सम्पन्न (रायः) धन ऐश्वर्य के (दातारः भूत) देने वाले होवो। आप लोग (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी, (गो जाताः) वाणी के प्रसिद्ध, विद्वान्, (अप्याः) जलादि विद्या के ज्ञाता वा भूमि, अन्तरिक्ष और जलों की विद्या मे निष्णात होकर (दशस्यन्तः) ज्ञान प्रदान करते हुए (नः) हम सबको (मृडत) सुखी करो।

ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः॥१२॥

भा०—(रुद्रः) दुष्ट पुरुषो को दण्ड देने वाला, राजा और उपदेश देने वाला विद्वान् और रोगो को दूर करने वाला वैद्य, (सरस्वती) उत्तम विज्ञानवती वेदवाणी और विदुषी स्त्री, (सजोषाः) प्रीतियुक्त मित्रजन, (विष्णुः)व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष, (वायु) वायुवत् बलवान् और ज्ञानी पुरुष (ऋभुक्षाः) विद्वान्, (दैव्यः) विद्वानों से नियुक्त (विधाता) विधानकर्त्ता, (पर्जन्य-वाता) मेघ और वायु के समान, विजयशील और बलवान् पुरुष ये सभी (मीढुष्मन्तः) उत्तम सेचन करने वाले, प्रजा को बढाने वाले गुणो से युक्त होकर (नः) हमे (मृडयन्तु) सुखी करें। और (नः इषं) हमारे अन्न की वृद्धि करे। (२) (रुद्रः) अग्नि, (सरस्वती) नदी, (विष्णुः) सूर्य, (वायुः) वायु, (ऋभुक्षाः) महान् (वाजः) बलवान् (दैव्य विधाता) देव, किरणों का, प्रकाशों का कर्त्ता सूर्य और (पर्जन्यवाता) मेघ और प्रबल वात सब हमारे राष्ट्र में अन्न उत्पन्न करे।

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः॥१३॥

भा०—(उत) और (स्यः देवः) वह तेजस्वी (सविता) सूर्य और सूर्यवत् तेजस्वी और (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (अपां नपात्) जलों के बीच विद्यमान, उनमें से ही उत्पन्न, न गिरने वाला अग्नि, विद्युत्, (पप्रिः) सबको पूर्ण और पालन करने वाला, (त्वष्टा) तेजस्वी, (देवेभिः) दिव्य गुणों उत्तम पुरुषों और (जनिभिः) जन्मयुक्त प्राणियों सहित, (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (देवेभिः) किरणवत् तेजस्वी पुरुषों सहित, (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रों सहित पृथिवी, ये सब (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः दानु) हमारे देने योग्य पदार्थ की (अवतु) रक्षा करे।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु १४

भा०—(उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न हुआ मेघ, और (बुध्न्यः) आश्रय करने और प्रजाजन को सुप्रबन्ध में बांधने वाला (अहिः) अहिंसनीय, बलवान् पुरुष, (अजः एक-पात) न कभी उत्पन्न होने वाला और एकमात्र अद्वितीय होकर समस्त जगत् में व्यापक, एक मात्र स्वयं समस्त जगत् का चरणवत् आश्रय रूप परमेश्वर और (अजः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और राज्य कार्यों को सञ्चालन करने वाला (एक पात्) एकमात्र चरणवत् राष्ट्र का आश्रय, प्रधान पुरुष, राजा, (पृथिवी) यह मातृ भूमि और (समुद्रः) समुद्र, अथवा पृथिवी के समान विशाल और समुद्र के समान गम्भीर और (ऋत-वृधः) सत्य, अन्न, तेज, यज्ञ और धनादि में बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले, (स्तुताः) स्तुति योग्य, (कविशस्ताः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्तुति या शिक्षाप्राप्त, (मन्त्राः) मननशील, उत्तम मन्त्र को देने वाले, विद्वान् या वेद के मन्त्र और उत्तम विचार सभी (हुवानाः) हम से बुलाये गये या

आदरपूर्वक हमे बुलाने हारे (विश्वेदेवाः) सभी उत्तम मनुष्य (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें, हमें ज्ञान दें, अन्नादि से तृप्त और सन्तुष्ट करें।

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्नाहुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥१०॥

भा०—(एव) इस प्रकार जो (नपातः) प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने और स्वयं भी धर्म-मार्ग से न गिरने वाले, (भरद्-वाजाः) ज्ञान और बल को धारण करने वाले, (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों से और (अर्कैः) अन्नो द्वारा (अभि अर्चन्ति) आदर सत्कार करते है और (हुतासः) आदरपूर्वक आमन्त्रित, (अधृष्टाः) विनीत, (यजत्राः) दान शील, (विश्वे वसवः) सब राष्ट्रवासी जन और (ग्नाः) उत्तम स्त्रियां भी वे (स्तुतासः भूत) प्रशंसित हो । वे (ग्नाः अभ्यर्चन्ति) स्त्रियों और उत्तम ज्ञानप्रद वाणियों का आदर किया करें । इति दशमो वर्गः ॥

[५१]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ४, ६, ९ स्वराट्पंक्तिः । १३, १४, १५ निचृदुष्णिक् । १६ निचृदनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (मित्रयोः वरुणयोः महि चक्षुः ऋतस्य दर्शतम्, अनीकं, दिवः रुक्मन्, उदिता वि अद्यौत्) मित्र, दिन, वरुण रात्रि इन दोनों मे वह बड़ा, नेत्रवत् सूर्य प्रकाश दिखाने वाले मुख के समान और आकाश के स्वर्ण के समान, उदय काल में विशेष रूप से चमकता है उसी प्रकार (मित्रयोः) एक दूसरे को सदा प्रेम करने वाले (वर-

णयोः) एक दूसरं का परस्पर वरण करने वाले, उत्तम वर वधू, दोनो की (त्यत्) वह (महि) बडी, (प्रियं चक्षुः) प्रिय, एक दूसरे को तृप्त और प्रसन्न करने वाली आंख (अदब्धम्) एक दूसरे से अहिंसित, अर्थात् अपीड़ित होकर विना बाधा के (एति) एक दूसरे को प्राप्त हो। वे दोनो सदा परस्पर प्रेम, आदर, उत्सुकता और निःसंकोच भाव से देखा करे। वह (दर्शतम्) देखने योग्य वा (ऋतस्य दर्शतम्) सत्य ज्ञान को दिखाने वाली, (शुचि) पवित्र, निर्मल, निष्पाप, (अनीकम्) मुखवत् दर्शनीय, सैन्यवत् एक दूसरे का विजय करने वाली, चक्षु भी, (दिवः रुक्मः न) मानो कामनायुक्त कामिनी का स्वर्णमय आभूषण हो, ऐसे (दिवः) कामना करने वाली स्त्री के (उदिता) उद्गमन काल में (रुक्मः) रुचि अर्थात् अभिलाषाओ का ज्ञापक होकर (वि अद्यौत्) विविध भावो, विशेष सौहार्दों को प्रकट करे। अथवा—वह चक्षु, दर्शनीय शुद्ध पवित्र, मुख को आभूषणवत् प्रकाशित करे, इसी प्रकार परस्पर मित्र, और परस्पर के वरण करने वाले, अध्यापक शिष्य और राजा और प्रजावर्गों के आंखो मे स्नेह आदि सदा विद्यमान हो, वह विवेकपूर्ण, सत्यज्ञान और न्याय के पवित्र सुन्दर मुख को उज्ज्वल करे। इसी प्रकार सत्यासत्य को दिखाने वाले नेत्र के तुल्य वेदज्ञ पुरुष भी सब स्त्री पुरुषो को प्रिय, अहिंसित, पवित्र, भूमि का भूषणवत्, सूर्यवत् तेजस्वी हो।

वेद् यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्॥२॥

भा०—पूर्व सूचित विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन। (यः) जो (त्रीणि विदथानि) जानने और प्राप्त करने योग्य ज्ञान, कर्म और उपासना को (वेद) जानता है, और जो (विप्र.) विद्वान् मेधावी, (सनुत) सदा (देवानां) विद्वानों वा सूर्य चन्द्रादि लोकों के (जन्म) प्रकट होने

का तत्व (च) भी (वेद) जानता है वह (सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् (अर्यः) स्वामी के समान, (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच, उनके हितार्थ, (ऋजु) सरल, धर्म मार्ग को और (वृजिना च) वर्जन करने योग्य अशोभन पाप कर्मों को भी (पश्यन्) विवेक पूर्वक देखता हुआ समस्त (एवान्) प्राप्तव्य पदार्थों और जाने योग्य मार्गों को भी (अभि चष्टे) प्रकाशित करता है, देखता और अन्यों को उपदेश करता है इसी से वह (चष्टे इति चक्षुः) 'चक्षु' कहाता है।

स्तुष उ॑ वो म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पानदि॑तिं मि॒त्रं वरु॑णं सुजा॒तान्।
अ॒र्य॒मणं॒ भग॒मद॑ब्धधीती॒नच्छा॑ वोचे सध॒न्यः॑ पाव॒कान्॥३॥

भा०—(स-धन्यः) धन धान्य से सम्पन्न, एवं धन द्वारा सत्कार करने योग्य उत्तम जनों के सहित विद्यमान मैं, हे विद्वान् उत्तम पुरुषो! (वः) आप लोगों में से (ऋतस्य गोपान्) वेद, सत्य ज्ञान, न्याय, तेज, धन, और बल के रक्षा करने वाले (अदितिं) सूर्य, पृथ्वी के समान तेजस्वी माता पिता, पुत्रादि, (मित्रं) स्नेही, (वरुणं) संकटों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुओं को नियम में रखने वाले, (भगं) ऐश्वर्यवान्, (सु-जातान्) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, उत्तम सत्व, (अदब्ध-धीतीन्) जिनका अध्ययन, पठन पाठन नष्ट, विघ्नित न हो, ऐसे पूर्ण शिक्षित (पावकान्) अग्निवत् अन्यों को पवित्र करने वाले, इन सब (महः ऋतस्य गोपान्) बड़े श्रेष्ठ सत्य ज्ञान, और तेज के रक्षक, जनों को मैं (स्तुषे) उत्तम स्तुति और (अच्छ वोचे) उनके प्रति सदा उत्तम वचन कहूं।

रि॒शाद॑सः॒ सत्प॑ती॒रद॑ब्धान्म॒हो राज्ञः॑ सुवस॒नस्य॑ दा॒तॄन्।
यून॑: सुक्ष॒त्रान्क्षय॑तो दि॒वो नॄना॑दि॒त्यान्या॒म्यदि॑तिं दुवो॒यु॥४॥

भा०—(रिशादसः) जो हिंसकों का नाश करने वाले, (सत्पतीन्) सज्जनों के पालक, (अदब्धान्) स्वयं अन्यों से पीड़ित न होने और

अन्यों को पीड़ा न देने वाले, (महः) बड़े (राज्ञः) राजावत् स्वामी, (सु-वसनस्य) उत्तम वस्त्र, वा आश्रय के (दातॄन्) देने वाले, (यूनः) युवा, तरुण, (सु-क्षत्रात्) उत्तम बल, धन से युक्त, (क्षियतः) ऐश्वर्यवान्, एवं राष्ट्र मे बसने वाले, (दिवः) ज्ञान, प्रकाशक (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारी, सूर्यवत् तेजस्वी (नॄन्) नायक और (दुवोयु) परिचर्या या सेवा की कामना करने वाले पुरुषो को और (अदिति) अखण्डित, एवं अदीन, उदात्त स्वभाव के माता व पिता को (यामि) मैं प्राप्त होऊं और विनय से उनसे याचना करूं।

द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ५।११

भा०—हे (पितः द्यौः) आकाश वा सूर्य के समान विशाल तेजस्विन्! पालक पितः ! हे (मातः पृथिवि) माता पृथिवी ! हे (अध्रुक्) द्रोह रहित (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (भ्रातः) भाई ! हे (वसवः) बसे हुए प्रजाजनो ! आप लोग (नः) हमें (मृडत) सदा सुखी करो। हे (आदित्याः) आदित्यसम तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! (अदिते) हे मातः ! हे पितः ! वा हे अखण्ड शक्ते। आप (विश्वे) सब लोग (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (अस्मभ्यम्) हमें बहुत (शर्म) सुख (यन्त) प्रदान करो। इत्येकादशो वर्गः ॥

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६॥

भा०—हे (यजत्राः) दानशील और सत्संग योग्य पुरुषो ! आप लोग (नः) हमे (वृक्ये) चोरो के करने योग्य व्यवहार के निमित्त (समस्मै) सब प्रकार के (अघायते) हम पर पापाचरण करने की इच्छा करने वाले. (वृकाय) हिंसक, वृक या भेड़िये के समान चोर

डाकू स्वभाव के मनुष्य के लाभ के लिये (नः) हमे (मा रीरधत) हमे नष्ट मत करो। हमे उसके हितार्थ दण्डित मत करो और हमे उसके अधीन भी मत करो। (हि) क्योंकि आप लोग ((न तनूनां) हमारे शरीरो के भी (रथ्यः) रथ के नेता, सारथिवत् सन्मार्ग मे प्रयोग करने और लेजाने वाले (स्थ) हो, और (यूयं) तुम लोग सदा (दक्षस्य वचसः) उत्तम वचन के नेता वा प्रवर्त्तक भी (बभूव) हो।

मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र मे वसने वाले, विद्वान् पुरुषो! आप लोग अपने मे से भी (अन्यकृतं) किसी अन्य के किये (एनः) पाप या अपराध को हम सब (मा भुजेम) न भोगे। (यत्) जिसे आप लोग (चयध्वे) नाश करो, या रोको वह कर्म भी हम (मा कर्म) न करे। हे (विश्व-देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो! आप लोग (विश्वस्य हि क्षयथ) सब कार्यों के स्वामी हो। मनुष्य प्रायः स्वयं अपने आप भी (रिपुः) शत्रु होकर कभी २ (तन्वं) अपने शरीर का (रीरिषीष्ट) विनाश कर लेता है। इसलिये सावधान रहो कि कहीं हमी मे ऐसा न हो कि एक के किये से और दुःख पावें, और जो काम स्वयं बाद नष्ट करना पड़े, उसको कर बैठे। चयति समुच्चये हिंसायां च। क्षि निवासे ऐश्वर्ये च॥

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

भा०—(नमः इत्) 'नमस्' अर्थात् दुष्टों और सज्जनो का नमाने का उपाय बडा ही (उग्रं) बलशाली होना उचित है। मैं उसी (नम) विनय के साधन, दण्ड बल, या नमस्कार योग्य परब्रह्म का (आ विवासे) सेवन करूं। (नम) वही सबको वश करने वाला बल, सर्वनमस्य

परब्रह्म ही (पृथिवीम् उत द्याम् दाधार) पृथिवी और सूर्य दोनो को धारण कर रहा है। (देवेभ्यः नमः) विद्वानों, व्यवहारकर्त्ता, विजेताओ और द्यूतादि खेलने वाले लोग सबके लिये (नमः) उनको नमाने या वश करने वाला यह वज्र और विनय आदर का व्यवहार ही है। (नम) वह विनयशाली दण्ड या आदर ही (एषां) इन सब पर (ईशे) प्रभुत्व करता है। इनके (कृतं चित् एनः) किये हुए पाप को भी मैं (नमसा) विनय से वा दण्ड से ही (आ विवासे) दूर करने मे समर्थ होऊं।

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान्।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नृन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः॥९॥

भा०—हे (यजत्राः) न्याय, ज्ञान, और ऐश्वर्य को देने वालो! हे सत्संग और पूजा के योग्य पुरुषो! (रथ्यः) रथ को उत्तम मार्ग मे ले जाने मे उत्तम सारथि के समान गृहस्थ वा राष्ट्र का उत्तम नेता मैं (ऋतस्य) सत्य व्यवहार ज्ञान और न्याय के द्वारा (पूतदक्षान्) पवित्र कर्म करने वाले और (ऋतस्य) न्याय के ग्रहों मे विराजने वाले (अदब्धान्) अधर्म से लोभ, अन्यायाचरण आदि से अपीड़ित, (उरुचक्षसः) बड़े दूरदर्शी (विश्वान् वः नॄन्) समस्त उन आप (महः) बडे पूज्य लोगों को (नमोभिः) उत्तम विनय युक्त व्यवहारों से (आ नमे) नमता और नमाता हूं।

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः॥१०॥१२

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ, सबको पापो से निवारण करने वाला, (मित्र) सबका स्नेही, (अग्नि) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष, जो (ऋत-धीतयः) सत्य कर्म करने और सत्य शास्त्रों को पढने

वाले और (वक्मराजसत्याः) वचन में सदा सत्य से चमकने वाले, सदा सत्यभाषी और (सु-क्षत्रासः) उत्तम बलशाली है (ते हि) वे ही निश्चय से (श्रेष्ठ-वर्चसः) सर्वोत्तम तेज से युक्त होते है। (ते उ) वे ही (नरः) लोग (नः) हमारे (विश्वानि दुरितानि) सब बुरे आचरणों को (तिरः नयन्ति) दूर करते है। इति द्वादशो वर्गः ॥

ते न॒ इन्द्रः॑ पृथि॒वी क्षाम॑ वर्ध॑न्पूषा भगो॒ अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जनाः॑।
सु॒शर्मा॑णः॒ स्वव॑सः सु॒नीथा॒ भव॑न्तु नः सु॒त्रा॒त्रास॑ः सु॒गो॒पाः ११

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी ऐश्वर्यवान्, (पृथिवी) भूमि के समान सर्वाधार, (क्षाम) भूमि के समान ही क्षमावान् , (पूषा) सर्व-पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्व कल्याणकारी, (अदितिः) माता, पिता वा पुत्र अथवा अदीन शक्ति, (पञ्च जना.) पांचो जन, (सु-शर्म्माणः) उत्तम गृह वा उत्तम सुख, शरण देने वाले, (सु-भवसः) उत्तम रक्षा करने वाले (सु-नीथाः) उत्तम वाणी बोलने और उत्तम मार्ग से स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाले (भवन्तु) हो। और वे (न.) हमारे (सु-त्रात्रासः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाले और (सु-गोपाः) उत्तम रक्षक और भूमि पशुओं और इन्द्रियों के उत्तम भूमिपति पशुपाल, जितेन्द्रिय (भवन्तु) हों।

नू स॒द्मानं॑ दि॒व्यं नंशि॑ देवा॒ भार॑द्वाजः सुम॒तिं या॑ति॒ होता॑।
आ॒सा॒नेभि॒र्यज॑मानो मि॒येधै॑र्दे॒वानां॒ जन्म॑ वसू॒युर्व॑वन्द ॥ १२ ॥

भा०—हे (देवा) विद्वान्, प्रकाश के देने और लेने की कामना वाले गुरु शिष्य जनो ! जो (भारत्-वाजः) ज्ञान को धारण करने हारा और (होता) ज्ञान को अन्यों को दान करने वाला विद्वान् (सुमतिम् याति) उत्तम मतिमान् शिष्य को प्राप्त करता है वह (नु) मानो शीघ्र ही (दिव्यं सद्मानं) उत्तम प्रकाश योग्य गृह के समान (दिव्य) ज्ञान धारण करने योग्य विद्या के सत्पात्र, को (नंशि) प्राप्त कर लेता है।

वह (यजमान.) ज्ञान का दान करने वाला, (आसानेभिः) समीप बैठे हुए (मियेधै.) सत्संग करने वाले, विद्यार्थियो से सत्संग करता हुआ, (वसूयुः) अधीन बसने वाले वसु, ब्रह्मचारियो का प्रिय इच्छुक, स्वामी होकर (देवानां) विद्याभिलाषी जनो के (जन्म) विद्या जन्म का (ववन्द) उपदेश करता है। (२) शिष्य पक्ष मे—जो (भारद्वाजः) ज्ञान धारण करने वाला, तत्संग्रहीता, (होता) अपने को गुरु के अधीन सोपने और विद्या को ग्रहण करने वाला, जिज्ञासु (सुमतिं याति) उत्तम मतिमान, सुज्ञानी गुरु को जाता और उससे विद्या की याचना करता है वह नु शीघ्र ही, मानो (दिव्यं) दिव्य, उत्तम, (सद्मानं) गृह या भवन के समान विशाल शरण को (नंशि) प्राप्त करता है। वह (यजमानः) उनका आदर सत्कार, पूजा आदि करता हुआ (आसानेभिः मियेधैः) विराजने वाले सत्संगी, जनो द्वारा (वसूयुः) वसु होने की कामना युक्त होकर (देवानां जन्म) विद्वानो के बीच (जन्म) उपनयन द्वारा नवीन जन्म (नंशि) प्राप्त करे और (ववन्द) गुरुओं को नमस्कार किया करे।

अप॒ त्यं वृ॑जि॒नं रि॒पुं स्ते॒नम॑ग्ने दु॒राध्य॑म्।
द॒वि॒ष्ठम॑स्य सत्पते कृ॒धी सु॒गम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! आप (त्यं) उस (रिपुम्) पापवान्, शत्रु, (स्तेनम्) चोर, (दुराध्यम्) दुःख से वश में आने वाले (वृजिनं) मार्गवत् (दविष्टम्) दूर से दूर को भी, पैर रखकर जाने योग्य वा वर्जनीय शत्रु को (सुगं कृधि) सुगम कर। हे (सत्पते) सज्जनों के प्रतिपालक! तू (अस्य) इस प्रजाजन से उसे (अप कृधि) दूर कर।

ग्रावा॑णः सोम नो॒ हि कं॑ सखित्व॒नाय॑ वाव॒शुः।
ज॒ही न्य१॒॑त्रिणं॑ प॒णिं वृको॒ हि षः ॥ १४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्पादक पितावत् सर्वप्रेरक! अभिषेक योग्य

प्रजेश्वर ! (नः) हमारे बीच मे (ग्रावाणः) उत्तम शास्त्र के उपदेष्टा और शत्रुओ को कुचलने वाले वीर पुरुष लोग (हि) भी (सखित्व-नाय) मित्रता के निमित्त (कं) कर्त्ता पुरुष को (वावशुः) सदा चाहते है। हे राजन् ! विद्वन् ! तू (पणिन्) व्यवहारवान्, (अत्रि-णम्) मूल खा जाने वाले पुरुष को (नि जहि) अच्छी प्रकार दण्डित कर (हि) क्योंकि (सः वृकः हि) वह अवश्य वृक, अर्थात् चौर, वा भेड़िये के स्वभाव वाला, प्रजा को विविध प्रकार से काटने और दुःख देने वाला है।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) सुखपूर्वक ऐश्वर्यादि के दान करने वालो ! (यूयं) आप लोग (हि) निश्चय से (सु-दानवः) उत्तम, सुख, देने वाले, (अभि) सब प्रकार से तेजस्वी, और (इन्द्र-ज्येष्ठाः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को अपने मे सब से बड़ा मानने वाले (स्थ) होकर रहो। (नः) हमारे (अध्वन्) मार्ग को (सुगं) सुख से गमन करने योग्य (आ कर्त) करो। हे (गोपाः) भूमि और प्रजा के रक्षक जनो ! आप लोग (अमा) हमारे गृह को भी (सुगं कर्त्त) सुखदायक बनाओ।

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (स्वस्ति-गाम्) सुख से चलने योग्य और कल्याण-मय उद्देश्य को जाने वाले वा कल्याणकारी सुखदायक भूमि वाले (अने-हसम्) पापों, दुःखों और कष्टों से रहित (पन्थाम्) मार्ग को (अपि अगन्म) प्राप्त हों, (येन) जिसमे जाता हुआ मनुष्य (विश्वा द्विष) समस्त शत्रु सेनाओं को (परि वृणक्ति) दूर करने मे समर्थ होता है और (वसु विन्दते) ऐश्वर्य का लाभ करता है। (२) अध्यात्म मे परम गम्य

होने से प्रभु 'पन्था' है, वह सुख कल्याण मार्ग से गमन करने योग्य पाप-रहित है। हम उसको (अपि अगन्महि) अप्यय अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हों, जिससे भक्त जन सब द्वेष वृत्तियों को त्यागता और (वसु) सबमें वसे परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५२]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, १५, १६ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप्। ५ भुरिक्पंक्तिः। ७, ८, ११ गायत्री। ९, १०, १२ निचृद्गायत्री। १४ विराड्जगती ॥

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥

भा०—(अतियाजस्य) अत्यन्त दान का (यष्टा) देने वाला, उत्तम सत्संग और मान, पूजा, ईश्वरार्चना करने वाला पुरुष (तत्) वह (न दिवा नि हीयताम्) न सूर्यवत् तेजस्वी पद से गिर सकता है, (न पृथिव्या निहीयताम्) और न वह पृथिवी से त्यागा जा सकता है, अर्थात् समस्त दुनियां भी उसका साथ देती है। (अनु मन्ये) मैं तो बराबर इस बात को स्वीकार करता हूं कि वह (न यज्ञेन नि हीयताम्) न कभी यज्ञ से ही रहित होता है, (उत न) और न (शमीभिः नि हीयताम्) वह उत्तम सुखदायक कर्मों से ही रहित होता है, (तम्) उसके प्रति तो (सुभ्वः) उत्तम २ भूमियां, तद्वत् उत्तम भूमियों के स्वामी लोग और (पर्वतासः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् उत्पन्न जन भी विनम्र होजावें। अथवा—उसको (न उब्जन्तु) कभी विनाश न करें।

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात्।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

भा०—(यः वा) और जो हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमारे (क्रियमाणं) किये जाते हुए (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान, धन, अन्न आदि को (अति मन्यते) अतिक्रमण करे, (वा) अथवा (यः) जो उसकी (निनित्सात्) निन्दा करे (तस्मै) उसके लिये (तपूंषि) समस्त तप, और तापदायक अस्त्रादि (वृजिनानि) वर्जन करने वाले, बाधक रूप से (सन्तु) हों। (तं) उस (ब्रह्म-द्विषम्) ज्ञान, प्रभु, धन, अन्न आदि के द्वेषी पुरुष को (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वा व्यवहार, वा धनादि कामना, और (अभि शोचतु) सब ओर से शोक, दुःखी, व्यथित, करे।

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुंषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (सोम) ऐश्वर्य के चाहने वाले ! राजन् ! (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः) धन, वेद वाणी का रक्षक और बृहत् राष्ट्र आदि का (गोपाम्) रक्षक (किम् आहु.) क्यों कहते हैं ? (अङ्ग) हे राजन् ! (त्वा) तुझे (नः) हमारा (अभिशस्तिपाम्) निन्दा से बचाने वाला (किम्) क्यों (आहुः) कहते हैं ? (अङ्ग) हे राजन् ! प्रभो ! (नः) हमें (निद्यमानान्) निंदा का विषय बनाते हुए दुष्ट जनों का (किम् पश्यसि) क्या देखता है ? तू (ब्रह्म-द्विषे) वेद, धन और अन्नादि से द्वेष करने वाले को नाश करने के लिये (तपुषिम् हेतिम्) संतापदायक अस्त्र (अस्य) फेंक।

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥

भा०—(माम्) मुझको (जायमानाः) नित्य उत्तम गुणों वा प्रकाशों से प्रकट होने वाली प्रभात वेलाएं और शत्रु के दर्प को दाब करने

वाली सेनाएं, और मुझे चाहने वाली प्रजाएं (अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (पिन्वमानाः) सींचने वाली (सिन्धवः) वेगवती नदियें और बढ़ते समुद्र तथा, तृप्त होते हुए प्राणगण, और वेग से जाने वाले अश्व आदि (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (ध्रुवासः पर्वतासः) स्थिर रहने वाले पर्वत (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (देव-हूतौ) शुभ गुणों की प्राप्ति और विद्वानों की अर्चना तथा प्रभु की उपासना-काल में (पितरः) पालक जन गुरु माता पिता आदि सम्बन्धी तथा ऋतु गण, और ओषधि आदि पदार्थ, सभी (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें और मुझे प्राप्त हों।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥

भा०—(विश्व-दानीम्) सदा ही हम सब लोग (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले (स्याम) रहा करें। हम लोग (सूर्यम् नु) सूर्य को ही (उत्-चरन्तम्) ऊपर आते हुए देखें, जिस प्रकार वह (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) समस्त किरणों को धारण करता हुआ अपने तेजसहित आने वालों में सब से उत्तम है (तथा) उसी प्रकार (देवान् ओहानः) शुभ गुणों को धारण करने वाला और विद्वान् जनों वा विद्या की कामना करने वाले शिष्यों का पालन करता हुआ प्रधान पुरुष भी (अवसा) अपने रक्षा और ज्ञानसामर्थ्य से (आगमिष्ठः) आने वालों में सर्वश्रेष्ठ हो, और वह (वसूनां) बसे प्रजाजनों वा शिष्यों के बीच (वसु-पति) सब प्रजाजनों और वसु, ब्रह्मचारियों का स्वामी होकर (तथा करत्) सूर्य के समान ही तेजस्वी, ज्ञानी होकर राजा और आचार्य तेज और ज्ञान का प्रदान करे।

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा और विद्या वा ज्ञान का देने वाला आचार्य और शत्रुहन्ता राजा वह (अवसा) अपने ज्ञान और रक्षा सामर्थ्य से (नेदिष्टम्) अति समीप (आगमिष्ठः) आने वाला हो, हमारे सदा अति समीप, निकटतम होकर रहे । वह (सिन्धुभिः) जल-धाराओं से (पिन्वमाना) खूब भर कर बढ़ी हुई, (सरस्वती) नदी के समान वेग से प्रवाहित होने वाले वचनों से उत्तम ज्ञान की धारावत् हमे नित्य सेचन या वृद्धि करने हारा हो। (ओषधीभिः), ओषधियों वन-स्पतियों सहित (पर्जन्यः) ऐसों को देने वाले मेघ के समान ज्ञान और रक्षा का देने वाला और शत्रुओं का विजेता होकर (नः) हमें (मयोभूः) सुख का देने हारा हो । वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और ज्ञानवान् होकर भी (सु-शंसः) उत्तम उपदेश करने वाला, और (पिता इव) पालक पिता के समान (सु-हवः) सुख से, विना सकोच पुकारने योग्य और उत्तम आदर सत्कार करने योग्य हो ।

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! (आ गत) आप लोग आओ । (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) गुरु से ग्रहण करने योग्य अधीत ज्ञान को (शृणुत) श्रवण करो और आप लोग (इदं बर्हिः) इस उत्तम पद, वृद्धि योग्य आसन पर (आ नि सीदत) आकर विराजो।

यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (घृत-स्नुना हव्येन) घृत से युक्त अन्न से जैसे विद्वानों की स्निग्ध भोजनादि से सेवा आदर आदि किया जाता है उसी प्रकार हे (देवाः) विद्या की कामना करने वाले विद्यार्थी जनो ! (यः) जो (घृत-स्नुना) स्नेह से द्रवीभूत, वा स्नेह से हृदय से निकलने वाले, (हव्येन) ग्राह्य ज्ञान से (वः) आप लोगों

को अलंकृत करता है (तम्) उस विद्वान् गुरु को (विश्वे) आप सब लोग (उप गच्छथ) प्राप्त होओ और उसी की उपासना वा सेवा करो ।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ।९।

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र पौत्रादि होवे (अमृतस्य) कभी नाश न होने वाले परमेश्वर के नित्य ज्ञानमय वेद की (गिरः) वाणियो का (उप शृण्वन्तु) गुरु के समीप जाकर श्रवण करे और वे (न.) हमे (सुमृडीकाः भवन्तु) उत्तम सुख देने वाले हों ।

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ।१०।१५

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विद्या की कामना करने वाले मनुष्य (ऋता-वृध.) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले हों । और वे (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओ के अनुसार अथवा ऋत, सत्य ज्ञान के स्वामी विद्वान् पुरुषों द्वारा (हवन-श्रुतः) दान करने और स्वयं ग्रहण करने योग्य ज्ञान का श्रवण करने वाले होकर (युज्यम्) परस्पर योग एवं सावधान, एकाग्रचित्त वा चित्तवृत्तिनिरोध शक्ति के बढ़ाने वाले, मधुर ज्ञान रस का (जुषन्ताम्) सेवन करे । इति पञ्चदशो वर्ग. ॥

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्र.) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (मरुद्-गण·) मनुष्यजन और (मित्र) सब का स्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उत्तम उपदेश और (इमा हव्यानि) इन ग्राह्य वचनो तथा प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये पदार्थों को भी (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करे ।

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज ।
चिकित्वान् दैव्यं जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान के देने वाले ! (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् आचार्य ! प्रभो ! आप (चिकित्वान्) ज्ञानवान् हो । आप (नः) हमारे बीच में से (अध्वरं) न हिंसा करने योग्य, अपीड़नीय, वा अविनाशी, अध्ययनादि ज्ञान यज्ञ को (वयुनशः) उनके ज्ञान शक्ति के अनुसार (यज) कर और हमें भी ज्ञान प्रदान कर । और तू (दैव्यं) देव, अर्थात् ज्ञान के इच्छुक (जनम्) जन, शिष्य को भी (यज) अपने संगति में रख । इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्, प्रतापिन् ! राजन् ! आप (अध्वरं चिकित्वान्) अहिंसनीय, स्थायी, प्रजापालन रूप यज्ञ को जानते हुए (वयुनशः) प्रजाजन को उनके ज्ञान और कर्म सामर्थ्य के अनुसार (दैव्यं जनम्) देव अर्थात् राजा के उचित सेवक जन रूप में (यज) प्राप्त करो और उनको पद पर लगाओ ।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥

भा०—(विश्वे देवाः) हे सब विद्वान् वा विद्या के अभिलाषी पुरुषो ! (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षवत् बीच की भूमि, (ये च द्यविस्थ) और जो सूर्यवत् प्रकाशमान ज्ञानमार्ग में विद्यमान हो (ये अग्नि-जिह्वाः) और जो अग्नि की जिह्वा अर्थात् ज्वाला के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली वाणी वाले (उत वा) और (यजत्रा) जो ज्ञान देने और सत्संग करने योग्य हैं वे सभी (मे) मेरे (इमं) इस (हव) देने योग्य, गुरु से ग्रहण करने योग्य ज्ञान को (श्रृणुत) श्रवण करें । और (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि युक्त, उच्च आसन पर (मादयध्वम्) स्वयं प्रसन्न हो अन्यों को भी हर्षित करें ।

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥

भा०—हे (विश्वे देवा.) समस्त विद्वान पुरुषो ! हे (यज्ञिया)

सत्संग, दान पूजादि के योग्य जनो! हे (उभे रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर के उपकारक स्त्री पुरुषो! वा राजप्रजावर्गीय जनो! और (अपां नपात् च) प्राणो का नाश न करने वाला जन (मम) मेरे (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का आप लोग (शृण्वन्तु) श्रवण करे। मैं (व) आप लोगों के प्रति (परि-चक्ष्याणि) निन्दा योग्य वा प्रतिवाद करने योग्य (वचांसि) वचन (मा वोचम्) कभी न कहूं। प्रत्युत (परि-चक्ष्याणि) सब प्रकार से सर्वत्र कहने योग्य वचन ही कहूं। हम लोग (वः सुम्नेषु) आप लोगों के सुखों मे (इत्) ही (अन्तमाः) अति निकटवर्त्ती होकर (मदेम) सदा हर्ष लाभ करे।

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ।१५।

भा०—(ये के च) और जो कोई (महिन.) गुणों में महान्, (ज्मा) इस भूमि पर (दिवः) सूर्य के प्रकाश से तथा (अपां सधस्थे अहि-मायाः) जलों के एकत्र विद्यमान रहने के स्थान अन्तरिक्ष में विद्यमान मेघ के समान आचरण करने वाले, उदार, निष्पक्षपात होकर ज्ञानों, सुखों की वर्षा करने वाले वा (अपां सधस्थे) आप्त विद्वज्जनो के साथ सभा आदि स्थानों में (दिव) ज्ञान के प्रकाश से (अहि-माया) अन्यों को पराजित करने वाले, सर्वातिशायी बुद्धि वाले (जज्ञिरे) प्रकट हों। (ते देवा) वे ज्ञानादि देने में कुशल ज्ञानी पुरुष (क्षपः उस्रा·) रात दिन, (इषये) इष्ट सुख लाभ के लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आयु) समस्त आयु (वरिवस्यन्तु) दें, और जन समाज की सेवा किया करें।

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥

भा०—(अग्नि-पर्जन्या) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाश युक्त और

प्रतापी और मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने वाला, वा शत्रुओं को विजय और प्रजा को तृप्त, प्रसन्न करने वाला, ये दोनों प्रकार के पुरुष (सु-हवा) उत्तम दान योग्य ज्ञान और धन से युक्त वा प्रजाओं द्वारा सुखपूर्वक बुलाने, निसंकोच कहने सुनने योग्य होकर (मे धियं अवतम्) मेरी बुद्धि और सदाचार की रक्षा करें। और (अस्मिन् हवे) इस दान-प्रतिदान के यज्ञ में (नः सु-स्तुतिम् अवताम्) हमारी उत्तम स्तुति का श्रवण करें। उन दोनों से (अन्यः) एक (इडाम् जनयत्) मेघ के समान भूमि को बीज वपन योग्य बनाकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार (अन्य) एक तो (इलाम् जनयत) शिष्य के प्रति उपदेशयोग्य वाणी को ही प्रकट करे और (अन्यः गर्भम् जनयत्) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जलों को गर्भित करता वा पृथिवी पर जाठर रूप में अन्न को पचाकर, वीर्य बना कर प्रथम पुरुष में, फिर स्त्रीयोनि में गर्भ को उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अन्यः) दूसरा विद्वान् जन (गर्भम्) विद्यार्थी को माता के समान विद्या के गर्भ में ग्रहण करके पुनः शिष्य को पुत्रवत् वेदविद्या में उत्पन्न करे। जिस प्रकार सूर्य और मेघ दोनों (प्रजावतीः इष धत्तम्) प्रजा से युक्त अन्न सम्पदा को देते और पुष्ट करते हैं उसी प्रकार गुरु, आचार्य, भी (प्रजावतीः इषः) उत्तम सन्ततियुक्त कामनाओं को धारण करें अग्नि मेघ वत् अग्रणी, सेना नायक और राजा दोनों प्रजा से युक्त सेनाओं को धारण करें।

स्तीर्णे ब॒र्हिषि॑ समिधा॒ने अ॒ग्नौ सू॒क्तेन॑ म॒हा नम॒सा वि॑वासे।
अ॒स्मिन्नो॑ अ॒द्य वि॒दथे॑ यजत्रा॒ विश्वे॑ देवा ह॒विषि॑ मादयध्वम् १७।१६

भा०—(बर्हिषि स्तीर्णे) यज्ञ में, यज्ञवेदिपर आसन कुशा आदि आस्तरण योग्य पदार्थ के बिछ जाने पर और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के प्रदीप्त होते हुए जिस प्रकार (महा-सूक्तेन) वेद के बड़े सूक्त से और

(महा नमसा) बड़े नमस्कार, आदर वा अन्नादि पदार्थ से (आविवासे) यज्ञ कर्म करता है उसी प्रकार (बर्हिषि) बडे मान वृद्धि युक्त, (स्तीर्णे) बिछे आसन पर (अग्नौ समिधाने) अग्निवत् तेजस्वी राजा वा ज्ञान-प्रकाश से युक्त विद्वान् के विराजने पर मै (महा-नमसा) बडे शक्ति, आदर से (सूक्तेन) उत्तम वचनो से उसकी (आ विवासे) सेवा शुश्रूषा करूं। हे (यजत्राः) यज्ञशील, ज्ञानदाता, एवं सत्संगयोग्य पूज्य पुरुषो ! (अद्य) आज (नः) हमारे (अस्मिन् विदथे) उस यज्ञ मे (विश्वे-देवा:) आप सब विद्वान् जन (हविषि) अन्नादि से (मादयध्वम्) स्वयं भी तृप्त और हर्षित होवो और (नः मादयध्वम्) हमे भी तृप्त प्रसन्न करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः १, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री । २, ५, ९ निचृद्गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वाज-सातये रथं न) वेग से देशान्तर जाने के लिये वेग युक्त रथ को जोडते है उसी प्रकार हे (पथस्पते) मार्ग के स्वामिन् ! हे (पूषन्) सर्वपोषक प्रभो ! (वाज-सातये धिये) ज्ञान के देने वाली वाणी, बुद्धि और ऐश्वर्य के देने वाले कर्म के लिये (रथं) रमणीय, वा वेग मे ले जाने वाले (त्वा) तुझ को (वयम् उ) हम (अयुज्महि) योगाभ्यास द्वारा, समाहित चित्त से ध्यान करें। इसी प्रकार हे राजन् ! तुझको ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ रथवत् ही नियुक्त करे ।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! तू (नः) हमे (नर्यं) मनुष्यों का हितकारी, (वीरं) वीर (प्रयत-दक्षिणम्) उत्तमसंपत्-बलवीर्य से युक्त, (वामं)

प्रतापी और मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने वाला, वा शत्रुओं को विजय और प्रजा को तृप्त, प्रसन्न करने वाला, ये दोनों प्रकार के पुरुष (सु-हवा) उत्तम दान योग्य ज्ञान और धन से युक्त वा प्रजाओं द्वारा सुखपूर्वक बुलाने, निसंकोच कहने सुनने योग्य होकर (मे धियं अवतम्) मेरी बुद्धि और सदाचार की रक्षा करें। और (अस्मिन् हवे) इस दान-प्रतिदान के यज्ञ में (नः सु-स्तुतिम् अवताम्) हमारी उत्तम स्तुति का श्रवण करें। उन दोनों से (अन्यः) एक (इडाम् जनयत्) मेघ के समान भूमि को बीज वपन योग्य बनाकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार (अन्य.) एक तो (इलाम् जनयत्) शिष्य के प्रति उपदेशयोग्य वाणी को ही प्रकट करे और (अन्यः गर्भम् जनयत्) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जलों को गर्भित करता वा पृथिवी पर जाठर रूप में अन्न को पचाकर, वीर्य बना कर प्रथम पुरुष में, फिर स्त्रीयोनि में गर्भ को उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अन्यः) दूसरा विद्वान् जन (गर्भम्) विद्यार्थी को माता के समान विद्या के गर्भ में ग्रहण करके पुनः शिष्य को पुत्रवत् वेदविद्या में उत्पन्न करे। जिस प्रकार सूर्य और मेघ दोनों (प्रजावतीः इष. धत्तम्) प्रजा से युक्त अन्न सम्पदा को देते और पुष्ट करते है उसी प्रकार गुरु, आचार्य, भी (प्रजावतीः इषः) उत्तम सन्ततियुक्त कामनाओं को धारण करें अग्नि मेघ वत् अग्रणी, सेना नायक और राजा दोनों प्रजा से युक्त सेनाओं को धारण करें।

स्तीर्णे ब॒र्हिषि॑ समिधा॒ने अ॒ग्नौ सू॒क्तेन॑ म॒हा नम॒सा वि॑वासे।
अ॒स्मिन्नो॑ अ॒द्य वि॒दथे॑ यजत्रा॒ विश्वे॑ देवा ह॒विषि॑ मादयध्वम् ॥१७॥१६

भा०—(बर्हिषि स्तीर्णे) यज्ञ में, यज्ञवेदिपर आसन कुशा आदि आस्तरण योग्य पदार्थ के बिछ जाने पर और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के प्रदीप्त होते हुए जिस प्रकार (महा-सूक्तेन) वेद के बडे सूक्त से और

(महा नमसा) बडे नमस्कार, आदर वा अन्नादि पदार्थ से (आविवासे) यज्ञ कर्म करता है उसी प्रकार (बर्हिषि) बड़े मान वृद्धि युक्त, (स्तीर्णे) बिछे आसन पर (अग्नौ समिधाने) अग्निवत् तेजस्वी राजा वा ज्ञान-प्रकाश से युक्त विद्वान् के विराजने पर मै (महा-नमसा) बडे शक्ति, आदर से (सूक्तेन) उत्तम वचनो से उसकी (आ विवासे) सेवा शुश्रूषा करूं। हे (यजत्राः) यज्ञशील, ज्ञानदाता, एवं सत्संगयोग्य पूज्य पुरुषो ! (अद्य) आज (नः) हमारे (अस्मिन् विदथे) उस यज्ञ मे (विश्वे-देवा:) आप सब विद्वान् जन (हविषि) अन्नादि से (मादयध्वम्) स्वयं भी तृप्त और हर्षित होवो और (नः मादयध्वम्) हमे भी तृप्त प्रसन्न करो। इति षोडशो वर्गः ॥

[५३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः १, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री । २, ५, ९ निचृद्गायत्री । ८ निचृदनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

व॒यमु॑ त्वा पथस्पते॒ रथं॒ न वाज॑सातये। धि॒ये पू॑षन्नयुज्महि ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वाज-सातये रथं न) वेग से देशान्तर जाने के लिये वेग युक्त रथ को जोडते है उसी प्रकार हे (पथस्पते) मार्ग के स्वामिन् ! हे (पूषन्) सर्वपोषक प्रभो ! (वाज-सातये धिये) ज्ञान के देने वाली वाणी, बुद्धि और ऐश्वर्य के देने वाले कर्म के लिये (रथं) रमणीय, वा वेग मे ले जाने वाले (त्वा) तुझ को (वयम् उ) हम (अयुज्महि) योगाभ्यास द्वारा, समाहित चित्त से ध्यान करें। इसी प्रकार हे राजन् ! तुझको ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ रथवत् ही नियुक्त करे।

अ॒भि नो॒ नर्यं॒ वसु॑ वी॒रं प्रय॑तदक्षिणम्। वा॒मं गृ॒हप॑तिं नय ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! तू (नः) हमे (नर्यं) मनुष्यों का हितकारी, (वीरं) वीर (प्रयत-दक्षिणम्) उत्तमसंपत्-बलवीर्य से युक्त, (वाम)

सेवा करने योग्य (गृहपतिं) गृह स्वामी और (नर्यं) मनुष्यों के हित, (वीरं) विविध कष्टों को दूर करने वाले, (प्रयत-दक्षिणं) खूब दान दक्षिणा देने योग्य, (वामं) सुन्दर, सुखकर, (गृहपतिम्) गृह के पालक (वसु) धन को भी (नः) हमें (अभि नय) प्राप्त करा।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय ।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आ घृणे) सर्वत्र प्रकाशित ! हे तेजस्विन् ! हे (पूषन्) निर्बलों के पक्षपोषक ! तू (अदित्सन्तं चित्) न देना चाहने वाले पुरुष को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरित कर। (पणेः चित्) व्यवहारकुशल, वणिग्जन, वा द्यूतादि व्यवहार करने वाले वा स्तुतिशील जन के भी (मनः) मन को (वि म्रद) विशेष रूप से मृदु कर। वह भी कंजूस न होकर दयाशील कोमल हृदय रहे।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने के लिये (पथः) उत्तम मार्गों को (वि चिनुहि) खोज। (मृधः) हिंसाकारियों को (वि जहि) विविध प्रकार से दण्डित कर। हे (उग्र) बलवन् ! (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां और कर्म (साधन्ताम्) उत्तम कर्म और फलों को सिद्ध करें।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! मेधाविन् ! दूरदर्शिन् ! आप (पणीनाम्) द्यूतादि व्यवहार करने वाले दुष्ट जनों के (हृदया) हृदयों को (आरया) आरा से जैसे काष्ठों को चीरा जाता है वा पैनी चाबू से जैसे पशुओं को उद्विग्न करके ठीक रास्ते से चलाया जाता है उसी प्रकार

(आरया) सब प्रकार की शिक्षा और 'आर्त्ति' अर्थात् पीड़ा, दण्डादि की व्यवस्था द्वारा (परि तृन्धि) परिपीड़ित कर (अथ) और इस प्रकार (ईम्) उनको (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (रन्धय) वश कर और दण्डित कर । इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलो के पक्ष को पोषण करने हारे ! प्रजा-पोषक राजन् ! तू (पणेः) व्यवहार मे लगे दुष्ट जनो को (आरया) दण्ड व्यवस्था से, पशुओ को चाेब से जैसे वैसे ही (वि तुद) विविध प्रकार से व्यथित किया कर और (हृदि) हृदय मे (प्रियम्) उनका प्रिय हित (इच्छ) चाहा कर । (अथ ईम् अस्मभ्यम् रन्धय) और उनको हमारे हितार्थ वश कर ।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! तू (पणीनां) व्यवहारवान् प्रजा के लोगों के (किकिरा) व्यवस्था पत्रो की छोटी बातो को भी (आ रिख) अवश्य लिख । (अथ) और (हृदया) उनके हृदयो को (ईम्) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे ही हितार्थ (रन्धय) वश कर ।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलो का पक्ष पोषण करने हारे ! हे (आ-घृणे) सब प्रकार तेजस्विन् ! समस्त ज्ञानों के प्रकाशक विद्वन् ! तू (यां) जिस (ब्रह्म-चोदनीम्) ब्रह्म विद्या और धन की ओर प्रेरित करने वाली (आराम्) चोब या आरा शस्त्री के तुल्य सद्-असद् विवेक करने वाली बुद्धि या वाणी को ((बिभर्षि) धारण करता है (तया) उससे (समस्य

हृदयम्) सबके दिलों को (आ रिख) अंकित कर और (किकिरा कृणु) अपने उत्तम विचारों को सर्वत्र विस्तारित कर।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥

भा०—हे (आ-घृणे) तेजस्विन्! सूर्यवत् प्रतापिन्! (पशु-साधनी) पशुओं को वश करने वाली, (अष्ट्रा गो-ओपशा) बैलों के सदा समीप रहकर चाबुक जैसे उनको सन्मार्ग मे चलाती है उसी प्रकार हे राजन्! (ते) तेरी (या) जो (अष्ट्रा) व्यापक शक्ति (गो-ओपशा) भूमि पर प्रशान्त रूप से विद्यमान रहकर (पशु-साधनी) पशु तुल्य मूर्ख जनों को भी अपने वश करने वाली, है (तस्याः) उसके (सुम्नम्) सुखकारी परिणाम को हम (ते) तुझ से (ईमहे) प्राप्त करें।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (पूषन्) पशुपाल के तुल्य प्रजापोषक राजन्! (उत) और तू (गो-सणिम्) गौ देने वाली, (अश्व-साम्) अश्व देने वाली, और (वाज-साम्) अन्न, बल, ज्ञान ऐश्वर्य देने वाली, (उत) और नृवत् उत्तम नायकों से युक्त (धियं) बुद्धि वा कर्म को (नः वीतये) हमारे सुखोपभोग और हमे ज्ञान प्रकाशित करने के लिये (कृणुहि) कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ८, ९ गायत्री। ३, १० निचृद्गायत्री। ५ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजा के पोषक! (यः) जो विद्वान् (इदम्

एव) यह ऐसा ही है इस प्रकार यथार्थ रूप से (ब्रवत्) उपदेश करता है और जो (अञ्जसा) तत्व ज्ञान-प्रकाश से (अनु शासति) अनुशासन अर्थात् सत्योपदेश करता है, तू उस (विदुषा) विद्वान् द्वारा हमे (सं नय) उत्तम मार्ग पर ले चल ।

सम्पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥

भा०—(य) जो (गृहान्) गृहस्थ स्त्री पुरुषो को (अभि शासति) साक्षात् उपदेश करता है और (ब्रवत् च) बतलाता है कि (इमे एव इति) ये ही ठीक २ पदार्थ इस २ प्रकार से ग्रहण करने योग्य हैं ऐसे (पूष्णा) पोषक पालक के साथ (सं गमेमहि) हम सत्संग किया करे ।

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।
नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

भा०—(पूष्णः) पोषण करने वाले राजा का (चक्रम्) राजतन्त्र (न रिष्यति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता । (कोशः न अवपद्यते) उसका खज़ाना भी कमती नहीं होता है और (अस्य पविः न व्यथते) उसका बल वीर्य और शस्त्र बल भी पीडित नहीं होता ।

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते ।
प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥

भा०—(य) जो व्यक्ति (अस्मै) इस प्रजाजन का (हविषा) लेने देने योग्य कर अन्नादि से (अविधत्) पीडित करता है और स्वयं (प्रथमः) मुख्य होकर (वसु विन्दते) धन लेता है, (न पूषा अपि) उसको प्रजापोषक राजा भी (न मृष्यते) कभी सहन नहीं करता ।

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः ।
पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—(पूषा) राज्य वा प्रजा का पोषक राजा, (गाः) गौवों को गोपाल के समान (नः गाः अन्वेतु) हमारी भूमियों के अनुकूल होकर चले। वह (अर्वतः न रक्षतु) अश्वों को सारथिवत् हमारी रक्षा करे। वह (पूषा नः वाजं सनोतु) सर्वपोषक अन्नवत् हमे ऐश्वर्य को न्यायपूर्वक विभक्त करे। इत्येकोनविंशो वर्ग. ॥

पूषन्नन प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! (सुन्वतः यजमानस्य) तेरा अभिषेक करने और तुझे कर आदि देने वाले प्रजाजन के (गाः अनु) भूमियो वा वाणियो का (अनु इहि) गौ के पीछे २ गोपालवत् अनुगमन कर अर्थात् भूमि में बसने वाली प्रजा के बहुमत के पीछे चल, उनकी रेख देख रख। (उत) और (स्तुवताम् अस्माकं) उत्तम उपदेश करने वाले हम लोगों की (गाः अनु इहि) वाणियों का अनुसरण कर। जैसे पशु-पाल दण्ड लेकर पशु को आगे बन्धन आदि से रहित करके भी, दण्ड के बल से सन्मार्ग पर ले जाता है उसी प्रकार राजा प्रजा के पीछे चलता हुआ भी दण्ड बल से उसका अनुशासन करे।

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रजाजन (माकिः नेशत्) कभी किसी प्रकार नष्ट न हो, (माकी रिषत्) किसी अन्य द्वारा पीडित भी न हो। वह (केवटे) कूप या गढे के समान, अवनत दशा मे भी (माकी सं शारि) कभी शीर्ण न हो। (अथ) और (अरिष्टाभिः) अहिंसित प्रजाओं सहित तू, सुखी गौओं से गोपाल के समान, (आ गहि) हमे प्राप्त हो।

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम (इर्यम्) प्रजा को सन्मार्ग मे चलाने वाले और स्वयं भी बड़ो द्वारा सन्मार्ग मे प्रेरित, (अनष्ट-वेदसम्) ज्ञान और धन से सम्पन्न, (ईशानं) राष्ट्र पर प्रभुत्व करने मे समर्थ, (शृण्वन्तं) प्रजा के न्याय्य कथन को सुनने वाले (पूषणं) सर्वपोषक राजा से (राय) नाना ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करते है।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करने वाले पालक ! (तव व्रते) तेरे काम मे लगे हुए (वयं) हम (कदा चन न रिष्येम) कभी भी पीडित न हों। हम (ते स्तोतारः) तेरे गुणो वा विद्या आदि का कथन करते हुए (इह) इस राष्ट्र मे (स्मसि) रहे।

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—(पूषा) प्रजा को पोषण करने वाला राजा, (परस्तात) दूर तक भी (दक्षिणं) बलयुक्त वा दानशील (हस्तं) हाथ (परि दधातु) धारण करे। जिससे (नः) हमारा (नष्टम्) खोया हुआ धन भी (आ अजतु) हमें प्राप्त हो। इति विंशो वर्गः ॥

[५५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै ।
रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥

भा—हे (आ घृणे) तेजस्विन् ! तू (आ इहि) हमे प्राप्त हो। हे (नपात्) कभी कुमार्ग मे न जाने वाले ! तू (वाम्) हम दोनो को

(विमुचः) विशेष रूप से दुःखों से मुक्त कर। हम (सं सचावहे) दोनों राजा प्रजा और स्त्री पुरुष परस्पर अच्छी प्रकार सम्बद्ध होकर रहें। तू (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, धन, यज्ञादि का (रथीः) रथवान् के समान सञ्चालक (भव) हो।

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः।
रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(रथीतमम्) श्रेष्ठ रथ के स्वामी, (कपर्दिनम्) मानसूचक शिखा धारण करने वाले, प्रमुख, (महः राधसः) बड़े भारी ऐश्वर्य के स्वामी, (सखायम्) मित्र से हम लोग (रायः) नाना धन (ईमहे) याचना करें।

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व।
धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अजाश्व) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामिन्! वा (अजाश्व) वेग से चलने वाले अश्वों के स्वामिन्! तू (रायः) ऐश्वर्यों को (धारा असि) धारण करने वाली वाणी के समान आज्ञापक है, हे (आ-घृणे) तेजस्विन्! तू (वसोः) बसने वाले प्रजाजन का (राशिः असि) राशि अर्थात् जन-संघ का प्रतिनिधि है। वा ऐश्वर्य का महान् राशि, परमैश्वर्यवान् है और तू (धीवतः धीवतः) प्रत्येक बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुष का (सखा) मित्र है।

पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्।
स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान्, (अजाश्वम्) शत्रु को उखाड फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामी, (पूषण) प्रजा के पोषक राजा को (नु उप स्तोषाम) अवश्य परस्पर समीप बैठकर विचार पूर्वक प्रस्तुत करें। ऐसे व्यक्ति को राजा बनावें (यः) जो (स्वसु =

सु-असुः, स्व-सु॰) उत्तम प्राणवान्, सुखजनक प्राणवत् प्रिय, वा सुख से शत्रु को उखाड फेकने मे समर्थ, स्व = धनैश्वर्य को उत्पन्न करने में समर्थ होकर भी (जारः) उत्तम, उपदेष्टा, विद्वान् (उच्यते) कहा जावे। अथवा (यः) जो (स्वसुः) स्वयं शरण में आई प्रजा का, उषा को जीर्ण करने वाले सूर्य के समान सन्मार्ग मे आदेष्टा कहा जाता है।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

भा०—जो (स्वसुः जारः) रात्रि वा उषा को नष्ट करने वाले सूर्य के समान भगिनी के तुल्य प्रजा को (जारः) सन्मार्ग मे चलाने वाला, और (इन्द्रस्य सखा) अग्नि या विद्युत् के मित्र वायु के समान (मम सखा) मेरा मित्र (भ्राता) एवं पतिवत् वा (स्वसुः भ्राता इव) वहिन के भाई के समान, उसका भरण पोषण करने वाला है, उसको मैं (मातुः) ज्ञान देने वाली विद्या वा सबकी माता के समान, वा मापी जाने योग्य भूमि को (दिधुषुम्) धारण करने मे समर्थ (अब्रवम्) कहता हू, वह (नः शृणोतु) हमारा वचन श्रवण करे।

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(ते) वे (अजासः) शत्रु को जड मूल से उखाड फेकने वाले वीर पुरुष (नि-शृम्भाः) नित्य, स्थिर सम्बद्ध होकर (रथे अजासः) रथ मे लगे वेग से जाने वाले अश्वों के समान (जन श्रियं बिभ्रत) प्रजाजन की समृद्धि धारण पोषण करते हुए (जन-श्रियं) जनों के बीच शोभावान् (देवं) तेजस्वी राजा को (आ वहन्तु) धारण करे। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री । ६ स्वराडुष्णिक् ॥

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् ।
न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् (एनं पूषणम्) उस प्रजा के पोषक राजा वा प्रभु को (करम्भात्) स्वयं कर्म फल का भोक्ता होकर इस रूप से (आ दिदेशति) उस प्रभु की स्तुति करता है (तेन) उसे (देवः) कर्म फल देने वाले प्रभु से (आदिशे न) कार्य-फल की याचना करने की आवश्यकता नहीं । वह प्रभु विना मांगे ही स्वयं कर्म करने पर फल देता ही है । (करम्भः) करोतेरम्भच् ॥ उ० ॥

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

भा०—(उत) और (घ) निश्चय से (सः) वह (रथीतमः) उत्तम रथ का स्वामी, (सख्या युजा) मित्र सहायक से (सत्-पति) सज्जनों का प्रतिपालक है । वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् होकर (वृत्राणि) मेघों को सूर्य के समान विघ्नों और विघ्नकारियों को (जिघ्नते) विनाश करता है । अध्यात्म में—आत्मा ही रथीतम है । वह (युजा) सहयोगी, सहकारी प्रभु के कारण सत्-पति, उत्तम स्वामी का सेवक हो विघ्नों का नाश करता है ।

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् ।
न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रथीतमः सूरः गवि चक्रं नि एरयत्) उत्तम महारथि भूमि पर या प्रबल अश्व या बैल के बलपर, अपने रथ चक्र

को अच्छी प्रकार चला देता है वा (सूरः परुपे) शूरवीर पुरुष, कठोर भाषण करने वाले शत्रु पर (हिरण्ययम् चक्रं नि ऐरयत्) चमकते, दीप्तियुक्त हिंसा साधन, शस्त्र को चलाता है, वा जैसे (सूरः) सूर्य (परुपे) पर्वयुक्त या तर्पक मेघ और (गवि) भूमि पर (हिरण्ययम्)तेजोमय 'चक्र' वा विम्ब को प्रेरित करता है उसी प्रकार (रथीतमः) उत्तम रथो का स्वामी, (सूरः) शूरवीर आज्ञापक पुरुष (परुपे) कठोर शत्रु पर वा कठोर संग्राम काल मे वा ([अ] प-रुपे) रोपरहित प्रजा के हितार्थ (गवि) इस भूमि पर (हिरण्ययं) हित और रमणीय (अदः) उस दूर स्थित (चक्रम्) राज्य चक्र, वा सैन्य चक्र को (नि ऐरयत्) अच्छी प्रकार संचालित करे ।

यद॒द्य त्वा॑ पुरुष्टुत ब्र॒वाम॑ दस्र मन्तुमः ।
तत्सु नो॒ मन्म॑ साधय ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतो से प्रशंसित ! हे (दस्र) दर्शनीय ! हे दुःखो के नाश करने हारे ! हे (मन्तुमः) ज्ञानवन् ! (यत्) जो (अद्य) आज (त्वा) तुझे (ब्रवाम) उपदेश करें (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) ज्ञान का (सु साधय) अच्छी प्रकार साधन कर।

इ॒मं च॑ नो ग॒वेष॑णं सा॒तये॑ सीपधो ग॒णम् ।
आ॒रात्पू॑षन्नसि श्रु॒तः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पूपन्) प्रजापोपक ! तू (आरात्) दूर वा समीप (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है । तू (इमं) इस (गो-एपणम्) पशु, भूमि, उत्तम वाणी आदि के इच्छुक (जनं) जन समूह को (सातये) नाना ऐश्वर्यादि विभक्त करने के लिये (सीपधः) प्राप्त कर ।

आ ते॑ स्व॒स्तिमी॑महे आ॒रे अ॒घामु॒पाव॑सुम् ।
अ॒द्या च॑ स॒र्वता॑तये॒ श्वश्च॑ स॒र्वता॑तये ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (अद्य च श्वः च) आज भी और कल भी

(सर्व-तातये) सबके कल्याणकारी, (सर्व-तातये) सर्वहित यज्ञादि कार्य मे (ते) तेरी (आरे-अघाम्) पापादि से रहित (उप-वसुम्) धनप्रद (स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, सुखप्रद नीति को (ईमहे) याचना करते है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि ॥ इन्द्र-पूषणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराड्गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री । ४, ५ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रा पूषणा नु) ऐश्वर्ययुक्त और सब निर्बलो के पोषक, दोनो प्रकार के पुरुषों को (सख्याय) मित्र भाव के लिये (स्वस्तये) सुख प्राप्ति के लिये और (वाज-सातये) बलैश्वर्य, अन्नादि प्राप्त करने के लिये (वयं हुवेम) हम प्राप्त करे, उनको आदर पूर्वक बुलावे । (इरां दृणाति 'इन्द्र') अन्नोत्पादक कृषक जन 'इन्द्र' है और भागधुक्, पृथिवी-पति पूषा है । अन्नादि के लिये दोनों आवश्यक है ।

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् ।
करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

भा०—दोनो का पृथक् २ विवरण करते है । पूर्वोक्त इन्द्र और पूषा दोनों मे से (चम्वोः) राष्ट्र का भोग करने वाले राजा और प्रजावर्ग दोनो मे से (अन्यः) एक तो (पातवे) अपने पालन के लिये (सुतम्) अभिषिक्त (सोमम्) ऐश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक राजा को (उप सदत्) प्राप्त होता है । और (अन्यः) दूसरा राजा (करम्भम्) कर ग्रहण कर उसमे ही भरण करने योग्य अन्नवत् राष्ट्र को (इच्छति) प्राप्त करना चाहता है । (२) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान्, व्यापारी वर्ग (पातवे) आगे के लिये राष्ट्र का

उत्पन्न ऐश्वर्य प्राप्त करे और (अन्यः) दूसरा (पूषा) पृथिवीस्थ शेष प्रजावर्ग भूमि से अन्न उत्पन्न करना चाहता है । एक धन कमावे, और एक अन्न, वे दोनो ही इन्द्र और पूषा है । व्यापारी वर्ग 'इन्द्र' है, कृषक वर्ग 'पूषा' है ।

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनो मे से, (अन्यस्य) एक प्रजावर्ग के (अजाः वह्नयः) शत्रुओं को उखाड़ फेकने मे समर्थ, अग्निवत् तेजस्वी, राज्य-भार को धारण करने वाले, (सम्भृता) वेतनादि द्वारा अच्छी प्रकार पोषित किये जांय । और (अन्यस्य) दूसरे, राजपक्ष के, (अजा) वेगवान् (हरी) अश्व वा स्त्री पुरुष (संभृता) एकत्र वेतनबद्धवत् खूब हृष्ट पुष्ट होने उचित हैं । (ताभ्याम्) उन दोनो से, (वृत्राणि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो और राज्य पर आने वाले संकटो को (जिघ्नते) नाश करता है । अधिदेव में—इन्द्र सूर्य, पूषा वायु है ।

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृषन्तमः) खूब वर्षा करने वाला सूर्य (महीः अपः) बहुत जलों को सर्वत्र फैला देता है (पूषा सचा अभवत्) पोषक वायु सहायक होता है । उसी प्रकार (यत्) जब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वा शत्रुहन्ता राजवर्ग, (वृषन्तमः) खूब बलवान्, भूमिसेचक होकर (रितः) सब ओर जाने वाली नाडियों, वा (महीः) बड़ी अन्न सम्पद् देने वाली भूमि भूमियो को (अनयत्) प्राप्त करावे । (तत्र) वहां (सचा) सहायक रूप से (पूषा अभवत्) पोषक कृषक वर्ग होता है ।

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव ।
इन्द्रस्य चारभामहे ॥ ५ ॥

भा०—(पूष्णः) सर्वपोषक, और (इन्द्रस्य च) ऐश्वर्यवान् शत्रु-हन्ता तथा, अज्ञाननाशक उत्तम ज्ञानदायक जन की (तां) उस (सुमतिम्) शुभ मति को (वृक्षस्य) वृक्ष की (वयाम् इव) शाखा के समान अपने आश्रय और उन्नति के लिये (प्र आ रभामहे) प्राप्त करें। इसी प्रकार (पूष्णः) सर्वपोषक पृथ्वी और (इन्द्रस्य) विद्युत् मेघ, सूर्य आदि सम्बन्धी (सु-मति) उत्तम ज्ञान को भी हम प्राप्त करें।

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः ।
मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—(सारथिः अभीशून् इव) सारथि जिस प्रकार घोड़े की लगाम की रस्सियों को अलग २ रखता और उनको अपने वश करता है इसी प्रकार हम लोग भी (पूषणम्) प्रजा के पोषक, पृथ्वी, तथा उस पर कृषि आदि करने वाले प्रजावर्ग तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वैश्य वर्ग, इन दोनों को (मह्यै) भूमि या राष्ट्र की उन्नति और (स्वस्तये) सब के कल्याण के लिये (उत् युवामहे) उद्योगपूर्वक पृथक् २ रक्खें और उनको वश करें, उनकी उत्तम रूप से व्यवस्था करें। इसी प्रकार पूषा पृथ्वी और इन्द्र सूर्य या विद्युत् आदि पदार्थों का उत्तम रीति से उपयोग करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ३-४ विराट् त्रिष्टुप् । २ विराड् जगती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (स्वधावः) अपने तेज को धारण कराने वाले पुरुष ! हे (पूषन्) धारण किये वीर्य को पोषण करने वाली ! भूमिवत् व्यक्ति स्त्रि ! आप दोनों (वि- सु-रूपे) विशेष सुन्दर रूपवान्, भिन्न २ उत्तम रुचि वाले, (अहनी) दिन रात्रिवत् एक दूसरे को पीड़ा न देने वाले, दीर्घायु होवो। हे (स्वधावः) अपने आत्मांश को धारण करनेवाले पुरुष ! (ते शुक्रं) तेरा विशुद्ध वीर्य, (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है और हे (पूषन्) गर्भ मे वीर्य को पोषण करने हारी भूमिस्वरूप ! (ते) तेरा वीर्य रजः रूप (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है। पुरुष तू (द्यौः इव असि) सूर्य के समान है और आप दोनो (यजतम्) आदर पूर्वक मिलकर रहो। हे स्त्रि ! तू भी (द्यौः इव असि) भूमि के समान कामना वाली, वीर्य को सुरक्षित रखने वाली है। हे पुरुष ! हे स्त्रि ! तुम दोनो पृथक् (विश्वाः मायाः) समस्त निर्माणकारिणी, सृष्टि उत्पादक शक्तियों को (अवसि) सुरक्षित रखते हो। (ते) तुम्हारी (राति) दान आदान, (भद्रा अस्तु) भद्र, सुखप्रद और कल्याणकारक (इह) इस लोक मे हो। उसी प्रकार प्रजा राजा आदि भी मिलकर रहें।

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥

भा०—(पूषा) गृहस्थ का पोषण करने वाला पुरुष (अज अश्वः) भेड बकरियों और अश्वों का स्वामी (पशु-पाः) पशुओं की पालना करने वाला, (वाज-पस्त्यः) गृह में अन्न और ऐश्वर्य का सञ्चय करने वाला, (धियं-जिन्व) ज्ञान और उत्तम कर्म द्वारा परमेश्वर और अपने बन्धुजनों को प्रसन्न करने हारा होकर (विश्वे भुवने) इस समस्त संसार के बीच (अर्पितः) स्थिर होकर रहे। वह (पूषा) गृहस्थ का पालक पोषक (शिथिराम्) काम करने मे शिथिल, अल्पशक्ति वाली, (अष्ट्रान्) भोग योग्य स्त्री को (उद् वरीवृजत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे, उस से

उद्वाह करे। वह (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सं-चक्षाणः) अच्छी प्रकार देखता, कामना करता हुआ वा उत्तम वचन कहता हुआ (भुवना ईयते) समस्त पदार्थों को प्राप्त हो।

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! पालक गृहपते ! (नावः हिरण्ययीः अन्तः समुद्रे अन्तरिक्षे चरन्ति) जिस प्रकार नौकाएं और स्वर्णादि से भूषित, वा लोह आदि से बनी, समुद्र और आकाश दोनो स्थानों पर चलती है उसी प्रकार (याः) जो (ते) तेरी (हिरण्ययीः) हितकारी और रमणयोग्य, सुखप्रद, (नावः) हृदय को प्रेरणा करने वाली वाणियां (समुद्रे) अति हर्षयुक्त (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तःकरण के बीच (चरन्ति) प्रवेश करती है (ताभिः) उन वाणियों से ही हे (कृत) कर्त्तः ! तू (श्रवः इच्छमानः) अन्न और यश की कामना करता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य की (दूत्यां) दूतवत् प्रतिनिधि होने की क्रिया को (यासि) प्राप्त होता है अर्थात् सूर्य की कान्ति को प्राप्त करता है। अपनी प्रेरिका आज्ञा से ही पालक स्वामी यशस्वी और सूर्यवत् तेजस्वी हो जाता है।

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (कामेन कृतम्) कामना युक्त (तवसं) बलवान् (सु-अञ्चम्) सुभूषित, सुन्दर ढंग करके (देवासः) विद्वान् लोग (सूर्यायै) सूर्य की दीप्ति के समान उज्ज्वल, कमनीय स्त्री के लिये (अददुः) पति रूप से प्रदान करे। (पूषा) गृहस्थ का पोषक, गृहपति, (दिव) कामना, करने वा उसे चाहने वाली और (पृथिव्याः) उसकी

पृथिवीवत् आश्रय रूप स्त्री का (सुबन्धुः) पूज्य बन्धुवत् प्रिय हो। वह (इडः पतिः) भूमि के पालक के समान अपनी 'इडा' अर्थात् चाहने योग्य प्रिय पत्नी का पालक और अन्न का स्वामी तथा (मघवा) धनादि सम्पन्न और (दस्म-वर्चाः) विघ्नों के नाशकारी तेज से सम्पन्न हो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[५९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृद् बृहती। २ विराड्बृहती। ६, ७, ९ भुरिगनुष्टुप्। १० अनुष्टुप्। ८ उष्णिक् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र नु वो॑चा सु॒तेषु॑ वां वी॒र्या॒३॒॑ यानि॑ च॒क्रथुः॑।
ह॒तासो॑ वां पि॒तरो॑ दे॒वश॑त्रव॒ इन्द्रा॑ग्नी॒ जीव॑थो यु॒वम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य, वायु वा विद्युत् के समान बलवान् पुरुष और हे अग्नि के समान दीप्ति, उत्तेजना उत्पन्न करने वाली स्त्रि! आप दोनों (सुतेषु) उत्पन्न होने वाले पुत्रों के निमित्त (यानि वीर्या) जिन २ वीर्यों, बलयुक्त कार्यों को (चक्रथु.) करें मैं (वां) आप दोनो को उन आवश्यक कर्त्तव्यों का (प्र वोच) उपदेश करता हूं। देखो, (देव-शत्रवः) 'देव' अर्थात् प्रकाश, जल, पृथिवी आदि पदार्थों और शुभ गुणों के शत्रु, उनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करने वाले (वां पितरः) आप दोनो के पालक माता पिता, पितामह, चाचा आदि वृद्धजन (हतासः) अवश्य पीडित होते और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और (युवम्) तुम दोनों (जीवथ) अभी भी उनके बाद जीवित होकर दीर्घ जीवन का भोग करो। विद्युत्-अग्निपक्ष मे 'देव' अर्थात् किरणों के शत्रुभूत या उनसे नष्ट होने वाले उसी प्रकार

(३)—'कृत.' इति सायणाभिमतः पाठः।

उत्तम गुणों के शत्रु, हिंसक जन्तु भी नाश को प्राप्त हों रोग आदि जन्तु (पितरः) जो अन्य जन्तुओं का नाश करते हैं वे भी (वां वीर्यैः हतासः) आप दोनों के बलों से विनष्ट हो जावें। 'पितरः' पीयतिर्हिंसाकर्मा। तस्यैतद्रूपम् इति सायणः।

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त सूर्य और अग्नि के तुल्य पति पत्नी, (वाम्) आप दोनों का (पनिष्ठः) अति स्तुत्य (महिमा) महान् सामर्थ्य वह (इत्था वट्) इस प्रकार का अति सत्य है। क्योंकि (वां) आप दोनों का (जनिता) उत्पादक, मा बाप वा आचार्या गुरुजन (समानः) एक समान पद के, समान रूप से मान पाने योग्य है। (युवं) आप दोनों वस्तुतः (भ्रातरौ) भाई बहन के समान, एक दूसरे के पोषक पालक होवो। (युवं) तुम दोनों एकवर्ग में निवास करने वाले, (यमौ) ब्रह्मचर्याश्रम में संयम से रहने वाले युगल, होकर रहो, और (इह-इह-मातरौ) इस गृहस्थाश्रम में रह २ कर एक दूसरे की कामना करने वाले एवं अगले सन्तानों के माता-पिता होवो ॥ माता या स्त्री की अग्नि रूपता देखो, छान्दोग्य में पञ्चाग्नि प्रकरण, योषा वै अग्निः। तस्यां देवा वीर्यं जुह्वति। अथवा सामवेद मन्त्र-ब्राह्मण में—अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहाना' स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वन् त्रैश्टङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु ॥ मन्त्र ब्रा० १। १। २ ॥ दोनों स्त्री पुरुष समान पद के माता पिता वा समधियो वा आचार्य से उत्पन्न होते हैं, 'यम' अर्थात् ब्रह्मचर्य काल में वे दोनों भाई भाई वा भाई-बहिन के समान होते हैं, परन्तु लोक में—गृहस्थ में होकर वे घर २ में, (इह इह) जगह २ मां बाप बन जाते हैं।

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने।
इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रा) पूर्वोक्त दोनो वर वधू, पतिपत्नी, (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान्, मेघ विद्युत् के तुल्य परस्पर स्नेह धारण करने वाले, और (अग्नी) दोनों अग्नियों के तुल्य तेजस्वी, (ओकिवांसा) परस्पर मिल कर रहने वाले, परस्पर समवेत, अर्थात् एक दूसरे मे नित्य सम्बन्ध वना कर रहने वाले, (सुते) पुत्र के निमित्त (सचा) एक साथ संगत हुए, (आदने) ऐश्वर्य भोग वा भोजन के निमित्त (अश्वा सप्ती इव) वेगवान् दो अश्वो के समान सदा एक साथ रहने वाले, (अवसा) परस्पर की रक्षा, अन्न-तृप्ति, ऐश्वर्य आदि के द्वारा (इह) इस गृहाश्रम में विराजें, और (वयम्) हम सब उन दोनों (वज्रिणा) वलवान् वीर्यवान्, (देवा) दानशील, तेजस्वी एवं एक दूसरे की कामना करते हुए दोनो को (हवामहे) इस गृहस्थाश्रम मे आदरपूर्वक वुलाते है ॥

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (तेषु) उन उत्पन्न करने योग्य पुत्रों के निमित्त (ऋत-वृधा वां) धन, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करने वाले आप दोनों को (यः) जो विद्वान् पुरुष (स्तवत्) उपदेश करे, आप दोनों (जोषवाकं वदतः) परस्पर प्रीतियुक्त वचन वोलने वाले उसके प्रति (पज्रहोषिणा) उत्तम कमाये धन के देने और उत्तम वचन कहने वाले होओ। आप दोनों (देवा) परस्पर प्रीतियुक्त, दानशील होकर उसके प्रति (नभसथः चन) कभी व्यर्थवाद वा उपहास आदि न किया करो।

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी और हे (देवौ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों के वीच, (कः मर्त्त)

कौन मनुष्य (चिकेतति) जानता है जो (एकः) अकेला ही, (समाने रथे) एक समान रमणयोग्य गृहस्थ या देहरूप रथ में (वि-पूचः) विविध दिशाओं में जाने वाले (अश्वान्) अश्वों के समान नाना विषयों को भोगने वाले इन्द्रियों को (युयुजानः) योग वा कर्मकौशल से एकाग्र करता हुआ (ईयते) जीवन मार्ग पर गमन करता है ? उत्तर—(कः) कर्त्ता, प्रजापति, गृहस्थ पुरुष। विज्ञान पक्ष में—कौन पुरुष विद्युत् और अग्नि इन दोनों के रहस्य-विज्ञान को जानता है ? जो जानता है वह (समाने रथे विश्वाचः अश्वान् युयुजे) एक ही समान रथ में नाना प्रकार, के. नाना शक्ति वाले, नाना आकार-प्रकार के 'अश्व' अर्थात् वेगयुक्त एँजिन, यन्त्रादि लगा कर वेग से गमन करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, विद्युत् और अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (इयम्) यह स्त्री (अपात्) अपने सत्य वचन से न गिरने हारी, (पद्वतीभ्यः) उत्तम आचरण वाली अन्य सखियों से भी (पूर्वा) प्रथम, सबसे मुख्य होकर (आ अगात्) सबके सन्मुख आवे। वह (शिरः हित्वी) शिर को बांधकर, उत्तम रीति से वेणी आदि बनाकर (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) व्यक्त भाव प्रकट करे और (चरत्) तदनुसार आचरण करे और (त्रिंशत् पदा) तीसों पदों पदों या स्थानों में (नि अक्रमीत्) निकल कर जावे। भोजनान्तरशतपदीवत् त्रिंशत्पदेत्युपलक्षणम् ॥ विद्युत्-पक्ष में—(इयं) यह विद्युत् वेगवती होने से गाड़ी के चरणों वाली, गमनशील, पशुओं से जुती गाडियों की अपेक्षा पूर्व पहुंच सकती है। (शिरः हित्वा) अग्र भाग जोड़ देने से यन्त्र द्वारा बोलती है, सर्किट में चलती है, तीसों स्थानों में व्याप जाती है।

इन्द्रा॑ग्नी॒ आ हि त॑न्व॒ते नरो॒ धन्वा॑नि बा॒ह्वोः ।
मा नो॑ अ॒स्मिन्म॑हाध॒ने परा॑ वर्क्तं॒ गवि॑ष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत्-अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् महाधने) इस संग्राम मे भी (गविष्टिषु) भूमियो को विजय करने के अवसरो मे (नः मा परा वर्क्तम्) हम अन्य नगरवासियो को छोडकर मत भागना । क्योंकि उस समय तो (नरः) मनुष्य लोग (बाह्वोः) बाहुओं में (धन्वानि) धनुषो को लेकर (आ तन्वते) युद्ध किया करते हैं। गृहस्थ मे प्रवेश करने वाले स्त्री-पुरुषो को नागरिको के कर्त्तव्य का उपदेश है कि संग्राम के अवसर पर नगर को संकट मे छोड़कर न भाग जावे, प्रत्युत वे भी वीरो के समान शस्त्रास्त्र हाथ मे लेकर युद्ध करे ।

इन्द्रा॑ग्नी॒ तप॑न्ति मा॒घा अ॒र्यो अरा॑तयः ।
अप॒ द्वेषां॒स्या कृ॑तं युयु॒तं सूर्या॒दधि॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (अर्यः) आगे आने वाली (अघाः) पापयुक्त हिंसक (अरातयः) शत्रु सेनाएं (मा तपन्ति) मुझे सन्ताप देती है। आप लोग (द्वेषांसि) द्वेष करने वालो को (अप आ कृतं) दूर करो और (सूर्यात् अधि) सूर्य के प्रकाशमय जीवन से उनको (युयुतम्) वियुक्त करो ।

इन्द्रा॑ग्नी यु॒वोरपि॒ वसु॑ दि॒व्यानि॒ पार्थि॑वा ।
आ न॑ इ॒ह प्र य॑च्छतं र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों के (दिव्यानि) उत्तम, सूर्यादि मे उत्पन्न, और (पार्थिवानि) पृथिवी मे उत्पन्न, सुभिक्ष, अन्न, जल, रत्न, भूमि आदि (वसु) नाना द्रव्य हो। आप दोनो (नः) हमे (इह) इस राष्ट्र में (विश्वायु-पोष-

सम्) समस्त मनुष्यों को वा जीवन भर पोषण करने मे समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य को (प्र यच्छतम्) प्रदान करो ।

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (उक्थ-वाहसा) उत्तम वचन को धारण करने वाले ! (स्तोमेभिः) स्तुतियोग्य वचनों और वेदमन्त्र के सूक्तों से (हवन-श्रुता) दानयोग्य ज्ञान को श्रवण करने हारे ! (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस उत्पन्न हुए पुत्रादि सन्तान के पालने के लिये (विश्वाभिः गीर्भि.) सब प्रकार की विद्याओं से ज्ञानवान् होकर (आ गतम्) आओ । बाद मे गृहाश्रम धारण करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[६०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ विराड्गायत्री । ५, ९, ११ निचृद्गायत्री । ८, १०, १२ गायत्री । १३ स्वराट् पंक्तिः १४ निचृदनुष्टुप् । १५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान् (अग्नी) अग्निवत् तेजस्वी (सहुरी) सहनशील (सहः-तमा) अति बलशाली, (सहसा) बल से (वाजयन्ता) ऐश्वर्य वा संग्राम करने वाले, (भूरे· वसव्यस्य) बहुत द्रव्य के (इरज्यन्ता) स्वामियों की (सपर्यात्) सेवा करे । वह (वृत्रम् श्नथत्) विघ्नों को नाश करता, (वाजं सनोति) ऐश्वर्य का भोग करता और औरों को भी देता है । (२) (यः इन्द्र-अग्नी सहुरी

अथत्) जो वायु, विद्युत् और सूर्य और अग्नि दोनो को अपने वश कर लेता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) धन और अन्न का भोग करता है। वह (सहुरी सपर्यात्) इन दोनो बलशाली तत्वो को अपने कार्य मे लगाता है। वह (वसव्यस्य भूरेः इरज्यन्त) भारी ऐश्वर्य वा स्वामी बन जाता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) बहुत धन और अन्नादि ऐश्वर्य को भोगता है।

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! अग्रणी नायक! अथवा पूर्वोक्त स्त्रीपुरुषो! आप दोनो! (ता०) उन (गाः अभि) भूमियो को लक्ष्य करके (योधिष्टम्) शत्रुओ से युद्ध करो। और (नूनम्) अवश्य (अपः) आप्त प्रजाओ और (स्व) सुख कारक, वा उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली (उषसः) कमनीय, कान्तियुक्त, प्रिय, प्रभातवेलाओं के समान सुन्दर (ऊढ़ाः) विवाहित पत्नियों को लक्ष्यकर उनकी मान रक्षा के लिये (अभि योधिष्टम्) शत्रु वा दुष्ट जनों को प्रहार करो। हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (दिश०) दिशाओं (स्वः) सुखमय प्रकाश और (उषसः) उषाओं के समान सुप्रसन्न प्रजाजनो को और (चित्राः) अद्भुत एवं पूज्य (अपः) जलवत् शीतल, एवं आप्त जनों को और (गाः) भूमियों, इन्द्रिय गणों को (युवसे) मिला, और हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तू भी उसी प्रकार (नियुत्वान्) उत्तम अश्वों का स्वामी होकर (दिशः) आदेश मानने वाली (स्व) प्रेरणा योग्य (उपस) शत्रु को दग्ध करने वाली (चित्रा) अद्भुत बलशाली, (अप) जल धारावत् प्रवाह से जाने वाली, (गा०) शस्त्रास्त्र चलाने वाली सेनाओ को (युवसे) प्राप्त कर।

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृत्रहणा) विद्युत् और सूर्य के समान मेघवत् शत्रु पर आघात करने वाले (इन्द्र अग्ने) विद्युत् के समान तेजस्विन् ! राजन् अग्नि के तुल्य सत्यप्रकाशक विद्वन् ! सभ्यजन ! आप दोनों (वृत्रहभिः) दुष्टों का नाश करने वाले (नमोभिः) शस्त्रास्त्रों, उपायों से और (शुष्मैः) बलों सहित (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ । और हे (इन्द्र अग्ने) दुष्ट नाशक ! पापियों को सन्ताप देने हारे जनो ! (युवं) आप दोनो (अकवेभिः) अनिन्दनीय अनेकों (उत्तमेभिः) उत्तम २ (राधोभिः) धनों से (भवतम्) सम्पन्न होओ ।

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥

भा०—(ययोः) जिन दोनों के बल पर (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (पुरा कृतम्) पहले बना और अब भी (पप्ने) नियमपूर्वक व्यवहार करता, और चलता है, मै (ता) उन दोनो (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि वा वायु और अग्नि तत्वों का (हुवे) उपदेश करूं । वे दोनो (न मर्धतः) इस विश्व को नाश नही करते । इसी प्रकार राष्ट्र मे जिनके बल पर संसार का व्यवहार चलता है, जो राष्ट्र को नष्ट नही होने देते वे तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् पुरुष 'इन्द्र' और 'अग्नि' है ।

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हम लोग (उग्रा) अति तेजस्वी, (वि-घनिना) विशेष २ रूप से आघात करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु विद्युत् दोनो को (हवामहे) प्राप्त करें, उनको अपने वश करे (ता) वे दोनों (नः) हमे

(ईदृशे) इस प्रकार के व्यवहार में (नः) हमे (मृडातः) सुखी करते हैं। इसी प्रकार शत्रुओं को दण्ड देने वाले, तेजस्वी सेनापति और सैन्य को हम (मृधः) संग्रामों को विजय करने के लिये प्राप्त करें (ता नः मृडत) वे हम पर दया करे। कृपा बनाये रक्खे। मृडतिरुपदयाकर्मा ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती ।
हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥

भा०—आप दोनों (आर्या) श्रेष्ठस्वभाव होकर (वृत्राणि हत.) विघ्नों और विघ्नकारियों को दण्डित करे। इसी प्रकार आप दोनो (सत्पती) सज्जनों के पालक और उत्तम पति-पत्नी होकर (दासानि) भृत्य जनों तथा प्रजा के उपक्षय करने वाले कार्यों और करने वालों को भी (हत.) दण्डित करो। और आप दोनों (विश्वा द्विपः) सब द्वेष के भावों और द्वेष करने वालों को भी (अप हतः) दण्डित कर दूर करो।

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत ।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो! सेनापति सैन्य जनो! हे (शम्भुवा) शान्ति देने हारो! (युवाम्) आप दोनों की (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुति युक्त वचन वा स्तोता जन (अभि-अनूषत) साक्षात् प्रशंसा करते है वा विद्वान् जन उपदेश करते है। आप दोनों (सुतम् पिबतम्) उत्पन्न अन्नादि ओषधि, प्राप्त ऐश्वर्य का पालन वा, उपभोग करो।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (नरा) नायक जनो! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् और

अग्रणी पुरुषो ! (याः) जो (वां) आप दोनो की (पुरु-स्पृहः) बहुतों से अभिलाषा करने योग्य (नि-युतः) अधीन नियुक्त सेनाएं वा लक्षों सम्पदाएं वा उत्तम इच्छाएं (सन्ति) हैं (ताभिः) उनसे आप दोनों (दाशुषे) दानशील, करप्रद प्रजाजन के हितार्थ (आगतम्) आइये ।

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्निसम तेजस्वी जनो ! आप (ताभिः) इन सम्पदाओ, शुभ कामनाओं से (आ गच्छतम्) आइये । (इदं सवनं) यह यज्ञ (उप सुतम्) अच्छी प्रकार किया गया है । आप (सोम-पीतये) ओषधिरस वत् ऐश्वर्य, सुख के उपभोग के लिये प्राप्त हूजिये ।

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (अर्चिषा) अपनी ज्वाला से (विश्वा वना) सब वनों या काष्ठो मे (परि स्वजत्) लग जाता है और उनको (जिह्वया) अपनी ज्वाला से (कृष्णा) काला कोयला (करोति) बना देता है और जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् जल (अर्चिषा) अपनी दीप्ति से (विश्वा-वना परिष्वजत्) समस्त किरणों और समस्त मेघस्थ जलो को व्यापता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) अपनी ग्रहणकारिणी आकर्षक शक्ति से आकर्षण करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष अपने (अर्चिषा) अर्चना वा आदर सत्कार योग्य उत्तम कर्म से (विश्वा वना) समस्त विभाग योग्य द्रव्यों को (परि स्वजत्) प्राप्त कर लेता है और (जिह्वया) वाणी द्वारा (कृष्णा) नाना आकर्षण (करोति) उत्पन्न करता है, हे विद्वन् ! तू (तम् ईडिष्व) उसको चाह, उसकी स्तुति और आदर कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा वा स्वामी के (द्युम्नाय) तेजोवृद्धि के लिये (सुतराः अपः) सुखप्रद जल और (सुम्नम्) सुखकारी अन्न (इद्धे) उसके अति तेजस्वी होने पर (आविवासति) आदरपूर्वक देता है और उसकी सेवा करता है वह स्वयं भी (सुम्नम्) सुख और (सुतराः अपः) सुखजनक जलों को प्राप्त करता है । (२) (यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य) विद्युत् के (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य को (इद्धे) उसके अति प्रदीप्त तेज के बल पर (आ विवासति) आविष्कार करना चाहता है वह (द्युम्नाय) ऐश्वर्य या अति तेज के लिये भी (सु-तराः अपः) खूब वेग से जाने वाले जलों को प्राप्त करे और उससे विद्युत् प्राप्त करे । (३) जो शिष्य (इन्द्रस्य) ज्ञानप्रद गुरु की सेवा करता है (द्युम्नाय) यश के लिये सुख से पार तराने वाले कर्मों वा ज्ञान को प्राप्त करता है ।

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः ।
इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्ययुक्त, तेजस्वी और ज्ञानयुक्त स्त्री पुरुषो ! आप लोग (वः वाजवतीः इषः) हमारे बलयुक्त अन्नों, ऐश्वर्ययुक्त कामनाओं तथा संग्रामकारी सेनाओं को आप दोनों (पिपृतम्) पालो और (आशून् अर्वतः) शीघ्रगामी अश्वों और शत्रुहिंसक वीरों को भी (पिपृतम्) पालन करो और (इन्द्रम् अग्निं च) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ज्ञानयुक्त और अग्नितत्व युक्त तुझे प्राप्त होने वाले स्त्री पुरुष इन दोनों को (वोढवे) विवाह करने के निमित्त (पिपृतम्) पालन करो । अर्थात् पुरुष जब तक पर्याप्त धन न कमावे और स्त्री जब तक ऋतुसे न हो तब तक

उनके माता पिता पालें और बाद में उनके विवाह करें। (३) विज्ञानपक्ष में—विद्युत् और अग्नि दोनों का रथ वहने के लिये प्रयोग करो क्योंकि ये दोनों वेगवान् प्रेरणा और वेग से जाने वाले बलों को धारते हैं।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।

उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥१३॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे विद्युत् अग्निवत्, तेजस्वी प्रकाशवान् धनी, ज्ञानी स्त्री पुरुषो! (उभा) दोनों आप (इषां) अन्नों और (रयीणाम् दातारा) धनों को देने वाले हो। (वाम् उभा) आप दोनों को मैं (वाजस्य सातये) बल, अन्न और ऐश्वर्य के विभाग के लिये (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं और (उभा) दोनों आदरपूर्वक और (सह) एक साथ मिलकर (राधसः) धन का (मादयध्यै) आनन्द-लाभ करने के लिये (वाम् उभा हुवे) आप दोनों की प्रार्थना करता हूं।

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम्।

सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे॥ १४॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, विद्युत् या मेघ, विद्युत् के समान परस्पर वर्त्तने वाले स्त्री पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (गव्येभिः) गौ, पशु, से प्राप्त दुग्ध आदि पदार्थों, वाणी के ज्ञानों और भूमि से प्राप्त अन्नों सहित और (अश्व्यैः) अश्व योग्य रथों और (वसव्यैः) धनों से प्राप्त होने योग्य सुखों एवं बसे हुए जनों के हितकारी साधनों सहित (उप गच्छतम्) प्राप्त होओ। आप दोनों (सखायौ) समान ख्याति वा नाम, प्रसिद्धि वाले, परस्पर मित्र, (देवौ) दीप्तियुक्त, सुखप्रद, और (सख्याय) मित्रता की वृद्धि के लिये (शम्भुवा) शान्ति देने वाले हो। (ता) उन आप दोनों को हम लोग (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें। उसी प्रकार हमारे पास विद्युत् और अग्नि भूमि या किरणों के योग्य दीपकादि, वेगवान् साधनों, रथादि और गृहादि योग्य यन्त्रों सहित प्राप्त हों।

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! आप दोनों (सुन्वत यजमानस्य) नाना पदार्थों को उत्पन्न करने वाले दानशील पुरुष के (हव) वचन को (शृणुतं) श्रवण करो । (हव्यानि वीतं) उत्तम अन्नों का भोजन करो । (सोम्यं मधु) बलदायक, ओषधिरस से युक्त मधुर पदार्थ का (पिबतं) पान करो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[६१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सरस्वती देवता ॥ छन्दः—१, १३ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड्जगती । ४, ९, ११, १२ निचृद्गायत्री । ५, ६, १० विराड्गायत्री । ७, ८ गायत्री । १४ पङ्क्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति १

भा०—हे (इयम्) यह सरस्वती, वेगयुक्त जल, वाणी, नदी जिस प्रकार (वध्र्यश्वाय) अश्व अर्थात् वेग से जाने वाले प्रवाह को रोकने या उसको और अधिक बढ़ाने वाले पुरुष को (ऋण-च्युतं) जल से प्राप्त होने वाला, (दिवः दासम्) तेज या विद्युत् का देने वाला (रभसम्) वेग (अददात्) प्रदान करता है । और (य.) जो नदी (शश्वन्तम्) निरन्तर चलने वाली और (पणि) व्यवहार योग्य, उत्तम (अवसं) गति को (आचखाद) स्थिर रखती है और उसके (ता तविषा दात्राणि) वे २ नाना प्रकार के बलयुक्त दान हैं उसी प्रकार यह सरस्वती, वाणी वा ज्ञानमय प्रभु ! (वध्र्यश्वाय) अपने इन्द्रिय रूप अश्वों को बांधकर संयम से रहने वाले और (दाशुषे) अपने आपको उसके अर्पण करने वाले भक्त को वा ज्ञानदाता विद्वान् को, (ऋण-च्युतं) ऋण से मुक्त करने

और (दिवोदासं) ज्ञान प्रकाश देने वाले (रभसं) कार्य साधक वल और ज्ञान (अददात्) प्रदान करती है और (या) जो (शश्वन्तम्) अनादि काल से विद्यमान, नित्य, (अवसम्) ज्ञान, रक्षा वल, और (पणिम्) व्यवहार साधक, वा स्तुत्य ज्ञान वा ज्ञानवान् पुरुष को (आचखाद्) स्थिर कर देती है। हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली वाणि ! (ते) तेरे (तविषा) वडे (ता दात्राणि) वे, वे, अनेक दान है। स्त्रीपक्ष मे—योषा वै सरस्वती वृषा पूषा ॥ शत० २ । ५।१। ११ ॥ (इयम्) यह स्त्री (दाशुषे) अन्न, वस्त्र वीर्य सर्वस्व देने वाले (वध्र्य-श्वाय) इन्द्रिय वल को वढ़ाने वाले, वीर्यवान् पुरुष के लिये (रभसम्) दृढ़ (ऋण-च्युतम्) पितृऋण से मुक्त कर देने वाले (दिवः-दासं) प्रसन्नतादायक पुत्र प्रदान करती है। (अवसं) रक्षक (पणि) स्तुत्य पति को (शश्वन्तम्) पुत्रादि द्वारा सदा के लिये (आचखाद) स्थिर कर देती है, स्त्री के वे नाना वड़े महत्वयुक्त (दात्रा) सुखमय प्रदान है।

इ॒यं शुष्मे॑भिर्बिस॒खा इ॑वारुज॒त्सानु॑ गिरी॒णां त॑वि॒षेभि॑रू॒र्मिभि॑ः । पा॒रा॒व॒त॒घ्नीमव॑से सुवृ॒क्तिभि॑ः सर॑स्वती॒मा वि॑वासेम धी॒तिभि॑ः॥२॥

भा०—जैसे नदी (विसखाः-इव) कमल के मूल उखाडने वाले के समान (उर्मिभिः तविषेभिः) वलवान् तरंगो से (गिरीणां सानु अरुजत्) पर्वतो वाले चट्टानों को तोड़ डालती है और जिस प्रकार विद्युत् (शुष्मेभिः) वलयुक्त प्रहारों से (गिरीणां सानु) मेघो या पर्वतो के शिखरो को अनायास तोड फोड डालती है, उसी प्रकार (इयं) यह वाणी (शुष्मेभिः) वलयुक्त (तविषेभि.) वडे २ (ऊर्मिभिः) तरंगो से युक्त उल्लासों से (गिरीणां) स्तुति वा वाणियो के प्रयोक्ता विद्वान् पुरुषों के (सानु) प्राप्तव्य ज्ञान को (अरुजत्) तोड देती है। उसे (पारावतघ्नी) परव्रह्मस्वरूप 'अवत' अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुचने वाली, वहा तक का ज्ञान देने वाली (सरस्वतीम्) प्रशस्त ज्ञानयुक्त वेद वाणी

को (सु वृक्तिभिः) उत्तम मलनाशक, पापशोधक (धीतिभिः) अध्ययनादि कर्मों से (आ विवासेम) अच्छी प्रकार सेवन करें, उसका निरन्तर अभ्यास करे।

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति देवि ! वाणि ! तू (देवनिदः) विद्वानों और देव, परमेश्वर की निन्दा करने वालों, और निंदा के भावों को भी (नि बर्हय) दूर कर। (बृसयस्य) संशय आदि करने वाले (विश्वस्य) सब (मायिनः) प्रज्ञावान् पुरुष की (प्रजां) प्रजा, शिष्य आदि को (अविन्दः) प्राप्त कर (उत) और (क्षितिभ्यः) भूमि पर निवास करने वाले मनुष्यों के हितार्थ (अवनीः) नदीवत् सुरक्षित भूमियों को (अविन्दः) प्राप्त करा। हे (वाजिनीवति) ज्ञानयुक्त विद्याओं से समृद्ध वाणि ! तू (एभ्यः) इन लोगों के लिये (विषम्) मलशोधक जल के समान विविध पापों का अन्त कर देने वाले ज्ञान को (अस्रवः) प्रवाहित कर। (२) नदी लोगों को वसने के लिये नाना स्थान देती और जल प्रदान करती है।

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

भा०—(सरस्वती देवी) उत्तम जल प्रवाह से युक्त नदी जिस प्रकार (वाजेभिः) नाना अन्नों से (वाजिनीवती) अन्न से सम्पन्न भूमि वाली होकर (धीनाम् अवित्री) नाना कौशल कर्मों को चलाने वाली होती है और प्रजा को पालती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री हो। वह (वाजेभिः) ज्ञानों और बलों से (वाजिनीवती) विद्या सम्पन्न होकर (धीनाम्) उत्तम बुद्धियों और कर्मों की (अवित्री) प्रकाश करने वाली होकर (नः प्र अवतु) हमें प्राप्त हो।

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देवि) ज्ञानदात्रि! (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न महाभागे! (वृत्र-तूर्ये इन्द्रं न) मेघ को छिन्न भिन्न करने के कार्य में 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत् के समान (यः) जो पुरुष (त्वा) तुझ को (हिते धने) हितकारी धन को प्राप्त करने के निमित्त (उप ब्रूते) उपदेश करता है तू ऐसे पुरुष को (धीनाम् अवित्री प्र अवतु) बुद्धियों को पालन करती हुई प्राप्त हो। अवत्वित्यस्य पूर्वतोऽपकर्षः॥ इति त्रिंशो वर्गः॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवि) कमनीय स्वभावयुक्त, प्रिय (सरस्वति) विदुषि! हे (वाजिनि) उत्तम, ज्ञानवति, अन्नदात्रि! बलवति! तू (वाजेषु) बलयुक्त संग्राम आदि ज्ञानयुक्त अध्ययनादि कालों में भी (नः सनिम्) हमें देने योग्य हमारी वृत्ति तथा विवेचक बुद्धि को (पूषा) भूमि या पोषक पति के समान ही (अव) पालन कर (रद) दे। स्त्री भृत्यादि को पतिवत् ही पालन करे।

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (सरस्वती) वेद वाणी, (घोरा) दुष्टों को भय देने वाली, (हिरण्य-वर्त्तनि) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली (वृत्र-घ्नी) अज्ञान रूप विघ्न को नाश करने वाली, (सु-स्तुतिम् वष्टि) सदा उत्तम उपदेश करना चाहती है। इसी प्रकार (नः) हमारे बीच वह विदुषी स्त्री, (घोरा) दयाशील, सुवर्ण रथ पर चढने हारी, वा उत्तम हितकारक सदाचार मार्ग पर चलने हारी, (वृत्रघ्नी) दुष्टों का नाशक होकर उत्तम प्रशंसा की कामना करे।

यस्या॑ अन॒न्तो अह्रु॑तस्त्वे॒षश्च॑रि॒ष्णुर॑र्ण॒वः ।
अम॒श्चर॑ति॒ रोरु॑वत् ॥ ८ ॥

भा०—(यस्या.) जिस वाणी का (अनन्तः) अनन्त (अमः) व्यापक ज्ञान (अह्रुत') कुटिलतारहित, सरल, (त्वेपः) दीप्तियुक्त, (चरिष्णुः) फैलने वाला, (अर्णवः) सत्य से युक्त, समुद्र के समान महान्, (रोरुवत्) शब्द करता हुआ उपदेश रूप मे (चरति) गुरु से शिष्य के पास जाता है वह वेदवाणी सबको अभ्यास करने योग्य है। (२) इसी प्रकार (यस्या' अम.) जिसका साथी पुरुष अनन्त बलशाली, (त्वेप') तेजस्वी, (चरिष्णु.) विचारशील, समुद्रवत् गम्भीर, गर्जना वा उपदेश करता हुआ विचरता है। (३) इसी प्रकार नदी का (अमः) गमन स्थान समुद्र है, वह गर्जता है।

सा नो॒ विश्वा॒ अति॒ द्विषः॒ स्वसॄ॑र॒न्या ऋ॒ताव॑री ।
अत॒न्नहे॑व॒ सूर्यः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अहा इव सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार दिनो के पार पहुच जाता है, इसी प्रकार (सा) वह, (ऋतावरी) सत्य ज्ञान से श्रेष्ठ, वाणी, (अन्याः) अन्य (स्वसॄः) स्वयं आ जाने वाले (नः) हमारे (द्विपः) शत्रु, द्वेष या अप्रीति युक्त भावों से (अति अतन्) हमे पार करे। इसी प्रकार विदुषी स्त्री, सत्य और श्रेययुक्त, न्यायनिष्ठ होकर अन्य सब बहिनो को भी पार कर सब शत्रुओं से हमे पार करे।

उ॒त नः॑ प्रि॒या प्रि॒यासु॑ स॒प्तस्व॑सा सु॒जुष्टा ।
सर॑स्वती॒ स्तोम्या॑ भूत् ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—(उत) और (सरस्वती) उत्तम अन्तरिक्ष मे विचरने वाली एवं उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी (सप्त स्वसा) ५ प्राण, मन और बुद्धि इन ७ मुखों मे स्थित वा ७ प्राणों से युक्त, (सु-जुष्टा) सुखपूर्वक सेवित, (प्रियासु) सब प्रिय वृत्तियो मे भी (न. प्रिया) हमें अति प्रिय होने से

(स्तोम्या भूत्) स्तुति योग्य है। वेदवाणी, गायत्री आदि सात छन्दों से 'सप्त-स्वसा' है। वही अति प्रिय होकर (स्तोम्या) भगवत्स्तुति के योग्य है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् ।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्यारूप सरस्वती तो (पार्थिवानि) पृथिवी मे विदित समस्त पदार्थों, (रजः) कण २ परमाणु २ समस्त लोकों और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष मे भी (आपप्रुषी) सर्वत्र व्याप्त है। वह ज्ञानमयी प्रभु की शक्ति हमे (निदः) निन्दा करने वाले से (पातु) बचावे।

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

भा०—जो वाणी (त्रि-सधस्था) नाभि, उरस् और कण्ठ तीनों में एक साथ ही विराजती है। जो (सप्त-धातुः) रक्त, मेदस्, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक्र सातों से धारण करने योग्य होकर (जाता) उत्पन्न हुए (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रियो को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई, (वाजे वाजे) प्रत्येक ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के कार्य में (हव्या भूत्) स्तुति करने योग्य है। वेदमयी वाणी सात छन्दों से धारण करने योग्य होने से सप्त धातु और ब्राह्मणादि और निषाद इन पांचों को बढ़ाती है। प्रत्येक अवसर मे ईश्वरस्तुति के योग्य है। देवी, स्त्री, सातों धातुओं को धारण करने वाली, पिता, स्वसुर, भाई, देवर, और पुत्र पांचो का मान बढाती हुई प्रत्येक यज्ञ में संगिनी रूप से स्वीकार्य है।

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती॥१३॥

भा०—(या) जो वाणी, (महिम्ना) अपने महान् सामर्थ्य वा ज्ञान से (महिना) पूज्य है जो (अप्सु) इन सबमे (द्युम्नेभिः)

यशो वा ज्ञानमय प्रकाशो से (अन्याः) अन्य प्रजाओ को भी (चेकिते) ज्ञानयुक्त करती है। और (अपसाम्) कर्म करने वाले निष्ठ विद्वानो के बीच में भी (अपस्तमा) सबसे उत्तम कर्मोपदेश करने वाली है, जो (रथः) रथ, वा महान् आकारावत् (बृहती) बहुत बड़ी, वेद वाणी (विभ्वने) विभु, व्यापक परब्रह्म की स्तुति करने के लिये (कृता) प्रकट की जाती है, जो (चिकितुषा) विद्वान् पुरुष द्वारा (उपस्तुत्या) उपासना काल मे भी परमेश्वर की स्तुति के योग्य होती है वह (सरस्वती) वाणी, वा वेदवाणी सदा पूज्य है।

सर॑स्वत्य॒भि नो॑ नेषि॒ वस्यो॒ माप॑ स्फरीः॒ पय॑सा॒ मा न॒ आ ध॑क्।
जु॒षस्व॑ नः स॒ख्या वे॒श्या॑ च॒ मा त्वत्क्षेत्रा॒ण्यर॑णानि गन्म ॥१४॥
३२ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वेदवाणि! हे प्रभो! तू (नः) हमे (वस्यः) अति समृद्ध ऐश्वर्य को (अभिनेषि) प्राप्त करा। (मा अप स्फरीः) हमे विनाश मत कर। (पयसा) पुष्टि-कारक ज्ञान से (नः) हमें (मा आधक्) थोड़ा भी दग्ध, संतप्त न होने दे। (वेश्या) प्रवेश होने योग्य (सख्या) मित्रभाव से (नः जुषस्व) हमे प्रेम पूर्वक स्वीकार कर। (त्वत्) तुझ से रहित होकर हम (अरणानि) अरमणीय, दुःखदायी (क्षेत्राणि) क्षेत्र या देहो मे (मा गन्म) न जावें, तिर्यग् देहो मे न भटके। इसी प्रकार सरस्वती स्त्री हमें उत्तम धन प्राप्त करावे, हमे नष्ट न करे, न उजाड़े। जल अन्नादि के कारण हमे न सतावे। अपने हृदय मे प्रवेश होने योग्य मित्र भाव से हमें प्रेम से अपनावे। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार–मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित–श्रीपण्डित–
जयदेवशर्मविरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये चतुर्थोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(षष्ठे मण्डले षष्ठोऽनुवाकः)

[६२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६, ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे नरा॑ दि॒वो अ॒स्य प्र॒सन्ता॒श्विना॑ हुवे॒ जर॑माणो अ॒र्कैः ।
या स॒द्य उ॒स्रा व्युषि॒ ज्मो अन्ता॒न्युयू॑षतः॒ पर्यु॒रू वरां॑सि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उस्रा) किरणों और वायुओं से युक्त, (अश्विना) वेगवान् किरणादि से युक्त सूर्य और उषा (ज्मः अन्तान् उरू वरांसि) पृथिवी के समीप के नाना पदार्थों को (परि युयूषतः) पृथक् २ दर्शाते हैं उसी प्रकार (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् साधनों से सम्पन्न (दिवः नरा) ज्ञानप्रकाश वा उत्तम कामना और व्यवहार के प्रवर्त्तक, (अस्य) इस जगत् के बीच (प्र-सन्ता) उत्तम सामर्थ्यवान्, मान-युक्त होकर रहें । (या) जो (सद्यः) शीघ्र ही (उस्रा) तेजस्वी होकर (व्युषि) विशेष कामना या इच्छा होने पर (अन्तान्) समीपस्थ सत्य पदार्थों को और (उरू वरांसि) बहुत से दुःखवारक, श्रेष्ठ पदार्थों को (ज्मः परि युयूषतः) पृथिवी से पृथक् कर लेते, प्राप्त करते और उनका विवेक करते हैं । ऐसे विवेचक, स्त्री पुरुषों को (अर्कैः जरमाण) उत्तम अर्चना अर्थात् सत्कारोचित साधनों से (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं ।

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥

भा०—(रथस्य रजोभिः भानुम्) रथ के धूलिकणों से सूर्य को सुशोभित करते हुए, रथ से जाते हुए जिनको लोग सूर्य उषा के समान जानते हैं (ता) वे आप दोनो (शुचिभि) शुद्ध पवित्र आचरणो से, (यज्ञम् आ चक्रमाणा) परस्पर सत्संग, दान, मान, सत्कार आदि व्यवहार करते हुए (रथस्य) अपने रमणीय व्यवहार के (रजोभिः) तेजो से (भानुम्) अपने तेज को (रुरुचु) अति रुचिकारक वनाओ और आप दोनो इस जगत् मे (अमिता) अनेक (पुरू) वहुविध (वरांसि) श्रेष्ठ रथादि पदार्थों का (मिमाना) निर्माण करते हुए (अज्रान्) अपने वेग से जाने वाले अश्व, यानादि की (अपः धन्व अतियाथः) समुद्रो और मैदानो के पार पहुंचाने में समर्थ होवो ।

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—(त्यत् वर्त्तिः) वह मार्ग (यत् अरध्रम्) जो मनुष्यों के वश का न हो, जिस पर चला न जासके, ऐसा ऊंचा, नीचा, विषम, आकाश जलादि का मार्ग है और जो (दाशुष मर्त्यस्य) राष्ट्र मे कर आदि देने वाले प्रजाजन को (व्यथि·) नाना प्रकार से व्यथा, दु ख देता है, उसको (परि शयध्यै) सुख से पार करने के लिये (उग्रा) वल-वान् (ता) वे दोनो (अश्विना) वेगवान् रथ, अश्व यन्त्रादि के जानने वा वनाना जानने वाले, विद्युत् अग्निवत् शिल्प कुशल स्त्री पुरुष, (शश्वत्) सदा ही (अश्वै·) वेग से जाने वाले यन्त्रों और (मनोजवेभि) मन के समान वेगवान् वा विज्ञानपूर्वक अपने संकल्पानुसार न्यूनाधिक वेग रखने योग्य (इषिरैः) इच्छानुकूल चलने वाले रथादि साधनों मे

(इत्था धियः ऊहथुः) इस २ प्रकार नाना कर्म किया करें, लोगों को उन रथ, अश्व, यन्त्रादि से (परि ऊहथुः) पार या दूर देश तक पहुचा दिया करें ।

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥ ४ ॥

भा०—(युयुजान-सप्ती) वेग से जाने वाले रथादि यन्त्रों में जुड़ने वाले वायु, विद्युत् जिस प्रकार (नव्यसः जरमाणस्य मन्म उपभूषतः) स्तुत्य उपदेष्टा के ज्ञान को भूषित करते है उसी प्रकार (युयुजान-सप्ती) वेगवान् अश्वादि को अपने रथ में जोड़ने वाले स्त्री पुरुष वा (युयुजान-सप्ती) अपने सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (नव्यसः जरमाणस्य) स्तुत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (मन्म उपभूषतः) मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करावें । वे दोनों (शुभं) उत्तम कान्ति (पृक्षम्) परस्पर के सम्पर्क, और (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल को (वहन्ता) धारण करते हुए हों । उन (युवाना) युवा युवति बलवान् दोनो को (प्रत्नः) वृद्ध (होता) ज्ञानदाता विद्वान्, बड़ा धनप्रद पुरुष (यक्षत्) ज्ञान प्रदान करे । वा उनको धन की सहायता देकर विज्ञान की उन्नति करे ।

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्ररा ती ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत् दोनों (वल्गू) सुखजनक, (दस्रा) दुःखों के नाशक, (पुरु-शाक-तमा) नाना शक्तिमान्, (नव्यसा वचसा) अतिस्तुत्य, वचन योग्य और (शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतु) विद्वान् उपदेष्टा को अति शान्तिदायक होते और (चित्र-राती) नाना अद्भुत ऐश्वर्य देने वाले होते है उसी प्रकार (या) जो स्त्री पुरुष (शंसते)

उत्तम आशंसा करने वाले और (स्तुवते) ज्ञान के उपदेष्टा विद्वान् को (शम्-भविष्ठा) शान्तिदायक (बभूवतुः) हों, और (गृणते) विद्या के दाता गुरु को (चित्र-राती) नाना प्रकार के उत्तम धनादि देने वाले होते हैं (ता) उन (वल्गू) सुमधुर वचन बोलने वाले, (दस्रा) दुःखनाशक, (पुरु शाक-तमा) बहुत सी शक्तियों से सम्पन्न (प्रत्ना) श्रेष्ठ हैं उनका (नव्यसा) अति स्तुतियोग्य (वचसा) वचन से (विवासे) आदर करूं । इति प्रथमो वर्गः ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः संमुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे दोनों यन्त्रस्थ विद्युत् और पवन (तुग्रस्य सूनुम्) लेन देन करने वाले के पुत्र, व्यापारी को और (तुग्रस्य सूनुम्) शत्रु का नाश करने वाले, बलवान् सैन्य के प्रेरक, वा सञ्चालक (भुज्युं) भोक्ता, वा पालक सेनानायक को (समुद्रात् अद्भ्यः) आकाश से और जलों से (विभि.) पक्षियों के समान आकाश मे जाने वाले यन्त्रों द्वारा (रजोभिः) उत्तम मार्गों से और (अरेणुभिः योजनेभिः) रजोरेणु से रहित, योजनों तक (अर्णस. उपस्थात्) जल के समीप (पतत्रिभिः) वेग से जाने वाले साधनों से वे (भुजन्ता) पालन करने वाले (निर् ऊहथुः) उठा ले जाने में समर्थ होते हैं । स्त्री पुरुष पक्ष मे—(ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (अद्भ्यः) मूल, कारणीभूत उत्पादक वीर्यांशों से (विभिः, रजोभि) कान्ति युक्त, शुक्रांशों और रजो से (समुद्रात्) परस्पर को मिलकर हर्ष देने वाले संग से (तुग्रस्य) पालक पति के (भुज्युं) वंश के पालक (सूनुं) पुत्र को (निर् ऊहथुः) अच्छी प्रकार उत्पन्न करें अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों मिलकर भी शुक्रों और रजो से आनन्द पूर्वक संग से पुत्र उत्पन्न करे । वह पुत्र 'तुग्र्य' अर्थात् वीर्यदाता और पालक पतिकारी ही होता है, वही वंश का पालक होता है । और पुत्र

उत्पन्न हो जाने पर वे दोनों स्त्री पुरुष (अरेणुभिः) पापरहित, निर्दोष (योजनेभिः) परस्पर के समागमों से (भुजन्ता) एक दूसरे को पालन करते हुए और नाना ऐश्वर्यों, सुखों का भोग करते हुए भी (पतत्रिभिः) वेग से जाने वाले रथों, नौकाओं वा पक्षादि युक्त यन्त्रों से जैसे (अर्णसः उपस्थात्) समुद्र या जल के पार जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों (पतत्रिभिः) गिरने से बचाने वाले धर्म-साधनों से वा सन्तानों से (अर्णसः उपस्थात्) पितृऋण रूप सागर से (भुज्युं) वा पालक माता पिता को (निर्-ऊहथुः) पार कर देते हैं। सन्तान उत्पन्न करके वे दोनों मिलकर पति-पत्नी माता पिता के ऋण से मुक्त हो जाते हैं।

वि ज॒यु॒षा॑ रथ्या यात॒मद्रिं॑ श्रु॒तं हवं॑ वृषणा वध्रिम॒त्याः।
द॒श॒स्यन्ता॑ श॒यवे॑ पिप्यथु॒र्गामिति॒ च्यवा॑ना सुम॒तिं भु॑रण्यू ॥७॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (जयुषा रथ्या) विजयशील रथ पर सवार, रथी-सारथी के समान (अद्रिं वि यातम्) मार्ग में आये बाधक पर्वतादि दुर्गम मार्ग को भी पार करो। (वृषणा) आप दोनों बलवान्, परस्पर सुखों का वर्षण करते हुए भी (वध्रिमत्याः) कुल की वृद्धि करने वाली और सुसंयत इन्द्रियों से युक्त भूमि रूप स्त्री के (हवं) वचन को (वध्रिमत्या हवं) नाना वृद्धि युक्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भूमि विषयक उत्तम ज्ञान का (श्रुत) श्रवण करो। (दशस्यन्ता) एक दूसरे का बल बढ़ाते हुए और प्रेमपूर्वक धन, वीर्य आदि देते हुए, (शयवे) शयु अर्थात् शिशु को उत्पन्न करने के लिये (गाम्) योग्य भूमि रूप स्त्री को भूमिवत् (पिप्यथुः) उन्नत अधिक गुण, शक्तियुक्त करो। (इति) इस प्रकार (सुमतिं च्यवाना) उत्तम ज्ञान और बुद्धि को प्राप्त होते हुए (भुरण्यू) सन्तानों का पालन पोषण करने वाले होओ। 'शयवे'—शयुः शिशुश्च समानधातुजावेतौ समानार्थकौ ॥

यद्रो॑दसी प्र॒दिवो॒ अस्ति॑ भू॒मा हेळो॑ दे॒वाना॑मु॒त म॑र्त्य॒त्रा ।
तदा॑दित्या वसवो रुद्रियासो रक्षो॒युजे॒ तपु॑र॒घं द॑धात ॥ ८ ॥

भा०—हे (रोदसी) दुष्टो को रुलाने वाले राजन्, सेनानायक, एवं उसके प्रजागण वा सैन्यगण ! (यत्) जो (देवानाम्) तेजस्वी पुरुषों (उत) और (मर्त्यत्रा) सामान्य मनुष्यो, विद्वानो और 'मर्त्य' अर्थात् शत्रु-मारक वीर भटो में (प्रदिवः) उत्तम तेजस्वी और उत्तम व्यवहार (भूमा) और बहुत बडा (हेडः) क्रोधवान् अनादृत पुरुष (अस्ति) है हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! हे (वसवः) राष्ट्र मे वसे प्रजाजनो ! और हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने और सबके दुःखो को दूर करने हारे जनो ! उस (रक्षो युजे) विघ्नकारी पुरुषो के सहयोगी, पुरुष को दण्डित करने के लिये आप लोग (अघं तपुः) हिंसा रहित स्वयं नष्ट न होने और शत्रु को नाश करने वाला शत्रुसंतापक उपाय शस्त्रादि, (दधात) धारण करो । और (रक्षोयुजे अघं तपुः दधात) रक्षकों के सहयोगी, पुरुष की वृद्धि के लिये (अघं तपुः दधात) शत्रुनाशक शस्त्र धारण करो ।

य ईं॒ राजा॑नावृतु॒था वि॒दध॒द्रज॑सो मि॒त्रो वरु॑ण॒श्चिके॑तत् ।
ग॒म्भी॒राय॒ रक्ष॑से हे॒तिम॑स्य॒ द्रोघा॑य चि॒द्वच॑स॒ आन॑वाय ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (ईं) सब प्रकार से (राजानौ) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाशित होने वाले उत्तम स्त्री पुरुषों को (रजसः) समस्त लोकों के हितार्थ, उनमे (ऋतुथा) समय पर (विदधत्) विशेष रूप से आदरपूर्वक धारण करता है उस जगत् को वे दोनों भी (वरुणः मित्रः) दुष्टों के वारक और स्नेही बनकर (चिकेतत्) जानें । और (आनवाय) अति नवीन, या मनुष्यों के (द्रोघाय चित्) द्रोह के लिये और (वचसे) निन्दा वचन के लिये जिस प्रकार राजा दण्ड देता है उसी

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०॥

भा०—हे (अश्विनौ) उत्तम स्त्री पुरुषो ! सभा वा सभापति ! प्रजावर्ग और राजन् ! आप दोनों (द्युमता) उत्तम तेज से युक्त (नृवता) उत्तम नायक से युक्त (रथेन) रथ के समान रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ से और (अन्तरैः चक्रैः) भीतरी साधनो से (तनयाय) उत्तम सन्तान-लाभ के लिये (वर्त्तिः यातम्) रथ से जैसे मार्ग चला जाता है उसी प्रकार गृहस्थोचित रति द्वारा (वर्त्तिः यातम्) गृहस्थोचित व्यवहार वा गृहाश्रम को प्राप्त होओ । जिस प्रकार (त्यजसा वनुष्यतां शीर्षा वृञ्जन्ति तथा) क्रोध से जिस प्रकार हिंसकों के शिर काट देते हैं उसी प्रकार आप दोनो (सनुत्येन त्यजसा) चिरस्थायी पुत्र और धन के बल से (मर्त्यस्य) मरणशील मनुष्य को (वनुष्यताम्) विनाश कर देने वालों के (शीर्षा) प्रमुख कारको को (ववृक्तम्) विनष्ट करो । हिंसक मृत्यु आदि अर्थात् चिरस्थायी सन्तान व प्रजा से आप दोनों भी अपने को नष्ट कर देने वाले कारणों को दूर करो, सन्तान द्वारा मरणधर्मा मनुष्य भी स्थिर, अमर होकर रहे । प्रजातिरमृतम् । शत० ॥

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ११।२

भा०—हे (चित्रराती) अद्भुत दान देने वाले, अति विस्मयजनक परस्पर प्रेम करने वाले राजा, प्रजा, सैन्य सेनापति वा पति-पत्नी जनो ! (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्भिः) उत्कृष्ट, मध्यम, और निकृष्ट इन सब प्रकार की अश्व-सेनाओं से जिस प्रकार राजा आदि जाते

है उसी प्रकार आप दोनो भी इन तीनो प्रकार के (नियुद्भिः) नियुक्त प्रजावर्गों सहित (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ। और (दृढस्य) दृढ़ (गोमतः) गवादि पशु, उत्तम भूमि आदि वाले (व्रजस्य) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम के (दुरः) द्वारो को (वि वर्त्तम्) खोलो और (गृणते) उपदेश करने वाले विद्वान् के भी (गोमतः व्रजस्य) वेद वाणी से युक्त व्रज अर्थात् आश्रय के द्वार को भी (वि वर्त्तम्) विशेष रूप से खोलो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ स्वराड्बृहती । २, ४, ६, ७ पङ्क्तिः । ३, १० भुरिक् पङ्क्तिः । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ आसुरी पङ्क्तिः ॥ ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (दूतः न) दूत या संदेश-हर जिस प्रकार (पुरुहूता वल्गू नमस्वान् सन् अविदत्) बहुतों मे प्रशंसित, बलशाली राजा सेनापति दोनों को नमस्कारवान् होकर आदर से भेट करता है उसी प्रकार (स्तोमः) स्तुतियुक्त विद्वान् (नमस्वान्) दण्डपूर्वक शासन करने योग्य ज्ञान से सम्पन्न होकर (त्या) उन (वल्गू) सुन्दर वाणी बोलने वाले, (पुरु-हूता) बहुतो से प्रशंसित आप दोनो को आज (क्व अविदत्) किस स्थान पर मिले ? हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले जनो ! (यः) जो आप दोनो को (अर्वाक्) विनययुक्त होकर वा (अर्वाक् = अर्-वाक्) उत्तम वचनयुक्त होकर (आ ववर्त्त) तुम दोनो से आदरपूर्वक व्यवहार करे । तुम दोनो भी (अस्य मन्मन्) उसके मान आदर करने और उसके ज्ञान मे (प्रेष्ठा हि असथः) अति प्रिय होकर रहो ।

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (मे अस्मै) इस मुझ जन के उपकार के लिये आप दोनों (मे हवनाय) मेरे आह्वान या मेरे किये सत्कार को स्वीकार करने के लिये (गृणाना) उत्तम वचन कहते हुए (यथा) जब भी (अरं गन्तम्) अच्छी प्रकार आइये तो (अन्धः पिबाथः) अन्न का अवश्य भोजन करिये और आप दोनों (त्यद् वर्त्तिः परियाथः) उस उत्तम मार्ग में सदा गमन करें (यत् परः न) जिससे जाने से न दूसरा शत्रुजन और (न अन्तरः) न अपना अन्तरंग, समीपवर्त्ती जन भी (तुतुर्यात्) अपने पर प्रहार करे । अथवा (वर्त्तिः परियाथः) आप लोग ऐसे व्यवहार करें वा ऐसे गृह में जावें या रहा करें जिससे अपना, पराया भी हानि न पहुंचा सके ।

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों के प्रति (वरीमन्) उत्तम, वरण करने योग्य, अवसर में (अन्धसः) अन्नों का (अकारि) सत्कार किया जाय । और (सुप्र-अयनतमम्) सुख से, उत्तम रीति से स्थिति करने योग्य (बर्हिः) मान-वर्धक आसन (अस्तारि) बिछाया जावे । (युव-युः) तुम दोनों को चाहने वाला पुरुष (वां) आप दोनों को (उत्तान-हस्तः) अपने हाथों को ऊपर उठाकर (ववन्द) आप लोगों की स्तुति और अभिवादन करे और (अद्रयः) मेघ के तुल्य उदार जन (वां नक्षन्तः) आप दोनों को प्राप्त होकर (आञ्जन्) स्नेहपूर्वक चाहें वा आप दोनों का जलादि से अभिषेक, प्रोक्षण, अर्घ्य सत्कार आदि करें ।

ऊर्ध्वो वा॑म॒ग्निर॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्प्र रा॒तिरे॑ति जू॒र्णिनी॑ घृ॒ताची॑ ।
प्र होता॑ गू॒र्तम॑ना उरा॒णोऽयु॑क्त॒ यो नास॑त्या॒ हवी॑मन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले, वा नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजमान, प्रमुख स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (होता) ज्ञान वा धन का देने वाला, (गूर्त-मनाः) उद्यमयुक्त चित्त वाला, मुख से ज्ञान का उपदेश करने वाला, (उराणः) अति दानशील वा बहुत बड़े कर्म करने वाला, (ऊर्ध्वः) तुम दोनो के ऊपर अध्यक्षवत् रहकर (प्र अयुक्त) आप लोगों को सत्कर्म मे लगाता है और (अग्निः) अग्नि, वा सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक, तेजस्वी, होकर (अध्वरेषु) उत्तम हिंसारहित उपकार के सत्कार्यों में (वाम् ऊर्ध्वः अस्थात्) आप दोनों के ऊपर स्थित होता है तव उसके (हवीमनि) शासन मे रहकर (वाम्) तुम दोनों को (जूर्णिनी घृताची) वेग से गुज़रती रात्रि के समान (जूर्णिनी घृताची) वृद्ध पुरुष की स्नेह से युक्त (रातिः) ज्ञान आदि की दान-सम्पदा, (प्र एति) अच्छी प्रकार उज्ज्वल रूप मे प्राप्त होती है ।

अधि॑ श्रि॒ये दु॑हि॒ता सूर्य॑स्य॒ रथं॑ तस्थौ पुरुभुजा श॒तोति॑म् ।
प्र मा॒याभि॑र्मायिना भूतम॒त्र नरा॑ नृतू॒ जनि॑मन्य॒ज्ञिया॑नाम् ॥५॥ ३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की पुत्री, उषा वा प्रभातवेला, जिस प्रकार सूर्य के (रथं) रमणीय या वेगयुक्त (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियुक्त विम्ब पर (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये विराजती है उसी प्रकार (सूर्यस्य) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पिता की (दुहिता) दूर देश में जाकर विवाह करने वाली कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियों अस्त्र शस्त्र रक्षा साधनों तथा (शत-ऊतिम्) सैकड़ों उत्तम भोगों से युक्त (रथं) सुन्दर रमण योग्य, सुखप्रद आश्रय पर शोभा वृद्धि के लिये रथवत् ही (अधि तस्थौ) विराजे । इसी प्रकार वह कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों

रक्षा साधनों से सम्पन्न (रथं) रमण करने योग्य पुरुष को (श्रिये अधि तस्थौ) प्राप्त कर उसके आश्रय या सेवा करने के निमित्त, निर्भय होकर रहे। हे (पुरु-भुजा) वहुत से भोग और प्रजापालनादि कुशल तुम दोनों! (अत्र) इस लोक वा आश्रम मे ही आप दोनों (माया भिः) नाना बुद्धियों से सम्पन्न होकर (मायिना भूतम्) उत्तम बुद्धि-मान् हो जाओ! आप दोनों (नरा) उत्तम नायक, (यज्ञियानां) यज्ञयोग्य, सत्कारपात्र पुरुषों के बीच में (जनिमन्) इस नवीन जन्म ग्रहण के अवसर पर (नृतू भूतम्) अति हर्ष युक्त, सदा आनन्द, सुप्रसन्न रहो। इति तृतीयो वर्गः ॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सेनापति और सभापति, राजा, दोनों ही (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति से चमकने और अन्नों और प्राणियों को उत्पन्न करने वाली, भूतधात्री पृथ्वी की (शुभे) शोभा के लिये, (आभिः, दर्शताभिः श्रीभिः पुष्टिम् वहतः) इन नाना देखने योग्य लक्ष्मी या कान्ति सहित समृद्धि को (ऊहथुः) वहन करते है इसी प्रकार हे वर वधू जनो! (युवं) आप दोनों (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) इन भिन्न २ दर्शन करने योग्य नाना लक्ष्मी, सम्पदाओं द्वारा (शुभे) अपनी शोभा और शुभ सकल्प के निमित्त (पुष्टिम् ऊहथुः) गवादि सम्पदा और धन समृद्धि प्राप्त कर उसे अपने घर ले जाओ तो (वां) तुम दोनो के (वयः) अश्वों के समान वेगवान् इन्द्रियगण, दीप्तियां, वा रक्षक गण, (ना वपुषे) तुम दोनों की सुरूपता, शरीर की पुष्टि और रक्षा के लिये (अनु पप्तन्) पीछे २ चले, और हे (धिष्ण्या) गृहस्थ धारण करने मे समर्थ दृढ वर वधू जनो! (वाम्) आप दोनों को (सु-स्तुता वाणी नक्षत) उत्तम प्रशंसित वाणी प्राप्त हो। अर्थात् सम्पन्न होने पर स्त्री पुरुषों के

इन्द्रियें विजित हो जिससे शरीर भोग विलासों से नष्ट न हो। लोग आचार की प्रशंसा करें, वे सम्पन्न हो, उनके रक्षक लोग भी उनके आज्ञाकारी हो।

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर स्थित वा कभी असत्य व्यवहार न करने वाले स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनो के (प्रयः) उत्तम गमन करने के साधन रथ को (वयः) वेग से जाने वाले वा कान्तिमान् (अश्वासः) अश्ववत् आशु गति से जाने वाले अग्नि आदि तत्व (वहिष्ठाः) स्थान से स्थानान्तर पहुचा देने मे समर्थ होकर (अभि वहन्तु) आगे ले चले। इसी प्रकार (वयः) तेजस्वी पुरुष (वहिष्ठाः) उत्तम कार्य वा ज्ञान के धारक होकर (वाम् प्रयः वहन्तु) तुम दोनो को उत्तम ज्ञान, प्रीतिकारक वचन प्राप्त करावे। (वां रथः) आप लोगो का रथ (मनः-जवाः) मन के समान तीव्र वेग से वा मन के संकल्पानुसार, इच्छानुकूल मृदु, मध्य, तीव्र वेग से जाने वाला (प्र असर्जि) बहुत अच्छा बनाया जावे। और वह (पूर्वीः) पूर्ण (इषः) चाहने योग्य (पृक्षः) सम्पर्क करने योग्य (इषिधः) नाना इच्छाओं को प्रकट कराने वाला, रुचिकारक अन्न भी (अनु असर्जि) अनुकूल ही तैयार हो।

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसंक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार मेघ और विद्युत, दोनों का जन्तु मात्र पर बहुत बडा उपकार होता है, वे प्राणि-जगत् को (इषं धेनु पिन्वत) अन्न और भूमि के समान सेचन करते हैं समस्त ओषधियों के रसादि भी उनके किये वृष्टि के अनुसार ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार हे

(पुरु-भुजा) बहुत सी प्रजाओं और इन्द्रियों को आत्मा व मन के तुल्य पालन और उपभोग करने वाले राजा अमात्य वा तद्वत् सहयोगी स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनो का (देष्णम्) दान योग्य धन भी (पुरु हि) बहुत प्रकार का हो और आप दोनों (नः) हमारी (धेनुं न) गौ या भूमि को मेघ विद्युत् के समान, ही (असक्राम् इषम्) हमसे अन्य के पास न जाने वाली, निजू ही (इषं) अन्न आदि सम्पदा को (पिन्वतम्) सेचन, वृद्धि करो। और (ये) जो (स्तुतः) उत्तम उपदेष्टा, विद्वान् और (सुस्तुतिः च) उत्तम स्तुति, और (ये रसाः च) जो रस, नाना बल है वे भी हे (माध्वी) मधुर अन्नादि के भोक्ता जनो ! (वाम् रातिम् अनुग्मन्) आप दोनो के दिये धन का अनुगमन करे। अर्थात् आपका दिया दान ही सबको अधिक सुख दिया करे।

उत मे ऋजे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्दश वशासो अभिषाच ऋष्वान्॥९॥

भा०—(पुरयस्य) अग्रणी वा पुर अर्थात् नगर के नियन्ता नगराध्यक्ष (मे) मुझ पुरुष के अधीन मेरे (ऋज्रे) धर्मयुक्त, सरल नीति से युक्त सर्वप्रिय (सुमीढे) धन धान्य से समृद्ध, मेघादि से सुसेचित, (पेरुके च) उत्तम प्रजा पालक, राष्ट्र मे (रघ्वी) सदा कर्म करने मे कुशल प्रजा वेगवती नदी के समान सुखप्रद हो, और (शतं पक्वा) नाना पके अन्न, खेत आदि हों। और (शांडः) प्रजा को शान्तिदायक, और शत्रुओं का अन्त करने मे समर्थ वीर पुरुष, (हिरणिनः) सुवर्ण आदि का स्वामी (स्मद्-दिष्टीन्) उत्तम, शुभ दर्शन, वा ज्ञान वाले (ऋष्वान्) बड़े २ (दश) दस (अभि-साचः) सहयोगी ऐसे पुरुषो को (दात्) स्थापित करे जो (वशासः) उसके अधीन होकर कार्य करे उत्तम राष्ट्र में राजा दश विद्वान् पुरुषों की दशावरा राज्यपरिषत् बनाकर

उत्तम राज्य का पालन करे। (शांडः) शं ददाति इति शांडः। स्यति अन्तं करोति वा शत्रूणां। स्यतेरडजौणादिकः॥ दात्-धात्। वर्णविकारः।

प्र वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः॥१०॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले, एवं प्रमुख स्थान पर स्थित जनो! (वां) तुम दोनो के (अश्वानां) अश्व सैन्यो के (गिरे) उपदेष्टा, वा शिक्षक के लिये (पुरु-पन्थाः) बहुतों को नाना प्रकार के जीवनोपाय रूप मार्ग देने मे समर्थ, बहुतो को वृत्ति देने वाला राजा (शता सहस्रा) सैकड़ों और हज़ारो तक (दात्) दे। अथवा हे (नासत्या) सदा सत्य ज्ञान व्यवहार करने वाले राजा प्रजा वर्गो (पुरुपन्थाः) बहुत से मार्गों से सम्पन्न देश वा देश का राजा (State) (गिरे) विद्वान् ज्ञानवक्ता पुरुष के अधीन शिक्षा पाने के लिये (अश्वानां शता सहस्रा दात्) अश्व-सवारो के सैकड़ों हज़ारों वा सैकड़ों विद्या के इच्छुक जन भी देवे। और हे (वीर) वीर पुरुष! तू (भरद्-वाजाय) ज्ञान और बल को धारण करने वाले (गिरे) उपदेष्टा, शासक विद्वान् के सेवार्थ उसके अधीन (दात्) सैकड़ों सहस्रो अश्व सैन्य रक्खे जिससे हे (पुरु-दंससा) बहुत से उत्तम कर्म करने वाले राज प्रजावर्गो! (रक्षांसि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष सदा (हताः स्युः) दण्डित हो।

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम्॥ ११॥ ४॥

भा०—सत्य व्यवहार निपुण राजा प्रजावर्गो! वा सभा सेनाध्यक्षो! या गृहस्थ स्त्री पुरुषो! मै (वां) आप दोनों के (वरिमन् सुम्ने) अति विशाल सुखप्रद शासन मे (सूरिभिः) विद्वानो के सहित (स्याम्) रहूं। इति चतुर्थो वर्गः॥

[६४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ पङ्क्तिः॥ षड्वृचं सूक्तम्॥

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (रोचमानाः) प्रकाशमान होकर (श्रिये उत् अस्थुः) शोभा वृद्धि के लिये ऊपर उठती है और जिस प्रकार (रुशन्तः अपां ऊर्मयः न) स्वच्छ वर्ण की जलों की तरंगे उठा करती हैं उसी प्रकार (उषसः) कमनीय, कान्तिवाली, विदुषी (रोचमानाः) रुचिर दीप्ति वाली, सुस्वभाव स्त्रियें स्वच्छ विमल आचार वाली, शुक्र कर्मा, होकर (श्रिये) वर की शोभा के लिये (उत् अस्थुः) उन्नति को प्राप्त करें, उत्तम स्थिति को प्राप्त करें, मान पावे। (मघोनी) उत्तम ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) कर्मकुशल स्त्री, (वस्वी अभूत् उ) गृह मे बसने वाली, माता बनने योग्य हो। वह ही (विश्वा सुपथा) समस्त उत्तम धर्म मार्गों को भी (सुगा कृणोति) सुगम कर देती है।

भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः देवि) प्रभात वेला वा उषा के समान कान्तिमति देवि ! पति की कामना करने हारी विदुषि ! तू (भद्रा) कल्याणकारिणी सोम्य वंश वा स्वभाव वाली (ददृक्षे) दीखा कर, वेश और आकार प्रकार से उत्तम, स्वरूप दिखाई दे। (उर्विया) बहुत महत्वयुक्त, उत्तम गुणों से प्रकाशित हो, और बहुत से गुणों को प्रकाशित कर (ते) तेरी (शोचिः) शुद्ध (भानवः) कान्तियांवत् कामनाएं (द्याम्) तेरी कामना करने वाले तेजस्वी पुरुष को (उत अपप्तन्) उत्तम रीति से प्राप्त हों। तू (शुम्भमाना) सुशोभित होकर (वक्षः) अपना स्वरूप और उत्तम वचन एवं गृहस्थ के बहुत सामर्थ्य को (आविः कृणुषे) प्रकट कर। हे (देवि)

विदुषि ! तू (महोभिः) बड़े उत्तम २ गुणो से (रोचमाना) सबको प्रिय लगती हुई विराज ।

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥३॥

भा०—(गावः) अश्व जिस प्रकार (उर्विया प्रथानां भूमिम् प्राप्य रथं वहन्ति) विस्तृत भूमि को प्राप्त होकर रथादि को ढो ले जाते है और जिस प्रकार (गावः प्रथानाम् उर्वियाम् वहन्ति) किरण फैलती हुई उषा को धारण करते है उसी प्रकार (अरुणासः) तेजस्वी, (रुशन्तः) दुष्टो के वा दुष्ट भावो के नाश करने वाले, (गावः) ज्ञानवान् पुरुष, (उर्विया प्रथानाम्) पृथ्वी के समान विशाल, (सुभगाम्) सौभाग्यवती स्त्री को (वहन्ति) उद्वाहपूर्वक ग्रहण करे । (शूरः अस्ता इव शत्रून् अप-राजते) शूरवीर, अस्त्र-कुशल धनुर्धारी के समान वह स्त्री तथा उसके साथ विवाह करने वाला पुरुष, अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि तथा बाहरी शत्रुओ को भी दूर करे । (तमः बाधते) जिस प्रकार उषा वा सूर्य प्रकट होकर अन्धकार को दूर करते है उसी प्रकार वे दोनो भी (तमः) दुःखदायी अज्ञान, शोक आदि अन्धकार को नाश करे । वह पुरुष (अजिरः नवोढा) वेग से जाने वाला अश्व जिस प्रकार रथ वा बोझ ढोने मे समर्थ होता है उसी प्रकार (अजिरः) जरा वा वृद्धावस्था और शरीर की दुर्बलता से रहित पुरुष ही (नवोढा) नयी वधू का विवाह करने वा गृहस्थ भार को उठाने मे समर्थ हो ।

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (दिव दुहिता) प्रकाश वा प्रकाशवान् सूर्य से उत्पन्न होने, वा प्रकाशों के देने, वा जगत् को पूर्ण करने से 'दिवः दुहिता' है । वह पर्वतो या मेघो पर भी पड़ती, (स्वभानु.) स्वत कान्तिमती

होकर समस्त प्राणिवर्ग को जीवन देती है उसी प्रकार हे (दिवः दुहितः) समस्त कामनाओ को पूर्ण करने हारी, स्त्रि ! (ते) तेरे लिये (पर्वतेषु) पर्वतों मे वा पर्वत मेघवत् पालन करने वाले सम्बन्धि जनों के बीच (सु-पथा) उत्तम २ सदाचार और धार्मिक मार्ग (सुगा) सुख से गमन करने योग्य हो। उनके बीच दुराचार के कुमार्गों पर तू कभी पैर न रख। (अवाते अपः तरसि) प्रचण्ड वात से रहित शान्त अवसर में जिस प्रकार महासमुद्र का जल पार कियाजाता है उसी प्रकार हे (स्व-भानो) स्वयं अपनी कान्ति से चमकने हारी हे (दिवः दुहितः) उत्तम संकल्पो के उत्पन्न करने हारी स्त्रि ! तू भी (अवाते) विघ्नादि नाशक कारणों से रहित वा अहिंसक पुरुष अधीन रहकर (अपः) अपने नाना कर्मों को अन्तरिक्ष वा जलमार्ग के समान (तरसि) पार कर। (ता) वह तू (पृथु-यामन्) बड़े भारी (ऋष्वे) महान धर्म मे रहकर (नः) हमें (इषयध्यै) आदर सत्कार करती हुई (नः आवह) हमे प्राप्त कर।

सा व॑ह॒ योक्ष॒भिर॑वा॒तोषो॒ वरं॒ वह॑सि॒ जोष॒मनु॑ ।
त्वं दि॑वो दुहित॒र्या ह॑ दे॒वी पू॒र्वहू॑तौ मं॒हना॑ दर्श॒ता भूः॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) कमनीय कान्ति वाली, सुकुमारि ! तू (या ह) जो निश्चय से (देवी) पति की कामना करती हुई (अवाता) किसी को प्राप्त न होकर, अनन्यपूर्वा होकर (जोषम् अनु) अपने प्रेम के अनुसार (वरं) अपने वरण करने योग्य वर पुरुष के साथ (आवहसि) विवाह करती है, और (या ह) जो तू (देवी) शुभ गुणो से युक्त होकर (पूर्वहूतौ) प्रथम वार के दान और प्रथमवार के स्वीकार करने के अवसर में (मंहना) अति पूज्य एवं आदरणीय और (दर्शना) दर्शनीय (भूः) होती है। (त्वं) तू हे (दिवः दुहितः) सूर्य की कन्या या पति की कामना पूर्ण करने हारी विदुषि ! (सा) वह तू (उक्षभि आ वह) सेचन समर्थ दृढ अंगों से, वैलों से शकटवत् गृहस्थ भार को धारण कर।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥ ५ ॥

भा०—(व्युष्टौ) विशेष रूप से प्रकाश का आवरण हट जाने पर, प्रभात काल मे (चित्) जिस प्रकार (वयः) पक्षी गण (वसतेः) अपने घोसले से (उत् अपप्तन्) उड़कर देशान्तर जीविका के लिये चले जाते हैं उसी प्रकार (नरः च) पुरुष लोग भी (व्युष्टौ) प्रातःकाल होजाने पर (ये पितु-भाजः) जो अन्न खा चुकते हैं वे भोजनानन्तर (वसतेः) निवास स्थान से (उत् अपप्तन्) बाहर वृत्ति कमाने के लिये जाया करें। हे (देवि उषः) देवि ! विदुषि ! उषावत् कान्तिमति ! एवं पति को हृदय से चाहने वाली ! तू (दाशुषे) अपने अन्न वस्त्र देने वाले (अमा) साथ के सहचर (सते) प्राप्त, सच्चरित्र (मर्त्याय) पुरुष के लिये (भूरिवामम् वहसि) बहुत उत्तम २ ऐश्वर्य, सुख आदि प्राप्त करा । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ विराट् पङ्क्तिः । २, ३ विराट्त्रिष्टुप । ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

भा०—उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (एषा) यह (दिवः-ओजाः) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न हुई उषा जिस प्रकार (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (मानुषीः क्षितीः) मननशील, मनुष्य प्रजाओं को जगाती है और (राम्यासु) रात्रियों के उत्तर भाग में वह जिस प्रकार (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से (अज्ञायि) सबको जान पड़ती है, वह (तमसः अक्तून्) अन्धकार से रात्रियों को (तिरः) पृथक् करती अथवा (तमसः) अन्धकार से 'अक्तु' अर्थात् प्रकाशयुक्त

दिनों को वा तमोमय रात्रि कालों को, (तिरः) प्राप्त करा देती है, (चित्) उसी प्रकार (एषा) यह (नः) हमारी (दुहिता) पुत्री (दिवः दुहिताः) कामना, सद्व्यवहारों, उत्तम इच्छाओं और भावनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर देश में विवाहित होने योग्य कन्या (दिवः-जाः) जो तेजोमय ज्ञानी पुरुष से शिक्षा, विनयादि से गुणों में प्रसिद्ध होकर, (मानुषीः क्षितीः) मनुष्य प्रजाओं को जगावे और (या) जो (रुशता भानुना) चमकते ज्ञान प्रकाश और सदाचार की कान्ति से (राम्यासु) रमण करने योग्य स्त्रियों में से सर्वश्रेष्ठ (अज्ञायि) प्रसिद्धि प्राप्त कर, जानी जावे, वा (राम्यासु) रमण अर्थात् पति को सुख देने की क्रियाओं में (अज्ञायि) कुशलता प्राप्त करे। और (स्या) वह (अक्तून्) पूज्य माता पिता, सास ससुर, भाई आदि पूज्य पुरुषों को (तमसः) शोकादि खेदजनक कारणों से (तिरः) पृथक् करे।

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) प्रभात वेलायें (चन्द्र-रथाः) आह्लादजनक, रमणीय रूप वाली, या मानो प्रातःकाल तक दीखने वाले चन्द्र पर रथवत् चढ़कर आने वाली होकर (अरुण-युग्भिः) प्रातःकालिक अरुण वर्ण से युक्त अश्वों अर्थात् किरणों सहित (तत् वि ययुः) उस परम कान्तिमार्ग पर गति करते हैं उसी प्रकार (उषसः) कमनीय कन्याएं, (चन्द्र-रथाः) आह्लादजनक, उत्तम रमणीय व्यवहारों वाली वा उत्तम रथों पर विराजमान होकर (अरुण-युग्भिः) रक्त वर्ण के (अश्वैः) किरणों से (चित्रं) अद्भुत (वि भान्ति) विशेष रूप से चमकें (तत्) उस परम गृह-आश्रम को (ययुः) प्राप्त हों। वे (यज्ञस्य) परस्पर संगति, मुख्य पद या श्रेष्ठ प्रजोत्पत्ति रूप अंश को प्राप्त

कराती हुई, (ताः) वे सब मिलकर (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार के समान दुःख को (वि बाधन्ते) विविध प्रकार से दूर करें ।

अ॒भि ये वा॑ज॒मिष॑मू॒र्जं वह॑न्ती॒र्नि दा॒शुष॑ उषसो॒ मर्त्या॑य ।
म॒घोनी॑र्वी॒रव॒त्पत्य॑माना॒ अवो॑ धात वि॒ध॒ते रत्न॑म॒द्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषसः) प्रभात वेलाओं के सदृश रमणीय कान्ति से युक्त, उदयकालिक अनुराग वाली शुभ कन्याओ ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अन्न, वस्त्र, आभूषण आदि देने वाले पुरुष के लिये (श्रवः) यश, ज्ञान, (वाजम्) बल वीर्य, (इषम्) उत्तम अन्न, उत्तम इच्छा और (ऊर्जम्) बल पराक्रम (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुई, अर्थात् इन पदार्थों को प्राप्त करने में सहायक होती हुई स्वयं (मघोनी) उत्तम धन सम्पन्न होकर (पत्यमानाः) पति की कामना करती हुई (वीरवत् अवः) उत्तम सन्तानयुक्त कामना, अलिंगनादि (पत्यमानाः) प्राप्त करती हुई (विधते) विशेष पोषक पति के लिये (अद्य) आज (रत्नम् निधात) उत्तम, रमणीय, धनवत् पुत्र को धारण किया करो ।

इ॒दा हि वो॑ विध॒ते रत्न॒मस्ती॒दा वी॒राय॑ दा॒शुष॑ उषासः ।
इ॒दा विप्रा॑य॒ जर॑ते॒ यदु॒क्था नि ष्म॒ माव॑ते वहथा पु॒रा चि॑त् ॥४॥

भा०—हे (उषासः) प्रभात के समान कान्ति युक्त स्त्रियो ! (वः) आप लोगों में से (विधते) विशेषरूप से धारण पोषण करने वाले के लिये (इदा हि) इसी अवसर में (रत्नम्) रम्य सुख (अस्ति) है । (वीराय दाशुषे) वीर, दानशील पुरुष को भी (इदा) इस समय (रत्नम् अस्ति) रमण योग्य सुख प्राप्त होता है । आप लोग (पुरा-चित) पहले के समान ही (मावते) मेरे सदृश (जरते विप्राय) उप-देष्टा विद्वान् पुरुष के लिये (यद् उक्था) जो उत्तम वचन हों वे भी (इदा) इस अवसर में ही (नि वहथ स्म) प्रकट करो । अर्थात् गृहस्थ

का सुख, पुत्रादि लाभ, पालक पोषक वीर्यवान् दानशील पुरुष को भी इसी चढ़ते यौवन काल में ही प्राप्त होता है, इसलिये स्त्रियें अपने सदृश वरों को उत्तम वचनों से इसी काल मे वर लिया करें और वरणकाल मे विद्वान् आचार्यवत् ही अर्घ पाद्यादि का उपचार किया करें।

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अद्रिसानो) पर्वत के शिखर के समान दृढ़ आधार-शिला पर आरूढ़ (उषः) कमनीय कन्ये! (इदा हि) इसी नव यौवन काल में ही (अंगिरसः) विद्वान् तेजस्वी लोग (ते) तेरे उपदेश के लिये, (गवाम् गोत्रा गृणन्ति) नाना वाणियों के समूह उपदेश करें। और (अर्केण) सूर्यवत् प्रकाशमान, अर्चनायोग्य (ब्रह्मणा च) वेद के द्वारा वे (सत्या) सत्य सत्य रहस्यों को (वि बिभिदुः) विशेष रूप से खोल २ कर कहें। इस प्रकार ही (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (देव-हूतिः अभवत्) उत्तम गुणों की प्राप्ति वा 'देव' अर्थात् कामना योग्य वर की प्राप्ति हो।

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषावत् कमनीय! विदुषि स्त्रि! (प्रत्नवत्) पुराने आचार के समान ही तू भी (नः) हमारे प्रति (दिवः उच्छ) ज्ञान प्रकाश और सद् व्यवहारों को प्रकट कर। हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त विदुषि! (विधते) विशेष पालक पोषक स्वामी के लिये (भरद्-वाजवत्) ज्ञानवान् वा ऐश्वर्यवान् विद्वान् के समान ही आदर सत्कार कर। (गृणते) उत्तम उपदेश देने वाले विद्वान् पति के लिये तू (सुवीरं रयिम्) उत्तम पुत्र भृत्यादि से

युक्त धन को (रिरीहि) प्रदान कर। (नः) हम मे (उरु-गायम् श्रवः) बहुत से अपत्यादि से युक्त उत्तम धन, यश और बहुतो से स्तुति योग्य ऐश्वर्य (अधि धेहि) धारण करे। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

११ भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ६, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ विराट्त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्पंक्तिः। ६, ७, १० भुरिक् पंक्तिः। ८ स्वराट्पंक्तिः। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं का (वपुः समानं, धेनु, पत्यमानम्) रूप, एक समान, सबको प्राण से तृप्त करने वाला और सदा गति युक्त होता है वह (चिकितुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (नाम) कार्यसाधक होता है, उनका एक स्वरूप (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों में (दोहसे) जीवन प्रदान करने के लिये (पीपाय) उनको प्राण से तृप्त करता है और दूसरा रूप यह कि (ऊधः पृश्निः) रात्रि काल में अन्तरिक्ष, एक बार ही (शुक्रं दुदुहे) जल को प्रदान करता है। अर्थात् दूसरा गुण वायु का यह है कि वह अपने में जल को भी धारण करता है। वह स्थूल पदार्थों का वाष्प रूप है। इसी प्रकार समस्त (वपुः नु) शरीर (चिकितुषे) रोग दूर करने वाले वैद्य की दृष्टि में, (समानं चित् अस्ति) एक समान ही है। सब शरीर के घटक तत्व एक समान हैं, उनके रोगोत्पत्ति और स्वस्थता के कारण सर्वत्र एक समान हैं। उन सबका (नाम समान) नाम भी एक समान हो। (पृश्नि) सूर्य के समान तेजस्वी, विज्ञान के प्रश्नों को सरल करने वाला विद्वान् पुरुष (धेनु) वत्स को तृप्त करने वाले (ऊध) गाय के धन के समान (धेनु) सबके तृप्त

करने वाले वाङ्मय रूप (पत्यमानम् ऊधः) प्राप्त होते हुए उत्तम ज्ञान को धारण कराने वाले, (शुक्रं) शुद्ध कान्तियुक्त शास्त्र वेद को (सकृत् दुदुह्रे) एक ही बार ब्रह्मचर्य काल में दोहन करे, प्राप्त करे। वह उसको (अन्यत्) नाना रूप में (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच (दोहसे) उसका ज्ञान प्रदान करने के लिये (पीपाय) उसी को बढ़ावे।

ये अ॒ग्नयो॒ न शोशु॑च॒न्निधा॒ना द्वि॒र्यत्त्रि॑र्म॒रुतो॑ वावृ॒धन्त॑ ।
अ॒रे॒णवो॑ हिर॒ण्यया॑स एषां सा॒कं नृ॒म्णैः पौंस्ये॑भिश्च भूवन् ॥२॥

भा०—(मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुष (इधानाः अग्नयः न) प्रदीप्त होते हुए अग्नियों के समान (शोशुचन्) अपने को प्रज्ज्वलित, तथा शुद्ध आचारवान् बनावें। वे (द्विः त्रिः ववृधन्त) दुगना तिगुना वृद्धि को प्राप्त हों। (एषां) इन लोगों के सम्बन्धी जन भी (अरेणवः) अहिंसक, निर्दोष और (हिरण्ययासः) स्वर्ण आदि से ऐश्वर्यवान् और (नृम्णैः) धनों और (पौंस्यैः च साकं) बलों से सम्पन्न (भूवन्) हो जांय।

रु॒द्रस्य॒ ये मी॒ळ्हुषः॒ सन्ति॑ पु॒त्रा यांश्चो॒ नु दाधृ॑वि॒र्भर॑ध्यै ।
वि॒दे हि मा॒ता म॒हो म॒ही षा सेत्पृश्नि॑ः सु॒भ्वे॒३॒॑ गर्भ॒माधा॑त् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (रुद्रस्य) वायु के समान बलवान्, (मीढुषः) वीर्य सेचन में समर्थ पूर्ण युवा पुरुष के (पुत्राः) पुत्र होते हैं (यान् च) और जिनको (नु) शीघ्र ही (भरध्यै) भरण पोषण के लिये (विदे) प्राप्त करती है वे ही (महः) गुणों से महान् होते हैं। और (सा माता) वह माता (मही) बडी पूज्य होती है। (सा इत्) वह माता ही (पृश्निः) अन्तरिक्ष, पृथ्वी के समान दूध पिलाकर पालने पोषने में समर्थ माता (सुभ्वे) उत्तम वीर्यवान् पुरुष की वंश वृद्धि के लिये (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण करती और इसी प्रकार (पृश्नि) वृष्टिकारक

सूर्यवत् वीर्यसेचन मे समर्थ पुरुष भी (शुभे) उत्तम भूमि के समान उत्तम सन्तानोत्पादक स्त्री के शरीर मे (गर्भम् आ अधात्) गर्भ धारण करावे।

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् सज्जन (जनुष.) जन्म लेने वाले, जन्तुओं की (न ईषन्ते) हिंसा नहीं करते, ऐसे (सन्तः) सत जन (अन्तः) अपने अन्तःकरण के भीतर बैठे (अवद्यानि) निन्द्य विचारो को (पुनानाः) दूर करके पवित्र होते हुए, और अन्यो को भी पवित्र करते हुए (शुचयः) शुद्ध पवित्र होकर (जोषम्) प्रेम-रस का (अनु निर्दुह्रे) सबके अनुकूल रूप से भरपूर प्रदान करते है जिस प्रकार (श्रिया) विद्युत्-कान्ति से युक्त होकर वायु गण (तन्वं) विस्तृत भूमि सेचन करते है उसी प्रकार वे (अनु) बाद मे (श्रिया) शोभा से अपने (तन्वम्) शरीर, यशः-शरीर को (उक्षमाणाः) सेचन करते, बढ़ाते है। (तन्वम् उक्षमाणाः) देह कान्ति के लिये देह को जैसे सेचते, स्नान करते है, ऐसे ही वे (श्रिया) शोभा, सौभाग्य वा ऐश्वर्यों से (तन्वम्) अपने सन्तति का भी सेचन, उत्पादन और वृद्धि करते है।

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५॥७॥

भा०—(येषु) जिन मनुष्यो मे राजा (मक्षु) शीघ्र ही (दोहसे न) ऐश्वर्य प्राप्त करने मे समर्थ नही होता और जो (अया॰) मनुष्य (धृष्णु) शत्रु को पराजित करने वाले (मारुतं) वायुवत् अनन्त बल वा मनुष्यों का सामूहिक बल को (दधाना) धारण करते है। और (ये) जो (अयासः) प्रजाजन (स्तौनाः न) चोर भी नहीं हैं उन (उग्रान्) बलवान् पुरुषो को (चित्) भी (सुदानु) उत्तम दानशील पुरुष

(मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (नु) शीघ्र ही (अव यासत्) अपने अधीन रखकर एकत्र, संहत करे । इति सप्तमो वर्ग. ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) बलवान् वायुगण (शवसा) बल, या जल से (उभे रोदसी सुमेके = सुमेघे युजन्त) उत्तम मेघयुक्त आकाश और पृथिवी दोनों को मिलाये रखते हैं उसी प्रकार (ते) वे (उग्राः) बलवान् पुरुष (इत्) ही (शवसा) अपने शरीर-बल और ज्ञान-बल से (धृष्णु-सेनाः) शत्रु को पराजय कर देने वाली सेनाओं को बनाकर (रोदसी उभे) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य राजवर्ग और प्रजावर्ग (सुमेके) उत्तम रूपवान् एक दूसरे को बढ़ाने वाले दोनो को (युजन्त) संयुक्त बनायें रक्खें, दोनों को परस्पर प्रेम भाव से मिलाये रक्खें । (अध स्म) और (अमवत्सु तेषु) बलवान्, गृहवान् और सहायवान् उन पुरुषों मे ही (रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की (स्वशोचि.) अपनी कान्ति, अर्थात् शुद्ध पवित्र ज्योति (रोकः न तस्थौ न) उनके उत्तम रुचि के समान ही विराजती है ।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुत.) विद्वान् लोगो ! जिस प्रकार वायु-बल से जाने वाला यान (अनश्वः चित्) विना अश्व के होता है और (यम्) जिसको (अरथीः) विना रथि वा सारथी के एक ही आदमी (अजति) चला सकता है, (अनवसः अनभीषुः) जिसमें न कोई गति देने वाला, और न कोई लगाम हो, तो भी (रजस्तूः) जल और पृथ्वी दोनो लोकों मे चले, वह भूमि और पृथ्वीपर बेरोक चले । उसी प्रकार हे (मरुतः)

विद्वान् लोगो ! (वः यामः) तुम्हारा जीवन का सत्-मार्ग (अनेनाः) निष्पाप (अस्तु) हो। और वह (अनश्वः अरथीः) अश्व और रथ आदि नाना साधनों से रहित भी (यम् अजति) जिसको चला सके वा जिस तक पहुंच सके। वह (अनवसः) सच्चरित्रता का मार्ग जिसपर अन्नादि भोग्य पदार्थों से रहित, (अनभीशुः) अंगुलि, बाहु आदि विशेष बल शक्ति से रहित (रजस्तूः) रजो गुण को दूर करने वाला पुरुष भी (पथ्या साधन्) पथ्य, हिताचरण करता हुआ (वि याति) विशेष रूप से चलता है। निष्पाप धर्म के मार्ग पर अमीर गरीब सब कोई समान रूप से चल सकता है।

नास्य॑ व॒र्त्ता न त॑रु॒ता न्व॑स्ति॒ मरु॑तो॒ यमव॑थ॒ वाज॑सातौ।
तो॒के वा॒ गोषु॒ तन॑ये॒ यम॒प्सु स व्र॒जं दर्त्ता॒ पार्ये॒ अध॒ द्योः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् वीर और प्रजा के जीवन देने वाले पुरुषो ! आप लोग (वाज-सातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और संग्राम के कार्य में (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, (अस्य वर्त्ता न) उसको निवारण करने वाला कोई नहीं होता और (अस्य तरुता न नु अस्ति) उसको मारने वाला भी कोई नहीं होता। हे वीर पुरुषो ! (यम्) जिसको आप लोग (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र, (वा गोषु) और भूमि, गवादि पशुओं के निमित्त (अवथ) रक्षा करते हो, (सः) वह (व्रजं) गो-समूह को (दर्त्ता = धर्त्ता) धरने में समर्थ होता तथा वह (द्योः पार्ये) भूमि के पालन पूरण करने मे वा विजिगीषु पुरुष के साथ संग्राम में भी (व्रजं दर्त्ता) सैन्य दल तथा शत्रु के मार्ग, नगर आदि का नाश करने में समर्थ होता है।

प्र चि॒त्रम॒र्कं गृ॑ण॒ते तु॒राय॒ मारु॑ताय॒ स्वत॑वसे भरध्वम्।
ये सहां॑सि॒ सह॑सा॒ सह॑न्ते॒ रेज॑ते अग्ने पृथि॒वी म॒खेभ्यः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (गृणते) उपदेश देने वाले और (तुराय) शत्रु का नाश करने और (स्वतवसे) अपने धन को बल के तुल्य धारण करने वाले विद्वान्, क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के (मारुताय) मनुष्य वर्ग के लिये (चित्रम् अर्कम्) उचित, अद्भुत, नाना प्रकार का, सञ्चययोग्य ज्ञान, अर्चना करने योग्य आदर सत्कार, शस्त्रादि बल, तथा नाना अन्न (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार धारण करो। हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! जिन के (मखेभ्यः) संग्रामों और यज्ञों के भयसे (पृथिवी) समस्त संसार (रेजते) कांपता है और (ये) जो (सहसा) बल और उत्साह से (सहांसि) नाना शत्रु सैन्यों को भी (सहन्ते) पराजित करते है। उनके लिये भी (चित्रम् अर्कं प्र भरध्वम्) नाना संचय योग्य अन्न प्रदान करो। अर्थात् शत्रु विजय करने में सहायक सेनाओं का भोजन भी राज्य दे।

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥

भा०—(अध्वरस्य इव दिद्युत्) जिस प्रकार यज्ञ का प्रकाश हो और (अग्नेः जुह्वः न) जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं प्रकाश युक्त हों उसी प्रकार (मरुतः) वायु के समान बलवान् मनुष्य भी (त्विषीमन्तः) कान्ति से युक्त (तृषु-च्यवसः) तीक्ष्ण-वेगयुक्त गति वा (अर्चत्रयः) परस्पर का मान सत्कार करने वाले, वा माता पिता गुरु वा और परमेश्वर के उपकारक (धुनयः न) शत्रुजनों और वृक्षों को वायुओं के समान कपाने वाले, (वीरः) वीर, शूर, (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी शरीर वाले, (अधृष्टाः) विनीत और अपराजित होकर रहे।

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११।८॥

भा०—मैं प्रजाजन (वृधन्तं) राष्ट्र को बढाने वाले, (रुद्रस्य

सूनुम्) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति और उपदेष्टा आचार्य के पुत्रवत् प्रिय तथा उसके अभिषेक्ता, (तं) उस (मारुतं) बलवान् मनुष्य गण को मैं (हवसा) अन्नादि से (आविवासे) सत्कार करूं। वे (दिवः) तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, पवित्र, ईमानदार, (मनीषाः) मनस्वी, (गिरयः न) मेघों के समान और (आपः न) जल धाराओं के समान (शर्धाय) जल वर्षण और बल के लिये (अस्पृध्रन्) एक दूसरे से बढ़ने के लिये उद्योग करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ९ स्वराट् पङ्क्तिः। २, १० भुरिक् पङ्क्तिः। ३, ७, ८, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्। ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

विश्वे॑षां वः स॒तां ज्येष्ठ॑तमा गी॒र्भिर्मि॒त्रावरु॑णा वावृ॒धध्यै॑।
सं या र॒श्मेव॑ य॒मतु॒र्यमि॑ष्ठा द्वा जनाँ॒ अस॑मा बा॒हुभिः॒ स्वैः ॥१॥

भा०—हे मनुष्यो! (विश्वेषां वः सताम्) आप समस्त सज्जन पुरुषों के बीच (ज्येष्ठतमा) सबसे अधिक श्रेष्ठ (मित्रा-वरुणा) मित्र-वत् स्नेही और दुःखों के वारण करने वाले वे दोनों हैं जो (द्वा) दोनों मिलकर (असमौ) अन्यों के समान न रहकर, वा परस्पर भी आयु, और रूप, बल में समान न रहकर भी (वावृधध्यै) राष्ट्र और कुल की वृद्धि करने के लिये (यमिष्ठौ) संयमशील होकर (गीर्भिः) अपने उपदेश वाणियों से (जनान् सं यमतु) लोगों को नियम में रखते हैं। और जो (बाहुभिः) बाहुबलों से जनों को अपने वश करते हैं और जो दोनों (स्वैः) अपने धनों के बल से मनुष्यों को काबू करते हैं अर्थात् उत्तम ब्राह्मण, उत्तम क्षत्रिय, और उत्तम वैश्य तीनों ही वर्ण वे स्त्री पुरुष सर्व श्रेष्ठ जानने योग्य हैं।

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

भा०— हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, हे परस्पर स्नेह करने वाले और एक दूसरे का वरण करने वाले वर वधू ! (इयं मनीषा) यह मेरे मन की उत्तम कामना (प्रिया त्वां) आप दोनों प्रिय जनों को (यत्) मेरी ओर से (नमसा) विनयपूर्वक अन्नादि सत्कार के साथ (प्र स्तृणीते) प्राप्त होती है । इसी प्रकार (अच्छ बर्हिः प्र स्तृणीते) उत्तम आसन भी आप लोगों के लिये बिछाया जाता है। आप दोनों (सु-दानू) उत्तम दानशील होकर (नः) हमें (वरूथ्यं) शीत, आतप, वर्षा आदि को वारण करने वाला (छर्दिः अधृष्टं) दृढ़ गृह (यन्तं) दो ।

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेह और परस्पर वरण करने वाले श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (चित्) जिस प्रकार (अप्नः स्थः) कर्माध्यक्ष पुरुष (अवसा) कर्म द्वारा (श्रुधीयतः जनान्) अन्न, वृत्ति के चाहने वाले मनुष्यों को (यतते) काम कराता है उसी प्रकार (यौ) जो आप दोनों (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (श्रुधीयतः) अन्न के इच्छुक (जनान्) जन्तुओं को (सं यतथः) एक साथ कार्य कराओ। (नमसा) आदर सत्कारपूर्वक (हूयमाना) आमन्त्रित होकर (प्रिया) एक दूसरे के प्रिय होकर (सुशस्ति) उत्तम कीर्त्ति तथा उपदेशादि को (उप आ यातम्) प्राप्त होवो ।

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४॥

भा०—(या) जो आप दोनों (अश्वान्) रथ में लगे दो अश्वों के

समान, (वाजिना) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य मे समान हैं जो आप दोनो (पूत-बन्धू) पवित्र सम्बन्धो से बंधे और शुद्ध चित्त युक्त, सम्बन्धियो वाले, (ऋता) सत्य, ज्ञान आचरण करने वाले हो (यत्) जिन आप दोनो को (अदिति:) माता के समान भूमि, वा भूमि के समान माता (भरध्यै) पालन पोषणार्थ (गर्भ) गर्भ रूप मे धारण करती है। और (या) जो आप दोनो (मर्त्ताय, रिपवे) सामान्य मनुष्य तथा रिपु, अर्थात् पापयुक्त शत्रु के दमन के लिये (घोरा) भयंकर हो, वे आप दोनो (महान्ता) गुणो में महान् (जायमाना) उत्पन्न, एवं प्रसिद्ध होकर (महि प्र नि दीधः) बहुत बल और ज्ञान एवं बड़े उपास्य ब्रह्म का प्रणिधान, पुन: २ अभ्यास, मनन और प्राप्ति करो।

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५॥

भा०—(यत्) जो आप दोनो (रोदसी चित्) भूमि आकाश, वा सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाश, जल, अन्न, आश्रय आदि देने वाले माता पिता के समान (ऊर्वी) विशाल (परि भूथ) शक्तिमान् होकर रहते हो, उन (वाम्) आप दोनों के (मंहना) बड़े भारी सामर्थ्य से (मन्दमाना:) अति प्रसन्न होकर (विश्वे देवासः) सब मनुष्य, (सजोषा:) समान रूप से प्रीति से युक्त होकर (वां क्षत्रं अदधु:) प्राण अपान के बल को इन्द्रिय गण के तुल्य, आप दोनों के बल को धारण करते हैं और आपके (स्पश:) यथार्थ बात को देखने वाले, दूत, विद्वान् आदि जन भी (अदब्धासः) कभी नाश या पीड़ित न होने वाले (अमूरा:) प्रलोभनादि से मोह मे न पड़ने वाले (सन्ति) हो। इति नवमो वर्ग: ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

भा०—(ता हि) वे आप दोनों (अनु द्यून् हि) सब दिनों (क्षत्रं धारयेथे) बल को धारण करें। और आप दोनों (द्योः उपमात् इव) सूर्य के तेज और ताप के समान सामर्थ्य से स्वयं दृढ़ होकर (सानुम्) भोग योग्य ऐश्वर्य व उन्नत शिखर भाग को (दृंहेथे) वृद्धि करो। (विश्वदेवः नक्षत्रः सन् यथा दृढ आयोः धासिना द्याम् आतान्) सब किरणों का स्वामी सूर्य जिस प्रकार आकाश में एकत्र होकर दृढ़ है और वह जीवन वा जन समूह के धारक पोषक सामर्थ्य से प्रकाश को सर्वत्र फैला देता है उसी प्रकार (दृढ) सुदृढ़, बलवान् (नक्षत्रः) व्यापक सामर्थ्यवान् , वा कभी (नक्षत्रः) क्षीण न होने वाला (विश्व-देवः) सब मनुष्यों का स्वामी, (आयोः धासिना) सब मनुष्यों के, वा जीवन के धारण करने वाले सामर्थ्य, बल, अन्नादि से (भूमिम् आ अतान्) भूमि को सब प्रकार से वश करे और पालन करे।

ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

भा०—हे मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे से प्रेमपूर्वक वरण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों जिस प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट को तृप्त करने के लिये (विग्रं) विशेष रूप से गले मे नीचे उतारने योग्य खूब चबाया खाद्य अन्न प्राप्त करते हो, उसी प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट भर खिलाने के लिये (विग्रम्) विद्वान् पुरुष को (धैथे) आदर पूर्वक भरण पोषण करो, विद्वान् को अन्नादि दो। (यत्) क्योंकि (स-भृतयः) एक समान भरण पोषण या वेतन प्राप्त करने वाले भृत्यादि लोग (सद्म) एक ही आश्रय गृह को (आपृणन्ति) सब प्रकार से पूर्ण कर उसे भरते हैं और एक गृह की सेवा करते है, परन्तु (अवाताः युवतयः) अविवाहित, पति को न प्राप्त हुई युवति स्त्रियें (न मृष्यन्ते) एक दूसरे को सहन नहीं करतीं, इसलिये हे (विश्व-जिन्वा) समस्त विश्व को अन्नादि से तृप्त करने

वालो ! (यत्) जो (पयः सद्म विभरन्ते) नदियों के समान अन्न जलादि पुष्टिकारक पदार्थों से गृह को भरपूर करे उनको ही तुम दोनों (धेथे) पालन पोषण करो ।

ता जि॒ह्वया॒ सद॒मेदं सु॑मे॒धा आ यद्वां॑ स॒त्यो अ॑र॒तिर्ऋ॒ते भूत् ।
तद्वां॑ महि॒त्वं घृ॑तान्नावस्तु यु॒वं दा॒शुषे॒ वि च॑यिष्ट॒मंहः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो पुरुष (इदं सदम्) आप दोनों के इस विद्वानों के बैठने योग्य गृह को प्राप्त होकर (जिह्वया) वाणी से तुम्हें प्राप्त हो, वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् हो । वह आप दोनों को (आ) प्राप्त हो, वह (ऋते) सत्य ज्ञान और धर्मानुकूल व्यवहार वा धन के सम्बन्ध मे (सत्यः) सच्चा (वाम् अरतिः) आप दोनों का स्वामी (भूत्) हो, (वां तत् महित्वम्) आप लोगों का यह बड़ा भारी गुण हो । हे (घृतान्नौ) घृत युक्त अन्न का भोजन करने वाले सत्पुरुषो ! (ता युवं) वे आप दोनों (दाशुषे अंहः) दान देने वाले के पाप को (वि चयिष्टम्) दूर करो । विद्वान् स्त्री पुरुष अपने को शिष्य रूप से अर्पण करने वाले के दोषों को चुन २ कर दूर करें । अथवा शिष्यादि जन (दाशुषे) ज्ञान दाता के पाप को (वि चयिष्टं) स्वयं संग्रह न करें । वे घृतयुक्त अन्न का भोजन करें, रूखा न खाया करें । अस्माकं यान्यवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥ तै० उप० ॥

प्र यद्वां॑ मित्रावरुणा स्पू॒र्धन्प्रि॒या धाम॑ यु॒वधि॑ता मि॒नन्ति॑ ।
न ये दे॒वास॒ ओह॑सा॒ न मर्ता॒ अय॑ज्ञसाचो॒ अप्यो॒ न पु॒त्राः ॥ ९ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य माता पिता के समान पूज्य पुरुषो ! (यत्) जो लोग (प्रिया) प्रिय (धामा) आप दोनों के धारण करने योग्य कर्मों और पदों को प्राप्त करने के लिये (स्पूर्धन्) स्पर्धा करते हैं और (युव-धिता) आप लोगों के दिये

कर्मों का (न प्र मिनन्ति) विनाश नहीं करते । और (ये देवासः) जो विद्वान् (मर्त्ताः) मरणधर्मा, मनुष्य (ओहसा) अपने कर्म सामर्थ्य से (अयज्ञ-साचः) यज्ञ, परस्पर सत्संग को प्राप्त न होकर भी (नः स्पूर्धन्) आप दोनों के कर्मों मे विघ्न नही करते वे भी (अप्यः न पुत्राः) आप दोनो के कर्म निष्ठ एवं प्राप्त दाराओं मे उत्पन्न पुत्रों के समान ही प्रिय होते हैं ।

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (कीस्तासः) विद्वान् लोग (वाचं) वेद वाणी को (वि भरन्ते) विविध प्रकार से धारण करते है (यत् केचित्) जो कोई विद्वान् लोग (निविदः शंसन्ति) विशेष विद्यायुक्त वाणियों का अन्यों को उपदेश करते हैं वे (मनानाः) मननशील हम लोग (सत्यानि उक्था) सत्य २ वचनों का (आत्) बाद मे (वां ब्रवाम) हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों को उपदेश करें । (देवेभिः) विद्वान् उत्तम पुरुषों के साथ आप दोनो (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से अवश्य यत्न करते रहो ।

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ११।१०॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणौ) स्नेह युक्त और श्रेष्ठ विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत् अनु) जिन आप दोनो के पीछे २ (गावः) वाणियें और उत्तम पशुजन किरणोंवत् (अनु स्फुरान्) चलते है और (यत्) जो आप दोनों (ऋजिप्यं) सत्य धर्म के पालक, (धृष्णु) शत्रु को पराजय करने मे समर्थ (वृषणं) बलवान्, पुरुष को (रणे) संग्राम मे (युनजन्) नियुक्त करते है । उन (अवोः वां) रक्षा करने वाले आप दोनो के (इत्था) इस प्रकार (छर्दिषः अभिष्टौ) गृह को प्राप्त करने मे (अस्कृधोयु) महत्वा-

कांक्षी पुरुष (युवोः) आप दोनो के अधीन रहे और विद्या का अभ्यास किया करे। इति दशमो वर्गः॥

[६८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणा देवते ॥ छन्दः—१, ४, ११ त्रिष्टुप्। ६ निचृत्त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः। ३, ७, ८ स्वराट्पंक्तिः। ५ पंक्तिः। ६, १० निचृज्जगती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद्वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत्॥ १॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणौ) ऐश्वर्ययुक्त, सौभाग्यवान्! हे 'वरुण' एक दूसरे का वरण करने और एक दूसरे के दुःखो का वारण करने वाले युगल पुरुषो! (यः यज्ञः) जो आप दोनो का परस्पर का दान प्रति-दान, सत्संग (अद्य) आज (महे इषे) बड़े उत्तम, इच्छापूर्त्ति और (महे) बडे उत्तम (सुम्नाय) सुख प्राप्ति के लिये (आ ववर्त्तत्) हो वह (वां यज्ञः) आप दोनों का यज्ञ (श्रुष्टी) शीघ्र ही (सजोषा) समान प्रीतियुक्त, (उद्यतः) उत्तम रीति से सुनियन्त्रित, और (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त, और (वृक्तबर्हिषः) तृणों के समान संशयों वा बन्धनों को काटने वाले विद्वान् पुरुष के (यजध्यै) दान, सत्सग करने के लिये (आववर्त्तत्) नित्य ही हो।

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना॥ २॥

भा०—(ता) वे इन्द्र और वरुण, ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक और श्रेष्ठ, शत्रुवारक दोनो प्रकार के प्रमुख पुरुष (हि) निश्चय से, (देवताता) उत्तम विद्वान्, व्यवहारवान् मनुष्यो के बीच मे (श्रेष्ठा) सबमे उत्तम, (शूराणां तुजा) शूर वीर पुरुषो के पालक और शत्रु के वीरों के नाशक

हो। (ता॰) वे दोनों (हि) निश्चयपूर्वक (शविष्ठा भूतम्) सब से अधिक बलशाली होवें। वे दोनों (मघोनां मंहिष्ठा) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के बीच अति दानशील, पूजनीय, और (तुवि-शुष्मा) बहुत से बलों से सम्पन्न, और (ऋतेन) सत्य ज्ञान, न्यायव्यवहार और धन-बल से (वृत्र-तुरा) मेघवत् बढ़ते शत्रु और विघ्नों का नाश करने वाले और (सर्व-सेना) सब सेनाओं के स्वामी (भूतम्) हो। आधिदैविक में इन्द्र और वरुण, सूर्य मेघ, वा विद्युत् और जल।

ता गृ॑णीहि नम॒स्ये॑भिः शू॒षैः सु॒म्नेभि॒रिन्द्रा॒वरु॑णा चका॒ना।
वज्रे॑णा॒न्यः शव॑सा॒ हन्ति॑ वृ॒त्रं सिष॑क्त्य॒न्यो वृ॒जने॑षु॒ विप्रः॑ ॥३॥

भा०—हे विद्वन्! तू ((इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान्, शत्रु-हन्ता और प्रमुख रूप से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ, सैन्य और सेनापति, (सुम्नेभिः) सुखकारी (शूषैः) बलों से (चकानौ) अति तेजस्वी और प्रजा की शुभ कामना करने वाले (ता) उन दोनों की (नमस्येभिः) आदर करने योग्य वचनों से (गृणीहि) स्तुति कर उन दोनों में से (अन्यः) एक तो (वज्रेण) अपने बाहुबल से और (शवसा) सैन्यबल से (वृत्रं हन्ति) बढ़ते शत्रु को दण्डित करे और (अन्य) दूसरा (वृजनेषु) सैन्यबलों के बीच में (सिषक्ति) समवाय उत्पन्न करे।

ग्नाश्च॒ यन्नर॑श्च वावृ॒धन्त॒ विश्वे॑ दे॒वासो॑ न॒रां स्वगू॑र्ताः।
प्रैभ्य॑ इन्द्रावरुणा महि॒त्वा द्यौश्च॑ पृथिवि भूतमु॒र्वी ॥ ४ ॥

भा०—(ग्नाः) स्त्रियें और (नरः च) पुरुष (नरां) मनुष्यों के बीच में भी (विश्वे देवास) विद्वान्, व्यवहारकुशल स्त्री पुरुष सभी (स्वगूर्त्ताः) स्वयं उद्यमी होकर ही (वावृधन्त) बढ़ा करते हैं। हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुषो! आप दोनों भी (महि-

त्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (एभ्यः) इन उद्यमी प्रजाजनो के लिये (द्यौः पृथिवि च) सूर्य और भूमि के समान प्रकाश और अन्न खूब देने वाले (प्र भूतम्) होओ।

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वाँ वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥११॥

भा०—इन्द्र वरुण की व्याख्या। हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त ! हे वरण करने योग्य दोनो जनो ! (वां) आप दोनो मे से (यः) जो (त्मन् दाशति) अपने बलपर दान करता है, (सः इत् सुदानुः) वही उत्तम दाता है। वही (स्व-वान्) आत्मवान्, व सच्चा धनवान्, वही (ऋतावा) बलवान् तेजस्वी धनाढ्य है। (सः) वह (दास्वान्) दानशील पुरुष ही (इषा द्विषः तरेत्) अपनी इच्छामात्र या प्रेरणा, आज्ञा और सैन्य बल और अन्नसम्पदा से अपने शत्रुओ को पार करता है, जो (रयिं सत्) नाना ऐश्वर्य को विभक्त करता और (जनान् च रयिवतः करोति) सब लोगो को धन सम्पन्न करता है।

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः॥६॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानादिगुणो मे श्रेष्ठ पुरुषो ! (युवं) आप दोनो (दाशु-अध्वराय) दानरूप से दूसरे को कष्ट न देने वाले यज्ञ को सम्पादन करने के लिये (यम्) जिस प्रकार के (वसुमन्तं) धन सम्पन्न और (पुरु-क्षुम्) बहुत प्रकार के धान्यों से सम्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष को (धत्थः) धारण करते और औरो को प्रदान करते है (यः) जो ऐश्वर्य (वनुषाम् अशस्तीः) याचक लोगो की दुःखदायी दशाओ को (प्र भनक्ति) दूर करता और जो पुरुष (वनुषां अशस्तीः प्र भनक्ति) हिंसक दुष्ट पुरुषो के अप्र-

शस्त, निन्दित कर्मों को तोड़ता है (सः) वह (अस्मे) हमारे हितार्थ (अपि स्यात्) होवे ।

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्ता और प्रमुख रूप से वरण करने योग्य ! सैन्य-सेनापति जनो ! (येषां) जिनका (शुष्मः) बल (पृतनासु) संग्रामों और मनुष्यो वा सेनाओं के बीच मे (साह्वान्) सर्वविजयी, हो । जो (सद्यः) बहुत शीघ्र ही (ततुरिः) शत्रुनाशक होकर (द्युम्ना) धन और बल से (तिरते) शत्रुओं को नाश करता है, और जिनका (रयिः) धन वा बल (नः) हमारे (सूरिभ्यः) विद्वानों का सुत्रात्रः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला और (देवगोपाः) सब मनुष्यों का रक्षक (स्यात्) हो वही हमारा (सुत्रात्रः) उत्तम रक्षक होने योग्य है ।

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक सेनापति एवं सैन्यवर्ग ! आप दोनों (देवा) विजयशील होकर (गृणाना) मा बाप के तुल्य उत्तम २ आज्ञाएं और उपदेश करते हुए, (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति लाभ करने के लिये (रयिं पृङ्क्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करो । (इत्था) इस प्रकार सत्य २ (महिनस्य शर्धः) महान् पुरुष, प्रभु के बल की हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नावा अपः न) नाव से जलों के समान (नावा) उत्तम स्तुति और तेरी प्रेरणा से हम लोग (दुरिता) सब पापों और कष्टों से (तरेम) पार होजायं ।

प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ९

भा०—(यः) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से, (उर्वी) विशाल भूमि और आकाश दोनो को (शोचिषा न) दीप्ति से सूर्य के समान राजा और प्रजा वर्ग को (विभाति) प्रकाशित करता है वह (महिव्रतः) बडे २ कर्म करने वाला, (सप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (अजराः) सदा युवा, जरारहित, अविनाशी (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि और कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न है उस (बृहते सम्राजे) बड़े सम्राट्, (देवाय) दानशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष की (प्रियम् मन्म) प्रिय, उत्तम मननयोग्य ज्ञान और स्तुति का (प्र अर्च) सेवन कर।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ मान्य स्त्री पुरुष ! आप लोग (धृत व्रता) व्रतो को धारण करने वाले (सुत-पा) प्रजा जनों को, राष्ट्र को पुत्रवत् पालन करने वाले, आप दोनो (इमं सुतं) इस पुत्रवत् उत्पन्न प्रजा जनको (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा, प्रिय सौम्य स्वभाव के (मद्यम्) आनन्द वा हर्ष के जनक, अन्नवत् तृप्ति-दायक सुखजनक को (पिबतम्) पालन करो। (युवोः) आप दोनों का (रथ) रथ और रमणीय व्यवहार (देव-वीतौ) विद्याभिलाषी जन तथा उत्तम विद्वानों की रक्षा और कान्ति के लिये, (स्व-सरम् अध्वरम् प्रति) दिन के समान सुप्रकाशित, स्वयं उत्तम वेग से जाने वाले. हिंसा रहित, राज्यपालन, अध्ययनाध्यापन कार्य के प्रति (प्रीतये) प्रजाजन के पालन के लिये (उप याति) प्राप्त हो।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादये-थाम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त और हे श्रेष्ठ और दुःखों के

वारण करने और उत्तम पद पर वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मधुमत्तमस्य) अति मधुर (वृष्णः) बलकारक (सोमस्य) अन्न, जल और ऐश्वर्य के उपभोग से (वृषेथाम्) खूब बलवान् बनो । हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! (इदं) यह (वाम्) आप दोनों का (अन्धः) उत्तम अन्न (अस्मे) हमारे लिये भी (परि-सिक्तम्) सब प्रकार से सिंच कर पात्रादि मे रक्खा हो और आप दोनों (अस्मिन् बर्हिषि) इस वृद्धिशील राष्ट्रगृह और उत्तम आसन पर (आसद्य) विराज-कर (मादयेथाम्) अति हर्ष लाभ करो, सुखी होओ। इति द्वादशो वर्गः ॥

[६९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राविष्णू देवते ॥ छन्दः— १, ३, ६, ७ निचृत्-त्रिष्टुप् । २, ४, ८ त्रिष्टुप् । ५ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र ऐश्वर्ययुक्त ! हे 'विष्णु' अर्थात् व्यापक रूप से विद्यमान, वा प्रवेश करने योग्य, वा विविध सुखों को देने वाले वा विविध मार्गों से जाने वाले ! आप दोनों सूर्य, विद्युत्वत् राजा और प्रजाजनो ! वा स्त्री पुरुषो ! मैं विद्वान् पुरुष (अस्य अपसः पारे) इस कर्म के पार (वां) आप दोनों को (कर्मणा) उत्तम कर्म सामर्थ्य से (सं हिनोमि) अच्छी प्रकार पहुंचाता हूं और (इषा सं) अन्नादि सम्पत्ति, उत्तम अभिलाषा, प्रेरक आज्ञा, तथा सेनादि से भी (वां सं हिनोमि) आप दोनों को बढ़ाता हूं । आप दोनों (नः) हम सब लोगों को (अरिष्टैः) हिंसादि उपद्रवों से रहित (पथिभिः) मार्गों और गमन शील साधनों से (अस्य अपसः पारे पारयन्ता) इस महान् कर्म के पार पहुंचाते हुए (यज्ञं) हमारे इस सत्संग, को (जुषेथाम्) प्रेम

से स्वीकार करो और (नः द्रविणं च धत्तम्) हमारे धनादि को भी धारण करो, एव हमे धनादि प्रदान करो।

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः २

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य से युक्त, राजा और प्रजावत् सूर्य विद्युत्वत् वर्त्तमान स्त्री पुरुषो! आप दोनो (सोमधाना) अन्न, ऐश्वर्य को धारण करने वाले (कलशा) दो कलसों के समान अक्षयनिधि वा बलवीर्य को धारण करने वाले होकर भी (विश्वासां) समस्त (मतीनां) उत्तम मनन योग्य बुद्धियो, ज्ञान की वाणियों को (जनितारा) प्रकट करने वाले होओ। (अर्कैः) अर्चना, स्तुति वा आदर सत्कार करने योग्य वेदमन्त्रो और सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् पुरुषों से (गीयमानासः) गाये गये (स्तोमासः) स्तुति वचन, और वेद के सूक्त, तथा (शस्यमानाः) उपदेश की गई (गिरः) वाणियां (वां प्र अवन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हो।

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः और व्यापक सामर्थ्यवन्! सभा, सभापते, सेना, सेनापते! वा राजन्! प्रभो! आप दोनों (द्रविण दधाना) नाना धनों को धारण करते हुए (सोमं आ यातम्) ऐश्वर्य वा सोम्य स्वभाव प्रजाजन को पुत्र वा शिष्यवन् प्राप्त होओ, आप दोनो (मदानां मदपती) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कर उनको पालन करने वाले होओ। (मतीनां) मननशील विद्वान् पुरुषों के (शस्यमानासः) उपदेश किये गये (स्तोमासः) स्तुतियोग्य उपदेश, (उक्थैः) उत्तम वचनो, वा प्रशंसनीय (अक्तुभिः) चमका देने वाले

गुणों से सब दिनों (वां सं सं अञ्जन्तु) आप दोनो को अच्छी प्रकार प्रकाशित, सुभूषित करें ।

आ वामश्वा॑सो अभिमातिषाह॒ इन्द्रा॑विष्णू सध॒मादो॑ वहन्तु ।
जुषेथां॒ विश्वा॒ हव॑ना मती॒नामुप॒ ब्रह्मा॑णि शृणुतं॒ गिरो॑ मे ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! राजन्, हे विष्णो ! प्रजा में व्यापक संघशक्ति के स्वामिन् ! (वाम्) आप दोनो को (अभिमाति-सहः) अभिमानी शत्रुओ को पराजय करने में समर्थ, (अश्वासः) घुडसवार वीर पुरुष (सध-मादः) एक साथ प्रसन्न होकर (वहन्तु) धारण करें । आप दोनों (मतीनां) मननशील विद्वानो के (विश्वा) समस्त (हवना) ग्रहण करने योग्य वचनों और पदार्थों का (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन करो और (मे) मेरे तथा उन विद्वानो के (ब्रह्माणि) वेदोक्त मन्त्रो और (गिरः) वाणियो को (उप श्रृणुतम्) शिष्यवत् ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।

इन्द्रा॑विष्णू॒ तत्प॑न॒याय्यं॑ वां॒ सोम॑स्य॒ मद॑ उ॒रु च॑क्रमाथे ।
अकृ॑णुतम॒न्तरि॑क्षं॒ वरी॒योऽप्र॑थतं जी॒वसे॑ नो॒ रजां॑सि ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! हे व्यापक सामर्थ्यवन् राजन्, विद्वन् ! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (पनयाय्यं) अति प्रशंसनीय कार्य है कि आप दोनो (सोमस्य मदे) अन्न के समान ही ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र के द्वारा तृप्ति और हर्षलाभ करने पर, (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को सूर्य वायु के समान स्वभूमियों के बीच के प्रदेश में भी (उरु चक्रमाथे) बहुत वेग से जाते हो, और पराक्रम करते हो, उसको (वरीयः अकृणुतम्) विस्तृत, और अति उत्तम बनाओ और (नः) हम प्रजाओं को (जीवसे) दीर्घ और सुख युक्त जीवन के लिये (रजांसि अकृणुतम् अप्रथतम्) नाना ऐश्वर्यों की उत्पत्ति और वृद्धि करो ।

इन्द्रा॑विष्णू ह॒विषा॑ वावृधा॒नाग्रा॑द्वाना॒ नम॑सा रातहव्या ।
घृता॑सुती॒ द्रवि॑णं धत्तम॒स्मे स॑मु॒द्रः स्थः॑ क॒लशः॑ सोम॒धानः॑ ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्ययुक्त और व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुषो! आप दोनों (हविषा) 'हवि' अर्थात् प्रजाजन से ग्रहण करने योग्य कर, और अन्न से (वावृधाना) बढ़ते हुए और अन्यों को बढ़ाते हुए (रात-हव्या) उत्तम अन्नों को सूर्य वा मेघवत् प्रदान करते हुए, (नमसा) विनय और शक्ति से (अग्राद्वाना) सबसे प्रमुख होकर भोग्य सम्पत्ति को सब में न्यायपूर्वक विभाग करते हुए, (घृतासुती) सूर्य मेघवत् जल के समान तेज और अन्न आदि को उत्पन्न करते हुए, (अस्मे द्रविणं धत्तम्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करो। आप दोनों तो (सोम-धानः) ऐश्वर्य या खजाने को अपने में रखने वाले (कलशः समुद्रः) मुद्रा से अंकित बन्द हुए कलशे के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त एवं हर्षयुक्त, समुद्रवत् रत्नादि के आकर (स्थः) होओ।

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रा विष्णू) शत्रुनाशक! ऐश्वर्ययुक्त तथा विविध विद्याओं के प्रदान करने वाले बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषो! आप दोनों (अस्य मध्वः) इस मधु, अर्थात् मधुर अन्न वा जल, (सोमस्य) ओष-धिरसवत् उत्पन्न वनस्पति और ऐश्वर्य का भी (पिबत) पान, भोजन एवं उपभोग करो। इस प्रकार ही (जठर) अपने उदर को (पृणेथाम्) पूर्ण करो। (वाम्) आप दोनों को (मदिराणि अन्धासि) हर्षजनक नाना प्रकार के जीवनप्रद अन्न (अग्मन्) प्राप्त हों, आप दोनों (मे हवं उप शृणुतम्) मेरे उत्तम उपदेश का श्रवण करो और (मे ब्रह्माणि उपशृ-णुतम्) मेरे उपदेश किये वेद मन्त्रों का उत्तम ज्ञान श्रवण करो।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ८।१३॥

भा०—हे विष्णो! वायु के समान व्यापक बलशालिन्! (इन्द्र-

च) विद्युतवत् शत्रु का नाश करने हारे आप दोनो (यत्) जब (अप स्पृधेथाम्) बढ़ने का उद्योग करते हो तब (सहस्रं) अपरिमित ज्ञान, अपरिमित बल और अपरिमित ऐश्वर्य इनको (त्रेधा ऐरयेथा) तीनो प्रकारों से प्रेरित करो, तीनो को प्रकट करो। इस प्रकार (उभा जिग्यथुः) आप दोनों ही विजय को प्राप्त करो, (न पराजयेथे) कभी पराजित मत होओ। (कतरः चन एनोः) इनमे से कोई एक भी (न पराजिग्ये) पराजय को प्राप्त न होवे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ६ जगती ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥

भा०—भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू, वा स्त्री पुरुषो का कर्त्तव्य। जिस प्रकार (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (घृतवती) जल और तेज से युक्त हो तो (भुवनानाम् अभिश्रिया) सब उत्पन्न प्राणियों और लोको को आश्रय देने वाले, (मधु-दुघे) जल और अन्न को प्रदान करनेवाले, (सु-पेशसा) उत्तम रूपयुक्त, (वरुणस्य धर्मणा वि-स्कभिते) सर्वश्रेष्ठ प्रभु, परमेश्वर या वायु के धारण सामर्थ्य से थमे हुए (भूरि-रेतसा) बहुत जल, उत्पादक बल, तेज से युक्त होते हैं उसी प्रकार माता पिता और वर वधू दोनो ही (घृतवती) तेज, अन्न और हृदयो में प्रवाहित स्नेह से युक्त हो। वे दोनों (भुवनानाम् अभिश्रिया) उत्पन्न होने वाले प्रजाओं, पुत्रादि के सब प्रकार से आश्रय योग्य और (उर्वी) बहुत विशाल हृदय, (पृथ्वी) भूमिवत् आश्रयदाता (मधु-दुघे) मधुर वचन और अन्न को देने वाले (सु-पेशसा)

उत्तम रूपवान्, हो। वे दोनो (वरुणस्य) वरण करने वाले, वा वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के (धर्मणा) धर्म से (वि-स्कभिते) विविध प्रकार से एक दूसरे का आश्रय होकर (अजरे) युवा युवति, जरा वस्था से रहित (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् होकर रहे।

असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते। राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (रोदसी) सूर्य और भूमि (असश्चन्ती) पृथक् २ रह कर भी (भूरि-धारे) बहुत सी जलधाराओ से युक्त (पयस्वती) जल और अन्न से सम्पन्न, होकर (घृतं दुहाते) तेज और अन्न प्रदान करते हैं, वे (मनुर्हित रेतः सिञ्चतम्) मनुष्यो के हितकारी तेज और जल प्रदान भी करते है उसी प्रकार माता पिता दोनो (असश्चन्ती) पृथक् गोत्रो के होते हुए, (भूरि-धारे) बहुत सी उत्तम वाणियो और स्तन्यधाराओं से युक्त वा बहुत से पदार्थो को धारण करने वाले, (पयस्वती) अन्न और दूध से युक्त, (शुचि-व्रते) शुद्ध पवित्र कर्म और व्रत का पालन करने वाले (सु-कृते) उत्तम पुण्य कर्म वाले, होकर (घृत दुहाते) प्रस्रवणशील स्नेह, दुग्ध और अन्न को प्रदान करे। वे दोनों (अस्य भुवनस्य) इस ससार के बीच (राजन्ती, गुणो मे प्रकाशित होकर (रोदसी) सूर्य भूमिवत् एक दूसरे की मर्यादा का पालन करते हुए (यत् मनु. हितम्) जो मननशील मनुष्य के उत्पन्न करने के लिये पूर्व आश्रम मे धारण किया (रेत.)वीर्य हो, उसको वे दोनों (अस्मे) हमारे प्रजावृद्धि के लिये (सिञ्चतम्) गृहाश्रमकाल में निषिक्त कर धारण करे और उत्तम सन्तान उत्पन्न करे।

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति। प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ३

भा०—हे (धिषणे) एक दूसरे को धारण करने वाले, बुद्धिमान्, (रोदसी) सूर्य भूमि के समान तेजस्वी और दृढ़ स्त्री पुरुषो ! (वा) आप दोनों मे से (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) धर्म मार्ग पर चलने के लिये (ददाश) अपने को समर्पित करता है (सः साधति) वही वस्तुतः सन्मार्ग पर जाता और वही उद्देश्य साधता है। वही (युवोः) आप दोनो के बीच (धर्मणः परि) धर्मानुसार (प्रजाभिः प्र जायते) उत्तम प्रजा और सन्तानो द्वारा उत्पन्न होता है। (युवोः) आप दोनों के (सिक्ता) वीर्यों से उत्पन्नसन्तान (विषु-रूपाणि) नाना प्रकार के(सव्रता) समान शुभचारण युक्त उत्पन्न होते है।

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि जिस प्रकार (घृतेन अभीवृते) जल और प्रकाश से युक्त उनसे शोभा धारण करते, उनकी ही वृद्धि करते, उसी प्रकार स्त्री पुरुष (द्यावापृथिवी) एक दूसरे की कामना करने वाले, एक दूसरे को चाहने वाले और एक दूसरे का आश्रय होकर धारण करने वाले, (घृतेन अभीवृते) स्नेह से सबके समक्ष एक दूसरे द्वारा वरण किये जावे। वे दोनो (घृत-श्रिया) जल से शोभित मेघविद्युत् के समान, तेज से शोभित सूर्य विद्युत् के तुल्य, स्नेह और ज्ञान से शोभा युक्त हो, वे दोनो (घृत-पृचा) स्नेहपूर्वक एक दूसरे से सम्बद्ध हो, (घृता-वृधा) स्नेह से स्वयं बढने और एक दूसरे को बढाने वाले हों, दोनो ही वे (उर्वी) बडे आदरणीय हो (पृथ्वी) विस्तृत भूमि के समान परस्पर आश्रय रूप (होतृ-वूर्ये) दोनों ही ज्ञानादि के देने वाले विद्वानों का यज्ञों मे वरण करने वाले वा, एक दूसरे को आप ही देने और स्वीकार करने वाले, दाता प्रतिगृहीता रूप से वरण करने वाले, (पुरोहिते) दोनो एक दूसरे के कार्यों के ऊपर विद्वान् पुरोहित के

समान साक्षी, एवं हित को सदा अपने आगे रखने वाले, वा गृहस्थ मे प्रविष्ट होने के पूर्व सबके समक्ष परस्पर प्रेम ग्रन्थि से बद्ध हो। (विप्रा.) विद्वान् पुरुष (इष्टये) इष्ट एवं परस्पर की सत्संगति लाभ के लिए, (ते इत्) उन दोनो को ही (सुम्नम् ईडते) सुखपूर्वक चाहा करते है।

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते। दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि दोनो जिस प्रकार (मधु-मिमिक्षतः) अन्न और जल सब पर वर्षाते है उसी प्रकार स्त्री-पुरुष, वर-वधू दोनो माता पिता होकर (न.) हमे (मधु मिमिक्षताम्) अन्न प्रचुर मात्रा मे दे। वे दोनो (मधु-श्चुता) मधुर पदार्थों के देने वाले, (मधु-दुघे) मधुर पदार्थों को दोहन करने वाले, (मधु-व्रते) मधुर फलोत्पादक कर्म करने वाले, हो। वे दोनो (अस्मे) हमे (महि) बडा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलप्रद (वाजं श्रवः) बल, अन्न और ज्ञान और (द्रविण यज्ञम् च दधाने) धनैश्वर्य और सत्संग को धारण करने वाले होकर (मधु मिमिक्षताम्) मधुर अन्न प्रदान करे।

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा। संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(द्यौ. च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार (नः) हमे (ऊर्जं) अन्न प्रदान करते है उसी प्रकार (विश्व-विदा) सब प्रकार के ज्ञानो को जानने और सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाले (सुदंससा) उत्तम कर्म करने वाले, सदाचारी, (पिता माता) पिता और माता (नः ऊर्जं पिन्वताम्) हमे उत्तम बलकारक अन्न प्रदान करें। वे दोनो (विश्वशम्भुवा) समस्त जनो को शान्ति देने वाले, (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् (सनि) उत्तम दान योग्य (वा) ऐश्वर्य को (सं-

रराणे) अच्छी प्रकार देते हुए, (अस्मे) हमें (रयिं सम् इन्वताम्) बल, वीर्य और धन प्रदान करें । इति चतुर्दशो वर्ग. ॥

[७१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २, ३ निचृज्जगती । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । षड्ृच सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता हिरण्ययां बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य हिरण्यया बाहू) सबके हित और रमणीय 'बाहू' अर्थात् अन्धकार को बांधने वाले किरणों को (उत् अयंस्त) ऊपर थामता है और (सु-दक्षः) खूब दाहकारी होकर (विधर्मणि) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः अभि घृतेन प्रुष्णुते) समस्त भुवनों को तेज से संतप्त करता वा जल से सेचनभी करता है उसी प्रकार (स्यः देवः) वह दानशील व्यवहारज्ञ, युद्धनिपुण राजा (सविता) शासक, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और बुद्धि से सम्पन्न होकर (सवनाय) ऐश्वर्य की वृद्धि और शासन कार्य के सम्पादन के लिये (हिरण्यया बाहू) हित और सबको अच्छे लगने वाले, सुवर्ण से अलंकृत बाहुओं को तथा हिरण्य अर्थात् लोहे के बने, वा कान्तिमान् तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से युक्त, बाहुवत् शत्रु के पीडक बलवान् सैन्यों को भी (उत् अयंस्त) उत्तम रीति से उठाता, उनको नियन्त्रण में रखने में समर्थ होता है, वही (मखः) यज्ञ के समान पूज्य, उपकारक (युवा) बलवान्, (सु-दक्ष.) उत्तम कार्यकुशल, होकर (विधर्मणि) विविध प्रजाओं के धारण करने के कार्य में (रजस. अभि) लोक समूह के प्रति (घृतेन) तेज से (पाणी) अपने हाथों को (प्रुष्णुते) प्रतप्त करता है, जिनमें वह दुष्टों का दमन कर प्रजा का शासन करने में समर्थ हो । (प्रुष्णुते) प्रुप प्लुप दाहे । भ्वा० ॥

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः २

भा०—हे प्रभो ! (यः) जो तू (विश्वस्य) समस्त (द्विपदः) दोपाये मनुष्यो और (यः चतुष्पदः) जो चौपायो तथा (भूमनः) वहुत प्रकार के जगत् के भी (निवेशने) बसने और (प्रसवे) पैदा होने, समृद्ध होने और शासन मे (च) भी समर्थ है उस तुझ (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वशासक (देवस्य) सर्वप्रद, तेजस्वी प्रभु के (वलिष्ठे) अति प्रशंसनीय, (सवीमनि) शासन और (वसुनः) दावने) ऐश्वर्य के दान पर हम (स्याम) सुखपूर्वक रहें ।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥३॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक, सत्कर्मों और शुभमार्गों मे चलाने हारे प्रभो ! स्वामिन् , ! (अदब्धेभिः) कभी नाश न होने वाले रक्षासाधनों मे और (शिवेभिः) कल्याणकारी, सुखजनक उपायों से (अद्य) आज (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणमय जीवन को (त्व) तू (परि पाहि) सव प्रकार से पालन कर । तू (हिरण्य-जिह्वः) सर्व हितकारी और सव को भली लगने वाली और सुवर्णवत् कान्तियुक्त, सत्यप्रकाशक वाणी को बोलने वाला (नव्यसे) नये से नये सर्वश्रेष्ठ, अति रमणीय, (सुविताय) सुखपूर्वक गमनयोग्य-सदाचार पालन तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर और (नः) हम पर (अघ-शस) पापी, दुष्ट, पापमार्ग का उपदेश करने वाला पुरुष (माकिः ईशत) कभी प्रभुता न करे ।

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४॥

भा०—(सविता देवः प्रतिदोपम् उत् अस्थात्) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य प्रतिरात्रि की समाप्ति पर उदय होता है, उसी प्रकार (स्यः देवः) वह तेजस्वी दानशील, (सविता) उत्तम शासक, (दमूनाः) मन इन्द्रियों पर दमन करने वाला, (हिरण्य-पाणिः) सुवर्णादि धन को अपने हाथ में, अपने वश में रखने वाला होकर (प्रति-दोषम्) प्रति दिन, वा प्रत्येक दोष वा दुष्टों के प्रत्येक अपराध पर (अस्थात्) उठ खड़ा हो, वह (अयोहनुः) लोहे के बने अस्त्रों शस्त्रों से शत्रु का हनन करने वाला सेना का स्वामी, (यजतः) पूज्य एवं सत्संगयोग्य वृत्तिदाता, (मन्द्र जिह्वः) सबको प्रसन्न करने वाली वाणी को बोलने वाला होकर (दाशुषे) आत्मसमर्पक भृत्य वा करप्रद प्रजाजन के उपकार के लिये (भूरि-वामम् आसुवति) बहुत सा उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे।

उदू॑ अ॒याँ उ॑पव॒क्तेव॑ बा॒हू हि॑र॒ण्यया॑ सवि॒ता सु॒प्रती॑का।
दि॒वो रोहां॑स्यरुहत्पृथि॒व्या अरी॑रमत्प॒तय॒त्कच्चि॒दभ्व॑म् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता सुप्रतीका उत् अयान् पतयत् अभ्वम् अरीरमत् दिवः पृथिव्या रोहांसि अरुहत्) सूर्य सुन्दर प्रतीति-कर तेजों को लेकर उदय होता, आता हुआ महान् जगत् को प्रसन्न करता, भूमि और आकाश के उन्नत भागों पर चढ़ता है, उसी प्रकार जो (सविता) शासक, राजा, (उपवक्ता इव) उपदेष्टा पुरुष के समान (हिरण्यया) हित, रमणीय (सुप्रतीका) उत्तम मार्ग को बतलाने वाले (बाहू) शत्रुओं के नाशक बाहुओं को (उत् अयान् उ) सदा उद्यत रक्खे, वह (दिवः) तेज के (रोहांसि) उन्नत पदों को और (पृथिव्याः रोहांसि) पृथ्वी के उत्तम भागों, पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्यों को भी (अरुहत्) प्राप्त करे, (अभ्वम्) महान् राष्ट्र को भी (कत् चित्) कभी (पतयत्) प्राप्त करे और व (अरीरमत्) सुख से स्वयं रमण कर राष्ट्र का पति, स्वामी पालक हो। (२) सर्वोत्पादक प्रभु सुखजनक उत्तम

बाहुएं हमारे प्रति उपदेष्टावत् उठावे, कभी (अभ्र पतयत्) हमारे असामर्थ्य को दूर कर हमे सुखी करे ।

वाममद्य सवितर्वाममुश्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ।६।१५

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (अद्य) आज तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुख (सावी) प्रदान कर । (श्वः उ) और कल भी हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुखैश्वर्य (सावीः) प्रदान कर। और तू (दिवेदिवे अस्मभ्यम् वामम् सावीः) प्रति दिन हमे उत्तम २ सुख ऐश्वर्य प्रदान किया कर। हे (देव) दानशील ! दिव्य पुरुष ! (वयं) हम लोग (अया धिया) इस प्रकार की उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (वामस्य) प्रशंसनीय और (भूरः) बहुत से (क्षयस्य) गृह और ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा के (वामभाजः स्याम) सुखपूर्वक उपभोग करने वाले हो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[७२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) सूर्य और चन्द्र के समान ऐश्वर्य और वीर्य से युक्त और प्रजाओ का उत्पन्न करने में समर्थ उत्तम स्त्री पुरुषो ! वा उत्तम आचार्य वा शिष्य जनो ! (वां तत महित्व) तुम दोनों का वह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है कि (युव) तुम दोनों (महानि) पूज्य, आदर योग्य (प्रथमानि) श्रेष्ठ २ कार्य (चक्रथुः) किया करो । (युव) तुम दोनो (सूर्य) सर्व प्रकाशक सूर्य को, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को तथा

सर्वोत्पादक सर्व प्रकाशक प्रभु परमेश्वर को, (विविदथुः) अपना आदर्श रूप से जानो, और उसीको सदा प्राप्त करो। (युवं) तुम दोनों सदा सुखप्रद, प्रकाशस्वरूप प्रभु को प्राप्त करो। (विश्वा तमांसि अहतम्) सब प्रकार के अविद्याजनित मोह, शोकादि अन्धकारों को नाश करो और (निदः च अहतम्) निन्दकों और निन्दनीय व्यवहारों को भी नाश करो।

इन्द्रा॑सोमा वा॒सय॑थ उ॒षास॒मुत्सूर्यं॑ नयथो॒ ज्योति॑षा स॒ह।
उप॒ द्यां स्क॒म्भथुः॑ स्क॒म्भने॒नाप्र॑थतं पृथि॒वीं मा॒तरं॒ वि॥ २॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त एवं प्रजा को शासन करने वाले जनो ! तेजस्वी और वीर्यवान् पुरुषो ! आप लोग (उषासं वासयथ) उत्तम कामना युक्त प्रजा को सुखपूर्वक बसाओ, एवं उत्तम कामना युक्त, प्रभात वेलावत् कमनीय रूपयुक्त युवा युवति को गृहाश्रम में बसाने का उद्योग करो। (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ज्योतिषा सह) उसके तेज सहित (उत् नयथः) उत्तम पद प्राप्त कराओ। (स्कम्भनेन) आश्रय देने वाले स्तम्भ से जिस प्रकार गृह की छत को थामा जाता है उसी प्रकार (स्कम्भनेन) आश्रयप्रद सामर्थ्य से (द्यां) परस्पर की कामना करने वाले दूसरे अंग को (स्कम्भथुः) अपने ऊपर थामो। (पृथिवीं मातरम्) पृथिवी के समान माता को (वि अप्रथतम्) विशेष रूप से विख्यात, विस्तृत करो। अर्थात् राष्ट्र के वृद्धि के साथ २ मातृ जाति का अधिक मान करो। (२) आचार्य और शिष्य दोनों (उषासम्) विद्येच्छुक ब्रह्मचारी को अन्तेवासी रूप में बसावें, सूर्यवत् कान्तियुक्त करें, ज्ञानमय वेद का धारण करें और विस्तृत वेदमयी माता का विस्तार करें।

इन्द्रा॑सोमा॒वहि॑म॒पः प॑रि॒ष्ठां ह॒थो वृ॒त्रमनु॑ वां॒ द्यौर॑मन्यत।
प्रार्णां॑स्यैरयतं न॒दीना॒मा स॑मु॒द्राणि॑ पप्रथुः पु॒रूणि॑॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्रा सोमौ) आचार्य और शिष्य ! प्रभु, प्रजावत् विद्यमान स्त्री पुरुषो ! वा विद्युत् पवन के समान परस्पर सहायक जनो ! (अपः परि-स्थाम् अहिम् वृत्रम् हथः) जिस प्रकार विद्युत् और वायु जलो को धारण करने वाले व्यापक मेघ को आघात करते है उसी प्रकार आप दोनो भी (अपः परि-स्थाम्) उत्तम कर्मों वा ज्ञानो के ऊपर स्थित (वृत्रम् अहिम्) आवरणकारी, आच्छादक अज्ञान को (हथः) विनाश करो। (वां) आप दोनो मे से (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अनु अमन्यत) उत्तम कार्य की अनुमति दिया करे। आप दोनो (नदीनां) नदियो के (अर्णांसि) जलो को विद्युत् और पवन के समान, (नदीनाम्) समृद्धि युक्त प्रजाजनो के (अर्णांसि) नाना ऐश्वर्यो वा ज्ञानो को (प्र ऐरयतम्) अच्छी प्रकार प्रदान करो। (पुरूणि) वहुत से (समुद्राणि) समुद्रवत् विस्तृत कामना योग्य उत्तम कर्मों, विशाल अन्तःकरणो वा मनोरथो को (आ पप्रथुः) विस्तृत करो।

इन्द्रा॑सोमा प॒क्वमा॒मास्व॒न्तर्नि गवा॒मिद्द॑धथु॒र्व॒क्षणा॑सु।
ज॒गृ॒भथु॒रना॑पिनद्धमासु॒ रुश॑च्चि॒त्रासु॒ जग॑तीष्व॒न्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र-सोमा) सूर्य चन्द्रवत् वा, वायु विद्युत्वत् युगल जनो ! जिस प्रकार (आमासु अन्तः पक्वम् निदधथु) सूर्य वायु वा सूर्य चन्द्र कच्ची ओषधि मे परिपक्व रस प्रदान करते है और जिस प्रकार (गवा वक्षणासु जल नि दधथुः) भूमियो के बीच बहती नदियो मे वायु और मेघ जल प्रदान करते है उसी प्रकार आप दोनों भी (आमासु) सह धर्मचारिणी दाराओ मे (पक्वम् वीर्य नि दधथु) परिपक्व वीर्य का आधान करो और (गवाम्) गमन योग्य धर्मदाराओं के (वक्षणासु अन्तः) कोखो मे ही विद्यमान गर्भ, शिशु आदि को (नि दधथु) पालन करो। (आसु) उनके बीच में सब उत्तम व्यवहार (अनपिनद्धम्) बन्धन रहित, स्पष्ट रूप से (जगृभथु) ग्रहण करो। और (चित्रासु

जगतीषु अन्तः) अद्भुत सृष्टियों के बीच (रुशत्) सुरूप, तेजोयुक्त पदार्थ को (जगृभथुः) ग्रहण कराओ ।

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त सूर्यवत् तेजस्विन् ! एवं सोम्य गुणयुक्त चन्द्रवत् सुन्दर युगल स्त्री पुरुष जनो ! (युवम्) आप दोनों (तरुत्रम्) पार उतारने वाले (अपत्य-साचं) पुत्रादि सन्तान युक्त, (श्रुत्यं) श्रवण करने योग्य धन को (रराथे) प्रदान करो । आप दोनों (उग्रा) बलवान् होकर (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (नर्यं) नायकोचित (पृतना-षाहम्) सैन्यों, वा संग्रामों को भी जीतने वाले (शुष्मं) बल वा बलवान् पुत्र को (सं विव्यथुः) सन्तान रूप से उत्पन्न करो । इति षोडशो वर्गः ॥

[७२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—(यः) जो (अद्रि-भित्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान, (अद्रिभित्) शस्त्रयुक्त सैन्यों को भी भेदने में समर्थ (प्रथमजाः) प्रथम मुख्य रूप से प्रकट होने वाला, (ऋतावा) न्याय, सत्य मार्ग, और ऐश्वर्य, तेज को सेवन करने वाला, (हविष्मान्) अन्नों का स्वामी, (अङ्गिरसः) जलते अङ्गारों के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुषों का स्वामी है, (बृहस्पतिः) वही 'बृहस्पति' अर्थात् बड़े भारी राष्ट्र का पालक, स्वामी होने योग्य है । वह (द्विबर्हज्मा) शास्त्र बल और बुद्धिबल दोनों

से भूमि या राष्ट्र की वृद्धि करने वाला (प्राघर्मसत्) उत्तम तेज को धारण करने वाला (नः पिता) हमारा वास्तविक पिता के समान पालक होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवी, राजा प्रजा वर्ग दोनो को (आ रोरवीति) सब प्रकार से आज्ञा करे।

जनाय चिद्य ईवंत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२॥

भा०—(यः) जो (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी राजा और वेदवाणी का स्वामी विद्वान्, (देवहूतौ) विद्वानो को एकत्र निमन्त्रित करने योग्य यज्ञ और विजयेच्छु पुरुषो की आहुति योग्य संग्राम के अवसर मे (ईवते जनाय) शरणागत मनुष्य की रक्षा के लिए (उ) भी (लोकं) आश्रय (चकार) करता है और जो (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओ को (घ्नन्) विनाश करता हुआ, (अमित्रान्) स्नेह न करने वाले (शत्रून्) शत्रुओ को (पृत्सु) संग्रामो मे (साहन्) पराजय करता और (जयन्) जीतता (पुरः वि दर्दरीति) शत्रु के गढ़ो को विविध प्रकार से तोड़ता फोडता है।

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥१७॥

भा०—(बृहस्पतिः) बडे राष्ट्र का स्वामी, (देवः) तेजस्वी दानशील राजा, (महः वसूनि) बहुत से ऐश्वर्यों और बसने योग्य जनपदों को (सम् अजयत्) समवाय बना कर विजय करे। और (एषः) वह (महः) बडे २ (गोमतः) भूमियो से युक्त (व्रजान्) मार्गों को भी मेघो को सूर्यवत् विजय करे। वह (बृहस्पतिः) बडे ऐश्वर्य और बल सैन्यादि का पालक होकर (अप्रतीतः) अन्यो से मुकाबला न किया जाकर, (अपः सिषासन्) मेघवत् जलों की वर्षा करता हुआ और

(स्वः) राष्ट्र मे सुख सम्पदाएं विभक्त करता हुआ, (अमित्रम्) शत्रु जन को (अर्कैः) शास्त्रो द्वारा (हन्ति) दण्ड दे । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७४]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सोमारुद्रौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोमवत् शान्तिदायक चन्द्रवत् आह्लादक, और रुद्र अर्थात् रोगों को दूर करने वाले वैद्य के समान देश मे दुष्टो को दूर भगाने वाले राजन् ! आप दोनो (असुर्यं धारयेथाम्) विद्युत् और मेघ के स्वरूप जल वा पवन के समान प्राणयुक्त बल को धारण कराओ । (वाम्) आप दोनो के (इष्टय) दिये दान हमे (अरम् अश्नुवन्तु) खूब प्राप्त हों । आप दोनो (दमे दमे) प्रत्येक घर मे (सप्त रत्ना दधाना) सातो प्रकार के रत्नो को धारण कराते हुए (नः द्विपदे) हमारे दो पाये और चौपायो को (शं शं भूतम्) अति शान्तिदायक होओ ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोम अर्थात् ओषधिवर्ग वा जल के समान शान्तिदायक और 'रुद्र' अर्थात् रोगहारक अग्नि के समान पीडा को दूर करने वाले वैद्य के तुल्य कीर्तिनाशक ! (या अमीवा) जो रोग दायक पीडा (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणयुक्त देह मे (आविवेश) प्रविष्ट हो (विषूची) विविध प्रकार के अनर्थो से युक्त उस

को (वि-वृहतम्) सर्वथा उखाड़ फेको और (निर्ऋतिं) अति कष्टदायी विपत्ति को (पराचैः बाधेथाम्) दूर से ही हरो और (अस्मे) हमें (भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) सुखदायी श्रेष्ठ २ अन्न समृद्धिये प्राप्त हों।

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) जल और अग्नितत्वों के तुल्य शान्तिदायक और रोगहारक विद्वान् पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरों के निमित्त (एतानि) ये नाना प्रकार के (विश्वा) समस्त (भेषजानि) रोग दूर करने के औषधों को (धत्तम्) धारण करो। (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (यत्) जो (कृतं) किया हुआ (एनः) पाप (बद्धं अस्ति) बंधा है उसको (अव स्यतम्) दूर करो और (अस्मत्) हमसे (अव मुञ्चतम्) छुड़ाओ।

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ४।१८।

भा०—(सोमारुद्रौ) जल अग्निवत् शान्तिदायक और पीड़ानाशक जन (तिग्म-आयुधौ) तीक्ष्ण प्रहारसाधनों से युक्त, (तिग्म हेती) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले, (सु-शेवौ) उत्तम सुखदायक पुरुष (नः सुमृडतम्) हमें अच्छी प्रकार सुखी करें। वे दोनों (सु-मनस्यमाना) शुभ चित्त वाले होते हुए (न) हमें (वरुणस्य पाशात्) वरुण अर्थात् उदान के समान प्रबल रोग के पाश से (न मुञ्चतम्) हमें छुड़ावें और (नः गोपायतम्) हमारी रक्षा करें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७५]

पायुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ देवता—१ वर्म । २ धनुः । ३ ज्या । ४ आर्त्नी । ५ इषुधिः । ६ सारथिः । ६ रश्मयः । ७ अश्वाः । ८ रथः । रथगोपाः । १०

लिङ्गोक्ताः । ११, १२, १५, १६ इषवः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तघ्नः । १७–१९ लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । १८ कवचसोमवरुणाः । १९ देवाः । ब्रह्म च) ॥ छन्दः—१, ३, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ २, ४, ५, ७, ८, ९, ११, १४, १८ त्रिष्टुप् । ६ जगती । १० विराड् जगती । १२, १६ विराडनुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १३ स्वराडुष्णिक् । १७ पङ्क्तिः ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

भा०—(यत्) जो शूरवीर (वर्मी) कवच धारण करके (समदाम् उपस्थे) संग्रामों में (याति) जाता है वह (जीमूतस्य इव) मेघ के समान (प्रतीकं) प्रतीत होने लगता है । वह मेघ के समान श्याम एवं शत्रु पर शस्त्रास्त्र की वर्षा करने में समर्थ होता है । हे शूरवीर पुरुष तू (अनाविद्धया तन्वा) बिना घायल हुए शरीर से (जय) विजय कर । (वर्मणः सः महिमा) कवच का यही बड़ा गुण है कि शरीर पर एक भी घाव न लग सके । वही कवच का विशेष महत्व (त्वा पिपर्तु) तेरा पालन करे, तुझे संग्रामों में क्षत-विक्षत न होने दे । विशेष विवरण देखो यजुर्वेद (अ० २९ । मं० २८-५७)

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

भा०—जो (धनुः) धनुष् (शत्रोः) शत्रु के (अपकामं) मन चाहे फल का नाश (कृणोति) करता है । ऐसे (धन्वना) धनुष के बल से हम लोग (गाः जयेम) गौओं और भूमियों का विजय करें । उसी (धन्वना आजिं जयेम) धनुष से हम संग्राम का विजय करें । उसी (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष से हम ही वेग से आने वाली हर्ष या मद से युक्त शत्रु सेनाओं और कठिन संग्रामों को भी जीतें ।

(धन्वना) धनुष के बल से हम (सर्वाः दिशः जयेम) समस्त दिशाओं का विजय करें। इस प्रकार दिग्-विजयी हों।

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३॥

भा०—(योषा-इव) जिस प्रकार स्त्री (प्रियं सखायं परि-सस्वजाना) प्रिय मित्र को आलिङ्गन करती हुई और (वक्ष्यन्ती इव) कुछ कहना सा चाहती हुई मानो (कर्णम् आ गनीगन्ति) कान के समीप आती है उसी प्रकार (अधि धन्वन्) धनुष पर (वितता) लगी, तनी (ज्या) यह डोरी भी प्रिय मित्रवत् सदा सहायक धनुर्दण्ड के साथ लगकर मानो वीर पुरुष के कान में कुछ कहना सा चाहती हुई खिंचकर कान तक पहुंचती है और (समने पारयन्ती) संग्राम में शत्रुसंकट से पार करती हुई (शिङ्क्ते) मधुर रव करती है।

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

भा०—(समना-इव योषा) समान मन, वा एक चित्त हुई स्त्री जिस प्रकार अपने पति को और (माता इव पुत्रं) माता जिस प्रकार अपने पुत्र को (आचरन्ती) अपना प्रेम व्यवहार करती हुई (संविदाने) परस्पर ऐकमत्य होकर (उपस्थे बिभृताम्) अपने समीप, गोद में धारण करती है उसी प्रकार (ते) वे (इमे) ये दोनों (आर्त्नी) धनुष् की कोटिया भी (सं-विदाने) एक साथ डोरी में मिल कर (अमित्रान्-विष्फुरन्ती) शत्रुओं का नाश करती हुई (शत्रून अप विध्यताम्) शत्रुओं को मार भगावें। एक ही पुरुष की प्रियस्त्री और प्रियमाता दोनों सह-मति कर उसका प्रियाचरण करती उस को प्रेमालिंगन करती है उसी प्रकार शूरवीर के धनुष की कोटियों के तुल्य (आर्त्नी) शत्रुनाशक दायें बायें की दो सेनाएं उसकी रक्षा करें, शत्रु का नाश करें।

व॒ह्वी॒नां पि॒ता ब॒हुर॑स्य पु॒त्रश्चि॒श्चा कृ॑णोति॒ सम॑नाव॒गत्य॑ ।
इ॒षु॒धिः सङ्काः॒ पृत॑नाश्च॒ सर्वाः॑ पृ॒ष्ठे निन॑द्धो जयति॒ प्रसू॑तः ॥५।१९

भा०—जिस प्रकार (वह्वीनां पिता) एक पुरुष बहुत सी कन्याओं का पिता हो और (अस्य बहुः पुत्रः) उसके बहुत से पुत्र होवें, वे सब (समना अवगत्य चिश्चा कृणोति) एक स्थान पर मिलकर चीं चां करे ठीक उसी प्रकार (इषुधिः) वाणों को अपने भीतर धारण करने वाला तरकस (वह्वीनां पिता) बहुत से वाणों का पालक होने से उनका पिता है और (अस्य) इसके भीतर से निकलने वाला वाणसंघ (वहुः पुत्रः) बहुत संख्या में पुत्र के तुल्य है। वह (समना अवगत्य) संग्राम में आकर (चिश्चा कृणोति) 'चींचां' ऐसी ध्वनि करते हैं। वह तरकस (पृष्ठे निनद्धः) वीर पुरुष के पीठ पीछे बंधकर भागते शत्रु के पीठ पर लगे सन्नद्ध वीर के समान (प्र-सूतः) मानो वाणों को अपने में से पैदा सा करता हुआ (सर्वाः सं-काः) समस्त संग्राम में स्थित, संघ बनाकर खड़ी (पृतनाः) नर सेनाओं को (जयति) विजय करता है। उसी प्रकार (इषुधि.) वाणों को धारण करने वाला वीर भी (नि नद्धः) कवच बांधे शत्रु के पीछे लग कर वाणों को निरन्तर फेंकता हुआ शत्रु सेनाओं को विजय करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

रथे॒ तिष्ठ॑न्नयति वा॒जिनः॑ पु॒रो यत्र॑यत्र का॒मय॑ते सुषा॒र॒थिः ।
अ॒भीशू॑नां महि॒मानं॑ पनायत॒ मनः॑ प॒श्चादनु॑ यच्छन्ति र॒श्मयः॑ ॥६॥

भा०—(सु-सारथिः) रथ का चलाने वाला उत्तम सारथि (रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ, (यत्र-यत्र कामयते) जहां जहां भी चाहता है वहां २ (वाजिनः) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) अपने आगे आगे लेजाता है। (मनः) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार (रश्मयः) रासें भी घोड़ों को (पश्चात् अनु यच्छन्ति) पीछे से नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वानो ! आप

लोग (अभीशूनां महिमानं पनायत) रासों के ही महान् सामर्थ्य का वर्णन करो कि सारथि यथेष्ट रथ चलाता और अश्वों को वश करता है। अध्यात्म में 'मन' रासें है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनःप्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

आत्मा रथका स्वामी, शरीर रथ, बुद्धि कोचवान् मन रासें, इन्द्रिय घोड़े और विषय देश हैं। बुद्धि, इन्द्रिय, मन सब मिलकर 'भोक्ता' है ऐसा विद्वान् वर्णन करते हैं।

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥

भा०—(रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों के साथ वेग में जाते हुए (अश्वाः) अश्व (वृषपाणयः) शकट में लगे बैलों के समान अधिक से अधिक भार वहन करने में समर्थ (अश्वाः) घोड़े और (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों और रथ सवारों सहित युद्ध करने वाले (वृष-पाणयः) बलवान् शस्त्रवर्षी धनुष को हाथ में लिये, वा बलवान् पुरुषों वा मेघवत् वर्षी वीरों को अपने हाथ में लिये, उनको अपने वश किये (अश्वाः) बलवान् अश्व-सवार सेनानायक जन (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र घोष, गर्जना करते हैं। वे (प्र-पदैः) आगे के कदमों से (अमित्रान् अव-क्रामन्तः) शत्रुओं को रौंदते हुए स्वयं (अनप-व्ययन्तः) दूर न जाते हुए भी स्थिर रह कर, या स्वयं अपना नाश न होने देते हुए (शत्रून् क्षियन्ति) शत्रुओं का नाश करते हैं।

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्र) जिस में (अस्य) इस शूरवीर के (रथवाहनं) रथ को संचालित करने वाले यन्त्रादि उपकरण (हविः) अन्न और (नाम) शत्रुको नमाने वाले (आयुधं) अस्त्रादि और (अस्य) इस शूरवीर का (वर्म) कवच भी (निहितम्) रक्खे हों (तत्र) उस रथवत् राष्ट्र मे हम (सु-मनस्यमानाः) शुभ चित्त वाले होकर रहें और (विश्वाहा) सब दिनों (शर्म) सुखकारी (रथम्) रथ को (सदेम) प्राप्त हों, रथ पर सवारी करें।

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥ ९॥

भा०—(स्वादु-संसदः) उत्तम सुखजनक अन्न ऐश्वर्यादि भोग करने के लिये न्यायासन आदि उत्तम पदों पर विराजने वाले, (वयः-धा) दीर्घायु, ज्ञान व बल को धारण करने वाले (कृच्छ्रे-श्रित) संकटों में प्रजाओं द्वारा आश्रय लेने योग्य, (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, (गभीराः) गंभीर स्वभाव के, (चित्र-सेनः) अद्भुत सेनाओं के स्वामी (इषु-बला) धनुषबाण के बल, सैन्य से युक्त, (अमृध्राः) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य, प्रजा की हिंसा न करने वाले, (सतः-वीराः) सत्व, बल से सम्पन्न, (व्रात-सहाः) शत्रु सैन्यदलों को पराजित करने वाले, (उरव) बहुत, संख्या में अधिक (पितरः) हमारे पालक, पिता के तुल्य आदरणीय हों। वा जो हमारे पालक हों वे उक्त २ विशेषणों वाले हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत १०।२०

भा०—हे (पितरः) पालन करने वाले, पिता माता के समान आदर करने योग्य (सोम्यास) 'सोम' अर्थात् चन्द्रमा, सोम ओषधि के गुणों के योग्य, वा सोम अर्थात् पुत्र, वा शिष्यों के प्रति हितकारी (ब्राह्मणासः) ब्रह्म, वेद के जानने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (रक्ष)

हमारी रक्षा करो और (ऋत-वृधः) सत्य, न्याय, ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए (ईशत) हम पर शासन करो । (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनो (नः) हमे (दुरितात् पातु) पाप, दुष्टाचरण से बचावे और (अघशंसः) पाप की शिक्षा देने वाला, चोर पुरुष (नः माकिः ईशत) हम पर प्रभुत्व न करे । इति विंशो वर्गः ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११

भा०—इषवः देवता. । यह 'इषु' अर्थात् वाण (मृगाः) सिंह के समान वेग से आक्रमण करने वाला, वा अति शुद्ध, चमचमाता हो । वह (सुपर्णं) उत्तम वेग से जाने योग्य पंखो को (वस्ते) धारण करता है । (अस्या. दन्त.) इस वाण का, काटने का साधन दांत के समान तीक्ष्ण फला हो वह (सं-नद्धा) खूब दृढ़ता से बंधा हो, और (गोभिः प्र-सूता पतति) धनुष की डोरियों से प्रेरित होकर दूर जाता है । (यत्र) जिस संग्राम मे (नरः सं द्रवन्ति च वि द्रवन्ति च) मनुष्य मिलकर वेग से दौड़ते और विविध दिशाओ मे भागते है (तत्र) उस युद्ध काल में भी (अस्मभ्यम्) हमे वे (इषव·) वाण गण (शर्म यंसन्) शरण प्रदान करते है । भूमिपक्ष में—यह भूमिः (गोभिः सन्नद्धा) गौ आदि पशुओ, से अच्छी प्रकार व्याप्त, वा सूर्य की किरणो से सुदृढ होकर भी (प्र-सूता) उत्तम २ अन्नों को उत्पन्न करने हारी होकर (पतति) ऐश्वर्य-समृद्धि से युक्त होती है । (मृगः) सिंह के समान पराक्रमी, (दन्त.) दन्त के समान शत्रु का छेदन भेदन करने मे समर्थ बलवान् पुरुष (अस्या) इसके (सुपर्णं) सुख से पालने वाले वा इस को पूर्ण समृद्ध करने वाले शस्त्र-बल और वैश्य जन को (वस्ते) अपने नीचे बसाये, उसे अपनी सेवा में रक्खे । और (यत्र) जिस भूमि में लोग एकत्र होते वा विविध दिशाओ मे जाते है उसी पृथिवी पर (इषव)

वाण वा इच्छानुकूल प्राप्त काम्य पदार्थ में हमे (शर्म यंसन्) सुख प्रदान करें।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल, सूधे, सत्य न्याय मार्ग में चलने हारे विद्वन्! सीधे जाने वाले वाण के समान तू (नः) हमे (परि-वृङ्धि) रक्षा कर। (नः) हमारा शरीर (अश्मा) पत्थर या शिला के समान कठोर (भवतु) हो। (सोमः) विद्वान्, उत्तम शास्ता (नः अधि) हमारे ऊपर रह कर (ब्रवीतु) शासन करे। (अदितिः) अखण्डशासन और यह अदीन प्रजा वा भूमिमाता (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख प्रदान करे।

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्वाजनि) अश्वो को चलाने वाली, कशा के समान आज्ञादात्रि विदुषि! राजसभे! तू (अश्वान्) अश्वों के समान (प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों और उत्तम आनन्द युक्त अवसरों पर (चोदय) सन्मार्ग मे चला। जो विद्वान् लोग (एषां) इन दुष्ट शत्रु लोगों के (सानु) अवयवों पर (आ जङ्घन्ति) प्रहार करते और (जघनात्) नीच जनों, मारने वाले वा मारने योग्य शत्रु जनों को (उप जिघ्नते) मारने में समर्थ होते है उनको (समत्सु चोदय) संग्रामों मे ठीक प्रकार से चला। जिस प्रकार कशा से अश्व को चलाते हैं उसी प्रकार उत्तम जनों को सन्मार्ग मे चलाने वाली विदुषी स्त्री ऐसे वीरों को तैयार करे जो शत्रुओं के अंगो पर और अन्य हिंसकजनो को भी मारने में समर्थ हो।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः॥१४॥

भा०—(अहिः इव भोगैः बाहुम् परि एति) सांप जिस प्रकार अपने अंगो से बाहु के इर्द गिर्द लिपट जाता है उसी प्रकार (हस्त-घ्नः) हाथ मे लगा दस्तबन्द भी (भोगै.) पालक अवयवो से (बाहुं परि एति) बाहु के इर्द गिर्द रहता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेति) आघात को (परि-बाधमानः) बचाता है । उसी प्रकार (पुमान्) वीर पुरुष (हस्त-घ्नः) अपने सधे हाथ से शत्रुओं को मारने मे कुशल वीर (अहिः इव) मेघ के समान (भोगै.) प्रजा को पालन करने मे समर्थ शस्त्रादि उपायो सहित (बाहुम् परि एति) शत्रु को बाधने वाले सैन्य को प्राप्त होता और (ज्यायाः) प्राणो का नाश करने वाली शत्रु की सेना के (हेति) शस्त्र-बल को (परि-बाधमानः) दूर से ही नाश करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब प्रकार के ज्ञानो को जानता हुआ (विश्वतः) सब प्रकार से (पुमांसं परि पातु) सहयोगी पुरुष की रक्षा करे ।

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार 'इषु' अर्थात् बाण की दण्डी (आल-अक्ता) विष से बुझी, (रुरु-शीर्ष्णी) मृग के समान अग्रमुख वाली, (अथो) और (यस्याः मुखम्) जिसके मुख मे (अय) लोहे का फल लगा रहता है वह (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल मे सिंचकर वृद्धि पाती है उसको ही हम (बृहत् नम) बड़ा शत्रु नमाने का साधन बनाते है उसी प्रकार (या) जो स्त्री (आलाक्ता = आरक्ता वा आरा-अक्ता) ईषत् अनुराग मे युक्त (रुरु-शीर्ष्णी) हरिण के समान शिर, मुख नयनो से युक्त (अथो यस्य मुखम् अय) और जिसका मुख सुवर्ण अलङ्कार से सुभूषित हो, ऐसी (पर्जन्य-रेतसे) तृप्ति, सुख देने वाले प्रिय पुरुष के वीर्य के धारण करने वाली (इष्वै) मनोकामना

युक्त (दे॒व्यै) उत्तम, विदुषी स्त्री को प्राप्त करने अर्थात् गृहस्थ बसाने के लिये हम (बृहत् नमः) बहुत आदर, अन्नादि से ग्रहण करें। सेनापक्ष में—जो सेना (आलाक्ता—आरा-अक्ता) आरा अर्थात् शस्त्रों से सुशोभित (रुरु-शीर्ष्णी) हितकारी सिंहवत् पराक्रमी नेताओं को अपने प्रमुख शिरोमणि पद पर नियुक्त करने वाली है (यस्याः) जिसका (मुखम् अयः) मुख लोह के समान तीक्ष्ण और कठिन है, उस (इष्वै दे॒व्यै) प्रेरणा करने योग्य, युद्ध करने में कुशल (पर्जन्य-रेतसे) शत्रु को जीतने वाले वीर पुरुषों के पराक्रम वाली सेना का हम (बृहत् नमः) सदा आदर करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

अव॑सृष्टा॒ परा॑ पत॒ शर॑व्ये॒ ब्रह्म॑संशिते।
गच्छा॒मित्रा॒न्प्र प॑द्यस्व॒ मामीषां॒ कं च॒नोच्छि॑षः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शरव्ये) बाण दूर तक फेंकने में कुशल सेने! बाण जिस प्रकार (अव-सृष्टा परा पतति) छूट कर दूर पड़ता है और शत्रुओं को पहुंचकर उनका नाश करता है उसी प्रकार हे सेने! तू भी (अव-सृष्टा) शत्रु पर पड़कर (परा पत) दूर २ तक जा और हे (ब्रह्म-संशिते) 'ब्रह्म', वेदज्ञ सेनानायक वा 'ब्रह्म' अर्थात् धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये अति तीक्ष्ण तू (अमित्रान् गच्छ) शत्रुओं को लक्ष्य करके जा, (तान् प्रपद्यस्व) उनतक पहुंच और (अमीषां) उनमें से (कं चन मा उत् शिषः) किसी को भी मत बचा रहने दे।

यत्र॑ बा॒णाः स॒म्पत॑न्ति कुमा॒रा वि॑शि॒खा इ॑व।
तत्रा॑ नो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॒रदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु १७

भा०—जिस गृह में (वि शिखाः) बिना शिखा के, चूड़ा कर्म करने के उपरान्त मुंडित (कुमाराः सं पतन्ति) बालक आते हैं वहां जिस प्रकार (ब्रह्मणः पतिः) वेद का पालक विद्वान् और (अदितिः) माता पिता सदा ही (शर्म यच्छन्ति) सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार (यत्र) जिस रण में (कुमाराः) बुरी मार मारने वाले (वि-शिखा) बिना शिखा वा

विविध चोटियों या विशेष तीक्ष्ण शिखा वाले, पैने, (बाणाः सम्पतन्ति) बाण एक साथ बहुत से आ गिरते हैं (तत्र) वहां (ब्रह्मणः पतिः) धनैश्वर्य, वेद और बड़े राष्ट्र का पालक (अदितिः) अखण्ड चरित्र और राज्य का स्वामी होकर (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति दे। (विश्वाहा शर्म यच्छतु) वह सदा ही हमें शान्ति दे।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे वीर योद्धः! हे नायक! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूं। (राजा सोमः) राजा, तेजस्वी, 'सोम' ऐश्वर्यवान् पुरुष (त्वा) तुझे (अमृतेन) अन्नादि से (अनु वस्ताम्) और भी सुरक्षित करे। (वरुण) सर्वश्रेष्ठ, प्रधान (ते) तेरे लिये (उरोः वरीयः कृणोतु) बहुत २ धन प्रदान करे। (जयन्त त्वा अनु) विजय करते हुए तेरे पीछे २ (देवा) अन्य सब उत्तम मनुष्य (मदन्तु) हर्षित हों।

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥ २२ ॥ ६॥६॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारा (स्वः) अपना (अरणः) विना रण वा संग्राम के ही, विना युद्ध के ही है, जिससे कोई हमारा झगडा भी नहीं, या जो (अरणः) हमें अच्छा या प्रिय नहीं लगता, (यः च) और जो (निःस्त्यः) छिपा या दूर रह कर भी (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है (तं) उस शत्रु पुरुष को (सर्वे) समस्त (देवा) युद्धकुशल विजयेच्छु पुरुष (धूर्वन्तु) विनाश करें। (मम) मेरा (अन्तरं) समीप, अति निकटतम (वर्म) कवच (ब्रह्म) बहुत बड़ा, महान् चेतन ही है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

ॐ ओ३म् ॐ

अथ सप्तमं मण्डलम्

[१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—१८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड्गायत्री । १९—२५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं नरो॒ दीधि॑तिभिर॒रण्यो॒र्हस्त॑च्युती जनयन्त प्रश॒स्तम् । दू॒रे॒दृशं॑ गृ॒हप॑तिमथ॒र्युम् ॥ १ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (दीधितिभिः) अंगुलियों से और (हस्तच्युती) हाथों से घुमा २ कर (अरण्योः) दो अरणि काष्ठों में ऐसे (अग्नि जनयन्त) अग्नि को उत्पन्न करें जो (प्रशस्तम्) सब से उत्तम (दूरे-दृशं) दूरसे दीखने योग्य और (अथर्युम्) जो पीडा कष्ट भी न दे । उसी प्रकार (नरः) नायक लोग (हस्त-च्युती) हनन साधन, शस्त्रास्त्रों के सञ्चालन द्वारा शत्रुओं का नाश करके (अरण्योः) उत्तरारणि, और अधरा-रणिवत् पूर्वपक्षी उत्तर पक्ष के दोनों दलों में से (दीधितिभिः) कर्मों को धारण करने में समर्थ सहायसहित वा उसके गुणों, प्रकाशक स्तुतियों से (प्रशस्तम्) गृह के स्वामीवत् राष्ट्र पालक (अग्नि) अग्रणी नायक और तेजस्वी पुरुष को (जनयन्त) प्रकट करें । *अर्थात् गार्हपत्याग्नि को अरणियों से मथकर जिस प्रकार स्थापन करें उसी* प्रकार राज्यशासनार्थ परस्पर वादविवाद के अनन्तर गुणवान् तेजस्वी पुरुष को नायक पद पर स्थापित करें ।

तम॒ग्निमस्ते॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन्त्सुप्रति॒चक्ष॒मव॑से॒ कुत॑श्चित् । द॒क्षाय्यो॒ यो दम॒ आस॒ नित्यः॑ ॥ २ ॥

भा०—(वसवः अग्निम् अस्ते कुतश्चित् नि ऋण्वन्) जिस प्रकार

नये वसने वाले गृहाश्रम मे प्रविष्ट जन कही से भी अग्नि को लेकर स्थापित करते है वह (दक्षाय्यः नित्यः दमे आस) सब कर्म करने हारा, पूजनीय होकर गृह मे नित्य रूप से रहता है उसी प्रकार (यः) जो (नित्यः) सदा स्थिर, (दक्षाय्यः) चतुर विद्वान्, पूजनीय, होकर (दमे आस) प्रजाओ के दमन करने मे लगा रहे (तम्) ऐसे (सु-प्रति-चक्षम्) प्रत्येक कार्य, प्रत्येक वल-विद्या को उत्तम रीति से देखने वाले (कुतश्चित्) कही से, भी किसी भी कुल से उत्पन्न पुरुप को (अग्निम्) अग्रणी ज्ञानी, नायक रूप से (वसवः) राष्ट्र मे वसी समस्त प्रजाएं (अवसे) राष्ट्र की रक्षा के लिये (नि-ऋण्वन्) नियुक्त करे ।

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! अग्रणी नायक ! तू (प्र-इद्ध.) अच्छी प्रकार प्रकाशित, अग्नि के समान दीप्तिमान्, युद्धक्रीडा और व्यवहार मे कुशल होकर (नः पुर) हमारे आगे (सूर्म्या) उत्तम क्रियाओ और वाणी से, (दीदिहि) चमक और हे (यविष्ठ) अति वलवन् ! युवक ! (त्वां) तुझ को (शश्वन्तः) नित्य, अनेक (वाजाः) जानने और प्राप्त करने योग्य पदार्थ, ज्ञान, ऐश्वर्यादि (उप-यन्ति) प्राप्त होते है ।

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निभ्यः अग्नय) पूर्व विद्यमान कारण रूप अग्नियों से उत्पन्न होकर जिस प्रकार अन्य कार्य रूप अग्निये भी (द्यु-मन्त·) तेजोयुक्त होकर (शोशुचन्त) खूब चमकती है उसी प्रकार (अग्निभ्य) अपने अग्रणी विद्वानो से (वरं) श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके (द्युमन्त) तेजस्वी, ज्ञानप्रकाश से युक्त होकर (अग्नय) विद्वान् जन (नि शोशुचन्त) खूब

चमके, तेजस्वी बनें और उस उत्तम पद को प्राप्त हो, (यत्र) जहां (सु-जाता) शुभ गुणों से प्रसिद्ध, सुविख्यात (नरः) प्रधान, अग्रगण्य पुरुष (सम् आसते) एकत्र होकर विराजते है।

दा नो॑ अग्ने धि॒या र॒यिं सु॒वीरं॑ स्वप॒त्यं स॑हस्य प्रश॒स्तम्।
न यं याव्रा॒ तर॑ति यातु॒माावा॑न् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (धिया) कर्म द्वारा (प्रशस्तं) उत्तम (सु-वीरं) सुख से बहुतों को सञ्चालित करने मे समर्थ (स्व-पत्यं) अपना ऐसा वेगयुक्त (रयिं) बल उत्पन्न करता है (यं यावा) पैरों से जाने वाला वा (यातुमावान्) यानसाधनो अश्वादि का स्वामी भी पार नहीं करता अर्थात् विद्युत् से उत्पन्न यन्त्रवेग का पैदल वा सवारी भी मुकाबला नहीं कर सकती, इसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक! तू (धिया) उत्तम बुद्धि और कर्मकौशल से (नः) हमे (सुवीरं) उत्तम वीरो से समृद्ध (स्वपत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम सन्तान से युक्त (प्रशस्तं रयिम्) प्रशंसनीय ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर (यं) जिसका (यावा) आक्रमणकारी और (यातुमा वान्) प्रयाण या पीड़ा देने मे मेरे समान बल-सामर्थ्य वाला अन्य पुरुष वा सामान्य जन (न तरति) पार न कर सके, वैसा ऐश्वर्य न पासके, उसकी तुलना भी न कर सके। इति त्रियोविंशो वर्गः ॥

उप॒ यमेति॑ युव॒तिः सु॒दक्षं॑ दो॒षा वस्तो॑र्ह॒विष्म॑ती घृ॒ताची॑।
उप॒ स्वैन॑म॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥ ६ ॥

भा०—(हविष्मती घृताची दोषा वस्तोः सुदक्षं) घृत, चरु आदि हविष्यान्न से युक्त, घृत मे पूर्ण आहुति जिस प्रकार दिन रात्रि, सायं प्रातः उत्तम दाह करने वाले अग्नि को प्राप्त होती है और (युवतिः दोषा वस्तोः) युवति स्त्री जिस प्रकार दिन रात्रि काल मे निवासार्थ उत्तम कुशल पुरुष के पास (हविष्मती) उत्तम अन्न का भोजन कर (घृताची) घृत आदि स्निग्ध पदार्थ अंग मे लगाकर (उप एति) प्रिय

पुरुष को प्राप्त होती है और जिस प्रकार (वसू-युः) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक युवा पुरुष को चाहने वाली (अरमति) पूर्व रति को न प्राप्त हुई, ब्रह्मचारिणी (स्वा) स्वयं (उप एति) प्राप्त होती है उसी प्रकार (यम्) जिस (सु-दक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अग्नि के समान प्रतापी पुरुष को (हविष्मती) ग्राह्य अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त (घृताची) तेज, अन्नादि से पूर्ण भूमि या प्रजा (उपएति) प्राप्त होती है, (वसू-युः) अपने बसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करती हुई (अरमति) अन्य कहीं विश्राम सुख न पाकर (स्वा) उसकी निजी सम्पत्ति सी बन कर (एनम्) उसको ही (उप एति) प्राप्त होती है।

विश्वा॑ अग्नेऽप॑ दहारा॑तीर्येभि॒स्तपो॑भि॒रद॑हो॒ जरू॑थम्।
प्र नि॒स्व॒रं चा॑तय॒स्वामी॑वाम् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (तपोभिः) अपने तीक्ष्ण तापों से (जरूथम्) जीर्ण, सूखे घास या काठ को जला देती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्विन् नायक ! तू भी (येभिः) जिन (तपोभिः) संतापदायक शस्त्रास्त्रादि साधनों से (जरूथं) परुषभाषी शत्रु को (अदहः) दग्ध करो। उनसे ही (अरातीः) अन्य शत्रुओं को भी (अप दह) भस्म कर और शत्रु को (अमीवाम्) कष्टदायक रोग के समान (नि-स्वरं) निःशब्द, मूक, कुछ, न कहने लायक, मृतवत् करके (चातयस्व) पीड़ित कर और उसे नष्ट कर।

आ यस्ते॑ अग्न इ॒धते॒ अनी॑कं॒ वसि॑ष्ठ॒ शुक्र॒ दीदि॑वः॒ पाव॑क।
उ॒तो न॑ ए॒भिः स्त॒वथै॑रि॒ह स्याः॑ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत अपने चमकाने वाले पुरुष को ही प्राप्त होता है उसको उत्तम प्रकाश आदि कार्य भी देता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! हे (वसिष्ठ) बसने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! हे (शुक्र) कान्तिमन् शुक्र ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् !

हे (पावक) अग्निवत् पंक्तिपावन ! अन्यों के दोषों के शोधक ! (यः) जो (ते) तेरे (अनीकं) तेजोवत् सैन्य बल को (आ इधते) अति दीप्त करता है, उसे उत्तेजित वा बलवान् बनाता है उस प्रजावर्ग (उत) और (नः) उनके समान हमें भी (एभिः स्तवथैः) इन स्तुति योग्य वचनों, कर्मोंसहित (इह स्याः) यहां प्राप्त हो ।

वि ये ते॑ अग्ने भेजि॒रे अनी॑कं॒ मर्ता॒ नर॒ः पित्र्या॑सः पुरु॒त्रा ।
उ॒तो न॑ ए॒भिः सु॒मना॑ इ॒ह स्या॑ः ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रतापवन् ! सेनापते ! (ये) जो (मर्त्ताः) मनुष्य (नरः) नेता रूप से (पुरु-त्रा) बहुत से पदों पर (पित्र्यासः) माता पिता के पद के योग्य, उन सदृश प्रजा के पालक होकर (ते अनीकं) तेरे सैन्य को (भेजिरे) बनाते हैं (एभिः) उनके साथ ही तू (नः) हमें (सुमनाः) शुभ चित्तवान् होकर (इह स्याः) इस राष्ट्र में रह ।

इ॒मे नरो॑ वृत्र॒हत्ये॑षु॒ शूरा॒ विश्वा॒ अदे॑वीर॒भि स॑न्तु॒ मा॒याः ।
ये मे॒ धियं॑ प॒नय॑न्त प्रश॒स्ताम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन् (ये) जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (प्रशस्तां) अति उत्तम (धियं) बुद्धि को (पनयन्त) उपदेश करते हैं (इमे) ये (नरः) उत्तम लोग (शूराः) शूरवीर होकर (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं को मारने के निमित्त संग्रामों में (विश्वाः) समस्त (अदेवीः) अशुभ (मायाः) शत्रुकृत छलादि वञ्चनाओं को (अभि सन्तु) पराजित कर दूर करें । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

मा शूने॑ अग्ने॒ नि ष॑दाम नृ॒णां माशेष॑सो॒ऽवीर॑ता॒ परि॑ त्वा ।
प्र॒जाव॑तीषु॒ दुर्या॑सु दुर्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणीनायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! हे (दुर्य)

गृहो के स्वामिन् ! हम (अशेपसः) विना पुत्र सन्तानादि के होकर (शूने) सुखयुक्त, सम्पन्न, वा शून्य गृह में भी (मा नि सदाम) कभी न बैठें। और (नृणां) मनुष्यो के बीच में हम (त्वा परि) तेरे अधीन रहते हुए (अवीरता) वीरता से रहित होकर भी (मा नि सदाम) उच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त न करे। और (प्रजावतीषु दुर्यासु) प्रजाओं से युक्त गृह मे वसी स्त्रियो के बीच रहते हुए भी हम (अशेपसः अवीरता) मा निपदाम) पुत्रादि से रहित और वीर्य शौर्यादि से रहित होकर घरो में न बैठे रहे, प्रत्युत हम पुत्रवान्; वीर, और प्रजावान् हो।

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः।
स्वजन्मना शेपसा वावृधानम् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् यज्ञम्) जिस यज्ञ को (अश्वी) इन्द्रियरूप अश्वों का स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुष (नित्यम् उप याति) नित्य प्राप्त करता है, और (यम् प्रजावन्तं) जिसको प्रजा से युक्त (क्षयं) वसे हुए (स्वपत्यं) अपने अधिपतित्व मे विद्यमान देश के (अश्वी) अश्व सैन्य का स्वामी राजा प्राप्त होता है, और जो यज्ञ और निवास योग्य गृह (स्व-जन्मना) अपने से जन्म लाभ करने वाले (शेपसा) पुत्र और धन से (वावृधानम्) बढते हुए को भी प्राप्त होता है उसी (प्रजावन्तं) पुत्रादि से समृद्ध (स्वपत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम पुत्र युक्त और (स्व-जन्मना शेपसा वावृधान क्षयं) अपने वीर्य से उत्पन्न और सपुत्र से बढ़ते हुए यज्ञस्वरूप (क्षय) गृह को (नः) हमें भी प्राप्त करा।

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणीनायक अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! आप (अजुष्टात्) धर्म का सेवन न करने वाले तथा अप्रीति युक्त

(रक्षसः) अतिक्रोधी, अतिहिंसक, (आघायोः) पापाचारी, पापमय जीवन व्यतीत करने वाले, सदा अन्यों पर पाप, छल हत्यादि का प्रयोग करने वाले दुर्जन से भी (नः पाहि) हमारी रक्षा करो। मैं (त्वा युजा) तुझ सहायक से (पृत्नायून) सेना वा संग्राम के इच्छुक शत्रुओं को भी (अभि स्याम्) पराजित करने मे समर्थ होऊं।

सेदग्निर् अग्नीँ रत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः। सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य सब अग्नियों से बढ़ कर (अग्निः) यज्ञाग्नि (वाजी) अन्नादि आहुति युक्त, और (सहस्रपाथाः) अनेक विध अन्नो वाला अनेक किरणो से जल पीकर और (अक्षरा समेति) मेघ के उदको सहित प्राप्त होता है उसी प्रकार (यत्र) जहां (अग्निः) विद्वान् तेजस्वी नायक (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य तेजस्वी पुरुषों को अति क्रमण करके स्वयं (वाजी) बलवान् (तनयः) प्रजाजनो का पुत्रवत् प्रेमपात्र और (वीळु-पाणिः) वीर्यवान् हाथों वाला या वीर्यवान् सैन्य जनको अपने हाथ मे वश करता हुआ हो, वहां (सः इत् अग्निः) वही सच्चा 'अग्नि' है। वह ही (सहस्र-पाथः) सहस्रों जनों का पालक वा अन्नो और पालनसाधनो से समृद्ध होकर (अक्षरा) न नाश होने वाली नदियों के समान सदाबहार प्रजाओं को (सम् एति) प्राप्त होता है।

सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात्। सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥ २५ ॥

भा०—(यः) जो (वनुष्यत) याचना, अर्थात शरण, अन्न, आजीविकादि चाहने वालों को (निपाति) रक्षा करता है और (समेद्धारम्) अपने को प्रदीप्त, प्रज्वलित, बलवान् करने वाले को (अंहस) पाप से (उरुष्यात्) रक्षा करे। अथवा—(य.) जो (समेद्धारम)

अपने को प्रदीप्त करने वाले पुरुष को (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से और (उरुष्यात् अंहसः) महान् पापाचार से भी (नि पाति) बचा लेता है और जिसको (सु-जातासः) उत्तम कर्मों मे जन्म लेने वाले (वीराः) वीर, विद्योपासक द्विज, शिष्य, (परिचरन्ति) सेवा करते हैं (स· इत् अग्निः) वह गुरु भी अग्निवत् तेजस्वी है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान्।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि को (ईशानः यम् सम्-इन्धे) सब जगत् का स्वामी परमेश्वर सूर्य विद्युत् से खूब प्रज्वलित करता है और (यम् होता अध्वरेषु परि एति) जिस प्रकार अग्नि को आहुतिदाता अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञादिकर्मों मे प्राप्त होता है उसी प्रकार (यम्) जिस प्रतापी पुरुष को (हविष्मान्) नाना अन्नादि का स्वामी (ईशानः) राष्ट्र का बड़ा स्वामी (सम् इन्धे इत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करता है और (यम्) जिसका (अध्वरेषु) प्रजापालन अध्ययनाध्यापनादि हिंसारहित, प्रजाशिष्यादिपालन कार्यों मे (होता) कर आदि देने और विद्यादि ग्रहण करने वाला प्रजा वा शिष्यादि जन (परि एति) परिचर्या करता है (स) वह ही (अयम्) यह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान्, प्रकाशक पुरुष (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों मे (आहुतः) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य है।

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार हम लोग (मियेधे) पवित्र यज्ञ मे (आहवनानि) आहुति करने योग्य अन्नादि (आ जुहुयाम) आहुति करते हैं, उसी प्रकार (ईशानास) ऐश्वर्ययुक्त होकर भी हे विद्वन्! हम लोग (त्वे) तेरे अधीन (नित्या आहवनानि)

नित्य, सदा आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम वचन, वा अन्न वस्त्रादि भी (आ जुहुयाम) आदरपूर्वक दिया करें और (मियेधे) पवित्र यज्ञादि के अवसर पर भी (वहतू) कार्य या गृहस्थाश्रम के भार को धारण करने वाले विवाहित वर वधू या यजमान पुरोहित (उभा) दोनों को भी (आ कृण्वन्तः) सन्मुख करते हुए (त्वे आ जुहुयाम) अग्निवत् तुझ मे दान आदि दें।

इ॒मो अ॑ग्ने वी॒तत॑मानि ह॒व्याज॑स्रो वक्षि दे॒वता॑ति॒मच्छ॑।
प्रति॑ न ईं सुर॒भीणि॑ व्यन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! प्रतापयुक्त ! विद्वन्, ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि (देवतातिम् हव्या वहति) यज्ञ को प्राप्त कर उसमे हव्य चरु आदि ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (इमा) ये (वीत-तमानि) उक्त कामना योग्य (हव्या) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (वक्षि) धारण कर और (वीत-तमानि हव्या) खूब ज्ञानप्रकाशक, कामना योग्य, सुन्दर, ग्राह्य ज्ञानों का (वक्षि) धारण कर, दूसरों तक पहुंचा और उपदेश कर। तू (अजस्रः) अहिंसित, अपीड़ित होकर (देवतातिम् अच्छ) शुभ गुणों को प्राप्त कर और (नः) हमें (सुरभीणि) उत्तम शक्तिप्रद अन्न (ईम्) सब प्रकार से (प्रति व्यन्तु) प्रति दिन प्राप्त हों।

मा नो॑ अग्ने॒ऽवीर॑ते॒ परा॑ दा दु॒र्वास॒सेऽम॑तये॒ मा नो॑ अ॒स्यै।
मा नः॑ क्षु॒धे मा र॒क्षस॑ ऋतावो॒ मा नो॒ दमे॒ मा वन॒ आ जु॑हूर्थाः ॥१९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन ! हे प्रभो ! (नः) हमें (अवीरते) वीरों से रहित सैन्य मे, वा देश मे, (मा परा दाः) मत छोड़। (दुर्वाससे) बुरे, मैले कुचैले वस्त्र पहनने के लिये वा मलिन वस्त्र धारण करने वाले के लाभ के लिये और (अस्यै अमतये) इस मूढ़ता या मति रहित मूर्ख पुरुष के सुख के लिये (नः मा परा दाः) हमें

मत त्याग अर्थात् तू हमे मैला कुचैला और मूढ मत रहने दे और न मैले कुचैले और मूर्ख के पल्ले डाल । हे विद्वन् ! (क्षुधे नः मा परा दाः) भूख से पीडित होने के लिये या भूखे के आगे भी हमे मत डाल हे (ऋतावः) सत्य, न्यायशील ! ऐश्वर्यवन् ! तू हमे (रक्षसे मा परा दाः) दुष्ट राक्षस पुरुष के सुख के लिये भी मत त्याग । (नः) हमे (दमे मा आ जुहूर्थाः) घर मे भी पीड़ित न होने दे और (नः वने मा आ जुहूर्थाः) हमे वन मे भी मत त्याग ।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छंशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०।२६

भा०—हे (देव) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले ! (अग्ने) अग्निवत् तत्व को प्रकाशित करने हारे विद्वन् ! (त्वं) तू (मे) मेरे हित के लिये (ब्रह्माणि) उत्तम २ ज्ञानमय वेदमन्त्रो का (उत् शशाधि) उत्तम रीति से शासन कर । हे विद्वन् ! तू (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् पुरुषो के हितार्थ भी (ब्रह्माणि उत् शशाधि) ज्ञानमय वेद मन्त्रों का उपदेश कर और (सु-सूदः) दुःखों को दूर कर । हम (उभयास) विद्वान् और अविद्वान् दोनों जन (ते रातौ आ स्याम) तेरे दान मे समर्थ हो । हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप सब लोग (नः) हमें सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणजनक साधनो मे (पात) रक्षा करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धड् मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् २१

भा०—जिस प्रकार (सहस सूनुः अग्नि रण्वसंदृक् सुदीती दीप्यते) बलपूर्वक उत्पन्न किया अग्नि, विद्युत्, उत्तम कान्ति से चमकता और रम्य रूप से दीखता और रम्य पदार्थों को दिखाता है । वह (मा अधक्) हमे भस्म न करे और (मा वि दासीत्) किसी प्रकार पीड़ा न पहुंचावे

लिये (यस्य अपिवः) जिस ऐश्वर्य का तू उपभोग और पालन करता है (अस्य पिव) बाद में भी तू उसी राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करता रह। (अस्मै ते) इस तेरी वृद्धि के लिये ही (गावः) गौएं, वाणियें और भूमियें (नरः) उत्तम नायक, (आपः) राष्ट्र में जल, मेघ, कूप, नदी, तडाग आदि, तथा आप्त प्रजाजन, (अद्रिः) मेघ, पर्वत तथा शस्त्रबल सब। (तम् इन्दुं) उस ऐश्वर्य को (पीतये) पालन और उपभोग करने के लिये ही। (सम् अग्मन्) एकत्र प्राप्त हों।

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ॥
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुवितायं महे नः ॥ ३ ।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के खूब प्रदीप्त हो जाने के समान (अग्नौ) अग्रणी नायक के (सम-इद्धे) अति प्रज्वलित, तेजस्वी हो जाने पर (सोमे सुते) राष्ट्र ऐश्वर्य के अभिषेक द्वारा प्राप्त हो जाने पर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (त्वा) तुझको (वहिष्ठाः) अपने ऊपर धारण करने वाले वा राज्य-भार को वहन करने में अत्यन्त कुशल (हरयः) विद्वान् मनुष्य उत्तम अश्वों के समान ही (त्वा/वहन्तु) तुझे सन्मार्ग पर ले जावें। मैं प्रजाजन (त्वायता मनसा) तुझे चाहने वाले चित्त से (जोहवीमि) निरन्तर पुकारता हूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले! तू (नः महे सुविताय) हमारे बड़े भारी उत्तम शासन वा ऐश्वर्य भाव की वृद्धि करने के लिये हमें (आ याहि) प्राप्त हो।

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे वयो धात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (शश्वत्) निरन्तर (उशता) प्रजा को चाहने वाले (मनसा) चित्त से (आ याहि) प्राप्त हो। तू (महा मनसा) बड़े उदार चित्त ज्ञान से युक्त होकर (सोम-पेयम्)

वा शिष्यवत् पालन करने योग्य राष्ट्र-ऐश्वर्य रूप रक्षायोग्य धन को याथ) प्राप्त कर । (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम दिेशों को स्वयं शिष्यवत् (उप शृणवः) ध्यानपूर्वक श्रवण कर । थ) और (यज्ञ.) सत्संग, आदर सत्कार तथा प्रजा का कर आदि , और दानवान् प्रजाजन भी (ते तन्वे) तेरे शरीर और विस्तृत राष्ट लिये (वय॑ धात्) उत्तम अन्न और बल प्रदान करे, तुझे पुष्ट करे ।

इन्द्र दि॒वि पार्ये॒ यदृध॒ग्यद्वा॒ स्वे सद॑ने॒ यत्र॒ वासि॑ ।
ॉ नो य॒ज्ञमव॑से नि॒युत्वा॑न्त्स॒जोषाः॑ पाहि गिर्वणो म॒रुद्भिः॑ ॥५॥१२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (यत्) जब (पार्ये) न करने योग्य (दिवि) तेजस्वी, और सबको रुचने वाले कमनीय, पद वा आसन पर और (यत्) जब (ऋधक् वा) उससे पृथक् हो, (यद् वा) अथवा जब तुम (स्वे सदने) अपने आसन वा गृह (यत्र वा असि) या जहां कहीं, जिस स्थिति में भी हो (अतः) से ही हे (गिर्वण.) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! आप (नियुत्वान्) ों सेनाओं, नियुक्त भृत्यो तथा अश्व सैन्य के स्वामी होकर (स-जोषा) तपूर्वक (मरुद्भि) वायुवत् बलवान् मनुष्यों सहित (अवसे) रक्षा ति के लिये (नः यज्ञं पाहि) हमारे यज्ञ, राष्ट्र का पालन कर । इति शो वर्गः ॥

[४१]

ाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

हेळमानु उप॑ याहि य॒ज्ञं तुभ्यं॑ पवन्त॒ इन्द॑वः सु॒तासः॑ ।
ा न व॑ज्रि॒न्त्स्वमोको॑ अ॒च्छेन्द्रा ग॑हि प्रथ॒मो य॒ज्ञिया॑नाम् ॥१॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवन् ! शस्त्र सैन्य के स्वामिन् ! (इन्दव' सुतासः) ऐश्वर्यवान्, प्रेम दया से आर्द्र प्रजाजन, उत्पन्न पुत्र के समान होकर (तुभ्यं पवन्ते) तेरी वृद्धि के लिये ही यत्न करते हैं। तू (अहेड॰मानः) उन पर क्रोध और अनादर का भाव न करता हुआ (यज्ञं उप याहि) उनके किये आदर सत्कार तथा सत्संग को प्राप्त हो। (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञियानाम् प्रथम') सत्कार योग्य पुरुषों में से सबसे प्रथम तू ही (स्वम् ओकः) अपने स्थान को (गाव॰ नः) शासित भूमियों, प्रजाओं के समान ही (अच्छ आगहि) प्राप्त हो। जैसे गौवें स्वभावतः अपनी गोशाला में आ जाती है उसी प्रकार तू भी सौम्य भाव से अपने पद को प्राप्त हो अथवा जैसे मनुष्य अपने स्थान को आता है वैसे (स्वम् ओकः गावः न) भूमियो को अपना ही आश्रय जान, उन्हें प्राप्त हो।

या ते॑ काकुत्सुकृ॑ता या वरि॑ष्ठा यया॒ शश्व॒त्पिब॑सि॒ मध्व॑ ऊर्मिम् ।
तया॑ पाहि॒ प्र ते॑ अध्वर्युर॑स्थात्सं ते॒ वज्रो॑ वर्ततामिन्द्र ग॒व्युः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे अज्ञाननाशक स्वामिन् ! विद्वन् ! (या ते) जो तेरी (काकुत्) वाणी (सुकृता) उत्तम रीति से सम्पादित सु-अभ्यस्त, सुपरिष्कृत है (या) जो (वरिष्ठा) सबसे श्रेष्ठ, है (यया) जिससे तू (शश्वत्) सदा (मध्वः ऊर्मिम्) मधुर, ज्ञान के सार भाग का (पिबसि) स्वयं ग्रहण करता, और अन्यो को भी पान करता है, त (तया पाहि) उससे हमारी रक्षा कर। (ते) तेरे लिये (अध्वर्यु') कभी नाश न करने वाला वीर जन (ते प्र अस्थात्) तेरी वृद्धि के लिये प्रतिष्ठित हो और आगे बढ़े। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (ते वज्रः) तेरा वज्र, शत्रुसंहारक शस्त्रबल भी (गव्यु') राज्य भूमि का हितकारी होकर (सं वर्त्तताम्) उत्तम मार्ग से चले।

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे (स्थातः) स्थिर रहने वाले ! तू (यस्य ईशिषे) जिसका तू स्वामी होता है और (यः ते अन्नम्) जो तेरा भोग्य अन्न है (एषः) वह (द्रप्सः) सबको लुभाने वाला, वा (वृषभः) उत्तम सुखों को वर्षण करने वाला, (सोम) ऐश्वर्य अथवा (द्रप्सः) द्रुत गति से जाने वाला, (वृषभः) बलवान् (विश्व-रूपः) नाना प्रजाजनों से युक्त, (सोमः) उत्पन्न पुत्रवत् प्रिय, राष्ट्र (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वृष्णे) बलवान् तेरे लिये ही (सम् अकारि) अच्छी प्रकार अन्नवत् संस्कार किया जावे, हे (उग्र) बलशालिन् ! तू (एनं पिब) उसका पालन और उपभोग कर ।

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (असुतात्) न उत्पन्न हुए की अपेक्षा (सुतः सोम) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य के तुल्य यह अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य, अभिषिक्त होकर प्राप्त राज्य की अपेक्षा से (वस्यान्) बहुत अधिक धनैश्वर्य से सम्पन्न है तथा अधिक प्रजाजनों को बसाने हारा है और वह (चिकितुषे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (रणाय) उत्तम सुख प्राप्त करने और शत्रुनाशक संग्राम करने के लिये भी (श्रेयान्) अति श्रेष्ठ है । हे (तितिर्वः) शत्रु नाश करने हारे बलवन् ! राजन् ! तू (एतं यज्ञं उपयाहि) उस यज्ञ अर्थात् पूज्य पद, सुसंगत राज्य को प्राप्त हो । तेन उससे (विश्वाः) समस्त (तविषीः) बलवती सेनाओं को (आपृणस्व) सब प्रकार से पालन और पूर्ण कर ।

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५।१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! बलवन् ! शत्रुहन्तः ! प्रभो ! (त्वा) तुझे हम (हवामसि) बुलाते हैं । (सोमः) अन्न जिस प्रकार (तन्वे) शरीर के पोषण के लिये होता है । और (सोमः तन्वे) जिस प्रकार पुत्र या शिष्य वंश परम्परा के विस्तार के लिये होता है, उसी प्रकार यह पुत्र-वत् राष्ट्र भी (ते तन्वे अरम्) तेरे विशाल शरीर वा राज्य विस्तार के लिये प्रदीप्त (भवाति) हो । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्वाङ् आयाहि) सब के समक्ष आ । अथवा (अर्वाङ्) अश्व सैन्य को प्राप्त करके (आ याहि) सब ओर प्रयाण कर, हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करनेहारे ! तू (अस्मान्) हम सबों को (सुतेषु) पुत्रवत् आह्लादकारक अभिषेकादि कर्मों के अवसरों वा ऐश्वर्यों के निमित्त सदा आनन्दित कर और (पृतनासु) संग्रामों के अवसरों और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अस्मान् प्र अव) हमारी अच्छी प्रकार रक्षा कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४ भुरिगनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे प्रजाजन ! तू (अस्मै) उस (पिपीषते) पान और उत्तम पालन करने की इच्छा करने वाले, (अरंगमाय) विद्या और संग्राम के पार जाने वाले, (अपश्चाद्-दघ्वने) पीछे पैर न रखने वाले (जग्मये) आगे बढ़ने हारे, विज्ञानवान् वीर और (विदुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के पदार्थ (प्रति भर) ला ।

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (एनं) इस (ऋजीपिणम्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर प्रजाजन को चलाने मे समर्थ, तथा ऋजीप, अर्थात् बल वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (सोमपातमं) उत्पन्न पुत्रवत् प्रजा तथा ऐश्वर्य के उत्तम पालक पुरुष को, (सुतेभिः) नाना पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र हृदय (अमत्रेभिः) सहायकारी (सोमेभिः) सौम्य गुण युक्त पुरुषो सहित (प्रति एतन) प्राप्त होवो ।

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रति भूषथ ।
वेद विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

भा०—(यदि) यदि आप लोग (सुतेभिः) उत्तम पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) दयार्द्र, तेजस्वी (सोमेभिः) उत्तम शासको, ऐश्वर्यों वा गुणों सहित उस राजा को (प्रति भूपथ) सुभूषित करे तो वह (मेधिरः) शत्रुओं का नाश करने मे समर्थ, बुद्धिमान्, तथा अन्नादि सम्पन्न पुरुष (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र को (वेद) जाने, और प्राप्त करे । वह (धृपत्) शत्रुओ का पराजय करने हारा (तम्-तम् इत्) आपके दिये उस २ ऐश्वर्यादि पदार्थ को (आ ईपते) आदरपूर्वक प्राप्त करे ।

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् । ४॥१४॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजाजन की हिंसा न करने वाले प्रजापालक जन ! तू (अस्मै अस्मै) इस इस प्रजाजन के लिये (अन्धसः सुतम्) अन्न से उत्पन्न ऐश्वर्य को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर और (समस्य) समस्त (जेन्यस्य) विजय करने योग्य (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (अभिशस्ते) शस्त्र प्रहार से (कुवित्) बहुत बार बारबार भी (अव-

-स्परत्) हमारी रक्षा कर। अथवा, हे (अध्वर्यो) अहिंसक राजन्! तू (अस्मे अस्मे सुतम् प्र भर) उस २ नाना प्रजाजन के लिये उत्तम ऐश्वर्य अच्छी प्रकार प्राप्त कर। और (समस्य जेन्यस्य शर्धतः) समस्त विजय करने वाले (अभिशस्तेः) प्रशंसनीय वल को भी (अन्धसः) अन्न की (कुवित्) बहुत प्रकारों से (अवस्परत्) पालना कर। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[४३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

यस्य॒ त्यच्छम्ब॑रं॒ मदे॒ दिवो॑दासाय र॒न्धयः॑।
अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यस्य मदे) जिसके हर्ष में (दिवः-दासाय) ज्ञान और तेज के देने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये तू (त्यत्) उस (शम्बरम्) मेघ के समान गर्जते शत्रु को (रन्धयः) वश करता है (सः अयम्) वह यह (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) बलकारक अन्नादि ओषधि रस के तुल्य ऐश्वर्य (ते) तेरे ही लिये है। तू (पिब) उसे पान वा पालन कर।

यस्य॑ ती॒व्रसु॑तं॒ मदं॒ मध्य॒मन्तं॑ च॒ रक्ष॑से।
अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (यस्य) जिसके (तीव्र-सुतम्) तीव्र, वेग से कार्य करनेवाले, अप्रमादी पुरुषों से शासित, (मदम्) हर्षदायक (मध्यम् अन्तम्) राष्ट्र के मध्य और सीमाप्रान्त की भी तू (रक्षसे) रक्षा करने में समर्थ है (अयं स सोमः) वह यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रजाजन (ते सुतः) तेरे ही पुत्रवत् है। तेरे लिये ही वह (सुतः) अन्न वा ओषधि रसवत् तैयार वा अभिषेक किया गया है। तू उसका (पिब)

पुत्रवत् पालन कर वा, ओषधि अन्नादिवत् उपभोग कर। उससे अपनी रक्षा और पोषण कर।

यस्य॒ गा अ॒न्तरश्म॑नो॒ मदे॑ दृ॒ळ्हा अ॒वासृ॑जः।

अ॒यं स सोम॑ इन्द्र॒ ते सु॒तः पिब॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! (यस्य मदे) जिसके आनन्द, हर्ष के लिये (अश्मनः अन्तः) शस्त्र बल के भीतर (दृढ़ाः) दृढतया सुरक्षित (गाः) भूमियों को तू (अवासृजः) अपने अधीन शासन करता है (अयं) यह (सः) वह (सोमः) ओषधि रसवत् ऐश्वर्य युक्त राज्य है (ते सुत) तेरे लिये ही मुझे अभिषेक प्राप्त है। तू (पिब) उसका पालन और उपभोग कर।

यस्य॑ मन्दा॒नो अन्ध॑सो॒ माघो॑नं दधि॒षे शव॑ः।

अ॒यं स सोम॑ इन्द्र॒ ते सु॒तः पिब॑ ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (अन्धसः) प्राण धारण करने वाले, अन्नवत् पोषक राष्ट्र के बल पर (मन्दानः) तू अति हृष्ट प्रसन्न होता हुआ, (माघोनं शवः) ऐश्वर्यवान् होने योग्य बल को (दधिषे) धारण करता है (अयं सः सोमः) यह वह ऐश्वर्यमय राष्ट्र (ते सुतः) तेरा पुत्रवत् है। तू (पिब) उसका पालन कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४४]

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(पञ्चम खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड्, अजमेर

प्रथमावृत्ति २०००

सन् १९३५ ई०

संवत् १९९२ वि०

मूल्य ४) रुपये

मुद्रक—
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

ओ३म्

ऋग्वेद विषय-सूची

पञ्चमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

सप्तमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः

(एकषष्टितमसूक्तादारभ्य)

सू० [६१]—मित्र और वरुण। परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों को उपदेश। उनके प्रति सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (२) उत्तम जीवन व्यतीत करने का उपदेश। (३) राज्य में प्रजापालक, दुष्टवारक मित्र, वरुण दोनों वर्गों के कर्त्तव्य। (४) मित्र, वरुण का महान् सामर्थ्य। (५) दोनों विद्वानों के वचन, उत्तम ज्ञान से पूर्ण हों। (पृ० १–४)

सू० [६२]—(१–२) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। सब का भार अपने पर ले, समान रूप से देखे, उत्तम कर्म करे। किरणोंवत् सज्जनों सहित उदय को प्राप्त हो। (३) विद्वान्, स्नेही, शासक जन प्रजाओं को नाना सुखजनक सम्पदाओं से पूर्ण करें। (४) आकाश-भूमिवत् माता पिता का कर्त्तव्य। प्रजा का हित। (५) बाहुओंवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) विद्वान् शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ४–७)

सू० [६३]—(१–५) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। (२) यन्त्रचक्र में लगे अश्व या एंजिनवत् वा राशिचक्र के बीच स्थित सूर्यवत् विद्वान् का सर्वसञ्चालन। (४) सर्वप्रेरक सूर्यवत् ज्ञानी से प्रेरित जनों की सदर्थ-प्राप्ति। (५) सूर्यवत् सन्मार्ग में गति, मित्र और वरुण का आदर। (पृ० ७–११)

सू० [६४]—सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । (२) राजा रानी, राजा सेनापति के कर्त्तव्य (३) वायु मेघवत् राजाओं के प्रजापतिवत् कर्त्तव्य । (५) वायुवत् श्रेष्ठ जन का कर्त्तव्य । (पृ० ११–१४)

सू० [६५]—मित्र और वरुण, राजा-प्रजा वर्ग के कर्त्तव्य । (२) उन के गृहपति-गृहपत्नीवत् कर्त्तव्य । (पृ० १४–१६)

सू० [६६] (१–३)—मित्र, वरुण, स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य । (४–१२) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य । (१२–१३) उनसे ज्ञानैश्वर्य की याचना । (१४) सूर्यवत् तेजस्वी शासक का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (१७–१९) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० १६–२२)

सू० [६७]—दो अश्वी, राजा-रानीवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य-उषा दृष्टान्त से गुरु-शिष्य के कर्त्तव्य । अध्यात्म में आत्मा और बुद्धि का वर्णन । (३) जितेन्द्रिय नर-नारियों के कर्त्तव्य । (४) उन का आचार्य के अधीन वास, भैक्ष्य, मधुकरी वृत्ति । (५) अश्वी, जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्या जनों का गुरु से ज्ञान-याचना का कर्त्तव्य । उन के उद्देश्य और कर्त्तव्य । विद्याध्ययनशील जनों को उपदेश । (पृ० २३–२९)

सू० [६८]—अश्वी, रथी-सारथिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । शिष्य-शिष्याओं के कर्त्तव्य । (७) दुर्मित्रों से त्यक्त, निःसहायों का सहाय करना कर्त्तव्य है । अश्वियों का भुज्यु को समुद्र से पार करने का रहस्य । (८) स्त्रियों, कन्याओं की रक्षा का कर्त्तव्य । (९) विद्वान् का कर्त्तव्य उपदेश करना, ज्ञान बढ़ाना । (पृ० २९–३३)

सू० [६९]—दो अश्वी, (१) राजा और विद्वान्, गृहस्थ के कर्त्तव्य । रथवत् गृहस्थाश्रम । (२) रथी-सारथिवत् पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (३) राजा-प्रजा आदि सहयोगी जनों को उपदेश । मधुमान् निधि का रहस्य । (४–८) वर-वधू के कर्त्तव्य । (७) अश्वियों का

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८२]—इन्द्र-वरुण, शत्रुहन्ता. श्रेष्ठ पुरुष का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (२) इन्द्र-वरुण का स्वरूप एक वसुपति दूसरा प्रजाप्रति। सम्राट् और साम्राज्य। (३) उन के कर्त्तव्य। नाना मार्ग निर्माण, और प्रजा की समृद्धि-वृद्धि। (५) आधिदैविक दृष्टान्त से इन्द्र-वरुण का रहस्य। सूर्य-मेघवत् कोश और दण्ड के अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (६) इन्द्र, वरुण, दण्डकर्त्ता और दण्डपति। (७) पाप, दुराचार, पीड़ा, संताप से रहित उनका शासन। (८) दोनों प्रजा के बन्धु हों। (९) दोनों अग्रयोद्धा (१०) और प्रजा को उत्तम बलदाता हों। (पृ० ७५–८१)

सू० [८३]—इन्द्र, वरुण, वायु, विद्युत् वत् शत्रुहन्ता और शत्रुवारक अध्यक्षों के कर्त्तव्य। कृपकों वत् सैन्यों के कर्त्तव्य। (२) संग्राम के दो नायक इन्द्र, वरुण। (३) युद्ध आदि संकट के विकट अवसरों में उन के कर्त्तव्य। (४) भेदनीति और सदुपाय का उपदेश। (५) प्रजा की त्राण की प्रार्थना। उन दोनों का महान् सामर्थ्य। दश राजा, सुदास, तृत्सु उनका रहस्य, सभा-सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ८६–८८)

सू० [८४]—स्त्री पुरुषवत् प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध। (२) सम्पन्न राष्ट्र में प्रजा का कर्त्तव्य। उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ८६–८८)

सू० [८५]—इन्द्र, वरुण—उत्तम शासक तथा वायु जल और स्त्री - पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन। इन्द्र, वरुण राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ८९–९१)

सू० [८६]—वरुण, परमेश्वर का वर्णन। परमेश्वर की भक्तिपूर्वक प्रार्थनोपासना। (३) बन्धन की जिज्ञासा। मोक्ष की प्रार्थना। (४) पाप-मोचन की प्रार्थना। (५) बन्धन-मोचन की प्रार्थना।

(२) उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (३) विवेकी वीर जनों के कर्त्तव्य। (पृ० ११२–११४)

सू० [९३]—इन्द्र अग्नि माता-पितृवत् ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी-जनों के कर्त्तव्य। (३) विद्युत् और अग्नि के तुल्य अध्यापक, आचार्य और सभापति, सेनापति के पद। अग्रणी नायकों, वीरों के कर्त्तव्य। (७) शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ११५–११६)

सू० [९४]—इन्द्र-अग्नि, विद्वान् गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) नायक नायिका जनों के कर्त्तव्य। (१२) दुष्टाचारी को उचित दण्ड। (पृ ११९–१२३)

सू० [९५]—सरस्वती। नदीवत् पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य। श्लेषमय वेद का अपूर्व चमत्कार। (३) सरस्वान् नरश्रेष्ठ का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (४-६) स्त्री को उपदेश। (पृ० १२३–१२७)

सू० [९६]—(१–३) वेदवाणी सरस्वती का वर्णन। (४–६) ज्ञानवान् प्रभु सरस्वान् से प्रार्थना। (पृ० १२७–१२९)

सू० [९७]—प्रभु की उपासना। प्रार्थना स्तुति। बृहस्पति प्रभु। (पृ० १२९–१३४)

सू० [९८]—मनुष्यों को यज्ञ का उपदेश। (२) उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विजिगीषु राजा के कर्त्तव्य। (४) वीर जनों के कर्त्तव्य। (५) राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रभु की उपासना। (पृ० १३४–१३७)

सू० [९९]—सर्वव्यापी प्रभु की महिमा का वर्णन। (४) इन्द्र, विष्णु, विद्युत् पवनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) राजा-सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० १३८–१४१)

सू० [१००]—विष्णु, व्यापक प्रभु की स्तुति-उपासना। (पृ० १४१–१४४)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पर्जन्य। मेघवत्–विद्वान् के कर्त्तव्य। उसका शिष्य को वत्सवत् ज्ञान रस से वर्धन। (२) मेघ सूर्यवत् जगत् के स्वामी से वेदमय ज्ञान और सुखद देह की प्रार्थना। त्रिवर्त्तु ज्योति और त्रिधातु शरण का रहस्य। (३) मेघ के अप्रसूता और प्रसूता गौ के तुल्य रूप। उस के साथ सम्बद्ध भूमि सूर्यवत् प्रभु के दो रूप और प्रकृति पुरुष के विज्ञान का स्पष्टीकरण। (४) मेघविज्ञान। प्रकृति-परमाणुओं का तीन प्रकार की गति। तीन कोशों का वर्णन, अध्यात्म तत्त्व। (६) गौ वृषभ के दृष्टान्त से जगत्-स्रष्टा के आधार पर समस्त जगत्। (पृ० १४४–१४८)

सू० [१०२]—पर्जन्य। मेघवत् सर्वोत्पादक प्रभु के गुणों का वर्णन। अग्निहोत्र-यज्ञ से प्रभु की प्रार्थना और मेघोत्पत्ति। (पृ० १४८–१४९)

सू० [१०३]—मण्डूकों के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी और नाना विद्याओं के विद्वानों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० १४९–१५४)

सू० (१०४)—दुष्टों का दमन। राजा और पुरोहित के कर्त्तव्य। दण्डविधान का आदेश। (४) दुष्टों के दमन के नाना साधनों का उपदेश। (५) दण्ड योग्य अपराधियों का निर्देश। (१२) सत्यासत्य का विवेक करने का उपदेश। (१३–१४) सत्यवादी को दण्ड न देकर पापी को दण्ड देने का उपदेश। (१५) पीड़ादायियों को दण्ड। असत्यारोपी को दण्ड। (१७) दुष्ट स्त्रियों को दण्ड। (१८–१९) दुष्टों को कठोर दण्ड। दण्ड के लिये आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग।

अष्टमं मण्डलम्

अष्टमोऽध्यायः

सू० [५]—उषा और अश्वियुगल। गृहलक्ष्मी उषा देवी। जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को गृहस्थोचित उपदेश। वीर विद्वान् एवं राजा और अमात्य-राजावत् युगल जनों के कर्त्तव्य। (३७, ३८, ३९) वैद्य प्रभु के दान और उसकी अध्यात्म व्याख्या। (पृ० २१५–२२८)

सू० [६]—पर्जन्यवत् ज्ञानप्रद प्रभु की उपासना। (२) विद्वानों के कर्त्तव्य! (५) वीर पुरुषवत् ईश्वर का अद्भुत कर्म। (६) सूर्य, वायु, विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य। (७–९) विद्वानों के गुण और कर्त्तव्य। (१०) प्रभु से प्रार्थनाएं। (१२–१३) गुरुवत् प्रभु। (१४) पापनिवारणार्थ दण्ड-प्रयोग का उपदेश। (१५) अपरिमेय सब से बड़ा प्रभु। (१६) प्रसुप्त प्रकृति का ईश्वर से सम्बन्ध। (१७) तम दूर करने की सूर्यवत् प्रभु से प्रार्थना। (१९) गौओं के तुल्य ऋषियों का प्रभु के प्रति भाव। (२०) सर्व-शक्तिप्रद प्रभु। (२१) पिता प्रभु। प्रभु और राजा से अनेक स्तुति-प्रार्थनाएं। (४६) सर्वोत्तम सुख प्रभु का है। 'तिरिन्दिर' का रहस्य। (४७) समदर्शी को बड़ा लाभ। (पृ० २२८–२४५)

सू० [७]—मरुद्गण। वायुओं के तुल्य बलवान् वीरों और विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश। (३–७) मेघ और वृष्टि लाने वाले वायुगण का वर्णन। उन की तुलना से सज्जनों, वीरों के कर्त्तव्य। (पृ० २४५–२६०)

सू० [८]—अश्वी अर्थात् जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। राष्ट्र में राजा और सचिव जनों के कर्त्तव्य। (६–१५) ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जनों के कर्त्तव्य। (पृ० २६०–२७०)

सू० [९]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में (१०) राजा और सेनापति के कर्त्तव्य। (१६–१८) उत्तम देवी विदुषी के

षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

उत्पादक, पालक प्रभु । (११) सर्वविघ्नहारी प्रभु । (१४) स
सर्वोपास्य । (पृ० ३१५–३२०)

सू० [१६]—परमेश्वर का स्तवन । (३) ज्येष्ठराज प्र
(५) सर्वाध्यक्ष का वर्णन । (६) सर्वैश्वर्य स्वामी का वर्णन । स्तु
योग्य प्रभु के गुणों का वर्णन । (पृ० ३२०–३२४)

सू० [१७]—प्रभु की स्तुति । उस का हृदय में आह्वान
धारण । (५) गुरु का शिष्य को दीक्षित करना । उसको वेदोपदेश
आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य । वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन । विघ्नविना
परमेश्वर । (९) जगत् का स्वामी । (१०–१५) उपास्य उपासक
गुरु शिष्य का सा भाव । (१२) शक्तिशाली प्रभुवत् राजा । (१४
वास्तोष्पति शासक इन्द्र । (पृ० ३२४–३३०)

सू० [१८]—विद्वानों से उत्तम ज्ञान की याचना । आदि
विद्वानों का वर्णन । (४–७) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (८) चि
त्सकों के कर्त्तव्य । (८–९) रोगनाशक पदार्थ अग्नि वायु और
(१०) विद्वानों से अज्ञान और पापनाश की प्रार्थना । (२०–२
विद्वानों से नाना कल्याण-प्रार्थनाएं । (पृ० ३३०–३३७)

सू० [१९]—प्रभु-स्तुति का उपदेश । (२) अग्निवत् ज्ञान-प्रक
की स्तुति और आदर करो । अग्नि के दृष्टान्त से परमेश्वर का व
(५–६) उपासक यज्ञकर्त्ता को सत्फल की प्राप्ति । (७) सेनाप
कर्त्तव्य । प्रकारान्तर से स्वामी, राजा और प्रभु का वर्णन । (१
अग्रणी वीर नायक के कर्त्तव्य । (१३) विद्वान् का वर्णन । उस
संस्कार का विधान । (१४) नेता के कर्त्तव्य । (१८) यज्ञ आदि
उपासकों को उत्तम फल । (१९) दान आदि का फल । (२०) न
वा प्रभु से प्रार्थना । (२१) प्रभु की स्तुति । (२२) आहुत अग्नि

गुण ...ान् का रूप । (२३) अग्नि विद्युत् वा सूर्य के तुल्य नायक, विद्वान् अ... ु का रूप और उस के कर्त्तव्य । उत्तम यज्ञकर्त्ता का सदाचारमय ...क्षण । (२५) उपास्य-उपासक की अनन्यता की भावना । (२६) वा ...ाप के निमित्त भगवान् का परित्याग न हो, स्तोता वा शास्ता मूर्ख और ...पी न हो । (२७) पितावत् प्रभु । भगवान् की भक्ति । (३०) सखा आ ...भु । (३१) प्रभु के अग्निरूप की व्याख्या । (३२) सम्राट् प्रभु । २ (३३) परम अग्नि प्रभु । (३४) आदित्य विद्वानों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (३६–३७) पौरुकुत्स्य का दान । पुरुकुत्स सेनापति । उसका वर्णन । अध्यात्म रहस्य । (पृ० ३३७–३५२)

सू० [२०]—मरुतों अर्थात् वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । वायु और जल लाने वाले वायु-प्रवाहों के वर्णन । (२२) उत्तम अध्यक्ष मरुद्-गण । (२५) देह में मरुद्गण प्राणगण । (पृ० ३५३–३६४)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२१]—स्वामी के अद्भुत गुणों का वर्णन । आत्मा, प्रभु ...र विद्वान् का वर्णन । (४) बन्धुमान् प्रभु की शरण । (५) ...श्रय वृक्षवत् प्रभु का आश्रय । (६) ईश-विनय के प्रयोजन । सर्व-... प्रभु । (१०) प्रभु का परमैश्वर्य । (११) सदा सहयोगी और ...हायक प्रभु । (१२) प्रभु या राजा की सहायता से दुष्टों को ...ण्डत करने का संकल्प । (१४) व्यसनी, धनाभिमानी का प्रभु मित्र ...ीं । भक्तों का पिता प्रभु । (१५) भक्तों की चरम इच्छा । (१६) ...ायप्रद प्रभु । (१७) प्रभु का सरस्वती-रूप । (१८) मेघवत् दाता, ...हाराज प्रभु । (पृ० ३६५–३७२)

सू० [२२]—सेनापति और वैद्यवत् स्त्री-पुरुषों का वर्णन । ... २) गृहस्थ रथ का वर्णन । (४) गृहस्थ-रथ के दो चक्र । (५)

जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषों के कर्त्तव्य। (६) कृषकवत् उत्तम गृहपति और गृह-पत्नी के कर्त्तव्य। कृषि का उपदेश। (६) उत्तम नायक की स्थापना। (९) वेगवान् यान आदि साधन सम्पन्नों के कर्त्तव्य। (१०) रोगी की सेवा का उपदेश। (११-१२) अन्यान्य नाना कर्त्तव्य। (पृ० ३७०-३८०)

सू० [२३]—अग्नि-उपासना के साथ २ अध्यात्म उपासना। प्रभु परमेश्वर की अग्निवत् स्तुति। पक्षान्तर में अग्निवत् राजा और विद्वानों का वर्णन। उस के कर्त्तव्य। उसके प्रति प्रजा जनों का कर्त्तव्य। अग्नि तुल्य गुणों वाले प्रभु से प्रार्थनाएं। (पृ० ३८०-३९१)

सू० [२४]—सर्वशक्तिमान् प्रभु के गुणों का वर्णन। (दुष्टहन्ता प्रभु। (४) ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (६) परम शरण प्र (७) शास्ता प्रभु। (६) सर्वसंचालक प्रभु। (१०) उसकी न प्रकार से उपासनाएं वा भक्तिप्रदर्शन और स्तुति। (२४) सर्व प्रभु की स्तुतियां। (२५-२७) दुष्टों के नाश की प्रार्थना। (२८) सत्पात्रों में दान देने वाले को प्रभु भी देता है। (२९) सत्पात्र में दान का उपदेश। सब से परे अगम्य प्रभु। (पृ० ३९१-४०१)

सू० [२५]—उत्तम, आदरणीय, स्त्रीपुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। उत्तम माता पिता से रक्षा की प्रार्थना। (१२-१५) उत्तम पुरुषों के कर्त्तव्य। विश्पति राजा के प्रभु और सूर्यवत् कर्त्तव्य। (१७-१८) महान् सम्राट्। विश्वपति वरुण, प्रकाशस्वरूप ईश्वर। (२१-२२) प्रभु की स्तुति। (२२-२५) सत्पुरुषों से प्रार्थना। (पृ० ४०१-४०९)

सू० [२६]—उत्तम नायक, राजा प्रजा, वा पति-पत्नी ज के गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन। राजा-सचिव (४) माता-पिता, गुरु ज के कर्त्तव्य। (५) सैन्य-सैन्यपति के कर्त्तव्य ऐश्वर्ययुक्त सत्यवान्

स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य। (१३) दिन-रात्रिवत् पति-पत्नी जनों के कर्त्तव्य। (२१-२२) भावी जामाता के प्रति आदर। (२२-२७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (पृ० ४०९-४१९)

सू० [२७]—ज्ञानी पुरुष का पुरोहित पद पर स्थापन। विद्वान् से ज्ञान की याचना। नाना प्रकार के उत्तम वीर विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। (११) राजा के कर्त्तव्य। (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य। (१८) राष्ट्र के प्रति उनके कर्त्तव्य। (पृ० ४१९-४२८)

सू० [२८]—३३ देवगण। राष्ट्र के ३३ प्रमुख शासक। (२) — मित्र, अर्यमा। तीन प्रधान पद। उन के कर्त्तव्य। (पृ० -४२९)

सू० [२९]— विश्व के एक, अद्वितीय अध्यक्ष का वर्णन। उसके अद्भुत कर्म। (८-९) जीव और प्रभु का प्रकृति के साथ वर्णन। (पृ० ४२९-४३२)

सू० [३०]—राष्ट्र में प्रजा जनों के सदृश जीवों का वर्णन। (२-४) राष्ट्र-शासक रूप ३३ देवों का वर्णन। उनसे रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ४३२-४३४)

सू० [३१]—यज्ञ और यजमान की प्रशंसा। उस के कर्त्तव्य। (२-७) पक्षान्तर में राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) प्रजावती स्त्री की अग्नि से तुलना। (५) पति-पत्नी के कर्त्तव्य। (१०-११) राजा परमेश्वर से प्रार्थना। (१२-१४) विद्वानों से प्रार्थना। (१५- १८) उत्तम प्रभु भक्त का प्रभाव। यज्ञशील का वैभव, बल और सामर्थ्य। (पृ० ४३४-४४०)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [३२]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य का उपदेश। (२) शासक के गुण। (३) विद्युत्वत् सेनापति वा राजा के कर्त्तव्य। शत्रु-विजय का आदेश। (६) व्यापार का उपदेश। राजा प्रजा को समृद्ध करे।

पक्षान्तर में आचार्य और आत्मा का वर्णन। (१२) माता के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। बड़े भारी पालक प्रभु की स्तुति। (१३–१५) नियन्ता सर्वविजयी सखा। बड़ा दानी है। (१६) उत्कर्ण जन। (१७) उपास्य का स्तवन। (१८) स्तुति योग्य के लक्षण। बन्धन-मोचक प्रभु। (१९–२०) जीव को कर्मफल भोग का उपदेश। (२१) राजा को वा उत्साही को आदेश उपदेश। (२६–२९) बलवान् इन्द्र के लक्षण। (२७–३०) विद्वानों को उपदेश। (पृ० ४४१–४५०)

सू० [२३]—उत्तम प्रजाओं के जलधारावत् कर्त्तव्य। (२) प्रभु ईश्वर की उपासना। (३) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का वर्णन। (५–६) पुरुषोत्तम के लक्षण। प्रभु के गुण-स्तवन। (१०) समस्त सुखवर्षी प्रभु। (११) वीर योद्धा रथीवत् प्रभु का वर्णन। (१२) बलवान् विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। (१७–१९) उत्तम स्त्री के कर्त्तव्य। (पृ० ४५१–४५८)

सू० [२४]—ज्ञानवान्, ज्ञानेच्छुक पुरुषों को उपदेश। उनके कर्त्तव्य। (१३) राजा के प्रति प्रजा की याचना। (पृ० ४५९–४६५)

सू० [२५]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति और उन्नत होने के उपदेश। रथी-सारथी, राजा-सचिव आदिवत् उनके कर्त्तव्य। (४) उषा-सूर्यवत् उनके कर्त्तव्य। (७) हारिद्रव नाम जलपक्षी, वा वनमहिष के दृष्टान्त से उन के कर्त्तव्य। (८) दो हंसों के समान उनके कर्त्तव्य। (९) दो श्येनों के तुल्य उनके कर्त्तव्य। (१०–१२) पान, तृप्ति, गमन, प्रजा, धन आदि धारण, विजय, रक्षा और शत्रुहनन का उपदेश। (१३–१५) धर्मवान्, तेजस्वी, ज्ञानी, सत्यवान् पुरुषों के सत्संगी होकर जीवनभर व्यतीत करने का उपदेश। (१६–१८) ज्ञानवृद्धि, कर्मवृद्धि, रक्षोहनन, दुष्टनाशन, क्षत्रविजय, गोवृद्धि, प्रजावृद्धि का उपदेश। (१९–२२) वेद-श्रवण, सन्तानोत्पत्ति, यज्ञ,

देहसयंम का उपदेश । (२३) परस्पर आदर करो । (३४) अन्न-यज्ञ द्वारा सन्तुष्ट होवो । (पृ० ४६५–४७३)

सू० [३६]—ऐश्वर्यवान् विद्वान् वा राजा के कर्त्तव्य । प्रभु की उपासना और उससे प्रार्थना । (पृ० ४७३–४७६)

सू० [३७]—माध्यंदिन के समान प्रजापालक राजा का व्यवहार । एकराट् राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ४७६–४७९)

सू० [३८]—इन्द्र अर्थात् विद्युत् और अग्नि के तुल्य विद्वानों राजा और अमात्यों के कर्त्तव्य । उनके तुल्य परस्पर सहायकों और विद्वानों के कर्त्तव्य । (पृ ४७९-४८२)

सू० [३९]—अग्नि, ज्ञानी और अग्रणी नेता पुरुष के कर्त्तव्य । उसके ज्ञान-प्रकाश द्वारा क्रम से विघ्नों और दुष्टों का नाश । (६–१०) देहाग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य । (पृ० ४८३–४८९)

सू० [४०]—इन्द्र, अग्नि, वायु, आग के समान विद्वानों के ज्ञान और तेजस्वी नायक के तेज, पराक्रम से दुष्टों का नाश । (३) इन्द्र और अग्नि दो अध्यक्षों का वर्णन । उनके आदर का उपदेश । (५) विद्युत् और अग्नितत्वों को वश करने का उपदेश । (६) दुष्ट के धनादान और वश करने की आज्ञा । (७) दुष्टों के नाश का उपदेश । (८) सूर्य, अग्निवत् व्रतपालकों के कर्त्तव्य । (१०–१२) सूर्यादि के तेज से रोगों के तुल्य दुष्टों का नाश । (पृ० ४८९–४९५)

सू० [४१]—श्रेष्ठ पुरुषों के आदर का उपदेश । राजा के कर्त्तव्य । (२) राजा के नाशार्थ उद्योग, पालक पुरुषों का नियोजन । (३) राजा का सैन्य-रक्षण । राष्ट्रस्थापन । (४) देह में प्राणों वा राजा का प्रजाओं को पालन करने का कर्त्तव्य । (५) सूर्यवत् लोकधारण के तुल्य राष्ट्रधारण । (६) चक्र में नाभि के तुल्य प्रभु वा विद्वान् के कर्त्तव्य । गोशाला में पशुओं के तुल्य इन्द्रियों का संयम । (७) सर्वोपरि वरुण । (८) समुद्रवत् राजा । (९) त्रिलोकाधिपति वरुण

परमेश्वर। राजा के सात अश्वोंवत् प्रभु का सब स्थावर जंगमों पर शासन। (१०) सर्वशासक की अद्भुत शक्तियां। (पृ० ४९५–५००)

सू० [४२]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। सर्वोपास्य प्रभु। नौकावत् वेदवाणी का आश्रय लेने का उपदेश। (४–६) स्त्री पुरुषों को उपदेश। (पृ० ५००–५०२)

सू० [४३]—प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति। (३) सर्व पापनाशन प्रभु, अग्नि। (४) अग्निवत् प्रभु की विभूतियां। इसी प्रकार स्वतन्त्र जीवगण की सत्ता का वर्णन। (५) नाना स्वतन्त्र जीवों का अग्नियों के तुल्य निरूपण। (६) साधक जीव के मार्ग की बाधाएं। (७) अग्नि से जीवनधारी आत्मा की तुलना। (८) पुनः उत्पन्न होने वाले जीव की अग्नि से तुलना। (९) अग्निवत् जीव का जन्म। (१०) अग्नि-ज्वाला के तुल्य गर्भ में स्थिर जीव की वृद्धि। (११) जीव और परम-आत्मा का स्वरूप। (१२) प्रकाशमय, दुःखनाशन, पापनिवारक प्रभु की उपासना। (१४) उसके प्रकाशित होने का प्रकार। (१५) सहस्र-ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (१६) भ्रातृवत् शुद्धहृदय प्रभु। (१७) मातृवत् प्रभु का वरण। (१८) मुख्य प्राणवत् प्रभु। (१९) सर्वाध्यक्ष प्रभु। (२०–२१) समदर्शी प्रभु। (२२) प्रकाशस्वरूप प्रभु। (२३) द्वेषनाशक प्रभु। (२४) साक्षी, अध्यक्ष प्रभु। (२५) सब को भयप्रद सर्वसञ्चालक प्रभु। (२६) दण्ड दाता प्रभु। (२७) अग्निवत् प्रभु। (२८) आत्मा के तीन रूप। (३२) बलवान् दुष्टनाशक प्रभु। (३३) अविनाशी ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु। (पृ० ५०२–५१४)

सू० [४४]—अग्नि-परिचर्या के तुल्य गुरु और प्रभु की उपासना। (४) अग्नि और सूर्यवत् ऊर्ध्वरेता तेजस्वी का वर्णन। अग्नि की प्रभु से श्लिष्ट समताएं। (६–७) स्तुत्य अग्नि, विद्वान् और प्रभु। (८) यज्ञ का नेता अग्नि। (११) विजिगीषु तेजस्वी नायक अग्नि।

(१२) विद्वान् अग्नि । (१३-१४) नायक अग्नि । (१५-१६) ब्रह्मचारी विद्वान् अग्नि । (१७-२१) ज्ञानी, स्तुतियोग्य प्रभु । (२३) भक्त की अनन्यता उपास्यमयता । (२४) सर्वपालक प्रभु । (२५-२७) स्तुत्य प्रभु । (२८) उपास्य में लय । (२९) ब्रह्माण्डदीपक प्रभु । (३०) मोक्ष की प्रार्थना । (पृ० ५१४-५२२)

सू० [४५]—इन्द्र अग्नि । प्रभु के उपासकों का महान् ऐश्वर्य । (४) राजा का भूमि-माता के प्रति कर्त्तव्य । (५) बलवान् यशस्वी नेता अग्नि । (६-७) महारथी अग्नि, उसके कर्त्तव्य । (९-११) उत्तम सेनापति अग्नि । उसके कर्त्तव्य । (१२) दानशील । गृहपतिवत् अग्नि प्रभु । (१४) ऐश्वर्यवान् प्रभु । उस से नाना प्रार्थनाएं, शरण-याचना । (२३) उत्तम नेताओं के कर्त्तव्य । (३०-४२) श्रेष्ठ राजा, उससे प्रजा की न्यायानुकूल नाना अभिलाषाएं । (पृ० ५२२-५३४)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [४६]—उत्तम शासक, नेता, स्वामी शासक के कर्त्तव्य । प्रभु का वर्णन । उससे अनेक प्रार्थनाएं । (२८) स्वराष्ट्र-शासक । उसका वैभव । (पृ० ५३५-५४६)

सू० [४७]—आदित्यों, मासों के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य । (२-३) चूज़ों पर पक्षीवत् उनकी प्रजा पर पक्षच्छाया । (७) उनकी उत्तम रक्षा का आदर्श । (८) कवचवत् रक्षकों का स्वरूप । (९) रक्षा शान्तिप्रद हो । (१०) देह से गृह और राष्ट्र की तुलना । (११-१८) उन के निष्पाप सुखदायी रक्षा-कार्यों का विवरण । (पृ० ५४६-५५२)

सू० [४८]—सोम । उत्तम अन्न, ओषधि-सेवनवत् परमानन्दमय प्रभु का सेवन । (२) सोम शिष्य, उपासक के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में विद्वान् और देह में वीर्य का वर्णन । (३-५) सोम, ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य, वीर्य, पुत्र शिष्यादि का पालन । (६) विद्वान्

वालखिल्यम्

सू० [५७]—सदाचारी स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। जीवन का तृतीय सवन। (पृ० ५८६–५८८)

सू० [५८]—यजमान और ऋत्विजों के कर्त्तव्य। (२) सूर्य, अग्नि, उपावत् सर्वप्रकाशक प्रभु। (३) विराट् रथ का वर्णन। (पृ० ५८९–५९०)

सू० [५९]—विद्युत्, जल, मित्र वरुण। उन के समान सेनापति और राजा के कर्त्तव्य। (४) गुरु और आचार्य के कर्त्तव्य। (पृ० ५९०–५९४) इति वालखिल्यम्।

सू० [६०]—प्रकाशस्वरूप, उत्तम अग्नि तुल्य, नायक प्रभु की प्रार्थना। अग्निवत् परमेश्वर के गुणों का वर्णन। (९) ज्ञानी व गुरु का वर्णन। (१०) रक्षोघ्न राजा के कर्त्तव्य। (११) पावन प्रभु का वर्णन। (१२–१४) राजा का पराक्रम। (१५) अरणियों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी की प्रजाओं में स्थिति। (१६) यज्ञाग्निवत् सात प्रकृति वाले राजा का स्वरूप। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ५९४–६०२)

सू० [६१]—सत्य-निर्णायक न्यायाधिकारी के कर्त्तव्य। (२) धिषणा नाम दो सभाओं को अपना रक्षक चुनने का अधिकार। (३) राजा के कर्त्तव्य। (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। (५) ऐश्वर्यवान् प्रभु का पद, उस का कर्म। परमेश्वर के ध्यान ज्ञान से कर्म करने वाला पवित्र हृदय होता है। (१२) उत्तम रथीवत् प्रभु की उपासना। (१३–१८) प्रभु से अभय की याचना। (पृ० ६०२–६०९)

सू० [६२]—ईश्वर की स्तुति। प्रभु के मङ्गलकारी दान। (२) एक अद्वितीय, अविनाशी (३) सर्वजीवन प्रद है। प्रभु के दिये अनेक सुखकारी दान। (७) विश्व का पालक प्रभु। (८) प्रभु का आदर्श बल। (९) युगल का घटक प्रभु। (१०–१२) उपास्य के प्रति भक्तिपूर्ण भाव। (पृ० ६०९–६१३)

सू० [६३]—शासक, विद्वान् ज्ञानी के माता पितावत् कर्त्तव्य।

प्रभु वा शासक का सर्वोपरि पद। (३) सर्वोपरि ज्ञानप्रद गुरु, परमेश्वर। (६) सर्वाश्रय परमेश्वर। (७) सर्वपूज्य स्वामी ईश्वर। (८) जगत् का प्रवर्त्तक ईश्वर। (९) सुखार्थी जीव का प्रभु के आनन्द की ओर झुकाव। (१२) त्यागी जनों से प्रार्थना। (पृ० ६१४–६१८)

सू० [६४]—परमेश्वर की स्तुति। (२) महान् प्रभु। (३) सर्वप्रभु राजा। (४) सर्वोपरि ईश्वर। (५) विद्वान् के कर्त्तव्य। (७) सर्वोपास्य, अज्ञेय प्रभु। (८–१०) प्रभु के विरल भक्त। (११–१२) राजा का अभिषेक-रहस्य। (पृ० ६१८–६२२)

सू० [६५]—सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति और उपासना। (पृ० ६२२–६२५)

सू० [६६]—परमेश्वर की स्तुति। (२) सर्वोपरि बलशाली प्रभु। (३) गोरूप वाणियों के आवरण को दूर करने वाला इन्द्र प्रभु। (४) सन्मार्ग-प्रवर्त्तक जगन्निर्माता प्रभु। (६) सर्वोत्तम दाता प्रभु। (७) नित्य (८) सिंहवत् वा चन्द्रवत् प्रभु और राजा का वर्णन। (९) प्रकृति से जगत् का स्रष्टा सर्वोपरि श्रवणीय है। (१०) अपार बली प्रभु। (११) भोजनवत् नियमानुसार भक्ति का विधान। (१३) सर्वोपरि दयालु प्रभु (१३–१४) मोक्ष की याचना (। १५) अभय-आश्वासन। (पृ ६२६–६३२)

सू० [६७]—आदित्य सदृश तेजस्वी, धनवान् बलशाली लोगों के कर्त्तव्य। (२) वे प्रजा को पाप से मुक्त करें और प्रजा का पालन करें। (७) उत्तम शासक स्वयं अपराध से रहित हों। (९) प्रजा को नाश होने से बचावें। (१०–११) विदुषी माता के कर्त्तव्य। (१२) उग्रपुत्रा माता भूमि। (१३) उरुव्रजा, उरूची वैश्य सभा। (१३–२१) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। पृ० ६३२–६३८)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [६८]—ईश्वराराधना, उसकी स्तुति और प्रार्थना। सृष्टिकर्त्ता का पुनः पुनः मनन। (२) विश्व का विस्तारक परमेश्वर। (३) बलशाली। (४–५) राजा का वर्णन। (६) सर्वलोक-पति प्रभु। (७) प्रजाओं का स्वामी प्रभु। (८) अपार शक्तिशाली प्रभु। (९–१३) उसकी स्तुति और प्रार्थनाएं। (१४) आत्मा के ६ नर ६ इन्द्रिय गण। (१५) अश्वमेध-राष्ट्र-शासनवत् देहव्यवस्था। (१६) राष्ट्र में उत्तम वीरों की नियुक्ति। ६ सेनापतियों की नियुक्ति। वधूमान् अश्वों का रहस्य। अध्यात्म व्याख्या। देह में वाणीवत् राष्ट्र में राजसभा का रूप। (१९) नियुक्त जनों को उपदेश कि कोई भी निन्दनीय कर्म न करें। (पृ० ६३८–६४४)

सू० [६९]—राष्ट्र के प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (३–४) प्रजाओं द्वारा उत्तम शासक की स्थापना। (६) वेदवाणियों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर मधुर रसवत् रूप। प्राप्त पद सखावत् प्रभु का मोक्ष सुख का पद। सखा प्रभु। (८) प्रभु की अर्चना का उपदेश। (९) विद्वान् का प्रजाजनों को उपदेश। (१०) गौओंवत् प्रजाओं का रूप। राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। वरण योग्य राजा वरुण। (१२) वरुण आचार्यवत्। उत्तम नायकवत् भवबन्धन मोचक प्रभु। (१४) पक्व ओदन के तुल्य शिष्य का गुरु से ज्ञान ग्रहण। राजकुमार के रथारोहणवत्। राष्ट्रशासन पद का आरोहण, और जीव का ब्रह्मपद-आरोहण। (१६) गृहपति का गृहस्थ रथ पर आरोहण। राजा-राष्ट्र का 'दम्पति भाव'। (१७) राजतन्त्रवत् अध्यात्मस्वराट् की उपासना। खेती करने के तुल्य देह से कर्मफल प्राप्ति। (पृ० ६४५–६५२)

सू० [७०]—सर्वोपरि नायक शासक का वर्णन। प्रभु परमेश्वर की गुण-स्तुति। (५) पक्षान्तर में वीर पराक्रमी शासक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (१०) पितावत् प्रभु। दुष्ट दमनकारी वा राजा।

(१२) राजा के कर्त्तव्य और बन्धनमोचक प्रभु। (१५) सेना वशकारी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ६५३–६५९)

सू० [७१]—तेजस्वी अग्रणी नायक के कर्त्तव्य। उस के आवश्यक गुणों का वर्णन। (११) नायक के दो प्रकार के रूप। (१२–१५) देववत् पूज्य अग्नि परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ६५९–६६३)

सू० [७२]—यज्ञ प्रतिपादन। ब्रह्मयज्ञ। अध्ययन-अध्यापन का प्रकार। (२) गुरु का सप्रेम शासन। (३) विद्युत्वत् जिह्वा का स्वरूप। (४–५) विद्युत् का रथयान में प्रयोग। तद्वत् देह में आत्माग्नि का संयोग। (७) देह का अद्भुत यन्त्र। (८) अन्तरिक्ष रचनावत् देह-रचना का चमत्कार। (९) त्रिगुणात्मक देह की रचना। उस में यज्ञ। (१०) क्षेत्रसेचक कूप-टंकी यन्त्र से देह की रचना का आश्चर्यकारी वर्णन। इसी प्रकार राज्यतन्त्र का वर्णन। मेघ के तुल्य राजतन्त्र के कर्त्तव्य। (१२) प्रजा का योग्य पालक का आश्रय ग्रहण। (१३) अभिषेक योग्य व्यक्ति के लक्षण। (१४) प्रजाओं के परस्पर योग्य व्यवहार। (१५) देह के तुल्य राष्ट्र की स्थिति। देह में वीर्यवत् राजा की स्थिति। वायुवत् स्वामी का कर्त्तव्य। (१८) अग्निवत् नायक विद्वान् का कर्त्तव्य। (पृ० ४६३–६७०)

सू० [७३]—विद्वान् जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री-पुरुषों को उत्तम उपदेश। (पृ० ६७०–६७५)

सू० [७४]—विद्वान् का आदर करने का उपदेश। उत्तम विद्वान् के लक्षण, उस की उपासना। पक्षान्तर में परमेश्वर की उपासना का उपदेश। परमेश्वर का स्वरूप उस से नाना प्रार्थनाएं। (१३–१५) उत्तम राजा की दान स्तुति। राजा का कर्त्तव्य ज्ञानसेवियों का पालन। राजा की बलवती सेना 'परुष्णी' का वर्णन। (पृ० ६७६–६८१)

सू० [७५]—रथ में अश्व के तुल्य उत्तम विद्वान् कर्मकर्त्ताओं की नियुक्ति। प्रधान शासक के कर्त्तव्य। ज्ञान, बल और धन इन का त्रिविध पति अग्नि। (५) चक्रधारा के तुल्य राष्ट्रचक्र-नीति को वश

करने का उपदेश। (६) प्रभु स्तुति के लिये नित्य वाणी का प्रयोग। (७-८) नायक के प्रति अधीन प्रजाओं का कर्त्तव्य। (९) बुरे लोगों को पापसंग हमें पीड़ित न करे। (१०) राजा को शत्रुपीड़न का उपदेश। (११) उस से धन-सम्पदा की प्रार्थना। (१२) संकट में भी राजा प्रजा का साथ न छोड़े। (१३) सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ६८१-६८६)

सू० [७६]—उत्तम सेना नायक के कर्त्तव्य। उस की सूर्य से तुलना। (४) विजयी स्तुत्य सेनापति। पक्षान्तर में परमेश्वर का निर्देश। महान् शासक के गुण। (६) प्रभु की प्रार्थना। (७) नाना वीरों के नायक का राष्ट्र-पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा मरुत्वान् का वर्णन। (८) विद्वानों बलवानों का आदर। पराक्रमी के कर्त्तव्य। (१०) तृप्त राजा। (११) शास्य-शासक दोनों बलवान् होते हैं। (१२) अष्टापदी वाणी का वर्णन। (पृ० ६८६-६९०)

सू० [७७]—राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) चन्द्र सूर्यवत् राजा के व्यवहार का वर्णन। (५) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (६) मेघ-छेदन-भेदन वत् शत्रु पर भेद नीति का कार्य। (७) राजा का सहायक शस्त्रबल। (८) प्रजा के सुख के प्रति राजा का ध्यानाकर्षण। वायु-मेघ के व्यवहारों के समान राजा और राजपुरुषों के कर्त्तव्य। (११) शस्त्रबल। (९) राजा वा प्रभु के अनेक बल, उनकी श्लिष्ट तुलना कैसे हो। (पृ० ६९०-६९६)

सू० [७८]—ऐश्वर्यवान् प्रभु और स्वामी के कर्त्तव्य। उनसे भोजन, वस्त्र; आभूषणादि की प्रार्थना। राजा, विद्वान् तत्वदर्शी का वर्णन। इन्द्र-पद। (६) उसका अविनाशी पद। (७) सर्वैश्वर्य स्वामी प्रभु। (९) प्रभु और राजा के लिये प्रजा के प्रति नाना कर्म। (पृ० ६९६-७००)

सू० [७९]—जगत्कर्त्ता और सञ्चालक प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में शासक राजा के कर्त्तव्य। उन के अद्भुत कर्म। (२)

विशाल गृह के तुल्य राजा की स्थिरता। उत्तम सञ्चालक। (५) दानार्थियों का एक मात्र शरण। विद्यार्थियों का शरण गुरु। (६) विद्यादान पुनर्जीवन है। (७) दयाशील शासक का रूप। (८) राजा वा शासक सत् प्रजा को भय का कारण न हो। प्रजा को उद्विग्न न करे और हृदय को पीड़ित न करे। (९) दुष्टों को दूर करे। (पृ० ७००–७०३)

सू० [८०]—राजावत्दयालु प्रभु का वर्णन। उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य। (५–६) राजावत् प्रभु से प्रार्थनाएं। (७) राजा वा प्रभु की दुर्ग से तुलना। (९) प्रभु का तुरीय पद। सर्वानन्दप्रद उपास्य प्रभु। (पृ० ७०३–७०६)

सू० [८१]—प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं। प्रभु (२) सर्वैश्वर्यवान्। (३) बेरोक दानशील उद्यमार्थ प्रेरक प्रभु। (७) स्नेही प्रभु। सर्व मनोरथ-पूरक प्रभु। (पृ० ७०६–७०९)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८२]—धनसम्पन्न व्यापारी वर्ग के कर्त्तव्य। (२) राजा की राष्ट्र-पालनार्थ शासकों की नियुक्ति। (३) अन्न सर्वोत्तम भोजन। (४) अशत्रु राजा। (५–९) अन्नादिवत् ऐश्वर्यादिक। ऐश्वर्य आदि का पात्र राजा। उस के अधिकार और कर्त्तव्य। (पृ० ७०९–७१२)

सू० [८३]—विद्वान् तेजस्वी, व्यवहारकुशल विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१२–७१४)

सू० [८४]—अग्रणी नायक के गुण और कर्त्तव्य। (२) नायक की दीपक वा अग्निवत् दो प्रकार की स्थिति। (६) नायक वा प्रभु के प्रति अधीनों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१४–७१७)

सू० [८५]—विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१७–७२०)

सू० [८६]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ७२०–७२२)

सप्तमोऽध्यायः

इत्यष्टमं मण्डलम्

शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
४	२	अमृता	अनृता
२२	१०	पातम्	यातम्
३२	२०	समुद्र में (भुज्युम्)	समुद्र में (जहुः) त्याग देते हैं उस (भुज्युम्)
५५	२०	देखी जावें	देखे जावें
७२	१६	अश्व गो	अश्व गौ
९५	१७	तुझे	हमें
१७१	२	करती	करता
२८३	६	वहुत सेनानो	वहुत से नामों
३७०	१७	रेवन्त	रेवन्तं
३६८	१३	शम् आ	सम् आ
३९४	२५	हृहय	हृद्य
४८१	१३	विद्युत्	विद्युत्
५५२	१७	(परिवोवित्तरस्य)	(वरिवोवित्तरस्य)
५६७	१०	(मनुप्यः)	(मनुपः)
६०७	५	(रथीतम)	(रथीतमः)
६१४	१४	स्रव	सव
६५५	२	॥ ७ ॥	॥ ४ ॥
६५८	२२	युक्त करे	मुक्त करे
६८३	१४	पाले	वाले
६९३	८	पत्र	पात्र
७०२	२१	तृप्त	लुप्त
७१६	२०	(पृष्ट सं०) ७१६, ७१९, ७१८, ७१७, ७२०	पृष्ट सं० ७१६, ७१७ ७१८, ७१९, ७२०
७६६	१९	२१ सौ	२१ सो
७६८	७	जजान	(जजान)
८१०	२३	श्रमपूर्वक	भयपूर्वक

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

अथ पञ्चमेऽष्टके पञ्चमेऽध्याये तृतीयो वर्गः ।

सप्तमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके ।

[६१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१॥

भा०—हे (वरुण) एक दूसरे का वरण करने वाले एवं सबसे वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (सूर्यः चक्षुः ततन्वान्) सूर्य जिस प्रकार आंख की शक्ति को बढ़ाता है उसी प्रकार (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाशक परमेश्वर और विद्वान् पुरुष (देवयोः) ज्ञान के इच्छुक (वां) आप दोनों की (प्रतीकं) उत्तम प्रतीति या ज्ञान के देने वाले (चक्षुः) प्रकाशक प्रज्ञानेत्र को (ततन्वान्) अधिक विस्तृत करता हुआ (एति) प्राप्त हो । (यः) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों और पदार्थों को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता और सब पदार्थों का

उपदेश करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (मन्युम्) मनन करने योग्य उत्तम ज्ञान भी (आ चिकेत) प्रदान करता है। अर्थात् परमेश्वर ही मनुष्यों में सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश देता है। इसी प्रकार तेजस्वी विद्वान् भी मनुष्यों में ज्ञान का दान करे।

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सब के स्नेही और सब से वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो! (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञानों और धनों की आप दोनों (सु-क्रतू) उत्तम कर्मवान् होकर (अवाथ) रक्षा करते हो और (यत्) जिसके (क्रत्वा न) यज्ञवत् कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (शरदः पृणैथे) जीवन के समस्त वर्षों को सुखपूर्वक व्यतीत करते हो। (सः विप्रः) वह विद्वान् पुरुष (ऋतावा) न्याय और सत्य ज्ञान से युक्त और (दीर्घ-श्रुत्) दीर्घ काल तक वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रवण करने वाला, बहुश्रुत होकर (वां) आप लोगों के प्रति (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानों को (इयर्त्ति) उपदेश प्रवचन आदि करे। *

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) 'मित्र' प्रजाजनों को मृत्यु आदि के कष्टों से बचाने वाले और 'वरुण' और उनके दुखों को दूर करने वाले दोनों प्रकार के वर्गो! हे (सु-दानू) उत्तम ज्ञान सुखादि के दाता आप दोनों (उरोः पृथिव्याः) विशाल पृथिवी और (बृहतः) बड़े भारी (ऋष्वात्) महान् (दिवः) प्रकाशयुक्त सूर्य से (स्पशः) नाना प्रकार के ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (प्र प्र दधाथे) प्राप्त किया करो। (ओषधीषु) ओषधियों

* अत्रयावन्महर्षिदयानन्दभाष्यमुपलभ्यते।

और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अनिमिषं) विना प्रमाद के, विना नयन झंपके (ऋधक्) सत्य के बल से (रक्षमाणा) प्रजाओं की रक्षा करते हुए भी (यतः) यत्नशील (स्पशः प्र दधाथे) उत्तम गुप्तचरों और अध्यक्षों को अच्छी प्रकार नियुक्त करो ।

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रस्य) प्राणवत् वा जल व सर्वप्रिय, सर्वस्नेही, शान्तिदायक और (वरुणस्य) दुःखों और अज्ञानों के वारण करने वाले जन के (धाम) तेज और स्थान की (शंस) प्रशंसा कर । जिसके (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से (शुष्मः) शत्रुशोषक, बलवान् पुरुष या जिसका महान् सामर्थ्य (रोदसी बद्बधे) सूर्य के समान आकाश पृथिवीवत् (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली सेना और राष्ट्र-सभा दोनों को सुप्रबद्ध कर व्यवस्थित करता है । अयज्वनाम्) यज्ञ, सत्संगादि से रहित लोगों के (मासः) महीनों पर महीने (अवीराः) वीर पुत्रादि रहित वा विना विशेष विद्याध्ययन ज्ञान प्राप्ति के ही (अयन्) व्यतीत होते हैं और (यज्ञमन्मा) पूज्य प्रभु का मनन, आचार्य, गुरु और राजादि के मान्य करने वा सत्संगादि ज्ञान प्राप्त करने वाला जन (वृजनं) अपने ज्ञान और बल को (प्र तिराते) खूब बढ़ाने में समर्थ होता है ।

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥५॥

भा०—हे (अमूरा) अमूढ़, मोह में न पड़ने वालो ! हे (विश्वा) विविध विद्या में प्रवेश करने हारो ! हे (वृषणौ) बलवान्, सुखों की वर्षा करने वाले मेघ सूर्यवत् उपकारी स्त्री पुरुषो ! (इमाः) ये (वां) आप लोगों की ऐसी सरल उत्तम वाणियां हैं (यासु) जिनमें (चित्रं) अद्भुत और (यक्षम्) विशेष स्तुति योग्य (न न ददृशे) कुछ नहीं दिखाई

देता ऐसा नहीं, प्रत्युत आपकी वाणियों में सर्वत्र अद्भुत और ग्राह्य, स्तुत्य पदार्थ ही विद्यमान है। (जनानां) मनुष्यों के बीच में (द्रुहः) द्रोही पुरुष ही (अमृता) असत्य २ बातों को (सचन्ते) सेवन करते हैं, वे हरेक बातों का उलटा मतलब लगाया करते हैं। वस्तुतः (वां) आप लोगों के (निण्यानि) छुपे हुए रहस्य मर्म (अचित्ते न अभूवन्) अज्ञानी पुरुष के लिये नहीं प्रकट होते हैं। अर्थात् उत्तम स्त्री पुरुषों के वचन सरल और स्पष्ट होने चाहियें। द्रोही लोग उनका कुछ का कुछ ही झूठ मतलब लगाते हैं अज्ञानी लोग उनकी यथार्थता नहीं जानते।

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सर्वस्नेही और सबसे गुरु आदि रूप से वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो ! (स-बाधः) विशेष अज्ञानादि की बाधा वा पीड़ा से युक्त होकर (वां यज्ञं) आप लोगों के सत्संग की मैं (नमोभिः) अति विनययुक्त वचनों से (महयम्) स्तुति करता हूँ और (वां हुवे) आप दोनों की भी स्तुति करता हूं। (वाम्) आप लोगों के (नवानि) नये से नये स्तुत्य (कृतानि) सम्पादित किये (इमानि ब्रह्म) ये नाना अन्नादि, धन और उपदिष्ट (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानादि को लोग (ऋचसे) सेवन करने के लिये (जुजुषन्) प्रेमपूर्वक प्राप्त करें।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।७।३।

भा०—व्याख्या देखो सू० ६०। म० १२ ॥ इति तृतीयो वर्गः ॥

[६२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३ सूर्यः। ४–६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप्। ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्‌ऋचं सूक्तम् ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

भा०—(बृहत् सूर्यः पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) बड़ा भारी सूर्य जिस प्रकार बहुत से किरणों और तेजों को अपने में धारण करता है इसी प्रकार (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (बृहत्) बड़ा होकर (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (विश्वा जनिम) समस्त जन-संघों को (उत् अश्रेत्) अपने ऊपर धारण करे, उनका भार अपने कन्धे ले। और (पुरु अर्चींषि) बहुत से सत्कारों को भी (उत् अश्रेत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे। वह सूर्यवत् (रोचमानः) तेजस्वी एवं सबको प्रिय लगता हुआ (दिवा) कान्ति, न्याय, व्यवहार आदि से (समः) सब के प्रति समान (ददृशे) दीखे। वह (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (कृतः) सम्पन्न होकर (कर्तृभिः) उत्तम कार्यकर्त्ताओं द्वारा (सु-कृतः) उत्तम कार्य करने में समर्थ (भूत्) हो।

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः पुरः प्रति उद्गच्छति) सूर्य शुक्र किरण-समूहों से पूर्व दिशा में प्रति दिन उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे राजन्! विद्वन्! तू भी (एतशेभिः) उन अश्वों से (एभिः स्तोमैः) इन स्तुत्य जन संघों सहित वा (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः) शुक्र, शुद्ध, ज्ञानदायक, स्तुति-योग्य मन्त्रसमूहों सहित (प्रति) प्रतिदिन (नः पुरः) हमारे समक्ष उदय को प्राप्त हो। वा (नः पुरः) प्रति (उद् गाः) हमारे नगरों के प्रति आ। और (नः) हमारे में से (मित्राय) स्नेहवान् (वरुणाय) दुःखों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यम्णे) न्यायकारी, दुष्ट जनों के नियन्ता और

(अग्नये) अग्रणी नेता जन के हित (नः) हम (अनागसः) निरपराध जनों को (प्र वोचः) उत्तम उपदेश कर ।

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ३

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ जन (मित्रः) स्नेहवान् पुरुष (अग्निः) अग्निवत् ज्ञानों का प्रकाशक विद्वान् ये सब (ऋतावानः) सत्य ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य को धारण करने वाले (सहस्रं शुरुधः) हजारों शोक दुःखादि के रोकने वाली सुख सम्पदाओं को (नः) हमें (वि रदन्तु) विशेष रूप से प्रदान करें । वे (चन्द्राः) आह्लादकारी जन (नः) हमें (उपमं) उत्तम (अर्कं) ज्ञान और अन्न (यच्छन्तु) प्रदान करें । वे (स्तवानाः) स्तुति या उपदेश करते हुए, (नः कामं) हमारे अभिलाषा को (पूपुरन्तु) पूर्ण करें ।

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४॥

भा०—हे (द्यावाभूमी) आकाश और पृथिवी के समान ज्ञान-प्रकाश और आश्रय देने वाले (अदिते) अदीन, माता पिता जनो ! आप दोनों (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो । हे (ऋष्वे) गुणों में महान् आप दोनों (ये) जो (सु-जनिमानः) उत्तम जन्म प्राप्त होकर (वां) तुम दोनों को (जज्ञुः) उत्तम पूज्य करके जानते हैं वे आप दोनों हमारी रक्षा करें । हम लोग (वरुणस्य हेडे मा भूम) श्रेष्ठ पुरुष के क्रोध या अनादर के पात्र न हों । (नृणाम्) सर्वसाधारण मनुष्यों के और (प्रिय-तमस्य मित्रस्य) प्रियतम मित्र के और (वायोः) वायु के समान उपकारक बलवान् पुरुष के भी क्रोध या अनादर में (मा भूम) न रहें ।

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सूर्य और मेघ वा वायुजल के समान उपकारक स्त्री पुरुष वर्गो ! आप लोग (बाहवा) दो बाहुओं के समान (नः जीवसे) हमारे जीवन के सुख के लिये (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ो। (नः गव्यूतिम्) हमारे मार्ग को (घृतेन) जल से (आ उक्षतम्) सेचन करो। (युवाना) आप दोनों युवक गण (नः) हमें (जने) मनुष्यों के बीच में (आ श्रवयतम्) प्रसिद्ध करो। (मे इमा हवा) मेरे ये उत्तम वचन (श्रुतं) श्रवण करो।

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥४

भा०—(नु) अवश्य, शीघ्र ही (मित्रः) स्नेहवान् और मरने से बचाने वाला सर्वमित्र विद्वान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष और (अर्यमा) न्यायकारी, दुष्टों का दमन करने हारा पुरुष (नः) हमारे (त्मने) अपने लिये (नः तोकाय) हमारे पुत्र के लिये भी (वरिवः) उत्तम धन, और सेवाकार्य (दधन्तु) प्रदान करें। जिससे (नः) हमारे (विश्वा) सब कार्य (सुगा) सुगम और (सु-पथानि) उत्तम मार्ग युक्त (सन्तु) हों। हे विद्वान् जनो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमारी सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करें। इति चतुर्थो वर्गः॥

[६३]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—५ सूर्यः। ५, ६ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि॥१॥

भा०—जिस प्रकार (सूर्यः) सूर्य (देवः) प्रकाशयुक्त होकर (तमांसि चर्म इव) अन्धकारों को चर्म के समान (सम् अविव्यक्)

एक साथ ही छिन्न भिन्न कर देता है और (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्यों के प्रति एक समान प्रकाशित (विश्व-चक्षाः उद् एति उ) होकर सबको दिखाता हुआ उदित होता है और (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः) मित्र, दिन और वरुण रात्रि दोनों का भी प्रकाशक होता है उसी प्रकार (सु-भगः) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी, (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्यों के प्रति एक समान और (विश्व-चक्षाः) सबका द्रष्टा, सबका मार्गदर्शी विद्वान् वा राजा भी (मित्रस्य) अपने स्नेही और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का भी (चक्षुः) नेत्र के समान मार्गदर्शक हो। वह (देवः) विद्वान् (तमांसि) अज्ञान शोकादि अन्धकारों को (चर्म इव सम् अविव्यक्) चर्म के समान एक साथ ही अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करे। राजा शत्रु दल को छिन्न भिन्न करे।

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (एतशः) वेगवान् गतिप्रद अश्व वा यन्त्र (धूर्षु युक्तः) यन्त्रों के धुराओं में जुता या जुड़ा हुआ (समानं चक्रम्) सब यन्त्राङ्गों में समान रूप से गति देने वाले चक्र को (परि आववृत्सन्) घुमाता है, और जिस प्रकार (एतशः) तेजोयुक्त, सूर्य (धूर्षु-युक्तः सन्) नाना ग्रहों के धारण करने वाले केन्द्रस्थलों में स्थित होकर (समानं चक्रं परि आ ववृत्सन्) सब ग्रहों के चक्र को एक समान नीति से अपने गिर्द घुमाता रहता है और जिस प्रकार (जनानां महान् केतुः) सब जन्तुओं का ज्ञापक, (सूर्यस्य = सूर्यः स्यः) वह सूर्य (अर्णवः) जल का देने वाला है (जनानां प्रसवीता) सबको प्रेरित करने वाला होकर (उद् एति उ) अवश्य नियम से उदय होता है उसी प्रकार (एतशः) ज्ञानी, शुक्लकर्मा पुरुष भी (धूर्षु युक्तः) कार्य-भारों को धारण करने के पदों पर नियुक्त होकर (वहति) कार्य-भार को उठावे

और (समानं चक्रं) एक समान राजचक्र को भी (परि आ विवृत्सन्) यथार्थ रीति से चलावे। (स्यः सूर्यः) वह सूर्य के समान वा (अर्णवः) समुद्र के समान तेजस्वी, गम्भीर और (जनानां) मनुष्यों के वीच में (केतुः) ध्वजा के समान ऊंचा, (महान्) गुणों में वड़ा और (केतुः) स्वयं ज्ञानी, अन्यों को जनाने वाला, वह (प्रसवीता) उत्तम मार्ग में चलाने हारा पुरुष (उत् एति उ) उत्तम पद को प्राप्त हो। उसी प्रकार नायक स्वप्रकाशकस्वरूप होने से 'एतश' सर्वप्रकाशक होने से 'सूर्य' है वह समस्त ब्रह्माण्ड-काल-चक्र को चलाता, सबका उत्पादक ज्ञानवान्, महान् है। (सूर्यस्य) सूर्यः। विभक्तिव्यत्यय इति सायणः। सूर्यः स्यः इति वा पदच्छेदः। उभयत्र विभक्तेर्लुक् आदेशः।

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (देवः सविता) प्रकाशमान् सूर्य, (उपसाम् उपस्थात्) उषाओं में से (विभ्राजमानः) विशेष रूप से चमकता हुआ, (रेभैः) शब्दकारी वायुओं, स्तुतिकर्त्ता जीवों से (अनुमद्यमानः) वार २ स्तुति किया जाकर (उदेति) उदय को प्राप्त होता है वह (समानं धाम न प्रमिनाति) सबके प्रति प्राप्त होने वाले तेज को नष्ट नहीं करता, सबको समान रूप से प्रकाश देता है उसी प्रकार (यः) जो महापुरुष, (समानं धाम) अपने एक समान, अनुरूप तेज, नाम स्थान, पद को (न प्र-मिनाति) नष्ट नहीं करता तो भी (उपसाम्) प्रभात वेलाओं के समान उत्तम अनुराग से युक्त प्रजाओं के बीच में (रेभैः) उत्तम विद्वानों द्वारा (अनु-मद्यमानः) प्रतिदिन स्तुति एवं उपदेश किया जाकर (उद् एति) निरन्तर विद्या प्रकाश तथा बल दीप्ति से उदय को प्राप्त होता, उन्नति के पदपर गति करता है, (एषः) वह (मे) मेरा (देवः) ज्ञानदाता पुरुष वा ऐश्वर्यप्रद राजा (सविता) उत्पादक पितावत् (चच्छन्द)

गृहवत् शरण दे। (२) इसी प्रकार प्रकाशस्वरूप प्रभु सबसे स्तुत या उपदिष्ट होकर हमारे हृदय में उदित हो।

दि॒वो रु॒क्म उ॑रु॒चक्षा॒ उदे॑ति दू॒रेअ॑र्थस्त॒रणि॒र्भ्राज॑मानः।
नू॒नं जनाः॒ सूर्ये॑ण॒ प्रसू॑ता॒ अय॒न्नर्था॑नि कृ॒णव॒न्नपां॑सि ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (दिवः रुक्म) विशाल आकाश में सुवर्ण के आभरण के समान देदीप्यमान (उरु-चक्षाः) बड़े २ विशाल आकाश और लोकों को प्रकाशित करता हुआ (तरणिः) आकाश पार करने वाला, (भ्राजमानः) चमकता हुआ (दूरे-अर्थः) दूर २ तक स्वयं प्रकाश फैलाता हुआ (उदेति) उदय होता है। और (जनाः) मनुष्य जन्तुगण (सूर्येण प्रसूताः) सूर्य द्वारा प्रेरित होकर (अर्थानि अयन्) प्राप्तव्य पदार्थों को प्राप्त करते और (अपांसि कृणवन्) नाना कर्म करते हैं। उसी प्रकार (तरणिः) नौका के समान प्रजाजनों, जीवों को समस्त दुःखों से पार करने वाला, (भ्राजमानः) प्रकाशमान् तेजस्वी, (दूरे-अर्थः) दूर २ तक जाने वाला, उत्साही दूर देश से भी धन को प्राप्त करने वाला, (उरु-चक्षा) विशाल चक्षु, बहुदर्शी पुरुष (दिवः रुक्म) कामनावान् प्रजा के बीच सुशोभित, उनको प्रिय लगने वाला होता है। और (जनाः) सब जन, ऐसे (सूर्येण) सूर्यवत् ज्ञान और तेज से युक्त पुरुष से (प्रसूताः) प्रेरित, उत्पादित, और शिक्षित होकर (अर्थानि प्रयन्) अपने प्राप्य पदार्थों को प्राप्त हों और (अपांसि कृणवन्) नाना कर्म करते हैं। (२) परमात्मा सबको भवसागर से पार उतारने से 'तरणि' (दूरे-अर्थः) सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा है, उसी से (प्रसूताः) उत्पादित सब जन अपने अभिलाषित फल पाते और कर्म करते हैं।

यत्रा॑ च॒क्रुर॒मृता॑ गा॒तुम॑स्मै श्ये॒नो न दीय॒न्नन्वे॑ति॒ पाथः॑।
प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते विधेम॒ नमो॑भिर्मित्रावरुणो॒त ह॒व्यैः ॥ ५ ॥

भा०—पूर्व आधी ऋचा का सूर्य देवता है। (दीयन् श्येनः न)

वेग से गति करता हुआ बाज पक्षी जिस प्रकार (पाथः अन्वेति) अन्तरिक्ष मार्ग में अपने शिकार के पीछे २ वेग से जाता है उसी प्रकार (श्येनः) प्रशस्त मार्ग से जाने वाला, सुचरित विद्वान् पुरुष (दीयन्) सन्मार्ग पर गति करता हुआ उस (पाथः) सन्मार्ग का (अनु एति) सदा अनुगमन करे। (यत्र) जिससे जाते हुए (अमृताः) अमर आत्मा, दीर्घायुयुक्त, जन (अस्मै) इसको (गातुं चक्रुः) ज्ञान का उपदेश करते हैं।

उत्तरार्ध ऋचा के देवता मित्र और वरुण हैं। हे (मित्रावरुणा) दिन रात्रि के तुल्य स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ गुरुजनो! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय होने पर (हव्यैः नमोभिः) देने और स्वीकार करने योग्य उत्तम अन्नों और विनयादि सत्कार युक्त वचनों से (वां) आप दोनों की (प्रति विधेम) प्रति दिन सेवा करें अथवा, (वां प्रति उदिते सूरे नमोभिः हव्यैः विधेम) आप दोनों के प्रति उत्तम रीति से प्राप्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के आने पर उसकी उत्तम वचनों, अन्नों से सेवा करें।

नू मि॒त्रो वरु॑णो अ॒र्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधन्तु।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥५॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६२। मं० ६॥ इति पञ्चमो वर्गः॥

[६४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

दि॒वि क्षय॑न्ता रज॑सः पृथि॒व्यां प्र वां॑ घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिजो॑ ददीरन्।
ह॒व्यं नो॑ मि॒त्रो अ॒र्य॒मा सु॒जातो॒ राजा॑ सु॒क्षत्रो॒ वरु॑णो जुषन्त॥१॥

भा०—(अर्यमा) अर्यमा सूर्य जिस प्रकार (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हुए और मेघों को

और सूर्य की किरण (घृतस्य निर्णिजः) जल और तेज के नाना शुद्ध रूपों को (प्र दद्रीरन्) अच्छी प्रकार से देते, प्रकट करते हैं। उसी प्रकार (दिवि) ज्ञान, व्यवहार और विजिगीषा में विद्यमान (रजसः) प्रजाजनों और (पृथिव्यां क्षयन्ता) पृथिवी में ऐश्वर्यवान् होकर रहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही एवं श्रेष्ठ जनो! (वां) आप लोगों को (निः-निजः रजसः) शुद्ध पवित्र आत्मा वाले उत्तम जन (घृतस्य प्र दद्रीरन्) तेजोयुक्त ज्ञानप्रकाश का प्रदान करें। (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) दुष्ट शत्रुओं का नियन्ता, (सु-जातः) उत्तम पूज्य पद पर प्रसिद्ध, (राजा) देदीप्यमान, तेजस्वी (सु-क्षत्रः वरुणः) उत्तम बल, धन का स्वामी, स्वयं वरणीय श्रेष्ठ राजा ये सब (नः हव्यं) हमारा दिया पदार्थ (जुषन्त) सेवन करें। अर्थात् ये सब लोग प्रजा को मनमाना न लूटें खसोटें प्रत्युत सर्वसाधारण प्रजाजन जितना प्रेमपूर्वक दें उसका ही उपभोग करें।

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

भा०—हे (राजाना) राजा रानी वा राजा सेनापति के समान प्रजाओं के बीच चमकने वाले, (महः ऋतस्य गोपा) बड़े भारी धनैश्वर्य और ज्ञान के रक्षक, (सिन्धु-पती) वेग से जाने वाले अश्वों, समुद्रवत् विशाल प्रजाजनों और सैन्यों तथा प्राणों के पालक, (क्षत्रिया) वीर, बलशाली होकर तुम दोनों (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। हे (जीर-दानू) जलप्रद मेघ और वायु के समान संसार को वेग, जीवन, और प्राण के देने वाले! (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो! जिस प्रकार वायु और मेघ वा विद्युत् और सूर्य दोनों ही (दिवः वृष्टिम् इन्वतः) आकाश से वृष्टि को लाते हैं, और (दिवः इडाम् इन्वतम्) भूमि से अन्न को उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार आप उक्त दोनों भी (दिवः) व्यापार आदि से (वृष्टिम् अव इन्वतम्) धन समृद्धि की वृद्धि प्राप्त

कराओ (उत) और (नः) हमें (इडां अप इन्वतम्) उत्तम वाणी और अन्न सम्पदा प्राप्त कराओ ।

**मि॒त्रस्तन्नो॒ वरु॑णो दे॒वो अ॒र्यः प्र साधि॑ष्ठेभिः प॒थिभि॑र्नयन्तु ।
ब्रव॒द्यथा॑ न॒ आद॒रिः सु॒दास॑ इ॒षा म॑देम स॒ह दे॒वगो॑पाः ॥ ३ ॥**

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् (वरुणः) वरण करने योग्य (देवः) दानशील (अर्यः) स्वामी, (नः) हमें (तत्) वे सब जन (साधिष्ठेभिः पथिभिः) अति उत्तम २ मार्गों से (प्र-यन्तु) अच्छी प्रकार ले जावें, चलावें । (आत्) अनन्तर (यथा) यथोचित रीति से (नः) हम में से (सु-दासे) उत्तम दानशील के हितार्थ (अरिः) स्वामी राजा (नः ब्रवत्) हमें उपदेश करे । हम सब (देव-गोपाः) विद्वानों से सुरक्षित और विद्वानों की रक्षा करते हुए (इषा मदेम) अन्न से खूब तृप्त प्रसन्न हों ।

**यो वां॒ गर्तं॒ मन॑सा॒ तक्ष॑दे॒तमू॒र्ध्वां धी॒तिं कृ॒णव॑द्धा॒रय॑च्च ।
उ॒क्षेथां॑ मित्रावरुणा घृ॒तेन॒ ता रा॑जाना सुक्षि॒तीस्त॒र्पये॑थाम् ॥४॥**

भा०—(मित्रावरुणा राजाना घृतेन उक्षाथां) मित्र, वरुण, वायु, मेघ वा विद्युत् और सूर्य, दोनों जिस प्रकार दीप्ति युक्त होकर जल और तेज का वर्षण करते और (सु-क्षितीः तर्पयेथाम्) उत्तम भूमियों को खूब तृप्त करते हैं उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और दुःखों के वारक (राजाना) तेजस्वी राजा जनो ! आप दोनों (घृतेन) जल और तेज से (सु-क्षितीः) उत्तम भूमियों और प्रजाओं को (उक्षेथाम्) सींचो, उनको पुष्ट करो । (ता) वे आप दोनों प्रजाजनों को (तर्पयेथाम्) खूब तृप्त करें । और (यः) जो प्रजाजन (वां गर्त्तं) आप दोनों के रथ, सभाभवन और कृषि, स्तुति, उपदेश आदि भी (मनसा तक्षत्) ज्ञानपूर्वक करे, (ऊर्ध्वाम्) ऊपर जाने योग्य (धीतिम्) कर्म (कृणवत्) करे (धारयत् च) वहां ही स्थापित करे, आप दोनों (एतम्) उसको भी तृप्त, प्रसन्न करो ।

एषः स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥६॥

भा०—(वायवे शुक्रः न) वायु के लिये जिस प्रकार (शुक्रः) शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, उसी प्रकार हे (वरुण) श्रेष्ठजन ! हे (मित्र) स्नेहयुक्त जन (तुभ्यम्) तेरे लिये (एषः) यह (स्तोमः) स्तुति वचन और (सोमः) यह ऐश्वर्य भी (शुक्रः) कान्तियुक्त होकर विद्यार्थी के समान तेरी वृद्धि को (अयामि) प्राप्त हो। आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) बहुत से ज्ञान को धारण करने वाली उत्तम बुद्धियों वा ज्ञानों का उपदेश करो। (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) आप हमें सदा उत्तम सुख-कारक उपायों से पालन किया करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥ १ ॥

भा०—(ययोः) जिनका (अक्षितम्) कभी नाश न होने वाला, (असुर्यम्) प्राणों में रमण करने वाले, 'असुर' अर्थात् जीवों के हित-कारक, (ज्येष्ठं) सबसे श्रेष्ठ बल (विश्वस्य) सबको (जिगत्नु) जीतने वाला, सबसे अधिक है वे दोनों (यामन्) राज्यादि शासन, राज्यप्रबन्ध के कार्य में (आचिता) आदर प्राप्त करने योग्य हों। (सूरे उदिते) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (उदिते) उदय होने वा सर्वोपरि प्रधान पद प्राप्त कर लेने पर मैं (वाम्) आप दोनों नर नारी वर्गों और राजा प्रजा वर्गों में से (पूत-दक्षं) पवित्र बल और आचारवान् (मित्रं) सर्व

स्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (सूक्तैः) उत्तम वचनों से मैं प्रजाजन (प्रति हुवे) प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करूं। अर्थात् तेजस्वी राजा के अधीन रहकर भी प्रजा अति बलशाली, प्रजास्नेही, सर्वविजयी बलवान् पुरुषों का सदा आदर करती रहे।

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र या देश में हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही, प्राण वायुवत् प्रिय और वरण योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो! (द्यावा) सूर्य और भूमिवत् विद्वान् और अविद्वान् जन और (अहा च) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुष सभी (वां पीपयन्) आप दोनों को पुष्ट करते हैं उसी देश में हम भी (अश्याम) नाना सुख समृद्धि प्राप्त करें। वे मित्र और वरुण दोनों ही (देवानाम्) विद्वान् मनुष्यों के बीच, प्राणों में प्राण उदान के समान (असुरा) बलवान् जीवनधारक, (तौ अर्या) वे दोनों ही स्वामी स्वामिनी के समान गृहपालक और (ता) वे दोनों ही (नः क्षितीः) हमारी भूमियों और मानव प्रजाओं को (ऊर्जयन्तीः) उत्तम अन्न और बल सम्पादन करने वाला (करतम्) बनावें।

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर के मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे को रक्षकवत् चुनने वाले राजा प्रजा, स्वामी-भृत्य, स्त्री पुरुष जनो! (ता) वे आप दोनों (भूरि पाशा) बहुत से बन्धनों से सुबद्ध होकर (अनृतस्य) असत्याचरण को पार कराने के लिये (सेतू) बन्धे पुल के समान होओ। और (रिपवे मर्त्याय) शत्रुभूत पापी पुरुष के नाश के लिये आप दोनों (दुर्-अत्ये तू) दुःख से अतिक्रमण करने योग्य अलंघनीय शासन वाले होओ। (वाम्) आप दोनों के (ऋतस्य पथा) सत्याचरण के मार्ग

से चलकर हम भी (नावा आपः न) नाव से जलों के समान (दुरिता तरेम) सब दुःखों, पापों को पार कर जावें।

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुंष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रावरुणा) सूर्य मेघ वा वायु मेघ के समान सर्वप्रिय सर्वश्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (हव्य-जुष्टिं) प्रेम से स्वीकार करने योग्य अन्न आदि को प्रेम से स्वीकार करो। (घृतैः गव्यूतिम्) जलों से भूमि भाग के समान (इडाभिः) उत्तम वाणियों से वाणी के उत्तम पात्रों को (उक्षतम्) सेचन करो, उनमें ज्ञान की वृद्धि करो। आप दोनों (वाम्) अपने (दिव्यस्य) ज्ञान से पूर्ण, प्रकाश युक्त (चारोः) उत्तम (उद्नः) जलवत् शान्तिदायक वचन का (वरम्) श्रेष्ठ प्रयोग (जनाय) समस्त प्रजाजन के हितार्थ (प्रति) प्रतिदिन (आ पृणीतम्) किया करो।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५।७

भा०—व्याख्या देखो सू० ६४। मं० ५॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[६६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—३, १७—१९ मित्रावरुणौ। ४—१३ आदित्याः। १४—१६ सूर्यो देवता॥ छन्दः—१, २, ४, ६ निचृद्गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ५, ६, ७, १८, १९ आर्षी गायत्री। १७ पादनिचृद् गायत्री। ८ स्वराड् गायत्री। १० निचृद् बृहती। ११ स्वराड् बृहती। १३, १५ आर्षी भुरिग् बृहती। १४ आर्षीविराड्बृहती। १६ पुर उष्णिक्॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः ।
नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥

भा०—(तुवि-जातयोः) बहुत सी विद्याओं में प्रसिद्ध एवं स्नातक वा प्रवीण, (मित्रयोः) परस्पर स्नेही और परस्पर (वरुणयोः) गुरु शिष्य रूप से वरण करने वाले दोनों का (नमस्वान्) उत्तम विनययुक्त व्यवहार वाला, बलशाली (शूष्यः) अति सुखकारी, (स्तोमः) स्तुति योग्य उपदेश, बल-वीर्य और अधिकार (नः एतु) हमें प्राप्त हो। अथवा (नः मित्रयोः वरुणयोः) हम लोगों में से परस्पर मित्र, परस्पर वरण करने वाले, बहुत से गुणों और विद्याओं में प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों को (शूष्यः एतु) सुखकारी स्तुत्य पद प्राप्त हो।

या धा॒रय॑न्त दे॒वाः सु॒दक्षा॒ दक्ष॑पितरा। अ॒सु॒र्या॑य॒ प्रम॑हसा॥२॥

भा०—(देवाः) विद्वान् मनुष्य (या) जिन दोनों को (धारयन्त) व्रत आदि धारण कराते हैं वे आप दोनों (सु-दक्षा) उत्तम कर्म-कुशल (दक्ष-पितरा) बल वीर्य के पालक, (प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी होकर (असुर्याय) बलवान् पुरुषों में श्रेष्ठ उच्च पद के योग्य होते हैं। अर्थात् तेजस्वी, उत्तम बलवान्, वीर्य पालक ब्रह्मचारी उनको ही देव, विद्वान् गण (असुर्याय) बलवान् योग्य प्रधान पद के ग्रहण के लिये व्रतादि धारण करावें।

ता नः॑ स्ति॒पा त॑नू॒पा वरु॑ण जरि॒तॄणा॑म्। मित्र॒ सा॒धय॑तं॒ धियः॑ ॥३॥

भा०—(ता) वे दोनों और (नः) हमारे (स्तिपा) संघों की रक्षा करने वाले और (तनूपा) शरीरों की रक्षा करने वाले हों। हे (वरुण) श्रेष्ठ, वरणीय जन! हे (मित्र) स्नेहवन्! विद्वन् आप लोग (जरि-तृणाम्) उपदेष्टा विद्वान् पुरुषों की (धियः) कर्मों, उत्तम बुद्धियों और विचारों को (साधयतम्) सिद्ध, सफल करो। ष्ट्यै संघाते। स्तयो संघास्तान् पातः इति स्तिपाः॥

यद॒द्य सूर॒ उदि॒तेऽना॑गा मि॒त्रो अ॑र्य॒मा। सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ॥४॥

भा०—(उदिते सूरे) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के उदय होने

पर (यत्) जो (अनागाः) अपराधादि से रहित (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) सबका प्रेरक शासक और (भगः) ऐश्वर्यवान् है वह (अद्य) आज के समान सदा ही (सुवाति) हम पर शासन करे ।

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमें ((अंहः) पाप कर्म से (अतिपिप्रति) पार करते हैं ऐसे (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान का उपदेश करने वाले विद्वान् धर्मात्मा पुरुषो ! आप लोगों से प्रार्थना है कि (यामन्) राज्य के नियन्त्रण और शत्रु पर चढ़ाई के कार्य में (सः) वह (क्षयः) शत्रुओं का नाशकारी पुरुष (नु) निश्चय से (नः क्षयः) हमारे गृह के समान ही (सुप्रावीः अस्तु नु) हमारी उत्तम रीति से रक्षा करने हारा भी हो । (यामन्) विवाह बन्धन का कार्य हो चुकने पर (सः क्षयः) वह ऐश्वर्य युक्त, वसने वाला गृहपति (सु-प्रावीः प्र अस्तु) उत्तम गृहरक्षक होकर रहे । इत्यष्टमो वर्गः ॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥६॥

भा०—(स्व-राजः) स्वयं अपने तेज से प्रकाशित होने वाले (स्व-राजः) धनैश्वर्य से चमकने वाले, धनों और स्वराष्ट्र निज-भृत्य मित्र बन्धु प्रजाजनों के राजा और (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्री, सभा वा सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, (ये) जो (अदब्धस्य) अखण्डित (व्रतस्य) कर्म को करने में (ईशते) समर्थ होते हैं वे (महा-राजानः) बड़े ऐश्वर्य के राजा, स्वामी, तेजस्वी होते हैं ।

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ७

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से (सूरे प्रति उदिते) सूर्य के समान तेजस्वी होकर प्रत्येक के उत्तम पद पर प्राप्त होजाने

पर प्रत्येक को मैं (मित्रम्) सर्वस्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (अर्यमणम्) न्यायपूर्वक सबका स्वामिवत् नियन्ता और (रिशादसम्) दुष्टों का नाशक कहकर (गृणीषे) स्तुति करूं।

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये ८

भा०—हे (विप्राः) विद्वान् लोगो ! (अवृकाय) अचौर, अदाम्भिक निश्छल और (अवृकाय) जिसका ज्ञान का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ ऐसे पुरुष के लिये उसके (शवसे) ज्ञान और बल वृद्धि के लिये (राया) ऐश्वर्य के साथ २ (हिरण्यया) हित और रमणीय, मनोहारिणी (इयं मतिः) यह उत्तम बुद्धि वा ज्ञान (मेध-सातये) उत्तम अन्न, यज्ञ फलादि के प्राप्त करने के लिये सदा बनी रहे।

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ९

भा०—हे (देव वरुण) सुखदाता, जगत्प्रकाशक ! सर्व दुःखवारक ! हे (मित्र) सर्वप्रिय ! हम (ते स्याम) तेरे ही होकर रहें। (सूरिभिः सह) वे विद्वानों के साथ मिलकर (ते) तेरी (इषं) इच्छा और (स्वः च) तेरे ज्ञान, प्रकाश, आनन्द और सुख को भी (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें।

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः॥१०॥९॥

भा०—(ये) जो (त्रीणि विदथानि) तीनों प्रकार के ज्ञान, कर्म, यज्ञ और प्राप्तव्य पदार्थों और तीनों प्रकार के ज्ञातव्य वेदों को और (विश्वानि) तीनों विश्वों को (धीतिभिः) कर्मों, बुद्धियों, वाणियों और अध्ययन, स्मरण आदि द्वारा और (परिभूतिभिः) उत्तम सामर्थ्यों से (येमुः) अपने वश करते हैं वे (बहवः) बहुत से (सूर-चक्षसः) सूर्य के समान सब पदार्थों के ज्ञानोपदेष्टा, सर्वप्रकाशक (अग्निजिह्वाः)

अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक वाणी के बोलने वाले (ऋत-वृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाले हों। इति नवमो वर्गः ॥

वि ये द॒धुः श॒रद॒ं मास॒माद॒हर्य॒ज्ञम॒क्तुं चादृच॑म् ।
अ॒ना॒प्यं वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा क्ष॒त्रं राजा॑न आशत ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (शरदं) वर्ष, (मासम्) मास और (अहः अक्तुम्) दिन रात्र, (आत्) भी (ऋचं) स्तुति योग्य वेद मन्त्रों से अर्चना योग्य (यज्ञम्) उपास्य परमेश्वर वा यज्ञ को अथवा (यज्ञम् ऋचं) यज्ञयोग्य, उपास्य, वेद-वेद्य प्रभु की (वि दधुः) विविध प्रकार से उपासना करते, वेद को विविध प्रकार से धारण करते हैं वे (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वस्नेही (अर्यमा) न्यायकारी शत्रु-नियन्ता जन (राजानः) राजाओं के समान तेजस्वी होकर (अनाप्यं) अन्यों से प्राप्त न होने योग्य वा बन्धु जनों से न विभाग करने योग्य (क्षत्रं) धन, ज्ञान मय वेद को (आशत) प्राप्त करते हैं।

तद्वो॑ अ॒द्य म॑नामहे सू॒क्तैः सूर॒ उदि॑ते ।
यदोह॑ते॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा यू॒यमृ॒तस्य॑ रथ्यः ॥ १२ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य, (मित्रः) स्नेहयुक्त (अर्यमा) स्वामिवत् वशी हे विद्वान् जनो! (यूयम्) आप सब लोग (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (रथ्यः) महारथियों के समान होकर (यत्) जिस ज्ञान को (ओहते) धारण करते हो हम (उदिते सूरे) सूर्य उदय होने पर (वः तत्) आप लोगों के उस ज्ञानैश्वर्य की (अद्य) आज (मनामहे) याचना करते हैं।

ऋ॒तावा॑न ऋ॒तजा॑ता ऋ॒ता॒वृधो॑ घो॒रासो॑ अनृत॒द्विषः॑ ।
तेषां॑ वः सु॒म्ने सु॑च्छ॒र्दिष्ट॑मे नरः॒ स्याम॒ ये च॑ सू॒रयः॑ ॥ १३ ॥

भा०—(ये च) और जो (सूरयः) विद्वान् लोग (ऋत-वानः) यज्ञ, तेज, सत्य ज्ञान का सेवन करने और अन्यों को देने वाले (ऋत-

जाताः) सत्य ज्ञान में प्रसिद्ध (ऋत-वृधः) सत्य को बढ़ाने वाले, (घोरासः) तेजस्वी, (अनृत-द्विषः) असत्य व्यवहार के द्वेषी, सत्य का कभी विरोध न करने वाले हैं हे (नरः) नायकवत् उत्तम पुरुषो ! (तेषां वः) उन आप लोगों के (सुच्छर्दिस्तमे) उत्तम रक्षा-गृह से युक्त (सुम्ने) सुखप्रद शरण में सदा (स्याम) रहें ।

उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः प्रतिह्वरे) आकाश में प्रत्यक्ष प्रतीयमान चक्राकार वृत्त मार्ग में (त्यत् दर्शतं वपुः उत् एति उ) वह दर्शनीय रूप वाला सूर्यमण्डल उदय होता है । और (यत्) जो (ईम्) सब तरफ़ से (आशुः) वेग से गतिमान् (देवः) तेजस्वी, प्रकाशप्रद, (एतशः) शुक्ल वर्ण होकर (विश्वस्मै चक्षसे अरं) समस्त संसार को दिखाने के लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार (त्यत्) वह (दर्शतं वपुः) दर्शनीय शरीराकृति धारण करने वाला तेजस्वी पुरुष (प्रतिह्वरे) प्रत्येक कुटिल व्यवहार के ऊपर (दिवः) अपने तेज के कारण (उत् एति उ) उत्तम होकर विराजता है, उस पर शासन करता है, (यत्) जो (ईम्) सब ओर (आशुः) शीघ्रकारी, अश्व के समान बलवान्, (देवः) विद्वान् (एतशः) शुक्लकर्मा, सदाचारी होकर (विश्वस्मै चक्षसे) सबको ज्ञान-मार्ग दिखाने और सत् उपदेश करने के लिये (अरं वहति) बहुत अधिक ज्ञान और बलको, रथ को उत्तम अश्व के समान अपने कन्धे उठाकर चलाने में समर्थ होता है ।

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(जगतः तस्थुषः) जंगम और स्थावर (शीर्ष्णः-शीर्ष्णः) प्रत्येक शिर के (पतिम्) पालक (सूर्यम्) सबके प्रेरक को (विश्वं रजः

समया) समस्त प्राकृतिक संसार के बीच में (सप्त हरितः) सातों दिशाओं के वासी प्रजाजन (स्वसारः) उत्तम भगिनियों के समान स्वयं उसकी शरण आकर (रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर लेजाते हैं। जिससे वह (सुविताय) उत्तम मार्ग से ले चले। इसी प्रकार सातों (स्वसारः-सु-असारः) उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र फेंकने वाली (हरितः) नर-वीर सेनाएं उस तेजस्वी को सन्मार्ग पर चलने के लिये स्थावर, जंगम, अर्थात् स्थिर चल सम्पदा और प्रजा के प्रत्येक शिष्य के स्वामी को सब लोकों के बीच रथ में जुड़े अश्वों के समान धारण करती हैं।

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६ ॥

भा०—(तत्) वह (देव-हितं) समस्त विद्वानों और इन्द्रियों, प्राणों के बीच (हितम्) विद्यमान, सर्व कल्याणकारी (शुक्रम्) शुद्ध, सूर्यवत् तेजस्वी (उत्-चरत्) उत्तम पद को प्राप्त करे और हम उसके अनुग्रह से (शरदः शतं पश्येम) सौ बरस तक देखें। (शरदः शतं जीवेम) सौ बरस तक जीवें। इति दशमो वर्गः ॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥

भा०—हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ जन ! आप और (मित्रः च) सर्व स्नेही, आप दोनों (सोमपीतये) ओषधि रसवत् राष्ट्र-शरीर की रक्षा और उपभोग के लिये (काव्येभिः) विद्वान् कवि जनों की वाणियों द्वारा (अदाभ्याः) अहिंसाकारी, स्वयं भी अहिंसा व्रतचारी, होकर दोनों (आयातं) आइये और (द्युमत्) ऐश्वर्य से पूर्ण देश को प्राप्त करो।

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा। पिबतं सोममातुजी १८

भा०—हे (वरुण मित्रः च) वरुण और मित्र, रात्रि दिन के तुल्य, आप स्त्री पुरुषो ! (अद्रुहा) परस्पर द्रोह न करते हुए (आतुजी) शत्रुओं का

नाश और प्रजाओं का पालन करते हुए (दिवः धामभिः) सूर्य के प्रकाश-मय तेजों से प्रभावित होकर (सोमं पिबतु) ऐश्वर्य को प्राप्त हों ।

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा ।
पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥ ११ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) दिन रात्रि वा सदा परस्पर स्नेही और परस्पर के वरण करने वाले (ऋत-वृधा) सत्य से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले होकर (सोमम् पातम्) प्रजावर्ग और शिष्यवर्ग सबको (पातं) पालन करो । और आप दोनों (नरा) उत्तम स्त्री पुरुष (आहुतिम्) जुषाणा) आदरपूर्वक दिये दान को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते हुए, (आ पातम्) हमें प्राप्त हूजिये ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

[६७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्षी त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥ १ ॥

भा०—हे (नृपती) राजा रानी के समान, सब मनुष्यों के पालक सबके नायक प्राणों के पालक ! हे (धिष्ण्यौ) स्तुति योग्य ! उत्तम आसन के योग्य वा उत्तम बुद्धि सम्पन्न स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (दूतः न) दूत, संदेश-हर के समान (वां) आप दोनों को (अजीगः) सचेत करता, जगाता है, ज्ञान देकर प्रबुद्ध करता है वह मैं विद्वान् जन (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (हविष्मता) उत्तम ग्रहण योग्य भावों से युक्त, (यज्ञियेन) पूज्य सत्संग योग्य (मनसा) मन वा ज्ञान से (जरध्यै) उपदेश करने के लिये (सूनुः पितरा न) माता पिताओं के प्रति बालक के

समान (रथम्) रमणीय वचन और उत्तम व्यवहार का (अच्छ विवक्मि) उपदेश करता हूं ।

अशोच्यग्निः संमिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुपसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥

भा०—(समिधानः) अच्छी प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि, यज्ञाग्नि, ज्ञानाग्नि, और सूर्य, एवं अग्निवत् तेजस्वी ज्ञानी विद्वान् (अस्मे अशोचि) हमारे हितार्थ चमकता है । (तमसः अन्ताः चित्) अन्धकार अज्ञान के परले सिरे तक (उपो अदृश्रन्) स्पष्ट दिखाई देते हैं । (दिवः दुहितुः उपसः) देदीप्यमान सूर्य की कन्या के समान उषा से ही (पुरस्तात् श्रिये) पूर्व दिशा की शोभा के लिये जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार (दिवः दुहितुः) ज्ञानप्रकाश का दोहन करने वाले, (उपसः) पापों और अज्ञान के दग्ध करने वाले मातृवत् गुरु से (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ शिष्यरूप पुत्र (पुरस्तात्) आगे शोभा के लिये ही (केतुः अचेति) पूर्ण ज्ञानवान् होकर प्रबुद्ध होता है । इसी प्रकार अध्यात्म में—(दिवः दुहितुः) प्रकाशस्वरूप आत्मा की पुत्री के समान जो (उपसः) कान्तिमती विशेष प्रज्ञा है उसकी (पुरस्तात् श्रिये) और अधिक शोभा वृद्धि के लिये (केतुः) ज्ञानवान् आत्मा (अचेति) ज्ञान का विषय होता है । विशेष प्रज्ञा के उदय के अनन्तर प्रकाशरूप आत्मा का साक्षात् होता है ।

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्व रूप इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, नर नारी जनो ! हे (नासत्या) कभी भी असत्य भाषण और असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! वा (न-असत्-यौ) कभी असत् अर्थात् कुमार्ग पर पैर न रखने वाले जनो ! (सुहोता) उत्तम ज्ञान

देने वाला, (वि वक्तान्) विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (स्तोमैः) उत्तम वेद मन्त्रों और उपदेशों से (नूनम्) अवश्य (वां) तुम दोनों को (अभि सिषक्ति) अपने साथ एक सूत्र में बांधता है, आप दोनों (वसुमता रथेन) धन अन्नादि सामग्री से सम्पन्न रथ से यात्री जिस प्रकार उत्तम २ मार्गों से सुख से देशान्तर चला जाता है उसी प्रकार (वसु-मता) अन्तेवासि शिष्यों से युक्त, (रथेन) रथ, उपदेष्टा, वा स्थिर भाव के विद्यमान, (स्वर्विदा) ज्ञान के प्रकाश और उपदेश को स्वयं प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने वाले आचार्य की सहायता से (पूर्वीभिः) पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, (पथ्याभिः) हितकारी धर्म युक्त मार्गों से (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो।

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि॥४॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो! (नूनम्) अवश्य मैं (युवाकुः) तुम दोनों को हृदय से चाहता हुआ, (वसूयुः) नाना अन्तेवासी शिष्य ब्रह्मचारियों की कामना करता हुआ आचार्य (सुते) उत्तम ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त कराने के निमित्त (अवोः) व्रत नियम ब्रह्म-चर्यादि का पालन करने वाले आप दोनों में से (वां) तुम दोनों को (माध्वी) मधु अर्थात् मधुर, ऋग्वेद, मधु विद्या, उपनिषत् ज्ञान, और 'मधु' आनन्दप्रद अन्नादि के योग्य जानकर (हुवे) प्राप्त करूं। (स्थ-विरासः) ज्ञानवृद्ध (अश्वाः) नाना विद्याविचक्षण पुरुष (वां) तुम दोनों को उत्तम अश्वों के समान (आ वहन्तु) आगे सन्मार्ग पर ले चलें। आप लोग (अस्मे) हमारे (सु-सुता) उत्तम रीति से बनाये, (मधूनि) ज्ञानों और अन्नों का (पिवाथः) उपभोग और पालन करो। मधु के समान नाना ज्ञानवृद्ध पुरुषों के सत्संग से एकत्र करने योग्य

होने से ज्ञान और नाना गृहस्थों से भिक्षा रूप में संग्रह करने योग्य अन्न 'मधु' है। ब्रह्मचारी वर्गों का उसको संग्रह करना 'मधुकरी' वृत्ति है॥

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्। विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः॥५॥१२॥

भा०—हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय और विद्या की अभिलाषा करने वाले शिष्य, शिष्याजनो! आप दोनों (मे) मेरी (प्राची) उत्तम, ज्ञान से युक्त, पूज्य (अमृध्राम्) कभी नाश न होने वाली और (वसूयुं) धनैश्वर्य से युक्त (धियं) बुद्धि और कर्म को (सातये) प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करो। इसी प्रकार हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय ज्ञान देने वाले गुरु गुरुभार्या जनो! आप दोनों (वाज-सातये) मुझ शिष्य को देने के लिये अपनी (प्राचीम्) अति उत्कृष्ट, पूज्य, (वसू-युं) वसु, शिष्य को प्राप्त होने वाली (अमृध्रां) अविनाशी, शिष्य को कष्ट न देने वाली (धियं) बुद्धि और वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। आप दोनों (वाजे) संग्राम और ज्ञान प्राप्त करने के अवसर में (विश्वाः पुरन्धीः) समस्त प्रजाओं के समान बहुत ज्ञानधारक बुद्धियों, वाणियों की (आ अविष्टं) सब प्रकार से रक्षा करो। आप दोनों (शची-पती) वाणी और शक्ति के पालक होकर (नः) हमें (शचीभिः) अपनी वाणियों से (ताः) वे नाना बुद्धियें (शक्तं) देकर हमें शक्तियुक्त करो। इति द्वादशो वर्गः॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु। आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम॥६॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (आसु धीषु) इन कर्मों और ज्ञान बुद्धियों के बीच, (नः अविष्टं) हमारी रक्षा करो। और (नः) हमारा (रेतः) वीर्य, (प्रजावत्) प्रजा उत्पन्न करने वाला, और (अह्रयम्) कभी नष्ट न होने वाला, अमोघ (अस्तु) हो। हम लोग (तोके तनये) पुत्र पौत्रादि के निमित्त (वां) आप

दोनों की (तूतुजानाः) रक्षा करते हुए, (सु-रत्नासः) उत्तम ऐश्वर्यों और गुणों से युक्त होकर (देव-वीतिं) विद्वानों की संगति को (आ गमेम) प्राप्त हों।

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

भा०—हे (माध्वी) मधुर अन्न वा अन्न और ज्ञान का मधुवत् सञ्चय करने और सेवा करने वाले विद्याध्ययनशील जनो! (एषः स्यः) यह वह (निधिः) ज्ञानैश्वर्यों का खजाना, विद्याओं का अगाध सागर गुरुजन (पूर्वगत्वा इव) पूर्वगामी आदर्श पुरुष के समान (वां सख्ये) आप दोनों के मित्र भाव में (हितः) स्थापित है, वह (अस्मे) हम प्रजाजनों के हितार्थ (रातः) आप लोगों के हितार्थ आप लोगों को और हमको भी दे दिया गया है। आप लोग (मानुषीषु विक्षु) मनुष्य प्रजाओं में (हव्यं अश्नन्ता) उत्तम अन्नादि का उपभोग करते हुए (अहेडता मनसा) क्रोध और अपमान से रहित चित्त होकर (अर्वाक् यातम्) हमारे पास आया करें। अध्यात्म में—अन्न भोक्ता प्राणापान 'माध्वी' हैं। उनके सख्य में पूर्वगन्ता आत्मा सबको प्राप्त है।

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात्।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे (भुरणा) समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने वाले, जितेन्द्रिय नर नारियो! (एकस्मिन्) एक ही (समाने) एक समान आदर से युक्त (योगे) परस्पर के मिलने पर (वां रथः) आप दोनों के रथ के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारा उपदेष्टा पुरुष (सप्त स्रवतः) प्रवाह से निकलने वाली सातों छन्दोमय वाणियों को (परि गात्) प्राप्त करे, करावे। (ये) जो (वां) आप दोनों के (धूर्षु) धुराओं में लगे, धुरन्धर विद्वान् (तरणयः) वेगवान् अश्वों के समान वेग से संकटों से

पार उतारने वाले विद्वान् जन (वां वहन्ति) आप दोनों को सन्मार्ग पर ले जाते हैं वे (सुभ्वः) उत्तम सुखजनक, उत्तम सामर्थ्यवान्, (देव-युक्ताः) विद्वानों से नियुक्त होकर (न वायन्ति) कभी सत्पथ से विचलित नहीं होते। अध्यात्म में—एक ही योग में (रथः) रन्ता, आत्मा (सप्त प्रवतः) सुगमता सात प्राणों पर वश करता है, प्राणगण सुख, शक्ति से युक्त होकर (न वायन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं हों, यदि वे विद्वानों द्वारा ज्ञान-पूर्वक सन्मार्ग में चलाये जावें।

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि॥९॥

भा०—हे जितेन्द्रिय नर नारियो! (ये) जो लोग (राया) अपने ऐश्वर्य के बल से, (मघ-देयं) दातव्य, ऐश्वर्य, (जुनन्ति) प्रदान करते हैं उन (मघवद्भ्यः) उत्तम दातव्य ज्ञान-धन शाली पुरुषों के उपकार के लिये आप लोग (असश्चता हि भूतम्) दुर्व्यसनों में असक्त होकर रहो। (ये) जो लोग (अश्व्या) अश्वों से युक्त और (गव्या) गौवों से समृद्ध (मघानि) नाना धनों को (पृञ्चन्तः) प्राप्त करते हुए (सूनृताभिः) उत्तम वाणियों और अन्नों से (बन्धुं) अपने बन्धुजन को (प्र तिरन्ते) अच्छी प्रकार बढ़ाते हैं उनके लिये भी आप लोग विषयादि में न फंसकर सदा सेवा में तत्पर रहो।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।१३

भा०—हे (अश्विना) सब ऐश्वर्य और ज्ञानों को प्राप्त करने वाले स्त्री पुरुषो! हे अश्वादि सैन्यों के स्वामियो! आप लोग (युवाना) दोनों युवा बलवान् होकर (मे) मुझ विनीत के (हवम् आ शृणुतम्) ग्राह्य वचन को आदरपूर्वक श्रवण किया करो। आप लोग (इरावत् वर्तिः) अन्न आदि से युक्त मार्ग में गमन, गृह को और (इरावत् वर्तिः) उत्तम सेवन

से युक्त व्यवहार को (आ यासिष्टं नु) अवश्य प्राप्त होओ। (रत्नानि धत्तम्) उत्तम रत्नों के तुल्य रम्य गुणों को धारण करो। (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (जरतं च) प्राप्त होकर विद्या का लाभ किया करो। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम सुखदायक साधनों से हमारी रक्षा करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[६८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ८ साम्नी त्रिष्टुप्। २, ३, ५ साम्नी निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ७ साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप्। निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम्

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी, रथी सारथीवत् इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (दस्रा) दुःखों का नाश करने में तत्पर होकर (युवाकोः) तुम दोनों को चाहने वाले मुझ विद्वान् की (गिरः) उपदेश वाणियों को (जुजुषाणा) प्रेम से सेवन करते हुए (शुभ्रा) उत्तम गुणों, आभरणों से सुशोभित और (सु-अश्वा) उत्तम अश्वारूढ़ वीरवत्, उत्तम अश्ववत्, उत्तम विद्या में गतिशील, सुदृढ़ शरीर होकर (आ यातम्) आओ। (नः) हमारे (प्रति-भृता) एवज़ में दिये भरण पोषणार्थ (हव्यानि) उत्तम अन्नों का (वीतम्) भोजन करो। इसी प्रकार गृहस्थी लोग नवशिक्षित, स्नातक स्नातिकाओं और नवविवाहितों का आदर किया करें।

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान्, स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों को (मद्यानि) उत्तम आनन्द देने वाले (अन्धांसि) जीवन धारण कराने वाले उत्तम

अन्न (प्र अस्थुः) आपके लिये अच्छी प्रकार रक्खे हैं आप दोनों (मे) मेरे (हविषः) उत्तम अन्न को (वीतये) खाने के लिये (अरं गन्तं) अवश्य आइये । (अर्यः) शत्रु के (हवनानि) आह्वानों को (तिरः) तिरस्कार करके (नः हवनानि) हमारे उत्तम वचनों को (श्रुतं) श्रवण करो । इस प्रकार उत्तम स्त्री पुरुषों का भोजन, वचनादि से सत्कार करना चाहिये ।

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान्, जितेन्द्रिय पुरुषो ! (रथः) उपदेश (मनोजवाः) मन को प्रेरणा करने वाला (शत-ऊतिः) सैकड़ों ज्ञानों से युक्त और सैकड़ों संकटों से बचाने वाला होकर (वां) आप दोनों के (रजांसि) तेजों को सूर्य के समान, राजस आवरणों को (तिरः इयर्त्ति) दूर करता है । हे (सूर्यावसू) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु जनो, विद्याओं के प्रकाशक गुरु जनों के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वास करने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी जनो ! वह सदा (अस्मभ्यं इयानः) हमारे हितार्थ आता हुआ भी हमारे राजस आवरणों को भी (तिरः) दूर करे । (२) हे (सूर्यावसू) सूर्य और सूर्यावत् पति पत्नी होकर गृहस्थ में बसने वाले वर वधू जनो ! (अस्मभ्यं इयानः) हमारे तक पहुंचने के लिये आता हुआ आप दोनों का रथ (शत-ऊतिः) सैकड़ों मील तक या प्रति घंटा १०० मील जाने वाला और (मनोजवाः) मन के संकल्पमात्र से वेग से जाने वाला वा मन के समान तीव्रगति से जाने वाला होकर (रजांसि तिरः इयर्त्ति) धूलि समूह को इधर उधर फेंकता है । (३) हे स्त्री पुरुषो ! (वां रथः) आप दोनों का रमण साधन 'देह', रमणकर्त्ता आत्मा, (शत-ऊतिः) शत वर्ष तक सुरक्षित रहकर अनेक ज्ञान प्राप्त करके (रजांसि तिरः इयर्त्ति) राजस आवरणों या पार्थिव भौतिक अंशों को दूर करता है, हे सूर्यवत्

तपस्या का अभ्यास करने वाले जनो, ऐसा देह और रथ (अस्मभ्यं इयानः) हमें भी प्राप्त हो।

रथः—रंहतेर्गतिकर्मणः। स्थिरतेर्वा विपरीतस्य। रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठति इति वा। रपतेर्वा। रसतेर्वा। निरु० ९। २। १॥

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्यां।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः॥ ४॥

भा०—(देवयाः) विद्वानों और विद्याभिलाषी जनों को अन्नों और ज्ञानों का दान करने वाला, उनका पूजा सत्कार करने वाला पुरुष (अयं ह) वह है (यत्) जो (अद्रिः) मेघ के समान उदार होकर (सोम-सुत्) उत्तम अन्न ओषधियों के रसवत् ज्ञान को देने वाला होकर के (ऊर्ध्वः) उत्तम पद पर स्थित होकर (युवभ्याम्) तुम दोनों के लाभ के लिये (विवक्ति) विविध प्रकार से स्तुति-वचन और उपदेश कहे। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (वल्गू) उत्तम वाणियें बोलने वाले आप दोनों को (हव्यैः) दान योग्य उत्तम ज्ञानों और अन्नादि पदार्थों से (ववृतीत) उनका आदर सत्कार व्यवहार करे।

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन्॥ ५॥ १४॥

भा०—(यः) जो (वाम्) आप दोनों का (प्रियः सन्) प्रिय होकर (महिष्वन्तं) बहुत उत्तम परिणाम जनक (ओमानं) उत्तम ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य (दधते) स्वयं धारता और आप दोनों को धारण कराता है, उस (अत्रये) त्रिविध तापों से रहित, और तीन ऋणों से मुक्त विद्वान् पुरुष के लिये (यद् वा चित्रं भोजनं नु अस्ति) जो आपका नाना प्रकार का भोजन है वह (नि युयोतम्) अवश्य पृथक् करो। उपकारी, चतुर्थाश्रमी, ज्ञानप्रद परिव्राजक के अर्थ पति पत्नी अपने भोजन का उत्तमांश अवश्य पृथक् रख दिया करें। उससे वे अतिथि यज्ञ किया करें।

इति चतुर्दशो वर्गः॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम वेगवान् रथों, यन्त्रों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आप लोग (हविर्दे) उत्तम अन्न, भूति और उत्तम साधनों के देने वाले (जुरते) वृद्ध, मान्य (च्यवानाय) जाने को उद्यत पुरुष के हितार्थ (प्रतीत्यम्) प्रत्येक देश में पहुंचने योग्य (इतः-ऊति) इधर उधर से रक्षायुक्त, (वर्पः) उत्तम रूपयुक्त रथादि (अधि धत्थः) प्रदान करते रहो (वां त्यत्) आप दोनों का वही (प्रतीत्यं भूत्) प्रसिद्धि कर कर्म है । (२) उत्तम जितेन्द्रिय शिष्य शिष्याएं वृद्ध गुरुजनों के हितार्थ इस लोक में रक्षाकारी सन्ततिमय रूप को धारण करते हैं वही उनका उत्तम कर्म है । (३) विद्वान् शिल्पी जन वृद्धादि, गमनोत्सुक, भाड़ा देने के लिये वेग से जाने वाले रथादि को बनाते हैं । अध्यात्म में—'जुरत् च्यवान' यह देह है । अन्न से प्राणों में बल देता है, उसको ये प्राण अपान ही उत्तम रूप और कान्ति धारण कराते हैं ।

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, विद्वान् पुरुषो ! हे रथी सारथीवत् उत्तम साधनसम्पन्न जनो ! (दुरेवासः) दुष्टकामनायुक्त (सखायः) मित्र लोग जिसको (मध्ये समुद्रे) कष्टों के बीच समुद्र में (भुज्युम्) भुजा का अवलम्बन चाहने वाले (त्यं) उस पुरुष को आप लोग (निः पर्षद् ईं) अवश्य ही पारकर दिया करो (यः) जो (आरावा) विचारा नीरव, मूक, और (युवाकुः) तुम दोनों को चाहता और तुम दोनों को पुकारता हो । तुम्हारी सहायता की याचना करता हो ।

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः॥८॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम वेगयुक्त अश्वों और यन्त्रों की विद्या को जानने वाले शिल्पज्ञ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (जसमानाय) प्रजा का नाश करने वाले, (वृकाय) चोर स्वभाव के, दम्भी पुरुष के लिये (चित्) अवश्य (शक्तम्) शक्त, सामर्थ्यवान् बनो। उसको दमन करने में समर्थ होओ। और (हूयमाना) आदर से बुलाये गये आप दोनों (शयवे) शान्ति सुख के इच्छुक पुरुष के हितार्थ (श्रुतम्) उसकी प्रार्थनादि श्रवण करो। (यौ) जो आप दोनों (शक्ती) शक्ति से और (शचीभिः) वाणियों द्वारा (अपः न) जल जिस प्रकार नदी को पूर्ण करते हैं उसी प्रकार (स्तर्यं) आच्छादन, भरण पोषण और आश्रय देने योग्य (अघ्न्याम्) न मारने योग्य, गौ के समान रक्षा योग्य कन्या, स्त्री, भूमि और प्रजा को (अपिन्वतम्) पुष्ट करो, पालो।

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥९।१५॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो ! (उषसां अग्रे यथा सु-मन्मा कारुः जरते) प्रभात वेलाओं के आगे, उनके आगमन के पूर्व जिस प्रकार उत्तम विचारवान्, स्तुतिकर्त्ता, भक्त पुरुष स्तुति करता है उसी प्रकार (सु-मन्मा) उत्तम ज्ञानवान्, (बुधानः) स्वयं बोधवान् और अन्यों को बोध प्रदान करता हुआ (कारुः) मन्त्रों का व्याख्यान करने वाला विद्वान् पुरुष (एषः स्यः) वही है जो (सूक्तैः) उत्तम मन्त्र गणों से (उषसाम् अग्रे) ज्ञान की कामना करने वाले शिष्य जनों के समक्ष (जरते) विद्या का उपदेश करता है। (अघ्न्या पयोभिः) गौ जिस प्रकार दुग्धों से पालक को बढ़ाती है उसी प्रकार (अघ्न्या) कभी न नाश होने वाली वेदवाणी, प्रभुशक्ति वा आत्मशक्ति (तं) उसको (इषा वर्धत्) उत्तम इच्छा, शक्ति से बढ़ाती है। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[६९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३ आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (रथः हिरण्ययः) लोह सुवर्णादि धातु का बना उत्तम रथ (वृषभिः अश्वैः याति) बलवान् अश्वों या वेगवान् बैलों से चलता है, वह (घृतवर्तनिः) जल से सिंचे मार्ग पर चलने हारा और (पविभिः रुचानः) चक्रधाराओं से सुशोभित और (इषां वोढा) अभिलषित अन्नादि सामग्री का वहन करने वाला, और (वाजिनीवान्) उत्तम बलवती शक्ति से युक्त होकर (नृ-पतिः) मनुष्यों का रक्षक होता है उसी प्रकार (वाजिनीवान्) उत्तम बलवती सेना, उत्तम ज्ञान ऐश्वर्य से सम्पन्न वाणी और भूमि का स्वामी, (नृ-पतिः) मनुष्यों का पालक राजा, (रथः) रमणीय स्वभाव वाला, उत्तम विद्या का उपदेष्टा, प्रजा को रमाने हारा (हिरण्ययः) हितैषी और सुखप्रद, (बद्बधानः) दुष्टों को बाधा, और बन्धनादि करता हुआ, (वृषभिः अश्वैः) उत्तम बलवान्, विद्याओं में पारंगत वीर पुरुषों सहित (रोदसी वां) सूर्य भूमिवत् सम्बद्ध आप दोनों राज प्रजावर्गों और गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (आ यातु) प्राप्त हो। वह (घृत-वर्त्तनिः) तेजो युक्त स्निग्ध मार्ग से जाने वाला उत्तम व्यवहारवान् और (पविभिः रुचानः) पवित्र आचरणों से युक्त, उत्तम हथियारों से सुशोभित गृहस्थ (इषां वोढा) अभिलषित दाराओं से विवाह करने हारा हो और राजा (इषां वोढा) सेनाओं को अपने ज़िम्मे लेकर चलने हारा हो।

स पंप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना॥२॥

भा०—जिस प्रकार रथ (त्रि-वन्धुरः) सारथि आदि के बैठने के योग्य तीन स्थानों से युक्त, होता है जिनसे (कुत्र चित् यामं दधाता) कहीं भी जाना चाहते हुए रथि सारथी जा सकते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (सः) वह विद्वान् और वीर पुरुष (भूमा) महान् सामर्थ्य से युक्त, (पञ्च अभि) पांचों जनों के समक्ष ज्ञान और बल का विस्तार करता हुआ (त्रि-वन्धुरः) तीनों वेदों को धारण करने वाला, और तीन प्रकार के बल का आश्रय, होकर (मनसा) ज्ञान और प्रबल चित्त से युक्त होकर (अभि यातु) आगे आवे। (येन) जिसकी सहायता से आप दोनों विद्वान् स्त्री पुरुष राजा रानी, (देवयन्तीः विशः) कामना युक्त प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होते और (कुत्र चित्) जहां चाहे कहीं भी (यामं दधाना) गमन प्रयाण, परस्पर वैवाहिक बन्धन और राज्य प्रबन्ध को धारण करते हुए (गच्छथः) प्राप्त होते हो।

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम्॥३॥

भा०—जिस प्रकार (रथः वर्त्तनिभ्यां दिवः अन्तान् बाधते) रथ चक्र धाराओं से भूमि के प्रान्त भागों को पीड़ित करता है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राज-प्रजाजनो ! हे रथी सारथिवत् सहयोगियो ! (वां) आप दोनों में (रथः) वेगवान् रम्य व्यवहारवान् वा स्थिर दृढ़ पुरुष (वध्वा) अपनी सहयोगिनी वधू वा कार्य भार को वहन करने वाली शक्ति के साथ (यादमानः) यत्नवान् होता हुआ (वर्त्तनिभ्याम्) अपने ऐहिक और पारमार्थिक व्यवहारों या देवयान पितृयाण मार्गों से (दिवः अन्तान् बाधते) ज्ञान के सिद्धान्तों का अवगाहन करे। हे (स्वश्वा) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों से युक्त ! हे (दस्रा) अज्ञानादि नाशक जनो ! आप दोनों (यशसा) यश से यशस्वी होकर (अर्वाग् यातम्) आगे बढ़ो और (मधुमन्तं निधिं) मधुर ज्ञानों से युक्त, वेदमय निधि या ख़ज़ाने का (पिबाथः) पालन और उपभोग करो।

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों में (सूरः दुहितः) सूर्य की कान्ति वाली उषा के समान सुन्दरी (योषा) पुरुष को प्रेमपूर्वक सेवन करने की अभिलाषा वाली स्त्री (परि-तक्म्यायाम्) कामाग्नि युक्त, यौवन दशा में, वा 'तक्म्या' उष्ण रजोधर्म की दशा के उपरान्त (श्रियं) आश्रय योग्य सेवनीय पुरुष को (परि वृणीत) स्वीकार करे। आप दोनों (शचीभिः) उत्तम कर्मों और वाणियों से (देवयन्तम्) विद्वान्वत् अपने प्रिय कामनावान् सहयोगी को अवश्य (अवथः) प्राप्त हुआ करो। और (वां घ्रंसम्) आप दोनों में अति तेजस्वी पुरुष को ही (ओमना) रक्षण योग्य बल सहित (वयः) उत्तम, दीर्घायु और अन्न बलादि भी (परि गात्) प्राप्त हो।

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (रथिरा) रथ पर विराजमान रथी सारथी के समान सहयोगी स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों में से (यः) जो प्रत्येक (रथः) स्थिर भाव से रहने वाला और गृहस्थ में रमण करने वाला, दूसरे को सुख देने वाला हो वह (उस्राः वस्ते) किरणों को सूर्य के समान उज्ज्वल वस्त्रों को धारण किया करे। वही (युजानः) जुड़े रथ के समान स्वयं भी (युजानः) संयुक्त होकर ग्रन्थि जोड़कर (वर्त्तिः परियाति) गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हो। वा (वर्त्तिः परियाति) वेदि में फेरे फिरे, परिक्रमा करे। (उषसः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, कन्या की (व्युष्टौ) विशेष विवाह की कामना होने पर (तेन) उस पुरुष से ही (नः) हमें (शं योः) शान्ति सुख और दुःख का नाश हो। हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में, अर्थात् परस्पर की संगति और

दान-प्रतिदानमय सद्-व्यवहार में आप दोनों (नि वहतम्) निश्चय से एक दूसरे का भार अपने ऊपर धारण करो और विवाहित होकर रहो।

नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम्।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥६॥

भा०—(गौरा इव तृषाणा सवना) जिस प्रकार प्यासे दो मृग जलों को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! हे नर नारी जनो ! (अस्माकं) हम में से (गौरा) विद्या वाणी में निष्णात होकर (विद्युतम् उप यातम्) विशेष कान्ति को प्राप्त करो और (तृषाणा) कामनावान् या अत्युत्सुक होकर (अद्य) आज (सवना) यज्ञों, ऐश्वर्यों और पुत्र प्रसवादि गृह्योचित कार्यों को (उप यातम्) प्राप्त होओ। विद्वान् पुरुष (वां) आप दोनों को (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (हवन्ते हि) स्तुति करते हैं। (अन्ये) दूसरे विपरीत भाव वाले शत्रुजन (देवयन्तः) द्यूतक्रीड़ा या व्यवहार करते हुए (वाम् मा नियमन्) आप दोनों को न बांध लें, न फंसालें।

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रे अवविद्धं भुज्युम् यथा अश्विना अस्रिधानैः पतत्रिभिः अर्णसः पारयतः) समुद्र में फंसे नाना भोग्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यापारी को जिस प्रकार वेगयुक्त नौका यन्त्रादि के अध्यक्ष जन पतवारों से जल से पार करते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय एवं अश्व अर्थात् विद्यापारंगत आचार्य के उत्तम शिष्यो ! एवं (अश्विना) रथी सारथिवत् एक ही गृहस्थ रथ में स्थित (युवम्) आप दोनों (समुद्रे अवविद्धं) उत्तम उत्साह युक्त कामनामय समुद्र में अवपीड़ित, (भुज्युम्) एक दूसरे की भुजा का अवलम्बन चाहने वाले या

सांसारिक भोग वा संसार में रक्षा चाहने वाले सहचर को (अर्णसः) पितृ-ऋण से (अस्त्रिधानैः) नाश न होने वाले और (अश्रमैः) न थकने वाले, (अव्यथिभिः) कभी पीड़ित न होने और अन्यों को पीड़ा न देने वाले (पतत्रिभिः) गमन करने योग्य तीन आश्रमों से और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों से (पारयन्ता) पार करते हुए (उत् ऊहथुः) उत्तम मार्ग से ले जाओ।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।१६

भा०—व्याख्या देखो सू० ६७। मन्त्र १०॥ इति षोडशो वर्गः॥

[७०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥१॥

भा०—गृहाश्रम की श्रेष्ठता। हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे वरण करने योग्य उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषो! आप दोनों (नः) हमें (आगतम्) प्राप्त होओ। (वां) आप दोनों का (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (तत्स्थानम्) वह स्थान, गृहस्थाश्रम (प्र अवाचि) बड़ा उत्तम कहा जाता है, (यत्) जिसमें (वाजी) बलवान् पुरुष (शुन-पृष्ठः) सुखप्रद पीठ वाले अश्व के समान (शुन-पृष्ठः) समस्त सुखों का आश्रय होकर (अस्थात्) रहता है और आप दोनों पति पत्नी भी (ध्रुवसे) स्थिर होकर रहने के लिये (योनिम् सेदथुः) एक ही गृह में विराजते हो।

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः॥२॥

भा०—(दुरोणे घर्मः) जहां तक कोई व्यक्ति वढ़ नहीं सकता ऐसे ऊंचे आकाश देश में तेजस्वी सूर्य के समान (मनुषः) मनुष्य (दुरोणे) घर में और राजा राज्य वा राष्ट्र में उच्च पद पर विराज कर (अतापि) खूब तप करे । इसी प्रकार ब्रह्मचारी (घर्मः) ज्ञान जल से सिक्त होकर, स्नातक होकर (मनुषः दुरोणे) मननशील आचार्य के गुरु-गृह में अग्नि के समान (अतापि) तप करे । राजा राष्ट्र में उच्चपद पर विराज कर सूर्यवत् तपे और दुष्टों को पीड़ित करे और उस समय (वां) तुम दोनों को (चनिष्ठा) अति श्रेष्ठ व गुरुवचनमय (सुमतिः) शुभमति (सिपक्ति) अवश्य प्राप्त हो । (एतग्वा चित्) अश्व के समान एक गृहस्थ रथ में नियुक्त आप दोनों (सुयुजा) उत्तम सहयोगी जनों को (युजानः) जोड़ता हुआ, सत्कर्म में नियुक्त करता हुआ (यः) जो (समुद्रान् सरितः) समुद्रों को नदियों के समान, वा नदी समुद्रों को मेघ के समान (पिपर्त्ति) पूर्ण करे वह उत्तम ज्ञानी गुरुजन सूर्यवत् तेजस्वी हो ।

यानि॒ स्थाना॑न्यश्विना द॒धाथे॑ दि॒वो य॒ह्वीष्वोष॑धीषु वि॒क्षु ।
नि पर्व॑तस्य मू॒र्धनि॒ सद॒न्तेषं॒ जना॑य दा॒शुषे॒ वह॑न्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी, एवं इन्द्रियों के स्वामी, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (दिवः ओषधीषु) सूर्य के ताप को धारण करने वाली (विक्षु) प्रजाओं में दिन रात्रि के समान आप दोनों भी (दिवः) इस पृथिवी के (यह्वीषु) बड़ी २ (ओषधीषु) ताप, शत्रु संतापक तेज को धारण करने वाली सेनाओं और (यह्वीषु विक्षु) 'यहु' अर्थात् सन्तानवत् पालन करने योग्य प्रजाओं के बीच में (यानि) जितने भी (स्थानानि) मान आदर के पद हैं उन सब पदों पर आप लोग (पर्वतस्य मूर्धनि) पर्वत के शिरोभाग पर सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सदन्ता) विराजते हुए, (दाशुषे जनाय) करादि व वस्त्र भूषणादि दे देने वाले (जनाय) प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वहन्ता) कार्य भार को अपने

कन्धों पर लेते हुए (दधाथे) धारण करो । (२) इसी प्रकार युवा युवति भी तेजस्वी प्रजाओं में उत्तम स्थान प्राप्त करें, वे प्रजा की उत्पत्ति के लिये विवाह करें ।

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥४॥

भा०—हे (देवा) विद्वान् व्यवहारज्ञ, एवं परस्पर के इच्छुक तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (ओषधीषु) ओषधियों में और (अप्सु) जलों में भी (यत्) जो ओषधियां और जलवत् द्रव पदार्थ, (ऋषीणां योग्या) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के वा प्राणों के पोषण योग्य हों उनकी ही आप दोनों (चनिष्टं) कामना किया करो और उनको ही (अश्नवैथे) प्राप्त कर खाया पिया करो । आप दोनों (पुरूणि रत्ना) बहुत से रत्न और रम्य गुणों को (दधतौ) धारण करते हुए (अस्मे) हमारे आगे (पूर्वाणि) पूर्व के प्रसिद्ध (युगानि) पति पत्नी के अनुकरणीय जोड़े का (अनु) अनुकरण करके (नि चख्यथुः) आदर्श रूप से होकर बतलाओ ।

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, युगल जनो ! आप दोनों (चित्) ही (ऋषीणां) मन्त्रों का साक्षात् दर्शन करने वाले विद्वान् पुरुषों के साक्षात् किये हुए (पुरूणि) बहुत से (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों को (शुश्रुवांसा) श्रवण मनन करते हुए (अभि चक्षाथे) उनके तत्त्व ज्ञान का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया करो । आप लोग (जनाय) मनुष्य मात्र के उपकार के लिये (वरम्) उत्तम उद्देश्य को (प्रति यातम्) लक्ष्य करके चलो । (वरम् प्र यातम्) उत्तम ज्ञान और उत्तम फल प्राप्त करो, (वरम् आ यातम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और स्थान को ही

आओ। (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (वाम्) आप दोनों की (चनिष्ठा) अति उत्तम, प्रशंसनीय (सुमतिः अस्तु) शुभमति हो।

यो वां युज्ञो नासत्या हुविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३भवाति।
उप प्र यातं वर्मा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम्॥ ६॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, सदा सत्य व्यवहार के पालक और नासिकावत् मुख्य स्थान पर विराजमान स्त्री पुरुषो! (यः) जो (यज्ञः) पूजा सत्संग-योग्य (हविष्मान्) उत्तम ज्ञान अन्न से सम्पन्न (कृत-ब्रह्मा) वेदाध्ययन में कृतश्रम और धनादि में समृद्ध (वां) आप दोनों के प्रति (समर्यः) नाना पुरुषों सहित (भवति) होता है आप दोनों ऐसे (वरम्) वरण करने योग्य (वसिष्ठं) सर्वोत्तम 'वसु', विद्वान् वा राजा को (उप आ यातम्) प्राप्त होओ, उसके पास और उसी के गृह पर आया जाया करो। हे स्त्री पुरुषो! (युवभ्याम्) आप दोनों के हितार्थ ही (इमा ब्रह्माणि) ये नाना वेदोक्त ज्ञान, अन्न नाना धन (ऋच्यन्ते) ऋचाओं के रूप में प्रकट होते हैं, आदरपूर्वक प्रस्तुत किये जाते हैं।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।१७।४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (इयं) यह (मनीषा) मन की उत्तम इच्छा, बुद्धि और (इयं गीः) यह उत्तम वाणी है। आप दोनों (इमां) इस (सु-वृक्तिं) उत्तम स्तुति उपदेश योग्य वाणी को (वृषणा) बलवान् होकर (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन करें। (इमा ब्रह्माणि) ये वेद-वचन, धन और अन्न (युवयूनि) आप दोनों के ही हितार्थ हैं। (यूयं) हे विद्वान् लोगो! आप सब लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम २ साधनों से हमारी रक्षा किया करो। इति सप्तदशं सूक्तम्॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

[७१]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥१॥

भा०—(नक् उषसः अप जिहीते) जिस प्रकार उषाकाल से रात्रि हट कर दूर चली जाती है उसी प्रकार (उषसः) प्रभात वेला के तुल्य कान्ति-युक्त पति की याचना करने वाली (स्वसुः = स्व-सुः) स्वयं अपने वरण योग्य पति को प्राप्त करने वाली वरवर्णिनी कन्या से (नक्) उससे सम्बन्धी जन उसके माता पिता भाई आदि (अप जिहीते) दूर होजाते हैं । वह माता पिता से छूटकर पति की होकर रहती है । (कृष्णीः) कृष्णवर्णा रात्रि जिस प्रकार (अरुषाय पन्थाम् ऋणक्ति) तेजस्वी सूर्य के लिये मार्ग छोड़ती और आप नष्ट होजाती है उसी प्रकार (कृष्णीः) हृदय को आकर्षण करने वाली मनोरमा स्त्री (अरुषाय) तेजस्वी, पुरुष के लाभ के लिये ही (पन्थाम्) मार्ग (रिणक्ति) रिक्त करती है । आप आगे २ चलती और पीछे पति को लेकर चलती है । हे स्त्री पुरुषो ! हे (अश्वामघा गोमघा) अश्वों और गौओं आदि धन से समृद्ध स्त्री पुरुषो ! हम लोग (वाम् हुवेम)आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग (अस्मत्) हमसे (शरुम्) हिंसाकारी को (युयोतम्) दूर करो ।

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिरामममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा विद्वान् अध्यापक और आचारशिक्षक गुरुजनो ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अपने को आप लोगों के प्रति समर्पण कर देने वाले के हितार्थ (उप आयातम्)

समीप आइये और (रथेन वामम् वहन्ता) रथ या गाड़ी आदि साधन से जिस प्रकार उत्तम धन सम्पदा लाई जाती है उसी प्रकार आप लोग (रथेन) उत्तम उपदेश से (वामम्) सुन्दर श्रवण करने योग्य ज्ञान को (वहन्ता) प्राप्त कराते हुए (अस्मत्) हमसे (अनिराम्) अन्नादि के दारिद्रय, (अनिराम्) 'इरा' अर्थात् विद्योपदेशमय वाणी के अभाव को तथा (अमीवाम्) रोग-दुःखजनक दशा को (युयुतम्) दूर करो। और (दिवा-नक्तम्) दिन और रात (माध्वी) सदा मधुर प्रसन्न चित्त रहकर वा 'मधु' अन्न जल वा ज्ञान से युक्त होकर (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो।

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार रथ को बलवान् अश्व चलाते हैं और (ऋत-युग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं, वसुमन्तं रथं वहन्ति) ज्ञान पूर्वक लगे अश्वों से, सिली रासों वाले और धनादि सम्पन्न रथको लेजाते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) विद्या में व्यापक विद्वान् स्त्री पुरुषों के स्वामी जनो! (वां) आप दोनों के (रथं) रमणीय गृहस्थोचित कर्त्तव्य तथा उपदेश आदि को (अवम-स्यां व्युष्टौ) आगामी समीपतम प्रभात वेला में (सुम्नायवः) सुखा-भिलाषी (वृषणः) बलवान् पुरुष (वर्त्तयन्तु) सम्पादित करें। और आप दोनों अपने (स्यूम-गभस्तिम्) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त, सुप्रबद्ध (वसुमन्तं रथं) उत्तम बसने वाले वा वसु ब्रह्मचारियों से वा सुखैश्वर्य से युक्त इस गृहस्थाश्रम रूप रथ को (ऋतयुग्भिः) सत्य के बल से जुड़े हुए, (अश्वैः) विद्वानों की सहायता से (वहेथाम्) धारण करो, सन्मार्ग पर ले चलो।

यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४॥

भा०—हे (नृपती) मनुष्य पति पत्नी ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार (रथः वोढा, त्रि-वन्धुरः) रथ अपने में मनुष्यों को उठाकर लेजाने से 'वोढा' और तीन दण्डों से वने पीढ़े से युक्त होता है, उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (वां) आप दोनों में से (रथः) रम्यस्वभाव का वा स्थिर होकर (वोढा) गृहस्थ के भार सहन करने वाला, विवाह करने हारा (त्रि-वन्धुरः) तीन ऋणों से वद्ध, (वसु-मान्) ऐश्वर्यवान् , (उस्र-यामा) सूर्यवत् तेजस्वी होकर जाने हारा है और (यत् वां) जो तुम दोनों में से (विश्व-प्स्न्यः) विशेष उत्तम रूपवान् होकर (अधि जिगाति) प्राप्त होता है हे (नासत्या) कभी असत्य धारण न करने हारे स्त्री पुरुषो ! (एना) उस व्यक्ति के वल से ही (नः आ उपयातम्) हमें प्राप्त होओ।

युवं च्यवा॑नं ज॒रसो॑ऽमुमुक्तं॒ नि पे॒दव॑ ऊहथुरा॒शुमश्व॑म् ।
निरंह॑स॒स्तम॑सः स्पर्त॒मत्रिं॒ नि जा॑हु॒षं शि॑थि॒रे धा॑तम॒न्तः ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) अश्ववत् वेग युक्त रथों, अश्वों, वाहनों और विद्यावान् पुरुषों के स्वामी जनो ! सभा-सेनापतियो ! (युवं) आप दोनों (च्यवानं) सन्मार्ग से जाने वाले पुरुष को (जरसः) वृद्धावस्था वा आयु के नाश से (अमुमुक्तम्) दूर करो। (पेदवे) दूर देश में जाने वाले के लिये (आशुम् अश्वम्) शीघ्र-गामी अश्ववत् दूरयायी साधन को (नि ऊहथुः) निरन्तर चलाओ। और (अत्रिम्) तीनों प्रकार के दोषों से रहित वा इस लोक में विद्य-मान पुरुष को (अंहसः) पाप और (तमसः) अज्ञान अन्धकार से (निः स्पर्त्तम्) पार करो, (जाहुषम्) त्यागी निःसंग, निस्वार्थी पुरुष को (शिथिरे) शिथिल राष्ट्र में (अन्तः नि धातम्) भीतर के केन्द्र स्थान पर नियुक्त करो।

इ॒यं म॑नी॒षा इ॒यम॑श्विना॒ गीरि॒मां सु॑वृ॒क्तिं वृ॑षणा जुषेथाम् ।
इ॒मा ब्रह्मा॑णि युव॒यून्य॑ग्मन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ।६।१८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ७० । मं० ७ ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥१॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजने वाले प्रतिष्ठित जनो ! आप दोनों (गोमता) उत्तम बैलों वाले वा (अश्ववता रथेन) घोड़ों वाले (पुरु-चन्द्रेण) बहुत धनादि सम्पन्न वा बहुतों को आह्लादित करने वाले (रथेन) रथ से (आ यातम्) आओ । (विश्वा नियुतः) सब उत्तम प्रजाएं, सेनाएं वा नियुक्त भृत्यादि प्रजाएं (वाम् अभि सचन्ते) आप दोनों की ही, सेवा करती हैं । आप दोनों (स्पार्हया) स्पृहा करने योग्य, मनोहर (श्रिया) शोभा से और (तन्वा) उत्तम स्वस्थ शरीर से (शुभाना) शोभित होकर हमें प्राप्त होओ ।

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने हारे विद्वान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! आप लोग (देवेभिः) विद्वान् पुरुषों के साथ और (स-जोषसा) प्रीति से सेवने योग्य (रथेन) रथ से, वा स्थिर, रम्य व्यवहार से (नः आयातम्) हमें प्राप्त होओ । (युवोः हि नः) आप दोनों के (पित्र्याणि सख्या) पिता पितामहादि से चले आये सौहार्द भाव हमारे साथ बने रहें । (युवोः नः बन्धुः समानः) हमारे और तुम्हारे बन्धु भी समान हों (उत) और आप दोनों (तस्य) उस बन्धु को (वित्तम्) भली प्रकार जानें ।

उदु स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्रञ्जा॒मि ब्रह्मा॑ण्यु॒षस॑श्च दे॒वीः ।
आ॒विवा॑सन्रो॒द॑सी धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति ॥३॥

भा०—(स्तोमासः) वेद के सूक्त और (अश्विनोः स्तोमासः) विद्वान् स्त्रियों पुरुषों वा अध्यापक उपदेशकों के स्तुत्य उपदेश और (ब्रह्माणि) वेद के मन्त्रगण (जामि) बन्धुवत् (उषसः) उत्तम ज्योति या प्रकाश से युक्त (देवीः) दानशील, विद्याभिलाषी प्रजाओं का भी (उत्-अबुध्रन्) उत्तम रूप से प्रबुद्ध करें, सबको ज्ञान युक्त करें। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नासत्या अच्छ) प्रमुख, सदा सत्याश्रयी स्त्री पुरुषों की (आविवासन्) सेवा करता हुआ (इमे) इन दोनों को (रोदसी) सूर्य चन्द्रवत् , माता पितावत् (विवक्ति) बतलाता है और इनको ही वह (धिष्ण्ये) उत्तम बुद्धि युक्त, स्तुत्य और पूज्य आसन के योग्य भी (विवक्ति) कहता है।

वि चेदु॒च्छन्त्य॑श्विना उ॒षासः॒ प्र वां॒ ब्रह्मा॑णि का॒रवो॑ भरन्ते ।
ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद् बृ॒हद॒ग्नयः॑ स॒मिधा॑ जरन्ते ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (चेत्) जिस प्रकार (उषासः) प्रभात वेलाएं (वि उच्छन्ति) विशेष रूप से प्रकाश करें तब (कारवः) स्तुतियों के करने वाले विद्वान् जन (ब्रह्माणि) उत्तम २ स्तुति मन्त्रों का (प्र भरन्ते) उच्चारण करते हैं और जब (सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य (ऊर्ध्व) ऊपर (भानुम् अश्रेत्) कान्ति धारण करे तो (अग्नयः) यज्ञाग्नियें (समिधा) उत्तम समिधा सहित होकर (बृहत्) अच्छी प्रकार (जरन्ते) स्तुति को प्राप्त होते हैं, यज्ञ किये जाते हैं उसी प्रकार जब (उषसः) कमनीय कान्ति से एवं गृहस्थ कामना से युक्त विदुषी स्त्रियें और प्रजाएं (वि उच्छन्ति) विविध प्रकार की अभिलाषाएं प्रकट करती हैं तब (कारवः) विद्वान् पुरुष और उत्तम शिल्पी जन

(वां) वर वधू एवं राजा रानी दोनों का लक्ष्य कर (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों और नाना ऐश्वर्यों को (प्र जरन्ते) प्रकट करें। (देवः सविता) उन दोनों में से दानशील, ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (ऊर्ध्वभानुं) सर्वोपरि कान्ति को (अश्रेत्) धारण करता है और (अग्नयः) तेजस्वी अग्निवत् विद्वान् जन (समिधा) अति तेज से (बृहत्) वृद्धिकारी, आशीर्वाद आदि वचन का (जरन्ते) उपदेश करते हैं।

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।१९

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे, सत्पुरुषों के हित के विरुद्ध कभी न करने वाले जनो! (पश्चातात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात्) पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिण से भी आप लोग (पाञ्चजन्येन राया) पांचों जनों के हितकारी धन सहित (विश्वतः आ यातम्) सभी ओर से आया जाया करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) हे विद्वान् जनो! आप लोग हमें उत्तम साधनों से रक्षा करो। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[७३]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः॥ १॥

भा०—हम लोग (देवयन्तः) उत्तम विद्वानों और शुभ गुणों को अपनाना चाहते हुए और (स्तोमं) स्तुति और स्तुत्य कार्य को (प्रति दधानाः) प्रत्येक दिन धारण करते हुए (अस्य) इस (तमसः)

अज्ञान और दुःख के (पारम् अतारिष्म) पार हो जायें। हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (गीः) उत्तम विद्वान् पुरुष (पुरुदंसा) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाले, (पुरु-तमा) बहुतों में उत्तम, (पुरु-जा) सब के आगे अग्रणीवत् चलने वाले, (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से विशेष आप दोनों की (हवते) प्रशंसा करता है।

न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् २

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख, सत्यनिष्ठ, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (प्रियः) प्रिय (मनुषः) मननशील, (होता) ज्ञान का देने वाला, पुरुष (यजते) यज्ञ करता, (वन्दते च) भगवान् की स्तुति करता या ज्ञान देता, सत्संग करता और प्रणाम और उपदेशादि करता है और जो (विदथेषु) यज्ञों और संग्रामों में (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (वाम् आ वोचे) तुम दोनों की अभ्यर्थना करता है आप उसके (उपाके) समीप (मध्वः अश्नीतं) मधु, ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करो।

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः॥ ३॥

भा०—हम लोग (यज्ञम् उराणाः) बहुत २ यज्ञ करते हुए (पथा) अपने जीवन के मार्ग की (अहेम) वृद्धि करें। हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग इस (सुवृक्तिम्) सुखदायिनी सुमति का (जुषेथा) प्रेम पूर्वक सेवन करो। (जरमाणः वसिष्ठः) उपदेश करने हारा सर्वोत्तम वसु, पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) नाना उपदेश योग्य वचनों से (प्रेषितः श्रुष्टीवा इव) भेजे दूत के समान, (प्रेषितः) उत्तम इच्छा से युक्त (श्रुष्टीवा) श्रुति वचनों का ज्ञाता होकर (वाम् प्रति अबोधि) आप दोनों को ज्ञानवान् करे।

उप॑ त्या वह्नी॑ गमतो॒ विशं॑ नो रक्षो॒हणा॒ सम्भृ॑ता वी॒ळुपा॑णी ।
सम॑न्धां॒स्यग्म॑त मत्स॒राणि॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा ग॑तं शि॒वेन॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (रक्षोहणा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाले, (संभृता) अच्छी प्रकार परिपुष्ट, (वीडु-पाणी) बलवान् हाथों वाले होकर (त्या) वे दोनों आप (वह्नी) कार्य-भार को वा, गृहस्थ को अच्छी प्रकार उठाने में अश्वों के समान दृढ़, अग्नियों के समान तेजस्वी होकर एवं विवाहित होकर (नः विशं उप गमतः) हमारे प्रजा वर्ग में प्राप्त होवो । (नः) हमारे (मत्सराणि) उत्तम, तृप्ति-कारक (अन्धांसि) अन्नों को (सम अग्मत) प्रेमपूर्वक मिलकर प्राप्त करो । (शिवेन) कल्याणकारक, सुखप्रद रूप से (नः आगतं) हमें प्राप्त होवो, (नः मा मर्धिष्टं) हमें पीड़ा मत दो ।

आ प॒श्चाता॑न्नास॒त्या पु॒रस्ता॒दाश्वि॑ना यातमध॒रादुद॑क्तात् । आ वि॒श्वतः॒ पाञ्च॑जन्येन रा॒या यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ।५।२०

भा०—व्याख्या देखो सू० ७२ । मं० ५ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

इ॒मा उ॑ वां॒ दिवि॑ष्टय उ॒स्रा ह॑वन्ते अश्विना ।
अ॒यं वा॑म॒ह्वेऽव॑से शचीवसू॒ विशं॑विशं॒ हि गच्छ॑थः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, अश्व अर्थात् राष्ट्र, और अश्वादि-सैन्य के स्वामी, सेनापति सभापति जनो, राजदम्पति युगल ! आप दोनों (उस्रा) उत्तम पदार्थों को देने वाले, ऊर्ध्व पद की ओर जाने वाले, एवं गृह और राष्ट्र में स्वयं बसने और अन्यों को बसाने वाले, तेजस्वी (वां) आप दोनों को (इमा दिविष्टयः) उत्तम ज्ञान, व्यवहार और कान्ति चाहने

वाली प्रजाएं (हवन्ते) बुलाती हैं। और (अयं) यह विद्वान् वर्ग भी हे (शचीवसू) शक्ति और वाणी के धनी युगलो ! (वां) आप दोनों को (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (अह्वे) पुकारता और प्रार्थना करता है, आप दोनों (विशं विशं हि) प्रत्येक प्रजावर्ग में (गच्छथः) जाया करो।

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक जनो, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (सूनृतावते) उत्तम सत्य वाणी, और अन्नसम्पत्ति से युक्त मनुष्य के हितार्थ (चित्रं) अद्भुत, आश्चर्यकारक, और नाना प्रकार का (भोजनं) पालन करने का सामर्थ्य और भोगयोग्य उत्तम ऐश्वर्य (ददथुः) प्रदान करो, और (अर्वाक् रथं चोदेथां) अपने रमणीय व्यवहार, उत्तम उपदेश को रथ के समान आगे प्रेरित करो, उसको (समनसा नियच्छतम्) परस्पर एक चित्त होकर नियम में रक्खो और एक दूसरे के प्रति प्रदान करो। और (सोम्यं मधु) 'सोम' अर्थात् ओषधिरस से मिले मधु के समान अति गुणकारी, रोगनाशक, अन्न के समान पुष्टिकारक, (सोम्यं मधु) सोम अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्यानुरूप मधुर भोगों तथा सोम जीव, वा प्रभु के 'सोम' प्राण, वीर्य, 'सोम' पुत्र शिष्यादि तदनुरूप मधुर सुख का (पिबतम्) उपभोग करो और अन्यों को भी उस सुख का अनुभव कराओ।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे उत्तम नायको ! हे (जेन्यावसू) वसने वाले अन्य सब प्रजा वर्गों, गृहस्थों और ऐश्वर्यों, समीप वसने वाले शिष्यों, पर विजय करने वाले, उन सब से उत्कृष्ट आप

लोग (आ यातम्) आदर पूर्वक आइये । (उप भूपतम्) समीप होइये, विराजिये (मध्वः पिबतं) गुरु-गृह में मधुमय ज्ञानरस, वेद को, (दुग्धं पयः) दुहे हुए पुष्टिकारक दूध के समान (पिवतम्) पान करिये । हे (वृपणा) मेघ के समान ज्ञान-सुखों की वर्षा करने वालो, हे बलवान् पुरुषो ! (नः मा मर्धिष्टम्) हमारा नाश न करो, हमें मत मारो ।

अश्वा॑सो॒ ये वा॒मुप॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हं यु॒वां दीय॑न्ति॒ बिभ्र॑तः ।
म॒क्षु॒युभि॑र्नरा॒ हये॑भिरश्विना॒ देवा॑ यातमस्म॒यू ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों और विद्वानों के स्वामी जनो ! हे (नरा) नायकवत् स्त्री पुरुषवर्गो ! (ये) जो (वाम्) आप लोगों के (अश्वासः) अश्व, वेग से जाने वाले साधन वा विद्यावान् पुरुष (युवां बिभ्रतः) आप दोनों को धारण करते हुए, (दाशुषः गृहं) उस देने वाले प्रभु के घर तक (दीयन्ति) पहुंचा देते हैं उनही (मक्षूयुभिः हयेभिः) शीघ्रकारी अश्वों, साधनों वा विद्वानों से हे (देवा) स्त्री पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! आप (अस्मयू) हमें चाहते हुए (यातम्) आओ जाओ, जीवन यात्रा करो ।

अधा॑ ह॒ यन्तो॑ अश्विना॒ पृक्षः॑ सचन्त सू॒रयः॑ ।
ता यं॑सतो म॒घव॑द्भ्यो ध्रु॒वं यशः॑ छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॒ नास॑त्या ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् एक आश्रम रूप रथ पर स्थित, आचार्य शिष्य, स्त्री पुरुष तथा विद्वान् और सामान्य जनो ! (अध ह) निश्चय से (यन्तः सूरयः) जाते हुए, आगे बढ़ते हुए, विद्वान्, परिव्राजक जन (पृक्षः सचन्त) सर्वत्र अन्न और स्नेह सम्पर्क को प्राप्त करते हैं । हे (नासत्या) सत्पुरुषों के प्रति कभी असत्य, असभ्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मभ्यम् मघवद्भ्यः) हम ऐश्वर्य और पूज्य ज्ञान वाले पुरुषों को (ध्रुवं) स्थिर

(यशः) यश और अन्न, और (छर्दिः) आवास के लिये घर (यंसतः) प्रदान करो।

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम्।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥६॥२१॥

भा०—(ये) जो (अवृकासः) चोर-स्वभाव से रहित, सत्यनिष्ठ, निश्छल (रथाः) रथों के समान (स्वेन शवसा) अपने ज्ञान सामर्थ्य और प्रबल पराक्रम से (प्र ययुः) आगे जाते हैं और जो (नरः) नेता जन (शुशुवुः) खूब बढ़ते हैं, उन्नति को प्राप्त होते हैं (उत) और (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि को (क्षियन्ति) प्राप्त कर उसमें रहते और उसको ऐश्वर्य युक्त करते हैं वे ही (जनानां नृपातारः) सब मनुष्यों को पालन करने में समर्थ, नृपति होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[७५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ६, ७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात्।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥ १ ॥

भा०—(दिविजाः उषाः) सूर्य के आश्रय रह कर प्रकट होने वाली प्रभात वेला जिस प्रकार (आपः) विशेपरूप से खिलती (ऋतेन महिमानम् आविष्कृण्वाना आगात्) तेज से महान् स्वरूप को प्रकट करती हुई आती है, (तमः अप आवः) अन्धकार को दूर करती और (पथ्याः अजीगः) मार्गों वा मार्गवर्त्ती प्रजाओं को जगाती, प्रकाशित कर देती है, उसी प्रकार (दिवि-जाः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के अधीन जन्म लाभ करके वा (दिवि-जाः) उत्तम शुभ कामना में विद्यमान (उषाः) कान्तियुक्त

युवति (वि आवः) अपने विविध गुणों को प्रकट करे, वह (ऋतेन) सत्य व्यवहार, ज्ञान से अपने (महिमानम्) महान्, आदरणीय मातृ-सामर्थ्य को (आविः कृण्वाना) प्रकट करती हुई, (आगात्) आवे। (अजुष्टम्) न सेवन करने योग्य (तमः) अज्ञान, शोकादि को अन्धकारवत् और (द्रुहः) द्रोह, अप्रीति के भावों को भी (अप आवः) दूर करे। वह (अङ्गिरस्तमा) प्राणों में भी सर्वश्रेष्ठ, प्राणवत् अतिप्रियतमा वा ज्ञानवती विदुषी होकर (पथ्याः) उत्तम पथ योग्य, धार्मिक, शिष्टाचारों को (अजीगः) जागृत करे।

म॒हे नो॑ अ॒द्य सु॑वि॒ताय॑ बोध्युषो॑ म॒हे सौभ॑गाय॒ प्र य॑न्धि ।
चि॒त्रं र॒यिं य॒शसं॑ धेह्य॒स्मे दे॑वि॒ मर्ते॑षु मानुषि श्रव॒स्युम् ॥ २ ॥

भा०—हे (मानुषि देवि) मननशील, मनुष्य जाति के शुभ गुणों से युक्त स्त्रि ! तू (नः) हमें (अद्य) आज, (महे सुविताय) बड़े भारी सुख प्राप्त कराने के लिये (बोधि) हो। हे (उषः) प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त एवं पति को प्रेम से चाहने वाली स्त्रि! तू भी (महे सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य प्राप्त करने के लिये (प्र यन्धि) उत्तम रीति से विवाह के बंधन में बंध। (अस्मे) हमारे (चित्रं रयिं) आश्चर्यकर नाना एवं संग्रह योग्य ऐश्वर्य और (मर्तेषु) मनुष्यों के बीच (यशसं) यशस्वी (श्रवस्युम्) ज्ञानी पुत्र (धेहि) धारण कर।

ए॒ते त्ये भा॒नवो॑ दर्श॒ताया॑श्चि॒त्रा उ॒षसो॑ अ॒मृता॑स॒ आगुः॑ ।
ज॒नय॑न्तो॒ दैव्या॑नि व्र॒तान्या॑पृ॒णन्तो॑ अ॒न्तरि॑क्षा॒ व्य॑स्थुः ॥ ३ ॥

भा०—(दर्शताः उषसः भानवः) दर्शनीय उषा वेला के किरण जिस प्रकार आते हैं, वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः अन्तरिक्षा वि तिष्ठन्ति) देव, सूर्य वा किरणों के योग्य प्रकाशादि कार्यों को करते हुए अन्तरिक्ष में विराजते हैं, उसी प्रकार (दर्शतायाः) रूप गुणादि में दर्शनीय, अति मनोहर, (उषसः) पति की कामना करने वाली, कान्तिमती कन्या वा विदुषी

स्त्री से ही (त्ये) वे नाना (एते) ये (अमृतासः भानवः) कर्मा नाश न होने वाले, दीर्घायु, (चित्राः) आश्चर्यकारी बलवान् वीर्यवान् होकर (आगुः) हमें प्राप्त होते हैं। वे (दैव्यानि) देव, विद्वान् पुरुषों से करने योग्य (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्मों को (जनयन्तः) प्रकट करते हुए, (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष में वायु के समान (आ पृणन्तः) सबको पालन पूर्ण, तृप्त, सन्तुष्ट करते हुए (वि अस्थुः) विविध रूपों में विराजें। उत्तम स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्र दीर्घजीवी, तेजस्वी, देव, व्रतपालक और सुख-कारी हों।

एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

भा०—(एषा) यह (स्या) वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् उषा काल के समान तेजस्वी पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ (पराकात् युजाना) दूर देश से विवाह बन्धन में संयुक्त होकर विदुषी स्त्री शासक शक्ति के समान (सद्यः) अति शीघ्र ही अपने गुणों से (पञ्च-क्षितीः) पांचों प्रकार के निवासियों, पञ्चजनों को (परि जिगाति) मात करती है, सबको अपने वश करती है। वह (जनानां) मनुष्यों वा जन्म लेने वाली प्रजाओं के (वयुना) ज्ञानों और कर्मों को न्यायपूर्वक (अभि-पश्यन्ती) देखती हुई और (भुवनस्य) भुवन, जन समूह का (पत्नी) पालन करने वाली हो।

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम्।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य की (योषा) स्त्री (उषा) प्रभात वेला (वह्निभिः) यज्ञाग्नियों से (गृणाना) स्तुति की जाती हुई, (जरयन्ती) रात्रि का नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों की भगवत्-स्तुति से युक्त होती है उसी प्रकार (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष

की (योषा) स्त्री, (उषा) कान्ति से युक्त होकर (वह्निभिः) विवाह करने के योग्य उत्सुक पुरुषों द्वारा (गृणाना) स्तुति की जाती है। वह ज्ञानधारक विद्वान् पुरुषों से उपदेश की जावे। वह (मघोनी) उषावत् पूज्य धन से युक्त, (वाजिनीवती) बलयुक्त और ज्ञानयुक्त क्रिया करने वाली (जरयन्ती) अपने गुणों से अवगुणों, अज्ञान शोक मोहादि को नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों द्वारा उपदेश प्राप्त कर (उच्छति) अपने गुणों का प्रकाश करे। (२) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की शक्ति, सेना और सभामयी है। वह बल, विजय युक्त होने से 'वाजिनी', नाना धन सम्पन्न होने से 'चित्रा-मघा' वह सब बसने वाले प्रजाजनों की स्वामिनी है, ऋषिगण, मन्त्रद्रष्टा ज्ञानी पुरुष उसको उपदेश करते, वह शत्रुओं का नाश करती, दुष्टों को सन्तप्त, पीड़ित करने से 'उषा', राज कार्य भार वहन करने वाले तेजस्वी पुरुषों से प्रशस्त है।

प्रति॑ द्यु॒ताना॑मरु॒षासो॒ अश्वा॑श्चि॒त्रा अ॑दृश्रन्नु॒षसं॒ वह॑न्तः।
याति॑ शु॒भ्रा वि॑श्व॒पिशा॒ रथे॑न॒ दधा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते जना॑य ॥ ६ ॥

भा०—(अश्वाः) अश्वों के समान दृढ़, बलवान् अंग वाले, (चित्राः) पूजनीय, अद्भुत २ आश्चर्यजनक बलविद्या और गुणों से सम्पन्न, (अरुषासः रोषरहित, सौम्य स्वभाव वाले तेजस्वी, (उषसः) स्वयं भी उत्तम काम्य पदार्थों की कामना करने वाले पुरुष (द्युतानां) कान्तिमती, (उषसम्) कामनावान् उत्तम वधू का (वहन्तः) विवाह द्वारा ग्रहण करते हुए (प्रति अदृश्रन्) नित्य देखी जावें। वह वधू (शुभ्रा) उत्तम आभूषणों से सुभूषित, शुभगुणों से युक्त, वधू (विश्वपिशा) नाना रूप के (रथेन) रथों से (याति) जावे। और (विधते जनाय) विशेष प्रेम से धारण करने वाले प्रिय, पुरुष के लिये (रत्नं दधाति) देह पर उत्तम रत्न, गृह में उत्तम धन, जीवन में उत्तम व्यवहार, मन में उत्तम गुण, गर्भ में उत्तम पुत्र-रत्न (दधाति) धारण करे।

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृळ्हानि दद॑दुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥

भा०—वह (सत्येभिः) सत्य गुणों, कर्मों और व्यवहारवान् (महद्भिः) बड़े, गुणवानों से (महती) पूज्य, (देवेभिः) उत्तम गुणों और विद्वानों और (यजत्रैः) पूजनीय, दानशील पुरुषों के साथ (सत्या) सत्य शील-वती, सभ्य, (महती) गुणों में महान्, (यजता) दानशील (देवी) विदुषी कन्या सत्संग लाभ करे । वह (दृढ़ानि) दृढ़ संकटों को भी (रुजत्) नाश करती हुई (ददद्) सुख प्रदान करे । (गावः) वृषभ, जिस प्रकार (उस्रियाणां मध्ये उषसं वावशन्त) गौवों के बीच में से कामनावती कपिला गौ को ही चाहते हैं उसी प्रकार (गावः) विद्वान् एवं बलवान् जन भी (उस्रियाणाम्) घर बसाने की इच्छुक कन्याओं में से भी (उषसं) अपने प्रति विशेष कामनावान् वधू के प्रति (प्रति वावशन्त) कामना करें ।

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।२२

भा०—हे (उषः) कान्तिमति, प्रिय, कामना वाली ज्ञानवती विदुषि! वधू ! तू (नः) हमारे (गोमत्) गौओं से युक्त, (वीरवत्) वीर पुत्रों से युक्त (रत्नं) उत्तम धन, उत्तम रम्य व्यवहार, पतिसंगादि गृहस्थोचित कर्म, पुत्र आदि (धेहि) धारण कर । तू (अस्मे) हमारे हितार्थ, (अश्वा-वत्) अश्वों से युक्त और (पुरु-भोजः) बहुतों को पालने और बहुतों से भोगने योग्य ऐश्वर्य को भी (धेहि) धारण कर । (नः बर्हिः) हमारा यज्ञ और वृद्धिशील राष्ट्र, पद (Position) आदि (पुरुषता) पुरुषों में (निदे मा कः) निन्दा करने योग्य मत बना । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो । उषा सूक्तों के प्रायः सब मन्त्र राजशक्ति और विशोका प्रज्ञा, तथा परमेश्वरी शक्ति युक्त पदार्थों में भी लगते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥

भा०—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन करते हैं । (सविता) समस्त संसार का उत्पादक, (देवः) सब सुखों का दाता, सूर्यादि लोकों का प्रकाशक, (विश्वानरः) समस्त विश्व का और समस्त जीवों का नायक, सञ्चालक परमेश्वर (विश्व-जन्यम्) समस्त जनों के हितकारी, सब जनों में विद्यमान, समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले, (अमृतं) अमृत, अविनाशी, (ज्योतिः) परम प्रकाशमय ज्योति को (उत् अश्रेत् उ) सर्वोपरि होकर धारण करता है । वह (क्रत्वा) समस्त विश्व का बनाने वाला, अथवा (क्रत्वा) कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (देवानां) समस्त पृथिवी, सूर्यादि लोकों और विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सब को आंखवत् देखने वाला, अथवा (देवानां चक्षुः क्रत्वा) विद्वानों के ज्ञान दिखाने वाले ज्ञानमय वेद का कर्त्ता, (उषाः) सब पापों का दाहक, उषाकाल के समान कान्तियुक्त, (भुवनं) समस्त भुवन को (आविः अकः) प्रकट करता है । गृहस्थ पक्ष में—(सविता देवः विश्वानरः) प्रजोत्पादक विद्वान् सबका नायकवत् होकर (विश्व-जन्यं) आत्मा के देह के उत्पादक (अमृतं ज्योतिः उत् अश्रेत्) अमृत, चिन्मय, अविनाशी ज्योतिः रूप, वीर्यमय तेज, ज्ञानमय प्रकाश को उत्तम रीति से धारण करे । वह ज्ञान, और कर्म से मनुष्यों का चक्षुवत् मार्गदर्शी हो, उसी प्रकार (उषाः) विदुषी स्त्री (भुवनं आविः अकः) लोक को उषावत् ब्रह्माण्ड के समान अपने गृह को प्रकाशित करे ।

प्र मे पन्थां देवयानां अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार उषा के प्रकट होने पर (वसुभिः इष्कृतासः पन्थाः देवयानाः प्र अदृश्रन्) मनुष्यों से बनाये और मनुष्यों से चलने योग्य मार्ग दिखाई देते हैं । वह (उपसः केतुः अभूत्) तेजस्वी सूर्य का ज्ञापक होती और (अधि हर्म्येभ्यः पुरस्तात् प्रतीची आ अगात्) बड़े २ महलों के ऊपर से पूर्वदिशा से पश्चिम की ओर आती है, उसी प्रकार वर के लिये वधू और वधू के लिये वर दोनों ही उत्सुक, एवं कामनायुक्त होने से दोनों ही 'उषा' हैं, अतः ऐसे (उपसः) कामना, प्रेमोत्सुकता से उत्सुक पुरुष के (पुरस्तात्) आगे (केतुः) ज्ञानवती, उसकी ध्वजा के समान गुणों को दर्शाने वाली विदुषी वधू (अभूत् उ) होवे । वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष में पूज्यादृत होती हुई, (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) बड़े महलों में रहने के लिये अधिष्ठात्री रानी होकर आवे । इसी प्रकार (उपसः) कान्तिमती, कामनावती प्रिय वधू का (केतुः) ध्वजा के समान ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष हो, वह भी पूर्व से पश्चिम को आने वाले सूर्य के समान (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) हर्म्यों को आये । (वसुभिः) विद्वानों द्वारा (इष्कृतासः) सुशोभित और (देवयानाः) विद्वानों द्वारा चलने योग्य (मे पन्थाः) मेरे समस्त धर्ममार्ग, किरणों से प्रकाशित मार्गों के समान मेरे लिये (अमर्धन्तः) कभी पीड़ादायक न होते हुए मुझे (प्र अदृश्रन्) उत्तम रीति से दृष्टिगोचर हों ।

तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥

भा०—(सूर्यस्य या प्राचीनम् उदिता) जिस प्रकार सूर्य के पूर्व दिशा में उदय होने पर जो प्रकट होते हैं (तानि इत् अहानि) वे ही दिन कहाते हैं (उषा जारः इव परि अचरन्ती) उषा भी रात्रि को जारण

करने वाले सूर्य के समान ही आचरण करती हुई (न पुनः यती इव ददृक्षे) फिर नहीं लौटती सी दीखती है उसी प्रकार हे (उषः) पति की कामना करने वाली वधू! (या) जो तू (सूर्यस्य प्राचीनम् इत्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के पूर्व भाग में आकर आगे आती है (तानि इत् बहुलानि अहानि) वे ही बहुत दिन उत्तम हैं। यतः क्योंकि उन दिनों में तू (जारः इव) तेरी आयु को अपने साथ पूर्ण व्यतीत करने वाले वा रात्रि व्यतीत करने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पति के समान ही तू भी (आचरन्ती) उसकी सेवा शुश्रूषा और धर्माचरण करती हुई (न पुनः यती इव) उसे फिर भविष्य में कभी भी न त्यागती सी (परि ददृशे) सदा उसके संग दिखाई दे। अथवा (या) जिन दिनों (सूर्यस्य प्राचीनम् उदिता) सूर्यवत् तेजस्वी पति के पूर्व, प्राङ्मुख खड़े रहते, तू भी (जार इव आचरन्ती यतः परि ददृशे) पति के समान ही विवाहादि कृत्य उसके समीप करती दिखाई देवे (न पुनः यती इव) उसे छोड़ती सी न दिखाई देवे (तानि इद् अहानि बहुलानि) ऐसे ही सहयोगी जीवन के दिन बहुत (आसन्) होवें। 'जारः इव' इति पदपाठः। 'जारे-इव' इति सायणाभिमतः॥

त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्॥४॥

भा०—जो (ऋतावानः) सत्य ज्ञान और वेद, तप आदि का सेवन करने वाले (पूर्व्यासः कवयः) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित, क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुष हैं (ते इत्) वे ही (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (सधमादः आसन्) साथ आनन्द, सुख प्राप्त करने वाले होते हैं। वे ही (पितरः) माता पितावत् पालक बनकर (गूढं ज्योतिः) अपने भीतर छिपे ज्योतिर्मय तेज को (अनु अविन्दन्) प्राप्त करते हैं। जो (सत्य-मन्त्राः) सत्य, मननशील होकर (उषासम् अजनयन्) कान्तिमती, ज्योतिष्मती, अज्ञान और पाप को दूर करने वाली विशोका प्रज्ञा को प्रकट करते हैं। (२)

उसी प्रकार सत्यज्ञानी, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् सहयोग का सुख पाते हैं जो माता पिता होकर सन्तान वा वीर्यरूप गूढ़ ज्योति को प्राप्त करते हैं, सत्य-मन्त्र होकर (उपासं अजनयन्) कामनायुक्त वधू को प्राप्त कर उससे उत्तम सन्तान उत्पन्न करते हैं।

समान ऊर्वे अधि सङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

भा०—जो पुरुष (समाने) एक समान (ऊर्वे) समूह या वर्ग में (अधि) एक अध्यक्ष के अधीन (संगतासः) एकत्र मिलकर (सं जानते) सम्यक् ज्ञान और परिचय कर लेते हैं (ते) वे (मिथः) परस्पर का हिंसन या नाश करने की (न यतन्ते) चेष्टा नहीं करते । (ते) वे (देवानां व्रतानि) विद्वानों के कार्यों का (न मिनन्ति) नाश नहीं करते । और वे (वसुभिः) धनों द्वारा (यादमानाः) यत्नवान् होते हुए (अमर्धन्तः) और हिंसा न करते हुए संगत होकर जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

भा०—हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवति ! विदुषि ! (तुष्टुवांसः) स्तुति करने हारे, (उषर्बुधः) प्रभात वेलामें जागने वाले (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, विद्वान् गृहस्थ, ब्रह्मचारी गण, (त्वा) तेरी (स्तोमैः) उत्तम स्तुत्य वचनों से (इडते) स्तुति करते हैं । हे (उषः) पापनाशिके ! तू (वाज-पत्नी) ऐश्वर्य और ज्ञान का पालन करने वाली (गवां नेत्री) गौओं के समान सौम्य वाणियों को प्रस्तुत करने वाली होकर (नः) हमारे बीच (उच्छ) गुणों और ज्ञान का प्रकाश कर । हे (सु-जाते) उत्तम माता पिता की उत्तम पुत्रि ! तू (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ गिनी जाकर (जरस्व) अपने प्रिय पुरुष के गुणों का वर्णन कर ।

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥२३॥

भा०—(एषा) वह (उषा) कान्तिमती, वधू (राधसः नेत्री) धन को प्राप्त कराने वाली और वह (सूनृतानां नेत्री) अन्नों उत्तम ज्ञानमय वचनों और सत्य विद्याओं को प्राप्त कराने वाली होकर (उच्छन्ती) स्वयं उत्तम गुणों का प्रकाश करती हुई (वसिष्ठैः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारियों और सन्तान के उत्तम माता पिताओं द्वारा (रिभ्यते) स्तुति की जाती है, वह (अस्मे) हमारे (दीर्घ-श्रुतं) दीर्घ काल तक श्रवण किये जाने योग्य (रयिम्) ज्ञान ऐश्वर्य को (दधाना) धारण करने वाली हो। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखकारी साधनों से पालन करो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृच सूक्तम् ॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला (उप रुरुचे) पतिवत् सूर्य के समीप स्त्रीवत् शोभित होती है। वह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) समस्त जीव संसार को निद्रा से उठकर विचरने के लिये प्रेरित करती है। (समिधे) प्रकाश करने के लिये (अग्निः अभूत्) सूर्य रूप अग्नि प्रकट होता है, (मानुषाणां) मनुष्यों के लिये (तमांसि बाधमाना ज्योतींषि) अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाशों को (अकः) प्रकट करता है, उसी प्रकार वह परमेश्वरी शक्ति भी (युवतिः योषा न) युवति स्त्री के समान (विश्वं जीवं) समस्त विश्व को और समस्त जीव संसार

को (चरायै प्रसुवन्ती) नाना कर्म फलों के उपभोग के लिये उत्पन्न करती हुई (उप उ रुरुचे) सर्वत्र शोभा दे, (अग्निः) वह परमेश्वर अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप (समिधे) ज्ञान प्रकाश करने के लिये (अभूत्) हो। और वही (मानुषाणाम्) मनुष्यों के हृदय के (तमांसि) अज्ञानान्धकारों को (बाधमाना) दूर करता हुआ (ज्योतिः) वेदमय ज्ञानद्योतक प्रकाशों को (अकः) उपदेश करता है। (२) इसी प्रकार गृहपत्नी, युवति स्त्री जीव बालक को उसको कर्म भोग और स्वतः सुखप्राप्ति के लिये उत्पन्न करती है। 'अग्नि' रूप तेजस्वी विद्वान् विवाहाग्निवत् प्रज्वलित होता है, वह सब के अज्ञानों को दूर करने वाले विद्याप्रकाशों को प्रकट करता है।

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसन्दृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

भा०—(अह्नां नेत्री) उषा, प्रभात वेला जिस प्रकार दिनों की प्रारम्भक नायिका, (गवां माता) सूर्य की किरणों को अपने में से माता के समान पैदा करती है, वह (हिरण्य-वर्णा) सुवर्ण के समान चमकती हुई (सुदृशीक-सन्दृग्) आंखों को सब पदार्थ अच्छी प्रकार दिखला देती है, वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष होती हुई, (स-प्रथा) विस्तृत होकर (रुशद् वासः बिभ्रती) मानो चमकीला वस्त्र पहने (विश्वं शुक्रम् अश्वैत्) समस्त संसार को दीप्तियुक्त कर चमका देती और बढ़ती है उसी प्रकार परमेश्वरी शक्ति और नव वधू माता भी (अह्नां) न नाश होने वाले, नित्य, जीवों, न मरने योग्य बालक जीवों की (नेत्री) नायिका, प्राप्त कराने वाली, (गवां) लोकों, वाणियों और गौ आदि पशुओं की भी (माता) माता के समान पालन करने वाली। (सुदृशीक-संदृग्) दर्शनीय सम्यक् दृष्टि से युक्त, निष्पक्षपात, सौम्यनयनी, (हिरण्य-वर्णा) उज्ज्वल, हित रमणीय वर्ण वाली हो। वह (प्रतीची) प्रत्येक की दृष्टि में

पूजनीय, (रुशद्-वासः) उज्ज्वल वस्त्रादि को (बिभ्रती) धारण करती हुई, (सप्रथा) समान रूप से विख्यात होकर (उत्-अस्थात्) उत्तम स्थिति प्राप्त करे और (शुक्रम् अश्वैत्) शुद्धरूप, शुद्ध आचरण और वीर्योत्पन्न सन्तति की वृद्धि करे।

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम्।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) उषा, प्रभात वेला की सूर्य की कान्ति (रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) किरणों से विशेष प्रकाशित दिखाई देती है, वह (चित्रामघा विश्वम् अनु प्रभूता) समस्त विश्व में प्रकट होती, चित्र विचित्र वर्ण युक्त प्रकाशों से मानों पूज्य धन युक्त होती है। वह (सुभगा) उत्तम भद्रवर्ण युक्त होकर (देवानां चक्षुः) मनुष्यों की आंखों को (श्वेतं वहन्ती) श्वेत प्रकाश देती हुई, और (सुदृशीकम् श्वेतं अश्वम् नयन्ती) उत्तम दर्शनीय, श्वेत, व्यापक प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त कराती है उसी प्रकार (उषा) पति की कामना से युक्त नववधू, (सु भगा) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, सौभाग्यवती, (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सोम्य दृष्टि करती हुई और (श्वेतम्) शुद्ध चरित्रवान् (सु-दृशीकम्) उत्तम दर्शनीय, (अश्वम्) अश्ववत् सुदृढ़ शरीर वाले विद्यावेत्ता पुरुष के प्रति अपनी चक्षु को (नयन्ती) पहुंचाती हुई, उसे प्रेम से वरण करती हुई, (चित्रा-मघा) उत्तम नाना प्रकार के पूज्य धनों से युक्त और (रश्मिभिः व्यक्ता) किरण-कान्तियों से सुशोभित, (विश्वम् अनु प्रभूता) सबके समक्ष प्रकट होकर (अदर्शि) दीखे।

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि॥ ४॥

भा०—हे (मघोनि) ऐश्वर्य, धन की स्वामिनि राजशक्ते! हे विदुषि! तू (अन्ति-वामा) अपने समीप नाना प्रकार के भोग्य पदार्थों

और उत्तम ऐश्वर्यों को रखती हुई (अमित्रम् दूरे) शत्रु को दूर करती हुई (उच्छ) अपने आप चमक। तू (उर्वीं) बड़ी भूमि और विशाल (गव्यूतिम्) मार्ग को (नः) हमारे लिये (अभयं कृधि) भय से रहित कर। (द्वेषः यवय) हमारे में से द्वेष भावों और द्वेष करने वालों को दूर कर। (वसूनि आभर) नाना ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा, (गृणते) स्तुति, उपदेश करने वाले पुरुष को (राधः चोदय) ऐश्वर्य प्रदान कर। (२) इसी प्रकार स्त्री भी, समीप रहकर भोगने योग्य, एवं नाना धन समीप रखने वाली होने से 'अन्तिवामा', (अमित्रम्) स्नेहरहित पुरुष से दूर रहे, संसार के बड़े भारी मार्ग को भयरहित करे, द्वेष को दूर करे, धनों का संग्रह करे, उपदेष्टा विद्वान् को धन प्रदान करे।

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः॥ ५॥

भा०—हे (उषः देवि) प्रभात वेला के समान शुभगुणों से युक्त विदुषि! तू (श्रेष्ठेभिः) अति उत्तम किरणों के समान श्रेष्ठ गुणों से (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। तू (नः) हमें (आयुः प्रतिरन्ती) दीर्घ जीवन प्रदान करती हुई, और हे (विश्ववारे) विश्व अर्थात् हृदय में प्रविष्ट पतिद्वारा एकमात्र वरण करने योग्य! (नः) हमारी (इषं) अन्न और (गोमत् अश्वावत् रथवत् च) गौओं, अश्वों और रथों से समृद्ध (राधः) धन समृद्धि को (दधती) धारण करती हुई, स्वामिनी होकर (वि भाहि) विशेष रूप से चमक।

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः।
सास्मासु धारयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥२४॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति! हे (सुजाते) शुभ गुणों सहित, उत्तम जन्म वाली! हे (दिवः दुहितः) तेजस्वी सूर्यवत् विद्वान् और वीर पुरुष की पुत्रि! एवं पति की नाना

कामनाओं को पूर्ण करने हारि ! (वसिष्ठाः) उत्तम २ वसु, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, पिता जन (यां त्वा वर्धयन्ति) जिस तुझ को बढ़ाते हैं, तेरी मान, आदर, प्रतिष्ठा करते हैं (सा) वह तू (अस्मासु) हमारे बीच (ऋष्वं) बड़े भारी (बृहन्तं) महान् (रयिम्) ऐश्वर्य को (धाः) धारण कर और हममें भी धारण करा । हे विद्वान् लोगो ! (यूयम्) तुम लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[७८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति॑ के॒तव॑: प्रथ॒मा अ॑दृश्रन्नू॒र्ध्वा अ॑स्या अ॒ञ्जयो॒ वि श्र॑यन्ते ।
उषो॑ अ॒र्वाचा॑ बृह॒ता रथे॑न॒ ज्योति॑ष्मता वा॒मम॒स्मभ्यं॑ वक्षि ॥१॥

भा०—(अस्याः) उस उत्तम विदुषी स्त्री के (प्रथमाः केतवः) सर्वश्रेष्ठ ज्ञापक गुण रश्मिवत् (प्रति अदृश्रन्) प्रत्यक्ष दिखाई दें। (अस्याः) इसके (अञ्जयः) उत्तम गुण प्रकाशवत् (वि-श्रयन्ते) विविध प्रकार से प्रकट होते हैं। हे (उषः) कान्तिमति! उषा के समान सुन्दरि ! तू (ज्योतिष्मता) तेजस्वी, ज्ञानी (बृहता) बड़े (अर्वाचा) अश्व से जाने वाले (रथेन) रथ के समान दृढ़ एवं रम्य, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पति के साथ मिलकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वामम् वक्षि) उत्तम ऐश्वर्य, सुखादि धारण कर, हमें भी सुख प्रदान कर ।

प्रति॑ षीम॒ग्निर्ज॑रते॒ समि॑द्धः॒ प्रति॒ विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्गृ॒णन्त॑: ।
उ॒षा या॑ति॒ ज्योति॑षा॒ बाध॑माना॒ विश्वा॒ तमां॑सि दुरि॒ताप॑ दे॒वी ॥२॥

भा०—(उषा ज्योतिषा विश्वा तमांसि अप बाधमाना याति) उषा अर्थात् प्रभात की सौरी प्रभा जिस प्रकार प्रकाश से सब अन्धकारों को दूर करती हुई व्यापती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी स्त्री (ज्योतिषा)

अपने तेजःप्रभाव से (विश्वा दुरिता) सब प्रकार के दुःखों और दुष्ट आचारों को (अप बाधमाना) दूर करती हुई (याति) प्राप्त होती है। (समिद्धः अग्निः) प्रातः प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् (सीम् प्रति जरते) सब प्रकार से और सर्वत्र उपदेश करे, और (मतिभिः) ज्ञानों से युक्त (विप्रासः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष भी (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (प्रति जरन्ते) प्रश्न किये जाने पर उत्तर द्वारा उपदेश करते हैं।

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

भा०—(एताः त्याः) ये वे (विभातीः उषसः) चमकती उषाओं, प्रभातिक सूर्य की कान्तियों के सदृश उज्ज्वल, (ज्योतिः यच्छन्तीः) कान्ति प्रदान करती हुई नव-वधुएं (प्रति अदृश्रन्) दीखें। वे (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी (यज्ञम्) पूजनीय (अग्निम्) अग्रणी नायक को (अजीजनन्) अपने पीछे आता प्रकट करती हैं। (अजुष्टम्) न सेवन करने योग्य (तमः) शोक आदि दुःख (अपाचीनं अगात्) दूर चला जाता, अर्थात् उनके आने पर घर २ खुशियां विराजती हैं।

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम्।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमायमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान कान्तिमती (मघोनी) बड़ी ऐश्वर्य की स्वामिनी, सौभाग्यवती, सुभगा (अचेति) जानी जाती है। उसको (विभातीम्) विविध प्रकार से चमकती (उषसम्) प्रभात वेला के समान ही अनुरागवती को (विश्वे पश्यन्ति) सब देखते हैं। (यम्) जिसको (अश्वासः) बहुत विद्याओं में निष्णात जन अश्वों के समान उत्तम सहयोगी होकर सन्मार्ग पर लेजाते हैं उस (रथम्) रथवत् सुदृढ़ शरीर वाले, और (स्वधया) अपने आपको वा अपने सर्वस्व को

धारण करने वाली स्त्री के साथ (युज्यमानम्) योग प्राप्त करने वाले (रथम्) रमणकारी, पति को (आ अस्थात्) प्राप्त करे अपना आश्रय बनावे ।

प्रति॑ त्वा॒द्य सु॒मन॑सो बुधन्ता॒स्माका॑सो म॒घवा॑नो व॒यं च॑ ।
ति॒ल्वि॒ला॒यध्व॑मु॒षसो॒ विभा॒तीर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः॥५।२५

भा०—हे विदुषि ! (सु-मनसः) उत्तम चित्तवाले (अस्माकासः) हमारे सम्बन्धी जन और (मघ-वानः) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् और (वयं च) हम लोग सभी (अद्य) आज के दिन (त्वा प्रति बुधन्त) तेरे साथ उत्तम परिचय प्राप्त करें । हे (विभातीः उपसः) उज्ज्वल रूप से चमकने वाली प्रभात वेलाओं के समान कुलवधुओ ! आप लोग (तिल्विलायध्वम्) तिलों से सुशोभित भूमि के समान स्नेह की उत्पादक भूमि के समान होवो । (यूयं) आप सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखप्रद शान्तिजनक उपायों से पालन करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[७९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१॒षा आ॑वः प॒थ्या॒३ जना॑नां॒ पञ्च॑ क्षि॒तीर्मानु॑षीर्बो॒धय॑न्ती ।
सु॒स॒न्दृग्भि॑रु॒क्षभि॑र्भा॒नुम॑श्रे॒द्वि सूर्यो॒ रोद॑सी॒ चक्ष॑सावः ॥ १ ॥

भा०—(जनानां पथ्या) मनुष्यों को अपने प्रकाश से सत्पथ वतलाने वाली (उषा) प्रभात वेला के समान (पथ्या) धर्म-पथ वतलाने में हितकारिणी, और (पथ्या) संग आदि से रोग, शोकादि दूर करने वाली वधू (वि-आवः) विविध गुणों का प्रकाश करे । वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मनुष्यों के पांचों प्रकार के प्रजाजनों को ज्ञान बोध कराती हुई, (सु-सं-दृग्भिः) उत्तम सम्यग् दर्शन युक्त, (उक्षभिः) पुरुष-पुंगवों

द्वारा (भानुम् अश्रेत्) विशेष दीप्ति को धारण करे। और (सूर्यः) आकाश और भूमि को प्रकाश से सूर्य के समान पुरुष (रोदसी) माता पिता दोनों के कुलों को (चक्षसा) सम्यग् दृष्टि से, (वि-आवः) विशेष रूप से उज्ज्वल करता है।

व्य॑ञ्जते दि॒वो अन्ते॑ष्व॒क्तून्विशो॒ न यु॒क्ता उ॒षसो॑ यतन्ते।
सं ते॒ गाव॒स्तम॒ आ व॑र्तयन्ति॒ ज्योति॑र्यच्छन्ति सवि॒तेव॑ बा॒हू॥२॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (दिवः अन्तेषु) आकाश के प्रान्त भागों में (अक्तून् वि अञ्जते) रात्रि-भागों या प्रकाशों को प्रकट करती हैं उसी प्रकार (उषसः) कामनायुक्त नववधुएं (अन्तेषु) प्रान्त भागों में विद्यमान (विशः न) राजा की प्रजाओं के समान (दिवः अन्तेषु) दिन के अन्त में रात्रि के कालों में (अक्तून्) अपने विशेष उज्ज्वल गृह के दीपकों को प्रकाशित करती हैं। और (युक्ताः यतन्ते) नियुक्त भृत्यजनों के समान नववधुएं भी (युक्ताः) पति की आज्ञा में रहकर (यतन्ते) गृह-कार्य करती हैं। हे नववधू! जिस प्रकार (गावः तमः आवर्त्तयन्ति) किरणें अन्धकार को दूर कर देती हैं और (ज्योतिः यच्छन्ति) प्रकाश देती हैं, वे (सूर्यस्य बाहू इव) सूर्य की बाहुओं के समान होते हैं उसी प्रकार हे नववधू! (ते) तेरी (गावः) वाणियां भी (तमः सम् आ वर्त्तयन्ति) शोकादि दुःख को अच्छी प्रकार दूर करें और (ज्योतिः) प्रकाशवत् स्फूर्त्ति, उत्साह को प्रदान करें। हे (उषः) नववधू! तू भी (सविता इव) प्रजा-उत्पादक पति के समान ही होकर (बाहू) एक शरीर में दो बाहुओं के समान तुम दोनों मिल कर रहो।

अभू॑दु॒षा इन्द्र॑तमा म॒घोन्य॑जीजनत्सुवि॒ताय॒ श्रवां॑सि।
वि दि॒वो दे॒वी दु॑हि॒ता द॑धात्यङ्गि॑रस्तमा सु॒कृते॒ वसू॑नि॥३॥

भा०—यदि (उषा) उषा के समान कान्तिमती कन्या (इन्द्र-तमा)

अति अधिक ऐश्वर्यवती, रानी के समान सम्पन्न और (मघोनी) उत्तम धनैश्वर्य से युक्त (अभूत्) हो तो वह (सुविताय) और भी अधिक ऐश्वर्य प्राप्ति करने वा (सुविताय) जगत् का उत्तम कल्याण करने के लिये ही (श्रवांसि) नाना अन्न, यशों और धनों को (अजीजनत्) और भी उत्पन्न करे। वह (दिवः दुहिता) तेजस्वी सूर्य की पुत्रीवत् प्रभा के समान उज्ज्वल कान्तियुक्त (दिवः दुहिता) कामनावान् पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली वा (दिवः) व्यवहारों, व्यापारादि तथा ज्ञान विज्ञानों का दोहन करने वाली, वार्त्ताचतुर वा ज्ञानवती स्त्री (अंगिरस्तमा) अति विदुषी होकर भी (सुकृते) शुभ कर्म, पुण्यादि की वृद्धि के लिये ही (वसूनि) समस्त नाना ऐश्वर्यों को (दधाति) धारण करे।

तावदु॑षो॒ राधो॑ अ॒स्मभ्यं॑ रास्व॒ याव॑त्स्तो॒तृभ्यो॒ अर॑दो गृणा॒ना।
यां त्वा॑ ज॒ज्ञुर्वृ॑ष॒भस्या॒ रवे॑ण॒ वि दृ॒ळ्हस्य॒ दुरो॒ अद्रे॑रौर्णोः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार 'उषस्' अर्थात् अति कान्तियुक्त विद्युत् को (वृषभस्य रवेण) वर्षणशील मेघ के घोर गर्जन के साथ ही (जज्ञुः) जानते हैं, और वह (दृढस्य अद्रेः दुरः वि और्णोत्) दृढ़ मेघ या पर्वतादि के भी जलावरोधक मार्गों को खोल देती हैं उसी प्रकार हे विदुषि! वधू! (यां त्वा) जिस तुझको (वृषभस्य) उत्तम पुरुष के (रवेण) उपदेश या नाम शब्द से लोग (जज्ञुः) जान लेते हैं और जो वह तू (दृढस्य अद्रेः) दृढ़ 'अद्रि' अर्थात् पर्वतवत् विशाल भवन के (दुरः) नाना द्वारों को (वि और्णोः) उद्घाटन कर, तू बड़े गृहपति की स्वामिनी हो। और (यावत्) जितना तू (गृणाना) स्तुतियुक्त होकर (स्तोतृभ्यः अरदः) स्तोता, विद्वानों को देवे (तावत् राधः) उतना ही धन (अस्मभ्यं) हमें भी प्रदान कर। अर्थात् स्त्री विद्वानों और बन्धु बान्धवों का बराबर सत्कार किया करे।

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५।२६॥

भा०—हे विदुषि! सौभाग्यवति! तू (देवं-देवं) प्रत्येक विद्वान् पुरुष को (राधसे) प्रदान योग्य धन को (चोदयन्ती) स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति (सूनृता) उत्तम वचन देती, कहती हुई, (वि उच्छन्ती) विशेष गुणों को प्रकट करती हुई (नः सनये) हमें दान देने के लिये (धियः धाः) नाना लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प किया कर। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप लोग हमारी नाना उत्तम २ उपायों से सदा रक्षा किया करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

[८०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा॥१॥

भा०—जिस प्रकार (रजसी समन्ते) आकाश और भूमि के प्रान्त भागों तक (वि-वर्तयन्तीं) व्यापती हुई और (विश्वा भुवना आविः कृण्वतीं) समस्त पदार्थों को प्रकट करती हुई (प्रति उषसं) प्रत्येक प्रभात वेला को प्राप्त कर (विप्रासः) विद्वान् लोग (स्तोमेभिः गीर्भिः) स्तुतियुक्त मन्त्रों, सूक्तों और वाणियों से (अबुध्रन्) विशेष ज्ञान प्राप्त करते और अन्यों को ज्ञान प्रदान करते हैं उसी प्रकार (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारी वा पितावत् (प्रथमाः) प्रथम कोटि के, उत्तम, वा विस्तृत ज्ञान वाले (विप्रासः) विद्वान् पुरुष, (समन्ते) समीपस्थ (रजसी) मातृ-पितृ-पक्ष के बन्धुजनों को वा (समन्ते) अति समीपस्थ (रजसी) गर्भ में

प्राप्त शुक्र और रज दोनों के अंशों को (विवर्त्तयन्ती) विशेष या विविध रूपों में व्यापारयुक्त करती हुई और (विश्वा भुवनानि) सब गर्भगत भ्रूण के नाना रूपों को प्रकट करती हुई (उसे) सन्तान की इच्छुक माता को (प्रति) लक्ष्य कर (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों और व्यवहारों और (गीर्भिः) वेद वाणियों से (अबुध्रन्) उसको ज्ञान प्रदान करें, जिससे सन्तति का पोषण उत्तम और उस पर संस्कार भी उत्तम पड़ें। जो दशा गर्भग्रहण-समर्थ एवं पति-संगता उपात्तगर्भा युवति की होती है वही दशा ब्रह्म बीज को अपने में धारण करने वाली हिरण्य-गर्भा प्रकृति की होती है। इस मन्त्र में उस प्रकृति को 'उषा' कहा है। उस दशा से युक्त प्रकृति को वसिष्ठ विप्र, ब्रह्मचारी ऋषि गण वेद के नाना सूक्तों तथा मन्त्रों से जानते हैं। वह प्रकृति भी (समन्ते रजसी विवर्त्तयन्ती) संयुक्त दो सत् तत्व वा अविकृत प्रकृति और अविक्रिय ब्रह्म दोनों को (रजसी) राजसभाव, में (वि-वर्तयन्ती) विविध विकृतियों में बदलती हुई और (भुवनानि विश्वा आविष्कृण्वन्तीम्) समस्त लोकों को प्रकट करती हुई उसको जानते हैं।

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला, (ज्योतिषा तमः) प्रकाश से अन्धकार को दूर करती, (नव्यम् आयुः दधाना) सब प्राणियों को नया जीवन देती, जगाती, (अग्रे सूर्य के आगे आती फिर सूर्य, यज्ञ और यज्ञाग्नि को प्रबुद्ध कराती है उसी प्रकार (उषा स्या युवतिः) वह यह युवति, वधू (नव्यम् आयुः दधाना) अपनी नयी आयु धारण करती हुई (ज्योतिषा) अपनी कान्ति से (गूढ्वीतमः) गहरे शोक मोहादि को दूर करके (अबोधि) जागे और पति को जागृत करे। वह (अह्रयाणा) लज्जा वा निद्रा को त्यागकर (युवतिः) नवयुवति गृहिणी, (अग्रे एति)

आगे आवे (सूर्यम्) सूर्यवत् अपने पति को (प्राचिकितत) जगावे, (यज्ञम् अग्निम्) और बाद वही यज्ञ अर्थात् पूज्य देव परमेश्वर और अग्निहोत्र की अग्नि को भी जागृत करे।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑ती॒र्न॑ उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः। घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३।२७।५॥

भा०—(अश्वावतीः) उत्तम अश्वों अर्थात् विद्यादि में निष्णात उत्तम पुरुषों से युक्त, (गोमतीः) उत्तम वेदवाणियों से युक्त, (वीरवतीः) उत्तम पुत्रों से युक्त, (भद्राः) कल्याण देने वाली (उषासः) पति पुत्रादि को चाहने वाली देवियां (नः सदम् उच्छन्तु) हमें और हमारे घरों को सदा प्रकाशित करें। वे सदा (घृतं दुहानाः) घृतवत् स्नेह, जल आदि पुष्टिकारक पदार्थों की (दुहानाः) वृद्धि करती हुई स्वयं भी (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) सुख तृप्त, सन्तुष्ट, एवं हृष्ट पुष्ट होकर रहें। हे उत्तम देवियो ! (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप सब हमारी सदा उत्तम साधनों और शान्तिदायक यज्ञादि से रक्षा करें। इसी प्रकार राष्ट्र में सेनायें, शत्रुओं और दुष्टों को दग्ध करने से उषाएं है और प्रजाएं राजा की प्रिय होने से उषाएं हैं। वे अश्वगों, भूमि, वीर पुरुषों से युक्त, ऐश्वर्यवान् हो के तेज को बढ़ाती हुई सब प्रकार से प्रसन्न, तृप्त हों। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती। २ भुरिग्बृहती। ३ आर्षी बृहती। ४,६ आर्षी भुरिग् बृहती, निचृद् बृहती ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु॒१॒च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः।
अपो॒ महि॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान

प्रकाश से जगत् को पूर्ण करने वाली, प्रकाश की देने वाली उषा (आयती) आती हुई, और (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (प्रति अदर्शि उ) सब को स्पष्ट दिखाई देती है, वह (महि तमः) बड़े अन्धकार को (अपोच्यति उ) दूर करती है, और (चक्षसे) सब को दिखलाने के लिये (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है उसी प्रकार (सूनरी) उत्तम नायिका विदुषी स्त्री, (दिवः दुहिता) सब कामनाओं और व्यवहारों को पूर्ण, सफल करने वाली, (आयती) आती हुई, (उच्छन्ती) अपने गुणों को प्रकट करती हुई, (प्रति अदर्शि) प्रतिदिन दिखाई दे। वह (चक्षसे) सम्यग् दर्शन करने और अन्यों को उपदेश करने के लिये (महि तमः अपो च्यति) बहुत अन्धकार अज्ञान को दूर करे और (ज्योतिः कृणोति) ज्ञान प्रकाश का सम्पादन करे।

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अर्चिवत्) तेज से युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र रूप (सूर्यः) सूर्य भी (उस्रियाः सचा उत्सृजते) किरणों को एक साथ ऊपर फेंकता है, हे (उषः) उषा! (तव इत् सूर्यस्य उषि) तेरे और सूर्य के उषा काल में जिस प्रकार (भक्तेन सं गमेमहि) हम भजन करने योग्य प्रभु से संगति लाभ करें, उसी प्रकार हे (उषः) कान्तिमति, उत्तम विदुषि नववधु! जब (उत्-यत्) उगता हुआ (अर्चिवत्) अन्यों के आदर सत्कार योग्य (नक्षत्रम्) नक्षत्र के समान (नक्षत्रं) व्यापक राज्य के पालने में समर्थ बल हो और (सचा) साथ ही (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (उस्रियाः) उन्नतिशील प्रजाओं को किरणों के समान (उत्सृजते) उन्नति की ओर ले जाता है, तब (तव इत् वि-उषि, सूर्यस्य च वि-उषि) तेरी और तेरे पति तेजस्वी पुरुष की विशेष इच्छा और प्रताप होने पर (भक्तेन सं गमेमहि) हम उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यादि का लाभ करें।

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, हे (उषः) तेजस्विनि ! पापी पुरुषों को भस्म कर देने वाली ! हम लोग (जीराः) अति शीघ्रकारी होकर (त्वा प्रति) तुझे (अभुत्स्महि) ऐसा जानते हैं कि हे (वनन्वति) उत्तम सेव्य धन की स्वामिनि ! (या) जो तू (पुरु स्पार्हं) बहुत अधिक, चाहने योग्य ऐश्वर्य (वहसि) धारण करती है वह तू (रत्नं न) रमणीयवत् और (मयः) सुखकारी पदार्थ (दाशुषे) दान देने वाले के लिये ही (वहसि) धारण करती है।

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

भा०—(या) जो तू हे (देवि) दानशीले ! कमनीयकान्ते ! हे (महि) पूजनीये ! जिस प्रकार उषा (प्रख्यै) सब पदार्थों को बतलाने और (दृशे) देखने के लिये (स्वः उच्छन्ती) स्वयं प्रकट होती हुई, सूर्य को प्रकट कर देती है उसी प्रकार तू भी (उच्छन्ती) गुणों को प्रकाशित करती हुई (प्रख्यै) उत्तम ख्याति लाभ करने और (दृशे) दर्शन करने के लिये (मंहना) अपने पूज्य व्यवहार से ही (स्वः) आदित्यवत् तेजस्वी पुरुष, या पुत्र को भी (कृणोषि) उत्पन्न करती है। (रत्नभाजः) पुत्रादिरत्न को धारण करने वाली तुझ से ही हम (ईमहे) अन्नादि याचना करें और (वयम्) हम लोग (मातुः सूनवः न) माता के पुत्रों के समान (स्याम) तेरे कृपापात्र बने रहें।

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम्।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) पापों को जला देने हारी ! हे कान्तिमति विदुषि !

हे प्रभुशक्ते ! तू हमें (तत्) वह (चित्रम्) अद्भुत, सञ्चय योग्य, (राधः) ऐश्वर्य (आ भर) प्रदान कर (यत् दीर्घ-श्रुत्तमम्) जो सब से अधिक दीर्घ काल तक श्रवण करने योग्य हो। हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री उषावत् तेजस्वी पिता की कन्ये ! एवं तेजस्वी पुरुष की कामना पूर्ण करने हारी ! एवं दूर देश में विवाहिता होकर हितकारिणि ! (यत् ते मर्त्त-भोजनम्) जो तेरा मनुष्यों को पालन करने वाला सामर्थ्य है (तत्) वह तू हमें (रास्व) प्रदान कर, (भुनजामहै) हम उसी का भोग करें।

श्रवः॑ सूरिभ्यो॑ अमृतं॑ वसुत्वनं॒ वाजाँ॑ अस्मभ्यं॒ गोम॑तः।
चोदयित्री मघोनः॑ सूनृता॑वत्युषा उच्छ॒दप॒ स्रिधः॑ ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे (सूनृतावति) उत्तम ऋत ज्ञान और धन की स्वामिनि ! तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लिये (अमृतम्) कभी नाश न होने वाला, अमृतमय (श्रवः) श्रवणयोग्य ज्ञान और आयुप्रद अन्न तथा (वसुत्वनं) ऐश्वर्ययुक्त कीर्त्ति, और (गोमतः वाजान्) भूमिसम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (मघोनः) ऐश्वर्य वालों को भी (चोदयित्री) अपने अधीन चलाती हुई (स्रिधः) हिंसक दुष्टों को (अप उच्छत्) दूर कर। यहां प्रभुशक्ति का वर्णन स्पष्ट है। इति प्रथमो वर्गः ॥

[८२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९ निचृज्जगती । ३ आर्ची भुरिग् जगती । ४, ५, १० आर्षी विराड् जगती । ८ विराड् जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑वरुणा यु॒वम॑ध्व॒राय॑ नो वि॒शे जना॑य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छतम्।
दी॒र्घप्र॑यज्यु॒मति॒ यो व॑नु॒ष्यति॑ व॒यं ज॑येम॒ पृत॑नासु दू॒ढ्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, शत्रु के हनन करनेहारे ! हे (वरुण) वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ ! (युवम्) आप दोनों (अध्वराय)

हिंसा से रहित (नः) हमारे (विशे जनाय) प्रजाजन को (महि शर्म) बड़ा भारी सुख शरण (यच्छतम्) प्रदान करो। (दीर्घ-प्रयज्युम्) दीर्घ काल से उत्तम संगति वाले, एवं चिरकाल से कर, वृत्ति, आदि देने वाले पुरुष की (यः) जो अति (वनुष्यति) मर्यादा का अतिक्रमण करके हिंसा करे या उससे अपने अधिकार से अधिक मांगे उसको और (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि और दुष्ट कर्म करने वालों को (वयं) हम (पृतनासु) संग्रामों या मनुष्यों के बीच में (जयेम) विजय करें, उन्हें नीचा कर हम उनसे ऊंचे हों।

सम्राळ॒न्यः स्व॒राळ॒न्य उ॑च्यते वां म॒हान्ता॒विन्द्रा॒वरु॑णा म॒हाव॑सू ।
विश्वे॑ दे॒वासः॑ पर॒मे व्यो॑मनि॒ सं वा॒मोजो॑ वृषणा॒ सं बलं॑ दधुः ॥ २ ॥

भा०—इन्द्र और वरुण का स्वरूप स्वयं वेद कहता है। (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण दोनों (महान्तौ) गुणों और बलों में महान् सामर्थ्यवान् और दोनों (महावसू) बड़े भारी वसु अर्थात् धन और अधीन बसे प्रजा के स्वामी हैं। अर्थात् एक अपार धन का स्वामी है और दूसरा अनेक बसे प्रजाजनों का स्वामी है। एक के पास धनबल दूसरे के पास जनबल है अर्थात् एक कोशवान् और दूसरा दण्डवान्, एक अर्थपति दूसरा बलाध्यक्ष है। (वाम्) आप दोनों में से (अन्यः सम्राट्) एक तो 'सम्राट्' और (अन्यः स्वराट्) दूसरा 'स्वराट्' (उच्यते) कहलाता है। अच्छी प्रकार देदीप्यमान होने से सम्राट् और 'स्व' धन और 'स्व' अपने जन से राजावत् प्रकाशमान होने से 'स्वराट्' है। (वाम्) आप दोनों के (परमे) सर्वोत्कृष्ट (वि-ओमनि) विशेष रक्षण और प्रजा को तृप्त, सन्तुष्ट वा अनुरक्त कर देने के प्रधान पदाधिकार के अधीन रहते हुए (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, वीर और व्यवहारवान् मनुष्य (ओजः सं दधुः) अपना पराक्रम या तेज एक साथ संयोजित करें और (बलं सं दधुः) अपना बल एक साथ लगावें।

अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३॥

भा०—आप दोनों (अपां) प्राप्त अधीनस्थ प्रजाओं के यातायात के लिये (खानि) जलों के मार्गों के समान ही नाना मार्ग (अनु अतृन्तम्) उनके अनुकूल रूप से बनाते हो, और (दिवि) शासन और व्यवहार क्षेत्र में (प्रभुम्) अधिक सामर्थ्यवान् (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (ऐरयतम्) प्रेरित करते हो । (अस्य) इस (मायिनः) प्रज्ञावान् और शिल्पशक्ति के स्वामी के (मदे) प्रसन्न, तृप्त वा सन्तुष्ट रहने पर ही (इन्द्रा वरुणा) पूर्व कथित इन्द्र और वरुण, अर्थ और बल के अध्यक्ष जन (अपितः) अरक्षित प्रजाओं को भी (अपिन्वतम्) सींचते बढ़ाते और (धियः पिन्वतम्) नाना कर्मों और शिल्पों को भी सींचते, पुष्ट करते हैं ।

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रा वरुणा सुहवा हवामहे ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे (वरुण) शत्रु जनों और दुष्टों और विघ्नों को दूर हटाने वाले दोनों अध्यक्ष जनो ! (वह्नयः) नाना कार्यों को अपने ऊपर वहन करने वाले प्रधान तेजस्वी पुरुष (युत्सु) युद्धों और (पृतनासु) सेनाओं और मनुष्य प्रजाओं के बीच में (युवाम्) तुम दोनों को (हवन्ते) बुलाते हैं । और (मित-ज्ञवः) मित ज्ञान वाले वा ज्ञानी वा विनय से गोडे सिकोड़ कर बैठने वाले, सभ्य, वा परिमित, कदम बढ़ाने वाले जन (क्षेमस्य प्रसवे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिये (युवाम्) आप दोनों को ही याद करते हैं । (कारवः) क्रिया कुशल, शिल्पी जन और वेद मन्त्रों के द्रष्टा हम विद्वान् जन (उभयस्य वस्वः ईशाना) ऐहिक और पारमार्थिक वा चर और अचर

दोनों प्रकार के धन के स्वामी आप दोनों (सु-हवा) सुख से पुकारे जाने योग्य, शुभ नाम वाले, सुगृहीतनामधेय वा सुखदाताओं को (हवामहे) पुकारते हैं। आप दोनों को हम अपना प्रमुख बनावें।

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते॥५॥२॥

भा०—आधिदैविक दृष्टान्तों से इन्द्र वरुण का रहस्य। जिस प्रकार (मित्रः) प्राणवत् प्रिय, सबका मित्र सूर्य (वरुणं) आकाश को आच्छादन करने वाले मेघ को (क्षेमेण दुवस्यति) प्रजा के पालन-सामर्थ्य अन्न जलादि से युक्त करता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) प्रबल वायु (मरुद्भिः) मध्यस्थानीय अन्तरिक्षस्थ वायुओं से (शुभम् ईयते) जल को प्राप्त कराता है और इस प्रकार वे दोनों सूर्य और वायु या विद्युत् (मज्मना) अपने बल से (भुवनस्य इमा विश्वा जातानि) संसार के इन समस्त प्राणियों को (चक्रथुः) उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार (यत् इन्द्रा वरुणा) जो इन्द्र और वरुण ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष जन (मज्मना) अपने धन और सैन्य बल से (इमानि विश्वा जातानि) इन समस्त जनों को (चक्रथुः) अपने अधीन करते और सुखपूर्वक समृद्ध करते हैं, वे कैसे करते हैं ? (मित्रः) सबको मरने या नाश होने से बचाने वाला, सर्वस्नेही, न्यायाध्यक्ष ब्राह्मण वर्ग (वरुणं) दुष्टों के वारण करने वाले दण्डवान् पुरुष को (क्षेमेण) प्रजा के योग क्षेम या रक्षा या प्राप्त धन के सामर्थ्य से (दुवस्यति) युक्त करता है उसको प्रजा की रक्षा और अन्नादि से पालन का सर्वाधिकार सौंपता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) अति बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) वीर, शत्रुमारक सुभटों से युक्त होकर (शुभम् ईयते) सुशोभित पद को प्राप्त करता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम्।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ६

भा०—(अस्य वरुणस्य) इस 'वरुण' का (यत्) जो (ध्रुवम् स्वम्) स्थिर धन सम्पदा है उस (महे शुल्काय) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि करने और (त्विषे) तेज की वृद्धि करने के लिये (नु) भी 'इन्द्र और वरुण' दोनों ही (ओजः) बल और पराक्रम करते हैं। कैसा पराक्रम करते हैं कि—(अन्यः) एक तो (श्नथयन्तम् अजामिम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (आ अतिरत्) सब ओर से नाश करता है और (अन्यः) दूसरा (दभ्रेभिः) हिंसाकारी साधनों शस्त्रास्त्रों से (भूयसः प्र वृणोति) बहुत से शत्रुओं को आच्छादित करता, घेरता और उनको दूर से ही वारण करता है। अर्थात् एक का कर्म है आक्रमणकारी को दण्ड देना, दूसरे का कार्य है दूर से ही उसको वारण करना। 'आ अतिरत् इति इन्द्रः प्रवृणोति इति वरुणः। इति वेदोक्तनिर्वचनम्।'

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ७

भा०—हे (देवा) दानशील, हे तेजस्वी, हे विजय की कामना करने वाले (इन्द्रा-वरुणा) शत्रुहन्ता और विघ्ननिवारक अध्यक्ष जनो! आप दोनों (यस्य मर्तस्य अध्वरं) राष्ट्र या मनुष्य प्रजा वर्ग के 'अध्वर' अर्थात् हिंसा से रहित प्रजा पालन के कार्य या यज्ञ को (गच्छथः) जाते हो और (वीथः) जिसके यज्ञ की रक्षा करते हो (तम् मर्तम्) उस मनुष्य तक (न अंहः नशते) न पाप पहुंचता है (न दुरितानि) न बुरे, कष्टदायी फल प्राप्त होते हैं, (कुतः चन न तपः) न किसी से या किसी प्रकार उसे सन्ताप या पीड़ा होती है, (तं न परिह्वृतिः नशते) और न उसको किसी की कुटिल चाल ही सताती है।

अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ८

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारक श्रेष्ठ जनो!

हे (नरा) उत्तम नायको ! (यदि) यदि आप दोनों (मे जुजोषथः) मुझ से प्रेम करते हो तो (मे हवं श्रृणुतम्) मेरा वचन श्रवण करो। और (दैव्येन) देव, विद्वान् और वीर पुरुषों से बने और मनुष्यों के हितकारी (अवसा) रक्षा आदि सहित (अर्वाङ् आगतम्) हमारे समीप आओ। (युवोः) आप दोनों का (हि) निश्चय से (यत्) जो (सख्यम्) मित्रता और (मार्डीकम् आप्यम्) अति सुखकारी बन्धुता है आप दोनों उस मित्र और बन्धुता का हमें (नि यच्छतम्) प्रदान करो।

अस्माकमिन्द्रा वरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा। यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ९

भा०—हे (कृष्ट्योजसा इन्द्रावरुणा) 'कृष्टि' अर्थात् शत्रु के कर्षण, पीड़ा करने वाली सेनाओं, पराक्रम करने वाले इन्द्र और वरुण, शत्रुहन्ता और, शत्रुवारक अध्यक्षजनो ! आप दोनों (अस्माक भरे भरे) हमारे प्रत्येक संग्राम में (पुरोयोधा भवतम्) आगे रहकर लड़ने वाले होवे। (यत्) जो (नरः) मनुष्य (उभये) सबल और निर्बल दोनों ही (तोकस्य तनयस्य सातिषु) पुत्र पौत्र तक के सेवन करने योग्य स्थायी भूमि आदि सम्पदा को प्राप्त करने के निमित्त (स्पृधि) परस्पर वृद्धि में (वां हवन्ते) तुम दोनों को आश्रय रूप से प्राप्त करते हैं।

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः। अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे १०।३

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् जलप्रदाता, सूर्यवत् तेजस्वी (वरुणः) मेघवत् उदार, वरण करने योग्य, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्त्रण करने में कुशल पुरुष (अस्मे) हमें (महि द्युम्नं) बड़ा ऐश्वर्य और (सप्रथः शर्म) विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि (यच्छन्तु) प्रदान करें। ये सब (ऋत-वृधः) सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाने और उनके बल पर स्वयं बढ़ने वाले होकर (अदितेः) अखण्ड शासन

कर्त्ता, प्रजा के माता पिता एवं पुत्रवत् प्रिय पालक के (अवध्रं) न नाश होने वाले (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप का प्रदान करें। हम भी उसी (देवस्य) सर्वदाता (सवितुः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु की (श्लोकं) वाणी वेद तथा आज्ञा का (मनामहे) आदर से मान तथा मनन करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[८३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, ३, ६ विराड् जगती। २, ४, ६ निचृज्जगती। ५ आर्ची जगती। ७, ८, १० आर्षी जगती॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार प्राचा पूर्व दिशा से (आप्यं पश्यमानासः) 'आपः' जलों के आगमन के लक्षण देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि के कर्षणादि के इच्छुक (पृथु-पर्शवः) बड़े हल, फावड़े आदि लेकर भूमि खोदने के लिये जाते हैं उसी प्रकार हे (नरा) उत्तम नायक जनो ! (प्राचा) सम्मुख से परस्पर (आप्यं) बन्धुभाव वा प्राप्तव्य लक्ष्य को (पश्यमानासः) देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि के विजय की कामना करते हुए (पृथु-पर्शवः) बड़े २ परशु आदि शस्त्रास्त्र हाथ में लिये (ययुः) आगे बढ़ें। जिस प्रकार वायु और विद्युत् दोनों (वृत्रा हतम्) मेघस्थ जलों पर आघात करते हैं उसी प्रकार (युवां) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रुहनन और शत्रु वारण करने वालो ! आप दोनों (दासा) विनाशकारी और (आर्याणि) 'अरि' अर्थात् शत्रु-पक्ष के (वृत्रा) बढ़ते हुए शत्रु-सैन्यों को (हतम्) मारो और (दासा च) भृत्यादि तथा (आर्याणि) 'आर्य' स्वामी वा वैश्यों के उपयोगी (वृत्रा) नाना धनों को भी (हतम्) प्राप्त करो। हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! तुम

दोनों (सु-दासम्) उत्तम दानशील, धनी तथा उत्तम भृत्य आदि को भी (अवसा अवतम्) रक्षादि साधनों द्वारा रक्षा करो।

यत्रा नरः॑ समय॑न्ते कृतध्व॑जो यस्मि॑न्नाजा भव॑ति किं च॒न प्रि॒यम्।
यत्रा॒ भय॑न्ते॒ भुव॑ना स्व॒र्दृश॒स्तत्रा॑ न इन्द्रावरुणाधि॑ वोचतम् ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में (कृत-ध्वजः नरः) झण्डे हाथ में लिये नाना नायक जन (सम् अयन्त) एक साथ प्रयाण करते हैं और (यस्मिन् आजा) जिस संग्राम में (किं चन प्रियं भवति) शायद कुछ ही प्रिय होता हो अर्थात् (किं च प्रियं न भवति) कुछ भी प्रिय नहीं होता, (यत्र) जहां (स्वर्दृशः) सूर्यवत् तीव्र तीक्ष्ण दृष्टि वाले तेजस्वी पुरुष से (भुवना) समस्त लोक, प्राणी (भयन्ते) भय करते हैं (तत्र) ऐसे संग्राम के अवसरों में (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, वरुण नाम पदाधिकारी जन (नः अधि वोचतम्) हम लोगों के अध्यक्ष होकर आज्ञा, शासन आदि किया करें।

सं भूम्या॒ अन्ता॑ ध्व॒सि॒रा अ॑दृक्ष॒तेन्द्रा॑वरुणा दि॒वि घोष॒ आरु॑हत्।
अस्थु॒र्जना॑ना॒मुप॒ माम॒रात॑यो॒ऽर्वागव॑सा हवनश्रुता॒ ग॑तम् ॥३॥

भा०—जब (भूम्याः अन्ताः) भूमि के प्रान्त भाग (ध्वसिराः सम् अदृक्षन्त) सब नष्ट भ्रष्ट दिखाई देवें (दिवि घोषः आरुहत्) आकाश या पृथ्वी भर में बड़ा कोलाहल गूंज रहा हो और (अरातयः) शत्रु लोग (जनानाम् उप) राष्ट्रवासी मनुष्यों के पास तक और (माम् उप अस्थुः) मुझ प्रजा वर्ग तक आ पहुंचें ऐसी दशा में भी हे (इन्द्रा-वरुणा) शत्रु के नाशक और वारक जनो (हवन-श्रुता) आह्वान पुकार सुनने वाले आप दोनों दयार्द्र-भाव होकर (अवसा आगतम्) रक्षा-सामर्थ्य सहित प्राप्त होओ। अथवा—भूमि के अन्त-दिगन्त पराजित दीखें, आकाश भूमि भर में (घोषः) जयघोष उठे। (जनानाम् अरातयः) राष्ट्रवासी जनों में विद्यमान अराति, दुष्ट, दूसरों का लेकर न देने वाले अपराधी

लोग मेरे पास उपस्थित हों, पकड़ कर हाज़िर किये जावें, तब हे (हवन-श्रुता) जनता की पुकार, उनके वचनों का श्रवण करते हुए (अवसा) न्याय रक्षा द्वारा (अर्वाक् आ गतम्) आप दोनों सब के सन्मुख आओ।

इन्द्रा॑वरुणा व॒धना॑भिरप्र॒ति भे॒दं व॒न्वन्ता॒ प्र सु॒दास॑मावतम् ।
ब्रह्मा॑ण्येषां शृणु॒तं हवी॑मनि स॒त्या तृत्सू॑नामभवत्पु॒रोहि॑तिः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रु का हनन करने और वारण करने वाले वीर पुरुष वर्गो ! आप दोनों (वधनाभिः) शत्रु को दण्ड देने और नाश करने वाली नीतियों से और सेनाओं से (अप्रति) अप्रत्यक्ष रूप से (भेदं) शत्रु को छिन्न भिन्न और फूट फाट (वन्वन्ता) करते हुए वा (भेदं वन्वन्ता) राष्ट्र भेदकशत्रु को नाश करते हुए (सु-दासम्) शुभ दानशील, उत्तम भृत्यादि से युक्त राजा की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो। (हवीमनि) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने योग्य संग्राम में (एषां) इन विद्वान् प्रजाजनों के (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञान-वचनों को (शृणुतं) श्रवण करो। (तृत्सूनां) शत्रुओं को मार गिराने वाले इन वीर सैन्यों की और संशयोच्छेदी विद्वानों की (पुरोहितिः) सबसे आगे स्थिति और अग्रासन पदपर विराजना (सत्या अभवत्) सत्य, सफल और सज्जनों के लिये हितकारी हो।

इन्द्रा॑वरुणाव॒भ्या त॑पन्ति मा॒घान्य॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तयः ।
यु॒वं हि वस्व॑ उ॒भय॑स्य राज॒थोऽध॑ स्मा नोऽवतं॒ पार्ये॑ दि॒वि ॥५॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र, शत्रुहन्तः ऐश्वर्यवन् ! हे वरुण शत्रुओं के वारक एवं प्रजा द्वारा वरणीय ! (अर्यः) शत्रु के किये (अघानि) पापाचार और (वनुषाम्) हिंसक जनों या मांग कर ले लेने वालों में से भी (अरातयः) दूसरों का सर्वस्व या अधिकार हर कर न देने वाले जन ही (मा) मुझ राष्ट्र वासी जन को (अभि आ तपन्ति) सब ओर से सताया करते हैं। (युवं हि) आप दोनों निश्चय से (उभयस्य) मुझ प्रजाजन और मुझे सताने वाले (वस्वः) राष्ट्र में बसने वाले दोनों के

ऊपर (राजथः) राजावत् शासन करो (अध) इसलिये आप दोनों (पार्ये दिवि) पालन करने वाले शासन व्यवहार के पद पर स्थित होकर (नः अवतं स्म) हमारी रक्षा किया करो ।

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

भा०—(यत्र) जिन संग्रामों में (दशभिः राजभिः) दसों राजाओं वा तेजस्वी पुरुषों से (नि बाधितम्) अति पीड़ित (सुदासं) उत्तम दानशील पुरुष को (तृत्सुभिः) शत्रु को काट गिरा देने वाले वीर भटों के साथ (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो उन (आजिषु) युद्धों में (इन्द्रं च) ऐश्वर्यवान् और (वरुणं च) श्रेष्ठ (युवां) आप दोनों को (वस्वः सातये) धनैश्वर्यादि के लाभ के लिये (उभयासः) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के लोग (हवन्ते) पुकारते हैं, दोनों आप से न्याय देने की प्रार्थना करते हैं ।

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥ ७ ॥

भा०—(अयज्यवः) दान न देने वाले, परस्पर सत्संग देव-पूजा और संगति न करने वाले (दश राजानः) दस तेजस्वी पुरुष भी (सम् इताः) एक साथ आकर (सुदासम् न युयुधुः) उत्तम दानशील तथा उत्तम रीति से शत्रु का नाश करने में कुशल राजा के साथ युद्ध नहीं कर सकते। (अद्मसदाम्) एक समान अन्न के आश्रय पर स्थित (नृणाम्) मनुष्यों की (उपस्तुतिं) समीप २ बैठ कर की हुई प्रार्थना भी (सत्या) सत् फलजनक होती है। (एषाम्) इनके (देव-हूतिषु) विद्वान् वीरों को आह्वान करने योग्य अवसरों, यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर (देवाः) विद्वान् और वीर पुरुष (अभवन्) सहायक होते हैं ।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्। श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥

भा०—(परियत्ताय) सब तरफ से नियन्त्रित, (दाश-राज्ञे) दशों राजाओं के बीच प्रबल होकर विद्यमान (सुदासे) उत्तम दानशील राजा को हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् हे शत्रुवारणकारी मनुष्य वर्गो ! वा अध्यक्ष जनो ! (अशिक्षतम्) आप दोनों ज्ञान, बल प्रदान करो (यत्र) जिसके अधीन (श्वित्यञ्चः) श्विति अर्थात् उज्वल यश या समृद्धि को प्राप्त (कपर्दिनः) उत्तम जटाजूट वाले वा उत्तम धन सम्पन्न और (धीवन्तः) बुद्धिमान् और कर्मकुशल (तृत्सवः) शत्रु नाशकारी, संशयछेदी, त्रिविध ऐश्वर्यों के स्वामी लोग (नमसा) आदर पूर्वक अन्न और वज्र शस्त्रादि सहित (असपन्त) समवाय बनाकर रहते हैं। [कपर्दिनः—कपर्दः—जटा-जूटः अथवा कपर्दः धनम्। कौड़ी इत्युपलक्षणम्। तद्वन्तः] पैसे वाले। अर्थात् जिसके अधीन धनाढ्य, कीर्त्तिमान, समृद्ध, बुद्धिमान और वीर पुरुष सब एकत्र हो जायं उसी प्रकार उत्तम वृत्तिदाता, राजा 'इन्द्र वरुण' पदाध्यक्ष बलैश्वर्य दें। अध्यात्म में—देह में दश प्राण, दश इन्द्रियगण दश राजा हैं, वे दस स्थानों पर पृथक् विद्यमान हैं। परस्पर उनका कोई सीधा सम्बन्ध या संगत्ति नहीं होने से 'अयज्यु' हैं। एक ही साथ वे हमें प्राप्त (सम्-इताः) हैं। आत्मा 'सुदास' है प्राण अपान इन्द्र-वरुण हैं। सुखप्रद ज्ञान तन्तु गण तृत्सु हैं। वे सुखपूर्वक होने से 'कपर्दि' हैं। वे 'नमसा धिया' अन्न और बुद्धि के बल से आत्मा के अधीन रहते हैं।

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा। हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ९

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन् वा शत्रुहन्तः ! हे वरुण ! दुष्ट और दुष्ट स्वभावों को वारण करने हारे ! आप दोनों में से (अन्यः)

एक तो (समिथेषु) संग्राम और उपकारक कामों वा यज्ञों में (वृत्राणि जिघ्नते) बढ़ते, विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता है और (अन्यः) दूसरा विद्वान् आचार्य—(सदा व्रतानि अभि रक्षते) सदा व्रतों की रक्षा करता है। हम लोग (सुवृक्तिभिः) उत्तम, आदरपूर्वक वरण क्रियाओं और स्तुतियों से (वां हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं, अपनाते हैं और धन, मान आदि प्रदान करते हैं। हे इन्द्र ! हे वरुण ! सेना-सभाध्यक्षो ! (अस्मे) हमें आप दोनों (शर्म यच्छतम्) सुख प्रदान करो। 'सुवृक्तिः'—अत्र ककारोपजनश्छान्दसः ॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे १०।५

भा०—व्याख्या देखो सू० ८२। म० १० ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[८४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवन् हे 'वरुण' सर्वश्रेष्ठ ! (राजानौ वां) दीप्तियुक्त राजावत् शासन करने वाले आप दोनों को मैं (हव्येभिः नमोभिः) अन्नों और शस्त्रों तथा उत्तम वचनों और आदर युक्त विनय कार्यों से (ववृत्यां) वरण करता हूं। (विषु-रूपा घृताची) बहुत प्रकार की तेजस्विनी वा स्नेहयुक्त प्रजा (वां) आप दोनों को (बाह्वोः प्रदधाना) अपनी बाहुओं के समान शत्रुओं को बाधन या पीड़ा देने वाले प्रधान पदों पर स्थापित करती हुई, पुरुष को स्त्री के समान (परिजिगाति) सब प्रकार से प्राप्त होवे। जैसे स्त्री (वि-सु-रूपा)

विशेष सुन्दरी, (घृताची) घृताक्त, अंगप्रत्यंग स्नातानुलिप्त होकर पुरुष को (बाह्वोः प्रदधाना) अपने बाहुपाशों में लेती हुई उसे (त्मना) स्वयं आत्मा से (परि जिगाति) सब प्रकार अपनाती है उसी प्रकार से प्रजा भी अनुरक्त होकर उक्त इन्द्र-वरुण दोनों को बाहुवत् सैन्यादि के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर सर्वात्मना अपनावे । घृताचीबाहुविपुरूपादि पदानि श्लिष्टानि ।

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

भा०—(यौ) जो आप दोनों (अरज्जुभिः) विना रस्सियों के (सेतृभिः) बन्धन करने वाले राज नियमों और व्रत बन्धनों से (सिनीथः) बांध लेते हो (युवोः) उन आप दोनों का (राष्ट्रम्) राष्ट्र (बृहत्) बड़ा होकर (द्यौः) सूर्य के समान देदीप्यमान होकर (इन्वति) सुख समृद्धि से सब को प्रसन्न करता है । (वरुणस्य हेडः) श्रेष्ठ जन का हमारे प्रति अनादर या क्रोध का भाव (नः परि वृज्याः) हम से दूर रहे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष राजा वा सेनापति (नः) हम प्रजाजन के लिये (उरुं लोकं कृणवत्) रहने के लिये विशाल लोक करे, नाना भूमियों को बसने योग्य बनावे ।

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३॥

भा०—हे विद्वान्, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ और दुःखादि वारण करने वाले जनो ! आप दोनों (नः विदथेषु) हमारे गृहों में (चारुं यज्ञं कृतं) उत्तम यज्ञ सम्पादन करो । और (सूरिषु) विद्वानों के निमित्त (प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतम्) उत्तम २ धन प्रदान करो । (नः) हमें (देवजूतः रयिः) विद्वानों से उपदेश किया और उनके सेवन योग्य धनैश्वर्य (नः उपो

एतु) हमें सदा प्राप्त हो । आप दोनों (स्पार्हाभिः) चाहने योग्य उत्तम २ रक्षाओं द्वारा (प्र तिरेतम्) बढ़ाओ ।

अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रा वरुणा) हे ऐश्वर्यवन् ! हे वरण करने योग्य ! आप दोनों (अस्मे) हमें (पुरु-क्षुम्) बहुत से अन्नसम्पदा से युक्त और (वसुमन्तं) बहुत सुवर्णादि ऐश्वर्य से युक्त (विश्ववारं) सब से वरने योग्य सब कष्टों को दूर करने में समर्थ (रयिं) ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो । (यः) जो (आदित्यः) सूर्य के समान तेजस्वी और 'अदिति' अखण्ड शासन नीति में कुशल और 'अदिति' भूमिका पुत्रवत् प्रिय वा शासक होकर (अनृता) प्रजा के 'ऋत' अर्थात् वेद से विपरीत और असत्य व्यवहारों को (प्र मिनाति) नष्ट करता है वह (शूरः) शूरवीर पुरुष (अमिता वसूनि दयते) अमित धन-सम्पत्ति देता और उसकी रक्षा करता है ।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥६॥

भा०—(मे) मेरी (इयं गीः) यह वाणी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (अष्ट) लक्ष्य करके हो । वह (तूतुजाना) ज्ञान का बराबर प्रदान करती हुई (तनये तोके) पुत्र पौत्रादि तक को (प्र अवत्) प्राप्त हो । (वयम्) हम (सु-रत्नासः) शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए (देववीतिं गमेम) विद्वानों के ज्ञान प्रकाश, रक्षा और उनकी सत्कामना को (गमेम) प्राप्त करें । हे विद्वान् लोगो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम आशीर्वादों और सुखजनक उपायों से रक्षा करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[८५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! वरुण ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ जन ! मैं (इन्द्राय वरुणाय) इन्द्र और वरुण, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये (सोमं जुह्वत्) ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (वाम्) आप दोनों की (अरक्षसं मनीषाम्) दुष्ट पुरुषों के संग से रहित बुद्धि को (पुनीषे) पवित्र करूं। राजा और सेनापति को प्रजा पर्याप्त धन देकर उसके चित्त से प्रजा को लूटने खसोटने की राक्षसी प्रवृत्ति को दूर करे। (घृत-प्रतीकाम्) स्नेह से सब को उत्तम प्रतीत होने वाली (उषसं देवीं) शत्रु को दग्ध करने और विजय की कामना करने वाली उस मन की प्रज्ञा को मैं स्वच्छ करूं। (ता) वे दोनों (अभीके यामन्) युद्धप्रयाण काल में (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें, आधिदैविक पक्ष में इन्द्र वायु, वरुण जल इनको पवित्र करने के लिये मैं यजमान पुरुष 'सोम' ओषधि समूह को अग्नि में आहुति देकर, हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों की दुष्ट संग से रहित बुद्धि को पवित्र करूं। घृत से प्रदीप्त दाह करने वाली 'उषाः' अग्नि शिखा के समान उज्ज्वल करूं। आप दोनों (अभीके यामन् उरुष्यताम्) परस्पर समीप के प्रेम-विवाहबन्धन में बंधकर परस्पर की रक्षा करो।

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

भा०—(अत्र) इस (देव-हूये) मनुष्यों के परस्पर स्पर्धा और ललकार के अवसर रूप संग्राम में लोग (स्पर्धन्ते उ वा) परस्पर

स्पर्द्धा करते हैं तब (येषु ध्वजेषु) जिन ध्वजाओं पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती विजुलियों के समान हमारे शस्त्र पड़ते हैं हे (इन्द्रा वरुणा) शत्रुहन्तः हे शत्रुवारक ! (युवं) तुम दोनों (तान् अमित्रान्) उन शत्रुओं को (हतम्) मारो और (विषूचः पराचः शर्वा) विरुद्ध पक्ष के शत्रुओं को शत्रुहिंसक शस्त्रसेना से दूर मार भगा ।

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥३॥

भा०—(स्व-यशसः) अपने धनैश्वर्य के द्वारा यश प्राप्त करने वाली (देवीः) दानशील, (देवता) मानुष प्रजाएं (सदः सु) सभा-भवनों वा उत्तम २ पदों पर (इन्द्रं वरुणं धुः) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुष को अच्छी प्रकार मान-आदरपूर्वक स्थापित करें । उन दोनों में से (एकः) एक इन्द्र नाम अध्यक्ष (प्रविक्ताः) अच्छी प्रकार सुविभक्त (कृष्टीः धारयति) बल-वान् हलाकर्षित भूमियों को वृषभ या मेघ के समान प्रजाओं को धारण करता है और (अन्यः) दूसरा वरुण शत्रुवारक अध्यक्ष (अप्रतीनि वृत्राणि) अप्रत्यक्ष शत्रुओं को भी दण्डित करे । अर्थात् इन्द्र, वरुण दोनों में से एक का काम प्रजा को विभक्त कर शासनव्यवस्था करना और दूसरे का काम दुष्टों का दमन करना है । १. दीवानी, २. फौज़दारी विभाग ।

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुवितायु प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, अखण्ड राजनीति और भूमि के हितैषी जनो ! (यः) जो (होता) दानशील पुरुष (शवसा) अपने बल से तुम दोनों के प्रति (नमस्वान्) उत्तम अन्नादि सत्कार से युक्त होता है (सः) वह (सु-क्रतुः) शुभ कर्म करने हारा और (ऋतचित् अस्तु) सत्य ज्ञान और पुण्य ज्ञान को उपार्जन करने वाला हो । और जो (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (वां आववर्त्तत्) तुम दोनों को प्राप्त

होता है, वह (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (सुविताय इत् आत्) सुख प्राप्त करने में समर्थ (हविष्मान्) उत्तम अन्नसम्पन्न हो। इसी प्रकार जो आहुतिदाता ज्ञान और बल से अन्नवान् होकर उत्तम यज्ञ का कर्त्ता और (ऋत-चित्) वेद द्वारा यज्ञचयन करता है सूर्य, वायु और वेद से हविष्मान् हो उत्तम फल प्राप्त करने में समर्थ और यत्नशील होता है।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ५। ४॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[८६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ७ विराट् त्रिष्टुप्। ६ आर्षी त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम॥ १॥

भा०—वरुण परमेश्वर का स्वरूप। (अस्य महिना) इस के महान् सामर्थ्य से (जनूंषि) जन्म लेने वाले समस्त प्राणि वर्ग (धीरा) बुद्धि और कर्म द्वारा प्रेरित होते हैं। (यः) जो (चित्) पूजनीय (उर्वी रोदसी) विशाल सूर्य या आकाश और भूमि दोनों लोकों को (तस्तम्भ) थामे हुए हैं, वह ही (बृहन्तं) बड़े भारी (ऋष्वं) महान् (नाकम्) सुखस्वरूप परमानन्द को (प्र नुनुदे) प्रदान करता है, वही बड़े भारी सूर्य को भी चलाता है। वह ही (भूम नक्षत्रं च) बहुत से नक्षत्र गण को (पप्रथत्) विस्तृत करता है।

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम्॥२॥

भा०—(उत) और (स्वया तन्वा) मैं अपने इस देह से (तत्) उसकी (कदा) कब (संवेद) स्तुति करूं, उसके साथ साक्षात् संवाद करूं और (कदा नु) कब मैं (वरुणे अन्तः) उस वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के हृदय में भीतर, वरणीय पति के बीच वधू के समान (भुवानि) एक हो सकूंगा। वह प्रभु, नाथ (अहृणानः) मेरे प्रति अनादर वा कोप से रहित होकर (मे हव्यं) मेरे स्तुतिवचन भेंट को (किं जुषेत) क्यों-कर प्रेम से स्वीकार करेगा। और मैं (कदा) कब (सुमनाः) शुभ चित्त होकर उस (मृडीकं) परम सुखप्रद, दयालु आनन्दमय को (अभि ख्यम्) साक्षात् करूंगा।

पृ॒च्छे तदेनो॑ वरुण दि॒दृक्षूपो॑ एमि चिकि॒तुषो॒ वि॒पृच्छ॑म्।
स॒मा॒नमिन्मे॑ क॒वय॑श्चिदाहुर॒यं ह॒ तुभ्यं॒ वरु॑णो हृणीते ॥ ३ ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य! सर्वश्रेष्ठ प्रभो! मैं (दिदृक्षु) दर्शन करने का अभिलाषी होकर (तद् एनः पृच्छे) तुझ से वह पाप पूछता हूं जिसके कारण मैं यहां बंधा हूं। मैं (उप उ एमि) जिज्ञासु दर्शनाभिलाषी होकर तेरे समीप आया हूं। और मैं (चिकितुषः) ज्ञानी पुरुषों से भी (वि पृच्छम्) विविध प्रकार से पूछता रहा हूं। (कवयः चित् ये समानम् इत् आहुः) पूज्य विद्वान् गण सभी मुझे एक समान ही उपदेश करते रहे हैं कि निश्चय से (अयं वरुणः) यह वरुण, सर्वश्रेष्ठ प्रभु ही (तुभ्यं हृणीते) तुझ पर रुष्ट है, तेरा आदर नहीं करता।

किमाग॑ आस वरुण॒ ज्येष्ठं॒ यत्स्तो॒तारं॒ जिघां॑ससि॒ सखा॑यम्।
प्र तन्मे॑ वोचो दूळभ स्वधा॒वोऽव॑ त्वाने॒ना नम॑सा तु॒र इ॑याम् ॥४॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ! दुष्टों के वारण करने हारे प्रभो! (किम् आगः आस) वह क्या अपराध है? (यत्) जिसके कारण (ज्येष्ठं स्तोतारं) अपने बड़े से बड़े उत्तम स्तुतिकर्त्ता (सखायं) स्नेही मित्र को भी (जिघांससि) दण्ड सा देना चाहता है। हे (दूडभ) दुर्लभ!

हे न नाश होने हारे अविनाशिन् ! हे दूरभ ! सदा दूर २ विद्यमान ! हे अन्न-पते, जीवन के स्वामिन् ! (मे तत् प्रवोचः) मुझे वह उपाय बतला जिस-से (अनेनाः) निष्पाप होकर (नमसा) भक्तिभाव से विनीत होकर (तुरः) अति शीघ्र चलकर (त्वा अव इयाम्) तुझ तक पहुंच जाऊं । तुझे भली प्रकार जान जाऊं ।

अव॑ द्रु॒ग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा॒ नोऽव॒ या व॒यं च॑कृ॒मा त॒नूभि॑ः ।
अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम् ॥५॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! प्रकाशस्वरूप स्वामिन् ! प्रभो ! तू (नः) हमारे (पित्र्या) पालक माता पिता वा गुरुजनों के दोष के कारण प्राप्त हुए (द्रुग्धानि) तेरे प्रति किये द्रोह आदि अपराधों को (अव सृज) हम से दूर कर । और (वयं) जिन अपराधों को हम (तनूभिः चकृम) इन देहों से करते रहे हैं उनको भी (अव सृज) हम से दूर कर । (तायुं न पशु-तृपं) चोरी करने की नियत से पशु को घासादि खिलाने वाले सन्देह मात्र में बांध लिये गये चोर के समान बन्धन में बंधे मुझ (पशु-तृपं) अपने इन्द्रियरूप पशुओं को भोग विलासों से तृप्त करते हुए (तायुं) तेरे ऐश्वर्य को तेरे विना पूछे भोगने वाले चोरवत् मुझ (वसिष्ठं) अति उत्तम 'वसु' तुझमें ही वसने वाले तेरे भक्त को तू (दाम्नः वत्सं न) रस्से से बछड़े के समान दयालु पशुपालकवत् (अव सृज) मुझे बन्धन से मुक्त कर ।

न स स्वो दक्षो॑ वरुण॒ ध्रुति॒ः सा सुरा॑ म॒न्युर्वि॒भीद॑को॒ अचि॑त्तिः ।
अस्ति॒ ज्याया॒न्कनी॑यस उपा॒रे स्वप्न॒श्चनेदनृ॑तस्य प्रयो॒ता ॥६॥

भा०—हे (वरुण) न्यायानुसार सुख दुःख, ऐश्वर्य-अनैश्वर्यादि के विभाजक ! न्यायकारिन् ! प्रभो ! (अनृतस्य) 'ऋत' अर्थात् सत्य, ज्ञानमय, विवेकरहित, असत्य और अविवेकमय दशा को (प्रयोता) ला

देने वाला (सः स्वः दक्षः न) केवल वह अपना कर्म ही नहीं है प्रत्युत और बहुत से कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जीव सत्य सुखों से रहित अनृत, पाप दुःखादि मार्ग में जाता है। वे कारण कौन २ से हैं ? जैसे (१) अपने किये काम तो हैं ही, या (सः स्वः दक्षः) वह स्वयं स्वस्वरूप कर्मकर्त्ता आत्मा। (२) (सा ध्रुतिः सुरा) वह द्रुतगति से जाने वाले जल के समान आत्मा की 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने की ध्रुति प्रवृत्ति अर्थात् रजोगुणी काम भी एक कारण है। (३) (विभीदकः मन्युः) वह मन्यु, क्रोध जिससे सब प्राणि भय खाते हैं वह भी एक कारण है। (४) (अचित्तिः) चेतना, ज्ञान का न रहना, मोह भी एक कारण है। (५) (कनीयसः उप-आरे) छोटे, अल्पशक्ति वाले जीव के समीप (स्वप्नः चन इत्) अज्ञान में सोते के समान (ज्यायान् अस्ति) बड़ा भी अज्ञानी ही रहता है वह भी उसका बड़ा माता पिता, भाई बन्धु आदि भी स्वयं अज्ञान वा पाप में मूढ़ रहने से दूसरे को मार्ग दिखाने में असमर्थ होता, उसके साथ २ छोटा भी संग दोष से उसी ओर जाता है। कोई भी (अनृतस्य प्रयोता न) असत्य, अज्ञान को दूर करने वाला नहीं होता। अथवा—(अनृतस्य प्रयोता) अज्ञान पापादि का दूर करने वाला (नः सः स्वो दक्षः) न अपना कोई कुशल बन्धु, जन या कर्म है, (न सा ध्रुतिः) न वह दृढ़ता, स्थिरता है कि मैं पाप में न गिरूं, (न सुरा) न वह उत्तम प्रवृत्ति है जो पाप से परे रक्खे, (न मन्युः) न ज्ञान है, (न विभीदकः) न कोई असत्य से भय दिलाने वाला प्रत्यक्ष कारण है, तो है क्या ? केवल (अचित्तिः) अज्ञान ही है। और हे प्रभो ! अब केवल एक सहारा है वह तो (कनीयसः उप आरे) इस छोटे से अल्प शक्ति जीव के समीप (स्वप्नः = सु-अप्नः) उत्तम रूपवान्, कर्मवान् (ज्यायान्) ज्येष्ठ भाई के समान एकमात्र महान् तू परमेश्वर (इत् अस्ति) ही है जो (अनृतस्य प्रयोता) उसके इस सत्य रहित अविवेक को दूर भगाने में समर्थ है।

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

भा०—(अहं) मैं (अनागाः) पाप से रहित होकर (भूर्णये) पालक (देवाय) सर्व सुखदाता, सर्व प्रकाशक परमेश्वर के लिये (मीढुषः दासः न) सर्वदाता स्वामी के दास के समान (अरं कराणि) बहुत कुछ सेवा करूं। वह (देवः) दानशील प्रकाशस्वरूप प्रभु (अर्यः) सब का स्वामी (अचितः) अज्ञानी जनों को (अचेतयत्) सदा ज्ञान प्रदान करता और वह (कवि-तरः) सब से अधिक विद्वान् होकर (गृत्सं) अपने स्तुतिकर्त्ता भक्त को (राये जुनाति) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग पर ले जाता है।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥

भा०—हे (वरुण) सब कष्टों को वारण करने हारे! हे (स्वधावः) सब जीवों के स्वामिन्! हे अन्नपते! (अयं सः स्तोमः) यह वह स्तुति वचनादि सब (तुभ्यम्) तेरी ही स्तुति के लिये (हृदि चित् उप-श्रितः अस्तु) हृदय में पूजार्थ स्थिर रहे। वह (नः क्षेमे शं उ अस्तु) हमारे धन प्राप्ति काल में तुझे शान्तिदायक ही हो। हे (सदा यूयं नः पात स्वस्तिभिः) विद्वान् जनो! आप लोग हमें सदा उत्तम आशीर्वचनों और सुखोपायों से रक्षा किया करो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[८७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप्। ४, ६, ७ त्रिष्टुप्॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम्।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः॥ १ ॥

भा०—(वरुणः) सर्वव्यापक परमेश्वर ही (सूर्याय) सूर्य के गमन करने के (पथः) मार्गों को (रदत्) बनाता है। और वही (समुद्रिया) समुद्र की ओर जाने वाले (नदीनां अर्णांसि) नदियों के जलों को बहाता है। (सर्गः न सृष्टः अर्वतीः ऋतायन्) बरसा हुआ जल नीची बहती नदियों को स्वभावतः जाता है उसी प्रकार (सर्गः) समस्त जगत् का बनाने वाला (सृष्टः) समस्त जगत् का स्वामी (अर्वतीः) अधीन समस्त महती शक्तियों और प्रकृति की विकृतियों को (ऋतायन्) ज्ञानपूर्वक सञ्चालित करता हुआ (अहभ्यः महीः अवनीः चकार) दिनों से रात्रियों को पृथक् करता है। अथवा वह (अहभ्यः) न नाश होने वाले जीवों के लिये (महीः अवनीः) बड़ी २ रक्षाकारिणी शक्तियों तथा बड़ी २ पालक अन्नादि द्वारा तृप्तिदायक भूमियों को कर्मफल के भोगार्थ (चकार) बनाता है।

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि॥२॥

भा०—हे (वरुण) सर्वव्यापक प्रभो! (वातः रजः) जिस प्रकार महान् वायु धूलि को (आ नवीनोत्) सब तरफ उड़ा देता, प्रेरित करता है। उसी प्रकार (वातः) बलशाली, गतिमान् (ते आत्मा) तेरा व्यापक सामर्थ्य ही (रजः) ब्रह्माण्डों में फैले धूलि कणवत् समस्त लोकों को (आ नवीनोत्) सब ओर संञ्चालित करता है। इसी प्रकार (ते आत्मा वातः) तेरा आत्मा जीव भूत प्राण वायु देह में (रजः आ नवीनोत्) रक्तप्रवाह को सब ओर प्रेरित करता है। (यवसे पशुः न ससवान् भूर्णिः) घास, भूसा आदि पर पलने वाला पशु जिस प्रकार अन्नादि से लादा जाकर स्वामी के भरण पोषण करने में समर्थ होता है उसी प्रकार यह (वातः) वायु वा (ते आत्मा) तेरा महान् सामर्थ्य ही (ससवान्) अन्नादि भोग्य ऐश्वर्य से समृद्ध होकर

(भूर्णिः) समस्त विश्व का भरण पोषण करने में समर्थ होता है। (इमे बृहती मही रोदसी अन्तः) इन बड़ी, विशाल, सुख देने वाले आकाश-भूमि या सूर्य-भूमि दोनों के बीच में (ते) तेरे (विश्वा) समस्त (प्रियाणि) प्रिय लगने वाले (धाम) तेज और विश्व को धारण करने वाले वा जीवों के आधारभूत लोक वा नाना सामर्थ्य विद्यमान हैं।

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म॥ ३॥

भा०—(वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) जिस प्रकार दुष्टों के निवारक राजा के 'स्पश्'—गुप्तचर सिपाही उत्तम अभिप्रायवान् होकर (उभे सु-मेके पश्यन्ति) ऊपर से देखने में अच्छे दोनों ही प्रकार के अच्छे और बुरे शास्य शासक वर्गों को देखते हैं इसी प्रकार (ये) जो (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान को (इषयन्त) अन्नवत् चाहना करते और औरों को अन्नवत् प्रदान करना चाहते हैं वे (ऋतावानः) सत्य ज्ञानमय वा वेदमय तप का सेवन करते हुए, (यज्ञ-धीराः) यज्ञ, त्यागयुक्त कर्म को करते और उसका अन्यों को उपदेश करते हुए वा, 'यज्ञ', परमोपास्य प्रभु की ओर अपनी बुद्धि और मन को प्रेरते और उसी को सर्वात्मना धारण करते हुए, (वरुणस्य स्पशः) उस प्रभु के मानो सिपाहियों के समान उसकी बनाई सृष्टि और उसके नियम व्यवस्थाओं का साक्षात् करने वाले, वा उस प्रभु का सदा हुक्म बजानें में तत्पर प्रभु के सेवक, (स्मदिष्टाः) उत्तम आचारवान्, एक साथ समान इष्ट, याग वा समान एक साथ उत्तम लक्ष्य रख कर कार्य करने वाले होकर (उभे) दोनों इन (सु-मेके) सुखप्रद मेघादि से युक्त (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान (सुमेके) शुभ वीर्यसेचन में समर्थ उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता को ही सृष्टि का कारण यथावत् (परि पश्यन्ति) देखते हैं।

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥

भा०—(मे मेधिराय) मुझ बुद्धिमान् पुरुष को (वरुणः) सर्व वरणीय श्रेष्ठ प्रभु (उवाच) उपदेश करता है कि (अघ्न्या) कभी नाश न होने वाली, परमेश्वरी या प्रकृति शक्ति (त्रिः सप्त नाम) तीन, सात अर्थात् २१ स्वरूपों को (बिभर्त्ति) धारण करती है । (विप्रः विद्वान्) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् पुरुष (उपराय) समीप स्थित (युगाय) मनोयोग से विद्या ग्रहण करने वाले शिष्य को (शिक्षन्) उपदेश देता हुआ (पदस्य) परमप्राप्य ब्रह्म पद के (गुह्या न) परम रहस्यों का रहस्य वार्तो के समान ही (वोचत्) उपदेश करे ।

'त्रिः-सप्त नाम'–ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के २१ स्वरूप 'ये त्रिषप्ताः०' (अथर्व० १ । १ । १ ॥) इस मन्त्र के भाष्य में स्पष्ट कहे हैं । पञ्च-तन्मात्रा, पञ्च, स्थूलभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन । यद्वा, यहां त्रिः । सप्त । दो पद पृथक् रहें । अतः—इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति, महि विश्रुति एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ यजु० ८ । ४२ ॥ वेद ने ये १० नाम अघ्न्या के कहे हैं । यहां वे ही (त्रिः = ३ + सप्त ७ = १०) नाम अभीष्ट हैं । 'त्रि' इत्यस्य प्रथमैकवचने त्रिः॥ अथवा सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने सुः । त्रिः त्रयः, सप्त च मिलित्वा दश नामानि ।

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥५॥

भा०—(तिस्रः द्यावः) तीनों लोक, भूमि, अन्तरिक्ष और उच्चतम आकाश में (अस्मिन् अन्तः निहिताः) इस सब के आच्छादक वरुण परमेश्वर के ही भीतर स्थित हैं । और (तिस्रः भूमीः) तीनों भूमियां (उपराः) एक दूसरे के समीप स्थित (षड् विधानाः) छः छः प्रकार के ऋतु आदि

विधानों सहित वे भी उसके ही भीतर हैं। (गृत्सः) समस्त ज्ञान का उपदेष्टा (राजा) सर्वोपरि शासक (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब से गुरु रूप से वरण करने योग्य प्रभु ही (दिवि) आकाश में (प्रेङ्खं) उत्तम गति से जाने वाले (एतं) उस (हिरण्मयम्) तेजोमय सूर्य को, अन्तरिक्ष में उत्तम गतिमान्, हित, रमणीय रूप वायु को और भूमि तेजोमय अग्नि को (शुभे) दीप्ति, जल और कान्ति के लिये (चक्रे) बनाता है। कं पादपूरणः।

अव॒ सिन्धुं॒ वरु॑णो॒ द्यौरि॑व स्थाद्द्र॒प्सो न श्वे॒तो मृ॒गस्तुवि॑ष्मान्।
ग॒म्भी॒रशं॑सो॒ रज॑सो वि॒मानः॑ सुपा॒रक्ष॑त्रः स॒तो अ॒स्य राजा॑ ॥६॥

भा०—(द्यौः इव सिन्धुं) सूर्य जिस प्रकार अकेला समस्त आकाश में व्यापता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी (द्यौः) तेजस्वरूप, (वरुणः) सर्वव्यापक होकर सिन्धुं अतिवेग से जाने वाले प्रकृति के बने जगत्-प्रवाह को (अव स्थात्) व्यवस्थित करता है। वह (द्रप्सः न श्वेतः) जल विन्दुवत् श्वेत, स्वच्छ एवं रसस्वरूप कान्तिमय है। वह (मृगः) सिंहवत् बलवान् वा, (मृगः) ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य और (मृगः) अति शुद्ध, पावन स्वरूप, (तुविष्मान्) अति बलशाली, सर्व शक्तिमान् है। वह (गंम्भीर-शंसः) गंभीर समुद्र के समान अगाध और प्रशंसा करने योग्य, वेदमय गम्भीर ज्ञान का उपदेष्टा, (रजसः विमानः) इस समस्त लोक समूह का विशेष निर्माता और ज्ञाता है, वह (सुपार-क्षत्रः) सुख से सर्वपालक बलैश्वर्यवान्, (अस्य सतः राजाः) इस सत्, व्यक्त संसार का राजावत् शासक है।

यो मृ॒ळया॑ति च॒क्रुषे॑ चि॒दागो॑ व॒यं स्या॑म॒ वरु॑णे॒ अना॑गाः।
अनु॑ व्र॒तान्यदि॑तेर्ऋ॒धन्तो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥९॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आगः चक्रुषे चित्) पाप, अपराध करने वाले के भले के लिये ही (मृडयाति) उस पर दया करता है,

उस (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ प्रभु के अधीन हम (अनागाः स्याम) निष्पाप होकर रहें। हम उस (अदितेः) अखण्ड शासक प्रभु के (व्रतानि अनु) व्रतों, नियमों के अनुकूल (ऋधन्तः) समृद्ध होते हैं। हे विद्वान् जनो! आप लोग (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमें उत्तम आशीर्वचनों से सदा पालन करो। इति नवमो वर्गः ॥

[८८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (ईम्) इस (अर्वाञ्चं) अभिमुख आये (यजत्रं) दानशील, आत्मसमर्पक और सत्संगति करने वाले पुरुष को (सहस्र-मघं) सहस्रों धनों से सम्पन्न; (वृषणं) बलवान्, मेघवत् उदार और (बृहन्तम् करते) बड़ा बना देता है उस (वरुणाय) सर्व-श्रेष्ठ, सब को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (मीढुषे) ऐश्वर्यों की प्रजाजनों पर मेघवत् निष्पक्षपात होकर वृष्टि करने वाले, सब के सेचक और वर्धक परमेश्वर के निमित्त (प्रेष्ठां) अति उत्तम, प्रिय (मतिं) स्तुति और बुद्धि का (प्र भरस्व) प्रयोग कर।

अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२॥

भा०—(अध नु) और मैं (अस्य) इस (अग्नेः) तेजोमय (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के विषय में (जगन्वान्) ज्ञान प्राप्त कर और उसकी शरण में प्राप्त होकर उसके (सं-दृशम्) सम्यक् दर्शन रूप (अनीकं) तेज को (मंसि) मनन करता हूं। (यद्) जिस प्रकार (अश्मन् अन्धः

वपुः दृशये निनीयात्) पत्थर या शिला, चक्की आदि में पिसा अन्न या कुटी ओषधि, या (अश्मन् अन्धः) मेघ के आधार पर उत्पन्न अन्न शरीर को उत्तम दर्शन योग्य बना देते हैं उसी प्रकार (यत्) जो (अधिपाः) सर्वो-परिपालक (स्वः) सुखकारी वा सूर्यवत् तेजस्वी है वह (अन्धः) अन्नवत् प्राणों का धारक होकर (दृशये) साक्षात् करने के लिये (मा) मुझे (वपुः) उत्तम रूप, शरीर आदि (निनीयात्) प्राप्त कराता है। अर्थात् प्रभु हमें शरीर भी इसीलिये देता है कि हम उससे साधना करके भगवान् के सुखमय, प्राणप्रद रूप को प्राप्त करने की साधना करें।

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्॥ ३॥

भा०—(अहं) मैं और (वरुणः च) सर्व श्रेष्ठ वरण करने योग्य स्वामी, दोनों दो मित्रों के समान वा पति-पत्नीवत् (यत् नावम् आ रुहाव) जब नाव पर चढ़ें (यत् समुद्रम् मध्यम् ईरयाव) और जब समुद्र के बीच उसको चलावें (यत् अधि अपां) जब जलों के ऊपर (स्नुभिः चराव) गमनशील यानों से विचरें तो (शुभे) अपनी शोभा और (कम्) सुख प्राप्त करने के लिये (प्रेङ्खे) झूले पर (प्रेङ्खयावहे) हम दोनों झूलें। शिष्य और गुरुभक्त और उपास्य दोनों वाणी या स्तुति रूप नौका पर चढ़ते हैं, आनन्द सागर की ओर बढ़ते हैं। (स्नुभिः) नाना साधनों से (अपां अधि) प्राणों के ऊपर वश करते हैं (प्रेङ्खे) परम उत्तम गन्तव्य पद पर शोभा व कल्याण के निमित्त उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः॥४॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य आचार्य (वसिष्ठं) अधीन

वस कर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, उत्तम शिष्य को (नावि) ज्ञान-सागर से पार उतारने वाली वेदमयी वाणी रूप नौका के बीच में (ह) अवश्य ही (आधात्) स्थापित करे। वह स्वयं (स्वपाः) उत्तम कर्मशील, सदाचारी होकर (महोभिः) बड़े २ गुणों से (वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम ब्रह्मचारी को वेद मन्त्रार्थों को यथार्थ रूप में देखने में समर्थ विद्वान् बना देवे। (विप्रः) विविध विद्याओं से शिष्य को पूर्ण करने वाला आचार्य (अन्हां सु-दिनत्वे) दिनों को शुभ, मङ्गलकारी बनाने के लिये (यात् द्यावा नु यात् उपसः नु) आये दिनों और आयी रातों में भी (स्तोतारं ततनन्) अध्ययनशील शिष्य को और अधिक विस्तृतज्ञानवान् करता रहे।

क्व१त्यानि॑ नौ॒ स॒ख्या ब॑भूवुः॒ सचा॑वहे॒ यद॑वृ॒कं पु॒रा चि॑त्।
बृ॒हन्तं॒ मानं॑ वरुण स्वधावः स॒हस्र॑द्वारं जगमा गृ॒हं ते॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय श्रेष्ठतम ! हे (स्वधावः) प्राणपते ! (नौ) हम दोनों के (त्यानि सख्यानि) वे नाना प्रकार के सख्य, मित्रता के भाव (क्व बभूवुः) कहां हुए, (यत्) जो हम दोनों (पुराचित्) मानों पूर्वकाल से (अवृकं) परस्पर चोरी का भाव न रखते हुए (सचावहे) परस्पर मिलकर रहें। हे (वरुण) वरण योग्य ! नाथ ! हे (स्वधावः) और अमृत के स्वामिन् ! हम (बृहन्तं) महान् (मानं) परिमाण वाले (सहस्रद्वारं) सहस्रों द्वार वाले (गृहं जगाम) घर को प्राप्त हों। भक्त-उपास्य का पतिपत्नीवत् सख्य प्रदर्शित है। यह जीवों के लिये जगत् बहुत भारी सहस्रों द्वारवाला प्रभु का बनाया गृह है, मुमुक्षु के लिये (मानं) ज्ञानमय महान् 'गृह', ग्रहण योग्य आश्रय, मोक्षपद प्रभु गृह है उसे प्राप्त करें। इसी प्रकार प्रजा के प्रति राजा भी पूर्व परिचित मित्रोंवत् वर्त्ते वे अव्याज, वृकाचार कुटिलतादि से रहित होकर विचरें, प्रजाएं राजा के सहस्रद्वार विशाल गृहवत् राष्ट्र को प्राप्त हों।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! राजन् ! तू (नित्यः) सदा का (आपिः) बन्धु (प्रियः) प्रिय (सन्) होकर हमें सदा प्राप्त है उस (त्वाम्) तेरे प्रति भी (ते सखा) तेरा मित्र यह जीव (आगांसि कृणवत्) नाना अपराध करता है । हे (यक्षिन्) यक्ष 'अर्थात्' पूजा करने वाले भक्त प्रजाजनों के स्वामिन् ! हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य का (एनस्वन्तः) पापी होकर (मा भुजेम) भोग न करें । तू (विप्रः) मेधावी गुरु के समान (स्तुवते) स्तुतिशील को (वरूथं यन्धि) वरण करने और दुःखों, अज्ञानों के दूर करने योग्य उत्तम गृह, सुख, ज्ञान और बल प्रदान कर ।

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥१०॥

भा०—परमेश्वर जीवों के कर्म बन्धन किस प्रकार काटता है ? हम लोग (आसु ध्रुवासु क्षितिषु) इन नाना धारण करने योग्य, सुव्यवस्थित, कर्म और भोग-भूमियों में (क्षियन्तः) निवास करते हुए वा (क्षियन्तः) ऐश्वर्ययुक्त वा क्षीण होते हुए कभी ऊर्ध्वगति और कभी नीच गति प्राप्त करते हुए, (अदितेः उपस्थात्) भूमि से जिस प्रकार (अवः वन्वानाः) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार (अदितेः उपस्थात् अवः अन्वानाः) सूर्य से कान्ति दीप्ति प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (अदितेः) अखण्ड स्वरूप परमेश्वर से हम (अवः) परम रक्षा, सुख, प्रेम (वन्वानाः) प्राप्त करते रहें । तब वह (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (अस्मत् पाशं) हम से उस पाश को (वि मुमोचत्) छुड़ाता है । (नः यूयं सदा स्वस्तिभिः पात) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमारी सदा उत्तम सत् उपायों से रक्षा किया करो । इति दशमो वर्गः ॥

[८६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१—४ आर्षी गायत्री । ५ पाद-
निचृज्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (वरुण) सब दुखों को दूर करने हारे ! सब से उत्तम पद के लिये वरने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ ! हे (राजन्) देदीप्यमान ! हे (सुक्षत्र) उत्तम धन, ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न ! (अहम्) मैं (मृन्मयं गृहम्) मट्टी के बने गृह के तुल्य कच्चे इस (मृन्मयं = मृत्-मयं) मृत्यु से आक्रान्त शव तुल्य, अवश्य ग्रहण करने योग्य वा आत्मा को पकड़े हुए इस देह को (मोषु गमम्) अब कभी न प्राप्त करूं तो अच्छा हो । हे प्रभो ! (मृड) सब को सुखी करने हारे दयालो ! तू (मृडय) सुखी कर, हम पर दया कर । प्रजा भी राजा से यही चाहे कि वे मट्टी के घरों में न रह कर पक्के मकानों में रहें और समृद्ध और सुखी हों ।

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥२॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् शान्तिदायक पुरुषों तथा पर्वतवत् दृढ़ शस्त्रधर पुरुषों के स्वामिन् ! प्रभो ! राजन् ! (यत्) जब भी मैं (प्रस्फुरन् इव) तड़पता हुआ सा, (दृतिः न ध्मातः) मशक या कुप्पे के समान फूला हुआ, विताड़ित फूंक से भरे चर्मवाद्य के समान रोता गाता हुआ (एमि) तेरी शरण आऊं, हे (सुक्षत्र) सुबल ! सुधन ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, तू दया कर ।

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥३॥

भा०—हे (समह) उत्तम पूज्य ! ऐश्वर्यवन् ! (दीनता) दीन होने के कारण मैं (क्रत्वः) सत् कर्म और सत् ज्ञान के (प्रतीपं) बिलकुल विपरीत चला गया हूं और (शुचे) बड़ा शोक करता हूं । अथवा हे

(शुचे) शुद्ध पवित्र स्वरूप प्रभो ! (दीनता) दैन्यभाव (समह = सम्-अह) अवश्य (क्रत्वः प्रतीपं जगम) कर्मशील या उद्योगी पुरुष या उद्योग से विपरीत दिशा में जाता है । हे (सु-क्षत्र) उत्तम धन और बलशालिन् ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, हम पर कृपा कर ।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुक्षत्र) उत्तम बल ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जलों के बीच में खड़े (जरितारं) रोगादि से जीर्ण होते हुए पुरुष को जैसे (तृष्णा अविदत्) प्यास सताती है उसी प्रकार हे प्रभो ! (जरितारं) तेरी स्तुति करने वाले (अपां मध्ये तस्थिवांसं) आप्त पुरुषों के बीच या प्राणों के बीच में रहने वाले मुझ को भी (तृष्णा) भूख प्यास के समान विषय भोगादि की लालसा प्राप्त है, हे प्रभो ! हे (मृड, मृडय) सब को सुखी करने हारे ! तू मुझे सुखी कर ।

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि । अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ।५।११।५॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! (दैव्ये जने) विद्वान् सत्पुरुष के हितकारी जन के ऊपर या उनके बीच रहकर हम (मनुष्याः) मनुष्य (यत् किं च) जो कुछ भी हम (इदं अभिद्रोहं) इस प्रकार का द्रोह आदि (चरामसि) करते हैं और (अचित्ती) विना ज्ञान के (यत् तव धर्मा युयोपिम) जो तेरे बनाये धर्मों या नियमों को उल्लंघन करते हैं, हे (देव) प्रभो ! राजन् ! (तस्माद् एनसः) उस अपराध या पाप से (नः मा रीरिषः) हमें मत दुःखित कर । ऐसी व्यवस्था कर कि हम उससे भविष्य में दुःख न पावें । अर्थात् हम में से द्रोह के भाव और उपेक्षा, अज्ञान को दूरकर । जिससे न पाप हों न दण्ड मिले

इत्येकादशो वर्गः ॥

[९०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—४ वायुः । ५—७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! इन्द्र ! हे वायुवत् बलवान् वीर सेनापते ! (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, ईमानदार (वीरया = वीराः) वीर (मधुमन्तः) बलवान्, मधुरप्रकृति, (सुतासः) अपने योग्य पदों पर अभिषिक्त पुरुष (अध्वर्युभिः) प्रजा की हिंसा पीड़ा न चाहने वाले सोम्यवृत्ति विद्वानों सहित (वाम् प्र दद्रिरे) तुम दोनों को प्राप्त होते हैं। हे (वायो) वायुवत् सर्वोपकारिन् बलवन् ! तू (नियुतः) नियुक्त वा सहस्रों अश्वादि सेनाओं को (वह) सन्मार्ग पर ले चल, और (सुतस्य अन्धसः) ऐश्वर्य से समृद्ध, उत्पन्न अन्न को भी (याहि) प्राप्त कर और (मदाय) तृप्ति के लिये उसका (पिब) उपभोग कर ॥

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन् ! हे विद्वन् ! (यः) जो (शुचि-पाः) शुद्ध आचार, शुद्ध व्यवहार का पालन करने वाला पुरुष (ते ईशानाय) तुझ सर्वैश्वर्यवान् का (शुचिं सोमं) शुद्ध अन्नादि, शुद्ध ऐश्वर्य, और (प्रहुतिं) सर्वोत्तम दान (आनट्) प्राप्त कराता है, (तं) उसको तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (प्रशस्तं कृणोषि) प्रशस्त, कर्मकुशल एवं उत्तम मान-योग्य बना देता है और वह (जातः-जातः) उत्तम रूप प्रकट हो २ कर (अस्य) इस प्रजाजन के बीच (वाजी) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् (जायते) हो जाता है।

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके॥३॥

भा०—(इमे रोदसी) आकाश और भूमि के समान माता और पिता, राजसभा और प्रजासभा दोनों मिलकर (राये) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (नु) ही (यं) जिसको (जज्ञतुः) उत्पन्न करते और (यं देवम्) जिस विजिगीषु को (धिषणा देवी) सर्वोपरि विद्यमान विद्वत्सभा भी (राये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (धाति) स्थापित करती है उस (वायुं) शत्रुओं को प्रबल वायुवत् मूल से उखाड़ देने में समर्थ पुरुष को (स्वाः) उसके अपनी (नियुतः) लक्षों सेनाएं और प्रजाएं (सश्चत) प्राप्त होती हैं (उत) और उसी (श्वेतं) समृद्ध, एवं शुद्धाचारवान् को (निरे के) सर्वातिशायी पद पर (वसु-धितिम्) ऐश्वर्य की ख्याति रखने वाला जान कर प्राप्त होते हैं।

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः॥ ४॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) उषाएं, प्रभात वेलाएं वा सूर्य की दाहक कान्तियें (सु-दिनाः उच्छन्) उत्तम दिन वाली होकर प्रकट होती हैं, (अरि-प्राः) पाप रहित (दीध्यानाः) देदीप्यमान, (उरु ज्योतिः विविदुः) बहुत बड़े विशाल प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त करती (उशिजः) कान्तियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम् विवव्रुः) रश्मियों के बड़े धन को फैलाती है (अनु प्रदिवः आपः सस्रुः) अनन्तर आकाश से मेघ जल बरसते हैं इसी प्रकार (उषसः) उषावत् जीवन के प्रारम्भ भाग में वर्त्तमान नर नारीगण (सु-दिना) शुभ दिन युक्त होकर (उच्छन्) अपने गुण प्रकट करें। और वे (दीध्यानाः) ईश्वर का ध्यान करते हुए (उरु ज्योतिः) बड़ी भारी ज्ञानमय ज्योति को (विविदुः) प्राप्त करें। वे (उशिजः) कामनावान् वा प्रीतियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम्) वेदवाणी के धन को

(विवव्रुः) विविध प्रकार से विवरण करें, उसकी व्याख्या और रहस्योद्घाटन करें। (तेषाम् अनु) उनके पीछे २ ही (प्र-दिवः) उत्तम फल की कामना करने वाली (आपः) आप्त प्रजाएं (ससुः) चलें।

ते स॒त्येन॒ मन॑सा दीध्या॑ना॒: स्वेन॑ यु॒क्तास॒: क्रतु॑ना वहन्ति । इन्द्र॑वायू वीर॒वाहं॒ रथं॑ वामीशा॒नयो॑र॒भि पृक्ष॑: सचन्ते ॥ ५ ॥

भा०—(ते) वे पूर्वोक्त ज्ञानवान्, विद्वान् लोग (सत्येन मनसा) सत्य चित्त और सत्य यथार्थ ज्ञान से (दीध्यानाः) चमकते हुए वा सत्य चित्त से ध्यान करते हुए (स्वेन युक्तासः) अपने आत्मसामर्थ्य और ऐश्वर्य से युक्त होकर (दीध्यानाः) चमकते हुए वा अपने आत्मयोग का अभ्यास करते, (दीध्यानाः) प्रभु का ध्यान करते हुए (युक्तासः) नियुक्त, योगी होकर (स्वेन क्रतुना) अपने ज्ञान और बल से ही (वहन्ति) रथ को अश्वों के समान देह को धारण करते हैं। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन्! सत्यदर्शिन्! बलवन्! ज्ञानवन्! (ईशानयोः वाम्) स्वामी, शासक रूप आप दोनों (वीरवाहं रथं) वीरों को धारण करने वाले रथवत् रमणीय उपदेश वा स्थिर पद वा राष्ट्र को (वहन्ति) धारण करते और सञ्चालित करते हैं और वे (पृक्षः) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (अभि सचन्ते) परस्पर समवाय बनाकर रहते हैं। वा (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्न, वृत्ति को प्राप्त करते हैं।

ई॒शा॒नासो॒ ये दध॑ते॒ स्व॑र्णो॒ गोभि॒रश्वे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्हिर॑ण्यैः । इन्द्र॑वायू सू॒रयो॒ विश्व॒मायु॒रर्व॑द्भिर्वी॒रैः पृत॑नासु सह्युः ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (ईशानासः) ऐश्वर्यवान् और शासन अधिकार से युक्त होकर (नः) हमारे सर्वस्व धन, राष्ट्र और सुखादि को (गोभिः) गौओं और भूमियों, (अश्वेभिः) घोड़ों (वसुभिः) राष्ट्रवासी विद्वानों और (हिरण्यैः) सुवर्णादि धातुओं, और हित रमणीय साधनों से (विश्वम्

आयुः) पूर्ण जीवन (दधते) धारण करते हैं, या हमें प्रदान करते हैं हे (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् बलवान् प्रधान नायक पुरुषो ! वे (सूरयः) विद्वान् पुरुष (अर्वद्भिः वीरैः) शत्रुओं को नाश करने हारे वीर पुरुषों द्वारा (पृतनासु) संग्रामों में (सह्युः) विजय करें ।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥१२॥

भा०—हम लोग (अर्वन्तः) शत्रुओं का नाश करते हुए वीर पुरुषों और रथ के अश्वों के समान बलवान् (श्रवसः भिक्षमाणाः) श्रवण करने योग्य ज्ञान की, योग्य गुरुओं और अन्न की गृहस्थों से याचना करते हुए, (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारी होकर (सु-अवसे) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं (वाजयन्तः) ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए (इन्द्रवायू हुवेम) ऐश्वर्यवान् और बलवान् एवं ज्ञानदर्शी और ज्ञान के इच्छुक जनों को प्राप्त करें, उनको आदरपूर्वक बुलावें । (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें उत्तम आशिषों और स्वस्ति विधायक मन्त्रों और साधनों से (पात) रक्षा करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[९१]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३ वायुः । २, ४—७ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । २,५,६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (नमसा) विनयपूर्वक वृद्ध जनों के प्रति नमस्कार या शत्रु को नमाने वाले बल से (पुरा) पहले (वृधासः) बढ़ने हारे (अनवद्यासः) अनिन्दिताचरण करने वाले, (देवाः) विद्या,

धन पुत्र आदि के अभिलाषी (आसन्) रहते हैं (ते) वे (वायवे) वायु के समान बलवान् वा प्राणवत् प्रिय, (मनवे) मननशील, ज्ञान-युक्त (बाधिताय) पीड़ित प्रजाजन की रक्षा के लिये (उपसं) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त तेजस्विनी सेना को (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी नायक पुरुष के साथ (अवासयन्) रखते हैं। (२) जो आदर विनय से वृद्ध अनिन्दिताचरणी विद्वान् पुरुष होते हैं वे बलवान् (बाधिताय मनवे) पीड़ित या खण्डित वंश वाले मनुष्य की वंशवृद्धि के लिये (उपसं) कामनायुक्त स्त्री को (सूर्येण) पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष के साथ और (उपसं) विद्यार्थी को सूर्यवत् विद्वान् गुरु के साथ (अवासयन्) सहयोग में रक्खें।

उ॒शन्ता॑ दू॒ता न दभा॑य गो॒पा मा॒सश्च॑ पा॒थः श॒रद॑श्च पू॒र्वीः ।
इन्द्र॑वायू सुष्टु॒तिर्वा॑मिया॒ना मा॑र्डी॒कमी॑ट्टे सुवि॒तं च॒ नव्य॑म् ॥२॥

भा०—(उशन्ता) सब को चाहने वाले (दूता) शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले, (गोपा) प्रजा के रक्षक, (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष (मासः च शरदः च) वर्षों और मासों तक (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान (पाथः) प्रजा की रक्षा करें। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! (वाम् इयाना) आप दोनों को प्राप्त होता हुआ, (सुस्तुतिः) उत्तम उपदेश (मार्डीकम्) सुख और (सुवितं) उत्तम और (नव्यम्) स्तुत्य आचार (इट्टे) चाहता है।

पीवो॑अन्नाँ रयि॒वृधः॑ सुमे॒धाः श्वे॒तः सि॑षक्ति नि॒युता॑मभि॒श्रीः ।
ते वा॒यवे॒ सम॑नसो॒ वि त॑स्थु॒र्विश्वेन्नरः॑ स्वप॒त्यानि॑ चक्रुः ॥ ३ ॥

भा०—(नियुताम् अभिश्रीः) नियुक्त सैन्यों के बीच सब के आश्रययोग्य एवं उत्तम राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न (श्वेतः) शुद्ध श्वेत, उज्ज्वल वर्ण का वस्त्र धारे (सुमेधाः) शुभ, बुद्धिमान्, उत्तम शत्रुनाशक बलवान् पुरुष (रयि-वृधः) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले, (पीवः-

अन्नात्) अन्नादि से हृष्ट पुष्ट पुरुषों को (सिषक्ति) समवाय बना कर रहता है और (ते) वे (नरः) समस्त नायक पुरुष (समनसः) एक चित्त होकर (वायवे) उस अपने बलवान् नायक पुरुष की वृद्धि के लिये ही (वि तस्थुः) उसके समीप सब ओर स्थित होते हैं। वे (विश्वा) सभी (सु-अपत्यानि) उत्तम २ सन्तानों के समान (चक्रुः) काम करते हैं। अथवा वे सब (सु-अपत्यानि) उत्तम, न गिरने के शुभ कर्मों को करते हैं।

यावृत्तरस्तन्वो३ यावुदोजो यावुन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः।
शुचिं सोमं शुचिपा पातम॒स्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र वायू) ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! हे शत्रुहन्तः! और शत्रु को मूल से उखाड़ देने वाले नायक जनो! (यावत्) जब तक या जितना भी (तन्वः तरः) शरीर का बल हो और (यावत् ओजः) जितना और जब तक भी बल पराक्रम हो, और (यावत्) जब तक (नरः) नेता लोग (चक्षसा) उत्तम ज्ञान दर्शन से (दीध्यानाः) देदीप्यमान हों तब तक आप दोनों (शुचिं) शुद्ध, (सोमम्) प्रजाजन वा शासक को हमारे लाभ के लिये (पातम्) पालन करो और हमारे (शुचिं सोमं पातं) शुद्ध अन्न, ऐश्वर्य का उपभोग करो (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा-पर (सदतम्) अध्यक्ष बन कर विराजो।

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तम॒स्मे ॥५॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) विद्युत् और वायु के समान तीव्र, बलवान् नायक पुरुषो! (स्पार्हवीराः) स्पृहणीय, मनोहर वीर पुरुषों से युक्त (नियुतः) अश्व सेनाओं को (नियुवाना) अपने अधीन सञ्चालित करते हुए आप दोनों (स-रथं) रथ सहित (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। (इदं हि) यह कार्य ही (मध्वः प्रभृतम्) आप दोनों को अन्न

या आजीविका प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है। अथवा (इदं हि) यह ही (वां) आप दोनों (मध्वः) शत्रु को पीड़ित करने वाले बल का (अग्रम्) श्रेष्ठ भाग (प्रभृतम्) खूब परिपुष्ट हो, और आगे २ बढ़ने वाला हो, (अध) और (प्रीणाना) प्रसन्न एवं प्रजा को प्रसन्न करते हुए (अस्मे वि मुमुक्तम्) हमें विविध बन्धनों से मुक्त करो।

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) विद्युत्, पवन के समान तेजस्वी और बलशाली पुरुषो ! (याः) जो (वां) आप दोनों के (शतं) सैकड़ों और (याः सहस्रं) जो हज़ारों (नियुतः) अश्वों के सैन्यगण (विश्ववाराः) सब शत्रुओं के वारण करने में समर्थ होकर (सचन्ते) समवाय बनाकर रहते हैं (आभिः) इन (सु-विदत्राभिः) उत्तम ऐश्वर्य लाभ कराने या उत्तम ज्ञान शिक्षा से युक्त सुशिक्षित सेनाओं से आप दोनों (अर्वाक् यातं) आगे बढ़ो। हे (नरा) नायक पुरुषो ! आप दोनों (प्रतिभृतस्य) वेतन द्वारा परिपुष्ट (मध्वः) सैन्य बल की (पातम्) सदा रक्षा करो।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥१३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ९० । ७ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३—५ वायुः । २ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥

भा०—हे (शुचिपाः) 'शुचि' अर्थात् शुद्ध चरित्रवन्! निष्पाप, निर्दोष, निरपराध, ईमानदार की रक्षा करने वाले! हे (वायो) तुष और अन्नों को पृथक् २ करनेवाले वायु के समान सत्य और असत्य का विवेक करने हारे विद्वन्! तू (नः उप आ भूष) हमें सदा प्राप्त हो, हमें सुशोभित कर। हे (विश्व-वार) सब से वरण करने योग्य! सब पापों के वारक! (ते सहस्त्रं नियुतः) तेरे अधीन सहस्रों नियुक्त आज्ञा पालक हैं। हे (देव) विद्वन्! तू (यस्य पूर्वपेयं) जिसके पूर्व पालन करने योग्य अंश को (दधिषे) धारण करता है मैं उसी (मद्यम्) तृप्तिकारक, हर्षजनक (अन्धः) उत्तम अन्न को (ते उपो अयामि) तेरे लिये प्राप्त कराऊं।

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥२॥

भा०—(यत्) जिस (मध्वः) शत्रुपीड़क बल और मधुर ऐश्वर्य के (अग्रियं) प्रमुख पद तथा श्रेष्ठ भाग को (देवयन्तः) शुभगुणों और उत्तम फलों की आकांक्षा करने वाले (अध्वर्यवः) प्रजा की हिंसा से रहित राष्ट्र-पालक के कर्त्ताजन (वां प्र भरन्ति) आप दोनों के लिये प्राप्त कराते हैं, उस (सोमम्) ऐश्वर्य या बल वीर्य को (इन्द्राय वायवे) विद्युत्, पवन, सूर्य वायुवत् तेजस्वी और बलवान् पुरुष के (पिबध्यै) उपभोग और रक्षा के लिये (अध्वरेषु) यज्ञादि उपकारक कार्यों, यज्ञों में (वीरः सोता) वृद्ध विद्वान् ऐश्वर्योत्पादक वा शासक, (प्र अस्थात्) प्राप्त करे और उस पर शासन करे।

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! विद्वन्! बलवन्! (याभिः नियुद्भिः) जिन अश्वादि सेनाओं सहित (दुरोणे) गृहवत् राष्ट्र में विद्यमान (दाश्वां-

सम्) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (अच्छ प्र यासि) भली प्रकार प्राप्त होता है उन द्वारा ही तू (नः) हमें (सुभोजसं रयिम्) उत्तम भोग्य पदार्थों और उत्तम रक्षा साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य को (नि युवस्व) प्रदान कर और (वीरं) वीरजन, (गव्यं राधः) गवादि सम्पदा और (अश्व्यं च राधः) अश्वों से बनी सम्पदा भी (नि युवस्व) प्रदान कर।

ये वायवं इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ४

भा०—(ये) जो (वायवः) बलवान् पुरुष (इन्द्र-मादनासः) आत्मा प्राणों के समान शत्रुहन्ता, प्रजा को प्रसन्न करने में समर्थ जो (आदेवासः) अपने सब ओर विद्वान् और विजयाभिलाषी व्यवहारज्ञ पुरुषों को रखते हैं और (अर्यः) शत्रु के (नितोशनासः) मारने वाले हों ऐसे (सूरिभिः) शासक नायकों और विद्वानों के द्वारा हम लोग (वृत्राणि घ्नन्तः) विघ्नकारक दुष्टों, शत्रुओं का नाश और धनों को प्राप्त करते हुए (युधा) युद्ध द्वारा (नृभिः अमित्रान् सासह्वांसः) वीर पुरुषों द्वारा शत्रुओं को पराजय करने वाले होवें।

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।५।१४

भा०—हे (वायो) बलवान् वीरजन ! तू (शतिनीभिः) सौ २ भटों के स्वामी, नायकों तथा हज़ार २ के भटों के स्वामी, नायकों वाली (नियुद्भिः) अश्व सेनाओं सहित (नः यज्ञं उप याहि) हमारे यज्ञ, राज्य को प्राप्त हो। (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस ऐश्वर्ययुक्त शासन में तू अति प्रसन्न हो और अन्यों को भी प्रसन्न कर। हे विद्वानो ! वीर पुरुषो ! आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम उपदेशवचनों और कल्याणकारी उपायों से हमारी सदा रक्षा किया करें। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[९३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्र-हणा) विघ्ननाशक वा धन अन्नादि को प्राप्त करने वाले माता पिता (नव-जातं शुचिं) नये उत्पन्न उत्तम शुद्ध बालक को (जुषेताम्) प्रेम करते और (श्रेष्ठा वाजं उशते दत्तः) उसके पालक माता पिता बुभुक्षित को अन्न देते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ऐश्वर्यवन् और अग्निवत् तेजस्विन् अग्रणी नायको ! आप दोनों (वृत्र-हणा) अपने बढ़ते शत्रुओं का नाश करने वाले होकर (शुचिम्) शुद्ध पवित्र व्यवहार वाले (नव-जातम्) नये ही अपने अधीन प्राप्त, (स्तोमं) स्तुतियोग्य प्रजा के अधिकार (अद्य) आज के समान सदा ही (जुषेताम्) प्रेम और उत्साह से प्राप्त करें। (ता) वे दोनों (धेष्ठा) प्रजा तथा बलवान् सैन्य, सभादि के अधिकार को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होकर (सद्यः) शीघ्र ही (उशते) कामना वाले जन को (वाजं) उसका अभिलषित धन, अन्न, बल, ज्ञान आदि प्रदान करें। (उभाहि वां) आप दोनों को ही मैं (सु-हवा) सुख से, आदर पूजा सहित बुलाने योग्य सुगृहीतनामधेय (जोहवीमि) स्वीकार करता हूं, आप को आदरपूर्वक बुलाऊं, निमन्त्रित करूं। माता पिता दोनों ही इन्द्र और दोनों ही अग्नि हैं। वे सन्तान के बाधक कारणों को नाश करने वाले होने से 'वृत्रहन्' होकर नवजात शिशु को निर्दोष और स्तुत्य रूप से प्राप्त करते हैं।

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥२॥

भा०—(ता) वे दोनों (सानसी) सब से सेवा करने योग्य, सब के शरणीय, सब के दान देने वाले और (शवसाना) बलपूर्वक ऐश्वर्य का भोग करने वाले, (साकंवृधा) एक साथ वृद्धि को प्राप्त और (शवसा) बल से (शूशुवांसा) बढ़ते (भूतम्) रहो। और (भूरेः यवसस्य) बहुत से अन्न और (रायः) दान देने योग्य धन पर (क्षयन्तौ) ऐश्वर्य, प्रभुत्व करते हुए (भूरेः) बहुत बड़े (स्थविरस्य) चिरस्थायी (घृष्वेः) शत्रु-नाशक (वाजस्य) बल, सैन्य को (पृक्तम्) अपने साथ मिलाये रक्खो।

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (नरः) मनुष्य (वाजिनः) बलवान्, संग्राम-चतुर और ऐश्वर्यवान् और (प्रमतिम् इच्छमानाः) उत्तम बुद्धि और उत्कृष्ट ज्ञान को चाहने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों द्वारा (विदथं उपो अगुः) उत्तम ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम संग्राम को प्राप्त करते हैं (ते) वे (नरः) उत्तम जन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि, विद्युत् अग्नि, और आचार्य और अध्यापक और सभापति सेनापति इन २ को (जोहुवतः) अपना प्रमुख स्वीकार करते हुए, उन के प्रति अपने को सौंपते हुए (काष्ठां अर्वन्तः) दूर २ देश की सीमा का अश्व के समान वेग से आगे बढ़ते हुए (काष्ठां) काष्ठा, अर्थात् 'क' परम सुखमय 'आस्था' स्थिति को (नक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (विदथं उपो गुः) प्राप्तव्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं। विद्वान् गुरुओं को प्राप्त कर ज्ञानी लोग काष्ठा = गाष्ठा, अर्थात् वेद वाणियों में परम स्थिति को प्राप्त करके (विदथं उपो अगुः) प्राप्य परम धर्म तत्व, सुख या ज्ञान को पाते हैं। सभा सेनापति के अधीन जन 'काष्ठा' अर्थात् राष्ट्र या भूमि की चरम सीमा तक पहुंच जाते हैं तब वे सार्वभौम राज्य का शासन करते हैं।

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

भा०—(विप्रः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (प्र-मतिम्) उत्तम कोटि का ज्ञान (इच्छमानः) प्राप्त करना चाहता हुआ, (पूर्व-भाजम्) पूर्व के विद्वानों से सेवित, एवं शिष्यों के प्रति उपदिष्ट, (यशसं) यशोजनक (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य की (ईट्टे) याचना करे । और (इन्द्राग्नी) आचार का शिक्षक आचार्य, ज्ञान का दाता विद्वान् दोनों वीर नायकों के समान (वृत्र-हणा) दुष्ट विघ्नों को नाश करने वाले (सु-वज्रा) पापादि के भली प्रकार वर्जन करने वाले उपदेश और ज्ञान रूप वज्र से युक्त होकर (नव्येभिः देष्णैः) नये से नये उपदेष्टव्य ज्ञानों द्वारा (नः प्र तिरतम्) हमें बढ़ावें ।

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥१५॥

भा०—(यत्) जब (मही) बड़ी २ (मिथती) एक दूसरे को मारती और ललकारती हुई (तनू-रुचा) अपने विस्तृत शरीर के तेज से (स्पर्धमाने) एक दूसरे से बढ़ने के निमित्त स्पर्धा कराने वाली दो स्त्रियों या वरवधू के समान परस्पर स्पर्द्धा करती हुई दो सेनाएं (शूर-साता) वीरों के संग्राम में (सं-यतेते) परस्पर विजय का यत्न करती हैं उनमें, हे इन्द्र अग्नि ! वीरों और अग्रणी नायक जनो ! आप दोनों (विदथे) संग्राम में (देवयुभिः) दानशील, वृत्तिदाता राजा के प्रिय पक्ष वाले वीर पुरुषों के साथ मिलकर (अदेवयुं) राजा के अप्रिय, शत्रु जन को (सोम-सुता जनेन) ऐश्वर्य अन्नादि के उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के साथ मिलकर (वृत्रा हतम्) विघ्नकारी शत्रुओं को एक साथ मारो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! अग्रणी नायक जनो! आप दोनों (नः) हमारी (इमाम्) इस (सोम-सुतिम्) अन्न ओषधि आदि के द्वारा किये यज्ञ को (सौमनसाय) उत्तम मन बनाये रखने के लिये (सु-आ-यातम्) आदरपूर्वक आइये । (नू चित् हि) आप लोग कभी भी (अस्मान् परि मन्नाथे) हमें त्याग कर अन्य को न मानें । मैं प्रजाजन (वां) आप दोनों को (वाजैः शश्वद्भिः) वहुत अन्नों और ऐश्वर्यों से (आ ववृतीय) आदरपूर्वक सम्मान करूं ।

सो अ॒ग्न ए॒ना नम॑सा॒ समि॑द्धो॒ऽच्छा॑ मि॒त्रं वरु॑ण॒मिन्द्रं॑ वोचेः ।
यत्सी॒माग॑श्चकृ॒मा तत्सु मृ॑ळ॒ तद॑र्य॒मादि॑तिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) मुख के समान अग्रणी, प्रमुख पुरुष ! (सः) वह तू (एना नमसा) इस आदरयुक्त वचन और (नमसा) विनयकारी दुष्टों के नमाने वाले वल से (सम्-इद्धः) खूब अग्निवत् तेजस्वी होकर (मित्रं वरुणं इन्द्रं) स्नेहवान् श्रेष्ठ, और ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अच्छ वोचेः) भली प्रकार कह कि (सीम्) हम (यत्) जो भी (आगः चकृम) अपराध या पाप करें तू (तत्) उसे (सु) भली प्रकार (मृड) दयादृष्टि से न्यायपूर्वक देख । (तत्) उसको (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायकारी पुरुष और (अदितिः) कभी सद्व्यवस्था को न टूटने देने वाला, दृढ़, सत्य नीतिमान् व्यवस्थापक पुरुष हम प्रजाजनों के उस अपराध को (शिश्रथन्तु) प्रजा में से निर्मूल कर दे ।

ए॒ता अ॑ग्न आशुषा॒णास॑ इ॒ष्टीर्यु॒वोः सचा॒भ्य॑श्याम॒ वाजा॑न् ।
मेन्द्रो॑ नो॒ विष्णु॑र्म॒रुतः॒ परि॑ख्यन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ८।१६

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी जन ! हम लोग (एताः) इन (इष्टीः) देने योग्य करादि अंशों को (आशुषाणासः) अति शीघ्र देते हुए, (युवोः) तुम दोनों के (वाजान्) बलों, ऐश्वर्यों को (सचा अभि अश्याम) एक साथ मिलकर भोग करें । (इन्द्रः विष्णुः) ऐश्वर्यवान् जन और व्यापक

अधिकार वाले शासक तथा (मरुतः) बलवान् शत्रुनाशक वीर पुरुष और विद्वान् जन (नः परिख्यन्) हमें कभी उपेक्षा न करें। हमारी कभी निन्दा वा त्याग न करें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप लोग हमारी सदा उत्तम २ उपायों से रक्षा करें। इति षोडशो वर्गः॥

[९४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ३, ८, १० आर्षी निचृद् गायत्री। २, ४, ५, ६, ७, ९, ११ आर्षी गायत्री। १२ आर्षी निचृदनुष्टुप्॥ द्वादशं सूक्तम्॥

इ॒यं वा॑म॒स्य मन्म॑न॒ इन्द्रा॑ग्नी पू॒र्व्यस्तु॑तिः। अ॒भ्राद्वृ॒ष्टिरि॑वाजनि १

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! हे (अग्ने) अंग में झुकने हारे, विनयशील शिष्य जनो! (इयं) यह (पूर्व्य-स्तुतिः) पूर्व पुरुषों से प्राप्त उत्तम ज्ञानोपदेश (अस्य मन्मनः) इस ज्ञानवान् पुरुष का (वाम्) आप दोनों के प्रति (अभ्रात् वृष्टिः इव) मेघ से वृष्टि के समान (अजनि) प्रकट हुआ करे।

शृ॒णु॒तं ज॑रि॒तुर्हव॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ वन॑तं॒ गिरः॑। ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ २

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य और विनयशील पुरुषो! आप दोनों ही, (जरितुः) उपदेष्टा, जन के (हवम्) ग्राह्य उपदेश का श्रवण करो। (गिरः) उत्तम वेद वाणियों और (गिरः) उपदेष्टा जनों की (वनतम्) याचना और सेवा किया करो। (ईशाना धियः) अधिक समर्थ होकर सत्कर्मों और सद्-बुद्धियों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ, अधिक दूर तक फैलाओ।

मा पा॑प॒त्वाय॑ नो न॒रेन्द्रा॑ग्नी॒ माभिश॑स्तये। मा नो॑ रीरधतं नि॒दे ३

भा०—हे (नरा इन्द्राग्नी) उत्तम नायको! हे इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्यवन्! विद्यावान्! नायक नायिका, जनो! आप लोग (नः) हमें (पाप-

त्वाय) पाप कर्म के लिये (मा रीरधतम्) कभी मत अपने अधीन रक्खो। (अभि शस्तये मा रीरधतम्) शत्रु द्वारा हमें पीड़ित करने के लिये भी अधीन मत रख, (निदे) निन्दित कर्म करने के लिये वा निन्दा करने वाले के लाभ के लिये भी हमें अपने या किसी अन्य के अधीन मत रख। कोई भी प्रजा किसी भी शासक के अधीन रहकर इन तीन प्रयोजनों को पूरा न होने दे? पापाचार की वृद्धि, शत्रु द्वारा अपना नाश और निन्दक व्यक्ति का लाभ। यदि शासक प्रजा को अपने अधीन रख कर प्रजा में पाप, प्रजा की हानि और निन्दकों का लाभ करता है तो प्रजा को अपने भीतर इन्द्र और अग्नि अर्थात् ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् बलवान्, तेजस्वी पुरुषों के दलों में धर्माचार, प्रजा की रक्षा और स्वात्माभिमान को जागृत कर उनको खड़ा कर स्वतन्त्र होने का प्रयास करना चाहिये।

इन्द्रे॑ अ॒ग्ना नमो॑ बृ॒हत्सु॑वृ॒क्तिमेर॑यामहे। धि॒या धेना॑ अव॒स्यवः॑ ४

भा०—हम लोग (अवस्यवः) ज्ञान, रक्षा, प्राणतृप्ति, ऐश्वर्यादि की कामना करते हुए (इन्द्रे अग्नौ) अपने बीच विद्यमान, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता और अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष वर्गों में (बृहत् नमः) बड़ाभारी आदर, और शस्त्र बल और (सु-वृक्तिम्) शुभ वर्त्ताव, उत्तम स्तुति और शत्रु पापादि को वर्जन करने का बल, और (धिया) बुद्धि और कर्म के द्वारा (धेनाः) वाणियों को (आ ईरयामहे) प्रेरित करें।

ता हि शश्व॑न्त॒ ईळ॑त इ॒त्था विप्रा॑स ऊ॒तये॑।
स॒बाधो॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (शश्वन्तः विप्रासः) बहुत से विद्वान् पुरुष (सबाधः) पीड़ित होकर दुःख पीड़ा आदि की चर्चा संदेशादि लेकर (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये और (वाजसातये) संग्राम करने के लिये (ता हि ईडते) उन दोनों पूर्वोक्त इन्द्र, अग्नि को अध्यक्ष रूप से चाहते हैं।

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—हम (विपन्यवः) विविध व्यवहारों वाले और (प्रयस्वन्तः) उत्तम २ प्रयास वा उद्योग करने वाले और अन्यों को (सनिष्यवः) वृत्ति देने वाले जन भी मिलकर (ता वां) उन आप दोनों इन्द्र, अग्नि जनों को ही (मेध-साता) अन्नलाभ, यज्ञ और संग्राम के लिये (गीर्भिः) नाना वाणियों से (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं। अर्थात् व्यवहारकुशल व्यापारी, प्रयासी, श्रमी और वृत्तिदाता सत्ताधारी सभी मिलकर यज्ञ, संग्राम और अन्न के लिये उनको ही पुकारें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥

भा०—हे (चर्षणी-सहा) मनुष्यों के बीच शत्रुओं का पराजय करने वाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी नायको ! आप दोनों (अस्मभ्यं)हमारी (अवसा) रक्षा के सहित (आ गतम्) आओ। जिससे (नः) हम पर (दुःशंसः) दुष्ट वचन बोलने वाला, कठोरभाषी, दुर्वादी पुरुष (मा ईशत) शासन न करे। वह हमारे बीच में शक्ति और अधिकार प्राप्त न करे ।

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्र णङ्मर्त्यस्य ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् दुष्टों के पीड़क ! हे सूर्याग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक जनो ! आप दोनों (नः शर्म यच्छतम्) हमें सुख प्रदान करो। (कस्य) किसी भी (अररुपः मर्त्यस्य) अति रोषकारी, क्रोधान्ध मनुष्य की (धूर्त्तिः) हिंसाकारिणी-चेष्टा (नः मा प्र णङ्) हम तक न पहुंचे ।

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि॥९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! हम (यत्) जो भी और जिस प्रकार का भी (वाम् ईमहे) आप दोनों से मांगते हैं (तत्) वह (गोमत्) गौओं, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि बहुमूल्य पदार्थ और (अश्वावद्) अश्वों से सम्पन्न (वसु) धन (वनेमहि) प्राप्त करें और उसका भोग करें ।

यत्सोम॒ आ सु॒ते नर॑ इन्द्रा॒ग्नी अजो॑हवुः । सप्ती॑वन्ता सप॒र्यवः॑ ॥१०

भा०—हे (सप्तीवन्ता) उत्तम अश्वों के स्वामी (इन्द्राग्नी) विद्युत्, अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक और शत्रुसंतापक नायक जनो ! (यत्) जब (सोमे सुते) पुत्रवत् प्रिय 'सोम' अर्थात् ओषधि अन्नादिवत् भोग्य सम्पन्न राष्ट्र में (नरः) नायक लोग (सपर्यवः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (आ अजोहवुः) आदरपूर्वक बुलाते हैं ।

उ॒क्थेभि॑र्वृत्र॒हन्त॑मा॒ या म॑न्दा॒ना चि॒दा गि॒रा ।
आ॒ङ्गू॒षैरा॒विवा॑सतः ॥ ११ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (वृत्रहन्तमा) दुष्टों को अच्छी प्रकार दण्ड देने वाले, (उक्थेभिः) उत्तम वेद-वचनों और (आमन्दाना) सब को प्रसन्न करते हुए (गिरा चित्) वेद वाणी से और (आंगूषैः) उत्तम स्तुति-वचनों और उपदेशों से (आ विवासतः) सर्वत्र ज्ञानप्रकाश करते हैं ।

ता॒विद्दु॒ःशंस॒ं मर्त्य॒ं दुर्वि॑द्वांसं रक्ष॒स्विन॑म् ।
आ॒भो॒गं हन्म॑ना हतमुद॒धिं हन्म॑ना हतम् ॥ १२ ॥ १८ ॥

भा०—(तौ इद्) वे दोनों ही (दुःशंसं) दुर्वचन, कठोर भाषण करने वाले (दुर्विद्वांसं) दुर्गुणी विद्यावान्, (रक्षस्विनम्) अन्यों के कार्यों में विघ्न करने वाले के सहायक (आभोगं) चारों तरफ से भोग विलास में मग्न, भोगप्रिय, (मर्त्यं) मनुष्य को (हन्मना) हननकारी साधन, हथियार से (हतम्) दण्ड दो । और (उद-धिम्) पानी को धारण

करने वाले घट या तालाब के समान उसको भी (हन्मना हतम्) शस्त्र द्वारा नाश करो। जिस प्रकार घट या जलाशय को दण्डे या फावड़े से तोड़ या खोदकर उसका जल ले निकाल कर उसे खाली कर दिया जाता है उसी प्रकार दुर्वचनी, दुराचारी, दुष्टसंगी पुरुष को भी मार २ कर, उसका सर्वस्व हर लेना चाहिये। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[९५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, २, ४—६ सरस्वती । ३ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र बावधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

भा०—पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य—जिस प्रकार (सिन्धुः) वहने वाली नदी (क्षोदसा सस्ने) पानी से बहती है, (आयसीः पूः) लोहे के बने प्रकोट के समान नगर की रक्षा करती, (रथ्या इव) रथ में लगे अश्वों के समान (प्र बाबधाना) मार्ग में आये वृक्षलतादि को उखाड़ती हुई, (अन्याः अपः च प्रवाबधाना) अन्य सब जल-धाराओं को बांधती हुई सब से मुख्य होकर (याति) आगे बढ़ती है उसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्री (धायसा) पुष्टिकारक बालक को पिलाने योग्य दूध (क्षोदसा) और अन्न से (प्रसस्ने) प्रेम से प्रवाहित होती है। वह (धरुणम्) गृहस्थ को धारण करने वाली और सबका आश्रय हो, वह (आयसी पूः) लोहे के प्रकोट के समान, दृढ़ एवं (आ-यसी) सब प्रकार से परिश्रम करने वाली और (पूः) प्रवचनों और परिवार के पालन करने वाली हो। वह (रथ्या इव) रथ में लगने योग्य अश्वों के समान दृढ़ होकर और वह (महिना) अपने सामर्थ्य से (विश्वाः अन्याः अपः) अन्य आप्त जनों को (सिन्धुः)

समुद्र या महानद के समान (प्र वावधाना) दृढ़ सम्बन्ध से बांधती हुई (याति) संसार-मार्ग पर चले ।

एका॑चेत॒त्सर॑स्वती न॒दीनां॒ शुचि॑र्य॒ती गि॒रिभ्य॒ आ स॑मु॒द्रात् ।
रा॒यश्चेत॑न्ती॒ भुव॑नस्य॒ भूरे॑र्घृ॒तं पयो॑ दुदुहे॒ नाहु॑षाय ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (नदीनां एका सरस्वती शुचिः) नदियों में से एक अधिक वेग, अधिक जल वाली, स्वच्छ-जला नदी (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई (नाहुषाय) मनुष्य वर्ग के लिये (घृतं पयः दुदुहे) जल और अन्न प्रचुर मात्रा में प्रदान करती है, इसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवाली विदुषी स्त्री (नदीनाम्) अन्य समृद्ध, धनसम्पन्न स्त्रियों के बीच में भी (शुचिः) शुद्ध पवित्र आचार, चरित्र, रूप और वाणी वाली होकर (एका चेतत्) वह अकेली ही सर्व प्रशस्त जानी जाय । वह (गिरिभ्यः) उपदेष्टा पिता आदि गुरुओं से (समुद्रात्) कामना योग्य, हर्षजनक पति-गृह को (यती) प्राप्त होती हुई (भुवनस्य) समस्त लोकों को (भूरेः रायः चेतन्ती) अपने बहुत उत्तम ऐश्वर्य को बतलाती हुई, (नाहुषाय) सम्बन्ध में बांधने वाले अपने पति के लिये (घृतं पयः) घी, स्नेह, दुग्ध, अन्न आदि की (दुदुहे) खूब वृद्धि करे और उनसे सबको पुष्ट करे ।

स वा॑वृधे॒ नर्यो॒ योष॑णासु॒ वृषा॒ शिशु॑र्वृष॒भो य॒ज्ञिया॑सु ।
स वा॒जिनं॑ म॒घव॑द्भ्यो दधाति॒ वि सा॒तये॑ त॒न्वं॑ मामृजीत ॥३॥

भा०—नरश्रेष्ठ का वर्णन—(सः) वह (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी, मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष (यज्ञियासु) यज्ञ, परस्पर संग वा दान प्रतिदान द्वारा प्राप्त (योषणासु) स्त्रियों, धर्मदाराओं में (वृषा) वीर्य-सेचन में समर्थ, (वृषभः) बलवान्, वृषभवत् होकर (शिशुः) सह-शयन करने वाला होकर (वावृधे) प्रजा पुत्र, धन धान्यादि से बढ़े । (सः) वह (मघवद्भ्यः = मखवद्भ्यः) यज्ञ करनेवाले याज्ञिकों को और (मघवद्भ्यः)

धनैश्वर्य सम्पन्न राजादि के हितार्थ (वाजिनं) बल, अन्न, धन ज्ञानादि से सम्पन्न पुत्र को प्रजावत् (दधाति) धारण करता है, विद्वानों को अश्वयानादि वेगयुक्त पदार्थों को दक्षिणा रूप में देता है। वह (सातये) पुत्र, धन अन्न ज्ञानादि के लाभार्थ, एवं संग्राम के लिये भी (तन्वं) अपने शरीर वा आत्मा को (वि मामृजीत) विविध उपायों से—यज्ञ, दान, स्नान, ओषधि, उपदेशश्रवण, मनन, निदिध्यासन, ज्ञानोपार्जन, सत्कार, तप आदि से शुद्ध करे और युद्धार्थ अस्त्र-शस्त्र, वेष-भूषा, पदकादि से सजावे।

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (सरस्वती) उत्तम ज्ञान-वाली विदुषी स्त्री, (जुषाणा) हम से स्नेह करती हुई (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (सु-भगा) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, सौभाग्यवती होकर (नः उप श्रवत्) हमारी बात ध्यानपूर्वक श्रवण करे। वह (नमस्यैः) नमस्कार करने योग्य (मित-ज्ञुः) परिमित संकुचित जानुओं वाले सभ्य (मित-ज्ञुभिः) समस्त ज्ञातव्य पदार्थों के जानने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ (इयाना) प्राप्त होती हुई (राया) ऐश्वर्य (चित्) और (युजा) सहयोगी पति से तू (सखिभ्यः) अपनी सखी सहेलियों से (उत्तरा) अधिक उत्कृष्ट हो।

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से युक्त विदुषि! हे सरस्वति ज्ञानमय प्रभो! तू (स्तोमं प्रति जुषस्व) उत्तम स्तुत्यवचन को प्रेम से स्वीकार कर। हम (नमोभिः) विनय युक्त वचनों, अन्नों सहित (युष्मत् आजुह्वाना) तुम से नाना ग्राह्य पदार्थ स्वीकार करते हुए (तव प्रियतमे शर्मन्) तेरे प्रिय तम गृह में अपने को (दधानाः) रखते हुए

(वृक्षं न शरणं) वृक्ष के समान शरण देने वाले (उप स्थेयाम) तेरे निकट उपस्थित हों, तेरी शरण होवें।

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥१९

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति ! विदुषि ! हे (सुभगे) उत्तम भाग्यशालिन् ! (अयम् वसिष्ठः) यह उत्तम ब्रह्मचारी पुरुष (ते) तेरे लिये (ऋतस्य द्वारौ) सत्य ज्ञान, अन्न और धन के दोनों द्वारों को प्रकट करता है। हे (शुभ्रे) हे शुभ चरित्र, रूप, उज्ज्वलगुणों वाली ! हे सुशोभिते ! तू (स्तुवते) गुणों को प्रशंसा करने वाले अपने गुणग्राही जन को (वाजान्) अन्न, ऐश्वर्यादि (रासि) प्रदान कर। हे विद्वान् लोगो ! (यूयं स्वस्तिभिः नः पात) आप लोग उत्तम २ आशीर्वादों, शुभ कर्मों द्वारा हमें पाप कर्मों से बचाओ।

इस सूक्त में सरस्वती, सरस्वान् देवता हैं। उत्तम ज्ञान का परम भण्डार परमेश्वर है इससे सरस्वती सरस्वान् नाम परमेश्वर के हैं। (१) परमेश्वर सब विश्व को धारण करने वाला सर्वाश्रय होने से 'धरुण' है। पालक होने से 'पूः' है। महान् व्यापक होने से 'सिन्धु' है। सर्वत्र रक्षाकारी पोषक रूप से व्याप्त है, सब कष्टों को दूर करता है। (२) वह एक अद्वितीय, स्वच्छ, विमल, (गिरिभ्यः) उपदेष्टा गुरुजनों से हमें उपदेश द्वारा प्राप्त होता है। वह प्रकाश, अन्न सब को देता, सबको चेतना वा ज्ञान देता है। (३) सब सञ्चालक सूर्यादि शक्तियों में व्यापक होने से 'नर्य' सर्वत्र व्यापक होने से 'शिशु' सर्वप्रबन्धक होने से 'वृषा', सबको धारण करने, सुखवर्षक होने से 'वृषभ' है, वही सबको ऐश्वर्य देता है, उसको प्राप्त करने के लिये योगी अपने कर्म मन, आत्मा को शुद्ध करे। (४) सर्वैश्वर्यवान् होने से प्रभु 'सुभग' (मितज्ञुभिः) गोडे सिकोड़ने या घुटने टेक बैठने वाले (नमस्यैः) भक्त जनों से उपासित होकर वह ऐश्वर्य, योग

से सब अन्य आत्माओं से अधिक है। (५) वह प्रभु हमारी स्तुति स्वीकार करे और हम उसकी शरण, सुखमयी छाया में विश्राम लें।

[९६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ सरस्वती। ४—६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्षी भुरिग्बृहती। ३ निचृत् पंक्तिः। ४, ५ निचृद्गायत्री। ६ आर्षी गायत्री ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) उत्तम विद्वन्! तू (रोदसी) भूमि और सूर्य दोनों में नायक और (नदीनाम् असुर्या) नदियों में अति बलवती नदी के समान समृद्ध प्रजाओं में सबसे बलशाली, प्रभु की (बृहत् उ गायिषे) बहुत बहुत स्तुति कर। और (सुवृक्तिभिः) स्तुति और (स्तोमैः) वेद के सूक्तों से और स्तुत्य यज्ञादि कर्मों में से (सरस्वीम् इत् महय) उस महाप्रवाह की, जो अनादि काल से सबको ज्ञान, शक्ति, प्राण सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह संसार में बहा रहा है (महय) पूजा कर।

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस (ते) तेरे (महिना) महान् सामर्थ्य से (पूरवः) मनुष्य गण (उभे) दोनों को (अधि क्षियन्ति) प्राप्त करते हैं हे (शुभ्रे) अति उज्ज्वल स्वरूप वाली सरस्वति! परमेश्वरि! ज्ञानमयि! (सा) वह तू (मरुत्सखा) विद्वानों की मित्र (अवित्री) समस्त संसार की रक्षा करने वाली वा स्नेहमयी होकर (नः बोधि) हमें ज्ञान दे और (मघोनां) ऐश्वर्यवान् जनों को (राधः चोद) धनादि प्रदान कर।

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

भा०—(भद्रा सरस्वती) सबका कल्याण करने वाली वह परमेश्वरी (वाजिनी-वती) बलयुक्त क्रिया और ऐश्वर्य, अन्नादियुक्त भूमि सूर्यादि की स्वामिनी, ज्ञानादियुक्त विद्वानों की स्वामिनी और (अकव-अरी) कभी कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाली होकर सबके लिये (भद्रम् कृणवत्) भला ही भला, कल्याण ही कल्याण करती है। वही (चेतति) सब को ज्ञान प्रदान करती है। वह (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (गृणाना) स्तुति की जाती है। और (वसिष्ठवत्) सब में सर्वोत्तम रूप से वसने वाले, जगन्निवासिनी के समान (स्तुवाना) स्तुति की जाती है।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे॥४॥

भा०—हम लोग (जनीयन्तः) भार्या रूप उत्तम संतति जनक क्षेत्र की कामना करने वाले, (पुत्रीयन्तः) पुत्रों की कामना करने वाले, (अग्रवः नु) आगे बढ़ने वाले और (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (सरस्वन्तं) उत्तम ज्ञानवान् प्रभु को (हवामहे) प्राप्त होते, पुकारते और उसी से याचना करते हैं।

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः। तेभिर्नोऽविता भव ५।

भा०—हे (सरस्वः) उत्तम ज्ञान और बलशालिन्! (ते) तेरे (ये) जो (मधुमन्तः) मधुर आनन्द, जल, अन्नादि युक्त और (घृतश्चुतः) प्रकाश, स्नेह और जलप्रदान करने वाले (ऊर्मयः) उत्तम तरङ्गवत् उत्कृष्ट मार्ग से जाने वाले विद्वान्, सूर्य, पवन, मेघादि हैं (तेभिः) उनसे तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो।

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(यः) जो (विश्व-दर्शतः) समस्त जीवों के दर्शन करने योग्य, सूर्य के समान तेजस्वी है। उस (सरस्वतः) उत्तम ज्ञानवान्, शक्तिमान् प्रभु के (पीपिवांसं) सब के परिपोषक, (स्तनं) स्तन के समान सबको बालकवत् पोषण करने वाले, या मेघवत् सब के प्रति वेदोपदेश देने वाले वेदमय शब्द वा प्रभु का हम (भक्षीमहि) भजन, सेवन करें और उसी की दी (प्रजाम्, इषम्) प्रजा, उत्तम सन्तान अन्न तथा प्रेरणा और सदिच्छा का सेवन करे। अथवा उस सर्व शक्तिमान् प्रभु की उत्तम सूर्यादि उत्पादक प्रकृति 'प्रजा' है, और उसका सञ्चालक शक्ति 'इष्' है, हम उसका भजन सेवन कर सुखी हों। इति विंशो वर्गः ॥

[९७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ इन्द्रः । २, ४—८ बृहस्पतिः । ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती । १० इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१ आर्षी त्रिष्टुप् । २,४,७ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर इन्द्र! (यत्र) जिस (यज्ञे) सर्वोपास्य, सर्वप्रद प्रभु परमेश्वर के आश्रय (देवयवः) दिव्य शक्तियों की कामना करने, वा देव, उपास्य, वा सर्व सुखदाता के भक्ति करने वाले प्रभुप्रेमी जन (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमिपर के (नृ-सदने) मनुष्यों के रहने के प्रत्येक स्थान में (मदन्ति) हर्ष आनन्द लाभ करते हैं। (च) और (वयः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (मदाय) मोक्षानन्द प्राप्त करने के लिये ही (यत्र) जिस प्रभु के आश्रय में स्थिर होकर (प्रथमं गमन्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिये ही मैं (सवनानि) समस्त उपासनाएं (सुन्वे) करूं।

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥२॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (पिता इव) पिता के समान (परावतः) दूर २ से वा परम पद से (दाता) सब सुख ऐश्वर्यादि देने हारा है। वह (बृहस्पतिः) बड़े, ब्रह्माण्ड का पालक है (नः) हमें (आ महे) सब प्रकार से देता है। हे (सखायः) मित्रो ! हम उस (मीढुषे) मेघवत् ऐश्वर्य सुखों के वर्षाने वाले, महा दानी, प्रभु के प्रति (यथा) जिस प्रकार हों (अनागाः भवेम) निरपराध और निष्पाप हों, इसीलिये हम (दैव्यानि अवांसि) सर्वप्रद, सर्वप्रकाशक उसी प्रभु के दिये बलों, तृप्तिकारक अन्नादि ऐश्वर्यों और उसी की रक्षाओं को (आ वृणीमहे) अपने लिये चाहते हैं।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥३॥

भा०—(यः) जो (देव-कृतस्य) परमेश्वर के दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि वा जीवों के लिये बनाये हुए (ब्रह्मणः) महान् ब्रह्माण्ड का (राजा) स्वामी है उस (महि) महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को ही (दैव्यः) विद्वानों की देवोचित (श्लोकः) स्तुति और (दैव्यः श्लोकः) देव, प्रभु परमेश्वर से प्राप्त 'श्लोक' अर्थात् वेदवाणी, (सिषक्तु) प्राप्त होती है, वह उसी का वर्णन करती, वह उसीको अपना लक्ष्य करती है। (तम् उ ज्येष्ठं) उसी सर्वश्रेष्ठ, सब से महान् (सु-शेवं) उत्तम सुखदाता, आनन्दकन्द (ब्रह्मणः पतिम्) ब्रह्माण्ड, प्रकृति और वेद के पालक प्रभु की मैं (हविर्भिः) उत्तम वचनों से या अन्नौषधि आदि की आहुतियों सहित (गृणीषे) स्तुति करूं।

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥४॥

भा०—(यः) जो (विश्व-वारः) सबसे वरण करने योग्य है और जो सब संकटों, पापों को दूर करने हारा है (सः) वह (प्रेष्ठः) प्रियतम, सबसे महान्, (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह (नः) हमारे (योनिं) प्राप्त होने या एकत्र मिलने के स्थान, हृदय-देश में, सेवक के गृह पर स्वामी के समान (आ सदतु) अनुग्रह कर प्राप्त हो। वही परमेश्वर हमारी जो (सुवीर्यस्य रायः कामः) उत्तम बलयुक्त ऐश्वर्य की अभिलाषा है (तं) उस अभिलाषा को (दात्) पूर्ण करता और (सश्रतः) प्राप्त होने वाले (अरिष्टान्) मृत्य लक्षणों से भी (अति-पर्षत्) पार करता और उनको दूर करता है। अथवा (सश्रतः नः अरिष्टान् अति पर्षत्) शरणागत आये हम लोगों को विना पीड़ा, विघ्नादि से पीड़ित हुए हमें संसार संकट से पार कर देता है, मुक्ति सुख प्रदान करता है।

तमा नो॑ अ॒र्कम॒मृता॑य॒ जुष्ट॑मि॒मे धा॑सुर॒मृता॑सः पुरा॒जाः ।
शुचि॑क्रन्दं यज॒तं प॒स्त्या॑नां॒ बृह॒स्पति॑मन॒र्वाणं॑ हुवेम ॥५॥२१॥

भा०—(नः) हमारे (पुराजाः) पूर्व काल में नाना जन्मों में उत्पन्न (इमे) ये (अमृतासः) अविनाशी जीवगण (अमृताय) दीर्घ जीवन के लिये (अर्कम्) अन्न के समान (अमृताय) अमृत, मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये (जुष्टं) प्रेम से सेवनीय (अर्कं) अर्चना योग्य (तम्) इसी प्रभु परमेश्वर को (धासुः) धारण करें। और (पस्त्यानां) गृहों, वा गृहस्थों के समान देह रूप गृहों में रखने वाले जीवों के (यजतम्) उपासनीय, (शुचि-क्रन्दं) गुरु वा न्यायकर्त्ता के समान शुद्ध, निर्दोष वचन कहने वाले, (अनर्वाणम्) अन्य अश्वादि की अपेक्षा न करने वाले स्वयंगामी रथवत् (अनर्वाणं) निरपेक्ष, स्वयं जगत् के सञ्चालक, अहिंसक (बृहस्पतिम्) बड़े २ सूर्यादि के भी पालक प्रभु को हम (हुवेम) स्तुति करें, उसी को दुःख में याद करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीळवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

भा०—(सहवाहः अश्वाः यथा बृहस्पतिं वहन्ति) एक साथ चलने वाले अश्व, या अश्वारोही, जिस प्रकार बड़े सैन्य के स्वामी को अपने ऊपर धारण करते हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस परमेश्वर का (सधस्थं) साथ रहना ही (नीडवत्) गृह के समान आश्रय देने वाला और (सहः चित्) सब दुःखों को सहन करा देने में समर्थ बल है और जिसका (रूपं नभः न) रूप आकाश वा सूर्य के समान व्यापक और (अरुषं) अति उज्वल तेजोमय है, (तं) उस प्रभु को, (वसानाः) इस जगत् में रहने वाले, या उसी की भक्ति में रहने वाले, (शग्मासः) सुखी, आनन्दमग्न, शक्तिमान्, (अरुषासः) उज्ज्वल रूपयुक्त, तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशमान (अश्वाः) विद्या विज्ञान में निष्णात पुरुष वा अति वेग से जाने वाले सूर्यादि लोक (सह-वाहः) एक साथ मिलकर-संसार यात्रा करते हुए, वा (सह-वाहः) एक साथ विश्व को धारण करते हुए, (बृहस्पतिं वहन्ति) उस महान् ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को अपने ऊपर धारण करते हैं।

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

भा०—(सः हि) वह प्रभु निश्चय से (शुचिः) अति पवित्र, (शतपत्रः) शतदल कमल के समान उज्वल, निस्संङ्ग, वा (शत-पत्रः) सैकड़ों ऐश्वर्यों से पूर्ण है (सः शुन्ध्युः) वह सब को शुद्ध करने वाला, परमपावन, (हिरण्य-वाशीः) हित और रमणीय वेदमयी वाणी, से युक्त, (इषिरः) सब के चाहने योग्य, (स्वः-साः) सुख, का देने वाला है । (सः सु-आवेशः) वह उत्तम रीति से समस्त विश्व में व्यापक, (ऋष्वः) सब से महान् , (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति, आत्मा नाम वाले जीवों के लिये (पुरु आसुतिं) बहुत सा अन्न आदि ऐश्वर्य (करिष्ठः)

उत्पन्न करने वाला है, सब से बड़ा अन्नदाता, वही (बृहस्पतिः) महान् जगत् का बड़ा पालक, बृहस्पति, है। इसी प्रकार राजा, या बड़े राष्ट्र का स्वामी भी हो। वह (शुचिः) ईमानदार, काम, धर्म, अर्थ आदि सब उपधाओं से शुद्ध हो (शतपत्रः) सैकड़ों रथों का स्वामी, (शुन्ध्युः) शत्रु, दुष्टादि राज्य के कण्टकों का शोधक, (हिरण्य-वाशीः) लोह आदि के चमकते शस्त्रास्त्रों वाला, (इरिपरः) सेना का सञ्चालक, (स्वर्षाः) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता, (सु-आवेशः) सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट, सु-स्थिर, (ऋष्वः) महान्(सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्र वर्गों के लिये नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला हो।

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

भा०—(देवी) नाना सुखों और ऐश्वर्यों के देने वाले (रोदसी) भूमि और आकाश, (देवस्य महित्वा) सर्वप्रकाशक, सर्वदाता प्रभु के महान् सामर्थ्य से (जनित्री) जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं। वे दोनों (बृहस्पतिं) महान् जगत् के पालक प्रभु की महिमा को ही (ववृधतुः) बढ़ा रहे हैं। हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (दक्षाय्याय) महान् सामर्थ्य के स्वामी को (दक्षत) बढ़ाओ, और जिस प्रकार (सुतरा सुगाधा ब्रह्मणे करत्) उत्तम, सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा अन्न को उत्पन्न करने के लिये सहाय करती है उसी प्रकार (सुतरा) दुःखसागर से सुखपूर्वक तरा देने वाली अति उत्तम, (सु-गाधा) उत्तम वेद वाणी, (ब्रह्मणे) उत्तम महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये हमें ज्ञानोपदेश (करत्) करे।

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्मज्ञान वेद और बड़े राष्ट्र के पालक !

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जीव ! (वां) आप दोनों की (इन्द्राय वज्रिणे) शक्तिशाली आत्मा की (इयं) यह (सुवृक्तिः) उत्तम स्तुति (अकारि) की जाती है । आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम बुद्धियों, कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) नाना कर्म करने वाले वा देह को पुरवत् धारण करने वाले जीवों को उत्तम उपदेश करो । (वनुषां) कर्म फल सेवन करने वाले जीवों के (अरातीः) सुखादि न देने वाले, वाधक (अर्यः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नाश करो ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥२२

भा०—हे (बृहस्पते) महान् विश्व के पालक ! हे (इन्द्रः च) जीवात्मन् ! (युवम्) आप दोनों, (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः) आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के (ईशाथे) प्रभु हो । आप दोनों (स्तुवते कीरये चित्) स्तुतिशील, विद्वान् को (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य प्रदान करो । हे विद्वान् जनो ! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप लोग हमारी सदा कल्याणकारी आशिषों और उपायों से रक्षा करो।इति द्वाविंशो वर्गः॥

[९८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—६ इन्द्रः । ७ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ के इच्छुक प्रजापीड़न, और प्रजाहिंसन को न चाहने वाले दयाशील प्रजाजनो ! आप लोग (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (वृषभाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (अरुणं) रुचिकर, कभी न रुकने वाले, (दुग्धम्) दूध के समान, समस्त भूमि-भागों से प्राप्त (अंशुम्)

अन्नादि, का अंशभाग करवत् (जुहोतन) प्रदान करो। (सुत-सोमम् इच्छन्) अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहता हुआ, (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा. (गौराद्) भूमि में रमण करने वाले, प्रजाजन से (अव-पानं वेदायान्) अपने अधीन प्रजा पालन करने का वेतन प्राप्त करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) सदा प्राप्त हो। (२) यज्ञ में याज्ञिक लोग भूमियों पर बरसने वाले मेघ के लिये शुद्ध दूध और ओषधियों की आहुति. दें तब 'इन्द्र' अर्थात् सूर्य ओपधि-उत्पादक 'अवपान' अर्थात् जल को किरणों द्वारा (गौराद्) पृथ्वी पर के जलाशय समुद्रादि से प्राप्त करने लगता है।

यद्दधि॒षे प्र॒दिवि॒ चार्वन्नं॑ दि॒वेदि॑वे पी॒तिमिद॑स्य वक्षि ।
उ॒त हृ॒दोत मन॑सा जुषा॒ण उ॒शन्नि॑न्द्र॒ प्रस्थि॑तान्पाहि॒ सोमा॑न् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू, (प्र-दिवि) उत्तम तेज होने पर (चारु अन्नं दधिषे) उत्तम अन्न को पुष्ट करता है, (दिवे-दिवे) दिनों दिन (अस्य) जलपान के समान (अस्य पीतिम् इत् वक्षि) इस राष्ट्र के पालन और उपभोग की कामना कर, उस के पालन कार्य को अपने ऊपर धारण कर। (उत) और (हृदा उत मनसा) हृदय और मन से, प्रेम और ज्ञान से राष्ट्र को (जुषाणः) सेवन करता और (उशन्) नित्य चाहता हुआ (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) प्राप्त ऐश्वर्यों और सोम्य वीरों की रक्षा कर। (२) सूर्य भी अति तेजस्विता के बल पर अन्न की रक्षा करता है, प्रति दिन जल का पान करता हुआ वनस्पतियों का पालन पोषण करता है।

ज॒ज्ञा॒नः सोमं॒ सह॑से पपाथ॒ प्र ते॑ मा॒ता म॑हि॒मान॑मुवाच ।
एन्द्र॑ पप्राथो॒र्व१॒॑न्तरि॑क्षं यु॒धा दे॒वेभ्यो॒ वरि॑वश्चकर्थ ॥ ३ ॥

भा०—विजिगीषु राजा का कर्त्तव्य। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु-हन् ! राजन् ! तू (जज्ञानः) प्रकट होकर ही (सहसे) शत्रुविजयी

बल को बढ़ाने के लिये (सोमं) ऐश्वर्यमय राष्ट्र को (पपाथ) पालन कर और (माता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाली भूमि माता (ते महिमानम्) तेरे महान् सामर्थ्य को (प्र उवाच) उत्तम रीति से कहे । हे (इन्द्र) सेनानायक ! तू (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष को भी (युधा) युद्ध साधनों से (अ पप्राथ) विस्तृत कर और (देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) विजयेच्छुक सैनिकों और प्रजाजनों के लिये बहुत धन उत्पन्न कर ।

(२) सूर्य या विद्युत् ओषधि की रक्षा करता है; भूमि भी उसके महान् सामर्थ्य को बतलाती है; (युधा) प्रहारकारी विद्युत् से आकाश को पूर्ण करता, अन्न की कामना करने वाले मनुष्यों के लिये अन्न उत्पन्न करता है ।

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

भा०—(यत्) जब तू (महतः) बड़े २ (मन्यमानान्) अभिमानशील शत्रुओं को (योधयाः) हम से लड़ा, और हम (शाशदानान्) मारते हुए (तान्) उनको (बाहुभिः) बाहुओं से (साक्षाम) पराजित करें । (वा) और (यत्) जब हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नृभिः वृतः) मनुष्यों या वीर नायकों से घिर कर (अभियुध्याः) शत्रुओं का मुकाबला करे तब हम (त्वया) तेरे बल से (तं) उस (सौश्रवसं आजिं) उत्तम यश-कीर्त्ति-जनक संग्राम का विजय करें । इसी प्रकार सूर्य या विद्युत् बड़े २ मेघ को प्रहार करता है तो हम बाधक कारण पवनादि से छिन्न-भिन्न मेघों को संघीभूत करें, जब पवनों सहित विद्युत् मेघ का आघात करे तो हम (सौश्रवसं) उत्तम अन्नप्रद वर्षा को प्राप्त करते हैं ।

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) इन्द्र, शत्रुहन्ता सेनापति के (प्रथमा) प्रथम, मुख्य (कृतानि) कर्त्तव्यों को मैं (प्र-वोचम्) उपदेश करता हूं (मघवा) ऐश्वर्यवान् धनवान् (या) जिन २ (नूतना) अति प्रशस्त, नये २ कार्यों को भी (चकार) करे, उनका भी (प्र वोचं) अच्छी प्रकार वर्णन करूं। (यत्) जब वह (अदेवीः मायाः) अमानुषी, दुष्ट पुरुषों के विचित्र २ कपट-कृत्यों को भी पराजित करे (अथ) अनन्तर (सोमः) यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र (केवलः) केवल (अस्य अभवत्) उसी के ही अधीन हो जाता है।

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद प्रभो! राजन्! (यत्) जो तू (सूर्यस्य चक्षसा) सूर्य के प्रकाश से (पश्यसि) देखता है, उसको प्रकाशित करता है, इसलिये (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (अभितः) सब तरफ (तव) तेरे ही (पशव्यं) 'पशव्य' अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य है। अथवा (इदं ते विश्वं पशव्यं) यह तेरा समस्त विश्व दर्शनीय है या पशु अर्थात् द्रष्टा, जीवों के भोगने योग्य है। अर्थात् तुझ द्रष्टा के ही अनुरूप है। तू (गवाम् गोपतिः असि) सब वाणियों, भूमियों और सूर्यादि लोकों का गौओं के पालक के समान स्वामी है। (प्रयतस्य) सर्वोत्कृष्ट नियन्ता और सञ्चालक तेरे ही दिये (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करें अथवा (वस्वः प्रयतस्य ते भक्षीमहि) सब में वसने वाले सर्वोत्कृष्ट यत्नवान् वा नियन्ता तेरा ही हम भजन करें।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२३

भा०—व्याख्या देखो सू० ९७। १०॥ इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[९९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३, ७ विष्णुः । ४—६ इन्द्राविष्णू देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

परो मात्र॑या त॒न्वा॑ वृधान॒ न ते॑ महि॒त्वमन्व॑श्नुवन्ति ।
उ॒भे ते॑ विद्म॒ रज॑सी पृथि॒व्या विष्णो॑ देव॒ त्वं प॑र॒मस्य॑ वित्से ॥१॥

भा०—हे (वृधाना) सब से बड़े ! वा हे समस्त जगत् के बढ़ाने हारे ! हे (विष्णो) सर्वव्यापक ! (तन्वां) अति विस्तृत या जगत् को फैलाने वाले (मात्रया) समस्त जगत् की बनाने वाली प्रकृति से भी (परः) उत्कृष्ट (ते) तेरे (महित्वम्) महिमा को कोई भी (न अनु अश्नुवन्ति) पा नहीं सकते, नहीं पहुंच सकते । हे (देव) सर्वप्रकाशक ! (पृथिव्याः ते) समस्त संसार को विस्तारित करने वाले तेरे ही बनाये इन (उभे) दोनों (रजसी) सूर्य पृथिवी वा आकाश और भूमि दोनों लोकों को (विद्म) जानते हैं । और तू (अस्य) इस से भी (परम्) उत्कृष्ट तत्व को (वित्से) प्राप्त है और जानता है ।

न ते॑ विष्णो॒ जाय॑मानो॒ न जा॒तो देव॑ महि॒म्नः प॒रमन्त॑माप ।
उद॑स्तभ्ना॒ नाक॑मृ॒ष्वं बृ॒हन्तं॑ दा॒धर्थ॒ प्राचीं॑ क॒कुभं॑ पृथि॒व्याः॥२॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक जगदीश्वर (न जायमानः) न उत्पन्न होता हुआ और (नः जातः) न उत्पन्न हुआ कोई (ते महिम्नः) तेरे महान् सामर्थ्य के (परम् अन्तम्) परली सीमा को (आप) प्राप्त कर सका है । हे (देव) सर्वप्रकाशक ! तू (बृहन्तं) बड़े भारी, (ऋष्वं) महान् (नाकम्) सब दुःखों से रहित, परम मोक्ष धाम और महान् आकाश को भी (उत् अस्तभ्नाः) उठा रहा है । और (पृथिव्याः) पृथिवी की (प्राचीं ककुभं) प्राची दिशा को जैसे सूर्य प्रकाशित करता है उसी प्रकार

तू ही (पृथिव्याः) जगत् मात्र को विस्तारित करने वाली सर्वाश्रय प्रकृति को (प्राचीं ककुभम्) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृतिभाव को (दाधर्थ) धारण कराता है। 'ककुप्'—ककुभिनी भवति, ककुप् कुब्जं कुजतेः उब्जतेर्वा। निरु० ७।३।५॥ कुजि स्तेयकरणार्थः। उब्जिरार्जवीभावे। आर्जवीभावः प्रवृत्तिः प्रह्वता वा॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३॥

भा०—हे (द्यावापृथिव्यौ) आकाश और भूमि वा सूर्य और भूमि! तुम दोनों (इरा-वती) जलों, अन्नों से युक्त तथा (धेनुमती) रस पान कराने वाली, गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त, और (मनुषे) मनुष्य के लिये (सु-यवसनी) उत्तम अन्न वाली और (दशस्या) नाना सुख भोग देने वाली (भूतम्) होवो। हे (विष्णो) व्यापक प्रभो! तू (एते रोदसी) इन दोनों पृथ्वी और आकाश को (वि अस्तभ्नाः) विशेष प्रकार से थामे है। और तू (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) सब ओर से (मयूखैः) किरणों से वा चारों ओर लगी खूटियों से जैसे, (दाधर्थ) धारण किये हुए है।

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नायको! हे स्त्री पुरुषो! हे (इन्द्र-विष्णू) विद्युत् विविध जल-धारा को वर्षाने हारे सूर्य वा पवन के समान लोकोपकारक जनो! जिस प्रकार विद्युत् तथा मेघ का वर्षाने वाले तुम दोनों मिलकर (सूर्यम्) सूर्य, (उषासम्) और उसकी दग्ध करने वाली ताप शक्ति और अग्नि तत्व को (जनयन्ता) उत्पन्न करते हुए (यज्ञाय) 'यज्ञ' अर्थात् तत्वों के परस्पर मिलने के लिये, (उरुं लोकं चक्रथुः) विशाल स्थान अन्तरिक्ष को उपयोगी बनाते हैं और (वृषशिप्रस्य दासस्य)

वर्षते मेघ के स्वरूप वाले जलप्रद मेघ की (मायाः) नाना रचनाओं को (पृतनाज्येषु) जलों के निमित्त आघात करते हैं उसी प्रकार आप दोनों, (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, और (उषासम्) उषा के समान कान्तियुक्त विदुषी और (अग्निम्) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रकट करते हुए (यज्ञाय) परस्पर दान-प्रतिदान, सोमजन, सत्सं-गादि के लिये (उरुं लोकं चक्रथुः उ) विशाल स्थान, भवन गृहादि बनाओ। और (पृतनाज्येषु) संग्रामों में (वृष-शिप्रस्य) बलवान् प्रमुख नेता वाले (दासस्य) प्रजानाशक शत्रु जन की (मायाः) सब कुटिल चालों का (जघ्नथुः) नाश करो।

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र! ऐश्वर्यवन् हे विष्णो! व्यापक शक्ति-शालिन्! आप दोनों (शम्बरस्य) शान्ति, प्रजा सुख के नाशक शत्रु के (नव नवतिं च पुरः) ९९ नगरियों या प्रकारों को (श्नथिष्टम्) नाश करो। (असुरस्य) बलवान् शत्रु के (अप्रति) बेजोड़, (शतं सहस्रं च वर्चिनः वीरान्) सौ, हज़ार बलवान् तेजस्वी वीरों को भी (साकं हथः) एक साथ दण्डित करो।

इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले! हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन्! हे शत्रुहन्तः! (इयं) यह (बृहती) बड़ी, (मनीषा) मन की प्रेरक शक्ति, प्रज्ञा, (उरुक्रमा) बड़े पराक्रम वाले, (बृहन्ता) बड़े सामर्थ्यवान् (वां) आप दोनों को (तवसा) बल से (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई (विदथेषु) संग्रामों के अवसरों में (स्तोमं ररे) उत्तम संघ-बल को प्रदान करती है। आप दोनों (वृजनेषु) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ

प्रयाणकारी बलों में (इषः पिन्वतम्) अन्नादि तथा, तीव्र प्रेरणाओं को प्रदान करो।

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥२४

भा०—हे (विष्णो) विविध प्रकार से व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे हुए या विशेष नियमों में बद्ध! (ते) तेरा (आसः) स्थापन (वषट्) सत्कारपूर्वक (आकृणोमि) करता हूं। हे (शिपिविष्ट) नाना तेजों, पराक्रमों से युक्त! सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (मे) मुझ राष्ट्र जन का (तत् हव्यम् जुषस्व) वह नाना प्रकार ग्राह्य उपायन, भेंटादि स्वीकार कर (त्वा) तुझे (मे) मेरे (सु-स्तुतयः गिरः) उत्तम स्तुति करने में पटु विद्वान् जन (वर्धन्तु) बढ़ावें। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (सदा स्वस्तिभिः नः पात) सदा उत्तम २ शान्ति और सुखप्रद साधनों से हमारी रक्षा करो। विष्णुः—अथ यद्विषितो भवति। विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा। निरु० १२। १९॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१००]

वसिष्ठ ऋषिः॥ विष्णुर्देवता॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ आर्षी त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत्।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात्॥ १॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य, (सनिष्यन्) दान देने की इच्छा से (दयते) दान देता और दया करता है वही (उरु-गायाय) बहुतों से, अति स्तुतियोग्य (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के निमित्त ही (दाशत्) दान करे। (यः) जो मनुष्य (सत्राचा मनसा) सत्यनिष्ठ मन से (प्र यजाते) अच्छी प्रकार यज्ञ, दान करता वा परम देव की पूजा करता

वह (एतावन्तं) उतना ही (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारी वा सब मनुष्यों में व्यापक परमेश्वर की (आ विवासत्) सेवा किया करता है।

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥२॥

भा०—हे (विष्णो) सर्वव्यापक प्रभो ! (त्वं) तू (विश्वजन्या) सब जनों की हितकारिणी, (अप्रयुताम्) सब के साथ मिली हुई, (सुमतिं मतिम्) उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि या उत्तम बुद्धिसहित ज्ञान का (दाः) प्रदान कर। (यथा) जिससे, (नः) हमारे पास (सुवितस्य) उत्तम रीति से प्राप्त (भूरेः अश्वावतः) बहुत से अश्वों से युक्त, (पुरु-चन्द्रस्य) बहुतों के आह्लादकारक (रायः) ऐश्वर्य का (पर्चः) हम से सम्पर्क हो।

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

भा०—(देवः) तेजस्वरूप, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ने (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (एतां) इस (पृथिवीम्) पृथ्वी को (त्रिः) तीन प्रकार से (शत-अर्चसम्) सैकड़ों दीप्ति युक्त पदार्थों से पूर्ण (वि चक्रमे) बनाया है। सूर्य, विद्युत्, और अग्नि तीनों प्रकारों की अग्नि से पृथ्वी को सैकड़ों सहस्रों चमकते पदार्थों का भण्डार बना डाला है। वह (तवसः तवीयान्) बलवान् से बलवान् (विष्णुः) सर्वव्यापक प्रभु (प्र अस्तु) सब से ऊंचा और उत्तम है। उस (स्थविरस्य) स्थायी, नित्य प्रभु का (नाम) नाम, स्वरूप और शासन सूर्य के प्रकाश के समान (त्वेषं हि) तेजोमय, तीक्ष्ण और उज्ज्वल ही है।

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (विष्णुः) विशेष रूप से संसार को प्रबन्ध में बांधने और उसमें व्यापने हारा परमेश्वर (एतां पृथिवीम्) इस पृथिवी

को भी (मनुषे दशस्यन्) मनुष्यों को दान देता हुआ (क्षेत्राय) निवास करने के लिये, वा क्षेत्र, निवास योग्य देह धारण करने के लिये (वि चक्रमे) विविध प्रकार का बनाता है। (अस्य) इसकी (कीरयः) स्तुति करने वाले (जनासः) जन्तु, आत्मगण (ध्रुवासः) सदा स्थिर, नित्य होते हैं। उनके लिये ही वह पृथ्वी का (उरुक्षितिम्) बहुत मनुष्यों से बसने योग्य और (सुजनिम्) उत्तम रीति से जन्तुओं और अन्नादि ओषधियों को उत्पन्न करने में समर्थ (आ चकार) बनाता है।

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ५ ॥

भा०—हे (शिपिविष्ट) सूर्य के समान रश्मियों से आवृत! तू (अर्यः) सबका स्वामी, (वयुनानि) सब कर्मों और ज्ञानों को (विद्वान्) जानने हारा है। (तत्) तो तेरे ही (नाम) स्वरूप और (वयुनानि) कर्मों की (अद्य) आज मैं (शंसामि) स्तुति करता हूं। मैं (अतव्यान्) अल्पशक्ति निर्बल मनुष्य, (त्वा तवसं) तुझ बलवान् की स्तुति करता हूं। और (अस्य रजसः पराके) इस महान् विश्व के परे भी विद्यमान महान् से महान् (त्वा तं गृणामि) उस तेरी मैं स्तुति प्रार्थना करता हूं।

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ६ ॥

भा०—(ते) तेरा (किम् इत्) कौनसा रूप (परिचक्ष्यं भूत्) सर्वत्र दर्शनीय या कथन करने योग्य है (यत्) जिसको तू (ववक्षे) स्वयं उपदेश कर रहा है कि मैं (शिपिविष्टः अस्मि) रश्मियों में प्रविष्ट, उनसे घिरे सूर्य के समान तेजोरूप होकर सर्वत्र व्यापक हूँ। (अस्मत्) हम से अपने (एतत्) उस तेजोमय (वर्पः) रूप को (मा अप गूह) मत छिपा (यत्) क्योंकि तू (समिथे) प्राप्त होने पर (अन्यरूपः मा बभूथ) दूसरे रूपों में भी मत प्रकट हो।

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७।२५।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ९९। ७ ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[१०१]

वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वृषभः) बरसता मेघ (रोरवीति) गर्जता है, (ज्योतिरग्राः वाचः वदति) प्रथम विद्युत् ज्योति को चमका कर बाद में गर्जना करता है और (ऊधः मधुदोधम् दुह्रे) अन्तरिक्ष से जल को दोहता है, और (ओषधीनां गर्भं कृण्वन्) ओषधियों को गर्भित करता है। उसी प्रकार हे विद्वन्! तू (ज्योतिरग्राः) उत्तम ज्ञान ज्योतियों से युक्त वा अग्र भाग में प्राण व रूप ज्योति से युक्त (तिस्रः वाचः) तीनों उन वेद-वाणियों, गद्य, यजुष, छन्द, ऋग् और (गीति साम) को (प्र वद) अच्छी प्रकार उपदेश कर (याः) जिनसे (वृषभः) मनुष्यों में श्रेष्ठ, और मेघवत् गंभीर वाणी का उपदेष्टा जन (उतत् ऊधः) इस ऊर्ध्व स्थित ब्रह्म को (मधु-दोघम्) मधुर ऋङ्मय ज्ञान रस को (दुह्रे) दोहन करता है (सः) वह (ओषधीनां) ओषधियों, अन्नादि के ग्रहण करने वाले (वत्सं) छोटे बच्चे के समान बालक को अपना (वत्सं कुण्वन्) समीपस्थ अन्ते वासी, शिष्य बना कर (सद्यः) अति शीघ्र ही (जातः) स्वयं प्रकट होकर (रोरवीति) उपदेश करता है।

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यं१स्मे ॥२॥

भा०—(ओषधीनां वर्धनः) ओषधियों को बढ़ाने वाला, (अपां वर्धनः) जलों का बढ़ाने वाला, मेघवत् सूर्यवत् (देवः) प्रकाश, जल का देने वाला (विश्वस्य जगतः ईशे) सब जगत् का स्वामिवत् है। वह (त्रिवर्तु ज्योतिः यंसत्) तीनों ऋतुओं में सुखप्रद प्रकाश देता है उसी प्रकार (यः) जो (देवः) सर्वसुखदाता प्रभु (ओषधीनां वर्धनः) उष्णता को धारण करने वाले जीवों को बढ़ाने वाला, (यः) जो (अपां वर्धनः) जलस्थ, जलचारी जीवों को बढ़ाने वाला और (यः) जो (विश्वस्य जगतः) समस्त जगत् का (ईशे) स्वामी है। (सः) वह प्रभु परमेश्वर (अस्मे) हमें (सु-अभिष्टिः) सुख से चाहने योग्य (त्रिवर्तु ज्योतिः) विविध ज्ञान देने वाला वेदमय प्रकाश और (त्रि-धातु) तीन धातु सुवर्णादि से बने (शरणं) गृह और तीन धातु वात, पित्त कफ से बने शरण-योग्य देह और सुख तथा (त्रिवर्तु) तीनों कालों में वर्त्तने वाला, नित्य (यंसत्) प्रदान करे।

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

भा०—(त्वत्) मेघ का एकरूप (स्तरीः) न प्रसवने वाली गौ के समान होता है, (सूते त्वत्) और उसका एक रूप सूती गौ के समान जल धाराएं उत्पन्न करता है। (एषः यथावशं तन्वं चक्रे) वह सूर्य की कान्ति के अनुसार अपना व्यापक रूप बना लेता है। वह (पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति) सूर्य रूप पिता से जल को ग्रहण करता और (तेन) उससे (माता) पृथिवी भी जल ग्रहण करती है। (तेन) उस जल से (पिता वर्धते) सूर्य महिमा से बढ़ता और (तेन पुत्रः वर्धते) उसी जल से पुत्रवत् ओषधि वनस्पति तथा जीवादि भी बढ़ते हैं। उसी प्रकार हे प्रभो ! (त्वत्) तेरा एक रूप

(स्तरीः भवति उ) सर्वाच्छादक सर्वरक्षक होता है और (त्वत्) दूसरा रूप (सूते उ) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है। (यथावशं) जितनी इच्छा होती है उतना ही (एषः) वह परमेश्वर (तन्वं) अपना विस्तृत संसार (चक्रे) बना ले सकता है। (माता) जिस प्रकार माता (पितुः) पिता से (पयः प्रतिगृभ्णाति) वीर्य ग्रहण कर गर्भ धारण करती है और उससे (पिता पुत्रः वर्धते) पिता का वंश और प्रिय पुत्र भी बढ़ता है। उसी प्रकार (पितुः) सर्वपालक तुझ पिता से ही (माता) सर्वनिर्मात्री प्रकृति (पयः) वीर्य, बल, शक्ति को (प्रति गृभ्णाति) प्रति सर्ग ग्रहण करती है और (तेन) उससे ही (पिता) सर्वपालक प्रभु की महिमा (वर्धते) बढ़ती है या (तेन) उस शक्ति से ही (पिता) पालक प्रभु (वर्धते) जगत् को गढ़ता है और (तेन पुत्रः) उससे ही पुत्रवत् जीवजगत् भी (वर्धते) बढ़ता, वृद्धि को प्राप्त करता है।

यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि त॒स्थुस्ति॒स्रो द्याव॑स्त्रे॒धा स॒स्रुराप॑ः।
त्र॒यः कोशा॑स उप॒सेच॑नासो॒ मध्व॑ः श्चोतन्त्य॒भितो॑ विर॒प्शम् ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोक, समस्त उत्पन्न प्राणी, (तस्थुः) स्थिर हैं, (यस्मिन् तिस्रः द्यावः) जिसके आश्रय पर तीनों लोक पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य स्थित हैं। (यस्मिन्) जिसका आश्रय लेकर (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकार से गति करते हैं, पृथिवी से वाष्प बनकर ऊपर उठते हैं, मेघ से जल बन कर नीचे आते हैं और समुद्र से वायु के बलपर भूमिपर आते हैं। अथवा (आपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु जिसके आश्रय पर (त्रेधा सस्रुः) तीन प्रकार की गति करते हैं—संयोग, विभाग और चक्र गति। और (यस्मिन्) जिसके आश्रय (त्रयः कोशासः) तीन कोश (मध्वः उप-सेचनासः) जल बरसाने वाले मेघों के समान मधुर आनन्द की वर्षा करने वाले होकर (विरप्शम् अभितः) उस महान् के चारों ओर (श्चोतन्ति) गति करते हैं।

अध्यात्म में तीन कोश-विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय। सूर्य में तीन कोश-क्रोमोस्फ़ीयर फ़ोटोस्फ़ीयर, और उद्रजन। यह सब उसी महान् प्रभु परमेश्वर के ही अधीन अद्भुत कर्म हो रहे हैं।

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत्।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः॥ ५ ॥

भा०—(इदं वचः) यह वचन (स्वराजे) स्वप्रकाशस्वरूप, (पर्जन्याय) सब रसों के देने वाले, सब के उत्पादक प्रभु परमेश्वर के लिये (हृदः अन्तरं अस्तु) हृदय के भीतर हो। (तत्) उस स्तुति-वचन को वह प्रभु (जुजोषत्) स्वीकार करे (अस्मे) हमारे सुख के लिये (मयः-भुवः वृष्टयः सन्तु) सुख के देने वाली वृष्टियां सदा हों। और (सुपिप्पलाः) उत्तम फलयुक्त (देव-गोपाः) मेघद्वारा रक्षित (ओषधीः) ओषधियें भी (मयः-भुवः सन्तु) सुखकारी हों।

पर्जन्यः—पर्जन्यस्तृपेः। आद्यन्त विपरीतस्य। तर्पयिता जन्यः। परो जेता वा। जनयिता वा। प्रार्जयिता वा रसानाम्।

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।१

भा०—(सः) वह प्रभु परमेश्वर (रेतोधाः) प्रकृति देवी में विश्व को उत्पन्न करने वाले परम बीज, रेतस, तेज को आधान करने वाला (शश्वतीनां वृषभः) मेघ के समान सब सुखों का वर्षक, बहुत सी गौओं के बीच सांड के समान समस्त पृथिवियों में जीवों का बीज वपन करने वाला है, (तस्मिन्) उसके ही आश्रय (जगतः तस्थुषः च आत्मा) जंगम और स्थावर संसार का आत्मा या सत्ता विद्यमान है। (तत् ऋतं) वह सत्यज्ञानमय परमेश्वर (मे शतशारदाय पातु) मेरे जीवन को सौ वर्षों तक पालन करे। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात)

आप लोग उत्तम कल्याणकारक उपायों से हमारी सदा रक्षा करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०२]

वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ याजुषी विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।
स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (दिवः पुत्राय) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र व (मीढुषे) सेचन करने में समर्थ, वर्षाशील (पर्जन्याय) जलों के दाता मेघ के सदृश (दिवः पुत्राय) ज्ञान प्रकाश से बहुतों की रक्षा करने वाले, (मीढुषे) हृदय में आनन्द के सेचक, (पर्जन्याय) सब रसों के दाता, सब के उत्पादक, प्रभु परमेश्वर के लिये (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति, ज्ञान करो। (सः) वह (नः) हमें (यवसम्) अन्नादि देना (इच्छतु) चाहे।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (ओषधीनाम्) मेघ के समान ओषधियों के (गवाम्) गौओं, (अर्वताम्) अश्वों, और (पुरुषीणाम्) मानव स्त्रियों के (गर्भम् कृणोति) गर्भ उत्पन्न करता है, वही (पर्जन्यः) सब का सब से उत्तम उत्पादक परमेश्वर है। पर्जन्यः—परो जनयिता। (निरु०)

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।
इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥ २ ॥

भा०—जो परमेश्वर (नः) हमारे (आस्ये) मुख में (इडा) वाणी को (संयतं) अच्छी प्रकार सुनियन्त्रित (करत्) करता है (तस्मै

इत्) उसी प्रभु परमेश्वर के गुणगान करने के लिये (आस्ये) अपने मुख में (मधुमत्-तमम्) अत्यन्त मधुर गुण से युक्त (हविः) वचन का (जुहोत) धारण करो और अन्यों को प्रदान करो। इसी प्रकार जो प्रभु मेघ के समान (नः इडां संयतं करत्) हमें नियम से अन्न देता है उसी के लिये मधुर अन्नादि की (आस्ये) छिन्न भिन्न करके दूर २ तक फैला देने वाले अग्नि में (हविः) मधुर अन्नादि चरु प्रदान करो। उसी प्रभु के लिये अपने मुख में भी मधुर अन्न का ही ग्रहण करो। मलिन पदार्थ मांसादि का नहीं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१०३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मण्डूका देवताः ॥ छन्दः—१ आर्षी अनुष्टुप्। २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (संवत्सरं शशयानाः) एक वर्ष पड़े रहने वाले (मण्डूकाः) जलवासी मेंडक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं प्र अवादिषुः) मेघ से प्रदान की वाणी को खूब ऊंचे २ बोलते हैं उसी प्रकार (व्रत-चारिणः) नियम, व्रत का आचरण करने वाले (संवत्सरं शशयानाः) वर्ष भर तीक्ष्ण तप करते हुए (ब्राह्मणाः) 'ब्रह्म', वेद के जानने वाले, वेदज्ञ, वेदाभ्यासी, विद्वान् जन (मण्डूकाः) ज्ञान, आनन्द में मग्न होकर (पर्जन्य-जिन्वितां) सर्वोत्पादक प्रभु की दी हुई (वाचं) वेद वाणी का (प्र अवादिषुः) उत्तम रीति से प्रवचन किया करें।

'मण्डूकाः' मज्जूकाः मज्जनात्। मदतेर्वा मोदतिकर्मणः। मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणः। मण्डतेरिति वैयाकरणाः। मण्ड एषामोक इति वा। मण्डो मदेर्वा। मुदेर्वा। (निरु० ९। ६)

दि॒व्या आपो॑ अ॒भि यदे॑नमाय॒न्दृतिं॒ न शुष्कं॑ सर॒सी शया॑नम् ।
गवा॒मह॒ न मा॒युर्व॒त्सिनी॑नां म॒ण्डूका॑नां व॒ग्नुरत्रा॒ समे॑ति ॥ २ ॥

भा०—(दृतिं शुष्कं न) सूखे चमड़े के पात्र के समान (सरसि शयानं) तालाब में पड़े (एनम्) इस मण्डूक को (दिव्या आपः) आकाश के जल (यद् अभि आयन्) जब प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां वग्नुः) मेंडकों का शब्द (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछड़े वाली गौओं के शब्द के समान ही (सम् एति) आता है इसी प्रकार (शुष्कं दृतिं न) सूखे चर्मपात्र के समान (सरसि) प्रशस्त ज्ञानमार्ग में (शयानम्) तीक्ष्ण तप करते हुए (एनम् प्रति अभि) इस ब्राह्मण वर्ग को (दिव्याः आपः) ज्ञानमय परमेश्वर से प्राप्त होने वाली ज्ञान वाणियां वा ज्ञानी आप्त पुरुष, वर्षा जल के समान ही (आयन्) प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां) आनन्द वा ज्ञान में गहरे मग्न विद्वानों का (वग्नुः) उत्तम उपदेश और (वत्सिनीनाम्) नियम से ब्रह्मचर्यवास करने वाले शिष्यों से युक्त (गवाम् मायुः) वेदवाणियों की ध्वनि भी (अत्र) इस लोक में (सम् एति) अच्छी प्रकार सुनाई देती है । यदि परमेश्वर से प्राप्त वेद ज्ञान न हो तो यहां, इस लोक में ज्ञानवाणियां और विद्वानों के उपदेश भी सुनाई न दें ।

शशयानाः, शयानम्—शिञ् निशाने ।

यदी॑मेनाँ उश॒तो अ॒भ्यव॑र्षीत्तृ॒ष्याव॑तः प्रा॒वृष्याग॑तायाम् ।
अ॒क्ख॒ली॒कृत्या॑ पि॒तरं॒ न पु॒त्रो अ॒न्यो अ॒न्यमुप॒ वद॑न्तमेति ॥३॥

भा०—(उशतः) वर्षा को चाहने वाले और (तृष्यावतः एनान्) प्यासे इनके प्रति (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा काल आजाने पर (अभि अवर्षीत्) मेघ वर्षता है, (पुत्रः पितरं न) पिता के प्रति पुत्र के समान (वदन्तम् अन्यम् अन्यः उप एति) बोलते एक मेंडक के पास दूसरा जैसे आजाता है उसी प्रकार (आगतायां प्रावृषि) वर्षाकाल आनेपर (यद् ईम्) जब भी (उशतः) विद्या की कामना करने वाले और (तृष्या-

वतः एनान्) ज्ञान की पिपासा से युक्त इन शिष्यों के प्रति विद्वान् पुरुष मेघ के समान (अभि अवर्षीत्) ज्ञान की वर्षा करता है तब (वदन्तम् अन्यम् उप) उपदेश करते हुए एक के पास (अन्यः) दूसरा शिष्य (पुत्रः पितरं न) पिता के पास पुत्र के समान ही (अक्खलीकृत्य) विनम्र होकर (उप एति) आता है और उसकी शुश्रूषा कर ज्ञान प्राप्त करता है।

अ॒न्यो अ॒न्यमनु॑ गृभ्णात्येनोर॒पां प्र॑स॒र्गे यदम॑न्दिषाताम् ।
म॒ण्डूको॒ यद॒भिवृ॑ष्टः॒ कनि॑ष्क॒न्पृश्नि॑ः सम्पृ॒ङ्क्ते हरि॑तेन॒ वाच॑म् ४

भा०—जिस प्रकार (अपां प्रसर्गे) जलों के खूब होजाने पर (यत् अमन्दिपाताम्) जब दो मेंडक बहुत प्रसन्न होजाते (अन्यः अन्यम् अनुगृभ्णाति एक दूसरे को पकड़ लेता है, (कनिष्कन् मंडूकः पृश्निः हरितेन वाचं सम्पृङ्क्ते) पीला कूदता मेंडक हरे मेंडक से अपनी आवाज़ मिलाता है उसी प्रकार (यत्) जब (अपां प्रसर्गे) आप्त वेदज्ञानों के प्रदान करने के लिये गुरु शिष्य दोनों (अमन्दिपाताम्) अति प्रसन्न हो जाते हैं (एनोः) इन पूर्वोक्त गुरु और शिष्य दोनों में से (अन्यः) एक गुरु, आचार्य (अन्यम्) दूसरे को (अनुगृभ्णाति) अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करता है और (यत्) जो (अभिवृष्टः) अभिषेचित विद्याव्रत स्नातक (मण्डूकः) अति हर्षवान् हो (कनिष्कन्) अन्यों को विद्या प्रदान करता है तब (पृश्निः) वेद का विद्वान् या प्रश्न करने योग्य विद्वान् (हरितेन) ज्ञान ग्रहण करने वाले शिष्य से (वाचम् संपृङ्क्ते) अपनी वाणी का सम्पर्क कराता है, उसको अपना ज्ञान वादानुवादपूर्वक प्रदान करता है।

यदे॑षाम॒न्यो अ॒न्यस्य॒ वाचं॑ शा॒क्तस्ये॑व॒ वद॑ति॒ शिक्ष॑माणः ।
सर्वं॒ तदे॑षां स॒मृधे॑व॒ पर्व॒ यत्सु॒वाचो॒ वद॑थ॒नाध्य॒प्सु ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (एषाम्) इन विद्वानों में से (अन्यः एक विद्वान् शिष्य (शिक्षमाणः) शिक्षा पाकर (अन्यस्य शाक्तस्य) दूसरे

शक्तिमान्, अधिक विद्या, तप आदि से सम्पन्न गुरु की सिखाई (वाचम् वदति) वाणी को कहता है और (यत्) जब (अप्सु अधि) प्राप्त शिष्यों वा प्रजाओं के बीच इन विद्वानों में (सुवाचः) उत्तम वाणी के बोलने हारे आप लोग (वदथन) उपदेश करते हैं (तत्) तब (एषां) इनका (सर्वं) समस्त (पर्वं) पालन योग्य व्रत, ब्रह्मचर्यादि वा (पर्व) पालन योग्य ज्ञानकाण्ड, अध्ययन वेदादि (समृधा इव) समृद्ध उत्सवादि के समान हो जाता है । इति तृतीयो वर्गः ॥

गोमा॑युरेको॑ अ॒जमा॑युरेकः॒ पृश्नि॒रेको॒ हरि॑त॒ एक॑ एषाम् ।
स॒मा॒नं नाम॒ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः पुरु॒त्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः ॥६॥

भा०—(एषाम्) इन विद्वान् ब्राह्मणों में से (एकः) एक (गो-मायुः) वेद वाणियों को उत्तम रीति से प्रवचन करने में समर्थ होता है । (एकः अज-मायुः) एक विद्वान् अजन्मा, आत्मा और परमेश्वर के विषय में प्रवचन-उपदेश करने में समर्थ होता है । (एक पृश्निः) एक प्रश्नोत्तर करने और उनका समाधान करने में कुशल होता है । (एक हरितः) इनमें से एक ज्ञानों को ग्रहण करने में कुशल होता है । ये सब (समानं) एक समान (नाम) 'ब्राह्मण' नाम धारण करते हुए भी (वि-रूपाः) विविध रूप विद्याओं को धारण करते हैं । वे (वदन्तः) उपदेश-प्रवचन करते हुए (पुरुत्रा वाचं पिपिशुः) नाना प्रकार से वाणी को प्रकट करते हैं ।

ब्रा॒ह्म॒णासो॑ अतिरा॒त्रे न सोमे॒ सरो॒ न पू॒र्णम॒भितो॒ वद॑न्तः ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तदहः॒ परि॑ ष्ठ॒ यन्म॑ण्डूकाः प्रावृ॒षीणं॑ ब॒भूव॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार जब (संवत्सरस्य) वर्ष के बीच (प्रावृषीणं अहः बभूव) वर्षाकाल का दिन होता है, (तत् अहः) उस दिन (मण्डूकाः) मेंडक (पूर्णं सरः अभितो वदन्तः परि तिष्ठन्ति) भरे तालाब के चारों ओर बोलते हुए विराजते हैं । उसी प्रकार (अति-रात्रे) अति रात्र सोमयाग की रात्रि को अतिक्रमण कर व्रतधारी (सोमे) सोम अर्थात्

शिष्य के निमित्त (न) भी (ब्राह्मणासः) विद्वान् वेदज्ञ लोगो ! आप लोग (पूर्णं सरः अभितः वदन्तः) पूर्ण ब्रह्म या वेद ज्ञान का उपदेश करते हुए (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्ष के उस दिन (परि स्थ) सब एक घेर सा बना कर बैठा करो।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ८

भा०—(सोमिनः ब्राह्मणासः) सोमयाग करने वाले वा अपने अधीन सोम, ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले विद्वान् ब्रह्मवेत्ता लोग (परिवत्सरीणम्) वर्ष भर (ब्रह्म कृण्वन्तः) वेद का उपदेश करते हुए (वाचम् अक्रत) उत्तम प्रवचन करें। (अध्वर्यवः) यज्ञ-कर्त्ता (घर्मिणः) सूर्यवत् तेजस्वी या घर्म, प्रवर्ग्येष्टि करने हारे (सिष्विदानाः) स्वेद युक्त होकर भी (केचित्) कुछ विद्वान् लोग (गुह्या न) गुहा में बैठे तपस्वियों के समान (गुह्याः) गुहा, बुद्धि ज्ञान या हृदय-गुहा में ही रमण करते हुए (आविर्भवन्ति) प्रकट होते हैं या (न आविर्भवन्ति) नहीं प्रकट होते हैं। वे गुप्त प्रभाव से ही रहते हैं।

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥

भा०—(संवत्सरे) वर्ष में (तप्ताः घर्माः) तपे घाम अर्थात् सूर्य के तेज (आगताया प्रावृषि) वर्षाकाल आने पर (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार से जलों को व्याप लेते हैं, मेघ रूप से प्रकट करते हैं वे (द्वादशस्य) बारह मास के बने वर्षा के (देव-हितिं) जलप्रद मेघ की (जुगुपुः) रक्षा करते और (नरः) नायक वायुगण (ऋतुं न प्रमिनन्ति) वर्षा ऋतु को नष्ट नहीं होने देते उसी प्रकार (संवत्सरे) एक वर्ष में (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा के आनेपर (तप्ताः) तप से संतप्त, (घर्माः) तेजस्वी पुरुष भी (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार के अध्याय, काण्डादि

से युक्त वेद का अभ्यास करते हैं। वे (द्वादशस्य) बारहों मास वर्षभर (देव-हितिं जुगुपुः) परमेश्वर के दिये ज्ञान-कोश की रक्षा करते हैं। और (एते) वे (नरः) उत्तम पुरुष (ऋतुं न प्र मिनन्ति) 'ऋतु' अर्थात् ज्ञानयुक्त वेद को उसी प्रकार नष्ट नहीं होने देते जैसे नर जीव अपने योनि में ऋतु का नाश नहीं होने देते।

गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः १०।४

भा०—(गो-मायुः) वाणियों का उपदेष्टा विद्वान् (नः वसूनि अदात्) हमें नाना ऐश्वर्य प्रदान करे। (अज-मायुः नः वसूनि अदात्) नित्य पदार्थ जीव, आत्मा और प्रकृति का उपदेश करने वाला विद्वान् भी हमें नाना ऐश्वर्य दे। (हरितः) ज्ञान संग्रह करने वाला विद्वान् भी (नः वसूनि अदात्) हमें ऐश्वर्य दे। (मंडूकाः) ज्ञान, मोक्षादि के आनन्द में स्वयं निमग्न और अन्यों को भी आनन्दित करने वाले विद्वान् जन (सहस्र-सावे) सहस्रों के ऐश्वर्यों और सुखों के देने के निमित्त (गवां शतानि) सैकड़ों वाणियों का (ददतः) उपदेश करते हुए (आयुः प्र तिरन्ते) आयु की वृद्धि करें। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१०४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ देवताः—१—७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ। ८, १६, १९–२२, २४ इन्द्रः। ९, १२, १३ सोमः। १०, १४ अग्निः। ११ देवाः। १७ ग्रावाणः। १८ मरुतः। २३ वसिष्ठः। २३ पृथिव्यन्तरिक्षे ॥ छन्दः— १, ६, ७ विराड्जगती। २ आर्षी जगती। ३, ५, १८, २१ निचृज्जगती। ८, १०, ११, १३, १४, १५, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ आर्षी त्रिष्टुप्। १२, १६ विराट् त्रिष्टुप्। १९, २०, २२ त्रिष्टुप्। २३ आर्ची भुरिग्जगती। २४ याजुषी विराट् त्रिष्टुप्। २५ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥१॥

भा०—दुष्टों का दमन। हे (इन्द्रा सोमा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवन्! शत्रु-हन्तः! हे सोम, शासक जन! राजा के पुत्रवत् प्रजाजन! आप दोनों मिलकर (रक्षः तपतम्) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को पीड़ित करो। इतना दण्ड दो कि वे पश्चात्ताप करें। (उब्जतम्) उनको झुकाओ, उनका गर्व चूर करो। हे (वृषणा) प्रबन्ध करने में समर्थ बलवान् जनो! (तमः-वृधः) अज्ञान, अन्धकारादि के बढ़ाने वाले लोगों को (नि अर्पयतम्) नीचे दबाओ कि वे उठकर प्रबल न हो जावें। (अचितः) अज्ञानी, मूर्ख लोगों को (परा शृणीतम्) इतना पीड़ित करो कि वे परे हट जायं। उनको (नि ओषतं) इतना सन्तापित करो कि नीचे दबे रहें, (हतं) उनको दण्डित करते रहो, (नुदेथाम्) उनको परे भगाते रहो। प्रजा का सर्वस्व खाजाने वालों को भी (नि शिशीतम्) खूब तीक्ष्ण दण्ड दो।

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन्! हे उत्तम शासक जनो! आप दोनों मिलकर (अघ-शंसं) पाप की चर्चा करने वाले और (अघं) पापी पुरुष को (सम् अभि धत्तम्) अच्छी प्रकार से बांधो, वह (तपुः) संतप्त होकर (अग्निवान् चरुः इव) अग्नि से युक्त पात्र वा अन्नादि के समान सन्तप्त होकर (ययस्तु) पीड़ित हो। और आप दोनों (ब्रह्म-द्विषे) वेद और वेदज्ञ विद्वान् के द्वेषी (क्रव्यादे) कच्चा मांस खाने वाले और (किमीदिने) अब क्या अब क्या इस प्रकार मूढ़ और (घोरचक्षसे) घोर क्रूर दृष्टि वाले पुरुष को (अनवायं) निरन्तर (द्वेषः धत्तम्) अप्रीति करो। ऐसे व्यक्तियों से कभी प्रेम न करो।

इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्तर॑नार॒म्भणे॒ तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम् ।
यथा॒ नातः॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोद॒यत्तद्वा॑मस्तु॒ सह॑से मन्यु॒मच्छवः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! राजन् ! हे (सोम) धर्म का अनुशासन करने वाले विद्वान् जनो ! आप लोग (दुष्कृतः) दुष्ट और दुःखदायी कामना करने वाले दुष्ट पुरुषों को (वव्रे अन्तः) चारों ओर से घिरे कैद, कारागारादि स्थान के भीतर वा कूए, गढ़े के भीतर और (अनारम्भणे तमसि) अवलम्बन रहित, निराधार ऐसे अन्धेरे में (प्रविध्यतम्) रखकर दण्डित करो जहां कुछ भी सूझ न पड़े। (यथा) जिससे (अतः) वहां से (पुनः एकः चन) फिर एक भी कोई (न उत् अयत्) उठ के ऊपर न आवे। (वाम्) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (मन्युमत् शवः) क्रोध से परिपूर्ण बल पराक्रम (सहसे अस्तु) दुष्टों का पराजय करने के लिये सदा बना रहे।

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम् ।
उत्त॑क्षतं स्व॒र्यं१॒॑ पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान्, हे उत्तम विद्यावान् दोनों जनो ! आप दोनों (अघ-शंसाय) पाप की चर्चा करने वाले पुरुष को दण्ड देने के लिये (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (वधं वर्तयम्) दण्ड किया करो, और उसके लिये (तर्हणम्) नाशकारी (स्वर्यं) सन्तापजनक और घोर नादकारी (पर्वतेभ्यः) मेघों से आने वाले विद्युत् तत्व को (उत् तक्षतम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो। (येन) जिससे (वावृधानं रक्षः) बढ़ते दुष्ट जन को भी (निजूर्वथः) खूब दण्डित कर सको।

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्पर्य॑ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः ।
तपु॑र्वधेभिर॒जरे॑भिर॒त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने विध्यत॒ं यन्तु॑ निस्व॒रम् ॥ ५ ॥ ५

भा०—हे (इन्द्रासोमा) राजन् ! हे शासक जन ! (युवम्) आप दोनों (अग्नि-तप्तेभिः) अग्नि से तपे हुए, (अश्म-हन्मभिः) मेघ से विद्युत्

के समान वा ओले के समान आघात करने वाले (तपुर्वधेभिः) दुष्टों के नाशकारी अस्त्रों, नालीकादि गुलिका बाणों से (दिवः परि) आकाश से दूर से ही मार कर (अत्रिणः) प्रजा के नाशक, भक्षक दुष्ट पुरुष के (पर्शाने) दोनों पासों के बल समुदाय को (नि विध्यतम्) खूब छिन्न भिन्न करो। जिससे वह (निःस्वरम्) विना आवाज़ किये, चुपचाप, विना कष्ट पहुंचाये (यन्तु) चला जावे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रा॑सोमा॒ परि॑ वां भूतु वि॒श्वत॑ इ॒यं म॒तिः क॒क्ष्याश्वे॑व वा॒जिना॑।
यां वां॒ होत्रां॑ परिहि॒नोमि॑ मे॒धये॒मा ब्रह्मा॑णि नृ॒पती॑व जिन्वतम् ॥६॥

भा०—(कक्ष्या वाजिना अश्वा-इव) जिस प्रकार वेग वाले, बलवान् अश्वों को बगलबन्द की रस्सी चारों ओर से बांधती है हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य ! हे सोम ! सौम्य भावयुक्त शिष्य ! (वां) आप दोनों को (इयं मतिः) यह ज्ञान वा वाणी (कक्ष्या) अवगाहन करने योग्य, गंभीर, (विश्वतः परिभूतु) सब प्रकार से और सब ओर से प्राप्त हो। (वां) आप दोनों की (यां) जिस (होत्रां) ग्रहण करने योग्य उत्तम वाणी को (मेधया) उत्तम धारणावती बुद्धि द्वारा (परि हिनोमि) मैं बढ़ाऊं या प्राप्त करूं (इमा ब्रह्माणि) और इन वेद वचनों को वा धनों को (नृपती इव) राजाओं के समान (जिन्वतम्) प्राप्त करो और उपभोग करो।

प्रति॑ स्मरेथां तु॒जय॑द्भि॒रेवै॑र्ह॒तं द्रु॒हो र॒क्षसो॒ भङ्गु॑रावतः।
इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृते॒ मा सु॒गं भू॒द्यो नः॑ क॒दा चि॑दभि॒दास॑ति द्रु॒हा ॥७॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान् ! ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों ! (तुजयद्भिः) शत्रुओं का नाश करने वाले (एवैः) प्रयाणशील भटों, सैन्यों तथा अज्ञाननाशक ज्ञानों में (प्रति स्मरेथाम्) प्रत्येक स्थान पर प्रयाण करो और प्रत्येक वस्तु का स्मरण करो। (भङ्गुरावतः) नगर गृहादि को तोड़ने वाले तथा व्रतादि का नाश करने वाले, (द्रुहः रक्षसः)

द्रोहशील विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और दुष्ट भावों को (हतम्) दण्ड दो और नाश करो। (यः) जो (नः) हमें (कदाचित्) कभी भी (द्रुहा) द्रोह या द्वेष से (अभिदासति) नाश करता वा हमें अपना दासवत् बना लेता है, ऐसे (दुष्कृते) दुराचारी पुरुष को (सुगं मा भूत्) कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार (दुष्कते सुगं मा भूत्) दुष्कर्म के बदले सुख कभी प्राप्त नहीं होता।

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे दुष्टों के नाशकारिन्! (यः) जो (पाकेन) परिपक्क = दृढ़, सत्ययुक्त (मनसा) ज्ञान वा चित्त से अथवा (पाकेन = वाकेन,) उत्तम सत्य वचन और (मनसा) उत्तम ज्ञान सहित (चरन्तम्) आचारण करने वाले (मा) मुझ पर (अनृतेभिः वचोभिः) असत्य वचनों द्वारा (अभि-चष्टे) आक्षेप करता है वह (असन्) असत्य का (वक्ता) कहने वाला (काशिनः संगृभीताः आपः इव) मुट्ठी में लिये जलों के समान (असन् अस्तु) नहींसा होकर नीचे गिर पड़े, छिन्न भिन्न होकर नष्ट होजाय।

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥

भा०—(ये) जो लोग (एवैः) अपने पुरे अभिप्रायों या कुटिल चालों से (पाक-शंसं) परिपक्क, दृढ़ सत्य वचन कहने वाले को (विहरन्ते) विरुद्ध मार्ग में ले जाते हैं (वा) अथवा, जो (स्वधाभिः) अपने बल, अन्न, गृह वेतनादि के बल से वा वेतनभोगी पुरुषों द्वारा (भद्रं दूषयन्ति) भले आदमी को दूषित करते हैं उस पर दोषारोप करते हैं (सोमः) शासक राजा और विद्वान् न्यायाधीश (तान्) उनको (वा) भी (अहये प्र ददातु) हिंसक, सर्पादि जन्तु के काटने वा सर्पवत् कुटिलाचार करने के

लिये ही दण्ड दे। (वा) अथवा, (तान्) ऐसे पुरुषों का (निः-ऋतेः) अति दुःखदायी जन्तु सिंह, रीछ आदि वा पीड़क के (उपस्थे) समीप (आ दधातु) रक्खें।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्। रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी अग्निवत् तेजस्विन्! (यः) जो दुष्ट पुरुष (नः) हमारे (पित्वः रसं) अन्न के रस, सारभाग को (दिप्सति) नाश करना चाहता है, और (यः) जो हमारे (अश्वानां) घोड़ों, (गवां) गौओं, बैलों और (तनूनां) शरीरों के (रसं) सारवान् बलयुक्त परिपुष्ट अंश को नाश करना चाहता है वह (रिपुः) शत्रु, पापी (स्तेनः) चोर, (स्तेयकृत्) चोरी करने वाला, पुरुष (दभ्रम् एतु) हिंसा, पीड़ा वा मृत्यु दण्ड को प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) शरीर और (तना च) धन, पुत्रादि से (नि हीयताम्) वञ्चित किया जाय।

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः। प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्॥११॥

भा०—और हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो! (यः च) जो (नः) हमें (दिवाः) दिन के समय और या (नक्तम्) रात के समय (दिप्सति) हानि पहुंचाता, हमें नाश करना चाहता है (सः) वह (तन्वा तना च) शरीर और अपने पुत्रादि से भी (परः अस्तु) दूर, वियुक्त हो। वह (विश्वाः) समस्त (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियों या लोकों से (अधः अस्तु) नीचे रहे, गढ़े में या नीची कोटि में रक्खा जावे। (अस्य यशः) उसका यश, कीर्त्ति, बल (प्रति शुष्यतु) प्रतिदिन सूखता जाय।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्॥ १२ ॥

भा०—(चिकितेषु) जानने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (सत् च असत् च) सत्य और असत्य दोनों ही (सुविज्ञानं) बहुत अच्छी प्रकार जानने योग्य होते हैं, विद्वान् सत्य और असत्य दोनों को सुगमता से ही जान लेता है, क्योंकि (सत् च असत् च वचसी) सत्य और असत्य दोनों वचन (पस्पृधाते) परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। दोनों एक दूसरे के विरोधी होते हैं। ज्ञानी पुरुष के लिये विरोध का देखलेना कठिन नहीं होता। (तयोः) उन दोनों में (यत् सत्यं) जो भी सत्य है वो (यतरत् ऋजीयः) जो भी अधिक ऋजु धर्मानुकूल होता है (तद् इत्) उस की ही, (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् रक्षा करता है और (असत् हन्ति) असत् को दण्ड और विनष्ट करता है।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक जन (वृजिनं) पाप और असत्य को (न वै उ हिनोति) कभी वृद्धि न दे। और (मिथुया धारयन्तं) असत्य पक्ष को धारण करने वाले (क्षत्रियम्) बलशाली पुरुष को भी (न हिनोति) न बढ़ने दे। (रक्षः) दुष्ट पुरुष को (हन्ति) दण्ड अवश्य दे, और (असद् वदन्तम् हन्ति) असत्यवादी को भी दण्ड दे। (उभौ) वे दोनों भी (इन्द्रस्य प्रसितौ) दुष्टों के भयकारी पुरुष के उत्तम बन्धन में (शयाते) डाले जायँ।

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् १४

भा०—(यदि वा) और यदि (अहम्) मैं (अनृतदेवः) असत्य बात का प्रकाश करने वाला हूं अर्थात् ऋत, सत्यानुकूल देन लेन, व्यवहार करने वाला नहीं हूं, हे (अग्ने) तेजस्विन्! अथवा मैं (देवान् अपि) विद्वान् पुरुषों को (मोघं) झूठ मूठ व्यर्थ ही (ऊहे) नाना प्रश्न,

वा तर्क वितर्क करता हूं, हे (जातवेदः) विद्वन् ! ज्ञानवन् !(अस्मभ्यम्) विचार करो कि हमारे सुधार के लिये (किम् हृणीषे) क्या २ क्रोध कर हमें किस २ प्रकार दण्डित करो। क्योंकि (द्रोघ-वाचः) द्रोह या परस्पर द्वेष की बात कहने वाले (ते) वे नाना लोग भी अवश्य (निर्ऋथं) अति दुःख और धन, सत्य, अन्न ऐश्वर्यादि से रहित कष्टमय जीवन को (सचन्ताम्) प्राप्त हों।

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥१५।७॥

भा०—(यदि) यदि मैं (यातुधानः) अन्यों को पीड़ा, यातना देने वाला, (अस्मि) होऊं और (यदि वा) जो मैं (पूरुषस्य) मनुष्य के (आयुः) जीवन को (ततप) पीड़ित करूं, मानव जीवन के संताप का कारण बनूं तो मैं (अद्य मुरीय) आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊं। अर्थात् अन्य को पीड़ा देने और मनुष्य जीवन को हानि पहुंचाने वाले को अति शीघ्र मृत्यु-दण्ड हो। (अद्य) और (यः) जो (मोघं) व्यर्थ, विना प्रयोजन के (मा) मुझे (यातुधान इति आहः) पीड़ादायक, क्रूर ऐसा कहे (सः) वह तू (दशभिः वीरैः) दशों प्रकार के प्राणों से (वि यूयाः) वियुक्त हो। इति सप्तमो वर्गः॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥१६॥

भा०—(यः) जो (अयातुं मा) अन्य को पीड़ा न देने वाले अहिंसक को (यातुधान इति आह) पीड़ा देने वाला, हिंसक ऐसा बतलावे (वा) और (यः) जो (रक्षाः) स्वयं दुष्ट पुरुष होकर (शुचिः अस्मि इति आह) मैं निर्दोष हूं, ऐसा अपने को बतलावे (इन्द्रः) राजा (तं) उसको (महता वधेन) बड़े भारी शस्त्र से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य जन्तोः) समस्त पापियों से (अधमः) अधम, नीचा (पदीष्ट) समझा जावे।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः॥१७॥

भा०—(या) जो स्त्री, (खर्गला इव) उल्लुनी के समान (द्रुहा) पति से द्रोह करके अपने (तन्वं गूहमाना) शरीर को छिपाकर (नक्तम्) रात के समय (प्र अप जिगाति) घर छोड़ कर जाती है (सा) वह (अनन्तां वव्रान्) खूब गहरे गढ़ों को (अव पदीष्ट) प्राप्त हो। इस प्रकार (ग्रावाणः) क्षत्रिय लोग (उपब्दैः) गर्जनाओं और घोषणाओं सहित (रक्षसः घ्नन्तु) दुष्ट पुरुषों को विनष्ट करें ।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो (ये) जो (नक्तभिः) रातों के समय आप लोग (वयः भूत्वी) तेजस्वी, प्रकाशयुक्त होकर (पतयन्ति) नगर के स्वामी के समान रक्षा करते हैं (ये वा) और जो आप लोग (अध्वरे) हिंसारहित, एवं दुष्टों से अहिंसनीय (देवे) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (रिपः) पापों और दुष्ट पुरुषों को (दधिरे) पकड़ते हो वे आप लोग (विक्षु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वम्) विशेष २ पदों पर विराजमान होवें। और (वि इच्छत) विविध ऐश्वर्यों की कामना करो। (रक्षसः वि गृभायत) दुष्ट पुरुषों को विविध प्रकार से कैद करो। और उनको (सं पिनष्टन) अच्छी प्रकार दबाओ, पीसो, दण्डित करो, कुचलो। अथवा—हे बलवान् पुरुषो ! आप लोग उन दुष्टों को दण्डित करो जो (वयः भूत्वी) प्रजा के भक्षक होकर (नक्तं पतयन्ति) रात में छुपे प्रजा वा मालिक के समान शासन करते और बहुत धन के स्वामी बन जाना चाहते हैं। और जो (देवे) विद्वानों, एवं करप्रद प्रजा और राजा पर और (अध्वरे) यज्ञ में (रिपः दधिरे) पापकर्म आचरण करते हैं ।

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (दिवः अश्मानम्) आकाश से पड़ने वाले ओलों के समान (दिवः) तेजोयुक्त-आग्नेय अस्त्र से (अश्मानम्) शत्रुनाशक गोली आदि कठिन वस्तु (प्र वर्त्तय) फेंक । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम-शितम्) ऐश्वर्य और उत्तम शासक से तीव्र हुए शत्रु और प्रजाजन दोनों को (सं शिशाधि) अच्छी प्रकार शासन कर । (प्राक्तात्, अपाक्तात्, उदक्तात्, अधरात्) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे, दक्षिण से भी (पर्वतेन) दृढ़ पोरु वाले दण्ड से, पशु के समान (रक्षसः जहि) दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर ।

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः २०।८

भा० –(एते उ त्ये) ये वे बहुत से (श्व-यातवः) कुत्ते के समान चाल चलने और अन्यों को पागल कुत्ते के समान विना प्रयोजन काटने और अन्यों के प्रति परुष भाषण कहने और गुर्रा २ कर डराने वाले लोग ही (पतयन्ति) मालिक से बन कर बैठ जाना चाहते और प्रजा के धन को हर लेना चाहा करते हैं (दिप्सवः) हिंसाकारी लोग ही (अदाभ्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति) अहिंसनीय ऐश्वर्यवान् राजा को भी मारना चाहा करते हैं । (शक्रः) शक्तिशाली राजा (पिशुनेभ्यः) क्षुद्र पुरुषों को दमन करने के लिये (वधं शिशीते) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने शस्त्र बल को सदा तेज़ करता रहे । (नूनं) अवश्य ही वह (यातुमद्भ्यः) प्रजा को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुषों को दमन करने के लिये (अशनिं) विद्युत्वत् आघातकारी शस्त्र (सृजत) बनावे और उन पर छोड़े। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥२१॥

भा०—(इन्द्रः) राजा, ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (हविर्मथीनां) प्रजाओं के अन्न, यज्ञों के चरु और राज्य के कर आदि को बलात् हरने वाले (यातूनां) प्रजाओं के पीड़ादायी मनुष्यों और (अभि आ विवासताम्) अभिमुख आकर आक्रमण करने वाले पुरुषों को (परा-शरः) दूर तक मार मारने वाला (आ भवत्) हो। (परशुः यथा वनं) जिस प्रकार फरसा, वन को काट गिराता है, (पात्रा इव) जिस प्रकार पत्थर वर्त्तनों को तोड़ डालता है उसी प्रकार (शक्रः) शक्तिशाली राजा (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (परशुः) कुल्हाड़ा सा होकर (अभि एति) प्राप्त हो और (रक्षसः सतः भिन्दन् एति) उन दुष्टों को भेद नीति से तोड़ता फोड़ता हुआ प्राप्त हो।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! (उलूक-यातुम्) बड़े उल्लू के समान चाल चलने और उसके समान छिप कर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करने और उनको भयभीत करने वाले को, (शुशुलूक-यातुम्) छोटे उल्लू के समान अति कर्कश बोल कर डराने और प्रजा के गरीब जनों को पीड़ित करने वाले को, (श्व-यातुम्) कुत्ते के समान भौंक कर, बकर, कठोर वचन कह कर, डरा धमका कर प्रजा के जनों को पीड़ा देने वाले, (कोक-यातुम्) उलूक के तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देने वाले (सुपर्ण-यातुम्) बाज़ के समान झपटने वाले (उत) और (गृध्र-यातुम्) गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोच कर खाजाने वाले (रक्षः) दुष्ट जनों को (दृषदा इव) सिलबट्टे या चक्की के पाटों के समान पीस डालने वाले (प्र मृण) दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥

भा०—(रक्षः) दुष्ट पुरुष (नः) हम तक (मा अभिनड्) न पहुंचे। (यातुमा-वताम्) पीड़ा देने वाले जनों के (मिथुना) जोड़े स्त्री

पुरुष (या किमीदिना) जो निकम्मे वा क्षुद्र कोटि का स्वार्थमय स्नेह करने वाले हैं वे (अप उच्छतु) दूर हों। (पृथिवी) पृथिवीवत् सर्वाश्रय, विस्तृत शक्ति (नः पार्थिवात् अंहसः पातु) हमें पृथिवी से होने वाले पाप या कष्ट से बचावे। और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अस्मान्) हमें (दिव्यात् अंहसः पातु) आकाश की ओर से आने वाले कष्ट से बचावे।

इन्द्र॒ ज॒हि पुमां॑सं यातु॒धान॑मु॒त स्त्रियं॑ मा॒यया॒ शाश॑दानाम् ।
विग्री॑वासो॒ मूर॑देवा ऋ॒दन्तु॒ मा ते दृ॑श॒न्त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यातुधानं पुमांसं) पीड़ा देने वाले पुरुष को और (मायया शाशदानाम्) माया में प्रजा का नाश करने वाली (स्त्रियं उत) स्त्री को भी (जहि) दण्डित कर। (मूर-देवाः) मूढ़ होकर विषयों में क्रीड़ा करने वाले, या मारने वाली मौत की पीड़ा देने वाले दुष्ट लोग (वि-ग्रीवासः) विना गर्दन के होकर (ऋदन्तु) नष्ट हों। (ते) वे (उत्-चरन्तं) उगते हुए (सूर्यं मादृशन्) सूर्य को भी न देख पावें।

प्रति॑ चक्ष्व॒ वि च॒क्ष्वेन्द्र॑श्च सोम जागृतम् ।
रक्षो॑भ्यो व॒धम॑स्यतम॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ ॥ २५ ॥ ९ ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे शासनकर्त्ता! तुम और (इन्द्रः च) शत्रुहन्ता सेनापति दोनों ही (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार को देखो और (वि-चक्ष्व) विविध प्रकार से देखो (जागृतम्) तुम दोनों सदा जागते रहो, सावधान रहो। (रक्षोभ्यः वधम् अस्यत) दुष्टों के नाश करने के लिये उन पर शस्त्र का प्रहार करो। और (यातुमद्-भ्यः अशनिम् अस्यत) अन्यों को पीड़ा देने वा हमारे नगरादि पर चढ़ाई, युद्ध प्रयाण करने वाली सेना के स्वामियों पर विद्युत् के तुल्य आघातकारी अस्त्र का प्रयोग करो। इति नवमो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः।

॥ इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथाष्टमं मण्डलम्

[१]

प्रगाथो घौरः काण्वो वा । ३—२९ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । ३०—३३ आसङ्गः प्लायोगिः । ३४ शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य पत्नी ऋषिः ॥ देवताः— १—२९ इन्द्रः । ३०—३३ आसंगस्य दानस्तुतिः । ३४ आसंगः ॥ छन्दः— १ उपरिष्टाद् बृहती । २ आर्षी भुरिग् बृहती । ३, ७, १०, १४, १८, २१ विराड् बृहती । ४ आर्षी स्वराड् बृहती । ५, ८, १५, १७, १९, २२, २५, ३१ निचृद् बृहती । ६, ९, ११, १२, २०, २४, २६, २७ आर्षी बृहती । १३ शङ्कुमती बृहती । १६, २३, ३०, ३२ आर्ची भुरिग्बृहती । २८ आसुरी स्वराड् निचृद् बृहती । २९ बृहती । ३३ त्रिष्टुप् । ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! (अन्यत्) और किसी को (मा चित् शंसत) कभी पूज्य, उपास्य मत कहो और किसी की उपासना मत करो । (मा रिषण्यत) हिंसा कभी मत करो । (वृषणं) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्वशक्तिमान्, जगत् के प्रबन्ध करने वाले, व्यवस्थापक (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के स्वामी की (इत्) ही (स्तोत) स्तुति किया करो । (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (सचा) एक साथ बैठ कर (मुहुः) बार २ (उक्था च) नाना स्तुति-वचन (शंसत) कहो ।

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

भा०—(अव-क्षिणं गां न) हल शकट आदि के खैंचने वाले बैल के समान (अव-क्षिणं) अपने अधीन जगत् भर को चलाने वाले (यथा वृषभं) मेघ के समान सुखों के वर्षक वृषभ के समान अति बलशाली, (अजुरं) अविनाशशील, सदा बलयुक्त, (चर्षणी-सहम्) सब मनुष्यों से ऊपर, (वि-द्वेषणं) द्वेष के भावों से विवर्जित, (सं-वनना) अच्छी प्रकार से सेवा वा भक्ति करने योग्य (मंहिष्ठम्) अति दानशील (उभयं-करम्) अनुग्रह वा दण्ड अथवा दोनों लोकों में कल्याण करने वाले, (उभयाविनम्) दोनों लोकों में कर्म और भोग दोनों योनियों में विद्यमान जीवों की रक्षा करने वाले परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति किया करो।

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत् त्वा चित् हि) जिस तुझ पूज्य परमेश्वर को ही (इमे नाना जना) ये नाना जन (ऊतये) अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये (हवन्ते) पुकारते, तेरी प्रार्थना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) उस तेरा (इदं ब्रह्म) यह वेद-ज्ञान (विश्वा अहा) सब दिनों ही (अस्माकं वर्धनं भूतु) हमें बढ़ाने वाला होवे।

वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम्।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (विपश्चितः) नाना विद्वान् जन (वि तर्तूर्यन्ते) विशेष रूप से तेरे ही अनुग्रह से इस संसार से पार हो जाते हैं। (जनानाम्) मनुष्यों को (विपः) कंपाने वाला और तू ही (अर्यः) उन पर अनुग्रह करने वाला स्वामी है। तू (पुरु-रूपम्) बहुत प्रकार से (उप क्रमस्व) हमें प्राप्त हो, और (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (नेदिष्ठं वाजं भर) अति समीप प्राप्य आत्मिक ऐश्वर्य और बल, एवं ज्ञान प्रदान कर।

म॒हे च॒न त्वाम॑द्रिवः॒ परा॑ शु॒ल्काय॑ देयाम् ।
न स॒हस्रा॑य॒ नायुता॑य वज्रि॒वो न श॒ताय॑ शतामघ ॥५॥१०॥

भा०—हे (अद्रिवः) अविनाशी शक्तिमन्! (त्वाम्) तुझ को (महे चन शुल्काय) बड़े भारी मूल्य या आर्थिक लाभ के लिये भी (न परा देयाम्) कभी त्याग न करूं। हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन्! हे (शत-मघ) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामिन्! मैं तुझे (सहस्राय) हज़ारों के लिये भी (न) नहीं त्यागूं। (अयुताय न) दस हज़ार के लिये भी न त्यागूं (शताय न) सैकड़ों के लिये भी न त्यागूं। इति दशमो वर्गः ॥

वस्याँ॑ इन्द्रासि मे पि॒तुरु॒त भ्रातु॒रभु॑ञ्जतः ।
मा॒ता च॑ मे छदयथः स॒मा व॑सो वसुत्व॒नाय॒ राध॑से ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! प्रभो! तू (मे) मुझे (अभुञ्जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता और (भ्रातुः) भाई से भी (वस्यान् असि) अधिक श्रेष्ठ एवं सम्पन्न है। हे (वसो) सब में बसने हारे अन्तर्यामिन्! तू और (माता च) मेरी माता दोनों (समौ) बराबर हैं। दोनों ही (छदयथः) मुझे आच्छादित करते हो। मेरे लिये छदि अर्थात् शरण देने वाले गृह के समान हो। और (वसुत्वनाय) मुझे बसाने और (राधसे) धनैश्वर्य देने के लिये भी (समौ) माता और तू दोनों बराबर हो।

क्वे॑यथ॒ क्वेद॑सि पुरु॒त्रा चि॒द्धि ते॒ मनः॑ ।
अल॑र्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर॒ प्र गा॑य॒त्रा अ॑गासिषुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुरन्दर) देह रूप पुरों का नाश करने वाले! हे देह-बन्धन से छुड़ाने वाले! प्रभो! (क्व इयथ) तू कहां गया है? (क्व इत् असि) तू कहां है? (ते) तेरे लिये (मनः) मेरा मन (पुरुत्र चित् हि) बहुत २ स्थानों पर जाता है। हे (युध्म) दुष्टों को ताड़ना देने

हारे ! हे (खजकृत्) इन्द्रियों के बीच प्रकट होने वाले! प्राण शक्तियों को प्रकट करने हारे आत्मन् !वा (खजकृत्) आकाश में प्रकट जगत् के रच-यितः ! तू (अलर्षि) सर्वत्र व्यापता है । (गायत्राः) गान करने वाले विद्वान् और वेदमन्त्र (ते) तेरा ही (प्र अगासिषुः) उत्तम रूप से गान और वर्णन करते हैं । (२) राजा युद्ध करने से 'युध्म' और संग्राम करने से 'खजकृत्' है ।

प्रास्मै गाय॒त्रम॑र्चत वा॒वातु॒र्यः पु॑र॒न्द॒रः ।
याभि॑: का॒ण्वस्योप॑ ब॒र्हिरा॒सदं॒ यास॑द्व॒ज्री भि॒नत्पुर॑: ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार वीर सेनापति वा राजा, (वावातुः) हिंसक वा प्रबल शत्रु के भी (पुरंदरः) नगरियों को तोड़ फोड़ देने में समर्थ होकर (वज्री) बलवान् होकर (बर्हिः उप आसदं) राष्ट्र-प्रजा के ऊपर अध्यक्षा-सन पर बैठने के लिये (यासत्) प्रयास या उद्योग करता है और (पुरः भिनत्) शत्रु के नगरों को तोड़ डालता है उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (वावातुः) निरन्तर सांसारिक भोगों को सेवन करने वाले जीव के भी (पुरन्दरः) देहबन्धन का नाश करता है, और वह जीव (याभिः) जिन देहपुरी रूप साधनों से, (कण्वस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (बर्हिः उप आसदम्) महान् यज्ञ में भी उपासना करने के लिये (यासत्) यत्न करता है, उसी से वह (वज्री) वीर्यवान् आत्मा भी (पुरः भिनत्) देह-पुरियों को वीर सेनापति के तुल्य छिन्न भिन्न करता है ।

ये ते॒ सन्ति॑ दश॒ग्विन॑: श॒तिनो॒ ये स॑ह॒स्रिण॑: ।
अश्वा॑सो॒ ये ते॒ वृष॑णो रघु॒द्रुव॒स्तेभि॑र्न॒स्तूय॒मा ग॑हि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते ! (ते) तेरे (ये) जो (दश-ग्विनः) दश गतियों से जाने वाले, या दश गौओं या, भूमियों या भटों के स्वामी, (शतिनः) सौ ग्रामों, या सौ भटों पर के नायक (सहस्रिणः) हजार भूमियों, या भटों के स्वामी, अथवा (शतिनः) सौ संख्या वेतन

और (सहस्रिणः) सहस्र संख्या वेतन वाले (अश्वासः) अश्वारोही वीर पुरुष हैं और (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (रघु-द्रुवः) अति वेग से जाने वाले हैं (तेभिः) उन सब के साथ (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र (आ गहि) प्राप्त हो। (२) परमेश्वर के पक्ष में—दशों इन्द्रियों के स्वामी, 'दशग्वी' शतवर्षजीवी 'शती' और सहस्रों के पति 'सहस्री' विद्वान् बलवान् के द्वारा उन के उपदेशों से तू हमें प्राप्त हो।

आ त्वं१द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम्।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—(सु-दुघां धेनुम्) सुख से दोहन करने योग्य गौ जिस प्रकार (उरु-धारां) बहुत दूध की धारा वाली, (सबर्दुघाम्) उत्तम गोरस देने वाली होती है उसी प्रकार मैं (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को भी (धेनुम्) गौ के समान (सु-दुघाम्) सुख आनन्द रस को देने वाली, (अन्याम्) अन्य, इन लौकिक गौओं से सर्वथा भिन्न, (इषम्) सदैव इच्छा करने योग्य, उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाली, (उरु-धाराम्) बहुत से लोकों को धारण करने में समर्थ, बहुत सी वेदवाणियों को देने वाली, नाना सुख-धारा को मेघवत् वर्षाने वाली, (अरंकृतम्) प्रचुर अन्न सुखादि उत्पन्न करने वाली, (गायत्र-वेपसम्) गान करने वालों को आवेश और प्रेमोद्रेकों से कंपा देने, गद् गद कर देने वाली और (सबर्दुघाम्) मधुर दुग्धवत् परमानन्द एवं 'स्वः' परम सुख दोहन करने वाली, (आ हुवे) जानकर (अद्य आ) तुझे स्वीकार करता हूं और उसी रूप से तुझ से प्रार्थना करता हूं। इत्येकादशो वर्गः ॥

यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जो (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (एतशं) अश्व सैन्य को (तुदत्) कशा के समान सन्मार्ग पर चलाता है और जो

(वातस्य) वायु के से (वङ्कू) वक्र गति से जाने वाले, (पर्णिना) पक्ष युक्त विमानों को सञ्चालित करती है, और जो (आर्जुनेयं) अर्जुनी शत्रुदल की नाशक सेना के वने (कुत्सम्) शस्त्र-बल को (वहत्) धारण करता है वह (शत-क्रतुः) बहुत सी प्रज्ञा वाला एवं बहुत से कर्म करने वाले कर्त्ता पुरुषों का स्वामी, होकर (अस्तृतम्) अहिंसित, (गन्धर्वम्) भूमि को धारण करने वाले पद वा अश्वसैन्य (त्सरत्) प्राप्त कर चलावे। अध्यात्म में—(यत्) जो प्रभु (सूरः) सूर्यवत् प्रकाशक (एतशं) अश्ववत् देह से देहान्तर में जाने वाले भोक्ता जीव को कर्मानुसार चलाता, (अर्जुनेयं कुत्सम्) शुद्धचित् 'अर्जुनी' के स्वामी स्तुति कर्त्ता जीव को (वातस्य) वायु के बने (वङ्कू) वक्र गति से देह में व्यापक (पर्णिना) पालक प्राणापानों को प्राप्त करता है, वही (शतक्रतुः) अमित प्रज्ञ प्रभु, अहिंसित, नित्य, (गन्धर्वम्) वाणी के धारक जीव को (त्सरत्) लोक लोकान्तर प्राप्त कराता है।

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (पुरा) पहले भी (अभिश्रिषः ऋते) विना सरेस या जोड़ने वाले कील आदि पदार्थों के विना (चित्) भी (जत्रुभ्यः) हंसलियों तक के (आतृदः) पृथक् २ मोहरों को (संधाता) अच्छी प्रकार जोड़ता है, और जो (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा आत्मा (पुरुवसुः) बहुत से लोकों और जनों में बसा, (विहुतं सन्धिं) विपरीत रूप से मुड़े या विच्छिन्न सन्धि को भी (पुनः इष्कर्त्ता) फिर ठीक लगा देने वाला है वही ईश्वर, इन्द्र वा जीवात्मा है। शरीर की पृथक २ हड्डियों को विना चेप या कील के जोड़े रखता और टूटी या मोच खाई हुई सन्धियों को फिर चंगा कर देता है यही ईश्वरीय कारीगरी और जीव के अद्भुत कौशल का नमूना है।

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी, सूर्यवत् नाना बलों के स्वामिन्! हम (निष्ट्या इव मा भूम) नीचों, हीन, निर्वासित पुरुषों के समान न हों । (त्वत्) तुझ से पृथक् (अरणाः इव) रमण, या जीवन के आनन्द से रहित भी (मा भूम) न हों । (प्र-जहितानि वनानि न) परित्यक्त, बिना देख भाल के वनों या उपवनों के समान असुन्दर, कण्टकाकीर्ण भी (मा भूम) न हों । प्रत्युत (दुरोषासः) अन्यों से दग्ध न हो सकने योग्य, वा उत्तम दुर्ग अर्थात् गृहों में रहने वाले होकर (अमन्महि) तेरा मनन और मान आदर करें ।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों, शत्रुओं के नाशक प्रभो ! राजन् ! हम सदा (अनाशवः) अति शीघ्रता न करते हुए, धैर्यवान् और (अनुग्रासः च) अतीक्ष्ण स्वभाव के, सौम्य होकर (ते) तेरा (स्तोमं) स्तुत्य रूप और गुणों का (अमन्महि) मनन करें और तेरी स्तुति करें । हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुनाशक ! (ते) तेरे (महता राधसा) बड़े भारी ऐश्वर्य से (सकृत्) एक बार तो (स्तोमं अनु मुदीमहि) हम तेरी स्तुति के अनुकूल रहकर खूब अवश्य प्रसन्न हों ।

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५॥१२॥

भा०—हे राजन् ! स्वामिन् ! (यदि) यदि तू (मम स्तोमं) मेरे स्तुतियुक्त वचन को (श्रवत्) श्रवण करे तो (अस्माकम्) हम प्रजाजनों के बीच (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् जन और (तिरः ससृवांसः) तिरछे या दूर तक जाने वाले (आशवः) वेग से जाने वाले (तुग्र्यावृधः) शत्रुओं

के नाशक सैन्य बलों के हितों को बढ़ाने वाले या सैन्यों से बढ़ने वाले वीर पुरुष भी (पवित्रं) पवित्राचार वाले, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुझ प्रभु को (मन्दन्तु) प्रसन्न करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ त्वं१द्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥ १६ ॥

भा०—(अद्य) आज, तू (वावातुः) सेवा करने वाले, भक्त और (सख्युः) मित्र को (सधस्तुतिम्) एक साथ की स्तुति को (आ गहि) प्राप्त हो। (मघोनां) ऐश्वर्यवानों की (उपस्तुतिः) उपमा द्वारा की स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तुझे प्राप्त हो। (अध) और मैं (ते) तेरी (सु-स्तुतिम्) सब से उत्तम स्तुति करना (वश्मि) चाहता हूं। परमेश्वर की स्तुति राजा, ऐश्वर्यवान्, स्वामी आदिरूप से या उपगन्ता, मित्र रूप से भी की जाती है।

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो (अद्रिभिः) जिस प्रकार मेघों से जल बरसता और 'सोम' ओषधि वर्ग उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अद्रिभिः) शस्त्र बलों से (सोमं सोत) ऐश्वर्य को उत्पन्न करो। (अद्रिभिः सोमं सोत) मेघवत् कलशों से अभिषेक योग्य का अभिषेक करो। (ईम् एनम्) उस ऐश्वर्य को (अप्सु) प्रजाओं में (आ धावत) प्राप्त कराओ। हे (नरः) वीर नायक जनो ! जिस प्रकार वायुगण आकाश में मेघों को तन्तुओं के कपड़ों की तरह फैला देते हैं और जल को (वक्षणाभ्यः) नदियों की वृद्धि के लिये मेघों को दोह देते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी वस्त्रों के समान (गव्या वासयन्त) गोधनों को बसाओ, गौओं के रेवड़ भूमि पर जगह २ जाजमों के समान बिछे हों। उन (वक्षणाभ्यः) दूध वहन करने वाली गौओं से (निः धुक्षन्) खूब दूध दोहा करो।

अध॒ ज्मो अध॑ वा दि॒वो बृ॑ह॒तो रो॑च॒नादधि॑।
अ॒या व॑र्धस्व त॒न्वा॑ गि॒रा ममा जा॒ता सु॑क्रतो पृण ॥ १८ ॥

भा०—हे (सु-क्रतो) उत्तम ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले ! तू (अधज्मः) पृथिवी से (अध वा-दिवः) अन्तरिक्ष से वा (बृहतः रोचनात्) बड़े भारी चमकते सूर्य से (जाता) उत्पन्न हुए प्राणियों को (आ पृण) पालन कर और (अया मम तन्वा गिरा) इस मेरी विस्तृत वाणी से (वर्धस्व) बढ़।

इन्द्रा॑य॒ सु म॒दिन्त॑मं॒ सोमं॑ सोता॒ वरे॑ण्यम्।
श॒क्र ए॑णं पीपय॒द्विश्व॑या धि॒या हि॑न्वा॒नं न वा॑ज॒युम् ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रु-हन्ता पुरुष के लिये (मदिन्तमं) अति आनन्द और तृप्तिकारक (सोमं) ओषधि रसादि के समान (वरेण्यं) अति श्रेष्ठ धनैश्वर्य को (सोत) सवन करो, उत्पन्न करो। (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष ही (एनं) इस को (हिन्वानं वाजयुं न) वृद्धिकारक ऐश्वर्य के स्वामी, ऐश्वर्य के इच्छुक प्रजा-जन के समान ही (पीपयत्) बढ़ावे। राजा धन की वृद्धि के लिये प्रजा का नाश न करे, प्रत्युत प्रजावत् ही धन की वृद्धि करे।

मा त्वा॒ सोम॑स्य॒ गल्द॑या॒ सदा॒ याच॑न्न॒हं गि॒रा।
भूर्णिं॑ मृ॒गं न सव॑नेषु चुक्रुधं॒ क ईशा॑नं॒ न या॑चिषत् ॥२०॥१३॥

भा०—(सोमस्य) ऐश्वर्य के निमित्त (गल्दया) स्तुति तथा (गिरा) सामान्य वाणी से भी (सदा) सदा (अहं याचन्) मैं याचना करता हुआ (भूर्णिं) प्रजापालक (सवनेषु) शासन के कार्यों में (मृगं न) सिंह के समान (त्वा) तुझ पराक्रमी को (मा चुक्रुधं) कभी क्रोधित न करूं। (ईशानं) स्वामी से भला (कः न याचिषत्) कौन याचना नहीं किया करता। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः॥ २१॥

भा०—वह राजा, वा प्रभु (उग्रेण मदेन) अति अधिक आनन्द से और (उग्रेण शवसा) उग्र बल से, (इषितं) अभीष्ट (मदम्) आनन्द (नः ददाति) हमें प्रदान करता है। और (मदे) उस आनन्द में ही (विश्वेषाम्) सब को (तरुतारं) पार उतारने वाला और (मदच्युतं) अति हर्षजनक ज्ञान भी (नः ददाति) हमें देता है।

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः॥ २२॥

भा०—(दाशुषे मर्त्ताय) कर दानादि देने वाले मनुष्य के हितार्थ (देवः) दानशील राजा (शेवारे) सुख प्राप्त करने के निमित्त (पुरुवार्या रासते) बहुत २ उत्तम धन देता है। (सः) वह (विश्व-गूर्त्तः) सबसे प्रशंसित, और (अरि-स्तुतः) शत्रुओं से भी प्रशंसित होकर (सुन्वते स्तुवते च) स्तुति करने और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वा अभिषेक करने वाले प्रजाजन के लिये भी (रासते) ऐश्वर्य प्रदान करता है।

एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम्॥ २३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (देव) तेजस्विन् विजिगीषो! तू (आ याहि) आ। और (चित्रेण राधसा) आश्चर्यजनक नाना प्रकार के धन से (मत्स्व) हर्षित हो। तू (स-पीतिभिः) एक साथ मिल कर पान, उपभोग और पालन क्रियाओं से (सरः न) सरोवर के समान (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से (स्थिरम्) प्रतिष्ठित (उरु) बहुत बड़े (उदरम्) पेट के समान राष्ट्र के कोश को (प्रासि) पूर्ण कर।

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥ २४॥

भा०—(हिरण्यये रथे) सुवर्ण या लोह जटित रथ में जुते (केशिनः हरयः) अयाल वाले अश्व जिस प्रकार रथस्वामी को ले जाते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! (सहस्रं) हज़ार २ और (शतम्) सौ सौ (ब्रह्मयुजः) अन्न, वेतनादि पर नियुक्त (केशिनः) उत्तम केशों से युक्त, तेजस्वी (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) सावधान चित्त होकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्यमय राज्य के पालन करने के लिये (हिरण्यये रथे) हित और सुन्दर रमण योग्य इस राष्ट्र में (त्वा) तुझे (आ वहन्तु) आदर पूर्वक अपने ऊपर धारण करें ।

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५॥१४॥

भा०—(रथे हरी) रथ में दो अश्वों के समान (हिरण्यये) ऐश्वर्य युक्त (रथे) रमण योग्य, राष्ट्र में (मयूरशेप्या) मयूर के चिन्ह के समान शिर पर मान आदर सूचक कलगी धारण करने वाले, (हरी) उत्तम दो पुरुष (शिति-पृष्ठा) श्वेत शुद्ध रूप वाले, निर्दोष होकर (त्वा) तुझ को (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न के समान (विवक्षणस्य) विविध प्रकार से धारण करने योग्य राष्ट्र में स्वामी के महान् कार्य के (पीतये) प्राप्ति, उपभोग और पालन करने के लिये (वहताम्) तुम को अपने ऊपर धारण करें । (२) अध्यात्म में हिरण्यय रथ देह, इन्द्र, आत्मा अश्व प्राण-अपान हैं । विविध प्रकार से वचन या उपदेश का विषय मधुर अन्न, मधु, विद्या, ब्रह्म ज्ञान है । वे उसको प्राप्त करावें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों के देने हारे आचार्य ! हे वाणियों द्वारा स्तुत्य ! राजन् ! तू (पूर्व-पा-इव) पूर्व काल के अनुभवी पालक के

समान, (अस्य सुतस्य) इस अधीन शिष्य वा प्रजाजन का पुत्र वा ऐश्वर्य के समान (पिब) पालन कर । (परिष्कृतस्य) अच्छी प्रकार बनाये (रसिनः) रसयुक्त अन्न का (आसुतिः) बना पदार्थ जिस प्रकार हर्षजनक होता है उसी प्रकार (परिष्कृतस्य) सजे सजाये, विद्यादि गुणों से अलङ्कृत (रसिनः) बलवान् पुरुष की (इयम्) यह (आ-सुतिः) अभिषेक क्रिया भी, (चारुः) सबको अच्छी प्रकार लगने वाली होकर (मदाय) सब के आनन्द के लिये (पत्यते) पालकवत् आचरण करती है । उसको सब का पति, स्वामी बना देती है ॥

य एको॒ अस्ति॑ दं॒सना॑ म॒हाँ उ॒ग्रो अ॒भि व्र॒तैः ।
गम॒त्स शि॒प्री न स योष॒दा ग॑म॒द्धवं॒ न परि॑ वर्जति ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो (एकः) एक, अकेला ही, अन्य सहायकों की अपेक्षा किये विना ही (दंसना) कर्म सामर्थ्य से (महान् अस्ति) महान् है और जो (व्रतैः महान्) व्रतों, कर्त्तव्य पालनों द्वारा (उग्रः) उग्र है (सः) वह (शिप्री) उत्तम शिरोमुकुट वाला, उत्तम मुख नासिका वाला, सुमुख पुरुष (अभिगमत्) हमें प्राप्त हो । (न सः योषत्) वह हम से पृथक् न हो । वह (हवं गमत्) स्तुति को प्राप्त हो । वह (न परि वर्जति) हमारा त्याग न करे । (२) परमेश्वर सर्वप्रभु कर्मों से महान्, ज्ञानवान्, साक्षात् स्तुति के योग्य हो । वह हमारे सदा साथ रहे ।

त्वं पुरं॑ चरि॒ष्ण्वं॑ व॒धैः शुष्ण॑स्य॒ सं पि॑णक् ।
त्वं भा अनु॑ चरो॒ अध॑ द्वि॒ता यदि॑न्द्र॒ हव्यो॒ भुवः॑ ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (शुष्णस्य) प्रजा के शोषण करने वाले शत्रु या दुष्ट पुरुष के (चरिष्ण्वं) अस्थिर या प्रजा के ऐश्वर्य के भोक्ता (पुरं) नगरवत् अड्डे या छावनी को (वधैः संपिणक्) दण्डों और शस्त्रों से पीस डाल, चूर्ण २ कर नष्ट कर दे । और (अध यत्) जब तू

(हव्यः भुवः) स्तुतियों को प्राप्त करे तो (अध द्विता अनु चरः) अनन्तर दोनों प्रकार की कान्तियों या तेजों को प्राप्त कर अर्थात् शत्रुदमन और प्रजापालन दोनों कार्यों में तुझे कीर्त्तियां प्राप्त हों। तू सूर्यवत् प्रखर, प्रचण्ड और चन्द्रवत् प्रजाजन-मनोरंजक कान्तियों को धारण कर। (२) प्रभु परमेश्वर (वधैः शुष्णस्य) दण्डों से दुःखित जीव इस भोग के साधन जंगम देह को नाश करे। स्तुत्य प्रभु कान्तियों और ज्ञानों को प्रकट करे।

मम॑ त्वा सूर॒ उदि॑ते मम॑ म॒ध्यन्दि॑ने दि॒वः।
मम॑ प्रपि॒त्वे अ॑पिशर्व॒रे व॑सु॒वा स्तोमा॑सो अवृत्सत ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने वाले राजन्! हे प्रभो! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय काल में, (दिवः मध्यन्दिने) दिन के मध्याह्न काल में और (प्रपित्वे) दिन के समाप्ति काल में और (अपिशर्वरे) रात्रि के अन्धकारमय काल में (मम) मेरे (स्तोमासः) नाना स्तुति-वचन (त्वा अवृत्सत) तुझे ही लक्ष्य करके निकलें।

स्तु॒हि स्तु॒हीदे॒ते घा॑ ते॒ मंहि॑ष्ठासो म॒घोना॑म्।
नि॒न्दि॒ताश्वः॑ प्रप॒थी प॑रम॒ज्या म॒घस्य॑ मेध्यातिथे ॥ ३० ॥ १५ ॥

भा०—(घ) निश्चय से हे (मेध्यातिथे) सत्संग करने योग्य, पूज्य अतिथे! विद्वन्! (मघोनां) पूज्य ज्ञानादि के धनी गुरु जनों का (स्तुहि स्तुहि इत्) तू अवश्य वार २ स्तुति किया ही कर, क्योंकि (ते) वे पूज्य जन (मघस्य) उत्तम धन के, ज्ञानादि के (मंहिष्ठासः) उत्तम दाता हैं। और (निन्दिताश्वः) निन्दित अश्वों वाला, दुष्टेन्द्रिय, अजितेन्द्रिय-पुरुष (प्रपथी) सन्मार्ग का उलांघने वाला और (परमज्या) परम श्रेष्ठ पुरुषों के मान, आयु की हानि करने वाला होता है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सदा ही परमेश्वर वा गुरुजनों की स्तुति करे जिससे विनयशील और जितेन्द्रिय हो। अन्यथा अविनीत जन अजितेन्द्रिय, कुमार्गी, गुरुद्रोही होजाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जब मैं उत्तम सारथी या रथारोही के समान (वनन्वतः) विषयों को संभोग करने वाले (अश्वान्) इन्द्रियरूप विषय भोक्ता 'अश्वों' को (आ) सब ओर से रोक लेता हूं तब मैं (श्रद्धया) सत्य धारण के बल से (रथे) इस देह रूप रथ पर भी (रुहम्) चढ़ सकता हूं अथवा (श्रद्धया) सत्यज्ञान के बलपर मैं (रथे) रसस्वरूप, परम रमणीय प्रभु के आनन्द में भी (रुहम्) प्राप्त होऊं। (याद्वः पशुः) मनुष्यों के हितकारी पशु के समान ही (यः) जो मनुष्य (याद्वः) यत्नवान् मनुष्यों के बीच कुशल, (पशुः) सम्यक् तत्वदर्शी है वही (वामस्य) सर्वोत्तम, सुन्दर (वसुनः) परमैश्वर्य का (चिकेतति) जानने हारा है।

य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासङ्गस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (हिरण्यया त्वचा) सुवर्णादि की बनी सुनहरी पोषाक के समान अति उज्ज्वल प्रकाशमय, ज्योतिर्मय रूप से (मह्यं) मुझे (ऋज्रा) सरल धार्मिक व्यवहारों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (मामहे) प्रदान करता है (एषः) वह (आसङ्गस्य) सङ्ग रहित आत्मा वा सबको सत्कार्यों में लगाने हारे का (स्वनत्-रथः) उत्तम प्राण धारण करने वाला रमणसाधन रथ, देह (विश्वानि सौभगानि) समस्त सुखैश्वर्यों को (अभि-अस्तु) साक्षात् करे। 'आसङ्ग':—सङ्गरहितः। असङ्ग एव आसङ्गः।

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३॥

भा०—(अध) और जिस प्रकार (दशभिः सहस्रैः अन्यान् अति-

दासत्) विजयी दसों हज़ारों सेना भटों से शत्रुओं को पराजय कर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार (प्रायोगिः = प्रायोगिः) प्रयोग कुशल वा प्रयस् = उत्तम उद्यम से और ज्ञानपूर्वक जाने हारा (आसङ्गः) उत्तम सत्संगी, वा असंग पुरुष (दशभिः) दश (सहस्रैः) बलवान् इन्द्रियों के साथ (अति दासत्) सब को अपने वश कर लेता है। हे (अग्ने) सर्व प्रकाशक प्रभो ! (अध) तब (दश उक्षणः) दसों देह के उठाने वाले प्राण गण (मह्यं) मेरी सहायता के लिये (सरसः नडाः इव) तालाब के तट पर खड़े नड़ों के समान (नडाः = नराः) वीर पुरुषों के समान ही (निर् अतिष्ठन्) निकल खड़े होते हैं। वे मेरे सदा सहायक होते हैं।

अन्व॑स्य स्थू॒रं द॑दृशे पु॒रस्ता॑दन॒स्थ ऊ॒रुर॑व॒रम्ब॑माणः ।
शश्व॑ती॒ नार्य॑भि॒चक्ष्या॑ह॒ सुभ॑द्रमर्य॒ भोज॑नं बिभर्षि ॥३४॥१६॥

भा०—(अस्य) इस आत्मा का (स्थूरम्) स्थूल देह भी (अनु) इसके अनुरूप ही (पुरस्तात्) आगे (ददृशे) दीखता है। वह स्वयं (अनस्थः) अस्थि आदि देहावयवों से भी रहित, (ऊरुः) जंघा के समान शरीर का आश्रय होकर भी (अवरम्बमाणः) देह का आश्रय ले रहा होता है। (शश्वती) सदा तनी (नारी) नर, आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि (अभिचक्ष्य) आत्मा का साक्षात् करके (आह) कहती है हे (अर्य) स्वामिन् ! तू ही (सु-भद्रम्) शुभ, उत्तम सुखदायी (भोजनं) भोग के साधन देह को (बिभर्षि) धारण करता और पालता पोषता है। इति षोडशो वर्गः ॥

[२]

मेध्यातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः। ४१, ४२ मेधातिथिर्ऋषिः ॥ देवताः—१—४० इन्द्रः। ४१, ४२ विभिन्दोर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१—३, ५, ६, ९, ११, १२, १४, १६—१८, २२, २७, २९, ३१, ३३, ३५, ३७, ३८, ३९ आर्षी गायत्री। ४, १३, १५, १९—२१, २३, २४, २५, २६,

३०, ३२, ३६, ४२ आर्षी निचृद्गायत्री। ७, ८, १०, ३४, ४० आर्षी विराड् गायत्री। ४१ पादनिचृद् गायत्री। २८ आर्ची स्वराडनुष्टुप्॥

चत्वारिंशदृचं सूक्तम्॥

इ॒दं व॑सो सु॒तमन्धः॒ पिबा॒ सुपू॑र्णमु॒दर॑म्।
अना॑भयिन्ररि॒मा ते॑॥ १॥

भा०—हे (वसो) प्रजा को बसाने वाले राजन्! वा प्रत्येक में बसने वाले आत्मन्! तू (अन्धः) अन्न के समान (सु-पूर्णम्-उदरम्) अच्छी प्रकार पेट भर कर (सुतम् पिब) अन्न जलवत् उत्पन्न ऐश्वर्य का भोग कर। हे (वसो) गृहस्थ पिता तू (सुतम्) पुत्र को (सुपूर्णम् उदरम् अन्धः पिब) पेट भरकर अन्न खिलाकर पाल। हे (अनाभयिन्) न भय करनेहारे! (ते) तुझे हम वह ऐश्वर्य (ररिम) प्रदान करें।

नृभि॑र्धू॒तः सु॒तो अश्नै॒रव्यो॒ वारैः॒ परि॑पूतः।
अश्वो॒ न नि॒क्तो न॒दीषु॑॥ २॥

भा०—जिस प्रकार (अश्नैः सुतः) प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमरस (नृभिः धूतः) ऋत्विजों द्वारा कंपित या हिला २ कर (अव्यः वारैः परिपूतः) भेड़ के बने बालों से छनता है उसी प्रकार (अश्नैः) शस्त्र बलों से (सुतः) अभिषिक्त राजा (नृभिः धूतः) नायक पुरुषों द्वारा शिक्षित और (अव्यः) रक्षा करने योग्य राष्ट्र के (वारैः) उत्तम ऐश्वर्यों वा शत्रुवारक सैन्यों से (परिपूतः) पवित्र, परिगत राजा (नदीषु निक्तः अश्वः) नदियों में नहाये अश्व के समान (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं के बीच (निक्तः) अभिषिक्त हो।

तं ते॒ यवं॒ यथा॒ गोभिः॑ स्वा॒दुम॑कर्म श्री॒णन्तः॑।
इन्द्र॑ त्वा॒ स्मिन्त्स॑धमा॒दे॑॥ ३॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (यवं) जौ के बने भोजन को (गोभिः श्रीणन्तः) गाय के दूधों से मिलाते हुए या उसे दूधों के साथ पकाते हुए

भोजन को (स्वादुम् अकर्म) स्वादु बना लेते हैं (ते) तेरे (यवं) शत्रु को नाश करने वाले सैन्य बल को (गोभिः) भूमियों से उत्पन्न अर्थों द्वारा (श्रीणन्तः) परिपक्व, दृढ़ करते हुए राष्ट्र के बल को (स्वादुम्) सुख से भोग करने योग्य (अकर्म) करें। उसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्य-वत् तेजस्विन्! ऐश्वर्यप्रद! (अस्मिन् सधमादे) इस एक साथ हर्षित होने योग्य अवसर में (त्वा) तुझ को हम (गोभिः श्रीणन्तः) उत्तम वाणियों से संगत करते हुए (स्वादुम् = स्व-आदुम्) निज ऐश्वर्य का भोक्ता (अकर्म) बनाते हैं।

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।
अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च ॥ ४ ॥

भा०—(एकः इन्द्रः इत्) एक, अद्वितीय, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही (सोम-पाः) ओषधि वर्ग के पालक मेघ या सूर्य के समान समस्त ऐश्वर्य का पालक है। वही (एकः इन्द्रः) एक, अकेला, अन्यों की सहायता की अपेक्षा न करता हुआ 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु (सुत-पाः) उत्पन्न ऐश्वर्य का भोक्ता, (सु-तपाः) शत्रु को अच्छी प्रकार पीड़ित करने वाला, तेजस्वी है। वह (विश्वायुः) समस्त प्रजा का जीवन स्वरूप, समस्त मनुष्यों का स्वामी, सब को प्राप्त है। वही (देवान् मर्त्यान् च अन्तः) सब दिव्य पदार्थों, विद्वानों और मरणधर्मा प्राणियों के भीतर रह कर उनका (सोम-पाः) शिष्यवत् पालक, ऐश्वर्यवान् और उनका पुत्रवत् पालक है।

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् ।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(उरु-व्यचसं) महान् राष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध (सु-हार्दम्) उत्तम हृदय वाले (यं) जिसको (न शुक्रः) न देह में बलवीर्यवत् कान्ति तेजोवर्धक बल और (न दुराशीः) न दुर्भावना, और (न तृप्राः) न

तृप्त, अति धनी जन ही (अप-स्पृण्वते) द्वेष कर सकते हैं। वह बल का स्वामी, सब का प्रिय और मित्र है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

गोभिर्यदीमुन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

भा०—(व्राः न मृगं) घेरने वाले जन जैसे मृग या सिंह को (गोभिः मृगयन्ते) हाकों से ढूंढ़ते हैं उसी प्रकार (यत्) जिस को (अस्मत् अन्ये) हम से दूसरे भी (गोभिः) स्तुति वाणियों से (मृगयन्ते) खोजते फिरते हैं वे उसको (धेनुभिः) वाणियों, स्तुतियों द्वारा ही (अभि त्सरन्ति) प्राप्त होते हैं।

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुतपाव्नः) यज्ञ में सोमपायी इन्द्र के लिये (सोमाः त्रयः सुताः) सोम तीनवार सवन किया जाता है उसी प्रकार (स्वे क्षये) अपने निवास योग्य राष्ट्र में (सुतपाव्नः) गृह में सुतों के समान राष्ट्र में प्रजा को पालन करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक, (देवस्य) दानशील राजा के लिये (त्रयः सोमाः) तीनों प्रकार के ऐश्वर्य जन, धन, मनन बल, (सुतासः) अच्छी प्रकार तैयार (सन्तु) होने चाहियें।

त्रयः कोशासश्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥

भा०—(समाने) एक समान, (भार्मन् अधि) भरण पोषण करने योग्य राष्ट्र वा युद्ध के अध्यक्ष पद पर स्थित राजा के (त्रयः कोशासः) तीनों कोश और (तिस्रः) तीनों प्रकार की (सु-पूर्णाः) खूब पूर्ण, सुख-पूर्वक समृद्ध (चम्वः) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं वा सेनाएं भी (श्चोतन्ति) उसे ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। तीन कोश—जनकोश राष्ट्र, धनकोश ख़ज़ाना,

और मन्त्रकोश राजविद्वत्सभा वा सचिव परिषत् और तीन चमू, प्रजाएं, और शासक वर्ग। (२) भरणीय, पोष्य देह में तीन कोश विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय, तीन चमू, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, सभी आनन्द, ज्ञान, कर्म और फल प्रदान करती हैं।

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! तू (पुरु-निः-ष्ठाः) बहुतों में स्थिर होकर, (क्षीरैः) शुद्ध जलों से (मध्यतः) सब के बीच (आशीर्तः) आसेवित होकर और (दध्ना) राष्ट्र को धारण करने वाले बल से (शूरस्य) शूरवीर पुरुष को भी (मन्दिष्ठः) आनन्दित, प्रसन्न करने वाला होकर (शुचिः असि) शुद्ध, पवित्रहृदय, धार्मिक हो। अभिषेकों का अभिप्राय राजा को राग-द्वेष, पक्षपात, लोभ, क्रोधादि से पवित्र करना ही है।

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे) ये (सोमाः) सोम्य प्रजाजन और (अस्मे सुतासः) हमारे पुत्रादि (शुक्राः) आशु—कार्यकारी, शुद्ध तेजस्वी, (तीव्राः) वेगवान् होकर (ते) तेरा (आशिरं याचन्ते) आश्रय मांगते हैं। वा हमारे उत्पन्न ऐश्वर्य के रक्षक भी आश्रय चाहते हैं। (२) ये (सोमाः) जीव पुत्रवत् पालनीय, शुद्ध पवित्र होकर प्रभु का आश्रय मांगते हैं। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (हि) क्योंकि मैं (त्वा) तुझ को (रेवन्तं) ऐश्वर्यवान् धन का स्वामी (शृणोमि) श्रवण करता हूं। जिस प्रकार (पुरोडाशम्) रसादि से मिश्रित अन्न को अग्नि तपाता

और जिस प्रकार ओषधि अन्नादि का सूर्य परिपाक करता है उसी प्रकार तू (तान्) उन पूर्वोक्त शुद्धाचारवान् पुरुषों को और (आशिरम्) आश्रय करने और देने योग्य (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र तथा (इदं) उस (पुरोडाशम्) आगे आदर पूर्वक देने योग्य की (श्रीणिहि) सेवा कर। और उनको तप द्वारा दृढ़ बना।

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥

भा०—(दुर्मदासः न) दुष्ट मद से युक्त पुरुष जिस प्रकार (हृत्सु पीतासः) हृदयों तक पीकर, बेसुध होकर (युद्धयन्ते) परस्पर लड़ते हैं इसी प्रकार (सुरायाम्) सुख देने वाली, राज्यलक्ष्मीवत् सुख से रमण करने योग्य आनन्द की दशा में भी (हृत्सु पीतासः) हृदयों में आनन्द रस का पान, अनुभव कर लेने वाले विद्वान् जन (युध्यन्ते) अपने अन्तःशत्रु, काम क्रोधादि से युद्ध करते हैं वा शत्रुओं पर प्रहार करते हैं और (नग्नाः) वेद वाणियों को त्याग न करने वाले विद्वान् वा (नग्नाः) स्त्री आदि के संग से रहित ब्रह्मचारी वा मूकभाव से मन ही मन मुग्ध हो (ऊधः न) मातृस्तनवत् वा मेघवत् सुखवर्षी उस सर्वोपरि प्रभु की (जरन्ते) स्तुति किया करते हैं।

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः।
प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (त्वावतः) तेरे जैसे (मघोनः) उत्तम ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्यादि के स्वामी, (रेवतः) धन के स्वामी के गुणों की (स्तोता) स्तुति करने वाला पुरुष भी (रेवान् इत् स्यात्) धनाढ्य ही हो जाता है।

उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥

भा०—(अरिः) व्यापक, स्वामी प्रभु (अगोः) वाणीरहित, मूक

जन के भी (शस्यमानम् उक्थं चन) न कहे गये स्तुति के वचन को (आचिकेत) भली प्रकार जान लेता है उसी प्रकार (न गायमानं गायत्रं च) न गाये गये गायत्र स्तोम, गान योग्य गीत को भी जानता है। भगवान् मूक की भी कही या अनुक्त वाणी को सुनता है।

मा न॑ इन्द्र पीयत्नवे॒ मा शर्ध॑ते॒ परा॑ दाः।
शिक्षा॑ शचीवः॒ शची॑भिः॥ १५॥ १९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! तू (नः) हमें (पीयत्नवे) हिंसक, क्रूर पुरुष के लाभ के लिये (मा परा दाः) मत त्याग और (शर्धते मा परा दाः) हमें अपमानित करने वाले के लिये मत त्याग। हे (शचीवः) वाणी और शक्ति के स्वामिन् ! तू (नः) हमें (शचीभिः) शक्तियों और वाणियों से हिंसक और अपमानजनक पुरुष के दण्ड करने के लिये (शिक्ष) शिक्षा या बल दे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

व॒यमु॑ त्वा त॒दिद॑र्था इन्द्र॑ त्वा॒यन्तः॒ सखा॑यः।
कण्वा॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॥ १६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले स्वामिन् ! (वयम् कण्वाः) हम विद्वान् लोग (तदिदर्थाः) उस, इस पारमार्थिक, ऐहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाले, (सखायः) तेरे मित्र होकर (त्वायन्तः) तुझे सदा चाहते हुए वा (त्वा यन्तः) तुझे प्राप्त होकर (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (जरन्ते) तेरी स्तुति करते हैं।

न घे॑म॒न्यदा प॑पन॒ वज्रि॑न्न॒पसो॒ नवि॑ष्टौ।
तवेदु॒ स्तोमं॑ चिकेत॥ १७॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन् ! (अपसः) कर्म करने वाले तेरी (नविष्टौ) उत्तम से उत्तम पूजा के अवसर पर मैं (अन्यत् न घ आ पपन) और कुछ नहीं स्तुति करता, मैं (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमं चिकेत) स्तुति करना जानूं।

इ॒च्छन्ति॑ दे॒वाः सु॒न्वन्तं॑ न स्वप्ना॑य स्पृहयन्ति ।
यन्ति॑ प्र॒माद॒मत॑न्द्राः ॥ १८ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्, शुभ कामना वाले जन (सुन्वन्तं) यज्ञ-कर्म और ईश्वर स्तुति करने वाले तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं। वे (स्वप्नाय) सोने वाले को (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते, वा वे (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) आलस्य से प्रेम नहीं करते। (अतन्द्राः) आलस्यरहित पुरुष भी (प्रमादम् यन्ति) प्रमाद को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये आलस्य से प्रेम न करो। अथवा—(अतन्द्राः) तन्द्रा, आलस्य से रहित लोग ही (प्र-मादम् यन्ति) उत्तम कोटि का आनन्द प्राप्त करते हैं।

ओ षु प्र या॑हि॒ वाजे॑भि॒र्मा हृ॑णीथा अ॒भ्य१॒॑स्मान् ।
म॒हाँइ॑व॒ युव॑जानिः ॥ १९ ॥

भा०—हे स्वामिन्! (युवजानिः इव महान्) जिस प्रकार युवति स्त्री का पति (वाजेभिः) उत्तम २ नाना ऐश्वर्यों सहित आगे २ बढ़ता है और कोई लज्जा अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी (महान्) गुणों में महान् होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ उ सु-प्र याहि) आ और सुखपूर्वक, आदर सहित जा (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (मा हृणीथाः) लज्जा, संकोच, तिरस्कार और क्रोध मत कर।

मो ष्व१॒॑द्य दु॒र्हणा॑वान्त्सा॒यं क॑रदा॒रे अ॒स्मत् ।
अ॒श्रीर॑ इ॒व जा॒मा॑ता ॥ २० ॥ २० ॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (दुर्हणावान्) अति दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु (अद्य) आज, (अस्मत्) हम से दूर रहकर (मो सु सायं करत्) कभी सारा दिन व्यतीत कर सायंकाल न कर दे। (अश्रीरः इव जामाता) शोभा, लक्ष्मीरूप, सौभाग्यादि से रहित जंवाई जिस प्रकार दिन भर व्यतीत करके रात्रि काल में आता है, जिससे उसके दुर्लक्षणादि

प्रकट न हों। उसी प्रकार हे स्वामिन्! तेरा भी विरह असह्य है। वह तू भी आते २ विलम्ब न कर, शीघ्र दर्शन दो। प्रभो! तुम अपने उत्तम रूप गुणों सहित शीघ्र दर्शन दो। इति विंशो वर्गः॥

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम्।

त्रिषु जातस्य मनांसि॥ २१॥

भा०—(अस्य वीरस्य) इस वीर के समान, विशेष वल से युक्त, त्रिविध विद्याओं के उपदेष्टा, स्वामी की (भूरि-दावरीं) बहुत से सुखैश्वर्य देने वाली (सु-मतिम्) कल्याणकारी ज्ञान, बुद्धि और वाणी को (विद्म हि) अवश्य जानें। (त्रिषु) तीनों लोकों और तीनों वेदों में (जातस्य) प्रसिद्ध, तीनों में विशेष ज्ञाता के (मनांसि) ज्ञानों को भी (विद्म) जानें।

आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात्।

यशस्तरं शतमूतेः॥ २२॥

भा०—हे विद्वन्! हे ऐश्वर्यवन्! तू (कण्ववन्तं) विद्वान् पुरुषों से युक्त जन को (आ सिञ्च) वृक्ष वनस्पतिवत् सींच, उसे बढ़ा। (शतम्-ऊतेः) सैकड़ों ज्ञानों और रक्षाओं से सम्पन्न (शवसानात्) बलवान् शक्तिशाली से अधिक (यशस्तरं) बलवान् और यशस्वी दूसरे को (न घ विद्म) नहीं जानते।

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय।

भरा पिबन्नर्याय॥ २३॥

भा०—हे (सोतः) ईश्वर के उपासक! यज्ञकर्त्तः! तू (वीराय) विविध ज्ञानबुद्धियों की प्रेरणा करने वाले, (शक्राय) शक्तिशाली, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् और (नर्याय) सब मनुष्यों के हितकारक स्वामी के लिये (ज्येष्ठेन) उसको सर्वश्रेष्ठ रूप से जान कर सबसे अधिक

(सोमं भर) ऐश्वर्यादि वा अपने आत्मा को भी उसके अर्पण कर। वह (पिवत्) उसका पालन करे।

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (अव्यथिषु) अन्यों को पीड़ा न देने वाले अंहिसक जनों में सबसे अधिक (वेदिष्ठः) वेदनावान् दयालु है, वह (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों और (स्तोतृभ्यः) उपदेशकों के लिये (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) अश्वों और गौओं से सम्पन्न ऐश्वर्य (वेदिष्ठः) सबसे अधिक प्रदान करता है।

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोतारः) विद्वान् जनो! हे यज्ञकर्त्ता जनो, हे ऐश्वर्य, अन्नादि के उत्पादक प्रजा जनो! आप लोग (मद्याय) आनन्द हर्ष के योग्य (वीराय) वीर (शूराय) शूर पुरुष के लिये (पन्यं-पन्यं सोमं) स्तुत्य, एवं सर्वोत्तम अन्न ऐश्वर्यादि प्राप्त कराओ। इत्येकविंशो वर्गः ॥

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्।
नियमते शतमूतिः ॥ २६ ॥

भा०—(अस्मत्) हम से दूर रहकर भी (वृत्रहा) विघ्नों, विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक राजा (पाता) राष्ट्र का पालक होकर राष्ट्र को (सुतम्) पुत्रवत् जान कर (आ घ गमत्) अवश्य आवे। वह (शतम्-ऊतिः) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न होकर (नियमते) राष्ट्र की व्यवस्था करता है। (२) इसी प्रकार प्रभु पुत्रवत् उत्पन्न संसार का पालक होकर उसको प्राप्त है, हम अज्ञानियों से दूर है। तो भी वह सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न हो जगत् को नियमों में बांध रहा है।

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥

भा०—(ब्रह्म-युजा) बृहद् राष्ट्र के पालक पद पर नियुक्त बड़े वेतनादि पर सहोयोगी हो (हरी) विद्वान् स्त्री पुरुष (इस) इस राष्ट्र में (शग्मा) सुखदायक होकर (सखायम्) मित्रवत् इन्द्र को (आ वक्षतः) अपने ऊपर धारण करते हैं। और (गीर्भिः श्रुतं) वाणियों से विख्यात बहुश्रुत (गिर्वणसम्) वाणियों को स्वीकारने और देने वाले उसको वे दोनों धारण करते हैं।

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) तेजस्विन् ! हे (ऋषीवः) ऋषियों, द्रष्टाओं इन्द्रियों के भी स्वामिन् ! हे (शचीवः) शक्तियों और वाणियों के स्वामिन् ! (सोमाः) ये अन्नादि ओषधि रसवत् जगत् के उत्पन्न पदार्थ अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द और ये जीवगण (स्वादवः) सुखकारी हैं, और (सु-आदवः) सुख की कामना करते (सोमाः श्रीताः) समस्त रस परस्पर मिल गये हैं। समस्त जीवगण रस से तृप्त हो गये हैं। (आ याहि आ याहि) हे प्रभो ! तू आ, तू आ। (न) अभी (अयम्) यह (सध-मादम्) साथ मिलकर हर्ष उत्पन्न करने वाले को (अच्छ) भली प्रकार साक्षात् कर।

स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (या स्तुतः) जो स्तुतियां (त्वां कारिणं) तुझ कर्त्ता को बढ़ाती हैं जो पुरुष (महे राधसे) बड़े ऐश्वर्य और (नृम्णाय) ज्ञान के लिये (वृधन्तः) बढ़ते हुए (त्वा कारिणं)

तुङ्ग कर्त्ता को प्राप्त कर लेते हैं वे (स्तुतः दधिरे) उन स्तुतियों को धारण करते हैं।

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि ।

सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वाहः) वाणियों को मनुष्यों को देने वाले, और हे वाणियों द्वारा हृदय में धारण करने योग्य ! (याः च गिरः) जो वाणियां और (यानि च उक्थानि) जो उत्तम वेद-वचन (ते) तेरे लिये प्रयुक्त होते हैं पूर्वोक्त विद्वान् जन उन वाणियों और (तानि) उत्तम वचनों और (शवांसि) नाना बलों को भी (तुभ्यं) तेरी स्तुति के लिये ही (सत्रा दधिरे) सदा धारण करें। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः ।

सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥

भा०—(एव इत्) निश्चय से ही, (एषः) यह (तुवि-कूर्मिः) बहुत से लोकों को बनाने हारा (एकः) अकेला, (वज्रहस्तः) अपने हाथ में समस्त शक्तियों को लेने वाला, (सनात्) सनातन से प्रसिद्ध (अमृक्तः) अविनाशी प्रभु ही (वाजान् दयते) समस्त ऐश्वर्यों और सुखों, ज्ञानों को प्रदान करता है।

हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः ।

महान्महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का नाश करने वाला, (पुरुहूतः) बहुतों द्वारा स्तुति करने योग्य है। वह (दक्षिणेन) अति प्रबल ज्ञान और सामर्थ्य से (वृत्रं) अज्ञान को और अन्धकारवत् (हन्ता) नाश करता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों और पूज्य वाणियों से गुरुवत् (महान्) महान् है।

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्यांसि च ।
अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रभु परमेश्वर के आश्रय (विश्वाः चर्षणयः) समस्त मनुष्य (उत च्यौत्ना) समस्त बल, और (ज्रयांसि) श्रेष्ठ विजय के सामर्थ्य हैं उसी (मघो नः) ऐश्वर्य के स्वामी के (अनुः घ इत्) अनुकूल रहने वाला पुरुष ही (मन्दी) अति सुखी, तृप्त, आनन्द-वान् होता है ।

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे ।
वाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अति शृण्वे) सब से सब शक्ति वैभवों में अधिक सुना जाता है, जो (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानों को भी (वाजदावा) नाना ऐश्वर्य देने वाला है (एषः) वह ही (एतानि) ये सब पृथिवी सूर्यादि (चकार) बनाता है ।

प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति ।
इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥ २३ ॥

भा०—वह (प्र-भर्ता) सब से उत्कृष्ट, प्रजा का भरण पोषण करने वाला प्रभु, (अपाकात्) कच्चे मार्ग से रथ को सारथि के समान (यम्) जिस (गव्यन्तं) स्तुति वाणी के इच्छुक या भूमि आदि के इच्छुक (रथम्) रमणकारी भक्तजन की (अवति) रक्षा करता है (सः हि) वही (इनः) स्वामी होकर (वसु वोढा) ऐश्वर्य धारण करने और उसका उत्तम उप-योग करने वाला होता है ।

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।
सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

भा०—वह (वृत्रं हन्ता) आवरणकारी अज्ञान, विघ्नकारी दुष्टों का नाश करने वाला, (शूरः) शूरवीर सेनापति के तुल्य प्रभु (विप्रः)

मेधावी, बड़ा बुद्धिशाली, विविध ज्ञानों का दाता है, वही (नृभिः) उत्तम पुरुषों और (अर्वद्भिः) ज्ञान-साधनों से (सनिता) नाना सुखों का देने हारा है। वह (विधन्तम्) सेवा करने वाले का (सत्यः अविता) सच्चा रक्षक है।

यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा।
यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा॥ ३७॥

भा०—जिस प्रकार (सोमैः) जलों से सूर्य व्यक्त जगत् को सचमुच तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (सोमैः) नाना ऐश्वर्यों, प्रेरक सामर्थ्यों और बलों से (सत्य-मद्वा भूत्) सत्य ज्ञान और व्यक्त जगत् में एकमात्र रमण करने वाला और जो (सोमैः) ज्ञानी पुरुषों वा ऐश्वर्यों से सत्य रूप से स्तुति करने योग्य वा सचमुच सब को प्रसन्न करने वाला होता है, हे (प्रियमेधाः) यज्ञप्रिय जनो! (एनं इन्द्रं) इस इन्द्र, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (सत्राचा मनसा) सत्य से युक्त एवं तद्गत चित्त से (यजध्वम्) उपासना करो।

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम्।
कण्वासो गात वाजिनम्॥ ३८॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषो! आप लोग (गाथ-श्रवसं) जिसका यश और श्रोतव्य ज्ञान वा स्वरूप गान करने योग्य है, उस (सत्-पतिं) सज्जनों और सत् पदार्थों के पालक, (श्रवः-कामं) श्रवणीय अभिलाषा वा संकल्प वाले, (पुरु-त्मानम्) इन्द्रियों के बीच आत्मा के समान बहुत जनों के बीच आत्मावत् प्रिय (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् प्रभु की (गात) स्तुति करो।

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान्।
ये अस्मिन्काममश्रियन्॥ ३९॥

भा०—(यः) जो (ऋते) सत्य ज्ञानमय, परम प्राप्तव्य प्रभु में

या सत्य ज्ञान के बल पर (पदेभ्यः) प्राप्त होने वाले (नृभ्यः) मनुष्यों का (सखा शचीवान्) शक्तिशाली मित्र होकर (गाः दात्) वाणियों को प्रदान करता है, और (ये) जो (अस्मिन्) इस में (कामम्) अपनी समस्त अभिलाषाओं को (अश्रियन्) धरते और प्राप्त कर लेते हैं उनका भी वह मित्र है।

इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्।
मेषो भूतो३ऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार हे (अद्रिवः) सर्वशक्तिमन्! (धीवन्तम्) बुद्धिमान्, ध्यान धारणा युक्त, (काण्वं) विद्वान्, (मेध्यातिथिम्) व्यापक प्रभु वा अतिथि के उपासक संस्कार करने वाले के प्रति तू (मेषः) सब सुखों का देने वाला मेघवत् (भूतः) होकर (अभि यन्) प्रत्यक्ष होकर (अयः) प्राप्त होता है।

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्।
अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥

भा०—हे (विभिन्दो) विविध दुःखों और अज्ञानों के नाशक! प्रभो! तू (ददत्) ज्ञान, ऐश्वर्यादि दान करता हुआ (अस्मै) इस अपने उपासक को (अयुता) अपृथक् भूत, एकत्र सम्मिलित (चत्वारि) चारों प्राप्तव्य पुरुषार्थों को (शिक्ष) प्रदान कर, उनकी शिक्षा दे। (परः) और भी अधिक (सहस्रा) बलवान् (अष्टा) सात मुख्य प्राण और आठवीं वाणी को भी प्रदान कर।

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या।
जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥ २४ ॥

भा०—(उत) और (त्ये) उन (पयः-वृधा) माता पिता के समान दूध और ज्ञान से बालकवत् हमें बढ़ाने वाले (रणस्य माकी) सब रम्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (नप्त्या) सदा परस्पर सम्बद्ध, प्रभु और

प्रकृति दोनों को (जनित्वनाय) जीवों और जगत् के उत्पन्न करने के लिये (सु मामहे) उत्तम रीति से पूज्य रूप से जाने। 'माकी' निर्माज्यौ॥ सा०॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[३]

मेध्यातिथिः काण्व ऋषिः॥ देवताः—१—२० इन्द्रः। २१—२४ पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः॥ छन्दः—१ कुकुम्मती बृहती। ३, ५, ७, ९, १९ निचृद् बृहती। ८ स्वराड् बृहती। १५, २४ बृहती। १७ पथ्या बृहती। २, १०, १४ सतः पंक्तिः। ४, १२, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। २० विराट् पंक्तिः। १३ अनुष्टुप्। ११, २१ भुरिगनुष्टुप्। २२ विराड् गायत्री। २३ निचृद् गायत्री॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३स्माँ अवन्तु ते धियः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू (गोमतः) वाणी से युक्त प्रार्थी वा इन्द्रियों से युक्त (रसिनः) रस, बल या सुख के अभिलाषी (सुतस्य) उत्पन्न जीव का (पिब) पालन कर। (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। तू (सधमाद्यः) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने हारा होकर गुरुवत् (नः) हमारा (आपिः) आप्त बन्धु होकर हमें (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (बोधि) ज्ञान प्रदान कर। और (ते धियः) तेरे कर्म, बुद्धियां और प्रार्थनाएं, स्तुतियां (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय॥ २॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् स्वामिन्! (वयं) हम (वाजिनः) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी होकर भी (ते) तेरी (सु-मतौ) उत्तम बुद्धि और ज्ञान के अधीन (भूयाम) रहें। तू (नः) हमें (अभि-मातये) अभिमानी पुरुष

के स्वार्थ के लिये (मा स्तः) मत पीड़ित कर। तू (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखदायक प्रबन्धों में (आ यमय) बांध और (चित्राभिः अभिष्टिभिः) अद्भुत २ मनोकामनाओं से (अस्मान् अवतात्) हमें युक्त कर और हमारी रक्षा कर।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वार्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) वहुतों को वसाने हारे! वहुत प्रकार के धनों के स्वामिन्! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) नाना वाणियां हों (इमा उ त्वा) वे सब भी तुझ को (वर्धन्तु) वढ़ावें। और (पावक-वर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी तथा पवित्र करने वाले शरीर और वाणी वाले (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुतियों से (त्वा अभि-अनूषत) तुझे साक्षात् स्तवन करें।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह स्वामी, प्रभु (सहस्रं) सहस्रों वार वा सहस्रों (ऋषिभिः) ज्ञानदर्शी तत्वज्ञानी पुरुषों से (सहस्कृतः) बल युक्त किया जाकर (समुद्रः इव) समुद्र के समान, (पप्रथे) विस्तार को प्राप्त होता है। (सः अस्य) वह इसका (सत्यः महिमा) सच्चा महान् सामर्थ्य है जो (विप्र-राज्ये) विद्वानों के शासन में (यज्ञेषु) यज्ञ, सत्संगादि में (शवः) उसके बल और ज्ञान की (गृणे) चर्चा और स्तुति की जाती है।

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(देव-तातये) विद्वानों से किये जाने वाले यज्ञादि उत्तम कार्य वा स्वयं (देव-तातये) देव अर्थात् याचकों के हित के लिये (वयं)

हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (हवामहे) बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति) यज्ञ प्रवृत्त होने पर भी हम (वनिनः) दानशील होकर (इन्द्रं हवामहे) परमैश्वर्यप्रद प्रभु की स्तुति करते हैं। (समीके) युद्ध के अवसर पर (वनिनः) ऐश्वर्यवान् वा शत्रुहिंसक होकर भी हम (इन्द्रं) शत्रुहन्ता सेनापति स्वामी को स्वीकार करते हैं, (धनस्य सातये) धन के लाभ के लिये हम उस ऐश्वर्यप्रद की ही स्तुति-प्रार्थना करते हैं।

इन्द्रो॑ म॒ह्ना रोद॑सी पप्रथ॒च्छव॒ इन्द्रः॒ सूर्य॑मरोचयत् ।
इन्द्रे॑ ह॒ विश्वा॒ भुव॑नानि येमिर॒ इन्द्रे॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वः ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि को (पप्रथत्) विस्तारित करता है। वह (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवान् (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है। (इन्द्रे ह) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के अधीन ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन (येमिरे) सुव्यवस्थित हैं। (इन्द्रे) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के अधीन ही (सुवानासः) उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त मेघ, सूर्य, चन्द्रादि सब लोक और शुभकर्म करने वाले विद्वान् रहते हैं।

अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तय॒ इन्द्र॒ स्तोमे॑भिरा॒यवः॑ ।
स॒मी॒ची॒नास॑ ऋ॒भवः॒ सम॑स्वरन्रु॒द्रा गृ॑णन्त॒ पूर्व्य॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु वा दुष्टजनों के नाश करने और उनके भयभीत करने और भगाने हारे स्वामिन्! (आयवः) मनुष्य लोग (पूर्वपीतये) सब से पहले आदरपूर्वक राष्ट्र के उपभोग और पालन करने के लिये (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर ही (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से (समीचीना) शुद्ध उत्तम भाव से युक्त होकर (ऋभवः) तेजस्वी और धन, ज्ञान से सम्पन्न जन भी (सम् अस्वरन्) मिलकर तेरी स्तुति और प्रार्थना करते हैं। (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले वीरगण और प्रजा की पीड़ाओं को दूर करने वाले तथा (रुद्राः) गर्जते, चमकते मेघ सूर्यादि वा उपदेष्टा

विद्वान् जन भी (पूर्व्यम् गृणन्ति) सब से पूर्व विद्यमान सर्वश्रेष्ठ तेरी ही स्तुति करते हैं। तुझ को ही सर्व प्रथम कारण बतलाते हैं।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ८ ॥

भा०—(सुतस्य) इस उत्पन्न जगत् के (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में ही (अस्य) इस जीव गण के (इत्) भी (वृष्ण्यं शवः) बलयुक्त सुखप्रद ज्ञान और बल को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वावृधे) बढ़ाता है। (आयवः) ज्ञानी मनुष्य (अद्य) आज भी (अस्य तम् महिमानम्) इसके इस महिमा, महान् सामर्थ्य का (पूर्वथा अनु स्तुवन्ति) पूर्ववत् नित्यप्रति स्तुति किया करते हैं।

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! प्रभो! (त्वा) तुझ से मैं (तत्) वह (सुवीर्यं) उत्तम बल (तत् ब्रह्म) वह ज्ञान, धन और बड़ा ऐश्वर्य (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान और सञ्चय के निमित्त (यामि) मांगता हूं (येन) जिससे (यतिभ्यः) यत्नवान्, (यतिभ्यः) जितेन्द्रिय पुरुषों और (भृगवे) तेजस्वी, परिपक्व बुद्धि और पुष्ट वाणी वाले के उपकार के लिये (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त (प्रस्कण्वम्) उत्कृष्ट मेधावी पुरुष की (आविथ) रक्षा करता है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१०॥२६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (येन) जिस बल से तू (समुद्रम्) समुद्र को (महीः अपः) भूमियों और जलों को (असृजः) रचता है (ते) तेरा (तत्) वह (शवः) ज्ञान और बल (वृष्णि) सब सुखों

को देने वाला है। (यम्) जिसके अनुकूल (क्षोणीः अनु चक्रदे) सब भूमि, सब मनुष्य चलते और उसकी स्तुति करते हैं (सः अस्य महिमा) वह उसकी महिमा है। (सद्यः न संनशे) शीघ्र ही उसको नहीं जाना जा सकता ?

शग्धी न॑ इन्द्र॒ यत्त्वा॑ र॒यिं यामि॑ सु॒वीर्य॑म् ।
शग्धि वाजा॑य प्रथ॒मं सिषा॑सते श॒ग्धि स्तोमा॑य पूर्व्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यत् रयिम्) जिस ऐश्वर्य को और (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को मैं तुझ से (यामि) याचना करता हूं। तू वह (नः शग्धि) हमें प्रदान करके समर्थ कर। (प्रथमम्) सब से प्रथम, सर्वोत्तम पुरुष को (वाजाय) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (शग्धि) समर्थ कर। हे (पूर्व्य) पूर्व के जनों में सर्वोत्तम ! हे पूर्ण ! तू (सिषा-सते) भजन सेवन करने की इच्छा वाले (स्तोमाय) स्तुतिकर्त्ता जन के भले के लिये (शग्धि) सब को समर्थ कर या सब कुछ करने में समर्थ है।

शग्धी नो॑ अ॒स्य यद्ध॑ पौ॒रमावि॑थ॒ धिय॑ इन्द्र॒ सिषा॑सतः ।
श॒ग्धि यथा॒ रुश॑मं॒ श्याव॑कं॒ कृप॒मिन्द्र॒ प्राव॒: स्व॑र्णरम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! (धियः सिषासतः) नाना कर्मों और बुद्धियों का सेवन करने वाले के (पौरम्) पुरवासी जन को (यत् ह) जिससे तू (आविथ) रक्षा करता है और उनको तृप्त करता है (अस्य) इस ऐश्वर्य को (नः शग्धि) तू हमें भी प्रदान कर। और (यथा) जिस प्रकार (रुशमं) रोगों के शान्तिकारक, (श्यावकम्) विद्वान्, (कृपम्) कृपालु (स्वः-नरम्) सुखप्रद नायक वीर एवं तेजस्वी पुरुष की (आवः) रक्षा करता है उसी प्रकार हमें भी (शग्धि) समर्थ, शक्तिमान् बना।

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नहीन्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १३ ॥

भा०—(अतसीनां) निरन्तर एक देह से दूसरे देह में विचरने वाले जीवों में से (कः) कौन सा (तुरः) अति शीघ्रकारी (नव्यः) नया, अपूर्व ऐसा (मर्त्यः) मनुष्य है जो (अस्य) इस प्रभु के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य का (गृणीत) उपदेश या वर्णन कर सके । (इन्द्रियं) 'इन्द्र' के ही महान् ऐश्वर्य वा इन्द्र, प्रभु के बनाये जगत् को ही (स्वः) परम सुख (गृणन्तः) कहते हुए जीवगण (अस्य) इस के महान् सामर्थ्य का पार (नही नु आनशुः) कभी भी नहीं पा सकते ।

कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वत कदु स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देवत) देव ! दातः ! प्रकाशस्वरूप ! (ऋतयन्तः) सत्य ज्ञान और सत्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले तुझे (कद् उ स्तुवन्ते) कौन २ स्तुति करते हैं (कः) कौन (ऋषिः) साक्षात् तत्वदर्शी (विप्रः) विद्वान् जन (आ ऊहते) सर्व प्रकार से प्रार्थना कर सकता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) प्रकाशस्वरूप ! सर्वप्रकाशक! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले के (हवं) स्तुति-वचन और आह्वान को (कदा आगमः) कब प्राप्त होता और (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता उपासक के समीप (कत् उ आ गमः) तू कब प्राप्त होता है ?

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५॥२७॥

भा०—(वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथ वा रथारोही वीर जन (अक्षित-ऊतयः) अक्षय बल से युक्त होकर (सत्राजितः) एक साथ शत्रुओं को जीतने वाले होते और (धनसाः) धन को प्राप्त करते

हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्ये) वे (मधु-मत्-माः)
अति उत्तम, रीति से गुरु से सञ्चित नाना विद्या मधु को धारण करने
वाले (स्तोमासः) स्तुतिकर्त्ता और (गिरः) उपदेष्टा लोग और स्तुति
की मधुर वाणियां भी (सत्रा-जितः) सत्य के बल पर सर्वत्र विजयी,
(धन-साः) ऐश्वर्य के भागी और दानी, (अक्षितोतयः) अक्षय तृप्ति-
युक्त वा अक्षुण्ण मार्ग वाले होकर (वाजयन्तः) ज्ञानैश्वर्य के अभिलाषी
होकर (उत् ईरते) ऊपर को उठते हैं ।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

भा०—(सूर्याः इव) सूर्यों वा सूर्य-किरणों के समान तेजस्वी,
(कण्वाः) विद्वान् जनों के (इव) समान ही (भृगवः) पापों को भूनने
वाले वा वाग्मी जन, (विश्वम् इत् धीतम्) समस्त विश्वमय ध्यान
करने योग्य प्रभु को (आनशुः) प्राप्त होते हैं या (धीतम् विश्वम्
आनशुः) ध्यान करके ज्ञान द्वारा विश्व को जान लेते हैं । और (स्तोमेभिः
महयन्तः) स्तुतियों से पूजा करते हुए (प्रिय-मेधासः) यज्ञप्रिय, सत्संग-
प्रिय अन्नार्थी जन सभी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (अस्वरन्) स्तुति
करते हैं ।

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्-तम) विघ्नों और वारण करने योग्य व्यसनों के
नाशक स्वामिन् ! तू (परावतः) दूर २ देश से ही (हरी युक्ष्व हि)
स्त्री पुरुषों को परस्पर जोड़ा कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम-
पीतये) ऐश्वर्य और राष्ट्र की रक्षा के लिये (अर्वाचीनः) सदा आगे बढ़
कर या शत्रुहिंसक सैन्यों से युक्त होकर हे (उग्र) बलवन् ! तू (ऋष्वेभिः)
बड़े २ पुरुषों या विद्वानों द्वारा दिये उपदेश से हमें (आगहि) प्राप्त हो ।

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे दीप्तिमन् ! प्रकाशस्वरूप ! सब जगत् को देखने हारे ! हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति करने और वाणियों को धारने हारे ! (इमे हि ते कारवः) ये सब तेरे स्तुतिकर्त्ता (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मेध-सातये) सत्संग, यज्ञ, दान को प्राप्त करने के लिये, (वावशुः) तुझ ईश्वर को सदा चाहते हैं । (सः त्वं) वह तू (वेनः न) अभिलापी के समान ही (नः हवम् श्रृणुधि) हमारी पुकार सुन ।

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! राजन् ! (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बड़ी २ धनुर्धर सेनाओं की प्रतिष्ठा के लिये तू (वृत्रं निर् अस्फुरः) धन को विनाश मत कर, उसकी रक्षा कर और विघ्नकारी शत्रु का नाश कर । (अर्बुदस्य) अत्यन्त अधिक ज्ञानी (मृगयस्य) शुद्ध वा स्वामी प्रभु के अन्वेषक, (मायिनः) बुद्धिमान् (पर्वतस्य) मेघ तुल्य सब के पालक पुरुष की (गाः निर् अजः) वाणियों को हृदय से निकाल वा ग्रहण कर । अथवा (मायिनः) मायावी (अर्बुदस्य) हिंसाकारी (मृगयस्य) सिंहवत् दुष्ट स्वभाव की (गाः) चालों को (निर् अज) दूर कर और (पर्वतस्य) पर्वतवत् दुर्गम स्थान के (गाः) मार्गों को (निः) निकाल, बना ।

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ २० ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे प्रकाशक ! जो तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष भाग से (महाम् अहिम्) बड़े भारी आघातकारी मेघ वा अन्धकार को दूर कर देता है, तब तू (पौंस्यं कृषे) मनुष्यों के हितकर अपने

वल को प्रकट करता है। उस समय (अग्नयः निर् रुरुचुः) अग्नियें खूब प्रज्वलित होती हैं (सूर्यः निर्) सूर्य खूब प्रकाशित होता है। और (इन्द्रियः रसः) इन्द्र, आत्मा से सेवन करने योग्य ओषधि आदि रसवत् आत्मिक आनन्द भी खूब प्रकट होता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

भा०—परमेश्वर का स्वरूप—(यम्) जिसको लक्ष्य करके (इन्द्रः) आचार्य और (मरुतः) विद्वान्गण तथा आत्मा और प्राण (मे दुः) मुझे ज्ञान प्रदान करते हैं और परमेश्वर (पाकस्थामा) परिपक्व वल वाला (कौरयाणः) क्रियावान्, समस्त पदार्थों में व्यापक, सब को चलाने वाला वा कर्त्ता जीवों का प्राप्तव्य है। मैं उसको (विश्वेषां) सब के बीच में (त्मना शोभिष्ठम्) आत्मा रूप से अति शोभावान् (दिवि धावमानम् उप इव) अति समीप आकाश में गति करते सूर्य के समान सदा समीप विद्यमान ही देखता हूं।

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम्।
अदाद्रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥

भा०—दृढ़, वलशाली, सर्वनियन्ता प्रभु मैं मुझे (सुधुरं) सुख से धारण करने योग्य (कक्ष्य-प्राम्) कक्षाओं, कोखों में पूर्ण (रोहितं) निरन्तर वढ़ने वाला वा तेजस्वी आत्मा वा शरीर (अदात्) प्रदान करता है, वह (रायः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है और वह (विबोधनम् अदात्) विविध ज्ञानों के साधन, मन, इन्द्रिय आदि देता है, विशेष ज्ञान भी प्रदान करता है।

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥

भा०—(तुग्र्यं वयः न) वलवान्, शत्रुहिंसक, गृह स्वामी को वेग-

वान् अश्व जिस प्रकार (अस्तं) घर की ओर लेजाते हैं इसी प्रकार (यस्मै) जिस प्रभु के दर्शन के लिये (अन्ये दश वह्नयः) और दस अग्निवत् तेजस्वी शरीर को गाड़ी के समान उठाने वाले दश प्राण (धुरं प्रति वहन्ति) धारक आत्मा के अधीन रह कर उसको उठाते हैं ।

आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४॥२९॥

भा०—मैं (रोहितस्य) वृद्धिशील, तेजस्वी, शरीर में उत्पन्न होने वाले जीव को (दातारम्) देने वाले (पाकस्थामानम्) दृढ़ बलशाली, (भोजम्) पालक प्रभु को ही (तुरीयम् इत् अब्रवम्) तुरीय, चतुर्थ परम पद के नाम से कहता हूं । वही (आत्मा) आत्मा, चेतन है, वह (पितुः) अन्नवत् जीवनाधार है । वह (तनूः) देहवत् प्रिय जगत् का विस्तार करने वाला है । वह (वासः) वस्त्रवत् आच्छादक, रक्षक और सर्वत्र बसने वाला सर्वव्यापक है । वही (ओजः-दाः) देह में आत्मावत् समस्त बल पराक्रम का दाता और (अभ्यञ्जनम्) तेलादि स्निग्ध पदार्थ के समान सर्वत्र कान्ति, स्नेह और प्रकाश देने वाला है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

[४]

देवातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—१४ इन्द्रः । १५—१८ इन्द्रः पूषा वा । १९—२१ कुरुंगस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, १३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । २, ४, ६, ८, १२, १४, १८ निचृत् पंक्तिः । १० सत पंक्तिः । १६, २० विराट् पंक्तिः । ३, ११, १५ निचृद् बृहती । ५, ६ बृहती पथ्या । १७, १९ विराड् बृहती । २१ विराडुष्णिक् ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (प्राग्, अपाक्, उदङ् न्यग् वा) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण या ऊंचे नीचे, (नृभिः हूयसे) मनुष्यों द्वारा पुकारा और स्तुति किया जाता है हे (प्र-शर्ध) उत्तम बलशालिन् ! हे (सिम) सर्वश्रेष्ठ ! तू सचमुच (तुर्वशे) चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले मनुष्य संघ के बीच में भी (पुरु नृ-सूतः) बहुत प्रकार के मनुष्यों से प्रेरित वा प्रार्थित और उपासित (असि) होता है।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

भा०—(यद् वा) और जो तू (रुमे) उपदेष्टा, (रुशमे) अन्यों की पीड़ा शान्त करनेवाले रक्षक, (श्यावके) इधर उधर जाने वाले व्यापारी और (कृपे) दयनीय, सामर्थ्यवान् श्रमी, सभी जनवर्ग में (सचा) एक साथ ही सबको (मादयसे) प्रसन्न करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! और (स्तोम-वाहसः) स्तुतिधारक, (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ब्रह्मभिः त्वा यच्छन्ति) वेदमन्त्रों से तुझे यज्ञ द्वारा अपने को अर्पित करते हैं वह तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (गौरः) गौओं में रति, अनुरागादि करने वाला वृषभ पशु वा गौर नाम मृग, (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतम्) जल से भरे (इरिणम्) जलाशय को (अवः एति) प्राप्त होता है उसी प्रकार (गौरः) 'गो' इन्द्रियों में रमण करने वाला जीव, (तृष्यन्) तृष्णायुक्त होकर (अपा) जलादि के विकाररूप रुधिरादि से (कृतं) बने (इरिणम्) 'इरा' अन्न के विकार से बने देह को (अव एति) प्राप्त होता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमारे (आपित्वे) बन्धुभाव को (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र ही

(आ गहि) प्राप्त हो। और (कण्वेषु) विद्वान् जनों के बीच में (सचा) साथ रहकर (सु-पिब) अच्छी प्रकार मोक्ष-आनन्द रस का पान कर। इसी प्रकार 'गो' भूमियों में रमण करने वाला राजा जल से युक्त (इरिणं) अन्नादि युक्त प्रदेश को अर्थतृपित होकर प्राप्त करे। वह विद्वानों को प्राप्त हो, उनके बीच में रहकर राष्ट्र-ऐश्वर्य का उत्तम रीति से भोग और पालन करे।

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः॥ ४॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले प्रभो राजन्! (इन्दवः) ऐश्वर्य युक्त जीवगण (त्वा मन्दन्तु) तुझे प्राप्त होकर प्रसन्न हों। (सुन्वते) सेवन, ईश्वरोपासना करने वाले तथा (राधो-देयाय) आराधना का उपहार देने वाले पुरुष के (सोमम्) ज्ञानसम्पन्न, (चमू-सुतम्) उत्तम माता पिता के बीच उत्पन्न जीव को पुत्रवत् (आ-मुष्य) स्वीकार कर, गुरुवत् (अपिबः) पालन कर। तू ही (तत्) उस (सहः) परम बल को (दधिषे) धारण करने हारा है। (२) राजा को सब प्रजाजन प्रसन्न करें। वह धनप्रद प्रजाजन के हितार्थ चमू अर्थात् सैन्यों द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को बल से प्राप्त कर उसका पालन और उपभोग करे, सर्वोपरि विजयी बल को धारण करे।

प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे॥ ५॥ ३०॥

भा०—वह शत्रुहन्ता स्वामी (सहसा) बल से (सहः) शत्रुओं का पराजय (प्र चक्रे) अच्छी प्रकार करे और (ओजसा) पराक्रम से (मन्युम् बभञ्ज) शत्रु के क्रोध और अभिमान को तोड़ डाले, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (यहो) महान्! (ते) तेरे अधीन (विश्वे) सब (पृतना-यवः) सेनाबल और सामान्य प्रजास्थ मनुष्यों के स्वामी नायक जन

(वृक्षाः इव) वृक्षों के समान भूमि को घेर कर (नि येमिरे) भूमि या राज्य का प्रवन्ध करें। 'पृतना' इति मनुष्य नाम नि०। इति त्रिंशो वर्गः ॥

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम्।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरी (उप-स्तुतिम्) स्तुति, गुणानुवाद को (आनड्) प्राप्त करता है, वह (सहस्रेण इव) अनेक, बलशाली (यवीयुधा) शत्रुनाशक प्रहारक बल से (सचते) सम्पन्न होता है, वह (सु-वीर्ये) उत्तम वीर्य बल के आश्रय पर (पुत्रं) अपने पुत्र, प्रजा को (प्रावर्गं) शत्रु को निवारण करने में समर्थ (कृणुत) बनाता है, और (नमः-उक्तिभिः) विनय युक्त वचनों से (दाश्नोति) दान करता है।

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! हम (उग्रस्य) उग्र, अति बलवान् (तव) तेरे (सख्ये) मित्रभाव में रहकर (मा भेम) कभी न डरें, (मा श्रमिष्म) कभी न थकें। (वृष्णः ते) उत्तम प्रवन्धक और सुखों के वर्षक तेरे (कृतं) किये (महत्) बड़े भारी (अभि-चक्ष्यं) प्रत्यक्ष दर्शनीय कार्य को तथा (यदुम्) यत्नशील (तुर्वशम्) धर्मार्थ काम मोक्षादि के अभिलाषी मानव जन को (पश्येम) देखें।

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (दानः न वृषा) सब सुख देने वाला, बल-वीर्यवान् सेक्ता पुरुष (सव्याम् स्फिग्यं) वाम भाग में रखने वा प्रजोत्पादन योग्य अर्धाङ्गिनी को (अनु वावसे) प्राप्त कर उसके अनुकूल होकर रहता, उसको आच्छादन करता है और वह भी (अस्य न रोषति)

उससे रुष्ट नहीं होती न उसको रुष्ट करती है, उसी प्रकार (वृषा) प्रबन्ध करने में कुशल, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान् (दानः) दानशील, एवं दुष्टों को नाश करने वाला पुरुष (सव्याम्) ऐश्वर्य से सम्पन्न वा शासन योग्य (स्फिग्यं) प्रतिष्ठा योग्य प्रजाजन को (अनु ववसे) उसके अनुकूल रहकर बसावे, उसकी रक्षा करे । वह प्रजागण (अस्य न रोषति) उसे रोष न दिलावे न उसके प्रति रोष करे । हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! (धेनवः) गौओं के समान वाणियां और भूमियां (सारघेण मध्वा) मधु के समान मधुर दुग्ध, अन्न और ज्ञान से (सम्पृक्ताः) युक्त हैं । तू (तूयम्) शीघ्र ही (आ इहि) आ प्राप्त हो और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ पिब) आदर पूर्वक ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर ।

अश्वी र॒थी सु॑रू॒प इद्गोमाँ॒ इदि॑न्द्र ते॒ सखा॑ ।
श्वा॒त्रभा॑जा॒ वय॑सा सचते॒ सदा॑ च॒न्द्रो या॑ति स॒भामुप॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! (ते) तेरा (सखा) मित्र (अश्वी) अश्वों का स्वामी, (रथी) रथों का स्वामी (सु-रूपः) उत्तम रूपवान् (गोमान्) उत्तम इन्द्रियों, वाणियों, भूमियों का स्वामी (इद्) ही हो जाता है । वह (श्वात्र-भाजा वयसा) धनादि से समृद्ध अन्न बल आयु से (सदा सचते) सदा युक्त होता और (चन्द्रः) सबको सुखी करने वाला होकर (सभाम् उप याति) सभा को प्राप्त होता है । वह सभापति वा सभासत् बनता है । प्रभु का मित्र जीव, भक्त, उत्तम मन, देह, रूप वाणी आदि से युक्त होता और सुखप्रद ऐश्वर्ययुक्त ज्ञान से सम्पन्न होता और आह्लादयुक्त होकर 'सभाम्' प्रभु के समान शुद्ध कान्ति को प्राप्त करता है ।

ऋश्यो॒ न तृष्य॑न्नव॒पान॒मा ग॑हि॒ पिबा॒ सोमं॒ वशाँ॒ अनु॑ ।
नि॒मेघ॑मानो मघवन्दि॒वेदि॑व॒ ओजि॑ष्ठं दधिषे॒ सहः॑ ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम पूजित धनों के स्वामिन् ! (तृष्यन् ऋष्यः न) पियासा मृग जिस प्रकार (अवपानम् आगच्छति) जलाशय या घाट को प्राप्त होता और (वशान् अनु पिबति) यथेच्छ पान करता है उसी प्रकार तू भी (ऋष्यः) दर्शनीय एवं महान् (तृष्यन्) अर्थ-- ऐश्वर्य के लिये तृष्णायुक्त (न) के समान होकर (अव-पानम्) अपने अधीन पालन करने योग्य राष्ट्र को (आ गहि) प्राप्त कर । (वशान् अनु) अपनी अभिलाषाओं के वा अपने इष्ट अधीन जनों के अनुकूल (सोमं) राष्ट्रैश्वर्य का (पिब) पालन और उपभोग कर । तू (दिवे-दिवे) दिनों दिन (नि-मेघमानः) नियम से प्रजा पर सुखों का वर्षण करता हुआ मेघवत् उदार होकर (ओजिष्ठं सहः) अति पराक्रम युक्त, शत्रुपराजयकारी सैन्य बल को (दधिषे) धारण कर ।

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के 'ध्वर' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि को न चाहने वाले सेनापते ! (त्वं) तू (द्रवय) शत्रु को दूर भगा वा प्रजापालनार्थ नहरादि को वहा । क्योंकि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सोमं) राष्ट्र को (पिपासति) पालन करना चाहता है । वह (नूनं) निश्चय से (वृषणा हरी) बलवान् अश्वों को (उप युयुजे) रथ में जोड़ता है और वह (वृषणा हरी) बलवान्, वीर्यवान् स्त्री पुरुषों का (उप युयुजे) पर-स्पर सम्बन्ध करे और उनका राष्ट्र के कार्य में उपयोग करे और इस प्रकार वह (वृत्रहा) बढ़ते शत्रु तथा विघ्नों को नाश करता हुआ (आजगाम च) आवे और आगे बढ़े ।

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन् ! (यत्र) जिस राष्ट्र वा उच्चपद में (सोमस्य)

तू ऐश्वर्य से (तृम्पसि) तृप्त होता है (सः) वह राष्ट्रवासी प्रजाजन (दाशुरिः) कर आदि देने वाला होकर (स्वयं चित्) अपने आप ही (मन्यते) सब राष्ट्र कार्य को समझता है । (ते) तेरे लिये (इदं) यह समस्त (अन्नं) अन्न (युज्यं) और सहयोगी बल (सम्-उक्षितम्) अच्छी प्रकार सींचा जावे । (तस्य) उसको तू (आ इहि) प्राप्त कर और (प्र द्रव) अन्नादि के लिये जल धाराएं प्रद्रवित कर, नहरें चला और (प्र द्रव) वेग से शत्रु पर आक्रमण कर । और (पिब) राष्ट्र का पालन और उपभोग कर ।

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजाओं के विनाश को न चाहने वाले राष्ट्र के उत्तम पुरुषो ! आप लोग (रथेष्ठाय इन्द्राय) रथ पर स्थित शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य (सोतन) उत्पन्न करो । उसे अभिषेक द्वारा ऐश्वर्य का स्वामी बनाओ । (ब्रध्नस्य अधि) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार (दाशु-अध्वरम् सुन्वन्तः) वृष्टि अन्नादि देने वाले सूर्य के जीवनप्रद जलप्रदान रूप यज्ञ को देते हुए (अद्रयः) मेघगण (वि चक्षते) दिखाई देते हैं उसी प्रकार (ब्रध्नस्य अधि) मूल आधार राष्ट्र के ऊपर (दाशु-अध्वरम्) ऐश्वर्यप्रद राजा के प्रजापालक यज्ञ को (सुन्वन्तः) करते हुए (अद्रयः) शस्त्र-बल के अध्यक्ष जन (वि चक्षते) विविध प्रकार से दीखें, वा विशेष २ आज्ञाएं करें ।

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वावाता वृषणा हरी ब्रध्नं इन्द्रम् उप वक्षतः) वेग से जाने वाले वृष्टिकारक वायु और मेघ आकाश में 'इन्द्र' विद्युत् को अपने में धारण करते हैं और जिस प्रकार (ब्रध्नं वृषणा हरी

वावाता ब्रध्नं इन्द्रम् सु उप वक्षतः) बलवान्, वेगवान् दो अश्व प्रबन्ध-कुशल ऐश्वर्य पति राजा को नाना राष्ट्र कार्यों में दूर २ तक ढो ले जाते हैं उसी प्रकार (ब्रध्नं इन्द्रम्) राष्ट्र के उत्तम प्रवन्धक, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (वावाता) वायुवत् वेग से जाने और शत्रु का नाश करने में समर्थ (वृषणा) बलवान्, मेघवत् उदार (हरी) दोनों विद्वानों के वर्ग (अप-सु) राष्ट्र के नाना कार्यों में (उप वक्षतः) धारण करें वा समीप जाकर अपने उत्तम वचन कहा करें। हे इन्द्र ऐश्वर्यवन्! (अर्वाञ्चं) शत्रुनाशक सैन्य गण से युक्त (त्वा) तुझ को (अध्वर-श्रियः सप्तयः) शत्रुओं से न पराजित होने वालों की शोभा को धारण करने वाले वा युद्ध यज्ञ की शोभा धारण करने वाले, वेग से जाने वाले वीरगण (सवना इव उप वहन्तु) नाना ऐश्वर्य अधिकार तुझे प्राप्त करावें।

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम्।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥३२॥

भा०—हम (युज्याय) मित्रभाव के लिये वा उत्तम पद पर नियुक्त करने के लिये (पूषणं) पोषक (पुरु-वसु) बहुत से ऐश्वर्य और राष्ट्र में बसे जनों के स्वामी को (वृणीमहे) वरण करें। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हे (पुरु-हूत) बहुत से मनुष्यों से स्वीकृत! हे (वि-मोचन) दुःखों और बन्धनों से छुड़ाने हारे! (सः) वह तू (नः) हमें (तुजे) शत्रु के नाश करने और प्रजा को शरण देने तथा (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि करने के लिये (धिया) बुद्धिपूर्वक (शिक्ष) शक्त बना, उत्तम शिक्षा दे।

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्त्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥ १६ ॥

भा०—(भुरिजोः इव क्षुरम्) दोनों बाहुओं में पकड़ कर जिस प्रकार छुरे को तेज़ करते हैं उस प्रकार हे राजन्! हे (विमोचन) कष्टों

और बन्धनों से छुड़ाने हारे ! तू (भुरिजोः) दोनों पालनशील बाहुओं में सुरक्षित कर (नः) हमें (सं शिशीहि) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर, उत्तम रूप से शासित और प्रखर शक्ति वाला बना। और (रायः रास्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर। (त्वं) तू (यं) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य वर्ग को या शत्रु को मारने वाले सैन्य को (हिनोषि) अपने अधीन सञ्चालित करता है, हे राजन् ! (त्वे) तेरे अधीन (नः) हमारा (उस्रियं) गवादि पशुसम्पदा से युक्त, (तत् वसु) वही राष्ट्र में बसा धन (सुवेदम्) सुख से प्राप्त करने योग्य, सर्वोत्तम है। राजा के शस्त्र-बल और प्रजाजन ही सर्वोत्तम धन हैं। वह स्वर्णादिक को प्रजा से उत्तम न समझे, न उसके लिये प्रजा का नाश करे।

वेमि॑ त्वा पूषन्नृ॒ञ्जसे॒ वेमि॒ स्तोत॑व आघृणे।
न तस्य॑ वेम्यर॑णं॒ हि तद्व॑सो स्तु॒षे प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करनेहारे ! (ऋञ्जसे) उत्तम रीति से कार्य करने के लिये मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझे (वेमि) चाहता हूं। हे (आ-घृणे) सब ओर से प्रदीप्त, सूर्यवत् तेजस्विन् ! (स्तोतवे) स्तुति करने के लिये भी (त्वा वेमि) तुझे ही चाहता हूं। हे (वसो) सबको बसाने और सब में बसने वाले प्रभो ! (अरणं हि तत्) क्योंकि वह रमणीय या सुखजनक नहीं है इसलिये (तस्य न वेमि) उसकी मैं चाहना भी न करूं। (पज्राय) विद्वान् (साम्ने) सबके लिये समान रूप से आदर योग्य, सबके प्रति समान व्यवहार करने वाले श्रेष्ठ पुरुष की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं।

'साम'—साम्ना समानयम्, तत्साम्नः सामत्वम्। तै० २।२।८।७॥ समेत्य साम प्राजनताम् तत्साम्नः सामत्वम्। जै० उ० १।५१।२॥ तद् यत् संयन्ति तस्मात्साम। जै० उ० १।३३।६।७॥ समा उ ह वा अस्मिन् छन्दांसि साम्यात्॥ सा० १।१।५॥ तद् यदेष सर्वैः लोकैः समस्तस्मादेषः

एव साम ॥ जै० ३०१।१२।५॥ साम इति छन्दोगाः उपासते । एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम् । श० १०।५।२।२०॥ यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते सः सामन् भवति । असामान्य इति ह निन्दन्ति । ऐ० ३।२३॥ तद्यत् सा च अमश्च तत्साम अभवत् ॥ जै० ३०१।५३।५॥ यद्वै तत्सा च अमश्च समवदतां तत्साम अभवत् । गो० उ० ३।२०॥

(१) जिसे सब आदर से मिलकर लावें (२) सब मिलकर बनावें या करें, (३) सब मिलकर चलें, (४) जिसमें या जिसके अधीन सब समान हों, (५) जो सबके बराबर हो, जिसमें सब समान हों, (६) जो सबसे श्रेष्ठ हो, (७) वह प्रजा और उसका सहवर्त्ती राजा दोनों मिलकर संवाद करते हैं वह 'साम' है ।

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान ! तेजस्विन् ! हे अमर्त्य ! साधारण मनुष्यों में विशेष ! (कच्चित्) जब कभी भी (गावः) गौवें (यवसम्) चारे का लक्ष्य कर (परा) दूर भी हों तो भी (रेक्णः) वह धन (नित्यं) स्थिर बना रहे, उसे कोई न हरे । हे (पूषन्) पोषक स्वामिन् ! तू (अस्माकम् अविता) हमारा रक्षक और (शिवः) कल्याणकारक (भव) हो । और तू (वाजसातये) ऐश्वर्य के संविभाग बल को प्राप्त करने के लिये (मंहिष्ठः) अति दानशील और सर्वपूज्य (भव) हो ।

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

भा०—(दिविष्टिषु) उत्तम दान देने और उत्तम इच्छाओं, अभिलाषाओं वाले (रातिषु) दानशील, (तुर्वशेषु) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्यों के ऊपर (कुरुंगस्य) कर्म करने वाले समस्त जीवों को

भी प्राप्त उनमें भी व्यापक (राज्ञः) दीप्तियुक्त, स्वयंप्रकाश, (त्वेपस्य) कान्तिमान्, तीक्ष्ण, (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शताश्वं) अश्वों सूर्यादि से, वा भोक्ता जीवों से सम्पन्न (स्थूरं राधः) बड़े भारी ऐश्वर्य को देखकर हम (अमन्महि) उसका मनन करें, मान आदर करें।

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

भा०—(वाजिनः) ऐश्वर्यवान् (काण्वस्य) विद्वान् राजा के (गवां) वेग से जाने वाले अश्वों के (षष्टिं सहस्रा) ६०००० साठ २ हज़ार के (यूथानि) समूह (अभि-द्युभिः) तेजस्वी (प्रिय-मेधैः) यज्ञ के प्रिय, विद्वानों, शत्रुहिंसन के प्रिय (धीभिः) बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा (सातानि) अच्छी प्रकार विभक्त हों। उनको (ऋषिः) उत्तम द्रष्टा निरीक्षक पुरुष (अनु निर् अजे) प्रति दिन पूरी तरह से सञ्चालित करे। (२) इसी प्रकार (वाजिनः कण्वस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और बलशाली मेधवान् प्रभु की (निर्मजाम् गवां षष्टिं सहस्रा यूथानि) अति शुद्ध गौ, अर्थात् वाणियों के ६० हज़ार के समूह (अभि-द्युभिः प्रियमेधैः) सब प्रकार से ज्ञान-प्रकाशों से युक्त यज्ञप्रिय विद्वानों द्वारा (सातानि) विभक्त किये जावें। और उनको (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि वा उत्तम शिष्य (अनु निर् अजे) अनुकूल रूप से पूर्ण, यथार्थ ज्ञान करे।

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥ २१ ॥ ३३ ॥ ७ ॥

भा०—(वृक्षाः चित्) वृक्ष जिस प्रकार वायु का झकोरा लगने पर मर्मर ध्वनि करते हैं, वे जिस प्रकार (मेहना) वृष्टियुक्त (गां भजन्त) भूमि का सेवन करते हैं और (मेहना अश्वं भजन्त) वृष्टिकारक आशु-गामी वायु का सेवन करते हैं उसी प्रकार (मे) मुझ स्वामी को (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (वृक्षाः चित्) भूमि को वश करके बैठे हुए भूपति

लोग भी (अरारणुः) हर्षध्वनि करते हैं। वे (गां) उत्तम भूमि को (भजन्त) प्राप्त करते तथा (मेहना अश्वं भजन्त) उत्तम अश्वादि सैन्य को प्राप्त करते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः। इति सप्तमोऽध्यायः॥

अष्टमोऽध्यायः

[५]

ब्रह्मातिथिः काण्व ऋषिः॥ देवताः—१—३७ अश्विनौ। ३७—३९ चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः॥ छन्दः—१, ५, ११, १२, १४, १८, २१, २२, २९, ३२, ३३, निचृद् गायत्री। २—४, ६—१०, १५—१७, १९, २०, २४, २५, २७, २८, ३०, ३४, ३६ गायत्री। १३, २३, ३१, ३५ विराड् गायत्री। १३, २६ आर्ची स्वराड् गायत्री। ३७, ३८ निचृद् बृहती। ३९ आर्षी निचृदनुष्टुप्॥ एकोनचत्वारिंशदृचं सूक्तम्॥

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत्।
वि भानुं विश्वधातनत्॥ १॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण, कान्तियुक्त रूप वाली उषा (दूरात् सती) दूर रहकर भी (इह एव) यहां ही, समीप विद्यमान के समान ही (अशिश्वितत्) जगत् भर को श्वेत कर देती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं) कान्ति को (वि अतनत्) विस्तारित करती है उसी प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त, स्वस्थ नवयुवति (दूरात् सती) दूर देश में रहती हुई भी, सती, सच्चरित्र स्त्री (इह इव) जैसे यहां हो ऐसे गृहवत् ही (अशिश्वितत्) अपने चरित्र से जगत् को शुभ्र कर देती है और (विश्वधा) सब प्रकार से (भानुं वि अहनत्) अपनी कीर्त्ति दीप्ति को फैलाती है।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ मनु० ९।२६॥

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।
सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय वा दुष्टों वा शरीरस्थ दोषों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो ! मुख्य नायको, प्राण उदानवत् हे (अश्विना) दो अश्वों पर चढ़े नायकों के समान अश्वों, इन्द्रियों और मन के स्वामी जितेन्द्रिय, जितमनस्क जनो ! (नृवत्) दो नायकों के समान आप दोनों (मनः-युजा) मन रूप सारथि या अश्व की शक्ति से युक्त (पृथु-पाजसा) अधिक बलशाली (रथेन) दृढ़ रथदेह से युक्त होकर (उषसम् सचेथे) अपने चाहने वाले को प्राप्त होओ । (२) दो वीर नायक शत्रुपीड़क सेना को प्राप्त करें । (३) प्राण उदान मनोयोग युक्त रथ अर्थात् व्यापार से अर्थात् योगाभ्यासवश विशोका रूप उषा को प्राप्त करावें ।

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोभा अदृक्षत ।
वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न बल और ऐश्वर्य से युक्त प्रजा, सेना भूमि और यागादि क्रिया से उत्पन्न धन के स्वामी स्त्रीपुरुषो ! (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (स्तोभाः) उत्तम स्तुतिवचन (प्रति अदृक्षत) प्रत्येक कार्य में दीखें । (यथा दूतः) दूत के समान मैं (वाचं ओहिषे) वाणी को धारण करता हूं ।

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष दोनों (पुरुप्रिया) बहुत को प्रिय, (पुरुमन्द्रा) बहुतों को प्रसन्न करने वाले और (पुरूवसू) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये

हों। उन दोनों को (कण्वासः) विद्वान् उपदेष्टा लोग (स्तुषे) उपदेश करने के लिये हों।

मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती।
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (मंहिष्ठा) अति पूज्य (वाज-सातमा) ज्ञान, अन्न बल के देने वालों में उत्तम (इषयन्ता) उत्तम अन्न की कामना करने वाले (शुभः पती) उत्तम कल्याण कर्म और शुद्ध जल को पालन वा पान करने वाले स्वयं पति पत्नी (दाशुषः गृहम्) ज्ञानादि देने वाले के गृह को (गन्तारा) जाने वाले होओ। इति प्रथमो वर्गः॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम्।
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों उत्तम विद्वान् और उत्तम विजिगीषु वा विद्यादि के अभिलाषी शिष्यों के स्वामी (दाशुषे) ज्ञानदाता गुरु, आचार्य वा धनप्रद स्वामी की (सु-मेधाम्) उत्तम बुद्धियुक्त (अवितारिणीम्) विनाश न होने देने वाली (गव्यूतिम्) वाणियों के सम्मिश्रण होने की यज्ञ क्रिया वा नीति को गोचर भूमि के समान ही (घृतैः उक्षतम्) स्नेहों और घृतादि पवित्र पदार्थों वा (घृतैः) जलों से सींचो, बढ़ाओ, उन्नत करो।

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः।
यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी जनो! आप दोनों (नः) हमारे (द्रवत् तूयम्) शीघ्र शीघ्र ही (नः) हमारे (स्तोमम् उप) स्तुत्य उपदेश को प्राप्त करने के लिये (श्येनेभिः) उत्तम गति वाले सदाचारी, (आशुभिः) शीघ्रगामी और (अश्वेभिः) अश्वोंवत् प्राण वृत्तियों से (उप यातम्) प्राप्त होओ।

येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना ।
त्रीरँक्तून्परिदीयथः ॥ ८ ॥

भा०—(येभिः) जिन वेग युक्त साधनों से तुम दोनों (तिस्रः दिवः त्रीन् अक्तून्) तीन दिन और तीन रातों में ही (परावतः) दूर के समस्त देशों और (विश्वानि रोचना) समस्त रुचिकर स्थानों को भी (परि दीयथः) परिभ्रमण कर सको उन ही साधनों से हमारे (स्तोमम् उपयातम्) स्तुत्य यज्ञादि कार्य को भी प्राप्त होओ ।

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा ।
वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन को प्राप्त कराने या ज्ञान करा देने वाले उषा सूर्यवत् वा सूर्य चन्द्रवत् (अहर्विदा) अविनाशी आत्मा को जानने वाले वा दिन कृत्य के ज्ञाता जनो ! आप दोनों (उत) भी (नः) हमारी (गोमतीः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त इच्छाओं और (गोमतीः इषः) भूमियों से युक्त वा गोरस—दुग्ध, दही घृतादि से युक्त अन्नों को (उत सातीः) सेवन योग्य सम्पदाओं को प्राप्त करो और (पथः सातये) सन्मार्गों के प्राप्त करने और सेवन के लिये (वि सितम्) विविध प्रकार से नियम बन्धन करो ।

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् ।
वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (नः) हमें (गोमन्तं) गौओं से युक्त, (सु-वीरं) उत्तम वीरों वाले (सुरथं रयिम्) उत्तम रथसम्पन्न ऐश्वर्य को (आ वोढम्) प्राप्त कराओ । और (अश्वावतीः इषः) अश्वों वाली सेनाओं को भी (आ वोढम्) धारण और वश करो ॥ इति द्वितीयो वर्गः ॥

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥

भा०—हे (दस्रा) दुःखों के नाश करने वाले आप दोनों (शुभःपता) उत्तम गुणों और कल्याणमय आचार का पालन करते हुए (वावृधाना) बढ़ते हुए (सोम्यं मधु पिबतम्) ओषधि-रस से युक्त मधु एवं मधुर अन्न, जल का उपभोग करो।

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मुघवंद्भ्यश्च सुप्रथः।
छुर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (वाजिनी वसू) अन्न, ऐश्वर्य बल आदि उत्पन्न करने वाली क्रिया सेना आदि को धनवत् पालन करने वाले वीर विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे और (मघवद्भ्यश्च) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के उपकार के लिये (अदाभ्यम् छर्दिः) न नाश होने योग्य, सुखप्रद गृह प्रदान करो।

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम्।
मो ष्वं१न्याँ उपारतम् ॥ १३ ॥

भा०—हे शक्तिमान् सेनापति, और सैन्य वर्ग जनो! (यौ) जो आप दोनों (जनानां ब्रह्म) मनुष्यों के धन, अन्न और बृहत् राष्ट्र को (नि सु अविष्टम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो वे आप दोनों (तूयम् आ गतम्) शीघ्र प्राप्त होओ। (अन्यान्) औरों को (मो सु उप अरतम्) मत प्राप्त होओ।

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः।
मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् अश्वों, एवं इन्द्रियों तथा वेगयुक्त साधनों के स्वामी जनो! आप दोनों (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, उत्तम बुद्धियुक्त और पूज्य आसन वा पदों के योग्य होकर (एतस्य) आदर पूर्वक दिये (अस्य चारुणः मदस्य) इस उत्तम तृप्तिजनक मधुर मधुपर्कादि अन्न का (पिबतम्) पान, उपभोग करो।

अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा रथी सारथिवत् राजा और सचिव जनो ! आप दोनों (अस्मे) हमारे लिये (शतवन्तं) सौ और (सहस्रिणं) हजार संख्यायुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (आवहतम्) प्राप्त कराओ । वह ऐश्वर्य (पुरु-क्षुं) वहुतों को अन्न देने और वसाने में समर्थ और (विश्व-धायसम्) सबका पालक पोषक हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्भिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (नरौ) नायक जनो ! अमात्य राजा वा स्त्री पुरुषो ! (मनीषिणः) मनस्वी ज्ञानी लोग (वां) आप दोनों को (पुरुत्र चित् हि) बहुत से कार्यों में (वि-ह्वयन्ते) विशेष रूप से आदर पूर्वक बुलावें । आप दोनों (वाघद्भिः) भार वहन करने में समर्थ अश्वों के समान क्षमता-युक्त विद्वान् पुरुषों सहित (आ गतम्) आओ ।

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा और अमात्य, सेना-सभा के अध्यक्ष जनो ! (युवां) आप दोनों को (वृक्त-बर्हिषः) कुशा को काट लाने वाले यज्ञशील पुरुषों के समान (वृक्त-बर्हिषः) अपने बढ़ते शत्रुओं को काट गिराने वाले (हविष्मन्तः) अन्नादि उत्तम समृद्धि-मान् (अरंकृतः) अत्यन्त उद्योग से कार्य करने वाले, कर्मण्य जन (हवन्ते) बुलाते हैं वा तुम को अपना प्रधान स्वीकार करते हैं ।

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्य, राष्ट्र और विद्यादि में निष्णात

विद्वानों के स्वामी जनो ! (अस्माकम्) हमारा (अयं) यह (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके किया (स्तोमः) स्तुति योग्य उपदेश वचन एवं व्यवहार (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (अन्तमः) अति समीप और (वाहिष्ठः) अति सुख प्राप्त कराने वाला और रथ के समान जीवन को सुख से यापन करा देने वाला (भूतु) हो ।

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे ।
ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत्, जितेन्द्रिय, विद्यावान् एवं अश्वों, राष्ट्रादि के स्वामी जनो ! जिस प्रकार (रथचर्षणे आहितः दृतिः) रथ को खैंचने के स्थान पर जल की मशक लटकी रहती है और रथस्थ पुरुष (मधुनः पिबतः) जल का पान और अन्न का भोजन करते हैं उसी प्रकार (रथ-चर्षणे) रमण योग्य गृहस्थ वा राष्ट्र कार्य के उठाने के समय भी (वां) आप दोनों के लिये (मधुनः) मधुर अन्न, जल तथा ऐश्वर्य का (यः) जो (दृतिः) पात्र (आहितः) आदर पूर्वक प्रस्तुत किया जावे (ततः) उससे (पिबतम्) जल अन्नादि का अवश्य उपभोग करो । अथवा—(यः मधुनः) जो 'मधु' अर्थात् शत्रु का दमन या पीड़क करने में समर्थ (दृतिः) शत्रु को काट गिराने में समर्थ शस्त्रास्त्र सैन्य (आहितः) राष्ट्र के सब ओर स्थापित हो (ततः) उसके बल पर (पिब-तम्) राष्ट्र का पालन और उपभोग करो ।

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।
वहतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाजिनी' अर्थात् ज्ञानयुक्त बुद्धि, बल युक्त सेना और ऐश्वर्य युक्त समृद्धि, भूमि आदि के ऐश्वर्य के स्वामी ! आप दोनों (तेन) उस पूर्वोक्त मधु से पूर्ण पात्र वा शत्रुकर्षक बल से (नः) हमारे (पश्वे) पशुओं की रक्षा (तोकाय) सन्तानों के पालन

और (गवे शं) गौओं की शान्ति कल्याण के लिये (पीवरीः इषः) अति हृष्ट पुष्ट सेनाओं और अन्न सम्पदाओं को (वहतं) धारण करो। और हमें प्राप्त कराओ। इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा।
अप द्वारेव वर्षथः ॥ २१ ॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन के समस्त कृत्यों को रीति से जानने वाले प्रधान और गौण जनो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (दिव्याः इषः) उत्तम २ अन्न और विजयोद्योगिनी सेनाओं को (उत) और (सिन्धून्) बहने वाली जल धाराओं और वेगवान् अश्वों को (द्वारा इव) उत्तम साधनों, द्वारों और मार्गों से (अप वर्षथः) दूर तक वर्षाओ, पहुंचाओ और लेजाओ।

कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ २२ ॥

भा०—(तौग्र्यः) 'तुग्र' अर्थात् शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों में कुशल, उनका स्वामी सेनापति। हे (नरा) नायक वरो ! (समुद्रे) उमड़ते हुए शत्रु सैन्य के बीच (जहितः) आकर (वां) तुम दोनों की (कदा) कब (विधत्) सेवा करे ? [उत्तर] (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ सैन्य (विभिः) वेगवान् अश्वों से (पतात्) प्रयाण करे।

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये।
शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥

भा०—हे (नासत्यौ) सत्य का उपदेश देने और सत्य का विधान करने और कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (युवं) आप दोनों (हर्म्ये) उत्तम गृह में रहते हुए (अपि-रिप्ताय कण्वाय) पीड़ित विद्वान्

जन को बचाने के लिये (शश्वत्) सदा (ऊतीः दशस्यथः) नाना रक्षाएं अन्नादि तृप्तिकारक पदार्थ भी प्रदान किया करो।

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः ।
यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् पुरुषों को राष्ट्र में बसाने वाले नायक पुरुषो ! (यत् वां) अब मैं आप दोनों को (हुवे) प्रजाजन पुकारूं, अवसर पर चाहूं। तब २ आप दोनों (ताभिः) इन नाना (नव्य-सीभिः) अति नवीन, अति उत्तम (सु-शस्तिभिः) शासन व्यवस्थाओं और (ऊतिभिः) रक्षा साधनों सहित (आ-यातम्) प्राप्त होओ।

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(यथा चित्) जैसे भी हो वैसे हे (अश्विना) जितेन्द्रिय उत्तम बलवान् विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (कण्वम् आ अवतम्) विद्वान् पुरुष की रक्षा किया करो। और आप दोनों (उप-स्तुतम्) प्रशंस-नीय (प्रिय-मेधम्) यज्ञ और युद्धादि के प्रिय विद्वान् और वीर पुरुष की रक्षा करो। और (शिञ्जारम्) मधुर शब्द करने और मधुर वचन कहने वाले वाद्य, गान प्रिय एवं कवि और उत्तम उपदेष्टा वर्ग की भी रक्षा करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यथोत कृत्व्ये धनेऽंशुं गोष्वगस्त्यम् ।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् बलवान् स्त्री पुरुषो ! (यथा उत) और जैसे हो वैसे, (कृत्व्ये धने) धन को पैदा करने के लिये (अंशुम्) खाने और भोगने योग्य अन्नादि की रक्षा करो। और (गोषु) किरणों के प्राप्त्यर्थ (अगस्त्यम्) सूर्य और भूमियों को सम्पन्न बनाने के लिये स्थावर पर्वत वृक्षों की रक्षा करो। (यथा) जैसे हो वैसे (वाजेषु) ज्ञानों, अन्नों

और बलों की रक्षा के लिये (सोभरिम्) उत्तम रीति से उनके पालक की रक्षा करो।

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना ।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥ २७ ॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् शासकों को राष्ट्र में बसाने वाले वा उनको अपना धन समझने वाले प्रधान पुरुषो ! (गृणन्तः) आप दोनों के प्रति उपदेश करते हुए हम प्रजाजन (वाम्) आप दोनों के (एतावत्) इतना (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य वा (अतो वा भूयः) इससे भी अधिक की (ईमहे) याचना करते हैं ।

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (अश्विना) 'अश्व' अर्थात् वेग से जाने वाले रथ विमान विद्युत, अग्नि, जल आदि के स्वामी, तत्सम्बन्धी कार्यकुशल विद्वान् एवं शिल्पी जनो ! पुरुषो ! आप दोनों (हिरण्यबन्धुरम्) सुवर्ण, लोह आदि धातु से सुन्दर, कान्तियुक्त (हिरण्याभीशुम्) उत्तम लोहादि धातु की बनी रोक-थाम वाले (दिवि-स्पृशम्) आकाश और भूमि दोनों को स्पर्श करने वाले दोनों यथेच्छ जाने वाले, (रथं स्थाथः हि) रथपर विराजा करो ।

हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः ।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! (वां) तुम दोनों के (ईषाः) रथ के अग्र दण्ड (रभिः) दृढ़ और (हिरण्ययी) सुवर्णादि उत्तम धातु के बने हों और (अक्षः हिरण्ययः) अक्ष भी लोह के दृढ़ बने हों। (उभा) दोनों (चक्रा) चक्र भी (हिरण्यया) लोह से बने, दृढ़ हों ।

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् ।
उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (वाजनीवसू) बलवती सेना और अन्नसम्पदा वाली भूमि के स्वामी जनो ! (तेन) इस प्रकार के पूर्वोक्त रथ से (परावतः चित्) दूर देश से भी (नः आगतम्) आप लोग हमारे पास आया करो, (इमाम्) इस (मम सु-स्तुतिम्) मेरी उत्तम स्तुति, वचन, उपदेशादि श्रवण किया करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना ।
इषो दासीरमर्त्या ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) असाधारण मनुष्यो ! आप दोनों (पराकात्) दूर देश से प्राप्त होने वाली (इषः आ वहेथे) अन्नादि सामग्रियों को लाया करो। और (पूर्वीः) पूर्व प्राप्त अन्नों को (अश्नन्ता) भोग करते हुए (दासीः) भृत्यादि प्रजा को भी नयी अन्न सामग्री लाते रहो। उसी प्रकार (पराकात्) दूर देशों तक भी (इषः) तीव्र (दासीः वहेथे) शत्रुनाशक सेनाएं रक्खो।

आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना ।
पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का आचारण न करने वाले एवं सत्य ही की व्यवस्था करने वाले (अश्विना) राष्ट्र, बल के स्वामी जनो ! आप दोनों (पुरु-चन्द्रा) बहुत से प्रजावर्गों को आह्लादित करने वाले तथा बहुत से सुवर्णादि धनों के स्वामी होओ और (नः) हमें (द्युम्नैः) यशों, धनों, (श्रवोभिः) अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों और प्रशंसाओं (राया) और ऐश्वर्य सहित (नः आ उप यातम्) हमारे पास आया करो।

एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः ।
अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (प्रुषित-प्सवः) स्निग्ध और उत्तम रीति

से परिपक्व भोजन करने वाले, (पर्णिनः) उत्तम रथों और वाहनों के स्वामी (वयः) पक्षिवत् शीघ्रगामी, तेजस्वी विद्वान् पुरुष घोड़ों के समान, नियुक्त होकर (वां) आप दोनों ही (सु-अध्वरं जनं) उत्तम यज्ञयुक्त प्रजावर्ग को (अच्छ आ हवन्त) भली प्रकार रथवत् धारण करें।

रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह।
न चक्रमभि बाधते ॥ ३४ ॥

भा०—(यः इषा सह वर्तते) जो अन्नादि तथा सैन्य से सम्पन्न है तुम दोनों के (अनु-गायसं) अनुगमन करने योग्य व प्रशंसनीय (रथम्) रमणीय राष्ट्र को (रथं चक्रं) रथ को चक्र के समान (चक्रं) चक्रवत् पर-सैन्य अथवा कर्मकर्तृगण (न अभि बाधते) नहीं पीड़ित करें।

हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः।
धीजवना नासत्या ॥ ३५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिका में स्थित प्राणों के समान राष्ट्र में विद्यमान प्रमुख स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (धी-जवना) कर्म और बुद्धि में तीव्र वेग से युक्त होकर (द्रवत् पाणिभिः अश्वैः रथेन) वेगयुक्त चरणों वाले अश्वों से युक्त रथ के समान ही (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः) शीघ्र कर्मकारी, कुशल, सिद्ध हस्त विद्वानों से सुसज्जित (हिरण्येन रथेन) सुवर्णादि से सन्नद्ध उत्तम राष्ट्र सहित हमें प्राप्त होओ। इति सप्तमो वर्गः ॥

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू।
ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों को धनवत् पालन करने वाले राजा सचिव जनो ! (युवं) आप दोनों (मृगं) सिंहवत् बलवान्, (जागृवांसं) जागरणशील, सदा सावधान, पुरुष को (स्वदथः) उत्तम ऐश्वर्य तथा उत्तम पुष्टिकारक भोजन प्रदान करो। इस प्रकार वे

सेनादि के स्वामी लोग (नः) हमें (इषा) बलवती सेना सहित (रयिम् पृक्षम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ ।

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ॥३७॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (ता)वे आप दोनों (मे) मुझ विद्वान् वा राष्ट्र के (नवानाम्) नये नये (सनीनां) योग्य ऐश्वर्यों और ज्ञानों का सदा (विद्यातम्) ज्ञान करते,जनाते वा प्राप्त कराते रहो। (यथा चित्) जिससे (चैद्यः कशुः) विद्वानों में उत्तम ज्ञानदर्शी और तेजस्वी पुरुष (उष्ट्रानां) राष्ट्र में वसने और शत्रु को दग्ध करने वाले (शतम्) सैकड़ों प्रजाओं वा वीरों तथा (गोनाम् दशसहस्रा) दस सहस्र भूमियों को भी (ददत्) प्रदान करे ।

यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥

भा०—(यः) जो बड़ा राजा वा प्रभु (मे) मुझे (हिरण्य-संदृशः) सुवर्ण या सूर्य के समान दीखने वाले वा हित और रमणीय तत्व ज्ञान को देखने वाले सम्यक् दर्शी (दश राज्ञः) दसों तेजस्वी, राजसभासदों को (मे) मेरे हितार्थ (अमंहत) राष्ट्र को प्रदान करता है उस (चैद्यस्य) ज्ञानी, विद्वानों में सर्वोत्तम पुरुष के (अधः-पदाः) अधीन (कृष्टयः) कृषक, शत्रुपीड़क जन, खड्ग और (अभितः) उसके चारों ओर (चर्मम्नाः जनाः) चर्म, खड्ग आदि का अभ्यास करने वाले वीर पुरुष (इत्) अवश्य रहते हैं। (२) इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर सब विद्वान् ज्ञानी जीवों में व्यापक होने से 'चैद्य' है सब जीव कृष्ट भूमियें अन्न सम्पदादिवत् उत्पन्न होने वाले होने से 'कृष्टि', जन्म लेने से 'जन' और चर्मवेष्टित देह को बार २ लेने से वा चर्मवेष्टित देह में कर्मों और ज्ञानों का पुनः २ अभ्यास करने वाले होने से जीव 'चर्मम्न' हैं। वे उसके ही अधीन रहते हैं। वह प्रभु मुझ

जीवगण को दस हित रमणीय ज्ञानप्रद दस तेजोयुक्त प्राणों, इन्द्रियों को प्रदान करता है ।

माकि॑रे॒ना प॒था गा॒द्येने॒मे यन्ति॑ चे॒दयः॑ ।

अ॒न्यो नेत्सू॒रिरोह॑ते भू॒रि॒दाव॑त्तरो॒ जनः॑ ॥ ३९ ॥ ८ ॥ १ ॥

भा०—(येन पथा) जिस मार्ग से (इमे चेदयः) ये विद्वान् जन (यन्ति) गमन करते हैं (एना पथा) उस मार्ग से (माकिः गात्) कोई जा नहीं सकता । उनका मार्ग सुगम नहीं होता । (अन्यः) दूसरा कोई (भूरिदावत्-तरः जनः) बहुत धनादि देने वाला और (सूरिः) विद्वान् भी (नः ओहते) इतना कार्य भारादि उठाने में समर्थ नहीं होता है । इत्यष्टमो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[६]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ १—४५ इन्द्रः । ४६—४८ तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिर्देवताः ॥ छन्दः—१—१३, १५—१७, १९, २५—२७, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ४२ गायत्री । १४, १८, २३, ३३, ३४, ३६, ३७, ३९—४१, ४३, ४५, ४८ निचृद् गायत्री । २० आर्ची स्वराड् गायत्री । २४, ४७ पादनिचृद् गायत्री । २१, २२, २८, ३१, ४४, ४६ आर्षी विराड् गायत्री ॥

म॒हाँ इन्द्रो॒ य ओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ इ॑व ।
स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे ॥ १ ॥

भा०—(यः इन्द्रः) जो ऐश्वर्यों का देने वाला परमेश्वर (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि करने वाले मेघ के समान (इन्द्रः) अन्न जलवत् नाना उत्तम फलों का देने वाला (पर्जन्यः) सर्वोत्कृष्ट विजयी, सब सुखों-रसों का दाता, वह प्रभु (ओजसा महान्) बल पराक्रम से महान् है । वह (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों और वैदिक सूक्तोपदेशों से गुरुवत् (वत्सस्य) अधीनता

में वसने वाले शिष्यवत् प्रभु में ही निवास करने वाले एवं बालकवत् प्रिय भक्त की (वावृधे) सब प्रकार से वृद्धि करता है ।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो ! (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय (पिप्रतः) जगत् को पूर्ण करने वाले तेरी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (यत्) जो (वह्नयः) सूर्यादि और जगत् में अग्निवत् ज्ञान प्रकाश के धारण करने वाले विद्वान् लोग (प्र भरन्त) अच्छी प्रकार प्रजा का भरण पोषण करते हैं वे ही (ऋतस्य वाहसा) सत्य ज्ञान को धारण करने से (विप्राः) सच्चे विप्र और विद्वान् हैं ।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (कण्वाः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों से तथा अधिकारों, पदों से (यज्ञस्य) परस्पर मिलकर करने योग्य देवपूजा, संगतिकरण भावना, दान आदि सत्कर्मों का (साधनम्) साधक, निमित्त (अक्रत) बना लेते हैं तब वे (आयुधम्) सब संकटों को पराजित करने वाले आयुध के समान उस प्रभु को ही वे (जामि ब्रुवते) अपना बन्धु कहने लगते हैं । वे उसी को सब से बड़ा बल, सब से बड़ा अस्त्र मानते हैं । अथवा जब वे प्रभु को ही सर्वोपास्य जान लेते हैं तब वे आयुध शस्त्रादि को भी (जामि ब्रुवते) व्यर्थ बतलाया करते हैं । ईश्वर पर किया विश्वास ही उनका एकमात्र रक्षक होता है ।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥

भा०—(समुद्राय-इव सिन्धवः) नदियें जिस प्रकार समुद्र को

प्राप्त होने के लिये (नमन्तः) उसकी ओर ही झुक जाती हैं उसी प्रकार (विश्वाः विशः कृष्टयः) समस्त प्रजाएं, शत्रु कर्षण करने वाली सेनायें और कृषक जन (अस्य मन्यवे) इस प्रभु के ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उसी के समक्ष (सं नमन्त) मिलकर झुकती हैं। (२) इसी प्रकार प्रबल राजा के (मन्यवे) क्रोध के आगे समस्त प्रजाएं झुकती हैं।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः चर्म इव) जिस प्रकार शत्रुहन्ता वीर पुरुष रक्षा साधन ढाल और शत्रुछेदन के साधन खड्ग को (सम अवर्त्तयत्) अच्छी प्रकार चलाता है तब (अस्य ओजः तित्विषे) उसका पराक्रम खूब चमकता है, उसी प्रकार (यत्) जब (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु (चर्म इव) खड्ग ढाल के समान ही (रोदसी उभे सम् अवर्त्तयत्) प्रजा और शासक वर्ग दोनों को एक साथ संचालित करता है (तत्) तभी (अस्य) उस प्रभु का (ओजः तित्विपे) पराक्रम, बल, तेज अधिक चमकता, प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाशवत् दृष्टिगोचर होता है। इति नवमो वर्गः॥

वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् वा वायु (वृत्रस्य शिरः) मेघ के ऊपर के भाग को (वृष्णिना वज्रेण) वृष्टिकारी विद्युत् प्रहार से (वि बिभेद) छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार वह ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रस्य) बढ़ते शत्रु के (शिरः) प्रमुख सैन्य को (वृष्णिना) बलवान्, शस्त्रादि वर्षक (वज्रेण) शत्रुनिवारक (शतपर्वणा) सैकड़ों खंड वाले वा अनेक पालन साधनों से युक्त (वज्रेण) सैन्य बल से (दोधतः वृत्रस्य) हृदय में भय, कंपकंपी पैदा करने वाले त्रासकारी शत्रुगण के (शिरः वि बिभेद) शिर या प्रमुख अंग को छिन्न भिन्न करे। (२) उसी प्रकार गुरु, प्रभु

शान्ति वर्षक (शतपर्वणा) सौ पर्व, अध्याय अनुवाकादि विच्छेदों से युक्त ज्ञानमय वेद से अज्ञानकारी वृत्र का नाश करता है।

इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः।
अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हम (अग्रेषु) अग्रगण्य विद्वानों के अधीन रहकर (विपाम्) वेदवाणियों में से (इमाः) इन (धीतयः) नाना स्तुतियों और धारण करने योग्य वाणी या कर्मों को (अभि प्र नोनुमः) साक्षात् कर अच्छी प्रकार अभ्यास करें, पढ़ें और अन्यों के प्रति कहें। वे (अग्नेः शोचिः न) अग्नि की ज्वाला के समान (दिद्युतः) प्रकाश करने वाली हैं। 'विपा' इति वाङ्नाम।

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः।
कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (धीतयः) संकल्प वा कर्म (गुहा सतीः) बुद्धि में विद्यमान रहकर (त्मना) आत्मा के सामर्थ्य से (प्र शोचन्त) प्रकाशित होते हैं उनको (कण्वाः) हम विद्वान् जन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (धारया) वाणी से (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं।

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम्।
प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के दाता! हम (तम्) उस (गोमन्तं रयिम्) गौओं से युक्त सम्पत्ति, इन्द्रियों से युक्त देह और वाणियों से युक्त ज्ञान और (अश्विनम्) अश्वों से युक्त सैन्य बल को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें। इसी प्रकार हम (पूर्व-चित्तये) सब से पूर्व विद्यमान एवं पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के लिये (गोमत् ब्रह्म) वाणियों से युक्त ब्रह्म = वेद ज्ञान को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(अहं) मैं जिज्ञासु (इत्) ही (हि) अवश्य (ऋतस्य) वेदमय सत्य ज्ञान के (पितुः मेधाम्) पितावत् पालक प्रभु वा गुरु की (मेधाम्) ज्ञानवती बुद्धि को (परि जग्रभ) प्रेमपूर्वक ग्रहण करूं। और (अहं) मैं (सूर्यः इव) सूर्य के समान (अजनि) होऊं। इत्येकादशो वर्गः॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ ११ ॥

भा०—(येन) जिस ज्ञान से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष या आत्मा (शुष्मम् इत् दधे) शत्रुशोषक बल को धारण करता है (अहं) मैं भी (प्रत्नेन) पुराने, सनातन, नित्य (मन्मना) मनन योग्य वेदमय या आत्मज्ञान से (कण्ववत्) उत्तम मेधावी पुरुष के समान (गिरः शुम्भामि) अपनी वाणियों को सुशोभित करूं।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान नाशक प्रभो ! विद्वान् आचार्य (ये) जो यथार्थ ज्ञान के द्रष्टा न होकर (त्वाम् न तुष्टुवुः) तेरी स्तुति नहीं कर सकते हैं (च) और (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) जो ज्ञानद्रष्टा होकर स्तुति करते हैं उनसे तू (सु-स्तुतः) उत्तम रीति से वर्णित और स्तुतियुक्त होकर (मम इत्) मुझे अवश्य (वर्धस्व) बढ़ा, ज्ञान से पूर्ण कर। ज्ञानदाता गुरुजन और ग्रहीता शिष्य जन दोनों ज्ञानदर्शी होने से ऋषि हैं। उनमें एक उपदेश करते हैं दूसरे श्रवण करते हैं। उनमें मैं चाहे शिष्यों में होऊं वा गुरुजनों में तू उत्तम रीति से स्तुतिपात्र होकर मेरे ज्ञान की सदा वृद्धि कर।

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन् ।
अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जब (अस्य मन्युः) सूर्य या विद्युत् का प्रखर ताप वा कोप (वृत्रं) मेघ के (पर्वशः) पोरु २ (वि रुजन्) छिन्न भिन्न करता है तब (अपः समुद्रम् ऐरयत्) जलों को वह मेघ समुद्र की तरफ प्रेरित करता है उसी प्रकार (यत्) जब (मन्युः) ज्ञानमय प्रभु वा गुरु (अस्य) इस जीव शिष्य को (वृत्रं) विस्तृत ज्ञान का (पर्वशः विरुजन्) पोरु २, गांठ २ करके छिन्न भिन्न करता हुआ (अध्वनीत्) उपदेश करता है, तब वह (अपः) जीव अपने कर्म को—लिङ्ग शरीर को उस (समुद्रम्) आनन्दमय प्रभु के प्रति (हेरयत्) सञ्चालित करे ।

नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) सर्व शक्तिमन् ! हे दुष्टों को भय देने हारे ! तू (वृषा हि) निश्चय से बड़ा बलवान्, सब सुखों की वर्षा करने वाला (शृण्विषे) सुना जाता है । तू ही (शुष्णे दस्यवि) प्रजाशोषक, कष्टदायी दुष्ट के ऊपर (धर्णसिं वज्रं) दृढ़ वज्र का (नि जघन्थ) प्रहार कर कि वह अपने दुष्ट कर्म से वर्जित हो ।

न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
न विव्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणम्) सर्व शक्तिमान् प्रभु से (न द्यावः) न प्रकाशमान् सूर्य तारे, (न अन्तरिक्षाणि) न अन्तरिक्षगत वायु आदि और (न भूमयः) न भूमिस्थ जल, जन्तु आदि ही (ओजसा) बल पराक्रम से (वि व्यचन्त) अधिक हैं । अथवा (न द्यावः न अन्तरिक्षाणि न भूमयः इन्द्रं विव्यचन्त) न सब सूर्य, न सब आकाश, न सब अन्तरिक्ष और न सब भूमियां ही उस महान् अनन्त परमेश्वर को व्याप सकते हैं । इत्येकादशो वर्गः ॥

यस्ते इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् ।
नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरी (महीः अपः) बड़ी विस्तृत व्यापक जगत् की प्रारम्भक प्रकृति की सूक्ष्म मात्राओं को (स्तभूयमानः) स्तब्ध, निष्क्रिय करता हुआ (आशयत्) सर्वत्र प्रसुप्त सा किये हुए था (तं) उसको तू (पद्यासु) अपनी गतियों वा शक्तिरूप क्रियाओं के बीच में (नि शिश्नथः) सर्वथा नष्ट कर देता है। इस प्रकार जड़ प्रकृति की जड़ता ही वृत्र है जो सृष्टि के पूर्व प्रकृति को शिथिल प्रसुप्त सा बनाये रखता है। ।इसी प्रकार जो मेघ जलों को थामे रहता है विद्युत् वा सूर्य उसको आहत करके गतियुक्त धाराओं में परिवर्त्तित करता है। इसी प्रकार जो शत्रु राजा की भूमियों और प्रजाओं को रोककर स्वयं सुख में सोवे उसको राजा (पद्यासु) पदाति सेनाओं के बल पर विनाश करे।

य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् ।
तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥

भा०—(यः) जो (इमे) इन (मही) बड़ी (रोदसी) आकाश भूमि (समीची) परस्पर अच्छी प्रकार मिली, दोनों स्त्री पुरुषों की श्रेणियों को भी मेघ वा रात्रि कालवत् (तमोभिः) अज्ञान-अन्धकारों से (सम् अजग्रभीत्) अच्छी प्रकार ग्रस लेता है, हे (इन्द्र) सूर्यवत् प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू (तं गुहः) उस अज्ञान, अविद्यामय दुखान्धकार को लुप्त कर, ज्ञान प्रकाश देकर सुखी कर।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः ।
ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ये यतयः) जो इन्द्रियों और मन का संयम करने वाले और (ये च भृगवः) जो पापों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करने वाले या वेद वाणियों को धारण करने वाले तपस्वी और विद्वान् पुरुष

हैं वे सभी (त्वा) तेरी (तुष्टुवुः) सदा स्तुति करते हैं। तू उन सब की सुनता है। हे (उग्र) दुष्टों के प्रति भयंकर ! दण्डधर प्रभो ! (मम इत् हवम्) मेरी पुकार भी तू (श्रुधि) श्रवण कर।

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्।
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (इमाः पृश्नयः) ये सूर्य, अन्तरिक्ष और भूमि आदि समस्त पदार्थ गौओं के समान हैं। (ते) तेरे अधीन होकर (एनम्) उस (आशिरम्) भोगने योग्य (घृतं) क्षरणशील दुग्धवत् जल अन्नादि को (दुहते) प्रदान करते हैं। ये सब (ऋतस्य) तेज, जल, अन्न, धन और ज्ञान की (पिप्युषीः) वृद्धि भी करते हैं। ज्ञान की वृद्धि करने से ऋषि लोग भी 'पृश्नि' कहाते हैं।

या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन्।
परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(धर्मः इव सूर्यम्) धारण करने वाला मेघमय जल वा वायु जिस प्रकार 'सूर्य' के ताप को (गर्भं करोति) अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (याः प्रस्वः) जो जगत् में उत्पन्न करने वाली शक्तियें (आसा) अपने मुख से अर्थात् मुख्य बल से, वा स्तुति द्वारा (त्वा) तुझे ही (गर्भम् अचक्रिरन्) अपने भीतर शक्तिरूप में धारण करते हैं। इसी प्रकार मादाएं वा माताएं भी जो गर्भ में धारण करती हैं वे भी सूर्यवत् तेरे ही उत्पादक बल को अपने भीतर धारण करती हैं। अन्नादि रूप में भी तेरे ही उत्पन्न किये प्राणदायक जीवन को प्रजाएं मुख से शरीर धारक रूप में ग्रहण करती हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः।
त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल के पालक ! (कण्वाः) विद्वान् लोग

(त्वाम् इत्) तुझे लक्ष्य कर (उक्थेन) स्तुति वचन कहकर ही (वावृधुः) स्वयं वृद्धि, समृद्धि को प्राप्त करते हैं। (इन्दवः) भक्ति रस से द्रवित होने वाले (सुतासः) उत्पन्न जीव एवं भक्तजन भी पुत्रवत् (त्वाम्) तुझ पिता को प्राप्त कर स्तुति से (त्वा वावृधुः) तुझे बढ़ाते, तेरी महिमा का गान करते और तुझे प्राप्त कर स्वयं वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी सूर्यवत्! अनेक शक्तियों के स्वामिन्! (उत) और (तव इत्) तेरी (प्रणीतिषु) उत्तम उत्कृष्ट नीतियों और रचनाओं में भी तेरी ही (प्रशस्तिः) उत्तम कीर्त्ति और शासन व्यवस्था विद्यमान है। तू ही (यज्ञः) सर्वोपास्य, सर्वदाता (वितन्तसाय्यः) अति विस्तृत महान्, सब से बड़ा है।

आ नं इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम्।
उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! आत्मन्! तू (नः) हमें (महीम्) बड़ी, पूज्य (इषम्) इच्छा, प्रेरणा, (गोमतीं पुरं न) गवादि सम्पदा युक्त नगरी के समान इन्द्रियों और वाणी से युक्त, पालन पोषण योग्य देह रूप पुरी को (उत) और (प्रजां) प्रजा, पुत्रादि और प्राणादि तथा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलवीर्य (आ दर्षि) प्रदान करता है। (२) राजन्! तू हमें (महीम्) भूमि, अन्न, गवादि युक्त पुरी, प्रजा और उत्तम बल दे।

उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा।
अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो! (यत्) जो (अग्रे) सबसे पहले (नाहुषीषु विक्षु) मानुषी प्रजाओं में (प्र दीदयत्) अच्छी प्रकार

प्रकाशित होता रहा (त्मन्) वह (आशु-अश्व्यम्) अति शीघ्र अश्व, मन, इन्द्रियादि को वश करने वाला मन, प्राण आदि आत्म सामर्थ्य हमें भी प्रदान कर ।

अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २५ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभो ! राजन् ! (यत्) जो तू (नः) हमें (मृडयासि) सुखी करता है वह तू (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी और प्रकाशस्वरूप होकर (उपाक-चक्षसम्) अति समीप अन्तःकरण के भीतर दर्शनीय वा गुरु द्वारा समीप रहकर उपदेश करने योग्य (व्रजं न) शरण योग्य वा गमनयोग्य मार्ग के समान ज्ञान मार्ग को (अभि तत्निषे) विस्तार करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्र राजसि क्षितीः ।
महाँ अपार ओजसा ॥ २६ ॥

भा०—(अङ्ग इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! हे दुष्टों के दलन करने वाले ! (यत्) जो तू स्वयं ही (तविषीयसे) बलवती सेना के समान आचरण करता है तू स्वयं (क्षितीः) सब बसी प्रजाओं पर (प्र राजसि) उत्तम राजा के समान है । सचमुच तू (ओजसा) बल पराक्रम में (महान्) बड़ा और (अपारः) अपार है, तेरा अन्त नहीं । (२) राजा स्वयं (तवीषीयसे) सेना की कामना करता है, राजा बनता है ।

तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये ।
उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥ २७ ॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! (हविष्मतीः विशः) उत्तम अन्न आदि देने और उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न प्रजाएं (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों सहित (तं) उस (उरुज्रयसं त्वा) महान् बल पराक्रम वाले तुझ को

(उप ऊतये ब्रुवते) प्राप्त कर अपनी रक्षा के लिये तुझ से प्रार्थना करती हैं।

उपह्वरे गिरीणां संङ्गथे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजयात ॥ २८ ॥

भा०—(गिरीणाम् उपह्वरे) पर्वतों के समीप, उनके सुरक्षित स्थान में और (नदीनां च संगथे) नदियों के संगम स्थान में (धिया) उत्तम कर्म और बुद्धि के योग तथा ध्यान के अभ्यास से (विप्रः अजायत) मनुष्य विद्वान् बुद्धिमान् होजाता है। उसी प्रकार विद्यार्थी जिज्ञासु (गिरीणाम् उपह्वरे) ज्ञान के उपदेष्टा गुरुजनों के समीप और (नदीनां च संगथे) ज्ञानोपदेष्टा तथा ज्ञान सम्पन्न जनों के सत्संग में रहकर (धिया) उत्तम कर्म और बुद्धि के योग से (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् (अजायत) होता है।

अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति।
यतो विपान एजति ॥ २९ ॥

भा०—(यतः) जिस कारण से (विपानः) विशेष रूप से पालक वा व्यापक प्रभु (एजति) सब को चला रहा है, (अतः) इस कारण ही वह प्रभु (चिकित्वान्) सर्वज्ञ है और वह सूर्य के समान (उद्वतः) ऊपर के लोकों को और (समुद्रम्) महा सागरवत् प्रवाह से अनादि अनन्त जगत् सर्ग को भी (अव पश्यति) अपने अधीन देखता है।

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवा ॥ ३० । १४ ॥

भा०—(यत्) जो (ज्योतिः) तेज वा प्रकाश (दिवा) दिन के समय सूर्य के समान स्वाभाविक रूप (परः) काल और देश की सब मर्यादाओं के परे, दूर भी (इध्यते) प्रकाशित होता है (प्रत्नस्य) सनातन, नित्य (रेतसः) सब के सञ्चालक, जल वा वीर्यवत् सब के उत्पादक

प्रभु की उस (वासरम्) सब को बसाने वाली ज्योति को (आत् इत्) योग साधनादि के पश्चात् योगीजन (पश्यन्ति) देखा करते हैं।

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम्।

उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (शविष्ठ) महान् शक्तिमन्! (विश्वे) समस्त (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ते मतिं) तेरे दिये ज्ञान को (ते पौंस्यं) तेरे दिये पौरुष युक्त बल, पराक्रम (उतो) और (ते वृष्णयम्) तेरे दिये सुखवर्षी, वलवीर्य, धन धान्यादि को भी (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं।

इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव।

उत प्र वर्धया मतिम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (मे) मेरी (इमां) इस (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति प्रार्थना को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर तू (मा प्र सु अव) मुझे उत्तम रीति से, सुख से पाल, मेरी रक्षा कर, मुझे दुःखों और पापों से वचा। (उत) और (म तिम् प्र वर्धय) मेरे ज्ञान, वुद्धि की वृद्धि कर।

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः।

विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥ ३३ ॥

भा०—(उत) और हे (प्रवृद्ध) सब से महान्! हे (वज्रिवः) सर्व शक्तिमन्! वा समस्त शक्तिमानों के भी स्वामिन्! (वयं विप्राः) हम सब विद्वान् लोग मिलकर (तुभ्यं ब्रह्मण्या) तेरे दिये, तेरे उपदेश किये ब्रह्म, वेदोपदिष्ट ज्ञानों और कर्मों को (जीवसे) अपने सुखमय जीवन की वृद्धि के लिये (अतक्ष्म) करें और (वयं ब्रह्मण्या जीवसे अतक्ष्म) हम जीवन रक्षा के लिये तेरे दिये धनों और अन्नों को उत्पन्न करें।

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः ।
इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥ ३४ ॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् मेधावी पुरुष (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् प्रभु परमात्मा को (अभि अनूषत) लक्ष्य करके उसकी स्तुति करते हैं । (यतीः आपः प्रवता न) बहती जलधाराएं जिस प्रकार स्वभावतः नीचे की ओर जाने वाले मार्ग से ही बहती हैं उसी प्रकार (यतीः) यमनियमों का पालन करने वाले इन्द्रिय और मन के वशीकर्त्ता (आपः) आप्तजन भी (प्रवता) उत्तम कर्म या मार्ग से (इन्द्रम् अभि अनूषत) इन्द्र, प्रभु को लक्ष्य कर उसके समक्ष झुकते हैं । और (मतिः) उनकी बुद्धि और वाणी भी स्वाभाविक रूप से (इन्द्रं वनन्वती) ऐश्वर्यवान् प्रभु का भजन करती हुई उसकी ही स्तुति करती है ।

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।
अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥ १५ ॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) जिस प्रकार नदियें समुद्र को बढ़ाती हैं उसी प्रकार (उक्थानि) उत्तम वेदमन्त्र (समुद्रम्) आनन्द के सागर और (अनुत्त-मन्युम्) सर्वोपरि ज्ञान और पराक्रम से युक्त (अजरम्) जरारहित, अविनाशी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वावृधुः) बढ़ाते हैं, उस की महिमा का विस्तार करते हैं ।

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।
इममिन्द्र सुतं पिब ॥ ३६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो स्वामिन् ! (हरिभ्यां परावतः) दो अश्वों से जिस प्रकार कोई स्वामी अतिशीघ्र दूर देश से भी प्राप्त होता है उसी प्रकार तू (हर्यताभ्याम्) अत्यन्त कान्तियुक्त, मनोहर (हरिभ्याम्) सब दुःखों के हरने वाले चिन्मय और आनन्दमय रूपों से ज्ञानमय और क्रियामय रूपों से (परावतः) दृश्यमान जगत् की सीमा से कहीं अन्य

अगस्त्य दशा से भी (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो, हमें प्रकट हो। और हे प्रभो! (इमं सुतं पिब) उत्पन्न हुए इस जीव संसार को पुत्रवत् पालन कर वा ओषधि रसवत् पान कर, अपने में एकरस करले।—

त्वामिद्वृत्रहन्तम् जनासो वृक्तबर्हिषः।
हवन्ते वाजसातये॥ ३७॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) आत्मा को घेर कर बैठे अज्ञान और नाना दुःखजनक वासना-पुञ्जों को नाश करने में सर्वोत्तम! (वृक्त-बर्हिषः) कुशादि को छेदन कर यज्ञ करने वालों के समान वासनामूलों को उच्छेद कर तेरी उपासना करने वाले जीवगण (वाज-सातये) बल, अन्न, और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हवन्ते) तुझे ही बुलाते, तुझे उद्देश्य करके ही आहुति देते, यज्ञ करते हैं।

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्त्येतशम्।
अनु सुवानास इन्दवः॥ ३८॥

भा०—(एतशं चक्रं न) जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ चक्र-जाता है उसी प्रकार (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथिवी (त्वा अनु-वर्त्ति) तेरे ही पीछे २ चल रहे हैं। वे तेरे चलाये चलते हैं। उसी प्रकार (सुवानासः) ऐश्वर्यशील या उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) कान्तिमान् सूर्यादि वा जीवगण भी (त्वा अनु) तेरे ही अनुकूल तेरी व्यवस्था में चलते हैं।

मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति।
मत्स्वा विवस्वतो मती॥ ३९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (स्वः-नरे) सुखमय परम पद को लक्ष्य कर अपने को लेजाने वाले (उत) और (शर्यणावति) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष में (सु मन्दस्व) अच्छी प्रकार आनन्द उत्पन्न कर। (विवस्वतः) विशेष रूप में तेरी परिचर्या करने वाले

पुरुष की (मती) मनन करने वाली बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द उत्पन्न कर। अथवा—हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू (स्वः-नरे) परम सुख प्राप्त कराने और (शर्यणावति) सब संकटों को दूर करने वाले परम शक्तिवान् प्रभु में आनन्द लाभ कर। तू (विवस्वतः) विशेष रूप से समस्त संसार में बसे प्रभु की (मती) मनन करने वाली बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द सुख अनुभव कर उसी में रम।

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत्।
वृत्रहा सोमपातमः ॥ ४० ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उप द्यवि वावृधानः वृपा वज्री अरोरवीत्) आकाश में बढ़ता हुआ वर्पणशील, विद्युत्-मय मेघ गर्जता है वह (वृत्र-हा) जल को प्राप्त कर (सोम-पातमः) ओपधि गण का सर्वोत्तम पालक होता है उसी प्रकार (वृपा) समस्त सुखों की वर्पा करने वाला, वलवान्, समस्त संसार का प्रबन्धक, (वज्री) सर्वशक्तिमान् अज्ञान पापादि को वर्जन करने वाले ज्ञान बल से सम्पन्न, (वृत्र-हा) विघ्न और आवरणकारी अज्ञान का नाशक (सोम-पातमः) ऐश्वर्यों, जगदुत्पादक वलों और समस्त जीवों का सर्वोपरि पालक प्रभु परमेश्वर (द्यवि) तेजोमय, ज्ञानमय, स्वरूप में (उप) हृदय के अति निकट रहकर (वावृधानः) अपनी महान् महिमा को प्रकट करता हुआ (अरोरवीत्) ज्ञान का उपदेश करता है। इति पोडशो वर्गः॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (हि) निश्चय से (ऋषिः) समस्त ज्ञानों का द्रष्टा, (पूर्वजाः) सबसे पूर्व विद्यमान रहकर सब को उत्पन्न करने वाला, (ओजसा) बल पराक्रम से (एकः ईशानः) एक अद्वितीय सबका ईश्वर है, तू ही (वसु) बसे समस्त जीव को (चोष्कूयसे) अपने वश करता, वा समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है।

अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः ।
शतं वहन्तु हरयः ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (अस्माकं) हम में से (शतं हरयः) अनेक मनुष्य (वीत-पृष्ठाः) कान्तियुक्त स्वरूप वाले तेजस्वी होकर (त्वा उप) तेरी उपासना करते हुए (सुतान्) नाना ऐश्वर्यों और पुत्रों तथा (प्रयः अभि) अन्न, ज्ञान आदि (अभि वहन्तु) प्राप्त करें और अन्यों को करावें ।

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् ।
कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इमां) इस (पूर्व्याम्) पूर्व पुरुषों की, वा 'पूर्व' अर्थात् पूर्ण पुरुष की (मधोः घृतस्य) मधुर ज्ञान को बढ़ाने वाली, (धियं) बुद्धि और कर्म को (उक्थेन) वेदमन्त्र से (वावृधुः) बढ़ावें, उसे अधिक समृद्ध करें ।

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः ।
इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥ ४४ ॥

भा०—(विमहीनां) विशेष रूप से बड़ी शक्तियों के बीच में भी (मेधे) पवित्र यज्ञ में (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रम् इत्) सूर्य, वायु, जल आदि उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को ही (वृणीत) उपास्य जाने । (सनिष्युः) दान देने की कामना करने वाला, पुरुष भी (ऊतये) रक्षा के लिये (इन्द्रम् इत् वृणीत) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को ही वरण करे । (२) इसी प्रकार (मर्त्यः) समस्त मनुष्य (मेधे) संग्राम के अवसर पर (विमहीनाम्) विशेष विविध भूमियों के (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् राजा को ही मुख्य पद पर धरें । और (सनिष्युः) ऐश्वर्य और वेतनादि का इच्छुक जन भी (ऊतये) रक्षार्थ उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् को प्राप्त करे ।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों द्वारा स्तुति करने योग्य, बहुतों से प्रार्थित, उपासित (प्रियमेधस्तुता) यज्ञ, उपासनादि के प्रेमी पुरुषों द्वारा स्तुत या उपदिष्ट (हरी) ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ दोनों (सोमपेयाय) ओषधि रसवत् तेरे ऐश्वर्यमय परमानन्द रस का पान करने के लिये (अर्वाञ्चं) अति समीप प्राप्त, साक्षात् (त्वा वक्षतः) तुझे ही अपने हृदय में धारण करते हैं । (२) युद्ध-प्रियों से प्रशंसित 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र की रक्षार्थ हे राजन् ! (अर्वाञ्चं त्वा वक्षतः) घोड़ों से जाने वाले तुझ को रथ में वहन करते हैं ।

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे ।
राधांसि याद्वानाम् ॥ ४६ ॥

भा०—(अहं) मैं (याद्वानां) मनुष्यों के (शतं सहस्रं राधांसि) सौ, और हजार भी ऐश्वर्य (तिरिन्दिरे) उस तीर्णतम, सर्वोपरि ऐश्वर्य-वान्, (पर्शौ) सर्वद्रष्टा सर्वस्रष्टा, सर्वव्यापक प्रभु के बीच में ही (आददे) प्राप्त करता हूं । युवा स्यात् साधु युवाध्यायकः । आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् स एको मानुष आनन्दः ॥ ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः........ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । तैति० उप० ब्रह्मानन्द वल्ली ८ ॥

(२) इसी प्रकार (याद्वानां शतं सहस्रं राधांसि) यत्नशील परि-श्रमी मनुष्यों के सैकड़ों सहस्रों ऐश्वर्य (पर्शौ) परशुवत् शत्रुछेदन करने में समर्थ (तिरिन्दिरे) शत्रुहन्ता राजा के अधीन ही मैं प्रजाजन प्राप्त कर सकता हूं ।

तिरिन्दरः—तिरः तीर्णतमः इन्दिरः इन्द्रः । 'पर्शुः'—पशुः पश्यतेः ।

रकारोपजनः । परशुः । अकारलोपः । पर्शुः स्पृशतेः । संस्पृष्टा पृष्ठदेशम् । निरु० ४ । १ । ४ ॥

त्रीणि॑ श॒तान्यर्व॑तां स॒हस्रा॒ दश॒ गोना॑म् ।

द॒दुष्प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥ ४७ ॥

भा०—वह परमेश्वर (पज्राय) प्रार्थना वा ज्ञानार्जन करने वाले, (साम्ने) सब के प्रति समान बुद्धि करने वाले समदर्शी पुरुष को (अर्वतां त्रीणि शतानि) तीन सौ गतिशील वर्षों की आयु और (गोनां दशसहस्रा) वेद वाणियों के दश सहस्र मन्त्र, विद्वान् लोग (ददुः) प्रदान करते हैं ।

उदा॑नट् क॒कुहो॒ दिव॒मुष्ट्रा॑ञ्चतु॒र्युजो॒ दद॑त् ।

श्रव॑सा॒ याद्वं॒ जन॑म् ॥ ४८ ॥ १७ ॥

भा०—(श्रवसा) श्रवण करने योग्य ज्ञान तथा अन्न के निमित्त (याद्वं जनम्) यत्नशील मनुष्य को (ककुहः उद् आनट्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु उन्नत करता है । और वह (चतुर्युजः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाले (उष्ट्रान्) नाना पदार्थों की कामना करने वाले लोगों को अथवा अन्तःकरण की चारों वृत्तियों का विरोध करने वाले, कर्मबीजों को ज्ञानाग्नि से दहन करने वालों को भी (दिवं ददत्) ज्ञानप्रकाश प्रदान करता हुआ (ककुहः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (श्रवसा उदानट्) ज्ञान द्वारा ही उन्नत करता है । तुर्वशः चतुर्वशः चतुरो धर्मार्थकाममोक्षान् कामयन्ते इति तुर्वशाः मनुष्याः । त एव चतुर्युज उष्ट्राः । अथवा—चतुरः अन्तःकरणवृत्तीन् युञ्जते समादधति निरुन्धन्ति, इति चतुर्युजः । ज्ञानाग्निना कर्माणि उषन्ति दहन्ति ते उष्ट्राः । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७]

पुनर्वत्सः काण्व ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३—५, ७—१३, १७—१९, २१, २८, ३०—३२, ३४ गायत्री । २, ६, १४, १६, २०,

२२—२७, ३५, ३६ निचृद्गायत्री । १९ पादनिचृद्गायत्री । २९, ३३ आर्षी विराड् गायत्री षट्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।
वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (मरुतः पर्वतेषु वि राजथ) वायुगण मेघों में विशेष विद्युत् दीप्ति उत्पन्न करते हैं तब (विप्रः इषं अक्षरत्) रूप से विशेष जल से पूर्ण मेघ वृष्टि को (त्रिष्टुभम्) पृथिवी के प्रति सेचन करता है। इसी प्रकार हे (मरुतः) प्राणो ! (यत्) जब (विप्रः) पुरुष (त्रिष्टुभम्) तीन कालों में (इषं) अन्न रस को (प्र अक्षरत्) अच्छी प्रकार देह में सेचन करता है तब हे प्राणो ! तुम (पर्वतेषु) पर्व अर्थात् पोरुओं से युक्त देह के अंगों में (वि राजथ) विराजते हो। अथवा— हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (विप्रः) ज्ञान और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाला विद्वान् राजा (वः) आप लोगों की (त्रिष्टुभम् इषम्) क्षात्रबल से युक्त सेना को (प्र अक्षरत्) आगे बढ़ाता है तब आप लोग (पर्वतेषु) पर्वतों अर्थात् पर्व पर्व, वा खण्ड २ युक्त सैन्य दलों में विशेष रूप से सुशोभित होओ। त्रिष्टुप्—त्रिष्टुप् इन्द्रस्य वज्रः । ऐ० २ । २ । इन्द्रस्त्रिष्टुप् । श० ६ । ६ । २ । ७ ॥ इन्द्रियं वै त्रिष्टुप् । तै० ३ । ३ । ९ । ८ ॥ वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । २ ॥ ओजो वा इन्द्रियं, वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । ५ ॥ उरः त्रिष्टुप् । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥ क्षत्रं वै त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ त्रिष्टुप् हि इयं पृथिवी ॥ श० २ । २ । १० ॥

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (तविषीयवः यामं चिन्वन्ति) बलयुक्त वेगवान् वायुगण अपने जल संयमन करने वाले, वायु सम्बन्धी बल को एक साथ लगा देते हैं तब (पर्वताः नि अहासत) मेघ निश्चित दिशा में

गति करते या निम्न दिशा की ओर आ झुकते हैं। उसी प्रकार (अङ्ग) हे (तविषीयवः) बलवती सेना बनाने के इच्छुक वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्) जब (शुभ्रा) शस्त्रादि से खूब सजधज कर (यामं) नियामक सैन्य बल को (अचिध्वम्) सञ्चित करलो तब (पर्वताः) नाना पर्वों, खण्डों से युक्त सैन्यबल के अध्यक्ष जन (नि अहासत) नियमपूर्वक प्रयाण करें।

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नि-मातरः) प्रबल धारा वर्षण करने वाली नीहारिका से उत्पन्न (वाश्रासः) गर्जनाशील मेघ (वायुभिः इत् ईरयन्त) वायुओं के साथ उठते हैं तब वे (पिप्युषीम् इषं धुक्षन्त) अन्न वनस्पति-आदि को बढ़ाने वाली जलवृष्टि को प्रदान करते हैं। इसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) माता भूमि विद्वान् गुरुओं और विदुषी माताओं के पुत्र (वाश्रासः) उपदेष्टा पुरुष (वायुभिः) वायुवत् बलवान् प्राणों और नेता पुरुषों से युक्त होकर (उद् ईरयन्ते) ऊपर को उठते हैं तब वे (पिप्युषीम्) राष्ट्र को बढ़ाने वाली (इषम्) सेना को (धुक्षन्त) पूर्ण करते हैं। वा राष्ट्र से वृद्धिकारक बल और अन्न का दोहन करते हैं। अर्थात् प्रयाण के पूर्व अन्न और बल का सञ्चय करते हैं।

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान्।
यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः यद् यामं वायुभिः यान्ति) सजल वायुएं जलस्थनीय वायुओं के साथ आकाश मार्ग से जाते हैं तब वे (पर्वतान् प्रवेपयन्ति) मेघों को भी गति देते और (मिहं वपन्ति) वर्षा को भी बीजवपनवत् भूमि पर डालते हैं। इसी प्रकार (मरुतः) प्रचण्ड वात के समान वीर नायक गण (यत्) जब (वायुभिः) तीव्र वायुवत्

वलवान् सैनिकों के साथ (यामं) प्रयाण मार्ग में गमन करते हैं तव वे (मिहं वर्षन्ति) शस्त्र वृष्टि करते हैं, और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ शत्रुओं को भी (प्रवेपयन्ति) खूब कंपा देते हैं, विचलित कर देते हैं। विशेष वृष्टि लाने वाली मानसून वायुएं ही वेद में 'मरुतः' कहे गये हैं। (२) इसी प्रकार (मरुतः) मर्त्य युवा मनुष्य (यत्) जब (वायुभिः) गन्धयुक्त भूमिवत् धर्म दाराओं के साथ (यामं यन्ति) उपयम अर्थात् विवाह वन्धन को प्राप्त कर लेते हैं तव वे (पर्वतान्) प्रसन्न करने और पालने योग्य आदरणीय जनों को (प्रवेपयन्ति) हर्षित करते हैं और (मिहं वपन्ति) निषेक द्वारा उत्तम सन्तानों का वपन करते हैं।

नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे।
महे शुष्माय येमिरे ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—वृष्टि लाने वाले सजल वायुगण को (यामाय) वांधने, रोकने के लिये जिस प्रकार (गिरिः = गिरयः) पर्वत या मेघ और (वि-धर्मणे) उनको विशेष रूप से धारण करने के लिये (महे शुष्माय) वड़े वैद्युतिक आदि वल उत्पन्न करने के लिये (सिन्धवः) नदियें, सागर और नहरें (नियम्यन्ते) विशेष रूप से वनायी जाती हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीरो ! विद्वानो ! (वः यामाय) आप लोगों के नियन्त्रण, संयम और शिक्षण के लिये (गिरयः) उपदेष्टा गुरुजन नियत किये जावें। और (विधर्मणे) विशेष रूप से आप लोगों को दृढ़ रखने और (महे शुष्माय) वड़े आप लोगों की भारी वलवृद्धि के लिये (सिन्धवः नियेमिरे) वेगवान् अश्वों को भी नियम में व्यवस्थित किया जाय। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे।
युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (नक्तम्) रात्रि के समय (ऊतये) रक्षा के लिये (युष्मान् उ हवामहे) आप लोगों से ही हम प्रार्थना

करते हैं। हे वीर पुरुषो! (युष्मान्) तुम्हें हम (दिवा ऊतये हवामहे) दिन के समय रक्षा करने के लिये प्रार्थना करते हैं। और (अध्वरे प्रयति) यज्ञ के अवसर में (ऊतये हवामहे) रक्षा के लिये बुलावें।

उदु त्ये अ॑रुणप्स॑वश्चि॒त्रा यामे॑भिरीरते।
वा॒श्रा अधि॒ ष्णुना॑ दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण, (वाश्राः) शब्द करते हुए (अरुणप्सवः) सूर्य की दीप्तियों को मानो खाजाते हैं, उनको अपने में विलीन कर लेते हैं, (चित्राः) अद्भुत रूप के होकर (यामेभिः) वायु के मार्गों से (उत् ईरते) ऊपर उठकर आकाश से जाते हैं वे (ष्णुना अधि दिवः) पर्वत शिखर के साथ २ आकाश में चले जाते हैं उसी प्रकार (त्ये मरुतः) वे विद्वान् और वीर मनुष्य भी (अरुणप्सवः) कान्तिदायक तेजोवर्धक पदार्थ का भोजन करने वाले हों, वे (चित्राः) अद्भुत कर्म करने वाले (यामेभिः) रथों से वा उत्तम नियम व्यवस्थाओं से (उत् ईरते) उठें, उन्नति करें, शत्रु पर जा चढ़ें। वे (वाश्राः) उपदेश और गर्जन करते हुए (स्नुना) उपभोग्य ऐश्वर्य के साथ ही (दिवः अधि) भूमि पर अधिकार करें।

सृ॒जन्ति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे।
ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण (ओजसा) अपने पराक्रम से (यातवे सूर्याय) गमन करते सूर्य के (पन्थाम्) मार्ग को प्राप्त कर स्वयं (रश्मिं सृजन्ति) दीप्ति को उत्पन्न करते और (भानुभिः वि तस्थिरे) नाना विद्युत् कान्तियों से विराजते हैं उसी प्रकार (ते) वे वीर पुरुष भी (भानुभिः वि तस्थिरे) नाना कान्तियों से विराजें और (यातवे सूर्याय) प्रयाण करने वाले तेजस्वी पुरुष के (ओजसा) बल पराक्रम से (रश्मिम् पन्थां सृजन्ति) व्यापक, विस्तृत मार्ग बना देते हैं।

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः।
इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे (ऋभुक्षणः) बड़े बलशाली पुरुषो ! आप लोग (मे इमां गिरम्) मेरी इस वाणी को और (इमां स्तोमं) इस स्तुत्य वचन को और (मे इमं हवम्) मेरे इस ग्राह्य उपहार वेतनादि को भी (वनत) सेवन करो।

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नयः) जल वर्षण करने वाले सूर्य के रश्मि गण (वज्रिणे) वज्र अर्थात् विद्युत् से युक्त मेघ के लिये (त्रीणि सरांसि) तीनों तालाबों के तुल्य भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश तीनों से (मधु दुदुह्रे) प्रभूत जल ग्रहण करते हैं। वे ही (उत्सं) ऊपर से बहने वाले (उद्रिणम्) जल से युक्त मेघ से (कवन्धम्) जल को भी (दुदुह्रे) प्रदान करते हैं। उसी प्रकार (पृश्नयः) विद्वान् जन (वज्रिणे) शक्तिशाली राष्ट्रपति के लिये (त्रीणि सरांसि मधु दुदुह्रे) तीनों लोकों से मधुर ऐश्वर्य को प्राप्त करें। और उत्तम मेघ, जलाशय तथा (उत्सं) ऊपर से वहने वाले झरने आदि से राष्ट्र के लिये (कवन्धम्) धाराबद्ध जल को भी प्राप्त करें, उससे यन्त्र, फ़ौवारे आदि चला दें। अन्नं वै देवाः पृश्नीति वदन्ति। ताण्ड्य०। इयं वै पृश्निः। पृश्नयो ऋषयः ॥ इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे।
आ तू न उप गन्तन ॥ ११ ॥

भा०—हे (मरुतः) जलवर्षी वायु गणों के समान विद्वान् एवं वीर जनो ! हम लोग (यत् ह वः) जब भी आप लोगों को (सुम्नायन्तः) अपना सुख एवं उत्तम ज्ञान चाहते हुए (हवामहे) आदर से प्रार्थना

करें (आ तु) अनन्तर ही आप लोग (नः उप गन्तन) आप हमारे समीप प्राप्त हुआ करें। रक्षेच्छुक प्रजाजनों के लिये सिपाही जनों को तुरत जाना चाहिये।

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे।
उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥

भा०—हे (सुदानवः) शोभन दानशील एवं शत्रुओं का अच्छी प्रकार खण्डन करने वाले (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले! (ऋभुक्षणः) सत्य का विवेचन 'ऋत' उत्तम अन्न, जल का ज्ञानवत् उपभोग और पालन करने वाले वीर, विद्वान् पुरुषो! हे (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान और उत्तम चित्त वाले सदाशय पुरुषो! (यूयं हि) आप लोग अवश्य (दमे) गृह में, शत्रुदमन के कार्य में (उत) और (मदे) समस्त प्रजाजनों को ज्ञान, अन्नादि से तृप्त, सुखी और आनन्दित करने में (स्थ) दत्तचित्त रहो।

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम्।
इयर्ता मरुतो दिवः ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण (मद-च्युतं) तृप्तिदायक (पुरु-क्षुं) बहुत से अन्न युक्त (विश्व-धायसम् रयिम्) विश्व की पोषक सम्पदा (दिवः) आकाश वा अन्तरिक्ष से प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर बलवान् पुरुषो! आप लोग भी (नः) हमें (मद-च्युतम्) आनन्ददायक (पुरु-क्षुं) बहुतों के निवास योग्य (विश्व-धायसम्) समस्त प्रजाजनों का पालन पोषण करने में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य (दिवः) इस भूमि से (आ इयर्त्त) प्राप्त कराओ।

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम्।
सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण (गिरीणाम् अधि) पर्वतों और मेघों के बीच में भी (शुभ्राः) शुभ्र वर्ण होकर (यामं) यम अर्थात्

पवन के मार्ग का (अचिध्वम्) अवलम्बन करते या वायु मण्डल के बीच विद्यमान जल राशि का सञ्चय करते हैं, तब (सुवानैः इन्दुभिः) नये उत्पन्न होते हुए द्रवणशील जलों से (मन्दध्वे) सब को आनन्दित करते हैं। उसी प्रकार हे वीर पुरुषो ! आप लोग (गिरीणां) पर्वतों के (अधि इव) मानो ऊपर भी (यामं) यम, नियन्ता राष्ट्र पति के आदेश को ही (अचिध्वम्) ग्रहण करो। हे (मरुतः) वायुवत् प्रिय शिष्य जनो! आप लोग भी (शुभ्राः) शुद्धाचरण, तेजस्वी, रहकर (गिरीणां) उपदेष्टा गुरुजनों के (यामं) यम-नियमादि व्रत पालन और 'यम' नियन्ता आचार्य के ज्ञानोपदेश को (अधि इव अचिध्वम्) खूब अधिकाधिक ग्रहण करो। आप लोग (सुवानैः) ऐश्वर्य वृद्धि करने वाले प्रजाजनों से वा ऐश्वर्यों से (मन्दध्वे) स्वयं प्रसन्न होओ और अन्यों को भी प्रसन्न करो।

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः।
अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (एषां) इन वीर वा विद्वान् पुरुषों में से (अदाभ्यस्य) शत्रुओं से नाश न होने वाले, (एतावतः) ऐसे ही महान् गुणवान् पुरुष से (मन्मभिः) उत्तम स्तुति युक्त वचनों से (सुम्नम् भिक्षेत) सुखप्रद धन और शुभ ज्ञान की याचना करें। निर्गुण अल्प चित्त वाले से ज्ञान, धनादि लेना न चाहे। इति विंशो वर्गः ॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः।
उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार मरुद्गण (रोदसी धमन्ति) भूमि और आकाश को शब्द से पूरित करते और फिर (वृष्टिभिः अक्षितं उत्सं) वृष्टियों द्वारा अक्षय जल या अन्न को मेघ में से दोहकर प्रदान करते हैं। उसी प्रकार (ये) जो वीर पुरुष (द्रप्सा इव) राष्ट्र के बलवीर्य रूप होकर (रोदसी) उभय पक्ष की सेनाओं को (धमन्ति) निनादित करते हैं, अग्नि-अस्त्र से

प्रचण्ड रूप से आग लगाते हैं और (अनु) पश्चात् शत्रुपर (वृष्टिभिः) वाण-वर्षाओं से (उत्सम्) उठने वाले शत्रु को नाशकर स्वयं (अक्षितं) अपना अपराजित, राष्ट्र और अक्षय ऐश्वर्य (दुहन्तः) पूर्ण करते हुए शोभा दिखाते हैं ।

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः ।
उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नि-मातरः) जल सेचन अर्थात् जल वर्षण करने वाले मेघों की माता के समान उत्पादक वायुगण (स्वानेभिः वायुभिः उद् ईरते) शब्दों, प्रबल वायु वेगों से उठते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि, आचार्य वा पृथिवी रूप माता के पुत्र वीर पुरुष (स्वानेभिः) सिंह गर्जनाओं सहित (उत् ईरते) उठते हैं, (रथैः उत्) रथों से और (वायुभिः उद् उ) वायुवत् प्रबल नायकों और (स्तोमैः उत्) स्तुति-योग्य प्रशंसा-वचनों से (उत् ईरते) ऊपर उठते, उत्साहित होते और विजय करते हैं । (२) इसी प्रकार विद्वान् गण उत्तम ध्वनियों, (रथैः) उपदेशों और (स्तोमैः) वेदमन्त्र समूहों से (उत् ईरते) उन्नति प्राप्त करते हैं ।

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् ।
राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥

भा०—(येन) जिस साधन से आप लोग (तुर्वशं) शत्रु के नाशक वा हिंसकों के वशकर्त्ता वा पुरुषार्थ चतुष्टय के इच्छुक (यदुं) यत्नशील, उद्योगी मनुष्य वर्ग को और (येन) जिस उपाय से (धन-स्पृतं) धन की कामना करने वाले वैश्य वर्ग और (कण्वं) विद्वान् उपदेष्टा ब्राह्मण वर्ग की (आव) रक्षा करते हो (तस्य) उसी उपाय का हम (राये) ऐश्वर्य के लाभ के लिये (सु धीमहि) अच्छी प्रकार धारण और विचार करें ।

इसी प्रकार वृष्टि जल से चारों वर्णों के जो उपकार हो सकते हैं उन सब का हम सदा ध्यान रक्खें और वर्षा के जल को व्यर्थ न जाने दिया करें।

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः।
वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील एवं छेदन भेदन के कर्म में कुशल जनो ! (वः) आप लोगों की (इमाः इषः) ये जल-वृष्टियों के समान (इषः) सेनाएं (घृतं न पिप्युषीः) जल के समान परस्पर स्नेह और राजा के तेज की वृद्धि करती हुई (काण्वस्य) विद्वान् पुरुष के (मन्मभिः) सुविचारित वचनों से (वर्धान्) वृद्धि को प्राप्त करें।

क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः।
ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार जल वृष्टि, अन्न प्रदान करने से वायुगण (सु-दानवः) उत्तम दानशील हैं वे (वृक्त-बर्हिषः) अन्तरिक्ष को चीर के जाने वाले होते और सब को आनन्दित करते हैं, उनके सम्बन्ध में भी प्रश्न होता है कि उनको (कः ब्रह्मा) कौन महान् शक्तिशाली सञ्चालित करता है। उसी प्रकार हे (सु-दानवः) उत्तम धन, ज्ञान, यशादि के देने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वृक्त-बर्हिषः) याग के निमित्त कुशादि काट कर लाने वाले वा शत्रुओं और अन्तरात्मा से क्रोध कामादि वासनाओं को समूल उच्छिन्न कर शुद्ध पवित्र होकर आप लोग (क्व मदथ) कहां २ आनन्द लाभ करते और किस २ स्थान वा अवसर पर अन्यों को आनन्दित करते हो। (वः) आप लोगों को (कः) कौन (ब्रह्मा) महान् शक्ति वाला, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुष (सपर्यति) आप लोगों का सत्कार करता है? इत्येकविंशो वर्गः ॥ उत्तर—

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः।
शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृक्तबर्हिषः) यज्ञशील और शत्रुरहित वीर जनो! (पुरा) पहिले के समान ही (वः) आप लोगों के (यत् नहि स्म) जो वल नहीं प्राप्त हो उन (ऋतस्य) धन, अन्न और सत्य ज्ञान के (शर्धान्) नाना वलों को (स्तोमेभिः) स्तुति वचनों द्वारा (जिन्वथ) वढ़ाओ।

समु त्ये मह॒तीर॒पः सं क्षो॒णी समु॒ सूर्य॑म् ।
सं वज्रं॑ पर्व॒शो द॑धुः ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ लाने वाले सजल वायुगण (महती अपः सं दधुः) वहुत भारी जल राशि को अच्छी प्रकार धारण करते हैं। (क्षोणी सं दधुः) भूमि पर उन जलों को प्रदान करते हैं, वा वे वृष्टि युक्त वायुगण (क्षोणी सं दधुः) इस भूमि और अन्तरिक्ष को परस्पर सुसम्बद्ध करते हैं वे ही (सूर्यम्) सूर्य की दीप्ति को (सं दधुः) धारण करते हैं और (वज्रं) विद्युत् को भी (पर्वशः) पोरु २, खण्ड २ कर धारण करते हैं उसी प्रकार (त्ये) वे वीर पुरुष भी (महतीः अपः सम् दधुः) वहुत वड़ी प्रजाओं को धारण करें, (क्षोणी सम्) स्व और पर-राष्ट्रों को सन्धि द्वारा व्यवस्थित करें, (सूर्यं सं दधुः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा सेनापति को धारण करें, और (वज्रं पर्वशः सं दधुः) वज्र की एक २ टुकड़ी का नायक महास्त्र धारण करे वा वे स्वयं टुकड़ी २ होकर महा सैन्य वलको और अपने सन्धि २, जोड़ २ पर वल धारण करें।

वि वृ॒त्रं प॑र्व॒शो य॑युर्वि पर्व॑ताँ अरा॒जिनः॑ ।
च॒क्रा॒णा वृ॒ष्णि पौंस्य॑म् ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार पूर्वोक्त वायुगण (वृत्रं) जल को (पर्वशः) पोरु २ पर (वि ययुः) विशेष रूप से व्यापते हैं। वे (अराजिनः) स्वयं दीप्तिरहित, श्याम (पर्वतान् वि ययुः) मेघों को भी व्यापते हैं और (वृष्णि) वर्षणशील मेघ पर विशेष (पौंस्यं विचक्राणाः भवन्ति) वल पराक्रम करते हैं उसी प्रकार वे वीर लोग (वृत्रं) अपने वढ़ते था घेरने

वाले शत्रु को (पर्वशः वि ययुः) पोरु २, सन्धि २, जोड़ २ में व्याप लें, उसके सैन्य दल में घुस जांय (अराजिनः) राजा के विपरीत, उच्छृंखल द्रोही (पर्वतान्) पर्वतवत् अचल शत्रुओं पर भी (वि ययुः) चढ़ाई करें। और (वृष्णि) बलवान् शत्रुपर वा (घृष्णि) उत्तम बलवान् प्रबन्धक पुरुष के अधीन रहकर (पौंस्यं) बल पौरुष (चक्राणाः) करते रहा करें।

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम्।
अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्रतूर्ये इन्द्रं अनु शुष्मम् क्रतुम् आवन्) मेघ के छिन्न करने के अवसर में वायुगण सूर्य के अनुकूल ही बलयुक्त कर्म को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार वीर सैन्य जन भी (वृत्र-तूर्ये) शत्रु के नाशकारी संग्राम के अवसर में (त्रितस्य युद्ध्यतः) स्व और पर से अतिरिक्त तीसरे बलशाली से लड़ते हुए (इन्द्रम् अनु) अपने सेनापति के कथनानुसार (उत) ही (शुष्मम् क्रतुम्) बल और उद्योग कर्म को (अनु आवन्) खूब प्राप्त करते और बलवान् और क्रियावान् भाग की खूब रक्षा करते हैं।

त्रितः—तीर्णतमो मेधया बभूव। अपिवा संख्यानामैवाभिप्रेतः स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवः। निरु० अ० ४। पा० १। ६॥

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! आप लोग (विद्युद्-हस्ताः) विद्युत् के समान विशेष चमकीले शस्त्र या आभूषण को हाथ में रक्खो और स्वयं (अभिद्यवः) कान्ति युक्त (शुभ्राः) शोभायुक्त वस्त्रालंकार धारण कर (शीर्षन्) शिर पर (हिरण्ययीः) सुवर्ण से सजी, सुनहरी, सुन्दर (शिप्राः) टोपियों या लोह आदि के बने शिर बचाने के टोपों को (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये (वि-अञ्जत) विशेष रूप से प्रकट किया करें।

शिप्राः—टोपियां। इति द्वाविंशो वर्गः॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार पवन गण (परावतः) दूर विद्यमान (उक्ष्णा) जल-सेचक मेघ के (रन्ध्रम्) छिद्र भाग की ओर (उशनाः) तीव्र कान्ति-युक्त होकर जाते हैं । तब (द्यौः न भिया चक्रदत्) आकाश व पृथिवी भी भय से कांप जाती या गूंज उठती है उसी प्रकार आप लोग भी (उशनाः) राज्य-विजय की कामना करते हुए हे वीरो ! (यत्) जब (परावतः उक्ष्णः) दूर देश से बलवान् शत्रु के (रन्ध्रम्) छिद्र या मर्मस्थान को पाकर (अयातन) प्रयाण करो, उस पर चढ़ाई करो तब (द्यौः न) मानो समस्त पृथिवी और आकाश भी (भिया चक्रदत्) भय से गूंज उठे और कांप उठे ।

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।
देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (मखस्य) यज्ञ के निमित्त (दावने) दान देने के लिये (हिरण्य-पाणिभिः) हितकारी उत्तम पदार्थों को हाथ में लिये (अश्वैः) उत्तम वेगयुक्त अश्वों से हमारे (उप गन्तन) समीप आया करो । [हिरण्य-पाणिभिरिति देवान् विशिनष्टि नाश्वान् ।]

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के (रथे) वेग में (पृषतीः) जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को (प्रष्टिः) वेगवान् वायु और (रोहितः) रक्तवर्ण सूर्य (वहति) वहन करता है तब वे भी (यान्ति) गति करते और (शुभ्राः अपः रिणन्) स्वच्छ जल पहुंचाते हैं । उसी प्रकार (एषां) इन वीरों के (रथे) रथ समुदाय में (पृषतीः) हृष्ट पुष्ट शस्त्रवर्षी सेनाएं

वा नियुक्त अश्व (प्रष्टिः) शीघ्र चालक (रोहितः) सारथिवत् सेनापति वहन करे तब ये भी (शुभ्राः) शुद्ध, सुन्दर (अपः) जलधाराओंवत् सैन्यधाराओं का सञ्चालन करते हुए (यान्ति) प्रयाण करें।

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति ।
ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सुषोमे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (शर्यणावति) उत्तम सेना, पोलिस आदि से सुरक्षित, (आर्जीके) धार्मिक निवासियों से वरने योग्य, धार्मिक राजा से शासित (पस्त्यावति) उत्तम प्रजा से सम्पन्न या नाना गृह भवनों से समृद्ध नगर या देश में (निचक्रया) नीचे लगे चक्रों से युक्त ट्राम आदि गाड़ियों से (ययुः) जाया आया करें। अथवा— उक्त प्रकार के देश में भी (मरुतः) वीर सैनिक (नि-चक्रया) नियमित चक्र अर्थात् सैन्यादि चक्र, व्यूह युक्त सेना से आगे बढ़ें।

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।
मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (इत्था) इस प्रकार (हवमानं विप्रम्) स्तुतिशील वा यज्ञकर्त्ता, विद्वान् पुरुष को (मार्डीकेभिः) सुखजनक वचनों से (नाधमानम्) प्रार्थना करते हुए (कदा गच्छाथ) कब प्राप्त होते हैं ? [उत्तर] अथवा (मार्डीकेभिः नाधमानं) सुखजनक द्रव्यों से समृद्ध (हवमानं विप्रम्) दान देते हुए विविध धनों से पूर्ण मनुष्य को ही प्राप्त होते हो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।
को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥

भा०—हे (कध-प्रियः) उत्तम कथा, स्तुति, उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाले पुरुषो ! (यद् इन्द्रम् अजहातन) आप लोग शत्रुहन्ता और संशयच्छेत्ता वीर वा विद्वान् पुरुष वा प्रभु को त्यागते हो ऐसा भला

(कद् ह नूनं) क्यों कर हो सकता है ? यदि छोड़ दिया करो तो भला (वः सखित्वे) आप लोगों की मित्रता में (कः ओहते) कौन विश्वास करे।

सुहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः।
स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (हिरण्य-वाशीभिः) लोह, सुवर्णादि के बने शस्त्रों से सजे वा हितरमणीय वाणी बोलने वाले (वज्र-हस्तैः) खड्ग और शस्त्र वर्जन करने वाले चर्म आदि हाथ में लिये उत्तम वलवीर्य सम्पन्न, (मरुद्भिः) वीरों और विद्वानों के (सह उ) सहित (अग्निम्) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष का (नः सुस्तुषे) हमारे प्रति उत्तम रीति से कथन करो।

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय।
ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥

भा०—मैं (वृष्णः) बलवान्, उदार, (प्र-यज्यून्) उत्तम दानशील (चित्र-वाजान्) अद्भुत वल और ऐश्वर्य के स्वामी जनों से (सुविताय) उत्तम धन प्राप्त करने और (नव्यसे) नये से नये धन प्राप्त करने के लिये (आ ववृत्याम्) अपने सन्मुख प्रार्थना करूं। उसी प्रकार (नव्यसे सुविताय) स्तुत्य, उत्तम चरित्र शिक्षण के लिये अद्भुत ज्ञानी पुरुषों की शरण जाकर उनसे प्रार्थना करूं।

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः।
पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार सजल वायुओं से स्पर्श पाकर (गिरयः नि जिहते) मेघ भी भारी होकर नीचे उतर आते हैं (पर्वताः चित् नियेमिरे) पर्वत भी उनकी रोक थाम करते हैं उसी प्रकार (पर्शानासः) उत्तम विद्वानों और वीरों से स्पर्श पाकर (मन्यमानाः) अभिमान युक्त (गिरयः) विद्वान् जन (नि जिहते) विनय से झुकते हैं और (पर्शा-

नासः) पीड़ित होकर (पर्वताः चित्) पर्वतवत् दृढ़ अभेद्य, शत्रु जन भी (नि येमिरे) बांधे जाते हैं । वश किये जाते हैं ।

आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।
धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥

भा०—(अन्तरिक्षेण पततः धातारः यथा वयः वहन्ति) जिस प्रकार अन्तरिक्ष से जाते हुए सजल पवन गण विश्व के पोषक होकर अन्न वा जीवन प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार (अक्ष्ण-यावानः) आंख के इशारे से आगे बढ़ने वाले, और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश मार्ग से जाने वाले, (धातारः) राष्ट्र के धारक, शासक जन (स्तुवते) प्रार्थी-प्रजाजन के हितार्थ (वयः वहन्ति) बल, जीवन और अन्न धारण करते और प्राप्त कराते हैं ।

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥ २४ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है और वह (अर्चिषा) ज्वाला से (सूरः न छन्दः) सूर्य के समान दीप्तियुक्त मनोहर होता है और नाना वायुगण (भानुभिः) विद्युत् आदि दीप्तियों से युक्त होकर (वि तस्थिरे) विविध प्रकार से चमकते रहते हैं उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी, तेजस्वी अग्रणी नायक प्रभु (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है । वह ज्ञानदीप्ति से सूर्यवत् सब का उत्पादक और (छन्दः) रक्षक रहा । (ते) वे नाना जीवगण और सूर्य चन्द्र आदि लोक उसी के (भानुभिः) प्रकाशों से (वि तस्थिरे) विविध प्रकारों से विविध लोकों में रहते हैं । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८]

सध्वंसः काण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ६, १२, १४, १५, १८—२०, २२ निचृदनुष्टुप् । ४, ७, ८, १०, ११, १३, १७, २१, २३ आर्षी विराडनुष्टुप् । ६, १६ अनुष्टुप् ॥ त्रयोविंशर्चं सूक्तम् ॥

आ नो॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॒रश्वि॑ना॒ गच्छ॑तं यु॒वम् ।
दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी॒ पिब॑तं सो॒म्यं मधु॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत्, चन्द्रसूर्यवत् सब के हृदयों में व्यापने वाले वा 'अश्व' अर्थात् शीघ्रगामी घोड़ों के समान तीव्र वेग से विषय मार्गों में दौड़ने वाले इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और ज्ञानों तथा तृप्तिदायक उपायों, अन्नादि के सहित (नः) हमें (आगच्छतम्) प्राप्त होओ। आप दोनों (दस्रा) दुःखों और पापों का नाश करने वाले (हिरण्य-वर्त्तनी) सुसज्जित, स्वर्णादि मण्डित रथ पर आरूढ़, एवं हितकारी रमणीय, उत्तम मार्ग से जाने वाले, सदाचारी होकर (सोम्यं मधु) ओषधि रस और उत्तम मधुर अन्न और जल का (पिबतम्) उपभोग करो। 'सोम' पुत्र, शिष्य, सन्तान लाभ आदि का मधुर सुख उपभोग करो।

आ नू॒नं या॑तमश्विना॒ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा ।
भुजी॒ हिर॑ण्यपेशसा॒ कवी॒ गम्भी॑रचेतसा ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवद् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सूर्य-त्वचा) सूर्य के समान कान्तियुक्त आवरण वाले, सुन्दर (रथेन) वेगवान् रथ से (नूनं आयातम्) अवश्य आया जाया करो। आप दोनों वर्ग (भुजी) नाना सुखों के भोगने और प्रजा भृत्यादि को उत्तम रीति से पालने वाले, (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण के समान उत्तम कान्तियुक्त, (कवी) उत्तम विद्वान्, दीर्घदर्शी, सम्यग्-दर्शी, (गम्भीर-चेतसा) गम्भीर चित्त वाले होओ।

आ या॑तं॒ नहु॑ष॒स्पर्यान्तरि॑क्षात्सुवृ॒क्तिभिः॑ ।
पिबा॑थो अश्विना॒ मधु॒ कण्वा॑नां॒ सव॑ने सु॒तम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र के स्वामी जनो ! सचिव और नृपति के तुल्य प्रधान पुरुषो ! आप दोनों (नहुषः परि) मनुष्य वर्ग से ऊपर

(अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से (सुवृक्तिभिः) उत्तम हिताचरणों और स्तुति-वाणियों सहित (आयातम्) आया करो और (कण्वानां) विद्वान् पुरुषों के (सवने) यज्ञ में (सुतम्) तैयार किये (मधु) मधुर सोम रस, हविष्य, अन्न, यज्ञ शेष और ज्ञान आदि का (पिबाथः) पान किया करो।

आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् सम्बद्ध स्त्री पुरुषो ! हे (अधप्रिया) अपने अधीन दास, भृत्य, सेवक, सहचर आदि को सदा सुप्रसन्न, तृप्त, सुखी रखने वाले एवं उनके भी प्रिय, (यद्वा अधप्रिया = कधप्रिया) उत्तम स्तुति ज्ञानोपदेश के प्रिय पुरुषो ! आप दोनों (दिवः परि) भूमि-मार्ग से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ। (इह) इस स्थान में (वाम्) आप दोनों को लक्ष्य करके (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष का शिष्य, पुत्र, वा विद्वानों के दुःखों को दूर करने वाला, और बहुतों की रक्षा करने में समर्थ पुरुष (सोम्यं मधु) विद्वान् पुरुषों के योग्य, उत्तम मधुर अन्न और ज्ञान को (सुषाव) प्रदान करता है।

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (स्तोमस्य) स्तुति, और उपदेश करने योग्य वेद-ज्ञान का (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा कथनोपकथन करते हुए और (धीतिभिः) अध्ययन, मनन, और सत्कर्माचरणों द्वारा उसकी (वर्धना) वृद्धि करते हुए (प्र यातम्) आगे बढ़ो और हे (कवी) विद्वानो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! आप दोनों (सोमपीतये) ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के पालन और

उपभोग के लिये (उप-श्रुति) उत्तम ज्ञान श्रवण करने के लिये यज्ञ, सभाभवन, गुरुगृह आदि स्थानों में भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! (वां) आप लोगों के (अवसे) ज्ञान करने के लिये (पुरा) पहले काल में (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों ने (यत् चित् हि) जो कुछ भी (जुहूरे) उपदेश किया है और (इमां सुस्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति, उपदेशादि को (उप) प्राप्त करने के लिये (मम आयातम्) मेरे समीप आइये।

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

भा०—हे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! आप दोनों (दिवः चित् रोचना) सूर्य के समान प्रकाशमान, ज्ञानवान्, (रोचनात्) तेजस्वी गुरु से (स्वर्विदा) प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करके (स्तोमेभिः) वेद के सूक्तों से (हवन-श्रुता) स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को देने योग्य ज्ञान का श्रवण करके (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों से (वत्स-प्रचेतसा) 'वत्स' अर्थात् उपदेष्टावत् उत्तम ज्ञानी गुरु के अधीन रह, उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (अधि नः गन्तम्) अनन्तर हमारे पास आओ।

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् अन्ये) हम से अतिरिक्त अन्य विद्वान् लोग भी (स्तोमेभिः) स्तुति उपदेशों सहित (किम् परि-आसते) किस प्रयोजन से विराजते हैं। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय शिष्य शिष्याओ ! वे सब केवल

ज्ञानोपदेश देने के लिये ही होते हैं। (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् पुरुष का पुत्र वा विद्वान् मेधावी परमेश्वर के (पुत्रः = पुरु त्रायते) बहुत से ज्ञान का रक्षक (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा विद्वान् (वत्सः) अभिवादन करने योग्य एवं विद्या का उपदेष्टा होकर (गीर्भिः) वेद वाणियों से (वाम् अवीवृधत्) तुम दोनों की उन्नति करे।

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गों! (इह) इस आश्रम में (विप्रः) विद्वान् आचार्य (स्तोमेभिः) वेद के मन्त्रों, सूक्तों से (वां अवसे) आप दोनों को ज्ञान प्रदान करने के लिये (अह्वत्) आदर पूर्वक उपदेश करे और (ता) वे आप दोनों (अरिप्रा) पाप रहित और (वृत्रहन्तमा) आवरणकारी अज्ञान को को नाश करने वाले होकर (नः) हमारे लिये (मयोभुवा भूतम्) सुख शान्तिदायक होओ।

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाज' अर्थात् ज्ञान और बलशाली विद्या और वीर्यरूप धन के धनी स्त्री पुरुषो! (यत्) जब तक आप दोनों में से (योषणा) पति से प्रेम करने वाली स्त्री और स्त्री को प्रेम करने वाला पुरुष (रथम् आ अतिष्ठत्) गृहस्थ रूप रमण योग्य आश्रम में प्राप्त होते हो, तब तक हे (अश्विना) इन्द्रिय, मनरूप अश्वों के स्वामी, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो! आप दोनों (विश्वानि धीतानि = अधीतानि) समस्त अध्ययन करने योग्य विषयों को (प्र अगच्छतम्) अच्छी प्रकार ग्रहण करलो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! जब (वत्सः) विद्या का उपदेष्टा, ब्रह्मचर्यवास काल का गुरु (काव्यः) विद्वानों में विद्वान् (कविः) स्वयं क्रान्तदर्शी आचार्य (वां) तुम दोनों को (मधुमत् वयः) मधुविद्या ब्रह्मविद्या से युक्त प्रवचन, उपदेश (अशंसीत्) कर चुके (अतः) उसके बाद आप दोनों (सहस्र-निर्णिजा) बहुत प्रकार के बने (रथेन) रथों से (आयातम्) गृह के प्रति आओ। अथवा—(सहस्र निर्णिजा रथेन) सब प्रकार से शुद्ध निष्णात एवं बलवान् दृढ़ शरीर से युक्त होकर गृहपर आओ।

पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम्।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥ १२ ॥

भा०—(पुरु-मन्द्रा) बहुत से मनुष्यों को सुखी और प्रसन्न, आनन्दित करने वाले, (पुरु-वसू) बहुतों को बसाने वाले, वसु, धनों ऐश्वर्यों के स्वामी, (रयीणां) नाना प्रकार के धनों के प्राप्ति, विनिमय आदि विषय में मनन या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने वाले, (वह्नी) कार्य-भार वहन करने में समर्थ, (अश्विनौ) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्व, रथ, यान आदि सञ्चालन में कुशल स्त्री-पुरुष वर्ग, (इमं मे स्तोमं) मेरे इस स्तुत्य ग्राह्य वचन को (अभि अनूषाताम्) आदरपूर्वक ग्रहण करें।

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्नया।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नः) हमारे (विश्वानि) सब प्रकार के (राधांसि) धनों को आप दोनों (अह्नया) विना संकोच या लज्जा के (आ धत्तम्) सब ओर से प्राप्त कर धारण करो और हमें प्रदान करो। आप दोनों (नः) हमें (ऋत्वियावतः कृतम्) ऋतु २ में करने योग्य यज्ञ से सम्पन्न करो। (नः) हमें (निदे) निन्दक के लाभ के लिये (मा रीरधतं) अपने अधीन वश मत करो।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् मुख्य स्थान पर स्थित वा (न-असत्या) परस्पर कभी असत्य व्यवहार न करने वाले, आप दोनों (यद्) चाहे जब (परावति स्थः) दूर देश में होओ (यद् वा) और चाहे (अम्बरे अधिस्थः) समीप में होओ हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों के स्वामी जनो! (अतः) वहां से आप लोग (सहस्र-निर्णिजा रथेन) दृढ़ बल से युक्त, रूपवान् , सुदृढ़ रथ से ही (आ यातम्) आया करो।

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले, सत्य धर्म के व्यवस्थापक और नासिकावत् प्रमुख पदों पर स्थित जनो ! (यः) जो (वत्सः ऋषिः) उत्तम उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुष (वां अवीवृधत्) आप दोनों को वृद्धि प्रदान करता है (तस्मै) उसके आदरार्थ, वा रक्षार्थ आप दोनों (घृतश्चुतम् इषम्) घृतयुक्त नाना रूप अन्न के समान ही (सहस्र-निर्णिजं) बहुत रूपों का, हज़ारों पुरुषों से बना, (घृतश्चुतम्) तेजोयुक्त पद, (इषं) सैन्य, वा नाना प्रकार की स्नेह से युक्त इच्छा को (धत्तम्) धारण करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (वां) तुम दोनों को (सुम्नाय) सुख, शान्ति लाभ के लिये (तुष्टवत्) स्तुति या उपदेश करे, हे (दानुनः पती) दान शील जन वा दातव्य धन के पालको ! (यः) जो जो (वसूयात्) आप दोनों के सुखार्थ ही अपना धन चाहे, (अस्मै) उस पूज्य पुरुष को (युवं)

तुम दोनों हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो! (घृतश्चुतं) घी, जलादि से युक्त (ऊर्जं प्रयच्छतम्) बलकारक अन्न प्रदान करो।

आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥

भा०—हे (रिशादसा) हिंसकों के नाशक वीर जनो! हे (पुरुभुजा) बहुतों के पालक और बहुत से ऐश्वर्यों के भोक्ता जनो! आप लोग (नः आ गन्तं) हमें प्राप्त होओ। और (नः) हमारे (स्तोमं) इस उत्तम उपदेश या स्तुत्य वचन या व्यवहार का (कृतम्) पालन करो। हे (नरा) नायक, उत्तम स्त्री पुरुषो (इमाः) ये (सु-श्रियः) उत्तम २ लक्ष्मियां (नः) हमें (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (दातम्) प्रदान करो।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् उत्तम स्त्री पुरुषो! (प्रिय-मेधाः) यज्ञ सत्संग के द्वारा अन्न, जल, वायु आदि भौतिक तत्वों के सुगन्धादि से पूर्ण करने और विद्वान् पुरुषों को अन्न, जल, वस्त्रादि से प्रसन्न करने वाले जन और (प्रिय-मेधाः) शत्रु वा दुष्ट पुरुषों की ताड़ना करने को अच्छा समझने वाले वीर पुरुष भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी समस्त विद्या और रक्षा साधनों, सेनाओं के सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को सब प्रकार से स्वीकार करें और आप दोनों (अध्वराणां) नाना हिंसारहित यज्ञों और सब को मार्गोपदेश करने वाले कार्यों के बीच में (याम-हूतिषु) लोगों को चलने के मार्ग तथा उत्तम यमनियमादि, नियन्त्रण व्यवस्था के उपदेश करने के कार्यों में (राजन्तौ) राजावत् चमकते हुए रहो।

आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शम्भुवा युवम्।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वत्सः) उत्तम उपदेष्टा गुरु (विपन्यू) विशेष व्यवहार कुशल एवं प्रार्थी (वां) आप दोनों को (धीतिभिः) उत्तम कर्मों और (गीर्भिः) उत्तम वेद वाणियों द्वारा (अवीवृधत्) वृद्धि को प्राप्त कराता है उससे उपदिष्ट होकर (युवम्) आप दोनों (मयोभुवा) सुखप्रद और (शंभुवा) शान्तिदायक होकर (नः आगन्तम्) हमें प्राप्त होओ ।

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥ २८ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो, राजा रानी, सेनापति सभापति आदि जनो! आप लोग (याभिः) जिन उपायों से (कण्वं) विद्वान् (मेधातिथिं) अन्नादि सत्कार और सत्संग योग्य अतिथि की रक्षा करते हो, या उनको प्राप्त होते और (याभिः) जिन उत्तम क्रियाओं से (दश-व्रजम्) दशों दिशाओं में जाने वाले, और दशों मार्गों से युक्त (वशं) वश करने योग्य राष्ट्रजन या मन आदि को वश करते हो, और (याभिः) जिन सैन्यादि से (गो-शर्यम्) 'गो' अर्थात् धनुष की डोरी और 'शर' वाण इनके चलाने में कुशल सैन्य को (आवतम्) रक्षा करते हो, उन्हें प्राप्त होते हो (ताभिः) उनसे ही हे (नरा) उत्तम प्रधान नायक पुरुषो ! (नः अवतम्) हमारी रक्षा करो। (नः आ अवतम्) उन सहित हमें प्राप्त होओ । अथवा—अवति-हिंसा-रक्षण-कान्ति-तृप्ति-वृद्ध्यर्थश्च । (याभिः) जिन सेनाओं से (गोश-र्यम् आवतम्) गो-भूमि के हिंसक कृषकादि की रक्षा करते और गौ आदि पशुओं के हिंसकों का नाश करते हो उन उपायों सहित (नः आवतम्) हमें प्राप्त होओ । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१ ॥

भा०—(याभिः) जिन सेना आदि उपायों से (धने कृत्व्ये) प्राप्त

करने योग्य ऐश्वर्य की रक्षा के निमित्त (त्रसदस्युम्) पशुओं को भयभीत करने वाले सिपाही पहरेदार आदि को (आवतम्) रखते हो उनसे ही हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! (वाज-सातये) धन अन्नादि के लाभ के लिये (अस्मान् सु प्र अवतम्) हमारी भी अच्छी प्रकार रक्षा करो। अधिकारी जन अपने धन की रक्षार्थ जैसे अपने कर्मचारियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार वे प्रजा को धन समझ कर उसकी भी अच्छी प्रकार रक्षा किया करें।

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं अश्व सैन्य वा राष्ट्र के स्वामी जनो ! स्वामी अमात्य जनो ! (स्तोमाः) स्तुतियोग्य कार्य और (सुवृक्तयः) उत्तम रीति से पाप से बचाने वाली (गिरः) वाणियां (वां प्रवर्धन्तु) आप दानों को बढ़ावें। (ता) वे आप दोनों (पुरुत्रा) बहुतों के रक्षक, (वृत्र-हन्तमा) शत्रु और पाप को अच्छी प्रकार नाश करने वाले और (नः) हमारे बीच (पुरु-स्पृहा) बहुतों के प्रेम पात्र और बहुतों के न्यायपूर्वक स्नेह करने वाले, सब के सच्चे प्रेमी (भूतम्) होओ।

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥ २९ ॥

भा०—(त्रीणि) तीन (पदानि) स्थान, प्राप्तव्य विषय (अश्विनोः) विद्वान् स्त्री पुरुषों की (गुहा) बुद्धि में (परः) सब से अधिक उत्तम रीति से (आविः सन्ति) प्रकट होते हैं। उन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (पत्मभिः) तीनों पदों से वे दोनों (अर्वाक्) साक्षात् (कवी) विद्वान् क्रान्तदर्शी होकर (जीवेभ्यः परि) जीवों के हितार्थ हों। 'ऋत' सत्याचरण, धर्म, यज्ञ और वेद ज्ञान के तीन पद ऋक्, सामः, यजु; मन्त्र, गीति

और क्रिया; ज्ञान, उपासना और यज्ञ हैं। वे तीनों विद्वानों की बुद्धि में उत्तम रूप से प्रकट हों। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

शशकर्णः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ बृहती । १४, १५ निचृद् बृहती । २, २० गायत्री । ३, २१ निचृद् गायत्री । ११ त्रिपाद् विराड् गायत्री । ५ उष्णिक् ककुप् । ७, ८, १७, १९ अनुष्टुप् । ९ पादनिचृदनुष्टुप् । १३ निचृदनुष्टुप् । १६ आर्ची अनुष्टुप् । १८ विराडनुष्टुप् । १० आर्षी निचृत् पंक्तिः । १२ जगती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ नूनम॑श्विना युवं वत्सस्य॑ गन्तमव॑से ।
प्रास्मै॑ यच्छतमवृ॒कं पृ॒थु छ॒र्दिर्यु॑यु॒तं या अरा॑तयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (नूनं) अवश्य ही (वत्सस्य अवसे) अपने अधीन आश्रय रहने वाले बच्चे, बालक, पुत्र भृत्यादि के रक्षण वा भोजनादि से तृप्ति और उनके प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिये आप दोनों (आ गन्तम्) आया करो। इसी प्रकार (वत्सस्य अवसे) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् की रक्षा और उसके ज्ञान और वृद्धि आदि के लिये उसके पास आया जाया करो। (अस्मै) उसको (पृथु छर्दिः) बड़ा विस्तृत गृह, शरण, (अवृकं) छल कपटरहित होकर (प्र यच्छतम्) प्रदान करो। (या अरातयः) जो न देने के क्षुद्रता आदि के विचार हैं उनको (युयुतं) दूर करो।

यद॒न्तरि॑क्षे॒ यद्दि॒वि यत्पञ्च॒ मानु॑षाँ॒ अनु॑ ।
नृ॒म्णं तद्ध॑त्तमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (नृम्णम्) धन (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (यत् दिवि) जो आकाश में और (यत्) जो (पञ्च मानुषान् अनु) पांचों मनुष्यों के अनुकूल सुखदायी धन है (तत्) वह धन हे (अश्विना)

जितेन्द्रिय एवं अश्वादि के स्वामी वर्गो ! आप लोग अवश्य (धत्तम्) धारण किया करो। आकाश में वायु, जल, मेघ, वृष्टि आदि और आकाश में सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि पांचों मनुष्यों के अनुकूल भूमि पर्वत नदी जलाशय जल, भृत्य, सुवर्ण, हिरण्यादि। ये राष्ट्रीय त्रिविध धन मनुष्य मात्र के सुखप्रद होने से 'नृम्ण' हैं। इनकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः।
एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (ये) जो (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (वां) आप लोगों के (दंसांसि) नाना प्रकार के कार्यों को (परि ममृशुः) करते और उन कार्यों पर विचार करते हैं, उनके किये कार्य और (काण्वस्य एव इत्) विद्वानों के किये ज्ञान, अनुष्ठान आदि का भी (बोधतम्) तुम ज्ञान प्राप्त करो।

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (वां) आप दोनों का (अयं) यह (घर्मः) तेजोयुक्त प्रभाव या सामर्थ्य है जिसको (स्तोमैः) स्तुति योग्य वचनों या वेदमन्त्रों द्वारा (परिषिच्यते) परिषेक किया जाता, जिसकी प्रतिष्ठा की जाती है। हे (वाजिनीवसू) ज्ञान, बलादि से युक्त क्रिया के धनी जनो ! (अयं मधुमान् सोमः) यह मधुर अन्नादि से युक्त ऐश्वर्य वा उत्पादक बल है, (येन) जिससे आप दोनों (वृत्रं) जीवन के रोग दुःखादि विघ्न समूह को दूर करने में समर्थ हो। इसी बल वीर्य की ब्रह्मचर्यादि से तुम सदा रक्षा करो, उसी का महान् आदर है। उसी की लोक में प्रतिष्ठा है।

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम्।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय और उत्तम भोगों को भोगनेहारे! हे (पुरु-दंससा) नाना कर्मों को करने में समर्थ विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यत् अप्सु) जो जलों, (यद् वनस्पतौ) जो वनस्पति और (यद् ओषधीषु) जो ओषधि, अन्नादि के प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करते हो (तेन) उससे ही (मा अविष्टम्) तुम दोनों प्रजावत् मेरी रक्षा करते रहो। इति त्रिंशो वर्गः ॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले सदा सत्यकर्मा, सत्यभाषी, सत्यव्रती होकर आप दोनों (हविष्मन्तं हि) नासिकास्थ प्राणों के समान उत्तम अन्न वाले प्रजाजन को माता पितावत् (भुरण्यथः) पालन करते हो, (यद्वा) जो आप दोनों (हविष्मन्तं हि भिषज्यथः) उत्तम पवित्र अन्न वाले के ही रोगों को दूर करते हो और (हविष्मन्तं हि गच्छथः) उत्तम अन्नादि के स्वामी राष्ट्रवासी जन को ही तुम प्राप्त होते हो, (अयं) यह (वत्सः) राष्ट्र निवासी जन बालक के समान होकर ही (मतिभिः) बुद्धियों वा स्तुतियों से भी (वां) तुम दोनों को (न विन्धते) प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् केवल गुणस्तवन मात्र से यह तुम्हारे उपकार से उऋण नहीं हो सकता है ।

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥

भा०—(ऋषिः) मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वान् पुरुष (नूनम्) अवश्य ही, (वामया) अपनी उत्तम बुद्धि से और अच्छी रीति से (अश्विनोः) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (स्तोमं) उत्तम स्तुति योग्य मन्त्रों का उपदेश (आचिकेत) करे, उनको उसका ज्ञान दे । (अथर्वणि) स्थिर, शान्त प्रज्ञावान् पुरुष में ही वह अग्नि (घर्मः) तीव्र घृत वा तेज के समान (मधुम-

त्तमम्) वा अति मधुर (सोमं) ओषधि रसवत् उत्तम ज्ञान और तेज का ('सिञ्चात्) सेचन, प्रदान करे। अथवा वह विद्वान् गुरु (अथर्वणि) अथर्ववेद की समाप्ति पर वा अहिंसा शम, आदि भाव में (मधुमत्तमं) उत्तम वेद के ज्ञान से युक्त (सोमं) विद्याक्षेत्र में उत्पन्न (घर्मं) सुतप्त, तपस्वी, तेजस्वी शिष्य को (सिञ्चात्) स्नान करावे, उसे स्नातक बनावे।

अथवा—सवनं यज्ञः, यजुर्वेदः, मधु ऋग्वेदः। घर्मः सामवेदः। तेषु निष्णातं शिष्यमथर्वणि सिञ्चेत् अथर्ववेदे व्युत्पादयेत् ॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि वेगवान्, बलवान् इन्द्रिय, ग्राम और मन को वश में रखने वाले आप दोनों! (नूनं) अवश्य ही (रघु-वर्तनिं) लघु अर्थात् शीघ्र वेग से युक्त वा (रघु-वर्तनिं) स्वल्प, छोटे मार्ग से जाने में समर्थ, (रथं) रमणीय रथ पर (आ तिष्ठथः) विराजा करो। (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके (इमे) मेरे (स्तोमाः) स्तुत्य वचन, (नभः न) आकाश में सूर्य के प्रति किरणोंवत् वा पवनवत् (चुच्युवीरत) प्राप्त हों।

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि।
यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (नासत्या) सत्यभाषी, सत्यकर्मा, प्रमुख स्त्री पुरुषो! (यत् अद्य) जो आज, (वां) आप दोनों के प्रति हम (उक्थैः) उत्तम वचनों सहित (अचुच्यवीमहि) प्राप्त हों और आप दोनों (यद् वा) जो भी (अश्विना इव) 'अश्व' अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय होकर (कण्वस्य इत्) विद्वान् पुरुष की (वाणीभिः) वाणियों से (बोधतम्) ज्ञान प्राप्त किया करो।

यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१०॥३१॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अश्व सैन्यादि के स्वामी राजा सेनापति आदि पुरुषो ! (वां) तुम दोनों को (यत्) जिससे (कक्षीवान्) अंगुलियों वाला, सिद्धहस्त, कुशल वा अन्यों की बागडोर अपने हाथों में रखने वाला पुरुष, (उत) और (यत्) जब (व्यश्वः) विविध या विशेष अश्वों या विद्वानों का स्वामी, विविध विद्याओं में निष्णात और (यत्) जिस कारण से (दीर्घतमाः) बड़ी २ लम्बी चौड़ी आकांक्षाओं वाला, उत्साही (ऋषिः) दूरदर्शी पुरुष (वां वां) तुम लोगों को (जुहाव) उत्तम उपदेश करे वा तुम्हें किसी उत्तम कार्य के लिये बुलावे और (यद्वा) जिससे तुम दोनों को (वैन्यः) तेजस्वी, यश का इच्छुक (पृथी) बड़े राष्ट्र-ऐश्वर्य का स्वामी (सादनेषु) नाना स्थानों, पदों पर (एव जुहाव इत्) कार्य करने के लिये बुलावे (अतः) उससे पूर्व हे जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों अवश्य (चेतयेथाम्) ज्ञान प्राप्त करलो। अर्थात् स्त्री पुरुषों को बाल्यकाल में खूब ज्ञान प्राप्त करना चाहिये जिससे कोई अधिकारी सेनापति, उत्साही विजिगीषु यशोर्थी राजा आदि उनको उत्तम पदों पर नियुक्त करने के लिये सादर बुलावे । एकत्रिंशो वर्गः ॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय एवं अश्व रथादि के स्वामी जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रादि के हितार्थ (वर्त्तिः यातम्) वृत्ति या वेतनादि भी प्राप्त करो । आप दोनों (नः) हमारे (छर्दिष्पा भूतम्) गृहों की रक्षा करने वाले होवो । (नः परस्पा भूतम्) हमें शत्रु से बचाने वाले होवे । (उत नः जगत्पा तनूपा भूतम्) और हमारे जंगम पशु सम्पत्ति और हमारे शरीरों के भी रक्षक होवो ।

यदिन्द्रे॑ण स॒रथं॑ या॒थो अ॑श्विना॒ यद्वा॑ वा॒युना॒ भव॑थः॒ समो॑कसा।
यदा॑दि॒त्येभि॑र्ऋ॒भुभिः॑ स॒जोष॑सा॒ यद्वा॒ विष्णो॑र्वि॒क्रम॑णेषु॒ तिष्ठ॑थः॥१२

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वादि के स्वामी, व्यापक सामर्थ्यवान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् शत्रु-विनाशी राजा सेनापति आदि के साथ (स-रथं याथः) रथ के साथ रथ चलाकर प्रयाण करते, वा (स-रथं याथः) सरण या युद्ध यात्रा करते हो, (यद्वा) अथवा जो आप दोनों (वायुना समोकसा) वायु और वायुवत् वलवान् सेनापति के समान भवन या पद वाले (भवथः) हो जाओ। (यद्) या जो आप दोनों (ऋभुभिः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित (आदित्येभिः) आदित्यवत् तेजस्वी, ब्रह्मचारी विद्वानों के साथ (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होवो (यद् वा) या तुम दोनों (विष्णोः) व्यापक वलशाली राजा के (विक्रमणेषु) विशेष विक्रम के कार्यों में (तिष्ठथः) उच्चासनों पर विराजो, वा (विष्णोः विक्रमणेषु) परमेश्वर की वनाई सृष्टियों में ज्ञानपूर्वक स्थिर रहो यही तुम्हारे लिये आदर्श, उत्तम कर्त्तव्य और अधिकार है। अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष इन उच्च २ पदों तक पहुंचने के लिये साधिकार हैं कि वे यत्न करें और वढ़ें।

यद॒द्याश्विना॑व॒हं हु॒वेय॒ वाज॑सातये।
यत्पृ॒त्सु तु॒र्वणे॒ सह॒स्तच्छ्रेष्ठ॑म॒श्विनो॒रवः॑॥ १३ ॥

भा०—और (यत्) जो (अद्य) आज मैं (अश्विनौ) जितेन्द्रिय और अश्वादि के नायकों को (वाज-सातये) अन्न, ऐश्वर्यादि प्राप्ति के लिये सदावत् (हुवेय) बुलाया करूं। (यत्) क्योंकि जो (पृत्सु) संग्राम में (तुर्वणे) शत्रु के नाश करने में (सहः) शत्रु पराजयकारी वल है (तत्) वही (अश्विनोः) उन जितेन्द्रिय अश्वादि के स्वामी, जनों का (श्रेष्ठं अवः) सर्वश्रेष्ठ वल और रक्षा सामर्थ्य है। यदि राष्ट्र के स्त्री पुरुष

युद्ध-काल में शत्रु को परास्त नहीं कर सकें तो वे कुछ नहीं, उनका अन्न वेतनादि पाना, भोजन करना, ऐश्वर्य भोगना आदि सब व्यर्थ है और पाप है।

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (तुर्वशे) चतुर्वर्गों की कामना करने वाले और (यदौ) यत्नशील, राष्ट्र प्रजाजन और (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के (अधि) बीच में (वाम्) तुम दोनों को (इमे सोमासः) ये नाना बल, अधिकार और ऐश्वर्य प्राप्त हों और (नूनं) अवश्य ही (इमा) ये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न भी (वां हिता) आप लोगों के लिये नियत रूप से हैं, अब आदरपूर्वक (आ यातम्) आओ और स्वीकार करो ।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५॥३२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य ज्ञान से रहित, सदा सत्य, सुपरीक्षित ज्ञान वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत् भेषजम् पराके) रोगादि के नाश करने वाला जो पदार्थ दूर देश में हो वा जो (अर्वाके भेषजम् अस्ति) समीप स्थान में औषधादि हो (तेन) उससे हे (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले दयालु जनो ! (वत्साय) पुत्रवत् राष्ट्र में बसे प्रजाजन के उपकार के लिये (वि-मदाय) विशेष हर्ष और आनन्द लाभ के लिये (नूनं) अवश्य (छर्दिः यच्छतम्) गृह, आवास प्रदान करो। उत्तम ओषधि आदि के द्वारा समस्त प्रजा को सुख से राष्ट्र में बसने का मौका दो। जिससे सब नगर गृहादि नीरोग और सुखप्रद हों। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

भा०—मैं (अश्विनोः) दिन रात दोनों में (देव्या) प्रकाशमान

उषा के समान कान्तियुक्त और स्त्री पुरुषों में से (देव्या) गुणवती विदुषी के समान ज्ञानवती (अश्विनोः) विद्या के पारंगत स्त्री पुरुषों की (वाचा) वाणी से (प्र अभुत्सि) उत्तम रीति से प्रबोध, ज्ञान जागृति को प्राप्त होऊं । हे (देवि) विदुषि ! हे वाणि ! तू (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (मतिं वि आ आवः) उत्तम सुमति और ज्ञान को विशेष रूप से प्रकट कर । और (रातिं वि आवः) दान भी विविध प्रकार से प्रदान कर ।

प्र बो॑धयोषो अ॒श्विना॒ प्र दे॑वि सूनृते महि ।
प्र य॑ज्ञहोतरानु॒षक्प्र मदा॑य॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (उषः) उषा प्राभातिक सूर्य की कान्ति के समान सुशोभित देवि ! हे (देवि) विदुषि ! ज्ञान का प्रकाश देने वाली! दानशीले! हे (सुनृते) उत्तम सत्य ज्ञान से युक्त ! हे (महि) पूज्ये ! जिस प्रकार उषा सब को जगाती है उसी प्रकार तू भी (प्र प्र बोधय) अच्छी प्रकार सब को ज्ञानोपदेश करके जगा । हे देवि ! गृह में तू ही सबसे प्रथम उठकर पति, बालक आदि को भी जगाया कर। हे (यज्ञ-होतः) यज्ञ में होता के समान गृहस्थ, यज्ञ में सत्पात्रों में धन अन्न आदि के देने वाले पुरुष ! तू भी (आनुषक्) निरन्तर (प्र बोधय) उत्तम ज्ञान का उपदेश किया कर । (मदाय) तृप्ति और आनन्द प्राप्ति के लिये (बृहत् श्रवः) बहुत उत्तम अन्न प्रदान कर और (बृहत् श्रवः) बड़े उत्तम श्रवण योग्य वेदोपदेश देकर सबको शुद्ध और ज्ञानवान् कर ।

यदु॑षो॒ यासि॑ भा॒नुना॒ सं सूर्ये॑ण रोचसे ।
आ हा॒यम॒श्विनो॒ रथो॑ व॒र्तिर्या॑ति नृ॒पाय्य॑म् ॥ १८ ॥

भा०—हे (उषः) कान्तिमति ! विदुषि ! तू जब प्राभातिक सूर्य की दीप्ति के समान (भानुना) प्रकाश के साथ (यासि) गमन करती है और (सूर्येण) सूर्यवत् कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष से (सं रोचसे) युक्त होकर अधिक अच्छी लगती है तभी (अश्विनोः) आप दोनों जितेन्द्रिय

वर वधू, पति पत्नी का (अयम्) यह (रथः) रमणीय सुन्दर गृहस्थ रूप एक रथ, (नृपाय्यं वर्त्तिः याति) मनुष्यमात्र को पालन करने वाले गृह अर्थात् प्रजापति पद या मार्ग की ओर गति करता है। इसी प्रकार (उषा) शत्रु को दग्ध करने और राष्ट्र को वश करने वाली सेना जब सूर्यवत् तेजस्वी सेनापति को वरती है तो उनका वेगवान् रथ राष्ट्रवासी मनुष्यों के पालन के मार्ग पर गमन करे। तब उनका धर्म प्रजापालन है।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना॥ १९॥

भा०—जिस प्रकार (गावः ऊधभिः दुह्रे) गौवें स्तन-मण्डलों से दूध देती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (आपीतासः) ईषत् पिंगल वर्ण के, वा ज्ञान को सब प्रकार से पान किये हुए प्रदान करते और जब (देवयन्तः) देव, प्रभु की कामना करते हुए (प्र अनूषत) वाणियों का उच्चारण करती हैं उस समय हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों भी उसका उत्तम लाभ लो।

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृपाह्याय शर्मणे।
प्र दक्षाय प्रचेतसा॥ २०॥

भा०—हे (प्र-चेतसा) उत्तम चित्त और ज्ञान वाले जनो! आप दोनों (द्युम्नाय) उत्तम ऐश्वर्य, (शवसे) बल और (नृ-पाह्याय) सब शत्रु-नायकों को पराजय करने, (शर्मणे) शत्रुहिंसक बल और प्रजा को शान्तिदायक शरण देने और (दक्षाय) बल और ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (प्र प्र प्र प्र) सदा उत्तम से उत्तम मार्ग पर आगे बढ़ो।

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या॥ २१॥ २३॥

भा०—(यत्) जब हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (नूनं) निश्चय से (धीभिः) उत्तम कर्मों (यद्वा) और जब (सुम्नेभिः) सुख-

जनक कार्यों से (पितुः योना) अपने पूज्य माता पिता गुरु के गृह में (निषीदथः) खूब दृढ़ हो जाते हो तब आप दोनों (उक्था) उत्तम प्रशंसा योग्य हो जाते हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१०]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ आर्ची स्वराड् बृहती। २ त्रिष्टुप्। ३ आर्ची भुरिगनुष्टुप्। ४ आर्चीभुरिक् पंक्तिः। ६ आर्षी स्वराड् बृहती ॥ षड्टृचं सूक्तम् ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥

भा०—(यत्) यदि तुम दोनों (दीर्घ-प्र-सद्मनि) बड़े भवनों वाले नगर में (स्थः) होवो, (यद्वा) या चाहे आप दोनों (अदः) इस दूरस्थ (दिवः रोचने) पृथिवी के क्रीड़ा, विनोदयुक्त किसी रुचिकर स्थान में होवो (यद्वा) अथवा चाहे (समुद्रे) जल में या समुद्र से घिरे गृह में (अधि स्थः) बैठे हो, तो भी हे (अश्विना) वेग से चलने वाले अश्वादि साधनों से सम्पन्न जनो ! आप (अतः आ यातम्) वहां से आया जाया करो।

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम्।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा २

भा०—(यद्-वा) और जब आप दोनों (मनवे) मनुष्य मात्र के हित के लिये (यज्ञं सं मिमिक्षथुः) यज्ञ को परस्पर मिलकर एक साथ करो, तब भी (एव इत् काण्वस्य बोधतम्) विद्वान् जनों को उसका ज्ञान करा दिया करो। (बृहस्पतिम्) सबसे बड़े राष्ट्र और वेद वाणी के पालक, और (विश्वान् देवान्) समस्त मनुष्य प्रजावर्ग या विद्याभिलाषी विद्यार्थियों को और (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् राजा व्यापक सामर्थ्य वाले सेनापति

इन दोनों को और (आशु-हेपसा) शीघ्र ही उत्तम ध्वनि करने वाले (अश्विना) अश्वारोही वा जितेन्द्रिय जनों को (अहं हुवे) आदर पूर्वक प्रार्थना करूं कि वे मेरे यज्ञ में अवश्य आया करें।

त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता।
यथोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्या अश्विना नु हुवे) मैं उन दोनों जितेन्द्रिय, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को आदरपूर्वक निमन्त्रित करूं जो दोनों (सु-दंससा) उत्तम कर्मों का आचरण करने वाले और (गृभे कृता) गृह में एकत्र पति पत्नी रूप से बने हों, (यथोः) जिन में (नः सख्यं प्र अस्ति) हमारा उत्तम सौहार्द हो और (यथोः) जिनका (आप्यं) बन्धुभाव (देवेषु) विद्वानों के बीच में (प्र अस्ति) उत्तम हो।

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु॥४॥

भा०—(ययोः अधि) जिन दोनों स्त्री पुरुषों के ऊपर (यज्ञाः) यज्ञ, उत्तम कर्म और (असूरे) सूर्यरहित, अन्धकार युक्त काल या देश में भी (ययोः अधि) जिन के अधीन वा जिनपर नाना (सूरयः) विद्वान् आश्रय पाते वा अध्यक्ष हैं। (या) जो दोनों (स्वधाभिः) अन्नों सहित (सोम्यं मधु पिबतः) ओषधिरस युक्त मधुर जल मधु आदि मधुर पदार्थ का पान करते हैं (ता) वे दोनों (प्र-चेतसा) उत्तम विद्वान्, शुभ-चित्तवान् होकर (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसा रहित वा अक्षय यज्ञ के (स्वधाभिः) अन्नादि से करने वाले हों।

यदुद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू।
यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (यद् अद्य) जो तुम दोनों (अपाग्) पश्चिम में या (यत्) जो (प्राक् स्थः) पूर्व में भी

होवो, हे (वाजिनीवसू) विद्या और बलशक्ति युक्त क्रिया से सम्पन्न विद्वानो ! (यद्) यदि तुम दोनों (द्रुह्यवि) परस्पर के द्रोही जनों में, (तुर्वशे) एक दूसरे के हिंसक जनों में और (अनवि) छोटे या अप्रसिद्ध जनों में या (यदौ) यत्नशील उद्योगी श्रमी जनों में भी होवो तो मैं अवश्य (अद्य) आज ही तुरन्त (हुवे) आदरपूर्वक निमन्त्रित करूं। (अथ) और तुम दोनों (मा गतम्) मुझे अवश्य प्राप्त हो। उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष कहीं भी हों और किसी भी जनसमाज में हों उनको आदरपूर्वक निमन्त्रित कर लेना चाहिये।

यद॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑थः पुरुभुजा॒ यद्वे॒मे रोद॑सी॒ अनु॑ ।
यद्वा॑ स्व॒धाभि॑रधि॒तिष्ठ॑थो॒ रथ॒मत॒ आ या॑तमश्विना ॥६॥२४॥

भा०—हे (अश्विना) आशुगामी अश्वों और यन्त्रों के जानने और बनानेवाले शिल्पकार जनो ! (यत्) जो आप दोनों (पुरु-भुजा) बहुतों को पालने में समर्थ होकर (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करते हो, (यत् वा) और जो आप दोनों (इमे रोदसी अनु पतथः) इन आकाश और पृथिवी दोनों में सुख से विचर सकते हो (यद् वा) और जो आप दोनों (स्व-धाभिः) स्वयं अपने आप धारण करने में समर्थ शक्तियों से (रथम्) वेग से चलने वाले यन्त्र पर (अधि तिष्ठथः) अध्यक्ष रूप से विराजते हो वे आप दोनों (अतः आयातम्) उस प्रयोजन से हमारे पास आया करो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[११]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिग्गायत्री। २ वर्धमाना गायत्री। ३, ५—७, ९ निचृद् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। ८ गायत्री। १० आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा । त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! सर्वव्यापक! अग्निवत् तेजःस्वरूप सत्यार्थ के प्रकाशक! विद्वन्! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (व्रत-पाः असि) व्रतों, सत्कर्मों, अन्नों का पालक है। और (मर्त्येषु आ) मनुष्यों में भी तू (देवः) सब सुखों का दाता, दीप्तिमान् है। (त्वं) तू (यज्ञेषु) समस्त यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य, पूज्य और चाहने योग्य है।

त्वम॑सि प्रश॒स्यो॑ वि॒दथे॑षु सहन्त्य। अग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म् ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे (सहन्त्य) शत्रुओं के पराजयकारिन्! हे सब के साथ व्यापक! (त्वम्) तू (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों और ज्ञान लाभ के अवसरों में (प्रशस्यः असि) सब से प्रशंसा करने और उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है। तू ही (अध्वराणाम्) यज्ञों और सन्मार्ग, मोक्ष मार्ग में जाने वालों में (रथीः) रथवान् के समान सुख से मार्ग पार करा देने और अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा देने हारा है।

स त्वम॒स्मदप॒ द्विषो॑ युयो॒धि जा॑तवेदः। अदे॑वीरग्ने॒ अरा॑तीः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी! नायक! अग्निवत् तेजस्विन्! हे (जात-वेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे! सब में व्यापक प्रभो! विद्यावान् विद्वन् और धनैश्वर्य के स्वामिन्! राजन्! (त्वं) तू (सः) वह (द्विषः) द्वेष करने वालों और द्वेष के योग्य भाव क्रोधादि अन्तः-शत्रुओं को भी और (अरातीः अदेवीः) शुभ उत्तम गुणों से रहित दान या अनेक उचित अधिकारों को न देने वाले भावों, प्रवृत्तियों और वाणियों को भी (अस्मत् अप युयोधि) हम से दूर कर।

अन्ति॑ चि॒त्सन्त॒मह॑ य॒ज्ञं मर्त॑स्य रि॒पोः। नोप॑ वेषि जातवेदः ॥४॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त पदार्थों को जानने हारे प्रभो! हे कृतविद्य विद्वन्! (रिपोः मर्त्तस्य) पापी पुरुष के (अन्तिचित् सन्तं यज्ञं) अति समीप विद्यमान यज्ञ को (न उप वेषि) प्राप्त नहीं होता,

नहीं स्वीकार करता, तू शत्रुता के भाव को रखने वाले मनुष्य के यज्ञ, पूजा, आदर भाव वा दान को स्वीकार नहीं करता।

मर्त्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः॥५॥३५

भा०—हे प्रभो! विभो! (जात-वेदसः) समस्त उत्पन्न पदार्थों में व्यापक सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (ते) तुझ (अमर्त्यस्य) अविनाशी के (भूरि नाम) बहुत सेनानों से हम (मर्त्ताः) मनुष्य, जीवगण (मनामहे) तेरी स्तुति करते हैं।

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

भा०—हम (विप्रासः मर्त्तासः) विद्वान् बुद्धिमान् मनुष्य (अवसे) रक्षा, ज्ञान, आत्मसंतोष, प्रीति सुखादि के लिये और (ऊतये) तुझे प्राप्त होने के लिये (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों के पूरक (देवं) प्रकाशमान (अग्निं) ज्ञानस्वरूप की हम (गीर्भिः) नाना वेदवाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।
अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप! (वत्सः) तेरी स्तुति करने हारा उपासक तेरे पुत्रवत् प्रिय (परमात् चित् सधस्थात्) परम, सर्वोत्कृष्ट तेरे साथ एकत्र रहने की स्थिति से (ते) तुझे प्राप्त करने के लिये (त्वां-कामया गिरा) तुझे चाहने वाली, भक्ति भरी वाणी से (मनः) अपने मन को (आ यमत्) सब ओर से रोके और तेरे ही में लगावे।

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (पुरुत्रा) बहुत से स्थानों में भी सूर्यवत् (सदृङ् असि) एक समान सब को देखने और दीखने हारा सर्वत्र एक रस है, तू (विश्वाः विशः अनु) समस्त प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह

करने हारा, (प्रभुः) सर्वोत्तम शासक प्रभु है। (त्वा) तुझ से ही (समत्सु) हर्ष के अवसरों और युद्धों में भी (हवामहे) प्रार्थना करते हैं।

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम् ॥९॥

भा०—हम (समत्सु) संग्राम में और एक साथ मिलकर आनन्द अनुभव करने के अवसरों में और (वाजेषु) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, अन्नों के निमित्त (चित्र-राधसम्) अद्भुत धन के धनी, (अग्निम्) सर्वव्यापक, अग्रणी, ज्ञानस्वरूप प्रभु की (अवसे) रक्षा, पालन, ज्ञान आदि के लिये ही (वाजयन्तः) ऐश्वर्य ज्ञानादि की कामना करते हुए हम लोग (हवामहे) स्तुति करते हैं।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व१०।३६।८।५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वप्रकाश! सब जगत् से पूर्व विद्यमान! सबके नायक! (हि) जिससे तू (प्रत्नः) सबसे पुराना, अनादि काल से विद्यमान (ईड्यः कम्) स्तुति योग्य, उपास्य (अध्वरेषु) अविनाशी पदार्थों में, यज्ञों में भी स्तुति करने योग्य है, तू (नव्यः च) अति स्तुति योग्य, सदा नवीन और (सनात् च) सनातन काल से ही (होता) सर्व सुखदाता होकर (सत्सि) विराजता है। तू (स्वां च तन्वं) अपने ही विस्तृत सृष्टि को (पि प्रयस्व) पालन और तृप्त कर उसको कर्मानुसार भोग भुगा और (अस्मभ्यं च) हमें भी (सौभगम् आ यजस्व) उत्तम २ ऐश्वर्य प्रदान कर। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

* इति पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः ॥

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभितेन श्रीमत्पण्डितजयदेव-शर्मणा विरचित आलोकभाष्ये पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[१२]

पर्वतः काण्वं ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, ९, १५, १६, २०, २१, २५, ३१, ३२ निचृदुष्णिक् । ३—६, १०—१२, १४, १७, १८, २२—२४, २६—३० उष्णिक् । ७, १३, १९ आर्षीविराडुष्णिक् । ३३ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं के नाशक ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे ज्ञानवन् ! (यः) जो तू (सोम-पातमः) सोम, ऐश्वर्य की और जगत् वा राष्ट्र-प्रजाजन की पुत्रवत्, ओषधिवनस्पति आदि को मेघ वा सूर्यवत् उत्तम रीति से पालन करने वाला और (मदः) सबको तृप्त एवं प्रसन्न करने वाला, आनन्दमय होकर (चेतति) सबको ज्ञान प्रदान करता है और (येन) जिस कारण से तू (अत्रिणं) जगत् के, प्रजा के भक्षक, नाशक का (नि हंसि) विनाश करता है अतः (तम्) उस तुझको हम लोग (ईमहे) प्राप्त होते और तुझ से रक्षादि की याचना-प्रार्थना करते हैं । अन्न ज्ञान देने और पालन, रक्षा करने वाले प्रभु की हम सदा स्तुति करें, उसी से सब कुछ मांगें ।

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम्।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिससे या जो हे प्रभो ! राजन् ! तू (दशग्वम्) 'दशगु' दश भूमि या दस ग्रामों के स्वामी को और (अध्रिगु-अध्रिगुं) इससे भी अधिक भूमियों के स्वामी को और (स्वःनरं) सबके नेता, सुखों के प्रदान करने वा ज्ञानोपदेश के देने वाले विद्वान् जन को और (वेदयन्तं) शत्रुओं को कंपाने वाले बलवान् को और (येन) जिस कारण से तू (समुद्रम्) समुद्रवत् अपार, उमड़ने वाले, उत्साही राष्ट्र प्रजाजन और सैन्य बल को (आविथ) रक्षा करता, प्राप्त करता और उसका पोषण करता है इससे हम सब (तम्) उस तुझको (ईमहे) प्राप्त होते और तुझ से प्रार्थना करते हैं। अध्यात्म में—'दशगु' दश इन्द्रियों का स्वामी और अध्रिगु अधिक गति वाला, अधिक ज्ञानी आत्मा, सबका सञ्चालक 'स्वर्नर' वायु, प्राण और 'समुद्र' जलमय सागर और आकाश इन सब की प्रभु रक्षा करता है। वही सर्वोपास्य स्तुत्य, शरणीय है।

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस कारण वा जो तू हे भगवन् ! जिस प्रकार (रथान् इव) रथों, रथारोही वीरों को और (सिन्धुम्) अश्व सैन्यों को और (महीः) भूमिवासिनी प्रजाओं को और (अपः) आप्त जनों को राजावत् उत्तम मार्ग में चलाता है उसी प्रकार तू (सिन्धुं) महान् समुद्र को (महीः अपः) भूमियों और जलों को (प्रचोदयः) उत्तम उद्देश्य के लिये चला या प्रेरित कर रहा है। (ऋतस्य पन्थाम् यातवे) सत्य के मार्ग पर चलने के लिये (तं) उसी देवों के देव, राजाओं के राजा तुझ को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।
येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो ! (येन) जो तू (सद्यः) सदा समान सब दिनों (ओजसा) बड़े भारी बल पराक्रम से महान् राजा के समान (ववक्षिथ) समस्त जगत् को धारण कर रहा है, तू सबसे महान् है, हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्तिशालिन् ! अतः हम भी (अभिष्टये) अपने अभिलषित फल का प्राप्त करने के लिये (घृतं न पूतं) पवित्र जल के समान स्वच्छ एवं तृप्ति सुख और आरोग्यकारक और (घृतं न पूतम्) पवित्र प्रकाश-मय तेज के समान परम पावन, अन्तःकरण के प्रकाशक (इमं स्तोमं) इस स्तुति-वचन वेदमय ज्ञान को (ईमहे) तेरे से प्राप्त करते हैं । उसी स्तुत्य ज्ञान प्रकाश की तुझ से याचना करते हैं ।

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शक्तिशालिन् ! इस संसार के द्रष्टः ! तू (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और शक्तियों से (ववक्षिथ) इस संसार को धारण कर रहा है, तू सबसे महान् है । हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा श्रवण भजन करने योग्य ! हे समस्त वेद वाणियों को देनेहारे ! तू (समुद्रः इव) महान् सागर के समान (समुद्रः) समान रूप से सबको आनन्द हर्ष का देने वाला, परमानन्द का सागर (पिन्वते) होकर बढ़ता है, तू (इमं) इस स्तुति को भी (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे ।
दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (देवः) दानशील, सब सुखों का दाता, जगत् का प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (परावतः) दूर, परम स्थान से भी (दिवः

वृष्टिं प्रथयन्) आकाश से वृष्टि करता हुआ इस जगत् को (ववक्षिथ) ज्ञान का उपदेश करता है, उसको हम (सखित्वनाय) अपना मित्र बना लेने की (मामहे) प्रार्थना करते हैं।

ववक्षुरस्य केतवं उत वज्रो गभस्त्योः।
यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥

भा०—(रोदसी सूर्यः न) आकाश और भूमि दोनों लोकों को सूर्य जिस प्रकार बढ़ाता, पुष्ट करता है उसी प्रकार (सूर्यः) सब जगत् का सञ्चालक, प्रकाशक और उत्पादक प्रभु परमेश्वर (रोदसी) इस समस्त संसार को (अवर्धत्) शिल्पीवत् बनाता, राजावत् उनकी वृद्धि, और पोषण करता है। अथवा, (सूर्यः न) सूर्य के समान बढ़ाता और (रोदसी न) अन्तरिक्ष, भूमिवत् वा बालक को माता पितावत् पालता और पुष्ट करता है, (अस्य) उस प्रभु के (केतवः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान विज्ञान और नाना शक्तियां (उत) और (गभस्त्योः वज्रः न) हाथों में पकड़े शस्त्र के समान (वज्रः) ज्ञानमय उपदेश ये सब (ववक्षुः) जगत् को धारण करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः।
आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रवृद्ध) सबसे महान्! हे (सत्पते) सत्, व्यक्तजगत् सत्पदार्थों, सज्जनों और सत्य ज्ञान के पालक! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, अनेक बड़े २ शक्तिशाली सूर्य, मेघ, समुद्र, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, वा सहस्रों बड़े विघ्नों का नाश करता है (आत् इत्) इससे ही तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य, बल, और आत्म-सामर्थ्य (प्र वावृधे) बहुत बड़ा है।

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति।
अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (अर्शसानम्) नाशकारी रोग और अन्धकार को (नि-ओषति) सर्वथा ऐसे भस्म कर देता है जैसे (अग्निः वना इव) आग वनों और काष्ठों को जला डालती है। वह (सासहिः) सर्वोत्कृष्ट बलशाली, सब को पराजित करने में समर्थ होकर (प्र वावृधे) सब से अधिक बढ़ जाता है, वह सबसे महान् है। (२) इसी प्रकार इन्द्र, राजा सूर्य-रश्मिवत् अपने नियामक शासकों से प्रजानाशक दुष्ट वर्ग को पीड़ित करे, अग्निवत् भस्म करे, सर्वविजयी होकर बढ़े।

इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी।
सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इयं) यह (ते) तेरी (ऋत्विया-वतीः) ऋतु ऋतु में करने योग्य यज्ञादि वाली, (नवीयसी) अति स्तुत्य (धीतिः) स्तुति, (पुरु-प्रिया) बहुतों को प्रसन्न करने वाली, (सपर्यन्ती) परमेश्वर की अर्चना करती हुई, वेद्वाणी (मिमीते इत्) सबको उपदेश करती है। उसी प्रकार (ते धीतिः) हे प्रभो! तेरी जगत्धारक, पोषक शक्ति, (ऋत्वियावती) सूर्य से उत्पन्न ऋतुवत् नियम पूर्वक भिन्न २ सामर्थ्यों से विश्व को चलाने वाली, अति स्तुत्य, सर्वप्रिय, (मिमीते) जगत् को बनाती है। (२) राजा की राष्ट्रधारक शक्ति, (ऋत्वियावती) 'ऋतु' राजसभादि के सदस्यों वा शासक जनों से युक्त, सर्वप्रिय राष्ट्र की सेवा करती हुई, (मिमीते इत्) राष्ट्र का निर्माण करती है। इति द्वितीयो वर्गः॥

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक्।
स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥

भा०—(देवयुः) उस सर्वस्व दाता प्रभु को चाहने वाला मनुष्य (यज्ञस्य गर्भः) यज्ञ, परम उपासनीय, पूज्य, सर्वदाता प्रभु की स्तुति करने वाला, उसी का आश्रय ग्रहण करने वाला और उसी के भीतर माता

के पेट में बालक के समान, उसी प्रभु की रक्षा में पालित पोषित होकर (आनुषक्) निरन्तर (क्रतुं) अपने ज्ञान और कर्म को (पुनीते) शुद्ध पवित्र करता है। वह (इन्द्रस्य स्तोमैः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपदेशमय वेदवचनों तथा स्तुति-वचनों से (ववृधे) बढ़ता और (मिमीते इत्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु का ज्ञान भी कर लेता है।

सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये।
प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सोमस्य पीतये) उत्पन्न जगत् वा जीवगण को पालन और कर्मफलोपभोग करने के लिये (मित्रस्य) अपने को स्नेह करने वाले जीव, भक्त को (सनिः) सब सुखों का दाता होकर (पप्रथे) जगत् को विस्तृत करता है, अर्थात् जीवों के भोग और मोक्ष लिये जगत् को रचता है। (सुन्वते वाशी इव) शिल्पी का बसूला जिस प्रकार उत्तम रीति से आगे बढ़कर काष्ठ की वस्तुएं बनाता है उसी प्रकार (वाशी) सब जगत् को वश करने वाली और जगत्सर्ग करूं ऐसी 'कामना' करने, वा (सुन्वते = सुन्वतः) जगत्सर्ग करने वाले विधाता की शक्ति (प्राची) सब से उत्कृष्ट होकर ही (मिमीते इत्) इस संसार की रचना करती है। अथवा—(सुन्वते वाशी इव) जिस प्रकार यज्ञोपासना करने वाले की वाणी (मिमीते) शब्द करती है, उसी प्रकार (प्राची) उत्तम पूज्य प्रभु-शक्ति भी गुरुवत् (सुन्वते मिमीते) भक्त उपासक को शिष्यवत् ज्ञान प्रदान करती है।

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर को (उक्थ-वाहसः) वेद मन्त्रों को धारण करने वाले (विप्राः) विद्वान् (आयवः) पुरुष (अभि प्रमन्दुः) साक्षात् कर प्रसन्न होते, आनन्द लाभ करते हैं उसी प्रकार (यत्) जो

(ऋतस्य) सत्य स्वरूप, परम कारण परमेश्वर सत्य ज्ञान वेद के (घृतं) प्रकाशवत् दीप्ति से युक्त है उसको अपने (आसनि) मुख में (घृतम् इव) पुष्टि दायक घृत के समान ही (पिप्ये) पान करूं। अर्थात् मुख से सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास, आवर्त्तन मनन आदि अन्न घृतादि आहार के ग्रहण चर्वण आदि के समान ही शनैः २ करना और उसे मनन द्वारा पचाना चाहिये।

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत्॥ १४॥

भा०—(उत) और (स्वराजे) स्वयंप्रकाश, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर के (स्तोमम्) स्तुति वा उपदेश-रूप वेद ज्ञान को (अदितिः) अखण्ड, अविनाशी वेद ही (जीजनत्) प्रकट करता है। और (यत्) जो (ऋतस्य) सत्य ज्ञान या परम कारणमय प्रभु का (पुरु प्रशस्तं) बहुत विद्वानों से उपदेश करने योग्य ज्ञान है उसको (ऊतये) जगत् की रक्षा के लिये (अदितिः) अखण्ड व्रत वाला तपस्वी पुरुष ही (जीजनत्) प्रकट या प्रकाशित करे।

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत्॥ १५॥ ३॥

भा०—(वह्नयः) ज्ञान को धारण करने वाले विद्वान् अध्यापक उपदेशक शुश्रूषु जन (ऊतये) ज्ञान प्राप्त करने और (प्र-शस्तये) तेरी उत्तम स्तुति और जनों को अच्छी प्रकार शासन या उपदेश के लिये (ऋतस्य यत्) सत्य ज्ञानमय वेद या प्रभु का जो अति प्रशस्त ज्ञान है उसका (अनूषत) उपदेश करते हैं। हे (देव) समस्त सुखों के दाता, ज्ञान और जगत् के प्रकाश प्रभो! (विव्रता) व्रत, सत्कर्मों से रहित आचरण करने वाले (हरी) स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान के उस तत्व को (न) नहीं पाते। इति तृतीयो वर्गः॥

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (विष्णवि) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य के आधार पर, (यद्वा घ आप्त्ये) और जो तू जलों से पूर्ण (त्रिते) तीनों लोकों के आश्रय और (यद्वा मरुत्सु) वा प्राणों के आश्रय पर, (इन्दुभिः) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों द्वारा (सोमम्) उत्पन्न होने वाले जीव या जगत् को (सम् मन्दसे) भली प्रकार प्रसन्न और आनन्दित करता है इस कारण तू दयालु. सर्वप्रद, सर्वोपास्य है ।

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिमन् ! (यद् वा) जो तू (परावति) अज्ञानियों से अति दूर, परम (समुद्रे) अति उल्लासयुक्त समान रूप से एक रस आनन्द से परिपूर्ण रूप में (अधि मन्दसे) अतिशय आनन्द से रमता है । (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (इन्दुभिः) इन ऐश्वर्य युक्त, दीप्तियुक्त और रसवत् द्रुतगति से जाने वाले नाना पदार्थों से (अस्माकम् इत् रण) हमें अवश्य सुखी कर ।

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सत् पुरुषों के पालक ! (यद् वा) जो तू (यस्य सुन्वतः) जिस किसी भी साधक (यजमानस्य) देवपूजा करने वाले उपासक को तू (वृधः) बढ़ाता है और उसके (उक्थे) स्तुति वचन पर (रण्यसि) प्रसन्न होता है वह तू उसको (इन्दुभिः सं रण) नाना ऐश्वर्यों से प्रसन्न और आनन्दित करता है ।

देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (देवं-देवं) सर्वत्र प्रकाशमान और (इन्द्रम्-इन्द्रम्) सर्वत्र ऐश्वर्यवान् विघ्नविनाशक प्रभु को (अवसे) प्राप्त करने का (गृणीषणि) उपदेश करता हूं (अध) और (तुर्वणे) सब दुःखों और दुष्टों के नाशक (यज्ञाय) सर्वोपास्य परमेश्वर के ही ये समस्त ऐश्वर्य जगत् में (वि-आनशुः) विविध प्रकार से व्याप रहे हैं और समस्त (तुर्वणे यज्ञाय) दुःख-विघ्ननाशक सर्वदाता प्रभु को ही समस्त भक्त विविध उपायों से प्राप्त होते हैं ।

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।
होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—उस (यज्ञवाहसं) देवपूजा को स्वीकार करने वाले प्रभु को विद्वान् लोग (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनाओं से (वावृधुः) बढ़ाते, उसकी महिमा का विस्तार करते और (वि-आनशुः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हैं । उस (सोम-पातमम्) उत्पन्न हुए नाना सर्गों के परम पालक प्रभु को भक्तजन (सोमैः ववृधुः) उसके ऐश्वर्यों के वर्णनों से ही बढ़ाते हैं और उन द्वारा ही उस तक (वि आनशुः) पहुंचते हैं । इसी प्रकार वे (होत्राभिः) नाना वाणियों से (इन्द्रं ववृधुः) ऐश्वर्यवान् प्रभु की महिमा बढ़ाते और उन (होत्राभिः) गुरु शिष्यों द्वारा देने लेने योग्य वेद वाणियों से ही उस को (व्यानशुः) विविध प्रकार से प्राप्त करते, उसका ज्ञान करते, उसके गुणों में रमते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥ २१ ॥

भा०—(अस्य) इसके (महीः) बड़ी २ (प्र-णीतयः) व्यवस्थाएं और (पूर्वीः) पूर्व भी विद्यमान, सनातन, (प्रशस्तयः) उत्तम स्तुतियां या उत्तम ज्ञानानुशासन करने वाली वेद वाणियां (विश्वा वसूनि दाशुषे)

समस्त ऐश्वर्यों के देने वाले उसी प्रभु के वर्णन के लिये (वि आनशुः) विविध या विशेष प्रकार से उस तक पहुंचती हैं।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः।
इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥ २२ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् मनुष्य (वृत्राय) बढ़ते या अन्तःकरण को आवरण करने वाले अज्ञान को (हन्तवे) नाश करने के लिये (इन्द्रं) सूर्यवत् अन्धकार को विदारण करने वाले, दीप्तिमान् प्रभु रूप सूर्य को (पुरः दधिरे)सदा अपने समक्ष रखते हैं, उसका ध्यान वा धारण करते हैं। और (ओजसे) आत्मिक परम बल प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं) उसी विघ्न-नाशक, तेजस्वी प्रभु की (वाणीः) वाणियों द्वारा (सम् अनूषत) उसकी अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं।

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम्।
अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥ २३ ॥

भा०—(महिना महान्तं) अपने महान् सामर्थ्य से बड़े (हवन-श्रुतम्) आह्वानों, उपासक की पुकारों को श्रवण करने वाले, वा 'हवन' दानों से सर्वत्र प्रसिद्ध उस प्रभु की हम (स्तोमेभिः) स्तुतियों और (अर्कैः) अर्चना करने योग्य वेदमन्त्रों और यज्ञों से (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (अभिः सं प्र नोनुमः) साक्षात् खूब स्तुति करें।

न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्।
अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (रोदसी) भूमि और आकाश भी (न विविक्तः) विवेचन नहीं कर सकते और (यं) जिस (वज्रिणम्) बल-शाली, प्रभु को (अन्तरिक्षाणि न विविक्तः) नाना अन्तरिक्ष भाग भी विवेचन नहीं कर सकते अर्थात् आकाश, भूमि और अन्तरिक्ष के नाना सर्ग, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्र, वायु, भूमि, पर्वत, समुद्रादि भी जिसके महान्

ऐश्वर्यमय शक्तिशाली रूप का पूरी तरह से विवेचन नहीं करा सकते उसी (अस्य ओजसः) बलस्वरूप प्रभु के (अमात् इत्) बल से ही यह समस्त जगत् (तित्विषे) प्रकाशित होता है। (२) (रोदसी) उपदेष्टा और शिष्य भी जिस प्रभु का वाद द्वारा विवेचन नहीं कर सकते (अन्तरिक्षाणि) अन्तःकरणों के व्यापार भी जिसका विवेक, अर्थात् पृथक् स्वरूप नहीं बतला सकते, उसी परम प्रभु के बल से ज्ञान का प्रकाश होता है। वही स्वयंप्रकाशस्वरूप परमेश्वर अपने सामर्थ्य से जगत् को प्रकाशित करता है, वही अपना भी प्रकाश करता है।

यदि॑न्द्र पृत॒नाज्ये॑ दे॒वास्त्वा॑ दधि॒रे पु॒रः ।
आदित्ते॑ हर्य॒ता हरी॑ ववक्षतुः ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(पृतनाज्ये) सेनाओं के भागने के स्थान, या अवसर तथा सेनाओं से विजय करने योग्य संग्राम में जिस प्रकार (देवाः) विजिगीषु लोग (इन्द्रं पुरो दधिरे) तेजस्वी, राजा या सेनापति को आगे रखते हैं (हर्यता हरी ववक्षतुः) वेगवान् सुन्दर दो घोड़े उसको आगे लेजाते हैं, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वयंप्रकाश प्रभो! (यत् त्वा) जिस तुझ को (देवाः) विद्वान् एवं नाना कामना करने वाले मनुष्य (पृतनाज्ये) मनुष्यों से प्राप्य ऐश्वर्य या उद्देश्य के लिये (पुरः दधिरे) अपने समक्ष साक्षी एवं परम उद्देश्यवत् स्थापित करते हैं (आत् इत्) अनन्तर उसी (ते) तुझे (हर्यता हरी) तेरी कामना करने वाले ज्ञानी अज्ञानी वा स्त्री पुरुष वा ज्ञानी, कर्मी, मनुष्य (ववक्षतुः) हृदय में धारण करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

य॒दा वृ॒त्रं न॑दी॒वृतं॒ शव॑सा वज्रि॒न्नव॑धीः ।
आदित्ते॑ हर्य॒ता हरी॑ ववक्षतुः ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (नदीवृतं वृत्रं) गरजती मेघ मालाओं में विद्यमान जल को (शवसा अवधीत्) बलपूर्वक आघात करता

और उस विद्युत् को हरणशील कान्तियुक्त धन ऋण दोनों प्रकार की धाराएं दोनों कान्तियुक्त पदार्थ धारण करती हैं। उसी प्रकार (यदा) जब (नदीवृतं) नदीजलवत् निरन्तर गतिशील आत्मा की धारा में विद्यमान (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को हे (वज्रिन्) ज्ञानवज्र के स्वामिन्! हे शक्तिशालिन्! तू (शवसा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (अवधीः) नाश करता है (आत् इत्) अनन्तर ही (हर्यता) तुझे चाहने वाले (हरी) स्त्री पुरुष वा मन और आत्मा (ते) तेरे विषयक ज्ञान को (ववक्षतुः) धारण करते हैं।

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः॥ २७॥

भा०—हे प्रभो! (यदा) जब (ते) तेरे (ओजसा) दिये सामर्थ्य, बल से (विष्णुः) देह में प्रविष्ट आत्मा (त्रीणि) तीनों (पदा) ज्ञातव्य और प्राप्तव्य लोकों को (विचक्रमे) पार कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर (हर्यता हरी) कान्तियुक्त हरणशील आत्मा और मन दोनों (ते) तुझ तक (ववक्षतुः) पहुंचाते हैं। अथवा विष्णु, सूर्य जब तीनों लोकों में व्यापता है तब (हर्यता हरी) कान्तियुक्त दोनों लोक तेरा ही बल प्रकाश धारण करते हैं।

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ २८॥

भा०—(यदा) जब (हर्यता हरी) कान्ति युक्त मनोहर सूर्य और भूमि (ते) तेरे बल से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (वावृधाते) बढ़ते हैं (आत इत्) अनन्तर ही (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियम में बंधते हैं।

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे॥ २९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (यदा) जब (ते) तेरे अधीन (मारुतीः) 'मरुत्' अर्थात् प्राणों से प्राणित (विशः) प्रजाएं, (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (नियेमिरे) नियम में बद्ध होती हैं, (आत् इत्) अनन्तर, उनके नियम व्यवस्थित होने के कारण (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक भी (ते) तेरे अधीन ही नियम में व्यवस्थित होते हैं।

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो ! (यदा) जब तू (अमुं सूर्यम्) उस सूर्य को और (दिवि) सूर्य में (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध तेज और अन्तरिक्ष में जल और विद्युत् आदि को (अधारयः) स्थापित करता है, (आत् इत्) फलतः (ते) तेरे ही अधीन, तेरी ही व्यवस्था में (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियन्त्रित हैं।

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥

भा०—(अध्वरे पिप्रतीं जामिं पदा इव) यज्ञ में प्रसन्न होती या करती हुई बन्धुभूत पत्नी को वर वा विद्वान् पुरोहित जिस प्रकार सप्तपदी के पैर चलने को (प्र इयर्त्ति) प्रेरणा करता है, अथवा जिस प्रकार विद्वान् गुरु बन्धुवत् शिष्य के प्रति उत्तम ज्ञान का प्रेम से प्रकाश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (विप्रः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरी (इमां सु-स्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति योग्य प्रसन्न करने वाली नीति को (धीतिभिः) उत्तम वाणियों और कर्मों से (प्र-इयर्त्ति) अच्छी प्रकार वर्णन करता है।

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन्।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब (अस्य) इस परमेश्वर के (प्रिये) अति प्रिय, मनोहर (धामनि) परम सर्वाश्रय तेज या ब्रह्मपद में (समीचीनासः)

अच्छी प्रकार सुसंगत होकर विद्वान् लोग (अस्वरन्) स्तुति करते हैं, तब (यज्ञस्य) परम पूजनीय परमेश्वर के (अध्वरे) अविनाशी, हिंसारहित, दयामय (नाभा) सब को बांधने वाले, (दोहना) सब सुखों के देने वाले उस (धामनि) तेजोमय स्वरूप में ही वे आनन्द लाभ करते हैं।

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः ।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजोमय ! हे ऐश्वर्यप्रद ! जिस प्रकार (अध्वरे पूर्वचित्तये होता इव) यज्ञ में पूर्ण ज्ञानवान् पुरुष के उपकारार्थ दानशील यजमान, उत्तम अश्व गौ आदियुक्त धन प्रदान करता है उसी प्रकार प्रभो ! तू (नः) हमें भी (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये और पूर्व विद्यमान पदार्थों का ज्ञान करने के लिये वा हमारे पूर्व विद्यमान चेतनावान् आत्मा को (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त, (सु-अश्व्यं) उत्तम आशुगामी मन से युक्त, (सुगव्यम्) उत्तम इन्द्रियगण (दद्धि) प्रदान करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[१३]

नारदः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ११, १४, १६, २१, २२, २६, २७, ३१ निचृदुष्णिक्। २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक्। ३० आर्षी विराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी और सत्य ज्ञान का द्रष्टा, स्वामी, प्रभु (सुतेषु सोमेषु) पुत्रों और शिष्यों में गुरु के समान उत्पन्न वा निष्काम उपासक विद्वानों में (क्रतुम्) कर्म, ज्ञान और (उक्थ्यम्)

वचन को भी (पुनीते) रसवत् ही पवित्र, स्वच्छ करता है। इस प्रकार वह उपासक (वृधस्य) वर्धक और (दक्षसः) बल के (विदे) प्राप्त करने के लिये यत्न करता है, क्योंकि (सः) वह प्रभु (महान् हि) बहुत बड़ा एवं पूज्य है।

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (प्रथमे) सर्वोत्तम (व्योमनि) विशेष रक्षा और ज्ञानमय परम अभय (देवानां) दिव्य सूर्यादि एवं विद्वानों को (सदने) उनके २ स्थान में (वृधः) बढ़ाने वाला, (सुपारः) सब को सुख से पालन करने, दुःखों से तारने वाला, (सुश्रवःतमः) उत्तम यश, ऐश्वर्य और ज्ञान, ख्याति आदि से सम्पन्न और (अप्सु-जित्) समस्त अन्तरिक्ष में सूर्यवत् सर्वोपरि वर्त्तमान और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और जीवों पर भी वश करने हारा है।

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (तम् इन्द्रं) उस अपार ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वाज-सातये) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने और सब में निष्पक्षपात होकर विभक्त करने के लिये और (भराय) भरण पोषण के लिये (शुष्मिणम्) उस बलवान् प्रभु को (अह्वे) बुलाता हूं। हे प्रभो ! तू (नः सुम्ने) हमारे सुख के लिये और (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अन्तमः सखा भव) अति समीपतम, परम मित्र हो।

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ऐश्वर्य के देने हारे ! हे (गिर्वणः) वाणियों के देने और सेवन करने हारे वा वाणी द्वारा उपासनीय ! (सुन्वतः)

ऐश्वर्य वा जगत् भर पर आधिपत्य करने वाले (ते) तेरा ही (रातिः) दान, (क्षरति) सर्वत्र मेघ से वृष्टिवत्, यजमान के हाथ से घृताहुतिवत् बरसता है। और (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय और समस्त (अस्य बर्हिषः) इस महान् विश्व को (मन्दानः) तृप्त, प्रसन्न करता हुआ (वि-राजसि) विशेष रूप से उस पर राजावत् आधिपत्य करता है, सूर्यवत् चमकता है।

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे।
र॒यिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम लोग (सुन्वन्तः) यज्ञादि करते हुए, (यत्) जिस (स्वर्विदम्) सुख प्राप्त कराने वाले, (चित्रम्) संग्राह्य, उत्तम, आश्चर्यजनक (रयिं) ऐश्वर्य को (त्वा ईमहे) तुझ से मांगते हैं (नः) हमें (नूनं) अवश्य (तत् दद्धि) उस धन को प्रदान कर। वही धन हमें (आ भर) ला, दे। इति सप्तमो वर्गः॥

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः।
व॒या इ॒वानु रोहते जुषन्त यत् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (विचर्षणिः स्तोता) विशेष २ गुणों का प्रबल उपासक पुरुष (गिरः) वेदवाणियों को (अति-प्रशर्धयत्) बहुत अधिक रूप से कहता है, वे (यत् जुषन्त) जब प्रेम से सेवन करते हैं (वयाः इव) शाखाओं के समान (अनु रोहते) तेरे गुणों के अनुरूप ही बढ़ते हैं।

प्र॒त्न॒वज्ज॑नया॒ गिरः॑ शृणु॒धी ज॑रि॒तुर्हव॑म्।
मदे॑मदे ववक्षिथा सु॒कृत्व॑ने ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (जरितः) स्तुति करने वाले की (गिरः) वाणियों को (प्रत्नवत्) वृद्ध गुरु के समान (जनय) प्रकट कर। और (हवम्) उसके आह्वान या पुकार को (श्रृणुधि) श्रवण कर। (मदे-मदे) प्रत्येक हर्ष के अवसर में, प्रत्येक सात्विक भाव से पुलकित होने में (सुकृ-

त्वने) शुभ कर्म करने वाले पुण्यशील जन के हितार्थ (ववक्षिथ) तू उत्तम फल प्राप्त कराता है वा उत्तम उपदेश करता है ।

क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (अया धिया) इस प्रकार की धारणावती बुद्धि या कर्म और वाणी से (दिवः पतिः उच्यते) ज्ञान-प्रकाश और समस्त जगत्-व्यवहार का पालक कहा जाता है (अस्य) उस प्रभु की (सूनृता) उत्तम सत्यमय वाणियां, अन्न रस धारायें, (प्रवता) निम्न मार्ग से (यतीः) बहती (आपः न) जलधाराओं के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से ही (क्रीडन्ति) मानो खेलती हुई सीं सर्वत्र विचरण करती हैं ।

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी ।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥ ९ ॥

भा०—(उतो) और (यः) जो (नमो-वृधैः) नमस्कारों आदर वचनों से बढ़ने वाले विनीत, वृद्ध और (अवस्युभिः) रक्षा और ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों द्वारा (एकः) एक, अद्वितीय (इत्) ही (कृष्टीनाम्) आकर्षण करने वाले सूर्यादि लोकों और मनुष्यों का (पतिः) स्वामी पालक और (वशी) सबको वश करने हारा (उच्यते) कहा जाता है, हे मनुष्य ! तू (सुते रण) इस उत्पन्न जगत् में उसी की स्तुति किया कर । रमतिः शब्दार्थः ॥

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्य ! (यस्य) जिस परमेश्वर के (हरी) सेनापति के अति बलवान् दो अश्वोंवत् (हरी) मनोहर और संहारक दोनों रूप (प्रसक्षिणा) सज्जन और दुर्जन, दोनों को बलपूर्वक उत्तम रीति से विजय कर लेते हैं तू उसी (श्रुतं) वेदों, उपनिषदों द्वारा गुरुमुखों से

श्रवण किये, विख्यात, (विपश्चितं) विद्वानों से जानने योग्य और (विपः-चितम्) वेद वाणी से चेतव्य, ज्ञातव्य प्रभु की (स्तुहि) नित्य स्तुति किया कर। और जिसे कान्त, भीम गुण राशियें (नमस्विनः) नमस्कार, विनयादि से पूर्ण (दाशुषः) आत्मसमर्पक, दानी पुरुष के (गृहं गन्तारा) गृह में प्राप्त होने वाले पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर। इत्यष्टमो वर्गः ॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार (तूतुजानः) शत्रु का नाश करने वाला सेनापति (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध रूप या परिपक्व रूप वाले, सुदृढ़ शरीरवान् (आशुभिः अश्वेभिः यज्ञम् आयाति) अश्वारोहियों से संगति करता है उसी प्रकार हे (महेमते) बड़े भारी राष्ट्र को सञ्चालन करने वा बड़ा फल प्राप्त करने के लिये बड़ी भारी मति, बुद्धि ज्ञान वा संकल्प वाले ! तू (तूतुजानः) विश्व का पालन करता हुआ (प्रुषित-प्सुभिः) अग्नि, सूर्यादि से प्रुषित, परिपक्व वा घृतादि से सेचित अन्न का भोजन करने वाले अथवा (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, परितप्त या तपस्वी देह वाले (आशुभिः) शीघ्रगामी, तीव्रबुद्धि, कर्मकुशल (अश्वेभिः) दृढ़, विद्वान् पुरुषों और अंगों द्वारा तू (यज्ञम्) उपास्य प्रभु और यज्ञ आदि शुभ कर्म को प्राप्त हो। हे विद्वान् पुरुष ! (ते) तुझे इस प्रकार (शम् इत् हि) अवश्य शान्ति प्राप्त होगी। (२) इसी प्रकार परमेश्वर भी हमारे यज्ञ अर्थात् आत्मा को तेजोयुक्त, सूर्यादि पदार्थों सहित हमें प्राप्त हो।

इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (सत्-पते) सत्पदार्थों, सत्य ज्ञान और सत्पुरुषों के पालक ! तू (गृणत्सु) विद्वान् उपदेशकों और स्तुतिकर्त्ता भक्त जनों में वा उनके निमित्त (रयिं

धारय) ऐश्वर्य धारण कर वा उनको प्रदान कर । (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषकों को (श्रवः) ज्ञान और (अमृतं) मोक्ष और (वसुत्वनम्) ऐश्वर्य (धारय) धारण करा ।

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (सप्तिभिः) सर्पणशील, वेगवान् सूर्यादि के प्रकाशादि सुखों से (नः जुषाणः) हमें प्रेम करता हुआ (नः आगहि) हमें प्राप्त हो । हे प्रभो ! हमें (उदिते) उदय हुए और (मध्यन्दिने) दिन के मध्य समय में विद्यमान (दिवः सूरे) ज्ञान के प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी, प्रखर पाप के नाशक स्वरूप (त्वा हवे) तुझ से प्रार्थना करता हूं और (त्वा हवे) तुझे ही स्वीकार करता हूं ।

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे आत्मन् ! तू (आ गहि तु) आ, प्राप्त हो, (प्र द्रव तु) खूब दयापूर्ण होकर मेघवत् आनन्द-रस का वर्षण कर, (गोमतः सुतस्य) इन्द्रियों से युक्त उत्पन्न जीव को (मत्स्व) आनन्दित कर । (पूर्व्यं) पूर्व से विद्यमान (तन्तुं) सूत्रवत् अविच्छिन्न सृष्टि को (तनुष्व) विस्तृत कर (यथा) जिससे मैं जीव भी (विदे) ज्ञान प्राप्त करूं । (२) अथवा—हे जीव ! तू आगे आ, आगे बढ़, भूमि से युक्त उत्पन्न ओषधि आदि से तृप्त हो। पूर्व परम्परा से चले आये तन्तु रूप प्रजा सन्तति का विस्तार कर । (यथा विदे) जिससे तू आनन्द लाभ करे ।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥ १५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) विघ्न अन्ध-

कारादि के नाशक ! (यत् परावति) जो तू दूर देश में (यत् अर्वावति) जो तू समीप में और (यद् वा समुद्रे) जो तू समुद्र या आकाश में है तू (अन्धसः) प्राणाधारी जीव गण का (अविता इत् असि) रक्षक ही है । तू सर्वत्र जीवों का रक्षक है । इति नवमो वर्गः ॥

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः ।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥

भा०—(नः) हमारी वाणियां (इन्द्रं वर्धन्तु) ऐश्वर्य के देने वाले प्रभु को बढ़ावें, उसका गुण गान करें । अथवा (इन्द्रं) इन्द्र को लक्ष्य करके कही गई (गिरः) वेदवाणियां (नः वर्धन्तु) हमारी वृद्धि करें । इसी प्रकार (सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ वा जीव गण (इन्द्रं वर्धन्तु) इन्द्र को बढ़ावें, वे भी उसी की महिमा बतलावें । (हविष्मतीः विशः) अन्नादि से समृद्ध प्रजाएं भी (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा के अधीन सुरक्षित प्रजाओं के समान (इन्द्रे) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु में निमग्न रहकर (अराणिषुः) रमण करें । (२) इसी प्रकार प्रजा की वाणियें और ऐश्वर्यादि राजा की वृद्धि करें । वे राजा के अधीन सुखी रहें ।

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ।
इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥ १७ ॥

भा०—(अवस्यवः) रक्षण और ज्ञान की कामना करने वाले (क्षोणीः) जन (प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) उत्तम साधनों से युक्त बलवती सेनाओं के स्वामी भी (इन्द्रं) सेनापति के समान अति शक्तियुक्त प्रबलः रक्षाओं से समृद्ध (तम् इत् इन्द्रं) उस ही परमेश्वर को समस्त (क्षोणीः) मनुष्य और भूमियां (वयाः इवः) शाखाओं के समान (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं । उसकी ही महिमा को बढ़ाती हैं ।

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥ १८ ॥

भा०—(देवासः) समस्त विद्वान् गण और सूर्य पृथिवी आदि लोक भी (त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों में (तम् इत् चेतनं) उस ही, चेतन, ज्ञानवान् (यज्ञं) सर्वोपास्य प्रभु को (अत्नत) फैला रहे हैं, उसी के महान् सामर्थ्य का विस्तार कर रहे हैं। उस (सदावृधं) सदा वृद्धिशील, महान् प्रभु को (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां भी बढ़ावें, उसी की जयकार करें, उसी को बड़ा मनावें।

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार से (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता, उपासक (ते अनु-व्रतः) तेरे अनुकूल व्रत आचरण करता हुआ, (ऋतुथा) भिन्न २ ऋतु आदि कालों में (उक्थानि) उत्तम वेद-वचनों को धारण करता है। भगवन्! (सः) वह तू (शुचिः) शुद्ध, (पावकः) परम पावन और (अद्भुतः) अद्भुत, आश्चर्यकारक और अजन्मा (उच्यते) कहा जाता है।

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(रुद्रस्य) सब दुःखों के दूर करने वाले उस प्रभु का (तत् इत्) वही (यह्वं) महान् बल, सामर्थ्य (प्रत्नेषु धामसु) पुरातन सूर्यादि लोकों में (चेतति) जाना जाता है (यत्र) जिसमें (वि-चेतसः) विशेष ज्ञानी जन (तत् मनः विदधुः) अपना मन स्थिर करते और (तत् दधुः) उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इति दशमो वर्गः ॥

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! (यदि) यदि तू (मे सख्यम् आ-वरः) मेरे मित्र भाव को स्वीकार करता है (इमस्य अन्धसः) इस प्राणधारी जीव सृष्टि का (पाहि) पालन कर। (इमस्य अन्धसः पाहि) इस प्राणधारक अन्न का उपभोग कर, अहिंसा का पालन कर (येन) जिस से (विश्वाः द्विषः) समस्त प्रकार के द्वेष के भावों और शत्रुओं को भी हम (अति अतारिम) पार करें। जीव संसार का पालन करने से उनके भीतर के द्वेष टूट जाते हैं।

कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः।
कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) 'गिरा' अर्थात् वेद वाणी से स्तवन करने योग्य, हे वेदवाणी के दातः! हे वाणी द्वारा, स्तवन भजन करने योग्य! हे (इन्द्र) तेजस्विन्! (ते स्तोता) तेरी स्तुति करने वाला (शन्तमः कदा भवाति) अति शान्तियुक्त कब होता है? और (नः) हमें (गव्ये) गौ आदि पशु, इन्द्रियों और वाणी से समृद्ध (अश्व्ये वसौ) अश्वों, विद्वानों और मन आदि साधनों से युक्त भूमि, देह, ज्ञान एवं निवास करने योग्य गृह, आचार्यगृह और राष्ट्र तथा प्रभु-शरण में (कदा दधः) कब रक्खेगा?

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम्।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक (यम्) जिस सुख की हम भी (ईमहे) याचना करते हैं। (अजुर्यस्य) अविनाशी, जरादि रहित (ते) तेरे (रथम्) रमण करने योग्य, सुखप्रद (मदिन्तमम्) अति अधिक हर्षदायक, सुख और ऐश्वर्यमय तेरे स्वरूप या ज्ञानोपदेश को, रथ के घोड़ों के समान (सु-स्तुता) उत्तम प्रशंसित और शिक्षित (वृषणा) बलवान् (हरी) स्त्री पुरुष ही (वहतः) धारण करते हैं।

तमींमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः।
नि बर्हिषि प्रिये सददध द्विता ॥ २४ ॥

भा०—हम लोग (तम्) उस (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुति करने योग्य (यह्वं) महान् (तम्) उस प्रभु परमेश्वर को (प्रत्नाभिः) सनातन से विद्यमान (ऊतिभिः) ज्ञान वाणियों से (ईमहे) प्रार्थना करते हैं, (अध) और उसका ज्ञान करते हैं। वह (प्रिये) अतिप्रिय (बर्हिषि) वृद्धिशील संसार में प्रिय राष्ट्र में राजा के समान तू (द्विता) दोनों ही प्रकार से (नि सदत्) विराजता है प्रभु के दो रूप सज्जनों का पालक और दुष्टों को दण्डदाता।

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन्! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति करने योग्य प्रभो! हे बहुतों द्वारा राजपद के लिये प्रस्तुत राजन्! तू (ऋषि-स्तुताभिः) विद्वान् मन्त्रार्थद्रष्टा, तत्वज्ञानी पुरुषों से स्तुति की वा उपदिष्ट (ऊतिभिः) ज्ञानवाणियों वा रक्षा के उपायों से वा प्रिय वचनों से (वर्धस्व) बढ़। तू (पिप्युषीम्) सब को बढ़ाने वाली और तृप्तिकारक (इषम्) अन्नसम्पदा को (धुक्षस्व) पृथ्वी से प्राप्त कर और हमें दे और (निः अव च) हमारी रक्षा कर। इत्येकादशो वर्गः॥

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः।
ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! स्वामिन्! हे (अद्रिवः) अविदीर्ण, अखण्ड शक्ति के मालिक! तू (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार स्तुति करने वाले का (अविता इत् असि) रक्षक ही है। (ऋतात्) सत्य ज्ञानमय वेद से मैं (ते) तेरे उपदिष्ट (मनोयुजं) मन के साथ योग करने वाले, वा ज्ञान की सहयोगिनी, (धियं) वाणी और कर्म को (इयर्मि) प्राप्त करूं।

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमपीतये) 'सोम' ऐश्वर्य के पालन और उपभोग करने के लिये वा हे आचार्य विद्वन् ! तू 'सोम' वीर्य की रक्षा करने के लिये (सधमाद्या) एक साथ आनन्द लेने वाले (त्या) उन दोनों (प्रतद्-वसू) उत्तम विस्तृत ऐश्वर्यों के स्वामी (हरी) स्त्री पुरुषों को (इह) इस जगत् वा आश्रम में (युजानः) रथ में अश्वों के समान सन्मार्ग में नियुक्त करता हुआ (अभि स्वर) उनको उपदेश कर ।

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।
उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! (ये) जो (रुद्रासः) अन्यों का दुःख दूर करनेवाले, अन्यों को दुःखी देख कर करुणा से स्वयं रोने या आंसू बहाने वाले वा उत्तम उपदेष्टा एवं दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष (तव अभि) जो तेरे गुणों का साक्षात् कर (स्वरन्तु) स्तुति करते और औरों को उसका उपदेश करते हैं वे (श्रियं सक्षत) लक्ष्मी, शोभा आदि को प्राप्त करते हैं । (उतो) और (मरुत्वतीः विशः) वे प्राणों से या 'मरुत्' विद्वानों, वीरों और वैश्य जनों से युक्त प्रजाओं को भी (प्रयः अभि) अन्न आदि प्राप्ति-योग्य तृप्ति-सुखकारक पदार्थ प्राप्त करावें ।

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि ।
नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९ ॥

भा०—(इमाः) ये (अस्य) इस राजा की (प्र-तूर्त्तयः) उत्तम रीति से शत्रु वा दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाली सेनाएं और उत्तम एवं शीघ्र कार्य करने में कुशल प्रजाएं (यत्) जो (दिवि) भूमि में (पदं) उत्तम स्थान (जुषन्त) प्राप्त करती हैं वे (यथा विदे) यथावत् श्रम के

अनुसार द्रव्य लाभ करने के लिये (नाभा) नाभिवत् राष्ट्र के उत्तम प्रबन्धक पुरुष के अधीन, उसी के आश्रय पर (यज्ञस्य सं दधुः) परस्पर दान-प्रतिदान, संगति, मान-सत्कार आदि का अच्छी प्रकार व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार (प्र-तूर्त्तयः) इस प्रभु की उत्तम प्रजागण जब (दिवि पदं जुषन्त) उस प्रकाशस्वरूप प्रभु में स्थिति वा ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं वे (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और आनन्द के लाभ के लिये (नाभौ) नाभि देश में (यज्ञस्य) पूज्य प्रभु का (सं दधुः) उत्तम रीति से धारण, ध्यानादि करते हैं।

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे।
मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—(अयम्) यह विद्वान् (प्राचि) उत्तम रीति से पूज्य (अध्वरे) हिंसादि से रहित एवं अविनाशी (प्रयति) उत्तम यत्न से करने योग्य यज्ञमय प्रभु के आश्रय ही (दीर्घाय) बड़े भारी विस्तृत (चक्षसे) दर्शन या तत्वज्ञान के लाभ के लिये (वि-चक्ष्य) विशेष रूप से देख कर (आनुषक्) निरन्तर (यज्ञम् मिमीते) यज्ञ वा देवपूजा का सम्पादन करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी।
वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! (अयम्) यह (ते) तेरा (रथः) रथ रमणीय स्वरूप (वृषा) बलवान्, सुदृढ़ है। (ते हरी) तेरे दोनों अश्व भी (वृषणा) बलवान् हैं। हे (शतक्रतो) सैकड़ों, अनेक प्रज्ञा और कर्म वाले ! (त्वं वृषा) तू बलवान् है। तेरा (हवः) आह्वान, दान एवं नाम, स्मरणादि भी (वृषा) बलयुक्त, सुखों का देने वाला है। (२) इसी प्रकार राजा का रथ राष्ट्र, उसके वासी स्त्री पुरुष, राजा स्वयं और उसका व्यवहार सब बलवान् हों।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥

भा०—(ग्रावा वृषा) मेघवत् उपदेष्टा विद्वान् और प्रस्तरवत् शत्रु-नाशक क्षात्रबल बलवान् हो । हे राजन् ! (मदः वृषा) तेरा यह 'मद' हर्ष, प्रसन्नता भी (वृषा) सुखप्रद और दृढ़ हो । (अयं सुतः) यह उत्पन्न (सोमः) पुत्रवत् राष्ट्र वा अभिषिक्त राजपुरुष भी (वृषा) बलवान् हो । (यज्ञः) परस्पर का मेल वा दान-प्रतिदान व्यवहार (यम् इन्वसि) जिसको तू करता है, वह भी (वृषा) बलवान्, दृढ़, सुखप्रद हो। (हवः वृषा) शत्रु के साथ प्रतिस्पर्द्धा और ललकार भी (वृषा) सुखप्रद और बलवान्, दृढ़ हो ।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥ ३३ ॥ १३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् (चित्राभिः) आश्चर्य-जनक नाना (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं वा रक्षाओं से युक्त (वृषणं) बलवान् तुझ को (वृषा) मैं प्रजाजन (हुवे) स्वीकार करता हूं । तू (वृषा) सब सुखों का दाता, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता और (हवः) शत्रुओं के साथ प्रतिस्पर्द्धाशील होकर ही (प्रतिस्तुतिं वावन्थ हि) सर्वत्र स्तुति को प्राप्त कर। (२) प्रभु नाना रक्षाओं से सुखप्रद है। वह संसार का प्रबन्धक, (हवः) स्तुत्य है, सबकी स्तुति प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१४]

गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् गायत्री । २, ४, ५, ७, १५ निचृद्गायत्री । ३, ६, ८—१०, १२—१४ गायत्री ॥ पञ्चदशं सूक्तम् ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जिस प्रकार (त्वम् एकः (इत्) तू एक अद्वितीय ही (वस्वः ईशीय) ऐश्वर्य और वसे जीवगण का स्वामी है, (यद् अहं) वैसे ही जो मैं होऊं। फिर जिस प्रकार तेरा (स्तोता गो-सखा) स्तुतिकर्त्ता उत्तम वाणियों और इन्द्रियों का मित्र होता है उसी प्रकार इस लोक में ऐश्वर्यसम्पन्न (मे) मेरा (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता वा उपदेष्टा विद्वान् भी (गो-सखा) भूमि का मित्र, वाणी का मित्र, गोसम्पदा का मित्र, 'गो' धनुष डोरी का मित्र, अर्थात् भूमि, वाणी, पशु और शस्त्रादिसम्पन्न बलवान् (स्यात्) हो।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तियों और वाणियों के स्वामिन् ! (यद् अहं गोपतिः स्याम्) जो मैं 'गोपति', भूमिपति, वाणियों का स्वामी विद्वान् एवं धनुर्धर होऊं तो (अस्मै मनीषिणे) इस मन पर वश करने वाले मनस्वी शिष्य को (शिक्षेयं) ज्ञान की शिक्षा दूं। (अस्मै मनीषिणे) इस ज्ञान के देने वाले विद्वान् को (दित्सेयं) धनादि देने की इच्छा करूं और (शिक्षेयं) दूं भी।

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानप्रद ! तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! गुरो ! विद्वन् ! (सुन्वते) शुभकर्म करने वाले, ज्ञान-स्नान करने वाले (यजमानाय) देवपूजा, सत्संग शील के लिये (सूनृता) उत्तम सत्य, न्याययुक्त (ते धेनुः) तेरी वाणी (पिप्युषी) उसे बढ़ाती हुई (गाम् अश्वं दुहे) गौ अश्वादि सम्पदा भी प्रदान करती है।

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः।
यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (यत्) जब (मघं दित्ससि) उत्तम ऐश्वर्य देना चाहता है तो (ते राधसः) तेरे दिये धन का (वर्त्ता) वारण करने वाला (न देवः न मर्त्यः) न कोई देव, विद्वान् तेजस्वी है और न साधारण मनुष्य है। तेरा दिया उसे अवश्य प्राप्त होता है।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ५।१४

भा०—(दिवि) आकाश में (ओपशं) मेघ को (चक्राणः) उत्पन्न करता हुआ (यत्) जो यज्ञ (भूमिं वि-अवर्त्तयत्) भूमि को विविध सस्यादि से सम्पन्न करता है, वह ही (इन्द्रम् अवर्धयत्) सूर्य-वत् प्रभु की महिमा को बढ़ाता है। अथवा—(यत्) जो इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा सूर्यवत् (भूमिं अवर्त्तयत्) भूमि को विविध प्रकार से काम में लाता, (दिवि ओपशं चक्राणः) तेज में या भूमि में स्थिति प्राप्त करता है, उसको (यज्ञः) प्रजाओं का संग बढ़ाता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—(विश्वा धनानि) समस्त धनों को (जिग्युषः) जीतने वाले और (वावृधानस्य) निरन्तर बढ़ने वाले महान् (ते) तेरी (ऊतिं) रक्षा को ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (वयं वृणीमहे) हम वरण करते हैं।

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम् ७

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी होकर (यत्) जब (वलम्) घेरने वाले शत्रु को मेघ के समान (अभिनत्) छिन्न भिन्न करता है तब वह (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य प्राप्ति वा राष्ट्र के लाभ रूप हर्ष में (रोचना) रुचियुक्त होकर (अन्तरिक्षम् वि-अतिरत्) अपने अन्तःकरण को भी आकाशवत् बड़ा कर लेता है, उदार होजाता है। इसी प्रकार जो

परमेश्वर आवरणकारी अज्ञान को छिन्न भिन्न करदेता है, आनन्द में (रोचना सोमस्य) रुचि करने वाले जीव के (अन्तरिक्षम् वि-अतिरत्) हृदय को बढ़ाता है, उसको उत्साहित करता है ।

उद्गा आ॑जदङ्गि॑रोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा॑ सतीः ।

अर्वाञ्चं॑ नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥

भा०—वह परमेश्वर (अंगिरोभ्यः) तेजस्वी विद्वानों वा प्राणधारी जीवों के उपकार के लिये (गुहा सतीः) अन्तःकरण में प्राप्त हुई (गाः) वेदवाणियों को शिष्यों के गुरु के समान (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (उत् आजत्) उदित करता है, और (अर्वाञ्चं) आगे आये (वलम्) आत्मा को घेरने वाले अज्ञान को (नुनुदे) परे भगा देता है। इसी प्रकार प्रभु ऋषियों के हृदय में गुरुवत् ज्ञान प्रकाशित करता है ।

इन्द्रे॑ण रोचना दि॒वो दृ॒ळ्हानि॑ दृंहि॒तानि॑ च ।

स्थि॒राणि॒ न प॑रा॒णुदे॑ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रेण) उस ऐश्वर्य के स्वामी, परमेश्वर ने (दिवः) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश के (रोचना) कान्तियुक्त वा रुचिकारक, नाना पदार्थ (दृढानि) दृढ़ किये और (दृंहितानि) बढ़ाये, (स्थिराणि) स्थिर, सदा विद्यमान रहने वाले बनाये, (न परानुदे) जिससे वे फिर चिरकाल तक नाश न होसकें ।

अ॒पामू॒र्मिर्मद॑न्निव॒ स्तोम॑ इन्द्राजिरायते ।

वि ते॒ मदा॑ अराजिषुः ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (स्तोमः) स्तुतिप्रवाह (मदन् इव) उछलते (अपाम् ऊर्मिः इव) समुद्रों के तरंग के समान (अपाम् ऊर्मिः) प्राणों के तरंगवत् (अजिरायते) वेग से उठता है, (ते मदा) तेरे आनन्द प्रवाह (वि अराजिषुः) विविध प्रकार से विराजते हैं । परमेश्वर

के प्रति स्तुतिसमूह प्राणों के उठते प्रवाह रूप से जल तरंगवत् हृदय समुद्र से उछलता है, प्रभु के आनन्द ही मानो सर्वत्र प्रकशित हो रहे हैं।

इति पञ्चदशो वर्गः ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः। स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ११

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (स्तोतृणाम्) स्तुतिकर्त्ता जनों के (हि) अवश्य (स्तोम-वर्धनः) स्तुति समूह को बढ़ाने वाला और (उक्थ-वर्धनः) उत्तम वचन को बढ़ाने वाला (उत) और (भद्रकृत्) उनका कल्याण करने वाला है।

इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः। उप यज्ञं सुराधसम् १२

भा०—जिस प्रकार (केशिना हरी इन्द्रम् वक्षतः) केशों वाले अश्व ऐश्वर्यवान् पुरुष को ढोते हैं उसी प्रकार (केशिना हरी) क्लेशों वाले स्त्री पुरुष वा ज्ञानी और कर्मवान् पुरुष (सोम-पेयाय) सुखैश्वर्य को प्राप्त करने और उसके उपभोग के लिये (इन्द्रम् इत् वक्षतः) उस परमेश्वर को हृदय में धारण करते और उसकी ही स्तुति करते हैं। वा (केशिना हरी इन्द्रम् सोमपेयाय वक्षतः) जटावान् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी भी इन्द्र आचार्य को ज्ञान प्राप्त्यर्थ प्राप्त करते हैं। और वे दोनों, (सु-राधसम्) उत्तम आराधना योग्य (यज्ञम् उप) पूज्य, उपासनीय प्रभु की उपासना करते हैं।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ज्ञान के द्रष्टा ! (यत्) जब (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धाओं, द्वेषों और कामनाओं को (अजयः) जीत लेता है, तब तू (अपां) प्राणों के (फेनेन) बल से (नमुचेः) न छूटने वाले देह के (शिरः) शिरो भाग की ओर (उत् अवर्त्तयः) ऊर्ध्व गति करता है। (२) इसी प्रकार राजा जब स्पर्धा से सेनाओं को जीत ले तब (नमुचेः) न जीता छोड़ने योग्य शत्रु के शिर या विचार को (अपां

फेनेन) प्राप्त जनों के उपदेश-बल से (उत् अवर्त्तयः) उत्तम मार्ग में प्रवृत्त करावे। अथवा—(शिरः) शत्रु के शिर अर्थात् प्रमुख भाग को (अपां फेनेन) प्रजाओं के हिंसाकारी बल सैन्य से (उद्-अवर्त्तयः) उखाड़ दे।

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः १४

भा०—हे (इन्द्र) सत्यदर्शिन्! हे शत्रुहन्तः! तू (मायाभिः) नाना बुद्धियों से (उत्-सिसृप्सतः) ऊपर जाना चाहते हुए और (द्याम्) तेजोयुक्त प्रभुपद वा शिरोभाग के मूर्धा स्थान की ओर (आरुरुक्षतः) आरोहण करने वाले सज्जनों की रक्षा कर और (मायाभिः) छल कपटादि से ऊंचे जाने वाले (द्याम्) भूमि राज्य पर (आरुरुक्षतः) आरूढ होने वाले (दस्यून् अव अधूनुथाः) दस्युओं को नीचे गिरा दे। अर्थापत्ति के बल से यहां सज्जनों को वृद्धि करने का अभिप्राय है।

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः।
सोमपा उत्तरो भवन्॥ १५॥ १६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों के नाशक! तू (सोम-पाः) ऐश्वर्य, राष्ट्र के प्रजाजन और विद्वान् आदि का रक्षक (उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट, सबको पार ले जाने वाला (भवन्) होकर (असुन्वां संसदम्) ऐश्वर्य को न उत्पन्न करने वाली और (विषूचीम्) विपरीत अराजक दिशा से जाने वाली (संसदं) राजा वा जन-सभा को (वि-अनाशयः) विशेष रूप से नष्ट कर। इति षोडशो वर्गः॥

[१५]

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषी। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१—३, ५—७, ११, १३ निचृदुष्णिक्। ४ उष्णिक्। ८, १२ विराडुष्णिक्। ९, १० पादनिचृदुष्णिक्॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (तम् उ) उसी (पुरु-हूतं) बहुतों से स्वीकृत, (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुति किये जाने योग्य (तविषम्) बलशाली, सर्वशक्तिमान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को लक्ष्य कर (अभि प्र गायत) खूब अच्छी प्रकार गान करो । (गीर्भिः) नाना स्तुति वाणियों से (आ विवासत) आदरपूर्वक सेवा और उपासना करो ।

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी ।
गिरीरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ २ ॥

भा०—(द्वि-बर्हसः) आकाश और भूमि दोनों को धारण करनेवाले दोनों के स्वामी रूप (यस्य बृहत् सहः) जिसका बल बहुत बड़ा है वह (वृषत्वना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी दाधार) आकाश और भूमि को धारण करता है, वह (अज्रान् गिरीन्) वेग से जाने वाले मेघों को (अपः) समुद्र वा आकाश के जलों को और (स्वः) सूर्य को वा प्रकाश को भी अपने बल से (दाधार) धारण करता है ।

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! (सः) वह तू (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित, बहुतों की स्तुति प्रार्थनादि किये जाने योग्य (एकः) अकेला निःसहाय, अद्वितीय रहकर (राजसि) राजा के समान है । वह तू (एकः) अकेला ही (जैत्रा) विजय करने योग्य और (श्रवस्या) श्रवण करने योग्य धनों, अन्नों और ज्ञानों को (यन्तवे) देने के लिये (वृत्राणि जिघ्नसे) मेघों को विद्युत्वत्, आवरणकारी अज्ञानों को नाश करता है ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वीर्यवन्! हे अखण्ड शक्तिशालिन्! (ते) तेरे (तं) उस (वृषणं) महान् शक्तिसम्पन्न, सब सुखों के दाता, (पृत्सु सासहिं) संग्रामों में शत्रु को पराजय करने वाले (लोक-कृत्नुम्) समस्त लोकों को बनाने वाले और (हरि-श्रियम्) सूर्यादि लोकों और समस्त मनुष्यों के आश्रय लेने योग्य (मदं) परमानन्द की हम (गृणीमसि) स्तुति करते हैं।

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (येन) जिस संसार द्वारा (आयवे) इस संसार में पुनः २ आने वाले (मनवे) मननशील जीव संसार को (ज्योतींषि) अग्नि आदि और विद्युत्वत् चमकने वाले वेदमय ज्ञान-प्रकाश (विवेदिथ) प्राप्त कराता है वह तू (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय होकर (अस्य बर्हिषः) इस महान् संसार के बीच में (वि राजसि) विविध प्रकार से चमकता है। इति सप्तदशो वर्गः॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(तत्) वे विद्वान् जन (अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्ववत् (उक्थिनः) वेद वचन वा मन्त्रों के जानने वाले (ते) तेरे यश का (अनु स्तुवन्ति) नित्य स्तवन करते हैं। हे बलशालिन्! (दिवे दिवे) प्रति दिन, नित्य, (वृषपत्नीः) बलवान् पुरुषों द्वारा पालने योग्य (अपः) प्रकृति के परमाणुओं को (जय) अपने वश करता है। उसी प्रकार राजा की सब स्तुति करते हैं वह बल पुरुषों से पालन करने योग्य प्रजाओं और भूमियों को प्रतिदिन विजय करे।

तव॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हत्तव॒ शुष्म॑मु॒त क्रतु॑म् ।
वज्रं॑ शिशाति धि॒षणा॒ वरे॑ण्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! (तव) तेरे (त्यत् इन्द्रियम्) उस इन्द्रिय अर्थात् महान् ऐश्वर्य सामर्थ्य को और (तव) तेरे उस (बृहत् शुष्मम्) बड़े भारी बल और (क्रतुम्) ज्ञान और कर्म को और तेरे (वरेण्यम् वज्रम्) सर्वश्रेष्ठ, वरण करने योग्य बल को (धिषणा) बुद्धि वा ज्ञान ही (शिशाति) अति तीक्ष्ण कर रहा है, प्रबलता से दिखाता है ।

तव॒ द्यौरि॑न्द्र॒ पौंस्यं॑ पृथि॒वी व॑र्धति॒ श्रवः॑ ।
त्वामापः॒ पर्व॑तासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! (तव पौंस्यं) तेरे महान् पौरुष वा बल वा पुरुष भाव को (द्यौः) यह सूर्य (वर्धति) बढ़ा रहा है । और (तव श्रवः) तेरे यश को (पृथिवी) अन्नवत् यह पृथिवी (वर्धति) बढ़ा रही है । (आपः) जल और (पर्वतासः च) मेघगण भी (त्वाम् हिन्विरे) तेरी बड़ाई करते हैं ।

त्वां विष्णु॑र्बृ॒हन्क्षयो॑ मि॒त्रो गृ॑णाति॒ वरु॑णः ।
त्वां शर्धो॑ मद॒त्यनु॒ मारु॑तम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (विष्णुः) सर्वत्र फैलने वाला, प्रकाशमान सूर्य (बृहन्) महान् (क्षयः) सबको अपने में बसाने वाला, गृह के समान आश्रय देने वाला सूर्य (मित्रः) स्नेहवान् जन, और दिन और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ जन वा रात्रि भी (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करता है । और (मारुतं शर्धः) वायुओं का बल भी (त्वाम् अनु मदति) तेरे बलपर क्रीड़ा करता है ।

त्वं वृषा॒ जना॑नां॒ मंहि॑ष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।
स॒त्रा विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ दधिषे ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (त्वं) तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (वृषा) बलवान् वीर्यसेचक के तुल्य सबका पिता, सुखों का दाता और (मंहिष्ठः) सबसे पूज्य, सबसे बड़ा दानी होकर (जज्ञिषे) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है। (सत्रा) साथ ही वा सदा तू (विश्वा) समस्त जीवों और लोकों को (सु-अपत्यानि) उत्तम सन्तानों के समान (दधिषे) उनको धारता, अपनी गोद में शरण में लेता और उनको अन्नादि से पालता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

सत्रा त्वं पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि तोशसे।
नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रभो ! स्वामिन् ! शत्रुहन्तः ! (त्वं) तू (सत्रा) सत्य के बल से वा सदा एक साथ (पुरु-स्तुतः) बहुतों से स्तुति करने योग्य होता है। वह तू (एकः) अकेला अद्वितीय शक्तिशाली होकर (वृत्राणि) शत्रु सैन्यों के समान घेर लेने वाले विघ्नों को, मेघों को सूर्यवत् वा जलों को विद्युत्वत् (तोशसे) मारता, गिरा देता है। (इन्द्रात् अन्यः) उस परमैश्वर्यवान् से दूसरा कोई भी (भूयः करणं) अधिक क्रियासामर्थ्य, वा साधन को (न इन्वति) नहीं प्राप्त कर सकता है।

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् त्वा) जिस तुझ को (नाना) बहुत से जन (मन्मशः) मनन करने योग्य मन्त्रों से (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (हवन्ते) पुकारते और आहुति प्रदान वा यज्ञ, उपासना करते हैं वह तू (अत्र) इस जगत् में (अस्माकेभिः) हमारे (नृभिः) मनुष्यों सहित (स्वः) समस्त सुख को (जय) सर्वोपरि प्राप्त हो वा नायक वा आदित्यवत् सर्वोपरि विराज।

अरं॑ क्षयाय नो म॒हे विश्वा॑ रू॒पाण्या॑वि॒शन् ।
इन्द्रं॒ जैत्रा॑य हर्षया॒ शची॒पति॑म् ॥ १३ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (नः) हमारे (महे क्षयाय) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के रुचियुक्त, कान्तियुक्त पदार्थ नाना रूप वाले अश्व, गौआदि प्राणि (अरं आविशन्) खूब प्राप्त हों अथवा हमारे ही ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (विश्वा) समस्त जीव (रूपाणि अविशन्) नाना देहों को प्राप्त होते हैं। हे विद्वन् ! (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति के तुल्य इस अध्यात्मगत तेजस्वी प्रभु को भी (जैत्राय) सब अन्तःशत्रुओं और प्राकृतिक ऋद्धियों पर विजय प्राप्त करने के लिये उस (शचीपतिम्) शक्तियों के पात्र प्रभु को (हर्षय) प्रसन्न कर ॥ इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ९—१२ गायत्री। २—७ निचृद् गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र स॒म्राजं॑ चर्षणी॒नामिन्द्रं॑ स्तोता॒ नव्यं॑ गी॒र्भिः ।
नरं॑ नृ॒षाहं॒ मंहि॑ष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—(चर्षणीनाम् सम्राजं) समस्त ज्ञानदर्शी, तत्व ज्ञानी मनुष्यों के बीच में अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाले, सम्राट् के समान सर्वोपरि शोभायमान, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (नव्यं) स्तुति योग्य (नरं) नायक, परम पुरुष (नृ-साहं) मनुष्यों को वश करने वाले (मंहिष्ठम्) अतिदानशील पुरुष, प्रभु का (गीर्भिः स्तोत) वेद वाणियों से स्तुति किया करो।

यस्मि॑न्नु॒क्थानि॒ रण्य॑न्ति॒ विश्वा॑नि च श्रव॒स्या॑ ।
अ॒पामवो॒ न स॑मु॒द्रे ॥ २ ॥

भा०—(समुद्रे अपाम् अवः) जिस प्रकार समुद्र में जलों के नाना प्रवाह वा तरंग आते और इसी में लीन होजाते हैं उसी प्रकार (यस्मिन्)

जिस प्रभु में (विश्वानि उक्थानि) समस्त स्तुति-वचन और (विश्वानि श्रवस्या च) सब प्रकार के श्रवण करने योग्य कीर्त्ति वचन भी (रण्यन्ति) रमते हैं, उसी का वर्णन करते हैं। (तम् सुस्तुत्या विवासे) उस प्रभु का मैं स्तुति द्वारा भजन, सेवन और प्रकाश करूं।

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (ज्येष्ठ-राजं) बड़ों २ के राजा, बड़े २ सूर्यादि में प्रकाशमान (भरे कृत्नुम्) भरण पोषण करने योग्य संसार में जगत् को बनाने वाले (महः वाजिनम्) बड़े बल, ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी को मैं (सनिभ्यः) नाना भागों या दानों के लिये (सुस्तुत्या आविवासे) उत्तम स्तुति से उसकी सेवा, अर्चा और पूजा तथा उसके गुणों का प्रकाश करूं।

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः। हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु के (मदाः) आनन्दमय विकास वा (मदाः) आनन्ददायक व्यवहार, तृप्तिदायक जलाशयवत् रस सागर और आनन्द युक्त पुरुष (अनूनाः) किसी प्रकार भी न कम, परिपूर्ण, (गभीराः) गंभीर, (उरवः) बड़े २ और (तरुत्राः) वृक्षों के इर्द गिर्द लगे बाड़ के समान समस्त प्राणियों की रक्षा करनेवाले, वा इस संसार से पार उतारने वाले और (शूर-सातौ) शूरवीरों के प्राप्ति के अवसर, संग्रामादि में भी (हर्षुमन्तः) अति हर्षयुक्त हैं वही परमेश्वर राजा के समान सबका पालक है।

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते। येषामिन्द्रस्ते जयन्ति॥५॥

भा०—(हितेषु धनेषु) हितकारी, कल्याणजनक धनों को प्राप्त करने के निमित्त (अधिवाकाय) अध्यक्ष रूप से आज्ञा वा निर्णय वचन कहने वाले अध्यक्ष पद के लिये विद्वान् लोग (सम् इत् हवन्ते) उसी से

प्रार्थना करते हैं कि हम लोगों के ऊपर विराज कर न्याय निर्णय करे। (येषाम् इन्द्रः) जिनके पक्ष में 'इन्द्र' सत्य न्याय का द्रष्टा होता है (ते) वे (जयन्ति) विजय प्राप्त करते हैं। वे ही विवादग्रस्त धन के भागी होते हैं। 'इन्द्र':—इदम् अदर्शत् इति इन्द्रः।

तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः।
एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(एषः इन्द्रः) यह ऐश्वर्य का स्वामी, तेजस्वी प्रभु ही (वरिवस्कृत्) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है। (तम् इत्) उस को (च्यौत्नैः) बलों, ज्ञानों और (कृतेभिः) सत्कर्मों से (चर्षणयः) सब मनुष्य (आर्यन्ति) सब प्रकार से प्राप्त करते, उसको अपना स्वामी बना लेते हैं, उसकी उपासना प्रार्थना करते हैं। इति विंशो वर्गः ॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः।
महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥

भा०—इन्द्र का लक्षण और नाना भेद। (इन्द्रः ब्रह्मा) ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने से चारों वेदों का ज्ञाता महान् ज्ञानी पुरुष 'इन्द्र' है। (ऋषिः इन्द्रः) यथार्थ ज्ञान का तत्वदर्शी इन्द्र है। वह अपनी वाणी औरों को प्रदान करता है। वह (पुरुहूतः) बहुतों से आदर प्राप्त होता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों और पूज्य २ वाणियों करके (महान्) महान् है और (पुरु) बहुत प्रकार से विराजता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी महान् होने से 'ब्रह्म' है, सर्वद्रष्टा होने से 'ऋषि' है, वह बड़ी २ शक्तियों से 'महान्' है।

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः।
एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (स्तोम्यः) स्तुति योग्य वचनों से वा सूक्तों से स्तुति करने योग्य है। (सः हव्यः) वह यज्ञ और प्रार्थनादि

से सत्कार योग्य है। वह (सत्यः) सत्य स्वरूप, (सत्वा) बलवान्, (तुवि-कूर्मिः) बहुत से नाना कर्म करने हारा है। वह (एकः चित्) अकेला ही, (सन्) सर्वत्र प्राप्त और (अभि-भूतिः) सब विघ्नों और शत्रु जनों का पराजय करने हारा है।

तमर्कैभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः ।
इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥

भा०—(तम् इन्द्रं) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञान के द्रष्टा विद्वान् लोग (अर्केभिः) अर्चना करने योग्य मन्त्रों से और (तं सामभिः) उसी को साम गानों से और (तं गायत्रैः) उसीको गायत्री आदि नाना छन्दों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। उसी का गुण गान कर उसकी महिमा का विस्तार करते हैं।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥

भा०—और वे मनुष्य (वस्यः) उत्तम ऐश्वर्य को (अच्छ प्रणेतारम्) साक्षात् प्रयाण करने वाले और (समत्सु) संग्रामवत् संदिग्ध, भययुक्त संकट के अवसरों में भी (ज्योतिः कर्त्तारम्) प्रकाश करने वाले, (युधा) युद्ध द्वारा (अमित्रान् ससह्वांसं) स्नेह से रहित शत्रुवर्ग के पराजित करने वाले की ही विद्वान् लोग स्तुति करते हैं।

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ११ ॥

भा०—(सः पुरुहूतः) वह बहुतों से पुकारे जाने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, परमैश्वर्यवान् प्रभु, (पप्रिः) सब का पालक (विश्वाः द्विषः) सब अप्रीति-कर शत्रुओं वा संकटों से (नावा) नौका से नदियों के समान (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक, सुख से (अति पारयाति) पार करे।

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ १२ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! प्रभो ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों और बलों करके (दशस्य) सुख प्रदान कर और (गातुया च) उत्तम सुख की ओर मार्ग दिखा । (अच्छ च नः सुम्नं नेषि) हमें सुख की ओर ले चल । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१७]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७, ८ गायत्री । ४—६, ९—१२ निचृद् गायत्री । १३ विराड् गायत्री । १४ आसुरी बृहती । १५ आर्षी भुरिग् बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे विद्वन् ! राजन् ! तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो, आ, (ते) तेरे लिये ही हम (इमं सोमं) इस पुत्र वा ऐश्वर्य को (सु-सुम) उत्पन्न करते हैं । हे प्रभो ! तेरे लिये ही इस सोम, आत्मा को सन्मार्ग पर चलाते हैं, (इमं पिब) इसकी रक्षा कर । (इदं बर्हिः) यह वृद्धियुक्त प्रजाजन एवं आसनवत् (मम सदः) मेरा दिया आपके विराजने के लिये है । उस पर (आ सदः) आप विराजिये ।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (केशिना हरी) केशों वाले दो अश्व स्वामी के रथ को लेजाते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ब्रह्म-युजा) वेद ज्ञान के सहयोगी (केशिना हरी) केशोंवत्, रश्मियों तेजों को धारण करने वाले स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य, (त्वा आ वहताम्) तुझे अपने में

धारण करें। तू (नः ब्रह्माणि) हमारे वेद-मन्त्रों को (उप श्रृणु) श्रवण कर। हे विद्वन् ! गुरो ! तू हमें नाना वेदज्ञान समीप विराज कर (उप-श्रृणु) श्रवण करा॥ अन्तर्भावितो णिः ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(वयं ब्रह्माणः) हम ब्राह्मण, स्तुतिकर्त्ता एवं ब्रह्मचारी जन, (सोमिनः) 'सोम' अर्थात् उत्तम ज्ञान, अन्न, सन्तान से युक्त और (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादिमान् होकर (युजा) योग द्वारा वा उत्तम गुरु शिष्यरूप सम्बन्ध द्वारा (सोमपां त्वाम्) सोम, शिष्यादि के पालक तुझको (हवामहे) प्रार्थना करते हैं। इसी प्रकार हे राजन् ! हम (ब्रह्माणः) धनसम्पन्न जन, ऐश्वर्यवान् और अन्नादिसम्पन्न होकर तुझे ऐश्वर्य पालक स्वीकार करें।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुकुट वा उत्तम मुख नासिका वाले, सौम्यमुख विद्वन् ! राजन् ! तू (सुतावतः नः) पुत्रवान् एवं ऐश्वर्यादि युक्त हमें (आ याहि) प्राप्त हो। (अस्माकं सुस्तुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियों को सुन वा हमें उत्तम उपदेश प्रदान कर। (अन्धसः सुपिब) अन्नों का उपभोग, उत्तम भोजन कीजिये। हे स्वामिन् ! आप (अन्धसः) प्राणधारक जीव का पालन करें।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार अन्न ओषधि सोमादि का रस (कुक्ष्योः) कोखों, उदर में डाला जाकर अंश २ में चला जाता है और मनुष्य जिह्वा से

(मधु) अन्न को ग्रहण करता है इसी प्रकार हे विद्वान् शिष्य मैं (ते) तेरे (कुक्ष्योः) कोखों को (आसिञ्चामि) जल से शुद्ध करता हूं । वह स्नान-जल (गात्रा अनु वि धावतु) अन्य अंगों को भी प्राप्त होकर पवित्र करे। इस प्रकार शुद्ध होकर हे शिष्य ! तू (जिह्वया) वाणी से (मधु) ब्रह्म-ज्ञान वेद को (गृभाय) धारण कर । (२) राजा की दो कुक्षियां हैं एक सैन्यबल, दूसरा राजकोष, प्रजा दोनों को भरे । वह ऐश्वर्य राष्ट्र प्रत्येक अंग में पहुंचे, राजा वाणी से सदा मधुर भाषण करे। वा अपनी आज्ञा-मात्र से मधुवत् कर ग्रहण करे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३तव ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सोमः स्वादुः तन्वे मधुमान्, हृदे शम्) अन्नादि ओषधिरस स्वादु, शरीर को सुख और पोषणप्रद, और हृदय को शान्ति-दायक होता है इसी प्रकार हे गुरो ! हे विद्वन् ! यह (सोमः) शिष्य (संसदे स्वादुः) उत्तम ज्ञान के दाता तुझ गुरु के ज्ञान को उत्तम रीति से ग्रहण करने हारा हो। और वह (तव तन्वे) तेरी शरीर-सेवा के लिये वा तेरे विस्तृत ज्ञान के लिये (मधुमान्) वेदज्ञान से युक्त हो। वह (ते हृदे) तेरे हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक हो ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(जनीः इवः संवृतः अभि) जिस प्रकार स्त्रियें अच्छी प्रकार वस्त्र आभरणादि से युक्त होकर, वा अच्छी प्रकार वरण करके पति को प्राप्त होती हैं अभिमुख होकर उसी प्रकार हे (इन्द्र) आचार्य ! हे विद्या के दाता ! हे (विचर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! (अयम् सोमः) यह शास्य शिष्य वा सावित्री माता के गर्भ में उत्पन्न पुत्र भी (सं-वृतः) तेरे द्वारा अच्छी प्रकार वृत, स्वीकृत होकर वा (सं-वृतः) सम्यक् रीति

से आचरणवान् होकर (त्वा अभि सर्पन्तु) तुझे प्राप्त हो और (प्र सर्पन्तु) विद्या, चरित्र के मार्ग में आगे बढ़े। (२) राष्ट्रपक्ष में 'सोम' प्रजावर्ग (संवृतः) अच्छी प्रकार तुझे राजा वरे और (सं वृतः) सुरक्षित होकर तुझ उत्तम अध्यक्ष को प्राप्त हो, उन्नति करें।

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥

भा०—वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन। जिस प्रकार (सु-बाहुः) उत्तम बाहु (तुवि-ग्रीवः) अंगुलि आदि विस्तृत एवं बहुत सी गर्दनों वाला, (वपोदरः) स्थूल, दृढ़ होकर (वृत्राणि जिघ्नते) बाधक विघ्नों का नाश करता है। उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रु के दृढ़ बलों का नाशक राजा, सेनापति भी (तुवि-ग्रीवः) संख्या में बहुत एवं बड़ी ग्रीवा वाला दृढ़ स्कन्ध, नाना सैन्य बलों से युक्त, (वपोदरः) 'वपा' छेदन भेदन की शक्ति को अपने राष्ट्र के बीच में धारण करता हुआ (सुबाहुः) उत्तम बाहुमान्, दृढ़ भुजों वाला होकर (अन्धसः मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होकर, (वृत्राणि) राज्य के बाधक कारणों को (जिघ्नते) नाश करे। राजा वा सेनापति शरीर में बाहुवत् हैं, यह श्लेष से कहा। (२) इसी प्रकार परमेश्वर सर्व विघ्ननाशक है। वह विश्वतोमुख होने से बहुग्रीवावत् है, 'वपा' सर्व जगदुत्पादक शक्ति से युक्त है, वह जीव सर्ग के तृप्ति अर्थात् अन्न के लिये (वृत्राणि जिघ्नते) जलों, मेघों को लाता, बरसाता है।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पुरः प्र इहि) आ, बढ़, प्रकट हो, तू (ओजसा) बल पराक्रम से (विश्वस्य ईशानः) सब जगत् का स्वामी है। हे (वृत्रहन्) सूर्यवत् मेघों को लाने और दुष्टों

को तारने हारे ! तू (वृत्राणि जहि) दुष्टों को दण्ड दे और जलों को बरसा। हे राजन् ! तू (वृत्राणि जहि) धनों को प्राप्त कर।

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि।
यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! (येन) जिसके बल से तू (सुन्वते यजमानाय) अन्नादि उत्पन्न करने वाले और करादि देने वाले प्रजावर्ग के हितार्थ (वसु प्रयच्छसि) ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (ते अङ्कुशः) तेरा अङ्कुश शत्रु-वर्गरूप गज का वश करनेवाला साधन, शासन बल (दीर्घः अस्तु) बहुत विस्तृत हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे गुरो ! (ते) तेरा (अयं) यह (बर्हिषि) उत्तम शासन वा यज्ञ में (निपूतः) निरन्तर पवित्र (सोमः) शिष्य विराजमान है, (ईम् अस्य आ इहि) उसको तू प्राप्त हो (आ द्रव, आ पिब) उस पर कृपा कर और उसको अपनी रक्षा में रख। (२) हे राजन् (बर्हिषि अधि) राष्ट्र के, प्रजाजन के अध्यक्ष पद पर विराजमान रहने से नितरां पवित्र यह ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है, तू उसे शीघ्र प्राप्त कर और उसका उपभोग और पालन कर।

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥

भा०—(शाचि-गो) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों वाले राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! हे (शाचि-पूजन) शक्तियों से या शक्ति-शाली सेनाओं के कारण पूजनीय, हे (आखण्डल) शत्रुओं को सब ओर छिन्न भिन्न करने हारे ! (अयं) यह (सुतः) ऐश्वर्य देने वाला प्रजाजन (ते रणाय) तेरे ही रमण करने के लिये है। तू (प्र हूयसे) बड़े आदर से

बुलाया जाता है। (२) हे (शाचि-गो) शक्तियों से सूर्यादि को सञ्चालित करने वाले वा व्यक्त वाणी से बोलने योग्य वेद वाणि के स्वामिन्! हे (शाचि-पूजन) व्यक्त वाणि द्वारा पूजने योग्य! यह उत्पन्न वा शिष्य तेरी ही (रणाय) प्रसन्नता के लिये है। हे (आखण्डल) प्रलयकारिन्! विघ्ननाशक! हे संशयच्छेदक! तुझे आदर से बुलाते हैं।

यस्ते॑ शृङ्गवृ॒षो न॑पा॒त्प्रण॑पात्कुण्ड॒पाय्य॑ः।
न्य॑स्मिन्दध्र॒ आ मन॑ः॥ १३॥

भा०—हे (शृङ्गवृषः नपात्) हिंसाकारी बाणों की वर्षा करने वाले प्रबल सैन्य को न गिरने देने वाले! उसके स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरा (प्रणपात्) उत्तम पुत्रवत् पालनीय (कुण्ड-पाय्यः) कुण्डों के जलादि से पालन करने योग्य राष्ट्र रूप ऐश्वर्य है (अस्मिन्) उसमें ही (मनः आ दध्रे) सब अपना मनोयोग रक्खें।

वास्तो॑ष्पते ध्रु॒वा स्थूणांस॑त्रं सो॒म्याना॑म्।
द्र॒प्सो भे॒त्ता पु॒रां शश्व॑तीना॒मिन्द्रो॒ मुनी॑नां॒ सखा॑॥ १४॥

भा०—हे (वास्तोष्पते) 'वास्तु' अर्थात् नगरादि के पालक! जिस प्रकार गृह का (स्थूणा ध्रुवा) मुख्य स्तम्भ सर्वाश्रय हो उसी प्रकार तेरे राष्ट्र में (ध्रुवा) तू पृथिवीवत् (स्थूणा) मुख्य स्तम्भ के समान सबका आश्रय है। (सोम्यानां) ऐश्वर्य पाने योग्य शासकों, वा शिष्यों के हितैषी ज्ञानी पुरुषों को (अंसत्रं) कन्धों के विशेष कवचवत् उनके रक्षक हो। (द्रप्सः) द्रुतगति से आक्रमण करने वाले (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (शश्वतीनां पुरां) बहुत से शत्रु नगरों का (भेत्ता) तोड़ने वाला हो। और वह (मुनीनां) मन से मनन करने वाले ज्ञानविचारक मनुष्यों का सदा (सखा) मित्र हो।

पृदा॑कुसानुर्यज॒तो ग॒वेष॑ण॒ एक॒ः सन्न॒भि भूय॑सः।
भूर्णि॒मश्वं॑ नयत्तु॒जा पु॒रो गृ॒भेन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑॥१५॥२४॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् राजा (पृदाकु-सानुः) 'पृत्' अर्थात् संग्रामों के अवसरों में सन्मार्ग को बतलाने वाला और उन्नति पद पर स्थित, (यजतः) पूज्य, दानी और (गवेषणः) भूमि राष्ट्र को चाहने वाला होकर (भूयसः अभि) बहुत से शत्रुओं पर (एकः सन्) अकेला रह-कर भी (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (पुरः) अपने समक्ष (तुजा गृभा) शत्रुहिंसाकारी पकड़ या वशीकरण सामर्थ्य से (भूर्णिम्) सबके भरण पोषण करने में समर्थ (अश्वं) राष्ट्र वा सैन्य को और (इन्द्रं) ऐश्वर्य को भी (नयत्) चलावे। अर्थात् राष्ट्र और कोष को अपने अधीन सञ्चालित करे। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१८]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः॥ देवताः—१—७, १०—२२ आदित्याः। ८ अश्विनौ। ९ अग्निसूर्यानिलाः॥ छन्दः—१, १३, १५, १६ पादनिचृदुष्णिक्॥ २ आर्ची स्वराडुष्णिक्। ३, ८, १०, ११, १७, १८, २२ उष्णिक्। ४, ९, २१ विराडुष्णिक्। ५–७, १२, १४, १९, २० निचृदुष्णिक्॥

द्वाविंशत्यृचं सूक्तम्॥

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः।
आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि॥ १॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (आदित्यानां) आदित्यवत् तेजस्वी वीर्यवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के (सवीमनि) शासन में रहकर (एषां) इनके (सुम्नं) सुखकारक (अपूर्व्यम्) अपूर्व ज्ञान की (ह नूनं) अवश्य (भिक्षेत) याचना किया करे।

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम्।
अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः॥ २॥

भा०—(एषां) इन (आदित्यानां) तेजस्वी पुरुषों के (पन्थाः)

मार्ग (अनर्वाणः) निर्दोष, हिंसकादि से रहित, निष्कण्टक, (अदब्धः) अहिंसित, अक्षय, (पायवः) पालक और (सुगे-वृधः) सुख के बढ़ाने वाले (सन्ति) होते हैं ।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(सविता) उत्पादक माता पिता, आचार्य, (भगः) सेवा योग्य एवं ऐश्वर्यवान् स्वामी (वरुणः) दुःखवारक राजा, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी अध्यक्ष, ये सब (स-प्रथः) अति विस्तृत (यत्) जिस (शर्म) सुख, शान्ति वा आश्रय को हम (ईमहे) चाहते हैं (यच्छन्तु) प्रदान करें । (२) सविता, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा नाम वाला प्रभु हमें हमारा अभिलषित सुख प्रदान करे। इस पक्ष में— 'यच्छन्तु' अत्र वचनव्यत्ययः ।

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि ।
स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अदिते) अखण्ड चरित्रवाली ! भूमिवत् वा मातावत् पालन करने वाली ! हे (पुरुप्रिये) बहुतों को प्रिय लगने हारी, सबको प्रसन्न करने हारी (देवि) विदुषि ! हे (अरिष्टभर्मन्) सुखों को पूर्ण करने वाली, अहिंसित बालक पुत्रों को पोषण करने वाली वा वाणी (देवेभिः) शुभ गुणवान् (सूरिभिः) विद्वान् (सु-शर्मभिः) उत्तम गृहस्थों सहित (स्मत् आगहि) अच्छी प्रकार आदर से प्राप्त हो ।

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(ते हि) वे (अदितेः पुत्रासः) भूमि के पुत्र वा भूमि माता के बहुतों की रक्षा करने वाले तेजस्वी पुरुष, (उरु-चक्रयः) बड़े २ कार्य करने वाले (अनेहसः) निष्पाप लोग (अंहोः-चित्) पापी के भी

(द्वेषांसि) अप्रीतिकारक द्वेष भागों को (योतवे विदुः) दूर करने का उपाय जानते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अदि॑ति॒र्नो॒ दिवा॑ प॒शुमदि॑ति॒र्नक्त॒मद्व॑याः ।
अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सः स॒दावृ॑धा ॥ ६ ॥

भा०—(अद्वयाः) अद्वितीय वा बाहर भीतर दोनों में दो भाव न रखती हुई, (अदितिः) विदुषी माता (नः) हमारे (पशुम्) पशुओं की रक्षा करे। वह (अदितिः) अखण्ड और अदीन राजशक्ति (नक्तम्) रात को भी (पातु) पालन करे। वह (सदावृधा) प्रजाजनों को बालक-वत् पुष्ट करने वाली होकर (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे।

उ॒त स्या नो॒ दिवा॑ म॒तिरदि॑तिरू॒त्या ग॑मत् ।
सा शन्ता॑ति॒ मय॑स्कर॒दप॒ स्रिधः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (अदितिः) अदीन भाव से रहने वाली शक्ति, (मतिः) बुद्धिमती होकर (नः) हमें (दिवा) दिन के समय (ऊत्या) रक्षा और ज्ञानसहित (आ गमत्) आवे। (सा) वह (शन्ताति) शान्तिदायक (मयः) सुख (करत्) प्रदान करे और (स्रिधः) हिंसक शत्रुओं को (अप करत्) दूर करे।

उ॒त त्या दैव्या॑ भि॒षजा॒ शं नः॑ करतो अ॒श्विना॑ ।
यु॒यु॒याता॑मि॒तो रपो॒ अप॒ स्रिधः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और (त्या) वे (दैव्या) 'देव' अर्थात् दिव्यगुण युक्त पदार्थों में कुशल वा 'देव' अर्थात् मनुष्यों के हितकारी (भिषजा) दोनों प्रकार के रोगचिकित्सक (अश्विना) विद्या के क्षेत्र में विस्तृत ज्ञान वाले (नः शं करतः) हमें शान्ति प्रदान करें। (इतः) इस देह या राष्ट्र से (रपः) दुःख वा पापपरिणाम को (युयुयाताम्) पृथक् करें और (स्रिधः अपः) बाधक विघ्नों और रोगादि को भी दूर करें।

शम॒ग्निर॒ग्निभिः॑ कर॒च्छं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑ ।
शं वातो॑ वात्वर॒पा अप॒ स्रिधः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि तत्व (अग्निभिः) अपने व्यापन और दाह आदि गुणों से युक्त पदार्थों से (नः शम् करत्) हमें शान्ति प्रदान करे। (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें शान्ति सुखदायक और रोगशमन करने वाला होकर (तपतु) तपे। (वातः) वायु (अरपाः) रोग रहित होकर (नः शं वातु) हमें शान्तिदायक होकर वहे। (स्रिधः अप) रोगादि दुःख-जनक पीड़ाएं दूर हों।

अपामी॑वा॒मप॒ स्रिध॒मप॑ सेधत दु॒र्मतिम् ।
आदि॑त्यासो यु॒योत॑ना नो॒ अंह॑सः ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) उत्तम माता पिता गुरु आदि के पुत्र ! एवं हे पुत्रों के उत्तम पिता मातादि गुरुजनो ! आप लोग (अमीवाम् अप) रोग को दूर करो। (स्रिधम्) नाशकारी (दुर्मतिम्) दुष्टमति को (अप सेधत) दूर करो। और (नः अंहसः युयोतन) हमारे पापों को दूर करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यु॒योता॒ शरु॑म॒स्मदाँ॒ आदि॑त्यास उ॒ताम॑तिम् ।
ऋ॒धग्द्वेषः॑ कृणुत विश्ववेदसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के जानने वाले (आदि-त्यासः) आदित्यवत् तेजस्वी एवं संसार के समस्त पदार्थों से ज्ञान और उपयोगी पदार्थों के लेने वाले पुरुषो ! आप लोग (अस्मत् शरुं) हम से 'शरु' अर्थात् हिंसक और हिंसाभाव (उत) तथा (अमतिम्) मूर्ख और मूर्खता को (युयोत) पृथक् करो। और (द्वेषः) द्वेष को भी (ऋधक् कृणुत) पृथक् करो।

तत्सु नः॒ शर्म॑ यच्छ॒तादि॑त्या॒ यन्मुमो॑चति ।
एन॑स्वन्तं चि॒देन॑सः सुदानवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी, एवं अदिति अर्थात् अखण्ड परब्रह्म के उपासक वा वेदवाणी में निष्णात विद्वान् पुरुषो ! हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील जनो ! (यत्) जो (एनस्वन्तं चित्) पापी को (एनसः मुमोचति) पाप से मुक्त कर देता है, आप (तत् शर्म) वह शान्ति सुखदायक, शरण वा दण्डव्यवस्था (नः यच्छत) हमें प्रदान करो ।

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।
स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (कश्चित्) कोई (मर्त्यः) हिंसक मनुष्य (रक्षस्त्वेन) अपने हिंसक स्वभाव से (नः) हमें (रिरिक्षति) मारना या पीड़ित करना चाहता है (सः) वह (युः) दुःखदायी (जनः) मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (रिरिषीष्ट) पीड़ित होता है । हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः ॥

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मत्रा) हम लोगों में (दुर्हणावान्) दुःखदायी, पीड़ा देने वाला और (द्वयुः) हमारे प्रति दो प्रकार का भाव—बाहर कुछ और भीतर कुछ, प्रत्यक्ष में कुछ और परोक्ष में कुछ भाव—रखता है, (तं) उस (दुःशंसं) दुर्गृहीत नाम वाले, बदनाम वा बुरी बात करने वाले (रिपुम् मर्त्यम्) शत्रु, पापी पुरुष को (अघम् सम्-अश्नवत्) पाप ही व्याप लेता और नष्ट कर देता है ।

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् ।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (वसवः) माता पिता, गृहस्थादि आश्रमों में वास करने वाले मनुष्यो ! आप लोग (पाकत्रा) परिपक्व ज्ञान वाले तपस्वी जनों के अधीन (स्थन) होकर रहो और

(द्वयुं अद्वयुं च) दो भावों से रहने वाले, कपटी और दो भावों से न रहकर एक भाव से रहने वाले निष्कपट (मर्त्यं) मनुष्य को (हृत्सु उप जानीथ) हृदयों तक में खूब जाना करो। मनुष्यों को उनके हृदयों से पहचाना करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे।
द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (द्यावाक्षाम) सूर्य और पृथिवीवत् तेजस्वी और क्षमा-शील, माता पिता गुरु जनो! हम लोग (पर्वतानां) मेघों वा पर्वतों के और (अपां) जलों के बीच (शर्म) शान्ति सुखदायक शरण या गृह के समान सुरक्षित, (पर्वतानां अपां) पालक साधनों वाले दृढ़ बलवान् महापुरुषों और आप्तजनों के बीच (शर्म वृणीमहे) शान्ति सुख को प्राप्त करें। आप दोनों (रपः) पापको (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (कृतम्) करो।

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः।
अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥ १७ ॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में या आश्रमों में बसे माता पितादि जनों (ते) वे आप लोग (युष्माकं) अपने (शर्मणा) दुष्टों के नाशक, शान्तिदायक कर्म से (विश्वानि दुरिता) सब दुष्टाचरणों से (नावा) नौका से जलों के समान (अति पिपर्त्तन) पार करो।

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) अपनी शरण में लेने वाले एवं तेजस्वी और हे (सु-महसः) उत्तम प्रकाशवान्, ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (तुचे तनयाय) पुत्र पौत्र के (जीवसे) जीवन के लिये (तत्) वह (द्राघीयः आयुः कृणोतन) अति दीर्घ आयु करो।

यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।
युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्याः) विद्वान् तेजस्वी सूर्य किरणोंवत् ज्ञानों का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (हीडः) प्राप्त करने योग्य (यज्ञः) सत्संग और विद्या दान सदा (अन्तरे अस्ति) आपके समीप ही रहता है । अतः आप लोग (मृडत) सदा सुखी करो (युष्मे इत्) हम लोग आप लोगों के अधीन (अपि) भी (वः सजात्ये स्मसि) आपके पुत्र के समान होते हैं ।

बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना ।
मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥ २० ॥

भा०—हम लोग (स्वस्तये) अपने सुख कल्याण के लिये (बृहद् वरूथं) बड़े भारी कष्टनिवारक गृह के समान शरण करने योग्य (मरुतां) मनुष्यों वा सैन्य जनों के बीच (देवं) सूर्यवत् तेजस्वी और (अश्विना) व्यापक सामर्थ्यवान् माता पिता, (मित्र) स्नेही बन्धुजन और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (ईमहे) प्राप्त करें आप लोगों से हम गृहादि की याचना करें ।

अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम् ।
त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥ २१ ॥

भा०—हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय ! हे (वरुण) श्रेष्ठ ! हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! आप लोग (नः) हमें (त्रि-वरूथं) तीन गृहों से युक्त, वा शीत, आतप, वर्षा तीनों से बचाने वाला (अनेहः) विघ्न बाधा से रहित (छर्दिः) गृह, शरण (यन्त) प्रदान करो ।

ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥ २२ ॥ २८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, परमेश्वर के उपासको! सूर्य की किरणों के तुल्य ज्ञान के प्रकाशक एवं शोकादि को अन्धकारवत् दूर करने हारे तपस्वी जनो! (ये चित् हि) जो हम (मृत्यु-बन्धवः) मौत के बन्धु होकर (मनवः स्मसि) मननशील मनुष्य हैं। अतः तू (नः आयुः) हमारी आयु को (जीवसे प्र तिरेतन) दीर्घजीवन के लिये बढ़ा। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[१९]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ देवता—१—३३ अग्निः। ३४, ३५ आदित्याः। ३६, ३७ त्रसदस्योर्दानस्तुतिः॥ छन्दः—१, ३, १५, २१, २३, २८, ३२ निचृदुष्णिक्। २७ भुरिगार्ची विराडुष्णिक्। ५, १९, ३० उष्णिक् ककुप्। १३ पुर उष्णिक्। ७, ९, ३४ पादनिचृदुष्णिक्। ११, १७, ३६ विराडुष्णिक्। २५ आर्चीस्वराडुष्णिक्। २, २२, २९, ३७ विराट् पंक्तिः। ४, ६, १२, १६, २०, ३१ निचृत् पंक्तिः। ८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः। १० सतः पंक्तिः। १४ पंक्तिः। १८, ३३ पादनिचृत् पंक्तिः। २४, २६ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। ३५ स्वराड् बृहती॥ सप्तत्रिंशदृचं सूक्तम्॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।
देवत्रा हव्यमोहिरे॥ १॥

भा०—जिस (देवं) तेजस्वी, सर्व सुखदाता, परम पुरुष को (देवासः) सब मनुष्य और पृथिवी सूर्यादि गण (अरतिं) अपना स्वामी, और सबसे अधिक ज्ञानवान् रूप से (दधन्विरे) धारण करते हैं और जिसको वे (देवत्रा) विद्वानों, तेजस्वियों, दानियों और ज्ञानप्रकाशकों में से (हव्यम् आ ऊहिरे) सत्य मानते हैं (तं) उस (स्वः-नरं) सबके नायक संचालक एवं सूर्य, और प्रकाश को लाने और मोक्ष वा सूर्यवत् प्रभु पद तक पहुंचाने वाले की (गूर्धय) स्तुति करो।

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! विद्वन् ! हे (सोभरे) उत्तम रीति से प्रजा के पोषण करने हारे ! तू (इम्) इस (अध्वराय) यज्ञ, और अविनाश के लिये (पूर्व्यम्) सब से पूर्व विद्यमान एवं विद्या, बल में पूर्ण (अस्य सोम्यस्य) सोम योग्य, पुत्र शिष्यादि के हितकारी ऐश्वर्य से सम्पाद्य इस (मेधस्य) सत्संग यज्ञ के (यन्तुरं) नियन्ता, (विभूत-रातिं) प्रचुर दानशील, (चित्र-शोचिषम्) अद्भुत तेजस्वी, (अग्निम्) अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक को (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार आदर कर । उसको मुख्य पद पर स्थापित कर । (२) इसी प्रकार इस संसार रूप यज्ञ के नियन्ता प्रभु की स्तुति करो ।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य यज्ञस्य) इस यज्ञ के (सु-क्रतुम्) उत्तम रीति से बनाने और जानने वाले, (होतारम्) सर्व ऐश्वर्य के दाता, (अमर्त्यम्) अविनाशी, (देवत्रा देवं) देवों, प्रकाशमान सूर्यादि के भी प्रकाशक, दाताओं के भी दाता, (यजिष्ठं) अति पूज्य, दानी, (त्वा) तुझ स्वामी को हम (ववृमहे) वरण करते हैं, तुझे अपनाते, तेरी स्तुति गाते, और तेरी उपासना करते हैं ।

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् बल को नष्ट न होने देने वाला वा बल से उत्पन्न, उत्तम ऐश्वर्य युक्त, दीप्तियुक्त, उत्तम शोधक, वह प्राण अपान देह के रक्तादि में भी सुख देता है, हे विद्वन् ! तू उसको जाने, उसी प्रकार तू (उर्जः नपातम्) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, अन्न के

पालक, सैन्य बल को नाव के समान पार लेजाने वाला, (सु-भगं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुख सेवने योग्य (श्रेष्ठ-शोचिषम्) उत्तम कान्तियुक्त, को (दिवि) ज्ञान और व्यवहार के लिये (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार उपासना कर। (सः) वह (नः) हमें, (मित्रस्य) स्नेही मित्र, (वरुणस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ राजा, और (सः) वह (अपां) जलवत् शान्तिसुखदायक आप्तजनों के (सुम्नं) सुख को भी (यक्षते) प्रदान करता है।

यः स॒मिधा॒ य आहु॑ती॒ यो वेदे॑न द॒दाश॒ मर्तो॑ अ॒ग्नये॑।
यो नम॑सा स्वध्व॒रः ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—(यः) जो (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक, यज्ञशील, (मर्त्तः) पुरुष (नमसा) अन्न से, या विनय श्रद्धा से (यः) जो (समिधा) काष्ठ से, (यः आहुती) जो आहुति से, (यः वेदेन) जो वेद से, वेद के अध्ययन, मनन, श्रवणादि करते हुए (अग्नये) अग्नि में आहुतिवत्, उस ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, सर्वगुरु परमेश्वर के हाथों अपने को (ददाश) प्रदान करता है उसी प्रकार जो राष्ट्रजन तेजस्वी अग्रणी राजा के हाथ अपने को सौंप देता है, उसके ही—इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

तस्येदर्व॑न्तो रंहयन्त आ॒शव॒स्तस्य॑ द्यु॒म्नित॑मं॒ यशः॑।
न तमंहो॑ दे॒वकृ॑तं॒ कुत॑श्च॒न न मर्त्य॑कृतं नशत् ॥ ६ ॥

भा०—(तस्य इत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः) वेग से जाने वाले अश्व (रंहयन्ते) वेग से गमन करते हैं (तस्य) उसका ही (यशः द्युम्नितमम्) यश अति उज्वल होता है, (तम्) उस तक (देवकृतं) विद्वानों और (मर्त्यकृतं) मनुष्यों का किया (अंहः) पाप या अपराध कर्म (कुतः चन न नशत्) किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त हो। अर्थात् यज्ञशील उपासक को किसी प्रकार का पाप स्पर्श नहीं करता।

स्व॒ग्नयो॑ वो अ॒ग्निभिः॒ स्याम॑ सूनो सहस ऊर्जां पते।
सु॒वीर॒स्त्वम॑स्म॒युः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक ! हे (ऊर्जां पते) बलवान् पराक्रमी सैन्यों के पालक ! हे (अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वः अग्निभिः) तुम्हारे अग्रणी, ज्ञानी पुरुषों द्वारा (सु-अग्नयः) उत्तम सुखजनक अग्नियों वा प्रधान नायकों से युक्त (स्याम) होवें। हे अग्रणी ! (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला हमारा स्वामी, (सुवीरः) उत्तम वीर और वीरों का नायक है ।

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (अतिथिः न) अतिथि के समान पूज्य, आत्मा के समान व्यापक, (प्रशंसमानः) उत्तम रीति से उपदेश करता हुआ, (मित्रियः) स्नेही मित्र होने योग्य, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, (रथः न) रथवत् रमणीय, (वेद्यः) परम गम्य है। हे प्रभो ! (त्वे) तुझ में (क्षेमासः) निवास करने वाले (साधवः) साधक लोग (अपि सन्ति) निमग्न होकर रहते हैं। (त्वं) तू (रयीणां राजा) समस्त ऐश्वर्यों का राजा है ।

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः ।
स धीभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! (सः) वह पुरुष (अद्धा) सचमुच (दाश्वध्वरः) दानशील, सफल यज्ञ वाला (मर्त्तः) मनुष्य होता है और (सः प्रशस्यः) वही प्रशंसनीय होता है, (सः) वही (धीभिः) कर्मों और उत्तम बुद्धियों से (सनिता अस्तु) दान देने और ऐश्वर्य का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला भी (अस्तु) हो जो तेरे अधीन अपने को सौंपे हुए है ।

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् १०।३०

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (यस्य अध्वराय) जिस को नाश न होने देने के लिये वा जिसके यज्ञ की रक्षा के लिये वा जिस राष्ट्र के अहिंसक, पालक पद के लिये (क्षयद्-वीरः) शत्रुओं वा अधीन रहने वाले वीरों का स्वामी होकर (त्वं) तू (ऊर्ध्वः) ऊपर अध्यक्ष होकर (तिष्ठसि) विराजता है, (सः) वह ही (अर्वद्भिः) वीर विद्वानों और (सः विपन्युभिः) वह विशेष व्यवहारज्ञों और (सः शूरैः) वह शूरवीरों सहित (सनिता) ऐश्वर्य का भोक्ता और (सः सनिता) वही ऐश्वर्य का दाता होकर (कृतं साधते) कार्य सिद्ध करता है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।
हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः गृहे चनः दधीत हव्या वेदिषत्) घर में आग पाचन करता है, नाना अन्न प्राप्त कराता है, उसी प्रकार (यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर में (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (वपुः) संशयों को छेदन करने में कुशल और (विश्व-वार्यः) सबसे वरण करने योग्य, सर्व-प्रिय होकर (चनः स्तोमं) प्रवचन करने योग्य स्तुति योग्य मन्त्र समूह को (दधीत) धारण करता है वा और (विषः) विविध प्रकार से उप-भोग्य वा दातव्य नाना (हव्या वा) भोज्य अन्नों और ज्ञानों को (वेवि-षद्) प्राप्त कराता है । चनः—पचतेर्वा–वचेर्वा । पचनः, वचनः । वर्ण-लोपश्छान्दसः । चनः ।

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥ १२ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने वाले ! हे गुरु के अधीन बसने वाले विद्वन् ! हे (सहसः यहो) बलवान् पिता के पुत्र ! शिष्य ! तू (स्तुवतः) उपदेष्टा (विप्रस्य) बुद्धिमान् और (विविदुषः) विशेष विद्यावान्, ज्ञानी पुरुष के (वचः) वचन को (अवोः-देवम्) परमेश्वर से नीचे और (उपरि-

मर्त्यं) साधारण मनुष्यों से ऊपर (कृधि) कर । और (यक्षतमस्य) अति शीघ्रकारी, अति कुशल वा पुरुष के (रातिषु) दानों में से (वचः) वचन, उपदेश को भी तू ईश्वर से न्यून और सामान्य मानवों से अधिक श्रद्धायोग्य जान ।

यो अ॒ग्निं ह॒व्यदा॑तिभि॒र्नमो॑भिर्वा सु॒दक्ष॑मा वि॒वास॑ति ।
गि॒रा वा॑जि॒रशो॑चिषम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (हव्य-दातिभिः) चरु आदि हव्य पदार्थों की आहुतियों से (अग्निम्) जिस प्रकार अग्नि को (आ विवासति) यजमान सेवन करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक, (सुदक्षम्) उत्तम, कार्यकुशल पुरुष को (हव्य-दातिभिः) उत्तम ग्राह्य तथा भोज्य पदार्थों के दानों से और (नमोभिः) नमस्कार आदि सत्कारयुक्त वचनों से वा अन्नों से (आ विवासति) परिचर्या करता है, (वा) और जो (अजिर-शोचिषम्) न नाश होने वाली दीप्ति से युक्त अग्निवत् अविनाशी कान्ति वाले, प्रकाशस्वरूप आत्मा को (गिरा) वाणी द्वारा (आविवासति) साक्षात् करता है वही पुरुष वास्तविक अग्निहोत्र और वास्तविक स्वप्रकाश आत्मदर्शन वा उपासना करता है ।

स॒मिधा॒ यो निशि॑ती॒ दाश॒ददि॑तिं॒ धाम॑भिरस्य॒ मर्त्यः॑ ।
विश्वेत्स धी॒भिः सु॒भगो॒ जनाँ॒ अति॑ द्यु॒म्नैरु॒द्न इ॑व तारिषत् ॥ १४ ॥

भा०—(समिधा अग्निम्) काष्ठ की समिधा से अग्नि की जिस प्रकार परिचर्या करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (निशिती) अति तीक्ष्ण बुद्धि से (अदितिं) अखण्ड, अदीन सूर्यवत् सर्वोपरि प्रभु की (दाशत्) सेवा करता, उसके प्रति अपने को सौंपता है (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (अस्य धामभिः) उसके ही नाना तेजों वा धारण सामर्थ्यों से (धीभिः) कर्मों के अनुसार (द्युम्नैः) ऐश्वर्यों से (विश्वा

इत् जनान्) समस्त जनों को (उदनः इव अति तारिषत्) जलों के समान पार कर जाता है और (सु-भगः) वह उत्तम ऐश्वर्यवान् भी हो जाता है।

तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासहत्सदने कं चिदत्रिणम्।
मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! प्रभो! नायकवर! तू (तत् द्युम्नं) वह उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश और तेज (आ भर) धारण कर और हमें प्रदान कर (यत्) जो (सदने) घर में, देह में (कं चित् अत्रिणं) किसी भी खाजाने वाले, राक्षसवत् दुखदायी लोभ को (सासहत्) पराजित कर सके और जो (दूढ्यः जनस्य) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य के (मन्युं सासहत्) क्रोध पर विजय पा सके।

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः।
वयं तत्ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥१६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (येन) जिस (शवसा) बल और ज्ञान से (वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ, स्नेही और दुष्ट पुरुषों का नियन्ता, न्यायकारी पुरुष (चष्टे) न्यायानुकूल प्रजाजन को देखता है, सत् असत् का निर्णय करता है, और (येन शवसा) जिस ज्ञान और बल से (नासत्या) कभी, असत्याचरण न करने वाले वा नासिकावत् प्रमुख पद पर स्थित स्त्री पुरुष और (भगः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (चष्टे) अधीनस्थों को देखता और आज्ञा वचन कहता है हम (इन्द्र-त्वोताः) तुझ सूर्याग्निवत् तेजस्वी और प्रचण्ड विद्वान् और वीर पुरुष द्वारा सुरक्षित रहकर (ते तत् शवसा) उसी तेरे बल से (गातुवित्-तमाः) खूब भूमि और वाणी के धन को अच्छी प्रकार प्राप्त होकर (ते) तेरे (तत् विधेमहि) उसी बल और ज्ञान को सम्पादन करें।

ते घेदग्ने स्वाध्यो३ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम्।
विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन् ! हे विविध विद्याओं से पूर्ण! निष्णात! (ये) जो (त्वा) तुझ को (नृ-चक्षसम्) समस्त मनुष्यों पर द्रष्टा रूप से (निदधिरे) नियत करते और निश्चयपूर्वक जानते हैं और (ये विप्रासः) जो विद्वान् लोग हे (देव) दानशील ! हे प्रकाशस्वरूप, सत्य प्रकाशक ! (त्वा सुक्रतुं निदधिरे) तुझ उत्तम कर्म और ज्ञान वाले, तुझको स्थिर करते हैं (ते घ इत्) वे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (स्वाध्यः) सुख पूर्वक तेरा ध्यान करने वाले तुझे वरण और अग्निवत् हृदय वेदि में धारण करने वाले होते हैं ।

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।

त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रभो ! ज्ञानवन् ! (ये) जो (त्वे) तुझ में (कामम्) अपने कामना वा इच्छा करने वाले आत्मा वा मन को (त्वे नि-एरिरे) तेरे अधीन, तेरे ही में प्रेरित करते हैं (ते) वे (इत्) ही हे (सुभग) उत्तमैश्वर्यवन् ! (वेदिम् चक्रिरे) वेदि बनाते, (ते आहुतिं चक्रिरे) वे आहुति करते और इस भूमि पर (ते सोतुं चक्रिरे) वे हवन यज्ञ करते हैं । इसी प्रकार वे (वेदिं) ज्ञान करते, (आहुतिं) दान आदान करते, (सोतुं) ऐश्वर्य उत्पन्न करते । (ते इत्) वे ही (वाजेभिः) ज्ञानों और सैन्यादि बल पराक्रमों से (महद् धनं जिग्युः) बड़े भारी धन का विजय करते हैं ।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

भा०—(आहुतः) आदरपूर्वक आहुति किया (अग्निः) अग्नि, और आदरपूर्वक बुलाया या वृत या दान सत्कृत विद्वान् (नः भद्रः) हमारे लिये कल्याण और सुख का देने वाला हो । (रातिः भद्रा) हमारा दिया दान हमें सुखकारी हो । हे (सु-भग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! (नः

अध्वरः) हमारा यज्ञ (भद्रः) कल्याणजनक हो । (उत) और (प्र-शस्तयः) उत्तम ख्याति या उत्तम उपदेश भी हमें (भद्राः) कल्याणकारी हो वा हमारी उत्तम ख्यातियां हों ।

भ॒द्रं मनः॑ कृणुष्व वृत्र॒तूर्ये॒ येना॑ स॒मत्सु॑ सा॒सहः॑ ।
अव॑ स्थि॒रा त॑नुहि॒ भूरि॒ शर्ध॑तां व॒नेमा॑ ते अ॒भिष्टि॑भिः॥२०॥३२

भा०—हे नायक ! प्रभो ! तू (वृत्रतूर्ये) दुष्टों के नाश करने वाले संग्राम में (येन) जिस ज्ञान और मनोबल से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) शत्रुओं को पराजित करता है, तू उसी (मनः) मन और ज्ञान को (भद्रं) हमें सुखदायक कर । और (शर्धतां) बल वाले हिंसक शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ़ सैन्यों को भी (अव तनुहि) नीचे कर, नाश कर । जिससे हम (अभिष्टिभिः) अभिलषित सुखों से (ते वनेम) तेरी सेवा करें । तुझ से नाना ऐश्वर्य प्राप्त करें ।

ईळे॑ गि॒रा मनु॑र्हितं॒ यं दे॒वा दू॒तम॑र॒तिं न्ये॑रि॒रे ।
यजि॑ष्ठं हव्य॒वाह॑नम् ॥ २१ ॥

भा०—(यम्) जिस (यजिष्ठं) अति पूज्य (हव्य-वाहनम्) हव्य, उत्तम अन्न को ग्रहण करने वाले, (दूतम्) दुष्ट पुरुषों के उपतापक और विद्वानों से उपासित (अरतिं) अति मतिमान् स्वामी को (देवाः)नाना अर्थों के अभिलाषी होकर (नि ऐरिरे) स्तुति करते हैं (मनुर्हितम्) मननशील पुरुषों द्वारा धारित उस पूज्य की मैं (गिरा ईडे) वाणी द्वारा स्तुति करूं ।

ति॒ग्मज॑म्भाय॒ तरु॑णाय॒ राज॑ते॒ प्रयो॑ गायस्य॒ग्नये॑ ।
यः पिं॒शते॑ सू॒नृता॑भिः सु॒वीर्य॑म॒ग्निर्घृ॒तेभि॒राहु॑तः ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृतेभिः आहुतः अग्निः) घी की धाराओं से आहुति पाकर अग्नि (सूनृताभिः) उत्तम सत्य वाणियों सहित (सुवीर्यं पिंशते) उत्तम वीर्य युक्त रूप प्रकट करता है और जिस प्रकार (घृतेभिः

आहुतः) जलों द्वारा प्राप्त (अग्निः) विद्युत् (सूनृताभिः) उत्तम विज्ञान युक्त क्रियाओं द्वारा वा मेघस्थ विद्युत् उत्तम वल अन्नादि युक्त धाराओं से (सुवीर्यं) उत्तम वलयुक्त रूप प्रकट करता है, उसी प्रकार (घृतेभिः आहुतः) दीप्ति, तेज वा स्नेहों से आदृत होकर (अग्निः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष वा प्रभु (सूनृताभिः) उत्तम ज्ञानमय वाणियों से (सुवीर्यम्) उत्तम रीति से विशेष रूप से, उपदेश करने योग्य ज्ञान को (पिंशते) प्रकट करता है, उस (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्णमुख, दुष्टों के हनन करने के लिये तीक्ष्ण हिंसा साधनों से युक्त (तरुणाय) सदा युवा, वलवान्, संकटों से तारने वाले, (राजते) राजा के समान आचरण करने वाले, (अग्नये) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष के लिये (प्रयः) उत्तम प्रीतिकारक वचन वा स्तुति का (गायसि) गान कर।

यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च।
असुर इव निर्णिजम् ॥ २३ ॥

भा०—(यदि) जिस प्रकार (घृतेभिः आहुतः) घृत धाराओं से आहुति प्राप्त कर (अग्निः) अग्नि (उत् च अव च) ऊपर की ओर और नीचे की ओर भी (वाशीम् भरते) कान्ति प्रदान करता है तब वह (असुरः इव) प्राणों के देने वाले वायु या सूर्य के समान (निर्णिजम्) रूप को (भरते) धारण करता है अर्थात् असुर प्राणप्रद पवन भी जलों से युक्त होकर (वाशीं भरते) कान्तिमती विद्युत्, उसकी माध्यमिक वाणी गर्जना को धारण करती है, सूर्य (घृतैः) दीप्तियों से युक्त होकर (वाशीं भरते) दीप्ति रूप को धारता है उसी प्रकार वह प्रभु और विद्वान् नायक भी, (यदि) जब (घृतेभिः आहुतः) स्नेहों से उपासित होकर (वाशीम्) उत्तम वाणी को (उत् च अव च) ऊपर और नीचे स्वरों के आरोहावरोह क्रम सहित (भरते) धारण करता है, तब वह (असुरः इव) 'असुर' अर्थात् वलवान् वीर पुरुष के (निर्णिजं भरते) रूप को धारण करता है,

वीर पुरुष भी (वाशीं) वशकारिणी शक्ति, खड्ग आदि को ऊपर नीचे चलाता है, तेजों से चमकाता है।

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना।
वि वासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवः) देदीप्यमान अग्नि, (हव्यानि) हव्य चरुओं को (सुगन्धिना आसा) उत्तम गन्धयुक्त ज्वाला रूप मुख से (ऐरयत) दूर २ तक भेजता है (वार्याणि वि वासते) ग्राह्य उत्तम २ प्रकाशों को प्रकट करता है उसी प्रकार (यः) जो (मनुः-हितः) स्वयं मननशील और सर्वहितकारी विद्वान् (देवः) मनुष्य होकर (सुगन्धिना) पुण्य गन्ध, उत्तम शिक्षा युक्त (आसा) मुख से (हव्यानि) ग्राह्य-वचनों को (ऐरयत) उच्चारण करता है वह (सु-अध्वरः) उत्तम यज्ञशील, अन्यों की हिंसा से रहित, (देवः) दानी (अमर्त्यः) साधारण मनुष्य वर्ग से भिन्न होकर (वार्याणि वि वासते) वरण करने योग्य उत्तम गुणों और ज्ञानों को प्रकट करता है।

यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः।
सहसः सूनवाहुत ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जिस प्रकार आहुति वाले अग्नि में जो कुछ पड़ता है वह अग्नि ही होजाता है उसी प्रकार हे (सहसः सूनो) बल के उत्पन्न करने, प्रेरने वाले हे (आहुत) उपासना योग्य ! (अग्ने) ज्ञानवन् वा अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (मित्र-महः) स्नेहवान् मित्रों से पूजनीय, मित्रों के आदर करने हारे ! (यत्) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अहं त्वं स्याम्) मैं तू होजाऊं इस प्रकार उपासना करता है वह भी (अमर्त्यः) अविनाशी वा अन्य साधारण मरणधर्मा प्राणियों से भिन्न तेरे समान ही होजाता है।

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥ २६ ॥

भा०—हे (वसो) धनवत् प्रजा को बसाने और सब में बसने हारे स्वामिन् ! मैं जिस प्रकार (अभिशस्तये) निन्दा अपवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) धन को नहीं दूं उसी प्रकार (त्वा) तुझे भी (अभिशस्तये) निन्दा, परापवाद और (पापत्वाय) पाप कार्य के लिये (न रासीय) कभी त्याग न करूं वा तेरा नाम अन्यों को पीड़ा पहुंचाने और पाप कर्म करने के निमित्त न लूं। हे (सन्त्य) भजन करने योग्य ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! (मे स्तोता) मेरा स्तुति करने वा उपदेश करने वाला (अमतिवा) मतिहीन, मूर्ख (न) न हो और (दुर्हितः) दुःखदायी दुष्टाशय पुरुष (न) न हो और (न पापः स्यात्) वह पापाचारी वा पाप बुद्धि से युक्त भी न हो।

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥ २७ ॥

भा०—(सु-भृतः) उत्तम रीति से भरण पोषण प्राप्त, सुपुष्ट (पुत्रः) पुत्र जिस प्रकार (दुरोणे) गृह में (पितुः) पिता का भी पालक होता है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी परमेश्वर एवं राजा गृहपति भी (पितुः न) अन्न के समान (पुत्रः) बहुतों के रक्षा करने में समर्थ, (सु-भृतः) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण करने वाला होकर (दुरोणे) अन्यों से कठिनता से प्राप्त करने योग्य राष्ट्रपति वा मोक्ष पद पर है। वह (देवान् आ एतु) समस्त मनुष्यों, विद्वानों और दिव्य पदार्थों को प्राप्त हो, और वह (नः हविः प्र एतु) हमारे स्तुतिवचन वा कर आदि देने योग्य अंश को भी प्राप्त करे।

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो।
सदा देवस्य मर्त्यः ॥ २८ ॥

भा०—हे (वसो) सब प्राणियों और लोकों को बसाने और उन सब में बसने हारे ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे अंग २ में व्यापक ! (सदा) सर्वदा, सब कालों में (मर्त्यः) मैं मरणधर्मा जीव (देवस्य तव) सर्व

सुखदाता, सर्वप्रकाशक तेरी (नेदिष्ठाभिः मतिभिः) अति समीपतम रक्षाओं से सुरक्षित होकर (तव जोषम् आ सचेय) तेरे प्रेम और सेवा का सब प्रकार से लाभ करूं।

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्निवत् सर्वप्रकाशक ! (क्रत्वा) उत्तम कर्म, उत्तम बुद्धि से वा यज्ञ से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। (रातिभिः) दानों से (तव सनेयं) तेरा भजन करूं। और (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं, स्तुतियों से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। हे (वसो) गुरुवत् अपने में सब को बसाने और प्राणवत् सब में बसने हारे ! (त्वाम् इत् प्रमतिम्) तुझ को सब से उत्कृष्ट बुद्धि और ज्ञान वाला (आहुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं। हे (अग्ने) सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक ! तू (मम दातवे) मुझे देने के लिये (हर्षस्व) स्वयं प्रसन्न हो वा मुझे दान देने के लिये हर्षित, उत्साहित कर।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! सर्वव्यापक प्रभो ! स्वामिन् ! (वाजभर्मभिः) ज्ञान, बल अन्नादि भरण पोषण करने वाली (सुवीराभिः) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और दीप्तियों से (सः प्र तिरते) वह बराबर बढ़ा करता है (यस्य सख्यं) जिसके मित्र भाव को (तू आवरः) स्वीकार कर लेता है।

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (इन्धानः) चमकने वाला, (द्रप्सः)

द्रुतगति से काष्ठों का खाने वाला, (नीलवान्) नील धुएं वाला, (वाशः) कान्ति से युक्त, (ऋत्वियः) ऋतु २ में यज्ञ, करने योग्य, और (सिष्णुः) प्रत्याहुति घृत सेचने योग्य वा यज्ञ द्वारा जगत् भर में वर्षा द्वारा सेचन करने वाला होता है। इस प्रकार (महीनाम् उपसां प्रियः) बहुत सी कामना युक्त प्रजाओं या दाहकारिणी शक्तियों का प्रिय या पूरक होता और (क्षपः वस्तुषु राजति) रात को बसे घरों में गार्हपत्याग्नि, अन्वाहार्य पचन और दीपक रूप में चमकता है उसी प्रकार हे (सिष्णो) प्रेम से सबको सेचन करने वा प्रकृति में जगत् बीज को आसेचन करने वाले, मेघवत् सुखवर्षक, सर्वोत्पादक प्रभो! (तव द्रप्सः) तेरा रसस्वरूप, आनन्ददायक रूप, (नीलवान्) सबको आश्रय देने वाला, सब विश्व को अपने में लीन करने वाला, (वाशः) अति कमनीय, स्तुत्य, और सब जगत् का वश करने वाला, (ऋत्वियः) ऋतु, प्राणों द्वारा वा वायु जलादि महान् शक्तियों से जानने योग्य, (इन्धानः) सूर्यादिवत् देदीप्यमान रूप से (आ ददे) जाना जाता है। (त्वं) तू (महीनाम्) भूमियों और (उपसाम्) दाहक सूर्यादि को भी (प्रियः) पूर्ण और तृप्त करने वाला, (असि) है और (क्षपः) संसार का संहारक और सब (वस्तुषु) पदार्थों और वासयोग्य लोकों में (राजसि) प्रकाशमान हो रहा है।

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे।
सम्राजं त्रासदस्यवम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सोभरयः) उत्तम रीति से भरण पोषण करने वालो! हम लोग (अवसे) रक्षा के लिये (तम्) उस (सु-अभिष्टिम्) उत्तम अभिलाषा वाले, (त्रासदस्यवम्) दस्युओं, दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाले, (सहस्रमुष्कं) हजारों के पोषक वा सूर्यवत् बहुत से दुःखदारिद्र्यहारी नाना तेजःसामर्थ्यों से सम्पन्न, (सम्राजं आ अगन्म) सम्राटवत् सर्वत्र दीप्तियुक्त प्रभु को प्राप्त हों।

यस्य॑ ते अग्ने अ॒न्ये अ॒ग्नय॑ उप॒क्षितो॑ व॒या इ॑व ।
विप्रो॒ न द्यु॒म्ना नि यु॑वे॒ जना॑नां॒ तव॑ क्ष॒त्राणि॑ व॒र्धय॑न् ॥३३॥

भा०—जैसे एक ही अग्नि से अन्य भी अग्नियें प्रज्वलित होकर उसकी नाना शाखा के समान होती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् (यस्ते) जिस तेरे (अन्ये अग्नयः) दूसरे तेजस्वी पुरुष भी (उपक्षितः) समीप रहने वाले (वयाः इव) शाखाओं के समान विराजते हैं उस (तव) तेरे (जनानां) मनुष्यों के (क्षत्राणि) वीर्यों और धनों को (वर्धयन्) वढ़ाता हुआ मैं (विपः न) वाणियों के समान (द्युम्ना) बहुत से धनों वा यशों को (नि युवे) प्राप्त करूं। वया इति वाङ् नाम।

यमा॑दित्यासो अद्रुहः पा॒रं नय॑थ॒ मर्त्य॑म् ।
म॒घोनां॒ विश्वे॑षां सुदानवः ॥ ३४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) सूर्य की किरणोंवत् ज्ञान, ऐश्वर्यादि का संचय करने वाले और हे (सु-दानवः) उत्तम रीति से पुनः जलवत् अपने सञ्चित को अन्यों के उपकारार्थ देने वाले हे (अद्रुहः) द्रोहरहित, प्रेममय दयालु पुरुषो! आप लोग (यम् मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (पारं नयथ) ज्ञानसागर के पार कर देते हो वह (विश्वेषां मघोनां) समस्त ऐश्वर्यवानों में पूज्य होजाता है।

यू॒यं रा॑जानः॒ कं चि॑च्चर्षणीसहः॒ क्षय॑न्तं॒ मानु॑षाँ॒ अनु॑ ।
व॒यं ते वो॑ वरुण॒ मित्रार्य॑म॒न्त्स्यामेदृ॒तस्य॑ र॒थ्यः॑ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (चर्षणीसहः) शत्रुकर्षण करने वाली सेनाओं वा शत्रु जनों को दबाकर वश रखने में समर्थ (राजानः) तेजस्वी राजा लोगो! (यूयं) आप लोग (कं चित्) किसी (मानुषान् क्षयन्तं) मनुष्यों के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले पुरुष के (अनु) पीछे रहो। हे (मित्र अर्यमन् वरुण) स्नेही, न्यायकारी और सर्वश्रेष्ठ जनो! (ते वयं) वे हम लोग (वः) आप

लोगों के (ऋतस्य) सत्य, न्याय, तेज, धन, सत्यमार्ग के (रथ्यः) रथारोही गन्ता के समान (स्याम इत्) अग्रेसर होवें ।

अदा॑न्मे पौरुकु॒त्स्यः प॑ञ्चा॒शतं॑ त्र॒सद॑स्युर्व॒धूना॑म् ।
मंहि॑ष्ठो अ॒र्यः सत्प॑तिः ॥ ३६ ॥

भा०—(पौरुकुत्स्यः) बहुत से वज्र अर्थात् हथियारबन्द वीर पुरुषों का स्वामी (त्रसदस्युः) दुष्टों को भयभीत करने वाला राजा (मंहिष्ठः) अति दानशील, पूज्य, (अर्यः) स्वामी (सत्पतिः) सज्जनों का पालक, (अर्यः) सबका स्वामी, है । वह (मे) मुझ प्रजाजन को धारण करने वाली (पञ्चाशतं) ५०, वा, १०५, वा ५०० सेनाओं को (अदात्) प्रदान करे ।

उ॒त मे॑ प्र॒यियो॑र्व॒यियोः॑ सु॒वास्त्वा॒ अधि॒ तुग्व॑नि ।
ति॒सृ॒णां स॑प्तती॒नां श्या॒वः प्र॑णे॒ता भु॑व॒द्वसु॒र्दिया॑नां॒ पतिः॑॥३७॥३५॥

भा०—(सुवास्त्वाः) उत्तम भवनों वाली नगरी के (तुग्वनि अधि) शत्रुहिंसक और प्रजापालक बल या सैन्य के ऊपर (उत)और (प्रयियोः) प्रयाण करने वाले सैन्य और (वयियोः) तन्तु-सन्तान विस्तार करने वाले, बसे (मे) मुझ प्रजाजन के (तुग्वनि) पालनकारी पद पर विराजमान (श्यावः) ज्ञानी और वीर पुरुष (तिसणां सप्ततीनां) तीन ७० । ७० की पंक्तियों का (प्रणेता) मुख्य नायक होकर (दियानां) करप्रद प्रजाओं का पालक, स्वामी और (वसुः भुवत्) 'वसु' होजाता है । अध्यात्म में—सुवास्तु, यह देह है उसमें प्रयाण करने और प्रज्ञा सन्तति का इच्छुक आत्मा है उसके पालक इस देहाधिष्ठाता प्राण पर भी भीतरी 'श्याव' अश्व मन ३ × ७० = २१० नाड़ियों को सञ्चालित करता है, वही (दियानां पतिः) ज्ञानप्रद इन्द्रियों का पालक अधिष्ठाता और (प्रणेता) मुख्य नायक भी होता है । उसी-का नाम 'वसु' है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२०]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७, १९, २३ उष्णिक् ककुप्। ९, १३, २१, २५ निचृदुष्णिक्। ३, १५, १७ विराडुष्णिक्। २, १०, १६, २२ सतः पंक्तिः। ८, २०, २४, २६ निचृत् पंक्तिः। ४, १८ विराट् पंक्तिः। ६, १२ पादनिचृत् पंक्तिः। १४ आर्ची भुरिक् पांक्तिः॥ षड्विंशर्चं सूक्तम्॥

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः। स्थिरा चिन्नमयिष्णवः॥ १॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! (आ गन्त) आप लोग आवो! (मा रिषण्यत) पीड़ित मत करो। हे (प्रस्थावानः) प्रधान पद पर स्थित पुरुषों वा रणादि में प्रस्थान करने वा आगे बढ़ने वालो! हे (समन्यवः) समान क्रोध वा ज्ञान वाले वीरो! आप लोग (मा अप स्थात) दूर २ मत रहो, समीप संघीभूत होकर रहो। आप लोग (स्थिरा चित्) स्थिर वृक्षों को वायु के समान दृढ़, स्थिर, बहुत देर के जमे हुए शत्रुओं को भी (नमयिष्णवः) अपने आगे झुकाने में समर्थ होवो।

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः। इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः॥ २॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले! हे (ऋभुक्षणः) महान् बल वालो! हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने और प्रजा के रोगों, कष्टों को दूर करने वालो! हे (पुरु-स्पृहः) बहुत से प्रजावर्गों को प्रेम करने, बहुतों के प्रेमपात्र होने वालो! हे (सोभरीयवः) उत्तम पालक पोषक नायकों को चाहने वालो! आप लोग (वीडुपविभिः) दृढ़ शस्त्रों, दृढ़ चक्रधाराओं और (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से युक्त होकर

(अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इषा आ गत) इच्छा, अन्न, वा सुभिक्ष और सुवृष्टिसहित पवनों के समान ही (नः आ गत) हमें प्राप्त होवो ।

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।
विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रियाणां) जनता में फैलने वाले रोगों को वेग से उड़ा लेने वाले प्रचण्ड (मरुतां शिमीवताम्) वातों और कर्मकारी यन्त्रादि सञ्चालक वेगों का (उग्रं शुष्मम्) बड़ा भारी बल होता है । और (एषस्य) अभिलषणीय (विष्णोः) व्यापक, सब ओर विशेष रूप से बरसने वाले जल को (मीढुषां) वृष्टि रूप से भूमि पर सेचने वाले जलधर वायुओं के समान (रुद्रियाणां शिमीवताम् मरुताम्) भव-पीड़ाओं के नाशक गुरु, प्रभुओं के शिष्यों और (शमी वताम्) कर्मनिष्ठ विद्वानों के उग्र बल को और (विष्णोः) सूर्य के (एषस्य) अभिलाषणीय तत्व (विद्मा हि) ज्ञान करें ।

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण, (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों में भ्रमण करते, (उभे रोदसी) आकाश और पृथ्वी दोनों को (दुच्छुना) दुःख से ही युक्त कर देते हैं । वे मरुद्गण आकाश पिण्डों को लपेट कर भूमि पर गिराते हैं और (तिष्ठत्) भूमिस्थ वृक्षों को (दुच्छुना) दुःखदायी पतनादि से युक्त करते हैं । और वे (स्वभानवः) अपनी कान्ति से युक्त (शुभ्र-खादयः) शुभ्र दीप्ति वाले होकर (धन्वानि ऐरत) जलों को नीचे गिराते हैं इसी प्रकार हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! आप लोग (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों को विजयादि कार्यों के लिये जाया आया करो । (उभे रोदसी) दोनों स्वपक्ष परपक्ष को (दुच्छुना युजन्त) दुःख, शोकादि

से युक्त करते हैं। आप सब (स्व-भानवः) अपने धन की दीप्ति से युक्त और (शुभ्र-खादयः) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्गादि वाले, (यत् एजथः) जब २ जाते हों तो (धन्वानि ऐरत) धनुषों को आगे बढ़ाओ और चलाओ।

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जिस प्रकार पवनों के चलने पर (पर्वतासः अच्युतासः वनस्पतिः भूमिः रेजते) दृढ़ पर्वतवत् वा मेघ भी गर्जते, वनस्पति और मानो भूमि कांपती है, उसी प्रकार हे वीरो! (वः अज्मन् यामेषु) आप लोगों के संग्राम में प्रयाण होने पर (अच्युता चित् पर्वतासः) दृढ़ पर्वत भी (आ नानदति) प्रतिध्वनि करते हैं। (वनस्पतिः) सूर्य वा वन के स्वामी वृक्षों वत् ऐश्वर्यपालक शत्रु और (भूमिः) भूमि भी (रेजते) कांपती है। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत्।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के (अमाय यातवे) बलपूर्वक जाने के लिये (द्यौः उत्तरा बृहत् जिहीते) ऊपर का आकाश बीच के बड़े भारी अन्तरिक्ष को त्याग देता है, इसी प्रकार हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने में निपुण वीर पुरुषो! (वः अमाय) आप लोगों के बल प्रयोग या व्यायामाभ्यास के लिये और (यातवे) युद्धार्थ प्रयाण करने के लिये (उत्तरा द्यौः) सर्वोपरि शासक शक्ति, (बृहत्) बहुत बड़ा स्थान वा पद (जिहीते) दे, (यत्र) जिस पर स्थित होकर (बाह्वोजसः) बाहुओं में बल पराक्रम धारण करने वाले (नराः) नायक लोग (तनूषु) अपने शरीरों पर (त्वक्षांसि) जरा-बक्तर वा दीप्तियुक्त पदक आभूषण आदि (आ

देदिशते) धारण करते हैं। अथवा (तनूषु त्वक्षांसि आ देदिशते) शत्रुओं के शरीरों वा विस्तृत सैन्यों पर तीक्ष्ण शस्त्रों का रुख करते हैं।

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः।
वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥ ७ ॥

भा०—वे (नरः) नायक वीर जन (त्वेषाः) तीक्ष्ण कान्तियुक्त (अमवन्तः) बलवान्, (वृषप्सवः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर वाले और (अह्रुतप्सवः) सरल सूधी प्रकृति वाले, निष्कपट होकर (स्वधाम् अनु) अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार (महि श्रियम् वहन्ते) बड़ी भारी राजलक्ष्मी को धारण करते हैं।

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८॥

भा०—(सोभरीणां) प्रजा का उत्तम रीति से पालन करने वाले क्षत्रियों और राजाओं के (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि से परिपूर्ण खजाने में (गोभिः)भूमियों द्वारा (वाणः) देने और सेवने योग्य ऐश्वर्य (अज्यते) प्राप्त किया जाता है, और (हिरण्यये) तेजोमय आत्मा के (कोशे रथे) आनन्दमय, विज्ञानमय प्राणमय, मनोमय अन्नमय (रथवत्) कोश अर्थात् देह में (गोभिः) इन्द्रियों के सहित (वाणः) भोक्ता आत्मा (अज्यते) प्रकट होता है। (गोभिः वाणः अज्यते) वाणियों, वेदमन्त्रों से शब्दमय, ज्ञानमय ज्ञान रस प्रकट होता है। इसी प्रकार उनके (रथे) रथ में (गोभिः) धनुष डोरियों से बद्ध धनुषों के साथ २ (वाणः) वाण भी शोभा देता है। अथवा (गोभिः) डोरियों से (वाणः अज्यते) वाण दूर फेंका जाता है।

प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम्।
हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ ९ ॥

भा०—(वृषद्-अञ्जयः) बरसते मेघों से प्रकट होने वा उन सहित

आने वाले पवन जिस प्रकार वर्षा करने वाले, बलवान् वायुओं के प्रेरण के लिये ग्राह्य जलराशि को धारण करते हैं। उसी प्रकार हे (वृषद्-अञ्जयः) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले एवं प्रबन्धकारक, विशेष स्वरूप वा पोशाक पहनने वाले वीर पुरुषो ! और (वः) आप में से वा अपने बीच में विद्यमान (वृष्णे) बलवान् , (शर्धाय) पराक्रमी वा (शर्-धाय) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र बल को धारण करने में समर्थ क्षत्रपति (मारुताय) मनुष्यों के हितैषी, (वृष-प्रयाव्णे) बलवान् पुरुषों वा अश्वों के साथ प्रयाण करने वाले वा राष्ट्रपति या सेनापति की वृद्धि के लिये (हव्यः) उत्तम अन्न एवं ग्राह्य स्तुत्य वचन और समस्त आवश्यक अन्न, धनादि रत्न, नाना पदार्थ (प्र भरध्वम्) लाओ अथवा (हव्या = हवयोग्यानि) यज्ञ और संग्राम के योग्य पदार्थों को लाओ और (हव्या) संग्रामोचित शस्त्रों का शत्रुओं पर (प्र भरध्वम् = प्र हरध्वम्) प्रहार करो।

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत १०।३७

भा०—हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (श्येनासः पक्षिणः न) बाज नाम के पक्षी जिस प्रकार वेग से जाते हैं उसी प्रकार आप लोग (वृषण-श्वेन) बलवान् अश्व वाले (वृष-प्सुना) सुदृढ़ रूप वाले, (वृष-नाभिना) सुदृढ़ चक्रनाभि वाले (रथेन) रथ से (वृथा) अनायास ही (नः वीतये) हमारी रक्षा के लिये (हव्या आ गत) यज्ञों युद्धों में आया जाया करो। अथवा इसी प्रकार (मरुतः) वैश्यगण रथों, यानों द्वारा (नः वीतये) हमारे खाने के लिये (हव्या) नाना अन्न (आ गत) लाया करें। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥

भा०—(एषां) इन वीर पुरुषों के (अञ्जि) रूप, पोशाक और चिह्नादि सब (समानम्) समान हों। (बाहुषु अधि) बाहुओं पर

(रुक्मासः) सुवर्णीय, सुनहरी बैज (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकें और (बाहुषु) बाहुओं में ही (ऋष्टयः) शत्रुनाशक नाना शस्त्र भी (दविद्युतति) चमका करें।

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२॥

भा०—(ते) वे (उग्रासः) भयानक, (वृषणः) बलवान्, (उग्र-बाहवः) प्रचण्ड बाहुबल वाले, वीर पुरुष (तनूषु) अपने शरीरों के निमित्त (नकिः येतिरे) कोई श्रम न करें। इनको आजीविकोपार्जन के लिये अन्य यत्न की आवश्यकता नहीं। उनका कर्त्तव्य है कि (रथेषु) उनके रथों पर (धन्वानि आयुधा) धनुष आदि हथियार (स्थिरा) स्थिर हों। हे वीर पुरुषो ! (वः अनीकेषु अधि) आप लोगों की सेनाओं के आधार पर ही (श्रियः) राष्ट्र की लक्ष्मियां स्थिर हैं।

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे।
वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥

भा०—(पित्र्यं वयः न) जिस प्रकार पिता पितामह का सञ्चित अन्न वा (अर्णः न सप्रथः) जल के समान विस्तृत धन (एकम् इत् भुजे) एक भी प्रजा के भोग के लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार (येषाम्) जिन वीरों के (अर्णः न) सागर के जल के समान धन, (सप्रथः नाम) विख्यात, विस्तृत नाम, शत्रुओं को झुका देने वाला अपार बल, (त्वेषं) कान्ति, तेज, और (पित्र्यं वयः) पिता, वा राष्ट्र पालक होने योग्य पिता तुल्य वयस्, उमर और रक्षा बल तथा (सहः) पराक्रम है, उनको—

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम्।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रजाजन ! (तान् मरुतः) उन वायुवत् बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को (वन्दस्व) आदर सत्कार कर। (तान् उप स्तुहि)

उनकी स्तुति कर। (तेषां हि) उन शत्रुओं के (धुनीनाम्) कंपादेने वाले वा (धुनीनां) शास्त्र के उपदेष्टाओं और (अराणां) चक्र में लगे अरों, दण्डों के तुल्य व्यूह में बद्ध, अर्थात् गमन करने और औरों को आगे ले जाने वालों में से (चरमः न) कोई भी व्यक्ति चरम या अधम नहीं। (एषां दाना तत्) उनके दिये ज्ञान, दान ऐश्वर्यादि और उनके किये वे शत्रुनाश आदि नाना कार्य सब (एषाम् मह्ना) इनके ही महान् सामर्थ्यों से होते हैं। अथवा—(अराणां मह्ना चरमः न) चक्र में लगे दण्डों से जिस प्रकार मार्ग में संचरण होता है उसी प्रकार (तेषां हि धुनीनां) उन शत्रुकम्पक, वा वेदोपदेशकों के (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (चरमः) चरम, अन्तिम लक्ष्य प्राप्त होता है।

सुभगः स वं ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु।
यो वा नूनमुतासति ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(उत) और (यः वा) जो भी मनुष्य हे (मरुतः) वीरो, विद्वानो! (नूनम्) अवश्य (पूर्वासु व्युष्टिषु) पूर्व अर्थात् प्रारम्भ के दिनों में वा ब्रह्मचर्य पालन के वयस् में (वः ऊतिषु) आप लोगों की रक्षाओं में (आस) पहुंच जाता है, (उत असति) वा निरन्तर रहता है (सः सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्य युक्त और सुखी, सौभाग्यवान् होता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् १६

भा०—हे (नरः) वीर नायक जनो! (वा) और (यस्य वाजिनः) बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (वीतये) रक्षा के लिये (यूयं) आप लोग (वाजिनः) स्वयं बलशाली होकर (हव्या प्रति आ गथ) अन्नों को और यज्ञ, युद्धोपयोगी दोनों पदों और हथियारों को प्राप्त करते हो, हे (धूतयः) शत्रुकंपक वीरो! और हे अज्ञान, मोह, रागादि के त्यागने

वाले विद्वानो ! (सः) वह (द्युम्नैः) नाना ऐश्वर्यों और (वाज-सातिभिः) ज्ञान, बलादि की वाणियों सहित (वः सुम्नानि अभिनशत्) आप लोगों के सुखों को प्राप्त करता है ।

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः ।
युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥

भा०—(रुद्रस्य सूनवः) गर्जना करने वाले मेघ के प्रेरक वायुगण जिस प्रकार (असुरस्य वेधसः) जलप्रद मेघ को उत्पन्न करते और (दिवः वशन्ति) अन्तरिक्ष पर वश करते वा भूमि को कान्तियुक्त करते हैं उसी प्रकार (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले राजा के (सूनवः) सञ्चालक और (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले और प्रजाओं को जीवन-वृत्ति देने वाले राजा को (वेधसः) बनाने वाले विद्वान् और (युवानः) बल-वान् पुरुष (दिवः यथा वशन्ति) भूमि या राजसभा की जैसी वशकारिणी व्यवस्था करते या जैसे कामनाएं या व्यवहार चाहते हैं (तथा इत् असत्) उसी प्रकार हो ।

ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (सु-दानवः) उत्तम दानशील (मरुतः) मनुष्य (मीढुषः) ज्ञान, धन के दाता, वीर्यादि के सेक्ता माता पिता, गुरु. स्वामी आदि जनों की (अर्हन्ति) पूजा करते हैं और (ये च स्मत्) जो अच्छी प्रकार (चरन्ति) आचरण और सेवा करते हैं वे (युवानः) युवा पुरुष (अतः चित्) इसी प्रकार (वस्यसा हृदा) उत्तम हृदय से (नः उप आ ववृध्वम्) हमें आप लोग भी प्राप्त होओ ।

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा ।
गाय गा इव चर्कृषत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सोभरे) उत्तम रीति से पालन पोषण करने हारे !

हे उत्तम ज्ञान प्रदान करने हारे गुरो ! विद्वन् ! जिस प्रकार (चर्कृषत्) खेती करने हारा (गाः-इव) बैलों वा भूमियों को देखकर, वा (वृष्णः अभि) बरसते बादलों को देखकर, (गिरा) वाणी से उनकी (गायति) स्तुति करता है उसी प्रकार तू भी (गाः इव चर्कृषत्) शिष्यों को भूमियों के समान ज्ञान ग्रहण कराता हुआ (वृष्णः) वीर्यवान् , बलवान् (पावकान्) पवित्र आचार वाले तेजस्वी (यूनः) युवा पुरुषों के (अभि) प्रति (नविष्ठया गिरा) अति स्तुत्य वाणी से उन्हें (अभि गाय) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनके प्रति उत्तम आदरपूर्वक वचन कह और ज्ञान बीजों का वपन कर ।

सहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२०।३९॥

भा०—(विश्वासु पृत्सु) जिस प्रकार समस्त युद्धों में या समस्त (होतृषु पृत्सु) ललकारने वाले मनुष्यों में (मुष्टिहा इव हव्यः) मुक्के से वा मुठी के समान पांचों जनों को मिलाकर संघ शक्ति से ही शत्रु को मारने वाला उत्तम युद्धकुशल होता है उसी प्रकार (ये) जो (विश्वासु पृत्सु) सब संग्रामों या सब मनुष्यों में, (होतृषु) गुरुजनों के अधीन (सहाः सन्ति) शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं उन (वृष्णः) बलवान् (चन्द्रान्) प्रजाओं को प्रसन्न रखने वाले (सुश्रवस्तमान्) उत्तम यशस्वी, उत्तम ज्ञानी (मरुतः) वीरों और विद्वान् पुरुषों को (अह) भी (वन्दस्व) अच्छी प्रकार स्तुति और आदर प्रदान कर । अर्थात् वीर, विजयी, सर्वाह्लादक योद्धाओं, शासकों तथा कीर्त्तियुक्त,ज्ञानी सफल विद्वानों को सदा विशेष प्रशंसा प्राप्त होनी चाहिये । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार (गावः चित् सजात्येन मिथः रिहते) गौवें एक जाति की होने से प्रेमपूर्वक एक दूसरे को चाटती हैं, एक दूसरे से प्रेम करती हैं, और जिस प्रकार (मरुतः ककुभः रिहते) सजल वायुगण दिशाओं का स्पर्श करते, उन तक पहुंचते हैं, उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् शत्रुओं के नाशक राष्ट्र के प्राणवत् पुरुषो! आप लोग भी (गावः चित्) गौओं के समान परस्पर प्रेम युक्त होकर, (गावः चित्) और किरणों के समान तेजस्वी होकर, (स-मन्यवः) ज्ञान-युक्त एवं (स-जात्येन) एक ही देश में उत्पन्न होने, एक ही समान उत्पत्ति होने से (स-बन्धवः) अपने बन्धु वर्ग सहित वा सम रूप से बन्धु, होकर (मिथः) परस्पर मिलकर (ककुभिः) दिशाओं के समान गुणों में विशाल वा महान् होकर भी (रिहते) एक दूसरे के साथ स्नेह का वर्त्ताव करें। ककुभ इति दिङ्नाम। ककुह इति महन्नाम (निघ०)।

मर्त॑श्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस॒ उप॑ भ्रातृ॒त्वमाय॑ति।
अधि॑ नो गात मरुतः॒ सदा॑ हि व॑ आपि॒त्वमस्ति॒ निध्रु॑वि॥२२॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वा वायुवत् प्रबल होकर शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ वीर पुरुषो! एवं (मरुतः) प्राण के अभ्यासी, ज्ञानी पुरुषो! हे (नृतवः) उत्तम मार्ग में लेजाने वाले नायक जनो! वा युद्ध क्षेत्र में कर चरणादि सञ्चालन करके नाचने की सी क्रिया करने वाले! हे (रुक्म-वक्षसः) वक्षः-स्थल पर सुवर्ण के हार आदि आभूषण धारण करने वाले वीर पुरुषो! (मर्तः चित्) साधारण मनुष्य भी (वः भ्रातृत्वम् उप आयति) आप लोगों के भ्रातृत्व को प्राप्त करता है। और (हि) क्योंकि (वः) आप लोगों का भी (आपित्वम्) परस्पर-बन्धुत्व (निध्रुवि) नित्य ध्रुव राजा के अधीन, वा नियम से धारणीय राष्ट्र में (अस्ति) है अतः आप लोग (नः) हम लोगों पर (अधि गात) अध्यक्ष होकर शासन करो। इसी प्रकार विद्वान् (रुक्म-वक्षसः) रुचियुक्त तेजो-

मय आत्मज्ञान को धारण करने से 'रुक्म-वक्षस्' है उनका नित्य ध्रुव परमात्मा में बन्धुत्व भाव है। वे हमें सदा उपदेश करें।

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः।
यूयं सखायः सप्तयः ॥ २३ ॥

भा०—वायुएं जिस प्रकार हमें प्राण सम्बन्धी रोगनाशक सामर्थ्य प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर और विद्वान् पुरुषो! (सखायः) परस्पर मित्र, (सप्तयः) वेग से जाने आने वाले, अश्ववत् तीव्रगामी, (सु-दानवः) उत्तम दानशील होकर (मारुतस्य) मरुत् अर्थात् वायुओं से प्राप्त होने योग्य, (भेषजस्य) रोग दूर करने वाले उपाय के समान (मारुतस्य भेषजस्य) वीर पुरुषों से प्राप्त होने योग्य शत्रुनाशक उपाय को (नः आवहत) हमें प्राप्त कराओ। इसी प्रकार प्राण के अभ्यासी विद्वान् लोग हमें मनुष्योपयोगी भेषज औषधादि प्राप्त करावें।

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम्।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण वा प्राणगण (सिन्धुम् अवन्ति) अन्तरिक्ष, प्राण वा देह में रक्तप्रवाह की रक्षा करते, (तूर्वन्ति) रोग नाश करते, (क्रिविं दशस्यन्ति) कर्त्ता आत्मा को बल प्रदान करते, (शिवाभिः ऊतिभिः मयोभुवः) गतियों से नाना सुख प्रदान करते हैं। उसी प्रकार हे वीरो! विद्वान् पुरुषो! आप लोग (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (सिन्धुम्) समुद्र के समान गंभीर सेनापति वा सैन्य समूह की (अवथ) रक्षा करते हो, और (याभिः तूर्वथ) जिन उपायों से शत्रुओं का नाश करते हो, और (याभिः) जिन उपायों से (क्रिविं दशस्यथ) कूप, जलाशय आदि प्रदान करते हो, उन (शिवाभिः ऊतिभिः) कल्याणकारी क्रियाओं से (मयो-भुवः) सुख उत्पन्न करने वाले आप लोग

(असचद्विषः) समवाय रहित शत्रुओं वाले होकर (नः मयः भूत) हमारे लिये सुखकारी होवो ।

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (सु-बर्हिषः) उत्तम यज्ञ वाले और ओषधियों वाले (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (भेषजम्) रोगनाशक पदार्थ (सिन्धौ) नदी प्रवाह में और यत् (असिक्न्यां) रात्रि काल में, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रों में, और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों में रोगनाशक ओषधि हैं उनको (आवहत) प्राप्त कराओ । उत्तम औषधि को जानने वाले विद्वान् सुबर्हिष् मरुत् कहाते हैं । इसी प्रकार देह में रक्त नाड़ियां सिन्धु हैं, नीली असिक्नी हैं, हृदय फुस्फुसादि समुद्र और अस्थिपर्व पर्वत हैं । उनमें प्राप्त रोगनाशक तत्व पापों के बलपर कर्म करते हैं ।

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६।४०।१।३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे (मरुतः) प्राणवत् सुखकारी जनो ! आप लोग (तनूषु) शरीरों में (विश्वं पश्यन्तः) सब विश्व को ज्ञान-पूर्वक देखते हुए (विश्वं बिभृथ) समस्त प्राणी वर्ग वा देह में आत्मा को धारण कराओ, सबको पुष्ट करो । (तेन) उसे ज्ञानपूर्वक देखें, विवेक से (नः अधिवोचत) हमें भी उपदेश करो । (नः) हममें से (आतुरस्य) व्याधिपीड़ित मनुष्य के (रपः) रोग वा दुःखदायी कारण की (क्षमा) शान्ति हो । और (नः) हमारे शरीरों में (वि-ह्रुतम्) विपरीत भाव से अङ्गों में कुटिल भाव आगत्य हो तो उसे (पुनः इष्कर्त्ता) फिर से ठीक कर दो । इति चत्वारिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले तृतीयोऽनुवाकः ॥ इति षष्ठेऽष्टके प्रथमोध्यायः समाप्तः ॥

द्वितीयोऽध्यायः। चतुर्थोऽनुवाकः॥

[२१]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ १—१६ इन्द्रः। १७, १८ चित्रस्य दानस्तुतिर्देवता॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक्। १३, १७ निचृदुष्णिक्। ५, ७, ६, ११ उष्णिक् ककुप्। २, १२, १४ पादनिचृत् पंक्तिः। १० विराट् पंक्तिः। ६, ८, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ४ भुरिक् पंक्तिः॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः।
वाजे चित्रं हवामहे॥ १॥

भा०—हे (अपूर्व्य) अपूर्व! सबसे पूर्व विद्यमान! सबसे अधिक पूर्ण! तेरे से पूर्व और अधिक पूर्ण दूसरा नहीं। (वयम् उ) हम लोग (अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान, प्रेम और आनन्द की कामना करते हुए और (स्थूरं कत् चित्) किसी स्थिर या बड़े आश्रय को (न भरन्तः) न धारण करते हुए (वाजे) संग्राम या ऐश्वर्य के लिये (चित्रं) आश्चर्यकारक (त्वा) तुझ प्रभु वा स्वामी को (हवामहे) पुकारते और तुझ से प्रार्थना करते हैं।

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥ २॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो तू (धृषत्) दुष्टों को पराजित करने वाला, (युवा) नित्य बलवान् और (उग्रः) भयंकर होकर (नः चक्राम) हमें प्राप्त होता है, उस (त्वा) तुझको हम (ऊतये) रक्षा के लिये (कर्मन्) प्रत्येक कार्य में (उप ववृमहे) स्वीकार करते हैं। और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम (सखायः) तेरे मित्रजन (सानसिम्) सेवा करने योग्य उपास्य वा न्यायपूर्वक ऐश्वर्य का विभाग करने वाले (त्वाम् इत्) तुझको ही (अवितारं) रक्षक रूप से (ववृमहे) वरण करते हैं।

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्व-पते) अश्वों, इन्द्रियों और सूर्यादि लोकों के पालक ! स्वामिन् ! हे (गो-पते) गौवों, वाणियों और समस्त भूमियों के पालन करने हारे ! हे (उर्वरा-पते) उत्पादक भूमि के स्वामिन् ! हे (सोम-पते) उत्पन्न अन्न ओषधिवत् शिष्यपुत्रादि एवं जगत् के पालक ! आत्मन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (आ याहि) आ, प्राप्त हो, (इमे इन्दवः) ये ऐश्वर्य वा, स्नेहयुक्त प्रजाजन हैं तू उनका (पिब) पालन कर ।

वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्य के देने हारे ! तेजस्विन् ! (वयं विप्रासः) हम विद्वान् लोग (अबन्धवः) विना बन्धु के, निःस्सहाय वा बन्धनरहित, सब सांसारिक बन्धनों, सम्बन्धादि को शिथिल किये हुए (बन्धुमन्तं त्वा) बन्धु वाले तुझको ही (येमिम) हम अपने साथ बांधते हैं । हे (वृषभ) बलशालिन् ! समस्त सुखों की वर्षा करने हारे ! (या ते धामानि) जो तेरे नाना धारण सामर्थ्य, तेज हैं तू (तेभिः विश्वेभिः) उन सबों से (सोमपीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये राजा के समान हमें (सोमपीतये) ओषधि रसवत् आत्मानन्दरस के पान कराने के लिये (आ गहि) प्राप्त हो ।

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा वयः) जिस प्रकार पक्षीगण (गोश्रीते = गोश्रिते) भूमि पर आश्रित वा सूर्य द्वारा परिपक्व, फलवान् (विवक्षणे) विविध स्कन्धों वाले, वृक्षपर, (मदिरे मधौ) आनन्दमय वसन्त में वा अन्न पर आश्रित, (सीदन्तः अभिनोनुवन्ति)

बैठे हुए सब तरफ कलरव किया करते हैं उसी प्रकार हम भी (ते) तेरे (गो-श्रीते) वाणियों द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य, वाणी द्वारा स्तुति योग्य, (मदिरे) हर्षजनक (विवक्षणे) विविध प्रकार से कथनोपकथन करने एवं धारण करने योग्य (मधौ) मधुर, मधु, ज्ञानमय वेद एवं तेरे रूप में (सीदन्तः) आश्रय लेते हुए (त्वाम् अभि नोनुमः) तेरी ही साक्षात् स्तुति करें । वा, (गोश्रीते) इन्द्रियों से सेव्य हर्षजनक (विवक्षणे) विविध लोकों को उठाने वाले (मधौ) सुखमय संसार में आश्रय पाते हुए हम जीवगण तेरी स्तुति करते हैं ।

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥६॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! सूर्यादि लोकों के स्वामिन् ! हम (त्वा एना नमसा अच्छ वदामसि) तुझे लक्ष्य कर इस विनय से

समान अब भी हम लोग (नहि नु विद्म) कुछ भी नहीं जान पाये । तू अगम्य, महान्, असीम, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है ।

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥८॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! हम लोग (ते) तेरे (सखित्वम्) मित्र भाव को (विद्म) जानें (उत) और हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! शक्तिशालिन् ! हम लोग (ते) तेरे (ता) वे नाना प्रकार के ऐश्वर्य तथा (भोज्यं) भोग और पालन करने योग्य सुख, ऐश्वर्य तथा बल को (ते ईमहे) तुझ से मांगते और पाते हैं । हे (वसो) सबमें बसे ! सब जीवों को संसार में बसाने वाले ! (उतो) और हे (सु-शिप्र) उत्तम सुखप्रद तेज देनेहारे सुखमय स्वरूप ! तू (गोमति वाजे) इन्द्रियों से युक्त आत्मिक ऐश्वर्य, भूमि से युक्त ऐहिक ऐश्वर्य और वेद वाणी से युक्त (अस्मिन्) इस ज्ञान में (नः) हमें (शम् आ शिशीहि) अच्छी प्रकार अनुशासन कर, आशान्वित और सफल तेजस्वी बना ।

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (यः) जो प्रभु (पुरा) पहले भी (नः) हमें (इदम् इदम्) ये ये नाना गौ, भूमि, हिरण्य आदि (वस्यः) उत्तम २ ऐश्वर्य (आनिनाय) देता रहा है, उसी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को (ऊतये) रक्षा और उपासना करने के लिये मैं (वः स्तुषे) आप लोगों को भी उपदेश करता हूं ।

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१०।२॥

भा०—(सः हि स्म मघवा) वह ही निश्चय से परमैश्वर्यवान् है

(यः अमन्दत) जो स्वयं आनन्दमय होकर सब संसार को भी आनन्दित करता है। (सः तु) वही, (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हम में से (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले उपासक जनों के उपकारार्थ (शतम्) अनेक (गव्यम्) गौ और (अश्व्यम्) अश्वादि सम्पन्न नाना धन (आ वयति) निरन्तर दिया करता और बनाता रहता है, सन्तति-परम्परा से उनका तांता लगाये रखता है। मैं उपासक भी (तं) उस ही (हर्यश्वं) सब मनुष्यों और लोकों में व्यापक, किरणों में सूर्य के समान तेजस्वी, (सत्-पतिम्) सज्जनों और सत् कारण, प्रकृति के पालक और (चर्षणी-सहं) सब मनुष्यों को सहनेवाले प्रभु की (स्तुषे) स्तुति करता हूं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

त्वया॑ ह स्विद्युजा व॒यं प्रति॑ श्व॒सन्तं॑ वृषभ ब्रुवीमहि ।
सं॒स्थे जन॑स्य॒ गोम॑तः ॥ ११ ॥

भा०—(गो-मतः) कान, आंख आदि इन्द्रियगण और वाणी से युक्त, अविकलेन्द्रिय (जनस्य) मनुष्य के (संस्थे) समीप (श्वसन्तं) और श्वास लेने वाले प्रत्येक प्राणी के (प्रति) प्रति हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करने हारे ! (त्वया ह स्वित् युजा) तुझ अपने सहायक के साथ (प्रति ब्रुवीमहि) बात चीत करें। जनसमुदाय या किसी भी प्राणी के साथ बात चीत करते हुए तुझे अपना सहायक साथी जानें, किसी से मिथ्या व्यवहार न करें और न डरें। (२) इसी प्रकार (जनस्य संस्थे) मनुष्यों के संग्राम में (श्वसन्तं) क्रोध से फुफकारते शत्रु के प्रति तुझ सहायक से निर्भय होकर प्रतिवचन कहा करें।

जये॑म का॒रे पु॑रुहूत का॒रिणो॒ऽभि ति॑ष्ठेम दू॒ढ्यः॑ ।
नृभि॑र्वृ॒त्रं ह॒न्याम॑ शूशु॒याम॒ चावे॑रिन्द्र॒ प्र णो॒ धियः॑ ॥ १२ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) हे बहुतों से आदरपूर्वक स्तुत ! प्रभो ! राजन् ! हम (कारिणः) संग्राम करने में कुशल, एवं स्वयं भी कार्यकुशल होकर

(कारे) करने योग्य कार्य के अवसर में, वा संग्राम में (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले पुरुषों को (जयेम) पराजित करें और (अभि तिष्ठेम) उनका मुकाबला करें। (वृत्रं) बढ़ते और विघ्न करने वाले शत्रु को (नृभिः हन्याम) उत्तम नेता जनों से दण्डित करें और (शूशुयाम च) हम बढ़ें, उन्नति करें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों की (प्र अवेः) अच्छी प्रकार रक्षा कर और आगे बढ़ा।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नेता रहित और (सनात्) अनादि काल से (जनुषा) स्वभावतः (अनापिः असि) बन्धुरहित है। तू (युधा इत्) युद्ध द्वारा ही (आपित्वम् इच्छसे बन्धुता को चाहता है। जैसे कोई बलवान् राजा निर्बल पर आक्रमण करके ही उसके द्वारा प्रस्तुत सन्धि से बंधकर उसे अपना मित्र वा सम्बन्धी बना लेता है उसी प्रकार प्रभु परमेश्वर जीवगण को उनके कर्मानुसार (युधा) दण्डित करके ही उनको अपना भक्त बना लेता है, दुष्कर्म के बदले दण्ड पा कर दुःखी होकर वे प्रभु की शरण में ही आते हैं।

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (रेवन्तं) धन से सम्पन्न पुरुष को (सख्याय) अपने मित्रभाव के योग्य (नकिः विन्दसे) कभी नहीं पाता। सम्पन्न जन (सुराश्वः) 'सुरा', मद्य पी कर घमण्ड में फूलने वाले, मत्त जनों के समान 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने योग्य स्त्री भोग आदि विषय तथा राज्य लक्ष्मी से बढ़ते हुए, मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्त जनों को पीड़ित करते हैं। और जब तू उन को (नदनुं) स्तुति करने वाला (कृणोषि) कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर ही तू उन्हें (सम् ऊहसि) अच्छी

प्रकार अपने साथ लेता है, अपनी गोद में उठा लेता है अथवा जब तू (नदनुं) उपदेश करता है, तू उनको अपने साथ संगठित करता और (आत् इत्) अनन्तर ही (पिता इव हूयसे) पिता के समान पुकारा जाता है।

मा ते॑ अमा॒जुरो॒ यथा॑ मू॒रास॑ इन्द्र स॒ख्ये त्वाव॑तः ।
नि ष॑दाम॒ सचा॑ सु॒ते ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(मूरासः यथा अमा-जुरः) मूढ़, मरणोन्मुख मनुष्य जिस प्रकार रोग पीड़ाओं वा जड़ गृहादि, वा पुत्र पौत्रादि, 'अ-मा' अर्थात् अज्ञान के साथ ही जीवन भर अज्ञानी रहकर बूढ़े हो जाते हैं, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! उसी प्रकार (त्वावतः ते सख्ये) तेरे जैसे, तुझ अद्वितीय प्रभु के मित्र-भाव में रहकर हम लोग वैसे (मा) कभी न हों। अर्थात् हम रोगों में या पुत्र पौत्रादि के मोह में कभी बूढ़े न हों। प्रत्युत (सुते) ऐश्वर्य होजाने पर भी हम (सचा) तेरे साथ मिलकर (नि सदाम) स्थिर होकर विराजें। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा ते॑ गोदत्र॒ निर॑राम॒ राध॑स॒ इन्द्र॒ मा ते॑ गृहामहि ।
दृ॒ळ्हा चि॑द॒र्यः प्र मृ॑शाभ्या भ॑र॒ न ते॑ दा॒मान॑ आ॒दभे॑ ॥ १६ ॥

भा०—हे (गोदत्र) भूमियों, वाणियों और इन्द्रियों के देने हारे प्रभो! हम लोग (ते राधसः) तेरे दिये धन-आराधना से (मा निरराम) कभी वञ्चित न हों। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम (ते) तेरे होकर (मा गृहामहि) दूसरे का ग्रहण न करें। तू (अर्यः) स्वामी होकर (दृढ़ा) दृढ़, स्थिर धनों का (प्र मृश) प्रदान कर वा तू दृढ़ होकर हमें पकड़, और हमारे विषय में निर्णय, विचार कर। (अभि आ भर) हमें उत्तम रीति से पालन कर, सब ओर से हमें पकड़, (ते दामानः) तेरे दान और बन्धन (न आ-दभे) कभी विनष्ट नहीं हो सकते।

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥

भा०—हे (चित्र) समस्त जगत् में पूज्य एवं आश्चर्यजनक शक्ति-वाले प्रभो ! तू (दाशुषे) दानशील, उपासक को (इन्द्रः वा) ऐश्वर्य-वान् के समान (घ) ही (इयत् मघं ददिः) इतना धन देता और तू (सरस्वती वा सुभगा) सौभाग्यवती सरस्वती, उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री वा उत्तम जल वाली नदी के समान (इयत् वसु ददिः) जलवत् अपरिमित इतना धन-प्रवाह देने वाला है कि जिसका पारावार नहीं । अत्र वेत्युपमार्थीयः ॥

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥ ४ ॥

भा०—(यके) जो (सरस्वतीम्) नदीवत् प्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न प्रभु के (अनु) ऊपर निर्भर हैं वे (अन्यके राजकाः इत्) और सब छोटे २ राजाओं के तुल्य स्वप्रकाश आत्मा हैं । और (चित्र इत्) सबको चेतना वा ज्ञान देने वाला है वही आश्चर्यकारी प्रभु (राजा) बड़ा भारी राजा के तुल्य, सूर्यवत् प्रकाशमान है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२२]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । ३, ५ निचृद् बृहती । ७ बृहती पथ्या । २ विराट् पंक्तिः । ६, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ४, १० सतः पंक्तिः ॥ २४ भुरिक् पंक्तिः । ८ अनुष्टुप् । ९, ११, १७ उष्णिक् । १३ निचृदुष्णिक् । १५ पादनिचृदुष्णिक् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वों के स्वामीवत् जनो ! हे (सु-हवा) उत्तम नाम और उत्तम वचन वाले, हे (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापतिवत् वा दुःख दूर करने वाले, वैद्यवत् कार्य व्यवहार करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यं) जिस (दंसिष्ठं) दुष्टों के नाशक और खूब कर्म करने में समर्थ, (रथम्) रमणीय, सुखजनक रथवत् गृहस्थ पर (सूर्यायै) सूर्य की कान्ति के समान तेजस्विनी, एवं दीप्तिमती कन्या वा वधू वा सन्तानजनक माता की (ऊतये) रक्षा के लिये (आ तस्थथुः) स्थित होते हैं (ओ) हे स्त्री पुरुषो ! मैं (त्यं रथम्) उस रमण करने योग्य गृहस्थ रूप रथ का (अह्वे) वर्णन करता हूं ।

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥

भा०—उसी गृहस्थ रथ का वर्णन करते हैं । हे (सोभरे) प्रजा का उत्तम रीति से भरण पोषण करने में समर्थ पुरुष ! मैं तुझे ऐसे उस रथ का उपदेश करता हूं जो (पूर्व-आ-पुषम्) अपने पूर्वज जन को पुष्ट करता, उनके वंश की वृद्धि करता है, (सु-हवं) शुभ नाम वाला, (पुरु-स्पृहं) बहुतों के साथ स्नेह करने वाला, (वाजेषु पूर्व्यम्) ऐश्वर्यों और ज्ञानों से पूर्ण, (सचनावन्तं) आसक्ति और प्रेम से युक्त (भुज्युं) भोगों की कामना वाला और प्रजा सन्तानादि के रक्षा करने वाला, (वि-द्वेषसम्) परस्पर के द्वेष से रहित, (अनेहसम्) पापों, अपराधों से रहित हैं, उस गृहस्थ रूप रथ का मैं (अह्वे) उपदेश करूं । गृहस्थ स्त्री पुरुषों से भिन्न नहीं होता अतः ये सब गुण विशेष स्त्री-पुरुषों के ही हैं । स्त्री पुरुषों को ही ऐसा होना चाहिये ।

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥

भा०—(इह) यहां (दाशुषः) आतिथ्यादि देने वाले के (गृहं

गन्तारा) गृह पर जाने वाले, (पुरु-भूतमा) बहुतों के प्रति सद्भावना करने वाले, (देवा) उत्तम गुणों से अलंकृत (त्या) उन दोनों (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (अवसे) उत्तम रूप से तृप्त, प्रसन्न करने के लिये, (नमोभिः) अन्नों और आदरयुक्त वचनों से (सु करामहे) सत्कार करें ।

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥

भा०—गृहस्थ रथ के दो चक्र । हे (ईर्मा) एक शरीर में लगे दो बाहुओं के समान (शुभः-पती) उत्तम व्रतों, कर्मों के पालक, एवं शोभा युक्त पति-पत्नी जनो ! (युवोः रथस्य चक्रम्) तुम दोनों के बने रथ अर्थात् रमणीय रथवत् गृहस्थ का एक 'चक्र' वत् कर्त्ता पुरुष, (परि ईयते) सर्वत्र बाहर जाता है, और (वाम् अन्यत्) तुम दोनों में दूसरा चक्र स्त्री, वह केवल (इषण्यति) चाहना करती है । (वां सु-मतिः) तुम दोनों की उत्तम बुद्धि (धेनुः इव) गौ के समान (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हम को भली प्रकार प्राप्त होवे ।

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ के समान सुख देने वाला, उत्तम गृहस्थ रूप रथ है वह रथ के समान ही (त्रि-बन्धुरः) तीन ऋण रूप बन्धनों के समान कायिक, मानसिक और वाचिक तीनों बन्धनों से युक्त है, इसमें (हिरण्याभीशुः) हित रमणीय वचन वा सुवर्णादि ही अभीशु अर्थात् लगाम के समान है । वह (श्रुतः) विख्यात, एवं गुरूपदेशादि श्रवण करके विद्या से सम्पन्न होकर (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के सदृश (परि भूषति) सुशोभित होता है । हे (नासत्या) कभी व्यभिचार आदि असत्याचरण

न करने वाले आप दोनों (तेन) उसी रथ से (आ गतम्) आओ, जाओ, संसार मार्ग की यात्रा किया करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

दुशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥

भा०—आप दोनों (दशस्यन्ता) दानशील होकर (मनवे) मनुष्यों के हितार्थ, (पूर्व्यं यवं) पूर्वों से उपदिष्ट यव आदि धान्य की (दिवि) भूमिपर (वृकेण कर्षथः) हल द्वारा कृषि करो। हे (शुभः-पती) शोभा-युक्त पति पत्नी ! हे (अश्विना) रथी सारथिवत् पति पत्नी ! (ता) उन (वाम्) तुम दोनों को हम (सु-मतिभिः) उत्तम बुद्धियों और ज्ञानों से (प्र स्तुवीमहि) उत्तम उपदेश करें। विवाह के अनन्तर वृद्धयर्थ जौ के खेत बुवाने की प्रथा की जाती हैं। वर वधू को उत्तम आसन पर बिठला कर उनको जौं देकर बैठा दिया जाता है और अधीन कृपकों के प्रतिनिधि-भू त अन्य स्त्री पुरुष उनके चारों ओर घूमते हैं वे दोनों उनकोबोने के लिये जौ बांटते हैं।

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥७॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञानवाली, बलवती, और अन्नवती; बुद्धि, सेना और कृपि रूप धन के धनी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (येभिः) जिन (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, ज्ञान, और न्याय के प्राप्त कराने वाले उपायों से (त्रासदस्यवं) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने और दुष्टों को भय देने वाले सैन्य बल के नायक (तृक्षिं) विजिगीषु नायक को (महे क्षत्राय) बड़े भारी धन बल को प्राप्त करने के लिये (जिन्वथः) बढ़ा सकते हो, आप दोनों (वृषणा) बलवान् होकर उन ही (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, न्यायादि मार्गों से (नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो।

अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) उत्तम सुख की वर्षा करने वाले, बलवान् अंगों के स्वामी जनो ! हे (नरा) उत्तम नायक नायिका जनो ! (वाम्) आप दोनों का (अयम्) यह (सुतः) उत्पादित ऐश्वर्य (अद्रिभिः) मेघों से उत्पादित वा पाषाणादि से पीस कर तैयार किये अन्न के समान (अद्रिभिः) अखण्ड शस्त्रों, बलों से उत्पन्न किया जाता है । आप दोनों (सोम-पीतये) ऐसे ऐश्वर्य के उपभोग और पालन के लिये (दाशुषः गृहम्) दानशील यज्ञकर्त्ता पुरुष के गृह पर (आ यातम्) आवो और (पिबतम्) उसका पालन और उपभोग करो ।

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् साधनों के स्वामी जनो ! हे (वृषण्वसू) हे बलवान् पुरुषों के अधीन जनो ! या बलशाली पुरुषों के बीच वसने वालो ! आप दोनों (रथे) रथ के समान सुखजनक (हिरण्यये) सुवर्ण से पूर्ण (कोशे) कोश, खजाने पर (आरुहतम्) स्थिर होवो । और (पीवरीः इषः) सम्पन्न अन्नों, और अभिलाषाओं को (युञ्जाथाम्) प्रदान करो ।

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०॥६॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान्, अश्व रथादि के स्वामी जनो ! आप दोनों (याभिः) जिन उपायों से (पक्थम् अवथः) पके अन्न की रक्षा करते हो, और (याभिः) जिन उपायों से (अध्रिगुं अवथः) अस्थिर रूप से गमन करने वाले, निर्बल बालकवत् दीन जन की रक्षा करते हो, और (याभिः) जिन उपायों और शक्तियों से (वि-जोषसम्) विशेष

प्रीति युक्त (बभ्रुं) भरण पोषणकारी माता पितावत् पालक एवं सेवक जन की रक्षा करते हो, (ताभिः) इन सब शक्तियों वा साधनों सहित (नः) हमें (मक्षु तूयम्) शीघ्रातिशीघ्र (आ गतम्) आओ और (यत् आतुरम्) जो पीड़ित जन हो उसके (भिषज्यतम्) दुःखों को दूर करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्रि-गू) इन्द्रियों पर अधिकार करने वाले! हे (अश्विना) अश्ववत् वेगवान् मन पर वश करने वाले जनो! (यत्) जब हम (अध्रि-गावः) वाणियों पर वशी (विपन्यवः) स्तुतिकर्त्ता हो (अन्हः चित् इदा) दिन के उसी उत्तम समय में आप दोनों की (गीर्भिः हवामहे) वाणियों से स्तुति करें, आप दोनों को आदर से बुलावें। उत्तम वाणियों से आप दोनों को उपदेश करें।

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम्। इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् १२

भा०—हे (वृषणा) बलवान्, सुखों की वृष्टि करने वाले मेघ पवन-वत् स्त्री पुरुषो! आप लोग (विश्व-प्सुं) नाना रूप के (विश्ववार्यं) सब साधनों से सम्पन्न, सब कष्टों के वारण करने वाले, (मे हवं) मेरे यज्ञ को आप (ताभिः) उन शक्तियों सहित (आयातम्) आवो (याभिः) जिनसे आप दोनों (इषा) इच्छावान्, (मंहिष्ठा) दानशील (पुरु-भूतमा) अधिक सामर्थ्यवान् (नरा) नायक होकर (क्रिविं वावृधुः) शत्रुनाशक स्वामी की वृद्धि करते हो, (ताभिः) उन सहित ही (आ ग-तम्) हमारे पास भी आवो।

ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे।
ता ऊ नमोभिरीमहे ॥ १३ ॥

भा०—(अहानां इदा चित्) दिनों के वर्त्तमान काल में, सब दिनों, (तौ) उन दोनों की मैं स्तुति करूं और (तौ अश्विनौ) उन दोनों जितेन्द्रिय पुरुषों को (वन्दमानः) नमस्कार करता हुआ (उप ब्रुवे) उनके समीप जाकर वचन कहूं । (नमोभिः) हम लोग आदर युक्त वचनों से (ता उ ईमहे) उनसे प्रार्थना करें ।

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४॥

भा०—(तौ इत् दोषा) वे दोनों रात्रि में, (ता उषसि) वे दोनों, प्रभात वेला में, (शुभः-पती) शुभ गुण, कर्मों और शोभा और अन्न जलादि के पालक, एवं शोभा युक्त पति पत्नी हों । (यामन्) मार्ग में, वा नियम व्यवस्थाओं में (ता) वे दोनों (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने और रोग दूर करने और उपदेष्टा आदि के समान उत्तम व्यवहार करने वाले हों । हे (वाजिनी-वसू) बल, ज्ञान, अन्नादि युक्त प्रजा के धनी जनो ! हे (रुद्रौ) दुष्टों को रुलानेवालो ! आप दोनों (नः) हमें (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु या पापी मनुष्य के लाभ या वृद्धि के लिये (मा अति ख्यतम्) मत परि त्याग करें ।

आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सक्षणी) एक साथ रहने वाले, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (प्रातः) प्रातःकाल, (सुग्म्याय) सुख प्राप्त करने के लिये (सुग्म्यं) सुखपूर्वक (रथेन) रमण योग्य, सुख से सेवने योग्य, गृहस्थ रूप रथ से (आ) जीवन व्यतीत करो । मैं (सोभरा) उत्तम रीति से पोषण करने वाला (पिता इव) पिता के समान तुम दोनों को (हुवे) बुलाता हूं और उपदेश करता हूं । इति सप्तमो वर्गः ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥

भा०—हे (मनो-जवसा) ज्ञानपूर्वक एवं मन के वेग से जाने वाले, (वृषणा) बलवान्, एवं वीर्यसेचन में समर्थ, पूर्ण युवा, (मद-च्युता) हर्ष से जाने वाले, वा शत्रुओं के मद को दूर करने में समर्थ, और (पुरु-भोजसा) बहुतों की रक्षा करने वाले आप दोनों (अस्मे अवसे) हमारी रक्षा के लिये, (पूर्वीभिः) पूर्व विद्यमान, बल से पूर्ण (मक्षुं-गमाभिः) अति वेग से जाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं सहित (आरात्तात् चित्) हमारे अति समीप और दूर भी (भूतम्) होवो।

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (मधु-पातमा) मधुर अन्न जल, आदि हर्षदायक पदार्थ और ज्ञान के उपभोग और रक्षा करने वाले (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (अश्वावत्) अश्वों, (गोमद्) गौओं और (हिरण्यवत्) सुवर्ण से समृद्ध (वर्त्तिः) गृह में (आ यासिष्टम्) आओ, और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो ।

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि॥१८॥८॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्यादियुक्त, विद्या, सेना, कृषि, राज्यलक्ष्मी आदि के धनी स्त्री पुरुषो ! हम लोग (रक्षस्विना अनाधृष्टं) 'रक्षस्' अर्थात् नाना दुष्ट जनों के सर्दार द्वारा भी बलात्कार से न पराजित होने वाला (सुष्ठु) उत्तम (वार्य) धन और (सु-प्रावर्ग) शत्रुओं को वर्जन करने वाला (सु-वीर्य) उत्तम बल युक्त, सैन्य और (वाम् आयाने) आप दोनों के आजाने पर (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (विश्वा

-चामानि) समस्त उत्तम पदार्थ हम लोग (आ धीमहि) धारण करें ।
इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, १०, १४—१६, १६—२२, २६, २७ निचृदुष्णिक् । २, ४, ५, ७, ११, १७, २५, २६, ३० विराडुष्णिक् । ६, ८, ६, १३, १८ उष्णिक् । १२, २३, २८ पादनिचृदुष्णिक् । २४ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं१ यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (प्रतीव्यः) प्रत्यक्ष में कान्तियुक्त (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, (चरिष्णु-धूमः) फैलने वाले धूम वाला, (अगृभीत-शोचिः) न स्पर्श करने योग्य ज्वाला वाला होता है उसी प्रकार हे मनुष्य तू (प्रतीव्यं) प्रत्यक्षतः कान्तिमान् तेजोमय (जातवेदसम्) समस्त पदार्थों को जानने वाले, (चरिष्णु-धूमम्) विश्वभर में व्यापक सञ्चालक शक्ति वाले, (अगृभीत-शोचिषम्) अपरिचित वा प्रत्यक्ष चक्षुओं से न दीखने योग्य तेज वाले, प्रभु परमेश्वर की (हि) अवश्य (ईडिष्व) उपासना कर ।

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा ।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विश्व-चर्षणे) संसार भर में प्रविष्ट, व्यापक एक ही महान् प्रभु को देखने वाले ! हे (विश्व-मनः) उसी सर्वव्यापक, कामना न करने वाले, उसमें निमग्न मन वाले ! तू (गिरा) वाणी से (वि-स्पर्धतः) विविध प्रकार की स्पर्द्धाएं करने वाले, नाना ऐश्वर्यों के इच्छुक जीव को

(रथानां) नाना रमण करने योग्य देहों के (दामानं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् तेजस्वी और व्यापक परमेश्वर की (उत) भी (स्तुषे) स्तुति कर।

येषामाबाध ऋग्मियं इषः पृक्षश्च निग्रभे।
उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥

भा०—(ऋग्मियः) वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य, (वह्निः) जगत् को धारण करने वाला, (आ-बाधः) दुष्ट पुरुषों को सब प्रकार से पीड़ित करने वाला होकर (इषः पृक्षः च) उनकी इच्छा और अन्नादि को भी (नि-ग्रभे) रोक देता है, उन पर प्रतिबन्ध लगा देता है। वह (उप-विदा) विवेक पूर्वक (वसु विन्दते) धन प्राप्त कराता है। (२) राजा अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है। वह स्तुति योग्य, दुष्टों का बाधक होता, अन्न, सेनादि का निग्रह, व्यवस्था करता, प्रजा के साथ आमन्त्रणा करके करद्वारा ऐश्वर्य संग्रह करता है।

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्यजरम्।
तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस भौतिक अग्नि की ज्वाला ऊपर को उठती है, वह (वि-अजरम्) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न करके दूर २ तक फेंकती या फैला देती हैं, (तपुः-जम्भः) अग्नि का प्रताप ही मानो उसकी दाढ़ों के समान काष्ठादि को खाजाने का साधन है। वह (सु-द्युत्) उत्तम कान्ति युक्त (गण-श्रीः) गणनीय, दर्शनीय शोभा से युक्त होता है। इसी प्रकार (अस्य) इस (सु-द्युतः) उत्तम कान्तियुक्त, तेजस्वी, (गण-श्रियः) अनुयायी सैन्य गण का आश्रयणीय, उनके बीच में शोभावान् (दीदियुषः) देदीप्यमान, (अस्य) इस राजा वा प्रभु का (वि-अजरम्) विशेष रूप से अविनाशी वा विविध प्रकार से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (शोचिः) तेजः (उत् अस्थात्) सर्वोपरी उठता है और विराजता है। (तपुर्जम्भस्य) शत्रुसन्तापक शस्त्रास्त्र

बल ही उसकी जम्भ या दंष्ट्रा के समान दुष्टों शत्रुओं को हड़प जाने का साधन होता है। (३) इसी प्रकार प्रभु की अविनश्वर दीप्ति सर्वोपरि विराजती है। वह विकृति आदि गण में विराजता और उनका आश्रय है। दुष्टों का सन्तापक बल ही उसकी महान् दाढ़ है, जिनमें दुष्ट पिसते, नाना नरक भोगते हैं। वह स्वभावतः उत्तम कान्तिमान् है।

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा।
अभिख्या भासा बृहता शुशुकनिः ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक! हे प्रभो! राजन्! विद्वन्! हे (स्वध्वर) उत्तम अविनाशिन्! उत्तम हिंसारहित! प्रजापालक! तू (देव्या कृपा) तेजोयुक्त प्रजा को सुख देने वाली राजशक्ति से और (अभि-ख्या) सब ओर स्पष्ट घोषणा करने वाली वा प्रसिद्ध वाणी और (भासा) कान्ति और (बृहता) बड़े भारी ज्ञान और बल से युक्त होकर (शुशुक्वनिः) निरन्तर अग्निवत् शुद्ध, कान्तिमान्, तेजस्वी, और (स्तवानः) स्तुति किया जाकर वा अन्यों को उपदेश वा आज्ञावचन कहता हुआ (उत् तिष्ठ उ) उत्तम आसन पर विराज। इति नवमो वर्गः ॥

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक्।
यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (सुशक्तिभिः हव्या आनुषक् जुह्वानः) उत्तम वेद-स्तुतियों सहित उत्तम हव्यों का ग्रहण करता हुआ (दूतः) तापकारी होकर (हव्य-वाहनः भवति) हव्य, चरु आदि पदार्थों को दूर २ तक पहुंचाने में समर्थ होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) राजन्! विद्वन्! तू भी (सु-शक्तिभिः) उत्तम शासनों द्वारा (आनुषक्) निरन्तर (हव्या जुह्वानः) राजा के ग्रहणयोग्य करों और विद्वानों के ग्राह्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को लेता हुआ (दूतः यथा) दूत, संदेश हर के समान (हव्य-

वाहनः बभूथ) ग्राह्य वचन और ज्ञान को पहुंचाने वाला होता है। वह तू (याहि) हमें प्राप्त हो।

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं हु॑वे॒ होता॑रं चर्षणी॒नाम्।
तम॒या वा॒चा गृ॑णे॒ तमु॑ वः स्तुषे॥ ७॥

भा०— हे मनुष्यो! मैं (वः) आप लोगों को (चर्पणीनां) ज्ञान को देखने वाले इन्द्रियों के (होतारं) बल देने वाले आत्मा के समान (चर्पणीनां) ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के (पूर्व्यं) सब से पूर्व विद्यमान ज्ञान और शक्ति में परिपूर्ण (अग्निः) उस ज्ञानी प्रभु का (वः हुवे) तुमको ज्ञानोपदेश करता हूं। और (तम्) उस प्रभु की मैं (अया वाचा) इस व्यक्त वेदवाणी से (गृणे) स्वयं स्तुति करता हूं और (तम् उ वः स्तुषे) उसका ही मैं आप लोगों को उपदेश करता हूं।

य॒ज्ञेभि॒रद्भु॑तक्रतुं॒ यं कृ॒पा सू॒दय॑न्त॒ इत्।
मि॒त्रं न जने॒ सुधि॑तमृ॒ताव॑नि॥ ८॥

भा०—(ऋतावनि जने) सत्य, वेदज्ञान एवं न्यायमार्ग का सेवन करने वाले मनुष्य के बीच (सुधितम्) उत्तम रीति से धारित एवं (मित्रं न) मित्र, स्नेही जन के समान, प्राणप्रद, प्राणरक्षक रूप से (कृपा) अपने दया एवं जगद्-रचनादि सामर्थ्य से (अद्भुत-क्रतुं) अद्भुत ज्ञान और कर्म वाले (यं) जिसकी ओर सब उपासकजन (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनाओं से (सूदयन्त इत्) अति द्रवित, प्रेमार्द्र होकर जलोंवत् स्वभावतः वह ही जाते हैं मैं उसीका तुमको उपदेश करता हूं। उसीकी स्तुति करता हूं।

ऋ॒तावा॑नमृताय॒वो य॒ज्ञस्य॒ साध॑नं गि॒रा।
उपो॑ एनं जुजुषु॒र्नम॑सस्प॒दे॥ ९॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतायवः) अन्नार्थी (नमसः पदे) अन्न के पाने के लिये (ऋतावानं जुजुषुः) अन्न के स्वामी की सेवा करते हैं उसी

प्रकार (ऋतायवः) सत्य ज्ञान की आकांक्षा करने वाले, पुरुष (यज्ञस्य साधनम्) यज्ञ को साधने वाले, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान के दाता, (एनं) उसको ही (नमसः पदे) आदर नमस्कार के योग्य प्रतिष्ठा पद पर स्थापित (एनं) उसकी (गिरा) वेदवाणी से ही (उपो जुजुपुः) उपासना पूर्वक सेवन और प्रेम करें।

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः।
होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो (विक्षु) प्रजाओं में (होता) सब सुखों का दाता और (यशः-तमः) कीर्त्ति और बल में सबसे अधिक (अस्ति) है। उसी (अंगिरस्तमं) सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी और तपस्वितम पुरुष को (अच्छा) प्राप्त कर (यज्ञासः) यज्ञ और संगठित दल भी (सं-यतः सन्तु) सुसम्बद्ध होकर आगे बढ़ें। इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद्भाः।
अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! स्वामिन्! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ? हे अविनाशिन्! (तव) तेरे (त्ये) वे (इन्धानासः) देदीप्यमान (तविषीयवः) बलवान्, (वृषणः) मेघवत् सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करने वाले (बृहद्-भाः) बड़े २ प्रकाशों से चमकने वाले और (अश्वाः इव) अश्वों वा सूर्यों के समान सुदृढ़ हैं।

स त्वं न ऊर्जांपते रयिं रास्व सुवीर्यम्।
प्राव न स्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऊर्जां पते) अन्नों और बलों के स्वामिन्! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (रास्व)

प्रदान कर। (समत्सु) संग्रामों में (नः तोके तनये) हमारे पुत्र पौत्रों के निमित्त हमारे धन की (प्र-अव) अच्छी प्रकार रक्षा कर।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥

भा०—(यत् वै उ विश्पतिः) जब भी प्रजाओं का पालक (शितः) तीक्ष्ण, बलवान् (सुप्रीतः) अच्छी प्रकार तृप्त, प्रसन्न होकर (मनुषः विशि) मनुष्यों के प्रजाजन के बीच विराजता है वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (विश्वा इत् रक्षांसि प्रति सेधति) समस्त राक्षसों को उनका मुकाबला करके दूर करता है, उनका नाश कर देता है।

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥

भा०—हे (वीर विश्पते) शूरवीर प्रजा के पालक! (अग्ने) तेजस्विन्! तू (मे स्तोमस्य) मेरे स्तुत्य वचन को (श्रुष्टी) श्रवण करके शीघ्र (मायिनः रक्षसः) मायावी, राक्षस, दुष्ट पुरुष को (नि दह) भस्म कर।

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः।
यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (अग्नये) अग्नि में (हव्य-दातिभिः) हव्य चरु की आहुतियों द्वारा (ददाश) प्रदान करता है उसी प्रकार जो प्रजाजन (अग्नये) अग्रणी, तेजस्वी नायक राजा को (हव्य-दातिभिः) ग्राह्य कर-आदि अंशों से (ददाश) उसको प्रदान करता है (तस्य) उस पर (रिपुः मर्त्यः) शत्रु मनुष्य (मायया चन) माया, कुटिल बुद्धि से भी (न चन ईशीत) कभी अधिकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार जो विद्वानों को अन्नादि से पालता है शत्रु उससे बुद्धि बल से बढ़ नहीं सकता। परमेश्वर के प्रति स्तुत्य वचनों से जो अपने को सौंपता है शत्रु उस पर छल कपट से वश नहीं कर सकता है। इत्येकादशो वर्गः॥

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः ।
महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥

भा०—(उक्षण्युः) जलसेचक मेघ की इच्छा करने वाला, (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वि-अश्वः) विशेष विद्वान् होकर (वसु-विदम्) जीवन को प्राप्त कराने वाले सूर्य या अग्नि को (अप्रीणात्) हव्यों से तृप्त करता है, उसी प्रकार (उक्षण्युः) समस्त संसार को वहन करने और सुखों के वर्षक प्रभु को चाहने वाला (वि-अश्वः) विशेष सुख आनन्द के भोगने या प्राप्त करने वाला (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वसु-विदम्) समस्त ऐश्वर्यों के देने वाले प्रभु को (अप्रीणात्) प्रसन्न करे, उसकी प्रार्थना करे। हम भी (महः राये) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (तम् उ त्वा) उस तुझको (सम् इधीमहि) अच्छी प्रकार अपने हृदय में, कुण्ड में अग्नि के समान प्रज्वलित करें ।

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।
आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ॥ १७ ॥

भा०—(काव्यः) कवि, विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों का पुत्र वा शिष्य अथवा स्वयं कवि, सर्वोपदेष्टा प्रभु का उपासक (उशनाः) कामनावान् जीव (मनवे) मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये (होतारं) सर्व सुखदाता, (आयजिं) सब प्रकार से पूज्य (जात-वेदसं) सर्वज्ञानी, सर्वैश्वर्यवान् (त्वा) तुझे ही (वि-असादयत्) सर्वात्मना प्राप्त करे ।

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानैश्वर्य के देने वाले ! (स-जोषसः) समान प्रीति से युक्त (विश्वे हि देवासः) सब विद्वान् तेरी कामना करने वाले और तुझे चाहने वाले जन (त्वा) तुझ को (दूतम् अक्रत) अपना संदेशहर, ज्ञानदाता स्वीकार करते हैं । हे (देव) देव ! तू ही

(श्रुष्टी) शीघ्र (प्रथमः) सब से प्रथम (यज्ञियः भुवः) सर्वोपास्य है। (२) इसी प्रकार विद्वान् लोग अग्नि, विद्युत् को एवं विद्वान् ज्ञानी को अपना संदेशहर दूत बनाते हैं। वह अग्नि ही प्रथम यज्ञ का साधन बनाया गया है।

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः।
पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥ १९ ॥

भा०—(वीरः मर्त्यः) विशेष विद्वान् मनुष्य (पावकं) पवित्र करने वाले (कृष्ण-वर्त्तनिम्) पापों के नाशक व्यवहार वाले वा चित्ता-कर्षक मार्ग वाले, वा (कृष्ण-वर्त्तनिं) आकर्षणशील सूर्यादि लोकों को अपने २ मार्गों से संचालन करने वाले, (विहायसं) महान् आकाशवत्, व्यापक (इमं घ) इस प्रभु को ही (दूतं) उपास्य (कृण्वीत) बनावे। (२) अग्नि भी शोधक होने से पावक है, कृष्णधूम को उत्पन्न करता वा जहां से गुजरता है जलाकर काला करता है वा मनुष्य आकर्षण करने वाले व्यापक विद्युत् को संदेशहर दूत बनावे, टेलिफोन, तार, रेडियो आदि यन्त्रों में प्रयोग करे।

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम्।
विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(सु-भासं) उत्तम कान्तिमान्, (शुक्र-शोचिषम्) शुद्ध प्रका-शवान्, अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (तम्) उसी (विशाम् अग्निम्) प्रजाओं या देह में प्रविष्ट होने वाले जीवों को अग्रणी नायकवत् कर्म व्य-वस्था में संचालक, (अजरं) अविनाशी, (प्रत्नम्) सदातन, (ईड्यम्) स्तुत्य प्रभु को हम (यत-स्रुचः) स्रुच् आदि यज्ञ साधनों के समान अपने प्राणों को संयम करके (हुवेम) उसकी उपासना करें। इति द्वादशो वर्गः॥

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्।
भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥ २१ ॥

भा०—(यः) जो (मर्तः) मनुष्य (अस्मै) इस अग्नि की (हव्य-दातिभिः) चरु की आहुतियों द्वारा (आहुतिं) आहुति, यज्ञ, (अविधत्) करता है, इसी प्रकार जो (अस्मै) उस प्रभु का (हव्य-दातिभिः) स्तुत्य वचनों द्वारा (आहुतिं) प्रार्थनोपासना (अविधत्) करता है, (सः) वह (भूरि-पोषं धत्ते) बहुत पुष्टिकारक अन्न, धन धारण करता है और (वीर-वद् यशः धत्ते) वीर पुत्रादि से युक्त यश भी प्राप्त करता है। वह पुत्रवान् यशस्वी, अन्नवान् और समृद्धिमान् हो जाता है।

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञेषु अग्निं प्रति हविष्मती स्रुग् नमसा प्रति एति) यज्ञों में अग्नि को लक्ष्य कर हविष्य से युक्त स्रुक्, चमसा नमस्कार-युक्त मन्त्र से आता है उसी प्रकार (यज्ञेषु) समस्त उपास्य एवं सत्संग-योग्य पूज्य जनों में (पूर्व्यम्) पूर्व एवं ज्ञानशक्ति आदि में पूर्ण (प्रथमं) सबसे प्रथम विद्यमान (जातवेदसम्) ज्ञानवान्, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर (हविष्मती) ज्ञान से युक्त (स्रुक्) बुद्धि, वाणी (नमसा) आदरपूर्वक (प्रति एति) उसी को प्राप्त होती और उसी का ज्ञान करती है।

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् ।
मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥

भा०—हम (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेज वाले, प्रकाशस्वरूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (व्यश्ववत्) विशेष रूप से संयतेन्द्रिय वा ज्ञानवान् होकर (ज्येष्ठाभिः) सर्वश्रेष्ठ (मंहिष्ठाभिः) अतिपूज्य, ज्ञान-प्रद (आभिः) इन (मतिभिः) वाणियों और बुद्धियों से (विधेम) उपासना करें।

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् ।
ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥ २४ ॥

भा०—हे (वैयश्व ऋषे) जितेन्द्रिय ज्ञानदर्शिन् मनुष्य ! तू (दम्याय अग्नये) गृह में स्थापन करने योग्य गार्हपत्याग्नि के समान (दम्याय अग्नये) सब संसार को दमन करने में समर्थ, ज्ञानवान् (विहायसे) महान् प्रभु की (स्थूर-यूपवत्) बड़े २ यूपों से युक्त यज्ञ के समान (नूनम्) अवश्य (स्तोमेभिः) वेदमन्त्रों से (अर्च) उपासना किया कर। अध्याधम में—(स्थूरयूपवत्) स्थिर आत्मा वा सूर्य के समान सर्वप्रकाशक प्रभु की स्तुति किया कर।

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।
विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥ २५ ॥ १३ ॥

भा०—(मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों के बीच (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (वनस्पतीनाम्) तेज के पालक, सूर्यों और वनस्पतियों के (सूनुं) सञ्चालक और उत्पादक (प्रत्नम् अग्निम्) सनातन ज्ञानवान् प्रभु की (विप्राः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं। (२) लौकिक अग्नि, मनुष्यों में जाठर रूप से व्यापक, और वनस्पति काष्ठादि से उत्पन्न होता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा ।
अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्नये) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वामिन् ! तू (महतः विश्वान् सतः) बड़े २ विश्वों और विद्यमान पदार्थों को (अभि सत्सि) व्यापता है। तू (मानुषा हव्या अभि सत्सि) मनुष्यों के वचनों को स्वीकार करता है। हे प्रभो ! तू (अधि बर्हिषि) इस महान् संसार में (नमसा) बड़े भारी बल के साथ (नि सत्सि) यज्ञ में अन्नसहित अग्नि के समान

विराजता है। (२) उसी प्रकार सब पर (नमसा) शस्त्र बल से राष्ट्र-प्रजाजन के ऊपर शासक रूप से विराजे।

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः।
सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः॥ २७॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (नः) हमें (पुरु-वार्या) बहुत से उत्तमोत्तम धनादि (वंस्व) प्रदान कर। और तू हमें (प्रजावतः) प्रजा का उत्पादक (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्य और (यशस्वतः) उत्तम यश, कीर्त्ति, बल और अन्न से सम्पन्न (नाना रायः वंस्व) अनेक ऐश्वर्य दे।

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय।
सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते॥ २८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! हे (वरो) वरण योग्य! हे (वसो) सब जगत् को बसाने और उसमें बसने वाले! हे (यविष्ठ) अतिशय बलशालिन्! हे सबसे बड़े दुःख दूर करने हारे! (त्वं) तू (सदा) सब कालों (शश्वते) बहुत से (सु-साम्ने) उत्तम साम गान करने वाले स्तुतिकर्त्ता उपासक (जनाय) मनुष्यों के हितार्थ (रातिं) दान राशि और उत्तम ज्ञान को (चोदय) प्रेरित कर, प्रदान कर।

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः।
महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि॥ २९॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक! प्रकाशस्वरूप! उन्नति के मार्ग में लेजाने हारे! (त्वं हि) तू निश्चय से (सु-प्रतूः असि) उत्तम रीति से धन प्रदान करने हारा है। (त्वं) तू (नः) हमें (गोमतीः इषः) इन्द्रियों या वाणी से युक्त उत्तम इच्छाओं और भूमि, गवादि पशु समेत अन्न, (महः रायः सातिम्) बड़े भारी ऐश्वर्य के भाग को (अप वृधि) खोल, हमें प्रदान कर।

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।
ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥ ३० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने त्वं यशाः असि) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू यशःस्वरूप, कीर्त्तिमान् है । तू (ऋतवाना) सत्यनिष्ठ, (सम्राजा) समान भाव से तेजोयुक्त, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल और ज्ञान वाले, (मित्रावरुणा) सर्व-स्नेही ब्राह्मण, और 'वरुण' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष क्षत्रिय दोनों को (महो रायः सातिम्) बड़े भारी धन का विभाग (वह) प्राप्त करा । प्रभु परमेश्वर विद्वानों को ज्ञान का और क्षत्रियों को बल का धन देता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२४]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—२७ इन्द्रः । २८—३० वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ११, १३, २०, २३, २४ निचृदुष्णिक् । २—५, ७, ८, १०, १६, २५—२७ उष्णिक् । ९, १२, १८, २२, २८ २९ विराडुष्णिक् । १४, १५, १७, २१ पादनिचृदुष्णिक् । १९ आर्ची स्वराडुष्णिक् । ३० निचृदनुष्टुप् ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (वज्रिणे) बलशाली, सर्वशक्तिमान (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान्, सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक प्रभु के (आशिषामहि) आदरपूर्वक गुणों का वर्णन करें । मैं (धृष्णवे) दुष्टों को नाश करने, जगत् को धारण करने वाले (नृतमाय) परम पुरुषोत्तम, सर्वश्रेष्ठ नेता की ही (वः) आप लोगों के प्रति (ऊ सु स्तुषे) अच्छी प्रकार स्तुति करता हूं ।

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! प्रभो ! तू (वृत्यहत्येन) प्रकृति के 'सरिर'मय स्वरूप में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले मेघ के आघातकारी विद्युत् के समान (शवसा) बल से ही तू (वृत्र-हा) 'वृत्रहा' नाम से (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है । हे प्रभो ! अथवा, तू (वृत्र-हत्येन शवसा) दुष्टों के नाशक बल से 'वृत्र-हा' दुष्टहन्ता प्रसिद्ध है । तू (मघैः) उत्तम २ ऐश्वर्यों से (मघोनः) बड़े २ धनवानों को भी पार कर । उनसे भी अधिक (अति दाशसि) बहुत बहुत दान देता है ।

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् ।

निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों वा जीवों के स्वामिन् ! (सः) वह तू (स्तवानः) हमें ज्ञान उपदेश करता हुआ, (चित्र-श्रवस्तमम्) ज्ञानप्रद एवं गुरुपरम्परा से श्रवण करने योग्य ज्ञान रूप (रयिं) धन (नः आ भर) हमें प्रदान कर । (यः) जो तू (निरेके) सर्वातिशायी पद पर विराजमान (वसुः चित्) सम्पूज्य, सबको बसाने हारा और (ददिः) सबका दाता है ।

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् ।

धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रियम्) अति प्रीतिकारी (निरेकम्) सबसे उत्तम धन (आ दर्षि) प्रदान करता है । हे (धृष्णो) दुष्टों के धर्षक ! तू (धृषता) अपने दुष्ट-अज्ञान के नाशक बल से (स्तवमानः) जगत् भर को उपदेश करता हुआ, वा अन्यों से स्तुति किया जाता हुआ (नः आ भर) हमें भी प्रिय उत्तम धन प्रदान कर ।

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः ।

न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (हरिवः) समस्त मनुष्यों के स्वामिन् ! हे समस्त सूर्यादि लोकों के स्वामिन् ! (गविष्टिषु) वाणी द्वारा तेरी उपासना करने के अवसर में (आमुरः) अभिमुख आकर मरने मारने वाले शत्रुजन भी (ते) तुझ महाबलवान् पुरुष के (न दक्षिणं न सव्यं हस्तं) न दायें और न बायें हाथ को (वरन्त) रोक सकते हैं । वे (गविष्टिषु न परिबाधः) वाणियों द्वारा करने योग्य यज्ञों में भी किसी प्रकार बाधा नहीं कर सकते । (२) निर्बल शत्रु बलवान् राजा के दायें बायें के सैन्य या प्रमुख नेतृ-बल को भी नहीं सह सकते । वे उसकी (गविष्टिषु) भूमियों के दान या ग्रहण में वा धनुषों द्वारा करने योग्य युद्धयज्ञों में भी बाधा नहीं कर सकते । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः ।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के या शस्त्रबल के स्वामिन् ! (गोभिः व्रजम् इव) बैलों या अश्वों से जिस प्रकार कोई गन्तव्य मार्ग को प्राप्त करता है उसी प्रकार मैं (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (व्रजं) प्राप्य एवं गन्तव्य परम शरणरूप (त्वा) तुझको ही (आ ऋणोमि) प्राप्त होजाता हूँ । तू (जरितुः) स्तोता प्रार्थी के (कामं आ पृण स्म) अभिलाषा को पूर्ण कर और (मनः आ पृण) उसके मन को पूर्ण कर वा उसे ज्ञान से भरपूर कर ।

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम ।
उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्तम) प्रकृति तत्व के संचालक, प्रवर्त्तक वा दुष्टों के नाशक, हे (उग्र) अति बलवन् ! हे (प्रणेतः) श्रेष्ठ नायक ! हे (वसो) जगत् को बसाने वाले ! तू (विश्व-मनसः नः) सबमें प्रविष्ट

विश्वात्मा प्रभु के दिये हम लोगों की (धिया) बुद्धि कर्मानुसार (नः अधि गहि) हमें प्राप्त हो और हम पर शासन कर ।

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः ।
वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! प्रकृति तत्व के संचालक ! प्रवर्त्तक ! हे (शूर) शक्तिशालिन् ! हे (पुरु-हूत) सबजनों से स्तुतियोग्य, सबों से नाना प्रकारों से स्तुत्यरूप में स्वीकृत ! (वयं) हम लोग (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) अति नवीन वा स्तुतियोग्य (वसोः) सबको अपने भीतर बसाने वाले (स्पार्हस्य) मनोहर, अभिलषणीय (राधसः) धनैश्वर्य का (विद्याम) ज्ञान और लाभ करें ।

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः ।
अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृतो) सबको अपनी इच्छा पर नचाने या यथेच्छ संचालित करने वाले हे (पुरुहूत) बहुधा स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसा (ते) तेरा (शवः) बल (अपरीतं अस्ति) अविनाशित, तुझसे कभी पृथक् नहीं होता । उसी प्रकार (दाशुषे) दानशील उपासक के लिये भी तेरा (रातिः) दान भी (अमृक्ता) कभी नष्ट नहीं होता ।

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे ।
दृळ्हश्चिद्दृह्य मघवन्मघत्तये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(महामह) बड़ों से बड़े ! महतो महीयान् ! सर्वपूज्य ! हे (नृत्तम) सर्वश्रेष्ठ नायक ! हे पुरुषोत्तम ! तू (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (आ वृषस्व) स्वयं बलवान् बन । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (मघत्तये) ऐश्वर्य दान करने के लिये (दृढः चित्) दृढ़ से दृढ़ को (दृह्य) विदीर्ण कर । उसको दयार्द्र कर । इति षोडशो वर्गः ॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन् ! (नः आशसः) हमारी आशाएं (त्वत् अन्यत्र चित् जग्मुः) तुझ से अन्य में भला क्योंकर जावें । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकारिणी शक्तियों से तू (नः तत् शग्धि) हमें वही आशाएं या कामनाएं प्रदान कर ।

नह्यं१ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।
राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥

भा०—हे (नृतो) सब के नायक ! (अंग) हे (गिर्व०.) वाणी द्वारा, प्रार्थनीय ! मैं (राधसे) आराधना करने और (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने लिये और (द्युम्नाय) तेज, यश और (शवसे) बल प्राप्त करने के लिये (त्वत् अन्यं) तुझ से दूसरे को (न विन्दामि) नहीं पाता हूं ।

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥ १३ ॥

भा०—जो परमेश्वर (राधसा) अपनी आराधना वा वशीकारक ऐश्वर्य से और (महित्वना) महान् सामर्थ्य से (प्र चोदयाति) समस्त जगत् को और जीव संसार को अच्छी प्रकार, ठीक राह पर प्रेरित करता है और जो (सोम्यं मधु)उत्पन्न होने वाले जगत् ,अन्न वा जल को जीव के सदृश(पिबाति) पी लेता वा खालेता, अपने भीतर लीन करलेता है, उस (इन्द्राय) महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर के लिये (इन्दुम्) इस प्रेमार्द्र आत्मा को उसकी ओर (आ सिञ्चत) प्रवाहित कर, आत्मा को उसी की ओर प्रवृत्त कर ।

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ १४ ॥

भा०—मैं (हरीणां पतिम्) सूर्य, चन्द्रादि लोकों, और मननशील पुरुषों के पालक, (दक्षम्) सब पापों के भस्म करने वाले, वा कर्म करने वाले (पृञ्चन्तम्) सब के स्नेही, प्रभु को लक्ष्य करके (उप ब्रवम् उ) उपासना, प्रार्थना करता हूं। (नूनं) अवश्य, निश्चय करके (अश्व्यस्य) इन्द्रियों के द्वारा सुख दुःखों के भोक्ता, वा मन, इन्द्रियादि के स्वामी (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता जीव की तू (श्रुधि) प्रार्थना को श्रवण कर।

नह्यं१ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत्।
नकी राया नैवथा न भन्दना॥ १५॥ १७॥

भा०—(अंग) हे प्रभो! (पुरा चन) पहले भी, और अब भी (त्वत्) तुझ से अधिक (वीरतरः) बड़ा वीर, जगत् संचालक, और विविध विद्याओं का उपदेष्टा, (नहि जज्ञे) नहीं पैदा हुआ, और (नकिः राया) न कोई ऐश्वर्य से (न एवथा) न ज्ञान, और रक्षण सामर्थ्य से और (न भन्दना) न जगत् के कल्याण और सुखदायक सामर्थ्य से तुझ से कोई बड़ा है, न होगा। इति सप्तदशो वर्गः॥

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः।
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः॥ १६॥

भा०—(वीरः एव हि) वीर, विद्वान् (सदा-वृधः) सदा सबको बढ़ाने वाला ही (स्तूयते) स्तुति करने योग्य है। हे (अध्वर्यो) अविनाशिन्! तू (अन्धसः) अन्न के समान प्राणपोषक (मध्वः) जलवत् शान्तिदायक आनन्द रस से (मदिन्तरं) अतिशय आनन्ददायक आत्मा को (आ सिञ्च इत्) आ, सेचन कर, उसकी वृद्धि कर।

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
उदानंश शवसा न भन्दना॥ १७॥

भा०—हे (हरीणां स्थातः) मनुष्यों के बीच वा अश्व सेनाओं के बीच सेनापति के समान सर्वोपरि विराजमान! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते

पूर्व्यं स्तुतिम्) तेरी पूर्व विद्यमान और पूर्ण स्तुति को (शवसा) बल या ज्ञान से भी (नकिः उत् आनंश) कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता और (न भन्दना उत् आनंश) सुख, कल्याण और ऐश्वर्य से भी कोई नहीं बढ़ सकता।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥

भा०—(अप्रायुभिः) आयु से रहित दीर्घायु वा अप्रमादी पुरुषों और (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनादि सत्कर्मों से (वावृधेन्यम्) अति वृद्धिशील, (वाजानां पतिम्) आप सबके ज्ञान, ऐश्वर्यादि के पालक उसको (नः) हम (अवस्यवः) ज्ञान, कीर्त्ति और अन्नादि के इच्छुक होकर (अहूमहि) पुकारते, उसीकी उपासना करते हैं।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम्।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (एत उ नु) आप लोग आओ न भला, (स्तोम्यं नरं) स्तुति करने योग्य सर्वप्रणेता पुरुष की (स्तवाम) स्तुति करें, (यः विश्वाः कृष्टीः) जो समस्त मनुष्यों के प्रति (एक इत् अभि अस्ति) एक, अद्वितीय, सबके प्रति समान रूप से उपास्य है।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो (अगो-रुधाय) जो पुरुष आप लोगों की वाणी पर रोक न करे, और (गविषे) जो आपकी वेद वाणी को चाहे, उस (द्युक्षाय) तेजस्वी पुरुष के लिये (घृतात् स्वादीयः) घी से भी अधिक स्वाद, शान्तिप्रद, और (मधुनः च) मधु वा अन्न से भी अधिक मधुर, पुष्टिप्रद, बलप्रद (दस्म्यं वचः) दर्शनीय वा ज्ञान के नाशक वचन का (वोचत) उच्चारण करो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यस्यामितानि वीर्या॑ न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ २१ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (वीर्या अमितानि) वीर्य अपरिमित हैं और (राधः) जिसके धनैश्वर्य (पर्येतवेन) पूर्णतया जाने नहीं जा सकते और (यस्य दक्षिणा) जिसका बल और दान भी (ज्योतिः न) सूर्य प्रकाश के समान (विश्वम् अभि अस्ति) सबके प्रति समान रूप से प्राप्त है।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ २२ ॥

भा०—उस (अनूर्मिम्) तरङ्ग या धारा से रहित प्रशान्त और अगाध, (वाजिनम्) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी, (यमम्) सर्वनियन्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, प्रभु को (वि-अश्ववत्) विविध अश्वों, इन्द्रियों से युक्त आत्मा के समान ही (स्तुहि) स्तुति कर और (दाशुषे) भक्त को (गयं मंहमानं) प्राण और देह, गृहादि देने वाले उस स्वामी की स्तुति कर जो (अर्यः) स्वामी (वि) विविध प्रकार से ऐश्वर्य प्रदान करता है।

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (वैयश्व) त्रिविध अश्वों, अश्वसैन्यों वा भोक्ता शासकों से युक्त सेनापति के समान, विविध अश्वों, प्राणों के स्वामिन्! आत्मन्! तू (नूनम्) अवश्य (दशमं) नव प्राणों के बीच (दशमम्) दशवें और (चरणीनाम्) आचरण करने वालों में भी (सुविद्वांसं) उत्तम ज्ञानी विद्वान् और (चर्कृत्यं) कार्य करने वाले ज्ञानवान् कर्मवान् आत्मा की (उप स्तुहि) स्तुति वा उपदेश कर।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ २४ ॥

भा०—(शुन्ध्युः) सर्वशोधक सूर्य जिस प्रकार (परिपदाम् निर्ऋतीनां) चारों ओर चलने वाली भूमियों के (परिवृजं वेत्ति) परिक्रमा-मार्ग को जानता है उसी प्रकार हे (वज्र-हस्त) बाहुवीर्य, राजन्, शक्तिशालिन् प्रभो! तू (अहरहः) दिन प्रतिदिन (परिपदाम्) निरन्तर चलने वाले (निर्ऋतीनां) लोकों के (परिवृजं) जाने योग्य मार्ग को (वेत्थ) जानता है और (शुन्ध्युः) सब दुःखों और पापों का सूर्य वा अग्निवत् शोधन करने वाला है।

तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने।
द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय॥ २५॥ १९॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुष्टों और दुःखों के नाशक ! तू (येन) जिस रक्षा सामर्थ्य से (कृत्वने कुत्साय) कर्म करने में तत्पर स्तुतिकर्त्ता भक्तजन के (द्विता शिश्नथः) इस और उस दोनों लोकों के दुःखों को शिथिल कर देता है तू (तत्) उसी (अवः) रक्षा और ज्ञान को हमें (आभर) प्रदान कर। (नि चोदय) उसी से हमें नित्य सन्मार्ग में प्रेरित कर। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ संन्यसे।
स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः॥ २६॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुःखों के नाशक ! (नूनं) निश्चय (त्वा तम् उ) उस पूज्य तुझ (नव्यं) स्तुति योग्य को ही (संन्यसे) सर्व वासना और बन्धनों के त्यागने के लिये, (ईमहे) हम याचना करते हैं। (सः त्वं) वह तू (सक्षणिः) सब दुःखों का नाशक, सबका पराजयकारी होकर (विश्वाः अभिमातीः) समस्त अभिमानी जीवों को पराजित करता है।

य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु।
वर्धर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः॥ २७॥

भा०—(यः) जो प्रभु (ऋक्षात्) मनुष्यों के नाश करने वाले,

रीछ के समान भयंकर, एवं मनुष्यनाशक दुष्ट पुरुषवत् दुःखदायी (अंहसः) पाप से (मुचत्) मुक्त करता है (यः वा) और जो, (सप्त-सिन्धुषु) वेग से जाने वाले जलों में विद्युत्-बल वा जल को (अर्यात्) प्रेरित करता है, हे (तुवि-नृम्ण) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (दासस्य) सूर्य या पवनवत् जलप्रद मेघ में, दुष्ट पुरुष के नाशार्थ (वधः नीनमः) हिंसाकारक अस्त्र का प्रहार कर।

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम्।
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ २८ ॥

भा०—हे (वरो) श्रेष्ठ पुरुष ! (यथा) जिस प्रकार तू (सुषाम्ने) उत्तम साम द्वारा स्तुति करने वाले, उत्तम निष्पक्षपात और (सनिभ्यः) उत्तम दान पात्रों को (रयिम् आवहः) ऐश्वर्य प्राप्त कराता है उसी प्रकार हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! हे (वाजिनी-वति) ऐश्वर्य सम्पदा की स्वामिनी ! वधू ! तू भी (व्यश्वेभ्यः) विजितेन्द्रिय पुरुषों को (रयिम्) अन्नैश्वर्य (आ वहः) प्राप्त करा। वर वधू दोनों को चाहिये कि वे सत्पात्रों में दान दिया करें। इसी प्रकार परमेश्वर 'सुसामा' सम्यग् दृष्टि और समदर्शी तथा भक्तजनों को ऐश्वर्य देता है। और सुभगा प्रकृति भी अश्व अर्थात् विविध इन्द्रियों से सम्पन्न जीवों को अपनी विभूति देती है।

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः।
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥ २९ ॥

भा०—(नार्यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ और उनके हितैषी (सोमिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (दक्षिणा) दान का द्रव्य (वि-अश्वान्) विविध विद्याओं में पारंगत एवं जितेन्द्रिय पुरुषों को (आ एतु) प्राप्त हो। वा (सोमिनः) पुत्र शिष्यादि के गुरुजनों को प्राप्त हो और उसका (स्थूरं) स्थायी (शतवत् सहस्रवत्) सौ, हज़ार संख्या वाला (राधः) धन भी ऐसे ही पुरुषों को प्राप्त हो। परमेश्वर नरों, जीवों का स्वामी होने से नर्य

वा 'नार्य' है। उसका दान विविध इन्द्रियोपभोगभूमियों में वर्त्तमान कर्मफल वाले जीवों को प्राप्त होता है।

यस्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते।
एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति॥ ३०॥ २०॥

भा०—(कुहया-कृते) आत्मा वा प्रभु उपास्य कहां है ? इस प्रकार की जिज्ञासा करने वाली हे बुद्धे ! (ईजानः) देवोपासना करने वाला (यः) जो पुरुष (त्वा पृच्छात्) तुझ से पूछता है कि (एषः अपश्रितः) वह संसार-बन्धन से दूर देहादि में अनाश्रित (वलः = वरः) सब से वरणीय, सबको व्यापने वाला प्रभु (कुहया) कहां है तो इसका समाधान श्रवण कर। (एषः) वह (वलः) सर्वव्यापक प्रभु (गोमतीम्) इन्द्रिय और वाणी से युक्त इस चित्त भूमि को (अव) नीचे छोड़ कर, (तिष्ठति) उसके भी ऊपर परम अवर्णनीय रूप में विद्यमान है। इति विंशो वर्गः॥

[२५]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः॥ १—९, १३—२४ मित्रावरुणौ। १०—१२ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, २, ५—९, १९ निचृदुष्णिक्। ३, १०, १३—१६, २०—२२ विराडुष्णिक्। ४, ११, १२, २४ उष्णिक्। २३ आर्ची उष्णिक्। १७, १८ पादनिचृदुष्णिक्॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया।
ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा॥ १॥

भा०—(ता वां) वे आप दोनों (विश्वस्य) समस्त विश्व के वा सबके (गोपा) पालक (देवेषु) विद्वान् मनुष्यों के बीच में (यज्ञिया देवा) पूजा सत्कार के योग्य, दानशील और तेजस्वी होवो। आप दोनों (ऋतावाना) सत्य न्यायवान्, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल वा ज्ञान वाले जनों को हे मनुष्य ! तू (यजसे) पूजा कर।

मित्रा तना न रथ्या वरुणो यश्च सुक्रतुः ।
सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥

भा०—स्त्री पुरुष कैसे हों ? वे दोनों (मित्रा) स्नेहवान् ! (रथ्या न तना) रथ में लगे दो अश्वों वा रथ में विराजमान रथी सारथी के समान शरीर में सुशोभित और (वरुणः) वरण करने योग्य पुरुष भी ऐसा हो (यः च सुक्रतुः) जो स्वयं उत्तम क्रियावान्, बुद्धिमान् हो। वे दोनों (सनात्) सदा (सु-जाता) उत्तम वंश और गुणों में शिक्षित और (तनया) माता पिता के उत्तम पुत्र और (धृत-व्रता) व्रत को धारण करने वाले हों । अर्थात् तनया, कन्या स्वयं स्नेहवती, रथ में चढ़ने योग्य उत्तम कर्मकुशल, सुजाता, सुपुत्री व्रतधारिणी हो और वर भी स्नेही, गृहस्थ रथ के योग्य, सुकर्मा, सुजात और व्रती हो ।

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा ।
मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥ ३ ॥

भा०—(प्र-महसा) अति उत्तम तेजस्वी (विश्व-वेदसा) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी (ता) उन दोनों (माता) उत्पन्न करने वाली (ऋतावरी) सत्य व्रत का वरण करने वाली, (अदितिः) अखण्ड व्रत-पालिनी (मही) पूज्या (माता) जननी ही (असुर्याय) बल पराक्रम के लिये (जजान) पैदा करता है ।

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा ।
ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥

भा०—वे दोनों (महान्ता) गुणों में महान्, (सम्राजा) अच्छी प्रकार दीप्तिमान्, तेजस्वी, (देवा) दानशील (असुरा) बलवान्, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, (ऋतावानौ) सत्य ज्ञान से युक्त, दोनों (बृहत् ऋतम् आ घोषतः) बड़े भारी सत्य ज्ञान, वेद और न्याय की घोषणा किया करें, उसका पठन, पाठन और उपदेश किया करें ।

नपा॑ता॒ शव॑सो म॒हः सू॒नू दक्ष॑स्य सु॒क्रतू॑ ।
सृ॒प्रदा॑नू इ॒षो वास्त्वधि॑ क्षितः ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—दोनों (महः शवसः नपाता) बड़े भारी बलके पालक और (महः दक्षस्य सूनू) बड़े भारी बल और धर्म के उत्पादक और परिचालक (इषः) अन्न के (सृप्रदानू) विस्तृत रूप से देने वाले होकर (वास्तु अधि) बड़े २ गृहों में (क्षितः) निवास करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

सं या दानू॑नि ये॒मथु॑र्दि॒व्याः पार्थि॑वी॒रिषः॑ ।
नभ॑स्वती॒रा वां॑ चरन्तु वृ॒ष्टयः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (दानूनि) दान योग्य वीर्यों, धनों का (सं येमथुः) संयमपूर्वक रक्षा करते रहे उन (वां) आप दोनों को (नभस्वतीः) आकाश की, (दिव्याः) अन्तरिक्ष की (वृष्टयः) वृष्टियां और (पार्थिवीः इषः) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले अन्न (आचरन्तु) प्राप्त हों ।

अधि॒ या बृ॑ह॒तो दि॒वो॒३॒॑ऽभि यू॒थेव॒ पश्य॑तः ।
ऋ॒तावा॑ना स॒म्राजा॒ नम॑से हि॒ता ॥ ७ ॥

भा०—(अभि यूथा इव) जिस प्रकार गौओं के समूहों को उनके पालक जन देखते हैं उसी प्रकार (या) जो (बृहतः दिवः अधि पश्यतः) बड़े भारी कामनाओं वा अभिलाषाओं को देखते हैं वे दोनों (ऋतावाना) सत्य और धन वाले, (सम्राजा) उत्तम दीप्ति से दीप्तिमान् होकर (नमसे) अन्न और बल को प्राप्त करने के लिये (हिता) परस्पर हिताचरण करें वा स्थिर भाव से रहें ।

ऋ॒तावा॑ना॒ नि षे॑दतुः॒ साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतू॑ ।
धृ॒तव्र॑ता क्ष॒त्रिया॑ क्ष॒त्रमा॑शतुः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावाना) सत्य न्याय के स्वामी होकर (धृत-व्रता) व्रत, नियम के धारण करने वाले (क्षत्रिया) बल, और धन के स्वामी

(साम्-राज्याय) साम्राज्य पालनार्थं (सु-क्रतू) उत्तम कर्म वाले होकर (क्षत्रम् आशतुः) बल ऐश्वर्य को प्राप्त करें ।

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा ।
नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥

भा०—वे (अक्ष्णः चित् गातुवित्-तरा) आंख से भी अधिक मार्ग जानने वाले, वा आंखों वा इन्द्रियमात्र के भी इशारों को खूब समझने वाले हों । वे दोनों (अनुल्बणेन) सौम्य (चक्षसा) दृष्टि वा (अनुल्बणेन वचसा) कोमल, दुःख न देने वाले हृदयहारी वचन से (निमिषन्ता) नियम से व्यवहार करने वाले (नि-चिरा) खूब चिरायु होकर (नि चिक्यतुः) पूजा सत्कार योग्य होवें ।

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या ।
उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—(उत) और (देवी अदितिः) उत्तम सुख देने वाली विदुषी स्त्री माता और (नासत्या) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें । और (वृद्ध-शवसः) बड़े बली और अधिक ज्ञान वाले पुरुष (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायुवत् जीवनप्रद, दूरगामी विद्वान् क्षत्रिय और वैश्य जन (उरुष्यन्तु) हमारी रक्षा करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः ।
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (दिवा नक्तं) दिन और रात (नः नावम्) हमारी नौका वा प्रेरणा करने योग्य यान की (उरुष्यत) रक्षा करो । और हम (अरिष्यन्तः) विना पीड़ित हुए किसी का हिंसा न करते हुए (पायुभिः) पालन करने वालों के साथ (सचेमहि) सदा संघ बना कर रहें ।

अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।
श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए, स्वयं भी पीड़ित न होते हुए, (अघ्नते) अहिंसक (सु-दानवे) उत्तम दानशील, (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञानी और सबसे पूर्व कर्मकर्त्ता, पूर्ण संसार के बनाने वाले परमेश्वर की स्तुति करें । हे (स्व-यावन्) अपने ही सामर्थ्य से संसार को चलाने हारे ! हे (सिन्धो) समुद्रवत् गम्भीर, आनन्द रस के सागर ! तू (श्रुधि) हमारी प्रार्थना को श्रवण कर ।

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।
मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जिस धन और बल की (मित्रः) स्नेहवान्, मृत्यु से रक्षक, (यत् वरुणः) जिसकी सबको वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक, और (अर्यमा) शत्रु वा दुष्टों का नियन्ता पुरुष (पान्ति) रक्षा करते वा उपभोग करते हैं हम (तत्) उस (वार्य) वरण करने, दुःखों को दूर करने वाले (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (गोपयत्यम्) सबके पालक धन वा बल की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥

भा०—(अपां सिन्धुः) जलों का बहने वाला प्रवाह, (मरुतः) शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष और वैश्यगण, (अश्विना) अश्वारोही योद्धा और रथी, सारथी, (इन्द्रः) सेनापति, राजा, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान्, वा विविध विद्याओं में निष्णात ये सब (मीढ्वांसः) प्रजापर सुखों की वर्षा करने वाले और (स-जोषसः) एक समान सब से प्रीति रखने हारे होकर (नः तत् तत्) हमारे उन २ धनों की रक्षा करें और दें ।

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित्।
तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(ते हि) वे (भूर्णयः) जगत् के पोषक (नरः) नायक पुरुष, (वनुषः) शत्रुओं के नाशक और सेवा योग्य जन (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी प्रतिद्वन्द्वी के अभिमान को (तिग्मं क्षोदः न) तीव्र वेग से जाने वाले जल के समान (प्रति घ्नन्ति) विनाश कर सकते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः।
तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥

भा०—(अयम् एकः) यह एक (पुरुः) पालक, सबकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक हो। (इत्था) इस प्रकार सत्य न्याय को वह (वः वि चष्टे उ) विविध या विशेष प्रकार से तुम सब के व्यवहारों को सूर्यवत् देखता है। (तस्य व्रतानि) इस प्रजापति के उपदिष्ट और कृत कर्मों का हम (अनु चरामसि) अनुकरण करते हैं।

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम।
मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

भा०—(साम्राज्यस्य) महान् साम्राज्य के मालिक प्रभु के (पूर्वाणि) पूर्व विद्यमान वा पूर्ण, त्रुटिरहित (ओक्या) भुवनों, या गृहों के व्यवस्थापक नियमों को (अनु सश्चिम) पालन करें। (मित्रस्य) सर्वस्नेही, (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ (दीर्घ-श्रुतः) दीर्घदर्शी, बहुज्ञ, पुरुष के (व्रता) कर्मों का हम अनुकरण करें।

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः।
उभे आपप्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (रश्मिना) तेजोवत् व्यापक सामर्थ्य

से (दिवः पृथिव्याः अन्तान्) आकाश और भूमि इनकी परली सीमाओं को भी (परि ममे) मापता है। वही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) आकाश और भूमि दोनों लोकों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है।

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः।
अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥

भा०—(स्यः) वह (दिवः शरणे) प्रकाश को बखेर कर दूर २ तक फैलाने में (सूर्यः) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशस्वरूप प्रभु (शरणे) इस महान् विश्व में (उत् अयंस्त) सबके ऊपर विराज कर सब को वश करता है। वह (अग्निः न शुक्रः) अग्नि के समान देदीप्यमान, (समिधा आहुतः न) काष्ठ से आहुति युक्त चमकने वाले अग्नि के तुल्य ही (आहुतः) सबसे स्तुति किया जाता है।

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः।
ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—जो (गोमतः वाजस्य) गौ, भूमि, वाणी और इन्द्रियों से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और विभूति का (ईशे) स्वामी है और जो (अविषस्य) विषरहित (पित्वः) अन्न के (दावने) देने में (ईशे हि) निश्चय से सबका स्वामी है उस (दीर्घ-प्रसद्मनि) महा-भवन के समान सब के शरणदाता वा महाभवनवत् विश्व के स्वामी के विषय में (वचः) स्तुति वाणी का प्रयोग किया करो। (२) इसी प्रकार जो राजा बड़े भवन में रहता, भूमि पशु सम्पदा स्वामी, और शुद्ध अन्न को देने में समर्थ है उसी से प्रजा शरण की प्रार्थना करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे।
भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥

भा०—(दोषा वस्तोः) दिन और रात (उभे रोदसी) आकाश

वा सूर्य और पृथिवी, समस्त जगत् के (सूर्यम्) संचालक, प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (तत्) उस प्रभु की मैं (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूं। हे प्रभो ! तू (सदा) सब काल, (अस्मान्) हमें (भोजेषु) पालक जनों और भोगैश्वर्य देने वाले लोकों में (अभि उत् चर) उन्नति की ओर ले जा।

ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे।
रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (उक्षण्यायने) बलवान् बैल या अश्व से जाने योग्य, वा (हरयाणे) हरणशील वेगवान् अश्वों या यन्त्रों से जाने योग्य (सु-सामनि) उत्तम समभूमियुक्त मार्गों में (ऋज्रम्) ऋजु, वेग से, जाने वाले, (रजतं) सुन्दर, (युक्तं) अश्वों से जुते (रथं) रथ को (असनाम) उपयोग करते हैं इसी प्रकार हम लोग (सु-सामनि) सबके प्रति समान भाव से रहने वाले, सुखप्रद, (उक्षण्यायने) बलवान्, सुख-सेचक पुरुषों के भी आश्रय स्थान, (हरयाणे) दुःखों के हरने वाले, प्रभु के अधीन हम (युक्तं) इन्द्रियादि अश्वों से युक्त, रथवत् (ऋज्रम्) ऋजु, धर्म मार्ग से चलने वाले इस देह को (असनाम) प्राप्त करें और उसका सुख भोग करें।

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना।
उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥ २३ ॥

भा०—(ता) वे दोनों प्रधान स्त्री पुरुष (मे) मुझ राजा के अधीन (अश्व्यानां हरीणां) अश्वारोही जनों के बीच (नि-तोशना) शत्रुओं को नाश करने वाले, (उत नु) और (कृत्व्यानां) कर्मकुशल पुरुषों के बीच में (नृ-वाहसा) मनुष्यों को सन्मार्ग में लेजाने वाले हों।

स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती।
महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा०—(स्मत्-अभीशू) शोभायुक्त अगुलियों, धर्म-मर्यादाओं, व्यवस्थाओं से युक्त, (कशावन्ता) अर्थप्रकाशक, शुभ वाणी वाले, (विप्रा) मेधावी, बुद्धिमान् (नविष्ठया) अतिस्तुत्य (मती) बुद्धि से युक्त, (महः वाजिनौ) बड़े भारी ज्ञानी (अर्वन्ता) दुःखों का नाश करने वाले, सन्मार्गगामी, स्त्री पुरुषों को मैं दो अश्वों वा प्राणों के सदृश (सचा असनम्) सदा एक साथ प्राप्त करूं। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[२६]

विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषिः॥ १—१९ अश्विनौ। २०—२५ वायुर्देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ उष्णिक्। २, ८, २३ विराडुष्णिक्। ५, ९—१५, २२ निचृदुष्णिक्। २४ पादनिचृदुष्णिक्। १६, १९ विराड् गायत्री। १७, १८, २१ निचृद् गायत्री। २५ गायत्री। २० विराडनुष्टुप्॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू॥ १॥

भा०—हे (वृषण्वसू) सुखप्रद, धन और बलवान् पुरुष रूप धन से धनी प्रधान नायक पुरुषो! राजा प्रजा वा पति पत्नी जनो! आप दोनों (वृषणा) बलवान्, उत्तम सुखों और वीर्यादि के सेक्ता और (अतूर्त्तदक्षा) न नष्ट होने वाले स्थायी बल सामर्थ्य से युक्त होवो। (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (सध-स्तुत्याय) एक साथ मिलकर स्तुति प्राप्त करने के लिये (युवोः) तुम दोनों को (रथं) उत्तम उपदेश, उत्तम आचार, उत्तम रमणकारी साधन रथादि (सु-हुवे उ) उत्तम रीति से प्रदान करूं।

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू॥ २॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य भाषण और असत्याचरण न करने वाले, वा नासिकावत् प्रमुख पुरुषो ! हे (वृषणा) बलवान् ! वीर्यवान्, (वृषण्वसू) सुखप्रद, बलवान् धन, जन के स्वामियो ! हे (वरो) दोनों वरण करने योग्य, श्रेष्ठ जनो ! (युवं) आप दोनों (सुपाक्ष्णे) सुखप्रदाता, निष्पक्षपात, सर्वोपरि विराजमान प्रभु के (महे तने) बड़े विस्तृत राज्य में (अवोभिः) रक्षासाधनों, ज्ञानों और रथादि से (याथः) गमनागमन करो !

ता वा॒म॒द्य ह॑वामहे ह॒व्येभि॑र्वाजिनीवसू ।
पू॒र्वीरि॒ष इ॒षय॑न्ता॒वति॑ क्ष॒पः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ऐश्वर्ययुक्त भूमि, ज्ञानयुक्त विद्या और बलयुक्त सेना को बसाने, बसने और उनको धनवत् पालने वाले राजा प्रजा जनो ! (पूर्वीः) पूर्व की, नाना, वा पूर्ण, राज्यादि के पालक (इषः) सेना और नाना उत्तम अभिलाषाओं और पूर्ण अभिलाषा योग्य अन्नादि समृद्धियों को (इषयन्तौ) चाहते हुए (ता वाम्) उन आप दोनों का (अति क्षपः) रात्रि व्यतीत कर प्रातः, वा नाशकारिणी, शत्रु सेनाओं को पार करके बाद (हव्येभिः) उत्तम अन्नों और वचनों से (हवामहे) सत्कार करें ।

आ वां॒ वाहि॑ष्ठो अश्विना॒ रथो॑ यातु श्रु॒तो न॑रा ।
उप॒ स्तोमा॑न्तु॒रस्य॑ दर्शथः श्रि॒ये ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के स्वामी, रथी सारथीवत् राजा सचिव जनो ! वा स्त्री पुरुषो ! वा माता पिता गुरु जनो ! हे (नरा) सन्मार्ग से लेजाने वालो ! (वां) तुम दोनों का (वाहिष्ठः) ज्ञान प्राप्त कराने वाला (रथः) रमणीय (श्रुतः) श्रवण करने योग्य उपदेश हमें (रथः) रथवत् (आ यातु) प्राप्त हो । आप दोनों (तुरस्य) सर्वदुःखनाशक प्रभु के स्तोमान्) उपदेश किये वेद मन्त्रों का (श्रिये) अपने आश्रय वा

शोभा, और ज्ञान धनादि समृद्धि के लिये (उप दर्शथः) गुरु देवादि की उपासना द्वारा ज्ञान किया करो।

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः॥ ५॥ २६॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् प्राणों वालो! हे बलवान् पुरुषो! और सुखप्रद धनों के स्वामियो! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! हे 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र एवं बलवान् अश्व सैन्यादि के स्वामियो! आप दोनों (जुहुराणा चित्) कुटिलता करने वालों को भी अच्छी प्रकार (मन्येथाम्) जानों, उनको दुष्टता करने से रोको। हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, दुःखों को दूर भगाने वाले जनो! (युवं हि) तुम दोनों अवश्य ही (द्विषः) द्वेष करने वाले, अप्रिय शत्रुओं और रोगादि, काम क्रोधादि को (अति पर्षथः) पराजित किया करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः।
धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती॥ ६॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय, रूपवान्, चरित्रवान्, दुष्टों के नाश करने वाले, (धियं-जिन्वा) अपने उत्तम कर्मों से सबको प्रसन्न करने वाले, (मधु-वर्णा) मधुर वर्ण, कान्तिमान् रूपवान्, वा मधु द्वारा एक दूसरे को वरने वाले वा मधुर शब्दों को बोलने वाले, (शुभस्पती) उत्तम शोभा-जनक अलंकार युक्त पति पत्नी एवं स्वामी जनो! आप दोनों (आनुषक्) सदा साथ रहते हुए (मक्षुभिः) शीघ्रगामी रथों से (विश्वम् परि-दीयथः) समस्त संसार का, वा सब काल में परिभ्रमण करो।

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह।
मघवाना सुवीरावनपच्युता॥ ७॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्यों, वा राष्ट्र के स्वामी जनो! आप दोनों (विश्वपुषा राया सह) सबके पोषणकारी ऐश्वर्य के साथ

(नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो ॥ तुम दोनों (मघवाना) उत्तम, पूज्य धन से युक्त, (सु-वीरौ) उत्तम, पूज्य वीर, बलवान् एवं विद्यावान्, और (अनपच्युतौ) दृढ़ एवं कुमार्ग में न जाने वाले होवो ।

आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र-नासत्या) ऐश्वर्ययुक्त एवं कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवा) एक दूसरे की सदा चाहना करने वाले, शुभ गुणयुक्त, विद्वान् (सचनस्तमा) परस्पर बहुत अधिक दृढ़ सम्बन्ध से सम्बद्ध होकर (मे) मुझ (अस्य) इस प्रियजन के (प्रतीव्यम्) पुनः रक्षण करने वाले गृह को (देवेभिः) अन्य प्रिय, विद्वान् जनों और शुभ गुणों सहित, सूर्य और वायु के समान (आ गतम्) आवो ।

वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (वि-अश्ववत्) विशेष अश्वसैन्य का स्वामी बलवान् स्त्री पुरुषों को राष्ट्र के शासनादि कार्य के लिये चाहता है उसी प्रकार (वयं हि) हम भी (उक्षण्यन्तः) उत्तम सन्तानोत्पादक, वीर्य से बिजारों के समान दृढ़, हृष्टपुष्ट बलवान् पुरुषों को चाहते हुए, (वां हि) आप दोनों ऐश्वर्यवान्, असत्य व्यवहार से रहित स्त्री पुरुष वर्गों, वा प्रजा-राजवर्गों को (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि आप दोनों (विप्रौ) बुद्धिमान्, धनादि से विशेष पूर्ण होकर (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों सहित (उप आगतम्) हमें प्राप्त होवो ।

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम् ।
नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन् ! विद्या व्यवहारादि के द्रष्टा ! तू (अश्विनौ)

राष्ट्र, सेना के स्वामी वा जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष वर्गों को (सुस्तुहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनकी अच्छी प्रशंसा कर। (ते) तेरे (हवम्) वचन को वे दोनों (कुवित् श्रवतः) बहुत बार श्रवण करते हैं। (उत) और दोनों (नेदीयसः पणीन्) समीपस्थ उपदेष्टा एवं व्यवहारवान् पुरुषों को (कूलयातः) तट के समान आश्रय और नदीवत् मर्यादा प्रजा को स्थापित करते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नेताओ ! हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग (वैयश्वस्य) विविध अश्वों के स्वामी, विविध इन्द्रियों के साधक जितेन्द्रिय राजा वा विद्वान् के आज्ञा वा उपदेश वचन (श्रुतं) श्रवण किया करो। (उतो) और (मे अस्य) मुझ इस प्रिय प्रजाजन को भी (वेदथः) जाना करो। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ मित्र, स्नेही और (अर्यमा) उत्तम जनों का स्वामी, उनका आदरकर्त्ता, दुष्टों का नियन्ता पुरुष (सजोषसा) समान प्रीति से युक्त हों। वे प्रजा के व्यवहार जानें।

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, बुद्धियुक्त, उत्तम आसनार्ह के योग्य हे (वृषणा) उत्तम ज्ञान, सुख, धनैश्वर्य बल-वीर्यादि के वर्षण करने वाले, बलवान् एवं माता पितावत् पालक प्रबन्धकर्त्ता जनो ! आप लोग (युवादत्तस्य) आप दोनों से देने योग्य, और (युवा-नीतस्य) आप दोनों से प्राप्त कराने और सिखाने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य (सूरिभिः) विद्वानों द्वारा (मह्यं) मुझ प्रजाजन को पुत्रवत् (अहरहः) दिन प्रति दिन (शिक्षत्) दो और सिखाओ।

यो वां यज्ञभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व, व्यापक तेजस्वी किरणों वाले सूर्य चन्द्र-वत् वा दिन रात्रिवत् पति पत्नी जनो ! (यः) जो पुरुष (अधिवस्त्रा वधूः इव) अधिक वा उत्तम वस्त्र धारण करने वाली नव-वधू के समान स्वयं भी (अधिवस्त्रः) ऊपर उत्तरीय वस्त्र धारण कर या उत्तम 'वस्त्र' अर्थात् रहने योग्य गृह का अधिकारी होकर (वां) आप दोनों के योग्य (यज्ञेभिः) दान, सत्संग, पूजा सत्कारादि से (आवृतः) अपने को ढकलेता है उस विद्वान् की (सपर्यन्ता) सेवा शुश्रूषा करने वाले आप दोनों (शुभे) शुभ कर्म या फल के लिये (चक्राते) यत्न करो ।

यो वा॑मुरु॒व्यच॑स्तमं॒ चिके॑तति नृ॒पाय्य॑म् ।
व॒र्तिर॑श्विना॒ परि॑ यातमस्म॒यू ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! (यः) जो (वाम्) आप दोनों के (नृ-पाय्यम्) मनुष्यों के पालक और नायक जनों से रक्षा करने योग्य (उरु-व्यचसम्) अति अधिक व्यापक (वर्त्तिः) व्यवहार को (चिकेतति) जानता है (अस्मयू) हमें चाहने वाले आप दोनों उसको (परि यातम्) प्राप्त होवो ।

अ॒स्मभ्यं॒ सु वृ॑षण्वसू या॒तं व॒र्तिर्नृ॒पाय्य॑म् ।
वि॒षु॒द्रुहे॑व य॒ज्ञमू॑हथुर्गि॒रा ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों के स्वामी जनो ! हे प्रजा-जनों में बलवान् प्रबन्धक जनो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ ही (नृ-पाय्यं) मनुष्यों के पालन करने वाले (वर्त्तिः) व्यवहार को (सु-यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त करो। जिस प्रकार (वि-सु-द्रुहा, विषु = द्रुहा गिरा यज्ञम् इव) विविध अर्थदात्री या विविध वादप्रतिवाद वाली वाणी से जिस प्रकार (यज्ञम्) उपास्य प्रभु की तर्क द्वारा विवेचना की जाती है उसी प्रकार (वि-सु-द्रुहा इव) विविध प्रकार के परस्पर काटने वाली, विवादग्रस्त, एक दूसरे का प्रतिवाद करने वाली (गिरा) वाणी से

(यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य, निर्णय रूप से देने योग्य सत्य तत्व को (ऊहथुः) तर्क वितर्क द्वारा प्राप्त करो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! (हवानां) ग्राह्य उपदेशों, ज्ञानों को (वाहिष्ठः) उत्तम रीति से अन्यों तक पहुंचाने वाला (स्तोमः) वेदमन्त्रों का समूह (वां) तुम दोनों को (दूतः हुवत्) उत्तम संदेशहर के समान ज्ञानप्रद हो, और वह सदा (युवाभ्यां) तुम दोनों के लिये हितकारी (भूतु) होवे ।

यद्दो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।
श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से भिन्न असाधारण पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (अदः) उस (दिवः) परम ज्ञानमय, तेजोमय प्रभु के (अर्णवे) सागरवत् आनन्द में वा (इषः) अन्न, और नाना कामना आदि के (गृहे) इस गृह या देह में (मदथः) प्रसन्न, सुखी, आनन्दवान् होवो तो भी (मे) मुझ आत्मा के विषय में, वा विद्वान् ज्ञानी का वचन अवश्य (श्रुतम् इत्) श्रवण किया करो ।

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् ।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥

भा०—(श्वेतयावरी नदीनां वाहिष्ठा) नदियों में से जिस प्रकार हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी अति वेग से जाने वाली होती है, उसी प्रकार (नदीनां) उपदेश देने वाली वाणियों में से (उत) भी (स्या) वह, सब दुःखों को काटने वाली और (श्वेत-यावरी) श्वेत, शुक्र, विशुद्ध प्रभु से आने वा उस तक पहुंचा देने वाली वेदवाणी ही (वां वाहिष्ठा) तुम को अतिशय सुख देने और उद्देश्य तक पहुंचा देने में सर्वश्रेष्ठ

है। (हिरण्य-वर्त्तनिः सिन्धुः) जिस प्रकार हिरण्य अर्थात् लोह के बने मार्ग पर चलने वाला रथ वेग से जाने वाला तुम्हें उद्देश्य तक अच्छी प्रकार पहुँचाने का उत्तम सवारी होता है उसी प्रकार (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित रमणीय, व्यवहारवान् (सिन्धुः) समुद्रवत् गम्भीर पुरुष ही (वां वाहिष्ठः) तुम दोनों को उद्देश्य तक पहुंचाने में समर्थ होता है। (२) उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों में से (श्वेत-यावरी) सर्वोत्तम विशुद्ध ज्ञानमार्ग वा सदाचार मार्ग से जाने वाली स्त्री (नदीनां वाहिष्ठा) सर्वश्रेष्ठ समृद्धियों को लाने वाली होती है और तुम में से जो पुरुष (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित, रमणीय व्यवहार मार्ग से चलता, सुवर्णादि का व्यवहार-व्यापार करता है वह पुरुष (सिन्धुः) सम्पदाओं को बांधने और धारण करने वाला होता है। सिन्धुः—सिनाति दधाति च। पिञ् बन्धने।

स्मदे॒तया॑ सुकी॒र्त्याश्वि॑ना श्वे॒तया॑ धि॒या।
वहे॑थे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र में कहे 'श्वेतयावरी' को और स्पष्ट करते हैं। हे (शुभ्र-यावाना) शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्मत पवित्र मार्ग से जाने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (एतया) इस (श्वेतया) निर्दोष कलंकरहित (सु-कीर्त्या) उत्तम कीर्त्ति युक्त, (धिया) धी, वाणी, ज्ञानोपदेश, सन्मति और सत् कर्म, शक्ति से (स्मत्) उत्तम २ फलों को (वहेथे) प्राप्त करो।

यु॒ङ्क्ष्वा हि त्वं र॑थास॒हा॑ यु॒वस्व॒ पोष्या॑ वसो।
आन्नो॑ वायो॒ मधु॑ पिबा॒स्माकं॒ सव॒ना ग॑हि ॥ २० ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) वसु ! ब्रह्मचारिन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (हि) अवश्य (रथ-सहा) रथ को उठाने में समर्थ, अश्वों के समान अपने इन्द्रिय और मन दोनों को (युङ्क्ष्व) सन्मार्ग में लगा। और (पोष्या) पोषण करने योग्य, दृढ़ अंगों को (युवस्व) कार्यों में योजित कर। इसी प्रकार

प्रजा का बसाने वाला विद्वान् वा राजा भी रथ में लगने योग्य अश्वों के समान ही स्त्री पुरुषों को राष्ट्रकार्य में वा गृहस्थ में जोड़े और उनको मिलावे। हे (वायो) वायुवत् बलशालिन् ! वा ज्ञान के इच्छुक, ज्ञान देने वाले ! (आत्) अनन्तर तू (नः) हमारे (मधु) मधुर जल, अन्न और मधुपर्क आदि का पान, उपभोग कर। और (अस्माकम्) हमारे (सवना) यज्ञों, गृहों आर ऐश्वर्यों को (आ गहि) प्राप्त कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

तव॑ वायवृतस्पते॒ त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत ।
अवां॒स्या वृ॑णीमहे ॥ २१ ॥

भा०—हे (वायो) जलपालक ! आकाश गतवायु के समान (ऋतः-पते) सत्यज्ञान, धन, यज्ञ और तेज के पालक ! हे (अद्भुत) अभूतपूर्व आश्चर्यजनक ! (जामातः) प्रजादि के उत्पन्न करने हारे ! हे (वायो) वायुवत् प्राणप्रद ! बलवन् ! सर्वगत ! हम (त्वष्टुः तव) सूर्यवत् देदीप्यमान, जगत् के कर्त्ता तेरे (अवांसि) ज्ञानों, रक्षाओं, तृप्ति आनन्द-दायक सुखों की (वृणीमहे) प्रार्थना याचना करते हैं। (२) हे ज्ञानवन् बलवन् ! अभूतपूर्व जामातः ! अविवाहितनवयुवक ! हम तेरे (अवांसि) सुखदायक आगमनों को चाहते हैं। श्वशुर सदा कन्या के लिये अभूतपूर्व अविवाहित जमाई को ही चाहे, वही 'त्वष्टा', प्रजा का उत्पादक होवे।

त्वष्टु॒र्जामा॑तरं व॒यमीशा॑नं रा॒य ई॑महे ।
सु॒ताव॑न्तो वा॒युं द्यु॒म्ना जना॑सः ॥ २२ ॥

भा०—(वयं) हम (द्युम्नाः) धन, यश से सम्पन्न (सुतवन्तः, सुतावन्तः) पुत्र पुत्री वाले मनुष्य, (त्वष्टुः) समस्त कार्यसाधक, तेजोयुक्त (रायः ईशानं) धन के स्वामी, (जामातरं) नाती के उत्पादक जामाता, जंवाई को (ईमहे) प्राप्त करें। (२) हम यशस्वी, ऐश्वर्यवान् जन

उत्तम ऐश्वर्यादि के स्वामी (जामातरम्) सर्व जगदुत्पादक प्रभु से (ईमहे) याचना करें।

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम्।
वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे॥ २३॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! बलवन्! हे (शिव) कल्याणकारिन्! हे जगत् को सूत्रवत् गूंथने वाले प्रभो! तू (दिवः) समस्त सूर्यादि लोकों को (याहि) सञ्चालित कर, उनको प्राप्त कर और (सु-अश्व्यम्) उत्तम सूर्यादि युक्त जगत् को (वहस्व) धारण कर। और (रथे) रथ में (पृथु-पक्षसा = पृथु-वक्षसा) विस्तृत पार्श्वों वाले दो अश्वों को जैसे वीर हांकता है उसी प्रकार तू भी (पृथु-पक्षसा) महान् जगत् के वशकारक बल से (महः वहस्व) महान् संसार को धारण कर। लिङ्ग-विभक्ति-वचनादि श्लेषः। (२) इसी प्रकार हे बलवान् राजन्! तू (दिवः स्वश्व्यम्) भूमि के उत्तम अश्व सैन्य को सञ्चालित कर। बड़े वक्षःस्थल वाले अश्वों को रथ में जोड़।

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे।
ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना॥ २४॥

भा०—हे प्रभो! हम लोग (सुप्सरस्तमं) उत्तम, पूज्य रूप कान्ति वाले! वा कान्तियुक्त तेजस्वियों में सर्वश्रेष्ठ (त्वा हि) तुझ को ही (नृ-सदनेषु) सब मनुष्यों के सञ्चालन कार्यों में या मनुष्यों के गृहों में (हूमहे) तेरी ही स्तुति करते, तुझे ही पुकारते हैं। और तुझ को (अश्व-पृष्ठं) सूर्य के द्वारा सेचन समर्थ (मंहना) महान् सामर्थ्य से युक्त मेघ के सदृश, (अश्व-पृष्ठं) बड़े २ विद्वानों के ऊपर विद्यमान (ग्रावाणं न) सर्वोपदेष्टा गुरुवत् (हूमहे) स्वीकार करते हैं। (२) इसी प्रकार अश्वों के बल पर पुष्ट 'ग्राव' अर्थात् शस्त्रबलयुक्त राजा को हम मनुष्यों में से बसे राष्ट्रों में राजा रूप से स्वीकार करें।

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः ।
कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देव) प्रभो ! सर्व सुखों के दातः ! हे (वायो) सर्वप्राण ! सर्वसंञ्चालक ! (सः त्वं) वह तू (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, (नः मनसा मन्दानः) हमें ज्ञान से तृप्त, आनन्दित करता हुआ, (वाजान् अपः धियः कृधि) सत्, ऐश्वर्य, ज्ञान और कर्म प्रदान कर। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[२७]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७, ६ निचृद् बृहती । ३ शङ्कुमती बृहती । ५, ११, १३ विराड् बृहती । १५ आर्ची बृहती ॥ १८, १६, २१ बृहती । २, ८, १४, २० पंक्तिः । ४, ६, १६, २२ निचृत् पंक्तिः । १० पादनिचृत् पंक्तिः । १२ आर्ची स्वराट् पंक्तिः । १७ विराट् पंक्तिः ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(अध्वरे) अविनाशी (उक्थे) उत्तम वेदवचन और ईश्वरविषयक ज्ञानोपदेश प्राप्त करने के लिये (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (पुरोहितः) आगे अग्रासन पर स्थापित हो, और (ग्रावाणः) उपदेष्टा- जन और (बर्हिः) यज्ञ वा आकाश वा सूर्यवत् तेजस्वीजन भी अग्रासन पर स्थापित हों । मैं (ऋचा) वेदवचन, अर्चा सत्कार सहित, (मरुतः) विद्वान् पुरुषों और (ब्रह्मणः पतिम्) वेद और ब्रह्मज्ञान के पालक विद्वान् और (देवान्) ज्ञानप्रकाशक पुरुषों से (वरेण्यम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ (अवः) ज्ञान की (यामि) याचना करूं और उनसे उस ज्ञान को प्राप्त करूं ।

आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पशुम्) पशु को, (पृथिवीम्) भूमि को और (वनस्पतीन्) बड़े २ वृक्षों को और (ओषधीः) अन्न लतादि को (उषासानक्तम्) दिन रात, प्रातः सायं (आ गासि) प्राप्त किया कर । हे (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने वाले (वसवः) राष्ट्र वासी ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग (विश्वे) सब (नः धीनां) हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों के (प्र-अवितारः भूत) उत्तम रीति से रक्षक होकर रहो ।

प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

भा०—(अध्वरः) जो हिंसारहित, नित्य, स्थायी यज्ञ (अग्ना) ज्ञानवान् पुरुष, अग्निवत् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) अग्नि, भूमि, जलादि तत्वों, सूर्यादि लोकों और विद्वान् दाताजनों में (पूर्व्यः) पूर्व भी विद्यमान होता रहा, वह (नः प्र एतु) हमें अच्छी प्रकार, उत्तम फलदायक होकर प्राप्त हो । इसी प्रकार (आदित्येषु) १२हों महीनों में या पूर्ण ब्रह्मचारियों में (धृत-व्रते) व्रतों सत्-कर्मों के धारण व्यवस्थित करने वाले पुरुष के अधीन और (विश्व-भानुषु) सब तेजों, प्रकाशों को धारण करने वाले (मरुत्सु) विद्वान् और बलवान् पुरुषों में है वह भी (नः प्र एतु) हमें प्राप्त हो ।

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वे) सब (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामी (रिशादसः) दुष्टों के नाशक लोग (मनवे वृधे हि भुवन्)

मनुष्य की वृद्धि के लिये ही हों। हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के ज्ञाता, सब धनों के धनी जनो ! आप लोग (अरिष्टेभिः) हिंसादि से रहित, (पायुभिः) पालनकारक उपायों से युक्त (नः) हमें (अवृकं छर्दिः) चोरादि कष्ट बाधा से रहित गृह (यन्त) प्रदान करो।

आ नो॑ अ॒द्य सम॑नसो॒ गन्ता॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः।
ऋ॒चा गि॒रा म॑रुतो॒ देव्यदि॑ते॒ सद॑ने॒ पस्त्ये॑ महि ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान मनुष्यो ! आप लोग (विश्वे) सब (स-जोषसः) समान प्रीतियुक्त और (स-मनसः) समान चित्त होकर (नः अद्य आ गन्त) आज हमे प्राप्त होवो। हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) मातः ! तू भी (ऋचा गिरा) अर्चना योग्य सत्कारयुक्त वेद-वाणी से युक्त होकर (सदने) सभा भवन और (महि पस्त्ये) बड़े भवन में आओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अ॒भि प्रि॒या म॑रुतो॒ या वो॒ अश्व्या॑ ह॒व्या मि॑त्र प्रया॒थन॑।
आ ब॒र्हिरिन्द्रो॒ वरु॑णस्तु॒रा नर॑ आदि॒त्यास॑: सदन्तु नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् मनुष्यो ! हे (मित्र) स्नेहवान् जनो ! (वः या प्रिया) आप लोगों को जो प्रिय, (अश्व्या) अश्व आदि साधन और (हव्या) ग्रहण करने, दान देने और खाने योग्य, अन्न धनादि पदार्थ हैं उन सबको (अभि प्रयाथन) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और अन्यों को प्राप्त कराया करो। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ राजादि और (तुराः नराः) शीघ्रगामी और नायक जन एवं (आदित्यासः) लेन देन करने में कुशल वा तेजस्वी विद्वान् लोग, (बर्हिः आ सदन्तु) उत्तम आसन और राष्ट्र पर आदरपूर्वक विराजें।

व॒यं वो॑ वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आनु॒षक्।
सु॒तसो॑मासो वरुण हवामहे मनु॒ष्वदि॒द्धाग्न॑यः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (वृक्त-

बर्हिषः) दर्भ प्राप्त करके, (हित-प्रयसः) अन्न धारण करके (सुत-सोमासः) सोम का सवन करके (इद्धाग्नयः) अग्नियें प्रज्वलित करके (वः) आप श्रेष्ठ जनों को (मनुष्वत्) उत्तम मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें। वा हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर तेरी उपासना, प्रार्थना करें।

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन् ! हे (अश्विना) रथीसारथिवत् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (माकीनया धिया) मेरे कर्म, बुद्धि और स्तुति आदि से (आ यात प्र यात) आया और जाया करो। (सनिष्युभिः) दान, वेतन ऐश्वर्यादि के इच्छुक लोग (यः) जिसे (वृषा वृत्रहा) बलवान्, सुखवर्षक मेघ के छेदक भेदक विद्युत्वत् दुष्टों का नाशक (गृणे) बतलाते हैं वह (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत्वत् बलवान् तेजस्वी पुरुष (प्रथमः आ यातु) सबसे प्रथम, मुख्य होकर आवे।

वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ ९ ॥

भा०—हे (देवासः) दानशील और उत्तम शुभ गुणों से युक्त, तेजस्वी, और विजयेच्छुक, एवं व्यवहारवान् पुरुषो ! आप लोग (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (नः) हमें (अच्छिद्रं) छिद्ररहित, त्रुटि दोषादि से रहित, अविच्छिन्न, निर्भय (शर्म) सुखप्रद, गृह वा शरण (वि यच्छत) विशेष रूप से प्रदान करो। हे (वसवः) प्रजा के बसने बसाने वालो ! मातृपितृवत् शासक जनो ! (यत्) जिसे (न दूरात्) न दूर से और (नु चिद् अन्तितः) न पास से ही कोई उस दुःखवारक गृह, नगर, प्रकोट आदि को (आ-दधर्षति) हमसे छीन सके और न उस घर पर आक्रमण कर सके।

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१०॥३२॥

भा०—हे (रिशादसः) हिंसकों को नाश करने हारे ! (वः) आप लोगों की (सजात्यं अस्ति हि) जाति, उद्भव स्थान समान हो । हे (देवासः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः आप्यम् अस्ति हि) तुम लोगों की परस्पर बन्धुता भी हो । आप लोग (मक्षू) शीघ्र ही (पूर्वस्मै) पूर्ण, पूर्व विद्यमान (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त करने तथा उत्तम मार्ग में चलने, सदाचार पालन करने और (नव्यसे) नये, उत्तम सुख प्राप्त करने के लिये (नः प्रवोचत) हमें अच्छा २ उपदेश किया करें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) विश्व के धन के स्वामियो ! वा समस्त ज्ञानों और धनों को धारण करने वाले विद्वान् वीर पुरुषो ! मैं राजा (नमस्युः) 'नमस्' अर्थात् शत्रुओं को विनय की शिक्षा देने वाले दण्ड को अपने वश में करना चाहने वाला होकर (वः) आप लोगों को (वामस्य भक्तये) उत्तम ऐश्वर्य के सेवन करने के लिये (इदा हि वः) अब आप लोगों को (अन्याम् उप स्तुतिम् इव) नई से नई शिक्षा (आ उप असृक्षि) प्रदान करूं ।

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (सु-प्र-णीतयः) पूज्य, उत्तम नीति और व्यवहार वाले पुरुषो ! (स्यः सविता) वह सबका उत्पादक परमेश्वर (वरेण्यः) सबसे वरण करने योग्य, सबको श्रेष्ठ मार्ग में ले चलने हारा, (ऊर्ध्वः) ऊपर (वः उत् अस्थात्) आप सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप में विराजमान है । और (पतयिष्णवः) वेग से जाने और ऐश्वर्यों के स्वामी बनना चाहने वाले

(द्विपादः चतुष्पादः) दो पाये और चौपाये भी (अर्थिनः) याचकवत् (नि अविश्रन्) उसके अधीन विराजते हैं ।

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।

देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (देव्या धिया) उत्तम ज्ञानमय प्रकाश के देने वाली, सुखदायी (धिया) वाणी से (वः गृणन्तः) आप लोगों के प्रति उपदेश करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (देवं-देवम्) सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु को और (अभिष्टये) अभीष्ट सुखादि को प्राप्त करने के लिये भी (देवं-देवं) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, अति कमनीय प्रभु की और (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, अन्न और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (देवं-देवं) सर्व सुखादि के दाता, ज्ञानप्रकाशक प्रभु की (हुवेम) प्रार्थना करें ।

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ १४ ॥

भा०—(समन्यवः देवासः) ज्ञानवान्, और दानशील और तेजस्वी और (विश्वे) समस्त (स-रातयः) धनादि सम्पन्न पुरुष (मनवे) मननशील व्यक्ति के उपकार के लिये ही (वरिवः-विदः भवन्तु) उत्तम धन को प्राप्त कराने वाले हों। और (ते) वे (अद्य) आज (नः) हमें भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनदाता हों । (अपरं तु) बाद में भी (नः तुचे) हमारे पुत्रादि के लिये भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनादि के दाता हों ।

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।

न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५॥

भा०—हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो ! (संस्थे) एकत्र मिलकर बैठने के योग्य सभा आदि में (उप-स्तुतीनां) स्तुति योग्य (वः) आप लोगों की (प्र शंसामि) प्रशंसा करता हूं । (यः मर्त्यः) जो मनुष्य हे (वरुण)

श्रेष्ठ, हे (मित्र) स्नेहवान् ! (धामभ्यः) उत्तम जन्म, स्थान और तेज को प्राप्त करने के लिये (वः अविधत्) आप लोगों की सेवा करता है (तं) उसको (धूर्त्तिः) किसी प्रकार की हिंसा या बाधा नहीं सताती ।

प्र स क्षयं तिरते वि मुहीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥ ३३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो मनुष्य (वः) आप लोगों को (वराय) श्रेष्ठ कार्य के लिये (दाशति) दान करता है (सः) वह (क्षयं) अपने गृहादि और ऐश्वर्य को (प्र तिरते) बढ़ा लेता है, वह (महीः इषः प्र तिरते) बहुत उत्तम अन्नों और उत्तम, वा बड़ी अभिलाषाओं को भी पूर्ण कर लेता है, वह (सर्वः) सब प्रकार से ही (अरिष्टः) आबाधित, दुःखरहित होकर (धर्मणः परि) धर्म के द्वारा (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओं से प्रजावान् होता और (परि एधते) खूब बढ़ता है । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥ १७ ॥

भा०—(अर्यमा) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों का नियन्ता न्यायवान्, (मित्रः) स्नेहवान् और (वरुणः) श्रेष्ठजन (स-रातयः) दानशील, कृपालु और (स-जोपसः) प्रीतियुक्त होकर (यं त्रायन्ते) जिसकी रक्षा करते हैं (सः) वह राष्ट्रवासी जन (युधः ऋते) विना युद्ध के ही (विन्दते) ऐश्वर्य प्राप्त करता और (सु-गेभिः) उत्तम सुखप्रद यानों से (अध्वनः याति) मार्गों को जाता आता है ।

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

भा०—आप लोग (अस्मै) इस राष्ट्र वा जनलोक के हितार्थ हे विद्वानो ! वीर जनो ! (अज्रे चित्) न पराजित होने योग्य, शत्रु सैन्य, वा शत्रु नगर में भी (नि-अज्रनं कृणुथा) नित्य आया जाया करो । और (अस्मत्) इस रक्षा योग्य जन से (अशनिः) विद्युत्वत् घातक शस्त्र अस्त्रादि वा (अशनिः) मार कर खाजाने वाली क्षुधा, वा महामारी आदि फैलने वाली विपत्ति भी (सास्रेधन्ती) विनाश करती हुई बला, (परः विनश्यतु) दूर चली जाय ।

यद॒द्य सूर्य॑ उद्य॒ति प्रिय॑क्षत्रा ऋ॒तं द॒ध ।
यन्नि॒म्रुचि॑ प्र॒बुधि॑ विश्ववेदसो यद्वा॑ म॒ध्यन्दि॑ने दि॒वः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (दिवः निम्रुचि) सूर्य के अस्त काल में, (प्रबुधि) प्रबोध या उदयकाल में (यद्वा) अथवा (मध्यंदिने) मध्यान्ह में भी सूर्य की किरणें (ऋतं दधे) तेज को धारण किये ही रहती हैं उसी प्रकार हे (विश्व-वेदसः) वा समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामियो ! हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! आप लोग भी (प्रियक्षत्राः) 'क्षत्र' अर्थात् बल वीर्य, जल अन्नादि के प्रिय, तदभिलाषी जनो ! आप लोग भी (अद्य) आज (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन वा ज्ञान के सूर्यवत् प्रकाशक आचार्य के (उद्-यति) उदय होने वा उत्तम यत्नवान् होने पर आप लोग (नि-म्रुचि) निम्न गति, विनयशील होने पर सूर्यास्त होने के काल में (प्रबुधि) प्रबोध काल में, वा सूर्योदय काल में, (यद्वा) अथवा (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल में (ऋतं दध) ऋत अर्थात् सत्य न्याय, वेद, तेज और अन्न को धारण करो ।

यद्वा॑भिपि॒त्वे अ॑सुरा ऋ॒तं य॒ते छ॒र्दिर्ये॒म वि दा॒शुषे॑ ।
व॒यं तद्वो॑ वसवो विश्ववेदस॒ उप॑ स्थेयाम॒मध्य॒ आ ॥ २० ॥

भा०—हे (असुरः) बलवान्, दुष्टों को उखाड़ फेंकने में समर्थ वीर पुरुषो ! प्राणों के दाता वा प्राणों के अभ्यास में लगे विद्वानो ! आप

लोग (अपिपित्वे) प्राप्त होकर (यत् वा ऋतं वियेम) जो भी सत्य ज्ञान है उसे हम प्रदान करें और (यते दाशुषे) यत्न शील वा शरणागत, दानशील वा सेवक जन को भी (छर्दिः) आश्रय और ज्ञान दीप्ति (वि-येम) विशेष रूप में प्रदान करें। हे (वसवः) विद्वान जनो ! हे (विश्व-वेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामि जनो ! हम लोग भी (वः) आप लोगों के (मध्ये) बीच में (तत् छर्दिः) उस गृह वा शरण में (उप स्थेयाम) सदा उपस्थित रहें।

यदद्य सूर उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि।

वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥ २१ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (उद् इते) उदय, को प्राप्त करते हुए और (मध्यन्दिने) मध्य दिन में (आ-तुचि) सब ओर संतापित करने वाले (सूरे) सूर्य के किरणोंवत् उसके समान तेजस्वी पुरुष के अधीन (यत् यत् वामं धत्थ) जिस २ उत्तम ज्ञान और धन को धारण करो उसको आप लोग (विश्व-वेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी होकर, (जुह्वानाय) दान देने वाले और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त और उत्तम ज्ञानी पुरुष के लिये (धत्थ) दे दिया करो।

वयं तद्वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम्।

अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहे ॥२२॥३४॥

भा०—हे (सम्-राजः) सम्मिलित होकर अतिदीप्ति से चमकने वाले किरणों वत् वीर पुरुषो ! (पुत्रः न) पुत्र के समान (वयं) हम लोग भी (वः) आप लोगों के (तत्) उस (बहु-पाय्यं) बहुतों के पालक, और बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य की (आ वृणीमहे) याचना करते हैं ! हे (आदित्याः) सूर्य की किरणों वत् 'अदिति' भूमिमाता के सत्पुत्रो ! हम लोग (जुह्वतः) आहुति देने वाले यज्ञकर्त्ता की पवित्र

(हविः) अन्नवत् हम भी अपने दाता स्वामी के दिये (हविः) अन्न का (अश्यमा) भोग करें (येन) जिससे हम भी (वस्यः) उत्तम धन को (अनशामहै) प्राप्त करें । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[२८]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५, विराड् गायत्री । ४ विराडुष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् ।
विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (देवासः) तेजस्वी, उत्तम दानशील, और विजयेच्छुक, (त्रिंशति त्रयः) तीस ऊपर तीन अर्थात् संख्या में ३३ विद्वान् वीर जन, (बर्हिः आसदन्) यज्ञ, उत्तम आसन वा राष्ट्र के उत्तम पद प्राप्त करते हैं, वे (द्विता विदन्) सत् और असत् दोनों का ज्ञान करें । और (असनन्) निग्रह और अनुग्रह दोनों के देने वाले हों ।

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिपाचो अग्नयः ।
पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) दुष्टों को वारण करने वाला और सज्जनों से वरण करने योग्य (मित्रः) और सर्वस्नेही, (अर्यमा) दुष्टों को दमन करने वाला न्यायकारी जन ये तीनों (अग्नयः) अग्रणी, प्रधान तेजस्वी पुरुष (स्मत्-राति-पाचः) उत्तम कर वेतनादि धन का सेवन करने वाले और (पत्नी-वन्तः) प्रजापालक शक्ति और नीति से युक्त होकर (वषट्-कृताः) उत्तम सत्कार से युक्त हों ।

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् ।
पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे उक्त अधिकारी जन (सर्वया विशा) समस्त प्रजा से युक्त होकर (नः) हमारे (अपाच्याः) पश्चिम से, (ते उदक्) वे उत्तर से (इत्थः) और इसी प्रकार (ते) वे (न्यक् पुरस्तात्) नीचे से और आगे से भी (गोपाः) रक्षक हों।

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत्।
अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः यथा वशन्ति) विद्वान्, तेजस्वी, उत्तम जन जैसा चाहते हैं (तेषां) उनकी वह इच्छा (तथा इत् असत्) वैसी ही सफल होती है, (मर्त्यः अरावा चन) अदानशील, मूर्ख मनुष्य (तेषां नकिः आमिनत्) उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम्।
सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(सप्तानां) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों और विद्वानों के (ऋष्टयः सप्त) हथियार और दृष्टियें भी सर्पणशील, और दूर २ तक वेग से जाने वाली हों। (एषाम् द्युम्नानि सप्त) इनके धन और यश भी फैलने वाले हों। वे (सप्त उ श्रियः अधि धिरे) वे व्यापक सम्पदाओं को ही धारण करें। अथवा विद्वानों और वीरों के सात विभाग, उनके सात प्रकार के आयुध और सात प्रकार के दर्शन और सात प्रकार के धन, और सात प्रकार की शोभाएं हैं। अध्यात्म में—शरीर में सात प्राणों की सात प्रकार की शक्तियां, सात प्रकार के तेज, और वे सात प्रकार की ही शोभाएं हैं। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२९]

मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीच ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ आर्ची गायत्री। ३, ४, १० आर्ची स्वराड् गायत्री। ५ विराड् गायत्री। ६—९ आर्ची भुरिग्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥ १ ॥

भा०—(बभ्रुः) सबका भरण पोषण करने में समर्थ, (वि-षुणः) सब ओर जाने में समर्थ, (सु-नरः) उत्तम नेता, (युवा) बलवान् (हिरण्यम्) सुवर्ण के समान दीप्तियुक्त, सुन्दर (अञ्जि) रूप को (अंक्ते) प्रकट करता है, वह विश्व में प्रभु, और देह में आत्मा है।

योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥ २ ॥

भा०—(एकः) एक अद्वितीय, (मेधिरः) सब शत्रुओं को हनन करने, सबके साथ संगति करने में समर्थ एवं उत्तम बुद्धिमान्, (द्योतनः) सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, (देवेषु अन्तः) इन्द्रियों के बीच, आत्मा के तुल्य, समस्त पृथिव्यादि पदार्थों के बीच में, (योनिम्) सब संसार के मूलकारण भूत प्रकृति को, गृह को गृहपति के समान (आससाद) अध्यक्ष रूप से अपने वश करता है।

वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (देवेषु अन्तः) विद्वानों, विजयेच्छुकों के बीच सेनापतिवत्, प्राणों के बीच आत्मवत्, समस्त तेजोमय एवं पृथिव्यादि तत्वों के बीच (हस्ते) अपने हाथ में (आयसीम् वाशीम्) सुवर्णमयी वंशी को गायक के समान, एवं लोह की बनी वसौली को शिल्पियों के समान, (आयसीम्) सबको संचालन करने में समर्थ (वाशीम्) ज्ञान वाणी वेद को वा सर्वसंचालिका, वशकारिणी प्रभुशक्ति को (निध्रुविः) स्थिर होकर, सबका धारक होकर (बिभर्ति) धारण करता है।

वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥ ४ ॥

भा०—वह (एकः) एक अद्वितीय (हस्ते आहितं वज्रम्) हाथ में पकड़े शस्त्र के समान स्वयं (वज्रम्) वीर्य, बल को (आहितं) सर्वत्र व्यापक रूप से (बिभर्त्ति) धारण करता है। (तेन) उससे वह (वृत्राणि)

मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य, प्रकृति के आवरणकारा परमाणुओं को (जिघ्नते) आघात करता, उनमें स्पन्द उत्पन्न करता और संचालित करता है।

तिग्ममेको विभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

भा०—वह (एकः) एक, अकेला, अद्वितीय, दूसरे की अपेक्षा न करने वाला, प्रभु (शुचिः) दीप्तिमान् शुद्ध पवित्र, (उग्रः) सबसे बलवान्, दुष्टों को भयदाता, (जलाष-भेषजः) जलवत् शान्तिदायक दुःख-नाशक, सब बाधाओं को दूर करने में समर्थ, वैद्य के समान, ही (तिग्मम्) तीक्ष्ण (आयुधम्) शस्त्र को (हस्ते बिभर्त्ति) अपने हाथ में, उत्तम शल्यचिकित्सकवत् अपने वश में रखता है। वह उसका अत्यन्त विवेक से उपयोग करता है।

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥

भा०—(यथा तस्करः निधीनां वेद) जिस प्रकार चोर ख़जानों का पता लगा लेता है वह (पथः पीपाय) मार्ग रोक रखता है उसी प्रकार (एषः) वह (एकः) अद्वितीय प्रभु (पथः) सब जीवों से प्राप्त करने योग्य मार्गों की, (पीपाय) रखवारी करता, वा (पथः पीपाय) सब नाना मार्गों से जाने वाले जीवों को पुष्ट करता है। वह (यथा) यथावत् (तस्करः = तत्-करः) उन नाना सृष्टि रचन, पालन, संहारादि अद्भुत कर्मों के करने हारा, प्रभु (निधीनाम्) समस्त ऐश्वर्यों को (वेद) स्वयं जानने, प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने हारा है।

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—(यत्र) जिनमें (देवासः) नाना सुखों की कामना करने वाले जीवगण, प्रकाशमान सूर्यादि लोक और विद्वान् जन (मदन्ति) आनन्द लाभ करते हैं, उन (त्रीणि) तीन लोकों को (एकः) एक, अद्वितीय (उरु-गायः) विशाल वाणी, वेद का स्वामी, महान् लोकों में व्यापक,

महान् कीर्त्तिमान् प्रभु (वि-चक्रमे) विशेष रूप से बनाता और उनमें व्यापता है।

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥

भा०—(प्रवासा इव एकया चरतः) जिस प्रकार दो प्रवासी एक स्त्री के साथ (प्रवसतः) प्रवास करें उसी प्रकार (द्वा) दो जीवात्मा और परमात्मा (विभिः) अपनी विषयभोग साधन इन्द्रियों, प्राणों, और ईश्वर व्यापक सामर्थ्यों से (एकया सह) एक प्रकृति के साथ एक काल में ही (चरतः) अच्छी प्रकार विचरते और (प्र वसतः) रहते हैं। जीव तो उस प्रकृति का उत्तम गृहस्थवत् भोग करता है और दूसरा ईश्वर उसमें व्यापक होकर भी प्रवासगत विरही पथिकवत् उससे निःसंग रहता है। इससे दोनों प्रवासीवत् हैं।

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

भा०—(द्वा) वे दोनों (उपमा) एक दूसरे के तुल्य होकर ही (दिवि) द्यौ अर्थात् जीव कामना में और प्रभु तेजोमय आनन्दमय मोक्ष में (सदः चक्राते) अपना स्थान बनाये रहते हैं। वे दोनों (सम्राजा) खूब दीप्तिमान्, (सर्पिः-आसुती) घृत आसेचन योग्य दो अग्नियों के तुल्य हैं। प्रभु (सर्पिः-आसुतिः) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का उत्पादक, और उनका संचालक है। इसी प्रकार जीव भी प्राणों का संचालक है।

अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥३६॥

भा०—(एके) एक, विद्वान् जन (अर्चन्तः) उस प्रभु की अर्चना करते हुए (महि साम) बड़े भारी सर्वत्र समस्त, व्यापक बल को (मन्वत) जान लेते हैं और (तेन) उसी से वे (सूर्यम्) सर्वोत्पादक प्रभु को (अरोचयन्) सबसे अधिक चाहते हैं। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

[३०]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २ पुर उष्णिक् । ३ विराड् बृहती । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् वीर पुरुषो ! हे जीवो ! (वः) आप लोगों में से कोई भी (अर्भकः नहि अस्ति) छोटा बच्चा नहीं, (न कुमारकः) न बालक है, वा (कुमारकः) कुत्सित उपायों से दूसरे को वा अपने आपको मारने वाला भी (न अस्ति) नहीं हो । आप (विश्वे) सब लोग (सतः महान्तः इत्) सत् प्रकृति से महान् वा विद्यमान बड़े २ गुणों से अधिक शक्तिशाली हो ।

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो आप लोग (मनोः) मननशील और राष्ट्र को अपने वश में करने वाले (यज्ञियासः) यज्ञ, पूजा, सत्संगादि के योग्य (देवाः) ज्ञानी, (रिशादसः) दुष्टों के नाशक (त्रयः च त्रिंशत् च स्थ) तेंतीस (३३) होते हो वे सब ! (इति) इस प्रकार (स्तुताः असथ) स्तुति युक्त, प्रशंसित होवो ।

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे आप लोग (नः त्राध्वम्) हमारी रक्षा करो । (ते अवत) वे आप लोग हमें बचाओ । (ते उ नः) वे ही आप लोग हम पर (अधि वोचत) अध्यक्ष होकर आज्ञा या शासन करो और अधिकाधिक उपदेश किया करो । और आप लोग (नः) हमें (परा-

वतः) दूर, परम प्रभु से चले आए (पित्र्यात्) पालक पिता के (मानवात्) मनु, मननशील विद्वान् के बनाये (पथः) मार्ग से (दूरं मा नैष्ट) दूर मत लेजाओ, उससे हमें पथभ्रष्ट मत करो।

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥ ३७ ॥ ४ ॥

भा०—(इह) इस लोक या राष्ट्र में (ये देवासः स्थन) जो विद्वान् विजयाभिलाषी वा ज्ञानादि के दाता हैं (उत) और जो (विश्वे) सब (वैश्वानराः) सब के संचालक प्रभु के भक्त, वा सब मनुष्यों के हितैषी हैं, वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये और हमारे (गवे अश्वाय) गौ, घोड़े आदि पशुओं के लिये भी (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख और गृहादि (यच्छत) प्रदान करो। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[३१]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ १—४ इज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च। ५—६ दम्पती। १०—१८ दम्पत्योराशिषो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, १२ गायत्री। २, ४, ६, ८ निचृद् गायत्री। ११, १३ विराड् गायत्री। १० पादनिचृद् गायत्री। ६ अनुष्टुप्। १४ विराडनुष्टुप्। १५—१७ विराट् पङ्क्तिः। १८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च।
ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (यजाति) यज्ञ करता, दान देता, ईश्वरोपासना करता है (यजाते इत्) दान देता और पूजा ही करता चला जाता है, (सुनवत्) सोमरस का सम्पादन कर, उत्तम ऐश्वर्य लाभ करता, और (पचाति च) पाक यज्ञ करता, वा अपने आपको ज्ञानाग्नि, तप आदि में परिपक्व करता है। वह (इन्द्रस्य ब्रह्म) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के महान् गुण-वचनों, वेद-वचनों को (चाकनत्) सदा चाहता है।

पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् ।
पादित्तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्मै) इस समस्त संसार को (आशिरं) खाने योग्य (पुरोडाशं) पूर्व ही देने योग्य, अन्न (सोमं) ओषधि लतादि रूप में (ररते) प्रदान करता है वही (शक्रः) शक्ति शाली परमेश्वर (तं) उस संसार को (अंहसः) पाप, और नाश होने से भी (पात्) बचाता है । (२) (यः) जो प्रजाजन इस शक्तिमान् राजा को (सोमं) ऐश्वर्य (पुरोडाशं) अन्नवत् भोगने के लिये प्रदान करता है शक्तिशाली राजा उस प्रजाजन को पाप वा पापी जन से नाश होने से बचावे ।

तस्यं द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत् ।
विश्वां वन्वन्नमित्रियां ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह पूर्वोक्त शक्तिशाली स्वामी (विश्वा) सब प्रकार के (अमित्रिया) शत्रुओं के किये छल कपटादि के कार्यों को (वन्वन्) नाश करता हुआ (देव-जूतः) विद्वानों से सेवित होकर (शूशुवत्) बहुत वृद्धि को प्राप्त होता है । (तस्य) उसका (रथः) रथ भी (द्युमान्) कान्तियुक्त और (देव-जूतः) अग्नि, वायु, विद्युत् आदि पदार्थों से चलने वाला (असत्) होता है । (२) वह विद्वान् सब अमित्रभावों का नाश करता है, उसका (रथः) उपदेश (देव-जूतः) विद्याभिलाषियों से सेवित होकर (द्युमान्) अति तेजस्वी हो प्रसिद्ध हो जाता और वह वृद्धि को प्राप्त होता है ।

अस्यं प्रजावंती गृहेऽसंश्चन्ती दिवेदिवे ।
इळां धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य इडा) उसकी भूमि (प्रजावती) प्रजा से युक्त होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (गृहे असश्चन्ती) गृह में स्थिर रहने वाली

पत्नी वा गौ के समान (धेनुमती) गवादि पशु युक्त और वाणी, आज्ञा युक्त होकर (दुहे) नाना सुखों को प्रदान करती है।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।
देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! (या) जो (दम्पती) पति पत्नी, (स-मनसा) समान चित्त होकर (सुनुतः) पुत्र उत्पन्न करते हैं और (नित्यया) नित्य (आशिरा) उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्य से (आ धावतः च) उसे शुद्ध करते हैं और पालते हैं वे दोनों—

प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते।
न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥

भा०—(प्राशव्यान्) उत्तम खाने योग्य पदार्थों को (प्रति इतः) प्रति-दिन प्राप्त करें। वे (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार जीवन निर्वाह करते हुए (बर्हिः आशाते) उत्तम धान्य का उपभोग करें और (ता) वे दोनों (वाजेषु) अन्नों, बलों और ऐश्वर्यों से (न वायतः) वञ्चित नहीं रहते।

न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः।
श्रवो बृहद्विवासतः ॥ ७ ॥

भा०—वे दोनों विवाहित पति पत्नी (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों के बीच रहते हुए (अपि) भी, कभी भी (न ह्नुतः) कुटिलता का व्यवहार नहीं करें। और वे दोनों (सुमतिम्) अपनी उत्तम सम्मति, शुभ ज्ञान को (न जुगुक्षतः) कभी न छिपावें, प्रत्युत परस्पर हित के उत्तम ज्ञान देते रहा करें। वे दोनों नित्य (बृहत् श्रवः) बड़े भारी वेद-ज्ञान का (विवासतः) प्रकाश करें, उसका अभ्यास करें, और श्रवण करने योग्य महान् प्रभु की सेवा किया करें।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों स्त्री पुरुष, पति पत्नी (पुत्रिणा) पुत्रों वाले और (कुमारिणा) प्रथम वयस में वर्त्तमान कुमार अर्थात् नवयुवक सन्तानों के माता पिता होकर (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु का (वि अश्नुतः) भोग करें। और (उभा) दोनों (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण के उत्तम अलंकार धारण करने वाले हों।

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम्।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥

भा०—वे दोनों (वीति-होत्रा) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी को बोलने हारे और (कृतद्वसू = कृत-वसू) उत्तम धन, गृह, बल, वीर्यादि प्राप्त करके (दशस्यन्ताम्) दान दिया करें। वे (अमृताय कम्) अमृत अर्थात् न मरने वाली जीवित सन्तान को प्राप्त करने के लिये (ऊधः रोमशं) उत्तम सन्तान आधान और धारण करने वाले, रोम युक्त अर्थात् यौवनयुक्त अंगों को (सं-हतः) सयोजित करें, उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और (देवेषु) विद्वानों को (दुवः) सेवा (कृणुतः) किया करें।

ये पाचों ऋचाएं गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश करती हैं। पञ्चभिर्दम्पती अस्तूयेताम् इति सायणः।

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् ।
आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥ ३९ ॥

भा०—हम लोग (पर्वतानां) पर्वतों, मेघों और पालन शक्ति से युक्त पुरुषों और (नदीनाम्) नदियों, वाणियों और समृद्ध प्रजाओं के (शर्म) सुख को (आवृणीमहे) प्राप्त करें। और हम (सचाभुवः) समवाय बनाकर रहने वाले (विष्णोः) व्यापक शक्ति वाले प्रभु वा स्वामी के (शर्म) सुख को भी प्राप्त करें। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

एतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः ।
उरुरध्वा स्वस्तये ॥ ११ ॥

भा०—(स्वस्तये) सुख, कल्याण की वृद्धि के लिये, (पूषा) सर्वपोषक स्वामी, वा भूमि हमें (आ-एतु) प्राप्त हो (सर्व-धातमः) सबको उत्तम रीति से पालन पोषण करने में समर्थ (रयिः) ऐश्वर्य, (भगः) सम्पदा और (उरुः अध्वा) बड़ा मार्ग प्राप्त हो । (२) परमेश्वर पोषक होने से 'पूषा', ऐश्वर्यवान् सेवनीय होने से रयि और भग है । वही महान् प्राप्तव्य होने से 'उरु अध्वा' है । वह हमें सुख-कल्याणकारक हो ।

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा ।
आदित्यानामनेह इत् ॥ १२ ॥

भा०—(अनर्वणः) अहिंसक (देवस्य) सर्वदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु के (मनसा) मनन और ज्ञान से (विश्वः) समस्त मनुष्य (अरमतिः) बड़ा ज्ञानवान्, बुद्धिमान् हो जाते हैं और (आदित्यानाम्) आदित्य ब्रह्मचारी, तेजस्वी पुरुषों के (मनसा) ज्ञानोपदेश से सब कोई (अनेहः इत्) पाप रहित भी हो जाते हैं ।

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः ।
सुगा ऋतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, कष्टों के वारक जन (नः) हमारे (गोपाः सन्ति) रक्षक होते हैं उसी प्रकार (ऋतस्य) सत्य, न्याय और वेद का (पन्थाः) मार्ग (सु-गाः) सुखसे गमन करने योग्य है ।

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! मैं (वः) आप लोगों के बीच (वसूनां देवम्) मनुष्यों में सर्व-सुखदाता, ऐश्वर्यों के देने वाले, वा ब्रह्मचा-

रियों में ज्ञानप्रद ज्ञानप्रकाशक को (पूर्व्यं अग्निं) पूर्ण ज्ञानवान् नायक-वत् 'अग्नि' तुल्य तेजस्वी होने से 'अग्नि' नाम से (ईषे) उसकी स्तुति करता हूं। और उसी (पुरु-प्रियं) सब के लिये, (क्षेत्र-साधसम्) निवास योग्य गृह वा देह के वशीकर्त्ता, आत्मवत् प्रिय (मित्रं न) मित्र के समान स्नेही प्रभु की (सपर्यन्तः) सेवा, परिचर्या और भजन करते हुए उसी प्रभु की स्तुति किया करें।

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित्।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥१५॥

भा०—जिस प्रकार (कासु चित् पृत्सु शूरः वा) किन्हीं भी शत्रु सेनाओं में शूरवीर पुरुष निर्भय होकर प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार (देववतः रथः) देव, सर्वप्रद, सर्वप्रकाशक प्रभु के भक्त जन का रथ के समान आनन्दप्रद उपदेश (मक्षु) शीघ्र ही (पृत्सु) मनुष्यों के बीच प्रवेश कर जाता है। (यः) जो (यजमानः) दानशील वा ईश्वर का उपासक, समर्थ पुरुष (देवानां मनः इत्) युद्धविजयी, वीरों और विद्वानों के चित्त को (इयक्षति) आदर पूर्वक सन्तुष्ट कर देता है वह (अयज्वनः) अदाता, कर न देने वाले वा अनीश्वरोपासकों को (अभि) परास्त करके (भुवत्) उनसे बढ़ जाता है।

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १६॥

भा०—हे (यजमान) दानशील! हे यज्ञकर्त्ता! हे ईश्वरोपासक! तू कभी (न रिष्यसि) नष्ट|वा पीड़ित न होगा। हे (सुन्वान) ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे! हे पुत्र सन्तानादि के उत्पादक! हे उपासना करने हारे (न रिष्यसि) तू कभी नाश को प्राप्त न हो। हे (देवयो) विद्वानों के इच्छुक! हे (देवयो) शुभ गुणों के स्वामिन्! तू कभी (न रिष्यसि)

दुःखित, पीड़ित न हो। क्योंकि (यः इत् देवानां मनः इयक्षति) जो उत्तम पुरुषों के मन को प्रसन्न रखता है वह (अयज्वनः अभि भुवत्) अदानशील अनीश्वरोपासकों को पराजित करता है।

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १७॥

भा०—(यः इत्) जो मनुष्य अवश्य ही निश्चयपूर्वक (यजमानः देवानां मनः इयक्षति) विद्वान् पुरुषों के ज्ञान की उपासना करता है वह (अयज्वनः) ज्ञान की उपासना न करने वालों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य ही परास्त करता है। (तं कर्मणा नकिः नशत्) उस तक कर्म के सामर्थ्य से भी कोई नहीं पहुंचता, न उसे नष्ट कर सकता है, और (न प्र योषत्) उसे कोई अपने स्थान से डिगा नहीं सकता। और वह स्वयं (न प्र योषति) पुत्र धनादि से वियुक्त नहीं होता।

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम्। देवानां य इन्मनो
यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥ १८॥ ४०॥ २॥

भा०—(यत् इत् देवानां मनः) जो देव, उत्तम तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान का (इयक्षति) आदर, सत्संग करता है, वह (अयज्वनः) सत्संग न करने वाले कदाचारी पुरुषों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य परास्त करता है, क्योंकि उसका (अत्र) इस लोक में (सुवीर्यम् असत्) उत्तम वीर्य बल और विद्या सामर्थ्य हो जाता है और उसको (त्यत्) वह अलौकिक (आशु अश्व्यम्) शीघ्रगामी अश्वों से युक्त सैन्यादि और बलवान् इन्द्रिय-बल, सामर्थ्य प्राप्त होता है। इति चत्वारिंशो वर्गः॥

इति षष्ठेऽष्टके द्वितीयोध्यायः समाप्तः॥

तृतीयोऽध्यायः

[३२]

काण्वो मेधातिथिः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३, १५, २७, २८ निचृद् गायत्री । २, ४, ६, ८—१२, १४, १६, १७, २१, २२, २४—२६ गायत्री । ३, ५, १९, २०, २३, २९ विराड् गायत्री । १८, ३० भुरिग् गायत्री ॥

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया ।
मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

भा०—हे (कण्वाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (ऋजीषिणः) ऋजु, धर्मानुकूल इच्छा वाले पुरुष होकर (ऋजीषिणः) सत्य न्याय मार्ग पर प्रेरणा करने वाले (सोमस्य मदे) ओषधि, अन्न, ऐश्वर्यादि से खूब तृप्त, प्रसन्न होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (कृतानि) किये कार्यों और राजा के कर्त्तव्यों का (गाथया) गान करने योग्य वेदवाणी से (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उपदेश करो ।

यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् ।
वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो तेजस्वी (सृबिन्दम्) आक्रमण करके प्रजा का धन हरण करने वाले (अनर्शनिं) अहिंसित बल के नेता (पिप्रुं) अपने ही पेट भरने वाले (दासम्) प्रजा के नाशक (अहीशुवम्) सर्प वा मेघवत् बढ़ने वाले दुष्टजन को (उग्रः) भयंकर होकर (वधीत्) विनाश या दण्डित करे वह ही (अपः) आप्त प्रजाओं और जलों को सूर्य या विद्युत्-वत् (रिणन्) मार्ग में चलाने में समर्थ होता है ।

न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार बिजुली (अर्बुदस्य बृहतः वि-स्तपं वर्ष्माणं कृपे नि तिरति) बड़े भारी मेघ के तापरहित वृष्टिकारक रूप को छिन्न भिन्न करके कृपि के लिये दे देता है, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! तू भी (अर्बुदस्य) प्रजा को दुःख देने वाले वा मेघवत् वा सहस्रों की संख्या में (बृहतः) बड़े भारी शत्रु सैन्य के (विस्तपं) विशेष तापकारी, (वर्ष्माणं) अस्त्रवर्षी प्रबल भाग को (नि तिर) विनाश कर, और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (तत् पौंस्यं) ऐसा ही बल पराक्रम (कृपे) किया कर।

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (गिरेः तूर्णाशं अधि धृषत्) विद्युत् मेघ से जल को बलपूर्वक गिरा देता है उसी प्रकार वह शत्रुहन्ता राजा (श्रुताय) प्रसिद्ध होने के लिये (वः) आप प्रजा जनों के (ऊर्णशं) हिंसा द्वारा नाश करने वाले दुष्ट दल को (गिरेः अधि) स्वयं पर्वतवत् उच्च पद से (प्रति अधि कृषत्) उसका मुकाबला करके खूब अधिक धर्षण करे उसे अधिकारपूर्वक दण्डित करे। जिससे वह फिर सिर न उठा सके। उसी (सुशिप्रम्) सुन्दर मुख, नासिका, वा मुकुट से सजे वा उत्तम वीर्यवान् राजा को मैं (ऊतये) प्रजागण अपनी रक्षा के लिये (हुवे) पुकारूं, उससे प्रार्थना करूं।

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।
पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष ! तू (मन्दानः) प्रसन्न होकर अन्यों को भी प्रसन्न करता हुआ (सोम्येभ्यः) ऐश्वर्य के पालन करने में योग्य कुशल पुरुषों के लिये, (गोः व्रजं) वाणियों, भूमियों के समूह तथा (अश्वस्य) आशुगामी, अश्व सैन्य के (व्रजं) प्रयाणकारी बल को और (पुरं न वि दर्षसि) प्राकार या नगरी को विविध प्रकार से विदीर्ण कर।

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः ।
आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (यदि) यदि तू (मे सुते) मेरे उत्पन्न किये ऐश्वर्य में (रारणः) रमण करे, उसका उपभोग करे, और यदि (मे उक्थे) मेरे उत्तम वचन में ही (रारणः) प्रसन्न हो और (चनः दधसे) बहुत अन्न को धारण करे, तो तू (आरात्) दूर या समीप से भी (स्वधा) अपने धारण पोषण करने के नाना पदार्थों को (उप गहि) क्रय विक्रय या व्यापार द्वारा प्राप्त कर ।

वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! (वयं घ) हम अवश्य (ते स्तोतारः) तेरे स्तुति करने वाले (अपि स्मसि) हों । हे (सोमपः) ऐश्वर्य के पालक ! (त्वं नः जिन्व) तू हमें प्रसन्न और तृप्त कर, हमारी वृद्धि कर ।

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ८

भा०—तू (सं-रराणः) समान भाव से प्रजासहित राष्ट्र में सुख भोग करता हुआ (नः) हमारे (अवि-क्षितम्) अविनष्ट (पितुम्) अन्न को (आ भर) प्राप्त करा । और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (ते) अपने (भूरि वसु आ भर) बहुत सा धन ऐश्वर्य भी प्राप्त करा ।

उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः ।
इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तेजस्विन् ! (उत) और तू (नः) हमें (गोमतः) गौ आदि पशु और भूमि आदि से सम्पन्न (कृधि) कर । तू हमें (हिरण्यवतः अश्विनः) उत्तम सुवर्ण धन और अश्वों का स्वामी (कृधि) कर । हम (इडाभिः) नाना उत्तम वाणियों

और अन्नों, भूमियों से (संरभे महि) अच्छी प्रकार जीवन का सुख प्राप्त करें। (२) हे (इन्द्र) आचार्य ! तू हमें (गोमतः) वाणी सम्पन्न (हिरण्यवतः अश्विनः) आत्मवान् जितेन्द्रिय कर, हम (इडाभिः) उत्तम वेदवाणियों से आनन्द लाभ करें।

वृवदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (बृहदुक्थ्यम्) वेद वाणी के उत्तम वचन जानने हारे, (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्तम्) आगे बढ़े बाहु वाले, अन्यों दीनों को आगे हाथ बढ़ा कर बचाने वाले और (साधु कृण्वन्तम्) उत्तम काम करने वाले धर्मात्मा, पुण्यवान् पुरुष को (अवसे) रक्षा के निमित्त प्रार्थना करें।

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा।
जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (संस्थे चित्) संग्राम में भी (शतक्रतुः) नाना कर्म करने हारा, नाना प्रज्ञावान् (वृत्रहा) शत्रुहन्ता होकर (आत्) अनन्तर (ई कृणोति) नाना शत्रुओं का नाश करता है। वह (जरितृभ्यः) विद्वानों के लिये (पुरु-वसुः) बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी हो। (२) अध्यात्म में पुरः इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा इन्द्र है।

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वह (शकः) शक्तिशाली (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (दानवान्) नाना दान योग्य धनैश्वर्यवान् होकर (नः आ शकत्) हमें सब ओर से शक्तिमान् करे। और वह (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की रक्षाओं से (नः अन्तः-आ-भरः) हमें अपने राष्ट्र के भीतर गर्भ में माता के समान धारण पोषण एवं पालन करने वाला हो।

यो रायो३ वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो प्रभु (रायः वनिः) ऐश्वर्य का देने हारा (महान्) गुण और शक्ति में महान् (सु-पारः) उत्तम रीति से पालन और पोषण करने और संकटों से पार उतारने हारा और (सखा) मित्र के समान स्नेही है (तम् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु स्वामी की (अभि प्रगायत) खूब स्तुति वा गुणों का गान करो।

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम्।
भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥

भा०—(आ-यन्तारं) सब ओर से वश करने वाले, (महि स्थिरं) महान्, स्थिर, कूटस्थ, (पृतनासु) संग्रामों वा सेनाओं के बीच (श्रवः-जितम्) यश कीर्त्ति को विजय करने वाले और (ओजसा) पराक्रम से (भूरेः) बड़े भारी ऐश्वर्य वा जगत् के (ईशानम्) स्वामी की (अभि गायत) स्तुति करो।

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (शचीनाम्) शक्तियों और (सूनृतानां) उत्तम सत्ययुक्त वाणियों का (नियन्ता) रोकने वाला (नकिः) कोई भी नहीं है। (न दात् इति वक्ता नकिः) वह नहीं देता ऐसा भी कहने वाला कोई नहीं। वह सबको श्रमानुरूप और कर्मानुरूप फल बड़े अनुग्रह से देता है।

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम्।
न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥

भा०—(सुन्वताम्) ऐश्वर्य, अन्नादि उत्पन्न करने वाले, वा (सुन्वतां) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले, (प्राशूनां) उत्तम मार्ग

से जाने वाले, (ब्रह्मणां) विद्वान् ब्राह्मणों और ब्रह्मवेत्ताओं का (नूनं) निश्चय से कोई (ऋणं न अस्ति) ऋण शेष नहीं रहता। (सोमः) परम ऐश्वर्य वा यज्ञ में सोमरस, उत्तम अन्नादि का भोग भी (अप्रता) कोश न भरने वाले पुरुष को (न पपे) प्राप्त नहीं होता।

पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत।
ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पन्ये इत्) स्तुति योग्य परमेश्वर के निमित्त ही, उसको लक्ष्य करके ही (उप गायत) उपासना पूर्वक स्तुति गान करो। (पन्ये उक्थानि शंसत) उस स्तुत्य प्रभु के निमित्त ही उत्तम वेद-वचनों का उच्चारण करो। (पन्ये इत् ब्रह्म कृणोत) उस स्तोतव्य प्रभु के निमित्त ही वेद मन्त्रों का और यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करो।

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ! प्रभु (यज्वनः) दानी, सत्संगी, यज्ञोपासक का (वृधः) बढ़ाने हारा है वही (पन्यः) स्तुति योग्य है वही (वाजी) ऐश्वर्यवान्, (अवृतः) मोहादि से अनावृत, नित्य युक्त (शता सहस्रा) सैकड़ों हज़ारों बन्धनों को (आ दर्दिरत्) काट देता है।

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः।
इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सुतानां) जगत् में उत्पन्न जीवों का (पिब) पालन कर। तू (कृष्टीनाम्) समस्त मनुष्यों को (आ-हुवः) सब से आदरपूर्वक प्रार्थना करने योग्य और सब सुख देने वाला है तू (स्वधा अनु) अपनी शक्ति से जगत् का धारक होकर (वि सु चर)

अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप, (अनु चर) कर्मों के अनुसार उनको फल प्रदान कर। अथवा हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! तू (कृष्टीनां) अपने आप कृषिवत् परिश्रम से बोये बीजों की (स्वधाः अनु) स्वयं परिपुष्ट, स्वयं उत्पन्न के समान अपने किये कर्मों का (वि सु चर) उत्तम और विपरीत फल प्राप्त कर। (अनु आ हुवः) उनके अनुकूल ही सुख, दुःख प्राप्त कर (सुतानां) उत्पन्न फलों का ही (पिब) पालन कर।

पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा। उतायमिन्द्र यस्तव २०।४

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (स्व-धैनवानां पिबति) अपनी गौवों का दूध पीता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (स्व-धैनवानाम्) अपनी वाणियों द्वारा प्राप्त सत्-असत् फलों का उपभोग कर. और (यः) जो पदार्थ (तुग्र्ये) पालन करने योग्य पुत्रादि में (सचा) विद्यमान है, (उत अयम्) और यह (यः तव) जो तेरा है तू उसे (पिब) पालन या उपभोग कर।

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे। इमं रातं सुतं पिब ॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मन्यु-साविनम्) मन्यु, क्रोध वा अभिमान से आधिपत्य करने वाले को (अति इहि) अतिलंघन कर। और (उप-अरणे) अरमणीय, कष्टदायी स्थान में (सुसुवांसम्) स्वामित्व करने वाले से भी (अति इहि) अधिक बढ़ जा। तू (इमं) इस (रातम्) अपने हाथ सौंपे (सुतं) उत्पन्न प्रजागण को (पिब) पालन कर।

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति।
धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥

भा०—तू (परावतः) दूर के (तिस्रः) तीनों प्रकार के उत्तम मध्यम, निकृष्ट प्रजाओं को (अति इहि) अपने वश कर। और (पञ्चजनान् अति इहि) चार वर्ण और पांचवें निषाद इन पाँचों को भी अपने वश

कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (धेना) नाना वाणियों को (अव चाकशत्) देख। अथवा हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (परावतः) दूर से भी (तिस्रः) धेनाः (इहि) तीनों प्रकार के ऋग यजुः साम वाणियों को प्राप्त कर (अव चाकशत्) उनसे देख, न्याय और ज्ञान का दर्शन कर। पांचों जनों का अपने अधीन कर, उन इन्द्रियों पर आत्मावत् शासन कर।

सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः।
निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २३ ॥

भा०—(यथा सूर्यः रश्मिं सृजति) जिस प्रकार सूर्य तेज और राष्ट्र को व्यापने और रक्षा करने वाला शासन करता है इसी प्रकार तू भी (रश्मिं सृज) तेज और राष्ट्र को व्यापने और वश करने वाला शासन कर। (आपः न सध्र्यक् निम्नम्) जिस प्रकार जलधाराएं एकही साथ सब नीचे प्रदेश में आकर उसे घेर लेती हैं उसी प्रकार (मे गिरः) मेरी वाणियां भी (त्वा) तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (आयच्छन्तु) प्राप्त हों।

अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे।
भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञ करने हारे, यज्ञ के स्वामिन् ! तू (शिप्रिणे) मुकुट धारण करने वाले (वीराय) वीर पुरुष के लिये (सोमं आ सिञ्च) ओषधि रसवत् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का आसेचन कर, उसके ऐश्वर्य के पद की वृद्धि कर। (पीतये) पालन करने के लिये (सुतस्य) उत्पन्न राष्ट्रजन को पुत्रवत् (भर) पुष्ट कर।

य उद्नः फलिगं भिनन्न्य१क्सिन्धूँरवासृजत्।
यो गोषु पक्वं धारयत् ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र विद्युत् (फलिगं भिनत्) मेघ का छेदन

भेदन करता और (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की धाराओं को नीचे फेंकता है और (गोपु पक्वं धारयत्) भूमियों में परिपक्व अन्न को पुष्ट करता है, उसी प्रकार जो राजा (फलिगं भिनत्) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य से आक्रमण करने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करता, और राष्ट्र में (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की नाना नहरों को नीची भूमियों में प्रवाहित करता है और जो (गोपु) भूमियों में (पक्वम्) पके अन्न को लेता है वही भूमि का स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् कहाता है।

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् २६

भा०—(ऋचीपमः) तेज से सर्वत्र समान भाव से प्रदीप्त होने वाला सूर्य जिस प्रकार (और्णवाभम्) ऊन से बने कम्बल के समान आच्छादक, (अहीशुवम्) मेघ से बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघस्थ जल को (अहन्) आघात करता है और (हिमेन) शीत से (अर्बुदम्) जलप्रद मेघ को (अविध्यत्) वेध देता है, उसी प्रकार (ऋचीपमः) तेज और आदर, प्रतिष्ठा वा शासन वाणी से सर्वत्र समान निष्पक्षपात राजा (और्णवाभम्) ऊन देने वाले भेड़ के समान टक्कर लेने वाले, (अहीशुवम्) सूर्य के समान क्रोध से बढ़ने वाले (वृत्रम्) शत्रु को (अहन्) नाश करता है, और वह (अर्बुदम्) शस्त्र बल से नाश करने वाले शत्रु को (हिमेन) अपने हनन साधन शस्त्र-बल से (अविध्यत्) वेधता, पीड़ित, ताड़ित करता है, वही बलवान् 'इन्द्र' है।

प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत॥२७॥

भा०—हे प्रजाजनो ! हे विद्वानो ! आप लोग (वः) अपने में से (उग्राय) शत्रु के प्रति उग्रस्वभाव वाले; (निः-स्तुरे) शत्रु का सर्वथा नाश करने में समर्थ, (अषाढाय) और स्वयं कभी पराजित न होने और (प्र-सक्षिणे) पर पक्ष को अच्छी प्रकार पराजित करने वाले पुरुष को

और अधिक बलवान् करने के लिये (देवत्तं ब्रह्म) विद्वानों के द्वारा गुरु-परम्परा से प्रदत्त वा प्रभु से दिये वेद-ज्ञान का (गायत) उपदेश करो ।

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः ।
इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो (देवेषु) इन्द्रियों के बीच में (अन्धसः मदे) अन्न से तृप्ति लाभ करके जिस प्रकार आत्मा (विश्वानि व्रता अभि चेतति) सब कार्यों को जानता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजगीषु पुरुषों के बीच (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होने पर वा ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के शासन-कार्य में (विश्वानि व्रता अभि) सब कर्त्तव्यों को (चेतति) ठीक जानता है, वह (इन्द्रः) 'इन्द्र' है ।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।
वोह्ळामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥

भा०—(इह) यहां (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द, वा अन्नादि की तृप्ति लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान केशों के तुल्य दीप्तियों को धारण करने वाले तेजस्वी, (हरी) राजा प्रजा, वा स्त्री पुरुष (हितम् प्रयः) हितकारी अन्न, ज्ञान (अभि वोढाम्) प्राप्त करावें । और सुवर्णवत् सुन्दर केशों से युक्त दो अश्व सेनापति को हित-मार्ग में ले चलें ।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! (अर्वाञ्चं त्वा) साक्षात् प्राप्त तुझ को (प्रियमेध-स्तुता) यज्ञ सत्संगादि के प्रिय विद्वान् पुरुषों द्वारा उपदिष्ट, उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुष (सोम-पेयाय) राष्ट्र के ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (वक्षतः) सन्मार्ग से ले जावें वा उत्तम उपदेश करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[३३]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५ बृहती । ४, ७, ८, १०, १२ विराड् बृहती । ६, ६, ११, १४, १५ निचृद् बृहती । १३ आर्ची भुरिग् बृहती । १६, १८ गायत्री । १७ निचृद् गायत्री । १६ अनुष्टुप् ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (आपः न) जलधाराएं (वृक्त-बर्हिषः) कुशा काशादि की वृद्धि करने वाली होकर (प्र-स्रवणेषु) निर्झरों में नीचे की ओर बहा करती हैं उसी प्रकार हे (वृत्र-हन्) शत्रुनाशक स्वामिन् ! (वयं घ) हम भी (सुत-वन्तः) उत्पन्न उत्तम प्रजावान् और अन्न ऐश्वर्यादिमान् (वृक्त-बर्हिषः) यज्ञ में आसनादिवत् विस्तीर्ण एवं प्रजाओं की वृद्धि करके (त्वा परि) तुझे प्राप्त हों (पवित्रस्य) शुद्ध पवित्र जल एवं ज्ञान के (प्र-स्रवणेषु) प्रवाहों के तटों पर विराजें और (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्ता उपासक लोग भी (परि आसते) विराजते हैं ।

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥

भा०—हे (वसो) समस्त जगत् को बसाने, सबकी रक्षा करने हारे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उक्थिनः नरः) उत्तम वेद-वचन को धारण करने वाले जन, (सुते) इस उत्पन्न जगत् में, (निरेके) एकान्त में भी (त्वा स्वरन्ति) तुझे लक्ष्य कर पुकारते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, उत्तम गति से चलने हारा (सु-अब्दीव) गर्जते मेघवत् या महा वृषभवत् (तृषाणः) पिपासित के समान अति उत्कण्ठित होकर (सुतं कदा आगमः) इस उत्पन्न जीव संसार को कब प्राप्त हो ।

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धनसम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के ऊपर द्रष्टः ! हे (धृष्णो) दुष्टों के दलन करने हारे ! हम (पिशङ्ग-रूपं) उज्वल, पीतरूप वाले और (गोमन्तं) भूमि से युक्त (वाजं) ऐश्वर्य की तुझ से (मक्षु) शीघ्र ही (ईमहे) याचना करते हैं और तू (कण्वेभिः) विद्वानों और वीरों द्वारा (सहस्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रों सुखों, संख्याओं से युक्त ऐश्वर्य हमें दे । अथवा हे (वि-चर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! विद्वन् ! (पिशङ्ग-रूपं) तेजस्वी, (गोमन्तं) वेदवाणी के विद्वानों से (मक्षु) अति शीघ्र (वाजम् ईमहे) ज्ञान प्राप्त करें । और (कण्वेभिः) विद्वानों द्वारा (सहस्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रों ऋचाओं से युक्त ज्ञान प्रदान कर ।

पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः सम्मिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः॥४॥

भा०—हे (मेध्यातिथे) 'मेध' अर्थात् सत्संग और अन्नादि द्वारा सत्कार करने योग्य अतिथे ! विद्वन् ! तू (अन्धसः मदे) अन्न द्वारा तृप्ति और आनन्द लाभ करने पर (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के सम्बन्ध में (गाय) उपदेश कर और (पाहि) उसका ज्ञान-रस पान कर । (यः) जो (हर्योः संमिश्लः) स्त्री पुरुष दोनों में समान रूप से व्यापक है, (यः सुते सचा) जो उत्पन्न हुए पुत्रवत् जगत् में भी सदा सत्य विद्यमान है जो (वज्री) बलवान् (रथः) रसरूप, रमणीय (हिरण्ययः) सुवर्ण-वत् तेजोमय है ।

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥५॥७॥

भा०—पुरुषोत्तम कैसा है ? (यः) जो (सु-सव्यः सु-दक्षिणः)

बायें और दायें दोनों हाथों से उत्तम कुशल, कर्म करने में समर्थ वा (सु-सव्यः) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य वा जगत् को उत्पन्न करने, शासन करने और संचालन करने में समर्थ, और (सु-दक्षिणः) उत्तम धन दान, बल, बुद्धि से सम्पन्न, (इनः) सबका स्वामी, (यः) जो (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म व प्रज्ञावान् (गृणे) स्तुति किया जाता है। (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रों उत्तम कर्मों का करने वाला, वा खनि के समान सहस्रों गुणों, ऐश्वर्यों को धरने वाला है, (यः शत-मघः) जो सैकड़ों ऐश्वर्यों का स्वामी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (यः पूर्भित्) शत्रु-नगरों को तोड़ने वाला, वा ज्ञानपूर्वक योगिजनों के देह-बन्धन का विच्छेदक, मुक्तिदाता और जो (आरितः) स्तुति द्वारा प्राप्त होता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

यो धृ॑षि॒तो यो॑ऽवृ॑तो॒ यो अस्ति॒ श्मश्रु॑षु श्रि॒तः ।
विभू॑तद्युम्न॒श्च्यव॑नः पुरुष्टु॒तः क्रत्वा॒ गौरि॑व शाकि॒नः ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (धृषितः) पराजय करने वाला, सबका वश कर्त्ता, (यः अवृतः) जो न घिरा, असंग, (यः) जो (श्मश्रुषु श्रितः) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य, वा (श्मश्रुषु = श्मसु शरीरेषु श्रूयन्ते इति श्मश्रवो जीवाः) शरीरों में विद्यमान जीवों या श्मश्रु अर्थात् मूछों वाले, वीर पुरुषों में (श्रितः) आश्रय करने योग्य, उन द्वारा सेवित, (विभूत-द्युम्नः) अति ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, (च्यवनः) शत्रुओं को विचलित करने वाला, वा सर्वव्यापक, (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित, और (क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य से (शाकिनः) शक्ति प्राप्त करने वाले जीव के लिये (गौः इव) गौ, भूमि के समान अनेक सुख उत्पन्न करने वाला है।

क ईं॑ वेद सु॒ते सचा॒ पिब॑न्तं॒ कद्वयो॑ दधे ।
अ॒यं यः पुरो॑ विभि॒नत्त्योज॑सा मन्दा॒नः शि॒प्र्यन्ध॑सः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) पराक्रम से (पुरः) शत्रु के पुरों, दुर्गों, प्रकोटों को (वि-भिनत्ति) तोड़ डालता है (अयं) वह (अन्धसः)

अन्न वा जीवनधारक पदार्थ से (मन्दानः) आनन्द लाभ करता हुआ रहे। (सुते) ऐश्वर्य के बल पर (पिबन्तं) राष्ट्र का पालन करते हुए (ईं) इसको (कः वेद) कौन जानता है, और कौन जनाता है कि वह (कत् वयः दधे) कितना बल धारण करता है। इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर अपने बल से नाना ब्रह्माण्ड पुरों को संहार करता, (शिप्री) बलवान्, (अन्धसः मन्दानः) प्राणधारी जीवों को आनन्द देता रहता है। (वयः) वह उत्पन्न जगत् में व्यापक होकर सबका पालन करता है उसके अपार बल, आयु और ज्ञान को कौन जानता है ?

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ ८ ॥

भा०—(मृगः न वारणः) जिस प्रकार पशु हस्ती (पुरुत्रा दाना-दधे) बहुत से मदजल धारण करता है और (पुरुत्र चरथं दधे) बहुत से स्थानों पर विचरण करता है उसी प्रकार वह प्रभु, ऐश्वर्यवान् स्वामी (वारणः) सब दुःखों को वारण करने वाला, (मृगः) अति शुद्धस्वरूप वा योगी मुमुक्षुओं से खोजने योग्य (पुरुत्रा) पालनीय जीवों के निमित्त (दाना) दान देने योग्य नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है और (पुरुत्रा चरथं दधे) बहुत से भोग्य कर्मफल भी प्रदान करता है। हे प्रभो ! (सुते) इस जगत् में या ऐश्वर्य में (त्वा नकिः नियमत्) तुझे कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है। तू (ओजसा) अपने महान् सामर्थ्य से (गमः) सर्वत्र व्यापक है और (महां) सब से महान् होकर (चरसि) सब में व्याप रहा है।

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (उग्रः सन्) दुष्टों के प्रति उग्र होकर (अनिस्तृतः) अहिंसित, अमर, (स्थिरः) स्थिर, कूटस्थ (रणाय)

रण के लिये सुसज्जित वा 'रण' परम आनन्द देने के लिये (संस्कृतः) सदा उपासित है। (यदि) यदि (मघवा) वह ऐश्वर्यवान्, (स्तोतुः हवं श्रृणवत्) स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना सुनले तो वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीर (न योषति) कभी स्त्रीवत् भय नहीं करता, (आगमत्) आही जाता है, इसी प्रकार जल की प्रार्थना सुन कर प्रभु भी (न योषति) पृथक् न रहकर (आ गमत्) उसे प्राप्त ही होजाता है।

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः।

वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१०॥८॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (सत्यम्) सचमुच, (वृषा इत् असि) समस्त सुखों का वर्षाने वाला ही है। तू (नः) हमारे बीच (अवृतः) किसी से न घिरा, असंग, (वृषजूतिः) सुखवर्षक सूर्यादि को सञ्चालन करने में समर्थ सब का सारथिवत् नेता है। तू (परावति) दूर, परमार्थ में भी हे (उग्र) बलवन्! (वृषा हि शृण्विषे) बलवान् ही सुना जाता है, और (अर्वावति) समीप, इह लोक में भी (वृषः श्रुतः) जगत् का प्रबन्धक, बलवान्, सुखों का वर्षक ही प्रसिद्ध है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।

वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार वीर पुरुष की (अभीशवः कशा रथः हरी) रासें, चाबुक, रथ और घोड़े बलवान् हों तो वह युद्ध करने में समर्थ होता है उसी प्रकार हे (शतक्रतो) सैकड़ों बलों कर्मों और ज्ञानों वाले! स्वामिन्! तेरी (ते अभीशवः) सर्वत्र शासनकारिणी शक्तियां (वृषणः) बलवती और सुखों का वर्षण करने वाली हैं। (ते कशा) तेरी वाणी वेदमयी, (हिरण्ययी) हितकारिणी और सुन्दर सुखदायी है और (वृषा) सुख ज्ञान के देने वाली है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ते रथः वृषा)

तेरा रमणीय रूप और उपदेश भी सुखप्रद है। (ते हरी) तेरे उपासक स्त्री पुरुष (वृषणा) बलवान् हैं। (त्वं वृषा) तू स्वयं बलवान्, सर्व-सुखवर्षक है।

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम्॥ १२॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! हे (ऋजीपिन्) ऋजु, सरल सत्य, धर्ममार्ग में मनुष्यों को प्रेरित करने हारे! (सोता) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला (वृषा) बलवान् होकर (ते सुनोतु) तेरा अभिषेक करे। तू उसको (आ भर) सब ओर से पुष्ट कर। हे (हरीणां स्थातः) विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच स्थिर रहने हारे! (तुभ्यं) तेरी ही वृद्धि के लिये (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में (वृषा) बलवान् वीरसमूह (वृषणं) उत्तम प्रबन्धक, प्रमुख तुझ पुरुष को ही (दधन्वे) पुष्ट, धारण करे।

एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! वा आत्मन् तू (मधु) मधुर सुखप्रद (सोम्यं) उत्तम बलकारक ओषधि आदि रसवत् शिष्योचित विद्वानों के उपदेश को (पीतये) पान करने, ज्ञान श्रवण करने के लिये (आयाहि) आ। हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन्! (अयम्) यह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (मघवा) केवल धनवान् पुरुष भी (ब्रह्म उक्था च) वेदज्ञान और 'उक्थ' उत्तम वचन और (गिरः) वाणियों को (न अच्छ शृणवद्) साक्षात् श्रवण नहीं कर सकता। वह भी ज्ञान-श्रवणार्थ गुरु के समीप जाकर ही ज्ञान का श्रवण कर सकता है।

वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो॥ १४॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! हे दुष्टों के दण्डकर्त्तः!

हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने हारे ! हे बहुयज्ञ ! (रथ-युजः) रथ में नियुक्त, (हरयः) अश्वों के समान, राष्ट्र में नियुक्त विद्वान् जन (रथेष्ठाम् त्वा) रथ पर अधिष्ठाता वा स्वामी के समान विराजमान तुझ को (या) जो (अन्येषां सवनानि) अन्यों के यज्ञ वा ऐश्वर्य हैं उनको भी (तिरः चित् आवहन्तु) उत्तम रीति से प्राप्त करावें।

अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः॥१५॥९

भा०—हे (महामह) बड़ों के भी पूज्य ! तू (अद्य) आज (अस्माकं) हमारे (अन्तमं) अति समीपतम (स्तोमं) स्तुति-वचन को (धिष्व) धारण कर। हे (द्युक्ष) तेजस्विन् ! हे (सोम-पाः) ऐश्वर्यादि के पालक ! (अस्माकं सवना) हमारे पूजा, उपचारादि वा ऐश्वर्य (ते मदाय) तेरे आनन्द वृद्धि के लिये और (ते शन्तमा) तुझे अति शान्तिदायक (सन्तु) हों। इति नवमो वर्गः॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति।
यो अस्मान्वीर आनयत्॥ १६॥

भा०—(यः वीरः) जो वीर वा विशेष विद्वान् (अस्मान्) हम सब को (आ अनयत्) आगे ले जाता है (सः) वह हे मित्र ! (नहि तव, नो मम अन्यस्य) न तेरे और न मेरे या किसी और सामान्य पुरुष के (शास्त्रे रण्यति) शासन में प्रसन्न होता है। वह हम सब से ऊपर सर्वोपरि है।

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम्॥ १७॥

भा०—(इन्द्रः चित् घ) ज्ञानद्रष्टा विद्वान् भी (स्त्रियाः) 'स्त्री' अर्थात् संघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना के (तत् मनः) उस मन, या स्तम्भन बल को (अशास्यं अब्रवीत्) शासन न होने योग्य अति

प्रबल बतलाता है, (उतो) और उसके (रघुं) वेगयुक्त (क्रतुं) कर्म सामर्थ्य को भी (अशास्यं अह) अशास्य, अदम्य ही बतलाता है। पक्षान्तर में—उत्तम उपदेश और गुणों के ग्रहण करने वाली शिक्षिता स्त्री का चित्त विशेष शासन की अपेक्षा नहीं करता और उसका कर्मसामर्थ्य भी, 'रघु' अर्थात् कुशल होता है। स्त्यै ष्टै शब्दसंघातयोः। स्त्यायतेर्ड्रट्। उ० १०४। १६६। स्त्री॥

सप्ती चिद्धा मद्च्युता मिथुना वहतो रथम्।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा॥ १८॥

भा०—स्त्री और पुरुष (मिथुना) दोनों मिलकर (मदच्युता) आनन्द को प्राप्त करते हुए (सप्ता चित्) दो अश्वों के समान ही (रथम् वहतः) गृहस्थ रूप रथ वा गृहस्थ के सुख को वहन करते और रथ में जिस प्रकार (धूः वृष्णः उत्तरा) धुरा बलवान् अश्व से अधिक ऊंची होती है उसी प्रकार (धूः) गृहस्थ या प्रजा को धारण करने में समर्थ स्त्री, (वृष्णः) बलवान्, वीर्यसेचक पुरुष की अपेक्षा (उत्तरा एव इत्) उत्कृष्ट गुणों से युक्त, अधिक आदर योग्य ही होती है। माता का मान पिता से अधिक है।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥१९॥१०॥

भा०—स्त्री को उपदेश। हे स्त्रि! तू (अधः पश्यस्व) नीचे देख, विनयशील हो। (मा उपरि) ऊपर मत देख, उद्धत मत हो। (पादकौ) दोनों पैरों को (संहरतराम्) अच्छी प्रकार एकत्र कर रख, असभ्यता से पैर मत फैला। (ते) तेरे (कशप्लकौ मा दृशन्) टखनों को कोई भी न देखे। ऐसे विनयाचार से तू (स्त्री हि) स्त्री होकर भी अवश्य (ब्रह्मा बभूविथ) वेदवेत्ता वा पूज्य हो सकती है। इति दशमो वर्गः॥

[३४]

नीपातिथिः काण्वः । १६—१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, १०, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ६, ७, ९ अनुष्टुप् । ५, ११, १४ विराडनुष्टुप् । १६, १८ निचृद्गायत्री । १७ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (दिवा-वसो) दिन को आकाश में रहने वाले सूर्य के समान (दिवावसो) ज्ञान प्रकाश से अपने अधीन शिष्यों को बसाकर उनको ज्ञानमय वस्त्र से आच्छादित करने हारे विद्वन्! तू (अमुष्य) उस (शासतः) सबका शासन करने वाले (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु के (दिवं) ज्ञान प्रकाश को (यय) प्राप्त कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (हरिभिः) विद्वानों द्वारा या हरणशील प्राणों, इन्द्रियादि अंगों सहित (कण्वस्य सुस्तुतिम् उप आ याहि) विद्योपदेष्टा के उत्तम उपदेश वाणी को प्राप्त कर, उसको समीप जाकर शिष्यवत् ग्रहण कर ।

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवोअमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

भा०—हे विद्याभिलाषिन्! (इह) इस आश्रम में (सोमी) ज्ञानवान् शिष्यों का स्वामी (ग्रावा) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् (त्वा) तेरे प्रति (वदन्) व्यक्त वाणी से उपदेश करता हुआ (घोषेण) वेद द्वारा (दिवः) परम तेजोमय (शासतः) परम शासक और शास्ता (अमुष्य) उस प्रभु के (दिवं यच्छतु) प्रकाशमय तेज को प्रदान करे । हे (दिवावसो) विद्या की कामना से गुरु के अधीन वसने हारे विद्यार्थिन्! तू भी उसके (दिवं यय) ज्ञान को प्राप्त कर ।

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥

भा०—(वृकः उरां न) भेड़िया जिस प्रकार भेड़ को बल से (धूनुते) कंपा देता है। उसी प्रकार (एषां) इन विद्वानों का (वृकः) विशेष ज्योति को प्रकाशित करने वाला (नेमिः) अनुशासन (अत्र) इस लोक में (उराम्) अति विस्तृत वाणी को (विधूनुते) विशेष रूप से प्रदान करता है। (दिवः अमुष्य शासतः) अनुशासन करने वाले उस तेजस्वी ज्ञानी पुरुष के (दिवं) ज्ञानप्रकाश को हे विद्यार्थिन्! तू (यय) प्राप्त कर।

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! गुरो! (कण्वाः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (इह) इस आश्रम में (वाज-सातये) ज्ञान प्राप्त करने और (अवसे) रक्षा के लिये (त्वा आ हवन्ते) तुझे आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं। (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(वृष्णे पूर्व-पाय्यम्) बलवान् पुरुष को जिस प्रकार पूर्व ही पालन करने का उचित आदर-भेंट दिया जाता है उसी प्रकार हे विद्वन्! (ते वृष्णे) बरसते मेघवत् निष्पक्षपात होकर प्रचुर ज्ञान देने वाले तुझे मैं (सुतानां) अपने पुत्रों का (पूर्व-पाय्यं) पूर्ण पालन वा पूर्व आयु का पालन रक्षण का भार (दधामि) प्रदान करता हूं। (दिवावसो) सूर्यवत् तेजस्विन्! वा विद्यार्थिन्! तू (शासतः) उस शास्ता के ज्ञान को प्राप्त कर। वा हे विद्वन्! तू उस परम प्रभु का ज्ञान विद्यार्थी को प्राप्त करा। इत्येकादशो वर्गः ॥

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे वीर ! तू (स्मत्-पुरन्धिः) सर्वोत्तम बहुत से ज्ञानों को धारण करने और बहुतों का भरण पोषण करने में समर्थ उत्तम शासक, गृहणीवत् उत्तम प्रबन्धक और (विश्वतः-धीः) सब तरफ जाने वाली बुद्धि, वा सर्वगामी कर्मसामर्थ्य से सम्पन्न होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा और हमें ज्ञान प्रदान करने के लिये (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। हे (दिवावसो) ज्ञान, प्रकाश और उत्तम व्यवहार शुभ कामना से रहने वाले तू (शासतः अमुष्य) शासन और विद्योपदेश करने वाले उस (दिवः) परम ज्ञानी और प्रकाश के (दिवं) ज्ञानप्रकाश और उत्तम कामना को (यय) प्राप्त कर।

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (महे-मते) महामते ! पूजनीय ज्ञानवन् ! हे (सहस्रोते) बलवान् रक्षा सामर्थ्य वा सहस्रों रक्षणों से युक्त ! हे (शतामघ) सैकड़ों उत्तम धनों के स्वामिन् ! तू (नः आ याहि) हमें प्राप्त हो। और हे (दिवा-वसो) ज्ञान दीप्ति से सबको आच्छादित करने वाले ! विद्वन् ! वा ज्ञान कामना से विद्वान् के अधीन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने हारे ब्रह्मचारिन् ! तू (अमुष्य दिवं शासतः) उस ज्ञान के अनुशासन करने वाले (दिवः) ज्ञान-प्रकाशक गुरु के समीप (यय) प्राप्त हो।

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

भा०—(दिवावसो) ज्ञान की कामना करने हारे ब्रह्मचारिन् ! (देवत्रा ईडयः) विद्वानों के बीच स्तुति करने योग्य पूज्य, (मनुः) ज्ञानवान् (हितः) हितकारी (होता) ज्ञानादि के देने में समर्थ, कुशल

पुरुष (त्वा आवसत्) तुझे धारण करे और उत्तम उपदेश कहे। और तू भी (अमुष्य दिवं शासतः) आकाश और भूमि के शासक, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (यय) प्राप्त करा।

आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥

भा०—(श्येनं पक्षा इव) जिस प्रकार बाज नामक पक्षी को दोनों पांख बल पूर्वक वहन करते हैं और जिस प्रकार (श्येनं) श्येन व्यूह से गमन करने वाले वीर योद्धा को (पक्षा इव) आजू बाजू के दोनों सेना दल (आ वक्षतः) सब तरफ से धारण करते हैं उसी प्रकार (त्वा श्येनं) तुझ उत्तम आचार-चरित्र से सम्पन्न पुरुष को (मद-च्युता) उत्तम आनन्द देने वाले (हरी) स्त्री और पुरुष (पक्षा इव वक्षतः) ग्रहण, करने वा अपनाने वाले बन्धु जनों के तुल्य (आवक्षतः) आदर पूर्वक आगे बढ़ावें और (आवक्षतः) उत्तम वचनोपदेश किया करें। (दिवोः अमुष्य० पूर्ववत्)

आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे (अर्य) स्वामिन्! तू (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य को पालन करने के लिये (आयाहि) आ, और (स्वाहा) उत्तम वाणी, और उत्तम दान से तू (सोमस्य परि आयाहि) सोम, ऐश्वर्य, शासन, राष्ट्र, अन्न और जीवन गण के रक्षार्थ आ। (२) हे विद्वन् तू (सोमस्य) शिष्यगण के रक्षार्थ आ। (३) हे (अर्य) इन्द्रियों के स्वामिन्! तू (सोमस्य) वीर्य के रक्षार्थ उत्तम वाणी और क्रिया साधन से आगे बढ़। और (अमुष्य दिवं शासतः दिवः यय) उस ज्ञान के उपदेष्टा ज्ञानी गुरु के ज्ञानों को प्राप्त कर। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

भा०—हे (दिवावसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु ब्रह्मचर्य वास करने हारे ! तू (नः) हम विद्वानों के (उप-श्रुति) समीप आकर ज्ञान श्रवण करने के निमित्त (आ याहि) प्राप्त हो और (उक्थेषु) वेद-वचनों और उपदेशों के निमित्त (इह) इस आश्रम में (नः रणय) हमें उपदेश कर । हे (दिवा-वसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु उसके अधीन वास करने वाले ! शिष्य ! तू (अमुष्य दिवं शासतः दिवः) उस ज्ञान के अनुशासक तेजस्वी गुरु के ज्ञानों को (यय) प्राप्त कर ।

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (सम्भृताश्वः) अश्वोंवत् विषयों को उपभोग करने वाले इन्द्रिय गण को अच्छी प्रकार अपने वश करके (संभृतैः) उत्तम रूप से पुष्ट और (सरूपैः) समान रूप कान्ति से युक्त अंगों वा सहयोगियों सहित (नः सु गहि) हमें सुख से प्राप्त कर । (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत् ।

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पर्वतेभ्यः) पर्वतों या मेघों से जलों के समान और (समुद्रस्य) समुद्र के (वि-स्तपः) ताप रहित शीतल स्थान से मेघमाला या पवन के समान (आ याहि) हमें प्राप्त हो । (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्)

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

भा०—हे (शूर) वीर ! तू (सहस्रा) बलवान् वा सहस्रों (गव्यानि अश्व्या) गौओं और अश्वों की (नः आदर्दृहि) हमारे लिये वृद्धि

कर। वा हमारे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राणों के (सहस्रा) अनेक ज्ञानों बलों को बढ़ा (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! शूर! तू (नः) हमें (सहस्रशः अयुतानि शतानि च) सैकड़ों, हज़ारों और लाखों की संख्या में (आ भर) पुष्ट कर, वा हमें अनेक ऐश्वर्य दे। (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्) इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः ।
ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—हम लोग और (इन्द्रः च) हमारा ऐश्वर्यवान् राजा, नेता, (वसु-रोचिषः) धन, प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न होकर (ओजिष्ठं) अति पराक्रमशील, बलयुक्त, (अश्व्यं) अश्व बल से युक्त (पशुम्) पशु सम्पदा को (सहस्रं) सहस्र संख्या में (आ दद्वहे) प्राप्त करें।

यऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७॥

भा०—(ये) जो (ऋज्राः) ऋजु, धर्म मार्ग से जाने वाले, (वात रंहसः) वायु के वेग से गमन करने वाले (अरुषासः) अति कान्तियुक्त, वा रोषरहित, अति शान्त, (रघु-स्यदः) वेगवान् रथ से जाने वाले, वीर पुरुष (सूर्याः इव) सूर्यों के समान (भ्राजन्ते) चमकते हैं।

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु ।
तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥ १३ ॥

भा०—परम स्थान पर विराजमान, परम पालक प्रभु के (रातिषु) द ये ऐश्वर्यों के बीच में और (द्रवत्-चक्रेषु) अति शीघ्रता से चलने वाले, चक्रों से युक्त, (आशुषु) शीघ्रगामी अश्वों, सैन्यों के बीच में सुरक्षित रह-

कर (वनस्य मध्ये) जल के बीच कमलवत्, तेजों के बीच सूर्यवत् और ऐश्वर्यों के बीच मैं (आ तिष्ठम्) विराजूं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३५]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—५, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ७—६, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, १०—१२, १४, १५, १७ भुरिक् पंक्तिः । २०, २१, २४ पंक्तिः । १६, २२ निचृत् पंक्तिः । २३ पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (अग्निना) अग्नि (इन्द्रेण) विद्युत्, (वरुणेन) जल, (विष्णुना) व्यापक, एवं विविध पदार्थों के शोधक, सूर्य (आदित्यैः) सूर्य की किरणों और (रुद्रैः वसुभिः) रोगनाशक और जीव के बसाने योग्य साधनों से और (उषसा सूर्येण) उषा, प्रभात की दीप्ति और सूर्य के समान (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होकर (सोमं पिबतम्) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य का पालन, उत्पन्न जगत् और पुत्र राष्ट्रादि का पालन करो तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि का उपभोग करो। इसी प्रकार वे दोनों (सचा-भुवा) सदा साथ, संगत, एवं समवाय से परस्पर सहयोगी रहकर (अग्निना) अग्रणी नायक, तेजस्वी विद्वान् (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, (वरुणेन) श्रेष्ठ, (विष्णुना) व्यापक बलशाली और (आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः) सूर्य की किरणों, प्राणों और प्रजाजनों आदि से मिलकर ऐश्वर्यादि का उपभोग और पालन करो ।

विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(उषसा सूर्येण च) सूर्य की प्रातःकालिक उषा, और 'सूर्य' के समान (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् उत्तम सहयोगी जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों (वाजिना सचाभुवा) वल, ज्ञान, ऐश्वर्यादि के स्वामी और एक साथ संगत रहते हुए, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त वाणियों, कर्मों और ज्ञानों से और (भुवनेन) उत्पन्न संसार और (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी और (अद्रिभिः) मेघों से उत्पन्न (सोमं) ऐश्वर्य, अन्नादि का (पिवतम्) उपभोग करो।

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादुशैरिहाद्भिर्मुरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सुजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिवतमश्विना ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सचा-भुवा) सदा एक साथ (स-जोषसा) प्रेमपूर्वक रहते हुए (उषसा सूर्येण च) उषा, सूर्य के सदृश सुशोभित रहकर (त्रीभिः एकादशैः) तीन ग्यारह, अर्थात् ३३ (विश्वैः देवैः) समस्त विद्वानों (अद्भिः) जल-वत् शान्तिदायक आप्त जनों, (मरुद्भिः) वातों के समान बलवान् , (भृगुभिः) दुष्टों के नाशकारी, तेजस्वी पुरुषों द्वारा (सोमं पिवतम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सुजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यज्ञं) यज्ञ, आदर-सत्कार, परस्पर सत्संग और दान धर्म का (जुषेथाम्) प्रेम-पूर्वक सेवन करो। और (मे हवस्य) मेरे उत्तम स्तुतियुक्त आह्वान वा देने योग्य उपदेश का (बोधतम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो। आप दोनों (देवौ) दानशील और उत्तम कामनायुक्त होकर (इह) इस जगत् में (विश्वा सवना अव गच्छतम्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करो। आप दोनों

(उषसा सूर्येण च सजोषसा) उषा और सूर्य के समान प्रीति युक्त होकर (नः) हमारे लिये (इषं आ वोढम्) उत्तम अन्न प्राप्त कराओ।

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्। सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—(युवशा इव)-जिस प्रकार उत्तम युवा युवति दोनों (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (कन्यनां स्तोमं जुषतः) कन्याओं वा गृह में विद्यमान मित्रों के स्तुति वचनों के पात्र होते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों भी (उषसा सूर्येण च) कामना युक्त स्त्री से पुरुष और सूर्यवत् तेजस्वी प्रजोत्पादन समर्थ पुरुष से स्त्री (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (देवौ) उत्तम व्यवहार, एवं कामनावान् दानशील होकर (इह) इस संसार से (विश्वा सवना) सब सवन, यज्ञ, प्रजाएं तथा ऐश्वर्यों को (अव गच्छतम्) प्राप्त करें। (च) और (नः) हमें (इषं वोढम्) हमारी इच्छाएं प्राप्त करावें। अथवा—(नः) हमारे बीच ऐसे पूर्वोक्त स्त्री पुरुष ही (इषं आवोढम्) उत्तम कामना को रखकर परस्पर विवाह करें।

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्। सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) बलवान्, ऐश्वर्य भोगने और इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप लोग (गिरः जुषेथाम्) विद्वान् उप-देष्टा पुरुषों और वेद वाणियों का प्रेमपूर्वक सेवन करो। (देवौ) दान-शील और कामना युक्त वा व्यवहारज्ञ होकर (अध्वरं जुषेथाम्) यज्ञ और अहिंसाव्रत का प्रेमपूर्वक सेवन करो (इह विश्वा सवना अव गच्छ-तम्) यहां जगत में समस्त ऐश्वर्यों, अधिकारों, ज्ञानादि को प्राप्त करो। (स-जोषसा उषसा) प्रीतियुक्त कान्तिमती प्रभात वेला वा दाहक शक्ति और (स-जोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त सूर्यवत् परस्पर के साथ मिलकर

प्रीतियुक्त होकर (इषं वोढम्) अन्न, वृष्टि आदि के तुल्य अपनी उत्तम कामना को धारण करो। परस्पर विवाह करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (हारिद्रवा इव वना) दो हरिद्रव नामक जल के पक्षी जलों में (पतथः) सुखपूर्वक गति करते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों भी (वना उप पतथः) सेवने योग्य ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर आगे बढ़ो। उनको प्राप्त कर ऐश्वर्यवान् होवो। (महिषा इव सोमं) जिस प्रकार दो महिष, विशालकाय अरणा भैंसा वा भैंसी, (वना इत् उपपतथः) वनों में विचरते, नाना भोग्य सुखों को समीप रहकर प्राप्त करते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी (महिषा) बड़े दानशील होकर (उप पतथः) नाना भोग्य पदार्थों को प्राप्त करो, (सुतं सोमं अव गच्छथः) उत्पन्न सोम्य, पुत्र वा शिष्य को प्राप्त करो। (सजोषसा, उषसा, सजोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त, प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त स्त्री से पुरुष और प्रीतियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से स्त्री समान प्रीतियुक्त होकर दोनों (त्रिः वर्त्तिः) तीन प्रकार के मार्ग को गमन करें। तीन मार्ग अर्थात् तीन आश्रमों का पालन करें।

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हंसौ इव) दो राजहंसों के समान और (अध्वगौ इव) दो पथिकों के समान (पतथः) गमन करो। (शेष पूर्ववत्—)

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हव्य-दातये)

ग्राह्य पदार्थ वा उत्तम खाद्य पदार्थ के देने वा यज्ञ के लिये (श्येनौ इव) दो श्येनों के समान वेग से उत्तम विमान रथादि से जाते हुए वा उत्तम आचारवान् होकर (सुतं सोमं अव गच्छथः) यज्ञ में उत्पादित सोम ओषधि रस, तद्वत् आनन्द को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्।

पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे अश्वादि के स्वामी नायक वा सैन्य जनो! आप दोनों (पिबतं च तृष्णुतं च) पान करो, ऐश्वर्य का भोग करो और तृप्त भी होवो, (आ गच्छतं च) आओ और (प्रजां च आ धत्तम्) उत्तम सन्तान धारण करो, और (द्रविणं च आ धत्तम्) धन भी प्राप्त करो, और (नः ऊर्जं च धत्तम्) परस्पर प्रीतियुक्त होकर हमारे बीच बल और अन्न धारण करो। शेष पूर्ववत्।

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

भा०—(जयतं च) दोनों आप जय प्राप्त करो, (प्र स्तुतं च) उत्तम रीति से स्तुति करो और (प्र अवतं च) अच्छी प्रकार रक्षा भी करो (प्रजां च धत्तं, द्रविणं च धत्तम्) प्रजा और धन को धारण करो। (शेष पूर्ववत्)

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—(शत्रून् हतं च) और शत्रुओं को मारो। (मित्रिणः यततं च) स्नेहयुक्त जनों को यत्नपूर्वक प्राप्त करो, (शेष पूर्ववत्) इति पञ्चदशो वर्गः॥

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा सैन्य एवं नायक जनो ! आप दोनों (मित्रावरुण-वन्ता) स्नेहवान् एवं श्रेष्ठ पुरुषों, ब्राह्मण और क्षत्रिय राजाओं से युक्त, (धर्म-वन्ता) धर्मवान् और (मरुत्वन्ता) उत्तम प्राणों, नाना मनुष्यों और बलवान् पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान्, उपदेष्टा पुरुष के उपदेश को प्राप्त करो। (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा सूर्यवत् समान परस्पर प्रीतियुक्त हो (आदित्यैः यातम्) किरणोंवत् तेजस्वी पुरुषों के साथ वा बारहों महीने (यातम्) जीवन मार्ग पर गमन करो।

अ॒ङ्गिर॑स्वन्ता उ॒त विष्णु॑वन्ता म॒रुत्व॑न्ता जरि॒तुर्ग॑च्छथो॒ हव॑म् ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण चादि॒त्यैर्या॑तमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—आप दोनों (अंगिरस्वन्ता) उत्तम विद्वानों और देह में बलवान् प्राणों से युक्त (उत) और (विष्णुवन्ता) व्यापक सामर्थ्य से युक्त (मरुत्वन्ता) उत्तम पुरुषों वा प्राणों से युक्त होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् उपदेष्टा के यज्ञ, वा उपदेश को रणवत् प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्।

ऋ॒भु॒मन्ता॒ वृष॑णा॒ वाज॑वन्ता म॒रुत्व॑न्ता जरि॒तुर्ग॑च्छथो॒ हव॑म् ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण चादि॒त्यैर्या॑तमश्विना ॥ १५ ॥

भा०—आप दोनों (ऋभु-मन्ता) सत्य ज्ञान से चमकने वाले पुरुषों से युक्त, (वृषणा) बलवान्, सुखों के दाता, (वाजयन्ता) ऐश्वर्य ज्ञानवान् (मरुत्वन्ता) प्राणों और पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) उपदेष्टा, विद्वान् के आह्वान वा उपदेश को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार सैन्य एवं नायक भी शिल्पियों से युक्त, बलवान्, ऐश्वर्यवान् और मरने मारने वाले वीर भटों से युक्त होकर (जरितुः) राष्ट्र को जीर्ण करने वाले शत्रु के (हवम्) आह्वान, रण ललकार को प्राप्त करें (शेष पूर्ववत्)

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥

भा०—आप दोनों (ब्रह्म जिन्वतम्) ज्ञान, वेद और धन की वृद्धि करो, (धियः जिन्वतम्) बुद्धियों और सत्कर्मों की वृद्धि करो, (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों, विघ्न करने वालों को (हतम्) मारो। और (अमीवाः) रोगों को (सेधतम्) दूर करो। (सुन्वतः सोमम्) यज्ञ करने, सोम सवन करने वाले का सोम पान करें वा ऐश्वर्य उत्पादक प्रजा के (सोमं) ऐश्वर्य का उपभोग और रक्षण करें।

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—(क्षत्रं जिन्वतम्) आप दोनों धन और बल-वीर्य की वृद्धि करो। (नॄन् जिन्वतम्) नायक पुरुषों को बढ़ावो। शेष पूर्ववत्।

धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १८ ॥१६॥

भा०—(धेनूः जिन्वतम्) गौओं की वृद्धि करो, उनको अन्न, घास जलादि से खूब तृप्त, प्रसन्न कर रक्खो, और (विशः जिन्वतम्) प्रजाओं को बढ़ाओ, उनको तृप्त रक्खो। शेष पूर्ववत्। इति षोडशो वर्गः ॥

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथीवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अत्रेः इव) तीनों दुःखों, बन्धनों, आश्रमों से रहित संन्यासी पुरुष के समान ही (सुन्वतः) शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) रक्त श्याम अश्वों के स्वामी, राजा वा जितेन्द्रिय, विद्वान् की (पूर्व्य-स्तुतिं) श्रेष्ठ स्तुति या उपदेश को (मद-च्युता) तृप्त या हर्षित होकर (शृणुतं) श्रवण करो। (सूर्येण उषसा स-जोषसा) सूर्य और उषावत् परस्पर प्रीतियुक्त होकर

(तिरः-अह्नयम्) दिनावसान और दिन प्राप्ति के प्रातःसायं कृत्यों का भी पालन किया करो।

तिरः सतः इति प्राप्तस्य। निरु० ॥

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्नयम् ॥ २० ॥

भा०—आप दोनों शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) उत्तम अश्वों के स्वामी राजा वा जितेन्द्रिय विद्वान् की (सु-स्तुतीः) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों को (सर्गान् इव उप सृजतम्) आभूषणों के समान धारण करो वा जलों के समान पान करो वा उत्तम पदार्थों के समान उत्तम उपभोग करो। शेष पूर्ववत्।

रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्नयम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो! आप दोनों (मद-च्युता) हर्षप्रद होकर (सुन्वतः) सवन, ऐश्वर्य वा शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान् उत्तम अश्वों वाले पुरुषों और (अध्वरान्) यज्ञों और न विनष्ट होने वाले, प्रबल जनों को (रश्मीन् इव) रश्मियों के समान (उप यच्छतम्) नियन्त्रित करो। शेष पूर्ववत्।

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के ऊपर वश करने वाले रथी सारथीवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (रथं) रथ के तुल्य रमण या सुख के साधन अपने देह और आत्मा को (अर्वाक्) अपने समक्ष (नियच्छतं) नियम में रक्खो। और (सोम्यं मधु) ओषधिरस से मिश्रित अन्न, या मधु के समान आत्मा या परमेश्वर के मधुर सुख को (पिबतम्) पान

करो । (अहं अवस्युः वां हुवे) मैं रक्षार्थी आप दोनों को बुलाता हूं । आप दोनों (आयातम्) आवें (गतम्) जावें। आप दोनों (दाशुषे) दानशील पुरुष को नाना (रत्नानि) उत्तम रत्नादि, सुखप्रद पदार्थ (धत्तम्) प्रदान करें ।

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥२३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नरा) हे उत्तम नायक और नेय जनो ! (अध्वरे) यज्ञ में (नमो-वाके प्रस्थिते) नमःयुक्त वचन प्रारम्भ होने पर (विवक्षणस्य) विशेष रूप से वहन करने योग्य, विशेष वचन योग्य पद या ज्ञान के (पीतये) रक्षा और पान करने के लिये आप लोग (आयातम्) आवें और (गतम्) जावें । मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान-तृप्ति चाहता हुआ (वां हुवे) आप दोनों को बुलाता, प्रार्थना करता हूं, आप (दाशुषे रत्नानि धत्तम्) दानशील, आत्मसमर्पक पुरुष को उत्तम २ पदार्थ प्रदान करें ।

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे२४।१७

भा०—हे (देवा) उत्तम विद्वान् दानशील पुरुषो ! आप दोनों, (स्वाहा-कृतस्य) उत्तम रीति से आहुति किये वा उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसित (सुतस्य) कूट, पीस, छान कर तैयार किये (अन्धसः) अन्न और जीवनप्रद ओषधि पदार्थ से (तृम्पतम्) क्षुधा की तृप्ति करो । शेष पूर्ववत् । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[३६]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ शक्वरी । २, ४ निचृच्छक्वरी । ३ विराट् शक्वरी । ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्च सूक्तम् ॥

अविताऽसि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञानों और अनेक कर्म करने हारे ! राजन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले, यज्ञशील, (वृक्त-बर्हिषः) आसनार्थ कुशादि बिछाकर बैठे हुए विद्वान् जन का (अविता असि) रक्षा करने वाला है । तू (मदाय) आनन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) सोम, उत्पन्न जगत्, पुत्रवत् प्रजा शिष्यादि का पालन कर । हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! (इन्द्र) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों के नाशक ! तू (मरुत्वान्) बलवान् पुरुषों का स्वामी होकर (अप्सु-जित्) प्राप्त प्रजाओं में सर्वातिशायी होकर (उरु ज्रयः) बड़े भारी वेग और बल को तथा (विश्वाः पृतनाः) समस्त सेनाओं को (संसेहानः) अच्छी प्रकार पराजित करता हुआ तू उस (सोमं पिब) ऐश्वर्य का भोग कर (यं भागं) जिस सेवनयोग्य अंश को (ते) तेरे लिये (अधारयन्) निर्धारित कर दें ।

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्तोतारं प्र अव) तू स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् उपदेष्टा की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (त्वां प्र अव) तू तृप्त हो । (पिबा सोमं० इत्यादि पूर्ववत्) त्वां । त्वं । छान्दसो दीर्घः । अथवा सोरमादेशः । विभक्तिव्यत्ययः ।

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

भा०—(त्वां = त्वं) तू (देवान्) सुख ऐश्वर्यादि के चाहने वाले विजिगीषु, एवं विद्वान् जनों को (ऊर्जा ओजसा) अन्न और बल पराक्रम से (अवसि) रक्षा करने में समर्थ है, अतः तू (हे शतक्रतो मदाय सोमं पिब०) इत्यादि पूर्ववत् ।

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने और सैकड़ों ज्ञानों के जानने हारे ! सहस्रों यज्ञ करने हारे ! प्रभो ! तू (दिवः जनिता) सूर्य, प्रकाश, महान् आकाश का (जनिता) उत्पादक और (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का भी उत्पादक है । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनों के पालक, दुष्टों के नाशक ! तू (मरुत्वान्) समस्त जीवों का स्वामी और (अप्सु-जित्) प्राणों, प्रकृति के परमाणुओं और समस्त लोकों में व्यापक रहकर सबको वश करने वाला, सब से महान्, (उरुज्रयः) महान् वेग, बलस्वरूप होकर उसी (यं) जिस (ते) तेरे दिये (भागम्) सेवनीय अन्न को वे (अधारयन्) धारण करते हैं उसीसे तू उन (विश्वाः पृतनाः संसेहानः) समस्त जीव प्रजाओं को अच्छी प्रकार तृप्त करता हुआ (मदाय) परमानन्द लाभ कराने के लिये (सोमं पिब) समस्त जगत् का पालन करता है । सेहानः—सह मर्षणे, सह चक्यर्थे । चक तृप्तौ प्रतिघाते च । भ्वादिः ।

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र सत्पते शतक्रतो) ऐश्वर्यवन् ! सज्जनों के पालक सैकड़ों यज्ञों कर्मों के स्वामिन् ! तू (अश्वानां जनिता, गवां जनिता असि) अश्वों

और गौओं, सूर्यों और भूमियों का भोक्ता आत्मा और इन्द्रियों का भी उत्पन्न करने वाला है। शेष पूर्ववत्।

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामिन् सूर्यवत् तेजस्विन्! वा अखण्ड शक्तियों के स्वामिन्! तू (अत्रीणां) तीनों दुःखों से रहित, जनों के (स्तोमं) स्तुति वचन को (महः कृधि) पूजित, पूर्ण कर। हे राजन् शक्तिशालिन्! तू (अत्रीणां) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजाओं की प्रार्थना का आदर कर। शेष पूर्ववत्।

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः। प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥ १८

भा०—(कर्माणि कृण्वतः) कर्म करनेवाले (अत्रेः) 'अत्रि' अर्थात् त्रिविध दुःखों वा बन्धनों से रहित शुद्धात्मा जन की स्तुति को (यथा अशृणोः) जिस प्रकार श्रवण करता तथा उसी प्रकार (सुन्वतः) पूजा करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान्, दृढ़, जितेन्द्रिय पुरुष के भी (स्तोमम् अशृणोः) स्तुति वचन को श्रवण करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ब्रह्माणि वर्धयन्) अन्नों, ज्ञानों और धनों की वृद्धि करता हुआ (नृ-साह्ये) मनुष्यों और नायकों को वश करने में (त्वम् एकः इत्) तू अकेला ही (त्रसदस्युम्) दस्युओं को भय देने वाले सैन्य बल को वा दस्यु से भयभीत प्रजाजन को वा (त्रसद्-अस्युम्) भयभीत शत्रु को उखाड़ने वाले सैन्य को (प्र आविथ) उत्तम रीति से रक्षा कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३७]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडतिजगती। २—६ निचृज्जगती। ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (वृत्र-तूर्येषु ब्रह्म प्र अवति) मेघ के आघातों या जलों के वेगवत् प्रवाहों पर अन्नों की रक्षा करता है और (सुन्वतः) उत्पन्न जीवों की रक्षा करता है वह (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिबति) मध्याह्न में तीव्र ताप से जल का पान करता वा जगत् की रक्षा करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) शत्रुओं को नाश करने हारे! तू (वृत्र-तूर्येषु) शत्रुओं और विघ्नों को नाश करने के कार्यों के निमित्त (इदं ब्रह्म प्र आविथ) इस महान् ऐश्वर्य की खूब अच्छी प्रकार रक्षा कर। और (सुन्वतः प्र आविथ) सवन अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले वा तेरा अभिषेक करने वाले प्रजागण की भी उन अवसरों पर (विश्वाभिः ऊतिभिः अविथ) समस्त रक्षाकारिणी शक्तियों, सेनाओं द्वारा रक्षा किया कर। हे (अनेद्य) अनिन्दनीय! हे प्रशस्त स्तुति योग्य! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन्! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक! तू (मध्यन्दिनस्य) दिन के मध्य काल में विद्यमान सूर्य के तेज के समान (सवनस्य) बलयुक्त शासन के (सोमस्य) ऐश्वर्य राष्ट्र आदि का हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक! (पिब) उपभोग और पालन कर।

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥२॥

भा०—हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिशालिन्! मतिमन्! ऐश्वर्यशालिन्! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त शक्तियों से (द्रुहः पृतनाः) द्रोह करने वाले मनुष्यों को (अभि सेहानः) पराजित करके अथवा (द्रुहः अभि सेहानः) द्रोहियों को पराजित और (पृतनाः अभि सेहानः) सामान्य मनुष्य प्रजाओं को अन्नादि से तृप्त करता हुआ, हे (उग्र) बल-

वन्! हे (अनेद्य) अनिन्द्य! प्रशंसनीय! हे वज्रिवः शक्तिशालिन्! हे (वृत्रहन्) दुष्ट, विघ्नकर्त्ताओं के नाशक! तू (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिब) मध्य दिन के सूर्यवत् शासन और ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

एकुराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥३॥

भा०—हे (शचीपते) सर्वशक्तिमन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवन, जगत् ब्रह्माण्ड के बीच (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों द्वारा (एकराट्) अद्वितीय प्रकाशमान होकर, एक छत्र सम्राट् के समान (राजसि) विराजता है, विश्व के राजा के समान शासन करता है। (माध्यन्दिनस्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

सुस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥४॥

भा०—हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक! जिस प्रकार (सस्थावाना) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो बलवान् राष्ट्रों को जिस प्रकार मध्यम राजा जुदा २ कर थामे रहता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! तू भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब शक्तियों से सम्पन्न होकर (सस्थावाना) समान बल से स्थिर सूर्य पृथिवी आदि लोकों को परस्पर के तुलित बल से (एकः त्वम्) अकेला ही (यवयसि) पृथक् २ थामे रहता है। शेष पूर्ववत्।

क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥५॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तिशालिन्! (त्वम्) तू (क्षेमस्य च ईशिषे) क्षेम अर्थात् प्रजाओं के रक्षा करने में समर्थ है और (प्रयुजः

च ईशिषे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने और उनको प्राप्त हुए नाना ऐश्वर्यों का भी स्वामी है। शेष पूर्ववत्।

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥६॥

भा०—हे (शचीपते) तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी समस्त रक्षक शक्तियों से धनैश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये ही (अवसि) रक्षा करता है।

श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन्॥७॥१९

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यथा कर्माणि कृण्वतः तथा) नाना कर्म करने वाले (अत्रेः) विविध बन्धनों से रहित या, इस संसार या राष्ट्र में विद्यमान मनुष्यों के समान ही (रेभतः श्यावाश्वस्य शृणु) स्तुति और उपदेश करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के वचनों को भी श्रवण किया कर। अर्थात् राजा उद्योगी पुरुषों के समान विद्वान् जितेन्द्रियों की भी सुनकर उन पर ध्यान देवे। और (नृ-सह्ये) नायक पुरुषों द्वारा विजय करने योग्य संग्राम में (क्षत्राणि वर्धयन्) धनों और बलों की वृद्धि करता हुआ (त्वम् एकः इत्) तू एक, अद्वितीय ही सर्वोपरि, (त्रसदस्युम् प्र आविथः) दुष्टों को उखाड़ देने वाले बल की खूब रक्षा कर। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३८]

श्यावाश्व ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ९ गायत्री। ३, ५, ७, १० निचृद्गायत्री। ८ विराड् गायत्री॥ दशर्चं सूक्तम्॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥१॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्ने ! ज्ञानवन् ! तुम दोनों विद्युत् और अग्नि के समान (यज्ञस्य ऋत्विजा) यज्ञ को ऋतु २ में अनुष्ठान करने वाले (वाजेषु) बलों, धनों और ज्ञानों में (सस्नी) निष्णात, शुद्ध और अन्यों को भी पवित्र और निष्णात करने वाले और (कर्मसु) कर्मों में भी (सस्नी) शुद्ध, पवित्र आचारवान् (हि स्थः) होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ का ज्ञान करो, और अन्यों को उसका ज्ञान करावो।

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि, वा सूर्य और अग्निवत् शत्रुनाशक राजन् ! और ज्ञानवन् विद्वन् ! आप दोनों (तोशासा) शत्रुओं और अज्ञानों, दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (रथ-यावाना) रथ, स्वयं वेगवान् रमण योग्य, वा उत्तम यान से जाने वाले, (वृत्र-हणा) बढ़ते शत्रु को दण्ड देने वाले, (अपराजिता) कभी न हारने वाले होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस प्रजाजन को भली प्रकार जानो।

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ३

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! वा शत्रुहन् ! नेतः ! (वां) आप दोनों के लिये (नरः) उत्तम नायक जन (इदं मदिरं) इस तृप्तिकारक हर्षदायक (मधु) मधुर रस, जल, अन्न, ज्ञानों और बल को (अद्रिभिः) मेघ, पर्वत और शस्त्रास्त्र बलों वा पाषाणादि से (अधुक्षन्) दोहें, प्राप्त करें। (तस्य बोधतम्) आप दोनों उस ज्ञान को भी भली प्रकार जानें। (अद्रिभिः मधु) मेघों से जल और अन्न, पर्वतों से, पाषाणों से निर्झर और ओषधिरस शस्त्रों से ऐश्वर्य और बल, तथा (अद्रिभिः) अखण्ड गुरुजनों से ज्ञान का दोहन किया जाता है।

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती। इन्द्राग्नी आ गतं नरा ४

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि के तुल्य (नरा) उत्तम नायक, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सत्संग, दान का (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक सेवन करो, आप दोनों (सध-स्तुती) एक साथ स्तुति प्राप्त कर (सुतं सोमं) उत्पन्न पुत्र को, ऐश्वर्य को और ओषध्यादि रस को भी (जुषेथां) प्रेमपूर्वक प्राप्त करो । (आ गतम्) आप दोनों आदरपूर्वक आवो ।

इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी वा वायु, अग्निवत् परस्पर के सहायक ! एक दूसरे से चमकने, बढ़ने वाले (नरा) नायको, वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आओ ! (इमा सवना) ये नाना धन, ऐश्वर्य (जुषेथां) प्रेम से प्राप्त करो, (येभिः हव्यानि) जिनों से नाना उत्तम खाद्य पदार्थ भी (ऊहथुः) प्राप्त कर सकते हैं । (२) इसी प्रकार विद्युत् और अग्नि दोनों को नाना प्रकार के (सवना) प्रेरक यन्त्रों में लगाकर उनसे 'हव्य' ग्राह्य पदार्थ प्राप्त कर सकते और लेने देने योग्य व्यापार योग्य पदार्थों को ढो लेजा सकते हैं ।

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ६।२०

भा०—हे (इन्द्राग्नी नरा) अग्निवत् नायक जनो ! आप दोनों (आ गतं) आओ । (इमां) इस (गायत्र-वर्तनिं) गायत्री छन्द में विद्यमान (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति वा उपदेश को (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो । अथवा—गायत्र वर्तनिं, गायत्री वा इयं पृथिवी श० । ४ । ३ । ४ । ९॥ गायत्रोऽयं भूलोकः । तां० ७ । ३ । प्राणः ।९। कौ०८।५॥ अग्निः । श० १ । ८ । २ । १३ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥७॥

भा०—हे (जेन्यावसू) विजय करने योग्य धनों को प्राप्त करने हारे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! आप दोनों (प्रातः-यावभिः)

प्रातःकाल वा जीवन के पूर्व भाग में ही प्राप्त होने वाले (देवेभिः) विद्वान् जनों से (सोम-पीतये) उत्तम ज्ञान ग्रहण करने और बलवीर्य की रक्षा करने के लिये आप (आ गतम्) आओ।

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ८

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (सोम पीतये) उत्तम ज्ञान के दान करने और उत्तम वीर्य की रक्षा के लिये (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) शासन करने वाले, जितेन्द्रिय विद्वान् और (अत्रीणां) त्रिविध दुःखों से रहित, तीन आश्रमों से रहित संन्यासियों के (हवम्) उत्तम उपदेश को (शृणुतम्) श्रवण करो।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः। इन्द्राग्नी सोमपीतये ९

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मेधिरा) विद्वान् मतिमान्, मेधावी पुरुष (वाम्) आप दोनों को अपने पास (सोम-पीतये) ज्ञान ग्रहण और वीर्य पालन के लिये (आहुवन्त) बुलाते रहें। हे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! (एवा) उसी प्रकार मैं भी (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और पुत्र प्रजादि के उपभोग और पालन के लिये बुलाता हूं।

आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे ।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(अहं) मैं (सरस्वतीवतोः) उत्तम वेदवाणी वाले (इन्द्राग्न्योः) ऐश्वर्य और तेज को धारण करने वाले ज्ञानी स्त्री पुरुषों के (अवः) ज्ञान और रक्षा की (वृणे) याचना करता हूं, (याभ्याम्) जिनके आदरार्थ (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र वा गायत्र साम द्वारा (ऋच्यते) स्तुति की जाती है। उसी प्रकार प्रशस्त ज्ञानमयी विद्या और उत्तम स्त्री 'सरस्वती' कहाती है। उनके स्वामी ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों के ज्ञान और रक्षा को चाहूं। (याभ्यां) वे गायत्री का उपदेश करें। इत्येकविंशो वर्गः॥

[३९]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ २ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६—८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । ९ निचृज्जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै । अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविरन्तश्चरति दूत्यं नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

भा०—मैं (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी प्रभु, विद्वान्, नेता की (अस्तोषि) स्तुति करता हूं, (यजध्यै) सत्संग करने और पूजा करने के लिये भी उसी (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानी की (ईडा) वाणी द्वारा स्तुति करूं। वह (अग्निः) अग्निवत् प्रकाशक (नः) हमारे (देवान्) किरणोंवत् दिव्य गुणों, काम्य पदार्थों वा विज्ञान के इच्छुक शिष्य जनों को (अनक्तु) प्रकट करे और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करे। वह (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (विदथे) यज्ञ में अग्नि के तुल्य (विदथे) ज्ञान लाभ के कर्म में (उभे हि अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के समान तेजस्वी होकर (उभे अन्तः चरति) राजा प्रजा मित्र वा शत्रु दोनों वर्गों के बीच विचरता है। (समे अन्यके) अन्य समस्त शत्रुगण आप से आप (नभन्ताम्) नाश को प्राप्त हों।

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषाम् । न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! (एषां तनूषु) इनके शरीरों या आत्माओं में (नव्यसा वचः) अति नवीन, स्तुति वचन से (शंसं) उत्तम उपदेश (निधेहि) स्थापित कर, वे विद्वान् बनें। अथवा— (नव्यसा वचः तनूषु एषां शं नियुच्छ) अपने स्तुति वचन से हमारे शरीरों पर आने वाले इनके किये प्रहारों को दूर कर और (रराव्णां) दानशीलों

के बीच जो (अरातीः) अदानशील हैं उन (विश्वाः) सबको (अर्यः) स्वामी होकर तू निकाल, दण्डित कर। और (आसुरः) मूढ़ या सर्वत्र मारामारी करने वाले हिंसक (अरातीः) शत्रु लोग भी (इतः नि युच्छन्तु) इस राष्ट्र से दूर हो जावें। और (समे अन्यके) समस्त अन्य शत्रु दुष्ट जन (नभन्ताम्) नष्ट हों।

अग्ने मन्मा॑नि॒ तुभ्यं॒ कं घृ॒तं न जु॑ह्व आ॒सनि॑। स दे॒वेषु॒ प्र चि॑किद्धि॒ त्वं ह्यसि॑ पू॒र्व्यः शि॒वो दू॒तो वि॒वस्व॑तो नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (घृतं न आसनि जुह्वति) जिस प्रकार अग्नि के मुख अर्थात् ज्वाला में यज्ञकर्त्ता लोग घृत की आहुति देते हैं उसी प्रकार हे शिष्य वा विद्वन् ! मैं शिष्य (तुभ्यं आसनि) तेरे हितार्थ तेरे मुख में (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानयुक्त वचनों को (जुह्वे) प्रदान करता हूं तू उनको मुख में धारण कर, (सः) वह तू (प्र चिकिद्धि) अच्छी प्रकार जान, (हि त्वं) क्योंकि तू (पूर्व्यः) पूर्ण ज्ञानी, उत्तम पद योग्य वा पूर्व ब्रह्मचर्यावस्था में विद्यमान (शिवः) कल्याणकारी, सौम्य, (विवस्वतः) विविध विद्यार्थी रूप वसुओं के स्वामी गुरु आचार्य का (दूतः) ज्ञानमय संदेश को दूर तक पहुंचाने में दूत के समान ही (असि) है। इस प्रकार ज्ञान धारण करते हुए के (समे अन्यके) समस्त अन्य तुच्छ विरोधी विघ्नकारक जन (नभन्ताम्) नष्ट हों। गुरु जिस प्रकार अपना वचन शिष्य में धारण कराता या आहुतिकर्त्ता घृत को अग्नि के मुख में देता है उसी प्रकार राजादि भी विद्वान् पुरुष के मुख में अपना सुविचारित वचन स्थापित कर अन्य प्रजा वा राजान्तर के प्रति संदेशार्थ भेजें।

तत्त॑द॒ग्निर्वयो॑ दधे॒ यथा॑यथा कृप॒ण्यति॑। ऊ॒र्जाहु॑ति॒र्वसू॑नां॒ शं च॒ योश्च॒ मयो॑ दधे॒ विश्व॑स्यै दे॒वहू॑त्यै॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ४॥

भा०—(यथा यथा कृपण्यति) जिस २ प्रकार कावल वा अन्न याचक-

चाहता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) गृहपति, तेजस्वी स्वामी जन वैसा २ ही बल वा अन्न उसे प्रदान करता है, उसी प्रकार शिष्य भी (यथा यथा कृपण्यति) जिस २ विज्ञान की याचना करता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) अग्नि उसी २ प्रकार का विज्ञान उसे धारण करावे इसी प्रकार प्रजाजन राजा वा नायक से जैसा (वयः) वल अन्नादि चाहे उसी २ प्रकार का वह धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः) गुरु के अधीन बसने वाले शिष्यों को बल, ज्ञान, अन्नादि का दान (विश्वस्यै देवहूत्यै) समस्त प्रकार को शुभ गुणों को प्राप्त कराने के लिये (शं च योः च) शान्ति देता, दुःख दूर करता और (मयः दधे) सुख प्रदान करता है। इसी प्रकार प्रजा जिस २ बल की याचना करे तेजस्वी राजा उसी २ को स्वयं और प्रजा में भी धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः विश्वस्यै देवहूत्यै) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों की यह बल की प्राप्ति समस्त विजयेच्छुक सैनिकों और विद्वानों को वेतन भोजनादि देने के लिये होती है और उसे राजा शान्ति, दुःखनाश और सुख स्थापित करता और (अन्यके समे) और सब शत्रु गण (नभन्तां) नष्ट होते हैं।

स चि॑केत॒ सही॑यसा॒ग्निश्चि॒त्रेण॒ कर्म॑णा। स होता॒ शश्व॑तीनां॒ दक्षि॑णाभिर॒भीवृ॑त इ॒नोति॑ च प्रती॒व्यं१॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥५॥२२

भा०—(सः) वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् (सहीयसा) अत्यधिकसहन करने और प्रतिपक्ष रूप बाधक विघ्न को पराजित करने वाले (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत, ज्ञानप्रद कर्म से बलवान् होकर (चिकेत) ज्ञान प्राप्त करता वा जाना जाता है। (सः) वह (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं से यज्ञाग्नि के समान दान, भिक्षान्नों से (अभि-वृतः) पुष्ट होकर (शश्वतीनां होता) नित्य विद्याओं का ग्रहण करने वाला होकर (प्रतीव्यम् इनोति च) ज्ञेय तत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार नायक भी (सहीयसा) शत्रुपराजयकारी (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत कर्म से

(चिकेत) प्रसिद्ध हो। वह (दक्षिणाभिः) अपनी बलवती शक्तियों, सेनाओं से (अभि-वृतः) घिरा हुआ (शश्वतीनां होता) बहुत सी मौल प्रजाओं और सेनाओं को स्वीकार करने और उनको वेतन भोजनादि देने वाला होकर (प्रतीर्ग्यं इनोति) आक्रमण करने योग्य शत्रु तक पहुंचता है और इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त छोटे मोटे शत्रुगण नाश को प्राप्त होते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम्। अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ६

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि, या विद्युत्, वा जाठराग्नि, (नवीयसा) नये से नये अन्नादि द्वारा (सु-आहुतः) अच्छी प्रकार आहुति किया जाकर, उत्तम मन्त्र द्वारा गृहीत, या अन्नादि से तृप्त होकर (देवानां जाता वेद) देव अर्थात् प्रकाशक किरणों के स्वरूपों को प्राप्त करता वा जाठराग्नि अन्नाहुति प्राप्त कर देव अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य पदार्थों को ज्ञान प्राप्त कराता है और (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्यों को छुपे, गुप्त, अन्धकार से आवृत पदार्थ भी ज्ञात करादेता है, और जाठराग्नि, मनुष्यों के गुह्य बल और सुन्दर रूप को प्रकट कर देता है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक (देवानां) विजिगीषु जनों के (जाता वेद) सब जन्मादि को जाने, (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्य प्रजाओं के गुह्य रहस्यों को भी जाने। (सः अग्निः द्रविणोदाः) वह अग्रणी नायक ऐश्वर्य का देने वाला हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष द्वारा (व्यूर्णुते) प्रजाओं और सेनाओं के व्यवहार और रण के मार्गों को खोलता और प्रकाशित करता है। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त होते हैं।

अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा। स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः देवेषु सं-वसुः) अग्नि समस्त सूर्यादि

तेजस्वी पदार्थों में उनको अच्छी प्रकार आच्छादित करता है वही अग्नि-तत्व (यज्ञियासु) यज्ञ योग्य प्रजाओं के बीच यज्ञाग्नि और जाठराग्नि रूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् और अग्रणी नायक भी (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सं-वसुः) अच्छी प्रकार रहने वाला और उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी हो। (सः) वह (यज्ञियासु विक्षु) यज्ञ, परस्पर सत्संग करने वाली, यज्ञशील, प्रजाओं में (सं-वसुः) सम्यक् प्रकार से रहता, उनकी रक्षा करता हुआ, (आ) विद्यमान रहे। (सः) वह (मुदा) अति प्रसन्नतापूर्वक (पुरु काव्या) बहुत से विद्वानों के योग्य कार्यों को (पुष्यति) पुष्ट करता, उनको वृद्धि देता, और (भूम इव) भूमि के समान वा प्रभु के समान (विश्वं पुष्यति) सबका अन्नादि से पोषण करता है। वह (देवः) स्वयं तेजस्वी, दानशील, होकर (देवेषु यज्ञियः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी पुरुषों में भी आदर सत्कार और सत्संगति के योग्य होता है। इस प्रकार भी उसके (समे अन्यके) समस्त शत्रु (नभन्ताम्) नाश को प्राप्त होते हैं वह अजात-शत्रु होजाता है।

यो अ॒ग्निः स॒प्तमा॑नुषः श्रि॒तो विश्वे॑षु॒ सिन्धु॑षु। तमाग॑न्म त्रि॒प॒स्त्यं म॑न्धा॒तुर्द॑स्यु॒हन्त॑मम॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यं नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥८

भा०—जिस प्रकार (अग्निः सप्त-मानुषः) अग्नि तत्व जीवन रूप से मनुष्य के सातों प्राणों में विद्यमान और (विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) समस्त रक्त-नाड़ियों या प्राणों में भी विद्यमान रहता है, वह (त्रि-पस्त्यं) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनों स्थानों में विद्यमान रहता है वही शरीर के नाशकारी रोगादि कारणों का नाशक होता है उसी प्रकार (यः अग्निः) जो अग्नि, तेजस्वी अग्रणी, नायक राजा, (सप्त-मानुषः) सात मननशील विद्वानों के बीच स्वयं आठवां होकर (विश्वेषु सिन्धुषु) समस्त प्रजाओं के बीच (श्रितः) आश्रय करने योग्य है। और (मन्धातुः)

मुझको धारण या रक्षा करेगा इस प्रकार स्वीकृत प्रजागण के (दस्युहन्तमम्) नाशकारी दुष्ट पुरुषों के सर्वोपरि नाशक (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञों, सत्संगों और दानों में सर्वश्रेष्ठ, पूर्ण (त्रि-पस्त्यं) त्रिभूमिक, तिमंजिले गृह में रहने वाले वा उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं को गृहवत् बसाने वाले (तम् अग्निम्) इस अग्रणी, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को हम (आ गन्म) प्राप्त हों।

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः। स त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे॥९

भा०—जिस प्रकार (अग्निः त्रिधातूनि आ क्षेति) अग्नि तत्व तीनों तैजस रूप से धातुओं की तीनों प्रकारों में रहता है, और वह (त्रीन् एकादशान् यक्षत् पिप्रयच्च) ३३ (तेंतीस) पदार्थों को बल देता और तृप्त करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी पुरुष वात पित कफ़ के बनी तीनों कोटियों में (आ क्षेति) अपने आप विराजता है, वह (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (विदथा) ज्ञान करता और प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। (सः) वह (इह) इस राष्ट्र में (त्रीन् एकादशान् यक्षत्) तीनों ग्यारह (तेंतीस) अधिकारियों को सुसंगत करता और (पिप्रयत् च) पूर्ण तृप्त करता, वह (दूतः) शत्रुओं का सन्तापक (परिष्कृतः) सुसज्जित, (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नः यक्षत् पिप्रयत् च) हमें भी दे और पालन करे। इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त होवें।

त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि। त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे॥१०।२३

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवेषु पूर्व्यः) सब मनुष्यों में भी जाठर रूप से विद्यमान है, उसको (परिस्रुतः स्वसेतवः आपः परि यन्ति) सब ओर से बहने वाली, स्वयं बद्ध जल धाराएं विद्युत् रूप अग्नि को प्राप्त होती

हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! राजन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे (आयुषु) सामान्य मनुष्यों और (देवेषु) विद्वानों, विजिगीषु, अर्थ की कामना युक्त जनों में (पूर्व्यः) सर्वश्रेष्ठ है। तू (एकः) एक अद्वितीय होकर (वस्वः इरज्यसि) समस्त बसे प्रजाजन और ऐश्वर्य का स्वामी है। (स्व-सेतवः परिस्रुतः आपः) अपने ही बन्धों से बंधी सब ओर बहती जल-धाराओं के समान (आपः) आप्त प्रजाएं भी (परि-स्रुतः) सब ओर से प्राप्त होकर (स्व-सेतवः) स्वयं अपने आपको नियम मर्यादा में बांधे रखने वाली वा 'स्व' धन वेतनादि में वा स्वजनों के सम्बन्धों से बद्ध होकर (त्वाम् परि यन्ति) तुझे प्राप्त होती हैं, तेरी शरण आती हैं। (अन्यके समे नभन्ताम्) तेरे समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त हों। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[४०]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। २ स्वराट् शक्वरी। ५, ७, ९ जगती। ६ भुरिग्जगती। ८, १० निचृज्जगती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑ग्नी यु॒वं सु नः॒ सह॑न्ता॒ दास॑थो र॒यिम्।
येन॑ दृ॒ह्ळा स॒मत्स्वा वी॒ळु चि॑त्साहिषी॒मह्य॒ग्निर्वने॑व॒ वात॒ इ-
न्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् वा वायुवत् बलशालिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! सेनापते ! (युवं) आप दोनों (सहन्ता) शत्रुओं को पराजय करते हुए (नः रयिम् दासथः) हमें वह ऐश्वर्य और बल प्रदान करो जिस प्रकार (अग्निः वाते वना इव) वायु के बहते समय अग्नि वनों को भस्म कर देता है उसी प्रकार (येन) जिस ऐश्वर्य के बल से हम लोग (समत्सु) संग्रामों में (वीडुचित्) बड़े २ बलशाली और (दृढ़ा) दृढ़, शत्रु सैन्यों को (साहिषीमहि) पराजित करते हैं

और जिससे (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब हमारे शत्रु नाश को प्राप्त हों। वायु और अग्निवत् ही इन्द्र और अग्नि परस्पर सहायक हों। अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा और अग्नि आप दोनों मिलकर 'रयिं' मूर्त्तिमान् इस देह को (दासथः) दास या भृत्यवत् संचालित करते हैं और समस्त विघ्न विनष्ट होते हैं।

नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम्।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे॥ २॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवत् शत्रुहन्तः! हे अग्ने विद्वन्! हम (वां नहि वव्रयामहे) आप दोनों से कुछ याचना नहीं करते। (अथ) प्रत्युत (नृणां) मनुष्यों के बीच (नरम्) नायक (शविष्ठं) सब से अधिक बलशाली, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता ऐश्वर्यप्रद की (यजामहे) प्रतिष्ठा और सत्संगति करते हैं। (सः नः कदाचित्) वह कभी हमें (अर्वता आगमत्) अश्व, या शत्रुहन्ता सैन्यसहित, (वाज-सातये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्राप्त हो और कभी (मेधसातये आगमत्) अन्न, यज्ञ और संग्रामादि के लिये प्राप्त हो। इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त हों।

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे॥ ३॥

भा०—(ता हि इन्द्राग्नी) वे दोनों इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्निवत् बलवान् और तेजस्वी विद्वान् जन (भराणां मध्यं) भरण पोषण योग्य जनों के बीच (अधि-क्षितः) अध्यक्ष होकर रहते हैं। (ता उ) वे दोनों (कवी) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (पृच्छ्यमाना) अन्यों से आज्ञा ग्रहणार्थ एवं सन्देह निवारणार्थ प्रश्न किये जाते हुए (कवित्वना) अपनी

विद्वत्ता के कारण, (नरा) आप दोनों नायक (सखीयते) मित्रवदाचरण करने वाले पुरुष के लिये (धीतं) किये कर्म को (समश्नुतम्) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो ।

अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा । ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ४॥

भा०—(नभाकवत्) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता जनों से युक्त (इन्द्राग्नी) उन इन्द्र, अग्नि और राजा; और नायक को तू हे विद्वन् ! (यजसा गिरा) उत्तम संगतिकारक वाणी से (अभि-अर्च) स्तुति कर, उनका आदर सत्कार कर । (ययोः) जिनके आश्रय पर (इयं द्यौः) यह सूर्य और (इयं महीः पृथिवी) यह बड़ी भारी पृथिवी जिस प्रकार (इदं विश्वं वसु) इस समस्त वसे जगत् और ऐश्वर्य को (बिभृतः) धारण करते हैं उसी प्रकार राजा, नायक दोनों के बलपर सूर्य पृथिवीवत् पुरुष स्त्री वा राजा प्रजावर्ग दोनों (इदं विश्वं वसु) इस समस्त राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को अपने पास धारण करते हैं । (अन्यके समे नभन्ताम्) और विरोधी शत्रु नष्ट हो जाते हैं । वायु और अग्नि दो तत्वों पर ही समस्त प्राणी जीते हैं । वायु और अग्नि के बल पर ही समस्त शत्रुओं को नहीं सा कर सकते हैं । विद्वान् उन दोनों को 'नभाक' अर्थात् शत्रुनाशक जान कर उनका उत्तम प्रयोग करें ।

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत । या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥५॥

भा०—(या) जो इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्नि या सूर्य और अग्नि (सप्तबुध्नम्) सात मूलों वाले (जिह्म-वारम्) गुप्त द्वार वाले, दुष्प्राप्य (अर्णवं) सागरवत् अपार ऐश्वर्य को (अपोर्णुतः) खोल देते हैं उन (नभाकवत् इन्द्राग्निभ्याम्) नभाक अर्थात् अदृश्य रूप से विद्यमान वा बंधनकारक, आकर्षक और आघातकारक (इन्द्राग्निभ्याम्)

विद्युत् और अग्नि तत्वों से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को (इरज्यत) अपने वश करो और उनके बल से ही (इन्द्रः) सूर्य भी (ईशानः) सबका स्वामी है। उनके बल से ही (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त शत्रु नहींसे हो जावें।

अपिं वृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्यं दम्भय।
वयं तदस्य सम्भृतं वास्विन्द्रेण वि भंजेमहि नभन्तामन्यके समे॥६।२४

भा०—जिस प्रकार (पुराणवत्) पुराने (व्रततेः गुष्पितम्) लता के शाखा पुञ्ज को कोई सुगमता से ही काट लेता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (दासस्य गुष्पितम् ओजः) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुष के गुप्त बल को (दम्भय) नष्ट कर। (अस्य तत् सम्भृतं वसु) उसके उस एकत्र किये धन को हम (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी राजा के द्वारा ही (विभजेमहि) विशेष प्रकार से सेवन करें। और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त शत्रु भी नष्ट हों। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा। अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे॥७॥

भा०—(इमे जनाः) ये मनुष्य (तना गिरा) धन और वचन से (यत्) जिन (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सूर्य अग्निवत् तेजस्वी नायकों को (विह्वयन्ते) विशेष रूप से बुलाते हैं, (अस्माकेभिः नृभिः) अपने ही आदमियों से सहायवान् होकर (वयं) हम लोग (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाओं द्वारा युद्ध करने वाले शत्रुओं का पराजय करें और (वनुष्यतः वनुयाम) हिंसाकारियों को हम भी मारें। (अन्यके समे नभन्ताम्) हमारे अन्य समस्त शत्रु नष्ट हों।

या नु श्वेतावुवो दिव उच्चरात उप द्युभिः। इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे॥८॥

भा०—(या नु) जो दोनों इन्द्र अग्नि, सूर्य और अग्नि, (श्वेतौ) श्वेत वर्ण के, तेजस्वी होकर (द्युभिः) किरणों से (दिवः उप उत् चरातः) आकाश और पृथिवी पर ऊर्ध्व मार्ग से गति करते हैं उन (इन्द्राग्न्योः अनु) सूर्य और अग्नि के अनुकरण में (व्रतम् उहानाः) उत्तम व्रतों को धारण करते हुए (सिन्धवः) नदी के समान वेग से जाने वाले वीर पुरुष व्रतबद्ध होकर (अनु यन्ति) उनके पीछे २ अनुगमन करते हैं (यान्) जिनको वे दोनों (सीम्) सब प्रकार से (बन्धात्) बन्धनों से (अमुञ्चताम्) मुक्त करें। और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त विघ्नकारी भी नष्ट हों, बांधे जावें।

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ९

भा०—हे (हरिवः इन्द्र) किरणों से युक्त ऐश्वर्यवन् सूर्यवत् तेजस्विन्! हे (सूनो) सर्वैश्वर्यवन्! सर्वोत्पादक! सर्वप्रेरक! (वस्वः) सबको बसाने वाले, (आपृचः) सबसे प्रेम करने वाले (वीरस्य) शूरवीर (हिन्वस्य) सबको बढ़ाने वाले (ते) तेरी (उप-मातयः) उपमान (उत प्रशस्तयः) और तेरे उत्तम उपदेश (पूर्वीः पूर्वीः) सदा पूर्ण और उत्तम हैं। (याः) जो (नः धियः साधन्त) हमारी बुद्धियों और कर्मों को अपने वश करें और उन्नत करें। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त विघ्नकारी नष्ट हों।

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

भा०—(उतो नु चित्) और (यः) जो सूर्य या विद्युत्मय इन्द्र (शुष्णस्य) शोषणकारी ताप वाले सूर्य के (ओजसा) बल पराक्रम या तेज से (आण्डानि भेदति) रोगकारी संयोगी अंशों को छिन्न भिन्न करता है, अथवा—

वह (शुष्णस्य आण्डानि) शरीर के शोषण करनेवाले यक्ष्मादि के रोगांशों को छिन्न भिन्न करता है और (स्वर्वतीः अपः) शब्द, या गर्जन करने वाले मेघस्थ जलों को (जेषत्) विजय करता है (तं) उस (त्वेषं) अति तीक्ष्ण, तेजस्वी, (सत्वानम्) बलवान् (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य पुरुष को (सुवृक्तिभिः) उत्तम योजनाओं स्तुतियों से (शिशीत) तीक्ष्ण करो। उसके बलको अधिक बढ़ावो। इसी प्रकार विद्युत्वत् तीक्ष्ण, तेजस्वी, बलवान् स्तुत्य पुरुष को भी बढ़ावें जो अपने शोषणकारी बल पराक्रम से दुःखदायक परसैन्यों को नाश करे, और सुखप्रद प्रजाओं को विजय करे। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य, शत्रुगण नाश को प्राप्त हों।

अमन्ति रोगान् कुर्वन्ति इत्याण्डानि। अमेरौणादिको डः। १।११४॥

तं शि॑शीता स्वध्व॒रं स॒त्यं सत्वा॑नमृ॒त्विय॑म्।
उ॒तो नु चि॒द्य ओह॑त आ॒ण्डा शुष्ण॑स्य भे॒दत्यजैः॒ स्व॑र्वतीर॒पो नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने (शुष्णस्य) शोषक ताप के बल से (आण्डा ओहते) रोगकारी जन्तुओं को नाश करता है (भेदति) छिन्न भिन्न करता है और (स्वर्वतीः अपः अजैः) गर्जना वा सुखप्रद जलों को अपने वश करता है उसी प्रकार जो पुरुष (शुष्णस्य आण्डा) शोषकवत् यक्षादि रोगों, शत्रु के अण्डों वा मर्मस्थलों को भेदता, और सुखप्रद आप्त जनों को अपने गुणों से अपने वश करता है (तं) उस (सु-अध्वरं) उत्तम अहिंसनीय (सत्यं) सत्याचरण से युक्त, सज्जनों में उत्तम, (सत्वानम्) बलवान् (ऋत्वियम्) ऋतुओं के स्वामी सूर्यवत् ऋतु अर्थात् ज्ञानी सदस्यों के स्वामी पुरुष को (शिशीत) तीक्ष्ण करो, उसके बल को बढ़ाओ। (नभन्तां०) पूर्ववत्।

ए॒वेन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ पितृ॒वन्नवी॑यो मन्धातृ॒वद॑ङ्गिर॒स्वद॑वाचि।
त्रि॒धातु॑ना॒ शर्म॑णा पातम॒स्मान्व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् १२।२५

भा०—(एव) इस प्रकार (पितृवत्) माता पिताओं के तुल्य, पालक पोषक, (मन्धातृवत्) ज्ञानधारक उसके समान ज्ञानप्रकाशक (अंगिरस्वत्) अग्नि वा प्राणों के समान जीवनप्रद (इन्द्राग्नीभ्यां) इन्द्र विद्युत् और अग्नि वा ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों के यह (नवीयः) अति स्तुत्य, वचन (अवाचि) उपदेश किया है। वे दोनों (त्रिधातुना शर्मणा अस्मान् पातम्) तीनों धातु के बने गृह एवं वात, पित्त, कफ़ से युक्त त्रिधातु गृह, इस देह से हमारी रक्षा करें। (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम सब ऐश्वर्यों बलों के पालक स्वामी हों। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[४१]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ६, १० निचृज्जगती । ९ जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः ।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे १

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (अस्मै) इस (प्रभूतये) उत्तम भूति, जन्म, सामर्थ्य और यश वाले (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष और (विदुष्टरेभ्यः) अपने से अधिक जानने वाले विद्वान्, (मरुद्भ्यः) बलवान् मनुष्यों का (अर्च) आदर सत्कार कर। और उसका भी आदर करो (यः) जो (धीता) सुविचारित (पश्वः गाः) गौ आदि पशुओं के समान ही (पश्वः गाः) ज्ञान दर्शाने वाली वाणियों की (मनुष्याणां) मनुष्यों के उपकारार्थ (रक्षति) रक्षा करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त हानिकारक जन नष्ट हों।

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः । नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे २

भा०—(यः) जो (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील रक्तधाराओं के

वा गतिशील प्राणों के (उपोदये) ऊपर उठने में (सप्त-स्वसा) सात स्वयं गतिशील मुख्य प्राणों से युक्त होने से सात भगिनियों वाला (सः) वह (मध्यमः) सबके मध्य में मुख्य रूप से स्थित राजा के समान है। (तम्) उसको (समना गिरा) मान सहित वा ज्ञान सहित वाणी से और (पितृणां च मन्मभिः) पालक उपदेष्टा गुरुओं के मनन योग्य वचनों से और (नाभाकस्य) साक्षात् द्रष्टा पुरुष की (प्रशस्तिभिः) उत्तम उपदेश वाणियों से (अर्च) अर्चना कर। राजा भी (सिन्धूनाम्) वेगवान् अश्वादि सैन्य नायकों के(उदये)उत्थान काल में (सप्त-स्वसा) सर्पणशील सेनाओं को उत्तम रीति से संचालित करने में समर्थ (मध्यमः) मध्यस्थित प्रधान पुरुषवत् है उसको (समना गिरा) समान, अनुरूप वाणी और पालकों के वचनों और (नाभाकस्य) शत्रु हिंसक रक्षक की (प्रशस्तिभिः) उत्तमाधिकार शासन वाणियों से (उप) युक्त करो। (नभन्ताम् अन्यके समे) जिससे अन्य सब द्वेष बुद्धि वाले दुर्बुद्धि पुरुष (नभन्ताम्) बुराई करने में समर्थ न रहें।

स क्षपः परि षस्वजे न्यु१स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषास्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३॥

भा०—(क्षपः परि सस्वजे) जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रियों को प्राप्त होता है उसी प्रकार (सः) वह वरुण, सर्वश्रेष्ठ पुरुष भी (क्षपः परि सस्वजे) शत्रु पक्ष को नाश करने वाली सेनाओं को सदा अपने साथ संगत रक्खे। वह (उस्रः) उत्तम पद को प्राप्त होकर (मायया) अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा विश्व को प्रभु के समान ही (विश्वं नि दधे) समस्त राष्ट्र को नियम में स्थापित करे (सः) वह (दर्शतः) सबका द्रष्टा स्वामी होकर रहे। (तस्य व्रतम् अनु) उसके कर्म के अनुकूल ही रहकर (तिस्रः वेनीः) तीनों प्रकार की प्रजाएं उसे चाहती हुई (तम् अवर्धयन्) उसको बढ़ावें। इस प्रकार (समे अन्यके) उसके समस्त शत्रुगण (नभन्ताम्) नष्ट हों।

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः। स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४॥

भा०—(यः दर्शतः) जो दर्शनीय वा सर्वद्रष्टा स्वामी होकर (पृथिव्याम् अधि) भूमि पर (ककुभः) पार्थिव देह में प्राणों के समान, समस्त दिशाओं वा उनमें निवासिनी विनीत प्रजाओं को (नि धारयः) नियम में रखता है (सः) वह (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, प्रभु के (सप्त्यं) उस सर्पण योग्य, प्राप्य (पूर्व्यं पदम्) सर्वोपरि पद को (माता) बनाने वाला, माता के समान पूज्य है। (सः हि) वही (गोपाः इव) रक्षक के समान (इर्यः) रक्षक, स्वामी है। उसके द्वारा (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य दुष्ट संकल्प वाले पापी पुरुष नष्ट हों।

यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३वेद नामानि गुह्या। स कविः काव्या पुरुरूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे॥५।२६

भा०—(यः) जो (भुवनानां धर्त्ता) समस्त लोकों को धारण करने वाला है, (यः) जो (उस्राणां) उत्तम, ऊपर के मार्ग से जाने वाले सूर्यादि के (गुह्या) बुद्धि से गम्य, (अपीच्या) अन्तर्हित, छुपे हुए (नामानि) नाम, स्वरूपों को (वेद) जानता है। (सः) वह (कविः) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, (द्यौः इव) सूर्य के समान (काव्या) विद्वान् मेधावी पुरुषों के अभ्यास करने योग्य ज्ञानों को (पुरुरूपं पुष्यति) बहुत प्रकार से पुष्ट करता है। उसके रहते हुए (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त द्वेषीजन नष्ट हो जाते हैं। इति षड्विंशो वर्गः॥

यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता। त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे॥६॥

भा०—(चक्रे नाभिः इव) चक्र में नाभि के समान (यस्मिन्) जिस प्रभु में (विश्वानि काव्या) विद्वान् मेधावी पुरुषों के समस्त ज्ञान

और कर्म (श्रिता) आश्रित हैं, (त्रितं) तीनों लोकों में व्यापक उस परमेश्वर को आप लोग (जूती) अति शीघ्र, प्रेमपूर्वक (सपर्यत) उपासना करो। हे विद्वान् पुरुषो ! (व्रजे गावः न) जिस प्रकार गोशाला में समस्त गौवें (सं-युजे) एकत्र रहने के लिये आती हैं उसी प्रकार (व्रजे) परम गन्तव्य उस प्रभु में (सं-युजे) अच्छी प्रकार योग करने के लिये (गावः) समस्त वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों को भी संयुक्त करो। और (युजे) उसी योग साधन के लिये (अश्वान् अयुक्षत) अश्वों के तुल्य कर्मेन्द्रियों और मन की वृत्तियों को भी उसी परम पद में एकाग्र करो। इस प्रकार (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त दुष्ट संकल्प उत्पन्न नहीं होते और विशेष प्रतिपक्ष के भाव भी प्रबल नहीं होते।

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम्। परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ७

भा०—(यः) जो सर्वश्रेष्ठ प्रभु (आसु) इन समस्त दिशाओं में और प्रजाओं में (अत्कः) व्यापक होकर (आशये) सर्वत्र गुप्तरूप से विद्यमान है और जो (एषां विश्वा जातानि) इन समस्त लोकों के समस्त पदार्थों को और (धामानि) सब स्थानों को (परि मर्मृशत्) सब प्रकार से जानता है उस (वरुणस्य पुरः) सर्वश्रेष्ठ स्वामी के समक्ष (गये) उसके शासन में (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् गण और समस्त सूर्यादि पदार्थ आत्मा या प्राण के अधीन इन्द्रियों के तुल्य (व्रतम् अनु) अधीन रहकर कार्य करते हैं। (अन्यके समे) इससे विपरीत बुद्धि वाले द्वेषीजन (नभन्तां) नष्ट होते हैं।

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे। स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—(सः) वह (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीर, अपार,

समस्त आनन्दों, सुखों का दाता, (अपीच्यः) पूज्य, अप्यय होने योग्य, आप्य एवं हृदयों में सुगुप्त, (तुरः) अति शीघ्रकारी है। वह (द्याम् इव) आकाश में सूर्यवत् (रोहति) सबसे ऊपर प्रकाशित होता है। (यत्) जो (आसु) इन समस्त प्रजाओं वा समस्त प्राकृतिक शक्तियों में (वपुः निदधे) नाना दान और संगति, परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करता है। और वह (अर्चिना पदा) अर्चना करने योग्य, परम स्तुत्य 'पद' अर्थात् ज्ञान से (मायाः अस्तृणात्) सब कुटिल बुद्धियों का नाश करता है वह (नाकम् अरुहत्) परम सुखमय लोक को प्राप्त होता है। उसके (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब विरोधी नष्ट हो जाते हैं।

यस्य॑ श्वे॒ता वि॑चक्ष॒णा ति॒स्रो भूमी॑रधिक्षि॒तः।
त्रिरुत्त॑राणि प॒प्रतु॒र्वरु॑णस्य ध्रु॒वं सद॒: स स॑प्ता॒नामि॑रज्यति
नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ९ ॥

भा०—(तिस्रः भूमीः) तीनों भूमि लोकों में (अधि-क्षितः) अध्यक्षवत् निवास करने वाले (यस्य) जिसके (विचक्षणा श्वेताः) विविध पदार्थों को दर्शाने वाले उज्वल तेज, सूर्य विद्युदादि, (उत्तराणि) उनसे भी उत्कृष्ट (त्रिः) तीन लोकों को पूर्ण करते हैं उस (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु का (ध्रुवं सदः) विराजना या सत्तारूप से विद्यमान रहना (ध्रुवम्) नित्य है। (सः) वह प्रभु (सप्तानाम् इरज्यति) सातों का भी स्वामी रहता और उनको वश करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके शासन में समस्त दुष्ट पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं। (२) राजा के श्वेत, तेजस्वी वीर और अश्व हैं। उसका सर्वोपरि (सदः) आसन स्थिर है। वह (सप्तानां) सातों प्रकृतियों पर वशी होता है।

यः श्वे॒ताँ अधि॑निर्णिजश्च॒क्रे कृ॒ष्णाँ अनु॑ व्र॒ता।
स धाम॑ पू॒र्व्यं म॑मे॒ यः स्क॒म्भेन॒ वि रोद॑सी अ॒जो न द्याम॒धार॑-
य॒न्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु, सबका स्वामी सूर्यवत् (अधिनिर्णिजः) अति शुद्ध, (श्वेतान्) श्वेत किरणों को वा सूर्यादि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुकूल चलाता है, और जो (कृष्णान्) रात्रि कालों के समान अन्धकारमय या आकर्षणमय, प्रकाशशून्य पृथिवी आदि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुसार ही अपने अधीन रखता है और (यः) जो (स्कम्भेन) सबको थामने वाले महान् बल से (रोदसी वि ममे) सूर्य और भूमि को आकाश में थामता है, (अजः न द्याम् अधारयत्) स्वयं अजन्मा होकर, सर्व संचालक के समान ही सूर्य या आकाश को धारण, स्थापन करता है, (सः) वह सर्वश्रेष्ठ वरुण (पूर्व्यं धाम) सबसे पूर्ण धारण सामर्थ्य या लोक वा तेज को (ममे) धारण करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके द्वारा सब पापीजन नष्ट हो जाते हैं ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४२]

नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा। अथवा १—३ नाभाकः काण्वः। ४—६ नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा ऋषयः॥ १—३ वरुणः। ४—६ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप्। ४—६ अनुष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

अस्तभ्नाद्द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि॥१॥

भा०—(असुरः) बलवान् (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों का भण्डार परमेश्वर (द्याम् अस्तभ्नात्) आकाशस्थ तेजोमय पिण्डों को थामे रहता है, वह ही (पृथिव्याः परिमाणं) पृथिवी के बड़े भारी परिमाण को (अमिमीत) मापता है, (सम्राड् विश्वा भुवना) सबका प्रकाशक परमेश्वर समस्त लोकों पर (आसीदत्) अध्यक्ष शासकवत् विराजता है। (विश्वा इत् व्रतानि) ये समस्त कार्य और नियम व्यवस्थाएं (वरुणस्य इत्) उस सर्वश्रेष्ठ स्वामी, सबसे वरण करने योग्य प्रभु परमेश्वर की ही हैं।

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (वरुणं एव) उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वदुःखों के वारण करने वाले, सबसे वारण करने योग्य (बृहन्तं) महान् प्रभु की (वन्दस्व) स्तुति, वन्दना, प्रार्थना किया कर । और उसी (धीरम्) बुद्धि ज्ञान के दाता, कर्म के फलों के देने वाले, (अमृतस्य गोपाम्) अमृतमय मोक्ष के रक्षक को (नमस्य) नमस्कार किया कर । (सः) वह (नः) हमें (त्रि-वरूथं शर्म) तीनों प्रकार के कष्टों से बचाने वाले गृहवत् देह का (वि यंसत्) विविध प्रकार से प्रदान करता है । (उपस्थे) समीप विद्यमान (द्यावा-पृथिवी) सूर्य भूमि माता पिता भी (नः पातम्) हमारी रक्षा करें ।

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (देव) सब सुखों के दाता सब ज्ञानों के प्रकाशक ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! तू (इमां धियं) इस ज्ञान, और कर्म का (शिक्ष-माणस्य) अनुष्ठान करने और अन्यों को उपदेश देने वाले की (क्रतुं दक्षं) बुद्धि और बल को (सं शिशाधि) सम्यक् प्रकार से तीक्ष्ण कर और अच्छे मार्ग में चला । (यया) जिससे हम (विश्वा दुरिता) सब दुष्कर्मों को (अति तरेम) पार कर जावें और (सु-तर्माणं नावं) सुख से पार उतार देने वाली नौकावत् वेदवाणी पर (अधि रुहेम) चढ़ें, उसका आश्रय लें ।

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्य का आचरण करने और सदा सत्य ज्ञान का ही उपदेश देने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो !

(वां) आप दोनों (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (सोमपीतये) उत्तम ज्ञानरस का पान करने के लिये (धीभिः) बुद्धियों और सत्कर्मों सहित (अचुच्यवुः) प्राप्त होवें। (अन्यके समे नभन्ताम्) आप सब दुर्बुद्धि जन नष्ट होवें।

यथा॑ वाम॒त्रिर॑श्विना गी॒र्भिर्विप्रो॒ अजो॑हवीत्।
नास॑त्या॒ सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ५॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख पद पर स्थित एवं सदा सत्याचरण-शील जनो! (यथा) जिस प्रकार (अत्रिः विप्रः) तीनों प्रकार के दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ओषधिरस के पान करने और वीर्य रक्षा करने का (अजोहवीत्) उपदेश करता है उस प्रकार से (अन्यके समे) समस्त अन्य दुःखदायी रोग और पापादि के संकल्प (नभन्ताम्) नष्ट हो जाते और फिर पैदा नहीं होते।

ए॒वा वा॑मह्व ऊ॒तये॒ यथाहु॑वन्त॒ मेधि॑राः।
नास॑त्या॒ सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥ ६॥ २८॥ ५॥

भा०—व्याख्या देखो ८। ३८। ९॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः। इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

४३]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६—१२, २२, २६, २८, २९, ३३ निचृद् गायत्री। १४ ककुम्मती गायत्री। ३० पादनिचृद् गायत्री॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

इ॒मे विप्र॑स्य वे॒धसो॒ऽग्नेरस्तृ॑तयज्वनः। गिरः॒ स्तोमा॑स ईरते॥१॥

भा०—(इमे) ये (स्तोमासः) स्तुतियुक्त वेद के मन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले विद्वान् जन (विप्रस्य) विद्वान्, मेधावी, (वेधसः)

जगत् के कर्त्ता (अस्तृत-यज्वनः) दानशील, यज्ञ कर्त्ता के नाश न करने वाले (अग्नेः) ज्ञानमय प्रभु के विषय में (गिरः ईरते) वेदवाणियों का उच्चारण करते हैं।

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम् २

भा०—हे (जात-वेदः) सर्वज्ञ ! सर्वैश्वर्य के स्वामिन् ! हे (विचर्षणे) (अग्ने) ज्ञानवन् ! सर्वप्रकाशक ! प्रकाशस्वरूप ! विशेष द्रष्टा ! (प्रतिहर्यते ते) प्रत्येक जीव को चाहने हारे तेरी मैं (सु-स्तुतिम् जनामि) उत्तम स्तुति प्रकट किया करूं।

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति३

भा०—(दद्भिः वनानि) जिस प्रकार पशुगण दांतों से जंगलों को खाते हैं और जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं काष्ठों को मानो खा जाती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (तव त्विषः) तेरी कान्तियां (तिग्माः) तीक्ष्ण होकर, (आरोकाः इव) सब ओर चमकती हुई ज्वालाओं के समान (वनानि) जलों को सूर्य किरणोंवत् (वनानि) नाश करने योग्य दोषों को (बप्सति) मानो खायें डालती हैं, उनका नाश करती हैं। सब पापों को भस्म कर देती हैं।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नयः) अग्नियें (हरयः) पीतवर्ण (धूम-केतवः) धूम की ध्वजाओं से युक्त होकर (वात-जूताः) वायु से प्रेरित होकर, (द्यवि) आकाश में (वृथक् = पृथक् उपयतन्ते) अलग २ प्रज्वलित होते हैं उसी प्रकार (अग्नयः) अग्नि के बने सूर्यादि लोक और (धूम-केतवः) धूम की ध्वजा से युक्त धूमकेतुगण, (वात-जूता) वायु वेग से प्रेरित होकर आकाश में अलग २ घूम रहे हैं इसी प्रकार (अग्नयः) अग्निवत् स्वप्रकाश विद्वान् , (हरयः) जीवगण, (धूम-केतवः) पाप को दूर करने में समर्थ ज्ञान से सम्पन्न होकर (वात-जूताः) प्राण वायु से

प्रेरित होकर (यवि) उस प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर उसके आश्रय, पृथक् २ मोक्ष प्राप्ति का यत्न करते हैं। 'पृथगग्नयः' इति वाजसनेयिनां पाठः।

एतेत्ये वृथगग्नयं इद्धासः समदृक्षत। उपसामिव केतवः ५।२९

भा०—(एते त्ये) ये वह (अग्नयः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश जोवगण (इद्धासः) प्रदीप्त या प्रज्वलित अग्नियों के समान, और (उपसाम्-इव केतवः) उषा, प्रभात कालों के ज्ञापक ध्वजाओं वा किरणों के समान (उपसाम्) नाना कामनाओं के (केतवः) प्रकट करने वाले (वृथक्) पृथक् २ ही (सम्-अदृक्षत) अच्छी प्रकार विवेकपूर्वक दिखाई देते वा देखते हैं। पूर्व मन्त्र में बतलाया था कि इन जीवों के सबके अपने यत्न पृथक् हैं, इसमें बतलाया कि इनकी इच्छाएं भी भिन्न हैं। वे एक महान् आत्मा के अंश नहीं प्रत्युत सम्यग् दर्शन द्वारा भी पृथक् २ ही हैं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः। अग्निर्यद्रोधति क्षमि६

भा०—(अग्निः यत् क्षमि रोधति) अग्नि जब भूमि पर जाता है तब उसके (प्रयाणे रजांसि कृष्णा) जल जाने पर भूमि के धूलि भस्मादि कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं, इसी प्रकार (यत्) जब (अग्निः) ज्ञानी जीव (क्षमि) क्षमा, सहनशीलता में वा योग की किसी भूमिपर अपने को (रोधति) निरोध करता है तब (पत्सुतः) ज्ञान में निष्णात, (जात-वेदसः) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (प्रयाणे) आगे बढ़ते हुए मार्ग में (रजांसि) समस्त राजस वस्तुएं नाना तेजोमय लोक (कृष्णा) अति आकर्षक होते हैं, वे उसे मार्ग में भ्रष्ट करने वाले होते हैं।

धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति। पुनर्यन्तरुणीरपि॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः ओषधीः धासिं कृण्वानः बप्सत्) नाना ओषधियों को अपना अन्न बना २ कर खाता है, (न वायति) शान्त नहीं होता है और (पुनः तरुणीः अपि यन्) फिर बड़ी लताओं को भी प्राप्त करता है

उसी प्रकार यह (अग्निः) अग्नि के समान स्वप्रकाश जीव भी इस देह-भूमि में प्राप्त होकर (ओषधीः धासिं कृण्वानः) नाना अन्नादि ओषधियों को अपने धारण पोषणकारी खाद्य पदार्थ बनाता हुआ (बप्सद्) उनका भक्षण करता है और वह (न वायति) शान्त नहीं होता, वह नहीं मरता, जीवित रहता है, और वह (पुनः) बार २ (तरुणीः अपि यत्) स्वादि भोगों वा तरुण अर्थात् यौवनादि दशाओं को प्राप्त होता हुआ भी (न वायति) भोगों से तृप्त नहीं होता। उन्हीं में लिप्त होजाता है।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥

अर्थात् उस जीव को राजस भोग प्राप्त होकर इतने अधिक 'कृष्ण' अर्थात् आकर्षक होते हैं कि वह उनको साधन शिथिल होने पर भी नहीं त्यागता।

जि॒ह्वाभि॒रह॒ नन्न॑मद॒र्चिषा॑ जञ्ज॒णाभ॑वन्। अ॒ग्निर्वने॑षु रोचते ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि (जिह्वाभिः) जिह्वाओं, ज्वालाओं से (अह) ही (नंनमत्) लपट मारता, और (अर्चिषा) दीप्ति से (जञ्जणाभवत्) खूब प्रज्वलित होता हुआ (वनेषु रोचते) काष्ठों में चमकता है उसी प्रकार यह (अग्निः) स्वयं प्रकाश जीव, (जिह्वाभिः अह) पदार्थों को ग्रहण करने वाले इन्द्रिय रूप जिह्वाओं से ही (नंनमत्) विषयों की ओर खूब बार २ झुकता है, और (अर्चिषा) अर्चि मार्ग से ही बार २ इस लोक में (जंजनाभवत्) उत्पन्न होता हुआ (वनेषु) सेवनीय पदार्थों या लोकों में, काष्ठों में अग्निवत्, वा जलों में सूर्यवत्, सेव्य लोकों में जीव (रोचते) रुचि अनुकूल विचरता है, उनमें ही रुचि करता है।

अ॒प्स्व॑ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे। गर्भे॒ सञ्जा॑यसे॒ पुनः॑ ॥९॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि का (सधिः अप्सु) मेघस्थ जलों में

विद्युत् रूप से स्थित है, और (सः) वह (ओषधीः अनु रुध्यते) ओषधियों को प्राप्त होता है, और (गर्भे सन् पुनः जायते) पुत्रवत् उनके भीतर छुपा रहकर भी घर्षणादि से पुनः उत्पन्न होता है। इसी प्रकार हे (अग्ने) जीव (तव सधिः) तेरी समान रूप से स्थिति (अप्सु) वीर्यों में रहती है, (सः) वह तू (ओषधीः अनु) 'ओष' तेजोमय वीर्य को धारण करने में समर्थ माताओं को प्राप्त होकर वहां (रुध्यसे) ९ मास तक रुका रहता है, (गर्भे सन्) गर्भ में विद्यमान रहकर पुनः (जायसे) जन्म लेकर उत्पन्न होता है।

उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम्। निंसानं जुह्वो३ मुखे १०।३०

भा०—जिस प्रकार अग्नि की (अर्चिः) ज्वाला या दीप्ति (जुह्वः मुखे) जुहू नाम चमस के मुखपर (निंसानं) चुम्बन करती हुई (आहुतम्) आहुति प्राप्त कर (घृतात् उत् रोचते) घृत के कारण ऊपर को उठकर चमकती है उसी प्रकार हे (अग्ने) स्वप्रकाश जीवात्मा (तव तद् अर्चिः) तेरा वह प्रकाशमय बीज (जुह्वः मुखे) आदान या शुक्र ग्रहण करने वाले मातृगर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी के मुख पर (निंसानं) चुम्बन या स्पर्श करता हुआ (आहुतं सत्) पुरुष द्वारा प्रदत्त होता है और उसी (घृतात्) क्षरित, तेजोमय शुक्र से (तद्वत्) तेरा वह रूप (उत् रोचते) उत्तम रीति से प्रकट होता है। इति त्रिंशो वर्गः॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये॥११॥

भा०—हम (उक्षान्नाय) वीर्यसेचन में समर्थ अन्न खाने वाले और (वशान्नाय) यथेच्छ अन्न के भोगने वाले, (सोम-पृष्ठाय) वीर्य स्वरूप (अग्ने) अग्निवत् आकाशस्वरूप आत्मा का (स्तोमैः) वेद मन्त्रों द्वारा (विधेम) प्रतिपादन और ज्ञान करें। (२) 'उक्षाः' जल सेचक, नाना लोकों को वहन करने वाले, सूर्यादि और 'वशा' सर्व वशकारिणी शक्ति का अन्नवत् उपभोग करने वाले (सोम-पृष्ठाय) सर्व

प्रेरक, परमैश्वर्यवान् (वेधसे) जगत् विधाता (अग्नये) अग्निवत् तेजोमय परमेश्वर की हम (स्तोमैः) स्तुति वचनों से (विधेम) परिचर्या और स्तुति-उपासना करें।

उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो। अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२॥

भा०—(उत) और हे (होतः) सब सुखों के देने वाले ! हे (वरेण्य-क्रतो) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवन् ! वा हे (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ ! हे (क्रतो) जगत्कर्त्ता ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशमय ! (त्वा) तुझ को (वयं) हम (नमसा) विनय से (समिद्भिः) समिधाओं से आहवनीयाग्नि के तुल्य (समिद्भिः) उत्तम, उज्वल, दीप्तियुक्त ज्ञानों द्वारा (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत। अङ्गिरस्वद्धवामहे १३

भा०—(उत) और हे (शुचे) प्रकाशस्वरूप ! शुद्ध ! पापों के दहन करने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञानमय ! हे (आहुत) सर्वात्मना स्वीकृत हम लोग (भृगुवत्) पापों को दग्ध करने में समर्थ तपस्वी जनों के समान, और (मनुष्वत्) मननशील ज्ञानी पुरुषों के समान और (अंगिरस्वत्) देह में प्राणोंवत् अंगारों के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों के समान होकर (त्वा हवामहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं।

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता। सखा सख्या समिध्यसे १४

भा०—जिस प्रकार (अग्निना अग्निः समिध्यते) एक अग्नि से दूसरी अग्नि मिलकर और अधिक दीप्तियुक्त होता है और जिस प्रकार (विप्रः विप्रेण समिध्यते) विद्वान् पुरुष विद्वान् से मिलकर और अधिक ज्ञान का प्रकाश करता है और जिस प्रकार (सन् सता) सज्जन सज्जन से मिलकर प्रसन्न होता है, (सखा सख्या समिध्यते) स्नेही मित्र से स्नेहवान्, जन मिलकर अधिक प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप सर्वप्रकाशक प्रभो ! तू भी (अग्निना) स्वप्रकाश आत्मा द्वारा

(समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, तू (विप्रः) विविध ज्ञानों से पूर्ण है, वह तू (विप्रेण) विशेष आत्मज्ञान से पूर्ण आत्मा द्वारा ही (समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता, जाना जाता है। तू (सन्) सत् स्वरूप (सता) सत् नित्य आत्मा से ही जाना जाता है। तू (सखा) आत्मा का परम स्नेही है, तू (सख्या) अपने मित्र आत्मा द्वारा ही जाना जाता है।

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम्।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! तेजस्विन्! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे) ज्ञानादि देने वाले (विप्राय) मेधावी विद्वान् को (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों की संख्या से युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीम् इषम्) वीरों और पुत्रों से युक्त अन्न, (देहि) प्रदान कर। इसी प्रकार वह परमेश्वर इस जीव को (सहस्रिणम्) सब सुखों और बलयुक्त प्राणों से युक्त 'रयिं' अर्थात् मूर्त्तदेह और (वीरवतीम् इषम्) प्राणों वाली इच्छा शक्ति प्रदान करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत।
इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (भ्रातः) भ्रातृवत् स्नेहकारिन्, समस्त जीवों के भरण पोषण करनेहारे! हे (सहस्कृत) सर्ववशकारी बल से सम्पन्न, हे (रोहित्-अश्व) रक्तवर्ण अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाले, वेगवान् सूर्यादि पिण्डों के स्वामिन्! हे (शुचि-व्रत) शुद्धव्रत! नियमकारिन्! विद्वन्! तू (मे) मेरे (इमं स्तोमं जुषस्व) इस स्तुतिवचन को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर।

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते।
गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (वाश्राय प्रतिहर्यते) पुकारने वाले और माता को चाहने वाले बछड़े के लाभ के लिये (गोष्ठं गावः इव) गोशाला में गौओं के समान (मम स्तुतः) मेरी स्तुतियां (त्वा) तुझ को (आशत) प्राप्त हों ।

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (अंगिरस्तम) प्राणों में मुख्य प्राणवत् वा आत्मवत् ! सर्वश्रेष्ठ ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजाएं (कामाय तुभ्यं) कामना करने योग्य, कान्तिमान् तेरे लिये ही अपने को (पृथक्) पृथक् २ दलों में (नि येमिरे) नियंत्रित करते हैं, तुझे ही प्राप्त करने के लिये उत्तम जन अपने को वर्ण आश्रमादि की व्यवस्थाओं में बांधते हैं ।

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।
अद्मसद्याय हिन्विरे ॥ १९ ॥

भा०—(मेधिरासः) अन्नादि के स्वामी, (मनीषिणः) मनों को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विपश्चितः) ज्ञानवान् विद्वान् लोग (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, कर्मों तथा धारण योग्य वेदवाणियों, स्तुतियों से (अद्म-सद्याय) कालाग्नि रूप से अन्नवत् खाने योग्य, समस्त विश्व में अधिष्ठातृ-वत् विराजने और व्यापने के अर्थ (हिन्वन्ति) तेरी स्तुति करते हैं । (२) यज्ञ में विद्वान् चरु ग्रहणार्थ अग्नि को बढ़ाते हैं । गृह में अन्न भोजनार्थ अतिथि विद्वान् को प्रार्थना करते हैं ।

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।
वह्निं होतारमीळते ॥ २० ॥ ३२ ॥

भा०—लोग (त्वाम् तं) उस तुझे (वाजिनम्) बलवान्, ऐश्वर्य-वान् को, हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (अज्मेषु) संग्रामों में भी

(अध्वरं) अविनाशी (वह्निं) कार्यवहन में समर्थ (होतारम्) दाता-रूप से (ईडते) स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः ।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥

भा०—हे विभो ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओं के अनुकूल, सबका स्वामी और (पुरुत्र हि) पालने योग्य इन्द्रियों में आत्मा के समान ही (सदृङ् असि) सबको समान भाव से देखने वाला तदनुरूप है। (समत्सु) संग्रामों और हर्षावसरों में भी (त्वा हवामहे) तेरी ही प्रार्थना करते हैं।

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः ।
इमं नः शृणवद्धवम् ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि (घृतैः) घृतों से (वि-भ्राजते) विशेष रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार जो वह (अग्निः) तेजःस्वरूप, स्वप्रकाश प्रभु (घृतैः) तेजोमय आत्माओं से (आ-हुतः) बुलाया, पुकारा और प्रार्थित किया जाकर (वि-भ्राजते) विशेष रूप से हृदयों में प्रकाशित होता है (तम् ईडिष्व) तू उसकी ही स्तुति किया कर। क्योंकि वही (नः) हमारी (हवम् शृणवत्) उस स्तुति को श्रवण करता है।

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् ।
अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! (जात-वेदसम्) ज्ञान में निष्णात, (शृण्वन्तं) श्रवण करने वाले और (द्विपः अप घ्नन्तम्) समस्त द्वेष करने वालों और समस्त द्वेष के भावों का विनाश करने वाले (त्वा तं) उस तुझ को (वयं) हम लोग (हवा-महे) पुकारते और स्तुति-प्रार्थना और उपासना करते हैं।

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥

भा०—(विशां राजानम्) प्रजाओं के बीच राजा के तुल्य, देह में प्रविष्ट आत्माओं के बीच प्रकाशित होने वाले (धर्मणाम्) समस्त धर्मों के (अद्भुतम् अध्यक्षं) अद्भुत अध्यक्ष, साक्षी द्रष्टा, (अग्निम्) उस तेजस्वी प्रभु की मैं (ईडे) स्तुति करूं, (सः उ श्रवत्) वह ही वस्तुतः सब कुछ सुनने वाला है ।

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।
सप्तिं न वाजयामसि ॥ ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार हम विश्वायु-वेपसं मर्यं वाजयामसि) समस्त मनुष्यों को कंपाने वाले बलवान् पुरुष को अधिक बल ऐश्वर्य से युक्त करते हैं । वा (वाजिनं सप्तिं वाजयामसि) बलशाली वेग से जाने वाले अश्व को अधिक तीव्र वेग से जाने के लिये प्रेरित करते हैं उसी प्रकार हम (विश्वायु-वेपसं) समस्त मनुष्यों को चलाने वाले, (वाजिनं) ज्ञानैश्वर्यवान् बली, (हितम्) सर्वहितकारी (सप्तिं) प्रकृति के सातों विकृतियों के स्वामी, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक का (वाजयामसि) समस्त गुणों से अलंकृत करते, उसकी स्तुति करते हैं । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

घ्नन्मृधाण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा ।
अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (मृधाणि) हिंसक (द्विषः) द्वेष करने वालों को (घ्नन्) दण्डित करता और (रक्षांसि दहन्) विघ्नकारियों को दग्ध या निर्मूल करता हुआ (तिग्मेन) तीक्ष्ण तेज से (दीदिहि) प्रकाशित हो ।

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम ।
अग्ने स बोधि मे वचः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) अति तेजस्विन् ! (अग्ने) अग्रणी नायकवत् मार्गप्रकाशक ! (यं त्वा) जिस तुझ को (जनासः) मनुष्य (मनुष्वत्) ज्ञानी के समान होकर (त्वाम् इन्धते) तुझे ही प्रज्वलित करते हैं (सः त्वं) वह तू (मे वचः बोधि) मेरे वचन का ज्ञान कर।

यद॑ग्ने दिवि॒जा अस्य॑प्सु॒जा वा॑ सहस्कृत।
तं त्वा॑ गी॒र्भिर्ह॑वामहे ॥ २८ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार तीन प्रकार का है, (दिविजाः) आकाश में प्रकट सूर्य, (अप्सुजाः) जलों में प्रकट वा अन्तरिक्ष में उत्पन्न विद्युत्, और (सहस्कृतः) बल या मथन से उत्पन्न यह अग्नि, इसी प्रकार आत्मा भी तीन प्रकार से प्रकट होता है। (१) (दिविजाः) कामना रूप से प्रकट, (२) (अप्सुजाः) प्राणों में प्रकट, (३) (सहस्कृतः) प्रतिरोधी उष्ण शीतादि को सहन करने वाले बल रूप में प्रकट। इसी प्रकार परमेश्वर के तीन गुण, (दिविजाः) परम आकाश में सूर्यादि का उत्पादक, (अप्सुजाः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं वा जलों में और अन्तरिक्ष में गत पदार्थों का उत्पादक, (सहस्कृत) सर्वातिशायी, सर्वव्यवस्थापक बल होकर विश्व के उत्पादक, हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मन् प्रभो! हे उक्त तीनों विशेषणों वाले ! (तं त्वा) उस तुझ को हम (गीर्भिः) नाना उत्तम वाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं, तेरा गुण वर्णन करते हैं।

तुभ्यं॑ घेत्ते जना॑ इ॒मे विश्वाः॑ सुक्षि॒तयः॒ पृथ॑क्।
धा॒सिं हि॑न्व॒न्त्यत्त॑वे ॥ २९ ॥

भा०—(अत्तवे धासिं) भोक्ता जन को जिस प्रकार अन्न देते हैं उसी प्रकार (इमे जनाः) ये उत्पन्न हुए प्राणि, या लोक और (विश्वाः सुक्षितयः) समस्त उत्तम मनुष्य (पृथक्) पृथक् २ (तुभ्यं अत्तवे घ इत्)

सब चराचर को अपने में लेने वाले तेरी ही (धासिं हिन्वन्ति) धारणा-सामर्थ्य की स्तुति करते हैं।

ते घेद॑ग्ने स्वा॒ध्यो॒ऽहा॒ विश्वा॑ नृ॒चक्ष॑सः ।
तर॑न्तः स्याम दु॒र्गहा॑ ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, (विश्वा अहा) सब दिनों, (नृ-चक्षसः) नायक प्रभु को देखने वाले और (ते घ इत्) तेरे ही (सु-आध्यः) सुख से ध्यान, उपासना करने वाले होकर हम (दुर्ग-हा) दुःख से पार करने योग्य संकटों को (तरन्तः स्याम) पार करने वाले हों।

अ॒ग्निं म॒न्द्रं पु॑रुप्रि॒यं शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषम् । हृ॒द्भिर्म॒न्द्रेभि॑रीमहे ३१

भा०—हम (मन्द्रं) स्तुत्य, आनन्दप्रद (पुरु-प्रियं) बहुतों के प्रिय, इन्द्रियों को आत्मा के तुल्य प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले (पावक-शोचि-षम्) पवित्रकारक तेज वाले, (शीरं) व्यापक, (अग्निं) अग्निवत् प्रकाशक को हम (मन्द्रेभिः) हर्षयुक्त (हृद्भिः) हृदयों से (ईमहे) प्रार्थना, स्तुति करें।

स त्वम॑ग्ने वि॒भाव॑सुः सृ॒जन्त्सूर्यो॒ न र॒श्मिभिः॑ ।
शर्ध॒न्तमां॑सि जिघ्नसे ॥ ३२ ॥

भा०—(सृजन् सूर्यः न) उगते हुए सूर्य के समान (विभा-वसुः) विशेष कान्ति से आच्छादन करने वाला, दीप्तिमान् होकर हे (अग्ने) प्रकाशक! (रश्मिभिः) अपने किरणों से (शर्धन्) बलवान् होकर (सः त्वं) वह तू (तमांसि जिघ्नसे) अन्धकारों को नाश करता है, दुःखदायी दुष्टों को दण्डित करता है।

तत्ते॑ सहस्व ईमहे दा॒त्रं यन्नोप॒दस्य॑ति ।
त्वद॑ग्ने॒ वार्यं॒ वसु॑ ॥ ३३ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (सहस्व) सब से महान् प्रभो! बलवन्! (यत्) जो (ते) तेरा (वार्य वसु) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य कभी (न उप-दस्यति) नष्ट

नहीं होता हम (तत् ते दात्रं) वह तेरा दातव्य दान हम (त्वत् ईमहे) तुझ से मांगते है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[४४]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, २०—२२, २५, २६ गायत्री। २, ५, ७, ८, ११, १४—१७, २४ निचृद् गायत्री। ६, १२, १३, १८, २८, ३० विराड् गायत्री। २७ यवमध्या गायत्री। २६ ककुम्मती गायत्री। १६, २३ पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (समिधा घृतैः अग्निं) जिस प्रकार यज्ञाग्नि को समिधा और घृताहुतियों से परिचरण करते और (हव्या जुहोतन) उत्तम हव्य चरु की आहुति देते हो उसी प्रकार आप लोग (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (अग्निं) ज्ञानवान् विद्वान् की (समिधा) समित्पाणि होकर (घृतैः) ज्ञानप्रकाशों और स्नेहों के निमित्त (दुवस्यत) उसकी सेवा परिचर्या करो। (अस्मिन्) उसके निमित्त (हव्या आ जुहोतन) उत्तम २ ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना।
प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! तू (मे स्तोमं जुषस्व) मेरी स्तुति को स्वीकार कर। और (अनेन मन्मना) इस मनन करने योग्य ज्ञान से (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो। (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तों, उत्तम वचनों को तू चाह और हमें उत्तम वचनों का उपदेश कर।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे।
देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई (अग्निं दूतं पुरो धत्ते) तप्त अग्नि को आगे स्थापित करता है और अग्नि (देवान् आसादयति) प्रकाशक किरणों को प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं (पुरः) अपने समक्ष (दूतं) स्तुति योग्य (हव्य-वाहम्) स्तुत्य गुणों के धारक, ज्ञानप्रकाशक गुरु और प्रभु को धारण करूं और (उप ब्रुवे) उसकी स्तुति करूं। वह (इह) इस अन्तःकरण में (देवान् आसादयत्) शुभ गुणों, ज्ञानों को प्राप्त करावे।

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः। अग्ने शुक्रास ईरते ४

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तपस्विन्! हे (दीदिवः) कान्तियुक्त! हे उज्वल चरित्र, जिस प्रकार (समिधानस्य बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उत् ईरते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए अग्नि की बहुत बड़ी, २ प्रदीप्त ज्वालाएं ऊपर उठती हैं और जिस प्रकार सूर्य की उज्ज्वल कान्तियें ऊपर को उठती हैं और जिस प्रकार (शुक्रासः उत् ईरते) पृथिवीस्थ जल भी ऊपर को उठते हैं उसी प्रकार (समिधानस्य) अति तेजस्वी (ते) तेरे (बृहन्तः) प्रवृद्ध (अर्चयः) उत्तम कान्तिएं और (शुक्रासः) शुक्र अर्थात् वीर्य (उत् ईरते) ऊपर मस्तक की ओर जाते हैं।

उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा—जिस प्रकार (घृताचीः जुह्वः अग्निं यन्ति) घृत वाली जुहू नाम स्रुचाएं यज्ञ-काल में अग्नि को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन्! प्रभो! हे (हर्यत) कान्तियुक्त! उत्तम कामनावान्! (मम) मेरी (घृताचीः) स्नेहयुक्त (जुह्वः) वाणियां (त्वा उप यन्तु) तुझे प्राप्त हों! हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः हव्या) हमारे दिये अन्नादि दातव्य पदार्थों को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ ६ ॥

भा०—मैं (मन्द्रं) सुखजनक, (होतारम्) सुखों और ज्ञानों के देने वाले, (ऋत्विजं) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, (चित्र-भानुं) अद्भुत, सौम्य कान्तियुक्त (विभा-वसुम्) दीप्तियुक्त धन के स्वामी, (अग्निम् ईडे) प्रमुख तेजस्वी पुरुष की स्तुति करता हूं, उसको चाहता हूं। (सः उ श्रवत्) वह ही हमारी प्रार्थना श्रवण करे।

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम्।
अध्वराणामभिश्रियम्॥ ७॥

भा०—मैं (प्रत्नं) पुराण, नित्य, सर्वश्रेष्ठ, (होतारम्) ज्ञानों, ऐश्वर्यों के देने वाले, (ईड्यं) स्तुत्य, (जुष्टं) सेवा करने योग्य, (कवि-क्रतुम्) दूरदर्शी विद्वान् के समान ज्ञान और कर्म से युक्त, विद्वानों को भी ज्ञान देने वाले, (अध्वराणां) यज्ञों के आश्रय, देवपूजा, सत्कार आदि के सत्पात्र की स्तुति करता हूं।

जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक्।
अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा॥ ८॥

भा०—हे (अंगिरःतम) प्राणों के प्राण! हे (अग्ने) सबके नेतः! तू (आनुषक्) निरन्तर (हव्यानि जुषाणः) उत्तम ग्राह्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, स्तुतिवचन, अन्नादि का सेवन करता हुआ (ऋतुथा) ऋतु अनुसार (यज्ञं नय) यज्ञ को चला।

समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह।
चिकित्वान्दैव्यं जनम्॥ ९॥

भा०—हे (सन्त्य) आदरसत्कार, सत्संगादि से सेवने योग्य! हे (शुक्र-शोचे) शुद्ध कान्तियुक्त! वीर्य की उज्ज्वल कान्ति से युक्त ब्रह्मचारिन्! तू (चिकित्वान्) विद्वान् होकर (सम्-इधानः) अग्निवत् देदीप्यमान होकर (दैव्यं जनं) उत्तम विद्वान् जनों को (इह आ वह) यहां प्राप्त करा।

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।
यज्ञानां केतुमीमहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हम (विप्रम्) विद्वान् (होतारम्) ज्ञानप्रद, उत्तम उपदेष्टा, (अद्रुहं) द्रोहरहित, अहिंसापरायण, निर्द्वेष, (धूम-केतुम्) अज्ञान मोहादि के नाशक, सत् ज्ञान से युक्त, (विभा-वसुम्) विशेष कान्ति से युक्त, कान्ति से अन्यों को आच्छादित वा प्रभावित करने वाले, (यज्ञानां केतुम्) यज्ञों के जानने वाले विद्वान् वा प्रभु से हम (ईमहे) याचना करें । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः ।
भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥ ११ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! विजिगीषो ! कान्तियुक्त ! हे (अग्ने) अग्रणी ! (त्वं) तू (नः) हमें (रीषतः) हिंसक पुरुष से (नि पाहि) रक्षा कर, बचा और उसका (प्रति) मुकाबला कर । हे (सहस्कृत) बल से सम्पन्न ! तू (नः) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (भिन्धि) छिन्न भिन्न कर, उनमें भेद नीति का प्रयोग कर ।

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं१ स्वाम् ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी वा ज्ञानी (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुष (प्रत्नेन मन्मना) अनादि ज्ञान वेद से (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपने देह, मुख आदि को सुशोभित करता हुआ (विप्रेण) विद्वान् पुरुष के संग से (ववृधे) बढ़ता है ।

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ १३ ॥

भा०—(अस्मिन् सु-अध्वरे यज्ञे) इस अविनाशी, प्रबल यज्ञ में, (पावक-शोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (ऊर्जः नपातम्) बल के

उत्पादक, बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, (अग्निं) अग्रणी नायक पुरुष को (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाऊं और प्रमुख रूप से स्वीकार करूं।

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (त्वम्) तू (मित्रमहः) मित्रों का आदर करने वाला और मित्रों से स्वयं पूजित होकर (शुक्रेण शोचिषा) उज्ज्वल कान्ति से युक्त होकर (नः) हमारे (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र और उत्तमासन पर (देवैः) विद्वान् विजय के इच्छुक पुरुषों सहित (आ सत्सि) आदरपूर्वक प्रतिष्ठित हो।

यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति।
तस्मा इद्दीदयद्वसु ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः मर्त्तः) जो मनुष्य (दमे) गृह में अथवा (तन्वः दमे) शरीर के अंगों को दमन करने के लिये (अग्निं देवं) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक, (देवं) ज्ञानी, दाता, विद्वान् और प्रभु की (सपर्यति) सेवा-शुश्रूषा करता है (तस्मै इत्) उसी के लिये वह (वसु दीदयत्) ज्ञानमय धन का प्रदान करता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १६ ॥

भा०—(अयम्) यह (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (दिवः ककुत्) ज्ञान में श्रेष्ठ, आकाश में सूर्यवत् उन्नत, (मूर्धा) शिर के समान सर्वोपरि विराजमान, (अग्निः) अग्रणी विद्वान् (अपां) आप्त पुरुषों के बीच रहकर (रेतांसि जिन्वति) वीर्यों का पालन करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे। (२) वीर पुरुष प्रजाओं के बीच धनों और बलों की वृद्धि करे। (३) सूर्य अपने तेज से अन्तरिक्ष के बलों को पूर्ण करता, और आकाशस्थ वायु को वर्षणार्थ तैयार करता है।

उद॑ग्ने॒ शुच॑य॒स्तव॑ शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते ।
तव॒ ज्योतीं॑ष्य॒र्चयः॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव शुचयः) तेरे शुद्ध चरित्र, (शुक्राः) जलों या तेजों के समान (उत् ईरते) शुद्ध रूप से प्रकट होते हैं और (तव ज्योतींषि) तेरे तेज, (तव अर्चयः) तेरे आदरसत्कार भी अग्नि के प्रकाश में और ज्वालाओं के समान (उत् ईरते) उत्तम रीति से प्रकट होते हैं ।

ईशि॑षे॒ वार्य॑स्य॒ हि दा॒त्रस्या॑ग्ने॒ स्व॑र्पतिः ।
स्तो॒ता स्यां॒ तव॒ शर्म॑णि ॥ १८ ॥

भा०—(हि) क्योंकि हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (स्वः पतिः) समस्त सुखों का पालक, स्वामी है और तू ही (वार्यस्य दात्रस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ दातव्य धन का भी (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुखमय शरण में रहकर (तव स्तोता स्याम्) तेरी स्तुति करने वाला होऊं ।

त्वाम॑ग्ने मनी॒षिण॒स्त्वां हि॑न्वन्ति॒ चित्ति॑भिः ।
त्वां व॑र्धन्तु॒ नो गिरः॑ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग में चलाने वाले, ज्ञान के अभिलाषी (त्वां) तुझे चाहते हैं । (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझे कर्मों से प्रसन्न करते हैं । (नः गिरः) हमारी वाणियें भी (त्वां वर्धन्तु) तुझे ही बढ़ावें, तेरा ही गुणगान करें ।

अद॑ब्धस्य स्व॒धाव॑तो दू॒तस्य॒ रेभ॑तः॒ सदा॑ ।
अ॒ग्नेः स॒ख्यं वृ॑णीमहे ॥ २० ॥ ३९ ॥

भा०—(अदब्धस्य) विनाशरहित, (स्वधावतः) स्वयं जगत् को धारण करने वाली शक्ति से युक्त (दूतस्य) दुष्टों को संताप देने वाले,

(रेभतः) ज्ञान का उपदेश देने वाले, (अग्नेः) तुझ तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष के (सख्यं) मैत्रीभाव की हम (सदा वृणीमहे) सदा याचना करें। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

भा०—(शुचिव्रत-तमः) अत्यन्त शुद्ध पवित्र कर्मों वाला पुरुष, (विप्रः शुचिः) शुद्ध चरित्रवान्, विद्वान् (शुचिः कविः) शुद्ध चरित्रवान् , क्रान्तदर्शी, तत्व ज्ञानी पुरुष (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी (आहुतः) आहुति किये अग्नि के समान ही सत् दान प्राप्त कर (रोचते) प्रकाशित होते, और सबके मन को अच्छा लगता है ।

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा ।
अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! हे विद्वन् ! (मम) मेरे (धीतयः) उत्तम कर्म, और (मम गिरः) मेरी वाणियां (त्वा विश्वहा वर्धन्तु) तुझे सदा बढ़ावें और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्रभाव को सदा जान ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे प्रभो ! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं (त्वं वा घ अहम् स्याः) और तू मैं बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशिषः सत्याः स्युः) तेरी कामनाएं, वा तेरे विषय में मेरी भावनाएं सत्य हों ।

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि २४

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विभा-वसुः) दीप्तियुक्त, दीप्ति से जगत् भर को आच्छादित करने हारा, (वसुः) सर्वव्यापक और

(वसु-पतिः) समस्त वसु, जीवों का पालक, (असि) है। हम भी (ते सुमतौ स्याम) तेरी शुभ मति और उत्तम ज्ञान में रहें।

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः।
गिरो वाश्रास ईरते ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—(धृत-व्रताय समुद्राय सिन्धवः इव) जल को धारण करने वाले समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदी वेग से (ईरते) चलती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (धृत-व्रताय) व्रतों कर्मों के धारक (ते) तेरे लिये ही (वाश्रासः गिरः) शब्दमय वाणियां (ईरते) निकलती हैं। तेरी स्तुतियां अनायास हृदय में उठती हैं। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥

भा०—मैं (युवानं) बलवान्, (विश्पतिं) प्रजाओं के पालक, (कविं) विद्वान् मेधावी, (विश्व-अदं) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाले, (पुरु-वेपसम्) नाना कर्म करने वाले, (अग्निं) तेजःस्वरूप, ज्ञान प्रकाशक प्रभु को (मन्मभिः) मन्त्रों से अलंकृत करता हूं।

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे। स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७॥

भा०—(यज्ञानां) यज्ञों के बीच (रथ्ये) रथी के समान नायक, (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्ण वशकारी साधनों से सम्पन्न, (वीडवे) बलवान्, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी प्रभु को हम (स्तोमैः इषेम) स्तुति योग्य वचनों से सदा चाहें।

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य। तस्मै पावक मृळय॥२८॥

भा०—हे (सन्त्य) उपास्य ! (अग्ने) स्वप्रकाश ! (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता (ते अपि-भूतु) तेरे में अप्यय या मग्नता को प्राप्त हो, हे (पावक) पवित्र करने हारे परम पावन ! (तस्मै मृड) तू उसको सुखी कर।

धीरो ह्यस्यद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा। अग्ने दीदयसि द्यवि २९

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तू (विप्रः न) विद्वान् पुरुष के समान (धीरः हि असि) कर्मों, ज्ञानों, और बुद्धियों का प्रेरक, (अद्मसत्) समस्त भोग्य ऐश्वर्यमय ब्रह्माण्ड में, गृह में दीपकवत् विराजमान (सदा जागृविः) सदा जागरणशील है। तू (द्यवि) आकाश में सूर्यवत् (दीदयसि) प्रकाश करता है।

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे।
प्र ण आयुर्वसो तिर ॥ ३० ॥ ४१ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे (वसो) सबमें बसने वाले ! सबको बसाने हारे ! (दुरितेभ्यः) दुष्टाचारों और (मृध्रेभ्यः) हिंसकों के भी (पुरा) पूर्व ही (नः आयुः प्र तिर) हमारे जीवनों को बढ़ा। इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[४५]

त्रिशोकः काण्व ऋषिः ॥ १ इन्द्राग्नी। २—४२ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३—६, ८, ९, १२, १३, १५—२१, २३—२५, ३१, ३६, ३७, ३९—४२ गायत्री। २, १०, ११, १४, २२, २८—३०, ३३—३५ निचृद् गायत्री। २६, २७, ३२, ३८ विराड् गायत्री। ७ पादनिचृद् गायत्री ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

भा०—(ये घ) जो मनुष्य (अग्निम्) अग्नि को (आ इन्धते) अपने सन्मुख प्रज्वलित कर लेते हैं और (येषाम्) जिनका (युवा इन्द्रः) बलवान् ऐश्वर्यवान् प्रभु (सखा) मित्र है, वे (आनुषक्) निरन्तर (बर्हिः)

यज्ञवत् इस लोकस्थ प्रजा को (स्तृणन्ति) पृथिवी पर विस्तृत करते हैं। अर्थात् जो अपने सन्मुख विद्वान्, न्यायाधीश और ऐश्वर्यवान्, बलवान् राजा को अपने सन्मुख रखते हैं उनकी प्रजाएं यज्ञवत् अविच्छिन्न रहती हैं।

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

भा०—(येषाम् इन्द्रः युवा सखा) ऐश्वर्यवान्, बलवान् प्रभु, राजा, वा विद्युत् सूर्य आदि जिनका मित्र के तुल्य सहायक है (एषां इध्मः बृहन् इत्) उनका तेज भी महान् होता है। (एषां शस्तं भूरि) उनका उत्तम ज्ञान भी बहुत अधिक होता है। (एषां स्वरुः पृथुः) उनका शब्द वा शत्रु को सन्ताप देने का बल भी बड़ा भारी होता है।

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

भा०—(येषाम् इन्द्रः युवा सखा) जिनका मित्र, बलवान्, शत्रुहन्ता है वह (शूरः) शूरवीर होकर (सत्वभिः) अपने बलों से ही (युधा-वृतं) योधा जन से घिरे, बड़े सैन्यवान् शत्रु को भी (आ अजति) उखाड़ डालता है और (अयुद्ध) उससे खूब युद्ध करता है।

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम्।
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥

भा०—(जातः) अभिषिक्त हुआ, प्रसिद्ध (वृत्र-हा) दुष्ट पुरुषों का मेघों को विद्युत्वत् ताड़ित करने वाला वीर पुरुष जब (बुन्दं) बाण, दुष्ट के भेदन करनेवाले, भयप्रद आयुध या सैन्य आदि को (आ ददे) अपने हाथ में ले तो वह (मातरं) अपनी माता के समान भूमि, राष्ट्र-प्रजा वा विदुषी राजसभा से (पृच्छद्) पूछे, कि (के उग्राः) कौन दुष्ट उग्र होकर प्रजा को सताते हैं और (के ह) कौन (शृण्विरे) दुष्ट संतापकारी सुने जाते हैं। वह उनका पता लगा २ कर उनको दण्डित करे। बुन्दः—इषु-

भवति बुन्दो वा, भिन्दो वा, भयदो वा, भासमानो द्रवतीति वा ॥ नि० ६ । ६ । ४ ॥

प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।
यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वा प्रति) तेरे प्रति (शवसी) बलवती सेना (अवदत्) कहे कि (यः) जो (ते शत्रुत्वम् आचके) तेरी शत्रुता चाहता है उससे तू (गिरौ) मेघ में विद्यमान (अप्सः न) रूपयुक्त तेजस्वी विद्युत् के समान (योधिषत्) प्रहार कर । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् ।
यद्वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत त्वं शृणु) और तू श्रवण कर, (यः ते वष्टि) जो तुझ से किसी पदार्थ की कामना करे उसे तू (तत् ववक्षि) वह पदार्थ प्रदान कर । तू (यद् वीडयासि) जिसको बलवान् करे (तत् वीडु) वह सैन्य भी बलवान्, दृढ़ हो जावे ।

यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु-नाशकारी सेनापति (यत्) जब या जो (आजिं याति) युद्ध के लिये प्रयाण करता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (आजिकृत्) युद्ध करने में कुशल, (सु- अश्वयुः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी और (रथीनाम् रथीतमः) रथवान् योद्धाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ रथी, महारथी हो ।

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह ।
भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवीर्य से सम्पन्न, शस्त्रबल के स्वामिन् ! तू (विश्वा अभि-युजः) समस्त आक्रमणकुशल सेनाओं को (विश्वक् यथा) जिस प्रकार हो उसी प्रकार सब ओर (वि सु वृह) विविध प्रकार

से और अच्छी प्रकार उद्यमन कर, उनको सुसज्जित खड़ा रख। और तू (नः) हमारे बीच (सु-श्रवस्तमः भव) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और धनैश्वर्यादिवान् हो।

अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये।
न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥

भा०—(यं धूर्तयः) जिसको हिंसक जन (न धूर्वन्ति) नाश न कर सकें वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति होकर (अस्माकं सातये) हमारे अभीष्ट लाभ के लिये (रथं पुरः सु कृणोतु) हमारे रथ सैन्य को आगे अच्छी प्रकार करे।

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने।
गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥ ४३ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हम (ते द्विषः) तेरे शत्रुओं को (अरं) खूब (परि वृज्याम) दूर करें। (गोमतः ते) भूमि, वाणी [हुकूमत] और गवादि पशु सम्पन्न जितेन्द्रिय (ते दावने) तेरे दिये अन्न, भूमि, ज्ञान, शासन, वेतनादि प्राप्त करने के लिये (ते गमेम इत्) तुझे अवश्य प्राप्त करें।

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः।
विवक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) बलवन्, शक्तिशालिन्! हम (शनैः चित् यन्तः) शनैः २ जाते हुए, (अश्वावन्तः) अश्वों वाले, (शतग्विनः) सौ २ भूमियों वा सौ २ गायों के स्वामी, वा शतवर्षजीवी, (अनेहसः) निष्पाप और (विवक्षणाः) राष्ट्र में विशेष अधिकार पद को धारण करने वाले होवें। युद्धादि में विशेष पराक्रमी लोग अवश्य बल, अधिकार और ऐश्वर्यादि चाहते हैं।

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता।
जरितृभ्यो वि मंहते ॥ १२ ॥

भा०—(वि-मंहते) विविध ऐश्वर्य देने वाले (ते) तेरे लिये (जरि-तृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों की (शता सहस्रा) सैकड़ों, हज़ारों (सूनृता ऊर्ध्वा) वाणियां ऊपर उठती हैं। उसी प्रकार विद्वानों के लिये तुझ दान-शील के सैकड़ों हज़ारों उत्तम २ (सूनृता) धनैश्वर्य हों।

विद्मा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्र दृह्ळा चिदारुजम्।
आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! द्रष्टः! हम (त्वा) तुझ को ही (धनं-जयम्) सब ऐश्वर्यों को जीतने वाला (दृढ़ा चित् आरुजम्) शत्रु के दृढ़ से दृढ़ दुर्गों तक को तोड़ने वाला (विद्म हि) जानते हैं और (यथा गयं आदारिणम्) जिस प्रकार गृह उत्तम दारा अर्थात् धर्मपत्नी से युक्त होकर सुखप्रद होता है उसी प्रकार हम (त्वा) तुझ को भी (आदारिणम् विद्म) उत्तम गृहपतिवत् वा शत्रु जनों को आक्रमण कर छेदन भेदन करने में कुशल जानते हैं।

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः।
आ त्वा पणिं यदीमहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! विद्वन्! हे (धृष्णो) शत्रुओं को पराजित करने हारे! (ककुहं) विनीत, श्रेष्ठ (त्वां) तुझको (इन्दवः) नाना ऐश्वर्य (मन्दन्तु) सदा प्रसन्न, तृप्त, भरा पूरा किये रखते हैं। (यत्) जिससे हम (पणिं त्वां) उत्तम व्यापारी तुझ से (आ ईमहे) धनादि की याचना करते हैं। तू व्यापारी होकर ऐश्वर्य से भरपूर होकर खूब प्रसन्नता से दान दे।

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये।
तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥ ४४ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान्) धनवान् होकर भी (अदाशुरिः) दान, यज्ञादि नहीं करता और (ते मघत्तये) तेरे दिये पूज्य धन को लेने के लिये

(प्र ममर्प) बलात्कार करता है, (तस्य वेदः) उसका धन (नः आभर) हमें लादे । इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—(पुष्ट-वन्तः) उत्तम हृष्ट पुष्ट पशु के स्वामी (यथा पशुम्) जिस प्रकार अपने पशु को विशेष स्नेह से देखते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सोमिनः सखायः) ऐश्वर्यवान् मित्रगण (इमे) ये (त्वा उ विचक्षते) तुझे विशेष आदर और स्नेह से देखते हैं । और विविध प्रकार की स्तुति करते हैं ।

उत त्वाऽवधिरं वयं श्रुत्कर्णं संतमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७॥

भा०—(उत) और (वयं) हम लोग (अवधिरम्) श्रोत्रेन्द्रिय की शक्ति से सम्पन्न (श्रुत्-कर्णं) श्रवण करने में समर्थ, बहुश्रुत एवं वैसे साधनों सहायकों वाले (सन्तं) सज्जन तुझ को हम (दूराद्) दूर रहते भी (ऊतये) रक्षार्थ वहां से (इह) यहां (हवामहे) बुलाते हैं ।

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः १८

भा०—(यत्) जब (उत) भी (इमं) इस (हवं शुश्रूया) आह्वान, ललकार को श्रवण करले तो तू (दुर्मर्षं) दुःसह्य (चक्रियाः) पराक्रम कर और (नः) हमारा (अन्तमः आपिः भवेः) निकटतम बन्धु हो ।

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि ।
गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जब भी (व्यथिः) दुःखित होकर हम (ते जगन्वांसः) तेरे शरण जाकर (अमन्महि) तेरा मनन करें, हे

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तब भी तू (नः) हमें (गो-दाः) उत्तम वाणी देने हारा होकर हमें (बोधि) ज्ञान प्रदान कर।

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररभ्मा शवसस्पते ।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥ ४५ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल और ज्ञान के पालक ! (जिव्रयः रम्भं न) बूढ़े जिस प्रकार दण्ड का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हम (त्वा आ ररभ्म) तेरा आश्रय लेवें। (सधस्थे) सब स्थानों में हम (त्वा आ उष्मसि) तेरी ही सदा कामना करते हैं। इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने ।

नकिर्यं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यं) जिसको (युधि) युद्ध में (नकिः वृण्वते) कोई रोक नहीं सकता, उस (सत्वने) बलशाली, (पुरु-नृम्णाय) बहुत धनों के स्वामी, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (स्तोत्रं गायत) स्तुति-वचन, प्रशंसा का गान करो।

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवन् ! (सुतं त्वा) अभिषिक्त (सुते) ऐश्वर्ययुक्त इस पद पर (पीतये) रक्षा करने के लिये (अभि सृजामि) तुझे नियुक्त करता हूं। तू (मदम् वि अश्नुहि) सुख आनन्द विविध प्रकार से प्राप्त कर और (तृम्प) तृप्तिकारक आनन्द का भोग कर।

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥

भा०—(अविष्यवः) हिंसाशील (मूराः) घातक लोग (त्वा मा आदभन्) तुझे नाश न करें और (मा उपहस्वानः) उपहास करने

वाले जन भी तुझे हानि न पहुंचावें। (ब्रह्म-द्विषः) वेद के, ब्राह्मण वर्ग के और तेरे धन के द्वेषी जनों का तू (माकीं वनः) संग मत कर।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।
सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन्! (इह) इस राष्ट्र में या हे विद्वन्! इस उत्तम पद पर (गो-परीणसा) भूमि या वाणी के महान् बल से (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करें। (यथा गौरः सरः) तालाब के जल को मृग जिस प्रकार यथेच्छ पीता है उसी प्रकार तू भी (गौरः) पृथ्वी पर या ज्ञान-वाणी में रमण करता हुआ (सरः) प्रशस्त ज्ञानरूप जल का (पिब) पान कर।

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे।
ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥ ४६ ॥

भा०—(वृत्रहा) दुष्टों का नाशक सेनापति विघ्नादि का नाश करके सफल विद्वान् (परावति) दूर देश में भी (या) जिन (सना) सनातन से चले आये धनों और ज्ञानों को (नवा च) और नये ऐश्वर्यों और नये तत्वों को (चुच्युवे) प्राप्त करे (ता) उनको (संसत्सु) सभाओं, परिषदों में (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उत्तम आदर से कहो, जिससे उनका यश हो, श्रोताओं को ज्ञान प्राप्त हो। राजा और विद्वान् के श्रम, संकटों, और विघ्नों को पार करके प्राप्त नये पुराने अन्वेषणों की सभा आदि में चर्चा करते रहना चाहिये। इससे उत्साह की वृद्धि होती है। इति षट्चत्वारिंशो वर्गः ॥

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का हन्ता वा सत्य ज्ञान का द्रष्टा पुरुष (कद्रुवः) उपदेष्टा विद्वान् के (सुतम्) प्रकट किये ज्ञान को भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य, अन्नादि के समान (सहस्र-बाह्वे) सहस्रों वा बल-

शाली बाहुबल की वृद्धि के लिये (अपिबत्) पान करे। (अत्र) इस प्रकार उसका इस लोक में (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमकता है।

कद्रूः—इयं पृथिवी (श० ३ । ६ । २ । २ ॥) । कवते उपदिशति असौ कद्रूः, उपदेष्टा ब्रह्मविद्या वा। उणादिपाठे जम्वादिषु निपातितः।

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम्। व्यानट् तुर्वणे शमि॥२७

भा०—विद्वान् वा राजा पुरुष (तुर्वशे) चारों अर्थों को चाहने वाले यत्नवान् जन में (सत्यं) यथार्थ ज्ञान और (अह्नवाय्यं) दिन भर में करने योग्य कार्य की मात्रा को ठीक २ प्रकार से (विदानः) जानता हुआ (तुर्वणे) शीघ्र कार्य करने में कुशल पुरुष पुरुष पर (शमि) कार्य का (वि-आनट्) विभाग करे।

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः। समानमु प्रशंसिषम्॥२८

भा०—मैं (जनानां वः) आप लोगों के बीच (तरणिं) संकटों से पार उतारने वाले (त्रदं) शत्रु के नाशक और (गोमतः वाजस्य) भूमि से युक्त ऐश्वर्य के दाता की भी (समानम् उ प्रशंसिषम्) समान रूप से, आदरपूर्वक प्रशंसा करता हूं।

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते॥२९॥

भा०—(सोमे) सोम, अर्थात् पुत्रवत् शासन करने योग्य पुत्र के (सुते) अभिषेक कर देने पर (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्र्या-वृधम्) शत्रु की हिंसा करने वाली, बल बढ़ाने वाली, राष्ट्र का पालन करने वाली, राजा प्रजा को आश्रय देने वाली, शक्ति को बढ़ाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा को (वर्त्तवे) वरण करने के लिये (उक्थेषु) उत्तम २ वचनों में उसकी (सचा) एक साथ मिलकर प्रशंसा करें, उसका गुणानुवाद करें।

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥ ४७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी मेघ को (वि-कृन्तत्) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता और (गोभ्यः निरेतवे गातुं) किरणों के निकलने के लिये मार्ग बना लेता है, उसी प्रकार (यः) जो पराक्रमी पुरुष (त्रि-शोकाय) तीनों प्रकार के तेजों को प्राप्त करने के लिये, (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वत को, (विकृन्तत्) विविध स्थानों से काटता और (गोभ्यः निरेतवे) वेगयुक्त जलधाराओं के निकलने के लिये मार्ग, भूमि तैयार करता है वही राजा श्रेष्ठ है उसी की प्रशंसा करें । इसी प्रकार परमेश्वर भी (त्रि-शोकाय) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों स्थानों में प्रकट होने वाले जीव के लिये (योन्यं) योनि अर्थात् गृहवत् देहमय (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वतवत् पिण्ड को (विकृन्तत्) विविध प्रकार से छेदन करता और (गोभ्यः) इन्द्रियों के (निरेतवे) बाहर निकलने के लिये चक्षु नाक आदि के (गातुं) द्वार बनाता है वही आत्मा प्रभु गुण-गान करने योग्य है । अध्यात्म का इस पक्ष का स्पष्टीकरण देखो ऐतरेय उपनिषत् में इन्द्रिय-भेद प्रकरण । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।
मा तत्करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (यत्) जिस जगत् वा देह को आत्मवत् तू (दधिषे) धारण करता है, (यत् मनस्यसि) जिसको तू मनन द्वारा संकल्प करता है और (मन्दानः) हर्षित होकर (यत् प्र इयक्षसि इत्) प्राप्त या व्याप्त होता है, (मा तत् कः) क्या तू उसको नहीं बनाता, अथवा हे प्रभो स्वामिन् ! तू (तत् मा कः) उसे तू नाश मत कर । (मृडय) उस जगत् को तू सुखी कर ।

दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि।
जिगात्विन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी का (दभ्रं चित्) थोड़ा भी (कृतं) किया कार्य (अधि क्षमि) भूमि पर (शृण्वे) प्रसिद्ध सुना जाता है (ते मनः) तेरा मन (जिगातु) आगे बढ़े।

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है (ताः सुकीर्तयः) वे नाना उत्तम कीर्त्तियां और (उत प्रशस्तयः) उत्तम प्रशंसाएं भी (तव इत्) तेरी ही हैं।

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु।
वधीर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (एकस्मिन् आगसि) एक अपराध पर (नः मा वधीः) हम प्रजाओं को पीड़ित मत कर, (मा द्वयोः) दो अपराधों पर भी हम सबको पीड़ित मत कर, (उत त्रिषु) और तीन अपराधों पर हम सब को पीड़ित मात कर (भूरिषु) बहुत अधिक अपराध होने पर भी हम सबको दण्डित मत कर, प्रत्युत जिसका अपराध हो उसी को न्यायानुसार दण्डित कर।

बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः।
दस्मादहमृतीषहः ॥ ३५ ॥ ४८ ॥

भा०—(ऋति-सहः) शत्रुकृत हिंसा वा हिंसक सेनाओं को पराजित करने में समर्थ, (अभि-प्र-भङ्गिणः) आगे आये शत्रु को अच्छी प्रकार विनाश कर देने वाले, (दस्मात्) शत्रुनाशक, (उग्रात् त्वावतः) तुझ जैसे बलवान् प्रचण्ड स्वामी से, (बिभया हि) मैं सदा भय करूं।

सब पीड़ाओं को मिटा देने से "ऋतीसह" और विश्व भर के सब संकटों को प्रलय करने में समर्थ होने से 'अभि-प्रभङ्गी' है। इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः॥

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो।
आवृत्वद्भूतु ते मनः॥ ३६॥

भा०—हे (प्रभु-वसो) प्रभूत धन के स्वामिन्! प्रचुर प्रजा के स्वामिन्! मैं (सख्युः शूनम् मा आ विदे) मित्र के सुखकारक धन को न अपहरण करूं। (पुत्रस्य मा) मैं पुत्र के धन को भी अपहरण न करूं। (ते मनः) तेरा मन (आवृत्वत् भूतु) हमारी ओर आने वाला, प्रेम अनुराग से युक्त हो।

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत्।
जहा को अस्मदीषते॥ ३७॥

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो! (कः सखा) कौन मित्र स्नेही (अमिथितः) विना अनादर युक्त वचन कहा जाकर ही (सखायम् अब्रवीत्) अपने मित्र को कह सकता है। (कः जहा) कौन किसको मारता है (क अस्मत् ईषते) कौन हम से विना ताड़ित हुए भयभीत होकर भागता है? जब कोई किसी का नहीं मारता तो कोई किसी से भय खा कर भी नहीं भागता और न कोई किसी पर उपालम्भ देता है।

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः। श्वघ्नीव निवता चरन् ३८

भा०—(श्वघ्नी इव) अपना द्रव्य नाश करने वाला, वा अपने आश्रित जन को मारने वाला, जिस प्रकार (निवता चरन्) लज्जा से नीचा मुख करके चलता है, हे (वृषभ) पुरुष (एवारे) आदरों से प्राप्त होने योग्य तेरे (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त होजाने पर, (आवयः) नाना रक्षक जन (भूरि असिन्वन्) बहुत बांध लेते हैं और (निवता चरन्) नम्र शिर होकर आचरण करते हैं।

आ ते एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा ।
यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥ ३९ ॥

भा०—(यत्) जो तू (ब्रह्मभ्यः) विद्वान् वेदज्ञ पुरुषों के हितार्थ (ईं ददः) यह सब देता है इसलिये (ते) तेरे (एता) इन (वचोयुजा) वाणीमात्र से लगने वाले (सुमद्-रथा) उत्तम बल युक्त रथों वाले, (हरी) अश्वों के समान उत्तम देहवान् स्त्री पुरुषों को (आगृभ्णे) तेरे अधीन करता हूं ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४० ॥

भा०—(विश्वाः द्विषः अप भिन्धि) सब शत्रुओं को छिन्न भिन्न करके दूर कर । (परि बाधः) पीड़ित कर और (मृधः जहि) हिंसकों का नाश कर । (तत् स्पार्हं वसु आ भर) वह नाना उत्तम चाहने योग्य ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा ।

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् वसु) जो ऐश्वर्य वा ज्ञान (वीडौ) बलवान् पुरुष में, (यत् स्थिरे) जो स्थिर शासक में, (यत् पर्शाने) जो विचारशील पुरुष में (स्पार्हं) अभिलाषा करने योग्य (पराभृतम्) विद्यमान है, तू हमें (तत् आ भर) वह प्राप्त करा ।

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४२ ॥ ४१ ॥ ३ ॥

भा—हे स्वामिन् ! (ते दत्तस्य) तेरे दिये (यस्य भूरेः) जिस बहुत से ऐश्वर्य को (विश्व-मानुषः) समस्त मनुष्य जानते और प्राप्त करते हैं तू वह (स्पार्हं वसु आ भर) चाहने योग्य उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

[४६]

वशोऽश्व्य ऋषिः ॥ देवताः—१—२०, २९—३१, ३३ इन्द्रः । २१—२४ पृथुश्रवसः कानीनस्य दानस्तुतिः । २५—२८, ३२ वायुः ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, १०, १५, २९ विराड् गायत्री । ३, २३ गायत्री । ४ प्रतिष्ठा गायत्री । ६, १३, ३३ निचृद् गायत्री । ३० आर्ची स्वराट् गायत्री । ३१ स्वराड् गायत्री । ५ निचृदुष्णिक् । १६ भुरिगुष्णिक् । ७, २०, २७, २८ निचृद् बृहती । ९, २६ स्वराड् बृहती । ११, १४ विराड् बृहती । २१, २५, ३२ बृहती । ८ विराडनुष्टुप् । १८ अनुष्टुप् । १९ भुरिगनुष्टुप् । १२, २२, २४ निचृत् पंक्तिः । १७ जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरूवसो) बहुत से धनों और प्रजाओं के स्वामिन् ! हे (हरीणां प्रणेतः) मनुष्यों के उत्तम नायक ! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले ! हे (स्थातः) अधिष्ठातः ! (वयं) हम (त्वावतः स्मसि) तेरे जैसे स्वामी की प्रजा होकर रहें ।

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् ।
विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! मेघवत् उदार पुरुषों के स्वामिन् ! हम (त्वां हि) तुझ को ही (सत्यम्) सच्चा (इषां दातारम्) अन्नों और सकल इच्छाओं, कामनाओं का देने वाला, (विद्म) जानें और (त्वां रयीणां दातारं विद्म) तुझको ही समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला जानें।

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो ।
गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को

(कारवः) विद्वान् जन (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्ति) बतलाते हैं हे (शतम्-ऊते) सैकड़ों रक्षाओं से सम्पन्न ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजाओं और कर्म समार्थ्यों से युक्त उस तुझको ही हम सच्चा अन्नदाता, अभीष्टप्रद और ऐश्वर्यदाता जानें।

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥४॥

भा०—(यं) जिस मनुष्य को (मरुतः) विद्वान् लोग (यम् अर्यमा) जिसको न्यायकारी पुरुष और (मित्रः) स्नेहवान् जन (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (घ) अवश्य (सुनीथः) शुभ मार्ग में जाता है, उत्तम वाणी प्राप्त करता और उत्तम चक्षुष्मान् है। वही उत्तम यज्ञ करता है।

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते ।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—और वह पुरुष (गोमत्) गौ आदि पशुओं से समृद्ध (अश्ववत्) अश्वादि साधनों से युक्त, (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को (दधानः) धारण करता हुआ (आदित्य-जूतः) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान्, अखण्ड शक्ति के धारक और उपासक पुरुषों से प्रेरित (पुरु-स्पृहा राया) बहुतों से चाहने योग्य धनैश्वर्य से (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

भा०—हम (तम्) उस (रायः ईशानम्) धन के स्वामी, (शवसानम्) बलशाली (अभीर्वम्) अभीरु, निर्भीक, किसी से भय न करने वाले (इन्द्रं) शत्रुनाशी, ऐश्वर्य वाले, सत्यदर्शी स्वामी पुरुष को प्राप्त कर उससे (दानम् ईमहे) दातव्य धन और ज्ञान की याचना करें।

तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—(तस्मिन् हि) उसके अधीन, (विश्वाः ऊतयः) समस्त ऐसी रक्षक शक्तियां (सचा) सदा समवाय से रहतीं और (अभीरवः) भयरहित, अन्य से भय न करने वाली (सन्ति) हैं। (तम्) उस (पुरुवसुम्) बहुत सी वसी प्रजा के अनेक धनों के स्वामी (सुतम्) अभिषिक्त पुरुष को (सक्षयः हरयः) उसके शरणागत मनुष्य (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (आ वहन्तु) सारथि को अश्ववत् अपने ऊपर धारण करें, उसे प्रमुख बनावें। अथवा—वे उसे बहुत ऐश्वर्य प्राप्त करावें।

यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः।
य आददिः स्व१र्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) हर्ष वा प्रसन्न होने का साधन शासन है (यः वृत्रहन्तमः) जो दुष्टों का अत्यन्त नाशकारी है, (यः) जो (नृभिः) उत्तम नायक पुरुषों द्वारा (स्वः) सुख और तेज को (आ ददिः) प्राप्त करने वाला, और (यः) जो (पृतनासु) संग्रामों में भी (दुस्तरः) शत्रुओं से पराजित न होने वाला है वह (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ है।

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ९ ॥

भा०—हे (विश्व-वार) सबसे वरण करने योग्य ! हे सब दुःखों को वारण करने वाले ! (यः) जो (दुस्तरः) कभी पराजित न होने वाला, (वाजेषु) संग्रामों वा ज्ञानों में (श्रवाय्यः) श्रवण करने योग्य, सुप्रसिद्ध, (तरुता अस्ति) सब शत्रुओं का हिंसक और समस्त प्रजा को पार उतारने वाला है, (सः) वह तू हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (वसो) सब में बसे, सबको बसाने वाले ! (नः गहि) हमारे (सवना) ऐश्वर्यों को प्राप्त हो। और हम (गोमति व्रजे) उत्तम बैलों वाले रथ के समान इस

इन्द्रियों से सम्पन्न देह में बैठकर (सवना) समस्त ऐश्वर्यों, जन्मों और नाना लोकों को (गमेम) प्राप्त करें, संसार मार्ग पर गमन करें।

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया।
वरिवस्य महामह ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (महामह) महा धनाधिपते प्रभो (यथा पुरा) पूर्व कल्पवत् तू (नः) हमें (गव्यो) गौओं (अश्वया रथया) अश्वों और रथों से (वरिवस्य) युक्त कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! दुष्टों के नाश करने हारे प्रभो ! (सत्रा) सचमुच मैं (ते राधसः अन्तं नहि विन्दामि) तेरे धनैश्वर्य के अन्त को नहीं पाता हूं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) बल-शालिन् ! (नः) हमें (दशस्य) प्रदान कर (नू चित्) और शीघ्र ही, (वाजेभिः) बलों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से (नः आविथ) हमारी रक्षा कर।

य ऋष्वः श्रवयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (ऋष्वः) महान् (सखा) मित्रवत् स्नेही होकर (विश्वा इत्) समस्त ज्ञानों को (श्रवयत्) गुरुवत् उपदेश करता है, (सः) वह (इत्) वही (पुरुस्तुतः) बहुतों से स्तुति किया हुआ (विश्वा जनिमा) सब उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् को (विश्वे) समस्त मनुष्य (यत-स्रुचः) स्रुच्, जुहू आदि को हाथ में लिये ऋत्विजों के समान (यत-स्रुचः) इन्द्रियों को वश कर (मानुषा युगा) समस्त मनुष्योपयोगी युगों-वर्षों तक (तं) उस (इन्द्रं) प्रभु परमेश्वर की (हवन्ते) उपासना करते हैं।

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरः स्थाता ।
मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजेषु) संग्रामों, बलों में (पुरु-वसुः) बहुत धनों और प्रजाओं का स्वामी (पुरः स्थाता) अग्र पद पर स्थिर रहने वाला, (मघवा) धनैश्वर्य का स्वामी (वृत्रहा) दुष्टों और विघ्नों का नाशकारी (भुवत्) होता है ।

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः मदेषु) आप लोग अपने हर्ष और (अन्धसः) अन्नादि पदार्थों के द्वारा प्राप्त आनन्द के अवसरों में (वीरम्) वीर, (विचेतसम्) विविध चित्तों और ज्ञानों के स्वामी, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (श्रुत्यं) श्रुति-प्रसिद्ध, वेदगम्य, (शाकिनं) शक्तिशाली प्रभु की (यथा वचः) वाणी, के अनुसार ही, (महागिरा गाय) श्रेष्ठ वाणी से स्तुति गान करो।

ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् ।
नूनमथ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य बहु-स्तुत ! तू (तन्वे) हमारे शरीर के लिये (रेक्णः ददिः) धन देने वाला हो । (वाजेषु वसु ददिः) संग्रामों और ऐश्वर्यों के लिये नाना ऐश्वर्य देने वाला हो, (नूनम् अथ) और शीघ्र ही (वाजिनम् ददिः) अन्नादियुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः ।
कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥

भा०—(अथ) और (विश्वेषां वसूनां) समस्त प्रजाजनों के (इरज्यन्तम्) स्वामी और (अस्य) इस (कृपयतः) सामर्थ्यवान् (वर्पसः) रूपवान् , देहधारी वा तेज को (सासह्वांसं) अपने अधीन रखने वाले तेरी स्तुति करते हैं ।

म॒हः सु वो॒ अर॑मिषे॒ स्तवा॑महे मी॒ळ्हुषे॑ अरङ्ग॒माय॒ जग्म॑ये ।
य॒ज्ञेभि॑र्गी॒र्भिर्वि॒श्वम॑नुषां म॒रुता॑मियक्षसि॒ गाये॑ त्वा॒ नम॑सा गि॒रा १७

भा०—हे विद्वान् लोगो ! हम लोग (वः) आप लोगों के प्रति (अरंगमाय) प्राप्त होने योग्य (जग्मये) ज्ञानवान्, सर्वत्र गत, (मीढुषे) सुखों के वर्षक उस प्रभु की (यज्ञेभिः गीर्भिः) यज्ञों और वेद-वाणियों से (स्तवामहे) स्तुति करें, उसका उपदेश करें। वह हमें और हम उस (महः) पूज्य को ही (अरम्) बहुत अधिक (सु इषे) उत्तम रीति से चाहें। हे प्रभो ! तू (विश्व-मनुषां मरुतां) सब मननशील मनुष्यों को (इयक्षसि) सब कुछ देता है। (त्वा) तेरी ही मैं (नमसा गिरा) विनययुक्त वाणी से (गाये) स्तुति करता हूं।

ये प॒तय॑न्ते॒ अज्म॑भि॒र्गिरी॑णां॒ स्नुभि॑रेषाम् ।
य॒ज्ञं म॑हि॒ष्वणी॑नां सु॒म्नं तु॑वि॒ष्वणी॑नां॒ प्राध्व॒रे ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (स्नुभिः) बहने वाले (अज्मभिः) जलों से (पातयन्ते) आकाश-मार्ग में गमन करते हैं (एषाम्) उन (महि-स्वनीनां, तुवि-स्वनीनाम्) बड़े भारी घोर शब्दकारी, बहुत से शब्द करने वाले मेघों के (यज्ञं सुम्नं) दिये जल और सुख को (अध्वरे) अवि-नाशित यज्ञ के आश्रय पर प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार (ये) जो शूरवीर वा महास्त्रगण अपने (स्नुभिः अज्मभिः) बहते या वर्षा धारावत् निक-लते बलयुक्त अस्त्रों से (पातयन्ते) वेग से जाते, वे शत्रु बलों को मार गिराते हैं, (एषां गिरीणां) इन मेघवत् या पर्वतवत् महान्, (महि-स्वनीनाम्) घोर गर्जनाकारी और (तुवि-स्वनीनां) बहुत से ध्वनि करने वाले वीरों और महास्त्रों के (यज्ञं) संग लाभ और सुख को हम (अध्वरे) यज्ञ और युद्ध में (प्र) खूब प्राप्त करें।

प्र॒भ॒ङ्गं दु॑र्म॒ती॒नामिन्द्र॑ शवि॒ष्ठा भ॑र । र॒यिम॒स्मभ्यं॒ युज्यं॑ चोदयन्मते॒ ज्येष्ठं॑ चोदयन्मते ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (प्र-भङ्ग) नाना प्रकार के कष्टों को नाश करने वाला, (रयिम् आ भर) ऐश्वर्य प्राप्त करा। हे (चोदयन्-मते) सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि और वाणी वाले ! तू (प्रभङ्ग युज्यं आभर) शत्रुओं के बल तोड़ने वाले सहयोगी को प्राप्त करा वा, (युज्यं रयिम् आ भर) सहयोगी जनों के हितकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करा। हे (चोदयन्मते) प्रेरक वाणी के स्वामिन् ! तू (ज्येष्ठं रयिम् आ भर) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य और (प्रभङ्गं ज्येष्ठं) सर्व-कष्टनाशक सर्वश्रेष्ठ पुरुष को हमें प्राप्त करा।

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२०॥४॥

भा०—हे (सनितः) दातः ! हे (सु-सनितः) उत्तम विभक्त करने हारे ! हे (उग्र) बलवन् ! हे (चित्र) अद्भुत ! हे (चेतिष्ठ) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानिन् ! हे (सूनृत) उत्तम धनवान्, ज्ञानवान् ! हे (सम्राट्) सर्वोपरि विराजमान ! (सहुरिं) सबको पराजित करने वाले (सहन्तं) सहनशील (वाजेषु) संग्रामों में (पूर्व्यं) सबसे पूर्व विद्यमान, सर्वश्रेष्ठ, (भुज्युं) भोक्ता वा पालक तुम को (प्र-सहा) उत्कृष्ट बल से युक्त जान, तेरी शरण लेते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीते३ऽस्या व्युष्याददे ॥२१॥

भा०—(यथा चित्) जिस प्रकार (अश्व्यः वशः) अश्वों, सैन्यों वा बलवान् पुरुषों की कामना करने वाला राष्ट्र (पृथु-श्रवसि) विस्तृत ज्ञानवान्, यशस्वी (कानीते) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (अस्याः वि-उषि) इस प्रजा की विशेष कामनानुसार ही (आददे) राज्य को वश करता है, उसी प्रकार (यः) जो (अदेवः) असाधारण पुरुष भी (ईवद्),

प्राप्त हुए (पूर्तम्) पूर्ण राज्य को (आददे) ग्रहण करने में समर्थ होता है। (सः) वह (आ एतु) हमें प्राप्त हो।

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥

भा०—(षष्टिं सहस्रा) साठ हज़ार और (अयुता) दश सहस्र (अश्वस्य) उत्तम अश्वों के और (उष्ट्राणां शता विंशतिं) ऊंटों के २० सौ, (श्यावीनां गवां दशशता) श्याव, काले लाल रंग वाली गौओं या भूमियों के सौ, और (त्रि-अरुषीणां) तीनों चमकने वाली शुभ्र रंग की (गवां दश दश सहस्रा) दस दस हज़ार गौएं (असनम्) मैं दान करूं और प्राप्त करूं।

दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः।
मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥

भा०—(दश श्यावाः) दस श्याव अर्थात् लाल-काले वर्ण के (ऋधद्-रयः) अति वेग वाले (वीतवारासः) चमकते बालों वाले, (आशवः) शीघ्रगामी, (मथ्राः) शत्रुओं का मथन करने वाले, वीर (नेमिं) रथ चक्रवत् राष्ट्र को (नि वावृतुः) नियम से संचालित करें।

दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥

भा०—(पृथु-श्रवसः) अधिक ज्ञान वा यश वाले, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, उस स्वामी के (दानासः) उत्तम दान हैं। वह (मंहिष्ठः) अति पूज्य दानी, (हिरण्ययं रथं ददत्) हित, रमणीय, कान्तिमय रथ प्रदान करता है, और वह (सूरिः) विद्वान् सर्वोत्पादक (अभूत्) हो, (वर्षिष्ठम्) प्रभूत, प्रचुर (श्रवः) ज्ञान, अन्नादि (अकृत) उत्पन्न करता है।

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) वायुवत् बलशालिन् ! तू (महे तने) बड़े भारी धनैश्वर्य और (मखाय पाजसे) उत्तम पूज्य, बल प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो। (दावने ते) दानशील तेरे लिये (वयं) हम (हि) अवश्य (भूरि चकृम) बहुत कुछ करें और (दावने) ज्ञान के दाता गुरु के लिये हम (सद्यः चित् महि चकृम) आज के समान सदा ही आदर सत्कार किया करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यो अश्वे॑भि॒र्वह॑ते॒ वस्त॑ उ॒स्रास्त्रिः स॒प्त स॑प्तती॒नाम् ।
ए॒भिः सोमे॑भिः सोम॒सुद्भिः॑ सोमपा दा॒नाय॑ शुक्रपूतपाः ॥२६॥

भा०—(यः) जो (अश्वेभिः वहते) अश्वारोही गणों के साथ मिलकर राष्ट्र के शासनादि कार्य को अपने कन्धों लेता है, (त्रिः सप्त सप्ततीनाम्) ७० के २१ गुणा अर्थात् १४७० (उस्राः) भूमियों, गौओं या किरणोंवत् प्रजाओं को (वस्ते) अपने अधीन करता है, हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! हे (शुक्र-पूतपाः) शुद्ध पवित्र रीति से प्राप्त ऐश्वर्य के पालक सूर्यवत् तेजस्विन् ! वायुवत् शुद्ध जल के ग्रहीतः ! तू (एभिः) इन (सोमसुद्भिः) सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाले और (सोमेभिः) उत्तम विद्वान् शासकों सहित स्वयं भी (दानाय) दान देने के लिये प्रवृत्त रहता है, वह बड़ा आनन्द लाभ करता। अत्र द्वात्रिंशत्तममन्त्रगत मदन्ति क्रियापदेन सर्वत्र सम्बन्धः।

यो म॑ इ॒मं चि॑दु॒त्मनाम॑न्दच्चि॒त्रं दा॒वने॑ ।
अ॒र॒ट्वे अक्षे॒ नहु॑षे सु॒कृत्व॑नि सु॒कृत्त॑राय सु॒क्रतुः॑ ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो राजा (मे) मुझ प्रजा के हित के लिये, (त्मना) स्वयं ही, (इमं) इस (चित्रं) अद्भुत, नाना धन राशि के (दावने) देने के लिये (अमन्दत्) प्रसन्न होता है वह (अरट्वे = अलट्वे) बालकपन से

मुक्त, युवा, (अक्षे) व्यवहारकुशल, (सुकृत्वनि) उत्तम कार्यकुशल, (नहुषे) सुप्रबद्ध मनुष्य समाज के बीच स्वयं भी (सुकृत्तराय) उत्तम कार्य करने वाले के हितार्थ (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म करने वाला होता है वह सदा (अमन्दत्) सुख पाता है।

उचथ्ये३ वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (उचथ्ये) वचन योग्य, स्तुति पात्र (वपुषि) भव्य, बलवान् दर्शनीय शरीर में (घृत-स्नाः) जल से वा तेज से सदा स्नान करने वाला, नित्य शुद्ध, तेजस्वी (उत स्वराड्) और स्वयं अपने तेज से वा धन से चमकने वाला, शुद्ध पवित्र कान्तिमान् हो (तत्) वह (अश्वेपितं) अश्वों से प्राप्त होने योग्य, और (रजेपितं) गर्दभों या ऊंटों से वा लोक में बसे प्रजाजनों से प्राप्त होने योग्य और (शुनेपितम्) सुख से प्राप्त होने योग्य (इदं नु तत्) यह सब नाना प्रकार के उत्तम (अज्म) अन्न, बल और ऐश्वर्य (प्र) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है।

अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् ।
अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २९ ॥

भा०—मैं (इपिराय) इच्छा और प्रेरणा करने वाले विद्वान् वीर पुरुष के हितार्थ (वृष्णाम् अश्वानाम्) बलवान् घोड़ों के (इत् न) भी समान बलवान् आशुगामी, (षष्टिं सहस्रा) ६० हजार (असनम्) प्रदान करूं।

गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ३० ॥

भा०—(गावः न यूथम्) गौएं जिस प्रकार अपनी रक्षा के लिये यूथ को प्राप्त होती हैं, अपने यूथ में आकर अपने को सुरक्षित समझती हैं उसी प्रकार (वध्रयः) निर्वीर्य, अल्पबल, भीरु जन भी (यूथम् उपयन्ति) अपने यूथ, समूह को प्राप्त होते, समूह बनाकर रहते और

अपने गोल में रहकर अपने को सुरक्षित समझते हैं वा (वध्रयः) निर्वीर्य, अल्पबल जन (मा उप यन्ति) मुझ बलवान् जन को अपना शरण जान प्राप्त होते हैं और रक्षा प्राप्त करते हैं। अथवा—(वध्रयः) शत्रुओं का वध करने वाली वीर सेनाएं संघ को प्राप्त हों और मुझ सेनापति को प्राप्त हों।

अध॒ यच्चा॑रथे ग॒णे श॒तमुष्ट्राँ॒ अचि॑क्रदत् ।
अध॒ श्वित्ने॑षु विंश॒तिं श॒ता ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जो (चारथे गणे) विचरण करने वाले सैन्य गण के ऊपर (अध) और (उष्ट्रान् शतम्) शत्रु को संन्ताप देने वाले सौ जनों को (अचिक्रदत्) नियुक्त करता है (अध) और (श्वित्नेषु) श्वेत वर्ण के, शुद्ध चरित्र वाले वा तेजस्वी पुरुषों के अधीन (शता विंशतिं) सौ २ के २० दस्ते नियुक्त कर देता है वह शासक राज्य में सुख भोग करता है।

श॒तं दा॒से व॑ल्बू॒थे विप्र॒स्तरु॑क्ष॒ आ द॑दे ।
ते ते॑ वायवि॒मे जना॒ मद॒न्तीन्द्र॑गोपा॒ मद॑न्ति दे॒वगो॑पाः ॥३२॥

भा०—(तरुक्षः) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सब को आश्रय देने वाला, दुःखों से तारने, पार लगाने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् राजा (वल्बूथे) बलशाली, (दासे) भृत्य जन के आधार पर ही (शतम् आददे) सैकड़ों को अपने कन्धे लेता है। (वायो) हे बलवन् ! राजन् ! (ते) तेरे वे नाना प्रकार के (इमे जनाः) वे जन (इन्द्र-गोपाः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक की रक्षा में रहते हुए (मन्दन्ति) प्रसन्न रहते हैं और (देव-गोपाः मदन्ति) विद्वानों की रक्षा में रहकर वे सदा सुखी रहते हैं।

अध॒ स्या योष॑णा म॒ही प्र॑ती॒ची वश॑म॒श्व्यम् ।
अधि॑रुक्मा॒ वि नी॑यते ॥ ३३ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (योषणा) स्त्री (मही) बड़ी पूज्य (प्रतीची)

प्रिय के अभिमुखी होकर (अधि-रुक्मा) देह पर नाना सुवर्णादि के कान्ति-युक्त आभरणों को धारण करके (अश्व्यम् वशम्) अश्वारोही कान्तियुक्त वा कामना योग्य वर के प्रति (विनीयते) विशेष रूप से लेजाई जाती है (अध स्या) ठीक उसी प्रकार वह (मही) बड़ी भारी पृथिवी-निवा-सिनी प्रजा (प्रतीची) सन्मुख प्राप्त (अधि-रुक्मा) अधिकाधिक सुवर्ण रत्नादि से मण्डित होकर (अश्व्यम्) अश्व सैन्यादि के नायक वा राष्ट्र-पति, (वशं) सर्व वश करने में कुशल पुरुष के अधीन (वि नीयते) विशेष रूप से प्राप्त करा दी जाती है, उसको शासन और उपभोग के लिये सौंप दी जाती है । इति षष्ठो वर्गः ॥

४७]

त्रित आप्त्य ऋषिः ॥ १—१३ आदित्याः। १४—१८ आदित्या उषाश्च देवताः ॥ छन्दः—१ जगती । ४, ६—८, १२ निचृज्जगती । २, ३, ५, ९, १३, १६, १८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, ११, १७ स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे । यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः । सुऊतयो व ऊतयः ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ राजन् ! प्रभो ! हे (मित्र) स्नेह-वन् ! हे मृत्यु से बचाने हारे, वायुवत् प्राणवत् प्रिय ! हे (आदित्याः) सूर्यकिरण वा १२ मासों के समान अदिति अर्थात् भूमि या अखण्ड शासन के हितकारी जनो ! (वः महतां दाशुषे महि अवः) तुम महापुरुषों का दानशील, आत्मसमर्पक के लिये बड़ी भारी रक्षा वा कृपा रहती है । आप लोग (यं) जिसको (द्रुहः अभि रक्षथ) द्रोहकारी जन से बचा लेते हो (ईम् अघं न नशत्) उसको पाप, हत्यादि प्राप्त नहीं होता । (वः

ऊतयः अनेहसः) आप लोगों की रक्षाएं निष्पाप और (वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षाएं व रक्षा साधन उत्तम रक्षासाधन होते हैं ।

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् । पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २

भा०—हे (देवाः आदित्यासः) सूर्य किरणवत् प्रकाश, ज्ञान के देने वाले आदित्य ब्रह्मचारियो! तेजस्वी एवं पूज्यपुरुषो! आप लोग (अघानाम् अपाकृतिम्) पापों को दूर करना (विद) जानते हो । (यथा वयः पक्षा उपरि शर्म यच्छन्ति) जिस प्रकार पक्षी बच्चों के ऊपर दोनों पांखों को गृह के समान रक्षार्थ तान लेते हैं उसी प्रकार (अस्मे उपरि) हमारे ऊपर (शर्म वि यच्छत) सुख शरणादि विविध प्रकार से प्रदान करो । (अनेहसः वः ऊतयः, वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षा पापरहित और आप लोगों की रक्षा उत्तम रक्षाएं होती हैं ।

व्यस्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन । विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३

भा०—(वयः पक्षा न) पक्षीगण जिस प्रकार दोनों पक्षों को अपने बच्चों पर शरणवत् प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप लोग (अस्मे अधि) हमारे ऊपर (शर्म वि यन्तन) सुख, शरण विविध प्रकार से देवें । हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी जनो ! हम लोग आप लोगों से (विश्वानि वरूथ्या) समस्त गृहोचित धन धान्यादि सुख और समस्त, (वरूथ्या) दुःख वारण में समर्थ साधनों की (मनामहे) याचना करते हैं। उनको हम ज्ञानपूर्वक प्राप्त करें। (अनेहसो वः० इत्यादि) पूर्ववत्॥

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः । मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥४॥

भा०—(प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञान से वा चित्त से सम्पन्न जन (यस्मै) जिसको (क्षयं) ऐश्वर्य और (जीवातुं च) जीवन (अरासत)

प्रदान करते हैं (इमे आदित्याः) वे सूर्य के तुल्य ज्ञानी जन (विश्वस्य मनोः घ) समस्त मनुष्यों के उपयोगी (रायः ईशते) धनों के स्वामी हो जाते हैं। (अनेहसः वः० इत्यादि) पूर्ववत्।

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५।७

भा०—(यथा रथ्यः दुर्गाणि) जिस प्रकार रथ में लगे अश्व दुर्गम स्थानों से बचाते हैं उसी प्रकार (रथ्यः) उत्तम उपदेश युक्त जन (नः अघा परि वृणजन्) हमारे पापों को दूर करें और हमारी पापों से रक्षा करें। हम लोग (इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) ऐश्वर्यवान् प्रभु के ही शरण में, उसके ही सुख में रहें (उत) और हम (आदित्यानाम् अवसि) सूर्य रश्मियों के तुल्य तेजस्वी पुरुषों की रक्षा में (स्याम) रहें। इति सप्तमो वर्गः॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति। देवा अदभ्रमाशवो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ६॥

भा०—हे (देवाः) दानशील, (आशवः) शीघ्रगामी, (आदित्याः) सूर्य किरणवत् तेजस्वी जनो! आप लोग (यम् अदभ्रम्) जिस अनल्प गुणवान्, अधिक बलशाली, वा अहिंसनीय, जन को (अहेतन) शासन करते, संचालित करते हो वह (जनः) जन (परिह्वृता इत् अना) कुटिलता से रहित ही जीवन से (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये ज्ञान और धन को (वायति) परम्परा से प्राप्त कर सकता है। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु। यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥७

भा०—हे (आदित्यासः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषो! आप लोग (स-प्रथः) सर्व प्रकार से महान्, सामर्थ्यवान् होकर (यस्मै उ शर्म अरा-

ध्वम्) जिस किसी को भी सुख, शरण प्रदान करते हो, (तं) उस तक (तिग्मं चन त्यजः) तीक्ष्ण क्रोध या उसकी ओर फेंका हुआ अस्त्रादि भी (न द्रासत्) नहीं पहुंचता और (तं गुरु चन त्यजः न द्रासत्) उस पर किसी का भारी क्रोध वा दुर्वचन, वाण आदि भी कुटिल चाल से नहीं पहुंच पाता। (अनेहसः वः० इत्यादि पूर्ववत्)

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु। यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ८ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (वर्मसु युध्यन्तः इव) योद्धा लोग जिस प्रकार कवचों के भीतर सुरक्षित रहते हैं उसी प्रकार हम लोग भी (युष्मे अपि स्मसि) आप लोगों के बीच सुरक्षित रहें। (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (महः एनसः) बड़े भारी पाप, अपराध और (अर्भात् एनसः) छोटे से भी पाप से (उरुष्यत) बचाइये। शेष पूर्ववत् ॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु। माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥९॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड ब्रह्मचारिणी, वा माता, जो (रेवतः) ऐश्वर्यसम्पन्न (मित्रस्य) न्यायाधीश, ब्राह्मण वर्ग, (अर्यम्णः) न्यायकारी, शत्रुनियन्ता, और (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ राजा की भी (माता) उत्पन्न करने वाली माता के तुल्य जननी, भूमि, वा प्रकृति है वह (नः ऋष्यतु) हमारी रक्षा करे और वह (अदितिः) अदीन व्रत की पालक, अखण्ड शक्ति (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति प्रदान करे।

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम्। त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१०॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजय कामना वाले तेजस्वी पुरुषो ! (यत् शर्म) जो गृह, (शरणं) शत्रुओं और दुःखों का नाशक, (यत्

भद्रं) जो सुख कल्याणकारक, (यत् अनातुरम्) जो रोगों-कष्टों से रहित, बाधाओं-पीड़ाओं से शून्य, (यत् त्रिधातु) जो वात पित्त कफ के बने देह के समान स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि तीनों प्रकार की धातुओं से दृढ़, (यत् वरूथ्यम्) जो सुखप्रद, कष्टवारक और गृह होने योग्य है (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह हमें प्रदान करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः । सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य किरणों के समान सब संसार से ग्रहण करने योग्य समाचार आदि के ले आने वाले और (स्पशः) सब पदार्थों के देखने वाले जनो! (कूलात् इव) तट पर से जिस प्रकार द्रष्टा निष्पक्ष होकर जल स्थित पदार्थों को सावधानी से देखता है इसी प्रकार निष्पक्ष, अनुद्विग्न और दयाशील विवेकी, (यथा अर्वतः सुतीर्थम्) जिस प्रकार अश्वादि को तीर्थ या उतरने की जगह से जल में उतार दिया जाता है उसी प्रकार आप लोग भी (अर्वतः नः) शत्रुहिंसक हम को (सुगम् सुतीर्थं नु) सुगम और उत्तम तीर्थ अर्थात् परपक्ष के राजभृत्यादि को वश कर सुखमय मार्ग से (अनु नेषथाः) लेजाओ । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत । गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१२॥

भा०—(इह) इस लोक में (रक्षस्विने भद्रं न) दुष्ट पुरुषों के स्वामी को सुख ऐश्वर्य आदि न हो, (न अवयै उत न उपयै) और वह न दूर जा सके न समीप आ सके । वा विपरीत इसके (गवे च धेनवे भद्रं) दुधार बैल और गौ का कल्याण हो और (श्रवस्यते वीराय च भद्रं)

अन्न, बल, यश के इच्छुक वीर और ज्ञान के इच्छुक विद्वान् को सुख, कल्याण हो (अनेहसः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् । त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! (यद् दुष्कृतं आविः) जो बुरा काम प्रकट में है और (यत् दुष्कृतं अपीच्यं अस्ति) जो बुरा काम छुपा हुआ है, (त्रिते आप्तये) तीनों विद्याओं में निष्णात, आप्त जन के अधीन (अस्मत्) हम से (आरे दधातन) उस दुष्ट कर्म को दूर करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) । सायण प्रोक्त 'मा' पद मन्त्र में नहीं है ।

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः । त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) उषाकालवत् ज्ञानप्रकाश का दोहन पूरण, एवं प्रदान करने वाली ! (विभावरि) विशेष ज्ञान प्रकाश से वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को देने वाली (यत् च गोषु) जो भी हमारी वाणियों और इन्द्रियों में (दुःष्वप्न्यं) दुःस्वप्नों का बुरा प्रभाव हो । और (यत् च अस्मे) जो हममें बुरे स्वप्नों का दुष्परिणाम हो उसको (आप्त्याय त्रिताय) आप्त जनों के हितकारी, तीनों दुःखों से मुक्त जन के हितार्थ (परा वह) दूर कर । (अने० इत्यादि पूर्ववत्)

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः । त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः१५।९

भा०—हे (दिवः दुहितः) प्रकाशवत् ज्ञान और सद् व्यवहार के देने वाली ! उषावत् प्रकाश करने हारी प्रभु-मातः ! (वा) और (निष्कं कृणवते) स्वर्णादि मुद्रा बनाने या धारने वाले (वा स्रजं कृण्वते) अथवा माला बनाने वा धारने वाले के लिये हुआ जो (दुःष्वप्न्यं) बुरा स्वप्न वा

विकार है (सर्वं) उस सबको (त्रिते आप्त्ये) तीनों कष्टों वा एषणाओं से मुक्त विद्वान् के अधीन रहकर हम (परि दद्मसि) दूर करें। सुवर्णादि आभूषण, माला आदि बनाने वाले वा धारने वाले को देखकर चित्त में दुर्विचार आवें तो विद्वान् जन के अधीन रहकर उस विकार का नाश करें, दृढ़व्रती होकर सुवर्णादि देखकर वा अलंकृत स्रक् चन्दन वनिता आदि देखकर स्वप्न में भी प्रलुब्ध न हों। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति नवमो वर्गः ॥

तद॑न्नाय॒ तद॑पसे॒ तं भा॒गमु॑पसे॒दुषे॑। त्रि॒ताय॑ च द्वि॒ताय॒ चोषो॒ दुः॒ष्वप्न्यं॑ वहाने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥ १६ ॥

भा०—(तदन्नाय) नाना प्रकार के भोज्यान्न प्राप्त करने वाले, (तद्-अपसे) नाना श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, (तं भागम् उपसेदुषे) अपने उस उत्तम २ सेव्य अंश को प्राप्त करने वाले (त्रिताय) मन, वाणी, कर्म तीनों पर वशी और (द्विताय च) भीतर और बाहर वश करने वाले पुरुष के भी (दुःस्व-प्न्यं) बुरे स्वप्न के प्रभाव को हे (उषः) प्रभातवेला के समान अन्धकार के तुल्य पापों को दूर करने वाली मातः ! तू (वह) दूर कर।

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं यथ॑ ऋ॒णं स॒न्नया॑मसि। ए॒वा दुः॒ष्वप्न्यं॒ सर्व॑मा॒प्त्ये सं न॑यामस्यने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ १७

भा०—(यथा) जिस प्रकार हम (कलां सं नयामसि) काल की मात्रा को शनैः २ व्यतीत करते हैं, (यथा शफं) जिस प्रकार चरण को (सं नयामसि) समान रूप से आगे बढ़ाते हैं और (यथा ऋणं) जिस प्रकार अपने पर के ऋण या पराये धन को (संनयामसि) अच्छी प्रकार ईमान-दारी से चुका देते हैं, (एवा) इसी प्रकार हम लोग भी (आप्त्ये) आप्त पुरुष के अधीन रहकर वा आप्त जनों में विद्यमान रहकर शनैः २ (दुःस्वप्न्यं सं नयामसि) दुःस्वप्नादि बुरे प्रभावों को दूर करें। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्। उषो यस्माद्दुःष्व-ष्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः॥८।१०

भा०—हम लोग (अजैष्म) विजय प्राप्त करें, (असनाम च) दान करें, (वयं अनागसः अभूम) हम निष्पाप, निरपराध होकर रहें। हे (उषः) प्रभात वेला, के समान ज्ञान को देने और पाप को वश करने वाली मातः! (यस्मात् दुःस्वप्न्यात् अभैष्म) हम जिस दुःस्वप्न के दुष्प्रभाव से भय करते हैं (तद् अप उच्छतु) वह दूर हो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति दशमो वर्गः॥

[४८]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, १३ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। १२, १५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ७—९ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, १०, ११, १४ त्रिष्टुप्। ५ विराड् जगती॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधा स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति॥१॥

भा०—मैं (सु-मेधाः) उत्तम ज्ञान से युक्त, उत्तम बुद्धिमान्, सत्संगी होकर (स्वादोः) सुस्वादु (वयसः) अन्न का (अभक्षि) भोजन करूं। और (स्वाध्यः) उत्तम रीति से धारण करने योग्य (वरिवोवित्तरस्य) अति पूजनीय, उस धन का भी सेवन करूं, (यं विश्वे देवाः) जिसको सब उत्तम मनुष्य और (उत मर्त्यासः) साधारण मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) मधुर, आनन्दप्रद कहते हुए (अभि सं चरन्ति) प्राप्त होते और उपभोग करते हैं। इसी प्रकार मैं (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् शिष्य, (सु-आध्यः) उत्तम अध्ययनशीलादि, (वरिवोवित्-तरस्य) उत्तम धन, आदर पूजादि लाभ करने वाले, (स्वादोः वयसः) उत्तम भोजन के भोक्ता, दीर्घायु, उस वृद्ध, प्रभु, पुरुष की सेवा करूं, जिसके प्रति सब विद्वान् जन (मधु ब्रुवन्तः) मधुर

वचन कहते हुए वा 'मधु' आनन्दप्रद, मधुर ज्ञान, प्रवचन करते हुए उसके समीप उसकी शरण आते हैं।

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥

भा०—हे (इन्दो) चन्द्रवत् आह्लादकारक सोम ! शिष्यजन ! तू (अन्तः च प्र अगाः) भीतर गुरुगृह में, माता के गर्भ में बालक के समान आ। तू (अदितिः भवासि) अखण्डित व्रत होकर पुत्रवत् रह। तू (दैव्यस्य हरसः) देव, विद्या चाहने वाले शिष्य जनों के उचित, (हरसः) क्रोध या तीक्ष्णता को (अव-याता) विनीत होकर प्राप्त कर। तू (इन्द्रस्य) ज्ञानी, तत्वदर्शी आचार्य के (सख्यं जुषाणः) मैत्री को प्राप्त करता हुआ, (श्रौष्टी इव धुरम्) जूए के नीचे क्षिप्रगामी अश्व या बैल के समान विनीत होकर (राये अनु ऋध्याः) दानयोग्य ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये अनुगामी होकर रह, और ज्ञान से सम्पन्न हो। (२) इसी प्रकार विद्वान्, अदीन हो, भीतर आवे, मनुष्यों के क्रोधादि को दूर करे, ऐश्वर्यवानों का मित्र होकर उनका कार्य करके स्वयं भी सम्पन्न हो। (३) इसी प्रकार (इन्दुः) इस देह में द्रुतरूप से विद्यमान वीर्य देह के भीतर रहे, अखण्ड रहे, (दैव्यस्य हरसः) इन्द्रियों के वेग को शान्त करे, आत्मा का सख्य लाभ कर ऐश्वर्य सुखादि से सम्पन्न हो।

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (सोमम् अपाम) ओषधिरस को जिस प्रकार पान करते और (अमृताः अभूम) अमृत, सुखी, दीर्घायु होते हैं उसी प्रकार हम लोग (सोमम् अपाम) ऐश्वर्य, वीर्य और पुत्र शिष्यादि का पालन करें और 'अमृत' दीर्घायु, अमर होवें। हम लोग (ज्योतिः आगन्म) प्रकाश को प्राप्त हों। (देवान् अविदाम) शुभ गुणों, विद्वान्

पुरुषों, और वायु पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त करें, जानें। हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! (अरातिः) शत्रु (नूनम् अस्मान् किं कृणवत्) निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है ? कुछ नहीं। और (मर्त्यस्य धूर्तिः किमु) मनुष्य का हिंसा स्वभाव भी विद्वान् ब्रह्मचारी का कुछ नहीं कर सकता।

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः॥४॥

भा०—(आपीतः हृदे शम्) जिस प्रकार पान किया हुआ सोम-रस, या ओषधिरस हृदय को शान्तिदायक होता है उसी प्रकार (आपीतः) सब प्रकार से पालित, रक्षित वीर्य, पुत्र और शिष्य भी (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय को शान्तिकारक हो। हे (इन्दो) प्रेमरस से आर्द्र ! ऐश्वर्य-वन् ! हे (सोम) सोम ! (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता के समान तू (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक हो। हे (उरुशंस) बहुत २ उत्तम उपदेश वचन करने हारे विद्वन् ! बहुत स्तुतियुक्त प्रभो ! बहुतसी विद्याओं के उपदेश योग्य शिष्य ! (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य होकर (धीरः) बुद्धिमान् होकर (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (नः आयुः प्र तारीः) हमारी आयु की वृद्धि कर।

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ५।११

भा०—(इमे) ये (पीताः) पान किये ओषधिरसों के तुल्य पालन किये देह में वीर्य, और राष्ट्र में विद्वान्, गृह में पुत्र, शिष्य और वीर जन (यशसः) वीर्य, बल, और कीर्त्ति से युक्त (उरुष्यवः) रक्षा की कामना करते हुए (गावः रथं न) रथ को अश्वों के समान (पर्वसु) पर्व २, पोरु २, खण्ड २ पर (सम् अनाह) सुसम्बद्ध, सुदृढ़ हों और राष्ट्र के खण्ड को शरीर के पोरु २ के समान सुदृढ़ करें। (ते) वे (मा) मुझे (विस्रसः चरित्रात्) शिथिल आचरण से (रक्षन्तु) बचावें। वे (इन्दवः) दयार्द्र-

जन (मा) मुझे (स्रामात् यवयन्तु) व्याधि से भी ओषधिवत् पृथक् करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

भा०—हे (सोम) अन्न ओषधि रसवत् वीर्य एवं विद्वन्! वीर! तू (मथितं अग्निं न) मथित अग्नि के समान (मा सं दिदीपः) मुझे अच्छी प्रकार तेजस्वी कर। (प्र चक्षय) उत्तम ज्ञान का दर्शन करा। (नः वस्यसः कृणुहि) हमें उत्तम धन सम्पन्न कर। (अथ) और (ते हि मदः मन्ये) मैं स्वीकार करता हूं कि तेरा ही यह सब सुख, हर्ष है। तू (रेवान् इव) धनसम्पन्न के समान (अच्छ पुष्टिम् प्र चर) उत्तम पुष्टि प्रदान कर।

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः।
सोम राजन्प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (राजन्) तेजस्विन्! प्रभो! (सुतस्य ते) अभिषिक्त हुए तेरा हम (पित्र्यस्य इव रायः) माता पिता के धन के समान (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त चित्त से (भक्षीमहि) भजन, सेवन करें। (सूर्यः वासराणि अहानि इव) जगत् को आच्छादन करने वाले दिनों को सूर्य के समान (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुओं की वृद्धि कर।

सोम राजन्मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या३स्तस्य विद्धि।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः॥८॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् राजन्! तेजस्विन्! देह में वीर्यवत् पोषक! तू (नः मृडय) हमें सुखी कर, (स्वस्ति) हमारा कल्याण हो। हम (तव व्रत्याः स्मसि) तेरे व्रत का पालन करने वाले

हों, । (तस्य विद्धि) तू उस व्रत को जान । (दक्षः अलर्ति) बलवान् पुरुष आगे बढ़ता है (उत) और (मन्युः) ज्ञानी पुरुष भी आगे बढ़ता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) हमारा स्वामी होकर (नः) हमें (अनु-कामं) यथेच्छ होकर (मा परा दाः) मत त्याग कर । अथवा (अर्यः अनुकामं मा परादाः) शत्रु की इच्छानुसार हमें मत त्याग ।

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥९॥

भा०—हे (सोम) सर्व-शासक ! राजन् ! (त्वं) तू ही (नः तन्वः) हमारे शरीरों का (गोपाः) रक्षक है । (गात्रे-गात्रे) अंग २ में वा प्रत्येक शरीरधारी पर तू (नृ-चक्षाः) नेता जनों को देखने वाला सर्वसाक्षी के तुल्य (नि-ससत्थ) आसन पर विराज । (वयं) हम (यत्) जब २ (*ते व्रतानि प्र-मिनाम*) *तेरे व्रतों को नाश करें तब* २ हे (देव) तेजस्विन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (मृड) सुधार और सुखी कर और तू (सु-सखाः) हमारा उत्तम मित्र होकर हमें (वस्यः) उत्तम बना ।

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः १०।१२

भा०—(यः) जो (पीतः) ओषधि रसवत् पान पालन किया जाकर (मा न रिष्येत्) मेरा विनाश न करे, हे (हर्यश्व) उत्तम मनुष्यों को अश्ववत् सन्मार्ग में चलाने वाले राजन् ! ऐसे (ऋदूदरेण) मृदु पेट वाले, भीतर कोमल, दयार्द्र स्वभाव वाले (सख्या सचेय) मैं मित्र से सदा संगत रहूं । (यः) जो (अयं) यह (सोमः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे) हमारे बीच (निअधायि) नियत किया जाता है, (तस्मै) उसके हितार्थ ही मैं (प्रतिरम् आयुः) सुदीर्घ आयु और (इन्द्रं ऐमि) ऐश्वर्य की याचना करूं ।

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ११

भा०—जिस प्रकार सोम ओषधि के पान करने पर (अनिराः) बल-रहित कर देने वाली वा जल अन्न न खाने देने वाली (त्याः अमीवाः) वे दुःखजनक रोगपीड़ाएं (अप अस्थुः) दूर हो जाती हैं उसी प्रकार राजा के अभिषेक कर देने पर समस्त दुःखदायी विपत्तियां भी (अप अस्थुः) दूर हो जाती हैं । (तमिषीचीः) अन्धकार ला देने वाली बाधाओं के समान बलवती सेनाएं भी उससे (निः-अत्रसन् अभैषुः) डरती और भय मानती हैं । वह (सोमः) सोम (विहायाः) आकाश के समान महान् होकर (अस्मान् आ अरुहत्) हम पर अध्यक्ष होकर रहे, (यत्र) जिसके आश्रय रह कर लोग (आयुः प्रतिरते) अपना जीवन बढ़ा लेते हैं हम उसी को (अगन्म) प्राप्त हों ।

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

भा०—हे (पितरः) पालक गुरुजनो ! (यः इन्दुः) जो ऐश्वर्यवान् आर्द्र स्वभाव, ओषधि रसवत् (पीतः) पान वा पालन किया जाकर (मर्त्यः) दुःखों वा दुष्टों का नाशक होकर आत्मा के तुल्य अमृत होकर (मर्त्यान् आविवेश) देहों वा मनुष्यों में प्रविष्ट है, (तस्मै) उस (सोमाय) सर्वप्रेरक ऐश्वर्यवान् की हम (हविषा) उत्तम अन्न वचनादि से (विधेम) परिचर्या करें । उसके (मृडीके) सुख और (सुमतौ) शुभ ज्ञान उत्तम वाणी में हम सदा (स्याम) रहें । इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (त्वा) तू (पितृभिः) पालक

शासक जनों से (संविदानः) संमति करता हुआ, (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य और शास्य शासक दोनों वर्गों को (अनु आ ततन्थ) अपने वश करता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वयं तस्मै ते) हम उस तेरे लिये उत्तम (हविषा) अन्न वचनादि से (विधेम) सेवा करें (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम देह, प्राण, धनैश्वर्यादि के स्वामी हों ।

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः। वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४॥

भा०—हे (देवाः) ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (त्रातारः) हमारे रक्षक होकर (नः अधि वोचत) हमें सदा उपदेश करो कि जिससे (नः) हम पर (निद्रा) निन्दित कुत्सित गति, वा निद्रा, आलस्यादि (मा ईशत) अधिकार न करे (उत) और (जल्पिः मा ईशत) बकवास करने की बुरी आदत वा बकवासी पुरुष भी हम पर वश न करे । (विश्वहा) सदा, सब दिनों, (वयं) हम (सोमस्य प्रियासः) सोम, पुत्र, शिष्य, ऐश्वर्यवान् आदि के प्रिय और (सु-वीरासः) उत्तम वीर्यवान्, उत्तम पुत्रवान् और विद्वान् होकर (विदथम् आवदेम) ज्ञान का उपदेश और कथोपकथन किया करें ।

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः। त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् १५।१३।६

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! वीर्यवत् पालक पोषक ! (त्वं नः विश्वतः वयोधाः) तू हमें सब प्रकार से ज्ञान, बल, आयु धारण कराने वाला, तू (स्वर्विद्) सुखदाता, ज्ञानप्रकाशक, सर्वज्ञ, तू (नृ-चक्षाः) सबका द्रष्टा, होकर (नः आविश) हमें प्राप्त हो । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमें (सजोषाः) सप्रेम (ऊतिभिः पाहि) रक्षा साधनों

से सदा पालन कर। और तू (पश्चातात् उत वा पुरस्तात्) हमारी पीछे और आगे से भी रक्षा कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अथ वालखिल्यम्[1]

[४९]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती। ३ विराड् बृहती। ५ भुरिग्बृहती। ७, ९ निचृद् बृहती। २ पंक्तिः। ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मघवा) उत्तम, पूज्य धन का स्वामी (पुरु-वसुः) नाना धनों जनों का स्वामी होकर (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के हितार्थ (सहस्रेण इव) सहस्रों के समान (शिक्षति) दान देता है, उस (सु-राधसम्) उत्तम धनवान्, सुखपूर्वक आराधना करने योग्य, सब कर्मों के साधक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और धन का लाभ करने के लिये (अभि प्र अर्च) उत्तम रीति से अर्चना करो और उसी को (प्र वः) उत्तम रीति से वरण करो।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

भा०—वह इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाश करने हारा (शत-अनीकः इव) सैकड़ों सेनाओं और बलों का स्वामी, सेनापति के समान (प्र

[1] सर्वानुक्रमण्यां वालखिल्यसूक्तानामप्यनुक्रमणदर्शनात् संहितान्तर्गतत्वम्। तानि च षष्ठानुवाकान्तर्गतान्येव ॥

जिगाति) सबका विजय करता है और (दाशुषे) दानशील, करप्रद राष्ट्र के हित के लिये (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं का (धृष्णुया) अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से (हन्ति) नाश करता है, (गिरेः इव रसा) पर्वत से झरने वाले जलों के समान (अस्य पुरुभोजसः) इस बहुतों के पालक, नाना भोग्य ऐश्वर्य के स्वामी के (दत्राणि) नाना प्रकार के दान (पिन्विरे) प्रजाओं को पुष्ट करते हैं ।

आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा भजन करने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मदाः) तृप्तिकारक (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, आर्द्र-हृदय (सुतासः) अभिषिक्त जन (त्वा आ पृणन्ति) तुझे हर्षजनक हैं हे (शूर) शूरवीर ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! वे सब (राधसे) धन को प्राप्त करने के लिये ही (ओक्यं सरः आपः न) अपने आश्रयभूत सरोवर को पूर्ण करने वाले जलप्रवाहों के समान (त्वा आपृणन्ति) तुझे ही पूर्ण करते हैं, तुझे ही प्रसन्न करते, तेरी सेवा करते, तुझ में ही आश्रय लेते हैं। उसी प्रकार ये समस्त उत्पन्न सूर्यादि लोक भी उसी परमेश्वर को पूर्ण करते, उसी में आश्रय पाते हैं ।

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (मध्वः) मधुर अन्न और ज्ञान का (अनेहसं) निष्पाप (प्र-तरणम्) दुःखों से पार उतारने वाला, (विवक्षणं) विविध वचनों से स्तुत्य, वा विविध हर्षदायक (स्वादिष्ठम्) अति स्वादु रस का (पिब) पान कर (यथा) जिस प्रकार (मन्दसानः) तृप्त होकर (क्षुद्रा इव) क्षुद्र मधु मक्खी के समान (त्मना धृषत्) स्वयं

अपने सामर्थ्य से शत्रुगण पर विजयी होकर (नः) हमें भी (प्र किरासि) नाना ऐश्वर्य यथायोग्य रूप से प्रदान कर।

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥५॥१४॥

भा०—हे (स्वधावन्) अन्नपते ! हे ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! (ते) तेरे (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (रातयः) दिये नाना दान ही (यं स्तोमम्) जिस स्तुतियोग्य पद को (धेनवः) वाणियों या गोरसों के समान (स्वदयन्ति) अधिक स्वादु, सुखद कर देते हैं तू उस (नः स्तोमम्) हमारे स्तुत्य वचन या पद को (सोतृभिः हियानः) अभिषिक्त वर्ग से प्रेरित होकर (अश्वः न) अश्व के समान (आ उप द्रवद्) प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम्।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः॥ ६ ॥

भा०—(उग्रं वीरं न) वीर के समान, उग्र, शत्रुओं के लिये भयंकर (विभूतिम्) विशेष शक्तिमान् (अक्षिता वसुम्) अक्षय धन से सम्पन्न पुरुष को हम (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (वज्रिन्) वीर्यशालिन्! (अवतः न उद्रीवः) ऊपर मुख किये कूप के समान तू भी अपने प्रजा के क्षेत्र को (सिञ्चते) सेचन करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धीतयः) नाना स्तुतियें (क्षरन्ति) तेरी ओर ही बहती हैं।

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह) चाहे जहां भी हो (यद् वा यज्ञे) चाहे यज्ञ में हो, (यद् वा पृथिव्याम् अधि) चाहे तू पृथिवी पर हो, हे (महे मते) महामतिमन् ! हे (उग्र) बलवन् ! तू (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को

(उग्रेभिः आशुभिः) बलवान्, शीघ्रगामी अश्वों सहित (अतः) इस स्थान से (आ गहि) प्राप्त हो ।

आजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे (ये) जो (अजिरासः) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले (हरयः) अश्व, (आशवः) शीघ्रगामी, (वाताः इव) वायु के झकोरों के समान (प्र-सक्षिणः) बलात् शत्रुओं को विजय करने वाले, हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुषः अपत्यं) मनुष्यों के समीप (परीयसे) आता है और (येभिः) जिनसे तू (स्वः-दृशे) सबको देखने के लिये (विश्वं परि ईयसे) समस्त जगत् में व्याप रहा है।

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (यथा) जिस प्रकार भी हो तू (मेध्यातिथिं) अन्नादि से सत्कार करने योग्य अतिथिवत् पूज्य पुरुष को (प्र अवः) उत्तम रीति से तृप्त एवं प्रसन्न करता है, और (यथा) जिस प्रकार और जितने (धने) धन में तू (नीपातिथिं) सन्मार्ग दिखाने वाले अतिथिवत् पूज्य पुरुष का (प्रावः) आदर सत्कार करता है हम भी (ते) तुझ से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (एतावतः) इतने (गोमतः सुम्नस्य) गौ आदि पशुओं से समृद्ध सुखप्रद धन की (ईमहे) याचना करते हैं।

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥१५॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (यथा) जैसे (कण्वे) मेधावी विद्वान्, (त्रसदस्यवि) दस्यु को भय देने वाले के निमित्त (यथा) जैसे (पक्थे दशव्रजे) दश मार्गयुक्त परिपक्व शरीर के निमित्त, (यथा

(गो-शर्ये) जैसे गो अर्थात् धनुष की डोरी और शर अर्थात् बाणों के चलाने में कुशल धनुर्धारी के निमित्त और (ऋजिश्वनि) अश्वों को ऋजु-मार्ग में चलाने हारे, अश्वसाधक जितेन्द्रिय पुरुष के निमित्त तू (गोमत् हिरण्यवत्) गवादि पशुयुक्त और सुवर्णादि युक्त चल अचल धन (असनोः) न्याय, एवं पात्रापात्र विवेक से प्रदान करता है उसी प्रकार का धन हम भी तुझ से चाहते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५०]

पुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७ निचृद् बृहती। ६ विराड् बृहती। २, ४, ६, १० पांक्तिः। ८ निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सुन्वते) उत्तम आदर सत्कार करने वाले, (स्तुवते) स्तुतिशील पुरुष को (काम्यं वसु) कामना करने योग्य धन (सहस्रेण-इव मंहते) सहस्रों संख्या में प्रदान करता है, उस (श्रुतं) जगत्-प्रसिद्ध (सु-राधसम्) सुख से आराधना करने योग्य, उत्तम धन-सम्पन्न (शक्रम्) शक्तिशाली परम पुरुष की (अभिष्टये) अभीष्ट कार्य के लिये (प्र सु अर्च) उत्तम रीति से पूजा, आदर सत्कार कर।

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की (शत-अनीका) सैकड़ों सैन्य, सैकड़ों बल, सैकड़ों मुख, (हेतयः दुस्तराः) हनन या दण्ड देने के साधन दुस्तर, अपार, अजेय हैं और इस की (महीः समिषः) समस्त भूमियां भी उत्तम अन्न सम्पदाओं से सम्पन्न हैं, (यदि) जब

(सुताः) नाना उत्पन्न पदार्थ एवं ऐश्वर्यगण (अमन्दिपुः) समस्त जीव प्रजागण को हर्षयुक्त, प्रसन्न करते हैं तब प्रतीत होता है कि वही (भुज्मा) सबका पालक परमेश्वर (गिरिः न) मेघ वा पर्वत के समान महान् उदार होकर (मघवत्सु) पूज्य धनवानों में (पिन्वते) ऐश्वर्य की मानो वर्षा किया करता है ।

यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥३॥

भा०—(सुतासः इन्दवः) उत्पन्न हुए, ये ऐश्वर्ययुक्त, वा आर्द्र, ओषधि रसवत् आनन्दमय जीवगण, (यदि) जब (प्रियम् अमन्दिषुः) अपने प्रिय प्रभु को प्रसन्न कर लेते हैं तब हे (वसो) सबको बसाने हारे ! (दाशुषे दुघाः इव) यज्ञशील वा घास आदि देने वाले स्वामी के लिये दुधार गौवों के समान वा (सवनं) अभिषेकार्थ (आपः न) जल-धाराओं के समान उन सबको (मे उप आ धायि) मेरे लिये प्राप्त कराओ ।

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों की (धीतयः) स्तुतियां और नाना कर्म (अनेहसं) पाप से मुक्त (हवमानम्) सब ऐश्वर्यों के देने वाले को उद्देश्य करके किये जाकर ही (ऊतये) तुम्हारी ही रक्षा, तृप्ति और सुख प्राप्ति के लिये (मध्वः क्षरन्ति) मधुर रसों, आनन्दयुक्त उत्तम फलों को उत्पन्न करते हैं । हे (वसो) सबमें बसने हारे ! सर्व-व्यापक प्रभो ! (हवमानासः) तेरी स्तुति करने वाले (इन्दवः) तेरी तरफ़ भक्तिप्रवाह व प्रेमरस में द्रवित जीवगण (त्वा आ) तुझे ही अपने (स्तोत्रेषु) स्तोत्रों, स्तुति वचनों में (उप दधिरे) वर्णन करते हैं ।

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (स्वदावन्) उत्तम अन्न वा कर्म फल के देने हारे ! (यं) जिस (ते) तेरे दिये को (गूर्त्तयः) उद्यमी, स्तुतिकर्त्ता जन उत्तम रूप से सुखपूर्वक भोगते हैं हे ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! (तोशते) हिंसाकारी शत्रु को दमन करने के लिये (इयानः) गमन करने वाले (अत्यः) अश्वारोही के समान तू (नः स्वध्वरे सोमे) हमारे उत्तम यज्ञ वा हिंसा-रहित और अहिंसित ऐश्वर्य के निमित्त (पौरे) नाना प्रजाओं के समूह की (हवं छन्दयसे) स्तुति को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर । इति षोडशो वर्गः ॥

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—हम (महः राधसः) बड़े भारी धनैश्वर्य के स्वामी (वीरम्) वीर, (उग्रं) बलवान्, (विविचिं) न्यायपूर्वक विवेक करने वाले (धन-स्पृतम्) धन से प्रजादि को पूर्ण और पालन करने वाले, (विभू-तिम्) विशेष सामर्थ्यवान्, परमेश्वर की हम सदा स्तुति करते हैं । हे वज्रिन्) वीर्यवन् ! तू (उद्रीव) गर्दन ऊपर उठाये पराक्रमी के समान (अवतः) जगत् की रक्षा करने हारा, (वसुत्वना) अपने बड़े ऐश्वर्य के द्वारा ही (दाशुषे पीपेथ) आत्मसमर्पक भक्त का पालन करता है ।

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह नूनं परावति) जो तू परम दूर भी है, (यद्-वा पृथिव्यां) वा जो तू पृथिवी पर और (दिवि घ नूनं) सूर्य या महान् आकाश में भी सर्वत्र व्यापक है तू भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (महे-मते) महाज्ञानिन् ! तू (ऋष्वः) सब से महान् है । हे (इन्द्र)

ऐश्वर्यवन्! (हरिभिः युजानः) विद्वान् मनुष्यों द्वारा और (ऋष्वेभिः) अपने महान् गुणों करके (युजानः) योग द्वारा चिन्तन किया जाकर हमें (नूनं) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त होता है।

रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८॥

भा०—(ये) जो (हरयः) मनुष्य, जीवगण बलवान् अश्वों के समान ही (रथिरासः) रथारोही वीर वा रमण योग्य देह-धारी (अस्रिधः) अविनाशी वा अहिंसक हैं वे भी (वातस्य) वातवत् बलवान् और जीवनों के जीवन रूप तेरे ही (ओजः) बल पराक्रम को (पिप्रति) धारण करते हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुष्यः) मननशील जीव के (दस्युं) विनाशकारी शत्रु, रोगादि को भी (नि घोषयः) नष्ट करता है और (येभिः) जिन्हों से तू (स्वः परि ईयसे) समस्त आकाशों को पूर्ण करता है।

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ९॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने हारे! सब में बसने वाले प्रभो! स्वामिन्! हे (शूर) दुष्टों के नाशक! तू (यथा) जिस धन से या जितने ऐश्वर्य से (कृत्व्ये धने) करने योग्य संग्राम के अवसर पर (एतशं) अश्वसैन्यों को (प्रावः) अच्छी प्रकार रक्षा करता और (यथा दशव्रजे) जैसे दशों दिशाओं में दश मार्ग वाले नगर में जितना ऐश्वर्य (वशं) वशकारी नगर के अध्यक्ष राजा (प्रावः) सन्तुष्ट करे हम (नव्यसः ते) अति स्तुति योग्य तेरे (एतावतः) इतने भारी ऐश्वर्य का (विद्याम) लाभ करें।

यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् १०।१७

भा०—हे (मघवन्) पूज्य धनसम्पन्न! हे (अद्रिवः) शक्ति-

शालिन् ! (यथा) जितना ऐश्वर्य (कण्वे) विद्वान् जन में (अध्वरे) हिंसारहित (मेधे) पवित्र यज्ञ में, (दीर्घ-नीथे) दीर्घ काल तक और दीर्घ मार्ग में लेजाने वाले (दमूनसि) दान्त चित्त वाले, जितेन्द्रिय पुरुष में, (यथा) जितना ऐश्वर्य तू (गोशर्ये) धनुषबाण की शक्ति से सम्पन्न योद्धा में (असिषासः) प्रदान करता है, उतना ही (हरि-श्रियम्) नाना अश्वों, मनुष्यों और विद्वानों को आश्रय देने वाला (गोत्रं) भूमि, इन्द्रिय गण, वाणी और गवादि पशु सम्पदा की रक्षा करने वाला धन (मयि) मुझ में भी प्राप्त करा। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[५१]

श्रुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ९ निचृद्बृहती। ५ विराड् बृहती। ७ बृहती। २ विराट् पंक्तिः। ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥ १ ॥

भा०—(यथा) जितना और जिस प्रकार (सांवरणौ) उत्तम रीति से वरण करने योग्य (मनौ) प्रजा को थामने, उनको मर्यादा में स्थापित करने वाले राजा के पद पर विराज कर हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्यवन् ! तू (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य, राष्ट्र का (अपिबः) भोग करता है उतना ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (नीपातिथौ) मार्गदर्शी के अतिथिवत् पूज्य पद पर और (मेध्यातिथौ) अन्न यज्ञादि से सत्कार योग्य अतिथिवत् पूज्य परिव्राजक के पद पर और (पुष्टिगौ) उतना ही पुष्टि अर्थात् पशु सम्पदायुक्त भूमि के स्वामी एवं अन्नादि से समृद्ध भूमि के स्वामी के पद पर (सचा) समवेत होकर भी भोग सकता है। अर्थात् क्षत्रिय राजा के ऐश्वर्य से परिव्राट् तथा सम्पन्न वैश्य का ऐश्वर्य भी कम नहीं है।

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥ २ ॥

भा०—(पार्षद्-वाणः) वाणी अर्थात् वेदवाणी का सेवन करने वाला विद्वान् (शयानम्) अन्धकार में सोते के समान (जिव्रिम्) जीर्ण, वा प्रसन्न करने वाले, (उद्-हितम्) उत्तम सम्बन्ध में बद्ध (प्रस्कण्वं) उत्तम तेजस्वी, शिष्य वर्ग को (सम् असादयत्) प्राप्त करे और (वृकः दस्यवे गवां सहस्राणि सिषासद्) हल जिस प्रकार भूमि के तोड़ने वाले किसान के लाभ के लिये सहस्रों अन्न प्रदान करता है, उसी प्रकार (त्वा-उतः) तेरी रक्षा में रहने वाला (वृकः) तेजोमय ज्ञान को प्रकट करने वाला (ऋषिः) ज्ञानदर्शी पुरुष (दस्यवे) दानशील आत्मसमर्पक शिष्य के लाभ के लिये (गवां सहस्राणि) सहस्रों वेदवाणियों को (असिषासत्) प्रदान करे । अथवा वह ऋषि (दस्यवे वृकः) दस्यु, दुष्ट जन के लिये वृक के समान भयजनक होकर (गवां सहस्राणि असिषासत्) सहस्रों भूमियों का भोग करता है ।

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥

भा०—(यः) जो (चिकिद्यः) जानने योग्य, सर्ववेद्य, (ऋषि-चोदनः) ऋषियों, साक्षात् तत्वदर्शी पुरुषों से उपदेश करने योग्य आत्मा (उक्थेभिः) नाना शास्त्र-वचनों से भी (न विन्धते) नहीं जाना जाता (तम्) उस (अरिष्यन्तं न इन्द्रम्) सर्वरक्षक के समान ऐश्वर्यवान् प्रभु को (भोजसे) रक्षा और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, (नव्यस्या मती) अति स्तुति वाणी, द्वारा (अच्छ वद) साक्षात् उपदेश कर ।

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्वि१मा विश्वा भुवनानि चिक्रदादादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥ ४ ॥

भा०—इन्द्र विषयक उपदेश। (उत्तमे पदे) परम, उत्तम पद पर विद्यमान (यस्मै) जिस प्रभु के वर्णन करने के लिये (त्रि-धातुम्) तीनों प्रकार से धारित (सप्त-शीर्षाणम् अर्कं) सात शिरों वाले अर्चना योग्य मन्त्रगण की (आनृचुः) स्तुति करते हैं, (सः तु) वही परमेश्वर (इमा विश्वा भूतानि) इन समस्त भुवनों को (चिक्रदत्) शासन करता है और (पौंस्यं जनिष्ट) पौरुष, बल, महती शक्ति प्रकट करता है, वेद मन्त्र प्रभु की स्तुति करने योग्य होने से 'अर्क' है। ऋक् यजुः साम तीन रूप से धारण करने योग्य होने से 'त्रिधातु' और सात छन्द उसके प्राण हैं।

अथवा—(यस्मै उत्तमे पदे) उत्तम पद, पर विद्यमान जिसके लिये (सप्तशीर्षाणम् त्रिधातुम् आनृचुः) सात शिरों वाला, तीनों लोकों का धारक बतलाते हैं वही इन समस्त विश्वों का शासक और शक्तिप्रकाशक है। प्रभु के सात शिर सप्त भुवन वा सप्त विकृति हैं।

यो नो॑ दा॒ता वसू॑ना॒मिन्द्रं॒ तं हू॑महे व॒यम्।
वि॒द्मा ह्य॑स्य सुम॒तिं नवी॑यसीं ग॒मेम॒ गोम॑ति व्र॒जे ॥५॥१८॥

भा०—(यः) जो (नः) हम (वसूनां दाता) समस्त जीवों का दाता, वा समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का देने वाला है (तम् इन्द्रम् हूमहे) हम उसी ऐश्वर्यवान् की पुकार वा उसी से प्रार्थना करें। (अस्य) उसी (नवीयसीं) अति स्तुत्य (सु-मतिं) उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी को हम (विद्म) जानें और (गोमति व्रजे) इन्द्रियों रूप अश्वों से युक्त गमन साधन रथवत् इस देह में ही हम उसे (गमेम) प्राप्त करें, जानें वा (गोमति व्रजे) गौओं से युक्त व्रजवत् ज्ञान वाणियों से युक्त उपगन्तव्य आचार्य वा गुरु के अधीन रहकर हम इस 'इन्द्र' प्रभु का ज्ञान वा प्राप्ति करें। आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः। मनु०।

यस्मै॒ त्वं व॑सो दा॒नाय॒ शिक्ष॑सि॒ स रा॒यस्पोष॑मश्नुते।
तं त्वा॑ व॒यं म॑घवन्निन्द्र गिर्वणः सु॒ताव॑न्तो हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने हारे, सबमें बसने हारे, सबको आच्छादन पालन करने हारे प्रभो! (यस्मै दानाय शिक्षसि) जिस दान-शील पुरुष को तू दान करता है (सः) वह (रायः पोषम् अश्नुते) ऐश्वर्य की वृद्धि को प्राप्त करता है। हे (गिर्वणः) वेदवाणियों से सेवने योग्य, वा वाणियों के दातः! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (मघवन्) पूजित पद-युक्त! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न अनित्य पदार्थों वाले (ते त्वा हवामहे) उस तेरी प्रार्थना करते हैं। हमें भी नाना ऐश्वर्य प्रदान कर।

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।

उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! प्रभो! तू (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न) हिंसक नहीं है, अथवा निर्दुग्ध गाय के समान अदानशील नहीं है। तू (दाशुषे सश्चसि) दानशील, यजमान आत्म-समर्पक के सदा साथ रहता है। (मघवन्) पूजित धन युक्त! (देव-स्य ते) दानशील तेरा (दानं) दिया धन (उप-उप इत् नु पृच्यते) बरा-बर प्राप्त होता है और (भूयः इत् नु) खूब अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन्।

यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) बलपूर्वक (शुष्णम्) मेघ के विद्युत् के समान प्रजा के शोषण करने वाले बलवान् शत्रु को (वधैः) आघात-कारी शस्त्रास्त्रों से (नि घोषयन्) विनाश करता हुआ (क्रिविं) जल से कूप तड़ागवत् इस समस्त संसार को अपने पराक्रम से (अभि प्र ननक्षे) पूर्ण करता, व्यापता है और (यत्) जो (अमूं दिवम् प्रथयन् अस्तम्भीत्) इस पृथिवी को विस्तृत करता हुआ उस आकाश वा सूर्य को भी स्थिर करता

है, और (आत् इत्) अनन्तर वह (पार्थिवः) समस्त पृथिवियों का स्वामी स्वयं पृथिवीवत् माता होकर (जनिष्ट) समस्त स्थावर जंगम संसार को उत्पन्न करता है।

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः॥ ९॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु का (विश्वः आर्यः) समस्त श्रेष्ठ (अरिः) पुरुष (दासः) सेवकवत् (शेवधि-पाः) उसी के खज़ाने की रक्षा करने वाला है। उस (अर्ये) स्वामी (रुशमे) सर्व नियन्ता, (पवीरवि) पापनिवारक राजदण्डवत् परम तप रूप वज्र के धारक प्रभु के अधीन समस्त विश्व विद्यमान है। हे प्रभो! (सः रयिः तुभ्य इत् अज्यते) यह सब मूर्त्त संसार तेरे ही गुणों के दर्शन के लिये प्रकट है। अथवा (यस्यायं विश्वः आर्यः दासः) जिसका यह समस्त श्रेष्ठ जन सेवकवत् है जिसका स्वयं अपने खजाने को बचानेवाला शत्रुतुल्य है, जो धन (अर्ये रुशमे पवीरवि) वैश्य, शस्त्रधारी क्षत्रिय में (तिरः चित्) सुगुप्त है वह भी (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे लिये ही प्रकट प्राप्त है।

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः॥१०॥१९॥

भा०—(तुरण्यवः) क्षिप्रकारी, कर्मकुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (घृत-श्चुतम्) जलदाता मेघ के तुल्य उदार तेजःप्रद सूर्यवत् प्रकाश स्वरूप (मधुमन्तं) जलयुक्त समुद्रवत् अपार अन्नयुक्त पृथिवीवत् पालक (अर्कं) अर्चना करने योग्य प्रभु की (आनृचुः) स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं कि (अस्मे रयिः पप्रथे) हमारा ऐश्वर्य बढ़े, (अस्मे वृष्ण्यं शवः) हमारा सुखवर्षक बल बढ़े। (अस्मे सुवानासः इन्दवः) हमारे उत्पन्न होते हुए, वा उत्तम प्रजा उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य और वीर्य हों। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[५२]

आयुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ६ विराड् बृहती । २ पादनिचृत् पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥ १ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! (यथा) जिस प्रकार और जितना (विवस्वति मनौ) विविध प्रजाओं के स्वामी, सुव्यवस्थापक राजा के पद पर विराज कर (सुतं सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य को (अपिबः) तू उपभोग करता है, और (यथा) जिस प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्रिते) तीनों विद्याओं में पारंगत विद्वान् के पद पर भी (छन्दः जुजोषसि) वेद वाणी का प्रेमपूर्वक सेवन करता है उसी प्रकार तू (आयौ) मनुष्यों के बीच में (सचा) वर्त्तमान रहकर भी (मादयसे) हर्ष लाभ करता और हर्ष प्रदान करता है । वह प्रभु ही राजा के राज्य और विद्वान् के ज्ञान और मनुष्य मात्र के हर्ष को पालता, स्वीकार करता और देता है ।

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (पृषध्रे) जलसेचक मेघ को धारण करने वाले (मेध्ये) उत्तम अन्न के हितकारी (सुवाने) उत्पादक (मातरिश्वनि) आकाशगामी वायु में आनन्द लाभ करता है । और (यथा) जिस प्रकार (दशशिप्रे) दशों प्राणों को मुकुटवत् धारण करने वाले वा (दशोण्ये) दश प्राण युक्त (स्यूम-रश्मौ) रश्मियों से युक्त तेजस्वी (ऋजु-नसि) सरल नासिका वाले, अभ्यासी पुरुष में (सोमं) परमानन्द रस का पान करता है ।

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥३॥

भा०—(यः) जो (केवला उक्था दधे) केवल उत्तम स्तुत्य वचनों को स्वीकार करता है, (यः धृषिता) जो सब दुष्टों को धर्षण करने हारा (सोमं अपिबत्) सोम रस का पान करता, उत्पन्न जगत् वा ऐश्वर्य का पुत्रवत् पालन करता है, (मित्रस्य धर्मभिः) मित्रवत् सूर्य के धारणसामर्थ्यों से (विष्णुः) व्यापक वायु (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनों लोकों में व्यापता है वही 'इन्द्र' है ।

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञा वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (यस्य) जिसके (वाजे) यज्ञ में (स्तोमेषु) स्तुतिवचनों में (चाकनः) अभिलाषा करता है, (गोदुहः सुदुघाम् इव) गौ दुहने वाले उत्तम दुग्धदात्री गौ को जिस प्रकार बुलाते हैं उसी प्रकार (वयं) हम लोग (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) धन, ज्ञान, यश, अन्नादि के इच्छुक होकर (जुहूमसि) तुझे पुकारते हैं, तेरी प्रार्थना करते हैं ।

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसु गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५॥२०॥

भा०—(यः नः दाता) जो हमें देता है, (सः नः पिता) वही हमें पालन करता है । वह (महान् उग्रः) बड़ा भारी, बलवान् (ईशानकृत्) समस्त ऐश्वर्य को बनाने वाला शासक है । वह (उग्रः) बलवान् (मघवा) उत्तम धनाढ्य होकर (पुरु-वसु अयामन्) बहुत धन प्रदान करता है और वह (गोः अश्वस्य नः प्रदातु) गौ अश्व आदि हमें देवे । इति विंशो वर्गः ॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सर्व व्यापक ! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिस दानशील को दान देता है (सः रायः पोषम् इन्वति) वह ऐश्वर्य की समृद्धि को प्राप्त करता है । हम (वसु-पतिं) सब लोकों और जीवों के पालक (शत-क्रतुं) अनेक कर्मों के कर्त्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक होकर (हवामहे) स्तुति प्रार्थना करते हैं ।

कदा च न प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (कदाचन प्रयुच्छसि) कभी भी प्रमाद नहीं करता । (उभे जन्मनी नि पासि) इह और पर दोनों लोकों को पालन करता है । हे (तुरीय) सबसे पार ! हे (आदित्य) सब विश्व के नियन्तः ! (ते) तेरा यह (हवनं इन्द्रियम्) देने योग्य ऐश्वर्य है जो (दिवि) मोक्ष में (अमृतं) अमृतस्वरूप (आ तस्थौ) विद्यमान है । (२) इसी प्रकार जगत् आदि तीनों अवस्थाओं से अतीत आत्मा के ही इन्द्रिय विभूति हैं जो (दिवि) शिरोरूप मस्तक में जीवित जागृत रूप में विद्यमान है ।

यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन् इन्द्र) उत्तम पूजित धन के स्वामिन् ! दुष्टों के नाश करने और ऐश्वर्य के देने हारे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य प्रभो ! हे (शिक्षो) दानशील ! तू (यस्मै दाशुषे) जिस दानशील पुरुष को (शिक्षसि) दान करता है वह ही सम्पन्न हो जाता है । हे (वसो) सर्वस्वामिन् ! (उत) और तू (कण्ववत्) ज्ञानी के समान (अस्माकं गिरः) हमारी वाणियों को और (सु-स्तुतिं हवम्) उत्तम स्तुति और याचना को (श्रृणुधि) श्रवण कर ।

अस्ताविं मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—(मन्म) मनन करने योग्य, ज्ञानमय (पूर्व्यं) सनातन ब्रह्म वेद का (अस्तावि) स्तवन करो और उसका (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (वोचत) उच्चारण करो । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पूर्वीः) सनातन वेदवाणियों की (अनूषत) स्तुति करो, और (स्तोतुः (मेधाः) स्तुतिकर्त्ता की वाणियों- और बुद्धियां स्वयं (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं ।

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः १०।२१

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर ही (रायः) समस्त ऐश्वर्यों और (बृहतीः) जगत् की बड़ी २ शक्तियों को (सम् अधूनुत) अच्छी प्रकार संचालित करता है । वही (क्षोणीः सं सूर्यम् उ सम्) समस्त पृथिवियों और सूर्य को चलाता है, (शुचयः शुक्रासः) शुद्धाचारवान्, तेजस्वी पुमान् पुरुष और (गवाशिरः सोमाः) वेदवाणी का आश्रय लेने वाले जितेन्द्रिय पुरुष (इन्द्रम् सं सम् अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार स्तुति करते, उसे प्रसन्न करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५३]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराड बृहती । ३ आर्ची स्वराड् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पंक्तिः । ८ विराट् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उपमं त्वा मघोनाञ्ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम, प्रशंसित धनसम्पन्न हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ऐश्वर्यप्रद ! (मघोनां उपमानं) धनवानों के आदर्श और (वृष-

माणां च) मेघवत् सुखों की वृष्टि करने वाले उदार दाताओं में (ज्येष्ठं) सबसे बड़े, सबसे उत्तम, (पूर्भित्-तमं) शत्रुओं के दृढ़ दुर्ग भेदन करने में अति कुशल जीवों के पुर रूप देहबन्धनों को भेदन करनेवाले, (गो-विदम्) भक्त की वाणी को जानने वाले, (ईशानं) परमेश्वर से हम (रायः ईमहे) नाना ऐश्वर्यों की याचना करते हैं ।

य आयुं कुत्सम॑तिथि॒ग्वमर्द॑यो वावृधा॒नो दि॒वेदि॑वे ।
तं त्वा॑ व॒यं हर्य॑श्वं श॒तक्र॑तुं वाज॒यन्तो॑ हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (दिवे-दिवे) दिनोदिन (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ (आयुम्) शरण में आने वाले (कुत्सम्) स्तुति करने वाले और (अतिथिग्वम्) अतिथिवत् परमेश्वर के प्रति उत्तम स्तुति वाणी का प्रयोग करने वाले पुरुष को (अर्दयः) प्राप्त होता वा सन्मार्ग में चलाता है (तं हर्यश्वं) उस तुझ मनुष्यों को अश्वों के तुल्य सन्मार्ग में संचालन करने वाले (शत-क्रतुं त्वां) सैकड़ों कर्म और प्रज्ञाओं वाले तुझ प्रभु वा विद्वान् से (वाजयन्तः) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना करते हुए हम (हवामहे) याचना किया करें ।

अर्दयः—अर्द गतौ याचने च । भ्वादिः । स्वार्थे णिच् ।

आ नो॒ विश्वे॑षां॒ रसं॒ मध्वः॑ सिञ्च॒न्त्वद्र॑यः ।
ये प॑रा॒वति॑ सुन्वि॒रे जने॒ष्वा ये अ॑र्वा॒वतीन्द॑वः ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (इन्दवः) विद्वान् तेजस्वी जन (परावति) परम ब्रह्म में (सुन्विरे) अभिषिक्त होते हैं और (ये) जो (अर्वावति) इस लोक में भी (जनेषु) मनुष्यों के बीच (सुन्विरे) प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं वे (अद्रयः) मेघ के समान (नः विश्वेषां) हम सब के हितार्थ (मध्वः रसं) मधुर ज्ञान का रस ओषधि-रसवत् ही (आसिञ्चन्तु) आसेचन किया करें, प्रदान करें ।

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४॥२२॥

भा०—(यत्र) जिस दशा में तू (सोमस्य तृम्पसि) ऐश्वर्य से तृप्त होता है, उसी दशा में तू (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषों को और द्वेष करने वाले जनों को (जहि) विनष्ट कर और (अव कृधि च) नीचा कर । (चित्ते मदिरासः) चित्त में सुप्रसन्न (अंशवः) व्याप्त विद्यावान् (विश्वे) समस्त जन (शिष्टेषु) शिष्टों, विद्वानों के बीच में (त्वा वसु सन्वन्तु) तुझे समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (शन्तम) अति शान्तिदायक ! हे (स्वापे) उत्तम बन्धो ! तू (मित-मेधाभिः) परस्पर सत् संगतियुक्त, (ऊतिभिः) रक्षाओं, और (शं-तमाभिः) अति कल्याणकारक, शान्तिदायक (अभिष्टिभिः) अभीष्ट सुख देने वाले उपायों सहित हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू हमारे (नेदीयः इत्) सदा अति समीप ही (आ इहि) प्राप्त हो ।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (ते) तेरे (उक्थिनः) उत्तम वेद-वचनों के ज्ञाता जन (शचीभिः) उत्तम वाणियों द्वारा (ते क्रतुं) तेरे यज्ञ, बुद्धि वा ज्ञान को (आनुषक्) निरन्तर (पुनते) पवित्र करते रहते हैं वह तू (प्र सु-तिर) उनको अच्छी प्रकार बढ़ा । और (प्रजासु) प्रजाओं में (आजि-तुरं) संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाले (सत्पतिं) सज्जनों के पालक (विश्व-चर्षणिं) सबके द्रष्टा (आ-भगम्) सब प्रकार से भजन सेवन करने योग्य को (कृधि) अधिकारवान् कर ।

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ते) तेरी (साधिष्ठः) सबसे उत्तम साधना करने वाला है वह (अवसे) हमारी रक्षा करने वाला हो। हम (भरेषु) यज्ञों में भी (ते स्याम) तेरे ही होकर रहें। (वयं) हम लोग (देव-हूतिभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्वीकृत (होत्राभिः) वाणियों और यज्ञ सत्क्रियाओं द्वारा (ससवांसः) तेरी स्तुति करते हुए ही (मनामहे) तेरा चिन्तन उपासना किया करें।

अहं हि ते हरिवो ब्रह्मवाजयुराजिं यामि सदोतिभिः।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ ८ ॥ २३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के तुल्य मनुष्यों पर वश करने हारे ! (अहं हि) मैं (ते ब्रह्म यामि) तेरे स्तोत्र, ज्ञान और महान् ऐश्वर्य की याचना करता हूं। मैं (वाजयुः) बल की कामना करता हुआ, (सदा ऊतिभिः) सदा तेरी ही रक्षाओं और शक्तियों द्वारा (आजिं यामि) युद्धादि शत्रुगण को उखाड़ डालने वाले बल की याचना करता हूं। मैं (अश्वयुः गव्युः) अश्वों और गौवों की कामना करता हुआ (मथीनां अग्रे) शत्रुओं को मथन करने वाली सेनाओं के भी अग्रभाग में (त्वाम् इत् इव) तुझे ही (सं तममे) अच्छी प्रकार स्थापित करता हूं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५४]

मातरिश्वा काण्व ऋषिः ॥ १, २, ५—८ इन्द्रः। ३, ४ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५ निचृत् बृहती। ३ बृहती। ७ विराड बृहती। २, ४, ६, ८ निचृत् पंक्तिः ॥

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कारवः) विद्वान् स्तुति कर्त्ता जन (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ते) तेरे (एतत् वीर्यं) इस महान् सर्व प्रत्यक्ष बल का (गृणन्ति) उपदेश करते हैं। (ते पौरासः) वे दृढ़ेन्द्रिय पुरुष (घृत-श्रुतं) तेज के देने वाले तुझ को ही (स्तोभन्तः) स्तुति करते हुए (ऊर्जम् आवन्) बल को प्राप्त करते हैं और (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से तुझे (नक्षन्) प्राप्त करते हैं।

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (येषां) जिन के (सुतेषु) उत्पन्न किये उत्तम कर्मों वा ऐश्वर्यों पर (मन्दसे) प्रसन्न होता है वे अपने (सुकृत्यया) उत्तम कर्म-सामर्थ्य से (अवसे) रक्षा के निमित्त (इन्द्रम्) दुष्टों के नाशक उसी स्वामी को (नक्षन्त) प्राप्त करते हैं। हे प्रभो ! तू (यथा) जिस प्रकार (संवर्त्ते) सम्यक् दृष्टि से वर्त्तने वाले सम्यङ् व्यवहारवान् पुरुष पर (अमदः) प्रसन्न होता है, और (यथा) जिस प्रकार (कृशे) तपस्या द्वारा शरीर को कृश करने वाले त्यक्तभोगी पर या निर्बल पर प्रसन्न या कृपालु होता है उसी प्रकार तू (एवं अस्मे मत्स्व) हम पर भी प्रसन्न, कृपालु रह।

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप (विश्वे) सब लोग (नः) हम से (सजोषसः) प्रीतियुक्त होकर (नः उप गन्तन) हमें प्राप्त होवें। (वसवः) रक्षक, (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले, प्राणवत् प्रिय पुरुष, (नः) हमें (अवसे) रक्षार्थ (आगमन्)-प्राप्त हों। और (मरुतः) वे बलवान् पुरुष (नः हवम् शृण्वन्तु) हमारा आह्वान, हमारी पुकार सुनें।

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४॥२४॥

भा०—(पूषा) सर्वपोषक, सूर्य (विष्णुः) व्यापक वायु, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वाणी, और (सप्त सिन्धवः) शरीरस्थ सातों गतिशील और शरीर को बांधने वाले प्राण, (आपः) जल, (वातः) वायु, (पर्वतासः) मेघगण (वनस्पतिः) वनस्पति वृक्षादि, ये सब (मे हवनं अवन्तु) मेरे यज्ञाहुति को प्राप्त हों । (पृथिवी मे हवम् शृणोतु) समस्त पृथिवी मेरे कथन या दान यज्ञादि को श्रवण करे । मेरी प्रसिद्धि हो ।

यद्दिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मघवत्तम) पूज्य धन के स्वामियों में सर्वश्रेष्ठ ! (यत् ते राधः) जो तेरा धन (माघोनं) धन स्वामी बनाने वाला है, तू (सधमाद्यः) सब के साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला होकर (तेन) उस धन से (नः) हमें भी (वृधे) बढ़ाने और (नः दानाय) हमें प्रदान करने के लिये (बोधि) जान, हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! तू (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्वसेवनीय है ।

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥

भा०—हे (आजिपते) युद्धों के पालक ! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावान् ! (त्वम् इत् हि नः) तू ही हमें (वाजे आवक्षि) संग्राम में धारण कर । (देव-वीतिभिः) विद्वानों या शुभ गुणों के प्रकाश करने वाली (वीती) ज्ञानयुक्त (होत्राभिः) वाणियों से (ससवांसः) स्तुति करते हुए विद्वान् जन (वि शृण्विरे) विविध प्रकार से सुने जावें ।

सन्ति ह्य१र्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥७॥

भा०—(अर्ये) स्वामी के आश्रय ही (जनानाम्) मनुष्यों की सब (आशिषः सन्ति) आशाएं होती हैं और (इन्द्रे) उसी ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन समस्त जनों का (आयुः) जीवन है । हे (मघवन्) प्रभो ! तू (अस्मान् रक्षस्व) हमारी रक्षा कर और (अवसे) हमें तृप्त करने के लिये (पिप्युषीम्) पुष्टि और वृद्धिकारक (इषं उप धुक्षस्व) अन्न प्रदान कर ।

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८॥२५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयम्) हम (ते) तेरा (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (विधेम) वर्णन करें । हे (शत-क्रतो) सैंकड़ों ज्ञान विज्ञानों से सम्पन्न ! (त्वं) तू (अस्माकं) हमारा ही है । तू (प्र.स्कण्वाय) उत्तम विद्वान् को (महि स्थूरं) बहुत बड़ा भारी, स्थिर (शशयं) अति प्रशंसनीय, (अह्रयं) अक्षीण, अविनाशी, (राधः नि तोशय) धन प्रदान कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५५]

कृशः काण्व ऋषिः ॥ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, ४ गायत्री । ३, ५ अनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूरीदिन्द्रस्य वीर्य१ं व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) प्रजा के नाशक, दस्यु, दुष्ट पुरुष के नाश करने के लिये वृक के समान भयप्रद ! (इन्द्रस्य ते) ऐश्वर्यवान् दुष्ट हन्ता तेरे (वीर्यं भूरि इत्) बहुत अधिक बल को ही मैं (वि अख्यम्)

विशेष रूप से साक्षात् करता हूं और (ते भूरि राधः) तेरा बहुत अधिक धन हमारे सन्मुख आता है ।

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते ।
मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

भा०—(दिवि) आकाश में (शतं) सैकड़ों (श्वेतासः) शुभ वर्ण के, (उक्षणः) नाना पिण्डों, ग्रहों उपग्रहों को वहन करने वाले सूर्य-गण (तारः न) तारों के समान ही (रोचन्ते) चमकते हैं । वह (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (दिवं न) सूर्य के समान तेजस्वी पिण्डों को भी (तस्तभुः) थाम सकते हैं, वह सब उसी प्रभु का महान् बल है ।

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥

भा०—(शतं वेणून्) सौ अर्थात् अनेक वीणाएं, (शतं शुनः) सौ, अर्थात् अनेक कुत्ते (शतं म्लातानि चर्माणि) सैकड़ों बनाये हुए चमड़े, और (शतं बल्वजस्तुकाः) सौ मूंज की सी गुच्छों वाली वनभूमियां और (अरुषीणां चतुःशतम्) दीप्तियुक्त चमकती कान्ति वाली भूमियों की ४ सौ संख्या । ये सब जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होती हैं वैसे (मे) मेरे भी हों । अर्थात् यह राजसी सैकड़ों बाजे, सैकड़ों कुत्तों के समानस्वामिभक्त प्रहरी वा सेवक, सैकड़ों रक्षार्थ ढालें, और सैंकड़ों वन भूमियें, और सैकड़ों चारों ओर पके खेत ये सब ऐश्वर्यवान् वीर राजा की विभूति हैं वे हमें प्राप्त हों ।

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः ।
अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

भा०—हे (सु-देवाः) उत्तम कामनावान् मनुष्यो ! जीवगण ! आप लोग (काण्वायनाः स्थ) विद्वान् पुरुषों के अधीन उसके आश्रय

उसके समीप जाने वाले होकर रहो। आप लोग (वयः वयः चरन्तः) एक के बाद दूसरी अवस्था को व्यतीत करते हुए, वा एक से एक, उत्तरोत्तर बल, ज्ञान, योग्यता आदि प्राप्त करते हुए, (अश्वासः न) अश्वों के समान वीरतापूर्वक (चङ्क्रमत) बराबर कदम बढ़ाते चलो।

आदित्साप्तस्यं चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः।

श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(साप्तस्य) सातों प्राणों वा सातों विकारों के स्वामी (अनूनस्य) अन्यून अर्थात् पूर्ण पुरुष का (महि श्रवः) महान् यश (चर्किरन्) सर्वत्र ही फैला रहे हैं। (श्यावीः पथः) राजस और तामस मार्गों को विद्वान् जन अतिक्रमण करता हुआ जीवगण (चक्षुषा न) चक्षु से भी उसकी विभूतियों को (सं नशे) अच्छी प्रकार साक्षात् करता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५६]

पृषध्रः काण्व ऋषिः ॥ १—४ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः । ५ अग्निसूर्यौ देवते ॥ छन्दः–१,३,४ विराड् गायत्री। २ गायत्री। ५ निचृत् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम्।

द्यौर्न प्रथिना शवः॥ १ ॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट चोर-पुरुषों के विनाश के लिये प्रकृति सिद्ध, तेजस्वी वीर पुरुष! (ते राधः) तेरे ऐश्वर्य को मैं (अह्रयं प्रति अदर्शम्) प्रत्यक्ष रूप में अविनाशी रूप से देखता हूं। (ते शवः) तेरा महान् बल भी (द्यौः न प्रथिना) महान् आकाश के समान विस्तृत है।

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः।

नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

भा०—(दस्यवे वृकः) दस्यु सत्-कर्मों के नाशकारी दुष्ट पुरुष

को नाश करने या दूर करने के लिये जिस प्रकार 'वृक' के समान कठोर स्वभाव वाला, बलवान् शस्त्रधारी पुरुष ही समर्थ होता है उसी प्रकार आत्मा की शक्तियों के नाशकारी काम, क्रोध, लोभ, मोहादि भीतरी चोर डाकुओं को नाश करनेवाला ज्ञान का प्रकाशक सूर्यवत् तेजस्वी, (पौतक्रतः) पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाला वह प्रभु (मह्यं) मुझे (नित्याद्) नित्य, सनातन ज्ञान-कोश वेद से (दशसहस्रा वयः) दस सहस्र मन्त्र रूप धन, (अमंहत) प्रदान करता है। इसी प्रकार आचार्य भी शिष्य के अज्ञान दूर करने वाला हो; और वह नित्य वेद के दस सहस्र ऋचाओं का ज्ञान प्रदान करे। वृकश्चन्द्रमा भवति, विवृतज्योतिष्को वा, विकृतज्योतिष्को वा, विक्रान्तज्योतिष्को वा। आदित्योपि वृक उच्यते यदा वृङ्क्ते। श्वापि वृक उच्यते विकर्त्तनात्। निरु० ५।४।१॥ वृको लाङ्गलो भवति विकर्त्तनात्। निरु० ६।५।२॥ अत्र दस्युपक्षे विकर्त्तनात् वृकः। आदित्यपक्षे विद्वत्पक्षे ईश्वरपक्षे च विकृतज्योतिष्को विक्रान्तज्योतिष्कोः यदावृङ्क्ते इति वृक। इति विवेकः।

दस्युः—दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थात् उपपदस्यन्त्यरिमनसा, उपदासयति कर्माणि।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम्। शतं दासाँ अति स्रजः॥३॥

भा०—वह प्रभु (मे) मुझ प्रजाजन को (गर्दभानां शतम्) सौ गर्दभ अनेक जाति के जीव, (ऊर्णावतीनाम् शतम्) ऊन वाली भेड़ों की जाति के सौ, अनेक पशु (शतं दासान्) सौ दास, भृत्य, कर्म-कर (अति-स्रजः) प्रदान करता है। जब भृत्यों ने भृति अर्थात् शरीरपोषण मात्र वेतन लेकर ही कार्य करना है तो उनका एक के यहां से दूसरे के यहां परिवर्त्तन हो जाना कोई असंगत नहीं है। एक राजा का एक विद्वान् की सेवा में सैकड़ों भृत्य नियुक्त करना क्या बुरा है? जब कि उनका वेतन वैसा का वैसा और कार्य भी वैसा ही है। क्या इसी प्रकार शत्रुनाशक सेनादि के सौ २ के दस्तों का परस्पर दान-आदान नहीं होता? क्या वह बुरा है?

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।
अश्वानामिव यूथ्याम् ॥ ४ ॥

भा०—(अश्वानाम् यूथ्याम् इत् न) अश्वों या घुड़सवार सैनिकों की टुकड़ी या सेना के समान ही (तत्र उ अपि) वहां भी (पूत-क्रतायै) पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाले व्यक्ति की सेवा में उपकार के लिये (व्यक्ता) स्पष्टरूप से (प्रअनीयत) उक्त सैकड़ों पशु गधे, भेड़ और भृत्यों को कार्य में लगा दिया जावे ।

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः । अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—(चिकितुः) ज्ञानवान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रनायक (हव्य-वाट्) उत्तम अन्न को ग्रहण करने वाला हो । (सः) वह (सुमद्-रथः) उत्तम स्वरूप, और उत्तम रथ वाला हो । वह (शुक्रेण शोचिषा) कान्तियुक्त तेज से (अग्निः) अग्नि के समान ही, (शुक्रेण शोचिषा) वीर्य और तेज, ब्रह्मचर्य और उसके प्रभाव से युक्त, (बृहत् सुरः) महान् सूर्य के समान (अराचत) चमके, प्रकाशित हो, सबको प्रिय लगे । (दिवि सूर्यः) आकाश में सूर्य के समान वह (दिवि) ज्ञान विज्ञान वा उस पृथिवी पर (अरोचत) चमकता है । इति सप्तविंशो वर्गः॥

[५७]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्याचरणशील स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (देवा) उत्तम दानशील, ज्ञान धनादि के दान देने में समर्थ

होकर (पूर्व्येण) अपने पूर्व के, वा शान्तिपूर्ण (क्रतुना) कर्म सामर्थ्य से (युक्ता) युक्त एवं सावधान, एकाग्रचित्त, (यजत्रा) यज्ञशील दानपरायण, ईश्वरोपासना में रत होकर (तविषं) बल या दृढ़तापूर्वक (आ गच्छतम्) और आगे बढ़ो । (शचीभिः) शक्तियों और वेदवाणियों द्वारा (इदं तृतीयं सवनं) इस तृतीयसवन, तीसरे आश्रम को भी (पिबथः) पालन करो ।

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद् वर्षाणि तत् तृतीयं सवनं । अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती । जागतं तृतीयं सवनं तस्यादित्या अन्वायत्ताः । प्राणा वावादित्या एतेहीदं सर्वमाददते । तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ (छान्दोग्योपनिषद् । अ० ३ । ख० १६ ॥

जीवन के ४८ वर्ष बीतने पर तीसरा सवन है । वह जगत् के उपकारार्थ होता है । उसका ज्ञापक जगतीछन्द है । जगतीछन्द के ४८ अक्षर होते हैं । उसको आदित्य प्राप्त होते हैं । प्राण आदित्य हैं, वे उसका ग्रहण करते हैं । इस अवस्था में तप करना यज्ञ में तृतीय सवन के समान है । जो यज्ञ का नाश न करे वह उन्नति को प्राप्त होता है और उसके सब दुःखों का नाश होता है ।

युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) दिव्य गुणों के धारण करने वाले (त्रयः एकादशासः) ११ × ३ = ३३ (सत्याः) सत् गुण से युक्त हैं । विद्वान् पुरुषों ने (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) इस सत्य का पहले ही दर्शन किया है । हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (दीद्यग्नी) प्रज्वलिताग्नि होकर (युवां) आप दोनों (अस्माकं) हमारे (सवनं यज्ञं) यज्ञ

सवन का प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (सोमं पातम्) यज्ञ में ओषधि रसवत् देह में वीर्य का पालन और उसका ज्ञान-अर्जनादि में उपयोग किया करो ।

पनाय्यं तद॑श्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः) आकाश (रजसः) अन्तरिक्ष और (पृथिव्याः) भूमि का (वृषभः) मेघ, सूर्य अग्निवत् वर्षण करने वाला, विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों के प्रति (पनाय्यं) स्तुत्य (कृतं) कर्त्तव्य कर्म का उपदेश करे । (ये) जो विद्वान् लोग (गविष्टौ) वेद-वाणियों के ज्ञान प्रदान के निमित्त (सहस्रं शंसा) सहस्रों मन्त्रों का उपदेश करते हैं हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (तान् सर्वान्) उन सब के (उप) पास (पिबध्यै) व्रत पालन और ज्ञान प्राप्ति के लिये (उप यातम्) प्राप्त होवो ।

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥२८॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य का परित्याग कर सत्य व्रत का ही पालन करने की प्रतिज्ञा करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यजत्रा) यज्ञशील; दानशील होकर (इमा गिरः उप यातम्) इन वेद-वाणियों को प्राप्त करो । (अयं वां भागः निहितः) यह तुम दोनों का सेवन करने योग्य मार्ग निश्चित किया गया है । (अस्मे) हमारे इस (मधुमन्तम्) मधुर ज्ञान से युक्त (सोमं) उपदेश का (पिबतं) पान करो और (शचीभिः) उत्तम वाणियों, शक्तियों और सत्क्रियाओं से (दाश्वांसम् प्र अवतम्) ज्ञानदाता को उत्तम रीति से प्राप्त होवो और उसकी रक्षा करो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[५८]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ १ विश्वेदेवा ऋत्विजो वा । २, ३ विश्वेदेवा देवताः ॥
छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् १

भा०—(यं) जिस (यज्ञं) पूजा, अर्चना, उपासना करने योग्य परमेश्वर की (बहुधा) बहुत से प्रकारों से (कल्पयन्तः) कल्पना करते हुए, (सचेतसः) ज्ञानवान्, तत्समान चित्त होकर (ऋत्विजः) प्रति ऋतु, प्रति प्राण, ज्ञानपूर्वक यज्ञोपासना करने वाले, विद्वान्जन (इमं) इस उपास्य यज्ञ को (वहन्ति) हृदय में ज्ञान और कर्मरूप से धारण करते हैं। (यः) जो (अनूचानः) विद्वान्, बहुश्रुत (ब्राह्मणः) ब्रह्म, वेद का ज्ञाता पुरुष (युक्तः आसीत्) इस यज्ञ वा उपासना कार्य में नियुक्त होता है (तत्र) उसमें (यजमानस्य का स्वित् संवित्) यजमान की किस प्रकार मनोभावना, वा पारमार्थिक प्राप्ति होती है ?

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः । एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥२॥

भा०—उस उपास्य को यज्ञ द्वारा उपासना करने में यजमान की ऋत्विजों के साथ इस प्रकार की सम्यग् दृष्टि होनी चाहिये कि—जिस प्रकार (एकः एव अग्निः) एक ही अग्नि (बहुधा समिद्धः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि आदि नाना प्रकार से संदीप्त किया जाता है, और जिस प्रकार (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्वम् अनु प्रभूतः) समस्त विश्व के प्रति प्रकाश ताप देने और जगत् के गतिमान् पिण्डों को स्तम्भन करने में पर्याप्त समर्थ होता है और जिस प्रकार (एका एव उषाः) एक ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब ब्रह्माण्ड को विशेष रूप से चमका देती

है, इसी प्रकार (इदं) यह (सर्वम्) सब भी (एकं वा वि बभूव) एक ही सत् पदार्थ नाना रूप से प्रकट होता है। समस्त विश्व में वही परमात्मा, अग्निवत् स्वप्रकाश, सूर्यवत् सर्वप्रकाशक और उषा वत् सर्व जगत् का प्रवर्तक है।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अतिरिक्तं पिबध्यै ३।२९

भा०—विराट् रथ का वर्णन। (यस्य योगे) जिसके प्राप्त होने पर (चित्रा मघा अधिजज्ञे) अद्भुत ऐश्वर्य की विभूति उत्पन्न होती है (तं रिक्तम्) सर्वातिशायी, सब से बढ़ के शक्तिशाली उसका (पिबध्यै) आनन्द-रस पान करने के लिये (वां अति हुवे) आप दोनों को मैं उपदेश करता हूं। वह कैसा है। अग्नि के समान (ज्योतिष्मन्तं) ज्योतिष्मान्, तेजोमय (केतुमन्तं) ज्ञानवान् (त्रिचक्रं रथं) रथ के समान तीन चक्रों वाला, (सुखं) सुखप्रद, उत्तम आकाशों, वा इन्द्रिय वा छिद्रों से युक्त, (सु-षदं) उत्तम रीति से सुखपूर्वक रहने योग्य, व सुख से जाने या गति करने वाला, (भूरि-वारम्) बहुतों से वरणीय, बहुत से कष्टों का वारक है, (तं वा हुवे) मैं उसका तुमको उपदेश करता हूं। विराट् प्रभु ईश्वर, ज्योतिस्वरूप, ज्ञानवान् है। प्रकृति के तीन गुण उसके तीन चक्र अर्थात् संसार के रचना करने के साधनवत् हैं वह आनन्दमय, सुख से प्राप्य, सहस्रों कष्टों का वारण करता है। सब से महान् होने से 'रिक्त' है। उस ब्रह्मरस का पान करने के लिये सबको मैं उपदेश करता हूं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५६]

सुपर्णः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ जगती । २, ३ निचृज्जगती । ४, ५, ७ विराड् जगती । ६ त्रिष्टुप् ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम्।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१॥

भा०—ओषधियों में जिस प्रकार विद्युत् तत्व, और रोगनिवारक जल तत्व दोनों ही पान करने वाले को बल देते और उसके रसों को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे वरुण, दुःखवारक सर्वश्रेष्ठ! सेनापति, राजन्! (सुतेषु) उत्पन्न ऐश्वर्यों के निमित्त (वाम्) तुम दोनों का (प्र महे) उत्तम आदर करता हूं। (इमानि) ये (वां भाग-धेयानि) आप दोनों के सेवनीय अंश (प्र सिस्रते) फैल रहे हैं। (यज्ञे यज्ञे ह) प्रत्येक यज्ञ में (यत्) जो आप दोनों (यजमानाय) यजमान, यज्ञकर्त्ता को (शिक्षथः) साहाय प्रदान करते हो और (सवना भुरण्यथः) नाना उत्तम ऐश्वर्यों को पुष्ट करते हो इसलिये तुम्हारे देने योग्य अंश हैं।

निः षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते २

भा०—राष्ट्र में (इन्द्रा वरुणा) सेनापति और राजा वा सभापति दोनों ही (आस्ताम्) विराजें, स्थिर आसन पर बैठें। और (ओषधीः आपः) विशेष तेज धारण करने वाली आप्त प्रजागण (निः-षिध्वराः) शत्रुओं का निषेध, परिहार करने में समर्थ होकर (महिमानम् आशत) महान् सामर्थ्य को प्राप्त करें। (ययोः शत्रुः) जिन दोनों का का शत्रु (नकिः आत् एव ओहते) कोई भी समर्थ नहीं होता, और (या) जो दोनों (रजसः पारे अध्वनः) अन्तरिक्ष के पार के मार्ग में (सिस्रतुः) जाते हैं वे उत्तम आसन पर विराजें।

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो ! (वां) आप दोनों के प्रति (कृशस्य) तपस्या द्वारा कृश हुए तपस्वी जन की (सप्त वाणीः) सातों छन्दों वाली वेद-वाणियां (सत्यं) सत्य ज्ञान और (मध्वः) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान के (ऊर्मिम्) तरंग को (दुहते) दोहन या प्रदान करता है, अथवा, आप दोनों की वा आप दोनों के विषयक वाणियां तपस्वी जन को सत्य ज्ञान और आनन्द प्रदान करती हैं। (ताभिः) उन वाणियों से आप दोनों (शुभः पती) शुभ, कल्याण मार्ग के पालक आप दोनों उस (दाश्वांसम् अवतम्) दानशील भद्र पुरुष की रक्षा वा ज्ञान दान करते हो । जो (अदब्धः) अबाधित होकर (वान्) आप दोनों के (चितिभिः) उत्तम ज्ञानों उत्तम विचारों द्वारा (अभिपाति) रक्षा करता है ।

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य । या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ४।३९

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! आचार्य स्वयं-वृत गुरो ! (याः) जो (वाम्) आप दोनों की, (घृत-प्रुषः) जल बिन्दु-निषेकवत् शीतल सुखदायिनी, स्नेहयुक्त, (सौम्या) सौम्य, उत्तम शिष्यों के हितकारिणी, (जीर-दानवः) जीवन प्रदान करने वाली, (सप्त-स्वसारः) सात बहनों के समान सात छन्दोमयी स्वयं अनायास बाहर आने वाली, वा सुखपूर्वक अज्ञान का नाश करने वाली, (घृत-श्चुतः) तेजः प्रकाश के देने वाली वाणियां हैं (ताभिः) उन वाणियों से आप दोनों (यजमानाय) दानशील, आत्मसमर्पक जन को (ऋतस्य सदने) सत्य ज्ञान और न्याय के स्थान में (धत्तम्) स्थापित करो और (शिक्षतम्) उत्तम शिक्षा करो ।

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम्। अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ५

भा०—(महते सौभगाय) बड़े भारी सुखप्रद ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वेषाभ्याम्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, इन्द्र और वरुण, विद्युत् और जलवत् शत्रु नाशक और दुःखवारक जनों के (सत्यं महिमानम्) सच्चे महत्व और सच्चे (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की (अवोचाम) हम स्तुति करें। हे (शुभः-पती) शुभ गुणों और कर्मों के पालको ! आप दोनों (त्रिभिः सप्तेभिः) ३ × ७ = २१ तत्वों से (घृत-श्रुतः) जलप्रद, वा घृताहुति देने वाले (अस्मान्) हम लोगों का सूर्य जल, वा विद्युत् जल के समान (सु अवतम्) सदा अच्छी प्रकार रक्षा करो।

इन्द्रा॑वरुणा यदृ॒षिभ्यो॑ मनी॒षां वा॒चो म॒तिं श्रु॒तम॑दत्त॒मग्रे॑ ।
यानि॒ स्थाना॑न्यसृजन्त॒ धीरा॑ य॒ज्ञं त॑न्वा॒नास्तप॑सा॒भ्य॑पश्यम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) सत्य ज्ञान के साक्षात् दर्शन करने वाले 'इन्द्र' और गुरु, आचार्य रूप से वरण करने योग्य और पापों से निवारण करने हारे श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (यत्) जिस (मनीषाम्) ज्ञान की प्रेरणा, और (याः वाचः) जिन वाणियों और (याम् मतिम्) जिस बुद्धि और (यत् श्रुतम्) गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य जिस वेदोपदेश को (अग्रे) सबसे प्रथम (अदत्तम्) प्रदान करते हो और या जिन (स्थानानि) स्थानों, पदों या गृहादि शालाओं, आश्रमों वा लोकों को (धीराः) बुद्धिमान् लोग (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ का विस्तार करते हुए (असृजन्त) बनाते हैं उन सब को मैं (तपसा अभि अपश्यम्) तप द्वारा साक्षात् करूं।

इन्द्रा॑वरुणा सौमन॒सम॑दृप्तं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम् ।
प्र॒जां पु॒ष्टिं भू॒तिम॒स्मासु॑ धत्तं दीर्घायु॒त्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑ ॥७॥२१

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र वरुण ! हे तत्वदर्शिन् ! हे गुरो ! आप दोनों (यजमानेषु) सत्कार, मान, दान, यज्ञ, सत्संग आदि करने वाले जनों में (अदृप्तं सौमनसं) दर्प या गर्व से रहित उत्तम चित्त का भाव और (अदृप्तम् रायः पोषम् धत्तम्) गर्व से रहित धनैश्वर्य की समृद्धि

धारण कराओ और आप के सत्संगी लोगों में गर्वरहित शुद्ध चित्त और धनसम्पत्ति हो। (अस्मासु) हम में (प्रजां, पुष्टिम्, भूतिम् धत्तम्) उत्तम सन्तान, उत्तम पुष्टि और उत्तम धनसमृद्धि धारण कराओ। और (नः आयुः) हमारी आयु को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये (प्र तिरतम्) बढ़ाओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

इति वालखिल्यं समाप्तम्॥[1]

[६०]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६, १३, १७ विराड् बृहती। ३, ५ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ निचृद् बृहती। ७, १९ बृहती। २ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। १०, १६ पादनिचृत् पंक्तिः। ४, ६, ८, १४, १८, २० निचृत् पंक्तिः। १२ पंक्तिः॥ विंशत्यृचं सूक्तम्॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे सर्वाग्रणी नायक! हे प्रकाशस्वरूप! तू (अग्निभिः) गार्हपत्यादि नाना अग्नियों सहित यज्ञाग्नि के समान वा अग्नियों सहित होता के समान तू (अग्निभिः) अन्य ज्ञानी पुरुषों तथा अग्रणी, ज्ञान-प्रकाशक तेजस्वी पुरुषों के साथ (आ याहि) प्राप्त हो। (होतारं त्वां वृणीमहे) अपने समीप प्रेम से बुलाने और ज्ञान ऐश्वर्यादि देने वाले तुझ को हम वरण करते, चाहते और तुझ से ही याचना करते हैं। (यजिष्ठं) अतिदानशील (त्वाम्) तुझ को (हविष्मती) दी हुई हवि वाली आहुति अग्नि को जैसे प्रकाशित करती है उत्तम हवि,

[1] वालखिल्यसूक्ते सायणीयं भाष्यं नास्ति। ऐतरेयभाष्येऽपि तेन अष्टावेव वालखिल्यानि स्वीक्रियन्ते। माक्समूलरादि सम्पादितायां तु ऋक्संहितायामेकादश सूक्तानि पठ्यन्ते। तान्येवात्र व्याकृतानि।

आह्य ज्ञानादि से युक्त (प्रयता) अच्छी प्रकार सुसंयत, सुप्रबद्ध वाणी वा नीति (बर्हिः) आसनवत् वृद्धिशील राष्ट्र, वा प्रजाजनों वा लोकों पर (आसदे) शासनार्थ विराजने के लिये (आ अनक्तु) अच्छी प्रकार प्रकाशित करे, वह तेरे गुणों को दर्शावे।

अच्छा॒ हि त्वा॑ सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुच॒श्चर॑न्त्यध्व॒रे।
ऊर्जो॒ नपा॑तं घृ॒तकेॆ॑शमीमहे॒ऽग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल, सैन्यादि के प्रेरक ! हे (अङ्गिरः) अंग में रसवत् राष्ट्र में बलवन् ! (त्वा हि अच्छ) तुझे लक्ष्य करके ही (अध्वरे स्रुचः) यज्ञ में स्रुचों के समान ही समस्त प्रजागण, (चरन्ति) चलते हैं। हम (ऊर्जः नपातं) बल, उत्तम अन्न और वृष्टि को सूर्यादि के तुल्य नष्ट न होने देने वाले वा शक्ति के पुत्रवत् उससे प्रजाओं को बांधने और उनको स्वयं प्रबद्ध करने वाले (घृत-केशम्) स्निग्ध केश वाले, सुकेश, एवं प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञों, सत्संगों में एवं यज्ञादि कार्यों के निमित्त, सबसे पूर्व, श्रेष्ठ, (अग्निम् ईमहे) अग्रणी, तेजस्वी ज्ञानादि के प्रकाशक पुरुष को ही हम प्राप्त हों और उससे ही (ऊर्जः ईमहे) बलों, अन्नों आदि की याचना करते हैं।

अग्ने॑ क॒विर्वे॒धा अ॑सि॒ होता॑ पावक॒ यक्ष्यः॑।
म॒न्द्रो यजि॑ष्ठो अध्व॒रेष्वीड्यो॒ विप्रे॑भिः शुक्र॒ मन्म॑भिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (कविः असि) मेधावी, क्रान्तदर्शी विद्वान् हो तू (वेधाः असि) बुद्धिमान् कार्यकर्त्ता, फलों का सम्पादनकर्त्ता, जगत् का विधाता (असि) है। हे (पावक) पवित्र करने हारे ! तू (यक्ष्यः) पूज्य उपास्य (होता) सब ऐश्वर्यों का दाता है। तू (मन्द्रः) स्तुति योग्य, सबको हर्ष आनन्द का देने वाला, (यजिष्ठः) सबसे बड़ा दानी (अध्व-

रेषु) यज्ञों में (मन्मभिः) उत्तम मन्त्रों द्वारा और (विप्रेभिः) विद्वानों द्वारा (ईड्यः) स्तुत्य है ।

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) बलवन् ! हे (अजस्र) अविनाशिन् ! नित्य ! तू (अद्रोघम्) द्रोहरहित मुझ को (उशतः देवान्) उत्तम कामना वा प्रीति करने वाले देव, विद्वान् पुरुषों के पास, वा मेरे प्रति उत्तम विद्यादि के इच्छुक शिष्यों, वा विद्वानों को (वीतये) ज्ञानप्रकाश करने, रक्षा करने और उत्तम अन्नादि खाने के लिये (आ वह) प्राप्त करा। हे (वसो) विद्वन् ! पितावत् सबको बसाने वाले ! तू (सु-धिता) उत्तम भाव से स्थापित (प्रयांसि) उत्तम अन्नों को, भावों को (अभि गहि) प्राप्त कर । तू (हितः) स्थापित वा समाहित होकर (धीतिभिः मन्दस्व) उत्तम कर्मों और स्तुति, उपदेश प्रद वाणियों से प्रसन्न और तृप्त हो ।

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५॥३२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (त्वम् इत्) तू ही (स-प्रथाः) सब से बड़ा, (असि) है । हे (त्रातः) रक्षक ! तू ही (ऋतः) सत्यस्वरूप, न्यायशील और तू ही (कविः) भूत भविष्यादि को लांघ कर सर्वोपरि द्रष्टा है । हे (सम्-इधान) समान भाव से सदा सर्वत्र देदीप्यमान ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् ! (वेधसः) कर्त्ता, विद्वान्, (विप्रासः) कर्मण्य पुरुष ! (त्वाम् आविवासन्ति) यज्ञाग्निवत् तेरी ही सेवा करते हैं । इसी से सर्वोपरि नायक का भी वर्णन किया । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन्मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (शोचिष्ठ) अति तेजस्विन्, तू (शोचा) तेज से (दीदिहि) चमका। (स्तोत्रे विशे) स्तुति करने वाली प्रजा को (मयः रास्व) सुख प्रदान कर। (देवानां महान् असि) विद्वानों के बीच और सब गुणों में, प्रकाश युक्त किरणों में सूर्यवत् तू महान् है। राजा चाहे कि (मम शर्मन्) मेरी शरण में, मेरे गृह में (शत्रु-साहः) शत्रुओं को पराजय करने वाले वीर पुरुष (सूरयः) विद्वान् और (सु-अग्नयः) उत्तम अग्निवत् तेजस्वी नायक हों।

यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने सञ्जूर्वसि क्षमि।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥ ७ ॥

भा०—(यथा चित्) जिस प्रकार अग्नि (क्षमि) पृथिवी पर पड़े २ (वृद्धम् अतसम्) बड़े भारी लकड़ को भी जला देता है (एव) उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य वा मित्रों में महान् ! (क्षमि) भूमि पर विद्यमान (वृद्धम्) बढ़े हुए उसको आवश्य (दह) जला (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही (दुर्मन्मा) दुष्ट चित्त वाला, (कः च वेनति) कोई भी यज्ञ करता, शोभा पाता है, या अपने बाजे बजाता है या आदर चाहता है। वेनति—वेनृ गतिज्ञान चिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु। अथवा वेनतिर्गतिकर्मा, कान्तिकर्मा, अर्चतिकर्मा च।

मा नो मर्त्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अतिबलशालिन् ! तू (नः) हमें (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु मनुष्य और (रक्षस्विने) दुष्ट पुरुषों वाले के हित (मा रीरधः) मत पीड़ित कर और तू (अघ-शंसाय मा रीरधः) पाप की शिक्षा देने वाले के अधीन मत कर। तू (अस्रेधद्भिः) अहिंसक, (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने में समर्थ दयाशील (शिवेभिः) शान्तिकारक, कल्याणकारी, (पायुभिः) पालनकर्त्ताओं द्वारा (पाहि) पालन कर।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) अपने अधीन प्रजाओं वा शिष्यगणों को बसाने वाले प्रजापते ! हे (ऊर्जाम्पते) नाना अन्नों, बलों के पालक ! तू (नः) हमें (एकया गिरा पाहि) एक वेदवाणी से पालन कर । (उत द्वितीयया गिरा पाहि) और दूसरी वेद वाणी से भी पालन कर । (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) तीन वेद वाणियों से पालन कर । (चतसृभिः गीर्भिः पाहि) चारों वेद वाणियों से पालन कर ।

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (विश्वस्माद् रक्षसः अराव्णः) सब प्रकार के दुष्ट और शत्रु से (पाहि) बचा । और (नः) हमें (वाजेषु) संग्रामों में भी (प्र अव स्म) अच्छी प्रकार रक्षा कर । (देवतातये) विद्वान् वीर आदि जनों के हितार्थ (त्वाम् इत् हि नेदिष्ठं) तुझ को ही अति निकट का (आपिं) बन्धु जान कर (वृधे) अपनी वृद्धि के लिये (नक्षामहे) प्राप्त होते हैं । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानशालिन् ! हे (पावक) पवित्र करने हारे पतितपावन ! तू (नः) हमें (शंस्यं) प्रशंसनीय (वयोवृधं) आयु, बल का वर्धक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ रास्व) सब ओर से प्राप्त करा । हे (उपमाते) अनुपम ! तू (नः) हमें (सुनीती) उत्तम नीति से (स्वयशस्तरम्) स्वजन, धन, कीर्त्ति को अधिक बढ़ाने वाला, (पुरु-स्पृहं) सबको अच्छा लगने वाला धन (रास्व च) प्रदान भी कर ।

येन॒ वंसा॑म॒ पृत॑नासु॒ शर्ध॑त॒स्तर॑न्तो अ॒र्य आ॒दिशः॑ ।
स त्वं नो॑ वर्ध॒ प्रय॑सो शचीवसो॒ जिन्वा॒ धियो॑ वसु॒विदः॑ ॥१२॥

भा०—(येन) जिस धन से हम (पृतनासु) संग्रामों में (आदिशः हरन्तः) दिशा उपदिशाओं तक पार करते हुए (शर्धतः) बलात्कार करने वाले, बलशाली शत्रुओं को भी (वंसाम) नाश करें । हे (शचीवसो) शक्ति के धनी ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (प्रयसः वर्ध) अन्न सम्पदा और प्रयाणकारी वल से वढ़ा । और (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य और प्रजाओं को प्राप्त कराने वाले कर्मों की वृद्धि कर ।

शिशा॑नो वृष॒भो य॑था॒ग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत् ।
ति॒ग्मा अ॑स्य॒ हन॑वो॒ न प्र॑ति॒धृषे॑ सु॒जम्भः॒ सह॑सो य॒हुः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा वृषभः) जिस प्रकार विजार सांड (शृङ्गे शिशानः) सींग तीक्ष्ण करता हुआ (दविध्वत्) शिर चलाता है, और जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि स्वयं तीक्ष्ण होकर अपने शिखर कंपाता है उसी प्रकार (शिशानः) वलको तीक्ष्ण करता हुआ (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, (शृङ्गे) शत्रु हनन के अस्त्र शस्त्रों को कंपावे । (अस्य) इसकी (हनवः) हनन-कारिणी सेनाएं (तिग्माः) तीखी दाढ़ों के समान (न प्रति-धृषे) कभी किसी से पराजित होने के लिये न हों, वह (सुजम्भः) दुष्टों को उत्तम रीति से दण्ड देने में समर्थ (सहसः यहुः) बल सैन्य को सुसंगत करने में समर्थ हो ।

न॒हि ते॑ अग्ने वृषभ प्रति॒धृषे॒ जम्भा॑सो॒ यद्वि॒तिष्ठ॑से ।
स त्वं नो॑ होतः॒ सुहु॑तं ह॒विष्कृ॑धि॒ वंस्वा॑ नो॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने वृषभ) तेजस्विन् ! हे बलशालिन् ! (यद्वि-तिष्ठसे) जब तू विशेष रूप से शत्रु के विजयार्थ खड़ा हो जाता है तब (ते जम्भासः) तेरी दाढ़ों के समान शत्रु को कुचल डालने वाले तेरे शस्त्रादि

सैन्यगण (नहि प्रति-धृषे) कभी हारने के लिये नहीं हों। (सः त्वं) वह तू (नः) हमारे (होतः) दातः (सुहुतं हविः कृधि) उत्तम रीति से दिये करादि को उत्तम रीति से सफल कर। (नः पुरुवार्या वंस्व) हमें बहुत से उत्तम ऐश्वर्य, शत्रुवारक साधन प्रदान कर।

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥३४॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (वनेषु मात्रोः) काष्ठों में या दो उत्पादक अरणियों में अग्नि के समान (वनेषु) सेवने योग्य ऐश्वर्यों और (मात्रोः) माता पिता रूप विद्वान् अविद्वान् प्रजाओं के बीच बालकवत् (शेषे) सुख से रह। (त्वा मर्त्तासः सम् इन्धते) तुझे शत्रुमारक वीर जन प्रदीप्त, तेजस्वी बनाते हैं। तू (हविःष्कृतः) उत्तम अन्न उत्पन्न करनेवाले प्रजाजन के दिये करादि को (अतन्द्रः) अनालसी होकर (वहसि) धारण कर (आत् इत्) और विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच किरणों में सूर्यवत् (राजसि) राजावत् प्रकाशित हो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम्।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! (सप्त होतारः) सात अधिकाधिक बल आदि देने वाले प्रकृतिगण (सु-त्यजम्) उत्तमदाता (अह्रयम्) अक्षीण; (तं त्वा) उस तुझको (ईडते इत्) चाहते और तेरी प्रतिष्ठा करते हैं। वह तू (शोचिषा) अपने तेज से और (तपसा) प्रताप से (अद्रिं) प्रबल शत्रु सैन्य को (भिनत्सि) मेघ को सूर्य के समान भेदन करता है और हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् नायक! तू (जनान् अति प्र तिष्ठ) सब जनों से बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर, सर्वोत्तमपद पर विराज।

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृक्त-बर्हिषः) कुशाओं के समान शत्रुगण को छिन्नभिन्न करने वाले वीर पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगों में से (अग्निम्-अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी और (अध्रिगुम्-अध्रिगुम्) भूमि पर का शासक सर्वोपरि वाणी का वक्ता आज्ञापक (हुवेम) स्वीकार करें । हम (हित-प्रयसः) अन्नादि धारण करने वाले होकर (शश्वतीषु) बहुत सी प्रजाओं में (चर्षणीनाम्) विद्वान् मनुष्यों को वृत्ति देने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही (आ हुवेम) आदरपूर्वक स्वीकार करें ।

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! यह प्रजाजन (चिकित्वना) उत्तम ज्ञानयुक्त विद्वान् द्वारा (केतेन) ज्ञानपूर्वक (तुभ्यम्) तेरे ही (सु-सामनि) उत्तम समान भाव से युक्त निष्पक्षपात (शर्मन्) गृहवत् (इषण्या) इच्छापूर्वक (नः) हमें हमारी रक्षा के लिये (पुरु-रूपं) नाना प्रकार का (नेदिष्ठं) अति समीपतम, प्राप्य (वाजं) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जरितः) उत्तम उपदेश करने हारे ! हे (देव) दानशील ! तू (रक्षसः) दुष्टों को (तेपानः) संतप्त, पीड़ित करता हुआ, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक है । तू (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास में न जाने वाले (गृह-पतिः) गृहस्वामी के समान (दुरोणयुः) गृहवत् राष्ट्रको दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तमपद की

अभिलाषा करने वाला और (दिवः महान् पायुः) ज्ञान, राजसभा, तेज, और भूमि का बड़ा पालक (असि) है।

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणी वसो मा यातुर्यातुमावताम्।
परोगव्युत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः॥ २०॥ ३५॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र के बसाने वाले राजन्! (नः) हम में (रक्षः) नाशकारी उपद्रवी (मा आवेशीत्) न आ घुसे। (यातुमा-वताम्) पीड़ादायक दुष्ट रोगों और पुरुषों के कारण (यातुः नः मा आवेशीत्) हममें पीड़ा, उनकी यातना भी न प्रवेश करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (अनिराम् क्षुधम्) विना अन्न की भूख, मरी, और (रक्षस्विनः) दुष्टों को (परः गव्यूतिम्) हमसे कोसों (अप सेध) दूर कर। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

[६१]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ११, १५, निचृद् बृहती। ३, ९ विराड् बृहती। ७, १७ पादनिचृद् बृहती। १३ बृहती। २, ४, १० पंक्तिः। ६, १४, १६ विराट् पंक्तिः। ८, १२, १८ निचृत् पंक्तिः॥ अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥ १॥

भा०—(इन्द्रः) तत्वदर्शी पुरुष (नः) हमारे (इद) इस (उभयं) पक्ष विपक्ष दोनों प्रकार के (वचः) वचन को (अर्वाक्) सबके सन्मुख (शृणवत् च) सुने, (सत्राच्या धिया) सत्य के निर्धारण करने वाली विवेक बुद्धि से (सोमपीतये) राष्ट्र के पालनार्थ ही (मघवा) पूज्य पद पर स्थिर होकर (शविष्ठः) सब से अधिक बलशाली होकर (नः आगमत्) हमें प्राप्त हो।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

भा०—(तं) उस (वृषभं) 'वृष' अर्थात् धर्म, राष्ट्र के उत्तम प्रवन्ध सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् (स्वराजं) स्व, अपने वल से तेजस्वी, स्वयं राजा, वलशाली पुरुष को (हि ओजसे) उसके बल पराक्रम के कारण (धिषणे) पृथिवी आकाशवत् शास्य शासक वर्गों की दोनों समितियां (निष्टतक्षतुः) राजा को बनावे और हे राजन् ! सभापते ! (हि) क्योंकि (ते मनः) तेरा चित्त भी (सोम-कामं) राष्ट्रैश्वर्य तथा अभिषेक योग्य पद को चाहता है। इस कारण तू (उपमानां) सर्वोपरि उपमान योग्य प्रस्तुत पुरुषों में (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नि षीदसि) मुख्यासन पर विराज ।

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वां हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥३॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत से प्रजाजनों को वसाने वाले ! बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन् ! इन्द्रियों में शक्तिरूप से आत्मवत् प्रभो ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (अन्धसः सुतस्य) अन्न और ऐश्वर्य से (आ वृषस्व) सब प्रकार से प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला और बलवान् हो । हे (हरिवः) अश्वों और मनुष्यों के राजन् ! हम (त्वा) तुझ को (पृत्सु) संग्रामों में (सासहिम्) विजयी, (अधृष्टम्) अपराजित और (दधृष्वणिम्) शत्रुओं के पराजित करने हारा (हि) ही (विद्म) जानते हैं ।

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (क्रत्वा) अपनी बुद्धि और

कर्म के सामर्थ्य से (यथा वशः) जिस प्रकार भी चाहता है हे (मघवन्) पूजित विभूतिसम्पन्न ! हे (अप्रामि-सत्य) सत्यरूप महा व्रत का नाश न करने हारे ! (तथा इत् असत्) वैसा ही होता है। हे (शिप्रिन्) मुकुटधारिन् ! सत्यपालक ! हे (अद्रिवः) बलशालिन् ! हम लोग (मक्षु चित् यन्तः) बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए (अवसा) ज्ञान और रक्षा, बल से (तव वाजं) तेरा ज्ञान, बल, ऐश्वर्य (सनेम) प्राप्त करें, वा तुझे अन्नादि प्रदान करें।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। योग० सू० २। ३६। अमोघास्यस्य वाग् भवति। व्यासभाष्यम् ॥ तदस्य भगवतो वाचो भवति इति वाचस्पतिः।

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—हे (शचीपते) सत्य वाणी और शक्ति के पालक ! हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त ज्ञानों और बलों से (सु शग्धि उ) उत्तम रीति से सब कार्य करने में समर्थ है। (भगं न) ऐश्वर्यवान् के समान ही (यशसं) यशस्वी (वसु-विदम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला जान कर (हि) ही हे (शूर) शूरवीर ! (त्वा अनु चरामसि) हम तेरे कहे अनुसार आचरण करें, तेरा अनुगमन करें। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! हे तेजस्विन् ! हे व्यवहारज्ञ ! तू (पौरः) बहुतों का स्वामी, (अश्वस्य गवाम् पुरुकृत्) अश्वों और गौ आदि सम्पदा को बहुत संख्या में करने में समर्थ (असि) है। तू (हिरण्ययः उत्सः) सुवर्ण का उद्गमस्थान, निकास वा खान के समान है। (त्वे) तेरे (दानं) दिये ऐश्वर्य का (नकिः हि परि मर्धिषत्) कोई भी

नाश नहीं कर सकता। मैं (यत् यत् यामि) जिस २ पदार्थ की भी याचना करूं तू (तत् आभर) वह २ पदार्थ मुझे प्राप्त करा।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (त्वं हि एहि) तू अवश्य आ और (चेरवे वसुत्तये) सेवा, परिचर्या करने वाले परिजन को जीवनोपयोगी वेतनादि धन प्रदान करने के लिये ही (भगं विद) ऐश्वर्य प्राप्त कर। (गविष्टये) गौ देने के लिये और (अश्वम् इष्टये) अश्व देने के लिये (उत् वावृषस्व) सर्वोत्तम दानशील हो और अधिक उदार हो।

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पूरू सहस्राणि शतानि च यूथा) अनेक सैकड़ों और सहस्रों, यूथ, गौवों और अश्वादि के (दानाय मंहसे) दान के रूप में प्रदान कर। हम लोग (अवसे) रक्षा के निमित्त (विप्र-वचसाः) उत्तम वचनों को बोलते और (गायन्तः) तेरी स्तुति गान करते हुए (पुरन्दरं) शत्रु नगर को तोड़ने और अपने पुर की रक्षा करने वाले पुरुष को (इन्द्रं आ चकृम) ऐश्वर्य युक्त करें।

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! हे (शतक्रतो) सैंकड़ों कर्म सामर्थ्य और प्रज्ञा से सम्पन्न जन! हे (प्राचा-मन्यो) सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से ज्ञानशालिन्! हे (अहं-सन) आत्मभाव, आत्मसन्मान के भाव को देनेहारे! (अविप्रः वा) चाहे अबुद्धिमान् हो और चाहे (विप्रः) विद्वान्

पुरुष भी (ते वचः अविधत्) तेरे कहे वचन के अनुसार कार्य करता वह भी (त्वाया) तेरे अधीन रहकर (प्र ममन्दत्) बहुत ही सुख, आनन्द प्राप्त कर लेता है।

उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वसूयवः) धनाभिलाषी जनो ! (यदि) जब २ (वसुपतिं) सब ऐश्वर्यों और जीवों के पालक, (शतक्रतुं) अनन्त ज्ञानों और कर्म सामर्थ्यों से पूर्ण, (इन्द्रं) ऐश्वर्यप्रद इस स्वामी को हम (स्तोमैः हवामहे) नाना स्तुति वचनों से प्रार्थना करें (उग्र-बाहुः) बलवान् बाहु वाला, (म्रक्ष-कृत्वा) शत्रुओं का नाशक, (पुरन्दरः) शत्रुपुरों को तोड़ने में समर्थ, (मे हवम् शृणवत्) मेरे स्तुति-वचन को श्रवण कर। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥ ११ ॥

भा०—(यत् इत् नु) जब २ भी हम हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (सखायं) सब के मित्र (वृषणं) बलवान् पुरुष को (सुते) ऐश्वर्य वा शासन मार्ग पर (सचा कृणवामहे) अपने साथ लेते हैं तब २ हम (पापासः न मनामहे) पापी होकर नहीं विचार करते, और (अरायासः न) तब हम दूसरे का अधिकार न देने वाले होकर भी नहीं विचारते, (न जल्हवः) और न ज्वलन या प्रकाश से रहित होते हैं। अर्थात् परमेश्वर या स्वामी के सदा साथ रहते हुए हममें पाप प्रवृत्ति, दूसरे के अधिकार हरण और अज्ञानीपन की दशा नहीं रह सकती है। परमेश्वर के सहयोग में हम निष्पाप, ईमानदार, और ज्ञान प्रकाश से युक्त हो जाते हैं। पापी, बेईमान, और प्रकाशहीन होकर प्रभु का मनन नहीं कर सकते।

उ॒ग्रं यु॑युज्म॒ पृत॑नासु सास॒हिमृ॒णका॑ति॒मदा॑भ्यम् ।
वेदा॑ भृ॒मं चि॒त्सनि॑ता र॒थीत॑मो वा॒जिनं॒ यमिदू॒ नश॑त् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् इत् उ) जिसको प्रजाजन (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् बलवान् भी (नशत्) पावें, और जो (रथीतम) सब से उत्तम महारथी, (सनिता) दानशील हो और जिसको हम (भृमं चित्) भरण पोषण में समर्थ (वेद) पावें उस (सासहिम्) शत्रुपराजयकारी, (उग्रम्) सदा दण्डधारी, (ऋणकातिम्) धनोत्पादक, (आदाभ्यम्) अहिंसनीय, अवध्य, पुरुष को हम (पृतनासु) संग्रामों के कार्यों में (युयुज्म) नियुक्त करें। (२) इसी प्रकार हम परमेश्वर को इन २ गुण विशिष्ट रूप से (युयुज्म) योग द्वारा साक्षात् करें।

यत॑ इन्द्र॒ भया॑महे॒ ततो॑ नो॒ अभ॑यं कृधि ।
मघ॑वञ्छ॒ग्धि तव॒ तन्न॑ ऊ॒तिभि॒र्वि द्वि॒षो॒ वि मृधो॑ जहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! भूमि के रक्षक ! अन्नादि दातः ! हम लोग (यतः भयामहे) जिस कारण से भी भय करें तू (ततः नः अभयं कृधि) हमें उस भय से रहित कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (तव) अपना (नः) हमें (तत् शग्धि) वह सामर्थ्य दे और (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी शक्तियों से (द्विषः वि जहि) शत्रुओं को दण्डित कर और (मृधः वि जहि) हिंसकों को दण्डित कर।

त्वं हि रा॑धसस्पते॒ राध॑सो म॒हः क्षय॒स्यासि॑ विध॒तः ।
तं त्वा॑ व॒यं म॑घवन्निन्द्र गिर्वणः सु॒ताव॑न्तो हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्य के देने हारे ! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न, अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त होकर भी (त्वा) तुझ से (हवामहे) याचना करते हैं, क्योंकि हे (राधसः पते) धन के पालक स्वामिन् ! (त्वं हि) तू अवश्य (विधतः) कार्य करने वाले, सेवक के

(महः) बड़े भारी, (क्षयस्य) ऐश्वर्य और (राधसः) धन का भी बढ़ाने और देने वाला है।

इन्द्र स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥१५॥३८॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक, ऐश्वर्यों का दाता, प्रभु (स्पट्) सर्वद्रष्टा, (वृत्रहा) सब विघ्नों का नाशक (परः-पाः) परम पालक और (नः वरेण्यः) हमारा सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य है। (सः) वह (नः) हममें से (चरमं) अन्तिम को, (सः मध्यमं) वह बीच के को, (सः पश्चात् पुरः नः पातु) वह हमारे पीछे और आगे से भी हमें बचा।
इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः पश्चात् अधरात् उत्तरात् पुरः विश्वतः निपाहि) हमारे पीछे से, नीचे से, ऊपर से आगे से और सब ओर से अच्छी प्रकार रक्षा कर। (अस्मत् दैव्यं भयम् आरे कृणुहि) हम से देव, विद्वान्, विजयेच्छुक व्यवहार चतुरादि जनों से उत्पन्न होने वाला भय दूर कर और (अदेवीः हेतीः आरे कृणुहि) अविद्वान् दुष्ट जनों के शस्त्रों को भी दूर कर।

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अद्य अद्य) आज आज, आज कहाने वाले सब दिनों और (श्वः श्वः) कल कल, कल कहाने वाले सब दिनों में और (परे च) परले दिनों में भी (त्रास्व) रक्षा कर। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! तू (नः जरितॄन्) प्रार्थना स्तुति करने वाले हम लोगों को (विश्वा च अहा) सब दिनों और (दिवा

नक्तं च) दिन और रात, प्रकाश में और अंधेरे में भी (रक्षिषः) हमारी रक्षा कर ।

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः १८॥३९॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनन्त कर्म और प्रजा से युक्त स्वामिन् ! (या) जो दो (ते बाहू) तेरी बाहुएं, (वज्रं नि मिमिक्षतुः) शस्त्र को धारण करती हैं (उभा) वे दोनों (वृषणा) बलवान् हों । (वीर्याय) वीर्य प्राप्त करने, वा वीरकर्म सम्पादन करने के लिये (शूरः) शूरवीर पुरुष, (प्र-भङ्गी) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला, (मघवा) उत्तम आदरणीय धनाढ्य, (तुवीमघः) बहुत धनसम्पन्न और (संम्मिश्लः) सब से अच्छी प्रकार मिलने जुलने वाला, सर्वप्रिय हो । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः॥

[६२]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, १०, ११ निचृत् पंक्तिः । २, ५ विराट् पंक्तिः । ४, १२ पंक्तिः । ७ निचृद् बृहती । ८, ९ बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति । उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

भा०—(यत् जुजोषति) जो प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है (अस्मै) उसकी (उप स्तुतिं प्र भरत) उत्तम स्तुति करो । (सोमिनः) वीर्य पालन करने वाले ब्रह्मचारी लोग ही (उक्थैः) उत्तम वचनों द्वारा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, तत्वदर्शी स्वामी के (माहिनं वयः वर्धन्ति) बड़े भारी बल को बढ़ा देते हैं । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस परमेश्वर के दिये सब दान सुखकारी और कल्याणमय होते हैं ।

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः । पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर (एकः) अकेला, अद्वितीय, (अयुजः) अन्य सहायक के विना, (असमः) अपने समान अन्य से रहित, (अयास्यः) अविनाशी, अपराजित, कभी न थकने वाला, अप्राप्य और मुख्य है। वह (नृभिः) जीवों द्वारा ही (पूर्वीः कृष्टीः) बहुत सी सनातन प्रजाओं को (प्र वावृधे) बढ़ाता है और (विश्वा जातानि) सभी उत्पन्न प्राणियों को भी इसी प्रकार (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से (इति प्र वावृधे) इसी प्रकार बढ़ाता रहता है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान अति सुखकारी होते हैं।

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिपासति । प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥

भा०—यह ईश्वर (जीर-दानुः) जीवन प्राण का देने वाला है। वह (अहितेन अर्वता चित्) विना बन्धे अश्व से, अर्थात् विना अश्व लगाये ही (सिपासति) सब को चलाता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वीर्यवन् ! (करिष्यतः) जगत् निर्माण करने वाले (तव) तेरे ये सब (वीर्याणि) नाना प्रकार के सामर्थ्य हैं। (तत् तव प्रवाच्यम्) यह सब तेरी अति उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान बड़े सुखकारी हैं।

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना । येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ याहि) आ। (ते) तेरे (ब्रह्माणि) वेदवचनों को हम (वर्धना) अपने को बढ़ाने वाला (कृणवाम) करें। उनको हम अपनी वृद्धि के लिये उपभोग करें। हे

(शविष्ठ) अनन्त बलशालिन् ! (येभिः) जिनसे तू (इह) इस लोक में (श्रवस्यते) ज्ञान के इच्छुक जीवगण के लाभ के लिये (भद्रम् चाकनः) अति कल्याण करना चाहता है उन ही वेदों का हम अभ्यास करें। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) प्रभु के दिये दान अति सुखकारी होते हैं।

धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम्। तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

भा०—(तीव्रैः सोमैः) तीव्र, बलकारक साधन से (सपर्यतः) सेवा करते हुए (नमोभिः प्रतिभूषतः) अन्नों, विनय वचनों और दुष्ट दमनकारी उपायों से अपने प्रतिपक्षी का साम्मुख्य करने वाले (धृषतः) प्रतिपक्ष का पराजय करने वाले के (मनः) मन को (चित्) भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् त्वम्) जो तू (धृषतः कृणोषि) दृढ़, सहनशील कर देता है यह तेरा ही ,सामर्थ्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्य-वान् इन्द्र, प्रभु के दान सब उत्तम सुखप्रद होते हैं।

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः। जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥ ४० ॥

भा०—जिस प्रकार (मानुषः) पियासा मनुष्य (अवतान् अव चष्टे) कुओं के नीचे झांकता है, और (सोमिनः दक्षस्य जुष्ट्वी, युजं स-खायं कृणुते) जल-कूप के रक्षक पुरुष को प्रेम करके उसको अपना साथी, मित्र बना लेता है उसी प्रकार (ऋचीषमः) स्तुति के अनुरूप यथार्थ गुणवान् दयाशील प्रभु (अवतान् अव चष्टे) रक्षा करने योग्य जनों को दया से देखता है और (सोमिनः दक्षस्य) बल वीर्यवान् कर्म करने में समर्थ पुरुष को (जुष्ट्वी) प्रेम करके, प्रभु उसको ही अपना (युजं सखायं कृणुते) संगी, मित्र बना लेता है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) इति चत्वारिंशो वर्गः॥

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥

भा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! वाणी द्वारा ज्ञान के देने हारे! (देवाः) समस्त विद्याओं की कामना करने हारे जन (ते वीर्यम् अनु, ते क्रतुम् अनु) तेरे बल और ज्ञान के अनुसार ही (अनु ददुः) स्वयं भी बल और ज्ञान को धारण करें और अन्यों को भी प्रदान करें हे (पुरु-स्तुत) बहुत जीवों के उपदेष्टः! तू ही (विश्वस्य गोपतिः भुवः) समस्त वाणियों का पालक है। (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के स्वामिन् (देवतातये) वीरों और दानशील, उत्तम मनुष्यों के हितार्थ, (ते) तेरे (उपमं शवः) आदर्श बल की (गृणे) स्तुति करता हूं। (यत्) जिस (ओजसा) पराक्रम से तू (वृत्रम्) अज्ञान, वा बढ़ते शत्रु का (हंसि) विनाश करता है।

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ ९॥

भा०—(समना-इव) समान चित्त वाली स्त्री जिस प्रकार (वपुष्यतः मानुषा युगा कृणवत्) उत्तम शरीर वाले पुरुष को जोड़ा बना देती है उसी प्रकार (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (वपुष्यतः) शरीर धारण करने की इच्छा करने वाले जीवों को (मानुषा युगा कृणवत्) मनुष्यों के (युग) जोड़े, स्त्री-पुरुष बना देता है। वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (तत् चेतनं) उस चेतन जीव को (विदे) जानता वा शरीर में प्राप्त कराता है, (अध) और इसी प्रकार (श्रुतः) वेद में गुरुजनों द्वारा श्रवण किया जाता है। (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम्।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः १०

भा०—हे (भूरि-गो) बहुत भूमियों, पशुओं और वाणियों के स्वामिन्! हे (मघवन्) पूज्य, धन, ज्ञानादि सम्पन्न, प्रभो ! गुरो ! स्वामिन् ! हे (इन्द्र) वाणी के मर्म के भेदन करने हारे ! शत्रुभेदक ! भूमि-भेदक ! (ते जातम् शवः) तेरे प्रकट हुए बल और ज्ञान को लोग (भूरि उत् वावृधुः) उत्तम रीति से पुत्रवत् खूब बढ़ावें । (उत् त्वाम्) तुझे भी बढ़ावें, अधिक बलवान्, करें । (तव क्रतुम् उत्) तेरे कर्म सामर्थ्य और ज्ञान की भी वृद्धि करें । (तव शर्मणि) तेरी शरण में रहें । (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

अहं च त्वं च वृत्रहन्त्संयुज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ११

भा०—हे (वृत्र-हन्) विघ्नों और शत्रुओं के नाशक ! (अहं त्वं च) मैं और तू दोनों (सनिभ्यः आ) उत्तम धनों, ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये (सं युज्याव) परस्पर मिल जावें । हे (अद्रिवः) सैन्यादि बल से सम्पन्न ! हे (शूर) दुष्टनाशक ! (अरातिवा चित्) अदानशील अधनी भी (नौ अनुमंसते) हम दोनों को मानेगा । (भद्राः० पूर्ववत्)

सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् । महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥४१॥

भा०—(वयम्) हम (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (सत्यम् इत् वा स्तवाम) सत्य सत्य ही स्तुति करें । (अनृतं न) असत्य कभी न करें । (असुन्वतः) उपासना न करने वाले का (महान् वधः) बड़ा भारी नाश होता है । (सुन्वतः भूरि ज्योतींषि) उपासक को बहुत तेजोमय ज्ञान प्राप्त होते हैं । (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) ॥ इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६३]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ १—११ इन्द्रः । १२ देवा देवताः ॥ छन्दः— १, ४, ७ विराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३, ६ विराड् गायत्री । ८, ९, ११ निचृद् गायत्री । १० गायत्री । १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (महानां) पूज्य, बड़ों का भी बड़ा (पूर्व्यः) पूर्व, पूज्य, (वेनः) कान्तिमान्, तेजस्वी सूर्यवत (क्रतुभिः) उत्तम प्रज्ञाओं द्वारा (आनजे) हमें प्रेरित करता वा प्राप्त होता है (यस्य धियः) जिसकी वाणियों, मतियों और कर्मों को, (देवेषु) विद्या के इच्छुक मनुष्यों में (पिता मनुः) पालक, शासक, मननशील विद्वान् वा राजा भी (द्वारा आनजे) प्रवेश योग्य द्वारों के समान प्रकट करे। अर्थात् ज्ञानी शास्ता विद्वान् और शासक राजा दोनों माता पिता हैं। वे प्रभु के दिये ज्ञानों, वेदों, यज्ञों द्वारा सबको नाना उपाय दर्शावें।

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।
उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रयः) मेघ (सोम-पृष्ठासः) जल वर्षण-कारी होकर भी (दिवः मानं न उत् सदन्ति) सूर्य का पैमाना नहीं पाते, वा ऊपर उठकर भी सूर्य तक नहीं जा सकते उसी प्रकार (सोम-पृष्ठासः) अभिषिक्त राजा वा नायक को अपनी पीठ पर रखने वाले, तदधीन (अद्रयः) सेना के जन (दिवः मानं नः उत् सदन्) तेजस्वी राजा के मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकते, वे उससे उच्च पद नहीं पा सकते। इसी प्रकार (सोम-पृष्ठासः) सोम अर्थात् सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त (अद्रयः) अविनाशी, धर्म मेघस्थ योगीजन वा 'सोम', वीर्य द्वारा पुष्ट, ऊर्ध्वरेता जन (दिवः मानं)

ज्ञानमय तेजोमय प्रभु के ज्ञान, वेद को (न उत् सदन्) नहीं छोड़ सकते। वह प्रभु का ज्ञान (उक्था) वचन योग्य उत्तम मन्त्र (ब्रह्म च) महान् वेद (शंस्या) स्तुति करने, उपदेश देने योग्य होते हैं।

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु आचार्य के समान (इन्द्रः) सत्य ज्ञान को साक्षात् करने वाला, सूर्यवत् ज्ञान का प्रकाशक, प्रभु (अंगिरोभ्यः) अंगारों के तुल्य तेजस्वी एवं देह में बलवीर्य के धारक ज्ञानी पुरुषों को (गाः अप अवृणोत्) वेद वाणियों का प्रकाश करता है। (अस्य तत्) उसके उस (पौंस्यं) परम पुरुष रूप की मैं (स्तुषे) स्तुति करूं। (२) इसी प्रकार (इन्द्रः) सूर्य या प्रभु ने सर्वत्र (अंगिरोभ्यः) जीवों, देहधारियों के लिये (गाः) भूमियों को प्रकट किया।

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ज्ञानदर्शी, ज्ञान का प्रकाशक प्रभु, (प्रत्नथा) पहले पूर्व कल्पों में भी (कवि-वृधः) विद्वानों को आचार्य-वत् बढ़ाने वाला, (वाकस्य वक्षणिः) प्रवचन योग्य वेद को धारण-प्रवचन करने और मनुष्यों तक पहुंचाने वाला हो। वही (शिवः) कल्याणकारी, सब में व्यापक (अर्कस्य होमनि) अर्चनीय वेद मन्त्र के उच्चारण वा होम-काल में (अस्मत्रा अवसे) हमें ज्ञान प्रदान करने वा रक्षा करने के लिये (आ गन्तु) प्राप्त हो।

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! (यज्यवः) तेरे उपासक, यज्ञशील, (अर्काः) अर्चना करने हारे जन (आत् उ नु) भी (वरस्य ते)

सबसे वरण करने, चाहने योग्य तेरे (क्रतुम् अनु) वेद ज्ञान के अनुसार (स्वाहा) उत्तम वाणी और आहुति द्वारा (गोत्रस्य) वाणियों के रक्षक तेरा ही (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (श्वात्रम्) शीघ्र ही (ते अनूषत) तेरी स्तुति करें।

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥ ४२ ॥

भा०—(अर्काः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन (यं) जिस प्रभु परमेश्वर को (अध्वरं) अहिंसक और अविनाशी, नित्य करुणा कर करके (विदुः) जानते हैं उसी (इन्द्रे) परमेश्वर में (विश्वानि वीर्याणि) समस्त वीर्य और समस्त (कृतानि) बने पदार्थ और (कर्त्वानि) करने योग्य कार्य आश्रित हैं। इति द्विचत्वारिंशो वर्गः ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो३ऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥

भा०—(पाञ्चजन्यया) पांचों जनों से बनी, (विशा) प्रजा (यत् इन्द्रे घोषाः असृक्षत) जिस, इन्द्र, ईश्वर वा राजा विषयक स्तुतियें करती हैं वही (बर्हणा) बड़े भारी सामर्थ्य से जगत् को विस्तारित करता है, (सः) वही (अर्यः) स्वामी (विपः मानस्य क्षयः) विद्वान् जन की पूजा, परिचर्या का निवासस्थान होता है।

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥

भा०—(इयम् ते अनु-स्तुतिः) यह तेरी स्तुति तेरे ही अनुरूप है, क्योंकि तू ही (तानि पौंस्या चकृषे) वे नाना पुरुष अर्थात् शक्तिमान् के करने योग्य पौरुष या बल के कार्य करता है और तू (चक्रस्य) जगत् के इस महान् चक्र, ब्रह्माण्ड चक्र वा ज्योतिश्चक्र के (वर्त्तनिं) वर्त्तन, निरन्तर

भ्रमण के कार्य को (प्र अवः) अच्छी प्रकार कराता है, उसको बराबर रथ के चक्र के तुल्य या यन्त्र के चक्र की तरह गति दे रहा है। (२) राजा नाना शौर्य करता और राजचक्र को चलाता है।

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे ।
यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥

भा०—(वृष्णः व्योदने) बरसते मेघ के द्वारा उत्पन्न अन्न पर जिस प्रकार जीव संसार-जीवन के लिये कदम बढ़ाता है और पशुगण जौ आदि चरता है उसी प्रकार (अस्य वृष्णः) इस परम बल शाली, सब सुखों के वर्षक प्रभु के (वि-ओदने) विशेष दयार्द्र भाव से पूर्ण रसवत् सुख में यह जीव लोक (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिये (उरु क्रमिष्ट) बहुत कदम बढ़ाता है, और (पश्वः यवं न) पशु जिस प्रकार जौ को भोजन के लिये ग्रहण करते हैं उसी प्रकार ये समस्त जीवगण उसी ब्रह्मरूप परम सुखद, रसस्वरूप पदार्थ को (आददे) प्राप्त करते हैं।

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः। स्याम मरुत्वतो वृधे१०

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम (दक्ष-पितरः) बल, अन्न, और प्रज्ञा के पालक होकर (अवस्यवः) अन्न और रक्षा, ज्ञानादि के इच्छुक होकर (युष्माभिः) तुम लोगों के साथ ही (तत्) उस परम ज्ञानमय ब्रह्म को (दधानाः) धारण करते हुए (मरुत्वतः) मरुत्वान्, प्राणों वाले देह वा आत्मा की (वृधे स्याम) वृद्धि में संलग्न रहें।

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः ।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥

भा०—(बट्) सत्य ही, हम (ऋत्वियाय) ऋतु २ में आने वाले (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये हे (शूर) शूरवीर ! हम (ऋक्वभिः) ऋचाओं, अर्चनादि सत्कारों से (नोनुमः) स्तुति करते

हैं और (त्वया युजा) तुझे सहयोगी बनाकर हम (जेषाम) विजय लाभ करें।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः॥१२॥४३

भा०—(यः) जो (शंसते) उत्तम प्रशंसा करते हुए और (स्तुवते) स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये (पज्रः) बलवान् दृढ़ रूप से (धायि) सूर्यवत् स्थित है और (रुद्राः) गर्जना करने वाले (मेहना) वर्षाकारी, (पर्वतासः) मेघों के समान (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले (मेहनाः) मेरा इसमें कुछ स्वार्थ नहीं इस प्रकार की त्याग भावना वाले, निःसंग (पर्वतासः) पर्वतवत् अचल, प्रजापालक जन (वृत्र-हत्ये) दुष्टों के हनन करने और (भर-हूतौ) यज्ञ के आहुति वा पोषण के कार्य में योग देने के अवसर में (सजोषाः) सप्रेम होकर (देवाः) विद्वान् विजयेच्छुक जन (अस्मान्) हमें (अवन्तु) रक्षा करें। त्रिचत्वारिंशो वर्गः॥

[६४]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७, ९ निचृद् गायत्री। ३ आर्ची स्वराड् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। २, ६, ८, १०—१२ गायत्री। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि॥१॥

भा०—(स्तोमाः) वेद के सूक्त और उत्तम स्तुति-वचन (त्वा उत् मन्दन्तु) तुझे अति प्रसन्न करें। हे (अद्रिवः) बलवन्! तू (राधः कृणुष्व) ऐश्वर्य का सम्पादन कर। और (ब्रह्म-द्विषः) वेद, ईश्वर और अन्न से द्वेष करने वालों को (अव जहि) दण्डित कर।

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भा०—(पदा) पैर से (पणीन् अराधसः) यज्ञार्थ, दान पुण्यार्थ, धन वा करादि से रहित केवल, धनव्यवहारियों को (नि बाधस्व) खूब पीड़ित कर। (महान् असि) तू सबसे बड़ा है । (प्रति कश्चन नहि) तेरे का मुकाबले और कोई दूसरा नहीं है । राजा का कर्त्तव्य है कि सब धन-व्यवहारियों पर राजा करादि दण्ड लगावे, जो राजकर वा धर्मकर न दे उसे दण्डित करे और उसके व्यवहार में बाधा करे । अथवा जो व्यक्ति विना धन के व्यापार करे राजा उस पर दण्ड करे । वह बहुतों का धन मार कर बाद में देवालिया होकर अन्यों को हानि करता है ।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्वम्) तू (सुतानाम्) अभिषेक प्राप्त पुरुषों का भी (ईशिषे) स्वामी है, (त्वम् असुतानां ईशिषे) तू अनभिषिक्तों का भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू सब मनुष्यों का राजा है ।

एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३घोषञ्चर्षणीनाम् ।
ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! (आ इहि) आ । (क्षयः प्र इहि) अच्छी प्रकार अपने निवासस्थान या ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो । (चर्षणीनाम्) सब प्रजाओं के बीच (दिवि) भूमि में, वा आकाश में (आघोषन्) अपनी घोषणा करता हुआ, तू (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (आ पृणासि) पूर्ण कर ।

त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, पवन या विद्युत् (पर्वतं चित् रुजति)

मेघ को छिन्न भिन्न करता है, उसी प्रकार हे ज्ञानशालिन्! तू भी (त्यं) उस (पर्वतं) नाना पोरुओं से (गिरिं) ज्ञान का उपदेश करने वाले, (शत-वन्तं सहस्रिणं) सौ और हजार अध्यायों वा सूक्तादि से युक्त वेद ज्ञान को (स्तोतृभ्यः) यथार्थ वक्ताजनों के लिये (रुरोजिथ) पृथक् २ कर व्याख्या कर।

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे।
अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (सुते) ऐश्वर्ययुक्त अभिषेचनीय पद के लिये, (त्वा) तुझे (वयम् उ) हम (दिवा नक्तम्) दिन रात (हवामहे) प्रार्थना करते हैं (अस्माकं कामम् आपृण) हमारी कामना को पूर्ण कर। इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

क्वस्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥

भा०—(स्यः) वह (वृषभः) सुखों का वर्षण करने वाला, (युवा) बलवान्, (तुविग्रीवः) दृढ़, विस्तृत, बलशाली गर्दन वाला, भार उठाने में समर्थ, (अनानतः) कभी न झुकने वाला (क्व) कहां है (कः ब्रह्मा) कौन ब्रह्मवेत्ता, विद्वान् वेदज्ञ ऐसा है जो (तं सपर्यति) उसकी पूजा करता है।

कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति।
इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, वह प्रभु (कस्य स्वित् सवनं) किस की उपासना को (जुजुष्वान् अव गच्छति) प्रेम से युक्त होकर स्वीकार करता है, (कः उ स्वित्) वह कौन सा पुरुष है जो (इन्द्रं आचके) उस परमैश्वर्यप्रद को चाहता है। ऐसा कोई ही विरला है।

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या ।
उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाश करने हारे ! (ते दाना) तेरे दिये दान (कं असक्षत) कैसे व्यक्ति को प्राप्त होते हैं ? (कं सुवीर्या) उत्तम बल भी किस को मिलते हैं ? (क उ स्वित्) कौन ऐसा भाग्यवान् है जो (अन्तमः) तेरे अति समीपतम है ?

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते ।
तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥

भा०—(मानुषे जने) मननशील जनों में (ते) तेरे लिये (पुरुषु) इन्द्रियों में ज्ञान के समान (सोमः सूयते) सोम, ऐश्वर्यप्रद का अभिषेक किया जाता है, तू (प्र द्रव) उत्तम मार्ग से चल और (इहि) प्राप्त हो और (आ पिब) सब प्रकार से ओषधि रसवत् उपभोग और पालन कर ।

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः ।
आर्जीकीये मदिन्तमः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह तेरा अभिषेक हे राजन् (आर्जीकीये) ऋजु, सरल धर्ममार्ग में वर्त्तमान (शर्यणावति) शर अर्थात् बाण धनुपादि शस्त्रास्त्र में कुशल जनों से समृद्ध जनपद में (सु-सोमायां) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त या उत्तम जल-अन्न से समृद्ध भूमि के ऊपर (प्रियः) अतिप्रिय और (मदिन्तमः) अतिहर्षजनक हो । *

* सरल समभूमि वाले प्रदेश में उत्तम जलयुक्त शरकाण्ड वाली भूमि में उत्पन्न सोमलता का रस अति आह्लादजनक, पौष्टिक, मत्तभावना होता है। यह वेद ने स्पष्ट कहा। आर्जिकीया नदी विपाशा नाम से प्रसिद्ध है ऐसा यास्क का मत है । सायण के मत से कुरुक्षेत्र के दक्षिणार्ध भाग में

तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये ।
एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥ ४५ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ इहि) आ । (तम् चारुं) उस उत्तम वा चरण अर्थात् फल रूप में उपभोग योग्य ऐश्वर्य पद को (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्ति के लिये और (घृष्वये मदाय) शत्रु-पराजयकारी, आनन्द लाभ के लिये (द्रव) प्राप्त हो और (आ पिब) पालन और उपभोग कर । इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६५]

प्रागाथः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ६, ११, १२ निचृद् गायत्री । ३,४ गायत्री । ७,८,१० विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जो तू (प्राक् अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः हूयसे) पूर्व पश्चिम, उत्तर वा नीचे कहीं से भी बुलाया जाय, तू (तूयम्) शीघ्र ही (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों के तुल्य व्यापक गुणों से (आ याहि) प्राप्त हो ।

यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।
यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

वह स्थान है । प्रायः जहां भी हिमवती नदियां पर्वतों से निकल कर सम भूमि भाग में आती हैं वहां २ वेद के बतलाये उक्त लक्षण पाये जाते हैं उन्हीं स्थलों पर ब्राह्मी आदि गुणवती ओषधियां प्रचुर मात्रा में होती हैं । सोम का भी उन स्थानों में पाया जाना सम्भव है ।

भा०—(यद्वा) चाहे तू (दिवः प्रस्रवणे) प्रकाश के निकास रूप (स्वः चरे) सुख के प्राप्त कराने वाले रूप में (यद्वा) अथवा (अन्धसः) अन्न के (समुद्रे) अपार उत्पादक, सेचक, मेघवत् सर्वजीवन प्रद के रूप में तू (मादयसे) सब को सुखी करता है।

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे।
इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(भोजसे गाम् इव) खाद्य पदार्थ, दुग्ध आदि के प्राप्त करने के लिये गौ के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सोमस्य पीतये) ज्ञान रस के पान और ब्रह्मचर्य, ऐश्वर्यादि के पालन करने के लिये (त्वा) तुझ (महाम् उरुं) बड़े ज्ञानी को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (हुवे) पुकारता हूं।

आ ते इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः। रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (देव) प्रकाशस्वरूप! (महिमानं बिभ्रतः) महान् सामर्थ्य को धारण करने वाले (ते) तुझे और (महः बिभ्रतः ते) तेज वा बड़े भारी जगत् को धारण करने वाले (रथे हरयः) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (रथे हरयः) रमण योग्य इस देह में विद्यमान सब मनुष्य (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें।

इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत्।
एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (महान्) बड़ा, (उग्रः) बलवान्, दुष्टों को भयजनक, (ईशान-कृत्) सर्वस्वामी होकर, सब जगत् पर शासन करने वाला, (गृणीषे) वर्णन किया और (स्तुषे उ) स्तुति भी किया जाता है, तू (नः आ इहि) हमें प्राप्त हो और (सुतं पिब) उत्पन्न जगत् का पालन कर

सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥ ४६ ॥

भा०—(वयं सुत-वन्तः) हम सुत अर्थात् उत्पन्न ज्ञान वाले, और (प्रयस्वन्तः) उत्तम अन्नादि से सम्पन्न होकर भी (त्वा हवामहे) तुझ से याचना करते हैं कि (नः) हमारे (इदं बर्हिः आसदे) इस हृदयासन पर विराज । (२) इसी प्रकार उत्तम ऐश्वर्य, अन्न, उद्योगादि से युक्त, प्रजाएं राजा से उत्तम (बर्हिः) राष्ट्र प्रजा के ऊपर शासनार्थ विराजने की प्रार्थना करें ।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जिस कारण से (शश्वताम् साधारणः त्वम् असि) तू बहुतों में भी साधारण, समान रूप से सबके प्रति निष्पक्षपात होकर सबको धारण पोषण करने हारा है, इसलिये (तं त्वा) उस तुझ को (वयं हवामहे) हम आदरपूर्वक बुलाते, प्रार्थना करते हैं ।

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (नरः) नायक लोग (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र बलों द्वारा (ते) तेरे लिये (सोम्यं मधु) ओषधि-रसादि से युक्त अन्न को (अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं । तू (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (तत् पिब) उसका उपभोग कर । (२) हे प्रभो! (ते सोम्यं मधु) तेरे ही जगत् के उत्पादन और संचालन करने वाले सर्वैश्वर्य युक्त (मधु) बल वा ज्ञान का गुरुओं से शिष्यवत् (नरः) उत्तम जन (अद्रिभिः) मेघों से जलवत्, अखण्ड तपों से दोहन करते हैं । तू (जुषाणः) प्रेमपूर्वक सेवा किया (अधुक्षन्) जाकर (तत् पिब) उसे हमें पिला, पान करा ।

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥

भा०—तू (अर्यः) सबका स्वामी है । अतः तू (विश्वान् विपश्चितः) समस्त विद्वानों को (अति ख्यः) पार करके सबसे अधिक विवेचक दृष्टि से देखता है । तू (तूयम् आ गहि) शीघ्र ही हमें प्राप्त हो । (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमें बड़ा भारी ज्ञान, यश आदि प्रदान कर ।

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।
मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (हिरण्य-वीनां) हित रमणीय कान्तियों से (राजा) प्रकाशमान प्रभु, (मे) मुझे (पृषतीनां) आनन्द की वर्षणकारी वाणियों का (दाता) देने वाला परम गुरु (मघवा) उत्तम ज्ञान का धनी (मा रिषत्) दण्डित, व्यथित न करे । (२) राजा भी सुवर्ण युक्त रथ विमानादि का स्वामी, और उत्तम गौवों का दाता धनी मुझ प्रजाजन का नाश न करे ।

सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥

भा०—(पृषतीनाम् सहस्रे अधि) सहस्रों सुखवर्षक वाणियों या नाड़ियों के भी ऊपर सहस्र नाड़ियों से युक्त मूर्धा में (बृहत् पृथु) बड़े विस्तृत (चन्द्रं) आल्हादजनक (शुक्रम् हिरण्यं) हितकारी सुखप्रद कान्तियुक्त वीर्य को (आददे) धारण करूं, मैं ऊर्ध्वरेता होऊं ।

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत १२।४७

भा०—व्रत से न गिरने वाले (सहस्रेण दुर्गहस्य) हजारों से दुर्ग्राह्य, अविज्ञेय, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (मे) मेरा (श्रवः) ज्ञान (देवेषु) ज्ञान की कामना करने वाले शिष्यों में (अक्रत) प्रदान करो । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६६]

कलिः प्रागाथ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३, ५, ११, १३ विराड् बृहती । ७ पादनिचृद् बृहती । २, ८, १२ निचृत् पंक्तिः । ४, ६ विराट् पंक्तिः । १४ पादनिचृत् पंक्तिः । १० पंक्तिः । ६, १५ अनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (स-बाधः) पीड़ित होकर (ऊतये) रक्षा के लिये (तरोभिः) तारण करने वाले ज्ञानों से (वः) आप लोगों को (विदद्-वसुम्) नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले, (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् को (कारिणं भरं न) सर्वकर्त्ता सर्वपोषक पिता के समान जान कर (बृहत् गायन्तः) वेदवाणी का गान करते हुए (सुत-सोमे अध्वरे) सोम सवनयुक्त यज्ञ में, वा ज्ञानसम्पादन युक्त हिंसारहित विशुद्ध उपासना में प्रार्थना करो । मैं भी उसी को (हुवे) प्रार्थना करता हूं ।

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(यं सु-शिप्रम्) जिस उत्तम बलशाली को (दुध्राः न वरन्ते) दुर्धर अर्थात् बड़े २ बलशाली भी वारण नहीं कर सकते (न स्थिराः मुरः) स्थिर, अचल शत्रुमारक बली भी जिसको वारण नहीं कर सकते, उसके किये को नहीं बदल सकते, (यः) जो (अन्धसः मदे) अन्नवत् ज्ञान-जीवन के आनन्द में (शशमानाय) प्रशंसा करते हुए, (सुन्वते) उपासना करते हुए, (जरित्रे) स्तोता जन के हितार्थ, (आदृत्य दाता) आदर करके प्रेमपूर्वक दान देता है, उस (उक्थ्यम्) स्तुत्य प्रभु की मैं उपासना करूं ।

यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (शक्रः) शक्तिशाली, (मृक्षः) अति शुद्ध (अश्व्यः) सर्वव्यापक है, (यः वा) जो (कीजः) अद्भुत, (हिरण्ययः) हित रमणीयस्वरूप, तेजोमय है (सः) वह (ऊर्वस्य) बहुत बड़े (गव्यस्य) वाणीसमूह रूप वेद के (आवृतिम्) आवरण को (अप रेजयति) दूर करता है, वही (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्, (वृत्रहा) सब दुष्टों और विघ्नों का नाश करने हारा है।

निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसूदिद्वपति दाशुषे।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार कोई (निखातं पुरु-सम्भृतं वसु उद्वपति) बहुत सा एक स्थान पर गड़ा ख़ज़ाना खोद लेता है उसी प्रकार (यः) जो (वज्री) शक्तिमान्, (सु-शिप्रः) उत्तम मुख नासिका वाले वा उत्तम मुकुट वाले के समान सुरूप, सुज्ञानी, (हर्यश्वः) मनुष्यों को अश्वोंवत् सन्मार्ग पर चलाने हारा (इन्द्रः) वह प्रभु (निखातं) गाड़े (पुरु-सम्भृतं) इन्द्रियों वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित (वसु) ऐश्वर्य को (दाशुषे) भूमि से अन्न के समान उत्पन्न कर प्रदान करता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु है, वह (यथावशत्) जैसा चाहता है वैसे ही (क्रत्वा) अपने ज्ञान और धर्मसामर्थ्य से (करत्) जगत् का निर्माण करता है।

यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम्।
वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥ ४८ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (पुरा चित्) पूर्ववत् अब भी (नृणां यद् वावन्थ)

मनुष्यों के निमित्त जो चाहता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयं) हम (तत् ते) वह तेरे लिये (यज्ञम् उक्थं वचः) यज्ञ, उत्तम वचन (तुरं संभरामसि) अति शीघ्र करें। इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः॥

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः॥ ६॥

भा०—(पुरु-हूत) बहुतों से स्तुति किये जाने योग्य! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन्! हे (द्युक्ष) कान्तिमन्! हे (सोमपाः) जगत् वा राष्ट्र के पालक! तू (सोमेषु) उत्पन्न जगत् के समस्त ऐश्वर्यों में (सचा) विद्यमान है। (त्वम् इत् हि) तू ही, (ब्रह्म-कृते) स्तोता (सुन्वते) उपासक को (काम्यं वसु देष्ठः भुवः) कामना करने योग्य धन का सर्वोत्तम दाता है।

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥ ७॥

भा०—(वयम्) हम लोग (इदा ह्यः) विगत दिन के समान इस समय भी (एनं वज्रिणं) इस शक्तिशाली को (अपीपेम) आप्यायित करें, प्रसन्न करें (तस्मै उ अद्य) उस ही के लिये आज (समना) समान चित्त होकर (भर) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ, और (नूनं) शीघ्र ही (श्रुते) प्रसिद्ध, श्रवण योग्य पद पर (भूषत) उसे शोभित करो। (२) प्रभु पक्ष में—उस शक्तिशाली प्रभु की हम खूब भक्ति करते हैं, समान चित्त होकर ध्यान करने के लिये समस्त (सुतं) उत्पन्न भावना वा कर्म फल को उसी पर न्योछावर करो और (श्रुते) श्रुति से श्रवण योग्य उसी प्रभु में (भूषत) स्वयं निष्ठ होवो।

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥ ८॥

भा०—(उरामथिः वृकः चित्) ऊन वाली भेड़ को मारने हारे

भेड़िये के समान (वारणः) शत्रु का वारण करने में समर्थ शूरवीर (अस्य वयुनेषु भूषति) इस राजा के कार्य में समर्थ होता है। (२) प्रभु पक्ष में—(वृकः चित् उरामथिः) हल के समान भूमि को खनने वाला, वा चन्द्र के समान रात्रि के अन्धकार का नाशक, वा वृक पशु के समान अच्छादक ज्ञान का नाशक और (वारणः) सब विघ्नों को दूर करने हारा ज्ञानी तेजस्वी पुरुष ही, (अस्य वयुनेषु) इस प्रभु के ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करने में (आ भूषति) सफल होता है। अथवा, (अस्य) इस जीव को (उरामथिः वृकः चित्) भेड़ के नाशक वा भेड़िये के समान आवरक तम के नाशक, चन्द्रवत् (वृकः) ज्योतिष्मान् (वारणः) सर्वदुःखवारक प्रभु ही उसे (वयुनेषु आ भूषति) सब ज्ञानों में अलंकृत करता वा समर्थ बनाता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सः) वह तू (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिवचन को प्रेम से स्वीकार करता हुआ, (चित्रया धिया) ज्ञानप्रद अद्भुत बुद्धि, ज्ञान, कर्म से (आ गहि) आ, हमें प्राप्त हो।

कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु का (कत् उ पौंस्यं नु अकृतम् अस्ति) कौन सा बल का कर्म नहीं किया हुआ है, सब बल के कर्म इसी के किये हैं। वह (वृत्रहा) सब विघ्नों और दुष्टों का वारक और दण्ड देने हारा, वह (वृत्रहा) आवरणकारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला, उसमें भी व्यापक (जनुषः परि) जन्मशील इस चराचर जगत् के ऊपर (केन उ श्रोमतेन) भला किस श्रवणीय, वेदगम्य गुण और कर्म से (न शुश्रुवे) श्रवण नहीं किया जाता? उसके सृष्टि, स्थिति संहारादि के सभी कार्य अद्भुत और शास्त्रगम्य हैं।

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥१०॥४१॥

भा०—अथवा (अस्य) इसकी (महीः) बड़ी, (तविषीः) शक्तियां (कत् उ) कितनी हैं ? अपरिमित हैं । (अस्य वृत्र-घ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विक्षोभक परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिंसित, नित्य स्थायी बल वा स्वरूप (कत् उ) कितना और कैसा है ? यह नहीं कहा जा सकता है। वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् वेक-नाटान्) सब महाजनों वा विवेकी (उत) और (अहः-दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले सब व्यवहारकुशलों को भी (क्रत्वा) अपने ज्ञान से (अभि) परास्त करता है, वह सर्वोपरि है ॥ वेकनाटाः—वे इति अपभ्रंशो द्विशब्दार्थे । एकं कार्षापणं ऋणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यौ नयेन दर्शयति। ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति वेकनाटाः इति सायणः। एक २ के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'वेकनाट' कहाते हैं । अथवा वेकनाटः—न ते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटज्नाटज्-भ्रटजः ॥ पा० ५ । २ । ३१ ॥ इति नाटच् । वेकनाटा, वेकनासिकाः भेक नासिकाः विकटनासिका वा । अथवा विचिर पृथग्भावे, वेकः पृथग्भावः, वेकनाटाः छिन्ननासः, विनासिका, विवेकशीलनासिकाः कुशला वा इत्येकोनपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व, एवं सबसे पूर्ण ! हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं घ पुरूतमासः) हम उत्तम जन, (ते) तेरे लिये (भृतिं न) वेतन के समान ही करादि नित्य नियम से (प्र भरामसि) प्रदान करें । इसी प्रकार प्रभु की भक्ति भी हम नियम से अपने भोजन के समान ही नित्य किया करें ।

पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (तुवि-कूर्मन्) बहुत से कर्म करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे) तेरे अधीन (पूर्वीः चित् हि) पूर्ण, समृद्ध (आशसः) उत्तम स्तुतिशील प्रजाएं और (ऊतयः) रक्षक सेनाएं (हवन्ते) तेरी स्तुति करती हैं । तू (अर्यः) सबका स्वामी, (तिरः चित्) प्राप्त हुए (सवना गहि) ऐश्वर्य प्राप्त कर । हे (वसो) सबको बसाने हारे ! हे (शविष्ठ) अति शक्तिशालिन् ! तू (मे हवं श्रुधि) मेरे वचन, प्रार्थनादि श्रवण कर ।

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥

भा०—(वयं घ ते) हम तो तेरे ही हैं, (त्वे इत्) तेरे ही अधीन हम (विप्राः) विद्वान् जन हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अपि स्मसि) सदा रहें, तुझ में निमग्न हों, अप्यय अर्थात् मोक्ष प्राप्त करें । हे (पुरु-हूत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! (मघवन्) उत्तम स्वामिन् ! (त्वद् अन्यः कः चन) तेरे से दूसरा कोई और (मर्डिता नहि अस्ति) सुख देने वाला नहीं है ।

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधो३ऽभिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥

भा०—हे (शचिष्ठ) शक्तिशालिन् ! तू (नः)हमें (अस्याः अमतेः) अज्ञान, दारिद्र और (क्षुधः) भूख, तृष्णा, (उत) और (अभिशस्तेः) निन्दा से (अव स्पृधि) मुक्त कर । हे (गातुवित्) मार्गवित् ! उपायज्ञ, वाणी के जानने और प्राप्त कराने हारे ! (त्वं) तू (नः) हमें (तव चित्रया ऊती) तेरी अपनी आश्चर्यकारी रक्षा और (धिया) ज्ञान, कर्मशक्ति से (शिक्ष) ज्ञान प्रदान कर ।

सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा विभीतन ।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति ॥ १५ ॥ ५० ॥

भा०—हे (कलयः) उक्त ज्ञानवान् कर्मशील पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (सोमः) ज्ञान और ऐश्वर्य (सुतः अस्तु) सदा उत्पन्न होता रहे । आप लोग (मा विभीतन) भय मत करो । (एषः) यह ज्ञान के उदय होने पर तेज से अन्धकारवत् (अप ध्वस्मायति इत्) स्वयं नष्ट हो जाता है, (स्वयं घ एषः अपायति) वह आप ही दूर हो जाता है । इति पञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

[६७]

मत्स्यः सांमदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ऋषयः ॥ आदित्या देवताः । छन्दः—१—३, ५, ७, ९, १३—१५, २१ निचृद् गायत्री । ४, १० विराड् गायत्री । ६, ८, ११, १२, १६—२० गायत्री ॥

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे ।
सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥ १ ॥

भा०—हम (तान्) उन (क्षत्रियान्) धनवान् और बलशाली (सुमृडीकान्) उत्तम सुखप्रद, (आदित्यान्) किरणों वा बारह मासों के समान तेजस्वी दान, कर आदि लेने वाले, विद्वानों और क्षत्रियों को (अभिष्टये) अपने अभीष्ट सुख को प्राप्त करने के लिये (अवः याचिषामहे) विनय पूर्वक धन, ज्ञानादि की याचना करें ।

मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा ।
आदित्यासो यथा विदुः ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही जन (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा)

शत्रुओं का नियन्ता न्यायकारी जन, और (आदित्यासः) तेजस्वी ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक जन भी (यथा विदुः) जैसे अच्छा जानें वैसे (नः) हमें (अंहतिं अतिपर्षत्) पाप से पार करें।

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे। आदित्यानामरङ्कृते३

भा०—(तेषां आदित्यानां) उन विद्वान् तपस्वी जनों का (अरंकृते) अत्यन्त अधिक श्रम करने वाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) स्तुत्य (वरूथम्) दुःखवारक धन (अस्ति) है।

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन्। अवांस्या वृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (वरुण मित्र अर्यमन्) श्रेष्ठ! स्नेहवन्! न्यायकारिन्! (वः महताम्) आप बड़ों का (महि अवः) ज्ञान और पालन सामर्थ्य भी बड़ा है। आप लोगों से हम (अवांसि वृणीमहे) नाना ज्ञानों, रक्षाओं की याचना करते हैं।

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्।
कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥ ५१ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो! (पुरा हथात्) मृत्यु से पहले आप लोग (नः जीवान्) हम जीवित जनों को (अभि धेतन) सदा पालन पोषण करते रहो, हे (हवन-श्रुतः) आह्वान के सुनने वालो! आप (कत् ह स्थ) कहीं भी होवो, इस व्रत का पालन करो। इत्येकपञ्चाशत्तमो वर्गः॥

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः।
तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥

भा०—हे उत्तम मनुष्यो! (यद् वरूथम्) जो तुम लोगों का दुःखादि वारण करने योग्य धन और (यत् छर्दिः) जो गृह है वह (श्रान्ताय)

श्रमशील तपस्वी, और (सुन्वते) उपासक भक्त जन के लिये हो । (तेन) उसी तपस्वी और उपासक भक्त जन द्वारा (नः अधि वोचत) हमें उत्तम उपदेश करो ।

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः ।
आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अंहोः) हिंसक एवं पापकारी पुरुष का पाप या कष्ट भी (उरु अस्ति) बड़ा अधिक होता है । और (अनागसः) निरपराधी को (रत्नं उरु अस्ति) सुख भी बहुत होता है । हे (आदित्याः) अदिति अर्थात् उत्तम माता पिता के उत्तम पुत्रो ! एवं उत्तम विद्वान् व्रतधारी तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग सदा (अद्भुत-एनसः) पापरहित, निरपराधी होवो ।

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि ।
इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥

भा०—(सेतुः) बन्धन, वा बन्धनकारी अधिकारी (नः मा सिषेत) हमें बन्धन में न बांधे । (अयं) यह (नः) हमें (महते) बड़े उद्देश्य के लिये (परि वृणक्तु) बुरे काम से बचावे । (इन्द्रः इत् हि) इन्द्र ही (वशी श्रुतः) सबको वश करने वाला सुना जाता है, वेद में बतलाया गया है ।

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः ।
देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा करने के इच्छुक विद्वान् मनुष्यो ! (रिपूणां) शत्रुओं और (वृजिनानां मृचा) पापों के विनाशकारी साधन से (नः मा अभि प्र मृक्षत) हमारा नाश मत होने दो । अत्र मृक्षत इत्यपि हिंसार्थस्य मृचेरेव रूपम् ।

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥ १० ॥

भा०—हे (महि) पूज्ये ! हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते)

पृथिवि ! मातः ! (उत) और मैं (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखदायिनी दयावती (त्वाम्) तुझ से (अभिष्टये) अभीष्ट पूर्त्ति के लिये (उप ब्रुवे) याचना करता हूं। इति द्वापञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

पर्षि दीने गंभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः ।
माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥ ११ ॥

भा०—हे (उग्रपुत्रे) अर्थात् शत्रु को भय देने वाले पुत्रों की मातः ! तू (जिघांसतः) हनन करने की इच्छा वाले, हिंसक भाव वाले पुरुष से हमारी (दीने) दीन दशा में और (गभीरे) गृह, जंगल, अन्धकारादि में भी (पर्षि) सब प्रकार से रक्षा कर। (नः तोकस्य) हमारे सन्तान को (माकिः) और कोई भी (नः रिषत्) मार सके। इसी प्रकार राष्ट्र, भूमि (State) स्वयं स्वतन्त्र अन्य किसी देश के अधीन न हों, उसकी इतनी शक्ति हो कि इसका प्रत्येक पुत्र दीन से दीनदशा और गंभीर से गंभीर जंगल, जल, एकान्तादि में भी निर्भय हो, उस पर कोई अन्य देश वाला अंगुली तक न उठा सके।

अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे ।
कृधि तोकाय जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे (उरु-व्रजे) दूर २ तक जाने वाली ! हे (उरूचि) बहुत वेग से जाने वाली ! तू (नः) हम (अनेहः) निरपराधों को (वि प्रसर्तवे) विविध दिशाओं में जाने के लिये हो और (तोकाय) पुत्रादि के (जीवसे) जीवन के लिये (कृधि) उपाय कर। दूर देशों तक जाने वाली वैश्य-सभा वा उनकी संस्था और गमनागमन साधनों की व्यवस्था कारिणी संस्था 'उरुव्रजा' और 'उरूची' नाम से कही गई प्रतीत होती हैं।

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः ।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (क्षितीनां) भूमियों में बसी ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओं के (मूर्धानः) शिरोमणि, प्रमुख पुरुष हैं वे (अदब्धासः) अहिंसक (स्व-यशसः) धन और यश से सम्पन्न हों और (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (व्रता रक्षन्ते) व्रत, उत्तम कर्मों, नियमों और अन्नों की रक्षा करें।

ते नं आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत ।
स्तेनं बद्धमिवादिते ॥ १४ ॥

भा०—(आदित्यासः) हे तेजस्वी पुरुषो ! हे (अदिते) अखण्ड शासनकारिणि ! मातृवत् पालिके ! प्रभुशक्ते ! तू (बद्धम्-इव स्तेनं) बंधे चोर के समान बन्धन में बद्ध (नः) हमें (वृकाणां आस्नः) भेड़ियों के तुल्य मुंह फाड़ कर खाने को आने वाले दुष्ट हिंसकों के मुखों से (मुमोचत) छुड़ाओ ।

अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः ।
अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥ १५ ॥ ५३ ॥

भा०—हे (आदित्याः) मातृभूमि के हितकारी जनो ! हे विद्वान् तेजस्वी, अखण्ड ब्रह्मोपासक, अखण्ड व्रताचरण करने हारो ! (इयं शरुः) यह हिंसाकारी (नः अपो एतु) हम से दूर हो और (इयं दुर्मतिः) यह दुष्ट मति और दुष्ट शस्त्रादि (अजघ्नुषी) हमें पीड़ित न करती हुई (अस्मत् अप एतु) हम से दूर हो । इति त्रिपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् ।
पुरा नूनं बुभुज्महे ॥ १६ ॥

भा०—हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दानशील, दान-आदान करने वाले तेजस्वी जनो ! (वः) आप लोगों की (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (वयं शश्वत् हि) हम निरन्तर ही (पुरा नूनं) पहले के समान (बुभुज्महे) नाना ऐश्वर्यों का भोग करें ।

शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः ।
देवाः कृणुथ जीवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्तम चित्त और उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (देवाः) दानशील ज्ञानप्रकाशक पुरुषो ! (एनसः) पाप से दूर (प्रतियन्तं) विरुद्ध दिशा में जाने वाले, या पापों का मुकाबला करने वाले (शश्वन्तं) बहुत से जनसमाज को (जीवसे कृणुथ) दीर्घ जीवन के लिये तैयार करो ।

तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति ।
बन्धाद् बद्धमिवादिते ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के शिष्यो ! वा भूमि-माता के सत्पुत्रो ! और हे (अदिते) सूर्यवत् तेजस्वी, हे मातृवत् पूज्य ! (बद्धम् इव) बद्ध पुरुष के समान कर्मबन्धन में बँधे पुरुष को (यत्) जो ज्ञान (मुमोचति) मुक्त कर देता है (तत्) वह (नव्यं) स्तुत्य, उपदेष्टव्य ज्ञान (सु सन्यसे) अच्छी प्रकार सेवन करने के लिये हो ।

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे ।
यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) ज्ञानवान् पुरुषो ! (अस्माकं तत् तरः न अस्ति) हमारे पास वह बल नहीं है, जो (अति-स्कदे) सब बन्धनों और कष्टों से पार ले चलने में समर्थ हो । (यूयम्) तुम सब (अस्मभ्यं मृडत) हमें सुखी करो ।

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः ।
पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! (विवस्वतः) विविध प्रजाओं के स्वामी राजा वा विविध किरणों वाले सूर्य की (कृत्रिमा)

शिल्पी आदि से बनाई गई वा गति से उत्पन्न (शरुः) प्राण या जीवन का नाश करने वाली (हेतिः) शस्त्रपीड़ा, वा कालगति, (नः) हमें (जरसः पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (मा वधीत्) न मारे ।

वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।
विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥ ५४ ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) विद्वान् तेजस्वी, अदीन शासक शक्ति के निर्माता जनो ! आप लोग (द्वेषः वि सु वृहत) शत्रुओं को विविध प्रकार से अच्छी प्रकार नष्ट कर दो । (अंहतिम् वि-वृहत) पाप को समूल उखाड़ दो । (संहितम् वि वृहत) बन्धन को दूर करो । और (रपः विश्वक् वि वृहत) पाप को भी सब प्रकार से उखाड़ दो । इति चतुःपञ्चाशत्तमो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

[६८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ १—१३ इन्द्रः । १४—१६ ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ४, ७ विराडनुष्टुप् । १० निचृदनुष्टुप् । २, ३, १५ गायत्री । ५, ६, ८, १२, १३, १७, १९ निचृद् गायत्री । ११ विराड् गायत्री । ९, १४, १८ पादनिचृद् गायत्री । १६ आर्ची स्वराड् गायत्री ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! सत्यदर्शिन् ! तेजस्विन् ! (यथा) जिस प्रकार (ऊतये) सुखार्थ और रक्षार्थ (तुविकूर्मि ऋति-सहं

रथं वर्तयामः) बहुत तीव्र गति से चलने वाले, बहुत कार्यों में आने वाले, गमनमें समर्थ रथ को प्रयोग में लाते हैं उसी प्रकार हे (शविष्ठ) अति बलशालिन्! हे (सत्-पते) सज्जनों के पालक! सत् ,कारण पदार्थों के स्वामिन्! (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से सृष्ट्यादि कर्मों के कर्त्ता, (ऋति-षहं) दुःखदायी हिंसकों को पराजित करने वाले, (त्वा) तुझ को हम (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने के लिये (आ वर्तयामसि) पुनः २ तेरा मनन, चिन्तन और शास्त्र द्वारा आवर्त्तन करें।

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते।
आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शुष्म) बहुत बलों से सम्पन्न, प्रचुर शक्तिमन्! हे (तुविक्रतो) बहुत प्रज्ञासम्पन्न! महामते। हे (शचीवः) शक्ति, वाणी के स्वामिन्! तू (महित्वना) महान् सामर्थ्य से हे (मते) मनन करने हारे ज्ञानमय! (विश्वया आ पप्राथ) समस्त विश्व को तू ही फैलाता है।

यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः।
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (हस्ता) दोनों हाथ (महिना) महान् शक्ति से युक्त होकर (महः) बड़े (ज्मायन्तं) भूमि तक व्यापने वाले (हिरण्यम्) तेजोमय (वज्रं) वीर्यवत् शस्त्र को (परि ईयतुः) वश करते हैं।

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (अनानतस्य) कभी न झुकने वाले (विश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों के बने (शवसः) बलवान् सैन्य के (पतिम्)

उस स्वामी को (चर्षणीनाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों के (एवैः) गमनागमनों द्वारा (हुवे) बुलाता हूं ।

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीह्ळेषु यं नरः ।
नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस (सदावृधं) सदा बढ़ाने वाले, को (स्वः-मीढेषु) संग्रामों में (नाना नरः) नाना नायक जन (ऊतये) रक्षा और भृति के लिये (हवन्ते) प्रमुख स्वीकार करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ॥६॥

भा०—(परः-मात्रम्) सब परिमाणों से परे, अति सूक्ष्म और अनन्त, (ऋचीषमम्) ऋचा या स्तुति द्वारा सर्वत्र समान रूप से स्तुत्य (इन्द्रम् उग्रं सु-राधसम्) ऐश्वर्ययुक्त बलवान् धनादि सम्पन्न (वसूनां चित् ईशानम्) प्रजा के राजा के समान समस्त जीवों और लोकों के स्वामी की मैं (हुवे) स्तुति करता हूं ।

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।
यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (नृतुः) सबका नेता, सब विश्व का संचालक और (कृष्टीनाम्) सब कृषि योग्य भूमियों के स्वामिवत् समस्त योनियों, जीवों, मनुष्यों, और प्रजाओं का (ईशे) प्रभु है, (तं-तम् इत्) निश्चय उस ही (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्य के दाता प्रभु को लक्ष्य करके (पूर्व्याम्) पूर्व की, सर्वश्रेष्ठ, (अनु-स्तुतिम्) अनुरूप स्तुति को (पीतये) अपने पालन या रक्षा के लिये (चोदामि) करता हूं ।

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः ।
नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शवसान) बलशालिन् ! (यस्य ते) जिस तेरे (सख्यम्)

मित्रभाव को (मर्त्यः) मनुष्य (न आनंश) नहीं प्राप्त करता, उसको पूरी तरह से नहीं जान पाता, उन तेरे (शवांसि) बलों को भी (नकिः नशत्) कोई पा नहीं सकता। उनका भी पार कोई नहीं पाता। तेरी मित्रता और बल दोनों अपार और अनन्त हैं।

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम्।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन्! (त्वा उतासः) तेरे से सुरक्षित और (त्वा युजा) तेरे से सहायवान् होकर हम (अप्सु सूर्ये) अन्तरिक्ष और सूर्य के समान प्रजा और सूर्यवत् राजा के अधीन रहकर (पृत्सु) संग्रामों में (महद् धनम् जयेम) बड़ा धनलाभ विजय करें।

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (गिर्वणस्तम इन्द्र) वाणी द्वारा अतिस्तुत्य प्रभो! (यथाचित् वाजेषु) जिस प्रकार संग्रामों में तू (पुरु-माय्यं) बहुत मतिमान् और बहुतों में आज्ञापक की (आविथ) रक्षा करता है, (तं त्वा) उस तुझ को (गीर्भिः यज्ञेभिः) वाणियों और यज्ञों द्वारा (ईमहे) स्तुति करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरा (सख्यं स्वादु) मित्रभाव अति सुख प्रद, और (प्रणीतिः स्वाद्वी) जिसकी उत्तम नीति भी अति सुख देने वाली है वह तू (यज्ञः) उपासना योग्य और (वितन्त-साय्यः) विशेष रूप से एकाग्र चित्त से ध्यान करने योग्य है।

उरु णस्तन्वे३ तने उरु क्षयाय नस्कृधि ।
उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः तन्वे) हमारे शरीर के सुखार्थ, (तने) पुत्रादि के लिये और (क्षयाय) हमारे निवास और 'क्षय' अर्थात् ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये, (नः उरु कृधि) हमारे लिये वहुत कुछ और (जीवसे उरु यन्धि) हमें जीवन के लिये वहुत कुछ प्रदान कर ।

उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥१३॥

भा०—हम लोग (नृभ्यः उरुं) मनुष्यों के हितार्थ वहुत वड़ा (पन्थाम्) मार्ग चाहते हैं (गवे) गवादि जन्तुओं के लिये भी (उरु पन्थाम्) वहुत वड़ा मार्ग और (रथाय उरुं पन्थाम्) रथ के लिये भारी मार्ग और (देव-वीतिं) विद्वानों का उत्तम ज्ञान, प्रकाश तथा देव, दान-वान् पुरुप की नीति रक्षा, वल, कान्ति की (मनामहे) याचना करते हैं ।

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥

भा०—(द्वा-द्वा) दो दो करके (पड् नरः) छः नायक (सोमस्य हर्ष्या) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष से मानो सुप्रसन्न, (स्वादु-रातयः) सुखप्रद दानों से युक्त होकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरे पास उपस्थित होते हैं । अर्थात् 'सोम' वा वीर्य की रक्षा से उत्पन्न हर्ष, सुख, आनन्द से हृष्ट पुष्ट जोड़े जोड़े ६ नायक आंख, नाक, कान उत्तम सुस्वादु ज्ञान, वल प्रदान करते हुए मुझ आत्मा को प्राप्त हैं । दो दो के जोड़े मिलकर छः—आँखें, दो, नाकें दो, कान दो, ये उत्तम अन्न रस से पुष्ट होकर उत्तम ज्ञान देते हैं ।

ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि ।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(आश्वमेधस्य) अर्थात् अश्व, भोक्ता आत्मा के वा (आश्वमेधस्य) अश्व भोक्ता आत्मा वा अश्ववत् इन्द्रिय मन से संयुक्त (ऋक्षस्य) गतिशील, जंगम शरीर के (सूनवि) प्रेरक (इन्द्रोते) आत्मा से रक्षित इस शरीर रूप राष्ट्र में (ऋज्रौ) ऋजु मार्ग से जाने वाले, (रोहिता हरी) अन्न आदि से पुष्ट, दो अश्वोंवत् प्राण-आपान को मैं साध कर (आददे) वश करूं। (२) (आश्वमेधस्य ऋक्षस्य सूनवि इन्द्रोते ऋज्रौ रोहिता हरी आददे) अश्व मेध अर्थात् राष्ट्र का शासन करने वाले, ऋक्ष, अर्थात् पराक्रमी सैन्य के प्रेरक वा उत्पादक, राजा से सुरक्षित वा शत्रुहन्ता सैन्य-बल से सुरक्षित ऋजु, धर्म मार्ग में चलने वाले (रोहिता) वृद्धिशील, अनुरक्त, (हरी) स्त्री पुरुषों को मैं राजा (आददे) अपने अधीन लेता हूं। इति तृतीयो वर्गः ॥

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥

भा०—(आतिथिग्वे) अतिथि के आदर सत्कारार्थ वाणी को विनय पूर्वक प्रयोग करने वाले, (आर्क्षे) शत्रुपर आक्रमण करने में कुशल, (आश्वमेधे) अश्व-सैन्य से शत्रुओं का संग्राम रूप यज्ञ करने वाले, वीर नायक के अधीन (सुपेशसः) उत्तम रूपवान्, (सु-अभीशून्) उत्तम लगामों से युक्त (सु-रथान्) उत्तम रथ वाले अश्वों के समान, उत्तम रूप धनादि से सम्पन्न, (सु-अभीशून्) अंगुलि वा सुअवयवों से सम्पन्न, (सुरथान्) उत्तम रथारोही, वा उत्तम देहवान् वीर, दृढ़, योद्धा पुरुषों को मैं (आददे) अपने राष्ट्र में और शासन में नियुक्त करूं।

षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पूतक्रतौ सनम् १७

भा०—(आतिथिग्वे) पूज्य के सत्कारक, विनीत वाणी वाले (इन्द्रोते) ऐश्वर्य से युक्त, (पूत-क्रतौ) पवित्र कर्म और पवित्र ज्ञान वाले पुरुष के अधीन (वधूमतः षट् अश्वान्) 'वधू' अर्थात् शत्रु का वध करने, उनको कम्पित कर देने वाली सैन्य शक्ति से युक्त छः अश्वसैन्य के स्वामी सेना-

पत्तियों को मैं (सचा) एक साथ ही (सनम्) प्राप्त करूं। (२) अध्यात्म में– पवित्राचारवान् पावन-प्रज्ञ, सर्वोपरि वाणी के स्वामी आचार्य के अधीन रहकर मैं वहनकारिणी प्राण या चेतना शक्ति से युक्त चक्षु आदि पांच और छठा मन इन इन्द्रिय गण को मैं शिष्य वश करूं। अथवा मैं साधक, आत्मा से रक्षित, पवित्रकर्मा, व्यापक इन्द्रिय सम्पन्न देह में (वधूमतः) देहधारक शक्ति से युक्त पांच इन्द्रिय, मन, इन छः मुख्य प्राणों को धारण करूं।

ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी। स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥

भा०—(एषु ऋज्रेषु) इन ऋजु, धर्म मार्ग में चलने वाले विद्वानों के ऊपर या (वृषण्वती) बलवान् पुरुषों वा दृढ़ नायक सभापति वाली, (अरुषी) तेजस्विनी, (सु-अभीशुः) सुप्रबद्ध नियम व्यवस्था से सम्पन्न (कशावती) वाणी, वा आज्ञा की स्वामिनी राजसभा (आचेतत्) सब कुछ विचार किया करे। (२) अध्यात्म में–(एषु) इन (ऋज्रेषु) गतिशील प्राणों पर उनमें (वृषण्वती) बलवान् मन की स्वामिनी, (अरुषी) दीप्तिमती, (सु-अभीशुः) देह की संचालक ज्ञानतन्तुओं की स्वामिनी, (कशावती) वाणी की स्वामिनी (अचेतत्) देह में सर्वत्र चेतना को प्रकट करती है।

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः।
अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजबन्धवः) राष्ट्र में ऐश्वर्य और अन्नादि वेतनों पर बँधे नियुक्त पुरुषो ! (युष्मे) तुम लोगों में से कोई भी (मर्त्यः निनित्सुः चन) निन्दा करने वाला होकर (अवद्यम् न अधि दीधरत्) निन्दनीय कार्य, दुष्ट फल को न धारण करे। अर्थात् कोई भी परस्पर की निन्दा वा बुरा काम न करे। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६९]

प्रियमेध ऋषिः ॥ देवताः—१—१०, १३—१८ इन्द्रः । ११ विश्वेदेवाः । ११, १२ वरुणः ॥ छन्दः—१, ३, १८ विराडनुष्टुप् । ७, ९, १२, १३ १५ निचृदनुष्टुप् । ८ पादनिचृदनुष्टुप् । १४ अनुष्टुप् । २ निचृदुष्णिक् । ४, ५ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ११ पंक्तिः । १६ निचृत् पंक्तिः । १७ बृहती । १८ विराड् बृहती ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (मन्दद्-वीराय) हृष्ट, पुष्ट, सुतृप्त वीर पुरुषों के स्वामी वा वीरों को हर्षित करने वाले, (इन्दवे) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के लिये (त्रि-स्तुभम्) मन, वाणी, कर्म तीनों से स्तुति करने योग्य, तीनों दोषों के नाशक (इषं) अन्न और सैन्य को (प्र-प्र) उत्तम प्रकार से प्रदान करो । वह (पुरन्ध्या धिया) राष्ट्र या पुर को धारण करने वाली सद्-बुद्धि से (वः) आप लोगों की (मेध-सातये) अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करने और यज्ञ वा युद्ध के निभाने के लिये (आ विवासति) सब प्रकार से सेवा करें ।

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ २ ॥

भा०—(ओदतीनां) स्तुति करती हुई (वः) आप प्रजाओं को (नदं) समृद्ध करने वाले और (योयुवतीनां) सर्वत्र मेल, सत्संग रखने वाली प्रजाओं के (नदं) आज्ञापक, (अघ्न्यानां) न मारने योग्य, रक्षा करने योग्य (धेनूनाम्) अपनी पालक पोषक, गौवत् अन्नदाता और (वः) आप प्रजाजनों के (पतिं) पालक को आप लोग चाहो । और हे राजन् ! तू भी इन (धेनूनां अघ्न्यानां ओदतीनां योयुवतीनां) गौओं के

तुल्य अहन्तव्य, रक्षणीय, स्तुति युक्त, तुझ से मेल रखने वाली प्रजाओं की (इपुध्यसि) बराबर कामना कर, उनको हृदय से चाह।

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः॥ ३॥

भा०—वे (पृश्नयः) मेघमाला के समान ऐश्वर्य का वर्षण करने वाली वा उससे स्पर्श अर्थात् सम्बन्ध रखने वाली (विशः) प्रजाएं (सूद-दोहसः) जल प्रदान करने वाले कूपों या मेघों के समान (अस्य) उसके (सोमं) अन्नवत् ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) प्राप्त कराती हैं। और (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिषु) तीनों लोकों में (रोचने) प्रकाश करने वाले सर्व-रुचिकर आकाशवत् उच्च और (देवानां जन्मनि) देव, विद्वानों के बीच नवजन्म लेने के लिये शुभ गुणों के आश्रय पद पर उसे स्थापित या प्राप्त करते हैं।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥ ४॥

भा०—(यथा विदे) यथावत् ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये, (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक, एवं सत् अविनाशी पदार्थों के स्वामी, (सत्यस्य सूनुं) सत्य के प्रेरक, सत्य के उत्पादक, उपदेशक (गोपतिं) जितेन्द्रिय, वाणी के पालक, भूमि के पालक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (अभि प्र अर्च) साक्षात् स्तुति कर।

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे॥५॥५॥

भा०—(यत्र) जहां हम सब (अभि सं-नवामहे) ऐश्वर्यवान् की साक्षात् स्तुति करें, उस (बर्हिषि अधि) राष्ट्र, प्रजा वा उत्तमासन पर स्थित (हरयः) उत्तम विद्वान् गण (अरुषीः) उत्तम २ वाणियां (आ ससृज्रिरे) कहें। इति पञ्चमो वर्गः॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ६

भा०—(गावः आशिरं मधु) गौएं जिस प्रकार खाने योग्य उत्तम मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं उसी प्रकार (इन्द्राय वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के (मधु) अति मधुर (आशिरं) सर्वव्यापक स्वरूप को (गावः) वेदवाणियां (दुदुह्रे) दोहन करती हैं, उसी का प्रतिपादन करती हैं, (यत्) जो (उपह्वरे) अति समीप एकान्त देश में (विदत्) जाना और प्राप्त किया जाता है ।

उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

भा०—मैं और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी दोनों (ब्रध्नस्य) बन्धन में बांधने वाले आश्रयभूत स्वामी के (विष्टपं = वितपं) ताप-दुःखादि से रहित सुखपूर्ण (गृहम् उद् गन्वहि) गृह को उत्तम रीति से प्राप्त हों, और (मध्वः पीत्वा) मधुर पदार्थ दुग्धादि का पान या मधुपर्कादि ग्रहण करने के अनन्तर (त्रिः) मनसा, वाचा, कर्मणा (सख्युः सप्त पदे) मित्र या सखा के सातवें पद पर (सचेवहि) हम दोनों मिलकर रहें । इस प्रकार वधू वर से कहे । अथवा—(सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) मित्र सखा के ३ × ७ = २१वें पद पर दोनों मिलें ।* इसी प्रकार प्रजा भी राजा की उपभोग्यवत् होकर पालनीय होने से पत्नीवत् और राजा

* यह २१वां पद कौन सा है ? इस सम्बन्ध में सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण (१ । ३०) का वचन उद्धृत किया है—त्रिःसप्तेत्यनेन देवलोकानामुत्तममेकविंशस्थानमुच्यते । आदित्यस्यैकविंशत्वात् । तथा च ब्राह्मणम् । द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंश इति । इसके अनुसार भी १२ मासों, पांचों ऋतुओं और तीनों लोकों में दोनों संग रहें यह अभिप्राय निकलता है ।

उसका स्वामी है, वही प्रबन्धक होने से 'अग्नि' है दोनों ही मधुर अन्न-जल का उपभोग कर मित्रपद पर मिलें, दोनों एक दूसरे के मित्र होकर रहें। (३) इसी प्रकार परमेश्वर 'अग्नि' है, जीव इन्द्र प्रभु का पद तापरहित सुखमय होने से 'त्रिष्टप' है, वहां दोनों आत्मा, ज्ञानपान कर मिलें, वे सखा होकर रहें।

द्वा सुपर्णा, सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। उपनिषत्। सखा होने के सात चरण—१. इष्, २. ऊर्ज, ३. रायस्पोष, ४. मायोभव्य, ५. प्रजा, ६. ऋतु ७. सख्यभाव। (पारस्कर गृ०)

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रिय-मेधासः) यज्ञ, अन्न, युद्ध वाणी, बुद्धि आदि के प्रिय जनो! हे (पुत्रकाः) बहुत जनों और ज्ञानों की रक्षा करने हारे वीर पुरुषो! आप लोग उस परमेश्वर को (अर्चत, प्र अर्चत, अर्चत) स्तुति करो, खूब स्तुति करो और स्तुति करते ही रहा करो। (उत अर्चन्तु) आप लोग अर्चना करो, उसको (धृष्णु पुरं न) शत्रु को पराजित करने में समर्थ दृढ़ दुर्ग के समान सब का पालक जानकर उसकी (अर्चत) पूजा करो। वह स्वामी ही हमारा बड़ा भारी गढ़ है।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

भा०—(गर्गरः अव स्वराति) उत्तम उपदेष्टा अधीनों को उपदेश करता है, (गोधा) वाणी को धारण करने वाला जन भी ज्ञान को (परि सनिष्वणत्) सब ओर उपदेश करे। (पिङ्गा) उत्तम मनोहर शब्द बोलने में चतुर कविमण्डली वा वादित्रमण्डली भी (इन्द्राय) उस परमेश्वर की (उद्-यतम्) उत्तम (ब्रह्म) वेद-स्तुति का (परि चनिष्कत्) सर्वत्र वर्णन करे। (२) इसी प्रकार राजा का (गर्गरः) गड़गड़ शब्दकारी

नगारा, मेघवत् गर्जे (गोधा) हाथ पर बंधा चर्म, जहां डोरी बराबर आकर लगती है, वह 'हस्तघ्न' भी पृथ्वीपोषक मेघवृष्टिवत् ध्वनि करे और (पिंगा) पीत वर्ण वा झन-झनाती डोरी विद्युत् के समान राजा के लिये (उद्-यतं) उत्तम रीति से विजयबद्ध (ब्रह्म) बृहत् राष्ट्र-धन की (परि चनिष्कदत्) घोषणा करे ।

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अनपस्फुरः) न विदकने वाली (सु-दुघाः) सुख से दोहन करने योग्य (ऐन्यः) शुद्ध श्वेत वर्ण की गौएं (आपतन्ति) आ जाती हैं तब (इन्द्राय सोमं पातवे) स्वामी के निमित्त दुग्धपान के लिये (अप-स्फुरं) उद्वेगरहित शान्त गौ को ले लिया जाता है उसी प्रकार (एन्यः) शुद्ध वर्ण की, शुद्ध चरित्र वाली प्रजाएं (यत्) जो (अनप-स्फुरः) अ-भ्रष्टमार्ग वाली उत्पथ में न जाने वाली और (सु-दुघाः) धनादि से खूब पूर्ण, और राजा को भी धनादि से पूर्ण करने वाली हों । उनमें से भी (इन्द्राय सोमं पातवे) परमैश्वर्यवान् राजा को ऐश्वर्य उपभोग करने या राजा के ऐश्वर्य की रक्षा के लिये, (अप स्फुरं) उद्वेग, अराजकतादि से रहित, प्रजा को (गृभायत) वश करो । अथवा (अपस्फुरं) कुमार्ग में जाने वाले को (गृभायत) पकड़ो और कैद में धर दो । इति षष्ठो वर्गः ॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ११

भा०—(इन्द्रः अपात्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष प्रजा की रक्षा करे, (अग्निः अपात्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष भी प्रजा की रक्षा करे । (विश्वे देवाः) सब उत्तम विद्वान् जन (अमत्सत) खूब तृप्त, सन्तुष्ट होकर रहें, उनको दारिद्रय न सतावे । (इह वरुणः इत् क्षयत्) यहां इस

राष्ट्र में वरुण, सबको वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष ही निवास करे वा (क्षयत्) वह सम्पत्ति का स्वामी हो। (तम्) उस की (आपः) आप्त प्रजाएं भी (वत्सं संशिश्वरीः इव) बछड़े को उत्तम शिशुओं वाली गौओं के समान, प्रेम से युक्त प्रजाएं, (संशिश्वरीः) शिशुवत् शरण में प्राप्त होकर (वत्सं) सबको बसाने वा रक्षा करने में समर्थ वा (वत्सं) अभिवादन योग्य पुरुष को पाकर (अभि अनूषत) उसकी साक्षात् स्तुति किया करें।

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य आचार्य ! (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदं अनु) तालु के प्रति (सप्त) सातों छन्द (सिन्धवः) वहते नदधारों के समान (सुषिराम् सूर्म्यं) छिद्रवती लोह की नली में जल धारा के समान वहती हैं वह तू (सुदेवः असि) उत्तम ज्ञानदाता, ज्ञान का प्रकाशक है। (२) हे राजन्! तू उत्तम तेजस्वी है। (ते) तेरे (काकुदं अनु) सर्व-श्रेष्ठ ककुत्वत्, सर्वोपरि पद के अनुकूल (सप्त सिन्धवः) सातों प्रकार की प्रकृतियां समुद्र के प्रति नदियों के तुल्य वा तालु के प्रति सात प्राणों के तुल्य (अनु क्षरन्ति) दिनों दिन बहती आवें, स्वभावतः तेरा अनुसरण करें।

यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (दाशुषे) दाता के लाभार्थ (सुयुक्तान्) उत्तम पदों पर नियुक्त (व्यतान्) विशेष वेगवान्, बल युक्त साधनों वाले जनों को (अफाणयत्) संचालित करता है, (तद् इत) वही (तक्वः) शत्रुहन्ता, (नेता) नायक, (वपुः) शत्रु को उखाड़ने में समर्थ है (यः) जो (उपमा) सर्वोपमान योग्य आदर्श होकर (अमुच्यत) बन्धन से मुक्त होता और अन्य को भी मुक्त करता है। इसी प्रकार वह

प्रभु उत्तम योगिजनों को उपदेश करता और (वपुः अमुच्यत) देह-बन्धन से मुक्त करता है।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥

भा०—(इन्द्रः) सत्यदर्शी, तेजस्वी पुरुष वीर और विद्वान् (विश्वाः द्विषः अति) समस्त द्वेषों और द्वेषियों को अतिक्रमण कर, उनसे बढ़कर (शक्रः) शक्तिशाली, सर्ववशकारी होकर (अति इत् उ) अति अधिक ही (ओहते) बढ़ जाता है। जिस प्रकार (पच्यमानं ओदनं) पकते हुए चावल को कान्तियुक्त अग्नि (भिनत्) भेद देता है, उसका दाना दाना अलग कर देता है और जिस प्रकार (कनीनः) कान्ति-युक्त सूर्य (पच्यमानं ओदनं) प्रकट हुए मेघ को (भिनत्) तेज से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार गुरु से तत्वदर्शी विद्वान् (कनीनः) तेजस्वी कनिष्ठ शिष्य होकर (गिरा) वाणी द्वारा (पच्यमानं) प्रकट किये जाते हुए (ओदनं) प्रजापति के (परः) परम स्वरूप को (भिनत्) और अधिक खोले, उसको लक्ष्यवत् भेदे। पच्यमानं,—पचि विस्तारवचने।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथं।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥

भा०—(अर्भकः कुमारकः न) जिस प्रकार छोटे शरीर का भी युवराज (नवं रथं अधि तिष्ठत) नये रथ पर बैठ कर (मात्रे पित्रे) माता पिता की प्रसन्नता के लिये (विभु-क्रतुम्) बड़े सामर्थ्यवान् (महिषं मृगं) बड़े अश्वोंको (पक्षत्) वश कर लेता है। उसी प्रकार राजा भी (नवं रथं अधितिष्ठन्) नये रथवत् नये रमणीय ऐश्वर्ययुक्त राज्य को अधिष्ठित होता हुआ (विभु-क्रतुम्) अधिक प्रज्ञावान् (महिषं) पूज्य (मृगं) शुद्ध-चारित्रवान् पुरुष को (मात्रे पित्रे) माता पिता के योग्य पद के निमित्त अपने ऊपर (पक्षत्) स्वीकार करे। इसी प्रकार यह जीव भी

इस देह रूप रथ को प्राप्त कर महाप्रज्ञ एवं (महिषं) बड़े ऐश्वर्य के दाता (मृगं) शुद्ध स्वरूप सर्वशोधक परम पावन प्रभु को माता पिता रूप से स्वीकार करे वह उसे 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' समझे। (३) (सः) वह आचार्य शिष्य के प्रति महाप्रज्ञ प्रभु को ही माता पिता होने योग्य महान् ऐश्वर्यप्रद सब से मृग्य, शुद्ध (पक्षत्) बतलावे। उसका विस्तार से उपदेश करे। अथवा वह शिष्य के प्रति भी (अर्भकः = अर्हकः) आदर भाव से यथा योग्य वर्तनेवाला हो। (न कु-मारकः) कुत्सित रूप में उसको मारने वाला न हो। अथवा नञ्जार्थः। वह उसका योग्य आदर्त्ता और कुत्सित चेष्टाओं पर दण्ड देने और कुत्सित भावों को नाश करने वाला हो।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अधं द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् १६

भा०—हे (सु-शिप्र) उत्तम मुखनासिका वा हनू वाले ! हे उत्तम मुकुट धारिन् ! सुशोभन रूप ! हे (दम्पते) जाया के पालक गृहपते ! तू (हिरण्ययम्) हितकारी रमण योग्य (रथं) रथवत् गृहस्थ रथ पर (आतिष्ठ तु) मुख्य होकर विराज। पत्नी कहती है—(अध) और हम दोनों (द्युक्षं) अति दीप्तियुक्त (सहस्र-पादं) दृढ़ चरण या आधार वाले (अरुषं) रोष से रहित (स्वस्ति-गाम्) कुशल, सुख-शान्तिदायक वाणी से युक्त, (अनेहसम्) पाप चेष्टा से रहित, रथवत् गृह, या उत्तम व्यवहार को (सचेवहि) धारण करें। यहां गृहपति, जाया का पति और 'दम' अर्थात् गृह का पति होने से 'दम्पति' है। और पक्षान्तर में—राजा भी राष्ट्र के दमन शासन का पालक होने से 'दम्पति' है।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार राजा के (सु-धितम्) उत्तम रीति से धारित

(अर्थं) अभिप्राय या ऐश्वर्य को (एतवे) प्राप्त करने के लिये (दावने) दान देने के लिये (आवर्तयन्ति) पुनः २ आपस में लेते देते हैं। और इस प्रकार (नमस्विनः) अन्नादिवान् प्रजाजन (स्वराजम्) अर्थ धनादि से प्रकाशित धन के स्वामी राजा की (उपासते) उपासना करते हैं। उसी प्रकार (अस्य सुधितं अर्थं एतवे दावने) इस प्रभु के सुष्टु धारित अभिप्राय को जानने और अन्य को उपदेशदान द्वारा जनाने के लिये भी (यत्) जो उसका (आवर्तयन्ति) पुनः अभ्यास करते हैं वे (घ) निश्चय से (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) अति विनीत होकर (स्वराजम् उप आसते) स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर की उपासना करते हैं।

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम् ।
पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आशत ॥१८॥७॥७॥

भा०—जिस प्रकार(प्रिय-मेधासः हित-प्रयसः वृक्त-बर्हिषः जनाः पूर्वाम् प्रयतिं अनु आशत) अन्न के प्रियजन अपने गृह में अन्नसंग्रह और क्षेत्र में अन्नवपन कर बाद धान्य काट कर अपने पहले किये प्रयत्न के अनुसार ही उसका उपभोग करते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इन प्रजा जनों के जीवों में से (प्रिय-मेधासः) यज्ञ के प्रिय वा ज्ञान और सत्संग के प्रिय जन (प्रत्नस्य ओकसः अनु) अपने पुराने गृह, देह के अनुरूप, (हित-प्रयसः) उत्तम २ प्रयास करके वा उत्तम २ कर्मफल में बद्ध होकर (वृक्त-बर्हिषः) धान्यों वा कुशाओं के तुल्य अपने कर्म फलों को कृषिवत् काट कर, (पूर्वाम् प्रयतिम् अनु) पहले किये प्रयत्न के अनुरूप ही (आशत) कर्मफल, सुख दुःखादि का भोग करते हैं। इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[७०]

पुरुहन्मा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् बृहती । ५, ७ विराड् बृहती । ३ निचृद् बृहती । ८, १० आर्ची स्वराड् बृहती । १२ आर्ची बृहती । ६, ११ बृहती । २, ६ निचृत् पांक्तिः । ४ पांक्तिः । १३ उष्णिक् । १५ निचृदुष्णिक् । १४ भुरिगनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

भा०—(यः चर्षणीनां राजा) जो सब मनुष्यों में से सूर्यवत् दीप्तिमान् (रथेभिः याता) रथों से आक्रमण या प्रयाण करने हारा, (अध्रिगुः) जिसके आगे बढ़ने को कोई न रोक सके, ऐसा सर्वोपरि नायक, (यः विश्वासां पृतनानां) जो समस्त सेनाओं का नाश करने वाला, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों को दण्ड देने वाला है मैं (गृणे) उसकी स्तुति करूं।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरु-हन्मन्) बहुत से शत्रुओं को नाश करने में समर्थ ! तू (अवसे) रक्षा करने के लिये (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यपद को (शुम्भ) सुशोभित कर (यस्य) जिसके (वि-धर्तरि) विशेष रूप से धारण करने वाले के अधीन (द्विता) दो स्वरूप हैं, एक भीम जो (हस्ताय) शत्रुओं के हनन करने के लिये (वज्रः) बलवीर्य को (प्रतिधायि) धारण करता है और दूसरा कान्त जो (महः दर्शतः) बड़ा दर्शनीय और (दिवे सूर्यः न) आकाश में सूर्यवत् जो पृथिवी पर तेज प्रदान करने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी है।

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस को (कर्मणा) कर्म द्वारा (नकिः नशत्) कोई प्राप्त नहीं कर सकता (यः सदावृधम्) जो सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से (विश्व-गूर्तम्) सर्व स्तुत्य (ऋभ्वसम्) महान्, (अधृष्टं) अपराजित और (धृष्णु- ओजसम्) पराजयकारी बल से सम्पन्न (चकार) करता है वही उस तक पहुंचता है।

अषा॑ह्ळमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं यस्मि॑न्म॒हीरु॑रु॒ज्रयः॑ ।
सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒र्द्याव॒: क्षामो॑ अनोनवुः ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् जायमाने) जिसके प्रादुर्भाव होते हुए (उरुज्रयः) अति वेग से युक्त, (महीः) बहुत सी भूवासिनी प्रजाएं वा सेनायें, (धेनवः) वत्स के प्रति गौवों के समान स्नेहयुक्त होकर, वा वाणियां उस (अषाढं) अपराजित, (उग्रं) बलवान् (पृतनासु सासहिं) संग्रामों में विजयकारी की (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं, (द्यावः क्षामः) तेजस्वी सेनाएं वा कामनावान् प्रजाएं भी उसकी (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं ।

यद्द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥५॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते शतं द्यावः) तेरी सैकड़ों, बहुत सी तेजस्विनी सेनाएं हों, (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियें हों, हे (वज्रिन्) बलवीर्यशालिन् ! (त्वा) तुझे (सहस्रं सूर्याः) हज़ारों सूर्य भी (न अनु स्युः) तेरे बराबर नहीं, (जातं त्वा अनु रोदसी) उत्पन्न या प्रकट हुए तेरे समान दुष्टों को रुलाने वाली सेना भी (न अष्ट) तुझे नहीं व्याप सकती, तेरा स्थान नहीं पा सकती । (२) सैकड़ों सूर्य पृथिवी आदि लोक भी परमेश्वर के बराबर नहीं, न भूमि औरआकाश उसको व्याप सकते हैं । इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न्विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न्गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभि॑ः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन् ! प्रजा पर सुखों और शत्रु पर शस्त्रअस्त्रों की वर्षा करने हारे ! हे (शविष्ठ) सबसे अधिक शक्तिशालिन् ! तू (महिना शवसा) अपने महान् बल से (विश्वा) समस्त (वृषणा) बलयुक्त कार्यों और सैन्यों को (अ पप्राथ) विस्तारित कर । और हे

(वज्रिन्) बलशालिन् ! हे (मघवन्) धनशालिन् ! (चित्राभिः ऊतिभिः) नाना अद्भुत रक्षाकारिणी क्रियाओं, सेनाओं से (गोमति व्रजे) भूमियों से युक्त कार्य या समूह में (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर ।

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥

भा०—हे (दीर्घायो) आयुष्मन् ! दीर्घ जीवन वाले (अदेवः मर्त्यः) अदानशील वा दाता से रहित मनुष्य (सीम्) सब प्रकार की (इषं न आपत्) अन्न और शक्ति को नहीं प्राप्त करता । (यः) जो (एतग्वा चित्) शुद्ध श्वेत वर्ण के वा शुद्ध चरित्रयुक्त स्त्री पुरुषों को भी (एतशा युयोजते) उत्तम दो अश्वों के समान सन्मार्ग में चलाता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष (हरी युयोजते) समस्त स्त्री पुरुषों को वश करता है ।

तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (गाधेषु) प्रतिष्ठा के कर्मों में (यः आरणेषु) सब प्रकार के आनन्द प्रद अवसरों में (हव्यः) स्तुति करने योग्य है और जो (वाजेषु हव्यः अस्ति) संग्रामों में स्तुति करने योग्य है (तम्) उस (महः महाय्यं) महान् पूज्य (दानाय सक्षणिम्) दान प्राप्त करने के लिये प्राप्त करने योग्य, वा शत्रु के विनाशार्थ शक्तिशाली को (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' जानो ।

उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) माता पितावत् प्रजा को बसाने हारे ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (महे राधसे) बड़े भारी धन के लिये (न उत् सु मृशस्व उ) हमें उत्तम रीति से प्राप्त कर । हमें उन्नत कर और (मह्यै

मवत्तये) बहुत ऐश्वर्य देने के लिये (उत् उ सु) हमें उठा और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (महे श्रवसे उत्) बड़े यश के लिये हमें उठा ।

त्वं न॑ इन्द्र ऋत॒युस्त्वा॒निदो॒ नि तृ॑म्पसि ।
मध्ये॑ वसिष्व तुविनृम्णो॒र्वोर्नि दा॒सं शि॑श्नथो॒ हथैः॑ ॥१०॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (त्वं) तू (नः) हमारे (ऋत-युः) व्यवहार ज्ञान, यज्ञादि को चाहने वाला है। तू (त्वा-निदः) अपने निन्दकों को (नितृम्पसि) विनष्ट करता है । हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (ऊर्वोः) अपनी जंघाओं पर हमें, बालक को पिता के तुल्य अथवा (ऊर्वोः) अपनी बड़ी विशाल बाहुओं के आश्रय पर (वसिष्व) बसा, और (दासं) विनाशक दुष्ट को (हथैः) शस्त्रों से (नि शिश्नथः) शिथिल कर । इति नवमो वर्गः ॥

अ॒न्यव्र॑तु॒मम॑नुषु॒मय॑ज्वान॒मदे॑वयुम् ।
अव॒ स्वः सखा॑ दुधुवीत॒ पर्व॑तः सुघ्नाय॒ दस्युं॒ पर्व॑तः ॥ ११ ॥

भा०—(सखा) प्रजा का मित्र (पर्वतः) पालनकारक साधनों से सम्पन्न होकर, (पर्वतः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और पर्वत के समान अचल होकर, (सु-घ्नाय) अच्छी प्रकार दण्ड देने के लिये (दस्युं) दुष्ट पुरुष को (स्वः) सुख से (अव दुधुवीत) कंपा कर गिरा दे । इसी प्रकार वह (अन्य-व्रतम्) शत्रु के समान कर्म करने वाले (अमानुषम्) मनुष्यों से भिन्न, उनके शत्रु, पशुवत् दुराचारी और निर्दय, (अयज्वानं) अदानशील, (अदेवयुम्) दाता, विद्वानों वा उत्तम गुणों को न चाहने वाले को भी (अव दुधुवीत) कंपा कर नीचे गिरा दे, उसे दण्डित करे ।

त्वं न॑ इन्द्रासां॒ हस्ते॑ शविष्ठ दा॒वने॑ ।
धा॒नानां॒ न सं गृ॑भायास्म॒युर्द्विः सं गृ॑भायास्म॒युः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (त्वं) तू (नः) हमें (दावने) देने के लिये (अस्मयुः) हमारा हितैषी होकर (आसां) इन (धानानां)

धाना अर्थात् लाजाओं के समान उज्ज्वल, एवं पुष्टिकारक गौवों और समृद्धियों को (संगृभाय) संग्रह कर। अच्छी प्रकार अपने (हस्ते संगृभाय) हाथ में, वश में रख, और (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ, हमारा स्वामी होकर तू उनको (द्विः संगृभाय) दो वार या दुगुना भी कर संग्रह कर। राजा प्रजाओं से धनादि वरावर संग्रह करे और आवश्यकता पर प्रजा के हितार्थ ही दुगुना भी ले लेवे।

सखा॑यः॒ क्रतु॑मिच्छत क॒था रा॑धाम श॒रस्य॑।
उप॑स्तुतिं भो॒जः सू॒रिर्यो अह्र॑यः ॥ १३ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगणो! आप लोग (क्रतुम् इच्छत) ज्ञान और कर्म की इच्छा करो और हम लोग (शरस्य) वाणवत् शत्रुनाशकारी वीर पुरुष या वल को (कथा) किसी प्रकार से भी (राधाम) अपने वश करें। और (यः) जो (भोजः) सवका पालक, रक्षक, भोक्ता, (सूरिः) विद्वान् (अह्रयः) अहीन, अपराजित है उसकी (उप-स्तुतिम् इच्छत) स्तुति करना चाहो।

भूरि॑भिः समह॒ ऋषि॑भिर्ब॒र्हिष्म॑द्भिः स्तविष्यसे।
यदि॒त्थमेक॑मेक॒मिच्छर॑ व॒त्सान्प॑रा॒ ददः॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन्! हे (समह) पूज्य! तू (वर्हिष्मद्भिः) आसनों, यज्ञों वा धन धान्यादि से सम्पन्न, (भूरिभिः) इस लोक वा प्रजा से युक्त वहुत से (ऋषिभिः) विद्वान् पुरुषों से भी तू (स्तविष्यसे) स्तुति किया जाता है। (यद्) जो तू (इत्थम्) इस प्रकार (एकम्-एकम्) एक २ करके (वत्सान्) वत्सों के समान इस लोक में वसे वा स्तुतिकारी नम्रजनों को (परा ददः) युक्त करे।

क॒र्ण॒गृह्या॑ म॒घवा॑ शौरदे॒व्यो व॒त्सं न॑स्त्रि॒भ्य आन॑यत्।
अ॒जां सू॒रिर्न धात॑वे ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(सूरिः) विद्वान् पुरुष (धातवे) दुग्धपान कराने के

लिये जिस प्रकार (अजां कर्णगृह्य) बकरी के कान पकड़ कर (वत्सं प्रति आनयत्) बछड़े के पास लाता वा बच्चे को कान पकड़ कर दूध पिलाने के लिये बकरी के पास ले जाता है उसी प्रकार (शौर-देव्यः) शूर और विजीगीषु (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् राजा (सूरिः) उत्तम विद्वान् के समान (नः) हमारे (वत्सं) राष्ट्र में बसे प्रजाजन को और (अजां) शत्रु को उखाड़ देने वाली सेना को भी (कर्णगृह्य) कान से पकड़ कर अर्थात् कर्ण से श्रवण करने योग्य उपदेश, आज्ञा-वचन सुनाकर (त्रिभ्यः आनयत्) तीनों प्रकार के कष्टों से परे रक्खे। वा (त्रिभ्यः) तीनों प्रकार के सुखों के लिये सन्मार्ग से ले जावे। इति दशमो वर्गः॥

[७१]

सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतर ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् गायत्री। २, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री। ३, ५ गायत्री। १०, १३ निचृद् बृहती। १४ विराड् बृहती। १२ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ बृहती॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

त्वं नो॑ अग्ने म॒होभि॑: पा॒हि विश्व॑स्या॒ अरा॑तेः।
उ॒त द्वि॒षो मर्त्य॑स्य॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्निवत् अग्रणीनायक! (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वस्याः अरातेः) सब प्रकार की शत्रु सेना (उत) और (द्विषः मर्त्यस्य) शत्रु मनुष्य से भी (महोभिः) बड़े धनों द्वारा (पाहि) रक्षा कर।

न॒हि म॒न्युः पौरु॑षेय॒ ईशे॒ हि वः॑ प्रियजात।
त्वमिद॑सि॒ क्षपा॑वान्॥ २॥

भा०—हे (प्रिय-जात) उत्पन्न बालकवत् प्रजाओं को तृप्त करने हारे राजन्! (वः) तुझ पर (पौरुषेयः मन्युः) मनुष्यों का क्रोध भी

(नहि ईशे) नहीं वश कर सकता। (त्वम् इत् क्षपावान् असि) तू ही शत्रुओं का नाश कर देने वाली भारी सेनादि का स्वामी (असि) है।

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे।
रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपाद्) बल को न गिरने देने हारे! हे (भद्र-शोचे) कल्याणकारी कान्ति वा तेज से सम्पन्न! (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों द्वारा (विश्व-वारं) सब से वरण करने योग्य (रयिं) धन (देहि) प्रदान कर।

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः। यं त्रायसे दाश्वांसम्॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! प्रभो! तू (यं दाश्वांसं) जिस दानशील की (त्रायसे) रक्षा करता है (तं मर्तं) उस मनुष्य को (अरातयः) समस्त शत्रु भी (रायः) धन से (नः युवन्त) पृथक् नहीं कर सकते।

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय।
स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्, तेजस्विन्! (मेध-सातौ) संग्राम वा यज्ञ में (त्वं) तू (धनाय हिनोषि) धन प्राप्त करने के लिये उत्साहित करता है। (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहकर (गोषु गन्ता) वाणियों में और भूमियों पर भी वश करने वाला होता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय। प्र णो नय वस्यो अच्छ ६

भा—हे (अग्ने) अग्रणीनायक! (त्वं) तू (पुरु-वीरं) बहुत पुत्रों वा वीरों सहित (रयिं) ऐश्वर्य को (दाशुषे मर्त्ताय) दानशील मनुष्य के हितार्थ प्रदान करता है। वह तू (नः वस्यः अच्छ नय) हमें भी उत्तम धन प्रदान कर।

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्ये॒ मर्ताय॥७॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (दुराध्ये मर्त्ताय) दुष्ट चिन्तक मनुष्य के और (अघायते) पापकारी, हिंसक के हाथों (मा परा दाः) मत दे, उसके हितार्थ हमें मत त्याग।

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनाम् ८

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते देवस्य रातिम्) तुझ दाता के दिये दान को (अदेवः माकिः युयोत) अदानशील व्यक्ति हम से पृथक् न करे। (त्वम् वसूनां ईशिषे) तू सब ऐश्वर्यों और मनुष्यों का स्वामी है। अर्थात् हमारे पारस्परिक लेन-देन की न्यायपूर्वक व्यवस्था कर।

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य।
सखे वसो जरितृभ्यः॥ ९॥

भा०—हे (ऊर्जः नपात्) बल को नष्ट न होने देने वाले ! हे (वसो) प्रजा को बसाने हारे ! न्यायकारिन् ! हे (सखे) स्नेहकारिन् ! मित्र ! तू (नः) हममें से (जरितृभ्यः) उत्तम स्तुतिशील विद्वान् जनों को (माहिनस्य वस्वः उपमासि) उत्तम धन, ज्ञान प्रदान कर।

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये॥१०॥१२॥

भा०—(नः गिरः) हमारी वाणियां सदा (शीर-शोचिषं) व्यापक तेज वाले, (दर्शतम्) दर्शनीय को (अच्छ यन्तु) लक्ष्य करके प्रकट हों। और (ऊतये) रक्षा के निमित्त हमारे (यज्ञासः) समस्त यज्ञ, सत्संग, आदर-सत्कार भी (नमसा) विनयपूर्वक (पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त और बहुत से प्रशंसित स्वामी को ही प्राप्त हों। इति द्वादशो वर्गः॥

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि॥११॥

भा०—(सहसः सूनुं) बल के उत्पादक वा प्रेरक, (जात-वेदसं) प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान्, (अग्निं) अग्नि, नायक को मैं (वार्याणां दानाय) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनदान करने के लिये जानूं। (यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों में भी (अमृतः) अमर (भूत्) होता है और (विशि) प्रजाओं में (मन्द्रतमः) अति हर्ष युक्त और (होता) ज्ञानादि का दाता होता है इस प्रकार (द्विता) उसके ये दो रूप होते हैं।

अ॒ग्निं वो॑ देव॒यज्य॑या॒ग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ।
अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से ॥ १२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के प्रति मैं (देव-यज्यया) परमेश्वर की पूजा के रूप में (अग्निं) अग्नि का उपदेश करता हूं। (प्रयति अध्वरे) यज्ञ के प्रवृत्त होने पर भी (अग्निं) अग्नि का आश्रय लो। (धीषु) सब कामों में (प्रथमम्) सर्व प्रथम (अग्निं) इस ज्ञानवान् प्रभु का स्मरण करो। (अर्वति अग्निं) वेगवान् अश्व रथादि के निमित्त भी अग्नि का प्रयोग जानो। (क्षेत्राय साधसे) क्षेत्र अर्थात् देह में रहने वाले आत्मा की प्राप्ति या ज्ञान करने के लिये भी (अग्निम्) अग्नि को ही दृष्टान्त रूप से जानें।

अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु॒ न ईशे॒ यो वार्या॑णाम् ।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वार्याणाम् ईशे) जो वरण करने योग्य धनों का स्वामी है वह (अग्निः) तेजस्वी प्रभु (सख्ये) अपने स्नेही मित्र को (इषां ददातु) अन्न दान करे। हम (वसु) सबके भीतर बसे (सन्तं) सत्-स्वरूप (तनूपाम्) सब देहों के पालक (अग्निम्) अग्नि, व्यापक प्रभु को (तोके तनये शश्वत् ईमहे) पुत्र पौत्रादि के कल्याणार्थ भी सदा याचना करें।

अ॒ग्निमी॑ळिष्वाव॑से गाथा॑भिः शी॒रशो॑चिषम् ।
अ॒ग्निं रा॒ये पु॑रुमीळ्ह श्रु॒तं नरो॒ऽग्निं सु॑दी॒तये॑ छ॒र्दिः ॥१४॥

भा०—हे (पुरुमीढ) वहुत धनों के दातः ! वहुतों पर वर्षाने हारे ! तू (गाथाभिः) गान योग्य वेद वाणियों द्वारा (शीर-शोचिषम् अग्निम्) व्यापक तेज वाले अग्रणी, नायक, ज्ञानी प्रभु की ही (ईडिष्व) स्तुति कर । (राये) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (श्रुतं) बहुश्रुत विद्वान् अग्नि की (ईडिष्व) स्तुति कर और (नरः) मनुष्यगण भी उसी (अग्निं) तेजस्वी की स्तुति करते हैं । वह (सुदीतये छर्दिः) उत्तम तेज वाले के लिये भी दीपक के लिये गृह के समान आश्रय है ।

अ॒ग्निं द्वेषो॒ योत॒वै नो॑ गृणीमस्य॒ग्निं शं योश्च॒ दात॑वे ।
विश्वा॑सु वि॒क्ष्व॑वि॒तेव॒ हव्यो॒ भव॒द्वस्तु॑र्ऋ॒षूणाम् ॥ १५ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (नः द्वेषः दातवे) अपने द्वेष भावों को दूर करने के लिये (अग्निं गृणीमसि) सर्वव्यापक सर्वज्ञ प्रभु की उपासना करें । और (शंयोः च दातवे) शान्ति और दुःख नाश करने के लिये भी उसी (अग्निं) तेजोमय का ध्यान करें । वह (विश्वासु विक्षु) समस्त विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का आश्रय स्थान और (हव्यः भवत्) स्तुत्य है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७२]

हर्यतः प्रागाथ ऋषिः । अग्निर्हवींषि वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८—१०, १२, १६ गायत्री । २ पादनिचृद् गायत्री । ४—६, ११, १३—१५, १७ निचृद् गायत्री । ७, १८ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ह॒विष्कृ॑णुध्व॒मा ग॑मदध्व॒र्युर्व॑नते॒ पुनः॑ । वि॒द्वाँ अ॑स्य प्र॒शास॑नम् १

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (हविः कृणुध्वम्) हविष् ज्ञान आदि का सम्पादन अन्न वा साधन करो (अध्वर्युः आगमत्) अध्वर, हिंसा

भाव से रहित यज्ञ का संचालक आवे। और वह (विद्वान्) विद्वान् पुरुष ही (अस्य) इस स्वाध्यायादि यज्ञ के (प्र-शासनं वनते) उत्तम शासन का पद प्राप्त करे।

नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि।
जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥

भा०—(तिग्मं अंशुं अभि) तीक्ष्ण, व्यापक ज्ञानवान् पुरुष के सम्मुख (होता) ज्ञान के ग्रहण कराने वाला पुरुष (मनौ अधि) मनन शील शिष्य के ऊपर (नि सीदत्) विराजे और वह (अस्य सख्यं जुषाणः) इसके प्रेम भाव को प्राप्त करने वाला हो।

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया।
गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥

भा०—(जने अन्तः) प्रत्येक जन, उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान् (परः) चक्षु से परे (रुद्रं) दुःख में रोने वाले वा रोगादि के नाशकं, आघात पीड़ादि के प्रतिबन्धक, अतीन्द्रिय विद्युत् अग्नि या तेजोरूप आत्म-तत्व को भी (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना चाहते हैं। और (ससम्) प्रसुप्त रूप से व्यापकवत् विद्यमान (जिह्वया गृणन्ति) जिह्वा अर्थात् ज्वालावत् विद्युत् की धारा से जैसे अग्नि अर्थात् विद्युत् को ग्रहण करते उसी प्रकार जिह्वा अर्थात् वाणी द्वारा उस चेतन को ग्रहण करते, उसका ज्ञान करते और अन्यों को कराते हैं।

'ससं'—स्वपनमेतन्माध्यमिकं ज्योतिरनित्यदर्शनं। नि० ५।१।३॥ वह सुप्तज्योति विद्युत् है जो कभी २ दीखती है। उसको भी उसकी जिह्वा अर्थात् लपकती धार से ही ग्रहण करते हैं, उसको एक नोक पर ले लेते हैं।

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्। दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४॥

भा०—अग्नि, विद्युत् (जामि) अति अधिक (अतीतपे) तप्त होता है और (धनुः) आकाश में ही (वयोधाः) बल को धारण करता हुआ, (वनम् अरुहत्) जल में रहता है, वह (दृषदं) मेघ को या शिला को भी (जिह्वया) अपनी जिह्वा, ज्वाला या धारा से ही (अवधीत्) आघात करता है और तोड़ डालता है। इसी प्रकार यह सामान्य अग्नि भी अति तप्त होकर ही (धनुः वयोधाः) अरणी की ओविली में धनुष् या डोरी द्वारा बल पाकर काष्ठ को पकड़ लेता है और जिह्वा अर्थात् चिनगारी द्वारा शिला पर आघात करता है। वह पत्थर तक को फोड़ देता है। इसी प्रकार जब अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (वयोधाः) बल और अपनी पर्याप्त यौवनावस्था को धारण कर (जामि अतीतपे) खूब तप्त होता, तपस्या कर लेता है, बल धारण करता है और धनुष के बल पर (वनम् अरुहत्) सैन्य बल का सर्दार बनता, उस पर शासन करता या ऊंचे आसन पर बैठता है, तब वह (जिह्वया) अपनी वाणी के बल से ही (दृषदं अवधीत्) पाषाण के समान चकनाचूर कर देने वाले पर-पक्ष के सैन्य वा क्षत्रियगण को भी (अवधीत्) नाश कर सकता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

चर॑न्व॒त्सो रुश॑न्नि॒ह नि॑दा॒तारं॒ न वि॑न्दते ।
वेति॒ स्तोत॑व अ॒म्ब्य॑म् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वत्सः) बछड़ा (रुशन् चरन्) उछलता कूदता हुआ अन्य (निदातारं न विन्दते) किसी रोकने वाले को न पावे उसी प्रकार यह अग्नि, विद्युत् जब (इह) इस अन्तरिक्ष में (रुशन्) श्वेत वर्ण में चमकता हुआ, (चरन्) विचरता है, किसी (नि दातारं) बाधक या पकड़ लेने वाले पदार्थ को नहीं प्राप्त करता तबतक वह (अम्ब्यम्) जल में उत्पन्न वा जल के उत्पादक प्रकाश को (स्तोतवे) अपने वर्णन करने के लिये (वेति) प्रकट करता है वा (अम्ब्यम्) शब्दमयी ध्वनि, को (वेति) प्रकट करता है। उसी प्रकार यह (वत्सः) स्तुति योग्य नायक

(रुशन् चरति) तेजस्वी, शुद्ध चरित्र होकर विचरता है तब किसी बाधक को नहीं पाता, स्तुति करने के लिये (अभ्यम्) हर्ष ध्वनिकारी प्रजाजन को प्राप्त करता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥६॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य) इस विद्युत् रूप अग्नि को (स्वस्य अश्ववत्) रथ के घोड़े के समान (यत्) जो (महत् योजनं) बड़ा बलपूर्वक जोड़ने का कार्य है उस को (बृहत् दामा) बड़ा भारी दमन करने वाला विद्वान् पुरुष ही (ददृशे) साक्षात् करता है । उसी प्रकार इस देह-रथ में आत्मारूप अग्नि के अश्ववत् जुड़ने को भी बड़ा दमनशील तपस्वी ही साक्षात् करता है ।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७॥

भा०—(सप्त) सात मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक का दोहन करते हैं और (द्वा पञ्च) दो पांचों को (सिन्धोः स्वरे तीर्थे अधि) सिन्धु के स्वयं प्रकाशमान तीर्थ अर्थात् मार्ग में (उप सृजतः) प्रेरित करते हैं । अर्थात् अध्यात्म में—प्राण-अपान, ये दोनों पांच ज्ञानेन्द्रियों को (सिन्धु) अर्थात् प्राण या रक्त की नाड़ी के (स्वरे तीर्थे अधि) स्वयं प्रकाशमान मार्ग मेरुदण्ड में स्थित होकर प्रेरित करते हैं । वे सातों मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक आत्मा या चेतनारूप गौ या वाणी को दोहन करते हैं, उससे बल प्राप्त करते हैं ।

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् ।
खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत् (त्रिवृता खेदया) तीन प्रकार के व्यापार वाली दीप्ति से (दशभिः) दशों दिशों से आघात कर (दिवः कोशं आच्यावयति) अन्तरिक्षस्थ कोश या मेघ से जल पातन कराता है उसी प्रकार (इन्द्रः) यह आत्मा या मुख्य प्राण (विव-

स्वतः कोशम्) विविध वसु, प्राणों वाले इस देहरूप अन्नमय कोश को (दिवः) अपनी कामना या व्यवहार, दीप्ति की (त्रिवृतां) त्रिगुणात्मक (खेदया) रज्जु सदृश प्रेरणा से (अचुच्यवीत्) चलाता है।

परि॑ त्रि॒धातु॑रध्व॒रं जू॒र्णिरे॑ति॒ नवी॑यसी। मध्वा॒ होता॑रो अञ्जते ९.

भा०—यह (त्रि-धातुः) वात, पित्त, कफ़ तीनों धातुओं से धारित यह देह (परि-अध्वरं) अविनाशी आत्मा के बलपर, (नवीयसी) सदा नयी, शक्ति से (जूर्णिः) सदा वेगयुक्त होकर (परि एति) सर्वत्र गति करता है और (होतारः) अन्न को ग्रहण करने वाले देहधारी उस शक्ति को (मध्वा) अन्न जल द्वारा (अञ्जते) प्राप्त करते हैं।

सि॒ञ्चन्ति॒ नम॑साव॒तमु॒च्चाच॑क्रं॒ परि॑ज्मानम्।
नी॒चीन॑बार॒मक्षि॑तम् ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार (उच्चा-चक्रम्) जिस के ऊपर चक्र लगा हो और (परिज्मानम्) चारों ओर भूमि हो और (नीचीनबारम्) नीचे पानी के द्वार हों ऐसे (अक्षितम्) अक्षय जल के भण्डार रूप (अवतम्) कूप को (नमसा) अन्न के हेतु वा (नमसा) जल से (सिञ्चन्ति) सींचते हैं, वा उस कूप से 'अक्षित' अन्न को सींचते हैं, उससे खेत की सिचाई करते हैं। उसी प्रकार यह देह आत्मा की रक्षा के लिये होने से 'अवत' है, उसका व्यवस्थापक यन्त्र शिर सर्वोपरि लगा है इससे वह 'उच्चाचक्र' है, चारों ओर उसकी गति होने से 'परिज्मा' है। गुदा, मूत्रादि नीचे के द्वार हैं, वह हृष्ट-पुष्ट 'अक्षित' है उसको लोग (नमसा) अन्न से सींचते और बढ़ाते हैं। 'नमः' इत्युदक नाम। इसी प्रकार अभिषेक्ता जन उच्चचक्र, रथचक्र, वा सैन्य चक्र के स्वामी, (परिज्मानं) सर्वतो बलवान् (अवतं) रक्षक राजा का अभिषेक करते हैं। वह (अक्षितं) अक्षीण और शत्रुवारक सैन्य को अपने नीचे रखता है।

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥११॥

भा०—(पुष्करे) अन्तरिक्ष में (अद्रयः) मेघगण (निषिक्तं) निषेचित (मधु) जल को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अवतस्य) कूप-के (विसर्जने) विशेष स्थान में जल को प्रदान करते हैं उसी प्रकार (पुष्करे) पुष्टि से युक्त राष्ट्र में (नि-सिक्तम्) खूब परिवृद्ध (मधु) मधुमय ऐश्वर्य को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अद्रयः) मेघवत् बलवान् पुरुष (अवतस्य) पालक राजा के (विसर्जने) विशेष निर्माण में प्रयत्न करें।

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १२ ॥

भा०—हे (गावः) वाणियो ! वा हे पशु, भूमि आदि सम्पदा वा उनमें बसी प्रजाओ ! आप लोग (अवतं उप अवत) रक्षक के समीप उसकी शरण में आवो । (यज्ञस्य) सत्संग और आदर-सत्कार के योग्य पुरुष को ये (मही) पूज्य आकाश और भूमि वा शास्य शासक वर्ग दोनों (रप्सुदा) उत्तम यश, बल देने वाले हों । इस पालक पुरुष के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण के अलंकारों से व हित रमणीय उपदेशों से सुशोभित हों ।

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् ॥ १३ ॥

भा०—(रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच (अभि-श्रियं) सर्वतः कान्तिमान्, आश्रयणीय सूर्य के समान शास्य-शासक वर्गों या स्वपक्ष पर-पक्ष दोनों सैन्यदलों के बीच में विशेष शोभा, लक्ष्मी के धारक या आश्रय लेने योग्य पुरुष को (सुते) अभिषेक योग्य पद या ऐश्वर्य पर (सिञ्चत) अभिषिक्त करे । (रसा) पृथिवी वा बलवती सेना (वृषभं दधीत) बलवान् पुरुष को अपने में धारण करे । इसी प्रकार भूमि, आकाश के

बीच कान्तिमान् अग्नि को घृतों से सेचन करो, जिससे यह रसा, पृथिवी वर्षणशील मेंघ को धारण कर।

ते जानत स्वमोक्यं १ सं वत्सासो न मातृभिः।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥

भा०—(वत्सासः मातृभिः न) बछड़े जिस प्रकार माताओं से (मिथः नसन्त) परस्पर मिल जाते हैं उसी प्रकार (ते) वे भी (वत्सासः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजागण (स्वम् ओक्यं जानते) अपने देश या स्थान के वासी को जाना करें और वे (जामिभिः) अपने बन्धु जनों के साथ (मिथः नसन्त) परस्पर मिलकर रहें, परस्पर प्रेम से मिला करें।

उप स्रक्वेषु वप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—(स्रक्वेषु वप्सतः) देहावयवों के घटक पदार्थों पर भोजन करने वाले पुरुष के जिस प्रकार वीर्यांश (दिवि धरुणं कृण्वते) मूर्धा-स्थल में या मूलांग में स्थिति करते हैं और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) आत्मा या प्राण और अग्नि के आधार पर अन्न और शक्ति निर्भर है उसी प्रकार पात्रों द्वारा घृतादि को खाते हुए अग्नि से दग्ध घृत चरु के अंश (दिवि) आकाश में जाते और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) सूर्य और अग्नि के आश्रय ही यह पृथिवी का अन्न और यह प्रकाश होता है। (२) इसी प्रकार राजा के उपभोग करते हुए ही सब जन (दिवि) भूमि पर सुख से आश्रय लेते हैं। इस-लिये (स्वः नमः) समस्त सुख और भूमि का बल, वा शासक बल, और सैन्यादि सब (इन्द्रे) तेजस्वी ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता और (अग्ना) अग्नि-वत् तेजस्वी नायक पर ही निर्भर हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः।
सूर्यस्य सप्तरश्मिभिः ॥ १६ ॥

भा०—(अरिः) वेग से चलने वाला वायु जिस प्रकार (सूर्यस्य

सप्त रश्मिभिः) सूर्य के वेग से आने वाले सात किरणों द्वारा (पिप्युपीम्) पुष्टिकारक (इपम्) अन्न और (ऊर्जं) रस को (सप्तपदीम्) सर्पणशील चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ को (अधुक्षत्) दोहता है। इसी प्रकार (अरिः) स्वामी, (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) तेजस्वी व्यवस्थापक के बनाये सात मर्यादाओं द्वारा, (सप्त पदीम्) सर्पणयुक्त पदों वाली, अर्थात् जनों से बसी भूमि से (पिप्युपीम् इपं ऊर्जं) पुष्टिकारक अन्न और पुष्ट बल का (अधुक्षत्) दोहन करता है। प्रजा में अन्न, बल की वृद्धि करता है।

सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषजम् १७

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, दिन और रात्रि, (उदिता सूरे) सूर्य के उदय होते २ में (सोमस्य आददे) सोम, बलकारक ओषधि रस का सेवन करूं, (तत् आतुरस्य भेपजम्) वही व्याधिपीड़ित के सब रोगों का नाश करता है।

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम्।
परि द्यां जिह्वयातनत् ॥ १८ ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य) इस (हर्यतस्य) कान्तिमान् अग्नि या सूर्य का (यत् पदं) जो पद या स्थान (नि-धान्यम्) भूमि पर विशेष धन वा धान्य के योग्य है, उसको अग्नि ही (द्यां परि) समस्त आकाश में अपनी (जिह्वया) ज्वालामयी जीभ से (परि तनत्) फैलाता है। इसी प्रकार जो इस राजा का ऐश्वर्ययोग्य पद है उसको यह नायक विद्वान् अपनी वाणी द्वारा विस्तृत कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७३]

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७, ६—११, १६—१८ गायत्री। ३, ८, १२—१५ निचृद् गायत्री। ६ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों (ऋतायते) सत्य ज्ञान और यज्ञ, अन्नादि के इच्छुक के लिये (उद् ईराथाम्) उत्तम उपदेश करो और (रथं युञ्जाथाम्) रथ के समान ही उत्तम उपदेश करो। यज्ञरक्षार्थ रथ और सत्य ज्ञान प्राप्त्यर्थ उपदेश को प्रयोग करो। (वाम्-अवः) आपका रक्षा और ज्ञान (सत् भूतु) सत्, सत्य और (अन्ति) हमारे सदा समीप रहे। रथो रपतेः निरु०।

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥

भा०—(नि-मिषः चित् जवीयसा) पलक की झंपक से भी अधिक वेग वाले (रथेन) रथ से हे (अश्विना) अश्व चालन में चतुर जनो ! आप लोग (आ यातम्) आवो। (वाम् अवः सत् अन्तिभूतु) आप दोनों की सत् रक्षा हमें सदा प्राप्त हो।

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥३॥

भा०—(अत्रये) विविध तापों से निवृत्त होने के लिये हे (अश्विना) अश्वोंवत् इन्द्रियों के संयमी जनो ! (घर्मम् हिमेन) दाह को शीतल जल से जिस प्रकार दूर किया जाता है उसी प्रकार सन्तप्त जन को शीतल वचन से (उप स्तृणीतम्) आच्छादित करो, उसका आदर सत्कार करो। (वां अन्ति अवः सद् भूतु) आप लोगों का सत् ज्ञान, व्यवहार हमें भी सदा प्राप्त हो।

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥

भा०—(कुह स्थः) आप कहीं रहो, (कुह जग्मथुः) कहीं भी जाते

हो, (कुह श्येना इव पेतथुः) कहीं भी दो श्येनों के समान वेग से, उत्तम आचार चरित्रवान् होकर गमन करो। (वाम् अन्ति सद् भवः भूतु) तुम दोनों के समीप सदा सत् ज्ञान, रक्षा बल अवश्य हो।

यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यत् अद्य) आज के समान (कर्हि कर्हि चित्) कभी कभी आप दोनों (इमं हवं शुश्रूयातम्) इस आह्वान या उत्तम वचन को भी श्रवण कर लिया करो। (वाम् अन्ति सत् भवः भूतु) आपके पास सदा सत्य ज्ञान, सद् व्यवहार रहे।

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों और मनों को भी वश करने वाले जनो! आप दोनों (याम-हूतमा) उत्तम संयम, परस्पर बन्धन को सर्वोत्तम रीति से स्वीकार करने वाले हो। आप दोनों के (नेदिष्ठं) अति समीपतम (आप्यम्) बन्धुत्व की मैं (यामि) प्रार्थना करता हूं।

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥७॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (अत्रये) इस राष्ट्र आश्रम या गृह में रहने वाले के लिये या (अत्रये) तीनों दुःखों से निवृत्त होने के लिये (युवं अवन्तं गृहं कृणुतं) तुम दोनों रक्षा करने वाला घर बनाओ। (वाम् अवः सद् अन्ति भूतु) तुम दोनों के समीप उत्तम रक्षा साधन, ज्ञान, व्यवहार होवे।

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥८॥

भा०—आप दोनों (वल्गु वदते) उत्तम वचन बोलने वाले (अत्रये)

तीनों दुःखों से निवृत्त जन के हितार्थ (ऊतयः) सब प्रकार के संताप और अग्नि के समान कष्टदायी कारण को भी (वरेथे) दूर करो। (वाम् सत् अवः अन्ति भूतु) आपका उत्तम ज्ञान और रक्षण सदा हमें प्राप्त हो।

प्र सुप्तवंध्रिराशसा धारांमुग्नेरंशायत । अन्ति षद्भूतु वामवंः ॥९॥

भा०—(सप्त-वध्रिः) सातों प्राणों को शिथिल या दमन करने वाला विद्वान् (आ-शसा) उत्तम आशा से प्रेरित होकर (अग्नेः धाराम्) विद्वान् पुरुष की वाणी को (प्र अशायत) अच्छी प्रकार हृदय में धारण करे, उसी में नित्य रमण करे। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु)आप दोनों की रक्षा और सत्-ज्ञान सदा हमारे समीप रहे।

इहा गंतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवंम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवंः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलयुक्त प्राणापान वाले जनो! (इह आगतम्) यहां आवो। (मे इमं हवं शृणुतम्) मेरे इस आमन्त्रण को श्रवण करो। (वाम् अवः अन्ति सत् भूतु) उत्तम ज्ञान आप लोगों का हमारे समीप हो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

किमिदं वां पुराणवज्जरंतोरिव शस्यते ।
अन्ति षद्भूतु वामवंः ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इदं वां पुराणवत् किम्) यह आप दोनों का पुरातन, सदातन का वेद-ज्ञान किस प्रकार का है ? जो (जरतोः इव) वृद्ध वा उपदेष्टा जनों के वचन के समान उपदेश किया जाता है, (अवः सत् वाम् अन्ति भूतु) आप लोगों के उत्तम ज्ञान सदा समीप रहे।

समानं वां सजात्यं समानो बन्धुंरश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवंः ॥ १२ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् परस्पर संयुक्त स्त्री पुरुषो !

(वां सजात्यं समानः) आप दोनों का उत्पत्ति एक समान और (बन्धुः समान) आप दोनों का परस्पर बन्धुत्व भी एक समान हो। (वाम् अवः अन्ति सद् भूतु) तुम दोनों का परस्पर समीपतम, घनिष्ठ प्रीति, तृप्ति, परस्पर वाचन-श्रवण क्रिया, इच्छा, आलिङ्गन, दान-आदानादि सब सद् व्यवहार हों।

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त साधनों और अश्वादि के ज्ञाता जनो! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (रजांसि वि-याति) नाना लोकों को प्राप्त होता है, वही (रोदसि वि-याति) आकाश और पृथिवी पर भी विशेष रूप से जावे। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप दोनों का उत्तम गमनागमन सदा होता रहे।

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १४ ॥

भा०—आप लोग (गव्येभिः अश्व्येभिः सहस्रैः) हजारों गौओं और हजारों अश्वों से (नः आ उप गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप दोनों का उत्तम रक्षण सामर्थ्य सदा हमें प्राप्त होवे।

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम्।
अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १५ ॥

भा०—(सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्येभिः नः मा अति ख्यतम्) हमें सहस्रों, गौवों और अश्वों से वञ्चित मत करो। (वाम् सद् अवः अन्ति-भूतु) आप लोगों का उत्तम दान सदा हमें प्राप्त हो।

अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षद्भूतु वामवः॥१

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला की सूर्य कान्ति (ऋत-वरी)

तेजस्विनी, (अरुण-प्सुः) अरुण प्रकाश वाली होती और (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है उसी प्रकार (ऋत-वरी) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली (उषाः) कमनीय कान्ति से युक्त (अरुणप्सुः) अरुण वर्ण की सुन्दर रूपवती (अभूत्) हो वह (ज्योतिः अकः) सत्य ज्ञान का प्रकाश करे।

अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव।
अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् ज्ञानी पुरुषो! (परशुमान् इव वृक्षं) परशु वाला पुरुष जिस प्रकार वृक्ष को काटता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रवत् ज्ञान-ज्योति वाला पुरुष (सु वि-चाकशत्) प्रकाशमान हो, अज्ञान-तम को नाश करता है। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) तुम्हारा तेज सदा तुम्हारे वा हमारे समीप हो।

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा।
अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १८ ॥ २० ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु के पराजयकारिन्! जिस प्रकार (कृष्णया बाधितः) रात्रि से बाधित सूर्य अन्धकार को छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार तू भी (कृष्णया) कर्षण या पीड़न करने वाली शत्रु सेना से बाधित होकर (विशा) अपनी प्रजा, शत्रु के दुर्ग में घुस जाने वाली तीक्ष्ण सेना की सहायता से (पुरं न आ रुज) दुर्ग के समान ही शत्रु को छिन्न भिन्न कर। हे (अश्विनौ) सभासेनापतियो! आप दोनों को (अवः) शत्रु हिंसन का उत्तम बल सदा आप के पास प्राप्त रहे।

अव धातुः रक्षणं, गति, कान्तिः, प्रीतिः, तृप्तिः, अवगमः, प्रवेशः, श्रवणं, स्वाम्यर्थ, याचनं, क्रिया, इच्छा, दीप्तिः, अवाप्तिः, आलिंगनं, हिंसा, आदानं, भागो, वृद्धिश्चेत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तते। प्रकरणानुसारं स सोऽर्थोऽवबोध्यः। इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

गोपवन आत्रेय ऋषिः ॥ देवताः—१—१२ अग्निः । १३—१५ श्रुतर्वण आर्क्ष्यस्य दानस्तुतिः । छन्दः—१, १० निचृदनुष्टुप् । ४, १३—१५ विराडनुष्टुप् । ७ पादनिचृदनुष्टुप् । २, ११ गायत्री । ५, ६, ८, ९, १२ निचृद् गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वाजयन्तः) ज्ञान, बल की कामना से युक्त (पुरु-प्रियम्) आप में से बहुतों को प्रिय, (विशः-विशः अतिथिम्) समस्त प्रजाओं के अतिथि रूप (अग्नि) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष की (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा (शूषस्य) सुख प्राप्ति के लिये सेवा करें । और मैं भी (वः) आप लोगों को (दुर्यं वचः स्तुषे) उत्तम वचन का उपदेश करता हूं ।

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

भा०—(हविष्मन्तः जनासः) हविष् उत्तम अन्न वाले मनुष्य जिस प्रकार (सर्पिः-आ सुतिम्) घृत से सेचन योग्य अग्नि को (प्रशस्तिभिः) उत्तम प्रशंसनीय मन्त्रों से (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते अर्थात् उस के गुणों का वर्णन करते हैं उसी प्रकार (यं) जिस को (मित्रं न) मित्रवत् (सर्पिः-आसुतिम्) घृतयुक्त अन्न द्वारा सत्कार के योग्य जानकर (हविष्मन्तः) अन्न आदि हाथ में लिये जन (प्रशस्तिभिः) उत्तम वचनों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं, उस की तुम भी स्तुति और आदर करो ।

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

भा०—(यः) जो अग्नि (देवताति) यज्ञ में (हव्यानि दिवि-

ऐरयत्) हव्य पदार्थों को आकाश की ओर प्रेरित करता है, उस (जात-वेदसं) ऐश्वर्य युक्त वा सर्वज्ञ, (पन्यांसं) स्तुतियुक्त अग्नि का गुण वर्णन करूं, उसे व्यवहार में लाऊं। इसी प्रकार (यः) जो विद्वान् पुरुष (उद्यता हव्यानि) उत्तम रीति से प्राप्त अन्नों और धनों को (दिवि) ज्ञान मार्ग और सत् कार्य में लगा देता है उस (जात-वेदसं पन्यांसं) ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त, स्तुत्य, व्यवहारकुशल पुरुष को हम प्राप्त करें।

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिस के (अनीके) सैन्य बल में (बृहन्) बड़ा भारी (आर्क्षः) शत्रु को भर्जन या पीड़न करने में समर्थ (श्रुतर्वा) प्रसिद्ध अश्वारोही जन (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है, उस (ज्येष्ठम्) सब में बड़े (आनवं) मनुष्यों के हितैषी (अग्निम्) तेजस्वी (वृत्रह-न्तमं) सबसे अधिक शत्रुहन्ता पुरुष को हम (आ अगन्म) प्राप्त करें।

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम्।
घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(घृताहवनम्) तेज से देदीप्यमान अग्नि के तुल्य, वा जलों द्वारा आदर करने योग्य (ईड्यम्) स्तुति योग्य (तमांसि तिरः दर्शतं) अन्धकारों को दूर करके सत्य ज्ञान को दर्शाने वाले, (अमृतं) अमृत स्वरूप (जात-वेदसम्) ज्ञानमय प्रभु की हम उपासना करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

सबाधो यं जना इमे३ऽग्निं हव्येभिरीळते जुह्वानासो यतस्रुचः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (सबाधः) ऋत्विग् लोग (अग्निम्) अग्नि को (यत-स्रुचः) जुहू आदि साध कर (जुह्वानासः हव्येभिः ईडते) आहुति देते हुए चरु आदि से चाहते हैं उसी प्रकार (इमे) ये (सबाधाः) पीड़ा युक्त (जनाः) मनुष्य (यत-स्रुचः) प्राणों का निग्रह करके (जुह्वानासः) आत्म समर्पण करते हुए (यम् अग्निम्) जिस तेजोमय;

पापनाशक ज्योति को (हव्येभिः) स्तुत्य वचनों से (ईडते) स्तुति करते उसे उत्तम भावों से चाहते हैं, उसी की उपासना करनी चाहिये ।

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥

भा०—हे (मन्द्र) स्तुत्य, हर्षजनक, आनन्दघन ! हे (सु-जात) सुख-स्वरूप ! हे (सु-क्रतो) शुभ कर्म और प्रज्ञा वाले ! हे (अमूर) अमूढ़ ! अहिंसक ! हे (दस्म) दर्शनीय दुष्टदलन ! हे (अतिथे) व्यापक, अतिथिवत् पूज्य ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तेरी (इयं) यह नव्यसी) अतिस्तुत्य (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत् अधायि) हमारे में स्थिर हो ।

सा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया ।
तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! (ते) तेरी (सा) वह (शं-तमा) शान्तिदायक (चनिष्ठा) उत्तम अन्नवत् भोग्य, सुखदात्री बुद्धि (प्रिया) प्रीतिकर हो । (तया) उससे तू (सु-स्तुतः) उत्तम स्तुतियुक्त होकर (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो और हमें भी बढ़ा ।

सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥९॥

भा०—(सा) वह (द्युम्नैः द्युम्निनी) प्रकाशों से प्रकाश युक्त वाणी (वृत्र-तूर्ये) आवरणकारी अज्ञानान्धकार को नाश करने के निमित्त (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी ज्ञान (श्रवसि) कान में (उप दधीत) धारण करावे ।

अश्वमिद् गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यञ्च कृष्टयः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (कृष्टयः) मनुष्यो ! आप लोग (पन्यम्-पन्यम्) अति-स्तुत्य २ कार्य, धन और (श्रवांसि) नाना ज्ञानों और आहार योग्य अन्नों

के समान ही (तूर्वथ) प्राप्त करो और उस को (गाम्) गौ के समान मातृतुल्य (अश्वम् इत्) अश्व के समान बलवान् (रथप्राम्) महारथी के समान प्रभावशाली, (त्वेषं) सूर्य के समान तेजस्वी (इन्द्रं न) ऐश्वर्यवान् विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (सत्पतिं) सज्जनों के पालक प्रभु की उपासना करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (पावक) पावक, पवित्र करने हारे ! (यं त्वा) जिस तुझ को (गो-पवनः) वाणी द्वारा अपने को पवित्र करने वाला और (गोप-वनः) वाणी के पालक विद्वानों का सेवन करने वाला, पुरुष (गिरा) वाणी द्वारा (चनिष्ठत्) तेरा अन्न और वचन द्वारा सत्कार करता है। हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (अंगिरः) तेजस्विन् ! (सः) वह तू (हवम् श्रुधि) हमारे आह्वान को श्रवण कर।

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये।
स बोधि वृत्रतूर्ये ॥ १२ ॥

भा०—(यं त्वा) जिस तुझ को (स-बाधः) बाधा या पीड़ा सहित दुःखी जन (वाज-सातये) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं। (सः) वह तू (वृत्र-तूर्ये) विघ्नादि के नाश करने के कार्य में (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर।

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥

भा०—(आर्क्षे) शत्रु को अपने प्रताप में भून देने वाले (श्रुत-र्वणि) प्रसिद्ध अश्व सैन्य के स्वामी (मदच्युति) शत्रु के मद को दूर करने में समर्थ वीर पुरुषों के अधीन (स्तुकाविनां) बालों की ग्रन्थि, फुन्दों वाले (चतुर्णाम्) चारों वर्णों वा चार घोड़ों के तुल्य या सेना के चारों अंगों

के वीरों के (मृक्षा) अति दीप्त, चमचमाते (शीर्षा) शिर वा प्रमुख नायक जन (शर्धांसि इव) मानो उनके मुख्य बल हैं । अर्थात् वीरों के शिरों के बाल और मूंछ, दाढ़ी आदि वीरत्व द्योतक चिन्ह हैं, मानो वे ही उनके बल हैं, वे बालों से सिंहों के समान भयानक प्रतीत होते हैं । केशान् शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि । यजु० १९।१२॥ उनको (अहं) मैं (हुवानः) अन्न देने वा स्वीकार करने वाला होऊं । (२) इसी प्रकार (आर्क्षे = ऋचः सनोतिइति ऋक्षः स्वार्थेऽण्) विद्वान् वेदज्ञ (श्रुतर्वणि) विश्रुत, विद्वान् शिष्यों वाले (मद-च्युति) हर्षदायक गुरु के अधीन (स्तुकाविनां) बालों के गुच्छों वाले (चतुर्णाम्) चारों वर्णों के विद्यार्थियों के (मृक्षा) छुरे से मुंडे हुए नाना (शीर्षा) शिर अर्थात् शिरों वाले अनेक शिष्य गण उन के (शर्धांसि इव) सेना या फौज के समान हों । उनको मैं (हुवानः) अन्न भिक्षादि देने हारा होऊं । विद्वान् के अधीन सैंकड़ों शिष्य उसकी सेना के समान हैं । जैसे धौम्य के पांच सो शिष्य थे । राजा आदि उन को पालें ।

'वृक्षा शीर्षा' इति सायणाभिमतः पाठः ।

मां चत्वार॑ आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥ १४ ॥

भा०—(शविष्ठस्य) अति बलशाली, सेनापति के (चत्वारः) चार (द्रवित्नवः) वेगवान् (आशवः) शीघ्रगामी, अश्वों के सामने वेग से आक्रमण करने वाले, (सु-रथासः) उत्तम महारथी लोग (तुग्र्यम् वयः न) शत्रुहिंसक बलवान् पुरुष को वेगवान् अश्वों के समान (प्रयः अभि वक्षन्) श्रेष्ठ यानवत् धारण करते हैं ।

सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (महेनदि) महानदी के समान बड़ा भारी शब्द करने

वाली ! हे (परुष्णि) पोरु पोरु अर्थात् छोटी २ टुकड़ियों से बनी, वा पर्व २ पर उष्ण अर्थात् शत्रु को दग्ध करने वाली, तेजस्विनी वा कुटिलगामिनी सेने ! (त्वा) तुझ को मैं (सत्यम् इत्) सत्य ही (अव देदिशम्) कहता हूँ । हे (आपः) आप्त जनो, प्राप्त प्रजाओ ! सुनो (शविष्ठात्) अति बल-शाली से दूसरा कोई (मर्त्यः) मनुष्य (अश्वदातरः न ईम् अस्ति) अश्व सैन्य को अन्न वस्त्र भृति आदि देने वा पालन करने वाला नहीं है। बलिष्ठ राजा ही सब से बड़ा अश्वादि सैन्य का पालक होता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७५]

विरूप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१,४,५,७,६,११ निचृद् गायत्री । २, ३, १५ विराड् गायत्री । ८ आर्ची स्वराड् गायत्री । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

युक्ष्वा हि देवहूर्तमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥

भा०—(रथीः इव अश्वान्) रथी जिस प्रकार रथ में अश्वों को जोड़ता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (देव-हूतमान् युक्ष्व) शुभ गुणों को उत्तम रीति से धारण करनेवाले विद्वान् पुरुषों को, इन्द्रियों को साधकवत्, राष्ट्र में उचित पद पर नियुक्त कर । और तू (होता) सब को भृति-वेतन आदि देने वाला (पूर्व्यः) सब में पूर्ण, सब से मुख्य होकर विराज ।

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः ।
श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानदातः! दानशील ! हे तेजस्विन् ! तू (विदुस्तरः) सब से उत्तम विद्वान् होकर (देवान् नः) विद्या की कामना करने वाले हम लोगों को (अच्छ वोचः) अभिमुख उपदेश कर । (उत)

और (विश्वा वार्या श्रत् कृधि) समस्त वरण करने योग्य उत्तम ज्ञानों को सत्य रूप में प्रकट कर ।

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥३॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) युवतम ! सब में अधिक जवान्, बलवान् पूज्य ! हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक, उत्पादक ! हे (आहुत) सब से स्वीकृत, सब के द्वारा अपना २ अंश देकर समृद्ध किये हुए ! (त्वं ह) तू ही (ऋत-वा) सत्य न्याय का पालक और (यज्ञियः भुवः) सर्व-पूजार्ह, दान योग्य सत्पात्र हो ।

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम् अग्निः) यह ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष (सहस्रिणः वाजस्य) सहस्रों संख्या से युक्त ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का और (शतिनः वाजस्य) सैकड़ों की संख्या वाले ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का (पतिः) पालक और (कविः) क्रान्तदर्शी (रयीणाम् मूर्धा) ऐश्वर्यवानों का भी शिरःस्थानीय, प्रमुख हो । सहस्रों, सैकड़ों संख्या वाला ज्ञान, वेदादि शास्त्र, जिन की ग्रन्थ गणना शत कण्डिका, सहस्र मन्त्र वा श्लोकादि से होती है । सैन्य में भी शतपति, सहस्रपति के अधीन इतने २ सैन्य भट होते हैं । ऐश्वर्यों में ग्रामों की संख्या वा स्वर्णमुद्राओं की संख्या ली जाती है ।

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः ।
नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अंगिरः) विद्वान् ! तेजस्विन् (ऋभवः यथा नेमिम्) विद्वान् शिल्पी लोग जिस प्रकार चक्र के समस्त अरों के चारों ओर नेमि या लोहपरिधि को नमाते हैं उसी प्रकार तू (सहूतिभिः) समान रूप से आह्वान करने योग्य वा समान वेतनादि देने हारे शासकों से (तं यज्ञम्)

उस यज्ञ, परस्पर संगत राष्ट्र को, (नेदीयः नमस्व) अति समीप २ झुका, अपने वश कर। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तस्मै नूनम॒भिद्य॑वे वा॒चा वि॑रूप॒ नित्य॑या।

वृष्णे॑ चोदस्व सुष्टु॒तिम् ॥ ६ ॥

भा०— हे (विरूप) विशेष रूपवान् ! सुमुख ! हे विशेष रुचि वाले तू (नूनम्) अवश्य ही (तस्मै) उस (अभि-द्यवे) तेजस्वी, (वृष्णे) बलवान् पुरुष के लिये (नित्यया वाचा) नित्य निश्चित वाणी द्वारा (सु-स्तुतिम् चोदस्व) उत्तम स्तुति को प्रस्तुत कर। परमेश्वर की स्तुति के लिये वेद वाणी का प्रयोग कर। अथवा षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। तू उस ज्ञानवान्, सर्व-ज्ञानवर्षक प्रभु की नित्य वाणी वेद से (सु-स्तुतिं चोदस्व) उत्तम प्रार्थना वा, उपदेश किया कर।

कमु॑ ष्विदस्य॒ सेन॑या॒ग्नेरपा॑कचक्षसः। प॒णिं गोषु॑ स्तरामहे ॥७॥

भा०—(अस्य) इस (अपाक-चक्षसः) अनल्प दृष्टि वाले, परिपक्व बुद्धि वाले (अग्नेः) तेजस्वी ज्ञानी नायक पुरुष की (सेनया) सेना से हम (कं स्वित् उ पणिं) प्राण की शर्त्त धर कर बाजी लगाने वाले किस शत्रु को (गोषु) भूमियों के विजय के लिये (स्तरामहे) विनाश करें।

मा नो॑ दे॒वानां॒ विशः॑ प्रस्ना॒तीरि॑वो॒स्राः।

कृ॒शं न हा॑सु॒रघ्न्याः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(उस्राः) सूर्य की किरणों के समान उन्नत पद की ओर जाने वाले लोग (देवानां) देव, विद्वान् पुरुषों के बीच (प्र-स्नातीः) अच्छी स्नान करती हुई, शुद्ध आचार से रहने वाली (नः विशः) हम प्रजाओं को (प्र-स्नातीः इव) शुद्ध पवित्र नारियों के समान (मा हासुः) परित्याग न करें। अर्थात् गृहस्थ लोग जिस प्रकार शुद्ध, स्नात, सच्चरित्रा नारियों का त्याग नहीं करते, उसी प्रकार उत्तम जन हम प्रजाओं का त्याग न करें। (अघ्न्याः कृशं न) जिस प्रकार गौवें अपने निर्बल बच्चे को नहीं त्याग

करतीं, प्रत्युत जब तक हृष्ट पुष्ट न हो जावे उसे दूध पिलाकर पुष्ट किया करती हैं उसी प्रकार तेजस्वी उत्तम जन हम निर्बल प्रजाओं को भी न त्यागें।

'उस्राः'–वसन्ति सह, यद्वा उत् ऊर्ध्वं सरन्ति वा उस्राः। उत्सृजन्ति वा दुग्धं पयो वा।

मा नः सम॑स्य दू॒ढ्य॑१ः परि॑द्वेषसो अंहु॒तिः।
ऊ॒र्मिर्न नाव॒मा व॑धीत् ॥ ९ ॥

भा०—(ऊर्मिः नावं न) जलतरंग जिस प्रकार नौका का आघात करती है उस प्रकार (समस्य) समस्त (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले (परिद्वेषसः) सब प्रकार से द्वेषी पुरुष की (अंहतिः) पाप बुद्धि वा आघात पहुंचाने की दुरभिसन्धि (नः) हमें (मा वधीत्) कभी न पीड़ित करे।

नम॑स्ते अग्न॒ ओज॑से गृ॒णन्ति॑ देव कृ॒ष्टयः॑।
अमै॑र॒मित्र॑मर्दय ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे (देव) दानशील! हे तेजस्विन्! (अग्ने) अग्निवत् शत्रु-संतापक! तू (ते ओजसे) तेरे पराक्रम के लिये (कृष्टयः) सब प्रजा के मनुष्य (नमः गृणन्ति) विनय युक्त वचन कहते हैं। तू (अमैः) सहायकों, बलों वा सैन्यों और दुःखदायी रोगों वा भटों से (अमित्रम् अर्दय) शत्रु को पीड़ित कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

कु॒वित्सु नो॒ गवि॑ष्टये॒ऽग्ने॑ सं॒वेषि॑षो र॒यिम्। उरु॑कृदु॒रु ण॑स्कृधि ११

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः) हमें (गविष्टये) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (कुवित् रयिम्) बहुत साधन (सं वेषिषः) प्राप्त कर। तू (उरुकृत्) बहुत धन को उत्पन्न करने वाला है। तू (नः उरु (कृधि) हमारे धन और प्राप्तव्य फल को बहुत कर, उसे बढ़ा।

मा नो॑ अ॒स्मिन्म॑हाध॒ने परा॑ वर्ग्भा॒रभृ॒द्यथा॑।
सं॒वर्ग॒ सं र॒यिं ज॑य ॥ १२ ॥

भा०—(यथा भारभृत्) बोझा ढोने वाला जिस प्रकार थक कर अन्त में अपने बोझे को दूर फेंक देता है उसी प्रकार हे नायक कहीं (महाधने) इस महासंग्राम में (नः मा परा वक्) हमें भार सा जान कर तू मत त्याग देना। अथवा (यथा भारभृत्) जिस प्रकार पालन पोषण योग्य स्त्रीपुत्र दासादि का पोषक स्वामी अपने इन पोष्य वर्ग को (महा-धने) अति सम्पन्नता में नहीं त्यागता उसी प्रकार तू भी संग्राम या अति ऐश्वर्य दशा में हमें मत त्याग। वल्कि तू (संवर्गं) उत्तम सहयोगी गण और (रयिं) ऐश्वर्य का गुणों और पराक्रमों से (जय) विजय कर।

अन्यम॒स्मद्भि॒या इ॒यमग्ने॒ सिषक्तु दु॒च्छुना॑।
वर्धा॑ नो॒ अमव॒च्छवः॑ ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक सेनापते! (इयम्) यह (दुच्छुना) दुखदायिनी सेना (अस्मत् अन्यम्) हमारे से दूसरे शत्रु को (भिय सिषक्तु) भयभीत करे। (नः अभवत्) तू हमारे वलयुक्त (शवः) सैन्य-वल को (वर्ध) वढ़ा।

यस्या॒ जुष॑न्नम॒स्विनः॒ शमी॒मदु॑र्मखस्य वा। तं घेद॒ग्निर्वृ॒धाव॑ति १४

भा०—(यस्य) जिस (नमस्विनः) विनय, अन्न और शत्रु को नमाने-वाले वज्र या वीर्य से सम्पन्न (अदुर्मखस्य) अदोषयुक्त यज्ञ, वा अदुःख-दायी, अच्छिद्र, निस्त्रुटि कार्यकर्त्ता के (शमीम् जुषत्) कर्म को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत्) उसकी ही (अग्निः) वह उत्तम तेजस्वी नायक (वृधा अवति) वृद्धियुक्त सम्पदा से रक्षा करता है।

पर॑स्या॒ अधि॑ सं॒वतोऽव॑राँ अ॒भ्या त॑र। यत्रा॒हमस्मि॒ ताँ अ॑व १५

भा०—(परस्याः संवतः अधि) शत्रु के सेना के उत्तम संगठनयुक्त वल के ऊपर (अवरान् अभि आतर) उनसे न्यून या डरे के हम लोगों को

सम्मुख, आगे बढ़ा, उनको विजयी कर। और (यत्र) जिनके बीच में, जिनके ऊपर (अहम् अस्मि) मैं हूं (तान् अव) उनकी रक्षा कर।

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ १६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रतापशालिन्! (अवसः पितुः यथा) जिस प्रकार रक्षक पिता के सुख वा उत्तम धन को पुत्र चाहता है उसी प्रकार (पुरा) पूर्ववत् (अवसः) रक्षक (पितुः) पालक रूप (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (हि) हम भी (विद्म) जानें और (अध ते ईमहे) तुझ से हम याचना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[७६]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८—१२ गायत्री। ३, ४, ७ निचृद् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा।
मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥

भा०—मैं (इमं) इस (मायिनं) माया, बुद्धि-कौशलों से युक्त, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (ओजसा ईशानम्) बल पराक्रम से सबके स्वामी, (मरुत्वन्तं न) प्राणवान् आत्मा के समान, वायुवद् बलशाली पुरुषों के स्वामी पुरुष को (वृञ्जसे) शत्रु के नाश के लिये (हुवे नु) आह्वान करता, प्रार्थना करता हूं।

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः।
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

भा०—(मरुत्सखा) वायु को सहायक लेकर (इन्द्रः) सूर्य (वज्रेण शत-पर्वणा) सैकड़ों किरणों वाले तेज से (वृत्रस्य शिरः अभिनत्) मेघ के ऊपरी भाग को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अयम् इन्द्रः) यह

शत्रुनाशक वीर सेनापति (मरुत्-सखा) वीर पुरुषों का मित्र होकर, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों टुकड़ियों से बने सैन्य बल से (वृत्रस्य शिरः) बढ़ते शत्रु के शिर या मुख्य भाग को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे।

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः ३

भा०—(मरुत्सखा इन्द्रः) वायु को सहाय लेकर इन्द्र, विद्युत् वा सूर्य, जिस प्रकार (ववृधानः) अधिक प्रबल होकर (समुद्रियाः अपः सृजन्) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्षस्थ जलों को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रं) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में प्रेरित वा छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (मरुत्सखा) वीर पुरुषों और प्रजास्थ मनुष्यों का मित्र, उनसे सहायवान् होकर राजा अधिक शक्तिशाली होकर (समुद्रिया अपः) समुद्र के जलों के समान अपनी सेनाओं को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को छिन्न भिन्न करता है।

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम्। इन्द्रेण सोमपीतये॥४॥

भा०—(येन वा इन्द्रेण) जो शत्रुहन्ता (मरुत्वता) मनुष्यों का सहाय लेकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (इदं स्वः जितम्) आकाश को सूर्य के समान, इस समस्त भूलोक का विजय करता है (अयं ह) वही निश्चय से स्तुत्य है। (२) सोम जीवों के पालनार्थ प्रभु परमेश्वर इस समस्त जगत को वश करता है, वही स्तुति योग्य है।

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम्।
इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे॥५॥

भा०—वायुओं के बलों से सम्पन्न सूर्यवत् प्रतापी, प्रबल मनुष्यों के स्वामी (ऋजीषिणम्) ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर औरों को चलाने वाले तथा (ऋजीषिणम्) शत्रुदल को भून डालने में समर्थ, तीक्ष्ण सैन्यबल को सञ्चालित करने वाले (ओजस्वन्तं) बल पराक्रमशील (विरप्शिनम्)

महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् की हम (गीर्भिः) वाणियों से (हवामहे) प्रार्थना करें ।

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥ २७ ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस महान् ऐश्वर्य या जगत् के पालन करने के लिये हम (प्रत्नेन) अनादिसिद्ध (मन्मना) मनन करने योग्य स्तोत्र, वेद ज्ञान से हम (मरुत्वन्तं) प्रवल मनुष्यों के स्वामी, समस्त जीवों के पालक प्रभु की (हवामहे) प्रार्थना करते हैं ।

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो ।
अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञावाले हे (पुरु-स्तुत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! हे (मीढ्वः) जगत् पर सुख की वर्षा करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (मरुत्वान्) नाना वीर पुरुषों का स्वामी, सहायक होकर (सोमं पिब) इस ऐश्वर्य वा सोम, प्रजा युक्त राष्ट्र का पालन उपभोग कर । (२) प्रभु समस्त जीवों का स्वामी वा वायुओं का स्वामी हो । इस उत्पन्न जगत् में जीवगण का पालन करे । (६) अध्यात्म में आत्मा प्राण इन्द्रियों का स्वामी होने से मरुत्वान् है । वह शरीर में सोम, वीर्य का पालन और सुख प्राप्त करता है ।

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः ।
हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) बलवन् ! (तुभ्य इत् मरुत्वते) मनुष्यो, बलवान् पुरुषों के तुझ स्वामी के लिये ही (उक्थिनः) उत्तम वेद को धारण करने वाले (सुताः सोमासः) ऐश्वर्यादि से पुरस्कृत और उत्तम पदों पर अभिषिक्त (सोमासः) ज्ञानवान्

बलवान् पुरुष (हृदा) हृदय से (हूयन्ते) बुलाये जाते, अपनाये जाते, और नाना ऐश्वर्य देकर सत्कार किये जाते हैं।

पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

भा०—तू (मरुत्सखा) मनुष्यों और वीर पुरुषों का सखा, मित्र होकर ही (दिविष्टिषु) सब दिनों हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ओजसा) पराक्रम से (वज्रं शिशानः) अपने बल वीर्य और शस्त्रबल को तीक्ष्ण करता हुआ (दिविष्टिषु) अपनी कामनाओं को प्राप्त करने के निमित्त (सुतं सोमं) उत्पन्न जगत् या ऐश्वर्य का (पिब इत्) पुत्रवत् पालन और धनवत् उपभोग कर।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (ओजसा सह) बल पराक्रम के साथ (उत्तिष्ठन्) ऊपर उठता हुआ (चमू-सुतम्) सेनाओं द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पीत्वी) पालन करके (शिप्रे अवेपयः) जल पान करके तृप्त हुए मनुष्य के समान प्रसन्न होकर मुख नासिका वा ठोड़ियों को कंपा, प्रसन्न हो। अथवा (शिप्रे अवेपयः) अपनी बलयुक्त सेनाओं को संचालित कर।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन् ! (यत्) जब तू (दस्युहा अभवः) दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा होता है तब (क्रक्षमाणं त्वा अनु) शत्रु का छेदन करते हुए तेरे साथ २ (उभे रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्ग (अनु कृपेताम्) बलवान् हो जाते हैं।

वाचम॒ष्टाप॑दीम॒हं नव॑स्रक्तिमृत॒स्पृश॑म् ।
इन्द्रा॒त्परि॑ त॒न्वं॑ ममे ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—(अष्टापदीं) आठ पद वाली और (नव-स्रक्तिम्) नवस्रक्ति अर्थात् स्तुत्य रचना वाली, (ऋत-स्पृशम्) ऋत, सत्य का स्पर्श अर्थात् दर्शन कराने वाली (तन्वम्) विस्तृत वा व्यापक वाणी को (अहं) मैं (इन्द्रात्) सत्यदर्शी पुरुष से (परि ममे) यथार्थ रूप से जानूं । जो कानून या शासन वाणी राजा के आठ अमात्यों से उत्पन्न होती है वह आठ पद वाली और नवस्रक्ति अर्थात् इन्द्र वा मुख्य शासक के मुख से ही वह प्रचारित होती है । वेद-विद्या के आठ विद्यास्थान आठ पद हैं । अष्टाविंशो वर्गः ॥

[७७]

* कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, ८ गायत्री ॥ २, ५, ६, ९ निचृद गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ निचृत् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ज॒ज्ञा॒नो नु श॒तक्र॑तु॒र्वि पृ॑च्छ॒दिति॑ मा॒तर॑म् ।
क उ॒ग्राः के ह॑ शृण्वि॒रे ॥ १ ॥

भा०—(जज्ञानः) उत्पन्न या प्रकट होता हुआ (शत-क्रतुः) अनेक प्रज्ञावान् पुरुष (मातरं वि पृच्छत्) माता से बालक के समान विज्ञान-वान्, सत्यज्ञानी पुरुष वा मातृ-तुल्य प्रजा से ही (इति) इस प्रकार से (वि पृच्छात्) विशेष रूप से प्रश्न किया करे कि (के उग्राः) राष्ट्र में कौन ऐसे बलवान् पुरुष हैं जिनसे लोग भय खाते हैं, और (के ह शृण्विरे) कौन ऐसे बलवान् लोग अभी तक सुने जाते हैं। अर्थात् देश में पहले भी ऐसे कौन २ बलवान् भयकारी, त्रासदायी हो चुके हैं । राजा

* पुरुसुतिति प्रामादिकः ।

का कर्त्तव्य है कि सबसे पहले यह प्रजा के त्रासकारी लोगों का पता लगा कर उनका नाश करे।

आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवम्।
ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥

भा०—(आत्) अनन्तर (शवसी) बलवती प्रजा (ईम् और्ण-वाभम्) उस और्णवाभ, तेजस्वी दण्डधर, राजा और (अमहीशुवम्) राष्ट्र की बाग-डोर संभालने वाले उस शासक पुरुष के प्रति (अब्रवीत्) कहे कि हे (पुत्र) बहुत से प्रजा जनों के त्राण करने वाले राजन्! (ते) वे अमुक २ नाम वाले बहुत से हैं जो (निः-तुरः सन्ति) विनाश कर देने योग्य हैं वा, उनको (निः-तुरः) अति तीव्र अश्वों को कोचवान् के समान बन्धन रज्जु और हन्टरों से दण्ड दे, वश करे।

और्णवाभः—उर्णां वहति इति उर्णवाभः। भत्वं छान्दसम्। स्वार्थिको ऽण्। अथवा उर्णाया वस्त्रं आहननार्थस्तोदो वा और्णं तद्वहति वा। विशेष-परिच्छदभूषितो दण्डधरो वा।

अहीशु=अभीशु। हत्वं छान्दसम्। प्रग्रहवान् उच्छृंखलानामिवाश्वानां नियन्ता।

स॒मि॒त्तान्वृ॑त्र॒हाखि॑द॒त्खे अ॒राँ इ॑व॒ खेद॑या।
प्रवृ॑द्धो दस्यु॒हाभ॑वत् ॥ ३ ॥

भा०—तब वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाश करने वाला वीर राजा प्रजा की अभ्यर्थना करने पर (तान्) उन दुष्ट पुरुषों को (खे) चक्र की नाभि में (अरान् इव) अरों के समान, (खेदया) रज्जु आदिवत् बन्धनकारिणी मर्यादा या ताड़ना से (खे) शून्य कारागारादि में (अखिदत्) धर कर पीड़ित करे और उनको दण्डित करके दीन बना दे, उनकी त्रासकारिणी उग्रता को दूर कर दे।

'खेदया'—खिद दैन्ये, रुधादिर्दिवादिश्च। खिद परिघातने। तुदादिः।

खिनत्ति खिद्यति दैन्यभावमापादयति आपद्यते वा स्वयं अनया सा खेदा। रज्जुः प्रग्रहः, कशा वा परिघातनसाधनं वा। खेदा कशा। खेदया रश्मिना, (ऋ० ८। ७२। ८) रज्ज्वा, (८। ७७। ३) इति सायणः।

एकया प्रतिधापिबत्साकं सराँसि त्रिंशतम्।

इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य (एकया) एक ही (प्रतिधा) प्रति-धान अर्थात् अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति से (सोमस्य) चन्द्र की (काणुका) कमनीय (त्रिंशतम् सरांसि) तीसों दिन रातों की किरणों को (साकम्) एक साथ ही (अपिबत्) पान कर लेता है, अपने भीतर ही ले लेता है, उसी प्रकार (काणुका इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष भी (एकया प्रतिधा) एक ही प्रतिधान, अर्थात् विग्रह-पूर्वक आक्रमण से (सोमस्य) प्रति पक्ष के ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (त्रिंशतम्) तीसों (सरांसि) धनों को (साकं अपिबत्) एक साथ ही पान कर जाता है, अथवा (सोमस्य पूर्णानि सरांसि) ऐश्वर्य से पूर्ण पक्ष के तीसों रात दिन (साकम् अपिबत्) एक साथ उपभोग या पालन करे और (एकया प्रतिधा) एक समान सावधानता से प्रत्येक व्यक्ति का पालन पोषण करते हुए तीसों रात दिन एक साथ, लगातार पालन करता रहे, किसी दिन असावधान न हो।

'काणुका'—काणुका कान्तकानीति वा। क्रान्तकानि इति वा, कणेघातः इति वा, कणेहतः कान्तिहतः। [इच्छाकृतकानि इति वा। इन्द्रः सोमस्य कान्त इति वा प्रतिघात इति यावत्] तत्रैतद् याज्ञिका वेदयन्ते त्रिंशदुक्थपात्राणि माध्यंदिने सवने एकदेवतानि तान्येतस्मिन् काले एकेन प्रतिधानेन पिबन्ति) तान्यत्र सरांस्युच्यन्ते। त्रिंशदपरपक्षस्याहोरात्रास्त्रिंशत् पूर्वपक्षस्य चेति नैरुक्ताः। तथा एताश्चान्द्रमस्या आगामिन्य

आपो भवन्ति रश्मयःस्ताः अपर पक्षे पिबन्ति यमक्षितिमक्षितयः पिबन्ति। तं पूर्वपक्ष आप्याययन्ति तथापि निगमा भवन्ति यथा देवा अंशुमाप्याययन्ति इति। निरु० अ० ५। ११॥

काणुका का अर्थ है कान्तियुक्त, दूरगत, वा कृतक, कृत्रिम, अथवा काणुका सूर्य का विशेषण है वह सोम (चन्द्र) का 'कान्त' प्रिय, या कान्तिप्रद है। अथवा कणेघात, कन्नी काटने अर्थ में अर्थात् कान्ति, वा इच्छा प्रतिघात अर्थ में 'काणुका' शब्द है। इस सम्बन्ध में याज्ञिक बतलाते हैं कि माध्यन्दिन सवन में तीस उक्थ पत्र एक ही देवता के निमित्त होते हैं उनको इस अवसर पर एक ही बार में पीते हैं। वे पात्र 'सरस' कहाते हैं। नैरुक्तों का मत है कि कृष्णपक्ष के तीस और शुक्र पक्ष के तीस दिन रात्रि होते हैं चन्द्रमा की आने वाली रश्मियों का नाम 'आपः' है। क्योंकि वे दूसरे से प्राप्त होती हैं। उन को कृष्ण पक्ष में सूर्य की किरणें स्वयं अपने में पुनः ग्रहण कर लेती हैं मानो पी जाती हैं। इसी प्रकार पूर्व शुक्रपक्ष में फिर पूर्ण कर देती हैं जिस प्रकार वेद वाक्य है (यथा देवाः० इत्यादि)।

अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा।
इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे॥ ५॥ २९॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जिस प्रकार (अबुध्नेषु) रोक थाम न करने वाले, बन्धनरहित (रजःसु) अन्तरिक्ष के प्रदेशों में स्थित (गन्धर्वम् अभि अतृणत्) जल को धारण करने वाले जलधर मेघ को आघात करता है तो वह (ब्रह्मभ्यः) अन्नों की (वृधे इत्) वृद्धि के लिये ही होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहनन में समर्थ राजा (अबुध्नेषु रजःसु) अप्रबद्ध, अनाश्रित, लोकों वा प्रजा जनो में विद्यमान (गन्धर्वम्) भूमि को अपने वश कर लेने वाले प्रबल शत्रु को (अभि अतृणत्) आक्रमण कर के नाश करे तो वह (ब्रह्मभ्यः

वृधे इत्) धनों, अन्नों और विद्वान् पुरुषों की ही वृद्धि के लिये होता है।
इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम्।
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जिस प्रकार (गिरिभ्यः) मेघों से (निर् अविध्यत्) जल गिराने को उन्हें खूब ताड़ित करता है, और (ओदनं) अन्न, धान्य को (पक्वम्) परिपक्व रूप में (आ धारयत्) परिपुष्ट करता है और अपने (सु-आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) चमकते प्रकाश को भी फेंकता है उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गिरिभ्यः) मेघवत् अन्यों का माल निगल जाने वाले दुष्ट पुरुषों को सुधारने और उन से सत्य निकलवाने या हड़पा हुआ माल निकलवाने के लिये (निर् अविध्यत्) उन को खूब ताड़ना दे और उनसे (पक्वम्) पक्व (ओदनम्) वचन, शपथ, (oath) (आधारयत्) धारा या पक्की जुबान के रूप में कानूनवत् करा लेवे कि फिर वे ऐसा न करेंगे। और वह (सु आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) भयकारी, उन को भेदने फोड़ने वाला, अपना सैन्य बल भी (आ धारयत्) सर्वत्र स्थापित करले।

'बुन्दं'—बुन्दो वा भिन्दो वा भयदो वा भासमानो द्रवतीति वा निरु० ६। ३४ ॥

शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत्। यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन् ! तू (यम् युजं चकृषे) जिसको अपना सहायक बनाता है वह (तव इषुः) तेरा बाण वा शस्त्र-बल वा आज्ञा (शतब्रध्नः) सैकड़ों आश्रयों और बन्धन मर्यादाओं वाला और (सहस्रपर्णः) सहस्रों बलशाली, पत्रों, रथों वा पालक जनों से सम्पन्न और (एकः इत्) एक अद्वितीय, सब से अधिक उत्तम हो। (२) इसी प्रकार उस प्रभु परमेश्वर की 'इषु' महान् इच्छा, वा संकल्प सैकड़ों

'ब्रह्म' अर्थात् आदित्यों और आकाशों तक फैला हुआ और सहस्रों पर्ण अर्थात् पालन शक्तियों, किरणों से युक्त सूर्यवत् सत्यमय तेज से युक्त है और एक अद्वितीय, सर्वोपरि शासन है, जिससे अनेकों ब्रह्माण्ड चल रहे हैं ।

तेन॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र॒ नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ अत्त॑वे ।
स॒द्यो जा॒त ऋ॑भुष्ठिर ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऋभु-स्थिर) सत्य न्याय से प्रकाशित विद्वानों द्वारा स्थिर राजन् ! तू (सद्यः जातः) अति शीघ्र राजा रूप से प्रसिद्ध होकर (तेन) उस पूर्वोक्त शासनबल से (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वान् नरों और नारियों के लिये (अत्तवे) भोजनार्थ (आ भर) उत्तम अन्न प्रदान कर । तेरे उत्तम शासन में सब नर नारी सुख से भोजन करें । (२) प्रभु समस्त सूर्यादि लोकों में व्यापक होने से 'ऋभु-स्थिर' है ।

ए॒ता च्यौ॒त्नानि॑ ते कृ॒ता वर्षि॑ष्ठानि॒ परी॑णसा ।
हृ॒दा वी॒ड्व॑धारयः ॥ ९ ॥

भा०—(एता) ये (च्यौत्नानि) सब बलशाली और (वर्षिष्ठानि) सुख जलादि वर्षाने वाले, बलवान् सैन्य (ते कृता) तेरे ही बनाये हैं । और तू उन को (वीडु परीणसा) महान् स्थिरतापूर्वक (हृदा अधारयः) सद्-हृदय से धारण कर । इसी प्रकार ये सब गतिशील, वर्षाकारक सूर्य पवन आदि प्रभु ने बनाये हैं, उन को वह (हृदा) मन के संकल्प मात्र से धारण करता और चलाता है ।

विश्वेत्ता विष्णु॒राभ॑रदुरुक्र॒मस्त्वेषि॑तः ।
श॒तं म॑हि॒षान्क्षी॑रपा॒कमो॑द॒नं व॑रा॒हमिन्द्र॑ ए॒मुष॑म् ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के ताप या प्रकाश से प्रेरित वायु महान् आकाश में विचरता समस्त मेघादि को ले आता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्य-वन् ! शत्रुहन् ! (त्वा इषितः) तेरे से प्रेरित होकर (उरु-क्रमः) बड़ा

पराक्रमी, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत्) उन २ समस्त पदार्थों को (आ अभरत्) प्राप्त कराता है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शतं महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षीरपाकम् ओदनम्) दूधमें पके भात के समान सात्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (एमुषं) सब तरफ से ज्ञान संग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे। सूर्य भी अपरिमित बड़े २ मेघ, (क्षीर-पाकं) पानी से सेचित होकर पकने वाले अन्नादि धान्य और जल को लाने वाली वायु को धारण करता है।

तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदुवृधा॥ ११॥ ३०॥

भा०—हे राजन्! (ते) तेरा (धनुः) धनुष, शस्त्रबल, (सु-मयं) उत्तम सुखकारक, (सु-कृतं) उत्तम कर्म करने वाला, (तुवि-क्षं) दूर तक वाणों के फेंकने वाला, बहुत से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला हो। (ते बुन्दः) तेरा तेज और शत्रु को भयप्रद वाण, (साधुः) उत्तम, लक्ष्य पर लगने हारा, (हिरण्ययः) सुवर्णमय और हित, रम्य हो। (ते बाहू) तेरी बाहुएं, शत्रुबाधक सेनाएं दोनों (रण्या) रमणीय, सुन्दर एवं रण-कुशल (सु-संस्कृते) उत्तम संस्कार से युक्त, अलंकृत और उत्तम अभ्यस्त, (ऋदूपे) वेग से शत्रु को गिराने वाले और (ऋदुवृधा चित्) पीडक जनों को वेधने, उन को काटने छांटने वाली हो। इति त्रिंशो वर्गः॥

[७८]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री। २, ६—९ विराड् गायत्री। ४, ५ गायत्री। १० बृहती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर।
शता च शूर गोनाम्॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अन्धसः) अन्न और प्राण धारण कराने वाले पदार्थ का बना (सहस्रम्) हज़ारों की संख्या में, अपरिमित वा बलकारक, (पुरोडाशं) आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम खाद्य पदार्थ (आ भर) प्राप्त करा और स्वयं भी उस को धारण कर। इसी प्रकार हे (शूर) शत्रुनाशक, शूरवीर ! (गोनां शता च) भूमियों, गौवों और वाणियों के सैकड़ों, अपरिमित हमें प्रदान कर, तू भी उनका पालन पोषण कर।

आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् ।
सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

भा०—तू (नः) हमें (गाम् अश्वं) गौ, अश्व और (अभ्यञ्जनम्) शत्रु पर जाने के साधन सवारी रथ, हाथी, आदि और विशेष रूप से जाने के साधन उत्तम रथ विमान आदि वा (व्यञ्जनं) विशेष चमकने वाले प्रकाश के उपाय, ज्ञान, आदि और नाना खाद्य पदार्थ, उत्तम गुण (नः) हमें (आ भर) प्राप्त करा। और (सचा) साथ ही (मना) मनन करने योग्य (हिरण्यया) हित और मनोहर वचन भी श्रवण करा।

व्यञ्जनं अभ्यञ्जनं—अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। रुधादिः।

उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर ।
त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (धृष्णो) शत्रुपराजयकारिन्। तू (नः) हमें (पुरूणि) बहुत से (कर्ण-शोभना) कानों को सजाने के साधन, उत्तम वचन और कर्णकुण्डल आदि अलंकरण (नः आ भर) हमें प्राप्त करा और हमारे दिये तू धारण कर। हे (वसो) उत्तम विद्वन् ! ब्रह्मचारिन् बसाने हारे ! (त्वं हि शृण्विषे) तू ही हमारे वचन सुन और अपने हमें सुना।

नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत ।

नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे सत्यतत्त्वदर्शिन् ! राजन् ! विद्वन्! (ते अन्यः) तुझ से दूसरा (न कीं वृधीकः) कोई और न बढ़ाने हारा, (न ते सुषाः) न तुझ से दूसरा कोई उत्तम न्यायपूर्वक विभागकारी, (उत) और (न सुदाः) न उत्तम दाता है (उत) और हे (शूर) वीर ! हे अज्ञान, दुर्गुणादि के नाशक ! (त्वत् अन्यः वाघतः न) तुझ से दूसरा कोई और विद्वान् ज्ञानधारक वाग्मी भी नहीं है ।

नकीमिन्द्रो निकर्त्तवे न शुक्रः परिशक्तवे ।

विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(इन्द्रः) यह ऐश्वर्यवान् वा यथार्थदर्शी प्रभु, स्वामी (नकीम् निकर्त्तवे) कभी भी अनादर और हिंसा करने योग्य नहीं । (शुक्रः) यह शक्तिमान् (न परि-शक्तवे) बल द्वारा पराजय करने के भी योग्य नहीं । वह (विश्वं शृणोति) सब कुछ सुनता, (विश्वं पश्यति) सब कुछ देखता है । साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ सोऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् । उप० ॥ इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते ।

पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥

भा०—(सः अदब्धः) वह अविनाशी, किसी से न मारा जाने वाला, अदण्डनीय (मर्त्यानां) मनुष्यों के (मन्युं) क्रोध को (नि चिकीषते) तुच्छ करके जानता है और (निदः) निन्दकों को (पुरा) पहले ही (नि चिकीषते) नीचा दिखा देता है ।

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।

वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—उस (तुरस्य) शीघ्रकारी, शत्रुहिंसक (विधतः) प्रजाओं को विविध प्रकार से पालन पोषण करने वाले, जगत् के कर्त्ता, (वृत्रघ्नः) विघ्नों, दुष्टों और मेघों को नाश करने वाले और (सोम-पाव्नः) जगत्, ऐश्वर्य, पुत्र शिष्यादि के पालक का (उदरम्) पेट, हृदय (क्रत्वः इत्) ज्ञान और कर्म से ही (पूर्णम्) पूर्ण रहता है ।

त्वे वसूनि सङ्गता विश्वा च सोम सौभगा ।

सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सर्व-उत्पादक प्रभो ! (त्वे) तुझ में और तेरे अधीन ही (विश्वा वसूनि विश्वा च सौभगा) समस्त ऐश्वर्य और समस्त सुखदायक कल्याणकारी धन, (सं-गता) एकत्र हैं । तू उनको (अपरि-ह्वृता) अकुटिल, सुप्राप्य (सु-दातु) सुखदायक बना कर प्रदान कर ।

त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (मम कामः) मेरा अभिलाष (यवयुः) अन्नादि का इच्छुक (गव्युः) भूमि, वाणी, इन्द्रिय, ज्ञान रश्मि गवादि पशु आदि का इच्छुक और (हिरण्ययुः) हित, मनोहर वचन और सुवर्णादि धन का इच्छुक होकर (त्वाम् इत् एषते) तुझ ही चाहने लगता है । और मेरा अभिलाप (अश्वयुः) अश्वों को चाहता हुआ भी (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही प्राप्त करता है ।

तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।

दिनस्य वा मघवन्त्सम्भृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना १०॥३२॥

भा०—हे (इन्द्र) अन्नों के देने हारे! हे अन्नों के काटने हारे, हे अन्नों के धारण करने हारे ! (तव इत् आशसा) तेरी ही आज्ञा, आशा और कामना से मैं (हस्ते) हाथ में (दात्रं चन आददे) अन्न धान आदि खेती काटने का साधन वा दान करने योग्य धन ग्रहण करता हूं । हे (मघवन्) पूज्य धन के स्वामिन् ! तू (दिनस्य) काटे हुए (वा) अथवा (संभृतस्य)

एकत्र किये (यवस्य) जौ अन्न की (काशिना) मुट्ठी से (पूर्धि) पूर्ण कर । अथवा—हे (इन्द्र) सूर्य विद्युत् मेघादि ! जलदायक शक्ते ! तेरी आज्ञा से हाथ में यह (दात्रं) दरांति आदि कृषि के साधन लेता हूं तू काटे वा एकत्र किये अन्न को अपने प्रकाश, दीप्ति से पूर्ण पालन, पुष्ट कर । (२) ईश्वरपक्ष में हे प्रभो तेरा दिया तेरी आज्ञा वा उपदेश से लेता हूं । तू (काशिना) अपने ज्ञान के प्रकाश से, दिन वा प्रजा को सूर्य के समान, मुक्त दीन हतोत्साह वा पोष्य सेवक को भी अपने ज्ञान प्रकाश से पूर्ण, पालन कर । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[७९]

कृत्नुर्भार्गव ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद् गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ४, ५, ७, ८ गायत्री । ९ निचृदनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं कृ॒त्नुरगृ॑भीतो विश्व॒जिदु॒द्भिदित्सोमः॑ ।
ऋषि॒र्विप्रः॒ काव्ये॑न ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (कृत्नुः) जगत् का कर्त्ता, (अगृभीतः) किसी इन्द्रिय से कभी न ग्रहण करने योग्य, चक्षुरादि साधनों से अग्राह्य, अविज्ञेय, (विश्वजित्) समस्त 'विश्व' जगत् और प्राणि-संसार को अधीन रखने वाला, (उद्भित्) समस्त स्थावरों को पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न करने वाला, (सोमः इत्) सब का उत्पादक होने से 'सोम' है । वही (विप्रः) सब ज्ञानों, कर्मों का दाता, विद्वान् , मेधावी (काव्येन) वेद-ज्ञान से (ऋषिः) सब सत्य ज्ञानों को देखने हारा है । (२) इसी प्रकार राजा विद्वान् भी कर्मों का कर्त्ता, सब का विजेता, उत्तम कर्म फल का उत्पादक 'उद्भित्' शत्रुओं को उखाड़ने वाला, (सोमः) सब का सञ्चालक, सब ऐश्वर्यों का अधिपति, विद्वान् वेदद्वारा सत्य न्याय का द्रष्टा हो । शरीर में वीर्य

वा प्राण सोम है, वह कर्म का कर्त्ता, इन्द्रियजित् (उझित्)ऊर्ध्व मार्ग ब्रह्मरन्ध्र को भी भेदन करने में समर्थ है ।

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम् ।
प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो वह पूर्वोक्त सोम, ऐश्वर्यवान् (नग्नं अभि ऊर्णोति) नग्न, वस्त्ररहित को वस्त्रादि से आच्छादित करता है । (यत) जो (तुरं विश्वम्) सब रोगी जन को ओषधि रसवत् (भिषक्ति) रोग से रहित करता है वह (अन्धः ईम् प्रख्यत्) सब के प्राण-जीवन का पोषण कारक होकर इस विश्व को अच्छी प्रकार देखता और उपदेश करता है, । श्रोणः (निः भूत्) सर्वश्रोता होकर सर्वत्र समर्थ रहता है । अथवा (अन्धः प्र ख्यत्, श्रोणः निर्भूत्) अन्ध अर्थात् अचक्षु रह कर भी देखता, और पद आदि से पंगु होकर भी सर्वत्र जाता है । यह योजना ईश्वर पक्ष में ठीक है 'अपाणिपादो जवनो गृहीतः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥' उपनिषत् ॥

अथवा वह नंगे को वस्त्र पहनाता, रोगी को चंगा करता है, इसी कारण (अन्धः प्रख्यत्) यह दृष्टि-चेतनादि से रहित देह भी देखने में समर्थ होता है और यह प्राकृतिक जड़ जगत् वा देह (श्रोणः) पंगु अर्थात् शक्ति रहित होकर भी सर्वत्र जाने में समर्थ होता है । यह ईश्वर सोम या चेतन जीव की महिमा है ।

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः ।
उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सन्मार्ग में संचालक ! ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तनू-कृद्भ्यः) राष्ट्र को क्षीण करने वाले और (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) अन्य, शत्रुओं से किये, उन से प्रेरित द्वेषों से भी (वरूथं) बचाने वाले महान् बल का (उरु यन्तासि) विशाल गृहवत् नियन्ता है ।

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।
यावीरघस्य चिद्द्वेषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) प्रजा जनों को सन्मार्ग में चलाने हारे ! हे शत्रुओं को भूनने, संतप्त करने वाले सैन्य के सञ्चालक ! (त्वं) तू (तव) तेरे अपने (चित्ती) ज्ञान, बुद्धि और (दक्षैः) बलों से, (दिवः पृथिव्याः आ) आकाश और पृथिवी से आने वाले (अघस्य चित् द्वेषः यावीः) शत्रु के सब द्वेष भावों को दूर कर ।

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम् ।
ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—(चेद्) यदि (अर्थिनः) धन के इच्छुक वा धन के स्वामी लोग (अर्थयन्ति) धन को प्राप्त करते हैं तो उन को चाहिये कि वे (ददुषः रातिं गच्छान्) दानशील पुरुष के दानशीलता को भी प्राप्त हों, वे दान भी किया करें । अथवा यदि वे धन पाते हैं तो भी वे किसी दानी के दान को ही प्राप्त करते हैं, इसलिये भी उन को चाहिये कि वे भी (तृष्यतः कामम् ववृज्युः) किसी पियासे अर्थार्थी की अभिलाषा को पूर्ण किया करें । उस की प्यास को बुझाया करें । इसी प्रकार विद्यार्थी यदि विद्या प्राप्त करते हैं किसी विद्यादाता का दिया ज्ञान ही प्राप्त करते हैं, उन को चाहिये वे भी अन्य की ज्ञान पिपासा का शमन करें । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥६॥

भा०—(यत्) जो (पूर्व्यम् नष्टम्) पहले के लुप्त या नष्ट हुए को (विदत्) पाता या जान लेता है, उसे चाहिये कि वह (ईम्) उस ज्ञान को (ऋतायुम्) सत्य ज्ञान के अभिलाषी पुरुष के प्रति (ईरयत्) उपदेश करे । वह मानो, (ईम्) उसको (अतीर्णम्) अप्रदत्त (आयुः) नया जीवन (प्रतारीत्) प्रदान करता है । विद्या दान करना भी नवजीवन देने के समान है ।

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवा नः सोम शं हृदे ॥७॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (सु-शेवः) उत्तम सुखदाता, (मृडयाकुः) दयाशील, (अदृप्त-क्रतुः) ज्ञान और कर्म पर भी गर्व न करने वाला और (अवातः) प्रचण्ड वायु के समान धक्के न लगाने वाला, होकर (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय के लिये शान्तिदायक हो ।

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन्।

मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥

भा०—हे (राजन्) तेजस्विन् शासन करने हारे राजन् ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शासक ! तू (नः मा सं वीविजः) हमें मत उद्विग्न कर, न परस्पर एक दूसरे से भय करा । (मा वि बीभिषथाः) विविध प्रकार से भी भयभीत मत कर, और (त्विषा) कान्तियुक्त तीक्ष्ण शस्त्र वा तीक्ष्णता से ही (नः हार्दि मा वधीः) हमारे हृदयों पर आघात मत कर ।

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥ ९॥ ३४ ॥

भा०—(यत्) जब तू (स्वे) अपने और (देवानां) मनुष्यों के (सध-स्थे) एकत्र मिलकर बैठने के लिये विचार स्थल में (दुर्मतीः) दुष्ट चित्त वालों के दुर्व्यवहारों की (अव ईक्षे) न्यायपूर्वक विवेक दृष्टि से विवेचना करे तब हे (राजन्) राजन् ! तू (द्विषः अप सेध) द्वेष के भावों और द्वेषी जनों को दूर कर और (स्रिधः अप सेध) हिंसा के भावों और हिंसकों को भी दूर कर । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[८०]

एकद्यूर्नौधस ऋषिः ॥ १—९ इन्द्रः । १० देवा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ३, ५, ८ निचृद् गायत्री । ४, ६, ७, ९, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

नह्य१न्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो। त्वं न इन्द्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरमित ज्ञानवन्! (अन्यं) तुझ से दूसरे को मैं (मर्डितारं नहि आकरम्) सुखदाता करके नहीं जानता (वडा) यह मैं सत्यपूर्वक कहता हूं। (अतः त्वं) तू (नः इन्द्र मृडय) हमें हे ऐश्वर्यवन्! सुखी कर।

यो नः शश्वत्पुराविथामृध्रो वाजसातये।
स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (शश्वत्) निरन्तर, सदा (पुरा) पूर्व भी, (अमृधः) स्वयं अन्यों की हिंसा न करने वाला और स्वयं अहिंसित होकर (वाज-सातये) ऐश्वर्य विभाग करने के लिये (नः आविथ) हमें प्राप्त होता है, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडय) हमें सुखी कर।

किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि।
कुवित्स्विन्द्र णः शकः ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (रध्रचोदनः) अपने आराधक को सन्मार्ग पर चलाने हारा ही (किम्) क्यों बल्कि (सुन्वानस्य) उपासक का (अविता इत् असि) रक्षक ही है तू (नः कुवित् शकः) हमारा बहुत कुछ कल्याण करने में समर्थ है।

इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्सन्तमद्रिवः। पुरस्तादेनं मे कृधि ४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् तू (नः) हमारे (रथम् प्र अव) रमणकारक सुखप्रद रथवत् देह की अच्छी प्रकार रक्षा कर। (पश्चात् चित् सन्तम् मे एनं) पिछड़े हुए भी इस मेरे रथ को (पुरस्तात् कृधि) आगे कर। सफलता के मार्ग पर यदि मैं पिछड़ूं तो तू मुझे आगे बढ़ा।

हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि।
उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(हन्तो नु) भला अब (किम् आससे) क्यों विलम्ब करता है ? (नः रथं) हमारे रथ को (प्रथमं कृधि) सबसे मुख्य कर । और तेरा (वाजयु श्रवः) ज्ञानयुक्त श्रवणयोग्य उपदेश (नः उप मं) हमारे सदा समीप रहे । अथवा हमारे बलैश्वर्य की कामना से युक्त (श्रवः) श्रव्य प्रार्थना वचन तेरे समीप है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि ।

अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (नः) हमारे (वाजयुं) बल, वेग, वीर्य, ऐश्वर्य से युक्त (रथं) रथवत् देह की (अव) रक्षा कर । (इत् परि ते सुकरं किम्) इससे अधिक और तेरे लिये क्या उत्तम और सुखपूर्वक करने का कार्य है ? तू (अस्मान्) हमें (जिग्युषः सु कृधि) विजयी भली प्रकार कर ।

इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् ।

इयं धीर्ऋत्वियावती ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (दृह्यस्व) दृढ़ हो, और तू (भद्रा पूः असि) सुखदायी, पुर, प्रकोट या दुर्ग के समान पालक, रक्षक है । (ते) तेरा (इयं) यह (ऋत्वियावती) काल पर फल देने वाला (धीः) कर्म भी (निष्कृतं एति) सफलता को प्राप्त होता है ।

मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम् ।

अपावृक्ता अरत्नयः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! (सीम्) सब ओर से भी (अवद्ये) निन्दा योग्य बुरे कार्य में तू हमें (मा भाग्) मत डाल । (ऊर्वी काष्ठा) सीमा बहुत दूर है, वहां (धनं हितम्) धन अर्थात् प्राप्तव्य पदार्थ रक्खा है । (अरत्नयः) दुःखदायी शत्रु (अपावृक्ताः) दूर हों ।

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि ।
आदित्पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

भा०—(यदा) जब तू (तुरीयं) चतुर्थ, सर्वश्रेष्ठ, (यज्ञियं) सर्वोपास्य (नाम) स्वरूप को (करः) प्रकट करता है तब हम (तत् उश्मसि) उसी परम स्वरूप की कामना करते हैं । (आत् इत्) अनन्तर ही तू (नः पतिः) हमारा पालक होकर हमें (ओहसे) अपने में ले लेता है । जाग्रत् आदि दशा से परे आत्मा का तुरीय स्वरूप है, वह अमात्र है । उसी के दर्शन से परम कल्याण है ।

अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १०।३६।८

भा०—हे (अमृताः देवाः) अमृतस्वरूप, दीर्घायु विद्वान्गण, (उत) और (याः च देवीः) जो आप लोग विदुषी नारियां हो । आप सबको (एक-द्यूः) एकमात्र, अद्वितीय प्रकाशक प्रभु ही (अमन्दीत्) आनन्दित करता है और वही (वः अवीवृधत्) आप लोगों की वृद्धि करता है। (तस्मा उ प्रशस्तं राधः कृणुत) उस की ही सर्वोत्तम आराधना किया करो और (प्रातः) प्रभात में (मक्षु) शीघ्र ही, सबसे प्रथम (धियावसुः) ज्ञान और कर्म का धनी वही प्रभु (जगम्यात्) तुम्हें प्राप्त हो, उसी की प्रथम उपासना करो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

[८१]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६, ७ निचृद् गायत्री । ४, ९ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सङ्गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (महा-हस्ती) बड़े हाथ वाला

है। तू (दक्षिणेन) दायें हाथ से (नः) हमें (क्षुमन्तं) कीर्त्तिजनक, अन्नादि से सम्पन्न (चित्रग्राभं) नाना प्रकार का ग्रहण करने योग्य धन (सं गृभाय) संग्रह कर।

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्।
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

भा०—हम (त्वा) तुझे (अवोभिः) रक्षा, प्रीति आदि उत्तम गुणों करके (तुवि-कूर्मिं) बहुत कर्म करने में समर्थ (तुवि-देष्णं) बहुत से धन देने वाला और (तुवि-मात्रम्) बहुत धन राशि का स्वामी भी (विद्महि) जानते हैं।

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्।
भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! सब दुष्टों के दलन करने हारे ! (गां न भीमं) बड़े बैल के समान भयंकर (न हि देवाः न मर्त्तासः) न दानशील विद्वान् और न साधारण मनुष्य ही (दित्सन्तम् वारयन्ते) दान देने की इच्छा वाले (त्वा) तुझको रोक सकते हैं। प्रत्युत जब देना चाहे तो तेरे को रोकने वाला कोई नहीं।

एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम्।
न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥

भा०—(एत उ नु) आओ भाइयो ! (वस्वः ईशानं) धन के स्वामी, (स्व-राजं) अर्थात् 'स्व' अपने ऐश्वर्य से दीप्तिमान्, धनाधिपति, (इन्द्रं) प्रभु की (स्तवाम) स्तुति करें। कोई भी (राधसा) धन के कारण (नः मर्धिषत्) हमें पीड़ित न करे।

प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम्।
अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥ ३७ ॥

भा०—वह प्रभु ही हमें (प्र स्तोषत्) उत्तम स्तुति कराता है (उप

गासिषत्) उपासना या गान कराता है और (गीयमानं साम श्रवत्) गाये गये साम को सुनता है। वही (राधसा) धनैश्वर्य द्वारा हमें (अभि-जुगुरत्) उद्यम कराता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश।
इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (दक्षिणेन आ भर) दायें हाथ से ऐश्वर्य दान कर और (सव्येन अभि प्र मृश) बायें से भी उत्साहित कर। तू (नः) हमें (वसोः मा निर्भाक्) धन से वञ्चित मत कर।

उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम्।
अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू (उप क्रमस्व) उद्यम कर! हे (धृष्णो) शत्रु-पराजयकारिन्! तू (धृषता) शत्रु पराजय कारक बल से, (जनानां) मनुष्यों के बीच में (अदाशूः-तरस्य वेदः) अति अधिक कंजूस के धन को (आ भर) ले ले।

इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः।
अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः उ नु ते वाजः) जो तेरा धनैश्वर्य (सनित्वः अस्ति) दान देने योग्य है (तं) उसे तू (अस्माभिः विप्रेभिः) हम विद्वान् मेधावी पुरुषों के साथ मिलकर (सु सनुहि) उत्तम कार्य में लगा।

सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः।
वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥ ३८ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! (ते वाजाः) तेरे ऐश्वर्य, (विश्व-चन्द्राः) सब संसार को आह्लादित करने वाले हैं। वे (अस्मभ्यं सद्यो-जुवः) हमें शीघ्र ही प्राप्त हों। सब लोग (वशैः च मक्षु जरन्ते) नाना

कामनाओं से प्रेरित होकर तेरी स्तुति करते हैं । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८२]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद् गायत्री । २, ५, ६, ८ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥ १ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! तू (प्र-भर्मणि) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त इस राष्ट्र में या उत्तम २ पदार्थों को संग्रह करने के कार्य के निमित्त (मध्वः प्रति) मधुर, सुखकारी अन्नों को प्राप्त करने के लिये (परावतः अर्वावतः च) दूर और समीप के देशों से वा उन देशों को (आ द्रव प्र द्रव) आया और जाया कर । व्यापार से सब सुखकारी पदार्थों का आयात निर्यात किया कर ।

तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः ।
पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥

भा०—(तीव्राः) वेग में तीव्र, कर्मकुशल (सोमासः) उत्तम शासकगण, (मादयिष्णवः) प्रजा को अति प्रसन्न करनेवाले लोग (सुतासः) अभिषिक्त हों । तू (आगहि) आ और (यथा ओचिषे) जैसे भी समवाय बना सके वैसे (दधृक्) शत्रु का पराजय करके (पिब) अपने राष्ट्र का पालन कर-उसका भोग कर । अथवा—(तीव्राः) क्षुधानिवर्त्तन में तीव्र गुणकारी, तृप्तिकारक ये अन्न के पदार्थ बने हैं उनको तू खा, पी ।

इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (इषा) अन्न से (मन्दस्व)

तृप्ति कर। क्योंकि (वराय मन्यवे) श्रेष्ठ ज्ञान के लिये यह अन्न ही (अरं) अति गुणकारी और उपयोगी है। हे ऐश्वर्यवन्! यह अन्न (ते हृदे शम्) तेरे हृदय को भी शान्ति देने वाला हो।

आ त्वंशत्रवा गंहि न्यु१क्थानि च हूयसे।
उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अशत्रो) अजातशत्रो! शत्रुरहित! तू (आगहि) आ। (दिवः उप-मे) सूर्य की उपमा योग्य (रोचने) अति तेजस्वी, पद पर तू (उक्थानि) नाना उत्तम स्तुति-वचनों द्वारा आह्वान और स्तवन किया जाता है।

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम्।
प्र सोमं इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अद्रिभिः सुतः गोभिः श्रीतः सोमः मदाय) जिस प्रकार पाषाण खण्डों या ऊखल आदि से निकाला और गोरसों से मिला हुआ सोमादि ओषधि रस शरीर में हर्ष सुखादिजनक, रोग-नाशक होता है, उसी प्रकार (अद्रिभिः सुतः) आकाश में मेघों द्वारा उत्पादित वा चक्की, ऊखलादि से अन्न रूप से और भूमि में (अद्रिभिः) पर्वतों द्वारा उत्पादित रत्नादि रूप से और (गोभिः श्रीतः) भूमियों या सूर्य की किरणों के विशेष गुणों से परिपक्व या मिश्रित अन्न तथा (गोभिः श्रीतः) वाणियों से से प्रशंसित ज्ञान वा किरणों से युक्त मणि आदि भी (अयम्) यह (सोमः) अन्नादि वा रत्नादि ऐश्वर्य (मदाय) अधिक आनन्द या हर्ष के लिये ही (तुभ्यं प्र हूयते) तुझे आदरपूर्वक दिया जाता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

इन्द्रं श्रुधि सु मे हवंमस्मे सुतस्य गोमंतः।
वि पीतिं तृप्तिमंश्नुहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मे हवम्) मेरी प्रार्थना वा उपदेश को भली प्रकार (सु श्रुधि) श्रवण कर। तू (अस्मे) हमारे (गोमतः

सुतस्य) गो-रस दुग्धादि से मिश्रित अन्न तथा भूमि सहित उत्पन्न ऐश्वर्य का (पीतिम्) पान, उपभोग आदि तथा (तृप्तिम्) तृप्ति को भी (वि अश्नुहि) विविध प्रकार से प्राप्त कर ।

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिवेदस्य त्वमीशिषे ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते चमसेषु) तेरे पात्रों में या पात्रवत् प्रजाजनों में (सोमः) अन्न और उत्पन्न ऐश्वर्य (आसुतः) उत्पन्न होता है और जो (ते चमूषु) तेरी सेनाओं के आश्रय पर (आ सुतः) प्राप्त होता है, (अस्य त्वम्) इसका तू (ईशिषे) स्वामी है । इसलिये तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य पालन या उपभोग कर । आध्यात्म में सोम वीर्य 'चमसों' अर्थात् देह के प्रति सैलों या कोष्ठों में या 'चमू' अर्थात् भोक्तृ रूप इन्द्रियों में होता है। उसका स्वामी आत्मा है।

यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे ।
पिवेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) शासन बल (अप्सु चन्द्रमाः इव) अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के समान आह्लादक और (चमूषु) सेनाओं के ऊपर उनका (सोमः) शासक, आज्ञापक के समान (ददृशे) दिखाई देता है है तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य उपभोग कर, (त्वम् अस्य ईशिषे) तू ही उसका स्वामी है। अध्यात्म में चमू, ८ प्राण हैं । यज्ञ में ये चमू ८ ग्रह हैं ।

यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
पिवेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यम्) जिस सोम अर्थात् ऐश्वर्य को (श्येनः) बाज़ के समान आक्रमण करने वाला पराक्रमी सेनापति (रजांसि तिरः) समस्त शत्रु जनों को पराजित करके (अस्पृतम्) शत्रुओं से अछूते या अनुपयुक्त रूप में ही (पदा) पदाति सैन्य द्वारा (ते आ भरत्)

तेरे लिये ले आता है (अस्य त्वम् ईशिषे) उसका तू ही स्वामी है। तू ही उसका (पिब इत्) उपभोग कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[८३]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ विश्वे देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९ गायत्री। ३ निचृद् गायत्री। ४ पादनिचृद् गायत्री। ७ आर्ची स्वराड् गायत्री। ८ विराड् गायत्री।

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये १

भा०—(वयम्) हम लोग (वृष्णाम्) जलों के वर्षक (देवानाम्) दीप्तिमान् किरणों के समान (वृष्णाम्) बलवान्, सुखदायक और (देवानाम्) तेजस्वी, व्यवहारकुशल और विजयेच्छुक वीरों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों के (इत्) ही (महत् अवः) बड़े भारी ज्ञान, रक्षा बल, प्रेम आदि की (अस्मभ्यम् ऊतये) हमारी अपनी रक्षा के लिये (वृणीमहे) चाहते हैं, उसे ही सबसे अच्छा मानते हैं।

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा।
वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य, वृत राजा वा सभापति, (मित्रः) प्रजा का स्नेही, (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायशील ये सब (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उत्तम ज्ञानसम्पन्न और (वृधासः च) बढ़ाने और दुष्टों का मूलोच्छेद करने वाले (युजः सन्तु) सहायक हों।

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ। यूयमृतस्य रथ्यः॥३॥

भा०—हे (ऋतस्य रथ्यः) महारथियोंवत् सत्य ज्ञान और न्याय के प्राप्त कराने वाले जनो! आप लोग (नः) हमें (नौभिः अपः न) नौकाओं से जलों के समान (विष्पिता) विविध रूपों से प्राप्त शत्रुओं के वलों वा कर्म-वन्धनों से (अति पर्षथ) पार करो।

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (अर्यमन्) दुष्टों के नियन्तः न्यायकारिन् ! हे (वरुण) सबसे वरणीय ! (नः वामं अस्तु) हमारा उत्तम धन हो । और (वामं शंस्यं अस्तु) हमारा धन प्रशंसनीय हो । और हम (वामं हि आवृणीमहे) उत्तम, सेवन करने योग्य धन वा सुख की ही याचना करते हैं ।

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।
नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट चित्त वालो ! हे (रिशादसः) हिंसक जनों को उखाड़ फेंकने वाले वीर जनो ! आप लोग (वामस्य) उत्तम, सेवने योग्य धन के ही (ईशानासः) स्वामी हो । हे (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा माता तुल्य भूमि के पुत्रवत् सेवक जनो ! (यत्) जोधन (अघस्य) पाप का है (न ईम् ईशानासः) आप लोग उसके स्वामी न हों । हम भी ऐसे धन की कामना नहीं करते । सदा पुण्य की कमाई हमें प्राप्त हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना ।
देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील (देवाः) नाना उत्तम कामनाओं वाले, व्यवहारकुशल पुरुषो ! (वयम् इत्) हम ही (क्षियन्तः) निवास करते हुए और (अध्वन् यान्तः) मार्ग में जाते हुए भी (वः) आप लोगों की (वृधाय) वृद्धि के लिये (हूमहे) बुलाते हैं ।

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! हे (अश्विना) उत्तम अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामियो ! हे (मरुतः) वायु-वत् बलवान्, विद्वान् पुरुषो वा व्यापारी जनो ! (सजात्यानां एषां)

समान जाति वाले इन में से (नः) हमें भी (अधि इत्) जानो और अपने अधीन लेवो ।

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥८॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम कल्याणजनक दान देने वाले पुरुषो ! हम लोग (मातुः गर्भे) माता के गर्भ में रहकर जिस प्रकार (भ्रातृत्वं) भाईपन और (समान्या द्विता) समान रूप से मान आदर करने योग्य 'द्विता' अर्थात् युगल भाव को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (मातुः) ज्ञानोपदेष्टा ब्रह्म-ज्ञान के दाता, विद्या जन्म द्वारा उत्पादक आचार्य और सर्वोत्पादक सर्वपोषक माता भूमि के (गर्भे) शासन, विद्या-ग्रहणकाल में रहते हुए परस्पर के (भ्रातृत्वं) भातृत्व, और (समान्या द्विता) समानों के योग्य दो-पन या युगल भाव को (प्र भरामहे) उत्तम रीति से धारण करें ।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (इन्द्र-ज्येष्ठाः) अन्न देने वाले, शत्रु के नाशक, ऐश्वर्यवान् और सत्य ज्ञानदर्शी को अपना ज्येष्ठ मानने वाले और (अभि-द्यवः) स्वयं तेजस्वी, (स्थ हि) अवश्य होवो । (अध चित् उत्)और भी मैं (वः ब्रुवे) आप लोगों को उपदेश करूं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८४]

उशना काव्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री । ४, ५, ७—९ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् १

भा०—मैं (वः) आप लोगों के प्रति और आप लोगों में से (प्रेष्ठं) सब से अधिक, सर्वप्रिय, (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (मित्रम्

इव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रीतिकारक, (रथं न) रथ के समान (वेद्यम्) धन जन, देशान्तर प्राप्त करने के उत्तम साधन वा उपदेश वचन के समान रम्य और ज्ञानप्रद (अग्निं) अग्निवत् अग्रणी, नायक, विद्वान् पुरुष की (स्तुषे) स्तुति करता हूं। उक्त गुणों से युक्त पुरुष को नायक वा अग्नि पद के लिये प्रस्तुत करता हूं। अग्रणी नायक में इन गुणों का होना आवश्यक है कि वह सर्वप्रिय, पूज्य, सर्वस्नेही और लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ हो।

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता। नि मर्त्येष्वादधुः॥२॥

भा०—(यम्) जिस के (कविम् इव प्रचेतसम्) विद्वान् मेधावी पुरुष के समान उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (देवासः) विद्वान् जन (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (द्विता नि आदधुः) दो प्रकार से स्थापित करते हैं। पूज्य रूप से और कार्यसञ्चालक रूप से। इसी प्रकार लोक में अग्नि को भी दो प्रकार आहित करते हैं गार्हपत्य और आवहनीव रूप से वा उसका दो कार्यों के लिये प्रभोग करते हैं एक ताप के लिये दूसरे प्रकाश के लिये। नायक को दो कार्यों के लिये स्थापित करते हैं मार्ग दर्शाने या ज्ञान देने और शासन करने के लिये।

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः।
रक्षा तोकमुत त्मना॥ ३॥

भा०—हे (यविष्ठ) युवतम, उत्तम युवा पुरुष! बलवन्! (त्वं) तू (दाशुषः) जीवन, धन, ज्ञानादि देने वाले (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालन कर और उन की (गिरः) वाणियों को (शृणुधि) आदर से श्रवण कर (तोकम्) पुत्र आदि सन्तति की (त्मना) अपने आत्म सामर्थ्य से (रक्ष) रक्षा कर।

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्।
वराय देव मन्यवे॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक ! तेजस्विन्! हे (अंगिरः) अंग अर्थात् देह में रसवत् बलशालिन्! (ऊर्जः नपात्) वीर्य से उत्पन्न, पुत्रवत् बल से उत्पन्न वा बल वीर्य का पतन या नाश न होने देने वाले ! हम लोग (वराय) वरण करने योग्य (मन्यवे) तेजस्वी, मननशील (ते) तुझ पुरुष की (उपस्तुतिम्) उपस्तुति, गुणवर्णना (कया) भला किस प्रकार की जिह्वा या वाणी से करें । तू स्वयं इतने २ गुणसम्पन्न सर्वथा वरने योग्य है ।

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
कदु वोच इदं नमः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) शत्रुविजयी बल सामर्थ्य से स्वयं उत्पन्न हम लोग (कस्य) किस (यज्ञस्य) पूज्य, दानी, सत्संगयोग्य के (मनसा) ज्ञान वा मन से युक्त होकर (दाशेम) दान करें, अपने को सौंपें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥

भा०—(अध) और (त्वं ही) तू ही (नः) हम (विश्वाः सुक्षितीः) समस्त प्रजाओं को उत्तम (करः) बना, और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजद्रविणसः सुक्षितीः करः) अन्न और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाली ऐश्वर्यवती भूमियां कर । और हमारे उपकार के लिये (गिरः वाज-द्रविणसः) ज्ञानसम्पन्न वाणियों का उपदेश कर, हमें भी उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानी और उपदेष्टा बना ।

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते ।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥

भा०—हे (दम्पते) गृहपते ! हे दमन, शासन, दण्ड व्यवस्थादि के पालक ! (यस्य ते) जिस तेरी (गिरः) वाणियां (गो-साता) हमें

(नरा) उत्तम पुरुषो ! (अदाभ्यं छर्दिः यन्त) अहिंसक, सुखदायक गृह प्रदान करो । इति सप्तमो वर्गः ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्थास्तुवतो अश्विना।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान रस का पान करने और आनन्दकारी वीर्य की रक्षा के लिये हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! आप दोनों वर्ग (इत्था स्तुवतः) सत्य का उपदेश करने वाले विद्वान् (दाशुषः गृहम्) ज्ञानदाता गुरु के गृह को (गच्छतम्) जाओ ।

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् ब्रह्मचारी जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) आनन्दकारक, सुखजनक 'सोम' विद्या माता के गर्भ में उत्पन्न होने वाले शिष्य रूप पुत्र के पालन और उस को ज्ञान रस पान कराने के लिये (वीडु-अंगे रथे) दृढांग रथ में (रासभं) उत्तम ध्वनि से अलंकृत अश्व के समान (वीडु-अंगे) दृढ़ अंगों को करने में समर्थ (रथे) उत्तम उपदेश प्राप्त करने के योग्य आश्रम, ब्रह्मचर्य काल में (रासभं) उत्तम उपदेश से अलंकृत आचार्य को (युंजाथाम्) नियुक्त करो ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर वेदज्ञान के पान और वीर्य के पालन करने लिये (त्रि-वन्धुरेण) तीन वन्धनों वाले, (त्रिवृता) तीन वार वटे, तीन प्रकार से अभ्यस्त (रथेन) स्थिर होकर रहने योग्य, ब्रह्मचर्य-आश्रम के धर्म पालन से (आयातम्) आगे बढ़ो ।

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥ ८ ॥

दोनों, (मे हवम्) मेरे यज्ञ को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर अन्न रस पान करने के लिये (आ गच्छतम्) आइये ।

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मे इमं स्तोमं हवम्) मेरा यह स्तुति योग्य आह्वान वा उपदेश को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के पान के लिये (शृणुतम्) श्रवण करो ।

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों वालो ! हे (वाजिनीवसू) बलयुक्त सेना के धनी सैन्य और सेनापते ! (मध्वः सोमस्य पीतये) बलयुक्त शत्रु को कंपाने में समर्थ 'सोम' ऐश्वर्य और बल के पालन करने के लिये (अयं) यह (कृष्णः) शत्रु को कर्पण या पीड़ित करने वाला राजा (वां हवते) तुम दोनों को अपने पास बुलाता है ।

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नर-नारियो ! आप (मध्वः सोमस्य पीतये) सुखदायक सोम, बल वीर्य के पालन करने के लिये (स्तुवतः जरितुः) उपदेश करने वाले विद्वान्, (कृष्णस्य) संशयों के उच्छेदन में समर्थ विद्वान् के (हवं) आह्वान या वचन का (शृणुतं) श्रवण करो ।

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान रस के पान करने के लिये (स्तुवते विप्राय) उपदेश देने वाले विद्वान् को हे

ज्ञान वाणियों और भूमियों के विभाग या प्रदान करने के लिये हैं वह तू (कस्य परीणसः) किस महान् पुरुष के निमित्त (धियः जिन्वसि) नाना कर्म करता है वा किस के प्रति बहुत सी स्तुतियों, बुद्धियों को प्रेरित करता है।

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु ।
स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—(तं) उस (सु-क्रतुं) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (आजिषु) संग्रामों में (पुरः-यावानं) आगे प्रयाण करने हारे और (स्वेषु क्षयेषु) अपने ऐश्वर्यों वा गृहों में भी (वाजिनम्) बल, ज्ञान और वेग से अनालसी होकर कार्य करने वाले को (मर्जयन्त) सादर अलंकृत करो।

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः ।
अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (क्षेमेभिः) कल्याणकारी, (साधुभिः) उत्तम कार्यसाधक पुरुषों और उपायों सहित (क्षेति) रहता और ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, (यं नकिः घ्नन्ति) जिसको कोई भी मार नहीं सकते हैं। वह हे (अग्ने) अग्निवत् ज्ञानिन्, तेजस्विन्, प्रतापशालिन्! तू (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् होकर (एधते) वृद्धि को प्राप्त करता है। इति षष्ठो वर्गः॥

[८५]

कृष्ण ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४, ६, ८ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचरणों से रहित, सदा सत्यभाषी हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वशी स्त्रीपुरुषो! (युवम्) तुम

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के ग्रहण के लिये हे (नासत्या) सदा सत्य के धारण करने वाले ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो (तू) शीघ्र ही (मे गिरः युवं प्रावतम्) मेरी उपदिष्ट वेदवाणियों का आप उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८६]

कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥

उभा हि दुस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥१॥

भा०—हे (दस्रा) रोगादि के नाशक (उभा) आप दोनों (भिषजा) भय से बचाने वाले, प्रेमपूर्वक मिलने जुलने वाले, वा रोगों को दूर करने वाले (मयः-भुवा) सुख के देने वाले, और (उभा) दोनों (दक्षस्य वचसः) बलयुक्त कर्म समर्थ वचन के बोलने वाले (बभूवथुः) होवो । (ता वां) आप दोनों को (विश्वकः) समस्त मनुष्य (तनू-कृथे) अपने देह के रक्षा के निमित्त (हवते) बुलाते हैं । आप दोनों (सख्या) मित्रता से (नः) हमें (मा वि यौष्टं) पृथक् न करो, सब से प्रेम रक्खो और (नः मा मुमोचत) हमें त्याग न करो ।

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये । ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥२॥

भा०—(नूनं) निश्चय ही (वि-मनाः) विपरीत चित्त वा ज्ञान वाला वा अज्ञानी मनुष्य (वां) तुम दोनों की (कथा उपस्तुवत्) कैसे गुण स्तुति कर सकता है ? (युवम्) तुम दोनों (इष्टये) इच्छा पूर्ति के लिये (धियं वस्यः ददथुः) उत्तम बुद्धि और उत्तम धन प्रदान करते हो । (ता वां) उन आप दोनों की (तनू-कृथे विश्वकः हवते) अपने

देह के सुखार्थ सभी बुलाते हैं। तुम दोनों (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें मित्र भाव से पृथक् मत करो और (वि मुमोचतम्) विविध दुःखों से छुड़ाओ वा सखित्व से हमें (मा वि मुमोचतम्) मत त्याग करो।

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्य इष्टये। ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥३॥

भा०—हे (पुरु-भुजा) बहुतों को पालन करने में समर्थ पुरुषो! आप दोनों (विष्णाप्वे) व्यापक शक्तिमान् प्रभु को प्राप्त करने वाले को (इष्टये) यज्ञ के निमित्त (वस्यः) उत्तम धन और (एधतुं ददथुः स्म) वृद्धि के साधन देते रहो। (ता वां० इत्यादि पूर्ववत्)

उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे। यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (त्यं वीरं) उस वीर, बलवान् और विद्यावान् (धनसा) धन के दानी और धन के प्राप्त करने में कुशल, (ऋजीषिणं) धर्ममार्ग में सञ्चालक और शत्रुनाशक सैन्य के चालक ऐसे (दूरे चित् सन्तं) दूर देश में रहते हुए पुरुष को भी हम (अवसे) रक्षा और ज्ञान लाभ के लिये (हवामहे) बुलावें। (यस्य) जिस की (स्वादिष्ठा सुमतिः) अति सुखदायिनी शुभ प्रज्ञा (यथा पितुः) पिता के समान हित में प्रवृत्त कराती हो, हे विद्वान् पुरुषो! (नः मा वियौष्टं) हमें अपने से पृथक् न करो (सख्या मा मुमोचतम्) अपने मित्रभाव से हमें परित्याग न करो।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे। ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य के समान तेजस्वी, (सविता) सब का प्रेरक, सब का उत्पादक प्रभु (ऋतेन) सत्य ज्ञान-मय वेद से (शम् आयते) सब को शान्ति सुख प्रदान करता है। और वह (ऋतस्य शृङ्गम्) तेज के अन्धकारनाशक प्रकाश के समान असत्य, अविद्या के नाशक सत्य के प्रकाश को (उर्विया पप्रथे) बहुत अधिक फैलाता है। (ऋतं) सत्य ही (महि चित् पृतन्यतः) बड़े २ वा शत्रुओं को भी (सासाह) पराजित करता है। (नः मा सख्या वि यौष्टं) हमें मित्रता से वियुक्त न करो और (मा वि मुमोचतम्) हमें भी परित्याग मत करो। इति नवमो वर्गः ॥

[८७]

कृष्णो द्युम्नी द्युम्नीको वा वासिष्ठ आंगिरसः प्रियमेधो वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥

भा०—(सेके क्रिविः न) संचय करने के लिये प्रचुर जल वाला कूप जिस प्रकार (द्युम्नी) उत्तम अन्नोत्पादक होता है उसी प्रकार (वां) आप दोनों का (स्तोमः) स्तुति वचन वा उपदेश (द्युम्नी) अपरिमित ज्ञान का देने वाला होता है। हे (अश्विना) विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आइये। (सः) वह (दिवि प्रियः) ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त अति पूर्ण है। हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! दोनों (मध्वः सुतस्य) मधुर ज्ञान का (इरिणे गौरौ इव) जलाशय में दो गौर नाम मृग-युगल के समान (पातं) पान करो। अथवा (इरिणे) शुष्क भूमि में (गौरौ इव) सूर्य-मेघवत् मधुर जल के समान ज्ञान का पान कराओ।

पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्ववत् राष्ट्र के भीतर नियुक्त जनों के स्वामी जनो ! आप दोनों (नरा) नायक जन (बर्हिः) आसनवत् इस राष्ट्र प्रजाजन के ऊपर (आ सीदतम्) अध्यक्षवत् विराजो और (मधुमन्तं) बलयुक्त (घर्मं) तेज और रस का मधुयुक्त ओषधि-रसवत् पान, उपभोग और संरक्षण करो । (मनुषः दुरोणे) मनुष्य के आश्रय रूप गृह के समान उत्तम रक्षा स्थानवत् (मनुषः दुरोणे) सर्वसाधारण मनुष्य के लिये दुष्प्राप्य राजपद पर (मन्दसाना) अति हर्ष लाभ करते हुए (ता) वे आप दोनों (वेदसा) धन के द्वारा (वयः) राष्ट्र के बल, जीवन और अन्न समृद्धि की (निपातम्) रक्षा करो । इसी प्रकार प्रत्येक गृह में स्त्री पुरुष आसन पर बैठें, मधुर रस युक्त अन्न, ओषधि रस पान करें । सुप्रसन्न होकर धन और ज्ञान से जीवन की रक्षा करें ।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम नायको ! उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (प्रियमेधाः) अन्न, सत्संग, यज्ञ, युद्ध आदि के प्रिय जन (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की प्रीतियों तथा रक्षा-साधनों सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को प्रेम से आह्वान करते हैं । (ता) वे दोनों आप, (वृक्तबर्हिषः) कुशाओं के समान अन्य संशयों, और शत्रु जन वा मानसिक दुर्विचार काम, क्रोधादि रिपुओं को उच्छेद करने वाले के (वर्त्तिः) गृह पर (उप यातम्) उपस्थित होवो, और (दिविष्टिषु) प्रति प्रातःकाल के अवसरों में वा (दिवः) उत्तम कामनाओं की पूर्त्ति के लिये (यज्ञं) देवपूजन और यज्ञ सत्संगादि को (उप जुष्टं) नित्य सेवन करो ।

पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (सुमत् बर्हिः सीदतम्) उत्तम आसन और प्रजा जन पर अध्यक्षवत् विराजो । और (मधुमन्तं सोमं पिबतम्) मधुर आनन्द युक्त ऐश्वर्य का अन्नवत् उपभोग करो । (ता) वे आप दोनों (ववृधाना) सदा वृद्धि प्राप्त करते हुए (दिवः सु-स्तुतिं) ज्ञान के उत्तम उपदेश, कीर्त्ति को (इरिणं गौरौ इव) जलाशय को मृगयुगल के समान (उप गन्तम्) प्राप्त होवो ।

आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) शीघ्र गमन करने वाले अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, नायक जनो ! आप दोनों (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, पूर्ण वा जलादि से सिक्त अभिषेचित रूप वाले (अश्वेभिः) अश्वों और विद्यावान् पुरुषों सहित (नूनं आयातम्) अवश्य आवो । आप दोनों (दस्रा) बाह्य अन्तःशत्रुओं के नाशक (हिरण्य-वर्त्तनी) सुवर्ण के रथ वाले वा हित-रमणीय मार्ग के अवलम्बक (शुभः-पती) उत्तम शोभा वा कल्याण के पालक, (ऋत-वृधा) सत्य ज्ञान के वर्धक और सत्य के बल से बढ़ने वाले आप दोनों (सोमम् पातम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो ।

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! हे अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (वां हि विपन्यवः) हम स्तुतिकर्त्ता और विविध व्यवहार-कुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य और ज्ञान के प्रदान और प्राप्ति के लिये (वां हि हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं । (ता) वे आप दोनों (वल्गू) कुशल आचरण वाले, (दस्रा) दुष्ट

कर्मों के नाशक (पुरु-दंससा) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाले हो कर (धिया) कर्म और ज्ञान के बल से (श्रुष्टी आगतम्) शीघ्र ही उद्देश्य को प्राप्त होवो । इति दशमो वर्गः ॥

[८८]

नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद् बृहती । २, ४ पंक्तिः । ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्टृचं सूक्तम् ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (अन्धसः) अन्नवत् उपभोग्य (वसोः) राष्ट्र में वसे प्रजा जन और (वसोः) धन राशि से (मन्दानम्) अति हर्षित (तं) उस (दस्मम्) शत्रुनाशक और (ऋति-सहं) शत्रुओं के पराजयकारी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति की हम लोग (स्वसरेषु) स्वयं वा सुख से बीतने वाले दिनों में, गोष्ठों में (अभिवत्सं न धेनवः) बच्छे के प्रति गौओं के समान (स्वसरेषु) सब दिनों (गीर्भिः नवामहे) वाणियों से स्तुति करें ।

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (द्युक्षं) दीप्ति युक्त (सु-दानुं) उत्तम दानशील, (तविषीभिः आवृतं) नाना सेनाओं से घिरे (गिरिं न) मेघ के समान (पुरु-भोजसं) बहुतों के पालक, स्वामी से (क्षुमन्तं) अन्नादि से युक्त (शतिनं सहस्रिणं) सौ हजार-आदि से युक्त, (गोमन्तं वाजं) भूमि, पशु धनों आदि से समृद्ध ऐश्वर्य की याचना करें और प्राप्त भी करें ।

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

भा०—(बृहन्तः) बड़े २ (वीडवः) बलशाली, (अद्रयः) मेघों

वा पर्वतों के समान बाधक जन भी (त्वा न वरन्ते) तुझे निवारण नहीं करते। (यत्) जो तू (मावते स्तुवते) मुझ सदृश स्तुति करने वालों को (वसु दित्ससि) धन देना चाहता है (ते तत् न किः आमिनाति) तेरे उस संकल्प का कोई भी नाश नहीं कर सकता।

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन्॥ ४॥

भा०—(यम्) जिस (त्वा) तुझ को (अर्कः) स्तोता वा तेरे गुण बतलाने वाला वेदमन्त्र (ऊतये आववर्तति) रक्षा के लिये अपने अभिमुख करता है, (यं गोतमाः अजीजनन्) जिस को वेदवाणियें वा उत्तम विद्वान् वाणी द्वारा प्रकट करते हैं वह तू (क्रत्वा) कर्म-सामर्थ्य और ज्ञानसामर्थ्य, (शवसा) बल (उत दंसना) और कर्म और (मज्मना) आज्ञापक प्रभाव या गर्जना से (विश्वा जातानि अभि) सब पदार्थों के प्रति (योद्धा असि) शत्रुओं से लड़ने हारा उन पर प्रहार करने, पछाड़ने में समर्थ है। अथवा, (क्रत्वा, शवसा दंसना यः अद्धा असि) ज्ञान, बल, कर्म, से जो सत्य है और जो (विश्वा जाता अभि मज्मना) समस्त पदार्थों को अपने बल से धारता है।

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ओजसा) बल पराक्रम से (दिवः अन्तेभ्यः परि) आकाश और पृथिवी के परले छोरों तक भी (प्र रिरिक्षे हि) सब से अधिक बलशाली है। तू (पार्थिवम् रजः अनु स्वधां ववक्षिथ) पृथिवी लोक पर जलवत् जीवन तत्व को प्राप्त कराता है, तू महान् है और (न त्वा विव्याच) तुझे कोई व्याप नहीं सकता।

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये॥ ६॥ ११॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (दशस्यसि) दान करता है उस (तं) तेरे (मघस्य) उत्तम धन का (परिष्टिः) बाधक (नकिः) कोई नहीं है। तू (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, ज्ञान-प्रदान करने में (मंहिष्ठः) अति पूज्य दानी, और (चोदिता) सन्मार्ग में प्रेरक है। तू (अस्माकं उचथस्य बोधि) हमारे वचन, स्तुति को जान। इत्येकादशो वर्गः ॥

[८९]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ बृहती। ३ निचृद् बृहती। २ पादनिचृत् पंक्तिः। ४ विराट् पंक्तिः। ५ विराडनुष्टुप्। ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

भा०—हे (मरुतः) परिमित भाषण करने वाले, विद्वान् पुरुष ! (येन) जिससे (ऋत-वृधः) सत्य के बढ़ाने वाले, (देवाय) प्रकाश-स्वरूप, सर्व ऐश्वर्यप्रद प्रभु को जानने के लिये (देवं जागृवि ज्योतिः अजनयन्) प्रकाशक, सदा जागृत, कभी न बुझने वाली ज्ञानज्योति को प्रकट कर लेते हैं उस (वृत्र-हन्तमम्) विघ्न बाधा, रूप, अन्तःकरण के आवरक को नाश करने वाले (बृहत्) बड़े उत्तम बृहत् नाम स्तोम का (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (गायत) गान करो। अथवा (इन्द्राय वृत्र-हन्तमम् बृहत् गायत) उस प्रभु के सर्व विघ्न-बाधक इस महान् तेजोमय स्वरूप का गान करो।

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥

भा०—(अशस्तिहा इन्द्रः) अपकीर्त्तियों और स्तुत्यादि से रहितों का नाशक वह ऐश्वर्यवान्, (अभिशस्तीः अप अधमत्) आक्रामक हिंसकों के

आक्रमणों को परे कर देता है, उनको संतप्त करता है, (अथ) और वह (द्युम्नी अभवत्) यशस्वी, ऐश्वर्यवान् होजाता है। हे (बृहद्-भानो) महान् तेजस्विन्! हे (मरुद्-गण) बलवान् गणों के स्वामिन्! (देवाः) विजयेच्छुक, दानशील जन (ते सख्याय येमिरे) तेरे सख्यभाव प्राप्त करने के लिये अपने को नियम में बांधते हैं।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) बलवान् शत्रुहन्ता एवं परिमितभाषी जनो! आप लोग (बृहते इन्द्राय) बड़े २ ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ब्रह्म अर्चत) महान् सामर्थ्य की स्तुति करो। वह (वृत्रहा) दुष्टों का हन्ता (शत-क्रतुः) अपरमित ज्ञानी, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों पर्वों से युक्त वज्र, बल, सैन्य वा ज्ञान से (वृत्रं) दुष्ट शत्रु और अज्ञान का (हनति) नाश करता है। 'वज्र'—अज्ञान का वर्जन करने से ज्ञान वज्र है।

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (धृषन्-मनः) शत्रुओं को पराजय करने वाले मन और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने में समर्थ मन वा ज्ञान वाले जन! (ते) तेरा (बृहत् श्रवः असत्) बड़ा भारी यश और ज्ञान हो। तू उस ज्ञान वा यश को (धृषता) बाह्य और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने वाले बल से (अभि प्र भर) धारण कर। (मातरः) माताओं के समान, सर्वप्रिय (आपः) आप्तजन (वि अर्षन्तु) मेघ से जल धाराओं के समान विविध प्रकार से प्राप्त हों। और तू (वृत्रं हनः) दुष्ट का नाश कर और (स्वः जय) सबका विजय कर। हे ज्ञानिन्! तू अन्धकार रूप अज्ञान का नाश करके परम सुख पर विजय प्राप्त कर।

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मघवन्) तेजोमय ! ऐश्वर्यवन् ! हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व विद्यमान ! (यत्) जो तू (वृत्र-हत्याय) बढ़ते शत्रुवत् अज्ञान के नाश करने के लिये (अभि प्र जायथाः) समर्थ होता है, (तत्) वह तू (पृथिवीम् अप्रथयः) पृथिवी को विस्तृत करता है, (उत) और (द्याम् अस्तभ्नाः) आकाश वा सूर्य को दृढ़ वा स्थिर करता है। उसी प्रकार परमेश्वर जब प्रकृति के सलिलमय, तमोमय परमाणु रूप को आघात करता है उससे ही यह भूमि बनती और सूर्य आदि लोक भी उसी के बल से स्थिर हैं।

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥

भा०—तब ही हे प्रभो ! (ते यज्ञः अजायत) तेरा महान् यज्ञ होता है (तत् ते अर्कः) वही तेरा महान् स्तुति योग्य ज्ञान है। (उत हस्कृतिः) वही तेरा ब्राह्म दिनवत् हर्ष का विलास है। (तत्) वह तू (विश्वम् अभि भूः असि) समस्त विश्व का उत्पादक है (यत् जातं यत् जन्त्वम्) जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होगा उस सबका उत्पादक तू ही है।

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (आमासु) कच्ची, मृदु भूमियों में (पक्वं) परिपाक योग्य, तेज, वीर्य को (ऐरयः) प्रदान करता है, और (दिवि) आकाश में (सूर्यं आरोहयः) सूर्य को स्थापित करता है। (गिर्वणसे) वाणी से सेवने योग्य उस प्रभु के (जुष्टं) प्रिय (बृहत्) बड़े भारी (घर्मं) तेज को (सामन्) सामस्तुति द्वारा (सु-वृक्तिभिः)

और उत्तम स्तुतियों द्वारा (घर्मं न) सूर्य प्रकाशवत् (तपत) तपो, उसका सेवन कर तपश्चर्या करो। तपश्चर्या से उसके तेज को धारण करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[९०]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती । ३ विराड् बृहती । ५ पादनिचृद् बृहती । २, ४ पादनिचृत् पंक्तिः । ६ निचृत् पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥

भा०—(हव्यः इन्द्रः) सबसे पुकारने, संकटों के समय बुलाने योग्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमारे (विश्वासु समत्सु) समस्त संग्रामों में (आ भूषतु) सदा सज्ज रहे। वह (वृत्र-हा) बढ़ते शत्रु का नाशक, (परम-ज्याः) बड़ी प्रबल डोरी वाला, बड़े २ शत्रुओं का बड़ा नाशक और (ऋचीषमः) यथार्थ गुण-स्तुति के अनुरूप होकर वह (सवनानि) समस्त ऐश्वर्यों और (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को भी (उप भूषतु) प्राप्त हो। (२) परमेश्वर सब आनन्दावसरों में हमें समर्थ करे, हमारे यज्ञादि उपासना कालों में वह विघ्न-हर्त्ता सदा स्मरण रहे।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यासि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥

भा०—(त्वं) तू (राधसां प्रथमः दाता) समस्त ऐश्वर्यों का प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट दाता है, तू (सत्यः) सत्यस्वरूप, (ईशान-कृत्) सबका स्वामी, जगत् का कर्त्ता है। तू सब बड़े राजा, धनाधिपों का भी बनाने वाला है। (तुवि-द्युम्नस्य) बहुत से धनों, ऐश्वर्यों से सम्पन्न (महः शवसः पुत्रस्य) बड़े भारी बल के कारण बहुतों की रक्षा करने में समर्थ तेरे ही

(युज्या) सहयोगों, मित्रताओं और सहायताओं की (वृणीमहे) याचना करते हैं।

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे लिये (अनतिद्भुता) यथार्थ गुणानुरूप (ब्रह्मा) धन और स्तुतिवचन वा अन्नादि सत्कार (क्रियन्ते) किये जावें। हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय ! वाणियों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (हर्यश्व) अश्वोंवत् मनुष्यों के स्वामिन् ! हम (या ते) तेरे लिये या जिन भी (योजना) उचित गुण भोगों की (अमन्महि) चिन्तना करते हैं तू (इमा जुषस्व) इन सबको स्वीकार कर।

त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अनानतः) किसी से भी नहीं झुकता, (त्वं हि सत्यः) तू ही सत्य स्वरूप है। तू (भूरि-वृत्रा) बहुत से विघ्नों और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (नि-ऋञ्जसे) अपने वश करने में समर्थ है। हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! हे (वज्र-हस्त) हाथ में बल, वीर्य और खड्ग धारण करने हारे ! (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील को (रयिम् अर्वाञ्चं कृधि) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के हन्तः ! हे ऐश्वर्यप्रद ! (त्वं यशाः असि) तू यशस्वी है। हे (शवसः पते) बलों के पालक ! (त्वं ऋजीषी असि) तू सत्य मार्ग में सबको चलाने हारा और शत्रु को पीड़ित करने वाले सैन्यादि का शासक है। (त्वं) तू (अप्रतीनि) बे-मुक़ाबले के (वृत्राणि)

मेघस्थ जलोंवत् अति प्रबल दुष्टों और शत्रुओं को भी (एकः इत्) अकेला ही (हंसि) दण्डित करता है, और तू (चर्षणीधृता) समस्त मनुष्यों को धारण करने वाले बल से (अनुत्ता) अपराजित शत्रुओं को भी पराजित करता है।

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥६॥१३॥

भा०—हे (असुर) प्राण, जीवन के देने वाले! हे बलशालिन्! (प्र-चेतसं) उत्कृष्ट चित्त वाले (त्वा) तुझ से (भागम् इव राधः ईमहे) अपने पिता से प्राप्तव्य भाग के समान ही हम धन की याचना करते हैं। (ते) तेरा (कृत्तिः) श्रमपूर्वक काट कर संग्रह करने योग्य खेती (ते शरणा) तेरी शरणदायिनी सम्पदा (मही इव) यह बड़ी भारी भूमि है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते सुम्ना नः प्राश्नवन्) तेरे दिये नाना सुख हमें खूब प्राप्त हों। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९१]

अपालात्रेयी ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। २ पंक्तिः। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ अनुष्टुप्। ५, ६ विराडनुष्टुप्। ७ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

कन्या३वारवायती सोममपि स्रुताविदत्।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (स्रुता) बहती (अवयती) नीचे की ओर जाती (वाः) जल धारा (सोमम् अपि विदत्) ओषधि वर्ग को प्राप्त होती है उसी प्रकार (वाः) वरण करने वाली वरवर्णिनी, (अवयती कन्या) समझती बूझती हुई कन्या (सोमम्) पुत्रोत्पादन में समर्थ वीर्यवान् विद्याव्रत स्नातक पुरुष को (स्रुता) उस के प्रति प्रेमाकृष्ट होकर (अपि विदत्) पति रूप से प्राप्त करे।

उस से विवाह करे। वह (अस्तं भरन्ती) गृह-आश्रम को भरण या धारण करती हुई (अब्रवीत्) कहे कि मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी स्वामी होने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा आदर करती हूं, अथवा तुझे ही पुत्र रूप से उत्पन्न करने के लिये (त्वा) तुझे वरण करती हूं। इसी प्रकार (शक्राय) शक्तिशाली स्वामी प्राप्त करने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा सवन, पूजन करती हूं।

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्॥२॥

भा०—(असौ) वह दूर देश का (यः) जो (वीरकः) वीर्य युक्त पुरुष (एषि) प्राप्त होता है वह तू (गृहं-गृहं) प्रत्येक गृह को (विचाकशत्) प्रकाशित करता है। हे विद्वन्! तू (इमं) इस (जम्भ-सुतं) जन्म से ही दीप्तियुक्त वा जाया, स्त्री और उसके भरणकर्त्ता पति दोनों से उत्पन्न (धानावन्तं) आधान संस्कार से युक्त (करम्भिणम्) क्रिया-कुशल, शौर्ययुक्त और (अपूपवन्तं) गृह से दूर और गुरु आचार्य आदि के समीप जाने वाले (उक्थिनं) उत्तम बालक का (पिब) पालन कर।

करोतेरम्भच् प्रत्ययः (उणा०)

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥३॥

भा०—हे पुरुष (त्वा आ चिकित्सामः) हम तुझे जानना चाहते हैं। (त्वा चन न अधि इमसि) हम तुझे अभी नहीं पहचान रहे हैं। हे (इन्दो) गुरु के समीप से नवागत सौम्य! ऐश्वर्यवन् तेजस्विन् युवक! तू (शनैः इव शनकैः इव) शनैः शनैः (इन्द्राय) स्वामी या पति पद प्राप्त करने के लिये अधिक आगे बढ़, परिचित हो।

जिस प्रकार बालक को आचार्य मातावत् अपने गर्भ में रखता और स्वीकार करता है उसी प्रकार प्रथम माता भी 'इन्दु या सोम' अर्थात् द्रुत

वीर्य को अपने गर्भ में धारण करती है। वह भी 'इन्द्र' अर्थात् अपने पति के ही निमित्त उसे धारण करती है। वह भी गर्भाशय में शनैः शनैः परिस्रवण करता कमल तक पहुंचता है। यह आशय भी मन्त्र में उपमित रूप में निहित है। इसी मन्त्र पर शाट्यायन ब्राह्मण का वचन है—"सोमपीथ इह वा अस्य भवति य एवं विद्वान् स्त्रियमुपजिघ्रतीति।"

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सङ्गमामहै ॥ ४ ॥

भा०—वह पुरुष जो विवाह करना चाहता है (कुवित् शकत्) स्वयं भी बहुत समर्थ हो, हमें भी बहुत समर्थ करे वह स्वयं भी (कुवित् करत्) बहुत से कार्य करने में समर्थ हो। और वह (नः) हमें (कुवित्) बहुत प्रकार से (वस्यसः करत्) उत्तम धनादि ऐश्वर्य से सम्पन्न करे। (कुवित्) बहुतसी (पतिद्विषः) बन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करती हुई हम स्त्रियां (यतीः) घरों से पृथक् होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, अन्न देने में समर्थ पुरुष से ही (संगमामहै) संगत, सम्बद्ध हो जाती हैं इसलिये स्त्रियों के साथ विवाह करने वाले को चाहिये कि वह अपनी पत्नी को अधिक समर्थ करे, स्वयं भी श्रमशील हो, स्त्रियों को उत्तम वस्त्र-आभूषणादि से भी सन्तुष्ट करे जिससे वह अपने पालक जन की निर्धनता से खिन्न होकर द्रव्यवानों के प्रलोभन में न जावें।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।
तस्मादेता सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। मनु० अ० ३।श्लो० ५५,५६,५९॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् पुरुष ! स्वामिन् (इमानि) ये (त्रीणि) तीनों पदार्थ (वि-तपा) संताप से रहित या अपक्क हों, (तानि) उन तीनों को तू (वि रोहय) विशेष रूप से उन्नत एवं वृद्धियुक्त, सफल होने दे, (१) (ततस्य शिरः) पिता के शिर को ऊंचा कर । अर्थात् विवाह करने वाले को प्रथम अपने वा कन्या के माता पिता के शिर पर के भार को कम करना, उस की चिन्ता को दूर करने को यत्न करना चाहिये जिस से वह कन्या को ले वा देकर भी पश्चात्ताप न करे।(२)(उर्वराम् वि रोहय)जिस प्रकार 'इन्द्र', सूर्य या मेघ उर्वरा भूमि पर बरस कर उसे अन्नादि से सम्पन्न करता है इसी प्रकार विवाहित युवक को चाहिये कि उर्वरा कन्या के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे । (३) (आत् इदं मे उप-उदरे) और यह जो मुझ कन्या के उदर या पेट के समीप अंग या पेट में स्थित बीज गर्भ रूप से विद्यमान हो । हे (इन्द्र) वपन योग्य भूमि रूप स्त्री के गर्भ में इरा अर्थात् अन्नवत् बीज आधान करने हारे पुरुष ! तू उस को भी (वि रोहय) विशेष रूप से पुष्ट कर, सन्तान को पोषित कर, उस को अधबीच में नष्ट न होने दे ।

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१ मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥

भा०—(असौ च) और वह (या) जो (नः) हम में से (उर्वरा) उत्तम अन्न-उत्पादक भूमिवत् सन्तान उत्पादक नारी हो उस को (रोमशा कृधि) पूर्ण यौवनचिह्नों से युक्त होने दे । (मम) और मेरे (इमां तन्वं) इस शरीर को (रोमशा) रोमाञ्चित, पुलकित, पूर्ण वा पुष्टांग युक्त (कृधि) कर । (अथो) और (ततस्य) पिता का (यत् शिरः) जो शिर इस समय चिन्ताग्रस्त, उदास है उस को (रोमशं कृधि) रोमाञ्चित, पुलकित, चिन्तारहित कर ।

अथवा (ततस्य शिरः) सन्तानोत्पादक वर के शिर अर्थात् मुख को भी (रोमशं कृधि) मूंछ दाढ़ी वाला वा पूर्णायु होने दे। विवाहेच्छुक पुरुष भी युवा हो। स्त्री भी युवती और उर्वरा हो।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥ १४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अपरित ज्ञान और कर्म सामर्थ्य वाले! तू (रथस्य खे) रथ के अवकाश में, फिर (अनसः खे) शकट के अवकाश में और (युगस्य खे) युग नामक यान के मध्य में इस प्रकार क्रम से (अपालां) अप्राप्तपति, कुमारी कन्या को (त्रिः पूत्वी) तीन प्रकार से लाकर (सूर्यत्वचम् अकृणोः) सूर्य के समान उज्ज्वल रंग-विरंगे वस्त्रों से आच्छादित कर।

सूक्त-समीक्षा

इस सूक्त में कई समस्याएं हैं—(मन्त्र १ म०) 'अपाला' वह कन्या है जिसको पालक पति नहीं मिला इस प्रकार प्रत्येक कुमारी कन्या 'अपाला' है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी युवा 'सोम' है। इसका स्पष्टीकरण अथर्व वेद में का० १–सू० ११ में देखो। 'स्रुता' वह कन्या है जो रजस्वला होकर स्नान कर लेती है। अथवा गुरुगृह में स्नातिका हो। इसी प्रकार 'सोम' शब्द वीर्यवान् पुरुष वा विद्या और व्रत द्वारा स्नातक दोनों अर्थों को कहता है।

'विदत्'—कन्या जब पति को प्राप्त करती है वह 'पति का वेदन' करती है। 'विदत्' पद उसी प्रकार के विवाह द्वारा पति के वेदन को बतलाता है। (अस्तं) 'अस्त' गृह-आश्रम का वाचक है। उसको धारण करती कन्या पुरुष का सवन करे, आदर करे। क्यों? उसको अपना स्वामी और अपना परम शक्तिमान् रक्षक बनाने के लिये। अर्थात् 'इन्द्र' और 'शक्र' ये दोनों 'पति' के पद की योग्यता को बतलाते हैं।

(मं० २) उसी पुरुष को 'वीरक' कहा है। वही गृह २ को उज्ज्वल करता हुआ प्राप्त होता है। अर्थात् वही पुत्र होकर कुलदीपकवत् प्राप्त होता है। आगे कन्या पति को उसका कर्त्तव्य बतलाती है कि वह दोनों से उत्पन्न पुत्र का पालन करे।

'जम्भ-सुतं'—जाया च पतिश्च जम्पती। जायतेऽस्यां, जनयति इति वा जाया, विभर्त्ति इति भः उभौ जम्भौ। ताभ्यामुत्पन्नो जम्भसुतः तं। (धानवन्तं) धानम् आधानं, गर्भाधानसंस्कारवन्तं। स्वयं विधिवद् आहितम्। 'करम्भिणं'—करम्वः, करम्भः। करोते रम्भच् प्रत्ययः। क्रियावान् कर्मकुशलः। (अपूपवन्तं) अप दूरे आचार्यगृहे उपवन्तं उपवीतवन्तं। मध्यमपदलोपः। 'उक्थिनं'—उक्थो वेदो गुरूपदेशो वा तद्वन्तम्।

(मं० ३) पहले दोनों अपरिचित होते हैं वे दोनों परिचय प्राप्त करें। शनैः २ कन्या का पुरुष और पुरुष का कन्या परिचय प्राप्त करे फिर वे पति-पत्नी होने योग्य हैं। 'इन्दुः'—नव स्नातक कन्या के प्रति प्रेमार्द्र हो तो उस दशा में वह 'इन्दु' है, ऐश्वर्यवान् होने से भी 'इन्दु' है। परिचित होकर बाद में वह उसका पति अर्थात् 'इन्द्र' होने के लिये आवे।

(मन्त्र ४) विवाहेच्छुक वर शक्तिमान् क्रियाकुशल हो, जो वधू को भी पर्याप्त वस्त्रालंकार दे सके। जिस की शक्ति, कमाई और धन-सम्पदा से आकृष्ट होकर कन्या अपने पालक माता पिता का मोह छोड़ 'इन्द्र' अर्थात् पति से संगत हो, उसी से दिल मिलाकर रहे।

(पति-द्विपः)—यहां पति शब्द लौकिक पति का वाचक नहीं, प्रत्युत सामान्य पालक (Gardian) का वाचक है। वह सब बन्धु बान्धवों के प्रेम या मोह को त्याग कर भी पति के साथ हो लेती है। ऐसी दशा में यदि माता पितादि बाधक होते हैं तो वह उनके प्रति प्रेम त्याग देती है और वर के साथ ही प्रेम बांधती है। वही 'अप्रीति' यहां 'द्विप' पद

का वास्तविक अर्थ है । 'द्विष् अप्रीतौ' द्विष् का अर्थ अप्रीति है । परन्तु वैर अर्थ में द्वेष पद रूढ़ हो गया है ।

(मन्त्र ५) विष्टपा = वि-तपा । तप रहित या संतापरहित । तपरहित अपरिपक्व 'ततस्य शिरः' यहां 'तत' वा 'तात' शब्द प्रिय अर्थ में भी हैं । इसी से । 'पिता' 'पुत्र' दोनों के लिये भी प्रयुक्त होता रहा है । अथवा तनोति सन्ततिम् इति ततः । जो सन्तान उत्पन्न करे वह 'तत' है । इससे यहां प्रियपति का वाचक होकर वरने योग्य पुरुष के लिये कहा है। शिर शब्द मुख के लिये उपलक्षण है, उस का मूंछरहित मुख न होवे, विवाहेच्छुक के प्रति कन्या की तरफ से यह १ म शर्त्त है कि वह सम्बन्ध करने के पूर्व अपने मुख पर बाल आने दे, वेद में 'खलति' आदि शब्द नहीं हैं, अतः पिता का गंजा शिर अर्थ करना असंगत है । २सरी शर्त्त है 'उर्वरा' कन्या जिसमें अभी गर्भ ग्रहण की शक्ति नहीं आई है, उसे उस योग्य अर्थात् 'उर्वरा' होने दे । (उर्वरा = उरु-वरा विशालवराङ्गदेशा । नितम्बिनीत्यर्थः) अर्थात् स्त्री का नितम्ब भाग अच्छा पुष्ट हो । ३सरी शर्त्त है वधू के उदर के समीप के भाग में भी यौवन चिन्हरूप रोम (Pubes) उत्पन्न हो जावें । अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री की यौवन दशा को 'Puberty' कहा जाता है । उन रोमों से ही यौवन की दशा को बतलाने का प्रकार वेद से लिया है ।

अथवा—विवाह में बंधने वाली समझदार कन्या वर से तीन याचना करे, तीनों बातें 'विष्टप' दुःखरहित हों । (१) (ततस्य शिरः) पिता का शिर संताप रहित हो, कन्या के विवाह के कारण पिता का शिर ऋणादि से ग्रस्त न हो, वह चिन्तातुर न हो, बहुत ऋणादि ग्रस्त होने या आर्थिक आघात लगने को भी 'सिर गंजा होना' चांद पर जूते लगना आदि भावों से कहा जाता है । वह आशय बाद के कथाकारों ने व्यङ्ग में ले लिया प्रतीत होता है । (२) 'उर्वरा' यदि पिता की भूमि उर्वरा नहीं

अर्थात् उस के गोत्र में कोई पुत्र नहीं तो अभ्रातृमती कन्या के पेट से उत्पन्न नाती ही उस के वंश का चलाने वाला हो। (मनु का पुत्र-पुत्रिका-विधान) (३) 'मे उपोदरे' मेरे उदर के पास गर्भाशय में रहे पुत्र का विशेष पालन करना पति का कर्त्तव्य हो अर्थात् जो कन्या का हाथ पकड़े उसे उसके गर्भस्थ सन्तान को पालना होगा, कन्या के माता पिता को नहीं। ऐसा बन्धन न हो तो बाद में पुरुषों में विलासिता और बढ़े। विवाहित स्त्रियां कष्ट में पड़ जावें और गर्भहत्याएं खूब हों। जहां ऐसा धार्मिक या नैतिक बन्धन नहीं वहां गर्भपात बहुत होते हैं।

(मन्त्र ६) ५ वें मन्त्र में कही बातों को ही पुनः कहा है, वे अत्यन्त आवश्यक होने से उन पर बल दिया गया है।

(मन्त्र ७) 'रथस्य खे', 'अनसः खे', 'युगस्य खे'—यहां रथ, अनस, और युग ये तीन प्रकार के यानों के नाम हैं। वेगवान् यान रथ है, शकट या बैलगाड़ी अनस् है और इन के साहचर्य में युग भी अवश्य कोई रथ है। पाणिनि ने भी 'युग्यं च पत्रे' रथ या वाहनार्थ में युग्य पद निपातन से साधा है। कदाचित् जिस में स्त्री पुरुष की जोड़ी ही बैठ सके वह रथ 'युग' कहाता हो। 'ख' का अर्थ छिद्र यहां नहीं। यहां 'ख' का अर्थ अवकाश भाग है। प्रथम पितृगृह से विदा होते समय कन्या रथ में चढ़े, फिर लम्बा रास्ता बैलगाड़ी में और पति-गृह के समीप आकर स्वागत पूर्वक तीसरे यान 'युग' में चढ़े। इस स्वागत के अवसर पर वधू को रंगा हुआ उज्ज्वल वस्त्र पहन कर ही बैठना होता था, इस प्रकार यान द्वारा वधू का आगमन इन्द्र द्वारा कुमारी कन्या का त्रिःपवन करना है।

अथवा—पुरुष स्त्री की तीन प्रकार की परीक्षा ले, तीनों में शुचि पवित्र अर्थात् निर्दोष हो तो ग्रहण करे। 'रथस्य खे' रमण योग्य इन्द्रिय के छिद्र, वे पवित्र हों उन में रोग न हो गुह्यांगों के रोग सिफ़िलिस, सुजाक, प्रमेह, प्रदर सोमरोगादि न हो, (२) 'अनसः ख'

अन प्राणधारणे धातुः। प्राण-ग्रहण के छिद्र नाक, मुंह, फेफड़ा, उन में पीनस रोग, मुखपाक, वैरस्य और भ्रष्ट रोग की फुन्सियां और फेफड़ों में राजयक्ष्मा आदि न हो, (३) 'युगस्य खे' शरीर में जो युग अर्थात् जोड़ा जोड़ा इन्द्रिय हैं उन के छिद्रों में दोप, जैसे नाक दो हैं, उन में गन्धादि न होना या दुर्गन्ध होना या छोटी वड़ी टेढ़ी नाक न होना, आंखे दो हैं उन की विकृति न हो, काणी या छोटी, वड़ी, न हो, मुख के जवाड़े, हाथ पैर आदि विकृत लंगड़े लूले न हों। इस प्रकार तीनों में कन्या को पवित्र, शुचि जानकर वह पुरुप उसको सूर्य के समान उज्वल, चमचमाते वस्त्र देता है मानो उज्ज्वल त्वचा अर्थात् आच्छादन वाला करता है।

'अपाला' अत्रिसुता कहाती है। उसका तात्पर्य यह है कि स्मृतियों में आत्रेयी पद रजस्वलार्थ में रूढ़ है। वस्तुतः 'अत्रि' ही आत्रेयी है। स्वार्थ में तद्धित है। जो प्रथम रजस्वला होकर जिस के वर प्राप्त्यर्थ तीन वर्ष व्यतीत न हुए हों वह 'अत्रि' है 'नवयौवना' रजोधर्म युक्त।

[९२]

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् २, ४, ८—१२, २२, २५—२७, ३० निचृद् गायत्री। ३, ७, ३१, ३३ पादनिचृद् गायत्री। ५ आर्ची स्वराड् गायत्री। ६, १३—१५, २८ विराड् गायत्री। १६—२१, २३, २४, २९, ३२ गायत्री॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ १॥

भा०—आप लोग (वः) आप के (अन्धसः पान्तम्) खाद्य पदार्थों के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो। और (विश्व-साहं) सब को जीतने वाले, (शत-क्रतुं) सैकड़ों

कर्मों वाले, (चर्षणीनां) मनुष्यों के बीच (मंहिष्ठं) सब से अधिक दानी पुरुष की (अभि प्रगायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो ।

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम् ।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (पुरु-हूतं) बहुतों से पुकारने योग्य, बहुतों से स्वीकृत (पुरु-स्तुतं) बहुतों से प्रस्तुत, प्रशंसित (गाथान्यं) गुण गान करने योग्य, वा 'गाथा' वेदवाणी में प्रसिद्ध, (सन-श्रुतम्) सनातन काल से श्रवण योग्य, वा सनातन ज्ञान वेद का बहुश्रुत विद्वान् वा सन अर्थात् दान के कारण प्रसिद्ध पुरुष को (इन्द्रः इति ब्रवीतन) 'इन्द्र' इस प्रकार कहो उसका नाम 'इन्द्र' रक्खो ।

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ३

भा०—(इन्द्रः इत्) वह परम ऐश्वर्यवान् ही (नः महानां) बड़े पूज्य गुणों का और (वाजानां) ऐश्वर्यों वा, ज्ञानों का (दाता) देने वाला, और (महान् नृतुः) बड़ा भारी नेता, संञ्चालक है वह (अभिज्ञु) उत्तम ज्ञानसम्पन्न होकर (नः आ यमत्) हमें सद् व्यवस्था में रक्खे । अथवा वह (अभिज्ञु) आगे गोडे किये, विनीत हमें प्राप्त हो ।

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥

भा०—(शिप्री) मुकुट धारण करने हारा, मुख-नासिकादि में सुन्दर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सु-दक्षस्य) उत्तम ज्ञान और बल से युक्त (प्र-होषिणः) उत्तम रीति से बलादि देने वाले, (यवाशिरः) यवादि अन्नों से मिलाकर पकाये, (इन्दोः) दीप्ति-तेजोदायक (अन्धसः) स्वादु अन्न को (अपात्) पान करे और उसकी रक्षा करे । इसी प्रकार वह (सु-दक्षस्य) उत्तम बलशाली (प्र-होषिणः) उत्तम दानी (इन्दोः)

आर्द्र हृदय, दयालु (यवाशिरः) शत्रुनाशक जनों के प्रमुख (अन्धसः) अन्नादि के भोक्ता, जन को (अपादू-उ) वह ऐश्वर्यवान् पालन करे।

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये।
तदिद्धयस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य अन्नादि के पान और पालन या रक्षा के निमित्त आप (तम् इन्द्रम् अभि प्रार्चत) उसी ऐश्वर्यवान् की स्तुति करो, (तत् इत् हि अस्य वर्धनम्) वह ही उस को बढ़ाने वाला है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा विश्वाभि भुवना भुवत् ६

भा०—(मदानां देवस्य) हर्ष, तृप्ति और सुख के देने वाले (अस्य) इस उत्तम अन्न, प्रजा जन व जगत् का (पीत्वा) पान, उपभोग और पालन करके (देवः) वह तेजस्वी पुरुष स्वामी (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा भुवना अभि भुवत्) समस्त लोकों को अपने वश करता है।

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। आ च्यावयस्यूतये ७

भा०—हे विद्वन् ! (त्यम् उ) उस ही (सत्रासाहं) समवाय और सत्य के बल से सब को पराजित करने वाले (विश्वासु गीर्षु) समस्त वाणियों वा विद्याओं में (आयतम्) प्रसिद्ध, कुशल, व्यापक पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान-प्राप्ति आदि के निमित्त (वः आच्यावयसि) आप लोगों को प्राप्त करो।

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(युध्मं) युद्धकुशल दुष्टों को ताड़ने हारे, (सन्तम्) सत्-स्वरूप, (अनर्वाणं) अद्वितीय, (सोमपाम्) जगत् के पालक, (अनप-च्युतम्) अविनाशी, ध्रुव, स्थिर, अपने स्वरूप या स्थान से च्युत न होने वाले, (अवार्य-क्रतुम्) अन्यों से न हटाये जाने योग्य, दृढ़ पराक्रम वाले,

वा अकाट्य युक्तिमान् (नरम्) सर्व नायक पुरुष को हे विद्वन् ! तू प्राप्त करा ।

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (ऋचीषम) यथार्थ गुण स्तुति वाले ! तू (नः) हमें (पुरु रायः शिक्ष) बहुत धन प्रदान कर । तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (पार्ये धने) पालन योग्य धन, वा शत्रुओं के धन के निमित्त वा संग्राम में (अव) रक्षा कर, वहां तक पहुंचा ।

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया ।
इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अतः) इसी कारण (नः) हमें तू (शत-वाजया सहस्र-वाजया) सैकड़ों, सहस्रों बल, ज्ञान, अन्न वेगादि से युक्त (इषा) इच्छा शक्ति, प्रेरणा और अन्न, सेनादि के साथ (उप-आ याहि) प्राप्त हो । इति षोडशो वर्गः ॥

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे ।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! अन्यों को शक्ति देने हारे ! हम (धीवतः) कर्म और ज्ञानवान् पुरुष के (धियः) कर्मों और ज्ञानों को (अयाम) प्राप्त करें । हे (गो-दरे) गौ भूमि के विदारण-कार्य में कुशल कृषि करने वाले ! हे (गो-दरे) वाणी के मर्मों को खोल २ कर बतलाने हारे, वा भूमि या वाणी के धारक ! हे (वज्रिवः) बलशालिन् शस्त्रधर ! हम (अर्वद्भिः) अश्वों, वीर सैनिकों द्वारा (पृत्सु जयेम) संग्रामों में विजय लाभ करें ।

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि १२

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म वाले! (वयम् उ) हम (त्वा) तुझे (उक्थेषु) उत्तम वचनों से (यवसेषु गावः न) भुस आदि के निमित्त गौ के समान (त्वा रणयामः) तुझे प्रसन्न करते हैं।

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो।
अगन्म वज्रिन्नाशसः॥ १३॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवन्! अमित शक्तिशालिन्! हे (वज्रिन्) बल वीर्यवन्! शस्त्रबल के स्वामिन्! हम (विश्वा हि) समस्त (मर्त्यत्वना) मनुष्योचित (अनुकामा) कामनाओं और (आशसः) आशाओं को (अगन्म) प्राप्त करें।

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन्कामकातयः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥ १४॥

भा०—(शवसः पुत्र) बल के द्वारा बहुतों के रक्षक! (काम-कातयः) अपने नाना अभिलाषाओं को कहने वाले लोग (त्वे सु अवृत्रन्) तेरे अधीन सुख से रहते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वाम् न अति-रिच्यते) तुझ से कोई बढ़कर नहीं है।

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा।
धियाविड्ढि पुरन्ध्या॥ १५॥ १७॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन्! उत्तम प्रबन्धक! (सः) वह तू (सनिष्ठया) उत्तम विभाजक, दानशील, (घोरया) शत्रु को भय देने वाली; (द्रवित्न्वा) वेग से जाने वाली (पुरन्ध्या) बहुतों की पालक (धिया) बुद्धि और क्रिया वा नीति से (नः अविड्ढि) हमारा पालन कर। इति सप्तदशो वर्गः॥

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः।
तेन नूनं मदे मदेः॥ १६॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्व-

र्यवन्! (नूनं) निश्चय ही (ते) तेरा (यः) जो (द्युम्नि-तमः) अति यशो-जनक (मदः) हर्ष है (तेन) उस से (मदे) सब को तृप्त प्रसन्न हर्षित करने में तू (मदेः) स्वयं हर्षित हो।

यस्ते॑ चि॒त्रश्र॑वस्तमो॒ य इ॑न्द्र वृत्र॒हन्त॑मः।
य ओ॑जो॒दात॑मो॒ मदः॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरा (चित्र-श्रवस्तमः) आश्चर्यकारक श्रवण करने योग्य अद्भुत और (यः वृत्रहन्तमः) शत्रुओं को खूब दण्डित करने वाला और (यः ओजो-दातमः) पराक्रम को देने वाला (मदः) आनन्द वा हर्ष है तू उससे हमें भी सुखी कर।

वि॒द्मा हि यस्ते॑ अद्रिव॒स्त्वाद॑त्तः सत्य सोमपाः।
विश्वा॑सु दस्म कृ॒ष्टिषु॑ ॥ १८ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार जनों और पाषाणवत् शत्रुनाशक जनों के स्वामिन्! हे (सत्य) न्यायनिष्ठ! हे (दस्म) शत्रुनाशन! हे (सोमपाः) प्रजावत् ऐश्वर्य के पालक! भोक्ता! अन्नोषधि के पान करनेहारे! (यः त्वादत्तः) जो तेरे द्वारा दिया हुआ (विश्वासु कृष्टिषु) समस्त मनुष्यों में ऐश्वर्य है हम (ते विद्महि) अवश्य उसे तेरा ही जानें।

इन्द्रा॑य॒ मद्व॑ने सु॒तं परि॑ ष्टोभन्तु॒ नो॒ गिरः॑।
अ॒र्कम॑र्चन्तु का॒रवः॑ ॥ १९ ॥

भा०—(मद्वने) हर्ष से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये (नः गिरः सुतं परि स्तोभन्तु) हमारी वाणी उसके ऐश्वर्य की स्तुति करे। और (कारवः) विद्वान् वाग्मी लोग (अर्कम् अर्चन्तु) उस पूज्य जन की अर्चना करें।

यस्मि॒न्विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॒ रण॑न्ति स॒प्त सं॒सदः॑।
इन्द्रं॑ सु॒ते ह॑वामहे ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—(यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय (विश्वाः श्रियः रणन्ति)

सब सम्पदायें वा आश्रित प्रजाएं शोभा पातीं और सुख प्राप्त करती हैं और जिसके अधीन (सप्त संसदः) साथ बैठने वाले सात सचिव (रणन्ति) उसको उत्तम ज्ञानोपदेश करते हैं उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को (सुते) अभिषेक युक्त राज्य पर आह्वान करते हैं । अध्यात्म में (सप्त संसदः) सात प्राणगण । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१॥

भा०—(त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों में (चेतनं यज्ञम्) सबको चेतना देने वाले पूज्य पुरुष को (देवासः अत्नत) विद्वान् गण, आत्मा को इन्द्रियों के समान प्राप्त करते हैं, (तम् इत् नः गिरः वर्धन्तु) उसको ही हमारी वाणियां बढ़ाती हैं, उसी का गुण गान करती हैं ।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥

भा०—(समुद्रम् इव सिन्धवः) नदियां जिस प्रकार समुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार (इन्दवः त्वा आविशन्तु) समस्त ऐश्वर्य और विद्वान् जीवगण प्रभो ! तुझमें प्रवेश करें । हे (इन्द्र न त्वाम् अति रिच्यते) ऐश्वर्यवन् ! तुझसे कोई बढ़ कर नहीं है ।

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तेरे (जठरेषु) उदरों में, तेरे अधीन है, हे (जागृवे) जागरणशील ! हे (वृषन्) बलशालिन् ! तू उस (सोमस्य भक्षं) महान् ऐश्वर्य के सेवनीय अंश को (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (विव्यक्थ) व्याप्त है ।

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्) पाप के नाशक ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः !

(सोमः) ऐश्वर्य (ते कुक्षये अरं भवतु) तेरे कोश के लिये बहुत हो। (इन्दवः धामभ्यः अरं भवन्तु) ऐश्वर्य और वेगवान् सैन्य गण तेरे तेजों की वृद्धि के लिये बहुत हों।

अरमश्वा॑य गायति श्रुतक॑क्षो अरं॒ गवे॑।
अरमिन्द्र॑स्य धाम्ने॑ ॥ २५ ॥

भा०—(श्रुत-कक्षः) श्रुत, वेद को अवगाहन करने वाला, वा कक्षा अर्थात् वेदवाणी का श्रवण करने वाला विद्वान् जन, (अश्वाय गवे धाम्ने) उसके अश्व, गौ और तेज की (अरं अरं गायति) खूब खूब स्तुति करता है अर्थात् उस प्रभु का बल, वाणी और तेज बहुत है।

अरं॒ हि ष्मा॑ सुतेषु॑ णः सोमे॑ष्विन्द्र भूष॑सि।
अरं॑ ते शक्र दावने॑ ॥ २६ ॥ १९ ॥

भा०—(नः सुतेषु सोमेषु) हमारे उत्पन्न ऐश्वर्यों के आधार पर तू ही (अरं भूषसि हि ष्म) बहुत पर्याप्त समर्थ हो। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! (ते दावने अरम्) तुझ दाता के लिये भी ऐश्वर्य बहुत अधिक प्राप्त हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

परा॒कात्ता॑च्चिदद्रिवस्त्वां न॑क्षन्त नो गिर॑ः।
अरं॑ गमाम ते व॒यम् ॥ २७ ॥

भा०—(पराकात्तात् चित्) दूर से भी दूर से हे (अद्रिवः) शक्तिमन्! (नः गिरः त्वां नक्षन्त) हमारी वाणियां तुझ तक पहुंचती हैं। (वयम् ते अरं गमाम) हम तुझ से बहुत कुछ प्राप्त करें।

ए॒वा ह्यसि॑ वीर॒युरे॒वा शूर॑ उ॒त स्थि॒रः।
ए॒वा ते॒ राध्यं॒ मन॑ः ॥ २८ ॥

भा०—तू (वीर-युः एव हि असि) वीरों को चाहने वाला है। हे (शूर) शूरवीर! (उत त्वं स्थिरः एव हि असि) और तू स्थिर ही है। (ते मनः एव राध्यं) तुझे मन को भी वश करना चाहिये।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥

भा०—हे (तुवी-मघ) बहुत धन के स्वामिन् ! (रातिः एव) तेरा दान ही (विश्वेभिः धातृभिः धायि) सब पोषक जन धारण करते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अधचित् मे सचा) और तू ही मेरा सहायक है ।

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥

भा०—हे (वाजानां पते) ज्ञानों, ऐश्वर्यों, बलों, और सेनाओं के पालक ! हे ज्ञानों के पालक ! (ब्रह्मा इव) चतुर्वेदवित् ब्राह्मण विद्वान् यज्ञ के ब्रह्मा के समान तू (तन्द्रयुः मो सु भुवः) आलस्य से युक्त मत हो । तू (गोमतः सुतस्य) गो दुग्ध से युक्त अन्नादि से (मत्स्व) तृप्त हो ।

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (नः) हमें (आदिशः) आदेष्टा शासक और (सूरः) विचरणशील तेजस्वी लोग (अक्तुषु) रात्रिकाल में (मा आयमन्) मत बांधें । (त्वा युजा) तुझ सहायक से हम (तत् वनेम) उन दुष्ट जनों का नाश करें ।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥

भा०—(त्वया इत् युजा) तुझ सहायक से ही (वयं) हम (स्पृधः) स्पर्धा करने वालों का (प्रति ब्रुवीमहि) प्रति वचन वा उत्तर दे सकें । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वम् अस्माकम्) तू हमारा है और हम (तव स्मसि) तेरे हैं ।

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् ।
सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कारवः) स्तुतिकर्त्ता (सखायः) मित्रगण (त्वायवः) तुझे ही चाहते हुए, और (त्वाम् इत् हि अनु नो नुवतः) तुझे ही प्रतिदिन स्तुति करते हुए (चरान्) व्रताचरण करें। इति विंशो वर्गः॥

[९३]

सुकक्ष ऋषिः॥ १—३३ इन्द्रः। ३४ इन्द्र ऋभवश्च देवताः॥ छन्दः—१, २४, ३३ विराड् गायत्री। २—४, १०, ११, १३, १५, १६, १८, २१, २३, २७—३१ निचृद् गायत्री। ५—९, १२, १४, १७, २०, २२, २५, २६, ३२, ३४ गायत्री। १९ पादनिचृद् गायत्री॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य॥ १॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (श्रुत-मघं) उत्तम धन में प्रसिद्ध, (वृषभं) बलवान् (नर्यापसं) मनुष्यों के हितकारी कार्य करने वाले, (अस्तारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले मनुष्य को तू (घ इत् उत् एषि) प्राप्त होकर अवश्य उदय को प्राप्त हो।

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत् २

भा०—(यः) जो (बाह्वोजसा) बाहु के पराक्रम से (नव-नवतिं) ९९ (पुरः) प्रकोटों को (विभेद) तोड़ने में समर्थ है वह (वृत्र-हा) शत्रुनाशक राजा (अहिं च अवधीत्) सूर्य को मेघ के समान सन्मुख आये शत्रु को नाश करे।

**स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्।
उरुधारेव दोहते॥ ३॥**

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शिवः) कल्याणकारक, सब में व्यापक, सब सुखों का दाता, (सखा) सब का मित्रवत् प्रिय (अश्वावत् गोमत्, यवमत्,) अश्व, गौ, और यव से सम्पन्न (उरु-धारा इव) बहुतों की पोषक भूमि, वा बहुत धारा वाली गौ के समान,

वा बड़ी विशाल वेद वाणी के समान (दोहते) हमें सुख ज्ञानादि प्रदान करे।

यद्‌द्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! (अध यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी को भी लक्ष्य कर तू आज वा कभी उठ खड़े होने में समर्थ है वह जब चाहे, तू किसी भी पदार्थ को उत्तम रीति से प्राप्त कर सकता है। (तत् सर्वं ते वशे) वह सब कुछ तेरे ही वश में है।

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तत्सत्यमित्तव ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सज्जनों एवं सत् अर्थात् नित्य पदार्थों के पालक स्वामिन्! हे (प्रवृद्ध) महान्! (यद् वा न मरै इति मन्यसे) जो तू समझता है कि मैं कभी नहीं मर सकता सो (तत्) वह समझना (तव सत्यम् इत्) तेरा सत्य ही है। तू अविनाशी, अमृत, अजर, नित्य आत्मा है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (परावति) दूर देश में और ये (अर्वावति) समीप देश में भी (सोमासः) अन्न, ओषधि वर्ग, रत्नादि ऐश्वर्य (सुन्विरे) उत्पन्न हों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सब को प्राप्त कर (२) पास और दूर के सब उत्पन्न बालकों को आचार्य पढ़ावे। (३) पास दूर सब जीव वा लोकगण प्रभु को प्राप्त हैं।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥

भा०—(तम् इन्द्रम्) उस शत्रुहन्ता, सूर्यवत् तेजस्वी को हम (वृत्राय हन्तवे) बड़े भारी, बढ़ते शत्रु वा [illegible] नाश करने के

लिये (वाजयामसि) अधिक बलवान् करते हैं। (सः वृषाः) वह बलवान् पुरुष ही (वृषभः भुवत्) सब सुखों, ऐश्वर्यों का दाता सर्वश्रेष्ठ है।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, तेजस्वी पुरुष (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमशाली होकर ही (दामने कृतः) सब को भृति-वृत्ति देने और प्रजा को दमन करने के कार्य पर नियुक्त होता है। (सः मदे हितः) वही सब को हर्षित करने के लिये स्थापित है, वह (द्युम्नी) यशस्वी, वह (लोकी) कीर्त्तिवान्, (सः सोम्यः) वह सोम अर्थात् अन्न, जल, ऐश्वर्यादि से सत्कार करने योग्य है।

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥

भा०—(वज्रः न) शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण (गिरा सम्भृतः) वाणी द्वारा अच्छी प्रकार धारित, एवं (स-बलः) बलशाली, (अनपच्युतः) शत्रुओं से अपराजित, (अस्तृतः) अबाधित, (ऋक्षः) महान् (ववक्ष) समस्त ऐश्वर्य पद को धारण करता है। (२) प्रभु (अनपच्युतः) अप्राप्य, अवाङ्मनसगोचर है। वह (ववक्ष) समस्त जगत् को धारण कर रहा है।

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः।
त्वञ्च मघवन्वशः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय ! हे विद्वन् ! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, वा हमें उपदेश करता हुआ हे विद्वन् ! (नः) हमारे लिये (दुर्गे) दुर्गम स्थान में भी (सुगं कृधि) सुगम मार्ग कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं च नः वशः) और तू सदा हमें प्रेम से चाह और हमें अपने वश में रख। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्य॑ ते॒ नू चि॑दा॒दिशं॒ न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ।
न दे॒वो नाध्रि॑गु॒र्जनः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (आदिशं) आदेश को और (स्वराज्यम्) तेरे अपने राज्य को (नूचित्) भी (न मिनन्ति) कोई भंग नहीं करते । (न देवः) न सूर्यवत् तेजस्वी और (न अध्रगुः जनः) न वे रोक जाने वाला, पराक्रमी ही तेरे आदेश को भंग करता है ।

अधा॑ ते॒ अप्र॑तिष्कुतं दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः । उ॒भे सु॑शिप्र॒ रोद॑सी १२

भा०—(अध) और हे (सुशिप्र) उत्तम वलशालिन् वेजस्विन् ! (उभे रोदसी) दोनों सूर्य पृथ्वीवत् , प्रवल निर्वल वा स्व, पर सेनाएं, (देवीः) विजयेच्छुक होकर भी (ते) तेरे (अप्रतिष्कुतं) अनुपम, (शुष्मं) वल की (सपर्यतः) सेवा, आदर करती हैं । (२) उस परमेश्वर के वल की यह आकाश और पृथिवी दोनों सेवा करती हैं ।

त्वमे॒तद॑धारयः कृ॒ष्णासु॒ रोहि॑णीषु च । परु॑ष्णीषु॒ रुश॒त्पयः॑ १३

भा०—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु च) और रक्त वर्ण की (परुष्णीषु) गौओं में (त्वम् एतत् रुशत् पयः अधारयः) तू ही इस चमकते दूध को धारण कराता है । अथवा—हे प्रभो ! तू (कृष्णासु) कृषि करने योग्य भूमियों में (रुशत् पयः) चमकता लहलाता अन्न, (रोहिणीषु) उगने वाली ओषधि में तेजोयुक्त तीक्ष्ण रस और (परुष्णीषु) कुटिलगामिनी नदियों में जल वा, पर्व २ पर उष्ण देह की नाड़ियों द्वारा उज्ज्वल रुधिर को तू ही वृष्टि द्वारा सूर्यवत् धारण कराता है ।

वि यद॒हेरध॑ त्वि॒षो विश्वे॑ दे॒वासो॒ अक्र॑मुः ।
वि॒दन्मृ॒गस्य॒ ताँ अमः॑ ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और (यद्) जब (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, तेजस्वी लोग (अहेः त्विषः) मेघ की विद्युत् कान्तियों वा (अहेः त्विषः) सूर्य की कान्तियों के सदृश (अहेः त्विषः) आगे बढ़ते वीर के तेजों को

(अक्रमुः) प्राप्त करते हैं अब (तान्) उनको (मृगस्य) सिंह के समान वीर वा अति शुद्ध तेजस्वी प्रभु का (अमः) बल (विदत्) प्राप्त होता है ।

आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् ।
अजातशत्रुरस्तृतः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(आत् उ) अनन्तर ही वह (मे निवरः) मुझ प्रजागण के समस्त कष्टों का निवारण करने वाला, (भुवत्) होता है । वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक वीर, मेघों के छेदक भेदक विद्युत् वा सूर्य के समान (पौंस्यम् अदिष्ट) बल पराक्रम को करता है । (अजात-शत्रुः अस्तृतः) तब उस का कोई शत्रु नहीं रहता और फिर वह विनष्ट नहीं होता । (२) प्रभु परमेश्वर सब कष्टों का निवारक, दुष्टनाशक है, वह हमें बल दे । उस का कोई शत्रु नहीं, वह अविनाशी है । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमम्प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
आ शुषे राधसे महे ॥ १६ ॥

भा०—(वः) आप लोगों में से आपके (वृत्र-हन्तमम्) सब विघ्नों के नाशक (चर्षणीनां) मनुष्यों में (श्रुतं) प्रसिद्ध (शर्धं) बलवान् पुरुष को (शुषे) शत्रुओं के शोषण और (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्त करने के लिये (प्र आ) अच्छी प्रकार प्राप्त करो ।

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।
यत्सोमेसोम आभवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (पुरु-नामन्) बहुत से नामों वाले ! बहुतों को नमाने हारे ! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति करने योग्य ! (यत्) जो तू (सोमे-सोमे) प्रत्येक 'सोम', ऐश्वर्य प्रत्येक जीव और प्रत्येक बल पर (आभवः) सामर्थ्यवान् है उस तुझे हम (अया) इस (गव्यया धिया

च) वाणी से युक्त क्रिया द्वारा तेरी सेवा करते हैं। अर्थात् जैसी तेरी आज्ञा हो वा जैसी हमारी वाणी हो तदनुसार हम कार्य पूरा करें।

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥

भा०—(वृत्र-हा) शत्रुओं और विघ्नों का नाशक (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष (नः) हमारे बीच (बोधित्-मनाः) ज्ञान से युक्त चित्त वाला, और (भूरि-आसुतिः) बहुत से अन्नों का स्वामी (इत् अस्तु) हो। वह (नः आशिषम्) हमारी कामना और प्रार्थना को (शृणोतु) श्रवण करे।

कया त्वन्न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन्! तू (नः कया ऊत्या) हमें किस प्रकार की रक्षण-नीति से (प्र मन्दसे) पालन करके अधिक हर्षित होता है? और (कया) किस नीति से (स्तोतृभ्यः आ भर) विद्वानों का सुख प्राप्त कराता है?

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत्।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(नियुत्वान्) अश्व सैन्यों का स्वामी, (वृषभः) बलवान् (वृत्र-हा) शत्रुहन्ता, (वृषा) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, (कस्य सुते) किस के ऐश्वर्य पर (सचा) और किस के सहयोग में (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के प्राप्ति और रक्षा के कार्य में (रणत्) रण करे और आनन्द लाभ करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम्।
प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥

भा०—(त्वं नः) तू हमें (मन्दसानः) अति हर्षित होकर (सह-

स्त्रिणं रयिम्) सहस्रों का धन (अभि सु) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक (प्रयन्ता) प्रदान करने हारा हो और तू (दाशुषे) दानशील के हित को भी (अभि सु बोधि) अच्छी प्रकार जान।

पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये।
अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥

भा०—(अपां जग्मिः) जिस प्रकार समुद्र में समस्त नदी, जल-धाराएं आकर मिलती हैं, वह जलधाराओं के प्राप्त होने का एकमात्र आधार है और जिस प्रकार वह समुद्र ही (नि-चुम्पुणः) जलों को अपने भीतर लेकर ही पूर्ण होता है, उसी प्रकार राजा भी (अपां जग्मिः) सब आप्त प्रजाओं का शरण जाने योग्य और (निचुम्पणः) समुद्रवत् उन से ही करादि लेकर तृप्त या पूर्ण होने वाला है। हे राजन्! (पत्नीवन्तः) पालनकारिणी शक्ति या नीति से वा पत्नीयुक्त वाले गृहस्थ जन और (सुताः) अभिषिक्त वा पुत्रवत् प्रजा रूप (इमे) ये (उशन्तः) धनादि कामनावान् जन, (वीतये) रक्षा प्राप्त करने के लिये (यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं। (२) इसी प्रकार परमेश्वर समुद्रवत् (अपां जग्मिः) समस्त जीवों का एकमात्र प्राप्तव्य है, वह पूर्ण है, वह सब विश्व को अपने भीतर लेकर भी पूर्ण है। ये उत्पन्न जीव उस पालक शक्ति से युक्त होकर भी सुख कामना से युक्त होकर रक्षार्थ भगवान् की शरण जाते हैं।

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे।
अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥

भा०—(ओजसा) बल पराक्रम और शौर्य से (अव-भृथम्) पूर्ण (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष को (अध्वरे) हिंसारहित प्रजा पालन के कार्य में (इष्टाः) एकत्र संगत होकर (होत्राः) अधिकार देने वाले (वृधासः) उस के पद, बलादि के बढ़ाने वाले सहयोगी जन ही (अच्छ) सब के समक्ष (असृक्षत) इसे अपना प्रभु बनाते हैं।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द लाभ करने वाले, उस के हर्ष में हर्षित, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले, तेजस्वी (हरी) अश्वों के तुल्य अग्रगामी स्त्री पुरुष वा दो नेता जन (हितम् प्रयः) हितकारक गन्तव्य मार्ग की ओर (अभि वोढाम्) ले जावें ।

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (विभावसो) विशेष दीप्ति से युक्त ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (इमे सुताः सोमाः) ये उत्पन्न प्रजा जन और ऐश्वर्यवान् शासकगण (तुभ्यम्) तेरे ही हितार्थ हैं और (बर्हिः) यह बृहत् राष्ट्र वा उत्तम आसन भी (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (स्तीर्णम्) विस्तृत है । तू (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इन्द्रम् आ वह) ऐश्वर्य को प्राप्त करा, उन को प्रदान कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे ।
स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥

भा०—(दाशुषे ते) दानशील तेरा ही (दक्षं) तेज, बल, प्रताप और ज्ञानसामर्थ्य (आ) सब ओर है । वह इन्द्र, ऐश्वर्यवान् (रोचना रत्ना विदधत्) रुचिकर, तेजोयुक्त नाना उत्तम रत्न, धन, ऐश्वर्य (स्तोतृभ्यः) विद्वानों को विशेष रूप से देता वा उनके लिये स्वयं धारण कराता है । आप लोग हे विद्वानो ! उसी (इन्द्रम् अर्चत) ऐश्वर्यवान् पुरुष की स्तुति करो ।

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो ।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बल और ज्ञान से सम्पन्न स्वामिन् !

मैं (ते) तेरे लिये (विश्वा उक्था) समस्त स्तुति वचन और समस्त (इन्द्रियम्) राजादि से सेवनीय ऐश्वर्य (आदधामि) रखता हूं तुझे ही समापत करता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतृभ्यः मृड़य) विद्वान् स्तोता, गुण प्रशंसकों को सुखी कर।

भद्रम्भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृळयासि नः २८

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, वह तू हे (शत-क्रतो) अपरिमित बलशालिन्! (नः भद्रं-भद्रम्) हमें अतिसुखकारक, (इषम् ऊर्जम्) अन्न और रस, बल, आदि (आ भर) प्राप्त करा।

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत् नः मृडयासि) जो तू हमें सुखी करता है। हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! (सः) वह तू (विश्वानि सुवितानि) समस्त प्रकार के सुखजनक पुण्य पदार्थ वा साधन (आ भर) प्राप्त करा। 'सुवितानि' सुख प्राप्ति के साधन, उत्तम आचरण, इस के विपरीत 'दुरितानि' दुःखदायी बुरे काम, २९, ३० मन्त्रों के साथ "विश्वानि देव सवित०" इस मन्त्र की तुलना करो।

त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे।

यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(यत्) जो तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार दण्ड देने हारे! (सुतावन्तः) ऐश्वर्यवान् हम लोग।(त्वाम् इत् हवामहे) तुझे ही रक्षार्थ प्रार्थना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानाम्पते।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मदानां पते) हर्षजनक और तृप्तिजनक, ऐश्वर्यों और अन्नों के पालक स्वामिन् ! तू (हरिभिः) विद्वान् प्रजास्थ मनुष्यों के द्वारा (नः) हमारे बीच (सुतं उप याहि) अभिषेक या ऐश्वर्य पद को प्राप्त हो और (नः हरिभिः सुतम् उप याहि) हमारे जनों के साहाय्य से ही उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कर ।

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा (वृत्र-हन्तमः) दुष्ट पुरुषों को अति अधिक दण्ड देने और विनाश करने हारा, और (शत-क्रतुः) अपरिमित बलशाली इस प्रकार (द्विता) दो प्रकार का जाना जाता है, वह (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्य गणों सहित (नः सुतम्) हमारे ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (उप) प्राप्त हो ।

त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६३ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! (त्वं हि) तू निश्चय करके (एषां) इन (सोमानां पाता असि) ऐश्वर्यों और प्रजा जनों का पालक है । तू (नः सुतं हरिभिः उप याहि) हमारे इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को विद्वान् जनों और वीर पुरुषों सहित प्राप्त हो ।

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥ २७ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति (नः) हमें (इषे) अन्न और बल सेना आदि प्राप्त करने के लिये (ऋभुक्षणं) सत्य ज्ञान से चमकने और 'ऋभु' उत्तम शिल्पी जनों को बसाने वाले महान् (ऋभुं) ज्ञान, सत्यादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (नः ददातु) हमें दे । (वाजी) वह बलवान्, वेगवान् पुरुष (नः) हमें (वाजिनम्)

बलवान् सैन्य, और अश्वादि सैन्य (ददातु) प्रदान करे । इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[९४]

विन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४, ६, १०—१२ निचृद् गायत्री ॥

गोर्धयति मुरुतां श्रवस्युर्माता मुघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् १

भा०—जब (रथानाम्) वेग से जाने वाले, बलवान् रथादि सैन्यों वा महारथी जनों के (वह्नी युक्ता) घोड़े वा बैल, युद्धरथ वा अन्न करादि-संग्रहार्थ युद्धार्थ जुत जाते हैं, तब (मघोनां मरुताम्) ऐश्वर्यवान् मनुष्यों की (माता) माता के समान पूज्य (श्रवस्युः) श्रवस्यु, अर्थात् अन्न बल और कीर्त्ति-प्रद होकर पृथिवी (गौः धयति) गौ के समान सब को अन्न प्रदान करती है ।

यस्यां देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते ।
सूर्यामासां दृशे कम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्याः) जिस की (उपस्थे) गोद में, (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (व्रता धारयन्ते) नाना कर्म, व्रत और नाना अन्न भी धारण करते, प्राप्त करते हैं, उसी के आश्रय पर (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र दोनों ही (दृशे) प्रकाश द्वारा दर्शन कराने के लिये, उस के समीप विद्यमान रहते हैं ।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वे कारवः) सब कर्मकुशल (मरुतः) बलवान् मनुष्य एवं व्यापारी जन, (सोम-पीतये) स्वयं भी अन्नवत् ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, (सदा) सदैव (तत् नः सु अर्यः) वह हमारा उत्तम

पूज्य स्वामी है। इस प्रकार (आ गृणन्ति) कहते और उस की स्तुति करते हैं।

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह ऐश्वर्य उत्पन्न है, (अस्य मरुतः पिबन्ति) इस का बलवान् पुरुष और प्रजागण उपभोग करते हैं और (उत अस्य स्वराजः) इस का स्वयं दीप्तियुक्त तेजस्वी लोग उपभोग करते हैं और (अश्विना) जितेन्द्रिय लोग इस का उपभोग करते हैं। (२) यह अभिषिक्त जन पुत्रवत् सोम है इस का बलवान् तेजस्वी और माता पिता, स्त्री पुरुष आदि सब (पिबन्ति) पालन करें।

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥

भा०—(तना पूतस्य) विस्तृत ऐश्वर्य वा यज्ञ से पवित्र, (त्रि-सधस्थस्य) तीनों स्थानों पर विराजमान (जावतः) जाया के तुल्य प्रजा या भूमि से युक्त राष्ट्र का (मित्रः) स्नेही जन, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता और (वरुणः) संकटनिवारक जन (पिबन्ति) उपभोग और पालन करते हैं।

उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य गोमतः सुतस्य) इस भूमि से युक्त, ऐश्वर्य के साथ (जोषम्) प्रेम करके (इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (प्रातः) प्रातःकाल में (होता इव) आहुति दाता विद्वान् के समान (मत्सति) बड़ा आनन्द अनुभव करता है।

कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः।
अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥

भा०—(सूरयः आप इव तिरः) सूर्य की किरणें जिस प्रकार मेघस्थ जलों को छिन्न भिन्न कर फिर चमकते हैं उसी प्रकार (पूत-दक्षसः) पवित्र ज्ञान और कर्म वाले, (स्रिधः) दुष्ट हिंसक अन्तःशत्रु-सैन्यों को (तिरः) दूर करके, (सूरयः) विद्वान् तेजस्वी जन (कत् अत्विपन्त) कितना चमकते हैं और (कत् अर्पन्ति) कितना और कैसे आगे बढ़ते हैं यह दर्शनीय है।

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे।
त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥

भा०—(त्मना च) अपने आत्मसामर्थ्य से (दस्म-वर्चसाम्) दर्शनीय और शत्रुनाशक तेज वाले, (महानां देवानां) पूज्य विद्वानों और (वः) आप विजिगीषु जनों के (अवः) रक्षा वा प्रीति को मैं (कत् वृणे) किस प्रकार प्राप्त करूं, यह बतलाइये।

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः।
मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो बलवान् मनुष्य (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और प्राप्ति के लिये (दिवः) आकाश या भूमि के (विश्वा) समस्त (पार्थिवानि रोचना) पृथिवी पर विद्यमान रुचिकर पदार्थों को (पप्रथन्) विस्तारित करते हैं—

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य की रक्षा के लिये मैं (पूत-दक्षसः) पवित्र कर्म वाले, आचारवान् (मरुतः) बलवान् (त्यान्) उन पुरुषों को (दिवः) उन की इच्छाओं के अनुसार (हुवे) स्वीकार करता हूं।

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो वीर पुरुष (रोदसी तस्तभुः) आकाश पृथिवी के समान स्वपक्ष और परपक्ष वा स्त्री-पुरुष, शास्य-शासक दोनों वर्गों को (वितस्तभुः) विशेष रूप से थामते वा वश करते हैं। उन को मैं (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के पालन के लिये बुलाता और स्वीकार करता हूं।

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥ २९ ॥

भा०—और (अस्य सोमस्य पीतये) इस राज्य-ऐश्वर्य के पालन के लिये मैं (त्यं नु) उस (गिरिष्ठां) वाणी में स्थित वा कुशल (वृषणं) ज्ञानादि की वर्षा करने वाले वा बलवान् (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह को (हुवे) बुलाता हूं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

(९५)

तिरश्ची ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६, ७ विराडनुष्टुप्। ५, ९ अनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप् ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने बच्चे को लक्ष्य कर (सम् अनूषत) अच्छी प्रकार उस की गुणस्तुति किया करती हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (गिर्वणः) वाणियों को स्वीकार और वाणियों द्वारा स्तवन करने हारे! (गिरः) उत्तम विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन (त्वा अभि सम् अनूषत) तुझे लक्ष्यकर तेरी ही स्तुति करते हैं। (रथीः इव) रथवान् क्षिप्रगामी पुरुष के समान (सुतेषु) ऐश्वर्यों वा अन्नादि के प्राप्त्यर्थ (त्वा) तेरी ओर ही (गिरः) सब विद्वान् एवं सब वाणियां (आ अस्थुः) आ रही हैं।

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्व१स्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! हे हमारी वाणियों को हर्षपूर्वक स्वीकार करनेवाले ! (शुक्राः सुतासः) शुद्ध, कान्तियुक्त, तेजस्वी, पदाभिषिक्त जन (त्वा आ अचुच्यवुः) तुझे सब ओर से प्राप्त हों । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे योग्य (विश्वासु हितम्) समस्त प्रजाओं में नियत भाग है । तू (अस्य अन्धसः) उस खाने योग्य पदार्थ का (पिबतु) उपभोग कर ।

पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से, (शश्वतीनां विशाम्) बहुत सी प्रजाओं का (पतिः असि) पालक, स्वामी है । तू (मदाय) सुख, तृप्ति और आनन्द के लिये (श्येनाभृतं सुतं) श्येन के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले वा प्रशंसनीय आचार चरित्रवान् पुरुषों से प्राप्त किये हुए धन वा प्रदत्त सुखजनक, (सोमं) ज्ञान वा ऐश्वर्य को (पिब) प्राप्त कर ।

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यः त्वा) जो तेरी (सपर्यति) सेवा करता है उस (तिरश्च्याः) समीप प्राप्त शरणागत की (हवं श्रुधि) पुकार को तू सुन । और तू (महान् असि) महान् है । तू (सु-वीर्यस्य) उत्तम बलयुक्त (गोमतः) गवादि सम्पन्न, भूमि आदि वाले (रायः) धन को हमें (पूर्धि) पूर्ण कर ।

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (यः) जो (ते) तेरी (नवीयसीं) अति स्तुतियोग्य, (मन्द्राम्) हर्षजनक (गिरम् अजीजनत्) वाणी को प्रकट करता है और जो तेरे लिये (चिकित्वित्-मनसं) विद्वानों के मनन करने योग्य, (प्रत्नां) अति पुरानी, और (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाली (धियं) वेदमयी वाणी वा विद्या वा यज्ञ कर्म को करता है, तू उसको उत्तम बल, भूमि आदि से युक्त धन प्रदान कर ।

तमु ष्टवाम् यं गिर् इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के स्वामी को (गिरः वावृधुः) सब वाणियां बढ़ाती हैं हम भी (तम् उ स्तवाम) उसकी स्तुति करें । (अस्य पुरूणि) उसके बहुत से (पौंस्या) बलों, ऐश्वर्यों को (सिसासन्तः) प्राप्त करना चाहते हुए (वनामहे) हम उसका भजन करते हैं ।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥ ७ ॥

भा०—(एतो नु) हे विद्वान् जनो ! आओ । हम लोग (शुद्धेन) शुद्ध, (साम्ना) सामवेद गायन द्वारा (शुद्धं) शुद्ध (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें। (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वांसं) शुद्ध वचनों से बढ़ने वाले उसको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्ध कामना वाला, शुद्ध हृदय होकर ही (ममत्तु) प्रसन्न करें ।

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (शुद्ध) शुद्ध स्वरूप (आ गहि) प्राप्त हो । और तू (शुद्धाभिः ऊतिभिः) शुद्ध ज्ञानवाणियों, रक्षाओं और प्रीतियों से (शुद्ध) शुद्धरूप से ही प्राप्त हो । तू (शुद्धः) शुद्ध रूप ही (रयिम्) बल, वीर्य और ऐश्वर्य को

धारण कर और तू (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (सोम्यः) ऐश्वर्यवान् होकर (ममद्धि) आनन्द युक्त हो।

इन्द्र॑ शु॒द्धो हि नो॑ र॒यिं शु॒द्धो रत्ना॑नि दा॒शुषे॑।
शु॒द्धो वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे शु॒द्धो वाजं॑ सिषाससि ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! तू (शुद्धः हि) सदा शुद्ध रूप (नः रयिं सिसाससि) हमें ऐश्वर्य देना चाहता है। (दाशुषे रत्नानि) दानशील प्रजा जन को नाना सुखजनक पदार्थ प्रदान करता है। और (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) शुद्ध पवित्र, निष्पक्षपात होकर ही विघ्नों और दुष्टों को दण्डित करता और (शुद्धः वाजं सिसाससि) शुद्ध चित्त होकर ही ज्ञान, रत्न, वीर्य और ऐश्वर्य का भोग कर और अन्यों को प्रदान करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९६]

तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुत ऋषिः ॥ देवताः—१–१४, १६–२१ इन्द्रः । १४ मरुतः । १५ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१, २, ५, १३, १४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७, १०, ११, १६ विराट् त्रिष्टुप् । ८, ९, १२ त्रिष्टुप् । १,५ १८, १९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४, १७ पंक्तिः । २० निचृत् पंक्तिः । २१ विराट् पंक्तिः ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒स्मा उ॒षास॒ आति॑रन्त॒ याम॒मिन्द्रा॑य॒ नक्त॒मूर्म्याः॑ सु॒वाचः॑।
अ॒स्मा आपो॑ मा॒तरः॑ स॒प्त त॑स्थु॒र्नृभ्य॒स्तरा॑य॒ सिन्ध॑वः सुपा॒राः॥१

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के लिये (उषासः) नाना कामनायुक्त प्रजाएं (यामम् आतिरन्त) नियम व्यवस्था वा मर्यादा का पालन करती हैं और वे ही (ऊर्म्याः) उत्साहित और उत्कण्ठित होकर (नक्तम्) रात्रिकाल में (सुवाचः) उत्तम वाणियां बोलती हैं। (अस्मै) अथवा इस के शासन में रहकर कमनीय कन्याएं (यामं) विवाह करती और (नक्तं सुवाचः आतिरन्त) रात्रि में वे अपने पतियों के प्रति

उत्तम वाणी बोलती हैं। (अस्मै) इसी के प्रेम में (मातरः) माताओं के समान (सप्त आपः) सर्पणशील, शरण में प्राप्त प्रजाएं (तस्थुः) सदा आज्ञापालनार्थ खड़ी रहती हैं और इसी के शासन में (सिन्धवः) बड़े २ महानद (नृभ्यः तराय) मनुष्यों के पार उतारने के लिये (सुपाराः) सुखपूर्वक पार जाने योग्य होते हैं। राजा के राज्य की महिमा देखो महाभारत शान्तिपर्व में भीष्म का उपदेश। सूर्यवत् प्रभु के शासन में उषा रात्रि आदि सब नियमित रूप में आती जाती हैं। नदियां चलती और महानद भी अलंघ्य नहीं रहते।

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सुप्त सानु संहिता गिरीणाम्।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार॥ २॥

भा०—(विथुरेण चित् अस्त्रा) व्यथादायी आघातकारी और इतस्ततः प्रक्षेप या सञ्चालन में समर्थ शक्ति द्वारा (अतिविद्धा) खूब पीड़ित या ताड़ित होकर (सप्त त्रिः) इकीसों तत्व (गिरीणाम्) भस्मवत् एक दूसरे को निगल जाने वाले, इधर उधर वा पर्वत मेघादिवत् भारी और (सानु) स्वरूप (संहिता) एकत्र संवद्ध हो जाते हैं। (तत्) उनको (न देवः) न कोई अन्य तेजस्वी तत्व (न मर्त्यः) न जीव ही (तुतुर्यात्) इस प्रकार कर सकता है, (यानि) जिन को (प्रवृद्धः) बड़ा, शक्तिशाली और (वृषभः) बलवान् प्रभु (चकार) कर लेता है। (२) इसी प्रकार अकेला प्रबल राजा २१ सौ राजाओं को प्रबल सैन्य से पराजित करता है, ऐसा अन्य कोई नहीं कर पाता।

इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार राजा या सेनापति का (आयसः वज्रः) लोह का खड्ग होता है और (निमिश्लः) खूब कठोर होता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) उस महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु का (वज्रः) बल (आयसः)

सर्वत्र ब्रह्माण्डों में यत्न अर्थात् सूर्यादि को भ्रमण कराने में समर्थ (निमिश्लः) और खूब सम्बद्ध होता है, और (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (बाह्वोः) बाहुओं में उसके शासन में भी (भूयिष्ठम् ओजः) बड़ा भारी बल पराक्रम है। (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शीर्षन्) शिर में भी (क्रतवः) अनेक ज्ञान (निरेके) सब से बढ़कर विद्यमान हैं। और (आसन्) मुख में विद्यमान वाणियों को भी सुनने के लिये (उपाके) अति समीप बहुत से जन (ईषन्त) प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार राजा की बाहुओं में खड्ग रूप, बल, शिरःस्थानीय अनेक विद्वान् जन और मुख में श्रवणीय आज्ञाएं हों।

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम्।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं मन्ये) दानियों में दानी, पूज्यों में पूज्य, सत्संग योग्यों में सर्वश्रेष्ठ करके जानता हूं। और (अच्युतानां च्यवनम्) स्वयं गतिरहित जड़ पदार्थों को चलाने वाला जानता हूं। (सत्वनां केतुं मन्ये) बलशालियों में ध्वजा के समान वा सत्वयुक्त चित्त वाले जीवों में ज्ञानप्रद, और (चर्षणीनां वृषभं त्वा मन्ये) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मैं तुझे जानता हूं।

आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ। प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्! तू (बाह्वोः) बाहुओं में (अहये) अभिमुख आये शत्रु को (हन्तवा) नाश करने के लिये (मदच्युतं वज्रं) शत्रुओं के मद को दूर करने वाले प्रजा के (मदच्युतं) हर्ष प्रापक बल वीर्य को (धत्से) धारण करता है तब (पर्वताः) मेघवत् पालन शक्ति से युक्त शासक जन, और (गावः) भूमिवासी समस्त प्रजाएं (प्र अनवन्त) खूब हर्ष ध्वनि करते हैं। और (अभि-

नक्षन्तः ब्रह्माणः) प्राप्त होते हुए विद्वान् जन (इन्द्रम् प्र अनवन्त) ऐश्वर्य-वान् शत्रुहन्ता की स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

तमु॑ ष्टवाम॒ य इ॒मा ज॒जान॒ विश्वा॑ जा॒तान्यव॑राण्यस्मात्।
इन्द्रे॑ण मि॒त्रं दि॑धिषेम गी॒र्भिरुपो॒ नमो॑भिर्वृष॒भं वि॑शेम॥ ६॥

भा०—(तम् उ स्तवाम) उसी की स्तुति करें (यः इमा) जो इन (अस्मात्) उससे (अवराणि) पीछे (विश्वा जातानि) उत्पन्न, समस्त पदार्थों को जजान उत्पन्न करता है हम लोग (इन्द्रेण) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के साथ (मित्रं दिधिषेम) मित्र भाव रक्खें। (नमोभिः गीर्भिः) नमस्कार युक्त विनीत वचनों से हम उस (वृषभं) सब सुखों के देने वाले को (उपो विशेम) प्राप्त होवें, उसकी उपासना करें।

वृ॒त्रस्य॑ त्वा श्व॒सथा॒दीष॑माणा॒ विश्वे॑ दे॒वा अ॑जहु॒र्ये सखा॑यः।
म॒रुद्भि॑रिन्द्र स॒ख्यं ते॑ अस्त्व॒थेमा विश्वाः॒ पृत॑ना जयासि॥ ७॥

भा०—जैसे (वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः विश्वे देवाः सखायः अजहुः) बढ़ते शत्रु के श्वासमात्र से भी भय खाते हुए सब मित्र मनुष्य भी राजा को छोड़ देते हैं उसी प्रकार हे प्रभो! (विश्वे देवाः) समस्त जीवगण, (सखायः) तेरे मित्र समान आख्या वाले आत्मा होकर भी (वृत्रस्य) आवरणकारी देह के (श्वसथात् ईषमाणाः) श्वास-प्रश्वास द्वारा गति करते हुए (त्वा अजहुः) तुझे भूल जाते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते मरुद्भिः सख्यम् अस्तु) जीवगण से तेरा सदा सख्य, मित्रभाव रहे। (अथ) और तू (इमा विश्वाः पृतनाः जयासि) इन सब प्रजाओं को अपने वश कर।

त्रिः ष॒ष्टिस्त्वा॑ म॒रुतो॑ वावृधा॒ना उ॒स्रा इ॑व रा॒शयो॑ य॒ज्ञिया॑सः।
उप॒ त्वेमः॑ कृ॒धि नो॑ भाग॒धेयं॒ शुष्मं॑ त ए॒ना ह॒विषा॑ विधेम॥८॥

भा०—(त्रिः षष्टिः मरुतः) ६३ प्रकार के मनुष्य गण और देह में प्राण गण (ववृधानाः) बढ़ते हुए (उस्राः इव) सूर्य की किरणों वा गौवों के समान (राशयः) संघ होकर (यज्ञियासः) आदर पाने योग्य

हैं। वे हम (त्वा उप इमः) तुझे प्राप्त होते हैं। (नः भाग-धेयं कृधि) हमारा भी भाग नियत कर। हम (ते शुष्मं) तेरे शोषक बल को (एना हविषा) इस प्रकार के अन्नादि, कर और उपाय से (विधेम) बनावें। त्रिःषष्टि गणों का परि-संख्यान यजुर्वेद अ० २२ में देखो।

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन्॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तिग्मम् आयुधम्) शत्रु पर प्रहार करने के तीक्ष्ण साधन, (मरुताम् अनीकम्) वीर पुरुषों की सेना रूप (ते वज्रं) तेरे महान् बलको (कः प्रति दधर्ष) कौन पराजित कर सकता है। (असुराः) बड़े बलशाली लोग भी (अनायुधासः) आयुधों से रहित और (अदेवाः) अतेजस्वी हों, (तान्) उन को हे (ऋजीषिन्) शत्रुभर्जक सेनाओं के स्वामिन्! तू (अप वप) दूर ही खण्डित कर डाल।

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत्॥१०॥३२॥

भा०—(महे उग्राय) बड़े बलवान् (तवसे) शक्तिशाली, (शिव-तमाय) अतिसुखदायक (पश्वः च शिवतमाय) समस्त पशु तक का कल्याण करने वाले (गिर्वाहसे) वाणियों और स्तुतियों को स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (अङ्ग) हे विद्वन्! तू (सुवृक्तिं प्रेरय) उत्तम स्तुति कर। हे विद्वन्! तू उसी के लिये (पूर्वीः गिरः धेहि) पूर्व की नित्य वाणियों को धारण कर। वही (तन्वे) हमारे शरीर और बृहत् राष्ट्र के लिये (कुवित् वेदत्) बहुत सुखैश्वर्य प्रदान करता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत्॥१॥

भा०—(उक्थ-वाहसे विभ्वे) उत्तम स्तुति-वचनों को स्वीकार करने वाले विभु, महान् उस परमेश्वर के लिये (मनीषां) अपने चित्त, बुद्धि को प्रेरित कर। हे प्रभो ! तू (द्रुणा न नदीनाम्) नदियों के पार नौका के समान हमें (पारम् ईरय) पार ले चल। हे विद्वन् ! (जुष्टतरस्य श्रुतस्य) अति सेवनीय श्रवण योग्य ज्ञान को (तन्वि) अपने पुत्र में धनवत् (निस्पृश) प्रदान कर। वह प्रभु (अङ्ग) हे मनुष्य ! (कुवित् वेदत्) बहुत कुछ प्रदान करता है।

तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥१२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् एवं ऐश्वर्य का देने वाला स्वामी (यत् जुजोषत्) जिस को प्रेम करे तू (तत् विविड्ढि) उसी पदार्थ को प्राप्त करा। तू उस की (सु-स्तुतिं स्तुहि) उत्तम स्तुति कर। (नमसा) अति विनय से (विवास) उस की सेवा कर। हे (जरितः) विद्वन् ! स्तुतिकर्त्ता ! तू (उप भूष) सदा उस के समीप रह। और (मा रुवण्यः) कभी रो मत, गुनगुना मत। तू अपनी (वाचं) स्पष्ट वाणी को (श्रावय) उसे सुना दे और (अङ्ग कुविद् वेदत्) हे मनुष्य वह तुझे बहुत २ ऐश्वर्य देने वाला है।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३॥

भा०—(द्रप्सः) वेग से प्रयाण करने में समर्थ, (कृष्णः) प्रजा को कर्षण करने वाला, (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र सैन्यों सहित (अंशुमतीम्) अन्न वाली भूमि पर (अतिष्ठत्) स्थिर हो तो भी (शच्या धमन्तम्) अपनी शक्ति से प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट शत्रु को (इन्द्रः) ऐश्वर्य युक्त उत्तम राजा (शच्या आवत्) अपनी शक्ति से आक्रमण करे और वध करे और (नृमणाः) मनुष्यों के हित

में चित्त देकर वह (स्नेहितीः) हिंसक सेनाओं को (अप अधत्त) दूर करे। अध्यात्म में (सहस्रैः दशभिः) बलवान् दश प्राणों से युक्त होकर (कृष्णः) कर्त्ता जीव (द्रप्सः) देह से देहान्तर में जाने वाला होकर (अंशुमतीम्) सूक्ष्म प्राणों से युक्त लिंग देह को धारण करता हुआ वह (इयानः) देह से देहान्तर में जाता है। और (शच्या धमन्तम् तम् इन्द्रः आवत्) वाणी से प्रार्थना करने वाले जीव की परमेश्वर रक्षा करता है। उस की (स्नेहितीः) नाशकारिणी दुर्वासनाओं वा मोहमयी दुष्ट वृत्तियों को वह (अप अधत्त) दूर कर देता है।

द्रप्सम॑पश्यं॒ विषु॑णे॒ चर॑न्तमुपह्व॒रे न॒द्यो॑ अंशु॒मत्याः॑।
नभो॒ न कृ॒ष्णम॑वतस्थि॒वांस॒मिष्या॑मि वो वृषणो॒ युध्य॑ताजौ १४

भा०—सेनापति सैन्यगण से कहे—मैं (अंशुमत्याः नद्यः) कर देने वाली, समृद्ध प्रजा के (उप-ह्वरे) समीप में (विषुणे चरन्तं) विस्तृत मैदान में विचरते (द्रप्सम्) द्रुतगामी शत्रु को (अपश्यम्) देखता हूं, और इसी प्रकार (अवतस्थिवांसम्) आसन पर बैठे हुए (कृष्णम्) प्रजा के पीड़क जन को (नभः) आकाश में मेघवत् व्यापक जानता हूं। हे (वृषण) बलवान् पुरुषो! मैं (इष्यामि) चाहता हूं कि (वः) आप लोग (आजौ युध्यत) संग्राम में शत्रु से युद्ध करो, मारो। अध्यात्म में पूर्वोक्त अंशुमती नदी लिङ्ग-देह उसके भीतर 'द्रप्स' अर्थात् द्रुत वेग से जाने वाला जीवात्मा (विषुणे चरन्तम्) सब तरफ जाने में समर्थ होता है। जब वह स्थिर होता है तब (नभः न कृष्णम्) आकाशवत् वा वायुवत् निष्प्रभ वा आदित्यवत् तेजःस्वरूप होता है। हे (वृषणः) बलशाली साधक जनो! आप लोग (आजौ) उस को प्राप्त करने के लिये (युध्यत) बाधक कारणों से अवश्य संग्राम करो।

अध॑ द्र॒प्सो अं॑शु॒मत्या॑ उ॒पस्थेऽधा॑रयत्त॒न्वं॑ तित्विषा॒णः।
विशो॒ अदे॑वीर॒भ्या॒३ चर॑न्ती॒र्बृह॒स्पति॑ना यु॒जेन्द्रः॑ ससाहे १५।३४

भा०—(द्रप्सः) वेग से जाने वाला शत्रु (अंशुमत्याः उपस्थे) समृद्ध प्रजा के समीप, (तित्विषाणः) अति तेजस्वी होकर (तन्वं अधारयत्) विस्तृत शक्ति को धारण करता है, उस समय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (युजा बृहस्पतिना) सहायक, बड़ी सेना के पालक सेनापति के सहाय से, (अदेवीः) अकरप्रद, (अभि आचरन्तीः) विपरीत आक्रमण करने वाली (विशः) प्रजाओं को (ससहे) पराजित करे। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

त्वं हु त्यत्सुप्तभ्यो जायमानोऽशुत्रुभ्यो अभवुः शत्रुरिन्द्र ।
गुह्ळे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥१६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्यत् त्वं) वह तू (जायमानः) प्रकट होकर ही (अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः) शत्रुरहित स्वयं विचरने वालों का (शत्रुः अभवः) नाश करने में समर्थ हो। (गूढे द्यावापृथिवी) संवृत, सुरक्षित, आकाश पृथिवीवत् शासक-शास्य दोनों को (अनु अविन्दः) अपने अनुकूल करके वश कर। और (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः) बड़े ऐश्वर्य से युक्त देशों को प्राप्त करने के लिये (रणं धाः) रण कर। (२) अध्यात्म में इन्द्र आत्मा, सप्त प्राणों का शासन करने वाला विभाजक है, वह सुगुप्त द्यौ पृथिवी, प्रभु प्रकृति का ज्ञान करे, और महान् सुखमय लोकों का (रणं) सुख भी प्राप्त करे।

त्वं हु त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन्! (त्वं ह) तू ही (वज्रेण) अपने शस्त्रबल से (धृषितः) शत्रु को पराजय करने में समर्थ हो कर (अप्रतिमानम् यत् ओजः) उस निरुपम शत्रु के दल को (जघन्थ) विनाश कर अथवा (हन्तिर्गत्यर्थः। त्यत् अप्रतिमानम् ओजः जघन्थ) तू निरुपम, सर्वोपरि पराक्रम को प्राप्त कर। (त्वं) तू (वधत्रैः) वध करने के

साधनों से (शुष्णस्य अवातिरः) प्रजा के शोषक दुष्ट का नाश कर। और (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (शच्या इत्) शक्ति और आज्ञा के बल से ही (गाः अविन्दः) सब भूमियों को अपने अधीन कर।

त्वं ह त्यद्वृ॑षभ चर्षणी॒नाङ्घ॒नो वृ॒त्राणां॑ तवि॒षो ब॑भूथ।
त्वं सिन्धूँ॑रसृजस्तस्तभा॒नान् त्वम॒पो अ॑जयो दा॒सप॑त्नीः ॥१८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे (चर्षणीनां वृषभ) प्रजा वा लोकद्रष्टाओं के बीच में सर्वश्रेष्ठ! (त्वं ह) तू अवश्य (तविषः) बलवान् हो कर (वृत्राणां) दुष्टों और विघ्नों का (घनः) दण्ड देने और नाश करने वाला (अभवः) हो। और (त्वं) तू (तस्तभानान्) शत्रु को नाश करने वाले (सिन्धून्) वेग से जाने वाले वीरों और तट आदि के नाशक महानदों को भी (असृजः) सञ्चालित कर। और (त्वम्) तू (दास-पत्नीः) प्रजा के नाशक शत्रु के आधिपत्य में विद्यमान (अपः) भूमियों सेनाओं और प्रजाओं को भी (अजयः) जीत।

स सु॒क्रतू॒ रणि॑ता यः सु॒तेष्वनु॑त्तमन्यु॒र्यो अहे॑व रे॒वान्।
य एक॒ इन्नर्यपां॑सि॒ कर्ता॒ स वृ॑त्र॒हा प्रती॒दन्यमा॑हुः ॥ १९ ॥

भा०—(सः सुक्रतुः) वह उत्तम ज्ञान और कर्म सामर्थ्यवान् है। (यः) जो (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यादि अभिषेक कर्मों में (रणिता) रमने हारा और रणकुशल है। (यः) जो (अहा इव रेवान्) दिन वा सूर्य के समान तेज और बल से युक्त, धनाधिपति, और (अनुत्त-मन्युः) अप्रतिहत, अपराजित बल वाला, (यः एक इत्) जो अकेला हो (नरि अपांसि कर्त्ता) नायक पद पर रह कर भी नाना कर्मों को करने हारा है (सः) वह (वृत्रहा) शत्रु और विघ्नों का नाशक पुरुष हो, उस को ही (अन्यं प्रति इत् आहुः) शत्रु के प्रति प्रबल करके जानते और कहते हैं।

स वृत्र॒हेन्द्र॑श्चर्षणी॒धृत्तं सु॑ष्टु॒त्या हव्यं॑ हुवेम ।
स प्रा॑वि॒ता म॒घवा॑ नोऽधिव॒क्ता स वाज॑स्य श्रव॒स्य॑स्य॒ दा॒ता २०

भा०—(सः वृत्रहा) वह दुष्टनाशक पुरुष ही (चर्षणीधृत्) मनुष्यों को धारण करता है। (तं हव्यम्) उस स्तुत्य पुरुष को हम (सु-स्तुत्या) उत्तम गुण स्तवन द्वारा (हुवेम) प्राप्त करें। (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः प्राविता) हमारा उत्तम रक्षक हो और (सः) वह (नः अधिवक्ता) हमारा अध्यक्ष, शासक और (सः वाजस्य श्रवस्यस्य दाता) कीर्त्ति, अन्नादिप्रद, ऐश्वर्य बल, और ज्ञान का दाता है।

स वृ॒त्र॒हेन्द्र॑ ऋभु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ बभूव । कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः ॥ २१ ॥ ३५ ॥

भा०—(सः) वह (वृत्र-हा) दुष्टों और विघ्नों का नाशक, (ऋभु-क्षाः) बल और गुणों से महान्, वा सत्य से दीप्तियुक्त, विद्वान्, तेजस्वी, शिल्पी आदि जन को आश्रय देने वाला, (जज्ञानः) प्रकट होकर (सद्यः हव्यः बभूव) शीघ्र ही स्तुत्य, उपादेय हो जाता है। वह (पुरूणि नर्या अपांसि कृण्वन्) नायक योग्य वा प्रजाजन के हितार्थ बहुत से कर्मों को करता हुआ (पीतः सोमः न) पान वा पालन योग्य सोम रस, ऐश्वर्य वा पुत्रादि के समान ही (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों के लिये स्तुत्य हो जाता है।

इस सूक्त में परमेश्वर के सृष्टि रचनाविषयक निदर्शन आत्मा का शरीरग्रहण, रचना और वशीकरण, योग-साधनादि का भी निर्देश है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[९७]

रेभः काश्यप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् बृहती। २, ६, ९, १२ निचृद् बृहती। ४, ५, ८ बृहती। ३ भुरिगनुष्टुप्। ७ अनुष्टुप्। १० भुरिग्जगती। १३ अतिजगती। १५ ककुम्मती जगती। १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्वर्वान्) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (असुरेभ्यः) प्राण वाले जीवों के हितार्थ (याः भुजः आभर) जिन योग्य पदार्थों को प्रदान करता है, (अस्य) इस धन से तू (स्तोतारम् इत्) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् को ही हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (वर्धय) बढ़ा और उन को भी बढ़ा (ये च त्व) जो तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) उत्तम आसन बिछाते हैं या तेरे अधीन रहकर शत्रु को कुश-तृणवत् छेदन करते हैं ।

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (यम् अश्वम्) जिस अश्व को, (गां) भूमि व पशु को और (अव्ययं भागम्) अक्षय सैन्य को (दधिषे) धारण करता है, (तं) उस के (सुन्वति) यज्ञ करने वाले और (दक्षिणावति) दान दक्षिणा देने वाले (तस्मिन् यजमाने धेहि) उस यजमान के निमित्त धर । (मा पणौ) धन के व्यवहारी के निमित्त मत दे । राजा विद्वान् याज्ञिकों, यज्ञशील जनों को भूमि, अश्व, गा आदि की सहायता करे और केवल धन बटोरने वालों को दान न दे ।

य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः ।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) दुष्टों को दण्ड देने हारे ! (यः अव्रतः) जो कर्महीन, व्रतहीन होकर (सस्ति) आलस्य में सोता है और जो (अनुस्वापं) निद्रा आलस्य के साथ २ (अदेवयुः) अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता वा विद्वानों, शुभ गुणों को नहीं चाहता, (सः) वह (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (पोष्यं रयिं मुमुरत्) पोषण योग्य

जन और ऐश्वर्य का नाश करता है। (ततः) उस से हे ऐश्वर्यप्रद ! तू (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (सनुतः धेहि) कार्य और फल से वञ्चित कर।

यच्छ॑क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृत्रहन्।

अत॑स्त्वा गी॒र्भिर्द्यु॒गदि॑न्द्र के॒शिभि॑ः सु॒तावाँ॒ आ वि॑वासति ॥४॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु के नाशक ! (यत्) जो तू (परावति) दूर और (अर्वावति) समीप देश में भी (असि) होता है तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (अतः) इस अपने स्थान से ही, (सुत-वान्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त होकर तेरा प्रतिनिधि (द्युगत् केशिभिः) भूमि पर जाने वाले अश्वों और तेजस्वी पुरुषों द्वारा (त्वा आ विवासति) तेरी ही परिचर्या करता है।

यद्वा॑सि॑ रोच॒ने दि॒वः स॑मु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑।

यत्पार्थि॑वे॒ सद॑ने वृत्रहन्तम॒ यद॒न्तरि॑क्ष॒ आ ग॑हि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(यद् वा) तू चाहे (दिवः रोचने) भूमि के किसी अति रुचिकर देश में भी (असि) हो, चाहे तू (समुद्रस्य अधि विष्टपि) वा समुद्र के किसी निस्ताप प्रदेश में भी हो, चाहे तू (यत् पार्थिवे सदने) या पृथिवी के किसी गृह में वा (यत् अन्तरिक्षे) वा अन्तरिक्ष में भी हो तो भी हे (वृत्रहन्तम) विघ्नों के नाशक स्वामिन् ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो। (२) परमेश्वर सूर्य, समुद्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि में सर्वत्र व्यापक है। वह हमें सर्वत्र प्राप्त हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

स न॒ः सोमे॑षु सोमपाः सु॒तेषु॑ शवसस्पते।

मा॒दय॑स्व॒ राध॑सा सू॒नृता॑व॒तेन्द्र॑ रा॒या परी॑णसा ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (शवसः पते) बल के पालक ! हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! तू (सोमेषु सुतेषु) ऐश्वर्यों के उत्पन्न होने पर (नः) हमें (सूनृतावता) अन्न और उत्तम वचन से युक्त

(राधसः) दान योग्य धन से और (परीणसा) बहुत से (राया) ऐश्वर्य से (मादयस्व) प्रसन्न, सुखी, तृप्त कर।

मा नं इन्द्र परां वृणग्भवां नः सधमाद्यः।
त्वं नं ऊती त्वमिन्न आप्यं मा नं इन्द्र परां वृणक् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (मा परा वृणक्) मत परित्याग कर। तू (नः सधमाद्यः भवः) हमारे साथ आनन्द युक्त हो। (त्वं नः ऊती) तू ही हमारी रक्षा है। (त्वम् इत् नः आप्यं) तू ही हमारा बन्धु है। अर्थात् तू ही हमारा रक्षक, तू ही हमारा बन्धु है। अतः हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् विभो ! तू (नः मा परा वृणक्) हमें मत छोड़।

अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षंदा पीतये मधु।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मधु पीतये) मधुर अन्नादि के उपभोग के लिये (अस्मे सुते) हमारे द्वारा अभिषिक्त पद पर तू (नि सद) विराज। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जरित्रे) स्तोता विद्वान् उपदेष्टा के हितार्थ (अस्मे सुते सचा) हमारे ऐश्वर्य पर स्थिर रहकर (महत् अवः कृधि) बड़ी भारी रक्षा कर।

न त्वां देवास आशत न मर्त्यांसो अद्रिवः।
विश्वां जातानि शवसाभिभूरसि न त्वां देवास आशत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! (त्वा देवासः न आशत) तुझे विद्वान् गण वा इन्द्रिय गण भी नहीं पा सकते। और(न मर्त्यासः) न साधारण मनुष्य, मरणशील प्राणी ही तुझे पा सकते हैं। तू (शवसा) बल से (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों को भी (अभिभूः असि) वश किये है। इसलिये भी (त्वा देवासः न आशत) तुझे दिव्य पदार्थ सूर्यादि, एवं विद्वान् और नाना कामना करने हारे जन भी नहीं पा सकते।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् १०।२७

भा०—(विश्वाः पृतनाः) समस्त मनुष्य, (अभि-भूतरं नरं) शत्रु को खूब पराजय करने वाले नायक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (सजूः) परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर (राजसे जजनुः) राज्य करने के लिये प्रधान पद पर स्थापित करते हैं और वे (क्रत्वा वरिष्ठं) ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ (आ-मुरिम्) शत्रुओं के नाश करने वाले, (उग्रम्) भयंकर, (ओजिष्ठं) अति पराक्रमी, (तरस्विनं) बलवान्, वेगवान्, (तवसं) शक्तिशाली, पुरुष को (इन्द्रम् जजनुः) सूर्यवत् तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् राजा रूप से नियुक्त करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—(रेभासः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, उपदेष्टा जन (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (स्वः-पतिम्) सब सुखों के स्वामी की (ईम्) सब ओर से, सब प्रकार से (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति, प्रार्थना करें और (यत् ईं वृधे सम् अस्वरन्) जब वे इसको अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना करें तब वह (ऊतिभिः) अपने रक्षा-साधनों और (ओजसा) बल पराक्रम से (धृत-व्रतः) व्रतों, कर्मों और नियमों को धारण करने वाला हो और उन को (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार शासन करे। (२) परमेश्वर अपनी शक्तियों से जगत् के सब नियमों को धारता है, सब अपनी वृद्धि और जगत् के पालनार्थ उस की स्तुति करें।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १२ ॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् पुरुष (नेमिम्) शत्रुओं के नमाने वाले

बलवान् (मेषं) समस्त सुखों के दाता, राजा को (चक्षसा) दर्शन कर (अभि-स्वरा) उत्तम स्वर से (नमन्ति) उस का आदर करते हैं। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग भी (सु-दीतयः) उत्तम दीप्ति युक्त (अद्रुहः) द्रोह, परस्पर द्वेष, कलह से रहित और (कर्णे तरस्विनः) करने योग्य कर्त्तव्य कर्म में शीघ्रता करने वाले, अनालसी होकर (ऋक्भिः) उत्तम ऋचाओं से उस स्वामी की (सं) मिलकर स्तुति करो।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥

भा०—मैं (तम्) इस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (मघवानम्) उत्तम धनों के स्वामी (उग्रम्) बलवान्, (सत्रा शवांसि) सच्चे बलों को (दधानम्) धारण करने वाले (अप्रतिष्कुतं) जिस के किये को कोई मेट न सके, जिस के बल को कोई रोकने वाला नहीं उस को (जोहवीमि) बुलाता हूं, उसी से प्रार्थना करूं। वही (मंहिष्ठः) सब से बड़ा दानी (यज्ञियः च) और पूज्य है। वह (गीर्भिः आववर्त्तत्) उत्तम वाणियों से शासन करता है। वह (वज्री) बलवान्, वीर्यवान्, शक्तिमान् स्वामी, (राये) ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (विश्वा) सब प्रकार के (सुपथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) करे।

त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) सब से अधिक शक्तिमान् ! हे (शक्र) शक्ति के देने हारे ! तू (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (पुरः नाशयध्यै चिकित्) शत्रुओं नगरियों, गढ़ियों को विनाश करना भली प्रकार जान। हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! (विश्वानि भुवना

द्यावा पृथिवी च) समस्त भुवन, सूर्य और पृथिवी सब (त्वद् भीषा रेजेते) तेरे भय से चल रहे हैं ।

तन्म॑ ऋतमि॑न्द्र शूर चित्र पात्वपो न व॑ज्रिन्दुरि॒ताति॑ पर्षि॒ भूरि॑ ।
कु॒दा न॑ इन्द्र रा॒य आ द॑शस्येर्वि॒श्वप्स्न्यस्य स्पृहया॒य्य॑स्य राजन्
॥ १५ ॥ ३८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (तत् ऋतम्) वह सत्य ज्ञान (मे पातु) मेरी रक्षा करे । हे (चित्र) पूज्य ! हे अद्भुत गुण कर्म स्वभाव ! हे (वज्रिन्) बलवन् ! (अपः न) जलों के समान तू (भूरि दुरिता अति पर्षि) बहुत से दुःखों और पापों से पारकर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (विश्वप्स्न्यस्य) सब प्रकार के (स्पृहयाय्यस्य) चाहने योग्य (रायः) धन का हे (राजन्) तेजस्विन् ! तू (नः कदा आ दशस्ये) हमें कब प्रदान करेगा । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[९८]

नृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ उष्णिक् । २, ६ ककुम्मती उष्णिक् । ३, ७, ८, १०—१२ विराडुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ९ निचृदुष्णिक् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑य॒ साम॑ गायत॒ विप्रा॑य बृह॒ते बृ॒हत् ।
ध॒र्म॒कृते॑ विप॒श्चिते॑ पन॒स्यवे॑ ॥ १ ॥

भा०—(बृहते) महान् (विप्राय) मेधावी, (धर्म-कृते) समस्त धर्मों के धारण करने वाले, प्रबन्धों को करने वाले; (विपश्चिते) विद्वान्,

(पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले, वा वाणी और सद्-व्यवहारों के पालक (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त (बृहत् साम) बृहत् साम का (गायत) गान करो।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (अभिभूः असि) सर्वत्र विद्यमान है (त्वम् सूर्यम् अरोचयः) तू सूर्य को प्रकाशित करता है। तू (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का बनाने वाला, और (विश्व-देवः) सब देवों का देव, सब का दाता, सब का प्रकाशक और (महान् असि) सब से बड़ा है।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

भा०—तू (ज्योतिषा) तेज से (स्वः विभ्राजन्) समस्त विश्व को प्रकाशित करता हुआ (दिवः) सूर्य और आकाशस्थ समस्त प्रकाशमान पिण्डों को भी (रोचनं) तेज (आगच्छः) प्राप्त कराता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (देवाः) सब देदीप्यमान लोक और सब विद्वान् हे (इन्द्र) देदीप्यमान! (ते सख्याय) तेरे मित्र भाव के लिये (येमिरे) अपने को नियम-बन्धन में बांधते हैं, तेरी आज्ञा का पालन करते हैं।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः प्रियः) हमारा प्रिय, (सत्रा-जित्) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (अगोह्यः) अगोप्य, सर्वत्र प्रकाशित, (गिरिः) मेघ वा पर्वत के समान (विश्वतः पृथुः) सब से बड़ा (दिवः पतिः) सूर्यादि तेजस्वी जगत् का और हमारी कामनाओं का भी स्वामी, पालक है। तू (नः आ गधि) हमें प्राप्त हो।

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।

इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सत्य) सत्यस्वरूप ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों पर (अभि बभूथ) वश करता है । तू (सुन्वतः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला, (दिवः पतिः) कामनाओं और तेजों का स्वामी है ।

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।

हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(त्वं) तू अवश्य (शश्वतीनां पुराम्) बहुत सी, अनादि काल से बनी (पुराम्) नगरियों का (दर्त्ता असि) तोड़ने हारा है । तू (दस्योः हन्ता) दुष्टों को दण्ड देने वाला और (मनोः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला और उसका (दिवः पतिः) कामनाओं का पालक, वा (दिवः पतिः) भूमि और आकाशादि का भी पालक है । इति प्रथमो वर्गः॥

अधा हीन्द्र गिर्वणः उप त्वा कामान्महः ससृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ॥ ७ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा उपास्य ! स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अध हि) और हम (त्वा उप) तेरे ही समीप रह कर (महः कामान्) बड़ी २ अभिलाषाओं को (ससृज्महे) पूर्ण करें (उदा इव यन्तः उदभिः) जिस प्रकार नदी समुद्रादि से जाते हुए यात्री जल से ही अपनी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं उसी प्रकार तुझ से उन्नत होकर हम तेरे द्वारा ही सब अभिलाषाएं पूर्ण कर लिया करें ।

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (वाः न) जल जिस प्रकार

(सन्याभिः) नदियों द्वारा समुद्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्य और स्तुतिवचन (दिवे दिवे) प्रति दिन (वावृध्वांसं) बढ़ते हुए (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं।

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥

भा०—(इषिरस्य) बड़ी इच्छा वाले राजा के (उरुयुगे) बड़े जुए वाले, (उरौ रथे) बड़े रथ में जिस प्रकार विद्वान् जन (इन्द्र-वाहा) ऐश्वर्य प्राप्ति कराने वाले, (वचोयुजा) वाणी मात्र से जुड़ने वाले (हरी युञ्जन्ति) दो अश्वों को नियुक्त करते हैं उसी प्रकार (गाथया) गान करने योग्य स्तुति और गाथा अर्थात् वेद वाणी द्वारा (इषिरस्य) सब के सञ्चालक, प्रवर्त्तक उस के (उरौ) विशाल (उरु-युगे रथे) महान् योजनावान् रमणीय रूप में विद्वान् जन, (वचः-युजा) वाणीमात्र से उस में योग देने वाले (इन्द्र-वाहा) इन्द्र आत्मा को धारण करने वाले (हरी) स्त्री पुरुषों को वा (हरी) गतिमान् आत्मा और मन को (युञ्जन्ति) योग द्वारा समाहित करते हैं।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! हे (विचर्षणे) समस्त विश्व को देखने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं नः ओजः नृम्णं आ भर) तू हमें बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्रदान कर। और (पृतना-सहं वीरं आभर) संग्राम विजयी वीर को प्राप्त करा।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥

भा०— हे (वसो) सब के पिता, सबको बसाने हारे, सब में व्यापक! हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्मों वाले! (त्वं हि नः पिता) तू

निश्चय से हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता होती है। (अध) इसी कारण हम (ते सुम्नम् ईमहे) तेरे से सुख की याचना करते हैं।

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥ २ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (शतक्रतो) अपरिमित कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रेमपूर्वक बुलाये गये ! (वाजयन्तं त्वां) बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान की कामना करने वाले तुझ से मैं प्रार्थना करता हूं, (सः) वह तू (नः सुवीर्यम् रास्व) हमें उत्तम बल, वीर्य प्रदान कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[९९]

नृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् बृहती ॥ २ बृहती । ३, ७ निचृद् बृहती । ५ पादनिचृद् बृहती । ४,६,८ पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन् ! (भूर्णयः) प्रजाओं के उत्तम पालनकर्त्ता (नरः) नायक जन (इदा ह्यः) अब तब, पूर्ववत् अब और आगे भी, (त्वाम् अपीप्यन्) तुझे ही बढ़ावें। (सः) वह (स्तोमवाह-साम्) स्तुति धारण करने वालों की प्रार्थना को (इह श्रुधि) इस अवसर में श्रवण कर और (स्वसरम् उप आ गहि) गृहवत् राष्ट्र को तू प्राप्त हो। (२) परमेश्वर, सबकी प्रार्थना श्रवण करता है और (स्वसरम्) अपने से व्याप्त विश्व को प्राप्त है।

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! (त्वे) तेरे अधीन, तेरे आश्रय (वेधसः आ भूषन्ति) विद्वान् कर्त्ता जन सब ओर से आकर रहते हैं, (तत् ईमहे) इसी से हम भी तेरी याचना करते हैं। हे (सुशिप्र) सुमुख ! हे सोम्य ! तू (मत्स्व) आनन्द लाभ कर और सबको सुखी कर। हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तवन करने योग्य ! (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यों में (तव) तेरे (उक्थ्या उपमानि) प्रशंसनीय, उपमा योग्य, (श्रवांसि) यश और श्रवणयोग्य ज्ञान और कर्म हैं।

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजास्थ जनो ! (श्रायन्तः) आश्रय लेते हुए आप लोग आश्रित जनों के समान ही (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (भक्षत) सेवन करो, वा परस्पर विभक्त कर लिया करो। और (जाते) उत्पन्न और (जनमाने) आगे उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य में भी हम लोग (ओजसा) अपने बल पराक्रम के द्वारा (भागं) अपने प्राप्य अंश को (प्रति दीधिम) प्रत्येक व्यक्ति अपना २ ग्रहण करें।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। यजु० अ० ४० ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (अनर्श-रातिम्) निष्पाप, सात्विक, पवित्र दान देने वाले, (वसु-दाम्) ऐश्वर्य के दाता प्रभु की (उप स्तुहि) उपासना और प्रार्थना किया कर। क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः) ऐश्वर्यवान् के सब दान (भद्राः) सुखदायक और कल्याणकारक हैं। (सः) वह (विधतः अस्य) परिचर्या करने वाले इस भक्त के (कामं न रोषति) अभिलाषा

को नष्ट नहीं करता, प्रत्युत (दानाय मनः चोदयन्) दान देने के लिये ही मन वा उत्तम ज्ञान की प्रेरणा किया करता है।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों की (विश्वाः स्पृधः) सब स्पर्धालु पर-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करने में समर्थ होता है। तू (अशस्ति-हा) निन्दकों का नाशक, (जनिता) सबका पितावत् जनक (विश्वतूः असि) सब शत्रुवर्ग का नाशक वा समस्त विश्व का चालक है। (त्वं) तू (तरुष्यतः) हिंसक, पीड़कों को (तूर्य) विनष्ट कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥

भा०—(मातरा शिशुं न) माता पिता जिस प्रकार शिशु के समीप प्रेमपूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार (ते) तेरे (तुरयन्तं शुष्मम् अनु) दुष्टनाशक एवं संचालक बल के पीछे २ आकृष्ट होकर (क्षोणी) आकाश-भूमि गत सब पदार्थ उसके पीछे चलते हैं। (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धाकारी अहंकारी भी (श्नथयन्त) शिथिल हो जाते हैं (यद् इन्द्र) जब तू हे शत्रुनाशक! (वृत्रं) दुष्ट, बाधक को (तूर्वसि) नाश करने को तैयार होता है।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (अजरम्) अविनाशी (प्र-हेतारं) सबके प्रेरक, शत्रुओं के नाशक, और (अप्र-हितम्) स्वयं किसी से भी प्रेरित न होने वाले, (आशुम्) वेगवान्, व्यापक, (जेतारं) सर्वविजयी,

(हेतारं) दुष्टों के नाशक, (रथि-तमम्) रथ वालों में सर्वोत्तम, विश्व-मात्र में महारथी के तुल्य, (अतूर्तम्) अहिंसित, अबाधित, (तुग्र्य-वृधम्) दुष्टों के नाश करने की शक्ति को बढ़ाने वाले, परमेश्वर को आप लोग (ऊती) अति प्रेमपूर्वक (इतः) आगे करो।

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम्।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—(इष्कर्त्तारम्) सबके संचालक, (अनिष्कृतं) अन्यों से अप्रेरित, (सहस्कृतम्) सब बलों के उत्पादक, (शतम्-ऊतिं) अपरिमित रक्षा साधनों से युक्त (शत-क्रतुम्) अपरिमित प्रज्ञावाले, (समानं) सबके प्रति समान, (वसवानं) सबको आच्छादित करने वाले, (वसू-जुवम्) सब जीवों, ऐश्वर्यों और लोकों के प्रेरक, दाता, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को हम (अवसे) अपनी रक्षार्थ (हवामहे) प्रार्थना किया करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१००]

नेमो भार्गवः । ४, ५ इन्द्र ऋषिः ॥ देवताः—१—६, १२ इन्द्रः । १०, ११ वाक् ॥ छन्दः—१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, १२ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृज्जगती । ७, ८ अनुष्टुप् । ९ निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात्।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते पुरस्तात्) तेरे आगे (अयं) यह मैं (तन्वा एमि) अपने देहसहित आता हूं। और इसी प्रकार (मा पश्चात्) मेरे पीछे (विश्वे देवाः) समस्त कामनावान् जीवगण, मुझ इन्द्रादि के समान (त्वा पुरस्तात् अभियन्ति) तेरे समक्ष आते हैं। तू

(यदा) जब (मह्यं भागम् दीधरः) मेरे लिये सेवन करने योग्य अंश कर्मफल वा ग्राह्य विषय को रखता है, बनाता है, (आत् इत्) अनन्तर ही (मया) मुझ द्वारा (वीर्याणि कृणवः) नाना बलयुक्त कार्य करता है। जिस प्रकार स्वामी अधीनस्थ भृत्य जन के लिये उसका वेतनादि अंश प्रथम नियत कर देता है और उससे बड़े २, भारी काम भी करा लेता है उसी प्रकार परमेश्वर की व्यवस्था में भी सुकृतों के नाना उत्तम फल प्राप्त होने नियत हैं। उनको लक्ष्य कर जीव द्वारा नाना आश्चर्यजनक कर्म होते हैं।

दधा॑मि ते॒ मधु॑नो भ॒क्षमग्रे॑ हि॒तस्ते॑ भा॒गः सु॒तो अ॑स्तु॒ सोमः॑।
अस॑श्च॒ त्वं द॑क्षिण॒तः सखा॒ मेऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे दिये (मधुनः भक्षम्) मधुर अन्न के भोग्य फल को मैं (अग्रे दधामि) सदा अपने आगे लक्ष्य रूप से रखता हूं। और (ते भागः) तेरा भाग (सुतः सोमः ते हितः अस्तु) यह उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे ही अर्पण हो। और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणतः सखा असः) दायें ओर, सबसे बड़ा, प्रबल सखा, हो (अध) तो तू और मैं दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जंघनाव) विनाश करें।

'च' अत्र चण् इति णितः प्रयोगश्चेदर्थे वर्त्तते। 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेणकच्चिद्यत्रयुक्तम्' इति तिङो निघाताभावः॥ ईश्वर ही सबसे बड़ा सहायक है, उसके बिना विघ्नों का नाश असम्भव है।

प्र सु स्तोमं॑ भरत वाज॒यन्त॒ इन्द्रा॑य स॒त्यं यदि॑ स॒त्यमस्ति॑।
नेन्द्रो॑ अ॒स्तीति॒ नेम॑ उ त्व आह॒ क ईं॑ ददर्श॒ कम॒भि ष्ट॑वाम॥३॥

भा०—हे मनुष्यो! (वाजयन्तः) ज्ञान, ऐश्वर्य, और बल की कामना करते हुए आप लोग अब (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् की उपासनार्थ (स्तोमं प्र सु भरत) स्तुतियों का अच्छी प्रकार प्रयोग करो। (यदि सत्यं)

यदि संदेह है कि वह सत्य है तो जानो वह (सत्यम् अस्ति) अवश्य सत्य है। क्यों कि (उ त्वः नेमः) कोई २ मनुष्य (न इन्द्रः अस्ति इति आह) ऐश्वर्यवान् विघ्ननाशक प्रभु नहीं है ऐसा भी कहता है। (कः ईं ददर्श) उसको कौन देखता है ? फिर हम (कम् अभि स्तवाम) किसकी स्तुति करें ?

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥

भा०—इस प्रकार संदिग्ध हृदय वाले स्तोताजन के प्रति साक्षात् प्रभु का वचन सन्देह निवृत्यर्थ इस प्रकार है—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्तः ! (अयम् अस्मि) मैं यह हूं। (पश्य मा इह) मुझे तू यहां इस जगत् में इस रूप में देख। मैं (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (विश्वा जातानि अभि अस्मि) समस्त पदार्थों को अपने वश किये हूं। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्र-दिशः) उत्तम कोटि के दिखाने वा उपदेश करने वाले शास्ता गुरुजन (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढ़ाते, मेरी ही महिमा का विस्तार करते हैं। मैं ही (आदर्दिरः) सबको छिन्न भिन्न करने वाला हूं। (भुवना) समस्त उत्पन्न लोकों को भी (दर्दरीमि) प्रलय रूप से परमाणु २, छिन्न भिन्न करता हूं। जब तक जीव अर्थात् देह का नायक 'नेम' देह के सुखों में मग्न रहता है तब वह प्रभु को भूल जाता है। पर जब वह संकट या दुःखदशा में अपनी चलती नहीं देखता और बन्धु बान्धवों और अपने २ देह का भी नाश होता देखता है तब वह प्रभु की महती सत्ता को अनुभव करता है।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥

भा०—(हर्यतस्य) इस अति सुन्दर (ऋतस्य) गतिमान् सत् कारणरूप प्रकृतिरूप तत्व के (पृष्ठे) पीठ पर (आसीनं) विराजे हुए (एकम्) एक अद्वितीय (मा) मुझे (वेनाः) चाहने वाले विद्वान् जन (मा अरुहन्) मुझ तक पहुंचते हैं, तब (मनः) उन

का मननशील अन्तःकरण ही (मे हृदे आ प्रति अवोचत्) मेरे हृदय को प्राप्त करने के लिये आदरपूर्वक मेरे प्रति कहता है या मुझ हृदयस्थ सुहृद् के लिये वचन-प्रतिवचन किया करता है और वे (सखायः) मेरे मित्र होकर (अन्तः शिशुम्) भीतर अन्तःकरण में व्यापक मुझ को लक्ष्य करके (अचिक्रदन्) स्तुति किया करते हैं।

अथवा—वे (शिशु-मन्तः सखायः मे अचिक्रदन्) भीतर सुतवत् विद्यमान् मुझ व्यापक से युक्त होकर मुझे पुकारा करते हैं। जैसे कोई गोद में बच्चा लेकर उसी से घण्टों विनोद से बात किया करते हैं ठीक उसी प्रकार प्रभु को हृदय में सूक्ष्म रूप से विद्यमान अनुभव करके भक्त उसी के प्रति नाना वचन-प्रतिवचन कहा करते हैं।

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते।
पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे॥६।४॥

भा०—हे (मघवन्) पूजित धनयुक्त! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! हे तेजःस्वरूप! सर्वद्रष्टः! (सवनेषु) उपासना, स्तुति आदि के अवसरों में, या (सवनेषु) निर्माण किये लोकों में, (या) जो (प्र-वाच्या) उत्तम रूप से वर्णन करने योग्य (ता) उन नाना (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकर्थ) करता है और उन को तू (सुन्वते) अपने उपासक के लिये (अप अवृणोः) स्पष्ट खोल देता है। और (यत्) जो (पारावतम्) परम रक्षा-स्थान, मोक्षमय लोक का (वसु) परमैश्वर्य (पुरु-सम्भृतम्) बहुत एकत्र है उस को भी (ऋषि-बन्धवे शरभाय) जगत्द्रष्टा के बन्धुस्वरूप एवं उस को प्राप्त होने वाले भक्त के सुखार्थ (अप अवृणोः) खोल देता है।

प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत्।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत्॥ ७॥

भा०—हे विद्वान् उपासक जीवो! (नूनं) तुम अवश्य निश्चयपूर्वक बहुत शीघ्र (प्र पृथक् धावत) उत्तम मार्ग पर पृथक्, स्वतन्त्र होकर चलो

और अपने आप को खूब स्वच्छ करो। (यः) जो परमेश्वर (इत) इस जगत् में (वः) आप लोगों को (न अवावरीत्) नहीं रोकता वह ही (सीम्) सब प्रकार से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (वृत्रस्य) तुम्हें रोकने वाले, विघ्नकारी अज्ञान के (मर्मणि) मर्म पर या मूल भाग पर (वज्रम्) ज्ञान रूप वज्र को (नि अपीपतत्) गिराता है और उसका नाश करता है।

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

भा०—(मनोजवा) मन के वेग वाला वा उत्तम ज्ञान, संकल्प के वेग से युक्त (अयमानः) आगे बढ़ता हुआ आत्मा (आयसीम्) लोहे की बनी (पुरम्) प्रकोट के समान प्राणों से बनी इस पञ्चकोशमय देह-पुरी को (अतरत्) पार कर जाता है। ज्ञान के बल से ज्ञानी देहबन्धन से मुक्त हो जाता है। वह (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानी आत्मा (दिवं गत्वाय) तेजःस्वरूप प्रभु को प्राप्त होकर (वज्रिणे सोमम्) सर्वशक्तिमान् प्रभु के सर्वप्रेरक बल, आनन्द को (आभरत्) प्राप्त करता है। 'वज्रिणे' इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी।

समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (वज्रः) विद्युत् रूप बल, (उद्ना अभीवृतः) जल से आवृत, जल में छिपा, (समुद्रे अन्तः शेते) समुद्र के भीतर व्याप रहा है (अस्मै बलिम्) उस बलशाली विद्युत् के बल को (संयतः) अच्छी प्रकार नियमित (प्रस्रवणाः) बहती जल-धाराएं (पुरः भरन्ति) पूर्व ही धारण किये रहती हैं। इसी प्रकार (वज्रः) अज्ञान का निवारक ज्ञान का प्रकाश और बल (उद्ना) उत्तम रीति से (अभि-वृतः) सर्वत्र विद्यमान (अन्तः समुद्रे) समुद्रवत् व्यापक, आनन्दमय प्रभु में

(शयते) व्यापक है। (पुरः-प्रस्त्रवणाः) आगे उत्तम रीति से जाने वाले, विनीत जन (सं-यतः) संयम से रहते हुए, (अस्मै) उस प्रभु के (वलिम्) वलयुक्त ज्ञान को (भरन्ति) धारण करते हैं।

यद्वाग्वद॑न्त्यविचेत॒नानि॒ राष्ट्री॑ दे॒वानां॑ निष॒साद॑ म॒न्द्रा।
चत॑स्र॒ ऊर्जं॑ दुदुहे॒ पयां॑सि॒ क्व॑ स्विदस्याः पर॒मं ज॑गाम ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (वाक्) वाणी (राष्ट्री) तेजस्विनी प्रभुशक्ति के समान (मन्द्रा) अति सुखप्रद, सबको प्रसन्न करने वाली, (देवानां) विद्वानों और सब भूतों के बीच में (अविचेतनानि) अविज्ञेय, निगूढ़ तत्वों को (वदन्ती) कहती या प्रकाश करती हुई (देवानां मध्ये नि-स-साद) विद्वानों के बीच विराजती है। वह (चतस्रः) चारों दिशाओं, चारों आश्रमों, चारों वर्णों की प्रजाओं के प्रति (पयांसि) मेघस्थ विद्युत् जैसे जलों को प्रदान करती है वैसे ही नाना ज्ञानों को (दुदुहे) प्रदान करती है, और (ऊर्जं दुदुहे) जैसे भूमि अन्न को उत्पन्न करती है वैसे वह भी बल को पूर्ण करती है। (अस्याः) इस वेदमयी वाणी का (परमं) परम रूप (क्व स्वित् जगाम) कहां विद्यमान है यह नहीं ज्ञात होता।

दे॒वीं वाच॑मजनयन्त दे॒वास्तां वि॒श्वरू॑पाः प॒शवो॑ वदन्ति।
सा नो॑ म॒न्द्रेष॒मूर्जं॒ दुहा॑ना धे॒नुर्वाग॒स्मानुप॒ सुष्टु॒तैतु॑ ॥ ११ ॥

भा०—(देवम्) अर्थों का प्रकाश करने वाली (वाचम्) वाणी को (देवाः) विद्वान् जन (अजनयन्त) प्रकट करते हैं और (तां) उसको (विश्व-रूपाः) सब प्रकार के (पशवः) ज्ञानद्रष्टा जीवगण, (वदन्ति) व्यक्त और अव्यक्त रूप से बोलते हैं। (सा) वह (मन्द्रा) सुख दायिनी (धेनुः) गौ के समान (इषम् ऊर्जं दुहाना) मध्यम लोक अन्तरिक्ष में मेघस्थ विद्युत् के तुल्य अन्न, जलवत्, प्रेरणा और सम्पदा प्रदान करती हुई (वाक्) वाणी (सु-स्तुता) उत्तम रीति से उपदेश की जाकर (अस्मान् आ एतु) हमें प्राप्त हो।

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः १२।५

भा०—हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन्! (सखे) मित्र! तू (वितरं विक्रमस्व) खूब वायु के समान विक्रम कर। हे (द्यौः) पृथिवी है मूर्धन्य राजसभे! (वज्राय विष्कभे) वज्र, शस्त्र-बल, सैन्यादि के विशेष रूप से छावनी बनाकर बैठने के लिये (लोकं देहि) स्थान प्रदान कर। हम दोनों मिलकर (वृत्रं हनाव) बढ़ते शत्रु का मेघ को वायु-विद्युत्वत् नाश करें। और (सिन्धून् रिणचाव) मेघस्थ जलों के तुल्य शत्रु को वा अपने ही तीव्रगामी सैन्य पंक्तियों को स्वतन्त्र रूप से जाने दें। वे (इन्द्रस्य प्रसवे) सेनापति के शासन में (विसृष्टाः) विशेषरूप से गति करते हुए (यन्तु) जावें। इति पञ्चमो वर्गः॥

[१०१]

जमदग्निर्भार्गव ऋषिः॥ देवताः—१—५ मित्रावरुणौ। ५, ६ आदित्याः। ७, ८ अश्विनौ। ९, १० वायुः। ११, १२ सूर्यः। १३ उषाः सूर्यप्रभा वा। १४ पवमानः। १५, १६ गौः॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती। ६, ७, ९, ११ विराड् बृहती। १२ भुरिग्बृहती। १० स्वराड् बृहती। ५ आर्ची स्वराड् बृहती। १३ आर्ची बृहती। २, ४, ८ पंक्तिः। ३ गायत्री। १४ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। १५ त्रिष्टुप्। १६ विराड् त्रिष्टुप्॥ षोडशर्चं सूक्तम्॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये॥ १॥

भा०—(यः) जो (नूनं) शीघ्र ही (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों को (अभिष्टये) अभिमत फल प्राप्त करने और (हव्य-दातये) उत्तम अन्न ग्रहण के लिये (आचक्रे) अपने अनुकूल कर लेता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देव-तातये) इन्द्रिय गण को

वश करने के लिये (ऋधक् इत्था) सचमुच इस प्रकार से (शशमे) शम की साधना करता है ।

इसी प्रकार जो व्यक्ति यज्ञ द्वारा मित्र, वायु और वरुण, जल इन को अपने अनुकूल कर स्वास्थ्यप्रद और अन्नप्रद कर लेता है (देव-तातये) सब मनुष्यों के लिये जगत् में शान्ति उत्पन्न करता है, वह उत्तम कृषि से अन्न भी उत्पन्न कर लेता है ।

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

भा०—वे दोनों मित्र और वरुण, (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) अति बलशाली, प्रचुर वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त (उरु-चक्षसा) विशाल दर्शन वाले (नरा) उत्तम दो नायकों के तुल्य (राजाना) तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) बहुश्रुत हैं । (ता) वे दोनों (बाहुता न) दो बाहुओं के समान (दंसना) नाना कर्म (रथर्यतः) करते हैं । उसी प्रकार वायु और मेघ दोनों मित्र और वरुण हैं। वे (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) दोनों प्रचुर वर्षा लाने वाले बल और जल से युक्त, (उरु-चक्षसा) बहुत रूपों में दीखने वाले, (नरा) उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले (राजाना) विद्युद् आदि से प्रदीप्त (दीर्घश्रुत्तमा) दूर से ही गर्जन रूप में सुनाई देने वाले हैं, वे मानो (बाहुता न) प्रजापति की दो बाहुओं के समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य की किरणों के साथ (दंसना रथर्यतः) बहुत से कर्म करते हैं । उन दोनों से वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और ऋतु परिवर्त्तन आदि होते हैं ।

राष्ट्र में वे दोनों अधिकारी न्याय-शासन और सैन्य-विभाग हैं । वे सूर्यवत् तेजस्वी राजा के रश्मिरूप मर्यादा, कानूनों वा प्रणिधियों, गुप्तचरों के द्वारा वा तेजस्वी आदि गुणों से बहुत से कार्य सम्पादन करते हैं ।

सूर्य रश्मियों की प्रणिधियों से तुल्यता—

न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः ।

अदृष्टमभवत् किञ्चित् व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥ ४८ ॥

रश्मियों की गुणों से उपमा जैसे—

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंऽशवः ।

गुणास्तस्य विपक्षेपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ॥ ७५ ॥

(रघु० १७)

प्र यो वां मित्रावरुणा ज़िरो दूतो अद्रवत् ।
अयःशीर्षा मदेरघुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) मित्र अर्थात् दिनवत् प्रजा के प्राणों के रक्षक और अर्थात् रात्रिवत् सब को सुख देने वाले राजा शासकादि जनो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (अजिरः) वेग से जाने वाला, (दूतः) दूत (प्र।अद्रवत्) देश देशान्तर जाता हो वह (अयः-शीर्षा) लोहे के शिर वाला, दृढ़ विचार और (मदे रघुः) हर्षादि से प्रफुल्लगति हो । शिर लोहे का हो अर्थात् उस के विचार दृढ़ और रहस्यों के छिपाने में कठोर हों । अथवा–(अयः ते शीर्षा) उस के शिर पर स्वर्णीय मुकुट या पद का चिन्ह आदि हो ।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥४॥

भा०—(यः) जो (संपृच्छे न रमते) अच्छी प्रकार प्रश्न पूछने पर भी प्रसन्नतापूर्वक उत्तर नहीं देता, (न पुनः हवीतये रमते) न बुलाने पर ही प्रसन्न होता है और (न सं-वादाय रमते) न परस्पर संवाद के लिये ही हर्षपूर्वक अनुमति देता है, (तस्मात् सम्-ऋतेः) उस शत्रु के साथ संग्राम से (नः अद्य उरुष्यतम्) हमारी आज रक्षा करो और (बाहु-भ्यां नः उरुष्यतम्) उस के बाहुओं से हमें बचाओ ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं१वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥५॥६॥

भा०—हे (ऋत-वसो) सत्य के धनी ! तू (मित्राय) स्नेही जन, (अर्यम्णे) शत्रुओं के नियन्ता और (वरुणे) श्रेष्ठ जन के लिये (सचथ्यम्) सेवायोग्य, आदरणीय, मेल मिलाप के और (वरूथ्यम्) दुःखवारक तथा (छन्द्यं) चित्तवृत्ति के अनुकूल (वचः) वचन का (प्र) प्रयोग कर। और हे (मनुष्यो) आप लोग (राजसु) राजा, तेजस्वी जनों में उक्त प्रकार के (स्तोत्रं) स्तुति वचन का (गायत) गान करो।

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम्।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥

भा०—(ते) वे (अरुणं) तेजस्वी, अमित वीर्यवान्, (जेन्यं) विजयशील (वसु) सब को सुखपूर्वक वसाने वाले, (तिसृणां) तीनों लोकों के एक अद्वितीय सूर्य के समान उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं के बीच (एकं) एक अद्वितीय (पुत्रं) बहुतों के रक्षक को (हिन्विरे) बढ़ावें। (ते) वे (अमृताः) कभी नाश न होने वाले, (अदब्धाः) किसी से भी न मारे जाकर (मर्त्यानां धामानि) मनुष्यों के सब स्थानों का (अभि चक्षते) निरीक्षण करते हैं।

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख, असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (मे) मेरे (उद्यता) उपस्थित (द्युमत्-तमानि) ज्ञानप्रकाश से युक्त (कर्त्वा) कार्य रूप से करने योग्य (वचांसि) वचनों को (आयातम्) प्राप्त करो। और (उभा सजोषसा) दोनों प्रेम से युक्त होकर (हव्यानि वीतये प्रति यातम्) उत्तम अन्न खाने के लिये लौट जाया करो। विद्वानों के उत्तम २ व्याख्यानादि सुनने के लिये स्त्री पुरुष वा शिष्य शिष्या जन विद्वानों के पास आया करें और भोजनार्थ पुनः घरों या आश्रमों पर चले जाया करें।

रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्ताविंतं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, बल आदि से युक्त कृषि सैन्यादि कार्यों से धनी सम्पन्न जनो ! (युवाभ्याम्) तुम दोनों के हम (अरक्षसं) दुष्ट पुरुषों से रहित (रातिम्) अविघ्नित दान राशि की (वाम् हवामहे) आप दोनों से याचना करते हैं । आप दोनों (नरा) उत्तम नर नारी, (जमदग्निना वृणाना) प्रज्वलित अग्नि वाले विद्वान् आचार्य द्वारा उपदेश युक्त होकर (प्राचीं होत्रां) प्राक्तनी, प्रकृष्ट ज्ञान और आदर से युक्त वेद वाणी को (प्रतिरन्तौ) बढ़ाते हुए (इतं) आओ ।

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो३यं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमारे (दिवि-स्पृशं) मनःकामनागत, वा ज्ञान सम्बन्धी, (यज्ञं) परस्पर के सत्संग को (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (आ याहि) प्राप्त हो । (अयं) यह मैं (पवित्रे उपरि श्रीणानः) पवित्र व्रत पर आश्रय लेता हुआ (शुक्रः) शुद्ध आचारवान् होकर (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण में स्थान प्राप्त करूं । वा (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण को बांधता हूं ।

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् १०।७

भा०—हे (नियुत्वः) नियुक्त शिष्यों के स्वामिन् गुरो ! (अध्वर्युः) अपने अविनाश या रक्षा की कामना करता हुआ शिष्य (रजिष्ठैः) अति तेजस्वी (पथिभिः) सन्मार्गों से (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (प्रति वेति) तुझे प्राप्त होता है ।

तू (नः) हम में से (उभयस्य) दोनों की (पिब) पालना कर। (शुचिं) शुद्ध, व्रतचारी और (गवाशिरं सोमम्) गौ, वाणी के ऊपर विद्याभ्यासी दोनों प्रकार के शिष्यों की पालना कर। (२) इसी प्रकार (अध्वर्युः) अहिंसा व्रत का इच्छुक जन अन्नों को भोग करने के लिये उत्तम २ मार्गों से जीवन व्यतीत करे। वह शुद्ध अन्नादि, वनस्पति और (गवाशिरम्) गौ आदि के दुग्ध और भूमिस्थ कन्द आदि फल का भोग करे इस प्रकार वनस्थ का धर्म पालन करे। इति सप्तमो वर्गः ॥

बण्म॒हाँ अ॑सि सूर्य॒ बळा॑दित्य म॒हाँ अ॑सि।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ अ॑सि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त जगत् के उत्पादक, सूर्यवत् प्रकाशक और सञ्चालक ! तू (वट् महान् असि) सचमुच महान् है। हे (आदित्य) सब को अपने वश में लेने हारे। तू (वट् महान् असि) सचमुच महान् है। (ते महः सतः) तुझ महान् सत्स्वरूप का (महिमा पनस्यते) बड़ा भारी महान् समर्थ्य वर्णन किया जाता है। हे (देव) सब सुखों के दातः ! तू (अद्धा महान् असि) सचमुच महान् है।

बट् सू॑र्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ अ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ अ॑सि।
म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्यः॑ पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (सूर्यवत्) तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक सूर्य ! परमेश्वर ! तू (वट्) सत्य ही (श्रवसा महान् असि) अपने ज्ञान, और यश से महान् है। हे (देव) प्रकाशस्वरूप तू (सत्रा) सत्य के बल से (महान् असि) महान् है। तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (असुर्यः) प्राणों में रमण करने वाले जीवों का हितकारी, बलवानों में सब से बड़ा बलशाली, (पुरोहितः) सब के समक्ष साक्षिवत् विराजमान है। तू (विभु) सर्वव्यापक, (अदाभ्यम्) कभी नाश न होने वाला (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है।

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

भा०—(इयं) यह (या) जो (नीची) नीचे की ओर मुख किये, विनयशील कन्या के समान नीचे की ओर झुकी, (आकर्णी) स्तुति से युक्त, वा अर्क, मन्त्रादि को जानने वाली अर्किणी, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) सूर्य की कान्ति के समान उज्ज्वल (कृता) उत्तम अलंकारों से सुसज्जित, (चित्रा इव) अद्भुत रूप वाली के समान (दशसु बाहुषु) दशों दिशाओं में (बाहुषु) बाहुओं के बल पर (आयती) विस्तृत राजशक्ति है वह (प्रति अदर्शि) सब को उत्तम रीति से दीखे ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

भा०—(तिस्रः प्रजाः) तीनों प्रकार की प्रजाएं (अति-आयम्) सब को अतिक्रमण करके विराजमान प्रभु को ही (ईयुः) प्राप्त होती हैं। अथवा—तीन प्रजाएं (अत्यायम् ईयुः) अतिक्रमण कर गति करती हैं जैसे—पक्षी गण, भूमि को छोड़कर आकाश से विचरते हैं वे तीन प्रकार के हैं, जैसे—गव, वगध और चेरपाद । और (अन्याः) दूसरी प्रजाएं (अर्कम् अभितः) सूर्यवत् अन्न का आश्रय लेकर (विविश्रे) स्थित हैं ! (भुवनेषु अन्तः) लोक में (बृहत् पवमानः) बड़ा भारी परम पावन, प्रभु (तस्थौ) विराजता है, वह ही (हरितः अविवेश) सब दिशाओं में वायुवत् व्यापक है ।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥

भा०—(रुद्राणां माता) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों को दूध

पिलाकर पुष्ट करने वाली, रोगों को नाश करने वाले घृत, दुग्ध आदि पदार्थों की उत्पन्न करने वाली माता यह गौ है; और वीरों की उत्पादक और रोग नाशक ओषधियों की उत्पादक जननी यह गौ भूमि है, दुष्ट दलनकारी वीरों और प्राण युक्त जीवों की माता यह कन्यारूप मातृ शक्ति गौ है। वह (वसूनां दुहिता) राष्ट्र में वा जगत् में बसे समस्त जीवों को सब सुखों की देने वाली, (आदित्यानां स्वसा) दान-आदान करने वाले व्यापारी वैश्य जनों की (सु-असा) सर्व सुखदात्री, भगिनी के समान है और (अमृतस्य नाभिः) अमृत दीर्घ जीवन को देने वाली, मानो आश्रय है। मैं (चिकितुषे) इन समस्त तथ्यों को जानने वाले को (नु प्रवोचं) अवश्य यह बलपूर्वक कहता हूं कि ऐसी (अनागां गाम्) अपराध रहित गौ को और (अदितिम्) भूमिवत् माता-पितावत्, पुत्र-पुत्रिवत् गौ का (मा वधिष्ट) कभी हनन मत करो। वेद की यह ऐसी प्रबल अहिंसा प्रतिपादक अपील है जिस को सुनकर घोर हिंसक भी गौ पर उठाये हाथ को खींच ले।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥८॥

भा०—(वचः-विदम्) वचन, परिभाषण, परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली, (वाचम् उदीरयन्तीम्) वाणी को उन्नत करने वाली, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त कर्मों सहित (उपतिष्ठमानाम्) उपस्थित होती हुई (देवेभ्यः मा परि एयुषीम्) विद्वान् जनों से मुझ को प्राप्त होने वाली (देवीं गाम्) ज्ञान का प्रकाश देने वाली, ज्ञानमयी 'गौ' वाणी को (दभ्र-चेताः) अल्प चित्त वाला, अल्पज्ञानी (मर्त्यः) मनुष्य (परि आ अवृक्त) परित्याग किया करता है। और विशाल चित्त वाला बहुज्ञ पुरुष उस वेदवाणी का आश्रय लेता और ज्ञानरस का दोहन क्रिया करता है। अथवा—(देवेभ्यः एयुषीं गां मा परि आ-अवृक्त) सब मनुष्यों के हितार्थ प्राप्त गौ को मत मारो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१०२]

प्रयोगो भार्गवोऽग्निर्वा पावको वार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ। तयोर्वान्यतर ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३—५, ८, ९, १४, १५, २०—२२ निचृद् गायत्री। २, ६, १२, १३, १६ गायत्री। ७, ११, १७, १९ विराड् गायत्री। १०, १८ पादनिचृद् गायत्री॥

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे। कविर्गृहपतिर्युवा॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक! हे (देव) दानशील! (दाशुषे) देने वाले को (त्वम्) तू (बृहत् वयः) बहुत बड़ी आयु, प्रचुर अन्न और बहुत सा ज्ञान (दधासि) प्रदान करता है। तू (कविः) क्रान्तदर्शी, (गृहपतिः) गृह का स्वामी और (युवा) बलवान् है।

स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा। चिकिद्विभानवा वह २

भा०—हे (विभानो) विशेष कान्तियुक्त! तू (चिकित्) ज्ञानवान् है। (नः) हमें (अनया इडा) इस स्तुति वा उत्तम इच्छा, (दुवस्युवा) परिचर्या, सेवा-शुश्रूषा के (सह) साथ २ (देवान् आ वह) शुभ गुणों और दानी, ज्ञानी, उत्तम विद्वान् जनों को हमें प्राप्त करा।

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य।

अभि ष्मो वाजसातये॥ ३॥

भा०—हे (यविष्ठय) अति बलशालिन्! (त्वया युजा स्वित्) तुझ सहयोगी के साथ ही (वयम्) हम (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि प्राप्त करने के लिये (अभि स्मः) सबको वश करें। (२) अग्नि, सूर्य द्वारा 'वाज' अर्थात् अन्न प्राप्त होता है, अग्नि विद्युत् द्वारा बल, वेग और ऐश्वर्य भी प्राप्त होते हैं।

औ॒र्व॒भृ॒गु॒वच्छुचि॑मप्न॒वान॒वदा हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥४॥

भा०—(समुद्र-वाससम्) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाले (और्व-भृगुवत्) भूमि के भीतर सब पदार्थों को भर्जन करने वा परिपाक करने वाले तेज से युक्त और (शुचिम्) शुद्ध, पवित्र (अप्नवानवत्) जल के जाल से युक्त (अग्निम्) अग्नि के तुल्य बलवान् मैं भी (समुद्र-वाससम्) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभुरूप (अग्निं) अग्नि, ज्ञानमय तेजस्वी को (और्व-भृगुवत्) भूमि के समस्त पदार्थों को संतप्त करने और परिपाक करने के सामर्थ्य से युक्त सूर्यवत् (शुचिम्) शुद्ध-पवित्र और (अप्नवानवत्) सुख प्राप्त करने के समस्त साधनों वाले सामर्थ्य से युक्त उस प्रभु को (आ हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं । उसी की प्रार्थना करता हूं ।

'अप्नवानवत्'—अप्न इति रूप नाम, अपत्यनाम, पदनाम च । आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । अप्नः । अपः । आपः । उणादि० ॥ आप्यते सुखं येन तत् अप्नः, अपत्यं सुकर्म वा ।

अथवा—(१) अग्नि कैसा है (और्व-भृगुवत्) भूमि के समान अर्थात् जो उसमें पड़ता निमग्न हो जाता है इसी प्रकार प्रभु और विद्वान् भी है जो उसके पास हो वह उसमें ही निमग्न होता है ।

(२) (अप्नवानवत्) अग्नि कैसा ? रूप जाल से युक्त, तेजोरूप, विद्वान् । गृहपति कैसा ? अपत्य पुत्र, शिष्यादि गण से युक्त, सुखद वा सुकर्मों से युक्त। पुण्यवान् प्रभु कैसा ? सुखप्रद ऐश्वर्यों से युक्त, वा जीवादि पुत्रों से युक्त ।

हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्यं॒ सहः॑ ।
अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(समुद्र-वाससम् अग्निम्) समुद्र के गर्भ में विद्यमान

आग (वातस्वनः पर्जन्य-क्रन्द्यं) जिस प्रकार प्रचण्ड वात वा शब्दकारी मेघ के समान गर्जन करने वाला होता है उसी प्रकार (समुद्र-वाससम्) महान् आकाश में व्यापक, (वात-स्वनं) प्राण, वायु आदि द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने वाले (कविं) क्रान्तदर्शी, (पर्जन्य-क्रन्द्यं) सब मेघों को भी गर्जन कराने वाले विद्युत् के समान वा सबका उत्पादक पिता कहाने योग्य, सब रसों और बलों का आश्रय कहाने योग्य (सहः) सब कुछ सहने वाले, सब के वशयिता, (कविं) विद्वान् क्रान्तदर्शी अन्तर्यामी प्रभु को (हुवे) स्मरण करता हूं ।

(पर्जन्य-क्रन्द्यं) पर्जन्यः जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम् । निरुक्त० ॥ विद्वान्, वक्ता भी वात और मेघ के समान गंभीर ध्वनि वाले वा मेघ के समान भोजनादि से तृप्तिदायक, शत्रुओं के जेता कहाने योग्य हो । इति नवमो वर्गः ॥

आ स॒वं स॑वि॒तुर्य॑था॒ भग॑स्येव भु॒जिं हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ६

भा०—(सवितुः सवं यथा) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य का प्रकाश करने वाले और (भगस्य इव भुजिं) ऐश्वर्य के भोक्ता या पालक राजा के समान तेजस्वी, (समुद्र-वाससं अग्निं) वड़वानल के समान विशाल आकाश में व्यापक वा जगत् भर को समुद्रवत् आच्छादित करने वाले (अग्निम्) तेजोमय परमेश्वर की (हुवे) स्तुति करता हूं । इसी प्रकार राजा वा विद्वान् 'समुद्रवासाः' अर्थात् समुद्र के समान प्रजाओं का आच्छादित करने वाला रक्षक होता है ।

अ॒ग्निं वो॑ वृ॒धन्त॑मध्व॒राणां॑ पुरू॒तम॑म् ।
अच्छा॒ नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ ७ ॥

भा०—(वः वृधन्तम्) आप सब मनुष्यों को बढ़ाने वाले, (अध्वराणां) यज्ञों, अविनाशी पदार्थों के बीच में (पुरु-तमम्) सबसे बड़े पालक पोषक, (अग्नि) प्रकाशस्वरूप को मैं (हुवे) पुकारता हूं (नप्त्रे)

सबको अपने साथ प्रेम से बांधने वाले और (सहस्वते) बलवान् प्रभु को प्राप्त करने के लिये मैं (अच्छ हुवे) साक्षात् उस की स्तुति करता हूं।

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव आभुवत्) बढ़ई जिस प्रकार छील छाल कर बनाने योग्य पदार्थों को बनाने में समर्थ होता है उसी प्रकार (अयं) यह प्रभु भी (त्वष्टा) सब जगत् का बनाने वाला, तेजस्वी (नः आभुवत्) हमें भी बनाता है। (अस्य यशस्वतः क्रत्वा) इसी बल, कीर्त्ति वाले प्रभु के ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से हम भी बलयुक्त, ज्ञानवान् यशस्वी हों।

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (देवेषु) सब भूतों के बीच में (श्रियः अभि पत्यते) समस्त शोभाओं, कान्तियों को धारण करता है उसी प्रकार यह (अग्निः) ज्ञानी, नायक, स्वामी, प्रभु (विश्वाः श्रियः) समस्त आश्रय लेने वालों का (अभि पत्यते) साक्षात् पालक होता है, और (देवेषु) सब दिव्य पदार्थों वा दाताओं में भी सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् होता है। वह (वाजैः) बलों, ज्ञानों, अन्नों, और ऐश्वर्यों सहित (उप गमत्) हमें प्राप्त हो।

विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम्।
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(विश्वेषाम् होतॄणाम्) सब दाताओं में से (यशस्तमं) सबसे अधिक यशस्वी, (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, सबसे पूर्ण, प्रभु की, (इह यज्ञेषु) यहां यज्ञों, सत्संगों में (स्तुहि) स्तुति कर। इति दशमो वर्गः ॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा। दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ११

भा०—(यः) जो (दीर्घश्रुत्-तमः) दीर्घ काल तक गुरु-मुखों से खूब श्रवण करने योग्य, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, प्रशंसनीय, (दमेषु) सब घरों में दीपक के समान, (आ दीदाय) सर्वत्र प्रकाशमान है, सब भुवनों में प्रकाश करता है, उस (शीरं) सर्वव्यापक (पावक-शोचिषं) अग्नि के समान पवित्रकारक ज्योति वाले प्रभु की यज्ञादि में स्तुति कर।

तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम्।
मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (विप्र) बुद्धिमान् मनुष्य! तू (तम्) उस (अर्वन्तम्) अश्व के समान (सानसिम्) जीवन मार्ग के परम सुखदायक, (शुष्मिणम्) उत्तम बलों से युक्त, (मित्रं) मित्र के समान (यातयत्-जनम्) समस्त मनुष्यों को प्रेम से प्रयत्न, उद्योग कराने वाले प्रभु की (गृणीहि) स्तुति कर।

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥

भा०——(हविष्कृतः) हवि, चरु आदि देने वाले यज्ञशील पुरुष की (गिरः) वाणियां (त्वा देदिशतीः) तेरा वर्णन करती हुई (जामयः) बन्धु भगिनियों के समान (वायोः अनीके) वायु के समीप अग्निवत्, प्राणों के बल पर (त्वा अस्थिरन्) तुझको हृदय में स्थिर भाव से जागृत कर देती हैं। भगवत्-स्तुतियां ही परमेश्वर के भाव को हृदय में दृढ़ करती हैं।

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥

भा—जिस प्रकार अग्नि तत्व के लिये (त्रिधातु बर्हिः) तीनों प्रकार

के लोक आश्रय है, उसी प्रकार (त्रिधातु) तीनों प्रकार के (अवृतं) क्रिया रहित (बर्हिः) लोक (असंदिनम्) असम्बद्ध होकर (यस्य) जिसके आश्रय पर क्रियावान् और सम्बद्ध हैं और जिसमें (आपः चित्) समस्त प्रकृति आदि पदार्थ और जीवगण, प्रजावत् (पदं नि दध) स्थिति प्राप्त करते हैं उसको तू हृदय में स्थान दे।

पदं देवस्य मीह्लुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(मीढुषः देवस्य) सब सुखों के वर्षक, सब सुखों के दाता, सब ज्ञानों और लोकों के प्रकाशक प्रभु का (पदं) स्वरूप (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) किसी से न पराजित होने वाली रक्षाकारिणी सेनाओं से राजा के पद के समान, अधर्षणीय शक्तियों से युक्त है। वह स्वयं भी (सूर्यः इव) सूर्य के समान (भद्रा) कल्याणकारक (उपदृक्) समीप स्थित देखने वाली चक्षु के समान सर्व ज्ञान का प्रकाशक है। इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (घृतस्य धीतिभिः) तेज की धारण शक्तियें (देवान्) किरणों को धारण करता और (तेपानः) तपता है और जिस प्रकार घृत की आहुतियों से अग्नि (देवान्) सुगन्ध दान आदि गुणों को धारण करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (देव) ज्ञान आदि के दातः! (तेपानः) तप करता हुआ तू (शोचिषा) तेज से (घृतस्य धीतिभिः) ज्ञान की वाणियों द्वारा (देवान्) ज्ञान के इच्छुक शिष्य जनों के प्रति (आ वक्षि) ज्ञान करा प्रवचन कर और (यक्षि च) उनको ज्ञान का दान दे, उनसे सत्संग कर।

तं त्वांजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः।
हव्यवाहममर्त्यम् ॥ १७ ॥

भा०—(तं त्वा) उस तुझ को (मातरः देवासः) विद्वान् जन माता के तुल्य (कविं अजनन्त) कविवत् क्रान्तदर्शी रूप से प्रकट करते हैं। और (हव्यवाहं) ग्राह्य ज्ञान-वचनों को धारण करने वाले (अमर्त्यम्) अमरणशील तुझ को वे (मातरः अजनन्त) माता के समान उत्पन्न करते हैं।

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम्।
हव्यवाहं निषेदिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (कवे) दीर्घदर्शन, उपदेष्टा ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (प्रचेतसं) उत्तम ज्ञान वाले, (दूतं) उत्तम ज्ञान देने वाले (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (हव्यवाहं) उत्तम वचन श्रवण करने वाले (त्वा) तुझ को आदरपूर्वक निषेदिरे आसन पर बैठाते हैं।

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति।
अथैतादृग्भरामि ते ॥ १९ ॥

भा०—(मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे पास में, कभी न मारने योग्य अघ्न्या गौ भी नहीं, और (न) नहीं (स्वधितिः) कुल्हाड़ी काष्ठ (वनन्वति) काटती है, तो भी (एतादृग्) ऐसा (ते) तेरे निमित्त (भरामि) लाया हूं। तू इसे ही स्वीकार कर। अर्थात् हे पूज्यवर ! न तो मेरे पास दुग्ध देने वाली यज्ञ करने को गौ है, न काष्ठों को काटने की कुल्हाड़ी है, मैं यज्ञ के स्थूल साधन उपस्थित नहीं कर सकता तो भी भगवन् ! भावनामय यज्ञ के साधन उपस्थित हैं यह चितिशक्ति अविनाशिनी होने से 'अघ्न्या' और यही 'स्व' आत्म रूप से धारण करने योग्य 'स्वधिति' है। यही तेरे प्रति उपहार रूप मैं देता हूं। इसी से तू प्रसन्न हो।

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २० ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (यत्) जो हम (कानि कानिचित्) कई २ प्रकार के (दारूणि) नाना काष्ठ (आदध्मसि) आधान करते हैं हे (यविष्ठ्य) सर्वशक्तिमन् ! तू (ता) उन २ को (जुषस्व) स्वीकार कर। जैसे अग्नि परशु से काटी हुई, छोटी २ समिधाओं को सुगमता से जला देता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत आत्माओं को सहज ही ज्ञानवान् कर देता है, परन्तु यहां उसके पास सभी प्रकार के ('दारु' = धारु अर्थात् वत्स) बालक आवेंगे उनको विद्वान् गुरु प्रेमपूर्वक स्वीकार कर विद्या से उज्ज्वल करे ।

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥ २१ ॥

भा०—(यद् उपजिह्विका अत्ति) जिस को दीमक खा जाती है और (यद् वम्रः अति सर्पति) जिसको वल्मीक लग जाता है वह काष्ठ भी अग्नि में पड़कर (घृतम् अस्तु) चमकने लगने लगता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! (यत्) जिस बालक को (उपजिह्विका) जीभ की चञ्चल प्रकृति (अत्ति) लग जाती है और (यद् वम्रः) वमनशील होकर जो पढ़े ग्रन्थ भूल जाय, ऐसा विद्यार्थी (अतिसर्पति) बहुत अवारा घूमता है (तत् सर्वं) वह सब भी (ते) तेरे समीप आकर तेरे लिये (घृतम् अस्तु) घृत के समान ज्ञान दीप्ति का साधन हो जाता है। (२) अथवा—हे प्रभो ! जो भी (उप-जिह्विका) वाणी प्राप्त कर लेती है, और जो (वम्रः) मन में आये ज्ञान को उगल देने वाला, अन्यों को उपदेष्टा जन तेरे पास आ जाता है वह सब तेरी ज्ञानदीप्ति वा स्नेह का पात्र हो।

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ २२ ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निम् इन्धानः मर्त्यः) अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ मनुष्य (मनसा धियं सचेत) मन से वा ज्ञान से (धियं) बुद्धि वा कर्म को युक्त करे। इसी प्रकार मनुष्य (विवस्वभिः) विद्वानों द्वारा भी (अग्निम् इधे) उस ज्ञानवान् प्रभु को अपने हृदय में प्रज्वलित करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०३]

सोभरिः काण्व ऋषिः॥ १—१३ अग्निः। १४ अग्निर्मरुतश्च देवताः॥ छन्दः—१, ३, १३, विराड् बृहती। २ निचृद् बृहती। ४ बृहती। ६ आर्ची स्वराड् बृहती। ७, ९ स्वराड् बृहती। ५ पंक्तिः। ११ निचृत् पंक्तिः। १० आर्ची भुरिग् गायत्री। ८ निचृदुष्णिक्। १२ विराडुष्णिक्॥

अद॑र्शि गातु॒वित्त॑मो॒ यस्मि॑न्व्र॒तान्या॑द॒धुः।
उपो॒ षु जा॒तमार्य॑स्य॒ वर्ध॑नम॒ग्निं न॑क्षन्त नो॒ गिरः॑॥ १॥

भा०—(गातुवित्-तमः) मार्ग, वाणी, ज्ञान आदि को जानने और अन्यों को जनाने हारा, भूमि को सूर्यवत् वेद वाणी को भली प्रकार प्रकाशित करने वाला प्रभु, गुरु (अदर्शि) सब को दर्शन करने योग्य है। (यस्मिन्) जिस के आश्रय या अधीन रहकर सब (व्रतानि आदधुः) व्रतों को धारण करते हैं। (आर्यस्य वर्धनम्) श्रेष्ठ जनों को बढ़ाने वाले (जातम्) सब को प्रकट, विदित, प्रसिद्ध (अग्निम्) पूज्य, तेजस्वी, ज्ञाता, ज्ञापक प्रभु, सर्व गुरु को (नः गिरः उपो सु नक्षन्त) हमारी स्तुति वाणियां अच्छी प्रकार प्राप्त हों।

प्र दैवो॑दासो अ॒ग्निर्दे॒वाँ अच्छा॒ न म॒ज्मना॑।
अनु॑ मा॒तरं॑ पृथि॒वीं वि वा॑वृते त॒स्थौ नाक॑स्य॒ सान॑वि॥२॥

भा०—(दैवः-दासः = दिवः-दासः) तेज वा प्रकाश देने वाले सूर्य की

(अग्निः) अग्नि (देवान्) अपने किरणों वा प्रकाशों को (मातरं पृथिवीं अनु) सब जननी माता पृथिवी की (अच्छ) ओर (मज्मना न प्र वावृते) मानो बड़े बल से भेजता है, और (पृथिवी मातरम् अनु) उत्पादक माता भूमि के रचनादि के अनुसार (वि वावृते) उस में विविध कार्य करता है। वह पत्रों को हरा, पुष्पों का नाना रंगों का, जड़ों को स्थूल दृढ़ इत्यादि जंगम स्थावरादि संसार को अद्भुत प्रकार से परिणत करता, नाना ऋतु आदि को प्रवृत्त कराता है। वह स्वयं (नाकस्य सानवि) आकाश के उच्च भाग पर (तस्थौ) स्थिर रहता है। उसी प्रकार वह सर्वज्ञ प्रभु भी (नाकस्य सानवि) सुख आनन्दमय दशा में स्थिर है, तो भी मातृवत् जननी विस्तृत प्रकृति को बहुत भारी बल से नहीं चलाता प्रत्युत बड़े अनायास ही उस में (प्र वावृते) प्रथम स्पन्द उत्पन्न करता है और (अनु वि वावृते) अनन्तर उसी प्रकृति को त्रिविध रूपों में बनाकर जगत् रूप से बदल देता है। यही उसका वास्तविक 'विवर्त्त' है। न कि नवीन-वेदान्तसम्मत ब्रह्म का ही विकार। वह अग्नि परमेश्वर 'दैवोदासः' है (दिवः सूर्यादयो दासा इव यस्य) समस्त सूर्य आदि लोक उस के दास के समान हैं।

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ३ ॥

भा०—(चर्कृत्यानि कृण्वतः यस्मात्) अपने अवश्य कर्त्तव्य, सर्ग, स्थिति, प्रलय वा मृत्यु आदि नाना कर्मों के सम्पादन करते हुए जिस से (कृष्टयः) समस्त मनुष्य मानो अपने देह में कर्म बीज की कृषि करते और कर्मफल का संचय और उपभोग करते हुए समस्त जीव गण (रेजन्ते) श्रमपूर्वक कांपते और सञ्चालित होते हैं मानो उस (मेधसातौ इव) पवित्र अन्नवत् अवश्य प्राप्य फल प्राप्त करने के काल में (सहस्र-सां) एक सत् बीज का सहस्रों गुणा फल देने वाले (अग्निं) उस परम ज्ञानी

पूज्य प्रभु की (धीभिः सपर्यत) उत्तम कर्मों और ज्ञानों, स्तुतियों से शुश्रूषा किया करो।

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सब जगत् के रक्षक, आच्छादक, सब में बसने वाले सर्वव्यापक ! (यं) जिस को तू (राये निनीषसि) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग से ले जाता है, और (यः मर्त्तः ते दाशत्) जो देहधारी मरणशील जीव अपने को तुझे सौंप देता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! सब के अग्रनायक ! मार्गप्रकाशक ज्योतिर्मय ! (सः) वह (त्मना) अपने आप, (उक्थ-शंसिनम्) उत्तम वेद वचनों के वक्ता (सहस्र-पोषिणं) सहस्रों के पोषक (वीरं) वीर पुत्र, एवं विविध विद्योपदेष्टा, तुम को (धत्ते) अपने हृदय से धारण करता है।

स दृळहे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वही पुरुष जो अपने आप को तुझ पर वार देता है, (दृढे चित्) दृढ़ शत्रु पर भी वाजं (अर्वता) अपने बल से (अभि वाजं) संग्राम में (तृणत्ति) शत्रु का नाश करता है, (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश, ऐश्वर्य अन्न, ज्ञान धारण करता है। हे (पुरु-वसो) बहुत से धन के स्वामिन् ! (त्वे देवत्रा) तुझ परम दानी के आश्रय हम भी (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त उत्तम २ धन प्राप्त करें।

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वा वसु दयते) समस्त जीव गणों को

रक्षा करता है, जो समस्त प्राणिसमूह पर दया कृपा करता, और उन को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (होता) सब से बड़ा दानी, (जनानां आनन्दः) उत्पन्न जनों को आनन्द देने वाला है। (अस्मै अग्नये) उस ज्ञानमय, पूज्य के लिये (मधोः पात्रा न प्रथमानि) अन्न जल या मधुर पदार्थ से पूर्ण पात्रों के समान सर्वश्रेष्ठ (स्तोमाः प्रयन्ति) उत्तम स्तुति, मन्त्र बड़े आदर पूर्वक हृदय से बाहर आते हैं।

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(रथ्यम् अश्वम्) रथ योग्य उत्तम अश्व के समान देह के भोक्ता आत्मा को (सुदानवः) उत्तम दानशील, (देवयवः) देव, प्रभु के उपासक, परमेश्वर को चाहने वाले लोग (मर्मृज्यन्ते) सदा स्वच्छ करते रहते हैं, उस को अपने हृदय में चमकाते रहते हैं। हे (विश्पते) समस्त प्रजाओं के पालक ! (हे दस्म) दर्शनीय ! दरिद्रादि कष्टों के काटने हारे ! (उभे तोके तनये) दोनों, पुत्र पौत्रादि के पालनार्थ (मघोनां राधः पर्षि) धनवानों का धन प्रदान कर।

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ ८ ॥

भा०—हे (उप-स्तुतासः) उपासक स्तुतिकर्त्ता जनो ! आप लोग (मंहिष्ठाय) अति दानशील, (बृहते) महान् (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेजःस्वरूप (अग्नये) ज्ञानवान् सर्वपूज्य सर्वव्यापक (ऋताव्ने) सत्य ज्ञानमय प्रभु की (प्र गायत) उत्तम स्तुति करो।

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥

भा०—(मघवा) पूजित ऐश्वर्य युक्त, (द्युम्नी) तेजस्वी, प्रभु (आहुतः) आदरपूर्वक प्रार्थित और (समिद्धः) हृदय में सुप्रकाशित होकर (वीरवत् यशः आ वंसते) पुत्रोंसे युक्त अन्न, यश आदि सब प्रकार से प्रदान करता है। (अस्य कुवित् सुमतिः) इस की बहुत उत्तम मति (नवीयसी) उत्तम उपदेशदात्री, (वाजेभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (नः अच्छ आगमत्) हमें भली प्रकार प्राप्त हो।

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम्।
अग्निं रथानां यमम् ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (आसाव) आदरपूर्वक स्तुति करने हारे, अग्नि आदि के उत्पन्न करने में समर्थ ज्ञानवन्! तू (प्रियाणां प्रेष्ठम्) प्रियों में सर्व प्रिय, (अतिथिम्) सब से ऊपर विद्यमान, सर्वपूज्य, (रथानाम् यमम्) रथों के नियामक विद्युत् के समान सब देहों में वा सूर्यादि लोकों के नियन्ता (अग्निं) तेजस्वी संञ्चालक आत्मा की (स्तुहि) स्तुति, उपदेश कर।

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञियः) पूजने योग्य स्वामी, (उदिता) उन्नत और (निदिता) निन्दित अच्छे और बुरे सब का (वेदिता) ज्ञान कराने वाला होकर, (वसु आववर्तति) नाना ऐश्वर्य सर्वत्र प्रदान करता है, वा प्राणि जन को चलाता है। (धिया) ज्ञानपूर्वक, कर्मानुसार (वाजं सिषासतः) ऐश्वर्य, ज्ञान बल वेगादि को सब में विभक्त करने वाले (यस्य) जिस के (ऊर्मयः) शासन (प्रवणे उर्मयः न) नीचे की ओर जाते हुए बृहत् जल व रंगों के (दुस्तराः) अपार हैं, उसका उल्लेख नहीं किया जा सकता।

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (सु-होता) सुख देने वाला, उत्तम दानी, (सु अध्वरः) उत्तम मार्गप्रद, हिंसा से रहित दयालु है, वह (अतिथिः) सर्वोपरि पूज्य (वसुः) सब में बसा, (अग्निः) ज्ञानी, सर्वप्रकाशक, सन्मार्ग में प्रवर्त्तक है (एषः) वह (पुरु-प्रशस्तः) बहुत ही स्तुति करने योग्य सर्वश्रेष्ठ है ।।

मोते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।
कीरिश्चिद्धि त्वमीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वसो) सब में बसे ! सब को बसाने हारे ! (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशक ! (ये) जो (अच्छोक्तिभिः) उत्तम वचनों और (केभिः-चित् एवैः) किसी प्रकार के भी उत्तम साधनों से (त्वाम्) तेरी उपासना करते हैं (ते मो रिषन्) वे कभी पीड़ित नहीं होते । (कीरिः चित् हि) उत्तम स्तुति करने हारा ही (दूत्याय) तेरे स्तुति कर्म के लिये (रात-हव्यः सु-अध्वरः) अन्नादि चरु देता और उत्तम यज्ञ करता हुआ (त्वाम् ईडे) तेरी उपासना किया करता है ।

आग्ने याहि मुरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! सर्वपूज्य ! तू (मरुत्सखा) विद्वान् जनों का मित्र होकर (रुद्रेभिः) दुष्टों को रुलाने वाले और समस्त प्रजाओं के दुःखों को दूर करने वाले, वायु जलादि पदार्थों द्वारा (सोम-पीतये) उत्तम आनन्द रस, अन्न, ऐश्वर्यादि कर्म फलों का उपभोग पानादि कराने वा उत्पन्न जगत् का पालन करने के लिये (आ याहि) तू हमें प्राप्त

हो और (सोभर्याः) उत्तम पूजा-अर्चना करने वाले जन की (स्वः-नरे) सब के नायक तुझ में प्रयुक्त (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को श्रवण कर। (उप मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हो, सब को प्रसन्न कर।

प्रसीद देवेश जगन्निवास । गीता ॥

इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले दशमोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रागाथमष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति श्री-विद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थ-विरुदोपशोभित-श्रीपण्डित जयदेवशर्मणा विरचिते ऋग्वेदाऽऽलोकभाष्येऽष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(षष्ठ खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य-मण्डल, लिमिटेड्, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २००० | सं० १९९२ वि० | मूल्य ४) रुपये

मुद्रकः—
दी फाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर.

ऋग्वेद-विषय-सूची

षष्ठेऽष्टके सप्तमेऽध्याये षोडशो वर्गः ।

नवमे मण्डले प्रथमसूक्तादारभ्य

सू० [१]—यहां से पावमान सौम्य नवम मण्डल प्रारम्भ होता है । सोम पवमान का वर्णन । बालक के समान विद्या के गर्भ से विद्या-निष्णात उत्पन्न शिष्य का वर्णन । सोम और इन्द्र के अनेक सम्बन्ध । सोम-जीव, नव ब्रह्मचारी, वर, उत्तम सुख, राजा, आदि का वर्णन । (२) सभापति सोम । पक्षान्तर में सोम ओषधि के गुण । सोम के कर्त्तव्य । उसके अनेक रूप । (६) सोम-विद्यार्थी, सूर्यदुहिता विद्या । (७) सोम सेनापति, स्वसा सेना । अध्यात्म में, दश योषा दश इन्द्रियें । (८) ऐश्वर्य-भाजन सोम गो-वत्सवत् गुरु शिष्य का वर्णन और । राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य । शूर इन्द्र के कर्त्तव्य ॥ (पृ० १-५)

सू० [२]—सोम पवमान । गुरु-शुश्रूषु ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में राजा वा अध्यक्ष शासकों के कर्त्तव्यों का वर्णन । ओषधिवत् मधुर, प्रिय होने का उपदेश । (४) नदी और समुद्रों के तुल्य विद्या-वाणियों से शासक वा विद्वान् की शोभा । (५) समुद्रवत् अध्यक्ष का वर्णन । (६) न्याय शासक के कर्त्तव्य । (८-१०) ऐश्वर्यवान् प्रभु से प्रार्थनाएं, स्तुतिएं । (पृ० ५-८)

सू० [३]—साम पवमान। विजिगीपु राजा सोम। उसके कर्त्तव्य। उसका अभिषेक। (५) उसका कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य। (६) अभिषेक होने का अन्य अभिप्राय। सोम सवन विधि मे राज्याभिषेक के कर्त्तव्यों की सूचना। (७) राजा का प्रयाण, विजय और अभिषेक प्राप्ति। (१०) शासन का पवित्र कार्य। दण्डधारा और खड्गधारा दोनों का समान उपयोग। पक्षान्तर मे राजहंसवत् पक्षी के तुल्य आत्मगति का वर्णन। इस पक्ष मे सुपर्ण-आत्मा, द्रोण जलकुण्ड, उसकी विद्या से शुद्धि, उसका सन्यास-मार्ग। और आत्मा का लिङ्गशरीर मे विचरण और मुक्तिमार्ग का अनुधावन। (पृ०८–१२)

सू० [४]—पवमान सोम। राजा से जैसे वैसे प्रभु से प्रजा की प्रार्थना। (२) राजा वा शासक के कर्त्तव्य, प्रजा के बल की वृद्धि, ज्ञानवृद्धि और दुष्ट दमन। (४) ईश्वरप्राप्ति, राज्यपद, प्राप्ति के लिये अभिषेक, (६) उससे उत्तम प्रार्थनाएं। दीर्घजीवन, ज्योति-दर्शन की प्रार्थना। (७) राजा को ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। (९) प्रजाओ का राजा को बढ़ाने का उपदेश। (पृ० १२–१५)

सू०[५]—पवमानसोम। प्रजा प्रिय उत्तम राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् राजा और परमेश्वर वा प्रभुपरक योजना। बलीवर्द और अग्नि के दृष्टान्त से राजा के अनेक कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) प्रजानुरंजक राजा। (४) कुशाओं के तुल्य शत्रु के उच्छेदन का कार्य। (४)द्वारों के तुल्य सेनाओं के कर्त्तव्य। (६) रात्रिदिनवत् स्त्री पुरुषो के प्रति सूर्यवत् अभिषिक्त राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा का वैश्य वर्ग को अपनाना (८) भारती, सरस्वती, इडा इन तीन देवियों का वर्णन। ये प्रजा के तीन वर्ग हैं। (९) सूर्य के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। इन्दु, इन्द्र, हरि, पवमान, प्रजापति आदि इन नामो का स्पष्टीकरण। परमेश्वर के प्रति इन विशेषणों की योजना। (१०) हरे वृक्ष के

तुल्य राजा का राष्ट्र-सेचन करने का कर्त्तव्य। (११) तेजस्वी जनों की अभिषिक्त राजा से मान प्राप्ति। (पृ० १५–१९)

सू० [६]—पवमान सोम। राजाके कर्त्तव्य। राष्ट्र में सब ओर वीरों का प्रेषण। (२) पद वा राज्यासन की जिम्मेवारी। (४) उसको निभाने का उपदेश। (५) बलशाली वीरों का जलधाराओं के समान कर्त्तव्य। समस्तप्रजाओं का राज्याभिषेक में योग। (६) राजा का अध्यक्ष-स्थापन। (६) अभिषेक योग्य पुरुष की योग्यता। (८) अभिषिक्त का कर्त्तव्य। वेदानुसार कर्त्तव्य पालन। (पृ० १९–२२)

सू० [७]—पवमान सोम। उत्तम जनों का धर्म नियमों का निर्माण और अनुवर्त्तन। (२) राजा का सत् शिक्षण और आवश्यक स्वाध्याय। (३) सर्वश्रेष्ठ शासन कार्य। (४) विद्वानों का अन्यों के प्रति कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्यार्थी के उद्देश्य और कर्त्तव्य। (५) सन्मार्ग में प्रेरित राजा का दुष्टदमन का कार्य। (६) सन्मार्गोपदेशक राजा। (७) राजा कैसे प्रसन्न हो। (८) उत्तम उपदेशों का सत् फल। (९) शास्य शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० २२–२५)

सू० [८]—पवमान सोम। अनेक पदों पर अभिषिक्त शासक जनों के कर्त्तव्य। (२) सेना के अनेक अध्यक्षों के दो प्रधान नायकों के प्रति कर्त्तव्य। (३) अध्यक्ष की योग्य पद पर स्थिति (४) सातों प्रकृतियों द्वारा अभिषेक। (५) प्रजाजन के मुख्य राजा के प्रति कर्त्तव्य, उसका रक्षण। (६) अभिषिक्त का उत्तम राजसी वस्त्र धारण। (७) उत्तम अध्यक्षों की नियुक्ति कर दुष्टों का दमन। (८) मेघवत् सुख वर्षाने का राजा का कर्त्तव्य। (९) उत्तम सन्तति, प्रजा और अन्नादि की रक्षार्थ के राजा की आवश्यकता। (पृ० २५–२८)

सू० [९]—पवमान सोम। अभिषेक योग्य पुरुष के गुण। (२) सत् नीति से वर्तने का उपदेश। (३) मा बाप के बीच में पुत्र के तुल्य

अभिषेक के साथ ऐश्वर्य प्राप्ति। (६) समुद्र और मेघ के तुल्य शास्य-शासकों के कर्त्तव्य, प्रजा के बल, ज्ञान की उन्नति। (८) विद्यार्थीवत् अभिषिक्त पदाधिकारी को आगे बढ़ने का उपदेश। (९) वह ऐश्वर्य को धारण करे। (पृ० ३७—४०)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१३] पवमान सोम। विद्यास्नातक का वर्णन। (२) विद्वान् का अध्यक्ष पद पर स्थापन। (३) विद्वानों का पवित्र कर्त्तव्य सर्व-साधारण को उपदेश करना। (४) राजा से फल प्राप्त करने की प्रार्थना। (५) अध्यक्ष प्रजा को सम्पन्न करे। (६) तीव्रवेग अश्वों के समान वीरों, विद्वानों का कर्त्तव्य। (७) माता और बच्चे के दृष्टान्त से अध्यक्षों का प्रजा के प्रति रक्षा का कर्त्तव्य। (८) अध्यक्ष का दुष्टदमन करने का कर्त्तव्य। (पृ० ४०—४३)

सू० [१४]—पवमान सोम। तरङ्गस्थ पुरुष के दृष्टान्त से अध्यक्ष की उन्नत पद प्राप्ति। (२) पांचों जन-संघों से अध्यक्ष का प्रस्ताव समर्थन। (३) उसके अभिषेक में सब की प्रसन्नता। (४) राजा का देश को निष्कण्टक करने का कार्य। (५) सूर्यवत् तेजस्वी का अभिषेक और उसकी शुभ्र कीर्त्ति। (६) उसकी लोकप्रिय प्रकृति। (७) उसके अधीन प्रबल सेना और वीर पुरुष। (८) प्रजा की शासक के प्रति स्वीकृति। (पृ० ४३—४६)

सू० [१५]—पवमान सोम। राजा का आगे उन्नति-पथ में प्रयाण। (२) उसका लोक हितार्थ कार्य। (३) राजा को सद् शिक्षण। यूथपति नर वृष के समान सदा सैन्यबल रखने का उपदेश। (५)

राजा के कर्त्तव्य । (४) समुद्रवत् राजा के कर्त्तव्य । (५) राजा को आवश्यक नियुक्ति, उसका महान् कार्य । (६) सात प्राणो मे आत्मा के तुल्य प्रकृतियो मे राजा की स्थिति । (७) युद्धादि में राजा का प्रजा-रक्षण का कर्त्तव्य । अध्यात्म मे आत्मा का वर्णन । (८) राजा का प्रजाशिक्षण का कर्त्तव्य । (९) राजा दानशील हो । (पृ० २८–३१)

सू० [१०] पवमान सोम । स्नातको और नवाभिषिक्त शासको को उपदेश । (२) शिल्पियो के हाथो मे रथो के समान श्रमियो के आश्रय शासको की स्थिति । (३) नवाभिषिक्तो के कर्त्तव्य । (४) विद्वान् उपदेशको का सर्वत्र विचरण । (५) सूर्यवत् राजा की स्थिति, किरणो के तुल्य उसके अधीन शासक प्रजा रक्षक आदि । राजा की विभूति । (६) विद्वानो का कर्त्तव्य । प्रभु वाणी के ज्ञान का प्रसार । (७) विद्वत्-संघ बनाने का उपदेश । (८) नयनो के आश्रय रूप सूर्य के तुल्य अध्यक्ष की स्थिति । (९) ज्ञानी की दीर्घदर्शिता । (पृ० ३१–३४)

सू० [११]—पवमान सोम । तेजस्वी पुरुष की गुण स्तुति । (२) विद्वानो का राजशक्ति से सहयोग । उसका उत्तम फल । (३) राजा वा प्रभु से सर्वपदार्थों से शक्ति प्राप्ति की कामना । (४) विद्वान की वाणी का आदर । (५) योग्य पुरुष का अभिषेक (६) सोमाभिषव और सोम-सवन, तथा उत्तम अध्यक्ष का आश्रय ग्रहण । (७) अध्यक्ष का कर्त्तव्य, दुष्ट-दमन कर प्रजा मे शान्ति स्थापन । (८) प्रजा पालनार्थ अध्यक्ष का स्थापन । (९) अध्यक्ष प्रजा को उत्तम ऐश्वर्य और दृढ़ सहयोग दे । (पृ० ३४–३७)

सू० [१२]—पवमान सोम । आचार्य-कुल मे विद्या निष्णात शिष्य और न्याय शासन मे अध्यक्ष सोम-पुरुषो का स्थापन । (२) माता और वत्सवत् शिष्य जनो का गुरु जनो से सम्बन्ध । (३) विद्वान् शिष्य के तुल्य नवाध्यक्ष का नवाभिषेक । उसी के सदृश उसकी प्रतिष्ठा । (५)

अभिषेक के साथ ऐश्वर्य प्राप्ति। (६) समुद्र और मेघ के तुल्य शास्य-शासकों के कर्त्तव्य, प्रजा के बल, ज्ञान की उन्नति। (८) विद्यार्थीवत् अभिषिक्त पदाधिकारी को आगे बढ़ने का उपदेश। (९) वह ऐश्वर्य को धारण करे। (पृ० ३७–४०)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१३] पवमान सोम। विद्यास्नातक का वर्णन। (२) विद्वान् का अध्यक्ष पद पर स्थापन। (३) विद्वानों का पवित्र कर्त्तव्य सर्व-साधारण को उपदेश करना। (४) राजा से फल प्राप्त करने की प्रार्थना। (५) अध्यक्ष प्रजा को सम्पन्न करे। (६) तीव्रवेग अश्वों के समान वीरों, विद्वानों का कर्त्तव्य। (७) माता और बच्चे के दृष्टान्त से अध्यक्षों का प्रजा के प्रति रक्षा का कर्त्तव्य। (८) अध्यक्ष का दुष्टदमन करने का कर्त्तव्य। (पृ० ४०–४३)

सू० [१४]—पवमान सोम। तरङ्गस्थ पुरुष के दृष्टान्त से अध्यक्ष की उन्नत पद प्राप्ति। (२) पांचों जन-संघों से अध्यक्ष का प्रस्ताव समर्थन। (३) उसके अभिषेक में सब की प्रसन्नता। (४) राजा का देश को निष्कण्टक करने का कार्य। (५) सूर्यवत् तेजस्वी का अभिषेक और उसकी शुभ्र कीर्त्ति। (६) उसकी लोकप्रिय प्रकृति। (७) उसके अधीन प्रबल सेना और वीर पुरुष। (८) प्रजा की शासक के प्रति स्वीकृति। (पृ० ४३–४६)

सू० [१५]—पवमान सोम। राजा का आगे उन्नति-पथ में प्रयाण। (२) उसका लोक हितार्थ कार्य। (३) राजा को सत् शिक्षण। यूथपति नर वृष के समान सदा सैन्यबल रखने का उपदेश। (५)

सुसज्जित सेनापति का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (७, ८) वीर का अभिषेक। (पृ० ४६–४८)

सू० [१६]—पवमान सोम। अभिषेक करने का मुख्य प्रयोजन, शत्रुओं के संघर्ष से विजय प्राप्ति। (२) अध्यक्ष का गुण दानशीलता (३) शासक के पवित्र पद के योग्य पुरुष के आवश्यक गुण, सर्वोपरि अजेय होना। (४) उसकी सभा-भवन में सभाध्यक्ष पर स्थिति। (५) राष्ट्रपति का आदर। (६) अध्यक्षपद का ग्रहण और (७) अधीन पर अनुशासन। (पृ० ४८–५०)

सू० [१७]—पवमान सोम। दुष्ट शत्रुओं के नाशकारी वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। उनके अदम्य तीव्र जलप्रवाहो के तुल्य वेग से आक्रमण और प्रयाण। (३) निष्णात पुरुष की पवित्र पद पर प्राप्ति। (४) अभिषेक योग्य पुरुष के समान देहो मे जीव की दशा। (५) देह मे आत्मा का शासन। (६) प्रभु की स्तुति। (७) उपासना। (८) ज्ञान की प्रार्थना। (पृ० ५०–५२)

सू० [१८]—पवमान सोम। सोम परमेश्वर का वर्णन। सर्व-धारक, सर्वपालक प्रभु। (३) सर्वरक्षक। (४) सब ऐश्वर्यों का स्वामी। (५) माता पितावत् प्रभु। (६) सर्वोपदेष्टा। (पृ० ५०–५५)

सू० [१९]—पवमान सोम। प्रभु से धनैश्वर्य की याचना। शक्ति वाले जीव और प्रभु। (२) प्रकृति का स्वामी प्रभु, सर्वोपदेष्टा प्रभु। (४) मेघ और भूमि के तुल्य प्रकृति परमेश्वर की जगत-सर्ग मे कारणता। (५) जगत्-सर्गकारी प्रभु ने प्रकृति को कैसे गर्भित किया। पक्षान्तर मे—गौ, सांड और राज प्रजा के व्यवहार का स्पष्टीकरण। (६,७) शत्रुनाश की प्रार्थना। (पृ० ५५–५८)

सू० [२०)—पवमान सोम। वीर पुरुष को उत्तम पद प्राप्ति।

(२) उसकी दानशीलता। (३) विद्वान् से ज्ञान की याचना। (४) अन्न-धन की प्रार्थना। (५) सन्मार्ग के नेता से उत्तम वाणियों की प्रार्थना। (६) सेनाध्यक्ष का वर्णन (७) अध्यक्ष का पवित्र पद। (पृ० ५८—६०)

सू० [२१]—पवमान सोम। सोम ईश्वर के भक्त जन। उनका योद्धाओं के समान उद्योग। (२) उनके गुण। (३) उनका प्रभु के प्रति विविध प्रस्थान। (४) अश्वों के समान उनकी आगे बढ़ कर ऐश्वर्य प्राप्ति। (५) वीरों से ऐश्वर्य की प्रार्थना। (६) ज्ञान के सञ्चय का आदेश। (७) साधक की ब्रह्मपद प्राप्ति (पृ० ६०—६२)

सू० [२२]—पवमान सोम। वीरों, विद्यार्थियों, विद्वानों का रथों के तुल्य उत्साहपूर्वक आगे बढ़ना। (२) वायुओं के समान उदार होना। (३) विद्वानों का ज्ञानपूर्वक कर्म करना। (४) उनका अनथक जीवन-मार्ग में चलना। (५) उनकी उत्तम पद प्राप्ति। (६) जीवों की नाना लोक तथा परम पद तक की गति। (७) सर्वसञ्चालक प्रभु। (पृ० ६२—६४)

सू० [२३]—पवमान सोम। विद्वानों, वीरों के समान जीवों की उत्पत्ति। (२) जीवों की सांसारिक मनुष्यों के समान उच्च नीच पद की प्राप्ति। मनुष्यों का अपने बीच तेजस्वी पुरुष को जन्म देना (३) ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना। (४) उपासकों का परमेश्वर की ओर गमन। (५) परमेश्वर का प्रभु पद। व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, जगत् का का सञ्चालक। (६) प्रभु के परम रसपान से प्राप्त जीव की बड़ी शक्ति। (पृ० ६४—६६)

सू० [२४]—पवमान सोम। परमेश्वर के भक्त साधकों की उन्नति की ओर गति। (२) जलधाराओं से उनकी उपमा। (३) वीर समान जीव को उन्नति पथ पर अग्रसर होने का उपदेश। विपथगामी

इन्द्रियों के जय का उपदेश। (४) परमेश्वर प्राप्ति का उपदेश। (६) आनन्दमय परम पावन प्रभु। (७) परमपावन, परम रक्षक प्रभु। सूक्त में एक सोम प्रभु और अनेक सोम जीवों का वर्णन। (पृ० ६६–६९)

सू० [२५]—सोम पवमान। सर्वदुःखहारी 'हरि' प्रभु से प्रार्थना। आत्मा, जीव और आत्मा प्रभु का वर्णन। (२) जीव का देह में आने का कारण। (३) सर्वश्रेष्ठ क्रान्तदर्शी व्यापक आत्मा। (४,६) साधनाओं के पश्चात् उपासक को मोक्षलोक की प्राप्ति। (पृ० ६९–७१)

सू० [२६]—पवमान सोम। परमेश्वर का अति सूक्ष्म बुद्धि से विचार विमर्श करने का उपदेश। (२) प्रभु की स्तुतिकारिणी वेदवाणियां। (३) धारणावती बुद्धि द्वारा भगवान् की प्राप्ति। (५) योग-समाधि द्वारा ज्योतिः स्वरूप प्रभु की प्राप्ति, साक्षात्कार। (६) उसी की उपासना, स्तुति, प्रार्थना आदि। (पृ० ७१–७२)

सू० [२७]—पवमान सोम। स्तुत्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषेक योग्य पुरुष के गुण। (३) उसका कर्त्तव्य। (४) उसका प्रभाव। (५,६) उसकी सूर्य के समान स्थिति। (पृ० ७२–७४)

सू० [२८]—पवमान सोम। मुख्य रक्षक पद के योग्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषेक योग्य के कर्त्तव्य। (३) उसका अभिषेक। (४,५) उसको ऐश्वर्य पद प्राप्ति, तेज और प्रभाव। (६) उसका कर्त्तव्य, दुष्टों का दमन। (पृ० ७४–७६)

सू० [२९] सोम पवमान। आत्मा की देह में राष्ट्र में राजा के समान स्थिति। (३) सातों प्राणों के स्वामी आत्मा की सातों प्रकृतियों के स्वामी राजा से तुलना। आत्मा 'सप्ति' का वर्णन। (३) राजा के समान आत्मा के साधनों का वर्णन। (४) आत्मा को लोकजय का उपदेश। (५) निन्दकों से रक्षा की प्रार्थना। (६) ऐश्वर्य शक्ति आदि

की प्रार्थना। पक्षान्तर मे—तीव्र रसो से विद्युत्, यांत्रिक बलो को उत्पन्न करने आदि विज्ञान का संकेत। (पृ० ७६–७८)

सू० [३०]—सोम पवमान। बलवान् शासक की राष्ट्र शोधक घोषणा। (२) शासक के कर्त्तव्य। (३) प्रजा के बीच शासन-बल की उत्पत्ति। पक्षान्तर मे—जलधारा से यान्त्रिक बल पैदा करने का संकेत। (४) वेगवान् जल के तुल्य शासक के कार्य। (६) बल-वृद्ध्यर्थ बलवान् नेता के अभिषेक का उपदेश। (पृ० ७८–८०)

सू० [३१]—पवमान सोम। देह में प्राणो का कार्य। राष्ट्र में विद्वानो और वीरो का कार्य (२) उत्तम शासकवत् आत्मा के शासन का वर्णन। (४-५) उत्तम विद्वान् का शासन। अध्यात्म शासन की तुलना। (पृ० ८०–८२)

सू० [३२]—पवमान सोम। वीरो और विद्वान् स्नातकों के कर्त्तव्य। (२) हंसवत् विवेकी कर्त्तव्य। हंस परमेश्वर। (४) सिंहवत् ज्ञानेच्छुक का कर्त्तव्य। सिहवत् धर्माध्यक्ष का कर्त्तव्य। (५) पतिव्रता स्त्रीवत् स्वामी के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। (६) उत्तम बुद्धि की प्रार्थना। (पृ० ८२–८४)

सू० [३३]—पवमान सोम। जंगल के महिषो वा जलतरगो के समान, शासको का कर्त्तव्य। पक्षान्तर मे–प्राणों के बीच जीव की स्थिति। (२) विद्वान् शिष्यों के ज्ञान-वितरण की सत्पात्र में दान देने वालो के अन्नादि दान से उपमा। (३) राष्ट्र के कार्य के लिये योग्य विद्वानों का तैयार होना। (४) वाणियो का गौओ वा धनुष की डोरियों के समान उद्गम। (५) माता के तुल्य विद्वानो का उपदेश कार्य। (६) धनार्थी को उपदेश। (पृ ८४–८६)

सू० [३४]—पवमान सोम। वीर आक्रामक नेता के कर्त्तव्य।

उसी प्रकार देह बन्धन नाशक योगी को उत्तम पद प्राप्ति का वर्णन । (२) प्रभु की प्राप्ति के लिये विद्वानो का सत्संग । (३) उनका सत्कार । (४) सर्वोपरि पुरुप का स्थान । (५) मेघों के तुल्य अभिषेक्ता जनों के कर्त्तव्य । (६) जिज्ञासु के कर्त्तव्य । (पृ० ८६–८८)

सू० [३५]—पवमान सोम । प्रभु से ऐश्वर्य और प्रकाश की प्रार्थना सेनापति के प्रति प्रजाजन की प्रार्थना । (४) न्याय-शासक के कर्त्तव्य । (५,६) उसके प्रति प्रजा के कर्त्तव्य । (पृ० ८८–९२)

सू० [३६]—पवमान सोम । शत्रुपीड़क सेनापति का कण्टक-शोधन कार्य । शासक के राष्ट्र के प्रति अनेक कर्त्तव्य । (४) उसका बल के आश्रय सर्वोपरि अभिषेक । (५) सर्वैश्वर्य-प्राप्ति । (पृ० ९०–९२)

सू० [३७]—पवमान सोम । उपास्य प्रभु के गुण । (२) उसका हृदय में प्रकट होना । (३) पावन प्रभु । (४) प्रकाश स्वरूप प्रभु । (५) सर्वशक्तिमान् शक्तिप्रद । (६) सत्पात्र में प्रभु का प्रकाश । (पृ० ९२–९३)

सू० [३८]—पवमान सोम । मेघवत् रसवर्षी प्रभु । (२) भक्त की भावनाओ का प्रभु तक जाना । (३) महान् राजा के तुल्य महान् प्रभु । (४) व्यापक प्रभु (५) सर्वदर्शी आनन्दमय प्रभु । (पृ० ९२–९४)

सू० [३९]—पवमान सोम । बुद्धिमान् पुरुप के कर्त्तव्य । (२) अन्यो के प्रति उसके कर्त्तव्य । (२) परमधाम प्राप्ति, ज्ञान प्राप्ति (४) जीव की प्रभु मे निमग्नता । (५) उपासित प्रभु का उपास्य के हृदय मे आविर्भाव । (६) समबुद्धि उपासको के लक्षण । (पृ० ९५–९७)

सू० [४०]—पवमान सोम । विद्वान् ज्ञानी की स्तुति । जीव को परमेश्वर की ओर जाने का उपदेश । परमेश्वर से बलो की और ऐश्वर्यों की प्रार्थना, याचनादि । (पृ० ९७–९९)

सू० [४१]—पवमान सोम। विद्वान् परिव्राजकों के कर्त्तव्य। अज्ञान दूरकर ज्ञान का प्रचार करें। (२) आदरणीय रक्षक। दुष्ट दमन करने का उपदेश। (३) साधक के भीतरी आनाहत नादों के मेघ-गर्जवनत् श्रवण और विद्युत् के तुल्य दीप्तियों की प्रतीति। ईश्वर वा राजा से प्रजा की ऐश्वर्य याचना। (५) पालन करने की प्रार्थना। मेघ के समान वाणी द्वारा प्रभु वा स्वामी का प्रजा को प्राप्त होना। (पृ० ९९–१०४)

सू० [४२]—पवमान सोम। सर्वसंञ्चालक, सर्वोत्पादक प्रभु सर्व-सुखप्रद है। (२) सर्वज्ञानप्रद प्रभु। (३) ऐश्वर्यवान् वीर राजाओं का युद्ध के लिये प्रयाण। (४) पवित्रपद मे स्थित का कर्त्तव्य। (६) अभिपिक्त के कर्त्तव्य। (पृ० १०१–१०२)

सू० [४३]—पवमान सोम। प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं। सर्वशासक प्रभु। उससे सुखों और बलों की याचना। (पृ० १०२–१९४)

इत्यष्टमोऽध्यायः॥ इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः॥

सप्तमोऽष्टकः। प्रथमोऽध्यायः॥

सू० [४४]—पवमान सोम। मुख्य अयास्य प्राण की उपासना। सर्व-शासक की स्तुति। (४)-(६) उसके कर्त्तव्य। (पृ० १०५–१०७)

सू० [४५]—पवमान सोम। परमेश्वर से प्रार्थना। (५) मिलकर ईश्वर स्तुति करने का उपदेश। उससे ज्ञान, बल की याचना। (पृ० १०९–११०)

सू० [४६]—पवमान सोम। कुशल पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वर के प्रति ब्रह्मचारिणी कन्या के तुल्य, ब्रह्मचारियों का गुरु के प्रति उत्सुकता

पूर्वक गमन। (३) तेजस्वी पुरुषों का राजा के बल वृद्धि करने का कर्त्तव्य। वीरों और ब्रह्मचारियों को समान वाक्य से आगे बढ़ने और वीर्य-रक्षा का उपदेश। (५) ऐश्वर्यवान्, धनदाता के कर्त्तव्य। (६) दश प्रकृतियों प्रजाओं का शासक के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० १०९–११०)

सू० (४७)—पवमान सोम। शास्ता का उत्तम कर्म के अनुसार उन्नत पद। उसके कर्म और ऐश्वर्य। (३) उत्कृष्ट बल वीर्य। (४) सर्वपोषक राजा शासक, सेवकों को भृति, वेतन आदि का देने वाला हो। (पृ० १११–११२)

सू० [४८]—पवमान सोम। सूर्य के तुल्य सर्वोपरि शासक से प्रजा का धनों के निमित्त प्रार्थना करना। विजेता शासक से याचना। (२) अध्यात्म में आत्मा की उपासना। (३) सर्वकामपूरक प्रभु। (४) ज्ञानियों को ज्ञानप्रद प्रभु। (५) वह महान् सर्वद्रष्टा सर्वप्रद है। (पृ० ११२–११३)

सू० (४९)—पवमान सोम। सुखवर्षी प्रभु। वाणीदाता प्रभु वा स्वामी। (३) स्वामी से यज्ञ द्वारा वृष्टि और परमेश्वर से वाणी द्वारा ज्ञानप्रकाश की प्रार्थना। (४) जलधारा से अन्न के तुल्य वाणी से ज्ञानप्राप्ति की प्रार्थना। परमेश्वर वत् राजा से राक्षसों के नाश की प्रार्थना। (पृ० ११३–११५)

सू० [५०]—पवमान सोम। विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य ज्ञानोपदेश और शस्त्र प्रयोग। (२) परमेश्वर से तीनों प्रकार की वाणियों का प्रादुर्भाव। पक्षान्तर में राजा के अभिषेक में वेदत्रयी का उपयोग। (३) अभिषेक, योग्य पुरुष के गुण। अर्चना योग्य के कर्त्तव्य। उसका राष्ट्र-शोधन का कर्त्तव्य। (पृ० ११५–११७)

सू० [५१]—सोम पवमान। विद्वान् का योग्य व्यक्ति को अभि-

पिक्त करना। तेजस्वी पुरुष का अभिषेक करना चाहिये। (२) क्षमाशील राजा के अन्न जल के आश्रित प्रजाजन। (४) उत्तम राजा और प्रबन्धक के कर्त्तव्य, प्रजापालन और वर्धन। (५) अभिषिक्त होकर उसकी प्रभाव और बल के द्वारा पवित्र पद की प्राप्ति। (पृ० ११७–११८)

सू० [५२]—पवमान सोम। शासक और प्रजाजन के परस्पर कर्त्तव्य। वह बल-शक्ति बढावे। (३) विजेता का राज्याभिषेक। (४) बहुतसो के चुनने पर प्रधान पद की प्राप्ति। (५) उसका कर्त्तव्य शुद्ध व्यवहार का चलाना है। (पृ० ११८–१२०)

सू० [५३]—सोम पवमान। सेनापति के कर्त्तव्य। प्रजा-समृद्ध्यर्थ बलवान् राजा की स्थापना। (पृ० १२०–१२२)

सू० [५४]—पवमान सोम। प्रभु से ज्ञान प्राप्ति। प्रभु सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वद्रष्टा, एवं सूर्यवत् सात प्रकृतियो में राजा की स्थिति। (३) सर्वोपरि प्रभाव एवं सर्वोपरि राजा।

सू० [५५]—पवमान सोम। प्रजा के प्रति राजा के सत् कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर से प्रार्थनाएं। राजा के कर्त्तव्य, उत्तम आसन पर स्थिति, प्रजा को नाना सम्पदा का देना और शत्रु-नाश। (पृ०१२२–१२३)

सू० [५६]—अभिषेक्य के कर्त्तव्य। पवमान सोम। (पृ० १२२–१२३)

सू० [५७)—पवमान सोम। मेघवत् शासक के कर्त्तव्य। शत्रु-दमन, सर्वसाक्षी, सब को सन्मार्ग दिखाना आदि अनेक कर्त्तव्य। (पृ० १२५–१२६)

सू० [५८]—पवमान सोम। प्रभु की वाणी द्वारा उपासना। उसके सरस्तो ऐश्वर्य। (पृ० १२६–१२७)

सू० [५९]—उत्तम शासक के कर्त्तव्य। प्रजा के चित्त को स्वच्छ रखे, सब बुरे कार्यों से प्रजा को बचावे, सब को अपने वश करे।

सू [६२]—पवमान सोम। राजा के कर्त्तव्य। राजा को शत्रु नगरो के तोडने का उपदेश। पक्षान्तर मे नाड़ियों के बन्धन से मुक्त होने का उपदेश (२) अश्ववित् से अश्वों की प्राप्ति। राजा अभिषिक्त होकर प्रजा का मित्र होकर रहे। (५) वह प्रजा को सुख दे। (६) शासक और प्रभु का वर्णन। अति उदार का अभिषेक, उसकी सूर्यवत् स्थिति। उसके अनेक कर्त्तव्य। (१०) राजा के प्रताप का सर्वपालन का महत्व (११) ऐश्वर्य का राज्य में समान विभाग। (१२) इन्द्र पद के योग्य पुरुष। (१३) सब कोई उसकी शरण हों। (१५) प्रजा मे ऐश्वर्य के साथ २ शान्ति स्थापन करे। (१६) जगत् उत्पादक के तुल्य राष्ट्र में राजा का तेजस्वी पद। (१७) राजा का दयामय कर्त्तव्य, (१८) उसका सर्वोत्तम तेज। राजा के अनेक कर्त्तव्य। (२२) वीरों के कर्त्तव्य, उनके उत्साह योग्य कार्य। (२५) उसके कण्टक-शोधन का कार्य। उसके कर्त्तव्य, शत्रुनाश, प्रजा की मान-रक्षा। (पृ० १८९-१२८)

सू० [६२]—पवमान सोम-उत्तम पदों पर अभिषिक्त अनेक जन। उनके कर्त्तव्य। (४) बलवान् शासक के कर्त्तव्य। (५) अभिषिक्त का वर्णन। (६) उसको सजाने आदि का प्रयोजन, भय से रक्षा। (७-१०) उसका विद्वानो के प्रति कर्त्तव्य। (११-१४) वह सर्वबन्धु हो। राष्ट्रैश्वर्य की वृद्धि करे। राजा के ईश्वरवत् कर्त्तव्य। (१५) विद्वान् कुलवान् को राजा करे। (१६) राजा के प्रयाण का प्रकार। (१७) राजा का जैत्ररथ। त्रिबन्धुर रथ की अध्यात्म और राजनीति पक्ष मे व्याख्या। युद्ध और दुष्ट दमन के लिये बलवान् और ज्ञानी पुरुष का स्थापन। (१९) अभिषेक घट के तुल्य राष्ट्र में अभिषिक्त राजा की शोभा। (२०) राष्ट्र के सब उत्तम जन उसके पोषक हों। (२१) बहुश्रुत

पुरुष का अभिषेक करो। (२२) मुख्य शासक के नीचे अनेक गौण शासक हो। (२३) शासके कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि। (२४) बलशाली बनने के लिये, योग्य नाना कलाविदो से ज्ञान प्राप्त करे। (२७) अन्य प्रजाओ को ज्ञान धनादि से समृद्ध करे। (२८) प्रभुवत् राजा की विभूति का प्रदर्शन। (२९) वृष्टियो के समान अधीनो के प्रति राजा की आज्ञा-वाणियो का प्राप्त होना। (२९) विद्वान् कैसे वी ँवान् ऐश्वर्यवान् को इन्द्रपद के लिये अभिषेक करे। राज्यासन पर अभिषिक्त पुरुष प्रजाजन के लाभा ँ ही बल धारण करे। (पृ० १३८–१४८)

सू० [६३]—सोम पवमान। राजा प्रजा को समृद्ध करे। (२) प्रजा को समृद्ध के ही अपना सैन्य बल बढ़ावे। (३) वह बड़ा सैन्य बल का स्वामी होकर राष्ट्र मे बराबर विचरे। (४) विद्वानो वा भावी परि-व्राजकों का आश्रमो से आश्रामान्तर में प्रवेश (५) वीरो और विद्वानों का सबको आर्य, श्रेष्ठ बनाते हुए दुष्टो को दण्डित करते हुए, विद्वान शासकों का आगे बढ़ाना। (७) राजा का राष्ट्र शोधन का कर्त्तव्य। (८) राज्यकार्य में आकाशयानों का प्रयोग। प्रजा का सन्मा ँ में चलाना राजा का कार्य। (१०) वीर, शत्रुवारक पुरुष का पदाभिषेक। पक्षान्तर मे विद्यार्थी विद्वान् का स्नातक होना (११) राजा प्रजा को इतना अपार समृद्धिशाली बनावे कि शत्रु उसका अन्त ही न कर सके। (१२) उसके ऐश्वर्य में सहस्रों गौएं वा अश्वारोही आदि हो। (१३) मेघ के तुल्य अभिषेचनीय प्रजा की स्थिति (१४) किरणों वा जलो के समान शासको के कर्त्तव्य। (१५) उनका राष्ट्र-शोधन का पवित्र कार्य। पक्षान्तर में—आचार्य से शिक्षित शिष्यो के कर्त्तव्य। (१६) अभिषिक्त का सूर्यवत् पद। (१७) जलो और ओषधिरसो के तुल्य राजा का अभिषेक, उसके परिशोधन के तुल्य हो। (१८) उसके कर्त्तव्य, समृद्धि प्राप्ति। (१९) संग्राम-कुशल के समान बल, अन्न, ज्ञान आदि मे श्रेष्ठ पुरुषो का भी भिन्न २ उत्तम पदों

पर अभिषेक। (२०) परिव्राजकादि के तुल्य अन्य अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। (२१) सर्वोत्पादक प्रभु का गुण-स्तवन। (२२) उसके 'वायु' पद की व्याख्या। (२३) विद्वान् ऐश्वर्यवान् का अपार ज्ञान-सागर प्रभु में प्रवेश। (२४) उसको दुष्ट प्रवृत्तियों और नाशक बुरे व्यक्तियों को त्यागने और दूर करने का कर्त्तव्य। (२५) विद्वानों का कर्त्तव्य दया से सबको सत्य ज्ञानों का वितरण करें। (२६) राष्ट्र-शोधक जनों का कर्त्तव्य। (२७) वायु वा जल धाराओं के तुल्य सोम, शासकों की विद्यास्थानों से उत्पत्ति। (२८) विद्वानों का कर्त्तव्य, दुष्टों का नाश। (२९) वीर शासक का कर्त्तव्य। (३०) उसका सर्वैश्वर्य-धारण। (पृ० १२७–१४८)

सू० [६४]—सोम पवमान। राजा के कर्त्तव्य। उसके मेघवत् कर्त्तव्य। (३) रथ के अश्व के तुल्य उसका राष्ट्र-चक्र प्रवर्तन का कर्त्तव्य। (४) प्रमुख पुरुषों को ज्ञान, बल, धन आदि की प्राप्त्यर्थ नियुक्ति। (५) शासकों और दीक्षित वा स्नातक पुरुषों के वेष आदि का श्लिष्ट वर्णन। (६) विद्वानों का गुरुओं को दक्षिणा दान। (७) प्रचारकों का किरणों के तुल्य कर्त्तव्य। (८) विद्वान परिव्राट् का समुद्र के तुल्य अगाध ज्ञानी होने का उपदेश। (९) परिव्राजक को देश देशान्तर भ्रमण का उपदेश। (१०) आत्मावत् शासक जन का कर्त्तव्य। (११) विद्वान् और धर्माध्यक्ष के कर्त्तव्य। उसके किये उपदेश का सत्-फल। अन्यों को सत्-ज्ञान और शिक्षा प्राप्त हो। (१२) अभिषिक्त दयालु पुरुष के पवित्र कर्त्तव्य (१३) वाणी और जल धारा से स्नात को उत्तम पद प्राप्ति। (१४) छाज के समान उसके सत्यासत्य विवेक का कर्त्तव्य। (१५) विवेक से राजत्व पद और प्रभु पद की प्राप्ति। (१६) उत्तम कर्मनिष्ठ पुरुषों का उत्तम गम्भीर पद व प्रभु को प्राप्त होना। ज्ञान वाणियों द्वारा परम पद प्राप्ति। (२०) ज्ञानी को प्रभु-पद-प्राप्ति के अवसर, में काम क्रोधादि का त्याग। राज्यपद प्राप्ति के काल में मूर्खों के त्याग का उपदेश।

(२१) ज्ञानी और अज्ञानी लोगों की ऊर्ध्वगति और अधःपतन। (२२) मरुत्वान् इन्द्र की प्राप्ति के लिये विद्वान् को आदेश। (२३) विद्वान् उसको ज्ञान-वाणियो से परिष्कृत करे। (२४) विद्वान् के ज्ञान का और राज के वचन का सब श्रवण करे। (२५) शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य, ज्ञानपूर्वक वाणी का प्रयोग करे। (२६) वह सर्व-पालक वाणी का प्रयोग करे। (२७) वह सर्वप्रिय होकर अभिषिक्त हो। (२८) वह शक्ति से ही स्तुत्य हो (२९) उसको सैनिक के समान सदा सज्जन रहने का आदेश। (३०) वानप्रस्थ के अनन्तर संन्यास का आदेश। संन्यासी का सूर्यवत् पद। (पृ० १५७–१६६)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [६५]—पवमान सोम । वरणीय वर। कन्याओं को चन्द्रवत् आल्हादक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को वरण करने का उपदेश। (२) विवेकी, योग्य-विद्या स्नातक ऐश्वर्य प्राप्त करे। (३) विद्वान् की सेवा करे, वह संयम से जीवन बितावे। (४) वह मेघवत् वीर्यवान्, सेक्ता, बली, हृष्टपुष्ट पवित्राचार हो। सब उसका आदर करें। (५) शस्त्र आदि से शोभित होकर राजा वा वीर के तुल्य गृहस्थ में प्रवेश करे। स्नान कर, स्वच्छ हो रथ में चढने के तुल्य वह विद्या आदि गुणो से स्नान और सुशोभित होकर गृहस्थ में पैर रखे। (७) वरार्ह पुरुष की राजा के तुल्य स्तुति हो (८) वीर पुरुष की स्तुति। (९) उसकी सर्वप्रियता। (१०) देह में वीर्य के तुल्य बलवान् राष्ट्र मे शासक के कर्त्तव्य। वह अपने से बडे के शासन में रहे। (११) राजा को ऐश्वर्य के लिये प्रेरणा। (१२) वह अपने अधीनो को प्रेरित करे। (१४) प्रजा के प्रतिनिधियों रूप कलशो से राजा का राज्याभिषेक। (१५) बलशाली का प्रधान निर्णायक पद पर अभिषेक और

उसका न्याय-कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्मा का आनन्द-रस-दोहन और इन्द्रियों का दमन। (१६) सेनापति और राजा का सर्वोपरि प्रयाण योग्य होना। (१७) राजा से गौ आदि ऐश्वर्यों की प्रार्थना। (१८) मनुष्यों के पालानार्थ राजा का अभिषेक, वह प्रजा के बल, धन और तेज को बढ़ावे। (१९) राजा का श्येनपक्षी के समान तेजस्विता का मार्ग। (२०) समस्त प्रजा के सेवक के तुल्य राजा को उत्तम उद्योग से उत्तम २ अधिकार प्राप्ति। (२१) प्रजा की अगली सन्तति की उन्नति के लिये उसको सहस्रों के धन की प्राप्ति का आदेश। (२२) नाना अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। वे सब प्रजा के दुःख-निवारणार्थ ही हों। अध्यक्ष शासको पर भी एक अति विद्वान् जमदग्नि पुरुष की नियुक्ति। (२३) अभिषिक्तों का आकाश में नक्षत्रवत् प्रजाओं मे स्थिति । (२७) उसकी स्तुति वा प्रस्ताव और उस का वरण। वरण योग्य पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० १६७–१७५)

सू० [६६]—पवमान सोम। प्रभु परमेश्वर का वर्णन। वह सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी, मित्रों का मित्र, परम वन्दनीय है। (२) वह सर्वप्रकाशक है। पक्षान्तर मे आत्मा का वर्णन। (३) सूर्यवत् प्रभु। (४)सब सुखो और शक्तियों का दाता प्रभु। (५) सर्वप्रकाशक प्रभु। (६) सर्वशासक, वाणियों का परम लक्ष्य है। (७) प्रभु, उपासित होकर जीव का सुखदाता आनन्दप्रद है। (८) वेद के सातों छन्द उसकी स्तुति है (९) वह प्रभु वेदों से एक मात्र स्तुत्य है। (१०) पक्षान्तर में वेदज्ञ का वर्णन। ईश्वर के सृष्ट लोकों का प्रसार। (११) राष्ट्र में शासक पद पर कोश से पुष्ट राजा की स्थापि। (१२) उपासकों के तुल्य शिष्यों का गुरु-सेवन। (१३) शिष्य के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। (१४) प्रभु शासक के सख्य की कामना। (१५) उत्तम शासक का महान् शास्तृ-पद। (१६) पराक्रमी को विजयोद्योगी होने का उपदेश। (१७) अति पराक्रमी, अति शूर

अतिदानी प्रभु। (१८) प्रभु को मित्र-भाव के लिये वरण। (१९) उससे रक्षा बलादि की याचना। (२०) पुरोहित का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। उसकी महागृह, महाप्राण से उपमा। (२१) ज्ञानवान् तेजस्वी बल की प्रार्थना। (२२) सर्वद्रष्टा से प्रार्थना। (२३) विशेष अध्यक्ष की उत्तम उद्योग के लिये नियुक्ति। (२४) उसका कर्त्तव्य अज्ञान नाश। (२५) दुष्टों के नाशक तेजस्वी के उत्तम गुणों का स्वतः-प्रकाश। (२६) वही सब गुणों से शोभित होता है। (२७) उसके कर्त्तव्य। उत्तम वीर्य धारण करे, दयालु हो। पक्षान्तर में इन्द्र प्रभु, की परस्पर प्राप्ति। देह के अधिष्ठाता जीव की जीवन-क्रीडा, और परमानन्द के लिये प्रभु की पुकार। इसी प्रकार प्रजा का राजा को पुकारना। (३०) प्रभु से जीवन दान की प्रार्थना। (पृ० १७६–१८५)

सू० [६७]—पवमान सोम। उत्तम शासकों का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सेनापति का वर्णन। (४) उत्तम विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य उनके अनेकानेक कर्त्तव्य। (७) उनका कण्टक-शोधन कार्य। ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। (८) वह प्रशास्ता, इन्द्रपद पाकर सर्वोपकारी हो। अभिषेक योग्य के प्रति अन्यों के प्रोत्साहन और उपदेश। (१०) उत्तम पुरुष ही विवाह योग्य वर हो। (११) वही मधुपर्क योग्य होता है। (१२) वैसा ही तेजस्वी पुरुष कन्याओं का पति होने योग्य है। (१३) विद्वान् का कार्य, उत्तम ज्ञान, धन, प्रदान करे। (१४) स्वच्छ पवित्र होकर स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम गृह में प्रवेश करे। (१५) वीर राजा का बल-प्रयोग। उसका श्येनवत् आक्रमण। (१६) उसका अन्नादि ऋद्धि के लिये उद्योग। (१७) अभिषिक्तों का सब की रक्षा के लिये सज्ज रहना। (१८) विद्यार्थी का वीर के सदृश कर्त्तव्य। उत्तम शिक्षा पाकर शासन पद के योग्य होना। राष्ट्र का कण्टक-शोधन करने वाले के कर्त्तव्य। वह किनको दण्ड दे। (२२–२७) तेजस्वी ज्ञानी लोग सबको पवित्र करें। (२८)

शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य। (२९) उत्तम अन्न जल, आदि दुग्ध आदि की वृद्धि करना। (३०) अन्यायी की दुर्दशा, और भूमियो का सत्कार। (३१) पावमानी ऋचाओं के अध्ययन का महत्व। (पृ० १८५–१९४)

सू० [६८]—पवमान सोम। दुधार गौओं के समान विद्वानो के कर्त्तव्य। वे ज्ञान धारा को प्रवाहित करें और शुद्ध ज्ञान को धारण करें। (२) ज्ञानवान् अध्यक्षो के कर्त्तव्य। घोषणा और उपदेशों से ज्ञान-आदेश प्रसारित करे। पवित्र शास्ता पद पर रहकर भीतरी बाहरी शत्रुओं का नाश करे। (३) सभापति व प्रजाओं के प्रति शासक का कर्त्तव्य, उनको बढ़ाना। (४) माता पिता की सेवा और अपने शक्तिमान् होने का उपदेश। (५) ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी का विद्या-गर्भ से उत्तम जन्म। (६) स्नातको का अभिषेक। (७) परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में—राजा का राज्याभिषेक। (८) प्रभु की स्तुति, प्रार्थना। (९) परमेश्वर सर्वव्यापक, उसकी उपासना, पक्षान्तर मे राजा के अभिषेक का वर्णन। (पृ० १९४–२००)

सू० [६९]—सोम पवमान। परमेश्वर की उपासना। उसकी मन्त्रो द्वारा स्तुति, उसके द्वारा प्रभु की प्राप्ति। (४) सर्वशासक परमेश्वर। (६) सर्वदुःखहारी प्रभु। (७) सूर्य की रश्मियो के तुल्य जगत् की पालक शक्तियो का महान् कार्य। (७) राजा के अधीन भृत्य शासकों के कर्त्तव्य। (८) ईश्वर से ऐश्वर्य की प्रार्थना। (९) महारथियों के समान स्नातको के कर्त्तव्य, (१०) सोम शिष्य के कर्त्तव्य। (पृ० २००–२०६)

सू० [७०]—पवमान सोम। विद्यार्थी के लिये वेदविद्या का दोहन पक्षान्तर मे परमेश्वर का वेदो का प्रकाशित करना। (२) ब्रह्मचारी के लिये भिक्षावृत्ति, ब्रह्मचर्य पालन, (३–४) विद्योपार्जनार्थ गुरुगृह मे वास,

और प्रभु की आराधना। (५) ब्रह्मचारी का राजा के तुल्य नियमबद्ध होकर राजा के दुष्ट दमन के तुल्य अन्तः शत्रुओं का दमन। (६) प्रभु के उपासक परिव्राजक की लोक-सेवा। (७) ब्रह्म-जिज्ञासु पुरुष के कर्त्तव्य। ज्ञानमयी कन्था का धारण। (८) ज्ञानी का आमरण अभिषेक और मधुपर्कादि से आदर। (९) उत्तम विद्वान् से ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। शिष्य की ज्ञान-गर्भ से उत्पत्ति। (पृ० २०६—२११)

सू० [७१]—पवमान सोम। दान दक्षिण आदि की व्यवस्था। उससे उत्तम शासकों की उत्पत्ति। (२) अनुशासक पुरुष वा उपदेशक का कर्त्तव्य। उसका आदरणीय पितृ तुल्य पद। (३) स्नातक का माननीय आदरयोग्य पद। (४) सभापति राजा के तुल्य प्रधान विद्वान् का आदर। (५) प्रधान अध्यक्ष पर दशावरा परिषत् की योजना। सभा के निश्चयानुसार अध्यक्ष के अधिकार। (६) उसको सर्वोपरि आसन ग्रहण की प्रेरणा। (७) राष्ट्र-शासकवत् सर्वेश्वर प्रभु का वर्णन। उसका अनादि शासन। (८) प्रजा द्वारा चुने अध्यक्ष का उत्तम शासन। विद्वान् शास्ता का मधुपर्कादि से सत्कार। (९) राजा वा सेनापति का प्रबल और दयापूर्ण शासन। (पृ० २११—२१६)

सू० [७२]—पवमान सोम। अभिषेक योग्य पुरुष के विशेष गुण उसके कर्त्तव्य। (२) मधुपर्कादि से उसका समुचित आदर और उसके गुण स्तवन और उत्साह प्रदान। उसका लोकमत के अनुसार शासन से शान्ति प्राप्ति। उत्तम शासक के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (५) सेनापति सोम। उसका प्रोत्साहन। (६) गुरु विद्वान् से ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश। उसके चरणों में जिज्ञासुओं का आगमन। (७) सोम का स्वरूप, सर्वोपरिशासक बल का रूप। (८) त्यागी तपस्वी साधक का उच्च प्रकाशमय परलोक को प्राप्त करने का उपदेश। (९) राजा और प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (पृ० २१६—२२१)

सू० [७३]—पवमान सोम। जगत्स्रष्टा की स्तुति। प्रभु ने मस्तक के तीन भाग बनाये, वही सत्य की नौका के समान पार करने वाली है। (२) परमेश्वर की स्तुति करने वाले, उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं। (३) ज्ञानधारक गुरु का वर्णन। (४) प्रभु के उपासकों का वर्णन। पक्षान्तर में गुरु के अधीन वेदाध्यायी जनों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (५) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्यार्थियों के कर्त्तव्य। वे तेजस्वी होकर दुष्टों का नाश करें। (६) विद्वानों और अविद्वानों के भिन्न २ मार्ग। (७) प्रभु का पथ पवित्र वेदज्ञान के अभ्यास से वाणी का पवित्र होना और विद्वानों के सद्गुण। (८) न्याय-शासक का रूप और कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रभु परमेश्वर का न्याय शासन। (९) न्यायी की वाणी पर आश्रित यज्ञ। अजितेन्द्रिय का अधःपतन। (पृ०२२१–२२६)

सू० [७४]—पवमान सोम। प्रभु से शरण की याचना। पक्षान्तर में नव जात शिशु का जन्म और उनके निमित्त माता पिता की गृहादि की कामना। (२) सर्वाश्रय पालक, सर्वव्यापक, सर्वपालक सर्वसुखदाता प्रभु। (३) भूलोक का रक्षक सूर्य और जल का वर्णन। अध्यात्म में प्रभु और आत्मा का वर्णन। कालमय प्रभु का अन्न जगत है। प्रभु ही सब का परममार्ग है। (४) सूर्य द्वारा जलवृष्टि का वैज्ञानिक रहस्य। (६) सूर्य की दिव्य शक्तियां (७) जलवृष्टि का रहस्य। (८) वीर के तुल्य प्रभु परमेश्वर का कृपायुक्त व्यवहार और परम स्तुत्य प्रभु। (९) प्रभु का परमानन्द रस (पृ० २२६–२३१)

सू० [७५]—सोम पवमान। सेनापति के कर्त्तव्य। (२) वेद-वाणी, वक्ता और ज्ञान-रक्षक के कर्त्तव्य। (३) अभिषेचनीय तेजस्वी और विद्यानिष्णात पुरुष का वर्णन। (४) उसकी सर्वप्रियता। (५) उत्तम ज्ञानवान् और अध्यक्ष का वर्णन। (पृ० २३१–२३४)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [७६]—सोम पवमान। सर्वोत्पादक प्रभु का वर्णन। (२) महान् शासकवत् परमेश्वर का वर्णन। (३) जगद्-उत्पादक का वर्णन। (४) वही वेद-ज्ञान का प्रकाशक है। (५) वही जीव के समस्त कोशों को बनाता, स्वयं प्रकाशमय, कृपालु और रक्षक है। (पृ० २३४–२३७)

सू० [७७]—पवमान सोम। वज्रवत् बलशाली आत्मा। (२) प्रभु सर्वशासक, सर्वव्यापक, सब जात्रो का सन्मार्ग पर चालक है। (३) ज्ञानी पुरुषो के कर्त्तव्य। (४) प्रभु का अपूर्व शासन। (५) सर्व-कामनाप्रद प्रभु। (पृ० २३७–२४०)

सू० [७८]—पवमान सोम। शासक राजा के कर्त्तव्य। (२) उत्तम शासक शास्त्रोपदेशक के कर्त्तव्य। अभिषेक योग्य राजा का वैभव। (३) शासकवत् प्रभु का वैभव। (४) सर्वजित् शासक और प्रभु। (५) उत्तम शासक के कर्त्तव्य, शत्रु का नाश कर प्रजा को अभय देना। (पृ० २४०–२४२)

सू० [७९]—पवमान सोम। उत्तम विद्वानों का वर्णन। (२) उत्तम वीरो का वर्णन। (३) परमेश्वर की महती शक्तियां। (५) उत्तम सेव्य स्वामी प्रभु। (पृ० २४२–२४७)

सू० [८०]—सोम पवमान। अध्यक्ष वा उत्तम उपदेष्टा का वर्णन। (२) हृदय-व्याप्त ज्ञानप्रद, जीवनदाता प्रभु। (३) उसकी अनेक कृपाएं। सर्व-कामदुघा प्रभु। अभिषेक योग्य के तुल्य प्रभु का वर्णन। (पृ० २४४–२४७)

सू० [८१]—सोम पवमान। प्रभु के आनन्द की तरङ्गें। (२) सर्वधारक, सर्वज्ञ प्रभु। (३) प्रभु से ज्ञान बल की याचना। (४) उससे उत्तम सर्गो तथा उत्तम जनो के प्राप्ति की याचना। (पृ०२४७–२५०)

सू० [८२]—पवमान सोम। जगत्-शासक और राष्ट्र-शासक का वर्णन। (२) मेघवत् विजेता और प्रभु का वर्णन। (३) शास्य और शासक की स्थिति। (४) जीव को प्रभु का आश्रय लेने का उपदेश। (पृ० २५०—२५३)

सू० [८३]—तपस्या द्वारा प्रभु के पद की प्राप्ति। (२—३) मुक्त परमहंसों का वर्णन। प्रभु के शासन में जीवों की स्थिति। यजमानवत् प्रभु का वर्णन। शत्रुविजय के अनन्तर राज्य की वृद्धि के समान मोक्ष पद की प्राप्ति। (पृ०२५३—२५६)

सू० [८४]—सोम पवमान। विद्वान् असंग, ज्ञानी, सर्वोपकारी, अन्यों को ज्ञान-धन देने वाला हो। (२) सोम परमेश्वर के गुणों का वर्णन। वह सर्वाध्यक्ष, तेजःस्वरूप, सर्वप्रेमी है। (३) सूर्यवत् प्रभु का वर्णन। (४) सर्ववशी प्रभु। सर्वस्तुत्य, सर्वसुखप्रद प्रभु। (पृ०२५६—२५९)

सू० [८५]—पवमान सोम। उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (२) कण्टक-शोधक के कर्त्तव्य। (३) दयालु प्रभु वा परमेश्वर वा शासक का वर्णन। (४) विजयी राजा के गुण। (५) उसके अभिषेक होने की योग्यता। (६) शासक को उत्तरोत्तर वृद्धि का आदेश। (७) प्रजाओं द्वारा राजा की स्तुति, उसी प्रकार प्रभु के प्रति भक्तजनों का जाना। (८) विजयी से प्रजाजन की विजय। पक्षान्तर में मुक्तात्मा के देह-बन्धन में न गिरने का संकेत। (९) सूर्यवत् सभापति का पद। उसके कर्त्तव्य। (१०) विद्वानों को प्रभु की प्राप्ति। (११) वेदवाणियों द्वारा प्रभु की स्तुति। (१२) सर्वोपरि शक्ति प्रभु। उसका सूर्यवत् वर्णन। (पृ० २६९—२६५)

सू० [८६]—सोम पवमान। राजा के वीर सर्दार के तुल्य परमेश्वर और उपासकों का वर्णन। (२) राजा के सैनिकोंवत् उपासकों के कर्त्तव्य। (३) अश्ववत् भक्त विद्वान् का प्रभु की ओर बढ़ना। (४) आत्मोपसना

आत्म-साधना। (५) सर्वव्यापक प्रभु। (६) व्यापक प्रभु की हृदय में परिशोध। (७) यज्ञमय जगच्चक्र का प्रवर्त्तक प्रभु। उसकी हृदय में प्रतीति। (८) व्यापक प्रभु और आत्मा का तुल्य वर्णन। (९) मातृवत् प्रभु का भक्त का बालवत् उपसेवन। (१०) आत्मा का वर्णन। (११) षोडशकल आत्मा हरि का वर्णन। (१२) आत्मा का शूरवत् अभिषेक। (१३) आत्मा की पक्षी के तुल्य संसार-गति का वर्णन। (१४) ज्ञानी आत्मा का स्वतन्त्र लोकों में विचरण। (१५) सुखप्रद स्वामी प्रभु। (१६) आत्मा परमात्मा का परस्पर सख्य-भाव। प्रभु के अधीन नियमबद्ध होकर कामनाओं से प्रेरित आत्मा का षोडशकल देह में प्रवेश। (१७) एकाग्रचित्त होकर परस्पर मिलकर प्रभु की स्तुति का उपदेश। (१८) उत्तम सम्पद्, बल, वीर्य आदि की प्रार्थना। (१९) प्रभु की अद्भुत रचना। देह और उसकी रचना, उसके सूक्ष्म २ परमाणुओं में व्याप्ति। (२०) आत्मा में भी व्यापक परमेश्वर। (२१) उसका कर्म बन्धन-दाहक ज्ञान का प्रकाश करना। (२२) आत्मा की अनेक देहों में गति। सर्वाश्रय प्रभु की शरण का उपदेश। (२३) गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मार्ग में जाने का उपदेश। (२४) सर्वस्तुत्य और शरणयोग्य प्रभु। (२५) वेदाभ्यास। (२६) आत्म-परिशोधन पूर्वक ज्ञान के अभ्यास से ऐश्वर्य पद की प्राप्ति। (२७) प्रजाओं और सेनाओं द्वारा राजा का अभिषेक। पक्षान्तर में वेदवाणियों से प्रभु की स्तुति और शुद्धजनों से प्रभु की प्राप्ति। (२८) जगत् का राजा महान् प्रभु। (२९) वह समुद्रवत् अपार, सर्वज्ञ सर्वेश्वर है। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (३०) सर्वधारक प्रभु। (३१) उपदेष्टा की उत्तम गति। (३२) स्तुतियों का लक्ष्य प्रभु। (३३) विद्वान् का मेघ के सदृश प्रशस्त मार्ग। (३४) अभिषेकयोग्य की ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। (३५) ज्ञाननिष्ठ के अभिषेक के तुल्य आत्मा का स्वच्छ होने का वर्णन। (३६) सेनापति को सेनाओं के तुल्य विद्याशास्ता को जिज्ञासु

शिष्यों की प्राप्ति। (३७) ज्ञानी पुरुष का अनेक लोगों और वेदवाणियों से ज्ञान प्राप्त करना। (३८) प्रभु से ऐश्वर्यों और सुखों की याचना। (३९) सर्वोपास्य सर्वप्रद प्रभु। (४०) उपदेष्टा के कर्त्तव्य। गुरु-शिष्य के परस्पर कर्त्तव्य। (४१–४२) आचार्य और प्रभु के शिष्य और जीवों के प्रति दया का वर्त्ताव। शास्य-शासकवत् सम्बन्ध। (४३) उपासकों का योग-साधना द्वारा प्रभु का साक्षात्। (४४) देह से देहान्तर मे केंचुली से सर्पवत् जाने वाले आत्मा का ज्ञानोपदेश। (४५) प्रभु और आत्मा का वर्णन। (४६) जगत्-धारक प्रभु। (४७) ईश्वर की महती शक्तियां। (४८) ईश्वर स्तुति, ज्ञान-प्रार्थना।

सू० [८७]—पवमान सोम। परमेश्वर की उपासना। (२) सर्वाश्रय प्रभु। राजा के समान परमेश्वर की महान् शक्ति। (३) पूज्य विद्वान्, उसका कर्त्तव्य, आत्म ज्ञान। (४) उपासक ज्ञानी का वर्णन। (५) उपासकों के कर्त्तव्य। सवारों की वीरों से तुलना। (६) अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य। (७) अभिषेचित को उपदेश वीर के समान विद्यानिष्णात के कर्त्तव्य। (८) शासक गुरु से मेघगर्जनावत् ज्ञान वाणी का शिष्य को प्राप्त होना। (९) ज्ञान-संग्रयार्थ गुरुकुलोपसना का उपदेश। (पृ० २८६–२९२)

सू० [८८]—पवमान सोम। शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य। शुश्रूषु शिष्य का रूप। गुरु के शिष्य रूप भूमि के प्रति कृषक के तुल्य ज्ञान-बीज वपनादि कार्य। (२) रथ के अश्वों के समान शिष्यों को इन्द्रिय दमन का उपदेश। पक्षान्तर मे देह मे आत्मा का दिग-दर्शन। (३) विद्या-व्रत-स्नातक का विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृह मे आवर्त्तन अर्थात् लौटना और उसका गृहाश्रम में प्रवेश। (४) व्रतनिष्ठ विद्वान् का विजयी सेनापति के तुल्य आत्म-विजय। (५) जलों मे प्रशान्त अग्नि के तुल्य शिष्य के वनस्थों के बीच ज्ञान-प्राप्ति, और उपदेष्टा होने का आदेश। (६

मेघस्थ धाराओ के तुल्य विद्वानो का आनमन और उनका प्रभु वा जनों के प्रति गमन। (७) विद्वान वा राजा का अन्यों को विना पीड़ा दिये आना और विजय करना। (८) राजा के अनेक कर्त्तव्य। (पृ० २९३–२९६)

सू० [८९]—पवमान सोम। विद्वान् विद्या-क्षेत्र में आगे बढ़े। उसका मातृवत् गुरुगर्भ में वास। (२) राष्ट्रपति के तुल्य देह में आत्मा और जीव का वेदवाणी पर आरोहण और उन्नति और पिता प्रभु का उस पर अनुग्रह। (३) सिंहवत् उद्योगी को प्रजादि सम्पदाओ की प्राप्ति। (४) सिंहवत् उद्योग, अश्ववत् बलवान् की, नायक पद पर नियुक्ति और उसका अभिषेक। (५) उसको अनेक शक्तियों की प्राप्ति। (६) सर्ववशी प्रभु। (७) इन्द्र-पदोचित पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० २९६–२९९)

सू० [९०]—पवमान सोम। साधक पुरुष की ईश्वर प्राप्ति की साधना। (२) सर्व-शक्तिमान् प्रभु, सर्वरक्षक का वर्णन। (३) आत्म साधक के वीर के तुल्य कर्त्तव्य। (४) उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (५) प्रभु के प्रसादन का उपदेश। (६) आत्मपावन का उपदेश। (पृ० २९८–३०२)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [९१]—पवमान सोम। वाग्मी नेता के तुल्य वाक्पति का वर्णन। (२) उपास्य आत्मा का स्वरूप। (३) सर्वज्ञानोपदेष्टा प्रभु। उत्तम उपदेष्टा वेदज्ञ का वर्णन। (४) अग्निवत् तेजस्वी, राष्ट्र-शोधक वीर के कर्त्तव्य। (५) प्रभु से सन्मार्ग की याचना। (६) प्रभु से ज्ञान प्रकाश की प्रार्थना। (पृ० ३०२–३०५)

सू० [९२] पवमान सोम। प्रभु की उपासना। उत्तम सेनापति के

कर्त्तव्य। अध्यात्म में इन्द्रियाध्यक्ष आत्मा का वर्णन। (३) हृदय में परम-देव की प्राप्ति। (४) प्रभु के अंगभूत ३३ देव, उसकी ज्ञानप्रद सात छन्दो-वाणियां। (५) प्रभु का परम पावन रूप। (६) सिंहवत् पराक्रमी शासक का अभिषेक। (पृ० ३०५–३०८)

सू० [९३]—पवमान सोम। अभिषेक-प्राप्त राजा के तुल्य देह में आत्मा की स्थिति। (२) बालकवत् देह मे आत्मा का शक्ति-संञ्चय। (३) गो-वत्सवत् देही का ज्ञानवान् और पुष्ट होना। आत्मा का इन्द्रियों पर प्रभुत्व। उपास्य से ऐश्वर्य आदि की कामना। (पृ० ३०८–३११)

सू० [९४]—पवमान सोम। आभूषणों के समान आत्मा में गुण, वाणी, स्तुति आदि की उपमा। सूर्य-रश्मियो के तुल्य उसकी प्रजाएं, और पशु-पालक के तुल्य प्रभु का प्रजावर्धन का कार्य। (२) आनन्दमय प्रभु का दो प्रकार का वर्णन। ज्ञान रूप से, और काम्य रूप से। (३) ज्ञानप्रद प्रभु का राष्ट्रपति के समान शासन। (४) विजेता के समान तेजस्वी की स्थिति। उसके कर्त्तव्य। (५) ईश्वर से अन्न बल, समृद्धि आदि की याचना। (पृ० ३११–३१३)

सू० [९५]—पवमान सोम। वानप्रस्थ मे विद्वान् जिज्ञासु के कर्त्तव्यो का वर्णन। (२) न्यायऋत वाणी को बढ़ाने का विद्वानो का कर्त्तव्य। (३) तरंगों और प्रजाओ के तुल्य गुरु-वाणियो का वर्णन। (४) पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर परमेश्वर मे आनन्द लाभ करने का उपदेश। (५) योग्य, विद्यानिष्णात शिष्य का कर्त्तव्य, ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना है। (पृ० ३१४–३१६)

सू० [९६]—पवमान सोम। सेनापति का वर्णन। (२) सेनापति के अश्वों और अधीन पदाधिकारियो का सुभूषित करना। महारथी का वर्णन। (३) उसका रण में प्रयाण। (४) उसका उद्देश्य, प्रजा का

सुख कल्याण। (५) सर्वशासक प्रभु। (६) सर्वोपदेष्टा का वर्णन, वह कैसा है। अध्यात्म में आत्मा और उसके इन्द्रियगण का वर्णन। उसके ब्रह्मा, कवि, श्येन, स्वधिति आदि नाम। इन्द्रियों के देव, कवि, विप्र, मृग, गृध्र, वन आदि नाम। उत्तम शासक उपदेष्टा और आत्मा का वर्णन (८) वीर विजेता के तुल्य आत्मा का वर्णन। (९) देह में आत्मा के तुल्य सर्वशासक प्रभु और राष्ट्रपति राजा का वर्णन। (१०) परमात्मा का मेघ के तुल्य वर्णन, वही वेद-ज्ञान का दाता है। (११) जगत्-शासक प्रभु और राजा से प्रजाओं की प्रार्थना। (१४) विद्वान् और वीर के कर्त्तव्य। (१५) सर्वप्रिय शासक। (१६) राजा शासक के कर्त्तव्य। वीर प्रजा जनों के शासक के प्रति कर्त्तव्य। (१७) उसका अभिषेक और परम पद प्राप्ति। (१८) उपदेष्टा के कर्त्तव्य। सेनापतिवत् आत्मा का वर्णन। (२०) वीर युवा अश्व के तुल्य आत्मा का देहों में संक्रमण। (२१) तेजस्वी के कर्त्तव्य। (२२) अभिषेकयोग्य के कर्त्तव्य। (२३) स्नातक के गृहाश्रम-धारणवत् राजा का राष्ट्र-भार का धारण। (२४) उत्तम शासक, गृहपति और राजा के समान कर्त्तव्य। (पृ० ३१६–३२८)

सू० [९७]—पवमान सोम। तेजस्वी शासक के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। वह धन, बल, और पशु सम्पदा की गृहपति के समान वृद्धि करे। (२) सेनापति के सभापतिवत् कर्त्तव्य। (३) अभिषिक्त के कर्त्तव्य। (४) विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) जीव का राजावत् वर्णन। उसका परमपद की ओर प्रयाण। (६) आत्मा का वीर सेनापतिवत् वर्णन। (७) विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य। (८) परमहंसों की प्रभु-शरण-प्राप्ति, पक्षान्तर में आगृध्य हंस आत्मा और वृषगण का विवरण। (९) अवर्णनीय महान् प्रभु। (१०) विद्वान् और वीर राजा के कर्त्तव्य। (११) जीव का जिज्ञासु शिष्यवत वर्णन। (१२) दश अमात्यों पर मुख्य राजा के समान दश प्राण युक्त आत्मा का वर्णन। (१३) राजसभा के स्वामिवत् आत्मा

का वर्णन। (१४) अभिषेक योग्य विद्वान उपदेष्टा, सत्कारयोग्य शासक का वर्णन। (१५-१९) उसके कर्त्तव्य। (२०) मुमुक्षु जनों का वर्णन। (२१) उत्तम शासक विद्वान् के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (२९) अग्रणी विद्वान् के कर्त्तव्य। (३६) ऐश्वर्य पदाधिकारी के कर्त्तव्य। (३९) उपास्य प्रभु का वर्णन। (४२) विद्वान् शासक के कर्त्तव्य। (४८) उसके कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य। (५०) प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (५३) दयालुता पूर्ण कर्त्तव्य। (५४) दुष्टों का दमन करे। प्रजा को ऐश्वर्य दे। (५६) मेधावी का माता पिता से भी अधिक मान्य पद। (५७) परमानन्द रस वाले प्रभु की उपासना। (पृ० ३१८-३५६)

सू० [९८)—सोम पवमान। तेजस्वी के कर्त्तव्य। (२) अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य। राजा के कवचवत् रक्षण कार्य। (३) उसका राजकीय भव्य वेश। और उच्च आसन। (४) उसके कर्त्तव्य। (६-७) पांचों प्रजाओं से उसका अभिषेक। (९) उसके प्रति जनसभाओं के कर्त्तव्य। (१०) उसके कर्त्तव्य और जिम्मेवारियां। उत्तम अनेक पदाधिकारियों के कर्त्तव्य। (१२) कैसे को पदाभिषिक्त करें। (पृ० ३५६-३६०)

सू० [९९]—पवमान सोम। वीरता और स्तुति का पात्र, शासक। उसका स्तुत्य पद। उसका प्रयाण उसका प्रजाओं द्वारा अभिषेक पक्षान्तर में-प्रभु की उपासना, वरण और स्तुति। (६) अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। उपास्य आत्मा वा प्रभु का प्रजाओं में शक्ति-वितरण। देहगत हृदय व आत्मा का वर्णन। (पृ० ३६०-३६३)

सू० [१००]—पवमान सोम। गौवों के बछड़े के प्रति प्रेम के सदृश परमेश्वर के परम प्रेमरस का आस्वादन। (२) प्रभु से प्रार्थनाएं। (४) वाणियों का लक्ष्य प्रभु। (५) विद्वान् का राज्य पद पर अभिषेक।

उसके प्रजा आदि के प्रति कर्त्तव्य । (७) उसका स्तुत्य पद । (८) सूर्यवत् उसका वर्णन । (९) प्रभु का विश्व-धारण । (पृ० ३६३-३६६)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पवमान सोम । आत्मा की उन्नति के लिये त्याज्य लोभी पुरुष का त्याग और तृष्णालु चित्त का दमन । (२) अभिषिक्त शासक और परिव्राजक का कर्त्तव्य । (३) आत्मा का शासकवत् प्रतिपादन । (४) शासको के तुल्य विद्वानो का कर्त्तव्य । (५) प्रभु की उपासना का उपदेश । (६) आत्मा और परमात्मा मे मित्रता का सम्बन्ध । (७) पूषा प्रभु और पूषा आत्मा । (८) वेदवाणियो और विद्वानों का स्तुत्य और प्राप्य लक्ष्य प्रभु है । (९) उसकी साधना और साक्षात् करने का उपदेश । (१०) परम पावन विद्वानो का वर्णन । (११) उनके कर्त्तव्य । (१२) उनके उत्तम गुण । (१३) आत्मा की साधना के पूर्व लोभादि को विजय करने को उपदेश । (१४) माता पिता वा प्रिय पतिवत् प्रभु । (१५) विश्वाध्यक्ष विश्वधारक प्रभु । (१६) सब वाङ्मय के ऊपर मेघवत् प्रभु । (पृ० ३६६-३७३)

सू० [१०२]—पवमान सोम । जगत् के शासक प्रभु की आज्ञा-वाणी वेद । (२) यज्ञमय प्रभु का रम्य रूप । (३-४) विद्वान् प्रभु की स्तुति उपदेशादि करे । प्रभु के अधीन सब जीव प्रेम से रहे तो उत्तम है । (६) सर्वोपास्य प्रभु । (७) महायज्ञ के निर्माता अनादि तत्व आत्मा और प्रकृति । (८) प्रभु से शुद्ध निष्पाप होने की प्रार्थना । (पृ०३७३-३७५)

सू० [१०३]—पवमान सोम । सेवकवत् नियमपूर्वक देव-उपासना करने का उपदेश । (२) व्यापक प्रभु । (३) स्तुत्य अन्तर्यामी प्रभु । (४) सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वनेता, सर्वदुःखहारी है । (५) अविनाशी, विद्वान्, अमृत प्रभु । (६) परम पावन व्यापक प्रभु । (पृ० ३७५-३७७)

सू० [१०४]—सोम पवमान । सबको मिलकर उपासना करने का

उपदेश। (२) वाणियो से व्यापक प्रभु की उपासना करो। (३) उपासना और ज्ञान का फल बल, ज्ञान, तेज, और शान्ति सुख प्राप्ति है। (४) प्रभु से वेदवाणियों द्वारा अपनी अभिलाषाएं प्रकट करना। (५) मार्गदर्शी ज्ञानी प्रभु है। (६) छली, वंचक को दूर करने की प्रार्थना। (पृ० ३७७-३७९)

सू० [१०५]—पवमान सोम। व्यापक प्रभु की स्तुति। यज्ञों द्वारा उपासना। वाणियो से ज्ञान द्वारा प्रभु का साक्षात्कार। (३) उपासित प्रभु सुख देता है। (४) बल देता है, पक्षान्तर में शुद्ध राजा की स्थापि। (५) सर्वमित्र दानशील दयालु प्रभु। (६) दुष्टों से बचने की प्रार्थना। (पृ०३८०-३८२)

सू० [१०६]—पवमान सोम। देह में वीर्यों के तुल्य राष्ट्र मे सर्वसुख साधक विद्वानो की प्रभु की उपासना। (२) यथार्थ ज्ञान के लिये प्रभु की उपासना। (३) आश्रय योग्य प्रभु। (४) प्रभु सर्वद्रष्टा, सर्वसुख दाता। (५) सर्वलोक नियन्ता, सब की एक मात्र गति सर्वद्रष्टा उससे सुखों की याचना। (६) उसकी उपासना। (९) बन्धन-मोचन के लिये प्रभु की उपासना। (१०) गुरुवत् प्रभु की उपासना। (११) उसका स्तुति। (१२) हृदय मे प्रभु का आविर्भाव। (१४) साक्षात् प्रभु प्राप्ति। (पृ० ३८२-३८६)

सू० [१०७]—पवमान सोम। अभिषेक-योग्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषिक्त राजा के कर्त्तव्य। उसकी उत्तम गुण-स्तुति। (३) अध्यक्ष के गुण और कर्त्तव्य। (५) उसका उत्तम पद प्राप्त करते हुए सुपरिक्षित होना। (६) वह अनालसी होकर उच्च पद पावे। (७) सर्वशास्ता प्रभु। वा गुरुओ का गुरु कवि है। (८) पक्षान्तर मे अभिषिक्त राजा से तुलना। (९) समुद्रवत् रस-सागर प्रभु। (१०) साधक विद्वान् को मोक्ष मार्ग का उपदेश। (११) स्तुत्य आत्मा। (१२) सर्व-प्रेरक पूर्ण प्रभु। (१३) रथ के तुल्य रसवान् प्रिय आत्मा। (१४) रस-

सागर प्रभु की ओर विद्वानों का मार्ग। (१५) दिनरात्रिवत् जगत् की उत्पत्ति-प्रलय करने वाला प्रभु। (१६) व्यवस्थापक प्रभु। (१७) मेघवत् आनन्दवर्षी प्रभु। (१८) विद्वान् परिव्राजक के कर्त्तव्य उसकी दीक्षा, पक्षान्तर मे राजा के अभिषेक का दिग्दर्शन। (१९) प्रभु से इन्द्रिय रूप शत्रुओ द्वारा गिरने से बचने की प्रार्थना। (२०) प्रिय परमात्मा से मोक्ष की याचना। (२१) ऐश्वर्य याचना। (२) प्रभु का दर्शन। (२३) प्रभु को ज्ञान-प्रदान। (२४) सुखप्रद प्रभु और उसकी ज्ञान-वाणियो से स्तुति। (२५) ज्ञानियो को मोक्ष-लाभ। (२६) आत्मा का गर्भ मे प्रवेशवत् आनन्दमय कोश मे प्रवेश। (पृ० ३८६–३९७)

सू० [१०८]—सोम पवमान। स्तुत्य आत्मा से सुख की आशंसा। उसका वर्णन। परम पावन से प्रार्थनाएं। (४) अमृतत्वरूप मोक्ष की ओर (५) अमृतत्व की प्राप्ति। (६) आत्मा मे स्तुति-प्रेरक प्रभु। (७) सर्वसञ्चालक अव्यक्त प्रभु की उपासना। (८) राजावत् आत्मा की उपासना। (९) प्रभु से आनन्दमय कोष मे प्रवेश करने मे बाधक मध्यमकोशो के खोलने की प्रार्थना। पक्षान्तर मे सेनापति का वर्णन। (१०) सेनापति और परमेश्वर प्रजापति का वर्णन। (११) समस्त ऐश्वर्य के स्वामी से प्रार्थना का उपदेश। (१२) सर्वप्रकाशक पिता प्रभु। (१३) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी प्रभु। सर्वगुरु प्रभु को स्वीकार करना। (१५) उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (१६) सागरवत् प्रभु सब का परम लक्ष्य। परमेश्वर सर्वाश्रय स्तम्भ। (पृ० ३९७–४०४)

सू० [१०९]—पवमान सोम। जीव को प्रभु की प्राप्ति का उपदेश। (२) सद्भावना। (३) परम रसरूप प्रभु। (४) सूर्यवत् सुख-रसवर्षी प्रभु। (५) उससे अनेक प्रार्थनाएं, (६–७) विश्वकर्त्ता प्रभु। (८) सर्वसुखपद प्रभु। (९) ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (११) रसप्रद प्रभु (१२) उसका ध्यानाभ्यास। (१४) प्राणायाम साधन। (१५)

प्रभु के परम रस की प्राप्ति। (१६) उसका साक्षात्। (१८) साधक को उपदेश। (१७) साधना का मार्ग। (२०) परम सुखार्थ ज्ञानोपासना। (२१) आत्मा का शोधन। (२२) परमेश्वर प्राप्त्यर्थ तपः-साधना। (पृ० ४०४–४१०)

सू० [११०] सोम पवमान। वनस्थ और संन्यस्त जनों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर, राजा, विद्वान् के कर्त्तव्य। (५) कूप के तुल्य श्रम से प्रभु की प्राप्ति। (६) प्रभु स्तुति। (७) प्रभु के साक्षात् के लिये जितेन्द्रियता की साधना। (८) प्रभु-कृपा से प्रभु की प्राप्ति। (९) सर्वोत्पादक प्रभु सोम। (१०) पावन प्रभु की प्राप्ति, (११) सर्वशासक तेजस्वी दयालु। (१२) दुर्गम-तारक प्रभु। (पृ० ४१०–४१५)

सू० [१११]—पवमान सोम। राष्ट्रशोधक राजा के तुल्य आत्म-शोधक विद्वान् का वर्णन। (२) आत्मा और राजा का बलवान् होना, (३) साधक का वीर के तुल्य उद्योग। (पृ० ४१५–४१७)

सू० [११२]—पवमान सोम। नाना बुद्धियों और नाना कर्म के करने वालों में तरखान विद्वान् और वैद्य के तुल्य ऐश्वर्य के पद की ओर न बढ़ने का उपदेश। (२) वाणकार के समान वाणों, वा शस्त्र-बल से ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश। (३) अनेक उद्योग, व्यवसाय वालों का प्रमुख राजा द्वारा परस्पर संघटन। अध्यात्म में—नाना कर्म करने वाले अंगों का परस्पर ऐक्य। (४) अश्व-गाड़ी मन्त्री-राजा और युवा-युवति के दृष्टान्त से योग्य व्यक्ति को अनुरूप ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश। (पृ० ४१७–४१९)

सू० [११३]—पवमान सोम। शस्त्रबल पर राजा का राज्य की रक्षा का कर्त्तव्य। (२) वह वेद द्वारा न्यायानुसार शासन करे। (३) सेना और सामन्त आदि उसे पुष्ट करें। (४) वह पुरोहित आदि उत्तम कार्य-

कर्त्ता जनों द्वारा प्रजा को सत्य की शिक्षा करे। (५) प्रभु के ऐश्वर्यों के तुल्य राजा के ऐश्वर्य। और राजा का दुष्टो के नाश का कर्त्तव्य। (६) चाहने योग्य ऐश्वर्यपद। विद्वानो से शासित राज्य हो। (७) अमृत लोक का वर्णन। (८) प्रभु से अमृत होने की प्रार्थना। (९) ज्योतिर्मय लोको मे अमृतत्व प्राप्ति। (१०,११) सुखमय लोको मे अमृतत्व की प्रार्थना। (पृ० ४१६–४२४)

सू० [११४] पवमान सोम। उत्तम गृहपति, उत्तम प्रजावान् का लक्षण। उत्तम शासक, प्रजा-पालक का आदर-पूजा करने का आदेश। (३) सात आदेष्टा, सात सचिवादि साहाय्य से राज्य का देहवत् शासन। (४) राजा का कर्त्तव्य। प्रजा की सब कष्टो से रक्षा। (पृ० ४२४–४२६)

इति पावमानं सोम्यं नवमं मण्डलम्।

अथ दशमं मण्डलम् (सू० १–४५)

सू [१]—अग्नि। सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य, शत्रु विजय। विद्वान् का कर्त्तव्य ज्ञान-प्रसार। (२) अरणियों में अग्नि और माता पिता में बालकवत् स्व-पर सैन्यों और शास्य शासक वर्गों में राजा की स्थिति। (३) सूर्य के तृतीय आकाशवत् ज्ञानी का तृतीय आश्रम का सेवन और ज्ञान-प्रसार। अध्यापन का कर्त्तव्य। (४) काष्ठाग्निवत् राजा का वर्धन। (५) ज्ञानी व बलशाली की ज्ञान बल प्राप्त्यर्थ उपासना। (६) तेजस्वी राजा का अग्निवत् होकर भी सत्संग करना। (७) राजा का पुत्रवत् पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में अग्नि आत्मा वा प्रभु। (पृ० ४२७–४३०)

सू० [२]—अग्नि । राजा के कर्त्तव्य । उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य । (४) राजा और विद्वान् हमारी अज्ञान द्वारा हुई त्रुटियों को पूर्ण करें । (५) यज्ञ का उपदेश । (६) गुरु के पास विद्वान् होकर अन्यों को ज्ञान दे । (७) विद्वान् स्वयं गृहपति और कुलपति होकर पितृयाण मार्ग से कर्म करे । (पृ० ४३०—४३४)

सू० [३]—अग्नि । प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् होकर उषा के स्वीकारवत् स्त्री से विवाह कर गृहस्थ होने का उपदेश । (२) सूर्य के तुल्य, गुरु-गृह में विद्वान् स्नातक हो पक्षान्तर में राजा-प्रजा का सम्बन्ध । (३) सूर्य उषावत् गृहस्थ के कर्त्तव्यों और राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (४) प्रकाशयुक्त किरणों के तुल्य वीरों, विद्वानों का वर्णन । (५) सूर्यवत् प्रचण्ड प्रखर राजा का तेज । (६) राजा के किरणों के तुल्य विद्वान् और गर्जनावत् आज्ञा वचनों का वर्णन । (७) गृहस्थ युवा युवति के गृह-तन्त्र के तुल्य राज्यतन्त्र की तुलना । राजा के कर्तव्य । (पृ० ४३४—४३७)

सू० [४]—अग्नि । प्रपावत् रस-सागर प्रभु । (२) शीत-पीड़ित के लिये अग्नि के तुल्य शरणयोग्य प्रभु । (३) पृथिवी के पुत्र के तुल्य पृथ्वी को राजा का पुत्रवत् पालन-पोषण । (४) मूढ़ जन तेजस्वी की महिमा को नहीं जानते । अग्नि के समान विश्पति राजा का जिह्वा से भूमि का भोग । (५) अग्नि के तुल्य राजा की उत्पत्ति । राजा के श्लिष्ट विशेषण । (६) बाहुओं के तुल्य राजा की सेनाओं के कर्तव्य । (७) राजा की वाणी प्रजा की वृद्धि करे और राजा उनके सन्ततियों की रक्षा करे । (पृ० ३३७—४४१)

सू० [५]—अग्नि । राजा और प्रभु का उत्तम वर्णन । (२) प्रतिष्ठितों, विद्वानों के कर्तव्य । (३) बालक को माता के तुल्य प्रजा राजा

का पालन करे। उसका परस्पर व र्न और, प्रभु विषयक ज्ञान साधना। (४) अन्नार्थी कृशको आदि के तुल्य धनार्थी जनो को सूर्यवत् राजा की अपेक्षा। (५) सात प्राणो सहित आत्मा के तुल्य राष्ट्रपति का वर्णन। (६) ऋषियो की उपदिष्ट, सात मर्यादाएं। उनके उल्लंघन से पाप। मध्यस्तम्भ के समान राजा की स्थिति। (७) उत्तम अध्यक्षवत् प्रभुसर्वाश्रय। (पृ० ४४१–४४६)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [६]—अग्नि आचार्य का वर्णन। उसके अधीन उपनीत शिष्य की प्राप्ति और वृद्धि। (२) प्रकाश से भानुवत् सबको धर्म का शिक्षक गुरु। (३) प्रभु और सेनापति का वर्णन। (४) सर्वश्रेष्ठ स्तुत्य, ज्ञानी पुरुष। (५) बहुश्रुत तेजस्वी पुरुष की सत्कार सहित संगतिका उपदेश। सभ्यता शिष्टता आदि का उपदेश। (६) ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष के कर्तव्य। वह सबका रक्षक हो। (७) तेजस्वी ज्ञानी का अन्यों सब से बढना, सत्संग से ज्ञान प्राप्ति। (पृ० ४४७–४५०)

सू०० [७]—अग्नि। प्रभु से कल्याण और रक्षा की प्रार्थना। (२) स्तुत्य और मनोगम्य प्रभु। (३) प्रभु, पिता, बन्धु, भाई, मित्र है। वही सर्वोपास्य है। (४) समृद्धि की प्रार्थना, परमेश्वर के अनुग्रह की विभूति। (५) यज्ञाग्निवत् प्रभु की स्तुति। उसी प्रकार मथे अग्नि के समान ही राजा का प्रदुर्भाव। (६) प्रभु का आत्मयज्ञ। (७) प्रभु से बल, आयु, जीवन आदि की याचना। (पृ० ४५०–४५३)

सू० [८]—अग्नि। महान प्रभु का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के कर्तव्य। (२) महान् और देह गत आत्मा का समान वर्णन, (३) विराट्, सर्वोपरि महान् प्रभु का वर्णन। (४) लोकधारक प्रभु। पक्षान्तर में

देह के प्रभु आत्मा और गृह्य अग्नि का वर्णन । (५) नेत्रवत् प्रकाशक प्रभु । वह नौकावत् तारक, सर्वश्रेष्ठ है । वह ज्ञानदाता है । (६) विराट् विश्व-यज्ञ का चालक व्यापक प्रभु सबका शिरोवत् है । वही जगत् को भी प्रलयकाल में लीलता है । (७) इन्द्र परमेश्वर की व्यवस्था रह कर जीवों का देह-बन्धनों में आना । (८) इन्द्र परमेश्वर द देह में अद्भुत रचना । शीर्षगत तीन प्रकार के प्राण-छिद्रों का निर्माण (पृ० ४५३–५२९)

सू० [९]—आपः । आप्त जनों के कर्त्तव्य । जलों से उनकी तुलना जलों का रोगों को, और आप्तों का दुर्भावों और पापों को दूर करने क कर्तव्य । (पृ० ४५८–४६०)

सू० [१०]—यम, यमी । स्त्री पुरुषों का यम, यमी रूप । उनव सख्य भाव । सन्तान उत्पत्ति के प्रति उनका कर्तव्य । पुत्रोत्पादन व प्रयोजन । वैवस्वत यमयमी का रहस्य । (२) पुत्रों के कर्तव्य । (३ पुत्रार्थिनी स्त्री की अभिलाषा । पाणिग्रहीता पुरुष से ही सन्तान हो (४) निः-सन्तान स्त्री पुरुषों के पुत्र न होने में कारण पर विचार । (५ असमर्थ पुरुष से समर्थ स्त्री की सन्तान प्राप्ति का आग्रह । (६) पुरु का अज्ञानवश हुई भूल को अपनी असमर्थता बतलाना । (७) रथ-चक्र के जोड़े की तरह पत्नी का स्वपुरुषःसे ही सन्तान प्राप्ति कर गृहस्थ चलाने का संकल्प । (८) पुरुष का स्त्री को अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने का 'नियोग' अर्थात् आदेश देना । (९) पुत्रार्थिनी स्त्री की स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति की प्रबल इच्छा । (१०) भावी सन्तानों को लक्ष्य कर अन्य पुरुष से क्षेत्रज पुत्र प्राप्त करने का पुनः आदेश ।(११) पुत्रार्थिनी के आग्रह का कारण । (१२) असमर्थ पुरुष की भ्रातृतुल्यता । भगिनी से संग करना पाप । (१३) स्त्री का परीक्षार्थ पुरुष के प्रति आक्षेप-वचन । पुरुष की अन्तिम आज्ञा । परस्पर सन्तानोत्पादन में कारणवश

असमर्थ स्त्री पुरुषो के लिये नियोग-विधान का प्रतिपादन। (पृ० ४६०–४६७)

सू० [११]—अग्नि। सूर्य के समान राजा वा गृहपति के कर्तव्य। (२) विद्युत् के तुल्य विदुषी स्त्री की अभिलाषा। उत्तम गृहपति के कर्तव्य। (३) स्त्री पुरुषो के परस्पर कर्तव्य। पक्षान्तर मे प्रजा-राजा का उत्तम सम्बन्ध। (४) उत्तम प्रजाओ द्वारा उत्तम पुरुष का नायकवत् वरण। (५) शासक को ऐश्वर्य के तुल्य प्रजाप्रिय होने का उपदेश। (६) उषा-सूर्य के दृष्टान्त से शासक के कर्त्तव्य। राजा के अधीन सेनापति का राष्ट्र-धारण सामर्थ्य। (८) राजा सेनापति और सभापति के कर्तव्य। वे परस्पर अपमान तिरस्कार आदि न करते हुए मिलकर राष्ट्र-कार्य करें। पक्षान्तर में—गृहस्थ स्त्री पुरुषो के कर्तव्यो की योजना भी जाननी चाहिये। (पृ० ३६७–४७२)

सू० [१२]—अग्नि। प्रधानपद पर स्थित के कर्त्तव्य। (२) धूमकेतु अग्नि तुल्य राजा के कर्तव्य। (३) पृथिवी के तुल्य राजा के उदार कर्तव्य। (४) माता पिता गुरु आदि से प्रार्थना। उनका कर्त्तव्य। (५) शासक के कर्तव्य, उसका वेदवत् सत्य व्यवहारवान् सत्यवक्ता होने का आदेश। (६) अविज्ञेय परम रहस्य। उसके ज्ञान का आदेश। (७) सूर्यवत् सर्वशासक प्रभु की उपासना। मुक्ति के अविज्ञेय ब्रह्म के ज्ञान की जिज्ञासा। (पृ० ४७२–४७६)

सू० [१३]—हविर्धान। स्त्री पुरुषो को वेद-धर्म का उपदेश। स्त्री पुरुषो के कर्तव्य। (३) योगमार्ग का वर्णन, ज्ञानारम्भ के समान ही ब्रह्मज्ञान की शिक्षा। अमृत-प्राप्ति का मार्ग, (५) राजा के भृत्यों के तुल्य आत्मा के प्राणो का वर्णन। (पृ० ४७६–४७८)

सू० [१४]—यम। नियन्ता राजा का सत्कार योग्य पद। सत्कार योग्य यम, राजा, आचार्य, गुरु, विवाह आदि। (१) मार्गदर्शी उत्कृष्ट पुरुष

की नियन्तृ-पद पर स्थापना। उसके कर्त्तव्य। पूर्व पिता पितामहादि के मार्गा-नुसरण का उपदेश। (३) ज्ञानी मार्गदर्शी पुरुषों को संतृप्त वा प्रसन्न करने का उपदेश। (४-५) राजा का विद्वानों के प्रति कर्तव्य। (६) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का सत्कार उनके अधीन रहने का उपदेश। (७) पितृजन उनके उपदेश किये मार्गों पर आगे बढ़ने का आदेश। (८) सत्संगति और गृहस्थ का उपदेश। पक्षान्तर में—आवागमन पथ मे विचरते जीव को उपदेश। (६) राष्ट्र भूमि को उत्तम बनावे। पक्षान्तर मे योग साधन का उपदेश। चतुरक्ष शबल दो सारमेयों और पितरो का स्पष्टीकरण। (११) प्रभु से मुक्ति की प्रार्थना। पक्षान्तर मे राजा के दो प्रकार के सैन्यो का वर्णन। (१२) यम नाम राजा के दो प्रकार के सैन्यो का वर्णन। अध्यात्म में-प्राण और अपान के बल से दीर्घ-जीवन का उपदेश। (१४) राजा का आदर। (१४) उसके राज्य मे निवासियों का कर्त्तव्य। (१५) राजा और ज्ञानदर्शी विद्वानो के प्रति सत्कार। (१६) प्रभु में छः महती शक्तियां। त्रिष्टुप् गायत्री आदि समस्त वेद के छन्दो, मन्त्रो की परमेश्वरपरक संगति होने से उनकी उसमे स्थिति। (पृ० ४७९-४८६)

सू० [१५]—पितरः। समस्त मनुष्यों को उन्नति करने का उपदेश। (२) प्रजा-पालक जनो के कर्त्तव्य। (३) ज्ञानियो का आदर, उनसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति। आदर योग्यजन। (४) आदरणीय जनो के उचित आदर का उपदेश। बर्हिषद् पितृगण (५) सौम्य पितृगण उनके कर्त्तव्य। (६) माता, पिता, गुरुओं का ज्ञानोपदेश का कर्त्तव्य। उनका आदरणीय स्थान। (७) प्रजापालक जनो के कर्तव्य। (८) ज्ञानी सोम्य पितर, उनके कर्त्तव्य। यम, नव गृहस्थ। (९) वेदज्ञ विद्वान् पितर, उनकी सेवा। (१०) विद्वान् पितर उनके शिष्य, देव। (११) अग्निष्वात्त पितरो के कर्तव्य। (१२) अग्नि तेजस्वी राजा। उसका पितरों, प्रजा-पालक अध्यक्षों को देह-पोषणार्थ देने योग्य वेतन, स्वधा का देना। (१३-१४) अग्नि

दग्ध, अग्निदग्ध, पितरो का विवेचन। उनके सत्संग से शक्ति प्राप्त करने का उपदेश। अनेक प्रकार के पूज्य जन। (पृ० ४८७-४९३)

सू० [१६]—अग्नि। विद्यासम्पन्न आचार्य। उसके शिष्य के शिक्षण में कर्त्तव्य। विद्यार्थी का तप और विद्या मे परिपाक। स्नातक होने के अनन्तर पुनः शिष्य का मा बाप के घर मे आगमन। (१-२) ब्रह्मचर्या आदि से बिना पक्ववीर्य हुए गृहस्थादि आश्रम मे प्रवेश का निषेध। (३) स्वस्थ रहने के लिये भिन्न २ इन्द्रियो का युक्त मार्ग मे उपयोग। (४) तप द्वारा आत्मा की शुद्धि। सत्संग द्वारा आत्मोन्नति का उपदेश। (५) विद्यार्थी का तपोव्रत के अनन्तर पितृ-गृह मे आवर्तन। (६) विषैले कीट, पतङ्गादि के दंशो से निवृत्ति और रोगनाश का उपदेश। (७) उत्तम वस्त्र-धारण और स्वस्थ रहने का उपदेश। (८) गुरु का कर्त्तव्य सन्मार्ग में प्रवर्त्तन। विद्यादि के योग्य पात्र शिष्य का लक्षण। (९) गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा पोप, अज्ञान आदि का दूर करना। (१०) दुष्टो को दूर करने का उपदेश। (११) समिधा हाथ में लेकर शिष्य को गुरु के समीप जाना। (१२) गुरुजनो के प्रति अवरों का सेव्य भाव। (१३) ताडनापूर्वक शिष्य को ज्ञान, आचार और सद्-गुणों का आश्रय बनाने का उपदेश। (१४) शान्तिप्रद विद्या का वर्णन। (पृ० ४९३-४९९)

सू० [१७]—सरण्यू। परमेश्वर द्वारा प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति। और पुरुष का स्त्री से सन्तान उत्पत्ति और संसार का व्यवहार तथा माता का महामान्य पद। सूर्य उषा का वर्णन। (२) प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति, आकाश की उत्पत्ति। (३) यास्क के मतानुसार, ज्ञानमयी वाणी का वर्णन। (४) पूषा। पशुपालवत् पालक और प्रभु के कर्मों का वर्णन। (५) सर्वपोषक प्रभु रक्षा और सन्मार्ग की याचना। (६) सर्वफल दाता प्रभु पूषा। (७-९) सरस्वती। ज्ञानमयी वेदवाणीवत् सरस्वती नाम से प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर मे विदुषी का अंगीकार। उसके कर्त्तव्य। (१०)

आपः। आप्त जनों के कर्त्तव्य। उनसे पाप-मोचन की प्रार्थना। (११) सूर्य और ऋतुओ वा मासों के दृष्टान्त से आत्मा और प्राणो का वर्णन। द्रप्स, नाम मूल भूत सर्वजगद् उत्पादक परम तत्त्व का वर्णन। (१२) प्रभु के दिये सोम रस का स्वरूप। यज्ञपक्ष मे सोमाहुति हुए। (१३) सर्वोत्पादक तत्त्व द्रप्स सोम। (१४) शुद्धि करने की प्रार्थना। (पृ० ५०७–५१८)

सू० [१८]—मृत्यु। दीर्घजीवन का उद्देश्य। देवयान और पितृयाण मार्ग। (२) मृत्यपद का लोप। दीर्घ-जीवन का उपदेश। (४) मनुष्य की परम आयु १०० वर्ष। (५) सब दीर्घजीवी हों, अल्प आयु मे मृत्यु न हों। (६) जीवन की नसैनी। (७) स्त्रिये पति-वियुक्त न हो। वे सदा मान-आदर पद का पावे। पतिके बाद भी स्त्री पुत्रादि के पालन के लिये जीवित रहे। पुत्र न हो तो नियोग से पुत्रोत्पत्ति करले। (८) मृत पुरुष के हाथ से पुत्र को अधिकार प्राप्त हो। उत्तराधिकारी भी पूर्वजो के समान विजयी हों। उत्तराधिकार के चिन्ह राजदण्ड के समान 'धनुष्' है। (१०) भूमि, आदि की प्राप्ति और शत्रुओं से रक्षा। (११) पक्षान्तर मे स्त्री आदि के कर्त्तव्य। (१२) भूमि गृह आदि सुख सामग्री की प्राप्ति। (१३) उत्तराधिकारी को उपदेश। (१४) वाण के पीछे लगे पंखो के तुल्य सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ५०७–५१०)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१९]—अग्नि, सोम, आप, गावः। तेजस्वी और धनवान् अध्यक्षो और उनके अधीन सम्पन्न प्रजाओ के परस्पर कर्त्तव्य। (२) गोपाल के तुल्य प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य। (३) प्रजाओ के कर्त्तव्य। पक्षान्तर मे—अध्यात्म मे इन्द्रियो की चेष्टा और प्रभु और मुक्त जीवों का वर्त्तमान। (४) जीवो का आवागमन। (५) जीवो के लोक-लोकान्तर मे आने जाने पर ईश्वरीय व्यवस्था। (६) उसका गोपालवत् वर्त्तन। जीव का मोक्षादि से भी आना। (७) प्रभु का न्याय और सम व्यवहार।

(८) प्रभु का उत्तम शासन । अध्यात्म में—इन्द्रिय-दमन का उपदेश । (पृ० ५१४–५१७)

सू० [२०]—अग्नि । प्रभु से सत्पथ की प्रार्थना । (२) उत्तम मातृवत् प्रभु । (३) वृत्तिदाता शासक । (४) सूर्यवत् शासक राजा के कर्त्तव्य । (५) अग्निवत् उत्तम पदस्थ विद्वान् के कर्त्तव्य । पक्षान्तर मे ज्ञानी मुमक्षु का परम पद की ओर गमन । (६) यज्ञ और परम पुरुष की उपासना । उनका फल । (७) जीवनप्रद प्रभु की उपासना । (८) उत्तम पुरुषो का कर्त्तव्य, प्रभु की उपासना मे रहना । (९) प्रभु का उत्तम शासन । (१०) उसकी श्रद्धा पूर्वक उपासना । (पृ० ५१८–५२७)

सू० [२१]—अग्नि । प्रभु की उपासना । (२) यज्ञ । महान् प्रभु की स्तुति प्रार्थना । (३) महान् प्रभु और राजा के आधार पर प्रजा के नाना व्यवहार । महान् प्रभु । (४) महान् प्रभु से ऐश्वर्य की याचना । (५) विद्वान् के कर्त्तव्य । योग्य पुरुष के लक्षण । शासक प्रभु का वर्णन । उस की स्तुति । (पृ ५२१–५२५)

सू [२२]—इन्द्र । परमेश्वर का निरूपण । (३) पिता के तुल्य प्रभु । (४) राजा के तुल्य देह में आत्मा की रीति (६) देह-प्राप्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा । (७) उदार प्रभु से ज्ञान, वल आदि की याचना । (८) दुष्टनाश की प्रार्थना । (९) भूमिवत् सर्वपालक-पोषक प्रभु । (१०) प्रेरक प्रभु और शासक । (११) शूरवीर के कर्त्तव्य । (१२) शक्तिशाली से अपने कार्यों का सफलता की प्रार्थना । (१३) उत्तम कर्मों के लक्षण । (१४) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से भूमि के समान प्रजा की समृद्धि की वृद्धि । राजा के प्रजा-वृद्धयर्थ कर्त्तव्य । (१५) राजा को प्रजाक्षय न कर उनके पालन का उपदेश । (पृ० ५२२–५३२)

सू० [२३]—इन्द्र । महारथी सेनापति के कर्त्तव्य । (२) राष्ट्रपति के कर्त्तव्य, उसकी प्रजा के नर-नारियो के आधार पर समृद्धि । (३)

राजा को राष्ट्र का चिरकाल के लिये स्वामी होने का उपदेश। (४) मेघ से वृष्टि के तुल्य राजा की प्रजा पर उदार वृष्टि। मेघ के तुल्य उसका वर्त्तन। (५) राजा का परम पौरुष, परुषभाषी दुष्टों का दमन। (६) दाता प्रभु की स्तुति और गोपतिवत् उसकी याद। (७) परम स्नेही सखा प्रभु। (पृ० ५३२–५३६)

सू० [२४]—इन्द्र। प्रजा को पुत्रवत् पालन करने का आदेश। (२) महान् प्रभु की शरण। (३) पाप से बचाने की प्रार्थना। (४–६) दो अश्वी। पति-पत्नी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। विवाहितों के पालनीय धर्म। (पृ० ५३६–५३९)

सू० [२५]—सोम। महान् प्रभु से सुख-समृद्धि की प्रार्थनाएं। (४) सर्वशरण्य प्रभु। (५) प्रभु की कृपा से उत्तम देह-प्राप्ति। (६) (६) सर्वरक्षक प्रभु। (७) प्रभु से अपने पर दुष्टों के शासन न होने की प्रार्थना। (८) द्रोही से रक्षा की प्रार्थना। (१०–११) सर्वदाता प्रभु। (पृ० ५३८–५४२)

सू० [२६]—पूषा। सर्वपोषक प्रभु। सर्वस्तुत्य प्रभु। (४) सर्वसाधक, संचालक, शोधक प्रभु। (५) फलदाता, सर्वसंचालक दुःखहारी, (६) प्रकृत्यादि का स्वामी। (७) सब ऐश्वर्यों का स्वामी, सर्वप्रेरक है। (८) सर्वमित्र, अनादि आत्मा, ध्रुव अविनाशी, सबका बलप्रद। (९) वह महान् शक्तिशाली, सर्वैश्वर्यप्रद है। (पृ० ५४३–५४७)

सू० [२७]—इन्द्र। ऐश्वर्यवान् प्रभु का स्वात्म-वर्णन। ऐश्वर्यवान् के कर्त्तव्य। (२) इन्द्र पद पर स्थित राजा के प्रति कर्त्तव्य। (३) अप्रातम दुष्ट-नाशक प्रभु। शत्रु के प्रति राजा के कर्त्तव्य। (५) प्रभु और राजा का अप्रतिहत सामर्थ्य। (६) राजा के कर्त्तव्य। निन्दकों का दमन। (७) सर्वोपरि शक्तिशाली प्रभु। (८) जीवों की प्रभु-शासन में गौवों की तरह स्थिति। (९) कर्मफलभोगी जीवगण। (१०) अन्धी

अचेतन प्रकृति से प्रभु की श्रेष्ठता। (१२) सौभाग्यवती वरवर्णिनी स्त्री के समान ईश्वराधीन प्रकृति का वर्णन। (१३) प्रकृति में प्रभु का अद्‌भुत व्यापन। ईश्वर का प्रकृति व्यापन मात्र ही भोग है। (१४) प्रभु का मातृत्व। और अपने में प्रकृति के बने जगत् को लीलना। गौ के प्रति परमात्मा का गौ के तुल्य स्नेहपूर्ण अनुग्रह। (१५) राजावत् भोक्ता आत्मा के आठो प्राणो की देह मे केन्द्रित व्यवस्था। (१६) दश प्राणों मे एक आत्मा की व्यवस्था, (१७) आत्मा, दशो प्राण, और उनमे दो मुख्य प्राण, अपान, और देह मे रुधिर आदि की व्यवस्था। (१८) अग्निवत् आत्मा का वर्णन। (१९) जगत् का अनादि-सञ्चालक प्रभु, उसका सृष्टि-निर्माण। (२०) उसका जीवो की सृष्टि बनाना। सूक्ष्म शरीरादि से जीवसर्ग की व्यवस्था। जगत् के सञ्चालक प्रभु का महान् ऐश्वर्य। (२२) जीव को प्रभु का व्यापक भय। (२३) परम कारणरूप परमाणुमय प्रकृति मे स्थूल जगत् की उत्पत्ति और जीवो की रक्षण-व्यवस्था, (२५) प्रभु की प्राणदात्री शक्ति। सर्वज्ञ और मुक्तिदाता प्रभु। (पृ० ५२७–५५६)

सू० [२८]—इन्द्र। देह का मुख्य शासक आत्मा। मुख्य शासक के कर्त्तव्य। (३) उत्तम शासक के कर्त्तव्य और अनेक वीर पुरुषो के अभिषेक। (४) प्रभु और राजा का महान् सामर्थ्य। (५) प्रभु का अगम्य रूप और मङ्गलजनक उपदेश। (६) सर्वोपरि शासक का सर्वातिशायी बल। (७) उसका शत्रु-नाश करना कर्त्तव्य। (८) शत्रु नाश का उपाय और वीर सैनिको का कर्त्तव्य। (९) वे कैसे निर्भय हों। वे उत्साह से बडे बली का भी मुकाबला करे। (१०) वेतन भोगी वीर सैनिकों का सशस्त्रास्त्र रहकर सदा तैयार रहने का कर्त्तव्य। ब्राह्मणो और विजार पशुओ के नाशको को दण्ड हो। (१२) शाकाहारी शान्त पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। 'वसुक्र' की व्याख्या। (पृ० ५५९–५६५)

सू० [२९]—इन्द्र। राष्ट्र-रक्षार्थ एक नायक के अधीन उत्तम

जनों के दल की स्थापना । (२) तीनों शक्तियों से युक्त शतपति नायक महारथि का स्थापन । उसके अधीन सेना का प्रयाण । (३) प्रभु की वा शासक की समर्चा की उत्सुकता । (४) प्रभु के लिये भक्त की उत्सुकता-पूर्वक अनुग्रह की याचना । (५) उससे मोक्ष-याचना । प्रभु की बनाए आकाश और पृथिवी विश्व के माता पिता के तुल्य हैं । (७) राजा का मधुपर्क से आदर करने का आदेश । (८) राजा शासक का व्यापक सामर्थ्य उसके सख्य-भाव की कामना । इसी प्रकार प्रभु को समझना । (पृ०५६५–५६९)

सू० [३०]—आपः, अपां नपात् । प्रभु वाणी की कामना, उससे महान् ऐश्वर्य की याचना । (२) परस्पर मिलाकर गृहस्थ बनाने का उपदेश । उन्नत का आश्रय लेकर प्रबल शत्रुओं का नाश करने का उपदेश । (३) रक्षार्थी लोगो का महापुरुष का आश्रय लेने और उसके आदर का उपदेश,। (४) मेघ और विद्युत् के तुल्य तेजस्वी महापुरुष का वर्णन । (५–६) गृहस्थ के तुल्य राजा प्रजा का परस्पर प्रसन्नता का व्यवहार । (६) संकट से रक्षा करने वाले का आदर करने का आदेश । (८) समुद्र नदीवत् राजा प्रजा का व्यवहार । (९) नदी सूर्यवत् राजा प्रजा का व्यवहार । (१०) उत्पादक प्रकृति के समान स्त्रियो के कर्त्तव्यों का वर्णन । (११) विद्वानो के कर्त्तव्य । (१२) आप्त प्रजाओ के कर्त्तव्य । (१३–१४) उत्तम स्त्री जनो के कर्त्तव्य । विद्वानो का कर्त्तव्य । ईश्वरो-पासन, यज्ञसम्पादन । (पृ० ५६९–५७७)

सू० [३१]—विश्वेदेव । (१) आचार्य का उपासन । उसका सत्परिणाम । (२) गुरु-शुश्रूषा और मनोदमन, वाग्-दमन श्रेष्ठ कर्म का उपदेश । (३) ध्यान, धारणा, सदाचार और गुरुवत् प्रभु की उपासना का उपदेश । (४) जीवार्थ जगत्-सर्ग, ईश्वर का जीवोपकारार्थ ज्ञान-प्रकाश । (५) सब ज्ञान वालों से ज्ञान प्राप्त करना । (६) प्रभु की वेदवाणी, उसको ग्रहण करने का आदेश । (७) सृष्टिविषयक प्रश्न

आकाश और भूमि कहां से बने। (८) सर्वधारक प्रभु। वही आकाश और पृथ्वी का कर्त्ता है। (९) सूर्य और वृष्टि के दृष्टान्त से प्रभु के जगत्सर्जन का वर्णन। अग्नि से प्रकाशवत् उसका प्रकृति से संसार का रचना। (१०) गो-वृषभ के दृष्टान्त से ब्रह्म द्वारा प्रकृति का जगत् को उत्पन्न करना। (११) प्रभु का उत्तम स्वामित्व। (पृ० ५७७—५८३)

सू० [३२]—विश्वेदेव। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सत्संग (२) यज्ञों द्वारा प्रभु की आर्चना और सत्फल। (३) पिता पुत्र और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से जीव के लिये समस्त ऐश्वर्य का वर्णन। (४) गौओं वा बैलों और माता पिता वाद्य-यन्त्रादि के दृष्टान्तों से अध्यक्ष मे प्रमातृ शक्ति के शासन का व र्न। (५) अद्वितीय प्रधान पुरुष का सूर्यवत् दुष्टदमनकारी और ज्ञान-दाता विद्वानों के सत्कार का उपदेश। (६) आर्चना से आत्मज्ञान। की प्रार्थना। उससे उपदिष्ट होने की प्रार्थना। (७) आत्मज्ञान के निमित्त अज्ञानी ज्ञानी की उपासना करे। पक्षान्तर में क्षेत्रवित् और कृषक तथा आत्मज्ञ-अनात्मज्ञ पक्षों का विवरण। (८) जीवरूप अग्नि की गति। (९) षोडश-कल आत्मा वा गुरु की उपासना। (पृ० ५८३—५८८)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [३३]—विश्वेदेव। प्रभु की शरण याचना। भक्त का प्रभु से व्यथाओं का निवेदन। सौतों से पीडित स्त्री के तुल्य उसकी हार्दिक वेदना। (२) मानसी चिन्ताओं से पीडित भक्त की प्रार्थना। (४) अन्तर्यामी, भयदायक जनों के नाश की प्रार्थना, सुनने वाले प्रभु का वरण। (५) अनेक सुखों के दाता प्रभु की स्तुति। (६) सुखद वाणियों के उपदेष्टा प्रभु का स्तवन। (७) प्रजारक्षक का अतिथिवत् आदर। पक्षान्तर में

उपदेष्टा गुरु के अधीन ज्ञानप्राप्ति का उपदेश । (८) आत्मा का ऐश्वर्य । (९) उसका शतायु जीवन । (पृ० ५८८—५९२)

सू० [३४]—अक्षकृषि प्रशंसा अक्षकितव-निन्दा । जूए के अक्षो के तुल्य प्रलोभन देने वाले इन्द्रियों का वर्णन । पक्षान्तर में अध्यक्षों का निर्देश । जूएखोर के दारिद्रय और अधःपतन । इन्द्रिय लम्पट की बुद्धि-हीनता । (२) जूए के दुष्परिणाम । जूआखोर का अपने सम्बन्धी जनों से द्वेष, कलह और उसके प्रति सबकी तरफ से उपेक्षा । (४) जूएखोर की दुर्दशा । उसकी और इन्द्रिय लम्पट के गृहस्थ, स्त्री की भी दुर्दशा । सबकी किनारा-कशी । (५) जूएखोर की व्यसनमग्नता उसका घोर अधःपतन । (६) जूएखोर के समान धनार्थी विवाद-कलही का वर्णन । और काम्यसुखार्थ आत्मा की इन्द्रियो के बीच स्थिति । (७—८) उत्तम अध्यक्षो का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (९) नीच अध्यक्षो का वर्णन, उसके दोष । (१०) उच्छृंखल द्यूत व्यसनी की दुर्दशा । (११) कितव । अन्यो का छीन झपट लेने वाले का अन्तस्ताप । उसकी दुर्दशा । (१२) सर्वश्रेष्ठ राजा का आदर । (१३) द्यूत का निषेध और कृषि की प्रशंसा । (१४) अध्यक्षों को सदुपदेश । (५९२—६००)

सू० [३५]—विश्वेदेव । शिष्यो, जिज्ञासुओ के कर्त्तव्य । (२) उत्तम माता पिता और गुरु जनो की इच्छा । (३) माता पितावत् राजा, राजसभा से रक्षा की प्रार्थना, विदुषी माता और राज्य की पोलिस सेना वा प्रभु-शक्ति आदि से पाप को रोकने की प्रार्थना । (४) उत्तम प्रभुशक्ति के कर्त्तव्य । क्रोध त्याग का उपदेश । ब्रह्मज्ञान को धारण करने की प्रार्थना । (५) उत्तम विदुषी स्त्रियो के कर्त्तव्य । वे गृहो का सब प्रकार से पालन करे । (६) प्राभातिक सूर्य रश्मियों का रोग-नाशक गुण । अग्निवत् तेजोमय से सुख-कल्याण की प्रार्थना । (७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना । प्रभु का ऐश्वर्य सम्पादक ज्ञानवाणी, वेद का उपदेश । (८)

ज्ञानी के उदय और ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। (९) द्रोहरहित पुरुषों का सत्संग। ज्ञानप्रकाशको की शरण मे रहकर ज्ञान-प्राप्ति। (१०) विद्वानो का किरणो के तुल्य आदर। यज्ञ मे ऋत्विजो की तरह सात विद्वानों की राष्ट्र में स्थापन। अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक प्रभु से कल्याण की प्रार्थना। (११) वृद्ध ज्ञानी पुरुषो से यज्ञ-रक्षा की प्रार्थना और प्रभु से कल्याण-याचना। (१२) विद्वानो से ज्ञानोपदेश की याचना। (१३) बलवानो और सम्पन्नो से रक्षा-याचना। ज्ञानियो से ज्ञानी की याचना। (१४) विद्वान् तेजस्वी और सम्पन्नो की निर्भय शरण। (पृ० ६०१—६०८)

सू० [३६]—विश्वेदेव। दिन रात्रिवत् कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुषो तथा आदरणीय पुरुषो का सत्कार। (२) उत्तम पुरुषो से रक्षा की प्रार्थना। उनसे पाप से बचने की प्रार्थना। उपदेष्टा ज्ञानी और प्रबल क्षत्रिय दुष्टो के नाश और उत्तम सुख की प्रार्थना। (५) राजा की सूर्यवत् स्थिति। पूज्यो की आर्चना, ज्ञान धनादि की वृद्धि। (६) तेजस्वी, उत्तम स्त्री-पुरुषो के कर्त्तव्य। (७) प्रभु की आत्मदेह मे प्राणापान की प्राप्ति। देह मे मे बल ज्ञान आदि की याचना। (८) प्रभु की उपासना। (९) उसकी अर्चना, भजन आदि। (१०) आत्मज्ञान के श्रवण का उपदेश। विजयप्रद ज्ञान, कर्म, बल आदि की याचना। (११) वीर पुरुष, वीर भोग्य ऐश्वर्य की कामना। (१२) प्रभु के परम सुख, और निष्पापता की कामना। (१३) प्रभु के व्रत मे लगे श्रेष्ठ पुरुषो मे ऐश्वर्य-वृद्धि की प्रार्थना। (१४) सर्वत्र प्रभु की भावना। (पृ० ६०८—६१४)

सू० [सू० ३७] विश्वेदेव। सर्वश्रेष्ठ प्रभु के सत्य ज्ञान और उससे प्रभु का स्तवन। (२) सर्वाश्रय सत्य-वचन से रक्षा की आकांक्षा। (३) सूर्य के उदयास्त के तुल्य आत्मा स्वप्न-जागरण और जन्म-मरण। प्रभु के ज्ञान-ज्योति से कष्टो के नाश की प्रार्थना। (५) प्रभु मे उत्तम आचरणोपदेश की प्रार्थना। (६) माता पिता आदि आप्त जनो से सुखी

जीवन की प्रार्थना। (७) प्रभु से दीर्घ जीवन की प्रार्थना। (८) प्रभु के चिरकालिक साक्षात् की याचना। (९) दुःखहारी प्रभु से निष्पाप होने की प्रार्थना। (१०) प्रभु से शान्ति की याचना। (११) विद्वानों से सर्व-सुख कल्याण की कामना। (१२) अपराधी को दण्ड देने की प्रार्थना। (पृ० ६१४–६२०)

सू० [३८]—इन्द्र। सूर्य मेघवत् प्रबल राजा के कर्त्तव्य। दुष्ट दमन। प्रजा को समृद्ध करना। (२) सूर्य के तुल्य राजा प्रजा में ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि करे। (३) हम दुष्ट शत्रु के विजेता हों, (४) विजयी, ऐश्वर्य-वर्धक राजा को हम सदा चाहें और पावें। (५) ऐश्वर्यवान् राजा विद्वान् और आत्मा का वर्णन। वह सन्मार्ग में चलावे, निन्दित मार्ग से न चलावे, निन्दित मार्ग से हटावें वह मुक्त, असंग वा जितेन्द्रिय हो। पक्षान्तर में–जितेन्द्रियता से ब्रह्मचर्य के बाद स्नातक का गृहाश्रम में प्रवेश। (पृ० ६२०–६२३)

सू० [३९]—दो अश्वी। जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। उत्तम उपदेष्टा को पालक रूप से स्वीकार करना। (२) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सत्योपदेश कर प्रजापोषक उद्योग धन्धे करें। ऐश्वर्य की वृद्धि करें। (३) वे दोनों सदा सत्याचरणी हों, भूखों को अन्न दें, छोटे जीवों की रक्षा करें, निर्बलों को पालें, पीड़ितों की चिकित्सा करें। पक्षान्तर में वैद्य के कर्त्तव्य, उदर रोगी, अपस्मारी, नेत्र-विकल, राजयक्ष्मी, कृश आदि की चिकित्सा करें। (४) स्त्री पुरुषों के रथकार के समान कर्त्तव्य। वे उत्तम राजा को अधिकार दें। उत्तम नायक को पुनः उत्साहित करें। (५) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के वैद्यों के तुल्य कर्त्तव्य, रोगों की चिकित्सा करें, वे रक्षा का कार्य करें, सत्य को धारण करें। (६) विद्या पारंगत माता-पिता, गुरुजनों के कर्त्तव्य। उनसे ब्रह्मचारिणी की ज्ञान वा पालन याचना। (७) माता पिता को शुद्ध कन्या का नियमानुसार योग्य से विवाह

करने का आदेश। (८) वे विद्वानों को पालें, दुःखियों का दुःख से उद्धार करे। (९) विद्या में निष्णात स्त्री-पुरुष जीव को कष्ट से उबारें। (१०) प्राण उदान के तुल्य वे वीर पुरुषो को आने वाला सामर्थ्य दे। (११) वे रथी सारथिवत् जिसको बड़ी पालक शक्ति सौंपे वह पाप से दूर रहे। (१२) वे रथो से यातायात करे। (१३) वे रथो से पर्वतादि देशो मे भी जावे आवे। दुष्टो के पञ्जो से प्रजा की रक्षा करे। (१४) ऐसे व्यक्तियो के हाथो ही प्रजा को सौंपे जो जितेन्द्रिय और शक्तिशाली हो। (पृ० ६२३–६३१)

सू० [४०]—दो अश्वी। जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो के कर्त्तव्य। उनका रथ निर्विघ्न चले। (२) वे अपने कार्यों को नियत कालो मे व्यवस्थित करे, नैत्यिक नैमित्तिक कार्यों का ध्यान रखे, (३) वे प्रातः स्तुति करे और अपने शक्ति और अधिकारो को सदा प्राप्त करे। (४) सूर्य मेघवत् उनके कर्त्तव्य। वे सिंहो के समान रक्षक वीर हो, शिक्षित हो। (५) सभाओ के नायकों के कर्त्तव्य। वे राष्ट्रहित और हिंसक के नाश के लिये उद्यत रहे। (६) उत्तम स्त्री पुरुषों के शासन कर्त्तव्य। मुख से मधुर बोले, गृहणीवत् प्रजा-सभा के कर्त्तव्य। (७) सभा सेना के अध्यक्षो के कर्त्तव्य। (८) विद्वान् स्त्री पुरुष अचेत, सेवक, विधवा, ज्ञानदाता और उपदेष्टा आदि का पालन करे और अपने इन्द्रियो का दमन करे। (९) स्त्री के कर्त्तव्य। उत्तम पुत्र प्राप्त करे, अपने सामर्थ्यानुसार उन्नत पद पावे, जलधाराओ के तुल्य तेजस्वी पुरुष को प्राप्त हो, सौभाग्यवती हो। इसी प्रकार प्रजा भी चाहे कि उसका राजा उत्तम हो। (१०) पति के घर जाते हुए स्त्री को पितादि बन्धुओ से बिछुडते हुए न रोने का उपदेश। क्योंकि पति के गृह को जाने मे, उसका उद्देश्य पवित्र और अधिक उत्तम है। उसमे वह रोना अमङ्गल है। (११) युवा-युवतियो का गृहस्थ-प्रवेश के पूर्व माता पितादि से योग्य शिक्षा की प्रार्थना। (१२) वर वधू

को माता पिता आदि का उपदेश, वे अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण रखें। शुभ कार्य, गुण आदि धारण करे। (१३) उत्तम अन्न और ज्ञान से तृप्त हो, ऐश्वर्यवान् हो, उत्तम पुरुष को गुरु बनावे। उत्तम आश्रय करे। (१४) प्रसन्न रहे, उत्तम विद्वान् का सत्संग करे। (पृ० ६३०–६३९)

सू० [४१]—दो अश्वी। त्रिकाल शक्तियुक्त प्रभु की स्तुति। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) योगाभ्यास द्वारा प्रभु का ध्यान करें, और यज्ञ करे। (३) उत्तम ज्ञानी आचार्य का सत्संग करे, वेद ज्ञान का रस प्राप्त करें।

सू० [४२]—इन्द्र। उत्तम धनुर्धर के समान स्वय प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश। विद्वान् हृदय में परमेश्वर को धारण करे। सुखी हो। (२) गौ के तुल्य प्रभु की सेवा करो। प्रभु के प्रति सखि-भाव का उपदेश। (३) उत्तम पालक प्रभु। उससे ऐश्वर्य की याचना। (४) विवाद के अवसर पर राजा शासक की पुकार। युद्धादि में सेनापति की आवश्यकता, उसके समान सर्वत्र प्रभु के सहाय की आवश्यकता। उपासक को प्रभु प्रेम करता है। (५) प्रभु पर विश्वासी के निर्विघ्न मार्ग। (६) हमारे स्वामी से शत्रु भय करे। (७) राजा शत्रु का दूर से ही नाश करे। (८) उत्तम शास्ता राजा के कर्त्तव्य। भले को पीड़ा न दे। (९) मनुष्य को कितव के तुल्य विजयोद्योगी होने का उपदेश। (१०) प्रभु और राजा से अज्ञान और धनों के विजय की प्रार्थना। (११) प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ६४१–६४६)

सू० [४३]—इन्द्र। पति को स्त्रियों के तुल्य प्रभु को स्तुतियां प्राप्त हों। समस्त स्तुतियों का एक मात्र लक्ष्य प्रभु है। (२) राजावत् प्रभु की स्तुति। प्रभु में मन का अनुराग। (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। उसके प्रजा के प्रति अन्नादि को समृद्ध करने और बल बढ़ाने का कर्त्तव्य। (४) उत्तम २ नायकों का समर्थ पुरुष को आश्रय रूप से अपनाना।

(५) द्यूतकार के समान प्रजा को कृतकर्मा कुशल पुरुषो के संग्रह का उपदेश। जिससे वह सदा बलशाली बना रहे। (६) राजा प्रजा के सुखों का सदा ध्यान रक्खे और शत्रुओ का विजय करे। (७) समुद्र के समान राजा बलवान् राजा का सर्वाश्रय पद। (८) क्रुद्ध सांड के समान प्रजाओ वा शत्रुओ के राजा का उग्र रूप । उसका शासन। सेनाओ और प्रजाओं का जल का सा स्वभाव। राजा मनुष्यमात्र के हित के लिये पराक्रम धारण करे। (९) राजा स्वयं दुधार गौ के समान प्रजा को ऐश्वर्य दे। तेजस्वी निष्क्रोध होकर भी चमके। हृदय मे शुद्ध, तेजस्वी उत्तम आचरण वाला हो। (१०) प्रजा अन्नादि से सम्पन्न, ज्ञानी, धन सम्पन्न हो। (११) राजा उसकी सब ओर से रक्षा करे। राजा प्रजा का सख्य हो। (पृ० ६४६ ६५२)

सू० [४४]—इन्द्र। राजा के कर्त्तव्य, राजा न्याय से शासन करे शत्रुओ और दुष्टो का नाश करे। पक्षान्तर में गृहपति के कर्त्तव्य। (२) राजा का रथ और सैन्य दृढ़ हों, प्रजा संयमी हो। समस्त सैन्य उसके हाथ में हो। (३) बलवान् जन राजा के रक्षक हों। (४) प्रजा बलशाली राजा को चाहें। वह उनकी वृद्धि करे। (५) राजा से प्रजाकी समृद्धि याचना। (६) देवोपासक जन यशोभजन होते हैं और उपासना न करने वालों का अधःपतन होता है। (७) अजितेन्द्रियों का अधःपतन और जितेन्द्रियो की उन्नति। (८) प्रभु का प्रसाद और कोप। उसका गर्जनवत् उपदेश। (९) प्रभु से दुष्टो के नाशक बल की याचना। (१०) अज्ञान दुर्भिक्ष आदि का विजय। (११) परमेश्वर से सर्वतोभद्र रक्षा की याचना। (पृ० ६५३–६५८)

सू० [४५]—अग्नि। मुख्याग्नि सूर्य, अध्यात्म में प्राण । जाठर, और भौम ये तीन अग्नियें। उनसे दीर्घायु की प्राप्ति। (२) तीन लोकों मे विद्यमान उसके तीन रूप। उसका एक निगूढ रूप। (३) ज्ञानद्रष्टा

अग्नि। पक्षान्तर में राजा रूप अग्नि। (४) आकाश स्थ विद्युद् अग्नि। उसके समान राजा का वर्णन। उसके तुल्य विद्वान्। सूर्यवत् राजा का कर्त्तव्य। (५) प्राभातिक सूर्यवत् राजा का स्वरूप। और उसके कर्त्तव्य। (७) तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य। (८) आत्मा रूप अग्नि का प्रकाश। उसका अग्नि के तुल्य ही जीवन रूप ज्वलन। (९) उसका सुख-प्राप्ति के निमित्त परिसेवन। (१०) शिष्य रूप अग्नि का वर्णन, उसको गुरुवत् प्रभु का उपदेश। प्रभु का सर्वव्यापक तेज। जीवन रूप अग्नि, उसका प्रभु शक्ति से ही अनेक जीव रूप से उत्पन्न होना। (११) सर्वैश्वर्यप्रद सर्वज्ञानप्रद प्रभु। (१२) सर्वहितकारी, वैश्वानर अग्नि। सर्वरक्षक, ज्ञानमय माता पिता गुरु आदि विद्वान् जनो से उत्तम उत्तम वीर्य, धन, पुत्रादि की याचना। (पृ० ६५८–६६४) इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति सप्तमोऽष्टकः।

शुद्धाशुद्ध-पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२५	४	उसके धर्मों को	उनके धर्मों को
६९	२०	वायु प्रत्येक	वायु अर्थात् प्रत्येक
९४	१२	होते है	होती है
९६	२२	विश रूप	विशेप रूप
९७	७	(हरिः)	(हरिम्)
१५९	९	शुशोभित	सुशोभित
१८४	६	अश्ववत्	अश्वव्रत्
११६	१४	कलशो के	कलशो अर्थात् देहो वा लोको के
२२४	१२	निर्मूछ	निर्मूल
२५१	३	शाशक	शासक
२७०	६	दधाति (धारण)	(दधाति) धारण
३०९	३	प्रजा प्रजाओ	प्रजाओ
३०९	११	इन्द्रिगण	इन्द्रियगण
३२०	१६	प्रभु के	शत्रु के
३२८	४	ऋायु	आयु

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
		पृष्ठ-संख्या २५२–२६८	३५२–३६८
३६५	२	सुखपात्री	सुखदात्री
४१७	१८	प्रकार है	प्रकार
४२२	२५	त्रिनाश	विनाश
४३३	६	उत्युत्तम	अत्युत्तम
४९७	११	अनो	जनो
५८३	१६	पुरुप	पुरुप के
५८५	१३	प्रातृशक्ति	मातृशक्ति
६१६	१३	आप्रकाशित	अप्रकाशित

पृ० ४८६ में मन्त्र (१६) का उत्तरार्ध—(त्रिष्टुप् गायत्री) त्रिष्टुप्, गायत्री और (छन्दांसि) अन्य छन्द (सर्वा ता) वे समस्त (यमे आहिता) उसी नियन्ता में आश्रित हैं अर्थात् उन सब का परम तात्पर्य उसी प्रभु में चरितार्थ होता है ।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

षष्ठेऽष्टके सप्तमेऽध्याये षोडशो वर्गः ॥

नवमे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ।

[१]

अथातः पावमानसौम्य नवम मण्डलम् ॥ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३, ७—१० निचृद् गायत्री । ४, ५ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) विद्यादि से स्नान करने हारे ! निष्णात ! एवं विद्यादि मे उत्पन्न होने हारे ! अन्यो को सन्मार्ग मे प्रेरणा करने हारे ! तू (इन्द्राय पातवे) उत्तम ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (सुतः) अभिषिक्त है । तू (स्वादिष्ठया) अति स्वादु, मधुर (मदिष्ठया) अति अधिक आनन्द देने वाली, (धारया) वाणी से (पवस्व) अन्यो के प्रति प्राप्त हो । अन्यो से मधुर, सुखजनक वाणी से व्यवहार कर ।

उत्पन्न हुआ बालक गर्भ से, विद्यार्थी विद्या-गर्भ से तथा प्रत्येक दीक्षित आश्रम से आश्रमान्तर जाने के लिये प्रथम अभिषेक करता है ।

इसी प्रकार प्रत्येक अधिकारी अपने पद पर नियुक्त होने के पूर्व अभिषिक्त होता है। वे सब ही 'सोम' कहाते है। इस समस्त सोम-प्रकरण में सामान्यतः ये सभी 'सोम' लक्षणया वर्णित जानने चाहिये। प्रकरणानुसार एकमात्र पक्ष विशेष रूप से दर्शाया जावेगा। अध्यात्म में जगदुत्पादक, जगत्प्रेरक प्रभु भी 'सोम' है। और उसका महान् ऐश्वर्य तथा उसका दर्शन करने वाला इन्द्रियों का स्वामी, ऐश्वर्यों का भोक्ता जीव भी 'इन्द्र' पद से वाच्य है। जहां उत्पन्न होने वाला जीव 'सोम' है वहां 'इन्द्र' शब्द से जगत् का ऐश्वर्य और उसका स्वामी प्रभु स्वयं संगृहीत होते हैं। 'सोम' नव ब्रह्मचारी के साथ इन्द्र, और अग्नि आचार्य के वाचक होते हैं, 'सोम' गृहस्थाभिलाषी वर है तो 'इन्द्र' ऐश्वर्य है, जब वह 'इन्द्र' है तो 'सोम' गृहस्थ के उत्तम सुख समझे जाते है। वनस्थ विद्वान् एवं प्रभुपरायण अभ्यासी, मुमुक्षु वा परिव्राजक 'सोम' पवमान पद मे वर्णित होते हैं। उनके विशेषणो द्वारा उनका विशेष वर्णन होता है। यज्ञ में सोम ओषधि-विशेष का रस भी गृहीत होता है। याज्ञिक पक्ष की इस भाष्य में, प्रायः अन्यो द्वारा वर्णित होने से पिष्टपेषणवत् उपेक्षा की गयी है। अनेक स्थलों पर सोम अन्न एवं सामान्य ओषधि वाचक भी है। जो यथास्थान संकेत से बतलाया जावेगा।

इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् आज्ञापक राजा भी राष्ट्र को कण्टक-शोधनादि द्वारा पावन करने से 'पवमान सोम' कहा जाता है। देह का राजा जीव, ब्रह्माण्ड का स्वामी ईश्वर और आश्रम का गुरु, गृह का गृहपति आदि सभी 'सोम' कहे जाते हैं। उन सबका समान कर्तव्य और पद होने से एक समान वर्णन जानना चाहिये।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

भा०—(विश्व-चर्षणिः) सब का द्रष्टा (रक्षोहा) दुष्टों का नाश

करने वाला, विद्वान् (अयः-हतम्) सुवर्णादि से बने (योनिम्) आसन पर (द्रुणा अभि) द्रुतगामी सैन्य से परिष्कृत होकर (सधस्थे) एक साथ बैठने के सभा भवन में (आ सदत्) सबके सन्मुख विराजे। (२) 'सोम' ओषधि देह-शोधन और रोग नाश करने से 'विश्वचर्षणि और रक्षोहा' है। वह लोहांग से व्याप्त देह को द्रुतगामी रुधिर अंश से प्राप्त हो।

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

भा०—तू (वरिवः-धातमः) श्रेष्ठ ऐश्वर्य को धारण करने वाला, (मंहिष्ठः) उत्तम दाता और (वृत्रहन्-तमः) अज्ञान, शत्रु, रोगादि का उत्तम नाशक (भव) हो। तू (मघोनाम्) धन सम्पन्नों को (राधः पर्षि) धन प्रदान करता है।

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (महानां देवानां) बड़े २ विद्वान्, तेजस्वी जनों की (अन्धसा) उत्तम धन आदि ऐश्वर्य, और अन्न द्वारा (वीतिम् अभि अर्ष) कामना को पूर्ण कर और (वाजम्) बल (उत श्रवः अभि अर्ष) और ज्ञान, यश भी प्राप्त करा।

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयार्द्र ! हम (दिवे-दिवे) दिन प्रतिदिन (त्वाम्) तुझको (अच्छ चरामसि) उत्तम रीति से प्राप्त होते हैं। (नः) हमारा (तत् इत्) वह तू ही (अर्थम्) धनवत प्राप्य है। (नः आशसः) हमारी सब आशाएं और कामनाएं तुझ पर ही आश्रित हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से दुही गई, प्रदान की गई विद्या वा पदवी (ते) तुझ (परिस्रुतं सोमं) अभिषिक्त सोम विद्यार्थी को (शश्वता) सनातन नित्य (वारेण) वरण करने योग्य (तना) विस्तृत ज्ञानैश्वर्य से (पुनाति) पवित्र करती है ।

(२) हे सौम्य युवक ! (सूर्यस्य दुहिता) तेजस्वी पिता की कन्या (ते परिस्रुतं सोमं) तेरे निषिक्त वीर्य को (वारेण) वरणीय (शश्वता तना) स्थायी उत्तम पुत्र रूप से (पुनाति) प्राप्त करे । (३) सूर्य की पुत्री श्रद्धा का अभिप्राय वह उत्तम ज्ञानी पुरुष की सत्य विद्या, सत्य ज्ञानधारण कराने से 'श्रद्धा' है ।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥

भा०—(तम् ईम्) उसको (अण्वीः) प्राणधारिणी (दश योषणः) दसों दिशा की प्रेमयुक्त प्रजाएं (समर्ये) मनुष्यों से सहित राष्ट्र में (आ गृभ्णन्ति) उस अभिषिक्त को अपनाती है । और वे (स्वसारः) स्वयं उसको प्राप्त वा शत्रु को सुख से उखाड़ फेंकने में समर्थ सेनाएं (पार्ये दिवि) पालन करने योग्य, प्रकाश-तेज से युक्त पद पर स्थापित करती है । (२) अध्यात्म मे दश इन्द्रियें सूक्ष्म रूप होकर उस जीव को अपना रही है ।

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति वाकुरं दृतिम् ।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥

भा०—(अग्रुवः) आगे आने वाले, प्रमुख प्रजाजन, (ईम्) सब ओर से (वाकुरम्) तेजस्वी, सूर्यवत् प्रकाशवान् (दृतिम्) पात्र के समान ऐश्वर्य को ग्रहण करने वाले (त्रि-धातु) तीनों प्रकार से (वारण) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ (मधु) मधुर स्वभाव से युक्त (तम्)

उसको (हिन्वन्ति) बढ़ाते और (धमन्ति) अधिक तीक्ष्ण करते और उसका यशो-गान करते है।

अभी३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

भा०—(अघ्न्याः धेनवः शिशुम्) न मारने योग्य, गौवें जिस प्रकार बालक को (पातवे) दूध पिलाने के लिये (श्रीणन्ति) अपने साथ मिलाती हैं उसी प्रकार (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् सत्य-ज्ञानदर्शी आचार्य, गुरु की (अघ्न्याः धेनवः) न नाश होने वाली सत्य वाणियां (पातवे) पालन करने के लिये (सोमम् शिशुम्) शिशु विद्यार्थी को (अभि-श्रीणन्ति) प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अभिषिक्त राजा को अहन्तव्य प्रजाएं गौवत् ऐश्वर्य पद देने के लिये सब ओर से एकत्र होती है।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य इत् मदेषु) इस अभिषिक्त राजा के (मदेषु) आनन्दोत्सवों में प्रसन्न होकर (शूरः इन्द्रः) शूरवीर, शत्रुनाशक सेनापति (विश्वा वृत्राणि) समस्त शत्रुओं को (आ जिघ्नते) नाश करता है और वह (मघा च मंहते) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२]

मेधातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री। २, ३, ५, ७—९ गायत्री। १० विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या। इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) इस प्रकार से विनीत होकर गुरु की परिचर्या करने वाले! हे (सोम) विद्यार्थिन्! ब्रह्मचारिन्! सोम्य! ज्ञानोपासक! तू (देव-वीः) ज्ञान दाता को प्राप्त होने वाला होकर (पवित्रं) पवित्र

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से दुही गई, प्रदान की गई विद्या वा पदवी (ते) तुझ (परिस्रुतं सोमं) अभिषिक्त सोम विद्यार्थी को (शश्वता) सनातन नित्य (वारेण) वरण करने योग्य (तना) विस्तृत ज्ञानैश्वर्य से (पुनाति) पवित्र करती है ।

(२) हे सौम्य युवक ! (सूर्यस्य दुहिता) तेजस्वी पिता की कन्या (ते परिस्रुतं सोमं) तेरे निषिक्त वीर्य को (वारेण) वरणीय (शश्वता तना) स्थायी उत्तम पुत्र रूप से (पुनाति) प्राप्त करे । (३) सूर्य की पुत्री श्रद्धा का अभिप्राय वह उत्तम ज्ञानी पुरुष की सत्य विद्या, सत्य ज्ञानधारण कराने से 'श्रद्धा' है ।

तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश ।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥

भा०—(तम् ईम्) उसको (अण्वीः) प्राणधारिणी (दश योषणः) दसों दिशा की प्रेमयुक्त प्रजाएं (समर्ये) मनुष्यों से सहित राष्ट्र में (आ गृभ्णन्ति) उस अभिषिक्त को अपनाती है । और वे (स्वसारः) स्वयं उसको प्राप्त वा शत्रु को सुख से उखाड़ फेंकने में समर्थ सेनाएं (पार्ये दिवि) पालन करने योग्य, प्रकाश-तेज से युक्त पद पर स्थापित करती है । (२) अध्यात्म मे दश इन्द्रियें सूक्ष्म रूप होकर उस जीव को अपना रही है ।

तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति वाकुरं दृतिम् ।
त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥

भा०—(अग्रुवः) आगे आने वाले, प्रमुख प्रजाजन, (ईम्) सब ओर से (वाकुरम्) तेजस्वी, सूर्यवत् प्रकाशवान् (दृतिम्) पात्र के समान ऐश्वर्य को ग्रहण करने वाले (त्रि-धातु) तीनों प्रकार से (वारणं) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ (मधु) मधुर स्वभाव से युक्त (तम्)

उसको (हिन्वन्ति) चढ़ाते और (धमन्ति) अधिक तीक्ष्ण करते और उसका यशो-गान करते हैं ।

अ॒भी३॒॑मम॒घ्न्या॑ उ॒त श्री॒णन्ति॑ धे॒नवः॒ शिशु॑म् ।
सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ९ ॥

भा०—(अघ्न्याः धेनवः शिशुम्) न मारने योग्य, गौवें जिस प्रकार बालक को (पातवे) दूध पिलाने के लिये (श्रीणन्ति) अपने साथ मिलाती हैं उसी प्रकार (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् सत्य-ज्ञानदर्शी आचार्य, गुरु की (अघ्न्याः धेनवः) न नाश होने वाली सत्य वाणियां (पातवे) पालन करने के लिये (सोमम् शिशुम्) शिशु विद्यार्थी को (अभि-श्रीणन्ति) प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार अभिषिक्त राजा को अहन्तव्य प्रजाएं गौवत् ऐश्वर्य पद देने के लिये सब ओर से एकत्र होती है ।

अ॒स्येदिन्द्रो॒ मदे॒ष्वा विश्वा॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते ।
शूरो॑ म॒घा च॑ मंहते ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य इत् मदेषु) इस अभिषिक्त राजा के (मदेषु) आनन्दोत्सवों में प्रसन्न होकर (शूरः इन्द्रः) शूरवीर, शत्रुनाशक सेनापति (विश्वा वृत्राणि) समस्त शत्रुओं को (आ जिघ्नते) नाश करता है और वह (मघा च मंहते) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२]

मेधातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री । २, ३, ५, ७—९ गायत्री । १० विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

पव॑स्व देव॒वीरति॑ प॒वित्रं॑ सोम॒ रंह्या॑ । इन्द्र॑मिन्दो॒ वृषा वि॑श ॥१॥

भा०—हे (इन्दो) इस प्रकार से विनीत होकर गुरु की परिचर्या करने वाले ! हे (सोम) विद्यार्थिन् ! ब्रह्मचारिन् ! सोम्य ! ज्ञानोपासक ! तू (देववीः) ज्ञान दाता को प्राप्त होने वाला होकर (पवित्रं) पवित्र

करने वाले (इन्द्रम्) तत्वदर्शी, वाणी के नियमो को खोल कर बताने वाले गुरु को (रंह्या) वेग से, अनालसी होकर (अति पवस्व) अपने को खूब पवित्र कर। और तू (वृषा) बलवान् होकर (इन्द्रम् आविश) उस आचार्य को प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा देव, विद्वानो को प्राप्त कर पवित्र इन्द्र-पद को प्राप्त करे और बलवान् होकर ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पद पर विराजे।

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) आह्लादकारक ! ऐश्वर्यवन् ! सोम्य ! तू (वृषा) बलवान् (द्युम्नवत्तमः) अति तेजस्वी होकर (महि प्सरः) बहुत उत्तम ज्ञान का (आ वच्यस्व) अभ्यास कर। और (धर्णसिः) धारणशील होकर (योनिम्) गुरु-गृह मे (आ सदः) रह। राजा भी धनैश्वर्य-सम्पन्न बली होकर प्रजा को बड़ा सुख दे, अपने आसन पर दृढ़ रहे।

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भा०—(सुतस्य) अभिषिक्त, शुद्ध-पवित्र, परिष्कृत (वेधसः) जिस विद्वान् कार्यकुशल पुरुष की (धारा) वाणी, ओषधि लता के समान (प्रियं मधु) प्रिय और मधुर वचन (अधुक्षत) प्रदान करे। वही (सु-क्रतुः) उत्तम ज्ञान और कर्मवान् पुरुष (अपः वसिष्ट) आप्त प्रजाजनो पर अध्यक्ष रूप से रहे।

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (महान्तं मही. आपः सिन्धवः) महान् समुद्र के प्रति बड़ी २ तीव्र जलधारा और नद (अनु अर्षन्ति) जाते हैं और वह (गोभिः वासयिष्यते) गमनशील नदियो और जलो से पूर्ण हो जाता है

उसी प्रकार (यत्) जब हे सोम विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष ! तू भी (गोभिः) उत्तम ज्ञानयुक्त वाणियो, भूमियो वा चमकीले, तेजोयुक्त वस्त्रों द्वारा (वासयिष्यसे) आच्छादित किया जाय तब (त्वा महान्तं) तुझको महान् जान कर (अनु) तेरे पीछे (आपः) आप्त प्रजाएं और (सिन्धवः) वेग से जाने वाले अश्वारोही जन भी (अर्षन्ति) चले।

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(समुद्रः) समुद्र के समान सर्वाश्रय, (दिवः विष्टम्भः) भूमि का विशेष स्तम्भवत् आश्रय, और (धरुणः) धारण करने वाला (सोमः) सौम्य स्वभाव का वीर्यवान् पुरुष (अस्मयुः) हम प्रजाओ को चाहने वाला होकर (अप्सु) जलो में स्नात पुरुष के समान (पवित्रे) पवित्र राज्य-कार्य मे (मामृजे) अभिषेक किया जाय। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सं सूर्येण रोचते ॥६॥

भा०—(वृषा) बलवान् प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, (हरिः) दुःखो और मन का हरण करने वाला, (महान्) गुणो में श्रेष्ठ, (मित्रः न) स्नेही जन के समान (दर्शतः) व्यवहारो का द्रष्टा, न्यायशील, शासक (सूर्येण सं रोचते) सूर्य के समान तेज से भली प्रकार प्रकाशित होता है।

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अपस्युवः) कर्मों का उपदेश करने वाली, (गिरः) ये वाणियां (ते ओजसा) तेरे सत्य पराक्रम से (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध-पवित्र, अलंकृत होती हैं (याभिः) जिन से तू (मदाय) प्रजा के हर्ष के लिये (शुम्भसे) सुशोभित होता है।

तं त्वा मदा॑य॒ घृष्व॑य उ लोककृ॒त्नुमी॑महे ।
तव॑ प्र॒शस्त॑यो म॒हीः ॥ ८ ॥

भा०—(मदाय) आनन्द, हर्ष और स्तुति और (घृष्वये) शत्रु जनों से संघर्ष प्राप्त करने के लिये (लोक-कृत्नुम्) उत्तम लोकों के बनाने वाले (तं त्वा) उस तुझ से ही हम (ईमहे) याचना करते है । (तव प्रशस्तयः महीः) हे प्रभो ! तेरी ही बड़ी उत्तम स्तुतियां है ।

अ॒स्मभ्य॑मिन्दविन्द्र॒युर्मध्वः॑ पवस्व॒ धार॑या ।
प॒र्जन्यो॑ वृ॒ष्टिमाँ॑ इ॒व ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षा वाले मेघ के समान तू भी (इन्द्रयुः) ऐश्वर्ययुक्त, राजपद की अभिलाषा करता हुआ (पर्जन्यः) सब सुखो, रसो का दाता, सब शत्रुओ का पराजय-कर्त्ता होकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मध्वः धारया) मधु वा मधुर जल की धारा के समान शीतल, मनोहर, हर्षप्रद ज्ञान की वाणी से (पवस्व) हमे पवित्र कर ।

गो॒षा इ॑न्दो नृ॒षा अ॑स्यश्व॒सा वा॑ज॒सा उ॒त ।
आ॒त्मा य॒ज्ञस्य॑ पू॒र्व्यः ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञस्य) पूज्य पद के लिये (पूर्व्यः) सब गुणों से पूर्ण, सर्वप्रथम पूजने योग्य, (आत्मा) आत्मा के समान प्रिय है । और तू ही (गोपाः) गौवो, भूमियो, वाणियो का दाता, सेवन करने वाला, (नृपाः असि) मनुष्यों का स्वामी (अश्वसाः वाजसाः) अश्वो, बलों, ऐश्वर्यों और ज्ञानो का भोक्ता राष्ट्र के आत्मा के तुल्य (असि) है ।

इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२]

शुनःशेप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १६ गायत्री । ४, ६, ८, ६ निचृद् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी, सूर्यवत् कान्तिमान् (अमर्त्यः) अन्य मनुष्यों में असाधारण (पर्णवीः इव) पक्षी के समान वेग से जाने वाले रथों से जाता हुआ (द्रोणानि अभि आसदम्) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (दीयति) प्रयाण करता है ।

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी (पवमानः) राष्ट्र का कण्टक-शोधन करता हुआ, (अदाभ्यः) किसी से हिंसित या पीड़ित न होकर (विपा) विशेष पालक शक्ति से (कृतः) समर्थ होकर (ह्वरांसि) कुटिलाचारी जनों को (अति धावति) पार कर जाता है, उनको जीत कर प्रजा को अपने वश करता है ।

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) यह दानशील, विद्वान्, तेजस्वी पुरुष (पवमानः) सबको पवित्र शुद्ध करने हारा, (विपन्युभिः) विशेष स्तुति करने वालों और विविध व्यवहार कुशल और (ऋतायुभिः = ऋतयुभिः) सत्य न्याय की कामना करने वाले जनों द्वारा (पवमानः) अभिषिक्त होकर (हरिः) सबका दुःखहारी जन (वाजाय) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि के लिये (मृज्यते) परिष्कृत और अभिषिक्त किया जाता है ।

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः शूरः) वह शूरवीर (सत्वभिः) अपने बलों और बलवान् पुरुषों द्वारा (विश्वानि वार्या) समस्त उत्तम २ ऐश्वर्यों को

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥

भा०—(मदाय) आनन्द, हर्ष और स्तुति और (घृष्वये) शत्रु जनो से संघर्ष प्राप्त करने के लिये (लोक-कृत्नुम्) उत्तम लोकों के बनाने वाले (तं त्वा) उस तुझ से ही हम (ईमहे) याचना करते हैं । (तव प्रशस्तयः महीः) हे प्रभो ! तेरी ही बड़ी उत्तम स्तुतियां हैं ।

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षा वाले मेघ के समान तू भी (इन्द्रयुः) ऐश्वर्ययुक्त, राजपद की अभिलाषा करता हुआ (पर्जन्यः) सब सुखों, रसों का दाता, सब शत्रुओं का पराजय-कर्त्ता होकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मध्वः धारया) मधु वा मधुर जल की धारा के समान शीतल, मनोहर, हर्षप्रद ज्ञान की वाणी से (पवस्व) हमें पवित्र कर ।

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञस्य) पूज्य पद के लिये (पूर्व्यः) सब गुणों से पूर्ण, सर्वप्रथम पूजने योग्य, (आत्मा) आत्मा के समान प्रिय है । और तू ही (गोषाः) गौवों, भूमियों, वाणियों का दाता सेवन करने वाला, (नृषाः असि) मनुष्यों का स्वामी (अश्वसाः वाजसाः) अश्वों, बलों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का भोक्ता राष्ट्र के आत्मा के तुल्य (असि) है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३]

शुनःशेप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, १९ गायत्री । ४, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी, सूर्यवत् कान्तिमान् (अमर्त्यः) अन्य मनुष्यों में असाधारण (पर्णवीः इव) पक्षी के समान वेग से जाने वाले रथों से जाता हुआ (द्रोणानि अभि आसदम्) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (दीयति) प्रयाण करता है ।

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (देवः) तेजस्वी (पवमानः) राष्ट्र का कण्टक-शोधन करता हुआ, (अदाभ्यः) किसी से हिंसित या पीड़ित न होकर (विपा) विशेष पालक शक्ति से (कृतः) समर्थ होकर (ह्वरांसि) कुटिलाचारी जनों को (अति धावति) पार कर जाता है, उनको जीत कर प्रजा को अपने वश करता है ।

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) यह दानशील, विद्वान्, तेजस्वी पुरुष (पवमानः) सबको पवित्र शुद्ध करने हारा, (विपन्युभिः) विशेष स्तुति करने वालों और विविध व्यवहार कुशल और (ऋतायुभिः = ऋतयुभिः) सत्य न्याय की कामना करने वाले जनों द्वारा (पवमानः) अभिषिक्त होकर (हरिः) सबका दुःखहारी जन (वाजाय) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि के लिये (मृज्यते) परिष्कृत और अभिषिक्त किया जाता है ।

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः शूरः) वह शूरवीर (सत्वभिः) अपने बलों और बलवान् पुरुषों द्वारा (विश्वानि वार्या) समस्त उत्तम २ ऐश्वर्यों को

(यन् इव) मानो प्राप्त ही करता हुआ (पवमानः) स्वयं पवित्र करता हुआ (सिषासति) सबमें न्यायपूर्वक विभक्त करे।

एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—(एषः) वह (देवः) तेजस्वी पुरुष (पवमानः) राष्ट्र को दुष्ट पुरुषो से कण्टक शोधनवत् स्वच्छ करता हुआ, शत्रु के प्रति प्रयाण करने के लिये उद्यत होकर (रथर्यति) रथों, रथारोही सैन्यगण की कामना करे और उनको (दशस्यति) अभिमत वेतनादि भी दे। और (वग्वनुम्) उत्तम वचन (आविः कृणोति) प्रकट करे। इति विंशो वर्गः ॥

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—(एषः) वह (देवः) दानशील, तेजस्वी, विजिगीषु राजा, (विप्रैः) विद्वानो से (अभि-स्तुतः) सब प्रकार से स्तुति किया जाकर (रत्नानि दधत्) नाना रत्नों, ऐश्वर्यों और धनो को धारण करता हुआ (दाशुषे) अपने को अधीन समर्पण करने वाला राष्ट्र के हितार्थ (अपः वि गाहते) अभिषेचनीय जलो मे स्नान करता है, उसी प्रकार वह प्राप्त प्रजाजनो मे भी विचरता है। राज्याभिषेक काल मे समस्त जल समस्त प्रजाओ के प्रतिनिधि होते हैं। और इसी प्रकार यज्ञ मे 'वसतीवरी' जलों का पात्र द्रोणकलश भी प्रजारूप जलो से पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि कहा जाता है। रहस्य स्पष्टीकरण देखो यजुर्वेद (अ० १०) आलोकभाष्य अभिषेक-प्रकरण।

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

भा०—(एषः) वह (पवमानः) राष्ट्र को स्वच्छ, एवं शत्रु पर आक्रमण करता हुआ वीर (धारया) वाणी वा शस्त्र की धारा वा अश्वादि की

धारा गति से (रजांसि) समस्त लोको को (तिरः) पराजित करता हुआ (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (दिवं वि धावति) विजयार्थ विशेष वेग से जाता है।

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः। पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

भा०—(एषः) वह (पवमानः) राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ (सु-अध्वरः) उत्तम अंहिसनीय, स्वयं हिंसा रहित, (अस्पृतः) किसी से न पराजित होने वाला, वीर पुरुष (रजांसि तिरः) रजोगुणों से मुक्त वा ऐश्वर्यों को दूर तक परे फेकता हुआ, (दिवं वि आसरत्) विजयार्थ विविध दिशाओ मे प्रयाण करता है।

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

भा०—(एषः देवः) वह विजिगीषु पुरुष (प्रत्नेन जन्मना) अपने सनातन से प्राप्त जन्म अभिषेकादि संस्कार द्वारा (देवेभ्यः) उसे चाहने वाले और विजयेच्छुक पुरुषो के लिये (सुतः) अभिषिक्त होकर ऐश्वर्य प्राप्त करके, (हरिः) सब प्रजा का चित्त हरण और दुःख दूर करके (पवित्रे) प्रजापालक, दुष्ट दमन रूप पवित्र पद पर (अर्षति) आता है।

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(एषः उ स्यः) यह वह है जो (पुरुव्रतः) बहुत से व्रतो, कर्मों का पालन करके स्वयं (जज्ञानः) नया जन्म लेता हुआ, (इषः) नाना उत्तम कामनाओ सेनाओ और उपभोग्य अन्नादि को भी (जनयन्) पैदा करता हुआ (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया पवते) वाणी से सबको पवित्र करता, (धारया पवते) अभिषेक जल धारा से पवित्र किया जाय और (धारया पवते) धर्म की दण्ड-धाराओ तथा खड्ग की धाराओ से सत्यासत्य और मित्र शत्रु का विवेक करता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

इस ही सूक्त में श्लेष-वृत्ति से—परिव्राजक तथा उत्पादक परमेश्वर और जन्म लेने वाले जीव का भी बड़ा रोचक वर्णन है। जैसे—(१) 'पर्णवी' मुमुक्षु, राजहंस और पक्षी आत्मा। 'द्रोण' जलकुण्ड, नाना शरीर। (२) 'विपा' वाणी। 'ह्वरांसि' मानस कौटिल्य और जीव के तिर्यग् मार्ग। परिव्राजक हंस आत्मा नित्य। (३) 'हरिः' आत्मा शोधन किया जाता है विद्या और तप से। (४) परिव्राट्, पवित्र सा करता हुआ ज्ञान वितरण करता है। (५) वह उत्तम उपदेश करता है, (६) जलों में संन्यास-काल में मज्जन करता है। आत्मा (आपः) लिङ्ग शरीरों में विचरता है। (७, ८) रजः, राजस भावों को त्याग करके विचरता है, (९) पवित्र मुक्तिमार्ग, परमेश्वर में जाता है (१०) वाणी से सबको पवित्र करता है, आत्मा 'धारा', वेद वाणी से पवित्र होता है। इति दिक्। इसी प्रकार सर्वत्र योजनाएं जाननी चाहिये, विस्तार-भय से नहीं लिखते हैं।

[४]

हिरण्यस्तूप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ १० गायत्री। २, ५, ८ ९ निचृद् गायत्री। ६, ७ विराड् गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सना॑ च सोम॒ जेषि॑ च॒ पव॑मान॒ महि॒ श्रवः॑।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ १ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे वा राज्याभिषेक विधि से पावन किये जाने हारे! तू हमें (महि श्रवः सन च) बड़ा भारी ज्ञानोपदेश, यश और धन प्रदान कर। स्वयं प्राप्त कर और (जेषि च) विजय कर। (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें उत्तम २ धन सम्पन्न करा।

सना॒ ज्योतिः॒ सना॒ स्व१॒र्विश्वा॑ च सोम॒ सौभ॑गा।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू हमें (ज्योतिः सन) प्रकाश दे,

(स्वः सन) सुख दे। (विश्वा च सौभगा सन) सब प्रकार के ऐश्वर्य दे। (अथ नः वस्यसः कृधि) हमे सबसे श्रेष्ठ और ऐश्वर्यवान् बना।

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि।
अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (नः) हमें (दक्षम् सन) बल, ज्ञान दे। (क्रतुम् सन) कर्म सामर्थ्य दे। (उत) और (मृधः जहि) हमारे हिंसाकारी दुष्टों को दण्ड दे। (अथ) और (नः) हमे (वस्यसः कृधि) उत्तम श्रेष्ठ धन का स्वामी बना।

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।
अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ४॥

भा०—हे (पवितारः) पवित्र करने और अभिषेक करने हारे विद्वान् जनो! आप लोग (पातवे इन्द्राय सोमम्) परम पालक परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये अपने आत्मा के समान (इन्द्राय पातवे) परम पालक ऐश्वर्ययुक्त राज्यपद के लिये इस (सोमम्) अभिषेक योग्य, उत्तम वीर्यवान्, बली, ब्रह्मचारी पुरुष को (पुनीतन) अभिषेक द्वारा पवित्र करो। वह (अथ नः वस्यसः कृधि) हमे उत्तम धनसम्पन्न करे।

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।
अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ५॥ २२॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (नः) हमें (तव क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं से (नः) हमे (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वदर्शक, प्रकाशयुक्त शासक वा विद्वान् के अधीन (आ भज) रख, (अथा नः वस्यसः कृधि) और हमें उत्तम धनैश्वर्य का स्वामी और श्रेष्ठ बना। इति द्वाविंशो वर्गः॥

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्।
अथा नो वस्यसस्कृधि॥ ६॥

भा०—(तव क्रत्वा) तेरे ज्ञान और (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और शिक्षाओं से हम (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यम् पश्येम) सूर्य के समान तेरे प्रताप, और ज्योतिर्मय आत्म-स्वरूप को देखें, चिरजीवी हों। (अथ नः० इत्यादि पूर्ववत्)

अभ्य॑र्ष स्वायुध सोम॑ द्विबर्ह॑सं र॒यिम् ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! हे (स्वायुध) उत्तम युद्धोपकरणों वाले ! उत्तम शस्त्र-अस्त्रों के स्वामिन् ! तू (द्वि-बर्हसं) प्रजा राजा दोनों लोकों को बढ़ाने वाला (रयिम् अभि-अर्ष) ऐश्वर्य प्राप्त कर (अथ नः० इत्यादि पूर्ववत्)

अभ्य१॑र्षान॑पच्युतो र॒यिं स॒मत्सु॑ सास॒हिः ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ८ ॥

भा०—हे शासक ! तू (सासहिः) शत्रु-विजयी और (अनपच्युतः) अपराजित, दृढ़ रह कर (समत्सु) संग्रामों में (रयिम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य का लाभ कर। (अथा नो० इत्यादि) हमें सर्वश्रेष्ठ, धनसम्पन्न बना।

त्वां य॒ज्ञैर॑वीवृध॒न्पव॑मान॒ विध॑र्मणि ।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र को शत्रु नाशन आदि द्वारा पवित्र करने और अभिषेकादि से अपने आप को पवित्र करने वाले, (वि-धर्मणि) विविध धर्मों वाले, राष्ट्र वा विविध उपायों से राष्ट्र के धर्मों के निर्णय देने वाली 'विधर्मा' नाम राजसभा के बीच (त्वां) तुझको विद्वान् ज (यज्ञैः अवीवृधन्) आदर सत्कारों से बढ़ावें, तुझे उत्साहित और अधि शक्तिशाली बनावें। (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सब से श्रेष्ठ, सम्पन्न धनधान्य पूर्ण कर।

र॒यिं न॑श्चि॒त्रम॒श्विन॒मिन्दो॑ वि॒श्वायु॒मा भ॑र।
अथा॑ नो॒ वस्य॑सस्कृधि ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषेक योग्य जलों से क्लिन्न या स्नान करने हारे! ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (चित्रम्) आश्चर्यकारक, उत्तम, अद्भुत, (विश्वायुम्) सब जीवन भर तक साथ देने वाले, वा सर्वजन हितकारक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें सबसे अधिक धन-धान्य पूर्ण कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ आप्रियो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४–६ गायत्री। ३, ७ निचृद् गायत्री। ८ निचृदनुष्टुप्। ९, १० अनुष्टुप्। ११ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समि॑द्धो वि॒श्वत॒स्पति॒ः पव॑मानो॒ वि रा॑जति।
प्री॒णन्वृषा॒ कनि॑क्रदत् ॥ १ ॥

भा०—(समिद्धः) खूब तेजस्वी, (विश्वतः पतिः) सब प्रकार से प्रजाओं का पालन करने वाला, (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ, वा अभिषेक द्वारा अपने को पवित्र करता हुआ (प्रीणन्) सबको प्रसन्न करता है और वह (वृषा) बलवान्, उत्तम प्रबन्धक, प्रजा पर सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करता हुआ, (कनिक्रदत्) हर्ष ध्वनि, गर्जना और घोषणाएं देता हुआ, (वि राजति) विशेष राजावत् शोभा प्राप्त करता है। (२) इसी प्रकार तेजस्वी, (सोम.) ब्रह्मचारी, वलिष्ठ, विद्वान् स्नातक होकर स्त्री का सर्वस्व पति हो। (३) वैसा ही परमेश्वर विश्वतः-पालक है।

तनू॒नपा॒त्पव॑मानः॒ शृङ्गे॒ शिशा॑नो अर्षति।
अ॒न्तरि॑क्षेण॒ रार॑जत् ॥ २ ॥

भा०—(तनून-पात) अपने देह वा दल को न गिरने देने वाला

बलिष्ठ बलीवर्द जिस प्रकार (शृङ्गे शिशानः) दोनो सींग पैने करता हुआ टक्कर लेने के लिये (अर्षति) आगे बढ़ता है और जिस प्रकार (पवमानः) वेग से बहता वायु (तनूनपात्) प्राण से देह को न गिरने देता हुआ भी (अन्तरिक्षेण रारजत्) अन्तरिक्ष मे विराजता है और (पवमानः तनूनपात्) जैसे, पावक अग्नि, (शृङ्गे शिशानः) दो ज्वालाएं तीक्ष्ण करता हुआ अन्तरिक्ष में चमकता है उसी प्रकार (तनूनपात्) विस्तृत व्यापक राष्ट्र का अधःपतन न होने देने वाला, (पवमानः) अभिषिक्त एवं कण्टकशोधक राजा वा सेनापति (शृङ्गे) हिंसाकारिणी, अगल बगल की दो सेनाओ को सींगो के समान (शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ (अर्षति) आगे बढ़े और वह (अन्तरिक्षेण) स्व और पर दोनो पक्षों वा दोनों सैन्यो के बीच मे विराजे।

ई॒ळेन्यः॒ पव॑मानो र॒यिर्वि रा॑जति द्यु॒मान्।
मधो॒र्धारा॑भि॒रोज॑सा ॥ ३ ॥

भा०—(ईडेन्यः) अति पूज्य, प्रजा को अतिप्रिय, (पवमानः) अभिषेक योग्य, (रयिः) ऐश्वर्यवत् सुखो का दाता (रयिः = रजिः) प्रजा का अनुरञ्जन करनेवाला, (द्युमान्) तेजस्वी, (मधोः) बल की, (धाराभिः) धाराओ से और (मधोः धाराभिः) ऋग्वेद की वाणियों द्वारा (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से भी (राजति) विराजता वा राजा बनता है।

ब॒र्हिः प्रा॒चीन॒मोज॑सा॒ पव॑मानः स्तृ॒णन्हरिः॑।
दे॒वेषु॑ दे॒व ई॑यते ॥ ४ ॥

भा०—(देवः) तेजस्वी, दानशील, सूर्यवत् राजा (देवेषु) विद्वानों और तेजस्वी लोगो के बीच या उनके अधीन (ओजसा) बल पराक्रम से (प्राचीनम्) अपने आगे आये (बर्हिः स्तृणन्) उच्छेद्य शत्रु को कुशा के समान काटता और भूमि पर बिछाता हुआ, इस प्रकार (पवमानः) राष्ट्र

का कण्टक शोधन और अपना अभिषेक करता हुआ, (हरिः) सेना को साथ लिये (ईयते) आगे बढे। अथवा—(प्राचीनम्) आगे विनय-भाव से स्थित (बर्हिः) प्रजा जन को विनय से झुकाता हुआ, पराक्रम के कारण अभिषिक्त होकर, अधिकार-दाताओं के बीच उपस्थित होता है।

उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः।
पवमानेन सुष्टुताः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(बृहद्-द्वारः) बड़ी २ फाटकों के समान विशाल, उदार (हिरण्ययीः) सुवर्णादि से सजी वा लोहमय हथियारों से सजी, (देवीः) धन-विजयाभिलाषिणी सेनाएं (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ होकर (पवमानेन) पूर्वोक्त अभिषेक योग्य, कण्टकशोधक राजा के साथ ही (सु-स्तुताः) उत्तम रीति से प्रशंसित होकर (आतैः) अपने पराक्रमों से (उत् जिहते) उत्तम पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति।
नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥

भा०—(पवमान.) अभिषिक्त होता हुआ राजा (सु-शिल्पे) उत्तम शिल्पों से सम्पन्न, (बृहती) बड़ी गुणयुक्त, (मही) पूज्य, (नक्तोषासा न) रात्रि और दिनवत् (दर्शते) अति दर्शनीय, नक्त अर्थात् रात्रि काल के समान अधिक भूषणों से रहित पुरुष और उषावत् कान्तियुक्त स्त्री अथवा उषस् अर्थात् दिन के समान तेजस्वी पुरुष और रात्रिवत् लज्जाशील, नाना नक्षत्रों से सुभूषित चन्द्रवत् उज्ज्वल मुख से युक्त स्त्री दोनों वर्गों को वह (वृषण्यति) बलवान् करे, दोनों वर्गों का हित चाहे।

उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे।
पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥

भा०—(पवमान इन्द्र.) अभिषेक योग्य, ऐश्वर्यवान् (वृषा)

बलवान् पुरुष, (उभा देवा) दोनों तेजस्वी, (नृ-चक्षसा) मनुष्यों के द्रष्टा, (दैव्या) देवों के हितैषी (होतारा) दानशील धन-कुबेर और ज्ञान-सागर दोनों विद्वान् और व्यवहारकुशल ब्राह्मण और वैश्य वर्गों को (हुवे) स्वीकार करें, आदर से सत्कार करें।

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही।
इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥ ८ ॥

भा०—(पवमानस्य) अभिषेक योग्य राजा की (भारती, सरस्वती मही इडा) भारती, सरस्वती और इडा (तिस्रः) तीनों (सुपेशसः) उत्तम रूपवती (देवी) ज्ञान, धन, और मान देने वाली प्रजाएं (नः इम यज्ञम् आगमन्) हमारे इस यज्ञ, सत्संग और पूज्य पुरुष को भी प्राप्त हो। भारती, साधारण प्रजाजन, 'सरस्वती' उत्तम ज्ञानवान् वर्ग, और 'इडा' अन्नप्रद कृषक वर्ग, वा स्तुति आदि से मान देने वाले, अधीन भृत्य पोष्य वर्ग।

त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे।
इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥ ९ ॥

भा०—(त्वष्टारम्) सूर्य के समान तीक्ष्ण, तेजस्वी, (अग्रजाम्) अग्रासन पर विराजमान (गोपाम्) भूमि के पालक, (पुरोयावानम्) सबसे आगे प्रयाण करने वाले को मैं (आ हुवे) आदर से पुकारता हूं कि वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् होने से 'इन्दु' है। वह (इन्द्र) सूर्यवत् देदीप्यमान होने से 'इन्द्र' है वह (वृषा) सुखों का वर्षक होने से 'वृषा' है (हरिः) प्रजा के दुःख हरने से 'हरि' है। वह (पवमानः) अभिषिक्त और कण्टक शोधक होने से 'पवमान' और (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है। इसी प्रकार परमेश्वर भी सर्वस्रष्टा होने से 'त्वष्टा', सर्व प्रथम होने से 'अग्रजा', दयार्द्र होने से 'इन्दु', ऐश्वर्यवान होने से 'इन्द्र', सुखवर्षी

होने से 'वृषा', पाप भयहारी होने से 'हरि', परम पावन होने से 'पवमान', चराचर प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है।

वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥ १० ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे ! (मध्वा धारया) जल की धारा से जिस प्रकार (सहस्र-वल्शं हरितम् वनस्पति समजते) हज़ारों कलों वाले हरे पेड़ को सींचा जाता है उसी प्रकार तू (वनस्पति) ऐश्वर्यों, तेजों के पालक, वटादिवत् आश्रितों के पालक (सहस्र-वल्शं) सहस्रों शाखाओं से युक्त, (हरितम्) हरे भरे, भवभय-दुःखहारी, (हिरण्ययम्) हित और रमणीय, सुवर्णादि से आढ्य, (भ्राजमानं) तेजस्वी राष्ट्रकुल को (मध्वा धारया) मधुर वचन, अन्न, ज्ञान और धारा अर्थात् दण्ड-विधान रूप वाणी और जलधारा नहर आदि से (सम अङ्धि) अच्छी प्रकार उज्ज्वल कर, पूजित कर और सेचन कर।

विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(वायुः) वायुवत् बलशाली, (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक, (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वप्रकाशक, (अग्निः) अग्रणी नायक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वर्ग (विश्वे देवाः) सब विद्वान् वीर (सजोषसः) परस्पर समान प्रीतियुक्त होकर (पवमानस्य) उक्त अभिषेक योग्य, प्रजा को पावनकारक राजा के (स्वाहा-कृतिम्) उत्तम वाणी धन आदि दान एवं मान को (आ गत) प्राप्त हों। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६]

असित काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७ निचृद् गायत्री । ३—६, ९ गायत्री । ८ विराट् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (वारेषु) वरणीय पदो, और वारण करने योग्य शत्रुओ के बीच मे भी (अस्मयुः) हमारा प्रिय, (अव्यः) रक्षक, स्नेही और (देवयुः) विद्वान् वीरो को चाहता हुआ, (वृषा) बलवान् होकर (मन्द्रया धारया) हर्षजनक वाणी से (पवस्व) हमे प्राप्त हो । हमें पवित्र कर ।

अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर ।
अभि वाजिनो अर्वतः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् है, (इति) इसलिये ही तू (त्यं मद्यम्) उस हर्षजनक (मदं) आनन्द व (अभि क्षर) सब ओर प्रवाहित कर और (वाजिनः अर्वतः) वेगवान् बलवान्, शत्रुहिंसक जनो को भी प्रजा के रक्षार्थ (अभि क्षर) सब ओर भेज ।

अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ३ ॥

भा०—हे शासक ! (त्यं) उस (पूर्व्यं मदं) सर्वश्रेष्ठ आनन्द को (अभि सुवानः) उत्पन्न करता हुआ और (वाजम् उत श्रवः) ऐश्वर्य, अन्न और ज्ञान वा यश को भी (अभि सुवानः) उत्पन्न करता हुआ तू (पवित्रे) राष्ट्र भर को पवित्र करने वाले, शुद्ध-पवित्र राज्य पद पर (आ अर्ष) प्राप्त हो ।

अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥

भा०—(द्रप्सासः इन्दवः) द्रुत वेग से जाने वाले, स्नेहार्द्र जन (अपः न) जलधाराओं के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से (अनु असरन्)

ऐश्वर्यवान् राजा का अनुसरण करे और वे भी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, शत्रुहन्ता वीर को (पुनानाः) अभिषेकादि से पवित्र करते हुए उसको कलङ्कित न होने देते हुए (इन्द्रम् आशत) राज्य-कार्य को प्राप्त हों।

यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश।
वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(यम्) जिस (वाजिनम्) बलवान्, ऐश्वर्यवान् (अत्यविम्) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, (वने क्रीडन्तम्) ऐश्वर्य में शत्रु-हनन के संग्राम आदि कार्य में रमण करने, वा उसे क्रीडावत् अनायास करने वाले पुरुष को (अत्यम् इव) अश्व के समान ही (दश) दशों दिशाओं की (योषणः) प्रेमयुक्त प्रजाएं (मृजन्ति) अभिषिक्त करती हैं हे राष्ट्र! तू (तम् इन्द्रम् आशत) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को ही प्राप्त कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये।
सुतं भराय सं सृज ॥ ६ ॥

भा०—(तम्) उस (वृषण) बलवान्, सुखादि की वर्षा करने वाले, (रस) बलवान् (सुतं) अभिषिक्त पुरुष को (मदाय) प्रजाजन के हर्ष और (भराय) भरण पोषण के लिये (देव-वीतये) विद्वानों, वीरों की रक्षा करने के लिये (गोभि. सं सृज) उत्तम वाणियों और भूमियों से युक्त कर, उसकी स्तुति कर और उसे भूमियों का अध्यक्ष बना। अथवा, उसे (गोभिः संसृज) उत्तम अश्वों से युक्त कर।

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः।
पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जब (अस्य) इसका (पय.) बल, वीर्य (पीपयत्) खूब परिपूर्ण हो जाता है, तब वह (देव) दानशील, तेजस्वी पुरुष (सुत.) अभिषिक्त होकर (धारया) अपनी धारण शक्ति और वाणी या खड्गधारा के बल से (देवाय इन्द्राय) विजयोन्मुख तेजस्वी, दानशील

ऐश्वर्य पद के लिये (पवते) आगे बढता है, और सब के समक्ष पवित्र या अभिषिक्त किया जाता है ।

आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः ।
प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥

भा०—वह स्वयं (आत्मा) आत्मा के समान सामर्थ्यवान् कर्त्ता होकर (यज्ञस्य) परस्पर दान-आदान-सत्संग के मध्य में (सुतः) अभिषिक्त होकर (रंह्या) वेग से (सु-स्वानः) उत्तम रीति से ऐश्वर्यवान् होकर (सु-स्वानः) उत्तम उपदेश से युक्त, निष्णात होकर (पवते) पवित्र होता है, और (प्रत्नं) सनातन से चले आये (काव्यम्) विद्वानों से बनाये वा परमेश्वरोक्त नित्य वेद की मर्यादा की (नि पाति) अच्छी प्रकार रक्षा करता है ।

एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये ।
गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥ ९ ॥ २७ ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (इन्द्रयुः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ, वा ऐश्वर्य पद का स्वामी होकर हे (मदिष्ठ) अतिस्तुत्य ! तू (पुनानः) स्वयं पवित्र या अभिषिक्त होता हुआ, (वीतये) रक्षा वा तेजस्वी होने के लिये (मदं दधिषे) स्तुत्य गुण को धारण कर और (गिरः) वेदवाणियों को भी (गुहा चित्) अपनी बुद्धि में (दधिषे) धारण कर । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[७]

असित. काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमान. सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५—९ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥

भा०—(सु-श्रियः) उत्तम शोभायुक्त, सम्पन्न, (इन्दवः) स्नेही ऐश्वर्ययुक्त जन (ऋतस्य पथा) सत्य के मार्ग से ही (अस्य) इसके (ऋतस्य) सत्य ज्ञान वेद के (प्रोजनम्) योग अर्थात् प्रयोग को (विदानाः) जानते हुए, (धर्मन्) धर्म मार्ग में ही (असृग्रम्) स्वयं चले। वा (धर्मन् असृग्रम्) धर्मों, नियमों का निर्माण करें।

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते।
हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥ २ ॥

भा०—(हविःषु) आह्वान करने योग्य, आदरपूर्वक आमन्त्रित जनों में (वन्द्यः) स्तुति योग्य (हविः) सर्वोत्तम आमन्त्रित होकर राजा ही (अग्रियः) अग्रासन के योग्य होकर (मध्वः धाराः प्र गाहते) जल की धाराओं को ज्ञान की धारा, वाणियों के समान खूब उत्तम रीति से विगाहन करे, उनमें स्नान करे और वह (महीः अपः) पूज्य जलों के तुल्य आदरणीय प्रजाजनों को भी (वि गाहते) विशेष रूप से प्राप्त करे उनमें भी विचरे, उनके सुखदुःखादि में सम्मिलित हो।

प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद् वने।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥

भा०—(अग्रियः) अग्रासन के योग्य (वृषा) उत्तम प्रबन्धक, (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, (अध्वरः) प्रजापीडनादि से रहित, दयालु, अहिंसक, पुरुष (वने) ऐश्वर्य पर स्थित होकर (सद्म अभि) अपने विराजने के आसन और सभा के सन्मुख (युजः वाचः अव क्रदत) योग्य उपकारक वाणियों का उपदेश करे।

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति।
स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

भा०—(यत) जो (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् होकर (नृम्णा) नाना ऐश्वर्यों को वा मनुष्यों के चित्तों को (वसानः) अपने वश

करके (परि अर्षति) प्राप्त करता है वह (वाजी) बलवान् पुरुष ही, (स्वः सिषासति) सब कुछ देता, सुख-समृद्ध राज्य को प्रदान करता है। (२) इसी प्रकार (यत् वसानः नृम्णा काव्या अर्षति सः कविः वाजी स्वः सिषासति) जो गुरु के अधीन रहकर विद्वानों के बनाये विद्या-धनों को प्राप्त करता है वह स्वयं मेधावी, ज्ञानी होकर अन्यों को ज्ञान-प्रकाश प्रदान करता और सुख प्राप्त कराता है।

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(यद् ईम्) जब इसको (वेधसः) विद्वान् लोग (ऋण्वन्ति) सन्मार्ग में प्रेरित करते और उपदेश देते हैं तब वह (पवमानः) स्वयं पवित्र होकर राष्ट्र आदि को भी दुष्टों का नाश कर पवित्र करता हुआ (स्पृधः अभि पवमानः) अपने स्पर्धालु शत्रुओं पर आक्रमण करता हुआ (राजा इव विशः सीदति) राजा के समान समस्त प्रजाओं पर अध्यक्ष होकर विराजता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

भा०—(हरिः) मनोहर, पराक्रमी पुरुषोत्तम (प्रियः) सर्वप्रिय, होकर (अव्यः वारे) भूमि के रक्षक के वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ पद पर (सीदति) विराजता है और वह (रेभः) स्वयं उत्तम विद्वान् उपदेष्टा, आज्ञापक होकर (मती) ज्ञानमयी बुद्धि या वाणी द्वारा सबको ज्ञान का सेवन कराता है।

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥

भा०—(यः अस्य धर्मभिः) जो इसके धर्मों से (रण) आनन्दित होता है वह (वायुम् इन्द्रम्) वायु, बलवान्, इन्द्र, ऐश्वर्यवान् और

(अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (मदेन साकं) सहर्ष (आगच्छति) प्राप्त होता है। अथवा (य॰ मदेन साकं वायुम् इन्द्रम् अश्विना आगच्छति अस्य धर्मभिः रण) जो सोम सहर्ष, ज्ञानी, तत्वदर्शी, उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को प्राप्त होता है, हे मनुष्य ! तू उसके धर्मों, कर्त्तव्यों वा धारण-साधनों से आनन्द लाभ कर।

आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

भा०—(मध्वः) मधुर, सर्वप्रिय उपदेष्टा शक्तिशाली जन की (ऊर्मयः) वाणियां, तरङ्ग के समान (मित्रा-वरुणा भगं) मित्र, स्नेही, श्रेष्ठ जन और ऐश्वर्यवान् को (पवन्ते) प्राप्त होतीं और उनको पवित्र करती हैं। (अस्य शक्मभिः) उसकी शक्तियों वा सुखों द्वारा (विदानाः) वे ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (पवन्ते) पवित्र हो जाते हैं। धमतेर्मधु। देवानां मोदयितुः इति सा० ॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये।
श्रवो वसूनि संजितम् ॥ ९ ॥ २९ ॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् ज्ञानी अज्ञानी, शास्य-शासक जनो ! आप दोनों (मध्वः) मधुर, सर्वप्रिय, सबको सुख देने वाले, (वाजस्य) ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (अस्मभ्यम्) हमें (श्रवः) श्रवण योग्य वेद-ज्ञान, अन्न और (वसूनि) नाना जीवनोपयोगी अन्य धन भी (सं जितम्) विजय करके प्राप्त कराओ। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[८]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ८ निचृद् गायत्री। ३, ४, ७ गायत्री। ६ पादनिचृद् गायत्री। ९ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन्।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (सोमाः) अभिषिक्त वा वीर्यवान् जन वा ऐश्वर्य (अस्य वीर्यम् वर्धन्तः) ओषधि रसो के तुल्य इसके बल को बढाते हुए, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा के (प्रियं कामम् अभि अक्षरन्) प्रिय अभिलाषा को लक्ष्य करके नदी के वेगों के समान आगे बढे।

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना।
ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥

भा०—(पुनानासः) स्वयं अभिषेकादि से पवित्र, युद्धार्थ दीक्षित होकर (चमू-सदः) सेनाओ के अध्यक्ष पद पर स्थित नायक जन (वायुम्) बलवान् मुख्य सेनापति और (अश्विना) अश्वो पर सवार दो प्रधान नायको को (गच्छन्तः) प्राप्त होते हुए (ते) वे (नः सुवीर्यम्) हमारे उत्तम बल को (धातु) धारण करे।

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! तू (पुनानः) स्वयं पवित्र और अन्यो को पवित्र करता हुआ, (हार्दि) सब के हृदयो का प्रेमपात्र होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता वा तत्वदर्शी तेजस्वी जन को (राधसे) धनैश्वर्य प्राप्त करने और (ऋतस्य योनिम्) न्याय सत्य व्यवहार के स्थान प्रधान-आसन पर (आसदम्) विराजने के लिये (चोदय) प्रेरित कर।

मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (त्वा दश क्षिपः मृजन्ति) तुझे दसो दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं अभिषिक्त करती है और (सप्त धीतयः) सातों

वेद की छन्दोमय वाणियां वा सातो प्रकृतियां तुझे (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं। (विप्राः अनु अमादिषुः) विद्वान् पुरुष तेरी निरन्तर प्रतिदिन स्तुति करें, तुझे प्रसन्न करे। राष्ट्र मे राजा, अमात्य, भूमि, कोश, सेना, दुर्ग ये ७ प्रकृतियां हैं।

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—(मेष्यः अति सृजानम्) शत्रु पर शस्त्रादि वर्षण करने या मेढे के समान टक्कर लेने वाली शत्रु-सेना के ऊपर रहते हुए (त्वा) तुझको (देवेभ्य. मदाय) वीरो और विद्वानो के हर्ष के लिये (गोभिः) उत्तम स्तुति वाणियो से हम (सं वासयामसि) अच्छी प्रकार बसावे, उत्तम वस्त्र अलंकरादि से आच्छादित करें, वा (गोभिः) अभिषेक जल-धाराओ से आच्छादित करे या वेगवान् (गोभिः) अश्व-सैन्यो सहित सुरक्षित करें।

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

भा०—(कलशेषु पुनानः) कलशो मे स्थित जलो से अभिषिक्त हुआ (हरिः) उत्तम पुरुष, (अरुष.) तेजस्वी और रोषरहित सौम्य स्वभाव होकर (गव्यानि वस्त्राणि) स्तुति योग्य वस्त्रो, वा भूमि के राज्योचित वस्त्रो, अलङ्कार को (परि अव्यत) धारण करे।

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयावन् ! स्नेहयुक्त ! तू (नः मघोन आ पवस्व) हमारे उत्तम धनवानो को प्राप्त हो और उनको पवित्र या उत्तम पदो पर अभिषिक्त कर। तू (न. विश्वा द्विषः अप जहि) हमारे समस्त द्वेषी अप्रीति-कर अमित्रो को दण्डित कर। और (सखायम्) मित्र को (आ विश) प्राप्त कर।

वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः पृथिव्याः अधि) आकाश से पृथिवी के ऊपर (वृष्टि) जलवृष्टि के समान, (द्युम्नम्) उत्तम अन्न, धन की (परि स्रव) सब ओर से और सब ओर वर्षा कर । हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शासक ! तू (नः पृत्सु) हमारी प्रजाओं वा संग्रामों में (सहः धाः) बल प्रदान कर ।

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (स्वर्विदम्) समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (इन्द्र-पीतं) ऐश्वर्य के पालक वा भोक्ता (नृचक्षसं) सब मनुष्यों के द्रष्टा, अध्यक्ष, (त्वा) तुझ को प्राप्त करके (प्रजाम्) उत्तम सन्तति और (इषम्) उत्तम अन्न को (भक्षीमहि) प्राप्त करें । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१, ३—५, ८ गायत्री । २, ६, ७, ९ निचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
सुवानो याति कविक्रतुः ॥ १ ॥

भा०—(कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी लोगों के समान कर्म करने हारा पुरुष (सुवानः) अभिषिक्त हो । वह (हितः) पद पर नियुक्त होकर (नप्त्योः) अपने मे सम्बद्ध शास्य शासक जनों के (प्रिया) प्रिय (दिवः वयांसि) ज्ञानों और बलों को (परि याति) प्राप्त करता है ।

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥२॥

भा०—(पन्यसे) स्तुति करने वाले, वा व्यवहारज्ञ (अद्रुहे) द्रोह रहित प्रजाजन के लाभ के लिये और उसके (क्षयाय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (जुष्टः) सेवित एवं प्रीतियुक्त होकर (चनिष्ठया) उत्तम (वीती) नीति वा प्रकाश से (प्र अर्ष) आगे बढ़ ।

सस्सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥

भा०—(सुनुः मातरा) माता पिताओ को पुत्र के समान, (सः) वह (जातः) उत्पन्न होकर ही, (शुचिः) शुद्ध, सरल व्यवहारवान्, (महान्) गुणो मे महान्, (सूनुः) प्रजा का शासक होकर (मही) बड़ी, (ऋत-वृधा) सत्य, न्याय से बढ़ने वाले (जाते) राजा के उत्पादक शास्य, शासक दोनो वर्गों को (अरोचयत्) चमकाता एवं दोनो को प्रिय लगता है । राजा को अर्थ, कामादि सब उपधाओ मे शुद्ध होना उचित है । वह ईमानदार और पवित्र आचारवान् हो तभी सर्वप्रिय हो सकता है ।

स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः ।
या एकमक्षि वावृधुः ॥ ४ ॥

भा०—(याः) जो (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (एकम्) एकमात्र (अक्षि) क्षीण न होने वाले समुद्र के समान अथाह, गम्भीर एवं (अक्षि) चक्षुवत सर्वदर्शी शासक को (ववृधुः) बढ़ाती है, (सः) वह भी उन (सप्त) सातो प्रकार की (नद्यः) सम्पन्न प्रकृतियो को (धीतिभिः) अपने धारण पोषण और पालन आदि कर्मों से (अजिन्वत्) पूर्ण और तृप्त, प्रसन्न करता है ।

ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः ।
इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन ! (तव व्रते) तेरे कार्य के लिये (ताः) वे प्रजाएं (सन्तम्) बलवान (अस्तृतम्) न मारे

जाने वाले, (युवानम्) युवा (इन्दुम्) सोमवत् सर्वैश्वर्यवान्, स्नेहार्द्र जन को (महे) वड़े भारी कार्य के लिये (अभि आदधुः) सब के समक्ष अग्रासन पर स्थापित करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः। क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥६॥

भा०—(अमर्त्यः) जिस प्रकार अमृत, नित्य आत्मा (सप्त पश्यति, अतर्पयत्) सात प्राणों को देखता, और तृप्त करता है। उसी प्रकार (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला, और (वावहिः) सब को अपने में आश्रित रूप से धारण करनेवाला होता है। वह (सप्त) सातों (देवीः) व्यवहार-कुशल, विदुषी प्रकृतियों वा प्रजाओं को (पश्यति) देखता है और वही (क्रिविः) कूप के समान (अतर्पयत्) सब को अन्न जल से तृप्त करे। राजा अन्न-करदात्री भूमियों और प्रजाओं को जल और अन्न से तृप्त करे। कृषि करावे और नहरें कूप आदि बनवावे।

अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या।
तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥

भा०—(पुमः) हे पुमन्! हे नरों, नायकों के स्वामिन्! हे (सोम) उत्तम शासक! तू (कल्पेषु) शस्त्रों के द्वारा छेदन-भेदन के अवसरों, संग्रामों में (नः अव) हमारी रक्षा कर। और (तमांसि) अन्धकार के समान दुःखदायी विघ्नों के समान (तानि योध्या) उन नाना युद्ध करके दूर करने योग्य शत्रु-सैन्यों को हे (पुनान) अभिषिच्यमान! तेजस्विन्! तू (जघनः) दण्डित कर, दूर कर। 'कल्पेषु'—कल्प' कल्पन कल्पसिः खण्डनम् इति यावत्। (२) अध्यात्म में—हे सोम! तू (तमांसि) अपनी सब अभिलाषा को प्राप्त कर।

नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः। प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥८॥

भा०—(नव्यसे) अति स्तुत्य और (नवीयसे) सदा नवीन, नित्य (सूक्ताय) उत्तम वचन के (पथः) ज्ञान के मार्गों को (साधय) ।

लिये बतला, उनका हमे उपाय दर्शा। और (प्रत्नवत्) पूर्व के समान (रुच.) अपनी कान्तियो और इच्छाओ को (रोचय) प्रकाशित कर और अन्यो को अच्छी लगने वाली अपनी रुचियें प्रकट कर।

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत्।
सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥ ३३ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे! हे शोधक! दोष-नाशक! तू (वीरवत्) वीर पुरुष के समान पराक्रम से (महि श्रवः) बड़ा भारी यश और अन्न, और (गाम् अश्वम्) गौ और अश्व (रासि) प्रदान कर। तू (मेधां सन) उत्तम बुद्धि दे और (स्व सन) सुख प्रदान कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, ८ निचृद् गायत्री। ३, ५, ७, ९ गायत्री। ४ भुरिग्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः।
सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥

भा०—(रथाः इव) वेगवान् रथों और (अर्वन्तः न) अश्वों के समान (स्वानास.) अधिक स्वन अर्थात् ध्वनि करते हुए (श्रवस्यवः) ज्ञान श्रवण के उत्सुक (सोमास) विद्यार्थी और (श्रवस्यवः सोमासः) यश के इच्छुक पदाभिषिक्त जन (राये प्र अक्रमुः) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये कदम बढ़ावे। इसी प्रकार विद्यार्थी जन स्नातक हो जावे, तब वे (राये) ज्ञान-प्रदान और धनोपार्जन के लिये अगला कदम उठावें, स्वयं विद्या-निष्णात होकर अन्यों को ज्ञान प्रदान करे।

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः।
भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥

भा०—(हिन्वानासः भरासः रथाः इव) आगे बढ़ते हुए और वेग से मनुष्यों को ढोकर ले जाने वाले रथ जिस प्रकार (कारिणाम्) कर्मकुशल पुरुषो के (गभस्त्योः) हाथो मे रहते, उनकी बागडोर सदा उनके हाथो मे रहती है उसी प्रकार (भरासः) प्रजा के भरण पोषण करने वाले जन भी सदा (कारिणाम्) कर्म करने मे समर्थ, श्रमशील, कुशल जनो के (गभस्त्योः) बाहुओं पर उनके बाहुबल पर (दधन्विरे) स्थापित और पोषित होते है।

राजा॑नो॒ न प्रश॑स्तिभि॒ः सोमा॑सो॒ गोभि॑रञ्जते ।
य॒ज्ञो न स॒प्त धा॒तृभि॑ः ॥ ३ ॥

भा०—(सोमासः) स्नातक वा अभिषिक्त पदाधिकारी जन भी (प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओ से (राजानः) राजाओ के समान और (सप्त धातृभिः यज्ञः) सात छन्दो रूप वाणियो से यज्ञ के समान (सप्त धातृभिः) सर्पणशील व्यापक (गोभिः) वाणियों से (अञ्जते) कान्ति और तेज से प्रकट होते हैं।

परि॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वो॒ मदा॑य ब॒र्हणा॑ गि॒रा ।
सु॒ता अ॑र्षन्ति॒ धार॑या ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त, ज्ञान रस से युक्त, स्नेहार्द्र जन (सुवानासः) विद्या, व्रत और पदाधिकार में अभिषिक्त वा स्नान करते हुए (सुताः) और अभिषिक्त होकर भी (मदाय) आनन्द देने के लिये (बर्हणा गिरा) बड़ी वेदवाणी और (धारया) धारणा वा लोक वाणी से (परि अर्षन्ति) सर्वत्र विचरण करें।

आ॒पा॒नासो॑ वि॒वस्व॑तो॒ जन॑न्त उ॒षसो॒ भग॑म् ।
सूरा॒ अण्वं॒ वि त॑न्वते ॥ ५ ॥ ३४ ॥

भा०—(विवस्वतः) विविध ऐश्वर्यों और प्रजाओं के स्वामी के (आ-पानासः) चारो ओर के रक्षक (उषसः) प्रतापी, कान्तिमान्, तेजस्वी,

जन (उषसः भगम्) सेव्य सूर्य को उषाकालो के समान (भगम्) सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त राजा को (जनन्त) प्रकट करते हैं और (सूराः) विद्वान् लोग ही उस (विवस्वतः) विविध प्रजाओ के स्वामी राजा के (अर्थं) गान योग्य यश को (वि तन्वते) विविध प्रकार से फैलाते है।
इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

अप् द्वारां मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवंः।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रत्नाः) पुराने (कारवः) स्तुतिकर्त्ता, विद्वान्, कर्मकुशल (आयवः) ज्ञानी मनुष्य, (वृष्णः) सब सुखो के वर्षक (हरसः) सकल दुःखहारी प्रभु की (मतीनां) मननीय वेद-वाणियों के (द्वारा अप ऋण्वन्ति) द्वारो को विवृत करे, उनके गूढ़ मर्मों की व्याख्या करे। अथवा (मतीनां कारवः) उत्तम वाणियो के उपदेष्टा ज्ञानी लोग, बलवान् दुःखहारी प्रभु की प्राप्ति के (प्रत्ना द्वारा) सनातन प्राप्ति के मार्गों को (अप ऋण्वन्ति) बराबर खोलते रहा करे। सदा अन्यो को ईश्वर-प्राप्ति के उपाय खोल २ कर बतलाया करे।

समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥

भा०—(सप्तजामयः) सात वा समवाय या संघ बना कर रहने वाले बन्धु जनो के समान (होतारः) ज्ञानदाता, (समीचीनासः) सम्यक् ज्ञानवान् हो कर, शिर में सात प्राणो के समान वा यज्ञ मे सात विद्वान् होताओ के समान (एकस्य पदम्) एक स्वामी के उच्च पद को पूर्ण करते हुए (आसते) विराजे। 'सप्त'–सपन्ति समवायेन वर्त्तन्ते इति सप्तानः।

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा।
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥

भा०—(सूर्ये सचा चक्षुः चित) सूर्य के आश्रय, जिस प्रकार चक्षु

संगत रहती है उसी प्रकार मैं (नः) अपने लोगों के (नाभा) नाभि या केन्द्र स्थान में (नाभिम्) सब को एकत्र बांध रखने वाले केन्द्र रूप व्यक्ति को (आ ददे) मैं स्वीकार कर लूं। और मैं (कवेः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष के (अपत्यम्) सन्तानवत् शिष्य को (आ दुहे) प्राप्त करूं। जैसे यजुर्वेद मे लिखा है 'ऋषिम् आर्षेयम्०' इत्यादि।

अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ६ ॥ ३५ ॥

भा०—(सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी और वीर्यवान् पुरुष (गुहा हितम्) बुद्धि में विराजमान (दिवः प्रिया पदम्) तेजोमय प्रभु के प्रिय, रम्य परम स्वरूप को (अध्वर्युभिः) अपने अविनाशी सामर्थ्यों से और (चक्षसा) दर्शन और वेद-वचन से (अभि पश्यति) सर्वत्र देखता है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[११]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६ निचृद् गायत्री । ५—८ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! आप लोग (पवमानाय) सब के पवित्र करने वाले, वा स्वयं अपने आप पवित्र होने वाले अभिषेक्वा[illegible] (इन्दवे) दयालु एवं प्रकाशयुक्त, तेजस्वी (अस्मै) इस पुरुष के (उप गायत) गुणों का वर्णन करो जो (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों, वीरों का सब प्रकार मान, दान द्वारा आदर करता है।

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥

भा०—(अथर्वाणः) शान्तिजनक अहिंसक जन (ते देवाय) तुझ तेजस्वी पुरुष के (देवं) प्रकाशक (देवयु) विद्वानों के अभिमत, उनके रक्षक (पयः) पोषण बल को (मधुना) ज्ञान वा अन्नादि से (अभि अशिश्रयुः) परिष्कृत करते हैं। राजा में बल है तो विद्वानों में ज्ञान है। विद्वान् ही उसका सहयोग करके उस के बलैश्वर्य को ज्ञानसम्पन्न करें। उस को अन्धा बैल न बना रहने दे।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! तेजस्विन् ! तू (सः) वह (नः) हमारे (गवे) गौ आदि पशु के लिये (शम्) शान्तिदायक हो। (नः जनाय शम्) हमारे मनुष्यों के लिये शान्तिदायक हो। (नः अर्वते शम्) हमारे अश्वों के लिये कल्याण और शान्तिकारक हो। हे राजन् ! तू (ओषधीभ्यः शम्) ओषधि, अन्नादि वनस्पतियों के लिये भी शान्तिकारक हो। ये सब हमें उत्तम रूप से सुखदायक हों।

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।
सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (बभ्रवे) सब के पालन पोषण में समर्थ (स्व-तवसे) स्वयं वा ऐश्वर्य से बलशाली, (अरुणाय) तेजस्वी, अन्यों से अपराजित (दिवि-स्पृशे) ज्ञान में चरम सीमा तक पहुंचे हुए या तेजोमय विजय या परम पद में स्थित (सोमाय) ऐश्वर्ययुक्त जन के (गाथम्) वाणी या स्तुति की (अर्चत) अर्चना या आदर करो या उस के गुणों की स्तुति करो।

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।
मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(हस्तच्युतेभिः) आप लोग हाथों या कुशल पुरुषों से

सञ्चालित (अद्रिभिः) मेघों के समान शस्त्रास्त्र वर्षाओं वा जल-धारा वर्षी कुम्भों से (सुतं) अभिषिक्त (सोमं) शासक को (पुनीतन) पवित्र करो । और (मधौ) सब को आनन्द देने वाले, मधुर प्रकृति वाले पुरुष के ऊपर (मधु) जल को (आधावत) प्रवाहित करो, उसी के अधीन ज्ञान, बल का आधान करो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त, स्नेहार्द्र, तेजस्वी पुरुष के प्रति (नमसा इत्) नमस्कार द्वारा (उप सीदत) उपासना करो । (दध्ना इत्) धारण सामर्थ्य से (अभि श्रीणीतन) उस का आश्रय लो, और (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के राज्यासन पर उसे (अभि दधातन) स्थापित करो । (२) ओषधि पक्ष में—सोम को अन्न, दहि आदि से मिलाओ (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में रक्खो । और उस का सेवन करो ।

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्तम ऐश्वर्यवन् ! शासक ! प्रभो ! तू (अमित्रहा) स्नेह न करने वालों को नाश करने वा दण्डित करने वाला, (विचर्षणिः) विशेष रूप से सब का द्रष्टा और (देवेभ्यः) नाना कामना वाले मनुष्यों के लिये (अनु-काम-कृत्) उनकी इच्छाओं को निरन्तर पूर्ण करता हुआ, (गवे) भूमि के लिये (शं पवस्व) शान्ति-सुख की धारा बहा ।

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! वीर्यवन् ! तेरा (इन्द्राय

ऐश्वर्य पद को प्राप्त करने और (पातवे) पालन करने के लिये, और (मदाय) सुख, आनन्द लाभ के लिये (परि सिच्यसे) अभिषिक्त किया जाय। तू (मनः चित्) सब के मनों को जानने वाला, और (मनसः पतिः) सब मनों का पालक स्वामी है।

पर्वमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः।
इन्द्रविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! परमानन्ददायक! हे (इन्दो) दयालो, स्नेहार्द्र! हे (पवमान) पवित्र करने हारे, परम पावन! तू (नः) हमें (सुवीर्यं रयिम्) उत्तम बलप्रद ऐश्वर्य (रिरीहि) प्रदान कर। और (नः) हमें (इन्द्रेण युजा) शत्रुहन्ता, तेजस्वी सहयोगी से युक्त कर वा ऐश्वर्ययुक्त सहयोगी राष्ट्र से युक्त कर। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

[१२]

असित काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६—८ गायत्री। ३—५, ९ निचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

भा०—(सोमाः) बलवान् (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, प्रजास्नेही, (मधुमत्तमाः) अति उत्तम ज्ञान और बल से युक्त जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये (ऋतस्य सादने) सत्य न्याय के भवन में (असृग्रम्) तैयार या नियुक्त किये जावें। इसी प्रकार सोम, अति ज्ञानवान् विद्यार्थी, ब्रह्मचारी (ऋतस्य सादने) वेदाध्ययन के स्थान, गुरु-गृह में तैयार होते हैं। वे इन्द्र, आचार्य के ज्ञान को खूब धारण करते हैं।

अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—(गावः मातरः वत्सं न) गोमाताएं जिस प्रकार बछड़े को देख कर उसे प्रेम से पुकारती है उसी प्रकार (सोमस्य पीतये) ब्रह्मचारी के पालन के लिये (विप्राः) विद्वान् जन (वत्सं इन्द्रं) उत्तम ज्ञान के उपदेष्टा वा अपने अधीन ब्रह्मचारियो को रखने वाले ज्ञानदर्शी विद्वान् को लक्ष्य कर (अभि अनूषत) उत्तम स्तुति करते है ।

मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

भा०—(सोमः) वीर्यवान्, ब्रह्मचारी (गौरी अधि श्रितः) वेद-वाणी में तपोनिष्ठ हो कर (विपश्चित्) विद्वान् होकर (सिन्धोः ऊर्मा) समुद्र की उच्चतम तरङ्ग के सदृश (सादने) उत्तम आसन पर गुरुगृह में (मदच्युत्) अन्यों को आनन्ददायक होकर (क्षेति) रहता है । इसी प्रकार पृथिवी पर अध्यक्षवत् स्थित विद्वान् अभिषिक्त जन हर्षप्रद होकर उत्तम पद पर विराजता है ।

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

भा०—(विचक्षणः) विविध तत्वों का द्रष्टा, (सोमः) विद्या व्रत स्नातक, (यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम ज्ञान कर्म से युक्त, (कविः) क्रान्तदर्शी है । वह (दिवः नाभा) ज्ञान, विद्या के सम्बन्ध मे (अव्यः) ज्ञानी गुरु के (वारे) सब बुराइयो से वारण करने वाले गुरुगृह में (महीयते) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है । इसी प्रकार विचक्षण, सुज्ञानी, दूर दर्शी जन (दिवः नाभा) भूमि के केन्द्र मे (अव्यः वारे) भूमि या रक्षा के उत्तम पद पर प्रतिष्ठा को प्राप्त हो ।

यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) विद्वान् अभिषेक योग्य पुरुष (कल-

आ) जलों से भरे घड़ों के बीच उन के जल से स्नान करता हुआ स्थित होता और जो (पवित्रे अन्तः) पवित्र पद पर (आहितः) स्थित होता है (तम्) उस को (इन्दुः) समस्त ऐश्वर्य (परि सस्वजे) प्राप्त होता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

भा०—(समुद्रस्य विष्टपि अधि) आकाश के ऊपर विद्यमान् (इन्दुः) कान्तियुक्त विद्युत् वा आर्द्र जल युक्त मेघ, (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) जल देने वाले कोश को धारता और (वाचं प्र इष्यति) गर्जना करता है, उसी प्रकार अभिषिक्त पदाधिकारी जन (समुद्रस्य अधि विष्टपि) समुद्र के समान सैन्य और प्रजा जन के ऊपर अध्यक्ष पद पर विराजता हुआ वा समुद्र अर्थात् अति हर्ष युक्त प्रजा के ऊपर अध्यक्ष पद पर विराजता हुआ (मधुश्चुत) प्रजा को अन्न, वृत्ति, वेतनादि देने वाले (कोशं) खजाने को (जिन्वत्) बढ़ाता हुआ (वाचम् प्र इष्यति) आज्ञा, या वाणी को प्रेरित करता है, वह सब पर शासन करता है। इसी प्रकार समुद्रवत् अथाह ज्ञानवान् के पद पर स्थित विद्वान् ज्ञानप्रद खजाने की वृद्धि करता हुआ उत्तम वेद वाणी का उपदेश करता है।

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः ।
हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥

भा०—वह विद्वान् वा राजा (नित्य-स्तोत्र) सदा अन्यों को उपदेश देने वाला और अन्यों से सदा प्रशंसनीय, (वनस्पति) ऐश्वर्यों, तेजों का पालक सूर्यवत् तेजस्वी वा वट आदि के समान आश्रित जनों का पालक (मानुषा युगा हिन्वानः) मनुष्यों के जोड़ों, स्त्री पुरुषों की वृद्धि, उन्नति करता हुआ (सबर्दुघः सन्) उन के बलप्रदक रसवत् ज्ञान का सञ्चार

करता हुआ (धीनाम् अन्तः) उनके बीच उनकी बुद्धियों और कर्मों के बीच (वाचं प्र इष्यति) वाणी की उत्तम प्रेरणा करता है ।

अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति ।
विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी (सोमः) शासक, अभिषिक्त जन (विप्रस्य धारया) विद्वान् जन की वाणी से (हिन्वानः) आगे बढ़ता हुआ, (दिवः) उत्तम कामना से युक्त प्रजा के (प्रिया पदा) प्रिय पदों को (अभि अर्षति) प्राप्त होता है । इसी प्रकार सोम, विद्यार्थी, विद्वान् आचार्य की वाणी से उपदिष्ट होकर (दिवः प्रिया पदा) विद्या के उत्तम पदों को प्राप्त करता है, नाना उपाधियों से भूषित होता है ।

आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥ ३९ ॥ ७ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने और पवित्र होने हारे ! (इन्दो) दीप्तियुक्त, स्नेहार्द्र ! तू (अस्मे) हमारे लिये (सहस्र-वर्चसम्) सहस्रों तेजों से युक्त, (सुआभुवम्) चारों ओर उत्तम २ भूमि-सम्पन्न और उत्तम सुखों के उत्पादक (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ धारय) सब ओर से धारण कर । इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः । इति षष्ठाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

[१३]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५, ८ गायत्री । ४ निचृद् गायत्री । ६ भुरिग्गायत्री । ७ पादनिचृद् गायत्री । ९ यवमध्या गायत्री ॥

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) विद्यावान्, स्नातक (पुनानः) अभिषिक्त होकर (सहस्रधारः) बलयुक्त वा सहस्रों वाणियों का ज्ञाता होकर, (अत्यविः) पृथिवी वा सूर्य से अधिक तेजस्वी होकर (वायोः इन्द्रस्य) वायु और विद्युत् के (निष्कृतम्) पद को (अर्षति) प्राप्त होता है। वह वायु के समान प्रबल और विद्युत् के समान तेजस्वी, शत्रुहन्ता वा ज्ञानवान् आचार्य के पद को प्राप्त होता है।

पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अवस्यवः) ज्ञान, प्रीति और रक्षा चाहने वाले प्रजागण आप लोग (देव-वीतये) ज्ञान और धन के देने वाले पुरुष को प्राप्त करने के लिये (पवमानं सुष्वाणम्) ज्ञान, शासन द्वारा पवित्र करने वाले और ऐश्वर्यादि प्रदान करने वाले (विप्रम्) विद्वान्, बुद्धिमान् की (अभि प्र गायत) उत्तम स्तुति-अर्चना करो।

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

भा०—(देव-वीतये) शुभ गुणों के प्रकाश करने और ज्ञानेच्छुक जनों की रक्षा के लिये और (वाज-सातये) ज्ञान संविभाग करने और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (सोमाः) उत्तम विद्वान् जन, (सहस्र-पाजसः) सहस्रों बलों वा ज्ञानों से सम्पन्न हो कर (गृणानाः) उपदेश देते हुए (पवन्ते) सब को पवित्र करते हैं।

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दया स्नेहादि से आर्द्र पुरुष ! राजा और तू (नः) हमें (वाज-सातये) ज्ञान, बल, वेग देने के लिये (बृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाओं उत्तम अन्नों और बलवती सेनाओं को

तथा (द्युमत्) तेज से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को भी (पवस्व) प्राप्त करा या हमारे ऐसे बल आदि को तू प्राप्त कर।

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त (देवासः) तेजस्वी पुरुष (सुवानासः) अभिषिक्त होते रहें। (ते) वे (नः) हमें (सहस्रिणं रयिम्) सहस्रों की संख्या में परिमित (सुवीर्यं) उत्तम बलदायक (रयिम् आ पवन्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करावें और हमारे अपरिमित धन, बल को प्राप्त करें। इति प्रथमो वर्गः॥

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये।
वि वारमव्यमाशवः ॥ ६ ॥

भा०—(वाज-सातये) संग्राम में लड़ने के लिये जिस प्रकार (आशवः) तीव्र वेग से जाने वाले (अत्याः) अश्व गण (हेतृभिः हियानः) प्रेरक सारथियों से प्रेरित होकर (अव्यं वारम्) भूमि के पार (असृग्रम्) वेग से जाते हैं उसी प्रकार (हेतृभिः) धारक पोषक गुरुओं से (हियानाः) प्रेरित वा शासित होकर (वाज-सातये) ज्ञान-ऐश्वर्य को प्राप्त करने और अन्यों में प्रचारित, विभाजित, दान करने के लिये (आशवः) शीघ्रकारी, कुशल जन (अव्यं वारम् वि असृग्रम्) रक्षक के वरणीय पद को प्राप्त हों।

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

भा०—(वाश्राः धेनवः वत्सं अभि न) हंभारने वाली गौएं जिस प्रकार बछड़े के प्रति प्रेम से आकृष्ट होती हैं और (धेनवः वत्सं न) जिस प्रकार दूध पिलाने वाली माताएं (वत्स अभि अर्षन्ति) अपने बच्चे के प्रति जाती हैं और वे (गभस्त्योः दधन्विरे) उसे अपने बाहुओं में ले लेती हैं उसी प्रकार (इन्दवः) स्नेह से आर्द्र हृदय वाले, दयालु (वाश्राः) उत्तम उपदेष्टा जन बने हुए प्रजा जन के पास (अभि अर्षन्ति) जाते हैं और

उन को (गभस्त्योः) अपनी बाहुओं के शासन में (दधन्विरे) धारण करते हैं।

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

भा०—(मत्सरः) सब को सन्तुष्ट करने मे समर्थ पुरुष (इन्द्राय जुष्टः) ऐश्वर्यवान् शासक राजा आदि के पद के लिये नियुक्त हो । वह (पवमानः) वहां अभिषिक्त होकर (कनिक्रदत्) शासन करे । और वह (विश्वा) समस्त (द्विषः अप जहि) शत्रुओं को दण्डित करके दूर करे ।

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—(हे स्वर्दृशः पवमानाः) सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले, वा सबको देखने वाले ज्ञानदर्शी जनो ! हे अभिषेक युक्त जनो ! आप लोग (अराव्णः) अराति अर्थात् शत्रु जनों को (अपघ्नन्तः) दण्डित करते हुए (ऋतस्य योनौ सीदत) सत्य, न्याय और ज्ञान के शासन के पद पर विराजो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१४]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—२,५,७ गायत्री । ४,८ निचृद् गायत्री । ६ ककुम्मती गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥

भा०—(सिन्धोः ऊर्मौ अधि श्रितः) नदी या समुद्र की तरंग पर स्थित मनुष्य जिस प्रकार (परि प्र असिष्यदत्) दूर २ तक वेग से चला जाता है उसी प्रकार (पुरुस्पृहं) बहुतों को अच्छा लगने वाले, (कारं) कर्म या रत्न को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ, (सिन्धोः ऊर्मौ) समुद्र

के समान अपार जन संघ के बीच उन्नत पद पर (अधि श्रितः) अधिष्ठित होकर (परि प्र असिष्यत्) सब प्रकार से उन्नति की ओर जाता है।

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः ।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥

भा०—(यदी) जब (सबन्धवः) समान रूप से सम्बद्ध, (पञ्च व्राताः) पांचो प्रकार के मनुष्य-संघ, (अपस्यवः) कर्म की इच्छा करते हैं तब वे उस (धर्णसिम्) सबके धारक पोषक को (गिरा) वाणी द्वारा (परि-कृण्वन्ति) स्तुति से सुशोभित करते हैं।

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत ।
यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥

भा०—(यदी) जब वह (गोभिः) उत्तम वाणियों से (वसायते) आच्छादित, अलंकृत होता है (आत्) अनन्तर ही (विश्वे देवाः) ऐश्वर्य आदि नाना अभिलाषाओं वाले सब मनुष्य (अस्य शुष्मिणः रसे) इस बलवान् पुरुष के बल के अधीन रह कर (अमत्सत) बहुत प्रसन्न हो जाते हैं।

निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा ।
अत्रा सञ्जिघ्नते युजा ॥ ४ ॥

भा०—वह (नि-रिणानः) शत्रुओं को नाश करता हुआ (वि धावति) विविध मार्गों से जावे, वह देश को निष्कण्टक कर शोधन करे। और (शर्याणि) शरों से नाश करने योग्य (तान्वा) देहधारियों को (जहत्) नाश करे। (अत्र) इस कार्य में (युजा) सहायक वर्ग से वह (स जिघ्नते) प्रेम से मिल कर रहे।

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा ।
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विवस्वतः शुभ्रः) सूर्य के शुभ्र प्रकाश के समान (नप्तीभिः युवा) बलवान पुरुष अपने साथ सम्बद्ध प्रजाओं और

और सेनाओ के द्वारा (मामृजे) अभिषिक्त होता है वह (गाः कृण्वानः न) दूधों का सेवन करने वाले के समान स्वयं भी (गाः कृण्वानः) उत्तम आज्ञा-वाणियां प्रकट करता हुआ (निर्णिजम्) अपने रूप, वेश वा यश को भी शुद्ध, स्वच्छ और उज्ज्वल कर लेता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या ।
वग्नुमियर्ति यं विदे ॥ ६ ॥

भा०—वह (अण्व्या) सूक्ष्म या मनुष्यों के हितार्थ (गव्या) वाणी से (श्रिती) आश्रय प्राप्त करने के लिये (तिरश्चता) प्राप्त जनों को भी (अति जिगाति) अपने गुणो से वश कर लेता है और उसको भी वश कर लेता है (यं) जिसके प्रति (विदे) जानने के लिये (वग्नुम् इयर्ति) वचन-उपदेश भी कह देता है। अर्थात् वह सर्वलोकप्रिय हो जाता है।

अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् ।
पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ॥ ७ ॥

भा०—(क्षिपः) राष्ट्र मे रहने और शत्रुओ को उखाड फेकने मे समर्थ प्रजाएं और सेनाए (इषः पतिम्) सेनाओ के पालक, अन्नो के पालक, स्वामी को (मर्जयन्तीः) अभिषेक करती हुई (अभि सम् अग्मत) उसे प्राप्त होती है और (वाजिनः) बली, अश्व-सैन्य और ऐश्वर्यवान् जन उस के (पृष्ठा) पृष्ठ के ऊपर उसके पोषक होकर उसका आश्रय (गृभ्णत) ग्रहण करते है।

परि दिव्यानि मर्मृशद्विश्वानि सोम पार्थिवा ।
वसूनि याह्यस्मयुः ॥ ८ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषिक्त ! तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी, हमारा प्रिय होकर (विश्वानि दिव्यानि पार्थिवा वसूनि) सब दिव्य और पार्थिव धनों को (परि मर्मृशत) ग्रहण करता हुआ (याहि) हमे प्राप्त हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१५]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५, ८ निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः) वह (इन्द्रस्य निष्कृतम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता के पद को प्राप्त होता हुआ (शूरः) शूरवीर (आशुभिः रथेभिः) वेग से जाने वाले रथों, साधनों और रथसैन्यों सहित (अण्व्या धिया) सूक्ष्म बुद्धि और जन हितैषी कर्म से (याति) प्रयाण करे, आगे बढ़े ।

एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥२॥

भा०—(एषः) यह (बृहते) बड़े भारी (देव-तातये) विद्वानों के हित साधनार्थ (पुरू) बहुत अधिक (धियायते) ज्ञान सम्पादन तथा कार्य करना चाहता है । (यत्र) जिसके आश्रय (अमृतासः) सब अमर के समान (आसते) जीवित जागृत रूप में सुख से रहते हैं ।

एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥

भा०—(एषः) वह (हितः) स्थापित वा कार्य से बद्ध होकर (अन्तः) अन्तःकरण मे (शुभ्रवता पथा) शुद्ध भाव से युक्त मार्ग द्वारा (वि नीयते) विशेष रूप से ले जाया जावे और शिक्षित हो (यदि) जब कि (भूर्णयः) पालक पोषक जन (तुञ्जन्ति) उसे शिक्षा दे वा वे दुष्टों का हनन करें ।

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥

भा०—(यूथ्य. वृषा) यूथपति नर जिस प्रकार (शृङ्गाणि दोधुवत्

शिशीते) सींगों को कंपाता और तीक्ष्ण किये रखता है उसी प्रकार (एषः) वह (ओजसा) बल पराक्रम से (नृम्णा) नाना धनैश्वर्यों को धारण करता हुआ. (यूथ्यः) अपने यूथ में सब से श्रेष्ठ (वृषा) बलवान् उत्तम प्रबन्ध कर्त्ता, (शृङ्गाणि) शत्रु को हनन करने के साधन, अस्त्र शस्त्रों वा सैन्यों को (दोधुवत्) प्रयोग में लावे और (शिशीते) उनको सदा तीक्ष्ण बनाये रक्खे ।

एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (वाजी) बलवान् ऐश्वर्यवान् (सिन्धूनां पतिः भवन्) महा नदीवत् धारा-वेग से जाने वाले अश्वों, अश्वारोहियों का समुद्र वत् स्वामी, नायक होकर (शुभ्रेभिः अंशुभिः) शुद्ध दीप्तियुक्त तेजो, गुणों से युक्त और (रुक्मिभिः) स्वर्णादि रुचिर, कान्तियुक्त आभूषणों वा आयुधों से सुसज्जित सहयोगियों सहित (एषः ईयते) वह जाता है ।

एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥

भा०—(एषः) वह (परुषा) कठोर स्वभाव के (पिब्दना) पीड़ित करने योग्य, दुष्ट जनों को (अति ययिवान्) अतिक्रमण करके जाने वाला होकर (शादेषु) शत्रु का नाश करने वाले सैन्यों के आश्रय पर (वसूनि) नाना ऐश्वर्य (अव गच्छति) प्राप्त करता है ।

एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥

भा०—(महीः इषः) बहुत बड़ी २ सेनाओं को, नियोजित करने और शत्रु-सेनाओं पर बलात् आक्रमण करने में समर्थ (एतं) उस (मर्ज्यम्) अभिषेचनीय वीर को (आयवः) मनुष्य लोग (द्रोणेषु उप मृजन्ति) कलशों के बीच खड़ा कर प्रेमपूर्वक अभिषेक करें ।

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

भा०—(स्वायुधम्) उत्तम अस्त्र-शस्त्र-सम्पन्न उत्तम योद्धा और (मदिन्तमम्) सब को खूब प्रसन्न रखने वाले (एतम् उ त्यं) इस उस वीर को (दश क्षिपः) दशों दिशा-निवासिनी प्रजाएं और दश दिग्-विजयिनी शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली, सेनाएं और (सप्त धीतयः) सातों राष्ट्रधारक प्रकृतियें (मृजन्ति) अभिषेचित करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ८ निचृद् गायत्री। ३—७ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते सोतार ओण्यो३रसं मदाय घृष्वये।
सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (मदाय) आनन्द लाभ और (घृष्वये) शत्रुओं के साथ संघर्ष अर्थात् उनकी प्रति स्पर्द्धा करने के लिये (सोतारः) अभिषेक्ता जन (ओण्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य परस्पर रक्ष्य-रक्षक, शास्य-शासक वर्गों के (रस) बलस्वरूप (ते) तुझे वे अभिषिक्त करते हैं। और तू (सर्गः न एतशः) शुभ्र वर्ण के जल वा वेगवान् छूट भागे अश्व के समान (तक्ति) जावे।

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा।
गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥

भा०—(क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य और बुद्धि-सामर्थ्य से (दक्षस्य रथ्यम्) बलवान् रथीवत् नायक और (अन्धसा अपः वसानम्) अन्न के बल पर आप्त प्रजाओं को आच्छादित अर्थात् पालन करने वाले (अण्वेषु) विद्वान् पुरुषों वा स्तुति-वचनों में (गोषाम्) भूमि आदि के दाता पुरुष को हम (सश्चिम) प्राप्त करें।

अनप्तमुप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

भा०—(अनसम्) शत्रुओ या सामान्य प्रजाओ से अप्राप्त अर्थात् उनकी पहुच से बाहर, सर्वातिशायी अथवा (अनप्तम्) बन्धनरहित, (अप्सु दुस्तरं) अन्तरिक्षवत् प्रजाओ मे सब से अधिक अजेय, गम्भीर पुरुष को (पवित्रे) परम पवित्र पद पर (आ सृज) स्थापित करो। और उसको (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के पालन करने के लिये (पुनीहि) अभिषिक्त करो।

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति ।
क्रत्वा सुधस्थमासदत् ॥ ४ ॥

भा०—(पुनानस्य) अभिषेक करने वाले प्रजा जन के (चेतसा) चित्त के साथ २ (सोमः) अभिषेक योग्य युवा, विद्वान्, वीर्यवान् पुरुष (पवित्रे) अन्यो को पवित्र करने के कार्य में (अर्षति) प्राप्त होता है, और उसी के (क्रत्वा) ज्ञान, सामर्थ्य, राज्य-शासन के पवित्र पद से (सधस्थम्) एकत्र बैठने के स्थान सभा-भवन मे (आसदत्) विराजे।

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत ।
महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राष्ट्रपते ! वा राष्ट्र ! (नमोभिः) विनयपूर्वक (कारिण.) बल के शत्रु-हनन आदि कार्य करने मे समर्थ (इन्दवः सोमाः) स्नेहयुक्त अभिषिक्त जन (त्वा) तुझे (महे भराय) बड़े भारी संग्राम के लिये, वा बहुतो के भरण पोषण के लिये, आदरपूर्वक प्राप्त होते और उत्तम पद पर स्थापित करते हैं वा उत्पन्न करते हैं।

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥

पर शूरवीर पुरुष के समान (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन्) समस्त आश्रित प्रजाओं और लक्ष्मियों को प्राप्त करता हुआ (अव्यये रूपे) न क्षीण होने वाले अक्षय रूप, सम्पत्तियुक्त पद पर वा स्वरूप में (तिष्ठति) विराजता है ।

दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः ।
वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥

भा०—(दिवः धारा सानु न) आकाश की जल-धारा जिस प्रकार पर्वत के शिखर पर पड़ती है, उसी प्रकार (दिवः) तेजस्वी, (वेधसः) शासन विधान करने वाले (पवित्रे सुतस्य) राष्ट्र-पावन-कारक पद पर अभिषिक्त हुए पुरुष की (धारा) वाणी (सानु) आज्ञाकारी और वेतन-भोगी समुदाय पर (वृथा) अनायास ही (अर्षति) जाती है ।

त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु ।
अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! बल-वीर्यशालिन् ! (त्वं) तू (आयुषु) मनुष्यों के ऊपर (तना) धन के द्वारा (विपश्चितम्) ज्ञान और कर्म में कुशल पुरुष को (पुनानः) अभिषिक्त करता हुआ (अव्य.) भूमि या राष्ट्र के रक्षक पद के (वारं) वरण करने योग्य पद को (वि धावसि) विविध प्रकार से प्राप्त होता है । इति षष्ठो वर्गः ॥

[१७]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—८ गायत्री । २ भुरिग्गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥

भा०—(निम्नेन इव सिन्धवः) नीचे, ढालवें स्थान में जिस प्रकार बहते जल-प्रवाह, नदी-नद वेग से जाते और (वृत्राणि घ्नन्ता)

रोकों को तोड़ते फोड़ते हैं उसी प्रकार (सिन्धवः आशवः) प्रचण्ड वेग से जाने वाले अश्व-सैन्यों के स्वामी (सोमाः) नायक जन, (भूर्णयः) क्षिप्रगामी होकर (वृत्राणि घ्नन्तः) विघ्नों और विघ्नकारी दुष्टों को नाश करते हुए (असृग्रम्) वेग से जाया करें ।

अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव ।

इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥

भा०—(वृष्टयः पृथिवीम् इव) वृष्टियें जिस प्रकार भूमि को प्राप्त होती हैं, और (इन्द्रम् अभि अक्षरन्) जलों के धारक समुद्र की ओर वह जाती हैं, उसी प्रकार (सुवानासः इन्दवः सोमासः) उत्पन्न होते हुए, शासन करते हुए ये स्नेहार्द्र शासक, बलवान् पुरुष (इन्द्रम् अभि अक्षरन्) ऐश्वर्यवान् वा अन्न-दाता को लक्ष्य करके जाते हैं, उस का ही शासन मानते हैं । (२) इसी प्रकार (सुवानासः सोमाः) उत्पन्न होते हुए समस्त प्राणी उसी प्रभु की शरण जाते हैं ।

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥

भा०—(अति ऊर्मिः) अति उत्साहित होकर, (मत्सरः) अति तृप्त एवं हर्षित होकर (मदः) सब को आनन्द देता हुआ, (सोमः) ऐश्वर्य युक्त, विद्या ज्ञान, अधिकार में निष्णात होकर (देवयुः) दिव्य गुणों वा देव, प्रभु की कामना करता हुआ (रक्षांसि विघ्नन्) दुष्टों, विघ्नों का नाश करता हुआ, (पवित्रे अर्षति) पवित्र पद पर, ब्रह्म में गति करता है ।

आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।

उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (कलशेषु धावति) अभिषेक योग्य पुरुष स्नान काल में जल से पूर्ण कुम्भों के बीच में अपने को शुद्ध करता (पवित्रे परि सिच्यते) और अन्य जन पवित्र शासन कार्य के निमित्त उस का अभिषेक

करते हैं उसी प्रकार यह जीव (कलशेषु) चेतना से युक्त देहों में (आ धावति) जाता और अपने कर्मों को भोग कर स्वच्छ होता, और (पवित्रे) परम पावन ब्रह्म में और जो अधिक (परि सिच्यते) शुद्ध होता है वह (उक्थैः यज्ञेषु वर्धते) यज्ञों, सत्संगो में उत्तम वेद-वचनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त करता है।

अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम्।
इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥

भा०—(रोहन् न दिवम्) उदित होता हुआ सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है उसी प्रकार हे (सोम) योगिन् ! विभूति-युक्त ! ज्ञानसम्पन्न ! तू (त्री रोचना अति) कान्तिमान् अग्नि, चन्द्र और सूर्य तीनों को अतिक्रमण करके (दिवम् भ्राजसे) ज्ञान को प्राप्त कर प्रकाशित होता वा मूर्धा स्थल में प्राप्त होकर तेजोमय होता है। और (इष्णन्) आगे बढ़ता हुआ (सूर्यं न) प्रभु या प्रेरक बल जिस प्रकार सूर्य को प्रेरित करता है उसी प्रकार तू भी (सूर्यं चोदयः) देह में विद्यमान दक्षिण प्राण को प्रेरित करता है। (२) इसी प्रकार मुख्य शासक तेज में तीनों से बढ़कर हो, भूमि-शासन को चमकावे और सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुषों को सन्मार्ग में चलावे।

अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः।
दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥

भा०—(यज्ञस्य मूर्धन्) यज्ञ के शिर के समान सर्वोपरि विद्यमान (चक्षसि) चक्षुर्वत् सर्वद्रष्टा प्रभु में (प्रियम् दधानाः) अपने प्रीति युक्त भाव को रखते हुए, (कारवः) कर्मनिष्ठ, स्तुतिकर्त्ता (विप्राः) विद्वान जन (अभि अनूषत) उसी प्रभु की साक्षात् स्तुति करते हैं।

तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः।
मृजन्ति देववीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! (तम् उ त्वा वाजिनं) उस तुझ ज्ञानवान्, बलवान् परमैश्वर्यवान् प्रभु को (विप्राः नरः) बुद्धिमान्, ज्ञानी पुरुष (अवस्यवः) ज्ञान और रक्षा चाहते हुए (देव-तातये) शुभ गुणों को प्राप्त करने और उपासना करने के लिये (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों द्वारा (मृजन्ति) अपने हृदय में उज्ज्वल करते हैं।

मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः ।
चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (तीव्रः) तीक्ष्ण तेजस्वी होकर (ऋताय पीतये) सत्य तत्व, ज्ञान के पालन कराने के लिये (चारुः) सर्वव्यापक होकर (सधस्थम्) इस समस्त संसार में (आसदः) व्याप्त होकर, उस में विराजता है, वह तू (मधो· धाराम्) आनन्द की धारा के समान ज्ञान की वाणी को (अनु क्षर) प्रवाहित कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१८]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृद् गायत्री। २ ककुम्मती गायत्री। ३, ५, ६ गायत्री। ७ विराड् गायत्री॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (सोमः) समस्त जगत् का उत्पादक, शासक, सञ्चालक सर्वरसमय, सर्वैश्वर्यवान् है। तू (सुवानः) जगत् को उत्पन्न करता हुआ (गिरिष्ठाः) सब की वाणियों पर, सब की स्तुतियों में विराजमान होता और (पवित्रे) पवित्र हृदय में (परि अक्षाः) आनन्द रूप से प्रवाहित होता है। (मदेषु) स्तुतिकर्त्ता जनों में तू (सर्वधाः असि) सब पदार्थों का दाता और सब का धारक पालक-पोषक है।

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि॥ २॥

भा०—हे परमेश्वर (त्वं विप्रः) तू सब को पूर्ण करने हारा है। (त्वं कविः) तू क्रान्तदर्शी, तह तोड़ कर हृदय तक को देखने और जानने हारा है। तू (अन्धसः प्रजातम् मधु) अन्न से उत्पन्न होने वाले आनन्ददायक, तृप्तिकारक अन्न के समान हृदय की भूख को तृप्त करने वाला है। तू (मदेषु) आनन्द रसो के आश्रय पर (सर्वधाः असि) समस्त संसार के प्राणियो का धारक-पोषक है।

तव॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सो दे॒वास॑ः पी॒तिमा॑शत।
मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् और तेजस्वी लोग (स-जोपसः) प्रेमयुक्त होकर (तव पीतिं) तेरे ही सुखद रस और रक्षा का (आशत) उपभोग करते हैं। तू (मदेषु सर्वधाः असि) समस्त तृप्तिदायक रसो और अन्नो मे व्यापक होकर सब का पालक-पोषक और सब का धारक है।

आ यो विश्वा॑नि॒ वार्या॑ वसू॑नि॒ हस्त॑यो॒र्द॒धे।
मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (हस्तयोः) अपने हाथो मे, अपने वश मे (विश्वानि वार्या दधे) समस्त ऐश्वर्यों को रक्खे हुए है, वही तू (मदेषु सर्वधाः असि) आनन्दप्रद सुखो और ऐश्वर्यों मे सब को धारण करता और सर्व-विधाता है।

य इ॒मे रोद॑सी म॒ही सं मा॒तरे॑व॒ दोह॑ते। मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥५॥

भा०—(मातरा इव) जिस प्रकार एक ही पुत्र दो माताओ वा माता पिता दोनो को (दोहते) सुख प्रदान करता, दोनो से दुग्धपान करता, दोनो की गोद पूरता है, उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (इमे मही रोदसी दोहते) इन दोनो आकाश और भूमि को नाना रसो, जलो

पूर्ण करता है, वही तू प्रभु (मदेषु) तृप्तिकारक अन्नो और जलों के ऊपर (सर्वधाः असि) सब प्राणियो को पोषण करने मे समर्थ है।

परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (उभे रोदसी परि) दोनो लोको मे (वाजेभिः) अपने नाना ऐश्वर्यों सहित (परि अर्षति) सर्वत्र व्याप्त है, हे प्रभो! वह तू (मदेषु) आनन्ददायक सब ऐश्वर्यो मे (सर्वधाः) सब को धारण करने हारा (असि) है।

स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह (शुष्मी) बलवान् (कलशेषु) समस्त शरीरो मे (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आ अचिक्रदत्) जीव को उपदेश करता है। वही (मदेषु) समस्त आनन्दो के रूप मे (सर्वधाः असि) सब का पोषक, सर्वप्रद है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१६]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री। २, ५, ७ निचृद् गायत्री। ३, ४ गायत्री। ६ भुरिग्गायत्री॥

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु। तन्नः पुनान आ भर॥१॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक! सञ्चालक! ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो (चित्रम्) संग्रह करने योग्य, ज्ञानप्रद, अद्भुत (उक्थ्यम्) प्रवचन योग्य, स्तुत्य, (दिव्य) दिव्य, प्रकाशमय, कामना और व्यवहार योग्य (वसु) ऐश्वर्य (पार्थिव) पृथ्वी पर का (वसु) धन है उसे न (पुनानः) हमें पवित्र करता हुआ, (न आ भर) हमें प्राप्त करा। (२) राजा स्वयं पवित्र होकर हमारा भी सब उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करे।

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक और (इन्द्रः च) हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! (युवं हि) तुम दोनो (स्वः-पती) सुख के पालक और सत्र के पालक और (गो-पती स्थः) इन्द्रियों और सूर्यादि के पालक हो । तुम दोनों (ईशाना) देह और विश्व के स्वामी होकर (धियः पिप्यतम्) ज्ञानो और कर्मों को करते हो । जीव और परमेश्वर के सिवाय दूसरा कोई भी शक्तिमान् नहीं है । भेद केवल अल्पता और अधिकता का है ।

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
हरिः सन्योनिमासदत् ॥ ३ ॥

भा०—(वृषा) वह जगत् मे सुखो का वर्षक एवं जगत् का प्रबन्धक, महान्, (हरिः) सब दुःखों का हर्ता प्रभु (पुनानः) सब को पवित्र करता हुआ (बर्हिषि अधि) समस्त जगत् पर (आयुषु) मनुष्यों मे (स्तनयन्) बरसते मेघ के समान गर्जनावत् ज्ञानोपदेश करता हुआ और (स्तनयन्) मातृवत् सब को बालकवत् स्तन्य सदृश अन्न देकर पालता हुआ (योनिम्) जगत् के मूलकारण प्रकृति और गृहवत् विश्व पर (आ सदत्) अध्यक्षवत् विराजता है ।

अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि ।
सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥

भा०—(रेतसि) जल के निमित्त जिस प्रकार (धीतयः) जलपान करने वाली भूमियां (वृषभस्य अधि अवावशन्त) वर्षणशील मेघ की अधिक अपेक्षा करती हैं उसी प्रकार (रेतसि) परम पुरुषार्थ वा जगत् के उत्पादक सर्वबीज के निमित्त (धीतयः) आधान योग्य समस्त भूमिया (वृषभस्य) अति बलशाली जगत्-उत्पादक तत्त्व की (अधि वावशन्त) अधिक कामना करती है । और जिस प्रकार (वत्सस्य सूनोः मातरः)

उत्पन्न हुए बच्चे की माताएं बच्चों को चाहती है उसी प्रकार (वत्सस्य मातरः) वत्सवत् इस जगत् की निर्मातृ शक्तियां भी (सूनोः अधि वावशन्त) अपने ऊपर महान् सञ्चालक, प्रेरक की अपेक्षा करती है।

कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत्।
याः शुक्रं दुहते पयः॥ ५॥

भा०—जिस प्रकार (पुनानः) वायु या पवित्रकारक या व्यापक तेजस्वी सूर्य (वृषण्यन्तीभ्यः) वर्षक मेघ की कामना करने वाली भूमियों के लिये (कुविद् गर्भम्) बहुत भारी अन्तरिक्ष मे (आदधत्) जल को गर्भित कर धारण कराता है, (याः) जो अनन्तर (पयः शुक्रम् दुहते) शुद्ध जल का दोहन करती है उसी प्रकार (पुनानः) सर्वपावन प्रभु (वृषण्यन्तीभ्यः) बलवान् सञ्चालक की अपेक्षा करने वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच (पुनानः) व्याप कर (कुवित्) बहुत प्रकार से (गर्भम् आदधत्) जगत् को गर्भित करता है और प्रकृति के परमाणु वा 'आपः' (शुक्रं) कान्तियुक्त (पयः) महत् जगत् को मातृदुग्धवत् दोहन करते हैं। (२) इसी प्रकार वृषभ को चाहती हुई गौओं मे विजार सांड गर्भ धरता और वे गौएं कान्तियुक्त दूध देती है। (३) इसी प्रकार प्रजाएं बलवान् राजा की अपेक्षा करती है। वे शुद्ध अन्न और बल प्रदान करती हैं।

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु।
पवमान विदा रयिम्॥ ६॥

भा०—(अप तस्थुषः) अपने से अलग विद्यमान जीवों को तू हे प्रभो! (उप शिक्ष) समीप रख और उत्तम दान दे और (शत्रुषु) शत्रुओं मे (भियसम् आ धेहि) भय डाल। हे (पवमान) परम पावन! तू हमें (रयिम् विद) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर।
दूरे वा सतो अन्ति वा॥ ७॥ ६॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तु (दूरे सतः वा, अन्ति सतः वा) दूर वा पास रहते हुए (शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर) शत्रु के बल का नाश कर (शुष्मं नि तिर) शोषणकारी अत्याचार को दूर कर, (वयः नि तिर) उसके आयु वा तेज का नाश कर। इति नवमो वर्गः ॥

[२०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ निचृद् गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी, दूर दृष्टि वाला विद्वान् (देव-वीतये) 'देव' तेजस्वी सूर्यवत् कान्ति प्राप्त करने के लिये (अव्यः) रक्षक होकर (विश्वाः स्पृधः अभि साह्वान्) समस्त स्पर्धालु सेनाओं को पराजित करने हारा होकर (वारेभिः) दुष्टों के वारक सैन्यों सहित (प्र अर्षति) उत्तम पद को पाता है।

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हि) वह (पवमानः) वायु के समान वेग से आक्रमण करने हारा, सूर्यवत् राष्ट्र को शोधन करने हारा, (जरितृभ्यः) विद्वान स्तुतिकर्त्ताओं को (सहस्रिणं गोमन्त वाजं) हजारों संस्थाओं से युक्त अपरिमित, भूमि गौ आदि वाला ऐश्वर्य (आ इन्वति स्म) प्रदान करता है।

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (चेतसा) चित्त से (विश्वानि) सब कार्यों को (परि मृशसे) विचार करता, (मती) बुद्धि या

वाणी से (पवसे) प्रकाश करता है, (सः) वह तू (नः) हमें (श्रवः) वेद का ज्ञान, (विदः) प्राप्त करा ।

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

भा०—तू (मघवद्भ्यः) उत्तम धनवानों को (बृहत् यशः) बड़ा भारी यश और (ध्रुवं रयिम्) स्थिर ऐश्वर्य (अभि अर्ष) प्रदान कर या उनसे वा उनके लिये तू यश और धन प्राप्त कर और (स्तोतृभ्यः) विद्वान् जनों के लिये (इषं आ भर) अन्न प्रदान कर ।

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्भुत) आश्चर्यकारक ! अभूत-पूर्व ! हे (वह्ने) कार्य-भार को अपने कन्धों लेने हारे ! (त्वं पुनानः) अभिषिक्त होकर (राजा इव सु-व्रतः) राजा के समान उत्तम कर्म करता हुआ (गिरः विवेशिथ) आज्ञाएं प्रदान कर ।

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला, (दुस्तरः) शत्रुओं से पराजित न होने वाला, तेजस्वी (गभस्त्योः) हाथों के बल-पराक्रम से, (अप्सु मृज्यमानः) जलोंवत् प्रजाओं के बीच में परि-शुद्ध होकर (चमूषु) समस्त सेनाओं पर भी (सीदति) अध्यक्ष बनता है । (२) इसी प्रकार आत्मा शरीर का उठाने वाला (अप्सु) प्राणों में ससाजित, शुद्ध रूप होकर (चमूषु) विषयग्राहिणी इन्द्रियों पर अध्यक्ष-वत विराजता है ।

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ १० ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तु (दूरे सतः वा, अन्ति सतः वा) दूर वा पास रहते हुए (शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर) शत्रु के बल का नाश कर (शुष्मं नि तिर) शोषणकारी अत्याचार को दूर कर, (वयः नि तिर) उसके आयु वा तेज का नाश कर। इति नवमो वर्गः ॥

[२०]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४—७ निचृद् गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी, दूर दृष्टि वाला विद्वान् (देव-वीतये) 'देव' तेजस्वी सूर्यवत् कान्ति प्राप्त करने के लिये (अव्यः) रक्षक होकर (विश्वाः स्पृधः अभि साह्वान्) समस्त स्पर्धालु सेनाओं को पराजित करने हारा होकर (वारेभिः) दुष्टों के वारक सैन्यों सहित (प्र अर्षति) उत्तम पद को पाता है ।

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

भा०—(सः हि) वह (पवमानः) वायु के समान वेग से आक्रमण करने हारा, सूर्यवत् राष्ट्र को शोधन करने हारा, (जरितृभ्य) विद्वान् स्तुतिकर्त्ताओं को (सहस्रिणं गोमन्तं वाजं) हजारों संख्याओं से युक्त अपरिमित, भूमि गौ आदि वाला ऐश्वर्य (आ इन्वति स्म) प्रदान करता है।

परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (चेतसा) चित्त से (विश्वानि) सब कार्यों को (परि मृशसे) विचार करता, (मती) बुद्धि से

वाणी से (पवसे) प्रकाश करता है, (सः) वह तू (नः) हमें (श्रवः) वेद का ज्ञान, (विदः) प्राप्त करा।

अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम्।
इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ४॥

भा०—तू (मघवद्भ्यः) उत्तम धनवानों को (बृहत् यशः) बड़ा भारी यश और (ध्रुवं रयिम्) स्थिर ऐश्वर्य (अभि अर्ष) प्रदान कर या उनसे वा उनके लिये तू यश और धन प्राप्त कर और (स्तोतृभ्यः) विद्वान् जनों के लिये (इषं आ भर) अन्न प्रदान कर।

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ। पुनानो वह्ने अद्भुत॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्भुत) आश्चर्यकारक! अभूतपूर्व! हे (वह्ने) कार्य-भार को अपने कन्धों लेने हारे! (त्वं पुनानः) अभिषिक्त होकर (राजा इव सु-व्रतः) राजा के समान उत्तम कर्म करता हुआ (गिरः विवेशिथ) आज्ञाएं प्रदान कर।

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः।
सोमश्चमूषु सीदति॥ ६॥

भा०—(सः) वह (वह्निः) कार्य भार को वहन करने वाला, (दुस्तरः) शत्रुओं से पराजित न होने वाला, तेजस्वी (गभस्त्योः) हाथों के बल-पराक्रम से, (अप्सु मृज्यमानः) जलोंवत् प्रजाओं के बीच में परिशुद्ध होकर (चमूषु) समस्त सेनाओं पर भी (सीदति) अध्यक्ष बनता है। (२) इसी प्रकार आत्म-शरीर का उठाने वाला (अप्सु) प्राणों में संमार्जित, शुद्ध रूप होकर (चमूषु) विषयग्राहिणी इन्द्रियों पर अध्यक्षवत् विराजता है।

क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्॥ ७॥ १०॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (मंहयुः) दानवान् (क्रीळुः) क्रीड़ाकारी बालक के समान (मखः) यज्ञवत् पवित्र अन्तःकरण वाला होकर (स्तोत्रे) स्तुतिकारी प्रजाजन के हितार्थ (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल को धारण करता हुआ (पवित्रे) पवित्र पद को (गच्छसि) प्राप्त करता है। इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः। पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् गायत्री। २, ७ गायत्री। ४—६ निचृद् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः।
मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (इन्दवः) उस प्रभु की ओर जाने वाले स्नेह-भक्ति से आर्द्र हृदय (सोमाः) उत्तम विद्वान् जीवगण (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (घृष्वयः) बाधक विघ्नों के साथ संघर्ष, संग्राम करने वाले (धावन्ति) आगे बढ़ते हैं, अपने आपको निरन्तर शुद्ध, स्वच्छ करते हैं। वे (मत्सरासः) आत्मतृप्त जन (स्वविदः) प्रकाश-स्वरूप, उस प्रभु का ज्ञान उपलब्ध करते हैं।

प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः।
स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥

भा०—(प्र-वृण्वन्तः) उत्तम रीति से सेवा करने वाले, (अभि-युजः) शत्रु पर आक्रामक वीरों के समान लक्ष्य पर मनोयोग देने वाले, (सु-स्वये) उत्तम प्रेरक को (वरिवः-विदः) धन सेवादि देने वाले, और (स्वयं) स्वयं (स्तोत्रे) उपदेष्टा विद्वान् के लिये (वयस्कृतः) अन्न आदि प्रदान करने वाले हैं।

वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित्।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्दवः) ऐश्वर्य से युक्त होकर (वृथा क्रीडन्तः) अनायास युद्ध क्रीडा करते हुए (एकम् इत् सधस्थम्) एकमात्र सहयोगी प्रभु के प्रति (सिन्धोः ऊर्मा) सिन्धु की तरङ्गवत् विशाल प्रभु के उच्च पद पर (वि अक्षरन्) विविध मार्गों से जाते है।

एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत।
हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥

भा०—(रथे हिताः सप्तयः न) रथ मे लगे अश्वो के समान (एते) ये (पवमानासः) वायुवत् आगे बढने या अपने को स्वच्छ करने वाले साधक जन (विश्वानि वार्या) समस्त ऐश्वर्यों को (आशत) प्राप्त करते है।

अस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे।
यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मभ्यम्) हमे (अरावा) नही देता हे (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् वीर जनो ! (अस्मिन् आदिशे) उसके ऊपर आदेश वा शासन करने के लिये (वेनम्) तेजस्वी, कान्तिमान् (पिशङ्गम्) सुवर्ण, आदि ऐश्वर्य (अस्मभ्यम् आ दधात्) हमे प्रदान करो।

ऋभुर्न रथ्यं नवन्दधाता केतमादिशे।
शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥

भा०—(ऋभुः रथ्यं न) धन से सम्पन्न पुरुष जिस प्रकार (आदिशे) अश्वो के सञ्चालनार्थ रथ के सारथि को धरता है, उसी प्रकार हे विद्वान् जनो ! आप लोग (आदिशे) आगे के ज्ञान के लिये (नवं केतं दधात) नये से नया ज्ञान प्राप्त करो। और (शुक्राः अर्णसा पवध्वम्) शुद्धाचार हो कर जलवत् ज्ञान से अपने को सदा पवित्र किया करो।

एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत।
सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—(एते उ त्ये वाजिनः) ये वे सब ज्ञानवान् पुरुष बलवान् अश्वों के समान आगे बढ़ते हुए (काष्ठम् अवीवशन्) परम सीमा के समान परम सुखमयी ब्रह्मस्थिति को प्राप्त करे, ब्राह्मी दशा पर विजय प्राप्त करे। वे (सतः) सत् स्वरूप परमेश्वर के (मतिम्) ज्ञान को (प्र असाविषुः) प्राप्त करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[२२]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ४—७ निचृद् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः ।
सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (सोमासः) उत्पन्न होने वाले जीव गण और कार्य में नियुक्त वीर जन, शिष्य गण और विद्वान् पुरुष (रथाः इव) रथों के समान (आशवः) शीघ्र गति से जाने वाले, क्षिप्रकारी और (वाजिनः) देह में प्राणों के समान बलवान्, ज्ञानवान् होकर (सृष्टाः) छोड़े जाकर (सर्गाः) जल धाराओं के समान (प्र अहेषत) उत्तम ध्वनि करते वा खूब वेग से जाते हैं।

एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः ।
अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥ २ ॥

भा०—(एते) ये (वाता इव उरवः) महावायुओं के समान बलशाली और (पर्जन्यस्य वृष्टयः इव) मेघ की वृष्टियों के समान उदार दानशील और (अग्नेः भ्रमाः इव) अग्नि के मोड़दार लपटों के समान (वृथा) अनायास तेजस्वी हों।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
विपा व्यानशुर्धियः ॥ ३ ॥

भा०—(एते) वे (पूता.) पवित्र आचारवान् (विपश्चितः) ज्ञानवान् . (सोमासः) विद्या-स्नात जन (दध्याशिरः) ध्यान, धारणा बल से युक्त (विपा) ज्ञानसहित (धियः) कर्मों को (वि आनशुः) मिला कर विविध प्रकार से करते है।

एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
इयक्षन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥

भा०—(एते) वे विद्वान् ज्ञानवान्, एवं जीवात्मा गण, (मृष्टाः) शुद्ध. (अमर्त्याः) मरणरहित, साधारण मर्त्य देहियों से भिन्न, (ससृवांसः) निरन्तर भ्रमण करते हुए और (रजः पथः इयक्षन्तः) मार्गों और नाना लोकों को प्राप्त होना चाहते हुए भी (न शश्रमुः) नहीं थकते ।

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः ।
उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥

भा०—(एते) वे (रोदसोः पृष्ठानि) आकाश और भूमि के नाना स्थानों को (वि-प्रयन्तः) विशेष प्रकार से प्राप्त होते हुए (उत) और (इदम् उत्तमं रजः) उस उत्तम लोक को भी (वि आनशुः) विशेष रूप मे प्राप्त होते है। अर्थात् ज्ञानी जन इस आकाश और पृथ्वी के बीच भोग्य और ऐश्वर्य के लोको के अतिरिक्त मुक्तिप्रद ब्रह्म को भी प्राप्त होते है।

तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत ।
उतेदमुत्तमाय्यम् ॥ ६ ॥

भा०—वे (तन्वानं) विस्तृत (तन्तुं) यज्ञ एवं पिता माता के गृह या देहों मे पुत्र सन्तति रूप से विस्तृत वंश-क्रमानुसार (प्रवतः उत्तमम्) नीची योनि से लेकर उत्तम जन्म तक (आशत) प्राप्त करते हैं। (उत इदम् उत्तमाय्यम्) और वे ही इस उत्तम जनों मे प्राप्य मोक्ष पद को भी (आशत) प्राप्त होते हैं।

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः ।
ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे (सोम) जगद्-उत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (त्वं) तू (पणिभ्यः) लोकव्यवहार मे इन जीवो के लिये (गव्यानि वसु आ धारयः) भूमि के तथा इन्द्रियों से उपभोग्य वाणी से कहने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को सब ओर से प्राप्त कराता है और तू ही (ततं तन्तुम्) तन्तु के समान फैले इस जगत् को (अचिक्रदः) संचालित करता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२३]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६ निचृद् गायत्री । ५ गायत्री । ७ विराड गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

भा०—(विश्वानि काव्या) समस्त विद्वानो के द्वारा परिशीलित एवं उपदिष्ट ज्ञानो का, (अभि) साक्षात् ज्ञान करके (मधोः मदस्य धारया) तृप्तिकारक, हर्षजनक अन्न और जल को शरीर धारक पोपक शक्ति के समान, सुखदायक ज्ञान की धारा अर्थात् वाणी से (सोमाः आशवः) क्षिप्रकारी वीर, विद्वान्, बल वीर्य विद्या मे निष्णात जन जीवो के समान ही (असृग्रम्) उत्पन्न होते हैं ।

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥

भा०—(प्रत्नासः) अति पुरातन, अनादि काल मे विद्यमान (आयवः) पुनः शरीर मे आने वाले जीवों के समान मनुष्य भी (नवीयः) नये से नये (पदं) स्थान और प्राप्तव्य पद को (अक्रमुः)

प्राप्त होते है। वे (रुचे) दीप्ति के लिये (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, परम प्रतापी, ज्ञानमय पुरुष को भी राजवत् ही (जनन्त) उत्पन्न करते है।

आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम्।
कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) परम पावन और सब के भीतर पवित्र रूप से विद्यमान व्यापक स्वामिन्! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हम मे से (अदाशुषः गयम् आ भर) अदानशील को भी धन गृहादि प्रदान कर। अदाता दरिद्र को भी इतना धन दे कि वह भी खुले हाथ दान देसके। और तू ही (प्रजावती. इषः कृधि) प्रजाओ से युक्त अन्न सम्पदाओ को कर, वा हे राजन्! (प्रजावती. इषः) तू सेनाओं को प्रजावाला, रक्षक कर। हे प्रभो! तू (इषः प्रजावतीः कृधि) वृष्टियो को उत्तम अन्नोत्पादक कर।

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमासः) उत्तम शासक वा उपासक (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) हर्षजनक और (मदम्) तृप्तिकारक, स्तुत्य लोक वा पद को योग्य अन्नवत् भी (अभि पवन्ते) प्राप्त होते हैं, और वे ही (मधुश्चुतं) जलप्रद (कोशम्) कोश, मेघ के समान मधुर आनन्दप्रद कोश आनन्द के आकर रूप परमेश्वर को (अभि पवन्ते) लक्ष्य कर उसकी ओर भी जाते हैं।

सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम्।
सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥

भा०—(सोम.) जगत् का उत्पादक और सञ्चालक, (धर्णसिः) सब को धारण करने वाला परमेश्वर ही (इन्द्रियं) परम ऐश्वर्य और (रस) ज्ञान, आनन्द, परम बल को (दधानः) धारण करता और

प्रदान करता है। वही (सु-वीरः) सर्वोत्तम बलशाली, (अभिशस्तिपाः) सब दुःखों, दुष्प्रवादों और आक्रमणो से बचाने वाला है।

इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः।
इन्दो वाजं सिषाससि ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (देवेभ्यः) नाना अर्थों की कामना करने वाले जीवों के उपकारार्थ (इन्द्राय पवसे) महान् ऐश्वर्ययुक्त जगत् के सञ्चालन के लिये इसमें व्यापता और इसे चलाता है। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू ही (सध-माद्यः) उसके साथ आनन्द दाता (वाजं सिषाससि) उसे ऐश्वर्य दिया करता है।

अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति।
जघान जघनच्च नु ॥ ७ ॥ १३ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (मदानां) आनन्ददायक गुणों का (पीत्वा) पान या सेवन करके (इन्द्रः) यह जीव (अप्रति) अपराजित होकर (वृत्राणि) समस्त विघ्नों और विघ्नकारी शत्रुओं को (जघान) दण्डित करता और (जघनत् च नु) और बराबर करता रहे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[२४]

असितः काश्यपो देवलो वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३, ५, ७ निचृद् गायत्री। ४, ६ विराड् गायत्री ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) नाना उत्पन्न होने वाले जीव, (इन्दवः) चन्द्रवत् परमेश्वरीय ज्ञान से उपजीवित, (इन्दवः = इं द्रवन्ति) उस प्रभु की ओर जाने हारे भक्ति-रसार्द्र होकर (पवमानासः) निरन्तर स्नातक

पवित्र होते हुए (प्र अधन्विपुः) आगे बढते चले जाते हैं। (अप्सु श्रीणानाः) आप्त पुरुषों के अधीन वा प्राप्त शरीरों में भी तप करते हुए एवं (अप्सु) सूक्ष्म शरीरों में (मृजत) अति शुद्ध हो जाते हैं।

अभि गावो अधन्विपुरापो न प्रवता यतीः।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

भा०—(प्रवता यतीः आपः न इन्द्रम् आशत) जिस प्रकार नीचे की ओर जाने वाले मार्ग से जाती जलधाराएं जलों के धारक समुद्र तक पहुंच जाती है उसी प्रकार (प्रवता यतीः) उत्तम पद से जाने वाले (आपः) सूक्ष्म शरीरी वा आप्त जन (गावः) सदा गति करते हुए (अभि अधन्विपुः) आगे ही बढ़ते जाते हैं और (पुनानाः) अपने आप को उत्तरोत्तर पवित्र करते हुए (इन्द्रम् आशत) उस परमेश्वर, तेजोमय, भय-सकट के विदारण करने वाले प्रभु को, गुरु को शिष्योंवत् प्राप्त होते हैं।

प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे। नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

भा०—हे (पवमान सोम) पवित्र अन्तःकरण वाले उत्तम जीव! तू (पातवे) अपने पालन वा रक्षा-याचना के लिये (इन्द्राय) उसी प्रभु परमेश्वर के लिये (प्र धन्वसि) ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त वीर के समान मानो धनुष-बल से विजय करता हुआ आगे बढ़ रहा है (यतः) जहां से तू (नृभिः) सांसारिक विषयों की ओर ले आने वाले इन्द्रिय गणों द्वारा (वि नीयसे) उस प्रभु से विपरीत दिशा में इस जगत् के भोग्य पदार्थों की ओर बलात् ले जाया जाता है।

त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे। सस्निर्यो अनुमाद्यः॥४॥

भा०—हे (सोम) उत्पन्न होने वाले जीव! (त्वं) तू (नृ-मादनः) अपने नेतृ वर्ग इन्द्रिय गण को तृप्त करने और उनसे स्वयं तृप्त होने वाला है। तू (चर्षणीसहे) समस्त मनुष्यों को वश करने वाले उस प्रभु को

प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़ । (यः सस्निः) जो नित्य शुद्ध, पवित्र और (अनुमाद्यः) निरन्तर सब दिनों हर्ष देने वाला है ।

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) उस प्रभु के प्रति द्रुत गति से जाने वाले, एवं उस के प्रति भक्ति रसादि से आर्द्र जीव ! तू (यत्) जब (अद्रिभिः सुतः) धर्ममेघ समाधियों द्वारा परिष्कृत होकर (पवित्रं) परम पावन प्रभु को लक्ष्य करके (परि धावसि) इस संसार से दूर चला जाता है, तब तू (इन्द्रस्य धाम्ने) उस परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के परम तेज को प्राप्त करने के लिये (अरम्) पर्याप्त योग्य होता है ।

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः ।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) समस्त विघ्नों के विनाश करने वाले प्रभो ! तू (उक्थेभिः अनुमाद्यः) उत्तम स्तुति वचनों द्वारा निरन्तर आनन्द ग्रहण करने योग्य है । तू (शुचिः) परम पवित्र और (पावकः) सब को पवित्र करने हारा और (अद्भुतः) आश्चर्य-गुण कर्म-स्वभाववान् है । तू हमे भी (पवस्व) पवित्र कर, प्राप्त हो ।

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः ।
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ १५ ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) सर्व जगत् का सञ्चालक, आत्मा, परमेश्वर भी (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त (मध्वः) ज्ञान के कारण (शुचिः) शुद्ध (पावक) परम पावन और (देवावी.) देवों, कामनावान् जीवों का रक्षक और (अघ-शंसहा) पाप शासन करने वाले को दण्ड देने वाला है । इन मन्त्रों मे एक वचनान्त सोम परमेश्वर वाचक और बहुवचनान्त सोम [illegible]

वाचक प्रतीत होते हैं। आत्मा शब्द के तुल्य सोम भी उभयत्र समान रूप से प्रयुक्त है। इति चतुर्दशो वर्गः। इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[२५]

दृढच्युतः आगस्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ गायत्री । २, ४ निचृद् गायत्री ॥ षड्ृच सूक्तम् ॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (हरे) दुःखो के हरने वाले ! तू (दक्ष-साधनः) बल और ज्ञान से समस्त जगत् को वश करने वाला और (मदः) सब को आनन्द देने वाला है। तू (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों, सूर्यादि वा ज्ञानवान् पुरुषों और (मरुद्भ्यः) प्राणधारी और (वायवे) ज्ञानवान् वा प्राणवान् आत्मा के (पीतये) पालन करने के लिये (पवस्व) प्राप्त हो।

पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र रूप ! हे देह में आने वाले ! तू (धिया हितः) कर्म वा मानस कामना द्वारा बद्ध होकर (योनिम् अभि कनिक्रदत्) गृहवत् देह को प्राप्त होता है। और (धर्मणा) धारण सामर्थ्य से (वायुम् आ विश) प्राण तक मे प्रविष्ट है। (२) इसी प्रकार 'पवमान' व्यापक प्रभु (धिया) ज्ञान बल से सर्वत्र विद्यमान विश्वों को चलाता है वह धारक प्रयत्न से वायु प्रत्येक गतिमान् पदार्थ तक के भीतर है।

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

भा०— वह (कविः) जड पदार्थों को पार करके देखने वाला,

प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़। (यः सस्निः) जो नित्य शुद्ध, पवित्र और (अनुमाद्यः) निरन्तर सब दिनों हर्ष देने वाला है।

इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) उस प्रभु के प्रति द्रुत गति से जाने वाले, ए उस के प्रति भक्ति रसादि से आर्द्र जीव ! तू (यत्) जब (अद्रिभिः सुतः धर्ममेघ समाधियों द्वारा परिष्कृत होकर (पवित्रं) परम पावन प्रभु को लक्ष्य करके (परि धावसि) इस संसार से दूर चला जाता है, तब (इन्द्रस्य धाम्ने) उस परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के परम तेज को प्राप्त करने के लिये (अरम्) पर्याप्त योग्य होता है।

पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) समस्त विघ्नों के विनाश करने वाले प्रभो! तू (उक्थेभिः अनुमाद्यः) उत्तम स्तुति वचनों द्वारा निरन्तर आनन्द ग्रहण करने योग्य है। तू (शुचिः) परम पवित्र और (पावकः) सब को पवित्र करने हारा और (अद्भुतः) आश्चर्य-गुण कर्म-स्वभाववान् है। तू हमें भी (पवस्व) पवित्र कर, प्राप्त हो।

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः।
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ १४ ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) सर्व जगत् का सञ्चालक, आत्मा, परमेश्वर (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त (मध्वः) ज्ञान के कारण (शुचिः) शुद्ध (पावक) परम पावन और (देवावीः) देवों, कामनावान् जीवों का रक्षक और (अघ-शंसहा) पाप शासन करने वाले को दण्ड देने वाला है। इन मन्त्रों में एक वचनान्त सोम परमेश्वर वाचक और बहुवचनान्त सोम जीव [illegible]

वाचक प्रतीत होते हैं। आत्मा शब्द के तुल्य सोम भी उभयत्र समान रूप से प्रयुक्त है। इति चतुर्दशो वर्गः। इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[२५]

दृढच्युतः आगस्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ गायत्री। २, ४ निचृद् गायत्री ॥ षड्ऋच सूक्तम् ॥

पव॑स्व दक्ष॒साध॑नो दे॒वेभ्यः॑ पी॒तये॑ हरे।
म॒रुद्भ्यो॑ वा॒यवे॒ मदः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (हरे) दुःखों के हरने वाले! तू (दक्ष-साधनः) बल और ज्ञान से समस्त जगत् को वश करने वाला और (मदः) सब को आनन्द देने वाला है। तू (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों, सूर्यादि वा ज्ञानवान् पुरुषों और (मरुद्भ्यः) प्राणधारी और (वायवे) ज्ञानवान् वा प्राणवान् आत्मा के (पीतये) पालन करने के लिये (पवस्व) प्राप्त हो।

पव॑मान धि॒या हि॒तो॒३॒॑ऽभि योनिं॒ कनि॑क्रदत्।
धर्म॑णा वा॒युमा वि॑श ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र रूप! हे देह में आने वाले! तू (धिया हितः) कर्म वा मानस कामना द्वारा बद्ध होकर (योनिम् अभि कनिक्रदत्) गृहवत् देह को प्राप्त होता है। और (धर्मणा) धारण सामर्थ्य से (वायुम् आ विश) प्राण तक मे प्रविष्ट है। (२) इसी प्रकार 'पवमान' व्यापक प्रभु (धिया) ज्ञान बल से सर्वत्र विद्यमान विश्वों को चलाता है वह धारक प्रयत्न से वायु प्रत्येक गतिमान् पदार्थ तक के भीतर है।

सं दे॒वैः शो॑भते॒ वृषा॑ क॒विर्योना॒वधि॑ प्रि॒यः।
वृ॒त्र॒हा दे॑व॒वीत॑मः ॥ ३ ॥

भा०— वह (कविः) जड पदार्थों को पार करके देखने वाला,

(प्रियः) अपने को बहुत प्रिय (वृषा) बलवान्, आत्मा (योनौ अधि) देह पर शासक होकर (देवैः) अर्थप्रकाशक इन्द्रियों सहित, सहायकों सहित राजा के समान (शोभते) शोभा देता है। वह (वृत्रहा) बाधक अज्ञान दुःखादि को नाश करता और (देव-वीतमः) सब इन्द्रिय गत प्राणों चक्षु आदि सब से अधिक कान्तियुक्त, सर्वश्रेष्ठ है। (२) इसी प्रकार प्रभु विश्व पर अध्यक्षवत् जल, तेज आदि सहित विराजमान है। वह अन्धकार का नाशक और सूर्यादि का भी प्रकाशक है।

विश्वा॑ रू॒पाण्या॑वि॒शन्पु॑ना॒नो या॑ति हर्य॒तः।
यत्रा॒मृता॑स॒ आस॑ते ॥ ४ ॥

भा०—वह आत्मा (विश्वा रूपाणि) समस्त जीवित देहों में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ भी (हर्यतः) कान्तिमान् (पुनानः) अपने को स्वच्छ करता हुआ, वहां ही (याति) चला जाता है (यत्र अमृतासः) जहां अमृत मुक्तात्मा (आसते) विराजते हैं।

अ॒रु॒षो ज॒नय॒न्गिरः॒ सोमः॑ पवत आयु॒षक्।
इन्द्रं॑ गच्छ॒न्क॒विक्र॑तुः ॥ ५ ॥

भा०—(अरुषः) तेजःस्वरूप, स्वप्रकाश (सोमः) जीव (आयुषक्) जीवन को प्राप्त करके (गिरः जनयन्) स्तुति वाणियां प्रकट करता हुआ (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी ज्ञान वाला होकर (इन्द्रम् गच्छन्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त होता हुआ (पवते) पवित्र हो जाता है।

आ प॑वस्व मदिन्तम प॒वित्रं॒ धार॑या कवे।
अ॒र्कस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म् ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति आनन्द देने वाले आत्मन् ! (कवे) हे क्रान्तदर्शिन् विद्वन् ! मेधाविन् ! तू (धारया) वाणी द्वारा (पवित्रं) अति पवित्र और अन्य को पवित्र करने वाले प्रभु को (आ पवस्व) प्राप्त

हो और (अर्कस्य योनिम्) अर्चना करने योग्य उस परमेश्वर के आश्रय को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये तू वाणी से स्तुति कर । इति पञ्चदशो वर्गः॥

[२६]

इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५ निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री ॥ षड्‌च सूक्तम् ॥

तम॑मृक्षन्त वा॒जिन॑मु॒पस्थे॒ अदि॑ते॒रधि॑ ।
विप्रा॑सो॒ अण्व्या॑ धि॒या ॥ १ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् बुद्धिमान् लोग (अदितेः उपस्थे अधि) माता पितावत् अदीन, अखण्ड परमेश्वर की गोद में, उस के समीप मे, (तम्) उस (वाजिनम्) बल और ज्ञान वाले आत्मा को (अण्व्या धिया) अति सूक्ष्म बुद्धि से (अमृक्षन्त) शोधते और विमर्श, विवेचन करते हैं । अमृक्षन्त—मृजेर्वा मृशेर्वा ।

तं गावो॑ अ॒भ्य॑नूषत स॒हस्र॑धार॒मक्षि॑तम् ।
इन्दुं॑ ध॒र्तार॒मा दि॒वः ॥ २ ॥

भा०—(दिवः) सूर्यादि लोकों को (आ धर्तारम्) सब ओर से धारण करने वाले (सहस्र-धारम्) सहस्रों वाणियों वाले, वा सहस्रों अपरिमित लोकों के धारक, (अक्षितम्) अक्षय, अविनाशी, (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् (तम्) उस प्रभु की ही (गावः अभि अनूषत) समस्त वाणियां स्तुति करती है ।

तं वे॒धां मे॒धया॑ह्य॒न्पव॑मान॒मधि॒ द्यवि॑ ।
ध॒र्ण॒सिं भूरि॑धायसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (वेधाम्) जगत् के विधाता, (द्यवि अधि पवमानम्) तेजोयुक्त समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक (धर्णसिं) सब के आश्रय, (भूरि-धायसम) बहुत से अनेक जीवों और लोकों के पोषक प्रभु को लोग (मेधया) बुद्धि से (अह्यन्) प्राप्त करते हैं ।

(प्रियः) अपने को बहुत प्रिय (वृषा) बलवान्, आत्मा (योनौ अधि) देह पर शासक होकर (देवैः) अर्थप्रकाशक इन्द्रियों सहित, सहायकों सहित राजा के समान (शोभते) शोभा देता है। वह (वृत्रहा) बाधक अज्ञान दुःखादि को नाश करता और (देव-वीतमः) सब इन्द्रिय गत प्राणों चक्षु आदि सब से अधिक कान्तियुक्त, सर्वश्रेष्ठ है। (२) इसी प्रकार प्रभु विश्व पर अध्यक्षवत् जल, तेज आदि सहित विराजमान है। वह अन्धकार का नाशक और सूर्यादि का भी प्रकाशक है।

विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः।
यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥

भा०—वह आत्मा (विश्वा रूपाणि) समस्त जीवित देहों में (आविशन्) प्रवेश करता हुआ भी (हर्यतः) कान्तिमान् (पुनानः) अपने को स्वच्छ करता हुआ, वहां ही (याति) चला जाता है (यत्र अमृतासः) जहां अमृत मुक्तात्मा (आसते) विराजते हैं।

अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक्।
इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥ ५ ॥

भा०—(अरुषः) तेजःस्वरूप, स्वप्रकाश (सोमः) जीव (आयुषक्) जीवन को प्राप्त करके (गिरः जनयन्) स्तुति वाणियां प्रकट करता हुआ (कवि-क्रतुः) क्रान्तदर्शी ज्ञान वाला होकर (इन्द्रम् गच्छन्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त होता हुआ (पवते) पवित्र हो जाता है।

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति आनन्द देने वाले आत्मन् ! (कवे) हे क्रान्तदर्शिन् विद्वन् ! मेधाविन् ! तू (धारया) वाणी द्वारा (पवित्रं) अति पवित्र और अन्य को पवित्र करने वाले प्रभु को (आ पवस्व) प्राप्त

हो और (अर्कस्य योनिम्) अर्चना करने योग्य उस परमेश्वर के आश्रय को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये तू वाणी से स्तुति कर । इति पञ्चदशो वर्गः॥

[२६]

इध्मवाहो दार्ढच्युत ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५ निचृद् गायत्री । २, ६ गायत्री ॥ षड्‌ृच सूक्तम् ॥

तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि ।
विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् बुद्धिमान् लोग (अदितेः उपस्थे अधि) माता पितावत् अदीन, अखण्ड परमेश्वर की गोद मे, उस के समीप मे, (तम्) उस (वाजिनम्) वल और ज्ञान वाले आत्मा को (अण्व्या धिया) अति सूक्ष्म बुद्धि से (अमृक्षन्त) शोधते और विमर्श, विवेचन करते हैं । अमृक्षन्त—मृजेर्वा मृशेर्वा ।

तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् ।
इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥

भा०—(दिवः) सूर्यादि लोकों को (आ धर्तारम्) सब ओर से धारण करने वाले (सहस्र-धारम्) सहस्रो वाणियो वाले, वा सहस्रो अपरिमित लोकों के धारक, (अक्षितम्) अक्षय, अविनाशी, (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् (तम्) उस प्रभु की ही (गावः अभि अनूषत) समस्त वाणियां स्तुति करती है ।

तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि ।
धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (वेधाम्) जगत् के विधाता, (द्यवि अधि पवमानम्) तेजोयुक्त समस्त ब्रह्माण्ड मे व्यापक (धर्णसि) सब के आश्रय, (भूरि-धायसम्) वहुत से अनेक जीवो और लोको के पोषक प्रभु को लोग (मेधया) बुद्धि से (अह्यन्) प्राप्त करते हैं ।

तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः।
पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

भा०—और (विवस्वतः) विविध लोकों के स्वामी, प्रभु, परमेश्वर के (भुरिजोः) बाहुओं में, उसकी रक्षा में (संवसानम्) अच्छी प्रकार सुख से रहने वाले (अदाभ्यम्) अहिंसनीय, नित्य, अविनाशी (वाचः पतिम्) वाणी के पालक (तं) उस आत्मा को भी विद्वान् लोग (धिया अह्यन्) अपनी धारणावती बुद्धि द्वारा ही प्राप्त करते हैं।

तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥

भा०—(सानौ अधि हरिं) उच्च पद पर विराजमान, अन्धकार के नाशक, सूर्य के समान तेजस्वी, स्वप्रकाश (हरिं) उस सर्व-दुःखहारी (सानौ अधि) सर्वोच्च पद पर विराजमान, (हर्यतं) परम कान्तिमान्, (भूरिचक्षसं) बहुत से लोकों, जीवों के कर्मफलादि के देखने वाले, सर्वद्रष्टा परमेश्वर को (जामयः) उसके बन्धुवत् भक्त जन (अद्रिभिः) मेघवत आनन्द रसवर्षक धर्ममेघ नामक समाधियों द्वारा (हिन्वन्ति) उस तक पहुंचते और उसकी स्तुति करते हैं।

तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम्।
इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे (पवमान) परम पावन! (इन्द्राय) तुझे साक्षात् देखने वाले जीव को (मत्सरम्) आनन्द से तृप्त करने वाले (गिरावृधम्) वाणी से स्तुति करने योग्य (त त्वा) उस तुझ को (वेधसः) विद्वान् लोग (हिन्वन्ति) स्तुति करते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[२७]

नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृद् गायत्री। ३—५ गायत्री ॥ षडृच सूक्तम् ॥

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥

भा०—(एषः) यह (कविः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (अभि-स्तुतः) स्तुति वा प्रार्थना के योग्य है जो (पवित्रे अधि) पवित्र कार्य मे (पुनानः) नियुक्त हो कर (स्रिधः अप घ्नन्) बाधक कारणों को शत्रुओं के समान नाश करता हुआ (तोशते) विपक्ष का नाश करता रहे ।

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

भा०—(एषः) यह (दक्ष-साधनः) बल से शत्रुओं को वश करने वाला, (स्वर्जित्) सब का विजेता पुरुष, (इन्द्राय) शत्रुओं के नाश करने, ऐश्वर्य के बढ़ाने और (वायवे) वायुवत् प्रबल हो कर प्रजा को जीवन देने और शत्रुओं को मूल से उखाड़ डालने वाले पद के लिये (पवित्रे) देश को दुष्टों से रहित, स्वच्छ करने के विशेष पद पर (परि सिच्यते) सर्वोपरि अभिषेक किया जाता है ।

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

भा०—(एषः सोमः) वह उत्तम शासनकुशल, (विश्ववित्) सब का ज्ञाता, (वृषा) बलवान्, प्रजा पर सुखों की वृष्टि करने वाला, (दिवः मूर्धा) इस भूमि पर शिर के तुल्य उन्नत होकर (नृभिः) नायक उत्तम पुरुषों से (वनेषु) समस्त ऐश्वर्यों पर (सुतः) अभिषिक्त करके (वि नीयते) विशेष रूप से प्राप्त किया जाता है ।

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय, वेदवाणी आदि का स्वामी, जितेन्द्रिय विद्वान्. (हिरण्ययुः) धन का स्वामी, (इन्दुः)

ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र स्वभाव, (अस्तृतः) अहिंसक (सत्राजित्) सत्य के बल से जीतने वाला, (पवमानः) सब को पवित्र करता हुआ (अचिक्रदत्) शासन करे।

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (मत्सरः) सब को हर्ष देने वाला, (मदः) स्वयं हृष्ट पुष्ट, स्तुति योग्य, (पवमानः) अन्यों को पवित्र करता हुआ (पवित्रे द्यवि) पवित्र ज्ञान-प्रकाश में (अधि) अधिष्ठित होकर (सूर्येण) सूर्य के समान (आसते ह) विराजता है।

एष शुष्म्यसिष्यदद्न्तरिक्षे वृषा हरिः।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—(एषः) वह (शुष्मी) वायुवत् बलशाली (वृषा) मेघवत् सुखों का वर्षक, (इन्दुः) चन्द्रमा के समान कान्तिमान् (हरिः) सूर्यवत् अन्धकारादि का नाशक होकर (अन्तरिक्षे) सब के अन्तःकरण में (पुनानः) अभिषिक्त हो कर (इन्द्रम् आ असिष्यदत्) ऐश्वर्ययुक्त राज पद को प्राप्त करता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[२८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री। २, ३, ६ विराड् गायत्री ॥ षडृच सूक्तम् ॥

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः।
अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥

भा०—(एष) वह (वाजी) बलवान् (विश्व-वित) सर्वः (मनसः पति) सब ज्ञानों और सब के चित्तों का पालक (नृभि नायकों द्वारा (हित) स्थापित किया जाय। वह (अव्यः) रक्षक मेन

के (वारं) वरण योग्य मुख्य पद को (वि धावति) विशेष रूप से प्राप्त करता है।

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः।
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

भा०—(एषः) वह (सोमः) शासक (देवेभ्यः) विद्वान् और विजयेच्छुक पुरुषों के हितार्थ (पवित्रे) पवित्र, अभिषेचनीय पद पर (सुतः) अभिषिक्त हो कर (विश्वा धामानि) समस्त तेजों को (आविशन्) प्राप्त हो कर (अक्षरत्) आवे।

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

भा०—(एषः देवः) वह दानशील, (अमर्त्यः) अविनाशी, दीर्घजीवी, असाधारण मनुष्य (वृत्रहा) शत्रुओं का नाश करने वाला (देववीतमः) विद्वानों में अति तेजस्वी पुरुष (योनौ अधि शुभायते) उत्तम पद पर शोभा देता है।

एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः।
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, (दशभिः जामिभिः) दश बन्धुवत् राजमण्डलों से वा दश दिग्वासिनी प्रजाओं से (यतः) सुसम्बद्ध होकर (द्रोणानि) अभिषेक योग्य कलशों की ओर (अभि धावति) जाता और उनसे स्नान करता है। (२) अध्यात्म में धर्ममेघयुक्त आत्मा दश प्राणों से बन्धुवत् बद्ध होकर (द्रोणानि) भीतरी कोशों, लोकों या द्रुतगति वाले प्राणों की ओर जाता है, उन पर वश करता है।

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः।
विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥

भा०—(एषः) वह (विश्ववित्) सर्वज्ञ प्रभु (पवमानः) सब में व्यापता हुआ, (विश्वा धामानि विचर्षणिः) समस्त लोकों का द्रष्टा (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है । (२) उसी प्रकार राजा भी सब लोकों, स्थानों का द्रष्टा होकर सूर्यवत् तेजस्वी पद को सुशोभित करता है ।

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—(एषः) यह (शुष्मी) बलवान्, (अदाभ्यः) विनष्ट न होने वाला, (सोमः) ऐश्वर्यवान्, सर्वसञ्चालक, (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (देवावीः) विद्वान् उत्तम गुणों की रक्षा वा कामना और उन से प्रीति करता हुआ (अघ-शंसहा) पाप कहने वालों को दण्ड देता हुआ (अर्षति) हमें प्राप्त हो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२६]

नृमेध ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २—४, ६ निचृद् गायत्री । ५ गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा ।
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥

भा०—तू (देवान् प्रभूषतः अनु) उत्तम सामर्थ्यवान् विद्वानों और वीरों के प्रतिदिन (ओजसा) बल पराक्रम से (सुतस्य अस्य वृष्णः धाराः) अभिषिक्त हुए इस बलवान् पुरुष की (धाराः) वाणियें, आज्ञाएं (प्र अक्षरन्) मेघ से निकली जलधाराओं के समान सब के सुख के लिये निकलें । इसी प्रकार इस आत्मा की (देवान् अनु) इन्द्रिय गण के प्रति (प्र-भूषतः) प्रभुवत् इस की (धाराः) जलधारावत् ग्रहण शक्तियां इन्द्रिय प्रणालिकाओं से बाहर आती हैं ।

सप्ति मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (कारवः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता वा कर्मण्य पुरुष, (सप्ति) सातों प्राणों के स्वामी, इस आत्मा को (गिरा) वेद वाणी वा प्रभु-गुण-स्तुति से (मृजन्ति) शुद्ध पवित्र करते हैं। और उसी को (उक्थम्) स्तुत्य (जज्ञानं ज्योतिः) प्रकट होने या जन्म लेने वाली ज्योति करके जानते हैं। इसी प्रकार राजा सप्त प्रकृतियों का स्वामी होने से सप्ति है। वह परम तेजोवत् है।

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥

भा—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (पुनानाय ते) अभिषिक्त होने वाले, राष्ट्र को परिशोधन करने वाले राजा के समान, नाना योगसाधनों से पवित्र उज्ज्वल रूप से प्रकट होने वाले (ते) तेरे (तानि) वे नाना (सु-सहा) सुख से सबको वश करने वाले साधन हैं। हे (प्रभु-वसो) प्रचुर ऐश्वर्यवन्! तू (उक्थ्यम्) उत्तम स्तुति योग्य (समुद्रम्) समुद्र-वत् अर्थात् उस प्रभु की (वर्ध) स्तुति से उसकी महिमा फैला।

विश्वा वसूनि सञ्जयन्पवस्व सोम धारया ।
इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥

भा०—तू (विश्वा) सब प्रकार के (वसूनि) वसने योग्य ऐश्वर्यों और लोकों को (सं-जयन्) अच्छी प्रकार विजय करता हुआ, हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (धारया) उस अपनी धारणा शक्ति से (पवस्व) प्राप्त कर और (सध्र्यक्) साथ ही (द्वेषांसि इनु) सब प्रकार के द्वेषों को दूर कर।

रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् ।
निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! आत्मन् ! राजन् ! (समस्य कस्य चित्) समस्त जिस किसी भी (अररुषः) अति क्रोधी कठोर और (निदः) निन्दक से (नः सुरक्ष) हमारी रक्षा कर । (यत्र) जिससे हम (मुमुच्महे) मुक्त हो जावे ।

एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (पार्थिवं) पृथिवी के और (दिव्यं) तेजोयुक्त अग्नि, सूर्यादि के (रयिं) ऐश्वर्य को भी (धारया) वाणी वा धारणा द्वारा (पवस्व) दे वा सञ्चालित कर । तू (द्युमन्तं शुष्मम्) तेज से युक्त बल भी प्रदान कर । यहां सोम नामक तीव्र रस से दिव्य रयि, विद्युत् और तेजोयुक्त बल, यान्त्रिक बल प्राप्त करने का भी संकेत है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[३०]

बिन्दुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ गायत्री । ३-५ निचृद् गायत्री ॥

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् ।
पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥

भा०—(अस्य शुष्मिणः) इस बलवान् पुरुष की (धारा) वाणियें (पवित्रे) पवित्र, स्वच्छ दुष्ट, चोर दस्यु आदि से स्वच्छ करने के साधन रूप सैन्य के निमित्त (वृथा) अनायास ही (धाराः अक्षरन्) नाना वाणियें प्रकट हों । वह (पुनानः) राष्ट्र को पवित्र, स्वच्छ करता हुआ वा स्वयं अभिषिक्त होता हुआ (वाचम् इष्यति) अपनी आज्ञा, घोषणा प्रेरित करे या वेद वाणी की अपेक्षा करे ।

इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् ।
इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥ २ ॥

भा०—(सोतृभिः हियानः) अभिषेक करने वालों द्वारा बढाया गया और (मृज्यमानः) स्वच्छ पवित्र किया जाकर (कनिक्रदत्) शासन करे। वह (वग्नुम् इन्द्रियम् इयर्ति) वचन बोलने वाली इन्द्रिय वाग् का प्रयोग करो।

आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् ।
पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (धारया) अपने धारण सामर्थ्य और आज्ञा बल से (नः) हमे (नृ-साह्यं) सब मनुष्यो को वश करने मे समर्थ, (वीरवन्तं पुरु-स्पृहं) वीरो वाले, बहुतों को प्रिय लगने वाले (शुष्मं) बल को (नः पवस्व) मेघ से जल धारावत् हमे प्राप्त करा। विद्वान् जल-धारा से यान्त्रिक बल प्राप्त करे, इस का भी इस में उपदेश है।

प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक जल के समान है, वह (पवमानः) वेग मे जाता हुआ, (धारया अति प्र असिष्यदत्) धारा, वाणी वा सैन्य परंपरा वा शक्ति सहित आगे बढे और (द्रोणानि) नाना स्थानो पर (आसदम्) सुशोभित होने का यत्न करे।

अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे दयार्द्र स्वभाव ! हे युद्धादि मे द्रुत वेग से जाने हारे ! (अप्सु) प्राप्त प्रजाओं मे (त्वा) तुझ (मधु-मत्तमं) अति मधुर वचन बोलने वाले, (हरि) प्रजा के दुःखहारी, (त्वा)

तुझ को (अद्रिभिः) शस्त्र बलों द्वारा (इन्द्राय पीतये) बड़े ऐश्वर्यप्र की रक्षा के लिये (हिन्वन्ति) तुझे बढ़ाते हैं। अधि शक्तिशाली बनाते हैं।

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वज्रिणे) बलशाली (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त (शर्धाय) शस्त्र बल से धारण करने योग्य पद या राज्य के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर भाषी या शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, (चारुम्) उत्तम, विचारवान्, (मत्सरम्) हर्षप्रद (सोमम्) शासक का (सुनोत) अभिषेक करो ।

[३१]

गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २ यवमध्या गायत्री । ३, ५ गायत्री । ४, ६ निचृद् गायत्री ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः ।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) देह को प्रेरणा देने, सञ्चालन करने वाले (पवमानासः) उसको गति देने और नाडी २ में रक्तादि रस रूप से व्यापने वाले (स्वाध्यः) उत्तम चेतना रूप ज्ञान और कर्म को धारण करने वाले, प्राण गण (प्र अक्रमुः) देह में उत्तम रीति से सञ्चार करते हैं, वे (रयिं) मूर्त्त देह को चेतन (कृण्वन्ति) चेतनायुक्त बनाये रखते हैं उसी प्रकार वीर विद्वान् जन, पवित्र हृदय, उत्तम कर्म प्रज्ञावान् होकर (प्र अक्रमुः) एक से एक आगे उत्तम पद बढ़ाते और (रयिं) ऐश्वर्य और (चेतनं) ज्ञान का (कृण्वन्ति) सम्पादन करें । वीर लोग धन, यश का और विद्वान् लोग ज्ञान का सम्पादन किया करें ।

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्द्रो द्युम्नवर्धनः ।
भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (दिवः पृथिव्याः) भूमि और आकाश पर (अधि भव) शासक हो। तू (द्युम्न-वर्धनः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला (भव) हो और (वाजाना पतिः भव) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, बलों का पालक हो।

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः।
सोम वर्धन्ति ते महः॥ ३॥

भा०—हे (सोम) ओषधि वर्ग के समान सब को सुख देने हारे ! (वाताः) वायुगणवत् बलशाली, जीवनप्रद पदार्थ (तुभ्यं अभि-प्रियः) तुझे पूर्ण तृप्ति पुष्टि करने वाले हो और (सिन्धवः) वेग से जाने वाले नदों के समान वेगवान् अश्वादि एवं प्राणगण और देहगत नाड़ियें (तुभ्यम् अर्षन्ति) तेरे लिये गति करते है। हे (सोम) ऐश्वर्यवन् वे (ते महः वर्धन्ति) तेरे तेज को बढ़ाते है।

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य सङ्गथे॥ ४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! उत्तम विद्वन् ! अनुशास्तः ! ऐश्वर्यवन् ! तू (आ प्यायस्व) सब प्रकार से बढ़। (ते वृष्ण्यम् विश्वतः सम् एतु) तुझे बल, सामर्थ्य सब ओर से प्राप्त हो। तू (वाजस्य संगथे भव) ज्ञान, ऐश्वर्य के प्राप्त करने मे सदा सफल हो।

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम्।
वर्षिष्ठे अधि सानवि॥ ५॥

भा०—हे (बभ्रो) प्रजा को पालन पोषण करने हारे ! (गावः) गौएं (तुभ्यं) तेरे लिये वा (तुभ्यं गावः) तेरी गौएं (अक्षितं) न नाश होने वाला (घृतं पयः दुदुह्रे) घी और दूध प्रदान करे और (तुभ्य गावः) तेरी भूमियां (वर्षिष्ठे सानवि अधि) खूब वर्षण से युक्त उच्च स्थल पर (अक्षितम्) अन्न (दुदुह्रे) खूब उत्पन्न करें। अन्य पक्षो

तुझ को (अद्रिभिः) शस्त्र वलों द्वारा (इन्द्राय पीतये) बड़े ऐश्वर्यप्रद की रक्षा के लिये (हिन्वन्ति) तुझे बढ़ाते हैं। अधि शक्तिशाली बनाते हैं।

सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (वज्रिणे) बलशाली (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त (शर्धाय) शस्त्र बल से धारण करने योग्य पद या राज्य के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर भाषी या शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, (चारुम्) उत्तम, विचारवान्, (मत्सरम्) हर्षप्रद (सोमम्) शासक का (सुनोत) अभिषेक करो।

[३१]

गोतम ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री। २ यवमध्या गायत्री। ३, ५ गायत्री। ४, ६ निचृद् गायत्री ॥

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः।
रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) देह को प्रेरणा देने, सञ्चालन करने वाले (पवमानासः) उसको गति देने और नाड़ी २ में रक्तादि रस रूप से व्यापने वाले (स्वाध्यः) उत्तम चेतना रूप ज्ञान और कर्म को धारण करने वाले, प्राण गण (प्र अक्रमु.) देह में उत्तम रीति से सञ्चार करते हैं, वे (रयिं) मूर्त्त देह को चेतन (कृण्वन्ति) चेतनायुक्त बनाये रखते हैं उसी प्रकार वीर विद्वान् जन, पवित्र हृदय, उत्तम कर्म प्रज्ञावान् होकर (प्र अक्रमुः) एक से एक आगे उत्तम पद बढ़ाते और (रयि) ऐश्वर्य और (चेतनं) ज्ञान का (कृण्वन्ति) सम्पादन करें। वीर लोग धन, यश का और विद्वान् लोग ज्ञान का सम्पादन किया करें।

दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः।
भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (दिवः पृथिव्याः) भूमि और आकाश पर (अधि भव) शासक हो । तू (द्युम्न-वर्धनः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला (भव) हो और (वाजानां पतिः भव) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, बलों का पालक हो ।

तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
सोम वर्धन्ति ते महः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ओषधि वर्ग के समान सब को सुख देने हारे ! (वाताः) वायुगणवत् बलशाली, जीवनप्रद पदार्थ (तुभ्यं अभि-प्रियः) तुझे पूर्ण तृप्ति पुष्टि करने वाले हो और (सिन्धवः) वेग से जाने वाले नदी के समान वेगवान् अश्वादि एवं प्राणगण और देहगत नाड़ियें (तुभ्यम् अर्षन्ति) तेरे लिये गति करते है । हे (सोम) ऐश्वर्यवन् वे (ते महः वर्धन्ति) तेरे तेज को बढ़ाते है ।

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! उत्तम विद्वन् ! अनुशास्तः ! ऐश्वर्यवन् ! तू (आ प्यायस्व) सब प्रकार से बढ़ । (ते वृष्ण्यम् विश्वतः सम् एतु) तुझे बल, सामर्थ्य सब ओर से प्राप्त हो । तू (वाजस्य संगथे भव) ज्ञान, ऐश्वर्य के प्राप्त करने मे सदा सफल हो ।

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् ।
वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥ ५ ॥

भा०—हे (बभ्रो) प्रजा को पालन पोषण करने हारे ! (गावः) गौएं (तुभ्यं) तेरे लिये वा (तुभ्यं गावः) तेरी गौएं (अक्षितं) न नाश होने वाला (घृतं पयः दुदुह्रे) घी और दूध प्रदान करें और (तुभ्य गावः) तेरी भूमियां (वर्षिष्ठे सानवि अधि) खूब वर्षण से युक्त उच्च स्थल पर (अक्षितम्) अन्न (दुदुह्रे) खूब उत्पन्न करें । अन्य पक्षो

में—वाणियें, ज्ञान अर्थात् प्रकाश से युक्त ज्ञान और इन्द्रियें सत्य अक्षय ज्ञान, सर्वश्रेष्ठ स्थान मूर्धा मे उत्पन्न करे।

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम्।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे (स्वायुधस्य) उत्तम शस्त्र अस्त्रादि सैन्य बल के और (सतः भुवनस्य पते) उत्तम, प्राप्त लोक के पालक! (वयम्) हम लोग (ते सखित्वम् उष्मसि) तेरे मित्र भाव की कामना करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३२]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद् गायत्री। ३—६ गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

भा०—(सोमासः) वीर्यवान्, ज्ञान का सम्पादन करने वाले, ब्रह्मचारी गण (मद-च्युतः) हर्षप्रद होकर (सुताः) विद्या और व्रत मे निःष्णात हो कर (नः मघोनः) हम उत्तम धन वाले के पास (श्रवसे) अन्न धनादि प्राप्त करने के लिये (विदथे) यज्ञो मे (प्र अक्रमुः) आदरपूर्वक प्राप्त हों। इसी प्रकार ज्ञान रूप धनो के स्वामी गुरु जनों को शिष्य और राजाओं को वीरवत् ज्ञानोपार्जन और संग्राम के निमित्त प्राप्त हों।

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(आत्) और (ईम् हरिम्) इस मनोहर, ज्ञानोपार्जक विद्यार्थी, (इन्दुम्) स्नेहार्द्र एवं परिचर्या शील शश्रूषु को (त्रितस्य) विद्या समुद्र के पारंगत विद्वान् पुरुष की (योषणः) प्रेमपूर्वक कही सेवनीय,

वाणियां (अद्रिभिः) मेघवत् उदार, सूर्यवत् ज्ञान-प्रकाशक और अन्न के तुल्य नियम से सेवन करने योग्य वचनों से (इन्द्राय पीतये) आचार्य के ज्ञान-रस पान के लिये (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं।

'अद्रिः'–अद्रिरादृणात्यनेनापि वा अत्तेः स्यात्ते सोमाद इति विज्ञायते । निरु० ४ । ४ ॥ अदेर्वा औणादिकः क्रिन् । ४ । ६५ ॥ यो अत्ति अदन्ति यत्रेति वा स अद्रिः । पर्वतो, मेघो, वृक्षः, सूर्यो वा । अद्यते इत्यद्रिः वनस्पत्यन्नादि ।

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(आत्) और वह (यथा हंसः) जैसे हंस के समान विवेकी जन (गणं) जन समूह को और (विश्वस्य मतिम्) सब के ज्ञान बुद्धि को (अवीवशत्) अपने वश करता और चाहता है। वह (अत्यः न) अश्व के समान (गोभिः) वाणियों वत् जलधाराओं से (अज्यते) स्नात, अलंकृत और प्रकाशित होता है। (२) वह परमेश्वर सर्वव्यापक होने से 'हंस' है, वह विश्व की मति को अपने वश करता और वाणियों से प्रकट किया जाता है।

उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! ज्ञानेच्छुक ! तू (ऋतस्य योनिम् आ सीदन्) ज्ञान के आश्रय आचार्य को प्राप्त होता हुआ, (मृगः न तक्तः) सिंह के समान तेजस्वी वा शुद्ध चरित्र होकर (उभे अव चाकशत्) धर्म, अधर्म, इह और पर, लोकों को देखता हुआ (अर्षसि) आगे बढ़। (२) इसी प्रकार शासक धर्माध्यक्ष के पद पर विराज कर, सिंहवत् अभय होकर, सत्यानृत का विवेक करता हुआ न्याय करे।

अभि गावो॑ अनूषत॒ योषा॑ जा॒रमि॑व प्रि॒यम् ।
अग॑न्ना॒जिं यथा॑ हि॒तम् ॥ ५ ॥

भा०—(योषा प्रियम् जारम् इव) स्त्री जिस प्रकार प्रिय, जीवन के संगी की स्तुति करती है उसी प्रकार (गावः) वाणियां और प्रजाएं उस की ही (अभि अनूषत) स्तुति करती है और वह (हितम्) हितकारी पदार्थ को (आजिम् यथा) संग्रामवत् उत्साह से (अगन्) प्राप्त हो ।

अ॒स्मे धे॑हि द्यु॒मद्यशो॑ म॒घव॑द्भ्यश्च॒ मह्यं॑ च ।
स॒निं मे॒धामु॒त श्रवः॑ ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (अस्मे) हमे तू (द्युमत् यशः) कान्तियुक्त अन्न (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवानो को और (मह्यं च) मुझे (सनिम् मेधाम्) सेवन करने योग्य उत्तम बुद्धि (श्रवः उत) यश और ज्ञान (धेहि) प्रदान कर । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[३३]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ५ गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री ॥ षड्च सूक्तम् ॥

प्र सोमा॑सो विप॒श्चितो॒ऽपां न य॑न्त्यू॒र्मयः॑ ।
वना॑नि महि॒षा इ॑व ॥ १ ॥

भा०—(महिषाः इव वनानि) अरने भैसे जिस प्रकार वनों मे प्रवेश करते और (अपां ऊर्मयः न) जलो के तरंग जिस प्रकार (अपा यन्ति) गम्भीर जलो के बीच गमन करते है । उसी प्रकार (विपश्चितः) विद्वान् (सोमासः) शासक जन (अपां) आप्त प्रजाओ के बीच (यन्ति) आगे बढ़ते है । (२) अध्यात्म मे—(सोमासः) जीव गण प्राणों के बीच जीवन यापन करते है ।

अ॒भि द्रोणा॑नि ब॒भ्रवः॑ शु॒क्रा ऋ॒तस्य॒ धार॑या ।
वाजं॒ गोम॑न्तमक्षरन् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (बभ्रवः) पालक पोषक जन (गोमन्तं वाज) दूध रस से मिले अन्न को (ऋतस्य धारया) अन्न रस की धारा से (द्रोणानि अभि) पात्रों में (अक्षरन्) डालते हैं उसी प्रकार (बभ्रवः) बभ्रु अर्थात् काषाय वर्ण के उत्तम ज्ञानी, संन्यासी और (बभ्रवः) शिष्यों के पालक पोषक गुरु जन, (शुक्राः) शुद्ध कान्ति से युक्त होकर (ऋतस्य धारया) सत्य ज्ञानमय वेद की वाणी से (गोमन्तं वाज) वाणियों से युक्त ज्ञान को (द्रोणानि अभि) सत्पात्रों के प्रति (अक्षरन्) प्रवाहित करते हैं। इसी प्रकार तेजस्वी वीर जन वेद की व्यवस्था रूप धारा वा जल की धारा से भूमि के ऊपर उगे अन्न ऐश्वर्य को जैसे, वैसे (द्रोणानि अभि) क्षेत्रों को सेचते हैं।

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥

भा०—(सुताः) अभिषिक्त, दीक्षित जन (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद और आचार्य से ज्ञानोपार्जन के अर्थ और (वायवे) बलशाली पुरुष के योग्य एवं (वरुणाय) सब से वरण करने योग्य पद के लिये तथा (मरुद्भ्यः) शत्रुओं को मारने वाले वीर सैन्य बनने के लिये और (विष्णवे) व्यापक शासनकारी पद के लिये (सोमाः) उत्तम २ शासक, ज्ञानी, बलशाली व्यक्ति (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं। इन सब में विद्यादि गुणों में निष्णात व्यक्ति पदाभिषिक्त होने चाहियें।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥

भा०—(तिस्रः वाचः) तीनों वाणियें (उत् ईरते) उठती हैं, उच्चारण करते हैं और (गावः धेनवः इव मिमन्ति) विद्वानों की वाणियें और वीरों की धनुष की डोरियां ध्वनि करती हैं और (हरिः) मनोहर

ज्ञानी, दुःखहर वीर (कनिक्रदत् एति) शासन और अनुशासन करत
हुआ आता है।

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः।
मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥

भा०—(मातरः शिशुम् मर्मृज्यन्ते) माताएं जिस प्रकार छोटे बच्चे
को स्वच्छ करती हैं उसी प्रकार (ऋतस्य मातरः) सत्य ज्ञान, वे
के जानने वाले विद्वान् जन (दिवः शिशुम्) ज्ञान के भीतर शासन करं
योग्य शिष्य का (मर्मृज्यन्ते) निरन्तर परिष्कार करें और वे (यह्वः
महान् (ब्रह्मीः) ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली वेद-वाणियों का भ
(अभि अनूषत) उसको उपदेश किया करें।

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्य और सञ्चालन की महान् शक्ति वे
स्वामिन्! तू (विश्वतः) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सह
स्रिणः) संख्या में अपरिमित और हज़ारों सुखों के देने वाले (रायः)
धन के प्राप्त करने के लिये (चतुरः समुद्रान् आ पवस्व) चारों समुद्र
को प्राप्त हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[३४]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृद् गायत्री।
३, ५, ६ गायत्री ॥

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति।
रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥

भा०—(इन्दुः) तेजस्वी, शत्रु पर द्रुत वेग से आक्रमण करने वा
वीर जन (ओजसा) बल-पराक्रम से (दृढा) दृढ़ दुर्गों को (रुजत्

तोड़ता फोडता हुआ, जिस प्रकार (धारया सुवानः) वाणी द्वारा सैन्य को सञ्चालित करता हुआ (तना प्र अर्षति) नाना धनों को प्राप्त होता है उसी प्रकार (धारया सुवानः) धारा, एक रस रूप ज्ञान-धारा से परिष्कृत होकर वल से देहवन्धनो को तोडता हुआ योगी (तना हिन्वानः) व्यापक वलों को वढ़ाता हुआ उत्तम पद को प्राप्त होता है।

सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मुरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २ ॥

भा०—(सुतः) अभिषिक्त (सोमः) शासकवत् उत्पन्न हुआ जीव (इन्द्राय वायवे वरुणाय विष्णवे) परमेश्वर्यवान्, प्राणों के प्राण, सर्वश्रेष्ठ सर्वव्यापक प्रभु को प्राप्त करने के लिये और (मरुद्भ्यः) प्राणों और विद्वानो को वश करने और सेवा करने के लिये (अर्षति) आगे वढ़ता है।

वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥

भा०—(वृषभिः यतम्) वलवान् पुरुषो से सम्बद्ध, (वृषाणम् सोमम्) वलवान्, ऐश्वर्यवान् शासक को (अद्रिभिः) नाना भोग साधनों से (सुन्वन्ति) सत्कार करते हैं और (शक्मना) शक्ति से उसके (पयः) वल वीर्य को (दुहन्ति) वढ़ाते और पूर्ण करते है।

भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥

भा०—(त्रितस्य) सव से ऊपर के शासक के (इन्द्राय) परमेश्वर पद के लिये (मत्सरः) आनन्दप्रद, सव को सुख देने वाला, सर्वपोषक पुरुष ही (मर्ज्यः भुवत्) अभिषेक योग्य होता है। वह (हरिः) सर्व दुःखहारी पुरुष (रूपैः समज्यते) नाना रुचिकर पदार्थों से सुशोभित किया जाता है।

अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

भा०—और (पृश्नि-मातरः) वर्षा को करने वाले मेघ जिस प्रकार (ऋतस्य वि-तपं) तेज के विशेष सन्तापयुक्त सूर्य से भी (चारु प्रियतमं हविः दुहते) मानो उत्तम पुष्टिप्रद अन्न प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) विद्वान् राजनिर्माता जन, (ऋतस्य वि-तपं जनं) सत्य ज्ञान के लिये विशेष तपस्यावान् इस से (चारु प्रियतमं हविः) उत्तम ज्ञान प्राप्त करे ।

सर्मेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः ।
धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—(एनम्) उस जिज्ञासु को (इमाः गिरः) ये वेद वाणियां (सस्रुतः) समान वेग से प्रवाहित होकर (अह्रुताः) अकुटिल, सरल रूप से (सम्-अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं । वह (वाश्रः) उत्तम स्वरवान् होकर उन (धेनूः अवीवशत्) वाणियों को अपने वश करे, उनका अच्छी प्रकार अभ्यास करे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३५]

प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४—६ गायत्री ।
३ विराड् गायत्री ॥

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् ।
यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥

भा०—हे (पवमान) ऐश्वर्यों के देने वाले ! तू (यया धारया) जिस वाणी से (नः ज्योतिः) हमें प्रकाश (विदासि) प्राप्त कराता है उसी (धारया) धारण शक्ति और वाणी से (नः पृथुम् रयिम् आ पवस्व) हमें विशाल धन प्राप्त करा ।

इन्द्रो॑ समुद्रमीङ्खय॒ पव॑स्व विश्वमेजय ।
रा॒यो ध॒र्ता न॒ ओज॑सा ॥ २ ॥

भा०—हे (समुद्रम् ईङ्खय) समुद्रों के समान अपार सैन्यों के सञ्चालक स्वामिन् ! हे (विश्वम्-एजय) विश्व के सञ्चालक प्रवर्त्तक प्रभो ! तू (धर्त्ता) सब का धारक पोषक और हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! आर्द्र स्नेहिन् ! तू (नः ओजसा) हमें बल पराक्रम से (रायः पवस्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर ।

त्वया॑ वी॒रेण॑ वीरवो॒ऽभि ष्या॑म पृतन्य॒तः ।
क्षरा॑ णो अ॒भि वार्य॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वया वीरेण) तुझ वीर सहायक से हे (वीरवः) वीरों के स्वामिन् ! हम (पृतन्यतः) सेना से संग्राम करने वाले शत्रुओं को (अभि स्याम) पराजित करें । तू (नः वार्य अभि।क्षर) हमें श्रेष्ठ धन प्राप्त करा ।

प्र वाज॒मिन्दु॑रिष्यति॒ सिषा॑सन्वाज॒सा ऋषि॑ः ।
व्र॒ता वि॑दा॒न आयु॑धा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दुः) दयार्द्र, (ऋषिः) द्रष्टा (वाजसाः) ज्ञान और धनादि का न्यायानुसार देने वाला, (व्रता आयुधा) व्रतों, कर्मों, अन्नों और शस्त्र-अस्त्रों अथवा दण्डों को (विदानः) जानता और प्राप्त कराता हुआ (वाज सिषासन्) ऐश्वर्य का विभाग करना चाहता हुआ (प्र इष्यति) सब को सन्मार्ग में चलावे ।

तं गी॒र्भिर्वा॑चमीङ्ख॒यं पु॑ना॒नं वा॑सयामसि ।
सोमं॒ जन॑स्य॒ गोप॑तिम् ॥ ५ ॥

भा०—हम (वाचम्-ईङ्खयम्) वाणी को देने वाले, आज्ञापक (जनस्य गोपतिम) मनुष्यों के रक्षक भूमिपति, (पुनानं) सबको पवित्र करने वाले, राष्ट्र-शोधक दुष्ट नाशक (तं) उस (सोमं) शास्ता पुरुष

को (गीर्भिः वासयामसि) वाणियों से आच्छादित करे, उसकी खूब स्तुति करें। अथवा (गीर्भिः) वाणियों से पवित्र करने वाले विद्वान् को हम (वासयामसि) अपने मे बसाये, उसकी रक्षा करें।

विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः।
पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥ २५ ॥

भा०—(यस्य धर्मणः पते) जिस धर्मरक्षक, धनाध्यक्ष, (पुनानस्य) शासन के द्वारा पवित्रकारक, (प्रभू-वसोः) प्रचुर धनशाली और बहुतसी प्रजाओं के स्वामी के (व्रते) नियमो मे (विश्वः जनः) समस्त जन (दाधार) अपने को पालित सुक्षित रखते हैं हम (तं वासयामसि) उस को सुरक्षित रक्खें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[३६]

प्रभूवसुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद गायत्री ।
२, ६ गायत्री । ३—५ निचृद गायत्री ॥

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः।
कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥

भा०—(रथ्यः) रथ चलाने वाले अश्व के समान दृढांग (सुतः) राज्याभिषिक्त पुरुष (पवित्रे) दुष्ट दमनकारी राष्ट्रशोधक पवित्र पद पर (चम्वोः) आजू-बाजू दोनो सेनाओ के ऊपर (असर्जि) नियत किया जाय। वह (वाजी) बलवान् पुरुष (कार्ष्मन्) संकर्षण, शत्रुपीडन के कार्य में (नि अक्रमीत्) प्रयाण करे।

स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति।
अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह तू (वह्निः) कार्य वहन करने में समर्थ, (जागृविः) सदा कार्य में सावधान, (देव-वीः) सूर्यवत् कान्तिमान सब

विद्वानो का प्रिय होकर हे (सोम) शास्तः ! (सः) वह तू (मधुश्चुतम् कोशं) जलप्रद मेघ के समान, सब को अन्न देने वाले कोश, खजाने रूप इस राष्ट्र को (अति अभि पवस्व) सब से बढ़कर प्राप्त कर ।

स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूर्व्यः) पूर्ण ! सब से प्रथम पूज्य! हे (पवमान) पवित्र-कारक ! (सः) वह तू (नः) हमे (ज्योतींषि) नाना प्रकाश (वि रोचय) प्रकाशित कर और (नः) हमे (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान और बल सम्पादन के लिये (हिनु) प्रेरित कर ।

शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।
पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥

भा०—(ऋतायुभिः) सत्य और ऐश्वर्य की कामना करने वाले वीर पुरुषो द्वारा (गभस्त्योः) उनकी बाहुओ के (अव्यये वारे) अक्षीण और रक्षा करने वाले शत्रुवारक सैन्य के आश्रय पर (मृज्यमानः) अभिषिक्त हो और (शुम्भमानः) सुशोभित होकर (पवते) विराजता है ।

स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।
पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (दाशुषे) आत्मसमर्पक जन के लोभ के लिये (दिव्यानि पार्थिवा आन्तरिक्ष्या) आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोको मे उत्पन्न (विश्वा वसु पवताम्) समस्त धनों और बसने योग्य साधनो को स्वच्छ करे, प्राप्त करे और सुखदायी बनावे ।

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि ।
वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! हे (शवसः पते) बल के स्वामिन् ! तू (अश्वयुः गव्ययुः वीरयुः) अश्वो, गौवो और वीरों का स्वामी होकर

(दिवः पृष्ठम् आ रोहसि) भूमि के पालक के पद पर आकाश में सूर्यवत् उदय होता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[३७]

रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४—६ निचृद गायत्री ॥

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (वृषा) समस्त सुखों का वर्षक (सोमः) सकल जगत् का उत्पादक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (पवित्रे) पवित्र हृदय में (अर्षति) प्रकट होता है । वह (देवयुः) उपासकों का स्वामी (रक्षांसि) सब विघ्नों और दुष्टों का (विघ्नन्) विनाश करने हारा होता है ।

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (विचक्षणः) विशेष रूप से देखने वाला, (हरिः) सर्वदुःखहारी, (योनिम् अभि कनिक्रदत्) विश्वरूप गृह को व्यापता हुआ (धर्णसिः) धारण करने वाला (पवित्रे अर्षति) पवित्र हृदय में भी प्रकाशित होता है ।

स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजी) सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का स्वामी, (दिवः रोचना) समस्त तेजोयुक्त सूर्यों को प्रकाशित करने वाला (पवमानः) सर्वव्यापक होकर (रक्षोहा) सब विघ्नों का नाश करने हारा (अव्ययम् वारम् वि धावति) अकान्तिमान, वा वरण करने योग्य जीव को भी विशेष रूप से पवित्र करता है ।

स त्रितस्याधि सानवि पर्वमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥

भा०—(सः पवमानः) वह सर्वव्यापक (जामिभिः सह) उत्पन्न होने वाले बन्धुवत् जीवों के सहित, (त्रितस्य सानवि सूर्यम् अधि) तीनों लोकों के भी ऊपर के देश में स्थित सूर्य को भी अतिक्रमण करके स्वयं (अधि अरोचयत्) उससे भी अधिक प्रकाशमान है ।

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

भा०—(सः वृत्रहा) वह सब विघ्नों का नाशक, (वृषा) सब सुखों की वृष्टि करने वाला, सब से अधिक बलवान्, स्वयं (सुतः) सब से उपासित होकर (अदाभ्यः) अविनाशी, (वरिवोविद्) सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाला, (सोमः) सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक प्रभु (वाजम् इव असरत्) ज्ञान के समान बल, वेग का सञ्चार करता है ।

स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥ २७ ॥

भा०—(सः) वह (देवः) सब को देने वाला, (कविना इषितः) स्थूल आवरणों को भेद कर गहराई में ज्ञान के द्वारा देखने वाले भक्त से चाहा जाकर (द्रोणानि अभि) पात्रों के समान सत्पात्रों को ही (अभि धावति) प्राप्त होता है । वह (इन्दुः) रस-सागर (इन्द्राय) इस जीव के लिये (मंहना) महान् है । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३८]

रहूगण ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६ निचृद् गायत्री । ३ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षड़ृच सूक्तम् ॥

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति ।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भा०—(एषः उ स्यः वृषाः) यह भी बलवान्, सुख-रसवर्षी मेघवत् धर्ममेघ होकर (रथः) रमणीय एवं रसस्वरूप होकर (अव्यः) अव्यय रूप से (वारेभिः) वरण करने योग्य रूपो से (अर्षति = वर्षति) परमानन्दों की वर्षा करता है और (सहस्रिणं वाजं गच्छन्) सहस्रों ज्ञानों, बलों, ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है।

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये॥ २॥

भा०—(त्रितस्य योषणः) तीनो तापों से पार गये हुए इस साधक की (योषणः) योगज, स्नेहमयी भावनाएं (एतं हरिम्) उस भवभय-दुःखहारी (इन्दुम्) परमैश्वर्ययुक्त, स्नेह रस से भरे प्रभु को (इन्द्राय पीतये) इस तत्वदर्शी आत्मा के रक्षणार्थ पान अर्थात् पिपासा की तृप्ति के लिये (अद्रिभिः) मेघवत् ज्ञान-सुखप्रद उपायो से (हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं।

एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
याभिर्मदाय शुम्भते॥ ३॥

भा०—(एतं त्यं) उस प्रसिद्ध परमेश्वर को (दश हरितः) आत्मा को दश प्राणों के समान और राजा को दश पारिषद्यों के समान ये दशों दिशाएं (अपस्युवः) कर्म प्रेरणा चाहती हुई (मर्मृज्यन्ते) अलंकृत करती हैं। (याभिः) जिन्हों से वह (मदाय शुम्भते) आनन्द-प्राप्ति के लिये वाणियों द्वारा शोभित किया जाता है।

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति।
गच्छञ्जारो न योषितम्॥ ४॥

भा०—(योषितं गच्छन् जारः न) स्त्री के पास जाते हुए उसके यौवन व्यतीत करने वाले प्रिय पुरुष के समान और (विक्षु मानुषीषु) मनुष्य प्रजाओं में (श्येनः न) उत्तम आचारवान् पुरुष के समान (एष

स्यः) वह प्रभु भी (श्येनः) शुद्ध, उत्तम ज्ञानी, (योषितं गच्छन् जारः) प्रकृति में व्यापक उसकी समावस्था को जीर्ण करने वाला प्रभु (विक्षु) प्रवेश योग्य समस्त विकृत लोकों मे (सीदति) विराजता है।

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो (इन्दुः) इस समस्त संसार मे रसवत् व्यापक होकर (वारम्) आवरण करने वाले प्राकृत जगत् के भीतर (आविशत्) प्रवेश किये है। (एषः स्यः) वह यह प्रभु (मद्यः) आनन्दमय, (रसः) रस स्वरूप होकर (दिवः शिशुः) सब सूर्यादि मे व्यापक होकर (अव चष्टे) सब को देखता है।

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(एषः स्यः) वह प्रभु (पीतये सुतः) पालन या रक्षा के निमित्त उपासित (हरिः) पापहारी (धर्णसिः) जगत् का धारक (प्रियम् योनिम् अभि) प्रिय स्थान, विश्व मे (क्रन्दन् अर्षति) व्याप्त होकर प्राप्त है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[३६]

बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृद् गायत्री । २, ३, ५ गायत्री ॥ षड्‌ृचं सूक्तम् ॥

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥

भा०—हे (बृहन्मते) महान् ज्ञान वाले ! महामते ! (प्रियेण धाम्ना) अति प्रिय मनोहर तेज से तू (आशुः) शीघ्रगामी होकर (यत्र

देवाः) जहां विद्वान् ज्ञानी जन (इति ब्रवन्) इस प्रकार सत्य २ उपदेश करते हैं वहां ही (परि अर्ष) तू भी जा पहुंच ।

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (अनिष्कृतं) अस्वच्छ अन्तःकरण को (परिष्कृण्वन्) खूब परिष्कृत, शुद्ध और गुणों से अलंकृत करके, (जनाय) जीव या जन्म लेने वाले प्राणि वर्ग के हितार्थ (इषः) उत्तम इच्छाओं और आज्ञाओं को (यातयन्) दूसरे के प्रति प्रेरित करता हुआ, (दिवः वृष्टिम्) आकाश से शीतल वृष्टि के समान (परि स्रवः) सुख, प्रेम की वर्षा कर ।

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥

भा०—(ओजसा) बल पराक्रम से (त्विषि आ दधानः) कान्ति को धारण करता हुआ, (विचक्षाणः) विविध ज्ञानों का साक्षात् करता हुआ, (सुतः) स्वच्छ, परिष्कृत होकर (विरोचयन्) विशेष दीप्ति से चमकता हुआ, (पवित्रे) परम पवित्र धाम को (एति) प्राप्त होता है ।

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सः) यह वह परम तत्व है (यः) जो (दिवः परि) सूर्य से ऊपर वा समस्त कामनाओं से ऊपर (रघुयामा) लघु, प्रशस्त यम-नियमों का विधाता (सिन्धोः ऊर्मा) समुद्र की तरंग के समान (पवित्रे) परम पावन प्रभु में (वि अक्षरत्) विश रूप से वह रहा है और निरन्तर उसी में मग्न होता जा रहा है ।

आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

भा०—यह (सुतः) उपासित होकर (परावतः अथो अर्वावतः) दूर और पास सब स्थानों से (आविवासन्) प्रकट होता हुआ (इन्द्राय) जीव के लिये (मधु सिच्यते) मधु के समान उसके हृदय में सिक्त हो।

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—(समीचीनाः) सम भाव को प्राप्त, सर्वत्र समबुद्धि, समदर्शी पुरुष ही (हरिः) उस चित्तहारी भवभय-नाशन प्रभु की (अनूपत) स्तुति करते हैं और वे ही (अद्रिभिः हरिं हिन्वन्ति) शिला खण्डों से ओषधि रस के सूक्ष्म गुण के समान (अद्रिभिः) विद्वानों द्वारा (हिन्वन्ति) उसको बढ़ाते हैं। आप लोग ही (ऋतस्य योनिम् आ सीदत) सत्य, न्याय के भवन में विचारार्थ बैठे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४०]

बृहन्मतिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—६ निचृद् गायत्री ॥ षडृच सूक्तम् ॥

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

भा०—(विचर्षणिः) ज्ञानी, लोकों का द्रष्टा (पुनानः) पवित्र करता हुआ वह (विश्वाः मृधः) सब हिंसाकारी, बाधक वृत्तियों का (अभि अक्रमीत्) आगे बढ़कर मुकाबला, साम्मुख्य करता है उसी (विप्रं) कर्मनिष्ठ विद्वान् ज्ञानी पुरुष को (धीतिभिः शुम्भन्ति) उत्तम स्तुतियों और कर्मों द्वारा सुशोभित करते हैं।

आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः।
ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥

भा०—(अरुणः) तेजोमय, अप्रतिहत सामर्थ्य वाला (वृषा) बलवान्, सुखवर्षी, (सुतः) अति पवित्र, अभिषिक्तवत् स्वच्छ जीव (योनिम्

आश्रय रूप (इन्द्रम् आ रुहत्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त हो
उस तक चढ़ जावे और (सदसि) राजसभा में सभापति के समान उ
(ध्रुवे) ध्रुव, निष्प्रकम्प, (सदसि) शरण योग्य परमेश्वर में (सीदति
स्थिति प्राप्त करे ।

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) रसस्वरूप ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (नू
शीघ्र ही तू (विश्वतः) सब ओर से (महान्) बड़े भारी (सहस्रिणं
हज़ारों के स्वामी (रयिम्) सुखप्रद, दानशील, ऐश्वर्यवान् को (न. अ
पवस्व) ऐश्वर्यवत् हमें प्राप्त करा ।

विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर ।
विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान सोम) व्यापक सर्वशक्तिमन् ! तू (विश्वा
द्युम्नानि) समस्त ऐश्वर्य, बल (नः आ भर) हमें प्राप्त करा और (सह-
स्रिणीः इषः विदाः) सहस्रों संख्या से युक्त इच्छाओं को वा अन्नों को
प्राप्त करा ।

स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् ।
जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह तू (पुनानः) हमें प्राप्त होता हुआ (न रयिं
आ भर) हमें ऐश्वर्य प्राप्त करा और (स्तोत्रे सुवीर्यम् आ भर) विद्वान्
स्तुतिकर्त्ता को उत्तम बल दे । (जरितुः गिरः वर्धय) स्तुति कर्त्ता की
वाणियों को बढ़ा और अधिक बलवान् कर ।

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥ ६ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन ! हे (सोम) जगत्-सञ्चालक ! वा

स्नेहवन् ! तू (नः) हमें (द्वि-बर्हसम्) दोनों लोकों में बढ़ने वाला (रयिम्) ऐश्वर्य प्रदान कर । हे (वृषन्) बलवन् ! सुखवर्षिन् ! तू (नः) हमारे (उक्थ्यम्) उत्तम वचन योग्य ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा । इति त्रिंशो वर्गः ॥

[४१]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३, ४, ५ गायत्री । २ ककुम्मती गायत्री । ६ निचृद् गायत्री ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (गावः) देह में इन्द्रिय, सूर्य में किरणों के समान (भूर्णयः) क्षिप्रगामी, जनों को पालनेवाले, (त्वेषाः) कान्तिमान्, तीक्ष्ण और (कृष्णाम् त्वचम् अप घ्नन्तः) काली त्वचा के समान आवरण रूप घोर अज्ञान-अन्धकार को दूर करते हुए (अयासः) गमनशील, परिव्राजक वा (अयासः) अनथक होकर (प्र अक्रमुः) आगे बढ़ें वा कार्य आरम्भ करें ।

सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् ।
साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

भा०—हम (अव्रतम् दस्युम्) कर्म, दीक्षा, नियमादि से रहित दुष्ट जन को (साह्वांसः) पराजित करते हुए (सुवितस्य) उत्तम सुखजनक कार्य के (सेतुम्) सेतुवत् पार उतारने वाले (दुराव्यम्) दुष्प्राप्य, उस रक्षक की (अति मनामहे) हम अति पूजा करते हैं । अथवा— (सुवितस्य सेतुम्) शुभ फल के प्रतिबन्धक, (दुराव्यम्) दुःखदायी, (अव्रतम् दस्युम् साह्वांसः) कर्महीन दुष्ट जन को पराजित करते हुए हम (अति मनामहे) उस को खूब स्तम्भन करें. या उस भगवान् की पूजा करें ।

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(दिवि विद्युतः चरन्ति) आकाश मे बिजुलियां चलती है और उस समय (वृष्टेः इवः स्वनः) वृष्टि के शब्द के समान (पवमानस्य शुष्मिणः) बलवान् पापशोधक उसका (स्वनः) शब्द (शृण्वे) सुन पड़ता है । साधक के (दिवि) मूर्धा स्थल में विद्युत की सी कान्ति व्यापती हैं, अनाहत पटह के समान गर्जन अनायास सुनता है । वह स्वः पवित्र आत्मा का ही शब्द होता है ।

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयाशील ! तू (सुतः) उपासि और अभिषिक्त होकर, (गोमत् अश्ववत् हिरण्यवत् महीम् इषं) गौ, अश्व सुवर्ण से युक्त बड़े भारी अन्न और भूमि (आ पवस्व) प्रदान कर ।

स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

भा०—(उषाः रश्मिभिः सूर्यः न) दिन को रश्मियों से सूर्य के समान तू (मही रोदसी) बड़े आकाश और भूमि दोनो को (आ पृण) पूर्ण कर, पालन कर। और हे (विचर्षणे) विश्व के द्रष्टः ! तू (सः आ पवस्व) वह हमें प्राप्त हो ।

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥

भा०—(रसा इव विष्टपम्) मेघ जिस प्रकार इस लोक को जल में व्यापता है उसी प्रकार हे (सोम) शुभ ऐश्वर्यदातः ! तू (नः) ह (शर्मयन्त्या धारया) सुख देने वाली वाणी और पोषण सम्पदा (विश्वतः) सब प्रकार से (सर) प्राप्त हो । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[४२]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृद् गायत्री । ३, ४, ६ गायत्री । ५ ककुम्मती गायत्री ॥ षडृच सूक्तम् ॥

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् ।
वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥

भा०—(हरिः) सर्वसञ्चालक प्रभु (दिवः रोचना जनयन्) आकाश के समान तेजोयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करता है । वह (सूर्यम्) सूर्य को (अप्सु) अन्तरिक्ष में (जनयन्) उत्पन्न करता है । वह (हरिः) सर्वदुःखहारी प्रभु (गाः अपः वसानः) सब भूमियों को जल से आच्छादित करता है । वही सर्वत्र सब सुख प्रदान करता है ।

एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
धारया पवते सुतः ॥ २ ॥

भा०—(एषः सुतः) वह समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला प्रभु (देवः) सब सुखों का दाता (प्रत्नेन) अनादि सिद्ध (मन्मना) ज्ञानमय वेद से (देवेभ्यः) सब ज्ञान के इच्छुक मनुष्यों के लिये (धारया परि पवते) वेदवाणी वा धारण-पोषणकारिणी शक्ति से ज्ञान प्रदान और पोषण करता है ।

वावृधानाय तूर्वये पवन्त वाजसातये ।
सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३ ॥

भा०—(सहस्र-पाजसः) सहस्रों बलों वाले (सोमाः) ऐश्वर्यवान् राजा गण (वाज-सातये) ऐश्वर्य, संग्राम करने के लिये और (वावृधानाय तूर्वये) बढ़ते और हिंसाकारी वेगवान् संग्राम के लिये (पवन्ते) जाते हैं ।

दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते ।
क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥

भा०—(प्रत्नम् पयः) सर्वश्रेष्ठ, पूर्व का बल वीर्य (दुहानः) पूर्ण करता हुआ (पवित्रे परि पिच्यते) राष्ट्र शोधन के कार्य मे अभिपिक्त होता है। उसी प्रकार यह साधक भी 'प्रत्न' सनातन परम रस को पवित्र परब्रह्म में प्राप्त करता हुआ, वा अन्यो को प्रदान करता हुआ परिष्कृत होता है। वह (क्रन्दन्) स्तुति वा उपदेश करता हुआ (देवान् अजीजनत्) शुभ गुणो वा शिष्यो को उत्पन्न करता है।

अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः।
सोमः पुनानो अर्पति ॥ ५ ॥

भा०—(ऋतावृधः) सत्य ज्ञान से बढ़ने वाले (देवान्) ज्ञानाभिलाषी जनो के प्रति और (विश्वानि वार्या अभि) समस्त वरण करने योग्य पदो के प्रति (पुनानः सोमः) आदरपूर्वक पदाभिपिक्त होता हुआ विद्वान् पुरुप (अभि अर्पति) प्राप्त होता है।

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः।
पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (नः बृहती. इषः) बहुत अन्न, और सुख, वृष्टियां, उत्तम २ अभिलापाएं (पवस्व) हमे प्रदान कर और (नः) हमें (गोमत् वीरवत् अश्ववत् वाजवत्) गौओ, वीरो, अश्वो, बलो, ऐश्वर्यों से युक्त राष्ट्र (सुतः) स्वयं अभिपिक्त होकर प्राप्त करा। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[४३]

मेध्यातिथिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री। ३, ६ निचृद् गायत्री ॥

यो अत्यं इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः।
तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥

भा०—(अत्यः इव गोभिः) जिस प्रकार अश्व उत्तम २ गतियों से सुशोभित होता है उसी प्रकार (यः) जो प्रभु (मदाय) अति आनन्द सुख के लिये (हर्यतः) कान्तिमान् होकर (गोभिः) वाणियों द्वारा (मृज्यते) परिष्कृत होता है (तं) उस को हम (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (वासयामसि) अलकृत करें, उसे अपने हृदय में बसावें ।

तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र एवं आत्मा के पालन के लिये वा बड़े ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (नः) हमारी (अवस्युवः) रक्षार्थी वा प्रीतियुक्त (गिरः) स्तुतियें (तं) उस (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त, स्नेहार्द्र को (पूर्वथा) पूर्ववत् (शुम्भन्ति) सुशोभित करती है !

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।
विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥

भा०—(मेध्यातिथेः) यज्ञ मे अतिथिवत् पूज्य (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष की (गीर्भिः) वाणियो द्वारा (परिष्कृतः) सुशोभित (हर्यतः) कान्तियुक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुनानः याति) हमे पवित्र करता हुआ प्राप्त हो ।

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।
इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान) पावन ! (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमे (सुश्रियं रयिम् विद) उत्तम कान्तियुक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (सोम) सर्वप्रेरक ! तू (सहस्र-वर्चसम् रयिम् विद) सहस्रो तेजो वाले ऐश्वर्य हमे दे ।

इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ ।
यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥

भा०—(वाजसृत् अत्यः) संग्राम में जाने वाले अश्व के समान तू (देवयुः) विद्वानों को चाहने वाला, (यत्) जब तू (पवित्रे) पवित्र पद पर (इन्दुः) अति आह्लादजनक होकर (कनिक्रन्ति) शासन करता है तब (अति अक्षाः) सब से बढ़ जाता है ।

पर्वस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।
सोम रास्वं सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ ३३ ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—हे सोम ऐश्वर्यवन् ! तू (गृणतः विप्रस्य) स्तुति करने वाले विद्वान् जन को (वाज-सातये) ऐश्वर्य देने और उसकी (वृधे) वृद्धि के लिये (पवस्व) प्राप्त हो उस पर सुखों की वर्षा कर और (सु-वीर्यम् रास्व) उत्तम बल दे । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः । इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः ।

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालङ्कारपदवीविभूषित-श्रीमत्पण्डितजयदेव-शर्मणा कृते ऋग्वेदालोकभाष्ये षष्ठोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

सप्तमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(नवमे मण्डले द्वितीयेऽनुवाके)

[४४]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २—६ गायत्री ॥ षडृच सूक्तम् ॥

प्र ण॑ इन्दो म॒हे तन॑ ऊ॒र्मिं न बिभ्र॑दर्षसि ।
अ॒भि दे॒वाँ अ॒यास्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अयास्यः) मुख्य प्राण रूप होकर (महे तने) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ऊर्मि न) तरंग के समान उत्साह को धारण करता हुआ, (नः देवान् अभि अर्षसि) तुझे चाहने वाले हमें तू प्राप्त हो ।

म॒ती जु॒ष्टो धि॒या हि॒तः सोमो॑ हिन्वे परा॒वति॑ ।
विप्र॑स्य॒ धार॑या क॒विः ॥ २ ॥

भा०—वह (मती जुष्टः) उत्तम बुद्धि और वाणी द्वारा प्रेम से सेवित और (धिया हितः) कर्म से धारित, (कविः सोमः) क्रान्तदर्शी ऐश्वर्यवान्, सब का उत्पादक और शासक (परावति) दूर रह कर भी (विप्रस्य धारया) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष की वाणी द्वारा (हिन्वे) स्तुति किया जाता है ।

अ॒यं दे॒वेषु॒ जागृ॑विः सु॒त ए॑ति प॒वित्र॒ आ ।
सोमो॑ याति॒ विच॑र्षणिः ॥ ३ ॥

भा०—(अयं) यह (देवेषु) विद्वानों में (जागृविः) सदा जागरणशील, मुख्य इन्द्रियों में मुख्य प्राण के समान (जागृविः) कभी भी आलस्ययुक्त न होकर (पवित्रे आ एति) पवित्र हृदय में प्रकट होता है, वह (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा (सोमः) शास्ता होकर (याति) सर्वत्र जाता है।

स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम्।
बर्हिष्माँ आ विवासति ॥ ४ ॥

भा०—जो तू (वाजयुः) ऐश्वर्य और बल की कामना करता हुआ वा बल-ऐश्वर्य का स्वामी होकर (चारुम् अध्वरं चक्राणः) उत्तम यज्ञ को करता हुआ (बर्हिष्मान्) इस लोक का स्वामी होकर (आ विवासति) सर्वत्र रहता और कार्य कर रहा है (सः) वह तू (नः पवस्व) हमें प्राप्त हो, हमें सुख दे।

स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः।
सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥

भा०—(सः) वह (विप्र-वीरः) विद्वान् मेधावी जनों के बीच वीर्यवान्, उनको भी उत्तम मार्ग में चलाने हारा (सोमः) शासक जन (देवेषु) प्राणों या इन्द्रियों में मुख्य प्राण वा आत्मा के तुल्य (सदावृधः) सदा बढ़ाने वाला होकर (नः) हमें (वायवे) वायुवत् बल और (भगाय) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ यमत्) नियम व्यवस्था में बांधे।

स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद् गातुवित्तमः।
वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह तू (क्रतुवित्) कर्म और ज्ञान को प्राप्त करने वाला और स्वयं (गातुवित्-तमः) वाणी, ज्ञान का सब से उत्तम ज्ञाता और मार्ग का उत्तम उपदेष्टा (नः अद्य) हमें आज (बृहत् श्रव वाज)

बड़ा भारी श्रवणीय ज्ञान, प्रसिद्धि, भोग्य धन (जेषि) प्राप्त करा प्रदान कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

[४५]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३—५ गायत्री । २ विराड् गायत्री । ६ निचृद् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये ।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे तेजस्विन्! (सः) वह तू (नृचक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा है। तू (देव-वीतये) 'देव' दानशील, विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करने के लिये और (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और (मदाय) हर्ष-आनन्द प्राप्त करने के लिये, (कं पवस्व) प्रजा पर सुख की वृष्टि कर।

स नो अर्षाभि दूत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे ।
देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (दूत्यं) दूत भाव अर्थात् ज्ञान-संदेश लाने वाले के कार्य को (अभि अर्ष) कर। (त्वम् नः) तू हम (सखिभ्यः) मित्रों के लाभार्थ और (इन्द्राय तोशसे) दुःख-नाशक ऐश्वर्य के प्राप्त कराने के लिये हमें (देवान्) विद्वान् दानशील पुरुषों तक (वरं तोशसे) उत्तम रीति से पहुंचा।

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और (वयं) हम (त्वाम् अरुणं) तुझ तेजस्वी को

(कम् मदाय) हर्ष के लिये (गोभिः अञ्जमः) वाणियों द्वारा प्रकाशित करते हैं। तू (नः) हमारे (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के (दुरः) नाना द्वार (वि वृधि) खोल।

अत्यूं पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि।
इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥

भा०—(इन्दुः) वह ऐश्वर्यवान् (देवेषु) इन्द्रियों में आत्मा के समान समस्त विद्वानों में स्वामीवत् रहता है। वह (वाजी) बलवान्, (यामनि) मार्ग चलने में (धुरम्) धुरा में अश्व के समान (पवित्रम्) पवित्र परमात्मा की ओर (अति अक्रमीत्) सब संकटों को लांघ कर पहुंच जाता है।

समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम्।
इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥

भा०—(वने क्रीडन्तम्) सेवने योग्य प्राकृत जगत् में (क्रीडन्तं) अनायास जगत् का सञ्चालन करते हुए (इन्दुम्) उस ऐश्वर्यवान् को (सखायः) मित्र जन (नावा) वाणी द्वारा (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति गावें और उस (अति अविम्) परम रक्षक, सूर्य और पृथिवी से भी ऊपर, उनसे भी अधिक सर्व-रक्षक को वाणी द्वारा (अनूषत) स्तुति करें।

तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे।
इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) दयालो! (यया पीतः) तू जिससे प्रसन्न होकर (विचक्षसे स्तोत्रे) ज्ञानवान् स्तुतिकर्त्ता को (सुवीर्यं) उत्तम बल प्रदान करता है तू (तया धारया) उस धारा, वाणी से (पवस्व) हमें भी उत्तम ज्ञान-बल प्रदान कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४६]

अयास्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता । छन्दः—१ ककुम्मती गायत्री । २, ४, ६ निचृद् गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ षड्ृच सूक्तम् ॥

असृ॑ग्रन्दे॒ववी॑तये॒ऽत्यासः॒ कृत्व्या॑ इव । क्षर॑न्तः पर्वता॒वृधः॑ ॥१॥

भा०—वे (कृत्व्याः इव अत्यासः) कर्म कुशल, सधे सधाये अश्वो के समान (क्षरन्तः पर्वताः) झरते हुए बरसते हुए मेघों, वा झरते हुए, सोतों से जल प्रदान करते हुए, भूमियो को सेचते, पोषते हुए पर्वतो के समान (वृधः) प्रजाओ की वृद्धि करने वाले जन (देव-वीतये) विद्वान् प्रजा जनो की रक्षार्थ (असृग्रन्) तैयार किये जावे ।

परि॑ष्कृतास॒ इन्द॑वो॒ योषे॑व॒ पित्र्या॑वती । वा॒युं सोमा॑ असृक्षत ॥२॥

भा०—(पित्र्यावती योषा इव) पालक पिता वाली कन्या जिस प्रकार (सोमा) ब्रह्मचारिणी वीर्यवता होकर (वायुम्) बलवान् वर को (परिष्कृता असृक्षत) अलंकृत होकर जाती है उसी प्रकार (इन्दवः) निष्णात शुद्ध (सोमाः) ब्रह्मचारी गण (परिष्कृतासः) अलंकृत, नव वस्त्र, क्षौर आदि से पवित्र होकर (वायुम् असृक्षत) ज्ञानी गुरु वा बलवान् सेनापति को प्राप्त होते है। (२) इसी प्रकार ज्ञानादिसम्पन्न जीव गण (वायुम्) जीवनो के जीवन, उस प्रभु को प्राप्त होते है ।

ए॒ते सोमा॑स॒ इन्द॑वः॒ प्रय॑स्वन्तश्च॒मू सु॒ताः ।
इन्द्रं॑ वर्धन्ति॒ कर्म॑भिः ॥ ३ ॥

भा०—(एते) ये (सोमासः) बल वीर्य से युक्त, (इन्दवः) तेजस्वी, निष्णात (सुताः) अभिषिक्त, (प्रयस्वन्तः) विशेष यत्नशील जन, (चमू) सेना मे नियुक्त होकर (कर्मभिः) अपने २ कर्मों से (इन्द्रं वर्धन्ति) शत्रुहन्ता सेनापति को बढाते है ।

आ धा॑वता सुहस्त्यः शु॒क्रा गृ॑भ्णीत म॒न्थिना॑ ।
गोभि॑: श्रीणीत मत्स॒रम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुहस्त्यः) उत्तम हस्तवान् , सिद्धहस्त, कुशल पण्डित जनो ! हे उत्तम हनन साधनो से सम्पन्न वीरो ! आप लोग (आ धावत) आगे बढ़ो । अपने को पवित्र करो और (मन्थिना) शत्रुओं वा विघ्नों का मथन कर देने वाले गुरु वा सेनापति के साथ मिल कर (शुक्रा गृभ्णीत) बलों, वीर्यों और शुद्धाचारों, ज्ञानों तथा ऐश्वर्यों को ग्रहण करो । और (गोभिः मत्सरम् श्रीणीत) गोरस, दुग्ध से तृप्तिकारक अन्न मिला कर सेवन करो, वाणियों द्वारा आनन्दकंद भगवान् की स्तुति करो । (गोभिः) भूमियों द्वारा (मत्सरं) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करो ।

स प॑वस्व धनञ्जय प्रय॒न्ता राध॑सो म॒हः ।
अ॒स्मभ्यं॑ सोम गातु॒वित् ॥ ५ ॥

भा०—हे (धनञ्जय) ऐश्वर्य का विजय करने वाले ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (अस्मभ्यम्) हमें (महः राधसः प्रयन्ता) बड़े भारी धन का दाता और (गातुवित्) भूमि, ज्ञानोपदेश और मार्ग का बतलाने वाला होकर (पवस्व) हम पर कृपा कर ।

ए॒तं मृ॑जन्ति॒ मर्ज्यं॒ पव॑मानं॒ दश॒ क्षिप॑: ।
इन्द्रा॑य मत्स॒रं मद॑म् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों शत्रुओं को उखाड़ देने वाली सेनाएं विवेकशील अज्ञान-निवर्त्तक दश अमात्य-प्रकृतिएं (एतं) इस (मर्ज्यं) अभिषेक योग्य (पवमानं) राज्य के कण्टकों के शोधन करने वाले (मद) आनन्दकारक, (मत्सरं) प्रजा को प्रसन्न करने वाले, (एतं) इस पुरुष को (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त पद के लिये (मृजन्ति) परिष्कृत वा अभिषिक्त करती हैं । इति तृतीयो वर्गः ॥

[४७]

कविर्भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥१॥

भा०—(अया सुकृत्यया) इस शुभ कर्म प्रणाली वा प्रजा से (सोमः) वह विद्वान् प्रशास्ता पुरुष, (महः चित्) बहुत अधिक (अभि अवर्धत) बढ जाता है । और (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, अन्यो को भी प्रसन्न करता हुआ (उत् वृषायते) उत्तम पद पर होकर अधिक बलशाली हो जाता है । (२) उसी प्रकार (सु-कृत्यया सोमः) उत्तम कर्मकुशल गृहणी के साथ मिल कर नवयुवक भी बहुत उत्तम प्रजा से बढ़ता है और हर्षित होकर उसका प्रिय हो जाता है ।

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥२॥

भा०—(अस्य) इसके (दस्यु-तर्हणा) दुष्टों के नाश करने वाले, (कर्त्वा) करने योग्य कर्त्तव्य और (कृतानि इत्) किये कार्य भी (चेतन्ते) सब को विदित हो जाते हैं और वह (धृष्णुः) शत्रुधर्षक वीर पुरुष (ऋणा च चयते) धनो का भी संग्रह कर लेता है ।

आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् ।
उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

भा०—(यत् अस्य) जब उसका (उक्थं जायते) वचन होता है (आत्) अनन्तर ही (अस्य) उसका (सोमः) सर्वशासक (इन्द्रियः) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य पद के योग्य (रसः) बल और (वज्रः) वीर्य (सहस्रसाः) सहस्रों का देने वा प्राप्त करने वाला (भुवत्) प्रकट होता है ।

स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति ।
यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

भा०—(यदी) जब वह (धियः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों द्वारा (मर्मृज्यते) निरन्तर शुद्ध, अलंकृत, परिष्कृत स्वच्छ हो जाता है, तब वह (स्वयं) अपने आप (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, बुद्धिमान् होकर (वि-धर्त्तरि) विशेष धारण करने वाले पद पर विराजकर (विप्राय) विद्वान् गुरु जन के लिये (रत्नम् इच्छति) उत्तम धन देना चाहता है।

सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥४॥४॥

भा०—(भरेषु) भरण पोषण करने योग्य, अधीन भृत्यों मे से (जिग्युषाम्) विजयशील (वाजेषु) संग्रामों मे (अर्वताम् इव) घोडो के लिये घास के समान जान लड़ा देने वालो के निमित्त तू (रयीणाम् सिषासतुः असि) ऐश्वर्यों, धनों, वेतनो का देने वाला है। इति चतुर्थो वर्गः॥

[४८]

कविर्भार्गव ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ५ गायत्री। २—४ निचृद् गायत्री॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

भा०—(तं) उस (त्वा) तुझ को (महः दिवः सधस्थेषु) बड़े भारी नाना स्थानो मे सूर्य के समान विशाल (दिवः) तेजस्वी, मूर्धन्य राजसभा के (सधस्थेषु) एकत्र स्थिति योग्य अधिवेशनो मे (नृम्णानि) धनों वा नेता जनों से मनन करने योग्य कार्यों को (बिभ्रत) धारण करने वाले (चारुम् त्वा) कल्याणकारी तुझ को हम (सुकृत्यया) उत्तम कृत्यों द्वारा (नृम्णानि ईमहे) नाना धनो का याचना, प्रार्थना करते है।

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥

भा०—(संवृक्त-धृष्णुम्) धर्षण करने वाले शत्रुओं के मूलोच्छेदक, (उक्थ्यं) स्तुतियोग्य, (महामहिव्रतं) बडे२ कर्म करने वाले, (मदम्)

आनन्दप्रद, (शतं पुरः) सैकडो गढियों पर (रुरुक्षिणं) चढने वाले तुझ से हम नाना ऐश्वर्य प्राप्त करें। (२) अध्यात्म—यह आत्मा क्रोधादि का नाशक, बड़ा व्रतपालक, सौ हृदय नाडियों में आरुढ, उनका वशयिता है, उसकी उपासना करें।

अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः।
सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ ३ ॥

भा०—(अतः) इसलिये हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावन् ! (रयिम्) ऐश्वर्य रूप, (राजानम्) कान्तिमय (त्वा) तुझ को प्राप्त कर (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (अव्यथिः) विना पीड़ा के, आनन्द मग्न होकर (त्वा दिवः भरत्) तुझ से नाना ज्ञान, उत्तम कामनाएं प्राप्त करता है।

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वस्मै इत् स्वर्दृशे) सब प्रकार के सुखप्रद ज्ञानों का दर्शन करने के लिये, (साधारणं) सब के प्रति समान, (रजस्तुरम्) रजोभाव के नाशक, वा समस्त लोको के सञ्चालक, (ऋतस्य गोपाम्) सत्य ज्ञान के रक्षक रूप तुझ को प्राप्त होकर (विः) ज्ञानी पुरुष (ऋतस्य भरत्) सत्य ज्ञान को धारण करता है। वा तुझ को ही अपने में धारण करता है।

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—(अध) और वह (विचर्षणिः) विश्व का द्रष्टा, (अभिष्टि-कृद्) सब का अभीष्ट करने वाला, (इन्द्रियं हिन्वानः) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ, (ज्यायः महत्वम्) बडे भारी महान् सामर्थ्य को (आनशे) प्राप्त है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[४६]

कविर्भार्गव ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृद् गायत्री । २, ३ गायत्री ॥ पञ्चर्च सूक्तम् ॥

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (नः) हमारे लिये ((दिवः) आकाश से (अपाम् ऊर्मिम्) जलों की तरङ्ग के समान (वृष्टि सु आ परि पवस्व) सुखों की वृष्टि अच्छी प्रकार प्रदान कर । और हमें (बृहतीः) बहुत (अयक्ष्माः) रोगरहित (इषः) अन्न सम्पदाएं और (अयक्ष्माः इषः) कष्ट पीड़ा आदि से रहित कामनाएं (आ पवस्व) प्रदान कर ।

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो ! स्वामिन् ! (यया) जिस (धारया) धारा से (जन्यासः गावः) सब मनुष्यों की हितकारिणी गौओं के समान सुखप्रद वाणियां (इह) इस लोक में (नः गृहम् उप अगमन्) हमारे घर में आती हैं (तया धारया नः पवस्व) हमें उसी धारा या वाणी से पवित्र कर, वा हमें सुख प्रदान कर ।

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (देव-वीतमः) किरणों से प्रकाशित सूर्य के समान अति कान्तियुक्त होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (धारया) धारा से (घृतं पवस्व) घृत प्रदान कर और (अस्मभ्यं वृष्टिम् आ पव) हमारे लिये उत्तम वृष्टि करा । इसी प्रकार तू (यज्ञेषु) सत्संगों में (धारया) वाणी से (घृतं पवस्व) तेजोवत् ज्ञान प्रकाश दे । और हम पर सुखों की वृष्टि कर ।

स नं ऊर्जे व्य१व्ययं पवित्रं धाव धारया।
देवासः शृणवन्हि कम् ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह तू (धारया ऊर्जे) अन्न की वृद्धि के लिये जल धारावत् (धारया) वाणी से (नः ऊर्जे) हमारे बल की वृद्धि के लिये (अव्ययं पवित्रं वि धाव) अक्षय, पवित्र ज्ञान प्राप्त करा। जिसे (देवासः शृणवन् हि) श्रवण किया करें।

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्।
प्रत्नवद् रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—तू (प्रत्नवत्) पुरातन प्रभु के समान (रुचः रोचयन्) कान्तियों को प्रकाशित करता हुआ (पवमानः) पवित्र होता हुआ, (असिष्यदत्) वेग से गमन करे, और (रक्षांसि अप जंघनत्) दुष्ट पुरुषों का नाश करे। इति षष्ठो वर्गः ॥

[५०]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ गायत्री।
३ निचृद् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः।
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ! (ते शुष्मासः) तेरे नाना बल, सैन्य गण (उत् इरते) उठते हैं और (सिन्धोः ऊर्मेः इव स्वनः) सागर की तरङ्ग के समान तेरा शब्द ऊपर उठे। तू (वाणस्य पविम् चोदय) वेद वाणी के पवित्र ज्ञान का उपदेश कर। तू (वाणस्य पविम् चोदय) वाण के प्रेरक डोरी को चला। वा (वाणस्य) शत्रुहिंसक दल के (पविम्) बल को (चोदय) प्रेरित कर।

प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः।
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यत्) जो तू (अव्ये) परम अव्यय, अविनाशी (सानवि) स्वरूप में वा प्रकृतिमय जगत् मे (एषि) प्राप्त होता है तब (प्रसवे) इस जगत् के उत्पन्न हो जाने पर (मखस्युवः तिस्रः वाचः) यज्ञ प्रतिपादक तीनो वाणियां साम, ऋक्, यजु रूप (उत् ईरते) प्रकट होती है। (२) इसी प्रकार 'अव्य सानु' अर्थात् पृथ्वी के रक्षा के उच्च पद पर राजा आवे तो (प्रसवे) उसके उत्तमाभिषेक काल मे यज्ञार्थ तीनों वेद वाणियों का उच्चारण हो।

अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥

भा०—(अव्यः वारे) पालक शक्ति के वरण करने योग्य सर्वोच्च पद पर विद्वान् जन (प्रियं हरिं) सर्वप्रिय, प्रजा के दुःखहारी (मधु-श्चुतम्) मधुर वचन के पालने वाले, (पवमानं) राज्य को पावन करने वाले पुरुष को (अद्रिभिः हिन्वन्ति) मेघवत् कलशो से सेचते, स्नान कराते है।

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति हर्षजनक ! हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! (अर्कस्य) सूर्यवत्, तेजस्वी और अर्चनायोग्य, पूज्य (योनिम् आसदम्) पद को प्राप्त करने के लिये (धारया) वेदवाणी के द्वारा (पवित्र आ पवस्व) अपना पवित्र करने वाला तेज, ज्ञान प्रकट कर, सब ओर बहा।

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।
इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये, हे (मदिन्तम) हर्षयुक्त ! तू (अक्तुभिः) गुणों वा ज्ञान

के प्रकाशक (गोभिः) वाणियों से (अञ्जानः) अभिप्राय को प्रकाशित करता हुआ वा रश्मियों से चमकता हुआ, (सः) वह तू (पवस्व) राष्ट्र को स्वच्छ पवित्र कर । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५१]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३—५ निचृद् गायत्री ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के नाश को न चाहने वाले विद्वन् ! तू (अद्रिभिः) शस्त्र बलों या मेघ के समान कलशों से (सुतं) अभिषिक्त (सोमं) बलवान् शासक को (पवित्रे आ सृज) पवित्र पद पर नियुक्त कर और उसे (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्य पद के उपभोग के लिये (पुनीहि) अभिषिक्त एवं पवित्र कर ।

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

भा०—(वज्रिणे इन्द्राय) समस्त शक्ति, बल, शस्त्र सैन्यादि के स्वामी, ऐश्वर्य के मालिक, सब को अन्नादि वृत्ति देने वाले, राज्य पद के लिये (दिवः पीयूषम्) आकाश की शोभा को बढ़ाने वाले अमृत तुल्य सूर्य वा चन्द्र के तुल्य अति तेजस्वी, कान्तिमान् पृथ्वी निवासी प्रजा जन की वृद्धि करने वाले (सोमम्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, (मधुमत्तमम्) अति मधुर स्वभाव से युक्त पुरुष को (सुनोत) अभिषिक्त करो ।

तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नुते ।
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! सुखों के वर्षक ! (पवमानस्य)

दानशील (मरुतः) जलवर्षी वायु के समान सुखों के वर्षणकारी, बलवान् (तव) तेरे (अन्धसः) अन्न और (मधोः) जल को (देवाः) सब मनुष्य (वि अश्नुते) विशेष रूप से प्राप्त करते और उपभोग करते हैं।

त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (वृषन्) उत्तम बलशालिन् ! उत्तम प्रबन्धक ! (त्वं हि) तू (सुतः) अभिषिक्त एवं ऐश्वर्य का स्वामी होकर (स्तोतारम्) तेरे गुणों की स्तुति करने वाले, तुझे अपना पूज्य स्वीकार करने वाले के (मदाय) सुख और (भूर्णये) पालन और (ऊतये) रक्षा के लिये उसे (वर्धयन्) बढ़ाता रह। और—

अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष विवेक से सत्यासत्य को देखने हारे ! तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) अपनी वाणी और शक्ति द्वारा (पवित्रं) न्यायासन के पवित्र पद को (उत वाजं श्रवः) ऐश्वर्य बल और प्रसिद्ध को भी (अभि अर्ष) प्राप्त हो।

[५२]

उचथ्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री। २ गायत्री। २ गायत्री। ३, ५ निचृद् गायत्री। ४ विराड् गायत्री ॥

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥

भा०—(द्युक्षः) तेजस्वी, (सनद्-रयिः) ऐश्वर्य का दान देने वाला, उदार पुरुष ही (नः) हमें (अन्धसा) अन्न के साथ २ (वाजं परि भरन्)

ऐश्वर्य और बल प्रदान करे। हे शासक! तू (पवित्रे) पवित्र पद पर (सुवानः) शासन करता हुआ, वा वहां अभिषिक्त होकर (आ अर्ष) आदरपूर्वक आ।

तव॑ प्र॒त्नेभि॒रध्व॑भि॒रव्यो॒ वारे॒ परि॑ प्रि॒यः।
स॒हस्र॑धारो या॒त्तना॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (शास्तः) राष्ट्रजन! (तव) तेरा (प्रियः) प्यारा, (अव्यः) रक्षा कुशल जन (प्रत्नेभिः अध्वभिः) सदातन से चले आये मार्गों से (वारे) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पद पर (सहस्र-धारः) सहस्रों धाराओं से वर्षने वाले मेघ के समान, वा सहस्रों वाणियों का देने वाला वा सहस्र खड्ग-धाराओं का स्वामी होकर (तना) नाना ऐश्वर्य (यात्) प्राप्त करे।

च॒रुर्न यस्तमी॑ङ्ख॒येन्दो॒ न दान॑मीङ्खय। व॒धैर्व॑धस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे जलों से आर्द्र, अभिषेचनीय, जन! (यः चरुः न) जो उपभोग्य अन्न के समान सुखदायक है तू (तम् ईङ्खय) उसे हमें दे और तू (दानं न) दानशील को भी (ईङ्खय) प्रेरित कर और हे (वधस्नो) शत्रुवध के अनन्तर स्नान करने वाले! तू (वधैः) नाना शस्त्रों वा दण्डों के बल पर (ईङ्खय) राष्ट्र को सञ्चालित कर।

नि शुष्म॑मिन्दवेषां पुरु॑हूत जना॑नाम्।
यो अ॒स्माँ आ॒दिदे॑शति ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मान् आदिदेशति) हम पर अपना अधिकार चलाता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! वह तू हे (पुरुहूत) बहुतों से स्वीकृत! तू (एषां जनानाम् शुष्मम्) इन मनुष्यों के बल को (नि ईङ्खय) अपने अधीन रख।

श॒तं न॑ इन्द ऊ॒तिभिः॑ स॒हस्रं॑ वा॒ शुची॑नाम्।
पव॑स्व मंह॒यद्र॑यिः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! दयार्द्र! जलों से अभिषिक्त! तू (मंहयद्-रयिः) ऐश्वर्यों को देने वाला होकर (ऊतिभिः) अपनी रक्षाओं से (शुचीनां शतं सहस्रं वा नः पवस्व) सौ वा सहस्र अपरिमित शुद्ध व्यवहारों को प्रवृत्त करा। उनको सदा शुद्ध बनाये रख। इति नवमो वर्गः॥

[५३]

अवत्सार ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री। २, ४ गायत्री॥ चतुर्ऋचं सूक्तम्॥

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः।
नुदस्व याः परिस्पृधः॥ १॥

भा०—हे (अद्रिवः) शस्त्रों के वर्षा करने वाले मेघवत् पराक्रमी सैन्यों के स्वामिन्! (ते शुष्मासः) तेरे बल (रक्षः भिन्दन्तः) दुष्टों को छिन्न-भिन्न करते हुए (उत् अस्थुः) उत्तम पद पर स्थित होवें। और (याः) जो (परि-स्पृधः) स्पर्धा करने वाले शत्रुसैन्य हों उनको (नुदस्व) दूर कर।

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा॥ २॥

भा०—हे स्वामिन्! (रथ-सङ्गे) रथों वा रमणीय पदार्थों को प्राप्त करने और (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त, मैं (अया ओजसा) इस बल पराक्रम से (निजघ्निः) शत्रुओं का नाश करने और आगे बढ़ने वाला होकर (अबिभ्युषा हृदा) भयरहित चित्त से (स्तवे) तेरी स्तुति करता हूं और करूं।

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या।
रुज यस्त्वा पृतन्यति॥ ३॥

भा०—(अस्य) इस (पवमानस्य) शत्रुओं को उच्छेद करके राज्य

को निष्कण्टक करके अभिषिक्त होने वाले शासक के (व्रतानि) कार्य (दूढ्या) दुष्ट चित्त वाले जन से कभी (न दाधृषे) तिरस्कृत नहीं हो सकते। (यः त्वा पृतन्यति) जो तेरे प्रति सेना लेकर युद्ध करता है तू उस को पीडित कर।

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के लिये (मत्सरम्) हर्षयुक्त (इन्दुम्) अभिषेक योग्य, (हरिं) दुःखहारी (वाजिनं) बलवान्, (मदच्युतं) हर्षप्रद (तं) उस पुरुष को (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में नदियों पर स्थित महावृक्ष के समान (हिन्वन्ति) बढावें। इति दशमो वर्गः॥

[५४]

अवत्सार ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री। ३ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

भा०—(अस्य) इस परम शास्ता की (प्रत्नाम् द्युतम् अनु) सनातन से चली आई कान्ति, ज्ञान-दीप्ति वा तेजस्विता को अनुकरण करके (अह्रयः) विद्वान् विवेचक लोग (सहस्रसाम् ऋषिम्) सहस्रों अपरिमित मन्त्रों का ज्ञान देने वाले (ऋषिम्) मन्त्रद्रष्टा विद्वान् से (शुक्रं पयः दुदुह्रे) शुद्ध कान्तियुक्त दुग्धवत् ज्ञान को प्राप्त करे।

अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥

भा०—(सूर्यः इव) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अयं) यह (उपदृग्) प्रजा के व्यवहारों को समीपस्थ के समान सूक्ष्मता से देखने वाला

हो। (सरांसि) जल जिस प्रकार तालो मे स्थिति पाता है और जिस प्रकार चन्द्र या सोम ओषधि अपर पक्ष के दिन रात्रियों में लुप्त हो जाता है उसी प्रकार (अयं) वह (सरांसि) उत्तम ज्ञानो और बलों को (धावति) प्राप्त हो और उनको स्वच्छ करे और (दिवम् आ) तेज को प्राप्त होकर सूर्यवत् ही तू (सप्त प्रवतः) साती प्रकृतियों को भी प्राप्त हो। सात प्रकृति, सात अमात्य।

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि।
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

भा०—(देवः सूर्यः न) तेजस्वी सूर्य के समान, (अयं सोमः) यह ईश्वर, सर्व जगत् का पालक, (विश्वानि भुवना पुनानः) समस्त लोकों को पवित्र करता हुआ, चलाता हुआ, सब के (उपरि तिष्ठति) ऊपर विराजता है। (२) इसी प्रकार तेजस्वी शासक भी सूर्यवत् सब के ऊपर विराजे।

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः।
पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (इन्द्रयुः) ऐश्वर्य पद की आकांक्षा करता हुआ, उसका स्वामी होकर (पुनानः) अभिषिक्त होकर (देव-वीतये) उत्तम मनुष्यो की रक्षा के लिये (गोमतः वाजान् नः परि अर्षसि) गो, भूमि आदि से युक्त ऐश्वर्य हमे प्राप्त करा वा हमारे ऐश्वर्यों को तू प्राप्त कर। (२) इसी प्रकार (इन्द्रयुः) प्रभु आत्माओं का स्वामी है, वह शुभ गुणो की प्राप्ति के लिये हमे समस्त ऐश्वर्य दे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[५५]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री। ३, ४ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टम्पुष्टं परि स्रव ।
सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अन्धसा) अन्न रूप से (पुष्टम्-पुष्टम्) खूब पुष्टि और (यवं-यवं) यव आदि अन्न और (विश्वा च सौभगा) सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य (परिस्रव) प्रदान कर ।

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अन्धसः) तेरे प्राणधारक (तव) तेरी यथा (स्तवः) स्तुति है और (यथा ते जातम्) जैसा तेरा स्वभाव है, वैसा ही तू (प्रिये बर्हिषि) प्रिय आसन (प्रतिष्ठा) पर (नि सदः) विराज ।

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (मक्षूतमेभिः अहभिः) अति शीघ्र दिनो मे ही तू (नः गोवित् अश्ववित्) गौओ और अश्वो का देने हारा हो, तू (अन्धसा पवस्व) अन्न से हम पर कृपा कर । अर्थात् अन्न दे ।

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ १२ ॥

भा०—(यः जिनाति) जो शत्रुओ का नाश करता है और (शत्रुम् अभीत्य) शत्रु पर आक्रमण करके (न जीयते) स्वयं नाश नही होता (सः) वह तू (सहस्रजित्) अपरिमित धनो का जेता होकर (पवस्व) हमे भी ऐश्वर्य प्रदान कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

[५६]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४ यवमध्या गायत्री ॥

परि सोमं ऋतं बृहदाशुः पवित्रें अर्षति ।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

भा०—(रक्षांसि विघ्नन्) दुष्टों को नाश करता हुआ (देवयुः) विद्वानों को चाहता हुआ (सोमः) शासक पुरुष (आशुः) कार्य कुशल होकर (पवित्रे) पवित्र पद पर स्थित होकर (ऋतं बृहत्) बहुत अन्न, धन, ज्ञान (परि अर्षति) प्राप्त करता और कराता है ।

यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः ।
इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जब (शतं) सौ, अनेक (अपस्युवः) कर्मकुशल (धाराः) वाणियां वा धारक जन (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के (सख्यम् आविशन्) मित्र भाव को प्राप्त होते हैं तब भी (सोमः वाजम् अर्षति) वह शासक बल और अन्न प्राप्त करता है ।

अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत ।
मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य ! ऐश्वर्यवन् ! शक्तिमन् ! (जारं न) स्तुति योग्य वा जीवन निभा देने वाले पुरुष को जिस प्रकार (कन्या) कन्या स्तुति करती है उसी प्रकार (दश योषणः) दश प्रीतियुक्त प्रजाएं (जारं) शत्रु नाशक तुझ को लक्ष्य कर (अनूषत) स्तुति करती है । तू (सातये) धन लाभ और न्याय-वितरण के लिये (मृज्यसे) पद पर अभिषिक्त किया जाता है ।

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव ।
नृन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥ ४ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन ! (त्वम्) तू (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान और (विष्णवे) व्यापक, शक्तिशाली पद के लिये (स्वादुः) उत्तम ओर

के तुल्य (परिस्रव) प्राप्त हो और (स्तोतॄन् नॄन्) स्तुति करने वाले मनुष्यों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५७]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ गायत्री । २ निचृद् गायत्री । ४ ककुम्मती गायत्री ॥

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

भा०—हे शासक ! स्वामिन् ! (दिवः वृष्टयः न) आकाश से पड़ने वाली वृष्टियां जिस प्रकार (वाजं प्र यन्ति) अन्न को प्राप्त होती और प्रदान करती है उसी प्रकार (असश्चतः ते) संगरहित तेरी (धाराः) वाणियां और पालक शक्तियां (सहस्रिणं वाजं अच्छ प्र यन्ति) सहस्रों ऐश्वर्य और बल प्राप्त करती या प्रदान करती है ।

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

भा०—(हरिः) प्रजा के चित्तों और दुःखो का हरने वाला (आयुधा) नाना शस्त्रो को (तुञ्जानः) शत्रुओ पर चलाता हुआ, (विश्वा काव्या) सब प्रकार के विद्वानो के कार्यों को (चक्षाणः) देखता हुआ, वा विद्वानो के उपदिष्ट ज्ञानो को प्रकाशित करता हुआ (प्रियाणि अभि अर्षति) सब प्रिय पदार्थों को प्राप्त करता, कराता है ।

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥

भा०—(इभः राजा इव) राजा के समान निर्भय होकर (सु-व्रतः) उत्तम कर्म करने वाला, (आयुभिः) मनुष्यों द्वारा (मर्मृजानः) अभिषिक्त और अलंकृत होता हुआ, (श्येनः न) सूर्यवत् उत्तम आचरणवान्

होकर (वसु सीदति) ऐश्वर्यों के बीच वा अभिषेक योग्य जलों के बीच विराजता है ।

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दयालो ! (दिवः उतो पृथिव्याः अधि) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (विश्वा वसु) सब ऐश्वर्यों को (नः) हमें (सः) यह, तू (पुनानः) पवित्र करता हुआ वा स्वयं अभिषिक्त होकर (आ भर) प्रदान कर वा उन ऐश्वर्यों को हमें देता हुआ (आ भर) पोषण कर । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[५८]

अवत्सार ऋषि. ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ४ गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

भा०—(सुतस्य) जल धाराओं से अभिषिक्त वा वाणी से स्तुति किये हुए, (अन्धसः) अन्नवत् परिपोषक स्वामी की (धारा) वाणी से (मन्दी) स्तुति करने वाला पुरुष भी (तरत्) सब पाप तर जाता है, और (सः) वह (धावति) उत्तम गति को प्राप्त होता है । (सः मन्दी) वह हर्ष आनन्दयुक्त होकर (तरत्) दुःखों से पार हो जाता है, (धावति) अपने को पापों से शुद्ध कर लेता है ।

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

भा०—उस (अवसः) रक्षाकारी पुरुष की (उस्रा) ऊपर ले जाने वाली (देवी) सुख देने वाली वाणी (मर्तस्य) मनुष्य को (वसूना

वेद) नाना धन प्राप्त कराती है। (मन्दी) स्तुतिशील (सः) वह (तरत्) सब दुःखों को पार कर जाता और (धावति) अपने को मल रहित कर लेता है।

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

भा०—(ध्वस्रयोः) दुःखों के नाश करने वाले और (पुरुषन्त्योः) बहुत ऐश्वर्य के देने वाले, आत्मा परमात्मा के हम (सहस्राणि) सहस्रों, अनेक ऐश्वर्य (आ दद्महे) प्राप्त करें। (सः मन्दी तरत् धावति) वह स्तुतिकर्त्ता आनन्द मग्न होकर सब पापों, दुःखों से तर जाता है, वह शुद्ध पवित्र हो जाता है।

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ १५ ॥

भा०—(ययोः) जिन उक्त दोनों के (त्रिंशतं सहस्राणि तना आ दद्महे) ३० सहस्र, ऐश्वर्य हम प्राप्त करते हैं वे ही स्तुति योग्य हैं। (सः मन्दी तरत्) वह स्तुति कर्त्ता भी पापों से मुक्त हो जाता है और (धावति) उस प्रभु को प्राप्त हो जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५९]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ गायत्री । २ आर्ची स्वराड् गायत्री । ३, ४ निचृद गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित् ।
प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (गोजित् अश्वजित् विश्वजित्) गौ, अश्वों और विश्व का विजेता और (रण्य-जित्) रमणीय या रण से प्राप्त ऐश्वर्य का विजेता होकर हमें (प्रजावत् रत्नम् आभर) प्रजा वाला ऐश्वर्य प्राप्त करा।

पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः ।
पवस्व धिषणाभ्यः ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! शासनकर्त्ता ! तू (अदाभ्यः) किसी से पीडित न होकर (अद्भयः) जलों से, (ओषधीभ्यः) औषधियों से और (धिषणाभ्यः) बुद्धियों से हमें (पवस्व) पवित्र कर ।

त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर ।
कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (त्वं पवमानः) स्वयं पवित्र वा दानशील होकर (विश्वानि दुरिता) समस्त बुरे कार्यों को (तर) पार कर । तू (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, बुद्धिमान् होकर (बर्हिषि) प्रजा पर उत्तमासन पर (नि सीद) विराज ।

पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् ।
इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषिक्त ! तू (जायमानः महान् अभवः) प्रकट होकर ही बड़ा हो जाता है । हे (पवमान) अभिषेक योग्य ! तू (विश्वान् अभि इत् असि) सब को अपने वश करने हारा हो । इति षोडशो वर्गः ॥

[६०]

अवत्सार ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री ३ निचृदुष्णिक् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् ।
इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥

भा०—(पवमानं) सब को पवित्र करने हारे (सहस्र-चक्षसम) सहस्रों आंखों वाले, (वि-चर्षणिम्) विशेष द्रष्टा (इन्दुं) ऐश्वर्यवान प्रभु को (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (प्र गायत) खूब स्तुति करो ।

तं त्वा॑ स॒हस्र॑चक्षस॒मथो॑ स॒हस्र॑भर्णसम् ।
अति॒ वार॑मपाविषुः ॥ २ ॥

भा०—(तं) उस (सहस्र-चक्षसम्) हजारो चक्षुओं वाले और (सहस्रभर्णसम्) सहस्रो के पालक पोषक (वारम् अति) आवरण के पार विराजमान तुझ को (अपाविषुः) परिष्कृत करते हैं ।

अति॒ वारा॒न्पव॑मानो असिष्यदत्क॒लशाँ॑ अ॒भि धा॑वति ।
इन्द्र॑स्य॒ हार्द्या॑वि॒शन् ॥ ३ ॥

भा०—(वारान्) आवरण रूप बाधक कारणो को पार करके (पवमानः) राष्ट्र को पवित्र, स्वच्छ करता हुआ स्वयं भी (कलशान् अभि धावति) अभिषेच्य जल से पूर्ण कलशो को प्राप्त करता है । वह (इन्द्रस्य हार्दि) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के हृदय-भाग मे (आविशन्) प्रवेश करता है । अध्यात्म में सोम जीव पवित्र होता हुआ कोशो मे प्रवेश कर आनन्दमय परमेश्वर मे प्रवेश करता है

इन्द्र॑स्य सोम॒ राध॑से॒ शं पव॑स्व विचर्षणे ।
प्र॒जाव॒द्रेत॒ आ भ॑र ॥ ४ ॥ १७ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! हे (विचर्षणे) विश्व के द्रष्टा ! अध्यक्ष ! (इन्द्रस्य राधसे) अन्न दाता, भूमि को जोतने वाले प्रजा जन के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (शं पवस्व) शान्ति की स्थापना कर और (प्रजावत् रेतः) प्रजायुक्त वीर्य के समान प्रजा की वृद्धि करने वाले वल को (आ भर) धारण कर । तेरा तेजस्वी वल भी प्रजा का नाश न करके उसकी वृद्धि करे । इति सप्तदशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[६१]

अमहीयुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८, १०, १२, १५, १८, २२—२४, २६, ३० निचृद् गायत्री । २, ३, ६, ७, ६, १३, १४, १६, १७, २०, २१, २६—२८ गायत्री । ११, १६ विराड् गायत्री । २५ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अया वीती) इस नीति से, (परि स्रव) आगे बढ़, कार्य कर कि (ते यः) तेरा जो कोई भी (मदेषु) संग्रामों में (नवतीः नव अवाहन्) ९०×९ अथवा ९०+९=८१० वा ९९ शत्रु-नगरों को नाश कर सके। (२) अध्यात्म रस ऐसा बहे कि उसके आनन्द में जीव के ९९ वा ८१० नाडिगत वासना-बन्धन छिन्न हो जायं।

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

भा०—(इत्था-धिये) इस प्रकार की सत्य निश्चित बुद्धि और सत्य कर्म वाले (दिवः दासाय) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष की सेवा करने वाले प्रजा जन के हितार्थ (सद्यः) शीघ्र ही (शम्बरम्) उसकी शान्ति के नाशक (अध) और (त्यं तुर्वशं यदुम्) अहिंसाशील एवं यत्नवान् मनुष्य को (सद्यः) शीघ्र ही वश में ला। और (सद्य.) शीघ्र ही (पुरः) उसकी नगरियों को छिन्न भिन्न कर। (२) इसी प्रकार वह प्रभु सत्य कर्म, सत्य बुद्धि के शान्तिनाशक विघ्न को दूर करके उसके बन्धनों को तोड़े।

परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्वविद्) अश्वों के विज्ञान को जानने वाले और हे (इन्दो) वेग से जाने में कुशल विद्वन् ! तू (न) हमें (अश्वम् परि क्षर) अश्व, बल दे। और तू (गोमत् हिरण्यवत्) पशु सुवर्णादि से युक्त धन प्राप्त करा। तू (सहस्रिणीः इषः नः परि क्षर) सहस्रों अन्नसम्पदा सत इच्छाओं और सेनाओं को दे और सञ्चालित कर।

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥४॥

भा०—(पवमानस्य) अभिषेक को प्राप्त होते हुए और (पवित्रम् अभि) परम पवित्र पद को लक्ष्य करके (उन्दतः) जल क्लिन्न होते हुए वा (पवित्रम् अभि) राष्ट्र के कण्टक शोधन के प्रति (अभि उन्दतः) प्रजा के प्रति दया भाव से आर्द्र हुए (ते सखित्वम् आ वृणीमहे) तेरे सख्य भाव को हम चाहते है।

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।
तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः! (ये) जो (ते ऊर्मयः) तेरे उत्साह-सम्पन्न युवा जन (ते) तेरी (धारया) उत्तम राष्ट्रधारक-पोषक वाणी से प्रेरित होकर (अभि क्षरन्ति) सब ओर जाते है (तेभिः) उनसे (नः मृडय) हमे सुखी कर। (२) परम प्रभु की आनन्द रस-धारा से आनन्द तरङ्ग हमे सदा सुखी करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक! सब को नियम मे चलाने हारे! तू (विश्वतः ईशानः) सब प्रकार से सब जगत् का स्वामी, शासक है। (सः) वह तू (पुनानः) सुखो की वर्षा करता हुआ, (नः) हमे भी (वीरवतीम् इषम्) वीरो से युक्त अन्न, वृष्टि एवं (रयिम्) ऐश्वर्य भी (आ भर) प्राप्त करा।

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्।
समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥

भा०—(एतम् उ त्यं) उस (सिन्धु-मातरम्) नदियों के उत्पादक माता महापर्वत या मेघ के समान अति उदार पुरुष को (दश क्षिपः) दसो प्रजाएं (मृजन्ति) अभिषेक करती हैं। वह उस समय (आदित्येभिः)

१२ मासों से सूर्य के समान, १२ प्रकृतियों सहित (सम् अख्यत) दिखाई देता और शासन करता है।

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः॥ ८॥

भा०—(पवित्रे सुतः) पवित्र राज्यपद पर अभिषिक्त हुआ, युवराज, (इन्द्रेण, वायुना, सूर्यस्य रश्मिभिः सम् सम् आ एति) अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी, वायु के समान बलवान् और सूर्य की किरणों के समान जगत् के प्रकाश विद्वानों से संगत हो जाता है। इसी प्रकार (२) पवित्र परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होकर आत्मा भी विद्युत वायु, किरणों से संयुक्तवत् तेजस्वी बलवान्, ज्ञान से प्रकाशित हो जाता है।

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च॥ ९॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (भगाय) सुखकारक ऐश्वर्य के लिये (वायवे) वायुवत् बलवान्, प्राणदाता और (पूष्णे) पोषणकारक, अन्नदाता, भूमि के समान पूज्य पद प्राप्त करने के लिये (मधुमान्) अन्न, बल और हर्षयुक्त होकर (पवस्व) अभिषिक्त हो। और तू ही (मित्रे वरुणे च) स्नेही, रक्षकवत् और वरणीय श्रेष्ठ जनवत् सुखप्रद पद पर भी (चारुः) उत्तम रूप से प्राप्त हो।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः॥ १०॥ १६॥

भा०—जिस प्रकार (दिवि सत् अन्धसः जातम्) आकाश में विद्यमान अन्न के जलमय सूक्ष्म रूप को (भूमिः) पृथिवी, (उग्रं शर्म) प्रबल शान्तिदायक (महि श्रवः) बड़े भारी अन्न सम्पदा के रूप में (आ ददे) प्राप्त करती है उसी प्रकार हे (सोम) वीर्यवन्! हे ऐश्वर्यवन्! हे सञ्चालक! (अन्धसः ते दिवि उच्चा जातम्) प्राणधारक तेरे राजसभा

आदि वा तेजो रूप मे विद्यमान सर्वोपरि प्रकट हुए रूप को (भूमिः) यह भूमि (उग्रं शर्म) प्रबल शरण और (श्रवः) यश के स्वरूप मे (आ ददे) प्राप्त करती है। यह राजा का प्रताप है कि भूमि पर शान्ति सुख और अन्न भोग सब को मिलता है। नही तो बलवान् निर्बलो को खा जाय और त्राहि २ हो जाय। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥

भा०—(अर्यः) अपने स्वामी के ही हम (एना विश्वानि मानुषाणां द्युम्नानि) इन समस्त मनुष्यो के धनों को (सिषासन्तः) विभक्त करते हुए (वनामहे) भोग करे। अर्थात् सब राष्ट्रवासी ऐश्वर्य भोगने में समान रूप से रहे।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव॥१२॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज पद के लिये (यज्यवे) हमे एक संगति मे मिलाने वाला और (वरुणाय) हम में से सर्वश्रेष्ठ, सर्व दुःखो के वारण करने वाला होने के लिये (मरुद्भ्यः) और वीर व्यवहारवान् पुरुषो के लिये (वरिवः वित्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला होकर (परि स्रव) हमे प्राप्त हो और हमे सुख प्रदान कर।

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥

भा०—(जातम्) उत्तम गुणों से अलंकृत, (अप्तुरम्) प्रजाओं के सञ्चालक, (भगं) शत्रुओ के नाशक, (गोभिः परिष्कृतम्) वाणियों, उत्तम गुण-वचनों से अलंकृत वा सुशिक्षित, (इन्दुं) अभिषिक्त वा दयालु, ऐश्वर्यवान् स्नेही पुरुष को (देवाः) उत्तम सुख-ऐश्वर्यादि के अभिलाषी और

१२ मासों से सूर्य के समान, १२ प्रकृतियों सहित (सम् अख्यत) दिखाई देता और शासन करता है।

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः॥ ८॥

भा०—(पवित्रे सुतः) पवित्र राज्यपद पर अभिषिक्त हुआ, युवराज, (इन्द्रेण, वायुना, सूर्यस्य रश्मिभिः सम् सम् आ एति) अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी, वायु के समान बलवान् और सूर्य की किरणों के समान जगत् के प्रकाश विद्वानों से संगत हो जाता है। इसी प्रकार (२) पवित्र परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होकर आत्मा भी विद्युत वायु, किरणों से संयुक्तवत् तेजस्वी बलवान्, ज्ञान से प्रकाशित हो जाता है।

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च॥ ९॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (भगाय) सुखकारक ऐश्वर्य के लिये (वायवे) वायुवत् बलवान्, प्राणदाता और (पूष्णे) पोषणकारक, अन्नदाता, भूमि के समान पूज्य पद प्राप्त करने के लिये (मधुमान्) अन्न, बल और हर्षयुक्त होकर (पवस्व) अभिषिक्त हो। और तू ही (मित्रे वरुणे च) स्नेही, रक्षकवत् और वरणाय श्रेष्ठ जनवत् सुखप्रद पद पर भी (चारुः) उत्तम रूप से प्राप्त हो।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः॥ १०॥ १६॥

भा०—जिस प्रकार (दिवि सत् अन्धसः जातम्) आकाश में विद्यमान अन्न के जलमय सूक्ष्म रूप को (भूमिः) पृथिवी, (उग्रं शर्म) प्रबल शान्तिदायक (महि श्रवः) बड़े भारी अन्न सम्पदा के रूप से (आ ददे) प्राप्त करती है उसी प्रकार हे (सोम) वीर्यवन्! हे ऐश्वर्यवन! हे सञ्चालक! (अन्धसः ते दिवि उच्चा जातम्) प्राणधारक तेरे राजसभा

आदि वा तेजो रूप मे विद्यमान सर्वोपरि प्रकट हुए रूप को (भूमिः) यह भूमि (उग्रं शर्म) प्रबल शरण और (श्रवः) यश के स्वरूप मे (आ ददे) प्राप्त करती है। यह राजा का प्रताप है कि भूमि पर शान्ति सुख और अन्न भोग सब को मिलता है। नही तो बलवान् निर्बलो को खा जायं और त्राहि २ हो जाय। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे॥ ११॥

भा०—(अर्यः) अपने स्वामी के ही हम (एना विश्वानि मानुषाणां द्युम्नानि) इन समस्त मनुष्यो के धनो को (सिषासन्तः) विभक्त करते हुए (वनामहे) भोग करे। अर्थात् सब राष्ट्रवासी ऐश्वर्य भोगने में समान रूप से रहे।

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव॥१२॥

भा०—(सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज पद के लिये (यज्यवे) हमें एक संगति मे मिलाने वाला और (वरुणाय) हम में से सर्वश्रेष्ठ, सर्व दुःखो के वारण करने वाला होने के लिये (मरुद्भ्यः) और वीर व्यवहारवान् पुरुषो के लिये (वरिवः वित्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला होकर (परि स्रव) हमें प्राप्त हो और हमें सुख प्रदान कर।

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।
इन्दुं देवा अयासिषुः॥ १३॥

भा०—(जातम्) उत्तम गुणों से अलंकृत, (अप्तुरम्) प्रजाओं के सञ्चालक, (भगं) शत्रुओ के नाशक, (गोभिः परिष्कृतम्) वाणियों, उत्तम गुण-वचनों से अलंकृत वा सुशिक्षित, (इन्दुं) अभिषिक्त वा दयालु, ऐश्वर्यवान् स्नेही पुरुष को (देवाः) उत्तम सुख-ऐश्वर्यादि के अभिलाषी और

वार्त्तादि व्यवहारों में कुशल जन (उपो सु अयासिषुः) सुखपूर्वक उसकी शरणार्थ प्राप्त होते हैं।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रस्य) इन्द्र या राज्य पद के (हृदंसनिः) हृदय अर्थात् मर्मस्थल में व्यापकर उसको भोगने या प्राप्त करने वाला है (तम् इत्) उस को ही (नः गिरः) हमारी वाणियां (संशिश्वरीः इव वत्सं) दुधार गौवें जैसे बच्छे को बढ़ाती हैं उस प्रकार (वर्धन्तु) बढ़ावें। (२) उसी प्रकार जो प्रभु (इन्द्रस्य हृदंसनिः) इन्द्र जीव के हृदय पर वश करता है हमारी वाणियां उस प्रभु की स्तुतियां करती हैं।

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (नः गवे शम् अर्ष) हमारी गौ, वाणी, इन्द्रिय, पशु जन एवं भूमि के लिये शान्ति प्रदान कर। तू (नः) हमें (पिप्युषीम् इषम्) सदा बढ़ाने वाली अन्न-सम्पद् (धुक्षस्व) प्रदान कर, (उक्थ्यम् समुद्रम्) उत्तम प्रशंसा योग्य समुद्रवत् ज्ञान, दया, बल और गुण रत्नों के सागरवत् पुरुष को (वर्ध) बढ़ा। इति विंशो वर्गः ॥

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥

भा०—(पवमानः) व्यापक रूप से विद्यमान परमेश्वरीय जगद् उत्पादक कारण तत्त्व जिस प्रकार (दिवः) आकाश में विद्यमान (वैश्वानरं तन्यतुम बृहत् ज्योतिः अजीजनत्) सब के सञ्चालक यह विस्तृत ज्योति सूर्य अग्नि को उत्पन्न करता है उसी प्रकार राष्ट्र में यह (पवमानः) प्रजा के प्रति ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला वा पदाभिषिक्त जन (दिवः) इस भूमि पर (चित्रं) आश्चर्यजनक, (न) और (तन्यतुम्) विस्तृत और

(बृहत्) महान् (वैश्वानरं) समस्त मनुष्यों का आश्रय लेने योग्य (ज्योतिः) परम तेज को (अजीजनत्) प्रकट करता है।

पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः।
वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥

भा०—(पवमानस्य) प्रजा के प्रति दया, स्नेह आदि से दान करते हुए (ते रसः) तेरा बल और हर्ष, (अदुच्छुनः) प्रजा को दुःखी न करने वाला तेरा (मदः) सर्वानन्दकारी हर्ष, (अव्यं) अक्षय वा परम रक्षक के योग्य तेरे (वारम्) शत्रुनिवारक रूप को (वि अर्षति) विविध प्रकार से प्राप्त करता है।

पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान्।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

भा०—हे (पवमान) जगत् वा राष्ट्र को पवित्र करने हारे ! (तव द्युमान् दक्षः) तेरा यह तेजोमय (दक्षः) ज्ञान है (तव रसः) तेरा यह बल ही (वि राजति) विशेष रूप से चमकता है, और तेरी ही यह (विश्वं ज्योतिः) समस्त ज्योति है जो (स्वः-दृशे) सत्य सुख को दर्शन कराने के लिये है।

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा ॥ १९ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! सबके सञ्चालक ! तू (देवा-वीः) उत्तम करप्रद प्रजा की रक्षा करने वाला (अघ-शसहा) दूसरे के ऊपर पाप, हत्यादि करने की धमकी देने वाले को दण्ड देने हारा है। (यः ते) जो तेरा (मदः) सब को तृप्त, सन्तुष्ट और हर्षित करने वाला (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ और सब को शुभ, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा सामर्थ्य है तू (तेन) उस (अन्धसा) अन्न के समान पुष्टिकारक बल से (पवस्व) हमें प्राप्त हो।

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—हे उत्तम शासक राजन् ! तू (अमित्रियं) शत्रु के (वृत्रं) चढ़ते बल को (जघ्निः) नाश करने वाला, (वाजं) ऐश्वर्य को (दिवे दिवे सस्निः) दिन प्रतिदिन शुद्ध करने वाला और (गो-साः उ) भूमि गौ आदि के देने वाला और (अश्व-साः असि) अश्वों का देने वाला स्वामी है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

सम्मिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥

भा०—हे उत्तम शासक ! विद्वन् ! तू (श्येनः न) श्येन के समान वा उत्तम आचारवान् पुरुष के तुल्य (योनिम् आ सीदन्) अपने स्थान को प्राप्त कर (सु-उपस्थाभिः धेनुभिः) सुख से उपस्थित होने वाली गो तुल्य भूमियों, प्रजाओं और वाणियों से (सं-मिश्लः) सब से मिलने हारा और (अरुषः) रोषरहित, दीप्तिमान् (भव) हो ।

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥

भा०—(यः) जो तू (अपः वव्रिवांसं) जलों को रोक धरने वाले मेघ को सूर्य के समान (वृत्राय हन्तवे) शत्रु को नाश करने के लिये (इन्द्रम्) बड़े ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता तेजस्वी सैन्य को (आविथ) रखता है (सः) वह तू (पवस्व) अभिषिक्त हो और प्रजा पर सुख की वर्षा कर ।

सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! अभिषिक्त ! हे (मीढ्व.) बल-वीर्यशालिन् ! (वयं सु-वीरासः) उत्तम बलवान, विद्यावान , पुत्रवान ,

प्राणवान् होकर (धना जयेम) धनों का विजय करें। तू (नः गिरः वर्ध) हम स्तुतिकर्त्ताओं को वा हमारी वाणियों को बढ़ा।

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! शासक! (त्वा-उतासः) तुझ से सुरक्षित रह कर (तव अवसा) तेरे ही रक्षा-बल से हम (आमुरः) अति मोह करने वाले भावों को वा चारों ओर से मार करने वाले शत्रुओं को (वन्वन्तः) विनाश करते हुए (स्याम) रहें। (व्रतेषु) हमारे उत्तम कामों में तू (जागृहि) जाग, सचेत होकर रह।

अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—(सोमः) शासन करने के सामर्थ्य वाला पुरुष (इन्द्रस्य निष्कृतम् गच्छन्) दुष्टों के वध करने के अधिकार पद को प्राप्त करता हुआ (अराव्णः) अन्यों का अधिकार वा राजकर न देने वाले और (मृधः) प्रजा हिंसकों को (अप घ्नन्) विनाश करता हुआ (पवते) राष्ट्र को दुष्टों से रहित कर स्वच्छ करता है।

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्दो) शत्रु के प्रति द्रुत गति से जाने वाले! अभिषेक से आर्द्र! तू (नः) हमें (महः रायः आ भर) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करा। हे (पवमान) राष्ट्र के कण्टकशोधन करने हारे! तू (मृधः जहि) हिंसकों का विनाश कर। तू (वीरवत् यशः रास्व) वीरों से युक्त यश, पुत्रों से युक्त अन्न और प्राणों से युक्त बल वीर्य हमें प्रदान कर।

न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥

भा०—(यत्) जब (पुनानः) देहवत् राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ तू मानो (मखस्यसे) यज्ञ सम्पादन करता है (शतं चन ह्रुतः) सैकड़ों भी कुटिल पुरुष (राधः दित्सन्तं चन त्वा) धन प्रदान करना चाहते हुए तुझे (मा मिनन्) न नाश करें ।

पव॑स्वेन्दो॒ वृषा॑ सु॒तः कृ॒धी नो॑ य॒शसो॒ जने॑ ।

विश्वा॒ अप॒ द्विषो॑ जहि ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) अभिषिक्त होकर तू (पवस्व) पवित्र हो । तू (जने नः यशसः कृधि) मनुष्यों के बीच हमें यशस्वी बना और (विश्वाः द्विषः अप जहि) सब शत्रुओं को मार भगा ।

अ॒स्य ते॑ स॒ख्ये व॒यं तवे॑न्दो द्यु॒म्न उ॑त्त॒मे ।

सा॒स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! दया से आर्द्र ! (अस्य तव) इस तेरे (सख्ये) मित्र भाव में रहकर (ते वयम्) वे हम लोग (उत्तमे द्युम्ने) उत्तम यश, बल और धन, अन्नादि प्राप्त करने के निमित्त (पृतन्यतः सासह्याम) संग्रामकारियों को वश करें ।

या ते॑ भी॒मान्यायु॑धा ति॒ग्मानि॒ सन्ति॒ धूर्व॑णे ।

रक्षा॑ समस्य नो नि॒दः ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—(या) जो (ते) तेरे (भीमानि) भयजनक (तिग्मानि आयुधानि) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र (धुर्वणे सन्ति) शत्रु को नाश करने के लिये हैं, उनसे (नः समस्य) हमारे सर्वस्व की (निदः रक्ष) निन्दक जन से रक्षा कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

भा०—(एते) ये (आशवः) शीघ्रगामी, (इन्दवः) वीर पुरुष (विश्वानि सौभगा अभि) समस्त प्रकार के उत्तम २ ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (पवित्र तिरः) राष्ट्र को स्वच्छ करने के उत्तम पद पर (अभि असृग्रम्) प्राप्त कराये जावें ।

विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥

भा०—वे (दुरिता विघ्नन्तः) दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (वाजिनः) ज्ञान और बल से सम्पन्न, (अर्वते) अश्व के सदृश बलवान् नायक और (तोकाय) शत्रु हिंसक पुरुष के लिये (पुरु) बहुत से (सुगा) सुखजनक (तना) धनों को (कृण्वन्तः) उपार्जन करते हुए—

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥

भा०—(गवे) भूमि के लिये (वरिवः कृण्वन्तः) उत्तम धन वा सेवा करते हुए (अस्मभ्यं) हमारे लिये (इलाम्) भूमि वा अन्नादि को (सं-यतम् कृण्वन्तः) उत्तम सुप्रबन्ध करते हुए (सु-स्तुतिम् अभि अर्षन्ति) उत्तम स्तुति प्राप्त करते है ।

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥

भा०—(अंशुः गिरिष्ठाः अप्सु असावि) जिस प्रकार पर्वत में स्थित सोम लता जलों के आश्रय पर उत्पन्न होती है । वा जलों से सेचन किया जाकर सोम (मदाय) आनन्दप्रद होता है उसी प्रकार (अंशुः) तेजस्वी व्यापक बल वाला (दक्षः) बलवान् शत्रु को दग्ध करने हारा (गिरिष्ठाः) वाणी, आज्ञा देने के अधिकार पर स्थित पुरुष भी (मदाय) प्रजा के हर्ष

के लिये (असावि) शासक पद पर अभिषिक्त किया जाता है। वह (अप्सु) प्रजाओं के बीच में (अप्सु श्येनः न) अन्तरिक्ष में बाज़ के समान, (श्येनः) प्रशंसा योग्य आचरण वाला होकर (योनिम् आसदत्) अधिकार पद पर विराजे।

शुभ्रमन्धो॑ देववा॑तमप्सु धूतो नृभिः॑ सुतः।
स्वद॑न्ति गावः॒ पयो॑भिः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—(शुभ्रम् अन्धः) शुद्ध अन्न (देववातम्) सूर्य की किरणों से स्वच्छ होता है, जिस प्रकार (गावः) गौएं (पयोभिः) अपने दुग्धों से (शुभ्रम्) शुभ्र, श्वेत हुए (देववातम्) विद्वानो से प्राप्त अन्न को (स्वदन्ति) अधिक स्वादयुक्त कर देती हैं उसी प्रकार (अप्सु धूतः) जलों में परिष्कृत और (नृभिः सुतः) नायक पुरुषों से अभिषिक्त पुरुष भी सब को रुचिकर हो(गावः) ये भूमियां और वाणियें अपने (पयोभिः) अभिषेक जलों से उसे अधिक रुचिकर बनावें।

आदी॑मश्वं॒ न हेता॒रोऽशू॑शुभन्न॒मृता॑य।
मध्वो॒ रसं॑ सध॒मादे॑ ॥ ६ ॥

भा०—(आत्) और (हेतारः अश्वं न) जिस प्रकार सारथी लोग अश्व को (अशूशुभन्) शोभित करते है उसी प्रकार (अमृताय) मृत्यु के भय को दूर करनेके लिये और (सध-मादे) एक साथ मिल कर आनन्द-हर्ष लाभ करने के लिये (मध्वः रसं) ज्ञान के रस के समान ज्ञान के इस उपदेष्टा पुरुष को वा (मध्वः रसम्) शत्रु को पीडन करने वाले बलवान् सैन्य वा सेनापति को भी (अशूशुभन्) अलंकार, मान आदर से सुशोभित करते हैं। प्रजा गण परस्पर के हत्या, भय और परस्पर संग के सुखों को प्राप्त करने के लिये रक्षक राजा को नियत अवश्य करें।

यास्ते॒ धारा॑ मधु॒श्चुतोऽसृ॑ग्रमिन्द ऊ॒तये॑।
ताभिः॑ प॒वित्र॒मास॑दः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (ऊतये) प्रजा की रक्षा के लिये (याः) जो (ते) तेरी वाणियां (मधुश्चुतः) मधुर, सुख देने वाली (असृग्रम्) होती है (ताभिः) उनसे तू (पवित्रम्) पवित्र पद पर (आ असदः) विराज ।

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया ।
सीदन्योना वनेष्वा ॥ ८ ॥

भा०—तू (वनेषु) ऐश्वर्यों सैन्यादि दलो मे (योना सीदन्) आसन या सभाभवन मे विराज कर (अव्यया रोमाणि) रोमो के समान उच्छेद्य शत्रुओ को भी (तिरः) तिरस्कार करके (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्य पद की रक्षा के लिये (सः त्वं) वह तू (अर्ष) आ, आगे बढ़ ।

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अंगिरोभ्यः) विद्वानो के लिये (स्वादिष्ठः) अति सुखदायक, उत्तम अन्न देने वाला, (वरिवोवित्) उत्तम धन प्राप्त कराने वाला होकर उनको (घृतं पयः) घी दुग्ध आदि (परि स्रव) प्रदान कर ।

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—(अयं) यह (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा, (हितः) स्थापित होकर (पवमानः) अभिषेकवान् होकर (बृहत् आप्यं हिन्वानः) बहुत बडे भारी 'आप्य' अर्थात् बन्धुभाव को बढाता हुआ, (स चेतति) वह सबो से जाना जाय ।

एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा ।
करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

भा०—(एषः) वह (वृषा) बलवान् (वृष-व्रतः) प्रबन्ध के योग्य कर्म में नियुक्त पुरुष (पवमानः) राष्ट्र-पद को सुशोभित करता हुआ (अशस्तिहा) राज्य शासन के विपरीत शत्रुओं का नाश करने वाला (दाशुषे) करप्रद प्रजा जन के लिये (वसूनि करत्) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे ।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम शासक ! तू (सहस्रिणं) अपरिमित, (गोमन्तं अश्विनम्) गौ, अश्वों से युक्त (पुरु-चन्द्रम् पुरु-स्पृहम्) बहुतों को आह्लाद देने वाले, बहुतों के चाहने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ पवस्व) प्रदान कर ।

एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः ।
उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥

भा०—(उरुगायः) विशाल वाणी वाले, स्तुत्य, (कवि-क्रतुः) सर्वाधिक प्रज्ञा और कर्म करने में कुशल, (एषः स्यः) वह यह (आयुभिः) मनुष्यों द्वारा (मर्मृज्यमानः) सुभूषित होकर (परि षिच्यते) अभिषिक्त हो ।

सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः ।
इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥

भा०—(सहस्रोतिः) सहस्रों रक्षा-साधनों से युक्त, (शत-मघ) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला, (रजसः वि-मानः) लोकों का बनाने वा जानने वाला (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान (मदः) आनन्दजनक प्रभु (इन्द्राय पवते) इस जीव के लिये समस्त आनन्द की धाराएं वर्षाता है । उसी प्रकार राजा भी प्रजा जन के लिये सदा सुऐश्वर्य प्रदान करे ।

गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते ।
विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥ २९ ॥

भा०—(वसतौ इव विः) पक्षी जिस प्रकार अपने घोंसले में स्वभाव से ही आ जाता है उसी प्रकार (गिरा जातः स्तुतः) वाणी द्वारा 'प्रस्तुत' (इह जातः इन्दुः) यहां अधिकारी रूप से प्रकट हुआ वा (जातः) गुण क्रिया अभिजनादि में श्रेष्ठ (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् अभियुक्त पुरुष (इन्द्राय योनौ धीयते) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के पद पर स्थापित किया जाता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।
चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥

भा०—(नृभिः सुतः) नायक पुरुषों द्वारा अभिषिक्त (पवमानः) राष्ट्र को स्वच्छ करता हुआ (सोमः) तेजस्वी अधिपति, (चमूषु) सेनाओं पर (शक्मना) अपनी शक्ति से (आ-सदम्) स्थिर रहने के लिये (वाजं इव) स्वयं बल की मूर्ति के समान (असरत्) विचरे अथवा (वाजमिव असरत्) जब निकले तब ऐसे द्वार से जैसे मानो युद्ध को जा रहा हो।

तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।
ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥

भा०—(ऋषीणां सप्त) मन्त्र देखने वाले सात विद्वान् जन (धीतिभिः) उत्तम स्तुतियों और कर्मों से (तं) उस शासक को (रथे) रथ में (यातवे) जाने के लिये अश्व के समान (यातवे) प्रजापीड़क के दमन के लिये (तं) उसको (त्रिपृष्ठे) तीन पीठों वाले और (त्रि-वन्धुरे) तीन वन्धनों से युक्त (रथे) रमणीय, सुदृढ़ राज्य पद पर (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं। राज्य के 'तीनपृष्ठ' अर्थात् पालक पोषक त्र्यवरापरिषत् तीन सदस्य, 'त्रि-वन्धुर'—धनवल, नीति वा प्रभु शक्ति, दण्डशक्ति और मन्त्रशक्ति। अध्यात्म में—'ऋषीणां सप्त' सात ऋषि सात प्राण, उसमें तीन पृष्ठ, तीन धातु-वात, पित्त, कफ, तीन वन्धन-शिर, कण्ठ वा

नाभि। विराट् देह में तीन पृष्ठ, तीन लोक, तीन वन्धन, तीन गुण, र विश्वा उसे योग द्वारा उपलब्ध करते हैं।

तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे।
हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोतारः) अभिषेक करने वाले जनो! आप लोग (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान्, (धन-स्पृतम्) धन से पूर्ण, (आशु) वेगवान्, कर्मकुशल, (हरि) पुरुष को (आशुं हरिं वाजिनं) वेगवान् रथ ढोने में समर्थ, बलवान् अश्व के समान (वाजाय यातवे) संग्राम में जाने के लिये वा संग्राम या वलैश्वर्य की वृद्धि के लिये और (यातवे) प्रजापीड़क को दण्डित करने के लिये (हिनोत) बढ़ाओ।

आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।
शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥

भा०—(कलशं आ विशन्) कलश अर्थात् स्नान-जलों से पूर्ण घट के तुल्य प्रजाओं से पूर्ण राष्ट्र में (आ विशन्) प्रवेश करता हुआ (सुतः) अभिषिक्त राजा, (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन्) समस्त राज्य-लक्ष्मियों को प्राप्त होता हुआ, (शूरः न) शूरवीर पुरुष के समान (गोषु) स्तुति वाणियों के बीच, वा भूमियों के ऊपर (तिष्ठति) विराजता है।

आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः।
देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (मदाय) आनन्द और तृप्ति या स्तुत्य कार्य के लिये (आ यव. देवाः) शीघ्र कर्मकुशल विद्वान् जन, (ते पयः) तेरे पोषक बल को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं, वह तुझे प्रदान करते हैं और वे (देवेभ्यः) वीरों और विद्वानों से (मधु दुहन्ति) तेरे लिये बल और ज्ञान का दोहन करें।

आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् ।
देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (देवेभ्यः) देव, ज्ञानदाता, तत्व ज्ञान के प्रकाशक विद्वानों से जिसने (देवश्रुत् तमम्) देव, प्रभु की वेदवाणी का खूब श्रवण किया हुआ हो, और (मधुमत्-तमम्) जो अति मधुर वचन वाला हो ऐसे को (सोमं) उत्तम शासक रूप से (पवित्रे आ सृजत) निष्कण्टक राज्य के पवित्र पद पर नियुक्त करो ।

एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे ।
मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥

भा०—(मदिन्तमस्य धारया) अति अधिक स्तुत्य, सर्वोपरि शासक राजा की (धारया) वाणी या आज्ञा से (महे श्रवसे) बड़े भारी यश प्राप्त करने के लिये (एते गृणानाः) ये स्तुति किये जाने योग्य प्रस्तुत, (सोमाः) अन्य गौण शासक भी (असृक्षत) बनाये जावें । प्रधान पद के अधीन मुख्य कर्मचारियों का भी चुनाव प्रधान की आज्ञानुसार हो ।

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥

भा०—हे शासक ! तू (पुनानः) अभिषिक्त होकर (वीतये) अपने तेज की वृद्धि और उपभोग के लिये (गव्यानि नृम्णा) समस्त भूमि से उत्पन्न धनैश्वर्यों को (अभि अर्षसि) प्राप्त कर । तू (सनद्-वाजः) ऐश्वर्य प्राप्त करके (परि स्रव) आगे बढ या प्रजा जनों पर ऐश्वर्य की वर्षा कर ।

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥

भा०—तू (जमदग्निना गृणानः) 'जमदग्नि' (जमत् = अग्नि) प्रज्वलित अग्नि रूप से स्तुति किया जाकर वा (जमद्-अग्निना) जो व्यक्ति अग्नियों को जलावे, अग्रणी नेताओं को प्रदीप्त करे उन्हें ज्ञान शौर्यादि गुणों

से अलंकृत करे वा अग्नि को अधिक वेगवान् करने में समर्थ ऐसे शिल्पज्ञ, विद्वान्, नीतिमान्, तेजस्वी पुरुष से (गृणानः) उपदेश प्राप्त करके हे शासक राजन्! तू (नः) हमारी (गोमतीः इषः) भूमियों वाली अन्न-सम्पदाएं अथवा (गोमतीः इषः) वाणियों से युक्त इच्छाएं, अथवा 'गौ' अश्वों से युक्त सेनाएं और (विश्वाः परिष्टुभः) समस्त स्तुतियों और समस्त शत्रुहिंसक शक्तियों को (अर्ष) प्राप्त कर।

पर्वस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्य के स्वामिन्! राजन्! तू (अग्रियः) अग्रासन के योग्य होकर (चित्राभिः ऊतिभिः) आश्चर्यकारक ज्ञानों और विचारों से अपनी (वाचः पवस्व) वाणियों को स्वच्छ कर और (विश्वानि) समस्त प्रकार के विद्वानों के ज्ञानों और उनके उत्तम २ उपदेशों को (पवस्व) प्राप्त कर। इत्यष्टाविंशो व ः॥

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाचं ईरयन्।
पर्वस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥

भा०—हे (विश्वम्-एजय) समस्त संसार को कंपाने या सन्मार्ग में चलाने वाले प्रभो! राजन्! मेघ वा सूर्य जिस प्रकार (समुद्रियाः अप.) अन्तरिक्ष वा समुद्र के जलों को वायु द्वारा आकाश में उठाता और लोकों के प्रति बरसाता है उसी प्रकार मेघस्थ जलधाराओं के तुल्य तू (वाच ईरयन्) लोकहितार्थ वाणियों को देता हुआ (पवस्व) प्रजा पर सुखों की वर्षा कर, राज्य को पवित्र कर।

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥ २७ ॥

भा०—हे (कवे) मेधाविन्! विद्वन्! दूरदर्शिन! सब को अति क्रमण करने हारे! (तुभ्य महिम्ने) तेरे ही महान् सामर्थ्य को दर्शाने

और बढ़ाने के लिये हे (सोम) सर्वशासक ! परमैश्वर्यवन् ! (इमा भुवना तस्थिरे) ये समस्त लोक स्थिर है और (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (सिन्धवः) ये नद नदीवत् तीव्र वेग से जाने वाले सूर्यादि गण (अर्पन्ति) नियम से चल रहे हैं। इसी प्रकार राजा की महिमा को बढाने के लिये सब अधीनस्थ हो और अश्व आदि उसी के लिये, उसी की आज्ञा में जावे आवे।

प्र ते॑ दि॒वो न वृ॒ष्टयो॒ धारा॒ यन्त्य॑स॒श्चतः॑ ।
अ॒भि शु॒क्रामु॑प॒स्तिर॑म् ॥ २८ ॥

भा०—(दिवः वृष्टयः न) आकाश से जल-वृष्टियें जिस प्रकार (शुक्राम् उप-स्तिरम्) जलमयी विस्तृत नदी को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (ते दिवः) तुझ तेजस्वी और (असश्चतः) असंग निःस्वार्थ पुरुष की (धाराः) वाणियां (शुक्राम्) तेजोयुक्त, बलशालिनी, (उप-स्तिरम्) समीप मे विस्तृत वा विद्यमान वसी प्रजा वा खड़ी सेना को प्राप्त हो।

इन्द्रा॒येन्दुं॑ पुनीतनो॒ग्रं दक्षा॑य॒ साध॑नम् ।
ई॒शा॒नं वी॒तिरा॑धसम् ॥ २९ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (इन्दुम्) ऐश्वर्ययुक्त (उग्रं) बलवान्, प्रचण्ड, वेगवान् (वीति-राधसम्) कान्ति, तेज एवं रक्षण सामर्थ्य, शक्ति के धनी, शक्ति से कार्य सिद्ध करने में समर्थ (साधनम्) शत्रु के वशकारी, (इन्दुं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त 'इन्द्र' पद के लिये (पुनीतन) अभिषिक्त करो।

पव॑मान ऋ॒तः क॒विः सोमः॑ प॒वित्र॒मास॑दत् ।
दध॑त्स्तो॒त्रे सु॒वीर्य॑म् ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषिक्त होता हुआ (ऋतः) तेजस्वी (कविः) ज्ञानवान् , सर्वोत्तम (सोम) शासक (स्तोत्रे) स्तुतिकर्त्ता वा उपदेष्टा

विद्वान् प्रजाजन के लिये, उनके लाभार्थ, अपने (सु-वीर्यम्) उत्तम बल या अधिकार को (दधत्) धारण करता हुआ (पवित्रम् आ असदत्) राज्य के पवित्र पद पर विराजे । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६३]

निध्रुविः काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, १२, १७, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३० निचृद् गायत्री । ३, ७—११, १६, १८, १६, २१, २४, २६ गायत्री । ५, १३, १५ विराड् गायत्री । ६, १४, २६ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे सर्वशासक ! तू (अस्मे) हमें (सहस्रिणं) अपरिमित संख्या वाले (सु-वीर्यम्) उत्तम वीर्ययुक्त (रयि) ऐश्वर्य को (आ पवस्व) प्रदान कर और (अस्मे श्रवांसि) हम में ज्ञान, यश और धन (धारय) धारण करा ।

इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥

भा०—तू (मत्सरिन्तमः) समस्त प्रजा को अन्न, बल, धनादि से पूर्ण, तृप्त एवं सुप्रसन्न करने हारा होकर (इन्द्राय) शत्रुहन्ता सैन्य और समृद्ध वा भूमिकर्षक प्रजा जन के हितार्थ (इषम् ऊर्जं च) अन्न, बल और सैन्य को (पिन्वसे) बढ़ा, उसका पालन कर । तू (चमूषु) सेनाओं पर (आ निषीदसि) अध्यक्षवत् विराज ।

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् ।
मधुमाँ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्राय विष्णवे वायवे) ऐश्वर्ययुक्त और व्यापक सामर्थ्य और (वायवे) वायुवत् बलवान् संघ के नेता और सेनापति पद के लिये (सुत

सोमः) अभिषिक्त होकर ही शासक (कलशे अक्षरत्) राष्ट्र मे विचरे वा (अक्षरत्) अक्षर, अविनाशी स्थिर हो ।

एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः ।
सोमा ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥

भा०—(एते बभ्रवः) ये बभ्रु वर्ण के, काषाय वस्त्र धारण करने वाले वा रक्त वर्ण के वा प्रजा को भरण पोषण करने मे समर्थ, (सोमाः) वीर्यवान्, ऐश्वर्यवान् (ऋतस्य धारया) ज्ञान-ऐश्वर्य और जल की धारा से (ह्वरासि) सब कुटिल भावो और कुटिल जनो को (अति) पार करके (आशवः) वेग से आगे बढ़ने वाले सजे अश्वो के समान (असृग्रम्) एक आश्रम से दूसरे आश्रम मे प्रवेश करते है ।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—वे (अप्तुरः) आप्त प्रजा जनो को सन्मार्ग मे प्रेरित करते हुए वा कर्म मे शीघ्रकारी कुशल जन (इन्द्रम्) ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् राज्य पद की (वर्धन्तः) वृद्धि करते हुए (विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) समस्त विश्व को आर्य, श्रेष्ठ बनाते हुए और (अराव्णः) अदानशील, कर न देने वाले शत्रु जनो को (अप-घ्नन्तः) मार कर, दण्डित करके दूर भगाते हुए (अभि अर्षन्ति) आगे बढते है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः ।
इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥ ६ ॥

भा०—वे (इन्दवः) स्वतः ऐश्वर्ययुक्त, (बभ्रवः) बभ्रु वर्ण वा प्रजा के भरण पोषण करने मे समर्थ (सुताः) अभिषिक्त, विद्या-व्रतादि मे निष्णात होकर (इन्द्रम् गच्छन्तः) ऐश्वर्य वा राज्यादि पद को प्राप्त होते हुए, (स्वम् रजः अनु) अपने धन, तेज और स्थान के अनुसार (अभि अर्षन्ति) आगे बढ़ें ।

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

भा०—(यया) जिस वाणी या प्रजापोषक नीति से तू (मानुषीः अपः) मननशील आप्त प्रजाओं को (हिन्वानः) बढाता और सन्मार्ग मे चलाता हुआ, (सूर्यम् अरोचयः) सूर्य के तुल्य तेजस्वी पद को प्रकाशित करता है तू (अया धारया) इसी धारा, वाणी या नीति से (पवस्व) राष्ट्र को स्वच्छ कर ।

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ८ ॥

भा०—वह (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पवमानः) पवित्र पद पर अभिषिक्त होकर (मनौ अधि) मनुष्य वर्ग के ऊपर (अन्तरिक्षेण यातवे) अन्तरिक्ष मार्ग अर्थात् सर्वोपरि मार्ग से जाने के लिये (एतशं) वेगयुक्त अश्व यान आदि को (अयुक्त) जोड़े । अथवा—(यातवे एतशं अयुक्त) 'यातु' प्रजापीडक के नाश करने के लिये वह अश्व, रथ आदि के सैन्य को अन्तरिक्ष मार्ग से भी नियुक्त करे ।

उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे ।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥

भा०—वह (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (इन्दुः) स्वयं दया भाव से युक्त और (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त प्रजा को ऐश्वर्य देने और शत्रु का नाश करने वाला होकर (इति) इस प्रकार से (ब्रुवन्) आदेश, उपदेश|आदि करता हुआ, (यातवे) प्रयाण करने वा प्रजापीडक का नाश करने के लिये, (त्या दश हरितः) उन दशों दिशागामिनी प्रजाओं को (अयुक्त) सन्मार्ग में चलावे, वा (दश हरितः एतशं अयुक्त) दशों दिशाओं मे अश्व, रथ आदि भेजे ।

परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् ।
अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—हे (गिरः) स्तोता, उपदेष्टा जनो ! आप लोग (इतः) इस आश्रम से आगे (वायवे) वायुवत् सर्वप्रिय, बलवान् पद और (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त होने के लिये, (सुतं मत्सरं) अभिषिक्त, स्नात, सब को हर्ष देने वाले इस व्यक्ति को, (अव्यः वारेषु) भूमि के शत्रुओं के वारण करने वाले वीरो के ऊपर, उनके बीच मे वा भूमि के वरणीय पदार्थों या वरण करने वाले जनो के बीच मे (परि सिञ्चत) सब ओर से वा सर्वोपरि अभिषिक्त करो । (२) इसी प्रकार (अव्यः वारेषु) भेड के बने कम्बलों मे व्रत-पालक विद्यार्थी को स्नातक बनाओ । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।
यो दूणाशो वनुष्यता ॥ ११ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे प्रभो ! राजन् ! तू (अस्मभ्यं) हमें (दुस्तरम्) दुस्तर, अपार (रयिम्) ऐश्वर्य, (विदाः) प्राप्त करा । (यः) जो (वनुष्यता) हिंसक शत्रु द्वारा (दूणाशः) नाश न हो सके । और—

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ १२ ॥

भा०—तू (सहस्रिणं अश्विनं) सहस्रो सुखो से युक्त, अश्वों और (गोमन्तं) गौओं से युक्त (रयिम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य प्राप्त कर । (उत) और ऐसा ही (वाजम् श्रवः अभि) ज्ञान, बल, कीर्त्ति भी प्राप्त करा ।

सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः ।
दधानः कलशे रसम् ॥ १३ ॥

भा०—(देवः सूर्यः न) प्रकाशमान सूर्य जिस प्रकार (अद्रिभिः) मेघों से (कलशे रसम् दधानः पवते) अन्तरिक्ष में जल को धारण करता

हुआ क्षरित होता है, बरसता है, उसी प्रकार (कलशे रसम् दधानः) कलश में जल रखकर (सुतः) अभिषिक्त (देवः) दानशील, तेजस्वी (सोमः) ऐश्वर्यवान् पदाभिषिक्त जन भी (अद्रिभिः पवते) शस्त्र-आदि बलो वा आदरणीय कार्यो से राष्ट्र को स्वच्छ करता है।

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य की किरणे तेज वा जल की धारा से उत्तम तेजों और भूमि के अन्न को उत्पन्न करते है उसी प्रकार (एते) ये (शुक्राः) शुद्ध कान्तियुक्त, तेजस्वी, शीघ्र कार्यकारी पुरुष (ऋतस्य धारया) सत्य ज्ञानयुक्त वेद वाणी द्वारा (आर्या धामानि) श्रेष्ठ धारण करने योग्य गुणों को (अक्षरन्) प्रवाहित करते और (गोमन्त वाज अक्षरन्) उसी वाणी द्वारा वाणी से युक्त ज्ञान और भूमि से युक्त अन्न-ऐश्वर्य को भी प्रवाहित करते है।

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः।
पवित्रमत्यक्षरन् ॥ १५ ॥ ३२ ॥

भा०—वे (सोमासाः) सौम्य स्वभावयुक्त, बलवान्, अभिषेक योग्य जन, (वज्रिणे इन्द्राय) बलशाली, ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (सुताः) नाना पदों पर अभिषिक्त होकर (दधि-आशिरः) धारण करने योग्य पद पर आश्रित होकर (पवित्रं) अन्यों को पवित्र स्वच्छ करने वाले पद को (अति अक्षरन्) खूब प्राप्त हों। इसी प्रकार ज्ञानवान आचार्य के शिष्य स्नातक होकर पवित्र वेद-ज्ञान को प्रवाहित करें। इति द्वात्रिंशो व॰ ॥

प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ।
मदो यो देववीतमः ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो तू (देव-वीतमः) कान्तिमान सूर्य के समान सबसे अधिक तेजस्वी, (मदः) हृष्ट पुष्ट है, वह तू हे (सोम) अभिषिक्त !

(मधुमत्तम) मधुर अन्न, जल से तृप्त होने वाला, स्वयं मधुर ज्ञान से युक्त होकर (राये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (पवित्रे आ अर्ष) पवित्र पद को प्राप्त हो।

नमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम्।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ १७ ॥

भा०—(नदीषु वाजिनम् हरिं आयवः मृजन्ति) नदियों में वेगवान अन्यों को भी बहा ले जाने वाले जल को जिस प्रकार वस्त्रादि से स्वच्छ करते हैं वा जिस प्रकार नदीतटों पर उगे बलदायक ओषधि वर्ग को स्वच्छ करते हैं उसी प्रकार (आयवः) उसको सब प्रकार से चाहने और प्राप्त होने वाले मनुष्य (नदीषु) प्रशंसा वचन कहने वाली और समृद्ध प्रजाओं के बीच (वाजिन) बलवान् (हरिम्) प्रजा के दुःखहारी एवं मनोहर (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, दयार्द्र (मत्सरम्) हर्षदायक पुरुष को (इन्द्राय) परम-ऐश्वर्य साम्राज्य पद के लिये (मृजन्ति) शुद्ध, अभिषिक्त करते हैं।

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत्।
वाजं गोमन्तमा भर ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (हिरण्यवत्, अश्ववत्, वीरवत्) सुवर्णादि धन, अश्वों और वीरों से युक्त (गोमन्तं वाजं) गवादि पशु सम्पदा वाले ऐश्वर्य को (आ पवस्व) सब ओर से प्राप्त कर और (आ भर) हमें भी प्राप्त करा।

परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत।
इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (इन्द्राय) परमैश्वर्य पद के लिये (अव्यो

को अभिषिक्त किया जाता है उसी प्रकार (मधुमत्-तमम् परि सिञ्चत) सर्वोत्तम बल, अन्न, ज्ञान से युक्त पुरुष को ही अभिषिक्त करो।

कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः।
वृषा कनिक्रदर्षति ॥ २० ॥ ३३ ॥

भा०—(अवस्यवः विप्राः) रक्षा, ज्ञान, स्नेह, समृद्धि आदि के चाहने वाले, विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष, (धीभिः) कर्मों, वचनों और बुद्धियों द्वारा (मर्ज्यं) अभिषेक करने योग्य (कविं) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुष को (मृजन्ति) मार्जित या पदपर अभिषिक्त करते हैं। वह (वृषा) बलशाली, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष (कनिक्रदत्) गर्जते मेघ के समान प्रजा जनों पर (कनिक्रदत्) घोषणाएं और आज्ञाएं देता हुआ और विद्वान् परिव्राजक उपदेश देता हुआ (अर्षति) आता है और ऐश्वर्य, ज्ञानादि की वर्षा करता है। अध्यात्म में—सोम आत्मा को विद्वान् शोधते हैं वह धर्मतेव रूप होकर आनन्द प्रदान करता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया।
मती विप्राः सम स्वरन् ॥ २१ ॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् जन (वृषणं) बलवान्, सब सुखों के वर्षाने वाले, (सोमम्) सब के प्रेरक, सब के उत्पादक (अप्तुरम्) प्रजाओं, जीवों, प्राणों और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के भी प्रेरक को (ऋतस्य धारया) सत्य ज्ञानमय वेद की वाणी से और (मती) स्तुति से (सम् अस्वरन्) एक ही साथ स्वरपूर्वक स्तुति करते, उसी के गुणों का वर्णन करते हैं।

पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः।
वायुमा रोह धर्मणा ॥ २२ ॥

भा०—हे (देव) सुखों के देने वाले, तेजोमय ! (आयुषक् पवस्व) सब के प्राणों के प्राप्त कराने वाला, सब मनुष्यों को प्रेम से बांधने वाला

होकर तू प्राप्त हो (ते मदः इन्द्रम् गच्छतु) तेरा हर्ष और दमन-बल इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता को प्राप्त हो। तू (धर्मणा) अपने धारक बल से (वायुम् आ रोह) वायुवत् सर्वप्राणप्रद, बलशाली पद को आरूढ़ हो।

पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्।
प्रियः समुद्रमा विश ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्, विद्वन्! हे (पवमान) अन्यों को पवित्र करने वाले! तू (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य (रयिम्) धन को (नि तोषसे) निरन्तर बढाता, कई गुणा करता है, तू (प्रियः) सर्व-प्रिय होकर (समुद्रम्) समुद्र के समान अपार ज्ञानसागर मे प्रवेश कर।

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ २४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! ऐश्वर्यवन्, सन्मार्ग मे प्रेरक! (मत्सरः) सब को हर्षित करने वाला (क्रतुवित्) सब को उत्तम ज्ञान देने वाला, एवं सत्कर्मों को जानने और ज्ञान कराने वाला होकर (मृधः अपघ्नन्) हिंसाकारिणी दुष्ट प्रवृत्तियो को नाश करता हुआ (पवसे) पवित्र करता है। तू (अदेवयुं जनं) देव, विद्वान्, प्रभु और सद् गुणो को न चाहने वाले जन को (नुदस्व) सन्मार्ग मे प्रेरित कर।

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः।
अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(पवमानाः) अपने अन्तःकरण को पवित्र करते हुए, (शुक्रासः) शुद्ध कान्तियुक्त, जलवत् स्वच्छ (इन्दवः) दयार्द्र हृदय, (सोमाः) विद्वान् पुरुष (विश्वानि) समस्त (काव्या) विद्वानो के उचित

ज्ञानों और कार्यों को (अभि असृक्षत) सब प्रकार से प्रकट करें और उनका अनुष्ठान करें।

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ २६ ॥

भा०—(पवमानासः) वेग से गति करते हुए, वा राष्ट्र का शोधन करते हुए, (आशवः) वेगवान, (शुभ्राः) शुभ्र, तेजस्वी, शुद्ध आचारवान्, आभरण आदि और गुणों से अलंकृत (इन्दवः) परम ऐश्वर्ययुक्त जन (विश्वाः द्विषः) समस्त द्वेष करने वाले, अप्रीति के योग्य जनों को (अप घ्नन्तः) दण्डित कर दूर करते हुए (असृग्रम्) प्रकट होते हैं।

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २७ ॥

भा०—(दिवः परि पवमानः) सूर्य या दूर आकाश में किरणों के तुल्य, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से वायुओं वा जलधाराओं के तुल्य, (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर उत्तम ओषधि के समान, (सानवि अधि) उच्च उपभोग्य पद पर (परि असृक्षत) विद्वानों से उत्पन्न हों। वे (पवमानाः) सब को पवित्र दोषरहित करें।

पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २८ ॥

भा०—हे (सुक्रतो सोम) उत्तम काम करने वाले, शुभ, ज्ञानवान विद्वन् ! (इन्दो) उस प्रभु के उपासक ! तू (धारया) वाणी द्वारा (स्रिधः अप जहि) द्वेषकारी हिंसा का नाश कर और (रक्षांसि अप जहि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को भी दूर कर।

अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ २९ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वान् पुरुष ! हे शासक जन ! तू (रक्षसः अप घ्नन्) दुष्ट पुरुषों का नाश करता हुआ (कनिक्रदत्) निरन्तर वीरवत् गर्जता या घोषणा करता हुआ (द्युमन्तं) तेजोयुक्त (उत्तमं शुष्मम्) उत्तम बल (अभि अर्ष) स्वयं प्राप्त कर और हमें प्राप्त करा।

अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा ।
इन्दो विश्वानि वार्या ॥ ३० ॥ ३५ ॥

भा०—हे (इन्दो) दयालो ! ऐश्वर्यवन् ! शत्रुसतापक ! (सोम) हे शासक ! विद्वन् ! तू (अस्मे) हमारे लिये (दिव्यानि पार्थिवा) दिव्य और पार्थिव (विश्वानि वार्या) समस्त वरण करने योग्य उत्तम २ (वसूनि धारय) नाना ऐश्वर्यों को धारण कर और हमे धारण करा। इति पञ्चत्रिंशो व ः ॥

[६४]

काश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, १२, १३, १५, १७, १९, २२, २४, २६ गायत्री । २, ५, ६, ८—११, १४, १६, २०, २३, २५, २९ निचृद् गायत्री । १८, २१, २७, २८ विराड् गायत्री । ३० यवमध्या गायत्री ॥ त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शास्तः ! प्रभो ! तू (वृषा) बलवान्, उत्तम प्रबन्धक, मेघवत् सुखों, ऐश्वर्यों का वर्षक, क्षेत्रों का उत्तम सेचक, (द्युमान् असि) कान्तिमान्, तेजस्वी है । हे (देव) देव ! तू (वृषा) इस प्रकार वर्षणशील होकर (वृष-व्रत) जल-वर्षक मेघ के समान नियम-पूर्वक कार्य करने में समर्थ हो । तू (वृषा) बलवान् होकर (धर्माणि दधिषे) सब धर्मों, राजनियम, व्यवस्थाओं को धारण करने में समर्थ है ।

वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः।
सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

भा०—(ते वृष्ण्यः) समस्त सुखों की वर्षा करने वाले तेरा (शवः वृष्ण्यं) ज्ञान और बल भी सुखों की वर्षा करने वाला है। (वनं वृषा) तेरा तेज और दान, ऐश्वर्य विभाग भी बलवान् सुखप्रद है। (मदः वृषा) तृप्तिदायक आनन्द भी प्रबल और सुखवर्षक है। हे (वृषन्) बलशालिन् (सत्यं वृषा इत् असि) तू सचमुच मेघवत् सुखों को वर्षाने वाला तथा बलवान् होने से 'वृषा' ही है।

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (अश्वः न चक्रदः) अश्व जिस प्रकार चक्र को धारण करता और राष्ट्र चक्र की रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी (चक्रदः) हमें उत्तम उपदेश कर। तू (वृषा) बलवान्, वीर्य धनैश्वर्य द्वारा सेचन में समर्थ होकर (गाः सं चक्रदः) गौओं को भूमियों और वाणियों का उपदेश प्रदान कर। (अर्वतः सं चक्रदः) अश्वों, शत्रुहिंसकों और विद्वानों पर भली प्रकार शासन कर। (नः राये दुरः वि वृधि) हमारे लिये धन प्राप्ति के द्वार खोल।

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥

भा०—(वाजिनः) बलवान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान् पुरुषों को (गव्या) गौ, वाणी को प्राप्त करने और अन्यों को देने के लिये (प्र असृक्षत) प्रमुख बनाया जावे। (सोमासः अश्वया) बलवान् और धनवान् पुरुषों को (अश्वया) अश्व, सैन्य, राष्ट्र के प्राप्त करने के लिये (प्र असृक्षत) प्रमुख बनाया जावे और (वीरया) वीर पुत्र उत्पन्न करने के लिये (शुक्रासः) वीर्यवान् पुरुषों को तैयार किया जावे।

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(ऋतायुभिः शुम्भमानाः) सत्य ज्ञान, वेद, तेज और न्याय, अधिकार आदि की प्राप्तियों या उनको चाहने वाले वा विद्वान् पुरुषों द्वारा सुशोभित होकर और (गभस्त्योः मृज्यमानाः) वाहुओं से परिमार्जित वाहु वल से परीक्षित होकर (अव्यये) न व्यय होने वाले, स्थायी (वारे) वरणीय पद या अधिकार पर (पवन्ते) प्राप्त हों। वा विद्वान् जन आविक (भेड की ऊन के) आसनों पर विराजें वा आविकप्राय वेश में सुशोभित हों। स्नातकों को भेड़ की ऊनों का दुशाला या चोला, भव्य वेश दिया जावे। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥

भा०—(ते सोमाः) वे विद्वान् जन (विश्वा) सब प्रकार के (दिव्यानि पार्थिवा आन्तरिक्ष्या) दिव्य, पार्थिव और अन्तरिक्ष के (वसु) नाना ऐश्वर्यों को (दाशुषे पवन्ताम्) ज्ञानदाता गुरु को प्रदान करें।

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्ववित्) समस्त ज्ञानों के जानने और सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने, कराने वाले विद्वन्! (पवमानस्य) प्राप्त होते हुए या ज्ञान प्रसार करते हुए तेरे (सर्गाः) ये नाना प्रकार के शिष्यादि सृष्टियें (सूर्यस्य रश्मयः इव न) सूर्य की किरणों के समान (प्र असृक्षत) उत्तम रीति से दूर २ तक फैलें।

केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः परि केतुं कृण्वन्) दूर आकाश से जिस प्रकार

प्रकाश करता हुआ (रूपा अभि अर्षति) नाना रूपवान् पदार्थों को प्रकट करता है, उसी प्रकार तू भी (केतुं कृण्वन्) ज्ञान उपदेश करता हुआ, (दिवः परि) द्यौ, अर्थात् चतुर्थ आश्रम से सब के प्रति (रूपा अभि अर्षसि) सब रुचिकर ज्ञानों को प्राप्त हो। हे (सोम) विद्वन्! तू (समुद्रः) समुद्र के समान अगाध होकर (पिन्वसे) सब को तृप्त कर।

हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि।
अक्रान्देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) जगत् को पवित्र करते हुए वा देश से देशान्तर वायुवत् गमन करते हुए परिव्राजक विद्वन्! तू (विधर्मणि) विविध धर्मों को धारण करने वाले जन-समूह मे (हिन्वानः) प्रार्थना किया जाकर (त्वम् इष्यसि) उत्तम वाणी को प्रकट कर और तू (देवः सूर्यः न) तेजोमय सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अक्रान्) क्रमण कर, देश देशान्तर भ्रमण कर।

इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी, (चेतनः) ज्ञानवान्, देह में स्थित चेतन आत्मा के समान, (कवीना प्रियः) विद्वान् जनों का प्रिय, उन्हें सुखी सन्तुष्ट करने वाला (पविष्ट) सब देश भर को पवित्र करता है और (रथी. अश्वम् इव) अश्व को रथी के समान (मती) मननपूर्वक बुद्धि से (अश्वम् सृजत) अपने विषय के भोक्ता इन्द्रिय गण या अधीन जन को सञ्चालित करे।

ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत्।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन्! (यः) जो (ते) तेरा (ऊर्मि) तरंग के समान ऊपर उठने वाला, उत्साहयुक्त उपदेश (देवावीः) ज्ञान की कामना

करने वाले जनों को प्राप्त होता, उनको बचाता या उनको प्रदीप्त करता है और (पवित्रे) पवित्र, स्वच्छ अन्तःकरण वाले जन के या सत्यासत्य विवेक के निमित्त (परि अक्षरत्) जल-धारा के समान प्रवाहित होता है, उस को तू (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य न्याय और ज्ञान के स्थान, धर्माध्यक्ष और गुरु के पद पर विराजता हुआ (अश्वं रथीः इव प्र असृजः) अश्व को रथी के समान विवेकपूर्वक प्रस्तुत कर ।

स नो॑ अर्ष प॒वित्र॒ आ मदो॒ यो दे॑व॒वीत॑मः ।
इन्द॒विन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्दो) अभिषेक जल से आर्द्र, जनता के प्रति दयार्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (यः) जो तू (मदः) हर्षजनक (देव-वीतमः) मनुष्यों को चाहने वाला, सर्वप्रिय है (सः) वह तू (नः पवित्रे अर्ष) हमारे बीच सत्यासत्य विवेक करने के पद पर (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त, शत्रु वा दुष्टों और दोषों के दूर करने और (पीतये) जगत् वा प्रजा, शिष्यादि के पालन के लिये (अर्ष) आ ।

इ॒षे प॑वस्व॒ धार॑या मृ॒ज्यमा॑नो मनी॒षिभिः॑ ।
इन्दो॑ रु॒चाभि गा इ॑हि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) मेघवत् जल-धाराओं से आर्द्र ! हे अभिषिक्त जन ! तू (मनीषिभिः मृज्यमानः) बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुषों द्वारा (धारया) वेद वाणी एवं जल-धारा से निर्णीत एवं पदाभिषिक्त होकर (रुचा) कान्ति और अपनी सद् रुचि से (गाः अभि इहि) उत्तम वाणियों, स्तुतियों और भूमियों को भी प्राप्त कर ।

पु॒ना॒नो वरि॑वस्कृ॒ध्यूर्जं॒ जना॑य गिर्वणः ।
हरे॑ सृजा॒न आ॒शिर॑म् ॥ १४ ॥

भा०—हे (हरे) ज्ञान, दुःख आदि को दूर करने हारे ! हे (गिर्वणः)

वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ सूपड़े या छाज के समान (वरिवः ऊर्जं) अति श्रेष्ठ अन्न-धनवत् श्रेष्ठ निर्णय और बल (जनाय कृधि) जन के हितार्थ कर और इसी प्रकार (आशिरम्) सब ओर दुष्टों को दण्ड देने की व्यवस्था करता हुआ (वरिवः ऊर्जं कृधि) उत्तम धन और बल उत्पन्न कर ।

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।

द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ और (द्युतानः) तेजस्वी होता हुआ, (वाजिभिः यतः) बलवान् पुरुषों से सुप्रबद्ध होकर (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा के लिये (इन्द्रस्य निष्कृतम् याहि) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा के परम पद को प्राप्त हो। (२) अध्यात्म में मनुष्य अपने को पवित्र करता हुआ, तेजस्वी होकर, विद्वान् ज्ञानी पुरुषों द्वारा शिक्षित संयमी होकर, प्रभु की प्राप्ति के लिये गुरु या परमेश्वर की शरण जाय ।

प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः ।

धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥

भा०—(इन्दवः) अभिषिक्त जन, (आशवः) शीघ्र कार्यकुशल, वेगवान्, अप्रमादी (हिन्वानासः) प्रेरित होकर (धिया जूताः) सत्कर्म और सद्-बुद्धि से सेवित होकर (समुद्रम्) समुद्र के समान गम्भीर और अगाध, ज्ञानप्रद गुरु वा प्रभु को (प्र असृक्षत) प्राप्त हों ।

मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः ।

अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७ ॥

भा०—(मर्मृजानासः) अपने को पवित्र करते हुए, (इन्दवः आयवः) अभिषिक्त, तेजस्वी जन (ऋतस्य योनिम) सत्य ज्ञान, तप

और न्याय के परम स्थान, (समुद्रम्) अगाध ज्ञानैश्वर्य के सागर, प्रभु को (वृथा आ अग्मन्) आनायास ही प्राप्त होते हैं।

परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा।
पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ, (ओजसा) बल-पराक्रम द्वारा (नः) हमारे (विश्वा वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को तू (परि पाहि) प्राप्त कर और (नः) हमें (शर्मवत् परि पाहि) गृह के समान रक्षा कर और राजा प्रजा के जान और माल की रक्षा कर।

मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः।
प्र यत्समुद्र आहितः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (एतशः) शुद्ध ज्योतिर्मय (वह्निः) कार्य-भार को वहन करने वाला, (ऋक्वभिः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता एवं अर्चना और वेदमन्त्रों के प्रज्ञाता विद्वान् पुरुषों द्वारा (यत् समुद्रे प्र आहितः) जब समुद्रवत् अगाध, प्रभु के अधीन अच्छी प्रकार स्थापित किया जाता है तब तू (पदं युजानः) परम पद को समाहित, एकाग्र-चित्त से ध्यान करता हुआ उसको (मिमाति) भली प्रकार जान लेता है।

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति।
जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥ ३९ ॥

भा०—और (यत्) जब वह ज्ञानी, (आशुः) अप्रमादी होकर (हिरण्ययम्) अति हित और परम रमणीय (ऋतस्य योनिम् आ सीदति) परम सत्य सुख के आश्रयभूत प्रभु को प्राप्त कर लेता है तब वह सब (अप्रचेतसः) ज्ञानरहित काम, क्रोध, मोह आदि के भावों को (जहाति) छोड देता है। (२) इसी प्रकार जब विद्वान् ऋत, न्याय के तेजोयुक्त आसन पर विराजे तो वहां वह मूर्खों का त्याग करे। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः ।
मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥

भा०—(वेनाः अभि अनूषत) तेजस्वी, ज्ञानी, रक्षक पुरुष उसकी स्तुति करते हैं । (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उदार ज्ञानी जन ही (इयक्षन्ति) उसकी पूजा, सत्संग करते हैं । (अविचेतसः) विशेष ज्ञान से रहित मूर्ख, मिथ्या बुद्धि वाले जन डूब जाते है । (२) इसी प्रकार राजा को ज्ञानी जन उपदेश करें, वे ही संगति करे और मूर्ख नीचे गिरे ।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्दो) उत्तम लक्ष्य की ओर जाने हारे ! तू (ऋतस्य योनिम्) सत्य, परम तेज के आश्रय को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये स्वयं (मधुमत्-तमः) अति मधुर स्वभाव एवं उत्तम ज्ञानवान् होकर (मरुत्वते इन्द्राय) शिष्यों के स्वामी आचार्य और वायु आदि शक्तियों के स्वामी प्रभु और वीरो के स्वामी सेनापति को प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़ ।

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥

भा०—(वचः-विदः विप्राः) वेद-वचनों को जानने और अन्यों को प्राप्त कराने मे कुशल (वेधसः) विद्वान् जन (तं त्वा परि-कृण्वन्तु) उस तुझ को सब प्रकार से परिष्कृत, अलंकृत करें, तुझे ज्ञानों और वाणियों द्वारा सुशोभित करे । (आयवः त्वा सं मृजन्ति) मनुष्य तुझ को अभिषिक्त करें ।

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे ।
पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! क्रान्तदर्शिन् ! (पवमानस्य) ज्ञानोपदेश

करने वाले (मरुतः) बलवान् (ते रसं) तेरे ज्ञानोपदेश, आज्ञा वचन को (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) शत्रु-नियन्ता न्यायकारी और (वरुणः) दुष्टों का वारक ये जन (पिबन्ति) रसपानवत् पान करते और उसका पालन करते हैं। (२) मुख्य राजा के नीचे उसकी आज्ञा को उसके मित्र वर्ग, न्यायविभाग का अध्यक्ष और पुलिस सेना का अध्यक्ष सब पालन करते हैं।

त्वं सो॑म विप॒श्चितं॑ पुना॒नो वाच॑मिष्यसि ।
इन्दो॑ स॒हस्र॑भर्णसम् ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (पुनानः) सत्यासत्य का विवेक करता हुआ, (सहस्र-भर्णसम्) सहस्रों को भरण पोषण करने वाली और (विपश्चितं) ज्ञान से परिष्कृत (वाचम् इष्यसि) वाणी का प्रयोग कर। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

उ॒तो स॒हस्र॑भर्णसं॒ वाचं॑ सोम मख॒स्युव॑म् ।
पु॒नान इ॑न्द॒वा भ॑र ॥ २६ ॥

भा०—हे (सोम इन्दो) उत्तम ऐश्वर्यवान् शास्तः! तू (पुनानः) राष्ट्र को कण्टक-शोधन द्वारा पवित्र, स्वच्छ, पापी दुष्ट जनों से रहित करता हुआ (सहस्र-भर्णसं) हजारों ज्ञानों, मन्त्रों को पालन करने वाली (मखस्युवम्) उत्तम यज्ञ के योग्य, धनप्रद (वाचम् आ भर) वाणी का प्रयोग कर।

पु॒नान इ॑न्दवे॒षां पुरु॑हूत॒ जना॑नाम् ।
प्रि॒यः स॑मु॒द्रमा वि॑श ॥ २७ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रार्थित! (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ (एषां जनानां प्रियः) इन सब मनुष्यों का प्रिय होकर (समुद्रम् आ विश) समुद्रवत् गम्भीर राष्ट्र के हृदय में अभिषेक-द्रोणी में प्रवेश कर।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ २८ ॥

भा०—(दविद्युतत्या रुचा) चमचमाती कान्ति से (परिष्टोभन्त्या कृपा) शत्रुओं का नाश करने वाली, सब को थामने वाली शक्ति से (सोमाः) शासक जन (शुक्राः) तेजस्वी (गवाशिरः) भूमि राष्ट्र के आश्रय और वाणी स्तुति के योग्य होता है ।

हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥

भा०—(हेतृभिः) अन्य शासक जनों से (हिन्वानः) प्रेरित, शासित होकर (यतः वाजी) संयत, नियमबद्ध व्रती होकर (वाजी) ज्ञानवान् बलवान् पुरुष वेगवान् अश्व के समान (वाजं आ अक्रमीत्) संग्राम में जावे । और (यथा) जैसे (वनुषः) हिंसक सैनिक (सीदन्तः) बैठते और रहते हैं उसी प्रकार वह भी सैनिक के समान सदा सन्नद्ध रहे ।

ऋधक्सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवः कविः ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥ ४१ ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) सब को अनुशासन करने वाले ! तू (स्वस्तये) कल्याण के लिये (ऋधक्) तेज, ज्ञान आदि से सम्पन्न एवं सब से असंग होकर (दिवः संजग्मानः) वानप्रस्थ में और आगे बढ़कर सन्यास में जाता हुआ (सूर्यः) आकाश में सूर्य के समान (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दृशे) अध्यात्म दर्शन करने और अन्यों के विवेक दर्शन के लिये (पवस्व) कदम बढ़ा । इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

[६५]

भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १०, १२, १३, १६, १८, २१, २२, २४—२६ गायत्री । २, ११, १४, १५, २६, ३० विराड् गायत्री । ३, ६—८, १६, २०, २७, २८ निचृद् गायत्री । ४, ५ पादनिचृद् गायत्री । १७, २३ ककुम्मती गायत्री ॥ त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

भा०—(उस्रयः) एकत्र निवास करने वाली, (स्वसारः) बहनों के समान परस्पर प्रेम से रहने वाली, (जामयः) सन्तान उत्पन्न करने योग्य कन्याएं (महीयुवः) मान, सत्कार, आदर की आकांक्षा करती हुई, (महाम्) गुणों में महान् (इन्दुम्) चन्द्रवत् आह्लादक, हृदय मे प्रेम युक्त, और ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पतिम्) पति रूप से (हिन्वन्ति) प्राप्त किया करें, उससे पति होने की प्रार्थना किया करे ।

पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि ।
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) आगे बढ़ने हारे ! सत्यासत्य विवेक करने हारे ! हे अभिषेक योग्य स्नातक ! विद्वन् ! तू (देवः) दानशील, तेजस्वी होकर (देवेभ्यः परि) सब अन्य मनुष्यों से ऊपर होकर (रुचारुचा) खूब तेज से (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (आ विश) प्राप्त कर ।

आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) अभिषेक प्राप्त ! तू (सुस्तुति आ पवस्व) उत्तम स्तुति प्राप्त कर। और (देवेभ्यः) विद्वानों का (दुवः) आदर-सत्कार, सेवा परिचर्या कर। और (इषे) उत्तम अभिलाषा, मनोकामना पूर्ण करने के लिये (संयतम्) उत्तम संयमयुक्त जीवन (आ पवस्व) व्यतीत कर।

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।
पवमान स्वाध्यः॥ ४॥

भा०—तू (भानुना) तेज से (वृषा हि असि) जलवर्षक मेघ के समान वीर्य सेचन में समर्थ वा सुखप्रद, बलवान् (असि) हो। (द्युमन्तं त्वा) तेजोयुक्त धन के स्वामी तुझ को हम हे (पवमान) पवित्र आचारवान्! हे स्नातक! (स्वाध्यः) सुखपूर्वक तेरा सत्कार और चिन्तन करते हुए (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं।

आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध।
इहो ष्विन्दवा गहि॥ ५॥ १॥

भा०—हे (इन्दो) वीर्यवन्! ऐश्वर्यवन्! हे (सु-आयुध) उत्तम शस्त्र से शोभित! तू (मन्दमानः) हर्षयुक्त होता हुआ (सु-वीर्यम् आ पवस्व) उत्तम वीर्य, तेज प्रदान कर। (इह आ गहि) इस आश्रम में आ। इति प्रथमो वर्गः॥

यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः।
द्रुणा सधस्थमश्नुषे॥ ६॥

भा०—हे स्नातक! गृहस्थ में प्रवेश करने हारे! तू (यत्) जो (अद्भिः) आप्त जनों या जलों से (परि सिच्यसे) स्नान कराया जाता है और (गभस्त्योः मृज्यमानः) बाहुओं द्वारा मल २ कर स्वच्छ, सत्कारित किया जाता है, या माता पिता गुरु आदि द्वारा, ज्ञानादि से परिष्कृत

किया जाता है, वह तू (द्रुणा) काष्ठ से वने रथ से गृह को प्राप्त हो या आसन द्वारा (सधस्थम् अश्नुषे) एक साथ समीप स्थिति प्राप्त कर।

प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत।
महे सहस्रचक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (पवमानाय) सत्यासत्य का विवेक करने वाले, विद्याओं तथा जलो द्वारा अभिषेक कराये जाने वाले (सहस्र-चक्षसे) अनेक ज्ञानों का दर्शन कराने वाले (महे) महान पूज्य (सोमाय) विद्वान् वरार्ह, वधू के अभिलाषी की (वि-अश्ववत्) विविध अश्वो वाले राजा, महारथी के तुल्य (प्र गायत) खूब स्तुति करो।

यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (इन्दुम्) तेजस्वी, (मधुश्चुतम्) मधुर, सुखप्रद, (हरिम्) दुःखहारी, मनोहर (वर्ण) शत्रुवारक जन या सैन्य वल को (अद्रिभिः) नाना शस्त्रो से (इन्द्राय पीतये) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र वा राष्ट्र-पति पद के पालन के लिये वढाते हैं—

तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥

भा०—(तस्य वाजिनः) उस वलशाली (विश्वा धनानि जिग्युषः) समस्त धनो को जीतने वाले, (ते) तेरे हम (सखित्वम् आ वृणीमहे) मित्र भाव को स्वीकार करते हैं।

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः।
विश्वा दधान ओजसा ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! हे वलशालिन् ! (मत्सरः) सव को हर्ष देने वाला और (ओजसा) वल पराक्रम से देह में वीर्य

धातुवत् (विश्वा दधानः) राष्ट्र के सब अंगो का धारण पोषण क
हुआ, (मरुत्वते) प्राणोंवत् बलवान् और विद्वान् पुरुषों के स्वामी, रा
के कार्य के लिये (धारया पवस्व) उसकी आज्ञा से कार्य में प्रवृत्त हो
(२) देह में वीर्य, धारक-पोषक शक्ति से युक्त होकर देह मे व्याप
इति द्वितीयो वर्गः ॥

तं त्वा॑ धर्तार॑मो॒ण्यो॑३ः पव॑मान स्व॒र्दृश॑म् ।

हि॒न्वे वाजे॑षु वा॒जिन॑म् ॥ ११ ॥

भा०—(ओण्योः धर्त्तारम्) आकाश और भूमि वा सूर्य और पृथि
दोनों को धारण करने वाले (स्वः-दृशम्) ज्ञान प्रकाश को दिखाने वाले
या सब के द्रष्टा, (वाजिनम्) बलशाली, ऐश्वर्यवान् , ज्ञानी (तं त्वा
उस तुझ को (वाजेषु) संग्रामो, ज्ञानो और ऐश्वर्यों के सम्पादन के लि
हे (पवमान) अभिषेक योग्य ! (हिन्वे) प्रेरित करता हूं ।

अ॒या चि॒त्तो वि॒पान॒या हरि॑ः पवस्व॒ धार॑या ।

युजं॒ वाजे॑षु चोदय ॥ १२ ॥

भा०—(अया) इस (विपा) बुद्धि से (चित्तः) ज्ञानवान् और
(हरिः) उत्तम संशय-दुःखों का नाशक होकर (अया धारया) इस
प्रकार की वाणी, शक्ति या धारा गति से (वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य और
संग्रामादि के अवसर पर (युजं) नियुक्त अधीन पुरुष, सहयोगी साथी
को भी अश्ववत् (चोदय) चला, प्रेरित कर ।

आ न॑ इन्दो म॒हीमिषं॒ पव॑स्व वि॒श्वद॑र्शतः ।

अ॒स्मभ्यं॑ सोम गातु॒वित् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! हे दयाशील ! हे जल-धारणशील
मेघवत् शासक ! तू (विश्वदर्शतः) सब से देखने योग्य और सब को
देखने वाला (महीम् इषं पवस्व) बड़ी भारी सेना या शक्ति

प्राप्त कर, उसको सञ्चालित कर। (२) हे मेघ वा वायो वा सूर्य ! तू (इषं महीम् पवस्व) अन्न वा वृष्टि को भूमि की ओर प्रेरित कर।

आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा।
एन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (कलशाः) राष्ट्र के नाना भागो के प्रतिनिधि रूप जलो से पूर्ण कलश (आ अनूषत) सम्मुख ही स्तुति किये जाते हैं, तू उनकी (धाराभिः) धाराओ, शक्तियो से और (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से (इन्द्रस्य पीतये) इस मान राष्ट्र-ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (आ विश) आसन पर आदरपूर्वक विराज। राज-भवन, सभा-भवन और राष्ट्र मे प्रवेश कर।

यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः।
स पवस्वाभिमातिहा ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (मद्यं) अति हर्षकारी (तीव्रं) तीव्र वेगवान् (रसं) बल को लोग (अद्रिभिः दुहन्ति) मेघो से वृष्टि-जल के समान शत्रुओ से अभेद्य सैन्यों द्वारा प्राप्त करते है (सः) वह तू (अभि-मातिहा) अभिमानी शत्रुओ का नाश करने वाला होकर (पवस्व) सत्यासत्य का विवेक कर। (२) अध्यात्म में—आत्मा का आनन्द-रस धर्ममेघों द्वारा दुहते है। वह आत्मा अस्मिता वाले इन्द्रियो का शासक है।

राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥

भा०—(मनौ अधि पवमानः) मननशील मनुष्य समूह या राष्ट्र को स्तम्भित, व्यवस्थित करने वाले सैन्यवल के ऊपर सेनापति-पद पर आता हुआ (राजा) तेजस्वी पुरुष, राजा (मेधाभिः) पवित्र यज्ञ,

सत्संग आदि क्रियाओं, शत्रु हिंसक सेनाओं और उत्तम बुद्धियों सहित (ईय आगे बढ़ता और (अन्तरिक्षेण यातवे) आकाश-मार्ग से सूर्य के सम सर्वोपरि मार्ग से जाने के लिये समर्थ होता है।

आ न॑ इन्दो शत॒ग्विनं॑ ग॒वां पोषं॒ स्वश्व्य॑म्।
वहा॒ भग॑त्तिमू॒तये॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (शतग्विनम्) स सौ गौओं या भूमियों के स्वामी, (गवां पोषम्) गौओं, बैलों, वाणि और भूमियों को पुष्ट करने वाले (स्वश्व्यम्) उत्तम अश्वों के स्वामी को य धन को (आ वह) स्वयं धारण कर और हमे प्राप्त करा और (भगत्तिम् ऐश्वर्य के दान को (ऊतये) हमारी रक्षा और समृद्धि के लिये (आ वह) प्राप्त करा।

आ नः॑ सोम॒ सहो॒ जुवो॑ रू॒पं न वर्च॑से भर।
सु॒ष्वा॒णो दे॒ववी॑तये ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! उत्तम शासक! तू (देव-वीतये) मनुष्यों के पालन करने के लिये, (सुस्वानः) सब से अभिषेक किया जाता हुआ, (नः) हमारे (सहः) बल और (जुवः) वेग को और (रूपं) स्वर्णादि धन को (वर्चसे) तेज वृद्धि के लिये (आ भर) धारण कर, प्राप्त कर और हमें भी प्राप्त करा।

अर्षा॑ सोम द्यु॒मत्त॑मो॒ऽभि द्रोणा॑नि॒ रोरु॑वत्।
सीद॑ञ्छ्ये॒नो न योनि॒मा ॥ १९ ॥

भा०—(श्येनः न) श्येन, बाज, गरुड पक्षी के समान तू (योनिम् आ सीदन्) अपने स्थिर पद पर विराजता हुआ, हे (सोम) ऐश्वर्यवन् शासक! (द्युमत्-तमः) सब से अधिक तेजस्वी होकर (आ रोरुवत्) सब ओर आज्ञाएं देता हुआ (द्रोणानि) मनस्य राष्ट्र के भागों को (अर्ष) प्राप्त कर।

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रु हन्ता, (वरुणाय) दुष्टों के वारण करने वाले, (मरुद्भ्यः) वायुवत् बलवान् पुरुषों और (विष्णवे) व्यापक बल इन सब के लाभ के लिये (अप्साः) जलोंवत् प्रजाओं और आप्त पुरुषों का सेवक (सोमः) उत्तम शासक (अर्षति) उद्योग करे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले ! विद्यादि में निष्णात ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लाभ, उपकार के लिये और (नः तोकाय) हमारे पुत्रादि के उपकार के लिये, (विश्वतः) हमारे सब ओर (इषं दधत्) अन्न, उत्तम वृष्टि, बलवती सेना और मार्गदर्शक वाणी इन को (दधत्) धारण करता हुआ, (सहस्रिणं) सहस्रों ऐश्वर्यों सुखों से युक्त वा सहस्रों जनों को धारण करने वाले, राष्ट्र धन को (आ पवस्व) प्राप्त कर, उसका शासन कर ।

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

भा०—(ये सोमासः) जो विद्वान् उत्तम शासक और शास्त्रज्ञ जन, (अर्वावति सुन्विरे) समीप के देश में अभिषिक्त वा स्नातक होते हैं और (ये परावति सुन्विरे) जो दूर देश में अभिषिक्त या स्नातक होते हैं और (ये वा) जो (शर्यणावति) हिंसाकारिणी, शस्त्रधारिणी सेना से युक्त प्रदेश या सेनापति आदि के मुख्य और गौण पदों पर अभिषिक्त होते हैं—

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २३ ॥

भा०—(ये) जो (आर्जीकेषु) सरल धार्मिक पुरुषों के बीच वा समतल भागों में अभिषिक्त होते हैं, (ये कृत्वसु) जो कर्म करने वालों में अभिषिक्त होते हैं (ये पस्त्यानाम् मध्ये) जो प्रजाओं, गृहस्थों के बीच (वा पञ्चसु जनेषु) और पांचों प्रकार के जनों में पदाभिषिक्त होते हैं—

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥

भा०—(ते) वे (देवासः) तेजस्वी, दानशील, (इन्दवः) दयालु पुरुष (सुवानासः) अभिषिक्त होते हुए (दिवः परि) आकाश से (वृष्टिम्) वृष्टि के समान हमारे दुःखों का छेदन करने वाली शक्ति (पवन्ताम्) प्राप्त करें और (नः सुवीर्यं परि पवन्ताम्) हमें उत्तम बल प्रदान करें ।

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना ।
हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(गोः त्वचि अधि) भूमि की पीठ पर अध्यक्ष रूप से (हिन्वानः) स्थापित होता हुआ (हर्यतः) तेजस्वी पुरुष (जमदग्निना गृणानः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुषों को ज्ञान से उज्ज्वल करने वाले विद्वान् पुरुष द्वारा आदेश पाता हुआ (पवते) काम करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ २६ ॥

भा०—(शुक्रासः) कान्तिमान्, दीप्तियुक्त तेजस्वी पुरुष (सप्तयः न हिन्वानासः) वेगवान् अश्वों के समान प्रेरित होते हुए, (श्रीणानाः) सेवा करते हुए या प्रतिष्ठित होते हुए (अप्सु) अन्तरिक्ष में तेजोमय पिण्डों के समान (प्र मृञ्जत) अच्छी प्रकार अभिषिक्त हों ।

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये ।
स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥

भा०—हे (सोम) मुख्य शासक! (तं त्वा) उस तुझ को (आभुवः) चारो ओर विराजने वाले जन (देव-तातये) सब मनुष्यो के कल्याण के लिये (सुतेषु) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने तथा उत्पन्न प्राणियो के हितार्थ, वा अभिषिक्त जनो के बीच मे (हिन्विरे) तेरी प्रतिष्ठा करते हैं। (सः) वह तू (अनया रुचा) इस अनुरूप शोभा से (पवस्व) युक्त हो और सर्वोत्तम पद पर प्रतिष्ठित हो।

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥

भा०—हे शासक! हम लोग (ते) तेरे (दक्षं) बलस्वरूप शत्रुओं को भस्म करने वाले, (वह्निम्) कार्य-भार को अपने ऊपर उठाने वाले, (पुरु-स्पृहम्) बहुतों से प्रजा जनों को प्रेम करने वाले, बहुत से चुने गये, सम्मत, (पान्तम्) पालन करने में समर्थ सहयोगी पुरुष को (आ वृणीमहे) आदरपूर्वक वरण करते हैं।

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम्।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग इसी प्रकार (पुरु-स्पृहम्) बहुतो से चाहे गये, बहुप्रिय, बहुसम्मत, (पान्तम्) सर्वपालक, (मन्द्रम्) सब को हर्ष देने वाले, (वरेण्य) वरण करने योग्य, सन्मार्ग में जनो को ले जाने वाले, (मनीषिणम्) बुद्धिमान् (वरेण्यम् आ आ) आदरपूर्वक वरण करने योग्य पुरुष को वरण करे और ऐसे ही सर्वप्रिय, बहुसम्मत, (रयिम्) ऐश्वर्यवान्, (सुचेतुनम्) उत्तम ज्ञानी, पुरुष को, हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म-प्रज्ञावन्! (तनूषु) अपने शरीरो और विस्तृत राष्ट्र कार्यों के निमित्त (आ आ आ आ आवृणीमहे) वरण किया करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

शत वैखानसा ऋषयः ॥ १—१८, २२—३० पवमानः सोमः । १९—२१ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, ३, ५—८, १०, ११, १३, १५—१७, १९, २०, २३, २४, २५, २६, ३० गायत्री । ४, १४ २२, २७ विराड् गायत्री । ९, १२, २१, २८, २९ निचृद् गायत्री । १८ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ त्रिंशदृच सूक्तम् ॥

पव॑स्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ।
सखा॒ सखि॑भ्य॒ ईड्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—प्रभु परमेश्वर का वर्णन करते हैं—हे (विश्वचर्षणे) समस्त संसार को देखने और दिखाने वाले प्रभो ! तू (विश्वानि काव्यानि अभि पवस्व) समस्त कवि, विद्वान्, क्रान्तदर्शी और ज्ञानी पुरुषों द्वारा करने और जानने योग्य कर्मों और ज्ञानों को (अभि पवस्व) प्राप्त करा । तू (सखिभ्यः सखा) मित्रों का मित्र और (ईड्यः) सब से चाहने, स्तुति करने योग्य परम वन्दनीय है ।

ताभ्यां॒ विश्व॑स्य राजसि॒ ये प॑वमान॒ धाम॑नी ।
प्र॒ती॒ची सो॑म त॒स्थतुः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (पवमान) सर्वव्यापक ! सर्वप्रकाशक ! (ये) जो (धामनी) दोनों विश्व को धारण करने वाले, आकाश और पृथिवी वा उत्तर और दक्षिण अयनों के तुल्य इह और पर (प्रतीची) परस्पर सुसम्बद्ध दोनों लोक (तस्थतुः) खड़े हैं (ताभ्यां) उनसे तू (विश्वस्य राजसि) समस्त जगत् में प्रकाश करता है । सूर्य दक्षिण और उत्तर अयनों में प्रकाश करता है, (२) अध्यात्म में आत्मा, प्राण, अपान, दोनों स्वरों वा जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं को सम्भालता है ।

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः ।
पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) तेजस्विन् ! प्रकाशक ! (यानि) जो (ते) तेरे (धामानि) तेज (परि) चारो ओर फैले है उन से हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! अन्तर्यामिन् ! हे (पवमान) पवित्र ! व्यापक ! तू (ऋतुभिः) प्राणो, काल के अवयवो और सत्य सामर्थ्यों से सूर्यवत् (विश्वतः असि) सर्वत्र सामर्थ्यवान् है ।

पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या ।
सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

भा०—तू (सखा) परम मित्र, (सखिभ्यः ऊतये) अपने मित्रो की रक्षा के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के (वार्या) श्रेष्ठ धनों को (जनयन्) पैदा करता हुआ (इषः पवस्व) उत्तम अन्न, वृष्टिये और चाहने योग्य सुख सम्पदाएं तथा शक्तिये (पवस्व) प्रदान कर ।

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते ।
पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (तव) तेरी (शुक्रासः) कान्तिमान् (अर्चयः) तेज, रश्मियां, ज्वालाएं (दिवः पृष्ठे) सूर्य और भूमि के पृष्ठ पर अपने (धामभिः) तेजो से (पवित्र वितन्वते) पवित्र प्रकाश करती है । इति सप्तमो वर्गः ॥

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥

भा०—(इमे सप्त सिन्धवः) ये वेग से बहने वाले नद नदी, जल समुद्रादि वा देह में प्राण गण, हे (सोम) सर्वशासक ! (तव प्रशिषं) तेरे ही उत्कृष्ट शासन को पा कर (सिस्रते) गति करते हैं और (तुभ्य धेनव.) तेरे ही लिये ये वाणियां (धावन्ति) वेग से निकलती हैं । अथवा (तुभ्यं धेनव. धावन्ति) तेरी ही वाणियां सब को पवित्र करती है ।

प्र सो॑म याहि॒ धार॑या सु॒त इन्द्रा॑य मत्स॒रः ।
द॒धा॒नो अक्षि॑ति॒ श्रवः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (धारया) वाणी द्वारा (सुतः) उपासित होकर तू (इन्द्राय प्र याहि) इस इन्द्रियों के स्वामी जीव के उपकार के लिये प्राप्त हो । तू ही (अक्षिति श्रवः) अक्षय अन्नवत् श्रवणीय परम ज्ञान को (दधानः) धारण करने वाला और (मत्सरः) अति आनन्ददाता है ।

समु॒ त्वा धी॒भिर॑स्वरन्हिन्व॒तीः स॒प्त जा॒मयः॑ ।
विप्र॑मा॒जा वि॒वस्व॑तः ॥ ८ ॥

भा०—(विवस्वतः) विशेष रूप से तेरी परिचर्या करने वाले साधक की (सप्त) सातों (जामयः) बन्धुवत् छन्दोमयी वाणियां (धीभिः) यज्ञादि कर्मों सहित (त्वा हिन्वन्ती) तेरी ही महिमा को बढ़ाती हुई, (आजा) यज्ञ में (त्वा विप्रम्) तुझ विद्वान् के ही (सम् अस्वरन्) गुण वर्णन करती हैं ।

मृ॒जन्ति॑ त्वा॒ सम॒ग्रुवोऽव्ये॑ जी॒रावधि॒ ष्वणि॑ ।
रे॒भो यद॒ज्यसे॒ वने॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे शास्तः ! तू (रेभः) उत्तम विद्वान्, उपदेष्टा होकर (यत) जब (वने) वानप्रस्थ आश्रम में (अज्यसे) जाता है, तब (अग्रुव) अग्रगामी श्रेष्ठ जन (अव्ये) भेड के बालों के बने आसन पर (गिरा) उपदेशप्रद (स्वनि) शब्दमय वेदों के (अधि) अधीन, (त्वा सं मृजन्ति) तुझे अच्छी प्रकार सुशोभित, दीक्षित, निष्णात करें ।

वानप्रस्थे वृक्षमूलाश्रयणं यदुक्तम् तत्र वृक्षो वेदस्तस्य मूलाश्रयण-मुपासनम् । इति बौधायने गृह्ये ।

अथवा—हे विद्वन् ! तू (रेभः यत् अज्यसे) उपदेष्टा होकर जब प्रकट हो । (अव्ये) सब लोकों के रक्षक, ज्ञानमय (गिरौ) अज्ञान

नाशक (स्वनि) उपदेशमय वेद के (अधि) आश्रय पर (अग्रुवः) अग्रासन पर विराजे, वृद्ध जन (त्वा सम्मृजन्ति) तुझे अच्छी प्रकार पवित्र करते है।

पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे (वाजिन्) ज्ञानवन् ! (पवमानस्य ते) पवित्र करने वाले तेरे (श्रवस्यवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान के इच्छुक जन (ते सर्गाः) तेरी सृष्टि के रूप मे (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं। वे (अर्वन्तः न) अश्वो वा सवारो के समान धीरता से आगे बढ़ें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ ११ ॥

भा०—(धीतयः) राष्ट्र को धारण करने वाले जन (अव्यये वारे) अविनाशी, वरण करने योग्य पद पर (मधुश्चुतम्) अन्न के देने वाले, (कोशम्) धनादि से पूर्ण कोश को (अच्छ) प्राप्त कर (सोमं असृग्रम्) शासक पुरुष को नियुक्त करें और उसी को (अवावशन्त) चाहे।

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १२ ॥

भा०—(गावः धेनवः अस्त न) दुधार गौवें जिस प्रकार अपने घर को स्वय लौट आती है, उसी प्रकार (इन्दवः) उपासना करने वाले, उसकी सेवा करने वाले उपासक शिष्य जन गुरु के प्रति स्वयं आकर (ऋतस्य योनिम्) सत्य ज्ञान के आश्रय, (समुद्रम् अच्छ) ज्ञान रस के सागर एव ज्ञान वाणी के उपदेष्टा को (आ अग्मन्) प्राप्त हो।

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) गुरु वा प्रभु की उपासना करने वाले शिष्य ! उपासक ! (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब तू ज्ञानवाणियों द्वारा आच्छादित होगा, उनसे वा उनके निमित्त गुरु-गृह में रक्खा जावे, तब (सिन्धवः) तुझे उत्तम नियमों में बांधने वाले (नः) हम मे से (आपः) आप्त जन (महे रणे) बड़े भारी उपदेश के निमित्त (अर्षन्ति) तुझे अच्छी प्रकार प्राप्त हो और ज्ञान प्रदान करे। (२) उसी प्रकार जब शिष्य वाणियो मे निष्ठ हो तो हमारी वहती जल धाराएं उसे स्नान करावें।

अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः।
इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु के प्रति वेग से जाने वाले ! (वयम्) हम (त्वा ऊतयः) तेरी रक्षा, प्रेम से युक्त होकर, (ते सख्ये) तेरे मित्रभाव मे रहते हुए, (इयक्षन्तः) ईश्वर की उपासना, परस्पर का आदर-सत्कार दान-प्रतिदान करते हुए, (ते सखित्वम्) तेरे ही मित्र-भाव को (उश्मसि) सदा चाहे।

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे।
एन्द्रस्य जठरे विश ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! तू (गो-इष्टये) भूमि को या वाणी को प्रदान करने के लिये (महे नृचक्षसे आ पवस्व) मनुष्यो को देखने और उपदेश करने वाले, आदर योग्य महान् पद या कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिये प्राप्त हो और (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुनाशक राष्ट्र बल के मध्य में प्रवेश कर। इति नवमो वर्गः ॥

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः।
युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सोम) शासक ! राजन् ! तू (महान् असि) गुण, शक्ति मे महान् है। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (उग्राणां) उग्र शक्ति-

शाली, दुष्टो को भय दिलाने वालो में (ज्येष्ठः) सब से बड़ा प्रशंसा योग्य और (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, बली है । तू (शश्वत्) सदा ही (युध्वा सन्) युद्धशील शत्रुओ पर प्रहार करने वाला होकर (जिगेथ) विजय प्राप्त कर ।

य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः ।
भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥ १७ ॥

भा०—(यः) जो तू (उग्रेभ्यः) बलवान् शत्रुओ को भय देने वालों से भी (ओजीयान् चित्) कही अधिक पराक्रमी और (शूरेभ्यः चित् शूरतरः) शूरवीरो से भी कही अधिक शूरवीर है, वह तू (भूरि दाभ्यः चित्) बहुत दान करने वालो से भी कहीं अधिक (मंहीयान्) बड़ा दानी है ।

त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् ।
वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासन करने हारे ! सब के सञ्चालक ! परमैश्वर्यवन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (सूरः) उत्तम वीर्यवान्, सब का प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्वी, सब का उत्पादक है तू (तोकस्य तनूनाम्) पुत्र और वशकर्त्ता पौत्रो का भी (साता) देने वाला है । तुझे हम (सख्याय वृणीमहे) मित्रभाव के लिये वरते है और तुझे (युज्याय वृणीमहे) अपने सहायक साथी रूप से वरते हैं ।

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे अग्रणी ! हे ज्ञानवन् ! तू (नः आयूंषि) हमारे आयुओं की (पवसे) रक्षा कर । (नः) हमें (ऊर्जम् इषं च आसुव) बल पराक्रम और अन्न प्रदान कर ।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान्, अन्यों को प्रकाश देने वाला, (ऋषिः) मन्त्रार्थों का द्रष्टा, (पवमानः) सब को पवित्र करने वाला, सब का रक्षक, (पाञ्चजन्यः) पांचो जनो का हित-कारक, (पुरोहितः) सब के समक्ष अध्यक्ष, साक्षीवत् स्थापित है । (तम् महा-गयम्) उस महाप्राण एवं महा गृह के समान सर्वाश्रय को हम (ईमहे) प्राप्त हों । इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! तू (सु-अपाः) उत्तम कर्म करने हारा ! (स्व-पाः) स्वयं अपनो का वा ऐश्वर्यों का पालक होकर (अस्मे वर्चः) हमे तेज और (सुवीर्य) उत्तम वीर्य प्रदान कर और तू (मयि रयिम् पोषम् दधत्) मेरे में धन, पुत्रादि एवं पशु-समृद्धि और शरीर की पुष्टि को धारण करा ।

पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।
सूरो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥

भा०—(विश्व-दर्शतः सूरः न) सूर्य के समान सब का द्रष्टा, सब से देखने योग्य, सब को मार्ग दिखाने हारा, विद्वान् तेजस्वी (स्रिधः अति पवमानः) समस्त हिंसाकारी दुष्टों को अतिक्रमण करके, उनका पराजय करके (सु-स्तुतिम् अभि अर्ष) उत्तम स्तुति प्राप्त कर ।

स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः ।
इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥

भा०—(सः) वह (आयुभिः मर्मृजान) मनुष्यों द्वारा अभिषिक्त

होता हुआ (प्रयस्वान्) उत्तम प्रयत्नवान् (प्रयसे हितः) सब को पालने, तृप्त करने, उत्तम मार्ग में यत्न कराने के लिये स्थापित किया जाय। वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, प्रजाओं से सेवनीय, (अत्यः) सब को प्राप्त, अश्ववत् सब का रक्षक, सबसे अधिक और (विचक्षणः) विशेष रूप से तत्वज्ञान का द्रष्टा हो।

पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत्।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २४ ॥

भा०—(पवमानः) सब को पवित्र करने वाला, (बृहत्) बड़ा (शुक्रम्) शुद्ध (ऋतम्) सत्य ज्ञानमय (ज्योतिः) प्रकाश को (अजीजनत्) प्रकट करता है। वही (कृष्णा तमांसि) कष्टदायी, काले अन्धकारों को सूर्यवत् (जंघनत्) विनाश करे।

पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—(पवमानस्य) राष्ट्र को शोधन करने वाले और (जंघ्नतः) दुष्टों का बार २ नाश करते हुए (अजिर-शोचिषः) अविनश्वर तेजस्वी (हरेः) सूर्यवत् दुःखों के हटाने वाले तुझ नरोत्तम के (जीराः) वेग से युक्त सब को जीवन देने वाले (चन्द्राः) सर्वाह्लादकारी गुण (असृक्षत) प्रकट होते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २६ ॥

भा०—(पवमान.) वेग से युद्ध में जाता हुआ, अभिषिक्त होता हुआ (रथीतमः) सब से उत्तम महारथी, (शुभ्रशः-तमः) सब से अधिक शोभावान्, (शुभ्रेभि.) अपने शोभायुक्त गुणों से ही (मरुद्-गण.) मनुष्य समूहों का स्वामी और (हरि-चन्द्रः) सब मनुष्यों को आह्लाद देने वाला हो जाता है।

हरिरिति मनुष्यनाम । निघ० ॥

पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः ।

दधन्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥

भा०—(पवमानः) अभिषेक को प्राप्त होने वाला, (वाज-सातमः) ज्ञान, बल, धन का सर्वोत्तम दाता, आदाता और विभक्ता पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों से (वि अश्नवत्) विशेष रूप से व्यापे और वह (स्तोत्रे) स्तुति, उपदेशादि करने वाले के हितार्थ (सुवीर्यं दधत्) उत्तम वीर्य को धारण करे ।

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।

पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥

भा०—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् वह (सुवानः) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ (पवित्रम्) पवित्र (अव्ययम्) नाश को न प्राप्त होने वाले, सर्व-रक्षक पद को (अति अक्षाः) सर्वोपरि प्राप्त हो (पुनानः) अन्यों को भी पवित्र करता हुआ वह (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, दयालु होकर (इन्द्रम् आ अक्षाः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता पद को प्राप्त हो । अध्यात्म में—'इन्दु' प्रभु 'इन्द्र' जीव को प्राप्त हो । अथवा 'इन्दु' शरणागत जीव उस 'इन्द्र' प्रभु को पवित्र होकर प्राप्त हो ।

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः ।

इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥

भा०—(एषः सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीव (गवां त्वचि अधि) इन्द्रियों के आवरणकारी देह के ऊपर अध्यक्ष रूप से (अद्रिभि क्रीडति) अविनश्वर शक्तियों वा प्राणों से खेलता है, नाना सुख प्राप्त करता है, और (मदाय) परमानन्द सुख को प्राप्त करने के लिये (इन्द्र) उस ऐश्वर्यवान् परम प्रभु को (जोहुवत्) पुकारता, उसकी स्तुति प्रार्थना

करता है। इसी प्रकार अभिषिक्त जन भूमियों पर शस्त्र बलों से युद्ध क्रीड़ा करता है और सब के हर्ष के लिये इन्द्र पद को प्राप्त करता है।

यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः।
तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—हे (पवमान) रक्षा करने हारे ! प्रभो ! (यस्य ते दिवः) जिस तुझ तेजस्वी सूर्यवत् कान्तिमान् का (पयः द्युम्नवत्) तेज, वीर्य और पोषक अन्नादि धन और प्रकाश के समान (आ-भृतम्) सर्वत्र धारित है (तेन नः जीवसे) उससे हमे तू जीवन प्रदान करने के लिये (मृड) दया कर। इति द्वादशो वर्गः ॥

[६७]

ऋषिः—१—३ भरद्वाजः। ४—६ कश्यपः। ७—९ गोतमः। १०—१२ अत्रिः। १३—१५ विश्वामित्रः। १६—१८ जमदग्निः। १९—२१ वसिष्ठः। २२—३२ पवित्रो वसिष्ठौ वोभौ वा ॥ देवताः—१—९, १३—२२, २८—३० पवमानः सोमः। १०—१२ पवमानः सोमः पूषा वा। २३, २४ अग्निः सविता वा। २६ अग्निरग्निर्वा सविता च। २७ अग्निर्विश्वेदेवा वा। ३१, ३२ पावमान्यध्येतृस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ११—१३, १५, १९, २३, २५ निचृद् गायत्री। ३, ८ विराड् गायत्री। १० यवमध्या गायत्री। १६—१८ भुरिगार्ची विराड् गायत्री। ६, ७, ९, १४, २०—२२, २, २६, २८, २९ गायत्री। २७ अनुष्टुप्। ३१, ३२ निचृदनुष्टुप्। ३० पुरउष्णिक् ॥ द्वात्रिंशदृच सूक्तम् ॥

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम शासक ! (त्वं) तू (धारयुः) राष्ट्र विश्व, वा देह को धारण करने वाली शक्ति, आज्ञा, वाणी का स्वामी (असि)

है। तू (मन्द्रः) अति आनन्दप्रद, (ओजिष्ठः) सब से अधिक बलवान्, पराक्रमी है। तू (मंहयद्-रयिः) सदा ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (अध्वरे पवस्व) पीड़ा, पराजय आदि से रहित कार्य यज्ञ वा राष्ट्र मे (पवस्व) प्राप्त हो।

त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः।
इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥ २ ॥

भा०—हे वीर! ऐश्वर्यवन्! शासक! (त्वम्) तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (नृ-मादनः) सब नायको और सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला, (दधन्वान्) सब का पोषण करने वाला, (मत्सरिन्-तमः) स्वयं सब से अधिक प्रसन्न, (सूरिः) विद्वान् होकर (अन्धसा) अन्न से (इन्द्राय) ऐश्वर्य वा प्रभु वा परमाधिकारी की सेवा कर।

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्वं) तू (अद्रिभिः सुष्वाणः) पाषाण खण्डों के समान दृढ़ और मेघों के समान जल-धारा और सुखों की वर्षा करने वाले पुरुषों द्वारा अभिषिक्त होता हुआ (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (द्युमन्त) तेज से युक्त (उत्तमम् शुष्मम्) उत्तम शत्रु शोषक बल को (अभि अर्ष) प्राप्त कर।

इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया।
हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥

भा०—(हिन्वानः इन्दुः) वृद्धि प्राप्त करता हुआ ऐश्वर्ययुक्त दयालु तेजस्वी पुरुष (अव्यया वाराणि) अवि अर्थात् स्नेहादि के बने नाना वरणीय, मनलुभाने वाले उत्तम प्रलोभनों को भी (अति अर्षति) पार कर जाता है। वह (हरि) अज्ञान दूर करने हारा (वाजम् अचिक्रदत्) ज्ञान का उपदेश करता है।

इन्द्रो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा।
वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम पुरुष ! तू (अव्यम्) इस भूमि के उत्तम धन को (वि अर्षसि) विविध प्रकार से प्राप्त कर। (श्रवांसि वि) नाना ज्ञान, अन्न और कीर्त्तियां प्राप्त कर। (सौभगा वि अर्षसि) नाना सौभाग्य प्राप्त कर। हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (गोमतः वाजान् वि अर्षसि) वाणीसम्पन्न विद्वान् से ज्ञानो और भूमि के स्वामी कृषकार से अन्नो को विविध प्रकार से प्राप्त कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम्।
भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमे (शतग्विनं) सैकड़ो गौओ, भूमियो से युक्त, (गोमन्तं) ज्ञान-वाणियो से युक्त (अश्विनम्) अश्वो से सम्पन्न, (सहस्रिणं) संख्या मे सहस्रो वा सहस्रो सुखो से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त करा।

पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः।
इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानासः) वेग से प्रयाण करते हुए, (इन्दवः) शत्रु को सन्तप्त करने मे कुशल, (आशवः) वेगवान्, वीर जन (यामेभिः) अपने प्रयाणो द्वारा, अपने सन्मार्गों द्वारा, अपने उत्तम नियम व्यवस्थाओ द्वारा, (पवित्रम् तिरः) कण्टक शोधन के कार्य को पूर्ण करके (इन्द्रं) ऐश्वर्य पद को (आशत) प्राप्त करते है।

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः।
आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥

भा०—(ककुहः) सर्वश्रेष्ठ, (सोम्यः) प्रशास्ता पद के योग्य (रसः) बलवान् (इन्दु) ऐश्वर्यवान् (पूर्व्यः) पूर्व विद्वान् एवं शक्ति मे

पूर्ण जनो से उपदिष्ट और सत्कार पाकर (इन्द्राय पवते) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ता है और वह स्वयं (आयुः) श्रेष्ठ मनुष्य होकर (आयवे) मनुष्य मात्र के उपकार के लिये हो।

हिन्वन्ति सूरमुस्रियः पवमानं मधुश्चुतम् ।
अभि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥

भा०—(पवमानम्) अभिषेक होने योग्य एवं वीर्य, शौर्य और ज्ञान आदि से राष्ट्र जन को पवित्र करने वाले (मधु-श्चुतम्) जल, मधुर वचन और अन्न प्रदान करने वाले, (सूरम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (उस्रयः) राष्ट्र मे बसने वाले एवं उत्तम मार्ग में जाने वाले जन किरणो के तुल्य (हिन्वन्ति) बढ़ाते और सन्मार्ग मे प्रेरित करते है। और उसे (गिरा) वेद-वाणी और उत्तम उपदेश द्वारा (अभि सम् अस्वरन्) सब ओर से उसको उपदेश करें, उसकी स्तुति करें, उसके गुणो का प्रकाश करें।

अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—(पूषा) पोषण करने वाला, (अविता) रक्षक, प्रेम करने हारा ! (अजाश्वः) वेग से जाने वाले अश्वो से युक्त विद्वान् (यामनि यामनि) प्रत्येक यम नियम में अभ्यस्त वा उत्तम विवाह-कृत्य मे (नः कन्यासु) हमारी कन्याओं के पाणिग्रहण करने के निमित्त (नः आ भक्षत्) हमे प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह (सोमः) उत्तम विद्वान, वधू की कामना करने वाला, (कपर्दिने) उत्तम मुकुट से सजने वाले राजा के योग्य (मधु घृतं न पवते) मधुर, आनन्ददायक खाद्य पदार्थ, मधुपर्क और जल, अर्घ्य पाद्य

आदि प्राप्त करता है वह (नः कन्यासु आभक्षत्) हमारी कन्याओ के निमित्त हमे प्राप्त हो ।

अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि ।
आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ १२ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से तेजस्विन् ! जो (नः कन्यासु आ भक्षत्) हमे कन्याओ के निमित्त प्राप्त हो (अयं) यह (ते) तेरे (शुचि) शुद्ध कान्तियुक्त (घृतं न) प्रकाशवत् (ते सुतः) तेरा अभिषिक्त पुत्रवत् निष्णात ज्ञान प्रकाश को (पवते) प्राप्त हो ।

वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया ।
देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम विद्वन् ! तू (देवेषु रत्नधाः असि) कामनावान् जनो मे रमणीय ज्ञान और धन देने वाला है । तू (कवीनां वाचः जन्तुः) विद्वानो की वाणी को प्रकट करने वाला है, तू (धारया पवस्व) ज्ञान धारण करने वाली वाणी से सब को पवित्र कर वा सब को प्राप्त हो ।

आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते ।
अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ १४ ॥

भा०—(श्येनः) उत्तम आचार-चरित्रवान् पुरुष होकर (कलशेषु) जल से पूर्ण कलशो द्वारा (आ धावति) अपने को सब प्रकार शुद्ध करे । (वर्म) पहनने योग्य सुन्दर वस्त्रो, वा (वर्म) उत्तम गृह, [गृहस्थ आश्रम] को (विगाहते) प्रवेश करे । वह (द्रोणानि) गृहों को गृहोचित कर्त्तव्यो वा धनो को (अभि कनिक्रदत्) प्राप्त करे ।

परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः ।
श्येनो न तक्तो अर्षति ॥ १५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (ते) तेरे लिये (सुतः संस्कारयुक्त किया हुआ (रसः) जल जैसे (कलशे) कलश मे और (रस बल (कलशे) राष्ट्र मे (परि असर्जि, प्र असर्जि) चारो ओर हो अं अच्छी प्रकार तैयार किया जावे । वह (श्येनः न) बाज के समान श्ये व्यूह बना कर (तक्तः) वेग से गति करता हुआ (अर्पति) विचरता है इति पञ्चदशो वर्गः ॥

पर्वस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥

भा०—तू (मधुमत्-तमः) अति मधुर स्वभाव वा जल अन्न और बल का बड़ा भारी स्वामी होकर हे (सोम) शासक ! तू (मन्दयन्) सब को प्रसन्न करता हुआ (इन्द्राय पवस्व) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ ।

असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ १७ ॥
ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ १८ ॥

भा०—(ते) वे नाना (सुतासः) अभिषिक्त जन (मदिन्तमाः) खूब हर्ष उत्पन्न करने हारे (शुक्राः) जल वा रश्मियों के समान शुद्ध पवित्र, तेजस्वी होकर (वायुम् असृक्षत) वायुवत् प्रबल पद को निर्माण करते है और वे (वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथो के समान, (देव-वीतये) मनुष्यो की रक्षा के लिये (असृग्रन्) तैयार होते है।

ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥

भा०—(स्तोत्रे) स्तुति करने वाले विद्वान प्रजा जन के उपकार के लिये (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल को धारण करता हुआ, हे (सोम) उत्तम शासनयोग्य विद्वन् ! तू (ग्राव्णा तुन्नः) विद्वान उपदेष्टा द्वारा प्रेरित और अभिनादित होकर और (अभि-स्तुत) सब प्रशंसित और उपदिष्ट होकर (पवित्रं गच्छसि) शत्रु-कण्टकादि को दूर करने के शासन पद को प्राप्त होता है ।

एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ २० ॥ १६ ॥

भा०—(एषः) यह (तुन्नः) विद्वानो द्वारा शासित और (अभिस्तुतः) सब ओर से प्रशंसित (रक्षोहा) दुष्टो, विघ्नो का नाशकारी होकर (अव्ययम्) रक्षक पद के योग्य (वारम्) सर्व वरणीय और शत्रुओ के वारक (पवित्रं) शत्रुरूप कण्टकशोधन के कार्य को (अति गाहते) सर्वोपरि होकर प्राप्त करता है ।

यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।
पवमान वि तज्जहि ॥ २१ ॥

भा०—हे (पवमान) शत्रुकण्टक के शोधने हारे ! हे अभिषेक पाने वाले जन ! (यद् भयम् अन्ति) जो भय समीप या (दूरके) दूर देश में भी (माम्) मुझे (इह विन्दति) इस राष्ट्र मे प्राप्त होता है, तू (तत् वि जहि) उसे विशेष रूप से नष्ट कर । वा जो मुझे भयादि देता है उसे दण्डित कर ।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥

भा०—(सः) वह (विचर्षणिः) विशेष अध्यक्ष, (पवमानः) दुष्टो को दूर करता हुआ (पवित्रेण) शस्त्र बल से युक्त होकर (नः) हमारे बीच (यः पोता) जो पवित्र करने मे कुशल है (सः नः पुनातु) वह हमें पवित्र, स्वच्छ करे ।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! प्रभो ! (यत्) जो (ते) तेरा (पवित्रम्) सब को शुद्ध पवित्र करने वाला (ब्रह्म) महान् तेज

(अर्चिषि) तेजोमय सूर्यादि के और (अन्तरा विततम्) समस्त जगत् के बीच व्याप्त है (तेन नः पुनीहि) उससे हमें पवित्र कर।

यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः।
ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! (यत्) जो (ते) तेरा (अर्चिवत्) तेजोयुक्त (पवित्रम् ब्रह्म) पवित्र ब्रह्म ज्ञान है (तेन नः पुनीहि) उससे तू हमें पवित्र कर। (सः) वह तू (नः पुनीहि) हमें सदा पवित्र करता रह।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ २५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (देव) सुखों के दाता ! हे तेजोमय ! ज्ञान के प्रकाशक ! हे (सवितः) उत्तम शासक ! तू अपने (पवित्रेण) पवित्र करने वाले ज्ञान और (सवेन च) शासन (उभाभ्यां) दोनों से (आ विश्वतः पुनीहि) सब ओर से पवित्र कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः।
अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ २६ ॥

भा०—हे (देव सवितः) तेजस्विन्, ज्ञानप्रद, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्पादक प्रभो ! हे (सोम) सर्वाध्यक्ष ! हे (अग्ने) सर्वाग्रणी ज्ञानवन् ! तू (त्रिभिः दक्षैः वर्षिष्ठैः धामभिः) पापों को भस्म करने वाले, सब सुखों के देने वाले, तीनों तेजों से (नः पुनीहि) हमें पवित्र कर।

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मां ॥ २७ ॥

भा०—(देव-जनाः) शुभ गुणों का प्रकाश करने वाले जन (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। (वसवः) प्राणों के तुल्य उत्तम आश्रमों में बसने

वाले जन (धिया) ज्ञान और कर्म द्वारा (मां पुनन्तु) मुझे पवित्र करें (विश्वे देवाः) हे समस्त विद्वान् जनो ! (मां पुनीत) मुझे पवित्र करो हे (जातवेदः मां पुनीहि) ज्ञानवन् ! तू मुझे पवित्र कर ।

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! विद्वन् ! तू (विश्वेभिः अंशुभिः) समस्त किरणो, उपायो से (देवेभ्यः) मनुष्यो के लिये (उत्तमं हविः प्र प्यायस्व) सूर्यवत् उत्तम जल-अन्न की वृद्धि कर और (प्र स्यन्दस्व) जलवत् दुग्धादि की धार बहाया कर ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ २९ ॥

भा०—हम (नमः बिभ्रतः) उत्तम अन्न और विनय आदरयुक्त वचन को धारण करते हुए (प्रियं) प्रिय (पनिप्नतम्) उपदेश करने वाले (युवानम्) युवा (आहुति-वृधम्) आदरपूर्वक आहुति दानादि से बढने वा बढ़ाने वाले विद्वान् गुरु को (उप अगन्म) शिष्यवत् प्राप्त हों ।

अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।
आखुं चिदेव देव सोम ॥ ३० ॥

भा०—(अलाय्यस्य = अराय्यस्य) क्षमा, धन आदि देने के अयोग्य वा हमारा अधिकार न देने वाले शत्रु का (परशुः) शस्त्र (तम् ननाश) उसी को नष्ट करे । हे (सोम) उत्तम शासक ! तू (आ पवस्व) इस प्रकार दुष्टों का नाश कर । हे (देव सोम) तेजस्विन् ऐश्वर्यवन् ! तू (आखुं चित्) मूषक स्वभाव के सब ओर से धन खनन करने वाले कृषक, श्रमी व्यक्ति को (चित्) भी आदरपूर्वक (आ पवस्व) कार्य में लगा ।

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ ३१ ॥

भा०—(यः) जो (पावमानीः) पवमान अर्थात् पवित्र करने और अभिषेक किये जाने वाले के सम्बन्ध की पवमान देवताक ऋचाओं को और (ऋषिभिः) वेदमन्त्रार्थों का साक्षात् करने वाले विद्वानों द्वारा (संभृतम्) संगृहीत (रसम्) सारभूत ज्ञान को (अध्येति) अध्ययन, उनका अर्थ ज्ञान और मनन करता है (सः) वह (मातरिश्वना स्वदितम्) उत्तम मातृसमान, सर्वज्ञकल्प प्रभु या आचार्य के अधीन श्वास लेने, जीवन धारण करने वाले उत्तम शिष्यगण द्वारा (स्वदितं) सुख से ग्रहण करने योग्य (सर्वं) समस्त (पूतं) पवित्र ज्ञान को अन्न के समान ही (अश्नाति) ग्रहण करता है और उसका उपभोग लेता है ।

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ ३२ ॥ १८ ॥ ३ ॥

भा०—(यः ऋषिभिः सम्भृतं रसं पावमानीः अध्येति) जो ऋषियों द्वारा सम्पादित, ज्ञानमय "पावमानी", अन्तःकरण को पवित्र करने वाली ज्ञानमयी ऋचाओं का अध्ययन करता है, (सरस्वती) वेदवाणी और ज्ञानमय प्रभु (तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकम् दुहे) उसको दूध, घी, मधु, जल के तुल्य ऐश्वर्य, बल, आनन्द और अभ्युदय प्रदान करता है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[६८]

वत्सप्रिर्भालन्दन ऋषिः । पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ७ निचृज्जगती । २, ४, ५, ६ जगती । ८ विराड् जगती । १० त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १ ॥

भा०—(धेनवः गावः न) जिस प्रकार दूध देने वाली गौवे (देवं प्र असिष्यदन्त) कामना योग्य, नाना गुणयुक्त दुग्ध को प्रस्त्रवित करती है उसी प्रकार (मधुमन्तः इन्दवः) ज्ञानवान् , कृपालु सज्जन (देवं) ज्ञान की कामना करने वाले के प्रति (प्र असिष्यदन्त) खूब ज्ञान-रस को प्रवाहित करते है। उसके प्रति प्रेमयुक्त हो उसे ज्ञान प्रदान करे। और जिस प्रकार (उस्रियाः ऊधभिः) गौवे थनो द्वारा (परिस्रुतम्) सब ओर बहने वाले (निर्णिजं) अति शुद्ध दूध को (धिरे) धारण करतो और देती हैं उसी प्रकार (बर्हि-षदः) प्रजा जन पर अध्यक्ष होकर विराजने वाले अध्यक्ष वा उत्तमासन पर विराजने वाले और (वचना-वन्तः) उत्तम वचन, भाषण बोलने वाले वाग्मी जन, (परि-स्रुतं = परि-श्रुतं) सब दूर तक श्रवण करने योग्य, दूर तक घोषणा, प्रवचनादि द्वारा फैलने वाले (निः-निजं) अति विशुद्ध ज्ञान को (धिरे) धारण करे और अन्यो को प्रदान करे।

स रोरुवद्भि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम्॥२॥

भा०—(सः) वह ज्ञानी वा अध्यक्ष (पूर्वाः) पूर्व एवं ज्ञान से परिपूर्ण वाणियो को और पूर्व की घोषणाओ को (अभि रोरुवत्) सर्वत्र उपदेश करे, प्रचारित करे। वह (हरिः) ज्ञान का संदेश दूर २ तक ले जाने वाला, अज्ञान हरण करने मे समर्थ, सूर्यवत् तेजस्वी, ज्ञानी, वा वीर पुरुष (उपारुहः) समीप आने वाले को (श्रथयन्) सन्मार्ग मे प्रयत्नशील करता और दुःखो से मुक्त करता हुआ (स्वादते) स्वयं भी आनन्द लाभ करता है। वह (उरु-ज्रयः) महान् पराक्रमी, विजयी होकर (तिरः) सर्वोत्तम, प्राप्त (पवित्रम्) परम पवित्र पद को (परियन्) प्राप्त करता हुआ (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (शर्याणि नि दधते) विनाश करने योग्य अन्तः और बाह्य शत्रुओ को नाश करता और (वरम् आ दधते) वरण करने

योग्य ज्ञानमय पद को धनवत् प्राप्त करता और औरों को देता है। अथ प्रयत्ने प्रस्थान इत्येके (चु०)। अथ मोक्षणे (चु०)। ये सब मन्त्र ज्ञानी परिव्राजक, शासक और प्रभु आत्मा का भी वर्णन करते हैं।

वि यो म॒मे य॒म्या॑ संय॒ती मदः॑ साकं॒वृधा॒ पय॑सा पिन्व॒दक्षि॑ता।
म॒ही अ॑पा॒रे रज॑सी वि॒वेवि॑दद॒भिव्र॒जन्नक्षि॑तं॒ पाज॒ आ द॑दे ॥ ३॥

भा०—(यः) जो (मदः) अति आनन्दमय, हर्षयुक्त होकर (यम्या) यम नियम मे बद्ध, (संयती) परस्पर मिलकर एक साथ प्रयत्न करने वाले (साकं वृधा) एक साथ मिलकर बढ़ने वाले, (अक्षिता) न क्षीण होने वाले, (मही) महान् शक्ति से युक्त पूज्य, (अपारे) अपार एवं अन्य पालक से रहित (रजसी) सूर्य पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों सभा सभापति, शास्य शासक वर्गों को (पयसा पिवत्) अन्नवत् बल वीर्य से पूर्ण करता, उनको जल से वृक्षवत् सेचता, बढ़ाता है। वह (अभि व्रजत्) सर्वत्र जा २ कर विविध प्रकार से उनको सुख, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त कराता और (अक्षितं पाज. आददे) अक्षय बल, सामर्थ स्वयं भी धारण करता और प्रदान करता है।

स मा॒तरा॑ वि॒चर॑न्वा॒जय॑न्न॒पः प्र मेधि॑रः स्व॒धया॑ पिन्वते प॒दम्।
अं॒शुर्यवे॑न पिपिशे य॒तो नृभिः॒ सं जा॒मिभि॒र्नस॑ते॒ रक्ष॑ते॒ शिरः॑॥४॥

भा०—(मेधिरः) उत्तम बुद्धिमान् पुरुष (सः) वह (मातरौ विचरन्) माता पिता ज्ञानी पुरुषों की विविध प्रकार से सेवा करता हुआ उनको प्राप्त कर (अप वाजयन्) कर्म को सफल, समृद्ध, ज्ञानयुक्त करता हुआ, (स्वधया) अपनी धारणा, पालना शक्ति से (पदम) अपने पद या ज्ञान को (पिन्वते) समृद्ध करता है। वह (अंशु.) भोक्ता होता (नृभिः यतः) उत्तम पुरुषों द्वारा नियम मे बद्ध रह कर (यवेन पिपिशे) यव आदि अन्नद्वारा उत्तम रूपवान हृष्ट पुष्ट हो। (जामिभिः सं नसते)

सहयोगी, बन्धु जनों, सहायक शक्तियों से प्रेमपूर्वक मिलकर रहे और (शिरः रक्षते) अपने शिर के समान मुख्य पद की रक्षा करे ।

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ५।१६

भा०—(कविः) विद्वान् पुरुष (दक्षेण मनसा) खूब बढ़े हुए, शक्तियुक्त चित्त वा ज्ञान से (सं जायते) अच्छी प्रकार प्रकट होता है । वह (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, वेद, तेज और बल को (गर्भः) अपने भीतर ग्रहण करने वाला (परः) सर्वोत्कृष्ट होकर (यमा निहितः) यम-संयम द्वारा स्थिर होता है । (यूना ह सन्ता) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी दोनों ही युवा और युवति होकर (प्रथमम्) पहले (जनिम) जन्म को (गुहा) गुहा, बुद्धि, वेद वाणी के गर्भ में (वि जज्ञतुः) विशेष रूप से प्राप्त करते हैं और (नेमम्) और शेष जन्म को वे (उद्यतम्) और उत्तम होकर प्राप्त होते हैं ।

मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥६॥

भा०—(यत्) जो वीर पुरुष (श्येनः) बाज़ पक्षी के समान उत्तम वेग से जाने हारा, उत्तम आचरणवान् होकर (परावतः) दूर देश से वा गुरुगृह वा परम प्रभु से (अन्धः) अन्नवत् ज्ञान को ग्रहण करता है उस (मन्द्रस्य) सब को हर्षित करने वाले पुरुष के (रूपं) उत्तम रूप को (मनीषिणः) विद्वान् लोग (विविदुः) भला प्रकार जानें । उस (ऋग्मियं) उत्तम स्तुतियुक्त, वाणियों से स्तुति करने योग्य (परियन्तं) सर्वोपरि पद को प्राप्त होते हुए (अंशु) तेजस्वी, (उशन्तं) सब उत्तम ऐश्वर्य को चाहने वाले (सुवृध) उत्तम रीति से बढ़ने और सुख बढ़ाने वाले (तं) उस को (नदीषु) समृद्ध और स्तुतिपरक प्रजाओं के बीच (मर्जयन्त) अभिषिक्त करें ।

त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम्। अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! सब के सञ्चालक! (ऋषिभिः) ज्ञानद्रष्टा (मतिभिः) मननशील पुरुषों द्वारा (धीतिभिः) उत्तम स्तुतियों, ध्यान-धारणा आदि क्रियाओं से (हितम्) हृदय में धारित, (सुतं) उपासित (त्वां) तुझ को ही (दश योषणः) दसों चित्त वृत्तियां वा प्राण तेरा भजन करने वाली, (अव्यः) तुझ से प्रेम करने वाले आत्मा के (वारेभिः) वरण करने योग्य गुणों (उत) और (देव-हूतिभिः) सब से बड़े दान देने वाले तुझ स्वामी, सर्वप्रकाशक प्रभु की स्तुतियों सहित और (नृभिः) देह के सञ्चालक प्राणों सहित (त्वा मृजन्ति) तेरा परिशोधन करती है और तू (यतः) ध्यान, धारणा, समाधि इन तीन अनुष्ठान रूप संयम द्वारा उपासित होकर (सातये) भजन करने वाले उपासक को (वाजम् आदर्षि) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य प्रदान करता है। राजा के पक्ष में—दसों दिशाओं के प्रकृति जन विद्वानों द्वारा पद पर स्थापित राजा का अभिषेक करें। वे (अव्यः वारेभिः) देशरक्षक बल के उत्तम शत्रु वारक साधनों और विजयेच्छु विद्वानों, वीरों की स्तुतियों से और वीर नायकों सहित वा उन द्वारा अभिषिक्त करें। वह बल धनादि विभाग के लिये बल को आदरपूर्वक ग्रहण करे।

परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥८॥

भा०—(मनीषा स्तुभः) मन को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले, शत्रुओं के नाश करने और विद्याओं का उपदेश करने वाले वीर एवं विद्वान् जन उस (वय्यं) सर्वरक्षक, तेजोमय, सर्वव्यापक, सर्वप्रिय, (सुं-सं-सदं) सुप्रतिष्ठित (परि प्रयन्त) सर्वत्र गतिमान (सोम)

सर्वैश्वर्यवान् प्रभु की (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं। (यः) जो (धारया) धारणाशक्ति और देववाणी द्वारा (मधुमान्) स्वयं ज्ञान युक्त, मधुर वचन वाला और बलवान् होकर (ऊर्मिणा) सर्वोपरि शक्ति से (रयि-षाड्) सब ऐश्वर्य बल को विजय करता हुआ, (अमर्त्यः) अमरणधर्मा, अविनाशी (दिवः वाचं इयर्त्ति) ज्ञान-प्रकाश से युक्त वाणी को गुरुवत् और घोषणा को राजा के तुल्य और विद्युत्-गर्जना को मेघवत् सर्वोपकारार्थ प्रेरित करता है।

अ॒यं दि॒व इ॑यर्ति॒ विश्व॒मा रजः॒ सोमः॑ पुना॒नः क॒लशे॑षु सीदति।
अ॒द्भिर्गोभि॑र्मृज्यते॒ अद्रि॑भिः सु॒तः पु॑ना॒न इन्दु॒र्वरि॑वो विदत्प्रि॒यम् ९

भा०—(दिवः रजः) आकाश से जिस प्रकार मेघ जल को देता है उसी प्रकार (पुनानः सोमः) सब जगत् को चलाने वाला सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (दिवः) ज्ञानप्रकाशमय-स्वरूप वेद से, सूर्य से तेज के समान (विश्वम् रजः आ इयर्ति) समस्त प्रकाश प्रदान करता है। वह (कलशेषु) समस्त कलशों के बीच में (सीदति) विराजता है। (अद्भिः गोभिः) प्राणों और विषयग्राहिणी इन्द्रियों से वा (अद्भिः) आप्त पुरुषों और (गोभिः) वेद-वाणियों से (मृज्यते) शुद्ध रूप में जाना जाता है। वह (अद्रिभि सुतः) मेघों में अभिषिक्त वनस्पतिवत् प्राणों से वा जीवों से उपासित (पुनानः इन्दुः) सर्वपावन, ऐश्वर्यवान्, दयालु, तेजस्वी प्रभु (प्रियम् वरिवः) अति प्रिय वरणीय सुख, धन-ऐश्वर्य भी (विदत्) प्राप्त करावे। (२) राजा अभिषिक्त होकर सर्वश्रेष्ठ धनैश्वर्य प्राप्त करे।

ए॒वा नः॑ सोम परिषि॒च्यमा॑नो॒ वयो॒ दध॑च्चि॒त्रत॑मं पवस्व।
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म् ॥१०॥२०॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् जगत् का शासन करने वाले! तू (परि-सिच्यमानः) सब प्रकार से परिषिक्त होकर, स्तुति किया जाकर

(चित्रतमं वयः दधत्) अति अद्भुत बल वीर्य, को धारण करता हुआ (पवस्व) हमें प्राप्त हो। हम (द्यावा-पृथिवी) आकाश और भूमि के समान अप्रीति भावों से रहित माता पिताओं को (हुवेम) प्राप्त करें उनका आदर करें और हे (देवाः) वीर विद्वान् जनो! (अस्मे सुवीरं रयिम् धत्त) हमें उत्तम पुत्र, वीर जन सहित ऐश्वर्य प्रदान करो। इति दशमो वर्ग. ॥

[६९]

हिरण्यस्तूप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ५ पादनिचृज्जगती। २—४, ६ जगती। ७, ८ निचृज्जगती। ९ निचृत्त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते॥ १॥

भा०—(धन्वन् इषुः न) धनुष पर बाण के समान (धन्वन्) अति ऐश्वर्यशाली, प्रभु में (इषुः मतिः) इच्छा के तुल्य मनन करने वाली बुद्धि को भी (प्रति धीयते) अपने दुःखों को दूर करने के लिये रक्खा जाता है। (मातुः ऊधनि वत्सः न) माता के स्तन पर बालक के समान (वत्सः) स्तुतिशील जन (मातुः ऊधनि) उस जगन्निर्माता के सर्वोपरि धारक स्वरूप में (उप सर्जि) लग जाता है। (अग्रे आयती) आगे बढ़ती हुई (उरु धारा इव) विशाल जल धारा जिस प्रकार अपने आगे के समस्त निम्नस्थलों को (दुहे) पूर्ण कर देती है इसी प्रकार (अग्रे आयती) आगे सब के समक्ष प्रकट होती हुई (उरु-धारा) बहुत से अर्थ या अभिप्राय को धारण करने वाली वेदवाणी वा स्तुति (दुहे) ज्ञान से पूर्ण करती है। (अस्य) इस महान् प्रभु के (व्रतेषु अपि) समस्त उत्तम कर्मों में भी (सोम इष्यते) यज्ञों में सोम के समान ओषधि वर्ग का उपयोग ही अपेक्षित है। इस प्रकार

प्रभु के सृष्टि आदि कार्यों में (सोमः) सर्व प्रेरक बल और राज्य कार्यों में राजा की सञ्चालन शक्ति आचार्य के उपदिष्ट व्रतों में ब्रह्मचारी को और प्रभु के सेवा कार्यों में जीव को सदा तत्पर होना चाहिये ।

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

भा०—(मतिः उपो पृच्यते) उस प्रभु के प्रति प्रथम बुद्धि या मति को ध्यान द्वारा लगाया जाता है । (मधु) आदरार्थ अतिथि के प्रति जल के तुल्य अति हर्षकर वचन का (सिच्यते) प्रयोग किया जाय । उस समय (आसनि अन्तः) मुख के बीच में (मन्द्राजनी) अति हर्ष उत्पन्न करने वाली वाणी (चोदते) शब्दों का उच्चारण करती है । जिस प्रकार (प्र घ्नताम् इव) उत्तम प्रहार करने वालों में (संतनिः द्रप्सः) उत्तम कार्यकुशल वेगवान् पुरुष वा बाण (वारम् परि अर्षति) वारण करने योग्य शत्रु तक पहुचता है उसी प्रकार (प्रघ्नताम्) प्रकृष्ट, उत्तम मार्ग से और उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले पुरुषों में से भी (पवमानः) अपने आत्मा को पवित्र करने वाला (संतनिः) अच्छी प्रकार कर्म करने हारा पुरुष (मधुमान्) हर्षयुक्त, बलवान्, ज्ञानवान् (द्रप्सः) द्रुत गति होकर (वारम्) वरण करने योग्य प्रभु की ओर (परि अर्षति) चला जाता है ।

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ३

भा०—जिस प्रकार (वधूयुः अव्ये त्वचि परि पवते) वधू की कामना करने वाला पुरुष भेड के आवरणकारी बालों के बने आसन पर विराजता है, वह (नप्तीः श्रथ्नीते) नाना पुत्रों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है । वह (अदितेः ऋतं यते) अतिथि, माता, पिता वा सूर्य

के तेज, पद, अधिकार को प्राप्त करता है। उसी प्रकार (वधूयुः) जगत् को वहन करने वाली ईश्वरी शक्ति का स्वामी परमेश्वर (अव्ये) सर्व-व्यापक (त्वचि) सब को आवरण करने वाले, तमोमय 'प्रधान तत्व' प्रकृति पर (परि पवते) शक्तिशाली होता है। (नप्तीः) अपने अपत्यों के तुल्य अपने से प्रेम से बंधे जीवों को (श्रथ्नीते) मुक्त कर देता है। तब वह जीव (अदितेः ऋतम्) अखण्ड परमेश्वर के सत्य ज्ञानमय स्वरूप को (यते) प्राप्त होता है। (यजतः हरिः) सब से उपासना करने योग्य प्रभु और ईश्वर की उपासना करने वाला भक्त (हरिः) दुःखों का हरण करने वाला, (संयतः) सम्यक् यत्नशील और (मदः) अति हर्षयुक्त होकर (अक्रान्) सब को पार कर जाता है। सब से उत्कृष्ट होकर रहता है। वह (महिषः न) महान् पुरुष के समान (नृम्णा) अपने बडे २ ऐश्वर्यों को (शिशीते) तीक्ष्ण करता, अधिक शक्तिशाली करता हुआ (शोभते) शोभा को प्राप्त होता है।

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत॥४॥

भा०—जिस प्रकार (उक्षा मिमाति) वीर्य सेचन में समर्थ विजार सांड शब्द करता है और (धेनवः प्रति यन्ति) गौएं आप से आप उसके पास चली जाती हैं। उसी प्रकार जब (उक्षा) कार्य-भार को अपने कन्धों पर उठाने में समर्थ, मेघवत् सुखों के बरसाने वाला प्रभु वा राजा (मिमाति) गर्जनावत् आज्ञा देता, शासन करता है, तब (धेनव देवी) उसके ज्ञान-रस का पान करने वाली नाना कामनाओं से युक्त प्राणधारी प्रजाएं (देवस्य) अन्न, ऐश्वर्य, वेतन, भृति, आश्रय आदि देने वाले तेजस्वी प्रभु के (निष्कृतम् उप यन्ति) स्थान को प्राप्त होती हैं, उसकी शरण आती हैं। वह (सोमः) सब जगत् का शासक प्रभु (अर्जुनः) दुष्टों के नाशकारी (अव्ययम्) सब प्रजा के रक्षक वा अविनाशी, (वारम्)

दुःखो के वारण करने वाले वल या पद को (अति अक्रमीत्) सबसे अधिक होकर प्राप्त करता है। और वह (निक्तं अत्कं न) अति शुद्ध कवच के समान (अत्कं) अति शुद्ध रूप को (परि अव्यत) धारण करता है। प्रभु वा आत्मा का शुद्ध-बुद्ध रूप है।

अमृ॒क्तेन॒ रुश॑ता॒ वास॑सा॒ हरि॒रम॑र्त्यो नि॒र्णि॒जा॒नः परि॑ व्यत।
दि॒वस्पृ॒ष्ठं ब॒र्हणा॑ नि॒र्णिजे॑ कृतोप॒स्तर॑णं च॒म्वोर्न॑भ॒स्मय॑म् ॥५॥२१॥

भा०—वह (अमर्त्यः) मरणधर्मा जीवो से वा देहो से भिन्न, अविनाशी, (निः-निजानः) सर्वथा शुद्ध रूप है। वह (हरिः) सब दुःखों का हरण करने वाला होकर (रुशता) कान्तिमय (अमृक्तेन) सबसे अधिक शुद्ध, अति अलंकृत (वाससा) विभूतिमय, तेजोमय बाह्य रूप से (परि व्यत) सर्वत्र व्याप्त है। वह (बर्हणा) बृहत् महान् (दिवः पृष्ठम्) सूर्य के पृष्ठ को और (चम्वोः) आकाश और भूमि के (नभस्मयम्) आकाश, सूर्य तेज या मेघमय (उप-स्तरणम्) आच्छादक आवरण को (निः-निजे कृत) सबको शुद्ध करने वा प्रकाश देने के लिये बनाता है।

सूर्य॑स्येव र॒श्मयो॑ द्राव॒यि॒त्नवो॑ मत्स॒रासः॑ प्र॒सुपः॑ सा॒कमी॑रते।
तन्तुं॑ त॒तं परि॒ सर्गा॑स आ॒शवो॒ नेन्द्रा॑दृ॒ते प॑वते॒ धाम॒ किं च॒न ६

भा०—(सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्य की रश्मियो के सदृश उज्ज्वल, (द्रावयित्नवः) द्रुत गति से जाने वाले, (मत्सरासः) सबको सुख, हर्ष देने वाले, (प्र-सुपः) शत्रुओ को नाश कर भूमि पर सुला देने वाले वा सबको सुख की नींद सुलाने वाले, सुखप्रद (आशवः) अति वेगवान् (सर्गासः) जगत् को रचने वाले, जलों के समान (ततं तन्तुं) इस विस्तृत जगन्मय पट को (साकम्) एक साथ (ईरते) सञ्चालित करते है। (इन्द्रात् ऋते) इस महैश्वर्यवान् प्रभु के सिवाय (किम् चन धाम न पवते) कोई भी लोक गति नहीं कर सकता। वे सब सूर्य की रश्मियो के तुल्य उसी के है।

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ७

भा०—(निम्ने प्रवणे) निम्न प्रदेश में जिस प्रकार (सिन्धोः) बहते प्रवाह के (वृष-च्युताः) वर्षते मेघ से गिरे हुए (आशवः) वेग से जाने वाले जलसमूह (गातुम् आशत) स्वयं मार्ग या भूमि को प्राप्त कर लेते है उसी प्रकार (वृष-च्युताः) बलवान् सर्वप्रबन्धक, वृत्तिदाता पुरुष से प्रेरित होकर (आशवः) वेगवान् (मदासः) हर्षयुक्त जन (निम्ने प्रवणे) उसके नीचे के पद पर रहकर भी उस (सिन्धोः इव) सिन्धु के समान गंभीर प्रभु की (गातुम्) भूमि वा आज्ञा को प्राप्त करते हैं। कृष हिंसा-संक्लेशन-दानेष्वपि। भ्वा०। कै गै शब्दे॥ (नः निवेशे) हमारे रहने के स्थान में (अस्मे द्विपदे चतुष्पदे) हमारे दोपायो और चौपायों को (शं) कल्याण, सुख और शान्ति प्राप्त हो। और (अस्मे) हमारे (वाजाः) अन्न और (कृष्टयः) खेतियां तथा मनुष्य प्रजाएं पुत्र पौत्रादि भी हे (सोम) उत्तम शासक! सब (तिष्ठन्तु) स्थिर होकर रहें। विनष्ट न हों।

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम्।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ८

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! सर्व-जगदुत्पादक प्रभो! तू (नः) हमें (वसुमत्) वसने योग्य भूमियों और बसे प्रजाजनों तथा नाना ऐश्वर्यादि से युक्त, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि हित, रमणीय पदार्थों से सम्पन्न (अश्ववत्) अश्वों से सम्पन्न, (गोमत्) गवादि से युक्त, (यवमत्) यवादि अन्नों से समृद्ध, (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्यवान सम्पदा (आपवस्व) सब ओर से प्राप्त करा। हे (सोम) हे उक्त शासक! हे (पितरः) पालक सेनापतियो! (यूय) आप लोग ही (मम) मेरे पालक और (दिवः मूर्धानः स्थन) आकाश के मूर्धावत् चमकते सूर्य के तुल्य सबके पालक

एवं (दिवः मूर्धानः) इस भूमि के मूर्धा तुल्य शिरोवत् अग्रगण्य और (प्रस्थिताः) उत्तम पद पर स्थित और (वयः-कृतः स्थन) बल, अन्न, दीर्घायु, ज्ञान रक्षादि करने वाले होकर रहो।

एते सोमाः पर्वमानास इन्द्रं रथाइव प्र ययुः सातिमच्छ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ॥ ९॥

भा०—(एते) ये (पवमानासः) आगे बढ़ते हुए, वा अपने को पवित्र करते हुए, आत्मपरिशोधन करते हुए (सोमाः) विद्या-जलादि से अभिषेक करते एवं माता, आचार्य आदि के गर्भ से उत्पन्न होते हुए (रथा इव सातिम्) महारथी लोग जिस प्रकार युद्ध मे जाते है उसी प्रकार (सातिम् इन्द्रं अच्छ प्रययुः) सेवा और भजन करने योग्य प्रभु और गुरु को भली प्रकार प्राप्त होते है। वे (सुताः) पवित्र, निष्णात होकर (पवित्रम्) पवित्र (अव्यं) ज्ञानियो के उत्तम ज्ञान को (अति यन्ति) खूब प्राप्त करते हैं और (हरितः वव्रिं हित्वी वृष्टिम्) जिस प्रकार सूर्य की किरणे आवरण को दूर कर वृष्टि को प्राप्त करती हैं। उसी प्रकार वे भी (हरितः) ज्ञान धारण करते हुए (वव्रि हित्वी) अज्ञान के आवरण और देह के बन्धन को दूर करके (अच्छ वृष्टिं यन्ति) भली प्रकार सुखो की वृष्टि को वा दुखो के परम नाश मोक्ष को प्राप्त होते हैं। उनका जन्मोच्छेद हो जाता है।

इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः॥१०॥२२॥

भा०—हे (इन्दो) सोम! आचार्य को प्रभुवत् उपास्य जानकर उसकी शरण मे आने वाले! तू (सुमृडीकः) उत्तम सुख देने हारा और (अनवद्य.) अनिन्दनीय (रिशादाः) दुष्टगुणो का नाशक होकर (बृहते इन्द्राय पवस्व) बडे भारी ऐश्वर्यवान् प्रभु की ओर बढ। तू (गृणते)

उपदेश करने वाले के लिये (चन्द्राणि वसूनि) आह्लादकारक नाना ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता, गुरु राजा आदि जनो ! आप लोग भी (देवैः) उत्तम गुणों और विजयी विद्वानों सहित (नः प्र अवतं) हमारी रक्षा करो, हमें ज्ञान प्रदान करो और हम से प्रेम करो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७०]

रेणुर्वैश्वामित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २, ६, ९, १० निचृज्जगती । ४, ५, ७ जगती । ८ विराड् जगती । दशर्चं सूक्तम् ॥

त्रिर॑स्मै स॒प्त धे॒नवो॑ दुदुह्रे स॒त्यामा॒शिरं॑ पू॒र्व्ये व्यो॑मनि ।
च॒त्वार्य॒न्या भुव॑नानि नि॒र्णिजे॒ चारू॑णि चक्रे॒ यदृ॒तैरव॑र्धत ॥ १ ॥

भा०—(पूर्व्ये व्योमनि) पूर्व विद्यमान एवं विद्या बल में पूर्ण विशेष रूप से सब के रक्षा करने वाले एवं सब के लिये प्राप्त होने योग्य गुरु-आश्रम में (अस्मै) इस विद्याभिलाषी ब्रह्मचारी शिष्य के लिये (सप्त धेनवः) सातों छन्दोमयी वाणियां (सत्याम् आशिरं दुदुह्रे) सत्य आश्रय योग्य ज्ञान-रस का दोहन करती हैं । (यत्) जो (ऋतैः) सत्य ज्ञान वा यज्ञों से (अवर्धत) बढ़ता बढ़ाता है, वह (अन्या चत्वारि) अन्य चार (चारूणि भुवनानि) उत्तम जलों के समान पवित्र शान्तिदायक वेदमय साधनों को भी (निर्णिजे चक्रे) स्वशोधन के लिये अनुष्ठान करे । (२) परमेश्वर के पक्ष में—(अस्मै) इसकी सातों छन्दोमयी वाणियां सत्य ज्ञान रस को प्रदान करती हैं । वही जलोंवत चारों वेदों को बनाता है, जिनको यज्ञों से समृद्ध करता है ।

स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः २

भा०—(सः) वह विद्याभिलाषी ब्रह्मचारी एवं ज्ञानवान् संन्यासी (चारुणः अमृतस्य) उत्तम अन्न की (भिक्षमाणः) भिक्षा करता हुआ, (काव्येन) उत्तम विद्वानो से उपदिष्ट वेदमय ज्ञान से (उभे द्यावा) स्त्री पुरुषो के दोनो वर्गों को (वि शश्रथे) विविध मार्गों मे प्रेरित करता रहे । वह (मंहना) महान सामर्थ्य से (तेजिष्ठाः अपः परि व्यत) अति तेजो युक्त प्राणों वीर्यों को सब प्रकार से सुरक्षित रक्खे । (यदि) जब कि लोग (श्रवसा) अन्न सहित वा ज्ञानसहित (देवस्य सदः) दाता, सर्वप्रकाशक वा भिक्षाभिलाषी के (सदः) स्थान को लोग (विदुः) प्राप्त हों । परमात्मा पक्ष मे—जब लोग उस प्रभु के स्वरूप को ज्ञान से प्राप्त करे तब वह अपने महान् सामर्थ्य से तेजोयुक्त जलों को मेघवत् ज्ञानों का प्रदान करता है ।

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

भा०—(उभे जनुषी अनु) स्थावर और जंगम दोनो जन्म वालों के प्रति वा आकाश भूमि दोनो के सम्बन्ध में (अस्य) इसके (ते) वे नाना (केतवः) ज्ञान (अमृत्यवः) मृत्यु से रहित, (अदाभ्यासः) अविनाशी (सन्ति) हों । (येभिः) जिन ज्ञानप्रकाशों से वह (देव्या च नृम्णा च) विद्वान् मनुष्यो के समस्त धनो को (पुनते) प्राप्त कराता है । (आत् इत्) और तो भी (मनना) मननशील मनुष्य उस को (राजानं) अपने राजवत् परम तेजस्वी रूप से (अगृभ्णत) स्वीकार करते है ।

स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ४

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (दशभिः सुकर्मभिः) दसों धर्म के लक्षण धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध अथवा पांच यम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और पांच नियम शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इन दस (सुकर्मभिः) शुभ कर्मों द्वारा (मृज्यमानः) पवित्र, स्वच्छ होता हुआ, (मध्यमासु) मध्यम, बीच की (मातृषु) मातृतुल्य प्रेमयुक्त व्यक्तियों गुरु जनों के बीच (प्र-मे) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये (प्र सचा) अच्छी प्रकार स्थिरता से रहे वह (व्रतानि पानः) व्रतों, यम नियमादि पालनीय कर्मों को पालन करता हुआ (नृ-चक्षाः) नेता जनों वा मनुष्यों वा अपने आत्मा को देखता हुआ (विशौ उभे अनु) दोनों उत्तम और निकृष्ट स्थावर जंगम वा मानव तिर्यङ् दोनों प्रजाओं को बीच में (अमृतस्य चारुणः) अमृत, अविनाशी भोक्ता आत्मा का (पश्यते) साक्षात् करता है। अथवा—(चारुः अमृतस्य व्रतानि पानः उभे विशौ अनु पश्यते) वह शासकवत् अमृत, सर्वव्यापक प्रभु के नियमों का पालन करता हुआ दोनों प्रजाओं पर कृपा दृष्टि रखता है।

स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः॥५।२३॥

भा०—(सः) वह (धायसे) सब को धारण करने वाले (इन्द्रियाय) इन्द्र, परमेश्वर वा आत्मा को प्रिय लगने वाले परमैश्वर्ययुक्त शासन वा मोक्ष आदि पद के प्राप्त करने के लिये (मर्मृजानः) अभिषिक्त, शुद्ध पवित्र होकर (रोदसी अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के तुल्य शासक और शास्य प्रजाओं के बीच शास्ता राजा के तुल्य (रोदसी उभे अन्तः) माता पिता के तुल्य पूज्य जनों के बीच वा दोनों को (हितः) स्थापित वा नियमबद्ध होकर (आ हर्षते) स्वयं हर्षित होता और उनको भी हर्षित करता है। (शुरुधः शर्यहा इव) शत्रुसेनाओं को जिस प्रकार

वाणो द्वारा मारने वाला धनुर्धर मारता है उसी प्रकार वह (आदेदिशानः) सर्वत्र ज्ञानोपदेश करता हुआ, (वृषा) बलवान्, मेघ के तुल्य उदार होकर (शुष्मेण) अपने बल से, (दुर्मती वि बाधते) दुष्ट विचारो, संकल्पो और दुष्ट बुद्धियो को वा बुरी मति वाले दुष्ट पुरुषो को विविध प्रकार से पीड़ित कर नष्ट करता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स मातरा न ददृशान उस्त्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो वह स्वयं (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मवान् होकर (प्रशस्तये) उत्तम स्तुति के लिये (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (स्वः-नरम्) सुखस्वरूप तेजोमय, सर्वसञ्चालक, प्रेरक परम पुरुष प्रभु को ही (कम्) सुखमय जानकर (अवृणीत) वरण करता है। तब (सः) वह (उस्त्रियः) उत्तम मार्ग में ले जाने वालो को (मातरा) माता पिता के समान (ददृशानः) देखता हुआ, (मरुताम् इव स्वनः) वायुओ के गर्जते ध्वनि के तुल्य स्वयं भी (स्वनः) उपदेशकर्त्ता होकर (प्रथमम्) सर्वोत्तम (ऋतं) वेद-ज्ञान को (जानन्) जानता हुआ (नानदद् एति) निरन्तर उपदेश करता हुआ परिव्राजकवत् आता है।

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥

भा०—वह सोम, ब्रह्मविद्या का जिज्ञासु, मुमुक्षु एव स्वराट् पद का आकांक्षी पुरुष (भीमः वृषभः) शत्रुओ और पापकारियों के प्रति भयंकर, बलवान्, सब पुरुषो मे श्रेष्ठ, (विचक्षणः) विशेष ज्ञान का दर्शन करने वाला होकर, (हरिणी) दुखो वा समस्त प्रजा जनों के चित्तो को हरण करने वाले (शृङ्गे) दुष्टो के नाशक दो सींगो के तुल्य, ज्ञान और कर्म वा वाक् और चित्त दोनो शक्तियों को (शिशानः) तीक्ष्ण, प्रबल करता

हुआ (तविष्यया) शक्ति प्राप्त करने के लिये (रुवति) गर्जना करता है। वह आदृत होकर (सुकृतं योनिम्) उत्तम रूप से बनाये गृह वा स्थान में वा आसन पर वा अपने सुकर्मों से बने लोक में (आ नि सीदति) विराजता है। उस समय उसका (त्वग्) त्वचा, आवरण वा रूप (निः-निग्) अति पवित्र, शुद्ध, (अव्ययी) भेड़ के बने कम्बल वा (गव्ययी) गोचर्म के तुल्य (अव्ययी) अविनाशिनी और (गव्ययी) गो अर्थात् वाणी के ज्ञान से बना होता है। वह उस समय ज्ञानमयी कन्था को धारण करता है।

शुचि॑ः पुना॒नस्त॒न्व॑मरे॒पस॒मव्ये॒ हरि॒र्न्य॑धाविष्ट॒ सान॑वि।
जु॒ष्टो मि॒त्राय॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑ त्रि॒धातु॒ मधु॑ क्रियते सु॒कर्म॑भिः ॥८॥

भा०—(हरिः) उत्तम मनुष्य, सब दुःखों का हरण करने वाला, (शुचिः) शुद्ध पवित्र आचारवान् होकर (तन्वम्) अपने शरीर को (अरेपसम्) निष्पाप (पुनानः) स्वच्छ करता हुआ (अव्ये) उत्तम रक्षक वा ज्ञानी के योग्य (सानौ) उच्च पद पर (नि अधाविष्ट) निश्चित रूप से अभिषिक्त किया जाय। वह (मित्राय) स्नेह करने वाले, (वरुणाय सर्वश्रेष्ठ और (वायवे) वायुवद् बलवान् प्रभु का (जुष्टः) प्रिय भक्त हो। उसके लिये (सु-कर्मभिः) उत्तम कर्मवान् पुरुषों द्वारा (त्रिधातु मधु क्रियते) मन, वाणी और कर्म द्वारा तीन प्रकारों से धारण करने योग्य मधुपर्कवत् मधुर, सुखप्रद ज्ञान का उपदेश किया जाय।

पव॑स्व सोम दे॒ववी॑तये॒ वृषेन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श।
पु॒रा नो॑ बा॒धाद्दु॑रि॒ताति॑ पारय क्षेत्र॒विद्धि॒ दिश॒ आहा॑ विपृच्छ॒ते ॥९॥

भा०—हे (सोम) उत्तम ज्ञानोपदेश के अनुशासन करने हारे! विद्वान् पुरुष! तू (वृषा) बलवान् होकर (देव-वीतये) मनुष्यों की रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से युक्त शासक या गुरु के

(हार्दि) हृदयानुकूल, (सोम धानम् आविश) उत्तम शिष्य वा शास्ता के धारण करने योग्य आश्रम में प्रवेश कर, दीक्षा ले। (बाधात् पुरा) पीडा कष्ट होने के पूर्व ही (नः) हमें (दुरिता अति पारय) बुरे आचारणो वा दुःखो से पार कर। तू (क्षेत्रवित् हि) क्योकि क्षेत्रज्ञ, गणित शास्त्र के वेत्ता के समान ज्ञानी है। तू ही (विपृच्छते) विशेष ज्ञान की जिज्ञासा करने वाले को (दिशः आह) ठीक २ दिशाएं, वा उत्तम २ उपदेश (आह) बतला।

हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व। नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः॥१०॥२४॥

भा०—तू (सप्तिः न) सूर्य या अश्व के समान (हितः) नियुक्त वा दीक्षित होकर हे शास्तः! (वाजम् अभि अर्ष) ज्ञानवत् बल और ऐश्वर्य को प्राप्त कर। हे (इन्दो) ज्ञान, तेज से चमकने वाले! तू (इन्द्रस्य) आचार्य के गर्भ में शिष्यवत् (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (जाठरम् आ पवस्व) मध्यभाग मे आ। तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नावा सिन्धुम् न) नौका से सिन्धु के तुल्य (अति पर्षि) हमें पार कर। और (युध्यन् शूरः न) युद्ध करते हुए शूरवीर पुरुष के समान (नः निदः अव स्पः) हमारे निन्दकों का नाश कर, वा हमें निन्दा योग्य कार्यों से बचा। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[७१]

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् जगती। २ जगती। ३, ५, ८ निचृज्जगती। ६ पादनिचृज्जगती। ९ विराट् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्याऽसदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः। हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वोऽर्ब्रह्म निर्णिजे॥१॥

भा०—(दक्षिणा आ सृज्यते) उत्साह को उत्पन्न करने वाली प्रवल शक्ति वा दान, वेतनादि की व्यवस्था सर्वत्र वनाई जानी उचित है। क्योंकि उसी द्वारा (शुष्मी) बलवान् राजा शासक भी (आसदम् वेति) राज्य सिंहासन वा राजसभा को वा प्रतिष्ठा को प्राप्त करता और उसकी रक्षा करता है। वह (जागृविः हरिः) सदा जागने वाला, अप्रमादी, दुष्टों का संहार करने वाला शासक (द्रुहः रक्षसः पाति) द्रोहकारी राक्षसों, विघ्न कारी पुरुषों से राष्ट्र को बचाता है। वह (नभः) उत्तम प्रबन्ध को सूर्य-प्रकाश के तुल्य (ओपशं) व्यापक (कृणुते) कर देता है। (चम्वोः) सेना और प्रजा दोनो के (ब्रह्म पयः) वड़े भारी बल वीर्य को (निः-निजे) राष्ट्र का शोधन करने के लिये (उपस्तिरे) विस्तृत करता है।

प्र कृ॑ष्टि॒हेव॑ शू॒ष ए॑ति॒ रोरु॑वदसु॒र्यं१॒॑ वर्णं॒ नि रि॑णीते अस्य॒ तम्।
जहा॑ति व॒व्रिं पि॒तुरे॑ति निष्कृ॒तमु॑प॒प्रुतं॑ कृणुते नि॒र्णिजं॒ तना॑॥ २॥

भा०—सोम अर्थात् ज्ञानों, शास्त्रों का अनुशासन करने वाला विद्वान् पुरुष (कृष्टिहा इव शूरः) मनुष्यों को मारने वाले शूरवीर पुरुष के समान स्वयं भी (शूरः) वेग से जाने वाला (कृष्टिहा) सब मनुष्यों तक पहुंच कर (रोरुवत् एति) उपदेश करता हुआ उनको प्राप्त होता है और वह (अस्य) इस प्रजाजन के (तम्) उस, चिरकाल से विद्यमान (अ-सुर्यं वर्णम्) अज्ञानमय, प्रकाशरहित आवरण को (नि रिणीते) दूर कर देता है। वह स्वयं (वव्रि) अपने अज्ञान आवरण को (जहाति) त्याग देता है और (पितुः निष्कृतम् एति) पिता के पद को प्राप्त करता है। और अपने (तना) विस्तृत (निर्-निजं) अति शु ज्ञान-ऐश्वर्य को (उपप्रुतं कृणुते) प्राप्त कराता है। स्वयं उत्तम पद प अभिषिक्त होता है।

अद्रि॑भिः सु॒तः प॑वते॒ गभ॑स्त्योर्वृषा॒यते॒ नभ॑सा॒ वेप॑ते म॒ती।
स मो॑दते॒ नस॑ते॒ साध॑ते गि॒रा ने॑नि॒क्ते अ॒प्सु यज॑ते॒ परी॑मणि॥

भा०—वह (अद्रिभिः सुतः) मेघ के तुल्य दयालु, आदर योग्य गुरुजनों से (सुतः) उत्पादित और विद्या-व्रत आदि में स्नात होकर (गभस्त्योः) बाहुओं के बल से (पवते) राष्ट्र को शुद्ध-पवित्र करता है और (मती वेपते) बुद्धि के बल से शत्रुओं को कंपाता है। (सः मोदते) वह प्रसन्न होता, अन्यों को प्रसन्न करता है, (नसते) सर्वप्रिय हो जाता है। (गिरा साधते) वाणीमात्र से कार्य को सिद्ध करता है। (गिरा नेनिक्ते) सम्यक् शील व्यक्ति को वाणी द्वारा पवित्र करता है, और (अप्सु परीमणि यजते) प्रजाओं के बीच, वा प्राणों के बीच, सर्वश्रेष्ठ पद पर पूजित होता है।

परि॑ द्यु॒क्षं सह॑सः पर्वता॒वृधं॒ मध्वः॑ सिञ्चन्ति ह॒र्म्यस्य॑ स॒क्षणि॑म्।
आ यस्मि॒न्गावः॑ सुहु॒ताद॒ ऊध॑नि मू॒र्धञ्छ्री॒णन्त्य॑ग्रि॒यं वरी॑मभिः ४

भा०—(सहसः) शत्रुओं को अपने बल से पराजित करने वाले, (मध्वः) हृष्ट पुष्ट, बलवान् प्रजावासी वीर जन (द्युक्षम्) तेज-ऐश्वर्यवान् (पर्वत-वृधम्) मेघ वा पर्वत के समान बढ़ने और प्रजा को बढ़ाने वाले (हर्म्यस्य सक्षणिम्) उत्तम राजभवन के बीच विराजने योग्य पुरुष को (परि सिञ्चन्ति) अभिषेक करते, उसको प्रधान पद देते हैं। (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (गावः) गौओं के तुल्य समस्त (सुहुत-अदः प्रजाः) उत्तम रीति से आहुति करके यज्ञशेष खाने वाली प्रजाएं (ऊधनि पयः) स्तन-भाग में दूध के तुल्य (वरीमभिः) श्रेष्ठ २ वचनों और कर्मों द्वारा (मूर्धन्) सब के शिरोवत् सर्वोच्च पद पर (अग्रियम्) अग्रपद के योग्य उसकी ही (श्रीणन्ति) सेवा करती हैं, उसका ही आश्रय लेती है।

समी॒ रथं॒ न भु॒रिजो॑रहेषत॒ दश॒ स्वसा॑रो॒ अदि॑तेरु॒पस्थ॒ आ।
जिगा॒दुपं॑ ज्रयति॒ गोर॑पी॒च्यं॑ प॒दं यद॑स्य म॒तुथा॒ अजी॑जनन् ५।२५

भा०—(भुरिजो दश स्वसारः रथं न) दोनों बाहुओं की दसों अंगुलियां यत्नों के समान मिल कर जिस प्रकार रथ को प्रेरित करती, सन्मार्ग पर

चलती है। उसी प्रकार (भुरिजोः) बाहुओं को तुल्य समस्त राष्ट्र को भरण पोषण करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्गों में से (दश) दस (सु-असारः) उत्तम मार्ग पर प्रेरित करने में समर्थ मुख्य, विद्वान् प्रकृतियें, अमात्यजन, (रथं) उस बलवान्, प्रधान पुरुष को (सम् अहेषत) एक साथ मिलकर सम्यक् मार्ग मे लेजाया करें। वह (अदितेः उपस्थे) भूमि के ऊपर (आजिगात्) चारों ओर जावे, भ्रमण करे वा वह (अदितेः) कभी न दीन रहने वाली, न दबने वाली, सर्वोपरि राजसभा के (उपस्थे) समीप (आजिगात्) आवे। और (मतुथा) मननशील विचारवान् पुरुष (अस्य) इस शासक के (यत् पदं अजीजनन्) जिस पद, अधिकार को प्रकट करें, वह (गोः अपीच्यं पदं) भूमि या वाणी के उसी माननीय पद को (उप त्रयति) प्राप्त करे। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥६॥

भा०—(श्येनः योनिं न) बाज पक्षी जिस प्रकार अपने घोसले की ओर आता है उसी प्रकार (श्येनः) प्रशंसनीय गति, सत आचार व्यवहारवान् पुरुष (धिया कृतम्) बहुत बुद्धिमत्ता से बनाये, विद्वानों द्वारा, सुविचारित और शिल्पियों द्वारा कारीगरी से बनाये गये (हिरण्ययम्) प्रजा के हितकारी और उनको प्रिय लगने वाले, (सदनं) सभाभवन और (आसदम्) बैठने योग्य आसन को वह (देवः) तेजस्वी, मानाभिलाषी पुरुष (आ ईषति) प्राप्त होता है। और विद्वान जन (ईम्) उस (प्रियम्) सर्वप्रिय जन को (गिरा) वाणी द्वारा (बर्हिषि) वृद्धियुक्त, उस प्रजा के अध्यक्ष योग्य आसन पर (आ रिणन्ति) बैठने को प्रेरित करते हैं। और वह (अश्वः) अश्व के समान बलवान, राज्य-रथ को उठाने में समर्थ, (यज्ञिय) पूजायोग्य होकर (यज्ञिय

अश्वः न) अश्वमेध यज्ञोपयोगी अश्व के तुल्य (देवान् अपि-एति) विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करे, उनसे मिलकर राज्य-कार्य करे।

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥

भा०—वह सर्व-जगत् का शासक, राष्ट्र शासक के समान ही (अरुषः) रोषरहित, वा तेजस्वी, (कविः) क्रान्तदर्शी, (दिवः) आकाश और भूमि पर सूर्य और अग्नि के तुल्य (परा) दूर २ तक (वि-अक्तः) विविध तेजों से प्रकाशित होने वाला, (त्रि-पृष्ठः) तीनों लोकों को पोषण करने वाला, (वृषा) बलवान्, प्रजाओं पर सुखों की मेघवत् वर्षा करने वाला, उत्तम प्रबन्धक, होकर (गाः अभि अनविष्ट) वाणियों, आज्ञाओं को प्रदान करता है। वह (सहस्र-नीतिः) सहस्रों बलवान् नीतियों वा सहस्रों नेत्रों वाला, (यतिः) सर्वनियन्ता, यत्नवान्, (परायतिः) सबका परम प्राप्य स्थान, परायण है। वह (रेभः न) उपदेष्टा के समान (पूर्वीः उषसः) पूर्व के उषा कालों में भी सूर्यवत् पूर्ण समृद्ध, पाप-शत्रु आदि के दाहक शक्तियों को प्राप्त करके राजा के तुल्य अनादि कालों से (विराजति) प्रकाशित है।

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥ ८ ॥

भा०—(वर्णः) इसको वरण करने वाला प्रजाजन (अस्य रूपं) इसके रूप को (त्वेष) कान्तियुक्त (कृणुते) करता है और (सः यत्र अशयत्) वह प्रभु वा विद्वान् शासक जहां रहता है वहां (समृता) संग्राम में वा उस उत्तम (सम्-ऋता) भूमि में (स्रिधः सेधति) हिंसक जनों और शत्रु सेनाओं का नाश करता है। वह (अप्साः) जल देने वाले मेघ के समान (दैव्यं जनं) देव, विद्वानों के प्रिय जनपद को (स्वधया) जल से अन्नवत् अपनी धारक-पोषक शक्ति से (याति) प्राप्त

होता है। और वह (गो-अग्रया सुस्तुती) दधि, दुग्धादि मुख्य पदार्थ से युक्त उत्तम स्तुति अर्थात् मधुपर्क द्वारा उत्तम सत्कार को (सं नसते) प्राप्त होता है। 'गो' शब्द मधुपर्क का वाचक मनु मे आता है जैसे—

अर्हयेत् प्रथमं गवा। (अ० २)

उ॒क्षेव॑ यू॒था प॑रि॒यन्न॑रावी॒दधि॒ त्विषी॑रधित॒ सूर्य॑स्य ।
दि॒व्यः सु॑प॒र्णोऽव॑ चक्षत॒ क्षां सोमः॒ परि॒ क्रतु॑ना पश्यते॒ जाः॥६।२६

भा०—(यूथा परियन्) गो-यूथो को प्राप्त होता हुआ जिस प्रकार (उक्षा इव) बिजार सांड हर्ष ध्वनि करता है उसी प्रकार (यूथा परियन्) सैन्यसमूहो वा प्रजासमूहो को प्राप्त होकर वह भी (रावीत्) बल पूर्वक आज्ञा, उपदेश आदि प्रसन्नतापूर्वक प्रदान करता है। और (यूथा अधि) उन सैन्य व प्रजासमूहो पर अध्यक्ष होकर (सूर्यस्य त्विषीः) सूर्य की कान्तियों को (अधित) धारण करता है। वह (दिव्यः) ज्ञान और तेज से सम्पन्न होकर (सुपर्णः) उत्तम शुभ ज्ञान और पालन, बल तथा यान-साधनो से सम्पन्न होकर (क्षाम् अव चक्षते) भूमि पर कृपासहित देखता और उनको अनुशासन करता है। वह (सोमः) विद्वान् शासक (क्रतुना) क्रिया-सामर्थ्य और ज्ञान से (जाः परि पश्यते) सब प्रजाओं को देखता है। इति षड्विंशो वर्गः॥

[७२]

हरिमन्त ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१—३, ६, ७ निचृज्जगती। ४, ८ जगती। ५ विराड् जगती। ९ पादनिचृज्जगती॥
नवर्चं सूक्तम्॥

हरिं॑ मृजन्त्यरु॒षो न यु॑ज्यते॒ सं धे॒नुभिः॑ क॒लशे॒ सोमो॑ अज्यते ।
उद्वाच॒मी॒रय॑ति हि॒न्वते॑ म॒ती पु॑रुष्टु॒तस्य॒ कति॑ चित्परि॒प्रियः॑॥१॥

भा०—प्रजाजन (हरिम्) सबके मनो और दुःखों को हरने वाले का (मृजन्ति) अभिषेक करते है। वह (अरुषः न) वेगवान् अश्व वा सूर्य के समान (धेनुभिः) प्रसन्न करने वाली वाणियो द्वारा (सं युज्यते) रथमे अश्व के तुल्य, राष्ट्रकार्य मे (सं युज्यते) नियुक्त किया जाता है। और वह (सोमः) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी अभिषेक योग्य, राष्ट्र-भार को वहन करने वाली शक्ति का स्वामी, वा उसका इच्छुक शास्ता जन, (कलशे) राष्ट्र में (अज्यते) प्रकाशित होता है, वा सन्मार्ग पर चलाया वा सुशोभित किया जाता है। वह (हिन्वते) उसको बढाने वाले प्रजाजन के हितार्थ (वाचम् उत् ईरयति) उत्तम प्रभुवाणी का उपदेश करता है। (पुरु-स्तुतस्य) बहुत से प्रशंसित जन की (मती) ज्ञान वा बुद्धि द्वारा (कतिचित्) कितने ही (परिप्रियः) सबको प्रसन्न करने वाले कार्य करता है।

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः।
यदीं मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥२॥

भा०—(यदि) जब (सुगभस्तयः नरः) उत्तम बाहुओ वाले, बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी नेता पुरुष (सनीडाभिः) एक ही देश में रहने वाली (दशभि.) दशो दिशाओ की प्रजाओ सहित (सोमं मृजन्ति) उत्तम शासक का अभिषेक करते है और (इन्द्रस्य जठरे) उस ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक के पेट मे (काम्यं मधु दुदुहुः) कामना योग्य मधुपर्क प्रदान करते हैं वा, उस ऐश्वर्यवान् के शासन मे कामना योग्य बल देते हैं तब (बहवः मनीषिण) बहुत से मननशील विद्वान् पुरुष (साकं वदन्ति) एक साथ भाषण करते है, उसका गुणवर्णन और स्तुति करते हैं।

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम्।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥

भा०—वह उत्तम शास्ता, (अरममाणः) कहीं भी सुख न पाता हुआ, (गाः अति एति) आत्मा के तुल्य समस्त भूमियों को अति क्रमण कर जाता है। उनका (तिरः) तिरस्कार करके (सूर्यस्य दुहितुः) सूर्य को तेज से पूर्ण करने वाला, उसकी पुत्री के समान उषा के तुल्य कान्ति-युक्त स्त्रीवत् (सूर्यस्य प्रियं दुहितुः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के प्रिय अभिलषित मनोरथ को पूर्ण करने वाली प्रजा के (रवम् अभि एति) लोकमत के प्रति ध्यान देता है। और वह (विनंगृसः) बाहु के समान विविध काम्य पदार्थों को ग्रहण करने वाला क्षत्रिय वीर (अस्मै जोषम् अनु अभरत्) इस राष्ट्र के हित को लक्ष्य करके उसका भरण पोषण करता है और (द्वयीभिः स्वसृभिः जामिभिः) दोनों प्रकार की, स्वयं उस तक पहुंचने वाला बहुतों के तुल्य विद्वान् बलवान्, निर्बल धनी और निर्धन प्रजाओं सहित वह (सं क्षेति) एक ही राष्ट्र में निवास करता है।

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः।
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राष्ट्र के समृद्ध जन! (ते) तेरे हितार्थ (शुचिः) हृदय में शुद्ध, ईमानदार (सोमः) शासक (धिया) बुद्धि और कर्म से परीक्षित करके (पवते) तुझे प्राप्त हो। वह (नृ-धूतः) उत्तम पुरुषों से अभिषिक्त और (अद्रि-सुतः) मेघ वा पर्वतवत् दृढ पुरुषों से प्रेरित, (प्रियः) प्रजाओं को प्रिय, उनको प्रसन्न करने वाला, (प्रदिवः) उत्तम ज्ञान और तेज से सम्पन्न (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् और दयार्द्र भाव से युक्त, (ऋत्वियः) समय २ पर अनुकूल कर्म करने वाला, (बर्हिषि) महान् राष्ट्र वा इस भूमिलोक पर स्थित (गवां पतिः) समस्त भूमियों राजाज्ञाओं, कानूनों का पालक, रक्षक (पुरन्धिवान्) नगर को धारण करने वाली सभाओं वा बहुत बुद्धियुक्त पुरुषों का स्वामी, (मनुषः) मनुष्यों के (यज्ञ साधनः) यज्ञों, उत्तम कर्मों, सत्संगों को साधने वाला होता है।

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ५।२७

भा०—हे सेनापति सोम ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरा (सोमः) बल-वीर्य (नृ-बाहुभ्याम्) नायक वीर पुरुषो की बाहुओं से (चोदितः) प्रेरित और (अनु-स्वधम्) अपने २ कर्मसामर्थ्य, भरण-पोषण वा वेतन अनुसार (धारया) राजाज्ञा, वा वेदवाणी द्वारा (सुतः) शिष्यवद् अनुशासित, शिक्षित होकर (ते पवते) तेरे लिये कार्य करता है । तू (क्रतून् आ अपाः) नाना कर्मों को पूर्ण कर । और (अध्वरे) हिंसारहित, युद्ध अर्थात् साम, दान, भेद द्वारा शत्रु-हनन कार्य और अध्वर अर्थात् प्रजापालन के कार्य मे (मतीः) समस्त बुद्धियो को (सम् अजैः) सम्यक् प्रकार से विजय कर । (द्रुसत् वेः न) वृक्ष पर बैठे पक्षी के समान तू भी (हरिः) सर्वप्रिय, वा सूर्यवत् होकर (चम्वोः आसदत्) दोनो सेनाओ के ऊपर अध्यक्ष होकर रह । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ६

भा०—(मनीषिणः कवयः) बुद्धिमान् , दूरदर्शी, (अपसः) कर्मकुशल पुरुष उसके (अंशुम्) सर्वव्यापक (स्तनयन्तम्) मेघवत् गर्जन वाले, वा माता के स्तनवत् सब प्राणियो को दुग्धवत् अन्न प्राण देने वाले मातृवत् , गुरुवत्, उपदेशप्रद (अक्षितं) अक्षय, अविनाशी, (कविं) क्रान्तदर्शी, पुरुष को प्राप्त कर उससे (ऋतस्य अक्षित) सत्य ज्ञान वेद का अक्षय कोष (दुहन्ति) प्राप्त करते है । और (मतयः) विचारवान् पुरुष (गावः) गौओ के समान, आत्मा के प्रति इन्द्रियो के तुल्य (संयतः) एक साथ यत्नशील होकर वा संयत सुसम्बद्ध, सुव्यवस्थित होकर (ऋतस्य योना) सत्य ज्ञान के आश्रय (सदने) परम आश्रय में (पुनर्भुवः) पुनः २ प्रकट होने वाले (यन्ति) प्राप्त होते है ।

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ७

भा०—सोम का स्वरूप। (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी की नाभि वा केन्द्र में स्थित वह बल जो (धरुणः) उसको धारण कर रहा है, और (महः दिवः नाभा धरुणः) बड़े भारी आकाशमण्डल के केन्द्र में स्थित बल जो उसको धारण कर रहा है, और वह बल जो (अपाम् ऊर्मौ) प्राणों और जलों और लोकों के बीच तरंगवत् सर्वोन्नत मुख्य प्राणाधार और सूर्यादि लोक में विद्यमान उनको धारण करता है, और जो बल (सिन्धुषु अन्तः) समुद्रों और वेग से बहने वाले जलों में है वह (सोमः) सबका प्रेरक, सबका शासक बल (इन्द्रस्य वज्रः) ऐश्वर्ययुक्त उस महान् प्रभु का बल है जो (वृषभः) समस्त सुखों की वर्षा करने वाला. (विभु-वसुः) बड़े २ लोकों में व्यापक, (मत्सरः) सबको सुखी, प्रसन्न करने वाला, (हृदे) सबके हृदय में (चारु पवते) उत्तम रीति से प्राणवत् गति करता है।

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि॥८॥

भा०—हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञा और कर्म करने हारे! शक्तिशालिन्! (स्तोत्रे) स्तुति करने वाले और (आधून्वते च) और अपने चित्त के मलों और विक्षेपों को साफ कर डालने और कषाय मलों को त्याग देने वाले को (शिक्षन्) ज्ञान प्रदान करता हुआ (सः) वह (पार्थिवं रजः) पृथिवी रजोरूप पार्थिव लोक या देह को भी (परि पवस्व) मेघवत् सूर्य-प्रकाशवत् प्राप्त हो, उसे व्याप। (नः) हमें (सादन-स्पृशः) गृह आदि प्रदान कराने वाले या घर में आये (वसुनः) ऐश्वर्य से (मा निर्भाक्) निर्भक्त या पृथक् मत कर और हम (बहुलम्)

बहुतसा (पिशंगम् रयिम् वसीमहि) पीले रंग का ऐश्वर्य, सुवर्णादि धारण करें ।

आ तू न॑ इन्दो शतदा॒त्वश्व्यं॑ स॒हस्र॑दातु पशु॒मद्धिर॑ण्यवत् ।
उप॑मास्व बृह॒ती रे॒वती॒रिषोऽधि॑ स्तो॒त्रस्य॑ पवमान नो गहि॥२८

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमे (शतदातु सहस्रदातु) सैकड़ो और सहस्रो की संख्या मे सुखादि देने वाला (अश्व्यं पशुमत् हिरण्यवत्) अश्व, पशु और सुवर्णादि से युक्त ऐश्वर्य (आ) प्रदान कर । तू हमारे लिये (बृहतीः रेवतीः इषः) बहुत बड़ी धनादि सम्पन्न, सुख-दायी अन्न समृद्धियां (उपमास्व) उत्पन्न कर । हे (पवमान) सर्व-व्यापक ! (नः स्तोत्रस्य अधिगहि) तू हमारे स्तुति वचन को खूब स्वीकार कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[७३]

पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २—७ निचृज्जगती । ८, ९ विराड् जगती ॥

स्रक्वे॑ द्र॒प्सस्य॒ धम॑तः॒ सम॑स्वरन्नृ॒तस्य॒ योना॒ सम॑रन्त॒ नाभ॑यः ।
त्रीन्त्स मू॒र्ध्नो असु॑रश्चक्र आ॒रभे॑ स॒त्यस्य॒ नाव॑ः सु॒कृत॑मपीपरन् १

भा०—(स्रक्वे) सर्जन करने योग्य इस देह या विराट् जगत् मे (धमतः द्रप्सस्य) द्रुतगामी रस के तुल्य ज्ञानवान् प्रभु के उपदेश करते हुए वा रसस्वरूप उस प्रभु के जगत् का निर्माण करते हुए, (ऋतस्य योना) तेज और परम ज्ञान के आश्रयभूत उस प्रभु मे (योना नाभयः) गृह मे तन्तुओं के तुल्य ही समस्त (नाभयः) बद्ध जीव (सम् अस्वरन्) एक साथ उसकी स्तुति करते और (सम् अरन्त) संगत होते है । (सः असुरः) समस्त जीवों को प्राणों का देने वाला उस प्रभु ने (आरभे) कार्य करने के लिये (मूर्ध्नः) सिर के भी (त्रीन् चक्रे) तीन प्रमुख भाग

बनाये। ये (सत्यस्य नावः) ये सत्य की नौकाएं (सुकृतम्) शुभ कर्म करने वाले को ही (अपीपरन्) पार कर देती है।

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्। मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥

भा०—(सम्यञ्चः) एक साथ संगत हुए (महिषाः) गुणों में महान्, बड़े ऐश्वर्यवान् जन (सम्यक् अहेषत) उस प्रभु की अच्छी प्रकार स्तुति करते है, और वे (वेनाः) तेजस्वी सूर्य के तुल्य नाना ऐश्वर्यों की की इच्छा करने वाले जन, (सिन्धोः ऊर्मौ अधि) समुद्र या महानद के तुल्य महान् उस प्रभु के आनन्द तरंग या उत्तम ज्ञान में (अधि) पहुच कर (अवीविपन्) उसकी स्तुति करते हैं। वे (मधोः धाराभिः) उत्तम ज्ञान से युक्त वा साधु अर्थात् ऋग्वेद की वाणियो द्वारा (अर्कं जनयन्तः) स्तुति करते हुए (इन्द्रस्य) उस महान् प्रभु परमेश्वर की ही (प्रिया) सब को प्रिय लगने वाली (तन्वम्) विस्तृत स्तुति, महिमा को ही (अवीवृधन्) बढ़ाते है।

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्। महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥

भा०—(पवित्रवन्तः वाचम् परि आसते) जिस प्रकार पवित्र ग्रहण कर शिष्य वक्ता गुरु के चारों ओर ज्ञान-शिक्षा ग्रहण करने के लिये विराजते है उसी प्रकार (पवित्रवन्तः) पवित्र हृदय और आचारवान् जन (वाचम् परि आसते) वेद के उपदेश करने वाले वेदमय प्रभु की उपासना करते है। वह (एषाम् प्रत्नः पिता) उन जीवो, लोको का अनादि सिद्ध पालक प्रभु (एषा व्रतम् अभि रक्षति) इनके ज्ञान, कर्म और अन्नादि की आचार्यवत् ही रक्षा करता है। (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ प्रभु (महः समुद्र) बड़े भारी समुद्र के तुल्य ज्ञानसागर को (तिरः दधे) अपने भीतर धारण

करता है। (धीराः) ध्याननिष्ठ पुरुष ही (धरुणेषु) अपने धारणाशील हृदयों में उसको (आरभं शेकुः) प्राप्त कर सकते हैं। तिरः सत इति प्राप्तस्य। निरुक्तम्।

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ४

भा०—जिस प्रकार (सहस्र-धारे नाके) सहस्रों लोकों को धारण करने वाले वा जगत् के धारक आकाश में (दिवः) समस्त तेजस्वी गतिमान् गगनविहारी सूर्यादिलोक वा किरणें एक साथ (सम् अस्वरन्) गति करते, चमकते हैं और वे (असश्चतः) कहीं आसक्त न रह कर भी (मधु-जिह्वाः) जल को ग्रहण करने वाले, शब्द-अग्नि-संयोग को अपने अग्रभाग में धारने वाले होते हैं उसी प्रकार (दिवः) तेजोयुक्त ज्ञानी पुरुष (असश्चतः) निःसंग और (मधु-जिह्वाः) ज्ञान-युक्त, मधुर वाणियों को बोलने वाले, वेदवक्ता लोग (सहस्र-धारे) सहस्रों वेद वाणियों और शक्तियों को धारण करने वाले (नाके) परम सुखमय मोक्ष रूप प्रभु में विराजते हुए (सम् अस्वरन्) मिलकर उसका अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं। इसी प्रकार मधुर वाणी वाले असंग विद्यार्थी जन असंख्य या 'सहस्र' नाम ऋग्वेद के धारक आचार्य के अधीन अच्छी प्रकार वेद पाठ करें। (अस्य भूर्णयः) इसके प्रजापालक जन रश्मियों वा आकाशस्थ सूर्यादि के तुल्य ही (स्पशः) दूतों के तुल्य यथार्थ बात को दर्शाने वाले (न निमिषन्ति) कभी निमेष को प्राप्त नहीं होते, कभी छिपते या बन्द नहीं होते, वे (पदे-पदे) पद पद पर (पाशिनः) आकर्षण शक्ति के जालों से युक्त सूर्यादि के तुल्य ही (पाशिनः) दुष्टों के संयम साधनों से सम्पन्न होकर ही (सेतवः सन्ति) दुष्ट जनों को बांधने वाले, जल के बंधों के समान मर्यादा का स्थापन करने वाले होते हैं।

पि॒तुर्मा॒तुरध्या ये स॒मस्व॑रन्नृ॒चा शोच॑न्तः स॒न्दह॑न्तो अव्र॒तान्।
इन्द्र॑द्विष्टा॒मप॑ धमन्ति मा॒यया॒ त्वच॒मसि॑क्नीं॒ भूम॑नो दि॒वस्परि॑॥५।२६

भा०—जिस प्रकार रश्मियें, किरणें (पितुः मातुः अधि सम् अस्वरन्) पालक सूर्य से उत्पन्न होकर माता पृथिवी के ऊपर अधिक तेज से चमकते हैं, वे (ऋचा शोचन्तः संदहन्तः) तेज से चमकते और संतप्त करते हुए, (इन्द्र-द्विष्टाम् असिक्नी त्वचम् अप धमन्ति) सूर्य की विरोधिनी काली रात्रि को दूर करते हैं उसी प्रकार (ये) जो महापुरुष सच्चरित्र जन हैं वे (पितुः मातुः अधि) पिता से और माता से वा पिता माता के तुल्य गुरु जन से (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार ज्ञानोपार्जन करते हैं। वे (ऋचा शोचन्तः) ऋग्वेद के उत्तम ज्ञान से तेजोयुक्त होकर (अव्रतान्) अकर्म, विकर्मों को, वा व्रतों से भिन्न कर्मों और व्रत शून्य, कुकर्मियों को (स-दहन्तः) पीड़ित, दग्ध, निर्मूल करते हुए (इन्द्रद्विष्टाम्) आत्मा, प्रभु और राजादि से असेवित, उनके अप्रीति भाजन (असिक्नीम् त्वचम्) काले, अज्ञानमय अवृद्धिशील आवरण को (अप धमन्ति) दूर करते हैं। वे ही (भूमनः) भूमा स्वरूप उस महान् (दिवः) तेजोमय, ज्ञानमय, सुखमय परमेश्वर से (परि) परम सुख को प्राप्त करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

प्र॒त्नान्माना॒दध्या ये स॒मस्व॑र॒ञ्छ्लोक॑यन्त्रासो रभ॒सस्य॒ मन्त॑वः।
अपा॑न॒क्षासो॑ बधि॒रा अ॑हासत ऋ॒तस्य॒ पन्थां॒ न त॑रन्ति दु॒ष्कृतः॑॥६

भा०—विद्वानों और अविद्वानों का भिन्न २ मार्ग। (ये) जो विद्वान् जन (प्रत्नात् मानात्) अति प्राचीन ज्ञानमय, सर्वनिर्माता प्रभु से (अधि) उसके अधीन रहकर (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करते हैं वे (श्लोक-यन्त्रासः) श्लोक अर्थात् वेदमय ज्ञान से अपने में नियन्त्रित और व्यवस्थित करते हुए (रभसस्य मन्तवः) समस्त कर्म वा सर्व-कर्त्ता प्रभु को भला प्रकार जानने वाले होते हैं। और (बधिरा) जो गुरु-वचनों के प्रति बहरे, वा प्राणियों के प्राणों का वध वा बंधन करने वाले, बहुश्रुत

और (अनक्षासः) बिना आँख के, अविवेकी, अनालोचक, ज्ञानान्ध होते हैं वे (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय वेद के धर्म, वा यज्ञ के (पन्थाम्) सत् मार्ग को (अप अहासत) दूर ही त्याग देते है। वे (दुःकृतः) दुष्ट कर्मों के करने वाले जन (न तरन्ति) पार नही जाते।

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ७

भा०—(वितते सहस्र-धारे) अति विस्तृत, दश सहस्र वाणी वा ऋचाओ से युक्त ऋग्वेदमय (पवित्रे) अति पवित्र ज्ञानसागर मे वा सहस्रो धारक शक्तियो से युक्त, व्यापक, परमपावन ज्ञानमय प्रभु मे (मनीषिणः) मननशील, मनस्वी (कवयः) क्रान्तदर्शी और तत्वज्ञानी और वाग्मी लोग (वाचम् आ पुनन्ति) अपनी वाणी का प्रयोग कर उसको भी पवित्र कर लेते हैं। (एषाम्) इनमें से जो (रुद्रासः) प्रजाओं को मर्यादा में रोकने वाले, वा उत्तम उपदेष्टा प्रजाजनो के रोग-पीड़ाओ को हरने वाले (इषिरासः) अन्यों को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले, उपदेष्टा जन है वे (अद्रुहः) किसी से द्रोह न करने वाले, सब प्राणियो के प्रति द्वेषभाव से रहित, (सु-अञ्चः) उत्तम पूजा योग्य, सुख प्राप्त कराने वाले (सु-दृशः) उत्तम विवेकदर्शी, सौम्य नयन, और (नृ-चक्षसः) मनुष्यो के हिताहित देखने वाले हो।

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ८

भा०—न्याय-शासक का रूप और कर्त्तव्य। वह (ऋतस्य गोपाः) सत्य, तेज, न्याय और यज्ञ का रक्षक, (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म और ज्ञान से सम्पन्न शास्ता, प्रभु (न दभाय) किसी को पीडा वा छलने के लिये नहा हो। (स) वह (त्री पवित्रा) मन, वाणी और कर्म तीनो को पवित्र, रूप मे वा तीनो वेदो को (हृदि अन्तः) हृदय के बीच (आ दधे) धारण

करे। (सः विद्वान्) वह ज्ञानी (विश्वा भुवना अभि पश्यति) समस्त-जनो और लोको को प्रभुवत्, सब प्रकार से देखे, न्याय का अनुशासन करे। और (अजुष्टान्) प्रजा जनो से अप्रीतियुक्त, उनके द्वेषी (अव्रतान्) व्रत, नियम, कर्मादि से रहित, नीच, अपराधी, दुष्ट पुरुषों को (कर्त्ते) गढ़े में रख कर दण्ड-व्यवस्था में रख कर (अव विध्यति) उनको शरीर के छेदन-भेदन करने योग्य दण्ड से, अपमानपूर्वक दण्डित करे। (२) इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर सत्य का पालक, हृदय में तीनो पवित्र वेदो ऋक्, साम, यजुः मन्त्र, गानप्रकार और कर्म द्योतक गद्यांश तीनों को हृदय में प्रकाशित करता है, वह सर्वद्रष्टा है, वह (कर्त्ते अजुष्टान् अव्रतान्) अभक्त, सत् कर्मों में न लगे लोगो को भी (अव विध्यति) निची योनियो मे गिरा कर दण्डित करता है। 'कर्त्ते'—गर्ते। कृन्तनयोग्यछेदनभेदनरूपे कर्मणि वा करोतेर्वौणादिके तपरे कर्त्तं कर्म तस्मिन्। कर्त्ते कर्मणि अजुष्टान्। अथवा कर्त्ते अवविध्याति इत्युभयत्र योजना।

ऋतस्य तन्तुर्वितंतः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥६॥३०॥

भा०—(वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु, शासक की (जिह्वायाः) वाणी या जिह्वा के (पवित्रे) परम पवित्र (अग्रे) अग्रभाग पर (ऋतस्य तन्तुः विततः) ऋत, सत्यज्ञान, न्याय, धर्म का तन्तु, सूत्र, यज्ञ, विस्तृत रहता है। (धीराः चित्) अति पूज्य, बुद्धिमान् पुरुष (मायया) बुद्धि के बल से (तत् सम् इनक्षन्तः) उसको प्राप्त करते और (आशत) सम्यक् उपयोग करते हैं। (अत्र) इस लोक में (अप्रभुः) जो शासक वा असमर्थ अजितेन्द्रिय है। यह (कर्त्तम् अवपदाति) गढे मे गिरता है। इति त्रिंशो वर्गः॥

[७४]

कक्षीवानृषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्द —१, ३ पादनिचृज्जगती। २, ६ विराड् जगती। ४, ७ जगती। ५, ९ निचृज्जगती। ८ निचृत्त्रिष्टुप्॥
नवर्चं सूक्तम्॥

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥१॥

भा०—(यत्) जब (वाजी) बलवान्, वा अन्न का स्वामी, सूर्य (अरुषः) खूब प्रकाशमान होकर (वने) अन्तरिक्ष में (जातः शिशुः न) उत्पन्न बालक के तुल्य सुन्दर कान्तिमान् होकर (अव चक्रदत्) गात करता है, और (स्वः सिपासति) अपना प्रखर ताप प्रदान करता है। तब वह (पयः-वृधा रेतसा) प्राणियों के पोषक अन्न को बढ़ाने वाले जल से (सचते) युक्त हो जाता है। तब (तम्) उस प्रभु परमेश्वर से हम (सुमती) उत्तम स्तुति द्वारा (सप्रथः) खूब विस्तृत (शर्म) शरण योग्य घर की (ईमहे) याचना करते हैं। (२) बालक पक्ष में—नवजात शिशु (वने अव चक्रदत्) मातृ-गर्भ में जल राशि में डोलता हुआ गर्भ से नीचे खिसक आता है, (यत्) जो (वाजी) वेगवान् होकर (अरुषः) कान्तियुक्त होकर (स्वः सिसासति) रोदन का शब्द करता है। तब वह (दिवः) उसे चाहने वाली, सुप्रसन्न माता के (पयःवृधा रेतसा) दूध को बढ़ाने वाले बल वीर्य से पुष्ट होता है। उसी पुत्र सन्तान को लक्ष्य कर हम विस्तृत घर की कांक्षा करते हैं।

दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥२॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर सब जगत् का उत्पादक (धरुणः) सब संसार को धारण करने, और (स्कम्भः) संसार-भवन को स्तम्भवत् थामने वाला, सब का आश्रय है, वह (सु-आततः) सर्वत्र अच्छी प्रकार फैला हुआ है। वह (आपूर्णः) सब ओर से पूर्ण है, उसमें तिलमात्र भी न्यूनता नहीं है। वह (अंशुः) सर्वत्र व्यापक है। वह ही (इमे मही रोदसी परि एति) इन दोनों विशाल आकाश और भूमि को भी सब ओर से व्याप रहा है। वह इन दोनों को (आवृता) पुनः २ आवर्त्तन

करने वाले चक्र से (यक्षत्) शक्ति, अन्न, जल जीवन का प्रदान करता है, मानो इनमे वह यज्ञ करता है वह (कविः) बड़ा क्रान्तदर्शी, मेधावी है, इन (समीचीने) परस्पर मिले, सुसम्बद्ध दोनो को (दाधार) धारण एवं पालन पोपण करता है, वह ही (इषः सम् दाधार, इषः संयक्षत्) समस्त प्रेरक शक्तियों को धारण करता है और वही समस्त वृष्टि और अन्न सब को प्रदान करता है।

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥३॥

भा०—(यः) जो (वृषा) वर्षा करने में समर्थ (उस्रियः) किरणों वाला, सूर्य (इतः) इस भूलोक से (अपां नेता) जलों को ऊपर ले जाने वाला है, (यः इतः-ऊतिः) जो इस भूलोक की रक्षा करता है जो (ऋग्मियः) स्तुत्य है। (यः) जो (वृष्टेः ईशे) वृष्टि करने मे समर्थ होता है (अदितेः ऋतं यते) भूमि से अन्न और अन्तरिक्ष से जल प्राप्त कराने वाले सूर्य के लिये (सु-कृतं) उत्तम रीति से सूक्ष्म २ रूप मे जलवाष्प कणो द्वारा छिन्न भिन्न, (सोम्यं मधु) जगत् उत्पादन करने वाला जल ही (महि प्सरः) उसका वड़ा भारी भोजन होता है, और उस (अदितेः) सूर्य का यह महान् आकाश ही (उर्वी गव्यूतिः) वड़ा भारी मार्ग होता है।

अध्यात्म में—प्रभु परमेश्वर वा आत्मा सब सुखो का वर्षक बलवान् (अपां नेता) सब लोको और लिङ्ग शरीरो और प्राणो का नायक है। जगत् रूप सुन्दर रचना यही उस कालमय प्रभु का बड़ा भारी अन्न है। (ऋत यते) सत्यज्ञान, मोक्ष को प्राप्त करने वाले के लिये तो उस (अदितेः) अदीन, अविनाशी प्रभु का मार्ग ही वड़ा भारी मार्ग है।

आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥४॥

भा०—जब (नभः) आकाश या सूर्य से (आत्मन् वत) अपने ही

तेजः सामर्थ्य से युक्त और (घृतम्) तेजयुक्त (पयः) वीर्य (दुह्यते) प्राप्त होता है, पृथिवी लोक तक पहुंचता है, तब (ऋतस्य नाभिः) अन्न का मूल कारण (अमृतम्) जल (वि जायते) विशेष रूप से उत्पन्न होता है (तम्) उसको (सम्-ईचीनाः) एक साथ मिलकर पृथिवी तक आने वाले (सु-दानवः) उत्तम दान करने वाले वा जल को सूक्ष्म २ कणो में खण्डित करने वाले (नरः) जलग्राही किरण (तम् प्रीणन्ति) उस जल को वायु मे तृप्त कर देते है, पूर्ण कर देते है, और अनन्तर (पेरवः) जो रश्मियें जल को पान करते है वे ही (हितम्) वायु मे रखे उस जल को (अव मेहन्ति) नीचे वर्षा रूप में गिराते है।

अरा॑वीदं॒शुः सच॑मान ऊ॒र्मिणा॑ देवा॒व्यं१॒॑ मनु॑षे पिन्वति॒ त्वच॑म् ।
दधा॑ति॒ गर्भ॒मदि॑तेरु॒पस्थ॒ आ येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥५॥३१

भा०—वही (अंशुः) व्यापक तत्व (ऊर्मिणा) ऊपर स्थित जल-संघ वा वायु के साथ (सचमानः) मिलता हुआ (अरावीत्) मेघ बन गर्जन करता है। वही (मनुषे) मनुष्य की (देवाव्यम् त्वचम्) प्राणों इन्द्रियों को रक्षा करने वाले त्वचा, देह को (पिन्वति) बढाता है। अथवा—(मनुषे) मनुष्यो के हितार्थ (देवाव्यं) किरणों मे संगत (त्वचं) भूमि के ऊपर के पृष्ठ को जल रूप मे (पिन्वति) सेचित करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स॒हस्र॑धा॒रेऽव॒ ता अ॑स॒श्चत॑स्तृ॒तीये॑ सन्तु॒ रज॑सि प्र॒जाव॑तीः ।
चत॑स्रो॒ नाभो॒ निहि॑ता अ॒वो दि॒वो ह॒विर्भ॑रन्त्य॒मृतं॑ घृत॒श्चुतः॑ ॥६॥

भा०—(सहस्र-धारे) सहस्रो धारा अर्थात् धारण शक्तियो से युक्त मेघवत् सूर्य मे (ताः) वे नाना शक्तिया (असश्चतः) परस्पर असक्त, पृथक् २ रहती हुई (तृतीये रजसि) तीसरे लोक, द्यौलोक मे (सन्तु) रहें। वे (प्रजावतीः) समस्त प्रजा की रक्षा करने वाली (चतस्रः) चार (नाभः) आदित्य वा विशेष दीप्तियां (दिवः अव) तेजमय सूर्य मे नीचे (निहिताः)

प्रेरित होकर (घृत-श्रुतः) जल वरसाने वाला होती है और वेही (अमृतं हविः भरन्ति) अमृत अर्थात् जल और अन्न प्राप्त कराती है ।

श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥७॥

भा०—(यत्) जव (सोमः) समस्त ओषधि, वनस्पति आदि का उत्पन्न करने वाला और (मीढ्वान्) जल वर्षाने वाला (असुरः) सव जीवों को प्राण देने, वा जल फेंकने, वा मेघों को चलाने वाला, वायु वा सूर्य (श्वेतं) श्वेत, अति प्रदीप्त (रूपं) प्रकाश (कृणुते) करता है और (सिसासति) जलो को खूब सूक्ष्म कर देता है तव वह (भूमनः वेद) वहुत से जल राशियो को प्राप्त कर लेता है । वह (धिया प्रवत् शमी सचते) अपने धारण शक्ति से नाना उत्तम २ कर्म करता है और (दिवः) तेज से अन्तरिक्ष मे (उद्रिणं) जल से युक्त (कवन्धम्) मेघ को (अव दर्षत्) विदीर्ण करता, छिन्न भिन्न करता है ।

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥८॥

भा०—(अध) और (वाजी) वलवान्, ज्ञानवान् (कार्ष्मन्) युद्ध या प्रतिस्पर्द्धा मे जो (आ अक्रमीत्) सवको अतिक्रमण कर जाता है वह जिस प्रकार पारितोषिक या मान-आदर सूचक (गोभिः अक्त) उत्तम स्तुति वाणियो से युक्त (श्वेतं कलशं) श्वेत, चांदी आदि धातु का वना कलश, पात्र (कप्) आदि (ससवान्) प्राप्त करता है । उसी प्रकार (कार्ष्मन्) परम सीमा पर विराजमान प्रभु परमेश्वर (आ अक्रमीत्) सर्वत्र व्यापक है । वह (वाजी) ज्ञान, वल, ऐश्वर्य का स्वामी होकर (गोभिः अक्तं श्वेत कलशं) किरणो से युक्त, श्वेत, देदीप्यमान (कलश) कला २ से वने चन्द्र को सूर्यवत्, स्तुति वाणियों से सम्पन्न इस १६ कलाओं से युक्त आत्मा को (ससवान्) स्वीकार करता है । (मनसा देवयन्तः)

मन से या ज्ञानपूर्वक देव, प्रभु की कामना करने वाले जन (शत-हिमाय) सौ वर्षों के जीवन धारण करने वाले (कक्षीवते) कक्ष्या अर्थात् रज्जुवत् वा वन्धनवत् देहरूप गृह या स्तुति-वाणी को धारण करनेवाले इस मनुष्य-जीव के हितार्थ (गोनाम् आ हिन्विरे) वाणियों का प्रयोग करते है, वे भगवान् की स्तुति करते हैं। कक्षीवान्, कक्ष्यावान्, कक्ष्या रज्जुस्तद्वान् कक्षो ख्यातेर्वा गाहतेः। कक्ष्या वाणी।

अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तमः स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये॥६॥३२

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान्! सब जगत् के सञ्चालक और उत्पादक! हे (पवमान) परम पावन! (पपृचानस्य) निरन्तर प्रेम करने वाले (ते) तेरा जो (रसः) रस परमानन्द रूप (अव्यः वारम् विधावति) अपने प्रेमी जन के वरणीय हृदय को विशेष रूप से प्राप्त होता और उसको पवित्र करता है, (सः) वह (कविभिः) स्तुतिकर्त्ता, ज्ञानी, तत्वदर्शी विद्वानों द्वारा (मृज्यमानः) विवेकपूर्वक दर्शन किया जाकर (मदिन्तमः) अत्यन्त ह ँ देने वाला होता है। हे (पवमान) परम पावन! तू (पीतये) पान करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के अभिलाषी और अज्ञान आवरण के विदारण करने वाले तत्वदर्शी के हितार्थ (स्वदस्व) अति सुख प्रदान कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

[७५]

कविर्ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती। २ पादनिचृज्जगती। ५ विराड् जगती॥

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः॥१॥

भा०—(चनः-हितः) उत्तम वचन से बद्ध और पूज्य पद पर प्रति-

ष्ठित (यह्वः) महापुरुष (येषु अधि वर्धते) जिनके ऊपर अध्यक्ष रह कर वृद्धि को प्राप्त होता है, वह उन्हीं (नामानि) सब को नमाने वाले (प्रियाणि) सब को अच्छे लगने वाले बलों, सैन्यों को अपने अन्नवत् (अभि पवते) प्राप्त करे। वह (बृहत्) बढ़ता हुआ (विचक्षण) अति चतुर अध्यक्ष पुरुष (बृहतः सूर्यस्य) महान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के योग्य (विश्वञ्चम् रथम्) सब ओर जाने में समर्थ रथ पर (अधि रुहत्) सवारी करे।

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं१ नाम तृतीयमधि रोचने दिवः॥२॥

भा०—(जिह्वा) वाणी (ऋतस्य) वेदमय, सत्य ज्ञान के (प्रियम् मधु) प्रिय. मधुर सुख को (पवते) प्रदान करती है। (वक्ता) उत्तम वचन का बोलने हारा विद्वान् पुरुष ही (अस्याः धियः) इस धारण योग्य बुद्धि या वाणी का (अदाभ्यः) अविनाशी, एवं अखण्डनीय (पतिः) पालक होता है। जिस प्रकार (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः अपीच्य नाम दधाति) माता पिता दोनों के भीतर छिपे (तृतीयम्) दोनों से भिन्न तृतीय या श्रेष्ठ स्वरूप को धारण करता है, उसी प्रकार (पुत्रः) बहुत से ज्ञानों का रक्षक पुरुष (दिवः रोचने अधि) उसके ज्ञान से सुप्रकाशित पद पर विराजता हुआ (पित्रोः) माता पिता दोनों के रूपों से भिन्न (अपीच्यं नाम) भीतर छुपे ब्रह्मचर्य और ज्ञानमय बल को (दधाति) धारण करता है।

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति॥३॥

भा०—(नृभिः) उत्तम, सन्मार्ग पर ले जाने वाले जनों द्वारा (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि सम्पन्न कोष के ऊपर (येमानः) संयमन या नियन्त्रण करता हुआ (द्युतान.) अति तेजस्वी पुरुष (कलशान् अव

अचिक्रदत्) कलशों को अभिषेकार्थ प्राप्त करता है। इसी प्रकार हित रमणीय ज्ञाननिधि पर गुरुजनों द्वारा अधिकृत हो जाने पर वह विद्वान् स्नातक होने के लिये कलशों को प्राप्त करता है। (ऋतस्य दोहनाः) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले वा उस के देने वाले अगले शिष्य और पिछले गुरु सभी (अभि ईम्) उसको लक्ष्य कर, उसके समीप आकर (ऋतस्य ईम् अभि अनूषत) सत्य ज्ञान का उपदेश करते वा उसके लिये उसकी स्तुति करते हैं। वह (त्रि-पृष्ठः सन्) सूर्यवत् तीन प्रकार के वस्त्रों को अपने देह पर धारण करता हुआ, वह तीनों वेदों वा तीनों ज्ञान, कर्म और वाणी को वस्त्रवत् धारण करता हुआ (उषसः अधि) कान्ति युक्त उषाओं के तुल्य ज्ञान वा धन की कामना करने वाले शिष्यादि प्रजा वर्ग के ऊपर अध्यक्षवत् (विराजति) विराजता है।

अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ४

भा०—वह विद्वान् तेजस्वी, (अद्रिभिः) न भय खाने वाले, मेघवत् उदार और जलधारा छोड़ने वाले वा शस्त्रास्त्रधारी सैन्याध्यक्षों द्वारा (सुतः) अभिषिक्त, (मतिभिः) ज्ञानवान्, पुरुषों द्वारा (चनःहितः) पूज्य पद पर स्थित, (शुचिः) शुद्ध, चरित्रवान् धार्मिक होकर (रोदसी प्ररोचयन्) भूमि और आकाश दोनों को खूब प्रकाशित करता हुआ सूर्य के तुल्य और (मातरा प्ररोचयन्) माता पिताओं को प्रसन्न करते हुए पुत्र के तुल्य राजा प्रजा वर्गों को अच्छा लगता है। वह (समया) सब ओर से (अव्या रोमाणि) भेड के रोमों के बने पवित्र वस्त्रों को (वि धावति) विशेष रूप से धारण करता है। और (दिवे दिवे) दिनों दिन उसके (मधोः धारा) उत्तम शब्दमय वेद की वाणी और शत्रुओं को संतापित करने वाले सत्य बल की धारणा शक्ति (पिन्वमाना) बढ़ती रहती है।

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् । ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम विद्वन् ! हे ऐश्वर्ययुक्त शासक ! तू (नृभिः पुनानः) नायक, सन्मार्ग नेता जनो, गुरुओं से (पुनानः) विद्या-व्रतास्नानो या अभिषेकादि द्वारा पवित्र होकर (स्वस्तये) जनों के कल्याण के लिये (परि प्र धन्व) सब ओर राष्ट्र में परिव्राजकवद् विचर । और (आशिरम्) सब प्रकार से सेवन करने योग्य ज्ञानतत्व को (अभि वासय) सर्वत्र फैला । (ये) जो (ते) तेरे (मदाः) हर्षवर्धक उत्तम वचनों से सम्पन्न और (आहनसः) सब ओर से तुझे पीडित, दण्डित करने वाले गुरुजन और दुष्टों के नाश करनेवाले वीर पुरुष (विहायसः) अकाशवत् गुणों में महान् है (तेभिः) उनों द्वारा शिक्षित होकर (दातवे) दान देने के लिये (इन्द्रं मघम्) ऐश्वर्ययुक्त दातव्य ज्ञान धन को (चोदय) प्रेरित कर, उपदेश कर । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

तृतीयोऽध्यायः

[७६]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराड् जगती । ३, ५ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती ॥

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः । हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥ १ ॥

भा०—(धर्ता दिवः) तेज को वा सूर्य को धारण करने वाला (कृत्व्यः)

समस्त कर्मों को करने हारा, (रसः) वल स्वरूप, (दक्षः) दुष्टों को दग्ध करने वाला, संतापकारी, (नृभिः अनुमाद्यः) सब मनुष्यों से प्रसन्न होने और स्तुति करने योग्य वह (हरिः) सब दुःखों का हरण करने वाला (अत्यः न) अश्व वा निरन्तर गति करने वाले आत्मा के तुल्य (नदीषु) रुधिर की नाडियो मे प्राणो के तुल्य, (नदीषु) नदीवत् प्रवाह से अनादि और समस्त विभूति-समृद्धियो मे वा प्रकृति-विकृतियो मे (वृथा) अनायास ही (पाजांसि आ कृणुते) नाना प्रकार के वलों को प्रकट करता है। वही सर्वोत्पादक प्रभु सोम है।

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः २

भा०—(गभस्त्योः) बाहुओ मे (शूरः न) शूरवीर पुरुष के समान (आयुधा) नाना प्रहार करने, लोको को संचालन करने वाले और पीडादायक साधनो को (धत्त) धारण करता है। वह (गविष्टिषु रथिरः) भूमियो के प्राप्त कर लेने पर जिस प्रकार महारथी अपने सर्वस्व को अध्यक्षो मे विभक्त करता है, उसी प्रकार वह प्रभु भी (रथिरः) सर्व रसो, आनन्दो का स्वामी, (गविष्टिषु) गौ अर्थात् वाणी द्वारा यज्ञ या पूजन करने वाले भक्तजनो मे अपना (स्वः सिषासन्) समस्त आनन्द और ज्ञान प्रकाश का विभाग करता है। वह (इन्द्रस्य) सूर्य, वायु, मेघ और आत्मा के (शुष्मम्) वल को (ईरयन्) प्रेरित करता है। वह (अपस्युभिः मनीषिभिः) कर्म करने वाले बुद्धिमान् जनो द्वारा (गोभिः) वाणियो द्वारा (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, दयालु रूप से (अज्यते) प्रकाश किया जाता है।

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः॥ ३॥

भा०—हे (सोम) सर्व जगत् के उत्पादक तू (पवमानः) पवि होता हुआ, सब को व्यापता हुआ (ऊर्मिणा) अपने सर्वोच्च बल द्वा (तविष्यमाणः) बलकार्य सम्पादन करता हुआ (जठरेषु) पेटों में अन्न तुल्य, सब लोकों के बीच में मुख्य बलप्रद होकर (आ विश) प्रवेश कर (विद्युत् अभ्रा-इव) जिस प्रकार बिजुली मेघों का दोहन करती है, उनसे जल बरसाती है तू (नः) हमारे सुखार्थ (रोदसी प्र पिन्व) भूमि औ आकाश दोनों से सुखप्रद पदार्थ प्रदान कर । (न) और तू ही (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मकौशल से (शश्वतः वाजान्) बहुत से नित्य अन्नों ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (उप मासि) बनाता है ।

विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृशं ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥

भा०—वह सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (विश्वस्य राजा) समस्त जगत् का प्रकाशक, उसका राजा के समान स्वामी, (स्वः-दृशः) समस्त सुखों को देखने वाले (ऋतस्य) सत्य ज्ञान को (पवते) प्रदान करता है। वह (ऋषि षाट्) दर्शनकारिणी इन्द्रियों को अभिभव करने वाले आत्मा वा सूर्य प्रकाश के तुल्य होकर (ऋतस्य धीतिम्) सत्य-ज्ञानमय वेद के ज्ञान और कर्म को (अवीवशत्) अपने अधीन करता, उसे चाहता है । और (यः) जो (असमष्ट-काव्यः) अन्य विद्वानों द्वारा भी न प्राप्त होने योग्य वेदादि ज्ञानमय काव्यों को रचने वाला है वह (मतीना पिता) समस्त ज्ञानवान् , मननशील, मनुष्यों का पालक प्रभु (सूर्यस्य) सूर्य के (असिरेण) तम को दूर करने वाले प्रकाश के तुल्य, सूर्य अर्थात् दक्षिण प्राण के मल शोधक प्राणायामादि अभ्यास द्वारा (मृज्यते) स्वच्छ किया जाता है ।

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सोम! (वृषा इव) जिस प्रकार बलवान् पुरुष (यूथा) जन समूहों को प्राप्त कर (कोशम् अर्षति) धन-कोश को प्राप्त करता है उसी प्रकार तू (कोशम्) भीतरी अन्तःकरण वा प्राणमय आदि आनन्दमय कोशों को (परि अर्षसि) सब प्रकार से व्याप रहे। तू (अपां उपस्थे) प्राणों, समस्त लोकों के ऊपर भी (वृषभः) बलशाली होकर (कनिक्रदत्) आत्मा के समान उनमें व्याप्त है। (सः) वह तू (मत्सरिन्तमः) अति अधिक तृप्ति, सन्तोष और आनन्द-दायक होकर (इन्द्राय) तुझे प्रत्यक्ष देखने वाले के लिये (पवसे) स्वच्छ रूप में प्रकट होता है। (यथा) जिससे हम जीव गण भी (समिथे) संग्रामों में (त्वा-ऊतयः) तेरी रक्षा से रक्षित होकर (जेपाम) विजय लाभ करें। इति प्रथमो वर्गः॥

[७७]

कविर्ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २, ४, ५ निचृज्जगती। ३ पादनिचृज्जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः॥१॥

भा०—(एषः) यह (मधुमान्) अति आनन्ददायक होकर (कोशे) अन्तःकरण वा आनन्दमय कोश में (प्र अचिक्रदत्) खूब अन्तर्नाद करता है। वह (इन्द्रस्य वज्रः) ऐश्वर्ययुक्त, उसको देखने वाले आत्मा का वज्रवत् बलशाली साधन है। वह (वपुषः वपुष्टरः) बीजवपन करने वालों में सब से श्रेष्ठ, वह सब रूपवान् पदार्थों में सब से अधिक कान्तिमान् है। (ईम् अभि) इसके प्रति ही (घृतश्चुतः) प्रकाश देने वाली (ऋतस्य सु-दुघाः) सत्य ज्ञान के देने वाली (वाश्राः) वाणियां, स्तुतियां भी (धेनवः पयसा इव) अपने पुष्टिकारक रस से गौओं के तुल्य, उसी

को (अभि अर्पन्ति) व्यापती है। उसी को लक्ष्य कर समस्त स्तुति कही जाती है।

स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा॥

भा०—(सः) वह (पूर्व्यः) सब से पूर्व विद्यमान और सब प्रक से पूर्ण, (दिवः परि) सूर्यादि लोकों के भी (परि पवते) ऊपर व्याप है। उन पर उस जगद्-उत्पादक का शासन है। वह (श्येनः) अं शुक्ल वर्ण, तेजोमय, अद्भुत, गतिमान्, वेगवान्, बल वाला प्रभु (इषित सब का प्रेरक होकर (रजः तिरः मथायद्) समस्त लोकों और प्रकृ के परमाणुओं और तेजःप्रकाश को भी दूर २ तक संचालित कर रहा है (सः) वह (वेविजानः) सर्वत्र व्यापता हुआ, (मध्वः आ युवते आनन्द को प्रदान करता है, वह (बिभ्युषा मनसा) डरने वाले मन से (कृशानोः अस्तुः) कृश अति अल्प प्राणयुक्त जीव को भी सन्मार्ग में चलाने हारा हो।

ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते।
ईक्षेण्यासो अह्यो३न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः॥ ३॥

भा०—(ते) वे (नः) हम में से (पूर्वासः) पूर्व ही लक्ष्य तक पहुंचे हुए, ज्ञानादि से पूर्ण, (उपरासः) सर्वोपरि विराजमान, वा (उपरासः) अति समीप होकर शिष्यों को ज्ञान देने वाले, ब्रह्मतत्व के अति समीप पहुंच कर आनन्द में रमण करने वाले, (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, दयाशील एवं उस प्रभु को लक्ष्य कर उसकी ओर जाने वाले और उसी की उपासना करने हारे होते हैं। वे (महे वाजाय) बड़े भारी (गोमते) सद्-वाणियुक्त, ज्ञान-बल और ऐश्वर्य के लाभ के लिये (धन्वन्तु) आगे बढ़ें। वे (ईक्षेण्यासः) तत्व को यथार्थ देखने वाले (अह्यः न चारवः) स्त्री जनों या सूर्य किरणों के समान उत्तम स्वच्छ, अनिन्दनीय हैं, (ये) जो (ब्रह्म-ब्रह्म

हविः-हविः) सब प्रकार का ब्रह्म ज्ञान और सब प्रकार के अन्न आदि (जुजुषुः) सेवन करते हैं ।

अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (इन्दुः) दयाशील, शत्रु को संन्तप्त करने में समर्थ, (सत्राचा मनसा पुरु-स्तुतः) सत्ययुक्त मन से बहुतों द्वारा स्तुति किया, (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु (वनुष्यतः वनवद्) हिंसा करने वालों का नाश करता है । (यः) जो प्रभु वा स्वामी (इनस्य सदने) स्वामी के स्थान, हृदय में स्थित होकर पति के समान समस्त योनियों में वा प्रकृतिरूप मूल कारण में (गर्भम् आ दधे) सृष्टि-बीज को हिरण्यगर्भ रूप से धारण कराता है और जो (उरुब्जम्) महान्, प्रभूत प्राणों वा सूक्ष्मजलों, वा प्रकृति के परमाणुओं से उत्पन्न, (व्रजम्) विकृति समूहों और जीव गण को (अभि अर्षति) व्यापता या प्राप्त होता है ।

चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥५॥२

भा०—वह प्रभु (दिवः चक्रिः) आकाश, सूर्य, तेजोमय जगत् का बनाने और प्रकट करने वाला, (कृत्व्यः) ज्ञान-साधना से साक्षात् करने योग्य, (महान्) गुणों में महान् (रसः) बल-आनन्दस्वरूप (अदब्धः) अविनाशी, (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सब से वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारण करने वाला, (यते) संयम करने वाले और यत्नशील पुरुष के लिये (दिवः पवते) प्रकाश और उसकी समस्त कामनाओं को प्रदान करता है । वह (यज्ञियः) समस्त देवपूजन आदि यज्ञों का पात्र (मित्रः) सर्वस्नेही, मरण से वायुवत् त्राण करने वाला प्रभु (वृजनेषु) समस्त गमन करने योग्य लोकों, मार्गों में (असावि) ईश्वर रूप से विराजता है । वह (अत्य. न. यूथे) पदातिसमूह में अश्वारोही के समान अथवा

मादा घोडियों में बलवान् अश्व के समान (वृषयुः) समस्त सुखैश्वर्य सेचन करने वाला प्रभु (कनिक्रदत्) मेघ के समान दिव्य वाणी से उपदेश करता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[७८]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २—४ जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यदद्पो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥१॥

भा०—(राजा) तेजस्वी राजा (वाचं प्र जनयन्) वाणी को सबसे उत्कृष्ट रूप से प्रकट करता हुआ, (असिष्यदत्) निरन्तर प्रवाह के समान गम्भीरता से वहे, वाणी के प्रवाह से भावों का प्रकाश करे । वह (अपः वसानः) अभिषेक योग्य जलों के तुल्य आप्त जनों को अपने पर, वस्त्रादिवत् धारण करता हुआ, (गाः) नाना प्रजा की स्तुति वाणियों को (अभि इयक्षति) प्राप्त करता है । वह स्वयं (अविः) जगत् वा राष्ट्र का रक्षक होकर (तान्वा) अपने पटवत् विस्तृत सामर्थ्य से (अस्य) इस जगत् वा शिष्य सेवक जन के (रिप्रम्) पाप को (गृभ्णाति) थाम देता है, पाप को नहीं बढ़ने देता । प्रत्युत स्वयं (शुद्धः) सब परीक्षाओं में निर्दोष सिद्ध होकर (देवाना) विद्वानों, वीर पुरुषों के (निष्कृतम् उप याति) स्थान को प्राप्त होता है ।

इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥२॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम शासक ! शास्त्रोपदेशक ! तू (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों को देखने हारा, (ऊर्मिः) महान् तरङ्ग के

समान उन्नत, (कविः) क्रान्तदर्शी होकर ही (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति पद के लिये (परि सिच्यसे) अभिषेक किया जाता है। हे राजन् ! तू (वने) वन मे अग्नि के शोलो के समान (अज्यसे) प्रकाशित होता है। (ते यातवे) तेरे सन्मार्ग से जाने के लिये (पूर्वीः पूर्वों के (स्तुतयः) नाना मार्ग (सन्ति) है। और (ते यातवे) तेरे प्रयाण करने के लिये, (हरयः) अति मनोहर (अश्वाः सहस्रं) हजारो अश्व और अश्वारोहीगण और (चमू-सद.) सेना के अध्यक्ष पदो पर विराजमान अनेक पुरुष भी है।

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन्।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ३

भा०—(समुद्रियाः अप्सरसः) जो महान् आकाश या अन्तरिक्ष मे विद्यमान (अप्सरसः) व्यापक शक्तियां हैं वे भी (अन्तः आसीनाः) भीतर गुप्त रूप से विद्यमान रह कर भी (मनीषिणम्) मेधावी, सब के मनों को संचालित करने वाले (सोमम्) शासन करने में समर्थ पुरुष को (अभि अक्षरन्) प्राप्त होती है। (ताः) वे शक्तियां भी (हर्म्यस्य) बड़े भारी महल के सदृश इस विश्व के (सक्षणि) संचालक को ही (हिन्वन्ति) बढाती है। और (पवमानम्) उसी व्यापक से (अक्षितं सुम्नं याचन्ते) अक्षय सुख-साधन की याचना करती हैं।

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित्।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥४॥

भा०—(नः) हमारा (मदं) अति आनन्ददायक, (स्वादिष्ठं) अति मात्र अपने ही वस्तु के भोक्ता, वा शुभ, उत्तम सात्विक अन्न के ही भोक्ता, (द्रप्स) बलवान्, (अरुण) तेजस्वी (मयोभुवं) सुखप्रद. (यं) जिसको (देवासः) मनुष्य लोग भी (पीतये चक्रिरे) अपने उपयोग और पालन के लिये नियत करते है। (सोमः) उत्तम शासक (गोजित्) गौओं

वाणियों और इन्द्रियों पर वश करनेवाला वाग्मी, जितेन्द्रिय, (रथ-जित्) रथों, देहों पर वश करने वाला, (हिरण्य-जित्) सुवर्ण आदि धनों के विजय करने वाला, (स्वर्जित्) सुख और प्रकाश को वश करने वाला (अप्-जित्) प्राणों और आप्त प्रजाओं पर वशी, (सहस्र-जित्) बलवान् सहस्रों को विजय करने वाला, सर्वजित्, है।

एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि। जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयञ्च नस्कृधि ५।३

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम शासक ! तू (अस्मयुः) हमारा स्वामी होकर (पवमानः) पवित्र, अभिषेकवान् (एतानि सत्यानि द्रविणानि) इन सत्य धनों और बलों को प्राप्त करता हुआ, (अर्षसि) प्राप्त हो, (अन्तिके दूरके च यः, शत्रुं जहि) पास और दूर भी जो वर्तमान है उस शत्रु को भी नाश कर। और (उर्वीं गव्यूतिं च) भूमि और उस पर के मार्ग को भी (नः अभयं कृधि) हमारे लिये भय से रहित कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

[७९]

कविर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती। २, ४, ५ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः। वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥१॥

भा०—(अचोदसः) अन्यों से शासित वा प्रेरित न होने वाले, स्वतन्त्र, विचरणशील, (इन्दवः) दयालु विद्वान, (बृहद्-दिवेषु) बड़े प्रकाशों से युक्त ज्ञानियों के बीच (सुवानासः) उत्तम रीति से निष्णात (हरयः) ज्ञानवान् पुरुष (नः प्र धन्वन्तु) हमें प्राप्त हों। और (नः इषः अरातयः च) हमारी मनोकामनाओं वा अन्नों को न देने वाले कृपण जन (वि नशन्

विनाश को प्राप्त हो। (नः) हमें (धियः) उत्तम बुद्धियां और सत्कर्म (सनिपन्त) प्राप्त हो।

प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि २

भा०—(मदच्युतः) हर्ष-आनन्द, तृप्ति, सुख प्रदान कर करने वाले (इन्दवः) शत्रु को लक्ष्य कर वेग से जाने वाले, उनको सन्तप्त करने वाले, वीर पुरुष (नः प्र धन्वन्तु) हमें प्राप्त हों, वा ये हमारे वीर (प्र धन्वन्तु) खूब आगे बढ़ें और धनुष का वीर कर्म करें। (येभिः) जिनके द्वारा हम (अर्वतः) हिंसाकारी शत्रु से भी (धना) नाना धन (जुनीमसि) प्रदान करते है। हम (कस्य चित्) किसी भी हरेक (मर्त्तस्य) मनुष्य की (परिह्वृतिं) कुटिलता को (तिरः) तिरस्कार करते हुए, (विश्वधा) सब प्रकार के (धना भरामसि) धनों को धारण करे।

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ३

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (स्वस्याः अरात्याः) अपने अधिकारादि न देने वाले शत्रु का (अरिः) शत्रु और उस तक निर्भय होकर पहुचने वाला है, (उत) और (सः अन्यस्याः अरात्याः) वह दूसरे शत्रु का भी (वृकः) विशेष रूप से कष्ट डालने वाला है। वह (धन्वन् तृष्णा न) मरु भूमि मे तृष्णा के समान (धन्वन्) धनुष के आश्रय ही (सम अरीत) समर करने में समर्थ है। हे (सोम) ऐश्वर्य-वन् बलवन्! हे (पवमान) राष्ट्र से पवित्र करने वाले! तू (तान्) उन (दुः-आध्यः) दुःख से वश करने योग्य शत्रुओं को भी (जहि) दण्डित कर।

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि

क्षिपः । अद्रयस्त्वा वप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

भा०—हे सोम ! प्रभो ! (यः) जो (परमः) सब से उत्कृष्ट बल (दिवि नाभा) महान् आकाश के नाभि, केन्द्र में (आदद्दे) सब को थामे है, वह (ते) तेरा ही अंश है। और (ते) तेरे ही (क्षिपः) नाना पदार्थों को इधर उधर फेकने, चलाने वाली शक्तियां (पृथिव्याः सानवि) पृथिवी के उच्च भागो पर (रुरुहुः) उत्पन्न या प्रकट होती है। (गोः त्वचि अधि) पृथिवी तल के ऊपर (अद्रयः) मेघ गण (त्वा) तुझे ही (वप्सति) अपने मे लेते है। और (मनीषिणः) बुद्धिमान् पुरुष (अप्सु) जलों मे वा प्राणों के बीच (हस्तैः) नाना प्राप्ति साधनो से (त्वा दुदुहुः) तुझे ही प्राप्त करते है।

एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः । निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः॥५॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (ते एव) तेरे ही (सुभ्वम्) उत्तम, सुखजनक (सुपेशसं) सुन्दर रूप युक्त (रसं) बल, रस आनन्द को (प्रथमाः) सर्व श्रेष्ठ (अभिश्रियः) उत्तम सेवकजन (तुञ्जन्ति) ग्रहण करते है। हे (पवमान) परम पावन ! तू (निदं निद) प्रत्येक निन्दाकारी, पुरुष और निन्दनीय कर्म को (नि तारिषः) विनाश कर। वा प्रत्येक (नि-दं-नि-द) अपने आपको नितरां सर्वथा दे देने वाले भक्त को जगत् से (नि तारिषः) सब प्रकार से मुक्त कर देते हो। (ते प्रिय) तेरा प्यारा, (शुष्मः) बल और (मदः) आनन्द सुख (आविः भवतु) सब को प्रकट हो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८०]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ५ विराड् जगती। ३ निचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥१॥

भा०—(नृचक्षसः) मनुष्यों के द्रष्टा, वा मनुष्यों को सत्य मार्ग का उपदेश करने वाले (सोमस्य) उत्तम उपदेष्टा पुरुष की (धारा पवते) वेदवाणी प्रकट होती है । (दिवः देवान्) ज्ञान प्रकाश की कामना करने वाले जनों के ऊपर (ऋतेन) सत्य ज्ञान और धर्म द्वारा (हवते) उन को सुख प्रदान करती है । (बृहस्पतेः) बड़े भारी ज्ञान और बृहती वेद वाणी के पालक गुरु के (रवथेन) उपदेश से (विदिद्युते) विशेष रूप से जगत् चमकता, प्रकाशित होता है, और तभी (समुद्रासः न) समुद्रों और आकाशों के समान वही उसके समस्त (सवनानि) शासन बल और ऐश्वर्य (विव्यचुः) विशेष रूप से फैलाते है, या प्रकाशित होते है ।

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥२॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! (त्वां) तुझको (अघ्न्याः) कभी नाश न होने वाली और अन्यों को न पहुचने वाली, अनन्य परक वेदवाणियां (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करती है और तू (द्युमान्) सूर्य के समान कान्तिमान् होकर (अयःहतं योनिम्) सुवर्ण से गढ़े हुए सिंहासन को राजा के तुल्य (अय -हतम्) ज्ञान से व्याप्त (योनिम्) हृदय प्रदेश, अन्तर्गुहा को (आरोहसि) प्राप्त होता वा सर्वत्र बीजवत् उसमें अंकुरित विकसित होता है । (मघोनाम्) उत्तम धन, ज्ञानादि से सम्पन्न वा हत्या, हिंसा आदि दोषों से रहित निष्पाप पुरुषों, जीवों को (महि श्रवः) बड़ा उत्तम ज्ञान, यश, अन्न और (आयुः प्रतिरन्) आयु प्रदान करता है और हे (सोम) प्रभो ! ऐश्वर्यवन् ! जगदुत्पादक ! तू (वृषा) समस्त आनन्दों का वर्षण करने वाला और (मदः) हर्षप्रद,

सुख से तृप्त करने वाला होकर (इन्द्राय) इस भूमि को कृषि द्वारा विदारण करने वाले जीवगण को (महि श्रवः) बड़ा भारी अन्न और (इन्द्राय महि श्रवः) इस अध्यात्मदर्शी ज्ञानी को महान् ज्ञान और कीर्ति (पवसे) प्रदान करता है।

एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः। प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ३

भा०—वह (मदिन्तमः) हर्ष देने वालो मे सबसे श्रेष्ठ, आनन्दमय प्रभु (श्रवसे) ज्ञान अन्न, यश, बल प्रदान करने के लिये स्वयं भी (ऊर्जं वसानः) महान्, बल रूप अन्न को धारण करता हुआ (सु-मंगल॰) उत्तम मंगल-जनक होकर (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्र इस आत्मा के कुक्षि वा उसके अन्तःकरण मे (आ पवते) व्यापता है। (सः) वह (विश्वा भुवना) समस्त लोको को (प्रत्यङ् अभि पप्रथे) प्रत्यक्ष रूप मे प्रकट करता और विस्तार करता है। और वह (हरिः) सब के मनो और दुःखो का हरण करने वाला, (वृषा) बलवान्, सुखादि का वर्षक होकर (क्रीड़न्) खेलता सा हुआ बाल-लीलावत् (अत्यः स्यन्दते) अश्व के तुल्य दूर २ तक फैलता और जाता है।

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः। नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥

भा०—(त्वां) तुझ (मधुमत्-तमं) अति अधिक आनन्द से सम्पन्न (सहस्र-धारं) सहस्रो वेदवाणियो के धारण करने वाले अनन्त शक्तिमान् प्रभु को (नरः) समस्त मनुष्य नायक (दश क्षिपः) दशों हस्तांगुलिवत् (सहस्र-धार) सहस्रों धारा रूप मे (दुहते) दोहन करते है, उससे ज्ञान रस को प्राप्त करते है। हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (ग्रावभिः) धर्मोपदेष्टा पुरुषो और (नृभिः) नायक पुरुषो से (प्र-च्युतः)

प्रकृष्ट पद को प्राप्त और (ग्रावभिः) विद्योपदेष्टा जनों से (प्र-च्युतः) उत्तम मार्ग को लेजाया जाता है। इधर वह (सुतः) अभिषिक्त होकर (सहस्र-जित्) हजारो को पराजित करने हारा (विश्वान्) (देवान् आपवस्व) समस्त विद्वानो को प्राप्त हो।

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि॥५॥

भा०—हे (सोम) हे ऐश्वर्यवन्! (त्वा तम्) उस तुझ (वृषभम्) पूज्य को (हस्तिनः) नाना उपकरण वाले जन, (अद्रिभिः) मेघवत् जल वर्षी, कलशो द्वारा (दश क्षिपः) दशो दिशाओ की प्रजाएं और शत्रुओ को उखाड़ फेकने वाली वीर सेनाएं (अप्सु) अभिषेच्य जलो के बीच वा आप्त प्रजाओ के बीच मे (दुहन्ति) ऐश्वर्यों से पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार (हस्तिनः) कुशल कर्मसाधक जन (मधुमन्तं त्वां तम् वृषभम्) आनन्द-सुख वाले तुझ बलवान् उस तुझ आनन्दवर्षी को (दश क्षिपः) दशों प्राण (अद्रिभिः) अपने भोग्य सामर्थ्यों से (अप्सु दुहन्ति) देहगत रसो मे शक्ति से पूर्ण करते है। तू (दैव्यं जनम्) विद्वान जन, प्राणगण और (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष और आत्मा को (मादयन्) प्रसन्न, तृप्त करता हुआ (सिन्धो: इव ऊर्मिः) समुद्र के तरग के समान (पवमानः) व्यापता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[८१]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१—३ निचृज्जगती। ४ जगती। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः॥१॥

भा०—(पवमानस्य) पवित्र करने वाले वा व्याप्त हुए (सोमस्य)

उस सर्वशास्ता ऐश्वर्यवान प्रभु के (ऊर्मयः) उत्तम आदेश एवं तरंग (सु-पेशसः) उत्तम, शुभरूप होकर (इन्द्रस्य जठरं यन्ति) आत्मा के हृदय तक पहुंचते हैं। (यत्) जो (दक्षा उन्नीताः) ध्यान धारणा के बल से सब ओर से ऊपर आये हुए (सुताः) उत्पन्न तरंग (गवां यशसा) वाणियों के बल से (शूरं) शूर वीर पुरुष को (दानाय) आत्मसमर्पण के लिये (उत् अमन्दिषुः) उन्मत्त, अति प्रसन्न कर देते हैं।

अच्छा हि सोमः कुलशाँ असिष्यद्दत्यो न वोह्ळा रघुवर्तनिर्वृषा। अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥

भा०—(सोमः) वह सर्वसंचालक, बलस्वरूप सर्वोत्पादक परम वीर्य सोम (कलशान् अच्छ असिष्यदत्) कलशवत् देहों, भीतरी कोशों और समस्त लोकों के प्रति प्राप्त होता है, (वोढा अत्यः न) पीठ पर उठाकर ले जाने वाले अश्व के समान वह जगत् भर को वहन या धारण करने वाला (अत्यः) सर्वव्यापक प्रभु (रघुवर्त्तनिः) वेग से समस्त सूर्यादि लोकों को घुमाने में समर्थ (वृषा) बलशाली है। (अथ) और वह (देवानाम्) तेजोमय, सूर्यादि और कर्मफल के आकांक्षी जीवों या प्राणों के बीच में विद्वान्, ज्ञानवान् होकर (यत्) जो (अमुत.) उस परलोक से इस लोक में आने और (इतः च) इस लोक से उस लोक में जन्म लेने रूप दोनों जन्मों को (विद्वान्) जानता और प्राप्त करता हुआ दोनों को (अश्नोति) व्यापता है। वह ही आत्मा 'सोम' है।

आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः। शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्दो) दीप्तिमन् ! तेजस्विन् ! तू (पवमानः) हमें पवित्र करता और व्यापता हुआ, (नः वसु किर)

हमें उत्तम ऐश्वर्य उदारता से मेघवत् प्रदान कर। तू (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर, (महः राधसः) बड़े भारी धनैश्वर्य का स्वामी (भव) हो। और (चेतुना) ज्ञान द्वारा (वयः धाः) दीर्घ जीवन, तेज, बल और ज्ञान का धारण करने वाला होकर (वसवे) वसु, इस जीव को (शिक्ष) बल और ज्ञान प्रदान कर। (नः गयम्) हमारे प्राण वा सुख, कल्याण को (अस्मत् मा परा सिचः) हम से दूर कभी न कर।

आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥४॥

भा०—(पवमानः पूषा) व्यापक, परमपावन, सर्वपोषक प्रभु (सु-रातयः) उत्तम ऐश्वर्य के देने वाला, (मित्रः) मृत्यु कष्ट से बचाने वाला (वरुणः) दुखों से वारक, सर्वश्रेष्ठ, (बृहस्पतिः) बड़े २ लोकों और महान् ज्ञान का पालक, (मरुतः) विद्वान्, मनुष्य (वायुः) प्राण, बलवान्, (त्वष्टा) जगत् कर्त्ता, (सविता) सर्वोत्पादक, और (सु-यमा) उत्तम यमनियम युक्त, उत्तम बन्धन व्रतादि से युक्त (सरस्वती) वेदवाणी विदुषी, स्त्री आदि, सब (स-जोषस.) समान प्रीति युक्त होकर (नः आगच्छन्तु) हमें प्राप्त हों।

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानञ्जुषन्त ॥५॥८॥

भा०—(उभे) दोनो (द्यावा-पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता, (विश्वमिन्वे) समस्त संसार को पालन पोषण करने वाले, और (अर्यमा देव.) न्यायकारी विद्वान्, सर्वसुखदाता, (अदिति.) अखण्ड शासनकर्त्ता, (विधाता) विविध प्रकार से धारक पोषक. (भगः) ऐश्वर्यवान् सर्वसेव्य, (नृ-शंसा.) सब मनुष्यों से स्तुत्य, और (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान जन, अर्थात् फलादि चाहने वाले जीवगण (पवमानं) उस सर्व

व्यापक, प्रेरक परम पावन सर्वसंचालक (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष के तुल्य, महान् सब के भीतर व्यापक को (जुषन्त) सेवन करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

[८२]

वसुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराड् जगती । २ निचृज्जगती । ३ जगती । ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

असा॑वि॒ सोमो॑ अरु॒षो वृषा॒ हरी॒ राजे॑व द॒स्मो अ॒भि गा अ॑चिक्रदत् । पु॒ना॒नो वारं॒ पर्ये॑त्य॒व्ययं॑ श्ये॒नो न योनिं॑ घृ॒तव॑न्तमा॒सद॑म् ॥ १ ॥

भा०—(सोमः) जगत् वा राष्ट्र का शासक पुरुष जो (अरुषः) उज्ज्वल दीप्तिमान्, उत्तम प्रबन्धक और प्रजा पर मेघ के तुल्य सुखों की वर्षा करने वाला हो वह (असावि) ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो उसी का अभिषेक करना उचित है। वह (राजा इव दस्मः) दीप्तिमान् सूर्य के समान (दस्मः) दर्शनीय, एवं अन्धकारवत् दुष्ट शत्रुदल का नाश करने हारा, (गाः अभि अचिक्रदत्) भूमियों का शासन करे, इसी प्रकार विद्वान् (अरुषः) रोषरहित, शान्त, अहिंसक राजावत् कान्तिमान्, आदृत होकर (गाः अभि अचिक्रदत्) उत्तम ज्ञान वाणियों का उपदेश करे। वह (श्येनः) बाज पक्षी के समान वेग से जाने वाला एवं (श्येनः) प्रशंसनीय आचार चरित्रवान् एवं वीरवत् प्रयाणकारी होकर (घृतवन्तम्) तेजो युक्त (योनिम्) गृह, राजभवन और शासक पद पर (आसदम्) विराजने के लिये (पुनान) अभिषेक किया जाता हुआ (अव्ययं वारं परि एति) भेड के वालों से बने, वरण योग्य उत्तम शाल को धारण करे। विद्वान् वा प्रभु (अव्ययं वारं परि एति) अव्यय, अविनाशी, आत्मा के वरणीय स्वरूप तक पहुंचता है।

कविर्वेधस्या पर्यैषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् २

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! प्रभो ! तू (कविः) ज्ञानवान्, सब को अति क्रमण कर देखने वाला, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक होकर (वेधस्या) जगत् आदि के विधान या निर्माण की इच्छा से (माहिनं) अपने महान् सामर्थ्य को (परि ऐषि) दूर २ तक व्यापता है और (अत्यः मृष्टः न) खरखरा से स्वच्छ, तरोताज़ा घोड़े के समान तू (वाजम् अभि अर्षसि) वेगवत् ज्ञान समृद्धि को साक्षात् करता है । तू (घृतं वसानः) अभिषेक काल मे जल को अपने पर आच्छादित करता हुआ, शासन काल मे, (घृतं वसानः) तेज को धारण करता हुआ, (दुरिता) सब दुःखकारी अपराधो को (मृडय) दूर कर और (निः-निजं परियासि) अति शुद्ध रूप को प्राप्त करता है ।

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे३

भा०—(पर्णिनः महिषस्य पिता पर्जन्यः पृथिव्याः नाभौ गिरिषु क्षयं दधे) जिस प्रकार पत्तो वाले महान् वृक्ष का भी पालक जलवर्षी रसप्रद पिता के तुल्य मेघ जिस प्रकार पृथिवी के आकर्षण शक्ति के बन्धन मे रहकर पर्वतो मे ही अपना निवास या आश्रय पाता वा पर्वतों मे ही जलमय ऐश्वर्य को स्थापित करता है, इसी प्रकार (महिषस्य) महान् (पर्णिनः) पालन, पूरण एवं दूर देशो तक गमन साधनो वाले पुरुष का (पिता) पालक पुरुष पिता तुल्य, (पर्जन्य.) शत्रुओ का उत्तम विजेता, सब को तृप्त, सन्तुष्ट करने वाला पुरुष (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के बीच, नाभि या केन्द्र मे और (गिरिषु) पर्वतो वा विद्वानो के आश्रय ही अपने (क्षयं) निवास और ऐश्वर्य को धारण कराता है । [राजशक्ति का पर्वतों में रहना

जैसे शिमला आदि में शासन-केन्द्र हैं]। जब शासक उच्च स्थल में रहे तब (आपः) जल स्वभाव की निम्न स्थल में रहने वाली प्रजाएं (स्वसारः) अपने वेग से जाने वाली जलधाराओं के तुल्य ही (उत गाः अभि असरन्) भूमियो की ओर चली जावें, सम भूमि भागों में प्रजाएं रहे। वह राजा (अध्वरे वीते) शत्रुओं द्वारा नाश न होने वाले बलवान् पुरुष के वीर तेजस्वी हो जाने पर उसके अधीन ही, (ग्रावभिः) शस्त्रयुक्त दृढ़ सैन्यों द्वारा (सं नसते) सम्यक् प्रकार से सन्मार्ग में जाते हैं। (२) ज्ञानवान् महान् पुरुषवर्ग का भी पिता प्रभु पृथिवी, मेघों वा वाग्मी जनों के भीतर अपना ज्ञानैश्वर्य धारण कराता है, सब आत्मा के बल से सरण करने वाले (आपः) लिंगदेह, गम्य भूमियों के गर्भों मे आते है। वे आहित गर्भ के पूर्ण होने पर उत्पन्न होकर विद्वानों द्वारा पुनः सम्यक् मार्ग मे लाये जाते हैं।

जा॒येव॒ पत्या॒वधि॒ शेव॑ मंहसे॒ पज्रा॑या गर्भ शृणु॒हि ब्रवी॑मि॒ ते।
अ॒न्तर्वाणी॑षु॒ प्र च॑रा॒ सु जी॒वसे॑ऽनि॒न्द्यो वृ॒जने॑ सोम जागृहि ॥४॥

भा०—(पत्यौ अधि जाया इव शेव मंहते) जिस प्रकार पति के अधीन स्त्री उसको अधिक सुख प्रदान करती है उसी प्रकार हे (गर्भ) गर्भगत जीव ! हे (सोम) उत्पन्न होने हारे ! तू भी (पत्यौ) पालक प्रभु परमेश्वर के अधीन रहकर ही (जाया इव) देह रूप से प्रकट या उत्पन्न होकर (पज्रायाः) प्रजा मात्र भूमि को (शेव मंहसे) सुख प्रदान करता है। हे (सोम) विद्वन् ! (शृणुहि) तू श्रवण कर। (ते ब्रवीमि) मैं तुझे इस रहस्य का उपदेश करता हूँ। हे जीव ! तू (जीवसे) दीर्घ जीवन को प्राप्त करने के लिये (वाणीषु अन्तः) वेद वाणियों के बीच, हिंसिका सेनाओं के बीच सेनापतिवत् (सु प्रचर) अच्छी प्रकार विचरण कर और (अनिन्द्यः) निन्दनीय आचार वाला न होकर (वृजने) बल वीर्य को प्राप्त करने, वा वर्जनीय पाप को त्यागने, वा जाने योग्य मार्ग मे (जागृहि) जाग, सदा सावधान होकर रह।

यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥५॥७॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) हम से पूर्व विद्यमान पुरुषों को (शतसाः सहस्रसाः सन्) सैकडों और हज़ारों का दाता होकर ऐश्वर्य को (परि अयाः) प्रदान करता है तू (अमृध्रः) अविनाशी है । (एव) इसी प्रकार (नव्यसे) अति नवीन, स्तुत्यतम, (सु-इताय) सुखप्रद, अभ्युदय शोभन कार्य के लिये (पवस्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर । (तव व्रतम् अनु) तेरे ही व्रत के अनुकूल जन साधारण भी (आपः) जलोंवत् (सचन्ते) तेरे साथ संघ बना, मिलकर रहते है । तेरा ही अनुकरण और अनुसरण करते है । इति सप्तमो वर्गः ॥

[८३]

पवित्र ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृज्जगती ।
२, ५ विराड् जगती ॥ ३ जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) वेदज्ञान के स्वामिन् ! हे महान् ब्रह्माण्ड, अपार बल और ज्ञान के पालक प्रभो ! (ते) तेरा (पवित्रम्) परम पावन ज्ञान और तेज (विततं) विस्तृत रूप से व्यापक है । तू (प्रभुः) सब का स्वामी, शक्तिमान होकर (विश्वतः) सब ओर (गात्राणि परि एषि) संसार के समस्त अवयवों को व्याप रहा है (अतप्त-तनूः) जिसने अपने को ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्या से तप्त नहीं किया वह (आमः) कच्चा, अपरिपक्व वीर्य और मति वाला पुरुष (तत्) उस परम पावन स्वरूप ब्रह्म को (न

अश्नुते) नहीं प्राप्त होता और (श्रृतासः) जिन्होंने तप से अपने को तप्त कर लिया है जो मन से शुद्ध है, वह (इत् वहन्तः) तप का आचरण करते हुए, (तत् सम् आशत) उस को प्राप्त होते हैं।

तपोष्पवित्रं वितंतं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥२॥

भा०—(तपोः) तपोमय एवं दुष्टों को संतप्त करने वाले उस प्रभु का (पवित्रं) परम पावन शुद्ध स्वरूप (विततं) विविध प्रकार से व्यापक है। (अस्य दिवः) उस तेजोमय, ज्ञानमय, सूर्यवत् उज्ज्वल स्वप्रकाशस्वरूप प्रभु के (पदे) परम रूप में ही (शोचन्तः) चमकते हुए (तन्तवः) जीवन यज्ञ का विस्तार करने वाले जन (वि अस्थिरन्) विविध प्रकार से अपने को स्थिर कर रहे है, उसी पर आश्रित है। वे (आशवः) उसे प्राप्त होने वाले, अप्रमादी, शीघ्र कार्य करने में समर्थ कुशल पुरुष (अस्य पवितारम्) इसके परम शोधक सामर्थ्य को (अवन्ति) प्राप्त होते वा (अस्य पवितारं) इस अपने आत्मा के परिशोधक की (अवन्ति) रक्षा करते हैं। वे (चेतसा) ज्ञान के बल से (दिवः पृष्ठम्) तेजोमय प्रभु के उस परम पद को (अधि तिष्ठन्ति) प्राप्त कर उसमें विराजते है।

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३॥

भा०—(अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, सबसे प्रथम विद्यमान (पृश्निः) सबको बलों से सेचने वाला, सबका उत्पादक, वर्धक आदित्यवत् तेजस्वी (उषसः अरूरुचत्) सूर्य जिस प्रकार उषाओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह समस्त तेजोमय पिण्ड सूर्यादि को प्रकाशित करता है। वह (उक्षा) समस्त संसार को वहन करने वाला (वाजयुः) समस्त बलों और ऐश्वर्यों को देने वाला, उनका स्वामी, समस्त (भुवनानि बिभर्त्ति) लोकों को धारण करता है। (मायाविनः) बुद्धिमान जन (अस्य मायया ममिरे) इसकी बुद्धि

से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते है, और (नृचक्षसः) सब मनुष्यो को तत्व-ज्ञान का उपदेश करनेवाले, (पितरः) सर्वपालक, पिता तुल्य विद्वान जन अन्यो को अपने ज्ञान प्रदान करने के लिये अपने (गर्भम् आ दधुः) अधीन गर्भ को मातावत् धारण करते है । 'इधर सूर्य, जो उषाओ को प्रकाशित करता है, लोको को धारण करता है । उसके सर्व-प्रकाश किरण जलपान करने से 'पितर' है वे, अन्तरिक्ष मे जलमय गर्भ को धारण कराते है ।

गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ४

भा०—(गन्धर्वः) वेदवाणी और जगत् को चलाने वाला, गतिमय शक्ति को धारण करने वाला प्रभु (इत्था) सत्य ही (अस्य पदम् रक्षति) इस प्रत्यक्ष संसार के 'पद' परम आश्रय पद की रक्षा करता है । वह (अद्भुतः) कभी उत्पन्न न होने वाला, (देवानां) समस्त दिव्य पदार्थों और मनुष्यो, जीवों के भी (जनिमानि) उत्पन्न रूपो, देहो, जन्मो की (पाति) रक्षा करता है । वह (निधा-पतिः) जगत् को अपने वश में रखने वाले, सबकी पोषक-धारक शक्ति का स्वामी, (निधया) सर्वपालनी, धारणी शक्ति से ही (रिपुं) फांसी से शत्रु के तुल्य इस पापी वा कर्मलेप में लिप्त जीव-जगत् को (गृभ्णाति) ग्रहण, वश किये रहता है । और (सुकृत्-तमाः) उत्तम पुण्य करने वाले जन (मधुनः) ज्ञान रूप मधु के परम आनन्द का (भक्षम् आशत) सेवन-सुख प्राप्त करते हैं ।

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ५।८

भा०—(महि सद्म वसानः हविः परि अध्वरं याति) जिस प्रकार बड़े भारी गृह मे रहने वाला महाशाल, सम्पन्न पुरुष अन्नो से यज्ञ का सम्पादन करता है, उसी प्रकार हे (हविष्मः) समस्त अन्नो, ज्ञानों, वस्त्रो और

साधनों के स्वामिन् । तू भी (हविः) देने लेने, भोगने योग्य ऐश्वर्य को और (दिव्यं महि सद्म) दिव्य महान्, गृहवत् इस महान् (अध्वरम्) अविनाशी संसार रूप यज्ञ मण्डप को (वसानः) अच्छादित करता हुआ (परि यासि) व्याप रहा है । (राजा पवित्र रथं वाजम्) जिस प्रकार वेगवान् रथ का स्वामी राजा युद्धार्थ सैन्य का अध्यक्ष होकर रहता है, और (सहस्र-भृष्टिः जयति) सहस्रों को युद्धाग्नि में भूनकर विजय प्राप्त करता है उसी प्रकार हे प्रभो ! तू भी (राजा) प्रकाशस्वरूप (पवित्र-रथः) परम पावन उपदेशमय, ज्ञानमय स्वरूप वाला होकर (सहस्र-भृष्टिः) सहस्रों पापों को भूंज कर दग्ध करने वाला होकर (बृहत् श्रवः जयसि) बड़े भारी यश-ऐश्वर्य को प्राप्त करता है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८४]

प्रजापतिर्वाच्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । ४ जगती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पव॑स्व देव॒माद॑नो॒ विच॑र्षणिर॒प्सा इन्द्रा॑य॒ वरु॑णाय॒ वा॒यवे॑ ।
कृ॒धी नो॑ अ॒द्य वरि॑वः स्वस्ति॒मदु॑रुक्षि॒तौ गृ॑णीहि॒ दैव्यं॒ जन॑म् ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (देव-मादनः) देव, परमेश्वर का आनन्द लाभ करने वाला, परमेश्वर का स्तुति करने, मनुष्यों को सुप्रसन्न करनेवाला (विचर्षणिः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा, विविध विद्वान् प्रजाओं का स्वामी, (अप्साः) जलद, मेघवत् प्राणों का दाता और भोक्ता, वा स्वयं समस्त ऐश्वर्यों का भोग न करने हारा असंग है । हे जलद ! तू (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, (वायवे) सबमें व्यापक, सर्वप्रेरक सबको जीवन देने वाले, उस प्रभु को प्राप्त करने के लिये, वा विद्युत्, जल, वायु तत्वों के शोधन और ज्ञानयुक्त प्रयोग के लिये, (पवस्व) अपने को शुद्ध पवित्र कर, आगे बढ़, यत्न कर । (नः अद्य वरिवः कृणु) हमारे लिये आज

उत्तम वर्णीय ऐसा धन-ऐश्वर्य उत्पन्न कर जो (स्वस्तिमत्) सुख कल्याण से युक्त हो। (उरु-क्षितौ) इस विशाल भूमि या महान् जनसमूह में (दैव्यं जनम्) प्रभुभक्त, दिव्य पदार्थों के प्रेमी मनुष्य संघ के प्रति सत्-तत्वों के ज्ञान का (गृणीहि) उपदेश कर।

आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥२॥

भा०—(यः) जो (सोमः) सब जगत् का प्रेरक, संचालक, प्रभु परमेश्वर (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, अविनाशी, नित्य होकर (विश्वानि भुवनानि आ तस्थौ) समस्त लोकों और उत्पन्न पदार्थों का अध्यक्ष होकर विराजता है वह (तानि परि अर्षति) उनको सब ओर से व्यापता है। (सूर्यः उपसं न) सूर्य जिस प्रकार उषा को व्यापता है और (अभिष्टये संवृतं विचृतं कृणोति) चारों ओर व्यापने के लिये जगत् को प्रकाश से युक्त और अन्धकार से वियुक्त करता है उसी प्रकार वह (इन्दुः) चन्द्र के समान आह्लादक, सूर्यवत् देदीप्यमान, जीव के प्रति दयार्द्र (अभिष्टये) जीव की अभीष्ट सिद्धि के लिये (उपसं) प्रेम से चाहने वाले, उस (संचृतम्) बद्ध जीवगण को (विचृतं कुर्वन्) बन्धनों से मुक्त करता हुआ (सिषक्ति) उसे अपने साथ पुत्र को माता के तुल्य चिपटा लेता है।

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ३

भा०—(यः) जो (उप-वसुः) सर्वत्र सदा समीप वसता हुआ, सर्वत्र व्यापक होकर (ओषधीषु) ओषधियों में (गोभिः) किरणों द्वारा (आ सृज्यते) रस के समान व्याप रहा है और जो (देवानां सुम्ने) देवों, विद्वानों, सूर्य चन्द्र आदि लोकों और जल आदि तत्त्वों के सुखमय व्यवहार में (इषयन्) प्रेरित करता हुआ, (सुतः) प्रकट होकर (विद्युता धारया) विशेष

कान्तियुक्त, अर्थ के प्रकाशक वेदमय वाणी वा शक्ति से (पवते) सब को पवित्र करता है वह (सोमः) सबका प्रेरक प्रभु, (इन्द्रम्) अग्नि के समान स्वप्रकाश उस प्रभु के द्रष्टा इस आत्मा को (मादयन् पवते) अति आनन्दित करता हुआ प्राप्त होता है ।

एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥४॥

भा०—(एषः) यह (स्यः) वह (सोमः) ऐश्वर्यवान्, परमानन्द-प्रद, सब को सञ्चालन करने वाला, (पवते) सब को व्याप रहा है, जो (सहस्रजित्) सहस्रों बलशाली जनों और सूर्यादि लोकों को अपने वश करता है और (उषः-बुधम्) प्रातःकाल ही चेतने वाली, कामनावान्, पुरुष को बोध प्राप्त कराने वाली, (इषिराम्) इच्छा योग्य (वाचम्) वाणी को (हिन्वानः) गुरुवत् प्रदान करता रहता है । वह (इन्दुः) इस समस्त संसार में व्यापक, सबका प्रकाशक (समुद्रम्) महान् समुद्र, और अन्तरिक्ष, आकाशस्थ जगत् को (उत्) उसके ऊपर अध्यक्ष होकर (वायुभिः) वायुओं के झकोरों से महान् समुद्र के समान ही (इयर्त्ति) विक्षुब्ध कर देता है (इन्द्रस्य हार्दि) इस जीव को प्रिय लगता हुआ (कलशेषु आसीदति) अभिषेक-कलशों के बीच राजा के समान समस्त घटों अर्थात् देहों के बीच हृदयशायी होकर विराजता है ।

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् । धनञ्जयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(त्यं सोमम्) उस रसवत् व्यापक, सर्वोत्पादक, सबके प्रेरक, (स्वर्विदम्) सर्वज्ञ, सुखप्रकाशक, ज्ञान के प्राप्त कराने वाले, (पयोवृधं) मेघवत् अन्न, रस, जलादि के वर्धक परम सुखदाता, प्रभु को (गावः) विद्वान् वाग्मी जन (मतिभिः) अपनी बुद्धियों और स्तुतियों से परि-

पक करते हैं, उसका अभ्यास करते हैं, वह (धनंजयः) धन का विजयी, ऐश्वर्यवान्, युद्धविजयी, सर्वोपरि, (कृत्व्यः) सब जगत् का रचने वाला (रसः) आनन्दमय, (विप्रः) विशेष रूप से पूर्ण, (कविः) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, (काव्येन) अपने वेदमय विद्वान् जनों के अनुशीलन योग्य ज्ञान से (स्वः-चनाः) ज्ञान प्रकाश का देने वाला है। इति नवमो वर्गः ॥

[८५]

वेनो भार्गव ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, १, ४, ६, १० विराड् जगती । २, ७ निचृज्जगती । ३ जगती । ४, ६ पादनिचृज्जगती । ८ आर्ची स्वराड् जगती । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः १

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! उत्तम शास्तः तू (सु-सुतः) ओषधि वर्ग के समान अच्छी प्रकार विद्यादि से सुपरिष्कृत, सुसंस्कृत होकर, (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त सृष्टि के लाभ के लिये (परि स्रव) चारों ओर जा। (अमीवा रक्षसा सह) कष्टदायी, रोग या पीड़ा के उत्पादक कारण दुष्टजनों के साथ ही (अप भवतु) दूर हो । (द्वयाविनः) सत्य और असत्य दोनों के सेवन करने वाले, दुरंगे लोग (ते रसस्य मा मत्सत) तेरे रस या बल से तृप्त या सुखी न हों। इस देश या लोक में (इन्दवः) उस प्रभु की उपासना करने वाले ही (द्रविणस्वन्त. सन्तु) उत्तम धनसम्पन्न हों ।

अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥२॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र के कण्टक शोधन करने हारे ! तू (देवानां दक्षः असि) विजयार्थी, ज्ञानार्थी, एवं तेजस्वी पुरुषों का बलस्वरूप, उनको उत्साह दिलाने वाला, और (प्रियः मदः)

तृप्तिदायक अन्न, रसवत् उनको आनन्द देने वाला, अति प्रिय है। तू (समर्यें) संग्राम मे (अस्मान् चोदयः) हमको सन्मार्ग मे चला। (शत्रुम् जहि) नाशकारियो को नाश कर। (भन्दनायतः) अपना कल्याण चाहने वाले स्तुतिशील पुरुषों को (अभि आ पिब) सब प्रकार से पालन कर। हे (इन्द्र) सेनापते ! ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक ! (नः मृधः अव जहि) हमारे हिंसाकारियो को मार गिरा, नीचे कर, और (सोमम् पिब) ऐश्वर्य का भोग कर और पुत्रवत् प्रजा का पालन कर।

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ३

भा०—हे (इन्दो) दयालो ! ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! तू (अदब्धः) अविनाशी (मदिन्तमः) अति आनन्ददायक होकर (पवसे) सर्वत्र व्याप्त है। तू (इन्द्रस्य आत्मा) ऐश्वर्य-प्रकाश से युक्त सूर्यादि लोक वा जीव गण का (उत्तमः धासिः) सर्वोत्तम धारक पोषक, अन्नवत् एवं (आत्मा भवसि) आत्मा, देह के तुल्य प्रिय, अन्तरंग है। (अस्य भुवनस्य राजानम्) इस भुवन को प्रकाशित करने वाले, इसके परम स्वामी तुझ को (बहवः) बहुत से (मनीषिणः) विद्वान् बुद्धिमान् जन (अभि स्वरन्ति) सर्वत्र गान करते है और उपदेश करते है। और (निंसते) प्रेमी के समान उसको प्राप्त होते और प्रेम करते है।

सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥४॥

भा०—(सहस्र-नीथः) सहस्रो वाणियो, उत्तम नायको, नयन के तुल्य अनेक गुप्तचरो से युक्त (शत-धारः) मेघवत् सैकडो धारा तुल्य सृष्टिधारक मर्यादाओ और शक्तियो, अधिकारो का स्वामी (अद्भुतः) आश्चर्य जनक, अभूतपूर्व, स्वतःसिद्ध (इन्दुः) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् स्वामी,

(इन्द्राय) इन्द्र पद के लिये प्राप्त हो। वह (क्षेत्रम्) देहवत् समस्त रणक्षेत्र को जीत कर अपने वश करके और (अपः जयन्) प्राप्त प्रजाओं को अपने वश कर (काम्यं मधु) चाहने योग्य उत्तम मधुर फल, बल, ऐश्वर्य को (पवते) प्राप्त करता और राष्ट्र को भी प्राप्त कराता है। हे (सोम) उत्तम शासक ! हे (मीढ्व') मेघवत् सुखों के वर्षक ! तू (नः) हमारे लिये (उरुं गातुं कृणु) जाने को उत्तममार्ग, रहने को विस्तृत भूमि और सुनने को उत्तम, विशाल उपदेश कर।

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१ व्ययं समया वारमर्षसि।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥५॥

भा०—(कनिक्रदत्) शासन करता हुआ तू (कलशे) अभिषेक वा मङ्गल-कलश के नीचे (गोभिः) जलधाराओं और स्तुति वाणियों द्वारा (अज्यते) अभिषिक्त होता है, और (अव्ययं वारं वि अर्षसि) भेड के बने वालों का श्रेष्ठ वस्त्र, शास्त्र, एवं अविनाशी वा 'अवि' अर्थात् पृथिवी का वरणीय धन और 'अवि' रक्षक के योग्य (वारं) दुष्टों के वारण और प्रजा के सेवन योग्य श्रेष्ठ कार्य को (वि अर्षसि) विविध प्रकार से प्राप्त होता है। (मर्मृज्यमानः अत्यः न) स्वच्छ किये, सुभूषित अश्व के समान (सानसिः) राष्ट्र का सेवक होकर हे (सोम) शासक ! तू (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और शत्रुहननकारी सैन्य के मध्य में (सम्-अक्षरः) अच्छी प्रकार गति कर। अच्छे मार्ग वा नीति से चल।

स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ६।१०

भा०—हे उत्तम शासक ! तू (मधुमान्) बल और मधुर स्वभाव से युक्त होकर (स्वादुः) अपने जनों और ऐश्वर्यों को लेता, संग्रह करता हुआ, (दिव्याय जन्मने) अन्न भोक्ता जीव के तुल्य दिव्य जन्म के लिये (पवस्व) आगे बढ़ और (इन्द्राय स्वादुः) इन्द्र के पद के लिये अपने आपको

समर्थ करता हुआ और (सुहवीतु-नाम्ने) सुगृहीत नाम वाले, पुण्यशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, (वायवे) वायुवत् बलशाली, प्राणवत्, प्रिय, (बृहस्पतये) वेदवाणी या बड़े राष्ट्र के पालक पद के लिये (स्वादुः) सर्वप्रिय, मधुर एवं सर्वस्व प्रदानशील (अदाभ्यः) अविनाशी, अजर अमरवत् (पवस्व) यत्न कर, आगे बढ़। इति दशमो वर्गः ॥

अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः॥७॥

भा०—(दश क्षिपः) दशों उत्तम प्रेरक अध्यक्ष जन, (अत्यं) सबसे परे, सर्वोपरि को (कलशे) मंगल कलश के समीप, वा राष्ट्र के बीच (मृजन्ति) अभिषिक्त करते, सुशोभित करते हैं। और (विप्राणा मतयः) विद्वानों की स्तुतियें, मतियें और (वाचः) वाणियें (प्र ईरते) अच्छी प्रकार स्तुति करती है। (पवमानासः इन्दवः) शुद्ध पवित्र होकर तेजस्वी लोग (सु-स्तुतिम् अभि अर्षन्ति) उत्तम स्तुति को सब ओर से प्राप्त करते हैं। वे (मदिरासः) अति हर्षदायक होकर (इन्द्रं विशन्ति) शिष्य जैसे आचार्य को प्राप्त होते हैं वैसे ही वे भी (इन्द्रं विशन्ति) ऐश्वर्य वा राष्ट्र में प्रवेश करते हैं, और भक्तजन प्रभु में प्रवेश करते हैं।

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥८॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! (पवमानः) राष्ट्र को दुष्टों से रहित करता और अभिषेक किया जाता हुआ, तू (सुवीर्यम् अभि अर्ष) उत्तम बल प्राप्त कर। (उर्वीम् गव्यूतिम्) बड़े भारी मार्ग और बड़े भारी (गो-यूतिम्) वाणी की प्राप्ति को और (महि शर्म) बड़े घर, भवन और सुख को (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (नः) हमारे (अस्य) इस शासक पर (परि-सूतिः) कोई हिंसाकारी जन, मुक्तात्मा पर जन्म बन्धनवत् (माकिः परि-

ईपत) अधिकार न करले । (त्वया धनं-धनं जयेम) तेरे द्वारा हम लोग अनेक महासग्राम और उत्तम अनेक ऐश्वर्यों का भी विजय करें ।

अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

भा०—(वृषभः द्याम् अधि अस्थात्) समस्त सुखो की वर्षा करने वाला, प्रभु, राजा आकाश मे सूर्य के तुल्य राजसभा में विराजे । वह (विचक्षणः) विविध ज्ञानो का द्रष्टा और वक्ता (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (रोचना वि रूरुचत्) नाना रुचिकर, कान्तियुक्त कर्मों, ज्ञानों को प्रकाशित करे । वह (राजा) स्वयं तेजस्वी, स्वामीवत् (रोरुवत्) गर्जता, उपदेश करता हुआ (पवित्रम् अति एति) विज्ञान, विवेक के न्याय पद को प्राप्त होता है । (नृचक्षसः) सब प्रधान नायक विद्वान्, आत्मदर्शी जनो के तुल्य द्रष्टा रहकर (दिवः पीयूषं दुहते) राजसभा से 'पीयूष' अमृत के तुल्य, राष्ट्र के दुष्टो के नाशो का उपाय प्राप्त करते है ।

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥

भा०—(मधु-जिह्वाः) ज्ञानमय मधु को वाणी मे धारण करनेवाले (असश्चतः) नि:संग, (वेनाः) मुमुक्षु, तेजस्वी, जन (गिरिष्ठां) वाणी मे विद्यमान, (उक्षण) समस्त ससार को वहन या धारण करने वाले (द्रप्सं) बलवान, शुक्रमय, (अप्सु वृधान) अन्तरिक्षो, जलों, प्राणो, लिङ्गदेहों तक मे व्यापक (मधुमन्त) आनन्दमय, आत्मा प्रभु को (सिन्धोः ऊर्मा) नदी के तरग के समान उठते हुए आत्मा के आवेश में (पवित्रे) परम पवित्र हृदय में (दिवः नाके) परम प्रकाशमय रूप के एक मात्र सुखमय रूप मे और (समुद्रे) सब सुखो के उद्भव करने वाले अनन्त रूप मे

(आ आ) प्राप्त करते और (दुहन्ति) उससे अनेक सुख प्राप्त करते और अनेक फल पाते हैं।

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ११

भा०—(वेनानाम्) विद्वान्, नाना फलों को चाहने वाले जनों की (पूर्वीः) भक्तिरस से पूर्ण, वा सनातन से विद्यमान, वेदमय (गिरः) वाणियें, (उपपप्तिवांसं) समीप मे अति ऐश्वर्यमय रूप मे विद्यमान (नाके) एकान्त सुखमय, मोक्ष धाम में प्राप्त, (सुपर्णम्) उत्तम पालक साधनो और ज्ञान रश्मियों, रूप तेजो से युक्त प्रभु की (अकृपन्त) स्तुति करते हैं। उस (हिरण्ययं) हित, रमणीय, कान्तिमान्, तेजोमय, (शकुनं) शक्तिमान्, अन्यों को भी ऊपर उठा लेने में समर्थ, (क्षामणि स्थाम्) परम क्षमा-सामर्थ्य, परमाश्रय मे विद्यमान (पनिप्नतं) सबको ज्ञान का उपदेश करने वाले, (शिशुं) सर्वव्यापक प्रभु को (मतयः रिहन्ति) सब स्तुतियां, सब बुद्धियां और समस्त बुद्धिमान् व्यक्ति स्पर्श करती, वहां तक पहुंचती, और उसी का वर्णन करती है।

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य। भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥ १२ ॥ ११ ॥ ४ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः) सब से ऊंचा, (गन्धर्वः) भूमि आदि लोकों, और सब को चलाने वाली शक्ति को धारण करने वाला, (नाके अधि अस्थात्) परम सुखमय, सूर्यवत् देदीप्यमान रूप मे सब संसार का अध्यक्ष होकर विराजता है। वह (अस्य) इस जगत् के (विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणः) समस्त रूपों को प्रतिक्षण देखता और प्रकट करता रहता है। वह (शुक्रेण) अतिदीप्त (शोचिषा) सर्व शुद्धकारी कान्ति से (वि अद्यौत्) विशेष रूप से चमकता है, विविध लोकों को प्रकाशित कर रहा

है। वह (भानुः) कान्तिमान्, (शुचिः) शुद्ध पवित्र (रोदसी) आकाश वा सूर्य, और भूमिवत् जगत् को सीमाओं में रोक रखने वाले (मातरौ) जगत् की रचना करने वाले आत्मा और प्रकृति, दोनों तत्वों को (प्र अरूरुचत्) बहुत बहुत चमकाता है, प्रकृति को चमकाता, और जीव को उस की रुचि के अनुसार विहार करने देता है। इत्येकादशो वर्गः। इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

[८६]

ऋषिः—१—१० आकृष्टामाषाः। ११—२० सिकता निवावरी। २१—३० पृश्नयोऽजाः। ३१—४० त्रय ऋषिगणाः। ४१—४५ अत्रिः। ४६—४८ गृत्समदः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, ६, २१, २६, ३३, ४० जगती। २, ७, ८, ११, १२, १७, २०, २३, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४२, ४४, ४७ विराड् जगती। ३—५, ९, १०, १३, १६, १८, १९, २२, २५, २७, ३२, ३७, ४१, ४६ निचृज्जगती। १४, १५, २८, २९, ४३ ४८ पादनिचृज्जगती। २४ आर्ची जगती। ४५ आर्ची स्वराड् जगती॥

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते॥१॥

भा०—हे (पवमान) अभिषेचनीय ! हे परम पावन ! (ते) तेरे (आशवः) वेग से जाने वाले, व्यापनशील, (धीजवः) बुद्धि के वेग वाले, धीमान् पुरुष, (मदाः) आनन्द प्रसन्न होकर (रघुजाः इव) वेग में प्रसिद्ध अश्वों या स्वयं वेग उत्पन्न करने वाले यन्त्रों के तुल्य (त्मना प्र अर्षन्ति) आप से आप आगे बढ़ते हैं। वे (दिव्याः) दिव्य, तेज से युक्त (सुपर्णाः) उत्तम ज्ञान से युक्त, सुखमय, शुभ ज्ञान मार्ग से जाने वाले, (मधुमन्तः) वेदमय ज्ञानोपदेश से युक्त (इन्दवः) तेजस्वी पुरुष

(मदिन्तमासः) अति अधिक सुप्रसन्न और अन्यों को भी आनन्दित करने वाले होकर (कोशं परि आसते) भीतर आनन्दमय कोश का आश्रय करके विराजते हैं। जैसे राजा के वीर ऐश्वर्यमय कोश का आश्रय लेकर बैठते हैं वैसे प्रभु के भक्त, उपासक आनन्दमय कोश का आश्रय लेते हैं।

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक्।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥२॥

भा०—हे प्रभो ! (ते) तेरे (आशवः) व्यापनशील, शीघ्र कार्य करने मे समर्थ कुशल जन, (मदासः) प्रभु के आनन्द के तरंग (मदिरासः) अन्यो को भी आनन्द प्रसन्न करने वाले होकर (रथ्यासः यथा) रथ योग्य अश्वो वा रथ के संचालन मे कुशल महारथो के तुल्य (पृथक् प्र असृक्षत) पृथक् २ स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न होते और आगे बढते हैं और (धेनुः वत्सं पयसा अभि) जिस प्रकार गौ अपने दूध से बछडे को प्राप्त हो, उसे पुष्ट करती है, उसी प्रकार वे (मधुमन्तः) मधुर सुख और ज्ञान वाले (ऊर्मयः) उन्नत विचारवान्, उत्साही पुरुष और तरङ्गवत् उत्पन्न आनन्द रस (इन्दवः) तेजस्वी और आल्हादजनक (वज्रिणम् इन्द्रम् अभि) बलशाली ऐश्वर्ययुक्त आत्मा को अपने ज्ञान वीर्य से प्राप्त होते हैं। वे राजा का सैनिको के तुल्य ही आश्रय करते हैं।

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम्।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥३॥

भा०—(हियानः अत्यः) प्रेरित हुआ अश्व जिस प्रकार (वाजम् अभि) संग्राम की ओर बढता है, उसी प्रकार (स्वः वित्) प्रकाशमय ज्ञान का लाभ कर लेने वाला, हे विद्वन् ! तू (अद्रि मातरम्) मेघ के उत्पादक (दिवः कोशम्) अन्तरिक्ष के जल से पूर्ण वायुमण्डल के तुल्य (अद्रि-मातरम्) मेघतुल्य ज्ञानप्रद उदार पुरुषों को उत्पन्न करने वाले (दिवः कोशम्) ज्ञान-प्रकाश के अपार भण्डार उस प्रभु को (अभि अर्ष)

प्राप्त हो। तू (वृषा) बलशाली, होकर (पवित्रे) परम पवित्र, (अव्यये) रक्षामय, अविनाशी, (सानौ अधि) ऐश्वर्यमय परम पद में (पुनानः) प्राप्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् होकर (धायसे) सर्वधारक, सर्वपोषक (इन्द्रियाय) परमेश्वर्यवान् प्रभु के प्राप्त करने के लिये (अभि-अर्ष) आगे बढ़।

प्र त॑ आश्विनीः पवमान धीजुवो॑ दिव्या अ॑सृग्रन्पयसा धरीमणि। प्रान्तर्ऋष॑यः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा॑ मृजन्त्यृषिषाण वे॒धसः॑॥४॥

भा०—हे (पवमान) आत्मन्! विद्वन्! (ते) तेरी (धीजुवः) उत्तम ज्ञान और कर्म द्वारा वेग वाली, (दिव्याः) ज्ञान प्रकाश से युक्त, (अश्विनीः) व्यापक धाराएं, वाणियें, शक्तियें, (धरीमणि) उस सर्व-धारक प्रभु के निमित्त (प्र असृग्रन्) बड़े वेग से उत्पन्न होती है। हे (ऋषिषाण) तत्वद्रष्टा ऋषि जनों से सेवित उपासित आत्मन्! (ये) जो (वेधसः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (त्वा मृजन्ति) तुझे परिशोधन करते है वे (ऋषयः) तत्वदर्शी ऋषि जन तेरी उन बुद्धियों, ज्ञानधाराओं को (अन्तः स्थाविरीः प्र असृक्षत) अपने भीतर स्थिर कर लेते है। अपने भीतरी अन्तःकरण रूप क्षेत्र मे लताओं के समान अंकुरित कर उनको बढ़ाते है।

विश्वा॒ धामा॑नि विश्वचक्ष ऋभ्व॑सः प्र॒भोस्ते॒ स॒तः परि॑ यन्ति के॒तवः॑। व्या॒न॒शिः प॑वसे सोम॒ धर्म॑भिः पति॒र्विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य राजसि॥५॥१२॥

भा०—हे (विश्व-चक्षः) समस्त संसार के द्रष्टा! हे (सोम) जगत् के उत्पादक सञ्चालक! (ऋभ्वसः) महान्! (सतः) सत् स्वरूप (ते प्रभोः) तुझ प्रभु के (केतवः) ज्ञान करानेवाले किरणों के तुल्य प्रकाश (विश्वा धामानि परि यन्ति) सब भुवनों मे पहुंच रहे है। तू (व्यानशिः) विविध प्रकार से

व्यापने वाला होकर (धर्मभिः पवसे) जगत् को धारण करने वाले नाना बलों से व्याप रहा है। तू (भुवनस्य विश्वस्य) समस्त जगत् का (पतिः राजसे) पालक, स्वामी होकर विराजता है, सबको प्रकाशित करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ६

भा०—(सतः ध्रुवस्य) सत्स्वरूप, समस्त जगत् के धारक, ध्रुव, कूटस्थ, अविनाशी, (पवमानस्य) सर्वव्यापक उस आत्मा प्रभु के (केतवः) ज्ञानमय (रश्मयः) किरण (उभयतः परियन्ति) इस और उस दोनों लोको में व्याप रहे है। (यदि) जब (हरिः) सब दुखों का हरण करने वाला हरि, वह प्रभु (पवित्रे) परमपावन रूपमे (अधिमृज्यते) परिशोधन किया जाता है, वह (योनौ सत्ता) योनि मे बैठने वाले आत्मा, और घर में विराजने वाले गृहपति के तुल्य इस विश्व मे (सत्ता) विराज कर (कलशेषु) नाना घटों, देहों के तुल्य समस्त भुवनों में (सीदति) विराजता है।

यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम्।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥

भा०—(सु-अध्वरः) शोभन मार्ग का उपदेश करने वाला, उत्तम हिंसारहित प्रजापालनरूप यज्ञ का सम्पादक, अन्य किसी मे भी पीडित न होनेवाला, (यज्ञस्य केतुः) महान् जगन्मय यज्ञचक्र को सूर्यवत् प्रकाशित करने वाला, (सोमः) जगत् का शासक, उत्पादक प्रभु (देवानां निष्कृतम्) समस्त मनुष्यो और प्राणों, पृथिव्यादि लोकों के भी परम स्थान को (उप याति) प्राप्त है। वह (सहस्र-धारः) सहस्रों धारक शक्तियो ज्ञानवाणियो का स्वामी (वृषा) सब सुखों का वर्षक (कोशम् परि अर्षति) आनन्दमय कोश मे प्रकट होता है। वही (रोरुवत्) नाद करता हुआ (पवित्रम् एति जाते) परम पवित्र हृदय को प्राप्त होता है।

राजा समुद्रं नद्यो॒३॑ वि गा॑हते॒ऽपामू॒र्मिं स॑चते सिन्धु॑षु श्रि॒तः।
अध्य॑स्थात्सानु॒ पव॑मानो अ॒व्ययं॒ नाभा॑ पृथि॒व्या ध॒रुणो॑ म॒हो दि॒वः॥८

भा०—(राजा) सबका स्वामी, प्रकाशमान् प्रभु (नद्यः) सदा स्तुति योग्य है। वह (समुद्रं वि गाहते) इस महान् आकाशमय वा कामनामय समुद्र को पार करता, उसमें व्यापता है। (अपाम् ऊर्मिम्) प्राणियों के प्राणों के उर्ध्व शक्ति को (सचते) प्राप्त किये है, वह उनका स्वामी है। वह (सिन्धुषु श्रितः) देहस्थ आत्मा रक्त से पूर्ण नाड़ियों, रगों में भी व्याप्त है, वह प्रभु गतियुक्त समस्त शक्तिशाली पदार्थों में भी व्याप्त है। वह (पवमानः) सर्वव्यापक, सर्वप्रेरक प्रभु (अव्ययं) अक्षय, सर्वरक्षामय ऐश्वर्य को (अधि अस्थात्) अपने वशकर उसपर मालिक के समान बैठा, उसपर शासन करता है। (अयं) यह (पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के केन्द्र में बैठा है वह (महः दिवः) बड़े भारी सूर्य का भी (धरुणः) धारण करने वाला परमाश्रय है।

दि॒वो न सानु॑ स्त॒नय॑न्नचिक्रद॒द् द्यौश्च॒ यस्य॑ पृथि॒वी च॒ धर्म॑भिः।
इन्द्र॑स्य स॒ख्यं पव॑ते वि॒वेवि॑द॒त्सोमः॑ पुना॒नः क॒लशे॑षु सीदति॥९॥

भा०—(दिवः सानु न स्तनयन्) जिस प्रकार मेघ गर्जता हुआ भूमि, और आकाश के ऊंचे स्थल को प्राप्त होता है उसी प्रकार वह जीव भी (स्तनयन्) माता के स्तन के अभिलाषी बालकवत् प्रभु माता के (स्तनयन्) शब्दमय वेदोपदेश की आकांक्षा करता हुआ (दिवः सानु) ज्ञान के सर्वोपरि सत्य ऐश्वर्य को (अचिक्रदत्) प्राप्त करता है। (यस्य धर्मभिः) जिसके धारक सामर्थ्यों से (द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी दोनों स्थिर हैं उस (इन्द्रस्य सख्यं वेविदत् सोमः पवते) परमेश्वर के मित्र भाव को निरन्तर प्राप्त करता हुआ यह जीव, आगे बढ़ता और (पुनानः) इस प्रकार बराबर गति करता हुआ (कलशेषु सीदति) नाना देहों में और लोकों में विराजता है।

ज्योति॑र्य॒ज्ञस्य॑ पवते॒ मधु॑ प्रि॒यं पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता वि॒भूव॑सुः।
दधा॑ति॒ रत्नं॑ स्व॒धयो॑रपी॒च्यं॑ म॒दिन्त॑मो मत्स॒र इ॑न्द्रि॒यो रसः॑॥१०॥१३

भा०—(यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञवेदि मे अग्नि के तुल्य, (प्रियम् मधु) मधु, अन्न जल के तुल्य तृप्तिकारक, अतिप्रिय, (देवानां पिता) सुखप्रद प्राण गणो का प्रभुवत् पालक, पितावत् उत्पादक, (जनिता) माता के समान अपने आश्रय मे ही उत्पन्न करने वाला, (जीव-स्वधयोः) अपने स्वशक्ति से धारण करने योग्य दोनो प्राणो के वल पर (रत्नं) रमण करने योग्य साधन इस देह को (अपीच्यं) स्वयं भीतर छुपे २ दधाति (धारण) करता है। वह (मदिन्तमः) स्वय अति आनन्दमय (मत्सरः) स्वतः तृप्त (इन्द्रियः) समस्त ऐश्वर्य का भोक्ता (रसः) रसरूप, वलरूप है।

अभि॒क्रन्द॑न्क॒लशं॑ वा॒ज्य॑र्षति॒ पति॑र्दि॒वः श॒तधा॑रो विचक्ष॒णः।
हरि॑र्मि॒त्रस्य॒ सद॑नेषु सीदति मर्मृजा॒नोऽवि॑भिः॒ सिन्धु॑भि॒र्वृषा॑॥११॥

भा०—वह (विचक्षणः) विविध इन्द्रियो से नाना भोग्य पदार्थों को देखने वा ज्ञान करने हारा, (शत-धारः) सैकड़ो वाणियो, स्तुतियो को करने वाला, नाना अनेक सामर्थ्यवान् (दिवः पतिः) अपनी कामना का स्वयं स्वामी, स्वतन्त्र कामनावान् (वाजी) वल, ऐश्वर्य से और ज्ञान से युक्त जीव (कलशं अभि) १६ कलाओ से युक्त इस देह को प्राप्त होता हुआ (अर्षति) संसार मे गति करता है। वह (हरिः) जीव, (विभिः) ज्ञानवान् पुरुषों, प्राणो और (सिन्धुभिः) जलप्रवाहों के समान स्वच्छ करने वाले आप्तजनो, प्राणो, इडा, पिंगला आदि नाड़ियों द्वारा (मर्मृजानः) अति शुद्ध, पवित्र होता हुआ, (मित्रस्य) परमस्नेही प्रभु के (सदनेषु) लोको मे (सीदति) विराजता है।

अग्रे॒ सिन्धू॑नां॒ पव॑मानो अर्ष॒त्यग्रे॑ वा॒चो अ॑ग्रि॒यो गोषु॑ गच्छति।
अग्रे॒ वाज॑स्य भजते महाध॒नं स्वा॑यु॒धः सो॒तृभि॑ः पूयते॒ वृषा॑॥१२॥

भा०—वह (सिन्धूनाम् अग्रे) देह मे वहने वाली रक्त धाराओं के भी पूर्व, उनमें (पवमानः) व्यापक होता हुआ, (अर्षति) विराजता है,

वह (वाचः अग्रे) वाणी-शक्ति के भी पूर्व, और (गोषु) इन्द्रियों मे भी (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ होकर (गच्छति) गमन करता है। वह (वाजस्य अग्रे) साग्रामिक बल के आगे २ नायक के तुल्य होकर (महाधनं भजते) बडा भारी ऐश्वर्यप्रद संग्राम करता है, वह (स्वायुधः) उत्तम वा अपने ही हथियारों से सम्पन्न सैनिक के समान (वृषा) बलवान् होकर (सोतृभिः) उपासकों द्वारा (पूयते) अभिषेक किया जाता है। आत्मा स्वयं अपने प्राण आदि रूप साधनो वाला है और उसके उपासक इन्द्रियादि सोता है।

अ॒यं म॒तवा॑ञ्छकु॒नो यथा॑ हि॒तोऽव्ये॑ ससार॒ पव॑मान ऊ॒र्मिणा॑।
तव॒ क्रत्वा॒ रोद॑सी अन्त॒रा क॑वे॒ शुचि॑र्धि॒या प॑वते॒ सोम॑ इन्द्र ते १३

भा०—(अय) यह (यथा शकुनः) एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाने वाले पक्षी के तुल्य एक देह से दूसरे देह मे जाने वाला जीव (मतवान्) ज्ञानवान् होकर (पवमानः) गति करता हुआ (ऊर्मिणा) उत्तम ज्ञानोपदेश से, (अव्ये) परम रक्षास्थान, स्नेहमय, ज्ञानमय, प्रभु के शासन में (हितः) स्थिर होकर संसार मे गति करता है। हे (कवे) क्रान्त-दर्शिन्! हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! (अयं सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीवगण (रोदसी अन्तरा) इहलोक, परलोक दोनों के बीच में (तव क्रत्वा शुचिः) तेरे ज्ञान, कर्मोपदेश से शुद्ध पवित्र होकर (धिया) बुद्धिपूर्वक (पवते) विचरण करता है। इसी प्रकार सोम, शिष्य इन्द्र, आचार्य से शिक्षित, होकर माता पिता के पास जाता, स्त्री पुरुषों में भी शुद्ध होकर विचरता है।

द्रा॒पिं वसा॑नो यज॒तो दि॑वि॒स्पृश॑मन्तरि॒क्षप्रा भुव॑ने॒ष्वर्पि॑तः।
स्व॒र्ज॑ज्ञा॒नो नभ॑सा॒भ्य॑क्रमीत्प्र॒त्नम॑स्य पि॒तर॒मा वि॑वासति ॥१४॥

भा०—वह (यजतः) सत्संगशील होकर (दिवि-स्पृशम् द्रापिं वसानः) ज्ञान प्रकाश का स्पर्श कराने वाले, कवच के तुल्य रक्षक, गुरु के

अधीन वास करता हुआ, (अन्तरिक्ष-प्राः) सूर्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष को जैसे, वैसे गुरु के ज्ञान से अपने अन्तःकरण को पूर्ण करता हुआ यह जीव (भुवनेषु) लोकों और देहों में स्थित होता है। वह (स्वः जज्ञानः) प्रभु के ज्ञानोपदेश का ज्ञान लाभ करता हुआ (नभसा) आकाशमार्ग से सूर्य के समान, अनवलम्ब, असहाय मार्ग में भी निर्भय होकर (अभि अक्रमीत्) विचरता है और (अस्य प्रत्नं पितरम्) अपने पुराने, सनातन पालक प्रभु की (आ विवासति) परिचर्या, सेवा, उपासना, स्तुति आदि करता है।

सो अ॒स्य वि॒शे महि॒ शर्म॑ यच्छति॒ यो अ॒स्य धाम॑ प्रथ॒मं व्या॑न॒शे। प॒दं यद॑स्य प॒र॒मे व्यो॑म॒न्यतो॒ विश्वा॑ अ॒भि सं या॑ति सं॒यतः॑॥१५॥

भा०—(यः) जो मनुष्य या आत्मा (अस्य) इस प्रभु के (प्रथमं) सर्वोत्तम (धाम) तेजः सामर्थ्य को (वि आनशे) विविध प्रकार से या विशेष रूप से प्राप्त करता है (सः) वह प्रभु ही (अस्य) इस आत्मा के (विशे) देह में प्रवेश करने के लिये वा उसकी प्रजा रूप नाना प्राणगण को भी (महि शर्म) बड़ा भारी सुख (यच्छति) प्रदान करता है। (अस्य) इस जीव आत्मा की (यत्) जब (परमे व्योमन् पदम्) परम रक्षास्थान प्रभु में प्राप्ति हो जाती है तभी उसको वह सामर्थ्य प्राप्त होता है (यतः) जिससे वह (विश्वा संयतः) समस्त संग्रामों का भी (अभि सं याति) मुकाबला करलेता है।

प्रो अ॑यासी॒दिन्दु॒रिन्द्र॑स्य निष्कृ॒तं सखा॒ सख्यु॒र्न प्र मि॑नाति स॒ङ्गिर॑म्। मर्य॑ इव युव॒तिभिः॒ सम॑र्षति॒ सोमः॑ क॒लशे॑ श॒तया॑म्ना प॒था॥ १६ ॥

भा०—उस प्रभु की सेवा परिचर्या करनेवाला वह जीवात्मा (इन्दुः) उस परमेश्वर्यवान् प्रभु के (निष्कृतम्) सत्कर्मों से सम्पादनीय परम पद को लक्ष्य करके (प्रो अयासीत्) आगे बढ़ता है। वह (सखा) उसका मित्र होकर (सख्युः) अपने परम मित्र के समान नाम वाले परम-आत्मा की (संगिरम्) उत्तम वाणी, आज्ञा वा प्रतिज्ञा को (न प्रमिनाति) नहीं भंग

करता। वह (मर्यः इव युवतिभिः) स्त्रियों से पुरुष के समान (सोमः) जीवात्मा, (मर्य.) मरणधर्मा होकर भी (युवतिभिः) अपने साथ मिली नानाशक्तियों, कामनाओं से (शत-याम्ना पथा) सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य वा सौ वर्षों तक भोगने योग्य इस संसार मार्ग से (कलशे सम्-अर्षति) इस षोड़शकलायुक्त पुरुष-देह में प्राप्त होता है।

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः १७

भा०—हे मनुष्यो! (वः) आप लोगों के कर्म और बुद्धियों और आप लोगों में से जो उत्तम धारणावान् और कर्मवान् (मन्द्रयुवः) आनन्द, परमसुख की कामना करनेवाले, (पनस्युवः) स्तुति करना चाहते हुए (विपन्युवः) स्तोता लोग (स-वसनेषु अक्रमुः) एक साथ मिलकर बैठने के स्थानों, सत्संगों में विराजें। और (मनीषाः) अपने चित्त पर वश करने वाले, एकाग्रचित्त होकर (सोमं) उस सर्वोत्पादक, सर्वशासक प्रभु की (अभि अनूषत) स्तुति करें। (पयसा धेनवः) दूध से जैसे गौवें अपने शासक की सेवा करती हैं उसी प्रकार वे (स्तुभः) भगवान् की स्तुतियां भी अपने ज्ञान रस से उसी प्रभु की (अशिश्रयुः) सेवा करती हैं।

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम्।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान् प्रभो! हे (इन्दो) तेजोमय! (नः) हमें (सयन्त) सम्यक् मार्ग में जानेवाली, (पिप्युषीम्) बढ़ती हुई (अस्रिधम्) नाश न करनेवाली (ऊर्जं नः आपवस्व) हमें सत् इच्छा को उत्तम वर्षा और अन्न सम्पदा के समान प्राप्त करा। (या) जो (असश्चुषी) निःसंग और विघ्नरहित होकर (अहन्) दिनमें (त्रिः) तीनवार (क्षुमत्) उत्तम उपदेश युक्त, (वाजवत्) बलयुक्त, (मधुमत्) मधुर अन्नरस से युक्त (सुवीर्यम्) उत्तम बल वीर्य, (दोहते) प्रदान करे।

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः १९

भा०—(वृषा) बलवान्, सुखों का वर्षा करनेवाला, (मतीनां) समस्त मननों, स्तुतियों, वाणियों और बुद्धियों का (विचक्षणः) विविध प्रकार से दर्शन करनेवाला, (सोमः) सर्वशास्ता, सर्वप्रेरक प्रभु आत्मा (अह्नः उषसः प्रतरीता) दिन, उषाकाल का उत्पादक, सूर्य के तुल्य (दिवः प्रतरीता) तेज, प्रकाश, ज्ञान, उत्तम कामना की वृद्धि करने और देनेवाला (सिन्धूनां क्राणा) प्रवाहशील जलों के तुल्य देह में रक्तनाड़ियों का भी बनानेवाला (कलशान् अवीवशत्) देह के समस्त कलशों, कणों (cells) को भी वह वश करता है, वह (मनीषिभिः) मन अर्थात् ज्ञान की प्रेरणा करनेवाले साधनों पर से भी (इन्द्रस्य हार्दिं अविशत्) इस आत्मा के हृदय में प्रवेश करता है, उसका प्रिय हो जाता है।

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत्।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे २०॥

भा०—(पूर्व्यः कविः) पूर्व के विद्यमान विद्वान् जनों से उपासित, सर्वोपदेष्टा अनादि प्रभु (यतः) नियमों में बद्ध, (परि कोशान् अचिक्रदत्) समस्त कोशों, हृदयों और लोकों में व्याप्त है, इससे वह (मनीषिभिः) मन और ज्ञान को प्रेरणा देनेवाले, बुद्धिमान्, बुद्धिप्रद (नृभिः) मनुष्यों और प्राणों द्वारा (पवते) हमें प्राप्त होता है। वह (इन्द्रस्य) इस देह के प्राणच्छिद्रों को विदारण करनेवाले भोक्ता आत्मा के (वायोः) प्राणवायु से (सख्याय कर्त्तवे) मैत्रीभाव करने के लिये (त्रितस्य) तीनों लोकों वा देह के तीनों भागों में व्याप्त आत्मा के (मधु) तृप्तिकारक और (क्षरत् नाम) द्रवरूप जल वा द्रव रुधिर को भी (जनयन्) उत्पन्न करता है। इति पञ्चदशो वर्गः॥

अयं पुनान उषसो विरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः २१

भा०—(अयम्) यह सूर्य के समान (पुनानः) स्वच्छ पवित्र होता और प्रकट होता हुआ (उषसः वि रोचयत्) नाना कान्तियों तथा अज्ञान और पाप एवं कर्म-बन्धनो को दग्ध करने वाली ज्ञान-ज्वालाओ को अग्निवत् प्रकट करता है। (अयम्) यह (सिन्धुभ्यः) जलो एवं प्रवाहशील, गतिमत् प्रकृति के अवयवो से (लोक-कृत्) समस्त लोको को बनाता है, एवं वह इन रक्तवाहिनी सूक्ष्म नाडियो से ही (लोक-कृत्) पदार्थ दर्शक इन्द्रियो की भी रचना करता है। (अयं) यह (आशिरं) रसको (त्रिःसप्त) २१ प्रकार से (दुदुहानः) प्रदान करता हुआ (सोमः) वीर्यमय सोम (मत्सरः) देह मे हर्ष संचार करने वाला होकर (हृदे) हृदय मे (चारु पवते) अच्छी प्रकार व्यापता है।

पव॑स्व सोम दि॒व्येषु॒ धाम॑सु सृजा॒न इ॑न्दो क॒लशे॑ प॒वित्र॒ आ।
सीद॒न्निन्द्र॑स्य ज॒ठरे॒ कनि॑क्रद॒न्नृभि॒र्य॒तः सूर्य॒मारो॑हयो दि॒वि ॥२२॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य! हे (इन्दो) तेजस्विन्! प्रभु के उपासक! तू (पवित्रे कलशे) परम पवित्र, आत्मा, अन्तःकरण को स्वच्छ करनेवाले इस घट सदृश देह मे (आ सृजानः) उत्पन्न होता हुआ ही, (दिव्येषु धामसु) अपनी मनोकामना के अनुसार उत्तम धारण करने योग्य देहो, जन्मो और स्थानो मे (पवस्व) जा। तू माता के गर्भ के सदृश उस (इन्द्रस्य जठरे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के गर्भ मे, गुरुगर्भ में शिष्यवत् (सीदन्) रहता और उन्नति की ओर जाता हुआ और (कनिक्रदत्) प्रभु की स्तुति करता, शास्त्रो का अभ्यास करता हुआ (नृभिः) अपने नेताओ, विद्वानों तथा प्राणो द्वारा (यत.) सुनियंत्रित, नियमबद्ध रहकर ही (दिवि सूर्यम्) आकाश मे स्थित सूर्य के सदृश कान्तिमान् (दिवि) ज्ञान, आनन्दप्रद कामना क्षेत्र मे (सूर्यम्) सबके प्रकाशक प्रभु का (आ रोहयः) आश्रय ले, उसी को प्राप्त हो। वा इन्द्रिय गणो को वश करके (सूर्यम्) दक्षिण प्राण के बल से ब्रह्मरन्ध्र की ओर गति कर।

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन्।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप॥२३॥

भा०—हे (सोम) दीक्षादि मे अभिषेक योग्य विद्वन्! शिष्य! उपासक! हे (इन्दो) गुरु या प्रभु के उपासक! तू (अद्रिभिः सुतः) मेघ तुल्य उदार ज्ञानवर्षी, एवं कूटने के पाषाणो के सदृश रसप्रद, अज्ञानग्रन्थि के नाशक गुरुजनो से (सुतः) उपदिष्ट, दीक्षित होकर (पवित्रे) परम पवित्र ज्ञानमयःपद मे (पवसे) प्राप्त हो। और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान्, विघ्नो और अज्ञानो के नाश करनेवाले गुरु, प्रभु के (जठरे) भीतर गर्भ मे (आविशन्) प्रवेश करता हुआ। हे (विचक्षण) विविध ज्ञानो के देखने हारे! (त्वम्) तू (नृचक्षाः अभवः) मनुष्यो के बीच विवेक से तत्वो का द्रष्टा हो। और (अङ्गिरोभ्यः) अंग मे प्राणो के समान वा देह मे अंगारो के समान तेजस्वी ज्ञानी जनो के लिये (गोत्रम्) वाणियो के समान रक्षक वेदमय खज़ाने को (अप अवृणोः) खोल कर रख।

त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् २४

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! सर्वप्रेरक प्रभो! (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान, धारणा और उत्तम कर्म वाले (विप्रासः) मेधावी विद्वान्, (अवस्यवः) रक्षा, ज्ञान, कृपा दया और अपनी वृद्धि चाहने वाले जन (पवमानं त्वां) वाह्य और भीतरी शत्रुओं का नाश कर देश, देह और हृदय को पवित्र करने वाले तेरी ही (अनु अमदन्) निरन्तर स्तुति किया करते है। हे (इन्दो) तेजस्विन् (विश्वाभि. मतिभि.) समस्त बुद्धियों और स्तुतियो वा ज्ञान-वाणियो से (परि-कृतम्) सुशोभित (त्वा) तुझको (सुपर्णः) उत्तम पालनशक्ति वाला वा उत्तम गति से जाने मे समर्थ उत्तम साधनसम्पन्न पुरुष (दिवः परि) समस्त कामनाओं को प्राप्त

करने के लिये वा (दिवः परिः) महान् आकाशवत्, अपरिमेय हृदयाकाश में भी (त्वां आभरद्) तुझको ही धारण करता है।

अव्ये॑ पुना॒नं परि॒ वार॑ ऊ॒र्मिणा॒ हरिं॑ नवन्ते अ॒भि स॒प्त धे॒नवः॑ । अ॒पामु॒पस्थे॑ अ॒ध्यायवः॑ क॒विमृ॒तस्य॒ योना॑ महि॒षा अ॑हेषत २५।१६

भा०—(अव्ये वारे) ज्ञानमय आवरण मे (ऊर्मिणा) उत्साह से (पुनानं) वृद्धि को प्राप्त करते हुए (हरिम्) ज्ञानधारक शिष्य को (सप्त धेनवः अभिनवन्ते); वेद की सातो छन्दों की वाणियां प्राप्त होती है। (अपाम् उपस्थे) जलो के समीप विद्यमान (कविम्) क्रान्तदर्शी विद्वान् को प्राप्त होकर (आयवः) मनुष्य (महिषाः) बड़ा ज्ञान और बल प्राप्त करके (ऋतस्य योनौ अधि) सत्य ज्ञान के आश्रय रूप उसके अधीन (अहेषते) शास्त्र का अभ्यास करे। इति षोडशो वर्गः॥

इन्दुः॑ पुना॒नो अति॑ गाहते॒ मृधो॒ विश्वा॑नि कृ॒ण्वन्त्सु॒पथा॑नि॒ यज्य॑वे । गाः कृ॑ण्वा॒नो नि॒र्णिजं॑ हर्य॒तः क॒विरत्यो॒ न क्रीळ॒न्परि॒ वार॑मर्षति ॥ २६ ॥

भा०—(पुनानः) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ (इन्दुः) तेजस्वी पुरुष, (मृधः अति गाहते) हिंसक शत्रु-सेनाओं और आत्मविनाशक दुष्ट प्रवृत्तियों को पार कर जाता है। वह (यज्यवे) दानशील प्रजाजन के हितार्थ (सुपथानि कृण्वन्) उत्तम २ मार्ग उत्पन्न करता है। वह (हर्यतः) कान्तिमान् होकर (कविः) विद्वान् पुरुष (गा कृण्वानः) स्तुतियो और सुन्दर वाणियो, वेद मन्त्रो और आज्ञाओं का पुनः २ अभ्यास करता हुआ (क्रीडन् अत्यः न) बलवान् अश्व के तुल्य अनायास जाता हुआ (निर्णिज) अति शुद्ध (वारम्) वरण करने योग्य ऐश्वर्य पद या स्वरूप को (परि अर्षति) प्राप्त होता है।

अ॒स॒श्चतः॑ श॒तधा॑रा अभि॒श्रियो॒ हरिं॑ नव॒न्तेऽव॒ ता उ॑द॒न्युवः॑ । क्षिपो॑ मृजन्ति॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑तं तृ॒तीये॑ पृ॒ष्ठे अधि॑ रोच॒ने दि॒वः २७

भा०—(हरिं) दुःखहारी रक्षक को (अभि-श्रियः) उसका आश्रय लेने वाली (असश्चतः) परस्पर असम्बद्ध, स्वतः पृथक् २ (शत-धाराः) सैकड़ों धाराओं के तुल्य, प्रजाएं नाना स्तुतियां करती हुई (उदन्युवः) जल लिये हुए, आदरार्थ (नवन्ते) विनयपूर्वक प्राप्त हों। (दिवः) भूमि या राजसभा के (रोचने) सर्वप्रिय, (तृतीये पृष्ठे) तृतीय, सर्वोत्तम पद पर (गोभिः आवृतम्) वेद-वाणियों से परिष्कृत जल-धाराओं से अभिषिक्त उसको (क्षिपः) शत्रु को उखाड़ फेकने वाली नाना सेनाएं भी (परि मृजन्ति) सुशोभित और अभिषिक्त करती है। इसी प्रकार निःसंग सहस्रों वाणियां और भक्तजन उस प्रभु की स्तुति करते हैं। परम मोक्ष पद में विराजमान उस प्रभु को पापवासनाओं को फेंक देने वाले शुद्ध जन ही प्राप्त करते हैं।

तवे॒माः प्र॒जा दि॒व्यस्य॒ रेत॑स॒स्त्वं विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य राजसि।
अथे॒दं विश्वं॑ पवमान ते॒ वशे॒ त्वमि॑न्दो प्रथ॒मो धा॑म॒धा अ॑सि २८

भा०—हे (पवमान) सबके पावन! प्रेरक, व्यापक प्रभो! (दिव्यस्य रेतसः) दिव्य, तेजोमय सर्वोत्पादक वीर्य वा बल से उत्पन्न (तव इमाः प्रजाः) ये समस्त तेरी प्रजाएं हैं। (त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि) तू समस्त जगत् का राजा के समान स्वामी, सब जगत् को प्रकाशित करने हारा है। (अथ) और (इदं विश्वं ते वशे) यह समस्त विश्व तेरे ही वश में है। हे (इन्दो त्वम् प्रथमः) तेजस्विन्! तू ही सर्वश्रेष्ठ (धाम-धाः) तेजों, धारण सामर्थ्यों और लोकों को धारण और पोषण करनेहारा (असि) है।

त्वं स॑मु॒द्रो अ॑सि विश्व॒वित्क॑वे॒ तवे॒माः पञ्च॑ प्र॒दिशो॒ विध॑र्मणि।
त्वं द्यां च॑ पृथि॒वीं चाति॑ जभ्रिषे॒ तव॒ ज्योतीं॑षि पवमान॒ सूर्यः॑ २९

भा०—हे (कवे) क्रान्तिदर्शिन विद्वन्! (त्वं समुद्रः असि) तू समुद्र के समान अपार और गम्भीर ज्ञानों और गुणों का भण्डार है। तू

(विश्व-वित्) जगत् के समस्त पदार्थों को जानने, सब को सब प्रकार के पदार्थ प्राप्त कराने वाला है (तव विधर्मणि) तेरे विशेष शासन मे (इमाः पञ्च प्र-दिशः) ये पांचो मुख्य दिशाएं आत्मा के अधीन पांच इन्द्रियो, राजा के अधीन पांचो प्रजाओं के तुल्य है । तू (द्यां च पृथिवी च) आकाश और भूमि को (अति) पार करता, उनका धारण करता और पालता है, उनसे कही वडा है । हे (पवमान) सर्वप्रेरक प्रभो ! (सूर्यः तव ज्योतींषि) यह सूर्य भी तेरी ही ज्योतिये है । अथवा (सूर्यः तव ज्योतींषि जभ्रिषे) सूर्य तेरी ही ज्योतियो को धारण करता है ।

त्वं पुवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अंगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ३०।१७

भा०—हे (पवमान सोम) सब जगत् को प्रेरित और पवित्र करने वाले, सर्वव्यापक प्रभो ! हे सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! (त्वं) तू (देवेभ्यः) समस्त देवो के लिये (रजसः) समस्त लोको के (पवित्रे) सर्वप्रेरक (विधर्मणि) सब के धारक पद पर (पूयसे) अभिषिक्त होता है ।(प्रथमाः उशिजः) सर्व प्रथम, सर्व श्रेष्ठ तुझे चाहनेवाले, तेरे प्रेमी जन (त्वाम् अगृभ्णत) तेरा आश्रय ग्रहण करते, तेरा प्रत्यक्ष ज्ञान करते है, (इमा विश्वा भुवनानि) ये समस्त लोक (तुभ्य येमिरे) तेरी ही वल से वद्ध है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ३१

भा०—(रेभः) उपदेष्टा होकर (अव्यय वारम् अति) सर्वरक्षक सर्ववरणीय पद को (अति प्र एति) सब से बढकर प्राप्त होता है । (वृषा) सर्वसुखों का वर्षक होकर (हरिः) सर्वदुःखहारी प्रभु (वनेषु) कार्यों मे अग्नि के तुल्य रश्मियो, तेजो, सूर्य के तुल्य समस्त

ऐश्वर्यों में (अवचक्रदत्) व्यापता है। (धीतयः) कर्म करने वाले जन (वावशानाः) उस प्रभु की कामना करते हुए ही (सम् अनूषत) उस की मिलकर स्तुति करते है (मतयः) समस्त स्तुतियां ज्ञान वाणियां (शिशुम्) बालकवत् समान भाव से सर्वप्रिय, निर्मल, निर्दोष रूप में (पनिप्नतं) उपदेश देते हुए उस बालक को (रिहन्ति) माता के समान चूमती, उस तक पहुंचती हैं।

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ३२

भा०—(सः) वह गुरु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से जैसे वैसे तेजो से वा शिष्यों से (परि व्यत) आवृत हो जाता है। वह (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) उनका तिन-लहडा, तिहरा वटा तन्तु, यज्ञोपवीत (तन्वानः) करता हुआ (यथा विदे) शिष्य जनों को यथावत् रीति से प्राप्त करने और उनको यथावत् ज्ञान कराने के लिये (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और तेज की (नवीयसीः) अति उत्तम २ (प्रशिषः) आज्ञाओं, प्रशासनों और उपदेशनाओं को (नयत्) प्राप्त कराता हुआ (पतिः) उनका पालक होकर (जनीनां) पुत्रोत्पादक माताओं के (निष्कृतं उपयाति) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है। अथवा (जनीना) प्रकट हुई ज्ञानजनक वाणियों के लिये (निष्कृतम्) उत्तम पात्र प्राप्त करता है।

(२) गृहस्थ पक्ष में—सोम वधू प्राप्त करके (जनीनां पतिः) पुत्र प्रसव करने वाली दाराओं का पालक होकर (निष्कृतं) गृह को प्राप्त करता है।

राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत्।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ३३

भा०—(सिन्धूनां राजा) वेग से जाने वाले अश्वों के स्वामी, सेना पति वा महारथी के तुल्य वह (सिन्धूनां राजा) कुमार्ग में जाने वाले

शिष्य जनो व इन्द्रियो का स्वामी, (दिवः पतिः) ज्ञान, प्रकाश और सदिच्छा का पालक होकर (ऋतस्य पथिभिः) सत्य ज्ञान और न्याय के मार्ग से (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ गमन करता है। वह (सहस्र-धारः हरिः) सहस्रो धाराओं वाले मेघ के तुल्य, सहस्रो वाणियो का आश्रय, अज्ञानहारी, मनोहर और (उप-वसुः) समीप रहते वसु, ब्रह्मचारियो से सेवित होकर (वाचं जनयन्) ज्ञान वाणी का उपदेश करता हुआ (पुनानः) उनको पवित्र करता हुआ स्वयं भी (परि सिच्यते) पवित्र हो जाता है। वह ज्ञान मे और भी निष्णात होता जाता है।

पव॑मान म॒ह्यर्णो॒ वि धा॑वसि॒ सूरो॒ न चि॒त्रो अव्य॑या॒नि पव्य॑या।
गभ॑स्तिपूतो॒ नृभि॒रद्रि॑भिः सु॒तो म॒हे वाजा॑य॒ धन्या॑य धन्वसि ३४

भा०—हे (पवमान) अन्यो को पवित्र करने हारे ! तू (महि अर्णः) अभिषेक काल मे बहुत से जलो के तुल्य (महि अर्णः) बहुत भारी ज्ञान को (वि धावसि) विशेष रूप से प्राप्त करता है। (सूरः न) सूर्य के समान (चित्रः) आश्चर्यजनक, ज्ञान का पुञ्ज होकर (अव्ययानि पव्यया) आदरसूचक भेड के बालो के बने पवित्र दुशालो के समान ही (अव्य-यानि पव्यया) ज्ञानमय परम पवित्र तत्वो को भी प्राप्त करता है, (गभस्ति-पूतः) सूर्य की किरणो से पवित्र होकर (नृभिः अद्रिभिः सुतः) मेघवत् उदार जनो से अभिषिक्त वा उपासित, सुसेवित होकर (धन्याय) धन-ऐश्वर्य के योग्य आदरणीय, धन्य (महे वाजाय) बडे भारी ज्ञान-ऐश्वर्य को (धन्वसि) प्राप्त करता है। इसी प्रकार सेनानायक भी नायकों से अभिषिक्त होकर बडे भारी संग्राम को धनुष के बल पर करे।

इष॑मू॒र्जं प॑वमाना॒भ्य॑र्षसि श्ये॒नो न वंसु॑ क॒लशे॑षु सीदसि।
इन्द्रा॑य म॒द्वा मद्यो॒ मदः॑ सु॒तो दि॒वो वि॑ष्ट॒म्भ उ॑प॒मो वि॑चक्ष॒णः॥३५॥१८

भा०—हे (पवमान) पवित्र एवं ज्ञान मे निष्णात होने हारे ! तू (श्येनः न) उत्तम आचार चरित्र वाला, सत्पथगामी होकर (इषम्

ऊर्जम् अभि अर्षसि) अन्न, वल और उत्तम इच्छा और पराक्रम को प्राप्त करता है। और (वसु कलशेषु सीदसि) सेवन योग्य अभिषेक घटों के बीच विराजता है, इधर आत्मा कोशों या नाना देहों में विराजता है (इन्द्रिय) ऐश्वर्यवान् पद के लिये (मद्वा) हर्षकारक, (मदः) स्वयं भी आनन्द प्रसन्न, (सुतः) निष्णात, (दिवः विष्टंभः) प्रकाश के स्तम्भ के सदृश ज्ञानों को धारण करने वाला, (उपमः) सर्वोपमानयोग्य, (विचक्षणः) विविध ज्ञानों का द्रष्टा और उपदेष्टा है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

सप्त स्वसा॑रो अ॒भि मा॒तरः॒ शिशुं॒ नवं॑ जज्ञा॒नं जेन्यं॑ विप॒श्चित॑म्। अ॒पां ग॑न्ध॒र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं॒ सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य रा॒जसे॑॥३८॥

भा०—(स्वसारः मातरः नवं जज्ञानं शिशुम्) वहनें और माताएं जैसे नवजात वालक को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (सप्त) चलने वाली, वा गणना में सात (स्वसारः) ऐश्वर्य को लक्ष्य कर शत्रु पर आक्रमण करने वाली, (मातरः) शत्रु का हिंसन करने वाली वा गर्जना तर्जना करने वाली सेनाएं (जेन्यं) विजिगीषु (सोमं) शासक को प्राप्त करती है, उसी प्रकार (स्वसारः) स्वयं आने वाले (मातरः) विद्या का अभ्यास करने वाले जन (विपश्चितं) विद्वान् ज्ञानी (अपां गन्धर्वं) प्रजाओं के बीच ज्ञानवाणी को धारण करने वाले, (दिव्यं) तेजस्वी (नृ-चक्षसम्) मनुष्यों को देखने और सन्मार्ग का उपदेश करने में समर्थ (सोमम्) उत्तम शासक पुरुष को (विश्वस्य भुवनस्य राजसे) समस्त संसार को प्रकाशित करने के लिये सूर्य के तुल्य ही (अभि) प्राप्त होते हैं।

ई॒शा॒न इ॒मा भुव॑नानि॒ वीय॑से युजा॒न इ॑न्दो ह॒रितः॑ सुप॒र्ण्यः॑। तास्ते॑ क्षरन्तु॒ मधु॑मद् घृ॒तं पय॒स्तव॑ व्र॒ते सो॑म तिष्ठन्तु कृ॒ष्टयः॑॥३९॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे उत्तम मार्ग में सब को प्रेरने वाले शासकवर! हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (हरितः सुपर्ण्यः) अज्ञान हर करने वाली सुन्दर ज्ञानवाला, वाणियों को (युजान) प्राप्त वा प्रयोग करता

हुआ (इमा भुवनानि) इन सब लोकों को सूर्यवत् (वि ईयसे) विशेष रूप से प्राप्त हो (ताः) वे उत्तम ज्ञानवाणियां (ते) तेरे (मधुमत्) मधुर वचन से युक्त (घृतं) स्नेहयुक्त, सारवत्, (पयः) दूधवत् पोषक ज्ञान को (क्षरन्तु) अन्यों के प्रति बहावें, प्रदान करें और (कृष्टयः) समस्त मनुष्य (तव व्रते तिष्ठन्तु) तेरे आदेश, नियम, शासन में रहें ।

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥

भा०—हे (सोम) विश्व के शासक प्रभो ! (त्वं) तू (नृ-चक्षाः असि) समस्त मनुष्यों का द्रष्टा, सब को सन्मार्ग का उपदेश करने वाला (असि) है । हे (पवमान) सब को पवित्र करने हारे ! हे (वृषभ) ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने वाले ! हे सर्वोत्तम ! तू (ता) उन समस्त लोकों को (विश्वतः वि धावसि) सब प्रकार से प्राप्त होता और पवित्र कर रहा है । (सः) वह तू (नः) हमें (वसुमत्) प्राणों और ऐश्वर्यों से युक्त, (हिरण्यवत्) हित, रमणीय आत्मा से युक्त वा धनैश्वर्यों से सम्पन्न सुख (पवस्व) वर्षा । (वयम्) हम (भुवनेषु) समस्त लोकों में (जीवसे स्याम) दीर्घ जीवन धारण करने में समर्थ हों ।

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ३९

भा०—हे (सोम) सर्व जगत् के शासन करने हारे ! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू हमें (गो-वित्) उत्तम वाणियों को गुरु के तुल्य, रश्मियों को सूर्य के तुल्य, भूमियों को राजा के तुल्य और प्राणप्रद पिता के तुल्य इन्द्रियस्थ प्राणों को प्राप्त कराने वाला है । तू (वसुवित्) समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला, तू (हिरण्यवित्) हित, रमणीय सुवर्णादि का प्राप्त कराने वाला है । तू (नः पवस्व) हमें भी ये सब पदार्थ प्रदान कर । तू (भुवनेषु)

समस्त लोको मे (रेतः-धाः) समस्त वीर्यों और जलो को मेघ के तु धारण करने वाला (अर्पितः) सर्वत्र विराजमान है। तू (विश्व-वित् विश्वभर को जानने और प्राप्त करने वाला वा देह में प्रविष्ट होने वा जीवो को सर्वस्व देने वाला (सु-वीरः असि) उत्तम वीर, वीर्यवान् है (तं त्वा) उस परम पूज्य तुझको (इमे विप्राः) ये विद्वान् जन (गिर उप आसते) वेद-वाणी द्वारा उपासना करते है।

उन्मध्व ऊर्मिर्वननां अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते।
राजां पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ४०।१

भा०—(मध्वः ऊर्मिः वननाः उत् अतिष्ठिपत्) जल की तरंग जिस प्रकार उसे प्राप्त करने वाले काष्ठ आदि को ऊपर उठा लेती है, उसी प्रका (मध्वः ऊर्मिः) ज्ञान रूप मधु का उत्तम उपदेष्टा पुरुष भी (वनना) ज्ञान के याचक जनो को (उत् अतिष्ठिपत्) ऊंचे उठाता है। वह (अपः वसानः महिषः) जलो के धारण करने वाले, बहुत जल देने वाले मेघ के तुल्य स्वयं भी (अपः वसानः) प्राप्त शिष्यजनो को वस्त्रवत् आच्छादित करता हुआ (महिषः) बहुत ज्ञान देने वाला, महान् होकर (वि गाहते) विशेषरूप से वा विविध देशों मे विचरता है। वह (राजा) तेजस्वी सूर्यवत् (पवित्र-रथः) पवित्र आत्मा और पवित्र पावन उपदेश वाला होकर (वाजम् आरुहत्) संग्राम को महारथी के तुल्य (वाजम्) ज्ञान, ऐश्वर्य और आदर पद को प्राप्त करता है। वह (सहस्र-भृष्टिः) सहस्रों को एक ही बार मे भून देने वाले सेनापति के तुल्य स्वयं भी (सहस्र भृष्टिः) सहस्रों तेजो को धारण करने और सहस्रो को भरण पोषण करने मे समर्थ होकर (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी यश, प्रसिद्धि वा श्रवण योग्य ज्ञान को (जयति) प्राप्त करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ४

भा०—(सः) वह आप (विश्वायुः) सब मनुष्यो के स्वामी, सब के जीवन के समान प्रिय, सब को प्राप्त होने वाले हो । आप (अहर्दिवि) दिन रात (सु-भराः) सुख प्राप्त कराने वाली, (प्रजावतीः) उत्तम प्रजाओ से युक्त, एवं उत्तम फल के देने वाली, (भन्दनाः) कल्याणकारिणी, सुखप्रद वाणियो को (उत् इयर्त्ति) उत्तम रीति से प्रकट करते है । हे (इन्दो) तेजस्विन् ! उत्तम उपासक आप (इन्द्रम्) उस प्रभु परमेश्वर के प्रति (अस्मभ्यम्) हमारे कल्याण के लिये (प्रजावत्) उत्तम सन्तान, प्रजादि से युक्त, (ब्रह्म) बड़ा भारी (अश्व-पस्त्यम्) अश्व और गृहो से युक्त (रयिम्) धनैश्वर्य की (याचतात्) याचना कर ।

सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥ ४२ ॥

भा०—(सः) वह (अग्रे अह्नाम्) दिनो के पूर्व भाग मे, प्रातः वा जीवन के पूर्व भाग, ब्रह्मचर्य काल में, (हरिः) अज्ञान दुःखो को हरने वाला (हर्यतः) सब को प्रिय लगने वाला, (मदः) आनन्द और सर्वतृप्त होकर (चेतसा) ज्ञान और उत्तम चित्त से (द्युभिः) ज्ञान प्रकाशो से सूर्य के तुल्य, सब मनुष्यो को (प्र चेतयते) उत्कृष्ट मार्ग पर जाने के लिये चेताता है, और (अनु चेतयते) बराबर चेताता रहता है । वह (द्वा जना अन्तः) छोटे बडे, गरीब अमीर, स्वामी सेवक, आत्मा प्रभु, शास्य शासक, और उत्तम निकृष्ट एवं स्त्री पुरुष सब के भीतर, सब के बीच मे रहकर उनको (यातयन्) सब प्रकार से यत्न करवाता हुआ (ईयते) जाना जाता है । वह (धर्त्तरि) धारण करने वाले पुरुष मे (नराशंसं च) उत्तम मनुष्यो से प्रशसनीय (दैव्यं च) विद्वानो के योग्य उनको प्राप्त करने योग्य ज्ञान का भी उपदेश करता है ।

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते । सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥

भा०—(हिरण्य-पावाः) हित, और अतिप्रिय आत्मा को शोधने हारे विद्वान् लोग (सिन्धोः उत्-श्वासे) नित्य गति वाले प्राण के ऊर्ध्व या उत्तम श्वास प्रश्वास के आधार पर या ब्रह्माण्ड [मस्तक] की ओर ऊपर को जाने वाले प्राण के बल पर (पतयन्तम्) गति करने वाले और देहमात्र को चलाने वाले, (उक्षणम्) सुखों की मेघवत् वर्षा करने वाले (पशुम्) ज्ञानद्रष्टा उस आत्मा को (आसु) इन नाना नाड़ियों में ही (गृभ्णते) ग्रहण करते हैं। वे उस (क्रतुम्) ज्ञानमय कर्मकर्त्ता आत्मा को (अंजते) स्वयं साक्षात् करते है। (वि अंजते) विविध प्रकार की वाणियो से उसे प्रकट करते हैं, (मधुना) ज्ञान रूप मधु से उसका आस्वाद लेते है और उसी से (अभि-अञ्जते) उसका साक्षात् करते है।

विपश्चिते पर्वमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ४४

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (पवमानाय) एक देह से अन्य देह मे जाते हुए, एवं विषय, इन्द्रिय देहादि संघात से सर्वथा निःसङ्ग, परिशुद्ध होते हुए (विपश्चिते) इस लोक में ज्ञान और कर्म का सञ्चय और ज्ञान करने वाले मेधावी, उस आत्मा का (गायत) उपदेश करो। जो (अन्धः) प्राणशक्ति को धारण करने वाला, (मही धारा न) बडी भारी जलधारा के समान, (अति अर्षति) पार कर जाता है। और जो (जूर्णाम् त्वचम्) पुरानी खाल या केंचुली को सांप के समान (अति सर्पति) छोड़ कर अलग हो जाता है, और जो (वृषा) बलवान् (हरिः) आत्मा (अत्यः नः) अश्व के समान (क्रीडन्) इस देह मे विहार करता हुआ (असरत्) भाग निकलता है।

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ४५।२०

भा०—वह प्रभु और आत्मा कैसा है ? (अग्रे-गः) सब के आगे नायकवत् जाने वाला, (राजा) सूर्यवत् दीप्तिमान्, (अप्यः) प्राणों और प्राप्त जनों को हितकारक (अह्नां विमानः) दिनों का विशेष रूप से निर्माता और ज्ञान कराने वाले सूर्य के सदृश ही (अह्नां) न नाश होने वाले तत्वों का (विमानः) जगत् रूप में बनाने वाला (भुवनेषु अर्पितः) समस्त लोकों मे व्यापता है। वह (हरिः) अज्ञान दुःख को हरने वाला, सर्वोत्तम (घृत-स्नुः) ज्ञान प्रकाश एवं स्नेह को प्रवाहित करने वाला, (सु-दृशीकः) सुखपूर्वक दर्शन करने योग्य (अर्णवः) ज्ञानशक्ति का सागर, (ज्योति-रथः) ज्योति से अति रमणीय परम प्रकाशमय, (ओक्यः) देह मे आत्मा के तुल्य लोक मे व्यापक होकर (राये) समस्त ऐश्वर्यों और विभूतियों को धारण करने के लिये (पवते) विशुद्ध किया जाता है। इति विंशो वर्गः ॥

असर्जि स्कुम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ४६

भा०—वह (मदः) आनन्दमय, (त्रि-धातुः) तीनों गुणों से जगत् को धारण करने वाला, (उद्-यतः) सर्वोत्कृष्ट नियन्ता होकर (उद्-यतः स्कम्भः दिवः) महान् आकाश के बड़े भारी खड़े हुए खम्भे के समान ही (दिवः) सूर्यादि लोकों वा प्रकृति को (स्कम्भः) थामने वाला, (असर्जि) जाना जाता है। वह हा (भुवनानि अर्षति) समस्त लोकों को व्यापता और चलाता है। (यदि) जिसको (ऋग्मिणः) वेद-मन्त्रों से स्तुति करने वाले विद्वान् जन (गिरा) वाणी द्वारा (निर्णिजम् ययुः) अति विशुद्ध रूप में ग्रहण करते हैं उसी (पनिप्नतं) स्तुति करने योग्य (अंशुं) व्यापक प्रभु को (मतयः रिहन्ति) बुद्धियां और स्तुतियां भी पहुंचती हैं। उसका रसास्वादन करती हैं।

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥ ४७ ॥

भा०—हे आत्मन् ! प्रभो ! (पुनानस्य) सर्वव्यापक, जगत् के संचालक (ते) तेरी (धाराः) विश्व को धारण करने वाली शक्तियां (रंहयः) अति वेग वाली होकर भी (संयतः) अच्छी प्रकार नियमो मे बद्ध है, वे (मेष्यः) मेषी अर्थात् पर-शक्ति से प्रेरित होने वाली वा ब्रह्मबीज से निषिक्त, ब्रह्म की शक्ति से वीर्यवती इस प्रकृति के (अण्वानि) सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओ को भी (प्र यन्ति) खूब प्राप्त होती है। हे (इन्दो) तेजस्विन्! ऐश्वर्यवन्! तू (चम्वोः) आकाश और भूमि दोनो के बीच, (यत्) जो (गोभिः) भूमियो, किरणो और सूर्यो द्वारा (सम् अज्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो रहा है। वह तू (सुवानः) उपासित होता हुआ, हे (सोम) सब जगत् के शासक! सर्वोत्पादक प्रभो! तू (कलशेषु आसीदसि) समस्त भुवनों मे कण २ मे चेतना के तुल्य विराजता है।

पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम्।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥४८॥२१

भा०—हे (सोम) जगत्प्रेरक विधातः! प्रभो! (नः उक्थ्यः) तू हमारा स्तुति करने योग्य उपास्य, इष्ट देव है। तू (क्रतु-वित्) कर्मों और ज्ञानो का जानने और जनाने हारा होकर (नः पवस्व) हमे प्राप्त हो, हमे पवित्र कर। तू (अव्यः वारे) हमारे आत्मा के वरणीय परमरूप मे (प्रियम् मधु) प्रिय, प्रीतिकारक मधुर, सुखजनक ज्ञान (परि धाव) प्रदान कर। हे (इन्दो) तेजोमय! दुष्टो के सन्तापजनक! तू (विश्वान् रक्षसः) समस्त दुष्ट जनों और (अत्रिणः) दूसरो के अधिकार को खा जाने वाले जनो को भी (जहि) विनाश कर। हम (विदथे) यज्ञ, संग्राम और ज्ञान सत्सगादि में (सुवीराः) उत्तम वीरो, पुत्रो से युक्त होकर (ते बृहद् वदेम) हम तेरा बडा गुण गान करें। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[८७]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५—७, ९ त्रिष्टुप् । नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र तु द्रव॒ परि॒ कोशं॒ नि षी॑द नृ॒भिः पु॑ना॒नो अ॒भि वाज॑मर्ष ।
अश्वं॒ न त्वा॑ वा॒जिनं॑ म॒र्जय॑न्तो॒ऽच्छा॑ ब॒र्हीं र॑श॒नाभि॑र्नयन्ति ॥१॥

भा०—हे आत्मन् ! प्रभो ! तू (नृभिः पुनानः) उत्तम पुरुषों और अध्यात्म मे प्राणो द्वारा स्वच्छ, पवित्र किया जाता हुआ (कोशम् परि द्रव) भीतरी हृदय-कोश मे स्रवित हो और (नि सीद) हृदय मे विराजमान हो । (त्वा वाजिनं) तुझ बलवान्, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् को (अश्वं न) अश्व के समान (मर्जयन्तः) नित्य प्रति आने वाले राजस मलिन आवरणो से स्वच्छ करते हुए (रशनाभिः) रासो से अश्व के समान ही (रशनाभिः) प्रभु की व्यापक शक्तियो, उत्तम स्तुतियो से (बर्हिः) उस महान् प्रभु की ओर (नयन्ति) ले जाते हैं ।

स्वा॒यु॒धः प॑वते दे॒व इन्दु॑रशस्ति॒हा वृ॒जनं॒ रक्ष॑माणः ।
पि॒ता दे॒वानां॑ जनि॒ता सु॒दक्षो॑ विष्ट॒म्भो दि॒वो ध॒रुणः॑ पृथि॒व्याः॥२॥

भा०—(देवः इन्दुः) प्रकाशमय, ज्ञानी वह दयालु प्रभु, तेजस्वी, (अशस्ति-हा) निन्दा वा अप्रशंसनीय पाप आदि का नाश करने वाला (वृजन) यात्री या मार्ग या बल की सदा (रक्षमाणः) रक्षा करता हुआ (सु-आयुधः) उत्तम आयुध आदि उपकरणो से सम्पन्न राजा के तुल्य (पवते) प्रकट होता है । वह (देवानां पिता) विद्वानो का, एवं प्राणगण और सूर्यादि लोकों का पालक, पिता के तुल्य पूजनीय, (जनिता) जगत् का उत्पन्न करनेवाला, (सु-दक्षः) उत्तम बलशाली, (वि-स्तम्भः) विशेष रूप से जगत् के समस्त पदार्थों को थामने वाला और (दिवः पृथिव्याः धरुणः) आकाश, सूर्य, भूमि, स्त्री पुरुष, राजा प्रजा आदि सबका आश्रय है ।

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् (ऋषिः) तत्वदर्शी, वेदमन्त्रार्थों का देखने वाला, (विप्रः) विविध विद्याओ मे पूर्ण वा ज्ञानी और कर्मों का उपदेश करने वाला मेधावी, (जनानां पुरः-एता) बहुत से जनो के आगे २ चलने वाला, उनका नायक, (ऋभुः) बुद्धिमान्, (काव्येन) पूर्व के विद्वानो के उपार्जित ज्ञान से (उशनाः) प्रकाशित होता है (सः चित्) वही पूज्य है । (यत् आसां गोनाम्) जो इन वाणियो, सूर्यादि लोको और प्राणो का (गुह्यं) बुद्धिस्थ, गुहा मे विद्यमान (अपीच्यं) अप्रत्यक्ष (नाम) स्वरूप है वह उसको (निहितम्) निश्चित रूप से (विवेद) जाने ।

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (एषः) वह अति परिचित उपासक (मधुमान्) उत्तम ज्ञानवान् होकर (सोमः) तेरे द्वारा अनुशासित होनेवाला, शिष्यवत् सेवक, (वृषा) बलवान् (ते वृष्णे) तुझ बलशाली, सुखों के वर्षक के लिये (पवित्रे परि अक्षा.) परम पवित्र बल मे प्राप्त हो । वह (सहस्र-साः) हजारो का दाता, (शत-साः) सैकडो का दान करनेवाला, (भूरि-दावा) बहुत २ अनेक वार दान करने वाला, (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् होकर (शश्वत्-तमं बर्हिः) अनादि महान् परम आश्रय को (अस्थात्) प्राप्त करता है ।

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥५।२२॥

भा०—(एते सोमाः) ये उत्तम विद्वान् जीवगण, (पवित्रेभिः पवमानाः) विचार, वचन, कर्म, और देह, आत्मा को पवित्र करने वाले नाना व्रतों, दीक्षाओं और आचरणों से अपने को पवित्र करते हुए, (महे

वाजाय अमृताय) बडे भारी ज्ञानमय, ऐश्वर्यमय, मोक्षरूप अमृतत्व लाभ के लिये (सहस्रा गव्या अभि) सहस्रों ज्ञान-वाणियों के (श्रवांसि) ज्ञानों, उपदेशों को प्राप्त करने के लिये (श्रवस्यवः) ज्ञान श्रवण करने की इच्छा वाले होकर (अभि असृग्रन्) तैयार हों । वे (पृतनाजः अत्याः न) संग्रामविजयी, अश्वों, सवारों, रथियों या वेगवान् सैनिक वीरों के समान तैयार हों ।

परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥

भा०—(जनानां पुरु-हूतः) मनुष्यों के बीच में बहुतों से प्रशंसित, (पूयमानः) अभिषिक्त होकर (विश्वा भोजनानि) समस्त प्रकार के अन्नों, भोग्य पदार्थों और प्रजा के रक्षाकारी साधनों को प्राप्त करने के लिये (परि असरत् स्म हि) प्रयाण करे, उद्योग करे । हे (श्येन-भृत) उत्तम आचरणवान्, निष्ठ गुरुओं द्वारा पालित ! तू हमें (प्रयांसि आभर) उत्तम अन्न प्राप्त करा और (रयिं तुञ्जानः) ऐश्वर्य को प्रदान करता हुआ, (वाजम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य और बल प्राप्त कर ।

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥७॥

भा०—(एषः) यह उत्तम (सोमः) शासक वा शिष्य, दीक्षित, (पवित्रे सुवानः) पवित्र कार्य वा पद के निमित्त अभिषिक्त होकर (सृष्टः सर्गः न) छूटे जल-प्रवाह के समान, वा (सृष्टः अर्वा न) छूटे हुए अश्व के समान (अदधावत्) निरन्तर आगे, बड़े वेग से बढे । (तिग्मे शृंगे शिशानः महिषः नः) तीखे सींगों को तीक्ष्ण करते हुए बड़े पशु के समान स्वयं भी (महिषः) भूमि का भोक्ता, महान् सामर्थ्य का धारक होकर (तिग्मे) तीखी, (शृङ्गे) शत्रु को नाश करने वाली अगल बगल की सेनाओं को (शिशानः) तीक्ष्ण, उत्तेजित करता हुआ सेनापति के तुल्य अज्ञान

नाशक तीखे मन और बुद्धि दोनो को तीक्ष्ण करता हुआ (शूरः सत्वा न) शूरवीर, बलवान् पुरुष के समान स्वयं भी (सत्वा) स्थिर होकर (गाः गव्यम्) भूमियोवत् वाणियो को प्राप्त करना चाहता हुआ (अभि) आगे बढ़े ।

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! अज्ञान के नाशक गुरो ! (ते) तुझ (सोमस्य धारा) शासक की वाणी, (एषा) यह (अद्रेः अन्त.) मेघ के बीच मे गर्जना के तुल्य (परमात्) परम, सर्वोत्कृष्ट पद से (आ ययौ) प्राप्त होती है, वह (कू-चित् ऊर्वे सतीः गाः विवेद) कहीं भी किसी भी प्रदेश मे विद्यमान वाणियो को सूर्य की रश्मियो के तुल्य प्राप्त कराती है । और (ते धारा) तेरी वाणी (दिवः न विद्युत्) आकाश से गिरती बिजुली के समान (अभ्रैः सह स्तनयन्ती) मेघो के साथ गर्जना करती हुई सी (सोमस्य कृते पवते) जलधारा से अन्नादिवत् पालनीय शिष्य गण के लिये प्रवाहित हो ।

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) शिष्यजन ! तू (इन्द्रेण सरथं पुनानः) इन्द्र, अज्ञाननाशक गुरु आचार्य के साथ एक रथ मे बैठे सारथि वा रथी के समान एक कुल में रहता हुआ (गोनां राशिम् उत परि यासि स्म) वेद-वाणियों के समूह को अच्छी तरह प्राप्त कर । हे (जीरदानो) प्राणवत् ज्ञान प्रदान करने हारे जीवनदातः ! मेघवत् (शचीव) वाणी और शक्ति के स्वामिन् ! तू (तव) अपनी (ताः) उन २ (बृहती· पूर्वीः) बड़ी, महत्वपूर्ण, सनातन (इपः) आज्ञाओ, प्रेरणाओ, वाणियों को (शिक्ष) हमें दे, हमे उनका उपदेश कर । इति त्रयोविंशो वर्ग. ॥

[८८]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ मतः पङ्क्तिः । २, ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥

भा०—शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य । हे (इन्द्र) तत्त्वज्ञान को देखने हारे ! अज्ञान के नाशक गुरो ! प्रभो ! (अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे) यह सोम्य गुणो वाला ब्रह्मचारी तेरी सेवा के लिये दीक्षित होता है । (तुभ्य पवते) तेरे हितार्थ ही शुद्ध पवित्र होकर तेरी सेवा में आता है । (त्वम् अस्य पाहि) तू इसका पालन कर । (यं त्वं चकृषे) जिसको तू आकर्षित करता, बनाता या भूमि में हल चला कर कृषक के समान उसे ज्ञान बीज-वपनार्थ तैयार करता है, (यं त्वं ववृषे) जिसके प्रति तू मेघवत् ज्ञान जलो की वर्षा करता है उस (इन्दुम्) उत्तम सेवक (सोमम्) पुत्रवत् प्रिय उपासक, शिष्य को (मदाय) आनन्द लाभ के लिये और (युज्याय) अपने साथ सत्संग करने और योग द्वारा प्राप्त होने के लिये (अस्य पाहि) उसकी रक्षा कर ।

स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत से ऐश्वर्यों को युद्ध वा व्यापार द्वारा प्राप्त करने के लिये (भुरिषाट् रथः अयोजि) बहुत भार सहन करने वाला रथ जोड़ा जाता है उसी प्रकार (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत से ऐश्वर्यों और देह मे बसे नाना इन्द्रिय गणो को दमन करने के लिये (भुरिषाट्) बहुत शीत, वात आतपादि सहन करने वाला (सः महः) वह गुणो मे महान् ब्रह्मचारी (अयोजि) नियुक्त किया

जाता है। (आत्) अनन्तर (ईम्) इसको सब ओर से (विश्वा नहुष्याणि जाता) सब मनुष्योपयोगी नाना पदार्थ (वने स्वः साता) वन मे ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने के उपरान्त (ऊर्ध्वा) स्वयं उन्नत होकर (नवन्त) प्राप्त होते हैं। (२) इसी प्रकार देह मे आत्मा भी नियुक्त है।

वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) विद्या-व्रत में स्नान करने हारे नव विद्वन्! (यः) जो तू (वायुः न नियुत्वान्) वायु के तुल्य नाना शक्तियो, दस सहस्रो वाणियो का स्वामी होकर अश्वपति, रथवान् के सदृश (इष्टयामा) अपने इष्ट माता पिता आदि बन्धुओं की ओर आने वाला होता है वह तू (हवे) दान और आदान के कार्य मे तथा यज्ञ युद्धादि मे (नासत्या इव) प्रमुख राजा और सचिव एवं गृहस्थ नर नारी के समान ही (शम्-भविष्ठः असि) अत्यन्त शान्ति, सुख का कारण हो। वह तू (विश्व-वारः) सब दुःखो को वारण करने वाला, एवं (विश्व-वारः) सर्वाङ्ग शरीर मे आवृत, कवच वा शाल दुशाले आदि से पूजित, (द्रविणोदाः) धन, ज्ञान के देने वाले स्वामी के तुल्य (त्मन्) और अपने आत्म-सामर्थ्य मे (पूषा इव धी-जवनः) परिपोषक गृहपति के समान कर्म मे कुशल (आ असि) हो।

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित्।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥४॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः न) विद्युत, वायु, सूर्य, गुरु, प्रभु राजा के तुल्य (महा कर्माणि चक्रिः) बड़े २ काम करने वाला है वह हे (सोम) वीर्यवन्! बलवन्! पदाभिषिक्त, व्रताभिषिक्त विद्वन्! (पूर्भित्) शत्रु-नगरी को तोडने वाले सेनापति के तुल्य (पूर्भित्) ब्रह्मपुरी या देह-बन्धन का भेदन करने वाला होकर (वृत्राणाम्) बढते एवं आवरण

करने वा घेर लेने वाले दुर्विचारों को शत्रुवत् (हन्ता असि) नाशक हो। (पैद्वः न) अश्व के समान (हि) ही (त्वम्) तू (अहि-नाम्नां) सन्मुख आकर लड़ने वाले और शत्रु नायक जनों और (विश्वस्य दस्योः हन्ता असि) समस्त दुष्टजनों को मारने वाला हो।

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥५॥

भा०—(आसृज्यमानः वने अग्निः न नदीषु पाजांसि) जिस प्रकार वन में लगा अग्नि अनायास ही नदियों में अपने बलों को वृथा कर देता है उस प्रकार जो (अग्निः) विनीत शिष्य होकर (वने आसृज्यमानः) वनस्थ जन समूह के बीच में तैयार होता है वह (नदीषु) उत्तम उपदेश करने योग्य वाणियों में (वृथा) अनायास ही (पाजांसि) नाना ज्ञान (कृणुते) प्राप्त कर लेता है। वह (युध्वा जनः न) योद्धा जन के तुल्य (सोमः) उत्तम शिष्य (पवमानः) आगे बढ़ता हुआ, (महतः) बड़े भारी वेद-राशि का (उपब्दिः) उपदेष्टा होकर वाणी के तुल्य ही (ऊर्मिम् इयर्त्ति) उन्नत विचारों को प्रकट करता है।

एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥६॥

भा०—(एते) ये (सोमाः) निष्णात विद्वान् जन (वाराणि अव्या अति) भेड के वालों से वने कम्बलों को त्याग कर (दिव्याः कोशासः न) आकाशगत मेघों के तुल्य (अभ्र-वर्षाः) मेघों द्वारा गिराई वर्षा धाराओं के तुल्य आते है। और वे (सिन्धवः नीचीः न) बहती, नीचे जाती धाराओं के समान विनीत होकर (वृथा समुद्रम् अभि) अनायास ही उस महान् समुद्रवत् अपार प्रभु की ओर तथा (कलशान् अभि) राष्ट्रों की ओर (असृग्रन्) चले जाते है।

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥७॥

भा०—हे सोम ! विद्वन् ! स्वामिन् ! तू (शुष्मी) बलवान् होकर भी (मारुतं शर्धः न पवस्व) वायु के झकोरे के समान हमें ऐसे प्राप्त हो (यथा) जिससे (दिव्या विट्) उत्तम प्रजा (अनभि-शस्ता) पीड़ित, हिंसित न हो । तू (मक्षु) शीघ्र ही (नः) हमारे प्रति (आपः न) जलों के तुल्य, आप्त-जनों के समान (सु-मतिः) शुभ ज्ञान वाला (भव) हो । तू (सहस्र-अप्साः) बलवान् रूप वाला, दृढांग होकर (यज्ञः न पृतना-षाट) संगति प्राप्त सैन्य के समान संग्राम में शत्रु सेनाओं को पराजय करने वाला हो ।

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥८॥२४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! वीर्यवन् ! बलवन् ! (ते राज्ञः वरुणस्य) तुझ सर्ववृत श्रेष्ठ तेजस्वी राजा के (व्रतानि) नाना कर्त्तव्य हैं । (तव गभीरम् बृहत् धाम) तेरा तेज, सामर्थ्य बड़ा गम्भीर हो । (शुचिः त्वम् प्रियः मित्रः न असि) शुद्ध चित्त वाला, ईमानदार, प्रिय, स्नेही मित्र के समान विपत्ति से बचाने वाला हो । तू (दक्षाय्यः) बलवान् (अर्यमा इव) न्यायकारी शासकवत् (असि) हो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८९]

उशना ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६ त्रिष्टुप् । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वन् ! उत्तम ब्रह्मचारिन् ! तू (स्यः) वह (वह्निः) कार्यभार वा व्रत आदि को अपने में धारण करने वाला होकर (पथ्याभि

प्रो अस्मान्) धर्म मार्ग से अविरुद्ध वाणियों और मार्गों से आगे बढ। और (दिवः वृष्टिः न पवमानः अक्षाः) आकाश से पडती वृष्टि के समान तू भी तेज से अज्ञानादि को छेदन करने वाला होकर आगे बढता हुआ वा शुद्ध पवित्र होता हुआ व्याप, आ। तू (सहस्र-धारः) वल-युक्त वा सहस्रों शक्तियों या वाणियों पर वशी होकर (अस्मे नि असदत्) हमारे लाभ के लिये पद पर विराज। तू हमारे लिये ही (मातुः उपस्थे) माता की गोद में और (वने च) वन में गुरु के समीप रह।

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम्।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥२॥

भा०—वह (राजा) इस देह में, राष्ट्र-पति के तुल्य (सिन्धूनाम्) नदियों के समान देह में वहती रक्त-धाराओं के वीच (वासः अवसिष्ट) अपना वास करता है। वह (ऋतस्य नावम्) जल की नौका के समान (ऋतस्य) निरन्तर गतिशील द्रव की (रजिष्ठाम्) अति रजोयुक्त, तीव्र (नावम्) प्रेरणा या तीव्रगति पर, नौका पर पुरुष के समान (आ अरुहत्) चढ़ता, उस पर वश करता है। अथवा देह में भी वह मानो (ऋतस्य) सत्य की (रजिष्ठाम् नावम् आ अरुहत्) अति उज्ज्वल नौका के तुल्य सर्वप्रेरक वेद वाणी पर चढता है। वह (द्रप्सः) स्वयं रसस्वरूप होकर (श्येन-जूतः) उत्तम आचारवान् पुरुषों से सन्मार्ग में प्रेरित होकर (ववृधे) वढता है। उस समय (ईं) इस (जाम्) पुत्रवत् आत्मा को (पिता) उसका पालक परमात्मा (दुहे) सब मनोरथों से पूर्ण करता है। वह भी (ईम्) इस लोक को (पितुः दुहे) उस प्रभु के द्वारा ही नाना फल प्राप्त करता है।

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम्।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥३॥

भा०—(मध्वः) मधुर सुख ऐश्वर्य और वल की ओर (दिवः) नाना

ऐश्वर्यो की कामना करने वाली प्रजाएं (अस्य पतिम्) इस लोक के पालक (सिंह) शेर के समान बलवान् , शत्रुनाशक, (अयासम्) थकान से रहित अनथक परिश्रमी, (अरुपं हरिम्) रोषरहित पुरुष को (नसन्त)प्राप्त होती है । (युत्सु प्रथमः) युद्ध वा शस्त्र सञ्चालन के कार्यों मे श्रेष्ठ पुरुष, (गाः पृच्छते) भूमियो को वा तद्वासियो को कुशल आदि पूछता है । वह (उक्षा) राज्य भार का वहन करने वाला शासक (अस्य चक्षसा) इस विद्वान् के उपदेश से (गाः परि पाति) सब भूमियो की रक्षा करता है ।

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।

स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥

भा०—(मधु-पृष्ठम्) शत्रुओ को पीड़ित करने वाले बल को अपने ऊपर धारने वाले, (घोरम्) शत्रुओ के लिये भयकारी, (अयासम्) न थकने वाले, श्रमशील (ऋष्वं) महान् पुरुष को (उरु चक्रे रथे अश्व) बड़े चक्र वाले रथ मे अश्व के तुल्य उस व्यापक प्रभु को नायकवत् ही इस संवत्सर-चक्र-युक्त विश्व मे, (युञ्जन्ति) जोडते है, योग द्वारा उसका साक्षात् करते है । (स्वसारः, सु-असारः) भगिनियो के समान स्वतः प्राप्त वा उत्तम वेग से गति करने वाली सेनाओ के तुल्य शक्तियां (ईम् मर्जयन्ति) उसका अभिषेक करती, और (स-नाभयः) समस्त बन्धुजन उस (वाजिनम्) बल विद्या वाले को (ऊर्जयन्ति) अधिक बलवान् करते है ।

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।

ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥५॥

भा०—(ईम्) उसको (चतस्र.) चार (घृत-दुहः) वेग, ज्ञान वा जल प्रदान करने वाली (पूर्वी·) सनातन अग्नि, जल, पृथिवी और तेज शक्तियां या वाणियां वेदमयी, (ईम् सचन्ते) उसके साथ समवाय बना कर रहती है, अर्थात् उसके साथ नित्य वर्त्तमान रहती है । वे उस (समाने)

समान (धरुणे) आश्रय मे (नि-सत्ताः) निश्चित रूप से स्थिर है। (ताः) वे इसका (नमसा पुनानाः) विनय प्रार्थना आदि रूपो से प्राप्त होती हुई (ईम् अर्पन्ति) उसी को पहुंचती है । और वे (विश्वतः ईं परि सन्ति) उसी के इर्द गिर रहती है, उसको अपनाये रहती है ।

विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥६॥

भा०—वह प्रभु (दिवः विष्टम्भः) आकाश, सूर्य आदि का धारक, आश्रय, (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवी को भी धारण करनेवाला, है। (विश्वा उत क्षितयः) समस्त मनुष्य भी (अस्य हस्ते) उसके हाथ मे, उसके वश मे है। हे जीवगण ! वह (नियुत्वान्) नाना शक्तियों का स्वामी, (उत्सः) सबका उद्भव-स्थान और (ते) तुझ (गृणते) उपदेष्टा के उपकार के लिये (असत्) हो। और (मध्वः अंशुः) यह मधुर ज्ञान के कारण भीतर व्यापक प्रभु (इन्द्रियाय) ऐश्वर्य वा इन्द्र के पदके लिये (पवते) प्राप्त है।

वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम॥७॥२५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (अवातः) कभी न बुझ कर, सदा देदीप्यमान होकर (देव-वीतिम् अभि) विद्वानो की रक्षा शक्ति को (वन्वन्) प्राप्त करते हुए, (वृत्रहा) शत्रु का नाशक होकर (इन्द्राय) इन्द्र पदके लिये (पवस्व) प्राप्त हो। तू (महः पुरु-चन्द्रस्य रायः) बहुत बडे, बहुतो के सुखकारी (रायः) धनका (शग्धि) हमें प्रदान कर। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम बलशाली हो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[६०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ पवमान सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप्। २, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ षड्च सूक्तम् ॥

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥१॥

भा०—(रोदस्योः) देह में प्राण और अपान दोनों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला, (वाजं प्र हिन्वानः रथः) संग्राम की ओर आगे बढने वाला, रथ के समान सन्नद्ध होकर (वाजं) ज्ञानैश्वर्य को (सनिष्यन्) प्राप्त करना चाहता हुआ वह (प्र अयासीत्) आगे ही आगे बढ़े । वह (इन्द्रं गच्छन्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के पास जाता हुआ (आयुधा संशिशानः) नाना काम, क्रोधादि अन्तः-शत्रुओं को प्रहार करके मार गिराने के तपःसाधनों को (सं शिशानः) तीक्ष्ण करता हुआ और (हस्तयोः) हाथों में (विश्वा वसु आ-दधानः) नाना प्रकार के लोक में बसाने वाले प्राणगण को भी अपने से धारण करता हुआ (प्र अयासीत्) आगे बढ़े ।

अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥

भा०—(त्रि-पृष्ठं) तीनो लोको के पोषक, (वृषणं) बलवान्, सुखों के वर्षक, (वयः-धाम्) समस्त बलो को धारण करनेवाले की ही (आंगूषाणां वाणीः) स्तोता लोगों की वाणियां (अवावशन्त) स्तुति किया करती हैं । (वना वसानः) समस्त ऐश्वर्यों को, किरणों को सूर्यवत् (वरुणः सिन्धून् न) और नदियों को समुद्र के समान धारण करता हुआ, (रत्न-धाः) सूर्यादि समस्त रमणीय सुखों और पदार्थों को धारण करता हुआ (वार्याणि वि दयते) शत्रुओं, और दुखों के वारक और सब जनों से वरण करने योग्य साधनों और ऐश्वर्यों की राजा के तुल्य रक्षा करता और अन्यों को प्रदान करता है ।

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥३॥

भा०—हे उत्तम शासक ! आत्मन् ! तू स्वयं (शूर-ग्रामः) शूरवीर समूहों का स्वामी, सेनानायक तुल्य (सर्ववीरः) समस्त वीर विद्वान्, एवं शरीर में गति करनेवाले प्राणों का स्वामी (सहावान्) सुख दुःख, शीत उष्णादि को भली प्रकार सहने वाला, (जेता) विजयशील और (धनानि सनिता) धनों का भोक्ता और दाता होकर (पवस्व) प्राप्त हो (समत्सु) संग्रामों में (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण हथियारों से सज्जित, (क्षिप्र-धन्वा) वेगसे धनुष चलाने वाला, (अषाढः) अपराजित, (पृतनासु) संग्राम में (शत्रून्) शत्रुओं को (साह्वान्) विजय करनेवाला, शूरवीर के तुल्य हो।

उ॒रुग॑व्यूति॒रभ॑यानि कृ॒ण्वन्त्स॑मीची॒ने आ प॑वस्वा॒ पुर॑न्धी। अ॒पः सिषा॑सन्नु॒षसः॒ स्व१॒॑र्गाः सं चि॑क्रदो म॒हो अ॒स्मभ्यं॒ वाजा॑न् ॥४॥

भा०—हे उत्तम शासक प्रभो ! तू (उरु-गव्यूतिः) बड़े भारी लम्बे २ मार्ग का शासक होकर (अभयानि कृण्वन्) अभयों का प्रदान करता हुआ (समीचीने) परस्पर सुसंगत, प्रवद्ध, एक होकर (पुरन्धी) राष्ट्र के धारण करनेवाले प्रजा के पालकस्त्री पुरुषों वा राजा प्रजा वर्गों को (आपवस्व) प्राप्त हो, और (अपः) आप्त प्रजावर्गों को (उषसः) शत्रुदाहकारी सेनाओं को, (स्वः) समस्त राष्ट्र को, और (गाः) ज्ञानवाणियों, रश्मियों और गौ आदि पशु सम्पदाओं को (सिषासन्) स्वयं प्राप्त करना और उनको अन्यों में विभक्त करना चाहता हुआ (अस्मभ्यं) हमें (महः वाजान् सम् चिक्रदः) बड़े ज्ञान और ऐश्वर्यों का उपदेश कर।

मत्सि॑ सोम॒ वरु॑णं॒ मत्सि॑ मि॒त्रं मत्सीन्द्र॑मिन्दो पवमान॒ विष्णु॑म्। मत्सि॒ शर्धो॒ मारु॑तं॒ मत्सि॑ दे॒वान्मत्सि॑ म॒हामिन्द्र॑मिन्दो॒ मदा॑य॥५॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! तू (वरुणं मत्सि) सर्वश्रेष्ठ पुरुष को प्रसन्न कर, (मित्रं मत्सि) स्नेही, अपने को विपत्ति से

बचानेवाले उपकारी जनको प्रसन्न कर, हे (इन्दो) दीप्तिमन्, तू (इन्द्रम् मत्सि) उस प्रभुको प्रसन्न कर जो समस्त ऐश्वर्यों को देनेवाला है। हे (पवमान) पवित्र होनेवाले ! तू (विष्णुम्) व्यापक प्रभु को प्रसन्न कर। तू (मारुतं शर्धः मत्सि) वायुवद् बलवान् पुरुष-वर्ग को प्रसन्न कर। तू (देवान् मत्सि) नाना कामनायुक्त मनुष्यो को प्रसन्न कर। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! दयालो ! तू (महाम् इन्द्रम्) गुणो मे महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को प्रसन्न किया कर।

एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद् दुरिता पवस्व। इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६।२६।३।

भा०—हे (इन्दो) उत्तम पुरुष की उपासना करने वाले, आत्मन् ! तू (राजा इव क्रतुमान्) राजा के समान स्वतन्त्र, कर्म करने मे समर्थ है। तू (अमेन) अपने सहायक प्रभु वा अपने ही बल से (विश्वा दुरिता) बुरे आचरणो और मन के दुर्विकारो को (घनिघ्नत्) निरन्तर नष्ट करता हुआ, (पवस्व) आगे बढ और अपने को पवित्र कर। तू (सु-उक्ताय) उत्तम वचन को धारण करने वाले (वचसे) ज्ञानमय वचन वेद के (वयः) ज्ञान को (धाः) धारण कर। हे विद्वान् लोगो ! (यूयम्) तुम सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) कल्याणमय उपायो से हमारी रक्षा करो। इति षड्विंशो वर्ग.। इति तृतीयोऽध्यायः॥

चतुर्थोऽध्यायः

[९१]

कश्यप ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः —१, २, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षडृच सूक्तम् ॥

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥१॥

भा०—(रथ्ये आजौ) रथों द्वारा करने योग्य संग्राम में जिस प्रकार (धिया प्रथमः) कर्म द्वारा श्रेष्ठ, सर्वप्रथम (मनोता) उत्तम ज्ञाता, सब के मनों का आकर्षक (वक्वा) उत्तम आदेष्टा पुरुष (प्रथमः असर्जि) सब से मुख्य-नायक पुरुष बनाया जाता है, उसी प्रकार इस (रथ्ये आजौ) रथ रूप देह से विजय करने योग्य, जीवन संग्राम में भी (धिया) कर्म और ज्ञान के बल पर (वक्वा) वचन कहने वाला, (मनोता) मन, अन्तःकरण में ओत-प्रोत, (मनीषी) मन को प्रेरित करने वाला आत्मा, (प्रथमः असर्जि) सब से मुख्य निश्चित है। (दश स्वसारः) दस बहनों के तुल्य दशों प्राण उसे (अव्ये सानौ अधि) रक्षक के उत्तम पद पर (अधि अजन्ति) स्वीकार करते हैं, और उस (वह्निं) देहवाही, सब को वहन करने हारे उसको (सदनानि अच्छ) नाना आश्रयों में विराज कर भी प्राप्त होते हैं ।

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येभिः) मरणधर्मा (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा शुद्ध किया जाता है और (अविभिः) प्राणों द्वारा, (गोभिः) स्तुति-वाणियों द्वारा और (अद्भिः) जलों के तुल्य आप्त पुरुषों द्वारा (मर्मृजानः) पुनः २ शुद्ध किया जाता है, वह (अमृतः) अमर आत्मा है। वह (इन्दुः) दीप्तिमान् (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य उत्पत्ति या जन्म को (वीती) भोगने के लिये है और वही (मर्त्येभिः) मनुष्यों द्वारा (कव्यै.) उत्तम विद्वानों के सुन्दर वचनों द्वारा (प्र सुवानः) उपासना किया जाता है ।

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयोगोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥३॥

भा०—(वृषा) समस्त सुखों का वर्षण करने वाला, (अंशुः) व्यापक प्रभु (अस्मै वृष्णे) इस बलवान् जीव गण के हितार्थ (रोरुवत्) ज्ञान का उपदेश करता है। और स्वयं (पवमानः) शुद्ध पवित्र होकर (गोः) अति उज्ज्वल वाणी के (रुशत् पयः) उज्ज्वल, अर्थ, ज्ञान रस को प्रकट करता है। वह (वचः-वित्) वेद वचन का भली प्रकार जानने वाला (ऋक्वा) ऋग्वेदज्ञ पुरुष (अध्वस्मभिः) अविनश्वर, नित्य (पथिभिः) मार्गों से, रश्मियों से (सूरः) सूर्य के तुल्य, (सहस्र) सहस्रों वा दृढ, सत्य (अण्वं वि याति) सूक्ष्म विज्ञान को भी प्राप्त करता है।

रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! अग्नि के तुल्य भड़कने और चमकने वाले वीर पुरुष तू (दृढ़ाचित्) अति दृढ (रक्षसः सदांसि) दुष्ट पुरुष के स्थानों, दुर्गों को (रुज) तोड़ डाल, इस प्रकार राष्ट्र के कण्टकों को (पुनानः) शोधता हुआ, (वाजान् वि ऊर्णुहि) नाना बलों, ऐश्वर्यों और संग्रामों को विशेष रूप से ढक ले, उनको प्राप्त कर अपने वश में करले। और (तुजता वधेन) शत्रु का नाश करने वाले वधकारी शस्त्रास्त्र से (अन्ति दूरात्) पास और समीप के विद्यमान (एषाम्) राक्षसों के (उप-नायम्) नायक को (उपरिष्टात् वृश्च) ऊपर से ही काट डाल।

स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुःषहासो वनुषा बृहन्तस्तांस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥५॥

भा०—हे (विश्व-वार) सब से वरण करने योग्य ! सब कष्टों को दूर करने हारे स्वामिन् ! (पुरु-क्षो) पूज्य बहुत सी वाणी एवं स्तुतियों के पात्र !

(सः) वह तू (नव्यसे सूक्ताय) अति नवीन, उत्तम स्तुति करने वाले के हितार्थ (प्रत्नवत्) पुराने, अनादि, सनातन गुरु के समान ही (प्राचः पथः कृणुहि) आगे बढने वाले पूर्व के प्राचीन मार्गों का उपदेश कर। हे (पुरु-कृत्) बहुत से महान् कार्य करने हारे ! प्रभो ! (ते) तेरे (ये) जो (दुः-सहासः) शत्रुओं द्वारा दुःख से पराजित होने वाले, तीक्ष्ण, (वंनुया बृहन्तः) शत्रुनाशक सामर्थ्य के कारण बड़े हैं (तान् अश्याम) हम उनको प्राप्त करें।

एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ् नः सूर्यं दृशये रिरीहि॥८।१॥

भा०—हे (सोम) सर्वशासक प्रभो ! (एव) इस प्रकार तू (अपः) अन्तरिक्ष (स्वः) महान् आकाश और समस्त भूमियों को भी (पुनानः) पवित्र, दोषरहित, दुःखादि से शून्य करता हुआ (अस्मभ्यं) हमारे (तोका, तनयानि) पुत्र पौत्र आदि सन्तान और (भूरि) बहुत से (उरु) विशाल (क्षेत्रम्) निवास योग्य भूमि, और (ऊरु ज्योतींषि) बहुत २ प्रकाशों को (नः ज्योक् दृशये) हमे चिरकाल तक सम्यग् दर्शन करने कराने के लिये (सूर्यं) सूर्य भी (रिरीहि) प्रदान कर। इति प्रथमो वर्गः॥

[९२]

कश्यप ऋषि ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक त्रिष्टुप्। २, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः॥१॥

भा०—(हरि.) सर्वदुःखहारी, (अंशु.) सर्वत्र व्याप्त, सब जगत् का भोक्ता, (सनये) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हियानः)

प्रार्थित और (सुवानः) उपासित होता हुआ, (पवित्रे रथः न) कण्टक-शोधन के कार्य में संलग्न, युद्धरथ वा महारथी के तुल्य ही मेरे पापपरि-शोधन वा पवित्रहृदय में (सर्जि) प्राप्त रहो। वह (पूयमानः) इस प्रकार पवित्र रूप से गृहीत, प्रभु (श्लोकम्) महान् स्तुति और (इन्द्रियं) ऐश्वर्य को भी (आपत्) प्राप्त करता और कराता है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (देवान् प्रति) सभी पूज्य ज्ञानदाता गुरुजनों के प्रति (प्रयोभिः) उनको तृप्त सन्तुष्ट करने वाले अन्नादि पदार्थों से (अजुषत) प्रेमपूर्वक सेवा किया करो।

अच्छा॑ नृ॒चक्षा॑ असरत्प॒वित्रे॒ नाम॒ दधा॑नः क॒विर॑स्य॒ योनौ॑ ।
सीद॒न्होते॑व॒ सद॑ने च॒मूषूपे॑मग्म॒न्नृष॑यः स॒प्त विप्राः॑ ॥ २ ॥

भा०—उत्तम शासक (नृचक्षाः) सब मनुष्यों को देखने और उपदेश करने वाला (कविः) परम मेधावी, दूरदर्शी पुरुष (अस्य) इस लोक या प्रजाजन के (योनौ) मूल देश में (नाम दधानः) कीर्त्ति एवं शत्रु को दमन करने वाले बल को धारण करता हुआ (पवित्रे अच्छ असरत्) दुष्ट हनन रूप देश के पवित्रकारी कार्य के निमित्त अभिमुख बढ़े, चढाई करे। वह (होता इव) आदेश करने वाले ऋत्विक् के समान (चमूषु सीदन्) सेनाओं के ऊपर प्रमुख पद पर विराजे। और (इम् उप) इस को (सप्त विप्राः ऋषयः) सात विद्वान् मन्त्रद्रष्टा रूप में (उप अग्मन्) प्राप्त हों। अध्यात्म में—आत्मा प्राणों पर द्रष्टा है वह भोक्ता इन्द्रियों पर अध्यक्ष है। सात मुखस्थ इन्द्रियें उसके सात अमात्यवत् है।

प्र सु॑मे॒धा गा॑तु॒विद्वि॒श्वदे॑वः॒ सोमः॑ पुना॒नः सद॑ एति॒ नित्य॑म् ।
भुव॒द्विश्वे॑षु॒ काव्ये॑षु॒ रन्ता॑नु॒ जना॑न्यतते॒ पञ्च॒ धीरः॑ ॥ ३ ॥

भा०—वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिवाला, एवं उत्तम सत्संग और शत्रुहनन के सामर्थ्य से युक्त, (गातुवित्) भूमि को प्राप्त करनेवाला, एवं सन्मार्गों को जानने और अन्यों को प्राप्त कराने वाला, (विश्व-देव.) सबका

दाता, सबमे प्रकाशक तेजस्वी, सब देवो का स्वामी, (सोमः) वह परम-शासक प्रभु और स्वामी (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ (नित्यं सदः एति) नित्य हृदय-मन्दिर मे प्राप्त हो। राजा अपने भवन या डेरे या न्यायालय को प्राप्त हो। वह (विश्वेषु काव्येषु) समस्त कवियो, विद्वानो के बनाये ग्रन्थो और प्राप्त उपदिष्ट ज्ञानो मे और वेदो मे रमण करनेवाला हो, वह (धीरः) बुद्धिमान्, कर्मण्य पुरुष (पञ्चजनान् अनु यतते) पाचों जनो के अनुकूल यत्न करे, पाचो को सम्पन्न करे।

तव॒ त्ये सो॑म पवमान नि॒ण्ये विश्वे॑ दे॒वास्त्रय॑ एकाद॒शासः॑।
द॒श॑ स्व॒धाभि॒रधि॒ सानो॒ अव्ये॑ मृ॒जन्ति॑ त्वा न॒द्यः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ॥४॥

भा०—हे (सोम) सर्वजगदुत्पादक ! सर्वशासक प्रभो ! स्वामिन् ! राजन् ! हे (पवमान) सर्वव्यापक, सबको पवित्र निष्कण्टक करने हारे ! (त्ये तव त्रयः एकादशासः विश्वे देवाः) तेरे वे ३३ समस्त देवगण, आठवसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य और एक प्रजापति, प्राण और इन्द्र सब मिल कर (निण्ये) छुपे, अदृष्ट रूप मे और दशो प्रकार के प्राणगण भी (स्वधाभिः) जलों, अन्नो और बलो द्वारा, (अव्ये सानौ) परम रक्षक रूप मे (अधि मृजन्ति) तुझे मार्जन करते हैं, तेरा रूप निहारते है, तुझ आत्मा को ही (सप्त यह्वीः नद्यः) सातो बड़ी २ धाराओ के तुल्य सात मुखस्थ प्राण भी मार्जन, अर्थात् अभिषेक सा करती हैं। महान् प्रभु को सात बड़ी (नद्यः) शब्दमयी छन्दो वाणियां उसका स्वरूप वर्णन करके उसको प्रकट, स्वच्छ रूप में दर्शाती है। (२) राजा को सात प्रकृतियें, देश, देशवासी प्रजाएं और उस प्रकार के शासक नायकजन अभिषिक्त करते हैं।

तन्नु स॒त्यं पव॑मानस्यास्तु॒ यत्र॒ विश्वे॑ का॒रवः॑ स॒न्नस॑न्त।
ज्योति॒र्यदह्ने॒ अकृ॑णोदु लो॒कं प्राव॒न्मनुं॒ दस्य॑वे क॒रभीक॑म् ॥ ५ ॥

भा०—(पवमानस्य नु तत् सत्यम् अस्तु) परम पावन, परमशोधक, प्रभुका वह सामर्थ्य सदा सत्य बना रहे (यत्र) जिसमें (विश्वे कारवः)

सब कर्त्ता और स्तोता जन (सं नसन्त) एक हो (यद्) वह जो प्रभु (लोकं ज्योतिः अह्ने अकृणोत्) यथार्थदर्शी के प्रकाशक सूर्य को दिन करने के लिये बनाता और जो (मनुं प्रावत्) मननशील ज्ञानी को प्रेम करता, उसकी रक्षा करता है और उसको (दस्यवे अभीकं कः) दुष्ट पुरुष के नाश करने के लिये प्रवल करता है ।

परि॑ सद्मे॑व पशुमान्ति॒ होता॒ राजा॒ न स॒त्यः समि॑तीरिया॒नः ।
सोमः॑ पुना॒नः क॒लशाँ॑ अयासी॒त्सीद॑न्मृगो न म॑हि॒षो वने॑षु ।६।२॥

भा०—वह शासक, प्रभु, स्वामी (पशुमान्ति सद्म इव) पशु आदि से समृद्ध गृह के समान हो । वह (होता राजा न सत्यः) दाता राजा के तुल्य सत्यवान्, (समितीः इयानः) संग्रामो और सभादि स्थानो को प्राप्त होता हुआ, (वनेषु) वनों मे (महिषः मृगः न) वड़े भारी सामर्थ्यवान् सिंहके तुल्य पराक्रमी होकर (पुनानः) देशको निष्कण्टक करता हुआ (कलशान् अयासीत्) राष्ट्रो, देशो, लोको वा अभिषेक योग्य जलघटो को प्राप्त करता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[९३]

नोधा ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सा॒कमुक्षो॑ मर्जयन्त॒ स्वसा॑रो॒ दश॒ धीर॑स्य धी॒तयो॒ धनु॑त्रीः ।
हरिः॒ पर्य॑द्रव॒ज्जाः सूर्य॑स्य॒ द्रोणं॑ ननक्षे॒ अत्यो॒ न वा॒जी ॥ १ ॥

भा०—(साकम्-उक्षः) एक साथ अभिषेक करनेवाली (स्व-सार) भगनियो के समान परस्पर स्नेही और (सु-असारः) सुखप्रद वा सुगम से विपक्ष को उखाड फेंकनेवाली सेनाएं वा प्रजाएं (धीतयः) उसको धारण करने वाली (धनुत्रीः) उसको सन्मार्ग मे प्रेरण करनेवाली, (दश) संख्या मे दश व्यक्तियें (धीरस्य) बुद्धिमान्, सबो से धारण योग्य एवं ध्यातव्य को

(मर्जयन्ति) राजावत् अभिषिक्त करती, उसको निरन्तर शुद्ध करती है। वह (हरिः) वेग से जानेवाला सोम, आत्मा (सूर्यस्य जाः इव) सूर्य से उत्पन्न किरणों के तुल्य, प्रजा प्रजाओ को राजा के तुल्य, देशो, प्राण-शक्तियों के प्रति (परि अद्रवत्) प्रवाहित होता है, (अत्यः वाजी न) बलवान् अश्व के तुल्य वह (द्रोणम् ननक्षे) इस देह मे, राष्ट्र में राजा के तुल्य प्राप्त होता है।

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

भा०—(मातृभिः शिशुः न) माताओ से जिस प्रकार बालक पुष्टि को प्राप्त होता है उसी प्रकार (वावशानः) नाना प्रकार से कामना करता हुआ (पुरु-वारः) नाना इन्द्रियगण से परिवाहित होकर (वृषा) सब में शक्ति सेचन और बलदान करनेवाला होकर (अद्भिः दधन्वे) प्राणगणों द्वारा धारण पोषण किया जाता है। (मर्यः न योषाम् अभि) मनुष्य जिस प्रकार स्त्री को प्राप्त होता है इसी प्रकार जो सोम (कलशे) इस देह में (उस्रियाभिः) शक्तियो से (सं गच्छते) संगत हो जाता है वह (निष्कृतम् अभि) परम-धाम को प्राप्त हो जाता है।

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

भा०—(अघ्न्याया ऊधः) गाय के स्तनभार से बच्चा जिस प्रकार पान करता है उसी प्रकार (अघ्न्यायाः) न नाश होनेवाली परमेश्वरी गौ अर्थात् वाणी के (ऊधः) उत्तम पान योग्य ज्ञानरस को (इन्दुः) उस प्रभु का उपासक ही (प्र पिप्य) खूब पान करता है। और वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् होकर (धाराभिः) शान्तिप्रद ज्ञान वाणियों, जलधाराओं के तुल्य ही (सचते) परिशोधित या अलंकृत हो जाता है। और (गावः) समस्त प्रजा और सर्वपोषक प्रतिनिधि जनों का उसकी

(चमूषु) सेनाओं के पदपर सेनानायक के तुल्य, उसी के (चमूषु) विषयास्वाद लेने वाली इन्द्रियों के ऊपर (मूर्धानम्) प्रमुख शिखर विराजमान प्रभु को (निक्तैः वसुभिः न) शुद्ध वस्त्रो के तुल्य (अभि श्री णन्ति) चारों ओर से ढकते हैं ।

स नो॑ दे॒वेभि॑ः पवमान र॒देन्दो॑ र॒यिम॒श्विनं॑ वावशा॒नः ।
र॒थि॒रा॒यता॑मुश॒ती पुर॑न्धिरस्म॒द्र्य१॒॑गा दा॒वने॒ वसू॑नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करनेहारे ! हे अभिषेचनीय ! (सः) वह तू (देवेभिः) दानशील, विजयशील, एवं नाना कामनावान् जनो, वा प्राणो द्वारा, (अश्विनम् रयिम् वावशानः) स्वयं भी अश्व, आत्मा इन्द्रियो वा राष्ट्र राज्यादि के ऐश्वर्य सुख की कामना करता हुआ (नः) हमे भी (रद) वही सुख प्रदान कर । (रथिरायताम् उशती पुरंधिः) महारथियो, बहुतो को धारण पोषण करनेवाली, सबका हित चाहने वाली बुद्धि, शक्ति, नीति (वसूनां दावने) ऐश्वर्यों, प्राणो और लोको के लिये (अस्मद्र्यक्) हमे भी (आ) प्राप्त हो । हम जीवगण भी अश्व आत्मा से वा इन्द्रिय से युक्त रथ रूप देह मे विभूतियों को पावे और महारथियो की सी राष्ट्र-पालक शक्ति को हम भी देह के रथी प्राप्त करे ।

नू नो॑ र॒यिमुप॑ मास्व नृ॒वन्तं॑ पुना॒नो वा॒ताप्यं॒ वि॒श्वश्च॑न्द्रम् ।
प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायु॑ः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥५॥३॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! दयालो ! (पुनानः) सबको पवित्र करता हुआ, स्वयं अभिषिक्त होकर ! (नू न. नृवन्तं रयिम्) मनुष्यों के उत्तम नेता और प्राणो से युक्त ऐश्वर्य हमे (उप मास्व) प्रदान कर । वह धन (विश्वः चन्द्र) समस्तजनों को चन्द्रवत् आह्लादजनक और (वाताप्यम्) वायु वा प्राण के समान प्राप्त करने योग्य, एवं 'वाताप्य' अर्थात् जलवायु के समान सुख शान्तिदायक हो । (वन्दितुः) स्तुति और बड़ो का मान आदर करने

वाले जन की (प्र तारि) आयुकी खूब वृद्धि हो। (प्रातः) प्रातःकाल, दिन के तुल्य जीवन के पूर्व भाग मे (मक्षु) शीघ्र ही, (धिया-वसुः) बुद्धि और कर्म से ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाला वा बुद्धि और कर्म के उपदेश से सबको अपने अधीन बसानेवाला विद्वान् गुरु प्रभु (मक्षु) शीघ्र ही हमे (आ जगम्यात्) प्राप्त हो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[९४]

कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १ ॥

भा०—(वाजिनि इव शुभः) अश्व पर जिस प्रकार शोभा दायक नाना आभूषण अच्छे लगते है उसी प्रकार (अस्मिन् वाजिनि) इस बल-शाली, ज्ञानशाली ऐश्वर्य के प्रभु इस आत्मा मे वा नेता में (शुभः धियः) समस्त शोभायुक्त, दीप्तियुक्त वाणियां, स्तुतियां शोभा प्रदान करने में (स्पर्धन्ते) एक दूसरे से बढ़ती हैं। (सूर्ये न विशः) सूर्य मे रश्मियों के समान समस्त लोको की प्रजाएं भी उसके आधीन रह कर सत्कर्मों मे परस्पर एक दूसरे से बढ़ने का यत्न करती है। वह (कवीयन्) क्रान्त-दर्शी विद्वान् के समान वा विद्वानो का प्रिय होकर (पशु-वर्धनाय व्रजं न) पशुओं की वृद्धि के लिये गोष्ठ के तुल्य (अपः वृणानः) मनन योग्य, उत्तम कर्म का विस्तार करता हुआ प्रजा की वृद्धि के लिये (पवते) चेष्टा करता है।

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ २ ॥

भा०—(भुवनानि) ये समस्त उत्पन्न लोक और पदार्थ, (स्वः-विदे)

सर्वज्ञ, वा प्राणस्वरूप आनन्दमय उस परम प्रभुको प्राप्त करनेवाले साधक के लिये (अमृतस्य धाम) अमृत के परम तेजको (द्विता) दो प्रकारों से (वि ऊर्ण्वन्) प्रकट करते हैं और (प्रथन्त) उसके लिये विस्तृत होते हैं। (गावः) वेदवाणियां जिस प्रकार (ऋतयन्तीः इन्दुम् अभिवावश्रे) सत्य ज्ञान का वर्णन करती हुई उसी ऐश्वर्यवान्, तेजमय प्रभुको लक्ष्य कर उस का वर्णन करती है उसी प्रकार (स्वसरे) अपने गमन मार्ग मे (पिन्वाना.) प्रभुको प्रसन्न करने वाली (धियः) वाणियां और मनुष्यो की बुद्धियां एवं बुद्धिमान् जन भी उसी (इन्दुम् अभि वावश्रे) तेजोमय, दयाशील प्रभु को चाहती और उसी की स्तुति करती है। 'धियः कृण्वानाः' इति क्वचित् पाठः।

परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो (कविः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (शूर. रथ. नः) शूरवीर महारथी के समान (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनो और (विश्वा काव्यानि) समस्त विद्वानो के योग्य ज्ञानो, वेदो को (परि भरते) स्वय धारण करता और अन्यो को भी प्रदान करता है वह (देवेषु) प्राणो मे आत्मा, किरणो मे सूर्यके तुल्य (देवेषु) मनुष्यो और विद्वानो के बीच, (मर्त्ताय) मनुष्य के उपकारार्थ (भूषन्) सामर्थ्यवान् होकर (यश. परि भरते) यश, बलवीर्य प्राप्त करता और उनको अन्न और बल प्रदान करता है और वह (पुरु-भूषः) बहुत से जनो मे भूमियोंके बीच राजा के तुल्य (नव्य.) अतिस्तुत्य होकर (दक्षाय) कर्म कुशल पुरुषके उपकारार्थ और (दक्षाय) अपने बल को बढाने के लिये (राय परि भरते) नाना स्वयं ऐश्वर्य धारण करता और अन्यों को प्रदान भी करता है।

श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥४॥

भा०—वह विद्वान् तेजस्वी जन (श्रिये जातः) परम शोभा, लक्ष्मी और सम्पदा, ऐश्वर्य के लिये ही प्रसिद्ध होता है, (श्रिये आ निः इयाय) लक्ष्मी सम्पत्ति को प्राप्त करने, रक्षा करने और प्रजा को आश्रय देने के लिये ही अभिमुख विजेता के समान आ निकलता है। वह (जरितृभ्यः) स्तोता, विद्वानों को (श्रियं दधाति) सम्पदा, आश्रय, शोभा और कान्ति प्रदान करता और (वयः) जीवन, अन्न, बल, दीर्घायु (आदधाति) प्रदान करता है। (श्रियम् वसानाः) आश्रय योग्य परम सम्पदा को धारण करते हुए जन ही उस (अमृतत्वम् आयन्) अमृत, परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं। (मित-द्रौ) उस ज्ञानबन्धु की ओर द्रवित होने वाले कृपालु प्रभु में (समिथा सत्या भवन्ति) ज्ञान, सत्संगादि सब सत्य होते हैं।

इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान्।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥५॥४॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासन और सञ्चालन, उत्पादन करने हारे! हे बलशालिन्! तू (इषम् ऊर्जम् अभि अर्ष) हमें अन्न, बल, वृष्टि प्राप्त करा। तू हमें (अश्वम् गाम्) सूर्य पृथिवीवत् ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, एवं अश्व और गौ प्रदान कर। तू (उरु ज्योतिः कृणुहि) महान् ज्योति प्रदान कर। तू (देवान् मत्सि) विद्वानों, कामनावान् जनों को सुखी, तृप्त, पूर्ण कामनायुक्त, आनन्दित कर। हे (पवमान) अभिषेक होने हारे, सर्वव्यापक तू (शत्रून् बाधसे) दुःखदायी, दुष्ट शत्रुजनों को पीडित करता है। (तुभ्यम्) तेरे लिये (तानि विश्वानि सु-सहानि) वे सब पदार्थ सुख से वश करने योग्य हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६५]

प्रस्कण्व ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द —१ त्रिष्टुप्। २ सस्तार-पङ्क्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्।
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥१॥

भा०—(वनस्य जठरे) भोगने योग्य ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के बीच मे (सीदन्) बैठा हुआ राजा, जिस प्रकार (पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ (कनिक्रन्ति) निरन्तर हर्ष ध्वनि या आज्ञाएं करता है उसी प्रकार (वनस्य जठरे) सेवनीय, वन अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम के बीच विराज कर (पुनानः) अपने को योगादि के अभ्यासों से निरन्तर पवित्र करता हुआ (हरिः) विद्वान्, तेजस्वी ब्रह्मचारी (आ सृज्यमानः) अपने गुरुजनों से प्रौढ़ बनाया जाता हुआ, (गाः कनिक्रन्ति) नाना ज्ञानवाणियों का अभ्यास करे । वह (नृभिः यतः) उत्तम मार्ग से ले जाने वाले सद्-गुरुओं से यम, नियम, व्रतो मे बद्ध होकर अपने को (नि -निजं) अति शुद्ध विमल (कृणोति) कर लेवे । हे विद्वान् गुरुजनो ! आप लोग (अतः) इस हेतु, इसके उपकारार्थ (स्वधाभिः) अन्नों के साथ २ वा उसकी अपनी दैहिक शक्तियों के साथ २ (महीः जनयत) उत्तम २ ज्ञानो और बुद्धियों को भी उत्पन्न करो । विद्यार्थी का दैहिक शक्तियो के साथ बौद्धिक विकास भी हो ।

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥

भा०—(सृजानः हरिः) उत्पन्न किया जाता हुआ, प्रतिष्ठा प्राप्त करता हुआ (हरिः) तेजस्वी पुरुष, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पथ्याम्) धर्म पथ मे कभी न दूर होने वाली, धर्ममयी, न्याय्य (वाचम्) वाणी को (अरिता इव नावम्) नाव को नाविक के समान ही, (इयर्त्ति) आगे बढाता है । उसकी पुनः २ वृद्धि और उन्नति करता है । (देवः) ज्ञान-दाता, विद्या का प्रकाशक गुरु, आचार्य, (बर्हिषि) वृद्धिकारक पद पर विराज कर (प्र-वाचे) उत्तम वाणी बोलने वाले शिष्य के लिये (देवानाम्)

विद्वान् जनों के (गुह्यानि) बुद्धि मे प्रकट होने वाले (नाम) ज्ञानों को (आविः कृणोति) प्रकट करता है ।

अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥

भा०—(अपाम् ऊर्मयः इव इत्) ठीक जिस प्रकार जलों की तरंगे (तर्तुराणाः) वेगवती होकर (प्र ईरते) किसी पदार्थ को आगे बढ़ाती हैं उसी प्रकार (मनीषाः) मन को सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाली गुरुजनो की वाणियां (सोमम् अच्छ) उस सोम्यस्वभाव दीक्षित परिमार्जित, ज्ञान जल मे अभिषिक्त या स्नान करनेवाले शिष्य को (प्र ईरते) आगे बढ़ाती और २ भी उत्कृष्ट ज्ञान का उपदेश करती हैं । और समस्त प्रजाएं जिस प्रकार राजा के समक्ष विनय से (उप यन्ति) प्राप्त होती है उसी प्रकार वे सब (मनीषाः) ज्ञानवाणियां (नमस्यन्तीः) सोम, शिष्य का मानो आदर करती हुई, उसके आगे नम्र होती हुई (उप यन्ति) उसे प्राप्त होती है, (संयन्ति) उसे मिल जातीं और (उशन्तं) उनकी कामना करने वाले उसको वे (उशन्तीः) चाहती हुई सी (आविशन्ति च) उस मे प्रवेश कर जाती है ।

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥

भा०—(सानौ महिषं न) पर्वत के उच्च स्थल पर स्थित मेघ के समान (मर्मृजानम्) अपने को निरन्तर शुद्ध पवित्र करने वाले (अंशुं) व्यापक, (उक्षण) मेघवत् अन्यो को, जलवत् ज्ञान का सेचन करने और दूसरे आश्रमों का भार उठाने में समर्थ (गिरिष्ठाम्) वेद वाणी मे निष्णात विद्वान् को (दुहन्ति) विद्वान् जन पूर्ण करते है । (तं) उस (वावशानं) विद्यादि को चाहने वाले को (मतयः) ज्ञानवान् पुरुष

और वाणियां भी (सचन्ते) प्राप्त होती हैं वह (त्रितः) ज्ञान, कर्म और उपासना वा पूर्व के तीनों आश्रमों में प्राप्त वा तीनों दुःखों से पार, तीनों लोकों में स्थित सूर्यवत् वेदत्रयी के पारंगत होकर (समुद्रे वरुणम्) आकाश में मेघ तुल्य ही (समुद्रे) ज्ञान के अपार समुद्र, रस के सागररूप परम प्रभु में (वरुणम्) अपने श्रेष्ठ, वरणीय आत्मा को (बिभर्त्ति) धारण करता है ।

इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! दयाशील विद्वन् ! तू (उपवक्ता इव) समीपस्थ श्रोता जनों के प्रति व्याख्याता के समान होकर (पुनानः) अन्यों को पवित्र करता हुआ वा सर्वत्र गमन करता हुआ, (होतुः वाचम्) ज्ञानदाता गुरु वा प्रभु की वाणी को सर्वत्र प्रेरणा करता हुआ, (मनीषाम्) उत्तम बुद्धि को (वि स्य) विविध प्रकार से लोगों के आगे प्रकट कर । (यत्) क्योंकि तू और (इन्द्रः च) इस ज्ञान रहस्य का देने वाला गुरु दोनों ही (सौभगाय) सुख सौभाग्य की वृद्धि के लिये ही (क्षयथः) एकत्र निवास किये हो । इसलिये हम प्रजाजन भी (सुवीर्यस्य पतयः) उत्तम बल वीर्य और उत्तम ज्ञान के पालक, स्वामी (स्याम) हों । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[९६]

प्रतर्दनो दैवोदासिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ११, १२, १४, १६, २३ त्रिष्टुप् । २, १७ विराट् त्रिष्टुप् । ४—१०, १३, १५, १८, २१, २४ निचृत् त्रिष्टुप् । १६ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । २०, २२ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥

भा०—जब (सेनानी:) सेना का नेता, सेनापति (शूरः) शूरवीर शत्रुहन्ता वीर पुरुष (गव्यन्) नयी भूमियों को प्राप्त करना चाहता हुआ (रथानाम् अग्रे एति) रथों या महारथियों के आगे २ चलता है तब (अस्य सेना हर्षते) उसकी सेना हर्ष अनुभव करती है। वह (सोमः) पदाभिषिक्त शासक (सखिभ्यः) मित्र वर्गों के लिये भी (भद्रान्) सुख-जनक, कल्याणसूचक (इन्द्र-हवान् कृण्वन्) ऐश्वर्यवान् राजोचित आदेशों को प्रदान करता हुआ (रभसानि) बल वीर्य के उत्पादक युद्धोपयोगी (वस्त्रा) कवचादि को (आ दत्ते) ग्रहण करता है।

सम॑स्य॒ हरिं॒ हर॑यो मृजन्त्यश्वह॒यैरनि॑शितं॒ नमो॑भिः।
आ ति॑ष्ठति॒ रथ॒मिन्द्र॑स्य॒ सखा॑ वि॒द्वाँ ए॑ना सुम॒तिं या॒त्यच्छ॑ ॥२॥

भा०—(हरयः) विद्वान् लोग (अनिशितम्) असस्कृत, अभूषित (अस्य हरिम्) इसके अश्व को और अनुत्साहित इसके अन्य तेजस्वी जन को भी (अश्व-हयैः) वेगवान् अन्य अश्वों सहित और (नमोभिः) आदर सत्कारों तथा शत्रु को नमाने वाले अनेक साधनों, पदों, अधिकारों से (संमृजन्ति) अलंकृत, शोभित करते हैं। वह (इन्द्रस्य सखा) राजा का परम मित्र (रथम् आतिष्ठति) रथ पर विराजता है और (विद्वान् एना) विद्वान् इस रथ से (सुमतिम् अच्छ याति) उत्तम मतिमान् और आदर को प्राप्त करता है।

स नो॑ देव दे॒वता॑ते पवस्व म॒हे सो॑म॒ प्सर॑स इन्द्र॒पानः॑।
कृ॒ण्वन्न॒पो व॒र्षय॒न्द्यामु॒तेमामु॒रोरा नो॑ वरिव॒स्या पु॑ना॒नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् विद्वन्! हे (सोम) अभिषिक्त! शासक! तू (नः) हमारे (देव-ताते) विजयोत्सुक, वीरों से किये जाने योग्य संग्राम में (महे प्सरसे) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (पवस्व) आगे बढ़। तू (इन्द्र-पानः) ऐश्वर्य का पालनकर्त्ता है। (अपः कृण्वन् द्याम् वर्षयन्) जलों को उत्पन्न करते, और आकाश

को वर्षाते हुए मेघ के तुल्य ही (अपः कृण्वन्) काम करता हुआ (उत इमाम् द्याम्) और इस विजयिनी सेना से शस्त्रों की वर्षा करता हुआ (उरोः) इस विशाल राष्ट्र से (पुनानः) शत्रु को दूर करता हुआ (नः वरिवस्य) हमें उत्तम पद, ऐश्वर्य प्रदान कर और प्रजागण की सेवा कर।

अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्वं इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥

भा०—हे (पवमान सोम) दुष्ट पुरुषों को दण्डित करके राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ करने हारे अधिकारी शासक जन ! तू (अजीतये) कभी स्वयं पराजित न होने और शत्रु को विजयी न होने देने के लिये, (अहतये) प्रजा को दुष्टों से पीड़ित न होने देने के लिये, (स्वस्तये) प्रजा के सुख कल्याण के लिये और (बृहते विश्वतातये) बड़े भारी विश्वजनीन कल्याण, के लिये तू (पवस्व) उद्योग कर। (इमे विश्वे सखायः) ये समस्त मित्रगण (तत् उशन्ति) वही सब चाहते हैं और (अहं तत् वश्मि) यही मैं प्रजाजन भी चाहता हूं।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥६॥

भा०—(सोमः पवते) सब को शासन करने में समर्थ, सब का प्रभु, स्वामी, (पवते) सर्वत्र व्यापता है, वही सब को चला रहा है। वह (मतीनां जनिता) उत्तम बुद्धियों और उत्तम भावनाओं को उत्पन्न करने वाला है। (दिवः जनिता) वही प्रकाश, ज्ञान और व्यवहार, सभा, समिति, आकाशस्थ जगत् को प्रकट करता है। वही (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी, आश्रय, स्त्री, भूमि का प्रकट करने वाला है। वह (अग्निः जनिता) अग्नि और तद्वत् विद्वान् ज्ञानप्रकाश को उत्पन्न करने वाला है। वह (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का उत्पादक है। (इन्द्रस्य जनिता) वह अन्न,

जलप्रद मेघ, विद्युत् आदि का उत्पादक है। (उत विष्णोः) और वही व्यापक वायु का भी उत्पादक है।

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

भा०—वह (सोमः) शास्ता ही (रेभन्) उत्तम उपदेश करता हुआ, अधीनो के प्रति आज्ञा देता हुआ (पवित्रम् अति एति) दोषनाशक, परम पावन पद को सब से ऊपर प्राप्त करता है। वह (देवानां ब्रह्मा) विद्वानो के बीच चारो वेदो के ज्ञाता ब्रह्मा के समान विद्वान्, शक्तियो मे महान् हो। वह (कविनां पदवी.) क्रान्तदर्शी विद्वानो के बीच में परम पद को प्राप्त करने और उसको प्रकाश करने वाला हो। वह (विप्राणां ऋषि.) विद्वान् पुरुषों के बीच मे सत्य अर्थ का देखने वाला हो। वह (मृगाणां महिष.) पशुओ के बीच मे महान् बलशाली, सिंह के समान गुणो में भी महान् हो। (गृधाणां श्येनः) वह बड़े २ पक्षियो के बीच में भी बाज के समान पराक्रमी, बलवान् एवं सर्वोत्तम आचारवान् हो। (वनानां स्वधिति') वनो के बीच में कुठार के समान शत्रुओं के छेदन-भेदन मे कुशल हो। वह (रेभन्) सर्वोपदेष्टा सर्वाज्ञापालक (पवित्रम् अति एति) परम पावन पद को सर्वोपरि होकर प्राप्त होता है। (२) अध्यात्म मे—ज्ञान के प्रकाशक इन्द्रियों में आत्मा ही बलशाली होने से 'ब्रह्मा' है। देहावधि को क्रान्त कर देखने से इन्द्रिय ही 'कवि' हैं उनको लक्ष्य पद तक पहुचाने और उनके किये ज्ञान को देखने भोगने वाला आत्मा ही 'पदवी' है। ज्ञान-कर्म के साधक 'विप्र' इन्द्रियें हैं उनका द्रष्टा 'ऋषि' आत्मा है। विषयो के खोजने वाले इन्द्रियगण के बीच वह आत्मा बड़ा बलवान् होने से 'महिष' है। विषयों की लिप्सा करनेवाले इन्द्रियगण 'गृध्र' हैं, उनमें सर्वोत्तम प्रशंसनीय आत्मा 'श्येन' है। भोग्य पदार्थों को सेवन करनेवाली इन्द्रियां 'वन' है उनको स्वशक्ति से धारनेवाला आत्मा 'स्वधिति' है।

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ७ ॥

भा०—(पवमानः सोमः) सब को प्रेरित करने वाला, सब के दोष दूर करने वाला, उत्तम शासक (सिन्धुः ऊर्मिं न) तरंग को बड़े नदी प्रवाह के तुल्य (वाचः ऊर्मिम्ः) वाणी के उत्तम ज्ञान को प्रकट करता है। वह (गिरः) नाना उपदेशो और (मनीषा. प्रावीविपद्) उत्तम बुद्धियो को भी प्रकट करता है। वह (जानन्) ज्ञानवान् आत्मा (गोषु वृषभ.) गौओ में बलशाली वीर्यदायक सांड के समान, (गोषु) इन्द्रियगण में (वृषभः) बलदायक है। वही (अन्तः पश्यन्) भीतर को देखता हुआ (इमा) इन (अवरा) अवरणीय, अपने अधीन, गौण (वृजना) अनेक आत्मिक बलो और सैन्यो को राजा के तुल्य (आतिष्ठति) धारण करता है।

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (मत्सरः) सबको आनन्द प्रसन्न, तृप्त, सन्तुष्ट करनेवाला, (अवातः) सूर्यके तुल्य कभी न बुझनेवाला, प्रभु के आक्रमण से कभी पराजित न होनेवाला, (सहस्र-रेता.) सहस्रो जलो से युक्त मेघवत् सहस्रो बलवीर्यों से युक्त होकर (पृत्सु वन्वन्) संग्रामो मे शत्रु का नाश करता हुआ (वाजम् अभि अर्ष) युद्ध, बल, ऐश्वर्य आदि को प्राप्त कर। तू (मनीषी) बुद्धिमान् सर्वदा चित्तो को सन्मार्ग में प्रेरनेवाला, (इन्द्राय) इन्द्र, परमैश्वर्य पद के लिये आगे बढ़ता हुआ, (गाः इषण्यन्) उत्तरोत्तर भूमियो को चाहता हुआ (अंशो. उर्मिम् ईरय) उस व्यापक प्रभु के उत्तम ज्ञान को प्राप्त करे। अध्यात्म में अविनाशी आत्मा ही उस प्रभु की ओर जावे, उत्तरोत्तर उत्कृष्ट भूमियो को प्राप्त करता हुआ उस परम व्यापक प्रभु के उत्तम पद को प्राप्त करे।

परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥ ६ ॥

भा०—वह (सोमः) आत्मा के तुल्य सर्वशास्ता, (कलशे प्रियः) देह मे प्रिय, आत्मा के तुल्य, राष्ट्र मे सर्वप्रिय, सर्वपोषक, (देव-वातः) विद्वानो के बीच वायुवत्, प्राणवत्, बलशाली (रण्यः) रणकुशल, सबको रमण कराने वाला होकर (मदाय) सब के हर्ष-सुख के लिये हो। वह (सहस्र-धारः) स्वयं बलवान् होकर सबको धारण करने वाला, सहस्रो वाणियो और शक्तियो का स्वामी, (शत-वाजः) सैकड़ो ज्ञानो, बलो ऐश्वर्यों, वेगो का अध्यक्ष, (इन्दुः) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, (वाजी सप्तिः न) अश्व वा अश्वारोही के तुल्य वेगवान्, बलवान् (समना परि जिगाति) संग्रामो को जाता और समान ज्ञान वालो को विजय करता है। अध्यात्म मे आत्मा मन सहित इन्द्रियो पर विजय करता है।

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद् गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०।७॥

भा०—(स) वह (पूर्व्यः) सबसे पूर्व विद्यमान, वा (पूर्व्यः) पालन, पूरण करने योग्य, देहवत् ब्रह्माण्ड मे व्यापक, (वसु-वित्) प्राणो, ज्ञानो, धनो, लोको का प्राप्त कराने हारा आत्मा (जायमानः) स्वयं देह रूप मे प्रकट होने वाला, वा जगत् को उत्पन्न करने वाला, (मृजानः) शुद्ध, पवित्र, अन्यो को भी शुद्ध पवित्र करने वाला, (अद्रौ) मेघरूप मे (अप्सु दुदुहानः) अन्तरिक्ष मे से समस्त जलो को मेघवत्, समस्त कामनाओ को प्रदान करने वाला, (अभिशस्तिपा) चारो ओर से प्राप्त हिंसाकारी शत्रुओ और निन्दको और हिंसको से बचाने वाला, (भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा, वह प्रकाशस्वरूप रक्षक, (पूयमानः) उपासित होकर (ब्रह्मणे गातुम् विदत्) वेद के ज्ञान को प्राप्त कराता है, ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग बतलाता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥

भा०—हे (सोम) जगत् के शासक, परमेश्वर! राजन्! हे (पवमान) परम पावन! (त्वया हि) तेरे ही सहाय से (नः पूर्वे पितरः) हमारे पहले के पालक, गुरु, माता-पिता एवं देश के पालक, राजा, अमात्य शासकादि जन (कर्माणि चक्रुः) समस्त अनेकानेक कर्म करते रहे। तू (अवातः) अपराजित कभी नाश न होने वाला, होकर (वन्वन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ, (परिधीन् अप ऊर्णु) चारों ओर के बन्धनों या सीमाओं को खोल दे। और (वीरेभिः अश्वैः) वीर अश्वों, वा वेगवान् वीरों विद्वानों वा प्राणों द्वारा (नः मघवा भव) हमारे ऐश्वर्य का स्वामी, धनपति हो।

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥

भा०—हे उत्तम शासक! तू (वयः-धाः) दीर्घ जीवन, बल और अन्न का देने वाला, (अमित्र-हा) शत्रुओं का नाश करने वाला, (वरिवः-वित्) धनों को प्राप्त कराने वाला है। तू (यथा मनवे अपवेथाः) जिस प्रकार ज्ञानवान् पुरुष के हितार्थ उसको नाना पदार्थ प्रदान करे (एव) उसी प्रकार तू (हविष्मान्) उत्तम साधनों और सामग्री से युक्त होकर (द्रविणं दधानः) ऐश्वर्य और बल को धारण करता हुआ (पवस्व) प्राप्त हो, और तू (इन्द्रे सं तिष्ठ) ऐश्वर्यमय परमपद पर विराज, (आयुधानि जनय) अपने शत्रु पर प्रहार करने के साधनों को उत्पन्न कर, प्रकट कर।

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे आत्मन्! तू (मधुमान्) अन्न जल, बल, ज्ञान आदि से सम्पन्न होकर एवं (ऋत-वा) सत्य ज्ञान और तेज

से युक्त होकर (अपः वसानः) आप्त प्रजाजनों को प्राणों के तुल्य धारण करता हुआ (अव्ये सानौ अधि) प्रजारक्षक के उच्च पद पर विराज कर (घृतवन्ति द्रोणानि) जलसे सम्पन्न नीचे के भूमि-भागों को भी (अव सीद) प्राप्त हो, उनपर भी शासन कर। वा (घृतवन्ति द्रोणानि अवसीद) जल-युक्त कलशों के नीचे बैठकर अभिषेक कर। तू (मदिन्तमः) सबको खूब प्रसन्न करने वाला (इन्द्र-पानः) ऐश्वर्य का वा राजपद का उत्तम रक्षक और (मत्सरः) सब को सुखी, तृप्त करने हारा सब का पालक हो।

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानःसमुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः १४

भा०—हे सोम ! उत्तम शासक ! विद्वन् ! हे जिज्ञासो ! तू (शत-धारः) सैकडों जलधाराओं वाले मेघ के तुल्य (शत-धारः) सैकड़ों वाणियों का धारण करनेवाला हो और (दिव. वृष्टि) आकाश से जल वृष्टिवत् (दिवः वृष्टिम्) ज्ञान प्रकाश की, अज्ञान-उच्छेदिनी शक्ति को (पवस्व) स्वयं प्राप्त कर और अन्यों को दे। तू (सहस्र-साः) सहस्रों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का अन्यों को देने में समर्थ एवं (वाज-युः) ज्ञानैश्वर्य, संग्राम, बल, वेगादि प्राप्त करने वाला (देववीतौ पवस्व) देव, प्रभु की प्राप्ति, विद्वानों की संगति, शुभगुणों के लाभ के लिये यत्न कर। (कलशे) अभिषेक घट के नीचे (सिन्धुभिः) बहती जलधाराओं से (सं वावशानः) सबको अच्छा लगता हुआ वा (कलशे) राष्ट्र में (सिन्धुभि.) वेगवान् अश्वों से (वावशानः) सबको वश करता हुआ, चमकता हुआ, (उस्रियाभिः) उन्नति की ओर जानेवाली दुग्धधाराओं के तुल्य समृद्धियों से (नः आयुः सं प्रतिरन्) हमारे जीवनों और प्रजाजन की वृद्धि कर।

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥८॥

भा०—(एष. स्य. सोम.) यह वह सोम, राजावत् विद्वान्,

(मतिभिः) ज्ञानवाणियों, मतिमान् पुरुषों से (पुनानः) पवित्र होता हुआ, अभिषेक वा स्नान करता हुआ, (वाजी अत्यः न) वेगवान्, बलवान् अश्व के समान स्वयं ज्ञानादि बल से युक्त और सर्वोपरि होकर (अरातीः इत् तरति) समस्त शत्रुओं को पार कर जाता है। इस प्रकार (दुग्धं पयः न) दोहे हुए दूध के समान वह शासक स्वयं (अदितेः इषिरम्) भूमि और सूर्य का मानो अभीष्ट चन्द्रवत् माता पिताके अभीष्ट पुत्रवत् प्रिय हो जाता है, वह (उरु इव गातुः) महापथ के समान सबको उद्देश्य तक सुखसे पहुंचानेवाला और (सुयमः वोढा न) उत्तम यम नियम वाला पूर्ण ब्रह्मचारी, विवाह करनेवाले के समान दृढ़ बलवान् वा (सुयमः न वोढा) भार वहन करने वाले अश्व वा बैल के समान उत्तम रीति से निमन्त्रित हो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! ऐश्वर्यों के देनेहारे! हे (सोम) उत्तम शासक! विद्वन्! तू (सोतृभिः पूयमानः) अभिषेक करनेवाले जनों से अभिषिक्त होता हुआ (सु-आयुधः) उत्तम हथियारों और उपकरणों से सम्पन्न होकर (गुह्यम् चारु नाम अभि अर्ष) बुद्धिमें स्थित, सुन्दर नाम को प्राप्त हो। तू (सप्तिः इव) वेगवान् अश्वके समान बलवान् होकर (सप्ति) सात इन्द्रियों के तुल्य, सात राष्ट्र प्रकृतियों सहित (श्रवस्या) यश और ज्ञान की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर (वाजम् अभि अर्ष) ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त कर। और (वायुम् अभि अर्ष) हमें वायु, प्राणवत् प्रिय पदवी और ज्ञानी गुरु को प्राप्त कर, और (गा. अभि) नाना भूमियों और वाणियों को प्राप्त कर।

शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥

भा०—जिस प्रकार (हर्यतम्) कान्तियुक्त, मनोहर, (जज्ञानं शिशुम्) उत्पन्न होने वाले छोटे बालक को (मृजन्ति) जलादि से स्वच्छ करते और (शुंभन्ति) सुशोभित करते है उसी प्रकार (मरुतः) वायुवत् बलवान्, वीर प्रजाजन, (गणेन) नाना गण बना कर (जज्ञानं) ज्ञान प्राप्त करनेहारे वा नव उदीयमान (हर्यंत वह्नि) सुन्दर कार्यभार वहन करने में समर्थ, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को (मृजन्ति, शुंभन्ति) स्नान कराते और अलंकृत करते है, उसका समावर्त्तन करते है। वह (कविः) क्रान्तदर्शी, (गीर्भिः) उत्तम गुरु-उपदिष्ट वाणियो से और (काव्येन) विद्वानो के ज्ञान और कर्म समूह से (कविः) परम मेधावी (सन्) होकर (रेभन्) उत्तम उपदेश करता हुआ (सोमः) विद्वान् जन (पवित्रम् अति एति) परम पावन प्रभु-पद को प्राप्त होता है।

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम्।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥१८॥

भा०—(यः) जो (ऋषि-मनाः) सर्व सत्यार्थ देखने वाला, विद्वानो के ज्ञानो को जानने वाला, उनके चित्तों के समान चित्त वाला, (ऋषिकृत्) सब को दर्शन करने वाला वा अन्य भी मन्त्रार्थ द्रष्टाओ को उत्पन्न करने मे समर्थ, (सहस्र-नीथः) सहस्रो वाणियो को जानने वाला, परम वेदज्ञ, (कवीना पदवीः) विद्वानो के बीच में ज्ञानयोग्य परमपद का प्रकाशक होता है वह (सिषासन्) अन्यों को भी ज्ञानैश्वर्य प्रदान करता हुआ (स्तुप्) उपदेष्टा, (महिषः) महान्, (सोमः) शास्ता विद्वान् होकर (विराजम् अनु) विशेष दीप्तिमान् सूर्य के अनुसार (तृतीय धाम) तीसरे वा सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त कर प्रकाशित होता है।

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति॥१९॥

भा०—(चमू-सत्) सेनाओं पर अध्यक्षवत् विराजने वाले सेनापति के तुल्य (चमूषत्) विषयों के भोक्ता, इन्द्रिय, मन, देह के ऊपर अध्यक्षवत् वशीकर्त्ता, (श्येनः) शंसनीय आचार वाला, (शकुनः) शक्तिमान्, अन्यों को भी उन्नत पद पर ले जाने में समर्थ, और शत्रुओं को उत्पीड़न करने वाला, (विभृत्वा) सर्वत्र विहार करने वाला वा प्रजा को विशेष रूप से भरण पोषण करनेमें समर्थ (गोविन्दुः) वेद वाणियों और भूमियों को सूर्य रश्मिवत् धारण करने वाला, तेजस्वी, (द्रप्सः) द्रुतगति वाला, वीर्यवान् होकर (आयुधानि बिभ्रत्) नाना शस्त्रों उपकरणों को धारण करता हुआ, साधनसम्पन्न, (महिषः) महान् शक्तिशाली होकर, (अपाम् ऊर्मम् सचमानः) जलों के तरंग के तुल्य प्रजा वर्गों के उत्तम बल को प्राप्त करता हुआ, (समुद्रं) समुद्रवत् महान् , सर्व रसों के आकर (तुरीय धाम) चतुर्थ धाम, परम पद प्रभु को (विवक्ति) प्राप्त होता है ।

मर्यो॒ न शु॒भ्रस्त॒न्वं॑ मृजा॒नोऽत्यो॒ न सृत्वा॑ स॒नये॒ धना॑नाम् ।
वृषे॑व यू॒था परि॒ कोश॒मर्ष॒न्कनि॑क्रदच्च॒म्वो॒३॒॑रा वि॑वेश ॥ २० ॥ ९ ॥

भा०—वह (शुभ्रः मर्यः न) सुशोभित युवा पुरुष के समान अपने (तन्वं मृजानः) देह रूप को अलंकृत करता हुआ, (धनानां सनये) धनों के देने वाले के लिये (अत्यः सृत्वा न) वेगवान् अश्व के समान सदा सरण या आक्रमण करने में तैयार, (यूथा वृषा इव) गोयूथ में वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट, होकर (कोशम् परि अर्षन्) खड्ग वा धनकोश को प्राप्त करता हुआ, (कनिक्रदत्) शत्रुओं को ललकारता हुआ, वीरवत् (चम्वोः अविवेश) दोनों सेनाओं के बीच प्रवेश करे । इसी प्रकार विद्वान् उपदेष्टा होकर (चम्वोः) स्त्री पुरुषों के बीच प्रवेश करे । इस मन्त्र में जीव का गर्भाशय में प्रवेश भी कहा है । इति नवमो व[र्गः] ॥

पव॑स्वेन्दो॒ पव॑मानो॒ महो॑भिः॒ कनि॑क्रद॒त्परि॒ वारा॑ण्यर्ष ।
क्रीळ॑ञ्च॒म्वो॒३॒॑रा वि॑श पू॒यमा॑न॒ इन्द्रं॑ ते॒ रसो॑ मदि॒रो म॑मत्तु ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! तू (महोभिः पवमानः) बडो से अभिषिक्त, स्नातक होकर (पवस्व) हमे प्राप्त हो। (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ, (वाराणि परि अर्ष) वरण करने योग्य, शत्रु-वारण मे समर्थ ऐश्वर्यों और बलो को प्राप्त कर। (पूयमानः) अभिषिक्त होकर ही तू (चम्वोः) दोनो सेनाओ के बीच वीरवत् समस्त स्त्री पुरुषो माता पिताओं वा राज प्रजा वर्गों के बीच (आविश) प्रवेश कर। (ते रसः) तेरा बल और ज्ञान रस (मदिरः) हर्षकारी होकर (इन्द्रम् ममत्तु) ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र को आह्लादक हो।

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् २२

भा०—(अस्य धाराः बृहतीः) इस की बड़ी २ महान् अर्थ को धारण करने वाली वेद वाणियां और बडी २ शक्तियां (प्र असृग्रन्) अच्छी प्रकार प्राप्त हो। उसके पश्चात् वह विद्वान् और वीर (गोभिः अक्तः) वाणियों द्वारा रश्मियो से चमकते सूर्य वा चन्द्रवत् (कलशान् आ विवेश) स्नानार्थ कलशों के बीच प्रवेश करे अर्थात् तदनन्तर वह स्नान करने का अधिकारी हो। वह (विपश्चित्) ज्ञान और कर्मशक्ति का जानने और संचय करने हारा विद्वान् (सामन्यः) सामवेद मे, साम गुण के प्रयोग मे, एवं सर्वत्र समान व्यवहार, समदृष्टि मे कुशल होकर, सब को सान्त्वना, शान्तिमय वचन प्रदान करने वाला होकर और (साम कृण्वन्) साम. सान्त्वना, समदर्शिता, सम्यग् व्यवहार और स्तुति आदि का प्रयोग करता हुआ (क्रन्दन्) उत्तम उपदेश करता हुआ, (सख्युः न जामिम्) सब को मित्र के बन्धु के तुल्य (अभि एति) स्नेह से प्राप्त करे।

अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥

भा०—हे (पवमान) राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने हारे ! हे आगे बढ़ने हारे ! हे अभिषेक योग्य ! तू (इन्दुः) तेजस्वी एवं दयालु, शत्रु के प्रति वेग से जाने वाला होकर (अभि-गीतः) स्तुति किया जाता हुआ, (जारः प्रियां न) स्त्री की आयु को अपने आयु के साथ ही जीर्ण करने वाला पुरुष जिस प्रकार अपनी पत्नी को प्राप्त होता है उसी प्रकार तू (शत्रून् अपघ्नन्) शत्रुओं को मार भगाता हुआ, अपनी (प्रियां) प्रिय प्रजा को (एषि) प्राप्त हो । तू (शकुनः नः पत्वा) शक्तिशाली बाज के समान वेग से आक्रमण करने मे समर्थ होकर (वनेषु सीदन्) जलों या ऐश्वर्यों के बीच वा हिंसक शत्रुओं के बीच मे भी तेजस्वी होकर (सोम) सर्व-शासक रूप से (कलशेषु पुनानः) कलशो के बीच अभिषिक्त होकर (सत्ता) सर्वाध्यक्ष पद पर विराजने वाला हो।

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वाचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् २४।१०।५

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! उपदेष्टः ! (पवमानस्य ते रुचः) स्वयं अभिषिक्त, पवित्र एवं अन्यों को पवित्र करने हारे, तेरी कान्तिया और उत्तम २ अभिलाषाएं और (योषा इव) स्त्री के तुल्य ही (सु-दुघा) उत्तम पुष्टियुक्त, रस प्रदान करने वाली (सु-धाराः) उत्तम वाणियां (आ-यन्ति) सब ओर प्रसार करें । (हरिः) सब के दुःखों को हरने वाला (पुरु-वारः) बहुतों से वरण करने योग्य होकर (अप्सु आनीत) प्रजाओं के बीच लाया जावे, वे (देवयूनां कलशे) विद्वानों या राजा के चाहने वाले जनों के राष्ट्र मे (अचिक्रदत्) शासन करे। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष (देवयूनां कलशे) शुभ गुणों के आकांक्षी, जन मण्डल मे उप-देश करे। इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[९७]

ऋषिः—१—३ वसिष्ठः । ४—६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ७—९ वृषगणो वासिष्ठः । १०—१२ मन्युर्वासिष्ठः । १३—१५ उपमन्युर्वासिष्ठः । १६—१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठः । १९—२१ शक्तिर्वासिष्ठः । २२—२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः । २५—२७ मृळीको वासिष्ठः । २८—३० वसुक्रो वासिष्ठः । ३१—४४ पराशर । ४५—५८ कुत्सः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १०, १२, १४, १५, १९, २१, २५, २६, ३२, ३६, ३८, ३९, ४५, ४६, ५२, ५४, ५६ निचृत् त्रिष्टुप् । २—४, ७, ८, ११, १६, १७, २०, २३, २४, ३३, ४८, ५३ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, १३, २२, २७—३०, ३४, ३५, ३७, ४२—४४, ४७, ५७, ५८ त्रिष्टुप् । १८, ४१, ५०, ५१, ५५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३१, ४९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४० भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ अष्टापञ्चाशदृच सूक्तम् ॥

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

भा०—(देवेभिः पूयमानः देवः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों से अभिषिक्त, तेजस्वी पुरुष (प्रेषा) आगे उन्नति की ओर प्रेरणा देनेवाले (हेमना) सुवर्णरूप साधन से (अस्य रसम्) इस राष्ट्र के बल को (सम् अपृक्त) अच्छी प्रकार जोड दे। अर्थात् धन और राष्ट्रबल की उत्तम संगति रक्खे। वह (सुतः) अभिषिक्त होकर (रेभन्) शासनाज्ञा करता हुआ (पवित्रम् परि एति) अति पवित्र पद को प्राप्त करता है। उस समय वह (होता) सबको अपने समीप बुलानेवाला, (मिता इव पशुमन्ति सद्म परि एति) बने हुए उन पशु सम्पदा से युक्त, गृहों को गृहपति के तुल्य प्राप्त होता है। उन सब पर उसको समान अधिकार होता है।

भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

भा०—वह (महान् कविः) गुणो मे महान्, क्रान्तदर्शी, विद्वान् मेधावी, (भद्रा) सुन्दर कल्याण सूचक, (समन्या वस्त्रा वसानः) संग्राम योग्य वा सभाभवनादि के योग्य वस्त्रो को धारण करता हुआ (निवचनानि शंसन्) निश्चित सत्य वचनो का उपदेश करता हुआ, (चम्वोः पूयमानः) दो महती सेनाओ के बीच अभिपिक्त होता हुआ सेनापति के तुल्य (देव-वीतौ जागृविः) देवो, विद्वानो, वीरो एवं शुभगुणो की प्राप्ति मे (जागृविः) जागने वाला, सदा सावधान, अप्रमादी, (विचक्षणः) विशेप ज्ञान का द्रष्टा होकर (आ वच्यस्व) प्राप्त हो और सर्वत्र शुभ उपदेश करे ।

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

भा०—(अस्मे) हमारे द्वारा (अव्ये सानौ) भूमि के सर्वोच्च प्रजा-पालक पद पर (प्रियः) सर्वप्रिय, सबको प्रसन्न, तृप्त करनेवाला, (यशसां यशस्तरः) यशस्वी जनो के बीच अधिक यशस्वी, (क्षैतः) इस भूमि का ही निवासी पुरुप (संमृज्यते) अभिपेक किया जाना उचित है। हे उत्तम शासक ! तू (पूयमान.) अभिपिक्त होता हुआ, (धन्वन्व) आकाश मे मेघवत् इस भूमि में (अभि स्वर) सर्वत्र गर्जना या घोपणा कर । हे विद्वान् पुरुपो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभि· पात) हमें सदा उत्तम सुखकारी उपायो मे पालन करो ।

प्रगायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कुलशं देवयुर्नः ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुपो ! आप लोग (प्र गायत) उत्तम रीति से गान करो या उत्तम रीति से उपदेश करो, हम लोग (देवान् प्र अर्चाम) विद्वानो

का अच्छी प्रकार आदर करे। आप लोग (महते धनाय) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (प्र हिनोत) प्रेरित करो। वह (स्वादुः) स्वकीय बन्धुजनो को एवं 'स्व' परम ऐश्वर्य को सब प्रकार से ग्रहण करने और भोगने मे समर्थ होकर (अव्यं वारम्) रक्षक के सर्वोच्च वरणीय पद को, (पवाते) सबसे बढ़कर, प्राप्त करे। वह (देवेयुः) विद्वानो, और शुभगुणो की कामना करता हुआ, (नः कलशम् आ सीदाति) हमारे स्नान योग्य कलश के नीचे आ विराजे। हम उसका अभिषेक करे। अध्यात्म मे—अपना ही कर्मफल भोगने से आत्मा 'स्वादु' है। प्राण और पार्थिव आवरण देह मे आता है और देव अर्थात् प्राणो का स्वामी होकर इस देह मे विराजता है।

इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ५।११

भा०—(इन्दुः) तेजोयुक्त, इस और उस लोक को द्रवित होनेवाला वा उस प्रभु का उपासक जीव, राजावत् (देवानाम् सख्य आयन्) विद्वानो और वीरो के मैत्री भाव को प्राप्त करता हुआ, (सहस्रधारः) सहस्रो शक्तियो, वाणियो, और स्तुतियो वाला होकर (मदाय) परमानन्द के लाभ के लिये यत्न करे। वह (नृभिः स्तवान.) उत्तम नेता मार्गदर्शी जनो द्वारा उपदेश प्राप्त करता हुआ (पूर्वम् धाम अनु) पूर्व जन्म के अनुसार (महते सौभगाय) वडे भारी ऐश्वर्य सुखादि प्राप्त करते के लिये (इन्द्रम् अगन्) उस परमेश्वर को प्राप्त हो। इसी प्रकार राजा या विद्वान् विद्वानो का सख्य प्राप्त कर उत्तम जन्मो से उपदिष्ट होकर परम सौभाग्य के लिये प्रभु वा सर्वोपरि पद को प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः॥

स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रम्मदो गच्छतु ते भराय।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

भा०—हे विद्वन्! शासक! हे आत्मन्! तू (हरिः) उत्तम प्रजा

का दुःखहारी और मनोहारी होकर (पुनानः) राष्ट्र को निष्कण्टक एवं अपने को अभिषिक्त करता हुआ, (स्तोत्रे राये) स्तुति योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये हो। (ते मदः) तेरा हर्ष और सुख (भराय) संग्राम के (इन्द्रं गच्छतु) परमेश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त हो। तू अपने (देवैः) वीरों, विद्वानों और प्राणों सहित (सरथं) रथ, देह से युक्त होकर वीर सेनापतिवत् (राधः अच्छ याहि) आराध्य प्रभु को धन के तुल्य प्राप्त कर। हे विद्वान् जनो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमे सदा आप लोग उत्तम उपायों से पालन करो।

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥७॥

भा०—(देवः) ज्ञान, ऐश्वर्य का दान करने वाला, ज्ञान का प्रकाशक, तेजस्वी पुरुष (उशना. इव) तेजस्वी, सूर्य के तुल्य स्वतः इच्छावान् हो कर (काव्यम् प्रब्रुवाणः) विद्वान् कवि क्रान्तदर्शी जनो तथा परम कवि परमेश्वर प्रोक्त वेदज्ञान का प्रवचन करता हुआ (देवानां जनिम विवक्ति) विद्वान् जनो या ज्ञानाभिलाषी जनो के बीच यथार्थ तत्व ज्ञान का प्रवचन करे। वह (महिव्रतः) बड़ा व्रतनिष्ठ, (शुचि-बन्धुः) शुद्ध पवित्र, नियम-बन्धनादि से युक्त एवं शुचि या तेज से अन्यों को सत मर्यादाओं मे बांधने वाला और (पावक) परमपावन गुरु, (वराह) उत्तम वचनो का उपदेष्टा बन कर (रेभन्) उत्तम उपदेश करता हुआ (पदा अभि एति) नाना उत्तम पदों को प्राप्त हो, वह ज्ञान सहित हमें प्राप्त हो।

प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुमर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥८॥

भा०—(हंसासः) हंसों के समान सत् और असत् का नीर क्षीरवत विवेक करने वाले, अपने अन्तः और बाह्य शत्रुओं का नाश करने वाले,

विद्वान्, योगाभ्यासी और वीर (वृषगणाः) बलवान् जन, (अमात्) रोगवत् पीड़ादायी जन्ममरणमय सांसारिक दुःख और शत्रु वर्ग से भयभीत होकर (अस्तं मन्युम्) गृह के समान शरण सुख देने वाले ज्ञानवान् शत्रु के स्तम्भक बलशाली (तृपल) क्षिप्र कार्यकारी, सब को अन्न सुखादि से तृप्त करने वाले, (तं) उस प्रभु को (अग्मन्) प्राप्त होते हैं। वे (सखायः) उसके मित्र होकर (आंगूष्यं) सब से शरणवत् प्राप्त और स्तुति करने योग्य, (पवमानं) परम पावन, अन्यों को पवित्र करने वाले, (दुर्मर्षः) प्रतिपक्षी जनों से पराजित न होने वाले, असह्य विक्रमशील, (वाणम्) सेवनीय, शत्रुओं के नाशक पुरुष को प्राप्त कर (साकं) (प्र वदन्ति) उसका एक साथ गुणगान करते हैं। अध्यात्म में—आत्मा अंग २ में बसने से आगूष्य है। भोक्ता होने से 'वाण' है। ज्ञानवान् होने से 'मन्यु' है। प्राण गतिशील होने से 'हंस', बलवान् होने वा वृषरूप, देहवाहन आत्मा के गण होने से 'वृषगण' है।

स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान्, आत्मा, शासक (उरुगायस्य) महान् स्तुति वाले प्रभु के (जूतिम्) सेवन करने योग्य मार्ग को, महोपदेष्टा की वाणी को शिष्यवत् (रंहते) गमन करता, प्राप्त करता है। (वृथा क्रीडन्तं) अनायास ही प्रकृतिमय लोकों में विचरण करते हुए उसको (गावः न मिमते) वाणियें पूरी तरह से वर्णन नहीं कर सकतीं और ये समस्त लोक उसको माप नहीं सकते। वह (हरिः) पीत वर्ण, तेजस्वी एवं जलादि हरण करने वाले सूर्य के समान (तिग्म-शृंगः) तीक्ष्ण प्रकाशों वाला, तेजस्वी होकर (परीणसं कृणुते) अन्न को मेघ के तुल्य बहुत भारी सुख, ऐश्वर्य वा महान् कार्य करता है वह (दिवानक्तम्) दिन और रात (ऋज्रः) तेजस्वी रूप होकर (ददृशे) दिखाई देता है।

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥१२

भा०—वह (इन्दुः) तेजस्वी, दयालु,(वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान्, संग्रामकुशल, (सोमः) उत्तम शासक, (गोन्योघाः) वेग से जाने वाले अधीन जनसमूह का स्वामी होकर (सह. इन्वन्) बड़े भारी शत्रु-पराजयकारी बल को संचालित करता हुआ (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त राज्य के निमित्त (पवते) दुष्टों का शमन और सज्जनो का उपकार करता है । वह (रक्षः हन्ति) दुष्टो को दण्ड देता है और (अरातीः परा बाधते) कर न देने वालो वा अन्यो को धन, ऋण आदि न देने वाले शत्रुओं और अपराधियां को पीड़ित करता है । वह (वृजनस्य राजा) बल का राजा, बलशाली सैन्यपति होकर (वरिव कृण्वन्) धनैश्वर्य सम्पादन करता हुआ विराजता है ।

इसी प्रकार विद्वान् जन (इन्द्रे) प्रभु परमेश्वर के निमित्त (गोन्योघा.) वाणियों को नम्रता से प्रवाहित करने वाला होकर (मदाय) परमानन्द को प्राप्त करने के लिये (सह· इन्वन्) सहनशीलता, तपस्या को करता हुआ आगे बढे । विघ्न-बाधाओ को दूर करता हुआ, वह (वृजनस्य) परम प्राप्य प्रभु की सेवा करता हुआ वह (राजा) स्वयं राजावत् तेजस्वी हो जाता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥

भा०—(अध) और (मध्वा धारया पृचानः) मधुर वेदमय ज्ञान रस से युक्त, वाणी से युक्त होता हुआ वह (अद्रि-दुग्ध.) मेघ के तुल्य उदार गुरुजनों से, ज्ञान से परिपूर्ण होकर (रोम) ब्रह्मचर्य काल मे गृहीत मृगाजिन वा आविक कम्बलादि को (तिरः पवते) एक ओर कर देता है, और वह (इन्दु) चन्द्रवत् आह्लादक तेजस्वी होकर (इन्द्रस्य सख्य

जुषाणः) ज्ञान के दाता, अज्ञान के नाशक गुरु के मित्र भाव युक्त पद का सेवन करता हुआ (देवः) स्वय अन्यो को ज्ञान देने मे समर्थ एवं तेजस्वी (मत्सरः) सबको हर्षदाता होकर (देवस्य मदाय) अपने ज्ञान-दाता गुरु के हर्ष का कारण होता है। इसी प्रकार (देवः) ऐश्वर्यादि का इच्छुक जीव उस उपास्यदेव का सख्य प्राप्त करता हुआ ज्ञान से पूर्ण और ज्ञान वाणी से युक्त होकर। (रोम तिरः पवते) रोम से आवृत इस देह-बन्धन को दूर कर देता है।

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥

भा०—(स्वेन रसेन) अपने बल और आनन्द रससे सब (देवान्) देवों, बल, धन आदि की कामना करने वाले जनो, प्राणो और इच्छुको को संयुक्त करता हुआ (पुनानः) पवित्र होता हुआ और (देवः) ज्ञान बलैश्वर्यप्रद सोम, शासक मुख्य नायकवत् आत्मा या साधक विद्वान् (ऋतुथा) काल वा ऋतु के अनुसार (प्रियाणि धर्माणि अभि वसानः) सब को प्रिय लगने वाले वा पोषक आत्मप्रिय धर्मों, धारक यत्नों वा साधनो को धारण करता हुआ, (इन्दुः) तेजस्वी, ऐश्वर्य शक्तियो से युक्त होकर, (अव्ये सानौ) सर्वरक्षक, पालक के उच्च भोग्य या भोक्ता पद पर अपने अधीन (दश क्षिपः) आशु काम करने वाले दश प्राणो को राजा दश अमात्य प्रकृतियो के समान (अव्यत) प्राप्त करे।

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम्।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम्॥१३॥

भा०—वह महान् आत्मा (वृषा) बलवान् सुखो का वर्षक, (शोणः) तेजस्वी, (गाः अभि कनिक्रदद्) नाना वाणियो का उपदेश करता हुआ उपदेशक वत् नाना सूर्यों के सञ्चालक प्रभुवत्, नाना भूमियो के

शासक के तुल्य इन्द्रियों को वश करता हुआ आत्मा, (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी, आकाशवत् देह और मस्तक भाग को वा भूमिस्थ प्रजा और राज-सभा को (नदयन्) अपने अनुकूल ध्वनित एवं समृद्ध करता हुआ आता है (आजौ) युद्ध एवं सर्वोपरि पद पर (इन्द्रस्य इव) जलप्रद मेघ के तुल्य (वग्नुः आशृण्वे) गम्भीर वचन, सर्वत्र सुनाई देवे, तब वह (इमाम् वाचम् प्रचेतयन् अर्षति) सबको उत्तम ज्ञान प्रदान करता हुआ इस वाणी को प्रकट करता है, स्वयं जानता अन्यों को जनाता है।

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक! उपदेष्टः! विद्वन्! तू (रसाय्य.) ज्ञानरस से तृप्त (पयसा पिन्वमान.) परिपोषक जल से सेवित, आर्द्रित वा स्नात होकर (मधुमन्तं अंशुम्) मधु से युक्त खाने या सेवन मात्र करने से शान्तिदायक मधुपर्क को प्राप्त करता वा उसी प्रकार मधुर शान्तिदायक वचनों को अन्य के प्रति (ईरयन्) प्राप्त करता हुआ (एषि) प्राप्त होता है। और तू (पवमान) आगे बढ़ता हुआ, (इन्द्राय परि सिच्यमान.) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राज्य पद के लिये अभिषिक्त होता हुआ (सन्तनि कृण्वन्) सतानवत् विस्तार को प्राप्त होने वाले प्रजा जन को (कृण्वन्) अपनाता हुआ (एषि) प्राप्त हो।

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥१३

भा०—हे (सोम) उत्तम शासन करने हारे विद्वन्! राजन्! तू (उद-ग्राभस्य) आदर सत्कारार्थ जल ग्रहण करने वाले, अभिषेचक प्रजाजन के (मदाय) हर्षोत्सव की वृद्धि के लिये (एव पवस्व) अवश्य इस राष्ट्र को प्राप्त कर और इसको कष्टों से रहित कर। (वधस्नैः) अपने दुष्ट

नाशक साधनों, शस्त्रास्त्रों तथा उपदेशों से, (नमयन्) सब को विनय-पूर्वक झुकाता हुआ (रुशन्त वर्णम्) तेजोयुक्त अपने को वरण करने वाले तेजस्वी रूप के समान, उज्ज्वल, क्षात्र, ब्राह्म और वैश्य वर्ण को (परि भरमाणः) सब ओर परिपुष्ट करता हुआ, (गव्युः) भूमि और स्तुति वाणियों को चाहता हुआ (परि सिक्तः) अभिषिक्त होकर (नः अर्ष) हमें प्राप्त हो।

जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्य, दीप्ति और तेज से सम्पन्न ! तू (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नः) हमारे (सुगानि वरिवांसि) सुख से प्राप्त होने योग्य उत्तम २ धनों को (जुष्ट्वी) प्राप्त होकर और उनको (नः) हमारे लिये भी (सुगानि कृण्वन्) सुख से प्राप्त होने योग्य करता हुआ अथवा (सुगानि सुपथा जुष्ट्वी) सुख से गमन योग्य उत्तम वैदिक मार्गों को सेवन करके (उरौ) बड़े भारी परिमाण में (नः वरिवांसि कृण्वन्) हमें नाना धनैश्वर्य प्रदान करता हुआ, (विश्वक्) सर्व प्रकार के और सर्वत्र (घना इव दुरितानि विघ्नन्) घनीभूत बुरे पापाचारों को विनाश करता हुआ (स्नुना) अपने प्रवाही, शुद्ध-पवित्रकारक धारा से (अव्ये सानो अधि धन्व) रक्षकोचित पद पर प्राप्त हो।

वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शङ्गयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥

भा०—हे (इन्दो) इस जीव के प्रति प्रेमरस द्रवित करने हारे ! तू (नः) हमारे लिये, (जिगत्नुम्) प्राप्त करने योग्य, हमारे प्रति आने वाली, (इळावतीम्) उत्तम अन्नसम्पदा से युक्त, (शंगयीं) शान्ति-दायक, प्राणों वा गृह तक में शान्तिदायक, शान्ति के गृह रूप (जीरदानुम्) शीघ्र वा जीवन प्रदान करने वाली, (दिव्यां वृष्टिं अर्ष) दिव्य वृष्टि

प्रदान कर। तू (इमान् अवरान् बन्धून्) इन अपने से अन्य, पद, मान, शक्ति वाले सम्बन्ध से बद्ध, (वायून्) वायुवत् बलवान् वा ज्ञानशक्ति के इच्छुक जनो को (स्तुका इव वीता) पुत्रों के समान प्रिय एवं रक्षा योग्य जानकर (विचिन्वन्) उनको संग्रह करता हुआ (धन्व) प्राप्त कर।

ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे शास्तः! हे प्रभो! राजन्! विद्वन्! तू (पुनानः) पवित्र करता हुआ (ग्रथितं) बंधे हुए जीव को (ग्रन्थिं न) बधी गांठ के समान (वि स्य) विशेष रूप से खोल दे, मुक्त कर। और तू (ऋजुं च गातुम्) ऋजु, सरल धार्मिक मार्ग को (वि स्य) खोल दे। और (वृजिनं च) बल वा गन्तव्य मार्ग को खोल, (वृजिनं) वर्जन करने योग्य पाप का भी (वि स्य) विशेष प्रकार से अन्त कर। तू (हरिः) सर्वदुःखहारी तेजस्वी, (अत्यः न क्रदः) अश्व के समान सबसे पार होकर, सब को उपदेश करता हुआ, (आ सृजान. मर्यः) आदरणीय पद पर स्थापित मनुष्य के तुल्य (पस्त्यावान्) गृहपति के तुल्य समस्त गृहो और लोकों का स्वामी होकर (धन्व) प्राप्त हो।

जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्दो) सबके उपास्य, हे तेजस्विन्! ऐश्वर्यवन्! तू (देव-ताते) विद्वानों द्वारा विस्तारित इस यज्ञ मे (मदाय जुष्टः) अति हर्ष और आनन्द के लिये प्रेम द्वारा परिसेवित, उपासित होकर (अव्ये सानौ) प्रीतियोग्य, सर्वरक्षक, परमोच्च पद पर (स्नुना) मेघवत् आनन्द रस के प्रदान करने वाले रस से (परि धन्व) प्राप्त हो। तू (सहस्र-धार.) सहस्रों धाराओं से बरसने वाले मेघ के समान सहस्रों धारक शक्तियों वा धारा, वाणियों, व्यवस्था-नियमों से सम्पन्न होकर (सुरभिः) सुगन्ध से वा

उत्तम रीति से कार्यों का आरम्भ करने वाला और (अदब्धः) अहिंसित होकर (नृ-सह्ये वाज-सातौ) मनुष्यों, नेताओं वा प्राणों द्वारा विजय करने योग्य इस जीवन-संग्राम वा ऐश्वर्य-प्राप्ति के कार्य में (परि स्रव) आगे बढ़।

अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न संसृजानास आजौ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै २०।१४

भा०—(ये) जो (अरश्मानः) रासों से रहित, निर्बन्ध, बन्धनों से रहित, (अरथाः) रमण करने योग्य देहों से रहित, विदेह, (अयुक्ताः अत्यासः न) रथों में न जुते अश्वों के समान गृहस्थ आदि बन्धनों में न फंसे वा विषयों में असक्त, (आजौ ससृजानासः) युद्ध में छुटे अश्वों के तुल्य ही (आजौ) परम प्राप्तव्य पद के लिये (ससृजानासः) तैयार होते हुए (एते शुक्रासः सोमाः) ये शुद्ध, कान्तियुक्त, आलस्यरहित होकर कार्य करने वाले, अभिषिक्त वा ऐश्वर्यवान् सौम्य गुण वाले (देवासः) तेजस्वी और मुमुक्षा की कामना करने वाले विद्वान् जन (धन्वन्ति) आ रहे हैं। (पिबध्यै तान्) उनसे ज्ञानरस पान करने और अपनी रक्षा के लिये उन तक (उपयात) पहुंचो। इति चतुर्दशो वर्गः॥

एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम्॥२१॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! हे उत्तम उपदेष्टा! हे तेजस्विन्! तू (नः) हमारे (देव-वीतिम् अभि) शुभ गुणों और विद्वानों के प्राप्ति योग्य कार्य, यज्ञ आदि को (परि स्रव) प्राप्त हो। वह (सोमः) उत्तम प्रशासक (चमूषु) सैन्यों पर वशी, सेनापति के तुल्य (चमूषु) प्राणों पर वशी होकर (नभः अर्णः) मेघ आकाश से जैसे जल को देता है उसी प्रकार वह हमें (नभः) उत्तम प्रबन्ध, मर्यादा वा सूर्यवत् उत्तम सम्बन्ध

से जलवत् शान्तिदायक ज्ञान और (काम्यम्) कामना करने योग्य (बृहन्तम्) बड़ा भारी, (वीरवन्तम्) वीर पुरुषों से युक्त (उग्रम्) उग्र, दुष्टों को दण्ड देने वाला (रयिम्) बल वीर्य, तेज, धन (ददातु) प्रदान करे ॥

तक्षद्यदी मन॑सो वेन॑तो वाग्ज्येष्ठ॑स्य वा धर्म॑णि क्षोरनी॑के ।
आदी॑मायन्वर॒मा वा॑वशा॒ना जुष्टं॒ पतिं॑ क॒लशे॒ गाव॒ इन्दु॑म् ॥२२॥

भा०—(यदि) जब (वेनतः) तेजस्वी, नाना इष्ट पदार्थों के अर्थी वा विद्वान् (मनसः) मननशील चित्त, वा ज्ञानी पुरुष की (वाक्) वाणी, (तक्षत्) निकलती है, (वा) अथवा (यदि) जब (धर्मणि) राष्ट्र के धारक, पालक (अनीके) प्रमुख पद पर स्थित (ज्येष्ठस्य) अति प्रशस्त (क्षोः) आज्ञापक प्रभु की (वाक् तक्षत्) वाणी प्रकट होती है, (आत्) तब ही (ईम् इन्दुं) उस तेजस्वी (वरम्) वरणीय (जुष्टं पतिम्) प्रेमयुक्त, सेव्य पालक को (कलशे) राष्ट्र में (गावः आयन्) समस्त स्तुतियां प्राप्त होती है, उसी समय उसको समस्त भूमियां और सम्पदाएं भी प्राप्त होती है । यही उसकी तेजस्विता का प्रमाण वा परीक्षा है ।

प्र दा॑नु॒दो दि॒व्यो दा॑नुपि॒न्व ऋ॒तमृ॒ताय॑ पवते सुमे॒धाः ।
ध॒र्मा भु॑वद्वृज॒न्य॑स्य॒ राजा॒ प्र र॒श्मिभि॑र्द॒शभि॑र्भारि॒ भूम॑ ॥ २३ ॥

भा०—(दानुदः) दान देने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य का देने वाला, (दिव्यः) ज्ञान और तेज में निष्ठ पुरुष (दानु-पिन्व.) अपने दान से सबको मेघवत् सेचन कर पुष्ट करने वाला, (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धि-वाणी से युक्त होकर, गुरुवत् (ऋताय) सत्याचरणशील, सत्पथगामी, शिष्य को (ऋतम् पवते) सत्य ज्ञान का प्रदान करे । वह (वृजन्यस्य) बल का (धर्मा) धारण करने वाला . (राजा) तेजस्वी, सूर्यवत् (दशभि रश्मिभिः) दशों दिशाओं में जाने वाली किरणों के तुल्य, दशों प्राणों, वा

दर्शो अमात्यों से (भूम) बहुतों को, वा बड़े भारी राष्ट्र को कुलवत् (प्र भारि) खूब पालन पोषण करने में समर्थ होता है।

पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम्।
हिता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥

भा०—वह (इन्दुः) तेजस्वी पुरुष (पवित्रेभिः पवमानः) पवित्र करने वाले साधनों से अपने आपको और राष्ट्र को भी पवित्र करता हुआ, (नृचक्षाः) नेता प्राणों से जगत् भर को देखने वाले आत्मा के तुल्य अपने जनों से राष्ट्र को देखने वाला वा सबके शुभाशुभ को देखने वाला राजा एवं तद्वत् प्रभु भी (देवानाम् उत मर्त्यानाम् राजा भुवत्) देवो और मर्त्यों, विद्वानों और साधारण जनों का राजा हो जाता है। वह (रयीणा रयिपतिः भुवत्) सब ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है। वह (सु-भृतम्) उत्तम पुरुषों से उत्तम रीति से धारण करने योग्य (चारु) उत्तम (ऋतम्) तेज, अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य को (भरत्) धारण करता है।

अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः॥२५॥१५

भा०—(श्रवसे अर्वान् इव) अन्न के लिये जिस प्रकार 'अश्व' वा यश वा धन के लिये जिस प्रकार अश्वारोही (स-तिम् अच्छ) युद्ध के प्रति जाता है, हे विद्वन्! वा ज्ञानार्थिन्! तू भी (श्रवसे) श्रवण करने योग्य वेद ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (इन्द्रस्य सातिम् अभि अच्छ) उत्तम ज्ञानद्रष्टा तत्वदर्शी पुरुष की दी शिक्षा को प्राप्त कर। तू (वायोः वीतिम् अभि अर्ष) ज्ञानप्रद गुरु की ज्ञानदीप्ति को प्राप्त कर। (सः) वह (नः) हमें (सहस्राः बृहती इषः) हजारों बड़ी २ अन्न सम्पदाएं और ज्ञान वा काम्य पदार्थों की वृष्टियां (दाः) देवे। हे (सोम) विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (पुनानः) अभिषिक्त, प्रतिष्ठित होता हुआ

(नः) हमारे) लिये (द्रविणः-वित्) धनैश्वर्य का प्राप्त कराने वाला (भव) हो ॥ इति पञ्चदशो वर्गः ॥

देवाव्यो॑ नः परिषि॒च्यमा॑नाः॒ क्षयं॑ सु॒वीरं॑ धन्वन्तु॒ सोमाः॑ ।
आ॒य॒ज्यवः॑ सुम॒तिं वि॒श्ववा॑रा॒ होता॑रो॒ न दि॑वि॒यजो॑ म॒न्द्रत॑माः २६

भा०—(देवाव्यः न) देवों, विद्वानो, शुभ गुणो से प्रेम करने, उनकी रक्षा करने वाले, (परि-सिच्यमानाः) सब और अभिषिक्त होते हुए वा बढ़ते हुए, (सोमाः) उत्तम विद्वान् प्रशासक, उपदेष्टा जन, (सु-वीरं) उत्तम वीरों से युक्त, उत्तम पुत्रों से युक्त (क्षयं) ऐश्वर्य और गृह को (धन्वन्तु) प्राप्त हो । (आ यज्यवः) सब ओर से आ २ कर एकत्र होकर, सत्संग करने वाले (विश्व-वाराः) सर्वश्रेष्ठ, (होतारः) सुखप्रद (दिवि-यजः) ज्ञानप्रकाश के निमित्त वा राजसभा भवन में एकत्र होकर और (मन्द्र-तमाः) अति हर्षयुक्त सब को प्रसन्न करने वाले होकर (सु-मातम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान को (धन्वन्तु) प्राप्त हों और प्रदान करें ।

ए॒वा दे॑व दे॒वता॑ते पवस्व म॒हे सो॑म॒ प्सर॑से दे॒वपा॑नः ।
म॒हश्चि॒द्धि ष्मसि॑ हि॒ताः स॑म॒र्ये कृ॒धि सु॑ष्ठा॒ने रोद॑सी पुना॒नः २७

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! (सोम) सब के शासक ! तू (देव-ताते) विद्वानों, वीरों, निज गुणी जनों के बने, संघ या उनसे बनाये गये राष्ट्र में (महे प्सरसे) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, तू (देव-पानः सन्) समस्त उत्तम मनुष्यों, पदार्थों और गुणों का पालक होकर (पवस्व) आगे बढ, शासन कर । हम लोग (महः चित् हिता हि स्मसि) तुझ महान् के ही शासन में स्थिर रहें, और तू (समर्ये) संग्राम, वा सभा-भवन में (पुनानः) अभिषिक्त होकर (रोदसी सु-स्थाने कृधि) आकाश और पृथिवीवत् राजा-प्रजा वर्ग दोनों को सुखपूर्वक रहने वाले राष्ट्र में, सुव्यवस्थित कर ।

अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! स्वामिन्! तू (वृषभिः युजानः) बलवान्, मेघवत् प्रजा पर सुखवर्द्धक जनों के साथ मिलकर (अश्वः न) रथ मे अश्व के समान (युजानः) युक्त होकर (सिंहः न भीमः) सिंह के समान भयंकर, और (मनसः जवीयान्) मन से अधिक वेगवान् होकर (ये) जो मार्ग (रजिष्ठाः) अति सरल हो, उन (अर्वाचीनैः पथिभिः) प्रत्यक्ष स्थित मार्गों से (नः सौमनसम् आ पवस्व) हमे शुभ-चित्तता, परस्पर प्रसन्नता और सद्भाव प्रदान कर।

शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥२९॥

भा०—(देव-जाताः) मेघ से उत्पन्न जलधाराओं के तुल्य 'देव' प्रभु परमेश्वर से उत्पन्न (शतम् सहस्रम् धाराः) सौ-हजार (१००,००० = एक लक्ष), अनेक वाणी, (असृग्रन्) उत्पन्न होती हैं। (एनाः कवयः) उनको अनेक तत्वदर्शी विद्वान् गण (मृजन्ति) सुशोभित करते है, नाना प्रकार से उनको परिष्कृत कर रोचक, विस्तृत आदि करके कहते हैं। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे तेजस्विन्! तू (दिवः) ज्ञानप्रकाश का (सनित्रं) परम श्रेष्ठ दान (आ पवस्व) प्रदान कर। तू (महतः) महान् सर्वश्रेष्ठ (धनस्य) देने योग्य धन का (पुरः-एता असि) अग्रगन्ता, नेता है।

दिवो न सर्गा असमृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३०॥१६

भा०—(अह्नां सर्गाः नः) दिनों के बनाने वाले रश्मियों के तुल्य या (दिवः सर्गाः नः) आकाश से पडने वाले जलो के तुल्य उस (दिवः) सर्व सुखवर्षी मातृवत् प्रभु से (सर्गाः असमृग्रन्) नाना सृष्टियां बराबर

उत्पन्न हुआ करती है। वह (धीरः) सब जगत् का धारण करने वाला (राजा) सब जगत् का प्रकाशक, प्रभु, राजा के समान रक्षक होकर (मित्रं न प्र मिनाति) मित्रवत् जीव सर्ग को नहीं विनष्ट करता और वह (पितुः पुत्रः न) पिता के पुत्र के समान (क्रतुभिः) नाना उत्तम कर्मों और कर्म-सामर्थ्यों, ज्ञानों से यत्न करता रहे। हे प्रभो ! तू (अस्यै विशे) इस प्रजा के लिये (अजीतिम् आपवस्व) अपराजय और अविनाशमय रक्षा प्रदान कर। इति षोडशो वर्गः ॥

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ३१ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यत्) जो तू (पूतः) अति पवित्र स्वरूप होकर (अव्यान् वारान्) अवि अर्थात् प्रकृति के बने समस्त आवरणों को पार करके (अत्येषि) विराजता है। (ते मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्) तेरी मधुमयी, ज्ञानमयी, वाणियां अति सुखद रूप से प्रकट होती हैं। हे (पवमान) सर्व व्यापक, परम पावन (गोनाम् धाम पवसे) तू अपनी किरणों के तेज के तुल्य अपना ज्ञान वाणियों का तेज प्रदान कर। तू ही (जज्ञानः) प्रकट होकर (सूर्यम् अर्कैः पिन्वः) सूर्य को अपने तेजों से पूर्ण करता है।

कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ३२

भा०—हे प्रभो ! विद्वन् ! तू (ऋतस्य पन्थाम् अनु कनिक्रदत्) सत्य ज्ञान के मार्ग का निरन्तर उपदेश करता हुआ, स्वयं (शुक्रः) अति तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशवान् होकर (अमृतस्य धाम वि भासि) अमृत मय मोक्ष के लोक को विशेष रूप से प्रकाशित करता है। (सः) वह तू (मत्सरवान्) सब को तृप्त, सुखी करने वाले आनन्द से युक्त होकर (कवीनां मतिभिः) कवियों, विद्वानों और दीर्घदर्शी तत्वज्ञानियों की बुद्धियों,

वाणियों द्वारा (वाच हिन्वानः) अपनी वाणी को प्रेरित और वर्धित करता हुआ (इन्द्राय धाम पवसे) जीव गण के हितार्थ तेजः प्रकाश को प्रदान करता है।

द्विव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम्॥३३॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शास्तः! उपदेष्टः! (देव-वीतौ) विद्वान् और ज्ञानार्थी जनो के एकत्र प्राप्ति स्थानो मे (कर्मणा) सत्कर्म के साथ साथ (धाराः पिन्वन्) वाणियों को भी प्रदान करता हुआ, तू (दिव्यः) ज्ञान मे कुशल, (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानवान् (अव चक्षि) हम पर कृपा दृष्टि कर। हे (इन्दो) दयालो! हे ऐश्वर्यवन्! हे तेजस्विन्! (सोम-धानं कलशं) उत्तम विद्वान् को उत्तम पद पर स्थापन करने वाले कलशों के बीच (विश) स्नानार्थ प्रवेश कर। और (क्रन्दन्) उपदेशादि प्रदान करता हुआ (सूर्यस्य रश्मिम् उप इहि) सूर्य के प्रकाश को प्राप्त कर।

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ३४

भा०—(ऋतस्य धीतिम्) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली और (ब्रह्मणः मनीषाम्) ब्रह्म, परमेश्वर की ज्ञानमयी बुद्धि को (वह्नि.) धारण करने वाला विद्वान पुरुष (तिस्रः वाचः) साम, ऋचा, यजु. अर्थात् गान ऋग् और कर्म, इनमे युक्त तीनो प्रकार की वाणियो को (ईरयति) उपदेश करता है। और (गाव) वे वाणिया (पृच्छमाना.) प्रश्न करती हुई (गोपति यन्ति) वाणियों के पालक को अनायास प्राप्त होती है। और (मतय) ज्ञान, बुद्धिया और स्तुतिया (वावशाना.) चाहती हुई मानो (सोमं यन्ति) उत्तम उपदेष्टा को स्वतः प्राप्त होजाती है।

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५।१७

भा०—(धेनवः) दुधार गौवो के समान (गावः) वाणियां वा भूमियां भी (सोमं) वीर्यवान् ब्रह्मचारी को, राजा को भूमियो के तुल्य (वावशानाः) चाहती हुई, (संनवन्ते) बड़े विनय से उसे प्राप्त होती है । इसी प्रकार (मतिभिः पृच्छमानाः) मतियो से पूछते हुए (विप्राः) विद्वान् जन भी (सोमं संनवन्ते) उस शासक, वीर्यवान्, ऐश्वर्यवान् के प्रति झुकते और प्राप्त होते है (अज्यमानः) ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित होता हुआ (सुतः) अभिषिक्त या स्नातक होकर ही (सोमः पूयते) सोम पवित्र होता है । और (सोमे) उस ऐश्वर्य युक्त मे ही (त्रिष्टुभः अर्काः) तीनो प्रकारो से उसकी स्तुति करने वाली अर्चना वाणिये (संनवन्ते) उसकी ओर झुकती है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंन्धिम् ॥३६॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (सोम) उत्तम शासक ! विद्वन् ! तू (परि-सिच्यमानः) सब प्रकार से स्नात होकर (पूयमानः) पवित्र होता हुआ (नः स्वस्ति आपवस्व) हमें कल्याण, सुख प्राप्त करा । (बृहता रवेण) बडे भारी गर्जन सहित (इन्द्रम् आविश) ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त कर । (वाचं वर्धय) अपनी वाणी के बल को बढा । और (पुरन्धिम् जनय)पुर, नगर, राष्ट्र को धारण करने वाली नीति, सत्ता को प्रकट कर ।

आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७

भा०—(विप्र·) विद्वान् (जागृविः) जागरणशील, सदा सावधान, (सोम·) शास्ता, उपदेष्टा, विद्यावान् पुरुष (मतीना) मननशील

पुरुषों के (ऋता) सत्य २ ज्ञानों और तेजों को (पुनानः) प्राप्त करता (चमूपु) योग्य २ पदों या सैन्यों पर (असदत्) विराजे। (यं) जिसको (मिथुनासः) परस्पर संगत, (नि-कामाः) खूब चाहने वाले, अति प्रिय, (अध्वर्यवः) 'अध्वर' अर्थात् प्रजा का अविनाश चाहने वाले (रथिरासः) उत्तम रथी और (सु-हस्ताः) उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीर पुरुष (सपन्ति) प्राप्त होते, समवाय बनाते है वही सोम, शास्ता सैन्यों का पति हो।

स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८

भा०—(सः) वह शासक (धाता) प्रजा का पालक होकर (सूरे न धाता) सूर्य के अधीन उसके ही तेज को धारण करने वाले चन्द्र के तुल्य, सूर्य के सदृश ज्ञान-प्रकाश वा तेजस्वी पुरुष के अधीन होकर (उप पुनानः) कार्य करता हुआ (उभे रोदसी आ अप्राः) दोनों लोकों को भली प्रकार प्रकाश से पूर्ण करे। (यस्य प्रियसासः ऊती) जिसके सब प्रिय होकर रक्षा के लिये उद्यत हों (सः प्रिया आवः) वह भी सब के प्रिय धनों, कर्मों, गुणों को भी प्रकट करे। और (सः) वह (कारिणे न धनं प्र यंसत्) कर्मकर श्रमी को मज़दूरी के तुल्य ही अपने अधीनों को धन प्रदान करे।

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥

भा०—(येन) जिसके द्वारा (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के (पदज्ञाः पितरः) ज्ञान मार्ग या प्राप्तव्य परम पद को जानने वाले पालक, गुरु आदि जन (स्वः-विदः) प्रकाश, सुख को प्राप्त करने वाले होकर (अद्रिम्

अभि गाः) मेघ को लक्ष्य कर जिस प्रकार चातक या कृषक जलधाराओं को चाहता है उसी प्रकार जिन्होंने जिससे (गाः उष्णन्) नाना ज्ञान वाणियें भूमियों, और इन्द्रिय सामर्थ्य, शक्तियां प्राप्त की हैं (सः) वह (पूयमानः) उपासना किया गया (सोमः) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक प्रभु (वर्धिता) सब को बढ़ाने वाला (वर्धनः) स्वयं भी वृद्धिशील वा सब संकटों को काटने वाला, (मीढ्वान्) सब पर सुखों की वर्षा करनेवाला, (नः) हमें (ज्योतिषा) ज्ञानमय प्रकाश से सूर्य वा चन्द्रवत् (अभि आवीत्) प्राप्त हो, हमें बढ़ावे ।

अक्रा॑न्त्समु॒द्रः प्र॑थ॒मे विध॑र्मञ्ज॒नय॑न्प्र॒जा भुव॑नस्य॒ राजा॑ । वृषा॑ प॒वित्रे॒ अधि॒ सानो॒ अव्ये॑ बृ॒हत्सोमो॑ वावृधे सुवा॒न इन्दुः॑ ४०।१८

भा०—वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, सब शक्तियों और लोकों का परम आश्रय, (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष रूप से धारण करने वाले इस अन्तरिक्ष में ही (प्रजाः जनयन्) समस्त प्रजाओं, लोकों को गर्भ से बालकवत् उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सृष्टि रचना का कार्य करता है । वही (भुवनस्य राजा) समस्त जगत् का राजा है । वह (वृषा) बलवान्, सर्व सुखों का वर्षक, वर्धक, सेचक, (पवित्रे) व्यापक (अव्ये) सर्वरक्षक (सानो) उच्च पद पर विराजता हुआ (सुवानः) जगत् को उत्पन्न करता हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्ययुक्त प्रभु (सोमः) 'सोम' (बृहत्) महान् है, वही (ववृधे) सब से बड़ा है ।

म॒हत्तत्सोमो॑ महि॒षश्च॑कारा॒पां यद्गर्भोऽवृ॑णीत दे॒वान् ।
अद॑धा॒दिन्द्रे॒ पव॑मान॒ ओजोऽज॑नय॒त्सूर्ये॒ ज्योति॒रिन्दुः॑ ॥ ४१ ॥

भा०—वह (महिषः) महान् पूज्य (सोमः) सर्वसञ्चालक प्रभु, परमेश्वर (तत् महत् चकार) उस महान् आकाश को भी बनाता है (यत्) जो (अपाम् गर्भः) समस्त प्रकृति के परमाणुओं एवं जीवों के लिंग-शरीरों

को भी (गर्भः) गर्भवत् होकर (देवान् अवृणीत्) देहस्थ इन्द्रियगण के तुल्य जगत् से अग्नि आदि पञ्चभूतो, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और समस्त लोको को भी आवरण कर रहा है। वह (पवमान.) सबको प्रेरणा करने और व्यापने हारा प्रभु ही (इन्द्रे ओजः अजनयत्) विद्युत् मे तेज, वल, पराक्रम प्रकट करता है, वही (इन्दुः) स्वयं तेजोमय प्रभु ही (सूर्ये ज्योतिः अजनयत्) सूर्य मे प्रकाश उत्पन्न करता है।

मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ४२

भा०—हे (देव सोम) दानशील तेजस्विन्! उत्तम विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! तू (इष्टये राधसे च) अपने इष्ट लाभ और साध्य कार्य या धन-लाभ के लिये (वायुम् मत्सि) वलवान्, वायुवत् सर्वप्रिय पुरुष को प्रसन्न कर। (पूयमानः) पवित्र वा अभिषिक्त होता हुआ (मित्रा-वरुणा मत्सि) मित्र और वरुण, स्नेही और श्रेष्ठ जनो को प्रसन्न कर। (मारुतं शर्धः मत्सि) प्रजा वा वैश्य वर्ग के वलवान् भाग को प्रसन्न कर। (देवान् मत्सि) वीरों, विद्वानो को प्रसन्न कर (द्यावा-पृथिवी मत्सि) सूर्य भूमि के तुल्य राजा और प्रजा वर्गों को प्रसन्न कर।

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां वाधमानो मृधश्च।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ४३

भा०—हे विद्वन्! सोम! शास्तः! तू (ऋजुः) सरल, धर्मात्मा, होकर (वृजिनस्य हन्ता) पाप, उपद्रव का नाश करने वाला, (अमीवां अप वाधमान.) रोग आदि कष्टदायक कारण को दूर करता हुआ, और (मृधः च अप वाधमान.) हिंसक शत्रुओ और रोगो को ओषधि सोमवत् दूर करता हुआ, (पवस्व) राष्ट्र-शरीर को पवित्र कर। तू (गोनाम् पयः अभि पयसा श्रीणन्) भूमियों के प्राप्त अन्न को पुष्टिकारक वल से सेचित

वृद्धि युक्त करता हुआ, (त्वं इन्द्रस्य सखा) तू राजा वा प्रभु वा जीव मात्र का मित्र वा मेघ, सूर्य के सदृश हो और (वयं तव सखायः) हम तेरे मित्र हो।

मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ४४

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तू (मध्वः सूदं पवस्व) मधुर अन्न के उत्तम रस को प्राप्त कर और करा। और (नः) हमे (वस्वः उत्सम्) धनैश्वर्य के विकास रूप (वीरं च भगं च) वीर, विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष (आपवस्व) प्राप्त करा। (पवमानः इन्द्राय स्वदस्व) अभिषिक्त होकर ऐश्वर्ययुक्त राज्य का भोग कर। और (समुद्रान् नः रयिम् आ पवस्व) समुद्र से हमें ऐश्वर्य प्राप्त करा। समुद्र से रत्न मुक्तादि तथा समुद्र द्वारा व्यापार से नाना ऐश्वर्य प्राप्त करा।

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः॥४५।१४॥

भा०—(सुतः अत्यः धारया न) प्रेरित अश्व जिस प्रकार धारा गति से जाता है उसी प्रकार (सोमः) उत्तम शास्ता, विद्वान् भी (सुतः) अभिषिक्त होकर (धारया) धारण शक्ति और उत्तम वाणी से आगे बढे। (वाजी सिन्धुः न निम्नम्) वेगवान् नद जिस प्रकार स्वभाव से नीचे देश में वह जाता है उसी प्रकार (वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (हित्वा) धारणावान् होकर, अन्यों को बढ़ाता हुआ, (निम्नम् अभि अक्षाः) अपने आगे निम्न, झुके अधीन राष्ट्र को प्राप्त होता है। वह (वन्यं योनिम् आ असदत्) वन्य, सेव्य, तेजोमय गृहवत् आश्रम पर विराजे। ज्ञानी पुरुष जिस प्रकार वनस्थ आश्रम में प्रतिष्ठित होता है वैसे ही तेजस्वी पुरुष वन = सैन्य दल के ऊपर सभापत्य पद पर विराजे। (पुनानः) अभिषिक्त होकर (गोभिः

अद्भिः सम असरत्) उत्तम वाणियों और आप्त जनों सहित अच्छी प्रकार आगे बढ़े। अध्यात्म में—आत्मा तेजोमय पद को प्राप्त हो, इन्द्रियों और प्राणों सहित आगे बढ़े।

वन्यं योनि—आत्मा ह तद् वनं तद् वनमित्युपासितव्यम् (केन उप०)।

एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान्।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे तेजोमय! राजन्! (एषः स्यः) यह वह (उशते ते) कामनावान् तेरे हितार्थ ही (धीरः) धीर (तवस्वान्) बलवान् (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् (चमूषु पवते) सैन्यों के ऊपर अध्यक्षवत् आगे बढ़ता है। वह (स्वः-चक्षाः) सर्वद्रष्टा, (रथिरः) रथवान् (सत्य-शुष्मः) सत्य के बल से युक्त, (यः) जो (देवयतां) देव, उपास्य प्रभु या विजेता राजा को चाहने वाले जनों का (कामः) अभिलषित रूप में (असर्जि) बना है। अध्यात्म में यह सोम, आत्मा, प्रज्ञावान्, बलवान्, तेज, सुख आनन्द का द्रष्टा, कान्तिमान्, सत्य, बली, देह रथ का महारथी है वह इन्द्र प्रभु का उपासक है।

एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥

भा०—(एषः) यह (प्रत्नेन वयसा) अपने पुराने ज्ञान-बल से (पुनानः) पवित्र करता हुआ और (दुहितुः) सब सुखों के देने वाली बुद्धि के वा सर्वसुखप्रद परमेश्वर और अपने बीच आये (वर्पांसि) समस्त आवरणों को (तिरः दधानः) दूर करता हुआ, (त्रि-वरूथं शर्म वसानः) तीनों तापों के वारक, परम सुखद गृहवत् शरण में रहता हुआ, (समनेषु रेभन् होता इव) यज्ञों में मन्त्रों का उच्चारण करने वाले होता विद्वान् के समान स्वयं भी (रेभन्) भगवान् की स्तुति करता हुआ

(अप्सु याति) लिंग शरीरों या प्राणों के बीच में गमन करता है। इसी प्रकार राजा अभिषिक्त होकर दुहितावत् प्रजा वा भूमि के समस्त विघ्नों को दूर करता हुआ राज-भवन मे रहता हुआ, आज्ञाएं प्रदान करता हुआ प्रजाओं के बीच विचरे।

नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ४८

भा०—(यः) जो (सविता) सबका उत्तम मार्ग में प्रेरक (सत्य-मन्मा) सत्य ज्ञान और सत्य चित्त वाला है, वह (त्वम्) तू हे (देव सोम) तेजस्विन्! सूर्यवत् शासक! (चम्वोः पूयमानः) दोनों प्रकार की बाह्य, भीतरी सेनाओं के बल पर राष्ट्र को पवित्र, निष्कण्टक करता हुआ (रथिरः) महारथी होकर (परि स्रव) प्रयाण कर। तू (अप्सु) प्रजाओं के बीच मे (स्वादिष्ठः) अन्नवत् अति मधुर (मधुमान्) सर्वप्रिय, मधुर वचन बोलनेहारा, बलवान् (ऋत-वा) सत्य, तेज को धारण करने वाला हो।

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः।
अभि नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥

भा०—हे शास्तः! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, (वीत्या) अपनी रक्षण शक्ति और तेज से (वायुम् अभि अर्ष) वायु के तुल्य, सर्वप्राण-प्रद पुरुष को प्राप्त कर (पूयमानः) अभिषिक्त होकर (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् एवं श्रेष्ठ जनों को (अभि अर्ष) प्राप्त कर। (रथे-स्थाम्) रथ पर स्थिर (धी-जवनम्) बुद्धि या वाणी द्वारा वेग से जाने वाले, (नरम्) उत्तम नायक पद को (अभि अर्ष) प्राप्त कर और (वज्र-बाहुम्) बल वीर्य को बाहुओं में धारण करने वाले (वृषणं इन्द्रम् अभिअर्ष) सब सुखवर्षक तेजस्वी, रम्य पद को प्राप्त कर।

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ५०।२०।

भा०—हे देव सोम! तेजस्विन्! शासक विद्वन्! तू (सुवसनानिवस्त्रा) सुख से आच्छादन करने योग्य वस्त्रों को (अभि अर्ष) धारण कर। (सु-दुघाः धेनूः अभि अर्ष) सुख से खूब दूध देने वाली गौओं को प्राप्त कर। (नः भर्त्तवे) हमारे भरण पोषणार्थ (चन्द्रा हिरण्या अभि) सर्वाह्लादक, रजत सुवर्ण आदि धनों को भी प्राप्त कर। और (अश्वान् रथिनः अभि) रथ वाले अश्वों को भी प्राप्त कर। इति विंशो वर्गः॥

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः॥ ५१॥

भा०—(न. दिव्या वसूनि अभि अर्ष) हमें दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त करा। हमारे दिव्य धनों को तू प्राप्त कर। (पूयमानः) अभिषिक्त होता हुआ तू (नः) हमारे (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवीस्थ (वसूनि) धनों को प्राप्त कर (येन) जिससे हम लोग भी (द्रविणम् अभि अश्नवाम) ऐश्वर्य प्राप्त करें। तू (नः) हमारे बीच (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि वाले गृहपति के तुल्य (आर्षेयं) ऋषि-पुत्रों के योग्य वा ऋषियों के ज्ञान धन को प्राप्त कर अ र करा।

अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात्॥ ५२॥

भा०—(अया पवा) उस पावनी, दुष्टनाशिनी शक्ति से तू (एना वसूनि पवस्व) इन वासस्थानों को स्वच्छ कर और इन नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्, तेजस्विन्! तू (मांश्चत्वे) अभिमानी दुष्ट शत्रुओं को नाश करने में समर्थ (सरसि) वेग से प्रयाण करने वाले सैन्य बल के आधार पर (प्र धन्व) आगे बढ। (वातः न) वेगवान् वायु के समान तू (ब्रध्न.) आदित्यवत् तेजस्वी (जूतः) एवं वेगवान् हो कर (पुरु-मेध चित्) बहुत से शत्रुओं का नाश करता हुआ वा बहु-यज्ञ होकर (तकवे) शरणागत को (नरं दात्) उत्तम नायक प्रदान करे।

उत न॑ एना प॑व॒या प॑व॒स्वाधि॑ श्रु॒ते श्र॒वाय्य॑स्य ती॒र्थे ।
ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑ नैगु॒तो वसू॑नि वृ॒क्षं न प॒क्वं धू॑नव॒द्रणा॑य ॥ ५३ ॥

भा०—(उत) और (श्रुते) बहुश्रुत, ज्ञानवान्, (तीर्थे) दुःखों और अज्ञानादि से तारने वाले गुरु के (अधि) अधीन रह कर (श्रवाय्यस्य) श्रवण करने योग्य ज्ञानमय वेद की (एना) इस (पवया) पवित्र करने वाली वाणी से (नः पवस्व) हमे पवित्र कर। (नैगुतः) निम्न, विनीत वाणी बोलने वाले शिष्यजनों का स्वामी, गुरु होकर तू (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ हज़ार धनो को (पक्वं वृक्षं न) पके वृक्ष के तुल्य (रणाय धूनवत्) रमण या आनन्द लाभ के लिये कंपित कर। अर्थात् हम पर पके वृक्ष से फलो के तुल्य ६०००० ऐश्वर्य के तुल्य ज्ञानों को प्रदान कर। (२) इसी प्रकार सोम शासक भी (नैगुतः) नीची भूमि के शत्रु जनों का स्वामी होकर राजा पर सहस्रों सुख ऐश्वर्य वर्षावे।

म॒हीमे अ॑स्य॒ वृष॒नाम॑ शू॒षे मांश्च॑त्वे वा॒ पृश॑ने वा॒ वध॑त्रे ।
अस्वा॑पयन्नि॒गुतः॑ स्ने॒हय॒च्चापा॒मित्राँ॒ अपा॒चितो॑ अचे॒तः ॥ ५४ ॥

भा०—(अस्य) इसके (इमे) ये (वृष-नाम) सुखो की वर्षा करने वाली (शूषे) सब को सुख देने वाली, (पृशने) परस्पर लडने भिडने योग्य, (मांश्चत्वे) युद्ध काल मे (वधत्रे) दो शत्रुओं का नाश करने वाली दो सेनाएं है। उनसे तू (निगुतः) नीची, भ्रष्ट वाणी बोलने वाले दुष्ट जनों को (अस्वापयत्) सुला दे और (स्नेहयत् च) भगा देता है। और (अचितः) अचेत, अज्ञानी (अमित्रान्) स्नेह रहित जनों को (इतः अप अञ्च) यहां से दूर कर।

सं त्री प॒वित्रा॒ वित॑तान्ये॒ष्यन्वेकं॑ धावसि पू॒यमा॑नः ।
असि॒ भगो॒ असि॑ दा॒त्रस्य॑ दा॒तासि॑ म॒घवा॑ म॒घव॑द्भ्य इन्दो ॥ ५५ ॥

भा०—हे (इन्दो) उत्तम तेजस्विन् ! तू (त्री पवित्रा सम् एषि)

पवित्र करने वाले, इन शोधक अग्नि, वायु, जल तीनों को एक साथ प्राप्त करता है। तू (पूयमानः) पवित्र होता या करता हुआ (एकम् अनु धावसि) इनमे से एक का अनुधावन करता है। तू (भगः असि) ऐश्वर्यवान् है। तू (दानस्य दाता असि) दान योग्य धन का देने वाला है। तू (मघवद्भ्यः मघवा असि) धनवानो के भी धनो का स्वामी है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥ ५६ ॥

भा०—(एषः) यह (विश्ववित्) समस्त विश्व को जानने वाला, (मनीषी) मेधावी, सबके मनो में ज्ञान की प्रेरणा करने वाला, (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त भुवन, लोक का राजा, प्रकाशक; (विदथेषु द्रप्सान् ईरयन्) संग्रामो में वेगवान् अश्वो को आगे बढ़ाते हुए सेनापति के समान, (विदथेषु) ज्ञान मार्गों में वा प्राप्तव्य लोको मे (द्रप्सान्) आगे बढ़ने वाले जीवगणो वा रसो को (ईरयन्) प्रेरित करते हुए आ, (समयाति) दोनो प्रकार से (अव्यं वारम् अति याति) रक्षक, स्नेही माता पिता दोनो के वरणीय पद से पार कर जाता है, दोनो से बढ़ जाता है।

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७॥

भा०—(अदब्धाः) अहिंसित, अविनाशी (महिषाः) बड़े २ महात्मा लोग (इन्दुं) उस परम दयार्द्र प्रभु का (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं, उसका आनन्द-रस प्राप्त करते हैं। (गृध्राः कवयः न) धनार्थी कवियो के समान, (पदे) उस प्राप्तव्य, परम पद प्रभु के बीच मे स्थिर होकर (रेभन्ति) उसकी स्तुति करते हैं। और (अपां रसेन) प्राणों के परम बल रूप से वे (दशभिः क्षिपाभिः) दशो इन्द्रियों द्वारा उसका (सम् अञ्जते) साक्षात् करते हैं। उसको प्रकट करते हैं।

त्वया॑ व॒यं पव॑मानेन सोम॒ भरे॑ कृ॒तं वि चि॑नुयाम॒ शश्व॑त् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒: सिन्धु॑: पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥५८।२२

भा०—हे (सोम) सर्वशासक ! (पवमानेन त्वया) परम पावन वा अभिषिक्त तुझ से (भरे) इस महान् संग्राम में (वयम्) हम (शश्वत्) सदा (कृते वि चिनुयाम) अपना किया ही विविध प्रकार से प्राप्त करते हैं (तत्) वही (नः) हमें (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः उत पृथिवी उत द्यौः) वायु, जल, भूमि, नदी, पृथिवी और सूर्य ये पदार्थ और मित्र, श्रेष्ठ जन, माता, पिता, पुत्र, प्राण, भूमि सूर्यवत् प्रजा जन और राजा ये सब (मामहन्ताम्) मुझे प्रदान करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[९८]

अम्बरीष ऋजिश्वा च ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, १० अनुष्टुप् । ३, ५, ६ निचृदनुष्टुप् । ६, १२ विराडनुष्टुप् । ८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒भि नो॑ वाज॒सात॑मं र॒यिम॑र्ष पुरु॒स्पृह॑म् ।
इन्दो॑ स॒हस्र॑भर्णसं तुविद्यु॒म्नं वि॑भ्वा॒सह॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (नः) हमें (वाज-सातमं) खूब बल, वेग, ऐश्वर्य, धन, अन्न, ज्ञान आदि देने वाला (पुरु-स्पृहम्) बहुतों को अच्छा लगने वाला, (सहस्र भर्णसम्) सहस्रों को पालन करने में समर्थ, (तुवि-द्युम्नम्) बहुत से अन्नों, यशों, तेजों से युक्त, (विभ्वा-सहं) बहुतसों, बड़े २ को जीतने वाला (रयिम् अभि अर्ष) बल, वीर्य प्रदान कर । हममें तू भी प्राप्त कर ।

परि॒ ष्य सु॑वा॒नो अ॒व्ययं॒ रथे॒ न वर्मा॑व्यत ।
इन्दु॑र॒भि द्रुणा॑ हि॒तो हि॑या॒नो धारा॑भिरक्षाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार योद्धा (रथे वर्म न) रथ पर बैठ कर कवच को धारण करता है उसी प्रकार तू (स्यः) वह (सुवानः) अभिषेक प्राप्त करता हुआ (अव्ययं) रक्षक के योग्य (वर्म) सर्व रक्षक पद (परि अव्यत) प्राप्त कर। तू (इन्दुः) तेजस्वी होकर (द्रुणा) द्रुत गति से जाने वाले अश्व वा रथ से (हियानः) जाता हुआ (हितः) पद पर स्थिर होकर (धाराभिः) धाराओं से मेघ के तुल्य, (धाराभिः) अपनी ज्ञान वाणियों से (अभि अक्षाः) सब ओर व्याप। सर्वत्र अधिकार कर।

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ३ ॥

भा०—(स्यः सुवानः) वह तू अभिषिक्त होता हुआ, (इन्दुः) तेजस्वी (मद-च्युतः) हर्षप्रद होकर (अव्ये परि अक्षाः) वालों के बने विशेष राजवेश मे वा रक्षक के पद पर प्राप्त हो। (यः) जो तू (अध्वरे) यज्ञ में यजमान के समान, (ऊर्ध्वः) ऊंच आसनस्थ होकर (भ्राजा न) दीप्ति से सूर्यवत् (गव्ययुः) उत्तम वाणी और भूमि का स्वामी होकर (धारा एति) अपनी धारण शक्ति से या वाणी से प्राप्त होता है।

स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! (त्वम्) तू (स हि) वही है जो (शश्वते) अनेक (दाशुषे) आत्मसमर्पक (मर्त्ताय) मनुष्यगण को (वसु विवाससि) ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह तू हे (इन्दो) ऐश्वर्य और तेज वाले ! (सहस्रिणं) सहस्रों से युक्त और (शतात्मानम्) सैकड़ों आत्मा वा धनों वाला (रयिम् विवाससि) ऐश्वर्य प्रदान कर।

वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥ ५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नो के नाशक ! हे धनो के प्राप्त करानेहारे ! हे (वसो) सब में बसने और बसाने वाले ! (वयम्) हम (ते) तेरे (पुरु-स्पृहः वस्वः) बहुतों से चाहने योग्य धन और (इषः सुम्नस्य) अन्न और सुख के भी (नेदिष्टतमाः) अति समीपतम (नि स्याम) नित्य होवे ।

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥ ६ ॥ २३ ॥
हरिं त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥

भा०—(यम्) जिस (स्वयशसम्) अपने ही स्वतः बलवान्, (अद्रि-संहतम्) पर्वत के समान दृढ़ शरीर वाले, (प्रियम्) प्रिय, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्य पद की कामना करने वाले, (ऊर्मिणम्) बलवान्, उत्तम भावों वाले उदात्त पुरुष को (पञ्च स्वसारः) पांचो प्रजाए, भगिनियों के तुल्य पांचो प्रजाए (द्विः) दो बार विद्या और व्रत मे (प्रस्नापयन्ति) स्नान कराती, अभिषेक करती है। (त्यं) उस (हर्यतं) कान्तिमान् (बभ्रुं) भरण पोषण मे समर्थ, तेजस्वी (हरिम्) पुरुष को (वारेण परिपुनन्ति) वरण करके सभी पवित्र करते है। (यः) जो (विश्वान देवान् इत्) समस्त कामनावान् पुरुषो को (मदेन सह परि गच्छति) हर्ष सहित प्राप्त होता है।

अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्ण हर्यतः ॥ ८ ॥

भा०—आप लोग (अस्य) इसके ही (अवसा) बल, ज्ञान और प्रेम से (वः) अपने (दक्ष-साधनम्) बल को बढ़ाने वाले बल का (पान्त) पालन करते रहे हो। (यः) जो (हर्यतः न) सूर्यवत्

तेजस्वी होकर (स्वः नः) प्रकाश के तुल्य (श्रवः बृहत्) बड़ा यश, धन और ज्ञान (सूरिषु) विद्वानों को (दधे) धारण कराता है ।

स वां युज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥

भा०—हे (मानवी) मननशील, (रोदसी) सूर्य भूमिवत् व माता पितावत् जन सभाओ ! हे (देवी) तेजस्विनी सभाओ ! (वां यज्ञेषु) आप लोगों के यज्ञों में—संघों में (देवः इन्दुः) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् (गिरिष्ठाः) वाणी में निष्ठ तुल्य विद्वान् सत्यप्रतिज्ञ नेता (जनिष्ट) प्रकट होता है । उसको सब कोई (तुवि-स्वनि) बहुत स्तुत्य पद पर (अस्रेधन्) प्राप्त कराते हैं ।

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥

भा०—हे (सोमः) शासक ! तू (पातवे) पालन करने वाले (इन्द्राय) शत्रुहन्ता, अन्न-जल-दाता, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी (नरे) नायक (दक्षिणावते) दान और शक्ति वाले (वृत्रघ्ने) दुष्टों का नाश करने वाले (सदनासदे देवाय) आसन पर विराजने वाले राजा या तेजस्वी पुरुष पद के लिये (परि सिच्यसे) अभिषिक्त किया जा रहा है ।

ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥

भा०—(ते) वे (सोमाः) उत्तम विद्वान्, शासकजन (प्रत्नासः) वृद्ध या ज्ञानादिवान् श्रेष्ठजन (वि-उष्टिषु) नाना प्रजाओं की इच्छाओं के बीच, नाना तेजोयुक्त प्रकाशों के बीच, (पवित्रे अक्षरन्) पवित्र कार्य या पद पर आते हैं । वे (प्रातः) पूर्वकाल में, राज्य या जीवन के प्रथम भाग में ही, (सनुत) छुपे ((हुरः चित) कुटिलता से धन बटोरने

वाले, चोर पुरुषों को और (अप्रचेतसः) अविद्वान् मूर्खों को (अप प्रोथन्तः) दूर करते रहते है।

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥ २४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगण! (यूयम् वयम् च सूरयः) तुम और हम सब विद्वान् मिल कर (पुरः रुचम्) सबके आगे, रुचिकर, कान्तिमान्, (वाजगन्ध्यं) बल से शत्रु नाश करने के सामर्थ्य युक्त, (वाज-पस्त्यम्) ऐश्वर्यादि से सम्पन्न गृह वाले पुरुष को, (अश्याम) प्राप्त हो और (सनेम) उसको ही हम पदाधिकार प्रदान करे। (२) इसी प्रकार अन्न के गन्ध से युक्त बलप्रद अन्न को हम खावे और उसका प्रदान करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[९९]

रेभसूनू काश्यपावृषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती। २, ३, ५, ६ अनुष्टुप्। ४, ७, ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम्।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥ १

भा०—(हर्यताय) कान्तिमान्, सब के प्रिय (धृष्णवे) शत्रु-धर्षक पुरुष के हितार्थ, वीर जन (पौंस्य धनु.) पौरुष योग्य धनुष को तानते हैं। और (असुराय) अन्यों को प्राण देने वाले के हितार्थ (मही-युवः) महत्व युक्त पूजा चाहने वाले लोग (विपाम् अग्रे) विद्वानों के सामने (शुक्राम्) शुद्ध कान्तियुक्त (निर्णिजम्) उत्तम वाणी का वस्त्र (वयन्ति) बुनते है, उसका विस्तार करते है।

अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥

भा०—(यदि) जब (विवस्वतः) विशेष परिचर्या करने वाले प्रजा जन की (धियः) बुद्धिये और स्तुतिय (हरिं यातवे) नायक को प्रयाण करने के लिये प्रेरित करती है (अत्र) तब वह (परिष्कृतः) अलंकृत, सज धज कर (क्षपा) सेना सहित (वाजान् प्रगाहते) संग्रामों में विचरता है।

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥

भा०—(यः मदः) जो हर्ष, उत्साह (अस्य) इसका (इन्द्रपातमः) ऐश्वर्ययुक्त राजपद वा राष्ट्र को सबसे उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ है (यम् गावः आसभिः दधुः) जिसको वाणिये मुखों द्वारा उच्चारित होकर धारण कराता है और (पुरा) पहले जिसको (सूरयः) विद्वान् जन धारण करते है। (तम्) उसको हम (मर्जयामसि) और अधिक परिष्कृत करते हैं।

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥

भा०—(उतो) और (धीतयः) तत्व का प्रकाश करने वाली वाणियें, (देवानां नाम बिभ्रतीः) देवों, विद्वानों का तत्व-प्रकाशक पदार्थों को यथार्थ स्वरूप धारण करती हुई (तं) उसको (कृपन्त) समर्थ, शक्तिशाली बनाती है, और (पुराण्या गाथया) अति पुरातन वेद वाणी से विद्वान् जन वा (पुनानं) सर्वप्रेरक, सर्वपवित्रकारक उसको (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करती हैं।

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(मनीषिणः) विद्वान, मेधावी, बुद्धिमान् पुरुष मन को सन्मार्ग मे चलाने वाले, (उक्षमाण) सब प्रकार के शान्ति-जलों से सेचन

करने वाले मेघवत् शान्तिप्रद (धर्णसि) सब के धर्त्ता । (तं) उसके (अव्यये वारे) अविनाशी परम रूपीय हृदय में (पुनन्ति) स्वच्छ कर प्राप्त करते हैं और (पूर्णचित्तये) पूर्ण के ज्ञान प्राप्त करने के लिये वा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के (दूतं न आ शासते) दूत संदेश-हर के तुल्य जानते हैं ।

इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

स पु॒ना॒नो म॒दिन्त॑मः॒ सोम॑श्च॒मूषु॑ सीदति ।
प॒शौ न रेत॑ आ॒दध॒त्पति॑र्वचस्यते धि॒यः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (पुनानः) अति स्वच्छ, पवित्र रूप होता हुआ, (मदिन्तमः) अति अधिक आनन्ददायी होकर (सोमः) सर्व प्रेरक आत्मा, (चमूषु) विषयों को रसास्वादन करने वाली इन्द्रियों पर अध्यक्ष के तुल्य (सीदति) विराजता है । वह (पशौ न रेतः) भारवाही पशु पर जिस प्रकार लोग जल लादते हैं उसी प्रकार (पशौ) अर्थद्रष्टा इन्द्रिय में वह आत्मा भी (रेतः आदधत्) अपना तेज और वीर्य प्रदान करता है, उसी के समान सामर्थ्य प्राप्त कर इन्द्रिय अपना ग्राह्य विषय भली प्रकार देखती हैं । वही (धियः पतिः) ज्ञानमयी बुद्धि वाणी और कर्म का स्वामी (वचस्यते) कहलाता है ।

स मृ॒ज्यते सु॒कर्म॑भिर्दे॒वो दे॒वेभ्यः॑ सु॒तः ।
वि॒दे यदा॑सु स॒न्द॒दिर्म॒हीर॒पो वि गा॑हते ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह (सुतः) बार २ उपासना किया प्रभु या आत्मा (सुकर्मभिः) उत्तम कर्मों से (देवेभ्यः) विद्वानों वा प्राणों से पृथक् रूप में (मृज्यते) बराबर शुद्ध पवित्र किया जाता है (यत्) क्योंकि वह (आसु) इन समस्त प्रजाओं में (सं-ददिः) अपनी शक्ति प्रदान करता है और वही (अपः महीः) देह में जलवत् व्यापक प्राणों और रुधिर आदि द्रवों पदार्थों और यही भूमि के विकार स्थूल देह के तत्वों में (वि गाहते) विविध प्रकार से व्यापता है ।

सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजःस्वरूप ! इस देह मे द्रवित होने वाले (यतः) जिससे तू (नृभिः) मनुष्यों, साधको वा प्राणो द्वारा (सुतः) अभिषिक्त अध्यक्षवत् प्रेरक होकर (पवित्रे वि नीयसे) परम पावन, स्वच्छ हृदय मे विशेष रूप से प्राप्त होता है। तू (इन्द्राय मत्सरिन्तमः) उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के लिये हर्षप्रद होता है । तूही (चमूषु) समस्त लोकों, प्राणो, इन्द्रियो मे (निषीदसि) विराजता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१००]

रभसूनू काश्यपौ ऋषी ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७, ६ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ५, ६, ८ अनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ १ ॥

भा०—(पूर्वे आयुनि जातं) पूर्व आयु में, बाल्यकाल में उत्पन्न हुए (वत्सं) बच्छडे को जिस प्रकार (मातरः) माताएं या गौवे (रिहन्ति) चूमती चाटती है, उसी प्रकार (इन्द्रस्य) साक्षात् तत्व का दर्शन करने वाले आत्मा को (काम्यम्) अति कामना योग्य, (प्रियम्) अति प्रिय, (वत्सम्) सदा वन्दनीय, स्तुत्य, (पूर्वे आयुनि) पूर्व, सब से पहले विद्यमान आयु अर्थात् मानव हृयद मे प्रकट हुए को (अद्रुहः) प्राणिमात्र से द्रोह न करने वाले, अहिंसाव्रती (मातरः) ज्ञानी लोग (रिहन्ति) उस प्रभु के सौम्य रस का आस्वादन करते है और (अभि नवन्ते) उसका सर्वत्र सब प्रकार से वर्णन करते है ।

पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्दो) मेरे इस आत्मा की ओर वा मुझ इस मुक्त के प्रति रस वा दयालु रूप मे द्रवित होने वाले परमेश्वर ! हे कृपा सिन्धो, हे (सोम) सर्वैश्वर्यवन् ! तू (पुनानः) अधिकाधिक स्वच्छ रूप मे प्रकट होता हुआ, (द्विवर्हसम्) दोनों लोकों को बढाने वाला (रयिम्) ऐश्वर्य, बल, (आ भर) प्राप्त करा। क्योंकि (त्वं) तू (दाशुषः) अपने को तेरे हाथों सौंपने वाले त्यागी के (गृहे) गृह मे (विश्वानि वसूनि) सब प्रकार के नाना ऐश्वर्यों को (पुष्यसि) पुष्ट करता है।

त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥

भा०—(तन्यतुः वृष्टिं न) गर्जता मेघ जिस प्रकार वृष्टि प्रदान करता है उसी प्रकार (त्वं) तू (मनो युजं धियं सृज) मन से वा ज्ञान से योग करने वाले, मन और ज्ञान को प्रेरित करने वाले (धियं) बुद्धि क° का प्रदान कर। हे (सोम) प्रभो ! सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक (त्वं) तू ही (पार्थिवा दिव्या च) भूमि और आकाश के समस्त (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पुष्यसि) खूब २ देता और बढ़ाता है। अतः तू (मनो युजं धियं वृष्टिं सृज) तू मन से योग करने वाले, दुःखोच्छेदक कर्म वा बुद्धि प्रदान कर।

परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति।
रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥

भा०—(सानसिः वाजी इव) जिस प्रकार सधा हुआ वेगवान् अश्व (अव्ययं वारं धावति) अवि अर्थात् रक्षा करने वाले अपने स्वामी के अभिलाषा योग्य उद्देश्य की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार (जिग्युष) विजयशील, (सुतस्य) उपासित (ते) तुझ प्रभु की (धारा) वाणी, और जगत् को धारक और सब को रस पिलाने वाली पोषक शक्ति,

(रंहमाणा) वेगवती नदी के तुल्य (यथा) यथावत् (अव्ययं वारम्) परम रक्षक प्रभु के वरणीय पद की ओर ही (सानसिः) सुखपात्री (परिधावति) जा रही है, इसी का निर्देश करती है।

क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन्, क्रान्तदर्शिन्! हे (सोम) सन्मार्ग में सबको चलाने हारे! तू (क्रत्वे) ज्ञानवान् कर्म करने में समर्थ (दक्षाय) बलवान्, उत्साहसम्पन्न (इन्द्राय) अध्यात्मदर्शी वा ऐश्वर्य से युक्त, ऐश्वर्य-प्रद राज्यपद की रक्षा के लिये (सुतः) अभिषिक्त हो और (मित्राय वरुणाय च पातवे) स्नेही जन और श्रेष्ठजनों के पालन के लिये भी हो।

पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) सर्व प्रेरक! हे बलशालिन्! तू (सुतः) उपासित वा अभिषिक्त होकर (वाज-सातमः) सब से अधिक ज्ञान, धन आदि का देने वाला और (मधुमत्-तमः) सब से उत्तम, मधुर वचन और ज्ञानवान् होकर (इन्द्राय) इस जीवात्मा और (विष्णवे) व्यापक प्रभु और (देवेभ्य.) विद्वान् दानी, तेजस्वी पुरुषों के लिये (पवस्व) यत्न कर।

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (पवमान) सबको पवित्र करने हारे! (धेनवः जातं वत्स न) गौएं जिस प्रकार अपने उत्पन्न हुए बच्चे को (रिहन्ति) चाटती हैं उसी प्रकार (विधर्मणि) विविध रूप से धारण करने वाले (पवित्रे) पवित्र रूप में वर्त्तमान (त्वां) तुझ (जातं) प्रकट वा प्रसिद्ध (वत्सं) वन्दनीय व स्तुत्य (हरिं) हृदय को आकर्षण करने वाले (त्वां) तुझको

(धेनवः) वेद वाणियां (रिहन्ति) प्राप्त करती है, तुझको ही स्पर्श करती, तुझे लक्ष्य करतीं, तुझ तक अपना तात्पर्य प्रकट करती हैं।

पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (पवमान) परम पावन ! तू (शर्धन्) बलवान् होकर (चित्रेभिः रश्मिभिः) आश्चर्यकारक रश्मियों से सूर्य के समान (महि श्रवः यासि) बड़े यश, धन और श्रवणीय ज्ञान को प्राप्त करता है। (दाशुषः गृहे) अपने को त्यागने वाले के गृह मे (विश्वानि तमांसि जिघ्नसे) उसके बहुतसे अज्ञान अन्धकारों को नष्ट करता है।

त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ९ ॥ २८ ॥ ४ ॥

भा०—हे (महिव्रत) महान् कर्म करने वाले (त्वम्) तू (द्याम् च महीं च) आकाश और भूमि को भी (अति जभ्रिषे) बहुत अच्छी प्रकार धारण करता है। और (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (द्रापि प्रति अमुञ्चथाः) कवचवत् विश्व को धारण करता है।

[१०१]

ऋषिः—१—३ अन्धीगुः श्यावाश्विः । ४—६ ययातिर्नाहुषः । ७—९ नहुषो मानवः । १०—१२ मनुः सावरणः । १३—१६ प्रजापतिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७, ९, ११—१४ निचृदनुष्टुप् । ४, ५, ८, १५, १६ अनुष्टुप् । १० पादनिचृदनुष्टुप् । २ निचृद् गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (वः) आप लोग अपने मे से (पुरः-जीती) शत्रु के नगरो, गढ़ो को जीतने वाले (अन्धसः) प्राण को धारण करने वाले आत्मा के तुल्य वीर पुरुष के (मादयित्नवे) सब को प्रसन्न करने वाले (सुताय) अभिषेक के लिये, (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी लम्बी बाते करने वाले (श्वानम्) कुत्ते के समान केवल पेट भरने वाले लोभी जन को (अप श्नथिष्टन) दूर करो। (२) इसी प्रकार पुर-देह पर विजय करने वाले आत्मा के हर्षप्रद (सुताय) परम रस आत्मानन्द को प्राप्त करने के लिये लम्बी जीभ वाले कुत्ते के तुल्य लोभपर, तृष्णालु चित्त का दमन करो।

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पावकया) पापो और दुष्टो को शोधने वाली (धारया) वाणी या शासन व्यवस्था से (सुतः) अभिषिक्त होकर (परि प्रस्यन्दते) सर्वत्र वेग से भ्रमण करता है वह शासक वा परिव्राजक विद्वान् (इन्दुः) तेजस्वी, चन्द्रवत् आह्लादक, (अश्वः) विद्या में व्यापक और अश्व के तुल्य अन्यो का नेता और (कृत्व्यः) कर्म कुशल होता है। (२) देह में—अश्व, आत्मा, पावनी देहशोधनी धारा, रस-धारा से सर्वत्र वह रहा है।

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया।
यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥ ३ ॥

भा०—(तम्) उस (दुरोषम्) शत्रुओ के लिये दुःखकारी रोष वाले (सोमं) उत्तम शासक रूप से (विश्वाच्या धिया) सब में स्थित, विश्वजन की वाणी या सत्कर्म से (नरः) नायकजन (अद्रिभिः) आदर सत्कारो से (अभि हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं, उसको प्रतिष्ठित करते हैं। (२) इसी प्रकार (नरः) विद्वान् मनुष्य उस आत्मा को (दुरो॰) जो अग्नि

से जल न सके (यज्ञं) और उपासना के योग्य है उसको (विश्वाच्या धिया) विश्व रूप प्रभु से प्राप्त धी, बुद्धि, सत्कर्म और वेदवाणी द्वारा (अभि हिन्वन्ति) उसका प्रतिपादन करते हैं।

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

भा०—(मधुमत्तमाः) अति मधुर वचन बोलने वाले, (सुतासः सोमाः) अभिषिक्त शासकजन, (मन्दिनः) अति हर्षजनक, (पवित्रवन्तः) पवित्र पद, कर्त्तव्य वाले, (इन्द्राय अक्षरन्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये वेग से जावे। हे वीर शासको! (वः अदाः) आप लोगों के समस्त सुख हर्षादि (देवान् गच्छतु) उत्तम पुरुषों को प्राप्त हों। अध्यात्म में—दीक्षित, अभिषिक्त, स्नात, सोम्य विद्वान्‌जन प्रभु परमेश्वर की प्राप्ति के लिये आगे बढे। उनके सब सुख, आनन्द कारी उपाय विद्वानों को प्राप्त हों।

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(इन्दुः) इन्दु, आत्मा (इन्द्राय पवते) इन्द्र परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये जाता है (इति) इस प्रकार (देवासः) विद्वान् लोग (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं। (वाचः पतिः) वाणी का पालक प्रभु (मखस्यते) पूजा की अपेक्षा करता है वह (ओजसा) बल से (विश्वस्य-ईशानः) समस्त जगत् का स्वामी है।

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रस्य सखा) उस परमेश्वर का मित्र (सोमः) सोम—आत्मा, वा विद्वान् भक्त (दिवे दिवे) दिनों दिन (रयीणां पतिः) ऐश्वर्यों का स्वामी (सहस्र-धारः) सहस्रों वाणियों वा शक्तियों से युक्त

(वाचम्-ईखयः) स्तुतियो का करने वाला होकर भी (समुद्रः) समुद्र के तुल्य स्वयं रसो से पूर्ण होता है। (२) अथवा सोम सर्वोत्पादक प्रभु-समुद्रवत् रस का सागर, भीतरी वाणी का प्रेरक, सब ऐश्वर्यों का स्वामी. (इन्द्रस्य सखा) इस जीवात्मा का मित्र है।

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥

भा०—(अयम्) यह (पूषा) सर्वपोषक, (रयिः) सब का सर्वस्व धन, (भगः) सब ऐश्वर्यो-सुखो का स्वामी, (पुनानः अर्षति) सब को पवित्र परिष्कृत होकर प्राप्त है। वह (विश्वस्य भूमनः) बड़े भारी विश्व का (पतिः) पालक है। वह (उभे रोदसी वि अख्यत्) दोनों लोको को प्रकाशित करता है। (२) यह आत्मा देहपोषक होने से पूषा, देहवान् होने से रयि, सुखभोक्ता होने से भग, भूमा आत्मा का पालक, इह, पर दोनो लोको को प्रकाशित करता है।

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥

भा०—(घृष्वयः) एक दूसरे से स्पर्द्धा करने वाली (प्रियाः) हृदय को प्रिय (गावः) वाणियां, (मदाय) अन्तरानन्द के लिये (सम्-अनूषत) भली प्रकार स्तुति करती है। (इन्दवः सोमासः) तेजस्वी, सौम्य गुणो वाले (पवमानासः) अपने को पवित्र करने वाले जन (पथः कृण्वते) सामान्य जनो के मार्गों का उपदेश करते हैं।

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (ओजिष्ठः) सब से अधिक ओज, तेज, बल को धारण करने वाला है, हे (पवमान) अपना शोधन करने हारे अभ्यासी

जन ! (तं) उसको लक्ष्य करके (श्रवाय्य) श्रवण करने योग्य वेदमय स्तुति को (आभर) प्राप्त कर । (य.) जो (पञ्चचर्षणीः अभि) पांचों प्रकार के मनुष्यों के प्रति पांचों इन्द्रियों में मन वा आत्मा के तुल्य है। (येन) जिससे (वयं) हम (रयिं वनामहे) ऐश्वर्यवत् देह को प्राप्त करे वा 'देह' से कर्मफल भी भोगे ।

सोमा॑: पवन्त॒ इन्द॑वो॒ऽस्मभ्यं॑ गातु॒वित्त॑माः ।
मि॒त्राः सु॑वा॒ना अ॑रे॒पस॑: स्वा॒ध्य॑: स्व॒र्विद॑: ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(सोमाः) ज्ञानैश्वर्य के धनी, विद्या ज्ञान–में निष्णात, (इन्दवः) तेजस्वी, (गातुवित्-तमाः) वेदवाणी और सन्मार्ग को जानने और जनाने हारों में सर्वश्रेष्ठ, (मित्राः) जगत् के समस्त जीवों को मृत्यु के दुःख से बचाने वाले, (सुवानाः) अभिषिक्त, एवं ऐश्वर्य-विभूतियों से युक्त होते हुए भी (अरेपसः) पाप-वासना, दुष्कर्मों से रहित (स्वाध्यः) शुभ कर्मों और विचारों का चिन्तन और धारण करने वाले (स्वर्विदः) सुख, तेज, उत्तम उपदेश प्राप्त कराने वाले उपदेष्टा, सूर्यवत् तेजस्वी होकर (पवन्ते) सूर्य के किरणों के तुल्य सर्वत्र गमन करते, सबको पवित्र करते हैं । द्वितीयो वर्ग. ॥

सु॒ष्वा॒णासो॒ व्यद्रि॑भि॒श्चिता॑ना॒ गोरधि॑ त्व॒चि ।
इष॑म॒स्मभ्य॑म॒भित॑: सम॑स्वरन्वसु॒विद॑: ॥ ११ ॥

भा०—वे (अद्रिभिः) आदर करने योग्य, वा मेघवत् उदार वा पर्वत-शिलावत् दृढ पुरुषों द्वारा (सु-स्वानाः) उत्तम रीति से निरन्तर अभिपूजित होते हुए, (गोः त्वचि अधि) भूमि की पीठ पर वेदवाणी का (चिताना.) ज्ञान-सम्पादन करते हुए, (वसुविदः) सर्वत्र बसे प्रभु का और जगत् में बसे प्राणियों वा आत्माओं का तत्व जानते हुए (अस्मभ्यम् अभितः) हमारे सब ओर (इषम् सम् अस्वरन्) उत्तम वाणी का

उपदेश करें। सूर्यकिरणों के तुल्य सुखों, अन्नों और उत्तम ज्ञान-धाराओं को प्रकट करें।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।

सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १२ ॥

भा०—(एते) ये (पूताः) पवित्र हृदय और पवित्र आचार वाले (विपश्चितः) ज्ञानों का सञ्चय करने वाले, (सोमासः) ज्ञानी पुरुष, (दधि-आशिरः) ध्यान-धारणा में आश्रय लेने वाले, (सूर्यासः न) सूर्यों वा सूर्य किरणों के तुल्य (दर्शतासः) दर्शनीय और औरों को सत्य तत्त्व का दर्शन कराने वाले, (जिगत्नवः) सदा आगे बढ़ने वाले होकर भी (घृते) धारण किये वा पकड़े हुए उद्देश्य वा व्रत में (ध्रुवाः) स्थिर, न डिगने वाले होते हैं।

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १३ ॥

भा०—(सुन्वानस्य) उपासना किये जाते हुए, परमैश्वर्य-सम्पन्न (अन्धसः) अन्नवत् सब जीवनतत्व को धारण कराने वाले उस प्रभु वा आत्मा के (तत्) उस (वचः) गूढ़ वचन, गति, चेष्टा, सामर्थ्य को (मर्त्तः) मरणधर्मा, स्थूलदेहवान् (न वृत) सीमित नहीं कर सकता प्राप्त नहीं कर सकता। हे विद्वानो! आप लोग (भृगवः) तेजस्वी होकर (मख न) सुख से हीन, दुःखदायी बाधक कारण, क्रोध के तुल्य ही (अराधसम्) अभव्य, काबू न आने वाले, दुःसाध्य दुर्दान्त (श्वानम्) कुत्ते के तुल्य अति लोभ को (अप हत) मार भगाओ। लोभ और क्रोध को दूर करने के बाद ही उस प्रभु की वाणी का सत्य ज्ञान और आत्मा की परम शक्तियों का साक्षात् होता है।

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ १४ ॥

भा०—सोम-प्रभु, सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक, जगत् का शासक परमेश्वर (ओण्योः भुजे) माता पिता के भुजा वा रक्षा में (पुत्रः न) पुत्र के तुल्य हमारा (जामिः) बन्धु होकर (भुजे) सबके पालन करने वाले (अत्के) उत्तम रूप में (ओण्योः आ अव्यत) आकाश और भूमि दोनों के (भुजे) पालनार्थ सब ओर से प्राप्त है। (योषणां जारः न) स्त्री को उसके जीवन भर के संगी पति के तुल्य वह (योषणाम्) व्यापक प्रकृति को (सरत्) व्यापता है, और (वरः योनिम् न आसदम्) वरणीय पुरुष जिस प्रकार अपने उचित स्थान पर बैठने के लिये आसन की ओर बढ़ता है उसी प्रकार वह (योनिम्) जगत् उत्पादक प्रकृति को (आसदम्) व्यापने के लिये (आ अव्यत) सर्वत्र विद्यमान है।

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ १५ ॥

भा०—(सः) वह (वीरः) विविध प्रकार से जगत् को प्रेरित करने वाला, (दक्ष-साधनः) जगत् भर को भस्म कर देने वाले महान् अग्नि के दक्ष, बल, ज्ञान शक्ति को अपने वश करने वाला है (यः) जो (रोदसी) दोनों लोकों को (वि तस्तम्भ) विशेष रूप से थाम रहा है। वह (हरिः) सर्व-दुःखभयहारी, अति चित्तहारी, प्रभु (वेधाः योनिम् न) घर को गृहस्वामी के तुल्य (आसदम्) अध्यक्षवत् विराजने के लिये, (वेधाः) जगत् का विधाता होकर (पवित्रे अव्यत) परम पावन रूप में प्रकाशित होता है।

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—(गव्ये अधि त्वचि कनिक्रदत् सोमः) चर्म पर विराजमान विद्वान् के तुल्य, (गव्ये अधि त्वचि) वाङ्मय साहित्य के भी ऊपर वह (सोमः) आनन्द रस-रूप में साक्षात् करने योग्य प्रभु (अव्यः

वारेभिः पवते) स्नेह, समृद्धि, कान्ति, दीप्ति आदि के नाना सुन्दर रूपों से प्रकट होता है। वह (वृषा) सुखों का वर्षक मेघवत् (हरिः) मनोहर, कान्तिमान, (इन्द्रस्य निष्कृतम् अभि एति) आत्मा के स्थान को साक्षात् प्राप्त होता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१०२]

त्रित ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—४, ८ निचृदुष्णिक् । ५—७ उष्णिक् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

भा०—(क्राणा) जगत् को रचने वाला प्रभु (महीनां शिशुः) महान् प्रकृति के परमाणुओं, उसकी विकृतियों वा महती शक्तियों में (शिशुः) व्यापक, उनका शासक है। वह (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (दीधिति) प्रकाशक और धारक वेदमय शब्द की (हिन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (विश्वा प्रिया) समस्त प्रिय पदार्थों को (परि भुवत्) व्यापता और (अध द्विता अभवत्) इह और पर दोनों लोकों में विद्यमान है।

उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद् गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

भा०—और (त्रितस्य) तीनों लोकों में व्यापक प्रभु के (पाष्योः) शिलाओं के तुल्य आकाश और भूमि इन के बीच और (गुहा) बुद्धि में (यद् पदम्) जिसका ज्ञानमय रूप सेवन किया जाता है, उस (यज्ञस्य) यज्ञमय प्रभु का (सप्त धामभिः) सातों जगत् के धारक सामर्थ्यों, लोकों वा प्राणों द्वारा (प्रियम्) प्रिय मनोहर रूप है।

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (त्रितस्य) तीनो लोको मे व्यापक प्रभु (त्रीणि) तीनो रूपों को (धारया) वाणी द्वारा (ईरय) बतला। (पृष्ठेषु) समस्त लोको मे (रयिम्) जीवन प्रकाश आदि देने वाले उस प्रभु की (आ ईरय) सर्वत्र स्तुति कर। (सु-क्रतुः) उत्तम कामो को करने वाला, मनुष्य (अस्य) इस प्रभु के (योजना) जगत् के सञ्चालक अनेक बलों को (वि मिमीते) विशेष रूप से जानता और उन को विविध रूपो मे बनाता, प्रकट करता है।

जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम् ध्रुवः) यह नित्य, वा सब जगत् का सञ्चालक और धारक प्रभु (रयीणां) समस्त ऐश्वर्यों को (चिकेत) जानता है। (मातरः) जगत् का निर्माण करने वाले प्रकृति के परमाणु, (सप्त) संख्या मे सात प्रकृति विकृतिये उस (जज्ञानं) जगत् को उत्पन्न करने वाले (वेधाम्) विधाता, कर्त्ता की (श्रिये) हे मनुष्यो ! ऐश्वर्य लाभ और आश्रय के प्राप्ति के लिये (आ शासत) स्तुति करो।

अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः।
स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य व्रते) इसके व्रत या कर्म मे लगे (विश्वे देवासः) सब मनुष्य (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त, (अद्रु॰) परस्पर द्रोह से रहित, (स्पार्हाः) परस्पर प्रेम करने वाले, और (रन्तयः) सुखी प्रसन्न (भवन्ति) होते है (यत् जुषन्त) जिससे वे प्रेम करते है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन्।
कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—(गर्भम्) सब को वश करने वाले, जगत् को गर्भ मे धारण करने वाले (यम् ईम्) जिस (चारुम्) व्यापक को (ऋत-वृधः) सत्य

के बढाने वाले, जन (दृशे) दर्शन करने के लिये (अजीजनन्) वाणी वा कर्म-साधनो द्वारा प्रकट करते है। उस (कविम्) क्रातदर्शी (मंहिष्ठम्) अति दानशील, (अध्वरे पुरु-स्पृहम्) अविनाशी, यज्ञ मे बहुतो को स्पृहा करने योग्य, सर्व प्रिय को सब (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते है।

समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा।
तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥

भा०—(समीचीने) परस्पर सुसम्बद्ध, (यह्वी) दोनो महान् (ऋतस्य) जगत् रूप यज्ञ का निर्माण करने वाले, ब्रह्म और प्रकृति दोनो है। (यत्) जिनके रूप को (यज्ञं तन्वाना) यज्ञ का विस्तार करते हुए विद्वान् जन (आनुषक् अंजते) निरन्तर प्रकट करते है।

क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः।
हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥ ५ ॥

भा०—(क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म-सामर्थ्य से हे विभो ! प्रभो ! (शुक्रेभिः) शुद्ध कांतियुक्त और शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करने वाले तेजः-सामर्थ्यों से (दिवः व्रजं ऋणोः) आकाश के गतिशील लोकसमूह को दूर २ तक चलाता है। वह तू (अध्वरे) अविनाशी आत्मा मे (ऋतस्य दीधितिं) सत्य-ज्ञान की किरण को प्रेरता हुआ हमारे (दिवः) प्रकाशमय आत्मा से (व्रज) पापवृत्ति के समूह को (अप ऋणोः) दूर कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०३]

द्वित आप्त्य ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द —१, ३ उष्णिक्। २, ५ निचृदुष्णिक्। ४ पादनिचृदुष्णिक्। ६ विराडुष्णिक् ॥ षड्च सूक्तम् ॥

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम्।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥

भा०—(मतिभिः) स्तुतियो से (जुजोषते) प्रसन्न करने वा होने

वाले, वा (मतिभिः जुजोषते) विद्वान् पुरुषों द्वारा प्रेमपूर्वक सेवन किये जाते हुए, (पुनानाय) निरन्तर अभ्यास द्वारा स्वच्छ रूप में साक्षात् होने वाले, (वेधसे) जगत् के विधाता (सोमाय) सर्वेश्वर, सर्वपालक प्रभु के लिये (उद्यतम् वचः) उत्तम रीति से सुसंयत, सुगठित स्तुति वाणी का (भृतिं न भर) वेतन के तुल्य प्रदान कर। अर्थात् प्रभु की स्तुति प्रार्थना नित्य नियम से बंधे रूप से करनी चाहिये।

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति।
त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥

वह प्रभु (त्रीणि) तीनों (अव्यया) अविनाशी (वाराणि) जीवों की रक्षा करने वाले लोकों को सूर्य के तुल्य (गोभिः अजानः) किरणों से, वाणियों से वा इन्द्रियों वा सूर्यादि लोकों द्वारा प्रकाशित करता हुआ (हरिः) तीनों तापों का हरण करने वाला, तीनों लोकों का प्रभु (पुनानः) व्यापता हुआ (त्री सधस्था कृणुते) तीनों लोकों को रचता और (अर्षति) तीनों में व्यापता है।

परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥

भा०—(अव्यये वारे) अविनाशी, सर्वरक्षक परम वरणीय, रूप में वह प्रभु (मधुश्चुतम् कोशम् परि) मधु, परमानन्द वा ज्ञान को प्रदान करने वाले, आनन्दमय कोश वा तेजोमय हिरण्यगर्भ को वह (परि अर्षति) व्यापता है। और (ऋषीणां वाणी सप्त अभि नूषत) साक्षात् करने वाले ऋषियों की सातों छन्दोमयी वाणियां उसकी साक्षात् स्तुति करती हैं।

परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः।
सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥

भा०—वह (विश्वदेव.) सब सुखों का देने वाला, सब लोकों का प्रकाशक, सब का उपास्य देव, (अदाभ्य.) अविनाशी (सोम) सर्व

जगत् का उत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (मतीनां नेता) सब स्तुतियों बुद्धियों और विद्वानों का नायक, प्रवर्त्तक, (हरिः) सर्वदुःखहारी प्रभु (पुनानः) व्यापता हुआ (चम्वोः परि विशत्) भूलोक और द्यौलोक दोनों को व्यापता है।

परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम्।
पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो! तू (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, अमृतस्वरूप, स्वयं (वाघत्) विद्वान् और (वाघद्भिः पुनानः) विद्वानों द्वारा हृदय में परिष्कृत किया जाता हुआ, (इन्द्रेण) सूर्यवत् तेजस्वी कान्तियुक्त स्वप्रकाश आत्मा के साथ (दैवीः स्वधाः अनु) देवों, इन्द्रियों, प्राणों, और विद्वानों की अपनी शक्तियों के अनुसार (सरथम्) एक समान रस को (परि याहि) प्राप्त हो।

परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः।
व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—यह (सप्तिः न-वाजयु) वेगवान् अश्व के समान् वेग से व्यापने वाला, (देव.) प्रकाशस्वरूप, (देवेभ्य. सुत.) देवों, विद्वानों द्वारा उपासित (वि आनशि.) विशेष रूप से व्यापने वाला (पवमानः) सब को पवित्र करता हुआ (वि धावति) विविध प्रकार से व्यापता चा जाता है। इति षष्ठो वर्ग.। इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

[१०४]

पर्वतनारदौ द्वे शिखण्डिन्यौ वा काश्यप्यावप्सरसौ ऋषी ॥ पवमान सोमो देवता। छन्दः—१, ३, ४ उष्णिक्। २, ५ ६ निचृदुष्णिक् ॥

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

भा०—हे (सखाय.) मित्रो (आ नि सीदत) आओ, चारो ओर घेरा

लगा कर समीप बैठ जाओ। (पुनानाय) सब को पवित्र करने वाले प्रभु के लिये (प्र गायत) खूब स्तुति करो। (शिशु) बालक के तुल्य स्वच्छ-पवित्र, निष्पाप एवं सब के हृदयहारी, सर्वत्र व्यापक एवं प्रिय उपदेशप्रद प्रभु को (श्रिये) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिये (यज्ञैः परि भूषत) यज्ञों और उपासनाओं से सुशोभित करो, उस की ही स्तुति करो।

समीं वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

भा०—(मातृभिः वत्सं न) माताओ से (गयसाधन) घर को चमकाने वाले बच्चे को जिस प्रकार (संसृजन्ति) संसृष्ट कर लेते है उसी प्रकार (गय-साधनम्) प्राणों के वशीकार द्वारा साधना करने योग्य (वत्सं) बन्दनीय पति, स्तुत्य प्रभु को (मातृभिः) ज्ञानकारिणी वा शब्दमयी वाणियो से (सं सृजत) संसृष्ट करो, वाणियो का संयोग प्रभु से कराओ, प्रभु को अपनी वाणियो का लक्ष्य करो। उसी (देव—अव्य) देवो मे व्यापक (मदम्) आनन्ददायक (द्विशवसम्) नर नारी, माता पिता, दोनो प्रकार के बल को धारण करने वाले प्रभु की (प्र गायत) स्तुति करो।

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमः ॥ ३ ॥

भा०— (यथा शर्धाय वीतये) उचित बल और उचित ज्ञान, तेज कांति प्राप्त करने के लिये (दक्ष-साधन) बल-उत्साह के देने, वश करने और उत्पन्न करने वाले को (पुनात) छानने से बलप्रद ओषधि के तुल्य अन्तःकरण द्वारा विमर्श—विचार करो, उसके निर्दोष रूप का विवेक करो। (यथा) क्योंकि वह (मित्राय) स्नेह करने वाले और (वरुणाय) वरण करने वाले, भक्त नरनारी जनो को (शंतमः) अति अधिक शान्ति सुख देने वाला है।

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥

भा०—(अस्मभ्यं वसु-विदम्) हमें अनेक धनों को प्राप्त कराने वाले (त्वा) तुझको (वाणीः अभि अनूषत) नाना वाणियें स्तुतियां करता है। हे प्रभो ! हमें (ते वर्णम्) तेरे वर्ण अर्थात् तेरे प्रति अपनी अभिलाषा या चाह को (गोभिः अभि वासयामसि) नाना वेदवाणियों से आच्छादित करते है, उन्ही द्वारा प्रकट करते है। वाणियां हमारी इच्छाओं के प्रकट रूप हैं।

स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि ।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

भा०—हे (मदानां पते) समस्त आनन्दों के पालक (इन्दो) हे तेजस्विन् ! हे रसस्वरूप ! तू (सः नः) वह हमारे में (देवप्सराः असि) देवरूप है। तू (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य (नः गातु-वित्-तमः भव) उत्तम उपदेश, उत्तम भूमि वा आश्रय और उत्तम मार्ग प्राप्त कराने वाला और हमारी (गातु-वित्तमः) वाणी को सब से अधिक जानने वाला तू ही है।

सनेमि कृध्यस्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् ।
अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—तू (अस्मत्) हमसे (रक्षसम् अत्रिणं) विघ्नकारी, हमारा नाश करने वाले, (अदेवं) दानशीलता से रहित, दुःखदायी, (द्वयुम्) दो भाव रखने वाले, भीतर कुछ और बाहर कुछ, कपटी, (कंचित्) चाहे वह कोई भी हो उसको (अस्मत् अप आकृधि) हम से दूर कर और (नः) हमारे पाप को हम से (अप युयोधि) दूर कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१०५]

ऋषी पर्वतनारदौ ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ उष्णिक् । ३, ४, ६ निचृदुष्णिक् । ५ विराडुष्णिक् ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! (वः पुनानम्) आप लोगों को पवित्र करने वाले (तम् अभि गायत) उसको लक्ष्य कर स्तुतियां किया करो । और (गूर्त्तिभिः) उत्तम अनेक स्तुतियों के साथ २ (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (शिशुं न) शिशु के समान अति प्रिय को (स्वदयन्त) भोजन कराने के तुल्य, अग्नि मे आहुति दो, एवं उस (शिशुं) सर्वत्र व्यापकप्रभु को जान कर (स्वदयन्त) मान्य जनों को भोजन कराओ । सबको अन्नदान करो । ईश्वरभावना से ही यज्ञ करो और उसी भावना से अतिथि यज्ञ, नृयज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ और पितृयज्ञ करो । इनमे सर्वत्र देव-भावना हो ।

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

भा०—(मातृभिः वत्सः इव) माताओं द्वारा जिस प्रकार बच्चा (हिन्वानः सम् अज्यते) पालित पोषित होकर उत्तम रूप और गुणों से प्रकट होता है उसी प्रकार (देवावीः) देवों, सूर्यादि लोकों, विद्वानों, प्राणों और मनुष्यों के रक्षक उन में व्यापक और उन मे स्नेही, (मदः) आनन्द-मय (इन्दुः) तेजोमय प्रभु भी (मतिभिः परिष्कृतः) स्तुतियों, विद्वान् जनों द्वारा अलंकृत, वर्णित, सुभूषित (सम् अज्यते) भली प्रकार व्यक्त, प्रकट होता है ।

अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

भा०—(अयं दक्षाय साधनः) वह बल, और उत्साह का बढ़ाने और वश करने वाला है। (अयं शर्धाय) वह बल और कार्य करने और (वीतये) व्यापने, और प्रकाश करने के लिये समर्थ है। (सुतः) उपासित होकर (अयं देवेभ्यः) यह दिव्य गुण वाले विद्वानों और इच्छावान् जनों के लिये (मधुमत्-तमः) अति मधुर सुख देने वाला है।

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व।
शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन्! (सुतः) अभिषिक्त राजा के तुल्य उपासित होकर तू (नः) हमें (गोमत् अश्ववत्) गौओं और अश्वों से सम्पन्न धन और शस्त्र बल, (धन्व) प्रदान कर। मैं (ते) तेरे (शुचि वर्णम्) शुद्ध, कान्तिमय रूप को (गोषु अधि) वेदवाणियों के भीतर, उनके आश्रय (दीधरम्) अपने को धारण करूं। (२) वे राजा के शुद्ध वर्ण को भूमियों पर स्थापित करें।

स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥

भा०—हे (हरीणां पते) समस्त मनुष्यों के पालक! हे (इन्दो) तेजस्विन्! प्रजाजन के प्रति दयालो! (देवप्सरस्तमः) दानशील मेघ और देदीप्यमान सूर्य के समान सर्वोपरि श्रेष्ठ रूप वाला तू (सः) वह (नः) हमारे प्रति (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य सब मनुष्यों का हितकारी और (रुचे भव) हमारी दीप्ति, कान्ति और इच्छा पूर्त्ति के लिये हो।

सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कंचिदत्रिणम्।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥ ८ ॥

भा०—(त्वम् अस्मत् सनेमि) तू हमारा सदा से (सखा इव) मित्र के तुल्य है। तू हम से सदा (अदेवं कंचित् अत्रिणम्) अदानशील, शत्रुवत्,

हमारे धन को खाजाने वाला चाहे वह कोई हो, उसको भी (अस्मत्) हमसे दूर कर और उसे (साह्वान्) पराजित करने वाला तू ही है । हे (इन्दो) तेजस्विन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (द्वयुम्) दो भाव रखने वाले को (परिबाधः, अप बाधः) पीडित कर और दूर कर । चित्त में बैठे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, चिन्ता, शोक आदि अनेक शत्रुगण वा रोगादि मनुष्य को खाते रहते हैं । प्रभु उनको प्रजापालक, राजा के तुल्य दूर करे ।

यह सूक्त पूर्व सूक्त का अनुवादमात्र है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१०६]

ऋषिः—१—३ अग्निश्चाक्षुषः । ४—६ चक्षुर्मानवः ॥ ७—९ मनुराप्सवः । १०—१४ अग्निः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, १४ निचृदुष्णिक् । २, ५—७, ११, १२ उष्णिक् । ९, १३ विराडुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

भा०—(श्रुष्टी जातासः) अन्न द्वारा उत्पन्न (स्वः-विदः इन्दवः) सुख जनक वीर्यगण जिस प्रकार (वृषणम्) वीर्यसेचक अंग को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (इमे) ये (सुताः) उत्पादित वा प्रेरित, (हरयः) समस्त विद्वान् (इन्दवः) इस प्रभु के उपासक जन, (स्वर्विदः) प्रभु के प्रकाश मय और शब्दमय रूप को जानने वाले विद्वान् (श्रुष्टी) शीघ्र ही (जातासः) उत्पन्न होकर (वृषणम्) बलवान् सर्वसुख सेचक (इन्द्रम्) उस प्रभु को (अच्छ यन्तु) प्राप्त होते हैं ।

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

भा०—(अयं) यह (सानसिः) भजन, सेवन करने वाला (सुतः) उत्पन्न

जीव, (भराय इन्द्राय) सर्वपोषक प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने (यथा विदे) यथार्थ रूप से जानने के लिये (सोमः) जीव (जैत्रस्य) सब कष्टों पर विजय पाने वाले उसी परमेश्वर का (चेतति) स्मरण करता है ।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य मदेषु) इस के ही हर्षों के लिये (इन्द्रः) मेघवत् ऐश्वर्यवान् प्रभु (सानसि ग्राभम्) सुख से सेवन योग्य ग्रहण, पकड़ या अवलम्ब को (गृभ्णीत) ग्रहण करे । वह (अप्सुजित्) प्रकृति के परमाणुओं पर भी शासन करने वाला प्रभु (वृषणं वज्रं च) वृष्टिकारक विद्युत् के तुल्य (वृषणं) सुखवर्षी (वज्रम्) बल को (संभरत्) एक साथ धारण करता है ।

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममाभरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! तू (जागृविः) जागरणशील, नित्य सावधान रह ! हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (प्र धन्व) आगे बढ़ । तू (परि स्रव) उस के लिये आगे बढ । और (स्वः विदम्) सुख प्राप्त करने वाले, (द्युमन्तं शुष्मम्) तेज से युक्त बल को (आ भर) प्रदान कर या धारण कर ।

इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः ।
सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (विश्व-दर्शतः) सबों से दर्शनीय ! समस्त विश्वों और जीवात्माओं को भी देखने हारा (सहस्र-यामा) सहस्रों, अनेकों जीवों का एक मात्र मार्ग, चारा या सहस्रों लोकों का नियन्ता, (पथिकृत्)

सब मार्गों का उपदेश करने वाला, (विचक्षणः) विविध ज्ञानों का विशेष उपदेष्टा वा विश्व का विशेष द्रष्टा है। वह तू हे प्रभो ! (वृषणम् मदम्) सुखवर्षक, हर्षदायक रस को तू (इन्द्राय पवस्व) जीवात्मा मात्र के उपकार के लिये प्रवाहित कर। इति नवमो वर्गः॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः।
सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत्॥ ६॥

भा०—हे प्रभो ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (गातुवित्-तम) सर्वोपरि उपदेश ज्ञान देने वाला और मार्ग जानने वाला है। तू (देवेभ्यः) हम नाना जीवों के लिये (मधुमत्-तमः) अति मधुर आनन्द और ज्ञान को धारण करने वाला है। तू (सहस्रं पथिभिः) सहस्रों मार्गों से (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ बरसते मेघवत् (याहि) प्राप्त है।

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः॥ ७॥

भा०—हे (इन्दो) तेजस्विन् ! हे (सोम) सर्वशासक ! तू (देव-वीतये) देवो विद्वानो को प्राप्त होने के लिये वा उनकी कामना की पूर्त्ति के लिये (धाराभिः) धाराओं से मेघवत्, वाणियों से गुरुवत्, गतियों से अश्ववत्, धारकशक्तियों से और (ओजसा) पराक्रम से (मधुमान्) बलवान् होकर (कलशम् आ सदः) कला ज्ञानशक्ति से सम्पन्न चेतना के अधिष्ठान् देह वा अन्तःकरण मे भी (आ सदः) विराजता है।

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः॥ ८॥

भा०—(तव द्रप्साः) तेरे रस, (उद-प्रुतः) जल के समान ही अपने स्रोत से वेगपूर्वक निकलने वाले है। वे (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिये (इन्द्रं वृधुः) आत्मा की शक्ति को बढाते है। (देवासः) विद्वान्

जन (अमृताय) अमृत, अविनाशी मोक्षानन्द प्राप्त करने के लिये (कं) सुखमय तेरा ही रस (पपुः) पान करते है।

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥

भा०—हे (नः सुतासः इन्दवः) हमारे उत्पन्न जीव-आत्माओ! आप लोग (वृष्टि-द्यावः) कर्मबन्धन के विच्छेद के लिये ज्ञान, प्रकाश को प्राप्त करने वाले और (रीति-आपः) जलो के तुल्य प्राणो को वा प्रकृति को निर्गमन मार्गों मे से क्षेत्रिक के तुल्य कर लेने वाले और (स्वर्विदः) सुख-प्रकाश को प्राप्त करने वाले होकर (रयिम्) सुख-प्रदाता, ऐश्वर्यवान् प्रभु को लक्ष्य कर (पुनानः) अपने तईं पवित्र होकर (आ धावत) और वेग से आगे बढ़ो।

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति।

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(ऊर्मिणा पुनानः) उत्तम उपदेशमय वेदज्ञान से (पुनानः) पवित्र होता हुआ (सोमः) जीव-आत्मा (अव्य. वारम्) सर्वरक्षक प्रभु के परम वरणीय रूप को, ज्ञान को शिष्य के तुल्य (वि धावति) विशेष रूप से प्राप्त करता है। वह (पवमानः) पवित्र होता हुआ (अग्रे) सर्व प्रथम (वाचः कनिक्रदत्) नाना वेदवाणियों, वा स्तुतियो का अभ्यास करे। इति दशमो वर्गः ॥

धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम्।

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥

भा०—(मतयः) ज्ञानी जन (वाजिनम्) ज्ञानी, बलवान्, परमैश्वर्यवान् (वने क्रीडन्तं) जीवादि से सेवनीय, जगत् में बालवत् अनायास चेष्टाएं करने वाले, (अति-अविम्) पृथ्वी वा सूर्य से भी अति अधिक

महान् (त्रि-पृष्ठम् अभि) तीनो लोकों मे व्यापक उस प्रभु को लक्ष्य करके (सम् अस्वरन्) उसकी स्तुति करते हैं ।

असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥

भा०—(वाजयुः सप्तिः न) (मीढे) संग्राम मे वेगवान् अश्व के तुल्य, (कलशान् अभि असर्जि) कलशो के तुल्य अन्तःकरणो मे प्रकट होता है । (वाचं जनयन्) वाणी को प्रकट करता और (पुनानः) पवित्र करता हुआ, संन्यासी के तुल्य (असिष्यदत्) सर्वत्र विचरता है ।

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥

भा०—(हरिः) तेजस्वी, (हर्यतः) कान्तिमान्, आत्मा, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओ, विद्वानो को (रंह्या) वेग से (ह्वरांसि अति) समस्त कुटिल विघ्नो को पार करता हुआ, (पवते) प्राप्त होता है । वह (वीरवत् यशः अभि अर्षन्) वीरो सहित यश वा अन्न को प्राप्त करावे ।

अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।
रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रभो ! (रेभन्) उपदेश देता हुआ तू (देवयुः) शुभ गुणो वा विद्वानो की कामना करने हारा है। तेरी (मधो. धाराः असृक्षत) तृप्तिकारक जल की धाराओ वा अन्न की धारण शक्तियो के तुल्य वाणियां उत्पन्न होती है। और तू (विश्वतः) सब प्रकार से, (पवित्रं) परम पवित्र, परमापावन प्रभु को (परि एषि) प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०७]

सप्तर्षय ऋषयः ॥ पवमान. सोमो देवता ॥ छन्द.—१, ४, ६, ६, १६, २१ विराड् बृहती । २, ५ भुरिग् बृहती । ८, १०, १२, १३, १६, २५

बृहती । २३ पादनिचृद् बृहती । ३, १६ पिपीलिका मध्या गायत्री । ७, ११ १८,२०,२४,२६ निचृत् पंक्तिः ॥ १५, २२ पांक्तिः ॥ षड्विंशत्यृच सूक्तम् ॥

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो ऐश्वर्यवान् (उत्तम हविः दधन्वान्) उत्तम हवि, अन्न और उपाय को प्राप्त करता हुआ और (यः) जो (अप्सु अन्तरा) आप प्रजाजनो के बीच (नर्यः) समस्त मनुष्यो वा नायक नेताओं में श्रेष्ठ, उत्तम है उसको (अद्रिभिः) आदर योग्य, निर्भय पुरुषो द्वारा (आ सुषाव) सब प्रकार के प्रजाजन अभिषिक्त करे । हे विद्वान् लोगो ! ऐसे ही (सोमम्) ऐश्वर्यवान्, वीर्यवान् (सुतम्) निष्णात पुरुष को (इतः) इस राष्ट्र में (परि सिञ्चत) सब ओर अभिषेक करो, उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा करो ।

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

भा०—तू (अदब्धः) कभी पीडित न होकर (नूनम्) निश्चय से (पुनानः) राज्य को दुःखदायी जनो से रहित, निष्कण्टक करता हुआ (अविभिः) राज्यरक्षक सैन्यो सहित (परि स्रव) सर्वत्र आ जा । तू (सुते चित्) अभिषिक्त पद पर (सुरभि-तरः) और अधिक उत्तम रीति से कार्य-सपादन करने वाला और अधिक सच्चरित्र होकर रह । (अप्सु) प्रजाओ के बीच (उत्तरम्) अन्यो से अधिक उत्कृष्ट गुणवान्, चरित्र-वान् (त्वा) तुझ को देखकर तेरी हम (श्रीणन्तः) सेवा करते हुए (त्वा) तुझे (अन्धसा गोभि.) अन्नो और गो-दुग्धो से (मदामः) तृप्त करे और (गोभि. मदामः) वाणियो से तेरी स्तुति करें ।

परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

भा०—जो व्यक्ति (देव-मादनः) सामान्य मनुष्यों और विद्वान् तेजस्वी जनों को प्रसन्न करने वाला, (क्रतुः) कर्म करने में कुशल, (इन्दुः) तेजस्वी, दयालु, (वि चक्षणः) विशेष तत्वदर्शी, तीक्ष्ण दृष्टि हो उसको (चक्षसे) प्रजा पर अध्यक्ष कार्य करने के लिये (परि सुवानः) अभिषिक्त किया जाता है ।

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! हे ज्ञानवन् ! तू (धारया पुनानः) उत्तम जलधारा के तुल्य वेदवाणी से पवित्र, अभिषिक्त एवं निष्णात होकर (वसानः) नियम से ब्रह्मचर्यपूर्वक रहता हुआ (अप· अर्षसि) आप्त-जनों को प्राप्त होता है । और (रत्न-धाः) रमणीय गुणों, ज्ञानों को रत्नों के तुल्य धारण करता हुआ (ऋतस्य योनिम्) सत्य, ज्ञान, न्याय, और तेज के स्थान वा पद को (आ सीदसि) विराज, प्राप्त कर, हे (देव) राजन् ! हे विद्वन् ! तू (उत्सः) झरने के तुल्य सत्य ज्ञान और उत्तम सुख का देने वाला, (हिरण्ययः) हित, रमणीय वचन कहने वाला हो ।

दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—(दिव्यम् ऊधः) आकाशस्थ ऊधस् अर्थात् मेघ से (मधु दुहानः) जल का दोहन कराने वाले (वाजी) वेगवान् वायु के तुल्य ज्ञानी और बलवान् पुरुष (दिव्यम्) श्रेष्ठ (प्रियम्) सर्वप्रिय (मधु दुहानः) मधु अर्थात् मधुर वचन और अन्न को (दिव्य ऊधः) भूमि के जलसिंचित स्थान से कृषकवत् प्राप्त करता हुआ, (प्रत्नम् सधस्थम्) श्रेष्ठ पद को (आ असदत्) प्राप्त करता है, और फिर वह (आ-पृच्छ्यम्) सबके पूछने योग्य, सर्वादरणीय, (धरुण) राष्ट्र-धारक पद को (अर्षति) प्राप्त करता

है। वह (वि-चक्षणः) विशेष द्रष्टा अध्यक्ष हो, (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा (धूतः) कम्पित और सुपरीक्षित हो। इति द्वादशो वर्गः ॥

पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) उत्तम अध्यक्ष ! तू (जागृविः) सदा जागरणशील और तू (प्रियः) सर्वप्रिय, (विप्रः) मेधावी, होने के कारण (अव्यः वारे) सर्वरक्षक सैन्यवर्ग के सर्वश्रेष्ठ अंश पर (परि पुनानः) अभिषिक्त होता हुआ, (अंगिरस्तमः) देह मे जीव नर के समान राष्ट्र-शरीर में सबसे अधिक तेजस्वी, (अभवः) हो। तू (नः) हमारे (यज्ञ) यज्ञ को (मध्वा मिमिक्ष) मधुर आनन्द से, सुख से सींच, बढा।

सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥

भा०—सोमः सर्वशास्ता प्रभु, (मीढ्वान्) मेघ के समान सुखों की वर्षा करने वाले पुरुष के समान सब जीव प्रजाओं का उत्पादक (पवते) जाना जाता है। वह (गातु-वित्-तम.) मार्ग, ज्ञान और वाणी के जानने और जनाने वालो मे सर्वश्रेष्ठ, गुरुओं का भी गुरु, (ऋषिः) सबका द्रष्टा, (विप्रः) ज्ञानदर्शी, (विप्रः) मेधावी, (विचक्षणः) विविध प्रकार से सर्वाध्यक्ष है। हे प्रभो ! (त्वं कवि अभवः) तू कवि, तत्वदर्शी है। तू (देव-वीतम.) प्रकाशमान सूर्यादि लोकों मे भी सबसे अधिक कान्तिमान् है। तू (दिवि) आकाश मे (सूर्यम् आ रोहयः) सूर्य को आकाश मे स्थापित करता है।

सोम उ पुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥८॥

भा०—(सोतृभिः) उपासना करने वाले जनों द्वारा (सुवानः) उपासना किया गया (सोमः) सर्वोत्पादक, सर्व-संचालक प्रभु (अवीनां स्नुभिः) सूर्यों के उन्नत तेजो से (अश्वया इव हरिता) वेग से जाने वाली, मनोहर कान्तियुक्त (धारया) धारण शक्ति से (अधि याति) सब पर शासन करता है। वह (मन्द्रया धारया) अति हर्षदायक धारा या वाणी से (अधि याति) सब पर शासन करता, सबको अपने वश करता है। इसी प्रकार अभिषिक्त राजा भी (अवीनां स्नुभिः) भेड़ के बालों से बने उत्तम पवित्र वस्त्रों से धारागति से अश्व द्वारा एक हर्षप्रद वाणी से सब पर शासन करता है।

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ६ ॥

भा०—वह प्रभु (गोमान्) उत्तम वाणियों का स्वामी, (गोभिः) वाणियो द्वारा ही (अनूपे) समीप के हृदय देश मे (अक्षाः) व्यापता है। वह (सोमः) सर्वप्रेरक प्रभु (दुग्धाभिः) कामनाओ को पूर्ण करने वाली वाणियो से (अक्षाः) व्यापता है। (सं-वरणानि) जल जिस प्रकार (समुद्रं न अग्मन्) समुद्र को प्राप्त होते है उसी प्रकार रसो के सागर प्रभु को समस्त (सं-वरणानि) उत्तम प्रार्थना-वचन प्राप्त होते है। (मन्दी) आनन्दवान् प्रभु ही (मदाय) परम सुख प्राप्त करने के लिये (तोषते) बार बार प्राप्त किया जाता है।

आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥ १० ॥ १३ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! तू (अद्रिभिः) आदर-योग्य गुरु जनों से (आ-सुवानः) शिक्षित होता हुआ और (अव्यया वाराणि तिरः) कान्तिरहित प्रकृति वा अविद्या के आवरणो को दूर

करता हुआ, (जनः पुरि न) पुर मे मनुष्य के समान (हरिः) कान्तिमान्, चित्ताकर्षक होकर तू (चम्वोः) प्राण अपान दोनो के आश्रय पर (पुरि विशत्) देहपुरी वा मस्तिष्क-रूप ब्रह्मपुरी मे प्रवेश करता हुआ, (वनेषु सदः दधिषे) सेवनीय अन्नादि के आश्रय पर अपने को धारण कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स मा॑मृजे ति॒रो अण्वा॑नि मे॒ष्यो॑ मी॒ळ्हे सप्ति॒र्न वा॑ज॒युः ।
अ॒नु॒मा॒द्यः॒ पव॑मानो मनी॒षिभि॒ः सोमो॒ विप्रे॑भि॒र्ऋक्व॑भिः ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह आत्मा (मेष्यः) अन्धकारयुक्त प्रकृति के (अण्वानि) सूक्ष्म २ बन्धनो को भी (तिरः) दूर कर (ममृजे) शुद्ध होजाता है। (मीढे सप्तिः न) वेगवान् अश्व के तुल्य (वाज-युः) बल, वेग और ऐश्वर्य चाहता हुआ, (पवमानः) पवित्र करता हुआ, (मनीषिभिः) बुद्धिमान् (विप्रेभिः) विद्वान् (ऋक्वभिः) स्तुतिकर्त्ता जनो द्वारा (अनुमाद्यः) प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है।

प्र सो॑म दे॒ववी॑तये॒ सिन्धु॒र्न पि॑प्ये॒ अर्ण॑सा ।
अं॒शोः पय॑सा मदि॒रो न जागृ॑वि॒रच्छा॒ कोशं॑ मधु॒श्चुत॑म् ॥ १२ ॥

भा०—(अर्णसा सिधुः न) जल से समुद्र के समान (देव-वीतये) देवों, विद्वानों और सूर्यादि लोको को व्यापने और प्रकाशित करने के लिये हे (सोम) सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (अर्णसा प्र पिप्ये) महान् ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। (अंशोः पयसा मदिरः न) सोमलता के रस से जिस प्रकार हर्षदायक दुग्धादि से युक्त होकर पात्र की ओर आता है, उसी प्रकार तू भी (जागृवि) सदा जागरण करता हुआ, जाग्रत् रूप होकर (अंशोः पयसा) व्यापक प्रभु के दिव्य रस से (मदिरः) अति आनन्दप्रद होकर (मधु-श्चुतम् कोशम्) आनन्द रस के देने वाले आनन्दमय कोश को (अच्छ) प्राप्त हो।

आ ह॑र्य॒तो अर्जु॑ने॒ अत्के॑ अव्यत प्रि॒यः सू॒नुर्न मर्ज्यः॑ ।
तमीं॑ हिन्वन्त्य॒पसो॒ यथा॒ रथं॑ न॒दीष्वा गभ॑स्त्योः ॥ १३ ॥

भा०—वह आत्मा (सूनुः नः प्रियः) पुत्र के समान प्यारा (मर्ज्यः) झाड़ पोंछ कर वा स्नानादि द्वारा शुद्ध करने योग्य (सूनुः) देहादि का प्रेरक, (प्रियः) अतिप्रिय, (हर्यतः) कान्तिमान्, (अर्जुने अत्के आ अव्यत) शुद्ध कान्तियुक्त रूप में प्रकट होता है । (अपसः) कार्यकुशल जन (यथा रथं हिन्वन्ति) जिस प्रकार रथ को वेग से चलाते है, उसी प्रकार वे (रथं) रसस्वरूप (तम् ईम् हिन्वन्ति) उसकी भी उपासना करते है उसी को (गभस्त्योः) प्राण अपान के आश्रय (नदीषु) नाड़ियों मे (हिन्वति) प्रेरित करते, उसी को खोजते और उसी का अभ्यास करते है ।

अ॒भि सोमा॑स आ॒यवः॒ पव॑न्ते॒ मद्यं॒ मद॑म् ।
स॒मु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑ मनी॒षिणो॑ मत्स॒रासः॑ स्व॒र्विदः॑ ॥१४॥

भा०—(समुद्रस्य विष्टपि) रसों के अपार सागर प्रभु परमेश्वर के, विना ताप के, परम शान्तिमय आश्रय मे (अधि) रह कर (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग मे चलाने वाले, (मत्सरासः) रसों से परितृप्त, तृष्णादि से रहित, (स्वः-विदः) सुखमय प्रकाशस्वरूप प्रभु को जानने और जनाने हारे, (सोमासः) वीर्यवान् (आयव) विद्वान् जन (मद्यम् मदम्) परम सुखकारी, अतिस्तुत्य, हर्षानन्दमय प्रभु को लक्ष्य कर (अभि पवन्ते) आगे बढ़ते है ।

तर॑त्समु॒द्रं पव॑मान ऊ॒र्मिणा॒ राजा॑ दे॒व ऋ॒तं बृ॒हत् ।
अर्षा॑न्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॒ प्र हि॑न्वा॒न ऋ॒तं बृ॒हत् ॥ १५ ॥ १४ ॥

भा०—(राजा देव) प्रकाशमान राजा के समान तेजस्वी, (देव.) नाना सुखों के चाहने वाला, परम आत्मा प्रभु (बृहत्) महान् (ऋतम्) सत्य

कारण रूप (समुद्रम्) सरिर-मय समुद्र को, (तरत्) पार कर जाता और प्राप्त होता है। (मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा) वह प्रभु मित्र, दिन और वरुण, रात्रि के तुल्य जगत् को धारण करनेवाले नियम से दिन-रात्रिवत् संसार की उत्पत्ति और प्रलय करता हुआ (बृहत् ऋतम् अर्षन्) बड़े भारी जगत् के कारण रूप प्रधान तत्व को उत्तम रीति से सञ्चालित करता, व्यक्त रूप में प्रकट करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६॥

भा०—(समुद्रियः) समस्त लोकों, रसों, सुखों और बलों का उद्गम-स्थान और आकर तथा महान् समुद्र और आकाश के तुल्य अनन्त प्रभु (राजा) समस्त जगत् का प्रकाशक, (देवः) सब का दाता, (हर्यतः) कान्तिमान्, सबकी इच्छा वा अभिलाषा का पात्र, सर्वप्रिय, (वि-चक्षणः) विशेषरूप से सबको देखने वाला परमेश्वर (नृभिः येमानः) ठीक २ मार्गों में ले जाने वाले बलों, प्राणों और विद्वानों द्वारा जगत् के लोकों, देहों और जीवों को व्यवस्थित किया करता है।

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १७ ॥

भा०—(मदः सोमः) आनन्दमय, सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु (सुतः) उपासित होकर (मरुत्वते इन्द्राय) नाना प्राणों के स्वामी जीव के लिये (सहस्र-धारः) सहस्रों धारा वाले मेघ के समान अनेक सुख, शान्ति का दाता होकर (पवते) उस पर कृपा करता है। (अव्यम् अति अर्षति) इस पार्थिव और प्राणमय आवरण से पार कर अन्तरात्मा में प्रकट होता है। (आयवः) उस तक पहुंचने वाले जन (तम् ईम् मृजन्ति) उसी को शोध लगाते हैं, उसी का परिष्कार करते हैं, उसी को वाणियों, और स्तुतियों से अलंकृत करते हैं।

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

भा०—वह (कविः) क्रान्तदर्शी, (सोमः) सर्वोत्पादक और सर्व-प्रेरक प्रभु (चमू पुनानः) आकाश और भूमि दोनो को प्रेरित करता हुआ (मतिं जनयन्) ज्ञान को प्रकट करता है, (देवेषु) ज्ञान-प्रकाश में युक्त और अन्यो को ज्ञान देने वाले विद्वानो मे (रण्यति) गुरु वा परि-व्राजकवत् उपदेश करता है, वह (अपः वसानः) प्रकृति के परमाणुओं और लोकों को आच्छादित करता हुआ, उनमें व्यापता हुआ, (वनेषु सीदन्) काष्ठो मे अग्नि के तुल्य (उत्-तरः) सबसे उत्कृष्ट होकर (गोभिः परि अव्यत) रश्मि-तुल्य ज्ञान का प्रकाश करता है। (१) इसी प्रकार (सोमः) सर्वप्रेरक विद्वान् परिव्राजक वा दीक्षित ज्ञानी पुरुष, (चमू पुनानः) प्राण-अपान दोनो को वा ज्ञान और कर्म की दोनों इन्द्रियो को पवित्र करता हुआ, (मति जनयन्) ज्ञान प्रकट करता हुआ शिष्यों मे उपदेश करे। वह (अपः वसानः) त्याग-दीक्षा काल मे जलो में रहकर (उत्तरः सीदन्) (वनेषु परि अव्यत) सर्वोत्कृष्ट रहकर भी वनो में निवास करे। (२) राजा के पक्ष मे—वनेषु रथेषु। गोभिः अश्वैः। देवेषु राजसु।

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति तॉ इहि ॥१९॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! हे (सोम) मेरे आत्मा के तुल्य प्रिय! (दिवे दिवे) दिनो दिन (अहम् तव सख्ये) मैं तेरे मित्र-भाव में (ररण) अति प्रसन्न होता हूं। (पुरूणि) मेरी इन्द्रियां ही (माम् नि चरन्ति) मेरा तिरस्कार करती है, (माम् अव चरन्ति) मुझे नीचा करके नाना भोग भोगती है, (परिधीन् तान्) चारो ओर से घेरे खड़े इन शत्रुओं को (अति इहि) अतिक्रमण करके तू उनको पराजित कर।

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्रु ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २० ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) मेरी आत्मा के तुल्य परात्मन् ! (अहम्) मैं (नक्तम् उत दिवा) रात और दिन, (सख्या) मित्रभाव बनाने के लिये (ते ऊधनि) तेरे समीप मे हा रहूँ । हे (बभ्रो) सबके पालन पोषण करने हारे ! (घृणा) दीप्ति से (तपन्तं) तपते (सूर्यम्) सूर्य को देख (शकुनाः इव) ऊपर उठकर उन्नत मार्ग से जाने वाले पक्षियो के तुल्य हम (अति पप्तिम) सब बन्धनों और कष्टो से पार पहुंच जावे । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ २१ ॥

भा०—हे (सुहस्त्य) उत्तम हस्त मे स्थित शक्ति वाले ! तू (समुद्रे मृज्यमानः) हृदय में महान् आकाशवत् विशाल, हृदयाकाश मे परिमार्जित सुसंस्कृत होता हुआ, (वाचम् इन्वसि) स्तुति वाणी को प्रेरित करता है । हे (पवमान) सर्वप्रेरक एवं परिसंस्कृत होनेहारे आत्मन् ! तू (पिशगं) तेजोयुक्त, दीप्तिमान् (पुरु-स्पृहं) बहुतो से चाहने योग्य, (बहुलं) अति अधिक, (रयिं) ऐश्वर्य को हमें प्रदान कर ।

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२॥

हे (सोम) सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (अव्यये) अविनाशी (वारे) सर्ववरणीय रूप मे (मृजानः) परिशुद्ध, (पवमानः) सबको पवित्र करता हुआ, (वृषा) सब सुखो का वर्षक होकर तू (वने अव चक्रदः) सेवनीय, परम सुखद रूप मे प्राप्त होता है । हे (पवमान) सर्वव्यापक, परिशुद्ध ! तू (गोभिः) वाणियो,द्वारा रश्मियो से सूर्य के तुल्य (अंजानः)

प्रकाशित होता हुआ (देवानाम्) विद्वानों, जीवों वा समस्त लोकों के (निःकृतम् अर्षसि) निःशेष रूप से किये उपासनादि कर्म वा हृदय स्थान को प्राप्त करता है।

पव॑स्व वाज॒सात॑येऽभि विश्वा॑नि॒ काव्या॑ ।
त्वं स॑मु॒द्रं प्र॑थ॒मो वि धा॑रयो दे॒वेभ्यः॑ सोममत्स॒रः ॥ २३ ॥

भा०—(वाज-सातये) ज्ञान प्रदान करने के लिये (विश्वानि काव्या अभि) समस्त विद्वानों के ज्ञान योग्य, ज्ञान-वाणियों को (अभि पवस्व) प्रदान कर। हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो ! (त्वं) तू (समुद्र) ज्ञान के अपार सागर को (प्रथमः) सर्वप्रथम होकर (मत्सरः) सबको आनन्ददायक होकर (देवेभ्यः विधारयः) विद्वानों को प्रदान करता है।

स तू प॑वस्व॒ परि॒ पार्थि॑वं॒ रजो॑ दि॒व्या च॑ सोम॒ धर्म॑भिः ।
त्वां विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्विचक्षण शु॒भ्रं हि॑न्वन्ति धी॒तिभिः॑ ॥ २४ ॥

भा०—हे (विचक्षण) विशेष ज्ञान के देखने हारे ! तू (पार्थिवं रजः परि) पृथिवी लोक के प्रति, (धर्मभिः) धारक बलों से (दिव्या) पृथिवी के प्रति आकाशीय बलों को मेघवत् इस देह के प्रति दिव्य सुखों को (परि पवस्व) प्राप्त करा। (त्वां शुभ्रम्) तुझ शुद्ध चेतन को लक्ष्य कर (विप्रासः) विद्वान् जन (मतिभिः धीतिभिः) ज्ञान वाणियों और कर्मों से (त्वां हिन्वन्ति) तेरी स्तुति करते तेरी, महिमा बढ़ाते हैं।

पव॑माना असृक्षत प॒वित्र॒मति॒ धार॑या ।
म॒रुत्व॑न्तो मत्स॒रा इ॑न्द्रि॒या हया॑ मे॒धाम॒भि प्रयां॑सि च ॥ २५ ॥

भा०—(मरुत्वन्तः) प्राणों से युक्त (पवमानाः) वेद वाणी द्वारा पवित्र होते हुए, विद्वान् जन (पवित्रं अति असृक्षत) सब बन्धनों को पार कर परम-पावन प्रभु को प्राप्त होते हैं। वे (मत्सरा) अति आनन्द युक्त (इन्द्रियाः) परमेश्वर को भजन करते हुए उसी में दत्तचित्त होकर

(हयाः) आगे बढते हुए (मेधाम् अभि) परम बुद्धि और (प्रयांसि अभि च असृक्षत) उत्तम अन्नो के तुल्य उत्तम कर्म-फलो का निर्माण करता है ।

अपो वसा॑नः परि॒ कोश॑मर्ष॒तीन्दु॑र्हियानः सो॒तृभिः॑ ।

ज॒नय॒ञ्ज्योति॑र्म॒न्दना॑ अवीवश॒द् गाः कृ॑ण्वा॒नो न नि॒र्णिज॑म् ॥२६॥१६

भा०—(सोतृभिः हियानः इन्दुः) उत्पन्न करने वाले माता पिता आदि से प्रेरित होता हुआ द्रवित शुक्र रूप जीव (अपः वसानः) सूक्ष्म जलीय अंशो वा प्राणो मे आच्छादित होकर (कोशम् परि अर्षति) गर्भ की ओर जाता है । (होतृभिः हियानः) उपासको से प्रेरित (इन्दुः) तेजोमय आत्मा, (अपः वसानः) आप्त जनो के बीच मे रहता हुआ, (कोशम् परि अर्षति) विशुद्ध आनन्दमय प्रभु को प्राप्त होता है। वह (ज्योतिः जनयन्) दीप्तिमय रूप को प्रकट करता हुआ (मन्दना॰ गाः कृण्वानः) आनन्दजनक स्तुति-वाणियो को करता हुआ (निः निजम् कृण्वानः) अपने अति विशुद्ध रूप को प्रकट करता है । इति षोडशो वर्गः ॥

[१०८]

ऋषिः—१, २ गौरिवीतिः । ३, १४—१६ शक्तिः । ४, ५ उरुः । ६, ७ ऋजिष्वा । ८, ९ ऊर्द्धसद्मा । १०, ११ कृतयशाः । १२, १३ ऋणञ्चयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्द.—१, ६, ११ उष्णिक् ककुप् । ३ पादनिचृदुष्णिक् । ५, ७, १५ निचृदुष्णिक् । २ निचृद्बृहती । ४, ९, १०, १२ स्वराड् बृहती । ८, १६ पंक्तिः । १४ निचृत्पंक्तिः । १३ गायत्री ॥ द्वाविंशत्यृच सूक्तम् ॥

पव॑स्व॒ मधु॑मत्तम॒ इन्द्रा॑य सोम क्रतु॒वित्त॑मो॒ मदः॑ ।
महि॑ द्यु॒क्षत॑मो॒ मदः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) सोम ! सब को सन्मार्ग मे प्रेरणा देने हारे ! हे ऐश्वर्यवन्, हे स्वय आत्मन् ! तू (मधुमत्-तमः) अतिमधुर रस

से युक्त है। तू (क्रतुवित्तमः) कर्मों और ज्ञानों को जानने वालों में श्रेष्ठ है। तू (मदः) स्तुत्य है और तू (द्युक्ष-तमः) अति तेजोमय और (मदः) आनन्दस्वरूप है तू (इन्द्राय) इस जीव के लिये (अति पवस्व) अनेक सुख प्रदान कर।

यस्य॑ ते पी॒त्वा वृ॑ष॒भो वृ॑षा॒यते॒ऽस्य पी॒ता स्व॒र्विदः॑।
स सु॑प्रके॑तो अ॒भ्य॑क्रमी॒दिषोऽच्छा॒ वाजं॒ नैत॑शः ॥ २ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे परम रस का पान करके, (वृषभः) बलवान् पुरुष भी सूर्यवत् (वृषायते) मेघ तुल्य आनन्द-ज्ञान-जल की अन्यों के प्रति वृष्टि करता है। (अस्य स्वः-विदः) इस सुख प्राप्त करने वा कराने वाले की रक्षा में (सः) वह (सु-प्र-केतः) उत्तम ज्ञानवान् जीव (एतशः वाजं नः) संग्राम को जाने वाले अश्व के तुल्य (इषः अभि अक्रमीत्) नाना इच्छायोग्य पदार्थों और लोकों को प्राप्त होता है।

त्वं ह्यं॑ग दैव्या॒ पव॑मान॒ जनि॑मानि द्यु॒मत्त॑मः।
अ॒मृ॒त॒त्वाय॑ घो॒षयः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(अंग) हे (पवमान) परम पावन ! (त्वं हि) निश्चय तू ही (द्युमत्-तमः) अति तेजोमय, दीप्तिमान्, (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले जीवों को (अमृतत्वाय घोषयः) अमृत पद, मोक्ष प्राप्ति का उपदेश करता है।

येना॒ नव॑ग्वो द॒ध्यङ्ङ॑पोर्णु॒ते येन॒ विप्रा॑स आपि॒रे।
दे॒वानां॑ सु॒म्ने अ॒मृत॑स्य॒ चारु॑णो॒ येन॒ श्रवां॑स्यान॒शुः ॥ ४ ॥

भा०—(येन) जिस के द्वारा (दध्यङ्) धारण और ध्यान का अभ्यासी, (नवग्वः) उत्तम प्रशस्त मार्ग से जाने वाला, (चारुण अमृतस्य) भोक्ता अमृत, आत्मा के स्वरूप को (अप ऊर्णुते) खोलता है, (येन) जिससे (विप्रासः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (देवानां) विद्वानों

वा इन्द्रियों के (सुम्ने) सुख में (अमृतस्य चारुणः) अमर फल के भोक्ता आत्मा के (श्रवांसि) ज्ञानों को प्राप्त करते है। और (येन श्रवांसि आनशुः) जिससे वे नाना ज्ञान प्राप्त करते है वही उनको (अमृतत्वाय घोषयः) अमृत होने का उपदेश करता है।

एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः।
क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(क्रीड़न् अपां ऊर्मिः इव) खेलते जलों के तरंग के तुल्य (एषः) यह (स्यः) वह आत्मा, (धारय सुतः) धारा, वेदवाणी द्वारा उपासित होकर (अव्यः वारेभिः) परम रक्षक के श्रेष्ठ वरण योग्य उत्तम साधनों से (पवते) प्राप्त होता है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जिस प्रकार सूर्य (ओजसा) तेज, पराक्रम से (अश्मनः अन्तः) मेघ में से (गाः अप्याः उस्रियः) वेग से जाने वाली जल की धाराओं को (निः अकृन्तत्)निकाल कर बाहर खण्ड २ करता है, उसी प्रकार (य.) जो प्रभु (ओजसा) अपने बल से (अश्मनः अन्तः) भोक्ता आत्मा के अन्तःकरण से (उस्रियाः) ऊपर को स्वयं आने वाली (अप्याः) कर्म प्रवृत्तियों और (गाः) नाना स्तुति वाणियों को प्रेरित करता है और (गव्यं व्रजं) वाणियों के व्यापने योग्य मार्ग और (गव्यं व्रजम्) जीवों के चलने योग्य मार्ग को (अभि तत्निषे) बनाता है, विस्तृत करता है, (धृष्णो) हे दुष्टों के नाशक प्रभो !!वह तू (वर्मी-इव) कवचधारी वीर पुरुष के समान (आ रुज) बाधक कारणों को दूर कर।

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो! आप लोग (अश्व न स्तोमं) अश्व के समान वेगवान्, बलवान्, व्यापक, स्तुतियोग्य, (अप्-तुरम्) प्रकृति परमाणुओं के चलाने वाले, (रजः-तुरम्) समस्त लोक लोकान्तरों के संचालक (वनक्रक्षम्) तेज, भोग्य ऐश्वर्यो, लोकों में व्यापक, काष्ठों में अग्नि के तुल्य अव्यक्त, (उद-प्रुतम्) जल से पूर्ण समुद्र वा जलाशय के तुल्य प्रभु की (आ सोत परि सिंचत) आदर से उपासना करो और उसके रस से ही अपने को बढाओ।

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥

भा०—(सहस्र धारम्) सहस्रो धाराओं वाले मेघ के तुल्य सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न, (वृषभम्) समस्त सुखों के वर्षक, (पय-वृधम्) अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों को बढ़ाने वाले, (जन्मने देवाय प्रियम्) जन्म लेने वाले देव, आत्मा को तृप्त करने वाले की उपासना करो, (य) जो (ऋत-जातः) ऋत, सत्यज्ञान रूप में प्रकट होने वाले (ऋतेन) अपने ज्ञान, बल और सामर्थ्य से (देवः राजा) चमचमाते सूर्य वा राजा के तुल्य (बृहत् ऋतम् वावृधे) बडे भारी सत्य ज्ञान को बढाता, व्यक्त जगत् को फैलाता है। (२) पक्षान्तर में—राजा (ऋतेन) ज्ञानमय वेद के द्वारा (बृहत् ऋतं वि वावृधे) बड़े भारी सत्य-न्याय की वृद्धि करे।

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः।
वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥

भा०—हे (इषः पते) अन्नों और समस्त कामनाओं के स्वामिन्! तू (बृहत्) बड़े भारी (द्युम्नं) तेज और (यश.) कीर्त्ति को (अभि दिदीहि) लक्ष्य कर, प्रकाश कर (देवयु) देवों, विद्वानों और जीवों की कामना करने वाला उनका प्रिय स्वामी, तू हे (देव) दान देनेहारे दात!

तू (मध्यमं कोशम्) बीच के खज़ाने को अन्तरिक्षस्थ मेघ के तुल्य (वि युव) खोलदे। (२) सब इच्छाओं का स्वामी होने से आत्मा 'इषःपति' है। इन्द्रियों का स्वामी होने से 'देवयु' है। मनोमय कोश मध्यकोश है, प्रथम कोश अन्नमय और अन्तिम कोश आनन्दमय है। प्राणमय, विज्ञानमय और मनोमय बीच के कोश हैं जो आत्म-प्रत्यक्ष में बाधक हैं। सो इच्छा-शक्ति की तीव्रता अर्थात् एकाग्रता से उनका भी बन्धन टूटता है और आत्मा का स्वच्छ तेजोमय रूप प्रकट होता है। सेनाएं 'इषः' है उनका पति 'इषःपति' सेनापति 'सोम' है। वह प्रतापमय यश के लिये चमके विजयाभिलापियों का स्वामी 'देवयु' है। विजिगीषु होने से 'देव' है। वह मध्यम कोश को पृथक् करे और युद्ध करे।

आ व॑च्यस्व सुदक्ष चम्वोः॑ सुतो वि॒शां वह्नि॒र्न वि॒श्पतिः॑।
वृ॒ष्टिं दि॒वः प॑वस्व री॒तिम॒पां जिन्वा॒ गवि॑ष्टये॒ धियः॑ ॥१०॥१८॥

भा०—हे (सु-दक्ष) उत्तम बलशालिन्! उत्तम तेजस्विन्! तू (सुतः) अभिषिक्त होकर (चम्वोः) दो मुख्य सेनाओं के ऊपर (आ-वच्यस्व) अध्यक्ष पद पर आ और (विशां वह्निः) प्रजाओं के बीच उनका कार्य-भार अपने ऊपर लेने हारा, उनको वहन करता हुआ, (विश्पति न) प्रजाओं के स्वामी के तुल्य (दिवः वृष्टि) आकाश से बरसती वृष्टि को मेघ के तुल्य (दिवः) तेज की (वृष्टिं) शत्रु को काट गिराने वाली सेना को (पवस्व) प्रेरित कर और (अपा रीतिम्) जलों की धारा के तुल्य (अपा रीतिम्) आप्त जनों की शैली, परिपाटी को प्रवृत्त कर। (गविष्टये) भूमि के इच्छुक कृषकवत् भूमि के प्रार्थी प्रजा-जन के उपकारार्थ (धियः जिन्व) नाना कर्मों को प्रवृत्त कर। (२) इसी प्रकार परमेश्वर 'प्रजापति' है, वह (चम्वोः) आकाश और भूमि में व्याप रहा है। वह आकाश से जलों की धारा और सुखमय वर्षा करे। और सर्व

जन्तुओं के उपकारार्थ वा स्तुति-वाणी के निमित्त हमारी (धियः) बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥

भा०—(एतम्) उस (त्यं) परम (सहस्र-धारं) मेघ के तुल्य सहस्रों धारक शक्तियों के स्वामी, सहस्रों वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य, (वृषभं) मेघवत् अनेक, अनन्त सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाले प्रभु से (दिवः) नाना कामना करने वाले पुरुष (दुहुः) रस-आनन्द का दोहन करते और अपने नाना मनोरथ पूर्ण करते हैं । वे (विश्वा वसूनि बिभ्रतम्) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाले उसी प्रभु को प्राप्त कर, (विश्वा वसूनि दुहुः) समस्त ऐश्वर्य उसी से प्राप्त करते हैं ।

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

भा०—(सः) वह (अमर्त्यः) अमरणधर्मा, अविनाशी, प्रभु (जनयन्) जगत् को उत्पन्न करता हुआ ही (वृषा) वीर्यसेक्ता पिता के समान (वि जज्ञे) विशेष रूप से जाना जाता है । वह (ज्योतिषा) अपने तेज से (प्र-तपन्) सूर्यवत् तपता हुआ (तमः वि जनयन्) अन्धकार को दूर करता है । वह (कविभिः सु-स्तुतः) विद्वान् क्रान्तदर्शी जनों से भली प्रकार स्तुति को प्राप्त करता और (निः-निजं दधे) अपना विशुद्ध रूप धारता है । (अस्य दंससा) इसके ही कर्म-सामर्थ्य से (त्रि-धातु) यह जगत् तीन लोकों में तीन गुणों से तीन दोषों से इस देहमय धारित है ।

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वसूनां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यों, जनो और लोको का स्वामी वा उत्पादक है, (यः रायां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यो और धनो का स्वामी है और (यः इडानां आनेता) जो समस्त प्राणियो का प्रवर्त्तक, नायक है और (यः सुक्षितीनां सुन्वे) जो समस्त प्रजाओ का शासक है (सः सोमः) वही सर्वोत्पादक प्रभु, सर्वशासक प्रेरक, सर्वैश्वर्यवान् 'सोम' 'परमेश्वर' कहाने योग्य है ।

यस्य॑ न॒ इन्द्रः॒ पिबा॒द्यस्य॑ म॒रुतो॒ यस्य॑ वार्य॒मणा॒ भगः॑ ।
आ येन॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ करा॑मह॒ एन्द्र॒मव॑से म॒हे ॥ १४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके वल से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हमारा (पिवात्) पालन करता है । अथवा (यस्य) जिसके दिये को (नः इन्द्रः पिवात्) हमारा आत्मा वा राजा पान करता, उपभोग करता है, (यस्य वा मरुतः) और जिसके दिये ऐश्वर्य को ये प्राणगण वा मनुष्य जन भोग करते हैं, और (यस्य वा अर्यमणा भगः) जिसके ऐश्वर्य को शत्रुओ का नियन्ता ऐश्वर्यवान् राजा भी भोगता हे (येन) जिसके द्वारा हम लोग (मित्रावरुणौ) मित्र स्नेही जन और वरुण श्रेष्ठ जनो को (आ करामहे) प्राप्त करते है और जिसकी कृपा से हम (अवसे महे) अपनी वडी भारा रक्षा के लिये (इन्द्रम् आकरामहे) अपने तेजोमय आत्मा वा तेजस्वी स्वामी वा गुरु को स्वीकार करते है वही 'सोम' है ।

इन्द्रा॑य सोम॒ पात॑वे॒ नृभि॑र्य॒तः स्वा॑यु॒धो म॒दिन्त॑मः ।
पव॑स्व॒ मधु॑मत्तमः ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे उत्तम शासन करने हारे ! हे अभिषेक-योग्य ! तू (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्यप्रद राज्य-पद के पालन के लिये, (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित होकर (नृभिः यतः) नायक उत्तम जनो से सुनयत, नियमबद्ध और यत्नवान होकर (मदिन्तमः)

जन्तुओं के उपकारार्थ वा स्तुति-वाणी के निमित्त हमारी (धियः) बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥

भा०—(एतम्) उस (त्यं) परम (सहस्र-धारं) मेघ के तुल्य सहस्रों धारक शक्तियों के स्वामी, सहस्रों वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य, (वृषभं) मेघवत् अनेक, अनन्त सुखों, ऐश्वर्यों की वर्षा करने वाले प्रभु से (दिवः) नाना कामना करने वाले पुरुष (दुहुः) रस-आनन्द का दोहन करते और अपने नाना मनोरथ पूर्ण करते हैं । वे (विश्वा वसूनि बिभ्रतम्) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाले उसी प्रभु को प्राप्त कर, (विश्वा वसूनि दुहुः) समस्त ऐश्वर्य उसी से प्राप्त करते हैं ।

वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥

भा०—(सः) वह (अमर्त्यः) अमरणधर्मा, अविनाशी, प्रभु (जनयन्) जगत् को उत्पन्न करता हुआ ही (वृषा) वीर्यसेक्ता पिता के समान (वि जज्ञे) विशेष रूप से जाना जाता है । वह (ज्योतिषा) अपने तेज से (प्र-तपन्) सूर्यवत् तपता हुआ (तमः वि जनयन्) अन्धकार को दूर करता है । वह (कविभिः सु-स्तुतः) विद्वान् क्रान्तदर्शी जनों से भली प्रकार स्तुति को प्राप्त करता और (निः-निजं दधे) अपना विशुद्ध रूप धारता है । (अस्य दंससा) इसके ही कर्म-सामर्थ्य से (त्रि-धातु) यह जगत् तीन लोकों में तीन गुणों से तीन दोषों से इस देहवत् धारित है ।

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वसूनां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यो, जनो और लोको का स्वामी वा उत्पादक है, (यः रायां सुन्वे) जो समस्त ऐश्वर्यो और धनो का स्वामी है और (यः इडानां आनेता) जो समस्त प्राणियो का प्रवर्त्तक, नायक है और (यः सुक्षितीनां सुन्वे) जो समस्त प्रजाओं का शासक है (सः सोमः) वही सर्वोत्पादक प्रभु, सर्वशासक प्रेरक, सर्वैश्वर्यवान् 'सोम' 'परमेश्वर' कहाने योग्य है।

यस्य॑ न॒ इन्द्रः॒ पिबा॒द्यस्य॑ म॒रुतो॒ यस्य॑ वार्य॒मणा॒ भगः॑ ।
आ येन॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ करा॑मह॒ एन्द्र॒मव॑से म॒हे ॥ १४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके बल से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हमारा (पिवात्) पालन करता है। अथवा (यस्य) जिसके दिये को (न इन्द्रः पिवात्) हमारा आत्मा वा राजा पान करता, उपभोग करता है, (यस्य वा मरुतः) और जिसके दिये ऐश्वर्य को ये प्राणगण वा मनुष्य जन भोग करते हैं, और (यस्य वा अर्यमणा भगः) जिसके ऐश्वर्य को शत्रुओं का नियन्ता ऐश्वर्यवान् राजा भी भोगता हे (येन) जिसके द्वारा हम लोग (मित्रावरुणौ) मित्र स्नेही जन और वरुण श्रेष्ठ जनो को (आ करामहे) प्राप्त करते है और जिसकी कृपा से हम (अवसे महे) अपनी वडी भारी रक्षा के लिये (इन्द्रम् आकरामहे) अपने तेजोमय आत्मा वा तेजस्वी स्वामी वा गुरु को स्वीकार करते है वही 'सोम' है।

इन्द्रा॑य सोम॒ पात॑वे॒ नृभि॑र्य॒तः स्वा॑यु॒धो म॒दिन्त॑मः ।
पव॑स्व॒ मधु॑मत्तमः ॥ १५ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे उत्तम शासन करने हारे! हे अभिषेक-योग्य! तू (इन्द्राय पातवे) ऐश्वर्यप्रद राज्य-पद के पालन के लिये, (सु-आयुध) उत्तम शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित होकर (नृभिः यतः) नायक उत्तम जनो से सुसयत, नियमबद्ध और यत्नवान होकर (मदिन्तमः)

सबसे अधिक हर्षदायी (मधुमत्-तमः) अति बलशाला और अति मधुर वचन वाला होकर (पवस्व) सुख प्रदान कर ।

इन्द्र॑स्य॒ हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श समु॒द्रमि॑व॒ सिन्ध॑वः ।
जुष्टो॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय वा॒यवे॑ दि॒वो वि॑ष्ट॒म्भ उ॑त्त॒मः ।१६।१९।

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) नदियां जिस प्रकार समुद्र को प्राप्त होती और उसी मे प्रवेश कर जाती है उसी प्रकार हे (सोम) उत्पन्न होने हारे जीव ! तू भी (सोम-धानम्) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले परम सामर्थ्य रूप वीर्य के एकमात्र आश्रय (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (हार्दि) हृदयंगम मनोहर रूप मे (आ विश) प्रवेश कर । वह परमेश्वर (मित्राय) स्नेही, (वरुणाय) वरण करने वाले (वायवे) ज्ञानी पुरुष के लिये (जुष्टः) प्रीतियुक्त (दिवः) ज्ञान और प्रकाश तथा सू ॑ और महान् आकाश का भी (उत्तमः) सर्वोत्तम (वि-स्तम्भः) विशेप रूप में, स्तम्भ के तुल्य ही थामने वाला, सब का महान् आश्रय है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१०९]

अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा ऋषयः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८, १०, १३, १४, १५, १७, १८ आर्ची भुरिग्गायत्री । २—६, ९, ११, १२, १९, २२ आर्ची स्वराड् गायत्री । २०, २१ आर्ची गायत्री । १६ पादनिचृद् गायत्री ॥ द्वाविंशत्यृच सूक्तम् ॥

परि॒ प्र ध॒न्वेन्द्रा॑य सोम स्वा॒दुर्मि॒त्राय॑ पू॒ष्णे भगा॑य ॥ १ ॥

भा०—हे (सोम) बलवन् ! जीव ! तू (इन्द्राय) तत्वदर्शी ऐश्वर्ययुक्त तेजस्वी (मित्राय) स्नेही (पूष्णे) पोपक (भगाय) सेवनीय सुखप्रद प्रभु को प्राप्त करने के लिये (परि प्र धन्व) आगे बढ ।

इन्द्र॑स्ते सोम सु॒तस्य॑ पेयाः क्रत्वे॒ दक्षा॑य॒ विश्वे॑ च दे॒वाः ॥२॥

भा०—हे (सोम) जीवात्मन् वा जीव गण! (सुतस्य ते) उत्पन्न हुए तेरी (इन्द्रः पेयाः) ऐश्वर्यप्रद स्वामी जगदीश्वर रक्षा करे। और (क्रत्वे) तेरे ज्ञान प्राप्त करने और (दक्षाय) बल-उत्साह की वृद्धि करने के लिये (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् गण भी तेरा पालन करे। (२) सोम वनस्पति अन्नादि को ज्ञान बल की वृद्ध्यर्थ (इन्द्रः) जीवगण और विद्वान् (पिबन्तु) भोग करे वा पालन करे।

एवामृता॑य म॒हे क्षया॑य॒ स शु॒क्रो अ॑र्ष दि॒व्यः पी॒यूषः॑ ॥३॥

भा०—हे (सोम) विद्वान्, आत्मन्! (सः) वह (शुक्रः) अति कान्तिमान्, शुद्ध तेजोयुक्त (दिव्यः) दिव्य, (पीयूषः) पान करने योग्य, परम रसस्वरूप प्रभु परमेश्वर है। उस (महे अमृताय) महान् अमृत के लिये और (महे क्षयाय) बड़े भारी प्रासाद के तुल्य परम शरण्य प्रभु को प्राप्त करने के लिये (एव) ही तू (अर्ष) आगे बढ़, उसको प्राप्त करने का उद्योग कर।

पव॑स्व सोम म॒हान्त्स॑मु॒द्रः पि॒ता दे॒वानां॒ विश्वा॒भि धाम॑ ॥४॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभो! तू (देवानां पिता) समस्त तेजोमय सूर्य आदि लोकों का पिता पालक है, (समुद्रः) समुद्र वा आकाश के समान व्यापक है, तू (विश्वा धाम) समस्त लोकों में (अभि पवस्व) सुखों की वर्षा कर। (२) हे (सोम) जीव! (समुद्रः) परमेश्वर और (विश्वा धाम अभि) समस्त लोकों में आकाशवत् व्यापक और सबका पालक है, तू सर्वत्र निर्भय होकर (अभि पवस्व) विचर।

शु॒क्रः प॑वस्व दे॒वेभ्यः॑ सोम दि॒वे पृ॑थि॒व्यै शं च॑ प्र॒जायै॑ ॥५॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक! हे प्रभो! तू (शुक्रः) देदीप्यमान

सूर्यवत्, जलवत्, शुद्ध वायुवत् आशु कर्मकारी और सर्वत्र गतिदायक है, तू (देवेभ्यः पवस्व) सूर्यादि लोकों के हितार्थ व्याप, उनको शक्ति दे, (दिवे पृथिव्यै, प्रजायै च शम्) आकाश, पृथिवी और प्रजाओं को शान्ति (पवस्व) प्रदान कर ।

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥६॥

भा०—हे प्रभो ! तू (दिवः धर्त्ता असि) आकाश का, सूर्य का वा तेज का धारण करने वाला, (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमान् (पीयूषः) दुष्टों का नाशक, और साथी सज्जनों से पान करने योग्य, रस के तुल्य है । तू (सत्ये) सत् प्रकृति से उत्पन्न (विधर्मन्) विशेष रूप से धारण करने योग्य इस विश्व में (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् (धर्त्ता असि) धारण करने हारा है ।

पवस्व सोमद्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक (पूर्व्यः) तू सब से पूर्व एवं पूर्ण, अन्यों को पालन करने वाला, (द्युम्नी) तेजस्वी, यशस्वी, ऐश्वर्य का स्वामी (महान्) बड़े २ (अवीनाम्) सूर्यों को भी (सु-धारः) सुख से धारण करने वाला है । वह तू (पवस्व) हमें प्राप्त हो, (अनु-पवस्व) हमपर अनुग्रह कर ।

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥

भा०—(नृभिः) मनुष्यों द्वारा (येमानः) यमनियमादि द्वारा साधित, (जज्ञानः) जाना गया वा प्रकट किया गया, (पूतः) पवित्र, (मन्द्रः) अति हर्षदायक, (स्वः-वित्) सर्वज्ञ, एवं प्रकाश और सुख का देने वाला है । वह प्रभु (विश्वानि क्षरत्) समस्त सुख प्रदान करे ।

इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥

भा०—वह (इन्दुः) देदीप्यमान (प्रजाम् उराणः) महान्, अनेक कार्य करने वाला, प्रजा का उत्पन्न करने वाला और बहुत से

(पुनान.) सब को पवित्र करने वाला प्रभु (नः) हमारे (विश्वानि द्रविणानि) समस्त ऐश्वर्य (करत्) उत्पन्न करे ।

पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय १०।२०

भा०—हे (सोम) सर्वैश्वर्यवन् ! सर्वप्रेरक प्रभो ! तू (निक्तः अश्वः न) जुते अश्व के समान, (वाजी) वेगवान्, ज्ञानवान् और बलवान् है । तू (क्रत्वे) ज्ञान, (दक्षाय) बल और (धनाय) धन प्राप्त करने के लिये (पवस्व) हमपर अनुग्रह कर । इति विंशो वर्गः ॥

तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभो ! (सोतारः) उपासक लोग (ते मदाय) तेरे परमानन्द को प्राप्त करने के लिये और (ते महे द्युम्नाय) तेरे महान् तेज और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (तम्) उस अनिर्वचनीय, (रसम्) रसस्वरूप, (सोमम्) सर्वोत्पादक तुझ को (पुनन्ति) प्राप्त होते है , तेरा परिशोध करते है ।

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम्॥१२॥

भा०—वे (शिशुम् जज्ञानम्) उत्पन्न होते बालक के तुल्य, सर्वत्र देहो और हृदयो मे व्यापक (सोम) सर्वोत्पादक और (हरिं) सर्व दुःखहारी (इन्दुम्) तेजोमय प्रभु को (देवेभ्यः) सब मनुष्यो के कल्याण के लिये (पवित्रे) पवित्र हृदय मे, पवित्र कार्य मे (मृजन्ति) पवित्र (अभिषेक) करते. उसका ध्यान, अभ्यास और उत्तम स्तुति करते हैं ।

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥

भा०—(इन्दुः) तेज.स्वरूप, इस देह की ओर जाने वाला, (चारु) कर्मफल का भोक्ता (कवि) स्तुति करने वाला, जीव वा क्रान्तदर्शी विद्वान् साधक (मदाय) आनन्दस्वरूप (भगाय) ऐश्वर्यवान् प्रभु

को प्राप्त करने के लिये (अपाम् उपस्थे) प्राणों के बल पर (पविष्ट) अपने को पवित्र करे। वह प्राणायाम द्वारा साधना करे।

विभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥१४॥

भा०—वह (इन्द्र) उस ऐश्वर्यवान्, सब विघ्नों के नाशक प्रभु, परमेश्वर का (चारु नाम विभर्त्ति) सुन्दर नाम लेता है, धारण करता है, (येन) जिससे (विश्वानि वृत्रा जघान) वह समस्त विघ्नों का नाश कर देता है।

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥

भा०—(नृभिः सुतस्य) नेता, उत्तम मनुष्यों से पूजित, सस्कृत और (गोभिः श्रीतस्य) उत्तम वाणियों द्वारा सेवित, (अस्य) इस के परम रस का (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोग पान करते हैं।

प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१६॥

भा०—वह (सुवानः) उत्तम रीति से उपासना और प्रार्थना किया गया, (सहस्र-धारः) सहस्रों धारक शक्तियों से सम्पन्न अनेक वेद-वाणियों का आश्रय वा सहस्र अर्थात् समस्त जगत् को धारण करने वाला (पवित्रम्) व्यापक, परम पवित्र, (अव्यम्) अविनाशी, सर्वरक्षक (वारम्) सर्वश्रेष्ठ रूप वा सामर्थ्य को (प्र अक्षाः) प्राप्त करता है।

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥

भा०—(सः) वह (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान्, (सहस्र-रेताः) सहस्रों और सर्वाधिक बलयुक्त, वीर्यवान्, (अद्भिः) जलों के तुल्य, आप्त जनों से (मृजानः) विवेचित, (गोभिः श्रीणानः) दुग्ध-धाराओं के तुल्य वेदवाणियों से सुसंस्कृत होता हुआ (अक्षाः) व्यापता और प्रकट होता है।

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सोम) प्रयत्नशील साधक! तू (अद्रिभिः) दृढ आचारवान्, आदर योग्य (नृभिः) सन्मार्ग से लेजाने वाले गुरुजनों से (सुतः) प्रेरित होकर (येमानः) यम नियम का पालन करता हुआ, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (कुक्षौ) बीच वा तत्वदर्शी गुरु के विद्यामय गर्भ मे (प्र याहि) आगे, सन्मार्ग मे गमन कर।

असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥ १६ ॥

भा०—(सहस्र-धारः) सहस्रों, शक्तियों वा दृढ वाणी वाला, (वाजी) ज्ञानी, बलवान्, (सोमः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्राय) इन्द्र, प्रभु, परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (पवित्रम्) अपने अन्तःकरण को पवित्र करने के साधन-कलाप को (तिरः असर्जि) प्राप्त करे।

अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥ २० ॥

भा०—साधक लोग (एनम्) उस (इन्दुम्) प्रभु की ओर द्रवित होने वाले आत्मा को (वृष्णः) परम सुखवर्षी (इन्द्राय मदाय) परमेश्वर के परमानन्द को प्राप्त करने के लिये (मध्वः रसेन अञ्जन्ति) ज्ञान-मधु के रस से प्रकाशित करते हैं।

देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥

भा०—वे साधक जन, हे सोम! आत्मन्! (अपः वसानम्) कर्मों के वासनामय लिङ्ग शरीर को धारण करने वाले (हरिम्) कान्तियुक्त (त्वा) तुझ को (देवेभ्यः पाजसे) देवों की बल-सिद्धि के लिये (मृजन्ति) परिष्कृत करते हैं।

इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥२२॥२१॥

भा०—(इन्दुः) इस आत्मा को (इन्द्राय) परमेश्वर के प्राप्त्यर्थ ही (तोशते) तप द्वारा पीडित किया जाता है, (नि तोशते) नियमों द्वारा क्लेशित किया जाता है, (श्रीणन्) वह सेवा करता हुआ ही

(उग्रः) बलशाली होकर (अपः रिणन्) नाना कर्म करता है । इत्ये-कोनविंशो वर्गः ॥

[११०]

त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १२ निचृदनुष्टुप् । ३ विराटनुष्टुप् । १०, ११ अनुष्टुप् । ४, ७, ८ विराड्बृहती । ५, ६ पादनिचृद् बृहती । ९ बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥

भा०—वनस्थ वा संन्यस्त परिव्राजक के कर्त्तव्य—हे विद्वन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान लाभ करने और कराने के लिये (परि प्र धन्व) परिव्राट् होकर चारों ओर भ्रमण कर । और (सक्षणिः) सहनशील होकर (वृत्राणि परि) विघ्नों वा बाधक कारणों को भी नाश करने के लिये परिव्राट् के तुल्य हो । तू वीर के समान ही (ऋणयाः) देव पितृ आदि के ऋणों से मुक्त होकर (द्विषः) समस्त द्वेष करने वाले वा द्वेष-भावों को पार करने वा तरने के लिए (न. ईयसे) हमें प्राप्त हो ।

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! व्रतनिष्ठ ! अभिषिक्त ! (त्वां सुतम् अनु) तुझ अभिषिक्त दीक्षित के साथ ही हम भी (मदामसि) प्रसन्न होते हैं । हे (पवमान) पवित्र एवं पावन ! तू (महे) बड़े (स-मर्य-राज्ये) मनुष्यों सहित राज्य में राजा के तुल्य (वाजान् अभि) ज्ञानों और ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (प्र गाहसे) आगे बढ़ । (२) इसी प्रकार राजा भी अभिषिक्त हो, उसके साथ प्रजा भी प्रसन्न हो । वह मनुष्यों से बने

राज्य मे शत्रु-विजयार्थ सैन्यो के साथ देश-देशान्तर का विजय करे। (३) परमेश्वर उपासित होने से 'सुत' है, जीवमय जगत् रूप राज्य मे समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ ३ ॥

भा०—हे (पवमान) सब को पवित्र करने और विश्व में व्यापने वाले ! तू (वि-धारे) विविध लोकों को कारण करने वाले अन्तरिक्ष मे (शक्मना) अपनी महान् शक्ति से (सूर्यम् अजीजनः) सूर्य को प्रकट करता है। और (पयः) पोषक अन्न और जल को भी उत्पन्न करता है। और (पुरन्ध्या) विश्व के पोषक बल से और (गो-जीरया) पृथ्वी और रश्मियो को प्रेरित करने वाली शक्तियो से (रंहमाणः) सञ्चालित करता है। (२) इसी प्रकार राजा और विद्वान् वाणी और बुद्धि से यत्न करते है और वे तेजस्वी पुरुष को विशेष प्रजापालक पद पर स्थापित करे।

अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अमृत) अविनाशिन् ! हे दीर्घजीविन् ! तू (मर्त्येषु) मनुष्यो मे (धर्मन्) धर्म मे स्थित होकर (अमृतस्य) अविनाशी, कभी न नष्ट होने वाले (चारुणः) अति उत्तम, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान को (अजीजनः) प्रकट कर। और (सदा) सदा (वाजम् सनिष्यदत्) ज्ञान को प्रदान करता हुआ (अच्छ असरः) आगे भ्रमण कर। (२) वीर राजा (वाजम् अच्छ सदा असरः) संग्राम को लक्ष्य कर आगे २ प्रयाण करे।

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

भा०—तू (श्रवसा) श्रवण योग्य आत्मज्ञान से (उत्सम् न कंचित्) किसी जल-निकास वा कूप के तुल्य (अक्षितम् जनपानम्) अक्षय इस जीव-जगत् के पालक प्रभु को (ततर्दिथ) खन ले, यत्न से प्राप्त कर। और (गभस्त्योः) बाहुओं में लगी अंगुलियों से जैसे पदार्थ धारण किया जाता है उसी प्रकार सूर्य-चन्द्रवत् प्राण-अपान की (शर्याभिः) साधनाओं से (भरमाणः) अपने बल को धारण करता हुआ, अपने को पुष्ट करता हुआ उस प्रभु को प्राप्त कर। (२) राजा बाहुओं में, अपने वश में शत्रु-नाशक शक्तियों से अपने को पुष्ट करता हुआ अक्षय जन-रक्षक राष्ट्र बनावे ।

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—(केचित्) कई (दिव्याः) ज्ञान-प्रकाश के उपासक (वसु-रुचः) उस सबको बसाने वाले एवं समस्त लोकों के प्रकाशक प्रभु को चाहते हुए (आत्) अनन्तर (ईं पश्यमानासः) उस प्रभु को ही सर्वत्र अपना बन्धुवत् परम प्राप्य देखते हुए (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करते हैं कि वह (देवः सविता) सब सुखों का दाता, प्रकाशस्वरूप प्रभु सब जगत् का उत्पादक है। वही (वारं न व्यूर्णुते) अन्धकार के तुल्य अज्ञान के आवरण को दूर करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) सर्व जगत् के उत्पादक ! प्रभो ! (प्रथमाः) पहले श्रेष्ठ जन (वृक्तबर्हिषः) काम क्रोध आदि शत्रुओं को तृणों के तुल्य छेदन करते हैं। (महे वाजाय) बड़े भारी ज्ञान, बल और ऐश्वर्य को प्राप्त

करने के लिये (त्वे) तेरे सम्बन्ध मे ही (श्रवसे) ज्ञानोपदेश श्रवण के लिये (धियं दधुः) कर्म और बुद्धि को लगाते है। (सः त्वम्) वह तू हे (वीर) विशेष मार्ग मे प्रेरक ! बलशालिन् ! (नः) हमें भी (वीर्याय) उस पर उपदेश्य ज्ञान और वस्तु को प्राप्त करने के लिये (चोदय) प्रेरित कर ।

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥

भा०—(दिवः) ज्ञानमय, प्रकाशमय प्रभु का (पीयूषं) पान करने योग्य (यत् पूर्व्यं उक्थ्य) जो पूर्व विद्वानो वा प्रभु द्वारा, पूर्ण उपदिष्ट प्रशंसनीय ज्ञान है उसको (दिवः) उसी तेजोमय (महः गाहात्) महान् गंभीर प्रभु से वे (निर् अधुक्षन्) प्राप्त करते है। (जायमानं) हृदय मे प्रकट होने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को लक्ष्य कर (सम् अस्वरन्) उसी की स्तुति करते है।

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे नः निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥

भा०—हे (पवमान) सब जगत् के चालक और व्यापक ! (यत्) जो (इमा विश्वा भुवना) इन समस्त लोकों पर (मज्मना) अपने बल से (यूथे वृषभः न) जूथ मे विजार सांड के तुल्य सर्वत्र प्रजोत्पादक बीजवपन करने वाला होकर (अभि निःस्थाः) विराजता है और (वि तिष्ठसे) उनमे विविध प्रकार से विराजता है। अतएव तू महान् 'सोम' सर्वोत्पादक है। अर्थात् इन लोको में तेरी निष्ठा अर्थात् नित्य नियमानुसार स्थिति भी है और वि-स्था अर्थात् विशेष २, नाना प्रकार से विकृति-कारक स्थिति भी तेरी ही है।

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥

भा०—(एषः) यह (पुनानः) पवित्र करता हुआ, (मधुमान्) अति आनन्द से युक्त, (ऋत-वा) सत्य तेज से युक्त, (स्वादुः) उत्तम सुखद, (ऊर्मिः) तरङ्गवत् उत्तम एवं (वाज-सनिः) बलदायक, ज्ञान-प्रद, (वरिवः-वित्) धनों को प्राप्त करने वाला, (वयःधाः) बलों का धारक, (इन्दुः) तेजोमय प्रभु (इन्द्राय) परमैश्वर्य वा प्रभु रूप से (पवते) प्रकट होता है। वह इस आत्मा के हितार्थ प्राप्त होता है वा सूर्य मेघादिवत् प्राप्त हो।

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥

भा०—(सोमः) सोम, वह सबका शासक प्रभु (अव्यये) अविनाशी (वारे) परम वरणीय रूप में (पुनानः) प्रकट होता हुआ, (शिशुः न क्रीडन्) बालकवत् जगत् के सर्जन-संहार आदि कर्म अनायास करता हुआ, (पवमानः) जगत् भर को चलाता हुआ, (सहस्र-धारः) सहस्रों शक्तियों और वाणियों वाला और (शत-वाजः) सैकड़ों ऐश्वर्यों वा बल पराक्रमों वाला (इन्दुः) परम तेजस्वी और दयार्द्र है।

स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥ १२ ॥ २३ ॥

भा०—हे (सोम) शास्तः ! (सः) वह तू (पृतन्यून्) संग्राम में आगे बाधक शत्रुओं को (सहमानः पवस्व) सबको पराजित करता हुआ राजा के समान कण्टक-शोधनवत् हृदय को पवित्र करता हुआ (दुर्गहाणि रक्षांसि) बड़ी कठिनता से वश में आने वाले, दुःसाध्य दुष्ट भावों को (अप सेध) दूर कर। और तू (सु-आयुधः) उत्तम आयुधों

से सम्पन्न होकर (शत्रून् सासहान्) दुःखदायी शत्रुओ को पराजित करने हारा हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१११]

अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदष्टिः । २ भुरिगष्टिः । ३ अष्टि ॥ तृच सूक्तम् ॥

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः । धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥

भा०—वह (अया) इस (हरिण्या रुचा) पापहारिणी, मनोहर दीप्ति एवं कान्ति से (स्वयुग्वभिः सूरः) अपनी रश्मियों से सूर्य के समान तेजस्वी होकर (स्व-युग्वभिः) अपने समाहित प्राणो से वा अपने नियुक्त पुरुषो से राजा के तुल्य (पुनानः) कण्टक-शोधनवत् चित्त को राग, द्वेष, क्रोध, मोहादि से रहित, स्वच्छ करता हुआ (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष करने वालो और सब प्रकार के द्वेष भावो और कर्मों को (तरति) तर जाता है, सबसे पार हो जाता है। (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) सर्पणशील मुखो वाले तेजो से सूर्य के तुल्य (ऋक्वभिः) ज्ञानवान् पुरुषो द्वारा (यत्) जब (विश्वा रूपा परियाति) समस्त रुचिकर पदार्थों को का प्राप्त करता, जान लेता है, तब वह (अरुषः) कान्तिमान् , रोषरहित, (हरिः) मनोहर (पुनानः) अति पवित्र, अभिषिक्त होता है तब (सुतस्य) उस अभिषिक्त विद्वान् की (धारा रोचते) अभिषेक धारा के तुल्य वाणी भी सबको अच्छी लगती है।

त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः । त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥

भा०—हे सोम आत्मन्! हे राजन्! (त्वं) तू (पणीनां त्यत् वसुविदः) व्यवहार-मार्ग में रहने वाले इन्द्रियगणों का वह धन, ग्राह्य ज्ञान जान लेता है और (मातृभिः) ज्ञान करने वाले अन्तः-साधनों या विद्वानों से उस (वसु) प्राप्त ऐश्वर्य वा ज्ञान को (स्वे दमे) अपने गृह में और (दमे) दमनशील चित्त में (ऋतस्य धीतिभिः) तेज वा सत्य ज्ञान के धारण करने वाले विद्वानों द्वारा (स मर्जयसि) उनसे मिल कर खूब शुद्ध कर लेता है, (यत्र) जहां (धीतयः) ज्ञान के धारण करने वाले (परावतः) परम रक्षास्थान से (साम न) साम गान वा सामवचन के तुल्य ग्राह्य ज्ञान का (रणन्ति) उपदेश करते हैं वहां तू (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) तीनों लोकों, वर्णों वा त्रिविध प्रजाओं को धारण करने वाली, दीप्तियुक्त नीतियों वा सेनाओं से राजावत्, वाणियों से (वयः दधे) बल, ज्ञान, तेज और दीर्घायु को धारण करता है। और वह तू (रोचमानः) खूब तेजोमय, एवं सर्वप्रिय होकर (वयः दधे) बल को धारण करता है।

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्। वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥ ॥

भा०—(पूर्वाम् प्रदिशम् अनु) जिस प्रकार सूर्य पूर्व दिशा की ओर (रश्मिभिः याति) रश्मियों सहित आता और (दर्शतः) दर्शनीय रमणीय होकर (यतते) उद्यत होता है, इसी प्रकार वह भी (पूर्वाम् प्रदिशम् अनु) पूर्व, सब से पूर्व विद्यमान एवं ज्ञान से पूर्ण सर्वोत्तम आदेश रूप गुरुवाणी, ज्ञानवाणी, वेदवाणी, को अनुसरण कर (चेकितत् याति) ज्ञान प्राप्त करता हुआ सन्-मार्ग में गमन करता है। और वह (दैव्यः) देव, प्रभु का उपासक होकर (दर्शतः) दर्शनीय

(रथः) महारथीवत् परमानन्द रस से युक्त होकर (रश्मिभिः) अपनी नियम-मर्यादाओं या साधनों से यत्न करता है। हे (सोम) विद्वन् ! हे (इन्द्र) आचार्यवर ! आप दोनों (समत्सु अनपच्युता) संग्रामों में भी कभी कुमार्गों में न गिरने वाले, दृढ, स्थिर वीरों के तुल्य (वज्रः-च यत् अनपच्युता भवथ.) बल वीर्य से युक्त और स्थिर, अडिग होजाते हो तब, लोग (जैत्राय) इस परम विजय के लिये (इन्द्रं) उस तत्वदर्शी ज्ञानी को (हर्षयन्) हर्षित करते है, और (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुष युक्त वचनों को कहा करते है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[११२]

शिशुर्ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१—३ विराट् पंक्तिः । ४, निचृत् पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

भा०—(नः धियः नानानं) हमारे कर्म और बुद्धियां नाना प्रकार की हैं। (जनानां व्रतानि वि) मनुष्यों के कर्म भी विविध प्रकार के है। जैसे—(तक्षा) तरखान (रिष्टम् इच्छति) लकड़ी काटना चाहता है, (भिषक् रुतम् इच्छति) वैद्य जो रोग दूर करने वाला है, वह रोगी को चाहता है। और (ब्रह्मा) वेद का विद्वान् (सुन्वन्तम्) यज्ञ करने वाले को (इच्छति) चाहता है। उसी प्रकार हे (इन्दो इन्द्राय) हे ऐश्वर्यवन् ! तू ऐश्वर्यवान् पद के लिये वा अधिक ऐश्वर्य प्राप्त करने और देने के लिये (परि स्रव) आगे बढ़, प्रजा पर ऐश्वर्य सुखों की वर्षा कर।

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (जरतीभिः ओषधीभिः) जीर्ण होने वाली, परिपक्व ओषधियों, सरकण्डे आदि से, (शकुनानाम् पर्णेभिः) पक्षियों के पंखो से और (द्युभिः अश्मभिः) तीक्ष्ण करने वाले शिला खण्डों से नाना बाण बनाने वाला (कार्मारः) क्रियाकुशल शिल्पी (हिरण्यवन्तम्) किसी धन-सम्पन्न को प्राप्त करना चाहता है उसी प्रकार हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (जरतीभिः ओषधीभिः) शत्रु के जीवन-हानि करने वाली तेजस्विनी सेनाओं से, और (शकुनानाम् पर्णेभिः) शक्तिशाली, अपने को और तुझे ऊपर, उन्नत पद तक उठा लेने वाले वीर पुरुषों के पालन सामर्थ्यों और वेग से जाने वाले रथों से, वा बाणों से, और (द्युभिः-अश्मभिः) तेजस्वी, चमचमाते शस्त्रों से (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त राज्यपद, शत्रु-हननकारी सैनापत्य के लिये (परि स्रव) आगे बढ़ ।

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३॥

भा०—(अहं कारुः) मैं उत्तम स्तुतियों का करने वाला, उत्तम शिल्पों का सम्पादन करने वाला हूं । (ततः भिषक्) मेरा पुत्र वा पिता, रोगों की चिकित्सा करने वाला है । अ र नना) माता वा बहिन (उपलप्रक्षिणी) पत्थरों या शिल-बट्टा से जौ को पीस कर सत्तू आदि बनाने वाली है । हम लोग सभी (वसूयवः) धन की इच्छा करते हुए (नाना धियः) नाना मति और कर्मों वाले होकर (गाः इव) गो-पालक के प्रति गौओं के सदृश (अनु तस्थिम) तेरी ही आज्ञानुसार नाना कार्य करते हैं । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्, तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय) हमारे ऐश्वर्य के देने, अन्न जल प्रदान करने के लिये (परि स्रव) मेघवत् सुख की वृष्टि कर, हमें ऐश्वर्य प्रदान कर । (२) अध्यात्म में—मैं आत्मा कर्मकर्त्ता हूं, यज्ञ में ब्रह्मा के समान व्यापक प्राण देह में 'भिषक्' है । 'नना'—वाणी, समीप स्थित आत्मा के सम्बन्ध में सदा तर्क वितर्क करती

है, हम सब प्राण वा जीव इस देह में वास के इच्छुक होकर नाना कर्म करते हैं। हे आत्मन्! प्रभु तू जीव पर सुखों की वर्षा कर। 'ततः'— तन्यते अस्मादिति ततः पिता। तन्यतेऽसाविति ततः पुत्रः॥ 'कारुः स्तोमानां कर्त्ता। ततः सन्ताननाम पितुर्वा पुत्रस्य वा। 'उपलप्रक्षिणी'—उपलाभ्यां दृषद्भ्यां प्रक्षिणोति धान्यादि सा। अथवा उपलं समीपस्थमात्मानमुद्दिश्य पृच्छति समीपे क्षेति वा॥ अधिभूत में—उपलप्रक्षिणी—मेघ को पूर्ण करने वाली मध्यमा वाक् विद्युत् 'तत'—मेघ जल वा ओषधिवर्ग। इन्दु— मेघ-इन्द्र।

अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः। शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥ ४॥ २५॥

भा०—(वोढा अश्वः) भार उठाने वाला अश्व वा बैल (सुखम्) उत्तम बैठने योग्य, अवकाश वाले वा सुख से ले चलने योग्य (रथम्) वेग से जाने वाले रथ वा गाड़ी को (इच्छति) चाहता है। (उपमन्त्रिणः) समीप के सलाहकार मित्र लोग (हसनाम्) परस्पर उपहास-विनोद(इच्छन्ति) चाहते हैं। (शेपः रोमण्वन्तौ भेदौ इच्छति) पुरुष का कामांग लोमयुक्त दो खण्ड अर्थात् युवति के अंग की अपेक्षा करता है। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! तू उसी प्रकार (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पद की ओर (परि स्रव) गमन कर और उसे प्राप्त कर। अश्व का सदुपयोग उत्तम रथ लेजाना, सचिवों का कार्य राजा को प्रसन्न रखना, काम-अंग का उपयोग युवति से सन्तान उत्पन्न करना है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष का सदुपयोग राज्य-पद प्राप्त करना है। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[११३]

कश्यप ऋषिः॥ पवमानः सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, ७ विराट् पङ्क्तिः। ३ भुरिक् पङ्क्तिः। ४ पङ्क्तिः। ५, ६, ८—११ निचृत् पङ्क्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्।

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(आत्मनि) अपने में (महत् वीर्यं करिष्यन्) बड़ा भारी बल सम्पादन करना चाहता हुआ और (महत् बल दधानः) बड़ा भारी बल धारण करता हुआ, (वृत्र-हा) विघ्न रूप शत्रुओं को नाश करने वाला, (इन्द्रः) तेजस्वी राजा और आत्मा, (शर्यणावति) शत्रु-हिंसक सेना से युक्त बल-सैन्य के आश्रय पर (सोमम् पिबतु) ऐश्वर्य का उपभोग और शासक पद की रक्षा करे, और प्रजा का पालन करे ।

आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥२॥

भा०—हे (मीढ्वः) ऐश्वर्यों की प्रजाओं पर और शस्त्रों की शत्रु जनों पर वर्षा करने हारे उदार ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (दिशा-पते) वायुवत् समस्त दिशाओं के पालक ! तू (सुतः) अभिषिक्त, पूजित होकर (ऋत-वाकेन) त्रिकालाबाधित सत्य ज्ञानमय वेद-वचन और (सत्येन) सज्जनों के उपदिष्ट, वा उनमें स्थित व्यवहार से और (श्रद्धया) सत्य धारण करने वाली बुद्धि और (तपसा) तप से युक्त होकर (आर्जी-कात्) ऋजु, धर्मनीति में युक्त उच्च पद से (आ पवस्व) हमें प्राप्त हो । हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यप्रद पद प्राप्त करने के लिये उद्योग कर ।

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर २ तक जाने वाली शक्ति वा सेना ही (पर्जन्य-वृद्धम्) मेघवत् बड़े २ शत्रुओं के विजेता, (महिषम्) महान्,

भूमि के उपभोक्ता (तम्) उसको (आभरत्) सब ओर से पुष्ट करता है। (गन्धर्वाः) भूमि को धारण करने वाले सामन्त जन (तम् प्रति अगृभ्णन्) उसको अपनाते हैं और (सोमे) उस उत्तम शासक में या उसके बल पर ही (रसम् आदधुः) अपना विशेष बल और सारयुक्त ऐश्वर्य रखते हैं। हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय) ऐसे शत्रुहन्ता और ऐश्वर्यप्रद राज्य के लिये (परि स्रव) उद्योग कर।

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्। श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋत-द्युम्न) सत्य, ज्ञानमय वेद से कान्तियुक्त ! हे (सत्य-कर्मन्) सत् पुरुषों के आचरित, हित कर्म करने हारे ! हे (सोम) उत्तम ऐश्वर्य-शक्ति के पालक ! तू (ऋतम् वदन्) यथावत् न्याय, सत्य, वेदानुसार वचन कहता हुआ (सत्य वदन्) सत्य का उपदेश करता हुआ, (श्रद्धा वदन्) सत्य को धारण करने वाली बुद्धि वा वाणी का उपदेश करता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (धात्रा) राजकर्त्ता पुरोहित वा पोषक जन से (परि-कृतः) सुसज्जित होकर (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यवान् पद के लिये आगे बढ़।

सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः। सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(सत्यम्-उग्रस्य) सत्य को सर्वोपरि बोलने वाले, सचमुच दुष्टों के लिये भयप्रद, (बृहतः) महान् उस प्रभु के (संस्रवाः सं स्रवन्ति) अच्छी प्रकार एक साथ बहने और प्रवाह से निरन्तर चलने वाले ज्ञान, ऐश्वर्य और बल के प्रवाह (सं स्रवन्ति) एक साथ खूबी से बहते, चढ़ते और प्राप्त हो रहे हैं। (रसिन) उस बलवान्, वेगवान् के (रसाः)

बल, सैन्य, एवं सुस्वादु रस-प्रवाह भी (सं यन्ति) एक साथ जा रहे है, इस प्रकार हे (हरे) संकटों और दुःखों के हरने हारे ! हे मनोहर प्रिय ! तू (ब्रह्मणा पुनानः) वेद ज्ञान और अन्य और महान् बल से पवित्र, देश को स्वच्छ निष्कण्टक करता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) ऐश्वर्यवान् पद के लिये आगे बढ । (२) अध्यात्म मे—हे (इन्दो) जीव ! तू उस प्रभु को पाने के लिये आगे बढ़ उस सत्यमय महान् प्रभु के नाना ऐश्वर्य बह रहे है । उस आनन्द-घन के रस उमड रहे है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यत्र॑ ब्र॒ह्मा प॑वमान छन्द॒स्यां॒३ वाचं॒ वद॑न् ।
ग्राव्णा॒ सोमे॑ मही॒यते॒ सोमे॑ना॒नन्दं॑ ज॒नय॒न्निन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥६॥

भा०—हे (पवमान) पवित्र करने हारे ! (यत्र) जहां (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान्, स्वामी, (छन्दस्यां वाचं वदन्) छन्दोमय वेदवाणी का उपदेश करता हुआ वा 'छन्दः' अर्थात् प्रजानुरञ्जनी वाणी को बोलता हुआ (ग्राव्णा) विद्वान् जन के सहयोग से वा (ग्राव्णा) क्षात्रयुक्त शस्त्र-बल से (सोमे) शासक पद पर (महीयते) प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और (सोमेन आनन्द जनयन्) ऐश्वर्य से सब को आनन्द उत्पन्न करता हुआ विराजता है उसी (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त पद के लिये हे (इन्दो) तेजस्विन् ! तू भी (परि स्रव) उद्योग कर, आगे बढ ।

यत्र॒ ज्योति॒रज॑स्रं॒ यस्मि॑ल्लो॒के स्व॑र्हि॒तम् ।
तस्मि॒न्मां धे॑हि पवमाना॒मृते॑ लो॒के अक्षि॑त॒ इन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥७॥

भा०—हे (पवमान) सब को पवित्र करने हारे स्वामिन् ! प्रभो ! (यत्र) जहां (अजस्रं ज्योतिः) प्रकाश, ज्ञान कभी नाश को प्राप्त नहीं हो, सदा प्रकाश बना रहे, (यस्मिन् लोके) जिस लोक मे सदा (स्वः हितम्) सुख बना रहता है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) अमृत, मृत्युरहित, अक्षय, विनाशरहित, नित्य लोक मे

(माम् धेहि) मुझे रख। (इन्दो इन्द्राय परि स्रव) हे दयार्द्र-स्वभाव ! प्रभो ! तू (इन्द्राय) इस जीव-आत्मा के लिये सब ओर से सुखों को वहा। वा हे जीव ! तू उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त करने के लिये आगे बढ।

यत्र॒ राजा॑ वैवस्व॒तो यत्रा॑व॒रोध॑नं दि॒वः।
यत्रा॒मूर्य॒ह्वती॒राप॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृ॒धीन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥ ८ ॥

भा०—(यत्र वैवस्वतः राजा) जहां वह विविध ऐश्वर्यों और लोकों का स्वामी, प्रकाशमान, सब का स्वामी विराजता है, (यत्र) जहां (दिवः) प्रकाश, ज्ञान की सदा स्थिति है, (यत्र अमूः) जहां वे परम उत्कृष्ट (यह्वतीः आपः) महान् आप्त जन एवं व्यापक शक्तियां वा सब का उत्पादक व्यापक प्रभु है (तत्र माम् अमृतं कृधि) उस लोक में मुझ को भी अमृत, मरणरहित बना। (इन्द्राय इन्दो परिस्रव) हे दयालो ! तू इस अन्नोपभोक्ता कर्मफलाकांक्षी जीव के लिये (परि स्रव) दया कर, और सर्वत्र सुखों की वर्षा कर।

यत्रा॑नुका॒मं चर॑णं त्रिना॒के त्रि॑दि॒वे दि॒वः।
लो॒का यत्र॒ ज्योति॑ष्मन्त॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृ॒धीन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव॥९॥

भा०—(यत्र अनुकामं चरणं) जहां कामनानुसार विचरण हो, (त्रि-नाके) तीनों प्रकार के सुख और (त्रि-दिवे) तीनों प्रकार के प्रकाशों से युक्त, (यत्र) जिस लोक में (लोकाः दिवः ज्योतिष्मन्तः) कामनामय लोक, जीवगण सूर्यवत् स्वयं आत्मज्योति से सम्पन्न हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) वहां मुझ को अमृत, जरा-मृत्यु से रहित कर। (इन्द्राय इन्दो, परि स्रव) हे दयालो! तू जीव के लिये सुखों की वर्षा कर। वा हे इन्दो, उपासक आत्मन् ! तू उस परमैश्वर्य पद के लिये आगे बढ।

यत्र॒ कामा॑ निका॒माश्च॒ यत्र॑ ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टप॑म्।
स्व॒धा च॒ यत्र॒ तृप्ति॑श्च॒ तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृ॒धीन्द्रा॑येन्दो॒ परि॑ स्रव॥१०॥

भा०—(यत्र कामाः) जहां सब प्रकार की अभिलाषाएं और (निकामाः च) नित्य की इच्छाएं पूर्ण हो सकें (यत्र) और जहां (ब्रध्नस्य) सूर्य के प्रकाश में (विष्टपम्) विना ताप का, सुखप्रद आश्रय करने योग्य शान्तिमय स्थान हो (यत्र) और जहां (स्वधा च) स्व, आत्मा को धारण करने वाले जल और अन्न के सदृश शान्ति सुख देनेवाली सामग्री और (तृप्तिः च) जल-पान के समान तृष्णा को शान्त करने वाली शान्ति हो (तत्र) उस लोक में हे (इन्दो) दयालो, प्रभो ! तू (माम्) मुझ (अमृतम्) कभी न नाश होने वाले जीव को (कृधि) उत्पन्न कर। अथवा, उक्त प्रकार के लोक में मुझे अमृत अर्थात् दीर्घायु कर । (इन्द्राय इन्दो परि स्रव) हे प्रभो, दयालो, तेजस्विन् ! तू इन्द्र जीव गण के हितार्थ सर्वत्र सुख शान्ति की धारायें बहा । वा हे जीव ! तू उस परम सुख ज्ञान के दाता प्रभु को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ ।

यत्रा॑न॒न्दाश्च॒ मोदा॑श्च॒ मुदः॑ प्र॒मुद॒ आस॑ते । काम॑स्य॒ यत्रा॒प्ताः कामा॒स्तत्र॒ माम॒मृतं॑ कृ॒धीन्द्रा॒येन्दो॒ परि॑ स्रव ॥ ११ ॥ २७ ॥

भा०—(यत्र आनन्दाः च मोदाः च) जिस लोक में समस्त प्रकार की ऋद्धियां और हर्ष हैं, जहां (मुदः प्रमुदः आसते) हर्षदायी समस्त सम्पदाएं और अति आह्लादकारी ऐश्वर्य विराजते हैं, (कामस्य) इस अभिलाषायुक्त जीव की (यत्र कामाः आप्तः) जहां समस्त कामनाएं प्राप्त हो जाती हैं (तत्र माम् अमृतं कृधि) वहां, उस लोक में मुझे अमृत, मरणरहित, दीर्घायु-युक्त कर । (इन्दो इन्द्राय परि स्रव) हे दयालो ! इस जीव, तत्वदर्शी आत्मा के हितार्थ तू दया से द्रवीभूत हो, कृपाकर आनन्द-घन बरसा दे । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[११४]

कश्यप ऋषिः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २ विराट् पंक्तिः । ३, ४, पंक्तिः । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

य इन्दोः पर्वमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव॥१॥

भा०—(यः) जो (इन्दोः) ऐश्वर्यवान् (पवमानस्य) सर्व-व्यापक, सर्वप्रेरक प्रभु के (धामानि) तेजो, बलो और कार्यों का (अनु अक्रमीत्) अनुगमन करता है (तम्) उसको (सु-प्रजाः इति) उत्तम प्रजा और उत्तर पुत्र-पौत्रादि वाला राजा वा उत्तम गृहपति ऐसा (आहुः) कहते है । हे (सोम) उत्तम वीर्यवन् ! उत्तम शास्तः ! और (यः ते) जो तेरे (मनः अनु अविधत्) ज्ञान और चित्त के अनुकूल आचरण करता है, (तम् सुप्रजाः इति आहुः) उसको भी उत्तम प्रजा का स्वामी, 'प्रजापति' ऐसा ही कहते है । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्राय परिस्रव) ऐश्वर्य देने वाले, स्वामिपद के लिये आगे बढ़ । वा हे प्रभो ! तू इस जीव के लिये सुखो की सब ओर से वर्षा कर । हे विद्वन् ! तू ऐश्वर्ययुक्त जीव के लिये ज्ञान प्रदान कर ।

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव॥२॥

भा०—हे (ऋषे) मन्त्रार्थों के द्रष्टा ! हे (कश्यप) तत्वज्ञान के देखने वाले ! तू (मन्त्र-कृतां) मन्त्रों का उपदेश करने वाले विद्वानो के (स्तोमैः) उपदिष्ट मन्त्रसमूहो से (गिरः उत्-वर्धयन्) अपनी वाणियो को उत्तम रीति से बढ़ाता हुआ (यः वीरुधां पतिः) जो ओषधियो के तुल्य भूमिपर विविध रूपों से उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का पालक है उस (राजानं सोमम्) चन्द्रवत् प्रकाशमान शासक को (नमस्य) आदर से नमस्कार कर । हे (इन्दो इन्द्राय परिस्रव) ऐश्वर्य-वन् ! तेजस्विन् स्वामिन् ! प्रभो ! तू 'इन्दु' अन्न का उपभोग करने वाले जीव के लिये सुखो की वर्षा कर ।

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः। देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

भा०—(सप्त दिशः) सात दिशाएं, उनके तुल्य सात आदेश करने वाले, (सप्त होतारः) यज्ञ में सात ऋत्विजों के तुल्य ये सात, आज्ञा देने वाले, ये (देवाः आदित्याः सप्त) तेजस्वी, सात ऋतुओं के तुल्य भूमि के रक्षक वा सूर्य वा तेजस्वी राजा के अधीन सात सचिव आदि हैं (तेभिः) उनसे हे (सोम) शासक ! तू (नः अभि रक्ष) हम प्रजाओं की प्रभुवत् रक्षा कर। हे (इन्दो) युद्ध में द्रुतगति से जाने वाले, हे प्रजा के प्रति दयाभाव से द्रवित होने वाले ! तू (इन्द्राय) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और अन्न को देने वाले राष्ट्र के हित के लिये (परि स्रव) चारों ओर जा, और युद्ध आदि कर।

यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः कि चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ २८ ॥ ७ ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! हे तेजस्विन् ! (यत् ते श्टतं हविः) जो तेरा परिपक्क हवि, अन्न और ज्ञान है (तेन नः अभि रक्ष) उससे तू हमारी सब ओर से रक्षा कर (अरातीवा) शत्रु भाव से युक्त जन (नः मा तारीत्) हमारा नाश न करे। (नः किंचन मो आममत्) हमें कुछ भी पदार्थ किसी प्रकार का कष्ट न दे। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्त, समस्त प्रजा को अन्न जल देने वाले मेघ सूर्य आदि के तुल्य तेजस्वी पद के लिये (परि स्रव) आगे बढ। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥
इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ इति पावमानं सौम्य नवमं मण्डल समाप्तम् ॥

इति श्रीमीमांसातीर्थ-विद्यालंकार विरुदोपशोभित-
श्रीपण्डितजयदेवशर्मणा कृते ऋग्वेदस्यालोकभाष्ये
नवमं पावमानं सौम्यं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

[१]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो अ॑स्थान्निर्ज॒गन्वा॒न्तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ आ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॑न्यप्राः ॥ १ ॥

भा०—(अग्रे) सबसे पूर्व जिस प्रकार (बृहन् अग्निः) महान् अग्नि (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से और (उषसाम् ज्योतिषा) उषाओं की ज्योति से (निः-जगन्वान्) निकलता हुआ (तमसः ऊर्ध्वः) अन्धकार के भी ऊपर (अस्थात्) विराजता और (ऊर्ध्वः आगात्) ऊपर उठता है और (सु-अङ्गः जातः) तेजस्वी होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्राः) सब लोकों को अपने दीप्त प्रकाश से पूर्ण करता है । उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष भी (बृहन्) महान् (उषसाम्) तेजस्वी पुरुषों के शत्रुनाशक बलों और कामनायुक्त प्रजाओं के ऊपर विराजे, (निर्जगन्वान्) निकलता हुआ, उदय को प्राप्त होकर शत्रु रूप तम को पराजय करे, (सु-अङ्गः) उत्तम तेजस्वी, सुदृढ अंग होकर (विश्वा सद्मानि आ अप्राः) सब गृहों, आश्रमों और पदों को अपने तेज से पूर्ण करता है । (२) इसी प्रकार बड़ा विद्वान् भी ज्ञान-ज्योति से उदय हो, ज्ञानेच्छुकों के ऊपर विराजे, सबको गृहों के समान ज्ञान-प्रकाशों से पूर्ण करे ।

स जा॒तो गर्भो॑ असि॒ रोद॑स्यो॒रग्ने॒ चारु॒र्विभृ॑त॒ ओष॑धीषु ।
चि॒त्रः शिशुः॒ परि॒ तमां॑स्य॒क्तून्प्र मा॒तृभ्यो॒ अधि॒ कनि॑क्रदद् गाः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रोदस्योः गर्भः) उत्तरारणि और अधरारणि दोनों के बीच गर्भवत् गुप्त रहता है, (जातः) उत्पन्न होकर (ओषधीषु विभृतः) तापधारक काष्ठों मे धारित होता है (तमांसि परि) अन्धकारों को दूर करके (मातृभ्यः गाः अक्तून् कनिक्रदत्) ज्ञाता, इन्द्रिय चक्षुओं को किरणें देता और प्रकाशित पदार्थों को बतलाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू माता पिता के बीच गर्भवत् उत्पन्न बालक के सदृश (जातः रोदस्योः) उत्पन्न या प्रकट होकर ही स्व और पर सैन्यों या शास्य-शासक दोनों वर्गों का (गर्भः) वश करने हारा (असि) है। तू (चारुः) प्रजाओं का भोक्ता और (ओषधीषु विभृतः) अन्न आदि ओषधियों पर परिपुष्ट बालकवत् हो (ओषधीषु) तेज प्रताप धारण करने वाली सेनाओं के आश्रय, उनके द्वारा ही (विभृतः) विशेष रूप से परिपुष्ट है। तू (शिशुः) शिशु के समान (चित्रः) परिवर्धन करने योग्य, अद्भुत आश्चर्य कर्मकारी, (शिशुः) प्रजाओं के बीच सोने या शासन करने वाला होकर (तमांसि परि) अन्धकारवत् समस्त खेदों, दुःखों को दूर करता हुआ (अक्तून्) सब दिनों, (मातृभ्यः) मातृवत्, उत्तम राष्ट्रनिर्माता प्रकृति जनों के लिये (गाः अधि कनिक्रदत्) वाणियों और उत्तम भूमियों पर अध्यक्षवत् शासन करे।

विष्णु॑रि॒त्था प॒र॒मम॑स्य वि॒द्वाञ्जा॒तो बृ॒हन्न॒भि पा॑ति तृ॒तीय॑म्।
आ॒सा यद॑स्य॒ पयो॒ अक्र॑त॒ स्वं सचे॑तसो अ॒भ्य॑र्च॒न्त्यत्र॑ ॥ ३ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (विष्णुः) व्यापनशील, विद्याओं के पारंगत, विविध विद्याओं में निष्णात होकर (अस्य परमं विद्वान्) इस लोक के परम श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता हुआ, (बृहन् जातः) बड़ा होकर (तृतीयम् अभि पाति) सूर्य जिस प्रकार तीसरे लोक 'द्यौ' को पालता है उसी प्रकार वह (तृतीयम् अभिपाति) तीसरे आश्रम को पालन करता है। (यत्) जो (सचेतसः) समान चित्त होकर (अस्य आसा) इसके

मुख से (पय.) अपने दुग्धवत् ज्ञान को (अक्रत) प्राप्त करते हैं वे (अत्र) उसको (स्व) अपना जानकर (अभि अर्चन्ति) पूजा करते है ।

अतं उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (जनित्रीः) अग्नि के उत्पादक काष्ठ ही उसको अन्नवत् काष्ठों से बढाते है वह (अन्यरूपाः प्रति एति) शुष्क हुए उनको भस्म कर देता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (पितुभृतः) अन्नादि-पालक साधनों को धारण करने वाली प्रजाएं (अन्नावृधं त्वा) अन्न से बढने वाले शिशु के सदृश तुझ को नाना (अन्नैः प्रति चरन्ति) अन्नों, भोग्य ऐश्वर्यों से सेवा करते हैं । (पुनः) और तू (अन्य रूपाः) शत्रुरूप हुई, शुष्क स्नेहरहित उनको (प्रति एषि) विपरीत होकर प्राप्त होता है, उनको निर्मूल करता है और तू (मानुषीषु विक्षु) मानुष प्रजाओं में (होता असि) सबको सुखों का दाता और कष्टादि का ग्रहण कर्त्ता होता है ।

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् ॥५॥

भा०—(होतार) सब सुखों वा ज्ञानों के देने वाले, (चित्र-रथम्) आश्चर्यजनक रथ वाले, वा (अध्वरस्य) हिंसा से रहित वा अहिंसनीय, अविनाशी, (यज्ञस्य-यज्ञस्य) प्रत्येक उत्तम यज्ञ, दान सत्संगादि कर्म के (केतुम्) ज्ञाता और ज्ञापक, (रुशन्तम्) तेजस्वी और (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (देवस्य-देवस्य) प्रत्येक तेजोयुक्त, दानशील, को (प्रत्यर्धिं) बढाने वाले (जनानां अतिथिम्) मनुष्यों के बीच अतिथिवत् पूज्य (त्वा) तुझ (अग्निम्) ज्ञान के प्रकाशक विद्वान्,

स्वामी, प्रभु की (श्रिया) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये आश्रय लेता और उपासना करता हूं।

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः।
अरुपो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥ ६ ॥

भा०—(अध) और (सः तु) वह तू (पेशनानि वस्त्राणि वसान॰) उत्तम २ वस्त्रों को धारण करके (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (पृथिव्याः नाभा) भूमि के मध्य सब को बांधने या प्रबंध करने योग्य केन्द्र स्थान में स्थित होकर (अरुपः) तेजस्वी, रोपरहित, (इडायाः पदे जातः) भूमि के प्राप्त करने के निमित्त सामर्थ्यवान् होकर हे राजन्! तू (पुरः-हितः) सबके समक्ष स्थित होकर (देवान् यक्षि) तेजस्वी पुरुषों की संगति कर, मिल और उनका आदर सत्कार कर।

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥ ७ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! प्रतापशालिन्! राजन्! विद्वन्! सूर्यवत् तू (द्यावापृथिवी उभे हि) सूर्य और भूमि के समान मूर्धन्य शासक जन और आश्रित भूमिवासी प्रजाजन दोनों को तू (मातरा पुत्रः न) माता पिताओं को पुत्र के समान (सदा आततन्थ) सदा वृद्धि कर, उनको बढ़ा। हे (यविष्ठ) बलशालिन्! हे (सहस्य) शत्रुपराजयकारिन्! (अथ) और तू (उशतः देवान्) कामनावान् तेजस्वी विद्वान् पुरुषों को (प्र याहि) प्राप्त हो और (इह आ वह) इस राष्ट्र में अपने ऊपर धारण कर, उनको मान आदर से रख। (२) अध्यात्म में—यह अग्नि आत्मा वा प्रभु है जो सूर्य के समान स्वप्रकाश और सर्वोपरि लोक में विद्यमान है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे (यविष्ठ) बलशालिन्, (त्वं) तू (उशतः देवान्) कामनावान् मनुष्यों को (पिप्रीहि) पालन कर और (विद्वान्) विद्वान् होकर हे (ऋतु-पते) सूर्यवत् ऋतुओं के सदृश, राजसभा के सदस्यों और तेजस्वी राजभ्राताओं को भी (इह यज) इस राष्ट्र में आदरपूर्वक मिला कर रख । (ये) जो (दैव्या ऋत्विजः) विद्वान् ऋतु २ में यज्ञ करने वाले वा विद्वानों के आदरकर्त्ता हैं (तेभिः) उनके साथ (त्वं) तू भी (होतॄणाम् आयजिष्ठः असि) दाताओं और उपदेष्टाओं में सब से श्रेष्ठ दाता, उपासक, पूजक हो ।

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्, प्रतापशालिन् ! तू (होत्रं वेषि) दानकर्म को चाहता है और (उत पोत्रं वेषि) पवित्र करने के कर्म को भी चाहता है । तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (मन्धाता) ज्ञान का धारण करने वाला विद्वान् और (द्रविण:-दा) धनों का दाता और (ऋत-वा) सत्य ज्ञान और तेज का स्वामी, (असि) है । (वयम्) हम लोग (हवींषि) दातव्य अन्नों का (स्वाहा कृणवाम) उत्तम पात्रों में प्रदान करें । और (अग्नि. देव.) ज्ञानी, सर्वप्रकाश तेजस्वी (अर्हन्)

पूज्य होकर (देवान् यजतु) विद्वानों का आदर करे वा किरणोंवत् शुभ गुणों का प्रकाश करे ।

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ३

भा०—हम (देवानाम् अपि) विद्वान् लोगों के (पन्थाम् अगन्म) मार्ग पर अवश्य चलें । (यत् शक्नवाम) जो कार्य हम कर सकें (तत्) उसे (अनु) पश्चात् क्रम से (प्रवोढुम्) अच्छी प्रकार धारण, समाप्त भी कर सकें । (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशक होता है । (सः यजात्) वही यज्ञ करता, दान देता है, (स इत् उ होता) वही (होता) ग्रहण करने वाला है । (स' अध्वरान् कल्पयाति) वही हिंसा रहित कर्मों को करता है और (ऋतून् कल्पयाति) वही ऋतुओं को अपने २ उत्तम फलोत्पादन में समर्थ करता है । 'पन्थाम्'—वैदिकमार्गम् इति सायणः ॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥ ४ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (विदुषां वः यद् व्रतानि) आप विद्वान् जनों के जो कर्म, व्रत-नियमादि (वयं) हम (अविदुस्तरासः) अत्यन्त अज्ञानी होकर भंग करें, विद्वान् तेजस्वी पुरुष (येभिः ऋतुभिः) जिन ऋतुओं, सत्य बलों से (देवान् कल्पयाति) विद्वानों को कार्य करने और फल प्राप्त करने में समर्थ करता है उनही से वह हमारे (तत् विश्वम्) उस सब को (आ पृणाति) पूर्ण करे ।

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥ ५ ॥

भा०—(दीनदक्षाः) हीन-बल (मर्त्यासः) मनुष्य (यत्) जब (पाकत्रा मनसा) अपने न्यून ज्ञान से (यज्ञस्य) यज्ञ के अर्थात् दान, पूजा सत्संग आदि सत्कर्म के विषय मे (न मन्वते) नही जाने (तत्) तब (क्रतु-वित्) यज्ञकर्मों का जानने वाला (विद्वान् अग्निः) ज्ञानवान्, ज्ञानप्रकाशक पुरुष, (होता) आहुति करने वा ज्ञान देनेवाला, (यजिष्ठः) उत्युत्तम यज्ञशील और दानशील होकर (देवान् ऋतुशः यजाति) देवो, विद्वानो वा काम्य फलो को चाहने वाले जनो को ऋतु अनुसार (यजाति) यज्ञ करे, उनको ज्ञान आदि प्रदान करे।

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६॥

भा०—(विश्वेषाम्) समस्त (अध्वराणाम्) यज्ञो का (अनीकं) प्रमुख, (चित्र केतुम्) आश्चर्यकारक ज्ञाता (त्वा) तुझको (जनिता) तेरे गुरु वा पिता ने (जजान) उत्पन्न किया है। (सः) वह तू (नृवतीः क्षाः अनु) मनुष्यो से बसी, भूमियो मे (स्पार्हाः) सबसे चाहने योग्य, (क्षुमतीः) अन्नो से परिपूर्ण, (विश्व-जन्याः) सब हितकारिणी, (इषः) नाना वृष्टियों के तुल्य ज्ञानवृष्टियो को (आ यजस्व) प्रदान कर।

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ७।३०

भा०—(य त्वा) जिस तुझको (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमिवत् उत्तम माता पिता उत्पन्न करते है, और (यं त्वा आपः) जिस तुझको आप्त जन उत्पन्न करते है, (य त्वा सुजनिमा त्वष्टा जजान) जिस तुझको उत्तम जन्म देने वाला गुरु उत्पन्न करता है, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! तू (पितृ-याणम्) पालक माता पिताओ द्वारा गमन करने योग्य (पन्थाम् प्र विद्वान्) मार्ग को भली भांति जानता हुआ (द्युमत्) तेजस्वी और (समिधानः)

अच्छी प्रकार प्रकाशवान् होता हुआ (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[३]

त्रित ऋषिः अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २,३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराटत्रिष्टुप्। ५—७ त्रिष्टुप्। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! तेजस्विन्! तू (इनः) सब का स्वामी (अरतिः) अति अधिक मतिमान्, (समिद्धः) अग्नि के समान चमकने वाला, (रौद्रः) दुःखों को दूर करने और दुष्टों को रुलाने वाला, (दक्षाय) ज्ञान और कर्म करने के लिये (सु-सु-मान्) उत्तम २ ज्ञान-सामर्थ्यों से सम्पन्न (अदर्शि) दिखाई दे। सूर्य के समान (चिकित्) ज्ञानी पुरुष (बृहता भासा) बड़े तेज से (वि भाति) प्रकाशित होता है। जिस प्रकार सूर्य (रुशतीम् अपाजन् असिक्नीम् एति) दीप्त वर्ण की उषा को दूर करता हुआ श्याम वर्ण की रात्रि को प्राप्त होता और (असिक्नीम् अपाजन् रुशतीम् एति)श्यामा रात्रि को दूर कर शुक्लवर्ण उषा को प्राप्त करता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी दिन वेला को दूर करके रात्रि को और रात्रि को त्याग कर दिन वेला को प्राप्त हो। अर्थात् वह नियमपूर्वक दिन रात्रि व्यतीत करे। व्रत को खण्डित न करे। अथवा (रुशतीम् अपाजन्) रोचमान विषय रति को छोड़कर (असिक्नीम्) वीर्य-त्याग से रहित ब्रह्मचर्य दीक्षा को प्राप्त करे और फिर (असिक्नीम् अपाजन् रुशतीम् एति) व्रतदीक्षा को छोड रोचमाना स्त्री का लाभ करे, विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृहस्थ ग्रहण करे। अथवा असिक्नी अर्थात् रात्रिवत् अविद्या को त्याग विद्या को प्राप्त करे।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (कृष्णाम् एनीम् वर्पसा अभिभूत्) सूर्य कृष्ण वर्ण की रात्रि को अपने उज्ज्वल रूप से अभिभव करता है और (पितुः जाम् योषाम्) बड़े पालक से उत्पन्न उषा को स्त्री समान (जनयन्) प्रकट करता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष अपने (वर्पसा) रूप से (कृष्णाम् एनीम् अभिभूत्) कृष्ण वर्ण की मृगछाला को धारण करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे फिर (बृहतः पितुःजाम्) बड़े उत्तम वंश के पिता की कन्या को (योषां जनयन्) अपनी स्त्री करता हुआ (सूर्यस्य भानुं) सूर्य की कान्ति को (ऊर्ध्वं) ऊपर (स्तभायन्) धारण करता हुआ (वसुभिः) अन्य विद्वानों के साथ (दिवः अरतिः) कामना योग्य पत्नी का स्वामी, उत्तम गृहपति होकर (वि भाति) प्रकाशित हो । (२) उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष बड़े पालक राजा की प्रजातुल्य प्रजा को प्राप्त करे, सूर्य का तेज धारण करता हुआ, (वसुभिः) बसे प्रजाजनों के साथ (दिवः अरतिः) भूमि वा राजसभा का पति होकर चमके ।

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (जारः) रात्रिकाल का जारण, अर्थात् विनाश करता हुआ सूर्य (स्वसारं पश्चात् अभि एति) अपनी भगिनी के तुल्य, वा अन्धकार परे हटाने वाली उषा के पीछे २ आता है और स्वयं (भद्रः) सुखकारी होकर (भद्रया सचमानः आगात्) सुखदायिनी उषा वा कान्ति के साथ मिलकर आता है, और वह (उशद्भिः वर्णैः) उज्ज्वल रश्मियों से (रामम् अभि अस्थात्) रात्रि के अन्धकार को पराजित करता है उसी प्रकार (भद्रः) प्रजा को सुख देने वाला, विद्वान् उत्तम पुरुष (भद्रया

सचमानः) प्रजा को सुख देने वाली धर्मपत्नी वा बुद्धि वा नीति से युक्त होकर (आगात्) प्राप्त हो। वह (जारः) शत्रु या दुष्टों का नाश करने हारा होकर (स्वसारं) सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली सेना वा (स्वसारं) स्वयं अपनी इच्छानुसार आने वाली प्रजा के (पश्चात् अभिएति) पीछे तदनुकूल रहकर अपने वश करे। वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, (सु-प्र-केतैः) उत्तम ज्ञानवान् (द्युभिः) रश्मि-तुल्य विद्वानों के साथ (वितिष्ठन्) विविध कार्यों को करता हुआ, (उशद्भिः) उज्ज्वल वा नाना कामना वाले (वर्णैः) स्वयंकृत विद्वानों के साथ (रामम् अभि अस्थात्) अन्धकार तुल्य शत्रु पर चढ़ाई करे।

अस्य यामा॑सो बृह॒तो न व॒ग्नूनिन्धा॑ना अ॒ग्नेः सख्यु॑ः शि॒वस्य॑ ।
ईड्य॑स्य वृष्णो॑ बृह॒तः स्वासो॒ भामा॑सो॒ याम॑न्न॒क्तव॑श्चिकित्रे ॥४॥

भा०—(अस्य) इस (बृहतः) महान् (अग्नेः) अग्निवत् तेजस्वी (सख्युः) सब के मित्र (शिवस्य) सबके कल्याणकारक प्रभु एवं राजा के (वग्नून् इन्धानाः) उत्तम २ शब्दों को प्रकट करते हुए (यामासः) राज्यप्रबन्ध, व्यवस्थादि और (ईड्यस्य) स्तुतियोग्य (वृष्णः) सुखों के वर्षक, (बृहतः) महान्, (स्वासः) सुमुख, सौम्य उसके (भामासः) क्रोध वा तेज भी (यामन् अक्तवः) मार्ग में प्रकाश करने वाले रश्मियों के समान (यामन्) राज्यनियन्त्रण में (अक्तवः) स्नेहाधायक वा प्रकाशयुक्त दीपकों के तुल्य (चिकित्रे) ज्ञात हों।

स्वना॑ न यस्य॒ भामा॑सः पव॑न्ते॒ रोच॑मानस्य बृह॒तः सु॒दिवः॑ ।
ज्येष्ठे॑भि॒र्यस्तेजि॑ष्ठैः क्री॒ळुमद्भि॒र्वर्षि॑ष्ठेभि॒र्भा॒नुभि॒र्नक्ष॑ति॒ द्याम् ॥५॥

भा०—(यस्य सु-दिवः) जिस उत्तम कामनावान्, सूर्यवत् तेजस्वी (बृहतः) महान् (रोचमानस्य) सब को अच्छा लगने वाले, कान्तिमान्

के (स्वनाः न) आज्ञा-वचनो या गर्जनाओ के समान (भामासः) क्रोध, वा पराक्रम (पवन्ते) प्रकट होते है, और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः) अति उत्तम (तेजिष्ठैः) अति तेजस्वी, (क्रीडुमद्भिः) विनोदी, (वर्षिष्ठैः) वयोवृद्ध, (भानुभि.) रश्मितुल्य अज्ञानान्धकार के नाशक, मार्गदर्शक पुरुषो के साथ (द्याम् नक्षति) आकाशवत् पृथिवी को प्राप्त होता है वही उत्तम नेता प्रभु है ।

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥ ६॥

भा०—(यः) जो (देव-तमः) सब देवो, विद्वानो मे श्रेष्ठ, (विभ्वा) महान् सामर्थ्यवान् (अरतिः) अतिमतिमान्, सब का स्वामी है वह (प्रत्नेभिः) पुराने, पूर्व से चले आये, वृद्ध, (रुशद्भिः) दीप्तियुक्त (रेभद्भिः) उपदेष्टा जनो सहित (वि भाति) विशेष रूप से सुशोभित होता है। (नियुद्भिः जेहमानस्य) अश्वो, सैन्यो के साथ जाते हुए वायु के समान बलवान् (ददृशान-पवेः) प्रकट बल शस्त्रादि वाले (अस्य) इसके (शुष्मासः) नाना बल (स्वनयन्) मेघ के समान गर्जते है ।

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ७।२१

भा०—(स.) वह तू (नः) हमे (महि) बड़ा ऐश्वर्य(आ वक्षि) प्राप्त करा । (युवत्यो. दिवः-पृथिव्योः) परस्पर मिले आकाश और पृथिवी दोनो पर सूर्य के समान युवा युवति, एवं शासक शास्य जनो पर (आ सत्सि च) तू अध्यक्षवत् विराज, उनका शासन कर । वह तू (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान-प्रकाशक, अग्रणी नायक होकर (सु-तुकेभिः अश्वै.) सुख से जाने वाले अश्वो से (स्वय सु-तुकः) सुख से जाने वाला और (रभस्वद्भिः रभस्वान्) वेगवान् अश्वो से वेगवान् होकर (इह स्वान् आगम्याः) यहा अपनो को प्राप्त कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४]

त्रित ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१—४ निचृत् त्रिष्टुप्।५, ६ त्रिष्टुप्॥
७ विराट् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्र ते॑ यक्षि॒ प्र त॑ इयर्मि॒ मन्म॒ भुवो॒ यथा॒ वन्द्यो॑ नो॒ हवे॑षु।
धन्व॑न्निव प्र॒पा अ॑सि॒ त्वम॑ग्न इय॒क्षवे॑ पू॒रवे॑ प्रत्न राजन्॥ १॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! हे दीप्यमान! सबके मनों का अनुरञ्जन करने हारे प्रभो! मैं (ते प्रयक्षि) तेरी अच्छी प्रकार पूजा करूं। (ते मन्म प्र इयर्मि) तेरी मैं खूब स्तुति करूं (यथा) जिस प्रकार से भी हो तू (हवेषु) यज्ञों मे (नः वन्द्यः भुवः) हमारा वन्दना करने योग्य है। हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय! तू (इयक्षवे पूरवे) पूजा करने वाले, सत्संगी मनुष्य के लिये (धन्वन् इव प्रपा असि) चातक के लिये आकाश मे स्थित मेघवत् और मरुस्थल मे विद्यमान् 'प्रपा' प्याऊ के समान उत्तम रसपान कराने और उत्तम रक्षा करने हारा है। इसी प्रकार राजा भी (हवेषु) युद्धों में स्तुत्य है। वह (धन्वन् प्रपा) धनुष के बल पर प्रजा का उत्तम रक्षक हो।

यं त्वा॒ जना॑सो अ॒भि सं॒चर॑न्ति॒ गाव॑ उ॒ष्णमि॑व व्र॒जं य॑विष्ठ।
दू॒तो दे॒वाना॑मसि॒ मर्त्या॑नाम॒न्तर्म॒हाँश्च॑रसि रोच॒नेन॑॥ २॥

भा०—(गावः उष्णम् इव व्रजम्) गौएं जिस प्रकार शीत से पीडित होकर उष्ण, गोशाला की ओर आजाती है, उसी प्रकार हे (यविष्ठ) बल-शालिन्! (यम् उष्णम्) जिस अग्निवत् प्रतापी (त्वा) तुझ को (जनासः) मनुष्य शीतार्त्त जनों के समान (अभि सञ्चरन्ति) शरण आते है, वह तू (देवानाम्) उत्तम पुरुषो के बीच में (दूतः) पूजित एवं प्रतापी, गुणो मे महान् सूर्य वा अग्निवत् ही (मर्त्यानाम् अन्तः) मनुष्यो के भीतर (रोचनेन) अपने प्रकाश से (चरसि) विचरता है।

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥ ३ ॥

भा०—(शिशुं न माता) जिस प्रकार माता बच्चे को (सचनस्यमाना बिभर्त्ति) अपने संपर्क में रखना चाहती हुई पालती पोषती है, उसी प्रकार (माता) पृथिवी, (त्वा) तुझ (जेन्यं) विजयशील को (वर्धयन्ती) बढाती हुई और (सचनस्यमाना) तेरे साथ सम्पर्क रखती हुई (त्वा बिभर्त्ति) तुझे धारण करती है तुझे पुष्ट करती है। और तू (हर्यन्) धनादि की कामना करता हुआ, (अवसृष्टः पशुः इव) छूटे हुए पशु के समान स्वच्छन्द होकर (धनोः अधि) धनुष के बल पर (प्रवता यासि) अपने नीचे के स्थानो को प्राप्त करता और (जिगीषसे) उनको जीतना चाहता है।

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! हे (अमूर) अमूढ ! मोह-रहित ! हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् ! (वयं मूराः) हम मोह में पड़े मनुष्य (महित्वं न विद्मः) तेरे महान् सामर्थ्य को नहीं जानते । (अग) हे तेजस्विन् ! (त्व वित्से) तू ही उसे जानता है । तू (वव्रिः) रूपवान्, वरणीय, होकर (शये) सुख से सोता है और (जिह्वया अदन् चरति) जिस प्रकार मनुष्य जीभ से भोजन करता है वा अग्नि ज्वाला से पदार्थों को खाता हुआ फैलता है, उसी प्रकार तू भी (जिह्वया) वाणी के बल से (अदन्) राष्ट्र का भोग करता हुआ विचरता है, और (विश्पतिः सन्) प्रजा का पालक राजा होकर (युवति रेरिह्यते) स्त्रीवत् भूमि का उपभोग करता है ।

कृचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५॥

भा०—(धूम-केतुः) धूम की ध्वजा वाला अग्नि, (पलितः वने तस्थौ) व्याप कर वन या काष्ठ मे रहता है, (नव्यः सनयासु चित् जायते) स्वयं नया होकर पुरानी सूखी गतिशील लकड़ियो मे कहीं भी उत्पन्न होजाता है, वही अग्नि (वृषभः) जल-वर्षणकारी मेघस्थ विद्युत् होकर (अस्नाता आपः प्रवेति) विना गीला हुए ही जलो मे व्यापता है, और (य मर्त्ता सचेतसः प्र णयन्त) ज्ञानवान् मनुष्य जिसे उत्पन्न करते है, उसी प्रकार (नव्यः) स्तुत्य जन् (सनयासु) पूर्व विद्यमान प्रजाओ मे, नीतियुक्त सभाओ के बीच मे (क्वचित् जायते) कहीं भी बनाया जाता है और वह (पलितः) वयो-वृद्धवत् पूज्य ज्ञानवान् (धूम-केतुः) शत्रुओ को कंपित करने वाले ज्ञापक ध्वजा से युक्त, अथवा स्वयं केतुवत् उन्नत होकर (वने तस्थौ) ऐश्वर्य युक्त पद पर वा सैन्यदल मे विराजता है । और (वृषभः आपः न) बैल जिस प्रकार पिपासित होकर जलो के पास जाता है उसी प्रकार स्वय वह (अस्नाता) अनभिषिक्त होकर, भी (आपः प्रवेति) आप्त प्रजाजनो को प्राप्त करता है, और तब (मर्त्ताः) मनुष्य (स-चेतस.) एक समान चित्त वाले होकर (यं प्र-नयन्त) जिसको प्रधान पद पर स्थापित करते है।

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयन्ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (तनूत्यजा इव वनर्गू तस्करा) अपने देह को त्यागने वाले, वन में विचरने वाले पापकर्मा दो चोर (दशभिः रशनाभिः अभ्यधीताम्) दसों रस्सियों से मनुष्य को बाध डालते है और जिस प्रकार (तनूत्यजा) देह को त्याग कर, धड से पृथक् लटकती (तस्करा) नाना और निरन्तर काम करने वाली (वनर्गू) ग्राह्य पदार्थों तक पहुंचने

वाली बाहुएं (दशभिः रशनाभिः) दसो अंगुलियों से पदार्थ को (अभि अधीताम्) अच्छी प्रकार पकड़ती है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्, ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! नायक ! तेरी ये दोनों सेनाएं (तनूत्यजा इव) अपना देह छोड़ने मे समर्थ, (तस्करा) निरन्तर दिन-रात कर्म करने मे समर्थ (वनर्गू) सैन्य-ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा हिंसनीय शत्रुदल मे जाने वाली, दोनों सेनाएं दो बाहुओं के समान (दशभिः रशनाभिः) प्रबल २ दूर २ तक व्यापने वाली शक्तियों, रश्मियों या मर्यादा व्यवस्थाओं से शत्रु वा राष्ट्र को (अभि अधीताम्) बांध लें। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! (इयं ते) यह तेरी (नव्यसी मनीषा) अतिस्तुत्य बुद्धि है, इससे (शुचयद्भिः) शुचि, ईमानदार होकर काम करने वाले (अंगैः) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों से (रथ न) अश्वों से रथ के तुल्य इस राष्ट्र को (युक्ष्व) जोड़, सञ्चालित कर।

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७॥३२

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त उत्तम पदार्थों को जानने वाले ! विद्वन् ! समस्त वेदस् अर्थात् धनैश्वर्यों के स्वामिन् ! एवं बुद्धिमन् ! (ब्रह्म च) वेद और (इयं च गीः) यह वाणी (ते सदम् इत्) तेरी सदा ही (वर्धनी भूत्) बढ़ाने हारी हो। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी ! ज्ञानवन् ! (नः तनयानि तोका) हमारे पुत्रों और पौत्रादि संततियों की (रक्ष) रक्षा कर। (उत नः तन्वः) और हमारे शरीरों की (अप्रयुच्छन् रक्ष) विना प्रमाद किये हुए रक्षा कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[५]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —१ विराट् त्रिष्टुप्। २—५ त्रिष्टुप्। ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

एकः॑ समु॒द्रो ध॒रुणो॑ रयी॒णाम॒स्मद्धृ॒दो भूरि॑जन्मा॒ वि च॑ष्टे।
सिष॒क्त्यूध॑र्नि॒ण्योरु॒पस्थ॒ उत्स॑स्य॒ मध्ये॒ निहि॑तं प॒दं वेः॥ १॥

भा०—वह प्रभु, राजा, (एकः) एक, अद्वितीय, (समुद्रः) समस्त संसार का उद्भवस्थान, समुद्र के समान अपार, गम्भीर रत्नों के खान के समान, (रयीणां धरुणः) सब ऐश्वर्यों का आश्रय है। वह (भूरि-जन्मा) नाना जनो का स्वामी होकर (अस्मत् हृदः) हमारे हृदयो तक को भी (विचष्टे) विशेष रूप से देखता है। जिस प्रकार सूर्य (निण्योः उपस्थे) आकाश और भूमि के बीच (ऊधः) अन्तरिक्ष में (सिषक्ति) स्थित होता है, उसी प्रकार (निण्योः) अधीन, सन्मार्ग पर चलाने योग्य शासक और शास्य वर्ग दोनो के (उपस्थे) समीप वह (ऊधः) उत्तम पद पर (सिषक्ति) स्थिर हो, और (उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः) जिस प्रकार अग्नि विद्युत् रूप मेघ के बीच मे स्थान को व्यापता है उसी प्रकार वह (उत्सस्य) मेघ या कूपवत् उन्नत वा अवनत, ऊचे या नीचे जन समुदाय के (मध्ये) बीच में (निहितं पदं) स्थित 'पद', अधिकार को भी (वेः) प्राप्त करता है। राजा के सर्वाधिकार है। (२) परमेश्वर एक, अपार, सर्वाश्रय, सर्वोद्भव, सर्वद्रष्टा, बहुत से पदार्थों का जन्मदाता, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है।

स॒मा॒नं नी॒ळं वृष॑णो॒ वसा॑नाः॒ सं ज॑ग्मिरे महि॒षा अर्व॑तीभिः।
ऋ॒तस्य॑ प॒दं क॒वयो॒ नि पा॑न्ति॒ गुहा॒ नामा॑नि दधिरे॒ परा॑णि॥ २॥

भा०—(वृषणः) बलवान् (महिषाः) बडे २ पुरुष (समान नीड वसानाः) एक समान पद को धारण करते हुए, (अर्वतीभिः) शत्रु-हिंसक सेनाओ के साथ (सजग्मिरे) मिल कर रहे। (कवयः) विद्वान् लोग (ऋतस्य पदं नि पान्ति) सत्य न्याय पद को खूब सुरक्षित रक्खे। (गुहा) बुद्धि मे (पराणि नामानि) पर, सर्वोत्कृष्ट नामो, विनयकारी

उपायो को (दधिरे) धारण करे । (२) वीर्यवान् बड़े प्रजपालक जन एक आश्रय में रहकर ज्ञानप्रकाशक वाणियों से युक्त हो । विद्वान् जन सत्य ज्ञान वेद से गन्तव्य तत्व की रक्षा करते है, वही परम प्रभु के उत्कृष्ट रूपो को अपनी बुद्धि मे धारते, विचारते है ।

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३॥

भा०—(ऋतायिनी मायिनी) अन्नवाले बुद्धिमान् माता पिता जिस प्रकार (शिशुं सं दधाते) बालक को मिलकर पोषण करते हैं (वर्धयन्ती शिशु मित्वा जज्ञतुः) उसको बढाते हुए, माप २ कर उसको बड़ा करते है । उसी प्रकार शास्य और शासक दोनो वर्ग भूमि आकाशवत् अधरोत्तर रहकर (ऋतायिनी) अन्न और तेज से सम्पन्न, (मायिनी) ज्ञान, धन और बल से सम्पन्न होकर (सं दधाते) मिलकर रहे । और (शिशुं) शासन करने वाले राजा को (मित्वा) बना कर (वर्धयन्तीः) उसको बढाते हुए (जज्ञतुः) उसको प्रकट करे । और (चरतः ध्रुवस्य) जङ्गम और स्थावर दोनो प्रकार के (विश्वस्य) जगत् के (नाभिं तन्तुं) बाधने वाले और विस्तार करने वाले को (मनसा) चित्त से, ज्ञानपूर्वक (वियन्तः) विशेष रूप से जानते हुए (कवेः) इस जगत् के परे विद्यमान प्रभु के विषय मे भी (चित्) ज्ञान प्राप्त कर लेते है । संसार की रचना मे आत्मा और प्रकृति दोनो ज्ञान, परम कारण रूप ऋत से युक्त चित् और माया, अर्थात् निर्मात्री शक्ति से युक्त होकर, इस जगत् को शिशुवत् उत्पन्न करते है । इस प्रकार विद्वान् लोग उन दोनो को ही, स्थावर जङ्गमात्मक ससार के नाभि और तन्तुवत् जान कर उस परम सर्वज्ञ प्रभु का स्मरण करते है ।

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतस्य वर्तनयः) अन्न के उत्पादक विद्वान् लोग (वाजाय इषः) अन्न को चाहते हुए (प्रदिवः सुजातम् सचन्ते) अति तेजस्वी सूर्य से उत्पन्न मेघ को या परमाकाश मे स्थित सूर्य को कारण जानते है उसी प्रकार (ऋतस्य वर्तनयः) ज्ञान, सत्य निर्णय और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, उसके लिये चेष्टाशील, ज्ञानार्थी, सत्यार्थी और धनार्थी लोग (वाजाय इषः) ज्ञान-ऐश्वर्य की कामना करते हुए (प्र-दिवः) उत्तम ज्ञान और तेज से (सु-जातम्) सुपूजित और प्रसिद्ध विद्वान् और राजा को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं। (रोदसी) आकाश और भूमि दोनो (आधीवासं वावसाने) सूर्यरूप अग्नि को अपने ऊपर अध्यक्षवत् वा उत्तरीयवत् धारण करते हुए (घृतैः अन्नैः) जलो और अन्नो से (मधूनां) मधुर पदार्थों के उत्पादक अध्यक्ष सूर्य की ही महिमा बढाते है उसी प्रकार (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाला रुद्र, सेनापति और उसकी सेना दोनो मिलकर अपने ऊपर (अधीवासं वावसाने) उत्तरीय पटवत् अधिशासक नायक राजा को धारण करते हुए (घृतैः अन्नैः) जलो और अन्नों द्वारा (मधूनां) मधुर, सुखप्रद पदार्थों, ऐश्वर्यों और बलो के अध्यक्ष की ही (वावृधाते) वृद्धि करे।

स॒प्त स्वसृ॒ररु॑षीर्वावशा॒नो वि॒द्वान्मध्व॒ उज्ज॑भारा दृ॒शे कम्।
अ॒न्तर्ये॑मे अ॒न्तरि॑क्षे पुरा॒जा इ॒च्छन्व॒व्रिम॑विदत्पूष॒णस्य॑ ॥ ५ ॥

भा०—(विद्वान्) ज्ञानवान्, चेतनावान् आत्मा (सप्त) सात, वा गतिमान् (स्वसृः) स्व आत्मा से ही उत्पन्न होकर निकलने वाली (अरुषीः) कान्तियुक्त, सात ज्वालाओं के समान आंख नाक, कान मुख द्वारो मे स्थित सात प्राणधाराओ को (वावशानः) चाहता या वश करता हुआ (दृशे) बाह्य पदार्थ को देखने के लिये (मध्वः कम् उत् जभार) मधुर रसरूप मधुर सुख को उत्तम शिरःस्थान मे प्रकट करता है। और वह (पुराजाः) पूर्ववत् जन्म लेने हारा जीव (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मे स्थित सूर्यवत् अन्तःकरण में स्थित

रह कर उन सब प्राणों को (अन्तः येमे) अपने भीतर ही बद्ध रखता है। और (वव्रिम् इच्छन्) अपने बाह्य रूप देह को चाहता हुआ (पूषणस्य अविदत्) पोषक माता पिता को भूमिवत् प्राप्त करता है। उसी प्रकार (विद्वान्) ज्ञानी, ऐश्वर्यपद को प्राप्त करने वाला राजा (स्वसृः) स्वयं आगे बढ़ने वा अच्छी प्रकार राष्ट्र को सञ्चालन करने में कुशल (अरुषीः) तेजस्विनी रोषादि रहित सौम्य-स्वभाव वाली (सप्त) सात प्रकृतियों को (वावशानः) चाहता और उनको अपने वश करता हुआ, (मध्वः) मधुर प्रजा को तृप्त करने वाले बल और ऐश्वर्य या राष्ट्र को (दृशे) देखने के लिये (कम् उत् जभार) उनको उत्तम पद पर स्थापित करे वह (पुराजाः) पूर्ववत् प्रसिद्ध राजा (अन्तरिक्षे अन्तः) अपने भीतरी राष्ट्र के भीतर ही उन सातों को (येमे) नियम में रक्खे। और (वव्रिम्) उत्तम तेजस्वी रूप को चाहता हुआ, (पूषणस्य अविदत्) राष्ट्र पोषक वर्ग को वा भूमि को प्राप्त करे। अथवा-(पूषणस्य इच्छन् पवित्र अविदत्) प्रजापोषक अन्न को चाहता हुआ जलप्रद कूप को प्राप्त करे।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

भा०—(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) विद्वान् लोगों ने सात 'मर्यादाएं' कही हैं। मनुष्य को खाजाने या नाश करने से उनको 'मर्यादा' कहा है। (तासाम् एकाम् इत्) उनमें से एक को भी जो (अभि गात्) प्राप्त हो वह (अंहुरः) पापी है। (उपमस्य आयोः) समीपवर्ती मनुष्य को (स्कम्भः) थम्भे के समान बांधने वा थामने वाला, (पथां विसर्गे) मार्गों के विविध दिशाओं में जाने के केन्द्र स्थान में (स्कम्भः) दीपक या दिग्दर्शक स्तम्भ के रूप में वा (धरुणेषु स्कम्भः) गृह में लगे धरन के दण्डों के बीच थम्भे के समान राजा भी (धरुणेषु) राष्ट्र के बीच वा धारण करने योग्य प्रजाजनों के बीच में केन्द्रस्थ स्तम्भ के समान (तस्थौ)

स्थिर होकर विराजे। राजा या व्यवस्थापक दोनों का यही कर्त्तव्य है। सात मर्यादाएं—पानमक्षाः स्त्रियो मृगया दण्डः पारुष्यमन्यदूपणम् इति सप्त मर्यादाः ॥ यद्वा स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां सुरापानं दुष्कृतकर्मणः पुनः पुनः सेवनं पातकेऽनृतोद्यमिति। निरु० ॥ सुरापान, जूआ खेलना, स्त्री, व्यसन, मृगया, कठोर दण्ड, कठोर वचन और दूसरे पर मिथ्या, दोपारोपण, ये सात कार्य मनुष्यों को भक्षण कर जाने से 'मर्य-अदाः' 'मर्यादा' कहाती है। अथवा—चोरी, गुरु-स्त्रीगमन, ब्रह्महत्या, सुरापान, दुष्कर्म का बार २ सेवन और पाप करके असत्य भाषण ये सात 'मर्यादा' कही है।

असंच्च सच्च प॒र॒मे व्यो॑म॒न्दक्ष॑स्य॒ जन्म॒न्नदि॑ते॒रु॒पस्थे॑।
अ॒ग्निर्ह॑ नः प्रथम॒जा ऋ॒तस्य॒ पूर्व॒ आयु॑नि वृष॒भश्च॑ धे॒नुः ७।३३।५

भा०—(परमे व्योमन्) सर्वश्रेष्ठ, विशेष रक्षा करने वाले और (दक्षस्य) बल और ज्ञान के (जन्मन्) उत्पत्ति स्थान और (अदितेः उपस्थे) 'अदिति' अखण्ड वा अदीनशक्ति के धारण करने वाले अध्यक्ष पर ही (असत् च सत् च) असत् और सत् दोनो निर्भर है। जैसे सर्वरक्षक सर्वशक्तिमान्, प्रकृति के भी आश्रय प्रभु मे व्यक्त अव्यक्त, कार्य और कारण दोनो आश्रित हैं। (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और न्याय-व्यवस्था का (प्रथम-जाः) सबसे प्रथम, मुख्य प्रकट करने वाला (अग्निः ह) निश्चय से वह सर्वप्रकाशक तेजस्वी राजा वा प्रभु है। (पूर्वे आयुनि) पहले जन समुदाय मे भी वही (वृषभः च) मेघ के समान सुखो की वर्षा करने वाला और (धेनुः) माता गौ के समान पालक पोपक था। (२) वही प्रभु सत्य का प्रथम प्रकाशक और पूर्व के कल्प में भी वही (वृषभः) जगत् का धारण करने वाला और (धेनुः च) गौ के समान सर्वपोपक रहा। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

[६]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । २ विराट् पंक्तिः । ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् पंक्तिः । ६ पंक्तिः । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं स यस्य॒ शर्म॒न्नवो॑भिर॒ग्नेरेध॑ते जरि॒ताभि॑ष्टौ ।
ज्येष्ठे॑भि॒र्यो भा॒नुभि॑र्ऋ॒षूणां॑ प॒र्येति॒ परि॑वीतो वि॒भावा॑ ॥ १ ॥

भा०—(अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञान के प्रकाशक के (शर्मन्) गृह या शरण या सुख मे (अभिष्टौ) अभीष्ट फल प्राप्त करने के लिये (जरिता) स्तुति करने वाला पुरुष (यस्य अवोभिः) जिसके रक्षाओं, ज्ञानों और स्नेहो से (एधते) बढ़ता है, और (यः) जो (ज्येष्ठेभिः भानुभिः) उत्तम कान्तियों से (ऋषूणां पर्येति) ज्ञानदर्शी विद्वानों और विद्यार्थियो के बीच (परिवीतः) कान्ति युक्त सूर्यवत् तेजस्वी वा उपवीत होकर (परि एति) प्राप्त होता है (सः) वह ही (वि-भावा) विशेष कांति से उज्ज्वल (अयं सः) यह (अग्निः) तेजस्वी 'अग्नि' नाम से कहाने योग्य है ।

यो भा॒नुभि॑र्वि॒भावा॑ वि॒भात्य॒ग्निर्दे॒वेभि॑र्ऋ॒तावाज॑स्रः ।
आ यो वि॒वाय॑ स॒ख्या सखि॑भ्योऽपरिह्वृतो॒ अत्यो॒ न सप्तिः॑ ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (भानुभिः) प्रकाशों से (अग्निः) अग्नि प्रकाशक होकर (वि भाति) विशेष रूप से चमकता और प्रकाश करता है उसी प्रकार (यः) जो (अजस्रः) न नाश होने वाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञानवान्, यज्ञवान् पुरुष भी (देवेभिः) अपने उत्तम गुणों और उत्तम विद्वानो, विजयी वीरों से (वि-भाति) चमकता है और (यः)

जो (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सख्या आ विवाय) सख्य भाव से प्राप्त होता है वह (ससिः न अत्यः) वेगवान् अश्व के समान (अपरिह्वृतः) कभी कुटिल मार्गगामी नहीं होता ।

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवीष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वस्याः देववीतेः) समस्त संसार के प्रकाशमान सूर्यादि लोकों के प्रकाश करने में (ईशे) समर्थ है, और जो (विश्वायुः) सर्वव्यापक, सबका जीवनदाता होकर (उषसः) प्रभात के (वि-उष्टौ ईशे) प्रकाशित करने में सूर्यवत् समर्थ है। (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निवत् प्रकाशस्वरूप ज्ञानमय में (मना हवींषि) समस्त विचार योग्य ज्ञान ही अग्नि में हवि के समान है, वह (अरिष्ट-रथः) अति मंगलकारक रमणीय स्वरूप वाला प्रभु (शूषैः स्कभ्नाति) अपने बलों से समस्त जगत् को थामता है । (२) इसी प्रकार जो सब वीरों के भोजन देने में समर्थ है, जो सबका जीवन रक्षक, (उषसः) कामना करने और शत्रु को भस्म करने वाली प्रजा वा सेना को तीक्ष्ण करने में समर्थ है जिस में सब स्तुति और देने योग्य भेंट, करादि प्राप्त हो वह अनष्ट रथ वाला अपने बलों से राष्ट्र को दृढ़ करता है ।

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति । मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ।४।

भा०—(सः) वह (शूषेभिः वृधः) नाना बलों से स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाला, और (अर्कैः जुषाणः) अर्चना, स्तुत्यादि करने योग्य, स्तुति वचनों से सेवनीय, प्रीति करने वाला, (रघुपत्वा) तीव्र गामी रथों, अश्वों से जाने वाला, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (देवान् अच्छ जिगाति) समस्त विद्वानों, वीरों को आदर पूर्वक प्राप्त

करता है। वह (मन्द्रः) स्तुति योग्य (होता) सब सुखों का दाता, शत्रुओं को ललकारने वाला, (जुह्वा यजिष्ठः) उत्तम वाणी से सब का सत्कार करने वाला, (स-मिश्लः) सब के साथ प्रेमभाव से सम्बद्ध, (अग्निः) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (देवान् आ जिघर्त्ति) सब उत्तम गुणों, जनों और वीरों को प्राप्त करता है।

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम्।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रं न रेजमान) देदीप्यमान सूर्य के समान चमकने वाले (उस्राम्) नाना ऐश्वर्यों के देने वाले, (तम् अग्निम्) उस अग्नि तुल्य ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष को (नमोभिः गीर्भिः) विनय युक्त वाणियों, अन्नादि सत्कारों द्वारा (आ कृणुध्वम्) प्राप्त होवो। (यं) जिसको (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (मतिभिः) नाना स्तुतियों से (आ गृणन्ति) साक्षात् स्तुति और उपदेश करते हैं उस (जात-वेदसं) ऐश्वर्यों, ज्ञानों से सम्पन्न (सहानां) समस्त बलों के (जुह्वम्) मुख्य एवं दाता प्रतिगृहीता को तुम भी (आ कृणुध्वम्) प्राप्त होवो।

सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥ ६ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके अधीन (विश्वा वसूनि सं जग्मुः) समस्त ऐश्वर्य एकत्र हैं, और जिसके अधीन (वाजे सप्तीवन्तः अश्वाः न एवैः) संग्राम में तीव्रगामी अश्वों के समान सभी जन अपने २ कर्मों सहित एकत्र हैं, हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! वह तू (अस्मे) हमारे लिये (इन्द्र-वात-तमाः) तेजस्वी पुरुषों द्वारा प्राप्त (ऊतीः) रक्षाएं (अर्वाचीनाः) प्राप्त (आ कृणुष्व) कर।

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७॥१॥

भा०—(अध हि) और हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (सद्यः जज्ञानः) अति शीघ्र प्रकट होकर ही (हव्यः) स्तुत्य (बभूथ) होता है । (ते देवासः) वे सूर्यादिवत् तेजस्वी एवं नाना कामना वाले, व्यवहारवान् जन भी (ते केतम् अनु आयन्) तेरे ही ज्ञान-प्रकाश का अनुसरण करते हैं । (अध) और वे (प्रथमासः ऊमाः) सब गुणो में उत्कृष्ट और सुरक्षित होकर (अवर्धन्त) वृद्धि को पाते और रक्षक होकर अन्यों को बढ़ाते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

[७]

त्रित ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । विराट् त्रिष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप, सब सुखों के दाता ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! सब पापों को दग्ध करने हारे ! तू (विश्वायुः) सब का जीवन और अन्नवत् प्राणाधार है । तू (यजथाय) यज्ञ के लिये (नः) हमें (दिवः पृथिव्या) आकाश और भूमि से (स्वस्ति) सुख कल्याण (धेहि) प्रदान कर । हे (दस्म) सब दुःखों के नाश करने वाले (तव प्र-केतैः) तेरे उत्तम ज्ञानों से (सचेमहि) हम सदा युक्त हों । हे (देव) तेजस्विन् ! तू (नः) हमारी (उरुभिः शंसैः) बड़े उत्तम, बहुत से अनुशासनों से (उरुष्य) रक्षा कर ।

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड् वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! स्वप्रकाशक! (इमाः मतयः) ये वाणियें (तुभ्यं जाताः) तेरी स्तुति के लिये प्रकट हुईं (गोभिः अश्वेभिः राधः गृणन्ति) गौवो, अश्वो सहित समस्त धन (तुभ्यं) तेरा ही बतलाती हैं। (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (ते भोगम् अनु आनद्) तुझ से ही अपना सब भोग्य पदार्थ, भोजन आदि प्राप्त करता है, हे (वसो) सबको बसाने वाले! हे (सुजात) उत्तम गुणो से प्रकाशित! तब वह मनुष्य (मतिभिः दधानः) उत्तम मतियो से ही उसको प्राप्त करता है।

अ॒ग्निं म॑न्ये पि॒तर॑म॒ग्निमा॒पिम॒ग्निं भ्रात॑रं॒ सद॒मित्सखा॑यम्।
अ॒ग्नेरनी॑कं बृह॒तः स॑पर्यं दि॒वि शु॒क्रं य॑ज॒तं सूर्य॑स्य ॥ ३ ॥

भा०—मै (अग्निम्) उस प्रकाशमान तेजस्वी, पापो के भस्म करने वाले, सर्व प्रथम, सर्वोपास्य, सर्व-प्रकाशक, ज्ञानदाता मार्गदर्शी को ही (पितरं मन्ये) पालक पिता के समान मानता हूँ। (अग्निम् आपिम्) उस अग्रणी को ही बन्धु मानता हूँ। (अग्नि भ्रातरम्) उस तेजस्वी को ही भ्राता के समान सहायक और (सदम् इत्) सदा ही (सखायम्) मित्र (मन्ये) मानता हूँ। मैं (बृहतः अग्नेः) उस महान् सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक अग्नि के (अनीकं) भारी बल की (सपर्यम्) उपासना करता हूँ। (दिवि) आकाश में (सूर्यस्य) सूर्य के समान सबके संचालक, सर्वोत्पादक प्रभु के (यजतं शुक्रं) अतिपूज्य, शुद्ध कान्तिमय स्वरूप की मैं उपासना करूं।

सि॒ध्रा अ॑ग्ने॒ धियो॑ अ॒स्मे सनु॑त्री॒र्यं त्राय॑से॒ दम॒ आ नित्य॑होता।
ऋ॒तावा॒ स रो॒हिद॑श्वः पुरु॒क्षुर्द्युभि॑रस्मा॒ अह॑भि॒र्वा॒मम॑स्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रकाशस्वरूप! (अस्मे धियः) हमारी बुद्धिया, स्तुतियां और हमारे किये काम (सिध्रा.) सिद्ध होकर (अस्मे सनुत्रीः) हमे उत्तम २ फलदायक हों। तू (नित्य-होता) सदा, नित्य

ऐश्वर्यों का देने वाला, प्रभु (यं दमे त्रायसे) जिसको गृह में या अपने शासन में रख कर उसकी रक्षा करता है (सः ऋतावा) वह सत्य ज्ञान और धन का स्वामी, (रोहित्-अश्वः) लाल अश्वों का स्वामी, नायक और वह (पुरु-क्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी होजाता है। हे प्रभो! (द्युभिः अहभिः) तेजोयुक्त सब दिनों (अस्मा वामम् अस्तु) हमें उत्तम धन प्राप्त हो और हमारा कल्याण हो।

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम्।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५ ॥

भा०—(द्युभिः हितम्) दीप्तियों, प्रकाशों से युक्त, (मित्रम् इव प्रयोगं) स्नेही मित्र के समान उत्तम योग करने योग्य, योग द्वारा प्राप्य, (प्रत्नम्) अनादि, पुराण, (ऋत्विजम्) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, काल में उत्तम सुखद फल के दाता, (अध्वरस्य) अविनाशी यज्ञ, जगत् के (जारम्) विनाश करने वाले वा अविनाशी यज्ञ के उपदेष्टा, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक अग्नि को (बाहुभ्याम् अजनयन्त) जिस प्रकार मथ कर बाहुओं से प्रकट करते हैं उसी प्रकार उस प्रभु को (बाहुभ्यां अजनन्त) बाहुएं फैला कर याचना करते हुए उसकी महत्ता को प्रकट करते हैं। और उसी (होतारं) सर्वदाता प्रभु को (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (नि असादयन्त) प्राप्त करते हैं।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः। उप० ॥

(२) इसी प्रकार तेजस्वी, प्रजास्नेही, उत्तम प्रयोक्ता, नियन्ता तेजस्वी पुरुष को वीर लोग (बाहुभ्याम्) अपने बाहुबलों के पराक्रमों से बनावें और प्रजाओं में सिंहासन पर राजा बनाकर स्थापित करें।

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) सुखो के दातः ! हे प्रकाशस्वरूप ! तू (देवान्) समस्त सूर्यादि लोको का (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ करता है, उनको तू ही प्रकाश देता है। (अप्रचेताः) अविद्वान् (पाकः) अपक्क बुद्धि वाला पुरुष वा दुःखो से तप्त पुरुष (ते किं कृणवत्) तेरी क्या उपासना करेगा ? हे (देव) देव ! दानशील ! तू (ऋतुभिः) ऋतुओ से (यथा देवान् अयजः) जिस प्रकार सूर्य वायु जलादि की परस्पर संगति करता है (एवा) उसी प्रकार हे (सु-जात) सर्वोत्तम प्रकाशक ! (तन्वं) इस महान् ऐश्वर्य या विश्व वा देह को भी तू (यज) सुसंगत कर।

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो॒ अप्रयुच्छन्॥७॥२

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् प्रभो ! तू (नः अविता उत गोपा भव) हमारा पालक और रक्षक हो। तू (नः वयः-कृत् उत वयोधाः भव) हमें जीवन देने वाला और हमारा बल धारण कराने वाला हो। तू (नः सुमहः हव्यदातिं रास्व) हमे बहुत बडे अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का दान कर। (उत नः तन्वः) हमें और हमारे शरीरो वा पुत्र पौत्रादि की भी (अप्रयुच्छन्) विना प्रमाद किये (त्रास्व) रक्षा कर। इति द्वितीयो वर्गः॥

[८]

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषिः॥ १—६ अग्निः। ७—९ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५—७, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध॥ १॥

भा०—वह (अग्नि) प्रकाशस्वरूप प्रभु (बृहता केतुना) बडे

भारी ज्ञान से और प्रकाश से सूर्यवत् (प्र याति) सर्वोपरि पद को प्राप्त है। वह (वृषभः) सब सुखों का वर्षक (रोदसी) आकाश और भूमि को मेघ के समान व्याप कर (आ रोरवीति) गर्जता है, उनको नाना ध्वनियों से पूर्ण करता है। (दिवः चित् अन्तान्) आकाश के छोरो और (उपमाम्) समीप के स्थानो मे सबको (उद् आनट्) व्याप कर भी सर्वो पर विद्यमान है। वह (महिषः) महान् होकर (अपाम् उपस्थे) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और समस्त जीवो के भी ऊपर स्थित रहकर (ववर्ध) सबसे बड़ा है। इसी प्रकार तेजस्वी राजा बड़े भारी ध्वजा से प्रयाण करे, आकाश भूमि को मेघवत् गर्जना से गुंजावे। दूर और पास सब का शासन करे, (अपाम्) प्रजाओं के बीच वह महान् सामर्थ्य होकर बढे।

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत्।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह आत्मा (गर्भः) सबको अपने मे ग्रहण करने वाला, (वृषभः) मेघवत् समस्त सुखों का वर्षक, बलवान् (ककुद्मान्) सर्वोच्च तेजस्वी, (अस्रेमा) सर्वश्रेष्ठ, (वत्सः) स्तुत्य, सब में व्यापक वा उपदेष्टा, (शिमीवान्) कर्मों को करने मे कुशल, (अरावीत्) उपदेश करता है। (सः) वह (देवताति) पृथिव्यादि समस्त लोको और किरणो मे सूर्यवत् (स्वेषु क्षयेषु) अपने समस्त ऐश्वर्यों व लोकों में (उद्यतानि कृण्वन्) उत्तम २ व्यवस्थाएं करता हुआ, (प्रथमः) सबसे प्रथम होकर (जिगाति) विराजता व्यापता है। (२) वह जीवात्मा सब में श्रेष्ठ देह-शकट का बलीवर्द, प्रथम गर्भ रूप मे और फिर वत्सरूप मे उत्पन्न होता है, रोता है। वह देव अर्थात् इन्द्रियो के अपने २ स्थानो को स्थापित करता है। वह सबसे मुख्य होकर व्यापता है। 'अस्रेमा' प्रशस्यनामैतत् ॥

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (पित्रोः) सब जीवों के पालक माता पिता के तुल्य आकाश और भूमि या सूर्य भूमि के (मूर्धानं) सर्वोच्च या मुख भाग को बनाता है या जो माता पिताओं के सर्वोच्च पद को प्राप्त है, उस (सूरः) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, शक्तिशाली पुरुष के ही (अर्णः) तेज को (अध्वरे दधिरे) यज्ञ में अग्निवत् इस विराट यज्ञरूप में सब दिव्य पदार्थ धारण करते हैं। (अस्य पत्मन्) इसके शासन में ही (अरुषीः) तेजस्विनी (अश्व-बुध्नाः) भोक्ता आत्मा से बद्ध वा मन इन्द्रियों के आश्रय रूप (तन्वः) नाना देहों को (ऋतस्य योनौ) सत्य कारण रूप प्रकृति-तत्व में जीवगण (जुषन्त) सेवन करते हैं। (२) वह राजा वा गुरु मा बाप से भी उच्च पद पर स्थित है, उसके शासन में अश्वादि सैन्य, अन्न के आश्रय रहते हैं।

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायै ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सब में बसने हारे आत्मन्! जिस प्रकार (उषः-उषः) प्रत्येक उषा में (त्वम् अग्रम् एषि) तू सर्वप्रथम पद को प्राप्त होता है, तू (यमयोः) दिन रात के जोड़ों में सूर्यवत् (यमयोः) भोग्य-भोक्ता सम्बन्ध में बद्ध युगल जीव और प्रकृति दोनों में (वि-भावा अभवः) विशेष कान्ति और सामर्थ्य से युक्त है। (ऋताय) संचालन करने के लिये ही, तू (सप्त पदानि दधिषे) सातों लोकों को धारण करता है। (स्वायै तन्वे) अपने ही विस्तृत जगत्-मय देह के लिये (मित्रं जनयन्) मित्र, वायु, जल आदि प्राण को भी प्रकट करता है। (२) इसी प्रकार प्राण अपान यम में प्रभु अपने देहार्थ प्राण को प्रकट कर,

सात प्राणों को धारता है। (३) इसी प्रकार वाणी से बद्ध होकर विवाह करने वाले स्त्री पुरुषों में 'विभावा' विशेष कान्तिमान् पुरुष (सप्त पदानि) सात चरण रखकर 'ऋत' यज्ञादि कर्म और अपनी तन्तु-सन्तति की वृद्धि के लिये स्त्री को मित्र बनावे।

भुव॒श्चक्षु॑र्म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पा भुवो॒ वरु॑णो॒ यदृ॒ताय॒ वेषि॑।
भुवो॑ अ॒पां नपा॑ज्जातवेदो॒ भुवो॑ दू॒तो यस्य॑ ह॒व्यं जुजो॑षः ॥५॥३॥

भा०—तू (गोपाः) रक्षक, वाणियों, इन्द्रियों का पालक होकर (महः ऋतस्य) इस महान् सत्य ज्ञान एवं मूल प्रकृति वा सत्कारण का (चक्षुः भुवः) आंखवत् द्रष्टा, प्रकाशक है। तू ही (ऋताय वेषि) ऋत, मूलकारण प्रकृति को व्यापता, जगत् को व्यापता, सत्य ज्ञान को प्रकाशित करता, इसी से (वरुणः भुवः) तू 'वरुण', सर्वश्रेष्ठ है। हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन् ! तू ही (अपां नपात्) जलों में पाद रहित नौकावत् सबका तारक है, वा जलों के न गिरने देने वाले सूर्य वा मेघवत् समस्त प्रकृति के परमाणुओं, जीवों, लोकों का (नपात्) व्यवस्थापक है। तू (यस्य हव्यं जुजोषः) जिसके हव्य, उपकार-वचन को प्रेम से स्वीकार करता है, तू उसका (दूतः भुवः) दूत व ज्ञान देने वाला होता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑।
दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वव्यापक ! अग्ने ! तू (यज्ञस्य) यज्ञ, विराट् यज्ञ का और (रजसः च) समस्त लोकों का भी (नेता) सञ्चालक (भुवः) है, रहा, और रहेगा। (यत्र) जिनमें तू (शिवाभिः) कल्याण-कारक, अन्तः-व्यापक (नि-युद्भिः) प्रेरक शक्तियों में (सचसे) व्याप रहा है। तू ही (दिवि) आकाश में (स्वर्षाम्) तेज को देने वाले सूर्य

को (मूर्धानं) शिरोवत् सर्वोपरि (दधिषे) धारण करता है और तू ही (हव्य-वाहम्) ज्ञान प्राप्त कराने वाली (जिह्वाम्) हव्यवाहिनी अग्नि, जिह्वा के तुल्य सत्य प्रकाशक वेदवाणी को वा जगत् के सञ्चालक, प्रलयकाल में जगत् को अपने भीतर ले लेने वाली ज्वाला को (चकृषे) प्रकट करता है।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥

भा०—(त्रितः) तीनों गुणो से बद्ध जीव (परस्य पितुः) परम पालक पिता, परमेश्वर की (एवैः) नाना ज्ञानो और कर्मों से (धीतिम्) ध्यान, और उपासना की (इच्छन्) कामना करता हुआ (क्रतुना) अपने कर्म द्वारा (अस्य) उसको (अन्तः वव्रे) अपने भीतर अन्तःकरण में वरण करे। (पित्रोः उपस्थे) माता पिता की गोद में बैठे बालक के तुल्य वह जीव भी ब्रह्म और प्रकृति दोनों की (उपस्थे सचस्यमानः) गोद में प्राप्त होकर (जामि ब्रुवाणः) योग्य स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) बाधक कारणो से युद्ध करने के नाना साधनो को प्राप्त करता है।

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८

भा०—(सः) वह आत्मा (पित्र्याणि) परम पालक पिता से प्राप्त (आयुधानि) उत्तम उपकरणो को वीरवत् (विद्वान्) प्राप्त कर उनका अच्छी प्रकार ज्ञान करके, वह (आप्त्यः) लिंग शरीरस्थ जीव (इन्द्रे-षितः) परमेश्वर से प्रेरित होकर (त्रिशीर्षाणं) तीन शिरों, गुणो से युक्त (सप्त-रश्मिं) सात बन्धनो से बद्ध इस देह को (जघन्वान्) प्राप्त होकर (त्रितः) तीनो गुणो से बद्ध होकर, (त्वाष्ट्रस्य) उस प्रभु परमेश्वर की ही (गाः निः ससृजे) वाणियो को प्रकट करता है। वा उसकी बनाई भोग-भूमियों, देहों और इन्द्रियों को प्राप्त करता है।

सात प्राणों को धारता है । (३) इसी प्रकार वाणी से बद्ध होकर विवाह करने वाले स्त्री पुरुषों में 'विभावा' विशेष कान्तिमान् पुरुष (सप्त पदानि) सात चरण रखकर 'ऋत' यज्ञादि कर्म और अपनी तन्तु-सन्तति की वृद्धि के लिये स्त्री को मित्र बनावे ।

भुव॒श्चक्षु॑र्म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पा भुवो॒ वरु॑णो॒ यदृ॒ताय॒ वेषि॑ ।
भुवो॑ अ॒पां नपा॑ज्जातवेदो॒ भुवो॑ दू॒तो यस्य॑ ह॒व्यं जुजो॑षः ॥५॥३॥

भा०—तू (गोपाः) रक्षक, वाणियों, इन्द्रियों का पालक होकर (महः ऋतस्य) इस महान् सत्य ज्ञान एवं मूल प्रकृति वा सत्कारण का (चक्षुः भुवः) आँखवत् द्रष्टा, प्रकाशक है । तू ही (ऋताय वेषि) ऋत, मूलकारण प्रकृति को व्यापता, जगत् को व्यापता, सत्य ज्ञान को प्रकाशित करता, इसी से (वरुणः भुवः) तू 'वरुण', सर्वश्रेष्ठ है । हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन् ! तू ही (अपां नपात्) जलों में पाद रहित नौकावत् सबका तारक है, वा जलों के न गिरने देने वाले सूर्य वा मेघवत् समस्त प्रकृति के परमाणुओं, जीवों, लोकों का (नपात्) व्यवस्थापक है । तू (यस्य हव्यं जुजोषः) जिसके हव्य, उपकार-वचन को प्रेम से स्वीकार करता है, तू उसका (दूतः भुवः) दूत व ज्ञान देने वाला होता है । इति तृतीयो वर्गः ॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भिः॒ सच॑से शि॒वाभिः॑ ।
दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वव्यापक ! अग्ने ! तू (यज्ञस्य) यज्ञ, विराट् यज्ञ का और (रजसः च) समस्त लोकों का भी (नेता) संचालक (भुवः) है, रहा, और रहेगा । (यत्र) जिनमें तू (शिवाभिः) कल्याणकारक, अन्तः-व्यापक (नि-युद्भिः) प्रेरक शक्तियों से (सचसे) व्याप रहा है । तू ही (दिवि) आकाश में (स्वर्षाम्) तेज को देने वाले सूर्य

को (मूर्धानं) शिरोवत् सर्वोपरि (दधिपे) धारण करता है और तू ही (हव्य-वाहम्) ज्ञान प्राप्त कराने वाली (जिह्वाम्) हव्यवाहिनी अग्नि, जिह्वा के तुल्य सत्य प्रकाशक वेदवाणी को वा जगत् के सञ्चालक, प्रलयकाल मे जगत् को अपने भीतर ले लेने वाली ज्वाला को (चकृपे) प्रकट करता है।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥

भा०—(त्रितः) तीनो गुणो से बद्ध जीव (परस्य पितुः) परम पालक पिता, परमेश्वर की (एवैः) नाना ज्ञानो और कर्मों से (धीतिम्) ध्यान, और उपासना की (इच्छन्) कामना करता हुआ (क्रतुना) अपने कर्म द्वारा (अस्य) उसको (अन्तः वव्रे) अपने भीतर अन्तःकरण में वरण करे। (पित्रोः उपस्थे) माता पिता की गोद मे बैठे बालक के तुल्य वह जीव भी ब्रह्म और प्रकृति दोनो की (उपस्थे सचस्यमानः) गोद में प्राप्त होकर (जामि ब्रुवाणः) योग्य स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) बाधक कारणो से युद्ध करने के नाना साधनो को प्राप्त करता है।

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८

भा०—(स.) वह आत्मा (पित्र्याणि) परम पालक पिता से प्राप्त (आयुधानि) उत्तम उपकरणों को वीरवत् (विद्वान्) प्राप्त कर उनका अच्छी प्रकार ज्ञान करके, वह (आप्त्यः) लिंग शरीरस्थ जीव (इन्द्रे-षितः) परमेश्वर से प्रेरित होकर (त्रिशीर्षाणं) तीन शिरों, गुणो से युक्त (सप्त-रश्मि) सात बन्धनो से बद्ध इस देह को (जघन्वान्) प्राप्त होकर (त्रितः) तीनो गुणो मे बद्ध होकर, (त्वाष्ट्रस्य) उस प्रभु परमेश्वर की ही (गा. निः ससृजे) वाणियो को प्रकट करता है। वा उसकी बनाई भोग-भूमियों, देहो और इन्द्रियो को प्राप्त करता है।

सात प्राणों को धारता है। (३) इसी प्रकार वाणी से बद्ध होकर विवाह करने वाले स्त्री पुरुषों में 'विभावा' विशेष कान्तिमान् पुरुष (सप्त पदानि) सात चरण रखकर 'ऋत' यज्ञादि कर्म और अपनी तन्तु-सन्तति की वृद्धि के लिये स्त्री को मित्र बनावे।

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥३॥

भा०—तू (गोपाः) रक्षक, वाणियों, इन्द्रियों का पालक होकर (महः ऋतस्य) इस महान् सत्य ज्ञान एवं मूल प्रकृति वा सत्कारण का (चक्षुः भुवः) आँखवत् द्रष्टा, प्रकाशक है। तू ही (ऋताय वेषि) ऋत, मूलकारण प्रकृति को व्यापता, जगत् को व्यापता, सत्य ज्ञान को प्रकाशित करता, इसी से (वरुणः भुवः) तू 'वरुण', सर्वश्रेष्ठ है। हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामिन्! तू ही (अपां नपात्) जलों में पाद रहित नौकावत् सबका तारक है, वा जलों के न गिरने देने वाले सूर्य वा मेघवत् समस्त प्रकृति के परमाणुओं, जीवों, लोकों का (नपात्) व्यवस्थापक है। तू (यस्य हव्यं जुजोषः) जिसके हव्य, उपकार-वचन को प्रेम से स्वीकार करता है, तू उसका (दूतः भुवः) दूत व ज्ञान देने वाला होता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वव्यापक! अग्ने! तू (यज्ञस्य) यज्ञ, विराट् यज्ञ का और (रजसः च) समस्त लोकों का भी (नेता) सचालक (भुवः) है, रहा, और रहेगा। (यत्र) जिनमें तू (शिवाभिः) कल्याणकारक, अन्तः-व्यापक (नि-युद्भिः) प्रेरक शक्तियों से (सचसे) व्याप रहा है। तू ही (दिवि) आकाश में (स्वर्षाम्) तेज को देने वाले सूर्य

को (मूर्धानं) शिरोवत् सर्वोपरि (दधिषे) धारण करता है और तू ही (हव्य-वाहम्) ज्ञान प्राप्त कराने वाली (जिह्वाम्) हव्यवाहिनी अग्नि. जिह्वा के तुल्य सत्य प्रकाशक वेदवाणी को वा जगत् के सञ्चालक, प्रलयकाल मे जगत् को अपने भीतर ले लेने वाली ज्वाला को (चकृषे) प्रकट करता है।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥

भा०—(त्रितः) तीनों गुणो से बद्ध जीव (परस्य पितुः) परम पालक पिता, परमेश्वर की (एवैः) नाना ज्ञानो और कर्मों से (धीतिम्) ध्यान, और उपासना की (इच्छन्) कामना करता हुआ (क्रतुना) अपने कर्म द्वारा (अस्य) उसको (अन्तः वव्रे) अपने भीतर अन्तःकरण मे वरण करे। (पित्रोः उपस्थे) माता पिता की गोद में बैठे बालक के तुल्य वह जीव भी ब्रह्म और प्रकृति दोनो की (उपस्थे सचस्यमानः) गोद में प्राप्त होकर (जामि ब्रुवाणः) योग्य स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) बाधक कारणो से युद्ध करने के नाना साधनो को प्राप्त करता है।

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८

भा०—(सः) वह आत्मा (पित्र्याणि) परम पालक पिता से प्राप्त (आयुधानि) उत्तम उपकरणों को वीरवत् (विद्वान्) प्राप्त कर उनका अच्छी प्रकार ज्ञान करके, वह (आप्त्यः) लिंग शरीरस्थ जीव (इन्द्रे-षितः) परमेश्वर से प्रेरित होकर (त्रिशीर्षाणं) तीन शिरो, गुणो से युक्त (सप्त-रश्मिं) सात बन्धनो से बद्ध इस देह को (जघन्वान्) प्राप्त होकर (त्रितः) तीनो गुणो मे बद्ध होकर, (त्वाष्ट्रस्य) उस प्रभु परमेश्वर की दी (गा. निः ससृजे) वाणियो को प्रकट करता है। वा उसकी बनाई भोग-भूमियो, देहों और इन्द्रियो को प्राप्त करता है।

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥९॥

भा०—वह (सत्पतिः) सज्जनों, सत् जीवों का पालक परमेश्वर (मन्यमानम्) अभिमान करने वाले (भूरि ओजः) बहुत बल (उद्-इन क्षन्तम्) प्राप्त कराने वाले को (अव अभिनत्) भेद डालता है और वह (विश्व-रूपस्य त्वाष्ट्रस्य) उस देहमय विश्वरूप अर्थात् आत्मा के रूप से युक्त देह की (गोनाम् आचक्राणः) इन्द्रियों के स्थान बनाने की चेष्टा करता हुआ (त्रीणि शीर्षाणि) तीन शिरस्थ प्राणों को (परा वर्क्) छेदन करता है, वह शिर में प्राण, मुख और कान इनके तीन प्रकार के छिद्र बनाता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

९

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१—४, ६ गायत्री । ५ वर्धमाना गायत्री । ७ प्रतिष्ठा गायत्री ८, ९ अनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

भा०—(आपः) हे आप्त जनो ! हे व्यापक प्रभो ! आप (मयः-भुवः स्थ) जलों के समान सुख को उत्पन्न करने वाले हो । (ताः) वे आप (ऊर्जे) हमें उत्तम अन्न और बल को प्राप्त कराने के लिये (दधातन) धारण करो, हमें अन्न बल प्राप्त कराओ । आप हमें (महे रणाय) बड़े भारी आनन्द सुख प्राप्त करने और (चक्षसे) ज्ञानदर्शन के लिये (दधातन) धारण करें अर्थात् हमें आनन्द, सुख, ज्ञान, दर्शन कराओ ।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

भा०—हे (आपः) जलवत् आप्त जनो ! हे सर्वव्यापक प्रभो ! (उशतीः इव मातरः) पुत्र को चाहने वाली माताओं के समान (वः यः शिवतमः रसः) आप का जो अति कल्याणकारी रस, ज्ञान और बल है (तस्य) इसका (इह नः भाजयत) हमे यहां सेवन कराइये ।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आपः) जलवत् शान्तिदायक आप्त जनो ! हे व्यापक प्रभो ! आप लोग (चनः) अन्नवत् उत्तम ज्ञान को (जनयथ) उत्पन्न करो, अन्यो के प्रति प्रकट करा दो। (यस्य क्षयाय) आप लोग जिसके ऐश्वर्य की वृद्धि करते हो, (तस्मै अरं गमाम) हम भी उसी को शीघ्र ही प्राप्त हों ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ ४ ॥

भा०—(देवीः) ज्ञानप्रकाशमय, सुख देने वाले (आपः) जलवत् शान्तिदायक आप्तजन, और व्यापक परमेश्वर (नः शं भवन्तु) हमे शान्तिदायक हो । और वे (अभिष्टये) अभीष्ट प्राप्ति के लिये हो । (पीतये भवन्तु) हमारे रसपानवत् पालन के लिये भी हो । वे (नः) हमारे (शं योः) शान्ति देने और कष्ट को दूर करने के लिये (नः अभि स्रवन्तु) हमें सब ओर से प्राप्त हो । (२) उत्तम सुखद जल हमें शान्ति दे, हमे इष्ट सुख देवे और पीने के लिये हो तो सुख देने और कष्ट दूर करने के लिये हमारे चहु ओर वहे ।

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (अपः) जल (वार्याणां) 'वारि' अर्थात् जलों

से उत्पन्न स्थावर-वृक्ष, वनस्पति आदि के (ईशानाः) स्वामी हैं, उनको उत्पन्न करने और बढ़ाने वाले हैं उनके अभाव में वे भी नष्ट होजाते हैं और (चर्षणीनां क्षयन्तीः) वे जल विचरणशील प्राणियों को भी इस जगत् पर बसाने वाले, वा उनके नाना मलादि दोषों को नाश करते हैं।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥ ६ ॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम ।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ ७ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ८ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ९ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो मं० १ । सू० २३ । मन्त्र, २०, २१, २२, २३ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०]

ऋषिः—१, ३, ५,—७, ११, १३ यमी वैवस्वती । २, ४, ८—१०, १२, १४ यमो वैवस्वत ऋषिः ॥ १, ३, ५—७, ११, १३ यमो वैवस्वतः २, ४, ८—१०, १२, १४ यमी वैवस्वती देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ९, १० १२ त्रिष्टुप् । ७, १३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

भा०—स्त्री पुरुष को कहती है। मैं (सखी आ) समान आख्यान-अर्थात् नाम वाली मित्र होकर अथवा (सख्या) सख्य भाव के लिये (सखायं)

सखा, मित्र रूप मे तुझको (ओ (आ-उ) ववृत्यां चित्) आदर से प्राप्त करू। (तिरः पुरु चित्) अति विस्तृत, बहुत बडे (अर्णवं जगन्वान् वेधाः) सागरवत् दीर्घ जीवन के पार जाता हुआ, प्रजा को उत्पन्न करने वाला प्रजापति, गृहस्थ (पितुः नपातम्) पिताके वंश को न गिरने देने वाले पुत्र वा वधू के पिता के नाती को (प्रतरं दीध्यानः) जगत्-सागर से पार होने के लिये नौकावत् उत्तम साधन समझता हुआ (क्षमि) भूमि तुल्य पुत्रोत्पादन समर्थ स्त्री मे (अधि आ दधीत) आधान करे। यह वचन पुत्राभिलाषिणी, पुत्रोत्पादन मे समर्थ स्त्री का जीवन के उत्तर भाग मे विद्यमान निष्पुत्र पति के प्रति है। पति पत्नी दोनो एक नाम से कहाने योग्य होने से 'सखा और सखी' है। पुत्रोत्पादन करके ऋण रूप अर्णव के पार जाना गृहस्थ का कर्तव्य है। स्त्री की दृष्टि मे उसका पुत्र उसके पिता का नाती और पुरुष के वंश को चलाने से भी 'नपात्' है। विवाहबन्धन मे परस्पर एक दूसरे को बांधने वाला संस्कार 'उपयम' कहाता है। बधने वाले स्त्री और पुरुष दोनो यम और यमी है। विविध प्रजाएं 'वि-वसु' है उनका स्वामी विवस्वान् वा वधू के माता पिता है और उनके वशज वा वधू 'वैवस्वत' है। परस्पर विवाह-बन्धन मे बन्धने से वे 'वैवस्वत यमयमी' कहाते है।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

भा०—पुरुष कहता है-(ते सखा) तेरा मित्रभूत पुरुष (ते एतत् सख्यं) तेरे इस सखा-भाव की (नवष्टि) नहीं कामना करता। (यत्) क्योंकि (सलक्ष्मा) समान लक्षण वाली स्त्री ही (विषु-रूपा भवाति) बहुत प्रजा आदि से सम्पन्न होता है। (उर्विया) इस भूमि मे (महः) बड़े (असुरस्य) बलवान् वीर्यवान् पुरुष के (पुत्रासः) पुत्र ही (वीराः) वीर, बलवान् विद्यावान्, (दिवः धर्त्तारः) कामनाशील भूमिवत् माता

के (धर्त्तारः) धारण पोषक (परि ख्यन्) दिखाई देते वा शास्त्र में कहे गये हैं।

यह वचन स्त्री के असमान निर्बल, नपुंसक, वा पुत्रोत्पादन में असमर्थ पुरुष का प्रतीत होता है। इसीसे वह स्त्री के संग को स्वयं स्वीकार न करके बलवान् पुरुष से पुत्र प्राप्त करने की ओर इशारा करता है। अन्य बलवान् पुरुष से प्राप्त क्षेत्रज पुत्र भी गृहस्थ की अवधि के बाद माता के रक्षक वा पिता के दायभागी होने के निमित्त शास्त्र में कहे है।

उ॒शन्ति॑ घा॒ ते अ॒मृता॑स ए॒तदेक॑स्य चित् त्य॒जसं॒ मर्त्य॑स्य।
नि ते॒ मनो॒ मन॑सि धाय्य॒स्मे जन्युः॒ पति॑स्त॒न्व१॒॑मा वि॑विश्याः ३

भा०—पुनः पुत्रार्थिनी स्त्री कहता है—(ते अमृतासः) वे कभी नाश को प्राप्त न होने वाले दीर्घायु पुरुष भी (एतत् उशन्ति घ) ऐसा अवश्य चाहते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य चित् त्यजसं) एक मनुष्य का भी उत्तम पुत्र हो। और (ते मनः अस्मे निधायि) तेरा मन मेरे मन में निहित है। तू (जन्युः पतिः) पुत्रोत्पादक स्त्री का पति है। तू ही (तन्वम् आ विविश्याः) देह में गर्भ रूप से प्रविष्ट हो। स्त्री विवाहबन्धन से बन्धी होकर असमर्थ पुरुष से ही पुत्र प्राप्त करने का आग्रह करती है।

न यत्पु॒रा च॑कृ॒मा कद्ध॑ नू॒नमृ॒ता वद॑न्तो॒ अनृ॑तं रपेम।
ग॒न्ध॒र्वो अ॒प्स्वप्या॑ च॒ योषा॒ सा नो॒ नाभिः॑ पर॒मं जा॒मि तन्नौ॑ ॥४॥

भा०—पुरुष कहता है—(यत् कत् ह पुरा न चक्रम) वह कौनसा उपाय है जो हम पहले नहीं कर चुके। पुत्र प्राप्ति के सभी उपाय कर चुके हैं। (ऋता वदन्तः) सदा सत्य वचन बोलते हुए (नूनम्) अवश्य ही हम (अनृतम् रपेम) असत्य बोले, यदि कहे कि अमुक उपाय नहीं किया। (गन्धर्वः अप्सु) गम्या भूमि को धारण करने वाला पुरुष भी जलीय अंशों में है और (अप्या च योषा) जलीय परमाणुओं से युक्त स्त्री भी

है। (नः सा नाभिः) हम दोनों का वही एक आश्रय है। वही (नौ तत् जामि) हम दोनों में यही दोष है। जिससे कि एक प्रकृति के ही स्त्री और पुरुष होने से सन्तान उत्पन्न नहीं होती। अथवा—एक ही नाभि अर्थात् एक ही गोत्र में से स्त्री पुरुष हो तो भी सन्तान नहीं होती। यदि भ्रममें ऐसा जोडा हो तो क्षेत्रज विधि से पुत्र प्राप्त करना चाहिये। एक गोत्र के होने से भी वे बहिन-भाई के सदृश होजाते हैं। बहुत उपाय कर लेने पर भी जब सन्तति नहीं होती तब पुरुष को अपने सन्तान न होने का ऐसा कारण ज्ञात होता है।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नाकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः।५।६

भा०—स्त्री कहती है—(जनिता) उत्पादक पिता (देवः) कन्या को पुरुष के हाथ में देने वाला, (त्वष्टा) तेजस्वी (सविता) सर्वोत्पादक (विश्वरूपः) विश्वात्मा प्रभु (गर्भे) गर्भ धारण करने के निमित्त ही (नौ दम्पती कः) हम दोनो स्त्री पुरुषों को पति-पत्नी बनाता है। (अस्य व्रतानि नकिः प्रमिनन्ति) इसके नियमों, कर्त्तव्यों का कोई नाश नहीं करता। (नौ अस्य) हमारे इस पति-पत्नी भाव के कर्त्तव्यों को (पृथिवी उत द्यौः) भूमि और सूर्य भी (वेद) जानते या प्राप्त करते हैं। और भूमि और सूर्य दोनों भी पति-पत्नी के समान ही सम्बद्ध है। अतः तू ही मुझ पत्नी में गर्भ धारण करा। इति षष्ठो वर्गः॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥

भा०—पुरुष कहता है—(अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद) इस प्रथम दिन के सम्बन्ध को कौन जानता है। (ईं कः ददर्श) और इस गर्भ-धारण होने वा न होने के मूल कारण को कौन देख सकता है? (इह कः प्रवोचत्) इस सम्बन्ध में कौन बतला सकता है? (मित्रस्य वरुणस्य बृहत् धाम)

सर्वस्नेही, सर्वःदुखवारक प्रभु का तेज बहुत बडा है। हे (आहनः) कटाक्ष से कहने वाली! स्त्रि! (नॄन् वीच्य कत् उ ब्रवः) मनुष्यों का विवेक करके भी भला कौन, कब क्या कह सकता है? अर्थात् स्त्री पुरुष के विवाह होने के पूर्व वा प्रथम दिन ही उनके सन्तानादि के सम्बन्ध मे कोई भी ठीक २ नहीं बतला सकता।

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने ये नौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥

भा०—(यमस्य कामः) विवाह बन्धन से बद्ध तेरी अभिलाषा (मा यम्यं) मुझ यमी को (समाने योनौ) एक स्थान मे (सह-शेय्याय) एक साथ सोने के लिये (आ अगन्) प्राप्त हो। (पत्ये जाया इव) पति के लिये जाया के समान ही मैं (पत्ये) तुझ पति के लिये अपने (तन्वं) देह को (रिरिच्यां) प्रदान करूं। हम दोनो (रथ्या इव चक्रा) रथ के दो चक्रो के समान (वि वृहेवचित्) गृहस्थ-भार को उठावे।

न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥

भा०—(इह) इस लोक में (ये) जो (स्पशः) सब लोको को देखने वाले चरो के समान (देवानां स्पशः) लोगो के द्रष्टा ये दिन (चरन्ति) विचरते है, चलते चले जा रहे है। वे (न तिष्ठन्ति) किसी के लिये खड़े नहीं रहते। (न निमिषन्ति) वे किसी के लिये पल भर भी नही चूकते। व्यर्थ समय खोने से क्या लाभ? हे (आहनः) आक्षेपकारिणि! हे प्रिये! तू (मत् अन्येन तूयं याहि) मुझसे अन्य पुरुष के साथ शीघ्र संगत हो और (रथ्या इव चक्रा वि वृह) रथ के चक्रों के समान विशेष रूप से गृहस्थ-भार को उठा।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विभृयादजामि ॥ ९ ॥

भा०—पुनः पुत्रार्थिनी कहती है । (रात्रीभिः अहभिः) कुछ दिनों, कुछ रातों के अनन्तर (दशस्येत्) प्रभु हमारा मनोरथ हम को देवे । (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्य का प्रकाशक तेज (मुहुः उन्मिमीयात्) पुनः भी उदित हो । (दिवा पृथिव्याः) आकाश और भूमि या सूर्य-पृथिवी के समान हम दोनो का (मिथुना) जोड़ा (स-बन्धू) समान बन्धन में बंधे हैं, अतः (यमीः) विवाह-बन्धन से बधी, परिणीता स्त्री ही (यमस्य) विवाह से बद्ध पुरुष के वीर्य का गर्भ (विभृयात्) धारण करे, यही (अजामि) दोप-रहित है ।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥७॥

भा०—(ता उत्तरा युगानि आ गच्छान्) वे नाना उत्तम से उत्तम वर्ष प्राप्त हो (यत्र) जिनमे (जामयः) अपत्य उत्पन्न करने में समर्थ कन्याएं, वहुएं (अजामि कृणवन्) निर्दोप सन्तान उत्पन्न करे । इसलिये हे (सुभगे) सौभाग्यवति ! तू (वृषभाय) वीर्य सेचन मे समर्थ पुरुप के (बाहुम्) बाहु का (उप बर्बृहि) आश्रय ले और (मत् अन्यम् पतिम् इच्छस्व) मुझ से दूसरे पुरुप को पति रूप से चाह । पुत्रोत्पादन में असमर्थ पुरुप स्त्री को अगली सन्ताने उत्तम होने की आशा से ही वीर्यवान् पुरुप से पुत्र प्राप्त करने की सम्मति देता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुप ! जो तू अपने से अन्य को पति रूप से चाहने के लिये कहता है तो (किं भ्राता असत्) क्या तू भाई है, (यत्)

कि जिस कारण तू (अनाथं भवाति) नाथ अर्थात् पति के समान नहीं हो रहा है। (किम् उ स्वसा) क्या मैं वहिन हूँ (यत् निऋतिः) जो निर्गति, लाचार होकर (नि गच्छात्) चली जावे। अर्थात् तुम मेरे पति हो, मै तुम्हारी स्त्री हूँ। अतः (काम-मूता) काम से युक्त होकर (एतत् वहु रपामि) यह वहुत कुछ कह रही हूँ कि तू (मे तन्वा) मेरे देह से (तन्वं) अपने देह को (सं पिपृग्धि) संगत कर।

यह उसी प्रकार का आग्रह है जैसा माद्री ने कामार्त्त होकर अशक्त पाण्डु से किया था।

न वा उ॑ ते त॒न्वा॑ त॒न्व॑१॒ं सं प॑पृच्यां पा॒पमा॑हु॒र्यः स्वसा॑रं नि॒गच्छा॑त्।
अ॒न्येन॒ मत्प्र॒मुद॑ः कल्पयस्व॒ न ते॑ भ्राता॑ सुभगे वष्ट्ये॒तत् ॥१२॥

भा०—(वा उ) यदि ऐसा ही विकल्प है अर्थात् तू मुझे भाई और अपने को वहन समझती है तो भी (ते तन्वा) तेरी देह से मै (तन्वं न स पपृच्याम्) अपने देह का संपर्क न कराऊं क्योंकि (यः स्वसारं निगच्छात्) जो भगिनी का संग करे उसे भी (पापं आहुः) पापी कहते है। (अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व) तू मुझसे भिन्न के साथ नाना प्रमोद कर। हे (सुभगे) सौभाग्यवति ! (ते भ्राता) तेरा भरण पोपण करने वाला पति पुरुष भी भाई के समान ही (एतत् न वष्टि) ऐसे संग की कामना नही करता।

ब॒तो ब॑तासि यम॒ नैव ते॒ मनो॒ हृद॑यं चाविदाम।
अ॒न्या किल॒ त्वां क॒क्ष्ये॑व यु॒क्तं परि॑ ष्वजाते॒ लिबु॑जेव वृ॒क्षम् ॥१३॥

भा०—पुनः स्त्री पति के हृदय के भाव की परीक्षा करने के निमित्त कहती है—हे (यम) विवाह से वद्ध पुरुष ! (वत वतः असि) खेद है कि तू बडा निर्वल है। (ते मनः हृदय च नैव अविदाम) तेरे मन और हृदय को हम न जान पाये। (किल युक्त त्वा अन्या) क्या समर्थ तुझ

को कोई अन्य स्त्री (वृक्षम् लिबुजा-इव) वृक्ष को लता के समान (परि स्वजाते) आलिंगन करती है।

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्
॥ १४ ॥ ८ ॥

भा०—पुरुष अन्तिम आज्ञा देता है। हे (यमि) विवाहित स्त्री ! (त्वं) तू (अन्यम् उ वृक्षम् लिबुजा इव) अन्य पुरुष को वृक्ष की लता के समान आलिंगन कर। और (अन्यः उ त्वां परि स्वजाते) और अन्य पुरुष तुझे आलिंगन करे। (तस्य वा त्वं मन इच्छ) तू उसके मन को चाह। और (स वा तव) वह तेरे मन को चाहे। (अध) और तू (सु-भद्राम् संविदं कृणुष्व) शुभ कल्याणकारिणी उत्तम मति को कर। इस शब्द योजना से बहनभाई के परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध का भी निषेध किया है और रक्त में एक समान तत्व वाले स्त्री पुरुषो मे यदि परस्पर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति न हो तो भी अतिरिक्त पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा अर्थात् 'नियोग' वेद में प्रतिपादित है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[११]

हविर्धान आङ्गिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृज्जगती। ३—५ विराड् जगती। ७—९ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृषा) वर्षा करने वाला सूर्य (यह्वः) महान् होकर (वृष्णे दोहसा) वर्षणशील मेघ के दोहन या पूर्ण-सामर्थ्य से

(दिवः) आकाश से (पयांसि दुदुहे) जलों की वर्षा करता है इसी प्रकार (वृषा) बलवान् उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (यह्वः) बलों में महान् और (अदाभ्यः) शत्रुओं से अहिंस्य होकर (अदितेः) अपराधीन, स्वतन्त्र, अखण्ड (दिवः) भूमि से (दोहसा) अन्नादि देने के सामर्थ्य से (पयांसि दुदुहे) नाना प्रकार के पुष्टिकारक अन्नों को प्राप्त करे। (स वरुणः) वह सर्वश्रेष्ठ राजा, (धिया) ज्ञान और बुद्धि या कर्म द्वारा (यथा विश्वं वेद) जिस प्रकार समस्त राष्ट्र को प्राप्त करे और जाने उसी प्रकार वह (यज्ञियः) राष्ट्र-यज्ञ का कर्त्ता (यज्ञियान् ऋतून् यजतु) यज्ञ, परस्पर संगति करने वाले सदस्यों और ऋतुओं को सूर्यवत् ही एकत्र करे।

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः। इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अप्या) जल से प्राप्त करने योग्य, वा जल मे उत्पन्न (गन्धर्वी) वाणी को धारण करने वाली विद्युत् (रपत्) गर्जती है। उसी प्रकार (अप्या) जल प्रकृति की (गन्धर्वी) भूमि के समान वा वाणी को धारण करने वाली विदुषी (योषणा) स्त्री वा प्रजा (रपत्) कहे कि (नदस्य) गर्जनशील मेघ के समान उदार समृद्ध पुरुष के (नादे) शासन समृद्धि मे (मे मनः परि पातु) मेरा मन मेरी रक्षा करे। वह (अदितिः) अखड शासक होकर (नः) हमें (इष्टस्य मध्ये) इष्ट, प्रिय, ऐश्वर्य के वीच मे (नि धातु) स्थापित करे और (नः) हम मे से (ज्येष्ठः) सबसे बडा (भ्राता) सबका पालक पोषक, (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः विवोचति) हमें विविध विद्याओं का उपदेश करे, विविध आज्ञा दे।

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती। यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

भा०—(यद्) जब (उशताम्) नाना ऐश्वर्य चाहने वालों के बीच में (उशन्तं) स्वयं कामना करने वाले (क्रतु) कर्म कुशल (अग्नि) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (विदथाय) यज्ञार्थ यज्ञाग्निवत् (होतार) ग्रहीता रूप से (जीजनन्) विशेष रूप से प्रकट करते है, उस समय (सो चित नु उषा) वह कामनावती स्त्री भी प्रभात वेला के समान (क्षु-मती) उत्तम वचन बोलती हुई, (यशस्वती) उत्तम गुणों से कीर्त्ति युक्त (स्वर्वती) सुखसम्पदा वाली होकर (मनवे उवास) मनुष्य के हितार्थ रहे। उसी प्रकार राज्येच्छुओं में से एक को जब सर्वोपरि होता शासक बनाते हैं तब वह प्रजा प्रशंसा वचनों से युक्त यशस्विनी होकर उस (मनवे) प्रबन्धक की सुखकारिणी होकर रहे।

अध॒ त्यं द्र॒प्सं वि॒भ्वं॑ विचक्ष॒णं विराभ॑रदिषि॒तः श्ये॒नो अ॑ध्व॒रे।
यदी॒ विशो॑ वृ॒णते॑ द॒स्ममार्या॑ अ॒ग्निं होता॑र॒मध॒ धीर॑जायत ॥४॥

भा०—(यदि) जब (आर्याः विशः) वे श्रेष्ठ प्रजाएं (दस्मं) शत्रु वा दुष्ट पुरुषों को नाश करने वाले, (होतारम्) भृत्यों को वेतनादि देने वाले, (अग्नि) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को नायक रूप से (वृणते) वरण करती है (अध) अनन्तर ही (धीः अजायत) वह राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होजाता है। (अध) और उसी समय (विः) कांतिमान् तेजस्वी (श्येनः) बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने हारा, एक प्रशस्तगति वाला वीर सेनापति, (इषितः) प्रेरित होकर (त्यं) उस (द्रप्स) बलवान्, (विभ्वं) महान्, (विचक्षणं) बुद्धिमान् पुरुष को (अध्वरे) इस राष्ट्र रूप यज्ञ वा अहिंसनीय पद पर (आभरत्) प्राप्त करता है।

सदा॑सि र॒ण्वो यव॑सेव॒ पुष्य॑ते॒ होत्रा॑भिरग्ने॒ मनु॑षः स्वध्व॒रः।
विप्र॑स्य वा॒ यच्छ॑शमा॒न उ॒क्थ्यं१॒ वाजं॑ सस॒वाँ उ॑प॒यासि॒ भूरि॑भिः ॥५॥६

भा०—(पुष्यते यवसा इव) अपना पोषण करने वाले पशु को

जिस प्रकार नाना तृण उत्तम लगते है उसी प्रकार (पुष्यते) अपना पोषण करने वाले राष्ट्र के लिये हे नायक ! तू (सु-अध्वरः) उत्तम अहिंसक (मनुषः) मननशील पुरुष की (होत्राभिः) अपनी वाणियों द्वारा (सदा रण्वः असि) सदा रमण योग्य, प्रजा को प्रिय हो। और (शशमानः) उपदेश किया जाकर (विप्रस्य) विद्वान्‌गण के (उक्थं वाजं) प्रशंसनीय ज्ञान को (ससवान्) सेवन करता हुआ तू (भूरिभिः उप यासि) बहुत से अनुगामियों सहित वा अनेक साधनों से अनेक वार प्राप्त हो। इति नवमो वर्गः ॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६॥

भा०—हे विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! नायक ! (जारः आभगम्) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य जिस प्रकार अपने सेवनीय प्रकाश को सब ओर फैलाता है उसी प्रकार तू भी (पितरा) माता पिता के तुल्य पूज्यों के प्रति (उद् ईरय) उत्तम वचन कह, आदर से उनके लिये अभ्युत्थान किया कर। (भगम् आ ईरय) ऐश्वर्य सुख सब प्रकार से प्राप्त करा। क्योंकि (हर्यतः) कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष ही (इयक्षति) दान देने में समर्थ होता है, वह (हृत्तः इष्यति) उनको हृदय से चाहा करता है। वह (वह्निः) कार्य-भार को उठाने में समर्थ होकर (वि वक्ति) विविध वचन कहता है, (सु-अपस्यते) शुभ २, उत्तम कार्य करता है, और (मखः) यज्ञवान्, पूज्य होकर (तविष्यते) बल के कर्म करता है, और (असुरः) बलवान् होकर (मती वेपते) अपनी वाणी और बुद्धि से शत्रुओं को कंपाता है।

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूपति द्यून् ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! विद्वन्! राजन! प्रभो! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ते सुमतिम् अक्षत्) तेरे उत्तम ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक! बल के उत्पादक! (सः अति प्रशृण्वे) वह सबसे बड कर प्रसिद्ध हो जाता है। (सः) वह (इप) अन्न सम्पदा और सेना को (दधानः) धारण करता हुआ (अश्वैः वहमानः) आशुगामी अश्व आदि साधनों से राज्य को धारण करता और देश देशान्तर जाता हुआ (द्यून्) सब दिनों (द्युमान् अमवान्) तेजस्वी, बलवान् (भूपति) बना रहता है।

यद॑ग्न एषा समि॑तिर्भवा॑ति दे॒वी दे॒वेषु॑ यज॒ता य॑जत्र।
रत्ना॑ च॒ यद्वि॒भजा॑सि स्वधावो भा॒गं नो॑ अत्र॒ वसु॑मन्तं वीतात् ॥८

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! सेनापते! राजन्! (यजत्र) हे पूज्य! हे दानशील! (यत्) जब (यजता देवेषु) परस्पर सुसंगत विजयेच्छुक जनों मे (एषा देवी) यह तेजस्विनी, विजयेच्छुक वा विदुषी (समितिः) समिति, सभा, (भवति) हो, और (यत्) जब हे (स्वधाव.) अन्नादि के स्वामिन्! हे 'स्व' ऐश्वर्य के द्वारा धारण पोषण करने हारे! तू (रत्ना विभजासि) नाना रत्न वा रमणीय पदार्थ विभक्त करे तब (अत्र) इस अवसर पर (नः) हमारा (वसुमन्तं भाग) ऐश्वर्ययुक्त भाग हमें भी (वीतात्) प्राप्त हो।

श्रु॒धी नो॑ अग्ने॒ सद॑ने स॒धस्थे॑ यु॒क्ष्वा रथ॑म॒मृत॑स्य द्रवि॒त्नुम्।
आ नो॑ वह॒ रोद॑सी दे॒वपु॑त्रे॒ माकि॑र्दे॒वाना॒मप॑ भूरि॒ह स्याः॥९॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! राजन्! (सधस्थे सदने) एक साथ स्थित होने के सभाभवन में तू (नः) हमारे वचन श्रवण कर। और (अमृतस्य) अमृत के समान अविनाशी, नित्य सत्य ज्ञान को (द्रवित्नुम्) प्रवाहित करने वाले (रथम्) रथ के समान रमणीय उपदेश को (युक्ष्व)

संयोजित कर। (देव-पुत्रे) दानशील तेजस्वी पुरुषों को पुत्र के तुल्य पालन करने वाला (नः) हमारे (रोदसी) सूर्य-भूमिवत् तेजस्वी राजा और प्रजा दोनो वर्गों को (आ वह) धारण कर। जिससे (देवानाम्) विद्वानो और वीरो मे से कोई भी हम से (माकिः अपभूः स्याः) अपमानित और तिरस्कृत न हो। (देवानां अप भूः माकि स्याः) विद्वानों और वीरो के बीच मे कोई भी अपमानित न हो। इति दशमो वर्गः॥

[१२]

हविर्धान आङ्गिर्ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

द्यावा॑ ह॒ क्षामा॑ प्रथ॒मे ऋ॒तेना॑भिश्रा॒वे भ॑वतः सत्य॒वाचा॑।
दे॒वो यन्मर्ता॑न्यज॒था॑य कृ॒ण्वन्त्सीद॒द्धोता॑ प्र॒त्यङ् स्वमसुं॒ यन्॥१॥

भा०—(देवः) तेजस्वी, (होता) दानशील पुरुष (प्रत्यङ्) प्रत्यक् तत्व, आत्मा के समान सर्वप्रिय होकर (स्वम् असुं यन्) अपने प्राण-बल के समान शत्रु को उखाड़ देने वाले महान् सामर्थ्य को प्राप्त करता हुआ (मर्त्तान्) अधिकार के लिये मरने और शत्रुओं को मारने वाले मर्द, जवान वीर पुरुषों को (यजथाय) सुसंगत (कृण्वन्) करता हुआ (सीदत्) प्रधान पद पर विराजता है, उस समय ही (द्यावा क्षामा) सूर्य और भूमिवत् (प्रथमे) सर्वश्रेष्ठ, शास्य-शासक गण और अग्नि के समक्ष स्त्री पुरुषों के समान ही (ऋतेन अभिश्रावे) वेद-वचन द्वारा अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा श्रवण कराते हुए (सत्यवाचा भवतः) सत्यवाणी से बद्ध होते हैं।

दे॒वो दे॒वान्प॑रि॒भूर्ऋ॒तेन॒ वहा॑ नो ह॒व्यं प्र॑थ॒मश्चि॑कि॒त्वान्।
धू॒मके॑तुः स॒मिधा॒ भाऋ॑जीको म॒न्द्रो होता॒ नित्यो॑ वा॒चा यजी॑यान्॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! बलवन् ! तू (देवः) दानशील, तेजस्वी, (देवान्) विद्वानों, वीरों और तेजस्वियों पर भी (ऋतेन) तेज, बल और सत्य-ज्ञान, वेदधर्म के द्वारा (परि-भूः) सर्वोपरि शासक होकर (चिकित्वान्) ज्ञानवान् और (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नः हव्यं वह) हमे उत्तम ग्राह्य ज्ञान, निर्णय और उत्तम धनादि प्राप्त करा, वा वैसा कर (नः हव्यं वह) हमारा अन्नादि प्राप्त कर। राजादि भी जो वृत्ति प्राप्त करे तो वह धर्मानुसार सबका शासन करके ही प्राप्त करे अन्यथा नहीं। वह तू (धूम-केतुः) धूम की ध्वजा से युक्त अग्नि के तुल्य (धूम-केतुः) शत्रु वा अधर्म को कम्पित करने वाली ध्वजा वाला (समिधाः) सबके सहयोग से तेजस्वी, (भा-ऋजीकः) अपनी कांति वा तेज से दुष्टों को भून देने वाला (मन्द्र.) सर्वस्तुत्य, (होता) सब को आदर पूर्वक बुलाने हारा (नित्यः) नित्य और (वाचायजीयान्) वाणी से सबका सत्कार करने वाला, सबको ज्ञान और सुख देने हारा, सबको संगत सुसम्बद्ध करने वाला हो।

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३ ॥

भा०—(यदि देवस्य गोः) जब तेजस्वी सूर्य का (स्वावृक्) सुखप्रद (अमृत) जीवनप्रद जल उत्पन्न होता है तब (अतः) इस जल से ही (उर्वी) पृथिवी पर (जातासः अमृतं धारयन्त) उत्पन्न हुए प्राणी जीवन को धारण करते हैं। और (यद् एनी) जब वह दीप्त सूर्य कान्ति या आकाश वा सूर्यमयी द्यौ, (दिव्यं) आकाश से उत्पन्न (घृत दुहे) जल को प्रवाहित करती है (तत् यजुः अनु) उस दान को लक्ष्य करके ही (विश्वे देवाः अनु गुः) सब सुखाभिलाषी जीव, उसकी स्तुति करते और अन्य दाता भी उसी का अनुकरण करते हैं। इसी प्रकार तेजस्वी राजा का उत्तम कृपापूर्ण अमर-दान प्रजा को प्राप्त होता है, तब वे

जीवन धारते है। जब यह भूमि खूब जल और अन्न देती है तब अन्य भी सब उसकी स्तुति करते है।

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे।
अहा यद्द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

भा०—हे (घृतस्नू द्यावाभूमी) जल के वर्षाने और बहाने वाले भूमि और आकाश के समान स्नेह की वर्षा करने वाले, माता पिता, गुरु आचार्य, (रोदसी) उत्तम उपदेष्टा जनो ! मैं (वर्धाय) अपनी वृद्धि के लिये (वां अपः अर्चामि) आप दोनो के उत्तम उपकार रूप कर्म का आदर करता हूं। (मे श्रणुतं) आप मेरा वचन ध्यानपूर्वक श्रवण करें। (यत्) जब (द्यावः) सूर्य की तेजस्वी किरण (अहा) सब दिनो (असु-नीतिम् अयन्) जीवो के जीवन प्राप्त करने का कार्य करते हैं उसी समय (अत्र) इस लोक मे (पितरा) आकाश और भूमिवत् माता पिता भी (मध्वा) अन्न, जल और मधुर वचन और वेद द्वारा (नः शिशीताम्) हमे शक्ति दे, और अनुशासन करे।

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(राजा) सूर्यवत्, तेजस्वी राजा (नः किं स्वित् जगृहे) हमारा क्या स्वीकार करे ? (अस्य व्रत) उसके नियम को हम (कत् अति चकृम) कब २ उल्लंघन करते है ? (क विवेद) इस बात को विशेष रूप से कौन जानता है ? वह राजा वस्तुतः हम प्रजाओ का (मित्रः चित्) स्नेही मित्र के समान (जुहुराणः हि) सदा आमन्त्रित होकर (नः देवान् याताम्) हम अभिलाषी जनो को प्राप्त हो। वह (वाजः अपि अस्ति) निश्चय बलवान्, ऐश्वर्यवान्, वेगवान् है, तो भी वह (श्लोकः नः) वेदो-

पदेश के तुल्य माननीय और विश्वसनीय होकर हमें प्राप्त हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो (सलक्ष्मा) समान लक्षणों से युक्त स्त्रीवत् प्रकृति (विषु-रूपा भवाति) विविध रूपों से सम्पन्न होती है इस सम्बन्ध से (अमृतस्य) अमृत स्वरूप उस प्रभु का (नाम) स्वरूप (दुर्मन्तु) बड़ा दुर्विज्ञेय है। (यः) जो पुरुष उस (यमस्य) पति के तुल्य सर्वनियन्ता, नियामक प्रभु के (सु-मन्तु) सुख से मनन करने योग्य अमृतमय रूप का (मनवते) मनन करता है, हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (ऋष्व) महान्! तू (अ प्रयुच्छन्) निष्प्रमाद होकर (तम् पाहि) उसकी रक्षा कर।

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् विदथे) ज्ञानस्वरूप जिसमें (देवाः मादयन्ते) विद्वान्, ज्ञानवान्, धन और ज्ञान के इच्छुक पुरुष अति हर्ष को प्राप्त होते हैं और (यस्य विवस्वन्तः सदने) नाना वसने योग्य ग्रहों के अध्यक्ष सूर्य के तुल्य जिसके आश्रय में (देवाः) किरणों के तुल्य विद्वान् और वीर जन (धारयन्ते) अपने में व्रत-नियमादि गुण धारण करते हैं। जिस (सूर्ये) सूर्यवत् तेजस्वी के अधीन रह कर (ज्योतिः अदधुः) वे तेज और ज्ञान को धारण करते हैं और (मासि अक्तून्) चन्द्रमा के तुल्य जिसके आश्रय रहकर लोग रात्रियों के समान विशेष सौम्य गुण धारण करते हैं उस (द्योतनि) तेजस्वी पुरुष के आश्रय ही (अजस्रा) सब नर नारी एक दूसरे का नाश और हिंसा आदि न करते हुए, निरन्तर (परि चरतः) सेवा करें।

यस्मिन्देवा मन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८॥

भा०—(यस्मिन् मन्मनि) मनन करने योग्य ज्ञानमय जिसमें वा जिसके अधीन (देवाः संचरन्ति) विद्वान् और तेजस्वी लोग सम्यक् आचरण करते हैं। (वयम् अस्य) हम लोग उस प्रभु के (अपीच्ये) अप्रकट रूप में, विद्यमान स्वरूप को (न विद्म) नहीं जानते। वह (मित्रः) स्नेही, सब दुःखों से त्राण करने वाला, (अदितिः) अविनाशी, (सविता) सर्वोत्पादक, (देवः) सर्व-ज्ञानप्रद (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को प्राप्त करने के लिये (अनागान् नः) अपराध-रहित, निष्पाप हम को (अत्र) उस अजेय प्रभु के सम्बन्ध में (वोचत्) उपदेश करे, जिससे हम मुक्त हों।

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः॥९॥१२॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ११। ९॥ इति द्वादशो वर्गः॥

[१३]

विवस्वानादित्य ऋषिः॥ हविर्धाने देवता॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। निचृज्जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! (वां) आप दोनों को (नमोभिः) विनय-आचार आदि लक्षणों सहित (पूर्व्यं) ज्ञान में पूर्ण और पूर्व विद्वानों से सेवित और उपदिष्ट (ब्रह्म) वेद और ब्रह्म-ज्ञान का (युजे) उपदेश करता हूं। (सूरेः) सर्वजगत् के उत्पादक सञ्चालक प्रभु का वह (श्लोकः)

वेदमय ज्ञानोपदेश (पथ्या इव) सन्मार्ग पर लेजाने वाली पगदण्डी के समान है। (विश्वे) समस्त (अमृतस्य पुत्राः) अमृत, मोक्षमय, अविनश्वर, अजर अमर परमेश्वर के पुत्र आप सब लोग और (ये) जो (दिव्यानि धामानि आ तस्थुः) कामना योग्य उत्तम लोकों, स्थानों और जन्मों को प्राप्त है वे सब (शृण्वन्तु) श्रवण करें।

यमेइव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥ २॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप लोग (यद्) जब (यमे इव) परस्पर सम्बद्ध होकर, विवाहित पतिपत्नी के समान यम-नियम में बद्ध होकर (यतमाने) यत्न करते हुए (आ एतं) प्राप्त होवो, तो (वां) आप दोनों को (देवयन्तः मनुषाः) विद्वानों को चाहने वाले मनुष्य (प्रभरन्) अच्छी प्रकार पोषण-पालन करें। आप लोग (स्वम् उ लोक विदाने) अपने प्रकाश रूप आत्मा को जानते हुए (आ सीदतम्) आदरणीय पदपर विराजो। और (नः इन्दवे) हमारे ऐश्वर्यवृद्धि के लिये (सु-आसस्थे भवतम्) शुभ आसन पर विराजो।

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सम्पुनामि ॥ ३ ॥

भा०—(रुपः पदानि) सीढ़ी के पग-दण्डो के समान मैं (रुपः) उन्नत पद तक चढ़ने के साधन रूप योगमार्ग के (पञ्च पदानि) पांच पदों, पांचो भूमियो वा पांचो यमों को (अनु अरोहम्) क्रमसे चढूं। और (व्रतेन) व्रत के ग्रहण और पालनपूर्वक मैं (चतुष्पदीम्) चार पदों वा चार आश्रमों से युक्त जीवन-पद्धति वा चार ज्ञानमय वेदों से युक्त वाणी को (अनु एमि) क्रम से प्राप्त होऊं। (एताम्) उस वाणी को (अक्षरेण) अक्षर, वर्ण ककारादि द्वारा वाणी के समान ही (अ-क्षरेण) अविनाशी

वेदमय ज्ञान से (प्रति मिमे) प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान करूं । और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (नाभौ) केन्द्र, आश्रय रूप प्रभु में रह कर, उसके आधार पर भी अपने आप को (अधि सम् पुनामि) खूब पवित्र करूं ।

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं१ प्रारिरेचीत् ॥४॥

भा०—(देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों के हितार्थ (मृत्युं) मृत्यु को (अवृणीत कम्) दूर करो और (प्रजायै) प्रजा के लिये (अमृतं) दीर्घ जीवन को (न अवृणीत) नष्ट न होने दो । (बृहस्पतिम्) वेद-वाणी के पालक (यज्ञं) पूज्य, सत्संग योग्य (ऋषिं) वेद मन्त्रों के यथार्थ द्रष्टा पुरुष को (अकृण्वत) नियुक्त करो और (मनः) विवाह आदि बन्धन से बद्ध पुरुष (प्रियां तन्वं) अपने प्रिय तनु, सन्तति आदि को (प्रारिरेचित्) उत्पन्न करे ।

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५।१३॥

भा०—(पित्रे पुत्रासः) पिता के लिये पुत्र जिस प्रकार प्रेम-भाव दर्शाते हैं उसी प्रकार (मरुत्वते) प्राणों के अध्यक्ष (शिशवे) भीतर सोने वाले, गुप्त शासन करने वाले पालक वा स्तुत्य आत्मा के सुखार्थ ही ये (सप्त) सातों वा सर्पणशील पुत्रवत् प्राणगण (ऋतम् अपि अवीवृतन्) सत्य ज्ञान वा सुख को भोग्य अन्न वा जलवत् प्राप्त कराते हैं । (अस्य उभयस्य) ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले इसके (उभे इत् राजेते) दोनों ही ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय गण प्रकाशित होते हैं । (पुष्यतः) पोषक दोनों वर्गों के स्वामी आत्मा के वे दोनों ही प्रकार के प्राण-गण राजा के भृत्यों के समान (यतेते) यत्न करते हैं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१४]

यम ऋषिः ॥ देवताः—१—५, १३—१६ यमः । ६ लिंगोक्ताः । ७—९ लिंगोक्ताः पितरो वा । १०—१२ श्वानौ ॥ छन्दः—१, १२ भुरिक् त्रिष्टुप् । २, ३, ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । १३, १४ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १५ विराड् बृहती ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥

भा०—(प्रवतः महीः) उत्तम २ कर्म करने वालों को (महीः परेयिवांसम्) उत्तम भूमियों को प्राप्त कराने वाले, वा स्वयं (प्रवतः महीः) दूर २ तक के उत्तम देशों और भूमियों को दूर तक प्राप्त करने वाले, और (अनु) अनन्तर (बहुभ्यः) बहुतों के हितार्थ (पन्थाम्) मार्ग को (अनुपस्पशानम्) साक्षी वा पहरेदार के समान सबके मार्ग को देखने वाले और (वैवस्वतं) विविध बसी प्रजाओं के स्वामी, (जनानां संगमनम्) मनुष्यों के एक स्थान पर मिल जाने का आश्रय, शरण्यरूप (यमं राजानं) नियन्ता राजा को (हविषा दुवस्य) उत्तम अन्न, वचन आदि से सत्कार कर। ऐसा सत्कार राजा, आचार्य, गुरु, विवाह्य सभी को होना आवश्यक है। ये सभी 'यम' नाम से कहे जाते हैं। परमेश्वर, गुरु, और राजा तीनों क्रम से विश्व, शिष्य और प्रजाओं के नियन्ता होने से "यम' हैं, वर उपयम, अर्थात् विवाह द्वारा पत्नी को बांधने से 'यम' है।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्याः अनु स्वाः ॥२॥

भा०—(प्रथमः) सबसे उत्कृष्ट पुरुष (यमः) नियन्ता है। वह

(नः) हमारी (गातुं) भूमि को (विवेद) प्राप्त करे। वह (नः गातुं विवेद) हमारी वाणी और स्तुति का पात्र हो, वह हमारी वाणी सुने, हमारा अभिप्राय जाने। (नः गातुं विवेद) हमारे मार्ग को जाने, हमें मार्ग जनावे। (एषा) वह (गव्यूतिः) मार्ग (अपभर्त्तवा न उ) त्याग करने योग्य नहीं है। (यत्र) जिसमें (नः) हमारे (पितरः) पालक पिता, गुरु, चाचा, ताऊ, मातामह, पितामह आदि (स्वाः पथ्याः) अपने २ हितकारी मार्गों को (जज्ञानाः) जानते हुए (एना) इसी मार्ग से (अनु परेयुः) जाते हुए दूर तक चले जाते रहे, दीर्घ जीवन व्यतीत कर परलोक तक गये।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ मनु० ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

भा०—(मातली) ज्ञान मार्ग को प्राप्त कराने वाला, (काव्यैः) विद्वानों के ज्ञानों से और (यमः) नियन्ता व्यवस्थापक पुरुष (अंगिरोभिः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों से, और (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् (ऋक्वभिः) वेदज्ञ विद्वानों द्वारा (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता है। (ये देवाः) जो विद्वान् जन (यान् च वावृधुः) जिनको बढ़ाते हैं उन्नत करते हैं और जो जन (देवान् वावृधुः) इन विद्वानों, ज्ञान धनादि देने वालों को बढ़ाते हैं उनमें से (अन्ये) एक वर्ग के (स्वाहा) उत्तम वाणी और शुभ दान-सत्कार से (मदन्ति) तृप्त, प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे जन (स्वधया) अन्न-जल द्वारा (मदन्ति) तृप्त होते हैं।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! तू (इमं) इस (प्र-स्तरम्) विस्तृत, श्रेष्ठ आसन पर (आसीद हि) अवश्य विराज। और (पितृभिः) पालन करने वाले, प्रजापालक शासकों वा पिता, पितामह आदि और (अङ्गिरोभिः) विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों से (स-विदानः) भली प्रकार उत्तम-उत्तम ज्ञान प्राप्त करता हुआ, हे (राजन्) राजन्! तेजस्विन्! तू राजा (हविषा) इस उत्तम अन्न आदि सत्कार योग्य साधन से (मादयस्व) प्रसन्न हो। (कवि-शस्ताः मन्त्राः) उत्तम मेधावी, बुद्धिमान् पुरुषों से उपदेश किये गये, मननयोग्य विचार (त्वा आवहन्तु) तुझे आगे, उत्तम मार्ग पर ले जावें।

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥१४॥

भा०—हे (यम) नियन्तः! व्यवस्थापक! तू (यज्ञियेभिः) यज्ञ, आदर-सत्कार, पूजा, सत्संग के योग्य (अंगिरोभिः) तेजस्वी, (वैरूपैः) विविध रूपों, रुचि और कान्ति वाले, नाना विद्या, कलाओं में निपुण विद्वानों सहित (आ गहि) आ और (मादयस्व) सबको अन्न शिल्पादि से तृप्त, प्रसन्न कर। (यः) जो (पिता) पालक पिता के समान प्रजा का रक्षक है उस (विवस्वन्तं) विविध वसु, प्रजाओं और धनों के स्वामी को मैं (हुवे) प्रार्थना करता हूँ कि वह (ते अस्मिन् यज्ञे) तेरे इस यज्ञ में (बर्हिषि) वृद्धियुक्त आसन पर (नि-सद्य) विराजे और (आ) सब को हर्षित करे।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥

भा०—(अंगिरसः) ज्ञानवान्, अंगारों के समान तेजस्वी, (नः) हम प्रजाओं के (पितरः) पालक (नवग्वाः) सदा नवीन, सनातन, स्तुत्य

वाणियों को प्रकट करने वाले, श्रेष्ठ आचारवान् (अथर्वाणः) अहिंसक, (भृगवः) तपस्वी, पापनाशक, (सोम्यासः) ऐश्वर्य, बल-वीर्य युक्त, सोम, ओषधि अन्नादि से सत्कार करने योग्य हैं। (यज्ञियानाम्) यज्ञ, पूजा सत्संग के योग्य उनकी (सु-मतौ) शुभ मति और उनकी (भद्रे सौमनसे) कल्याणकारक सुखजनक शुभचित्तता में हम (स्याम) सदा रहें। उनकी अनुमति लें और उनकी प्रसन्नता चाहें।

प्रेहि॒ प्रेहि॑ प॒थिभि॑ः पू॒र्व्येभि॒र्यत्रा॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तर॑ः प॒रेयुः॑ ।
उ॒भा राजा॑ना स्व॒धया॒ मद॑न्ता य॒मं प॑श्यासि॒ वरु॑णं च दे॒वम् ॥७॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (पूर्व्येभिः पथिभिः) पूर्व के विद्वान् ऋषियों, ज्ञानी पुरुषों द्वारा बनाये या उपदेश किये और चले हुए मार्गों से (प्र इहि प्र इहि) निरन्तर आगे ही आगे बढ़े जा। (यत्र) जिन मार्गों में (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व पिता, पितामह, गुरु आदि जन (परा ईयुः) दूर २ तक दीर्घ जीवन-मार्ग पार किये है, उस मार्ग पर चलते हुए ही तू (स्वधया मदन्ता) ज्ञान, अन्न और शक्ति से तृप्त और प्रसन्न होते हुए (यमं) नियन्ता और (वरुणं च) दुष्टों के वारण करने वाले दिन रात्रिवत् (राजाना) तेजस्वी (उभा) दोनों स्त्री पुरुषों को (पश्यासि) देख।

सं ग॑च्छस्व पि॒तृभि॒ः सं य॒मेने॑ष्टापू॒र्तेन॑ पर॒मे व्यो॑मन् ।
हि॒त्वाया॑व॒द्यं पुन॒रस्त॒मेहि॒ सं ग॑च्छस्व त॒न्वा॑ सु॒वर्चा॑ः ॥ ८ ॥

भा०—हे पुरुष ! वा हे स्त्री ! तू (पितृभिः) पालन करने वाले माता पिता, गुरुजनों से (सं गच्छस्व) सत्संग लाभ कर। (यमेन स गच्छस्व) नियन्ता, शास्ता जन से और (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट आकाशवत् रक्षा स्थान, शरण्य प्रभु के अधीन रह कर (इष्ट-आपूर्तेन) यज्ञ दान, पालन पोषण के साधनों से (सं गच्छस्व) सदा युक्त रहे। (अवद्यं हित्वाय) निन्दनीय आचरण को छोड़ कर (पुनः अस्तम् एहि) बार २

गृह को प्राप्त हो। और (सु-वर्चा.) उत्तम तेजस्वी होकर (तन्वा) सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री, और कुलवर्धक पुत्रादि से (स गच्छस्व) संगति लाभ कर।

संसार के आवागमन पथ मे विचरते जीव के प्रति—हे जीव! तू नाना माता, पिताओ से संगति कर। नियन्ता प्रभु द्वारा उत्तम यज्ञादि, श्रौत, स्मार्त्त कर्म के उत्तम फल से युक्त हो, निन्द्य कर्म को त्याग कर उत्तम तेजोयुक्त देह से पुनः २ युक्त होकर (अस्तं) परम शरण को पुनः प्राप्त हो, मुक्त हो, या देह लाभ कर।

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे दुष्ट पुरुषो! (अतः अप इत) तुम यहां से दूर भागो। (वि इत) विविध दिशाओ मे जाओ। (वि सर्पत च) परे चले जाओ। (पितर) पालक जन, ओषधि वनस्पतियां (एतं लोकं) इस लोक को (अस्मै) इस प्रजा के लिये (अहोभिः अक्तुभिः) दिन रात (अद्भिः) जलो से (वि-अक्तं) विविध प्रकार से सींचे, इस लोक को सुन्दर हराभरा (अक्रन्) बनावे। (यमः) नियन्ता राजा वा प्रभु (अस्मै) इसके लिये यहां ही (अवसानं ददाति) आश्रय देता है। (२) जीवात्मा पक्ष मे—हे जीवो! तुम इस लोक से जाते ही नाना योनियो, देहो और लोकों मे जाते हो। इस लोक को पालक जलादि, ओषधियो, वा प्राणगण, वा सूर्य की रश्मियो से इस जीव के लिये दिनो रातो वा जलो से उत्तम २ सुखदायी बनाते हैं। सर्व-नियन्ता सूर्य वा प्रभु जीवगण को इस लोक मे आश्रय देता है।

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०॥१५॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (सारमेयौ) सूर्य की वेग से जानेवाली प्रभा या कान्ति से उत्पन्न होने वाले (श्वानौ) अति वेगवान्, (चतुरक्षौ) चारो दिशाओ मे व्यापक, (शबलौ) श्याम-रक्त वर्ण से युक्त दिन रात्र दोनों को (साधुना पथा) उत्तम सदाचारयुक्त धर्म-मार्ग से (अति द्रव) व्यतीत किया कर। ये जो विद्वान् सज्जन लोग (यमेन) सर्व-नियन्ता प्रभु के साथ (सधमादं) हर्ष आनन्द (मदन्ति) अनुभव करते है उन (सु-विदत्रान्) उत्तम ज्ञानवान् , (पितॄन्) पालक माता, पिता और ज्ञानी पुरुषो को भी (उपेहि) प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार हे जीव ! जीव के साथ रमने वाली चेतना से उत्पन्न वेग युक्त प्राणापान रूप शक्तिप्रद दोनो को सत्साधना रूप योग मार्ग से वश कर। जो प्रभु के साथ रमते है उन आत्माराम ज्ञानियो को प्राप्त कर, मोक्ष का लाभ कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

यौ ते॒ श्वानौ॑ यम रक्षि॒तारौ॑ चतु॒रक्षौ॑ प॑थि॒रक्षी॑ नृ॒चक्ष॑सौ ।
ताभ्या॑मेनं॒ परि॑ देहि राजन्त्स्व॒स्ति चा॑स्मा अनमी॒वं च॑ धेहि ॥११॥

भा०—हे (यम) नियन्तः ! यम नियम के पालक गुरो ! (ते) तेरे (यौ श्वानौ) जो सदा चलने वाले, (रक्षितारौ) तुझे मृत्यु से बचाने वाले, (चतुरक्षौ) चारो आश्रमो मे व्याप्त, (पथि-रक्षी) जीवन भर के मार्ग मे रक्षा करने वाले, (नृ-चक्षसौ) देह के नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण अपान है। हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप ! (ताभ्याम्) उनसे (एनं) इस जीव को (परि देहि) मुक्त कर और (अस्मै स्वस्ति च अनमीवं च धेहि) उसको सुख, और नीरोग शरीर और जीवन प्रदान कर। (२) राजा के पक्ष मे—दो प्रकार के गुप्त और प्रकट राजपुरुष (पोलिस) राष्ट्र के रक्षक, चार आंखो वाले अर्थात् सदा सावधान, चौकन्ने, मार्ग पर रक्षार्थ नियुक्त कर, वे सब मनुष्यो के द्रष्टा हो, उनसे इस प्रजाजन को रक्षित कर और राष्ट्र को सुखकारी और रोगरहित कर।

उरुणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १२ ॥

भा०—(यमस्य दूतौ) सर्वनियन्ता राजा के (दूतौ) प्रतिनिधियों के समान, दोनो प्रकार के राजपुरुष (पोलिस) (उरु-णसौ) ऊंची नाक वाले, बलवान् वा तीक्ष्ण शक्ति वाले, (असु-तृपा) प्राण रक्षा योग्य द्रव्य मात्र से तृप्त होने वाले, भृति से सतुष्ट, (उदुम्बलौ) अति बलशाली जन (जनान् अनु चरतः) प्रजाजनो को देखते हुए विचरते है । (तौ) वे दोनो (अस्मभ्यम्) हमारे लिये और (सूर्याय दृशये) सूर्यवत् तेजस्वी द्रष्टा अध्यक्ष के लिये (इह अद्य) इस देश और काल में (भद्रम् असुम् पुनः दाताम्) कल्याणकारक बल और जीवन बार २ देवे ।

इसी प्रकार नासिकागत, प्राणतर्पक बली दोनो प्राण अपान और दिन रात्रि परमेश्वर के दिये प्रत्येक जन्तु को प्राप्त हैं । वे हमें नित्य सूर्य का दर्शन करावे, सुख दें, तथा दीर्घजीवी करे ।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १३ ॥

भा०—(यमाय) यम नियम की व्यवस्था करने वाले राजा के लिये (सोम) आदरार्थ ओषधि, अन्न, ऐश्वर्य (सुनुत) उत्पन्न करो, और (यमाय) उस नियन्ता के उपकारार्थ ही (हविः जुहुत) यज्ञाग्नि मे आहुतियोग्य द्रव्य दो, और अन्न प्रदान करो । (यज्ञः) यज्ञ और सत्संगादि भी (अग्नि-दूतः) अग्निवत् तेजस्वी दूतो वाला और (अरंकृतः) सुशोभित होकर (यम ह गच्छति) उस नियन्ता को ही शरणार्थ प्राप्त होता है ।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ १४ ॥

भा०—(यमाय) उस नियन्ता के लिये ही (घृतवद् हविः) घृत से युक्त अन्न और स्नेह से युक्त कर (जुहोत) प्रदान करो। और (प्र तिष्ठत च) उत्तम मार्गों पर चलो, उत्तम पदों पर स्थिर रहो और देश-देशान्तर में प्रस्थान और प्रयाण करो। (सः) वह (नः देवेषु) हमारे बीच विद्वानों और वीर पुरुषों में (जीवसे) उनके जीवनार्थ (दीर्घायुः (प्र आ यमद्) दीर्घजीवन प्रदान करे।

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ १५ ॥

भा०—(यमाय राज्ञे) नियन्ता व्यवस्थापक (राज्ञे) राजा के लिये (मधुमत्तमं) अति मधुर, अन्नयुक्त (हव्यं) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (जुहोतन) प्रदान करो। (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिये यह आदर और (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज और (पूर्वेभ्यः) पूर्व के (पथिकृद्भ्यः) मार्ग उपदेश करने वालों को (इदं नमः) यह इस प्रकार अन्न, वचनादि द्वारा आदर-सत्कार प्राप्त हो।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥ १६ ॥ १६ ॥

भा०—(एकम् इत् बृहत्) यह एक ही महान् ब्रह्म (त्रि-कद्रुकेभिः) तीन द्रुतगामी गुणों द्वारा (षट् उर्वीः) छहों महान् शक्तियों को (पतति) प्राप्त होता है। जैसे एक सूर्य, गर्मी, सर्दी, वर्षा तीन गुणों से छहों ऋतुओं को व्यापता है उसी प्रकार एक प्रभु ज्योति, गौ, आयु, अर्थात् सूर्य, भूमि और जीवन तत्व इन तीनों द्वारा इन छहों बड़ी शक्तियों को चला रहा है। द्यौ, पृथिवी, आपः, ओषधिगण, ऊर्क्, सूनृता अर्थात् सूर्य, भूमि, जल, वनस्पति अन्न और वाणी ये छः बड़ी शक्तियां 'षट् उर्वी' हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[१५]

शखो यामायन ऋषिः ॥ पितरो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ७, १२—१४ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ६, १० त्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६ निचृत त्रिष्टुप् । ५ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ निचृज्जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अवरे उत् ईरताम्) पर पद को अप्राप्त, निकृष्ट अल्प ज्ञान और अल्प आयु वाले जन ऊपर उठे । (परासः) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त (पितरः) पालक जन भी (उत् ईरताम्) उत्तम पद को प्राप्त हो। इसी प्रकार (मध्यमाः सोम्यासः)मध्यम, अर्थात् उक्त दोनो वर्गों के बीच,मध्यम श्रेणी के भी पालक माता पिता जन (उद् ईरताम्) उत्तम पद को प्राप्त करे । (ये) जो (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले विद्वान् जन (असुम् ईयुः) प्राण, वल, आयु, जीवन को प्राप्त हो (ते) वे (पितरः) पालक जन (अवृकाः) वृक के समान हिंसक और चौरवत् दाम्भिक न होकर (हवेषु) संग्रामो और यज्ञो के अवसरों पर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करे ।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ २ ॥

भा०—(ये पूर्वासः) जो पूर्व, विद्या आदि शुभ गुणो में पूर्ण, और (ये उपरासः) सर्वोपरि विद्यमान अथवा (ये पूर्वासः, ये उ परासः) जो हमसे पूर्व और जो हमारे उपरान्त या वाद के (अद्य ईयुः) आज, अव हमे प्राप्त है (ये पार्थिवे) जो पार्थिव लोक, इस भूलोक पर (आ निपत्ताः) सव ओर उत्तम पदो पर विराजमान है और (ये वा) जो

निश्चय करके (सु-वृजनासु) शत्रु और प्रजा के दुःखों को दूर करने वाली, उत्तम बलशालिनी सेनाओं में अध्यक्ष होकर विराजते हैं उन (पितृभ्यः इदं नमः अस्तु) प्रजापालक जनों को यह इस प्रकार का अन्न, वेतन, भृति, दण्ड, शासन-अधिकार और आदर-वचन प्राप्त हो।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

भा०—(अहं) मैं (सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि) उत्तम, शुभ ज्ञानवान्, और शुभ, सुख प्राप्त कराने वाले पालक, माता पिता और गुरु-जनों को प्राप्त करूं। और मैं (विष्णोः नपातं) व्यापक प्रभु के अविनाशी स्वरूप और (वि-क्रमणं च) विविध सर्ग-रचना-कौशल या व्यापक रूप को (अवित्सि) जानूं। (ये) जो (बर्हि-सदः) यज्ञ, अन्तरिक्ष और बुद्धिमान्, मुक्त पद वा उत्तम आसन पर विराजते और (सुतस्य पित्वः) उत्पन्न औषध, अन्न को (स्वधया भजन्त) अपने स्व-शरीर पोषक रूप से सेवन करते हैं (ते) वे सौम्य पुरुष (इह आगमिष्ठाः) यहां उत्तम आदर पूर्वक आने वाले हों।

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ४ ॥

भा०—हे (बर्हि-षदः पितरः) यज्ञ में विराजने वाले गुरु जनो! आप लोगों की (ऊती अर्वाक्) हमारे प्रति सदा रक्षा, प्रीति और प्रसन्नता हो। (इमा हव्या) इन स्वीकारने, खाने और दान देने योग्य अन्न, वस्त्र, धनादि पदार्थों को हम (वः) आप लोगों के निमित्त (चकृम) समर्पण करते है। (ते) वे आप लोग (आगत) आइये, (अथ) और (शन्तमेन अवसा) अति शान्तिदायक, रक्षा, प्रीति आदि से (नः शंयोः) हमें शान्ति सुख प्राप्ति और हमारे दुःख का नाश (दधात) करो। और (अरपः दधात) पापों को दूर करो और पुण्यों को शुभ कर्मों को प्राप्त कराओ।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥१७॥

भा०—(सोम्यासः पितरः) सोम, अन्न, जल, ओषधि, ऐश्वर्यादि के योग्य (पितरः) माता पिता, गुरुजन (बर्हिष्येषु) यज्ञोपयोगी (प्रियेषु) तृप्तिदायक, (निधिषु) नियम से धारण करने योग्य पदार्थों के निमित्त (उप-हूताः) आदर पूर्वक बुलाये हों। (ते) वे (इह आगमन्तु) यहां आवें। (ते इह अधि श्रुवन्तु) वे यहां अध्यक्ष होकर हमारे वचन सुनें। और (ते अस्मान् अवन्तु) वे हमारी रक्षा और हम से प्रेम करें।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६॥

भा०—हे (पितरः) माता पिता, गुरु जनों के तुल्य प्रजापालक जनो! (विश्वे) आप सब लोग (दक्षिणतः) दाएं ओर (जानु आच्य) गोडे सिकोड़ कर (नि-सद्य) विराज कर (इमं यज्ञम् अभि गृणीत) इस यज्ञ वा उपास्य प्रभु को लक्ष्य कर उपदेश कीजिये। (यद् वः) जो आप लोगों के प्रति हम (पुरुषता आगः कराम) मनुष्य होने के कारण अपराध कर दें (केन चित्) किसी भी कारण से (नः मा हिंसिष्ट) आप लोग हमें पीडित न करें। गुरुजनों को आदरार्थ दक्षिण अर्थात् दायें हाथ बैठाना चाहिये।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ७ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक जनो! (अरुणीनाम् उपस्थे) सब ओर उत्तम रूप, कान्ति आदि से चमकने वाली, भूमियों प्रजाओं और सहचारिणियों के समीप (आसीनासः) विराजते हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य के उपकारार्थ उसके (रयिं धत्त)

दातव्य धन को धारण करो और कालान्तर मे (तस्य पुत्रेभ्यः) उसके ही पुत्र पौत्रो के उपकारार्थ (वस्वः प्रयच्छत) उस धन का प्रदान करे। (ते) वे आप लोग (इह ऊर्जं दधात) इस यज्ञ मे बल आधान करे, अधिकार धारण करे ।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥

भा०—(नः) हमारे (ये) जो (पूर्वे) पूर्व विद्यमान, वृद्ध, विद्या आदि गुणो मे पूर्ण (सोम्यासः पितरः) अन्न, ओषधि, ऐश्वर्य शिष्यपुत्रादि के योग्य हितैषी (वसिष्ठाः) उत्तम 'वसु' अर्थात् अन्यो को वसाने वाले होकर (सोमपीथं अनु ऊहिरे) सोम अर्थात् शिष्यादि से पालन करने योग्य ज्ञान को प्रतिदिन धारण करते वा तर्क द्वारा विवेचन करते हैं (तेभिः उशद्भिः) उन प्रिय गुरु जनो के साथ (सं-रराणः यमः) अच्छी प्रकार सुख पूर्वक रहता हुआ यमनियमो का पालक शिष्य वा नवगृहस्थ (प्रतिकामम् उशन्) प्रत्येक उत्तम पदार्थ को चाहता हुआ (हवींषि अत्तु) उत्तम अन्नो का उपभोग करे ।

ये तातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

भा०—(ये) जो (होत्रा-विदः) अग्निहोत्र, दान और 'होत्रा' अर्थात् वेदवाणी को जानने हारे (स्तोम-तष्टासः) वेद के सूक्तो को खोल २ कर वतलाने वाले, विद्वान् पुरुष (देवत्रा) विद्या के इच्छुक शिष्यो को (जेहमानाः) प्राप्त होकर उनके लिये (तातृपुः) धनादि चाहते है उन (अर्कैः) अर्चनीय (सुविदत्राभिः) उत्तम ज्ञानवान् (सत्यैः) सत्यभाषी, सज्जन, (कव्यैः) क्रान्तदर्शी, (घर्म-सद्भिः) तेजस्वी, तपस्वी, यज्ञस्थ, (पितृभिः)

पितृवत् पूज्य गुरुजनो सहित हे, (अग्ने) तू विनीत शिष्य ! हे उत्तम नायक ! तू सबके (अर्वाङ् आयाहि) समक्ष आ ।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१०॥१८॥

भा०—(ये) जो (सत्यासः) सत्याचरणशील, (हविः-अदः) उत्तम अन्न के खाने वाले, निरामिष, (हविष्पाः) उत्तम अन्नरस का ही पान करने वाले, (इन्द्रेण देवैः) आत्मदर्शी गुरु और विद्याभिलाषी शिष्यजनो के साथ (स-रथं दधानाः) एक समान रथ को धारण करने वाले, उनके समान आदर प्राप्त है, उन (देव वन्दैः) शिष्यजनो से वन्दनीय, (परैः पूर्वैः) श्रेष्ठ, पूर्व, विद्यादि मे पूर्ण (घर्म-सद्भिः) तेजस्वी, तपस्वी जनो के साथ हे (अग्ने) ज्ञानवन् तेजस्विन् ! तू भी (सहस्रं आयाहि) बलवान् पद को प्राप्त हो, वा अनेक ऐश्वर्य-अधिकार प्राप्त कर ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११॥

भा०—(अग्नि-सु-आत्ताः) अंग में विनयशील शिष्यो, और अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो द्वारा उत्तम रीति से आश्रित (पितरः) उनके पालक गुरुजनो ! हे (सुप्रणीतयः) शुभ, उत्कृष्टमार्ग मे लेजाने वालो ! आप लोग (इह आगच्छत) यहां आइये । और (सदः सदः सदत) प्रत्येक सभा में और उत्तम २ आसन पर विराजिये । आप लोग (प्रयता हवींषि) नियत अन्न, भृति, वेतन आदि का (अत्त) उपभोग कीजिये । (अध) और (बर्हिषि) इस राष्ट्र यज्ञ मे (सर्व-वीरं रयिं) समस्त वीर पुरुषो से युक्त ऐश्वर्य को (दधातन) धारण करें ।

त्वम॑ग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि १२

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जातवेदः) धन, ऐश्वर्य और ज्ञान, विद्या मे प्रसिद्ध ! (त्वम् ईडितः) तू स्तुतिपात्र और सर्वप्रिय होकर (हव्यानि) खाने और ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वी) उत्तम गन्ध युक्त और उत्तम बलप्रद करके (अवाट्) प्रदान कर। तू (पितृभ्यः प्रादाः) उस प्रकार के ही अन्न अपने पालक गुरुजनों को भी आदरपूर्वक प्रदान कर। (ते) वे उस अन्न का (स्वधया) 'स्व-धा' अर्थात् अपने शरीर के पोषण धारण के निमित्त ही (अक्षन्) प्राप्त करें। और (त्वं) तू भी हे (देव) दानशील ! विनीत ! (प्रयता हवींषि) अपने गुरुजनों से प्रदान किये अन्नों को (अद्धि) भोजन किया कर।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ १३ ॥

भा०—(ये च इह पितरः) जो यहां पिता, पालक गुरुजन हैं, (ये च न इह) और जो यहां नहीं हैं। (यान् च विद्म) और जिनको हम जानते हैं और (यान् उ च न प्र-विद्म) जिनको हम नहीं जानते हैं, हे (जात-वेदः) विद्यावन् ! ऐश्वर्यवन् ! (यति) यदि (ते) उनको (त्वं वेत्थ) तू जानता है तो (स्वधाभिः) अन्न जलों, वेतनों सहित (सुकृतं) उत्तम रीति से किये (यज्ञं जुषस्व) यज्ञ, दान का सेवन कर, उनको भी आदर पूर्वक अन्नादि प्रदान कर।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥१६॥

भा०—ये (अग्नि-दग्धाः) जो लोग अग्नि, ज्ञानवान् प्रभु या गुरु द्वारा अपने अज्ञान पापादि को भस्म कर देने वाले, वा अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, और (ये अनग्नि-दग्धाः) अग्नि, यज्ञ, गुरु आचार्यादि द्वारा अभी कर्मों को भस्म नहीं कर पाये वा जो संन्यासी अग्निहोत्र नहीं करते

और (मध्ये दिवः) भूमि मे वा ज्ञान-ज्योति वा प्रकाश के बीच ही (स्वधया) अन्न वा जल, वा स्वशरीर की धारणा शक्ति के बल से (मादयन्ते) सदा तृप्त, वा सुखी रहते है (तेभिः) उनके साथ तू (स्वाराट्) स्वय देदीप्यमान होता हुआ (एताम्) इस (असु-नीति) प्राण वा बल प्राप्त करने वाले (तन्वं) देह को (यथावशं) यथाशक्ति (कल्पयस्व) समर्थ बना। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

दमनो यामायन ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६, ९ त्रिष्टुप्। १० स्वराट त्रिष्टुप्। ११ अनुष्टुप्। १२ निचृदनुष्टुप्। १३, १४ विराडनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! गुरो ! (एनं) इस प्रजा जन वा शिष्य को (मा वि दहः) विशेष रूप से भस्म मत कर। (मा अभि शोच.) शोक से संतप्त मत कर। हे जातवेदः ! विद्याओ मे सम्पन्न ! हे ऐश्वर्यवन् ! (यदा) जब तू इसे (श्टतं कृणवः) परिपक्व करे, तब (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः) इसकी त्वचा को मत विछिटा, अर्थात् कठोर शारीरिक दण्ड से त्वचा को भंग करने वाली असह्य पीडा न दे। (मा शरीरं चिक्षिप.) देह को भी विक्षिप्त या बेचैन मत कर। (अथ) अनन्तर (एनं) परिपक्व बल-वीर्य से सम्पन्न इस जन को (पितृभ्यः) माता, पिता, चाचा, ताऊ, आदि जनो की सेवा के लिये (प्र हिणुतात्) भेज देना

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ २ ॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त विद्याओं के जानने हारे गुरो ! (यदा) जब तू (एनं शृतं ईं करसि) इसको सब प्रकार से परिपक्व कर ले (अथ एनं पितृभ्यः परि दत्तात्) तब ही उसको माता पितादि की सेवा में प्रदान कर, पूर्ण विद्वान् होने के पूर्व नहीं । क्योंकि (यदा) जब पुरुष (एताम् असु-नीतिं गच्छति) इस प्रकार की प्राण और बल के धारण करने की शिक्षा को प्राप्त कर लेता है (अथ) तभी वह (देवानां) विषय-क्रीड़ाशील इन्द्रियों को वश करने में समर्थ होता है । उससे पूर्व अजितेन्द्रिय होने के कारण उसका नाना प्रलोभनों में पड़ जाना सम्भव है ।

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३॥

भा०—हे मनुष्य ! जीव ! (सूर्यं चक्षुः गच्छतु) आंख सूर्य के प्रकाश को प्राप्त करे । (आत्मा वातम्) आत्मा, यह प्राण या देह वायु को प्राप्त करे, शुद्ध वायु ग्रहण करे । तू (धर्मणा) धर्म, सामर्थ्य के अनुसार, (द्यां च गच्छ) आकाश और (पृथिवीं च) पृथिवी को वा माता और पिता को भी वा काम्य फल और देह को प्राप्त कर । (वा अपः गच्छ) वा तू कर्म, जलतत्व, आप्त जनों, प्राप्तव्य पदार्थों को भी प्राप्त कर । (यदि ते तत्र हितम्) यदि उनमें तेरा हितकारी अभिप्राय विद्यमान है तो तू (शरीरैः) शरीरों, उसके अंगों द्वारा (ओषधीषु) ओषधियों और अन्नों के आधार पर (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा प्राप्त कर ।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ४ ॥

भा०—(भागः) नाना कर्मफलों का भोक्ता आत्मा (अजः) जन्मादि से रहित है। हे (जातवेदः) विद्वन् ! (त) उसको (तपसा तपस्व) तप से सतप्त कर, आत्मा को तप द्वारा शुद्ध कर। (ते शोचिः) तेरा शुद्ध प्रकाश (तं) उस आत्मा को (तपतु) तप्त करे और (तं ते अर्चिः तपतु) उसी आत्मा को तेरा अर्चनीय ज्ञान तप्त करे, शुद्ध करे। (याः) जो (ते शिवाः तन्वः) शान्तिदायक कल्याणकारी रूप हैं (ताभिः एनं सुकृताम् लोकम् वह) उनसे उसको तू पुण्यकर्म जनों के स्थान में प्राप्त करा, जहां वह भी उत्तम कर्म करने वाला बने।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! (यः) जो (ते आहुतः) तेरे अधीन समर्पित होकर (स्वधाभिः) भिक्षादि अन्नों द्वारा तेरी सेवा करता है उस शिष्य को तू (पुनः) फिर पितृभ्यः अव सृज) पालक जनों के हितार्थ प्रेरित कर। वह (वसानः) अपने को उत्तम वस्त्रों से आच्छादित कर (शेषः आयुः उपवेतु) अपनी शेष आयु को माता पिता के साथ व्यतीत करे। हे (जातवेदः) विद्वन् ! वह (तन्वा संगच्छताम्) दृढ शरीर से सदा युक्त रहे। इति विंशो वर्गः ॥

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥६॥

भा०—(यत्) जब (ते) तुझे (कृष्णः) काला वा काटने वाला (शकुनः) पक्षी वा शक्तिशाली वा दुःखदायी जन्तु, वृश्चिक आदि (आ तुतोद) खूब व्यथित करे (पिपीलः) कीडा, मकोड़ा काटे वा (सर्पः) सांप जाति का जन्तु काटे (उत वा श्वा-पदः) वा कुत्ते के समान पंजे वाला, कुत्ता, गीदड, बिल्ली, बिल्ला, सिंह व्याघ्र आदि काटे, (तत्) उसको

(अग्निः) अग्नि वा ज्ञानवान् पुरुष (विश्वात्) सब प्रकार से (अगदं कृणोतु) पीडारहित करे। (सोमः च) और जो ओषधि-विज्ञ पुरुष (ब्राह्मणान् आ विवेश) वेदज्ञ विद्वान् को प्राप्त है वह भी उसको नीरोग करे।

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॑र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णु॑ष्व॒ पीव॑सा॒ मेद॑सा च।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्ष्यन्प॑र्य॒ङ्खया॑ते ॥ ७ ॥

भा०—तू (अग्नेः गोभिः) ज्ञानवान् पुरुष की शुभ वाणियों द्वारा (वर्म) अपने को रक्षा करने के योग्य वस्त्र कवचादि (परि व्ययस्व) धारण करा। और (पीवसा मेदसा च) पुष्टिकारक और स्नेहयुक्त देहधातुओं से अपने को (सं प्र ऊर्णुष्व) अच्छी प्रकार आच्छादित कर। जिससे (धृष्णुः) धर्षणशील, अग्नि सदृश गुरु (जर्हृषाणः) अति प्रसन्न होकर (दधृक्) अति कठोर होकर (वि-धक्ष्यन्) विपरीत पापादि को दग्ध करना चाहता हुआ (त्वा नेत् पर्यंखयाते) तुझे न घेर ले, तुझे दण्डित न करे।

इ॒मम॑ग्ने चम॒सं मा वि जि॑ह्वरः प्रि॒यो दे॒वाना॑मु॒त सो॒म्याना॑म्।
ए॒ष यश्च॑म॒सो दे॑व॒पान॒स्तस्मि॑न्दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ते ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्निवत् प्रकाश देने हारे! तू (इमं चमसं) इस कृपापात्र जन को (मा विजिह्वरः) कभी विपरीत दिशा में कुटिल मत बनने दे। प्रत्युत वह (देवानाम् प्रियः) ज्ञान धनादि देने वालों को प्रिय और (सोम्यानाम् प्रियः) सोम, पुत्रवत् शिष्य के प्रिय माता पिता आदि को भी प्रिय हो। (यः) जो (चमसः) पात्र के समान विनीत होकर (एषः) वह (देवपानः) विद्वानों का पालक वा शुभ गुणों वा ज्ञान रसों का पान करने वाला है (तस्मिन्) उस पर समस्त (देवाः) विद्वान् (अमृताः) दीर्घायु जन (मादयन्ते) अति हर्षित होते हैं।

क्रव्यादम॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॒मरा॑ज्ञो गच्छतु रिप्रवा॒हः ।
इ॒हैवाय॒मित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥ ६ ॥

भा०—उक्त प्रकार के गुरु शिष्य की व्यवस्था के द्वारा, मैं (क्रव्या-दम्) मांस के खाने वाले (अग्निं) सतापदायक दुष्ट जन्तु वा मृत्यु को भी (दूरं प्र हिणोमि) दूर करने में समर्थ होऊं। और (रिप्र-वाहः) पाप को धारने वाले पुरुष (यम-राज्ञः गच्छतु) नियन्ता राजा के पुरुषो के हाथो जावे। (इतरः) और उससे अन्य निष्पाप जन (जात-वेदाः) विद्यावान् और धनसंपन्न होकर (प्र-जानन्) भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करता हुआ, (इह एव) यहां, इस आश्रम में ही, (देवेभ्यः हव्यं वहतु) ज्ञान धन आदि के दाता विद्वानो को अन्न आदि प्रदान करे। वह गुरु (देवेभ्यः) विद्या के अभिलाषी अन्नो को (हव्य) ग्राह्य ज्ञानआदि प्रदान करे।

यो अ॒ग्निः क्र॒व्यात्प्र॑वि॒वेश॑ वो गृ॒हमि॒मं पश्य॒न्नित॑रं जा॒तवे॑दसम् ।
तं ह॑रामि पितृय॒ज्ञाय॑ दे॒वं स घ॒र्ममि॑न्वात्पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥१०॥२१॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) अग्नि के समान संतापदायक (क्रव्यात्) मांसभक्षी जन (इतरं) अपने से भिन्न (जात-वेदसं) विद्या और ऐश्वर्य से संपन्न को देखकर (इमं वः गृहम्) इस आप के घर मे (प्र-विवेश) प्रवेश करे मैं (तं हरामि) उसको दूर करूं। और (सः) वह विद्या और ऐश्वर्य से संपन्न पुरुष (पितृ-यज्ञाय) पालक माता पिता और गुरुजनो के यज्ञ अर्थात् आदर-सत्कार और सत्संग लाभ के लिये (परमे) सर्वोत्कृष्ट (सधस्थे) स्थान पर स्थित (देवं घर्मं) दीप्तिमान्, तेजस्वी, सूर्यवत् प्रकाशमान प्रभु, तपस्वी वा ज्ञानी पुरुष को (इन्वात्) प्राप्त करे। घरो में मासाहारी क्रूर, पुरुष विद्वान् का वेश बना कर स्थान न पावे। प्रत्युत गृहस्थी जन बड़े गुरुजनों के सत्संग-लाभ के उद्देश्य से भी विद्वान्, सूर्य-वत् तपस्वी के पास जावे, न कि धन हरे लोलुपो के पास। क्योंकि वे

श्मशानाग्नि वा भेड़िये के तुल्य संतापक होते है। अथर्ववेद में 'देवं' के स्थान में 'दूरं' पाठ है, 'इन्वात्' के स्थान पर 'इन्धात्' पाठ है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (क्रव्य-वाहनः अग्निः) कटे काष्ठादि में लगे अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष (क्रव्य-वाहनः) उत्तम अन्नो या कटी हुई समिधादि को हाथ में धारण करने वाला होकर (ऋतवृधः पितॄन् यक्षत्) सत्य-ज्ञान को बढ़ाने वाले गुरु आदि पालक जनो का आदर-सत्कार और सत्संग करता है वह ही (देवेभ्यः च) उत्तम विद्वानो और (पितृभ्यः) गुरु जनो के (हव्यानि) उत्तम ग्राह्य ज्ञानो को (प्र वोचति, आ वोचति) प्रवचन करता और कराता और अन्यो को उपदेश करता है।

'क्रव्य-वाहनः'—क्रव्यस्य हविषः वोढा इति सायणः ॥ क्रविषः—भक्षितस्य (यजु २५।३३) अथवा गन्तुः इति दयानन्दः (यजु० २५। ३२। निष्क्रव्यादम्—क्रव्यम् पक्वं मासम् अत्ति इति दयानन्दः। (यजु० १। ७)। क्रव्यं विकृत्ताज्जायते इति नैरुक्ताः (निरु० ६। ३ २)

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन्! हम (उशन्तः) तुझे चाहते हुए ही (त्वा नि धीमहि) तुझे स्थापित करते है और (उशन्तः) तुझे वा तुझ से ज्ञानादि की कामना करते हुए ही (सम् इधीमहि) तुझे प्रज्वलित करते हैं। हे ज्ञानवन्! तू (उशन्) अग्निवत् प्रदीप्त और इच्छावान् होकर ही (उशतः पितॄन्) तुझे चाहने वाले माता, पिता, गुरुजनों को (हविषे अत्तवे) उत्तम अन्न भोजन कराने के लिये (आ वह) रथादि द्वारा प्राप्त

करा और (आ वह) अपने कन्धों पर उनके भरण पोषण का भार वहन कर। अथवा, हे विद्वन्! तू विद्यार्थियों को चाहता हुआ (उशतः पितॄन् आ वह) विद्याभिलाषी व्रतपालकों को ग्राह्य ज्ञान प्राप्त कराने के लिये धारण कर।

यं त्वम॑ग्ने स॒मद॑ह॒स्तमु॒ निर्वा॑पया॒ पुन॑ः।
कि॒याम्ब्वत्र॑ रोहतु पाक॒दूर्वा॒ व्य॑ल्कशा ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि जिस स्थान पर घास को जला देता है उसको भस्म कर देने पर वह स्वयं शान्त होकर बाद मे और भी अधिक घास उत्पन्न होने का कारण बनता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञान के प्राप्त कराने वाले! उपदेष्टः! गुरो! (त्वं) तू (यम्) जिस शिष्य को (सम् अदहः) अग्निवत् संतप्त करे। (तम् उ) उसको ही (पुनः) कालान्तर मे वा बार २ (निर्वापय) जल के समान शीतल दयार्द्र होकर, शान्त, अनुद्विग्न, सुखी किया कर। (अत्र) उसमे (कियाम्बु) कितना अथाह जलवत् ज्ञानसागर (रोहतु) उत्पन्न हो और (पाक-दूर्वा) पकी दूब के समान (वि-अल्कशा) विविध शाखायुक्त वेद-विद्या (रोहतु) लता के समान उगे और बढ़े।

शीति॑के॒ शीति॑कावति॒ ह्लादि॑के॒ ह्लादि॑कावति।
म॒ण्डू॒क्या॒३॒॑सु॒ सं ग॑म इ॒मं स्व१॒॑ग्निं ह॑र्षय ॥ १४ ॥ २२ ॥ १ ॥

भा०—हे (शीतिके) शीतल स्वभाव वाली! हे (शीतिकावति) शीतवत् शान्तिदायक वाणियो से युक्त! हे (ह्लादिके) आल्हाददायिनि! हे (ह्लादिकावति) आह्लाद देने वाली वाणियों से युक्त विद्ये! तू (मण्डूक्या) तत्वज्ञान मे जल में मण्डूकी के समान निमग्न होने अर्थात् गहरी डुबका लगाने वाली बुद्धि के द्वारा (आ गमः) प्राप्त हो, (सं गमः) अच्छी प्रकार विदित हो। और (इम अग्निम्) उस विद्वान् को (सु हर्षय) अच्छी प्रकार हर्षित कर। इति द्वाविंशो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः।

[१७]

देवश्रवा यामायन ऋषिः ॥ देवताः—१, २ सरण्यूः । ३—६ पूषा । ७—६ सरस्वती । १०, १४ आपः । ११—१३ आपः सोमो वा ॥ छन्दः—१, ७ ८ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६, १२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ७, ६—११ निचृत् त्रिष्टुप् । १३ ककुम्मती बृहती । १७ अनुष्टुप् । चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ १ ॥

भा०—(त्वष्टा) संसार का रचने वाला परमेश्वर (दुहित्रे) स[ब] जगत् को पू[र्ण] करने वाली प्रकृति को (वहतुं कृणोति) वहन या धारण करता है । तभी (इदं विश्वं भुवनं) यह समस्त उत्पन्न होने वाला जगत् (सम् एति) उत्पन्न होता है । (यमस्य महः विवस्वतः) महान् , सर्व जगत् के नियन्ता विविध लोको के स्वामी प्रभु परमेश्वर की (जाया) विश्व की उत्पादक प्रकृति (पर्युह्यमाना) सब प्रकार से प्रभु द्वारा धारण की जाकर (माता) जगत् की जननी, माता होकर (ननाश) अव्यक्त रूप से विद्यमान रहती है । उसी प्रकार (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (दुहित्रे) अन्नादि देने वाली भूमि के तुल्य सब काम्य सुखो की देने हारी स्त्री के हितार्थ ही (वहतु कृणोति) विवाह करता है, (इति इदं विश्वं भुवनं समेति) इसी कारण यह समस्त लोक ठीक २ चलता है । (यमस्य विवस्वतः) विवाह कर्त्ता, विविध धनो के स्वामी पुरुष द्वारा (पर्युह्यमाना) परिणयपूर्वक विवाह की गयी (जाया) पुत्रोत्पादन मे समर्थ स्त्री (माता सती महः ननाश) कालान्तरो मे माता होकर अति महान् पति के समान पूज्यपद को प्राप्त होती है ।

उपाध्यायाद् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पदान्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ मनु । २ । १४५ ॥

यास्क के अनुसार—त्वष्टा सूर्य दुहिता उषा को धारण करता है तब यह सब विश्व प्रकट होता है। तब उस महान् सूर्य की उत्पादक माता रात्रि, उससे लुप्त हो जाती है।

अपा॑गूहन्न॒मृतां॒ मर्त्ये॑भ्यः कृ॒त्वी सव॑र्णामददु॒र्विव॑स्वते।
उ॒ताश्विना॑वभर॒द्यत्तदासी॒दज॑हादु॒ द्वा मि॑थु॒ना स॑र॒ण्यूः ॥ २ ॥

भा०—जल, भूमि आदि तत्व उस (अमृतां) अविनाशिनी प्रकृति को (अप अगूहन्) अपने भीतर छिपा कर रखते है। वे (विवस्वते सवर्णाम्) विविध लोकों के स्वामी, परमेश्वर के समान वर्ण की, अव्यक्त, व्यापक प्रकृति को (कृत्वा) व्यक्त करके (मर्त्येभ्यः) मरणधर्मा जीव, प्राणियो के उपभोग के लिये (अददुः) प्रदान करते है। वह (सरण्यूः) सरण-शील, गतिशील, विकृति को प्राप्त प्रकृति (द्वा मिथुना अजहात्) दो जोडो को उत्पन्न करती है (उत) (यत् तत् आसीत्) जो अव्यक्त रूप मे थी वही (अश्विनौ अभरत्) आकाश और पृथ्वी को उत्पन्न करती है। यास्क के अनुसार—यह वाणी का वर्णन है। विवस्वान् उस प्रभु की (अमृतां) उस नित्य वाणी को विद्वान् गण (सवर्णां कृत्वा) वर्णों सहित करके (अप अगूहन्) खोल २ कर वर्णन करते हैं और (मर्त्येभ्यः अददुः) मनुष्यो के हितार्थ प्रवचन द्वारा प्रदान करें। (यत् तत् आसीत्) वह जो परम ब्रह्म-ज्ञानमय वाणी है वह (अश्विनौ) विद्या में व्यापनशील, जितेन्द्रिय गुरु शिष्य दोनो को (अभरत्) धारण-पोषण करती है। वह (सरण्यूः) गुरु से शिष्य को प्राप्त होने वाली वाणी, (द्वा मिथुना) दोनो जोडों को (अजहात्) उत्पन्न करती है। अर्थात् आगे भी इसी प्रकार गुरु से शिष्य-परम्परा चलती है।

पू॒षा त्वे॒तश्च्या॑वयतु॒ प्र वि॒द्वान॒नष्ट॑पशु॒र्भुव॑नस्य गो॒पाः।
स त्वै॒तेभ्यः॒ परि॑ ददत्पि॒तृभ्यो॒ऽग्निर्दे॒वेभ्यः॑ सुविद॒त्रिये॑भ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(पूषा) सबको पोषण करने वाला (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (त्वा इतः प्र च्यवतु) तुझे उत्तम मार्ग की ओर ले जावे। वह (अनष्ट-पशुः) ऐसे पशु पालक के समान है जिसकी रक्षा मे रहते हुए पशुगण कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। (सः अग्निः) वह ज्ञानवान् सर्वप्रकाशक प्रभु (त्वा) तुझ जीव को (एतेभ्यः पितृभ्यः) इन माता पिता, चाचा आदि पूज्य एवं (देवेभ्यः) सुख आदि के देने वाले तुझे चाहने वाले (सुविदत्रियेभ्यः) उत्तम ज्ञान के रक्षक गुरुओ के हाथ (परि ददत्) प्रदान करता है।

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

भा०—(विश्वायुः) सब को जीवन देने वाला, सर्वत्र व्यापक, (आयुः) वायुवत् सबका प्राणाधार प्रभु (त्वा परि पासति) तेरी सर्वत्र रक्षा करे। (पूषा) सर्वपोषक प्रभु (प्रपथे) उत्तम मार्ग मे (पुरस्तात्) आगे से (पातु) रक्षा करे। (यत्र सुकृतः आसते) जिस स्थान पर उत्तम कर्म करने हारे पुण्यात्मा लोग विराजते है और (यत्र ते ययुः) जिस उत्तम लोक मे वे जाते है वा जिस मार्ग पर चलते हैं (तत्र) वहां, उस मार्ग मे (देवः सविता) प्रकाशदाता, सर्वोत्पादक प्रभु (त्वा दधातु) तुझे भी स्थापित करे।

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत्।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५॥२३॥

भा०—(पूषा) सर्वपोषक प्रभु (इमाः सर्वाः आशाः) इन समस्त दिशाओं और हमारी इच्छाओं को (अनु वेद) प्रतिक्षण जानता है। (सः अस्मान्) वह हमें (अभय-तमेन) अत्यन्त भय से रहित मार्ग से (नेषत्) ले चले। (स्वस्ति-दाः) वह समस्त कल्याणो का देने वाला

आ-घृणिः) सर्वत्र सब प्रकार से प्रकाशों से युक्त, सूर्यवत्, (सर्व-वीरः) सब वीरों का स्वामी, सब प्राणों का स्वामी, सब को विविध विद्याओं का उपदेश करने वाला, (प्र-जानन्) सब उत्तम ज्ञान को जानता हुआ, सर्वज्ञ प्रभु (अप्र-युच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (नः पुरः एतु) सदा हमारे आगे मार्गदर्शी होकर रहे । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥

भा०—(पथाम् प्रपथे) सब मार्गों मे से उत्तम मार्ग में (पूषा अजनिष्ट) सर्वपोषक प्रभु ही सबको मार्ग दिखाने वाला होता है । वही (दिवः प्रपथे, पृथिव्याः प्रपथे) आकाश और भूमिके उत्तम मार्ग में रक्षक होता है । वह ही (प्र-जानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से सम्पन्न प्रभु (उभे प्रिय-तमे सध-स्थे) दोनो अति प्रिय इह लोको और परलोको मे भी (आ च परा च चरति) समीप और दूर भी विद्यमान रहता है । वह ही (आ चरति च) पुण्य कर्मों का अनुकूल फल देता है और (परा चरति च) दुष्ट कर्मों का प्रतिकूल फल देता है । वह ही (प्रजानन्) खूब जानता है कि इसने यह बुरा वा अच्छा काम किया है और इस २ कर्म का यह २ फल है ।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ७ ॥

भा०—(देवयन्तः) ज्ञान-प्रकाश देने वाले, परम सुखदाता, प्रभु की कामना करते हुए विद्वान् लोग उसको (सरस्वतीम् हवन्ते) सर्वप्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न शक्ति स्वीकार करते हैं और (अध्वरे तायमाने) यज्ञ के विस्तृत होने पर (सरस्वतीम् हवन्ते) ज्ञानमय वेदवाणीवत् उस प्रभु का स्मरण करते है । (सुकृतः) उत्तम आचरण करने वाले पुण्यात्मा लोग (सरस्वतीं अह्वयन्त) उस ज्ञानमयी वेदवाणी और प्रभु को ही पुकारते

हैं। क्योंकि वह (सरस्वती) उत्तम ज्ञान की स्वामिनी शक्ति ही (दाशुषे वार्यं दात्) आत्मसमर्पक, दानशील, त्यागी पुरुष को सब वरण योग्य उत्तम ज्ञान, धन प्रदान करता है। (२) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री भी 'सरस्वता' कहाती है, विद्वान्, पुत्र चाहने वाले, यज्ञकर्त्ता और पुण्य चरित्रवान् पुरुष उत्तम विदुषी स्त्री को पत्नीरूप से अंगीकार करते हैं। वह उत्तम, बीजप्रद स्वामी को उत्तम पुत्र देती है।

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे॥ ८॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान की स्वामिनि! वा हे विदुषी! (देवि) ज्ञानप्रकाश की देनेहारी! (या) जो तू (स्वधाभिः) उत्तम अन्न, (पितृभिः) पालक माता पिता, गुरुजनों सहित (मदन्ती) स्वयं तृप्त और अन्यों को प्रसन्न करती हुई (स-रथं ययाथ) एक समान रथ मे जाती है, वह तू (अस्मिन् आ-सद्य) इस यज्ञ मे उत्तम आसन पर आदरपूर्वक विराज कर (अस्मे) हमे (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न और उत्तम काम्य पदार्थ प्रदान कर। (२) प्रभु 'सरस्वती' है। वह भी (पितृभिः स्वधाभिः) सर्वपालक अन्न, जलादि अपनी धारण-पोषणकारिणी शक्तियो, अन्नो, ओषधियो, से सब को तृप्त करता और स्वय भी पूर्णकाम है। हमारे रमणयोग्य देह रूप रथ मे भी विद्यमान है। वह हमारे यज्ञ मे विराजता है, वह हमे उत्तम अदुःखदायी अन्नवत् इष्ट कर्मफल दे।

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि॥ ९॥

भा०—(यज्ञम् अभि-नक्षमाणाः) यज्ञ को प्राप्त होते हुए, (पितरः) बसे गृहस्थ जन (यां) जिस (सरस्वतीं) उत्तम वेदज्ञान से युक्त विदुषी को (दक्षिणा) अपने दक्षिण भाग मे (हवन्ते) स्वीकार करते हैं। वह तू

(अत्र) हे विदुषि ! इस लोक में, (सहस्र-अर्घम्) सहस्रों प्रकार से पूज्य, उपयोगा, (इडः भागं) अन्न के सेवनीय भाग और (सहस्रार्घं रायः पोषम्) सहस्रो गुण मूल्यवान् धन की वृद्धि (यजमानेषु धेहि) यज्ञशील, दानी जनो में धारण करा। वा यज्ञशील और दानशील जनो के अधीन तू अन्न या धन के श्रेष्ठ भाग को धारण कर। (२) इसी प्रकार जिस ज्ञानवान् प्रभु को पालक गुरुजन (दक्षिणा) दक्षिणभाग से यज्ञ मे आकर पूज्य भावसे स्तुति करते हैं, वह हमे सहस्र-गुण मूल्य वाला अन्न धन प्रदान करे।

आपो॑ अ॒स्मान्मा॒तरः॑ शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्वः॑ पुनन्तु।
विश्वं॒ हि रि॒प्रं प्र॒वह॑न्ति दे॒वीरुदिदा॑भ्यः॒ शुचि॒रा पू॒त ए॑मि॒ १०।२४

भा०—(अस्मान्) हमे (आपः) जलोके समान आप्त, (मातरः) माता के तुल्य शुद्ध, पवित्र स्नेह से युक्त विद्वान् पुरुष (शुन्धयन्तु) पवित्र करे और (घृत-प्वः) जलवत् स्नेह से पवित्र करने वाले विद्वान् जन (नः घृतेन) हमें जलवत् शान्तिदायक स्नेह से ही (पुनन्तु) पवित्र करे। वे (देवीः) दिव्यगुणों से युक्त भद्र जन (विश्वं रिप्रं प्रवहन्ति) सब प्रकार का पाप बहा देते हैं। (आभ्यः इत् शुचिः) उनसे ही पवित्र होकर मै (उत् एमि) अभ्युदय को प्राप्त होऊं। (घृत-प्वः) तेजोमय ज्ञान से पवित्र करने वाला (आपः) आप्त वा व्यापक गुणो से युक्त प्रभु 'आपः' शब्द से कहा जाता है, वह सर्वोत्पादक होने से 'माता' है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

द्र॒प्सश्च॑स्कन्द प्रथ॒माँ अनु॒ द्यूनि॒मं च॒ योनि॒मनु॒ यश्च॒ पूर्वः॑।
स॒मा॒नं योनि॒मनु॑ सं॒चर॑न्तं द्र॒प्सं जु॑हो॒म्यनु॑ स॒प्त होत्राः॑॥ ११॥

भा०—(द्रप्सः) द्रव रूप से वा द्रुतगति से जाने वाला सूर्य (यः च पूर्वः) जो सब से पूर्व विद्यमान रसरूप तेज, (प्रथमान् द्यून् अनु) प्रथम के सब दिनों वा (प्रथमान् द्यून् अनु) पूर्व उत्पन्न सब तेजस्वी लोको और (इम योनिम् च अनु) इस भूमि लोक को भी (चस्कन्द) प्राप्त

होता है और (समानं योनिम् सञ्चरन्तं अनु) एक समान लोक या स्थान को जाते हुए जिसके पीछे २ (सप्त होत्राः) सात ऋतुगग जाते है उसी प्रकार (द्रप्सः) तेजोरूप, रस रूप आत्मा जो इस देह से पूर्व विद्यमान है, जो (प्रथमान् द्यून्) पूर्व के काम्य देहों और (इमं योनिम्) इस देह को भी प्राप्त होता है । एक समान देह में विचरते उस आत्मा के प्रति (सप्त होत्राः जुहोमि) मैं अपने सातो प्राणो की आहुति करता हूं । सातो प्राण उसी के अधीन रखता हूं ।

(द्रप्सः)—वह तेजोमय मूल तत्त्व है जिससे सूर्यादि समस्त लोक बने है, वही 'सोम' है, वही समस्त लोको का उत्पादक वीर्य के तुल्य है । उसी समानता से प्राणियो का उत्पादक वीर्य भी 'सोम' और 'द्रप्स' कहाता है ।

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ अं॒शुर्बा॒हुच्यु॑तो धि॒षणा॑या उ॒पस्था॑त् ।
अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृतम् ॥१२॥

भा०—हे प्रभो ! (यः ते द्रप्सः) जो तेरा तेजोमय रस (स्कन्दति) सर्वत्र प्रवाहित होता है, (यः ते अंशुः) जो तेरा व्यापक रस (धिषणायाः उपस्थात्) सर्वोपरि दातृशक्ति से (बाहु-च्युतः) मानो बाहुओ द्वारा प्रदत्त वा सर्वतोविभक्त और प्रेरित है, (वा अध्वर्योः) अथवा कभी नाश को प्राप्त न होने वाला प्रभु से प्रेरित है (वा यः पवित्रात् परि) अथवा जो 'पवि' नाम विद्युत रूप वज्र के रक्षक मेघादि से भूमि पर जल रूप से, वा पवित्र, सर्वशोधक प्रभु वा सूर्य वा वायु से प्राप्त होता है, (तं) उस (ते) तेरे तेजोमय, व्यापक, गन्धमय, शक्तिमय, रसमय प्राण तत्व को (मनसा वषट्-कृतम्) मनोबल से देह मे छः विभागों में विभक्त वा प्रदत्त कर (जुहोमि) प्राप्त करता हूँ ।

यज्ञ-पक्ष मे—अधि-सवन फलक वा अध्वर्यु या पवित्रादि से प्राप्त सोम रस को मैं मन से 'स्वाहा' कह कर आहुति दूं । वही भगवान् का दिया जीवनाधार घटक तत्व है जिसको मैं चित्त के बल से प्राणो मे धारण करता हूँ ।

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शुर॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृ॒ह॒स्पति॒ः सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यः ते द्रप्सः) जो तेरा सर्वोत्पादक तत्व रस स्कन्नः) सर्वत्र प्रवाहित है, (यः ते अंशुः) जो तेरा व्यापक सूक्ष्म अंश (स्रुचा) प्राण शक्ति द्वारा (अवः च, परः च) इस लोक मे और दूर के लोको मे भी व्याप्त है (तं) उस रस को (अयं देवः बृहस्पतिः) यह सर्व-तेजोदायक, तेजस्वी, सब बड़े लोको का पालक सूर्य (राधसे) ऐश्वर्य वृद्धि, जगत् के व्यवहार संचालन के लिये (सं सिञ्चतु) उसी जीवन तत्व का अच्छी प्रकार जल और तेज के रूप में सेचन, वर्षण करे ।

पय॑स्वती॒रोष॑धय॒ः पय॑स्वन्मामु॒कं वच॑ः ।
अ॒पां पय॑स्व॒दित्पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑न्धत ॥ १४ ॥ २५ ॥

भा०—हे (ओषधयः) तेज को धारण करने वाली शक्तियो ! आप लोग (पयस्वतीः) वृष्टि जल से युक्त ओषधियो के समान पुष्टि-कारक रस से युक्त हो । (मामकं वचः) मेरा वचन भी (पयस्वत्) पुष्टिकारक, बल से युक्त, मधुर हो । (अपां पयः) जलों का सारभूत पुष्टिकारक, अंश भी (पयस्वत्) सारयुक्त है । (तेन) उससे आप लोग (सह) साथ (शुन्धत) मुझे शुद्ध करो । ओषधिरस, मधुर वचन और जलो और क्षीरादि से मनुष्य के देह, मन वाणी आदि को पवित्र करो । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१८]

मङ्कुसुको यामायन ऋषिः ॥ देवताः—१—मृत्यु ५ धाता । ३ त्वष्टा । ७—१३ पितृमेधः प्रजापतिर्वा ॥ छन्दः—१,५,७—९ निचृत् त्रिष्टुप् । २—४, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । भुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत् पांक्तिः । १४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

भा०—हे (मृत्यो) मरणशील पुरुष ! तू (परं पन्थाम्) सब से उत्तम मार्ग का (अनु इहि, परा इहि) अनुसरण कर और दूर दीर्घकाल तक जा । तू उस मार्ग का ग्रहण कर (यः ते स्वः) जो तेरा अपना अभिमत है और (देव-यानात् इतरः) देव, तेजस्वी आदित्य ब्रह्मचारी, सर्वविजयी, मुमुक्षुओ से जाने योग्य मोक्ष मार्ग से अतिरिक्त है । (चक्षुष्मते) आंख वाले, और (शृण्वते) सुनने वाले (ते ब्रवीमि) तुझे उपदेश करता हूँ कि तू (नः प्रजां मा रीरिषः) हमारी संतान का नाश न कर (उत मा वीरान्) और पुत्रो वा प्राणों का भी नाश न कर ।

चतुर्थ चरण में अथर्ववेद (१२ । २ । २१) मे 'इहेमे वीराः बहवो भवन्तु' पाठ है । यहां ये बहुत से पुत्र हो । फलतः देवयान मार्ग अर्थात् अमृतमय मोक्ष-मार्ग से जाने मे असमर्थ पुरुष मृत्यु-मार्ग वा पितृयाण मार्ग से जाता है। वही मृत्यु है। तो भी वह लोक मे सबसे उत्तम गृहस्थ मार्ग का अवलम्बन करे, दीर्घ से दीर्घ जीवन व्यतीत करे जिससे उत्तम २ अगली संताने हो और वे भी दीर्घजीवी हो ।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

भा०—हे (यज्ञियासः) उत्तम यज्ञशील जनो ! आप लोग (मृत्योः पद) मृत्यु के आने के कारण को (योपयन्तः) दूर करते हुए (यत् ऐत) जब जाओगे तो आप लोग (द्राघीयः) अतिदीर्घ (प्रतरं) अति उत्तम (आयुः दधानाः भवत) जीवन धारण करने वाले होवोगे । और (प्रजया धनेन) प्रजा और धन से (आ-प्यायमानाः) बढ़ते हुए और (शुद्धाः पूताः भवत) शुद्ध पवित्र होकर रहा करो ।

इ॒मे जी॒वा वि मृ॒तैराव॑वृत्र॒न्नभू॑द्भ॒द्रा दे॒वहू॑तिर्नो अ॒द्य ।
प्राञ्चो॑ अगाम नृ॒तये॑ हसा॑य॒ द्राघी॑य॒ आयु॑: प्रत॒रं दधा॑नाः ॥ ३ ॥

भा०—(इमे जीवाः) ये जीवित जन (मृतैः वि आववृत्रन्) मरे बन्धुजनो से घिरे न रहे, उनसे परे रहें। उनमे मृत्युएं न हुआ करे। (अद्य) आज के तुल्य सदा (नः) हमे (भद्रा) सुखदायी, कल्याणकारी (देव-हूतिः) विद्वानो का उपदेश (अभूत्) हो। जिससे हम (द्राघीयः प्रतरं आयुः) दीर्घतम अति उत्कृष्ट जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए (नृतये हसाय) नृत्य, हास्य, आनन्द-प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये (प्राञ्चः अगाम) उत्तम, आगे के मार्ग पर अग्रसर हो, आगे बढे ।

इ॒मं जी॒वेभ्य॑: परि॒धिं द॑धामि॒ मैषां॒ नु गा॒दप॑रो॒ अर्थ॑मे॒तम् ।
श॒तं जी॑वन्तु श॒रद॑: पु॒रूची॑र॒न्तर्मृ॒त्युं द॑धतां॒ पर्व॑तेन ॥ ४ ॥

भा०—मै (जीवेभ्यः) जीवनधारी मनुष्यो के हितार्थ (इमं परि-धिं) इस प्राणरक्षक व्यवस्था को (दधामि) स्थापन करता हूँ। (एषां) इन जीवो मे से (अपरः) कोई भी (एतम् अर्थं मा गात् नु) उस मृत्यु के मार्ग से न जावे। समस्त जीवगण (शतं शरदः) सौ बरस (पुरूचीः) और भी बहुत अधिक वर्ष (जीवन्तु) जीवें। और (पर्वतेन) पालन पोषणकारी उपाय से (मृत्युम् अन्तः दधताम्) प्रकोट से शत्रु के समान मृत्यु को अन्तर्हित करे, दूर करे ।

'तिरो मृत्युं' इति अथर्व (कां० १२ । २ । २३) गतः पाठः ।

यथाहा॑न्यनुपू॒र्वं भव॑न्ति॒ यथ॒ ऋ॒तव॑ ऋ॒तुभि॒र्यन्ति॑ सा॒धु ।
यथा॒ न पूर्व॒मप॑रो॒ जहा॑त्ये॒वा धा॑त॒रायूं॑षि कल्पयै॒षाम् ॥५॥२६॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (अहानि) दिन (अनु पूर्वं भवन्ति) एक दूसरे के पश्चात् होते हैं (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जिस

प्रकार ऋतुएं ऋतुओं का साथ एक दूसरे के पीछे बराबर जुटी २ गुजरती हैं। (यथा पूर्वम्) जिस प्रकार से पूर्व विद्यमान पिता आदि को (अपरः) आगे आने वाला पुत्र न त्याग करे (एव) इसी प्रकार हे (धातः) पालक प्रभो! तू (एषाम् आयूंषि कल्पय) इनका दीर्घ जीवन कर। अर्थात् पुत्र पिता के जीवन काल में उसे त्याग न करे। षड्विंशो वर्गः ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (अनु-पूर्वं) पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों के अनुकूल (यतमानाः) सन्मार्ग में यत्नवान् होते हुए (यति स्थ) जितने भी हो जाओ वे सब (जरसं वृणानाः) वार्धक्य को प्राप्त होते हुए (आयुः आरोहत) जीवन की नसैनी पर चढो। (इह) इस लोक में (त्वष्टा) तेजस्वी, सब जगत् का विधाता प्रभु, सूर्य (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (वः सु-जनिमा) आप लोगों की उत्तम उत्पत्ति और रूप, और (जीवसे) जीने के लिये (दीर्घम् आयुः) दीर्घ आयु (करति) करे।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥

भा०—(इमाः) ये (अविधवाः) पति से अविरहित (नारीः) स्त्रियें (सु-पत्नीः) उत्तम पति से युक्त और पति की उत्तम धर्मपत्नी होकर (आंजनेन सर्पिषा) देह पर लगाने योग्य घृतादि गंधयुक्त पदार्थ से सुशोभित होकर (सं विशन्तु) अपने गृह मे प्रवेश किया करें वा पतियों का संग किया करें। वे (अनश्रवः) आंसुओं से रहित, (अनमीवाः) रोग से रहित, (सुरत्नाः) सुन्दर रत्न, आभूषणादि वा रम्य गुणों, व्यवहारों वाली (जनयः)

उत्तम सन्तानो को उत्पन्न करने मे समर्थ स्त्रियें (अग्रे) प्रथम, आदरपूर्वक (योनिम् आ रोहन्तु) गृह मे आवे, वा रथ, सेज, आसन आदि पर बैठे ।

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ ८ ॥

भा०—हे (नारि) स्त्री ! तू (जीव-लोकम् अभि) जीवित जनों को लक्ष्य करके (उत् ईर्ष्व) उठ खड़ी हो । (एतं गतासुम् उप शेषे) तू इस प्राणरहित के समीप पडी है । (आ इहि) उठ आ । (हस्त-ग्राभस्य) पाणिग्रहण करने वाले और (दिधिषोः) धारण पोषण करने वा वीर्याधान करने वाले (तव पत्युः) तेरे पालक पति के (इदं जनित्वं) इस सन्तान को (अभि) लक्ष्य करके तू (सं बभूथ) उससे मिलकर रह । अर्थात् पति का शोक त्याग कर जीवित संतान की फिकर करे । [यदि संतान जीवित न हो तो (जनित्वम् अभि) केवल सन्तान को लक्ष्य कर (संबभूथ) नियोग विधि से पुत्र उत्पन्न कर और वह सन्तान पाणिग्रहीता पति का कहावे ।]

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ९॥

भा०—(मृतस्य हस्तात्) मृत पुरुष के हाथ से (धनुः आददानः) धनुष अर्थात् अधिकार ग्रहण करता हुआ, हे अगले अधिकारवान् पुत्र ! तू (अस्मे) हमारे (क्षत्राय) क्षत्र, वीर्य, (वर्चसे) तेज और (बलाय) बल की वृद्धि के लिये (त्वं अत्र एव) तू यहां ही स्थिर रह । जिससे (इह) इस राष्ट्र में (वयं) हम (सु-वीराः) उत्तम वीर, पुत्र वाले होकर (विश्वाः अभिमातीः स्पृधः जयेम) सब अभिमान युक्त शत्रु सेनाओ पर विजय प्राप्त करे ।

इस मंत्र में 'धनुष' यह राजदण्ड के समान अधिकार का उपलक्षण

है । मृत पुरुष की स्त्री तो तो जीवित सन्तान की फिक्र करें और पुत्रादि नवाधिकारी उसके गृहादि का अधिकार प्राप्त करे ।

उप॑ सर्प मा॒तरं॒ भूमि॑मे॒तामु॑रु॒व्यच॑सं पृथि॒वीं सु॒शेवा॑म् ।
ऊर्ण॑म्रदा युव॒तिर्दक्षि॑णावत ए॒षा त्वा॑ पातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॑त् १०।२७

भा०—हे मनुष्य ! तू (मातरम्) माता के समान आदर करने योग्य पूज्य, (एतां) इस (उरु-व्यचसम्) आकाश के समान विशाल, व्यापक, (पृथिवीम्) अतिविस्तृत (सु-शेवाम्) उत्तम सुख के देने वाली, (भूमिम्) सब को पैदा करने वाली भूमि को (उप सर्प) प्राप्त हो । (एषा) वह (ऊर्ण-म्रदाः) ऊन के समान मृदु (दक्षिणावतः) दान देने योग्य उत्साह और शक्तिजनक धन, अन्न के स्वामी की (युवतिः) युवती स्त्री-वत् सर्वस्वामिनी है । वह (त्वा) तुझे (निर्ऋतेः उपस्थात्) पापाचरण से (पातु) बचावे । प्रसंगवश ये सब विशेषण माता, भूमि, स्त्री, आचार्य राजा और परमेश्वर के पक्ष मे भी लगते हैं । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

उच्छ्व॑ञ्चस्व पृथिवि॒ मा नि बा॑धथाः सूपाय॒नास्मै॑ भव सूपव॒ञ्च॒ना ।
मा॒ता पु॒त्रं यथा॑ सि॒चाभ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी ! मातः ! हे भूमिवत् विशाल-हृदये ! (उत् श्वञ्चस्व) उत्साहपूर्वक उत्तम मार्ग की ओर लेजा । तू (मा नि बाधथाः) पीड़ित मत कर । (अस्मै सुपायना) इसको सुख से समीप आने वाली, समीप रह कर सुख देने वाली, (सु-उपवञ्चना) सुख से सदा समीप रहने वाली, वा उत्तम वचन प्रयोग करने वाली, (भव) होकर रह । हे (भूमे) सर्वोत्पादिके, (यथा माता पुत्रं सिचा अभि ऊर्णुते) जैसे माता पुत्र को अपने वस्त्रांचल से ढांपती है उसी प्रकार तू (एनम् अभि सिच) उसको अभिषेक कर, और (अभि ऊर्णुहि) सब ओर से आच्छादित कर । अथवा (एनं सिचा अभि ऊर्णुहि) इसे अभिषेक क्रिया से वा, वस्त्र-वल्कल आदि से आच्छादित कर ।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र॥ १२॥

भा०—(पृथिवी उत् श्वञ्चमाना) पृथिवी उत्साह उत्पन्न करती हुई उन्नति को प्राप्त करती हुई वा उत्तम पूज्य पद प्राप्त करती हुई (सु तिष्ठतु) सुख से विराजमान हो। (सहस्र मितः) सहस्रों परिमाण अन्नादि और अनेक संख्या वाले जन (उप श्रयन्ताम् हि) उस पर आश्रय ले। (ते) वे (गृहासः) हमारे घर (घृतश्चुतः भवन्तु) घृतवत् स्नेह युक्त और जलवत् शीतलता और शांति सुख देने वाले हो। वे (अस्मै) इस मनुष्य को (अत्र) यहां (शरणाः सन्तु) सुखदायक, दुःख विनाशक शरण हो।

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु १३

भा०—हे राजन्! उत्तर अधिकारिन्! (ते) तेरे अधीन इस (पृथिवी) पृथिवी, भूमि को (उत् स्तभ्नामि) उत्तम रीति से प्रबन्धयुक्त, व्यवस्थित करता हूँ। (इमं लोगं) इस लोक, जनसमूह को (त्वत् परि निदधत्) तेरे आश्रय मे सभलाता हुआ (अहं मो रिषम्) मै दुःखी न होऊं, वा इस प्रजाजन का नाश न करूं। तू उत्तराधिकार प्राप्त कर, प्रजाजन का अच्छी प्रकार जिम्मेवारी से पालन कर। (ते) तेरी (एतां स्थूणां) इस स्थिर टेक, या व्यवस्था की प्रतिज्ञा को (पितरः) पालक शासक वर्ग (धारयन्तु) धारण करें। (अत्र) इस लोक में (यमः) नियन्ता प्रभु (ते सदना मिनोतु) तेरे गृहो को, या तेरे पदाधिकारो को (मिनोतु) व्यस्थित करे, मापे, उनकी जांच करे।

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा॥ १४॥ २८॥ ६॥

भा०—विद्वान् लोग (इष्वाः पर्णम् इव) वाण के मूल में उसके वेग को तीव्र करने के लिये जिस प्रकार 'पर्ण' पांख लगाते हैं उसी प्रकार वे (प्रतीचीने अहनि) किसी सर्वपूज्य दिन (माम्) मुझ को (इष्वाः) शत्रु के प्रति ठीक मार्ग में चलाने योग्य सेना वा प्रजा के पीठ पर (पर्णम्) पालक, संचालक रूप से (आ दधुः) स्थापित करें। और मैं (प्रतीचीं वाचम्) प्रजा वा सेना द्वारा आदर से ग्रहण करने योग्य वाणी रूप आज्ञा को (जग्रभ) उस आज्ञा द्वारा प्रजा वा सेना को अपने ऐसे वश करूं (यथा रशनया अश्वं) जैसे रास या रस्सी से घोड़े को वश किया जाता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

[१९]

मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः॥ देवताः ११, २—८आपो गावो वा। १२ अग्नीषोमौ ॥ छन्दः—१, ३–५ निचृदनुष्टुप्। २ विराडनुष्टुप् ७, ८ अनुष्टुप्। ६ गायत्री। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

निवर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिपक्त रेवतीः।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (रेवतीः) उत्तम धनसम्पन्न ! प्रजाओ ! (नि वर्त्तध्वं) बुरे मार्ग से तुम लौट जाओ। (मा अनु गात) उसका अनुगमन मत करो। (अस्मान् सिपक्त) हमे धन से पुष्ट करो। हे (अग्नि-सोमा) अग्नि और सोम के समान तेजस्वी और ओषधि के समान, बलदायक और प्रजाओं की वृद्धि करने में समर्थ जनो ! तुम दोनों (पुन-र्वसू) पुनः पुनः नये २ धन को कमाने वाले ! वा (पुनः-वसू) पुनः २ इस राष्ट्र में वसने वाले आप दोनों अब (अस्मे रयिम् धारयतम्) हमें धन-ऐश्वर्य धारण कराओ।

पुनरेना निवर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नियच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! तू (एना) इन को (नि वर्तय) पाप मार्ग से लौटा । (एना पुनः नि आ कुरु) इन को पुनः पुनः वश कर । (इन्द्रः) शक्तिमान्, तेजस्वी होकर (एना नि यच्छतु) इनको नियमों मे रखे और (अग्निः) तेजस्वी, पुरुष (एना उ अजतु) इनको आगे सन्मार्ग मे लेजावे । इसी प्रकार साधक भी अपनी इन्द्रियों, चित्त वृत्तियों और प्रजाओ को राजा के तुल्य और गौओं को गोपालवत् कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग मे लेजावे ।

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥ ३ ॥

भा०—(एताः) ये सब (पुनः निवर्तन्ताम्) बार बार लौट कर आवे, और (अस्मिन् गोपतौ) इस गौओ के पालक गोपाल, भूमिपाल, इन्द्रियों के पालक के अधीन रहकर (पुष्यन्तु) पुष्टि, समृद्धि को प्राप्त करे, बढें । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! तेजस्विन् ! तू (इह एव नि धारय) इस स्थान मे ही इन को अच्छी प्रकार नियम में धारण कर (या रयिः) जो द्रव्य सम्पत् है वह (इह तिष्ठतु) यहां स्थिर रूप से रहे । अध्यात्म मे—ये इन्द्रिय-वृत्तियां वार २ बाहर जाकर फिर २ आत्मा मे ही लौट आती हैं । (३) इसी प्रकार उस इन्द्र प्रभु में मुक्त जीवो का वर्णन भी समझना चाहिये । अध्यात्म में—'रयि' मूर्त्त देह का वाचक है । देहवान् आत्माएं 'रेवती' हैं । 'अग्नि' जीव, मन 'सोम' है, दोनो पुनः देह में आकर वसने से 'पुनर्वसू' हैं । 'इन्द्र' आत्मा प्रभु है । वही सर्वपालक 'गोपति' है ।

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ ४ ॥

भा०—(यत् नियानं) जो जीवों का नीचे जाना, और (नि-अयनम्) निम्न लोक या स्थिति में रहना, और (सं-ज्ञानं) उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना और (यत् परा अयनम्) जो दूर, परम पद को प्राप्त करना और इसी प्रकार (आ-वर्त्तनं) इस संसार में लौट कर आना इस सब का मैं (हुवे) ज्ञान प्राप्त करूं और अन्यों को इस का उपदेश करू। (यः गोपाः) जो सब इन्द्रियों, लोकों और वेदादि वाणियों का पालक रक्षक है (तम् अपि हुवे) उसको भी मैं स्वीकार करता, स्मरण और उपदेश करता हूं।

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम्।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा निवर्तताम् ॥ ५ ॥

भा०—(यः गोपाः) जो रक्षक, (वि-अयनं) विविध लोक या प्राप्तियोग्य पदों को भी (उत् आनट्) उत्तम मार्ग से प्राप्त करता वा कराता है, (यः परा-अयनम् उत् आनट्) जो दूर, परम प्राप्य मोक्ष तक प्राप्त कराता है, वह रक्षक (आ-वर्त्तनं नि-वर्त्तनम्) इस लोक में और पुनः यहां से लौटने की व्यवस्था को भी (अपि नि वर्तताम्) नियमपूर्वक चला रहा है। वह सर्वत्र व्यापक, सर्वव्यवस्थापक है।

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (नि-वर्त्त) नियम से संसार को चलाने हारे! (आ वर्तय) तू ही लौटा कर लाता है और तू ही (नि वर्तय) लौटा कर लेजाता है, गौओं को गवाले के समान! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः पुनः गाः देहि) हमें फिर २ इन्द्रियगण, ज्ञान रस आदि ग्रहण के स्थूल साधन (देहि) प्रदान कर। (जीवाभिः) प्राण के संसर्ग से चेतनायुक्त उन इन्द्रिय-वृत्तियों से हम (पुनः भुनजामहै)

फिर भी नाना भोग करें। मुक्त दशा में मोक्ष सुख का काल क्षय होजाने पर निद्रा-क्षय के बाद पुनः प्रबोध के तुल्य जीवों का यही संकल्प उदय होता है। और पुनः वे इस लोक में आते हैं।

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) नाना कामना वाले जीवो ! (वः) तुम सब को मैं (ऊर्जा घृतेन पयसा) अन्न, तेज, और जल, दुग्ध आदि पुष्टि-कारक पदार्थ से (विश्वतः परि दधे) सब प्रकार से सर्वत्र पालन पोषण करता हूं। (ये के च) और जो कोई भी (देवाः) उत्तम भोगों की कामना करने वाले (यज्ञियाः) परम पूज्य प्रभु की उपासना से पवित्र हैं वे (नः) हमारे बीच (रय्या) श्रेष्ठ सम्पदा से (सं सृजन्तु) संसर्ग करते हैं।

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना निवर्तय ॥ ८ ॥ १ ॥

भा०—हे (निवर्तन) जगत् को नियम में चलाने हारे (आवर्तय) तू हमें सन्मार्ग में चला। हे (निवर्त्तन) हमे दुःखों और पापों से हटाने हारे ! तू (निवर्त्तय) हमें दुःखो और दुःखदायी मार्गों से सदा हटा लिया कर। (भूम्याः चतस्रः प्रदिशः) जीवों के उत्पन्न होने के लिये भूमि की चार मुख्य दिशाएं हैं (ताभ्यः एनाः निवर्त्तय) उन सब से उनको रोक, उन सब में जाने के लिये नियम-पूर्वक उन पर शासन कर।

अथवा हे—इन्द्रियगण हे प्रजाओ ! तुम (नि-वर्तन नि-वर्तन) बुरे २ मार्ग से सदा निवृत्त रहो, सदा निवृत्त रहो। हे स्वामिन् ! तू (आवर्तय निवर्तय) उनको सन्मार्ग में चला, बुरे मार्ग से रोक। चारों दिशाओं से उनका निग्रह कर। 'आ निवर्त्त निवर्त्तय नि निवर्त्त निवर्त्तय।' इति च पाठः। इति प्रथमो वर्गः ॥

[२०]

त्रिमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुकः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आसुरी त्रिष्टुप् । २, ६ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृद् गायत्री । ४, ५, ७ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ८ विराड् गायत्री । १० त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः मनः) हमारे चित्त को (भद्रं अपि वातय) कल्याणकारी सुखजनक मार्ग की ओर प्रेरित कर । (२) अथवा (नः भद्रं मनः अपि वातय) हमें सुखकर उत्तम ज्ञान प्रदान कर । (३) (नः भद्रं मनः अपि वातय) हमारे उत्तम मन को प्रबल कर ।

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।

यस्य धर्मन्त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥ २ ॥

भा०—(भुजां अग्निम्) पालन करने वाले वीरों के बीच में सब के अग्रणी, तेजस्वी, (यविष्ठं) खूब जवान, बलवान्, शक्तिशाली, (शासा) शासन बल एवं शस्त्र बल से (दुर्धरीतुम्) संग्राम में शत्रु से पराजित न होने वाले, (मित्रं) प्रजा के जीवन को बचाने वाले, सर्वस्नेही, पुरुष की मैं (ईडे) स्तुति करूं, (यस्य धर्मन्) जिसके धारण करने के बल पर (एनीः) उसे प्राप्त होने वाले जीव-प्रजागण (मातुः ऊधः) माता के स्तन के समान (यस्य स्वः सपर्यन्ति) जिसके सुखदायी प्रकाश का सेवन करते हैं ।

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति ।

भ्राजते श्रेणिदन् ॥ ३ ॥

भा०—जो (श्रेणि-दन्) प्रजाओं और सेनाओं के पंक्तिबद्ध सब दलों को वेतन अन्नादि देने वाला है, और (यम्) जिस (कृप-नीडम्) महान् कर्म-सामर्थ्य और परानुग्रह, दया-कृपा के परम आश्रय, और

(भासा-केतुं) ज्ञान दीप्ति से सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाले को (आसा) मुख द्वारा वा (आसा) उपासना द्वारा (वर्धयन्ति) बढाते है वह (भ्राजते) सर्वत्र देदीप्यमान होता है ।

अ॒र्यो वि॒शां गा॒तुरे॑ति॒ प्र यदान॑ड् दि॒वो अन्ता॑न् ।
क॒विर॒भ्रं दीद्या॑नः ॥ ४ ॥

भा०—(विशां अर्यः) प्रजाओ का शरण करने योग्य स्वामी, (गातुः) चलने योग्य मार्ग के समान सब के प्राप्त करने योग्य है । वह (यत्) जो (दिवः अन्तान्) आकाश के दूर २ के मार्गों तक भी सूर्य-वत् (प्र आनट्) व्याप्त है । वह (अ ं दीद्यानः) मेघ को विद्युत् के तुल्य महान् आकाशवत् हृदयाकाश को भी ज्ञान से प्रकाशित करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, ज्ञानी, (प्र एति) उत्तम पद को प्राप्त होता है ।

जु॒षद्ध॒व्या मानु॑षस्यो॒र्ध्वस्त॑स्थावृ॒भ्वा य॒ज्ञे ।
मि॒न्वत्सद्म॑ पु॒र ए॑ति ॥ ५ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (यज्ञे मानुषस्य हव्या जुषत् ऊर्ध्वः तस्थौ) यज्ञ मे मनुष्य के हवि को ग्रहण करता हुआ ऊपर उठता है उसी प्रकार (ऋभ्वा) सत्य ज्ञानवान्, गुणों मे महान्, विद्वान् पुरुष (यज्ञे) यज्ञ, परस्पर संग के अवसर पर (मानुषस्य) मनुष्य के (हव्या) नाना दातव्य अन्नादि पदार्थों को (जुषत्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करता हुआ (ऊर्ध्वः तस्थौ) सब से उत्तम आसन पर विराजे, वह (सद्म मिन्वन्) गृह वा आसन को प्राप्त होता हुआ (पुरः एति) आगे आता है, (२) इसी प्रकार ज्ञानी, मुमुक्षु मानुष-अन्नादि को स्वीकार करता हुआ भी (यज्ञे) परमेश्वर के आश्रय से ऊपर उठता है वह (सद्म मिन्वन्) गृहवत् देह-बन्धन को दूर फेंक कर भी (पुरः एति) आगे बढता है ।

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (हवि-यज्ञः) हवि, उत्तम अन्नादि चरु द्वा किया गया यज्ञ, दान, (क्षेमः हि) कल्याणकारक और प्रजा का रक्ष करने वाला होता है । (अस्य) इसका (गातुः) विद्वान् पुरुष (श्रुष्टी इत उत्तम फल शीघ्र ही (एति) प्राप्त करता है । (देवाः) विद्वान् ज्ञान व इच्छुक पुरुष (वाशीमन्तम् अग्निम्) उत्तम वाणी से युक्त, ज्ञानवा पुरुष की उपासना करते है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य ।
अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥ ७ ॥

भा०—जिस (अद्रेः सूनुम्) मेघ के प्रेरक को (आयुम् आहुः) सब का जीवन रूप कहते हैं उस (यज्ञ-साहं) महान् यज्ञ को धारण करने वाले (अग्निं) महान् अग्नि, नायक वा सूर्यवत् प्रभु की (पूर्वस्य शेवस्य) सब से उत्कृष्ट सुख की प्राप्ति के लिये (दुवः इषे) उपासना करता हूँ ।

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आस्युः ।
अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् ये के च नरः) हमारे जो भी उत्तम पुरुष हो (ते) वे (अग्निं हविषा वर्धन्तः) ज्ञानस्वरूप प्रभु को स्तुति द्वारा और सेव्य यज्ञाग्नि की हवि से वृद्धि करते हुए (विश्वा इत् वामे) समस्त प्रकार से सेव्य उत्तम प्रभु में (आ स्युः) रमें ।

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस प्रभु परमेश्वर का (यामः) जगत् को नियम

में रखने वाला नियन्त्रग (कृष्णः) दुष्टों को पीड़ित करने वाला, (श्वेतः) शुभ्र, निर्दोष (अरुषः) दीप्तिमान् (ब्रध्नः) महान्, सूर्य के समान तेजस्वी, जगत् को बांधने वाला, सर्वाधार (ऋज्रः) ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग में चलाने वाला (उत) और (शोणः) अति वेगवान् (यशस्वान्) अन्न, धनैश्वर्य से सम्पन्न है। जिसको (जनिता) सर्वोत्पादक प्रभु (हिरण्यरूपं जजान) हित और रमणीय, सुखकारी रूप मे प्रकट करता है।

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०।३॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! प्रभो! (वि-मदः) विशेष आनन्द मे मग्न, (अमृतेभिः) अमृत, दीर्घजीवी वृद्ध-जनो से (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त, पुरुष (सु-मतीः इयानः) शुभ बुद्धियो को प्राप्त करता हुआ (ते) तेरे विषय मे अपनी (मनीषाम्) मन की उत्तम भावना, सद्बुद्धि और (गिरः) नाना वाणियों को (आ वक्षत्) धारण करता है। हे (ऊर्जः नपात्) बल के देनेहारे! तू (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल और (सु-क्षितिम्) उत्तम निवास योग्य भूमि और मनुष्य (विश्वम्) ये सब (आअभाः) प्रदान कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

[२१]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ८ निचृत् पंक्तिः। २ पादनिचृत् पंक्तिः। ३, ५, ७ विराट् पंक्तिः। ६ आर्ची पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥

भा०—हम लोग (स्तीर्ण-बर्हिषे यज्ञाय) विस्तृत लोकों, प्रजाजनो, और बिछे कुशादि आसनों से युक्त (यज्ञाय) यज्ञ के लिये (स्व-वृक्तिभिः)

उत्तम, दोष-वर्जित, अन्तरात्मा को आकर्षण करने वाली स्तुतियों द्वारा (अग्निं न) अग्नि के समान मार्गदर्शक, ज्ञानप्रकाशक अग्रणी, (होतारं) सब सुखों के देने वाले, (पावक-शोचिषं) सब को पवित्र करने वाले तेजःप्रकाश वाले, (शीरं) सर्वव्यापक, (त्वा) तुझ को (आ वृणीमहे) वर्णन करते हैं और (मदे) आनन्द और हर्ष लाभ के लिये (वि वृणीमहे) विशेष रूप से अपनाते हैं। तू (विवक्षसे) उसको धारण कर, तू महान् है। (२) इसी प्रकार यज्ञ को करने के लिये ज्ञानवान्, तेजस्वी, पवित्रकारक विद्वान् को वरण करे।

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे॥२॥

भा०—(अश्व-राधसः) इन्द्रियों और अश्वों की साधना करने वाले (ते) वे बहुत से (स्वाभुवः) स्वयं आत्म-सामर्थ्य वा ऐश्वर्य से सम्पन्न जन (त्वा) तुझ को (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं। (उप-सेचनी) अभिषेक क्रिया (त्वाम् वेति) तुझे चाहती है और चमकाती और प्राप्त होती है। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! अग्रणी ! (ऋजीतिः) ऋजु, सत्य मार्ग से जाने वाली (आहुतिः) स्तुति, स्वीकृति, और दान (वि मदे) विशेष हर्ष और तृप्ति के लिये (त्वाम् वेति) तुझे प्राप्त होती है। तू (विवक्षसे) उसे धारण करता है, तू महान् है। (२) यज्ञ में (स्वाभुवः) दक्षिणा रूप स्व अर्थात् धन से उत्साहित होकर कार्य करने में प्रवृत्त जितेन्द्रिय ऋत्विग् जन अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, घृतसेचनी आहुति उसकी तृप्ति करती है।

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव। कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (सिञ्चतीः इव) वृष्टि द्वारा

सेचन करने वाली मेघमालाएं जिस प्रकार सूर्य पर आश्रित हैं, उसी प्रकार (त्वे) तेरे बल पर कुछ जन (धर्माणः) समस्त धर्म और राष्ट्र-पदो, व्रतो, अधिकारो को धारण करने वाले, शासक जन, (सिञ्चतीः इव) अभिषेक कराने वाली जलधाराओं और प्रजाओ के समान ही (जुहूभिः) स्तुतिकारक वाणियो द्वारा (आसते) तेरे आश्रय पर खड़े होते हैं। और सूर्य जिस प्रकार सब को सुख देने के लिये (कृष्णा अर्जुना रूपाणि धत्ते) काले श्वेत रूप, रात्रि दिन को करता है उसी प्रकार तू भी (मदे) प्रजा के हर्ष, आनन्दित और सुखी करने के लिये (कृष्णा) दुष्टो को कर्षण वा पीड़ित करने वाले और (अर्जुना) श्वेत, धनादि अर्जन करने वाले क्षात्र और वैश्य सम्बन्धी (रूपा) नाना रुचिकर व्यवहारो को और (विश्वाः श्रियः) समस्त लक्ष्मियों, सम्पदाओ को (धिषे) धारण करता और (विवक्षसे) विशेष रूप से उनको वहन करता वा विशेष आज्ञा करने मे समर्थ होता है, तू सब से महान् है। (२) सब लोग वाणियो द्वारा स्तुति करते हुए उस प्रभु की उपासना करते हैं। वह इन सब काले गोरे, चमकते न चमकते लोकों को और सब सम्पदों को धारता है, वही महान् है।

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञान के प्रकाशक! हे (सहसावन्) बलशालिन्! हे (अमर्त्य) अन्य मनुष्यों मे असाधारण! तू (यं रयिं) जिस बल, ऐश्वर्य को (चित्रं) संग्रह योग्य अद्भुत और आश्चर्यकारक (मन्यसे) मानता है, तू (तम्) उसको (नः वाज-सातये) हमारे ऐश्वर्य, बल आदि की वृद्धि और (वि मदे) विशेष सुख और तृप्ति के लिये (यज्ञेषु) यज्ञो में (नः आ भर) हमे प्राप्त करा। तू (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली है।

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥

भा०—(अथर्वणा) अहिंसक, प्रजापालक राजा या गुरु द्वारा (जातः) उत्पन्न (अग्निः) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (विश्वानि काव्या विदद्) समस्त विद्वानों के ज्ञानों को जाने। वह (काम्यः) सब के कामना योग्य, होकर (विवस्वतः यमस्य) विविध राजाओं वा प्रजाओं के स्वामी, प्रजा वा राष्ट्र के नियन्ता राजा का (दूतः) दूत भी (भुवत्) हो। हे प्रजाजनो! वह (वः वि मदे) आप लोगों के नाना हर्ष, सुखों के लिये हो। वह (विवक्षसे) गुणों में महान् और कार्य भार उठाने मे समर्थ है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे । त्वं वसूनि काम्या
वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! लोग (यज्ञेषु) सत्संगों, धार्मिक कार्यों में, और (अध्वरे) हिंसा-रहित, प्रजाहित यज्ञ के (प्रयति) होते हुए (त्वाम् ईषते) तेरी स्तुति करते है, तुझे चाहते है। और (त्वं) तू वह (विश्वा काम्या वसूनि) समस्त प्रकार के, कामना करने योग्य नाना धनों को (वि दधासि) विशेष रूप से धारण करता है। हे प्रजाजनो! (वः मदे) तुम प्रजाओ, लोगो के सुख हर्ष के लिये (दाशुषे) दानशील आत्मसमर्पक प्रजाजन के हितार्थ (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली और पूज्य है।

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने निषेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (यज्ञेषु) यज्ञों में (घृतप्रतीकं) घृत से प्रदीप्त होने वाले अग्नि के समान तेज से चमकने वाले, (ऋत्विजं) "ऋतु" अर्थात् सदस्यों और अमात्यों से संगत, (चारुम्)

सुन्दर (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने मे समर्थ, (चेतिष्ठम्) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (त्वां) तुझ को ही (मनुपः) मननशील जन यज्ञो मे (नि-सेदिरे) स्थापित करते और तेरा ही आश्रय लेते हैं। हे प्रजाजनो ! (वः मदे विवक्षसे) वह महान् पुरुष ही आप लोगो को विविध प्रकार से हर्षित, और सुखी करने में समर्थ है।

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत्।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी ! तू (बृहत्) महान् है। तू (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) कान्ति से (प्रथयसे) प्रख्यात है। वा अपना सामर्थ्य विस्तृत करता है (अभि क्रन्दन्) आक्रमण करता हुआ (वृषायसे) बलवान् होकर रहता वा मेघवत् आचरण करता है। तू (जामिषु) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ दाराओं मे गृहपति के समान (जामिषु) ओषधि आदि की उत्पादक भूमियो मे मेघ वा सूर्यवत् (जामिषु) ऐश्वर्योत्पादक प्रजाओं के बीच (गर्भं दधासि) गर्भ अर्थात् शासन, वश करता है अर्थात् प्रजा के बीच ऐश्वर्य धारण कराता है। हे प्रजाजनो ! वह (विवक्षसे) महान् यह सब (वः वि मदे) तुम्हारे नाना सुख, हर्ष के लिये ही करता है।

इन समस्त ऋचाओ में 'वि वो मदे, विवक्षसे' यह एक अनुष्टुप् का चरण विच्छिन्न रूप से पढा है। शेष समस्त ऋचा अनुष्टुप् है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[२२]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद् वा वासुक्रः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः १,४,८, १०, १४ पादनिचृद् बृहती। ३, ११ विराड् बृहती। २, निचृत् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ७ आर्च्यनुष्टुप्। १५ निचृत् त्रिष्टुप्॥
पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

कुह॑ श्रु॒त इन्द्रः॒ कस्मि॑न्न॒द्य जने॑ मि॒त्रो न श्रू॑यते ।
ऋषी॑णां वा॒ यः क्षये॒ गुहा॑ वा॒ चर्कृ॑षे गि॒रा ॥ १ ॥

भा०—वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह श्रुतः) कहां सुना जाता है ? उसके विषय में कहां यथार्थ रूप से श्रवण किया जाता है ? (अद्य) आज भी (मित्रः न श्रूयते) वह मित्र के समान, स्नेहवान् (कस्मिन् जने श्रूयते) किस जनसमूह में श्रवण किया जा सकता है ? उत्तर-(यः) जो (ऋषीणां क्षये) मन्त्रद्रष्टा विद्वानों के निवास स्थल में वा (गुहा) गुहावत् बुद्धि में स्थित है वह (गिरा चर्कृषे) वाणी द्वारा प्रकाश और स्तवन किया जाता है ।

इ॒ह श्रु॒त इन्द्रो॑ अ॒स्मे अ॒द्य स्त॒वे व॒ज्र्यृची॑षमः ।
मि॒त्रो न यो जने॒ष्वा यश॑श्च॒क्रे असा॒म्या ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (जनेषु) मनुष्यों में (असामि) पूर्ण (यशः चक्रे) अन्न वा यश उत्पन्न करता है, (अद्य) आज भी जो (वज्री) बलशाली (ऋचीषमः) अपनी स्तुति के अनुरूप है, वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु हमारे द्वारा (इह श्रुतः) इस जगत् में श्रवण करने और (स्तवे) स्तुति करने योग्य है ।

म॒हो यस्पतिः॒ शव॑सो॒ असा॒म्या म॒हो नृ॒म्णस्य॑ तूतु॒जिः ।
भ॒र्ता वज्र॑स्य धृ॒ष्णोः पि॒ता पु॒त्रमि॑व प्रि॒यम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः शवसः पतिः) जो महान् बल का स्वामी है और (असामि) असाधारण, पूर्ण (महः नृम्णस्य) बड़े भारी धनैश्वर्य का (तूतुजिः) पालक और दाता है । वह (धृष्णोः वज्रस्य) दुष्टों का नाश करने वाले बल का (भर्ता) धारण करने वाला और (प्रियं पुत्रम् इव पिता) प्यारे पुत्र के प्रति पालक पिता के समान है ।

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥ ४ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (देवः) प्रकाशस्वरूप, सूर्यवत् होकर (देवस्य वातस्य) शक्तिप्रद वायु के बने, (धुनी) देह के प्रेरक संचालक (अश्वा) दोनो अश्वो के तुल्य (युजानः) उनको देह में संयुक्त करता हुआ और (वि-रुक्मता पथा) विशेष प्रकाश से युक्त मार्ग से (स्यन्ता) जाने वाले उन दोनो को (अध्वनः) मार्ग के पार (सृजानः) करता हुआ (स्तोपि) स्तुति किया जाता है । (२) योग का अभ्यासी वायु रूप प्राण के बने प्राण अपान, दोनो को योग द्वारा वश करता हुआ उनको कान्तियुक्त मार्ग से लेजाता हुआ प्रशस्त कहाता है ।

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥ ५ ॥

भा०—(ययोः) जिन दोनो का (न देवः) न कोई प्रकाशयुक्त पिण्ड, (न मर्त्यः) और न कोई मरणधर्मा देहादि जड़ पदार्थ (यन्ता) नियमन कर सकता है और (नकिः) न कोई उनका (विदाय्यः) ज्ञान करने हारा है । (त्वं) तू (त्या चित्) उन दोनों (वातस्य अश्वा) वायु के बने अश्वों के समान देह के चालक (ऋज्रा) ऋजु मार्ग से जाने वाले प्राण अपान को (त्मना) अपने आत्म-सामर्थ्य से (वहध्यै) धारण करने के लिये (आ अगाः) प्राप्त होता है। (२) इसी प्रकार राजा भी अश्वों के तुल्य प्रजास्थ स्त्री पुरुषो को वा शास्य-शासकों को अपने सामर्थ्य से धारण करने के लिये प्राप्त है ।

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥ ६ ॥

भा०—(उशनाः) नाना भोगों की कामना करने वाला देहवान् मनुष्य (अध ग्मन्ता वां पृच्छते) जाते हुए तुम दोनो को लक्ष्य करके पूछता है कि (कदर्थाः) किस प्रयोजन से, तुम दोनो (पराकाद् दिवः) पर, दूरवर्त्ती तेजोमय सूर्य और (ग्मः च) भूमि से (नः) हम जीवों के इस (मर्त्यं गृहं आ जग्मतुः) मरण धर्मा गृह, देह को आते हो।

इनमें प्राण इन्द्र है और उदरवर्त्ती अपान जाठर-अग्नि है।

आ नं इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम्।
तत्त्वां याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुपम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों को नाश करने में समर्थ! तू (नः आपृक्षसे) हमें सब प्रकार से, सब ओर से अपने साथ जोड़े रख। (अस्माकं ब्रह्म) हमारा महान् स्तवन, महान धन, महान् ऐश्वर्य भी (उद्-यतम्) तेरे लिये ऊपर उठा हुआ है, तेरे लिये समर्पित है। (त्वा) हम तेरे से (तत् अमानुपं अवः) वही अमानुप रक्षण, वल, प्रेम और ज्ञान की (याचामहे) याचना करते हैं जिसको कोई मनुष्य नहीं दे सकता (यत्) जो (अमानुपं) अमानुप, मनुष्यो की सीमा से पार कर जाने वाले (शुष्णं) शोषणकारी आसुरी बल को (हन्) नाश कर सके।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) न स्नेह करने वाले, वा स्नेह करने वाले वर्ग से अतिरिक्त जनों को दण्डित करने हारे प्रभो! जो (अकर्मा) स्वयं कोई सत्कार्य न करने वाला, (दस्युः) प्रजा का नाश करने वाला, (अमन्तुः) सब का अपमान करने वाला, किसी को कुछ न गिनने वाला, (अन्य-व्रतः) शत्रुओं का सा काम करने वाला, (अमानुपः) मनुष्यो के बल,

आचार, धर्म आदि की सीमा से परे, राक्षसी स्वभाव का पुरुष (नः अभि) हमारे चारो तरफ़ हमें घेरे पड़ा है। (त्वं तस्य) तू उस (दासस्य) नाशकारी, सत्यानाशी का (वधः) दण्ड देने वाला होकर उसको (दम्भय) विनष्ट कर। वा (तस्य वधः दम्भयः) उसके वधकारी स्वभाव, साधन अस्त्रादि का नाश कर।

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टो के नाश करने वाले! समस्त अन्नों के देने हारे! हे (शूर) दुष्टो के नाशक! शूरवीर! (बर्हणा) हिंसाकारी संग्रामादि के अवसरो में भी हम (त्वा-ऊतासः) तेरे बल से सुरक्षित रहें। (ते पूर्तयः) तेरे प्रजाजनों के अन्नादि से उदर और नाना कामनाएं पूर्ण करने के साधन भी (पुरुत्रा) बहुत से हैं। वे (यथा क्षोणयः) भूमियों के समान ही (वि नवन्त) विविध प्रकार से वर्णन किये जाते हैं। भूमियें जिस प्रकार नाना अन्नों से प्राणियो के उदर पूर्ण करती हैं उसी प्रकार तेरे नाना साधन भी जनों के उदर और कामनाएं पूर्ण करते हैं।

त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक वीर! हे (वज्रिवः) बलशालिन्! सर्वशक्तिमन्! (यदि) जो तू (कवीनां) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, मेधावी जनों और (न-क्षत्र-शवसाम्) क्षात्रबल और धनबल से रहित (विशां) प्रजाजनों की (गुहा) हृदय और बुद्धि में विराजमान है वह (त्वं) तू (वृत्र-हत्ये) बढ़ते दुष्ट पुरुष के मारने वाले (कार्पाणे) तलवार आदि शस्त्रास्त्र से होने वाले संग्राम में (तान् नॄन्) उन नाना योद्धा नायकों को (चोदयः) प्रेरित करता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शत्रुहिंसक ! दुष्ट-दमनकारिन् ! शूरवीर ! हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! (आक्षाणे) शत्रुहनन के कार्य में, (दानाप्नसः) शत्रु-खण्डन और प्रजा पर कृपाकारी दानरूप कर्म करने वाले (ते) तेरे (ता) वे नाना क (मक्षु) अति शीघ्र हों । (यत्) क्योंकि तू (ह) ही निश्चय से (स-यावभिः) एक साथ मार्ग में आगे बढ़ने वालों के द्वारा (शुष्णस्य) प्रजा के शोषणकारी दुष्ट पुरुष के (विश्वं जातं) सब कुछ किये कराये वा उत्पन्न हुए बलादि को भी (दम्भयः) नाश करने में समर्थ है ।

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! दुष्टों के दलन करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे) हमारी (अभिष्टयः) आशाएं, अभिलाषाएं और दान, सत्संग आदि कर्म और (वस्वीः) बसी हुई प्रजाएं वा बहुत २ धन सम्पदाएं भी (अकुध्र्यग्) तुच्छ, निष्फल (मा भूवन्) कभी न हों । हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! (वयं-वयं) हम सब सदा (ते सुम्ने) तेरे दिये सुख वा रक्षा में (आसां) इन प्रजाओं के बीच (स्याम) सदा रहा करें ।

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मे ता) हमारी वे नाना स्तुतियें, प्रार्थनाएं अभिलाषा और यज्ञ-याग आदि क्रियाएं (ते उपस्पृशः) तेरे तक पहुंचने वाली होकर भी (सत्या) सत्य फलजनक, निश्छल, सज्जनों का कल्याण करने वाली और (अहिंसन्तीः) किसी की हिंसा,

पीडा, वध, आदि न करने वाली (सन्तु) हों। हे (वज्रिवः) शक्ति-शालिन् ! (यासां) जिनके फलरूप (धेनूनां न) वाणियों वा गौओं के समान (भुजः विद्याम) नाना सुखजनक भोग्य पदार्थों को जानें और प्राप्त करें।

अहुस्ता यद्पदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णुं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः॥ १४ ॥

भा०—(यद्) जिस प्रकार (वेद्यानां शचीभिः) विद्वानों के नाना कर्मों द्वारा (अहस्ता अपदी) अप्रशस्त और मार्ग रहित (क्षाः वर्धत) निवास योग्य भूमि बढ़ कर विस्तृत होजाती है और तब सूर्य जिस प्रकार (विश्वायवे) सब के जीवन पालन एवं अन्नोत्पादन के लिये (प्रदक्षिणित्) खूब प्रबल (शुष्णं) शोषणकारी, ग्रीष्मताप को भी (नि शिश्नथः) मेघादि से शिथिल करता है और भूमि में अन्नादि उत्पन्न होते हैं, प्रजा पलती है, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् ! (वेद्यानां शचीभिः) विद्वान् पुरुषों और वेदों की वाणियों से (अहस्ता) बे-हाथ और (अपदी) बे-पांव, निःशस्त्र, निर्बल, बेचारी अत्याचारादि से पीड़ित (क्षाः) भूमि-वासिनी प्रजाएं भी (वर्धत) बढ़ती हैं, उत्साह बल से युक्त हो उठती हैं। तब तू भी (विश्वायवे) समस्त प्रजाजन के हितार्थ (प्रदक्षिणित्) सब को घेर कर बैठे बलशाली (शुष्णं) प्रजा के रक्त शोषण करने वाले दुष्ट जन को (नि शिश्नथः) सर्वथा शिथिल कर दे। शासक अत्याचारों, और धनी द्रव्य चूसने आदि की नीतियों से प्रजा का रक्त शोषण करते हैं। उनको विद्वान् पुरुष प्रजा की वृद्धि के लिये सदा शिथिल करता रहे।

वेद्या शची, वेदानां या वाणी। स्वार्थे यत् वेदा एव वेद्याः। विदन्ति वा येभ्योऽन्ये जना वेदयन्ति वा अन्यान् ते वेदाः। त एव वेद्याः। वेद्यम् एषाम् अस्तीति वा।

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥८॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुओं के दलन करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमं पिब-पिब) ऐश्वर्य और बल वीर्य का और प्रजावत् राष्ट्र का पालन और और उपभोग किया कर । हे (वसवान) और बसे प्रजाजनों को चाहने वाले ! तू स्वयं (वसुः सन्) देह में बसे आत्मा के समान राष्ट्र मे स्वयं बसने और बसाने वाला, सब का सर्वोपरि वस्त्र के तुल्य आच्छादक, रक्षक होकर (मा रिषण्यः) प्रजा का नाश मत कर। (उत) बल्कि, (गृणतः मघोनः) स्तुति प्रार्थना करने वाले धनसम्पन्न जनों की भी (त्रायस्व) रक्षा कर। (नः) हमारे (महः रायः) बहुत २ धन हो और (नः रेवतः कृधि) हमें भी दान देने योग्य धनों से सम्पन्न बना। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४ आर्ची भुरिग् जगती । ६ आर्ची स्वराड् जगती । ३ निचृज्जगती । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं वि व्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥१॥

भा०—हम लोग (वि व्रतानाम्) नाना काम करने वाले, (हरीणां) मनुष्यों के बीच में (रथ्यं) रथयोग्य अश्ववत् कार्यभार वहन करने में समर्थ उत्तम महारथी और (वज्र-दक्षिणम्) शस्त्र बलादि को, दायें हाथ में धारण करने वाले, बलशाली (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् दुष्टों के दमनकारी वीर पुरुष को हम (यजामहे) आदर सत्कार करें। उसके संग में

रहे। वह (राधसा वि दयमानः) अपने ऐश्वर्य के बल से प्रजाओं का विविध प्रकार से पालन रक्षण करता हुआ (सेनाभिः) स्वामी की आज्ञा पालन करने वाली सेनाओं, वा प्रजाओं सहित (श्मश्रु प्र दोधुवत्) शरीर में आश्रित केशों वा बाहुओं को कंपाता हुआ (वि) विविध प्रकारों मे (ऊर्ध्वथा भूत्) सर्वोपरि विराजमान हो ।

हरी न्व॑स्य या वने॑ वि॒दे वस्विन्द्रो॑ म॒घैर्म॒घवा॑ वृत्र॒हा भु॑वत् ।
ऋ॒भुर्वाज॑ ऋ॒भु॒क्षाः प॑त्यते॒ शवोऽव॑ क्ष्णौमि॒ दास॑स्य॒ नाम॑ चित् २

भा०—(या हरी) जो स्त्री पुरुष वर्ग (अस्य वने) इसके ऐश्वर्य-मय तेजोयुक्त भोग्य राष्ट्र में (वसुविदे) धन प्राप्त करते हैं (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (मघैः मघवा) उन्हों से स्वयं भी उत्तम धनों का स्वामी होकर (वृत्रहा भुवत्) बढ़ते शत्रु का नाश करने में समर्थ होता है। वह (ऋभुः) सत्य न्याय, तेज से चमकने वाला और (वाजः) बल-शाली, (ऋभु-क्षाः) विद्वान् तेजस्वी और सत्य-न्यायशील पुरुषों का आश्रय, महान् होकर (शवः पत्यते) बल और धन का पालक राष्ट्रपति और अर्थपति हो जाता है। तब मैं प्रजा वर्ग भी (दासस्य) अपने नाशकारी दुष्ट जन के (शवः) बल और (नाम चित्) नाम तक को भी (अव क्ष्णौमि) नाश करने में समर्थ होता हूं ।

य॒दा वज्रं॒ हिर॑ण्य॒मिदथा॒ रथं॒ हरी॒ यम॑स्य॒ वह॑तो॒ वि सू॒रिभि॑: ।
आ ति॑ष्ठति म॒घवा॒ सन॑श्रुत॒ इन्द्रो॒ वाज॑स्य दी॒र्घश्र॑वस॒स्पति॑: ॥३॥

भा०—(अस्य यं रथं) इसके जिस रथवत् राष्ट्र को (हरी वहतः) उत्तम सर्वदुःखहारी स्त्री और पुरुष धारण करते हैं। और (मघवा) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सूरिभिः) उत्तम विद्वानों सहित (यदा) जब उस (वज्रं) बलस्वरूप (हिरण्यम्) हित और रमणीय (रथं) सब को सुख देने और रमाने वाले (यम्) जिस राष्ट्र पर (वि तिष्ठति, आ तिष्ठति)

विविध प्रकार से बैठता और शासन करता है तब वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सन-श्रुतः) दानादि से प्रख्यात और चिरकाल तक प्रसिद्ध, वा तप और सनातन वेद मे बहुश्रुत होकर (वाजस्य दीर्घ-श्रवसः पतिः) दीर्घ काल तक श्रवण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य का पालक स्वामी हो जाता है। अध्यात्म मे—वज्र ज्ञान, रथ देह, हरी प्राण-उदान, सूरिगण इन्द्रियगण, मघवा इन्द्र आत्मा, वाज ज्ञान।

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) तेजस्वी सूर्य (हरिता) अपने प्रखर तेज से (श्मश्रूणि) भूमि पर लोमवत् उगे वनस्पतियो को (अभि प्रुष्णुते) जल से सींचता है, (सो चित् नु वृष्टिः) वही उत्तम वर्षा कहाती है। उसी प्रकार (इन्द्रः) धन-ऐश्वर्य देने वाला राजा, प्रभु (स्वा सचा यूथ्या) अपने सहयोगी यूथ या समूहो को (अभि प्रुष्णुते) सेंचता और बढ़ाता है, (सो चित् नु वृष्टिः) राजा की अपने प्रजा के प्रति वही उत्तम वृष्टि है। इसीसे राजा मेघवत् है। वह (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त होने या अभिषिक्त होने पर (सु-क्षयं अव वेति) उत्तम भवन को प्राप्त होता है, और (मधु वेति) मधुर, सुखप्रद जल, आतिथ्य, मधुपर्क और सुख-दायक अन्न प्राप्त करता है तब (यथा वातः वनम्) जिस प्रकार प्रबल वायु वन को कंपा देता है, उसी प्रकार वह भी (वनम्) स्व-सैन्य का प्रोक्षण जल के समान (उद् धुनोति) सर्वोपरि रह कर संचालित करता और परसैन्य को भय से त्रस्त करता है।

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५॥

भा०—(यः) जो प्रभु वा राजा (वि-वाचः) विपरीत, विविध

वाणी बोलने वाला और (मृध्र-वाचः) हिंसाकारिणी, मर्मवेधिनी वाणी का प्रयोग करनेवालों को (जघान) दण्ड देता है, और जो (पुरु) बहुत से (सहस्रा) हजारों, अनेक (अशिवा) अमंगलजनक, अकल्याणकारी दुःखों और दुष्टों को (जघान) नाश करता है, हम (अस्य) इसके ही (तत् तत् इत् पौंस्यं) उस २, नाना प्रकार के बल पराक्रम का (गृणीमसि) वर्णन करते हैं। वह राजा वा प्रभु (पिता इव) पिता के समान (तविषीं वावृधे) बल वा सेना को बढ़ाता है और (शवः वावृधे) बल, अन्न और ज्ञान की वृद्धि करता है।

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! समस्त जनों के राजन्! (वि-मदाः) मद से रहित, वा विशेष हर्ष वा तृप्ति योग से युक्त होकर विद्वान् लोग (ते सु-दानवे) उत्तम कोटि के पूजनीय, तुझ दाता के (अपूर्व्यं) अपूर्व, आश्चर्यजनक, (पुरु-तमं) सब से श्रेष्ठ (स्तोमं) गुणस्तवन को (अजीजनन्) प्रकट करते हैं। (अस्य इनस्य) उस तुझ स्वामी के (भोजनं विद्म हि) पालक ऐश्वर्य को हम जानें और प्राप्त करें और (पशु न गोपाः) जिस प्रकार गोपालक पशु को सदा अपने सामने रखता और बुलाता है उसी प्रकार हम (गो-पाः) इन्द्रियों के पालक, जितेन्द्रिय होकर (त्वां पशुं आ करामहे) तुझ सर्वद्रष्टा को बुलावें और सदा अपने समक्ष रखें।

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ७।६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सब ऐश्वर्यों के देने हारे! जल अन्न के वितरण करने वाले! (वि-मदस्य तव) विशेष आनन्द, हर्ष आदि से

युक्त तेरा और (वि मदस्य च ऋषेः) विशेष आनन्द और हर्ष-उल्लास से युक्त तेरे दर्शन करने वाले के (एना सख्या) ये नाना मैत्रीभाव (माकिः वि यौपुः) कोई भी न तोड़े और कभी भी न टूटें। हे (देव) सब सुखों के देने वाले! हम (ते प्र-मतिम्) तेरी सर्वोत्कृष्ट बुद्धि वा ज्ञान को (विद्म हि) अवश्य जानें, (जामिवत्) भाई के प्रति बहिन के समान, पति के प्रति सन्ततिजनक पत्नी के समान और बन्धु के प्रति बन्धु के समान, (ते) तेरे (सख्या) यह मित्रता, स्नेह और सौहार्द के भाव (अस्मे शिवा निसन्तु) हमारे लिये कल्याणकारी और सुखजनक हो। इसी प्रकार हमारे ये सब प्रेम भाव (ते शिवानि सन्तु) तेरे प्रति हमें बांधने वाले और कल्याणकारी हों। इति नवमो वर्गः॥

[२४]

ऋषिः विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः॥ देवताः—१—३ इन्द्रः। ४—६ अश्विनौ॥ छन्दः—१ आस्तारपंक्तिः। २ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। ३ शङ्कुमती पंक्तिः। ४, ६ अनुष्टुप्। ५ निचृदनुष्टुप्॥ षड्च सूक्तम्॥

इन्द्र सोम॑मि॒मं पि॑ब॒ मधु॑मन्तं च॒मू सु॒तम्।
अ॒स्मे र॒यिं नि धा॑रय॒ वि वो॒ मदे॑ सह॒स्रिणं॑ पुरूवसो॒ विव॑क्षसे॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! प्रभो! विभो! राजन्! तू (इमं सुतम्) इस उत्पन्न हुए (मधुमन्तं) मधुर मधु वा, अन्न जलादि से युक्त (सोमम्) अन्न के समान बलदायक, ऐश्वर्यमय (चमू) भूमि और आकाश में विद्यमान जगत् को पुत्रवत् (पिब) पालन कर। और हे (पुरु-वसो) समस्त जनों में बसने हारे, सर्वान्तर्यामिन्! तू (अस्मे) हमें (सहस्रिणं रयिं नि धारय) सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। हे मनुष्यो! वह (विवक्षसे) महान् प्रभु (वः वि-मदे) तुम सब को विविध प्रकार से सुखी आनन्दित करता और नाना प्रकारों से तृप्त करता है।

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥ २ ॥

भा०—हे (शची-पते) शक्तियो और वाणियों के पालक ! हम लोग (यज्ञेभिः उक्थेभिः हव्येभिः) यज्ञो, मन्त्रो और खाद्य और आहुति योग्य पदार्थों सहित (त्वाम् इमहे) तुझे प्राप्त होते हैं ! तू (शचीनां श्रेष्ठं वार्यं न. धेहि) कर्मों का सर्वोत्तम वरणयोग्य फल प्रदान कर। हे मनुष्यो! वह (विवक्षसे वः विमदे) महान् प्रभु आप सब को नाना प्रकार के आनन्द, तृप्ति-योग कराने में समर्थ है ।

यस्पतिर्वार्याणामसिं रध्रस्यं चोदिता ।
इन्द्रं स्तोतृणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यः) जो तू (वार्याणाम् पतिः असि) वरण करने योग्य धनो, ऐश्वर्यों का पालक और स्वामी है और (रध्रस्य चोदिता) साधक आराधक को भी सन्मार्ग में चलाने हारा और (स्तोतृणाम् अविता) विद्वान्, स्तुतिशील, जनों का रक्षक है तू (नः द्विषः) हमें द्वेष करने वाले जनों (अहंसः) और पाप से (पाहि) बचा । (वि वः मदे विवक्षसे) प्रभु महान् है । हे मनुष्यो ! वह तुम्हें विविध प्रकार के सुख देने में समर्थ है ।

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (मायाविना) बुद्धिमान्, सर्ग वा सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले परिपक्व रज वीर्य की शक्तियों से युक्त (शक्रा) हे शक्तियुक्त पति-पत्नी वा स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (समीची) उत्तम रीति से परस्पर मिलकर (निर् अमन्थतम्) निर्मन्थन करो (वि मदेन यद् ईडिता) विविध तृप्तिकारक अन्न, हर्ष प्रीतियोगादि से प्रेरित और इच्छावान् होकर हे

(नासत्या) परस्पर कभी असत्य आचरण न करनेवाले, सत्य व्रताचरणी जनो ! आप (निर् अमन्थतम्) निर्मन्थन अर्थात् यज्ञादि का मन्थन कर अग्न्याधान करो एवं उत्तम गृहस्थ-स्थापन कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करो।

विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन् देवाः पुनरा वहतादिति ॥ ५ ॥

भा०—(समीच्योः) परस्पर एक दूसरे को आदरपूर्वक प्राप्त कर संगत हुए और (निष्पतन्त्योः) संसार मार्ग पर आने वाली दोनों व्यक्तियों पर (विश्वेः देवाः) सब विद्वान् जन (अकृपन्त) कृपा करें, उनपर प्रेम, दयाभाव बनाये रखें। (देवाः) वे विद्वान् जन (नासत्यौ अब्रुवन्) परस्पर असत्य आचरण न करने व सदा सत्य वचन कहने वाले स्त्री और पुरुष दोनों को उपदेश करें कि (पुनः आवहतात् इति) इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा के अनन्तर उत्साहित होकर पुनः २ निरन्तर गृहस्थ का भार धारण करो, परस्पर विवाह करो।

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—(मे परा-अयनम्) मेरा दूर देश में गमन, घर से बाहर जाना (मधुमत्) मधुर, स्नेह से युक्त हो। और (पुनः आ-अयनम्) पुनः लौट आना भी (मधुमत्) मधुर, प्रीति से युक्त हो। हे (देवाः) उत्तम फल की कामना करने वाले स्त्री पुरुषो ! इस प्रकार (युवं) आप दोनों (देवतया) दानशीलता के भाव से (नः मधुमतः कृतम्) हमें मधुर स्नेह से युक्त बनाओ। इति दशमो वर्गः ॥

अध्यात्म में—(४) उपास्य उपासक 'नासत्य' हैं उनमें परस्पर संगति होने पर ध्यान-निर्मथन द्वारा परस्पर साक्षात् होता है। (५) पुनः २ अभ्यास द्वारा परस्पर योग होता है। (६) मोक्ष में जाना और पुनः मोक्ष से आना, देह से जाना और देह में आना भी जीव को सुखद हो।

[२५]

।विमद ऐन्द्र. प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६, १०, ११ आस्तारपंक्तिः । ३—५ आर्षी निचृत् पंक्तिः। ७—६ आर्षी विराट् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे।१

भा०—हे परमेश्वर ! (नः) हमे (भद्रं मनः अपि वातय) कल्याण-कारी चित्त प्राप्त करा, हमे सुखदायी ज्ञान दे। (भद्रं दक्षम् उत क्रतुम्) सुखदायी बल और कर्मसामर्थ्य भी प्रदान कर। (यवसे न गावः) पशुगण जिस प्रकार चारे के लिये इच्छुक होते है वे उसे प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार जीवगण (ते सख्ये अन्धसः रणन्) तेरे मित्र-भाव मे रह कर नाना प्रकार से अन्न, भोग्य कर्मफल प्राप्त कर आनन्द लाभ करते हैं। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु आप लोगो को विविध आनन्द सुखादि देने हारा है।

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे २

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक और प्रेरक ! (अध) और (इमे) ये सब (मम कामाः) मेरे कामनाशील (वसूयवः) वसने योग्य लोकों और ऐश्वर्यों की इच्छा करने वाले जन वा ऐश्वर्यादि की अभिलाषाएं (विश्वेषु धामसु) समस्त स्थानो मे (हृदि-स्पृशः) हृदय मे स्पर्श करने वाले, अतिप्रिय होकर (ते आसते) तेरी उपासना करते है और (वि तिष्ठन्ते) विराजते हैं, स्थिर रहते हैं। हे मनुष्यो ! वह प्रभु (विवक्षसे वः वि मदे) महान् और तुम्हे नाना प्रकार के हर्ष आनन्द देने वाला है।

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

भा०—(उत) और हे (सोम) सर्वोत्पादक ! सर्वशासक ! (अहं पाक्या) मैं परिपक्क बुद्धि से (ते व्रतानि प्र मिनामि) तेरे समस्त कर्मों और व्यवस्थाओं को प्राप्त करूं, उनको यथावत् जानूं। और तू (वधात् अभि चित्) विनाश से बचा कर (सूनवे पिता इव नः मृड) पुत्र को पिता के समान हमें सुखी कर। हे मनुष्यो ! वह (विवक्षसे वः वि मदे) महान् प्रभु आप लोगों को विशेष और विविध सुख और आनन्द देवे ।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ४

भा०—(सर्गासः अवतान् इव) जल जिस प्रकार स्वभावतः कूप के समान नीचे भागों की ओर चले जाते हैं और (सर्गासः अवतान् इव) जिस प्रकार जलार्थी लोगो की रस्सियां कूपो की ओर जाती हैं और (सर्गासः अवतान् इव) जिस प्रकार जन्तुगण रक्षकों को लक्ष्य करके शरणार्थ जाते हैं उसी प्रकार हे (सोम) सर्वशक्तिमन् ! सर्वोत्पादक प्रभो ! (नः धीतयः) हमारी समस्त स्तुतियें (क्रतुं सं यन्ति उ प्र यन्ति) जगत् के विधाता तुझ को एक साथ प्राप्त होती और तुझ तक पहुंचती हैं। तू (नः) हमें (चमसान् इव जीवसे) प्राण और दीर्घ-जीवन देने के लिये अन्न से पूर्ण पात्रों के समान नाना भोग्य लोक, और पदार्थ (धारय) प्रदान कर। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः विमदे) वह महान् प्रभु आप सब को विविध सुख और आनन्द प्रदान करता है।

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे । गृत्सस्य
धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥११॥

भा०—हे (सोम) शक्तिमन् ! सर्वप्रेरक ! ऐश्वर्यप्रद ! (त्ये)

वे (नि-कामासः) तुझे निश्चय से चाहने वाले (धीराः) बुद्धिमान् जन (तवसः) अति बलशाली (गृत्सस्य) स्तुत्य, उपदेष्टा, आज्ञापक, एवं बुद्धिमान् (तव) तेरी (शक्तिभिः) शक्तियो से ही (गोमन्तम् अश्विनं व्रजं वि ऋण्विरे) गौवों और अश्वो से समृद्ध पशुशाला के समान ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियो से सम्पन्न इस देह को विविध प्रकार से प्राप्त करते है। (विवक्षसे) वह महान् प्रभु हे मनुष्यो ! (वः वि मदे) तुम्हे बहुत से आनन्द, सुख देने हारा हो। इत्येकादशो वर्गः ॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत्। समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सोम) समस्त जगत् के उत्पन्न करने और चलाने हारे ! तू (नः) हमें (पशुं) पशु को गोपाल के समान (रक्षसि) रक्षा करता है। और तू (पुरुत्रा) बहुत प्रकारो से (वि-स्थितं जगत्) व्यवस्थित जगत् की भी (रक्षसि) रक्षा करता है। हे प्रभो ! तू (विश्वा भुवना) समस्त भुवनों को (सम्-पश्यन्) देखता हुआ (जीवसे) जीवगण के जीवन-सुख के लिये (सम् आकृणोषि) सब पदार्थों की उचित व्यवस्था करता है। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु तुम्हें बहुत से सुख देने मे समर्थ है।

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव। सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ७।

भा०—हे (सोम) जगत् के सञ्चालक प्रभो ! तू (अदाभ्यः) अविनाशी है। (नः विश्वतः गोपाः भव) तू हमारा सब प्रकार से रक्षक हो। हे (राजन्) राजन् ! सबके स्वामिन् ! शासक ! स्वयं प्रकाश और अन्यों को प्रकाशित करने हारे ! तू (स्रिधः अप सेध) हमारा नाश करने वाले दुष्टों को शत्रु-सेनाओं को राजा के तुल्य (अप सेध) दूर कर। (दुःशंसः)

दुःखदायी कठोर वचन कहने वाले (नः मा ईशत) हम पर शासन न करे। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे) वह वहान् प्रभु (वः वि मदे) आप लोगों को विविध आनन्द सुख देने के लिये हो।

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

भा०—हे (सोम) उत्तम शासक ! ऐश्वर्यवन ! विभो ! (त्वं सुक्रतुः) तू उत्तम क्रियावान्, ज्ञानवान् और (क्षेत्रवित्-तर) देहरूप निवासस्थान को प्राप्त कराने वाला, एवं प्रकृति तत्व को भली प्रकार जानने वाला है। तू (वयः-धेयाय) अन्न, बल और ज्ञान के लिये (जागृहि) सदा जाग। तू (नः) हमें (अहंसः मनुषः) पापी मनुष्य से और (द्रुहः मनुषः) द्रोही मनुष्य से (पाहि) बचा। हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् प्रभु आप लोगों को विविध प्रकार का सुख दे।

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों के सबसे बड़े नाशक ! हे धनों को प्राप्त होने हारे ! हे (इन्दो) परमैश्वर्यवन् ! (त्वं नः शिवः सखा) तू हमारा परम कल्याणकारी मित्र है और तू (इन्द्रस्य शिवः सखा) ऐश्वर्यवान् का भी परम सखा है। (यत्) क्योंकि (तोक-सातौ समिथे) धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये संग्राम मे (युद्धयमानाः) युद्ध करते हुए मनुष्य भी (सीं हवन्ते) सर्वप्रकार से तुझे रक्षार्थ पुकारते हैं। (विवक्षसे वः वि मदे) वह प्रभु हे मनुष्यो ! तुम्हें विविध सुखदेने में समर्थ है।

(२) अध्यात्म में सोम वीर्य है। वह सब दुःखों का नाशक, आत्मा, प्राण का शिव सखा है। (तोक-सातौ) सन्तान प्राप्ति के निमित्त यत्नशील जन भी उसी को प्राप्त करते हैं।

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे॥१०॥

भा०—(अयं घ) यह निश्चय से (तुरः) शीघ्र कार्य करने मे चतुर (इन्द्रस्य मदः) समृद्ध राष्ट्र को और शत्रुहन्ता बल और इस जीव-आत्मगण को सन्तुष्ट करने में समर्थ, (प्रियः) सर्वप्रिय होकर (वर्धत) वृद्धि को प्राप्त होता है । और (अयं) यह (कक्षीवतः) कार्य करने के साधनों से युक्त (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष की (मतिं) बुद्धि को (वर्धयत्) बढ़ा देता है । हे मनुष्यो ! (विवक्षसे वः वि मदे) वह महान् शक्तिशाली तुम्हे सब सुख देने मे समर्थ है ।

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः । अयं सप्तभ्य
आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—(अयं) वह प्रभु (दाशुषे विप्राय) दानशील, आत्म-समर्पक (विप्राय) बुद्धिमान् पुरुष को (गोमतः वाजान्) वाणी से युक्त ज्ञानों, बलों और इन्द्रियों से युक्त भोग्य अर्थों को (इयर्त्ति) प्राप्त कराता है । (अयं) वह (सप्तभ्यः) सातो को (वरं) उनके वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान, ग्राह्य पदार्थ (आ) प्रदान करता है । और (विवक्षसे) वह महान् प्रभु (वः) आप लोगों के (अन्धं श्रोणं च प्रतारिषत्) चक्षु से हीन, और 'श्रोण' अर्थात् चरण आदि से हीन अर्थात् चक्षु, कर्ण आदि बाह्य अंगों से रहित जीव को (मदे) मोक्षानन्द प्राप्त कराने के लिये (प्र तारिषत्) पार पहुंचा देता है । अथवा-(अन्धं) प्राणधारक (श्रोणं) श्रवणशील बहुश्रुत को तार देता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२६]

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१ उष्णिक् ४ आर्षी निचृदुष्णिक् । ३ ककुम्मत्यनुष्टुप् । ५—८ पादनिचृदनुष्टुप् । ९ आर्षी विराडनुष्टुप् । २ आर्ची स्वराडनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र ह्यच्छा॑ म॒नी॒षाः स्पा॒र्हा यन्ति॑ नि॒युत॑ः ।

प्र द॒स्रा नि॒युद्र॑थः पू॒षा अ॑विष्टु माहि॑नः ॥ १ ॥

भा०—(नियुतः) लक्षों (स्पार्हाः) प्रेमयुक्त मनभावनी (मनीषाः) मन की इच्छाएं और वाणियों (अच्छ प्र यन्ति) भली प्रकार स्वयं निकलती हैं (माहिनः पूषा) महान्, सर्वपोषक प्रभु (नियुद्-रथः) सहस्रों, लक्षों वेगवान् रथों, लोकों का स्वामी, महारथी सेनापति के समान (दस्रा) कर्म करने वाले जीवों की (प्र अविष्टु) अच्छी प्रकार रक्षा करे ।

यस्य॒ त्यन्म॑हि॒त्वं वा॒ताप्य॑म॒यं जन॑ः ।

विप्र॒ आ वं॑सद्धी॒तिभि॒श्चिके॑त सुष्टु॒ती॒नाम् ॥ २ ॥

भा०—(अयं जनः) यह मनुष्य (यस्य) जिस सूर्यवत् तेजस्वी प्रभु के (वाताप्यं) प्रवल वायु वा प्राण द्वारा प्राप्त होने योग्य, मेघजल के तुल्य जीवनप्रद (त्यत् महित्वं) उस महान् सामर्थ्य को (धीतिभिः आ वंसत्) खान-पान क्रियाओं से भोजन जलादि के तुल्य ही स्तुतियों और ध्यान धारणाओं द्वारा प्राप्त करता है वह (विप्रः) परम मेधावी ही (सु-स्तुतीनां चिकेत) उत्तम स्तुतियों को भली प्रकार जानता है ।

स वे॑द सुष्टु॒ती॒नामिन्दु॒र्न पू॒षा वृषा॑ ।

अ॒भि प्सुर॑ः प्रुषायति व्र॒जं न॒ आ प्रु॑षायति ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (इन्दुः न) ऐश्वर्यवान् वा द्रवित होने वाले मेघ वा दयार्द्र महानुभाव के समान (पूषा) सर्वपोषक (वृषा) सुखों को बरसाने वाला प्रभु (सु-स्तुतीनां वेद) समस्त उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करता है, वह सर्व स्तुतियों के योग्य है । वही (प्सुरः अभि प्रुषायति) रूपवान्, सुन्दर भूमियों के प्रति मेघ के तुल्य देहवान् प्राणियों पर कृपाजल का वर्षण करता है । और वह (व्रजं नः आ प्रुषायति) हमारे

गन्तव्य मार्ग वा गोष्ठवत् देह को भी सींचता है, उसे भी सुखप्रद बनाता है।

मंसीमहि त्वा व॒यम॒स्माकं देव पूषन् ।

म॒ती॒नां च॒ साध॑नं॒ विप्रा॑णां चाध॒वम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (पूषन्) सब जगत् के पोषण करने वाले ! प्रभो ! हे (देव) सब सुखों के देने वाले ! सब जगत् के प्रकाशक ! (वयम्) हम (त्वा) तुझे (अस्माकं मतीनां) अपनी बुद्धियों, स्तुतियों को (साधनं) सफल करने वाला और (विप्राणां च) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों का (आधवं च) सब प्रकार से स्वामी और पवित्र करने वाला (मंसीमहि) जानते हैं।

प्रत्य॑र्धिर्य॒ज्ञाना॑मश्वह॒यो रथा॑नाम् ।

ऋषि॒ः स यो मनु॑र्हितो॒ विप्र॑स्य यावयत्स॒खः ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञानां प्रति-अर्धिः) समस्त यज्ञों का प्रत्यक्ष फल देने वाला, (रथानाम् अश्व-हयः) रथों में लगे वेगवान् घोड़े के समान समस्त रम्य पदार्थों और वेगवान् सूर्यादि लोकों का संचालक है। (सः) वह (ऋषिः) सब पदार्थों का द्रष्टा, (मनुः) ज्ञानमय, (विप्रस्य सखः) बुद्धिमान्, विद्वान् का परम मित्र (यवयत्) सब के दुःखों को दूर करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आधीष॑माणायाः॒ पति॑ः शु॒चाया॑श्च शु॒चस्य॑ च ।

वा॒सो॒वा॒यो॑ऽवी॑ना॒मा वासां॑सि॒ मर्मृ॑जत् ॥ ६ ॥

भा०—(आ-धीषमाणायाः) सब प्रकार से धारण पोषण की गई (शुचायाः च) अत्यन्त शुद्ध, वा सत्व गुण से युक्त, कान्तिमती प्रकृति का और (शुचस्य च) शुद्ध, कान्तियुक्त, 'स्वप्रकाश' आत्मा का भी (पतिः) पुत्र और पत्नी के गृहस्वामिवत् पालक है। और जिस प्रकार (वासः-वायः

अवीनां वासांसि मर्मृजत्) वस्त्र बुनने वाला तन्तुवाय भेड की ऊनों के नाना वस्त्र स्वच्छ रूप मे बनाता है उसी प्रकार वह प्रभु भी (वासः वायः) समस्त प्राणियो के रहने योग्य लोक-परम्परा रूप जगत्-पट का बनाने वाला (अवीनाम्) अरक्षित जीवो के नाना (वासांसि आ मर्मृजत्) आच्छादक देह वा वसने योग्य नाना लोक, भूमि, सूर्यादि बनाता है। इसी प्रकार वह (अवीनां वासांसि आ मर्मृजत्) सूर्य, भूमियों और सूर्यों के वास रूप आवरणों को भी शुद्ध करता, प्रकाशित करता है।

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः॥ ७॥

भा०—वह प्रभु (वाजानां इनः) समस्त बलों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों, वेगवान् पदार्थों का स्वामी (पतिः) पालक (पुष्टीनां इनः) समस्त पशु, अन्न आदि समृद्धियो का स्वामी, (सखा) सब का मित्र है। वह (हर्यतः) अति कान्तिमान्, तेजस्वी (श्मश्रु वृथा प्र दूधोत्) देह में आश्रित अंगों या बालो के समान समस्त जगत् के पदार्थों को अनायास संचालित करता है और (यः अदाभ्यः) जो स्वयं अविनाशी है।

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः॥ ८॥

भा०—हे (पूषन्) सब के पालन-पोषण करने हारे प्रभो ! तू (विश्वस्य-अर्थिनः) समस्त प्रार्थी जनों का (सखा) मित्र है। तू (सनः-जाः) अनादि, अजन्मा (अनपच्युतः) ध्रुव अविनाशी है। (ते रथस्य धुरं) तेरे अति वेग से जाने वाले वा जगत्-चक्र के धारक बल को (अजाः ववृत्युः) नित्य प्रकृति और आत्मागण तथा नाना प्रेरक बल अग्नि, वायु, विद्युत्, जल आदि चला रहे है।

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(पूषा) वह सब जगत् का पालक पोषक प्रभु (माहिनः) सब से महान्, शक्तिशाली है। वह (अस्माकं रथं) हमारे (रथ) रमण करने योग्य इस जगत् और देह को (ऊर्जा) बल और शक्ति से (अविष्टु) संचालित करे। वह (वाजानां वृधे भुवत्) ऐश्वर्यों, बलों और ज्ञानो को बढाने वाला हो। और वह (नः इमं हवम् शृणवत्) हमारी इस प्रार्थना को सुने। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२७]

वसुक्र ऐन्द्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,५,८,१०,१४,२२ त्रिष्टुप् । २, ६, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ११, १२, १५, १९—२१, २३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, ७, १३, १७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥
चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥ १ ॥

('वसुक्र' वसु करोति तादृशः इन्द्र एव ऐन्द्रः, सोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः)

भा०—हे (जरितः) विद्वान् उपदेष्टः ! (मे सः अभि-वेगः सु असत्) मेरा वह उत्तम उत्साह और वेग बल सदा भली प्रकार बना रहे (यत्) कि मैं (सुन्वते यजमानाय शिक्षम्) यज्ञशील, देवोपासक को सदा दान दिया करूं, उसकी इच्छापूर्त करूं। मैं ईश्वर, राजा, (अनाशीः-दाम्) आशा और कामनाओं के अनुरूप न देने वालों को (प्र-हन्ता अस्मि) अच्छी प्रकार नाश करने वाला हूं। और मैं (सत्य-ध्वृतं) सत्य के विनाशक और (वृजिनयन्तम्) पापाचरण करने वाले (आभुम्) शक्तिशाली को भी (प्र-हन्ता अस्मि) खूब अच्छी प्रकार नाश कर देता हूं।

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

भा०—(यदि इत्) जब भी (अहं) मैं (युधये) युद्ध करने के निमित्त (तन्वा शूशुजानान्) देह या विस्तृत सेनादि से बढ़ते हुए (अदेवयून्) ईश्वर की पूजा न करने और देवों, विद्वानों को दान न देने वाले दुष्ट जनों को (सं-नयानि) लक्ष्य करके अपने सैन्य बल को एकत्रित करूं तब मैं हे प्रभो ! (ते) तेरे (तुम्रं) अति बलशाली (वृषभम्) वृष्टिकारक मेघ के तुल्य शत्रु पर शरवर्षण और प्रजा पर कृपा-वर्षण करने वाले बल को (पचानि) परिपक्व करूं, उसको खूब सधाऊं । वा उसका विस्तार से वर्णन करूं । और (तीव्रं) अति तीक्ष्ण, (सुतं) अभिषेक योग्य (पञ्च-दशं) १५ वें पद पर स्थित, पूर्ण चन्द्रवत् विराजमान, बलवान् पुरुष को (नि-षिञ्चम्) मुख्य पद पर अभिषिक्त करूं ।

* पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥ तस्माद् राजन्यस्य पञ्चदशः स्तोमः ॥ ता० ६ । १ । ८ ॥ चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥ चतुर्दश ह्येवैतस्यां करूकराणि वीर्यं पञ्चदशम् ॥ गो० पू० ५ । ३ ॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

भा०—(अदेवयून्) देव, विद्वानों, और सर्व-सुखप्रद प्रभु को न चाहने वाले शत्रुओं को (सम्-अरणे) संग्राम में (जघन्वान्) विनाश करता हूँ (यः इति ब्रवीति) जो ऐसा कहता है (तं) उसको (अहं न वेद) मैं नहीं जानता । (यद् ऋघावत्) जो हिंसादि से युक्त (सम्-अरणम्) संग्राम को (अव-अख्यत्) देखता हूं । (आत् इत्) तभी विद्वान् लोग (मे) मेरे (वृषभा) मेघ-वर्षणादि और अनेक बलयुक्त कर्मों का (प्र ब्रुवन्ति) वर्णन करते हैं ।

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन्।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य॥४॥

भा०—(यत्) जब मैं (अज्ञातेषु वृजनेषु) अज्ञात मार्गों में (आसन्) होऊं तब (विश्वे मघवानः) सब उत्तम ऐश्वर्य से युक्त भी (सतः) सद्रूप से वर्त्तमान सज्जन (मे) मेरे ही (आसन्) रहें। और जिस प्रकार सूर्य (क्षेमे) जगत् के रक्षणार्थ, (आ सन्तं आभुं) सर्वत्र फैले जल राशि को एकत्र करता और उसे पर्वतों पर या मेघरूप में प्रेरित करता है उसी प्रकार (क्षेमे) जगत् के कुशलपूर्वक रक्षण के लिये (आ सन्तं आभुं) सब तरफ फैले महान् शत्रु को भी (जिनामि वा इत्) अवश्य पराजित करूं। और (पाद-गृह्य) उसका पैर पकड़ कर, उसका आश्रय छीन कर उसे (पर्वते प्र क्षिणाम्) पर्वत से खदेड़ दूं।

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात्॥५॥१५

भा०—(मां) मुझ को कोई लोग भी (वृजने) गन्तव्य मार्ग में (न वा उ वारयन्ते) नहीं वारण कर सकते, मुझे कोई भी रोक नहीं सकते। (यद् अहं मनस्ये) जब मैं चाहता हूं तो (पर्वतासः न) पर्वतों के समान अचल, विशाल पदार्थ भी मुझे करने से रोक नहीं सकते (मम स्वनात्) मेरे शब्द से (कृधु-कर्णः भयाते) छोटे उपकरण वाला, अल्पशक्ति जन भयभीत होता है। (एव इत् अनुद्यून्) इसी प्रकार सब दिनों, (किरणः) किरणों वाला सूर्य भी मुझ ईश्वर की शक्ति से (सम् एजात्) चला करता है। (२) इसी प्रकार बलवान् राजा की शक्ति से (किरणः) शत्रु को उखाड़ देने में समर्थ सैन्य भी चलता है। इति पञ्चदशो वर्गः॥

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान्।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः॥ ६॥

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
आ ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

भा०—(यदि इत्) जब भी (अहं) मैं (युधये) युद्ध करने के निमित्त (तन्वा शूशुजानान्) देह या विस्तृत सेनादि से बढ़ते हुए (अदेवयून्) ईश्वर की पूजा न करने और देवों, विद्वानों को दान न देने वाले दुष्ट जनों को (सं-नयानि) लक्ष्य करके अपने सैन्य बल को एकत्रित करूं तब मैं हे प्रभो ! (ते) तेरे (तुम्रं) अति बलशाली (वृषभम्) वृष्टिकारक मेघ के तुल्य शत्रु पर शरवर्षण और प्रजा पर कृपा-वर्षण करने वाले बल को (पचानि) परिपक्व करूं, उसको खूब सधाऊं । वा उसका विस्तार से व र्णन करूं । और (तीव्रं) अति तीक्ष्ण, (सुतं) अभिषेक योग्य (पञ्च-दशं) १५ वे पद पर स्थित, पूर्ण चन्द्रवत् विराजमान, बलवान् पुरुष को (नि-षिञ्चम्) मुख्य पद पर अभिषिक्त करूं ।

क्ष पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥ तस्माद् राजन्यस्य पञ्चदशः स्तोमः ॥ ता० ६ । १ । ८ ॥ चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥ चतुर्दश ह्येवैतस्यां कलाकराणि वीर्यं पञ्चदशम् ॥ गो० पू० ५ । ३ ॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

भा०—(अदेवयून्) देव, विद्वानों, और सर्व-सुखप्रद प्रभु को न चाहने वाले शत्रुओं को (सम्-अरणे) संग्राम में (जघन्वान्) विनाश करता हूँ (यः इति ब्रवीति) जो ऐसा कहता है (तं) उसको (अहं न वेद) मैं नहीं जानता । (यद् ऋघावत्) जो हिंसादि से युक्त (सम्-अरणम्) संग्राम को (अव-अख्यत्) देखता हूं । (आत् इत्) तभी विद्वान् लोग (मे) मेरे (वृषभा) मेघ-वर्षणादि और अनेक बलयुक्त कर्मों का (प्र ब्रुवन्ति) वर्णन करते हैं ।

यद॒ज्ञाते॑षु वृ॒जने॒ष्वासं॒ विश्वे॑ स॒तो म॒घवा॑नो म आसन् ।
जि॒नामि॒ वेत्क्षेम॒ आ सन्त॑मा॒भुं प्र तं क्षि॑णां॒ पर्व॑ते पाद॒गृह्य॑ ॥४॥

भा०—(यत्) जब मैं (अज्ञातेषु वृजनेषु) अज्ञात मार्गों में (आसन्) होऊं तब (विश्वे मघवानः) सब उत्तम ऐश्वर्य से युक्त भी (सतः) सद्रूप से वर्त्तमान सज्जन (मे) मेरे ही (आसन्) रहें। और जिस प्रकार सूर्य (क्षेमे) जगत् के रक्षणार्थ, (आ सन्तं आभुं) सर्वत्र फैले जल राशि को एकत्र करता और उसे पर्वतों पर या मेघरूप में प्रेरित करता है उसी प्रकार (क्षेमे) जगत् के कुशलपूर्वक रक्षण के लिये (आ सन्तं आभुं) सब तरफ फैले महान् शत्रु को भी (जिनामि वा इत्) अवश्य पराजित करूं। और (पाद-गृह्य) उसका पैर पकड़ कर, उसका आश्रय छीन कर उसे (पर्वते प्र क्षिणाम्) पर्वत में खदेड़ दूं।

न वा उ॒ मां वृ॒जने॑ वारयन्ते॒ न पर्व॑तासो॒ यद॒हं म॑न॒स्ये ।
मम॑ स्व॒नात्कृ॑धु॒कर्णो॑ भयात ए॒वेद॑नु॒ द्यून्कि॒रणः॒ समे॑जात् ॥५॥१५

भा०—(मां) मुझ को कोई लोग भी (वृजने) गन्तव्य मार्ग में (न वा उ वारयन्ते) नहीं वारण कर सकते, मुझे कोई भी रोक नहीं सकते। (यद् अहं मनस्ये) जब मैं चाहता हूं तो (पर्वतासः न) पर्वतों के समान अचल, विशाल पदार्थ भी मुझे करने से रोक नहीं सकते (मम स्वनात्) मेरे शब्द से (कृधु-कर्णः भयाते) छोटे उपकरण वाला, अल्पशक्ति जन भयभीत होता है। (एव इत् अनुद्यून्) इसी प्रकार सब दिनों, (किरणः) किरणों वाला सूर्य भी मुझ ईश्वर की शक्ति से (सम् एजात्) चला करता है। (२) इसी प्रकार बलवान् राजा की शक्ति से (किरणः) शत्रु को उखाड़ देने में समर्थ सैन्य भी चलता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

दर्श॒न्न्वत्र॑ शृत॒पाँ अ॑नि॒न्द्रान्बा॑हु॒क्षदः॒ शर॑वे॒ पत्य॑मानान् ।
घृषुं॑ वा॒ ये नि॑नि॒दुः सखा॑य॒मध्यू॒न्वे॑षु प॒वयो॑ ववृत्युः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (अत्र) इस जगत् में (अनिन्द्रान्) इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, परम प्रभु से रहित (श्रत-पान्) परिपक्व फल का पान, उपभोग करने वालो को और (बाहु-क्षदः) बाधित या पीड़ित करने वाले साधनों से दूसरों को नाश करने वाले और (शरवे) हिंसाकारी बल को प्राप्त करने के लिये (पत्यमानान्) दौड़ते हुए, वा ऐश्वर्य पाने वालों को भी देखता हूँ। (वा) और उनको भी देखता हूँ (ये) जो (घृषुं सखायम्) अपने बड़े मित्र, सहायक प्रभु की (निनिदुः) निन्दा करते हैं (एषु) उन पर (उ नु) निश्चय से ही (पवयः अधि ववृत्युः) मेरे वज्र शासन करते हैं, उनका नाश करते है।

अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेप ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! परमैश्वर्यवन्! तू (अभूः उ) अजन्मा ही है,जो (औक्षी.) जगत् को उत्पन्न करने के लिये, जगत् के उत्पादक बीज का वपन करता और उसको मेघवत् सेचन करके बढ़ाता है। तू (आयुः आनट्) समस्त जीव-सर्ग मे व्यापक है। (पूर्वः दर्षत् नु) जो पूर्व विद्यमान या पूर्ण शक्तिशाली होता है वही सब का विदारण करता है, वही सब का विभाग करता है, (अपरः नु दर्षत्) और दूसरा कोई विदारण नहीं कर सकता। (द्वे) ये आकाश और भूमि, जीव और प्रकृति दोनों (पवस्ते) विस्तृत होकर भी (तं न परि भूतः) उसको नहीं ढांप सकते (यः) जो (अस्य रजसः पारे विवेप) इस लोक के पार, बाहर भी व्याप रहा है।

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥ ८ ॥

भा०—(सह-गोपाः गावः चरन्तीः यवम्) जिस प्रकार गोपाल के साथ चरती हुई गौएं यव आदि खाद्य पदार्थ को प्राप्त होती है उसी

प्रकार (सह-गोपाः) रक्षक के साथ, (गावः) ये भ्रमणशील जीव लोक, (चरन्तीः) गति करते हुए (प्रयुताः) लक्षों वा खूब व्यवस्थित होकर (यवं अक्षन्) अपना कर्मफल भोगते है। और मैं (अर्यः) स्वामी के समान (ताः अपश्यम्) उन सब को देखता हूं। वे (अर्यः अभितः) स्वामी के चारो ओर (हवाः इत्) बुलाये हुए से (सम् आयन्) एकत्र हो जाते हैं (आसु) उनमे (स्व-पतिः) स्वयं सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (कियत् छन्दयाते) कितना ही उनके मनोऽनुकूल आनन्द, सुख प्रदान करता है और स्वयं रमता है, यह देखने योग्य है।

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद् ववन्वान् ॥९॥

भा०—(यत्) क्योंकि (वयम् जनानाम्) उत्पन्न होने वाले जीव गणों मे से हम सब (यव-सादः) चारे के समान कर्मफल को भोगने वाले हैं। और (उर्वज्रे अन्तः) महान् आकाश के भीतर हम लोग (यव-अदः) अन्नवत् नाना भोग्यो को भोगने वाले है। (अत्र) इस लोक में (युक्तः) समाहित चित्त होकर मनुष्य (अव-सातारं) उस दाता प्रभु को (इच्छात्) चाहा करे। (अथो) और वह (ववन्वान्) सब का दाता प्रभु (अयुक्तं युनजत्) मनोयोग न देने वाले को भी सन्मार्ग मे लगाता है।

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः १०॥१६

भा०—(अत्र इत् उ) यहां ही (मे) मेरे विषय मे (उक्तम् सत्यं मंससे) हे जीव ! तू उपदेश किये को सत्य सत्य, ठीक ठीक जान ले कि (यत् द्विपात् च चतुष्पात् च) जो भी दोपाये मनुष्य वा चौपाये जीव हैं उन सब को मैं ही (सं सृजानि) उत्पन्न करता हूं। (अत्र) इस

संसार मे (यः) जो (स्त्रीभिः) स्त्रियों के सदृश पराधीन वा सघात युक्त सेनाओं से युक्त होकर भी (वृपणं) वलवान् मुझ से (पृतन्यात्) युद्ध करता है मै (अयुद्धः) विना युद्ध किये, वा उसका प्रहार विना सहे ही (अस्य वेदः वि भजानि) उसके धन को विविध प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर देता हूँ। इति षोडशो वर्गः ॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम्।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वावरेयात् ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य) जिसके अधीन (अनक्षा) अक्षि आदि ज्ञान साधनों से रहित वा अव्यापक, अपेक्षया स्थूल (दुहिता) सब ऐश्वर्यों को देने वाली प्रकृति पुत्रीवत् (जातु आस) है। (कः विद्वान्) कौन ज्ञानी (ताम् अन्धाम्) उस अन्धी, अचेतन प्रकृति को (अभि मन्याते) अपना जानेगा, उसको अपना कर कौन गर्व कर सकता है। (यः ईं वहाते) जो इसको धारण करता है और (यः ईं वरेयात्) जो इसको वारण करता या दूर करता है (तं) उस (मेनिं) वज्रवत् दृढ़ और माननीय श्रेष्ठ वल को (कतरः प्रति मुचाते) कौन धारण करता है।

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्॥१२॥

भा०—(कियती योषा) कितनी स्त्री ऐसी है जो (वधूयोः मर्यतः) वधू की कामना करने वाले मनुष्य के (पन्यसा वार्येण परिप्रीता) स्तुति-युक्त वचन और धन से ही खूब सन्तुष्ट होजाती है। वस्तुतः (भद्रा वधूः भवति) वही वधू कल्याणकारिणी और सुख सौभाग्यवती होती है (यत् सुपेशाः) जो सुभूषित होकर (सा) वह (जने चित् मित्रं स्वयं वनुते) मनुष्यो के वीच अपने मित्र पुरुष को स्वय सखा, पति रूप से स्वीकार करती है।

अध्यात्म मे—वह स्त्रीवत् प्रकृति की कितनी मात्रा है जो मरणशील जीव के वचन और ऐश्वर्य से तृप्त है, अर्थात् उसके वश है। वस्तुतः वह

प्रकृति वधूवत् जगत् को धारण करने वाली, सूर्यादि आभूषण धारे, उत्पन्न जगत् के बीच उस प्रभुको ही मित्रवत् सेवती है। वही (भद्रा) सर्वसुख-जनक, सर्वैश्वर्यवती है।

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम्॥१३॥

भा०—पुरुष प्रकृति को किस प्रकार व्यापता है। (पत्तः) व्याप्त होकर वह परम पुरुष (जगार) इस जगत् को अपने भीतर लील लेता है। और (प्रत्यञ्चम् अत्ति) उसके प्रति व्याप्त प्रकृति तत्व को वह मानो उपभोग करता है, इस जगत् के (शिरः वरूथम्) गृह की छत के समान आच्छादक शिरोवत् ऊर्ध्वतन भाग को (शीर्ष्णा प्रति दधौ) अपने शिरोवत् शिर के तुल्य आकाश रूप से धारण करता है। वह (ऊर्ध्वाम्) ऊपर विद्यमान प्रकृति को भी (उपसि आसीनः क्षिणाति) मानो उसके समीप बैठकर उसको प्रेरित करता है और (उत्तानाम् भूमिम्) उत्तान भूमि को भी (न्यङ् अनु एति) मानो स्वयं नीचे व्यापकर उसके प्रत्येक अवयव में व्याप्त होता है।

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः॥१४॥

भा०—वह प्रभु (बृहन्) महान् (अच्छायः) छाया, अन्धकार वा मृत्यु से रहित, तेजोमय अमृत, (अपलाशः) 'पल' अर्थात् कर्मफल के अशन अर्थात् भोग से रहित, अबद्ध, सदामुक्त (अर्वा) व्यापक, दुःखों का नाशक, (माता) सब जगत् का मातृवत् निर्माता और समस्त जगत् के पदार्थों का प्रमाता, ज्ञाता, (वि-पितः) सब प्रकार के बन्धनों से रहित, (गर्भः) और सब जगत् को अपने में धारण, आकर्षण और प्रलीन करने हारा होकर (अत्ति) इस चराचर जगत् को खाजाता है, अपने में ही लील लेता है।

वह (धेनुः) सब जीवों को सुख और आनन्द का रस-पान कराने वाला प्रभु (अन्यस्याः) अपने से भिन्न जड़ प्रकृति के (वत्सं) पुत्रवत् उससे उत्पन्न जगत् को (रिहती) मानो बच्चे को अति प्रेमसे चाटती गौके समान उस पर अनुग्रह करता है, (मिमाय) शब्द करता, वेदवाणी का उपदेश करता है, वह (कया भुवा) भला किस अभिप्राय या भाव से (ऊधः) जगत को पालन करने के लिये अन्तरिक्ष में, मेघ, सूर्य और रात्रि आदि सुखदायक, जीवनदायक पदार्थों को, बच्चे के प्रति स्तनवत् (नि दधे) प्रदान करता है ।

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते । नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ।१५।१७।

भा०—उस (अश्नः) भोक्ता या व्यापक राजा के तुल्य आत्मा के (सप्त वीरासः) सात वीर, सात प्राण (अधरात्) नीचे, मूल भाग, नाभि से (उत् आयन्) ऊपर को उठते है । और (ते) वे ही (अष्ट) आठ होकर (उत्तरात्-तात्) खूब ऊपर से आकर (सम् अजग्मिरन्) एक स्थान पर ही एकत्र संगत होकर बैठते है । (ते) वे ही (पश्चात्तात्) पीछे की ओर (स्थिवि-मन्तः) स्थिर स्थिति वाले होकर (आयन्) प्राप्त होते हैं और वे ही (दश) दश संख्या वाले होकर (अश्नः) भोक्ता आत्मा को (सानु) नाना भोग्य कर्मफल, सुख दुःखादि की (वि तिरन्ति) वृद्धि करते है । सप्त वीर शिरोगत सात प्राण नाभि से या मूल भाग से उद्गत होते है, वे उत्तर नाम शिरोभाग मे वाक्‌रूप अष्टमी शक्ति सहित आठ होकर एक स्थान मूर्धाभाग मे संगत होते हैं । पीछे पीठ की ओर से देखें तो वे नव द्वारवत् है वा पीठ के नव मोहरे रूप मे ग्रीवा दशवी है, भोक्ता शरीर के वश ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय उसके सुख-दुःख का भोग सम्पादन करते है । इति सप्तदशो वर्ग. ॥

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥

भा०—(दशानाम्) उन दशों के बीच में (एकं) एक, ग्यारहवें वा दशो मे से एक दशवे को (समानम्) सब के प्रति समान भाव से रहने वाला, विशेष ज्ञान-शक्ति से सम्पन्न, (कपिलम्) सब को कपित करने वाला, सब के संचालक रूप से जानते है। (तम्) उसको (पार्याय क्रतवे) परम स्थान मे प्राप्त कराने वाले कर्म–यज्ञादि करने के लिये वा परम पद मोक्ष मे स्थित सर्वकर्त्ता प्रभु को प्राप्त करने के लिये (हिन्वन्ति) योगी जन प्रेरित करते है। वह पुरुष आत्मा है। (माता) जगत्-निर्मात्री प्रकृति माता के समान ही उसके जीवात्मा को (अवेनन्तम्)-विशेष कामना न करने वाले उस पुरुष को (वक्षणासु सुधितं गर्भम्)-गर्भ-धारण मे समर्थ नाड़ियो के बीच सुख से धारण किये गर्भ के समान ही, मानो (तुषयन्ती बिभर्त्ति) अति प्रसन्न होकर अपने मे धारण करती है।

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्वन्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥ १७ ॥

भा०—वे (वीराः) दशो प्राण (पीवानं) स्थूल, सब के पोषक, वृद्धिशील (मेषं) आनन्द के प्रदाता आत्मा को (अपचन्त) परिपक्व करते हैं, और वे ही (नि-उप्ताः अक्षाः) देह मे विशेष रूप से निक्षिप्त वा अकुरित इन्द्रियगण (अनु) उस आत्मा के इच्छानुसार (दीवे) उसके रमण, क्रीडा आदि सुख के लिये (आसन्) होते हैं। और (अप्सु अन्तः) प्राणों या रुधिर-धाराओ के बीच मे व्यापक होकर (द्वा) दो मुख्य प्राण, अपान (पवित्रवन्ता) पवित्र शरीर को शोधन करने वाले बल से युक्त होकर (पुनन्ता) शरीर को निरन्तर पवित्र करते हुए (अन्तः

चरन्ति) शरीर के कण २ मे विचरते है। प्राण और अपान की सूक्ष्म गति शरीर के कण २ मे है।

वि क्रोशनासो विष्वंञ्च आयुन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः।
अयं मे देवः संविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः॥ १८॥

भा०—(क्रोशनासः) उस प्रभु परमात्मा की पुकार करते हुए (विष्वञ्चः) विविध मार्गों में जाने वाले जीवगण (वि आयन्) विविध रूपों में इस लोक मे आते है। (नेमः) उनमें एक वर्ग तो (पचाति) पकाता है अर्थात् एक तो तपस्या करके ज्ञान साधन आदि करता है और (अर्धः नहि पक्षत्) दूसरा वर्ग तप आदि नहीं करता, वह केवल भोग ही करता है। (अयं) यह (देवः) सर्व सुख दुःखादि कर्म फलों का दाता (सविता) सूर्यवत् तेजस्वी, जगत् का उत्पादक प्रभु ही (मे तत् आह) मुझे उस परम पद का उपदेश करे। वस्तुतः (द्रवन्नः इत्) जिस प्रकार काष्ठ को अन्नवत् खाने वाला अग्नि ही (सर्पिः-अन्नः) द्रुत घृत को भक्षण करने वाला होकर (वनवत्) आहुति के किये पदार्थों को खा जाता है, उसी प्रकार जो जीवगण (द्रुवन्नः) नाना वनस्पतियों को अन्न वत् भोग करता है और जो (सर्पिः-अन्नः) सर्पणशील इस जगत् या संसार के जन्म मरण रूप सुख-दुःखों का भोग करता है वही जीव (वनवत्) नाना ऐश्वर्यों का भोग करता है। और जो इस भोगमय जगत् से विरक्त हो जाता है वह फिर कर्म का परिपाक नहीं करता है।

अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम्।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् १६

भा०—मैं (अचक्रया) स्वयं कोई कार्य न करने वाले, जड़ (स्वधया) अपने आप ही जगत् को बनाते और चलाते हुए और (आरात्) बहुत दूर से, अनादिकाल से प्रवाह रूप से (ग्रामं वहमानः) इस भूत-संघ को

वहन करते हुए उस प्रभुको (अपश्यम्) देख रहा हू । वह (नवीयान्) सबसे अधिक स्तुत्य, (अर्यः) सत्र का स्वामी परमेश्वर (सद्यः) सदा ही (शिश्ना प्रमिनानः) आघातकारी, बाधक दुःखदायी कारणो का नाश करता हुआ (जनानां युगा) अनेक जीवो के जोडो को (प्र सिसक्ति) उत्पन्न करता और मिलाता है । इस प्रकार वह प्रभु जीव-जगत् को चला रहा है ।

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ।२०।१८।

भा०—हे प्रभो ! परमेश्वर ! (मे प्रमरस्य) प्राणो को त्याग कर मृत्यु को प्राप्त होने वाले मेरे (एतौ) ये दोनो (गावौ) प्राण और-अपान दोनो, रथ मे लगे दो बैलो या घोड़ो के समान (युक्तौ) देह में जुड़े है, उन दोनों को (मो सु प्रसेधीः) तू कभी दूर न कर । प्रत्युत (मुहुः इत्) बार २ (ममन्धि) जोड कर । (अस्य) इस जीवगण के (आपः) प्राणमय, सूक्ष्म शरीर (चित्) ही (अस्य अर्थं विनशन्ति) इसको प्राप्य लोक तक पहुंचाते है । और वह प्रभु (सूरः च) सूर्य के समान और (मर्कः) समस्त जगत् को शोधन करने वाला (उपरः) मेघ के समान सब पदार्थ देने वाला (बभूवान्) होता है । ममन्धि—मन स्तम्भे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥ २१ ॥

भा०—(अयं) यह (यः) जो (वज्रः) सब कष्टों, सब अन्धकारो और दु.खो को वारण करने वाला, सब का संचालक बल (पुरु-धा) बहुत जीवो और लोको को धारण करने मे समर्थ (वि-वृत्त.) विविध प्रकार से वर्त्त रहा है, जगत् को चला रहा है, वह (सूर्यस्य) सूर्य के सदृश सर्वसंचालक, सर्वोत्पादक, (बृहत.) महान् प्रभु के (पुरीषात्) महान् परिपूर्ण, अविकल, अनन्त, अखंड सामर्थ्य और ऐश्वर्य से ही (अवः).

हमें प्राप्त होता है। (एना परः) इस लोक में दृष्ट प्रभु के उस ऐश्वर्य से भी उत्कृष्ट, परम (अन्यत्) दूसरा भी (श्रवः इत् अस्ति) श्रवण करने योग्य परमैश्वर्य है (तत्) उसको (अव्यथी) पीड़ा, दुःख, बाधादि से रहित (जरिमाणः) बन्धनों को जीर्ण करने और प्रभु की स्तुति करने वाले भक्त जन ही (तरन्ति) प्राप्त करते हैं, वे ही उस में तरते, विहरते हैं।

वृ॒क्षेवृ॑क्षे॒ निय॑ता मीमय॒द् गौस्ततो॒ वयः॒ प्र प॑तान्पूरु॒षादः॑ ।
अथे॒दं विश्वं॒ भुव॑नं भयात॒ इन्द्रा॑य सु॒न्वदृष॑ये च॒ शिक्ष॑त् ॥२२॥

भा०—(वृक्षे वृक्षे) मानो धनुष २ में (नियता) बंधी (गौः मीमयत्) बाण फेंकने वाली डोर झनकारती है और (ततः) उससे (पुरुषादः वयः प्रपतान्) देह-पुर में बसे जीवों को खाने वाले तीर निकल रहे है। (अथ इदं विश्वम् भुवनं) इसी से यह समस्त उत्पन्न जगत् (भयाते) भय अनुभव करता है और (इन्द्राय सुन्वत्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु की पूजा करता और उसी (ऋषये च) सर्वद्रष्टा के लिये (शिक्षत्) सर्वस्व दान देता है। भगवान् का ऐसा भय है।

दे॒वानां॒ माने॑ प्रथ॒मा अ॑तिष्ठन्कृ॒न्तत्रा॑देषा॒मुप॑रा॒ उदा॑यन् ।
त्रय॑स्तपन्ति पृथि॒वीम॑नू॒पा द्वा बृबू॑कं वहतः॒ पुरी॑षम् ॥ २३ ॥

भा०—(देवानां माने) दिव्य भावों से युक्त देव, अग्नि, विद्युत् सूर्य, भूमि या वायु आदि और अध्यात्म में इन्द्रिय आदि की तन्मात्राओं के निर्माण करने में (प्रथमाः) सब से प्रथम कारण रूप प्रकृति के परमाणु (अतिष्ठन्) विद्यमान थे। (एषां कृन्तत्रात्) इन कारण परमाणुओं के छेदन भेदन अर्थात् संयोग विभाग से प्रथम (उपराः) मेघ सदृश तत्व जो परम कारण के अति समीपतम, कार्य रूप होते है वे (उद् आयन्) उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात् (त्रयः) तीन तत्व अग्नि, विद्युत् और सूर्य (अनूपाः) अनुकूल होकर जीवों की रक्षा करने में समर्थ होकर

(पृथिवीम् तपन्ति) विस्तृत भूमि को संतापित करते है। जिन में से (द्वा) दो विद्युत् और सूर्यस्थ अग्नि, (वृबूकम्) जल को (वहतः) धारण करते हैं, और (द्वा पुरीषं वहतः) दो मेघस्थ विद्युत् और भूमि मिल कर सर्वपोषक अन्न को धारण करते है।

स। ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥ २४ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो! परमात्मन्! (ते) तेरी ही (सा जीवातुः) वह प्राणदात्री जीवनदायक शक्ति है (उत) और तू ही (तस्य विद्धि) उस जीव जगत् को जानता है। (स-मर्ये) मरणधर्मा प्राणियों से युक्त लोक के निमित्त तू (एतादृग्) ऐसे अपने प्राणदायक स्वरूप को (मा अपगूहः स्म) मत छिपा। हे मनुष्य! (अस्य निर्णिजः) इस विशुद्ध तत्व का (सः पादुः) वह ज्ञानमय, चेतनामय स्वरूप (न मुच्यते) कभी नहीं समाप्त होता है, वह (स्वः आविः कृणुते) अपना प्रकाश और ताप, प्रकट करता है और (बुसं गूहते) जल को जिस प्रकार सूर्य वाष्परूप से भूतल से ले लेता है उसी प्रकार प्रभु भी अपने (स्वः) तेजोमय ज्ञान को प्रकट करता है, (बुसं गूहते) कर्म बन्धन को नष्ट कर देता है। इस प्रकार उस प्रभु का (सः) वह (पादुः) ज्ञान-प्रकाश-व्यापार कभी समाप्त नहीं होता। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[२८]

इन्द्रवसुक्रयोः सवाद। ऐन्द्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१,२,७,८,१२ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ६ त्रिष्टुप्। ४, ५, १० विराट् त्रिष्टुप् ९, ११ पादानिचृत् त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥

भा०—(अन्यः) मुख्य व्यक्ति से अतिरिक्त, (विश्वः) समस्त नगर में, देह में आत्मा के समान प्रवेश करने वाला (अरिः) स्वामी (आ जगाम) आजावे, (अह) और (मम इत्) यह समस्त मेरा है इस प्रकार अधिकार करने वाला (श्व-शुरः) अति शीघ्र, सर्व प्रथम प्राप्त होने वाला सर्वोपरि नायक (न आजगाम) नहीं आवे । यह अनुचित है । वस्तुतः वही (धानाः जक्षीयात्) राष्ट्र की समस्त धारक शक्तियों का अन्नवत् उपभोग करता है, (उत) और वही (सोमं) ऐश्वर्य का अन्न ओषधिवत् (पपीयात्) पान करता वा ऐश्वर्य का पालन करता है, और (सु-आशितः) राष्ट्र को सुखपूर्वक प्राप्त होकर ही (पुनः अस्तं जगायात्) अस्त अर्थात् उत्तम गृह या पद को प्राप्त होता है ।

(श्वशुरः)—शु आशु अश्नोति आप्नोति इति श्वशुरः । शू उपपदे अश्नोतेर्हरन् औणादिकः । शावशेरासौ । उ० १ । १४४ । अथवा वेदवचनात् सु-आशितः श्वशुरः । सुखेन शीघ्रं वा प्राप्यते इति श्वशुरः ।

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (वृषभः) मेघ के समान प्रजागण पर सुखों और ऐश्वर्यों का वर्षण करने वाला (तिग्म-शृङ्गः) सूर्यवत् तीक्ष्ण शत्रु-नाशक साधनों से सम्पन्न होकर (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमन्) अति विस्तृत (वर्ष्मन्) उन्नत, उत्तम पद पर (आ तस्थौ) आदरपूर्वक विराजे । और प्रतिज्ञा करे कि (सुत-सोमः) ऐश्वर्य अन्नादि का उत्पन्न करने वाला (यः) जो प्रजावर्ग (मे कुक्षी) मेरे दोनों पार्श्वों पर

विद्यमान सैन्यों को ।(पृणाति) पालन करता है । मैं (एनं) उसको (विश्वेषु वृजनेषु) समस्त मार्गों और संग्रामों में (पासि) रक्षा करूं ।

अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! हे ऐश्वर्य सुखों के देने हारे ! (मन्दिनः) स्तुतिशील जन (ते) तेरे ही लिये (अद्रिणा) विदीर्ण न होने वाले, दृढ़ क्षात्र बल से (तूयान्) आशुगामी (सोमान्) वीर पुरुषों का (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं । (त्वम् एषाम्) तू इनको (पिबसि) पालन करता है । (ते) तेरे लिये ही वे (वृषभान्) बलवान् पुरुषों को (पचन्ति) परिपक्व, दृढ़ करते हैं, तथा उनको विस्तृत ज्ञानोपदेश करते, विद्या से सम्पन्न करते हैं । हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्यवन् ! तू (हूयमानः) आदरपूर्वक बुलाया वा प्रार्थना किया जाकर (तेषां पृक्षेण) उनके ही स्नेह-संपर्क से (अत्सि) इस महान् ऐश्वर्य का भोग करता है, वा उनको प्राप्त होता है ।

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

भा०—हे (जरितः) शत्रुओं को नाश करने वाले ! वा हे स्तुतिशील विद्वन् ! तू (इदं) यह सत्य सामर्थ्य (मे) मेरा ही जान (हि) कि (नद्यः) नदियां भी (प्रतीपं शाप वहन्ति) विपरीत दिशा को जल बहाने लगती हैं । उसी प्रकार यह राजा ही का सामर्थ्य है कि (नद्यः) स्तुतियुक्त, वा समृद्ध, वा गर्जती सेनाएं वा प्रजाएं भी (शापं प्रतीपं वहन्ति) ललकारते हुए शत्रु को भी उलटा भगा देती हैं । (लोपाशः = रोपाशः) तृणचारी पशु भी (प्रत्यञ्चम् सिंहं) आगे आते सिंह के समान पराक्रमी हिंसक को भी (अत्सात्) नष्ट करता है, और (क्रोष्टा) शृगालवत् रोने वाला निर्बल

भी (वराहं) शूकर के समान बलवान् को (कक्षात् निर्-अतक्त) मैदान से निकाल देता है। आत्मा, वा नायक में बड़ा भारी बल होता है।

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्संस्य पाकंस्तवसो मनीषाम्।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः॥५॥

भा०—हे प्रभो! हे विद्वन्! (गृत्सस्य) विद्वान्, मेधावी, स्तुत्य और (तवसः) सर्वशक्तिमान् (ते मनीषाम्) तेरे मन की इच्छा और (एतत्) इस सब को (कथा अहम् आ चिकेतम्) मैं किस प्रकार जान सकता हूं। (त्वं) तू ही (विद्वान्) सर्वज्ञ (नः) हमे गुरुवत् (ऋतु-था) समय २ पर (वि वोचः) विशेष रूप से उपदेश करता है। हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्यवन्! तू (यम् अर्धं) जिस अंश को (वि वोचः) विशेष रूप से उपदेश करता है वही (क्षेम्याः धूः) रक्षणकारी और धारण करने में समर्थ आश्रयवत् होता है। तेरा प्रत्येक उपदेशांश हमारा मङ्गल-जनक होता है।

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान॥६॥२०

भा०—(एव हि) इस प्रकार (तवसं मां) बलशाली मुझ को लोग (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं। (बृहतः मे) महान् मेरी (दिवः चित्) सूर्य और आकाश से भी अधिक (उत्तरा धूः) उत्कृष्ट धारण शक्ति है। मैं (पुरु सहस्रा) अनेकों, सहस्रों शत्रुओं को (साकं) एक साथ (नि शिशामि) विनाश कर सकता हूँ। (जनिता) उत्पादक प्रभु मुझे (अशत्रुं जजान) विना शत्रु का करे। इस प्रकार राजा बलवान्, स्तुत्य, शत्रुरहित होने का यत्न करे। इति विंशो वर्गः॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम्॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (देवाः) दानशील, नाना सुखों की अभिलाषा करने वाले प्रजाजन (मां एव तवसं) मुझ बलवान् पुरुष को ही (कर्मन्-कर्मन्) प्रत्येक काम में (उग्रं) शत्रुओ को भय देने वाला और (वृषणम्) प्रजा पर सुखो की वर्षा करने वाला (जज्ञुः) जाने। मैं (वज्रेण महिना) बड़े शक्तिशाली बल वीर्य से (मन्दसानः) खूब प्रसन्न होकर (वृत्रं वधीम्) मेघ को सूर्यवत्, दुष्ट शत्रु का नाश करूं और (दाशुषे व्रजं अप वम्) दानशील प्रजा के लिये मार्ग खोल दूं।

देवास॑ आय॒न्पर॒शूँर॑बिभ्र॒न्वना॑ वृ॒श्चन्तो॑ अ॒भि वि॒ड्भिरा॑यन् ।
नि सु॒द्र्वं॒ दध॑तो व॒क्षणा॑सु॒ यत्रा॒ कृपी॑ट॒मनु॒ तद्द॑हन्ति ॥ ८ ॥

भा०—(देवासः) विजय की कामना करने वाले मनुष्य (आयन्) आवे, और (परशून् अबिभ्रन्) शत्रु-नाशक हथियारो को धारण करें। वे (वना वृश्चन्तः) वनों के समान शत्रुदलो को काटते हुए (विड्भिः) प्रजाओ सहित (अभि आयन्) मुकाबला करे और (वक्षणासु) अंगुलियों में (सुद्र्वं) वेग से दौड़ने वाले अश्व को (नि दधतः) नियम में रखते हुए (यत्र) जिस संग्राम में (कृपीटम् अनु) अपने सामर्थ्य के अनुसार (तत्) उस शत्रु सैन्य को (दहन्ति) दग्ध करते हैं।

श॒शः क्षु॒रं प्र॒त्यञ्चं॑ जगा॒राद्रिं॑ लो॒गेन॒ व्य॑भेदमा॒रात् ।
बृ॒हन्तं॑ चि॒दृह॒ते र॑न्धयानि॒ वय॑द्व॒त्सो वृ॑ष॒भं शूशु॑वानः ॥ ९ ॥

भा०—(शशः) मृग के समान तीक्ष्ण गति से जाने वाला, वीर (प्रत्यञ्चं क्षुरं) मुकाबले पर आने वाले छुरे, शस्त्रादि को भी (जगार) सहर्ष खा सकता है। और मैं (लोगेन) जन समूह के बल पर वा (लोगेन = रोगेण) शत्रु को भग्न करने वाले सैन्य बल वा विशेष शस्त्र से, प्रकाश वा विद्युत् से (अद्रिं) मेघ वा पर्वत के तुल्य विशाल शत्रु को भी (आरात् वि अभेदम्) विशेष रूप से छिन्न भिन्न करूं। और (ऋहते)

बढ़ाने वाले स्वामी के लिये मैं तदधीन जन (बृहन्तं) बड़े भारी शत्रु को भी (रन्धयानि) वश करूं। (वत्सः) बच्चा भी (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (वृषभं वयत्) बड़े बैल से टक्कर लेता है। यह वसुक्र का वचन है। वसु अर्थात् धन के द्वारा क्रीत वेतन भोगी, अधीन राजपुरुष राजा से ऐसा कहता है।

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

भा०—वह नियुक्त बलवान् पुरुष (तस्मै) उस अपने स्वामी के लिये (सुपर्णः) उत्तम २ पालन और वेग से जाने के उत्तम रथ विमान आदि साधनों से सम्पन्न होकर बाज़ के समान (इत्था) इस प्रकार (नखम्) बांधने योग्य शत्रु को (आसिषाय) ऐसे बांध लेता है जैसे (अवरुद्धः सिंहः) रुका हुआ सिंह (परिपदं न) अपना पंजा आक्रमण के लिये सदा तैयार रखता है। अर्थात् धन से क्रीत वेतन भोगी पुरुष अपने स्वामी के लिये सदा हथियार-बन्द होकर शेर के समान तैयार रहे। जिस प्रकार (निरुद्धः महिषः चित्) रुका हुआ भैंसा (तर्ष्यावान्) प्यासा अपने सींगों को सदा मारने को तैयार रखता है। (तस्मै) उसी ऐश्वर्यवान् के लिये (गोधाः) बाणादि फेकने वाली धनुष डोरी को धारण करने वाली, चिल्ला सदा चढ़ाये सैन्य वा सैनिक (अयथं) असाधारण तौर पर (एतत् कर्षत्) उस धनुष को खैंचता है। अर्थात् बड़े पराक्रम से युद्ध करता है।

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

भा०—(ये) जो (अन्नैः) अन्नों के कारण (ब्रह्मणः प्रतिपीयन्ति) वेदज्ञ विद्वानों का नाश करते हैं और जो (अव-सृष्टान्) छोड़े

गये (सिमः उक्षणः) वीर्य सेचन में समर्थ समस्त सांड़ों को भी (अदन्ति) खाजाते हैं, और (स्वयं तन्वः) अपने ही शरीर के (बलानि श्रणानाः) बलों को नाश करते हैं (तेभ्यः) उनके नाश करने के लिये (गोधाः) भूमि या धनुष की डोर को धारण करने वाला वा चर्मधारी लोग (अयथं कर्षत्) खूब धनुष का आकर्षण करे खूब पराक्रम करे।

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥२१॥

भा०—(ये) जो (उक्थैः) उत्तम वचनों से (सोमे तन्वः हिन्विरे) उत्तम ओषधिगण के आधार पर अपने शरीरों को बढ़ाते, पुष्ट करते है (एते) वे (शमीभिः) शान्तिदायक उत्तम कर्मों में (सुशमी अभूवन्) उत्तम कर्मवान् पुरुष हो जाते हैं। हे वीर पुरुष! (वीरः) वीर और विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (नृवतः) उत्तम नायक के समान (नः उप वदन्) हमें उपदेश और आज्ञा देता हुआ (वाजान्) नाना ज्ञानों, बलों, ऐश्वर्यों और संग्रामों को (उप माहि) कर और (दिवि) भूमि पर (श्रवः नाम दधिषे) श्रवण करने योग्य नाम, कीर्त्त अन्न और शत्रु को नमाने वाला बल धारण कर।

इस सूक्त में—'वसुक्र' वह पुरुष है जो इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् पुरुष के 'वसु' धन द्वारा अपने को बेच देता है, वह उसका ही भृत्य आदि वेतनभोगी होने से 'ऐन्द्र वसुक्र' कहाता है। ऐसे व्यक्तियों के बने सैन्य वा राष्ट्र को पालन करने वाली व्यवस्था 'वसुक्र-पत्नी' है। इत्येकविंशो वर्गः॥

[२९]

वसुक्र ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

भा०—(वने वायः स्तोमः न) 'वन' अर्थात् वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षियों का दल (चाकन्) नाना फल चाहता हुआ (भुरणौ) अपने धारक पोषक पक्षों को (अजीगः) संचालित करता है, उसी प्रकार (शुचिः) शुद्ध, स्वच्छ आचारवान् धार्मिक, (वायः स्तोमः) वेग से जाने वाले, ज्ञान और रक्षा करने वाले जनों का उत्तम दल, (चाकन्) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ (वने) सेवनीय राष्ट्र में (नि अधायि) स्थापित किया जावे । और हे (भुरणौ) राष्ट्र के पालने वाले राजा और अमात्य जनो ! वह सब वीर और विद्वानों का दल (वां अजीगः) तुम दोनों को प्राप्त हो । (यस्य इत्) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता सेनापति (पुरु-दिनेषु) बहुत दिनों तक (होता) स्वीकार करने वाला और (नृणां नर्यः) मनुष्यों के बीच नेता पद के योग्य, (नृतमः) सब नायकों में श्रेष्ठ, और (क्षपावान्) शत्रुओं को विनाश करने वाली सेना का स्वामी हो ।

अत्र मन्त्रे 'वायो' इत्यत्र 'वा । यः ।' इति पदपाठः शाकल्याभिमतः । न यास्काभिमतः । 'वा । यः' इति च्छेदे अधायि इति यद्वृत्तान्निघाताभाव आपद्यते, सचानिष्टः । असुसमासश्चार्थो भवति ।

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

भा०—(यः) जो तू (त्रि-शोकः) तीन ज्योतियों से युक्त, वा सूर्यवत् तीनों लोकों में व्याप्त प्रकाश वाला, तेजस्वी, मन्त्र, बल और धन तीनों से चमकने वाला होकर (अनु) अपने पीछे (शतं नॄन् अवहन्) सौ नायकों को लेकर चलता हुआ, (कुत्सेन) शत्रु को काटने में समर्थ

शस्त्र बल से (रथः) महारथ होकर (ससवान्) शत्रुओं का अन्त कर देता है उस (नृणां नृतमस्य) नायको में उत्तम नायक (ते) तेरे (अस्याः उषसः) इस शत्रुदाहक सेना और (अपरस्याः) और दूसरी सेना के (नृतौ) संचालन करने मे हम (प्र प्र स्याम) खूब २ आगे बढ़ें। अथवा, उस तेरे शासन मे (अस्याः अपरस्याः उषसः) इस दिन और अन्य दिनो भी खूब २ बढ़े।

कस्ते मद॑ इन्द्र॒ रन्त्यो॑ भूद्दुरो॒ गिरो॑ अ॒भ्यु१॒॑ग्रो वि धा॑व।
कद्वाहो॑ अ॒र्वागुप॑ मा म॒नीषा आ त्वा॑ शक्यामुप॒मं राधो॒ अन्नैः॑॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (कः मदः) कौन सा ह र्ष वा तृप्तिकारक पदार्थ (रन्त्यः) तुझे अधिक सुख देने वाला है। तू (उग्रः) बलवान् होकर (दुरः द्वारो को (अभि धाव) लक्ष्य कर वेग से जा। और (गिरः वि धाव) उत्तम स्तुतियों को प्राप्त कर। (वाहः) सुख-समृद्धि को प्राप्त कराने वाला तू (कत् अर्वाक्) कब हमारे सन्मुख हो और (मा मनीषा उप कत्) उत्तम मन की अभिलाषा मुझे कब पूर्ण होगी, और मैं (उपमं) अपने समीप स्थित हुए (त्वा) तुझे (कद्) कब (अन्नैः) अन्नों द्वारा स्वामी को जैसे वैसे (राधः आ शक्याम्) आराधना द्वारा तुझे प्रसन्न कर सकूंगा ?

कदु॑ द्यु॒म्नमि॑न्द्र॒ त्वाव॑तो॒ नॄन्कया॑ धि॒या क॑रसे॒ कन्न॒ आग॑न्।
मि॒त्रो न स॒त्य उ॑रुगाय भृ॒त्या अन्ने॑ समस्य॒ यद॒सन्म॒नीषाः॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (कत् उ द्युम्नम्) वह तेजोमय ऐश्वर्य कब होगा ? और तू (कया धिया) किस प्रकार के कर्म और बुद्धि से (नॄन् त्वावतः करसे) सब मनुष्यों, नायकों वा जीवों को अपने जैसा सुखी, करता है। और तू (नः कत् आगन्) हमें कब प्राप्त होगा ? हे (उरुगाय) बहुत कीर्त्ति वाले ! (समस्य भृत्यै) समस्त जगत् के

भरण पोषण के लिये (अन्ने) अन्न उत्पन्न करने और देने में (यत्) जो तेरी (मनीषाः असन्) चेष्टाएं हैं इससे प्रतीत होता है कि (सत्यः मित्रः न) तू सब का सच्चा, स्नेही मित्र के समान है।

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥२२॥

भा०—हे (तुवि-जात) बहुत से लोकों को उत्पन्न करने वाले! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ये) जो (जनिधाः-इव) पत्नी के धारण पोषण करने वाले गृहस्थो के समान (ते अस्य कामं ग्मन्) इस साक्षात् तेरे कामना योग्य वा कान्तियुक्त उज्ज्वल स्वरूप को प्राप्त होते, जान लेते हैं, और (ये) जो (नरः) मनुष्य (तेः पूर्वीः गिरः) तेरी ज्ञानपूर्ण सनातन वाणियों को (अन्नैः) अन्नो सहित (प्रति-शिक्षन्ति) अन्यों को देते और सिखाते हैं उनको तू (सूरः) सूर्य के समान सर्वप्रेरक होकर (अर्थं न) धन को धनस्वामी के तुल्य (अर्थं पारं) प्राप्तव्य परम पार मोक्ष पद को (प्रेरय) प्राप्त करा। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (द्यौः पृथिवी) आकाश वा सूर्य और भूमि दोनो (ते) तेरे (काव्येन मज्मना) क्रान्तदर्शी, विद्वानों द्वारा जानने योग्य बल से (सु-मिते) उत्तम रीति से बनी और (मात्रे नु) अन्य नाना लोकों और जीवो को माता के तुल्य बनाने वाली हैं। (ते) तेरे (सुतासः) बनाये हुए पदार्थ (घृत-वन्तः) घी से युक्त खाद्य पदार्थों के समान ही (घृत-वन्तः) जल और तेज से युक्त होकर (वराय स्वाद्मन् भवन्तु) श्रेष्ठ पुरुष के लिये सुख से भोग करने योग्य हों और (मधूनि) जल और मधुर अन्नादि पदार्थ (पीतये भवन्तु) पान करने के लिये हों।

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमंत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वानर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् के लिये (मध्वः पूर्णम् अमत्रम्) मधुर अन्न, मधुपर्क आदि पदार्थों से भरे पात्र को (आ असिचन्) आदर से प्रदान करे । (सः हि सत्य-राधाः) वह सत्य ज्ञान के धन से पूर्ण है । (सः नर्यः) वह सब मनुष्यो का हितकारी (पृथिव्याः वरिमन्) पृथिवी के बड़े भारी देश मे (क्रत्वा पौंस्यैः च) अपने ज्ञान, कर्म और पराक्रमों से (आ वावृधे, अभि वावृधे) सब ओर बढ़े और अपने शत्रुओं से भी बढ़े ।

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ८।२३।२

भा०—(सु-ओजाः) उत्तम पराक्रमी, बलवान्, सामर्थ्यवान्, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष (पृतनाः वि आनट्) स्व और पर समस्त मनुष्यों, सेनाओं वा संग्रामों को विशेष रूप से व्याप लेता है, (पूर्वीः) समस्त प्रजाएं (अस्मै सख्याय) इस के मित्र-भाव के लिये (आ यतन्ते) सब प्रकार से यत्न करती हैं । हे ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! तू (यं) जिस (रथं) रथ के समान राष्ट्र को (भद्रया) कल्याणकारिणी, प्रजा को सुखदायी (सु-मत्या) शुभमति से (चोदयासे) प्रेरित कर सके उस पर (पृतनासु) प्रजाओं और संग्रामों के बीच (आ तिष्ठ) विराज । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥
इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[३०]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ देवताः—आप अपान्नपाद्वा ॥ छन्दः—१, ३, ९, ११, १२, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ६, ८, १४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ७, १०, १३ त्रिष्टुप् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ।

भा०—(मनसः प्रयुक्ति न) मन के उत्तम योग के समान (गातुः) 'ब्रह्म' ब्राह्मण वा परमेश्वर की वाणी, (अपः) आस प्रज को (देव-त्रा) विद्वान् अभिलाषी जनों द्वारा, (अच्छ प्र।एतु) स अच्छी प्रकार आवे, प्राप्त हो । (मित्रस्य वरुणस्य) सर्वस्नेही सर्व वारक प्रभु की (सुवृक्तिम् मही धासिं) सुखप्रद, महती, पूज्य अ धारक-पोषक शक्ति को (पृथुज्रयसे) बड़े बलशाली के लिये (रीरधः) अपने वश कर । मित्रतापूर्वक दिये प्रभु के अन्नादि का प्रयोग उसी के सत्कार्य में कर ।

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ।

भा०—हे (अध्वर्यवः) हिंसारहित यज्ञ की इच्छा करने वा नाश की इच्छा न करने वाले लोगो ! आप लोग (हविष्मन्तः हि भू उत्तम अन्न, हविष् से सम्पन्न होवो । स्वयं (उशन्तः) नाना काम्य की कामना करते हुए (उशतीः) उसी प्रकार के सुखों वा तु चाहने वाली (अपः) आप्त पत्नियों को (अच्छ इत) प्राप्त क (अरुणः) कान्तिमान् , तेजस्वी (सु-पर्णः) उत्तम पालक, वा उ रथादि साधनों वाला, (याः अव चष्टे) जिनको विनय या प्रेम से दे है, हे (सु-हस्ताः) उत्तम क्रियाकुशल पुरुषो ! (अद्य) आज (ऊर्मिम्) उस तरंग के समान उन्नत पुरुष को लक्ष्य कर उनके मिल कर (आ अस्यध्वम्) हवि आदि का आहुति द्वारा प्रक्षेप क अपः इति दारावत् बहुवचनम् । समान गुण कर्म स्वभाव तथा परस्पर युक्त स्त्री पुरुषों को मिला कर गृहस्थ बनावें । राजा के पक्ष में—जो

बाज के तुल्य आक्रान्ता (याः) जिन शत्रु सेनाओं को (अव चष्ट) तिरस्कार-बुद्धि से देखे (तम् ऊर्मिम् आ) उस उन्नत पुरुष का आश्रय लेकर (ताः अस्यध्वम्) उन पर शस्त्रादि प्रक्षेप करें, उन शत्रु सेनाओं को मार गिरावें।

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददद्र्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) अध्वर, यज्ञ वा अपनी रक्षा वा अविनाश चाहने वाले जनो ! आप लोग (अपः इत) आप्त प्रजाजनों को प्राप्त करो और (समुद्रम् इत) जलों के रक्षक समुद्र के समान उनके आश्रय रूप महापुरुष को भी प्राप्त करो। (सः) वह (अद्य) आज (वः) आप लोगों को (सु-पूतं) उत्तम पवित्र (ऊर्मिम्) जलतरंग वा मेघ-मयी मानसून के समान उत्साहमय जीवन से पूर्णभाव (ददत्) प्रदान करे, (तस्मै) उसके लिये (मधुमन्तं सोमं सुनोत) मधुर जल से युक्त ओषधिवत् सुखप्रद पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य का पद प्राप्त कराओ। और उस (अपां नपातम्) आप्त प्रजाजनों को एकत्र बांधने और धर्म मर्यादा से न गिरने देने वाले रक्षक को (हविषा यजध्वम्) उत्तम अन्न, कर और वचन से सत्कृत करो।

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अनिध्मः) विना काठ के (अप्सु अन्तः) जलों या अन्तरिक्ष के बीच विद्युत् के समान (दीदयत्) प्रजाओं के बीच प्रकाशित होता है (विप्रासः यं) विद्वान्, बुद्धिमान् जन जिसको (अध्व-रेषु ईडते) यज्ञों और, प्रजा के रक्षणादि कार्यों में चाहते और जिसकी स्तुति करते हैं वह (अपां नपात्) आप्त जनों को एकत्र बांधने वाला पुरुष मेघ के समान (मधुमतीः अपः) मधुर जलों से युक्त धाराओं के

समान ही मधुर अन्नादि से समृद्ध आप्त प्रजाओं का प्रदान करे, (याभिः) जिन से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा सूर्य के समान तेजस्वी होकर (वीर्याय वावृधे) वीर्य की वृद्धि के लिये और बढ़े।

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात्
॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—(कल्याणीभिः युवतिभिः मर्यः न) कल्याणी, सुखदायक जवान धर्मपत्नी के साथ जिस प्रकार युवा पुरुष (मोदते हर्षते च) प्रसन्न होता और हर्ष अनुभव करता है, उसी प्रकार (याभिः) जिन (कल्याणीभिः) कल्याणकारिणी, आप्त प्रजाजनों के साथ (सोमः) उत्तम शासक (मोदते) आनन्द अनुभव करे और (हर्षते) हर्ष लाभ करे, हे (अध्वर्यो) प्रजापालन रूप कार्य के संचालक! तू (ताः अपः) उन आप्त जनो को (अच्छ परा इहि) दूर से भी प्राप्त कर। (यत् आ-सिञ्चाः) जिस प्रकार जलों से वृक्ष को सेचन किया जाता है और वृक्ष बढ़ता है, उन ओषधियों वा जलों से वृक्ष पवित्र होजाता है उसी प्रकार तू भी (यत् आ-सिञ्चाः) जिन आप्त जनों से उस राजा की वृद्धि करेगा उनको तू भी (ओषधीभिः) ओषधिवत् विशेष तेज धारण करने वाली प्रजाओं द्वारा (पुनीतात्) पवित्र कर, स्वच्छ आचारवान् बना, वा अभिषेक कर।

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥ ६ ॥

भा०—(यूने) युवा पुरुष को प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार (युवतयः नमन्त) युवती स्त्रियें झुकती हैं, (यत्) और जिस प्रकार (उशत्) कामनावान् पुरुष (उशतीः ईम् अच्छ एति) कामना वाली दाराओं को प्राप्त करता है, उसी प्रकार (अध्वर्युः)

प्रजाओं का हिंसन या पीड़न चाहने वाले जन (मनसा) मन से (देवीः) उत्तम आप्त प्रजाओं को (सं जानते) विचारते और (धिषणां संचिकित्रे) बुद्धिपूर्वक मिल कर विवेक करते है उसी प्रकार अध्वर अर्थात् गृहस्थ यज्ञ के इच्छुक जन मन और कर्म से प्राप्त देवियों को मन से चाहें और उनके साथ मिल कर गृह कार्यों को विचारा करें ।

यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनो ! जलवत् शान्तिदायक सहयोगी जनो वा व्यापक गुणों से युक्त प्रभो ! (यः) जो (वृताभ्यः) वरण किये गये (वः) जो आपके लिये (लोकं अकृणोत्) स्थान वा गृह बनाता है, (यः वः) जो आप लोगो को (मह्याः अभिशस्तेः) बड़ी निंदा और आक्रमण, कष्टादि से (अमुञ्चत्) सब प्रकार से मुक्त करता है, (तस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी वा आत्मा के लिये (देव-मादनं) सब उत्तम जनो, विद्वानो वा प्राणगण को सुखी, हर्षित करने वाले (मधुमन्तं ऊर्मिम्) मधुर मधु से युक्त उत्तम तरंग या उत्साह वा अन्न-जल से युक्त उत्तम पदार्थ (प्र हिणोतन) प्रदान करो ।

प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥ ८ ॥

भा०—हे (सिन्धवः) नदीवत् बहने वाली ! वेग से जाने वाली, एवं नाना सम्बन्धों से बांधने वाली प्रजाओ ! जिस प्रकार नदियें या जल गण अपने जलमय सार सूर्य या समुद्र को प्रदान करती हैं उसी प्रकार (वः) आप लोगों का, (यः) जो (मध्वः) अन्नादि का (उत्सः) उत्तम भाग है, (उत मधुमन्तम् ऊर्मिम्) और मधुर गुणयुक्त

उत्तम भाग को (अस्मै प्र हिनोत) इसके लिये प्राप्त कराओ । (रेवतीः) हे उत्तम ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओ ! (अध्वरेषु) यज्ञों, हिंसा रहित प्रजा पालनादि कर्मों तथा दृढ़ कार्यों में (ईड्यम्) स्तुति योग्य (घृत-पृष्ठम्) अन्न जल, वा स्नेह से परिपुष्ट इसको प्राप्त होकर (मे हवं शृणुत) मेरा ग्राह्य वचन श्रवण करो ।

तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥ ९ ॥

भा०—(सिन्धवः मत्सरम् इन्द्रपानम् ऊर्मिं प्र हिन्वन्ति) जिस प्रकार नदियां आनन्द-संचारक, सूर्य द्वारा पान करने योग्य ऊर्ध्वगामी जल को बढ़ाती हैं उसी प्रकार हे (सिन्धवः) वेग से जाने वाले सैन्यादि प्रजाओ ! (तं) उस (मत्सरम्) हर्षदायक, (इन्द्र-पानं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र के पालक, (ऊर्मिम्) उन्नत, आज्ञापक पुरुष को (प्र हेत) खूब बढ़ाओ, (यः) जो (उभे) राजा और प्रजा वर्गों को (इयर्त्ति) सन्मार्ग में चलाता है, और (मद-च्युतम्) हर्षजनक (औशानं) समृद्धि की कामना करते हुए (नभः-जाम्) आकाश में सूर्यवत् उदय होने वाले (त्रि-तन्तुम्) तीन तन्तुओं वाले, यज्ञोपवीती दीक्षित और (उत्सम्) उत्तम मार्ग पर चलने वाले, (परि वि-चरन्तं) सर्वोपरि विचरने वाले पूज्य को (प्र हेत) बढ़ाओ । (२) अध्यात्म में महान् आत्मा, प्रकृति के तीन गुणों को धारण करता, वह सर्वत्र व्यापता है ।

आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः १०।२५

भा०—हे (ऋषे) यथार्थ ज्ञान के दर्शन कराने हारे ! तू (भुवनस्य) इस संसार को (जनित्रीः) उत्पन्न करने वाली और (पत्नीः) पालने वाला, (स-वृधः) समान रूप से बढ़ने वाली (स-योनीः) एक समान

या गृह में रहने वाली (अपः) प्रकृति की परमाणु रूप मूलकारण रूप जलों के तुल्य सृष्टि के प्रारम्भक, माताओं को (वन्दस्व) आदर से वर्णन कर, उनका अन्यों को उपदेश कर। जो (आवर्वृततीः) आवर्त्त रूप से संसार को उत्पन्न करती है, सर्वत्र व्यापती हैं। (अध नु) और (द्वि-धाराः) जिस प्रकार जल की धारा फट कर दोनो धाराओं को पूर्ण करती हैं, दोनो तटों को धारण करती है उसी प्रकार प्रकृति के उत्पादक मूल परमाणु भी (द्वि-धाराः) समष्टि व्यष्टि दोनो को धारण करते हैं उसी प्रकार स्त्रियें भी दोनो कुलों को वा सन्तान, और पति दोनों को धारण करती हैं। (गोषु-युधः) मेघ की जल की धाराएं जैसे भूमियों पर आ पड़ती हैं वैसे प्राकृतिक परमाणु भी रश्मियों या गतिदायक शक्तियों के बल पर परस्पर मिलने वाली, (नियवं चरन्तीः) नियम से मेल संयोग करती हैं। उसी प्रकार स्त्रियें भी (गोषु-युधः) वाणीमात्र से प्रहार करने वाली, पतियों से मिल कर रहने वाली होती हैं। राष्ट्र में—वे ही उत्तम सेनाएं 'आप', हैं, वे राष्ट्र की पालक, होने से 'पत्नी' हैं। प्रजा राजा दोनों की रक्षा करती हैं, मिल कर विचरती हैं, भूमियों के विजयार्थ लड़ती है।

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

भा०—हे (आपः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (अध्वरं) हिंसा रहित यज्ञ को वा अहिंसनीय प्रमुख पुरुष को (देव-यज्या) विद्वानों और मनुष्यों के आदर और संगति के लिये (हिनोत) प्रोत्साहित करो। और (धनानाम् सनये) हमें धन के प्राप्त करने के लिये (ब्रह्म) वेद का (हिनोत) अच्छी प्रकार उपदेश करो। हे (आपः) आप्त प्रजाजनो! (ऋतस्य योगे) जल के योग होने पर जिस प्रकार (ऊधः) मेघ या अन्तरिक्ष के प्रतिबन्ध दूर हो जाते हैं और पानी बरसता है उसी प्रकार आप लोग भी (ऋतस्य योगे) अन्न, ज्ञान आदि के प्राप्त होने पर (ऊधः

वि स्यध्वम्) उत्तम ज्ञानादि के धारक अन्तःकरण को खोलो, दिल खोल कर सत्य ज्ञान का उपदेश करो। और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (श्रुष्टीवरीः भूतन) वृष्टि-जल-धाराओं के तुल्य ही ज्ञान-सुखदायक होवो।

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् १२

भा०—हे (आपः) आप्त प्रजाजनो ! एवं प्राप्त करने योग्य (रेवतीः) समृद्ध गृह-लक्ष्मियो ! आप लोग (वस्वः हि क्षयथः) ऐश्वर्य की स्वामिनी होवो। और (क्रतुम् भद्रं) उत्तम सुखप्रद कर्म यज्ञ और ज्ञान और (अमृतं च) अन्न, जल, दीर्घ जीवन और सन्तान को (बिभृथ) उत्पन्न और धारण करो। आप लोग (स्वपत्यस्य रायः) उत्तम सन्तान और ऐश्वर्य का (पत्नी) पालन करने वाली होवो, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त विदुषी भी वेदवाणी के समान ही (गृणते) विद्वान् को (तत् वयः) वह उत्तम अन्नवत् ज्ञान (धात्) प्रदान करे।

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः॥ १३॥

भा०—हे (आपः) आप्त स्त्रीजनो ! (यद्) जब (पयांसि) जलों, पुष्टिकारक दुग्धों और (मधूनि) अन्नों को (बिभ्रतीः) धारण करती हुई और (अध्वर्युभिः) हिंसारहित यज्ञ वा प्रजापालन के इच्छुक विद्वानों के साथ (मनसा संविदाना) चित्त से उत्तम ज्ञान लाभ करती हुई और (इन्द्राय) अपने स्वामी पुरुष के लिये (सु-सुतं सोमं भरन्तीः) उत्तम सुस्नात वीर्यवान् पुरुष वा पुत्र को धारण करती हुई को (प्र अदृश्रम्) अच्छी प्रकार देखता हूं तो आप की स्तुति करता हूं।

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः॥ १३॥

भा०—(इमाः रेवतीः) ये उत्तम ऐश्वर्य से समृद्ध, (जीव-धन्याः) जीवित पुत्र, पति, पशु, आदि जीवों को धन समझने वाली, वा उनको पालन पोषण करने वाली, स्त्रियें (आ अग्मन्) आवें। हे (अध्वर्यः) यज्ञकर्त्ताजनो ! हे (सखायः) मित्रो ! (अपां नप्त्रा स-विदानासः) आप्त दाराओं को अपने साथ बांधने वाले पति से समन्त्रणा करती हुई और (सोम्यासः) उत्तम सोम, पुरुष के योग्य (एनाः) उनको (बर्हिषि नि धत्तन) उत्तम आसन पर बिठाओ। (२) राष्ट्र में उत्तम शासक राज-सदस्य भी समृद्ध राजा के प्रिय प्रजाओं को उत्तम आसन पर बिठावे, उत्तम शासित राष्ट्र में रखे और उनको पुष्ट करें।

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या॥१५॥२६

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञकर्त्ता जनो ! (उशतीः आपः अग्मन्) कामना करती हुई महिला जन आवें तो और (देवयन्तीः) पति की चाहना करती हुई (अध्वरे) यज्ञ में (इदं बर्हिः नि असदन्) इस आसन पर विराजें। आप लोग (सोमम् इन्द्राय सुनुत) सोम, ऐश्वर्य-युक्त जन को 'इन्द्र' अर्थात् स्वामीभाव के लिये प्रेरित करो, जिससे (वः) आप लोगों की (देव-यज्या) विद्वानों का आदर और उनकी संगति, तथा ईश्वरोपासना आदि (सुशका अभूत् उ) सुख से सम्पन्न हो। (२) राष्ट्र में स्त्री पुरुषों को उत्तम अधिकार प्राप्त हों और बलवान् पुरुष को इन्द्र पद के लिये चुनो जिससे विद्वानों के उपासना आदि कर्म सुख से हों। इति षड्विंशो वर्गः॥

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥ १ ॥

भा०—(देवानां शंसः) ज्ञान की कामना करने वाले मनुष्यों को उपदेश करने वाला विद्वान् आचार्य, उपदेष्टा (नः आवेतु) हमें प्राप्त हो और (यजत्रः) पूजनीय पुरुष (विश्वेभिः तुरैः) सब शत्रुनाशक उपायों सहित (नःऽअवसे) हमारी रक्षा के लिये (उप वेतु) आवे। (तेभिः) उनसे ही (वयम्) हम (सु-सखायः भवेम) उत्तम मित्र होकर रहें। और (विश्वा दुरिता) समस्त दुःखदायी, बुरे आचारणों, पापों को (तरन्तः स्याम) पार करते रहें।

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत्।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥ २ ॥

भा०—(मर्त्तः) मनुष्य (परि चित् द्रविणं) चारों ओर दौड़ने वाले मन को धन के तुल्य (ममन्यात्) स्तम्भित करे, वश करे और (नमसा) विनय, सत्कारपूर्वक (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के मार्ग से (आ विवासेत्) बड़ों की परिचर्या शुश्रूषा करे। (उत) और (स्वेन क्रतुना) अपने उत्तम ज्ञान से (सं वदेत) सम्यक् प्रकार बोले, ज्ञानपूर्वक भाषण करे। और (श्रेयांसं दक्षं) सर्वश्रेष्ठ कर्म को (मनसा जगृभ्यात्) मन से स्वीकार करे।

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानाम भूम ॥३॥

भा०—(धीतिः) आनन्दप्रद पानयोग्य सुधा के समान (धीतिः अधायि) ध्यान धारणा को भी धारण करना चाहिये। (तीर्थेन) तीर्थ में (अंशाः) जलों के समान तारक प्रभु या गुरु के आश्रय (अंशाः अससृग्रम्) प्राप्त होने वाले शरणागत जीव शिष्यों के समान शरण आते

है। (ऊमाः दस्मं उप यन्ति) देश के रक्षक जनों के समान जीवगण दुःखों और दुष्टों के नाशक स्वामी को प्राप्त होते हैं। हम लोग (सुवितस्य रूपं) सुख से प्राप्त होने योग्य प्रभु वा सदाचार के सुख को (अभि आनश्म) सब ओर से प्राप्त करें। और हम (अमृतानाम् नवेदसः अभूम) मोक्ष-सुखों के प्राप्त करने वाले हों।

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४॥

भा०—(यस्मै) जिस जीवगण के उपकार के लिये (देवः सविता) दानशील, ज्योतिर्मय, सूर्यवत् तेजस्वी, सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (जजान) जगत् के नाना पदार्थ उत्पन्न करता है (स्व-पतिः) समस्त धनों और स्वकीयों का पालक (दमूनाः) दमनशील, दान्तचित्त, (नित्य.) नित्य सनातन प्रभु (अस्मै चाकन्यात्) उसे सदा चाहता है। (सः) वह (भगः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (अर्यमा) न्यायकारी होकर (ईम्) इसके प्रति (गोभिः) वेद वाणियों से (अनज्यात्) सब ज्ञान प्रकाशित करता है। (उत) और (अस्मै) उसको (चारु) अच्छी प्रकार (छदयत् उत स्यात्) आच्छादन करने वाला, रक्षक भी होता है।

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन्।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः॥५।२७

भा०—(यत् ह) और जब (क्षुमन्तः) उत्तम उपदेश योग्य ज्ञान वाले, विद्वान् जन (शवसा) ज्ञान बल से युक्त होकर (सम् आयन्) संगत हों, प्राप्त हों, तब (उपसा क्षा. इव) प्रभात वेलाओं के आने पर जिस प्रकार भूमि प्रकट होती है और उनके सन्मुख होती है उसी प्रकार उन ज्ञान वालों के अभिमुख (इय क्षा भूयाः) यह भूमि-

वासिनी प्रजा भी उनके समक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिये हो। और (अस्य जरितुः) इस अज्ञाननाशक उपदेष्टा के (स्तुति) उत्तम उपदेश को (भिक्षमाणाः) चाहते रहे और (शग्मासः) सुखप्रद (वाजाः) बल, अन्नादि ऐश्वर्य (नः आ उप यन्तु) हमे प्राप्त हो। इति सप्तविंशो वर्ग.॥

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥६॥

भा०—(अस्य इत् असुरस्य) सब को जीवन देने वाले, सब जगत् के संचालक, उस महान् प्रभु की (एषा) यह (सु-मति.) उत्तम ज्ञान, बुद्धि से युक्त, (भूमना) बहुत बडी, (पूर्व्या) सनातन, ज्ञान मे पूर्ण, (पप्रथाना) ज्ञान का विस्तार करती हुई (गौः) वेदवाणी (अभवत्) है। (स-नीडाः) उसके समान आश्रय मे रहने वाले शिष्य-वत् जीवगण (समाने भरणे) एक समान धारण-पोषण मे विद्यमान रह कर (बिभ्रमाणाः) उस वाणी को धारण करते हुए (समाने योनौ) एक समान गृह वा आश्रम मे (आ यन्तु) प्राप्त हों।

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
सन्तस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥ ७ ॥

भा०—(किं स्विद् वन) वह कौनसा 'वन' और (कः उ सः वृक्षः आस) वृक्ष अर्थात् उपादान कारण कौन सा है (यतः) जिस मे से (द्यावा-पृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनो को (निः-ततक्षुः) बनाते है। ये दोनो (सं-तस्थाने) अच्छी प्रकार स्थिर (अजरे) नाश न होने वाली, (इत-ऊती) इस लोक से ही रक्षा प्राप्त करने वाली, हैं। उन दोनो को (अहानि) सब दिन और (पूर्वीः उषसः) पूर्व की सब प्रभात वेलाएं भी (जरन्त) बतलाती हैं।

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥८॥

भा०—(एना परः अन्यत् न अस्ति) इससे परे दूसरा कुछ पदार्थ नहीं है, (उक्षा स.) वह समस्त जगत् को धारण करने और प्रकृति तत्त्व में जगत्-मूलक बीज निषेक करने वाला परम पुरुष ही (द्यावा पृथिवी) इस सूर्य और पृथिवी, दोनों को (बिभर्त्ति) धारण करता, उनको पालता पोषता भी है। वही (स्वधावान्) स्वयं समस्त जगतों को धारण, पालन, और पोषणकारिणी शक्ति का स्वामी होकर (पवित्र त्वचं) व्यापक, तेजोमय आकाश रूप आवरण को (कृणुते) बनाता है, (यद् हरितः सूर्यं न) दिशाएं जिस प्रकार अपने भीतर प्रकाशक सूर्य को धारण करती है उसी प्रकार (ईम् वहन्ति) जगत् के समस्त पदार्थ उसको अपने भीतर धारण करते हैं।

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ९ ॥

भा०—(स्तेगः न) सूर्य जिस प्रकार (पृथ्वीं क्षां अति एति) विस्तृत भूमि को अतिक्रमण कर जाता है, (वातः न) और वायु जिस प्रकार (अति भूम) बहुत अधिक (मिहं वि वाति) वृष्टि को विविध प्रकार से लाता है। उसी प्रकार (स्तेगः) समस्त प्रकृति के परमाणु आदि का संघात करने वाला ईश्वर भी इस (पृथ्वीम्) अति विस्तृत (क्षाम् अति एति) सर्व निवास योग्य मूल प्रकृति से कहीं बढ़ कर है और इसे पार करके बैठा है। और वह (वातः) सर्वसंचालक प्रभु जीवगण पर (मिहं) नाना सुख-वृष्टि करता वा नाना जगत् का उत्पादक वीर्य-निषेक भी बहुत २ करता है, उसके बल से अनेक २ ब्रह्माण्डों में सृष्टि उत्पन्न होती है। (यत्र) जिसके आश्रय में (अज्यमानः) देदीप्यमान (मित्रः) जलों का स्वामी सूर्य वा दिन और (वरुणः) सूर्य द्वारा प्रकाशमान रात्रिकाल है, और (वनेन) वन में या काष्ठ में जिस प्रकार (अग्निः शोकं वि असृष्ट) अपने तेज को नाना प्रकार से प्रकट करता है उसी प्रकार वह परमेश्वर

भी (अग्निः) तेजोमय, व्यापक होकर (वने) नाना रूपों में विभक्त इस जगत् वा मूल-कारण प्रकृति तत्त्व में अपने (शोकम्) तेजोमय वीर्य को (वि असृष्ट) विविध प्रकार से त्यागता और विविध सृष्टियां उत्पन्न करता है ।

स्तरीर्यत्सूत॑ सद्यो अ॒ज्यमा॑ना व्यथि॑रव्य॒थीः कृ॑णुत॒ स्वगो॑पा ।
पु॒त्रो यत्पूर्वः॑ पि॒त्रोर्जनि॑ष्ट श॒म्यां गौर्ज॑गार॒ यद्ध॑ पृ॒च्छान् ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अज्यमाना) वृषभ आदि द्वारा कामना की गई और निषिक्त हुई (स्तरीः) गौ (सूत) सन्तान उत्पन्न करती है, और वह स्वयं (व्यथिः) पीड़ा अनुभव करती हुई (स्व-गोपा) स्वयं अपने सामर्थ्य से रक्षित रह कर (अव्यथीः कृणुते) जीवों को व्यथा-रहित करती है, उसी प्रकार यह (स्तरीः) विस्तृत सर्वाच्छादक, धूमवत् व्यापक प्रकृति (सद्यः) अति शीघ्र (अज्यमाना) ब्रह्म बीज से युक्त होकर प्रकाशित होती हुई, (स्व-गोपा.) स्वतः रक्षित रह कर (व्यथिः) पीड़ित होकर, जीवों को (अव्यथीः कृणुते) कर्म भुगा कर व्यथारहित, मुक्त कर देती है । और जिस प्रकार मानो (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः पूर्वः) माता पिताओं के भी पूर्व विद्यमान हो इसी प्रकार वह (पुत्रः) बहुतों का पालक, प्रभु, प्राणियों के पालक सूर्य और पृथिवी दोनों के भी पूर्व ही (जातः) विद्यमान होता है । और जिस प्रकार (गोः शम्यां जगार) भूमि शमी आदि के वृक्ष को अपने भीतर लिये रहती है उसी प्रकार जो प्रभु (गोः) सर्वसंचालक प्रभु (शम्यां) कर्म करने वाले जीवगण को (जगार) वाणीवत् उपदेश करता है (यत् ह पृच्छान्) जिसके विषय में नाना विद्वान् सदा प्रश्न वा जिज्ञासा करते हैं, वही प्रभु है ।

उ॒त कण्वं॑ नृ॒षदः॑ पु॒त्रमा॑हुरु॒त श्या॒वो धन॒माद॑त्त वा॒जी ।
प्र कृ॒ष्णाय॒ रुश॑दपिन्व॒तोध॑र्ऋ॒तमत्र॒ नकि॑रस्मा अपीपेत् ।११।२८।

भा०—(उत) और (कण्व) तेजस्वी, विद्वान् पुरुष को (नृ-सदः) मनुष्यों के ऊपर विराजने वाले वा मनुष्यों से अधिष्ठित राज्य का (पुत्रम् आहुः) पुत्र के समान, बहुतों का रक्षक, और उत्तरा-धिकारी कहा है। (उत) और (श्यावः) शक्तिशाली (वाजी) ऐश्वर्य-वान् ज्ञानी पुरुष ही (धनम् आदत्त) धन प्राप्त करता है। (कृष्णाय) शत्रुओं के नाशक और प्रजाओं के चित्ताकर्षक जन के लिये ही (रुशत् ऊधः) उज्ज्वल आकाशवत् प्रभु (ऋतम् अपिन्वत्) सत्य ज्ञान और न्याय की वृष्टि करता है, और (अत्र) इस लोक में (अस्मै) उसके (ऋतम्) धन वा तेज को (नकिः अपीपेत्) कोई नष्ट नहीं करता। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[३२]

कवष ऐलूष ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, २ विराड्जगती। ३ निचृज्जगती ४ पादनिचृज्जगती। ५ आर्ची भुरिग् जगती। ६ त्रिष्टुप्। ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति॥१॥

भा०—(धियसानस्य) ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले पुरुष (सक्षणि) संग में (ग्मन्ता) जाते हुए स्त्री पुरुष दोनों को (इन्द्रः प्र जुजोषति) ऐश्वर्यवान् पुरुष अच्छी प्रकार प्रेम करता है और (प्र-सीदतः) प्रसन्न हुए विद्वान् के (वरेभि) श्रेष्ठ कर्मों द्वारा वे दोनों स्त्री पुरुष (वरान् अभि सु) उत्तम सुखों को प्राप्त करें। (इन्द्रः) वह विद्वान् गुरु, राजा (अस्माकम्) हमारे (उभय) हित और अहित, पाप और पुण्य दोनों को (जुजोषति) प्राप्त करता है। क्योंकि वह (सोम्यस्य-अन्धसः) ऐश्वर्य युक्त अन्न को (बुबोधति) अच्छी प्रकार जानता है।

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (दिव्यानि) आकाश के (रोचना) तेजोमय और (पार्थिवा) पृथिवी के समस्त लोकों और पदार्थों को (रजसा) तेज वा रजोगुण द्वारा (वि यासि) विशेष रूपसे व्यापता है। (ये) जो मनुष्य विद्वान् जन, (अध्वरान्) यज्ञों को तुझे लक्ष्य करके (मुहुः) वार २ (वहन्ति) धारण करते हैं (ते अराधसः) वे धनरहित होकर भी (वग्वनान्) वाणी द्वारा सेवन करने योग्य सुखों को (वन्वन्तु) चाहें, तेरे से प्रार्थना करें, तेरे से याचना करें।

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः॥३॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (पुत्रः) पुत्र (पित्रोः जानं अधीयति) माता पिता के पास अपना जन्म ग्रहण करता है (तत्) उसी प्रकार यह (मे) मेरा आत्मा भी (वपुषः वपुःतरम्) सुन्दर से सुन्दर (जानं छन्त्सत्) जन्म प्राप्त करे। (जाया पतिम्) स्त्री अपने पालक पति को (सुमत् वग्नुना) उत्तम वचन से (वहति) विवाह करती है तब (परिष्कृतः वहतुः) सुशोभित दहेज (पुंसः इत्) पुरुष को ही (भद्रः) कल्याणकारी, सुखदायक होता है।

इन दोनो दृष्टान्तों का यही अभिप्राय है कि जैसे सुन्दर पुत्र और विवाहिता स्त्री पुरुष के ही ऐश्वर्य के लिये है उसी प्रकार जीव का जन्म लाभ और ऐश्वर्य सब आत्मा के ही लिये होता है।

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः॥ ४॥

भा०—हे प्रभो! आत्मन्! (धेनवः वहतुं न) गौएं जिस प्रकार

रथादि उठाने वाले बैल, वा शरीर में बल देने वाले घृत, दुग्ध, अन्नादि (शासन्) प्रदान करती है और (यत् गावः वहतुं शासन्) बैल या घोडे आवाहन योग्य जीव जिस प्रकार गाडी आदि का शासन करते है। (तद् इत्) उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (चारु सधस्थम्) उत्तम स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर। (यत्) जिस प्रकार (पूर्व्या) प्रेम से परिपूर्ण, (मन्तुः) माननीय (माता) माता (पूर्व्यस्य अभि) अपने पुत्रसमूह के प्रति प्रेम से आती है और जिस प्रकार (जनः) (सप्त धातुः वाणस्य) सात स्वरों को धारण करने वाले वाद्य यन्त्र को सुन उसकी ओर आकृष्ट होता है उसी प्रकार हे प्रभो! हमे भी तू (चारु सधस्थम्) उत्तम ऐसा स्थान (अभि दीधय) प्रदान कर (यत्) जिससे (वहतुं न) रथ के तुल्य (धेनवः शासन्) उत्तम रस पान कराने वाले इन्द्रियगण अनुशासन करे। (यत्) जिसे (पूर्व्या माता) सब से पूर्व विद्यमान ज्ञान कराने वाली मातृशक्ति (मन्तुः) मनन करने वाली बुद्धि (यूथस्य अभि शासन्) प्राणगण को अपने शासन मे रखे। और (जनः) उत्पन्न हुआ प्राणी (इत्) भी (सप्त-धातुः) सात धारक रस, रक्त, मास, अस्थि, मज्जा, मेद, शुक्र इन सात धातुओं से बने (वाणस्य) इस देह को (अभि शासत्) अपने वश करे।

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु॥५।२६॥

भा०—हे विद्वानो! जो (एक) एक, अद्वितीय, (तुर्वणिः) अति शीघ्रगामी, दुष्टों और दुःखो का नाशक, होकर (रुद्रेभिः याति) दुष्टों को रुलाने, भगाने, दुःखो को दूर करने वाले जनों सहित प्रयाण करता है, वह (देवयु) किरणों के स्वामी सूर्य के समान, विजिगीषु जन का स्वामी होकर (वः अच्छ) तुम्हें प्राप्त होकर (पदं) ज्ञान, एवं प्राप्तव्य पद को (प्र रिरिचे) आप लोगों के बीच प्राप्त करता है।

(वा) और (येषु) जिन (अमृतेषु) जीवित, दीर्घजीवी जनों के बीच मे (जरा दावने) स्तुति वा उत्तम वाणी भी उत्तम ज्ञान, सुखादि देने के लिये है, उन (ऊमेभ्यः) रक्षाकारी गुरुजनो के लिये आप लोग (मधु परि सिञ्चत) सब प्रकार से अन्न और जल को प्रदान करो। उनका अन्न-जल, मधुपर्कादि से सत्कार करो। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ६

भा०—(देवानां) देव, विद्याभिलाषी तेजस्वियों का (व्रत-पाः) व्रतपालन कराने वाला (मे) मुझे (अप्सु) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं, और (आपः) जलो मे गुप्त रूप से छुपे अग्नि-तत्ववत् आपोमय प्राणों वा लिङ्ग शरीरो के बीच (नि धीयमानम्) स्थापित हुए (अप-गूढम्) बाह्य इन्द्रियों से छुपे आत्मतत्त्व को (मे प्र उवाच) मुझे उपदेश करे। हे (अग्ने) जीव वा आत्मरूप अग्ने ! (हि) निश्चय से (इन्द्रः हि) आत्मा वा प्रभु उस तत्त्व को साक्षात् करने वाला योगी (विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष ही (त्वा अनु चचक्ष) तेरा साक्षात् अनुभव रूप से प्रत्यक्ष करता है। (तेन अनु-शिष्टः) उससे अनुशासन, शिक्षण पाकर ही मैं (त्वा अनु आ अगाम्) तुझे प्राप्त होऊं, तेरा अनुगमन करूं।

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(अक्षेत्रवित्) क्षेत्र, वा मार्ग को न जानने वाला (हि) अवश्य (क्षेत्रविद अप्राट्) क्षेत्र को जानने वाले पुरुष से प्रश्न करता है। (सः) वह (क्षेत्र-विदा) क्षेत्रज्ञ विद्वान् से (अनुशिष्टः) अनु-शासित, शिक्षित होकर (प्र एति) आगे उत्तम मार्ग को प्राप्त करता है। (अनुशासनस्य) गुरु के किये अनुशासन वा शिक्षण का (एतत्

वै भद्रम्) यही उत्तम कल्याणदायक फल होता है कि वह अनुशासित, अज्ञ पुरुष भी (अञ्जसीनाम्) ज्ञान को प्रकाशित करने वाला वाणियो की (स्रुतिं) गति वा श्रुति को (विन्दति) प्राप्त करता है। (२) जिस प्रकार क्षेत्र-विद्या कृषि आदि को न जानने वाला पुरुष क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्रिक से ज्ञान को जान लेता है तब वह भी क्षेत्रज्ञ अर्थात् माली होकर आगे बढता है। वह भी (अञ्जसीनां स्रुतिं विन्दति) धान्योत्पादक भूमियो के मार्ग, अथवा क्षेत्र में बहती जल-धाराओ की गति को जान लेता है। (३) उसी प्रकार क्षेत्र यह देह, या प्रकृति है अक्षेत्रज्ञ मूढ-आत्मा आत्मज्ञो से प्रश्नपूर्वक ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है तब वह भी ज्ञानप्रकाशक वाणियो, आत्मप्रकाशक प्रवृत्तियो की संगति समझने लगता है और ज्ञानप्रकाशक इन्द्रियो के मार्ग पर भी वश प्राप्त कर लेता है।

अ॒द्येदु॒ प्राणी॒दम॑मन्नि॒माहा॒पीवृ॑तो अधयन्मा॒तुरूधः॑।
एमे॑नमाप जरि॒मा युवा॑न॒महे॑ळ॒न्वसुः॑ सु॒मना॑ बभूव ॥ ८ ॥

भा०—देखो इस जीवरूप अग्नि की गति। वह (अद्य इत् उ प्राणीत्) आज ही प्रथम दिन प्राण लेने लगता है (इमा अममन्) इन नाना संकल्पो को सोचता, नाना पदार्थों को जानने, चीन्हने भी लगता है। (अपि वृतः) देह मे आवृत रहकर वह (मातुः ऊधः अधयत्) माता का स्तन्य पान भी ठीक उसी प्रकार से करता है जैसे तेजो से आवृत अग्नि वा सूर्य माता पृथिवी का जलपान करता है। (ईम् एनम् युवानं) अनन्तर इस युवा को जिस प्रकार बुढापा आता है उसी प्रकार (युवानम्) माता से पृथक् होते हुए नव-उत्पन्न इस बालक को भी (जरिमा) वाणी (आप) प्राप्त होती है। वह (अहेडन्) अनादृत होकर, वा गुरुओ का अनादर न करता हुआ, (वसुः) गुरु के अधीन वास करता हुआ, ब्रह्मचारी होकर (सुमनाः बभूव) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न होजाता है

एतानि॑ भ॒द्रा क॑लश क्रियाम॒ कुरु॑श्रवण॒ दद॑तो म॒घानि॑ ।
दा॒न इद्वो॑ मघवानः॒ सो अ॑स्त्व॒यं च॒ सोमो॑ हृ॒दि यं बिभ॑र्मि ॥ ३० ॥ ७

भा०—हे (कलश) ज्ञान और षोडश कलाओं को धारण करने हारे! विद्वन्! हे (कुरु-श्रवण) 'यह कार्य कर, यह कार्य कर' ऐसी नाना कर्म करने योग्य प्रेरणाओं को सुनने वाले पुरुष! अथवा क्रियाशील पुरुषों से श्रवणीय आज्ञा वाले! गुरो! (मघानि) उत्तम पूज्य ज्ञानों, धनों को (ददतः) देने वाले तेरे लिये हम (एतानि भद्रा क्रियाम) इन नाना सुखजनक कल्याणकारक कर्मों को करें, तेरी नाना सेवाएं करें। हे (मघवानः) पूज्य धन ज्ञान आदि के स्वामी जनो! (सः वः दानः इत्) वह प्रभु तुम्हें देने हारा (अस्तु) हो और (अयं च सोमः) यह सोम, सत् शिष्य भी तुम्हें सुख ज्ञानादि देवे, (य हृदि बिभर्मि) जिसको मैं अब अपने चित्त में धारण करता हूं। इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति सप्तमाष्टके सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अष्टमोऽध्यायः

[३३]

कवष ऐलूष ऋषिः ॥ देवताः—१ विश्वे देवाः । २, ३ इन्द्रः । ४, ५ कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः ६—९ उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् २ निचृद् बृहती । ३ भुरिग् बृहती । ४—७, ९ गायत्री । ८ पादनिचृद् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र मा॑ युयुज्रे प्र॒युजो॒ जना॑नां॒ वहा॑मि स्म पू॒षण॒मन्त॑रेण ।
विश्वे॑ दे॒वासो॒ अध॒ माम॑रक्षन्दुः॒शासु॒रागा॒दिति॒ घोष॑ आसीत् ॥ १ ॥

भा०—(प्र-युजः) मनुष्यों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले, उत्तम २ फलों को प्राप्त करने वाले लोग (मा प्र युयुज्रे) मुझे भी उत्तम मार्ग पर प्रेरित करें। मैं (जनानां पूषणम्) समस्त मनुष्यों के पोषक प्रभु को (अन्तरेण) अपने भीतर (वहामि) धारण करूं। (देवासः) विद्वान् और वीरजन भी (माम् अरक्षन्) मेरी रक्षा करें। (दुःशासुः आगात्) बड़ी कठिनता से शासन करने योग्य, वा जिसके विषय में कुछ भी कहा न जासके, अवर्णनीय एव (दुःशासुः) अन्यों से वश न करने योग्य राजावत् प्रभु (आगात्) हमें प्राप्त हो, (इति घोषः आसीत्) इसी कारण उसके बतलाने के लिये घोष, वेदवाणी का उपदेश हमें प्राप्त है।

सं मा॑ तपन्त्य॒भितः॑ स॒पत्नी॑रिव॒ पर्श॑वः।
नि बा॑धते॒ अम॑तिर्न॒ग्नता॑ जसु॒र्वेर्न वे॑वीयते म॒तिः ॥ २ ॥

भा०—(सपत्नीः) सौतों के समान (पर्शवः) मेरे आत्मा से स्पर्श करने वाली, कुवासनाएं, आत्मा पर संग-दोष उत्पन्न करने वाली (मा अभितः तपन्ति) मुझे सब ओर से सन्ताप देती है। (अमतिः) अज्ञान (मा नि बाधते) मुझे बहुत पीडित करता है। और (नग्नता मा नि बाधते) वस्त्रादि न होने से नगे शरीर को नगापन जिस प्रकार लज्जित, व्यथित, शीत ग्रीष्मादि से पीड़ित करती है उसी प्रकार (नग्नता नि बाधते) मेरे पास हे प्रभो! तेरी स्तुति करने योग्य वाणी नहीं है, वह वाणी का अभाव भी मुझे दुःख देता है। इसी प्रकार (जसुः नि बाधते) हिंसावृत्ति वा सर्वनाशक मृत्यु वा सबका नाश होना यह भय भी मुझे व्यथित, बेचैन कर रहा है। (वेः न मतिः) हे प्रभो! पक्षी के समान उत्तम ज्ञानी वा रक्षक की (मतिः) शत्रुस्तम्भनकारिणी शक्ति और ज्ञानी की बुद्धि, (मा वेवीयते) मुझे निरन्तर प्राप्त हो। मेरी बराबर रक्षा करे। अथवा (वेः न मतिः वेवीयते) भयव्यथित पक्षी के तुल्य

मेरी बुद्धि भी निरन्तर भय से व्यथित हो कांपती और चंचल, अस्थिर रहती है। पर्शुः स्पृशतेः।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव॥ ३॥

भा०—(मूषः शिश्ना न) चूहा जिस प्रकार अन्न रस से भीगे सूतों को खा जाता है, उसी प्रकार हे (शत-क्रतो) अनेक बल और बुद्धियों वाले प्रभो! (आध्यः मा वि अदन्ति) मानसी चिन्ताएं मुझे विविध प्रकार से खाए डालती है हे (इन्द्र) विघ्ननाशक ऐश्वर्यवन् प्रभो! स्वामिन्! हे (मघवन्) उत्तम दानयोग्य पदार्थों के स्वामिन्! (नः सकृत् सु मृडय) हमें एक वार अच्छी प्रकार खूब सुखी कर। (अध पिता इव नः भव) और तू तो हमारे पिता के समान हो।

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्।
मंहिष्ठं वाघतामृषिः॥ ४॥

भा०—मैं (ऋषिः) अतीन्द्रिय पदार्थ का देखने हारा होकर (वाघताम्) कार्य और ज्ञान को धारण करने वालों में (मंहिष्टम्) सब से अधिक दानी, (त्रासदस्यवम्) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले (कुरु-श्रवणम्) कार्य करने वाले जनों की सुनने वाले वा कर्त्तव्य कर्म के लिये उत्तम आज्ञा वचन के श्रवण करने वाले, तत्पर (राजान) तेजस्वी, स्वामी प्रभु को (आ वृणि) सब प्रकार से वरण करता हूं।

यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया।
स्तवै सहस्रदक्षिणे॥ ५॥ १॥

भा०—(यस्य रथे) जिसके रमण योग्य रथ में (तिस्रः हरितः) तीन नाड़ियें (साधुया) साधु, उत्तम मार्ग में (मा वहन्ति) मुझे ले जाती है। उसी को मैं (सहस्र-दक्षिणे स्तवै) अनेक दातव्य पदार्थों के

देने के निमित्त स्तुति करता हूं। यह रथ देह है, इस मे तीन नाड़ी इडा, पिगला, सुषुम्ना आत्मा को साधु मार्ग से ले जाती है। प्रभु ने अनेक सुख इस रथ मे दिये है। उसी के निमित्त प्रभु की स्तुति करनी चाहिये। इति प्रथमो वर्गः ॥

यस्य॑ प्रस्वा॒दसो॒ गिर॑ उप॒मश्र॑वसः पि॒तुः ।
क्षेत्रं॒ न र॒ण्वमू॒चुषे॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस (पितुः) सर्वपालक, सब के पिता माता के तुल्य (उपम-श्रवसः) अति उत्तम ज्ञान से सम्पन्न प्रभु गुरु के (गिरः प्र-स्वादसः) निगलने योग्य अन्नो के समान, उपदेश द्वारा प्रदत्त वाणियां अति उत्कृष्ट स्वाद देने वाली अति सुखप्रद है और सेवन करने वाले आत्मा के लिये (यस्य क्षेत्र रण्वं ऊचुषे) जिसका दिया क्षेत्र, निवासस्थान भी अति रमणीय क्षेत्र, उर्वरा भूमि के समान नाना दिव्य अन्न, कर्म फलादि का उत्पादक होता है, मै उसी सहस्रो दक्षिणा अर्थात् अन्नादिवत् कर्म फल के देने के लिये प्रभु की स्तुति करूं।

अधि॑ पुत्रोपमश्रवो॒ नपा॑न्मित्रातिथेरिहि ।
पि॒तुष्टे॑ अस्मि वन्दि॒ता ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुत्र) वहुत सी प्रजाओं के रक्षक ! हे (उपम-श्रवः) अति उत्तम ज्ञान के देने हारे गुरो ! हे (मित्रातिथेः नपात्) मित्र, स्नेही और अतिथिवत् स्वल्प काल के लिये तेरे गृह पर आने वाले को नीचे न गिरने देने हारे तू (अधि इहि) हम पर अधिवक्ता होकर विराज। (ते पितुः) पिता के समान तुझ पालक का मै (वन्दिता अस्मि) अभिवादन, स्तुति, प्रार्थना आदि करने वाला हूं।

आचार्य पक्ष मे जिसके (रथे) रमणीय उपदेश में मुझ को (तिस्रः हरित.) तीनो वेद वाणियां साधु मार्ग से ले जाती है उस (सहिस्र-दक्षिणे)

हजारों को दक्षिण दिशा में बैठा कर उपदेश करने वाले उस गुरु के अधीन मैं (स्तवै) वेद का अध्ययन करूं ।

गुरु और शिष्य के परस्पर व्यवहार को इस सूक्त में उत्तम रीति से दर्शाया है । इसी प्रकार शौनक मुनि ऋक्-प्रातिशाख्य में लिखते हैं—

पारायणं वर्त्तयेद् ब्रह्मचारी गुरुः शिष्येभ्यस्तदनुव्रतेभ्यः ।
अध्यासीनो दिशमेकां प्रशस्तां प्राचीमुदीचीमपराजितां वा ॥
एकः श्रोता दक्षिणतो निषीदेद् द्वौ वा भूयांसस्तु यथावकाशम् ।
ते ऽधीहि भो इत्यभिचोदयन्ति गुरुं शिष्या उपसंगृह्य सर्वे ॥

अर्थ—गुरु स्वयं ब्रह्मचारी रहकर ब्रह्मचारी शिष्यों को वेद का अध्ययन करावे । प्राची, उदीची वा अपराजिता दिशा में स्वयं ऊंचे आसन पर विराजे । और दक्षिण में एक या दो श्रोता शिष्य, वा अधिक स्थान हो तो अधिक भी बैठें । वे सब शिष्य गुरु के चरणों में नमस्कार करके 'अधीहि भोः' ऐसी प्रार्थना करें ।

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् ।
जीवेदिन्मघवा मम ॥८॥

भा०—(यद्) यदि मैं (अमृतानाम्) न मरने वाले अविनाशी तत्त्वों (उत वा) और (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा, उत्पन्न और विनाश होने वाले पदार्थों का (ईशीय) स्वामी, उन पर भी शक्तिशाली होजाता हूँ तभी (मम मघवा) मेरा धनाधिपति आत्मा (जीवेत् इत) प्राण धारण करने में समर्थ होता है ।

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति ।
तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—(देवानां व्रतं अति) देवों, विद्वानों के स्थिर किये व्रत नियम आदि को अतिक्रमण करके कोई (शतात्मा चन) सौ बरस तक भी

(न जीवति) प्राण धारण नहीं करता। और (तथा) उसी प्रकार (युजा) अपने सहयोगी मित्र, बन्धु वा देहादि से (वि ववृते) वियुक्त हो जाता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३४]

कवष ऐलूषोऽक्षो वा मौजवान् ऋषिः। देवताः—१,७,९,१२,१३ अक्षकृषिप्रशंसा। २—६, ८, १०, ११ १४ अक्षकितवनिन्दा। छन्दः—१, ७, ८, १२, १३ त्रिष्टुप्। ३, ६, ११, १४ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ९, १० विराट् त्रिष्टुप्। ७ जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

भा०—अक्षकृषि प्रशंसा और अक्ष-कितव निन्दा। (इरिणे वर्वृतानाः) सूखे कूप में उत्पन्न होते हुए, अथवा धन से रहित निर्धनता की दशा में लेजाने हारे, (प्र-वाते-जाः) नीचे देश में पैदा हुए, (प्रावेपाः) खूब कांपने और कंपाने वाले, भयोत्पादक, (बृहतः) बड़े भारी वृक्ष के फल के तुल्य जूए के पासे (मा मादयन्ति) मुझे हर्षित करते, मुझे मत्त कर देते हैं। यह (वि-भीदकः) बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न यह जूए का गोटा, (मौज-वतः सोमस्य-इव भक्षः) मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम-ओषधि लता के भक्षण योग्य रस के समान अस्वादन करने योग्य, (जागृविः) जीता जागता मानो (मह्यम् अच्छान्) मुझे बहलाता, फुसलाता है। जूआ आदि कृत्रिम साधन लोभी को इसी प्रकार फांसते हैं। (२) वस्तुतः, अध्यात्म में—(बृहतः) उस महान् पाप के ये फल या परिणाम (इरिणे वर्वृतानाः) धन जलादि शान्तिदायक साधनों से रहित दशा में मनुष्य को ले जाते हैं। वे राजस तामस भाव (प्रवाते-जाः) प्रबल वात के सदृश बलवान् मन के अधीन उत्पन्न होते हैं, वे (प्रावेपाः) मनुष्य को खूब इधर उधर नचाते

कंपाते हैं, वे तृष्णार्त्त विषयलोलुप को (मादयन्ति) खूब उन्मत्त कर देते हैं। वह विषयाभिलाष उसको (मौजवतः सोमस्य-इव भक्षः) मुंजवान् पर्वत में उत्पन्न उत्तम सोमपान के समान अति हर्षदायक प्रतीत होता है। अथवा, मुक्ति देने वाले मोक्षेश्वर प्रभु का परमानन्द सोम के समान ही विषय-रसास्वाद भी विषयी को परमानन्दवत् प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुतः वह है (विभीदकः) विविध प्रकार से शरीर और आत्मा को तोड़ डालने वाला, अति भयंकर, और (जागृविः) मनुष्य चूक जाय भले ही, परन्तु वह मनुष्य का मृत्युवत् सत्यानाश करने में नहीं चूकता, वही (मह्यम् अच्छान्) मुझ आत्मा को लुभाता है। अध्यक्ष पक्ष आगे स्पष्ट करेंगे।

न मा॑ मिमेथ॒ न जि॑हीळ ए॒षा शि॒वा सखि॑भ्य उ॒त मह्य॑मासीत्।
अ॒क्षस्या॒हमे॑कप॒रस्य॑ हे॒तोरनु॑व्रता॒मप॒ जा॒याम॑रोधम् ॥ २ ॥

भा०—(एषा) यह (मा न मिमेथ) मुझे दुःख नहीं देती, (न जिहीड़े) न अनादर करती है। (सखिभ्यः उत मह्यम्) मेरे मित्रों और मेरे लिये सुखकारिणी, मंगलकारिणी (आसीत्) है, तो भी (एक-परस्य अक्षस्य) एक की प्रधानता वाले अक्ष अर्थात् जूए के (हेतो.) कारण से (अनुव्रताम् जायाम्) अनुकूल व्रत पालन करने वाली पतिव्रता स्त्री को भी (अप अरोधम्) मैं रख नहीं सकता, उसे भी हार देता हूं। (२) अध्यात्म में बुद्धि आत्मा की विशेष शक्ति जो न हिंसा करती, न क्रोध करती है। वह सब के लिये और अपने लिये शान्तिकारक मंगलजनक होती है परन्तु एक विषय की ओर जाने वाले अक्ष अर्थात् इन्द्रिय सुख के लिये मैं पतिव्रता स्त्रीवत् उस बुद्धि को भी खो बैठता हूं।

द्वेष्टि॑ श्व॒श्रूरप॑ जा॒या रु॑णद्धि॒ न ना॑थि॒तो वि॑न्दते मर्डि॒तार॑म्।
अश्व॑स्येव॒ जर॑तो॒ वस्न्य॑स्य॒ नाहं वि॑न्दामि कित॒वस्य॒ भोग॑म् ॥३॥

भा०—जूए के दुष्परिणाम। जो जुआरी जूए में सर्वस्व खो चुकता

है उससे (श्वश्रूः) उसकी सास भी (द्वेष्टि) द्वेष करती है। (जाया अप रुणद्धि) स्त्री भी विरक्त होजाती है। (नाथितः) संतापित, दुःखित होकर भी (मर्डितारं न विन्दते) वह किसी को अपने पर कृपालु, दयालु, सुखदाता नहीं पाता वा मांगने वाला होकर भी किसी से धन नहीं पाता। ठीक है, (जरतः अश्वस्य-इव) बूढ़े घोड़े के समान और (जरतः वस्न्यस्य) फटे पुराने वस्त्र के समान (अहं) मैं भी (कितवस्य) जुआरी होने का (भोगं न विन्दामि) अव सुख और रक्षा नहीं पाता हूं।

अश्व्यं, वस्न्यं इति स्वार्थे यः ॥

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः।
पिता माता भ्रातर एन माहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥ ४ ॥

भा०—जुआखोर की दुर्दशा। (यस्य वेदने) जिसके धन पर (वाजी अक्षः) वलवान् जुए का व्यसन (अगृधत्) ललचा जाता है (अस्य) उसकी (जायां) स्त्री को भी (अन्ये परि मृशन्ति) दूसरे, उसके शत्रु, पराये लोग हथियाते हैं। (पिता माता भ्रातरः एनम् आहु.) पिता माता भाई लोग भी उसको लक्ष्य कर कहते हैं कि (न जानीमः) हम इसे नहीं जानते, पहचानते कि कौन है ? (एतम् वद्धम्) इसको बांध कर (नयत) लेजाओ। वह चोरी, कर्ज़ा आदि में जब दण्डभागी होता है तो उसके सगे भी उससे ऐसे किनारा किया करते है। (२) जिस पुरुष की इन्द्रियें काम्य सुख रूप स्त्रीसङ्ग, कुसंग, मद्यपानादि में धनको नाश करती हैं, उसकी स्त्री भी सुरक्षित नहीं रहती और पतित को सगे भी कीर्त्ति के नाश के भय से नहीं अपनाते।

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥३॥

भा०—मैं व्यसनी पुरुष (यद् आदीध्ये) जब ध्यान करता हूँ, उनकी

चिन्ता करता हूं तब (एभिः न दविपाणि) इनके द्वारा दुःखित या पश्चात्ताप से युक्त भी नहीं होता, प्रत्युत (परायद्भ्यः सखिभ्यः) दूर से आने वाले वा दूर गये मित्रों के समान उनके लिये (अव हीये) बड़ा ध्यान देता हूँ। (२) वे (बभ्रवः) लाल-पीले गभू रंग के (न्युप्ताः) फेंके जाकर (वाचम् अक्रत) मानो बतियाते हैं और मैं भी (एषां निष्कृतं) इनके स्थान को (जारिणी इव एमि इत्) व्यभिचारिणी स्त्री के समान चला ही जाता हूँ। व्यसनी मनुष्य रसों का भी इसी प्रकार लोलुप हो जाता है, वह उनका अनुचिन्तन किया करता है और व्यभिचारिणी स्त्री के समान लुक छिप कर व्यसनो में पड़ता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि॥६॥

भा०—(तन्वा) शरीर से (शूशुजानः) चमकता हुआ (पृच्छमानः) और पूछता हुआ, (कितवः) द्यूत का व्यसनी (सभाम् एति) द्यूतसभा में आता है और समझता है कि (जेष्यामि इति) 'मैं अब जीतूंगा'। (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी द्यूत खिलाड़ी को पराजय करने के लिये (कृतानि) कृत नामक अक्षों को (आ दधतः) रखने वाले (अस्य) इस द्यूत-व्यसनी की (अक्षासः) वे अक्ष (कामं वितिरन्ति) यथेष्ट धन-अभिलाषा को बहुत बढ़ाते हैं। (२) इसी प्रकार (कितवः) यह धन क्या तेरा है? इस प्रकार धनके सम्बन्ध में विवाद करने वाला, निर्णयार्थी जन (तन्वा शूशुजानः) अपने देह से दीप्त, या संतप्त होकर (जेष्यामि इति) मैं इस मुकदमे को जीत जाऊंगा इस विचार से (पृच्छमानः) प्रतिवादी पर प्रश्न करता हुआ (सभाम् एति) धर्म-व्यवस्थापक-सभा को प्राप्त होता है। और (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी धनाकांक्षी को पराजित करने के लिये (कृतानि) अपने किये कर्मों या अधिकारों या प्रमाणों को (आ-दधत.) स्थापित करते हुए (अस्य) इसको (अक्षसः) सभा के अध्यक्षजन (कामं वितरन्ति) उसको मनचाहा धन

प्रदान करते हैं और उसकी अभिलाषा को बढाते हैं। (३) इसी प्रकार तेरा क्या ? इस प्रकार गर्वी पुरुष (तन्वा शूशुजानः) देह में प्रकट होकर (सभाम् एति) इन्द्रियगण की सभा मे आता है इन द्वारा इस भाव से (पृच्छमानः) सभी पदार्थों की जिज्ञासा करता है। और ये इन्द्रिगण उसको (कामं वि तिरन्ति) काम्य सुख प्रदान करते हैं। वह अपने अपने सब किये कर्म-फलो को देह धारण कर भोगता, और नाना कर्म करता है।

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा॥७

भा०—उत्तम अध्यक्षो का वर्णन। ये (अक्षासः) अध्यक्षजन (इत्) ही (अंकुशिनः) अंकुश, अर्थात् हाथी जैसे २ बड़े पशुओं के तुल्य बड़ो बड़ो को भी सन्मार्ग पर चलाने वाले, वशीकरण साधनो से सम्पन्न (नि-तोदिनः) अश्व, बैल आदि के समान कार्य-भार वहन करके चलाने वाले शासकों को भी व्यथित कर सन्मार्ग में प्रेरित करने के साधनों को सारथि के तुल्य रखने वाले, (नि-कृत्वानः) दुष्टों को जड़मूल से छेदन करने वाले, (तपनाः) सूर्य की किरणों के तुल्य तपाने वाले, तेजस्वी, और (तापयिष्णवः) दुष्टों को संतापित करने वाले, (कुमार-देष्णाः) कुत्सित भावों के नाशक शिष्यों को ज्ञान देनेवाले गुरुजनों के समान कुत्सित व्यवहार वालों के नाशक, वा युद्धक्रीड़ा करने वाले वीरों को धन पुरस्कारादि देने वाले और (जयतः) विजय करने वाले (कितवस्य) 'तेरा क्या २' इस प्रकार ललकारने वाले को (पुनर्-हणः) फिर से या वार २ दण्डित करने या मारने वाले, (मध्वा) मधुर वचन और शत्रु को कंपा देने वाले बल से (सम्पृक्ताः) युक्त वा (मध्वा सम्पृक्ताः) मधु अर्थात् अन्न के द्वारा अपने स्वामी से सम्बद्ध, वेतनबद्ध, (बर्हणा) स्वामी को बढाने और शत्रु के नाश करने वाले हों।

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

भा०—अध्यक्षों का पुनः वर्णन । (एषां) इनका (त्रि-पञ्चाशः व्रातः) ५३ का संघ (सत्य-धर्मा) सत्य धर्म का पालक (सविता) इनके प्रेरक नायक सूर्यवत् तेजस्वी (देवः) दाता स्वामी के समान (क्रीडति) खेलता है, विनोद से रण मे जाता है। वह (उग्रस्य चित् मन्यवे) भयंकर से भयंकर के क्रोध के आगे (न नमन्ते) नहीं झुकते। (एभ्यः) इनके लिये (राजा चित् नमः इत् कृणोति) राजा भी नमस्कार, आदर ही करता है।

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

भा०—नीच अध्यक्षों का वर्णन । जो लोग (नीचाः) नीच प्रवृत्ति के लोग (वर्त्तन्ते) होते है। वे (उपरि) ऊंचे पदपर आकर (स्फुरन्ति) अधीनों को कष्ट देते है। वे (अहस्तासः) हनन साधनों से रहित होकर ही (हस्तवन्तं) हनन साधन, हथियारों वाले को (सहन्ते) सहते हैं, दवते हैं। वे (दिव्याः) क्रीड़ाशील, मोदप्रिय, मदमत्त, स्वप्न या आलस्ययुक्त होकर (इरिणे अङ्गाराः) कूए में जलते अंगारों के समान (इरिणे) अन्न-जल दाता के लिये भी (अंगाराः) अंगारों के तुल्य सन्तापदायक (न्युप्ताः) वने रहेते हैं। वे (शीताः सन्तः) ठण्डे, निरपेक्ष और निर्दय हृदय होकर (हृदयं निर्दहन्ति) दिल को जलाया करते हैं।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥४॥

भा०—(कितवस्य) 'तेरा क्या' इस प्रकार अन्यों पर आक्षेप करके स्वच्छन्द विचरने वाले, उच्छृंखल वा द्यूतव्यसनी पुरुष की (हीना) त्यागी हुई, दुर्दशाग्रस्त (जाया) स्त्री भी (तप्यते) दुःखित होती है, और

(क्वस्वित् चरतः) कहीं कहीं विचरते भ्रमते हुए व्यसनी पुत्र की (माता) माता भी (तप्यते) दुःखी होती है। वह (ऋणावा) ऋण ग्रस्त होकर (धनम् इच्छमानः) धन चाहता हुआ, (बिभ्यद्) भय करता हुआ, (नक्तम्) रात के समय (अन्येषाम् अस्तम्) औरों के घर चोरी के लिये (एति) जाता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

भा०—(कितवं = कितवः) तेरा क्या? इस प्रकार अन्यों से छीन झपट करने वाला वा उच्छृंखल मनुष्य (स्त्रियं दृष्ट्वा ततापं) स्त्री को देख कर भी दुःखित होता है। वह (अन्येषां जायां) औरों की स्त्री को और (सुकृतं योनिं च) औरो के पुण्य कर्म वा उत्तम रीति से बने घर को देख कर भी (ततापं) दुःखी होता है। वह (पूर्वाह्णे) दिनके पूर्व भाग में (बभ्रून्) हृष्ट पुष्ट, (अश्वान्) वेगगामी अश्वोंके तुल्य अपने प्राणों को (युयुजे) जोड़ता है। (सो) वह (वृषलः) मूढ अधार्मिक (अग्नेः अन्ते) रात में आग के समीप (पपाद) पहुंच जाता है। वह दिन भर भटक करके भी अधवीच जंगल में पड़े पथिक के तुल्य रहता है, घर का सुख नहीं पाता।

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

भा०—हे विद्वान जनो! (वः महतः गणस्य) आप लोगों के गुणों में महान् पुरुषो के समूह का जो (सेनानीः) सेनानायक है और जो (प्रथमः राजा बभूव) सर्वश्रेष्ठ राजा है (तस्मै अहं दश प्राचीः कृणोमि) मैं उसके आदरार्थ दशो अंगुली आगे करता हूं, उसे नमस्कार करता हूं। अथवा, (तस्मैः दश प्राचीः कृणोमि) उसके लिये मैं प्रभु दशों दिशाओं को प्राचीदिशा के समान आगे बढ़ने वा उदय होने के लिये करता हूं। (न धना

रुणध्मि) उसके लिये मैं धन भी रोक के नहीं रखता हूं। (तत् ऋतं वदामि) उसके लिये मैं ऋत अर्थात् न्यायानुसार वचन का उपदेश करता हूं।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥१३॥

भा०—हे (कितव) गर्वीले राजा! तू अधिकार मद से आकर प्रजाको कह लेता है कि 'किं तव' तेरा क्या है, इसी से तू भी 'कितव' है। 'क्या तेरा' ऐसा कहने वाले हे गर्वीले शासक! तू (अक्षैः मा दीव्यः) पासों से मत खेल, वा (अक्षैः मा दीव्यः) अपने इन्द्रियगण से काम-विलास की खेल मत कर और (अक्षैः मा दीव्यः) और अपने अध्यक्ष जनों से मत, खेल, उनसे बढ़ जाने का गर्व वा स्पर्धा मत कर, उनके साथ मद, नशा-विनोद तथा उनके साथ रहकर स्वयं स्वप्न, आलस्यादि मत कर। प्रत्युत (कृषिम् इत् कृषस्व) तू खेती किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर और परिश्रम से धन धान्य उत्पन्न कर। और उसी को (बहु मन्यमानः) बहुत मानता हुआ (वित्ते रमस्व) प्राप्त धन में आनन्द लाभ कर, सुखी रह। हे (कितव) उत्तम कर्म करने हारे! (तत्र गावः) उसी कर्म में तेरी गौएं, (तत्र जाया) उसी में स्त्री, अर्थात् गृहसुख प्राप्त होता है। (अयम् अर्यः सविता) यह सर्वप्रेरक स्वामी (मे तत् वि चष्टे) मुझे उसी का उपदेश करे।

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु॥१४॥५॥

भा०—हे अध्यक्ष जनो! आप लोग (मित्रं कृणुध्वम्) हमें अपना और अपने को हमारा मित्र बनाओ। (नः मृडत खलु) हमें सुखी करो। (नः) हमे (धृष्णु) धर्षणकारी, अपमान और दुःखजनक (घोरेण) घोर, संतापजनक क्रोध से (मा अभि चरत) मत आक्रमण करो। (मन्युः अरातिः) अभिमानी और क्रोधी (वः नि विशताम्) आप लोगों के नीचे

रहे। अन्यः) पर शत्रु (बभ्रूणां) प्रजापालक अध्यक्षों के, (प्र-सितौ नु अस्तु) कड़े बन्धन में रहे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३५]

लुशो धानाक ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ६, ६, ११ विराड्जगती। २ भुरिग् जगती। ३, ७, १०, १२ पादनिचृज्जगती। ४, ८ आर्चीस्वराड् जगती। ५ आर्ची भुरिग् जगती। १३ निचृत् त्रिष्टुप्। १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

भा०—(त्ये) वे (अग्नयः) अग्नियों के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् वा किरणों के समान विद्वान् जन (इन्द्र-वन्तः) उत्तम प्रभु वा गुरु को अपने बीच में रखते हुए, (उषसः व्युष्टिषु) प्रभात वेलाओं के प्रकट होने पर (ज्योतिः भरन्तः) अपने में तेज प्रकाश और ज्ञान को धारण करते हुए (अबुध्रम् उ) बोधवान् होजाते हैं। (मही) पूज्य (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् माता पिता जन भी (अपः चेतताम्) कर्मों का ज्ञान करें, करावें। (अद्य) आज हम (देवानाम् अवः आवृणीमहे) विद्वान् पुरुषों का ज्ञान सत्संग उनकी रक्षा, प्रेम आदि प्राप्त करें वा विद्याभिलाषी शिष्यों का अपने पास आगमन चाहें।

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून् पर्वताञ्छर्यणावतः।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

भा०—हम (दिवः पृथिव्योः) सूर्य, भूमि, आकाश और भूमिवत् माता पिताओं के (अवः) उत्तम रक्षण, प्रेम, ज्ञान और बल की याचना करते हैं। और (मातॄन्) ज्ञानवान्, एवं पुरुषों को उपदेश शिक्षादि द्वारा जीवन में दृढ़ बनादेने वाले, (सिन्धून्) महानदों के समान अगाध

जल वाले, एवं हृदयों से बांधने वाले प्रेमी, (शर्यणावतः) दुष्टों के नाश करने की शक्ति से युक्त (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ और पालकशक्ति के स्वामी पुरुषों और (सूर्यम् उषासम्) सूर्यवत् तेजस्वी, उषावत् कान्तियुक्त, पापों को दग्ध करने वाले जनको प्राप्तकर उनसे (अनागास्त्वं) पापरहित होने की (ईमहे) प्रार्थना करें। (सुवानः सोमः) अभिषेक, और विद्या व्रत आदि में निष्णात (सोमः) शासक विद्वान् जन वा प्रभु (अद्य नः भद्रं कृणोतु) आज हमारा कल्याण करे।

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा। उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(नः) हम (अनागसः) अपराध और पाप से रहितो को (द्यावा पृथिवी) सूर्यवत् तेजस्वी, और पृथिवी के तुल्य विशाल आश्रय देने मे समर्थ, (मही) पूज्य बड़े (मातरा) माता पिता के तुल्य राजा राजसभा, दोनों (सुविताय) उत्तम मार्ग पर चलाने और सुख प्राप्त करने के लिये (त्रायेताम्) हमारी रक्षा करे। (उच्छन्ती) गुणो का प्रकाश करती हुई (उषा) कान्तियुक्त प्रभात वेला के तुल्य, कमनीय गुणो से अलंकृत विदुषी स्त्री और राज्य में सेना (अघम् अप बाधताम्) पाप को रोके और नष्ट करे, दूर करे। हम (समिधानम् अग्निम्) तेज से देदीप्यमान अग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक नेताजन वा प्रभु से (स्वस्ति ईमहे) सुख कल्याण की याचना, प्रार्थना करें।

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु। आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

भा०—(इयं) यह (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ, (उस्रा) उत्तम पद को प्राप्त करने वाले, उदयशील, एवं पापो को दूर करने वाली, (रेवती) ऐश्वर्यवती, प्रभुशक्ति, (सु-देव्यं) उत्तम सुखजनक, उत्तम पुरुषों और

कामनावान् पुरुषों के योग्य (रेवत्) धनादि से समृद्ध, ऐश्वर्य और तेज वाली (नः सनिभ्यः) हमारे में से भजनशील वा ज्ञानादि के देने वाले जनों को (वि उच्छतु) उषावत् प्रकाशित करे। हम लोग (दुः-विदत्रस्य) दुखदायी धन वाले के (मन्युं) क्रोध और अभिमान को (आरे धीमहि) दूर करें। अथवा—(दुर्विदत्रस्य मन्युं) बड़ी कठिनता से ज्ञान करने योग्य, दुर्विज्ञेय प्रभु के ज्ञान को (आरे धीमहि) अति समीप धारण करें। (अग्निं समिधानम् स्वस्ति ईमहे) तेजोयुक्त, दीप्तिकारक अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक, प्रभु, नायक से हम सुख-कल्याण की याचना करते हैं।

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (व्युष्टिषु) विशेष रूप से प्रकाश होजाने पर (उषसः सूर्यस्य रश्मिभिः ज्योतिः भरन्तीः सिस्रते) प्रभात वेलाएं सूर्य की किरणो के प्रकाश को अपने में धारण करती हुई आती है, उसी प्रकार (याः उषसः) जो उत्तम कामनायुक्त, अज्ञान पाप आदि की दाहक, नाशक विदुषी स्त्रियां (सूर्यस्य) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु की (रश्मिभिः) प्रकाशक और नियामक व्यवस्थाओं और वाणियों वा वचनों से (ज्योतिः भरन्तीः सिस्रते) ज्ञान-प्रकाश को धारण करती हुई आगे बढ़ती हैं। वे आप (अद्य) आज (नः श्रवसे) हमें अन्न प्रदान करने, और श्रवण योग्य हमारे यश और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (भद्राः) अति कल्याण और सुखदेने वाली होकर (वि उच्छत) विविध गुणो का प्रकाश करें। (समिधानं अग्निं स्वस्ति ईमहे) हम प्रकाश-स्वरूप प्रभु को सुखपूर्वक प्राप्त हों, उससे कल्याण की याचना करते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत्।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं वा प्रातःकालिक प्रभाएं (नः) हमें (अनमीवाः आ चरन्तु) रोगरहित करें। प्रभात की प्रभाओं के समान उत्तम स्त्रियां (अनमीवाः) रोगरहित (नः आ चरन्तु) हमें प्राप्त हों। वे (अग्नयः) सूर्यादि अग्नियों के समान (बृहत् ज्योतिषा) बड़े भारी तेज, ज्ञान-प्रकाश से (उत् जिहताम्) उदय को प्राप्त हों। (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् पशुओं और यन्त्रों के स्वामी, वा जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (तूतुजि रथं) वेग से जाने में समर्थ रथ को जोड़ें। हम (समिधानम् अग्निम् ईमहे) प्रकाशमान, अग्निवत् तेजोमय, सूर्य वा उसके समान, विद्वान् वा प्रभु से सुख और कल्याण की प्राप्ति वा याचना करें।

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

भा०—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पादक, हे स्वामिन्! तू (नः) हमें (अद्य) आज (श्रेष्ठं) सब से उत्तम (वरेण्यम्) वरण करने चाहने योग्य, उत्तम मार्ग में लेजाने वाला (भागम् आ सुव) सेवने योग्य सुख, धन आदि प्राप्त करा। (सः हि) वह तू (रत्न-धाः असि) रमणीय, सुखप्रद पदार्थों को धारण और प्रदान करने वाला है। हे मनुष्यो! मैं तुम लोगों को (रायः जनित्रीम्) धन के पैदा करने वाली (धिषणाम् उपब्रुवे) वाणी वा विद्या का उपदेश करता हूं। (अग्निं समिधानं स्वस्ति ईमहे) अग्निवत् ज्ञान-प्रकाश से चमकते हुए गुरु वा प्रभु से हम कल्याण, सुख की याचना करते हैं।

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥८॥

भा०—हम (मनुष्याः) मनुष्य, विचारशील लोग (यत् अमन्महि) जिसका मनन, ज्ञान करते हैं (देवानां) विद्वान् जनों के (ऋतस्य)

सत्य ज्ञान, वेद, और यज्ञादि का (तत् प्र-वाचनम्) वह उत्तम उपदेश और अध्यापन आदि (मा पिपर्तु) मुझे पालन और ज्ञान से पूर्ण करे। (सूर्यः) सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाला (विश्वाः उस्राः स्पट्) समस्त किरणो के तुल्य, ऊपर उठने वाली वाणियों को प्रकाशित करता हुआ (उत् ऐति) उदय को प्राप्त हो। ऐसे (समिधानम् अग्निम् स्वस्ति ईमहे) प्रकाश करने वाले अग्निवत् ज्ञानी से हम कल्याण और सुख की प्रार्थना करें, और ऐसे तेजस्वी ज्ञानी को प्राप्त करें।

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥९॥

भा०—(अद्य) आज (बर्हिषः स्तरीमणि) वृद्धिशील राष्ट्र के विस्तार करने वाले, और (ग्राव्णां योगे) उत्तम उपदेष्टा और शत्रु हिंसक वीरों के संयोग होने पर और (मन्मनः साधे) मनन करने योग्य ज्ञान के साधना-काल में हम (अद्वेषः ईमहे) द्वेष से रहित पुरुषों को प्राप्त करें, वा, उनसे ही द्वेष रहित होने की याचना करें। हे मनुष्य! यदि तू (भुरण्यसि) आगे बढ़ना चाहता है, वा अपने को पालन पोषण करना चाहता है तो तू (आदित्यानां) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान के प्रकाशक, और पृथिवी के उपासक कृषकों के तुल्य अन्नोत्पादक जनों के (शर्मणि) दिये सुख शरण में (स्थाः) रह। हम (समिधानम् अग्निं स्वस्ति ईमहे) प्रकाश देने वाले अग्निवत् ज्ञानी पुरुष से अपने कल्याण और सुख की याचना करते हैं।

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन्।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे १०॥७॥

भा०—हे विद्वन्! मैं (बृहद् दिवि) बड़े भारी ज्ञान, प्रकाश के निमित्त (देवान् ईडे) किरणो के तुल्य विद्वान् पुरुषों का आदर सत्कार

करूँ। हे विद्वन्! (सध-मादे) एक साथ हर्षित होने के स्थान में (नः) हमारे (बर्हिः) वृद्धिकारक यज्ञ, राष्ट्र में तू (सप्त होतॄन्) यज्ञमे सात ऋत्विजो के समान सात विद्वान् पुरुषों को (सादय) स्थापित कर। हम लोग (सातये) धनादि लाभ के लिये (इन्द्रं मित्रं वरुणं भगं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, सर्वस्नेही, दुःखवारक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वसेवनीय, (समिधानम् अग्निम् ईमहे) सदा तेजस्वी अग्निवत् ज्ञानी प्रभु से कल्याण की प्रार्थना करे। इति सप्तमो वर्गः॥

त आ॑दित्या आ ग॑ता सर्वता॑तये वृधे नो॑ यज्ञम॑वता सजोषसः।
बृहस्पतिं॑ पूषण॑मश्विना भगं॑ स्वस्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधानमी॑महे॥११॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी ज्ञान, धन आदि के देने और स्वीकार करने वाले वा सूर्य-रश्मियों, सर्वोपकारक, आदित्य ब्रह्मचारी एवं वृद्ध पितामहादि के तुल्य पूज्य जनो! (ते) वे आप लोग (सर्व-तातये) सब के कल्याण के लिये (आगत) आइये। आप लोग (स-जोषसः) प्रेम और स्नेह से युक्त होकर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (यज्ञम् अवत) हमारे दिये अन्न, सेवा आदि और सत्संग यज्ञ आदि को भी प्रेम से स्वीकार करो, हमारे यज्ञ की रक्षा करो। (बृहस्पतिम्) बड़े राष्ट्र बल, ज्ञान और वाणी के पालक, (पूषणम्) सब के पोषक और वर्धक (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों, (भ) ऐश्वर्यवान् और (समिधानम् अग्निम्) तेजस्वी, दीप्तिदायक, ज्ञानप्रकाशक, नायक, प्रभु गुरु से हम (स्वस्ति ईमहे) सुख, कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

तन्नो॑ देवा यच्छत सुप्रवाच॒नं छ॒र्दिरा॑दित्याः सु॒भरं॑ नृ॒पाय्य॑म्।
पश्वे॑ तो॒काय॒ तन॑याय जी॒वसे॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधानमी॑महे॥१२॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् ज्ञानदाता गुरुजनो! आप लोग (नः) हमें (तत्) वह उत्तम २ (सु-प्रवाचनं यच्छत) सुखदायक, उत्तम उत्कृष्ट

वचनोपदेश, प्रदान करो। हे (आदित्याः) तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (नृ-पाय्यम्) सब मनुष्यों के पालन करने में समर्थ (सु-भरं) उत्तम रीति से पालन पोषण करने मे समर्थ (छर्दिः) गृह, शरण (यच्छत) प्रदान करो। (पश्वे) पशु, (तोकाय) पुत्र, (तनयाय) पौत्र इनके (जीवसे) जीवन और (स्वस्ति) कल्याण के लिये हम (अग्निं समिधानम्) तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक आचार्य वा प्रभु से (ईमहे) याचना करते हैं उसको प्राप्त कर उसे ज्ञान, प्रकाश और आशीष् प्राप्त करते हैं।

विश्वे॑ अ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ ऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः।
विश्वे॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ अ॒स्मे १३

भा०—(विश्वे मरुतः) बलवान् और शत्रुनाशक और वैश्य मनुष्य, (अद्य) आज (नः ऊती भवन्तु) हमारी रक्षा के लिये हो। और (विश्वे) सभी प्राणी (नः ऊतये भवन्तु) हमारी रक्षा और प्रीति के लिये हो। (विश्वे अग्नयः) समस्त ज्ञानी, अग्रणी जन (ऊतये) रक्षा, ज्ञान, प्रीति सत्संगादि के लिये (सम्-इद्धाः) अच्छी प्रकार तेजस्वी, अग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक (उती भवन्तु) हमारी ज्ञानवृद्धि के लिये हों। (विश्वे देवाः) समस्त दानशील तेजस्वी जन (अवसा) ज्ञान और रक्षा और प्रेम सहित (नः आगमन्तु) हमें प्राप्त हों। और (अस्मे) हमें (विश्वम्) सब प्रकार का (द्रविणम्) धन-ऐश्वर्य, वीर्य और (वाजः अस्तु) ज्ञान और बल प्राप्त हो।

यं दे॑वा॒सोऽव॑थ॒ वाज॑सातौ॒ यं त्राय॑ध्वे॒ यं पि॑पृ॒थात्यंहः॑।
यो वो॑ गोपी॒थे न भ॒यस्य॒ वेद॒ ते स्या॑म दे॒ववी॑तये॒ तुरा॑सः १४॥८

भा०—हे (देवासः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! (वाज-सातौ) संग्राम वा धनैश्वर्य के भोग और ज्ञान की प्राप्ति के अवसर पर (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते, जिसको प्रेम करते और जिसके

साथ सत्संग करते हो, और (यं त्रायध्वे) जिसको कष्ट या शत्रु आदि से बचाते हो, (यं अंहः अति पिपृथ) जिसको पाप से पार करते हो। और (यः वः गोपीथे भयस्य न वेद) जो आप लोगों की रक्षा में रहता हुआ किसी प्रकार का भय नहीं जानता ऐसे (ते) वे तीनों वर्गों के हम (तुरासः) अति शीघ्रकारी जन (देव-वीतये) सूर्यवत् तेजस्वी होने, राजा की रक्षा करने और उत्तम गुणो से चमकने वा सज्जनों की रक्षा वा यज्ञार्थ (स्याम) सदा समर्थ और तैयार हों। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[३६]

लुशो धानाक ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ६—८, ११ निचृज्जगती । ३ विराड् जगती । ५, ९, १० जगती । १२ पादनिचृज्जगती । १३ त्रिष्टुप् । १४ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः॥१॥

भा०—(उषासा नक्ता) प्रभातवेला या दिन-रात्रिकाल के समान ज्ञान और कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुष, (बृहती) बड़े (सु-पेशसा) उत्तम रूपवान्, सुन्दर, ऐश्वर्ययुक्त, (द्यावा क्षामा) सूर्य, भूमि के तुल्य सर्वोपकारक, तेजस्वी सर्वाश्रय और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान्, (अर्यमा) दुष्ट पुरुषों के नियन्ता, न्यायाधीश, इनको और (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (मरुतः) वायुवत् बलवान्, (पर्वतान्) पर्वतो के समान अचल, मेघो के समान सर्वपालक, (अपः) जलों के समान शीतल, (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमिवत् तेजस्वी, सर्वाश्रय और (स्वः) आकाशवत् सुखप्रद, (अपः) अन्तरिक्ष के समान विशाल, इन सब जनो के मैं (हुवे) आदर से बुलाऊं। इसी प्रकार उन सब दिव्य पदार्थों को (हुवे) मैं अपने उपयोग में लूं।

द्यौश्च॑ नः पृथि॒वी च॒ प्रचे॑तस ऋ॒ताव॑री रक्ष॒ताम॑ंह॑सो रि॒षः।
मा दु॒र्वि॑द॒त्रा निर्ऋ॑ति॒र्न ई॑शत॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥ २॥

भा०—(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी और उनके तुल्य तेजस्वी, ज्ञानप्रद, सर्वाश्रय और अन्नप्रद, (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञान-वान्, बड़े उदार चित्त वाले, (ऋत-वरी) जलवत् शान्तिदायक और अन्न-वत् पुष्टिकारक, सत्य ज्ञान से युक्त, जन (नः) हमारी (रिषः) नाश-कारी (अंहसः) पाप से (रक्षताम्) रक्षा करे । (दुः-विदत्रा) दुःख-दायक, (निर्ऋतिः) कष्टदशा, जल, अन्न और ज्ञान के अभाव की दुःख-दायी दशा, (नः मा ईशत) हम पर अधिकार न करे । (तत्) इसी कारण (अद्य) आज हम (देवानाम्) विद्वानों और मेघ, भूमि, सूर्य, वायु आदि के (अवः) ज्ञान और रक्षा बल की (वृणीमहे) याचना करें और प्राप्त करें ।

विश्व॑स्मान्नो॒ अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सो मा॒ता मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य रे॒वतः॑।
स्व॑र्व॒ज्ज्योति॑रवृ॒कं न॑शीमहि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(मित्रस्य) अति स्नेही, प्राणवत्, वायुवत्, प्रिय और जीवन के रक्षक और (वरुणस्य) सब दुःखों के वारक, राजा आदि और (रेवतः) ऐश्वर्यवान् की भी (माता) जननी के तुल्य उत्पादक, उनको भी शासक आदि बनाने वाली, (अदितिः) अखंड शक्तियुक्त, ब्रह्मशक्ति वा राजसभा (नः विश्वस्मात् अंहसः पातु) हमें समस्त प्रकार के पाप से बचावे । हम लोग (अवृकं) विविध प्रकार के हिंसाकारी कष्टों, वा छल कपट आदि से रहित (स्वर्वत् ज्योतिः) सुख, प्रकाश आदि से युक्त तेजः-प्रकाश को (नशीमहि) प्राप्त हों । (तत् देवानां अवः अद्य) हम विद्वानों और दिव्य पदार्थों के उसी श्रेष्ठ ज्ञान और रक्षासामर्थ्य को (वृणीमहे) चाहें, पावें और प्राप्त करें ।

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुःष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—(वदन्) आज्ञा और उपदेश देता हुआ, (ग्रावा) पत्थर के समान शत्रुओं को चूर्ण कर देने वाला क्षत्रिय और उत्तम उपदेष्टा विद्वान् पुरुष (रक्षांसि) विघ्नों और सन्मार्ग के बाधक दुष्ट पुरुषों को (अप सेधतु) दूर करे। वह (दुःस्वप्न्यं) दुःखकारक शयन, (निर्ऋतिम्) पीड़ा, क्षुधा, अकाल आदि और (विश्वम् अत्रिणम्) सब प्रकार के प्रजाओं के भक्षक दुष्ट जनों को (अप सेधतु) दूर करे । हम लोग (आदित्यं) 'अदिति' अर्थात् सूर्य भूमि, माता पिता, पुत्र, राजा आदि से प्राप्त होने योग्य (मरुतां शर्म) विद्वान् जनों के सुख को (अशीमहि) प्राप्त करें। हम (देवानां तत्) विद्वान् जनों और दिव्य पदार्थों के उस (अवः) प्रेम, ज्ञान, और बल रक्षा आदि को (वृणीमहे) सदा चाहें, सदा प्राप्त करें ।

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (बर्हिः आसीदतु) आसनवत् प्रजा पर आ विराजे। (इडा) अन्न, भूमि, वाणी, ये (पिन्वताम्) सब को तृप्त, सुखी, करे। (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक (ऋक्वः) ऋचाओं, अर्चना के साधनों का जानने वाला, (सामभिः) साम गायनों से उद्गाता के समान (अर्चतु) पूज्यों का अर्चना करे और हम (जीवसे) जीवन के लाभ और रक्षा के लिये (मन्म) मनन करने योग्य (सु-प्र-केतम्) उत्तम, श्रेष्ठ ज्ञान और धन, गृह आदि को (धीमहि) धारण करें। (देवानां तत् अवः वृणीमहे) विद्वानों के हम उस परम ज्ञान, रक्षा, स्नेह आदि को नित्य चाहें। इति नवमो वर्गः ॥

दि॒वि॒स्पृशं॑ य॒ज्ञम॒स्माक॑मश्विना जी॒राध्व॑रं कृणुतं सु॒म्नमि॒ष्टये॑ ।
प्रा॒चीन॑रश्मि॒माहु॑तं घृ॒तेन॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या को प्राप्त करने वाले, सन्मार्ग पर चलने वाले और जितेन्द्रिय, उत्तम वेगवान् अश्वों के स्वामिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो (अस्माकम्) हमारे (इष्टये) इष्ट लाभ, इच्छापूर्त्ति और यज्ञादि की सफलता के लिये (यज्ञं) दान, सत्संग, पूजा, अर्चनादि को (दिवि-स्पृशम्) ज्ञानमय वा उत्तम कामनामय मार्ग मे जाने वाला, और (जीराध्वरं) जीवनधारी प्राणियो को नाश न करने वाला और (सुम्नं) सुखदायक (कृणुतम्) करो और (प्राचीन-रश्मिम्) आगे बढ़ने वाले रश्मियों से युक्त अग्नि को (घृतेन) घृत से (आहुतम् कृणुतम्) आहुतियुक्त करो । (२) परमेश्वर पक्ष में—(दिवि-स्पृशं) तेज, ज्ञान मे व्याप्त, (यज्ञं) सर्वपूज्य, (जीराध्वरं) सब जीवो के पालक (सुम्नं) सुखमय, (प्राचीन-रश्मिम्) प्रकट रश्मियो से युक्त, अग्नि, सूर्यवत् तेजस्वी, (घृतेन आहुतं) तेज से व्याप्त प्रभु का (अस्माकम् इष्टये कृणुतम्) हमारी देवपूजा के लिये हमें उपदेश करो। हम (तद् देवानां अवः अद्य वृणीमहे) देवो, विद्वानो के उस ज्ञान को प्राप्त करें ।

उप॑ ह्वये सु॒हवं॒ मारु॑तं ग॒णं पा॑व॒कमृ॒ष्वं स॒ख्याय॑ शं॒भुव॑म् ।
रा॒यस्पोषं॑ सौश्रव॒साय॑ धीमहि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥ ७ ॥

भा०—मै (सु-हवं) उत्तम यज्ञशील, सुखप्रद, उत्तम नाम को धारण करने वाले, (मारुतं गणम्) वायुवत् बलवान् पुरुषों के तुल्य, देह में प्राणगण को (उप ह्वये) अपने समीप बुलाऊ, उनको प्राप्त करूं। और (सख्याय) मित्र भावके लिये (शं भुवम्) शान्तिजनक, (ऋष्वं) महान् (पावकम्) सबको पवित्र करने वाले प्रभु की (उप ह्वये) स्तुति करता हूं। और (सौश्रवसाय) उत्तम सुखपूर्वक अन्न, धन, ज्ञानादि के

लाभ के लिये हम (रायः पोषम् धीमहि) धन के परिपोषक को धारण करें। (देवानां तद् अवः अद्य वृणीमहे) विद्वानों के उस २ ज्ञान, धन, बलादि को हम प्राप्त करना चाहे।

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम्।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

भा०—हम लोग (अपां पेरुम्) जलों के पालक मेघ वा समुद्रवत् प्रजाओं, और प्राणों के रक्षक, (देव-अव्यम्) विद्वानों से प्राप्य, कामनावान् जनों से स्वामीवत् स्नेह करने योग्य, (सु-हवं) सुखप्रद, सुगृहीत नाम वाले उत्तम दाता, (अध्वर-श्रियम्) यज्ञ की शोभा को धारण करने वाले, अविनाशी सम्पदा से युक्त, प्रभु को (भरामहे) धारण करें। और हम (सु-रश्मिम्) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य वा अश्व, सारथिवत् (सोमम्) जगत् वा देह के प्रेरक स्वामी के तुल्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यों के स्वामी, इन्द्रियों के अध्यक्ष, प्रभु आत्मा को (यमीमहि) संयम द्वारा प्राप्त करें। (तत् देवाना अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों का वह ज्ञान, और प्राणों का वह बल भी प्राप्त करें।

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ९ ॥

भा०—(वयम्) हम (अनागसः) पापरहित (जीव-पुत्राः) जीवित पुत्रों से युक्त, (जीवाः) स्वयं जीवित रहते हुए (सनित्वभिः) दानशील पुरुषो सहित, (सुसनिता तत् सनेम) सुखपूर्वक सेवन करने और दान आदि के द्वारा उस प्रभु का भजन, सेवा, आदि करें। और (ब्रह्म-द्विषः) विद्वानों, वेदों और आत्मा, परमात्मा के द्वेषी जन (एनः) पाप आदि अपराध को (विश्वक् भरेरत) सब प्रकार से भोगें, वे पाप का दण्ड प्राप्त करें। (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानों और दानशील पुरुषों के उस उत्तम स्नेह को प्राप्त करें।

ये स्थ मनोर्य॒ज्ञियास्ते शृणोतन॒ यद्वो॑ देवा ईमहे तद्द॑धातन ।
जैत्रं क्रतुं॑ रयिमद्वीरव॒द्यशस्तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे॥१०।१०॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (ये) जो (मनोः) मननशील ज्ञानमय आत्मा के (यज्ञियाः) पूजा करने में तत्पर, यज्ञ में रत (स्थ) हो, (ते) वे आप (शृणोतन) श्रवण करो, उस आत्मा का श्रवण करो। और हे (देवाः) दानशील, तेजस्वी पुरुषो ! हम (वः यत् ईमहे) आप लोगों से जो ज्ञान आदि की याचना करते हैं तत् (दधातन) उसको धारण कराओ, उसका हमे दान करो। हमें (जैत्रं क्रतुम्) सब संकटों पर विजय प्राप्त कराने वाले ज्ञान और कर्म बल, और (रयिमत् वीरवत् यशः) धनों और पुत्रों, प्राणो से युक्त यश, अन्न, बल आदि प्रदान करो। (अद्य देवानाम् अवः वृणीमहे) हम ज्ञानी, दानशील विद्वानो का वह ज्ञान, बल, रक्षण प्राप्त करें। इति दशमो वर्गः ॥

म॒हद॒द्य म॑ह॒तामा वृ॑णीमहेऽवो॑ दे॒वानां॑ बृ॒ह॒तामन॒र्वणा॑म् ।
यथा॒ वसु॑ वी॒रजा॑तं॒ नशा॑महै॒ तद्दे॒वानामवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥११॥

भा०—(अद्य) आज, हम लोग (महताम्) बड़े (अनर्वणाम्) अहिंसक और अनुपम, (बृहताम्) शक्ति, ज्ञान, आदि में बढ़े हुए (देवानाम्) विद्वानो, विजयार्थियो और दानियो का (अवः आवृणीमहे) शरण, रक्षण, सब ओर से चाहते हैं। (यथा) जिससे (वीर-जातं) हम वीर पुत्र, और (वीर-जातं वसु) वीरों से प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य को (नशामहै) प्राप्त करें। (देवानाम् अद्य तत् अवः वृणीमहे) हम विद्वानों के वही उत्तम बल ज्ञान, रक्षा आदि चाहते हैं।

म॒हो अ॒ग्नेः स॑मिधा॒नस्य॒ शर्म॒ण्यना॑गा मि॒त्रे वरु॑णे स्व॒स्तये॑ ।
श्रेष्ठे॑ स्याम सवि॒तुः सवी॑मनि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ अ॒द्या वृ॑णीमहे ॥१२॥

भा०—(महः) बड़े (समिधानस्य) अच्छी प्रकार से देदीप्यमान

उस प्रभु के (शर्मणि) परमानन्दमय सुख में रहे । हम (स्वस्तये) कल्याण को प्राप्त करने के लिये (मित्रे) स्नेहवान्, प्राणों के रक्षक (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ प्रभु के अधीन (अनागाः स्याम) पाप, अपराध से रहित होकर रहें । और (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक उस प्रभु के (श्रेष्ठे सवीमनि) सर्वश्रेष्ठ शासन में (स्याम) रहे । (देवानां तत् अवः अद्य वृणीमहे) हम विद्वानो का वह ज्ञान, बल, स्नेह प्राप्त करे ।

ये स॑वि॒तुः स॒त्यस॑वस्य॒ विश्वे॑ मि॒त्रस्य॑ व्र॒ते वरु॑णस्य दे॒वाः ।
ते सौभ॑गं वी॒रव॒द्गोम॒दप्नो॒ दधा॑तन॒ द्रवि॑णं चि॒त्रम॒स्मे ॥१३॥

भा०—(ये) जो (देवाः) विद्वान् जन (सत्य सवस्य मित्रस्य) सत्य ऐश्वर्य के स्वामी, सर्वस्नेही, मृत्यु से बचाने वाले (वरुणस्य) सब दुःखो के वारणकर्त्ता, सर्वश्रेष्ठ प्रभु के (व्रते) व्रत में तत्पर है, (ते विश्वे) वे सब (वीरवत्) वीरो से युक्त (गोमत्) वाणियो, भूमियो और पशुओ से समृद्ध, (सौभगं) उत्तम ऐश्वर्य, और (अप्नः) उत्तम ज्ञान, कर्म और (चित्रं) संग्रह करने योग्य नाना, अद्भुत (द्रविणं) धन (अस्मे) हमें (दधातन) प्रदान करे ।

स॒वि॒ता प॒श्चाता॑त्सवि॒ता पु॒रस्ता॑त्सवि॒तोत्त॒रात्ता॑त्सवि॒ताध॒रात्ता॑त् ।
स॒वि॒ता नः॑ सुवतु स॒र्वता॑तिं सवि॒ता नो॑ रासतां दी॒र्घमायुः॑ ॥१४॥११

भा०—(सविता पुरस्तात्) समस्त जगत् का उत्पादक प्रभु हमारे आगे, (सविता पश्चातात्) सबका सन्मार्ग मे संचालक प्रेरक प्रभु हमारे पीछे हो, (सविता उत्तरात्तात्) ऐश्वर्यदाता प्रभु हमारे उत्तर में, बाये या ऊपर हो और (अधरात्तात् सविता) वह सर्वैश्वर्य का उत्पादक हमारे दक्षिण मे या नीचे हो । (सविता नः सर्वताति सुवतु) वह सर्वोत्पादक प्रभु हमारा सब अभिलषित सुख प्रदान करे । (सविता नः दीर्घम् आयुः रासतां) वह सर्वप्रेरक, सर्वप्रभु जगदीश्वर हमे दीर्घ आयु प्रदान करे ।
इत्येकादशो वर्गः ॥

[३७]

अभितपाः सौर्य ऋषिः ॥ छन्दः—१–५ निचृज्जगती । ६–९ विराड् जगती । ११, १२ जगती । १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

नमो॑ मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ चक्ष॑से म॒हो दे॒वाय॒ तदृ॒तं स॑पर्यत ।
दू॒रे॒दृशे॑ दे॒वजा॑ताय के॒तवे॑ दि॒वस्पु॒त्राय॒ सूर्या॑य शंसत ॥ १ ॥

भा०—(मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे) मित्र, दिन और वरुण रात्रि दोनो को दिखाने वा प्रकट करने वाले (महः देवाय) बड़े भारी प्रकाशक सूर्य के (ऋतम्) तेज को जिस प्रकार आप लोग सर्व श्रेष्ठ मानते और उस का उपयोग लेते है उसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! (मित्रस्य वरुणस्य) परम स्नेही, मृत्यु से बचाने वाले और सर्वश्रेष्ठ रूप के (चक्षसे) दिखाने वाले (महः देवाय) बड़े भारी दाता, प्रकाशस्वरूप प्रभु के (तद् ऋतं) उस सत्य ज्ञान का (सपर्यत) पूजा, मान, आदर करो, उसका श्रद्धा-पूर्वक उपयोग लो । और (दूरे-दृशे) दूर से दीखने वाले, (देव-जाताय) समस्त प्रकाशमान पदार्थों और विद्वानो मे प्रकट होने वाले (केतवे) ज्ञानस्वरूप, (दिवः पुत्राय) महान् आकाश के पुत्रवत् (सूर्याय) सूर्य के तुल्य तेजस्वी एवं (दिवः पुत्राय) ज्ञान-प्रकाश के द्वारा हृदय मे प्रकट (सूर्याय) सबके प्रेरक प्रभु की ही (शंसत) स्तुति करो ।

सा मा॑ स॒त्योक्तिः॒ परि॑ पातु वि॒श्वतो॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ त॒तन॒न्नहा॑नि च ।
विश्व॑म॒न्यन्नि वि॑शते॒ यदेज॑ति वि॒श्वाहापो॑ वि॒श्वाहोदे॑ति॒ सूर्यः॑ ॥२॥

भा०—(यत्र) जिसके आश्रय (द्यावा च अहानि च) दिन और रात्रियें भी (ततनन्) उत्पन्न होती है, (यद् एजति) जो चल रहा है वह (अन्यत् विश्वम्) जडसे भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय (नि-विशते) वसा है और जिसके आश्रय (आपः विश्वाहा) सर्वदा जल, नदी, समुद्रादि, प्राण, लिंग, शरीरादि, और समस्त प्रजाएं स्थित हैं, (विश्वाहा सूर्यः उदेति)

जिसके आश्रय पर सूर्य उदय को प्राप्त होता है। (सा सत्योक्तिः) वह सत्य वचन (मा विश्वतः परिपातु) मेरी सब प्रकार से रक्षा करे।

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य॥ ३॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार सूर्य (एतशेभिः पतरैः) अति वेग से जाने वाले अश्वों के तुल्य श्वेत किरणों से (रथर्यति) व्यापता, प्राप्त होता है, और कोई (अदेवः न निवासते) अप्रकाशित पदार्थ नहीं रह जाता है, (प्राचीनं रजः अनु वर्त्तते) तब उसका एक प्रकाश पूर्व दिशा की ओर प्रकट होता है, और (अन्येन ज्योतिषा याति) दूसरे, पश्चिमगामी, ज्योति से जाता, अस्त होता है। इसी प्रकार हे (सूर्य) सूर्यवत् उदय अस्त होने वाले आत्मन्! (यत्) जो तू (पतरैः) गमनशील (एतशेभिः) अश्ववत् प्राणों से (रथर्यति) देह रूप रथ से प्राप्त होता है, तब (ते) तेरा कोई भी (प्रदिवः) पुराना अंश (अदेवः) अप्रकाशित वा अप्राणित (न निवासते) नहीं रह जाता। चक्षु, श्रोत्र आदि या प्रत्येक देह का अवयव प्राण से युक्त रहता है। हे (सूर्य) उत्पन्न होने वाले वा प्राणों के प्रेरक आत्मन्! (अन्यत्) एक विशेष (प्राचीनं) अति उत्तम, प्रथम प्रकट होने वाले (रजः) तेज, जल वा उत्पादक वीर्य (अनु वर्त्तते) उत्पादक रूप से प्रकट होता, वही निरन्तर विकसित होकर प्राणिरूप में प्रकट होता है, और (अन्येन ज्योतिषा) एक दूसरे ही प्रकार के तेज से तू इस देह से (उत् यासि) उत्क्रमण करता है। आत्मा की देह में अवक्रान्ति सूर्य के उदय और अस्तमयवत् होती है। जिसका वर्णन बृहदारण्यक में याज्ञवल्क्य-जनक-संवाद में वर्णित है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव॥ ४॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन् ! सर्वप्रेरक ! सर्वोत्पादक प्रभो ! तू (येन ज्योतिषा तमः बाधसे) जिस तेज से अन्धकार को दूर करता है और (येन भानुना) जिस तेजः-प्रकाश से (विश्वम् जगत् उत् इयर्षि) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है, (तेन) उस तेज से तू (अस्मत्) हमसे (विश्वाम्) समस्त (अनिराम्) अन्न जल के अभाव, (अनाहुतिम्) यज्ञादि के अभाव, (अमीवाम्) रोग व्याधि, (दुःस्वप्न्यं) दुःस्वप्न आदि के कारण को (अप सुव) दूर कर। पक्षान्तर में सूर्य का तेज अन्धकार को नाश करता, जगत् के प्राणियो को जगाता, जल, अन्न को प्रदान करता है, रोग और दुःस्वप्न आदि दोषो को दूर करता है।

विश्व॑स्य॒ हि प्रेषि॑तो॒ रक्ष॑सि व्र॒तमहे॑ळयन्नु॒च्चर॑सि स्व॒धा अनु॑।
यद॒द्य त्वा॑ सूर्योपब्र॒वाम॑है॒ तं नो॑ दे॒वा अनु॑ मंसीरत॒ क्रतु॑म् ॥ ५ ॥

भा०—हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (प्रेषितः) सब भक्तों द्वारा खूब चाहा जाता है। तू (अहेडयन्) किसी का अनादर न करता हुआ, (विश्वस्य हि व्रतम् रक्षसि) सबके व्रतो, कर्मों और जगत् के परम विधान, नियम, व्यवस्था की रक्षा करता है। हे प्रभो ! (अद्य) आज (यत् त्वा उप ब्रवामहै) जिस कर्म की हम तुझ से उपासना द्वारा प्रार्थना करते हैं (तत् क्रतुम्) उस कर्म का (देवा अनु मंसीरत) देव, विद्वान् गण हमें अनुमति देवे।

तं नो॒ द्यावा॑ पृथि॒वी तन्न॒ आप॒ इन्द्रः॑ शृण्वन्तु म॒रुतो॒ हवं॒ वचः॑।
मा शूने॑ भूम॒ सूर्य॑स्य सं॒दृशि॑ भ॒द्रं जीव॑न्तो जर॒णाम॑शीमहि॥१२

भा०—(द्यावापृथिवी) माता और पिता, (नः तं हवं शृण्वन्तु) हमारे उस आह्वान, ग्राह्य वचन आदि को श्रवण करे। (आपः) आप्त जन हमारे (तं) उस आह्वान को सुनें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीरजन और (मरुतः) वायुवद् बलवान्, विद्वान् लोग (नः वचः शृण्वन्तु) हमारे

वचन सुनें। (सूर्यस्य सं-दृशि) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु वा शासक के सम्यक् प्रकाशमय न्याय-दर्शन के अधीन हम (शूने मा भूम) शून्य, निस्सार वा बड़े दुःख में न रहें, प्रत्युत (भद्रं जीवन्तः) अति सुखदायी जीवन को व्यतीत करते हुए (जरणाम् अशीमहि) वृद्ध-अवस्था को प्राप्त हों।

इति द्वादशो वर्गः॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य॥७॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य, सूर्यवत् सर्वोत्पादक सर्वप्रकाशक प्रभो! हम, (विश्वाहा) सदा, (सु-मनसः) शुभ मन वाले (सु-चक्षसः) उत्तम बाह्य नयन, और ज्ञान-नयनों से सम्पन्न, (प्रजावन्तः) उत्तम प्रजा वाले, सुसन्तानयुक्त, (अनमीवाः) रोगरहित, (अनागसः) निरापराध, निष्पाप हों। हे (मित्र-महः) स्नेही जनों से पूज्य! स्नेही जनों के आदर करने हारे वा मृत्यु से बचाने वाले महान्! हम तुझे (दिवे-दिवे उत् यन्तं पश्येम) दिन प्रतिदिन ऊपर उठता हुआ देखें। हम (जीवाः) जीवित रहते हुए प्राणिगण, (ज्योक् प्रति पश्येम) चिरकाल तक तेरा प्रत्यक्ष दर्शन करें।

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य॥८॥

भा०—हे (विचक्षण) विविध प्रकारों से जगत् के देखने हारे! (चक्षुषे-चक्षुषे) प्रत्येक आंख के लिये (मयः) सुख और (महि ज्योतिः बिभ्रतम्) बड़े भारी तेज को धारण करते हुए (भास्वन्तं) अति प्रकाश से चमकते हुए और, (बृहतः पाजसः परि) बड़े भारी समुद्र के ऊपर उदय होते सूर्यवत् (बृहतः पाजसः परि) बड़े भारी बल से चलने वाले विश्व के संचालक काल के ऊपर (आरोहन्तं) चढ़े हुए, उसके भी शासक तुझको हे (सूर्य) सर्वसञ्चालक प्रभो! सूर्य! (त्वा) तुझे हम (प्रति पश्येम) प्रत्यक्ष साक्षात् करें।

यस्य॑ ते॒ विश्वा॒ भुव॑नानि के॒तुना॒ प्र चेर॑ते॒ नि च॑ वि॒शन्ते॑ अ॒क्तुभिः॑ ।
अ॒ना॒गा॒स्त्वेन॑ हरिकेश सूर्या॒ह्नाह्ना॑ नो॒ वस्य॑सावस्यसोदि॑हि ॥९॥

भा०—हे (हरि-केश) तेजोयुक्त किरणो वाले ! क्लेश समूहों को हरण करने वाले ! (यस्य ते) जिस तेरे (केतुना) ज्ञान-प्रकाश से (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (प्र ईरते च) अच्छी प्रकार चलते हैं और (ते अक्तुभिः) तेरे प्रकाशो से (प्रति विशन्ते च) अच्छी प्रकार स्थिर है। वह तू (अनागास्त्वेन) अपराध पाप आदि से रहित करता हुआ (वस्यसा-वस्यसा) अति श्रेयस्कर (अह्ना-अह्ना) दिनोदिन (उत् इहि) उदय को प्राप्त हो।

शं नो॑ भव॒ चक्ष॑सा॒ शं नो॒ अह्ना॒ शं भा॒नुना॒ शं हि॒मा शं घृ॒णेन॑ ।
यथा॒ शमध्व॒ञ्छमस॑द्दुरो॒णे तत्सू॑र्य॒ द्रवि॑णन्धेहि चि॒त्रम् ॥ १० ॥

भा०—हे (सूर्य) सर्वप्रेरक ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (चक्षसा) सर्वप्रकाशक, सर्वशक्तिमान् तेज से (नः शं भव) हमें शान्तिदायक हो। (नः अह्ना शं) दिनवत् अविनश्वर बल से हमें शान्ति दे। (हिमा शं) तू शीतलस्वरूप से हमें शान्ति दे। (घृणेन शम्) अपने तापयुक्त तेजस्वी स्वरूप से हमें शान्ति दे। (भानुना शम्) हमे अपने कान्तिमय रूप से शान्ति दे। तू (तत्) वह परम (चित्रं द्रविणं धेहि) ज्ञानमय, सञ्चय-योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर (यथा) जिससे (अध्वन् शम् असत्) जीवन-मार्ग मे हमें शान्ति प्राप्त हो। (दुरोणे शम् असत्) गृह मे हमें शान्ति प्राप्त हो।

अ॒स्माकं॑ देवा उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ शर्म॑ यच्छत द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
अ॒दत्पिब॑दू॒र्जय॑मान॒माशि॑तं॒ तद॒स्मे शं योर॑र॒पो द॑धातन ॥ ११ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् तेजस्वी, किरणोंवत् प्रकाश, जल, अन्न, सुख, आरोग्यादि देनेहारे जनो ! आप लोक (उभयाय जन्मने) जन्म

लेने वाले दोनो प्रकार के (द्विपदे चतुष्पदे) दोपाये बन्धु, भृत्य आदि और चौपाये गौ, अश्व आदि सब को (शर्म यच्छत) सुख प्रदान करो। और (अदत्-पिबत्) खाया पिया हुआ और (आशितम्) प्राप्त किया गया, अन्यों द्वारा खिलाया गया पदार्थ भी (ऊर्जयमानम्) बल उत्पन्न करने वाला हो। आप लोग (अस्मे) हमे (अरपः) निष्पाप (शं योः) शान्तिदायक, दुःखनाशक वस्तु (दधातन) प्रदान करो।

यद्वो॑ देवाश्चकृ॒म जि॒ह्वया॑ गु॒रु मन॑सो वा॒ प्रयु॑ती देव॒हेळ॑नम्।
अरा॑वा॒ यो नो॑ अ॒भि दु॑च्छुना॒यते॒ तस्मि॒न्तदेनो॑ वसवो॒ नि धे॑तन
॥ १२ ॥ १३ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के प्रति (जिह्वया) वाणी द्वारा (यत्) जो हम (गुरु देवहेडनम् चकृम) भारी विद्वानों का अनादर करे (वा) अथवा (मनसः प्रयुती) मन के प्रयोग से यदि अपराध करे तो (यः) जो (नः) हमारे बीच (अरावा) अदानशील, दुष्ट शत्रु (नः अभि) हम पर सब ओर से (दुच्छुनायते) दुःख कष्ट देना चाहता है, हम पर पापाचरण करता है (तस्मिन्) उसके निमित्त उस पर हे (वसवः) वसु, विद्वान् जनो ! (तत् एनः) वह पाप (नि धेतन) स्थापित करा। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[३८]

इन्द्रो मुष्कवान् ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २ पाद-निचृज्जगती। ३, ४, विराड् जगती॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अ॒स्मिन्न॑ इन्द्र पृत्सु॒तौ यश॑स्वति॒ शिमी॑वति॒ क्रन्द॑सि॒ प्राव॑ सा॒तये॑।
यत्र॒ गोषा॑ता धृषि॒तेषु॑ खा॒दिषु॒ विष्व॒क्पत॑न्ति दि॒द्यवो॑ नृ॒षाह्ये॑॥ १॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य वा मेघ (यशस्वति शिमीवति)

अन्न जल से युक्त, कर्मवान् वायु से युक्त अन्तरिक्ष में (पृत्सुतौ क्रन्दसि) सब प्राणियों के पालक अन्न के उत्पत्ति के लिये गर्जता है और (गो-साता) भूमि पर पड़ते हुए (खादिषु धृषितेषु) जलग्राही रश्मियों के असह्य तापवान् होने पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती विजुलियें पड़ती है, उसी प्रकार (यत्र) जिस (गो-साता) भूमि आदि के लाभ करने के निमित्त (नृ-साह्ये) नायक वीर पुरुषों से विजय करने योग्य युद्ध में (धृषितेषु) बलात्कार करने वाले अति ढीठ, (खादिषु) एक दूसरे को खाजाने वाले शत्रुओं पर (दिद्यवः) चमचमाते, वा देह को खण्ड २ कर देने वाले अस्त्र-शस्त्र (पतन्ति) वेग से जाते हैं। (अस्मिन्) इस (पृत्सुतौ) नाना सेनादि सञ्चालन करने योग्य (यशस्वति) यशोदायक, (शिमीवति) नाना कर्मों वाले युद्ध में हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक, ऐश्वर्यवन् ! (नः क्रन्दसि) तू हमारे बीच मेघवत् गर्जता है, हमें (क्रन्दसि) बुलाता, आज्ञा देता है, वह तू (सातये) धनादि लाभ के लिये (नः प्र अव) हमारी खूब रक्षा कर।

स नः॑ क्षु॒मन्तं॒ सद॑ने॒ व्यू॑र्णुहि॒ गोअ॑र्णसं र॒यिमि॑न्द्र श्र॒वाय्य॑म् ।
स्याम॑ ते॒ जय॑तः शक्र मे॒दिनो॒ यथा॑ व॒यमु॒श्मसि॒ तद्व॑सो कृधि ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सत्य-ज्ञान के दर्शन करने कराने हारे ! जिस प्रकार सूर्य (क्षुमन्तं गो-अर्णसं रयिम् वि ऊर्णोति) अन्नयुक्त भूमि के धनरूप ऐश्वर्य को प्रकट करता है उसी प्रकार (सः) वह तू (नः सदने) हमारे गृह, भवन, आश्रम में (क्षुमन्तम्) शब्द-उपदेश से युक्त, (श्रवाय्यम्) श्रवण करने योग्य (गो-अर्णसम्) वेदवाणी और भूमि रूप धन से सम्पन्न (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य को (वि ऊर्णुहि) विविध प्रकार से प्रकट कर। (जयतः ते) तेरे विजय करते हुए हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हम (मेदिनः स्याम) परस्पर स्नेही, बलवान् योद्धा हों। हे (वसो) सब को बसाने वाले ! सब में बसने वाले प्रभो !

स्वामिन्! (यथा वयम् उश्मसि) हम जिस प्रकार कामना करे तू (तत् कृधि) वह कर।

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ३

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतसी प्रजाओ द्वारा प्रस्तुत, मुख्य शासक! (यः) जो (नः) हमारे बीच (दासः) हमारा भृत्य, काम करने वाला, वा (आर्यः) श्रेष्ठ स्वामी, (अदेवः) आदानशील, हमारे अधिकार और ऋण आदि को न देता हुआ (युद्धये चिकेतति) युद्ध करने के लिये सोचता है, (ते) तेरे वे सब शत्रु लोग (अस्माभिः) हम द्वारा (सु-सहाः सन्तु) सुख से पराजित हो। और (त्वया) तुझ द्वारा (वयं) हम भी (तान्) उन शत्रुओ को (संगमे) संग्राम में (वनु-याम) विनाश करे।

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४॥

भा०—(यः) जो (दभ्रेभिः) छोटे या स्वल्पबल और (यः च) जो (भूरिभिः) बहुता से या बहुत बलशालियो से भी (हव्यः) स्तुति योग्य है, (यः) जो (नृ-साह्ये अभीके) वीर नायको द्वारा विजय योग्य संग्राम में (वरिवः-वित्) उत्तम धन प्राप्त कराने हारा है, (वि-खादे) विविध प्रकार से मनुष्यो को नाश करने वाले संग्राम मे (सस्निं) निष्णात (श्रुतं) प्रसिद्ध (तं) उस बहुश्रुत, (इन्द्रम्) तेजस्वी, सूर्यवत् ऐश्वर्यप्रद, सेनापति (नरम्) नायक को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (अर्वाञ्चं करामहे) अपने अभिमुख साक्षात् करे।

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम्।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ५।१४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! आत्मन् ! (त्वाम्) तुझको मैं (स्व-वृजम्) स्वयमेव अपने सामर्थ्य से सब बन्धनों को काटने वाला, असङ्ग ही (शुश्रव) श्रवण करता हूँ। और तुझ को भी (अनानुदम्) दूसरे के दान की अपेक्षा न करने वाला तथा (रध्र-चोदनम्) वशगामियों को सन्मार्ग में चलाने वाला (शुश्रवे) सुनता हूँ। हे (वृषभ) बलशालिन् नरश्रेष्ठ ! तू (कुत्सात्) निन्दित मार्ग से (प्र मुञ्चस्व) अपने को वा अन्यों को शीघ्र मुक्त कर (इह परि आगहि) यहां आ। (किम् उ) क्या (त्वावान्) तेरे जैसा ज्ञानी (मुष्कयोः बद्धः) मुष्कों, अण्डकोशों में बंधा अर्थात् भोग्य इन्द्रिय सुखादि में वा आत्मा पक्ष में—वा गर्भाशयादि स्थानों पर मनुष्य पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि योनियों में बंधा (आसते) रह सकता है।

(२) इसी प्रकार पूर्ण, विद्यावान् जो पुरुष जितेन्द्रिय होकर वीर्यसेचन में समर्थ ब्रह्मचारी हो वह (कुत्सात्) उपदेष्टा आचार्य-गृह से पितृगृह में आवे। वह क्या अत्र सदा (मुष्कयोः बद्धः) अण्डकोशों में बद्ध, लंगोट बन्द ही रहेगा नहीं। वह पूर्व मन्त्रानुसार (सस्नि) स्नातक होकर गृहस्थ में प्रवेश करे। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३९]

घोषा काक्षीवती ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ७, ११ १३ निचृज्जगती २, ८, ९, १२, जगती । ३ विराड् जगती । ४, ५ पादनिचृज्जगती । १० आर्ची स्वराड् जगती १४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासुस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथीवत् वा प्रजा राजावत् अश्वों

इन्द्रियों के स्वामी जनो वा स्त्री पुरुषो! (यः) जो (वां) तुम दोनों में से (परि-ज्मा) सब ओर बलपूर्वक जानने वाला, (सुवृत्) उत्तम आचरणवान्, (सुवृत् रथः) सुखपूर्वक चलने वाले रथ के समान आनन्दपूर्वक उद्देश्य तक पहुंचाने वाला है, वह उत्तम नायक उपदेष्टा, (दोषाम् उषसः) रात दिन (हविष्मता) अन्नादि साधनो वाले जन से (हव्यः) आदर सत्कार करने योग्य है। (वाम्) आप मे से (तं) उसी के (सुहवम् नाम) सुगृहीत नाम वाले (पितुः न नाम) पिता के वा अन्न के समान पालक स्वरूप को (इदम्) इस २ प्रकार (हवामहे) बुलाते, पुकारते और (पितुः इदं नाम) पिता, पालक के इस पद के लिये स्वीकार करे।

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् २

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! वा वेगवान् साधनों से सम्पन्न राजा सेनापति, वा सेनापति सैन्यादि जनो! आप दोनो (सूनृताः) उत्तम २ सत्य वाणियों का (चोदयतम्) उपदेश करे। और (धियः पिन्वतम्) अनेक उत्तम कर्मों और प्रजापोषक, धारक उद्योगों को समृद्ध करें। (पुरम्-धीः उत् ईरयतम्) अनेक मतियों और सद्-विचारों का उपदेश करो। (उश्मसि) हम जो २ चाहते हैं (नः भागम्) हमारे उस सेवनीय, ऐश्वर्य को (कृणुतम्) प्रदान करो। और और (नः) हमारे (मघवत्सु) ऐश्वर्यवान् जनों के (सोमं न चारु) सोम, वैद्यों के तुल्य ओषधि के समान उत्तम ऐश्वर्य (कृतम्) उत्पन्न करो।

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित्।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ३

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख स्थान पर विराजने और कभी असत्य

भाषण और असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! (युवम्) आप दोनो परस्पर (अमा-जुरः) एक दूसरे के साथ जरावस्था को प्राप्त होने वाले सहचारी संगी के (भगः) सेवन करने, सुख देने वाले ऐश्वर्य के तुल्य एक दूसरे के धन और ऐश्वर्य-स्वामी के तुल्य एक दूसरे के धनी, मालिक (भवथः) होवो । आप दोनो (अनाशोः चित्) भोजन आदि से रहित भूखे वा मन्द गति वाले के भी (अवितारा भवथः) रक्षा करने वाले होवो । आप दोनो (अपमस्य चित् अवितारा भवथः) जाति या गुणो आदि में निकृष्ट, जघन्य से जघन्य वर्ण के वा छोटे से छोटे जीव के भी रक्षक होवो । आप दोनों (अन्धस्य चित्) अन्धे के (कृशस्य चित्) कृश, दुर्बल तक के रक्षक होवो । (युवाम्) आप दोनो को (रुतस्य चित्) पीड़ित पुरुष के (भिषजा) रोग दुःखादि को वैद्यो की तरह से चिकित्सा कर दूर करने वाले (आहुः) कहते हैं । (२) इसी प्रकार वैद्य भी (अमाजुरः भगः) पीड़ा ने जीर्ण रोगी के सर्वस्व सुखप्रद है । (अनाशोः) जिसको भूख न लगे, कण्ठशूक वा उदर-रोग आदि से खा न सकता हो, (अपमस्य) जिसकी 'मा' अर्थात् ज्ञानशक्ति, चेतना, सुध-बुध भी दूर होगई हो ऐसे अपस्मार आदि से पीड़ित, (अन्धस्य) नेत्रशक्ति से रहित, (कृशस्य) राजयक्ष्मा आदि से दुर्बल ऐसे (रुतस्य) पीड़ार्त्त रोगी के भी रक्षक होते है उनको (भिषजा) 'भिषक्' ऐसा नाम देते हैं ।

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे प्राण अपानो ! (यथा रथं पुनः चरथाय तक्षथुः) जिस प्रकार रथ को पुनः चलने के लिये गढ़ कर ठीक कर देते है उसी प्रकार आप दोनों भी (सनयं च्यवानं) उत्तम नीति से युक्त, आगे बढने वाले नायक को (युवानं) जवान, बलवान् करके (पुनः) फिर भी (चरथाय) चलने के लिये समर्थ (तक्षथुः)

बनाओ। प्राण अपान ये दोनों सामर्थ्य ही (सनयं च्यवानम्) सनातन, नित्य आत्मा को पुनः-पुनः युवा बनाते, उसे कर्मफल भोगार्थ देह प्रदान कराते हैं। तुम दोनों अश्व रथ आदि वेगवान् साधनों के स्वामी जनो! (तौग्रयम्) प्रजापालक पद पर विद्यमान राजा को (अद्भ्यः परि निर् ऊहथुः) आप्त प्रजाओं के ऊपर शासकवत् धारण करो। (वाम् ता) तुम दोनों के वे (विश्वा) सब कार्य (सवनेषु प्र-वाच्या) यज्ञ, अभिषेक आदि के अवसरों में उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य हैं।

पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा।
ता वां नु नव्यावव॑से करामहेऽयं नासत्या अदरिर्यथा दधत् ५॥१५

भा०—हे (अश्विनौ) उत्तम, विद्यासम्पन्न, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (वां) तुम दोनों के (पुराणा वीर्या) पूर्व काल के श्रेष्ठ २ वीर-जनोचित कार्यों का मैं (जने) मनुष्यों के बीच (प्र-ब्रव) अच्छी प्रकार कथन करूं। (अथो ह) और आप दोनों (मयः-भुवा) सुख उत्पन्न करने वाले, (भिषजा) रोगों को दूर करने वाले, (आसथुः) होवो। हे (नासत्या) नासिका में विद्यमान प्राणों के समान प्रमुख जनो! कभी असत्य आचरण न करने हारो! आप दोनों (नव्यौ) स्तुति योग्य जनों को (नु) शीघ्र ही (अवसे) रक्षार्थ नियुक्त (करामहे) करें। (यथा) जिससे (अयम् अरिः) यह स्वामी मनुष्य (अत् दधत्) सत्य को धारण करे। (२) इसी प्रकार प्राण और अपान भी शरीर के सुखप्रद और रोगनाशक हैं, वे दोनों शरीर के रक्षक हैं जिसमें स्वामी आत्मा (अत्) अन्न को धारण करता है। इति पञ्चदशो वर्गः॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम्।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम्॥६॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में पारगत गुरुजनो! (वा) आप

दोनों को (इयम्) यह मैं ब्रह्मचारिणी, राजा वा सेनापति को प्रजा के तुल्य (अह्वे) बुलाती, प्रार्थना करती हूँ। आप दोनों (पुत्राय इव पितरा) पुत्र को माता पिता के समान (मह्य) मुझे (शिक्षतम्) ज्ञान प्रदान करो। मैं (अनापिः) बन्धुरहित, (अज्ञाः) ज्ञानरहित, (असजात्या) समान गुणादि वाले अनुरूप पुरुष से रहित, और (अमतिः) सन्मति से रहित हूँ। आप दोनो (तस्याः अभिशस्तेः पुरा) उस नाना प्रकार की 'अभिशस्ति' निन्दा आदि प्राप्त होने के पूर्व ही, मुझे (अव स्पृतम्) पालन करो। अज्ञान और अनाचारादि के कारण भावी में होने वाली निन्दादि से पूर्व ही शिक्षक जन शिष्य, शिष्या आदि प्रजा की रक्षा करें।

युवं रथे॑न विम॒दाय॑ शु॒न्ध्युवं॒ न्यू॑हथुः पुरुमि॒त्रस्य॒ योष॑णाम्।
युवं हवं॑ वध्रिम॒त्या अ॑गच्छतं यु॒वं सुषु॑तिं चक्रथुः पुर॑न्धये ॥७॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! (युवं) आप दोनो (वि-मदाय) विशेष हर्षयुक्त, प्रसन्न पुरुष के सुख के लिये (पुरु-मित्रस्य) बहुतों के स्नेही, वा बहुत मित्रों से युक्त पुरुष की (शुन्ध्युवम्) शुद्ध हुई, निर्दोष, (योषणाम्) प्रेमयोग्य कन्या को (नि ऊहथुः) नियमपूर्वक विवाह द्वारा प्राप्त कराओ। और (युवम्) आप दोनों (वध्रिमत्याः) वशीभूत इन्द्रियों से युक्त जितेन्द्रिय स्त्री के (हवम्) सादर आह्वान और प्रार्थना को (आ गच्छतम्) प्राप्त करो। (युवम्) तुम दोनों (पुरंधये) पुर के रक्षक के समान गृह की रक्षा करने वाले स्त्री वा पुरुष के लिये (सु-सुतिम्) उत्तम ऐश्वर्य वा अन्न वा उत्तम प्रेरणा (चक्रथुः) करो।

युवं विप्र॑स्य जर॒णामु॑पेयुषः॒ पुनः॑ क॒लेर॑कृणुतं॒ युव॒द्वयः॑।
यु॒वं वन्द॑नमृश्यदा॒दुदू॑पथुर्यु॒वं स॒द्यो वि॒श्पला॒मेत॑वे कृथः ॥ ८ ॥

भा०—(युवं) आप दोनो (जरणाम् उपेयुषः) स्तुतिकारिणी वाणी को प्राप्त होने वाले (कलेः) ज्ञानवान् और (विप्रस्य) विविध ज्ञानों में

अन्यों को पूर्ण करने वाले पुरुष के (वयः) अन्न, जीवन और बल को (पुनः) बार २ (युवत्) हृष्ट पुष्ट, समृद्ध (अकृणुतं) करो। (युवं) तुम दोनों (वन्दनं) अभिवादन और स्तुति एवं ईश्वर का गुण वर्णन करने वाले भक्त जन को (ऋष्यदात्) कष्टदायी दुःख से (उद्-ऊपथुः) उद्धार करो। और (विश्पलाम्) प्रजा को पालन करने वाली सेना को (सद्यः एतवे) अति शीघ्र चलने में योग्य (कृथः) करो।

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृषणा) सुखों की वर्षा करने वाले बलवान् प्राणों के तुल्यवत् हे (अश्विना) विद्या में निष्णात स्त्री पुरुषो! आप लोग (गुहा हितम्) देहरूप गुफा वा बुद्धि में स्थित, (ममृवासं) प्राण-त्याग करने वाले (रेभम्) शब्द वा उपदेश करने वाले, जीव को (उत् ऐरयतम्) ऊपर उठाओ। (युवं) तुम दोनो (सप्त-वध्रये) सातों को निर्बल कर अपने वश करने वाले (अत्रये) विविध कर्मफलों के भोक्ता जीव के लिये (उत) और (तप्तं) तपे हुए, संतापदायी (ऋबीसम्) आग वाले भाड के समान दुःखदायी देहादि-बन्धनकारी कारण को भी (ओमन्वन्तम्) नाना रक्षाओं से युक्त सुखदायी (चक्रथुः) बनाते हो।

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम्।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् १०।१९

भा०—हे (अश्विना) देह में व्यापक प्राण-उदानवत् (युवं) आप दोनों (पेदवे) ज्ञान करने वाले, वा कर्म फल प्राप्त करने वाले जीव को (नवभिः नवती) ९९ (वाजैः) बलों और सामर्थ्यों से युक्त (वाजिनम्) वेग, बल, ज्ञान और नाना वाणी वा विभूतियों से युक्त, (अश्वम्) नाना भोगों से सम्पन्न, कर्म फलों के भोक्ता, (श्वेतम्) वृद्धिशील, शुभ्र, और

(चर्कृत्यं) नये कर्म करने में समर्थ देह वा वीर पुरुष को अश्व के समान (ददथुः) प्रदान करते हो। और इसी प्रकार (नृभ्यः) सभी जीवों को (द्रावयत्-सखं) अपने मित्र साथियों को द्रुतगति से चलाने वाले, (मय·-भुवम्) अति सुखदायक, (हव्यं) अति स्तुत्य, स्वीकार करने योग्य, अन्न के तुल्य (भग न) सेवनीय, ऐश्वर्य के तुल्य कर्मफल के अनुरूप देह प्रदान करते हो। इति षोडशो वर्गः ॥

न तं रा॑जानावदिते॒ कुत॑श्च॒न नांहो॑ अश्नोति दुरि॒तं नकि॑र्भ॒यम्।
यम॑श्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरो॒रथं॑ कृणु॒थः पत्न्या॑ स॒ह ॥११॥

भा०—हे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त, प्राण अपानवत् देह और राष्ट्र में व्याप्त एवं आशुगामी प्राणों के तुल्य यानों पर वश करने वाले रथी सारथिवत् जनो ! (सु-हवा) सुख देने वाले, शुभ नाम से पुकारने योग्य, सुगृहीत नाम वाले (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने वा दुःखों को दूर करने वाले व्यवहारों वाले होकर (यम्) जिसको (पत्न्या सह) सब पालक शक्ति से सहित (पुरः-रथम्) अग्रगामी रथ वाला, वीर (कृणुथः) कर देते हो। हे (राजाना) राजा रानी, शुभगुणों से चमकने वालो ! हे (अदिते) माता पितावत् सूर्यवत् तेजस्वियो ! (तं) उसका (अंहः) पाप (कुतः चन) कहीं से भी (न अश्नोति) नहीं प्राप्त होता। (न दुरितं) न कोई दुष्ट कर्म उसको प्राप्त होता और (नकिः भयम्) न कोई भय उसे लगता है।

आ तेन॑ यातं॒ मन॑सो॒ जवी॑यसा॒ रथं॒ यं वा॑मृ॒भव॑श्च॒क्रुर॑श्विना।
यस्य॒ योगे॑ दुहि॒ता जाय॑ते दि॒व उ॒भे अह॑नी सु॒दिने॑ वि॒वस्व॑तः १२

भा०—हे (अश्विना) विद्यावान्, जितेन्द्रिय, अश्वों के समान इन्द्रियों को सन्मार्ग में लेजाने में कुशल स्त्री पुरुषो ! (यं) जिस सुखदायक (रथं) गृहस्थरूप रथ को (ऋभवः चक्रुः) शिल्पी जनों के

तुल्य सत्य का प्रकाश करने वाले विद्वान् जन उपदेश करते हैं (तेन) उससे (मनसः जवीयसा) मन और ज्ञान के उत्तम वेग से चलने वाले, उस रथ से (आयातम्) आओ जाओ। और (यस्य योगे) जिसके योग होने वा जुड़ने पर (दिवः दुहिता जायते) तेजस्वी सूर्य की कन्या के तुल्य उषा के समान शुभगुणों से युक्त कन्या (सुदिने उभे अहनी) उत्तम सुखदायक दिन और रातों दोनों समय (विवस्वतः) विशेष ऐश्वर्य के स्वामी पति की (दिवः दुहिता) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली (जायते) हो जाती है।

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामसुञ्चतम्॥१३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनो! हे राजा प्रजा वर्गों के नायक स्त्री पुरुषो! (ता) वे दोनों आप (जयुषा रथेन) जयशील रथ आदि साधन से (पर्वतं) पर्वत के समान उच्च स्थान के प्रति (वर्त्तिः) उत्तम मार्ग पर (यातम्) गमन करो। (शयवे) शान्ति चाहने वाले वा शिशुवत् अज्ञानी पुरुष के हितार्थ (धेनुम्) वाणी का (अपिन्वतम्) उपदेश करो। (वृकस्य चित् आस्यात् वर्त्तिकाम्) भेड़िये के मुख के भीतर पड़ी बटेरी के तुल्य चौर शासक वर्ग के मुख से (अन्तः ग्रसिताम्) भीतर ही निगली गई अत्यन्त पीडित प्रजा को (युवं) आप दोनों (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ।

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः॥१४॥१७॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्वादि वेगवान् साधनों के स्वामियो! हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे राजा प्रजावर्गों के नायक राजावत् राजप्रजा-सभाओं के पतियो! (भृगवः न रथम्) गतिमान् साधनों को वश

करने वाले विद्वान् लोग जिस प्रकार रथ को विवेक पूर्वक बनाते है उसी प्रकार हम भी (वा एतं स्तोमं अतक्षाम) आप दोनों के लिये यह गुण-वर्णन और उत्तम उपदेश योग्य वचन कहे। (मर्ये योषणां न) युवा पुरुष के अधीन जिस प्रकार प्रेमयुक्त स्त्री को सौंपा जाता है, उसी प्रकार हम भी आप दोनो समर्थ पुरुषों के अधीन (योषणां) प्रेम पूर्वक रहने वाली प्रजा वा राजसभा को (नि अमृक्षाम) आप दोनों को सौंपें और (तनयं दधानाः) पुत्र को धारण-पोषण करते हुए माता पिता जन (सुनु न नित्यं नि अमृक्षन्त) जिस प्रकार अपने पुत्र को नित्य स्वच्छ करते, नहलाते-धुलाते, स्वच्छ करते हैं उसी प्रकार हम (दधानाः) आप दोनो को स्थापित करते हुए (नित्यं सूनुं) नित्य, स्थायी, शासक रूप से (नि अमृक्षाम) नियमपूर्वक अभिषेक करें। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[४०]

ऋषिर्घोषा काक्षीवती ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, १२, १४ विराड् जगती। २, ३, ७, १०, १३ जगती। ४, ९ ११ निचृज्जगती। ६, ८ पादनिचृज्जगती ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि॥१॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायकवत् स्त्रीपुरुषो ! (वां) आप दोनो के (सुविताय) सुख-सौभाग्य और अभ्युदय के लिये (यान्तं) गमन करते हुए (द्युमन्तं) दीप्तियुक्त, (प्रातर्यावाणं) प्रातः २ ही प्राप्त होने वाले, (विशे विशे वस्तोः वस्तोः) प्रत्येक प्रजा को दिन प्रतिदिन (विभ्वं वहमानं) प्रचुर धन-ऐश्वर्य सुखादि प्राप्त कराने वाले (रथं) रथ के प्रति (धिया शमि) मन वा कर्म से भी (कुह कः) कहां और

कौन (प्रति भूपति) मुकाबले पर आ सकता है। अर्थात् उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता, उनका विरोधी कोई न हो।

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥२॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (दोषा कुह स्वित्) रात्रिकाल में कहां और (वस्तोः) दिन के समय कहां रहते हो ? और (अभिपित्व कुह करतः) कहां आगमन करते हो। (कुह ऊषतुः) कहां वास करते हो ? (शयुत्रा देवरं विधवा इव) शयनस्थान में द्वितीय वर को विधवा स्त्री के समान और (सधस्थे मर्यं योषा न) एकत्र रहने के स्थान गृह सेज आदि पर पुरुष को स्त्री के समान (वां) तुम दोनों को भी (कः आ कृणुते) कौन आदरपूर्वक सत्कार करता है। इस बात का सदा विचार रखो।

जैसे विधवा स्त्री द्वितीय वर को नियोग आदि के विशेष २ अवसरों पर ही प्राप्त करता है और गृहपत्नी पति की नित्य ही सेवा करती है इसी प्रकार स्त्री पुरुष को भी यह ध्यान रखना चाहिये कि कौन उनको नैमित्तक विशेष अवसरों पर और कौन नित्य ही आदरपूर्वक बुलाता है उसके यहां यथासमय जाना चाहिये।

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम्।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः॥३॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायकवत् स्त्री पुरुषो ! (जरणा इव कापया) उत्तम स्तुति योग्य वाणी के योग्य वृद्ध पुरुषों के समान आप दोनों (प्रातः जरेथे) प्रातःकाल स्तुति उपदेश के योग्य होवो। (यजता) उत्तम आदर योग्य होकर (वस्तोः वस्तोः) दिन प्रतिदिन (गृहम् गच्छथः) गृह को प्राप्त होवो। और यह भी बराबर विचार रखो कि

आप दोनो (कस्य) किस २ दोष के (ध्वस्ता भवथः) नाश करने वाले होते हो और (राजपुत्रा इव) राजपुत्र राजपुत्री के तुल्य (कस्य सवना) किसके यज्ञो वा ऐश्वर्यों और अभिषेक योग्य अधिकारों को (अव गच्छथः) प्राप्त करते हो ।

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मृगण्यवः) मृगया करने वाले (मृगा वारणा) सिंह सिंहिनी और हाथी हथिनी दोनो को (हविषा नि ह्वयन्ते) खाद्य पदार्थ द्वारा ग्रहण करते हैं उसी प्रकार हम लोग भी अभिषेकादि से शुद्ध, पवित्र, आचारवान्, नायक नायकादि को चाहने वाले (मृगा इव युवां) सिंह सिंहनी के तुल्य बलवान् तुम दोनों को और (वारणा युवां) दुःखों के वारण वा दूर करने वाले आप दोनो को (हविषा) उत्तम अन्न कर आदि द्वारा (नि ह्वयामहे) नियम से आदर पूर्वक बुलावे । हे (नरा) उत्तम नायको! (युव) आप दोनो को लक्ष्य कर आप की हितकामना से (ऋतुथा होत्राम् जुह्वते) समय २ पर ऋतु २ मे उत्तम वाणी को प्रदान करते हैं, तुमको लक्ष्य कर अग्निहोत्रादि कर्म करते है, क्योकि आप दोनों (शुभस्पती) जलों के पालक सूर्य मेघवत् शुभ गुणों, व्रतो वा कर्मों के पालक होकर (जनाय इषं वहथः) समस्त मनुष्यो के लाभार्थ सेना, अन्न और उत्तम इच्छा, प्रेरणा, संदेश, उपदेश आदि को धारण करते हो ।

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥१८॥

भा०—हे (नरा) सभाओ के उत्तम नायक जनो ! हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनो वा विद्यादि में कुशल जनो! (परि यती) सब से ऊपर वा सब ओर जाती हुई, वा यत्न करती हुई (राज्ञः दुहिता घोषा)

तेजस्वी राजा के सब कार्यों को पूर्ण करती हुई, राजा की आज्ञा, घोषणा वा सभा, (वां पृच्छे) तुम दोनों को पूछती, आज्ञा लेती, प्रार्थना करती है, (अन्हः उत अक्तवे) दिन और रात आप दोनों (मे भूतम्) मेरे हित के लिये सदा तैयार रहें, और (अश्वावते रथिने अर्वते शक्तम्) अश्व रथादि से युक्त हिंसक शत्रु के नाश के लिये समर्थ होवो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

भा०—हे (कवी) दूरदर्शी विद्वानो ! हे (अश्विना) विद्या आदि में पारंगत जनो ! आप दोनो (कुत्सः न) शत्रुओं के गात्र काटने वाले वज्र के समान (जरितुः विशः) स्तुतिकर्त्ता, प्रजावर्ग के ऊपर (रथं परि स्थः) रथ पर सदा रह कर शासन करो। और (नशायथः) प्रजा के दुःखों का नाश किया करो। हे (अश्विना) अश्वादि के स्वामी जनो ! विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनो के अधीन सभा सेना (मक्षा) मधु-मक्खी के समान (आसा) मुख द्वारा (मधु) मधु तुल्य मधुर वचन और उत्तम अन्न ज्ञान बल (परि भरतं) धारण करो। (योषणा न निष्कृतम्) स्त्री जिस प्रकार गृह को संभालती है उसी प्रकार प्रेमयुक्त प्रजा-सभा वा सेना और उनके पति (निष्कृतम्) देश को वा निष्पादित निर्णय वा ऐश्वर्य को सप्रेम धारण करे।

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में निपुण एवं जितेन्द्रिय ! रथी सारथीवत् स्त्री पुरुषो वा सभा सेना के अध्यक्षो ! (युवं ह) आप दोनों निश्चय से (भुज्युम् उपारथुः) उत्तम पालक को प्राप्त होवो। (युव) तुम दोनों (वश) वश करने वाले, कान्तियुक्त तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करो (युवं शिञ्जार) तुम दोनों उत्तम वचन कहने और उत्तम शब्द करने वालों को प्राप्त करो।

तुम दोनो (उशनाम्) अपने को चाहने वाले सहयोगी को प्राप्त करो। (युवोः रराव) तुम दोनो का उत्तम दाता और उपदेष्टा (सख्यं परि आसते) मित्रभाव को प्राप्त करे। और (अहम्) मै उपदेष्टा वा उपदेष्ट्री भी (अवसा) आप दोनो की रक्षाशक्ति, ज्ञान और स्नेह से (सुम्नम् आ चके) सुख चाहती हूं, वा चाहता हूं।

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥ ८ ॥

भा०—(युवं ह) हे स्त्री पुरुषो ! विद्वानो ! आप दोनों (कृशम्) कृश, निर्बल की और (युवं शयुम्) तुम दोनो सोने वाले, अचेत की और (युवं विधन्तं) तुम दोनो उत्तम सेवा करनेवाले की और (विधवाम्) पतिहीन स्त्री की (उरुष्यथः) सदा रक्षा किया करो। हे (अश्विना) उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनो (सनिभ्यः) ज्ञान के देने वाले गुरुजनो के लिये (स्तनयन्तम्) स्तनवत् मधुर ज्ञान धारा पिलाने वा उत्तम उपदेश करने वाले के प्रति (सप्तास्यम्) सात मुख वाले (व्रजम्) इन्द्रियगण को (अप ऊर्णुथः) उद्धार करो और उनको व्यसनो से बचा कर रखो।

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ९

भा०—(योषा जनिष्ट) स्त्री भूमिवत् सौभाग्यवती होकर सन्तान उत्पन्न करे। (कनीनकः पतयत्) उज्ज्वल बालक उसे प्राप्त हो। और (वीरुध) जल-वृष्टियो के अनुरूप लताओ के समान स्त्री-जन वा प्रजाएं (दंसना. अनु) अपने २ कर्मों के अनुरूप (वि अरुहन् च) विविध प्रकार से उन्नति पथ पर चढे, बढ़े। (निवना इव सिन्धवः) नीचे प्रदेशों की ओर जलधाराओ के समान वे प्रजाएं (अस्मै) इस तेजस्वी पुरुष

को (आ रीयन्ते) सब ओर से प्राप्त हों। और (अस्मै अह्ने) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य इस वीर पुरुष का (तत्) तब ही (पतित्वनम्) पतित्व, उत्तम स्वामित्व होता है। अर्थात् स्त्री का सौभाग्य उत्तम बालक जनना और पति का सौभाग्य, सौभाग्यतम स्त्री का लाभ तथा नाना प्रजाओं को प्राप्त करना है।

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥
॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—लोग (जीवं रुदन्ति) अपने प्रिय जीव को लक्ष्य कर रोते हैं, उसके लिये आंसू बहाते हैं। ऐसा करके वे (अध्वरे) पवित्र यज्ञ में (वि मयन्ते) विपरीत शब्द करते है। (ये) जो मनुष्य (इदम्) इस परस्पर विवाह आदि कर्म को (पितृभ्यः) अपने पूर्व पालक पिता आदि के लिये ही (वामम्) यह सुन्दर परस्पर-वरण रूप विवाह का कार्य करते हैं उन (नरः) मनुष्यों को चाहिये कि (दीर्घाम् प्रसितिम् अनु दीधियु) वे दीर्घ, दूर तक फैले हुए उत्तम पारस्परिक बन्धन का विचार करें। और (जनयः) स्त्रियें भी (अनुदीधियुः) ऐसा विचार किया करें कि वे (परिष्वजे) आलिंगनादि कार्य में (पतिभ्यः मयः) अपने पतियों के लिये सुख प्राप्त करावेंगी और स्वयं भी उनसे सुख प्राप्त करेंगी। इस विचार से वधुएं अपने पिता आदि के वियोग मे और उनके माता पिता आदि अपनी कन्या आदि के वियोग मे न रोया करें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि॥११॥

भा०—युवक युवति जन अपने आप्त माता पितादि से कहते हैं—

(यत्) जो (युवा) युवा पुरुष (युवत्याः योनिषु) युवती स्त्री के साथ गृहो मे (क्षेति) निवास करता है हम अबोध, अननुभवी नवयुवक युवतिजन (तस्य न विद्म) उस गृहस्थ के विषय मे कुछ नही जानते (तत् उ सु प्र वोचत) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग हमें उसका अच्छी प्रकार उत्तम रीति से उपदेश करो। हे (अश्विना) माता पिता आप्त जनो ! हम नवयुवतियां (प्रिय-उस्रियस्य) युवति वधू को प्रेम करने वाले, (वृषभस्य) प्रेम से बांधने वाले, बलवान् (रेतिनः) वीर्य-वान् पति के (गृहं गमेम) घर को जावें, हम (तत् उश्मसि) सदा उसी को चाहा करें। नवयुवतियो का यही उचित विचार होना चाहिये कि वे गृहस्थ की सब बात जाने और पति को प्राप्त हो पतिगृह को चाहा करें।

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अयंसत।
अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्याँ॑ अशीमहि १२

भा०—हे (वाजिनीवसू) अन्न, धन उत्पन्न करने वाले स्वामी स्वामिनी और गृहस्थ मे बसने और उसे बसाने वाले वर वधू जनो ! (वाम्) आप दोनों को (सुमतिः आ अगन्) उत्तम शुभ मति प्राप्त हो। हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियो के वश करने वाले विद्या और सुखो के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! (हृत्सु) हृदयो में (कामाः) नाना प्रकार की अभिलाषाएं (नि अयंसत) नियमपूर्वक उत्पन्न होवे। और तुम (गोपा) वाणी के रक्षक और परस्पर गृह के स्वामी स्वामिनी और (मिथुना) जोडे और (शुभः पती) शुभ गुणो, धनो और सद्-विचारों के परिपालक वा पति पत्नी (अभूतम्) होकर रहो। और (प्रियाः) हम स्त्रियां अपने पतियों की प्यारी होकर (अर्यम्णः) स्वामी के (दुर्यान्) गृहों को (अशीमहि), प्राप्त हों और सुख भोग करें।

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् १३

भा०—हे (शुभस्पती) शोभायुक्त गुणों, पदार्थों और जलों के रक्षा करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (मनुषः दुरोणे) मननशील विद्वान् के गृह में रह कर (मन्दसाना) उत्तम अन्न और ज्ञान से अपने को खूब तृप्त और परिपूर्ण करते हुए, (वचस्यवे) उत्तम वेद-वचन के धारक विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के (राये) ऐश्वर्य ज्ञानरूप धन को (आ धत्तम्) अपने में सब प्रकार से धारण करो और (सह-वीरं) वीर पुत्र और विद्वान् पुरुषों से युक्त (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य को भी प्राप्त करो। आप दोनों (शुभस्पती) शोभायुक्त उत्तम गुणों, व्रतों का पालन करते हुए (सु-प्र-पाणं तीर्थं) सुख से उत्तम रीति से जलपान करने योग्य नदी की धारा के समान (सुप्रपाणं तीर्थं) उत्तम रीति से व्रत पालन कराने वाले, जगत् के नाना कष्टों और अज्ञान सागर से पार करने वाले गुरु को (कृतम्) करो। (२) इसी प्रकार (पथेष्ठां स्थाणुम्) मार्ग में स्थित वृक्ष के समान आश्रय देने वाले, सुखद छायाप्रद, आश्रयदाता जन को स्वीकार करो। (दुर्मतिम् अप हतम्) इस प्रकार अपने कुमति, विपरीत ज्ञान को दूर करो।

क्व स्थिदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम्॥
॥ १४ ॥ २० ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम विद्यावान् पुरुषो ! हे (दस्रा) दुष्टों और दुर्गुणों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो ! (अद्य) आज (क्स्वित्) कहां और (कतमासु विक्षु) किन विशेष प्रजाओं के बीच (मादयेते) सब को प्रसन्न करो और स्वयं भी प्रसन्न होवो ? हे (शुभस्पती) शुभ

गुणों के पालक जनो! (ईम् कः नियेमे) इन आप दोनों को कौन बांध वा, नियम से रख सकता है? और (कतमस्य विप्रस्य) किस विद्वान् पुरुष के (गृहम्) गृह और (कतमस्य यजमानस्य गृहम्) किस धन ज्ञान आदि के दाता, स्वामी के गृह पर (जगमतुः) जाओ, यह बात ठीक २ विवेक से जानो। इति विंशो वर्गः॥

[४१]

३ सुहस्त्यो घोषेयः ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१ पादनिचृज्जगती। २ निचृज्जगती। ३ विराड् जगती॥ तृचं सूक्तम्॥

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम्।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे॥ १॥

भा०—(वयम्) हम लोग (उषसः व्युष्टा) प्रातः-प्रभात वेला के प्रकट हो जाने पर (त्यम् उ) उस परम (समानम्) सबके प्रति समान (पुरु-हूतम्) बहुतों से स्तुति प्रार्थना करने योग्य, (उक्थ्यं) वेद द्वारा उपदिष्ट, (त्रिचक्रं रथं) तीन चक्र वाले रथ के समान भूत, भवत्, भविष्यत् तीनों चक्रों वाले, वा तीनों लोक वा तीनों सत्व, रज, तमरूप तीन चक्रवत् तीन महान् शक्तियों से युक्त, वेगवान्, रसस्वरूप, (सवना) समस्त ऐश्वर्यों और लोकों को प्राप्त व्यापक (परिज्मान) सर्वत्र व्यापक, (विदथ्यं) ज्ञानमय प्रभु को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (हवामहे) हम प्रार्थना करें।

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम्।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना॥२॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य मार्ग पर पैर न रखने वाले सत्याचरणशील स्त्री पुरुषो! आप दोनों भी (प्रातः युजे) प्रातःकाल

योगाभ्यास द्वारा समाहित चित्त से जानने योग्य, (प्रातर्यावाणं) प्रातः-काल, शुभ काल में जाने वा प्राप्त करने योग्य, (मधु-वाहनं) मधुर अन्न जलवत् सुख प्राप्त कराने वाले, (रथं) रथवत् सुखदायी, रमण करने योग्य प्रभु को (अधि तिष्ठथः) अपना आश्रय बनाओ। (येन) जिसके द्वारा (यज्वरीः) देव पूजा करने वाली, यज्ञशील प्रजाओं को (गच्छथ.) प्राप्त होवो और हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) विद्या आदि शुभ गुण युक्त जनो ! और (कीरेः चित्) उत्तम उपदेष्टा पुरुष के (होतृमन्तं यज्ञम्) उत्तम होता से युक्त यज्ञ को भी (गच्छथः) प्राप्त होवो। इसी प्रकार स्त्री पुरुष यज्ञशील जनों तक जाने के लिये उत्तम रथ पर चढ़ कर जावें।

अ॒ध्व॒र्युं वा॒ मधु॑पाणिं सु॒हस्त्य॑म॒ग्निधं॑ वा धृ॒तद॑क्षं॒ दमू॑नसम्।
विप्र॑स्य वा॒ यत्सव॑नानि॒ गच्छ॒थोऽत॒ आ या॑तं मधु॒पेय॑मश्विना॥
॥ ३ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय एवं विद्यादि में व्याप्त विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (मधुपाणि) मधुर मधु, ब्रह्मविद्या, वेद का प्रवचन वा उपदेश करने वाले, (अध्वर्युं) यज्ञ करने, कराने में श्रेष्ठ (सु-हस्त्यम्) उत्तम हस्त क्रिया में कुशल, (अग्निधम्) अग्नि को धारण करने वाले, वा अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, विनीत शिष्यों को धारण करने में समर्थ (धृत-दक्षम्) उत्तम बल को धारण करने वाले, (दमूनसं) चित्त को दमन करने वाले, जितेन्द्रिय, पुरुष के पास (आ-यातम्) आओ। और (यत्) जो आप दोनों (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सवनानि) आज्ञा और अनुशासनों को (गच्छथः) प्राप्त होवोगे तभी (अतः) इससे (मधु-पेयम् आयतम्) वेद ज्ञान के उत्तम रस का पान भी प्राप्त कर सकोगे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[४२]

ऋषिः कृष्णः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७—६, ११ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ६, १० विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥

भा०—(अस्ता इव) बाण को फेंकने वाला उत्तम धनुर्धर जिस प्रकार (अस्यन्) बाण फेंकता हुआ (प्रतरम् लायं भरति = हरति) दूर के स्थित लक्ष्य पर भी अच्छी प्रकार प्रहार करता है और (भूषन् इव) जिस प्रकार आभूषणो से सजने वाला पुरुष आभूषणो को पहिन (सु प्र भरति) उत्तम रीति से सजता है उसी प्रकार हे (विप्राः) विद्वान् पुरुषो ! और आप लोग (लायम्) सदा ग्रहण करने योग्य (प्रतरम्) अति उत्कृष्ट, एवं सब संकटो से पार उतार देने वाले उस प्रभु को (सु प्र भर) उत्तम रीति से धारण करो, उसे प्राप्त करो और सुभूषित करो। और उस (अर्यः वाचम्) स्वामी की वाणी को (वाचा प्र तरत) अपनी वाणी से पार करो उसका नित्य स्वाध्याय करो। हे (जरितः) उत्तम उपदेष्टा ! विद्वन् ! स्तोतः ! तू (सोमे) अपने आत्मा में (इन्द्रम् नि रमय) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को नित्य रमा। 'सोममिन्द्रन्' इति क्वचित् पाठः। 'सोमे । इन्द्रम् ।' इति च पदपाठः ॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

भा०—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्ता ! विद्वन् ! (दोहेन गाम्) दूध दोहने के लिये जिस प्रकार गौ की सेवा की जाती है उसी प्रकार (दोहेन) अपने अभीष्ट फलो को प्राप्त करने के हेतु (जारम्) विद्वान् (इन्द्रम्)

संशयों और कष्टों के उच्छेदन करने वाले, ऐश्वर्यवान् (सखायं) परम मित्र, ज्ञानवान्, समदर्शी प्रभु को (उप शिक्ष) प्राप्त कर, उसकी सेवा कर। (पूर्णं कोशं न) जल से पूर्ण मेघ के समान (वसुना नि-ऋष्टं) ऐश्वर्य से पूर्ण (शूरम्) शूरवीर प्रभु को (मघ-देयाय) उत्तम ऐश्वर्य दान के लिये (आ च्यवय) सब ओर से प्रेरित कर, उसकी ही उपासना कर।

'सखा'—समानं ख्यानं ज्ञानं दर्शनमुपदेशो वा यस्य स सखा।

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

भा०—(अङ्ग मघवन्) हे ऐश्वर्यवन्! (त्वां किम् भोजम् आहुः) विद्वान् लोग तुझको सब का पालक क्यों कहते हैं? तू (मा शिशीहि) मुझे तीक्ष्ण, कार्य करने में खूब उत्साहित और कुशल कर, वा मुझे शासन कर। (त्वा शिशयं शृणोमि) तुझे मैं अति तीक्ष्ण करने, उत्साह देने वाला उत्तम शासक सुनता हूँ। (मम धीः अप्नस्वती) मेरी बुद्धि कर्म करने वाली (अस्तु) हो। हे शक्र) शक्तिशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (नः) हमें (वसुविदं भगं आ भर) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला ऐश्वर्य प्राप्त करा। अध्यात्म में—वसु, आत्मा का ज्ञान कराने वाले सेव्य ज्ञान आदि का उपदेश कर।

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु के नाशक! (जनाः) लोग (त्वा) तुझ को (मम-सत्येषु) मेरा कथन सत्य है, प्रतिवादी का नहीं, इस प्रकार के वाद-विवाद के अवसरों में भी (वि ह्वयन्ते) विशेष आदर से बुलाते हैं, और तुझको (समीके सं तस्थानाः वि ह्वयन्ते) युद्ध में जाते

हुए तुझे ही पुकारते है। (अत्र) इस अवसर मे भी (यः) जो मनुष्य (हविष्मान्) उत्तम हवि, अन्न, उत्तम वचन और उत्तम साधनों से युक्त होता है वही (त्वां युजं कृणुते) तुझे अपना सहयोगी बना लेता है। क्योकि (असुन्वता) प्रार्थना, उपासना न करने वाले के साथ (शूरः) वह शूरवीर (सख्यं न वष्टि) मित्रता करना नहीं चाहता।

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥
॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—(यः) जो (प्रयस्वान्) उत्तम प्रयास करने वाला उद्योगी पुरुष (बहुलं) बहुत से (धनं न स्पन्द्रं) धन के तुल्य ही जंगम-पशु अश्वादि सैन्य को और (तीव्रान् सोमान्) तीव्र, वेग से जाने वाले उत्तम शासकों और उत्तम ऐश्वर्यों को भी (अस्मै आ सुनोति) इसके लिये प्रदान करता है, वह (तस्मै) उसके (सु-तुकान्) उत्तम हिंसाकारी साधनों से युक्त हथियारो वाले और (सु-अष्ट्रान्) उत्तम अश्वादि साधनों से युक्त (शत्रून्) शत्रुओ को भी (अह्नः प्रातः) दिन के पूर्व भाग में ही (युवति) दूर करता है और (वृत्रम् नि हन्ति) विघ्न आदि का नाश करता है। परमेश्वर के प्रति विश्वास करने वाले पुरुष के विघ्न प्रतिदिन कार्य प्रारम्भ करने से पहले ही दूर हो जाते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

भा०—(यस्मिन् इन्द्रे) जिस शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, वीर पुरुष के निमित्त (वयम् शंसम् दधिम) हम उत्तम स्तुति और शस्त्र धारण करते हैं आर (यः) जो (मघवा) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी होकर (अस्मे)

हमे (कामम्) अभिलषित धन (शिश्राय) प्रदान करता है। (अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयताम्) उसका शत्रु दूर से ही भय करे। (अस्मै) उसको (जन्या सुम्ना) सब जन-हितकारी नाना धन भी (नि नयन्ताम्) खूब प्राप्त हो।

आराच्छत्रुमप॑ बाधस्व दू॒रमु॒ग्रो यः शम्ब॑ः पुरुहूत॒ तेन॑।
अ॒स्मे धे॑हि॒ यव॑मद्॒ गोम॑दिन्द्र कृ॒धी धियं॑ जरि॒त्रे वाज॑रत्नाम्॥७॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत से प्रजाजनों से पुकारे एवं राजारूप से स्वीकार के किये गये राजन्! (यः उग्रः शम्बः) जो उग्र, अति बलशाली, शत्रुओं का दमन करने और उनको मार कर सुला देने वाला शस्त्र-बल है (तेन) उससे तू (आरात्) दूर रहते ही (शत्रुम् अप बाधस्व) शत्रु को पीड़ित कर, दूर भगा। और (अस्मे) हमे (यवमत् गोमत्) अन्न और गौ आदि पशुओ से समृद्ध ऐश्वर्य प्रदान कर। और (जरित्रे) स्तुति करने वाले की (धियं) बुद्धि और कर्म को (वाज-रत्नां धेहि) ज्ञान और बल से सुशोभित कर।

प्र यम॒न्तर्वृ॑षस॒वासो॒ अग्म॑न्ती॒व्राः सोमा॑ बहु॒लान्ता॑स॒ इन्द्र॑म्।
नाह॑ दा॒मानं॑ म॒घवा॒ नि यं॑सन्नि सु॒न्वते॑ वहति॒ भूरि॑ वा॒मम्॥८॥

भा०—(यम् इन्द्रम्) जिस इन्द्र को (बहुल-अन्तासः) बहुत से ऐश्वर्य, जनसमूहादि से सम्पन्न, (तीव्राः) तीव्र स्वभाव वाले, (वृष-सवासः) बलवान् पुरुषों और अश्वों के भी सञ्चालक (सोमाः) उत्तम २ शासक (प्र अग्मन्) प्राप्त होते हैं वह (मघवा) महान् ऐश्वर्यवान् (दामानम् अह) दानशील पुरुष को (न नि यसन्) नहीं बाधते, प्रत्युत (सुन्वते) सवन करने वाले, राजा के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले के हितार्थ वह (भूरि वामम् नि वहति) बहुत सा उत्तम धन प्रदान करता है।

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥ ९॥

भा०—(यत् श्वघ्नी कृतं जयाति) जिस प्रकार कितव, जूआखोर 'कृत' नाम पासे को (काले वि चिनोति) अवसर पर प्राप्त करता है और (प्रहाम् अतिदीव्य जयति) अपने पासे को मारने वाले को अतिक्रमण करके जीत लेता है । इसी प्रकार (यत् श्वघ्नी) वीर पुरुष स्वकीय इष्ट जनों को प्राप्त करने और परस्व, शत्रुधन को आहरण करने वाला (कृतं) स्वोपार्जित राष्ट्र धनादि को वा कर्म, उद्योग द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य को (काले वि चनोति) उचित समय पर संग्रह कर लेता है और (प्रहाम्) प्रहार करने वाले, कार्यनाशक विघ्न को अतिक्रमण कर उस पर भी विजय पा लेता है और (यः) जो (देवकामः) विद्वान् मनुष्यों वा प्रभु का प्रिय होकर उनके कार्य के लिये (धना न रुणद्धि) अपने धनैश्वर्यों को रोक नहीं रखता प्रत्युत खूब खुल कर दान देता है (तम् इत्) उस को ही (स्वधावान् राया सम् सृजति) वल, शक्ति से सम्पन्न ऐश्वर्यवान् जन धनैश्वर्य से युक्त कर देता है । 'कृतं न श्वघ्नी' इति च पाठः। 'कृत । यत् । श्वघ्नी ।' इति च पदपाठः ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) वहुतों से पुकारने, आपत्तिकाल में स्मरण करने और अपनाने योग्य प्रभो ! राजन् ! हम लोग (दुरेवाम्) दुःखों के सहित आने वाले, कठिन उपायों से दूर होने वाले, दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों और गुरु-उपदेशों से पार करें । और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अनेक अन्न से सब प्रकार की भूखों को तरें । (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों से और (अस्माकेन वृजनेन) अपने वल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ २

धनों को प्राप्त करें। अथवा—(प्रथमाः) हम स्वयं वीर पुरुष और बल से श्रेष्ठ होकर धनों को प्राप्त करें।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥ २३ ॥ ३ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी बल, राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचार करना चाहने वाले से बचावे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच में से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सब का मित्र, सब को समान दृष्टि से देखने वाला, न्यायी, ज्ञानी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४३]

ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ९ निचृज्जगती। २ आर्ची स्वराड् जगती। ३, ६ जगती। ४, ५ ८ विराड् जगती। १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥

भा०—(मे) मेरी (स्वः-विदः) सुखजनक, सब इष्ट लाभों को देने वाली, ज्ञान-प्रकाशप्रद, (सध्रीचीः) परस्पर सुसम्बद्ध, (विश्वाः) सब प्रकार की, (उशतीः) प्रभु को चाहने वाली (मतयः) बुद्धियां और

वाणियां (इन्द्रम् अच्छ अनूषत) उसी प्रभु की खूब २ स्तुति करती हैं। (यथा जनयः पतिं मर्यं ऊतये) जिस प्रकार स्त्रियें अपने २ पुरुषों, पतियों को रक्षा, प्रेम, सुख समृद्धि के लिये (परि ष्वजन्ते) आलिंगन करती है उसी प्रकार (शुन्ध्युं मघवानम्) परम पावन, शुद्ध, ऐश्वर्यवान् प्रभु को ये वाणियां (ऊतये) रक्षा के लिये (परि ष्वजन्ते) प्राप्त करती हैं। वे उसी से सम्बद्ध है, उसी तक जाती है, श्लेष वृत्ति से उसी का वर्णन करती हैं।

न घा त्वद्रिगप॑ वेति मे॒ मन॒स्त्वे इत्कामं॑ पुरुहूत शिश्रय।
राजे॑व दस्म॒ नि ष॒दोऽधि॑ ब॒र्हिष्य॒स्मिन्त्सु सोमे॑ऽव॒पान॑मस्तु ते॥२॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत मनुष्यों से पुकारे गये स्वामिन् ! प्रभो ! (त्वद्रिग्) तेरे प्रति लगा हुआ (मे मनः) मेरा मन (न घ अप वेति) अब तुझ से दूर नहीं जाता। प्रत्युत (त्वे इत् कामं शिश्रय) तुझ में ही मैं अपनी अभिलाषा को स्थापित करता हूँ। (राजा इव बर्हिषि) राजा जिस प्रकार आसन वा वृद्धियुक्त वा प्रजा पर विराजता है, उसी प्रकार हे (दस्म) दर्शनीय, दुष्टों वा दुःखों के नाशक ! तू (अस्मिन् बर्हिषि राजा इव नि षदः) इस लोक-समूह वा यज्ञ में राजा के तुल्य अधिष्ठित हो। (अस्मिन् सोमे) इस उत्पन्न जगत् में (ते सु अवपानं अस्तु) तेरा ही सर्वश्रेष्ठ परिपालन कार्य हो।

वि॒षू॒वृदिन्द्रो॒ अम॑तेरु॒त क्षु॒धः स इद्रा॒यो म॒घवा॒ वस्व॑ ईशते।
तस्येदि॒मे प्र॑व॒णे स॒प्त सिन्ध॑वो वयो॑ वर्धन्ति वृष॒भस्य॑ शु॒ष्मिणः॑ ३

भा०—(इन्द्रः) जिस प्रकार सूर्य जब (विषू-वृत्) विषुवत् वृत्तपर अतिक्रमण कर रहा होता है तब वह (मघवा) मघा नक्षत्र का योग करता हुआ (रायः वस्वः ईशते) अति अन्नप्रद वसु नक्षत्र का स्वामी

होता है और (अमतेः उत क्षुधः) दारिद्र्य और क्षुधा, भूख, अकाल को वश करता है। अर्थात् अन्न उत्पन्न करता है। (इमे प्रवणे सप्त सिन्धवः) ये निम्न देश में बहने वाली जलधाराएं (तस्य इत् शुष्मिणः वृषभस्य वयः वर्धन्ति) उस ही बलशाली जलशोषक, वृष्टिकर्त्ता मेघ वा सूर्य के बल वा महिमा को बढ़ाते हैं। ठीक उसी प्रकार (वि-सु-वृत्) विविध उत्तम व्यवहार करने मे कुशल, न्यायवर्त्ती, धर्मात्मा, (इन्द्रः) राजा (अमतेः) प्रजा के भीतर विद्यमान अज्ञान, दारिद्र्य और (क्षुधः) भूख, अकाल पर वश करे, इन को मिटाने का यत्न करे। क्योंकि (सः इत्) वह ही (रायः) प्रजाओं के देने योग्य (वस्वः) प्रजाओं को सुखपूर्वक बसाने वाले धन, अन्नादि और राष्ट्र में बसाने वाले प्रजाजन का भी (ईशते) सब प्रकार से स्वामी है। (अस्य इत् इमे) उसके ही ये (प्रवणे) शत्रु को खूब मारने वाले सैन्य बल में, शत्रु के नाश के निमित्त (सप्त सिन्धवः) सात वा वेग से दौड़ने वाले वेगवान् अश्व सैन्य है जो (वृषभस्य) बलवान् (शुष्मिणः) शत्रुशोषक, बलशाली पुरुष के (वयः) जीवन और बल को (वर्धन्ति) बढ़ाते है।

वयो॒ न वृ॒क्षं सु॑प॒ला॒शमास॑द॒न्त्सोमा॑स॒ इन्द्रं॑ म॒न्दिन॑श्चमू॒षदः॑।
प्रैषा॒मनी॑कं॒ शव॑सा॒ दवि॑द्युत॒द्विद॒त्स्व१॒र्मन॑वे॒ ज्योति॒रार्य॑म् ॥ ४ ॥

भा०—(वयः सुपलाशम् वृक्षं न) जिस प्रकार पक्षिगण उत्तम पत्तों से हरे भरे वृक्ष का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार (मन्दिनः) उत्तम रीति से स्तुति करने और उसके साथ हर्ष अनुभव करने और उसे हर्षित करने वाले, (चमू-सदः सोमासः) बड़ी २ सेनाओं पर अध्यक्ष रूप से विराजने वाले अभिषिक्त नायकगण (वयः) शत्रुनाशक, तेजस्वी, वेग से जाने में समर्थ होकर उस (वृक्षं) भूमि को वरण कर, अपनाकर विराजने वाले (सु-पलाशम्) शुभ गमन-साधन रथादि पर विराजने वा

उत्तम भोग्यो को प्राप्त करने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (आ असदन्) प्राप्त कर चारों ओर उसके समीप विराजते, उसका आश्रय लेते है। (एषाम् अनीकं) उनका मुख और सैन्य (शवसा) बलसे खूब (दविद्युतत्) चमकता है। और (मनवे) विचारपूर्वक शासन कार्य करने वाले, राष्ट्र-स्तम्भक, वा प्रवन्धक स्वामी को (आर्यम्) सर्वश्रेष्ठ, स्वामिजनोचित (ज्योतिः) तेज, प्रकाश, ज्ञान और (स्वः) सुख (विदत्) प्राप्त कराता है।

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः॥५।२४॥

भा०—(श्वघ्नी देवने कृतं न) दूसरो के धनो को बाज़ी से मार लेने वाला कुशल द्यूतकार जिस प्रकार खेलने के समय 'कृत' नाम अक्ष को ही प्राप्त करता है उसी प्रकार (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवाम् राजा (श्वघ्नी) शत्रु के ऐश्वर्यों को लूटने मे समर्थ होकर (देवने) विजयकाल में (सं-वर्गं) उत्तम वर्ग के, उत्तम श्रेणी के, वा शत्रु को वर्जन करने में समर्थ (कृतं) कार्य करने में कुशल, अनुशिष्ट, कृतकर्मा, (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (वि चिनोति) विशेष रूप से संग्रह करता है और (जयत्) इसके द्वारा जय लाभ करता है (तत्) उस समय हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे राजन् (ते अन्यः) तेरे से दूसरा कोई (ते वीर्यं न अनु शकत्) तेरे बल वीर्य का मुक़ाबला नही कर सकता। (न पुराणः उत न नूतनः) ऐसा न कोई पुराना और न कोई नया ही होना सम्भव है।

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः॥६

भा०—(मघवा) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी, राजा (विशं-विशं परि अशायत) प्रजा प्रजा के ऊपर सुख से शासन करता हुआ, उनकी वृद्धि

करे। और वह (वृषा) मेघ वा सूर्य के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने और उनका उत्तम प्रबन्ध करने वाला पुरुष (जनानां धेनाः अव चाकशत्) सब मनुष्यों की वाणियों, प्रार्थनाओं को देखे, सुने, उन पर ध्यान दे। (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष (यस्य) जिस प्रजाजन के (सवनेषु) ऐश्वर्यों के बीच मे (रण्यति) आनन्द सुख लाभ करता है, (सः) वह (तीव्रैः सोमैः) तीव्र, वेगगामी, उत्तम नायकों और विद्वान् पुरुषों द्वारा (पृतन्यतः सहते) सेनाओं द्वारा युद्ध करके शत्रुओं को भी पराजित करे।

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

भा०—(आपः सिन्धुं न) नदियां वा जलधाराएं जिस प्रकार महानद वा समुद्र की ओर बह आती हैं, (कुल्याः इव ह्रदम्) जिस प्रकार छोटी २ नालियां बडे तालाब की ओर बह आती हैं। उसी प्रकार (आपः) आप्त (कुल्याः उत्तम कुलवान् (सोमासः) विद्वान् शासक जन (इन्द्रं सिन्धुम्) समुद्र के समान गम्भीर और (ह्रदं) आज्ञापक, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता के शरण ही (सम् अक्षरन्) भली प्रकार आते हैं। (वृष्टिः दिव्येन दानुना यवं न) वृष्टि जिस प्रकार आकाश के जल से यवों को वढ़ाती है उसी प्रकार (विप्राः) विद्वान् पुरुष भी (अस्य सादने) इसके शासन में रह कर (दिव्येन दानुना) युद्धार्थ दिये दान और शत्रुखण्डनकारी शस्त्र-बल से (अस्य यव वर्धन्ति) इसके शत्रुहनन सामर्थ्य को वढ़ाते हैं।

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

भा०—(रजःसु क्रुद्धः वृषा न) मट्टी के ढेरों पर जिस प्रकार

क्रुद्ध सांड (पतयत्) वेग से पड़ता है और (रजःसु क्रुद्धः वृषा न) रजोधर्मयुक्त गौओं के निमित्त साभिलाप सांड जिस प्रकार प्रतिद्वन्द्वी पर क्रुद्ध होकर पड़ता और विजयी हो उनके बीच पतिवत् आचरण करता है, उसी प्रकार (मघवा) नाना उत्तम धनों का स्वामी (वृषा) बलवान् राजा (क्रुद्धः) शत्रुओं के प्रति क्रोधयुक्त होकर ही (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त प्रजाजनों में (पतयत्) उनका पालक स्वामी होकर, उन पर शासन करे। वह (इमाः अपः) इन प्राप्त, जल-स्वभाव की, निम्न भाव से जानने वा विनय से झुकने वाली, प्रजाओं वा सेनाओं को (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों के समान स्वामी द्वारा पालन योग्य एवं स्वामी के पालकवत् (अकृणोत्) बना लेवे। (सः) वह (सुन्वते) ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले, (जीर-दानवे) सब को प्राणदायक अन्न देने वाले (हविष्मते) अन्न के स्वामिरूप, (मनवे) कृषक आदि मनुष्य वर्ग के लिये (ज्योतिः अविन्दत्) तेज, पराक्रम, और ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करे और करावे।

उज्जा॑यतां पर॒शुर्ज्योति॑षा स॒ह भू॒या ऋ॒तस्य॑ सु॒दुघा॑ पुरा॒णवत्।
वि रो॑चताम॒रु॒षो भा॒नुना॒ शुचिः॒ स्व१॒॑र्ण शु॒क्रं शु॑शुचीत॒ सत्प॑तिः॥६॥

भा०—(परशुः) दूसरे शत्रुओं का नाश करने वाला, इन्द्र राजा, (ज्योतिषा सह) तेज के साथ (उत् जायताम्) उन्नत पद को प्राप्त हो। हे राजन्! स्वामिन्! तू (सु-दुघा) उत्तम दुग्ध देने वाली, गौ के समान और (पुराणवत्) वृद्ध जन के समान, सब प्रजा का पालक, और ज्ञानप्रद होकर (ऋतस्य) धन, अन्न, ज्ञान का (सु-दुघाः) उत्तम रीति से देने वाला (भूयाः) हो। (अरुषः) स्वयं तेजस्वी और निष्क्रोध होकर (भानुना वि रोचताम्) तेज से विविध प्रकार से चमके और सब को प्रिय मालूम हो। वा (शुचिः) शुद्ध, कान्तिमान्, काम, धर्म आदि सम्बन्ध में शुद्ध भाव वाला होकर (स्वः न शुक्रं) स्वच्छ

प्रकाश को सूर्य के समान (सत्पतिः) उत्तम पालक होकर (शुक्रं शुशुचीत) शुद्ध तेज से प्रकाश करे, और (शुक्रं = शुक्रं) शुद्ध कर्म से आत्मा को पवित्र करे । और प्रजार्थ (शुक्रं) उत्तम जल अन्न प्रदान करे ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने, आपत्तिकाल मे स्मरण करने और अपनाने योग्य प्रभो ! राजन् ! हम लोग (दुरेवाम्) दुःखो के सहित आने वाले, कठिन उपायों से दूर होने वाले, दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियों और गुरु-उपदेशो से पार करें । और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अनेक अन्न से सब प्रकार की भूखो को तरें । (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों से और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ २ धनों को प्राप्त करें । अथवा—(प्रथमाः) हम स्वयं वीर पुरुष और बल से श्रेष्ठ होकर धनों को प्राप्त करें ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २५ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी बल, राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमें पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचार करना चाहने वाले से बचावे । (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच मे से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे । (सखा सखिभ्यः) वह सब का मित्र, सबको समान दृष्टि से देखने वाला, न्यायी ज्ञानी हम मित्रों के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[४४]

ऋषिः कृष्णः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, १० विराट् त्रिष्टुप् । ३, ११ त्रिष्टुप् । ४ विराड्जगती । ५—७, ९ पादनिचृज्जगती । ८ निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यों को देने वाला, (स्व-पतिः) स्वजनो और धनों का पालक पुरुष (यः) जो (धर्मणा) प्रजा को धारण करने वाले न्याय-बल से (तूतुजानः) शत्रुओं और दुष्टों का नाश और प्रजाओं को ऐश्वर्य दान करता हुआ (तुविष्मान्) बलवान् हो । वह (अपारेण) अपार, (महता वृष्ण्येन) महान् बल, वीर्य, पराक्रम से युक्त होकर (विश्वा सहांसि अति) समस्त शत्रु-सैन्यों को पार करके (प्र त्वक्षाणः) उनका खूब नाश करता हुआ हमें प्राप्त हो । (२) गृहस्थपक्ष में—स्त्री कहती है कि—मेरा अपना पति बलवान्, धर्म से मेरा (तूतुजानः) गृह बसाता हुआ हर्ष सुख के निमित्त आवे । वह अपार बल-वीर्य से सब कष्टों को दूर करे ।

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

भा—हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! राजन् ! (ते रथः सु-स्थामा) तेरा रथ सुखपूर्वक ठहरने वाला, वा उत्तम बैठने के स्थान से युक्त हो, तेरा रथारोही बल युद्ध मे खूब टिकने वाला हो । (ते हरी सु-यमा) तेरे दोनों अश्व सुख से नियन्त्रित हों, तेरे अधीन प्रजास्थ स्त्री पुरुष लोग उत्तम संयमी, सुप्रबद्ध रहें । (ते गभस्तौ) तेरी बाहु में (वज्रः मिम्यक्ष)

वज्र, शस्त्र-बल रहे, शस्त्र बल तेरे हाथ के नीचे हो। हे (राजन्) देदीप्यमान ! राजन् ! तू (शीभं) शीघ्र ही (सुपथा अर्वाङ् याहि) उत्तम मार्ग से, उत्तम अश्व पर चढ़ कर जाया कर। हम (ते पपुषः) तुझ सर्वपालक, सर्वपोषक के (वृष्ण्यानि वर्धाम) बलों को बढ़ावें।

इन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

भा०—(अस्मत्रा) हम में से (इन्द्र-वाहः) ऐश्वर्य और बल को धारण करने में समर्थ, (उग्रासः) उग्र, (तविषासः) बलशाली (सध-मादः) एक साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करने वाले जन (नृपति) मनुष्यों के पालक, (वज्र-बाहुम्) तलवार से युक्त बाहु के समान शस्त्र-बल से शत्रु को पीड़ित करने वाले (उग्रम्) शत्रु को भयप्रद (प्र-त्वक्षसं) अति तेजस्वी; शत्रुनाशक, (सत्य-शुष्मम्) सत्य के बल से बलशाली (वृषभम्) नरश्रेष्ठ को (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें।

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व संगृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

भा०—(एव) इसी प्रकार के (द्रोण-साचं) राष्ट्र की सेवा करने वाले (स-चेतसम्) उत्तम, ज्ञानी सहृदय (ऊर्जः स्कम्भम्) बल पराक्रम को स्तम्भवत् धारण करनेहारे पुरुष को (धरुणे) धारण करने वाले प्रमुख पद पर हे प्रजाजन ! तू (आ वृषायसे) आदरपूर्वक बलशाली की कामना कर। हे राजन् ! तू (ओजः कृष्व) बल वीर्य सम्पादन कर (त्वे) तू अपने में ही हमें (सं गृभाय) अच्छी प्रकार ग्रहण कर, सब को धारण कर। (यथा) जिस प्रकार तू (केनिपानां इनः) सुखमय, आनन्द रस का

पान करने वाले विद्वानों का स्वामी होकर (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अपि असः) समर्थ हो ।

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना संत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! (वसूनि अस्मे गमन्) जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत कराने वाले नाना धनैश्वर्य हमें प्राप्त हों । मैं तुझे (सु-आशिषं शंसिषम्) उत्तम २ कामना व आशीष् करूँ । तू (सोमिनः भरम् आ याहि) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, सोम के स्वामी के यज्ञ वा प्रजापालक राष्ट्र कार्य को प्राप्त हो । (त्वम् ईशिषे) तू ही सब का स्वामी हो । तू ही (बर्हिषि आ सत्सि) इस वृद्धियुक्त आसन, लोक वा प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराज । (तव पात्राणि) तेरे प्रजा पालन के समस्त सैन्यादि साधन (धर्मणा) धर्म, राष्ट्र-प्रजा, न्याय आदि के धारण के बल से (अनाधृष्या) किसी से भी धर्षण वा पराजय करने योग्य न हों । इति षड्विंशो वर्गः ॥

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

भा०—(प्रथमाः) श्रेष्ठ (देव-हूतयः) देव, ईश्वर के स्तुति करने वाले देवोपासक जन (पृथक्) अलग २ (प्र अयन्) आगे बढ़ जाते हैं । वे (श्रवस्यानि) श्रवण करने योग्य (दुस्तरा) दुस्तर, अपूर्व कीर्तिजनक कर्म और ज्ञानों को सम्पादन कर लेते हैं । और (ये) जो (यज्ञियाम् नावम्) सर्वपूज्य प्रभु की उपासनामयी स्तुतिमयी नौका पर (आरुहम् न शेकुः) आरूढ नहीं हो सकते (ते) वे (के-पयः) कुत्सित आचरणों में लिप्त रहकर (ईर्मा इव नि अविशन्त) मानो ऋण से बद्ध होकर यहां ही नीचे पड़े रहते हैं ।

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

भा०—(एव एव) इस प्रकार हे (अपरे) दूसरे जो परब्रह्म की उपासना से रहित (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले जन है (येषां) जिनके (दुःयुजः अश्वाः) कुमार्ग में जाने वाले, सन्मार्ग में कठिनता से लगने वाले, अश्वो के तुल्य बलवान् इन्द्रियगण (आ युयुज्रे) इधर उधर के तुच्छ विषयो में लगते हैं । वे (अपाग् एव एव सन्तु) दूर वा नीचे ही नीचे पतित (सन्तु) हो जाते हैं । (यत्र) जिस मे (पुरूणि वयुनानि) बहुत से ज्ञान और (पुरूणि भोजना) बहुत से भोग्य ऐश्वर्य और नाना रक्षा साधन हैं उस (परे) परम ब्रह्म में जो (दावने सन्ति) दान देने के लिये सदा तत्पर हैं वे (इत्था) सचमुच (प्राक् सन्तु) आगे बढ़ने वाले होते हैं ।

गिरीरज्रान्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे विष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

भा०—वह प्रभु (अज्रान्) गमनशील, (गिरीन्) मेघों और (रेजमानान्) बिजुली से कांपते हुओ को (अधारयत्) धारण करता है । (द्यौः क्रन्दत्) बिजुली शब्द करती है, तब मानो वह (अन्तरिक्षाणि) जलमय मेघों को लक्ष्य कर (कोपयत्) क्षुभित करता, मानो उन पर क्रोध करता है । (समीचीने) परस्पर मिले हुए (धिषणे) आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को (वि स्कभायति) विविध रूप से थामता है । और वह (वृष्णः पीत्वा) जलवर्षक रसों का मेघवत् पान करके (मदे) आनन्द में मानो (उक्थानि शंसति) स्तुत्य उपदेश वचनों का उपदेश करता है ।

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

भा०— हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (येन) जिससे तू (शफारुजः) दुर्वचनो से, वा समवाय बना कर दूसरों को पीड़ा देने वाले दुष्ट जनों को (रुजासि) पीड़ित वा नष्ट करता है मैं (ते) तेरे (सुकृतं) उत्तम रीति से बने उस (अंकुशं) अंकुश, वज्र को (बिभर्मि) धारण करूं । (ते अस्मिन् सवने) तेरे इस ऐश्वर्यमय शासन में (ओक्यं सु अस्तु) सुखपूर्वक गृह का सा निवास हो । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (आ-भगः) सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् और सेवनीय होकर (सुते इष्टौ) उत्तम रीति से सम्पादित यज्ञ में (बोधि) हमारी स्तुतियो को जान ।

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतो से पुकारने, आपत्तिकाल में स्मरण करने और अपनाने योग्य प्रभो ! राजन् ! हम लोग (दुरेवाम्) दुःखों के सहित आनेवाले, कठिन उपायो से दूर होने वाले, दुःसाध्य (अमतिम्) अज्ञान को (गोभिः तरेम) वेदवाणियो और गुरु-उपदेशों से पार करे । और (यवेन विश्वाम् क्षुधं तरेम) यव आदि अनेक अन्न से सब प्रकार की भूखो को तरे । (वयम्) हम लोग (राजभिः) तेजस्वी पुरुषों से और (अस्माकेन वृजनेन) अपने बल से (प्रथमा धनानि जयेम) श्रेष्ठ २ धनो को प्राप्त करें । अथवा—(प्रथमाः) हम स्वयं वीर पुरुष और बल से श्रेष्ठ होकर धनों को प्राप्त करें ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
॥ ११ ॥ २७ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े भारी बल, राष्ट्र और वाणी का पालक (नः पश्चात् उत उत्तरस्मात् अधरात्) हमे पीछे से, ऊपर से और नीचे से वा उत्तर और दक्षिण से (अघायोः पातु) पापाचार करना चाहने वाले से बचावे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरस्तात् उत मध्यतः) आगे से और बीच मे से भी (नः परि पातु) हमारी रक्षा करे। (सखा सखिभ्यः) वह सब का मित्र सबको समान दृष्टि से देखने वाला, न्यायी हम मित्रो के उपकारार्थ (वरिवः कृणोतु) उत्तम धन प्रदान करे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४५]

ऋषिर्वत्सप्रिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

दि॒वस्परि॑ प्रथ॒मं ज॑ज्ञे अ॒ग्निर॒स्मद् द्वि॒तीयं॒ परि॑ जा॒तवे॑दाः ।
तृ॒तीय॑म॒प्सु नृ॒मणा॒ अज॑स्र॒मिन्धा॑न एनं जरते स्वा॒धीः ॥ १ ॥

भा०—(प्रथमं) पहले (आग्नः) अग्नि (दिवः परि) आकाश में प्रकट हुआ, वह सूर्यरूप अग्नि ब्रह्माण्ड मे सब से मुख्य है। उसी प्रकार मूर्धा भाग मे मुख्य प्राण ही मुख्य अग्नि है। और (द्वितीयं) दूसरा (जात-वेदाः) सब पदार्थों के भीतर विद्यमान (अग्निः) अग्नि स्वरूप दूसरे नम्बर पर प्रकट होता, उसी प्रकार दूसरे नम्बर पर यह जाठर अग्नि है। जो प्रत्येक उत्पन्न प्राणी को प्राप्त होता है और (तृतीयम्) तीसरा, (नृ-मणाः) नयन, सञ्चालक वा प्रेरक शक्ति से पदार्थों को स्तब्ध करने मे समर्थ वा (नृ-मणाः) मनुष्यो के बीच मनन, ज्ञानशक्ति देने वाला, (अप्सु) अन्तरिक्ष वा जलो मे विद्युत् रूप होता है। (एनं अजस्रम् इन्धानः) इस अग्नि को कभी न नष्ट होने देता हुए,

निरन्तर इसे प्रज्वलित रखता हुआ पुरुष (स्वाधीः सु-आधीः) सुखों को अपने में धारण करने वाला, स्वस्थ, सुखी और सुबुद्धि नीरोग होकर (जरते) वृद्धावस्था को प्राप्त होता है।

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! (ते) तेरे हम (त्रेधा) तीन स्थानों मे (त्रयाणि) तीन रूपों को (विद्म) जानें। (ते धाम) तेरे तेजो, नामो, जन्मो को भी (पुरुत्रा विभृता विद्म) बहुत प्रकार से, बहुत से स्थानों में विविध प्रकार से धारित रूपो को भी जानें। (गुहा ते यत् परमं नाम विद्म) बुद्धिस्थ जो निगूढ तेरा परम स्वरूप है उसको भी हम जानें। हम (तम् उत्सं विद्म) उस कारणरूप निकास को जानें (यतः आ जगन्थ) जहां से तू हमे प्राप्त होता है।

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वर्न्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥

भा०—(नृ-मणाः) मनुष्यों में मननशील, और (नृ-चक्षाः) मनुष्यों मे सत्य ज्ञान का द्रष्टा हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा) तुझे, समुद्र में (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर से और (दिवः ऊधन्) आकाशस्थ मेघ में से प्राप्त करके प्रदीप्त कर लेता है। और (तृतीये रजसि तस्थिवांसम्) तीसरे लोक में स्थित सूर्यरूप (त्वा) तुझको (अपाम् उपस्थे) जलों के भी ऊपर (महिषाः) भूमि पर आने वाले किरण (अवर्धन्) तुझे अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। वे तेरे ही महान् सामर्थ्य को बतलाते हैं। (२) उसी प्रकार राजारूप अग्नि को साक्षी रूप से जनसमूह और राज सभा में, और उत्तम पद पर विराजते हुए को वीर पुरुष बढ़ावें।

अक्रन्दद्ग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (द्यौः) आकाशगत तेजस्वी विद्युत् (स्तनयन्) गर्जती हुई (क्षामा रेरिहित्) भूमि तक पहुंचती है और जिस प्रकार (अग्निः) आग (वीरुधः) नाना वनस्पतियों को (सम् अञ्जन्) जलाता, चमकाता हुआ (अक्रन्दत्) गर्जता, या शब्द करता है। उसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान्, वीर और विद्वान् पुरुष (क्षामा रेरिहित्) भूमियों को, वा निर्बल शत्रु सेनाओं को प्राप्त करता हुआ और (वीरुधः) विपरीत रोक करने वाली बाधक सेनाओं का (सम् अञ्जन्) सान्मुख्य करता हुआ, उनको दग्ध या तेजस्वी करता हुआ वा (वीरुधः) विशेष वा विविध रूप से उत्पन्न होने वाली प्रजाओं को (सम्-अंजन्) प्राप्त होता और उनको प्रकाशित करता हुआ (स्तनयन्-इव अक्रन्दत्) गर्जते मेघ के समान गर्जे, और विद्वान् भी उपदेश करे। और सूर्य जिस प्रकार (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (इद्धः) अग्निवत् प्रदीप्त होकर (भानुना) अपने प्रकाश से (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश के बीच क्षितिज पर (भाति) चमकता है और (सद्यः वि अख्यत्) एक साथ विशेष रूप से प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह भी (इद्धः) चमक कर (रोदसी अन्तः) शास्य-शासकों के बीच (भाति) प्रकाशित हो और (वि अख्यत्) विशेष आज्ञा, घोषणा, उपदेश आदि करे।

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥

भा०—वह राजा, विद्वान्, प्रभु, (श्रीणाम् उत्-आरः) नाना ऐश्वर्यों और आश्रितों को उन्नत करने वाला, (रयीणां धरुणः) नाना धनों को धारण करने वाला, (मनीषाणां प्रार्पणः) उत्तम बुद्धियों को देनेवाला, (सोम-गोपाः) ऐश्वर्यों का रक्षक है। वह (वसुः) सब को बसाने वाला,

(सहसः) बलवान् सैन्य को (सूनुः) सन्मार्ग पर चलानेहारा, (अप्सु राजा) प्रजाओ मे तेजस्वी राजा (इधानः) देदीप्त होकर (उषसाम् अग्रे विभाति) प्रभात वेलाओ के अग्र भाग मे सूर्य के समान, विशेषरूप से शोभा देता है ।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिददिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥२८॥

भा०—वह राजा, प्रभु (विश्वस्य भुवनस्य केतुः) समस्त जगत् का प्रकाशक, (गर्भः) सब को अपने वश करने वाला और सबके बीच मे छुपा हुआ, (जायमानः) व्यक्त होकर (रोदसी आ अपृणात्) ज़मीन और आकाश सब को सब तरफ़ पूर्ण कर रहा है । वह (वीडुम् अद्रिम् अभिनत्)बलवान् मेघ को सूर्य के तुल्य अभेद्य तम को भी छिन्न भिन्न करता है, (यत् अग्निम्) जिस तेजस्वी नायक को (जनाः परायन्) मनुष्य परम जान कर आश्रय करते, (पञ्च) पांचो जन जिसको (अयजन्त) आदर, उपासना पूजा करते है ।

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—वह राजा (पावकः) सब को पवित्र करने वाला, (उशिक्) सब को स्नेह से चाहने वाला, (अरतिः) महान् ज्ञानी, सब का स्वामी, वा असंसक्त (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान्, शक्तिशाली, यज्ञशील अन्नादि सम्पन्न, (अग्निः) सर्वनायक, प्रकाशक, ज्ञानी, (मर्तेषु) मरणधर्मा मनुष्यो मे (अमृतः) अविनाशी रूप (नि धायि) स्थापित हो वह (अरुषम्) सब प्रकार से प्रकाशमान, तेजोमय रूप को (भरिभ्रत्) धारण करता हुआ, (धूमम् इयर्त्ति) शत्रु को कंपा देने वाले सैन्य बल को सञ्चालित करे, और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध कान्ति से (द्याम् इनक्षन्)

आकाश को सूर्यवत् समाज मे शिरोभाग रूप सभा को शोभित करे। अध्यात्म में—आत्मा, विराट् शरीर में सूर्य, जगत् में परमेश्वर और कुण्ड में अग्नि और राष्ट्र मे राजा का इस मन्त्र मे समान रूप से वर्णन है।

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥ ८ ॥

भा०—(दृशानः) प्रत्यक्ष देखने वाला, (रुक्मः) नाना रुचियों, इच्छाओ से युक्त, (उर्विया) महान् (वि अद्यौत्) यह आत्मा रूप अग्नि विविध रूप से प्रकाशित होता है। वह (दुर्मर्षम्) कठिनता से पराजय करने योग्य होकर (आयुः) जीवन, प्राणरूप, (श्रिये) शोभा कान्ति की वृद्धि के लिये (रुचानः) स्वयं कान्तिमान्, प्रकाशस्वरूप है। (२) खूब तेजस्वी सूर्य का प्रकाश इस अग्नि को उत्पन्न करता है, तो वही काष्ठों द्वारा बढ़कर नहीं बुझता, उसी प्रकार वह (अग्नि) ज्ञान-युक्त अग्निवत् तेजस्वी होकर भी (वयोभिः अमृत अभवत्) अन्नों और प्राणों से अमृत, अर्थात् नहीं मरने वाला होजाता है। (यत्) जब कि (सु-रेताः द्यौः एनं जनयत्) उत्तम वीर्यवान् पिता इसको पुत्र रूप मे उत्पन्न करता है।

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ ९ ॥

भा०—हे (भद्र-शोचे) सुखदायक कल्याणकारक कान्ति से युक्त! हे (देव) सुखप्रद ! तेजस्विन् ! (अद्य) आज (यः) जो (ते) तेरे लिये (घृतवन्तं अपूपं कृणवत्) घृत जलादि से युक्त अन्न करता है तू (तम् प्र नय) उसको उत्तम सुख प्राप्त करा और (तम्) उसको (अच्छ वस्यः प्रतरं नय) उत्तम २ ऐश्वर्य भी खूब प्रदान कर। हे

(यविष्ठ) बलवन् ! और (देवभक्तम्) प्राणो से सेवने योग्य (सुम्नम् अभि नय) सब प्रकार से सुख प्रदान कर।

आ तं भंज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भंज शस्यमाने।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जानित्वैः ॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! शिष्य ! तू (सौश्रवसेषु) उत्तम श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेशो के अवसरो पर (तम् आ भज) उस प्रभु वा गुरु की भी, उपासना कर और (शस्यमाने उक्थे उक्थे) उच्चारण वा उपदेश किये प्रत्येक वेदमन्त्र मे वा उसके निमित्त तू (तं भज) उसी प्रभु की गुरुवत् उपासना कर। वह सर्वप्रभु (सूर्ये प्रियः) सूर्य मे भी प्रकाशरूप से चमकता है। वही (अग्नौ प्रियः भवति) अग्नि मे भी तेज से चमकता है। वह (जातेन उत् भिनदत्) इस उत्पन्न हुए बीज से जैसे वृक्ष धरती को फोड़ कर निकलता है उसी प्रकार व्यक्त जीव से या पूर्व उत्पन्न कर्मबीज से देहादि को उत्पन्न करता है और (जनित्वैः उत् भिनदत्) इसी प्रकार आगे भी उत्पन्न होने वाले बीजरूप कारणो से कार्यरूप देह जगत् आदि कार्य को उत्पन्न करता रहेगा।

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने, सर्वव्यापक सर्वज्ञ ! (अनु द्यून्) सब दिनों (त्वा यजमाना) तेरे उपासक जन तेरी उपासना करते हुए ही (विश्वा वसु दधिरे) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करते हैं। और वे (त्वया सह) तेरे साथ ही (द्रविणम् इच्छमानाः) धनैश्वर्य, ज्ञान की प्राप्ति चाहते हुए (उशिजः) विद्वान् मेधावी, नाना फलो की आकांक्षा करते हुए (गोमन्त व्रजं वि वव्रुः) नाना वाणियों से युक्त, गन्तव्य ज्ञान के मार्ग का विवरण, या प्रसार करते हैं।

अस्ता॑व्य॒ग्निर्न॒रां सु॒शेवो॑ वैश्वान॒र ऋषि॑भिः॒ सोम॑गोपाः।
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म्॥१२॥२९।८।७

भा०—वह (नरां सु-शेवः) मनुष्यों में सुख से सेवने योग्य, उत्तम सुखदाता, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी, सर्वनायक सर्वोपदेष्टा, सब से प्रशंसनीय (सोम-गोपा:) ऐश्वर्यों वा जीवों का रक्षक (अग्निः) तेजोमय ज्ञानमय प्रभु (अस्तावि) स्तुति किया जाता है। हम (अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम) द्वेषरहित, प्रेमयुक्त सूर्य-भूमि वत् माता पिता को आदर से प्रार्थना करें हैं और हे (देवाः) विद्वान् जनो! आप लोग भी (अस्मे सुवीरं रयिं धत्त) में उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो॥ इत्येकोनत्रिंशो व र्गः॥ अष्टमोऽध्यायः॥

इति सप्तमोऽष्टकः।

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थ-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
ऋग्वेदालोकभाष्ये सप्तमोऽष्टकः समाप्तः॥

मुद्रक—
बाबू मथुराप्रसाद शिवहरे
दि फाइन आर्ट प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर.

(५) अविनाशी प्रभु से रक्षा की याचना। (६) सर्वातिशायी सर्वमाननीय वेद का दाता प्रभु। (पृ० २१–२५)

सू० [५१]—सौचीक अग्नि और देवगण। देह में प्रविष्ट आत्मा और अध्यक्ष सर्वसाक्षी प्रभु का वर्णन (२) प्रभु और आत्मा के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न। (३) देहस्थ आत्मा के दर्शन की उत्कण्ठा, सर्वनियन्ता प्रभु पर सर्वाशा। (४) परमेश्वर वरुण से जीव की देह-बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना। अल्पज्ञानी नचिकेता और वरुण यम का रहस्य। (५) देह में आत्मा के बंधने का कारण। (६) रथी के समान मार्गगामी विद्वानों के कर्त्तव्य। आत्मा का अपने को असहाय देख कर भयभीत होना और प्रभु से मार्ग-दर्शन की याचना। (७) दीर्घ-जीवन वाला होकर ज्ञान प्राप्त करने का आदेश। (८) दीर्घजीवन के साधनों की याचना। (९) यज्ञ से प्रयाज और अनुयाज के तुल्य जीवन में अन्न, कर्म-फल आदि एवं उत्तम गुरु-सुहृद आदि की याचना। (पृ० २५–२९)

सू० [५२]—देवगण। ज्ञानार्थी की गुरु जनों के प्रति प्रार्थना। (२) ब्रह्मज्ञान के दान और प्रतिग्रह का वर्णन। (३) सूर्य चन्द्र के तुल्य ज्ञानदाता गुरु और ज्ञानार्थी शिष्यों का सम्बन्ध। प्रतिमास चन्द्र में प्रकाशवत् विद्यार्थीगण में ज्ञानप्रकाश का धारण। (४) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों का ज्ञान-प्रकाश-प्रदान का कर्त्तव्य। अध्यात्म में—सात्विक यज्ञ का वर्णन। (५) विद्वानों से ज्ञान धारण करने के साथ वज्र-वीर्य धारण, ब्रह्मचर्य-धारण तथा प्राण निग्रह के साथ १ शत्रुदमन। (६) यज्ञ में ३३३० देवों के तुल्य देह में ३३३० शक्तियों की प्राप्ति और यज्ञवत् जीवन यापन। (पृ० २९–३३)

सू० [५३]—(१-३) सौचीक अग्नि। विद्याभिलाषियों की ज्ञानवान् विद्वान् को अपने बीच प्राप्त करने की अभिलाषा। (२) उसका

स्वागत। (३) उससे वेदज्ञान और दीर्घ जीवन-आचार की याचना, (४) देवगण। वेदज्ञान का प्रयोजन असुरों का पराजय। (५) पापों से मुक्त होने की प्रार्थना। (६-११) सौचीक अग्नि। विद्योपार्जन के अनन्तर विद्वानों का शिष्य के प्रति गृहस्थ-प्रवेश का उपदेश। (७) विद्वानों की अध्यक्ष पदों पर नियुक्ति। पक्षान्तर में—आत्म-दर्शनार्थ बाह्य इन्द्रियों का दमन—(८) नदीवत् आत्मा का वर्णन। उसमें स्नान कर पापों के त्याग का कल्याणमय ज्ञानैश्वर्यों की प्राप्ति का उपदेश। (९) सर्वशक्तिमान् परमात्मा का ज्ञानमय परशु से आत्मा के बन्धन-छेदन। औपनिषद् महास्त्र, सुआयस परशु से तुलना। (१०) ज्ञानों से अमृतमय मोक्ष पद की प्राप्ति करने का आदेश। (११) तद्गत चित्त से स्तुति करने का उपदेश। भक्त पुरुष की विजयी के समान सफलता।

सू० [५४]—इन्द्र। राजा और प्रभु का वर्णन। पृथिवी आकाशवत् राजा प्रजावर्ग की स्थिति। उन दोनों पर राजा का शासन। राजा के कर्त्तव्य, प्रजारक्षण, प्रजाशिक्षण, प्रजा का पोषण। (२) राष्ट्रपति के कर्त्तव्य, ज्ञानप्रसार और पराक्रम। (३) प्रजापति का अपने में से जगत्-सर्ग रचना। प्रजापति के आधे २ देह से नर-नारी की उत्पत्ति का रहस्य। (४) महान् प्रभु के ४ अविनाशी रूप। (५) प्रभु से ऐश्वर्य-याचना। इन्द्र की वेदोक्त व्युत्पत्ति। (६) इन्द्र के सूर्यवत् मुख्य कार्य, सब में प्रकाश देना, सब में मधुर रस देना।

सू० [५५]—इन्द्र। परमेश्वर का जगद्-धारक अव्यक्त सामर्थ्य। (२) परमेश्वर का सर्वप्रिय, सर्वपोषक, गुह्य रूप। (३) प्रभु का सर्वपालक, सर्वपूरक रूप, ३४ विकृतियों का मूल गुह्य रूप। (४) सर्वजगद्-उत्पादक परमेश्वर की मातृशक्ति उषा। (५) प्रभु का महान् अमर काव्य। (६) सर्वशक्तिमान् महान्, सनातन, सर्वव्यापक सत्य स्वरूप। अमोघ विजयी दानी प्रभु। (७) किरणों और सूर्य का सा

* ओ३म् *

ऋग्वेद-विषय-सूची

अष्टमोऽष्टकः । प्रथमोऽध्यायः ।

दशमं मण्डलं । चतुर्थोऽनुवाकः ।

सू० [४६]—अग्निः । ज्ञानी, विद्वान्, सर्वाध्यक्ष, सर्वपालक प्रभु । (१) यज्ञाग्नि के तुल्य आत्मा की ज्ञान-साधनों से प्राप्ति । (३) मोक्ष में मुक्तात्मा का प्राप्य प्रभु सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, तेजोमय है । (४) सर्वस्तुत्य, सर्वस्वामी प्रभु । (५) सर्वमोक्षप्रद, तेजोमय प्रभु (६) त्रित अग्नि का वर्णन । आचार्य-गृह में ब्रह्मचारी के तुल्य आत्मा का देह में आगमन । कलाकौशल पक्ष में—अग्नि विद्युत् का वर्णन । (७) मुख्याग्नि गुरु के अधीन अन्य अनेक शिष्याग्नियों के तुल्य मुख्य के नीचे अधीन शासकों का वर्णन । (८) सर्वज्ञानप्रद प्रभु (९) सर्वस्तुत्य, सर्वोपास्य प्रभु का उपदेश (१०) प्रभु से ही दीर्घ जीवन, बल आदि की प्रार्थना । (पृ० १७७)

सू० [४७]—इन्द्रो वैकुण्ठः । वसुपति परमेश्वर का अवलम्ब लेकर उसी से ऐश्वर्य की याचना करने का उपदेश । (१) सर्वरक्षक । (२) सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सर्वस्वामी । (४) भवतारक, महान्, सर्वदुष्ट-विघ्नादि-नाशक । (५) सबका स्वामी, सर्वनेता, सर्वसंचालक, स्तुत्य परमेश्वर का जगत् रूप महान् रथ । (६) सर्वनमस्य, सप्तप्राण, सप्तरश्मि

सत्यकर्मा, बृहस्पति। (७) प्रभु से याचना-विनय और ऐश्वर्य, और रक्षा, स्थानादि की याचना। (पृ० ७–११)

सू० [४८]—इन्द्र वैकुण्ठ। परमेश्वर। प्रत्यक्ष रूप से अध्यात्म वर्णन। (२) वह प्रभु सर्वोपरि सर्ववेदों का स्वामी, लोकनाथ, धन को देने, विभाग करने हारा है। (३) सबको बल का दाता, सबका अध्यक्ष सबके फलों का देने-दिलाने वाला। (४) आत्मा का ज्ञान-दाता, उद्धारक प्रभु। (५) मृत्यु आदि का वारक प्रभु। परमेश्वर के सख्य में सदा अभय, आश्वासन, (६) दुष्टों को दण्ड देने वाला प्रभु। (७) सर्वोपरि शक्तिशाली प्रभु। (८) दुष्ट-नाशक, प्रजापालक प्रभु। (९) प्रभु के साथ मैत्रीभाव रखने का उपदेश। (१०) सर्वशास्ता प्रभु (११) सर्वशक्तिप्रद प्रभु। वह अपराजित, अहिंसित, अविनाशी है। पक्षान्तर में—सर्वोपरि राजा का वर्णन। (पृ० ११–१६)

सू० [४९]—सर्वैश्वर्यप्रद प्रभु का आत्म-वर्णन। सर्वजगत्-उत्पादक, बलप्रद, सर्वप्रेरक, दुष्ट-दण्डक प्रभु। (२) सर्वव्यापक, सर्ववशकर्त्ता प्रभु। (३) अज्ञान-नाशक, सर्वरक्षक, दुष्टदण्डक, सज्जनपालक प्रभु। (४) प्रभु के पिता के तुल्य कर्त्तव्य। प्रभु का दुष्टों का दमन। (५) अपनी ओर आने वालों के प्रति प्रभु की विशेष कृपा। (६) सर्वतारक प्रभु। (७) भक्तों पर कृपालु परमेश्वर। (८) साधक पुरुष के प्रति प्रभु के कार्य। (९) प्रभु का देह में आत्मा के तुल्य अद्‌भुत कार्य। (१०) देह में आत्मा के कर्त्तव्य। (११) प्रभु के अद्‌भुत कर्म। (पृ० १६–२२)

सू० [५०] इन्द्र वैकुण्ठ। सर्वोपरि, सर्वस्तुत्य, आनन्दमय, सर्वोत्पादक प्रभु। (२) सर्वस्वामी, सर्वसेव्य, सर्वसुखप्रद, निरञ्जन प्रभु। (३) प्रभु विषयक प्रश्न (४) सर्वपूज्य, सर्वद्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रेरक।

पति के अधिकार। वह कन्या के धन का अधिकारी न हो। (९) चोरवत् व्यक्ति के हाथ कन्या को न देकर वीर पुरुष के हाथ कन्यादि का दान करे। (१०) विद्यार्थियों के कर्त्तव्य, गुरु उपासना। पक्षान्तर में—नवविवाहितों के सत्कर्त्तव्य। (११) ब्रह्मचारी के तुल्य विवाहित के कर्त्तव्य। (१२) निष्पाप जीवन का फल दीर्घ-जीवन। (१३) मुख्य प्राण के अधीन गौण प्राणों के तुल्य राजा के अधीन सामन्तों के कर्त्तव्य। (१४) सर्वोपास्य पापनाशक देव भर्ग। (१५) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य उनके ब्रह्मचारी वा पुत्रों के प्रति कर्त्तव्य। (१६) राजा के तुल्य आत्मा का वर्णन। उसको रथवत् देह-चालन का कर्त्तव्य। (१७) पुत्रवत् आत्मा का उभय-लोक-तारक होने का वर्णन। (१८) सर्वाश्रय हृदयस्थ परमात्मा का सर्वमाता के तुल्य होना, वही उपास्य है। (१९) मातृवत् प्रकृति का वर्णन। उससे पुत्रवत् जीव-सर्ग। उसकी सेवनीय गौ के साथ उपमा। (२०) बालकवत् आत्मा का वर्णन। उसका देह पर वशीकरण करने का वर्णन। (२१) उत्तम भक्त के लक्षण। जितेन्द्रिय से ही प्रभु प्रसन्न होता है। (२२) प्रभु से रक्षा, और निष्पाप होने की प्रार्थना। (२३) सन्यासी उपदेष्टा के कर्त्तव्य। (२४) अवश्य प्रार्थनीय सर्वसुखप्रद प्रभु (२५) उपास्य प्रभु से ज्ञान और अन्न की याचना। (२६) उपास्य प्रभु, सर्वोत्तम बन्धु उत्तम दुधार गौ के तुल्य है। (२७) विद्वानों को ज्ञान-सेवन, प्रभु के प्रेमी होने का उपदेश। (पृ० ६५-७९)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [९२]—विश्वेदेव और आङ्गिरस गण। ईश्वरोपासना से मोक्ष लाभ। विद्वानों के कल्याण की भावना। विद्वानों का कर्त्तव्य, मनुष्यों पर

अनुग्रह करना। (२) गढ़े खजाने के तुल्य ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश, (३) विद्वान् तेजस्वियों का कर्त्तव्य राजा का स्थापन, प्रजा का अभ्युदय, मानवों पर अनुग्रह। पक्षान्तर में—योगाभ्यास का वर्णन। (४) गुरु और ज्ञानार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य। (५) उत्तम शिष्यों के कर्त्तव्य। उनके बीच सूर्यवत् उनको ज्ञान देना। (७) गुरु-शिष्य का विद्या-दाना-ऽऽदान। (८) जीव की सस्यांकुर के समान उत्पत्ति, (९) तेजस्वी का सूर्यवत् सर्वोच्च स्थान। उसका महान् सागरवत् वर्णन। (१०) उसका सबसे अधिक आदर, (११) तेजस्वी नायक के कर्त्तव्य। उसके ग्राह्य गुण।

सू० [६३]—विश्वेदेव। उपदेष्टा लोगों के कर्त्तव्य। (२) उत्तम नाम पदधारी नेता जनों के कर्त्तव्य। (३) माता-पिता गुरु आदि से शिक्षा, ज्ञान, मधु अन्नादि प्राप्त करने वाले विद्यावानों के सुख-कल्याण की कामना। (४) मोक्षसेवी ज्ञानी पुरुषों के लक्षण। (५) योग्य आदरणीय पूज्यों की पूजा का उपदेश। (६) सेव्य, वेदोपदेष्टा, सर्वतारक प्रभु। (७) विद्यावानों से कल्याण की याचना। (८) उत्तम ज्ञानी ऐश्वर्यवानों से सुख-कल्याण रक्षा की याचना। (९) पापमोचन उत्तम जनों का सादर आमन्त्रण। (१०) उत्तम नौका के तुल्य तारक प्रभुमयी नौका का वर्णन। (११) रक्षार्थ उत्तम पुरुषों का शासन, और उनसे रक्षा और कल्याण की प्रार्थना। (१२) वे प्रजाओं में से रोग, पीड़ा, परस्पर अदानशीलता और दुःखदायिनी हिंसा को दूर करें। (१३) तेजस्वी और उत्तम व्यापारियों के कर्त्तव्य। उनके आत्मा का अभ्युदय। (१४) वीरों विद्वानों के रक्षा-कुशल अध्यक्ष का वर्णन। (१५) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य, वे प्रजाओं में उत्तम सुखप्रद मार्ग, समुद्र नदी आदि पर गमन-साधन और गृहस्थ में शान्तिस्थापन करें। (१६)

विद्वानों का परमेश्वर से सम्बन्ध। (८) शिल्पी के तुल्य प्रभु परमेश्वर का जगत्सर्जन कार्य। (पृ० ५२-४६)

सू० [५६]—विश्वेदेव। सर्वाश्रय प्रभु में रमण करते हुए सर्वोत्तम, ज्योतिर्मय प्रभु में मग्न होना। (२) आत्मा को जन्म-जन्मान्तर में साधन कर प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश। (३) उत्तम कर्म, उत्तम ज्ञान, उत्तम मार्गों से उत्तम गति प्राप्त करने का उपदेश। (४) उनको उत्तम मार्गों का उपदेश। (५) उत्तम लोक-प्राप्ति और प्रजा-प्रसार का उपदेश। (६) अगली प्रजा के स्थापन का उपदेश अथवा वानप्रस्थोचित विधि से वंश-स्थापन, अविच्छिन्न तन्तु करने का उपदेश। (७) नाव और समुद्र के दृष्टान्त से इस लोक का तरण, प्रजास्थापन का उपदेश।

सू० [५७]—विश्वेदेव। प्रभु से दूर न होने और कुपथ पर न जाने का आदेश। (२) ईश्वर भक्त की आत्मा की सूत्र, प्रजा वा पुत्रवत् स्थिति। उसकी प्राप्ति का आदेश। (३) मन को वश करने का उपदेश। (४) मन का पुनः ज्ञानमार्ग में प्रवर्त्तन, प्रत्याहार, योग-अंग की साधना। (५) मन को बलवान् बनाने का उपदेश। (६) परमेश्वर प्राप्त्यर्थ अनेक जन्मों में उत्तम मन उत्तम प्रजावान् होने की कामना। (पृ० ५०—५२)

सू० [५८]—मनःआवर्त्तन। इस लोक में पुनः आने, जन्म लेने आदि के निमित्त मन का पुनः २ आवर्तन। योगाङ्ग रूप प्रत्याहार का वर्णन।

सू० [५९]—(१-३) निर्ऋतिः। गृहस्थ को सुखपूर्वक निभाने का उपदेश। बालक दीर्घायु हों। (२) उत्तम अन्न वा धनों को प्राप्त करें। (३) शत्रु पर विजय करें और विद्वान् की मार्गदर्शिता में हम

दुःख से मुक्त, सुखी हों। (४) निर्ऋति और सोम। विद्वान् के कर्त्तव्य। वह अन्यों को कष्टों से बचावे। प्रभु हमें प्रकृति के तमोमय बन्धन से मुक्त रखें। (५-६) असुनीति। प्राणप्रद प्रभु से प्रार्थना। उससे पुनः जन्म जन्मान्तरों में समस्त इन्द्रियादि सुख-साधनों की प्रार्थना। (७) प्रभु से पुनः प्राणादि की याचना। (९-१०) द्यावापृथिवी। आकाश-भूमिवत् माता-पिता के कर्त्तव्य। वे प्रजा का कष्ट दूर करें।

सू० [६०]—असमाता राजा। विनयशील तेजस्वी, स्तुत्य जन को आश्रय करने का उपदेश। (२) असाधारण मानवान्, पालक की शरण ग्रहण करो। (३) राजा का हिंसावत् पराक्रमी होने का कर्त्तव्य। (४) प्रजा वृद्ध्यर्थ मधुरभाषी राजा की आवश्यकता। (५) राजा के आश्रयभूत जन असाधारण बल और ज्ञान वाले हों। (६) प्रजा के हितार्थ राजा-प्रजावर्गों को सन्मार्ग पर चलाने और दुष्टों के दमन का उपदेश। (७) माता पिता के तुल्य राजपद। (८) जुए के समान मन के वशीकरण का उपदेश। (९) मनोदमन का प्रभु को साधन बनाना। (१०) दीर्घजीवन वा कल्याणार्थ प्रभु से ज्ञान वा मन-शक्ति की याचना। (११) पापत्यागार्थ व्रत आदि से विनय की शिक्षा। (१२) हाथों के सौभाग्यवान् और कल्याणप्रद होने की प्रार्थना। (पृ० ६०-६४)

सू० [६१]—विश्वेदेव। ब्रह्मा पद के योग्य विद्वान् का लक्षण। पक्षान्तर में मेघ-कर्म। (२) मेघ वा सूर्यवत् पराक्रमी राजा के कर्त्तव्य। (३) शक्तिशाली की आज्ञा-पालन का उपदेश। (४) दिन रात्रिवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य, वे प्रातः यज्ञ, विद्याभ्यासादि करें। प्रेम भाव से रहें। (५) गृहस्थ को पुत्रोत्पत्ति और वनस्थ होने का उपदेश। (६) पुत्रोत्पादन की आवश्यकता। (७) पुत्र न होने की दशा में कन्या को पिता के धन का उत्तराधिकार। (८) अभ्रातृका कन्या के

उत्तम गृहणी के सेना के सदृश कर्त्तव्य । (१७) उत्तम शासक और विद्वानों के कर्त्तव्य ।

सू० [६४]—विश्वेदेव । सदा स्मरणीय और मननीय प्रभु देव की जिज्ञासा । (१) ज्ञानार्थी और फलार्थी सब पर दयालु प्रभु । (३) सर्वोपरि स्तुत्य प्रभु और स्तुत्य सूर्य चन्द्रवत् उत्तम स्त्री पुरुष । (४) एक मात्र जगत्-कर्त्ता वेदवाणियों से स्तुत्य महान् प्रभु । (५) राजा के तुल्य आत्मा का नाना देहों में विचरण और भोग्य फल प्राप्ति । (६) शूरवार दानी, लोगों से प्रार्थना । (७) वायुवद् बलवान् पोषकों का वरण, क्योंकि वे प्रभु के शासन में एक चित्त होकर कार्य करते हैं । (८) उत्तम शक्तियों और शक्तिशालि पुरुषों की प्राप्ति । (९) उदार देवियों का सादर आमन्त्रण और अन्नवत् ज्ञान-याचना । (१०) पूज्यों से प्रार्थना, प्रभु से रक्षा की प्रार्थना । (११) सम्पन्न गृहवत् सुखदायी प्रभु । उत्तम जनों का सुखदायी उपदेश । यशः-सम्पदा आदि की कामना । (१२) विद्वानों से उपदेशों और उत्तम मान-प्राप्ति की प्रार्थना । (१३) विद्वानों और वीरों से परस्पर बन्धुत्व और ज्ञान-प्रसार की प्रार्थना । (१४) सूर्य भूमि के तुल्य माता पिताओं के कर्त्तव्य । (१५) परम वेदवाणी का वर्णन । (१६) विद्वान् ज्ञानी को उत्तम जन्म लाभ । (१७) उत्तम शासक और विद्वानों के कर्त्तव्य । (पृ० ९६–१०)

सू० [६५]—विश्वेदेव । अग्नि, विद्युत्, जल, अन्न, सूर्य, वायु, पृथिवी, नदी १२ मास, आकाश, अन्तरिक्ष, देहगत प्राणगण, तेज, शब्द, ओषधिगण, प्राण, प्रकृति, प्रभु इनकी परस्पर सुसंगत स्थिति । (२) वायु, अग्नि जल की व्यापक स्थिति, ओषधिवर्ग की जल के आश्रय वृद्धि, पक्षान्तर में राष्ट्र में सेनापति, पुरोहित और राजा तथा गृहपति, स्त्री और पुत्र का वर्णन । (३) उन शक्तिशाली पदार्थों का वर्णन ।

(४) महापुरुषों के कर्त्तव्य । (५) मित्र वरुण, वायु जलवत् दानी स्नेही, महापुरुषों का वर्णन । (६) पृथ्वी के परि भ्रमण से ऋतुओं की उत्पत्ति आदि का वर्णन । (७) सूर्य की रश्मियों के तुल्य ज्ञानी पुरुषों का वर्णन । (८) आकाश, भूमि, वा सूर्य पृथिवीवत् पुत्रों के प्रति माता-पिता के कर्त्तव्य । (९) इन्द्र वायु, मेघ वायु, और सूर्य किरणों के तुल्य पार्थिव और दिव्य जनों और तत्त्वों का वर्णन । (१०) सूर्यादि के तत्त्वज्ञ की उपासना । (११) उत्तम पुरुषों के लक्षण । (१२) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (१३) उत्तम पुरुषों से प्रार्थना । (१४) श्रेष्ठ जनों के कर्त्तव्य । (१५) ब्रह्मचारी और आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० १००–१०९)

सू० [६६]—विश्वेदेव । राजा गुरु आदि पूज्यों की उपासना और सत्संग का उपदेश । (२) विद्वानों से ज्ञान-प्राप्ति का उपदेश । (३) तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य, प्रजा का पालन । (४) माता पिता के तुल्य प्रिय, सत्यज्ञानी पुरुषों के आदर का उपदेश । (५) श्रेष्ठों से शरण आदि की याचना । (६) यज्ञ, विद्वान् स्त्री पुरुषों, वीरों के बलशाली होने की प्रार्थना । (७) अग्नि जलवत् शान्तिप्रद और दुष्ट-संतापक से सुख की प्रार्थना । (८) क्षत्रियों के कर्त्तव्य । (९) विद्वानों के कर्त्तव्य । (१०) राजसभादि के विद्वान् सभासदों के कर्त्तव्य । (११) राजादि पुरुषों से प्रार्थना । (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (१३) न्यायमार्ग का अनुसरण । विद्वानों के सत्संग का उपदेश । (१४) उत्तम गुरु जनों का कर्त्तव्य वे प्रेम से वेदोपदेश करें ।

सू० [६७]—बृहस्पति । वेदज्ञ विद्वान् का कर्त्तव्य ज्ञानोपदेश कर मोक्ष प्राप्त कराना । पक्षान्तर में—प्रभु की महिमा । (२) सत्योपदेष्टा जनों के कर्त्तव्य । (३) विद्वान् परमहंसों के कर्त्तव्य, वे देह-बन्धन

को दूर करें। पक्षान्तर में सूर्य का वर्णन। (४) बृहस्पति रूप आत्मा का देह में वर्णन। उसको वेदत्रयी का साक्षात्कार। (५) ज्ञानवान् आत्मा का देहपुरी-बन्धन का भेदन। अध्यात्म योजना। (६) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का दुष्ट-दमन का कर्त्तव्य। (७) सूर्य के दृष्टान्त से राजा को संग्रह का उपदेश। पक्षान्तर में—आत्मा का प्राण-च्छिद्र-निर्माण आदि का वर्णन, आत्मा के धनसनि, वृष, वराह आदि नामों की व्याख्या। (८) माण्डलिकों में प्रधान राजा के तुल्य प्राणों में आत्मा का वर्णन पक्षान्तर में—प्रभु और भक्त का वर्णन। (९) सिंहवत् पराक्रमी सभापति के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्मिक बल बढ़ाने का उपाय। (१०) सूर्यवत् प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में—राष्ट्रपति और वेदज्ञ विद्वान् के कर्त्तव्य। (११) विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। (१२) सूर्य का मेघ-भेदनवत् आत्मा के देह में प्राण-मार्गों के भेदन का वर्णन। राष्ट्र में राजा-प्रजावर्गों का कर्त्तव्य। सप्त-सिन्धुओं के भेदन का रहस्य। (पृ० ११ –१२५)

सू० [६८]—बृहस्पति। हंसवत् भक्तों के कर्त्तव्य। भक्तों की प्रकट होती वाणियां का वर्णन। (२) अग्नियों के तुल्य विद्वानों का कार्य, सत्-मार्ग प्रकाशन। पुरोहित वा गुरुवत् प्रभु से सन्मार्ग की आशा। कर्मफल दाता प्रभु। (३) किसान के समान प्रभु का सृष्टि-वपन का कार्य। और खेतियों के समान पृथिवियों का वर्णन। पक्षान्तर में प्रभु का जंगम सृष्टि रचने का वर्णन। और जंगम-सर्गोत्पादक जंगम भूमियों का वर्णन। (४) परमेश्वर ज्ञान किस प्रकार देता है इस का वर्णन। मेघ से, वा पर्वत से जलधाराओंवत् ज्ञान धाराओं की प्राप्ति का वर्णन। शिल्पी द्वारा बनी नहर के समान शिष्यों में ज्ञान-धारा का प्रवर्त्तन। (५) प्रकाश से अन्धकार के तुल्य वा वायु के झोके से सेवार के तुल्य अज्ञान के नाश का उपदेश। (६) अन्नवत् शत्रुदल के ग्रसने

का उपदेश। पक्षान्तर में—मन्त्रों से ज्ञानप्राप्ति का उपदेश। (७) वेदवाणियों से गुह्य ज्ञान करने का उपाय। वेद से समस्त ब्रह्माण्डों के ज्ञान करने का उपदेश। (८) छोटे तालाब में तड़पते हुए मत्स्य के समान बद्ध आत्मा की स्थिति। उसको ज्ञान द्वारा मुक्त होने का उपदेश। उसके लिये वह ओंकार का ध्यान करे। मुक्ति में डण्डी से फल टूटने के समान बन्धन-छेद। (९) साधना से ऋतम्भरा के प्रति प्रकाशमय आत्मा का दर्शन, पोरु १ में मज्जा वा सींख के दृष्टान्त से आत्म-विवेचन का उपदेश। (१०) पतङ्ग के दृष्टान्त से भोग आदि बन्धनों का त्याग—फिर बन्धन में आना। (११) मेघ की विद्युत् जैसे वैसे दिन रात्रि का अनेक प्रकार से विभाग। अध्यात्म में—आत्मा को गुणों द्वारा भूपित करना। और ज्ञानेन्द्रिय-वृत्तियों से आत्मा का बोध। राष्ट्रपक्ष में—राजा का कर्त्तव्य। विवेक पूर्वक न्याय-शासन। (१२) उपदेष्टा गुरु के कर्त्तव्य। (पृ० १२५-१३४)

सू० [६९]—अग्नि। संयमी के परमात्मविषयक सम्यक् दर्शन उसी की यज्ञाग्निवत् प्रतिष्ठा। पक्षान्तर में—राजा के कल्याणकारी कार्य, प्रजा द्वारा उसका अभिषेक। (२) घृत से अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजा का वर्णन। (३) तेजस्वी राजा की प्रशंसनीय नीति। वह प्रजा को ज्ञान-ऐश्वर्य आदि दे। (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। प्रजा के प्रति राजा के उदार दान। पक्षान्तर में प्रभु के उदार दान। (५) राजा के कर्त्तव्य। (६) राजा का विजय कार्य। (७) शक्तिशाली राजा का वर्णन। उसकी आचार्य से समता। (८) उत्तम गौ के तुल्य स्त्री और वाणी का वर्णन। (९) परमेश्वर की महान् महिमा। (१०) पिता पुत्र के तुल्य राजा का व्यवहार। (११) राजा की विनय दण्ड की व्यवस्था। (१२) प्रभु और राजा। (पृ० १३४-१४२)

सू० [७०]—(१) अग्नि। अग्नि के दृष्टान्त से गुरु के कर्त्तव्य।

(३) शिष्यों के कर्त्तव्य । (४) धान्यवत् प्रजाजन के विस्तृत होने का वर्णन । (५) स्त्रियों और सेनाओं का द्वारों के दृष्टान्त से वर्णन । (६) दिन रात्रिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषों का वर्णन । (७) विद्वान् उपदेष्टा का कर्त्तव्य । (८) इडा, आदि तीन देवियें और उनके कर्त्तव्य । (९) विद्वानों के बीच पालक स्वामी का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में प्राणों के बीच आत्मा की स्थिति । (१०) वनस्पतिवत् शासक का कर्त्तव्य । (११) अग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य । (पृ० १४२–१४६)

सू० [७१]—ज्ञान । बुद्धि में वाणी की उत्पत्ति । प्राथमिक वाणी का उद्भव । उनके प्रेम वश अन्यों को उपदेश । (२) विद्वानों का विवेक से पवित्र वाणी का प्रयोग । वेदों का बुद्धिपूर्वक साक्षात्कार और प्रकाश । (३) संगति द्वारा वाणी को समझने का सिद्धान्त । (४) वाणी के ज्ञान में विद्वान् और अविद्वान् का भेद । वाणी और विद्वान् की पतिपत्नी से उपमा । (५) विद्वान् और अविद्वान् में भेद । स्थिरपीत विद्वान् का लक्षण । वाणी के पुष्प और फल । अविद्वान् की अफला अपुष्पा वाणी । अविद्वान् की मायावृत्ति । (६) सच्चे मित्र वेद के त्यागने वाले को दण्ड । (७) एक समान अध्येताओं में भी ज्ञान मार्ग में न्यूनाधिक ज्ञानी होने का कारण । (८) विद्यार्थियों को ज्ञान-वृद्ध्यर्थ परस्पर वाद-प्रतिवाद करने का उपदेश । (९) वेदज्ञान का लाभ न करने वालों का अनिष्ट जीवन (१०) विशेष विद्वान् का वर्णन । (११) वेदाभ्यासार्थ ४ ऋत्विजों के कार्यों का वर्णन । (पृ० १४९–१५६)
इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः

सू० [७२]—देवगण । देवों, विद्वानों, दिव्य पदार्थों के जन्मादि सम्बन्ध में विवेचन । (२) लोहकार शिल्पी के दृष्टान्त से गुरु के कर्त्तव्य

एवं जगत्-उत्पादक प्रभु के सर्जन आदि दर्शन। (३) उषा के दृष्टान्त से असत् दशा से सत् का प्रादुर्भाव। (४) पृथिवी से स्थावर-जंगम सृष्टि के तुल्य प्रकृति से जगत्-सर्ग का वर्णन। (५) सूर्य से भूमि के तुल्य गुरु से विद्या का प्रादुर्भाव। सूर्य की पुत्री पृथिवी से अनेक जीवों की उत्पत्ति। प्रकृति से सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति का वर्णन। (६) प्रकृतिमय लोकों में जीवसर्ग। पक्षान्तर में—आचार्य कुल में शिष्यों का सर्ग और उनकी सदाचार से उन्नति। (७) मेघों के तुल्य सूर्यादि लोकों के कर्त्तव्य। सूर्य के किरणों के तुल्य देहधारियों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में—विद्वानों का मेघादिवत् उदार कर्त्तव्य। (८) माता से पुत्रों के तुल्य प्रकृति से ८ प्रकृति-विकृतियों की उत्पत्ति। दूर २ तक लोकों में देहवान् सर्ग की सृष्टि। पक्षान्तर में देह-प्रकृति के आठ पुत्र ८ प्राण। (९) आत्मा में ७ प्राणों की शक्ति, उसकी देह-धारक शक्ति का वर्णन। (पृ० १५७–१६३)

सू० [७२]—इन्द्र। माता के तुल्य वीरोत्पादक प्रजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रकृति-पुरुष का वर्णन। (१) सेनापति की सेना से बढ़ने वाले वीरभटों के तुल्य माता से उत्पन्न गर्भों का वर्णन। (३) ऐश्वर्यवान् राजा के दो कर्त्तव्य। (४) राजा के शासनार्थ कर्त्तव्य। (५) सेनापति वा सभापति के कर्त्तव्य, न्याय शासन, दुष्ट-दमन। (६) सूर्यवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य। प्रजापालन और शत्रुनाश। (७) उसका दुष्ट-दमन का कार्य। (८) सूर्यवत् प्रजापालक का उदार शासन। (९) सूर्य-मेघ चक्रवत् राजा के राष्ट्रचक्र का वर्णन। राजा का [illegible]दर मेघवत् राष्ट्र में जलसेचन का प्रबन्ध। पक्षान्तर में परमेश्वर का जगत्सर्जन। वेदद्वारा जगत् का ज्ञान-वर्णन। पक्षान्तर में देहों के बीच लिङ्ग शरीरों का वर्णन, जलाश्रित देह। देह बन्धन का ज्ञान से छेदन। रसाधार देह। (१०) मेघ की सूर्य से उत्पत्ति के तुल्य

सैन्य बल से राष्ट्र की उत्पत्ति। पक्षान्तर में प्रभु से जगत् की उत्पत्ति, विद्युत्-विद्या। (११) सूर्य की किरणों के तुल्य ज्ञानदर्शी विद्वान् उपासकों का वर्णन। उनकी प्रभु से प्रार्थना।

सू० [७४]—इन्द्र। दानशील और वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) किरणों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। (३) मोक्ष-साधकों के कर्त्तव्य उनको दान देने का धर्म। (४) भूमि से फल, फ़सल चाहने वाले खेतिहरों के तुल्य वीरों और विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) सेनापति और गुरु के उत्तम लक्षण। (६) विद्युत् के तुल्य विजेता के कर्त्तव्य। प्रधान-पद योग्य पुरुष। (पृ० १७३—१७७)

सू० [७५]—नदियां। आप्तों, प्राणों का वर्णन। पक्षान्तर में—जलों के सम्बन्ध में शिल्पी का विशेष ज्ञान। जल-विज्ञान। और प्राण-विज्ञान। (१) इन्जीनियर के तुल्य प्रयाणार्थं मार्ग-निर्माण में राजा के कर्त्तव्य। (२) अध्यात्म में देह-शिल्प का वर्णन। प्रभु विषयक मन्त्र-योजना। (३) बरसाती जल-धाराओं और बहती नदियों के तुल्य सेनापति और उसकी शक्तियों का वर्णन। (४) माता और पुत्रवत् राजा प्रजा का कर्त्तव्य वर्णन। योद्धा राजा के तुल्य नायक का वर्णन। (५) गंगा आदि देहगत १० नाड़ियों का वर्णन, उनका विशेष विवरण। आत्मा रूप नदी सिन्धु। (६) आत्मा रूप सिन्धु का वर्णन। तृष्टामा आदि देहगत ८ नाड़ियों का वर्णन। (७) आत्मा का सिन्धु रूप से वर्णन। (८) आत्मा का युवति रूप से वर्णन। सिन्धु रूप से अनादि आत्मा का वर्णन। (पृ० १७७—१८६)

सू० [७६]—ग्राव गण। विद्वानों और वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वह प्रधान नायक के अधीन रहें। (३) नाना पदों पर योग्यों का स्थापन। (४) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। दुष्टदमन, कष्ट-निवारण,

ऐश्वर्य-सम्पादन। (५) विशेष सामर्थ्यों के आदर का उपदेश। (६) मेघवत् विद्वान् उपदेष्टाओं के कर्त्तव्य। (७) मेघवत् वीर पुरुषों विद्वानों के कर्त्तव्य। आत्म-साक्षात्कार। गोपालक के समान रस दोहन का उपदेश। मुखों से अन्नों के तुल्य समस्त उत्तम वचनों का सेवन। (८) प्रभु की उपासना। उपयोगी समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने का उपदेश। (पृ० १७६–१९०)

सू० [७७]—मरुद्गण। वर्षा लाने वाले वायुगण के सदृश विद्वानों, प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (२) शस्त्र-निर्माण, लक्ष्मी-वृद्धि, वीरों की वृद्धि का उपदेश। किरणोंवत् वीरों के उद्योग करने की आवश्यकता। (३) सूर्यवत् वीरों के तेजस्विता के कर्त्तव्य। (४) जल धाराओं के समान वीर विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) रथ में जुते अश्वों के तुल्य वा रश्मियों से बद्ध वायुओं के तुल्य नियुक्त वीरों के कर्त्तव्य। (६) वीरों और वैश्य वर्गों को धन की प्राप्ति का उपदेश। (७) दानशील उदार पुरुष को उत्तम लाभ और उत्तम मान-पद प्राप्ति। (८) रक्षक, सर्वशान्तिदायक आदित्य विद्वान् तेजस्वियों के कर्त्तव्य। (पृ० १९१–१९५)

सू० [७८]—मरुद्गण। विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य। वे निष्पाप हों। (२) वे तेजस्वी हों, उत्तम भूषण पहनें, नियम और समय के पाबन्द हों, (३) वायुवद् बलशाली, अग्नि-ज्वालाओं के तुल्य तेजस्वी, और शुभ ज्ञानदाता हों। (४) चक्र के अरों के समान परस्पर बन्धु, ईश्वरोपासक हों, (५) वे नाना विद्याओं में पारंगत, सर्वपोषक, विनयी हों, (६) मेघों के तुल्य उनके कर्त्तव्य। 'सिन्धु-मातरः' का रहस्य। बालकों के समान उनके धर्म। पक्षान्तर में देहगत प्राणों का वर्णन। (७) प्राभातिक रश्मियों के तुल्य वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। वे गुणी तेजस्वी, शुभकारी, ज्ञानी, वेगवान्, दूरदेशगामी हों (८) उनसे ऐश्वर्यों, ज्ञानों और मैत्री-सद्भाव की प्रार्थना। (१९६–२००)

सू० [७९]—अग्निः। अग्नि, जाठरअग्नि, व्यापक आत्मा और परमात्मा का श्लेष से वर्णन। जड़ जगत् में आत्मा की अद्भुत आश्चर्यकारी शक्तियों का वर्णन। नश्वर देहों में अविनश्वर आत्मा के दर्शन। अग्नि तत्व में ताप और विद्युत् दो शक्तियां। (२) शरीर में स्थित वैश्वानर आत्मा की अद्भुत महिमा। यज्ञवत् वैश्वानर अग्नि में आहुति। पक्षान्तर में विशाल वैश्वानर का वर्णन। उसमें महान् यज्ञ के दर्शन। (३) शिशु के तुल्य आत्मा का वर्णन, पक्षान्तर में साधक योगी के आत्मा का वर्णन। (४) आत्मा का अद्भुत वर्णन। अज्ञेय प्रभु। आत्मा की रहस्यमय गति। (५) कृपालु, परमेश्वर की जीवों के प्रति अद्भुत दया-युक्त व्यवस्था। परमेश्वर का सहस्र रूप। पुरुषसूक्तोक्त वा गीतोक्त विराट् का व न। (६) परमेश्वर के उग्र रूप को देखकर भक्त की जिज्ञासा। परमेश्वर की संहारक शक्ति का दर्शन। गीता के ११ वें अध्याय में कहे विराट् की उग्र रूप से तुलना। (७) सूर्य के समान आत्मा का वर्णन। पक्षान्तर में अग्नि और वीर तेजस्वी का चन्द्र के तुल्य वर्णन। (पृ० २००–२०८)

सू० [८०]—अग्निः। प्रभु परमेश्वर आत्मा और वीर शासक पुरुष का अग्निवत् श्लिष्ट वर्णन। सर्वधारक अग्नि, सूर्यवत् सर्वधारक प्रभु सर्वोत्पादक है। पक्षान्तर में चिति शक्ति और वाणी आदि का धारक वेदादि वचनों से श्रोतव्य आत्मा। (२) ज्ञानी की वाणी कल्याणकारिणी, हो, तेजस्वी पुरुष और प्रभु सर्वदुष्ट-नाशक हैं। पक्षान्तर में देहगत तेज, ओज रूप अग्नि का वर्णन। (३) सर्वरक्षक, मृत्युनाशक प्रभु और देहस्थ जाठर अग्नि का वर्णन। (४) तेजस्वी अग्रणी प्रधान पुरुष के कर्त्तव्य। और देहस्थ वीर्याग्नि का वर्णन। (५) सर्वस्तुत्य, नित्य-स्मरणीय, सर्वकाल-प्रार्थनीय और सर्वध्यानास्पद प्रभु। पक्षान्तर में भौतिक अग्नि के नाना वैज्ञानिक उपयोगों का वर्णन। (६) सर्वोपास्य,

प्रभु, वेदवाणी का उपदेष्टा। पक्षान्तर में अग्नि या तेज की सर्वत्र उपासना. सर्वत्र अग्नि का साक्ष्य। वेदरूप सर्वश्रेष्ठ मार्ग। विद्वान् सत्कार योग्य है। (७) वेद से रक्षा की याचना। पक्षान्तर में शक्तिशाली अग्नि, उसकी पालाशी अरणियों से उत्पत्ति (पृ० २०८–२१४)

सू० [८१]—विश्वकर्मा। सबका दाता, सर्वपालक, सर्वप्रेमी, सर्वव्यापक, विश्वकर्मा परमेश्वर—सायण मतानुसार ईश्वर का प्रलय रूप सर्वमेध यज्ञ। एक यास्कोक्त इतिहास के अनुसार सायणीय अर्थ। उसमें दोष। यास्क वचन का दुर्ग-सम्मत अभिप्राय। आहुति का अर्थ आत्म-दर्शन। तदनुसार मन्त्रार्थ। सर्वमेध की व्याख्या। गीता, और उपनिषदादि में प्रोक्त आत्म-दर्शन की संगति। (२) जगत् के आश्रय, और सर्ग तथा मूलकारण आदि के सम्बन्ध में प्रश्न। (३) सर्वकर्त्ता परमेश्वर का स्वरूप। वह प्रभु सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, अद्वितीय विश्वकर्मा है। (४) आकाश भूमि और जगत् के उपादान कारण और सर्वाध्यक्ष विषयक प्रश्न। (५) प्रभु का सर्वमेध यज्ञ सब जीवों को कर्मानुसार देह, सुख, कर्म फलादि देना ही है। परमेश्वर के तीन धाम, तीन प्रकार के नाम। (६) परमेश्वर की जगत् रूप अद्भुत आत्माहुति। (७) वाचस्पति प्रभु का स्मरण, ध्यान, प्रार्थना। सर्वजगत् का उत्तम शिल्पी प्रभु। (पृ० २१४–२२३)

सू०[८२]—सब जगत् का कर्त्ता परमेश्वर। उसी की शक्ति से भूमि, आकाश स्थूल जगत् की स्थिति और वृद्धि। पृथिवी आदि का क्रमशः सर्जन। (२) विश्वकर्मा, विश्वस्रष्टा का वर्णन। पक्षान्तर में देहाश्रित विश्वकर्मा आत्मा का वर्णन। विश्वकर्मा आदित्य का वर्णन। (३) परमेश्वर पिता, उत्पादक, व्यवस्थापक सर्वज्ञ, अद्वितीय, अविज्ञेय सब का लक्ष्य है। (४) ऋषिजनों का सर्वोपास्य प्रभु में समस्त भूत-दर्शन रूप सर्वमेध।

ऋषिजनों का प्रभु में चित्त-समर्पण । (५) सर्वाश्रय, सर्वश्रेष्ठ प्रभु । (६) सर्वाश्रय प्रभु एक, अजन्मा है । वही सब प्रकृति और समस्त दिव्य लोकों और शक्तियों का आश्रय । (७) व्यापक, अन्तर्यामी, अज्ञेय प्रभु । (पृ० २१४—२१९)

सू० [८३]—मन्यु । प्रतापी तेजस्वी स्वामी के सहाय के कर्त्तव्य । (२) मन्यु ज्ञानी, सस्तंभक, सर्वमान्य देव का स्वरूप । (३) अति बलशाली, मन्युदेव, प्रभु । अध्यात्म में इन्द्र मन्यु आत्मा । (४) मन्यु सेनापति का वर्णन । पक्षान्तर में संकल्प मात्र से जगत्चालक प्रभु । (५) परम ज्ञानी, प्रभु स्वामी के प्रति विरही भक्त की विरहवेदना-युक्त विनय भाव । (६) सर्वदण्डक, सर्वपोषक, सर्वपालक प्रभु के प्रति भक्त का ममत्व । (७) भक्त का प्रभु के दर्शनों के लिये उतावलापन, और समान सख्यभाव (पृ० २२०—२२३)

सू० [८४]—मन्यु । सेनापति का वर्णन । अध्यात्म में रस स्वरूप प्रभु का वर्णन । (२) सेनापति का कार्य सैन्यसंञ्चालन शत्रु सेनाओं का दूरीकरण । (३) वह सब को वश करे । (४) युद्ध के लिये सबको उत्साहित करे । (५) शक्तिशाली पुरुष अध्यक्ष, सर्वप्रिय, सब शक्तियों का स्रोत हो । (६) सर्वातिशयी बली, सर्वस्तुत्य, युद्धकुशल हो । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (७) वह प्रजा को ऐश्वर्य दे, शत्रुओं को भय दिखावे । (पृ० २२३—२२७)

सू० [८५]—(१-५) सोम । सर्वाधार सत्य । सत्य के आश्रय ही सोम की स्थिति । गृहस्थ का आधार सत्य और ऋत । (२) सर्वाश्रय सोम । वीर्य और शक्ति की महत्ता । सर्वोत्पादक सामर्थ्य सोम । (३) सोमपान का महत्व । वेदज्ञान सोमपान । (४) ब्रह्मचारी वधूयु, सोम । उसके आश्रय पर गृहस्थ । ब्रह्मचारी का रूप । (५) चन्द्रवत्

सोम विद्वान् का वर्णन । (६–१६) सूर्या का विवाह । वधू के साथ देने योग्य सर्वश्रेष्ठ शिक्षा और दहेज, वधू की ओढ़नी । (७) सूर्या वधू के उत्तम अलंकरण । (८) वधू के योग्य पति की भेंट, व्यवहार और दोनों का अश्वी होने का रूप । (९) वधू की कामनावान् पुरुष सोम । पिता कन्या को कब दान करे । (१०) वधू के पतिगृह में आने के लिये उचित रथ मन । (११) उसके रथ का अलंकारिक रहस्यमय वर्णन । (१२) मनोमय रथ का वर्णन । (१३) वधू की विदाई । (१४) सूर्या का त्रिचक्र रथ । (१५) त्रिचक्र रथ के चक्र विषयक प्रश्न । (१६) तीनों चक्रों का स्पष्टीकरण । (१७) आदरणीय जनों के आदर-भाव प्रदर्शन । (१८) सूर्य चन्द्र वा दिन रात्रि का दो बालकों के तुल्य तथा उनके समान स्त्री-पुरुषों का वर्णन । विवाह के समय की परिक्रमाओं के तात्पर्य का स्पष्टीकरण । (१९) चन्द्र के समान वर तथा आत्मा का वर्णन । पक्षान्तर में राजा और बालक का वर्णन । (२०) उषा सूर्यवत् नव वधू को विवाह की आज्ञा और उपदेश । गृहस्थ का वर्णन । मन्त्र की पति-पत्नी दोनों के प्रति योजना । (२१) पुरुष को कन्या-ग्रहण करने का आदेश । विश्वावसु गन्धर्व का स्पष्टीकरण । (२२) पुरुष कैसी कन्या को ग्रहण करे ? भिन्नगोत्र में विवाह का उपदेश । (२३) सुदृढ़ दाम्पत्य का उपदेश । (२४) पति द्वारा वधू को पितृपाश से मुक्त कर पतिगृह में स्थापन । (२५) स्त्री का वरुणपाश और उससे मोचन । पति का दृढ़तर बन्धन । (२६) वधू का गृहपत्नी होने का अधिकार, पति के साथ पाणिग्रहण कर गमन । (२७) गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश । पति-पत्नी का देह संसर्ग, और वार्धक्य तक परस्पर मिलकर रहने का उपदेश । (२८) यज्ञ द्वारा पति-पत्नी का प्रेम-बन्धन और संसारिक बन्धन का उपदेश । पक्षान्तर में—स्त्री पुरुष के परस्पर सम्बन्धित होने का काल स्त्री के रजो-

दर्शन के अनन्तर ही है। (२९) विवाह बन्धन में बन्धने का ठीक समय और विवाह काल में करने योग्य कार्यों का निर्देश। स्त्री-सहवास के पूर्व स्त्री के शरीर शोधन की अति आवश्यकता। अविवेक से हानियें। दूषित स्त्री-देह से भयंकर रोगादि की संभावना। (३०) रजोधर्म से हुई स्त्री के शरीर तथा वस्त्रादि से स्पर्श करने का निषेध। उस काल में स्त्री शरीर तथा उसके वस्त्रादि के स्पर्श-संसर्गादि से हानियें। (३१) पुरुषादि से आने वाले स्त्री शरीर वा गर्भाशय द्वारा आने वाले परस्परिक रोगों से बचने का का उपदेश। (३२) दम्पती की रक्षा का उपदेश। (३३) विवाह पर बधू के सौभाग्य आशीर्वाद की प्रार्थना। (३४) वधू के अभोग्य देह के दोष, उसका प्रतिविधान। (३५) सूर्या सवित्री, वा वधू के देह के तीन रूप। (३६) पाणि ग्रहण के मन्त्र। वर का वधू का हस्तग्रहण करते हुए वधू ग्रहण करने और आजन्म-सम्बन्ध का उद्घोषणा। (३७) नर के लिये बीजवपनार्थ भूमि स्त्री, उसका कमनीय कल्याणतम रूप परस्पर कर्पणा। (३८) अग्निवत् विद्वान् वा प्रभु की साक्षिता में वधू का परिग्रह। (३९) ऋतुकालानुसार पत्नी का पति से पुनः संसर्ग का उपदेश। (४०) कन्या को सोम, गन्धर्व और अग्नि की प्राप्ति। इसका स्पष्टीकरण। (४१) सोमादि का उपरोक्त गन्धर्वादि को देने का अभिप्राय। (४२) वर वधू को आयु भर एकत्र रह कर पुत्र पौत्रादि सहित सुखी जीवन विताने का उपदेश। (४३) गृहस्थ को प्रजापति के कर्त्तव्यों का उपदेश। वधू को पतिगृह में प्रवेश करते हुए सबके प्रति शान्तिदायक होने का उपदेश। (४४) पत्नी को कर्त्तव्य का उपदेश। (४५) वेद की १० पुत्रोत्पत्ति करने की आज्ञा। (४६) नववधू की सम्राज्ञी होने की प्रतिष्ठा। (४७) वर-वधू का परस्पर एक-हृदय और एकांग होने की प्रार्थना। (पृ० २३७–२६६) इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [८६]—वृषाकपि-सूक्तम् । वरुण । सर्वोपरि परमेश्वर की जगत्सर्जन रूप महिमा का वर्णन । (१) भक्त के लिये प्रभु का असह्य विरह । सर्वोत्कृष्ट, सर्वसुखदाता प्रभु । (३) भक्त के प्रति उदार दयालु प्रभु । (४) रक्षक प्रभु और जीव में देह का बन्धन । (५) देह बन्धन के नाश और सम्यग्-ज्ञान में प्रकृति की कारणता । (६) प्रकृति का उत्कृष्ट ऐश्वर्य, और पक्षान्तर में स्त्री का परम सौभाग्य । परमेश्वर का उत्कर्ष । (७) जीव के देह की अद्भुत रचना से ईश्वर के उत्कृष्ट कौशल का स्मरण । (८) प्रकृति का स्त्री तुल्य बन्धन होना । (९) जीव, प्रकृति और प्रभु के पारस्परिक सम्बन्ध । (१०) परमेश्वर का प्रकृति में बीजवपन । पक्षान्तर में नारी माता का पूज्य भाव । (११) स्त्री का सौभाग्य और उसकी प्रकृति से तुलना । (१२) जगत्-सर्ग में जीवात्मा की आवश्यकता । जगत् सर्ग में परम प्रभु की आनन्दप्रदता से उसका सबसे अधिक उत्कर्ष । (१३) प्रभु का सर्वोपरि उत्कर्ष । (१४) अध्यात्मिक १५ प्राण और अंगों का एक साथ परिपाक । (१५) इन्द्र, वृषभ, सर्वशासक, सर्वोपास्य प्रभु का वर्णन । (१६) उत्कृष्ट और निकृष्ट पुरुष के लक्षण । (१७) जीवात्मा की प्रभु को प्राप्ति । (१८) प्रभु की साक्षात् प्राप्ति । (१९) देह-बन्धन की जंगल से उपमा । (२०) अति समीप प्रभु की प्राप्ति का उपदेश । (२१) प्रकृति और प्रभु का मिलकर भोग्य जगत् को बनाना । (२२) प्रभु-दया से अमर पद की प्राप्ति । (२३) बुद्धिशक्ति से २० अंगुलियों के तुल्य २० प्राणों का चालन और प्रकृति से २१ विकृतियों की उत्पत्ति । 'मानवी पर्शु' का रहस्य । (पृ० २६६–२८१)

सू० [८७]—रक्षोहा अग्नि । जंगल में अग्नि के तुल्य जगत्-जाल

में रक्षक प्रभु की प्रार्थना। (१) प्रजानाशक दुष्ट के नाशार्थ शस्त्रादि-सम्पन्न शासक से विनीति। (३) सेनादि से दुष्टों के दमन करने की प्रार्थना। (४) राजा को महास्त्रों से दुष्टों के नाश का उपदेश। (५) दुष्टों के अंग-छेदनादि दण्ड करने का आदेश। (६) सेनापति को आकाश भूमि आदि सर्वत्र दुष्टों के नाश का उपदेश। (७) स्वामी को दुष्ट जनों से प्रजा को बचाने का कर्त्तव्य। दुष्टों को बुरी मृत्यु से पीड़ित करने वा मारने का आदेश। (८) अपराधियों के अपराध घोषणा सहित दण्डित करने का आदेश। (९) राष्ट्र-रक्षा और आत्म-रक्षा का उपदेश। (१०) सब पर राजा की दृष्टि रखने और दुष्टों को अन्न, जन और मन तीनों बलों से नाश करने का उपदेश। (११) प्रजा के हितार्थ असत्यशील दुष्टों का दमन। (१२) न्याय-बल से अनृतवादी, आदि दुष्टों का दमन। (१३) वाणी द्वारा मर्म-पीड़ादायी दुष्टों को हृदय-मर्मवेधी दण्ड का विधान। (१४) युद्धादि से प्रजा-पीड़कों के नाश का उपदेश। मूलदेवों का रहस्य। (१५) पापाचारी, और वाणी से पीड़ा देने वाले को दण्ड विधान। (१६) पीड़ा देकर स्वयं ऐश्वर्य भोक्ता को दण्ड। (१७) प्रजाजनों को पीड़ित करने वाले को दण्ड कि वर्ष भर उसे दूध न मिले, वह पीवे तो अग्नि-दण्ड। (१८) दुष्टों गोमूत्रादि पान का दण्ड। उनको अन्धेरी कोठड़ी का दण्ड। (१९) दुष्टों को कभी विना दण्ड दिये न छोड़ने का आदेश। (२०) सब ओर से प्रजा-रक्षा और दुष्ट-नाश का आदेश। (२१) प्रजा-रक्षा मित्ररक्षा का उपदेश। (२२) दुष्टपीड़क राजा के शरण में प्रजा की स्थिति। (२३) दुष्ट शत्रु का मूलोच्छेद करने का उपदेश। (२४) अन्यों को तुच्छ समझ कर कष्ट देने वालों को दण्ड देने और राजा को सावधान रहने का उपदेश। (२५) उनको विविध उपायों से दण्डित करने का आदेश। (पृ० २८१—२९३)

सू० [८८]—सूर्य, वैश्वानर। किरणों के जलादान के दृष्टान्त से देह में प्राणों का अन्नदान और मुमुक्षुओं का प्रभु में आत्मदान का वर्णन। (२) दिन और रात्रि के अन्धकार के तुल्य तमस् या अव्यक्त जगत् के लय होने का वर्णन। जगत्-सर्जक और संहारक प्रभु के आश्रित समस्त लोक। (३) महान् व्यापक अग्नि, प्रभु का वर्णन। (४) जगत्-सर्जक, संहारक जातवेदा अग्नि। (५) व्यापक सर्वोपरि पूज्य महान् अग्नि की स्तुति। (६) सर्वमूलाश्रय अव्यक्त व्यापक प्रभु का वर्णन। (७) सर्वान्नग्राही वैश्वानर अग्नि का वर्णन। (८) यज्ञाग्निवत् देहाग्नि में वैश्वानर यज्ञ, (९) महान् सर्वाश्रय अग्नि का वर्णन। (१०) अग्नि के तीन रूप। (११) महान् सूर्य प्रभु। उसकी प्रकृति से संगति और समस्त लोकों की उत्पत्ति, (१२) उषाओं के निर्माता सूर्य के समान कल्पों का प्रारम्भक प्रभु। (१३) चेतन आत्मा का यज्ञाग्निवत् प्रतिपादन। (१४) सर्वोपरि शासक महान् प्रभु की स्तुति। (१५) आत्मा के लिये जगत् में दो मार्ग देवमार्ग और मर्त्य मार्ग। उनकी उपनिषदादि प्रोक्त देव मार्ग और पितृमार्ग से तुलना। (१६) माता पिता के बीच बालक के तुल्य भूमि आकाश के बीच व्यापक प्रभु का वर्णन। (१७) विवादास्पद प्रभु के सम्बन्ध में उसके साक्षात् ज्ञाता ही बतला सकते हैं। (१८) अग्नियों, और उषाओं और सूर्यों के सम्बन्ध में प्रश्न और समाधान। (१९) आपत्कालिक यज्ञाग्निवत् आत्म-साक्षात्कार तक आत्मोपासना का प्रतिपादन। (पृ० २९३–३०४)

सू० [८९]—इन्द्र और सोम। सर्वाध्यक्ष सम्राट् के तुल्य सर्व व्यापक, सर्वशक्तिमान्, महान् प्रभु का वर्णन। अध्यात्म में—आत्मा का वर्णन। (२) यन्त्रों के चालक शिल्पी के तुल्य जगत्-सञ्चालक सूर्यवत् प्रभु का वर्णन। (३) उपास्य प्रभु, एकरस सर्वव्यापक, अजित, महान् सर्वपालक, सर्वप्रिय प्रभु। (४) सर्वप्रेरक सर्वधारक प्रभु। (५) दुष्ट-

दण्डक, तेजस्वी, बलशाली, सर्वोत्पादक, सर्वोच्च महान् प्रभु । (६) सब से महान् शासक प्रभु । (७) परशु के समान महान् आत्मा का वर्णन । (८) परम धनी प्रभु । तलवार के तुल्य प्रभु पाप-नाशक । (९) सर्वोपरि शासक प्रभु के दण्ड का मार्ग कौन २ व्यक्ति हों । (१०) सर्वोपरि स्वामी प्रभु । (११) सबसे महान् प्रभु । (१२) वीर योद्धा के उत्तम शस्त्रवत् प्रभु की शक्तियों का आलंकारिक वर्णन । (१३) सूर्य के समान तेजस्वी की स्थिति । (१४) उसकी दुष्ट-दमनी शक्ति का प्रयोग । (१५) राजा को शत्रु दमन के कार्य आवश्यक । (१६) सर्व-स्तुत्य प्रभु । (१७) प्रभु से विनय कि उसकी महिमाओं के ज्ञान का उत्तम फल । (१८) उसकी स्तुति करनी आवश्यकीय । (पृ० ३९५—३१०)

सू० [९०]—पुरुष सूक्त । महान् पुरुष का वर्णन । (१) सर्वोपरि महान् प्रभु । (२) सर्वोपरि सर्वकारण पुरुष परमेश्वर (३) सबसे महान् अविनाशी प्रभु । (४) सर्वव्यापक, सर्वस्तंभक, धारक पुरुष । (५) ब्रह्माण्ड रूप विराट् के ऊपर पुरुष प्रभु । (६) महान् पुरुष का यज्ञ । (७) महान् पुरुष की यज्ञोपासना । (८) सर्वोत्पादक, सर्व-रचयिता प्रभु । (९, १०) वेदों का स्रष्टा प्रभु । (११, १२) वर्णमय पुरुष की कल्पना । (१३— १४) विराट् पुरुष की अंग कल्पना । लोक-सम्मित पुरुष । पुरुष सम्मित लोक, पुरुष का जगन्मय देह । (१५) देवयज्ञ का वर्णन । (१६) यज्ञ द्वारा प्रभु की उपासना । (पृ० ३१४—३२३)

सू०[९१]—अग्निः । अग्निवत् परमेश्वर और आत्मा का वर्णन । (२) अतिथिवत् परमेश्वर का वर्णन । (३) सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञानी, सर्वपोषक अद्वितीय । (४) अग्निवत् स्वयं प्रकाश आत्मा । गर्भ में प्रकट जीव के वा काष्ठ में अग्नि के तुल्य हृदय में आत्मा का प्रकट भाव ।

(५) मेघस्थ विजुलियों वा प्रभात की कान्तियों के तुल्य, आत्मा की ज्ञान-प्रवृत्तियां। (६) ओषधियों, मेघादि के दृष्टान्त से जीव के गर्भ में आने का वर्णन। (७) अग्नि के तुल्य, आत्मा का वर्णन। (८) तेजोमय, ज्ञानमय, प्रभु का वरण। उसीसे प्रार्थना। (९) सर्वस्तुत्य प्रभु। (१०) विद्वान् में समस्त ऋत्विक् पन। उसी प्रकार आत्मा और प्रभु में भी ऋत्विग् के गुण। (११) प्रभु की कृपा के पात्र। (१२) हमारी बुद्धि और वाणियों का लक्ष्य प्रभु। (१३) प्रभु के प्रति प्रेम का उद्रेक। पत्नी-प्रेमवत् प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम। (१४) सर्वपालक प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण। (१५) यज्ञाहुतिवत् तेजस्वी में कर-आदि देना।

सू० [१२]—विश्वेदेव। अग्नि के दृष्टान्त में प्रभु का वर्णन। (२) जाठराग्निवत् चराचर का भत्ता और प्राणवत् प्रभु। (३) सत्यवाणी, सत्य ज्ञानमय प्रभु के ज्ञान और वाणी का चिन्तन कर्त्तव्य। उसमें आहुति, घोर तपस्वियों को अमृतत्व प्राप्ति। (४) सर्वोपरि शासक प्रभु। (५) विशाल रूप (प्रथम) प्रभु और देह में रुद्र प्राण। (६) देहगत रुद्र गण प्राण। (७) सर्वमनोरथ सर्वस्तुत्य रक्षक, (८) प्रभु के ऐश्वर्य, सामर्थ्य सर्वोपरि। (९) सर्वमनोरथ पूर्वक शक्तिशाली प्रभु। उससे विनय। (१०) गुरु परमेश्वरादि के जीव में अनेक सम्बन्ध। विद्वानों और पञ्चभूतों में तुलना। गुरुजनों के शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य। (११) पूजा करने योग्य व्यक्ति। (१२) सर्वव्यापक प्रभु से अनेक प्रार्थनाएं। (१३) सर्वपोषक प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (१४) सर्वोपरि शास्ता प्रभु की स्तुति। (१५) सर्वप्रथम उपदेष्टा गुरु परमेश्वर। उसके द्रष्टा विद्वान् जन ही सन्मार्ग-प्रेरक हैं। (पृ० ३३१—३३९)

सू० [९३]—विश्वेदेव । स्त्री पुरुषों को उत्तम होने का उपदेश । वे बलवान्, रक्षक, शत्रुविजयी पुरुष की अनेक उपायों से रक्षा करें । (२) ज्ञान के लिये ज्ञानी लोगों की सेवा शुश्रूषा करें । (३) सदा मान-सत्कार के पात्र हों । (४) स्तुति और अमर यश के पात्र जन । (५) देह में चन्द्र सूर्यवत् दो प्राणों की गति । उसी प्रकार गृहस्थ में स्त्री पुरुष हों । (६) श्रेष्ठ स्त्री पुरुष सब की रक्षा करें, अन्यों को दुःखों से पार करें । (७) प्रजा को सुख देने वाले जन । (८) महान् प्रभु का वर्णन । उसका सर्वातिशायी आनन्द और बल है । (९) प्रभु से प्रार्थना, हम पापों से लज्जालु न हों । हम पर प्रभु का सत् नियन्त्रण हो । (१०) प्रमुख राजा, प्रजा और नेताओं के कर्त्तव्य । वे ज्ञान, प्रेम, धनादि की वृद्धि करें । (११) प्रभु से रक्षा की प्रार्थना । (१२) सूर्य के प्रकाश के तुल्य प्रभु-विषयक ज्ञान बढ़े । रथ के तुल्य हमारा शरीर दृढ़ हो । (१३) वाणी, उदारता वा अर्थसम्पत् से युक्त हों, पौरुष अविच्छिन्न हो । (१४) धनवानों में हम सदा ईश्वर की चर्चा किया करें । (१५) दैहिक ७७ केन्द्रों के ज्ञान का आदेश । (पृ० ३३९–३४५)

सू० [९४]—ग्रावा । विद्वान् जन । विद्वानों के कर्त्तव्य । वे भद्र वाणी बोलें । गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करें । (२) सात्विक यजमान के दिये अन्न का भोग करें । (३) मुख से मधु रस के तुल्य वे ज्ञान-मधु का संग्रह करें । वेद का निरन्तर अभ्यास करें । (४) परमेश्वर की भक्ति में मग्न रहें, सब के साथ हर्षित हों । (५) सूर्य की किरणों के तुल्य सन्मार्गदर्शी, सदा प्रसन्न, और बल-वीर्यवान् हों । (६) प्राणों का वर्णन । वीरों के साथ प्राणों की तुलना । (७) दश अंगुलियों वा अंगों के समान दश प्राण । (८) यन्त्राधिपतियों के तुल्य प्राणों के कार्य । पक्षान्तर में विद्वानों के कर्त्तव्य । (९) विद्वानों का वाणी द्वारा आत्म-स्वरूप की प्राप्ति । उनकी वर्षक मेघ से तुल्यता । (१०) आत्मा के अमरत्व

के हेतु वीरों विद्वानों को अमर रहने का उपदेश। उनको सदाचार का उपदेश। (११) विद्वानों के उत्तम गुण। संशय मेटें, संगठित रहें, अनथक काम करें। न घबरावें, सदा निस्पृह हों, सदा काम में लगे रहें। (१२) विद्वानों और वीरों के दलपतियों के कर्त्तव्य। (१३) वे उपदेश के दाता हों। कृपकों के तुल्य उत्तम गुणों का बीज बोएं। उत्तम फल प्राप्त करें। (१४) सदा ईश्वरसेवी और बालकवत् निष्पाप, सुप्रसन्न, निष्प्रपंच रहें। (पृ० ३४५–३५३) इति चतुर्थोऽध्यायः॥

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [९५]—पुरूरवा और उर्वशी। सेनापति प्रजा और राजा का पति-पत्नी के तुल्य संवाद। वे परस्पर मन्त्रणा कर के भविष्य के कार्य किया करें। (२) उषा के दृष्टान्त से वरवर्णिनी के कर्त्तव्यों का वर्णन। पक्षान्तर में—सेना के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) सेनापति कैसा हो ? (४) उषा के तुल्य वधू के कर्त्तव्य। (५) सेना नायक का वर्णन। (६) वधू के कर्त्तव्य। उसके तुल्य सेना के कर्त्तव्य। (७) रणनायक के कर्त्तव्य। (८) सेना-सेनानायक के कर्त्तव्य। (९) सेना, सेनापतियों के तुल्य नायक और वधू आदि के कर्त्तव्य। (१०) विद्युत् के समान सेना और वधू का वर्णन। सेना का सेनापति के प्रति हित वचन। (१२) पिता माता पुत्रादि के कर्त्तव्यों के तुल्य सेनापति, सेना और राजा राष्ट्रादि के कर्त्तव्यों का वर्णन। (१३) प्रयाणोद्यत सेनापति के प्रति सेना का हित वचन। (१४) सेनापति को प्रमाद न करने का आदेश। (१५) उसे दुष्ट कुटिल पुरुषों से सावधान रहने का उपदेश। (१६) सेना का नायक के प्रति अपना कर्त्तव्य वर्णन। (१७) सेनापति की प्रतिज्ञा वा कर्त्तव्य। (१८) राजा वा राष्ट्रपति को पदानुरूप उपदेश। (पृ०३५३–३६२)

सू० [९६]—हरि-स्तुति । रथ के दो अश्वों के तुल्य प्रभु के दो रूपों की स्तुति । प्रभु के दो रूप ज्ञानमय और तेजोमय । (२) सर्वाश्रय प्रभु की स्तुति । (३) परमेश्वर तेजस्वी 'दुष्ट' दण्डकर्त्ता रूप । (४) प्रभु का कमनीय रूप । प्रभु हरि-शिप्र । (५) हरिकेश प्रभु का कमनीय रूप । (६) सर्वस्तुत्य प्रभु । (७) प्रभु और भक्तों का पारस्परिक आकर्षण, (८) सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वरक्षक प्रभु । (९) प्रभु का व्यापक साम्राज्य । (१०) जगद्-भवन का स्वामी प्रभु । (११) ज्ञानप्रद प्रभु । (पृ० ३६२–३६९)

सू० [९७]—ओषधि-स्तुति । तीन युगों, तीनों ऋतुओं में उत्पन्न ओषधियों के ज्ञान का उपदेश । उन देह के ७०० मर्मानुसार उनके ७०० तेज । (२) ओषधियों के सैकड़ों सामर्थ्यों से रोगनाश का उपदेश । (३) रोगनाशक ओषधियों को सदा हरा भरा, तैयार रखने का उपदेश । पक्षान्तर में—अश्वसेनाओं के कर्त्तव्य । (४) ओषधियों का रश्मियों के तुल्य रोगनाशक गुण । पक्षान्तर में—शत्रुनाशक सेनाओं का वर्णन । (५) ओषधियों का आश्रय और जीवन का वैज्ञानिक रहस्य । सूर्यरश्मि आदि द्वारा प्रकाश वा रसादि को ग्रहण करने से ही उनमें रोगनाशक सामर्थ्य है । पक्षान्तर में—सेना के बल का वर्णन । (६) राजसभा में राजाओं के तुल्य देह में ओषधियों की स्थिति । भिषक् विप्र का लक्षण । (७) आरोग्यदायक ओषधियों के ४ प्रकार । अश्वावती, सोमवती, ऊर्जयन्ती, ओजस्विनी । पक्षान्तर में—राष्ट्ररक्षक सेना का गुण । (८) गोष्ठ में गौओं के तुल्य देह में ओषधियों का रस-बलाधायक गुण । (९) ओषधियों के रोगनाशक सामर्थ्य का तात्त्विक विवेचन । चोरों, डाकुओं के समान वेग से ओषधियों का रोगों पर आक्रमण करके देह को नीरोग करने का वर्णन । (११) ओषधियों के प्राप्त करने से रोगों का शिकारी से भयभीत पक्षियों के समान भागना । (१२) ओषधियों का

शरीर में व्याप कर रोगों को मध्यस्थ बलवान् द्वारा शत्रुवत् नष्ट करना। (१३) रोग का अपने तीव्र लक्षणों सहित नाश होना। (१४) ओषधियों का परस्पर रक्षक-पोषक होना। (१५) फलसहित, फलरहित, सपुष्प और अपुष्प आदि अनेक ओषधियों का वैद्यादि द्वारा रोग नाशक प्रयोग होना। (१६–१७) रोगों के विकट लक्षणों से मोचक ओषधियां का प्रयोग। शपथ्य, वरुण और देवकिल्विष तथा यम के पड्वीश का रहस्य। ओषधि शब्द का निरुक्तयर्थ। ओषधियों का रोगनाशक सामर्थ्य। (१८) उत्तम ओषधि का चुनाव। (१९–२०) ओषधि को प्राप्त करने और प्रयोग के समय विशेष सावधानी की आवश्यकता। पक्षान्तर में—सैन्य प्रयोग में सावधानता की आवश्यकता। (२१–२२) उत्तम ओषधियों के ज्ञान और संग्रह में उद्योग करने का उपदेश। (पृ० ३६९–३७८)

सू० [९८]—देवगण। विद्वान् राजा, स्वामी, प्रभु आदि के सूर्यवत् कर्त्तव्य वर्णन। (१) भक्त को देव के प्रति दत्तचित्त होने का आदेश। पक्षान्तर में देवापि-मेघ विद्युत् आदि विद्या का उपदेश। (२) प्रभु से सन्मार्ग दर्शन और सुखद वेदवाणी की प्रार्थना। पक्षान्तर में सूर्य के ताप, प्रकाश, जल, वृष्टि आदि की याचना। द्युमती वाक् का वर्णन। देवापि शन्तनु आदि का रहस्य। (४) देव की परम भक्ति का उपदेश। पक्षान्तर में—वृष्टयर्थ यज्ञादि का उपदेश। (५) प्रभु भक्त के प्रति आनन्द-वर्षी घन प्रभु की कृपा। मेघ-वृष्टि पक्ष में—मेघ-विद्यावान् का यज्ञों द्वारा आकाश से वृष्टयुत्पादन। (६) सर्व सत्-फल प्रभु के आश्रित हैं। जितेन्द्रिय ही उनको पाते हैं। मेघ-वृष्टि-ज्ञान। (७) यज्ञार्थ विद्वान् का वरण, उसका यज्ञ का यथावत् सम्पादन और लोकोपकार। (८) भक्ति-प्रार्थनादि द्वारा उपासित प्रभु का जलद मेघ के तुल्य वर्णन। (९) प्रभु से अनेक ऐश्वर्यों की प्राप्ति। (१०) ज्ञान-प्रकाश आदि शक्तियों की याचना। (११) प्रभु के निमित्त स्वार्पण का

उपदेश । पक्षान्तर में मेघ-वृष्टि आदि के लिये ९० सहस्राहुतियों का महायज्ञ । (११) प्रभु वा वीर पुरुष से दुष्टों के नाश की प्रार्थना । (१२) अग्नि द्वारा रोगादि नाश का उपदेश । आर्ष्टिषेण देवापि और शन्तनु के ऐतिह्य का स्पष्टीकरण । (पृ० ३७८–३८५)

सू० [९९]—इन्द्र । प्रभु-विद्वान् और सूर्य की महिमा । (२) सर्वोपरि शासक प्रभु । अध्यात्म में आत्मा का वर्णन । (३) सदाचारी पुरुष को प्रतिष्ठा लाभ । (४) सूर्य के तुल्य और आत्मा और ईश्वर के कार्यों का वर्णन । (५) सूर्य के समान आत्मा का वर्णन । (६) वर्ष के स्वामी सूर्यवत् देह में आत्मा की स्थिति । त्रिशीर्षा षडक्ष, त्रित, वराह आदि का रहस्य । (७) दुष्ट-दमन के निमित्त शस्त्रों-अस्त्रों के प्रयोग का उपदेश । (८) मेघ के तुल्य राजा के कर्त्तव्य । (९) प्रभु की भक्त पर कृपा । (१०) सर्वदुःखनाशक प्रभु । (११) प्रभु-भक्ति से देह-बन्धन से मोक्ष प्राप्ति । (१२) भक्त की प्रभुप्राप्ति । जीव को सुखार्थ प्रभु का जगत्सर्ग । (पृ० ३८६–३९२)

सू० [१००]—विश्वेदेव । सर्वमंगल प्रभु का वरण । प्रभु से बल, रक्षा, ज्ञान, आदि की याचना । (२) विद्वानों से उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम राजा की याचना । (३) प्रभु से बलादि की याचना, जिससे हम विद्वानों को तृप्त कर सकें । (४) अक्षुण्ण ऐश्वर्यवान् प्रभु से याचना । (५) सर्वपालक प्रभु का माता पिता के तुल्य वरण । (६) प्रभु सर्वशक्तिमान्, ज्ञानी, व्यापक की प्रार्थना । (७) पापत्याग की प्रार्थना । (८) पापादि से मुक्त होकर मङ्गलमय प्रभु का वरण । (९) द्वेषभाव त्याग कर सर्वोत्तम प्रभु का वरण । (१०) गौ के तुल्य परस्पर उपकारक होने का आदेश । (११) सूर्य, मेघ, वेदवाणी और स्तन के तुल्य सुखद प्रभु का वरण । (१२) प्रभु का अदम्य तेज, अपराजित कामनाएं हैं । रस्सी से पशु के तुल्य स्तुति द्वारा प्रभु के ज्ञान की प्राप्ति ।

सू० [१०१]—विश्वेदेव वा ऋत्विग् गण। एकचित्त होकर प्रभु-उपासना का उपदेश। (२) उत्तम स्तुति, कर्म, नौका, वेद का अभ्यास, शस्त्र, अन्न और यज्ञ करने का आदेश। (३) हल आदि से क्षेत्राकर्षण, अन्नोत्पादन, तथा अध्यात्म में—योग द्वारा साधना करने का आदेश। (४) हलादि द्वारा क्षेत्रकर्षण के तुल्य देहगत नाड़ियों द्वारा योग-साधना का उपदेश। (५) पशुओं के लिये जलपान-स्थान, रस्सी, कूप आदि बनाने का विधान। अध्यात्म में—अक्षय रससागर प्रभु की उपसना करने की आज्ञा। (६) उत्तम कूप और पक्षान्तर में—रस के उद्भव स्थान परमेश्वर का वर्णन। (७) अश्व-रथादि निर्माण तथा उत्तम सुदृढ़ कूप आदि बनाने का उपदेश। पक्षान्तर में—इन्द्रियजय, ईश्वरोपासना और आत्म-साधना का उपदेश। (८) मार्ग, गोशाला, कवच, दृढ़ दुर्ग, नगर, चमसपात्र, आदि बनाने का उपदेश। पक्षान्तर में—इन्द्रियों, देह, पञ्च-कोश और देहादि को दृढ़ करने का उपदेश। (९) वेदवाणी को धारण करने का उपदेश। वेदवाणी की गौ से उपमा। (१०) हृदयपात्र में आनन्द रस का सेचन, वाणी रूप छेनियों से प्रभु की स्तुति रूप भूमिनिर्माण। सद्-दर्शनवृत्ति रूप रस्सियों से इन्द्रियों का दमन, और इन्द्रिय वर्ग रूप अश्वों का आत्मरथ में संयोजनादि का श्लिष्ट वर्णन। (११) गृह में दो स्त्रियों के पति के तुल्य उभय इन्द्रियवर्गों के स्वामी आत्मा के साधनादि का वर्णन। (१२) सुखमय प्रभु की उपासना द्वारा आत्म-साधना का उपदेश। (पृ० ३९८—४०५)

सू० [१०२]—वृषभ इन्द्र। परमेश्वर से रक्षा की प्रार्थना। (२) वीर पुरुष के कार्य। पक्षान्तर में वृष्टि द्वारा प्रजा-पोषण। (३) वीर पुरुष का रक्षा का कर्त्तव्य। (४) बरसते मेघ के तुल्य वीर पुरुष का कार्य। (५) वृष्टिप्रद मेघ के तुल्य स्तुत्य प्रभु का वर्णन। (६) दुःखनाशार्थ प्रभु की स्तुति। प्रभु का आदेश, और उसका साक्षात् दर्शन।

(७) प्रभु की प्राप्ति। (८) सर्वव्यापक सर्वप्रबन्धक प्रभु। (९) देह में आत्मा के सदृश विश्व में व्यापक प्रभु। (१०) प्रभु का निष्पाप रूप। उसकी उपासना, सर्वधारक, सर्वतारक प्रभु। पक्षान्तर में—यन्त्र द्वारा संचालित वेगवान् रथादि का वर्णन। (११) नववधू के समान बुद्धि का वर्णन। कूप या मेघ के समान आत्मा का वर्णन। बुद्धि द्वारा ज्ञानोपार्जन और सुखानुभव। (१२) विश्व के चक्षु का भी चक्षु, परमेश्वर सर्वनियन्ता, सर्वद्रष्टा है। (पृ० ४०५—४११)

सू० [१०३]—इन्द्र, बृहस्पति, अप्वा इन्द्र वा मरुद्गण। सेनापति रूप इन्द्र का वर्णन, उसके गुण। पक्षान्तर में—व्यापक परमेश्वर का वर्णन। (२) वीर सेनापति के साथ मिलकर वीरों को संग्राम का आदेश। (३) सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। (४) युद्ध के प्रकार का निर्देश। अध्यात्म में इन्द्र आत्मा का वर्णन। (५) सेनापति के कर्त्तव्य। (६) सेनापति के प्रति सहयोगियों के कर्त्तव्य। (७) सेनापति कैसा हो। (८) सेनानायक और वीरों का वर्णन। (९) वीरों का बल, पराक्रम और नाद कैसा हो? (१०) सेनानायक का काम वीरों का प्रोत्साहन। (११) ध्वजाधारियों के साथ नायक और वीरों का विजय-कार्य। (१२) अजेय सेना अप्वा। उसके विशेष गुण और कर्त्तव्य। (१३) वीरों का प्रोत्साहन। (पृ० ४११—४१७)

सू० [१०४]—इन्द्र। प्रभु के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। (२) प्रभु का सृष्टिजनक कर्म। (३) प्रभु की रक्षा की स्तुति। वह सर्वज्ञान-प्रद और दाता है। (४) भक्त प्रभु की सदा स्तुति करें। (५) विद्वानों और स्तोताओं के कर्त्तव्य। (६) सब ज्ञानों और यज्ञादि फलों का दाता प्रभु। (७) समस्त स्तुतियों का सर्वोपरि लक्ष्य प्रभु। (८) मोक्षदाता और पूर्ण जीवनदाता प्रभु। (९) मेघ से जलवर्षी अग्नि तत्ववत् मोक्षदाता, ज्ञानप्रकाशक, सर्वजीवनदाता प्रभु। (१०)

ज्ञानोपदेष्टा, प्राणों का नायक, स्तुत्य, प्रकाशक प्रभु। (११) सर्वप्रार्थना सुनने हारे प्रभु की पुकार। (पृ० ४१७—४२२)

सू० [१०५]—इन्द्र। जल-निरोध के दृष्टान्त से चित्तनिरोध का उपदेश। पक्षान्तर में वर्षा-विज्ञान का उपदेश। (२) सूर्य के समान पुरुष का वर्णन। (३) श्रमी पुरुष के तुल्य आत्मा का वर्णन। (४) उसके कर्त्तव्य। (५) वीर शासक प्रभु का वर्णन। (६) ईश्वर का ज्ञानोपदेश और जगत्-सर्जन। (७) प्रभु की दमन-शक्ति। (८) पापनाश की प्रार्थना। दुष्टों के नाश की प्रार्थना। मन्त्रों से यज्ञ करने का उपदेश। (९) प्रभु की त्रिलोक-व्यापिनी शक्ति। (१०) प्रभु की शक्तियों के उपलक्षण। (११) अच्छों बुरों सबों का स्तुतिपात्र प्रभु। (पृ० ४२२—४२७)

सू० [१०६]—दो अश्वी। उत्तम स्त्री-पुरुषों को उनके कर्त्तव्यों का उपदेश। (२) उनके उपदेष्टा के प्रति कर्त्तव्य। (३) नाना दृष्टान्तों से उनको परस्पर सहयोगी, स्नेही, यत्नवान्, सुसंगत रहने का उपदेश। (४) वे पालक, राजा-रानीवत्, ज्ञान-प्रकाशक हों। (६) स्त्री-पुरुषों को अनेक उपयोगी उपदेश। (८) सात्विक भोजन करें, दीर्घायु हों। (९) ऐश्वर्य प्राप्त करें। (१०) मधुरभाषी हों, श्रमशील हों। (पृ० ४२७—४३३)

सू० [१०७]—दक्षिणा और दक्षिणा के दाता। प्रभु का महान् सामर्थ्य। सबके [illegible] छूटने की कामना। अन्नोत्पत्ति, दानशीलता का मार्गदर्शन [illegible] दानशीलों की उन्नत स्थिति। (३) विद्वानों के पालन का उत्तम उपाय दक्षिणा। (४) दक्षिणा की वायु से तुलना। दानशीलों का सत्-साहस और उद्योग। वे भूमि को दोहते हैं। (५) अन्नदाता की प्रतिष्ठा। (६) दक्षिणादाता के प्रतिष्ठा-पद। (७) दक्षिणा

दाता और प्रतिगृहीता दोनों की उत्तमता । (८) सर्वपालकों का मान्य पद । (९–११) रक्षक पुरुषों के लौकिक ऐश्वर्य ।

सू० [१०८]—सरमा और पणिगण । सरमा नाम आत्मशक्ति चेतनाशक्ति का वर्णन । (२) पणिगण इन्द्रियगण का चेतना से सम्बन्ध । बुद्धि का वाणी रूप में प्रकटीभाव । सर्वरक्षक ब्रह्मज्ञान, उसके आधार पर आत्मशक्ति का देहमय पार्थिव बन्धन से तरण । (३) आत्मा, चितिशक्ति, दर्शनशक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न । (४) इन प्रश्नों के उत्तर, वह आत्मा अविनाशी, सर्ववशी । (५) पणि-इन्द्रियगणों का चित्त-भूमि और देह पर वश । (६) उन पर भी चेतना और इच्छाशक्ति का प्रबल अधिकार । (७) प्राणों का देह पर वश । (८) प्राणों का इन्द्रियों पर वश । (९) चेतनाशक्ति से उनका सम्बन्ध । (१०) सर्वेश्वर आत्मा का पद । चेतना पर प्राणों का आवरण । चेतना का प्रकटीभाव । (११) वेद वा ज्ञानवाणियों का प्रादुर्भाव । (पृ० ४३९–४४४)

सू० [१०९]—विश्वे देव । परमेश्वर की सर्वतोमुख्य आश्रय रूप शक्ति । (२) सर्वोत्पादक प्रभु सोम । (३) प्रकृति ब्रह्मजाया का वर्णन । (४) सात ऋषि, सात देवगण, सात प्राण, प्रकृति की महती शक्ति और परमेश्वर की ओम्‌शक्ति द्वारा प्रकृति का धारण । (५) व्यापक, परमेश्वर प्रकृति में उसका स्वामी है । (६) प्रकृति का विद्वानों द्वारा पुनः २ त्याग । पुनः २ आत्मा की मुक्ति और बन्ध । (७) पुनः २ निष्पाप हो प्रभु की उपासना कर पुनः २ मोक्षप्राप्ति । पक्षान्तर में–आश्रमान्तर ग्रहण की ध्वनि । (पृ० ४४४–४४७)

सू० [११०]—आप्रीगण । अग्निवत् गृहपति-ज्ञानी आत्मा का वर्णन । विद्वान् ज्ञानी पुरुष के कर्त्तव्य । (२) देहपतन होने देने वाले

आत्मा का वर्णन। हिंसारहित यज्ञ का प्रतिपादन। (३) अग्नि, विद्वान् शिष्य-आचार्य का समादर। (४) सबसे पूर्व प्राप्त ज्ञानमय वेदों का वर्णन। (५) गृहदेवियों, वेदवाणियों का द्वारों के तुल्य वर्णन। (६) दिन-रात्रिवत् उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य का वर्णन। ज्ञानदाता वा अन्नदाता विद्वानों के कर्त्तव्य। (८) भारती, इडा, सरस्वती तीन देवियों का आदर। (९) द्यौ-पृथिवीवत् माता पिता का आदर। (१०) वनस्पति रूप जितेन्द्रिय तेजस्वी का आदर। (११) अग्निवत् अग्रणी पुरुष का आदर। (पृ० ४४७—४५३)

सू० [१११]—इन्द्र। इन्द्र प्रभु की स्तुति। (२) वृषभ रूप से प्रकृति के स्वामी जगद्-उत्पादक प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में—जल-धारक मेघ का वर्णन। (३) ज्ञानदाता सूर्य भूमि का पालक, प्रभु। (४) मेघ से वृष्टिवत् प्रकृति से जगत्-स[illegible] का व[illegible]न। (५) सर्वातिशायी परमेश्वर, सर्वदुःखनाशक, विश्व को थामने वाला है। स्कम्भ को रहस्य। (६) अज्ञाननाशक प्रभु, अति वीर्यशाली प्रभु। (७) उषा सूर्य के दृष्टान्त से आत्मा इन्द्रियों का वर्णन। (८) मूल प्रकृति (आपः) का व्यापक सूक्ष्म रूप। उसकी व्यवस्था। (९) मेघ से निकलती जलधाराओं के तुल्य प्रकृति-बन्धन में आने वा उससे निकलने वाले आत्माओं का वर्णन। सिन्धु रूप से जीवात्माओं की गति का वर्णन। (१०) बहती नदियों के साथ बड़े नद के तुल्य आत्माओं के बीच प्रभु का वर्णन। (पृ० ४५३—४५८)

सू० [११२]—इन्द्र। सर्वप्रथम उपास्य प्रभु। (२) प्रभु का प्रेम पूर्वक [illegible]। (३) सूर्यवत् प्रभु का स्मरण। अध्यात्म में-देहगत आत्मा की सूर्यवत् स्थिति। (४) भक्त और प्रभु का परस्पर स्नेह। (५) प्रभु का वीर के समान स्मरण। (६) आत्मा का ब्रह्मानन्द-रस रूप सोमपान। (७) कृपक के समान प्रभु के उपासकों का

व्यवहार। (८) प्रभु के गुणों और अद्भुत कर्मों पर भक्तों का मुग्ध होना और उससे अज्ञान के नाश की प्रार्थना। (९) गणपति का वर्णन। (१०) प्रभु से, राजा से प्रजा की ज्ञान, ऐश्वर्य और न्याय की याचना। (पृ० ४५८—४६४)

सू० [११३]—इन्द्र। सूर्यवत् प्रमुख शासक के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) प्रजा ही राजा के वैभव को बतलाती है। (३) संग्राम क्यों किया जाय? उस समय प्रजा का कर्त्तव्य। (४) युद्ध से बल परिक्षा और बल से शत्रुविजय और स्वराज्य का दृढ़ीकरण। (५) राजा के कर्त्तव्य। राजसभा आदि पर प्रशासन, शस्त्रबल पर यश, मित्रवर्ग पर अनुग्रह। (६) शत्रुनाश के उत्तम फल। राजा के आतंक का परिणाम। (७) स्पर्द्धाशील पक्षों में से एक के विजय हो जाने पर उसके स्वामित्व की स्थिति। (८) पराजित शत्रु का नाश और प्रजाद्वारा विजयी राजा की वृद्धि। (९) राजा के प्रति प्रजा के सद्-वन्धन और राजा का ध्यानाकर्षण। (१०) प्रभु वा आत्मा से ज्ञान-बल याचना, वा पाप-कष्टादि से पार करने की प्रार्थना। (पृ० ४६४—४६८)

सू० [११४]—विश्वेदेव। अग्नि सूर्यवत् जीव प्रभु, प्रजा राजा, और स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) गुरु जनों से ज्ञानोपार्जन का प्रकार। (३) चार शिखा वाली वेदवाणी। (४) सर्वजगत् साक्षी अद्वितीय प्रभु का वर्णन। (५) एक अद्वितीय प्रभु के १२ रूप। (६) यज्ञ विधि में कहे ४० ग्रहों का स्पष्टीकरण। (७) प्रभु के १४ महान् सामर्थ्य उनका मुख से वर्णन। (८) प्रजापति के १५ रूप—(९) वेदज्ञ विद्वान् के सम्बन्ध में प्रश्न। (१०) रथ में धुरों के संभालने वाले अश्वों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ४६९—४७४)

सू० [११५]—अग्नि। बालक के समान प्रभु का वर्णन। उसका जगत्-पोषण कार्य। (२) सर्वोपरि स्वामी तेजस्वी अग्नि। (३) पक्षी

के तुल्य प्रभु का वर्णन। (४) पापनाशक सर्वाधार प्रभु। (५) सर्वतारक प्रभु। (६) सर्वोपरि रक्षक बलशाली प्रभु। (७) सूर्यरश्मिवत् नियुक्त पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) प्रभु की स्तुति। (९) उसके भक्तों की प्रभु पिता से पुत्रवत् याचनाएं। पुत्रों के तुल्य ऐश्वर्यादि याचना। (पृ० ४७४–४७९)

सू० [११६]—इन्द्र। राजा के कर्त्तव्य। वह प्रजा को पिता के समान पाले। (२) प्रजा उससे न्यायादि की याचना कर मधुर अन्न जल लें. सब पर सुख बरसावे। (३) सोम के बल पर राजा ऐश्वर्य का भोग करे। चार प्रकार के सोम। मेघ सूर्यवत् राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) राजा का कार्य शत्रुविजय। राजा उनके दुर्गों का नाश करे। (५) राजा अपना बल स्थिर रूप से फैलावे। (६) उसके बल पर शत्रु को काटे। (७) राजा के प्रति प्रजा का स्वकर-दान। (७) सर्वदुःख तारक की नाव के तुल्य स्तुति। विद्वानों से उत्तम ऐश्वर्यादि की याचना।

सू० [११७]—इन्द्र। धन और अन्नदान की प्रशंसा। भूखा मारने के दण्ड का निषेध। दान दिये का नाश नहीं होता। (१) निर्बल पीड़ित और अतिथि आदि को अन्नादि न देनेवाले की भविष्य में दुर्गति। (३) दाता की सद्गति। (४) अदानशीलता से हानि और दान के लाभ। (५) धनादि की अस्थिरता होने से समर्थ को अन्यों के पालन का उपदेश। (६) क्षुद्र पुरुष की व्यर्थ धन की प्राप्ति। (७) फाली और पैरों के दृष्टान्त से सत्कार्य करने वालों की प्रशंसा। ज्ञानादि का दाता अदाता से कहीं अच्छा है। (८) साधनों के सिवाय सामर्थ्य, दानशीलता का महत्त्व। (९) दान-सामर्थ्यादि की विषमता। (पृ० ४८३–४८७)

सू० [११८]—रक्षोहा अग्नि। इन्द्रिय दमन, और दुष्टों के दमन का उपदेश। (२) आहुतिप्राप्त अग्नि के तुल्य तेजस्वी को उत्तम

वचनों से प्रसन्न होने का उपदेश। (३) अग्निवत् वाणी द्वारा प्रकट आत्मा का वर्णन। (४) घृत से प्रज्वलित अग्निवत् ज्ञानी और तेजस्वी हो। (५) विद्वान् ज्ञानोपदेश से प्रकाशित हो। (६) मनुष्यों को विद्वान् की परिचर्या का उपदेश। (७) तेजस्वी दुष्टों का नाश करे, न्याय की रक्षा करे। (८) पीड़ादायक विपत्तियों वा व्यक्तियों को दूर करे। (९) विद्वान् की उपासना का उपदेश। (पृ० ४८७–४९९)

सू० [११९]—आत्मस्तुति। आत्मतुष्ट पुरुष के उदार भावों का प्रकाश। (२) सोमपान अर्थात् आत्मानन्द रस, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि की प्राप्ति, आत्मा की शक्ति का उद्रेक। (४) आत्मदर्शन रूप सोमपान से ज्ञानवृद्धि। (५) आनन्द-रस प्राप्त्यर्थं ज्ञानस्वरूप प्रभु की उपासना। (६) ज्ञानरस-पान से इन्द्रियदमन। (७) वीर्य रक्षा से प्रचुर बलप्राप्ति। (१२) परमेश्वर के महान् सामर्थ्यों का वर्णन। (पृ० ४९०–४९४) इति षष्ठोऽध्यायः।

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१२०]—इन्द्र। सर्वोत्पादक जगत्स्रष्टा परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में ज्येष्ठ ब्राह्मणवर्ग का वर्णन। (२) सर्वशरण्य प्रभु। (३) सर्वोपास्य प्रभु। (४) प्रजापालक राज्य के कर्त्तव्य। (५) बलवान् सहायक राजा के सहयोग में प्रजावर्ग को उत्साह। (६) आप्तों से श्रेष्ठ आप्त आत्मा की प्राप्ति, उसके सामर्थ्य का वर्णन। (७) आत्मा के सामर्थ्य और कर्म। (८) प्रभु के बल, सुख आदि का वर्णन। (९) परमेश्वर का विराट् रूप। (पृ० ४९४–४९८)

सू० [१२१]—प्रजापति का वर्णन। हिरण्यगर्भ परमेश्वर।

पृथिवी आदि का धारक। (२) सर्वोपास्य शरण्य मुक्तिप्रद प्रभु। (३) सब चराचर का राजा प्रभु। (४) समस्त विश्व विभूतियों का स्वामी प्रभु। (५) महान् बलशाली प्रभु। (६) सर्वाश्रय प्रभु। (७) सर्वाश्रय, सर्वजीवनदाता प्रभु। (८) सर्वसाक्षी प्रभु। (९) परमेश्वर के अनेक लक्षण। (१०) सर्वव्यापक प्रभु से ऐश्वर्यों की याचना। (पृ० ४९८–५०१)

सू० [११२]—अग्नि। प्रभु और विद्वान् की स्तुति और उपासना। परमेश्वर के अनेक गुण और वह विश्व का स्वामी है। (२) सर्वज्ञ प्रभु से ज्ञान की याचना। (३) सर्वव्यापक, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की शरण-ग्रहण और उससे अनुग्रह याचना। (४) ज्ञानमय तेजोमय, सुखरसवर्षी, प्रभु की उपासना। (५) भक्तयर्थ प्रभु की स्तुति। (६) विश्वपोषक गौवत् प्रभुवाणी से इष्ट कामना करते हुए परमेश्वर की उपासना करना। (७) प्रातःउपासना होमादि का विधान। उनके अभिप्राय। (८) प्रकाश स्वरूप प्रभु की उपसना, और उससे ऐश्वर्य की याचना। (पृ० ५०२–५०७)

सू० [११३]—वेन। प्रकाशस्वरूप जगत्स्रष्टा का वर्णन। (२) समुद्र से तरंग, सूर्य से उषा आदि दृष्टान्तों से प्रभु से ज्ञानप्राप्ति का वर्णन। (३) वेदवाणियों का परमप्रतिपाद्य प्रभु। (४) विद्वानों द्वारा स्तुत्यपद। उपासक और उपास्य में चातक मेघ का-सा सम्बन्ध। नाविक जैसे समुद्र में प्रवेश करता है वैसे सिन्धु रूप प्रभु को प्राप्त होना। (५) उपास्य-उपासक [illegible] सम्बन्ध का-सा विशुद्ध स्नेह। (६) सूर्यवत् तेजोमय, अज्ञानावरण का नाशक, सर्वशक्ति सर्वपोषक प्रभु का साक्षात् दर्शन। (७) सर्वोपरि शासक प्रभु। गन्धर्व परमेश्वर का देहरूप विश्व कवच है। (८) आत्मा का तेजोमय प्रभु में प्रवेश (पृ० ५०७–५१२)

सू० [१२४]—अग्नि, वरुण सोम। यज्ञ में आत्मा का चिन्तन। (२) अमृतत्व की प्राप्ति। आत्मसाक्षात्कार। (३) प्रभु से मोक्ष-याचना। (४) आत्मा का स्वतः मोक्षमार्ग-दर्शन। (५) दोनों आत्माओं का साक्षात् योग-दर्शन। (६) आत्म-साक्षात्कार, आत्मा सुखमय और प्रकाशमय। (७) विश्वस्रष्टा का अद्भुत कर्म और स्वाभाविक व्यापन। प्रकृति में ब्रह्मबीजोत्सर्ग। (८) प्रकृति का ईश्वराश्रय, गर्भ-ग्रहण और जगत्प्रसव। (९) परमेश्वर वा आत्मा का शुद्ध रस स्वरूप (१०) मैत्रीभाव से उसका साक्षात्कार। (पृ० ५१२–५१९)

सू० [१२५]—वाग् आम्भृणी। परमात्मा का आत्मशक्ति वर्णन। आत्म विभूति-प्रकाश। (पृ० ५१७–५२०)

सू० [१२६]—विश्वेदेव। पाप से रक्षा। सत्संग द्वारा सज्जनों की कृपा से पाप से पार होना, सब बुराइयों से छूटना। (पृ० ५२१–५२४)

सू० [१२७]—रात्रिस्तव। रात्रि के दृष्टान्त से जगत्-शासिका प्रभुशक्ति का वर्णन। (६–८) प्रभुशक्ति का वर्णन। (पृ० ५२४–५२७)

सू० [१२८] विश्वेदेव। तेजस्वी पुरुष, अग्रनायक, सेनापति, और राजा के कर्त्तव्य। सेना, प्रजा आदि प्रधान व्यक्ति को चमकावें, उसका मान-आदर, सत्कार और शक्ति-वर्धन करें। (२) इन्द्र वा स्वामी वा नायक पति का अधीनों के प्रति आदेश। (३) उसकी शुभ कामना और आज्ञाएं। (४) ६ प्रकार की विशाल शक्तियां। उनके सदृश ६ प्रकार के पूज्य व्यक्ति। अध्यात्म में—षड्धातु। विद्वानों के कर्त्तव्य प्रभु से प्रार्थना। (६) रक्षक के कर्त्तव्य। (७) प्रभु से प्रार्थना। (८) प्रधान तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य, (९) प्रधान पुरुष की अन्य वीरों, विद्वानों से प्रार्थना। (पृ० ५२७–५३४)

सू० [१२९]—नासदीय सूक्त। भाववृत्त। जगत्सर्ग के पूर्व प्रलय

अवस्था में अव्यक्त दशा का वर्णन। अम्भस् तत्व का वर्णन। (२) सब से अधिक सूक्ष्म परम शक्ति तत्त्व का रूप। (३) सृष्टि के पूर्व क्या था? तमस्तत्त्व का वर्णन। (४) ईश्वरीय जगत् सर्ग, संकल्प रूप। (५) असत् अम्भस् सलिलादि का विस्तार, उसमें अन्य शक्तियां और प्रभु की स्वधा शक्ति। (६) जगत् का मूल कारण अज्ञेय, अव्यक्त। (७) मूल तत्व को जानने वाला है तो एकमात्र परमेश्वर ही है। (पृ० ५२१—५२४)

सू० [१३०]—भाववृत्त। १०० वर्षों के दीर्घ-यज्ञ का पट रूप में वयन, उसका स्पष्टीकरण। (१) परम पुरुष ही यज्ञ-पट तनता है, यज्ञ पट बुनने के अन्य साधनों की भी श्लिष्ट योजना। (३) उपास्य प्रभु के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न। देवयज्ञ के स्वरूप की जिज्ञासा। (४) छन्दोऽनुरूप देव गुणों का विभाग। (५) ऋषियों का छन्दोबल। (६) यज्ञ से ऋषि-मनुष्यादि का प्रादुर्भाव। (७) पूर्व-पुरुषाओं की परिपाटी के अनुसरण का उपदेश। अध्यात्म में प्राणगण ७ ऋषि। आत्मा प्रजापति। जीवन रूप शतवार्षिक यज्ञ। (पृ० ५२४—५२७)

सू० [१३१]—इन्द्र, अश्विगण। राजा के कर्त्तव्य। दुष्ट शत्रुओं को दूर करे। (१) कृषिवत् नियम से प्रभु भक्ति करने वालों की रक्षा प्रार्थना। (२) उत्तम बैलों वाली गाड़ी के तुल्य बलवान् प्रभु से जगत्-सर्ग और दृढ़ पुरुषों से गृहस्थ संपादन करने का उद्देश्य।(४) जितेन्द्रिय गृहस्थ स्थिर पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) मां बाप के बीच पुत्रवत् राजा की दशा। वह सेना शक्तियों और प्रजाओं के बीच बढ़े। (६—७) राजा अपनी पालक शक्तियों से प्रजा में अभय स्थापन करे और प्रजाएं उसके अधीन द्वेषरहित होकर रहें। (पृ० ५२७)

सू० [१३२]—लिङ्गोक्त। ज्ञानी लोगों के सहयोग में यज्ञशील पुरुष की वृद्धि। (१-३) उसके प्रति अन्यों के कर्त्तव्य। वे उसकी

सदा वृद्धि करें। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। वे ऐश्वर्य की खूब वृद्धि करें। (४) सभापति का कर्त्तव्य। (५) उपरिस्थित शासकों के छोटे २ दोष भी अधीनों में अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। (६) माता या आचार्य के कर्त्तव्य और उनके प्रति पुत्रों या शिष्यों का कर्त्तव्य उनका प्रियाचरण। (७) उत्तम स्त्रीपुरुष उत्तम रथ आदि पर विराजें सेनापतिवत् शक्तिशाली पुरुष प्रजा की सदा रक्षा करें। (पृ० ५४१—५४४)

सू० [१३३]—इन्द्र। बलवान् सेनापति की प्रतिष्ठा। उसके कर्त्तव्य। (२) शत्रु के प्रति उसके नाश के लिये उचित भावना। (३-५) दण्डनीय पुरुषों को उचित दण्ड। (६) प्रधान नायक के कर्त्तव्य। (७) शासक ज्ञानी के कर्त्तव्य। वह अधीनों को उत्तम शिक्षा दे। (पृ० ५४४—५४७)

सू० [१३४]—इन्द्र। माता पिता के तुल्य परमेश्वर प्रकृति का जगत्-सर्जन। (१) दुष्टों के दण्ड करने की प्रार्थना। (३) उत्तम अन्न-सम्पदाओं के पाने की प्रार्थना। (४) ऐश्वर्य की प्रार्थना। (५) हमें कैसे तेजस्वी शस्त्रास्त्र प्राप्त हों और कैसे हमारे शत्रु दुष्ट नाश हों इसमें घृतबिन्दु और तृण के दृष्टान्त। (६) व्यापक प्रकृति को धारण करने में अज के दृष्टान्त से सर्वनियन्ता के कार्य का वर्णन। (७) विधि विधानानुसार यज्ञादि कार्य करने का आदेश। (पृ० ५४७—५५०)

सू० [१३५]—यम। देह द्वारा कर्मफल भोग का वर्णन। (१) पुनः पापाचरण करने वाले पर निन्दा और दयादृष्टि से देखने का उपदेश। अथवा अधः-पतन होने में चित्त की निर्बलता। (३) देह-यन्त्र का रहस्य। ज्ञानी अज्ञानी जीव का देह-रथ में आना। (४) वह देह में आत्मज्ञान को प्राप्त करे। (५) जीव के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासाएं। (६) मन से प्रतिक्षण श्वासानुश्वास-क्रिया के तुल्य संकल्प-मय प्रभु से जगत् की उत्पत्ति और संहार का होना। (७) पाञ्चभौतिक

देह-नियन्ता आत्मा का आश्रय है। देह में स्थित वाणी, राजा की रण-भेरी के तुल्य है। (पृ० ५५०—५५३)

सू० [१२६]—जूति, वातजूति, विप्रजूति, वृषाणक, करिक्रत एतश, ऋष्यशृंग और केशिगण। ज्योतिर्मय प्रभु केशी। (२) देह में इन्द्रिय प्राणों की जागृत और चेतन दशा में भेद। (३) देह में प्राणों के सूक्ष्म और स्थूल रूप। (४) देहाश्रम में स्थित आत्ममुनि का वर्णन। दो समुद्र के बीच उसका सुन्दर आश्रम। आलंकारिक सत्यता का स्पष्टीकरण। (६) ज्ञानी का विवरण। आत्मा का विवरण, सूर्य के जलपान के समान आत्मा का विविध विषय का भोग। विद्युत् के समान वाणी के कार्य (पृ० ५५३—५५७)

सू० [१३७]—विश्वेदेव। विद्वानों, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य। जलों की रश्मियों के तुल्य नीचे गिरों को बार २ उठावें। अन्यों को जीवन प्रदान करें। (२) विशाल जगत् में दो प्रकार के प्रबल वातों का वर्णन। देह में श्वास-निश्वास का वर्णन। (३) रोगनाशक वायु का वर्णन। (४) शान्तिदायक मृत्युनाशक उपायों से अन्नादि देने और रोग नाश करने का उपदेश। (५) रक्षा के उपायों से रक्षा प्राप्ति का उपदेश। (६) रोगनाशक जलों का वर्णन। (७) रोगनाश के लिये वाणी के प्रयोग के साथ हाथों की दशों अंगुलियों के स्पर्श का प्रयोग। (पृ० ५५७—५५९)

सू० [१३८]—इन्द्र। प्रभु के मैत्रीभाव में मननशील पुरुषों का अज्ञान नाश। पक्षान्तर में जगत् में सूर्य के सहयोग में वायुओं का मेघ वर्षणादि कार्य। (१) भौतिक जगत् में सूर्य के कार्यों का वर्णन। तदनुसार प्रभु के कर्मों का वर्णन। (२) भौतिक जगत् में सूर्य और विद्युत् के अनेक कर्म। तत्सदृश तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्यों का वर्णन।

(४) सूर्यवत् राष्ट्र में राजा के कर्त्तव्यो का वर्णन। शत्रु से करादान, दण्ड-ग्रहण की व्यवस्था। (५) विना युद्ध के विजय करने का आदेश। कण्टकशोधन करने का उपदेश। (६) शत्रुनाश के कार्य में सेनापति के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर के महान् कार्य। (पृ० ५६०-५६४)

सू० [१३९]—सविता, और विश्वावसु। जीवनप्रद प्राभातिक सूर्योदय के समान परमेश्वर के जगत्सर्जन के अद्भुत कार्यों का वर्णन। (२) मध्यान्हकालिक सूर्य के समान विद्वान् के कर्त्तव्य। (३) सूर्य के समान धर्माध्यक्ष का वर्णन। (४) सूर्य के प्रति जाते हुए वाष्पमय जलों के तुल्य प्रभु के प्रति जाते हुए उपासकों का वर्णन। सूर्यानुसारी वायु के समान प्रभु का देवानुगमन। (५) दिव्य गन्धर्व परमेश्वर का वर्णन। उससे ज्ञान की याचना। (६) विद्वान् गन्धर्व का वर्णन। ज्ञान-प्रवचन, उसका कर्त्तव्य। पक्षान्तर में मेघ सूर्यादि का वर्णन। (पृ० ५६४-५६७)

सू० [१४०]—अग्नि। प्रकाशस्वरूप प्रभु की स्तुति। (१) माता पिता के तुल्य प्रभु का प्रजापालन। (३) सर्वाश्रय, सर्वपालक प्रभु। पक्षान्तर में यज्ञाग्नि का वर्णन। (४) पालक राजा और प्रभु का वर्णन। उससे ऐश्वर्य-वृद्धि की प्रार्थना। (५) महान् दाता यज्ञकर्त्ता प्रभु का वर्णन। (६) दर्शनीय, विश्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वदाता प्रभु वा विद्वान् की उपासना और साक्षिता। (पृ० ५६७-५७०)

सू० [१४१]—विश्वेदेव। विद्वान् तेजस्वी पुरुष वा प्रभु से शुभ चित्त होने और प्राप्त होने की विनति। (२) न्यायकारी से न्याय, वेदज्ञ से ज्ञान, विदुषी से वा भूमि से नाना ऐश्वर्यादि का याचना। (३) सोम राजा, विद्वान् शासक प्रभु, विद्वानों, और वेदज्ञों की और धनसम्पन्नों की उचित प्रार्थना। (४) उनका राष्ट्र में सादर आमन्त्रण और सबकी शुभ चिन्तना की आशा। (५) राष्ट्र के बड़े २ आदरणीय पुरुषों को

दानशील उदार होने की प्रार्थना। (६) राजा को प्रेरणा कि वह अन्य शासकों से दानी, उदार होने की प्रेरणा करे। (पृ० ५७०—५७२)

सू० [१४२]—अग्नि। त्रिभूमिक गृह के समान प्रभु शरण्य को प्राप्त कर परम मोक्ष और उसकी बन्धुता प्राप्ति और उससे दया की याचना। (२) वशी आत्मा का वर्णन। (३) भोक्ता आत्मा। (४) कर्मफल भोक्ता का तृणादि दाहक अग्नि के तुल्य वर्णन। (५) अग्नि, सेना, वायु आदि के तुल्य आत्मा का वर्णन। (६) सेनापति के समान आत्मा का वर्णन। (७) विद्वान् का अग्निवत् वर्णन। (८) आत्मा का इस वा अन्य लोकों में आने जाने का वर्णन। लोकों में रहने विहरने योग्य स्थानों का वर्णन। (पृ० ५७२—५७६) इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१४३]—दो अश्विगण। प्रधान प्रकृति और परमेश्वर का वर्णन। उनका कार्य जीव को पुनः जन्म देना। कक्षीवान् जीव। (२) जीव पर प्राण-कोशोंका बन्धन। उसके मोक्ष देने में कारण प्रकृति और परमेश्वर। (३) दोनों जीव को ज्ञान देते हैं। (४) दोनों की जीव पर कृपा। (५) रजःसमुद्र में बहते डूबते जीव पर दोनों की कृपा। (६) दोनों ज्ञानदाता और कामनापूरक है। (पृ० ५७६—५७९)

सू० [१४४]—इन्द्र। जीव की उर्ध्वगति। मोक्षमार्ग। (२) ऊर्ध्वंकृशन आत्मा। उसकी सब बाधाओं को दूर करने वाला प्रभु। (३) प्रकाशमय आत्मा का वर्णन। (४) जितेन्द्रिय दीर्घजीवी साधक। (५) ब्रह्मचर्य पूर्वक धारित, रक्षित वीर्य का महत्व। वीर्य सन्ततिवर्धक और दीर्घ जीवन-कारक है। (पृ० ५७९—५८१)

सू० [१४५]—उपनिषत्-सपत्नीबाधन। सपत्नीबाधक, पति-प्रापक ओषधि, पापदाहक, प्रभुप्रापक ब्रह्मविद्या। (१) अविद्या दूर करने की प्रार्थना। (३) ब्रह्मविद्या की सर्वोत्तमता। (४) अविद्या-नाश का वर्णन। (५) सौत के तुल्य अविद्यानाश का उपदेश। (६) अविद्या नाशक ब्रह्मविद्या के प्रति मनका बछड़े के समान आना। (पृ० ५८१—५८४)

सू० [१४६]—अरण्यानी। वानप्रस्थ पुरुष की पत्नी के कर्त्तव्य। (२) वानप्रस्थ पुरुष के कर्त्तव्य। (३) वानप्रस्थ का कर्त्तव्य ज्ञानाभ्यास, वेदाभ्यास। (४) अरण्यानी ऋणों से मुक्त दशा। उसमें ईश्वरोपासना का कर्त्तव्य। उसकी अहिंसा व्रत की साधना। अरण्यवास का अध्यात्म रहस्य। (पृ० ५८४—५८७)

सू० [१४७]—इन्द्र। विश्वधारक प्रभु परमेश्वर का वर्णन। प्रभु के मेघ और विद्युत् के तुल्य कृपालु और उग्ररूप। (३) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य पुत्र पौत्र धन आदि के लिये भी स्तुत्य प्रभु। (४) इन्द्र विद्युत् की साधना उससे अनेक रथादि का निर्माण। (५) ऐश्वर्यवान् पुरुष के कर्त्तव्यों का उपदेश। (पृ० ५८७—५८९)

सू० [१४८]—इन्द्र। धन समृद्धि आदि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना। (२) महान् प्रभु की उपासना और ध्यान-धारणा। (३) आत्मा की उपासना। (४) और रक्षा की याचना। (५) प्रभु की उपासना। (पृ० ५८९—५९२)

सू० [१४६]—सविता। सर्वजगत् का उत्पादक और संचालक परमेश्वर। (२) परमेश्वर से सृष्टि का प्रकट रूप से उत्पन्न होना। उसमें परमेश्वर की सूर्य के साथ तुलना। (३) परमेश्वर के महान् सामर्थ्य से, संयोग-विभाग से जगत् की उत्पत्ति। उससे सूर्य की उत्पत्ति। (४) गौ, योद्धा, गौवत्स पति-पत्नी आदि के समान प्रभु के प्रति।

प्रेम-प्रदर्शन। प्रभु के प्रति नित्य जागृतचित्त होकर रहना। (पृ० ५९२–५९५)

सू० [१५०]—अग्नि। सर्वोपसित प्रभु से सुख की प्रार्थना। (२) प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासना। (४) देवों का पुरोहितवत् साक्षी प्रभु। सर्वोपास्य यज्ञाग्निवत् उसी को हृदय में प्रज्वलित करना। सर्वरक्षक प्रभु सच्चा सहायक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपास्य है। (पृ० ५९५–५९७)

सू० [१५१]—श्रद्धासूक्त। श्रद्धा से करने योग्य अनेक कर्त्तव्यों का उपदेश। (३) श्रद्धा योग्य वचन होने की प्रार्थना। श्रद्धापूर्वक उपासना करने का उपदेश। 'श्रद्धा' नामक सत्यधारक प्रभु की शक्ति की उपासना। (पृ० ५९७–५९९)

सू० [१५२]—इन्द्र। विश्व का बड़ा भारी शासक परमेश्वर। (२) वह सर्वकल्याणकारक, सर्वपालक, बलवान्, अभयदाता है। (३) उससे विघ्ननाश आदि की प्रार्थना। (४) इन्द्र, वीर सेनापति से भी शत्रुनाश की प्रार्थना। (पृ० ५९९–६०१)

सू० [१५३]—इन्द्र। सेनापति का वर्णन। (२) इन्द्र अध्यक्ष की उत्पत्ति। (३) उसका विशेष पराक्रम। (४) सैन्यों के प्रति उसका कर्त्तव्य। वह उसे तीव्र बनाये रक्खे। उसका वशकारी सामर्थ्य (पृ० (६०१–६०३)

सू० [१५४]—भाववृत्त। ज्ञानोपासक आत्मा वा शिष्य को सन्मार्गोपदेश। 'सोम' आत्मा की निरुक्ति। (२) मोक्षगामी तपस्वियों की ओर जाने का आदेश। (३) युद्धवीरों और दानशीलों के प्रति जाने का उपदेश। (४) सत्य, न्याय, तपादि के उपासकों, गुरु जनों के प्रति जाने का उपदेश। (५) वेदवाणियों के निष्ठ, ज्ञाता, कवि ऋषियों के प्रति जाने का उपदेश। सूक्त के विनियोग पर विवेक। (पृ० ६०३–६०५)

सू० [१५५]—अलक्ष्मीघ्न सूक्त । ब्रह्मणस्पति, विश्वेदेव । परशत्रु, सैन्य और जलादि न देने वाली दुर्भिक्ष कालिक दशा, इन दोनों के नाश का उपाय । (२) बृहस्पति सेनापति को परशत्रु सैन्य के नाश का उपदेश । (३) सागरादि तरने के लिये नौका, जहाज़ आदि का उपदेश । (४) शत्रुनाशक, गोली छोड़ने वाले (मशीनगन आदि) यन्त्रों का उपदेश । (५) अजेय वीर । (पृ० ६०५—६०८)

सू० [१५६]—अग्नि । सेना द्वारा वीरों का ऐश्वर्य विजय । (३) नायक के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में गुरु के कर्त्तव्य और आत्मा का वर्णन । (४) परमेश्वर का सूर्य-स्थापन रूप अद्भुत कार्य । (५) प्रकाशक प्रभु का सर्वोच्च पद । (पृ० ६०८—६१०)

सू० [१५७]—विश्वेदेव । जीवों आदि का भुवनों को प्राप्त होना । (२) आदित्यों सहित इन्द्र के महान् सामर्थ्य । (३) आदित्यों की शासकों से तुलना । उनका शरीरों आदि की रक्षा करने का गुण । (४) विजयेच्छुक के कर्त्तव्य । (५) पक्षान्तर में साधकों का चिति शक्ति का दर्शन । (पृ० ६१०—६१२)

सू० [१५८]—सूर्य । सबका संचालक प्रभु सूर्य । उससे रक्षा की प्रार्थना । (२ ३) सर्वोत्पादक सविता प्रभु, उससे रक्षा, प्रकाश, चक्षु आदि प्राप्ति की प्रार्थना । (पृ० ६१२—६१३)

सू० [१५९]—शची पौलोमी । सेना और स्त्री का आत्मपति-वरण और उद्योग-उत्साहयुक्त भाव । दोनों के पतियों के कर्त्तव्य । (३) माता के सन्मानों के प्रति उत्तम भाव (४) पति के प्रति उत्तम भाव । (५ ६) वीर सेना और वीराङ्गना की विजयादि की महत्वाकांक्षा ।

सू० [१६०]—इन्द्र । सेनापति के कर्त्तव्य । (४) समर्थ होकर

दानशील पर प्रभु की कृपा। उसका निष्कण्टक मार्ग। (५) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ प्रभु की स्तुति। (पृ० ६१६—६१८)

सू० [१६१]—राजयक्ष्मघ्न सूक्त। राजयक्ष्मा और ग्राही नामक रोगों को दूर करने के लिये अग्नि और विद्युत् के प्रयोग का उपदेश। (२) मृत्यु-मुख में पड़े रोगी की रक्षा का उपदेश। (३) शतवर्ष आयुष्कर ओषधि का उपदेश। 'इन्द्र' की वैदिक निरुक्ति। (४) वीर्य द्वारा १०० वर्ष के जीवन की शक्ति प्राप्ति का उपदेश। (५) रोगी को रोगमोचन, दीर्घ-जीवन दान को प्राप्त कराने का उपदेश, वैद्य के कर्त्तव्य। (पृ० ६१८—६२०)

सू० [१६२]—गर्भ-संस्राव में प्रायश्चित्त सूक्त। गर्भनाशक कारणों के नाश करने के उपायों का उपदेश। (पृ० ६२०—६२१)

सू० [१६३]—यक्ष्मघ्न सूक्त। रोगी के आंख, नाक, कान, ठुड्डी, मस्तिष्क, बाहु, धमनियों, और अस्थियों गुदा, आंतों, आदि पेट के भीतरी अंगों से और जांघों, पैरों, टांगों, एड़ियों, पंजों, नितम्बों से, मूत्र, मलादि द्वारों और अन्य अनेक जोड़ों से राजयक्ष्मादि नाश करने का उपदेश। (पृ० ६२०—६२४)

सू० [१६४]—दुःस्वप्नघ्न सूक्त। मन के दुःसंकल्प को दूर करने का उपदेश। (२) मन को सन्मार्ग में लगाने का उत्तम उपाय। ईश्वराराधन में कल्याण-दर्शन। (३) दूर करने योग्य बुरी वासनाएं। (४) पारस्परिक द्रोह भाव को दूर करने की प्रार्थना। (६) विजय और सफलता की भावना। (पृ० ६२४—६२६)

सू० [१६५]—कपोतोपहति पर वैश्वदेव प्रायश्चित्त। वक्ता का ठीक तात्पर्य दर्शाने वाला चतुर दूत वा उपदेष्टा कपोत। उसके आदर सत्कार का उपदेश। (१) परदूतों का आदर-सत्कार करने का

उपदेश। (३) दूत सदा प्रजा की सुख शान्ति का ध्यान रखें। उलूक और कपोत दो प्रकार के दूतों का वर्णन, उनके लक्षण और भेद। (५) कपोत वर्ग के दूत के साथ व्यवहार का उपदेश। (पृ० ६१६–६१९)

सू० [१६६]—सपत्नघ्न सूक्त। सर्वश्रेष्ठ होने की प्रार्थना। (१) स्वयं अहिंसक होकर शत्रु को पददलित करने का संकल्प। (३) शस्त्र-बल और मन्त्र-बल दोनों से शत्रु को अधीन करने का उपदेश। (४) शत्रु वा प्रजा के समान कर्मों वा समितियों आदि पर राजा को वश करने का उपदेश। (५) राजा को शिरोमणि होने का उपदेश। जलों में मेंडक के तुल्य सर्वोपरि और स्वच्छन्द, निर्भय होने का उपदेश। (पृ० ६१९–६३१)

सू० [१६७]—इन्द्र और लिङ्गोक्त देवता। राजा के समान आत्मा का वर्णन। (२) विजयी आत्मा से समस्त कामनाओं की पूर्त्ति की अभिलाषा। (३) सर्वशासक प्रभु के अधीन रह कर हम सब ऐश्वर्य का भोग करें। (४) आत्मा को स्वच्छ कर उसके दर्शन का उपदेश। (पृ० ६३१–६३३)

सू० [१६८]—वायु। वायुवत् महारथी का वर्णन। (२) वायु और स्त्रियों के तुल्य सेनापति और सेनाओं के कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा और प्राणों का वर्णन। (३) वायुवत् तेजस्वी राजा का वर्णन। (४) प्राणात्मा का वर्णन। परमेश्वर के पक्ष में योजना का स्पष्टीकरण। (पृ० ६३३–६३६)

सू० [१६९]—गौएं। गो-सम्पत्ति के प्रति शुभ कामना। परमेश्वर से उनके लिये सुख दया याचना। श्लेष से गौओं, भूमियों का वर्णन। पक्षान्तर में आचार्य की वाणियों का वर्णन। (४) प्रभु से गौओं, वाणियों द्वारा उत्तम ज्ञान, सन्तान, सुख आदि की याचना। (पृ० ६३६–६३८)

सू० [१७०]—सूर्यवत् प्रभु से पोषण की प्रार्थना। (२) ज्योतिर्मय प्रभु का वर्णन। (पृ० ६३८–६४०)

सू० [१७१]—इन्द्र । प्रभु से रक्षा की प्रार्थना । (२) प्रभु में दुष्टों को दण्ड देने की प्रार्थना । (४) गिरे को पुनः उठाने की प्रार्थना । (पृ० ६४०–६४१)

सू० [१७२]—उषा । उत्तम गृहिणी के कर्त्तव्यों का उपदेश । गृहस्थ यज्ञ का उपदेश । (३) प्रजातन्तु को धारण करने का उपदेश । स्त्री को उषावत् गृह को सुप्रसन्न बनाए रखने का उपदेश । (पृ० ६४१–६४२)

सू० [१७३]—राजा की स्तुति । राजा का सर्वत्र भ्रमण, उसकी स्थापना उसका दृढीकरण । राजा को स्थिर, दृढ़ होने का उपदेश । (३) उसको उत्तम वेदज्ञ का उपदेश । (४) प्रजाओं के धारक राजा को ध्रुव होने का उपदेश । (५) राष्ट्र के धारण करने वाले पुरुष का वर्णन । (६) राजा के सहयोगी बलाध्यक्ष का कर्त्तव्य । (पृ० ६४२–६४४)

सू० [१७४]—राजा की स्तुति । अभीवर्त्त हविष् का वर्णन । राज्यकर्म के साधक सेनापति, महारथ, सैन्यादि अभीवर्त्त हैं । (२) उनके है कर्त्तव्य, प्रयाण । (३) राजा का अभीवर्त्त स्वरूप । (४) शत्रु-रहित ऐश्वर्य होने का साधन । (५) शत्रु पराजयकारी होने का लक्ष्य । भीतरी ६ शत्रुओं पर विजय का उपदेश । सूक्त की अध्यात्म योजना । (पृ० ६४५–६४७)

सू० [१७५]—ग्रावगण । उत्तम विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य । वे योग्य पदों पर नियुक्त हों । (२) वे अज्ञान और दुर्बुद्धि का नाश करें, बल धारण करें । (४) प्रजा के हितार्थ राजा उन वीरों विद्वानों को सन्मार्ग में चलावे । (पृ० ६४७–६४८)

सू० [१७६]—ऋभुगण । सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों के

वाले पति और पत्नी के परस्पर उत्तम पुत्र-प्राप्ति के आदेश। जाया का स्वरूप। (३) पति का सन्तानोत्पत्ति का कर्त्तव्य। (पृ० ६६०—६६२)

सू० [१८४]—विष्णु आदि लिङ्गोक्त देवता। पुत्रोत्पादक पुरुष के कर्त्तव्य। (१) गर्भधारण करने वाली स्त्री और वीर्याधानकर्त्ता पुरुष के गर्भाधान-कालिक कर्त्तव्य। सिनीवाली की निरुक्ति। (३) दो अरणियों के तुल्य पति-पत्नि का अग्निवत् पुत्रोत्पादन का कार्य। (पृ० ६६२—६६३)

सू० [१८५]—अदिति। स्वस्त्ययन सूक्त। मित्र, अर्यमा, वरुण आदि से रक्षित तेजस्वी पुरुष का प्रखर तेज और बल। शत्रु आदि की उसके प्रति तुच्छता। (पृ० ६६३—६६४)

सू० [१८६]—वायु। वायु के सदृश परमात्मा प्रभु का वर्णन। (२) परमात्मा पिता, भ्राता, सखा, आदि की भावना। (३) प्रभु अमृत का निधि। (पृ० ६६४—६६५)

सू० [१८७]—अग्नि। उदार प्रभु की उपासना का उपदेश। परमपार प्रभु। (२-३) बलशाली सुखों का वर्षक, दुष्टनाशक प्रभु। सर्वद्रष्टा प्रभु। निरञ्जन, स्वयंप्रकाश प्रभु। वह हमें पापों से पार करे। (पृ० ६६५—६६७)

सू० [१८८]—जातवेदा अग्नि। आत्मा और परमात्मा की उपासना (१) देह-धारण-शील आत्मा का वर्णन। विप्र वीर प्रभु की उपासना। (३) जातवेदा आत्मा का वर्णन। (पृ० ६६७—६६८)

सू० [१८९]—सार्पराज्ञी और सूर्य। चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों का भ्रमण। उनकी गोवत्सादि से उपमा। अध्यात्म में ज्ञानार्थी को प्रभु की शरण-ग्रहण। (१) प्रभु का शक्तिप्रकाश। आत्मा के प्राणापान कर्म। (३) सूर्य के ३० धाम। अध्यात्म योजना। (पृ० ६६८—६७०)

सू० [१९०]—भाववृत्त । अघमर्षण सूक्त । तप से ऋत, सत्य की उत्पत्ति । उससे जगत् का प्रादुर्भाव । प्रभु का अनादि प्रवाहयुक्त जगत्सर्ग (पृ० ६७०—६७१)

सू० [१९१]—अग्नि । संज्ञान । प्रभु का वेदवाणी रूप में प्रकाश । ऐश्वर्यों की याचना । (२) मनुष्यों को मिलकर चलने, एक समान मन वाणी रखने, और एक समान देवोपासना करने आदि का उपदेश । (३-४) सबके विचार, संगति, ज्ञान, संकल्प, मन के अभिप्राय, हृदय और बैठना आदि सब एक समान रहने का उपदेश । (पृ० ६७१—६७३) इत्यष्टमोऽध्यायः । इत्यष्टमोऽष्टकः ॥ इति दशमं मण्डलम् ॥

इति ऋग्वेद-विषयसूची समाप्ता ॥

भाष्यकर्त्तुरुपसंहारवचनम् (१-२)

शुद्धि-पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०	२५	(वनीवानाः)	(वनीवानः)
१७	१६	स्नेहमया	स्नेहमयी ।
४५	८	(तत् मोघं न)	(तत् मोघं)
५७	१८	मापु	मो पु
,,	२१	मा सु	मो सु
६८	१५	करे ।	करे तो
७१	१९	(होतुः)	(होतः)
८०	५	वनकर	स्तनकर
,,	७	(वल्म्)	(वल्म्)
९०	१०	(दुर्वित्राम्)	(दुर्विदत्राम्)
७६	१०	पोपक	पोपक
१०३	०	अ० ५ । सू० १० । ६	अ० ५ । सू० ६५ । ६ ॥
१०८	६	वाला	वाली
११६	१९	(नः)	(नः पिता)
१३९	१९	मण्डिलियाँ	मण्डलियाँ
१५४	१९	तर्कावितर्क	तर्कवितर्क
१६१	१४	(य)	(यत्)
१७२	१४	प्रकाशमान्	प्रकाशमान
२१२	१७	ऋत्	ऋत
२१४	७	(चक्षुः पिता)	(चक्षुषः पिता)

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२२८	३	'सरि'	'सरिर'
२४१	१८	साम	सोम
१८५	६	यातुधानान्	यातुधानात्
३००	१९	अतनयन्	अजनयन्
,,	२३	(वहन्तं तविपम्) महान् वलवान् है ।	(बृहन्तं तविषं अमिनत्) महान् वलवान् जाना जाता है ।
३०४	०	४०४	३०४
३४७	२४	भगनीवत्	भगिनीवत्
३५९	१४	पति पत्नी	पति पत्नी को
३७९	१८	प्राणियों	प्राणियों
४००	०	४४०	४००
४०५	१५	सारर्थी	सार्थी
४१४	२१	भेदक !	भेदक
४२३	७	जगत् को देह में वसाने-	जगत् को वसाने वा देह में वसने
२६२	१४	डाच्चरण	उच्चारण
५०९	१८	पपहुंचती	पहुंचती
५१२	१०	मोमानां	सोमानां
५२४	४	सौभराः	सौभरो
५२५	२१	पद्वयं	पदद्वयं
५३१	६	(अधिधराजं)	(अधिराजम्)
५३३	८	तपस्	तमस्
५५०	५	करें ।	करें और (मन्त्रश्रुत्यं चरामसि) वेद मन्त्रों के उपदेशानुसार विचारपूर्वक आचरण करें ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
५६०	८	सल्येषु	सल्येषु
५७६	७	वता	बना
५८३	१५	भूत्व	भूत्वी
६३९	११	(जज्ञे प्रकट	(जज्ञे) प्रकट
६४१	४	मनुष्य के	मनुष्य को
६६०	२	व्यास्या	व्याख्या

टि०—(१) वर्ग, पूर्ण, अभ्यर्थना, सूर्य, अर्णव, वर्पण, आकर्षण, समर्थ, विधुर्यति, प्रार्थना, सर्व, मार्ग, अनर्थ, ऐश्वर्य आदि शब्दों में रकार सहित अक्षरों में कहीं २ (ॅ) मात्र शेष रह गया है वहां पूर्ण शब्द ऊहा से जान लेना।

(२) संदश, वीरं, सुसंगत आदि शब्दों में अनुस्वार सहित अक्षरों में कहीं २ (ं) शेष रहा है वहां भी पूर्ण अक्षर जानना।

अवशिष्टांश

[पृ० २८६ सू० ८७। मन्त्र १२ का भाष्य]

भा०—(देवाः) युद्ध विजयी, विजिगीषु वीर पुरुष (अद्य) आज, तुरन्त (वृजिनं) पापाचारी पुरुष को (पराशृणन्तु) दूर से ही नाश करें। वे (तृष्टाः) अति तीक्ष्ण होकर (शपथा) आक्रोश, निन्दा-योग्य वचन कहते हुए (एनं प्रत्यक् यन्तु) इसके प्रति आक्रमण करें। (वाचास्तेनं) वाणी द्वारा अन्य के सत्य पक्ष आदि का लोप कर चोरी करने वा वाणी द्वारा आक्रमण करने वाले को (मर्मन्) उसके मर्मस्थल पर (शरवः) अनेक पीड़ादायक वाण (ऋच्छन्तु) प्राप्त हों। (यातुधानः) पीड़ादायक साधनों का प्रयोग करने वाला पुरुष (विश्वस्य) सबके हितार्थ (प्रसितिम् एतु) अच्छे दृढ़ बन्धन को प्राप्त हो।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

अथाष्टमेऽष्टके प्रथमोऽध्यायः ।

(दशमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके)

[४६]

वत्सप्रिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ४, ८, १० त्रिष्टुप् । ६ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र होता॑ जा॒तो म॒हान्न॑भो॒विन्नृ॒षद्वा॑ सीदद॒पामु॒पस्थे॑ ।
दधि॒र्यो धायि॒ स ते॒ वयां॑सि य॒न्ता वसू॑नि विध॒ते त॑नू॒पाः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो अग्नि (महान्) गुणों और बलों में महान्, (होता) होम का करने वाला, अपने में ग्रहण करने और अन्यों को देने वाला, सब को अपने प्रति आदरपूर्वक बुलाने वाला, (नभः-वित्) अग्नि के तुल्य आदित्य तक का ज्ञान कराने वाला, वा न प्रकट होने वाले अज्ञान, अविदित, अव्यक्त, अन्धकार-अज्ञान में छुपे तत्वों को भी जानने और अन्यों को बतलाने वाला, (नृसद्वा) प्राणों के बीच आत्मा और मनुष्यों के बीच

राजा के समान समस्त मनुष्यों के बीच सखा और शास्ता रूप से विराज- मान होकर' (अपाम् उपस्थे सीदत्) जलों के ऊपर नौकावत् सर्वतारक होकर समस्त लोकों के ऊपर अध्यक्षवत् विराजता है, (यः दधिः धायि) जो सबको धारण करने वाले रूप से स्थापित है। (सः) वह (ते) तुझे (वयांसि) ज्ञानों, नाना बलों और जीवनों को (यन्ता) देने वाला और सब को नियम में रखने वाला, सर्व-व्यवस्थापक है। वह ही (वसूनि) नाना लोक और ऐश्वर्य भी (विधते) कर्म करने वाले भक्त जीव को देनेहारा है। वही (तनूपाः) सबके देहों का पालन करने वाला है।

इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में विद्वान् लोग जलों के समीप यज्ञाग्नि को उत्पन्न कर उसकी परिचर्या करते हैं ठीक इसी प्रकार (इमं) इस आत्मा को (अपां सधस्थे) लोकों, प्रकृति के सूक्ष्म २ परमाणुओं के साथ २ और आत्मा को देह में रक्त-नाड़ियों में बहते रुधिर के साथ २ (विधन्तः) विशेष रूप से विधान, परिचरण आदि करते हुए, (नष्टम् पशुं न पदैः) खोये पशु को जिस प्रकार उसके चरण-चिन्हों से उसके पीछे २ जाते और पता लगाते हैं उसी प्रकार (नष्टं) सर्वव्यापक, वा आंखों से ओझल, अदृश्य, (पशुं) सर्वजगत् के द्रष्टा, प्रभु और आत्मा को (पदैः) वेद-प्रतिपादित ज्ञानमय पदों, वचनों से (अनु ग्मन्) मनन, दर्शन और निदिध्यासन आदि ज्ञान-साधनों से भी अनुक्रम से ज्ञान करते हैं। (उशिजः) उसके चाहने वाले, उसके प्रेमी भक्त, (गुहा चतन्तं) गुहा में, वाणी, और हृदय में गुप्त रूप से विद्यमान को (नमोभिः) नमन, विनययुक्त वचनों से (इच्छन्तः) चाहते हुए (धीराः) धीर, बुद्धिमान् , (भृगवः) समस्त पापों को भून देने वाले, तपस्वी जन (अनु अविन्दन्) अनेक साधनों के पश्चात् प्राप्त करते हैं।

इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥ ३ ॥

भा०—(इमं) इस ज्ञानमय, परम अग्नि को (वैभूवसः) व्यापक महान् शक्तिमान् प्रभु में बसने वाला, (त्रितः) तीनों लोकों, वेदों और अपने तीन जन्मों को जानने वाला वा तीनों दुःखों से पार उतरा हुआ मुक्त जीव, (इच्छन्) चाहता हुआ ही उसे (भूरि) बहुत २ (अविन्दत्) पा लेता है। तब (सः) वह (शेवृधः) उस शान्तिमय प्रभु में शक्ति से बढ़कर शक्तिशाली होकर (हर्म्येषु जातः) बड़े २ प्रासादों में उत्पन्न राजपुत्र के तुल्य बड़े २ लोकों में भी (युवा) बलवान् युवावत् होकर (रोचनस्य) अति तेज का (नाभिः) सूर्यवत् केन्द्र होजाता है।

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥ ४ ॥

भा०—(मन्द्रम्) अति आनन्ददायक, (होतारम्) सब को सुख देने वाले, सबको अपने भीतर लेने और अपने प्रति बुलाने वाले, (प्राञ्चम्) अति पूज्य, (यज्ञम्) सर्वदाता, सर्वोपास्य, सत्सङ्ग के योग्य, (अध्वराणां नेतारम्) न नष्ट होने वाले, नित्य तत्व के सञ्चालन करने वाले, (विशाम्) देह में प्रवेश करने वाले समस्त जीव-प्रजाओं के (अरतिम्) स्वामी, (पावकं) परम पावन, (हव्यवाहं) ग्राह्य विषय रूप जगत् को अपने शक्ति सामर्थ्य से उठाने और सञ्चालन करने वाले प्रभु को (मानुषेषु) मननशील पुरुषों के बीच में, वेदि में यज्ञाग्निवत् धारण स्थापन करने वाले (उशिजः) वशी, उसके चाहने वाले विद्वान् जन उसको (नमोभिः) विनययुक्त वचनों से (प्राञ्चं) प्रकट, व्यक्त, साक्षात् कर लेते हैं। उसी प्रकार हम भी करें।

प्र भुर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(भूः-जयन्तं) समस्त भुवनों को अपने वश करने वाले, विजेता राजावत्, (महान्) बड़े, (विपः-धाम्) नाना ज्ञानों और कर्मों को धारण करने वाले, (अमूरम्) कभी मृत्यु, नाश या मोह को प्राप्त न होने वाले, (पुरां दर्माणाम्) देहादि पुरों और नाना लोकों को भी प्रलय या मोक्षावसर में तोड़ने वाले, (गर्भम्) सब को अपने भीतर ग्रहण करने वाले, (वनाम्) परम सेवनीय, वा (वनां गर्भम्) तेजों के धारक, सूर्यवत् हिरण्यगर्भ, (हिरि-श्मश्रुम्) अति मनोहर, लोमवत् तेजों वाले, तेजस्वी, (अर्वाणं न धनर्चम्) अश्व के तुल्य शत्रुहिंसक, वीर के तुल्य धनैश्वर्यों से अर्चनीय, पूजनीय, उस प्रभु को लक्ष्य कर उसी की ओर (धियं नयन्तः) अपनी स्तुति और बुद्धि को लेजाते हुए (मूराः) नाशवान् प्राणी, एवं मोही अज्ञानी लोग उसको ही अपने में (धुः) धारण करें । इति प्रथमो वर्गः ॥

नि पुंस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः सङ्गृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥ ६ ॥

भा०—(त्रितः) जिस प्रकार तीनों ऋणों से बद्ध माता पिता और गुरु इन के बीच स्थित, शिष्य (पस्त्यासु) गृहों के बीच, (स्तभूयन्) अपने बल, वीर्य और इन्द्रियों का स्तम्भन अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करने की इच्छा करता हुआ (योनौ) आचार्य गृह में, योनि अर्थात् मातृगर्भ में बालक के समान (परि-वीतः) सुरक्षित, यज्ञोपवीत से युक्त वा मेखला, अजिन से उपवीत होकर (अन्तः सीदन्) विद्या-गृह वा गुरुगृह में रहता है और (अतः संगृभ्य) वहां से ज्ञान को भली प्रकार सञ्चय करके, (दमूनाः) इन्द्रिय और चित्त को वश करके, (विशाम् वि-धर्मणा) प्रजाओं

के बीच विशेष धर्म से (अयन्त्रैः) विशेष यन्त्रणा और नियन्त्रणों के विना ही (नृन्) पूर्व नेता, माता पिता आदि के प्रति ले जाया जाता है, उसी प्रकार यह जीव रूप अग्नि, (पस्त्यासु) प्राणों के बीच या गृहवत् इन देहों में (स्तभूयन्) अपने को स्थिर करने की इच्छा करता हुआ, (योनौ परि-वीतः सीदत्) मातृगर्भ में चारों ओर से जेर से आवृत होकर नगर या कोट आदि से घिरे राजा के समान घिर जाता है। वह चित्त वा इन्द्रिय-सामर्थ्यों को एकत्र कर (वि-धर्मणा) विशेष धारक प्रयत्न से (अयन्त्रैः) विना पीड़ा के ही (नृन् ईयते) प्राणों को प्राप्त कर लेता है। कला कौशल पक्ष में–'त्रित नाम' अग्नि तीन स्थानों पर है सूर्य, विद्युत् और अग्नि। वह अपने (योनौ) मूलकारण या आश्रय रूप विद्युद्-घट आदि में सुरक्षित होकर भीतर रहता है। वह विशेष धारण-प्रयत्न से जलों से संग्रह किया जाकर (यन्त्रैः) यन्त्रों द्वारा चालक साधनों को प्राप्त करता है। 'यन्त्रैः' इति पदपाठः सायणाभिमतः॥ 'अयन्त्रैः' इति पदपाठः शाकल्याभिमतः।

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः॥७॥

भा०—(अस्य) इसके अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष के अधीन, अन्य (अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी, और देह में विनय से झुकने वाले शिष्यों के तुल्य विनयी, (अजरासः) जरावस्था से रहित, युवा वा कुमार (दमाम्, अरित्राः) दमन करने योग्य कार्यों, प्रजाओं के बीच, (अरित्राः) नाव के चप्पुओं के तुल्य कार्यसाधक, वा (अरित्राः) शत्रुओं से बचाने वाले, (अर्चद्-धूमासः) अग्नियों ज्वालाओं के तुल्य धूमवत् शत्रुओं को कंपाने वाले, बल की अर्चना-याचना करने वाले, (पावकाः) देहवत् राष्ट्र के शोधन करने वाले, (श्वितीचयः) शुद्ध ज्ञान, यश वा द्रव्य

का सञ्चय करने वाले, (ध्वात्रासः) अति क्षिप्रकारी, अप्रमादी, (भुरण्यवः) प्रजाओं के पालक (वनःसदः) ऐश्वर्यों और वनों में विराजने वाले, (वायवः) वायु तुल्य बलवान् एवं (सोमाः) दीक्षाभिषिक्त जनों के तुल्य वीर्यवान्, विद्यादि से स्नात, पदाभिषिक्त नाना पुरुष हों।

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥ ८ ॥

भा०—जो (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, विद्वान्, वा नायक (जिह्वया) वाणी द्वारा (वेपः प्र भरते) कर्म और ज्ञान को धारण कराता है और (पृथिव्याः वयुनानि) पृथिवी के ज्ञानों को (चेतसा प्र भरते) अपने चित्त वा ज्ञान से धारण करता है, (तम्) उस (पावकम्) परम पावन (मन्द्रम्) अति स्तुत्य, हर्षदायी, (होतारम्) सर्वैश्वर्यों के दाता, (यजिष्ठम्) अति पूजनीय को देववत् (आयवः) समस्त मनुष्य (दधिरे) धारण करते हैं वा करें।

द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥ ९ ॥

भा०—(यम्) जिस (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष को (द्यावा पृथिवी जनिष्टाम्) आकाश और सूर्य जतलाते, बतलाते वा प्रकट करते हैं, और (यं) जिसको (सहोभिः) सब को पराजित करने वाले बलों, तेजों से (आपः) जल, प्राण, समुद्रादि, और आप्तजन, (त्वष्टा) सूर्य आदि तेजस्वी पुरुष और (भृगवः) पापों को भूनने वाले तपस्वी जन (जनिषत) प्रकट करते हैं और (मातरिश्वा) आकाश में चलने वाला वायु जिसको प्रकट करता है, उस (ईळेन्यं) सर्वस्तुत्य, (प्रथमं) मुख्य, (यजत्रम्) सर्वोपास्य को (देवाः) समस्त विद्वान्

वा समस्त सूर्य आदि देवगण, (मनवे) मनुष्य के हितार्थ (ततक्षुः) खोलकर बतलाते हैं।

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम्।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन् यशसः सं हि पूर्वीः॥१०॥२

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! प्रभो! आत्मन्! (यं) जिसको सूर्य की (देवाः) किरण तुल्य समस्त सूर्य पृथिवी आदि देवगण वा प्राणगण (पुरु-स्पृहः) अति स्नेहयुक्त होकर (देवाः मानुषासः) नाना विजयादि कामना करते हुए मननशील जन (यजत्रं दधिरे) उपास्य, सर्वदाता रूप से स्थापित करते हैं। (सः) वह तू (यामन्) इस महान् पंथ अर्थात् जीवन वा शासन में (वयः धाः) दीर्घजीवन और बल धारण करा। वह (देवयन्) देव को चाहता हुआ भक्त (पूर्वीः यशसः) पूर्व की समस्त यशोवृद्धियों को (सं) इसी प्रकार प्राप्त हो। इति द्वितीयो वर्गः॥

[४७]

ऋषिः सप्तगुः॥ देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः॥ छन्दः—१, ४, ७ त्रिष्टुप्। २ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम्।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! हे शत्रुनाशक राजन्! हम लोग (ते) तेरे (दक्षिणम्) दानशील, बलवान् एवं दायें (हस्तं) हाथ को (जगृभ्म) ग्रहण करते हैं, उसका अवलम्ब लेते हैं। हे (वसूनां वसुपते) समस्त लोकों, जीवों और धनैश्वर्यों के मालिक! हम

(वसूयवः) नाना लोकों और ऐश्वर्यों को चाहने वाले, जीवगण हे (शूर) दुःखों और दुष्टों के नाश करने हारे प्रभो! तुझको (गोनां गोपतिं विद्म) समस्त सूर्यों, वाणियों और भूमियों, रश्मियों और जीवों का गोपतिं, पालक, रक्षक करके जानते हैं। (अस्मभ्यं) हमें तू (चित्रं) अद्भुत, संग्राह्य, (वृषणं) सर्व-सुखवर्षक (रयिं दाः) ऐश्वर्य प्रदान कर।

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो! हे राजन्! हम तुझे (सु-आयुधम्) दुष्टों को भली प्रकार ताड़ना देनेहारा, उत्तम मनन साधनों से सम्पन्न, (सु-अवसम्) उत्तम रक्षा करनेहारा, (सु-नीथम्) उत्तम नीति और उत्तम वाणी का ज्ञाता, (चतुः-समुद्रम्) चारों समुद्रों का शासक, (रयीणां धरुणम्) समस्त ऐश्वर्यों का आश्रय, (चर्कृत्यम्) समस्त जगत् का बनाने वाला, (शंस्यम्) प्रशंसनीय वा सर्वोपदेष्टा, (भूरि-वारम्) बहुत से कष्टों वा दुष्टों का वारण करने वाला जानते हैं। तू (अस्मभ्यं) हमें (वृषणं चित्रं रयिं दाः) सर्वसुखवर्षी, अद्भुत, संग्रह योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर। इन सब द्वितीयान्त पदों के साथ 'विद्म' क्रिया का सम्बन्ध करना चाहिये।

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो! हे वीर राजन्! हम तुझे (सु-ब्रह्माणं) उत्तम, महान्, स्वामी, चारों वेदों का जानने वाला, (देववन्तम्) लोकों, दिव्य पदार्थों और देवों, विद्वानों का स्वामी, (बृहन्तम्) महान्, (उरुं) बड़ा भारी, (गभीरं) गंभीर, अगाध, (पृथु-बुध्नम्) विशाल आश्रय

वाला (श्रुत-ऋषिम्) ज्ञानदर्शी गुरु, शिष्यों द्वारा श्रवण करने योग्य वा, ऋषिजनों के ज्ञानों का श्रवण करने वाला, बहुश्रुत, (उग्रम्) दुष्टों को भय देने वाला, (अभिमाति-सहम्) अभिमानी, दुष्टों का मद चूर्ण करने वाला जानते हैं। ऐसे २ उक्त विशेषणों से युक्त तुझ को हम सदा पावें। तू (अस्मभ्यं) हमें (चित्रं वृषणं रयिं दाः) ज्ञानप्रद, सुखप्रद धनैश्वर्य दे।

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! ऐश्वर्यप्रद! हम तुझे (सनद्-वाजं) ज्ञान-ऐश्वर्य, बल, वेग के देने वाला, (विप्रवीरं) विशेष, सर्वोत्कृष्ट बलवान्, परम मेधावी, (तरुत्रम्) भवसागर से तारने वाला, वृक्ष के समान त्राण करने वाला, (धन-स्पृतं) धन से पालने वाला, (शुशुवांसम्) सदा बढ़ने वाला, महान्, (सु-दक्षम्) उत्तम बलशाली, (दस्यु-हनम्) दुष्ट दस्युओं का नाश करने वाला, (पूः-भिदम्) शत्रु के नगरों को तोड़ने वाला, वा (पूर्भिदं) देहपुरी को तोड़कर जीव को मुक्त करने वाला, (सत्यं विद्म) सत्य ही जानते हैं। तू (अस्मभ्यम् चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें अद्भुत, सुखद धनैश्वर्य दे।

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! स्वामिन्! हम तुझे (अश्वावन्तं) अश्वों का स्वामी, समस्त जीवों का मालिक, (रथिनम्) रथा, महारथी, ब्रह्माण्ड रथ वा परमानन्द रस का स्वामी, (वीरवन्तं) वीरों, विद्वानों का स्वामी, (सहस्रिणं) बलवान्, हजारों जनों, धनों का स्वामी,

(शतिनं) शत २ जनों, धनों, ग्रामों, नगरों का स्वामी, (वाजम्) बलवान्, (भद्र-व्रातम्) कल्याणकारी जनसमूहों का नायक, (विप्रवीरं) अति उत्कृष्ट वीर वा मेधावी (स्वर्पाम्) सब को समस्त सुखदाता करके जानते हैं, तुझको हमारी मति स्तुति प्राप्त होती है, तू (अस्मभ्यं) हमें (चित्रं वृषणं रयिं दाः) अद्भुत, संग्राह्य, सर्वसुखवर्षी ऐश्वर्य प्रदान कर । इति तृतीयो व :॥

प्र सुप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (आङ्गिरसः) अग्नि के समान स्वप्रकाश, समस्त पदार्थों में बलस्वरूप, (नमसा उपसद्यः) विनयपूर्वक प्राप्त होने योग्य है उस (सप्त-गुम्) सात रश्मियों, सप्त प्राण सूर्य और आत्मा के सदृश विश्व के आत्मा, (ऋत-धीतिम्) सत्यकर्मा, सत्य ज्ञान के धारक, (सु-मेधाम्) उत्तम बुद्धि, ज्ञानवाणी और दुष्टनाशिनी शक्ति वाले, (बृहस्पतिम्) वेदवाणी और बड़ी भारी शक्ति और ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभु को (मतिः) ज्ञानवती बुद्धि या मननशील मनुष्य (अच्छ जिगाति) साक्षात् प्राप्त हो। हे प्रभो ! तू (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें अद्भुत, सर्वसुखप्रद, बलशाली ऐश्वर्य दे ।

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥७॥

भा०—(वनीवानाः) याचना, प्रार्थना से युक्त (सु-मतीः इयानाः) शुभ बुद्धियों को प्राप्त वा उनको चाहने वाले, (मम स्तोमाः) मेरे स्तुति-गण (दूतासः) स्तुतिशील दूतों के समान (हृदि-स्पृशः) हृदय में पहुंचे हुए, (मनसा) मन से, ज्ञानपूर्वक (वच्यमानाः) उच्चारण किये हुए, (इन्द्रं चरन्ति) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु तक पहुंचें, हे प्रभो ! (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें सर्व-सुखवर्षक, आश्चर्यकारी ऐश्वर्य प्रदान कर ।

यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥८॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वा यत् यामि) मैं तुझ से जिस पदार्थ की याचना करूं, तू (नः तत् दद्धि) हमें वह प्रदान कर। और तू हमें (बृहन्तं क्षयम्) बड़ा भारी ऐश्वर्य, (जनानां असमम्)जो समस्त जनों में सब से अधिक हो, दे। (तत् द्यावा पृथिवी अभि गृणीताम्) उसकी सूर्य और पृथिवी वा माता पिता, राजा, प्रजागण सर्वत्र स्तुति करें। (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हमें सर्वसुखदायक अद्भुत, ज्ञानप्रद, बलयुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४८]

इन्द्रो वैकुण्ठ ऋषिः ॥ देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ छन्दः—१, ३ पादनिचृज्जगती। २, ८ जगती। ४ निचृज्जगती। ५ विराड् जगती। ६, ९ आर्ची स्वराड् जगती। ७ विराट् त्रिष्टुप्। १०, ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१॥

भा०—परमेश्वर कहता है। (अहं) मैं (वसुनः) जिसमें समस्त जीव बस रहे हैं उस जगत् का (पूर्व्यः पतिः भुवं) सब से पूर्व, एवं पूर्ण पालक, स्वामी हूँ। (अहं) मैं (शश्वतः धनानि) अनेक धनों, ऐश्वर्यों को (सं जयामि) एक साथ सबसे अधिक विजय करता हूँ। सब ऐश्वर्यों का सर्वोपरि स्वामी हूँ। (जन्तवः) समस्त जन्तु, जीवगण (मां) मुझ को (पितरं न हवन्ते) माता पिता के समान और आदर भक्ति से बुलाते हैं। (अहं दाशुषे) मैं दानशील, आत्मसमर्पक भक्त वा दाता को

(भोजनम् वि भजामि) समस्त भोग्य ऐश्वर्य, अन्न और सर्व-पालक बल विशेष रूप से देता हूँ।

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने २

भा०—(अहम्) मैं (अथर्वणः) अहिंसक, विचारशील, सर्व-पालक जन को (रोधः) शत्रुओं के भी बाधक शक्तियों को भी रोक देने वाला बल (वक्षः) प्रदान करता हूँ। मैं (त्रिताय) तीनों आश्रमों में स्थित जनों को उपदेष्टावत् (गाः) वेदवाणियों को एवं तीन गुणों में बद्ध जीव के लिये नाना लोकों वा भूमियों को (अहेः अधि) सूर्य या मेघ पर आश्रित (अजनयम्) प्रकट करता हूँ। (अहम्) मैं (दस्युभ्यः) दुष्टों से (नृम्णम्) समस्त धन (आददे) ले लेता हूँ। और मैं (मातरिश्वने) माता के गर्भ में आने वाले (दधीचे) ध्यान-धारणावान् जीव को (गोत्रा शिक्षन्) इन्द्रियों वा वाणियों के प्रयोग की शिक्षा देता हूँ।

मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम्।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥ ३ ॥

भा०—(त्वष्टा) उत्तम शिल्पी, वा तेजस्वी जन वा सूर्यादि (मह्यम्) मेरे ही (वज्रम्) बल को (अतक्षत्) प्रकट करता है। (मयि) मेरे आश्रय होकर (देवासः) विद्वान् ज्ञानी जन (क्रतुम् अपि अवृजन्) अपने समस्त कर्म मेरे लिये त्यागते वा करते हैं। (मम अनीकम्) मेरा स्वरूप वा बल, (सूर्यस्य इव दुस्तरं) सू[र्य] के समान दुस्तर, असह्य है। समस्त लोक (कृतेन कर्त्वेन च) किये सब कर्म से (माम् आर्यन्ति) मुझे ही प्राप्त होते हैं।

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम्।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ४

भा०—(यत्) जब (उक्थिनः सोमासः) उक्थ अर्थात् वेद-वचन को जानने वाले वीर्यवान्, उत्तम उपदेष्टा विद्वान् ब्रह्मचारी पुरुष (मा) मुझको (अमन्दिषुः) प्रसन्न करते, मुझ से प्रार्थना करते हैं तब मैं (पुरु सहस्रा) अनेक सहस्रों ऐश्वर्य (दाशुषे नि शिशामि) दानशील आत्मसमर्पक के लाभार्थ प्रदान करता हूँ। और (अहम्) मैं (एतं) इस (गव्ययम्) वाणियों, ज्ञानेन्द्रियों के स्वामी, वा स्वयं भोक्ता रूप, (पुरीषिणं) नाना ऐश्वर्यों के स्वामी रूप, (हिरण्ययम्) सुवर्णवत् उज्ज्वल तेजःस्वरूप (पशुं) द्रष्टा आत्मा को (सायकेन) बाण के समान तीक्ष्ण, अज्ञान का अन्त कर देने वाले ज्ञान से युक्त करता हूँ।

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥५॥

भा०—(अहम् इन्द्रः) मैं इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, प्रभु (धनं न इत् परा जिग्ये) धन को कभी हार नहीं सकता। और (न मृत्यवे अव तस्थे) न मृत्यु के नीचे कभी अपने को हारा हुआ पाता हूँ। हे विद्वन्! जो आप लोग (सोमं सुन्वन्तः) सर्वोत्पादक, सर्वशासक प्रभु की उपासना करते हुए भी (मा इत् याचत) मुझ से नाना याचना किया करते हो। हे (पूरवः) मनुष्यो! आप लोग (मे सख्ये न रिषाथन) मेरे सख्य-भाव में रहके कभी विनाश को प्राप्त न होवो। इति पञ्चमो वर्गः॥

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः॥६॥

भा०—(ये) जो (द्वा-द्वा) दो दो मिलकर (युधये) युद्ध करने के लिये (इन्द्रं वज्रं) शत्रु के नाश करने वाले बल, वीर्य वा युद्धोपयोगी शस्त्र-समूह को (अकृण्वत) तैयार कर लेते हैं (एतान्) उन (शाश्वसतः)

सांस लेने वाले, (आ-ह्वयमानान्) दूसरों को ललकारने वाले, (नमस्विनः) शस्त्र बल से सम्पन्न जनों के प्रति भी कभी (अनमस्युः) न झुक कर (दृढा वदन्) दृढ़ सत्य वचन कहता हुआ उनको (हन्मना) हनन करने वाले उपाय से (अव अहनम्) नीचे मार गिराता और दण्ड देता हूँ ।

अभी॒३॑दमेक॒मेको॑ अस्मि निष्षाळ॒भी द्वा किमु॒ त्रयः॑ करन्ति ।
खले॒ न प॒र्षान् प्रति॑ हन्मि॒ भूरि॒ किं मा॑ निन्दन्ति॒ शत्र॑वोऽनि॒न्द्राः॥७

भा०—मैं (निः-षाट्) शत्रुओं को सर्वथा पराजित करने वाला (इदम् एकः एकम् अभि अस्मि) अकेला ही यह, एक के प्रति एक, पराजित करने में समर्थ हूँ। (एकम् माम् अभि) अकेले के प्रति (द्वा किमु त्रयः करिष्यन्ति) दो या तीन भी क्या कर सकेंगे ? मैं (पर्षान्) कठोर शत्रुओं को (खलेन) खलिहान में पड़े सूखे जौ गेहूं के पौदों के समान (भूरि प्रतिहन्मि) बहुतों को मुकाबले पर बहुत ताड़ित करूं। (अनिन्द्राः) ऐश्वर्यहीन, शत्रुनाशक स्वामी वा दृढ़ नायक से रहित (शत्रवः) शत्रु लोग (मा किं निन्दन्ति) मेरी क्या निन्दा करते हैं ?

अ॒हं गु॒ङ्गुभ्यो॑ अतिथि॒ग्वमिष्क॑र॒मिषं॒ न वृ॑त्र॒तुरं॑ वि॒क्षु धा॑रयम् ।
यत्प॑र्णय॒घ्न उ॒त वा॑ करञ्ज॒हे प्राहं म॒हे वृ॑त्र॒हत्ये॒ अशु॑श्रवि ॥ ८ ॥

भा०—(अहम्) मैं (गुंगुभ्यः) भूमि पर विचरने वाले जनों के हितार्थ उनमें से (अतिथिग्वम्) अतिथि के तुल्य आने वाले (इष्करम्) अन्न उत्पादक (वृत्र-तुरम्) विघ्नकारी के नाशक पुरुष को (इषं न) सेना के तुल्य (विक्षु) प्रजाओं के बीच (धारयम्) धारण करता हूं। (यत्) जिससे (पर्णयघ्ने) पालक पुरुष के नाश करने वाले (उत वा) और (करंजहे) सहायक वा करावलम्ब देने योग्य आश्रित का हाथ छोड़ देने वाले के विनाश के लिये (महे) बड़े भारी (वृत्र-हत्ये) दुष्ट के नाश के कार्य में मैं (अशुश्रवि) प्रसिद्ध होगया हूं ।

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥

भा०—(मे) मेरे आगे (नमा) विनयशील पुरुष (साप्यः) समवाय बनाने में कुशल, संघ का हितैषी (इषे भुजे) अन्न बल को प्राप्त करने और भोगने के लिये और (गवाम् एषे) गौओं और वेदवाणियों को प्राप्त करने के लिये (प्र भूत्) खूब समर्थ होता है । हे विद्वान् पुरुष ! आप लोग भी (द्विता सख्या कृणुत) दो प्रकार की मित्रता किया करो । (यत्) जो मैं (अस्य समिथेषु) इसको संग्रामों के अवसर पर (दिद्युम् मंहयम्) शत्रुखण्डक बड़ा भारी बल वा शस्त्रास्त्र प्रदान करता हूं, (आत् इत् एनं शंस्यम् उक्थम् करम्) और अनन्तर इसको मैं अति स्तुत्य और प्रसिद्ध कर देता हूं । बल और यश दोनों के लिये मेरे से मित्रता करो ।

प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥ १० ॥

भा०—(नेमस्मिन्) एक स्थान में (सोमः अन्तः प्र ददृशे) सोम, शासक भीतर दीखता है, और (नेमम्) दूसरे को वह (गोपाः) रक्षक अध्यक्ष (अस्था) अपने विक्षेपक बल से (आविः कृणोति) अपने को प्रकट करता है । (सः) वह (बहुले अन्तः बद्धः) बहुत भारी सैन्य के बीच बद्ध होकर भी (तिग्म-शृंगम् वृषभम् युयुत्सन्) तीखे सींग वाले बैल के समान शस्त्रास्त्र-सम्पन्न बलवान् शत्रु से युद्ध करता हुआ भी (द्रुहः) सब द्रोह युक्त भावों, वा पुरुषों को (तस्थौ) दबा कर उनपर विराजता है ।

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥ ११ ॥ ६ ॥

भा०—मैं (आदित्यानां) भूमि वा सूर्य के पुत्र के तुल्य उसके उपासक,

(वसूनां) वसने वाले और (रुद्रियाणां) उत्तम उपदेष्टा, अन्यों की पीड़ा को हरने वाले, (देवानां) विद्वान् जनों के बीच (देवः) सर्वशक्तिप्रद होकर (धाम न मिनोमि) उनके तेज का नाश नहीं करता। वे (मा) मुझ को (भद्राय शवसे) कल्याण रूप सम्पादन के लिये (अपराजितं) अपराजित, (अस्तृतं) अहिंसित, (अषाढं) अतिरस्कृत रूप से (ततक्षुः) बनावें। इति षष्ठो व र्गः ॥

[४९]

इन्द्र वैकुण्ठ ऋषिः ॥ देवता—वैकुण्ठः । छन्दः—१ आर्ची भुरिग् जगती । ३, ९ विराड् जगती । ४ जगती । ५, ६, ८ निचृज्जगती । ७ आर्ची स्वराड् जगती । १० पादनिचृज्जगती । २ विराट् त्रिष्टुप् । ११ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१॥

भा०—(अहं) मैं (गृणते) स्तुति करने हारे को (पूर्व्यं वसु दाम्) सनातन ऐश्वर्य, और निवास के योग्य लोक मोक्ष वा ज्ञान प्रदान करता हूं। (अहं ब्रह्म कृणवम्) मैं परम ब्रह्मज्ञान, वेद और इस महान् जगत् को उत्पन्न करता हूं। (मह्यं वर्धनम्) यह समस्त वेद मेरी ही महिमा का वृद्धि करने वाला है। (अहं यजमानस्य चोदिता) यज्ञ और दान, सत्संग करने वाले को सन्मार्ग में आदेश करने वाला मैं ही हूं। मैं (विश्वस्मिन् भरे) समस्त युद्ध में (अयज्वनः) न देने वाले, कुसंगी, अयज्ञशील जनों को ही (साक्षि) पराजित करता, उनको दण्डित करता हूं।

मां धुरिन्द्रं नाम॑ देवता॑ द्विवश्च॒ ग्मश्चा॒पां च॑ ज॒न्तवः॑ ।
अ॒हं हरी॒ वृष॑णा॒ विव्र॑ता र॒घू अ॒हं वज्रं॒ शव॑से धृ॒ष्ण्वा द॑दे ॥२॥

भा०—(मां इन्द्रं) मुझ ऐश्वर्यवान् तेजस्वी को ही (दिवः ग्मः च अपां च) सूर्य पृथिवी, जल वा अन्तरिक्ष इन स्थानों के समस्त (जन्तवः) उत्पन्न हुए प्राणी और लोक-वर्ग (देवता नाम धुः) देव, सर्वशक्तिप्रद, उपास्य रूप से धारण करते हैं। (अहं) मैं ही (वृषणा) बलवान्, जल-वर्षी, मेघ और वायुवत् (वि-व्रता) विविध कर्म करने वाले, (रघू) बलवान् वेगवान् (हरी) स्त्री-पुरुष दो शक्तियों को, अश्वों के तुल्य (आ ददे) वश करता हूँ। और (शवसे) बल कर्म करने के लिये (अहम्) मैं (धृष्णु) धर्षक, शत्रुपराजयकारी (वज्रं) वज्र, खड्गवत् बल-वीर्य को धारण करता हूँ।

अ॒हमत्कं॑ क॒वये॑ शिश्नथं॒ हथै॑र॒हं कुत्स॑माव॒माभि॑रू॒तिभिः॑ ।
अ॒हं शुष्ण॑स्य॒ श्नथि॑ता॒ वध॑र्यमं॒ न यो र॒र आर्यं॒ नाम॒ दस्य॑वे ॥३॥

भा०—(अहम्) मैं (कवये) विद्वान् जन के (अत्कं) आच्छादक अज्ञान आवरण को (हथैः शिश्नथम्) उसके नाशक साधन रूप ज्ञानों से शिथिल करता हूँ। और (आभिः ऊतिभिः) इन नाना प्रकार की रक्षा-कारिणी, ज्ञानदात्री, स्नेहमयी प्रवृत्तियों से (कुत्सम्) वेदमन्त्रों और स्तुतियों के अभ्यासी जन की (आवम्) रक्षा करता हूं। (अहं) मैं (शुष्णस्य) शोषण करने वाले दुष्ट स्वभाव को (श्नथिता) शिथिल करता हूं। और (वधः) वधकारी हिंसादि स्वभाव को (यमम्) रोकता हूं, अहिंसा का पालन करता हूं। मैं वह हूं (यः) जो (दस्यवे) नाश-कारी दुष्टजन को कभी (आर्यं नाम न ररे) आर्य श्रेष्ठ नाम वा यश प्रदान नहीं करता अथवा, मैं श्रेष्ठ पुरुष को दुष्ट के हाथ में नहीं देता।

अ॒हं पि॒तेव॑ वे॒तसूँ॑र॒भिष्ट॑ये॒ तुग्रं॒ कुत्सा॑य॒ स्मदि॑भं च रन्धयम् ।
अ॒हं भु॑वं॒ यज॑मानस्य रा॒जनि॒ प्र यद्भरे॒ तुज॑ये॒ न प्रि॒याधृषे॑ ॥४॥

भा०—(अहं) मैं (पिता इव) पिता के समान (अभिष्टये) उत्तम अभिलाषा करने वाले (कुत्साय) बल सम्पादन वा उत्तम स्तुतिशील जन के लिये (वेतसून्) वेतस दण्ड के समान उद्धत वा धन प्राप्त करने वाले और (तुग्रम्) उग्र, हिंसाशील, (स्मदिभम्) उत्तम गजवत् अहंकारी पुरुष को भी (रन्धयम्) वश करता हूं। (अहं यजमानस्य राजनि) मैं यजमान, दानशील, यज्ञार्थी के तेजःप्रकाशक के लिये (भुवम्) हूं। (यत्) जो मैं (तुजये) हिंसाशील (आ धृषे) धर्षणकारी ढीठ पुरुष के लिये (प्रिया न भरे) प्रिय पदार्थों को आहरण नहीं करता अथवा—(तुजये न) पालन योग्य पुत्रवत् शत्रुधर्षक प्रजापालक के लिये ही मैं नाना प्रिय पदार्थ प्राप्त कराता हूं।

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक्।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥५।७॥

भा०—(अहं) मैं (श्रुतर्वणे) श्रुत, वेदोपदेश पर चलने वाले वा (श्रुतर्वणे) नाना मार्गों में जिसका इन्द्रियगण और मन वह जाता हो ऐसे शिष्य आदि के (मृगयं) इधर उधर विषय विलास खोजने वाली प्रवृत्ति को (रन्धयम्) वश करता हूं। (यत्) जिससे कि वह (वयुना चन) अपने ज्ञान से और कर्म से (आनुषक्) निरन्तर (मा अजिहीत) मेरी ओर हीं आवे। वह इधर उधर न भटके। (अहम्) मैं (आयवे) अपनी ओर आने वाले के (वेशम्) अन्तः प्रविष्ट आत्मा को (नम्रम् अकरम्) विनयशील करता हूँ। और (अहम्) मैं (सव्याय) पुत्र के तुल्य शिष्य के लाभार्थ ही उसको (पड्गृभिम्) गुरु जनों के चरण पकड़ने वाला, नम्र बनाकर (रन्धयम्) वश करता हूं। इति सप्तमो वर्गः ॥

अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम्।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह जो (अहम्) मैं (वृत्रहा) समस्त विघ्नों का

नाश करने वाला, अज्ञान को दूर करने वाला हूं। वह मैं (नव-वास्त्वम्) नव गृह वाले, नये ही मेरे पास बसने वाले, (बृहद्रथं) महान् ब्रह्म वा वेद ज्ञान में रमण करने वाले, (दासं) सेवक के समान सेवा-शुश्रूषा करने वाले को (अरुजम् अकरम्) पीड़ारहित सुखी कर देता हूं। और (आनुषक्) समीप (दूरे) और दूर (वर्धयन्तम् प्रथयन्तम्) ज्ञान और कीर्ति बढ़ाते और फैलाते हुए को (रजसः पारे) रजोगुण से भी पार, वा इस लोक से भी पार (रोचना अकरम्) अति तेजस्वी, सर्वप्रिय बना देता हूं। तरादेने से इसी कारण गुरु को 'तीर्थ' कहते हैं।

अथवा—नये गृहों के स्वामी, बड़े रथवान् को भी, यदि वह (दासं) प्रजा का नाशकारी है तो उसको (अरुजम्) तोड़ डालता हूं। (रजसः प्रथयन्तं वर्धयन्तं) इस लोक में प्राणियों को बढ़ाने वा फैलाने वाले को मैं दूर वा पास सर्वत्र सर्वप्रिय बना देता हूं।

अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः॥७॥

भा०—(यत्) जब (सावः मनुषः) स्तुतिशील, प्रार्थी मनुष्य (मा) मुझसे (निर्-निजे) सर्वथा अपने आत्म-शोधन के लिये, अपने स्वरूप ज्ञान के लिये (आह) प्रार्थना करता है तब मैं (कृत्व्यम्) नाश करने योग्य (दासं) नाशकारी अंश को (हथैः) नाना दण्डों द्वारा (ऋधक् कृषे) दूर करता हूं। अथवा—(कृत्व्यं दासं) काम करने और अपनाने योग्य सेवक को (हथैः) उत्तम साधनों से (ऋधक् कृषे) समृद्ध करता हूं। (अहम्) मैं (आशुभिः एतशैः) शीघ्रगामी अश्वों से (सूर्यस्य ओजसा) सूर्य के तेज, बल और पराक्रम सहित (प्र परियामि) आगे बढ़ता हूं।

अहं सप्तहा नहुंषो नहुंष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुंम् ।
अहं न्य१न्यं सहंसा सहंस्करं नव व्राधंतो नवतिं चं वक्षयम् ॥८॥

भा०—(अहं) मैं (सप्तहा) वेग से जाने वाले अश्वों द्वारा गमन करने वाला, मैं सातों शिरोगत प्राणों, आंख, नांक आदि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाला, (नहुषः) राष्ट्र का उत्तम प्रबन्धक, (नहुष्टरः) श्रेष्ठ मनुष्य होकर (शवसा) बल और ज्ञान से (अन्यम् तुर्वशुं यदुम्) अन्य चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले यत्नशील पुरुष को (प्र अश्रवयम्) उत्तम ज्ञान श्रवण कराऊं । और (अन्यम्) दूसरे को अपने (सहसा) बल से (सहः नि अकरम्) बलवान् करूं । और शत्रु को बल से नीचा करूं । और (व्राधतः) बढ़ते हुए पूज्य जनों वा गुणों को (नव नवतिं च) ९९ वर्ष तक अपने जीवन भर (वक्षयम्) मैं धारण करूं ।

अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥९॥

भा०—(अहम्) मैं (सप्त स्रवतः) सात बहते प्राणगण को (वृषा) बलवान् होकर (धारयम्) धारण करूं । उन पर वश करूं, और (पृथिव्यां) पृथिवी पर (द्रवित्न्वः) बहती (सीराः) नदियों के तुल्य, पार्थिव देह में बहती रक्तनाड़ियों को भी (धारयम्) धारण करूं । (अहम्) मैं आत्मा (सुक्रतुः) उत्तम क्रियावान् होकर जैसे शरीर में (अर्णांसि वि तिरामि) रक्त रूप जलों को उचित रूप से पुष्ट वा प्रदान करता हूं उसी प्रकार जन समाज में (अर्णांसि वि तिरामि) नाना धनों को बढ़ाऊं और वितीर्ण करूं । और (इष्टये) यज्ञ वा इच्छानुसार फल प्राप्त करने के लिये (मनवे) मनुष्य को मैं (युधा) ताड़नापूर्वक दुर्गुणों को दूर करके (विदं गातुम् वि तिरामि) ज्ञानमय मार्ग का उपदेश प्रदान करूं । लालने बहवो दोषा-स्ताडने बहवो गुणाः ॥

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् १०

भा०—(अहम्) मैं (आसु) इन नाड़ियों या इन्द्रियों में (तत्) ऐसे रस, बल वा ज्ञान को भी (धारयम्) धारण करता हूं (यत्) जिसको (देवः चन त्वष्टा) इनको गढ़कर बनाने वाला शिल्पी वा तेजस्वी सूर्य भी (न अधारयत्) धारण न कर सका। (गवाम् ऊधःसु) गौओं के थनों में जिस प्रकार दूध रहता है, और जिस प्रकार (वक्षणासु) नदियों में (श्वात्र्यं मधु) वेग से बहने वाला जल होता है उसी प्रकार मैं आत्मा (वक्षणासु) इन निरन्तर प्रवाहित नाड़ियों में (स्पार्हं) अति स्पृहणीय, जीवन प्रिय, (मधोः मधु) मधु से भी अधिक मधु, प्रिय वा जलों का और अन्नों का भी सारभूत रक्त, (श्वात्र्यं) अति वेग से नाड़ियों में दौड़ने वाला, (सोमम्) अपनी सन्तति को भी उत्पन्न करने वाला वीर्य रूप (आशिरम्) शरीर का आश्रय रूप, शरीर की स्थिति और जीवन को बनाने वाला शुक्र तत्त्व है उसको भी मैं आत्मा, देह में धारण करता हूं।

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११॥८॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, इन सब में भी अपना ऐश्वर्य बल प्रदान करने वाला आत्मा, (मघवा) श्रेष्ठ वीर्य से सम्पन्न, (सत्य राधाः) सत्य बल से वश करने वाला (च्यौत्नेन) देह में क्षरणशील, प्रावाहिक बल से (नॄन्) ज्ञान रसको प्राप्त कराने वाले (देवान्) अर्थों के प्रकाशक इन्द्रियगण वा प्राणों को (प्र विव्ये एव) बड़ी उत्तमता से प्रकाशित करता, रक्षा करता और जाल में बांधता और चलाता है, हे (हरिवः) इन्द्रिय रूप अश्वों के स्वामिन्! हे (शचीवः) शक्ति और वाणी के

स्वामिन्! उनसे ही (ते ता विश्वा इत्) तेरे वे नाना प्रकार के समस्त कर्म होजाते हैं। और (तुरासः) ये वेगसे जाने वाले अश्व, आदि पशु और श्येनादि पक्षी एवं चक्षुः आदि इन्द्रिय गण और सूर्यादि लोक सभी (तं स्वयशः अभि गृणन्ति) तेरा ही यश कहते हैं। इसी प्रकार यह सूक्त राजा, गुरु और प्रभु-परक भी लगता है। इत्यष्टमो वर्गः॥

[५०]

इन्द्रो वैकुण्ठ ऋषिः॥ देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २ आर्ची स्वराड् जगती। ६, ७ पादनिचृज्जगती। ३ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

प्र वो॑ म॒हे मन्द॑मानाया॒न्धसोऽर्चा॑ वि॒श्वान॑राय विश्वा॒भुवे॑।
इन्द्र॑स्य॒ यस्य॒ सुम॑खं॒ सहो॒ महि॒ श्रवो॑ नृ॒म्णं च॒ रोद॑सी सप॒र्यतः॑॥१

भा०—हे विद्वानो! (वः) आप लोगों में (अन्धसः मन्दमानाय) प्राणधारक अन्न से तृप्ति लाभ करने वाले, (विश्वानराय) सब के नेता, सर्वोपरि सञ्चालक, प्रत्यक्षवत् विद्यमान (विश्वाभुवे) समस्त जगत् में व्यापक, सबके उत्पादक प्रभु उपास्य (महे) महान् की (अर्च) स्तुति करो। (यस्य इन्द्रस्य) जिस ऐश्वर्यवान् प्रभु का (सु-मखम्) उत्तम महायज्ञ, (महि श्रवः) महान् ज्ञान, अन्न और (सहः) बल, और (नृम्णं च) धन-ऐश्वर्य (रोदसी सपर्यतः) सूर्य, भूमि, आकाश, भूमि, नरनारी, माता पिता सभी उपासना कर रहे हैं।

सो चि॒न्नु सख्या॒ नर्य॑ इ॒नः स्तु॒तश्च॒र्कृत्य॒ इन्द्रो॒ माव॑ते॒ नरे॑।
विश्वा॑सु धू॒र्षु वा॑ज॒कृत्ये॑षु सत्पते वृ॒त्रे वा॒प्स्व१॒॑भि शू॑र मन्दसे॥२॥

भा०—(सो चित् नु इन्द्रः) वह ही परमैश्वर्यवान् प्रभु (नर्यः)

समस्त जीवों, मनुष्यों का हितैषी, (इनः) सबका स्वामी, और (सख्या) सख्यभाव से (मावते नरे) मेरे जैसे मनुष्यों के लिये भी (स्तुतः) स्तुत होकर (चर्कृत्यः) सेवा करने योग्य है। हे (सत्-पते) समस्त सत्पदार्थों और सत्पुरुषों के पालक ! तू (वाज-कृत्येषु) ज्ञान, बल, वेगादि से करने योग्य कार्यों में और (विश्वासु धूर्षु) समस्त धारण करने योग्य पदों पर, हे (शूर) शूरवीर (अप्सु वृत्रे वा) अन्तरिक्ष में चन्द्र वा मेघस्थ ज्योति, प्रकाश के तुल्य बढ़ते बल सैन्य के बीच, जल में कमल के तुल्य (अभि प्रमन्दसे) सब ओर खूब प्रसन्न रहता और खिलता और सबको सुखी करता है।

के ते नर॑ इन्द्र॒ ये त॑ इ॒षे ये ते॑ सु॒म्नं स॑ध॒न्य१॒॑मिय॑क्षान् ।
के ते॒ वाजा॑यासु॒र्या॑य हिन्वि॒रे के अ॒प्सु स्वासू॒र्वरा॑सु॒ पौंस्ये॑ ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (ते के नरः) वे कौन से मनुष्य हैं (ये) जो (ते इषे) तेरी प्रेरणा पाने वाले हैं, तेरे दिये अन्न, वृष्टि आदि के लिये चाहते रहते हैं और (ये) जो (स-धन्यम्) ऐश्वर्य सहित (ते सुम्नम्) तेरे सुख को (इयक्षान्) प्राप्त होते हैं। और (के) वे कौन हैं जो (ते असुर्याय वाजाय) प्राणों को धारण करने और दुष्टों के नाशकारी तेरे बलैश्वर्य के लाभ के लिये (हिन्विरे) यत्न करते हैं ? और वे (के) कौन हैं जो (अप्सु) प्राणों वा प्रजाओं के बीच वा धर्म से प्राप्त (स्वासु उर्वरासु) अपनी ऊर्वरा भूमियों में (पौंस्ये) अपने पुरुषोचित वीर्य वा पराक्रम के बल पर, उत्तम गृहपति के तुल्य प्रजापति होकर धनधान्य, ऐश्वर्य और सन्तान आदि से (हिन्विरे) बढ़ते हैं।

भुव॒स्त्वमि॑न्द्र॒ ब्रह्म॑णा म॒हान्भुवो॒ विश्वे॑षु॒ सव॑नेषु य॒ज्ञियः॑ ।
भुवो॒ नॄँश्च्यौ॒त्नो विश्व॑स्मि॒न्भरे॒ ज्येष्ठ॑श्च॒ मन्त्रो॑ विश्वचर्षणे ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं ब्रह्मणा महान् भुवः) तू अपने

महान् सामर्थ्य से महान् है। तू (विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः भुवः) समस्त ऐश्वर्यों और अधिकारों पर पूजनीय है। तू (विश्वस्मिन् भरे) समस्त पालनीय जगत् में (नृन् च्यौत्नः) समस्त, नायकों को भी चलाने वाला है। तू (ज्येष्ठः च) सब से श्रेष्ठ है, और हे (विश्वचर्षणे) समस्त विश्व के द्रष्टः! तू सब के लिये (मन्त्रः च) मनन करने योग्य है।

अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रभो! (नु कम्) अवश्य तू (यज्ञवनसः) सर्वोपास्य प्रभु के भजन करने वालों की (अव) रक्षा कर। (कृष्टयः) समस्त मनुष्य ही (ते) तेरी (ओमात्रां महीं विदुः) बड़ी भारी रक्षण-शक्ति को जानते हैं, वा जानें। तू (नु कम् अजरः असः) निश्चय ही अजर है, तू कभी न बूढ़ा होता, न नाश को प्राप्त होता है। (विश्वा इत् च वर्धाः) तू सब को बढ़ा! तू (तूतुमा सवना एता कृषे) अति शीघ्र ही सब ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता है। वा तू ही शीघ्र ही इन सब उत्पन्न होने वाले लोकों और चराचर प्राणियों को उत्पन्न करता है।

एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥ ६ ॥

भा०—(एता विश्वा सवना) इन समस्त यज्ञों, ऐश्वर्यों और उत्पन्न होने योग्य लोकों और जीवों को (तूतुमा स्वयं कृषे) तू अतिशीघ्रगामी स्वयं रचता और चलाता है। हे (सहसः सूनो) बल, सर्वातिशायी शक्ति के प्रेरक! तू (यानि दधिषे) जिन को भी धारण करता है उन लोकों, भुवनों को भी तू ही अति वेग से चला रहा है। (वराय ते पात्रं) दुःखों के वारण करने के लिये ही तेरा अन्नकारी बल हो। और (तना धर्मणे) तेरे धन, धर्मकार्यों और जीव-जगत् को धारण करने के लिये हैं। (यज्ञः) यह महान् यज्ञ

(मन्त्रः) मनन करने योग्य है। वा तू ही (यज्ञः मन्त्रः) सर्वोपरि उपास्य और मननीय है। तेरी (वचः) वाणी ही (ब्रह्म उद्यतम्) ब्रह्म अर्थात् सबसे उत्तम, महान्, वेदमय विद्यमान है।

ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः॥७॥६

भा०—हे (विप्र) मेधाविन्! जगत् को विशेष रूप से सुखों से पूर्ण करने हारे! (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (ब्रह्म-कृतः) वेद के उपदेश करने वाले जन (सचा) एक संघ बनाकर (वसूनां च वसुनः च दावने) समस्त जीवों को वास योग्य धन और ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (ते) तेरी परिचर्या के लिये ही हैं और वे (ते) तेरे दिये (सुम्नस्य) सुख के लाभ के लिये और (सुतस्य सोम्यस्य अन्धसः) ते प्रदान किये बल-वीर्यप्रद अन्न के द्वारा (मदे) तृप्ति लाभ होने पर (मनसा) चित्त से (ते पथा) तेरे उपदिष्ट मार्ग से ही (प्र भुवन्) उत्तम पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इति नवमो वर्गः॥

[५१]

१, ३, ५, ७, ६ देवा ऋषयः। २, ४, ६, ८ अग्निः सौचीक ऋषिः॥ देवता— १, ३, ५, ७, ६ अग्निः सौचीकः। २, ४, ६, ८ देवाः॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ७ त्रिष्टुप्। ८, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः।
विश्वा अपश्यद् बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः॥१॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, हे (जातवेदः) प्रत्येक उत्पन्न

देह में विद्यमान ! (तत्) वह (उल्वं) आवरण (महत् स्थविरम्) बड़ा ही स्थूल होता है (येन आवेष्टितः) जिससे घिरकर तू (अपः) जलों में स्थित बालकवत्, दैहिक प्राणों के बीच (प्र विवेशिथ) प्रवेश किये हुए है। (ते तन्वः) तेरी देह की (विश्वाः) समस्त क्रियाओं को अथवा (ते विश्वाः तन्वः) तेरे समस्त देहों को (एकः देवः) एक देव प्रभु जिसने ये सब तुझ को दी हैं वही (बहुधा) बहुत प्रकार से (अपश्यत्) देखा करता है। देहों के द्रष्टा का वर्णन अगले मन्त्र में है।

को मा॑ ददर्श कत॒मः स दे॒वो यो मे॑ त॒न्वो॑ बहु॒धा प॒र्यप॑श्यत् ।
क्वाह॑ मित्रावरुणा क्षियन्त्य॒ग्नेर्विश्वा॑ः स॒मिधो॑ देव॒यानी॑ः ॥ २ ॥

भा०—(मा कः ददर्श) मुझ को कौन देखता है ? (सः देवः कतमः) वह सुखस्वरूप सर्वसुखदाता कौन सा है (यः) जो (मे तन्वः) मेरे देहों और समस्त अंगों को (बहुधा परि अपश्यत्) बहुत प्रकार से वा प्रायः देखता है ? हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, स्नेहवान् और सर्वश्रेष्ठ माता पिता के तुल्य जनो ! (अग्नेः) प्रकाशस्वरूप मेरी (विश्वाः) समस्त (देवयानीः समिधः) उस प्रभु को प्राप्त होने वाली मेरी दीप्तियां (क्व क्षियन्ति अह) कहां विद्यमान हैं ? कहां सम्पन्न, ऐश्वर्य युक्त होती हैं ?

ऐच्छा॑म त्वा बहु॒धा जा॑तवेदः॒ प्रवि॑ष्टमग्ने अ॒प्स्वोष॑धीषु ।
तं त्वा॑ य॒मो अ॑चिकेच्चित्रभानो दशान्तरु॒ष्याद॑ति॒रोच॑मानम् ॥३॥

भा०—हे (जातवेदः) उत्पन्न प्राणि शरीरों और स्थावरों में भी विद्यमान ! (अग्ने) अग्निवत् स्वभाव वाले, तापयुक्त ! (ओषधीषु) ताप को धारण करने वाली (अप्सु) जलवत् तरल, रक्तवाहिनी नाड़ियों के बीच में (प्रविष्टं त्वा) प्रवेश किये हुए तुझ को हम (बहुधा ऐच्छाम) बहुत २ चाहते हैं। हे (चित्र-भानो) चिति, संज्ञा-दायक कान्तियुक्त आत्मन् !

(दश-अन्तः-उष्यात्) दश प्राणों के भीतर गुप्त निवास योग्य अन्तःकरण से (अति-रोचमानम्) खूब प्रकाश युक्त होते हुए (त्वा) तुझ को (यमः) वह सर्वनियन्ता प्रभु हीं (अचिकेत्) जानता वा तेरी समस्त व्यथाओं को दूर करता है ।

होत्रादहं वरुण विभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥ ४ ॥

भा०—(अत्र) यहां (देवाः) नाना इन्द्रियगण (न इत् एव मा युनजन्) न मुझे जोड़लें, इस कारण से (विभ्यत्) भय करता हुआ हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! (अहम्) मैं अपने (होत्रात्) बुलाने वाले वा ज्ञानदाता प्रभु से पृथक् होकर (आयम्) आगया हूं । (तस्य मे) उस मेरे (बहुधा तन्वः निविष्टाः)बहुत से देह मेरे गले पड़ गये । (अहम् अग्निः) मैं अग्नि रूप जीव (एतम् अर्थम्) उस तात्पर्य को, या इस मूलकारण या गन्तव्य परम पद को (न चिकेत) नहीं जानता । न चिकेत इति 'नचिकेताः' जो नहीं जानता अथवा जिसके रोग-दुःख दूर नहीं होते वह अल्पज्ञानी, बद्ध जीव 'न चिकेता' है और सर्वनियन्ता, दुःखहारी 'यम' है। कठोपनिषद् में प्रोक्त नाचिकेतोपाख्यान का यह मन्त्र मूल है ।

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरुंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः॥५॥१०॥

भा०—देह में आने का कारण । हे (अग्ने) अंग २ में, प्रत्येक देह में व्यापक जीव ! तू (मनुः) मननशील, संकल्प विकल्पवान् और (देव-युः) देवों, प्राणों या सुखप्रद पदार्थों की कामना वाला होकर और (यज्ञ-कामः) अपने प्राणों से संगति चाहता हुआ यजमान के (अरं कृत्य) अपने को सुशोभित करके, अन्धकार में दीपक के तुल्य (तमसि) अज्ञानमय अन्धकार

में, (क्षेपि) निवास करता है । तू (सुमनस्यमानः) सुखी, सद्भावयुक्त चित्त होकर (हव्यानि) ग्राह्य ज्ञानों को (वह) धारण कर और (देव-यानान्) विद्वानों और प्राणों द्वारा जाने योग्य (पथः सुगान् कृणुहि) मार्गों को सुखप्रद बना । इति दशमो वर्गः ॥

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद् भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥६॥

भा०—(रथी इव अध्वानम्) रथी जिस प्रकार मार्ग को तय करता है, उसी प्रकार (अग्नेः भ्रातरः) अग्नि आत्मा को धारण करने वाले (पूर्वे) पूर्व के विद्वान् जन (एतम् अर्थम्) उस प्राप्तव्य सन्मार्ग को ही (अनु आवरीवुः) एक के पीछे एक चलते रहते हैं । परन्तु हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! मैं तो (भिया दूरम् आयम्) भय से दूर आचुका हूं, मेरा कोई साथी नहीं रहा, मैं किस के पीछे जाऊं ? (तस्मात्) इसलिये (क्षेप्नोः ज्यायाः गौरः न) धनुष्धारी की डोरी से भयभीत मृग के समान (अविजे) बहुत ही भयभीत, घबराया हुआ हूं ।

कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) देहवान् जीव ! (यत्) जो (अजरं आयुः) आयु जरारहित है हम वही (ते कुर्मः) तेरी करें (यथा) जिससे (युक्तः) युक्त होकर हे (जात-वेदः) उत्पन्न देह में विद्यमान ! तू (न रिष्याः) न मरे । और तू हे (सु-जात) उत्तम गुरुओं से प्रकट होने वाले ! सुपुत्र ! (अथ) अनन्तर तू (सु-मनस्यमानः) सुप्रसन्नचित्त होकर (देवेभ्यः) देवों, इन्द्रियों और विद्वानों के लिये (हविषः भागं वह) अन्न का सेवनीय अंश प्राप्त कर और (देवेभ्यः हविषः भागं) देवों, विद्वानों से दिव्य पदार्थों

से अन्नवत् ग्राह्य पदार्थ वा ज्ञान का (भागं) सेव्य, उत्तम अंश (वहासि) प्राप्त कर।

प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम्।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (देवाः) दानशील, विद्वान् जनो ! (मे) मुझे (प्रयाजान्) उत्तम २ दान और (केवलान्) केवल, असाधारण (अनुयाजान्) कर्मानुरूप उत्तम दातव्य फल तथा (हविषः ऊर्जस्वन्तम् भागम्) अन्न का बल युक्त वह अंश जो (घृतम्) तेजोयुक्त हो और (अपां च ओषधीनां च पुरुषम्) देहस्थ रसों और तापधारक तत्वों के बीच पुरुष अर्थात् बहुतसी इन्द्रियों में विभक्त तेज (दत्त) प्रदान करो। जिससे (अग्नेः च) इस देह में प्राप्त जीव का (आयुः) आयु (दीर्घं) दीर्घ हो।

तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः।
तवाग्ने यज्ञो३ऽयमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥९॥११॥

भा०—हे (अग्ने) देहान्तर्गत अग्ने ! जीव ! (तव) तेरे (केवले) असाधारण (प्रयाजाः अनुयाजाः) प्रयाज, अनुयाज और (हविषः ऊर्जस्वन्तः भागाः) हवि, अन्न के बलशाली भाग, (सन्तु) हों। (अयं सर्वः यज्ञः तव अस्तु) यह समस्त यज्ञ तेरा ही हो। (तुभ्यं चतस्रः प्रदिशः नमन्ताम्) तेरे आगे चारों दिशाएं झुकें। तुझे आदर से देखें। यज्ञ में अग्नि के प्रयाज अनुयाज और हवि के भागों के समान इस जीव के लिये उत्तम ज्ञानदातागण हैं, वे 'प्रयाज' और अनुकूल मित्रवर्ग अनुगामी हैं वे 'अनुयाज' और ज्ञान सेवी बलवान्, सहयोगी 'ऊर्जस्वान्' पुरुष हों। इत्येकादशो वर्गः ॥

[५२]

अग्निः सौचीक ऋषिः ॥ देवा देवताः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २—४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

विश्वे॑ देवाः शास्तन॑ मा यथे॒ह होता॑ वृतो म॒नवै॒ यन्नि॒षद्य॑ ।
प्र मे॑ ब्रूत भाग॒धेयं॒ यथा॑ वो॒ येन॑ प॒था ह॒व्यमा वो॒ वहा॑नि ॥ १ ॥

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! (मा शास्तन) मुझे ऐसी रीति से शासन करो (यथा) जिससे (इह) इस लोक में (होता) ज्ञान ग्रहण करने वाला, शिष्य रूप से (वृतः) वरण किया जाकर भी (यत्) जो मैं (नि-सद्य) गुरु के समीप बैठकर (मनवै) ज्ञान प्राप्त कर सकूं । (यथा वः भागधेयम्) जिस प्रकार आप लोगों का भजन या सेवन करने योग्य, शिष्यों द्वारा धारण करने योग्य ज्ञान है वह (मे प्र ब्रवीत) मुझे प्रवचन द्वारा उपदेश करो । और मुझे यह भी बतलाओ (येन पथा) जिस मार्ग से (वः हव्यम्) आप लोगों के उपादेय ज्ञान-राशि को मैं (आ वहानि) सब प्रकार से धारण कर सकूं ॥

अ॒हं होता॒ न्य॑सीदं॒ यजी॑या॒न् विश्वे॑ दे॒वा म॒रुतो॑ मा जुनन्ति ।
अह॑रहरश्वि॒नाध्व॑र्यवं वां ब्र॒ह्मा स॒मिद्भ॑वति॒ साहु॑तिर्वाम् ॥ २ ॥

भा०—(अहम्) मैं अल्पशक्ति, अल्पज्ञानी जीव, (होता) ज्ञान और शक्ति का लेने हारा और (यजीयान्) सर्वोत्कृष्ट सत्-संगति करनेहारा होकर (नि असीदम्) स्थिर होकर बैठूं । और (विश्वे देवाः) समस्त देव, ज्ञान को प्रकाशित करने और प्रदान करने वाले (मरुतः) विद्वान् जन (मा जुनन्ति) मुझे प्रेरित या उपदेश करें । हे (अश्विनां) दिन रात्रिवत् ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ पुरुषो ! माता पिता वा हे जितेन्द्रिय गुरु उपदेशक जनो ! (अहरहः) दिन रात ही (वाम् आध्वर्यवम् भवति) आप दोनों का यज्ञ में अध्वर्यु के समान शासन एवं अविनाशी यज्ञ वा ब्रह्मरूप अध्वर-सम्बन्धी ज्ञानोपदेश हो । और (ब्रह्मा सम्-इत् भवति) महान् प्रभु वा चतुर्वेदज्ञ विद्वान् पुरुष होकर ज्ञान को भली प्रकार प्रकाशित करने

वाला हो। और तत्र (वाम् सा आहुतिः) आप दोनों की वह ज्ञान, बल आदि की आहुति अर्थात् ब्रह्मदान सफल हो।

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम्।

भा०—(अयम्) यह (यः) जो (होता) ज्ञान को गुरु से ग्रहण करता है (किः उ सः) वह भला किस प्रकार का हो? उसकी कैसी स्थिति होनी उचित है? (देवाः यत् सम् अञ्जन्ति) देव विद्वान्गण उसको जो कुछ भी ज्ञान प्रकाशित करते हैं उससे (सः) वह (यमस्य) उस महान् नियन्ता प्रभु वा गुरु के (कम् अपि ऊहे) महान् सामर्थ्य के कुछ अंश को ही तर्क द्वारा जान पाता है। यह दशा शिष्य वा जिज्ञासु की सूर्य-चन्द्रवत् है। जैसे सूर्य (अहः अहः जायते) प्रतिदिन खूब उज्ज्वल रूप में प्रकट होता है, (अथ) और (देवाः) सूर्य के प्रकाशक किरण (मासि-मासि) चन्द्रमा में मास २ में (हव्य-वाहम् दधिरे) प्रकाशमय तेज को धारण कराते हैं- उसी प्रकार वह परमेश्वर वा गुरु सूर्य के समान अपार ज्ञानमय है परन्तु देव, विद्वान्गण वा इन्द्रियादि प्राणगण (मासि मासि) प्रत्येक जिज्ञासु में (हव्य-वाहम्) ग्रहण करने योग्य ज्ञान के धारक तेजोमय अग्नि को धारण कराते हैं, नया जीवन प्रदान करते हैं, उसे ज्ञानधारण में समर्थ करते हैं।

मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम्।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥४॥

भा०—(देवाः) सूर्य के किरण जिस प्रकार (हव्य-वाहं दधिरे) अग्नि को अपने में धारते और पुनः उत्पन्न कर देते हैं उसी प्रकार (देवाः) विद्वान्गण (हव्य-वाहम्) अन्नग्राही, और ज्ञानधारक (बहु कृच्छ्रा

चरन्तं) बहुत से कठिन व्रतों का आचरण करने वाले और समस्त पापों से मुक्त हुए मुझको (दधिरे) धारण करते, वा वे मुझ को ज्ञानधारी बना देते हैं। (विद्वान् अग्निः) विद्वान्, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (नः यज्ञं कल्पयाति) हमारा वह सात्त्विक यज्ञ करता है, और वह यज्ञ (पञ्च-यामम्) पांच भागों से करने योग्य पाच जनों से यन्त्रित करने योग्य, देह में पांचों इन्द्रियों के समवाय से करने योग्य, (त्रि-वृतम्) मन, वाणी, कर्म तीन प्रकार से करने योग्य और (सप्त-तन्तुम्) सात छन्दों, से वा सात शीर्षण्य प्राणों से करने योग्य होता है।

आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः करांणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥५॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! हे प्राणगण ! (वः यथा वरिवः कृणोमि) मैं आप लोगों की जैसी २ सेवा करता हूं उतना ही मैं (वः) आप लोगों के (सु-वीरम्) उत्तम बलवीर्य सम्पन्न (अमृतत्वं आ यक्षि) अमृतत्व, अविनाशी भाव को प्राप्त करता हूं। मैं ही (इन्द्रस्य) आत्मा, वा महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु के (वज्रम्) बल वीर्य को (बाह्वोः आ धेयाम्) बाहुओं में धारण करूं। (अथ) और अनन्तर (इमा-विश्वाः पृतनाः) इन समस्त शत्रु सेनाओं वा संग्रामों को भी (जयाति) वह जीत लेता है।

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६॥१२॥

भा०—(त्रीणि शता त्री सहस्राणि त्रिंशत् च) ३३३० [तेतीस हज़ार तीन सौ तीस] देवगण विजय के इच्छुक वीर (अग्निम्) सर्वाग्रणी की (असपर्यन्) सेवा, करते हैं, उसकी सेवा में लगे हैं। वे (अस्मै) इसके लिये (बर्हिः अस्तृणन्) आसनवत् इस लोक प्रजाजन वा संघ को

यज्ञ में कुशाओं के समान बिछा देते हैं। और उस अग्रणी को (घृतैः औक्षन्) जलों से अभिषेक करते हैं और (आद् इत्) अनन्तर उस (होतारम्) बल, वीर्य, ऐश्वर्य के ग्रहीता को (नि असादयन्त) नियम पूर्वक स्थापित करते हैं। इसी प्रकार इस बर्हिरूप देह में ३३३० दिव्य शक्तियां आत्मा को प्राप्त हैं जो उसको इस देह में स्थिर किये हैं। इति द्वादशो व र्गः॥

[५३]

ऋषिः—१—३, ६, ११ देवाः। ४, ५ अग्निः सौचीकः॥ देवता—१—३, ६—११ अग्निः सौचीकः। ४, ५ देवाः॥ छन्दः—१, ३, ८ त्रिष्टुप्। २, ४ त्रिष्टुप्। ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ६, ७, ९ निचृज्जगती। १० विराड् जगती। ११ पादनिचृज्जगती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

यमैच्छा॑म॒ मन॑सा॒ सो॒३॒॑यमागा॑द्य॒ज्ञस्य॑ वि॒द्वान्परु॑षश्चिकि॒त्वान्।
स नो॑ यक्षद्दे॒वता॑ता॒ यजी॑या॒न्नि हि षत्स॒दन्त॑रः॒ पूर्वो॑ अ॒स्मत्॥१॥

भा०—(मनसा) मन से, वा ज्ञान के कारण हम लोग (यम् ऐच्छाम) जिसको चाहते हैं (सः अयम्) वह यह (यज्ञस्य परुषः) यज्ञ के पोरु १ या अंग २ को (चिकित्वान्) जानने वाला (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष (आ अगात्) आवे। (देवताता) उत्तम ज्ञान के इच्छुकों के हितार्थ, उनके बीच (यजीयान्) अति पूज्य, ज्ञानप्रद होकर (सः नः यक्षत्) वह हमें ज्ञान प्रदान करे। वह (अन्तरः) हमारा अन्तरतम, प्रिय होकर (पूर्वः) हमसे पूर्व ज्ञानवान्, हमारे ज्ञान का कारण हो। और वह (अस्मत्) हमारे बीच (नि सत्सत्) विराजे।

अरा॑धि॒ होता॑ नि॒षदा॒ यजी॑यानभि प्रयां॑सि॒ सुधि॑तानि॒ हि ख्यत्।
यजा॑महै य॒ज्ञिया॒न्हन्त॑ दे॒वाँ ईळा॑महा॒ ईड्याँ॒ आज्ये॑न॥२॥

भा०—उत्तम, अति अधिक ज्ञान देनेहारा, (होता) प्रेम से बुलानेहारा, गुरुवत् पूज्य पुरुष (नि-सदा) उत्तम आसन पर बैठकर नित्य देववत् आराधना करने योग्य है। क्योंकि वह (सुधितानि) उत्तम, स्थिर, हित ज्ञानों को (अभि स्थत्) साक्षात् करके आप्तवत् अन्यों को उन्हीं स्थिर सत्यों का उपदेश करता है। (हन्त) यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि हम (यज्ञियान् देवान्) दान, मान पूजा सत्कारादि से आदरणीय विद्वान् पुरुषों की (यजामहै) पूजा कर सकें और (ईड्यान्) स्तुति करने योग्य जनों की हम लोग (आज्येन) प्रकट, व्यक्त वचन से वा जल वा घृतादि पदार्थों से (ईडामहै) सत्कार करें।

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम्।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥ ३ ॥

भा०—(अद्य) आज हम लोग (यज्ञस्य) उपास्य प्रभु की (जिह्वाम्) वाणी को (अविदाम) प्राप्त करें, जानें। यह विद्वान् (नः) हमारे को (साध्वीम् देववीतिम्) देव, शुभ विद्वान् के प्रकाश, ज्ञान गुणादि की प्राप्ति को (अकः) उत्तम, सफल करता है। (सः) वह (सुरभिः) सुगन्धित यज्ञाग्नि के समान सदाचारयुक्त श्रेष्ठ कर्म करनेहारा (आयुः वसानः) दीर्घ जीवन को धारण करता हुआ (आ अगात्) प्राप्त होता है, वह अवश्य (नः देव-हूतिम्) हमें उत्तम २ विद्वानों, उत्तम उत्तम पदार्थों की प्राप्ति (अकः) करावे।

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (वाचः) वेदवाणी के आश्रय रूप (प्रथमम्) सर्वश्रेष्ठ को (मसीय) मनन द्वारा प्राप्त हों, उसे जानें, (येन) जिससे

हम (देवाः) उत्तम विद्वान् जन (असुरान् अभि असाम) केवल प्राणपोषी, विघ्नकारी पुरुषों को पराजित करें। (ऊर्जादः) वलयुक्त अन्न को खाने वाले और (यज्ञियासः) यज्ञ करने योग्य, पूज्य, (पञ्च जनाः) आप पांचों जन (मम होत्रम्) मेरे वचन या हवन, आह्वान वा उपदेश को (जुषध्वम्) सेवन करो।

पञ्च जना मम॑ होत्रं जुषन्तां गोजा॑ता उत ये य॒ज्ञिया॑सः।
पृ॒थि॒वी नः॒ पार्थि॑वात्पा॒त्वंह॑सो॒ऽन्तरि॑क्षं दि॒व्यात्पा॑त्व॒स्मान् ॥५।१३

भा०—(गो-जाताः) पृथिवी पर उत्पन्न वा गौ, वेदवाणी, उस में उत्पन्न, निष्णात (उत ये) और जो (यज्ञियासः) यज्ञ के योग्य, पूज्य हैं वे (पञ्च जना) पांचों जन (मम होत्रं) मेरे यज्ञ, आह्वान, या वचनों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। (पृथिवी) विस्तृत पृथिवी, देवी माता (नः) हमें (पार्थिवात् अंहसः) पृथिवी के सम्बन्धी, पापों वा कष्ट से (पातु) बचावे और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, तद्वत् ऊपर गुरु, प्रभु, पिता आदि (अस्मान्) हमें (दिव्यात्) दिव्य (अंहसः) आकाश से आने वाले कष्ट से (पातु) बचावे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

तन्तुं॑ त॒न्वन्रज॑सो भा॒नुमन्वि॑हि॒ ज्योति॑ष्मतः प॒थो र॑क्ष धि॒या कृ॒तान्।
अ॒नु॒ल्ब॒णं व॑यत॒ जोगु॑वाम॒पो मनु॑र्भव ज॒नया॒ दैव्यं॒ जन॑म् ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्य! तू (तन्तुम् तन्वन्) प्रजा शिष्य आदि सन्तान रूप तन्तु को उत्पन्न करता हुआ (रजसः भानुम्) ज्ञान प्रकाशक, समस्त लोक के प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी गुरु वा प्रभु को (इहि) अनुगमन कर। और (धिया कृतान्) हम को सत्कार और बुद्धि से बनाये गये (ज्योतिष्मतः पथः) सूर्य के उज्ज्वल मार्गों की (रक्ष) रक्षा कर, अथवा, (धिया) बुद्धि वा यत्न से तू (कृतान् पथः) बनाये गये मार्गों को

(ज्योतिष्मतः) प्रकाश से युक्त बनाये रख, मार्गों पर अन्धेरा न होने दे। (धीगुवाम्) उपदेष्टा जनों के (अनुल्बणं) अति सुखदायी, कभी कष्ट न देने वाले (अपः) सत्कर्म को (वयत) कर। तू सदा (मनुः भव) मननशील हो। और (जनं दैव्यं जनय) मनुष्यों को देव, प्रभु का उपासक बना।

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७॥

भा०—हे (सोम्याः) सौम्य स्वभाव वाले एवं सोम, शिष्य जनो, वीर्यवान् शासक जनो! (अक्ष-नहः नह्यतन) जिस प्रकार अक्ष, धुरा में लगाने योग्य अश्वों को खूब अच्छी प्रकार बांधा जाता है, उसी प्रकार आप लोग (अक्ष-नहः) अध्यक्ष पद पर सम्बन्धित करने योग्य उत्तम जनों को (नह्यत) बांधो, उनको उत्तम पद पर पदबद्ध, कर्त्तव्य-बद्ध, वचन-बद्ध करो। (रशनाः इष्कृणुध्वम्) जिस प्रकार रथी अपने अश्वों की रासों को ठीक रखता है उसी प्रकार तुम लोग भी (रशनाः) राष्ट्र में भोग सामग्रियों को (इष्कृणुध्वम्) अन्नोत्पादक उपायों से उत्पन्न करो। (उत) और अपने आप के आत्मा वा गृहस्थ रथ को (अष्टावन्धुरं आ पिंशत) आठों शीर्षगत प्राणों को बांध कर सुरूप, सौम्य बनावें, (येन देवासः) जिससे विद्वान् जन (प्रियम् अभि) प्रिय इष्ट आत्मा के प्रति (रथं अनयन्) अपने वेगवान् मन को लजाते हैं।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८॥

भा०—(अश्मन्वती रीयते) व्यापक आत्म-शक्ति से युक्त नदी के समान यह अनादि प्रवाह बराबर गति कर रहा है। हे विद्वान् पुरुषो!

(सं रभध्वम्) मिलकर एक साथ उद्योग करो। (उत् तिष्ठत) उत्तम स्थिति प्राप्त करो। हे (सखायः) मित्रो ! (ये) जो (अशेवाः) अकल्याण, मल, पाप, एवं दुःखदायी कारण हैं उनको (अत्र) यहां (जहाम) त्याग दें। और (शिवान् वाजान् अभि) कल्याणकारी, सुखदायी ऐश्वर्यों और ज्ञानों को लक्ष्य कर, प्राप्त कर (वयम्) हम (उत् तरेम) उत्तम पद पर पहुंचें।

त्वष्टा॑ मा॒या वे॑द॒पसा॑म॒पस्त॑मो॒ बिभ्र॒त्पात्रा॑ देव॒पाना॑नि॒ शन्त॑मा।
शि॒शी॒ते नू॒नं प॑र॒शुं स्वा॑य॒सं येन॑ वृ॒श्चादेत॑शो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अपसाम् अपस्तमः) सब कर्म करने वालों में श्रेष्ठ, सर्वोत्तम कर्म-सम्पादन करने वाला, (त्वष्टा) जगत् का बनाने वाला प्रभु परमेश्वर (मायाः) जगत् निर्माण करने वाली समस्त शक्तियों और बुद्धियों और कर्मों को (वेत्) जानता है। वह ही (देव-पानानि) सूर्य, पृथिवी चन्द्र आदि लोकों, चक्षु आदि इन्द्रियों और विद्वानों को पालन करने वाले नाना (शं-तमा पात्रा) अति शान्तिकारक पालन करने के साधनों, वा उपायों को (बिभ्रत्) धारण करता है। वह ही (ब्रह्मणः पतिः) महान् ब्रह्माण्ड का स्वामी, ब्रह्मज्ञान का पालक ही (सु-आयसम् परशुम् शिशीते) उत्तम लोहसार के बने परशु को विज्ञ शिल्पी के समान (सु-आयसम् परशुम्) सुख प्राप्त कराने वाले, परम पद तक पहुंचाने वाले ज्ञान रूप वज्र को (शिशीते) तीक्ष्ण करता है। (येन) जिससे (एतशः) यह शुक्लकर्मा जीव वा ज्ञानी पुरुष (वृश्चात्) इन समस्त कर्म-बन्धों को काट डालता है। उपनिषदों में जिस प्रकार ओंकार रूप औपनिषद् महास्त्र का वर्णन (मुण्डक उप मु० २। ख० २। मं० ३। में) है उसी प्रकार यहां 'सुआयस परशु' का वर्णन है।

सुतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१०॥

भा०—हे (कवयः) विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषो ! आप लोग (याभिः वाशीभिः) उत्तम उपदेशप्रद वाणियां, और इन्द्रियादि को वश करने वाली जिन साधनाओं से (अमृताय) मोक्ष प्राप्ति के लिये (गुह्यानि) बुद्धिगम्य, रहस्य युक्त (पदा) उत्तम २ ज्ञानों को (तक्षथ) अभ्यास करसको उनको (सतः) सत्, ज्ञानवान् पुरुष से (संशिशीत) प्राप्त करके खूब अभ्यास द्वारा तीक्ष्ण करो । हे (विद्वांसः) विद्यावान् पुरुषो और आप लोग ! (गुह्यानि पदानि) उन बुद्धिगम्य ज्ञानों का (कर्त्तन) सम्पादन करो (येन) जिससे (देवासः) ज्ञानी पुरुष (अमृतत्वम्) अमृतमय मोक्ष पद को (आनशुः) प्राप्त करते हैं । यह तीक्ष्ण करने का भाव भी उपनिषदों में वेद से लिया है । जैसे—'धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं संधयीत ॥ (मुण्डक २ । २ । ३)

गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम्
॥ ११ ॥ १४ ॥

भा०—(योषाम् गर्भे वत्सम्) स्त्री के गर्भ में बालक के तुल्य सुरक्षित रूप से विद्वान् लोग (अपीच्येन मनसा) तद्गत चित्त और (जिह्वया) वाणी से (आसनि) मुख में (वत्सम् अदधुः) बोलने योग्य उत्तम वचन को धारण करते हैं । (सः कारः इत् जितिं वनते) वह कार्य करने वाला, समर्थ पुरुष ही विजय को प्राप्त करता है जो (सुमनाः) उत्तम चित्तवान् होकर (योग्याः अभि) योग्य, अर्थात् सहयोग करने वाली प्रजाओं और सेनाओं को (सिषासनिः) निरन्तर ऐश्वर्य विभक्त करता और उनको उचित रीति से वेतन देता और उनको प्राप्त करता है ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[५४]

बृहदुक्थो वामदेव्यः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४ आर्चो स्वराट् त्रिष्टुप्। ५ पादनिचृद् त्रिष्टुप् ॥

षडृचं सूक्तम् ॥

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम्।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ते) तेरी (ताम्) उस अलौकिक (महित्वा) महान् सामर्थ्य से प्राप्त कीर्त्ति को जानूं (यम्) जो (भीते रोदसी) भयभीत आकाश और पृथिवीवत् राजा और प्रजा दोनों वर्ग (त्वा अह्वयेताम्) तुझे अपनी रक्षार्थ बुलाते हैं। और तू (यत्) जो (देवान् प्र आवः) विद्वान्, ज्ञानार्थी, धनार्थी और शरणार्थी की अच्छी प्रकार रक्षा करता, और (दासम् आ अतिरः) विनाशकारी प्रजाघातक का सब प्रकार से नाश करता और (त्वस्मै प्रजायै) एक मात्र प्रजा को (ओजः अशिक्षः) बल-पराक्रम प्रदान करता और उसकी उसको शिक्षा भी करता है।

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं नृनु पुरा विवित्से ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (बलानि) अपने बलों, सैन्यों को (वा वृधानः) बढ़ाता हुआ, (तन्वा) बड़ी भारी सेना के साथ (अचरः) विचरता और भारी राष्ट्र का भोग करता है, और जो तू (जनेषु प्रब्रुवाणः अचरः) मनुष्यों को भी उत्तम उपदेश करता हुआ विचरता है और लोग जो (ते यानि युद्धानि आहुः) तेरे नाना युद्धों का व र्णन करते हैं (सा ते माया इत्) वह सब तेरी बुद्धि

और निर्मात्री वा शत्रु विनाशकारिणी, संहारक शक्ति ही है, तू (न अद्य शत्रुं विवित्से) न आज शत्रु को पाता है (न नु पुरा विवित्से) न पहले ही तू किसी को अपना शत्रु प्राप्त कर सका। तेरी महती शक्ति से भयभीत होकर, तेरी बुद्धि से चकित होकर तेरा शत्रु न पहले रहा, न अब है। वे युद्धादि वर्णन भी तेरे बुद्धि-कौशलों का ही आविष्कार रहा।

क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (के उ नु ऋषयः) वे कौन से तत्वदर्शी मन्त्रद्रष्टा जन हैं जो (अस्मत् पूर्वे) हम से पूर्व होकर भी (ते समस्य महिमनः) तेरी समस्त महिमा के (अन्तम् आपुः) अन्त तक पहुंचे हों। कोई भी तेरे महान् सामर्थ्य का पार न पा सके? (यत्) क्योंकि तू ही (मातरं च पितरं च) माता और पिता, सूर्य और भूमि दोनों को (स्वायाः तन्वः) अपने देह में से एक साथ ही (अजनयथाः) उत्पन्न करता है। प्रजापति ने अपने देह को गिरा कर उसे ही स्त्री-पुरुष दो खण्ड में किया, ऐसा बृहदारण्यक का वचन है। और इसी अपनी हिरण्यगर्भतनु में से आकाश भूमि रचे ऐसा वेद स्वयं कहता है। ये वचन विचारने योग्य हैं। इनका तात्पर्य यह है कि उस परमात्मा में मातृपितृ दोनों शक्तियां विद्यमान हैं। इसी प्रकार आत्मा में ही मातृदेह और पितृदेह दोनों को रचने का सामर्थ्य है।

चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ते महिषस्य) तुझ महान् प्रभु के (चत्वारि) चार (नाम) नाम, रूप ही (अदाभ्यानि) कभी नाश

न होने योग्य, अविनाशी हैं। (अङ्ग) हे प्रभो ! (त्वं तानि विश्वानि वित्से) तू उन सबको जानता है (येभिः) जिन से तू (कर्माणि चकर्थ) समस्त कर्म, जगत् आदि निर्माण करता है।

ब्रह्म के ४ पाद ४ अदाभ्य नाम हैं जो 'असुर्य' हैं अर्थात् असु प्राणों में रमण करने वालों या जीवों में भी प्रकट होते हैं, जीवों में प्रकट होने वाली उन चार दशाओं के अनुसार ही ब्रह्म में भी उन चार दशाओं का वर्णन किया जाता है। वे चार दशाएं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और अमात्रा तुरीया दशा। तदनुसार सृष्टि, स्थिति, लय और परमा दशा है।

त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (विश्वा) समस्त, (केवलानि) असाधारण, अपने आप स्वयं धारण करने योग्य, (वसूनि) ऐश्वर्यों को धारण कर रहा है (या च गुहा) जो अभी अप्रकट गुप्त रूप में है, और (यानि आविः) जो प्रकट भी हैं हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (मे कामम् इत्) मेरे अभिलाष को ही कभी (मा वि तारीः) विनष्ट न होने दे, प्रत्युत (त्वम् आज्ञाता) तू ही आज्ञा देने वाला, अध्यक्ष है और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू ही (दाता असि) देने हारा है। अस्य दाता इति इन्द्रः। इदम् राति इति वा इन्द्रः।

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि॥६॥१५॥

भा०—(यः) जो (ज्योतिषि अन्तः ज्योतिः अदधात्) सूर्य आदि ज्योतियों के बीच में प्रकाश को धारण कराता है, (यः) जो (मधुना) मधुर रस से समस्त (मधूनि सम् असृजत्) पदार्थों को संयुक्त करता है, उस

(इन्द्राय) महान् ऐश्वर्य वाले प्रभु के (प्रियं) अति प्रिय, (मन्म) मनन करने योग्य, (शूषम्) बलको (ब्रह्म-कृतः) ब्रह्म, वेद के उपदेश करने वाले (बृहदुक्थात्) विशाल वेद के ज्ञानवान् पुरुष से (अवाचि) प्राप्त करके कहा या उपदेश किया जाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५५]

बृहदुक्थो वामदेव्यः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१॥

भा०—(यत्) जो (त्वा) तुझ को (भीते) भय से डरते हुए आकाश और पृथिवी, वा तत्स्थ जीववर्ग (वयः-धै) बल धारण कराने या देने के लिये (अह्वयेताम्) बुलाती सी हैं और तू (पृथिवीं द्याम्) पृथिवी और आकाश वा सूर्य दोनों को (अभीके) समीप २ वा निर्भय रूप से (उत् अस्तभ्नाः) ऊपर थामे रहता है और (भ्रातुः) समस्त जीवों को भरण पोषण करने वाले सूर्य वा मेघ के (पुत्रान्) अनेकों को पालन करने में समर्थ किरणों वा जल-धाराओं को (तित्विषाणः) तेज वा विद्युत् से प्रकाशित किया करता है तेरा (तत् नाम) वह स्वरूप, जो जगत् को थामता और पालन करता रहता है वह भी, (पराचैः) पराङ्मुखों से (गुह्यं) छुपा और दूर दूर रहता है। विमुख जन उसको जान वा अनुभव नहीं कर सकते।

महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥ २ ॥

भा०—(महत् तत् गुह्यं नाम) वह महान् गुप्ततम रूप है (पुरु स्पृक्) जिस को अनेक जीवगण प्रेम करते हैं, (येन) जिससे (भूतम्) इस उत्पन्न जगत् को तू (जनयः) उत्पन्न करता है, और (येन भव्यम् जनयः) जिस अपने सामर्थ्य से तू भविष्यत् को भी उत्पन्न करता है, और (यत्) यह कि जो (अस्य) इसका (प्रत्नं) अति पुरातन (ज्योतिः) प्रकाशमय रूप भी (अस्य प्रियं जातम्) इस उत्पन्न जीवसर्ग को प्रिय, पोषक पालक रूप से प्रकट हुआ। इसी प्रिय ज्योति को प्राप्त होकर (पञ्च सम् अविशन्त) आत्मा में पांचों प्राणों के तुल्य पांचों महाभूत आश्रय करते हैं। इस प्रकार पूर्व सूक्त में कहे ४ रूप प्रभु के हैं। १ जगत्स्तम्भनकारी, २ जगत्-प्रेरक, ३ जगत्-जनक और ४ सर्वप्रिय।

आ रोद॑सी अपृणा॒दोत मध्यं॒ पञ्च॑ दे॒वाँ ऋ॑तु॒शः स॒प्तस॑प्त।
चतु॑स्त्रिंशता पुरु॒धा वि च॑ष्टे॒ सरू॑पेण॒ ज्योति॑षा॒ विव्र॑तेन ॥ ३ ॥

भा०—वह (रोदसी) भूमि और आकाश को पू[illegible]कर रहा है। (उत मध्यम् अपृणात्) और वह दोनों के बीच के भाग को भी पूर्ण कर रहा है, ऊपर नीचे, आकाश, भूमि और मध्य अन्तरिक्ष इस स्थान पर बसे समस्त लोकों को भी पाल रहा है। वह (ऋतुशः) ऋतु रूप में विद्यमान (पञ्च देवान्) पांच प्रकार के किरणों, वर्गों या ऋतु-उत्पादक प्रकाशों को सूर्य के समान पांच भूतों और पांच प्राणों को (अपृणात्) पूर्ण करता है, उनमें भी व्यापता और उनको भी प्रकाशित, गतिमान् करता है। वह (वि-व्रतेन) विविध कर्म के जनक (चतुस्त्रिंशता) ३४ प्रकार के विकारों से (स-रूपेण ज्योतिषा) एक समान तेज से भी (पुरु-धा विचष्टे) नाना प्रकार का दीखता है। ८ वसु, १२ आदित्य, ११ रुद्र, प्रजापति, वषट्कार और विराट् ये चौंतीस हैं।

यदुष उच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे (उषः) सर्ववशकारिणी ! प्रकाशवति कान्तिमति ! प्रभु शक्ति ! (यत्) जो तू (विभानाम् प्रथमा) विशेष चमकने वाले सूर्यादि के बीच में भी प्रभात के तुल्य सर्वप्रथम (औच्छः) प्रकट होती है और तमोमय प्रलय काल में से प्रथम तेजोमय रूप को प्रकट करती है, (येन) जिससे (पुष्टस्य) परिपोषण योग्य जगत् रूप पुत्र के (पुष्टम्) पोषण युक्त महान् देह को (अजनयः) प्रकट करती है, और (यत्) जो (ते) तुझ (परस्याः) परम शक्ति का भी (अवरम्) हम लोगों के भी प्रत्यक्ष होने वाला मातृतुल्य सम्बन्ध है वह (महत्या) तुझ महती परमेश्वरी माता का (एकम्) एक, अद्वितीय (महत् असुरत्वम्) बड़ा भारी जीवन-दाता होने का प्रमाण है ।

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(विधुं) शत्रुओं को विशेष रूप से कंपाने वाले, विविध चेष्टा करने वाले, वा नाना कार्यों को करने वाले, (समने) संग्राम वा संगति काल में (बहूनां दद्राणं) बहुतों को बल से भगाने में समर्थ (युवानं सन्तं) युवा, बलवान् पुरुष को भी एक (पलितः) वृद्धतुल्य, व्यापक सूर्य जैसे (विधुं) चन्द्र को, वैसे ही वह पुराना काल (जगार) निगल जाता है। (देवस्य) उस प्रभु के (महित्वा) महान् सामर्थ्य से युक्त (काव्यं पश्य) महान् क्रान्तदर्शिता वा बुद्धिमत्ता से बनाये गये इस जगत् रूप काव्य को (पश्य) देख, (अद्य ममार) जो आज मरता है, (सः ह्यः) वह कल, आने वाले या गये को भी किसी दिन (समान) भली प्रकार प्राण लेता था और आगे भी पुनः उत्पन्न होगा । इति षोडशो वर्गः ॥

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर (शाक्मना शाकः) अपनी महती शक्ति से शक्तिशाली है। वह (अरुणः) तेजोमय (सुपर्णः) सुख से सबका पालक है। (यः) जो वह (महः) महान् (शूरः) दुष्टों का नाशक, (सनात्) सनातन, (अनीडाः) किसी विशेष स्थान पर न होकर, सर्वव्यापक है। वह (यत् चिकेत) जो कुछ भी जानता है, (सत्यम् इत् तत्) वह सब सत्य ही है। (तत् मोघं न) वह कभी व्यर्थ, निष्फल (वसु न जेता ऐश्वर्य को नहीं जीतता (उत न दाता) और व्यर्थ नहीं देता है।

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवाः) किरण वा वायुगण (क्रियमाणस्य कर्मणः मन्हा) किये जाने वाले कर्म, यज्ञादि के महान् सामर्थ्य से प्रेरित होकर (ऋते कर्मम् उत् अजायन्त) जलों के निमित्त कर्म को करने के लिये उठते और उदित होते हैं जिनसे (वृत्र-हत्याय) मेघको छिन्न भिन्न करने के लिये (वज्री) तेजस्वी ,सूर्य (पौंस्यानि औक्षत्) नाना बल-कर्म वा जल धारता वा सेंचता है (एभिः) उनसे ही वह (वृष्ण्या पौंस्यानि आददे) वृष्टिकारक जलों को भी धारण करता है। उसी प्रकार (ये देवाः) जो देवनशील, तेजस्वी वीर पुरुष (क्रियमाणस्य कर्मणः मह्ना) किये जाने वाले कर्म के महान् सामर्थ्य से (ऋते कर्मम्) सत्य ज्ञान के आश्रय पर जगत् को रचने वाले प्रभु को भी (उत् अजायन्त) प्राप्त करते हैं (येभिः) जिनके द्वारा (वज्री) तेज, बल, पाप-निवारक बल का स्वामी प्रभु (वृत्र-हत्याय) विघ्नकारी अज्ञान और दुष्ट पुरुषों के विनाश और (वृत्र-हत्याय) नाना धनैश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (पौंस्यानि) नाना

बलों और जीवों के हितकारी कर्मों को (औक्षत्) धारण करता और प्राप्त कराता है (एभिः) उनके ही द्वारा वह (वृष्ण्या) सब सुखों के देने वाले बलों को भी (आ दधे) धारण और प्रदान करता है ।

युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥८॥१७॥

भा०—(विश्व-ओजाः) समस्त प्रकार के बल पराक्रमों को करने वाला, प्रभु (युजा) संयोग, वा सहकारी कारण, उपादान, रूप प्रकृति के द्वारा (कर्माणि जनयन्) नाना कर्मों को करता हुआ (अशस्ति-हा) न कहने योग्य, अव्यक्त दशा का नाश करता हुआ, (विश्व-मनाः) सब ज्ञानों का स्वामी, सर्वज्ञ, (तुरा-षाट्) वेग से सब से अधिक, सर्वशक्तिमान् प्रभु (सोमस्य पीत्वी) बल वीर्य रूप जगद्-उत्पादक रूप सामर्थ्य का पालन या धारण करके, (आवृधानः) बढ़ता हुआ वा शिल्पी के समान (दिवः आवृधानः) तेजोमय सूर्य आदि लोकों को बनाता हुआ (युधा) प्रहार से (शूरः) शूरवत्, (दस्यून्) नाशकारणों को (निर् अधमत्) दूर कर देता है । इति सप्तदशो व र्गः ॥

[५६]

बृहदुक्थो वामदेव्यः । विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृज्जगती । ५ विराड् जगती । ६ आर्ची भुरिग् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्व१श्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ १ ॥

भा०—(इदं ते एकं) यह तेरे लिये एक ज्योति है । (ते एकं परः)

तेरे लिये एक यह परम ज्योति है। तू (तृतीयेन) तृतीय, सर्वोत्कृष्ट (ज्योतिषा) ज्योति के साथ (संविशस्व) मग्न होकर रह। (तन्वः) आत्मा, देह के और तू (देवानां परमे जनित्रे) समस्त दिव्य शक्तियों, सूर्यादि लोकों और विद्वानों के उत्पादक (परमे) सर्वश्रेष्ठ (संवेशने) सेज के तुल्य सब को आश्रय देने वाले, प्रभु में (चारुः) सर्वत्र विचरण करता हुआ, (प्रियः) सर्वप्रिय होकर (तन्वः संविशस्व) नाना देहों और विस्तृत लोकों में भी प्रवेश कर और (एधि) रह।

तनूष्टे वाजिन्तन्वं१ नयन्ती वामम॒स्मभ्यं धातु शर्म॑ तुभ्यम् ।
अह्रुतो म॒हो ध॒रुणाय दे॒वान्दि॒वीव॒ ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥ २ ॥

भा०—हे (वाजिन्) ज्ञानवन्! (तनूः) तेरी एक काया (तन्वम् नयन्ती) तुझे दूसरे देह को प्राप्त कराती हुई (अस्मभ्यम् वामम् धातु) हमें उत्तम ज्ञान दे और (तुभ्यम् शर्म धातु) तुझे सुख प्रदान करे। तू (अह्रुतः) अकुटिल मार्ग पर चलता हुआ, सरल आचरणवान् होकर (महः देवान् धरुणाय) बड़े शक्तिशाली देवों को धारण करने वाले प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (दिवि इव) आकाश में (स्वम् ज्योतिः) सूर्यवत् स्वप्रकाश अपनी, वा सर्वोत्पादक (ज्योतिः आ मिमीयाः) परम ज्योति को प्राप्त कर।

वा॒ज्य॑सि॒ वाजि॑नेना सु॒वेनीः सु॑वि॒तः स्तोमं॑ सुवि॒तो दिवं॑ गाः ।
सु॒वि॒तो धर्म॑ प्रथ॒मानु॑ स॒त्या सु॑वि॒तो दे॒वान्त्सु॑वि॒तोऽनु॒ पत्म॑ ॥३॥

भा०—हे आत्मन्! विद्वन्! तू (वाजिनेन वाजी असि) बल से ही बलशाली, और ज्ञान से ज्ञानवान् है। तू (सुवेनीः) उत्तम कान्तिमान्, शुभ २ पदार्थों की कामना वाला होकर (सुवितः) शुभ मार्ग में गमन करके, (स्तोमम् गाः) उत्तम स्तुति, और स्तुत्य पद को प्राप्त कर। और

(सुवितः) उत्तम सुखजनक मार्ग में चल कर ही तू (दिवं गाः) उस प्रकाश ज्ञान और तन्मय प्रभु को प्राप्त कर । (सुवितः) उत्तम पथ में, उत्तम आचरण में रह कर ही तू (धर्म गाः) सब के धारक प्रभु वा बल को प्राप्त कर । (सुवितः अनु सत्या प्रथमा) उत्तम पथ में चल कर ही पश्चात् सर्वश्रेष्ठ सत्य फलों को, सत्य तत्वों को प्राप्त कर ।।(सुवितः देवान्) शुभ कर्म में चल कर ही तू देवों, विद्वानों और शुभ गुणों, शुभ लोकों को प्राप्त कर ।(सुवितः अनु पत्म) उत्तम शुभ मार्ग में रह कर ही तू चलने योग्य सन्मार्ग तथा ऐश्वर्यमय पद को भी प्राप्त कर ।

म॒हि॒म्न ए॑षां पि॒तर॑श्च॒नेशि॑रे दे॒वा दे॒वेष्व॑दधु॒रपि॒ क्रतु॑म् ।
सम॑विव्यचुरु॒त यान्यत्वि॑षु॒रैषां॑ त॒नूषु॒ नि वि॑विशुः॒ पुन॑: ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः पितरः) तेजस्वी, दानशील, माता पिता के तुल्य सब का पालन करने वाले, (एषां महिम्नः ईशिरे) इन प्राणों वा लोकों के महान् सामर्थ्य और ऐश्वर्य के भी स्वामी होजाते हैं । वे (देवेषु) उन दिव्य लोकों और विद्वानों के बीच (क्रतुम् अदधुः) कर्म सामर्थ्य को धारण करते, वा (देवेषु क्रतुम् अदधुः) ज्ञानाभिलाषी शिष्यों में अपने ज्ञान को प्रदान करते हैं । (उत) और (यानि अत्विषुः) जो ज्योतियां वा ज्योतिर्मय लोक खूब चमकते हैं वे उनको (अविव्यचुः) प्राप्त करते हैं । और (एषां) उनमें वे (तनूषु पुनः नि विविशुः) देहों में पुनः प्रवेश करते हैं ।

सहो॑भि॒र्विश्वं॒ परि॑ चक्रमू॒ रज॒: पूर्वा॒ धामा॒न्यमि॑ता॒ मिमा॑नाः ।
त॒नूषु॒ विश्वा॒ भुव॑ना॒ नि ये॑मिरे॒ प्रासा॑रयन्त पुरु॒ध प्र॒जा अनु॑ ॥५॥

भा०—वे (पूर्वा) पूर्व के, सर्वोत्तम, (अमिता) अपरिमित, अनेक (धामा) लोकों, तेजों को (मिमानाः) प्राप्त होते हुए, (विश्वं रजः परि चक्रमुः) समस्त लोकों को परिभ्रमण करते हैं, और (तनूषु) शरीरों में

रह कर ही (विश्वा भुवना नियेमिरे) समस्त लोकों को नियम में रखते, उनका सञ्चालन करते हैं। और (अनु) तदनुसार ही (पुरुध प्रजाः प्र असारयन्त) बहुत प्रकार से प्रजाओं का प्रसार करते, बढ़ाते, फैलाते और उनको उत्कृष्ट मार्ग में चलाते हैं।

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥ ६ ॥

भा०—(सूनवः) प्रजाओं को सन्मार्ग में चलाने वाले या देहों में प्रजा-रूप से उत्पन्न होने वाले जीवगण, (स्वः-विदम् असुरम्) तेज, सुख के प्राप्त कराने वाले, प्राणों में रमण करने वाले वीर्य को (तृतीयेन कर्मणा) तीसरे श्रेष्ठ कर्म द्वारा (द्विधा) दो भाग करके (स्वाम् प्रजाम् आ अस्थापयन्त) अपनी प्रजा को स्थापन करते हैं। वे (पितरः) पालक पिता होकर (अवरेषु) अपने से आगे आने वालों में (पित्र्यं सहः) पिता के बल, तेज, परा-क्रम वा धन और (आततम् तन्तुम्) अभी तक चले आये, अविच्छिन्न प्रजा रूप तन्तु को (आ अदधुः) स्थापित करते हैं, वे उन पर ही प्रजोत्पादन का कर्त्तव्य धर जाते हैं। दो प्रकार की प्रजा पुत्र और शिष्य होती हैं।

अथवा—(सूनवः) पुत्र लोग (स्वर्विदम्) तृतीयाश्रम भोगी (असुरं) अपने प्राणदाता पिता को (तृतीयेन कर्मणा) सर्वश्रेष्ठ मोक्ष साधन कर्म दो रूपों में पिता वा शिक्षक के रूप में स्थापित करते हैं। और पिता लोग (अवरेषु) आगे बढ़ने वालों पर (स्वां प्रजां) स्वप्रजा और (पित्र्यं सहः) पित्र्य धन को और (आततं तन्तुं) अविच्छिन्न वंशतन्तु को (अदधुः) स्थापित करते हैं।

'अयं ह्यातस्तन्तुर्यत् प्रजाः, इति ब्राह्मणम्। प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी रित्यादेशः (तै० ५। ६। ६। ४ ॥) तन्तुं तन्वन् इत्यस्या ब्राह्मणं प्रजा वै तन्तुरिति ॥ ऐ० ब्रा० ३। ११ ॥

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥ ७ ॥ १८ ॥

भा०—(नावा क्षोदः न) नाव से जिस प्रकार जल को तरा जाता है, उसी प्रकार (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारक उपायों से (पृथिव्याः) पृथिवी, भूमि या इस लोक की (प्र-दिशः) समस्त दिशाओं को (विश्वा दुर्गाणि अति) और समस्त दुखदायी कष्टों को पार करके (बृहद्-उक्थः) बड़े भारी ज्ञान को जानने वाला विद्वान् (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (परेषु अवरेषु) आगे आने वालों और उत्तम जनों में, पास और दूर के लोकों में भी (स्वां प्रजाम् आ अदधात्) अपनी प्रजा को उत्पन्न करे । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५७]

बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायनाः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ गायत्री । २—६ निचृद् गायत्री ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्या, ज्ञान, प्रकाश के देने हारे सूर्यवत् ! (वयं) हम लोग (सोमिनः) उत्तम शासन वाले होकर (पथः) गमन करने योग्य सन्मार्ग और (यज्ञात्) उपासनीय यज्ञ रूप प्रभु से (मा प्र गाम) दूर न हों । (अरातयः) ज्ञान, धनादि देने वाले शत्रु, स्वार्थी, लोभी (नः अन्तः मा तस्थुः) हमारे बीच में न रहें ।

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतं नशीमहि ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञस्य) यज्ञ और उपास्य प्रभु की (प्र-साधनः)

उत्तम रीति से साधना करने वाला (तन्तुः) सूत्रवत् अविच्छिन्न, वंशधर के तुल्य (देवेषु आततः) विद्वानों के बीच, प्राणों में आत्मा के समान विद्यमान है (तम् आहुतम्) उस उत्तम शिक्षा व्रत आदि से परिगृहीत, स्वीकृत को हम (नशीमहि) प्राप्त करें ।

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन ।
पितृणां च मन्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—हम (नाराशंसेन सोमेन) मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय, उत्तम सन्मार्ग में प्रणेता द्वारा स्तुति, उपदेश करने योग्य (सोमेन) उत्तम सौम्य गुणों से युक्त पुरुष वा शिष्य पुत्रादि से हम लोग (नु) अब अपने (मनः आ हुवामहे) चित्त वा ज्ञान को सब ओर प्राप्त करावें । और (पितृणां मन्मभिः) ज्ञान के पालक गुरु जनों के मनन करने योग्य वचनों द्वारा उन सहित भी हम (मनः आ हुवामहे) सब ओर ज्ञान और चित्त को ले जावें ।

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (ते मनः) तेरा मन (पुनः) पुनः २ (क्रत्वे दक्षाय) कर्म करने और बल प्राप्त करने के लिये वा अपान और प्राण के लिये और (जीवसे) जीवन के लिये और (ज्योक् च दृशे) चिरकाल तक दर्शन करने के लिये (सूर्यं) सूर्य के प्रति चक्षु के तुल्य सर्वप्रेरक सर्व बलशाली प्रभु की ओर (पुनः आहुतः) फिर २ प्राप्त हो । शयन में विलीन होने के उपरान्त भी पुनः २ जागृत दशा में हो ।

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥ ५ ॥

भा०—(नः पितरः) हमारे पालन करने वाले नाना सूर्य, पृथिवी,

वायु, प्राण आदि पदार्थ (नः मनः ददतु) हमें फिर २ मन को प्रदान करें। और (दैव्यः जनः) देवतुल्य सूर्यवत् तेजस्वी जन भी हमें पुनः २ मन वा ज्ञान का प्रदान करें। जिससे हम बार २ (जीवं व्रातं सचेमहि) जीवन युक्त प्राणगण को प्राप्त हों।

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वशासक! सर्वोत्पादक प्रभो! (तव व्रते) तेरे व्रत के निमित्त (वयम्) हम लोग (तनूषु मनः बिभ्रतः) अपने देहों में मन को एवं विस्तृत यज्ञों में ज्ञान को धारण करते हुए (प्रजावन्तः सचेमहि) उत्तम प्रजायुक्त होकर प्राप्त हों। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[५८]

बन्ध्वादयो गौपायना ऋषयः॥ देवता—मन आवर्तनम्॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्य! (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दूरकम्) दूर तक (वैवस्वतं यमं) विविध लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी, सर्वनियन्ता प्रभु को भी (जगाम) पहुंच जाता है (ते) तेरे (तत्) उसको भी हम लोग (इह क्षयाय जीवसे) यहां रहने और जीवन लाभ करने के लिये (आ वर्त्तयामसि) पुनः लौटता पाते हैं।

यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दिवं पृथिवीम् दूरकं जगाम) आकाश, भूमि को वा दूरस्थ पदार्थ तक भी चला जाता है, उसको भी (इह जीवसे क्षयाय) यहां जीवन लाभ करने और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ वर्त्तयामसि) पुनः लौटा लेते हैं ।

यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ३ ॥

भा०—हे जीव ! (यत् ते मनः चतुर्भृष्टिम् भूमिम् दूरकम् जगाम) चारों ओर से भ्रंश वाली, गोल भूमि अथवा चारों पुरुषार्थों को बहुत २ प्रदान करने वाले उत्पादक लोक को भी प्राप्त करके दूर चला जाता है, (तत्) उसको हम (इह क्षयाय) यहां ऐश्वर्य और निवास तथा (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिये (ते आ वर्त्तयामसि) तेरे मन को हम लौटा लेवें ।

यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ४ ॥

भा०—(यत् ते मनः) जो तेरा मन (चतस्रः प्रदिशः दूरम् जगाम) चारों दिशाओं में दूर भी चला जावे (ते तत्) तेरे उस मन को भी (इह क्षयाय जीवसे) यहां ऐश्वर्य, निवास जीवन आदि लाभ के लिये (आ वर्त्तयामसि) लौटा लेवें, लौटता पावें ।

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ५ ॥

भा०—(यत् ते मनः अर्णवं दूरकं जगाम तत्ते०) जो तेरा मन समुद्र तक भी दूर चला जाता है उसको भी हम यहां के ऐश्वर्य, निवास और जीवन सुख के लिये पुनः २ स्नेह वश लौटा लेवें, लौटता पावें ।

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(यत् ते मनः प्रवतः मरीचीः दूरकं जगाम) जो तेरा मन दूर की किरणों वा व्यर्थ आशावाली मरुमरीचिका तुल्य तृष्णाओं को प्राप्त कर दूर २ चला जाता है उसको भी (इह क्षयाय जीवसे) यहां सत्पथ में रहने और सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये (आ वर्त्तयामसि) पुनः लौटा लेवें । इति विंशो वर्गः ॥

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ते मनः अपः ओषधीः दूरकं जगाम) जो तेरा मन जलों, प्राणों, ओषधियों वा तत्-तुल्य शरीरों वा सुखों को प्राप्त करने की आशा से दूर २ तक जाता है उसको भी हम (इह क्षयाय जीवसे) यहां रहने और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये (आवर्त्तयामसि) लौटा लेवें ।

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ८ ॥

भा०—(यत् ते मनः सूर्यं उपसम् दूरकम् जगाम) जो तेरा मन सूर्य वा प्रभातिक वेला को वा तुझे चाहनेवाले किसी व्यक्ति को लक्ष्य कर दूर चला जाता है, उसको भी (इह क्षयाय जीवसे तत् ते आवर्त्तयामसि) यहां ऐश्वर्य प्राप्ति, निवास एवं सुखमय जीवन के लाभार्थ पुनः प्राप्त करें ।

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ९ ॥

भा०—(यत् ते मनः बृहतः पर्वतान् दूरकं जगाम) जो तेरा मन बड़े २ पर्वतों को भी लक्ष्य कर दूर २ तक जाता है (ते तत् इह क्षयाय

जीवसे) उसको भी यहां रहने और जीवन लाभ के लिये (आवर्त्तयामसि) लौटा लेवें।

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १० ॥

भा०—(यत् ते मनः इदं विश्वं दूरकं जगाम) जो तेरा मन इस विश्व को लक्ष्य कर दूर तक भी चला जाता है उसको भी (तत् इह क्षयाय जीवसे आ वर्त्तयामसि) हम यहां रहने और जीवन के लिये पुनः लौटा लेवें।

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ११ ॥

भा०—(यत् ते मनः पराः परावतः दूरकं जगाम) जो तेरा मन दूर २ के देशों को लक्ष्य करके भी दूर तक चला जाता है (ते तत् इह क्षयाय जीवसे) तेरे उस चित्त को भी हम यहां रहने और जीने के लिये लौटाते हैं।

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १२ ॥ २१ ॥

भा०—(यत् ते मनः भूतं भव्यं च दूरकं जगाम) जो तेरा मन भूत और भविष्य काल के मार्ग में भी दूर तक चला जाता है (ते तत् इह क्षयाय जीवसे) तेरे उस मन को यहां दीर्घकाल तक रहने और जीवन व्यतीत करने के लिये (आवर्त्तयामसि) लौटा लेते हैं।

अस्थिर चित्त वाले पुरुष का चित्त अस्थिरता की दशा में इधर उधर दूर २ तक मनोहारी पदार्थों को देखकर भटकता है, उसको व्यर्थ न भटका कर यहां उत्तम ऐश्वर्य सुखप्रद निवास और जीवन की सफलता के लिये ही पुनः आवर्त्तन कर लेना चाहिये। इसी को 'प्रत्याहार' का अभ्यास कहा जाता

है। अन्यथा मन के विद्रुत होजाने पर मनुष्य भटक कर उपस्थित सुखों का नाश करता, संकटों में पड़कर जीवन का भी नाश कर लेता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५९]

बन्ध्वादयो गौपायनाः ॥ देवता—१—३ निर्ऋतिः । ४ निर्ऋतिः सोमश्च । ५, ६ असुनीतिः । लिङ्गोक्ताः । ८, ९, १० द्यावापृथिव्यौ । १० द्यावापृथिव्याविन्द्रश्च ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४—६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः । ९ जगती । १० विराड् जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ १ ॥

भा०—(नवीयः) अति नवीन, नवोत्पन्न बालक की (आयुः) आयु, जीवन, (प्र तारि) खूब बढ़े, (प्रतरं तारि) और भी खूब खूब बढ़े। (क्रतुमता) कर्म और ज्ञान से युक्त (रथस्य स्थातारा इव) रथ के ऊपर बैठने वाले रथी सारथी के समान गृहस्थ के स्त्री पुरुष दोनों (परातरम्) खूब दूर २ तक (सु-जिहीताम्) सुख से गमन किया करें। (अध) और (च्यवानः) रथ से जाने वाला पुरुष (अर्थम्) प्राप्त करने योग्य उद्देश्य को (उत्तवीति) उत्तम रीति से प्राप्त करे और (निर्ऋतिः) कष्ट-दशा (परातरम् जिहीताम्) खूब दूर होजाय। अथवा (निर्ऋतिः) अशेष आनन्द-सुखों को देने वाली भूमि (परातरं सुजिहीताम्) खूब दूर तक की हमें प्राप्त हो।

सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (राये) ऐश्वर्य धन को प्राप्त करने के लिये (सामन्)

भूमि के सम भाग में (निधिमत् अन्नं नु) धन सहित अन्न को उत्पन्न करें। और (नः जरिता) हमारा उपदेष्टा विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (ता) उन (विश्वानि श्रवांसि) समस्त अन्नों का (पुरुध ममत्तु) बहुत प्रकार से आस्वाद ले। अथवा वे समस्त अन्न (पुरुध जरिता) नाना प्रकार से जीर्ण होकर (नः ममत्तु) हमें हर्ष, तृप्ति सुख प्रदान करें (निर्ऋतिः) भूख, पीड़ा, कष्ट आदि (परातरं सुजिहीताम्) अच्छी प्रकार दूर हो।

अभी ष्व१र्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान्।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्॥३॥

भा०—हम लोग (पौंस्यैः) नाना पौरुष कर्मों से (अर्यः सु अभि भवेम) शत्रुओं को अच्छी प्रकार पराजित करें, उनको कड़ी हार दें। (द्यौः भूमिम्) सूर्य जैसे पृथिवी को प्राप्त होता है और (गिरयः अज्रान् न) मेघ जिस प्रकार अपने प्रेरक वायुओं को प्राप्त करता और चलाता है उसी प्रकार (जरिता) हमारा विद्वान् उपदेष्टा (नः) हमें प्राप्त हो, हमें ज्ञान से प्रकाशित करे, सन्मार्ग में चलावे और (नः) हमें (विश्वानि ता) उन नाना प्रकार के पदार्थों को (चिकेत) स्वयं जाने और हमें बतलावे। इस प्रकार (निर्ऋतिः) कष्टदशा, दुःख दारिद्र्य आदि (परातरं सु जिहीताम्) खूब अच्छी प्रकार से दूर हो।

मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्॥४॥

भा०—हे (सोम) उत्तम मार्ग में चलानेवाले विद्वन्! हे शासक! प्रभो! हे वीर्य! तू (नः मृत्यवे मा सु परा दाः) हमें मृत्यु प्राप्त करने के लिये कभी मत छोड़, मौत के हाथ में मत त्याग। हम (सूर्यं उत् च नु पश्येम) उदय होते, ऊपर आकाश में जाते सूर्य को सदा देखें।

और (द्युभिः) दिनों वा प्रकाशों से (नः जरिमा सुहितः अस्तु) हमारी वृद्ध-अवस्था भी सुखदायक हितकारी हो। और (निर्ऋतिः परातरम् सु जिहीताम्) कष्ट की दशा खूब अच्छी प्रकार से दूर रहे।

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ५॥ २२॥

भा०—(असु-नीते) प्राणों को प्राप्त करने वाले, असु अर्थात् प्राणधारी जीवों को सन्मार्ग में चलाने वाले! तू (जीवातवे) जीवन धारण करने के लिये (अस्मासु मनः धारय) हम में मन, ज्ञान, संकल्प-विकल्प करने का सामर्थ्य धारण करा। और (नः आयुः सु प्र तिर) हमारे जीवन की खूब वृद्धि कर। (सूर्यस्य सं-दृशि नः रारन्धि) सूर्य के उत्तम दर्शन करने कराने वाले प्रकाश में हमें खूब हर्ष आनन्द प्रदान कर। तू (घृतेन) घृत, जल और प्रकाश से (नः तन्वं) हमारे शरीर को (वर्धयस्व) बढ़ा। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ ६ ॥

भा०—हे (असु-नीते) प्राणों को प्रदान करने वाले! तू (अस्मासु) (पुनः चक्षुः, पुनः प्राणम् धेहि) हम में पुनः चक्षु, ज्ञान और प्राण प्रदान कर और रख। (इह नः भोगं धेहि) इस लोक में हमें उत्तम २ भोगयोग्य अन्न, ऐश्वर्य और रक्षण प्राप्त करा। हम (उच्चरन्तं सूर्यं ज्योक् पश्येम) ऊपर आकाश में आते सूर्य को चिरकाल तक देखें। हे (अनु-मते) अनुकूल बुद्धि देनेहारे विद्वन् प्रभो! तू (नः स्वस्ति मृडय) हमें सुख प्रदान कर, हम पर कृपा कर।

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥७॥

भा०—(पृथिवी) भूमिवत् सर्वाश्रय प्रभु (नः पुनः असुम् ददातु)

हमें पुनः २ जीवन प्रदान करे। (देवी द्यौः) सुखदात्री, तेजोमय सूर्यवत् प्रभु शक्ति, (पुनः) हमें बार २ प्राण दे। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षवत् विशाल अन्तर्यामी प्रभु (पुनः) पुनः २ हमें प्राण, जीवन प्रदान करता है। (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु (नः तन्वं पुनः ददातु) हमें बार २ देह प्रदान करता है, (पूषा) सर्वपोषक प्रभु (नः पथ्याम्) हमें सत्पथ प्रदान करें (याः स्वस्तिः) जो सुख-कल्याणकारक हों।

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत्॥८॥

भा०—(सु-बन्धवे) सुख के बन्धन वाले, उत्तम सम्बन्ध से युक्त, जीव के हितार्थ, उसकी रक्षा के लिये, (यह्वी रोदसी) महान् भूमि सूर्यवत् वा दो सीमाओं के तुल्य दुर्मार्गों से उसे रोकने बचाने वाले माता पिता गुरु आदि (ऋतस्य मातरा) जल, अन्न, प्रकाश और सत्योपदेश-ज्ञान को देने वाले माता पिता के सदृश (शम्) कल्याणकारी शान्तिदायक हों। हे (द्यौः पृथिवि) हे सूर्यवत् कान्तियुक्त प्रकाश देनेहारे ! पितः ! हे (पृथिवि) पृथिवी के तुल्य सर्वाश्रय मातः ! आप दोनों (क्षमा) क्षमाशील होकर (यत् रपः) जो जो भी हमारे पाप हों उनको (अप भरताम्) दूर करो। (ते) तेरा (किंचन) कुछ भी (मो सु आममत्) हमें कष्टदायी न हो।

अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत्॥ ९॥

भा०—(दिवः) आकाश से (द्वके) दो दो और (त्रिका) तीन२ (भेषजा) रोग दूर करने वाली शक्तियां भूमि की ओर आती हैं, और (क्षमा) भूमि में (एककम् चरिष्णु) एक चरने योग्य, खाने योग्य अन्न

रूप भेषज है। हे (द्यौः पृथिवि क्षमा) सूर्य भूमि के तुल्य समर्थ जनो ! (यत् रपः अप भरताम्) जो हमारा पाप दुःखादि हो उसे दूर करो और (ते किं चन रपः मोसु आममत्) तेरा कुछ भी पाप या कष्टदायी पदार्थ हमें कष्ट न दे।

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् १०।२३

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (उशीनराण्याः) कान्ति एवं कामनायुक्त वधू के (अनः आ वहत्) शकट को उठाता है ऐसे (अनड्वाहं गाम्) शकटवाही बैलों को (सम् ईरय) अच्छी प्रकार चला। इसी प्रकार उशीनराणी यह पृथिवी है इसके ऊपर जो सूर्य (अवः) प्राण जीवन शक्ति को प्राप्त कराता है उस जीवनदायक (गाम्) किरण समूह को हे (इन्द्र) जल तेज के दाता सूर्य ! तू अच्छी प्रकार प्रदान कर। हे (सूर्य और पृथिवि) जो (यत् रपः अपभरताम्) हमारा जो पाप, कष्ट हो उसे दूर करो। (ते रपः किंचन मो सु आममत्) तेरा दोष, मल ताप आदि हमें कुछ भी कष्ट न दे। असुनीतिः असून् नयति। निरु०॥ इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[६०]

बन्ध्वादयो गौपायनाः। ६ अगस्त्यस्य स्वसैषां माता॥ देवता—१—४, ६ असमाता राजा। ५ इन्द्रः। ७—११ सुबन्धोर्जीविताह्वानम्। १२ मरुतः॥ छन्दः—१—३ गायत्री। ४, ५ निचृद् गायत्री। ६ पादनिचृदनुष्टुप्। ७, १०, १२ निचृदनुष्टुप्। ११ आर्च्यनुष्टुप्। ८, ९ निचृत् पंक्तिः॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

आ जनं त्वेषसन्दृशं माहीनानामुपस्तुतम्।
अगन्म बिभ्रतो नमः॥ १॥

भा०—हम (नमः बिभ्रतः) नमस्कार विनय वा अन्न को धारण करते हुए (त्वेष-सन्दृशम्) कान्ति तेज से युक्त सब के दर्शन करने वाले (माहीनानाम्) बड़े बड़ों के बीच में (उप-स्तुतम्) स्तुति प्राप्त करने वाले (जनम्) जन को हम (आ अगन्म) प्राप्त करें।

असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम्।
भजेरथस्य सत्पतिम् ॥ २ ॥

भा०—(असमातिम्) असाधारण मान और आदर के योग्य,(नित्तोशनं), शत्रुओं का नाश करने वाले, (त्वेषं) दीप्तियुक्त, (नि-ययिनं) निश्चय से प्रयाण करने वाले (रथम्) वेग से जाने वाले, रथवत् लक्ष्यतक अन्यों को पहुंचाने वाले, और (भजे रथस्य सत्पतिम्) शत्रु भंजक रथ, सैन्य वा सज्जनों के उत्तम पालक रथाध्यक्ष को (अगन्म) प्राप्त करें।

यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान्।
उतापवीरवान्युधा ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (महिषान् इव जनान्) बड़े २ भैसों को सिंह के समान (वीरवान्) वज्रवत् खड्गवान् होकर (जनान् अति तस्थौ) बड़े २ जनों, जनपदों को भी विजय करता है (उत) और जो (युधा) युद्ध से (अप-वीरवान्) विपरीत शब्द बोलने वाले शत्रुओं को दूर कर देता है।

यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते दिवीव पञ्च कृष्टयः॥४॥

भा०—(यस्य) जिस राष्ट्र के (व्रते) शासन के कार्य में (इक्ष्वाकुः) गन्ने के समान मधुर रसयुक्त वाणी से बोलने वाला, वा दर्शन करके वाणी का प्रयोग करने वाला विवेकी पुरुष (रेवान्) धनवान्, (मरायी) शत्रुमारक,

राजा (उप पृचते) वृद्धि प्राप्त करता है, उस राज्य में (दिविन्इव) सूर्य सदृश तेजस्वी राजा के नीचे (पञ्च कृष्टयः) पांचों प्रजाजन वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

इन्द्र॑ क्षत्रासंमातिषु रथ॑प्रोष्टेषु धारय।
दिवी॑व सूर्यं॑ दृशे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशकारिन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (रथ-प्रोष्ठेषु) रथों पर आगे बढ़ने वाले, (असमातिषु) असाधारण बलशाली जनों के आश्रय पर, उनके बीच (दिविन्इव सूर्यम्) आकाश में सूर्य के समान (क्षत्रा धारय) नाना बलों और ऐश्वर्यों को धारण कर।

अगस्त्य॑स्य नद्भ्यः सप्ती॑ युनक्षि रोहि॑ता।
पणी॒न्न्य॑क्रमीर॒भि विश्वा॑न्राजन्नराधसः॑ ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—हे (राजन्) दीप्तियुक्त तेजस्विन् ! राजन् ! तू (अगस्त्यस्य) वृक्षों और पर्वतों को भी उखाड़ देने में समर्थ बलशाली के (नद्भ्यः) अभिनन्दक प्रजाओं के लिये (रोहिता सप्ती युनक्षि) वेग से जाने वाले लाल दो अश्वों के तुल्य (रोहिता) अनुरक्त वा वृद्धिशील प्रजा वर्गों को (युनक्षि) सन्मार्ग पर चला। और (विश्वान्) समस्त (अराधसः पणीन्) निर्धन, आराधना न करने वाले व्यवहारवानों को (नि अक्रमीः) नीचे कर। राजा के दो अश्व, एक गृहस्थ बसे प्रजा जन, दूसरा कर्म में नियुक्त समस्त वेतनबद्ध राज्य कर्मचारी, (ऐत० अ० १२ । ३ ॥)

अराधसम् अनाराधयन्तम्। निरु० ५।३।५ ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अ॒यं मा॒ताय॒ं पि॒ताय॒ं जीवा॒तुराग॑मत्।
इ॒दं तव॑ प्र॒सर्प॑णं॒ सुब॒न्धवेहि॒ निरि॑हि ॥ ७ ॥

भा०—(अयं माता अयं पिता) यह मातावत् राष्ट्र का बनाने वाला,

(अयं पिता) यह पिता के तुल्य पालक, (अयं जीवातुः आगमत्) यह जीवनदाता होकर प्राप्त होता है। हे (सुबन्धो) उत्तम सुप्रबन्धक राजन्! (इदं) यह तेरा (प्रसर्पणम्) आगे बढ़ना हो, (इहि) आ, (निर् इहि) निकल कर मैदान में आ।

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम्।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥८॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (धरुणाय) धारण करने वाले दण्ड के (युगं) जुए को (वरत्रया नह्यन्ति) रस्सी से बांधते हैं (एवं) उसी प्रकार हे मनुष्य (ते मनः दाधार) तेरे मन रूप लगाम को आत्मा (जीवातवे) जीवन के लिये धारण करता है, (न मृत्यवे) मृत्यु के लिये नहीं (अथो अरिष्टतातये) बल्कि मङ्गल, सुख के लिये धारण करे। राष्ट्र में मन-स्तम्भक बल है।

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन्।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९॥

भा०—(यथा इयं पृथिवी) जिस प्रकार यह पृथिवी (मही) बड़ी विशाल होकर भी (इमान् वनस्पतीन् दाधार) इन महावृक्षों को धारण करता है। इसी प्रकार (पृथिवी) सर्वाश्रय बड़ा प्रभु (जीवातवे) जीवन के लिये (ते मनः) तेरे मन, वा धारक बल को लगाम के तुल्य (दाधार) धारण करे, थामे, (न मृत्यवे) तेरे मौत के लिये नहीं (अथो अरिष्टतातये) बल्कि कल्याण के लिये हो।

यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम्।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥ १० ॥

भा०—(अहं) मैं (यमात्) सब के नियन्ता, व्यवस्थापक

(वैवस्वतात्) विविध लोकों, ऐश्वर्यों के स्वामी, (सुबन्धोः) उत्तम बन्धु रूप प्रेमी प्रभु से (मनः आभरम्) मन, वा ज्ञान, संकल्प विकल्प शक्ति को प्राप्त करता हूँ। वह (जीवातवे न मृत्यवे) जीवन के लिये हो, मृत्यु के लिये न हो, वह (अरिष्टतातये) सदा कल्याण के लिये हो।

न्य१ग्वातोऽवंवाति न्यक्तंपति सूर्यः।

नीचीनमघ्न्या दुंहे न्यग्भवतु ते रपः ॥ ११ ॥

भा०—(वातः न्यग् अव वाति) वायु अधीन होकर विनम्रभाव से बहता है, (सूर्यः न्यक् तपति) सूर्य उसके नीचे विनीत होकर तपता है, (अघ्न्या नीचीनं दुहे) गौ भी नीचे होकर पालक को दूध देती है (न्यक् भवतु ते रपः) हे जाव ! तेरा भी दुःख और पाप नीचे ही छूट जावे।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।

अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ १२ ॥ २५ ॥ ४ ॥

भा०—(अयं मे हस्तः भगवान्) यह मेरा हाथ ऐश्वर्यवान् हो (अयं मे भगवत्-तरः) यह मेरा दूसरा दायां अंग और भी अधिक ऐश्वर्यवान् हो। यह मेरा हाथ (विश्व-भेषजः) सब रोगों को ओषधिवत् दूर करने वाला हो। (अयं शिवाभिमर्शनः) यह मेरा हाथ सुखयुक्त स्पर्श वाला हो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

६१]

नाभानेदिष्ठो मानवः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ८—१०, १५, १६ १८, १६, २१ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ७, ११, १२, २० विराट् त्रिष्टुप्। ३, २६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ४, १४, १७, २२, २३, २५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ५, ६, १३ त्रिष्टुप्। २४, २७ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इदमित्था रौद्रं गूर्तवंचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरां मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१॥

भा०—(गूर्त्त-वचाः) श्रमपूर्वक वेदवाणी का अभ्यासी पुरुष (इदम्) इस (इत्था) सत्य (रौद्रम् ब्रह्म) सब कष्टों को दूर करने वाले, उत्तम उपदेश वा ज्ञानप्रद वेदज्ञान का (शच्याम्) कर्म और वाणी में, (क्रत्वा) यज्ञ या बुद्धि द्वारा (आजौ अन्तः) विजय करने योग्य वा संघर्ष के अवसर में उपदेश करता है, तब (यत्) जो (अस्य) इसके (पितरा) माता और पिता (क्राणा) कार्य कर रहे हैं और (अस्य) इसके जो कार्य (मंहने-स्थाः) पूज्य पद पर विराजने वाले करते हैं उस में वह (पक्थे अहन्) पाक करने योग्य दिन में (सप्त होतॄन्) सात विद्वानों को (पर्षत्) पार करता वा पूर्ण करता है अर्थात् वह पुरुष ही सातों होता यज्ञ कर्त्ताओं में ब्रह्मा का पद पूर्ण करता है ।

(२) मेघ (रौद्रं ब्रह्म क्रत्वा आजौ अन्तः करोति) रुद्र अर्थात् सब प्राणियों के दुःखों को दूर करने वाले अन्न अपने कर्म से पृथिवी पर उत्पन्न करता है जिसको कि उसके पिता भूमि और सूर्य दोनों उत्पन्न करते हैं और जिसको (मंहनेष्ठाः) दान कार्य में स्थित मरुद्गण वा कृषक आदि मनुष्य उत्पन्न करते हैं उसी अन्न को वह भी (पक्थे अहनि) पकने के दिन तक पालन करता है और उससे वह (सप्त होतॄन्) सातों प्राणों को (पर्षत्) पालन करता है ।

स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (च्यवानः) गतिशील सूर्य, (दानाय) जलों के देने और (दभ्याय) मेघों को शत्रुवत् छिन्न भिन्न करने के लिये

(वन्वन्) मेघों को ताड़ता हुआ (सूदैः वेदिम् अमिमीत) क्षरणशील मेघों से पृथिवी को अन्न से सम्पन्न करता है। और (गूर्त्त-वचः-तमः) खूब गर्जना करता हुआ (तूर्व-याणः) शीघ्र गति से जाता हुआ (क्षोदः सिंचत्) जल वर्षाता है उसी प्रकार राजा प्रभु, विद्वान् (दानाय) प्रजाओं को सुख देने के लिये और (दभ्याय) दुष्टों के नाश करने के लिये (च्यवानः) शत्रुओं को पराजित करता हुआ (सः इत्) वह ही (सूदैः) हिंसाकारी शस्त्रों से (वेदिम्) भूमि को (अमिमीत) माप लेता है, उसे अपने वश करता है और (तूर्व-याणः) शीघ्रगामी रथों से (गूर्त्त-वचः-तमः) सर्वोपरि उद्यत शासन होकर (इतः-ऊती) एक स्थान पर ही रक्षा साधन करके (क्षोदः न रेतः सिंचत्) जल के तुल्य बल, धन, तेज को प्रदान करता है।

मनो॒ न येषु॒ हव॑नेषु ति॒ग्मं विपः॒ शच्या॑ वनु॒थो द्रव॑न्ता।
आ यः शर्या॑भिस्तुविनृ॒म्णो अ॒स्याश्री॑णीता॒दिशं॒ गभ॑स्तौ॥ ३॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! (यः) जो (तुवि-नृम्णः) बहुत से धनों का स्वामी होकर (गभस्तौ) अपने हाथ में (शर्याभिः) शर, बाण आदि हिंसाकारी साधनों से (अस्य) इस राष्ट्र के (आदिशम्) आदेश वा शासन करने के लिये (अश्रीणीत) उद्योग करे उस (विपः) विशेष पालक स्वामी की (शच्या) शक्ति और वाणी से प्रेरित होकर (येषु हवनेषु) जिन ग्रहणीय पदार्थों में (मनः न तिग्मम्) मन के समान तीक्ष्ण होकर (द्रवन्ता) जाते हो उनमें भी उसके (आदिशम् वनुथः) आदेश का सेवन करो।

कृ॒ष्णा यद् गोष्व॑रु॒णीषु॒ सीद॑द्दि॒वो नपा॑ताश्विना हुवे वाम्।
वी॒तं मे॑ य॒ज्ञमा ग॑तं मे॒ अन्नं॑ वव॒न्वांसा॒ नेष॒मस्मृ॑तध्रू॥ ४॥

भा०—हे (दिवः नपाता) सूर्य के पुत्र पुत्रीवत् दिन रात्रि के

तुल्य ! (दिवः नपाता) ज्ञान के नाश न होने देने वाले स्त्री पुरुषो ! वा ज्ञानी पुरुष के पुत्र के समान शिष्य, शिष्याओ ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (यत्) जब (अरुणीषु गोषु) अरुण वर्ण की सूर्य किरणों में (कृष्णा असीदत्) अन्धकारमयी रात्रि विराजती हो, तभी मैं (वाम् हुवे) आप दोनों को बुलाता हूँ। आप दोनों (मे यज्ञं वीतम्) मेरे यज्ञ विद्याध्यान सत्संग आदि को प्राप्त हों, उसको मनसे चाहें और (आगतम्) आवें, (मे अन्नम्) मेरे अन्न को (इषं न) इष्ट आज्ञा प्रेरणा के समान (ववन्वांसा) निरन्तर सेवन करते हुए (अस्मृतध्रू) परस्पर द्रोह के भाव को कभी याद भी न करके प्रेमपूर्वक रहो।

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्मभिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत्।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥ ५ ॥२६॥

भा०—(यत्) जो पुरुष (कनायाः) अति कमनीय, कान्तियुक्त (दुहितुः) दूर देश में हितकारिणी एवं पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने वाली स्त्री के गर्भ में (अनु-भृतम् आः) विवाह के अनन्तर धारण किया सन्तान हो (तत्) उसको भी (अनर्वा) सर्वश्रेष्ठ, अहिंसक होकर (आ वृहति) आदर पूर्वक प्रेम से धारण करता है और (यस्य) जिसका (इष्णत्) इच्छायुक्त (अनुष्ठितं) अनुष्ठान किया हुआ (वीर कर्मम्) वीर कर्म, वा पुत्रोत्पादनादि कार्य वा सन्तान आदि (प्रथिष्ट) विस्तृत हो जाय वह (नर्यः) मनुष्य, सर्वहितैषी होकर (पुनः अप औहत) फिर भी उस भार को त्याग सकता है। अर्थात् वह सन्तान का विस्तार अर्थात् पुत्र के पुत्र का मुख देख कर गृह त्याग कर वनस्थ हो जावे। इति षड्विंशो वर्गः ॥

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम्।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ६ ॥

भा०—(युवत्याम्) युवती, युवावस्था में वर्त्तमान स्त्री में (कामं) अभिलाषा (कृण्वानं) करते हुए (पितरि) पिता, सन्तानोत्पादक और पालक पुरुष के आश्रय (मध्या) उन दोनों के बीच में और (अमीके) उन दोनों के समीप भी (यत् कर्त्वम् अभवत्) जो गृहस्थ कर्म होता है उसमें वे (वियन्ता) विशेष रूप से एक दूसरे को प्राप्त होते हुए (सानौ) भोग्य देह में (निषिक्तम्) निषेक किये हुए (रेतः) वीर्य को (सुकृतस्य योनौ) पुण्य के आश्रयभूत गृह में (मनानक्) कम से कम एक तो अवश्य (जहतुः) अपने पीछे उत्तराधिकारी रूप में छोड़ें । कम से कम उनका एक पुत्र अवश्य होना उचित है ।

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्दक्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो निषिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जो (पिता) पिता (क्ष्मया सं-जग्मानः) अपनी भूमि, स्त्री से संगत होकर (रेतः निषिञ्चित्) वीर्य का आधान करता है और वह (स्वाम् दुहितरं) अपनी कन्या को ही (अधि-स्कन्) पुत्र-वत् प्राप्त करे । (सु-आध्यः देवाः) उत्तम ध्यानी, ज्ञानी विद्वान् पुरुषों ने (ब्रह्म अजनयन्) यही वेद-ज्ञान प्रकट किया है कि वे ऐसे समय में (स्वां दुहितरम्) अपनी कन्या को या उससे ही (वास्तोः पतिम्) गृह का स्वामी और (व्रत-पाम्) सब कार्यों के पालक रूप उत्तराधिकारी पुत्र को (निर अतक्षन्) प्राप्त करें । अर्थात् उससे उत्पन्न नाती ही पिता के धन का वारिस बने । 'शासद् वन्हिः'० इत्यादि मन्त्रों में भी यही भाव यास्क आदि विद्वानों ने प्रकट किया है ।

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥ ८ ॥

भा०—उस कन्या से विवाहित पुरुष के अधिकार? (सः) वह (ईम्) इस कन्या को प्राप्त करके (आजौ) संगम काल में (वृषा न) बलवान् पुरुष के तुल्य (फेनम् अस्यत्) वीर्य का निक्षेप करे सही, परन्तु (स्मत्) हम से वह (आ परा एत्) दूर ही रहे। वह (दभ्र-चेताः) अल्पचित्त या श्वशुर के धन को मारने के चित्त वाला होकर (दक्षिणा) कन्या को दिये धन के प्रति (पदा न अपसरत्) पैर न चढ़ावे। प्रत्युत उसको (परा वृक्) दूर से ही त्याग दे। (मे) मुझ कन्या के पिता की (ताः पृशन्यः) उन सम्पत्तियों को भी वह (न जगृभ्रे) ग्रहण न करे।

मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥ ९ ॥

भा०—(अग्निम् नग्नः न) आग को जिस प्रकार कोई नग्न पुरुष सीधे चर्ममय हाथों से (न मक्षु उपसीदत्) सहसा नहीं प्राप्त कर सकता उसी प्रकार (उपब्दिः) पीड़ाकारी दुष्ट जन (प्रजायाः वह्निः) सन्तान को विवाह-विधि से ग्रहण करने वाला होकर (ऊधः) रात्रिकाल में (न उपसीदत्) हमें प्राप्त न हो। यदि कोई दुष्ट आवे भी तो वह भस्म हो जाय। क्योंकि (इध्मम् सनिता) जो अग्नि में समिधा को रखे, (उत वाजं सनिता) जो ऐश्वर्य या बल वीर्य प्रदान करे (सः) वह (यवीयुत्) सेना द्वारा युद्धकुशल पुरुष ही (सहसा) अपने बल से (धर्त्ता जज्ञे) भूमिवत् प्रजा का धारक पोषक होता है और जाना जाता है। दुष्ट पीड़क के हाथ में प्रजा और अपनी कन्या वा सम्पत्ति को न दें। वह रात्रिकाल में हम तक न पहुंच सके। प्रत्युत बल से सब को जीतने वाला यज्ञकर्त्ता, बलवान् धनप्रद ही प्रजा का राजा, वा स्वामी बने।

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०॥२७

भा०—(ये नवग्वाः) जो नये ही वेद वाणियों की शिक्षा प्राप्त करने वाले जन हैं वे (मक्षु) शीघ्र ही (कनायाः) अति दीप्तियुक्त वेद वाणी के (सख्यम् अग्मन्) सख्य को प्राप्त करते हैं वे (ऋतं वदन्तः) सत्य वेद ज्ञान का प्रवचन करते हुए (ऋत-युक्तिम् अग्मन्) वेद-ज्ञान की योजना, संगति को भी (अग्मन्) प्राप्त करें । (द्वि-बर्हसः) माता, पिता ज्ञान और कर्म दोनों में बढ़ने वाले होकर (ये) जो (गोपम् उप आगुः) रक्षक, वाणियों के पालक गुरु को प्राप्त कर लेते हैं वे (अ दक्षिणासः) दान-योग्य द्रव्यादि के प्रभाव से भी (अच्युता) अच्युत, अक्षय विज्ञानरूप फलों को (दुधुक्षन्) वेदवाणी रूप गौ से दोह लेते हैं।

(२) इसी प्रकार जो विद्वान् होकर (कनायाः सख्यं) कन्या का सख्य प्राप्त करते, सत्य वचन बोलते और (ऋत-युक्ति) ऋतुकाल में भोग करते हैं वे अपने वंश के रक्षक पुत्र को प्राप्त करते हैं और अच्युत, अमोघ फल प्राप्त करते हैं । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ११ ॥

भा०—(मक्षु कनायाः) जो शीघ्र ही दीप्तियुक्त मधुर वाणी के (नवीयः सख्यम्) नये ही मैत्रीभाव को और (राधः न) द्रव्य के समान (रेतः) वीर्य को और (ऋतम्) सत्य ज्ञान को (इत्) भी (तुरण्यन्) प्राप्त कर लेते हैं वे मनुष्य हे आचार्य ! इन्द्र ! (ते शुचि रेक्णः) तेरे शुद्ध, पवित्र प्रदत्त ज्ञानरूप धन को ऐसे (सबर्दुघायाः उस्रिया याः पयः) अमृतवत् दूध देने वाली गौ के दूध के समान ही (आ अयजन्त) ग्रहण करते हैं । यजतिर्दानार्थः । आङ्पूर्वकश्चादानार्थः ।

(२) इसी प्रकार कन्या के नवीन सख्य, धनवत् ब्रह्मचर्य पालन द्वारा वीर्य और गुरु-शुश्रूषा से सत्य ज्ञान, को जो प्राप्त करते हैं वे ही गाय के दूध के समान (शुचि रेक्णः) शुद्ध सन्तति का भी लाभ करते हैं।

पुश्वा यत्पुश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वुक्तरी रराणः।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥ १२ ॥

भा०—(यत्) जब (पश्वा) ज्ञान के देखने वाले इन्द्रियगण से (वियुता) रहित स्थानों को (बुधन्त) जानते हैं तब (वक्तरि) उत्तम विद्वान् प्रवचन करने वाले गुरु के अधीन (वसोः) पितृ तुल्य गुरु वा आत्मा के (वसुत्वा) ज्ञान धन का स्वामी जन (रराणः) ज्ञान और बल में सुखी रहता हुआ (इति ब्रवीति) इस प्रकार कहता है कि हे (कारवः) स्तुतिकर्त्ता लोगो ! (अनेहा) निष्पाप मनुष्य ही (विश्वम् क्षु विश्वम् द्रविणम् उप विवेष्टि) समस्त अन्न और समस्त धन वा वीर्य को धारण करता है। अर्थात् शरीर में रहने वाला आत्मा यदि पाप नहीं करे तो देह की इन्द्रियों के आत्म-सामर्थ्य नष्ट नहीं होते।

तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन्।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३॥

भा०—(यत्) जब (पुरु-प्रजातस्य) इन्द्रियों में नानारूप होकर प्रकट हुए (शुष्णस्य) बलवान् प्राण के (गुहा) बुद्धि में (सं-ग्रथितम्) एकत्र हुए बल को (वि विदत्) जानता या प्राप्त करता है। जो (अस्य) इसके (परिसद्-वानः) चारों ओर वर्त्तमान सेवकों के तुल्य प्राणगण (पुरु सदन्तः) नाना इन्द्रिय स्थानों में बैठते हुए (नार्षदम्) आत्मा के विराजने के स्थान रूप देह को (विभित्सन्) भेदते हैं, और इन्द्रियों के छिद्रों को बना लेते हैं वे (अस्य तत् इत् नु अग्मन्) उसके

उस परम बल को प्राप्त करते हैं। और वह (अनर्वा) किसी अश्ववत् अन्य साधन की अपेक्षा न करने वाला आत्मा अर्थात् आत्मा मन में अपने समूहित प्राण बल को जानता है उस बल को ही अन्य इन्द्रियगण प्राप्त करते हैं, उसी बल से वे इन्द्रिय-छिद्रों को देह में बनाते हैं।

इसी प्रकार राजा के (परि-सद्वानः) चारों ओर बैठने वाले सर्दार गण (पुरं नार्सदम् सदन्तः) बहुत से दुर्ग को प्राप्त कर शत्रुगण को तोड़ते हैं। वह राजा (पुरु प्रजातस्य गुग्गः) बहुतों से उत्पन्न संघ बल को संग्रथित रूप से प्राप्त करें।

भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्ण्ये त्रिपधस्थे निषेदुः।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक्॥१४॥

भा०—(ये) जो (देवाः) प्रकाशमान लोक (त्रि-सधस्थे) तीनों लोकों में विद्यमान हैं वे (यस्य निषेदुः) जिसके आश्रय पर रहते और जिसकी उपासना करते हैं वह (स्वः न) सूर्य के समान तेजोमय और सर्व-सुखस्वरूप (भर्गः ह नाम) सब पापों को भूनने वाला, और सब कर्मों का परिपाक करने वाला 'भ' ऐसे नाम वा स्वरूप वाला है। वह (अग्निः ह नाम) निश्चय करके अग्निस्वरूप, ज्ञानवान्, प्रत्येक देह में विद्यमान है और (जातवेदाः) उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ को जानने वाला, उसमें विद्यमान, सब धनों और ज्ञानों का आश्रय है। हे (होतुः) ज्ञान के ग्रहण करने और कराने वाले विद्वन्! तू (अध्रुक्) द्रोह बुद्धि न करके ही (नः ऋतस्य श्रुधि) हमारे सत्य ज्ञान का श्रवण कर और हमें करा।

उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू॥१५॥२८॥

भा०—(उत) और (त्या) वे दोनों (रौद्रौ) कष्टों, दुःखों अज्ञानों को दूर करने वाले, गुरु के पुत्रवत् शिक्षित, (अर्चिमन्ता) ज्वाला, कान्ति, और आदर सत्कार योग्य गुणों वाले, (नासत्यौ) कभी असत्य आचरण, भाषण न करने वाले, स्त्री पुरुष, वा माता पिता (मे गूर्त्तये) मुझे उपदेश करने और ऊपर उठाने और (यजध्यै) ज्ञान धनादि देने, सत्संग करने के लिये प्राप्त हों। वे (मनुष्वत्) मननशील ज्ञानी, (वृक्त-बर्हिषे) कुशादि काट कर यज्ञ के लिये तैयार हुए पुरुष के समान उत्तम कार्य के लिये सन्नद्ध मुझ पुरुष के उपकार के लिये (रराणा) अति प्रसन्न वा नाना सुख देते हुए (मन्दू) अति हर्षवान् होकर (विक्षु) प्रजाओं के सुखार्थ (हित-प्रयसा) उत्तम ज्ञान, अन्न देने वाले वा यत्न करने वाले, (यज्यू) दान, सत्संग पूजादि के योग्य हों। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अ॒यं स्तु॒तो राजा॑ वन्दि वे॒धा अ॒पश्च॒ विप्र॑स्तरति॒ स्वसे॑तुः ।
स क॒क्षीव॑न्तं रेजय॒त्सो अ॒ग्निं ने॒मिं न च॒क्रमर्व॑तो रघु॒द्रु ॥१६॥

भा०—(अयम्) यह आत्मा, (स्तुतः राजा) प्रशंसित राजा के तुल्य तेजोमय (वेधाः) सब कार्यों का करने कराने वाला, (विप्रः) ज्ञानवान्, (वन्दि) स्तुति किया जाता एवं पूज्यवत् उपासना करने योग्य है। वह (स्व-सेतुः) स्वयं अपने को देह में बांधने वाला, जगत् से पार उतरने के लिये स्वयं सेतु वा बन्ध के समान वा स्वयं अपने बल से प्राणों को, धन बल से भृत्यवत् बांधने वाले राजा के तुल्य होकर (अपः च रेजयत्) समस्त प्राणों और नाड़िगत जलों, रुधिरों, और प्रजाओं को राजावत् (तरति) व्यापता है। (सः) वह (कक्षीवन्तं) कक्ष्याओं या कोखों में विचरने वाले प्राणगण को (रेजयत्) चलाता है और (सः) वह ही (अग्निम्) जाठराग्नि को भी (रघुद्रु नेमिं चक्रं) अति वेग से चलने वाले नमन-

शील चक्र को (अर्वतः न) अश्वों के तुल्य वा (अर्वतः चक्रं) अरों वाले रथ के चक्र के समान चलाता है ।

स द्विवन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥ १७ ॥

भा०—(सः) वह आत्मा, (द्वि-बन्धुः) दोनों लोकों में बन्धु के समान, वा दोनों लोकों को बांधने वाला, वा माता पिता दोनों को बांधने वाले बालक के तुल्य, (वैतरणः) इस लोक से विशेष रूप से तारने वाला, (यष्टा) ज्ञान, हर्ष का दाता (अस्वम्) कभी न उत्पन्न होने वाली अजा रूप (धेनुम्) गौ के तुल्य, (सबः-धुम्) आनन्दरस को देने वाली प्रभुरूप वाणी को (दुहध्यै) दोहन करने के लिये (यत्) जो (मित्रावरुणा) स्नेहवान्, और वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनों को और (अर्यमणं) स्वामिवद् न्यायकारी, नियन्ता प्रभु को (ज्येष्ठैः) श्रेष्ठ २ (वरूथैः) उत्तम २ वचनों से (सं वृञ्जे) अच्छी प्रकार स्तुति करता और उनसे मिलकर सत्संग लाभ करता है ।

तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियन्धा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥ १८ ॥

भा०—(वेनन्) प्रभु को चाहने वाला पुरुष (प्र रपति) अच्छी प्रकार विवेकी होकर कहता है, कि हे आत्मन् ! (ते) तेरा (तत् बन्धुः) वह परम बन्धु, प्रभु ही (दिवि सूरिः) आकाश में स्थित सूर्यवत् सब को सञ्चालन करनेहारा है । वही (ते धियं धाः) तुझे कर्म और बुद्धि का देनेहारा है । और वह (नाभा नेदिष्ठः) नाभि अर्थात् हृदय के बीच में अति समीप विराजता है । वास्तव में वह प्रभुरूप माता ही (नः परमा नाभिः) हमारी परम नाभि, केन्द्र, आश्रय स्थान २ सर्वोत्पादक और परस्पर भी

प्रेम में बांधने वाली मातृवत् है, (अस्य वा घ अहम्) और निश्चय से उस का ही मैं उपासक हूँ। (तत्) उसके (पश्चात्) और मैं फिर अन्ततः (कतिथः चित् आस) कितनों में एक हूँ।

इयं मे नाभिरिह मे सुधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥ १९ ॥

भा०—(इयम्) यह मातृवत् प्रकृति (मे नाभिः) मेरा आश्रय वा इस लोक में मुझे बांधने वाली है। (इह मे सधस्थं) इस में ही मेरा अन्य जीवों के साथ रहने का स्थान है। (इमे) ये (देवाः) देव, कामनावान् जीव भी (मे) मेरे सहयोगी हैं। (अयम् सर्वः अस्मि) यह मैं ही सब हूँ। मैं (द्विजाः) प्रभु परमेश्वर तथा प्रकृति दोनों से उसी प्रकार उत्पन्न हुआ हूँ जैसे पुत्र माता और पिता दोनों से उत्पन्न होता है। (जायमाना) व्यक्तरूप में आती हुई प्रकृति (धेनुः) सूली गौ के समान (प्रथमजाः) सर्व प्रथम, प्रभु परमेश्वर द्वारा व्यक्त होकर (ऋतस्य) परम सत् कारण के ही विकाररूप (इदं) इस जगत् को (अदुहत्) प्रदान और पूर्ण करती है।

अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षु स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥ २० ॥ २६ ॥

भा०—(अध) और (आसु) इन समस्त दिशाओं में (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त सूर्य के तुल्य इन नाड़ियों या जगत् की नाना पगदण्डियों में (मन्द्रः) अति हर्ष लाभ करने वाला, (अरतिः) देह से देहान्तर में जाने वाला आत्मा, (वर्त्तनिः) दोनों लोक में रहने वाला, वा दोनों प्राण अपान से चेष्टा करने वाला, (अव स्यति) अवसान को प्राप्त करता है। वह (वनेषाट्) काष्ठ में अग्नि के तुल्य, वन में साधक वा

ऐश्वर्य में राजा के तुल्य, भोग्य ऐश्वर्यों के बीच उनको बलपूर्वक भोगने-हारा आत्मा है, (यत्) जिसके (ऊर्ध्वा श्रेणिः) उपस्थित नाना प्राणगण, शिरोभाग में होते हैं और जो (शिशुः न'दन्) बालक के समान ही अपने पर वश करता है। उस (स्थिरं) स्थिर (शेवृधम्) सुखों के वर्द्धक को (माता सूत) माता ही उत्पन्न करती है । एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

अधा गावु उपमातिं कुनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥

भा०—(कस्य चित् श्वान्तस्य) किसी महान् आत्मा की ही (गावः) वाणियां (कनायाः उपमातिम् अनु) सर्व स्तुति योग्य प्रभु के प्रति (परा ईयुः) जाती हैं। हे (सु-द्रविणः) उत्तम ऐश्वर्य-भूति के स्वामिन् प्रभो ! (त्वम् नः श्रुधि) तू हमारी प्रार्थना श्रवण कर। (त्वम् याट) तू हमें दे वा अन्यों से दिला। तू (आश्व-घ्नस्य) अपने अश्व समूह इन्द्रिय गणों को मारने या जीतने वाले वा (अश्व-घ्नस्य) कुक्कुरवत् लोभी इन्द्रियों को सब और से मारने वाले, जितेन्द्रिय की ही (सु-नृताभिः) उत्तम सत्य वाणियों से (ववृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है।

अध त्वमिन्द्र विद्ध्य१स्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥ २२ ॥

भा०—(अध) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वम्) तू (अस्मान् विद्धि) हम को प्राप्त कर, हमें जान। हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! राजा के तुल्य सर्व जीवों के स्वामिन् ! (वज्रबाहुः) वीर्ययुक्त बाहु वाला होकर (महः राये) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (अस्मान्) हमारी (रक्ष) रक्षा कर। (नः मघोनः) ऐश्वर्यवानों और (नः सूरीन्) हम में से विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर। हम (ते अभिष्टौ) तेरे अभीष्ट शासन में (अनेहसः) पाप आदि से रहित होकर रहें।

अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥ २३ ॥

भा०—हे (राजाना) विद्या और शक्ति से चन्द्र और सूर्यवत् प्रकाशवान् जनो ! (यत्) जो (सरण्युः) विचरणशील परिव्राजकवत् (गोइष्टौ) अन्यों के उपकारार्थं ज्ञानवाणियों को देने या प्राप्त करने के लिये (सरत्) विचरता है वह (जरण्युः) स्तुतिशील, उपदेष्टा (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष ही (कारवे प्रेष्ठः) क्रियावान् पुरुष वा जगत्कर्त्ता को अतिप्रिय होता है । और (सः हि) वह ही (एषां प्रेष्ठः) इनका अतिप्रिय होकर (परा च वक्षत्) दूर २ देश तक उपदेश करता (उत) और (एनान् पर्षत्) उनको पार करता और पालता है ।

अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥ २४ ॥

भा०—(अध नु) और (अस्य जेन्यस्य) उस सर्वविजयी सर्वोपरि प्रभु के (पुष्टौ) पोषण को प्राप्त करने के लिये (रेभन्तः) उसका गुणगान करते हुए हम (वृथा) अनायास ही (ईमहे) याचना करते और अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते हैं । (तत् उ नु) इसी कारण वह ही तू (सरण्युः) सर्वत्र व्यापक, (अस्य सूनुः) इस लोक का सञ्चालक, (अश्वः) इस जगत् का भोक्ता, और (श्रवसः च सातौ) ज्ञान-ऐश्वर्यादि विभाग करने में (विप्रः) बड़ा कुशल (असि) है ।

युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५॥

भा०—हे सूर्य चन्द्रवत् उत्तम तेजस्वी पुरुषो ! (यस्मिन् गिरः समीचीः) जिसमें उत्तम २ वाणियां यथार्थ रूप से प्राप्त होती हैं, वह

प्रभु (यदि) यदि (युवोः सख्याय) तुम्हारे मित्रभाव को बढ़ाने और (अस्मे शर्धाय) हमारे बल वृद्धि के लिये (नमस्वान्) नमस्कारयुक्त वचन वाला होकर (स्तोमं जुजुषे) स्तुति समूह का सेवन करता है वह (विश्वत्र) सर्वत्र (गातुः) मार्ग के तुल्य उद्देश्य की ओर लेजाने वाला (सूनृतायै) उत्तम वाणी को प्राप्त करने के लिये, (पूर्वीः इव) सनातन वाणियों के तुल्य ही (सूनृतायै) उत्तम ज्ञानयुक्त वाणी और अन्न को प्राप्त करने के लिये (दाशत्) बहुत ऐश्वर्य दे।

स गृ॒णा॒नो अ॒द्भिर्दे॒ववा॒निति॑ सु॒बन्धु॒र्नम॑सा सू॒क्तैः ।
वर्ध॑दु॒क्थैर्वचो॑भि॒रा हि नू॒नं व्यध्वै॑ति॒ पय॑स उ॒स्रिया॑याः ॥ २६ ॥

भा०—(सः) वह (अद्भिः) प्रजाओं और आप्त पुरुषों द्वारा (सूक्तै) वेद के मन्त्रों से (गृणानः) स्तुति किया जाता है कि (देववान् इति) वह देवों का स्वामी है। (सु उक्थैः वचोभिः) उत्तम वचनों, वक्ताओं द्वारा (नमसा) अति विनय वचनों से कहा जाता है कि (सुबन्धुः) तू बड़ा उत्तम बन्धु है। (नूनम्) निश्चय से (उस्रियायाः) दुधार गौ के तुल्य उत्तम ज्ञान स्रवण करने वाली वाणी का (पयः) ज्ञान-वचन रूप दुग्ध (वि अध्वा एति) विविध प्रकार से, नाना मार्गों की ओर जाता है। इसी प्रकार पात्र भेद और मुख भेद से एक ही विषय में नाना वाणियें होती हैं, उसी प्रकार एक वाणी भी अनेकार्थक होती है।

त ऊ॒ षु णो॑ म॒हो य॑जत्रा भू॒त दे॑वास ऊ॒तये॑ स॒जोषाः॑ ।
ये वाजाँ॒ अन॑यता वि॒यन्तो॒ ये स्था नि॑चे॒तारो॒ अमू॑राः ॥२७॥३०॥१॥

भा०—हे (यजत्राः) यज्ञशील, (देवासः) विद्वान् जनो ! (ये) जो (सजोषाः) उत्तम ज्ञान के सेवी प्रजा के प्रेमी होकर (वाजान् अनयत) ज्ञान ऐश्वर्यादि प्राप्त कराते हैं और जो (निचेतारः) निश्चय

करने में कुशल, (अमूराः) अमूढ, स्वच्छ मति हो वे आप लोग (नः महः सुभूत) हमें सुखकारी और महान् होवो ॥ इति त्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः

---

[६२]

नाभानेदिष्ठो मानव ऋषिः ॥ देवता—१—६ विश्वेदेवाअङ्गिरसो वा । ७ विश्वेदवाः । ८—११ सावर्ण्योर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २ विराड् जगती । ३ पादनिचृज्जगती । ४ निचृज्जगती । ५ अनुष्टुप् । ८, ६ निचृदनुष्टुप् । ६ बृहती । ७ विराट् पङ्क्तिः । १० गायत्री । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥१॥

भा०—(ये) जो (यज्ञेन) यज्ञ से, ईश्वरोपासना से और (दक्षिणया) दक्षिणा वा उत्तम कर्म से (समक्ताः) सुप्रकाशित, विख्यात, और व्यक्त गुणों वाले होकर (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सख्यम्) मित्रभाव, (अमृतत्वम्) मोक्षरूप, अमृत को (आनश) प्राप्त कर लेते हैं । हे (अंगिरसः) ज्ञानवान् तेजस्वी, पुरुषो ! वा प्राणो ! (तेभ्यः) उन के लिये (वः) आप लोगों का (भद्रम्) सर्वसुखकारी कल्याण (अस्तु) हो अथवा—(तेभ्यः वः भद्रम् अस्तु) उनसे आप लोगों को सदा कल्याण प्राप्त हो । हे (सु-मेधसः) उत्तम ज्ञान और बुद्धि वाले जनो ! आप लोग (मानवं) मनुष्यों को (प्रति गृभ्णीत) अपने तईं स्वीकार करो । उन पर अनुग्रह कर उनको अपना शिष्य बना कर उपदेश करो ।

य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥

भा०—(ये) जो (पितरः) ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले जन (गोमयं वसु) वाङ्मय धन को भूमि के भीतर के सुवर्णादि के धन के समान बनकर (उत् आजन्) उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं और (परिवत्सरे) चारों ओर बसने वाले शिष्यों से आवृत सूर्यवत् तेजस्वी आचार्य के अधीन रह कर (ऋतेन) ज्ञानमय तेज से (वलम्) आत्मा को घारने वाले अन्धकार को (अभिन्दन्) छिन्न भिन्न करते हैं। हे (अंगिरसः) ज्ञानवान् तेजस्वी जनो ! उन आप लोगों का (दीर्घायुत्वम् अस्तु) दीर्घ आयु हो। हे (सुमेध सः) उत्तम बुद्धिमान् जनो ! (मानवं प्रति गृभ्णीत) मनुष्यां के योग्य ज्ञान का प्रतिग्रहण करो। अथवा आप लोग मनुष्यों को अपने शरण में लो।

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥३॥

भा०—(ये) जो (ऋतेन) सत्य ज्ञान के बल से (दिवि) राजसभा के ऊपर (सूर्यम्) सूर्य के सदृश तेजस्वी पुरुष को (आ अरोहयन्) उन्नत पद पर स्थापित करते हैं और (मातरम्) माता के समान (पृथिवीम्) पृथिवी वासिनी प्रजा को (वि अप्रथयन्) विविध प्रकारों से प्रथित, विस्तृत, समृद्ध एवं व्यापक करते हैं हे (अंगिरसः) विद्वान्, तेजस्वी जनो ! (वः सुप्रजास्त्वम् अस्तु) आप लोगों की उत्तम सुखी प्रजाएं हों। हे (सु-मेधसः) उत्तम धारणा और उत्तम शत्रुनाशनी शक्ति सेना के स्वामी जनो! आप लोग (मानवं प्रतिगृभ्णीत) मानव समूह को अपने वश या शरण में लेओ। (२) इसी प्रकार जो (ऋतेन) आत्म बल से

(सूर्यं दिवि आ) सूर्य नाम दक्षिण प्राण को ब्रह्माण्ड अर्थात् मूर्धा भाग में चढ़ा लेते हैं और (पृथिवीम् अप्रथयन्) गुदागत अपान को देह में विशेष रूप से व्याप्त कर लेते हैं वे (सुप्रजास्त्वम्) उत्तम प्रजा के पिता और उत्तम ज्ञानवान् होकर मननशील विद्वानों के ज्ञान-तत्त्व वा जीव के आत्मा के स्वरूप को ग्रहण, ज्ञान करते हैं, वे आत्मा तक पहुंचते हैं ।

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ४ ॥

भा०—हे (देव-पुत्राः) विद्वान् दानशील जनों के पुत्रो और शिष्यो ! हे (ऋषयः) मन्त्रार्थ ज्ञान के द्रष्टा जनो ! (अयम्) यह विद्वान् गुरु (वः) आप लोगों के (गृहे) गृह में वा आश्रम में, वा आप लोगों को शिष्यवत् स्वीकारार्थ ग्रहण करने के लिये (नाभा) नाभि अर्थात् केन्द्र में बांधने वाले, गुरुपद पर स्थिर होकर (वः) आप लोगों को (वल्गु वदति) उत्तम वचन कहता, उपदेश करता है । आप (तत् शृणोतन) उसको श्रवण करो । हे (अंगिरसः वः सुब्रह्मण्यम् अस्तु) विद्वान् जनो ! आप लोगों को उत्तम वेदज्ञान और उत्तम ब्रह्मवर्चस् प्राप्त हो, आप (सु-मेधसः मानवं प्रति गृभ्णीत) उत्तम मेधा वाले होकर मनुष्योपयोगी समस्त ज्ञान को वा मानवीय जनसमूह को प्राप्त हो भिक्षा, अन्न आदि ग्रहण करो ।

विरूपास इदृषयस्त इद् गम्भीरवेपसः ।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(ऋषयः इत्) ऋषि, मन्त्रार्थों को देखने वाले तत्त्वदर्शी जन (वि-रूपासः इत्) विविध रूप वा रुचि वाले होते हैं । (ते इत् गम्भीर-वेपसः) वे गम्भीरता पूर्वक, कर्म करने वाले, विचारपूर्वक

आचरण करने वाले होते हैं। (ते अङ्गिरसः) वे अति उज्ज्वल, तेजस्वी, (अग्नेः) ज्ञानमय गुरु, प्रभु के (सूनवः) पुत्रों के तुल्य, उनके शासन में रहने वाले होते हैं। वे (अग्नेः परि जज्ञिरे) अग्निवत्, तेजोमय गुरु, आचार्य से उत्पन्न होते और उसकी सब ओर से उपासना करते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

ये अ॒ग्नेः परि॑ जज्ञि॒रे विरू॑पासो दि॒वस्परि॑।
नव॑ग्वो॒ नु दश॑ग्वो॒ अङ्गि॑रस्तमः॒ सचा॑ दे॒वेषु॑ मंहते॥ ६॥

भा०—(ये) जो (अग्नेः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के (परि) चारों ओर (दिवः परि) सूर्य के चारों ओर किरणों के समान (विरू-पासः) विविध रूप और कान्ति से युक्त होकर प्रकट होते हैं उन (देवेषु) विद्याभिलाषी जनों के बीच में (नवग्वः दशग्वः नु) नव या दश अमुख्य प्राणों में अध्यक्ष मुख्य प्राण के तुल्य नव या दश विद्याओं में गतिमान्, (अङ्गिरस्तमः) अति तेजस्वी होकर (सचा) सब के साथ विराज कर (मंहते) ज्ञान वितरण करता है।

इन्द्रे॑ण यु॒जा निः सृ॑जन्त वा॒घतो॑ व्र॒जं गोम॑न्तम॒श्विन॑म्।
स॒हस्रं॑ मे॒ दद॑तो अष्टक॒र्ण्यः॑ श्रवो॑ दे॒वेष्व॑क्रत॥ ७॥

भा०—(वाघतः) ज्ञान को धारण करने वाले विद्वान् जन (इन्द्रेण युजा) ज्ञानद्रष्टा गुरु रूप सहायक के साथ मिलकर (गोमन्तः) वाणी से युक्त और (अश्विनम्) कर्म में सिद्ध हस्तादि अवयवों से युक्त (व्रजम्) वाणी-समूह का (निः सृजन्त) उच्चारण करते हैं। (मे) मुझे (सहस्रं ददतः) हज़ारों ऋचाओं वा ज्ञानों को देने वाले (अष्ट-कर्ण्यः) व्यापक अध्ययनवान् होकर (देवेषु) विद्वानों और विद्या के इच्छुक शिष्य वर्गों में (श्रवः) श्रवण योग्य ज्ञान को (अक्रत) प्रकट करते हैं।

प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥ ८ ॥

भा०—(अयं मनुः) यह मनुष्य वा जीव (तोक्मं) जल से भीजे बीज के समान (प्र जायताम्) अच्छी प्रकार उत्पन्न होता (प्र रोहतु) और उसी के समान अधिक उगता, बढ़ता और फलता फूलता है । यह वही है (यः) जो (सद्यः) शीघ्र ही (सहस्रं शताश्वं) हजारों सैकड़ों अश्ववद् शत सूर्य-संवत्सर से युक्त (सहस्रम्) बलवत् कालचक्र को (सद्यः) शीघ्र ही (दानाय) दान देने या त्यागने के लिये ही (मंहते) प्रदान करता है ।

न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥ ९ ॥

भा०—(तम्) उस (दिवः इव सानुम्) भूमि या आकाश में ऊंचे स्थान पर सूर्यवत् स्थित उसको (कः चन) कोई भी (आरभम् न अश्नोति) प्राप्त नहीं कर सकता । (सावर्ण्यस्य) समान रूप से वरण करने वाले शिष्यों के गुरु एवं एक समान चारों या पांचों वर्णों से वरण करने योग्य राजा की (दक्षिणा) बल, उत्साह, क्रियाशक्ति, दानशक्ति, पर-छन्दानुवर्त्तिता यह सब (सिन्धुः इव) बहती जलधारा, नद नदी, वा समुद्र के समान (पप्रथे) विस्तृत होती है ।

उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा ।
यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥ १० ॥

भा०—(उत) और (दासा) भृत्य के तुल्य (स्मद्-दिष्टी) उत्तम भाग्यशाली, वा उत्तम कार्यों में आज्ञापूर्वक नियुक्त (गो-परीणसा) नाना पशु सम्पदों वाले, नाना वाणी, भूमि के स्वामी, वाग्मी भूपति

(यदुः तुर्वः च) यत्नवान् और शत्रुहिंसक प्रजाजन उसको (परिविषे) राष्ट्र विस्तार करने के लिये (ममहे) कर प्रदान करते हैं।

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥२॥

भा०—(सहस्र-दाः) सहस्रों का देने वाला, (ग्राम-नीः) जन समूह, सैन्य-समूहों का नायक, (मनुः) विचारवान् मनुष्य (सूर्येण) सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर भी (मा रिषत्) स्वयं पीड़ित न हो, न अन्यों को पीड़ित करे। उस (सावर्णेः) समान रूप से वरण करने योग्य प्रजाजनों के पुत्र के तुल्य उन्हों से उत्पादित, वृत नायक की (दक्षिणा) क्रियाशीलता, उत्साह और दानशक्ति, (यतमाना) निरन्तर उद्योग, यत्न करती हुई ही (एतु) हमें प्राप्त हो। और (देवाः) दानशील और तेजस्वी पुरुष (आयुः प्रतिरन्तु) सूर्य की किरणों के तुल्य हमारे जीवनों को बढ़ावें। (यस्मिन्) जिसमें हम (अश्रान्ताः) कभी न थकते हुए (वाजम् असनाम) अन्न, बल, ज्ञान और ऐश्वर्य का भोग करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६३]

गयः प्लात ऋषिः। देवता—१—१४, १७ विश्वेदेवाः। १५, १६ पथ्यास्वस्तिः॥ छन्दः—१, ६, ८, ११—१३ विराड् जगती। १४ जगती त्रिष्टुब् वा। १६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। १७ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ सप्तदशर्चं सूक्तम्॥

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (मनु-प्रीतासः) मनुष्यों के प्रति प्रेमवान् एवं विचारवान् मनुष्यों को प्रेम करने वाले होकर (परावतः) दूर २

देश से आकर (आप्यम् दिधिपन्ते) बन्धुत्व, वा जलों द्वारा करने योग्य सत्कार और प्राप्त जन्म और आप्तजनों के बीच दीक्षादि धारण करते हैं। और जो (विवस्वतः) धन सम्पन्न जनों वा विविध ब्रह्मचारियों के स्वामी गुरु से (जनिमं दिधिपन्ते) उत्तम कोटि का विद्या जन्म, द्विजत्व दीक्षादि धारण करते हैं, और (ययातेः) यत्नशील वा दुष्टों के दमन करने वाले के (बर्हिषि) वृद्धियुक्त आसन, पर (आसते) विराजते हैं (ते देवाः) वे देव, विद्या, ज्ञान धनादि के दाता, और तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक जन (नः अधि ब्रुवन्तु) हमें उपदेश करें और हम पर शासन करें।

विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२॥

भा०—हे (देवाः) उत्तम ज्ञानादि के प्रकाशक, धनादि के दाता, तेजस्वी जनो ! (वः) आप लोगों के (विश्वा हि नामानि) समस्त नाम और दुष्टों को दबाने वाले बल (नमस्यानि) आदर करने योग्य और (वन्द्या) स्तुति योग्य हैं। (उत) और इसी प्रकार (वः यज्ञियानि नामानि) आप लोगों के पूजा, आदर, सत्कारोचित एवं यज्ञ, दीक्षा ज्ञानोपार्जन, सत्संग दान आदि के द्वारा उत्पन्न नाम भी (नमस्यानि वन्द्या) आदरणीय और स्तुत्य हैं। (ये अदितेः जाताः स्थ) आप लोगों में से जो माता पिता वा भूमि वा राजा आदि से उत्पन्न हुए हैं, (ये अद्भ्यः परि) जो उत्तम आप्त जनों और प्रजाओं द्वारा, उनके ऊपर नेतारूप से (जाताः स्थ) उत्पन्न और प्रकट हुए हैं (ये पृथिव्याः) जो पृथिवी के ऊपर प्रसिद्ध हुए हैं (ते मे इह हवं श्रुतं) वे मेरे आह्वान, पुकार, अभ्यर्थना और वचन का श्रवण करें।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥३॥

भा०—(येभ्यः) जिनके लिये (माता) माता और यह जगत् को उत्पन्न करने वाली भूमि (मधुमत् पयः पिन्वते) मधुर गुणयुक्त दूध के समान, (मधुमत्) उत्तम अन्नयुक्त (पयः) जल को (पिन्वते) देती है। (द्यौः) तेजोयुक्त (अदितिः) कभी नाश न होने वाला पिता के तुल्य (अद्रि-बर्हाः) मेघों के उत्तम आच्छादनों से युक्त सूर्य के तुल्य आचार्य (पीयूषं) वृष्टि-जल के तुल्य नवजीवन-दायक ज्ञान प्रदान करता है, उन (उक्थ-शुष्मान्) अतिस्तुत्य बलशाली, उपदिष्ट वेद-ज्ञान से बली, (वृषभरान्) उत्तम बलयुक्त, पुत्रजनों के पोषण करने वाले (सु-अप्नसः) उत्तम रूपवान्, (तान् आदित्यान्) उन सूर्यसदृश तेजस्वियों की (स्वस्तये) उत्तम सुख-कल्याण के लिये (अनु मद) प्रार्थना कर।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥

भा०—(नृचक्षसः) समस्त मनुष्यों को ज्ञान का दर्शन कराने वाले सब के नेत्र के तुल्य, एवं सब को सूर्यकिरणवत् देखने वाले, (अनिमिषन्तः) कभी निमेष न करने वाले, सदा अप्रमादी, सावधान, (देवासः) तेजस्वी विद्वान् पुरुष, (अर्हणा) योग्य पूजा उपासना द्वारा ही (बृहत्) उस महान् (अमृतत्वम् आनशुः) अमृतमय पद, मोक्ष को प्राप्त करते हैं। वे (ज्योतिः-रथाः) ज्योतिर्मय बल वा रस को प्राप्त होकर वा तेजस्वी शरीर होकर (अहि-मायाः) अप्रतिहत बुद्धि, मेघ वा सूर्यवत् परोपकारक ज्ञान-प्रकाशक बुद्धि से युक्त और (अनागसः) निष्पाप होकर (दिवः) तेजोमय प्रभु के (वर्ष्माणं) परम स्थान को (स्वस्तये) सुख कल्याणार्थ (वसते) प्राप्त होते, उसी में रहते हैं।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥५॥

भा०—(ये सम्राजः) जो अच्छी प्रकार दीप्तियुक्त, (सु-वृधः) उत्तम रीत से स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले, (अपरि-ह्वृताः) अकुटिलाचारी, सुधार्मिक (यज्ञम् आ-ययुः) यज्ञ, आदरणीय पद वा सत्संग-योग्य मान को प्राप्त होते हैं और जो (दिवि) सु-बल, तेजस्वी, मूर्धन्य राजसभा आदि में (क्षयम् दधिरे) ऐश्वर्य को धारण करते हैं (तान्) उनकी (नमसा) नमस्कार और (सु-वृक्तिभिः) उत्तम वचनों द्वारा (आ विवास) परिचर्या कर। और उन (आदित्यान्) आदित्यसम तेजस्वी, ज्ञानी पुरुषों की और (अदितिं) अखण्ड व्रतधारी पुरुष वा प्रभु की (स्वस्तये आ विवास) कल्याण के लिये परिचर्या, सेवा किया कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ ६ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान्, ज्ञानाभिलाषी जनो! (वः) आप लोगों के (स्तोमं) स्तवन करने योग्य, उपदेष्टव्य वेदज्ञान को (कः राधति) कौन उपदेश करता है (यं जुजोषथ) जिसकी आप लोग प्रेम से सेवा करते और उपासना करते हो। हे (मनुषः) मननशील पुरुषो! हे (तुवि-जाताः) बहुत संख्या में विद्यमान जनो! आप (यति स्थन) जितने भी हो आप लोगों के (अध्वरम्) यज्ञ को (कः अरं करत्) कौन सुभूषित करता है? (स्वस्तये यः) जो इस परम सुख प्राप्ति कल्याण के लिये (नः अति पर्षत्) हमें दुःखसागर से पार कर दे।

उत्तर—(कः) जगत् का कर्त्ता प्रजापति।

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ।७।

भा०—(समिद्धाग्निः मनुः) अग्नि को प्रज्वलित कर लेने वाला, अग्नि-परिचारक ब्रह्मचारी वा आहिताग्नि गृहपति भी (मनसा) मन से

और (सप्त होतृभिः) सातों ज्ञान ग्रहण करने वाले इन्द्रियों वा शिरोगत प्राणगणों के छिद्रों द्वारा (येभ्यः) जिनके पास से (प्रथमां) सर्व-प्रथम अनादि सिद्ध, श्रेष्ठ, प्रसिद्ध (होत्राम्) वेदवाणी का (आयेजे) आदर पूर्वक ग्रहण करता है हे विद्वान् पुरुषो ! (ते आदित्याः) वे सूर्यवत् तेजस्वी आप लोग (नः शर्म यच्छत) हमें सुख-शरण प्रदान करो और (स्वस्तये) कल्याण सुख के लिये (नः पथा सुगा कर्त) हमारे लिये शुभ मार्गों का उपदेश करो वा हमारे मार्गों को सुगम करो ।

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान और हृदय वाले, और (मन्तवः) मननशील ज्ञानी पुरुष (विश्वस्य स्थातुः जगतः च भुवनस्य) स्थावर और जंगम समस्त भुवन वा जीव संसार के (ईशिरे) स्वामी, शासक होते हैं (ते) वे आप लोग (कृतात् अकृतात् एनसः) किये और न किये हुए पाप से, हे (देवासः) ज्ञान, धन, शक्ति आदि के देने और प्रकाश करने वाले जनो ! (स्वस्तये) सुख-कल्याण के लिये (अद्य नः परि पिपृत) आज हमें सब प्रकार से बचाकर परिपालन करो ।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ ९ ॥

भा०—हम (भरेषु) यज्ञों, संग्रामों तथा प्रजा के भरण-पोषण के कार्यों के निमित्त (स्वस्तये) प्रजा के योगक्षेम और कल्याण के लिये (सु-हवं) उत्तम नाम वाले, उत्तम पदार्थों को लेने देने वाले, सुखप्रद, (अंहः-मुचं) पापों से छुड़ाने वाले, (दैव्यं जनम्) देव पद के योग्य जन को और (अग्निं मित्रं वरुणं) अग्रणी, तपस्वी, तेजस्वी, स्नेही, प्राण-

रक्षक, सर्वश्रेष्ठ, और (भगं) ऐश्वर्यवान् और (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमिवत् तेजस्वी, सर्वाधार, मातृवत् उत्पादक स्त्री पुरुषों और (मरुतः) वायुवत् बलवान्, व्यापारी एवं कृषक प्रजाजनों को हम (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं। अथवा, इन्द्र, जन, अग्नि, मित्र, वरुण, द्यावा पृथिवा ये सब नाम प्रभु के हैं।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥१०॥४॥

भा०—(सु-त्रामाणं) उत्तम रीति से रक्षा करने वाली, (पृथिवीम्) अति विस्तृत, भूमि के समान विशाल, सर्वाश्रय, (द्याम्) सूर्यवत् तेजस्विनी, प्रकाशयुक्त, (अनेहसम्) मरणादि पाप, अनाचारों से रहित (सु-शर्माणम्) उत्तम सुखयुक्त, सुन्दर गृहवत्, (सु-अरित्राम्) सुन्दर चप्पुओं वाली, वा सुखपूर्वक दुष्टों से बचाने वाली, (अनागसम्) पाप कृत्यों से शून्य, संकटों से रहित, (अस्रवन्तीम्) न चूने वाली, भीतर पानी का प्रवेश न होने देने वाली, निश्छिद्र, (दैवीं नावम्) जल, अग्नि, भाप विद्युत् आदि से चलने वाली (नावम्) नौका के समान सुख से पार उतारने वाली प्रभुमयी नौका को हम (आरुहेम) आरोहण करें। इति चतुर्थो वर्गः॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥११॥

भा०—हे (विश्वे यजत्राः) समस्त सत्कार योग्य, एवं दानशील पुरुषो! आप लोग (ऊतये) रक्षा के लिये (अधि वोचत) अध्यक्षवत् होकर शासन करो। (नः) हमें (दुरे-वायाः) दुःखदायी, आती हुई विपत्ति से (अभि-ह्रुतः) चारों ओर से नाश करने वाली कुटिल चाल से (नः त्राय-ध्वम्) हमारी रक्षा करो। हे (देवाः) विद्वान् तेजस्वी पुरुषो! (वः

शृण्वतः) श्रवण करते हुए आप लोगों को हम (सत्यया) सत्य, विद्वानों के योग्य (देवहूत्या) आदरयुक्त आह्वान या वाणी द्वारा (स्वस्तये अवसे) कल्याण और रक्षार्थ (हुवेम) बुलाते हैं।

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १२॥

भा०—आप लोग (नः) हम से (अमीवाम् अप युयोतन) रोग और रोगवत् पीड़क शत्रु को दूर करो। (विश्वाम् अनाहुतिम् अप) सब प्रकार की अदानशीलता को दूर करो, और (अघायतः) हम पर अत्याचार, पाप आदि करना चाहने वाले की (अरातिम्) न देने और (दुर्विदत्राम्) दुःख पहुंचाने की चाल को भी (अप) दूर करो और (स्वस्तये) जगत् के कल्याण के लिये (नः उरु शर्म यच्छत) हमें बहुत २ सुख प्रदान करो।

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥१३॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य, सूर्य की किरणों के तुल्य प्रजा के हितार्थ अन्न, जल, कर आदि लेने हारो, ऋतुओं के सदृश प्रजा को जल अन्न, प्रकाश, ज्ञान आदि का वितरण करने वाले विद्वान् तेजस्वी, व्यापारी आदि पुरुषो ! (यं) जिसको (स्वस्तये) कल्याणार्थ (सुनीतिभिः) उत्तम नीतियों से (विश्वानि दुःइता) समस्त दुःखों और दुराचरणों वा दुर्मार्गों से (परि अति नयथ) पार पहुंचा देते हो, वह (मर्त्तः) मनुष्य (विश्वः) विविध लोकों, स्थानों को जाने में समर्थ, (अरिष्टः) अहिंसित, अनिष्टों से रहित होकर (प्र एधते) खूब वृद्धि को प्राप्त होता है और (प्रजाभिः) प्रजाओं से (धर्मणः प्र जायते) धर्माचरण से उत्कृष्ट हो जाता है।

यं दे॑वासोऽव॑थ॒ वाज॑सातौ॒ यं शूर॑साता मरुतो हि॒ते धने॑ ।
प्रा॒त॒र्यावा॑णं॒ रथ॑मिन्द्र सान॒सिमरि॑ष्यन्त॒मा रु॑हेमा स्व॒स्तये॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् जनो ! हे (मरुतः), वायुवद् बलवान् प्राणप्रद, वीर जनो ! आप लोग (वाज-सातौ) ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि लाभ के संग्राम आदि अवसरों पर (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, और (शूर-साता) वीर पुरुषों के करने योग्य संग्राम में (हिते धने) स्थिर धन को प्राप्त और उपभोग करने के लिये (यं अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! उस (रथम्) वेगवान् रथ के तुल्य उद्देश्य तक पहुंचाने वाले, (सानसिं) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य, (अरिष्यन्तम्) किसी को पीड़ा न देने वाले, राष्ट्र में उत्तम पद या शासक वा प्रभु को हम स्वस्तये) अपने कल्याणार्थ (आ रुहेम) अपना आश्रय करें ।

स्व॒स्ति नः॑ प॒थ्या॑सु॒ धन्व॑सु स्व॒स्त्य१॒॑प्सु वृ॒जने॒ स्व॑र्वति ।
स्व॒स्ति नः॑ पुत्रकृ॒थेषु॒ योनि॑षु स्व॒स्ति रा॒ये म॑रुतो दधातन ॥ १५ ॥

भा०—हे (मरुतः) वृष्टि लाने वाले वायुगणों के तुल्य अन्न जलादि के प्राप्त कराने वाले वैश्य एवं वीर विद्वान्, बलवान् जनो ! (पथ्यासु नः स्वस्ति दधातन) मार्गों के योग्य देशों में हमें सुख प्रदान करो । (धन्वसु) जल से रहित देशों में भी (नः स्वस्ति दधातन) हमें कल्याण प्रदान करो । (अप्सु) जलों पर, समुद्र, नदी आदि में, (स्वः-वति वृजने) तेज, सुख आदि से युक्त मार्ग वा, सैन्यादि बल में (नः स्वस्ति) हमें सुख, कल्याण प्रदान करो । (पुत्र-कृथेषु योनिषु) पुत्र उत्पन्न करने वाले, गृहवत् गृहणी जनों में और (राये नः स्वस्ति दधातन) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये हमें सुख प्रदान करो ।

स्व॒स्तिरिद्धि प्रप॑थे॒ श्रेष्ठा॒ रेक्ण॑स्वत्य॒भि या वा॒ममेति॑ ।
सा नो॑ अ॒मा सो अर॑णे॒ नि पा॑तु स्वावे॒शा भ॑वतु दे॒वगो॑पा ॥ १६ ॥

भा०—(प्रपथे) उत्तम मार्ग में चलने वाले का (स्वस्तिः) कल्याण हो। (श्रेष्ठा) सर्वश्रेष्ठ, अति प्रशंसायोग्य (रेक्णस्वती) उत्तम धन ऐश्वर्य और वीर्यवाली, (या) जो पृथिवीवत् (वामम् अभि एति) सेवनीय धन वा पुरुष आदि को प्राप्त होती है (सा अमा) वह सहचारिणी गृहवत् गृहणी हो। (सो) और वही, (नः) हमें (अरणे) जाने योग्य मार्ग, वा देश में, वा आनन्द सुखादि से रहित निर्जन स्थान में भी (पातु) हमारी सेनावत् रक्षा करे, वह (सु-आवेशा) सुखप्रद उत्तम आवेश अर्थात् निवास गृह से युक्त होकर (देवगोपा भवतु) उत्तम पुरुषों और उत्तम प्रिय पति से सुरक्षित हो।

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥ १७ ॥ ५ ॥

भा०—हे (विश्वे आदित्याः) समस्त तेजस्वी जनो! हे उत्तम माता पिता के उत्तम पुत्रो! हे भूमि के रक्षको! (एवं) इस प्रकार (प्लतेः) सुखों, धनों से पूर्ण करने वाले राष्ट्र का (सूनुः) शासक, (मनीषी) बुद्धिमान् पुरुष (वः अवीवृधत्) आप लोगों को बढ़ावे। हे (अदिते) मातृ पितृवत् पूज्य, सूर्यवत् तेजस्विन्! (अमर्त्येन) असाधारण (गयेन) उत्तम उपदेष्टा पुरुष द्वारा (ईशानासः) ऐश्वर्य वा शासनाधिकार करने वाले (नरः) नेताजन और (दिव्यः जनः) अन्य श्रेष्ठ जन भी (अस्तावि) उपदेश प्राप्त करे। इति पञ्चमो वर्गः॥

[६४]

गयः प्लातः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६, १०, १३, १५ निचृज्जगती। २, ३, ७, ८, ११ विराड् जगती। ९, १४ जगती। १२ त्रिष्टुप्। १६ निचृत् त्रिष्टुप्। १७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम्॥

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१॥

भा०—(यामनि) इस संसार मार्ग में (शृण्वतां देवानां) श्रवण करने वाले, ज्ञान के अभिलाषी जनों के बीच, वा हमारी वचन, स्तुति प्रार्थनादि सुनने वाले एवं ज्ञानादि देने वालों में से (कतमस्य) किस सर्वश्रेष्ठ का और (कथा) किस प्रकार (सुमन्तु नाम) सुख से मनन करने योग्य नाम और स्वरूप का (मनामहे) मनन और ज्ञान करें ? (नः कः मृडाति) हमें कौन सुखी करता है, हम पर कौन दया करता है, (नः) हमारा (कतमः) कौनसा देव (मयः करत्) सुख सम्पादन एवं कल्याण करता है । और (कतमः) कौन सर्वश्रेष्ठ होकर (नः अभि आवर्त्तति) हमारे प्रति पुनः २ आता और हमें पुनः २ भेजता है वा हमें साक्षात् प्राप्त होता वा हमें पुनः २ बनाता या पैदा करता है । मृडतिरुपदयाकर्मा ।

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२॥

भा०—(हृत्सु धीतयः) हृदयों में विद्यमान, (क्रतवः) हमारे नाना संकल्प या बुद्धियां अथवा (हृत्सु धीतयः) हृदयों में ज्ञान धारण करने वाले (क्रतवः) उत्तम कर्मकुशल जन (क्रतूयन्ति) उत्तम कर्म और ज्ञान का सम्पादन करना चाहा करते हैं । और (वेनाः) तेजस्वी, नाना कामनावान् जन (वेनन्ति) नाना कामनाएं करते हैं । वे (दिशः आ पतयन्ति) नाना दिशाओं में जाते हैं । (एभ्यः) इन उक्त कर्म करने की इच्छा करने वाले फलाकांक्षी जीवों के लिये (अन्यः मर्डिता न विद्यते) और दूसरा कोई दयालु भी नहीं है । (देवेषु अधि) आंख आदि इन्द्रियों, रूप आदि ग्राह्य विषयों, विद्वानों और दिव्य पदार्थों, सूर्य, विद्युदादि के निमित्त ही (मे कामाः) मेरी अभिलाषाएं (अयंसत) बद्ध हो जाती हैं ।

नरा॒शंसं॑ पू॒षण॒मगो॑ह्यम॒ग्निं दे॒वेद्ध॑म॒भ्य॑र्चसे गि॒रा ।
सूर्या॒मासा॑ च॒न्द्रम॑सा य॒मं दि॒वि त्रि॒तं वात॑मु॒षस॑म॒क्तुम॒श्विना॑ ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (गिरा) वाणी से (नराशंसम्) मनुष्यों द्वारा स्तुति करनेयोग्य (अगोह्यम्) सर्व प्रत्यक्ष और अन्यों से प्राप्य एवं इन्द्रियों से अगम्य (पूषणम्) सर्वपोषक और (देव-इद्धम्) विद्वानों, वा इन्द्रिय गणों से प्रकाशित, (अग्निम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, आत्मा को (गिरा अभि अर्चसे) वाणी से साक्षात् वर्णन कर । और इसी प्रकार (सूर्यामासा चन्द्रमसा) सूर्य के समान प्रकाश वाले और चन्द्र के समान सर्वाह्लादक दोनों को, और (दिवि) आकाश में (यमम्) सब को व्यवस्थित और नियम में बांधने वाले (त्रितम्) तीनों स्थानों में व्याप्त (वातं) वायुवत् जीवनप्रद और (उषसम् अक्तुम्) प्रातःकाल और रात्रिकाल और (अश्विना) दिन रात्रिवत् गृहस्थ युगल की भी (गिरा अर्चसे) वाणी से स्तुति कर ।

क॒था क॒विस्तु॑वी॒रवा॒न्कया॑ गि॒रा बृह॒स्पति॑र्वावृधते सुवृ॒क्तिभिः॑ ।
अ॒ज एक॑पात्सु॒हवे॑भि॒र्ऋक्व॑भि॒रहिः॑ शृणोतु बु॒ध्न्यो॒३॒॑ हवी॑मनि ॥४॥

भा०—(तुवीरवान् कविः) नाना ज्ञानों वाला, बहुदर्शी विद्वान् (कया-गिरा ववृधते) किस प्रकार की वाणी से वृद्धि को प्राप्त करता है । और (बृहस्पतिः) महान् विश्व, बड़े राष्ट्र का पालक (कया गिरा ववृधते) किस वाणी से बढ़ता है । (सु-वृक्तिभिः) उत्तम रीति से अज्ञान और शत्रुओं को दूर करने वाली वाणियों और सेनाओं से (एकपात् अजः) एक, अकेला, अद्वितीय ही जगत् या राष्ट्र को चलाने वाला, अकेला निर्भीक रण में जाने वाला, (अजः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ वा जगत् का सञ्चालक, अजन्मा (सुहवेभिः ऋक्वभिः) उत्तम ज्ञानप्रद, वा उत्तम रीति से बुलाने योग्य ऋचायुक्त मन्त्रों वा अर्चनादि युक्त कर्मों से (ववृधते) वृद्धि को प्राप्त है,

उसका गुणानुवाद होता है। वह (अहिः) अभ्यागत अतिथि के तुल्य वा अचल सूर्य वा मेघ के तुल्य, (बुध्न्यः) अन्तरिक्षवत् सर्वोपरि विराजमान, सर्वाश्रय एवं (बुध्न्यः) बोध, ज्ञान प्राप्त कराने वाला, (हवीमनि) आह्वान पर करने यज्ञादि में हमारे वचन श्रवण करें।

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५॥६॥

भा०—हे (अदिते) कभी नाश न होने वाले! (दक्षस्य) ज्ञान, क्रिया और उत्साह से युक्त तेरे (जन्मनि) जन्म होने पर (व्रते) अपने कर्म से (मित्रा वरुणौ) परस्पर स्नेही और वरण करने वाले स्त्री पुरुषों के तुल्य (राजाना) देह के राजावत् मुख्य प्राण और अपान दोनों को सूर्य चन्द्रवत् (आ विवाससि) प्रकट करता है। उनको कर्म में नियुक्त करता है। (अर्यमा) अरों को अपने से बांधने वाले, नाभिवत् गतिशील प्राणों और इन्द्रियों को संयम में रखने वाला, (अतूर्त-पन्थाः) अविच्छिन्न मार्ग से जाता हुआ, (पुरु-रथः) नाना इन्द्रियों में रमण या सुख भोग करता हुआ, महारथी के तुल्य, (सप्त-होता) सात ऋत्विजों के द्वारा यज्ञ के कर्त्ता यजमानवत् सातों प्राणों को धारण करने वाला होकर (विषु-रूपेषु जन्मसु आविवाससि) नाना प्रकार के जन्मों, देहों में जाता है। इति षष्ठो वर्गः॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६॥

भा०—(ये) जो (समिथे) संग्रामों में (महः धनं जभ्रिरे) बहुत सा धन और यश प्राप्त करते हैं और जो (त्मना) अपने सामर्थ्य से (मेधसाता सहस्रसा) यज्ञ में सहस्रों का दान करते हैं (ते) वे

(अर्वन्तः) ज्ञानी, आगे बढ़ने वाले (हवन-श्रुतः) ग्रहण करने योग्य ज्ञान और प्रजाओं के उत्तम आह्वान को श्रवण करनेहारे (मित-द्रवः) मित, ज्ञात मार्ग में द्रुतगति से जाने वाले, (वाजिनः) ज्ञानवान् बलवान् धनवान् पुरुष (विश्वे) सब (नः हवं शृण्वन्तु) हमारे आह्वान, पुकार एवं ग्राह्य वचन को श्रवण करें।

प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम्।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ७॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वायुं रथयुजं) रथ में लगने वाले वायु तत्व को और रथ को जोड़ कर वेग से चलने वाले वायुवद् बलवान् पुरुष को, और (पुरन्धिम्) पुर, देह के धारक आत्मावत् नगर के रक्षक को, और (पूषणम्) पोषक, स्वामी को (स्तोमैः) उत्तम स्तुत्य वचनों और पदों से (वः सख्याय कृणुध्वम्) अपने मित्र भाव के लिये चुनो। उनको अपना मित्र बनाओ। (ते हि) क्योंकि वे (देवस्य सवितुः) सर्वप्रकाशक, सर्वदाता, सर्वोत्पादक, सर्वशासक प्रभु स्वामी के (सवीमनि) शासन में (सचितः) ज्ञान से युक्त और (स-चेतसः) एकचित्त होकर (क्रतुं सचन्ते) यज्ञ तुल्य अपना कार्य करते हैं।

त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वताँ अग्निमूतये।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ८ ॥

भा०—हम लोग (ऊतये) अपनी रक्षा, सुख, समृद्धि, अन्न, स्नेह वृद्धि आदि के लिये (त्रिः सप्त) २१ प्रकार की, (सस्राः) स्रवण करने वाली, बहने वाली (नद्यः) नदियों और (महीः अपः) विशाल जलों को (वनस्पतीन् पर्वतान्) वनस्पतियों और मेघों वा पर्वतों को (अग्निम्) अग्नि और अग्रणी को, (कृशानुम्) शत्रुओं के नाशक तेजस्वी पुरुष को

(अस्तॄन्) शस्त्रास्त्रों के चलाने वाले वीरों और (तिष्यं) सन्तोषी वा तेजस्वी पुरुष को (सधस्थे) अपने एक साथ रहने के स्थान में (हवामहे) बुलाते हैं। और (रुद्रेषु) दुष्टों के रुलाने वाले जनों में श्रेष्ठ (रुद्रियम्) रुद्र पद के योग्य (रुद्रं) उत्तम आज्ञापक एवं दुष्टों के दण्डकर्त्ता को (आ हवामहे) आदर से बुलावें। तिष्यं—त्विषेस्तुषेर्वा क्यप् निपातनम्।

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥ ९ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली, (सरयुः) उत्तम ज्ञान को चाहने वाली और (सिन्धुः) नदी के तुल्य वेग से धाराप्रवाह जाने वाली, (वक्षणीः देवीः) नदियों के सदृश उदार होकर वचन बोलने वाली, (महीः) पूज्य (आपः मातरः देवीः) आप्तजन, माताएं और ज्ञानप्रद देवियें (सूदयित्न्वः) ज्ञानरस प्रदान करती हुईं (महः अवसा) बड़े प्रेम से, (आयन्तु) आवें और (नः) हमें (घृतवत् पयः) घृत से युक्त पुष्टिकारक (मधुमत्) मधुर अन्न से युक्त भोजन के समान उत्तम ज्ञान (अर्चत) प्रदान करें।

उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः
॥ १० ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (माता) माता के समान प्रिय, सब जगन्निर्माता, वा ज्ञानी (बृहद्-दिवा) बड़े दीप्ति से युक्त तेजस्विनी माता और (त्वष्टा पिता) सूर्यवत् तेजस्वी सर्वपालक प्रभु-पिता (देवेभिः जनिभिः) उत्तम पुरुषों और उत्तम देवियों के सहित (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुनें। वह (ऋभुक्षाः) महान्, (वाजः) बलवान् (रथः-पतिः) सर्व रसों

का स्वामी, (रण्वः) अति रमणीय (भगः) सर्वैश्वर्यवान्, (शंसः) सर्वस्तुत्य, सर्वोपदेष्टा (नः शशमानस्य) हम में से उत्तम स्तुतिकर्त्ता की (पातु) रक्षा करे । इति सप्तमो वर्गः ॥

रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वासदा देवास इळया सचेमहि ॥११॥

भा०—(सं-दृष्टौ) सम्यग् दर्शन होने पर वह परमेश्वर (पितु-मान् क्षयः इव) अन्नादि से समृद्ध निवासगृह के समान (रण्वः) अति सुखदायी होता है । (रुद्राणां) दुःखों के दूर करने वाले और दुष्टों के रुलाने वा सबको उपदेश करने वाले मनुष्यों का (उप-स्तुतिः) उपदेश भी (भद्रा) अति कल्याणकारी होता है । हम लोग (जनेषु) मनुष्यों के बीच (गोभिः यशसः स्याम) वाणियों, भूमियों और पशु-सम्पदाओं से यशस्वी होवें । और हे (देवासः) उत्तम विद्वान् जनो ! हम (सदा) सदा (इषा सचेमहि) अन्न, भूमि और वाणी से सदा युक्त होवें ।

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥ १२ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! वा ज्ञानदर्शिन् गुरो ! हे (देवाः) ज्ञान-प्रदाताओ ! हे (वरुण) श्रेष्ठ जन ! हे स्नेही वर्ग ! (यूयम् यां धियम्) आप लोग जिस बुद्धि और कर्म का (मे अददात) मुझे उपदेश करते हो, (ताम्) उसको (पयसा धेनुम् इव) दूध से गौ के समान (पीपयत) नाना फलों से युक्त करो । समृद्ध करो और (कुविद्) बहुत बार (रथे अधि) रथ पर (गिरः) विद्वान् पुरुषों को (अधि वहाथ) चढ़ा कर लाया करो ।

कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥ १३ ॥

भा०—(अंग मरुतः) हे विद्वान् वीर जनो ! (यथा चित्) जैसे भी हो, आप लोग (कुवित्) बहुत बार (नः सजात्यस्य) हमारे समान जाति-वर्ग, मनुष्य समूह को भी आप लोग (प्रति बुबोधथ) प्रति दिन ज्ञान प्रदान करो, उनकी भी खबर रक्खो, हम लोग (यत्र नाभा) जिस नाभि या मातृवत् एक ही देश में (प्रथमं संनसामहे) सब से प्रथम प्राप्त होते हैं (अदितिः) मातृतुल्य भूमि (तत्र जामित्वं नः दधातु) वहां हमारा परस्पर बंधुत्व पुष्ट करे ।

ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४॥

भा०—(ते हि द्यावा पृथिवी) वे सूर्य भूमि दोनों जिस प्रकार (देवान्) सब जीवों को (इतः) प्राप्त होते हैं (उभे) दोनों (उभयम्) स्थावर और जंगम दोनों को (भरीमभिः) भरण-पोषणकारी अन्न जलों से (बिभृतः) पोषण करते और (पितृभिः रेतांसि सिञ्चतः) पालक मेघों द्वारा जलों की वर्षा करते हैं उसी प्रकार (मातरा मही देवी) पूज्य माता पिता, सर्व सुखप्रद, (यज्ञिये) परस्पर एक यज्ञ, आदर-सत्कार, सत्संग पर आश्रित होकर हमें (जन्मना) जन्म द्वारा (देवान् इतः) हम जीवों को प्राप्त होते हैं । (भरीमभिः) धारक पोषक अन्नादि से (उभयं) छोटे बड़े सब को पालते हैं और (पितृभिः च) माता पिता रूपों से वे (पुरु) अनेक (रेतांसि सिञ्चतः) जलों का आदरार्थ और वीर्यों का सन्तानार्थ निषेक करते हैं ।

वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५॥

भा०—(सा होत्रा) वह सब पदार्थों के नामों और व्यवहारों को बतलाने वाली वा जिस द्वारा समस्त पदार्थ और भाव बतलाये या बुलाये

जाते हैं वह परम वाणी (विश्वम् वार्यम् अश्नोति) समस्त वरण करने योग्य इष्ट पदार्थ को व्याप रही है। वही (पनीपती) उत्तम रीति से ज्ञान का उपदेश करने वाली है, (यत्र) जिसमें कुशल पुरुष (स्मतिः) बहुत बड़ी बुद्धि वाला (बृहस्पतिः) बड़ी वाणी का पालक कहा जाता है और (यत्र) जिसमें निष्ठ (ग्रावा) उपदेष्टा (मधुषुत) मधुर ज्ञान ऋग्वेदादि का प्रवक्ता (उच्यते) कहा जाता है। (यत्र) और जिसमें, वा जिसके बल पर (मतिभिः) अपनी २ बुद्धियों के द्वारा (मनीषिणः) बुद्धिमान् पुरुष (बृहत् नवीवशन्त) उस महान् प्रभु की कामना करते हैं, उसकी उपासना करते हैं।

एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद् गयो दिव्यानि जन्म ॥१६॥

भा०—(एव कविः) इस प्रकार क्रान्तदर्शी (तुवीरवान्) बहुत ज्ञान, स्तुति से युक्त, (ऋतज्ञाः) सत्य तत्व वा ज्ञान का जानने वाला, (द्रविणस्युः) नाना ऐश्वर्य की कामना वाला होकर (द्रविणसः चकानः) नाना ऐश्वर्यों से तृप्त होता रहता है, वह (अत्र) इस लोक में (विप्रः) बुद्धिमान् (गयः) स्तुतिशील वा प्राणों वाला, देह-गृह का स्वामी होकर (उक्थेभिः मतिभिः च) उत्तम वचनों, बुद्धियों वा स्तुतियों से (दिव्यानि जन्म अपीपयत्) नाना दिव्य जन्मों को पुष्ट करता है।

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥ १७॥ ८॥

भा०—व्याख्या देखो (सू० ६३। १७ ॥) इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६५]

वसुकर्णो वासुक्रः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ६, १०, १२, १३ निचृज्जगती । ३, ७, ६ विराड् जगती । २, ८, ११ जगती । १४ त्रिष्टुप् । १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

भा०—(अग्नि) अग्नि, (इन्द्रः) विद्युत्, (वरुणः) जल या मेघ, (मित्रः) अन्न, (अर्यमा) सूर्य, (वायुः) वायु, (पूषा) सर्व-पोषक पृथिवी, (सरस्वती) उत्तम जल से युक्त वेगवती नदी, (आदित्याः) १२ मास, (विष्णुः) व्यापक आकाश, (मरुतः) अन्तरिक्ष और वायुरूप तत्व एवं देहगत नाना प्राण-बल, (स्वः) तेजवा शब्द, (बृहत् सोमः) बड़ा बलशाली, ओषधिगण, (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, प्राण (अदितिः) अखण्ड शक्तिमय प्रकृति और (ब्रह्मणः पतिः) महान् ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु, ये सब (स-जोषसः) परस्पर समान प्रीति से युक्त, एक दूसरे के अनुकूल होकर विराजते हैं और इस महान् आकाश में सर्वत्र व्याप रहे हैं।

'अन्तरिक्षम् आपप्रुः' इत्युत्तरेण सम्बन्धः। इसी प्रकार राष्ट्र में और देह में भी ये नाना तत्व इस १ नाम से परस्पर सुव्यस्थित हैं।

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥ २ ॥

भा०—(वृत्र-हत्येषु) धनों को प्राप्त करने और शत्रुओं का नाश करने के कार्यों में (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, पवन और आग के तुल्य (सम्-ओकसा) एक ही स्थान पर रहते हुए, (सत्-पती) सज्जनों के पालक होकर (तन्वा) अपनी विस्तृत शक्ति से (मिथः हिन्वानाः) परस्पर को बढ़ाते हुए, (अन्तरिक्षं आ पप्रुः) अन्तरिक्ष को व्याप्त होते हैं। और (सोमः) सोम, ओषधिवर्ग भी (घृतश्रीः) जल के आश्रय पर रहकर (ओजसा) बल वीर्य से (महिमानम् ईरयन्) अपने महान्

सामर्थ्य को बतलाता हुआ सर्वत्र भूमि में व्याप रहा है। (१) राष्ट्र में इन्द्र सेनापति, अग्नि विद्वान् पुरोहित और सोम राजा है (२) गृहस्थ में, इन्द्र पति, अग्नि स्त्री और सोम पुत्र हैं।

तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम्।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥३॥

भा०—मैं (ऋत-ज्ञाः) यथार्थ सत्य ज्ञान का जानने वाला (मह्ना महताम्) अपने महान् सामर्थ्य से महान्, उन (अनर्वणाम्) अन्य चालक की अपेक्षा न करने वाले, स्वयं गतिशील, (ऋत-वृधाम्) सत्य, बल, अन्न, ज्ञान, यज्ञ, तेज को बढ़ाने वाले वा उनसे स्वयं बढ़ने वाले (तेषाम्) उनके (स्तोमान् इयर्मि) स्तुत्य गुणों और स्तुति योग्य वचनों को कहता हूं। (ये) जो (चित्र-राधसः) बहुत धनों के स्वामी होकर (अप्सवम्) जलों के उत्पादक (अर्णवम्) जलों से पूर्ण आकाश वा मेघ को उत्पन्न करते वा वर्षाते हैं ते (सुमित्र्याः) उत्तम मित्र कहाने योग्य हैं। (ते) वे (नः) हमें (महये) महान् सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये (रासन्ताम्) उपदेश करें और ऐश्वर्य प्रदान करें।

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥४॥

भा०—(सु-रातयः) उत्तम शक्ति वाले, उदार, (देवाः) तेजस्वी, दानी, (पृक्षाः इव) अतिस्नेही बन्धुजनों के तुल्य (महयन्तः) नाना सुख प्रदान करते हुए (सूरयः) विद्वान् जन (मनुषाय स्तवन्ते) मनुष्य के हितार्थ उपदेश करते हैं। वे ही (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (स्वः-नरम्) तेजस्वी नायक को और (रोचना अन्तरिक्षाणि) रुचिकारक, सर्वप्रिय अन्तःकरणों को, (द्यावा भूमी) सूर्य और भूमिवत्

राजा प्रजावर्गों को और (पृथिवीम्) समस्त पृथिवीवत् गृहस्थ को भी (स्कंभुः) थामते हैं, व्यवस्थित करते हैं। (२) विशाल विश्व में सूर्य आदि लोक ही परस्पर अपने बलों से सूर्यों, अन्तरिक्षस्थ वायुओं, आकाश और भूमि आदि को थामते हैं।

मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ॥५।६॥

भा०—(दाशुषे मित्राय दाशुषे वरुणाय शिक्ष) वायु और जल के तुल्य दान देने वाले स्नेही, और दान देने वाले श्रेष्ठ जन के लिये तू भी प्रदान कर। (या) जो वे दोना (सम्राजा) गुणों से अच्छी प्रकार चमकने वाले सम्राट् के तुल्य होकर (मनसा) चित्त से कभी (न प्रयुच्छतः) प्रमाद नहीं करते, (ययोः धर्मणा) जिनके धारण सामर्थ्य से (बृहत् धाम) बड़ा भारी उनका तेजोमय शरीर या लोक, (रोचते) सूर्यवत् प्रकाशित होता और सबको प्रिय लगता है, और (ययोः) जिनके सामर्थ्य से (उभे रोदसी) दोनों ये लोक (नाधसी) नाना ऐश्वर्यों से युक्त (वृतौ) वर्त्तमान हैं। इति नवमो वर्गः॥

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६॥

भा०—(या) जो (गौः) भूमि, (निष्कृतम्) ठीक प्रकार से बने (वर्त्तनिम्) मार्ग को (परि एति) तय करती है, जो (पयः दुहाना) गौ के समान ही संसार के प्राणियों के लिये पुष्टिकारक जल प्रदान करती हुई (अवारतः) निरन्तर (व्रत-नीः) अन्न भी प्राप्त कराती है (सा) वह (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, पतिवत् वरण करने योग्य (विवस्वते) विविध लोकों के स्वामी, (दाशुषे) प्रकाश, शक्ति आदि के देने वाले

महान् सूर्य के सामर्थ्य को (प्रब्रुवाणा) बतलाती हुई (देवेभ्यः) जीवों के लिये (हविषा) नाना अन्न से (दाशत्) जीवन प्रदान करती है। अर्थात् पृथिवी स्वयं आकाश परिभ्रमण से ही सूर्य के महान् सामर्थ्य का पता देती है, इसी भ्रमण से ऋतुएं और अनेक धन-धान्य, वनस्पति आदि उत्पन्न होती हैं जिनसे प्राणी अन्न, जल पाते और जीते हैं।

दि॒व॒क्षसो॑ अ॒ग्निजि॑ह्वा ऋता॒वृधः॑ ऋ॒तस्य॒ योनिं॑ वि॒मृ॒शन्त॒ आस॑ते।
द्यां स्क॑भि॒त्व्य१॒॑प आ च॑क्रु॒रोज॑सा य॒ज्ञं ज॑नि॒त्वी त॒न्वी॒३॒॑ नि मा॑मृजुः॥७॥

भा०—(दिवक्षसः) सूर्य में रहने वाले सूर्य के किरण आकाश में व्यापते हैं, वे (अग्नि-जिह्वाः) अग्नितत्व की बनी जीभों के समान हैं, वे ही (ऋत-वृधः) अन्न और तेज की वृद्धि करते हैं, वे (ऋतस्य योनिं) तेज के मूल स्थान सूर्य, जल के स्थान मेघ, समुद्रादि और अन्न के स्थान भूतल को (वि-मृशन्तः आसते) विविध रूपों से स्पर्श करते हैं। वे (द्यां स्कभित्वी) आकाश और पृथिवी को व्याप कर (ओजसा) अपने तेजो-बल से (आपः आ चक्रुः) जलों को ग्रहण करते हैं वे फिर (यज्ञं जनित्वी) उसका दान करके (तन्वि) विस्तृत पृथिवी पर वा जीवों के देहों में (नि मामृजुः) अन्न को सुभूषित करते हैं। इसी प्रकार सज्जन भी (दिवक्षसः) ज्ञान को धारण करने वाले, (अग्निजिह्वाः) अग्नि के तुल्य जिह्वा से ही ज्ञान का प्रकाश करने वाले, (ऋत-वृधः) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार को बढ़ाने वाले, वे (ऋतस्य योनिम्) ज्ञान, सत्य के परम मूल कारण शास्त्र-योनिरूप परम ब्रह्म तत्व को (विमृशन्तः आसते) विमर्श, विचार करते रहते हैं। वे (द्यां) ज्ञान-विद्या को थाम कर, अपने (ओजसा) तप से (अपः चक्रुः) नाना सत् कर्म करते हैं। (यज्ञं जनित्वी) परस्पर संगति, विद्यादान और यज्ञ करके (तन्वि निमामृजुः) देह में चन्दनादिवत् उस महान् यज्ञमय उपास्य प्रभु को अपने

आत्मा में और अपने आत्मा को उस विस्तृत प्रभु में देखकर अपने को शुद्ध करते हैं।

परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि वा सूर्य और पृथिवी, (पूर्व-जावरी) सब से पूर्व उत्पन्न होकर (सम्-ओकसा) एक स्थान, अन्तरिक्ष में रहकर भी (परि-क्षिता) पृथक् रहते और (घृत-वत् पयः पिन्वते) जलयुक्त पुष्टिप्रद अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार (पितरा) माता पिता और (पूर्व-जावरी) सन्तानों से पूर्व उत्पन्न एवं प्रसिद्ध हों, वे (समोकसा) एक स्थान पर रहते हुए (परि-क्षिता) खूब ऐश्वर्य युक्त होकर, (ऋतस्य योना क्षयतः) ऋत, सत्य व्यवहार के आश्रय होकर रहें। वे (स-व्रते) समान व्रत, कर्म, आचरण, अन्नादि करते हुए (महिषाय वरुणाय) अति सुख देने वाले, वरणीय पुत्रादि के लिये (घृतवत् पयः) जल, घृतादि से युक्त अन्न, दुग्धादि प्रदान करें।

पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ६

भा०—(पर्जन्या वाता) मेघ और वायु ये दोनों (वृषभा) जल को बरसाने वाले और (पुरीषिणा) जल को धारण करने वाले होते हैं। ये दोनों ही (इन्द्र-वायू) इन्द्र और वायु नाम से हैं। और इसी प्रकार (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वस्नेही, प्रजा को मरण से बचाने वाला, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी इन (देवान्) विद्वानों और (आदित्यान्) सूर्य की किरणों वा ऋतुओं के तुल्य उपकारक जनों और (अदितिम्) भूमि, सूर्यवत् जनों को भी (हवामहे) हम बतलाते हैं, (ये)

जो (पार्थिवासः) इस पृथिवी पर भी विद्यमान हैं (ये दिव्यासः) और जो आकाश में भी हैं, (ये अप्सु) जो अन्तरिक्ष में भी हैं।

अर्थात् ये देवगण स्थान-भेद और गुण-भेद से सर्वत्र परिभाषा रूप से कहे जाते हैं।

त्वष्टा॑रं वा॒युमृ॑भवो॒ य ओह॑ते॒ दैव्या॒ होता॑रा उ॒षसं॑ स्व॒स्तये॑ ।
बृह॒स्पतिं॑ वृत्रखा॒दं सु॑मे॒धस॑मिन्द्रि॒यं सोमं॒ धन॒सा उ॑ ईमहे ॥१०॥१०

भा०—हे (ऋभवः) सत्य और प्रकाशित सामर्थ्यवान् जनो ! (यः) जो (त्वष्टारम्) इस जगत् के बनाने वाले (वायुम्) वायुवत् व्यापक एवं बलवान् प्राणाधार को (ओहते) जानता और उस तक पहुंचाता है, उसका ज्ञान देता है वा सूर्य, विद्युत् और वायु तत्व को जानता है, और जो (दैव्या होतारा) विद्वानों के बीच शक्ति देने वाले, या नाना किरणों के देने वाले सूर्य, चन्द्र और इन्द्रियों में बल देने वाले, प्राण, उदान इनको (उषसं) उषावत् कान्तियुक्त, सूर्य की तापशक्ति, और कान्तियुक्त कामनावान् जीव को, (स्वस्तये ओहते) सुख कल्याण के लिये जानता और उनको प्राप्त कराता है, और जो (बृहस्पति) वेदवाणी, वा महान् विश्व के पालक (वृत्र-खादं) विघ्नों के नाशक, अज्ञानहारी (सुमेधसम्) उत्तम बुद्धिमान्, यज्ञमय, उत्तम अन्नादि सम्पन्न, (इन्द्रियं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को जानता और जनाता और उसकी उपासना करता है, उस (सोमं) उत्तम शास्ता जन को हम (धन-साः) धनादि सम्पन्न होकर (ईमहे) ज्ञान की याचना करें।

ब्रह्म॒ गाम॒श्वं॑ ज॒नय॑न्त॒ ओष॑धी॒र्वन॒स्पती॑न्पृथि॒वीं पर्व॑ताँ अ॒पः ।
सूर्यं॑ दि॒वि रो॒हय॑न्तः सु॒दान॑व॒ आर्या॑ व्र॒ता वि॑सृ॒जन्तो॒ अधि॒ क्षमि॑ ११

भा०—(सु-दानवः) उत्तम दानशाली पुरुष (ब्रह्म) ब्रह्म ज्ञान,

अन्न, (गाम्) वाणी, पृथिवी और पशु-सम्पदा, (अश्वं) अश्व और वेग से जाने के यन्त्र, (ओषधीः वनस्पतीः) ओषधि और वनस्पतियों, (पृथिवीं पर्वतान् अपः) भूमियों, पर्वतों और नाना जलों को (जनयन्तः) उत्पन्न करते हुए और अन्यों के प्रति प्रकट करते हुए (दिवि सूर्यं रोहयन्तः) आकाश में सूर्यवत् ज्ञान-प्रकाश में प्रखर पुरुष को उन्नत पद पर स्थापित करते हुए (अधि क्षमि) भूमि पर (आर्या व्रता) नाना श्रेष्ठ वा वैश्य जनोचित अनेक व्यापारादि कार्य करते हुए धन प्रदान करते हैं।

भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः ॥१२॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् जितेन्द्रिय उत्तम स्त्री पुरुषो ! आप लोग (भुज्युम्) भोग करने की इच्छा वाले पुरुष को (अंहसः निः पिपृथः) पाप से परे रक्खो। और (वध्रिमत्याः) हिंसा की शक्ति वाली सेना के (श्यावं) वृद्धिकारक, (पुत्रं) बहुतों के रक्षक नायक पुरुष को (तिरः अजिन्वतम्) अच्छी प्रकार प्रसन्न, तृप्त रक्खो जिससे वह प्रजा का नाश न करे। (कम-द्युवम्) कान्ति एवं पुत्रादि कामना से चमकने वाली स्त्री और पुरुष को (वि-मदाय) विशेष आनन्द लाभ के लिये (ऊहथुः) परस्पर विवाहित करो। और (विष्णाप्वं) विविध विद्याओं और व्रतों में निष्णात पुरुष को (विश्वकाय) सबके उपकार के लिये (अव सृजथः) नियुक्त करो।

पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या १३

भा०—(पावीरवी) वाणों से युक्त सेना और देह आत्मादि को शोधन करने वाले नाना साधनों से युक्त (तन्यतुः) वाणी और

(एकपाद् अजः) अजन्मा, सर्व सञ्चालक, एकमात्र व्यापक प्रभु, (दिवः धर्त्ता) ज्ञान और पृथिवी वा विश्व का धारक, (समुद्रियः सिन्धुः) समुद्र को जाने वाले महानद के समान प्रभु को प्राप्त होने वाला आत्मा वा (समुद्रियः आपः) आकाश से उत्पन्न जलधाराओं के तुल्य ये नाना सृष्टियें और (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान्‌गण (पुरम्-ध्या) नाना प्रकार की देहपोषक बुद्धि से युक्त (धीभिः) नाना कर्मों वाला (सरस्वती) वेदवाणी, (मे वचांसि शृणवन्) मेरे वचनों को श्रवण करें।

विश्वे॑ दे॒वाः स॒ह धी॒भिः पुर॑न्ध्या॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः ।
रा॒ति॒षाचो॑ अ॒भि॒षाचः॑ स्व॒र्विदः॒ स्व॒१॒॑र्गिरो॒ ब्रह्म॑ सू॒क्तं जु॑षेरत ॥१४॥

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् वा विद्यार्थीगण, (धीभिः सह) नाना बुद्धियों और कर्मों सहित, (पुरन्ध्या सह) नगर को धारण करने वाली विशेष बुद्धि और नीति सहित, (मनोः यजत्राः) मननशील मनुष्यगण के द्वारा पूज्य वा उनसे संगति करने वाले, उनके पूजक (अमृताः) दीर्घायु, (ऋत-ज्ञाः) सत्य विद्या के जानने वाले, (राति-साचः) दान को ग्रहण करने वाले, (अभि-साचः) सब प्रकार से संघ बना कर रहने वाले, (स्वः-विदः) सब प्रकार के ऐश्वर्य सुखों को जानने और प्राप्त कराने वाले, (स्वः-गिरः) सुख वा सब प्रकार की वाणियों में (सु-उक्तम्) उत्तम रीति से कहे, उपदिष्ट (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान को (जुषेरत) सेवन करें।

दे॒वान्व॒सिष्ठो॑ अ॒मृता॑न्ववन्दे॒ ये विश्वा॒ भुव॑ना॒भि प्र॑त॒स्थुः ।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥१५॥११॥

भा०—(वसिष्ठः) ब्रह्मचर्यपूर्वक आश्रम में बसने वाले ब्रह्मचारी गण में सर्वश्रेष्ठ आचार्य (अमृतान्) पुत्र तुल्य चिरंजीव प्राणवान्, (देवान्) विद्या के अभिलाषियों को (ववन्दे) सदा उपदेश करे। (ये)

जो (विश्वा भुवना) समस्त लोकों में (अभि प्र-तस्थुः) जावें, (ते) वे (अद्य) अब सदा (नः) हमें (उरु-गायम् रासन्ताम्) बड़े भारी ज्ञानमय वेद का उपदेश करें। (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) ऐसे आप लोग सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करो। इत्येकादशो वर्गः ॥

[६६]

ऋषि वसुकर्णो वासुक्रः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५—७ जगती। २, १०, १२, १३ निचृज्जगती। ४, ८, ११ विराड् जगती। ६ पादनिचृज्जगती। १४ आर्ची स्वराड् जगती। १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१॥

भा०—मैं (स्वस्तये) कल्याण के लिये (बृहत्-श्रवसः) बड़े ज्ञान वाले यशस्वी, (ज्योतिः-कृतः) प्रकाशवान् सूर्य के समान ज्ञान का सम्पादन करने वाले, और (अध्वरस्य प्र-चेतसः) हिंसारहित जगत्-पालन के कार्य को जानने-वाले जनों को (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं। (ये) जो (विश्व-वेदसः) सब प्रकार का ज्ञान जानने वाले और समस्त धनों के स्वामी (इन्द्र-ज्येष्ठासः) इन्द्र, राजा और इन्द्र गुरु को अपने में सर्वश्रेष्ठ, प्रधान मानने वाले (अमृताः) दीर्घायु, चिरंजीव (ऋत-वृधः) सत्य ज्ञान, तेज, न्याय और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले होकर (प्रतरं ववृधुः) खूब वृद्धि को प्राप्त करते हैं वा सब को तराने वाले स्वामी प्रभु की महिमा को बढ़ाते हैं।

इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२॥

भा०—(ये) जो (इन्द्र-प्रसूताः) ऐश्वर्यवान् एवं तत्वज्ञानी जनों से प्रेरित और अनुशासित, (वरुण-प्रशिष्टाः) स्वयं वरण किये गुरु वा श्रेष्ठ पुरुष द्वारा उत्तम रीति से शिक्षित होकर (सूर्यस्य ज्योतिषः) सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुष के ज्ञान प्रकाश के अंश को (आनशुः) प्राप्त होते हैं और जो (सूरयः) विद्वान् होकर (यज्ञं जनयन्त) यज्ञ करते व परस्पर संगत वा उपास्य प्रभु को प्रकट करते हैं उस (माघोने) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपासक (वृजने) बलवान् (मरुद्गणे) विद्वानों और वीर पुरुषों के समूह में विद्यमान (मन्म) मननीय ज्ञान को हम धारण करें। (२) इसी प्रकार जो वायुगण सूर्य से प्रेरित होते, मेघ या आकाश या रात्रि में उत्तम रीति से चलते, सूर्य के तेज को ग्रहण करते और जलदान को प्रकट करते, उन सूर्य सम्बन्धी वायुगण का हम ज्ञान सम्पादन करें।

इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुवितार्य जिन्वतु २

भा०—(इन्द्रः नः वसुभिः नः गयम् परि पातु) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्य देने वाला हमें नाना ऐश्वर्यों और राष्ट्र में बसे नाना जनों से हमारे गृह और प्राण की सब ओर से रक्षा करे। (अदितिः) सूर्य (आदित्यैः) मासों, ऋतुओं से और भूमि माता, भूमिवासी जनों वा वा भूमि के रक्षकों द्वारा (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख प्रदान करे। (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने और सब के दुःखों को दूर करने वाला, (देवः) तेजस्वी पुरुष (रुद्रेभिः नः मृडयाति) उसी प्रकार के उत्तम पुरुषों वा पीड़ा नाशक पदार्थों द्वारा हमें सुखी करे, हम पर कृपा करे। (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (नः) हमें (सुविताय) सुख प्राप्ति के लिये, (ग्नाभिः) वाणियों से (जिन्वतु) प्रसन्न करे।

अदि॑ति॒र्द्यावा॑पृथि॒वी ऋ॒तं म॒हदिन्द्रा॒विष्णू॑ म॒रुतः॒ स्व॑र्बृ॒हत् ।
दे॒वाँ आ॑दि॒त्याँ अव॑से हवामहे॒ वसू॑न्रु॒द्रान्त्स॑वि॒तारं॑ सु॒दंस॑सम् ४

भा०—(अदितिः) कभी न दीन, न खण्डित, अविनाशी वा माता पितावत् प्रिय (द्यावा पृथिवी) भूमि, और सूर्यवत् तेजस्वी और आश्रयरूप जन, और (महत् ऋतं) महान्, सत्य ज्ञान, (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य वाला, (मरुतः) दुष्टों को मारने वाले जन, (बृहत् स्वः) बड़ा भारी तेज और प्रकाश सुख, (आदित्यान् देवान्) १२ ऋतु सुखप्रद और (वसून् रुद्रान्) आठ वसु, पृथिवी आदि और १२ प्राण और (सु-दंससं) उत्तम कर्म करने वाले (सवितारं) सब के प्रेरक और उत्पादक को हम (अवसे) रक्षा, ज्ञान, प्रेम और समृद्धि के लिये (हवामहे) प्राप्त करें और उनका आदर करें ।

सर॑स्वान्धी॒भिर्वरु॑णो धृ॒तव्र॑तः पू॒षा विष्णु॑र्महि॒मा वा॒युर॒श्विना॑ ।
ब्र॒ह्म॒कृतो॑ अ॒मृता॑ वि॒श्ववे॑दसः॒ शर्म॑ नो यंसन् त्रि॒वरू॑थ॒मंह॑सः ॥५॥१२

भा०—(सरस्वान् धीभिः) उत्तम ज्ञान और बल वाला, अपनी बुद्धियों और कर्म-सामर्थ्यों से और (धृतव्रतः वरुणः) कर्म और व्रतों, नियमों का पालक श्रेष्ठ पुरुष, (विष्णुः) सब में प्रविष्ट प्रभु अपने (महिमा) महान् गुणों से और (वायुः) वायु और (अश्विना) विद्वान्, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, और (अमृताः) अविनाशी, दीर्घजीवी, (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञान को जानने वाले, (ब्रह्म-कृतः) वेद ज्ञान का उपदेश करने वाले जन (नः) हमें (अंहसः) पाप का (शर्म) नाश करने वाला (त्रि-वरूथं) तीनों प्रकार के दुःखों का वारण करने वाला गृहवत् शरण प्रदान करें । इति द्वादशो वर्गः ॥

वृषा॑ य॒ज्ञो वृष॑णः सन्तु य॒ज्ञिया॒ वृष॑णो दे॒वा वृष॑णो ह॒विष्कृतः॑ ।
वृष॑णा॒ द्यावा॑पृथि॒वी ऋ॒ताव॑री॒ वृषा॑ प॒र्जन्यो॒ वृष॑णो वृष॒स्तुभः॑ ॥६॥

भा०—(यज्ञः वृषा) यज्ञ हमारे ऊपर समस्त सुखों की वर्षा करने वाला हो। और (यज्ञः वृषा) हमारा यज्ञ, परस्पर सत्संगति, और दान बलयुक्त हो। (यज्ञिया देवाः वृषणः सन्तु) यज्ञ में आदर योग्य विद्वान् पुरुष सुखों के देने वाले और बलवान् हों। (हविःकृतः वृषणः) अन्नों और साधनों के उत्पन्न करने वाले जन भी बलवान् हों। (द्यावा पृथिवी वृषणा) भूमि और सूर्यवत् स्त्री पुरुष भी बलवान् वीर्यवान् और (ऋतावरी) अन्न, जल और ज्ञान से श्रेष्ठ हों। (पर्जन्यः वृषा) मेघ के तुल्य शत्रु-पराजयकारी और धन बलोपार्जन करने वाला पुरुष भी सुखों का वर्षक और बलवान् हो। (वृषस्तुभः वृषणः सन्तु) उस सर्व-सुखदाता की स्तुति करने वाले भी बलवान् हों।

अ॒ग्नीषोमा॒ वृष॑णा॒ वाज॑सातये पुरुप्रश॒स्ता वृष॑णा॒ उप॑ ब्रुवे।
यावी॑जि॒रे वृष॑णो देवय॒ज्यया॒ ता नः॒ शर्म॑ त्रि॒वरू॑थं॒ वि यं॑सतः ॥७॥

भा०—मैं (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य और वेग को प्राप्त करने के लिये (अग्नी-सोमा) अग्नि और ओषधि वर्ग के तुल्य तेजस्वी और शान्तिदायक अग्नि, जल एवं विद्वानों को, (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूं, वा अग्नि जल वा अग्नि ओषधियों का मैं अन्यों को उपदेश करता हूं। और इसी प्रयोजन से मैं (पुरु-प्रशस्ता) बहुतों में प्रशस्त, इन्द्रियगण में बहुत से ज्ञान को बतलाने वाले दो चक्षुओं के तुल्य (वृषणा) बलवान् प्रभु व जनों को (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ, और (यौ) जिन दोनों को (वृषणः) बलवान् जन (देव-यज्यया) विद्वान् एवं तेजस्वी पुरुषों के आदर करने की रीति से (ईजिरे) आदर-आतिथ्य करते हैं (ता) वे दोनों। (नः) हमें (त्रि-वरूथम्) तीनों प्रकार के संतापों को वारण करने वाला (शर्म) गृह एवं सुख (यंसतः) प्रदान करें।

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥ ८ ॥

भा०—(धृतव्रताः) व्रतों, सत्कर्मों और नियमों को स्थिर रूप से रखने वाले, (क्षत्रियाः) बलवान्, (यज्ञ-निष्कृतः) यज्ञों को निःशेष अर्थात् पूर्ण रूप से करने वाले, (बृहद्-दिवाः) बड़े तेजस्वी, ज्ञानी, (अध्वराणाम्) न नाश होने वाले अजेय सैन्यों और युद्धों के बीच (अभि-श्रियः) सब प्रकार से शोभायुक्त, (अग्नि-होतारः) अग्नि में आहुति देने वाले याज्ञिकों के तुल्य अपने अग्रणी पुरुष को अपना आह्वाता, आज्ञापक मानने वाले, उसी के निमित्त अपनी आहुति देने वाले, (ऋत-सापः) सत्य प्रतिज्ञा-वचन पर समवाय, संघ बल को बनाने वाले (अद्रुहः) परस्पर वा किसी से द्रोह, वा भेद-बुद्धि न रखने वाले होकर (वृत्र-तूर्ये) दुष्टों वा बढ़ते शत्रु को नाश करने के कार्य में (अनु) निरन्तर (अपः असृजन्) कर्म या उद्योग करते हैं।

द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया।
अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३ नि मामृजुः ॥९॥

भा०—विद्वान् लोग (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी इन दोनों के आश्रय पर (व्रता) अपने नाना उत्तम कर्मों द्वारा (आपः) जलों (ओषधीः) नाना ओषधियों को और (यज्ञिया वनिनानि) यज्ञोपयोगी वृक्षों से तथा वन अर्थात् जलों से सम्पन्न अन्नों को (जनयन्) उत्पन्न करें और वे (देवासः) विद्वान् (स्वः अन्तरिक्षम्) समस्त अन्तरिक्ष देश को (देवाः) तेजस्वी होकर (ऊतये) अपनी २ रक्षा के लिये घेर लें, उस पर भी अधिकार करें। (तन्वि) शरीर में विद्यमान वे (वशं नि मामृजुः) कान्तिमान् वा नाना कामना करने वाले आत्मा को परिष्कृत

करें। इसी प्रकार (देवासः) विजयार्थी लोग (तन्वि वशं नि मामृजुः) विस्तृत राष्ट्र में तेजस्वी, वशकारी पुरुष को अभिषिक्त करें।

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम्
॥ १० ॥ १३ ॥

भा०—(दिवः धर्तारः) ज्ञान, प्रकाश और, भूमि लोक और राजसभा को धारण करने वाले लोग (ऋभवः) सत्य और तेज से तेजस्वी, चमकने वाले एवं ज्ञान में प्रसिद्ध (सु-हस्ता) उत्तम हिस्तक्रिया में कुशल और उत्तम साधनों से सम्पन्न और (वाता पर्जन्या) वायु-मेघवत् बलवान् विजेता सैन्य, नायकगण, (महिषस्य तन्यतोः) बड़े विस्तृत कार्य या शब्द के करने वाले हों। और (आपः) आप्त जन (ओषधीः) ओषधियों-वत् तेजोधारी जन (नः गिरः प्र तिरन्तु) हमारी वाणियों की वृद्धि करें। (रातिः भगः) दानशील, ऐश्वर्यवान् और (वाजिनः) अग्नि, वायु, सूर्य इन के तुल्य ज्ञान, बल और ऐश्वर्यवान् जन (मे हवं यन्तु) मेरे आह्वान को सुनकर प्राप्त हों। इति त्रयोदशो वर्गः॥

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम॥११॥

भा०—(समुद्रः) समुद्र और उसके समान गंभीर जन, (सिन्धुः) महानद, (रजः) नाना लोक, (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, (एकपात् अजः) विश्व का एकमात्र आश्रय, अजन्मा और सर्वचालक प्रभु, (तनयित्नुः) विद्युत्, (अर्णवः) समुद्र, (बुध्न्यः अहिः) जल लाने वाला वा आकाशस्थ सूर्य वा मेघ, ये और (विश्वेदेवासः) समस्त दिव्य पदार्थ (उत सूरयः) और सूर्य के किरणवत् विद्वान् जन (मे वचांसि शृणवत) मेरे वचन श्रवण करें अर्थात् सब मेरे वशवर्त्ती हों।

स्याम॑ वो मन॑वो दे॒ववी॑तये॒ प्राञ्चं॑ नो य॒ज्ञं प्र ण॑यत साधु॒या ।
आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः सु॒दा॑नव इ॒मा ब्रह्म॑ श॒स्यमा॑नानि जिन्वत १२॥

भा०—हे (मनवः) मननशील विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगों के (देव-वीतये) सुखप्रद नाना उत्तम पदार्थों और इन्द्रियों की रक्षा के लिये (स्याम) हों। (नः यज्ञं) हमारे यज्ञ (आत्मा) उपास्य जो (प्राञ्चं) स्वयं सब से अधिक पूजनीय है उसको (साधुया) साधना द्वारा (प्र नयत) अच्छी प्रकार प्राप्त करो। (आदित्याः रुद्राः वसवः) १२ मास, पृथिवी आदि लोक और १२ प्राण, ये सब (सु-दानवः) सुखप्रद होकर (इमा शस्यमानानि) इन उच्चारण किये वेद वचनों को वा प्रशंसनीय ब्रह्म अर्थात् विद्वान् जनों के कुलों को (प्र जिन्वत) बढ़ावें। अथवा ये सब पदार्थ (शस्य-मानानि) सस्य धान्य रूप से प्राप्त (इमा ब्रह्म) इन अन्नों की (प्र जिन्वत) खूब वृद्धि करें।

दैव्या॒ होता॑रा प्रथ॒मा पु॒रोहि॑त ऋ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑मि साधु॒या ।
क्षेत्र॑स्य॒ पतिं॒ प्रति॑वेशमीमहे॒ विश्वा॒न्देवाँ अ॒मृताँ॒ अप्र॑युच्छतः ॥१३॥

भा०—हे (प्रथमा) सबसे श्रेष्ठ, (पुरः हिता) आगे साक्षिवत् स्थापित, (दैव्या होतारा) देवों के बीच उनको शक्ति, ज्ञान देने वाले, उनको बुलाने वाले, उपदेष्टा गुरुजनो ! मैं (साधुया) उत्तम साधना-योग्य (ऋतस्य पन्थाम्) सत्यज्ञान युक्त, न्यायानुकूल, वेदोपदिष्ट मार्ग का (अनु एमि) अनुगमन करता हूं। और (क्षेत्रस्य पतिम्) क्षेत्र के पालक प्रकृति और देह के पालक आत्मा को जो (प्रति-वेशम्) प्रत्येक शरीर में प्रविष्ट है उसको और (अमृतान्) अमरणधर्मा, (अप्रयुच्छतः) अप्रमादी (विश्वान् देवान्) समस्त विद्वानों को (ईमहे) शरण जावें, उनसे ज्ञान, धन, सुखादि की याचना करें।

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु॥ १४ ॥

भा०—(वसिष्ठासः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ गुरुजन (पितृवत्) पिता के समान ही (वाचम् अक्रत) वाणी, वेद का उपदेश करें। वे (देवान्) विद्याभिलाषियों को (स्वस्तये) सुख कल्याण के लिये (ऋषिवत्) तत्वार्थदर्शी के तुल्य (ईडानाः) स्तुति उपदेश करते हुए (ज्ञातयः प्रीता इव) प्रिय बन्धुओं के तुल्य ही प्रसन्न और ज्ञानवान् होकर (देवासः) नाना दिव्य सुख देते हुए, (अस्मे वसु अव धूनुत) हमें नाना ऐश्वर्य प्रदान करें।

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥१४

भा०—इस मन्त्र की व्याख्या (देखो सू० ६५ मन्त्र १५) इति चतुर्दशो वर्गः॥

[६७]

अयास्य आंगिरस ऋषिः॥ बृहस्पतिर्देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २—७, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८—१०, १२ त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

भा०— (नः) हमारा पालक (ऋत-प्रजाताम्) सत्, परमकारण, सत्यभक्त ज्ञानमय तत्व से उत्पन्न (सप्त-शीर्ष्णीम्) सात शिरोंवाली (इमां) इस (धियं) बुद्धि वा वाणी, धारणवती (बृहतीम्) बड़ी भारी शक्ति को (अविन्दत्) प्राप्त करता है, और वह (विश्व-जन्यः) समस्त जनों या उत्पन्न प्राणियों और लोकों का हितकारी, (अयास्यः) देह में मुख्य

प्राणवत् प्रमुख होकर ही (इन्द्राय) इस तत्वदर्शी आत्मा को (उक्थम्) वचनोपदेश (शंसन्) करता हुआ (तुरीयं स्वित् जनयत्) तुरीय परमपद को भी प्रकट करता हुआ मुक्ति प्राप्त कराता है।

(२) अध्यात्म में—पिता आत्मा वा प्रभु है। ऋतप्रजाता सात शिरोंवाली देहधारिणी शक्ति चेतना है वह उसको प्राप्त करता है, मुख्य प्राण रूप आत्मा 'अयास्य' है वही इन्द्र प्रभु से स्तुति वचन कहता, प्रभु की स्तुति करता, मोक्ष का लाभ करता है। (३) यदि पिता परमेश्वर है तो इन्द्र जीव है तब वह जीव को गुरुवत् उपदेश कर मोक्षोपदेश करता है। राष्ट्र में विश्वजन्य अयास्य मुख्य पुरोहित है। इन्द्र राजा है सप्तशीर्णी बृहती सभा है उसका पति सभापति है। वही पिता है। ऐसी ही आगे भी योजना करना।

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥

भा०—(ऋतं शंसन्तः) 'ऋत' सत्य, न्याय और परम सत्य तत्व का उपदेश करते हुए (ऋजु दीध्यानाः) ऋजु, धर्म-मार्ग का ही दर्शन करते हुए, (दिवः असुरस्य) प्रकाशस्वरूप तेजस्वी, प्राणप्रद, बलवान् के (पुत्रासः) पुत्रवत् बहुतों के रक्षक (वीराः) वीर्यवान्, विविध विद्याओं के उपदेष्टा, (अङ्गिरसः) तेजस्वी, एवं ज्ञानी पुरुष (विप्रं पदं) विशेष ज्ञानप्रद 'पद' एवं ज्ञान को धारण करते हुए (यज्ञस्य) परम पूज्य प्रजापति के (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (धाम) तेजस्वी रूप को (मनन्त) विचारते और मनन-निदिध्यासन, अभ्यास करते और अन्यों को उपदेश करते हैं।

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

भा०—(वावदद्भिः सखिभिः) निरन्तर वा पुनः २ स्पष्ट वचन कहते हुए (हंसैः इव) हंसों के समान विवेकी, निर्लेप मित्रों के साथ वह (बृहस्पतिः) बड़ी भारी वाणी का स्वामी, (अश्मन्मयानि नहना) पत्थरों से बने नाना बंधनों को (वि अस्यन्) विविध प्रकारों से फोड़ता तोड़ता हुआ, (गाः) नाना वाणियों या, इन्द्रिय-वृत्तियों और रश्मियों को सूर्य के तुल्य (अभि कनिक्रदत्) प्रकट करता है। (उत च) और वह (विद्वान्) ज्ञानवान्, विद्वान् होकर (गाः प्र अस्तौत् उत अगायत् च) वेदवाणियों का अन्यों को उपदेश करता और स्वयं उत्तम रीति से गान भी करता है। अध्यात्म में—'अश्मन्मय बंधन' यह देह है जिसमें अस्थि आदि अश्मा ही हैं। विद्वान् परम हंसों के सहाय से इन देहवन्धनों को दूर करे, वह प्रभु की स्तुति करे। (२) सूर्य के आगे मेघमय बन्धन आते हैं वह उनको छिन्न भिन्न करके किरणों को प्रकट करता है।

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

भा०—(बृहस्पतिः) बृहती, वाणी या चेतना का पालक आत्मा, (गुहा तिष्ठन्तीः) गुहा, बुद्धि या इस देह-गह्वर में विद्यमान (गाः) इन्द्रियों या देह में प्रस्तुत रक्तधाराओं को (द्वाभ्याम् अवः एकया परः) नीचे के दो और ऊपर एक द्वार से प्रेरित करता है। वह (अनृतस्य सेतौ) ऋत, ज्ञान या चेतना से रहित, निश्चेतन जड़ तत्त्व के बने (सेतौ) बन्धन रूप इस देह में (तमसि) घोर अन्धकार में (ज्योतिः इच्छन्) प्रकाश चाहता हुआ, (उस्राः उत् आ अकः) ऊर्ध्व मार्ग की ओर जाने वाली किरणों के तुल्य वाणियों को ऊपर प्रेरित करता है वा उत्तम रीति से साक्षात् करता है। और (तिस्रः आवः) तीनों ऋक्, यजु, साम रूप वाणियों को प्रकट करता है।

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥

भा०—वह (बृहस्पतिः) बड़ी भारी शक्ति का पालक आत्मा (शयथे) शयनस्थान, गर्भ में (अपाचीम्) नीचे मुख कर लटकने वाली (ईम् पुरम् विभिद्य) इस पुर को विविध प्रकार से भेदन करके, (साकम्) एक साथ ही (उदधेः) जलाशय से तीन जलधारों के तुल्य (त्रीणि) तीन द्वारों को (निः अकृन्तत्) काटता है। तब वह (द्यौः स्तनयन् इव) गर्जते दीप्त विद्युत् के तुल्य (उषसम्) उषा, (सूर्यम्) सूर्य (गाम्) वाणी और (अर्कम्) प्राण वा अन्न आत्मा को (विवेद) प्राप्त करता है।

तीन द्वार मुख, नाक, कान। रुधिर रूप उदक का धारक यह देह या भीतर का हृदय जिससे तीन प्रमुख धमनियां निर्गत होती हैं।

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥१५

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) मेघों और जलों को विदीर्ण करने वाला विद्युत् (दुघानां रक्षितारम्) रसों से पूर्ण जलधाराओं को रोक रखने वाले (वलम्) मेघ को (करेण-इव) हिंसा वा आघातकारी साधन के सदृश तीव्र, तदनुरूप (रवेण) तीव्र, ध्वनि से भी (वि चकर्त्त) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता है, इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति वा तेजस्वी राजा (दुघानां) दुधार गौओं के सदृश ऐश्वर्य से राज्य को पूर्ण करने वाली (विशः) प्रजाओं के (रक्षितारम्) रुकावट डालने वाले (वलं) घेरा लगाने वाले प्रति-रोधक वर्ग को (करेण इव) कर, टैक्स के समान वा हिंसाकारी अपने प्रबल हाथ वा शत्रुनाशक शस्त्रबल के तुल्य बलशाली अपने (रवेण) आज्ञा-वचन के गर्जन से ही (वि चकर्त्त) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करे। जिस प्रकार (आशिरम् इच्छमानः) जल की इच्छा करता हुआ सूर्य वा

विद्युत् (स्वेदांजिभिः) स्नेह गुण से युक्त जल को प्रकट करने वाली वा मेघोत्पादक किरणों से (आशिरम्) दूर २ तक फैलने वाले सूक्ष्म जलमय वाष्प की कामना करता हुआ (पणिम्) उस मेघ को (आरोदयत) मानो रुलाता है, वर्षा करता है, जो उसके (गाः) तीक्ष्ण किरणों को (अमुष्णात्) चुरा लेता है। इसी प्रकार राजा भी (स्वेदांजिभिः) अपने अव्यक्त शासनों द्वारा वा स्नेह से प्रजा को बन्धनादि से छुड़ाने आदि से अपनी २ ख्याति वाले जनों के सहाय से (आशिरं) आशानुरूप ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहता हुआ (पणिम्) व्यवहारचतुर वैश्य वर्ग को वा व्यवहार के द्वारा प्रजावर्ग को खाने वाले उन वर्ग को (आरोदयत्) आंसू निकलवावे, उसको दण्डित करे, और जो (गाः अमुष्णात्) प्रजा की भूमियों और पशु आदि को चुरा लेता है, उनको देश से देशान्तर ले जाता है, अथवा—जो 'पणि' अर्थात् व्यवहार कुशल वैश्य वर्ग अपने अव्यक्त, गुप्त भाव वाले संकेत शब्दों से (आशिरम् इच्छमानः) ऐश्वर्य चाहता हुआ (उस्राः आरोदयत्) गौओं के सदृश प्रजाओं को रुलाता और अतिपीड़ित करता है, और (गाः) व्यापार के लोभ प्रजा की गौ आदि पशु सम्पदा को (अमुष्णात्) हर लेता है अर्थात् उनको द्रव्य के बदले ख़रीद कर देशान्तर भेजता है उसको राजा (करेण इव स्वेन) कर, टैक्स और अपने 'स्व' अर्थात् शासन से (वि चकर्त्त) विशेष रूप से काटे, उस पर अर्थदण्ड अर्थात् भारी टैक्स लगाकर उसको दण्डित करे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह (ईम्) सर्वत्र, (सत्येभिः) सज्जनों के हितैषी, सत्याचरणशील, सत्यमार्गी, (शुचद्भिः) तेजस्वी, अन्यों को भी पवित्र करने वाले, (धनसैः) नाना धनों, ऐश्वर्यों के देने, भोगने और प्राप्त करने वाले, राजा के धन को बढ़ाने वाले वृत्तिभोगी, वेतनबद्ध,

(सखिभिः) राजा के समान आख्या वा नाम को धारण करने वाले अध्यक्षों से (ईं गो-धायसम्) जलधाराओं को रखने वाले मेघ को सू जैसे वैसे ही (गो-धायसं) भूमि को रोक रखने वाले शत्रु को (वि-अदर्दः) विशेष रूप से छिन्न भिन्न कर। वह राजा (ब्रह्मणः पतिः) महान् राष्ट्र का पालक राजा (वृषभिः) वर्षणशील (वराहैः) स्वाहाकार युक्त यज्ञों से वा मेघों से और (घर्म-स्वेदेभिः) तीक्ष्ण ताप से स्वेदयुक्त शरीरों के के तुल्य (घर्म-स्वेदेभिः) क्षरणशील जलसहित गर्जना करने वाले मेघों से (द्रविणं) वेग से वहते जल के सदृश, (वृषभिः) बलवान् (वराहैः) उत्तम वचन बोलने वाले, (घर्म-स्वेदेभिः) तेजस्ताप से प्रस्वेद बहाने योग्य तपस्वी और परिश्रमी जनों से (द्रविणं व्यानट्) उत्तम धनैश्वर्य प्राप्त करे।

(२) इसी प्रकार आत्मा वृद्धिशील देह का स्वामी ब्रह्मणस्पति है। वह (गो-धायसं) इन्द्रियों के धारक देह को अपने सखिभूत शुद्ध प्राणों के द्वारा विदीर्ण कर उन से इन्द्रिय छिद्रों को उत्पन्न करता है। सुखादि देने से वही 'धनस' वा 'धनसनि' हैं। बलवान् सुखप्रद होने से 'वृष' है, श्रेष्ठ ज्ञान देने से 'वराह' और निरन्तर सेचन होने से वे स्वेद अर्थात् क्षरित होते हैं अतः 'घर्म स्वेद' है, उनसे वह 'द्रविण' अर्थात् वेग और ज्ञान प्राप्त करता है।

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८॥

भा०——(ते) वे (गाः इयानासः) नाना भूमियों को प्राप्त करने वाले माण्डलिकों के समान (गाः इयानासः) वेदवाणियों को प्राप्त करने वा इन्द्रियगण को प्राप्त करने वाले (सत्येन मनसा) सत्य चित्त और ज्ञान से और (धीभिः) सत्कर्मों से (गो-पतिम्) वेद वाणियों

के स्वामी, प्रभु वा इन्द्रियों के स्वामी, आत्मा को प्रमुख राजा के तुल्य (इषणयन्त) चाहें। वह (बृहस्पतिः) बृहती वाणी वा स्थूल देह का पालक आत्मा, (मिथः अवद्यपेभिः) परस्पर एक दूसरे को निन्दनीय आचरण से बचाते हुए (स्व-युग्भिः) स्वयं अपने आप युक्त, स्वयं अपनी गति से प्रेरित प्राणों द्वारा ही (उस्रियाः) ऊपर की ओर गति करने वाली नाड़ियों को (उद्-असृजत) ऊपर की ओर भेजता है। (२) इसी प्रकार राजा भी परस्पर एक दूसरे को निन्दनीय कर्मों से बचाते हुए (स्व-युग्भिः) धन वा स्वयं के सद्भावों से नियुक्त होकर (उस्रियाः) उन्नतिशील प्रजाओं को (उद् असृजत) उत्तम बनाता और उनको दुःख-बन्धनों से मुक्त करता है। (३) जो भक्त प्रभु की कामना करता है वह स्व अर्थात् आत्मा द्वारा योग करने वाले महाशयों अर्थात् उन्नति के इच्छुकों को उन्नत करता है।

तं व॒र्धय॑न्तो म॒तिभि॑: शि॒वाभि॑: सिं॒हमि॑व॒ नान॑दतं स॒धस्थे॑ ।
बृह॒स्पतिं॒ वृष॑णं॒ शूर॑सातौ॒ भरे॑भरे॒ अनु॑ मदेम जि॒ष्णुम् ॥ ६ ॥

भा०—हम प्रजागण, सभासद्गण (सध-स्थे) एक साथ बैठने योग्य राजसभा-भवन में (सिंहम् इव) सिंह के समान (नानदतं) निर्भय होकर गंभीर नाद करते हुए, गंभीर वचन कहते हुए (तं) उस राजा को (शिवाभिः मतिभिः) कल्याणकारिणी वाणियों और विचारों से (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए (शूर-सातौ) शूरवीर पुरुषों द्वारा करने योग्य संग्राम में (वृषणं) बलवान् शत्रुओं पर शरादि फेंकने वाले (बृहस्पतिम्) बड़ी सेना वा राष्ट्र-बल के स्वामी को (भरे-भरे) प्रत्येक युद्ध वा प्रजापालन के कार्य में (अनु मदेम) उसकी अनुकूलता से प्रसन्न करें और स्वयं भी उसके किये पर प्रसन्न हों। (२) इसी प्रकार इस देह में उत्साहवान्, सिंहवत् निर्भय आत्मा को हम प्राणों द्वारा उपभोग्य प्रत्येक कार्य में उत्तम

वाणियों द्वारा बढ़ावें, उसके उत्साह को कम न होने दें। प्रार्थनाएं उत्तम वाणियें, वेद मन्त्रादि सभी समय २ पर चित्त में उत्साह बढ़ाती हैं।

यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

भा०—(यदा) जब परमेश्वर (विश्व-रूपम्) समस्त विश्व के रूप वाले वा विश्व में रूपयुक्त, समस्त विश्व में रुचि, कान्ति और बाह्य रूप को प्रकट करने वाले (वाजम्) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्रकाश के तुल्य (असनत्) प्रदान करता है तब भी जैसे प्रकाश देने वाला सूर्य (द्याम् आरुक्षत्) आकाश में ऊपर चढ़ता है उसी प्रकार वह प्रभु भी (उत्तराणि सद्म) उत्तम से उत्तम लोकों में भी (आ अरुक्षत्) व्यापता और विराजता है, वह सर्वत्र व्यापक रहता है। हम उस (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों और ब्रह्माण्डों के स्वामी (वृषणं) सब सुखों के व ण करने वा देने वाले, उस प्रभु को (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए, उसकी महिमा का गान करते हुए (नाना संतः) अनेक जीव होते हुए भी (आसा) मुख से (ज्योतिः बिभ्रतः) ज्योति, तेज और ज्ञानमय प्रकाश को धारण करते हुए रहें। (२) इसी प्रकार राष्ट्रपति सब प्रकार का ऐश्वर्य, अन्न, घृत आदि अधीनस्थों को देता है तो वह स्वयं (द्याम् उत्तराणि सद्म) राजसभा को प्राप्त होता और उत्तम मान्य आसनों वा पदों को प्राप्त करता है, उस समय उसके अधीनस्थ सभासद् उसको बढ़ाते हुए, मुखों से तेज को धारण करें। (३) जब (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का विद्वान् (वाजम् असनत्) शिष्यों को ज्ञान का प्रदान करे तब वह (द्याम्) प्रकाशमयी ज्ञान वाणी को धारण करे और उत्तम आसनों और स्थानों को आदर पूर्वक प्राप्त करे और अनेक शिष्यगण उसके मुख से निकलते ज्ञानप्रकाश को अपने मुख में धारण करें, उसका ज्ञान श्रवण करें, स्वयं भी विद्याभ्यासी हों। ज्ञान वचनों को कण्ठ में धारण करें।

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्धयवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वयोधै) दीर्घ जीवन, ज्ञान और बल को धारण करने के लिये (सत्याम् आशिषं) सत्य २ आशीष् आशीर्वाद और सत्य आशाको सफल करो । और (स्वेभिः एवैः) अपने २ ज्ञानों और उद्योगों से (कीरिम् चित्) उपदेष्टा, ज्ञानप्रद वा प्रार्थी पुरुष की (अवथ) रक्षा करो, उससे स्नेह करो । और (मृधः) हिंसक, दुःखदायी सब आपत्तियें (पश्चा) पीछे रह जावें और (विश्वाः) समस्त (अप भवन्तु) हम से दूर, पृथक् हों । हे (विश्वमिन्वे) सबको प्रसन्न एवं पुष्ट करने वाले स्त्री पुरुषो वा राजा प्रजा वर्गो ! हे (रोदसी) रुद्र दुष्टों के रुलाने वाले वा रोग दूर करने वाले वा उपदेष्टा, सेनापति, वैद्य, गुरु आदि उसकी आज्ञा की पालक सेना, विद्या वा शक्ति के तुल्य जनो ! आप (शृणुतम्) सुनो और तदनुसार कर्त्तव्य पालन करो ।

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः॥१२॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) विद्युत् वा सूर्य वा वायु जिस प्रकार (महतः) बड़े भारी (अर्णवस्य) जल से भरे (अर्बुदस्य) मेघ के (मूर्धानं शिर के तुल्य उच्च भाग को भी (वि अभिनत्) विशेष रूप से छिन्न भिन्न करता है, और (अहिम् अहन्) मेघ को आघात करता है (सप्त सिन्धून् अरिणात्) सर्पणशील जलधाराओं को चला देता है, वे भूमि पर वह कर आती हैं । इसी प्रकार (इन्द्रः) आत्मा (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (महतः) महान् (अर्णवस्य) ज्ञान से पूर्ण (अर्बुदस्य) ज्ञान के देने वाले, अन्यों को ज्ञान देने वाले इस देह के (मूर्धानम्) शिर भाग को (अभिनत्) भेदन करता है और (अहिम् अहन्) अज्ञान

का नाश करता है, (सप्त सिन्धून्) सात प्राणों को (अरिणात्) सञ्चालित करता है, हे (द्यावा-पृथिवी) सूर्य पृथिवी के तुल्य आत्मा और देह आप दोनों (देवैः) ज्ञानप्रद प्राणों से (नः) हम जीवों की (प्र अवतम्) रक्षा करते हो। (२) राष्ट्र में द्यौ और पृथिवी, राजा प्रजा वर्ग हैं। उनकी सम्मिलित शक्तियां सब प्रजाओं की रक्षा करती हैं। वह महान् राजा हिंसक शत्रु के महान् सैन्य के शिरोनायक का नाश करता है, (अहिम्) सन्मुख आये शत्रु पर प्रहार करता और परसैन्यों को भगा देता है। (सप्त सिन्धून्) नदी-वेग से आगे बढ़ने वाले शत्रुसैन्यों को पराजित करे। इस प्रकार वे आकाश भूमि के समान आश्रय और रक्षक रूप से राजा और उसकी राज्यशासन व्यवस्था हमारी रक्षा करें। इति षोडशो वर्गः ॥

[६८]

अयास्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, १२ विराट् त्रिष्टुप्। २, ११ त्रिष्टुप्। ३—७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन् ॥ १ ॥

भा०—(मदन्तः) स्तुति करते हुए, अति प्रसन्न (अर्काः) स्तुति करने वाले भक्त जन, (बृहस्पतिम्) महान् ब्रह्माण्डों के पालक प्रभु परमेश्वर की ऐसे (अनावन्) उत्साहपूर्वक स्तुति करते हैं (उद-प्रुतः वयः न) जिस प्रकार जल पर तैरने वाले, जलचर पक्षी, हंस कलकल करते हैं। जैसे (रक्षमाणाः) समय २ पर जिस प्रकार रक्षक, खेत के रखने वाले उच्च स्वर से हांका लगाते हैं। ऐसे जैसे (वावदतः न) परस्पर आलाप वा बातचीत करते हुए स्नेह के प्रवाह में बात करते हों,

रहते हैं, ऐसे जैसे (अभ्रियस्य घोषाः न) मेघ के गर्जन होते हैं, ऐसे जैसे (गिरिभ्रजः ऊर्मयः न) मेघ से गिरने वाली जलधाराएं वा पर्वत से झरने वाले झरने अनवरत प्रवाह से बहते हैं। इन नाना प्रकारों से स्तुतिशील जन प्रभु की स्तुति करते हैं, स्तुति करने वालों के ध्वनि, विचार-प्रवाह और उपास्य-उपासक का साक्षाद्-भाव इन अनेक दृष्टान्तों से समझना चाहिये।

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥

भा०—(आंगिरसः) अंगारों में अग्नि जिस प्रकार (नक्षमाणः) तेज से फैलता हुआ (गोभिः सं निनाय) अपनी किरणों से मनुष्य को अन्धकार में भी सन्मार्ग पर लेजाता है, उसी प्रकार (आंगिरसः) अंगों में रसों के समान विद्यमान देह में व्यापक आत्मा वा अंगिरा ज्ञानवान् पुरुषों का प्रमुख विद्वान् (नक्षमाणः) विद्या-क्षेत्र में अधिक व्यापक ज्ञान रखता हुआ (गोभिः) वाणियों के द्वारा (सं निनाय) शिष्य को सन्मार्ग पर ले चले। और (भग इव इत् अर्यमणम्) सेव्य ऐश्वर्यवान् प्रभु जिस प्रकार (गोभिः) आज्ञावाणियों से सेवक को, उसी प्रकार प्रभु स्तुतिशील भक्त को (गोभिः सं निनाय) वेदवाणियों से सन्मार्ग पर लाता है। (मित्रः) वह सबका स्नेही, मृत्यु से बचाने वाला प्रभु (जने) इस जन्म में हमें सन्मार्ग से ले जाय। अथवा (जने) जन समूह में जिस प्रकार (मित्रः दम्पती अनक्ति) स्नेही पुरुष पुरोहित वर-वधू, जाया-पत्नी दोनों को (सम्) परस्पर एक दूसरे को सामने-सामने कर स्नेह करने की प्रेरणा करता, दोनों को मिलाकर एक करता है उसी प्रकार (जने) इस जन्म में (मित्रः) ज्ञानवान्, मृत्यु-भय से त्राण करने वाला प्रभु (सम् अनक्तु) साक्षात् दर्शन दे।

(आजौ) संग्राम में जिस प्रकार वीर सेनापति (आशून्) वेगवान् अश्वों को (वाजयति) वेग से चलाता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् गुरु एवं ब्रह्माण्ड का स्वामी प्रभु (आजौ) जगत् रूप विजय के क्षेत्र में (आशून्) कर्म फल के भोक्ता जीवों को (वाजय) उत्तम अन्नवत् भोग्य कर्मफल प्रदान करे।

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः॥३॥

भा०—जिस प्रकार कृषक, परिश्रमी जन (पर्वतेभ्यः) पर्वतों से (गाः) गतिशील जलधाराओं को (वि-तूर्य) विशेष रूप से या विविध प्रकार से काटता है और (यवम् निः ऊपे जौ आदि धान्य बोता है और जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् पर्वतेभ्यः) मेघों से (गाः) जल-धाराओं को (वि-तूर्य) विशेष रूप से निकाल कर बिन्दु रूप से भूमियों पर डालता है, मानो भूमियों पर जौ छिटकाता है, उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वह महान् ब्रह्मांण्ड की बड़ी २ शक्तियों का स्वामी (स्थिविभ्यः) स्थिर, (पर्वतेभ्यः) पूर्ण और पालन शक्तियों से सम्पन्न सूर्यादि पदार्थों से जीवनशक्ति के तत्वों को (गाः निरूपे) अनेक भूमियों के प्रति ऐसे फेंकाता है जैसे भूमियों पर जौ छिटकाता हो। ये भूमियां कैसी हैं? जैसे ये भूमियां (साधु-अर्याः) उत्तम स्वामियों और वैश्य जनों से युक्त हैं उसी प्रकार वे अनेक पृथिवियां भी (साधु-अर्याः) सूर्य सदृश उत्तम पालकों से युक्त हैं, (अतिथि-नीः) अपने ऊपर के अध्यक्ष कृषक को अन्न देती हैं, इसी प्रकार वे पृथिवियें भी (अतिथि-नीः) निरन्तर गति करने वाली (इषिराः) ये भूमियां अन्न आदि देने वाली, इसी प्रकार अनेक पृथिविएं (इषिराः) अन्य सूर्यादि प्रेरकों से प्रेरित होकर चलने वाली हैं। ये (स्पार्हाः) चाहने योग्य, (सु-वर्णाः) उत्तम वर्ण वाली, (अनवद्य-रूपाः) अनिन्दनीय रूप

वाली हैं। (१) इसी प्रकार वह बृहस्पति परमेश्वर (पर्वतेभ्यः स्थिविभ्यः) स्थिर पालकों के हाथ (गाः वितूर्य) अभिगमनीय वधुओं को प्रदान करके (यवम् इव) भूमियों में जौ के तुल्य ही सन्तानोत्पादक वीजों के निर्वाप करता है, और जीव सृष्टि को उत्पन्न करता है। वे स्त्रियां कैसी हों (साधु-अर्याः) उत्तम स्वामी वाली, (अतिथिनीः) अतिथियों को अन्न जल से सत्कार करने वाली वा अतिथि के तुल्य वर के प्रति ले जाये जाने योग्य, (इषिराः) इच्छा करनेहारी, (स्पार्हा) प्रेम करने योग्य, (सु-वर्णाः) उत्तम वर्ण वाली, (अनवद्य-रूपाः) अनिन्दित रूप, वर्ण, अंगों वाली हों।

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का स्वामी, विद्वान् (ऋतस्य योनिम्) सत्य ज्ञान के प्रदान करने के योग्य पात्र के (मधुना) ज्ञान-मय मधु से (आ-प्रुषायन्) सब प्रकार से इसी प्रकार पूर्ण करता है जैसे मेघ (ऋतस्य योनिम्) जलाशय को (मधुना) जल से पूर्ण करता है। वह (अर्कः) स्वयं पूजनीय, स्तुतियोग्य वा सत्य ज्ञान का उपदेष्टा ज्ञान का प्रकाश सत्पात्र को इस प्रकार देता है जैसे (अर्कः द्यौः उल्काम् अवक्षिपन् इव) विद्युत् आकाश से चमकती धाराओं को नीचे डालती हैं। वह विद्वान् (अश्मनः) सर्वव्यापक प्रभु से वा उसकी (गाः) वेद-वाणियों को इस प्रकार (उत् हरन्) उत्तम रीति से ग्रहण करता है वा ऊपर से उदारता से प्रदान करता है जैसे (अश्मनः गाः) विशाल पर्वत से जल की धाराओं को वा जैसे मेघ से आती जलधाराओं को बड़ी उदारता से प्राप्त किया जाता है। जिस प्रकार (उद्ना) जलधारा वा उसके निमित्त से (भूम्याः) भूमि की (त्वचम्) ऊपर के आवरण-पृष्ठ को कोई

इनजिनियर पाटता है और नहर बना लेता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (भूम्याः) ज्ञान धारण के योग्य उत्तम भूमि रूप शिष्य बुद्धि के (त्वचम्) अज्ञान के आवरण को (मधुना) ज्ञान से (वि बिभेद) विविध प्रकारों से दूर करे। (२) इसी प्रकार गुरु के समान प्रभु भी साधक को ऐश्वर्यादि प्रदान करता है और राजा प्रजा के प्रति ऐसा व्यवहार करता है।

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः॥ ५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) अन्धकार को (अप आजत्) दूर करता है और जिस प्रकार (वातः) तीव्र वायु (उद्नः) जल के पृष्ठ पर से (शीपालम् इव) सेवार या काई के आवरण को दूर करता है और जिस प्रकार (वातः) वेग वाला वायु (अभ्रम् इव अप) मेघ को दूर करता है उसी प्रकार (ज्योतिषा) ज्ञान के प्रकाश से (अन्तरिक्षात्) अपने शासन में स्थित शिष्य से (तमः) अज्ञान अन्धकार को (अप आजत्) दूर करता है। और (बृहस्पतिः) ज्ञानवाणी का पालक गुरु (वलस्य) आवरणकारी अज्ञान की मात्रा का (अनु-मृश्य) बलाबल विचार कर तदनुसार वह (आ चक्रे) वेदवाणियों का उपदेश करता है। (२) इसी प्रकार प्रभु साधक के अन्तःकरण से अज्ञान का आवरण दूर करता है। (३) इसी प्रकार प्रजा को घेरने वाले शत्रु को भी राजा दूर करता है।

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम्॥६॥१७॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़ी भारी सेना और राज्यव्यवस्था का

पालक पुरुष (पीयतः) प्रजा के पीड़क (वलस्य) राष्ट्र को चारों ओर से घेरने वाले शत्रु के (जसुं भेत्) नाशकारी सैन्य वा शस्त्र-बल को भेदन करता है, उसमें फूट डालकर वा शस्त्रास्त्र बल से उनको तोड़ फोड़ देता है और जिस प्रकार (जिह्वा दद्भिः परिविष्टं) जीभ दांतों से पिसे अन्न को (आदत्) खा लेती है उसी प्रकार वह भी (अग्नितपोभिः) अग्नि वा सूर्य के समान अग्निमय अस्त्रों से शत्रु को संताप जनक (अर्कैः) किरणों, अस्त्रों वा तेजस्वी पुरुषों के सन्धि आदि वचनों से (परिविष्टम्) चारों तरफ फैले शत्रु को भी (आदत्) खा जावे, उनको ग्रस ले वा नष्ट करे और (उस्रियाणां) भूमियों के (निधीन्) अन्न, सुवर्णादि धातुओं और रत्नादि रूप खज़ानों को (आविः अकृणोत्) प्रकट करे। (२) उसी प्रकार वेदवाणी का पालक ज्ञानी पुरुष नाशकारी अज्ञान, मोह के विनाशक प्रभाव को छिन्न भिन्न कर अग्नि के तुल्य तपों वाले (अर्कैः) अर्चना योग्य वेद मन्त्रों द्वारा वाणी के तुल्य ही (परि-विष्टम्) सर्व-व्यापक प्रभु का (आदत्) ग्रहण करे, उसका ज्ञान प्राप्त करे और (उस्रियाणां निधीन्) वाणियों के परम निधियों रूप आश्रमों को (अकृणोत्) उत्पन्न करे। नाना शिष्यों को विद्वान् वेदनिधि बनावे।

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत्॥७॥

भा०—(बृहस्पतिः) वेदवाणिया का पालक गुरु, विद्वान् एवं प्रभु (स्वरीणां) स्वरपूर्वक शब्दोच्चारण से गाने योग्य (आसां) इन वाणियों के (त्यत् नाम अमत) उस स्वरूप को भी जानलेता है, (यत् गुहा) जो कि गुहा अर्थात् बुद्धि के भीतर चिन्तनीय रूप से होता है। (यत्) जिस प्रकार (शकुनस्य आण्डा इव भित्वा) पक्षी के अण्डों को फोड़ कर गर्भरूप बच्चों को प्रकट करता है उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेद का विद्वान्

पुरुष, (त्मना) अपने आत्म सामर्थ्य से (शकुनस्य) महान् शक्तिशाली सब जगत् को उठा कर सञ्चालित करने वाले प्रभु के (आण्डा भित्त्वा) अनेक ब्रह्माण्डों का अवयवशः ज्ञान करके (पर्वतस्य) सब के पालक प्रभु के (गर्भम्) जगत् के ग्रहण या वश करने के सामर्थ्य को जाने, (उस्रियाः) जलधाराओं के तुल्य वा गौओं के तुल्य ज्ञान-रसधारा प्रदान करने वाली वाणियों को (उत् आजत्) प्राप्त करे।

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥

भा०—(दीने उदनि) अल्प, हीन, क्षीण वा बंधे जल में (क्षियन्तं मत्स्यं न) रहते हुए मत्स्य के समान व्याकुल (मधु) उस मधुर रसवान् आत्मा को विद्वान् ज्ञानी पुरुष (अश्ना अपिनद्धम्) सुख दुःखों के भोगप्रद देह के साथ बंधा हुआ (परि अपश्यत्) देखता है। (वृक्षात् चमसं न) वृक्ष से खाने योग्य फल के समान (तत्) उसको वह (विरवेण) विशेष शब्दमय ज्ञानभण्डार वा ओंकार-नाद से (वि-कृत्य) विशेष साधना करके उसके बंधे बन्धन को काट कर अपने को (निर्जभार) मुक्त कर ले। अर्थात् जिस प्रकार (विरवेण = विलवेन) विशेष काटने या छेदने योग्य शस्त्र से वृक्ष पर लगे फल को काटकर पृथक् कर लिया जाता है उसी प्रकार वह भी बंधे आत्मा के बन्धन को (विरवेण विकृत्य) विशेष ओंकार या वेदमय शब्द द्वारा विशेष परिष्कृत करके बन्धन से मुक्त करे। फल के मूल वृक्ष से अलग होने के दृष्टान्त मुक्त होने में अन्य भी हैं जैसे 'उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो मुक्षीयमामृतात्।' वह आत्मा मधु अशना-पिपासा से बंध कर इस देहरूप वृक्ष में बंधा रहता है। यहां वह छोटे से छप्पड़ में मच्छी के सदृश बड़ा व्याकुल होता है।

सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह साधक (उषाम्) अपने साधना मार्ग में उषा=प्रभात वेला के तुल्य पापों वा कर्म-बन्धनों को भस्म कर देने वाली ऋतंभरा, ज्योतिष्मती, विशोका प्रज्ञा को (अविन्दत्) प्राप्त करे। (सः स्वः) वह सूर्यवत् तेजोमय आत्मा को प्राप्त करे। (सः अग्निम्) वह अग्नि के तुल्य स्वयंप्रकाश रूप आत्मा को प्राप्त करे। (सः) वह (अर्केण) मन्त्ररूप ज्ञान के प्रकाश से अन्धकार के तुल्य (तमांसि वि बबाधे) अनेक अन्धकारों को विनष्ट करे। (बृहस्पतिः) बड़े भारी व्रत वा शक्ति का पालन करने वाला विद्वान् (गो-वपुषः) गौ, इन्द्रियों के सहित देहरूप में बने (वलस्य) आत्मा को आवरण करने वाले इस काय-बन्धन के (पर्वणः) एक २ पोरु में से अपने बद्ध आत्मा को (मज्जानं न निः जभार) ऐसे अलग करे जैसे पोरु २ में से मज्जा धातु को वा (वलस्य पर्वणः) फल को घेरने वाली गांठ वा गुठली वा अखरोट में से को मींगी निकाल लेते हैं।

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः॥ १०॥

भा०—(हिमा इव पर्णा) हिम, पाला वा हेमन्त काल जिस प्रकार वृक्ष के पत्तों को झाड़ देता है उसी प्रकार (बृहस्पतिना) उस महान् शक्ति से (वनानि मुषिता) नाना भोग बन्धन वा वनों के समान उच्छेद्य बन्धन दूर किये जायं। (वलः) आवरणकारी यह देह-बन्धन उस समय (गाः) आत्मा की शक्तियों और इन्द्रिय सामर्थ्यों को भी (अकृप-यत्) प्रदान करता है, त्याग देता है। साधक ऐसी साधना करे कि वह (अपुनः अननुकृत्यम्) पुनः जन्म-मरण में न फंसे और फिर दूसरी वार उसे उद्योग न करना पड़े अर्थात् दूसरी वार फिर बन्धन न काटने पड़ें (यात्) जब तक भी (सूर्यामासाः मिथः उत् चरातः) सूर्य और चन्द्र, दिन और

रात्रि उदय हों, अर्थात् यावच्चन्द्रदिवाकरौ पुनः फिर २ यत्न न करना पड़े। अर्थात् यह मुक्ति का काल भी एक महा कल्प के समान ही है।

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
राव्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः॥११॥

भा०—जिस प्रकार लोग (श्यावं अश्वम्) काले-काले रंग के, तेलिया कमैत या काले रंग के घोड़े को (कृशनेभिः अपिंशन्) नाना सुवर्णमय आभूषणों से सुशोभित करते हैं और (पितरः) विद्वान् लोग (नक्षत्रेभिः) नक्षत्रों से (द्याम् अपिंशन्) आकाश चक्र को विभक्त करते हैं, (राव्याम् अदधुः) रात्रिकाल में अन्धकार को विशेष लक्षण से स्थिर करते और (अहन् ज्योतिः अदधुः) दिन के समय में प्रकाश को विशेष लक्षण से स्थिर करते और (बृहस्पतिः) जिस प्रकार महान् आकाश का सूर्य वा भारी बलशाली विद्युत् वा वायु (अद्रिम् भिनत्) मेघ को छिन्न भिन्न करता है, और (गाः विदत्) सूर्य की किरणों और जलधाराओं को प्राप्त कराता है, उसी प्रकार (बृहस्पतिः) वेदवाणी का विद्वान् पुरुष (अद्रिम् भिनत्) विदीर्ण न होने वाले दृढ़ अज्ञानावरण को दूर करे और (गाः विदद्) वेदवाणियों को प्राप्त करे और अन्यों को भी बतलावे। (२) अध्यात्म में—विद्वान् जन (कृशनेभिः) नाना साधनों से, अश्ववत् भोक्ता और यावत् ज्ञानवान् आत्मा को भूषित करते हैं वे ही (पितरः) नाना यम-नियमों के पालक होकर (द्याम्) स्वप्रकाश रूप, इच्छावान् आत्मा को (नक्षत्रेभिः) दूर तक जाने वा व्यापने वाले अनेक इन्द्रियगत प्राणों से (अपिंशन्) भूषित करते, चमकाते और निरूपण करते हैं। उसकी रात्रि के समान निद्रावृत्ति में तमोगुण का और अहनि = दिन की प्रकाश दशा में ज्योतिर्मय सत्व का ही स्थिर निश्चय करते हैं, तब बृहती वाणी का पालक, मुनिवत् साधक अज्ञान-आवरण को नाश करके ज्ञान-

मय रश्मियों वा सत्य वाणियों को प्राप्त करता है। वह वाक्सिद्ध हो जाता है। (२) राष्ट्र पक्ष में—राष्ट्र के पालक, (कृश) राष्ट्र को नाना उद्योगों से, सुवर्णादि धन-सम्पदों से अश्व को आभूषणों से जैसे सुशोभित करें (द्याम्) वे नक्षत्रों से आकाशवत् भूमि को भी (नक्षत्रैः) स्थिर स्थायी पुरुषों, अविचल शासकों और अहिंसक रक्षकों को नदी, पर्वत आदि स्थिर चिन्हों से नाना विभागों में बांटें, विद्वान् लोग दिन रात का विभाग प्रकाश और अन्धकार से निर्णय करें और युद्ध नायक पर्वत वा जलमय मेघ के समान (अद्रिम् भिनत्) शत्रु के दृढ़ सैन्य को भेदें और (गाः विदत्) नाना पशु और भूमियां हस्तगत करें।

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात्
॥ १२ ॥ १८ ॥ ५ ॥

भा०—जो विद्वान् (पूर्वीः) पूर्व आचार्यों की ज्ञान से पूर्ण और सनातन से विद्यमान वाणियों का (अनु आनोनवीति) एक के बाद एक परम्परा से शिष्यों को अविलुप्त बना कर उपदेश करता है। (अभ्रियाय) मेघ के तुल्य इस प्रकार उदारता से गंभीरतापूर्वक उपदेश के लिये (नमः अकर्म) हम नमस्कार, अन्नादि सत्कार करें। (सः) हमारे बीच में वह (गोभिः अश्वेभिः वीरेभिः) गौओं से, अश्वों से और वीरों से, (सः नृभिः) वह अन्य नायकों वा मनुष्यों द्वारा (नः वयः धात्) हम में बल और शक्ति प्रदान करे॥ इत्यष्टादशो वर्गः॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

[६९]

सुमित्रो वाध्र्यश्वः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २ विराड् जगती । ३, ७ त्रिष्टुप् । ४, ५, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ८, १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९, ११ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

भद्रा अ॒ग्नेर्व॑ध्र्य॒श्वस्य॑ सं॒दृशो॑ वा॒मी प्रणी॑तिः सु॒रणा॒ उपे॑तयः ।
यदीं॑ सुमि॒त्रा विशो॒ अग्र॑ इ॒न्धते॑ घृ॒तेनाहु॑तो जरते॒ दवि॑द्युतत् ॥१॥

भा०—(वध्र्यश्वस्य) घोड़ों के समान इन्द्रियों का वेग शान्त करके इन्द्रियों को वश करने वाले संयमी पुरुष की (अग्नेः) उस प्रकाश-स्वरूप ज्ञानवान्, सब के आदि सञ्चालक परमेश्वर के विषय में (सं-दृशः) अच्छी प्रकार से किये दर्शन (भद्राः) बहुत उत्तम, कल्याणकारक और सुखजनक होते हैं। उसकी (प्रणीतिः) उत्तम नीति, वाणी या व्यवहार भी (वामी) सब को सुखजनक होता है। उसके (उपेतयः) अन्यों के समीप आगमन भी (सुरणाः) सुखजनक उपदेश और हर्षदायक होते हैं। (यत्) जब (ईम्) इसको सब प्रकार से (सुमित्राः विशः) उत्तम स्नेही प्रजाएं उसके (अग्रे) सबसे प्रथम यज्ञाग्नि के तुल्य प्रमुख पद पर (इन्धते) प्रदीप्त या प्रतिष्ठित करते हैं, उसे विद्या और शील की शिक्षा से उज्ज्वल करते हैं। वह (आहुतः) आदर से स्वीकृत और आमन्त्रित होकर (घृतेन आहुतः) घी से आहुति प्राप्त अग्नि के सदृश, (घृतेन आहुतः) ज्ञान-प्रकाश से शिक्षित होकर (विद्युतम्) विशेष दीप्ति से चमकता हुआ, तेजस्वी होकर (जरते) ज्ञानोपदेश करता है। (२) राजा के पक्ष में—राजा स्वयं वध्र्यश्व है। 'वध्रि' अर्थात् तीव्र वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी वा 'वध्रि' शत्रुओं का वध करने वाले अश्व अर्थात् राष्ट्र-बल-सैन्य का स्वामी सेनापति वा राजा वही तेजस्वी अग्नि है। उसकी (दृशः भद्राः) सम्यक् दृष्टि सब प्रजाओं को सुख कल्याण-कारिणी हों। उसकी (प्र-नीतीः वामीः) उत्तम नीतियां सब को कल्याण-कारी हों। (उप-इतयः सुरणाः) उसके आगमन प्रजाओं के रक्त शोषण के लिये न हों प्रत्युत (सुरणाः) सुखप्रद, आनन्दोत्सव के लिये हो। (विशः सुमित्राः ईम् अग्रे इन्धते) प्रजाएं उसकी मित्र होकर उसको अग्रासन पर प्रकाशित करें। वह (घृतेन आहुतः) घृत से आहुति

प्राप्त अग्नि के तुल्य (घृतेन आहुत) तेज से व्याप्त होकर वा (घृतेन आहुतः) जल से अभिषिक्त होकर (द्यविद्युतत्) चमकता हुआ (जरते) प्रजा पर आज्ञा-दान आदि से शासन करे।

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम्।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः॥२॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नेः) अग्नि का (घृतम् वर्धनम्) घृत अर्थात् धारारूप से सेचन करने योग्य घी ही वृद्धि का कारण होता है, इसी प्रकार (वध्रि-अश्वस्य) शत्रु के वधकारी, वेगवान् अश्व, सैन्य इत्यादि का स्वामी, विजयी, अग्रगी नायक का भी (घृतम्) तेज ही (वर्धनम्) वृद्धि कारक और शत्रु को काट गिराने का साधन है। जिस प्रकार अग्नि का (घृतम् अन्नम्) घी ही अन्न के तुल्य खाद्य है उसी प्रकार सेनापति विजयी का भी (घृतम् अन्नम्) तेज ही प्राण धारण कराने वाला है। (घृतम् उ अस्य मेदनम्) घृत ही जिस प्रकार अग्नि का पोषणकारक है, उसी प्रकार (घृतम् उ अस्य मेदनम्) तेज ही इस सेनानायक दण्डाध्यक्ष का 'मेदन' अर्थात् अन्य शत्रुओं के साथ स्नेह वा संधिपूर्वक मिलने का कारण होता है, उसमें यह तेज न हो तो अन्य शत्रु उस पर चढ़ाई कर उससे विग्रह कर लें। (घृतेन आहुतः वि पप्रथे) घृत की आहुति पाकर जिस प्रकार अग्नि बढ़ता है उसी प्रकार वह भी अपने (घृतेन) तेज और अभिषेक से (आ-हुतः) आदरपूर्वक प्रमुख अध्यक्ष स्वीकृत होकर विशेष रूप से ख्याति लाभ करे। (सर्पिः-आसुतिः) जिस प्रकार अग्नि घृत की आहुति पाकर (सूर्यः इव रोचते) सूर्य के तुल्य दीप्ति से चमकता है उसी प्रकार राजा वा सेनाध्यक्ष (सर्पिः-सुतिः) सर्पण अर्थात् आगे बढ़ने वाले सैन्यों के बल से ऐश्वर्य को अपने चारों ओर लिये हुए, (सूर्यः इव) वेगवान् किरणों के ऐश्वर्य से युक्त सूर्य के समान (रोचते) शोभा देता है।

यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी,-सेना वा प्रजा को सन्मार्ग पर ले चलनेहारे राजन् ! (ते) तेरे (यत्) जिस (अनीकम्) मुख्य प्राणवत् बलयुक्त सैन्य का (मनुः) ज्ञानवान् और शत्रु की रोक थाम करने में कुशल पुरुष और (सु-मित्रः) सुखपूर्वक शत्रु से मारे जाने से बचाने वाला वीर पुरुष (सम्-ईधे) प्रदीप्त या प्रज्वलित करता है, (तत् इत्) वह बल ही (नवीयः) सबसे अधिक स्तुति योग्य होता है। (सः) वह तू (रेवत्) ऐश्वर्यवान् होकर (शोच) खूब २ चमक। (सः) वह तू (गिरः जुषस्व) ज्ञान वाणियों, स्तुतियों वा उत्तम उपदेष्टाओं को प्रेम से स्वीकार कर (सः) वह तू (वाजं दर्षि) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य अन्यों को प्रदान कर और शत्रु के (वाजं दर्षि) बल आदि को विनष्ट कर। (सः) वह तू (इह) इस लोक में (श्रवः धाः) अन्न, यश और कीर्त्ति को धारण कर।

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वप्रकाश ! राजन् ! प्रभो ! (वध्रि-अश्वः) वेगवान्, बलवान् वशीभूत इन्द्रियों और अश्वादि से सम्पन्न जन भी (ईडितः) तुझे चाहता और तेरी स्तुति उपासना करनेहारा होकर (पूर्वम् यम् त्वा) पूर्व विद्यमान वा पूर्व वा सर्वपालक तुझ को (सम् इंधे) प्रज्वलित करता है, (सः) वह तू (इदम् जुषस्व) इस जगत् को राष्ट्रवत् स्वीकार कर। (उत) और तू (नः स्तिपाः भव) हमारे घरों, देहों का पालक हो। (उत) और तू

(नः तनूपाः भव) हमारे देहों वा पुत्र-पौत्रादि सन्तानों का भी पालक हो। (यत्) जो (इदं) यह जगत् भर (अस्मे) हमारे लिये (ते दात्रम्) तेरा उदार दान है, तू उसे हमारे लिये (रक्षस्व) बनाये रख। वा उस दान से हमारा पालन कर। अग्नि, तेज, प्रकाश, ताप, जल, विद्युत्, भूमि आदि समस्त प्राकृतिक ऐश्वर्य जीवों के प्रति प्रभु की देन हैं। जिनसे वह समस्त जीवों को पालता है उनसे ही संहार भी करता है। यहां पालने की प्रार्थना है। इसी प्रकार प्रजा की राजा से प्रार्थना भी है।

भवा॑ द्यु॒म्नी वा॑ध्र्यश्वो॒त गो॒पा मा त्वा॑ तारीद॒भिमा॑ति॒र्जना॑नाम्।
शूर॑ इव धृ॒ष्णुश्च्यव॑नः सु॒मि॒त्रः प्र नु वो॑चं॒ वाध्र्य॑श्वस्य॒ नाम॑ ॥५॥

भा०—हे (वाध्र्यश्व) जितेन्द्रिय, एवं तेज, बलशाली अन्नादि साधनों से सम्पन्न पुरुषों के बीच में उत्पन्न एवं प्रतिष्ठित राजन्! प्रभो! तू (द्युम्नी) महान् ऐश्वर्य का स्वामी (भव) हो। (उत) और (गोपा) तू समस्त राष्ट्रैश्वर्य का रक्षक और भूमि का पालक हो। (अभि-मातिः) अभिमानी और सब ओर प्रजाओं का हिंसक शत्रु पुरुष (त्वा मा तारात्) तुझ तक प्राप्त न हो, तुझे न नाश करे, तुझे पराजित न करे। तू (जनानां) समस्त जनों का (शूरः इव) शूरवीर के समान (धृष्णुः) सब का धर्षण, पराजय करने वाला और (च्यवनः) सब में व्यापक, सब का सञ्चालक और (सु-मित्रः) सबका सुखदायी, शोभन स्नेही और सत्संगी हो। मैं (वध्रि-अश्वस्य) तुझ सूर्यवत् वेगवान् गतिशील पदार्थों के स्वामी का (नाम प्र नु वोचम्) नाम और स्वरूप का सदा प्रवचन, उपदेश अन्यों को करूं।

सम॒ज्र्या॑ पर्व॒त्या॒३ वसू॑नि॒ दासा॑ वृ॒त्राण्यार्या॑ जिगेथ।
शूर॑ इव धृ॒ष्णुश्च्यव॑नो॒ जना॑नां॒ त्वम॑ग्ने पृत॒नायूँ॑र॒भि ष्याः ॥६॥१६॥

भा०—हे प्रभो! स्वामिन्! तू (अज्र्या) वेग से जाने वाले अश्वों और

सूर्य, वायु, तेज आदि पदार्थों से उत्पन्न (वसूनि) नाना ऐश्वर्यों और (पर्वत्या वसूनि) पर्वत और मेघ से प्राप्त होने वाले वृष्टि, जल, अन्न आदि ऐश्वर्यों को (सं जिगेथ) सूर्यवत् जीत और प्राप्त कर। तू (दासा) सेवकों और (अर्या) स्वामियों और (वृत्राणि) अनेक धनों को भी (सं जिगेथ) भली प्रकार प्राप्त कर । तू (शूरः इव धृष्णुः) शूरवीर के समान शत्रु को पराजय करने वाला और (जनानां च्यवनः) मनुष्यों को सन्मार्ग में चलाने वाला शासक होकर हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! प्रभो ! राजन् ! तू (पृतनायून्) सेनाओं के द्वारा संग्राम करने वाले शत्रुओं को और (पृतनायून्) मनुष्यों को भी (अभि स्याः) पराजित कर । उन पर भी शासन कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७॥

भा०—(अयम्) यह (अग्निः) तेजस्वी प्रभु वा स्वामी (दीर्घ-तन्तुः) बहुत लम्बी सन्तति-परम्परा वाला, (बृहत्-उक्षा) बड़े भारी राष्ट्र कार्य को उठाने में समर्थ, (सहस्र-स्तरीः) सहस्रों के मूल्य के वस्त्रों को धारण करने वाला अथवा (बृहदुक्षा, सहस्रस्तरी) जिस प्रकार हज़ारों गौओं के स्वामी के समान उन में बड़ा वीर्य सेचक सांड़ हो उसी प्रकार (सहस्रः-स्तरीः) सहस्रों बलशाली, आच्छादन करने वा घेरने वाली सहस्रों प्रजाओं वा सेनाओं को वा छात्र मण्डलियों को गुरु के समान धारण करने वाला, (शत-नीथः) अनेक नीति मार्गों में कुशल वा अनेक वाणियों वा आज्ञाओं को देने वाला, (ऋभ्वा) सत्य, न्याय, तेज से चमकने वाला, और समर्थ, द्युमान् तेज और धन से सम्पन्न, (द्युमत्सु सुमित्रेषु) तेजस्वी, आढ्य, उत्तम मित्रों के बीच (देवयत्सु) उत्तम विद्वान् व युद्धविजयी वीरों, की आकांक्षा करने वालों के बीच (नृभिः) नेता पुरुषों द्वारा (मृज्यमानः)

सुशोभित और अभिषेक किया जाता हुआ (दीद्यः) गुणों और सामर्थ्यों से प्रकाशित हो। (२) परमेश्वर महान् ब्रह्माण्ड को उठाने, धारण करने से 'बृहदुक्षा' है। दूर तक जगत्-सूत्र फैलाने से दीर्घतन्तु है, सहस्रों का आच्छादक पालक होने से 'सहस्रस्तरी', वेदवाणियों से शतनीथ वा सैकड़ों मार्गों से प्राप्य वा स्तुति होने से 'शतनीथ' है। वह स्नेहियों, प्रभु को चाहने वाले भक्त जनों के बीच परिमार्जित शुद्ध रूप में प्रकाशित होता है।

त्वे धे॒नुः सु॒दुघा॑ जातवेदोऽस॒श्चते॑व सम॒ना स॑ब॒र्धुक्।
त्वं नृ॒भिर्दक्षि॑णावद्भिरग्ने सुमि॒त्रेभि॑रिध्यसे दे॒वय॑द्भिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (जात-वेदः) समस्त उत्पन्न लोकों को जानने वाले, सब धनों के स्वामिन्! (सुदुघा धेनुः) सुख से दोहने योग्य, दुधार गौ के सदृश, (असश्चता) असंग, निःस्वार्थ तुझ से (समना) संगत समान चित्त हुई (सबर्-धुक्) परम रस का प्रदान करने वाली है, प्रभु के आश्रय प्रकृति, स्वामी के आश्रय प्रजा, पुरुष के आश्रय स्त्री और विद्वान् के आश्रय वेदवाणी है। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! नायक! (त्वं) तू (दक्षिणावद्भिः नृभिः) 'दक्षिणा' अर्थात् उत्साहजनक साधनों वाले, शक्तिशाली, अन्नादि से सम्पन्न (सु-मित्रेभिः) उत्तम स्नेही जनों के रक्षकों और (देवयद्भिः) विद्वानों, वीरों की कामना वाले पुरुषों द्वारा (त्वम् इध्यसे) तू प्रदीप्त किया जाता है। (२) इसी प्रकार देव अर्थात् प्रभु की कामना करने वाले, दक्षिणा, के दाता, स्नेही सत्पुरुषों से तू यज्ञ में अग्नि रूप से प्रज्वलित किया जाता है, और वह रस-ज्ञान की देने वाली (धेनुः) वाणी (असश्चता) अन्य कहीं भी न लगती हुई (त्वे समना) एकमात्र तेरे में ही संगत होती है। वेदवाणी की मुख्य संगति प्रभु में ही है।

दे॒वाश्चि॑त्ते अ॒मृता॑ जातवेदो महि॒मानं॑ वाध्र्यश्व॒ प्र वो॑चन्।
यत्स॒म्पृच्छं॒ मानु॑षी॒र्विश॒ आय॒न्त्वं नृ॒भिर॑जय॒स्त्वावृ॑धेभिः ॥ ९ ॥

भा०—हे (जातवेदः) समग्र उत्पन्न लोकों को जाननेहारे ! समस्त विद्या के दाता, समस्त उत्पन्न प्राणियों में विद्यमान स्वामिन् ! प्रभो ! (अमृताः देवाः चित्) कभी नाश न होने वाले आकाश, जल, पृथिवी, अग्नि, वायु आदि तत्त्व और नाना कामना करने वाले जीवगण एवं मुक्ति को प्राप्त विद्वान् जन (ते महिमानं प्र-वोचन्) तेरे महान् सामर्थ्य को बतलाते हैं। हे (वाध्यूश्व) जितेन्द्रियों से उपासित वा वेगवान् अश्ववत् गतिशील सूर्यादि के स्वामिन् ! (यत्) जिस (सम्पृच्छम्) प्रश्न करने योग्य, सदा जिज्ञासा के विषय, तुझ को (मानुषीः विशः) मननशील प्रजाएं (आयन्) प्राप्त होती हैं वह (त्वम्) तू (त्वा-वृधेभिः) तुझ से बढ़ने वाले (नृभिः) नेताओं से और प्राणों से आत्मा के तुल्य एवं सह-योगियों से राजा के तुल्य (अजयः) सब को जीतता, वश कर रहा है।

पि॒तेव॑ पु॒त्रम॑बिभरु॒पस्थे॒ त्वाम॑ग्ने वध्र्य॒श्वः स॑प॒र्यन् ।
जु॒षा॒णो अ॑स्य स॒मिधं॑ यविष्ठो॒त पूर्वाँ॑ अवनो॒र्व्राध॑तश्चित् ॥१०॥

भा०—(पिता इव पुत्रं) पिता पुत्र को जिस प्रकार अपने पास रख कर भरण पोषण करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञान-वन् ! (वध्रि-अश्वः) जितेन्द्रिय बलवान्, वेगवान् अश्वों और इन्द्रियों वाला व्यक्ति (सपर्यन्) तेरी पूजा, सेवा वा सत्कार करता हुआ (त्वाम् उपस्थे अबिभः) तुझ को सदा अपने समीप रखता और समीप में (त्वाम् सपर्ययन् अबिभः) तेरी सेवा परिचर्या करता हुआ भी तुझ से भय करता वा डरता रहे। वा अग्निवत् तुझको निरन्तर अपने भीतर पुष्ट करे, तेरे प्रति प्रेम और देवभाव से श्रद्धा की निरन्तर दृढ़ भावना करे। तू (अस्य) इस मुझ उपासक जीव की हे (यविष्ठ) बलिष्ठ ! शक्तिशालिन् ! (समिधम्) अति कान्तियुक्त उज्ज्वल तीव्र भावना को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ, (पूर्वान् व्राधतः चित्) पूर्व विद्यमान बाधक विघ्न कारणों वा वासना जालों को भी (अवनोः) विनष्ट कर।

शश्वद॒ग्निर्व॑ध्र्य॒श्वस्य॒ शत्रू॒न्नृभि॑र्जिगाय सु॒तसो॑मवद्भिः ।
सम॑नं चिददहश्चित्रभानो॒ऽव॒ व्राध॑न्तमभिनद्वृ॒धश्चि॑त् ॥ ११ ॥

भा० (वध्र्यश्वस्य) वेगवान् अश्वादि साधनों से सम्पन्न तेजस्वी नायक (सुत-सोमवद्भिः) अभिषिक्त राष्ट्रैश्वर्य से सम्पन्न (नृभिः) नायकों वा शासकों द्वारा (शत्रून् शश्वत् जिगाय) शत्रुओं को निरन्तर जीत लेवे । (समनं चित्) यदि संगत या युक्त हो वा युद्ध हो तो हे (चित्र-भानो) अद्भुत तेज वाले ! तू (व्राधन्तं चित्) पीड़ादायक पुरुष को (अदहः) दग्ध कर, भस्म कर और (वृधः चित्)स्वयं वृद्धिशील और शत्रु को काटने वाला होकर (व्राधन्तं चित् अव अभिनत्) पीड़ादायक को भी नीचे गिरा कर उसको भेद उपाय से फोड़ डाल ।

अ॒यम॒ग्निर्व॑ध्र्य॒श्वस्य॑ वृत्र॒हा स॑न॒कात्प्रेद्धो॒ नम॑सोपवा॒क्यः॑ ।
स नो॒ अजा॑मीँरु॒त वा॒ विजा॑मीन॒भि ति॑ष्ठ॒ शर्ध॑तो वाध्र्यश्व ॥ १२ ॥ २०

भा०—(वध्रि-अश्वस्य अयम् अग्निः) वेगवान् अश्वादि वा जितेन्द्रियों के नायक वह तेजस्वी पुरुष (वृत्रहा) दुष्ट पुरुषों का नाश- करनेहारा, (सनकात् प्रेद्धः) सनातन से खूब तेजस्वी सूर्य के समान (सनकात्) राज्यकर-प्रद प्रजाजनों से भी (प्रेद्धः) खूब प्रदीप्त, सुशोभित और (नमसा उपवाक्यः) आदरयुक्त वचनों से स्तुति करने योग्य होता है, (सः) वह (अजामीन्) अबन्धुओं को और (नः) हमारे (वि-जामीन्) विपरीत शत्रुओं को जो (शर्धतः) हमारा नाश कर रहे हों, हे (वाध्र्यश्व) जितेन्द्रियों के स्वामिन् ! उनको (अभि तिष्ठ) लक्ष्य कर उठ और उनका मुकाबला कर । इति विंशो वर्गः ॥

[७०]

सुमित्रो वाध्र्यश्व ऋषिः ॥ आप्रियो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५—७, ६, ११ त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम्।
वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या॥१॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी, ज्ञान का प्रकाश करने-हारे! गुरो! (मे) मेरी (इमाम्) इस (समिधम्) समिधा को (जुषस्व) स्वीकार कर यह मेरा आत्मा तेरे संग से, अग्नि के संग से काष्ठ के तुल्य प्रज्वलित हो, इसको अपना शिष्य स्वीकार कर। (इडः पदे) वेदवाणी के ज्ञान कराने के निमित्त, (घृताचीम्) सूर्य जिस प्रकार रात्रि को दूर करता है उसी प्रकार (घृताचीम् प्रतिहर्य) तू भी मेरे हृदयाकाश से अज्ञानमयी मोह रात्रि को (प्रति हर्य) दूर कर। अथवा अग्नि जिस प्रकार घृत से युक्त स्रुवा वा समिधा को ग्रहण करता है उसी प्रकार स्नेह वा ज्ञानप्रकाश से युक्त वाणी को (मे प्रति हर्य) मुझे प्राप्त करा। (पृथिव्याः) भूमि के (वर्ष्मन्) उन्नत भाग पर या भूमि पर वृष्टि कार्य करने के निमित्त मेघ के तुल्य तू (पृथिव्याः) ज्ञान-बीज के वपनार्थ भूमि के तुल्य शिष्यरूप भूमि के ऊपर (वर्ष्मन्) देहादि पर और (अह्नां सु-दिनत्वे) दिन को उत्तम दिन बनाने के निमित्त सूर्य के समान (अन्हां सु दिनत्वे) मेरे भावी दिनों को उत्तम सुखकारी दिन बनाने के लिये हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और प्रज्ञावन्! तू (देवयज्या) ज्ञान की कामना करने वाले शिष्यों को ज्ञान प्रदान करने एवं उनके सत्कार पूजा आदि से (ऊर्ध्वः भव) उन्नत, पूज्य होकर विराज।

आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत्॥२॥

भा०—(देवानां) अन्यों को विद्या, धन आदि देने वाले, ज्ञान के प्रकाशक वा ज्ञानादि को प्राप्त करने वाले जिज्ञासु जनों के बीच (अग्र-यावा) आगे २, या अग्र, उत्तम पद, अग्रासन को प्राप्त, (नराशंसः)

मनुष्यों में सत्-ज्ञान का उपदेष्टा वा सब से प्रशंसित विद्वान्, (विश्व-रूपैः अश्वैः) सब को उत्तम लगने वाले विद्या के धुरन्धर पारंगत पुरुषों सहित (इह आ यातु) यहां आवे। वह (ऋतस्य पथा) ज्ञान-प्रकाश, सत्य न्याय वा यज्ञ के मार्ग से, और (नमसा) आदरपूर्वक प्रदाशत सत्कार से पूजित होकर (देवतमः) सब विद्वानों, शिष्यों में (मियेधः) सत्संग योग्य गुरु (देवेभ्यः) ज्ञानाभिलाषी जनों को (सु सूदत्) सुखपूर्वक ज्ञान रस प्राप्त करा। (२) इसी प्रकार देव, विजयेच्छुक वीर जनों के बीच अग्रणी नेता नाना रूप अश्व-बलों सहित राष्ट्र में आवे। वह (मियेधः) दुष्टों का हिंसक हो और (ऋतस्य पथा) सत्य, न्याय के मार्ग से (नमसा) विनय अर्थात् दण्ड-विधान के अनुसार (देवेभ्यः) साधारण प्रजाजनों के हितार्थं (सु-सूदत्) दुष्टों को दण्ड देवे।

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम्।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥ ३ ॥

भा०—(हविष्मन्तः मनुष्यासः) अन्न आदि अनेक साधनों से सम्पन्न जन (दूत्याय अग्निम्) दूत, कर्म अर्थात् संदेश पहुंचाने के कार्य के लिये (अग्निम्) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष को (शश्वत्-तमम् ईडते) सदा से और बहुत २ चाहते और उसका आदर सत्कार करते हैं। वह (वहिष्ठैः अश्वैः) अच्छी प्रकार ढोने वाले अश्वों से और (सुवृता रथेन) उत्तम रीति से वा सुख से जाने योग्य रथ से जैसे कोई पूज्य जनों को प्राप्त करता है उसी प्रकार (वहिष्ठैः अश्वैः) ज्ञान धारण करने वाले धुरन्धरा और विद्या के पारंगत पुरुषों द्वारा और (सुवृता रथेन) उत्तम उत्तम वर्णन बतलाने वाले (रथेन) रमणीय उपदेश वचन से (देवान् आवहसि) शिष्यों के प्रति ज्ञान का उपदेश करे। वह (होता) ज्ञान-दाता (इह नि: सद) तू यहां विराज, हम तुझ से ज्ञान प्राप्त करें।

वि प्र॑थतां देवजु॑ष्टं तिर॒श्चा दी॒र्घं द्रा॒घ्मा सु॑र॒भि भू॑त्व॒स्मे।
अहे॑ळता॒ मन॑सा देव बर्हि॒रिन्द्र॑ज्येष्ठाँ उश॒तो य॑क्षि दे॒वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (देव-जुष्टम्) मनुष्यों को अच्छा लगने वाला (बर्हिः) धान्य आदि अन्न (तिरश्चा) खूब दूर तक (वि प्रथताम्) विस्तृत हो, वह (दीर्घं) खूब बड़ा, लम्बा, दृढ़ हो, वह (द्राघ्मा) दीर्घता के साथ २ (अस्मे) हमारे लिये (सुरभिः) उत्तम गंधयुक्त, दृढ़, पुष्टिकारक (भूतु) हो। हे (देव) प्रभो ! हे विद्वन् ! तू (अहेडता मनसा) क्रोध और अनादर से रहित चित्त से (इन्द्र-ज्येष्ठान्) इन्द्र, प्रभु परमेश्वर को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले (देवान्) शुभ गुणयुक्त, (उशतः) कामनावान् जनों को (यक्षि) अन्न प्रदान कर। इसी प्रकार 'बर्हिः' लोक, प्रजा आदि का वाचक भी है। वे विस्तृत हों, चिरस्थायी हों। इन्द्र गुरु और राजा हैं। उनको ज्येष्ठ मानने वाले देव तेजस्वी पुरुष और शिष्य गण हैं।

दि॒वो वा॒ सानु॑ स्पृ॒शता॒ वरी॑यः पृथि॒व्या वा॒ मात्र॑या॒ वि श्र॑यध्वम्।
उ॒श॒तीर्द्वा॑रो महि॒ना म॒हद्भि॑र्दे॒वं रथं॑ रथ॒युर्धा॑रयध्वम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (द्वारः) स्वयं वरण करने वाली, (उशतीः) पतियों को चाहने वाली या लौकिक सुख-सामग्री वा पुत्रादि की कामना करने वाली स्त्री जनो ! आप लोग (दिवः) सूर्य के समान कान्ति और तेज से युक्त, तुम्हें चाहने वाले पुरुष के (सानुं स्पृशत) उत्तम सेवनीय धन वा उत्तम भाव को प्राप्त करो। (पृथिव्या वा मात्रया) और पृथिवी की मात्रा से अर्थात् पृथिवी के समान उत्पादक मातृ शक्ति से युक्त होकर (वि श्रयध्वम्) विशेष रूप से पुरुष का आश्रय लो। (महिना) बड़े पूज्य पुरुष के साथ और (महद्भिः) अपने पूज्य सम्बन्धियों सहित (रथ-युः) रमण करने योग्य, सुखदाता पति को देव के तुल्य (धारयध्वम्) धारण करो,

उसको स्वीकार करो। (२) शत्रु को वारण करने वाली सेनाएं भी वारण करने से 'द्वारः' हैं। वे तेजस्वी, सूर्यवत् सेनापति के (सानु) दिये आज्ञा-वचन को सुनें। जितनी पृथिवी हो उस पर अधिकार करें। बड़े सामर्थ्य और बड़े वीर पुरुषों से स्वयं रथशाली होकर, रमण योग्य सर्वसुखद राजा वा राष्ट्र-रथ को धारण करें। इत्येकविंशो वर्गः॥

दे॒वी दि॒वो दु॑हि॒तरा॑ सुशि॒ल्पे उ॒षासा॒नक्ता॑ सदतां॒ नि योनौ॑। आ वां॑ दे॒वास॑ उश॒ती उ॒शन्त॑ उ॒रौ सी॑दन्तु सुभगे उ॒पस्थे॑॥ ६॥

भा०—(दिवः दुहितरा) तेजस्वी सूर्य के पुत्र और पुत्री के समान (उषासानक्ता) दिन और रात्रि जैसे (देवी) कान्तियुक्त होते हैं उसी प्रकार (देवी) शुभ गुणों से युक्त, एक दूसरे को चाहने वाले दोनों स्त्री पुरुष (दिवः दुहितरा) एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हों। वे दोनों (सुशिल्पे) उत्तम शिल्प, कला को जानने वाले होकर (योनौ नि सदताम्) गृह में सुख से विराजें। हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्य-युक्त स्त्री पुरुषो! (उशती वाम्) परस्पर को चाहने वाले आप दोनों को (उशन्तः देवासः) चाहते हुए विद्वान् जन (उरौ) इस विस्तृत (उपस्थे) स्थान, राष्ट्र वा गृह में (नि सीदन्तु) विराजें। (२) इसी प्रकार राजा प्रजा आदि के पक्ष में भी समझें।

ऊ॒र्ध्वो ग्रावा॑ बृ॒हद॒ग्निः समि॑द्धः प्रि॒या धामा॒न्यदि॑तेरु॒पस्थे॑। पु॒रोहि॑तावृत्विजा य॒ज्ञे अ॒स्मिन् वि॒दुष्ट॑रा॒ द्रवि॑ण॒मा य॑जेथाम्॥७॥

भा०—(ग्रावा) उत्तम उपदेश करने वाला विद्वान् और आज्ञापक वीर पुरुष मेघ के समान (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजे। वह (बृहत्) बड़ा (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानी होकर (सम्-इद्धः) खूब प्रदीप्त हो। (अदितेः उपस्थे) भूमि के ऊपर के स्थान में (धामानि)

अनेक धाम, उत्तम स्थान, (प्रिया) प्रिय, रुचिकर, सब जीवों का का पालक, धारक, पोषक हो। (पुरःहितौ) सब के समक्ष स्थापित, कार्य में नियुक्त, (ऋत्विजा) ऋतु ऋतु में देने वाले, समय २ पर यज्ञ करने वाले विद्वान् स्त्री पुरुष जन (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (विदुःतरा) एक दूसरे से अधिक ज्ञान बल और धन को जानने और प्राप्त करने वाले होकर (द्रविणं आ यजेथाम्) ज्ञान, धन, बल, वीर्य आदि दिया करें।

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम्।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥ ८ ॥

भा०—हे (तिस्रः देवीः) तीनों देवियो! तीनों प्रकार की स्त्रियां (इदं वरीयः) इस सर्वश्रेष्ठ बड़े, पूज्य (बर्हिः) आसन वा वृद्धियुक्त आश्रय पर (आ सीदत) विराजो। (वः) आप लोगों के लिये हम इसको (स्योनं) सुखकारी (चकृम) करते हैं। आप तीनों (इडा) इला, (देवी) ज्ञानयुक्त, तेजोयुक्त सरस्वती, और (घृत-पदी) दीप्त, तेजोयुक्त पद वाली भारती, तीनों (मनुष्वत् यज्ञं) मनुष्यों से युक्त यज्ञ और (सुधिता हवींपि) आदरपूर्वक रक्खे हवियों, अन्नादि सुख साधनों को (जुषन्त) सेवन करें। इला—अन्न, पृथिवी आदि के गुण वाली वा वाणी के समान ग्राह्य। सरस्वती—'सरः' उत्तम प्रशस्त ज्ञान से युक्त विदुषी। भारती—भरत अर्थात् मनुष्यों को ज्ञानोपदेश करने वाली अर्थात् कुमारी, गृहस्थ माताएं और वृद्ध उपदेशिकाएं ये तीनों तीन देवियां हैं।

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९॥

भा०—हे (त्वष्टः) तेजस्विन्! (यत्) जो (चारुत्वम्) उत्तमता को (आनट्) प्राप्त होता है, और (यत्) जो तू (अंगिरसाम्) विद्वानों के बीच (सचाभूः अभवः) उनका सहयोगी होता है, हे (द्रविणोदः) धन ज्ञानादि के देनेहारे ! । (सः) वह तू (सु-रत्नः) उत्तम रत्नादि पदार्थों का स्वामी होकर भी (उशन्) इच्छावान् और (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (देवानां) विद्वान् ज्ञानदाता और विद्या धनादि के इच्छुकों की (पाथः) पालन, रक्षा, अन्न, जल आदि पदार्थ, (प्र यक्षि उप यक्षि) प्रदान कर और उपस्थित कर। अध्यात्म में आत्मा अंगिरसों, प्राणों के बीच एक है, वह त्वष्टा है, जो उनको बनाता है। वह उनको रस और रक्षा देता है।

वन॑स्पते रश॒नया॑ नि॒यूया॑ दे॒वानां॒ पाथ॒ उप॑ वक्षि वि॒द्वान्।
स्वदा॑ति दे॒वः कृ॒णव॑द्ध॒वींष्यव॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी हवं॑ मे ॥ १० ॥

भा०—हे (वनस्पते) वनों, तेजों और भोग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों के पालक ! वनस्पतिवत् सब को अपनी छाया में लेने हारे ! तू (रशनया) रशना, व्यापक वशकारिणी शक्ति से (नि-यूय) राष्ट्र को बांध कर (देवानां) विद्वानों प्रजाजनों के (पाथः) पालक दल वा अन्नादि को (उप वक्षि) प्राप्त कराता है। वह (देवः हवींषि स्वदाति) दानशील पुरुष नाना अन्न खाने को देवे और (हवींषि कृणवत्) अन्नों को उत्पन्न करे। (द्यावापृथिवी) आकाश भूमिवत् राजा प्रजाजन (मे हवं अवताम्) मेरे यज्ञ की रक्षा करें।

आग्ने॑ वह॒ वरु॑णमि॒ष्टये॑ न॒ इन्द्रं॑ दि॒वो म॒रुतो॑ अ॒न्तरि॑क्षात्।
सीद॑न्तु ब॒र्हिर्विश्व॒ आ यज॑त्राः॒ स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम्
॥ ११ ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्निवत् प्रकाशक ! तू (वरुणम्)

सर्वश्रेष्ठ जन को, वरणीय प्रभु को (इष्टये) इष्ट सिद्धि और पूजादि के लिये (नः आ वह) हमें प्राप्त करा। (दिवः) आकाश से (नः) हमें (इन्द्रम्) सूर्य, विद्युत् को प्राप्त करा, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (मरुतः) मरुतों, नाना वायुओं को प्राप्त करा। (विश्वे) सब (यजत्राः) परस्पर संगत होकर (बर्हिः) आसन पर विद्वानों के तुल्य इस लोक में विराजें। (अमृताः) समस्त जीवगण (स्वाहा) वाणी, उत्तम अन्नाहुति से (मादयन्ताम्) तृप्त हों। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७१]

बृहस्पतिः ॥ देवता—ज्ञानम् ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ५, ६, ८, १० ११ विराट् त्रिष्टुप्। ६ विराड् जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ १ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी वा वाणी के पालक स्वामिन्! (नामधेयं दधानाः) केवल नाम को धारण करते हुए (यत्) जो (वाचः) वाणी का (अग्रम्) सब से पूर्व विद्यमान स्वरूप (प्र ऐरत) बोलते हैं (एषाम्) इनका (यत्) जो (श्रेष्ठम्) अति उत्तम और (यत्) जो (अरिप्रम्) निष्पाप वचन होता है, (प्रेणा) प्रेम के कारण (एषां) इनके (गुहा निहितम्) बुद्धि में स्थित हुआ करता है (तत्) वही (आविः) प्रकट होता है। अर्थात् बालकों का निष्पाप और निर्लेप प्रारम्भिक वचन प्रेम के कारण जो वाणी के सब से प्रथम रूप में प्रकट होता है, वह उनके हृदय या बुद्धि में पूर्व ही विद्यमान होता है, उसे वे प्रेम से प्रेरित होकर प्रकट करते हैं। इसी प्रकार जब भी

सृष्टि प्रारम्भ होती है उसके भी पूर्व के आदि सर्ग के मानवगण जब प्रथम २ वाणी का प्रयोग करते हैं तो वह उनकी बुद्धि में विद्यमान होती है, उसको वह प्रेम से वा परहित से प्रेरित होकर एक दूसरे के प्रति कहते हैं। उसमें किसी प्रकार का मल, पाप नहीं होकर वह सर्वश्रेष्ठ वाणी होती है। इसी प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में अति निर्मल चित्तों में वेद स्थिर होकर प्रकट हुए, वे भी सर्व-श्रेष्ठ और निर्मल थे।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२॥

भा०—(तितउना सक्तुम् इव) सत्तू को छालनी से जिस प्रकार छान कर स्वच्छ कर लेते हैं उसी प्रकार (यत्र) जिस समय (धीराः) बुद्धिमान् ध्यानवान् पुरुष (मनसा) संकल्प विकल्प, ऊहापोह करने वाले चित्त वा ज्ञान से (वाचम्) वाणी को (पुनन्तः) पवित्र करते हुए (अक्रत) उसका प्रयोग करते हैं (अत्र) तब उसी वाणी में (सखायः) परस्पर प्रेम भाव से युक्त मित्र वा ज्ञानी जन (सख्यानि) मित्रता वा भावों को (जानते) जानते हैं। (एषाम् अधि वाचि) उनकी वाणी में (भद्रा) सुखदायक, कल्याणकारक, रमणीय, प्राप्य, इष्ट लाभ के लिये (लक्ष्मीः) भावों को बतलाने वाली अर्थग्राहक शक्ति (नि-हिता) विद्यमान होती है। इसलिये सब से प्रथम भी जन ज्ञानपूर्वक ध्यानवान्, विचारवान् ऋषियों ने इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-परिहार को बतलाने वाले वेद का ज्ञानपूर्वक दर्शन कर अन्यों को उपदेश किया, उस समय में भी उनकी वेदवाणी में अर्थबोधक शक्ति रही, जिससे सुनने वालों ने उत्तम २ अभिप्राय समझे। अर्थात् वाणी में जो बोधक गुण होता है उसका प्रधान कारण उसका ज्ञानयुक्त चित्त से विवेकपूर्वक प्रयोग किया जाना है, अन्यथा विना विचारे कही बात का कोई अभिप्राय विदित नहीं होता, वह प्रमत्तवाद के तुल्य निरर्थक होता है।

यज्ञेन॑ वा॒चः प॑द॒वीय॑माय॒न्तामन्व॑विन्द॒न्नृषि॑षु॒ प्रवि॑ष्टाम् ।
तामा॒भृत्या॒ व्य॑दधुः पुरु॒त्रा तां स॒प्त रे॒भा अ॒भि सं न॑वन्ते ॥३॥

भा०—वे ध्यानवान्, बुद्धिमान्, विचारशील पुरुष (वाचः पदवीयम्) वाणी के एक २ पद से प्राप्त करने योग्य अभिप्राय को भी (यज्ञेन) परस्पर की संगति से ही (आयन्) प्राप्त करते हैं। वे (ऋषिषु) तत्व ज्ञान को साक्षात् करने वाले अध्यात्मदर्शी जनों में (प्रविष्टाम्) प्रविष्ट हुई (ताम्) उस वाणी को (अनु अविन्दन्) उपदेश के अनन्तर ही प्राप्त करते हैं। (ताम् आभृत्य) उसको प्राप्त करके ही वे (पुरुत्रा) बहुत से स्थलों में (वि अदधुः) विविध प्रकार से उपदेश करते हैं। (ताम्) उसको ही (सप्त) सातों (रेभाः) छन्द (अभि सं नवन्ते) साक्षात् उपदेश करते हैं। अर्थात् मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की वाणी जो सात छन्दों में प्रकट है उसको भी लोगों ने उपदेश के द्वारा प्राप्त किया। प्रथम उन्होंने उसका साक्षात् किया और पश्चात् अन्यों के प्रति प्रकाश किया। उस वाणी के पद-पदार्थ का बोध ंगति द्वारा ही किया। संगति को विद्वान् लोग ही समझते हैं, अविद्वान् नहीं। क्योंकि—

उ॒त त्वः॒ पश्य॒न्न द॑दर्श॒ वाच॑मु॒त त्वः॑ शृ॒ण्वन्न शृ॑णोत्येनाम् ।
उ॒तो त्व॑स्मै त॒न्वं१॒॑ वि स॑स्रे जा॒येव॒ पत्य॑ उश॒ती सु॒वासाः॑ ॥ ४ ॥

भा०—(उत त्वः) एक तो (वाचं पश्यन् न ददर्श) वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता। (उत त्वः) और दूसरा (एनाम्) उस वाणी को (शृण्वन् न शृणोति) सुनता हुआ भी श्रवण नहीं करता। और वह वाणी (उतो त्वस्मै) एक के आगे (तन्वं) अपने विस्तृत ज्ञानमय रूप को इस प्रकार (वि सस्रे) विशेष शोभित रूप वा विविध प्रकार से प्रकट करती है, जिस प्रकार (पत्ये सुवासाः उशती जाया इव) पति के हर्ष के लिये सुन्दर वस्त्र पहने कामना

वाली पत्नी अपना सुन्दर मोहक शृंगारित रूप प्रकट करती है। जिस प्रकार ऋतुस्नाता नारी सुन्दर वस्त्रादि पहन कर उत्तम आभूषण आदि से सजकर विविध भावों को प्रकट करती हुई अपने अनेक भाव प्रकट करती है उसी प्रकार विद्वान् के प्रति वाणी अपना विस्तृत ज्ञानमय शरीर प्रकट करती है।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥२३॥

भा०—(उत त्वं) और एक विद्वान् पुरुष को (सख्ये) मित्रों की गोष्ठी के तुल्य विद्वानों की सत्कथा के कार्य के अवसर में (एनं स्थिर-पीतम् आहुः) उसको 'स्थिर-पीत' अर्थात् पिये हुए वा ग्रहण किये ज्ञान को अपने भीतर स्थिरता से धारण करनेवाला बतलाते हैं और (वाजिनेषु) वाणी के स्वामिवत् विद्वानों वा ज्ञानयुक्त विषयों में (अपि) भी (एनं न हिन्वन्ति) इसको नहीं पहुंचते, उसके पद को प्राप्त नहीं करते, वही सब में अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, और जो (वाचं) वाणी को (अफ-लाम् अपुष्पां) फल और फूल से रहित अर्थात् अर्थ और तात्पर्य के विना जाने(शुश्रुवान्) श्रवण करता है (एषः) वह (अधेन्वा) कभी दूध न देने वाली वन्ध्या गौ के तुल्य (मायया) वाणी के सहित, छलकपट पूर्वक असत्य वाणी सहित (चरति) विचरता है।

वाजिनाः—वाचः इनाः स्वामिनः। सा० ॥ अर्थं वाचः पुष्पफल-माह यज्ञदैवते पुष्पफले। देवताऽध्यात्मे वा। (नि० १।२०) इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (सचिविदं) परस्पर प्रेम को जानने वा जनाने

वाले वा सचि अर्थात् उपकारी मित्र को प्राप्त करने वा जनाने वाले (सखायम्) मित्र के तुल्य उपकारक सखा, वेद के मित्र, अध्येता शिष्य को प्राप्त करने वाले अध्येताओं के उपकारक परम मित्र वेद वा वेदज्ञ पुरुष को (तित्याज) त्यागता है (तस्य) उसका (वाचि अपि) वाणी में भी (भागः न अस्ति) भाग नहीं है। (ईम् यत् शृणोति) वह जो भी सुनता है (अलकं शृणोति) व्यर्थ, अल्प-प्रयोजन, मन्द ही सुनता है, वह उपदेश द्वारा कुछ भी श्रवण नहीं करता। वह (सु-कृतस्य) उत्तम सत्कर्म, पुण्य-धर्म के (पन्थाम् न प्र-वेद) मार्ग को भली प्रकार से नहीं जानता।

'सचिविदं'—सचिशब्दः सखिवाची अध्येता, स वेदस्य सखा, संप्रदायोच्छेदनिवारकत्वेन वेदं प्रत्युपकारित्वात्। तादृशमुपकारिणमध्येतारं वेत्तीति सचिवित्, तमभिज्ञं सखायमध्येतॄणां पुरुषाणां स्वार्थबोधनेनोपकारित्वात्। सखिभूतं वेदं यः पुमान् तित्याज इति सायणः।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'यस्तित्याज सखिविदं सखायं' ऐसा पाठ है। अर्थात् सचि का अर्थ 'सखि' है। वहां सायण इसका अभिप्राय ऐसा कहते हैं।

अध्येतारं सखायं वेत्तीति सचिवित् स्वाध्यायः स्वयं तस्य पुरुषस्य सखा अत्यन्तस्नेहेन कदाचिदप्यनपायात्। नहि निरन्तराध्यायिनं स्वाध्यायः कदाचिदपि परित्यजति, किंतु दिने दिनेऽतिशयेन तस्याधीनो भवति।

जो अध्ययन करने वाला है वह वेद का मित्र है क्योंकि वह सम्प्रदाय अर्थात् वेद के स्वाध्याय को उच्छिन्न नहीं होने देकर वेद का उपकार करता है। वेद उस उपकारक अध्येता को सदा पाये रहता है, उसका कभी त्याग नहीं करता, परन्तु उसके और भी अधीन हो जाता है इससे वेद 'सचिविद् सखा' है।

अ॒क्ष॒ण्वन्त॒: कर्ण॑वन्त॒: सखा॑यो मनोज॒वेष्वस॑मा बभूवुः।
आ॒द॒घ्नास॑ उपक॒क्षास॑ उ त्वे ह्र॒दा इ॑व॒ स्नात्वा॑ उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

भा०—(अक्षण्वन्तः) आंखों वाले, और (कर्णवन्तः) कान वाले (सखायः) समान नाम वाले, समानसं ज्ञान-उपदेश ग्रहण करने वाले, एक जैसे मित्र भी (मनः-जवेषु) मन, चित्त के वेगों, मन द्वारा जानने या अनुभव करने योग्य ज्ञानों में (असमाः बभूवुः) एक समान नहीं होते। जिस प्रकार (ह्रदाः) भूमि पर अनेक जलाशय (आदघ्नासः) बहुत ही थोड़े परिमाण या गहराई के होते हैं। (त्वे उ) और कई जलाशय (उप-कक्षासः) कांख तक गहरे जल के होते हैं और (स्नात्वाः उ त्वे) और कुछ स्नान करने, डूबने लायक गहरे जल के भी होते हैं. इसी प्रकार मनुष्यों में भी ज्ञान की दृष्टि से तारतम्य होता है।

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जब (ब्राह्मणाः) ब्रह्म अर्थात् वेद के विद्वान् जन (हृदा तष्टेषु) हृदय से अच्छी प्रकार तर्क-वितर्क द्वारा विनिश्चित, (मनसः जवेषु) ज्ञान के वेगों या ज्ञातव्य पदार्थों में (सखायः) समान कोटि के ज्ञान, गुरु-उपदेश और समान-दर्शन शक्ति से युक्त होकर (सं-यजन्ते) एकत्र संगत होते और परस्पर ज्ञान-विचारों का दान-प्रतिदान करते हैं (अत्र ह) इस अवसर में भी (त्वं) किसी को तो (वि जहुः) विशेष रूप से अज्ञ सा जानकर छोड़ देते हैं। और (ओह-ब्रह्माणः उ त्वे) और कुछ एक विद्वान् वेद के मन्त्रों पर अनेक ऊहा, तर्कवितर्क करते हुए (वेद्याभिः) अनेक जानने योग्य विद्याओं द्वारा (वि चरन्ति) विचार करते हैं और निश्चित अर्थ को प्राप्त करते हैं।

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः॥९॥

भा०—(इमे) ये (ये) जो (न अर्वाक्) यहां, इस लोक में वा

समीप आत्मा का ज्ञान सम्पादन नहीं करते और (न परः) न दूर उत्तम गुरु आदि का सत्संग कर परम प्रभु का ज्ञान प्राप्त करते हैं और जो (न ब्राह्मणासः) न ब्रह्म, वेद के जाननेहारे हैं (नः सुते-करासः) और न यज्ञ में कार्य करने में कुशल होते हैं (ते एते) वे ये (पापया वाचम् अभिपद्य) पापकारिणी, वा मलिन वाणी को प्राप्त होकर वा पाप-बुद्धि से वेदवाणी को विपरीत जानकर (अप्र-ज्ञयः) अज्ञानी रह कर (सिरीः) केवल नाड़ियों में ही रहकर, वा जलादि स्थूल पदार्थों में ही फंस कर (तन्त्रम् तन्वते) अनेक प्रपञ्च करते हैं, अथवा वे (सिरीः) हल आदि स्थूल साधन लेकर ही (तन्त्रं तन्वते) अपना लोक व्यवहार कृषि, कुटुम्ब भरण आदि करते हैं। अथवा (ते वाचम् अभिपद्य) वे वाणी को प्राप्त करके भी (अप्र-जज्ञयः) अज्ञानी रहकर (पापया) पाप-वृत्ति से प्रेरित होकर (सिरीः) सीर, हंसिया लेकर उपयोग कर (तन्त्रं तन्वते) प्रपञ्च करते हैं। राष्ट्र-शासन, वा हत्यामय यज्ञ आदि करते हैं।

सर्वे॑ नन्दन्ति य॒शसाग॑तेन सभासा॒हेन॒ सख्या॒ सखा॑यः।
कि॒ल्बि॒ष॒स्पृत्पि॑तु॒षणि॒र्ह्ये॑षा॒मरं॑ हि॒तो भव॑ति॒ वाजि॑नाय ॥ १० ॥

भा०—(सर्वे) समस्त (सखायः) समान ज्ञान वाले, समान आख्यान, नाम, उपदेश वाले, समान कोटि के मित्र जन, (यशसा) यशस्वी, (सभा-साहेन) सम्पूर्ण सभा को अपने तेजः प्रभाव से वश करने में समर्थ (सख्या) मित्र, ज्ञानी पुरुष से (नन्दन्ति) प्रसन्न होते हैं। वह (एषाम्) इनके बीच में (पितु-सनिः) अन्नदाता के समान पान योग्य ज्ञान रस का प्रदान करने वाला और (किल्बिष-स्पृत्) पापाचरण, अज्ञान आदि का नाश करने वाला होकर (वाजिनाय) वाणी के

स्वामी-पद के लिये (अरं हितः भवति) बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। वही प्रधान सभापति वा उपदेष्टा पद पर स्थापित होता है।

वाचः इनः वाजिनः वाक्पतिः।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः॥ ११॥ २४॥ २॥

भा०—(त्वः) एक विद्वान् (ऋचां) वेद मन्त्रों का (पोषम् पुपुष्वान् आस्ते) परिवर्धित प्रयोग करता हुआ विराजता है। और दूसरा (शक्वरीषु) शक्वरी नाम ऋचाओं में (गायत्रं गायति) गायत्र साम का गान करता है। (त्वः) कोई एक (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान् (जातविद्याम्) प्रत्येक कार्य में उत्पन्न विद्या का (वदति) उपदेश करता है। (उ त्वः) और कोई विद्वान् (यज्ञस्य) यज्ञकर्म और उपास्य, पूज्य परमेश्वर की (मात्राम्) मात्रा, अनुष्ठान करने योग्य कर्मादि और मात्रा अर्थात् ज्ञान, रचनादि शक्ति का (वि मिमीते) विशेष प्रकार से उपदेश करता है।

इस मन्त्र में—सामान्यतः होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्यु इन चार के कर्त्तव्य भी बतला दिये हैं और साथ ही वेद मन्त्रों के ४ प्रकार के अनुशीलन, अभ्यासों का भी निर्देश किया है जैसे—१—ऋचाओं में कहे अर्थों का पोषण, अङ्ग विद्याओं से उनका विस्तार से कथन, प्रवचन, विचारण आदि, (२) ऋचाओं का स्वर, लय, ताल आदि द्वारा गायन करना, (३) प्रत्येक पृथक् २ कार्य में वेद के मन्त्रों में कही विद्याओं का प्रकाश करना, (४) यज्ञ, कर्म का सम्पादन वा वेद में कहे सर्वोपास्य परमेश्वर विषयक ज्ञान का विवेचन। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

[७२]

बृहस्पतिरांगिरसो बृहस्पतिर्वा लौक्य अदितिर्वा दाक्षायणी ऋषिः ॥ देवा देवता ॥ छन्दः—१,४, ६ अनुष्टुप् । २ पादनिचृदनुष्टुप् । ३, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ८, ९ विराडनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥ १ ॥

भा०—(वयं) हम विद्वान् लोग (वि-पन्यया) विशेष रूप से गुणों का वर्णन करने वाली वाणी द्वारा (देवानाम् जाना) देवों, विद्वानों और दिव्य सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थों के जन्मों का (प्र वोचाम) अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं। (यः) जो विद्वान् जन (उक्थेषु) वेद के उत्तम ज्ञान बतलाने वाले मन्त्रों के (शस्यमानेषु) उपदेश कर देने पर (उत्तरे युगे) उत्तर युग, आने वाले काल या सबसे उत्कृष्ट सर्वयोगी, सर्वप्रेरक, सर्वसहायक परमेश्वर के सम्बन्ध में (पश्यात्) साक्षात् दर्शन कर लेता है। अर्थात् वेदमन्त्रों के उपदेश करने पर पूर्वकाल में भी और आगे भविष्यकाल में भी देव, ज्ञानदर्शी, तत्त्वज्ञानी, जन उत्पन्न होते रहे और उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न होंगे वे उपदेश के अनन्तर उत्तम प्रभु का भी दर्शन करते हैं, भूत भविष्य के ज्ञान को साक्षात् करते हैं।

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥ २ ॥

भा०—(कर्मारः इव) लोहार जिस प्रकार भट्टी में लोहा को डाल कर (अधमत्) खूब तपाता और धौंकता है उसी प्रकार (ब्रह्मणः पतिः) वेद

का पालक, वेद रूप धनैश्वर्य का स्वामी आचार्य गुरु (एता) इन देवों, विद्या के ज्ञानाभिलाषियों को (सम अधमत्) ब्रह्मचर्य और तपस्या के जीवन में उनको शब्द अर्थात् वेदोपदेश करे, उनको तप करावे (देवानां पूर्व्ये युगे) समस्त विद्या की कामना करने वाले एवं क्रीडाप्रिय आनन्द-विनोदप्रिय बालकों के पूर्व युग अर्थात् प्रारम्भिक शैशवकाल में (असतः) असत् ज्ञान के स्थान पर (सत्) सत् ज्ञान (अजायत) उत्पन्न हो। इसी से जो ज्ञान वा बल नहीं भी होता है वह भी उनको बाद में प्राप्त हो जाता है। (२) सूर्यादि लोकों के पक्ष में—(ब्रह्मणः पतिः) महान् ब्रह्माण्ड वा प्रकृति ब्रह्म, वा महत् जगत्-कारण का पालक, स्वामी परमात्मा (एता) इन समस्त लोकों को (कर्मारः इव सम् अधमत्) लोहार के समान मानो सब को अग्नि में डालता और तपाता है सबके प्रथम हिरण्यगर्भ रूप अग्निमय तेजस रूप से सब को तप्त करता है। वहीं से अनेक सूर्य तप्तरूप में बाहर होते हैं। (पूर्व्ये युगे) पहले युग और प्रेरणा से जगत् के सञ्चालित होने के अवसर में (देवानाम्) देवों या लोकों का (असतः) असत् अव्यक्त कारण से (सत्) व्यक्त रूप (अजायत) उत्पन्न हुआ। श्वेताश्वतर में 'त्रिविधं ब्रह्ममेतत्' ऐसा कहा है इससे प्रकृति तत्त्व भी ब्रह्मवत् व्यापक होने से 'ब्रह्म' है। उसका पालक परमेश्वर 'ब्रह्मणस्पति' है। इस जगत् का मूल वा उपादान कारण प्रकृति है और लोहे के पदार्थों को तपा गला कर बनाने वाले लोहार, विश्वकर्मा के समान प्रभु परमेश्वर ही जगत् का निमित्त कारण है।

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥ ३ ॥

भा०—(देवानां) देवों, क्रीडाशील एवं विद्याभिलाषियों के (प्रथमे युगे) प्रथम काल, प्रारम्भिक ज्ञानोपदेश का योग होने

के काल में (असतः) ज्ञान की अविद्यमान दशा से (सत्) विद्यमान उत्तम ज्ञान उत्पन्न होता है तब (आशाः अनु अजायन्त) उनके सम्बन्ध में अनेक आशाएं, कामनाएं वा उनके चित्त में महत्वाकांक्षाएं उठने लगती हैं, (तत् उत्तान-पदः परि) वह सब उन्नत ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही होती हैं। (२) (देवानां प्रथमे युगे) सूर्यादि के प्रथम निर्माण वा प्रेरणकाल में अव्यक्त प्रकृति से 'सत्', व्यक्त जगत् उत्पन्न हुआ। पश्चात् (आशाः) व्यापक दिशाएं भी (अनु अजायन्त) उसके पश्चात् प्रकट हुईं। (ततः परि) उसके पश्चात् (उत्तान पदः) ऊपर की ओर फैलने वाले चरण या किरणों वाले सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ उत्पन्न हुए।

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥ ४ ॥

भा०—(भूः उत्तानपदः जज्ञे) पृथिवी जिस प्रकार ऊपर आकाश में फैलने वाले वृक्ष लतादि को वा अपने ऊपर चरणों से चलने वाले अनेक जीवों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार (भूः) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली प्रकृति से ही (उत्तान-पदः) ऊर्ध्व आकाश में गति करने वाले सूर्य चन्द्रादि प्रकट हुए। (भुवः आशाः) जिस प्रकार सर्वोत्पादक पृथिवी से नाना वृक्ष लतादि के खाने वाले जलचर प्राणी उत्पन्न हुए उसी प्रकार (भुवः) सब को उत्पन्न करने वाली मूल प्रकृति से ही (आशाः) व्यापने वाले तेज, अग्नि, आकाश, वायु, जल आदि व्यापन गुण वाले तत्त्व उत्पन्न हुए। (अदितेः दक्षः) जिस प्रकार माता से पुत्र वा सूर्य से दाहक ताप उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अदितेः) उस अखण्ड प्रकृति से ही (दक्षः) दग्ध करने वाला अग्नि और बल उत्पादक वायु भी (अजायत) उत्पन्न हुआ। (दक्षात् परि अदितिः) जिस प्रकार पिता से पुत्र उत्पन्न होता है उसी प्रकार (दक्षात्) दग्ध करने वाले सूर्य रूप अग्निमय पिण्ड से

(अदितिः) खण्ड न होने वाली दृढ़ यह पृथिवी अथवा इस पृथ्वी पर का यह स्थूल अग्नि उत्पन्न हुआ।

अदितेर्दक्षोऽजायत दक्षाद्वदितिः परि इति च तत्कथमुपपद्येत। समानजन्मानौ स्यातामिति। अपि वा देवधर्मेणेतरेतरजन्मानौ स्यातामितरेतर प्रकृती। अग्निरप्यदितिरुच्यते। (निरु० ११। २३)

अदि॑ति॒र्ह्यज॑निष्ट॒ दक्ष॒ या दु॑हि॒ता तव॑।
तां दे॒वा अन्व॑जायन्त भ॒द्रा अ॒मृत॑बन्धवः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (दक्ष) दग्ध करने वाले सूर्य! (या तव दुहिता) जो तेरी पुत्री के समान है वह (अदितिः हि अजनिष्ट) दृढ़ पृथिवी वा अग्नि रूप से उत्पन्न हुई। उसी प्रकार हे (दक्ष) तेजस्विन्! वा हे उत्साह, बल, वीर्यशालिन् गुरो! (अदितिः) कभी खण्डित न होने वाली वाणी, विद्या (या तव दुहिता) जो तेरी समस्त रसों, ज्ञानों, आनन्द सुखों, इच्छाओं को पूर्ण करती है, (ताम् अनु) उसके पश्चात् (भद्राः) कल्याणकारी (अमृत-बन्धवः) अमृत, ज्ञान से बन्धु सदृश होने वाले (देवाः अजायन्त) विद्वान् उत्पन्न होते हैं। (२) इसी प्रकार पूर्वोक्त पृथिवी सूर्य की पुत्री के समान है, (ताम् अनु) उसके पश्चात् (भद्राः) सुख-ऐश्वर्य में रमण करने वाले, (अमृत-बन्धवः) अमृत अविनाशी जीवन से बंधे हुए, (देवाः) अनेक जीवगण (अजायन्त) उत्पन्न हुए। पृथिवी से जीवों के तुल्य ही 'दक्षः' बलस्वरूप प्रभु की सर्वकर्त्री, अदिति अखण्ड प्रकृति से भी देव सूर्यादि उत्पन्न हुए। इति प्रथमो वर्गः ॥

यद्दे॑वा अ॒दः स॑लि॒ले सुसं॑रब्धा॒ अति॑ष्ठत।
अत्रा॑ वो॒ नृत्य॑तामिव ती॒व्रो रे॒णुरपा॑यत ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो (देवाः) प्रकाशमय सूर्य आदि आकाशीय पिण्ड (अदः) इस दूर तक फैले (सलिले) प्रधान कारण तत्त्व वा महान् आकाश में

(सु-सं-रब्धाः) उत्तम रीति से बने और गतिशील होकर (अतिष्ठत) विद्यमान हैं। हे जीवो ! (अत्र) इन लोकों में ही (नृत्यतां इव वः) नाचते हुए, आनन्द विनोद करते हुए आपलोगों का (तीव्रः रेणुः) अति वेगयुक्त अंश, आत्मा स्वतः रेणुवत् अणु-परिमाण वा गतिशील है वह (अप आयत) शरीर से पृथक् होकर लोकान्तर में आता जाता है। (२) इसी प्रकार हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (यत् अदः सलिले) आप लोग उस जल के समान अति शान्तिदायक गुरु के अधीन (सु-संरब्धाः) उत्तम रीति से व्यवस्थित होकर रहते हो, (नृत्यताम् इव रेणुः) खेलते नाचते लोगों की जिस प्रकार धूली उठती है उसी प्रकार (वः) आप लोगों में से (रेणुः तीव्रः) धूलिवत् तीव्र रजोभाव (अप आयत) दूर हो जावे, आप लोग शान्त गम्भीर होकर जितेन्द्रिय हो जाओ।

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ ७ ॥

भा०—(य) जिस प्रकार (यतयः) मेघ, (देवाः) जल देने वाले होकर (भुवनानि) समस्त लोकों को (अपिन्वत) सेंचते हैं उसी प्रकार (यतयः) यत्नवान्, विशेष यत्न, गति, बल देने वाले, स्वयं बली (देवाः) तेजोमय सूर्यादि लोक भी (भुवनानि अपिन्वत) उत्पन्न हुए जीवों को, वा जीवों के उत्पन्न होने के योग्य भूमि आदि लोकों को (अपिन्वत) जीवन तत्त्व और जीवनोपयोगी प्रकाश, जल, वायु आदि पदार्थों से पूर्ण करते हैं। जिस प्रकार (देवाः) सूर्य के द्योतक किरण गूढ़ प्रकाश से ढके सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार ये समस्त लोक (अत्र) इस (समुद्रे) महान् आकाश में (आगूढम्) आवृत (सूर्यम्) सूर्य को (आ अजभर्तन) धारण करते हैं। (२) (यतयः देवाः) यत्नवान्, जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष, (भुवनानि अपिन्वत) मेघों और किरणों के

तुल्य ही समस्त लोकों पर ज्ञान और शान्तिदायक पदार्थों की वृष्टि कर उनकी वृद्धि करें। महान् समुद्रवत् विशाल जन-समुदाय के बीच स्थिर सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को अन्य जन (अजभर्त्तन) राजा बना कर धारण करें।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१स्परि।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥ ८ ॥

भा०—(अदितेः तन्वः परि जाताः पुत्रासः अष्टौ) माता के शरीर से जिस प्रकार आठ पुत्र उत्पन्न हों उसी प्रकार व्यापक अखण्ड प्रकृति से भी (अष्टौ पुत्राः) आठ पुत्र आठ तत्त्व जो बहुत से लोकों की रक्षा करते हैं उत्पन्न हुए, वह प्रकृति महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्म भूत इन्द्रिय गण (सप्तभिः देवान् उप प्र ऐत्) देवों, समस्त तेजोमय सातों लोकों सहित प्राप्त हुई। और इन्द्रियगण वा देह रूप जो उस प्रकृति का विकार था उसे (मार्ताण्डम्) मृत्—स्थूल प्रकृति के बने अण्ड अर्थात् प्राणधारक पिंड को (परा आस्यत्) दूर २ तक समस्त लोकों में उत्पन्न किया। (२) इसी प्रकार अदिति के आठ पुत्र मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य हैं। इनमें आठवां आदित्य मार्त्तण्ड सूर्य है उसको (परा आस्यत्) दूर ऊपर फेंका, जो उदित होता है।

(३) शरीर रूप अदिति के आठ पुत्र आठ प्राण रूप से उत्पन्न होते हैं, सात तो शिर के सात छिद्र इन्द्रियों को प्राप्त हुए, आठवां अयास्य प्राण, इस मृत्-अण्ड, स्थूल पिंड को संचालित करता है।

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—(सप्तभिः पुत्रैः) सातों पुत्रों के साथ (अदिति) वह अविनाशिनी शक्ति (पूर्व्यं युगम्) पूर्वकाल में (उप प्र ऐत्) आती है और

जाती है। और वह जीव (प्रजायै) प्रजा सन्तान आदि को उत्पन्न करने और फिर (मृत्यवे) मृत्यु के लिये (त्वत्) तुझ से ही हे प्रकृते ! (मार्ताण्डम्) मृत् जड़ तत्व के बने अण्ड वा जीवित देह को (आ अभरत्) प्राप्त करता है। अर्थात् शरीर धारण के भी पूर्व आत्मा में सातों प्राणों का सामर्थ्य रहता है और शरीर त्यागने के बाद भी वह सामर्थ्य रहते हैं। परन्तु इस शरीर में उसके प्रजोत्पत्ति, मृत्यु अर्थात् भूख और प्यास ये धर्म विशेष होते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[७३]

गौरिवीतिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ त्रिष्टुप् । ३,४,८,१० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ७ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ९ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जिस (वीरं) वीर को (धनिष्ठा) गर्भ धारण करने वालों में सर्वश्रेष्ठ धन, ऐश्वर्य, सौभाग्यों से सम्पन्नतम (माता) मान, आदर करने वाली, माता के समान भूमि, भूमिवासिनी प्रजा (दधनत्) धारण करती है वह (उग्रः) उत्तम, सर्वोपरि आज्ञा-वचनों का कहने वाला, शत्रुओं को भीतिप्रद, (मन्द्रः) स्तुतियोग्य, (ओजिष्ठः) अति बल-पराक्रमशाली, (बहुल-अभिमानः) बहुत अभिमान, आत्म-सन्मान को धारण करने वाला, स्वामी राजा, सेनापति, (सहसे तुराय) शत्रुओं को पराजित करने और उनका नाश करने के लिये ही (जनिष्ठाः) उत्पन्न होता है। (अत्र) इस कार्य में (मरुतः चित्) वायुओं के तुल्य बलवान् वीर सैन्यगण, और देश देशान्तर में भ्रमण करने वाले वैश्यगण

बरसते मेघवत् शस्त्रास्त्रवर्षी और शत्रुओं के मारने और युद्ध में स्वयं मरने वाले पराक्रमी शूरवीरगण तथा अन्य भी सामान्य प्रजाजन, मुख्य प्राण आत्मा को देह में अन्य प्राणों के तुल्य उस (इन्द्रम्) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले को (अवर्धन्) बढ़ावें। अर्थात् जो शत्रुओं को दबा और नाश कर सके उसे प्रजाएं भी बढ़ाती हैं, ऐसे ही वीर पुरुष को उत्तम माताएं अपनी कोख से पैदा करें तो ही वे सच्ची माता हैं, अन्यथा बन्ध्या के तुल्य हैं। (२) परमेश्वर, दुष्टों का धर्षण और नाश करता है, वह सर्वोपरि शक्तिमान् और बहुत लोकों का सर्वतः प्रत्यक्ष हाथ पर धरे बेर-आमले के तुल्य साक्षात् देखता और जानता और सर्वोपरि थामता है, सब सूर्यादि लोक उसी शक्ति को पुष्ट, प्रमाणित करते हैं। सर्वमेरक को सर्व सौभाग्यवती धारयित्री प्रकृति धारण करती है। (३) आचार्य पक्ष में 'वि-ईरं'—विशेष उपदेष्टा, 'इन्द्रं'—ज्ञानद्रष्टा, 'बहुलाभि-मानं', अनेक विद्याओं का ज्ञाता, 'माता' ज्ञानदात्री, वेदविद्या।

द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम्।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः॥ २॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार (द्रुहः) शत्रुओं के द्रोही सेनापति के पास (नि-सत्ता) नियम में बद्ध (पृशनी) शस्त्रादि वर्षण करने वाली सेना उसको बढ़ाती है उसी प्रकार वह (एवैः) अपने आगे प्रयाणों वा अग्रगामी वीर पुरुषों से और (शंसेन) स्तुति वचन वा शत्रुनाशक शस्त्रबल से सभी (पुरु) प्रजाजन (वावृधुः) उसको बढ़ाते हैं। (ते) वे सब (महापदेन अभिवृता-इव) बड़े भारी पद अर्थात् आश्रय वा स्थान से चारों ओर से सुरक्षित के तुल्य (महापदेन) बड़े भारी ज्ञानमय प्रकाश से (अभि-वृता) सब प्रकार से सुरक्षित वा आवृत होकर (प्रपि-त्वात् ध्वान्तात्) पूर्व प्राप्त हुए ध्वान्त या दूर हुए अन्धकार से ऐसे

(उत् अरन्त) ऊपर हो जाते हैं जैसे (प्रपित्वात् ध्वान्तात्) फैले अन्धकार-मय नीले मेघ से (गर्भाः) मेघ के बीच में स्थित जल बाहर आ जाते हैं अथवा ध्वान्त अर्थात् अन्धकार रूप गर्भाशय से (गर्भाः) गर्भ स्वयं प्रसव होकर बाहर आ जाते हैं।

ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः॥ ३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे (पादा) दोनों चरण, आश्रय (ऋष्वा) महान् हैं, (उत ये चित् अत्र वाजाः) जो भी इस राष्ट्र में वेगवान्, बलवान्, वीर जन हैं वे (यत् प्र जिगासि) जब तू आगे बढ़े तब तुझे (प्र अवर्धन्) खूब बढ़ावें। हे (इन्द्र) शत्रुनाशन! (त्वं) तू (सहस्रं सालावृकान्) सहस्रों सालावृक अर्थात् कुत्तों के समान स्वामिभक्त और 'साल' = अर्थात् नगर के प्रकोट पर रहने वाले, शस्त्रास्त्रों से शत्रु को छेदन भेदन करने वाले, तेजस्वी, महास्त्रों और महास्त्रधर वीरों को (आसन् दधिषे) अपने सैन्य के मुख भाग में स्थापित कर। और (अश्विना) वेग से लाने वाले अश्व आदि के नियन्ता वीर पुरुषों के दोनों पक्षों को (आ ववृत्याः) अपने अधीन रख।

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि॥ ४॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं को उच्छेद, विनाश और उनका विदारण करने हारे! उनमें फूट, फोड़ फाड़ कर उनका नाश करने वाले! राजन्! तू (तूर्णिः) शत्रुहिंसक सेना को आगे ले चलने हारा होकर (समना) संग्राम-काल में (यज्ञम् उप यासि) सब की संगति, परस्पर प्रेम और दान भाव वा सब से पूजनीय भाव को (उप यासि) प्राप्त कर। और

उस समय (सख्याय) मित्र भाव और अपने सम्यग् दर्शन अर्थात् सर्वोपरि अध्यक्षता और अपने समान संकथन अर्थात् आज्ञा देने वा प्रजा में शासन कार्य के लिये ऐसे स्त्री पुरुषों को (आ वक्षि) प्राप्त कर, जो (नासत्या) कभी असत्य भाषण और छल कपट आदि का वर्त्ताव न करें, परन्तु सदा राजा और प्रजा दोनों के प्रति सत्य-संकल्प और न्यायी हों। तभी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सहस्रा) सहस्रों (वसाव्या) वसने वाली प्रजाओं को (धारयः) धारण करने में समर्थ हो सकता है। पूर्वोक्त प्रकार के (अश्विनौ) विद्या आदि में पारंगत सत्य व्यवहारी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष ही को हे (शूर) दुष्टों के नाशक तू (मघानि ददतुः) अनेक ऐश्वर्य या परहित न्याय-शासन प्रदान करता है।

मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम्।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥४॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्ता ! तत्वदर्शी राजा वा सेना सभा का पति (प्रजायै अधि) प्रजा के हित के लिये (सखिभिः) समदर्शी समान, अनुरूप वचन बोलने वाले, सर्वस्नेही, सर्वहितैषी (इषिरेभिः) उत्तम इच्छावान्, उत्साही, अन्यों को ठीक मार्ग में लेजाने वाले पुरुषों से (ऋतात् अर्थम् अधि अगात्) सत्य न्याय से ही प्राप्तव्य प्रयोजन को प्राप्त करे और (आभिः) उन समस्त प्रजाओं से (मायाः) नाना प्रकार की बुद्धियों और अनेक पदार्थों को बनाने की नाना बुद्धियों और व्यवसायों को (आ उप अगात्) प्राप्त करे। वह (दस्युम् उप) नाशकारी दुष्ट पुरुष को (उप अवपत्) उखाड़ डाले। और (तम्राः) आकांक्षा करने वाली (मिहः) जलवृष्टियों के तुल्य सब को बढ़ाने वाली वैश्य प्रजाओं को (आगात्) प्राप्त करे और (तमांसि प्र अवपत्) राष्ट्र से सब प्रकार के अन्धकारों को खण्डित कर दूर करे।

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥

भा०—(इन्द्रः चित्) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (स-नामाना नि ध्वसयः) समान नाम वाले 'अश्वी' अर्थात् दिन रात्रि दोनों का सञ्चालन करता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुनाशक और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का स्वामी, राजा, (स-नामाना) एक समान नाम वाले शास्य-शासक दोनों वर्गों को (नि ध्वसयः) अपने अधीन नियम व्यवस्था में चलावे। जिस प्रकार (इन्द्रः उषसः अनः अव अहन्) सूर्य प्रभात की दीप्तियुक्त उषा के (अनः) जीवन को (अव अहन्) प्रदान करता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष (उषसः) चित्त से चाहने वाली प्रजा के जीवन को प्रदान करे। अथवा जिस प्रकार सूर्य (उषसः अनः) उषा के जीवन अर्थात् कोमल प्रकाश को (अव अहन्) स्वयं उदय होकर तीव्र प्रकाश से लुप्त कर देता है उसी प्रकार तेजस्वी राजा अपने प्रखर तीक्ष्ण प्रताप से (उषसः) प्रजा को दग्ध करने वाले शत्रु के (अनः) रथादि को, वा प्राणों तक को (अव अहनः) विनष्ट करे। वह (ऋष्वैः) बड़े २ महान्, गुणों और पराक्रमों में बड़े (निकामैः सखिभिः साकं) खूब चाहने वाले, अति प्रिय मित्रों के साथ (हृद्या) मनोहर, हृदय के प्रिय (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा, मान, आदर सत्कार को (जघन्थ) प्राप्त करे।

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (त्वं) तू (वि-मायम्) विविध छल-कपट पूर्ण अनेक माया करने वाले (नमुचिम्) अपने हठ, दुराग्रह और दुष्ट कर्म को न छोड़ने वाले दुष्ट पुरुष को (जघन्थ) विनाश कर। और (वि-मायम्) माया, छल कपट से रहित वा (वि-मायम्) विविध प्रकार

के शिल्प कार्यों को करने में समर्थ शक्ति वा बुद्धि वाले (मखस्युम्) धना-कांक्षी जन को (दासं कृण्वानः) अपना भृत्य करता हुआ उनको वेतन पर कार्य में लगाता हुआ (त्वम्) तू (मनवे) मनुष्य मात्र के उपकार के लिये और (ऋषये) ज्ञानदर्शी विद्वान् जनों के हित के लिये (पथः स्योनान् चकर्थ) समस्त मार्गों को सुखप्रद, निर्भय और उदर पोषण के अनेक सुखदायी मार्गों को बना । और (देवत्रा) विद्वानों, ज्ञान, धन, कर आदि देने वाले प्रजाजनों और विजिगीषु वीर जनों के बीच (अञ्जसा इव) अपने तेज से ही मानो (यानान् चकर्थ) प्रयाणों या रथों को कर, वा बना ।

त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार इन्द्र अर्थात् तेजस्वी सूर्य (नाम) अनेक जलों को वृष्टि आदि द्वारा पूर्ण करता है, अन्तरिक्ष को मेघादि से भर देता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हे प्रभो ! (त्वम्) तू भी (एतानि नाम पप्रिषे) इतने शत्रुओं के नमाने वाले अनेक बलों को पूर्ण करता है, सबको अपने में धारण करता है । हे प्रभो ! तू (एतानि नाम) इतने अनेक जगतों को वा भूतों, प्राणियों को (पप्रिषे) पाल रहा है । तू (ईशानः) सबका मालिक, सबका स्वामी, सब पर वशकर्त्ता है । (गभस्तौ दधिषे) जिस प्रकार सूर्य अनेक जलों को किरणों के बल पर धारण करता है उसी प्रकार हे राजन् ! प्रभो ! तू भी (एतानि) इन सब बलों को और अनेक जगतों और प्राणिवर्गों को (गभस्तौ दधिषे) अपने ग्रहण-सामर्थ्य में, अपने हाथ में, अपने अधीन, अपने वश में रखता है । (देवाः) समस्त विद्वान्, और समस्त सूर्यादि लोक (शवसा) ज्ञान और तेरे महान् सामर्थ्य से प्रभावित वा वशीभूत होकर (त्वा अनु मदन्ति) तेरे ही अनुकूल रह कर सदा प्रसन्न रहते हैं । (उपरि बुध्नान् वनिनः

चकर्थ) जिस प्रकार ऊपर आकाश में मूल आश्रय रखने वाले, जल से पूर्ण मेघों को सूर्य वा विद्युत् वा वायु (चकर्थ) अपने तेज, दीप्ति और आघात युक्त वेग से ताड़ित करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू (उपरि बुध्नान्) ऊपर आकाश में अपना आश्रय साधने वाले (वनिनः) हिंसक शत्रुओं को भी (चकर्थ) दण्डित कर, उनको भी मार, व्योमयानादि से चढ़ाई करने वालों को भी नाश करने का प्रबन्ध और उद्योग कर । (२) इसी प्रकार हे प्रभो ! तू (उपरि बुध्नान्) ऊपर सर्वोपरि ज्ञानवान् वा (उपरि बुध्नान्) ऊपर शिरोभाग में मूल वाले, मस्तकादि में चित्त एकाग्र करने वाले वा सर्वोपरि परमेश्वर में अपना आश्रय लेने वाले (वनिनः) ऐश्वर्य सुख सौभाग्यशील वा ईश्वरभक्ति से युक्त सेवक जनों को (चकर्थ) सुखी सौभाग्यवान् कर देता है । (३) अध्यात्म में—'देव' इन्द्रियगण हैं, 'इन्द्र' आत्मा है, वह इन समस्त देहों वा रूपों को धारता, पूरता और पालता है, वह अपने ग्रहण सामर्थ्य पर इनको धारण करता है, समस्त प्राणगण उसके ज्ञान और बल से ही प्रसन्न, सुखी होते हैं, वह शिरोदेश में बद्धमूल हुए उनको (वनिनः) विषय ग्राहक रूप से सम्पन्न करता और इन्द्रिय प्रणालिका-रूप से बनाता है ।

चक्रं यद॑स्याप्स्वा निष॑त्तमुतो तद॑स्मै मध्विच्च॑च्छद्यात् ।
पृ॒थि॒व्यामति॑षितं॒ यदूधः॒ पयो॒ गोष्वद॑धा॒ ओष॑धीषु ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अस्य) इस सूर्य या मेघ का (चक्रम्) बिम्ब या मेघमण्डल, (अप्सु आ नि-सत्तम्) जलों में रहता है, (उतो) और (तत् मधु) वही जल (इत्) ही (अस्मै चच्छद्यात्) इसको आच्छादित करता या सब ओर से ढके रहता है, उसी प्रकार (अस्य) इस राजा का (चक्रम्) राष्ट्रचक्र वा नगर का प्रकोट (अप्सु आ नि-सत्तम्) आप्त जनों में निश्चित रूप से स्थिर रहता है और नगर के चारों ओर का प्रकोट

वा राज्य की चतुर्दिगन्त सीमा जलों से वा समुद्रों से घिरी होकर स्थिर रहती है। (उतो) और (अस्मै) इस राजा को (मधु इव्) जल और मधुपर्क से ही (चच्छद्यात्) अर्चना करे। (यत् पृथिव्याम् ऊधः) जिस प्रकार मेघ वा अन्तरिक्ष (अति-सितं) बन्धन से रहित होजाता है वा (अति-सितम्) श्वेतता को अतिक्रमण कर श्याम होजाता है, तब वह (गोषु) भूमियों में (ओषधीषु) ओषधियों में (पयः अदधाः) रस वा जल को प्रदान करता है। इसी प्रकार (यत्) जब (पृथिव्यां) पृथिवी में कोई (ऊधः) जल धारक जलाशय वा जलाधार स्थान (अति-सितम्) बन्धन रूप तट-सीमा से अति क्रमण करे, सेतु आदि तोड़े तब वह राजा (पयः) उस जल को (गोषु) भूमियों में (ओषधीषु) अन्नादि के निमित्त (अदधाः) ले लेवे। उसको अन्यत्र एकत्र कर खेती के उपयोग में ले। पर्वतों से निकलते झरनों वा नदियों में भी जल अधिक हो तो राजा उनको कृषि और भूमि सेचन के कार्य में ले। (२) परमेश्वर पक्ष में (अस्य चक्रम् अप्सु आ नि-षत्तम्) इस परमेश्वर का बनाया यह जगत् 'अपः' अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं में ही आश्रित है। (अस्य) इस परमेश्वर का (मधु इव्) वेद का ज्ञान ही (चच्छद्यात्) अर्चन, गुणस्तवन और गुण प्रकाशन करता है, स्तन के समान जो (ऊधः) उत्तम ज्ञान का आश्रय वेद (पृथिव्याम् अति-सितम्) पृथिवी पर प्रकट हुआ है, वह (पयः) रस के सदृश (गोषु) वेदवाणियों रूप में उसने (अदधाः) प्रदान किया और (ओषधीषु पयः) वह ओषधियों में रस के समान सर्व दुःखहारी और शान्तिदायक है। (३) अध्यात्म में—इस जीव का चक्र यह कृत्रिम देह वा जन्म-मरण चक्र, जलों वा रक्त धाराओं वा लिङ्ग शरीरों पर आश्रित है। और इस देह को मधु जल-अन्न ही ढांपता है वा इस देह-बन्धन को 'मधु' अर्थात् ज्ञान ही दूर करता है, इसके पालनार्थ पृथिवी में ही वह स्तन-मण्डल है कि जो गौओं में दूध और ओषधियों में रस रूप से है।

यह पार्थिव देह भी समस्त रसाधार है कि इसकी इन्द्रियों वा वाणियों में वा तापधारक नाड़ियों वा हृदय की नाड़ियों में भी जीवन-रस है।

अश्वा॑दि॒याये॑ति॒ यद्वद॒न्त्योज॑सो जा॒तमु॒त म॑न्य एनम्।
म॒न्योरि॑याय ह॒र्म्येषु॑ तस्थौ॒ यत॑: प्रज॒ज्ञ इन्द्रो॑ अ॒स्य वे॑द ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो विद्वान् लोग (वदन्ति) कहते हैं कि यह मेघ (अश्वात् इत् इयाय) आदित्य से ही उत्पन्न होता है मैं तो (एनम्) इसको (ओजसः) सूर्य के तेज, ताप से ही उत्पन्न हुआ (मन्ये) मानता हूं। (उत्) अथवा (एनं) इसको (मन्योः उत् इयाय) सूर्य या वायु के स्तम्भक बल से उत्पन्न हुआ मानता हूं। क्योंकि वह मेघ (हर्म्येषु तस्थौ) आकाश के अनेक उच्च-प्रदेशों में स्थित रहता है। या (यतः) जहां से वा जिस कारण से (प्र-जज्ञे) प्रकट होता है (अस्य इन्द्रः) इसको साक्षात् तत्वदर्शी ही (वेद) जानता है। (२) इसी प्रकार जैसा विद्वान् लोग कहते हैं कि यह राजा (अश्वात्) व्यापक राष्ट्र-चक्र वा अश्वादि सैन्य बल से (इयाय) उत्पन्न हो उदय को प्राप्त होता है इस सम्बन्ध में मैं (ओजसः एनं जातं मन्ये) उसे अपने बल-पराक्रम-सामर्थ्य से ही उत्पन्न हुआ मानता हूं (उत्) अथवा (मन्योः इयाय) राष्ट्र को थामने वा अपने आत्मा के सन्मान वा ज्ञानबल वा नैतिक मन्त्रशक्ति से ही आया मानता हूं। इसीसे वह (हर्म्येषु) बड़े २ प्रसादों, महलों में रहता है। (यतः प्रजज्ञे) वह जहां से उत्पन्न होता है इसको तो वह (इन्द्रः) शत्रु-नाशकारी, वा तत्वदर्शी स्वामी ही जानता है। (३) परमेश्वर पक्ष में—जो लोग कहते हैं कि वह जगत् (अश्वात्) व्यापक तत्त्व, व्यापक परमेश्वर से ही (इयाय) उत्पन्न हुआ है मैं इसका तात्पर्य यही जनता हूं कि यह जगत् उस परमेश्वर के (ओजसः जातम्) परम बल, पराक्रम वा तेजः-सामर्थ्य से ही प्रकट हुआ अथवा (मन्योः इयाय) उसके ज्ञानमय,

सामर्थ्य वा ईक्षण वा काम-संकल्प से ही उत्पन्न हुआ है। वह प्रभु (हर्म्येषु तस्थौ) समस्त लोकों में व्यापक रूप से विद्यमान है, वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (अस्य) इसके विषय में (प्रवेद) भली प्रकार जानता है कि (यतः प्रजज्ञे) यह संसार जिस तत्व से उत्पन्न हुआ है।

(४) विद्युत्-पक्ष में—इन्द्र विद्युत् को (अश्वात्) अश्व सूर्य से उत्पन्न हुआ कहते हैं, (उत ओजसः जातम्) कई तेजस्तत्त्व से वा शरीर ओज वा अष्टमी धातु के तत्त्व से उत्पन्न बतलाते हैं, मैं (एनम् मन्ये) ऐसा जानता हूं कि वह (मन्योः इयाय) यह स्तंभन बल से भी उत्पन्न होता है वह हर्म्यों बड़े २ भवनों में भी स्थिति पाता है, (इन्द्रः) रस, जल वा तेजस्तत्त्व को साक्षात् करने वाला विद्वान् ही भली प्रकार जानता है कि विद्युत् कहां से उत्पन्न होता है।

वर्यः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य१स्मान्निधयेव बद्धान् ॥११॥४॥

भा०—जिस प्रकार (वयः) अति प्रकाशमान्, कान्तियुक्त, (सुपर्णाः) सुख से जगत् को पालन और पूर्ण करने वाले सूर्य के किरण, (ऋषयः) समस्त पदार्थों को दिखाते हैं, (प्रिय-मेधाः) अनेक अन्नों को पुष्ट करते हैं वे (नाधमानाः) तीव्र ताप उत्पन्न करते हुए (इन्द्रम् उप सेदुः) अति तेजस्वी सूर्य को ही प्राप्त होते हैं। उदय काल में उससे ही प्रकट होकर उसी में पुनः आश्रित रहते हैं। उसी प्रकार (वयः) ज्ञानवान् (सुपर्णाः) शुभ मार्ग से जाने वाले, देवयानगामी, (प्रिय-मेधाः) प्रभु परमेश्वर वा ज्ञानी पुरुषों के सत्संग के प्यारे, वा मेधा नाम परम बुद्धि के प्रिय वा यज्ञ, अन्नादि को चाहने और उस ही से तृप्त होने वाले अति अहिंसक, (ऋषयः) ज्ञान-तत्त्वदर्शी जन (नाधमानाः) परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए उसी (इन्द्रम् उप-सेदुः) परमैश्वर्यप्रद, इस जाल के

काटने वाले प्रभु की उपासना करते और उसे ही प्राप्त करते हैं। प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! (ध्वान्तम् अप ऊर्णुहि) तू हमारे अन्धकार को दूर कर, (चक्षुः पूर्धि) प्रकाश से हमारी भीतरी ज्ञान-चक्षुओं को पूर्ण कर। (निधया इव बद्धान्) पाश में फंसे पक्षियों के तुल्य (अस्मान्) हमको (मुमुग्धि) बन्धन से मुक्त कर। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[७४]

गौरिवीतिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,४ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २,५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः। अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥ १ ॥

भा०—(रोदस्योः) आकाश और भूमि दोनों के बीच, (वसूनाम्) बसे हुए प्रजाजन के बीच (ये) जो (धिया) बुद्धि वा कर्म द्वारा वा (यज्ञैः) उत्तम २ यज्ञों द्वारा जो (इयक्षन्) दान देना चाहते हैं और जो (रयिमन्तः) बहुत धनों के स्वामी (सातौ) संग्राम में (वनुं धुः) शत्रुहिंसा को करते हैं और (ये) जो (अर्वन्तः) आगे मार्ग पर बढ़ने वाले (सु-श्रुतः) उत्तम श्रवणशील होकर (सुश्रुणम् धुः) सुखपूर्वक श्रवण करने योग्य ज्ञान को धारण करते हैं, उनको तू (इयक्षन्) स्वयं भी दान देना चाहता हुआ (चर्कृषे) अपनी ओर आकर्षण करता है।

हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम्। चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥ २ ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (द्यौः) सूर्य (स्वैः) अपने (वारेभिः) अन्धकारों को दूर करने वाले किरणों वा प्रकाशों से (सुविताय) सब के हित के लिये कार्य करता है, उसी प्रकार फैलने वा (देवाः) ज्ञान प्रकाश करने

वाले ज्ञानदाता विद्वान् जन और दिव्य सूर्य अग्नि वायु आदि तत्त्व, (स्वैः वारेभिः) अपने वरणीय श्रेष्ठ गुणों वा कार्यों वा उपदेशों से (यत्र) जहां २ (सुविताय) सब के सुख और हित के लिये कार्य करते हैं वहां (एषाम्) इनका (असुरः हवः) सबको प्राणदायक यज्ञ, आहुति, दान, आदि (द्याम् नक्षत्) आकाश को व्यापता और (श्रवस्यता मनसा) अन्न वा यश और ज्ञान चाहने वाले चित्त के साथ (क्षां) योग्य भूमि वा उचित पात्र तक पहुंचता है। अर्थात् परोपकार बुद्धि से किये कार्य दान आदि को भी प्रभु सफल करता और उसका उपयोग भी सत्पात्र में होता है।

इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम्।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्यमसामि ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (रत्नं) रमणीय वचन प्रदान करते, (धियं च कृपणन्त) उत्तम कर्म करते और (यज्ञं च साधन्तः) यज्ञ, सर्वोपास्य सर्वप्रद प्रभु की साधना वा आराधना करते हैं (एषाम्) इन (अमृतानां) अमृत, मोक्ष-मार्गी, मुक्तवत् निस्पृह, परम हंस पुरुषों की (इयम्) यह (गीः) वेद-वाणी (सर्वताता) सबका कल्याण करने वाली होती है। (ते) ऐसे ही वे महानुभाव जन सदा (नः) हमें (असामि) समस्त (वसव्यम्) बसने वाले जीवों के हितार्थ अनेक धन, वा ज्ञान (धान्तु) प्रदान करें ऐसे ही परोपकारी जन (नः वसव्यं धान्तु) हमारा धन प्राप्त करें, हम ऐसे ही सत्पात्रों को दान दें।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्। वेदवित्सु विविक्तेषु····मनु०॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्।
सकृत्स्वं१ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो (सकृत्-स्वम्) एक ही बार अनेक प्रकार के अन्नों,

ओषधि वनस्पति आदि को उत्पन्न करती है उस (बृहतीम्) अनेक फलों को बढ़ाने वाली, विशाल, (पुरु-पुत्राम्) बहुत पुरुषों का त्राण करने वाली और (सहस्रधारां) सहस्र धाराओं को बरसाने वाली वा सहस्रों जल-धारा वाली आकाश वा (महीम्) भूमि को (दुधुक्षन्) दोहना चाहते हैं, उससे अनेक अन्न, रस प्राप्त करना चाहते हैं जो (गोमन्तम्) गौ बैल वाले, उनसे समृद्ध (ऊर्वं) खेती वा कृषि के फल समूह या फसल को (तितृत्सान्) काट लेना चाहते हैं (ते) वे (आयवः) मनुष्य हे (इन्द्र) जल देने वाले, वर्षाकारिन् ! (तत्) उस समय जब वे फल चाहते हैं, खेती पनपाना चाहते हैं तब (ते पनन्त) वे तेरी स्तुति करते हैं । अर्थात् सम्पन्न, फसल काटने के इच्छुक खेतिहर जिनके पास (सकृत्सू) केवल साल में एक फसल देने वाली भूमि है, जो उसी से साल भर का अनाज प्राप्त करना चाहते हैं, वे 'इन्द्र' अर्थात् मेघ की पुकार करते हैं । (२) ठीक उसी प्रकार (ये) जो (पुरु-पुत्राम्) बहुत से पुत्रों व पुरुषों को त्राण करने वाली (महीम्) भूमि और (सहस्र-धारां) हजारों को धारण करने वाली (बृहतीम्) बड़ी भारी जनता को (दुधुक्षन्) दोहना चाहते हैं, भूमि से भूमि की उपज और जनता से टैक्स या ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हैं और जो युद्धक्षेत्र में (गोमन्तं) वेग से जाने वाले अश्वों वाले, वा (गोमन्तं) बाणों को फेंकने वाली तांत के धनुषों से सज्जित (ऊर्वम्) सैन्य-समूह को (आ तितृत्सान्) मुक़ाबले पर नाश करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् (ते) वे वीर पुरुष (ते पनन्त) तेरी स्तुति प्रार्थना करते हैं, तेरी सेवा करते हैं । (३) इसी प्रकार जो (पुरु-पुत्राम्) अनेक शिष्यरूप पुत्रों वाली, सहस्रवाणी वाली, 'बृहती' वेदवाणी का दोहन करना चाहते और जो (गोमन्तं ऊर्वं) वाणी से युक्त 'ग्रन्थ' का मर्म भेदन करना चाहते हैं वे मनुष्य इन्द्र अर्थात् ज्ञानदर्शी गुरु का सेवन करते हैं ।

शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥ ५ ॥

भा०—हे (शचीवः) उत्तम कर्म और वाणीरूप स्तुति करने वाले जनो ! आप लोग (यः) जो (नर्यं) सब मनुष्यों के हितकारी (वज्रं) ज्ञानोपदेश और (वज्रं) वल, वीर्य और शस्त्रवल को (भर्त्ता) धारण करता है जो (पुरु-क्षुः) अनेक शब्दमय वेद-मन्त्रों वा उपदेशों वा विद्या-वचनों को जानता है, (सु-वृक्तिम्) उत्तम स्तुति योग्य, (सु-वृक्तिम्) उत्तम रीति से कुमार्ग से वर्जने वाले (सु-वृक्तिम्) सुख से और सुष्ठु रीति से ग्रहण करने वाले (ऋ-भुक्षणम्) महान् सत्यसेवी, सत्यपालक, (मघवानम्) अनेक ऐश्वर्यों के स्वामी, (पृतन्यून् दमयन्तं) संग्राम करने वाले शत्रुजनों वा संग्राम के इच्छुक सैनिकों को भी दण्डित वा दमन करते हुए शत्रुओं का पराजय और स्व सैन्यों का दमन करने वाले (अनानतं) किसी के आगे न झुकने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुविजयी को (अवसे) अपनी रक्षा, गति, कान्ति, इच्छा, स्नेह, समृद्धि आदि कार्यों के लिये राजा के लिये, सेनापति आदि पदों के लिये नियुक्त (कृणुध्वम्) करें ।

इसी प्रकार जो (शचीवः) कर्मकुशल हैं, वे बहुत अन्न धन वाले, धन स्वामी को प्राप्त करें । और शची अर्थात् वाणी वाले विद्यार्थी भी, महान् गुरु को चाहें ।

यद्वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥६॥५॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्रहा इन्द्रः) वृत्र अर्थात् मेघ पर आघात करने वाला, मेघों में दौड़ने वाला विद्युत् (पुरु-तमम्) बहुत अधिक बढ़े हुए जल राशि को (ववान) आघात करता है और वह अनेक (नामानि

अप्राः) जलों को भूमि पर पूर देता है, उसी प्रकार (वृत्र-हा इन्द्रः) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं को नाश करने वाला (पुरा-षाट्) शत्रु-पुरों को विजय करने वाला, विजेता, (पुरुतमं बवान) शत्रु के अनेकों में से श्रेष्ठ नायक का नाश करे। वह (नामानि अप्राः) शत्रुओं को नमाने वाले अनेक सैन्यादि साधनों को पूर्ण करे। वह (तुविष्मान्) बड़ा बलशाली पुरुष, (प्र-सहः पतिः) बड़े भारी शत्रु-विजयी सैन्य-बल का स्वामी, अथवा (प्र-सहः) सब से उत्तम दुष्ट-दमनकारी, सरदार वा विजेता, और (पतिः) सबका स्वामी (अचेति) जाना जाय (यत्) जो हम प्रजाजन (कर्त्तवे उश्मसि) करना चाहें वह (तत् करत्) उसको कर दे। प्रजा की इच्छानुसार उसका दुःख मोचन करने में समर्थ पुरुष ही प्रधान पद पावे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[७५]

सिन्धुक्षित्प्रैयमेध ऋषिः ॥ नद्यो देवताः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती २, ३ विराड् जगती। ४ जगती। ५, ७ आर्ची स्वराड् जगती। ६ आर्ची भुरिग् जगती। ८, ९ पादनिचृज्जगती ॥

प्र सु वं आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनो! हे प्राणगण! हे सर्वव्यापक प्रभु! (वः) आप लोगों के (उत्तमम्) सब से उत्कृष्ट (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (कारुः) क्रियाशील और मन्त्रों का साक्षात् करने वाला विद्वान् (प्र सु वोचाति) अच्छी प्रकार उत्तम रीति से, खूब २ वर्णन करता है। आप (विवस्वतः सदने) विविध ऐश्वर्यों वा लोकों के आश्रय वा महान् आकाश में (सप्त सप्त त्रेधा हि प्रचक्रमुः) सात सात के तीन वर्गों में कार्य करते और जगत् का निर्माण और चालन करते हो। (सृत्वरीणाम्) संस-

रण करने वाली समस्त शक्तियों में (सिन्धुः) समस्त जगत् को थांधने, नियम व्यवस्था में रखने और चलाने वाली महान् शक्ति ही (ओजसा) अपने महान् पराक्रम और वल से (अति प्र क्रमते) बहुत कार्य करती और जगत् का निर्माण आरम्भ करती है। (२) जलों के पक्ष में— जलों के उत्तम महिमा अर्थात् महान् सामर्थ्य का वर्णन (कारुः) शिल्पी, कारीगर, एन्जिनियर ही अच्छी प्रकार बतला सकता है कि विविध लोकों के बसने योग्य भूमि-खण्ड के किस २ स्थान पर जल कैसा है। ये जल सात सात करके ३ प्रकारों से बहते हैं। और निरन्तर बहने वालों में सब से अधिक वेग से नदी का ही प्रवाह होता है। जलों के बहने के मुख्य तीन प्रकार ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर और समधरातल में और उनके सात २ प्रकार इसकी अंग-विद्या से जानने चाहिये। (३) प्राणों के पक्ष में—यह प्राणों का ही महत्व है कि स्तुतिकर्त्ता की वाणी इस देह में व्यक्त वाणी से बोलती है। और २१ रूप होकर प्राण चल रहे हैं। गतिशील शक्तियों में से अपने वल के कारण वह (सिन्धुः) सबको बांधने वाला आत्मा ही (अति प्र) सब से अधिक शक्तिशाली है।

विवस्वतः परिचरणवतो यजमानस्येति सायणः।
विवः इति धननाम इति शाकपूणिः। तद्वान् ॥

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम्। भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२॥

भा०—(सिन्धोः यातवे) जिस प्रकार वेग से बहने वाले जल-प्रवाह के जाने के लिये (वरुणः) उसको अनेक शाखाओं में बांटने वाला वा जलाध्यक्ष विद्वान् इनजीनियर वा कृषक इसके (पथः) मार्गों नाली कुल्या, नहर आदि को (अरदत्) खोदता है, और वह जलराशि (वाजान् अभि-द्रवति) खेत के अन्नों तक पहुंचती है, (भूम्या अधि प्रवता सानुना याति)

अपने अति वेग से वह जल नीचे मार्ग से जाता है। (एषाम् अग्रम् जगताम् इरज्यति) वह जल इन जंगम प्राणियों के मुख्य जीवन का आधार होता है उसी प्रकार (२) हे (सिन्धो) समस्त प्रजाओं को बांधने और दुष्टों को कंपाने में समर्थ राजन्! (ते) तेरे (यातवे) प्रयाण के लिये (वरुणः पथः प्र अरदत्) तुझे वरण करने वाला श्रेष्ठ जन अनेक मार्ग बनावे। (यत्) जिन से (त्वम् वाजान् अभि अद्रवः) तू संग्रामों को वेग से प्रयाण कर सके और अनेक ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सके। तू (प्रवता सानुना) उत्कृष्ट उन्नत मार्ग से (भूम्याः अधि प्र यासि) पृथिवी पर गमन कर। तू (एषां जगताम्) इन जंगम प्रजाओं के (अग्रम्) सब से मुख्य अंश का भी (इरज्यसि) स्वामी है।

(३) अध्यात्म में—वरुण परमात्मा ने मुख्य प्राण के संचरण के लिये देह में अनेक मार्ग इन्द्रिय रूप से बनाये हैं। उन मार्गों से वह अन्नों के ग्राह्य विषयों तक पहुंचता है। वह (पृथिव्याः) पार्थिव देह पर उत्तम रीति से अधिकार करता है (४) प्रभु पक्ष में—हे (सिन्धो) दयासिन्धो! सब शक्तियों के समुद्र! सर्वप्रबन्धक सर्वसञ्चालक प्रभो! (ते यातवे) तुझे प्राप्त करने के लिये (वरुणः) तुझे चाहने वाला भक्त जन अनेक ज्ञान-मार्ग बनाता है, तू समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त है, तू समस्त भूमि पर मेघ के समान समस्त उत्पन्न प्रजा पर उत्तम ऐश्वर्य सहित प्राप्त है। इन जंगम जीवों का भी तू सर्वप्रथम (इरज्यसि) सब का स्वामी है।

दि॒वि स्व॒नो य॑तते॒ भूम्यो॒पर्य॑न॒न्तं शुष्म॒मुदि॑यर्ति भा॒नुना॑।
अ॒भ्रादि॑व॒ प्र स्त॑नयन्ति वृ॒ष्टयः॒ सिन्धु॒र्यदेति॑ वृष॒भो न रोरु॑वत्॥३॥

भा०—(भूम्या उपरि) भूमि के ऊपर (दिवि) आकाश में (स्वनः) गर्जन-शब्द करने वाला मेघ (यतते) व्यापता है। (भानुना) सूर्य के प्रकाश द्वारा (अनन्तं शुष्मम्) अनन्त बलरूप जल (उत् इयात)

ऊपर उठ जाता है। तत्पश्चात् (अभ्रात् इव) जिस प्रकार मेघ से (वृष्टयः प्र स्तनयन्ति) वृष्टियां खूब बरसती हैं, और (सिन्धुः) वेग से बहता जल-प्रवाह (यत् वृषभः न रोरुवत्) जिस प्रकार सांड के समान गर्जना करता हुआ (एति) आता है। इसी प्रकार (यत्) जब (रोरुवत्) गर्जता हुआ (सिन्धुः) राष्ट्र-प्रबन्धक और शत्रु-कम्पक वीर सेनापति वा राजा (वृषभः) बड़े सांड वा बरसते मेघ के समान (एति) प्रयाण करता है, तब (वृष्टयः अभ्रात् इव) जैसे मेघ से वृष्टियां गिरती हैं उसी प्रकार (वृष्टयः) शत्रु को उखाड़ देने वा काट गिराने वाली शक्तियां, तोपें आकाश में (प्र स्तनयन्ति) गर्जती हुई नीचे आती हैं वह (भानुना) अपने तेज से (अनन्तं शुष्मं उत्-इयर्ति) अनन्त शत्रुशोषक बल को उत्पन्न करता है। वह (दिवि स्वनः) आकाश में गर्जते मेघ के तुल्य (भूम्यां उपरि यतते) पृथिवी पर उद्योग करता, विजय करता है। (२) इसी प्रकार अध्यात्म में—आत्मा 'सिन्धु' है वह (दिवि) मस्तक में (स्वनः = सु-अनः) उत्तम चेतना, वा प्राणशक्ति का स्वामी होकर (भूम्याः उपरि यतते) इस पार्थिव देह के ऊपर यत्नशील होता है, उसका स्वामीवत् उपयोग करता है। वह अपने तेज से इस देह में अनन्त बल उत्पन्न करता है, मेघ से वृष्टियों के तुल्य हृदय से रक्तधारायें प्रवाहित होता हैं, वह आत्मा इसमें हर्षित होकर व्यापता है।

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४॥

भा०—(मातरः शिशुम् इत् न) जिस प्रकार माताएं अपने पुत्र को प्रेमवश प्राप्त करती हैं; उसी प्रकार हे (सिन्धो) सब को अपने साथ बांधने और सबके पापों को दूर करदे, वा सबको प्रेरित करने वाले प्रभो! स्वामिन्! (वाश्राः) तुझे पुकारने वाले जन, प्रजाएं (शिशुं त्वा) सब

के भीतर गुप्त रूप से व्यापने वाले, वा प्रशस्त रूप से विद्यमान तुझको ही (अभि अर्षन्ति) लक्ष्य कर तेरी ओर आते हैं। (धेनवः वाश्राः पयसा इव) जिस प्रकार दुधार गौवें अपने पोषक दूध से अपने बच्चे की ओर झुकती हैं उसी प्रकार (वाश्राः) स्तुतिशील जन (त्वा अभि अर्षन्ति) तेरी ओर ही आते हैं। (युध्वा राजा इव) युद्धशील राजा जिस प्रकार (सिचौ) शरवर्षी सैन्य-बलों को आगे ले जाता है उसी प्रकार (त्वम् इत्) तू ही (सिचौ) सेचन करने वाले, निषेक आदि द्वारा सन्तान उत्पन्न करने वाले समस्त नर-नारी जीवों को (नयसि) चला रहा है, (यत्) जो तू (प्रवताम् आसाम्) आगे बढ़ने वाली इनके (अग्रम्) आगे के मुख्य पद को (इनक्षसि) प्राप्त हो, इनमें सबका प्रमुख तू ही है। और जिस प्रकार बहती नदियों में सबसे प्रमुख मुख्य सिन्धु अर्थात् वेगवान् नद प्रमुख होता है वह औरों को अपने साथ लेजाता है और नदियां अपने जलसहित उससे मिल जाती हैं, उसी प्रकार समस्त प्रजाएं उसी प्रभु स्वामी की ओर आती हैं और वही उनको अपने साथ परम धाम में ले जाता है। इसी प्रकार मुख्य प्राण के साथ देहगत अन्य प्राणों का भी व्यवहार जानना चाहिये।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥ ५॥ ६॥

भा०—हे (गंगे) हे गंगे! हे (यमुने) हे यमुने! हे (सरस्वति) सरस्वति! हे (शुतुद्रि) हे शुतुद्रि! हे (परुष्णि) परुष्णि! हे (मरुद्-वृधे) मरुद्वृधे! (वितस्तया असिक्न्या सुसोमया) वितस्ता, असिक्री और सुसोमा इनके साथ विद्यमान हे (आर्जीकीये) आर्जीकीये! तू (मे इमं स्तोमं आ शृणुहि) हमारे इस स्तुतियोग्य वचन को श्रवण कर। लोक में गंगा, यमुना, सरस्वती, परुष्णी, मरुद्वृधा, शुतुद्री, वितस्ता, असिक्री,

सुसोमा और आर्जिकीया ये सब नाम नदियों के प्रसिद्ध हैं। वेद में इन शब्दों का मुख्यार्थ नदियों के प्रति संगत न होने से ये शब्द नदीवाचक नहीं हैं। अध्यात्म में—ये दश विशेष नाड़ियां हैं उन नाड़ियों में व्याप्त आत्म-शक्ति भी उसी २ नाम से पुकारी जाती है। जैसे बृहदारण्यक में लिखा है वही आत्मा—'शृण्वन् श्रोत्रं भवति मनो मन्वानो वाग् वदन्' इत्यादि। इसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये।

इडा च पिङ्गलाख्या च सुषुम्ना चास्थिजिह्विका।
अलम्बुसा यथा पूषा गान्धारी शङ्खिनी कुहूः
देहमध्यगता एता मुख्याः स्युर्दश नाडयः॥
इति 'संगीतविषये' केरललिप्यां हस्तलिखितपुस्तके।

'गंगा' इडा नाड़ी है, वह आत्मा को ज्ञान प्राप्त कराती है, 'यमुना' पिंगला है, जो देह के समस्त अंगों को सुव्यवस्थित करती और संयम में रखती है। सरस्वती सुषुम्ना, उसमें प्रशस्त ज्ञान-सुख का उद्भव होता है, 'परुष्णी' (पर्ववती, भास्वती, कुटिलगामिनी। निरु०) जो प्रतिपर्व पीठ के मोहरों में से नीचे तक गई है, वह वर्ण में चमकीली कुटिल मार्ग में गई है। 'असिक्नी' (अशुक्ला, असिता सितमिति वर्णनाम तत्प्रतिषेधः। नि०) जो शुक्ल अर्थात् चमकीली नहीं, उसमें जो रस बहता है उसका कोई रंग नहीं है। 'मरुद्वृधा' (सर्वा नद्यो मरुतः एनां वर्धयन्ति) जो और नाड़ियां हैं वे उसको बढ़ाती हैं, नाड़ी का वह अंश जहां अन्य सब मिल कर एक हो जाती हैं। अथवा मरुत्, देह के प्राण उसको और वह प्राणों पुष्ट करते हैं। 'शुतुद्री' (शुद्राविणी, क्षिप्रद्राविणी, आशुतुन्ना इव द्रवति) जो वेग से गति करती, भरी २ चलती है। 'वितस्ता' (विदग्धा, विवृद्धा, महाकूला। नि०) देह में वितस्ता वह नाड़ी है जो देह में दाह अर्थात् ताप को धारण करती है, वह बहुत व्यापक और त्वचा भर में व्याप्त है। 'आर्जीकीया' (ऋजूकप्रभवा वा, ऋजुगामिनी वा) ऋजूक से उत्पन्न, वा ऋजु जाने वाली, मस्तक में

विशेष स्थान 'ऋजूक' है उससे निकली नाड़ी वितस्ता है, विपाट् (विपाटनाद्वा, विपाशनाद्वा, पाशा अस्यां व्यापाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद् विपाट् उच्यते । नि०) विपाट् वह नाड़ी है जहां विपाटन होता है, जिसके फटने पर प्राण देह को त्याग देते हैं और आत्मा देह से पृथक् हो जाता है, उसी का प्राचीन नाम 'उरुंजिरा' है । 'सुषोमा' उत्तम प्रेरणा वाली वा उत्तम वीर्य वाली वीर्यवहा नाडी वा जो अंगों में शक्ति प्रदान करे। (सिन्धुः यदेनामभिप्रसुवन्ति नद्यः । सिन्धुः स्यन्दनात् नि०) सब नदियां जैसे सिन्धु में आती हैं ऐसे समस्त प्राण जिसमें आकर लय हो जाते हैं वह आत्मा ही 'सिन्धु' है। वह एक शरीर से दूसरे शरीर में, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हुए महानद के समान जाता है. अतः 'सिन्धु' कहाता है । देह ही देश के तुल्य 'क्षेत्र' कहाता है । (सा मे आत्माभूत् इति सोमः) सोम मेरा अपना ही आत्मा है ऐसा ब्राह्मणप्रोक्त निर्वचन है, इससे 'सुषोमा' स्वयं आत्मा रूप नदी है ।

आत्मा का नदीरूप से वर्णन महाभारत में—

आत्मा नदी संयम-पुण्यतीर्था, सत्योदका, शीलतटा दयोर्मिः । इत्यादि भिन्न२ स्थिति में यहां इन नामों से आत्मा को ही सम्बोधन किया गया है ।

इति षष्ठो व :॥

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६॥

भा०—उसी मुख्य आत्मा का और भी वर्णन करते हैं । हे (सिन्धो) आत्मन् ! तू (स-रथं) रथ अर्थात् रमण करने योग्य इस देह के साथ रहता हुआ (याभिः) जिन अनेक नाड़ियों, देह-अवयवों से (ईयसे) गति करता, संगत होता है वे अनेक हैं जैसे—(प्रथमम्) पहले (यातवे) जाने के लिये (तृष्टामया) 'तृष्टामा' नाम नाड़ी से (सजूः) संगत होता है । फिर (सुसर्त्वा) 'सुसर्तू' नाम नाड़ी के साथ, (रसया) 'रसा' नाड़ी के

साथ (त्या श्वेत्या) उस श्वेत नाड़ी के साथ। (कुभया मेहत्न्वा) 'कुभा' और 'मेहत्नू' नाड़ी के साथ संगत होता है, (गोमतीम् क्रुमुम् ईयसे) तू ही गोमती और क्रुमु नाड़ी के साथ संगत होता है।

(१) तृष्टामा, (२) सुसर्तु, (३) रसा, (४) श्वेत्या, (५) कुभा, (६) गोमती, (७) क्रुमु, (८) मेहत्नू, ये आठ नाड़ियां वेद ने और कही हैं। इनके साथ योग करके आत्मा अनेक देह के कार्यों का सम्पादन करता है। जैसे 'तृष्टामा' नाड़ी से आमाशयगत भोजन को पचाता है। 'सुसर्तु' के योग से देह के समस्त रसों को अपने२स्थानों पर भेजता है, 'रसा' नाड़ी से समस्त देह में रस व्यापता है 'श्वेत्या' से दुग्धवत् रस पक्वाशय से छाती में आकर रक्त में मिलता है, कुभा नाम नाड़ीजाल से देह की त्वचा का निर्माण करता है। 'गोमती' से वाणी का उच्चारण वा इन्द्रिय शक्तियों को वश करता है। 'क्रुमु' से देह के अंगों के चलने की व्यवस्था करता है। 'मेहत्नु' नाड़ी से मूत्र बनने और निकलने की व्यवस्था करता है।

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७॥

भा०—उसी आत्मा का और भी सिन्धु रूप से वर्णन करते हैं। (ऋजीती) ऋजु अर्थात् सरल गति वाली, ताप पहुंचाने वाली नाड़ी और (एनी) श्वेत वर्ण की वा मज्जावाहिनी वा शुक्रवाहिनी नाड़ी, और (रुशती) दीप्तियुक्त कान्ति देने वाली वा ओज धातु को फैलाने वाली नाड़ियें सब नाना स्रोत (महित्वा) उस आत्मा के महान् सामर्थ्य से ही (ज्रयांसि रजांसि परिभरते) वेग से देह में गति करने वाले अनेक रजों अर्थात् जल के समान बहने वाले द्रवरसों को सर्वत्र ले जाती हैं। तब वह (सिन्धुः) आत्मा (अदब्धा) विनाश को न प्राप्त होकर, (आसाम् अपस्तमा) इन समस्त कर्म करने वाले अंगों और इन्द्रियों और देहावयवों

के बीच सर्वश्रेष्ठ काम करने वाली होकर (अश्वा न) घोड़ी के तुल्य सदा शक्ति से युक्त, देह भर में व्यापक, देह की भोक्ता होकर (चित्रा) अद्भुत आश्चर्यकारी, चित्, चेतना को देह भर में देने वाली और (वपुषी इव दर्शता) रूपवतीसी देहमय होकर नयनों से देखने योग्य हो रही है।

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८॥

भा०—वह (सिन्धुः) सब को बांधने वाली शक्ति, आत्मा, (युवतिः) तरुणी स्त्री के समान, बलवती, सबको अपने साथ मिलाए रखने वाली, (सु-अश्वा) उत्तम अश्वों, इन्द्रियगण की स्वामिनी, (सु-रथा) उत्तम रथवत् देह की अधिष्ठात्री, (हिरण्ययी) सुवर्ण के समान कान्तियुक्त, प्रकाशस्वरूप, (सु-कृता) उत्तम कर्म करने वाली, (वाजिनी-वती) वेगवती, ऐश्वर्यवती, बलवती, (ऊर्णावती) आच्छादक लोम, त्वचा वा देहादि से युक्त (सीलमा-वती) नाना नाड़ियों के जाल-बन्धन से युक्त, (सु-भगा) उत्तम सेवनीय ऐश्वर्य की स्वामिनी होकर (मधु-वृधं) मधु, मधुर अन्नादि से वृद्धि पाने वाले देह में (वस्ते) निवास करती है। (२) युवति पक्ष में—युवति (सु-अश्वा सु-रथा) उत्तम अश्व और रथ वाली, हिरण्ययी और काञ्चन देह, वा आभूषण पहिने वा उत्तम कार्यकुशल अश्व-सम्पदा की स्वामिनी, (ऊर्णावती) उत्तम आच्छादन वस्त्र वाली (सीलमा-वती) उत्तम केशादि वेणी बन्धन से युक्त, (सु-भगा) सौभाग्यवती, (मधु-वृधं वस्ते) अन्नादि वर्द्धक क्षेत्र वा गृह में रहती वा मधु अर्थात् मधुपर्कादि से वृद्धिमान्, आदर के योग्य पुरुष को प्राप्त कर उसके आश्रय पर रहती है।

सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः
॥ ९ ॥ ७ ॥

भा०—पूर्वोक्त (सिन्धुः) अनादि काल से प्रवाहवत् नित्य रूप चली आई, (सुखं) सुखपूर्वक (अश्विनं रथं) अश्वों, भोग साधन इन्द्रियों और वेगवान् मन से युक्त, रमण योग्य वा वेग से चलने वाले इस देह से (युयुजे) योग करती है। उसमें सम्यक् रूप से चित्तादि का योग करती, (तेन) उस रथ से वह (अस्मिन् आजौ) इस विजय योग्य जीवन-संग्राम में (वाजं) ज्ञान-ऐश्वर्य था कर्म-फलरूप से अन्नादि भोग्य सुख दुःखादि का अन्न के समान (सनिषत्) सेवन करती है। जो स्वयं (अदब्धस्य) किसी का नाशक नहीं होता और (स्वयशसः) जिसका यश अपने ही ऊपर आश्रित है, वह स्वयं प्रसिद्ध और (विरप्शिनः) महान् है, (अस्य महान् महिमा पनस्यते) इसकी बड़ी भारी महिमा कही जाती है, उसके विषय में विविध प्रकार से कहा जाता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

[७६]

जरत्कर्ण ऐरावतः सर्प ऋषिः॥ ग्रावाणो देवताः ॥ छन्दः—१, ६, ८ पादनिचृज्जगती । २, ३ आर्चीस्वराड् जगती । ४, ७ निचृज्जगती । ५ आसुरीस्वराडार्ची निचृज्जगती ॥

आ व॑ ऋञ्जस ऊ॒र्जां व्यु॑ष्टि॒ष्विन्द्रं॑ म॒रुतो॒ रोद॑सी अनक्तन ।
उ॒भे यथा॑ नो॒ अह॑नी सचा॒भुवा॒ सदः॑सदो वरिव॒स्यात॑ उ॒द्भिदा॑ ॥१॥

भा०—हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! मैं (ऊर्जाम् वि-उष्टिषु) बलवाली सेनाओं के नाना विभागों में (वः आ ऋञ्जसे) आप लोगों को प्रसाधित करता हूं, अच्छी प्रकार सुसज्जित करता हूँ। आप लोग (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् स्वामी राजा वा सेनापति को और (मरुतः) शत्रु को मारने वाले बलवान् पुरुष को और (रोदसी) आकाश-भूमिवत् दुष्टों को रुलाने वाले, रुद्र को पालन करने वाली मुख्य सेनाओं को (अनक्तन) प्रकट करो।

(यथा) जिस प्रकार से (नः) हमें (उभे अहनी) रात दिन दोनों कालों के तुल्य (सचाभुवा) एक साथ रहने वाले स्त्री पुरुष (सदः-सदः) प्रत्येक घर में (उत्-भिदा) उत्तम सुखप्रद अन्न आदि से (वरिवस्यातः) एक दूसरे की सेवा, सत्कार करें। (२) इसी प्रकार विद्वान् लोग प्राणों के निवासाश्रयों में इन्द्र, आत्मा और मरुतों, प्राणों को और रोदसी प्राण और अपान दोनों को (अनक्तन) प्रकट करें, उसका साक्षात् करें।

तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वानो, वीर पुरुषो ! आप लोग (तत्) उसी (श्रेष्ठं) सब से श्रेष्ठ, (सवनं सुनोतन) यज्ञ को करो। (अत्यः न) जिस प्रकार अश्व (हस्त-यतः) हाथों द्वारा नियन्त्रित होकर (सोतरि) अपने चलाने वाले के अधीन रहकर (पौंस्यं) बल को (विदत्) प्राप्त करता है उसी प्रकार (अद्रिः) भयरहित, अविक्षत वा आदरयुक्त वीर सैन्य जन मेघ के तुल्य (अर्यः) स्वामी, (हस्त-यतः) हनन साधन शस्त्रादि से संयत होकर (सोतरि) अपने सञ्चालक सेनापति के नीचे रहकर (अर्यः) शत्रुओं को (अभि-भूति) पराजय करने वाला (पौंस्यं) बल पराक्रम (विदत्) प्राप्त करे और (अर्वतः) नाश करने वाले शत्रुओं को (महः राये) बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (चित्) भी (तरुते) विनाश करे।

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत्।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वरां अशिश्रयुः ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसका (तत् सवनम्) वह उस प्रकार अभिषेक वा शासन (अपः) समस्त प्रजाओं को इस प्रकार (विवेः) व्याप ले (यथा पुरा) जिस प्रकार पूर्ववत् (मनवे) मनुष्य के हितार्थ (गातुम्

अश्नेत्) ज्ञान, मार्ग प्राप्त हो । (गो-अर्णसि) गौ, पृथिवी वा वाणी के रूप में और (अश्व-निर्णिजि) अश्व रूप में (त्वाष्ट्रे) तेजस्वी सूर्य के (गो-अर्णसि) किरण रूप में वा (अश्व-निर्णिजे) व्यापक प्रकाशरूप में (अध्वरेषु) अहिंसनीय पदों पर (अध्वरान्) इन अहिंसनीय, बलवान् (ईम्) वीर वा विद्वान् पुरुषों को ही (प्र अशिश्रयुः) आश्रय रूप से स्थापित करें ।

अप॑ हत र॒क्षसो॑ भङ्गु॒राव॑तः स्कभा॒यत॒ निर्ऋ॑तिं॒ सेध॒ताम॑तिम् ।
आ नो॑ र॒यिं सर्व॑वीरं सुनोतन देवा॒व्यं॑ भरत॒ श्लोक॑मद्रयः ॥ ४ ॥

भा०—हे वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (रक्षसः अप हत) दुष्ट पुरुषों को मारो, उनको दण्ड दो, उनको बुरे कार्यों से दूर करो । (भङ्गुरावतः) नियम-व्यवस्था को भङ्ग करने वाले लोगों को (अप स्कभायत) वश करो । और (निर्ऋतिम्) सर्व प्रकार से कष्ट देने वाली (अमतिम्) दुःखदायी रोग वा अज्ञान बाधा को (अप सेधत) दूर करो । हे विद्वानो ! वीरो ! आप लोग (सर्ववीरं रयिं) सर्व प्रकार के पुत्रों और वीरों से युक्त ऐश्वर्य को (आ सुनोतन) प्राप्त करो । और (देवाव्यं) विद्वानों और वीरों से प्राप्त होने योग्य (श्लोकं भरत) वेद-ज्ञान और कीर्त्ति, यश को (आ हरत) प्राप्त करो ।

दि॒वश्चि॒दा वोऽम॑वत्तरेभ्यो वि॒भ्वना॑ चिदा॒श्व॑पस्तरेभ्यः ।
वा॒योश्चि॒दा सोम॑रभस्तरेभ्यो॒ऽग्नेश्चि॑दर्च पितु॒कृत्त॑रेभ्यः ॥५॥८॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (नः) हमें (दिवः चित्) सूर्य के प्रकाश से भी (अमवत्तरेभ्यः) अधिक बलवान् (विभ्वना चित्) व्यापक विद्युत् से भी अधिक (आशु-अपस्तरेभ्यः) वेग से कार्य करने वाले और (वायोः चित्) वायु से भी अधिक (सोम-रभस्तरेभ्यः) प्रेरक बल से अधिक बलशाली, और (अग्नेः चित्) अग्नि से भी अधिक (पितुकृत्तरेभ्यः) अन्न उत्पन्न करने वाले वीर विद्वान्, परिश्रमी जनों के

लिये तू (अर्च) आदर सत्कार प्रदर्शन कर, उनकी स्तुति कर वा उनको विद्या-ज्ञान दिखा। इत्यष्टमो वर्गः ॥

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥ ६ ॥

भा०—मेघ जिस प्रकार (अन्धसः सोतु) अन्न के उत्पादक जल को धारण और प्रदान करते हैं उसी प्रकार (यशसः) यशस्वी (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा जन (अन्धसः) प्राणधारक अन्न के (सोतु) रस को (भुरन्तु) प्राप्त करें और औरों को भी प्रदान करें (यत्र) जिसमें (नरः) मनुष्य (दिविता) उत्तम कामना से प्रेरित होकर (दिवित्मता वाचा) दीप्तियुक्त, स्फूर्तिजनक वाणी से (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर अति वेगवान् होकर (अभितः आघोषयन्तः) सब ओर आघोषित वा ज्ञानोपदेश करते हुए (काम्यम्) कामना करने योग्य (मधु) मधुर ज्ञान (दुहते) प्राप्त करें।

सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥ ७ ॥

भा०—(अद्रयः) जिस प्रकार मेघ (सोमं सुन्वन्ति) जल और अन्न को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (रथिरासः) रथ वाले महारथी (अद्रयः) पर्वत के तुल्य दृढ़ और मेघवत् शस्त्रवर्षी जन (सोमं सुन्वन्ति) राष्ट्र में ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं। और (रथिरासः) रमण योग्य, आत्मा और देहरूप रथ को वश करने वाले (अद्रयः) स्थिर वा धर्म-मेघ की दशा तक पहुंचे साधक जन (सोमं) सर्व जगद्-उत्पादक प्रभु की (सुन्वन्ति) उपासना करते हैं। वा (सोमं) अपने आत्मा को ही (सुन्वन्ति) साक्षात् करते हैं। वे (गो-इषः) वाणी को प्रेरित करते हुए, स्तुति-प्रार्थनाशील होकर (अस्य रसम्) इस आत्मा के परम आनन्दरूप रस

को (निः दुहन्ति) खूब २ प्राप्त करते हैं। (ऊधः उप-सेचनाय) जिस प्रकार गोपालक जन गाय के थान को दुग्ध के लिये दोहते हैं और जिस प्रकार मनुष्य (उप-सेचनाय) क्षेत्र को सेचने के लिये (ऊधः) जल-धारक मेघ वा तालाब से (दुहन्ति) जल प्राप्त करते और जल से क्षेत्रों को वा मेघ के जल से अपने जलाशयों को भर लेते हैं, उसी प्रकार (ते) वे अनेक साधक जन (उप-सेचनाय) आत्मा में ही रस का निषेक करने के लिये (ऊधः) रस से पूर्ण प्रभु से (दुहन्ति) रस को प्राप्त करते हैं। वे (नरः आसभिः हव्या न) जिस प्रकार मनुष्य मुखों से नाना अन्नों को प्राप्त करते अर्थात् खाते हैं उसी प्रकार (नरः) उत्तम मनुष्य (आसभिः) अपने मुखों से (हव्या) स्तुति योग्य, पुकारने योग्य वचनों को (मर्जयन्ते) स्वच्छ करके प्रकट करते हैं।

एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥८॥६॥

भा०—हे (नरः) नेता, प्रमुख नायक, उत्तम भद्र पुरुषो ! (अद्रयः सोमं सुन्वन्ति) जिस प्रकार जल से भरे मेघ अन्न, ओषधियों को उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार जो लोग (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि और आत्मा परमात्मा की प्रसन्नता के लिये (सोमं सुनुथ) परम रसरूप आत्मा को प्रेरित करते हो। (एते) वे आप (अद्रयः) आदर योग्य जन (सु-अपसः अभूतन) उत्तम २ कर्म करने वाले होवो। आप लोग (दिव्याय धाम्ने) अति देदीप्यमान धाम, लोक के प्राप्त करने के लिये (वामं वामं) अति सेवनीय प्रभु की (सुनुत) उपासना करो और (वः) आप लोग (पार्थिवाय) अपने पृथिवी से बने देह और पृथिवी पर के जीवन के (सुन्वते) प्रेरक सद्गुरु के लिये लिये (वसु-वसु) यहां निवास योग्य प्रत्येक पदार्थ को (सुनुत) उत्पन्न करो। इति नवमो वर्गः ॥

[७७]

स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ६—८ विराट् त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृज्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण (अभ्रप्रुषः) मेघों से जल बिन्दुओं को क्षराने वाले होते हैं वे (हविष्मन्तः) यज्ञोत्पादक होते और (वि-जानुषः) विविध दिशाओं में उत्पन्न होते वा विविध पदार्थों, वृक्षों, वनस्पतियों वा अन्नों और प्राणियों को उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार (मरुतः) विद्वान् वीर और वैश्य वर्ग के जन भी (अभ्र-प्रुषः) मेघ के सदृश प्रजाओं पर धनों, सुखों और ज्ञानों की वर्षा करने वाले होकर (वाचा) वाणी से (वसु प्रुष) ज्ञानरूप धन प्रदान करते हैं। जिस प्रकार (यज्ञाः हविष्मन्तः) नाना हवियों से सम्पन्न यज्ञ वा उत्तम उपकरणों, साधनों से किये गये महायज्ञ (वि-जानुषः) विविध पदार्थों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ये विद्वान्, वीर प्रजाजन भी (हविष्मन्तः) नाना साधनों से सम्पन्न होकर (वि-जानुषः) राष्ट्र में अनेक पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। और यज्ञों के समान ही (वाचा वि-जानुषः) वेद वाणी द्वारा ही विशेष जन्म को प्राप्त होते हैं, विविध प्रकार के विद्वान् कलावित् हो जाते हैं वा विविध पदार्थों का निर्माण करते हैं। हे विद्वान् मनुष्य ! तू (अर्हसे) पूजा और आदर करने के लिये (ब्रह्माणम्) चारों वेदों को जानने वाले, ब्रह्म बड़े भारी ज्ञानी, (न) के सदृश (सु-मारुतम्) उत्तम विद्वानों, वीरों के स्वामी वा उत्तम सुसंयत प्राणवान् आत्मा की (अस्तोषि) स्तुति कर और (शोभसे) अपनी शोभा अर्थात् अपने में उत्तम गुणों के धारण

करने के लिये (एषां गणं) इनके गण की (अस्तोषि) स्तुति कर, उन विद्वानों के समूह का आदर सत्कार कर ।

श्रि॒ये मर्या॑सो अ॒ञ्जीँर॑कृण्वत सु॒मारु॑तं॒ न पू॒र्वीरति॒ क्षपः॑ ।
दि॒वस्पु॒त्रास॒ एता॒ न ये॑तिर आदि॒त्यास॒स्ते अ॒क्रा न वा॑वृधुः ॥२॥

भा०— (मर्यासः) शत्रुओं को मारने वाले, वा मरणधर्मा, मनुष्य (श्रिये) अपनी शोभा और सम्पदा को बढ़ाने के लिये ही (अञ्जीन् अकृण्वत)अपने व्यक्त आभूषणों और कान्तियुक्त शस्त्रों को बनावें। (मर्यासः) मनुष्य (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (अञ्जीन्) व्यक्तरूप से प्रकट कान्तियुक्त आभरणों और पदार्थों को (अकृण्वत) उत्पन्न करते और उनको उपयोग करते हैं । (न) और इसी प्रकार (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (सु-मारुतम्) उत्तम वीरों के गण को भी (अकृण्वत) तैयार करते हैं । जिस प्रकार (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान (क्षपः अति) रात्रियों को अतिक्रमण करके यदि (एताः) आगे २ आने वाले (दिवः पुत्रासः) सूर्य के पुत्रवत् अनेक किरण (न येतिरे) यत्न न करें तब (आदित्यासः) पृथिवी पर के (ते) वे अनेक (अक्राः) विचरने और न विचरने वाले जंगम जीव और स्थावर, चर अचर भी (न ववृधुः) वृद्धि को प्राप्त न हों, उसी प्रकार (एताः) आगे बढ़ने वाले (दिवः पुत्रासः) विजिगीषु विजेता पुरुष के पुत्रों के समान बहुतों की रक्षा करने में समर्थ ये वीर पुरुष यदि (पूर्वीः क्षपः) आगे आने वाले नाशकारी सेनाओं को (अति) अतिक्रमण करके (न येतिरे) उद्योग न करें तो (ते) वे (आदित्यासः) भूमिवासी वा माता पिता वा पुत्रादि आगे बढ़ने वाले प्रजागण (न ववृधुः) वृद्धि को प्राप्त न हों ।

प्र ये दि॒वः पृ॑थि॒व्या न ब॒र्हणा॒ त्मना॑ रिरि॒च्रे अ॒भ्रान्न सूर्यः॑ ।
पाज॑स्वन्तो॒ न वी॒राः प॑न॒स्यवो॑ रि॒शाद॑सो॒ न मर्या॑ अ॒भिद्य॑वः ॥ ३॥

भा०—(ये) जो (बर्हणा) अपने महान् सामर्थ्यवान् (त्मना) आत्मा से, (दिवः पृथिव्याः न) आकाश और सूर्य और पृथिवी वा कामनावान् आत्मा और मूल प्रकृति से भी अधिक (रिरिचे) महान हैं, अथवा (सूर्यः अभ्रात् न) सूर्य जिस प्रकार मेघ से वृष्टि कराता, जल बरसाता है उसी प्रकार जो विद्वान् (दिवः पृथिव्याः) आकाश वा सूर्य के प्रकाश और पृथिवी से भी (रिरिचे) अनेक जल, अन्नादि प्राप्त कराते हैं। वे (पाजस्वन्तो न वीराः) बलवान्, वीर और (पनस्यवः) व्यवहारकुशल, (रिशादसः) दुष्टों को नाश करने वाले, (न) और (मर्याः) शत्रुओं को मारने वाले पुरुष (अभि-द्यवः) सर्वत्र प्रकाशमान होते हैं।

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४॥

भा०—(अपां न यामनि) जलों के बहने में जिस प्रकार (मही न विथुर्यति न श्रथर्यति) भूमि पीड़ित नहीं होती न टूटती फूटती है। इसी प्रकार हे विद्वानो और वीर पुरुषो! (युष्माकम् अपां यामनि) आप्तस्वरूप आप लोगों के प्रयाणकाल और शासनकाल में भी (मही) भूमि, भूमिवासिनी प्रजा (न विथुर्यति) व्यथा को प्राप्त न हो, (न श्रथर्यति) छिन्न भिन्न न हो। हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों का (अयम्) यह (अर्वाक्) प्रत्यक्ष (यज्ञः) सत्संग होता है। आप लोग (प्रयस्वन्तः) उत्तम श्रमयुक्त (न) और (सत्राचः) एक साथ सुसंगत वा सत्य के आश्रित होकर (आगत) आवें। नश्चार्थः ॥

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः
॥ ५ ॥ १० ॥

भा० —(प्रयुजः) उत्तम रीति से लगने वाले अश्व (न) जिस प्रकार (रश्मिभिः) रासों से वश में रहते हैं और ठीक मार्गों पर चलते हैं उसी प्रकार (यूयम्) आप लोग (धूर्षु) धुराओं अर्थात् प्रजा को धारण, नियन्त्रण करने योग्य पदों पर (प्र-युजः) उत्तम योग देने वाले वा नियुक्त होकर (रश्मिभिः) व्यापक वा बांधने वाले विधानों से बद्ध रहो। और (भासा न ज्योतिष्मन्तः) कान्ति वा प्रकाश से चमकने वाले सूर्य चन्द्र आदि के तुल्य ही (भासा) तेज से तेजस्वी होकर (वि-उष्टिषु) विविध कामनाओं वा कार्यों में (श्येनासः) गरुड़ पक्षी के तुल्य उत्साह, वेग और बल से सम्पन्न, वा (श्येनासाः) प्रशंसनीय आचरण वाले होकर (स्व-यशसः) अपना यश फैलाते हुए, (रिशादसः) दुष्टों का नाश करते हुए, (प्र-वासः) उत्तम वस्त्रों को धारण करते हुए, उत्तम रीति से प्रजा का आच्छादन वा पालन करते हुए, उत्तम गृहों के समान (प्र-सितासः) उत्तम बन्धनों, नियमों में बद्ध होकर (प्र-सितासः) उत्तम, शुक्ल कर्मों से शुद्ध अन्तःकरण होकर (परि-प्रुषः) सर्वत्र गमनागमन करनेवाले होवो। इति दशमो वर्गः ॥

प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो, वीरों वा वैश्य वर्ग के जनो ! (यत्) जिस कारण (पराकात्) दूर देश से और (आरात् चित्) समीप से भी (यूयम्) आप लोग (सं-वरणस्य) उत्तम रीति से प्राप्त करने योग्य, सब के मन को प्रिय लगने वाले (राध्यस्य) सर्व-कर्म-साधक, सबको इष्ट, (महः वस्वः) बड़े भारी धन को (वि-दानासः) प्राप्त करते रहते हैं। और इसलिये हे (वसवः) राष्ट्र के बसाने वालो ! आप लोग (सनुतः) छुपे, अप्रत्यक्ष (द्वेषः) अप्रीति कारण को भी (युयोत) दूर करो जिससे तुम्हारे धन-संग्रह के कार्य में विघ्न न पड़े।

य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (अध्वरे) यज्ञ, वा प्रजापालक के सर्वश्रेष्ठ पद पर विराज कर (उद्-ऋचि यज्ञे) अन्तिम ऋचा तक पूर्ण होने वाले यज्ञ की समाप्ति पर (मरुद्भ्यः रेवत् न मानुषः) विद्वान् यज्ञकर्त्ता जनों को धन सम्पन्न पुरुष के तुल्य (ददाशत्) दान-दक्षिणा आदि उदारता से प्रदान करता है, (सः) वह (सु-वीरं) उत्तम पुत्रों, वीरों सहित (वयः दधते) दीर्घ आयु और बल को धारण करता है । (सः) वह (देवानाम् अपि) विद्वानों और अनेक मनुष्यों के भी (गो-पीथे) रक्षा के पद पर (अस्तु) हो।

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥ ८ ॥११॥

भा०—(ते) वे (हि) निश्चय से (यज्ञेषु) यज्ञों, सत्संगों और देवपूजन, अध्ययन, अध्यापन आदि कार्यों में (यज्ञियासः) यज्ञ, सत्संग, पूजा-सत्कार आदि कार्यों के योग्य जन (ऊमाः) सब के रक्षक, सर्व-स्नेही, दुष्टों के नाशक, (शं-भविष्ठाः) सबके लिये सुख कल्याण की भावना करने वाले, (आदित्येन नाम्ना) आदित्य नाम से कहने योग्य हैं। अथवा वे (आदित्येन) अदिति, आकाश, और अदिति पृथिवी के (नाम्ना) जल वा अन्न से (शं-भविष्ठाः) सब को शान्ति सुख देने वाले अथवा (आदित्येन नाम्ना) अदिति, माता पिता के तुल्य रूप से सबको सुख देने वाले हों। वे (अध्वरे यामन्) हिंसा से रहित मार्ग वा नियन्त्रण-व्यवस्था में (महः) महान् पद, यश और ऐश्वर्य आदि (चकानाः) चाहते हुए, (रथ-तूः) रथ वेग से जाने वाले होकर (नः मनीषाम् अवन्तु) हमारे मन की कामना को चाहें, उसको पूर्ण करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[७८]

स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—आर्ची त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । २, ५, ६ विराड् जगती । ७ पादनिचृज्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

विप्रा॑सो॒ न मन्म॑भिः स्वा॒ध्यो॑ देवा॒व्यो॒३॒॑ न य॒ज्ञैः स्वप्न॑सः ।
राजा॑नो॒ न चि॒त्राः सु॑सं॒दृशः॑ क्षिती॒नां न मर्या॑ अरे॒पसः॑ ॥ १ ॥

भा०—वे विद्वान् जन (मन्मभिः) मनन करने योग्य ज्ञानों से (विप्रासः) विविध विद्याओं से पूर्ण (न) और (सु-आध्यः) उत्तम ध्यानशील और सुखपूर्वक, सब विद्याओं को स्मरण करने वाले हों । वे (यज्ञैः) दान, मान, सत्कारों से (देवाव्यः) विद्वान्, ज्ञानदाता, तत्व-प्रकाशक मनुष्यों की, रक्षा, प्रेम, समृद्धि आदि करनेवाले और (सु-अमसः) उत्तम २ कर्म करने वाले हों । वे (राजानः) राजाओं के समान, शुभ गुणों से प्रकाशित होने वाले (चित्राः) अद्भुत आश्चर्यकारक काम करने वाले, (सु-सं-दृशः) उत्तमता से सब तत्वों का साक्षात् करने वाले (मर्याः) मनुष्य (क्षितीनां) समस्त मनुष्यों के बीच (अरेपसः) निष्पाप हों । अथवा (क्षितीनां राजानः न सु-सं-दृशः अरेपसः) समस्त भूमियों के राजाओं के समान स्वयं पाप-अपराध से रहित, न्याय आदि को देखने दिखाने वाले हों ।

अ॒ग्निर्न ये भ्राज॑सा रु॒क्मव॑क्षसो॒ वाता॑सो॒ न स्व॒युजः॑ स॒द्यऊ॑तयः ।
प्र॒ज्ञा॒तारो॒ न ज्येष्ठाः॑ सुनी॒तयः॑ सु॒शर्मा॑णो॒ न सोमा॑ ऋ॒तं य॒ते ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो (अग्निः न) अग्नियों के समान अति तेजस्वी, शत्रुओं को वा भीतरी पापों को दग्ध करने वाले, (भ्राजसा) तेज से (रुक्म-वक्षसः) तेज को धारण करने वाले वा शरीर पर सुवर्णादि के

आभूषण धारण करने वाले हों। वे (वातासः) प्रबल वायुओं के समान (स्व-युजः) अपने को सहायक, स्वयं अन्यों के सहायक वा स्व अर्थात् आत्मा के साथ समाहित, एकाग्र चित्त होने वाले और (स्व-युजः) धन के द्वारा अनेक कार्यों में नियुक्त होने वाले (सद्य-ऊतयः) अति वेग से ठीक समय पर आने और जाने वाले, (प्र-ज्ञातारः) उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वानों के समान, (ज्येष्ठाः न) प्रशस्त पुरुषों के तुल्य, बड़े, महान्, पूज्य, (सु-नीतयः) उत्तम व्यवहार मार्ग में लेजाने वाले, उत्तम धर्म-नीति से आचरण करने वाले, (सु-शर्माणः) उत्तम गृहों से सम्पन्न, उत्तम सुख से सम्पन्न, उत्तम शान्तिदायक, (न सोमाः) और सौम्य गुण वाले, विद्वान्, अभिषिक्त, विद्या-निष्णात जन (ऋतं यते) सत्य मार्ग में गमन करते हैं।

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥३॥

भा०—(ये) जो (वातासः न) प्रबल वायुओं के तुल्य (धुनयः) शत्रुओं को कंपाने वाले और (जिगत्नवः) आगे बढ़ने वाले हैं। जो (अग्नीनां जिह्वाः न) अग्नियों की लपटों के समान (वि-रोकिणः) विविध दीप्तियों, कान्तियों वाले और (योधाः न वर्मण्वन्तः) योद्धाओं के समान कवचों से सम्पन्न हों वे (शिमीवन्तः) उत्तम कार्यों से सम्पन्न (पितृणां शंसाः) माता पिताओं और गुरुओं की वाणियों वा उपदेशों के समान (सुरातयः) सुख और शुभ ज्ञान देने वाले हों। अथवा (पितृणां न) और वे माता पिता गुरु आदिकों के बीच (शं-साः) शान्तिदायक (सु-रातयः) उत्तम दानशील हों।

रथानां न ये१राः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥ ४ ॥

भा०— (ये) जो (रथानां अराः न) रथों में लगे चक्र के अरों के समान (स-नाभयः) एक नाभि वा एक समान बन्धुता में बंधे हों। (जिगीवांसः शूराः न) विजयशील शूरवीरों के समान (अभि-द्यवः) सब ओर विजय करने वाले, तेजस्वी हों वे (वरे-यवः) सत् कार्य में योग देने वाले (मर्याः न) मनुष्यों के समान (घृत-प्रुषः) जलों का सेचन करने वाले (अभि स्वर्त्तारः अर्कम्) अर्चनीय परमेश्वर की साक्षात् स्तुति करने वाले (न) और (सु-स्तुभः) उत्तम उपदेष्टा, वेदज्ञ हों।

अश्वा॑सो॒ न ये ज्येष्ठा॑सः आ॒शवो॑ दिधि॒षवो॒ न र॒थ्य॑ः सु॒दान॑वः।
आपो॒ न नि॒म्नैरु॒दभि॑र्जिग॒त्नवो॑ वि॒श्वरू॑पा॒ अङ्गि॑रसो॒ न साम॑भिः।
॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—(न) और (ये) जो (अश्वासः) नाना विद्याओं में पारंगत (ज्येष्ठासः) प्रशंसनीय, मान, आदर गुणों में महान्, (आशवः) वेग से जाने वाले, (रथ्यः न) रथ में लगे अश्वों के समान (दिधिषवः) सब का पालन पोषण करने वाले, (निम्नैः उदभिः न आपः) नीचे बहने वाले जलों से जलधाराओं के समान (निम्नैः जिगत्नवः) निम्न, विनयशील आचार व्यवहारों से आगे बढ़ने वाले, (विश्व-रूपाः न) और अनेक प्रकार के (अंगिरसः) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (सामभिः) उत्तम, विनययुक्त शान्ति-दायक वचनों से विराजते हैं।

ग्रावा॑णो॒ न सू॒रयः॒ सिन्धु॑मातर आदर्दि॒रासो॒ अद्र॑यो॒ न वि॒श्वहा॑।
शि॒शूला॒ न क्री॒ळयः॑ सु॒मात॑रो महाग्रा॒मो न याम॑न्नु॒त त्वि॒षा ॥ ६ ॥

भा०—वे (सूरयः) विद्वान् जन (ग्रावाणः न) मेघों के समान (सिन्धु-मातरः) जल प्रवाहों को बनाने वाले, नदी, नहरें बनाने वाले वा सब को नियम व्यवस्था में बांध कर चलाने और शत्रु को 'पित करने वाले, सेनापति वा राजा को स्वयं बनाने वाले वा उसको माता के

समान मान्य मानने वाले हों। वे (अद्रयः न) शस्त्रों वा खड्गों के समान (विश्वहा) सदा (आदर्दिरासः) सब ओर शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले हों। वे (क्रीडयः शिशूलाः न) खेलने वाले बच्चों के समान (सु-मातरः) उत्तम माता वाले, उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों के अधीन हों। वे (यामन्) प्रयाण या शत्रु पर चढ़ाई करते हुए (त्विषा) कान्ति तेज और प्रभाव में (महा-ग्रामः न) बड़े जनसंघ के समान भयकारक हों। (२) उसी प्रकार शरीर में प्राणगण, देह को सञ्चालित करने से 'सूरि' हैं। 'सिन्धु' अर्थात् आत्मा रूप माता के पुत्र हैं। देह को बलपूर्वक स्थान २ पर भेद कर वे इन्द्रियों के छिद्र बनाते हैं। शब्द आदि विषयों में रमने से 'क्रीडि' हैं। चेतन आत्मा ही उनकी माता है। उनका संघ ही महाग्राम-वत् देह में गति करता है।

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन्।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७॥

भा०—(उषसो न केतवः) प्रभात काल की रश्मियां जिस प्रकार (अध्वर-श्रियः) जीवन रूप यज्ञ का आश्रय वा अविनाशी सूर्य की शोभा वा कान्ति होती हैं उसी प्रकार विद्वान् और वीर जन भी (अध्वर-श्रियः) यज्ञ वा महान् अविनाशी आत्मा वा परमेश्वर के ऊपर आश्रय लेने वाले, वा यज्ञ की शोभा करने वाले हों। (शुभंयवः अञ्जिभिः वि अश्वितन्) जिस प्रकार किरणें जलों को प्राप्त करते वा प्राप्त कराते हैं और प्रकाशों से जगद् भर को चमकाते हैं उसी प्रकार वे भी (शुभंयवः) शोभन आभूषण आदि और गुणों को धारण करने वाले, (शुं-यवः) आदरणीय जल अर्घ्य की कामना करने वाले, (अञ्जिभिः वि अश्वितन्) उत्तम आभरणों से चमकें, वा (अंजिभिः) तेजों, ज्ञान-प्रकाशों से विशेष रूप से (वि अश्वितन्) सुशोभित हों। वे (सिन्धवः) जलधाराओं वा नदियों

के समान (ययिनः) सदा वेग से प्रयाण करने वाले, सदा आगे बढ़ने वाले, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते शस्त्रों वाले, (भ्राज-दृष्टयः) देदीप्यमान, तेजस्वी चक्षुओं वाले हों। वे (परावतः) दूर २ के जाने वाले अश्व जैसे (योजनानि ममिरे) अनेक योजन लांघ जाते हैं उसी प्रकार वे भी (परावतः) परम पद पर विद्यमान प्रभु के (योजनानि) संयोग सुखों को वा योग द्वारा अनेक प्राप्ति साधनों को (ममिरे) करते और अन्यों को उपदेश करते हों। वा दूर देशों के यात्रियों के तुल्य दूर २ देशों को जाने वाले हों।

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥ ८ ॥ १३ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वानो, वीरो और व्यवहार कुशल जनो ! आप लोग (नः) हमें (सु-भागान्) उत्तम धन-सम्पन्न, (सु-रत्नान्) उत्तम रत्नों का स्वामी (कृणुत) बनाओ। हे (मरुतः) वीर जनो ! आप लोग (अस्मान् स्तोतॄन्) हम लोगों के स्तोता, समस्त पदार्थों के गुणों का वर्णन, उपदेश करने वालों को (वावृधानाः) बढ़ाते हुए, हमारे (स्तोत्रस्य सख्यस्य) स्तुति योग्य, सख्य, मैत्री भाव को (अधि गात) प्राप्त करो, वा हमें स्तुत्य मित्र भाव का उपदेश करो। (वः) आप लोगों के (रत्नधेयानि) अनेक रम्य, सुन्दर २ ज्ञान देने योग्य (सनात हि) सदा से ही (सन्ति) विद्यमान हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७६]

अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा सप्तिर्वा वाजम्भरः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥ १ ॥

भा०—मन्त्र में अग्नि, जाठर अग्नि और व्यापक आत्मा और परमात्मा का श्लेष से वर्णन है। (अस्य अमर्त्यस्य) इस अविनाशी, (महतः) महान् प्रभु आत्मा के (महित्वम्) महान् सामर्थ्य को मैं (मर्त्यासु विक्षु) मरणधर्मा, विनाश होने वाली प्रजाओं, देहों और विनश्वर लोकों के बीच में (अपश्यम्) देखता हूँ। उस महान् अग्नि का क्या महान् बल है? कि (नाना) अनेक (हनू) मुख के दो जबड़ों के समान गतिशील सूर्य और पृथिवी, (वि-भृते) भिन्न २ रूप से स्थित होकर या विशेष रूप से धारित होकर (सं भरेते) समस्त प्राणियों को पालन पोषण कर रहे हैं। और (असिन्वती) वे दोनों किसी को बन्धन में न बांधती हुई भी (बप्सती) मानों खाती हुई सी (भूरि अत्तः) बहुत २ खा जाती हैं, सभी प्राणी लोक इनमें ही मर कर अपने देहों को इनके अर्पण करते हैं वह देह छिन्न भिन्न होकर इसी में मिल जाते हैं। अध्यात्म में—इस आत्मा का महान् सामर्थ्य है, जो मरणधर्मा नश्वर देहों में विद्यमान है। उसके दोनों (हनू) जबाड़े, (वि-भृते संभरेते = विहृते संहरेते) खुल २ कर फिर २ बन्द होते हैं। वे दोनों (असिन्वती) किसी अन्न आदि ग्रास को बांधती नहीं तो भी अन्न को कूंच कर खाजाती हैं और बहुत सा और बहुत वार खाती हैं, यह उसी अग्नि चेतना वा जाठर अग्नि की महिमा है। खाकर भी वे जबाड़े (असिन्वती) अन्न को अपने में नहीं रख लेते प्रत्युत जाठर अग्नि को ही समर्पित कर देते हैं। (३) इस अग्नि के दो जबाड़े (हनू) पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाली दो शक्तियां ताप और विद्युत् हैं, वे दोनों (वि-भृते संभरेते) आपस में एक दूसरे से पृथक् और परस्पराकर्षण से पुनः २ मिलने वाली हैं। वे ज्वालाएं किसी को विना पकड़े ही खा जाती हैं। और बहुत पदार्थों को भस्म कर देती हैं।

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि।
अन्नाण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२॥

भा०—देखो शरीर में स्थित वैश्वानर आत्मा की अद्भुत महिमा। (शिरः गुहा निहितम्) शिर भाग, मस्तिष्क गुहा अर्थात् खोपड़ी के भीतर सुरक्षित रखा है। और (अक्षी ऋधक्) दोनों आंखें पृथक् २ बनी हैं। वह (जिह्वया) जिह्वा द्वारा (असिन्वन्) भोज्य पदार्थ को विना पकड़े ही (वनानि) नाना भोग्य पदार्थों को (अत्ति) खा जाता है। (अस्मै) इसी पेट की अग्नि के लिये (पड्भिः) पैरों से अन्य २ देशों में जा २ कर (अन्नाणि) अनेक खाद्य पदार्थ (सं भरन्ति = सं हरन्ति) प्राप्त करते हैं। और (अधि विक्षु) प्रजाओं के बीच (नमसा) अन्न सहित (उत्तानहस्ता) अपने हाथों को ऊपर उठाये हुए (अस्मै) इस वैश्वानर अग्नि को तृप्त करने के लिये ही (पड्भिः) उत्तम आदरयुक्त वचनों सहित (अन्नाणि) नाना खाद्य (सं भरन्ति) प्रदान करते हैं।

परमात्मा के पक्ष में—उस प्रभु का शिर (गुहा निहितम्) महान् आकाश में स्थिर है। 'द्यौर्मूर्धा'०, सूर्य और चन्द्र उस प्रभु के (अक्षी ऋधक) दो पृथक् २ आंखों के समान हैं। विद्युत् उसकी जिह्वा के समान (वनानि अत्ति) जलों को ग्रहण करती हैं, उस प्रभु को प्राप्त करने के लिये ही भक्त जन हाथ उठा कर ज्ञानमय वचनों से नमस्कारपूर्वक स्तुति करते और प्रजाओं में दान देते हैं।

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥ ३ ॥

भा०—(कुमारः नः) क्रीड़ाशील छोटा बालक जिस प्रकार (मातुः गुह्यम्) आंखों से ओझल माता के छुपे रूप को (प्रतरम् इच्छन्) खूब चाहता हुआ (वीरुधः प्र सर्पत्) अनेक लताओं की ओर जाता है

और माता को ढूंढता है। और ढूंढ कर (उपस्थे अन्तः) माता की गोद में चढ़ कर (पक्वं ससं न) पके अन्न के समान (शुचन्तं) अति उज्ज्वल दूध को (रिरिह्वांसं) पीता हुआ अपने को (अविदत्) पाता है उसी प्रकार यह जीव आत्मा (कुमारः) अर्थात् रूप रस गन्ध आदि विषयों में क्रीड़ा-विहार करता हुआ (मातुः) माता के (प्र-तरम्) सर्वोत्कृष्ट (गुह्यं) गर्भाशय को (इच्छन्) चाहता हुआ और (प्रतरम् इच्छन्) खूब २ चाहता हुआ पहले (ऊर्वीः वीरुधः प्र-सर्पत्) अनेक लताओं को प्राप्त होता है अर्थात् भूमि पर विविध रूप से उगने वाले अनेक स्थावर योनियों को प्राप्त होता है। और तब (रिपः उपस्थे अन्तः) वह अपने को भूमि की गोद में, भीतर (पक्वं ससं न) पके अन्न के समान (शुचन्तम्) अति उज्ज्वल शुक्र रूप जल वा दुग्ध रूप अंश को (रिरिह्वांसं) चाटता वा पीता हुआ (अविदत्) पाता है। स्थावर योनि के अनन्तर जीवों से खाया जाकर फिर प्रथम पुरुष-देह में वीर्य रूप होकर, पुनः माता के गर्भाशय में शुक्रांश रूप से वृद्धि पाकर, माता की गोद में दूध पान करता और भूमि पर अन्न भी खाता और पक्व फलवत् अपने अनेक कर्मों के फलों का उपभोग भी करता है। (२) पक्षान्तर में—अध्यात्मसाधक योगी (कुमारः न) बालक के समान निर्लेप, निष्पाप होकर (मातुः)सब जगत् के निर्माता परमेश्वर के (गुह्यम्) गुहा, हृदय या बुद्धि में स्थित, स्व-बुद्धिमात्र-संवेद्य, (प्र-तरम्) सर्वोत्कृष्ट, इस संसार-सागर से तरा देने वाले रूप को (इच्छन्) चाहता हुआ (ऊर्वीः वीरुधः प्रसर्पत्) अनेक विपरीत रूप से उठने वा उसे मोक्ष मार्ग से रोकने वाली अनेक, बाधाओं को पार करता है और वह (वीरुधः) विविध रूप से उत्पन्न करने वाली (ऊर्वीः) अनेक भोग भूमियों को (प्र सर्पत्) गुज़रता है। बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते गीता० ॥ वह बाद में (रिपः उपस्थे अन्तः) इस पृथिवी वा पार्थिव देह के ही गोद में, भीतर हृदय में (पक्वं ससं न) पके धान्य के सदृश

(शुचन्तं) अति देदीप्यमान, शुद्ध, उज्ज्वल, प्रकाशस्वरूप, (रिरिह्वांसं) अनेक भोगों को भोगता हुआ अपने आप को धान्य की तरह से उत्पन्न होता और मरता हुआ (अविदत्) पाता है।

सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ काठकोपनि० ॥

अथवा बहुत जन्म के बाद इस देह में ही कभी वह साधक अपने को पके धान के समान पाकर शुद्ध प्रभु का दर्शन कर अपने बन्धन को उसी प्रकार काट देता है जैसे कृषक पके धान को काट देता है।

तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥ ४ ॥

भा०—हे (रोदसी) सूर्य और भूमि के सदृश माता पिताओ ! मैं (वाम्) आप दोनों के सम्बन्ध में (तत्) उस (ऋतम्) सत्य तत्व को (प्र ब्रवीमि) बतलाता हूँ कि (जायमानः गर्भः) प्रकट होता हुआ, उत्पन्न होता हुआ गर्भगत बालक (मातरा अत्ति) माता पिता के अंश को ही खाकर बढ़ता है। सच तो यह है कि (अहम् मर्त्यः) मैं मरणधर्मा जीव (देवस्य न चिकेत) उस अन्न वा कर्मफल देने वाले दाता प्रभु के सम्बन्ध में नहीं जानता हूँ। (अंग) हे विद्वान् जनो ! (अग्निः) वही तेजःस्वरूप, ज्ञानवान्, सब जगत् का प्रकाशक, सब का आदि कारण, सब को पुनः भस्म कर अपने भीतर लीलने वाला प्रभु ही (वि-चेताः) विविध ज्ञानों को जानने वाला और (सः प्र-चेताः) वही सब से उत्कृष्ट ज्ञानवान् है। (२) जिस प्रकार रगड़े जाते दो काष्ठों से आग उत्पन्न होती है और फिर वहकाष्ठ को ही खाकर चमकती है उसी प्रकार जीव माता पिता से उत्पन्न होकर शुक्र-शोणित अंश को प्राप्त कर जीवन धरता, और बढ़ता है। पुनः माता के अंशरूप दूध को पीता और फिर बड़ा होकर भी माता-पिता के धन सम्पदा को भोगता वा पृथिवी और सूर्य के अन्न-जल-

प्रकाश से जीता है। परन्तु फिर सुख-दुःखादि नाना कर्मफल किस प्रकार भोगता है कैसे माता पिता के शुक्र-शोणित में आता है। इत्यादि रहस्यों को यह मरणधर्मा जीव क्या जाने ? इस अदृश्य रहस्य को तो वह प्रभु ही जानता है।

यो अस्मा अन्नं तृष्व१दधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥ ५ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्मै) इस जीव के उपकारार्थ (तृषु) अति शीघ्र, तुरन्त, चाहते ही, (अन्नम्) खाने योग्य माता के स्तनों में दूध आदि रूप से खाद्य पदार्थ को (आज्यैः घृतैः) चिकनाई और द्रव-तत्वों के सहित (आ दधाति) प्रदान करता है और जो भूमि पर अन्न को (आज्यैः घृतैः) तेल, मक्खन आदि चिकने पदार्थों को और नाना जलों सहित भूमि पर देता है, (जुहोति) आकाश से और भूमि से प्रदान करता है, माता के स्तन-ग्रन्थियों से आहुतिवत् देता है, और (पुष्यति) समस्त जीवों को पुष्ट करता और बढ़ाता है। (तस्मै) उसके (सहस्रम्) सहस्रों, विश्वरूप रूप को मैं (अक्षभिः) अपने अनेक इन्द्रियों से (विचक्षे) देखता हूं। हे (अग्ने) अग्निवत् सर्वप्रकाशक ! प्रभो ! (त्वम् प्रत्यङ् असि) तू साक्षात् तेजोमय, समस्त विश्व के प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक आत्मा में व्यापक अन्तर्यामी, प्रत्यक् (असि) है।

परमेश्वर का 'सहस्र' अर्थात् सहस्रों का सा रूप वा सब से अधिक बलशाली रूप विराट् ही है जिसको वेद ने कहा है "'सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।" अथवा—

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ गी० ११।२३॥

सर्वं वै सहस्रम्। शत०। यह सर्व, विश्वरूप प्रभु का है, जैसे—

नमः पुरस्तादथपृष्ठतस्ते नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ।

अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोपि ततोसि सर्वः ॥गी० ११।४०॥

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! प्रकाशवान् ! प्रभो ! तू (किम् एनः) किस अपराधो को देख कर (देवेषु) मनुष्यों पर (त्यजः चकर्थ) क्रोध करता है, रुद्र हो उनको दण्ड देता है । मैं (अविद्वान्) अज्ञानी और (अक्रीडन्) किसी प्रकार का हास्य-विनोद न करता हुआ, सत्य जिज्ञासु भाव से (त्वाम् पृच्छामि) तुझसे पूछता हूं । (हरिः) जगत् को हरने वाला संहारकारी, (क्रीडन्) मानो खेलता हुआ ही (अत्तवे अदन्) खाद्य पदार्थ खाता हुआ (पर्वशः) पोरु २ पर (गाम् इव असिः) तांत या चमड़े वा अन्न को शस्त्र के समान (वि चकर्त) काट डालता है ।

संहारकारी प्रभु का उग्र रूप देखकर स्वभावतः जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि दयालु प्रभु भला क्योंकर इतना उग्र होता है । इसका वर्णन वा व्याख्या गीता के ११ वें अध्याय में देखो वहां भी अर्जुन जिज्ञासु ने प्रश्न किया है—

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोस्तु ते देववर प्रसीद ।

विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥११।३१॥

प्रलयकाल में पर्वशः-छेदन जैसे—

केचिद्विलग्नाः दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाण विशन्ति दंष्ट्रा करालानि भयानकानि ।

प्रलयकाल में विश्वसंहारक शक्ति का उग्र रूप इस प्रकार दीखता है, जैसे गीता में—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।
लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत् समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।

गी० ११ । २९ । ३० ॥

प्रभु के उस भयंकर रूप को देखकर जिज्ञासु का सब विहार-विनोद नष्ट हो जाता है । वह मूढ़ चेतना और ज्ञान से शून्य अपने को पाता है । ऐसा ही भाव गीता में दिखाया है जैसे—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे

गीता ११ । ४२, ४४ ॥

वि॒पृचो॒ अश्वा॑न्युयुजे॒ व॒ने॒जा ऋजी॑तिभी रश॒नाभि॑र्गृभी॒तान् ।
च॒क्ष॒दे मि॒त्रो वसु॑भिः सु॒जा॑तः॒ समा॑नृधे॒ पर्व॑भिर्वावृधा॒नः ॥७॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (वनेजाः) तेजोमय प्रकाश में प्रकट होनेवाला सूर्य (ऋजीतिभिः) ऋजु-सरल मार्ग से जाने वाले (रशनाभिः) व्यापक शक्तियों सहित वा (ऋजीतिभिः) संतापदायक (रशनाभिः) व्यापक किरणों से (गृभीतान्) पकड़े हुए (वि-पृचः) सर्वत्र सब ओर पहुंचने वाले (अश्वान् युयुजे) व्यापक अन्धकार-नाशक प्रकाशमय किरणों को प्रेरित करता है और वह (सु-जातः) उत्तम रूप में प्रकट होकर (वसुभिः) आच्छादक किरणों वा पृथिव्यादि लोकों सहित (चक्षदे) आकाश में गति करता है, और (वावृधानः) बढ़ता हुआ (पर्वभिः)

पर्वों से राशि-चक्र के राशि २ पर वा जगत् के पालक किरणों से (समानृधे) समृद्ध होता है। इसी प्रकार (वने-जाः) यह आत्मा मातृगर्भ में जलों में, शुक्रों में उत्पन्न वा प्रकट होकर (ऋजीतिभिः) तापदायक (रशनाभिः) खाने वा भोगने की इच्छाओं वा कामनाओं से (गृभीतान्) वशीभूत (अश्वान्) भोग-साधन अश्ववत् इन्द्रियों को (युयुजे) देह में युक्त करता और प्रेरित करता है। वह (मित्रः) देह को मरने वा मृत्यु से बचाता हुआ (सुजातः) सुख से उत्पन्न होकर (वसुभिः) देह में बसे आठों प्राणों से (चक्षदे) गर्भ से बाहर स्खलित होता है, वह अनायास फिसल आता है। वह अनन्तर (वबृधानः) निरन्तर पोषण पाता हुआ (पर्वभिः) दिनों, पक्षों और मासों और वर्षों रूप काल के अवयवों से (समानृधे) सम्पन्न होता है। वा (पर्वभिः) पर्वों से दिनों दिन चन्द्र के तुल्य बढ़ता है। (३) अग्निपक्ष में अग्नि काष्ठों या वन में उत्पन्न होकर (अश्वान्) फैले २ हुए बड़े २ वृक्षों को लग जाता है, जो वृक्ष (ऋजीतिभिः रशनाभिः गृहीतान्) सीधी २ फैलती लताओं से आश्रित होते हैं। वह (वसुभिः) वायुओं से खूब बढ़ कर उनको (चक्षदे) खण्ड २ करता और पौरु २ पर बढ़ता है। (४) इसी प्रकार वीर अग्नि-तुल्य तेजस्वी पुरुष अश्वों को रथ में जो सीधी रासों से बन्धे अश्वों को जोड़ता है, वह मित्रवत् सर्वस्नेही रक्षक होकर वसु अर्थात् प्रजाजनों और अध्यक्षों से आगे बढ़ता और (पर्वभिः) पर्वों से चन्द्र के तुल्य पालक-जनों, अध्यक्षों से वा पालनकारी साधनों, सैन्यों से, वज्रादि शस्त्रास्त्रों से (वावधमानः) शत्रु सैन्यों को काटता हुआ, वा स्वयं बढ़ता हुआ (समानृधे) सबके साथ समृद्ध होता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[८०]

अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ३, ७ निचृत् त्रिष्टुप्॥

अग्निः सप्तिं वाजम्भरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरन्धिम् ॥१॥

भा०—प्रभु, परमेश्वर, आत्मा और वीर शासक पुरुष का अग्निवत् श्लिष्ट वर्णन। (अग्निः) जिस प्रकार अग्नि (वाजं-भरम् सप्तिम्) अन्न को खाकर पुष्ट होने वाले गतिशील देह को (ददाति = दधाति) पुष्ट करता है, अग्नि विद्युत् (वाजं-भरम् सप्तिं ददाति) स्वामी को वेग से दूर देश में लेजाने वाला गतिशील यान प्रदान करता है, उसी प्रकार (अग्निः) परमेश्वर वा आत्मा ही (वाजं-भरम्) बल वीर्य के धारक सूर्य आदि लोक, अन्न आदि धारक गतिशील पृथिवी आदि लोक को (ददाति) धारण करता है। या वही प्रभु इस जीव को (वाजं-भरं सप्तिं) बल-वीर्य-धारक मन वा आत्मा से पुष्ट-होने वाले प्राण वा देह को प्रदान करता है। (अग्निः) वही तेजःस्वरूप प्रभु हमें (वीरं) वीर्यवान् (श्रुत्यं) श्रुत, वेदार्थ-ज्ञान में निष्ठ (कर्म-निष्ठाम्) सत् कर्म में निष्ठ, पुरुष वा पुत्र (ददाति) प्रदान करता है। (अग्निः) वह प्रभु परमेश्वर सूर्यवत् (रोदसी सम्-अञ्जन्) दोनों लोकों को प्रकाशित करता हुआ (वि चरत्) व्यापता है, वही (अग्निः) ज्ञानवान् प्रभु (वीर-कुक्षिम्) पुत्र को कोख में धारण करने वाली (पुरं-धिम्) देहधारक वा गृह-कुटुम्ब की धारक (नारीम्) स्त्री को भी बनाता और पालन करता है। (२) आत्मा (श्रुत्यं) वेद में प्रसिद्ध, वा वेद आदि वचनों से श्रवण करने योग्य (वीरं) देह को संचालित करने वा विविध वाणी बोलने वाले (कर्म-निः-ष्ठाम्) कर्म में निरत आत्मा को धारण करता, वही आत्मा दोनों लोकों में विच-रता है, वही (वीर-कुक्षिम्) प्राणों के गर्भ के लिये 'पुरन्धि' अर्थात् पुर रूप देह के धारक नारी अर्थात् पुरुष की चिति शक्ति को धारण करता है।

अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥ २ ॥

भा०—(अप्न-सः) उत्तम रूपवान्, तेजस्वी और कर्म कुशल (अग्नेः) ज्ञानवान् पुरुष की (समित्) खूब दीप्ति करने वाली शक्ति; अर्थप्रकाशक वाणी (भद्रा अस्तु) अग्नि की दीप्ति के समान ही सबका कल्याण और सुख करने वाली हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, प्रभु ही (मही रोदसी आ विवेश) विशाल आकाश और पृथिवी में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। (अग्निः) वह तेजस्वी प्रभु ही (समत्सु) संग्रामों में (एकं) किसी एक प्रधान, बलवान् को प्रेरित करता है और (पुरूणि वृत्राणि दयते) बहुत से बढ़ते शत्रुओं को विनष्ट कर डालता है।

इसी प्रकार अग्नि देह में तेजोमय वीर्य वा ओज धातु है। वह देह के बाह्य रुचिर रूप, कान्ति को बनाये रखता है, और देह में कर्म-शक्ति को स्थिर रखता है इसलिये 'अप्नस्' है। उसकी कान्ति कल्याणकारिणी है। वह (रोदसी) मस्तक और मूल भाग दोनों स्थानों में प्रवेश करता है। वह (समत्सु) हर्ष के अवसरों में (एकम्) एक आत्मा को प्रेरित करता है और अनेक (वृत्राणि) रोगों को दूर करता है।

अ॒ग्निर्ह॒ त्यं जर॑तः॒ कर्ण॑मावा॒ग्निर॒द्भ्यो निर॑दह॒ज्जरू॑थम्।
अ॒ग्निरत्रिं॑ घ॒र्म उ॑रुष्यद॒न्तर॒ग्निर्नृ॒मेधं॑ प्र॒जया॑सृज॒त्सम् ॥ ३ ॥

भा०—(अग्निः ह) निश्चय यह ज्ञानप्रकाशक, सब का उत्पादक प्रभु ही (जरतः) स्तुति करने वाले के (कर्णम्) कार्य-साधना करने वाले साधनरूप देह की (आव) रक्षा करता है। (अग्निः) वह तेजोमय प्रभु ही (अद्भ्यः) प्राणों वा देह में चलने वाली रक्तधाराओं से और मेघ के जलों के बल से (जरूथम्) आयु का नाश करने वाले, वार्धक्य, प्राणियों के जीवन-नाशक-अकाल मृत्युआदि त्रास को (निर् अदहत्) सर्वथा भस्म कर देता है। (अग्निः) सूर्यवत् तेजस्वी प्रभु ही (अत्रिम्) कर्मफलों के भोक्ता जीव वा इस भूलोक के वासी जीवगण को (घर्मे) अति ताप में

और अतिवृष्टि-काल में भी (उरुष्यत्) रक्षा करता है। (अग्निः) वह ज्ञानी ही (नृ-मेधम्) मनुष्यों को अन्न देने वाले, मनुष्यों के साथ सत्संग और स्नेह करने वाले पुरुष को (प्रजया सम्-अजत्) प्रजागण के साथ जोड़े रहता है। (२) जाठर वा ओषधि रूप अग्नि, वृद्ध के भी देह को बचाता है। वह (अद्भ्यः) देहगत जलांशों से ही वार्धक्य को दूर करता है, अन्नभोक्ता जीव को भीतरी अग्नि तेजोमय वीर्य ही बाहर के ताप से बचाता है। मनुष्यों का उत्पादन रूप यज्ञ करने वाले गृहस्थ को वही (अग्निः) अग्निरूप तेजोमय वीर्य प्रजा से युक्त करता है।

अ॒ग्निर्दा॑द् द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा अ॒ग्निरृषिं॒ यः स॒हस्रा॑ स॒नोति॑।
अ॒ग्निर्दि॒वि ह॒व्यमात॑ताना॒ग्नेर्धामा॑नि॒ विभृ॑ता पुरु॒त्रा ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) वह तेजस्वी अग्रणी नायक प्रधान पुरुष वा प्रभु ही (द्रविणं दात्) नाना धन और ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष ही (वीर-पेशाः) वीर के समान सर्वप्रेरक रूप (यः) जो (ऋषिम्) ज्ञानद्रष्टा जन को (सहस्रा सनोति) सहस्रों वेदवाणियां प्रदान करता है वही (अग्निः) सर्व प्रथम नेता, तेजोमय पुरुष, प्रभु (दिवि) आकाश वा सूर्य में (हव्यम्) अग्नि में चरु, और जाठर में अन्न के समान आदान योग्य जल वा तेज को द्रवरूप में विस्तृत कर रहा है। वा वही विशाल आकाश में उपादेय प्रकृति-तत्त्व को विस्तृत करता है। (अग्ने पुरुत्रा धामानि) अग्नि के अनेकधाम, तेज और लोक (विभृता) विशेष रूप से धारण किये जाते हैं। (२) अध्यात्म में—(वीर-पेशाः) विविध शक्तियों का प्रेरक वीर्यरूप अग्नि (द्रविणं) द्रुत होकर बहने वाले वीर्यांश तेज को प्रदान करता है, वही (ऋषिम्) तत्वज्ञानी को (सहस्रा) अनेक बल, अनेक ज्ञान और सहस्रों वर्षों वा दिनों का दीर्घ जीवन प्रदान करता है। वह अग्नि रूप वीर्य ही (दिवि) मस्तक में

(हव्यम्) अन्न के तुल्य भोजन देता है, मस्तक का भोजन वीर्य है। वीर्य के अनेक तेज वा धारक-पोषक बल शरीर में धारण किये जाते हैं।

अ॒ग्निमु॒क्थैरृष॑यो॒ वि ह्व॑यन्ते॒ऽग्निं नरो॒ याम॑नि बाधि॒तास॑: ।
अ॒ग्निं वयो॑ अ॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑न्तो॒ऽग्निः स॒हस्रा॒ परि॑ याति॒ गोना॑म् ॥५॥

भा०—(अग्निं) ज्ञानस्वरूप प्रभु को ही (ऋषयः) ज्ञानदर्शी ऋषि लोग (उक्थैः) वेद-वचनों से (वि ह्वयन्ते) विविध प्रकार से बुलाते, उसकी स्तुति करते हैं। (नरः) नेता मनुष्य (यामनि) शत्रुवध के लिये करने योग्य प्रयाण वा संग्राम के अवसर में (बाधितासः) पीड़ित होकर (अग्निम् वि ह्वयन्ते) अग्रणी सेना-नायक के तुल्य विविध प्रकारों से पुकारते हैं। इसी प्रकार साधक जन (यामनि) इन्द्रिय-दमन और तपस्या वा योग-साधना-काल में (बाधितासः) विघ्नों, भीतरी क्रोध, काम आदि शत्रुओं से बाधित होकर उसी प्रभु की प्रार्थना करते हैं। (अन्तरिक्षे पतन्तः वयः) आकाश में उड़ते हुए पक्षी के आकार के विमान भी (अग्निम्) अग्नि-तत्त्व विद्युत् को ही जिस प्रकार विशेष रूप से बतलाते हैं उसी प्रकार (अन्तरिक्षं) भीतरी हृदय वा अन्तःकरण में (पतन्तः) प्रवेश करते हुए (वयः) ज्ञानी, परमहंस लोग उस ज्ञानी, तेजोमय प्रभु का ही ध्यान करते हैं, उसी का साक्षात् करते हैं। (अग्निः) वही ज्ञानी (गोनाम् सहस्रा परि याति) वेदवाणियों के सहस्रों को प्राप्त करता, उनमें ज्ञानार्थ रूप से विचरता है। (२) स्थूल अग्नि की ऋषि जन यज्ञों में स्तुति करते, उसका अनेक रूप से उपदेश करते हैं। मार्गादि में पीड़ित होकर अग्नि का प्रयोग कर मार्ग को उज्ज्वल करते हैं। अन्तरिक्ष मार्ग से जाने वाले भी अग्नि, विद्युत् और प्रकाश की अपेक्षा करते हैं। वह (गोनां सहस्रा परि याति) अग्नि तत्व, विद्युत् वा भूमियों के भीतर का अग्नि भी सब भूमि आदि गतिमान् लोकों को व्याप रहा है। वह सहस्रों रश्मियों को प्रदान करता है।

अ॒ग्निं विश॑ ईळते॒ मानु॑षी॒र्या अ॒ग्निं मनु॑षो॒ नहु॑षो॒ वि जा॒ताः।
अ॒ग्निर्गान्ध॑र्वीं प॒थ्या॑मृ॒तस्या॒ग्नेर्गव्यू॑तिर्घृ॒त आ निष॑त्ता ॥ ६ ॥

भा०—(या मानुषीः विशः) जो मननशील प्रजाएं हैं वे (अग्निम् ईडते) अग्नि, ज्ञानप्रकाशक, तेजःस्वरूप, सब के आगे विद्यमान, सब सूर्यादि के प्रकाशक परमेश्वर की स्तुति करते, उसे ही चाहते हैं। (मनुषः) मननशील (नहुषः) परस्पर के नाना सम्बन्धों से बंधे हुए, (जाताः) उत्पन्न होकर (अग्निम्) उसी ज्ञानवान् प्रभु को अपने अग्रणी, नायक, वा गुरु के तुल्य विशेष-रूप से चाहते और उसकी स्तुति करते हैं। (अग्निः) वही सर्वप्रकाशक ज्ञानी प्रभु (ऋतस्य) सत्यज्ञान की (पथ्याम्) अति हितकारक (गान्धर्वीम्) वेदमयी वाणी को विशेष रूप से प्रेरित करता है, उपदेश करता है। (अग्नेः) उस ज्ञानमय प्रभु की (गव्यूतिः) समस्त वाणियों को एकीभाव और पृथग्-भाव, संकलन विशकलन, (घृते) उस तेजोमय रूप में ही (आनिषत्ता) आश्रित हैं। पक्षान्तरों में—(२) ज्ञानी पुरुष को वा अग्निरूप को ही दिव्य जानकर सब उसकी उपासना करते हैं, यज्ञ में, देवमन्दिरों में सर्वत्र अग्नि को कुण्ड वा दीपकरूप से सब रखते हैं। (नहुषः) सम्बन्धों में बंधने वाले स्त्री पुरुष भी अग्नि को साक्षी रखते हैं। 'ऋत्' अर्थात् यज्ञ की जो वेद-वाणीरूप पथ्या, सरणि या वेदमार्ग है उसको 'अग्नि' ही प्रकाशित करता है। अग्नि के आश्रित सब यज्ञ हैं, अग्नि के समस्त किरणों आदि का आविर्भाव भी घृत पर आश्रित है। (३) इसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् पक्ष में भी योजना है। उसका सब आदर करते, वही पथ्या रूप वेदवाणी को जानता है, उस विद्वान् की समस्त वाणियों की संगति उसी (घृते) तेजोमय प्रभु में होती है।

अ॒ग्नये॒ ब्रह्म॑ ऋ॒भव॑स्ततक्षुर॒ग्निं म॒हाम॑वोचामा सुवृ॒क्तिम्।
अग्ने॒ प्राव॑ जरि॒तारं॑ यविष्ठा॒ग्ने महि॒ द्रवि॑ण॒मा य॑जस्व ॥ ७ ॥ १५ ॥

भा०—(ऋभवः) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान से चमकने वाले और विद्वान् जन (अग्नये) परमेश्वर को प्राप्त करने, उसका ज्ञान करने और उसकी स्तुति करने के लिये (ब्रह्म ततक्षुः) वेद का उच्चारण करते हैं। हम लोग (अग्निम् महाम् अवोचाम) उस महान् अग्नि का उपदेश करें। वा, हम (महाम् अग्नि) महान् को 'अग्नि' ऐसा कहें और उसी की (सु वृक्तिम् अवोचाम) शुभ स्तुति कहें। वा उसी को सुवृक्ति अर्थात् अज्ञान का दूर करने वाला बतलावें। हे (यविष्ठ) सर्वश्रेष्ठ बलशालिन्! तू (जरितारम् प्र अव) स्तुतिशील इस भक्त की अवश्य रक्षा कर। हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (महि द्रविणं आयज) महान् धनैश्वर्य आदि प्रदान कर।

(२) अग्नि को उत्पन्न करने के लिये शिल्पी जन 'ब्रह्म' नाम पलाश वा अश्वत्थ को गढ़ कर अरणि बनावें। वे 'अग्नि' को बड़ा भारी (सुवृक्ति) रोगनाशक, बड़ा शक्तिशाली जान कर उपदेश करें। अग्नि ही विद्वान् की रक्षा करता है और वही विद्युत् आदि अनेक ऐश्वर्य वा (द्रविणं) द्रुतगति प्रदान करता है। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[८१]

विश्वकर्मा भौवनः॥ विश्वकर्मा देवता॥ छन्दः—१, ५, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ३, ७ निचृत् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश॥ १॥

भा०—(यः ऋषिः) जो समस्त जगत् का देखने वाला, (होता) सबको अपने भीतर आहुति करने वाला, वा सब प्राणियों वा लोकों को जीवन, बल, अन्न और अनेक ऐश्वर्य देने वाला परमेश्वर (इमा विश्वा भुवनानि) इन समस्त उत्पन्न हुए लोकों को और समस्त प्राणियों को (जुह्वत् नि

न्यसीदत्) अन्न, जीवन बल, आदि देता हुआ विराजता है वह (नः पिता) हम सब का पालक, पिता के तुल्य रक्षक, प्रभु है। (सः) वह (आशिषा) कामनामात्र से (द्रविणम् इच्छमानः) समस्त ऐश्वर्य वा द्रुत कर्मगति से जाने वाले समस्त जगत् को चाहता हुआ (प्रथमच्छद्) सबसे प्रथम समस्त जगत् को व्यापता हुआ, उसको रक्षा करता हुआ (अवरान्) अपने अनन्तर उत्पन्न वा अपने से अल्पशक्ति वाले समस्त जीवों वा लोकों को भी (आ विवेश) व्यापता है, वह अनेक आत्माओं के भीतर व्यापक है।

सायण अध्यात्म पक्ष में भी इस मन्त्र की योजना करता है—जो विश्वकर्मा परमेश्वर प्रलयकाल में पृथिवी आदि समस्त लोकों को अपने आत्मा में आहुति के समान संहार करता हुआ (ऋषिः) अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संहार रूप होम का करने वाला, (नः पिता नि असीदत्) हमारे पिता रूप से विराजता है। अर्थात् प्रलयकाल आने पर समस्त लोकों का संहार करके इन जीवों का भी संहार करता और फिर रचता हुआ सर्वज्ञ परमेश्वर स्वयं एक ही है, वह परमेश्वर (आशिषा) 'बहुः स्यां प्रजायेय' बहुत हो जाऊं प्रजाओं को उत्पन्न करूं, इस प्रकार पुनः जगत् को रचने की इच्छा से (द्रविणम् इच्छमानः) द्रविण अर्थात् धनवत् जगत् के भोग को चाहता हुआ (प्रथमच्छद्) मुख्य निष्प्रपंच पारमार्थिक रूप को छिपाता हुआ, (अवरान्) अपने बनाये, प्राणियों के हृदयों में (आ-विवेश) जीव रूप से प्रविष्ट हुआ, ऐसी श्रुति भी है—सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्॥

उस प्रभु ने इच्छा की कि बहुरूप हो जाऊं। उसने तप (श्रम) किया। इस समस्त जगत् को बनाया जो दीख रहा है, उसको रच कर फिर उसी में व्याप रहा। इसी प्रकार अन्य भी उपनिषद्-वचन हैं।

इस स्थान पर सायण नवीन वेदान्त के प्रपञ्च में फंस गया। वस्तुतः जगत् को रच कर पुनः समस्त लोकों वा जीवों में ईश्वर जीवरूप होकर प्रविष्ट नहीं, प्रत्युत शासक प्रभु रूप ही रह कर प्रविष्ट अर्थात् व्याप्त हो रहा है। दूसरा उसका पितापन केवल प्रलयकाल में संहार कर पुनः जगत्-सर्ग करने में ही नहीं है। प्रत्युत सृष्टि की विद्यमानता में भी वह सर्वत्र भारी अन्नादि की आहुतियां देता है, सब जीवों को अन्न देता है, जीवों को कर्म-फल देता है, वह समस्त जगत् रूप द्रविण अर्थात् महान् ऐश्वर्य को चाहता हुआ वा प्रेरित, संचालित करता हुआ पहले भी जगत् को एकमात्र व्यापता था और सर्ग-काल में भी 'अवर' अर्थात् अपने से अल्प शक्ति वाले समस्त जीवों और लोकों, ब्रह्माण्डों को भी व्यापता है। यदि सब में व्याप्त न हो तो वह समस्त ब्रह्माण्डों को कैसे चलावे, कैसे रचावे।

यास्कः—तत्रेतिहासमाचक्षते—विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार। स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार। तदभिवादिन्येषर्ग् भवति। य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्। इति। (निरु० १० । २६)

अर्थ—इस प्रसंग में इतिहास कहते हैं। भौवन विश्वकर्मा ने सर्वमेध में समस्त भूतों की आहुति दी। अन्त में उसने अपनी भी आहुति दी। उसी को कहने वाली यह ऋचा होता है। य इमा विश्वा० इत्यादि।

यास्क के इस आशय को लेकर सायण ने प्रथम अर्थ इस प्रकार किया है—"विश्वकर्मा नामक ऋषि, भुवन का पुत्र (होता) होम करने वाला (सर्वाणि भुवनानि जुह्वत्) सब भुवनों को होम करता हुआ अर्थात् प्रथम जगत् की आहुति करके पश्चात् (पिता नि असीदत्) आग में वह पिता बैठ गया। क्योंकि अपने ही किये कर्म से देह की उत्पत्ति होती है। एक ही स्वयं पिता और स्वयं पुत्र हो यह विरोध नहीं है क्योंकि तपोबल से उसके दो शरीर मान लेते हैं। 'स एकधा भवति'

इत्यादि श्रुति है। वह ऋषि (आशिषा) आशीष्-प्रतिपादक सूक्तवाक आदि से (द्रविणम् इच्छमानः) स्वर्ग नामक धन चाहता हुआ (प्रथमच्छत्) पहिले अग्नि को भुवनों से छादने वाला, (अवरान् आविवेश) अपने से आहुति किये अनेक भूतों में, अग्नि में प्रवेश किया।

सायण ने इस यास्क के इतिहास को एक ऋषि का ऐसा सर्वमेध यज्ञ मान लिया है कि उसने यज्ञाग्नि में सब प्राणियों की आहुति करके फिर स्वर्ग की इच्छा से अपने को भी आग में डाल दिया हो। यह अर्थ असंगत है। क्योंकि यास्क के इतिहास के उल्लेख का अभिप्राय सायण से पहिले विद्वान् इस प्रकार नहीं मानते थे। इस सम्बन्ध में श्री दुर्गाचार्य लिखते हैं—

इसी सूक्त की 'विश्वकर्मा विमना०' इत्यादि ऋचा में यास्काचार्य ने आत्मगति का प्रतिपादन किया है। (तत्र) इसी प्रसंग में यह इतिहास का उल्लेख है। आत्मगति को बतलाने के लिये ही आत्मज्ञानी लोग इस इतिहास का वर्णन करते हैं। आध्यात्मिक वा आधिदैविक आदि जो अर्थ कहा जाता है वेद के कहे उसी अर्थ को स्पष्ट करने के लिये इतिहास कहा जाता है। वह इतिहास अपना सीधा अर्थ नहीं कहा करता, प्रत्युत अर्थ जानने वालों को अभिप्रेत अर्थ ही बतलाता है। (विश्वकर्मा हि भौवनः) समस्त जगत् को बनाने वाला 'विश्वकर्मा' है। उसी की सी अवस्था को अपने में लाकर वह यजमान भी 'विश्वकर्मा हो जाता है। वह भुवनों अर्थात् भूतों को अपने आत्मा में और अपने आत्मा को भूतों में आहुति करता है। इसी प्रकार जानने वाले वा देखने वाले ज्ञानी पुरुष के सब कामों में 'सर्वमेध' यज्ञ के समान गुण होता है। उसके केवल ऐसे देखने मात्र से ही उसका प्रत्येक यज्ञ 'सर्वमेध' हो जाता है। अग्नि में स्वयं अपने को डाल देने से उसका सर्वमेध यज्ञ नहीं होता, प्रत्युत सब भूतों में आत्मा और आत्मा में सब भूतों का दर्शन करने मात्र से 'सर्वमेध' हो जाता है। इस

प्रकार वह समस्त भूत-विशेषों को सामान्य आत्मा में आहुति करता अर्थात् देखता है, और सामान्य आत्मा को विशेष भूतों में आहुति करता अर्थात् देखता है, तभी यह सभी कामों में 'आत्मयाजी' कहा जाता है। अतः 'य इमा०' ऋचा का अर्थ इस प्रकार है।

समान रूप से सबके प्रति हिताचरण करने और समान दृष्टि से देखने वालों में से (यः) जो भी कोई (न्यसीदत्) इस कर्म को करता हुआ विराजता है, वह 'ऋषि' है और वही होता है। वह (विश्वा भुवनानि जुह्वत्) सब प्राणियों की सर्वमेध यज्ञ के रूप में दर्शन रूपसे आहुति करता है, (सः आशिषा) वह इस अभिलाषा से कि मैं ही सबके समान होजाऊं (द्रविणम् इच्छमानः) इस सर्वमेध यज्ञ की 'सर्वता' प्राप्त करना चाहता हुआ, (प्रथमच्छत्) सब से श्रेष्ठ प्रजापति रूप से मुख्य पद को प्राप्त करने वाला होकर (अवरान्) इन सब प्राणियों को भी (आविवेश) व्यापता है, अपनाता है, (स नः पिता) वह हमारा पिता है।

अत्र 'पिता। नः' इति पदपाठः। पिता। आनः। इति पदपाठस्तु पटियालाराजपण्डित श्री मुकुन्दझा इत्युद्धृतसायणभाष्यसम्मतः।

इस प्रकार सर्वमेध का ही गीता और उपनिषदों में प्रतिपादन किया है जैसे—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः। ईशोपनि० ६; ७॥
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥ ३४॥
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥ ३५॥ गीता० अ० ४॥
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ ६। ३०॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ६ । ३१ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ ६ । १९ ॥
यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय । ९ । ६ ॥
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति । १३ । २७ ॥
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हि नस्त्यात्मनाऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ १३ । २८ ॥
यदा भूतपृथग् भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ अ० १३ । ३० ॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२॥

भा०—पूर्व मन्त्र में वह सर्वद्रष्टा, सर्व जगत्-यज्ञ का सम्पादक सर्वपिता, पालक प्रभु परमेश्वर अपने इच्छा, अर्थात् संकल्पमात्र से महान् व्यापक शासन-शक्ति से सब को चलाता हुआ सब में व्याप्त हो रहा बतलाया है। इस मन्त्र में जगत् के मूलकारण पर विचार करते हैं। (अधिष्ठानम्) आश्रय इस जगत् का (किंस्वित् आसीत्) क्या है, कैसा है, और वह (आरम्भणं कतमत् स्वित्) अनेकों में से कौनसा है जो इस जगत् का आरम्भक मूलकारण या उपादान कारण है। (कथा आसीत्) वह मूलकारण जगत् का उत्पादक किस प्रकार से होता है। (यतः) जिस उपदान कारण से (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का बनाने वाला, (विश्व-चक्षाः) समस्त जगत् का द्रष्टा, (भूमिम् द्याम्) भूमि और सूर्य वा

महान् आकाश को भी उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपने महान् ऐश्वर्य से (भूमिम् धाम् वि और्णोत्) आकाश और भूमि दोनों को आच्छादित करता है, भूमि पर अनेक वृक्ष, गुल्मलता नदी, पर्वत, समुद्रादि बनाता और अन्तरिक्ष, वायु, मेघ आदि बनाता तथा आकाश में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि रचता है ।

'विश्वकर्मा' सर्वस्य कर्त्ता । निरु० १० । २५ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ३ ॥

भा०—प्रथम परमेश्वर, कर्त्ता का रूप ही बतलाते हैं । वह परमेश्वर जिसको पूर्व मन्त्र में 'विश्वचक्षा' सर्वद्रष्टा कहा है वह (विश्वतः-चक्षुः) सर्वत्र देखने वाला, (उत) और (विश्वतः-मुखः) सब ओर सर्वत्र मुख वाला, (विश्वतः-बाहुः) सर्वत्र बाहुवाला, और (विश्वतः-पात्) सर्वत्र सब दिशाओं में पैरों वाला है । अर्थात् वह सर्वत्र देखता, सर्वत्र विराजता, सर्वत्र जगत् को धारण कर सर्वत्र पहुंचा हुआ है । वह (एकः देवः) एक, अद्वितीय देव, सर्वप्रकाशक, सर्वप्रद प्रभु (बाहुभ्यां) अपने दोनों हाथों से मानो (द्यावा भूमी) आकाशस्थ लोकों और भूमि को भी (जनयन्) उत्पादन करता हुआ (सं धमति) समस्त को एक साथ वा सम्यक् रीति से चलाता, वा जैसे लोहे के अनेक पदार्थ बनाता हुआ लोहार शिल्पी लोहे को तपाता है ऐसे मानो वह भी सूर्यादि अग्निमय लोकों को सबको एक साथ ही धौंक देता है, सबमें एक साथ अग्नि लगाता, सबको प्रकाशित करता है और (पतत्रैः सं धमति) जैसे पक्षी अपने पंखों से वायु देता है ऐसे मानो गतिशील बलवान्, सर्वव्यापक, शक्तिशाली साधनों से जगत् को चलाता है, उसको वायु आदि प्रदान करता है ।

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४॥

भा०—(किं स्विद् वनं) वह कौनसा 'वन' है, और (कः उ सः वृक्षः आस) वह कौन सा वृक्ष है। (यतः द्यावापृथिवी) जिससे आकाश अर्थात् आकाशस्थ सूर्य आदि लोक और भूमि उत्पन्न होते हुए (निः ततक्षुः) बतलाते हैं। अर्थात् जिस प्रकार शिल्पी वन, काष्ठ या वृक्ष से अनेक पदार्थ बनाता है ठीक उसी प्रकार भूमि, सूर्य आदि किस उपादान कारण से बने बतलाते हैं। हे (मनीषिणः) विद्वान् पुरुषो ! (मनसा पृच्छत इत्) तुम यह बात अपने जिज्ञासु चित्त से ही प्रश्न करो। (तत्) उस उपादान कारण पर (यत् अधि अतिष्ठित्) जो अध्यक्षरूप से विराजता है वही परमेश्वर (भुवनानि धारयन्) समस्त लोकों और उत्पन्न चराचर पदार्थों को धारण करता है।

या ते धामा॑नि पर॒माणि॒ याव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्मन्नु॒तेमा।
शिक्षा॒ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं॑ वृधा॒नः ॥५॥

भा०—हे (विश्व-कर्मन्) समस्त जगतों, भुवनों और समस्त प्राणियों को रचने वाले परमेश्वर ! (ते) तेरे बनाये (या परमाणि धामानि) जो परम, सर्वोत्कृष्ट, सब से उत्तम स्थान वा शरीर वा जो तेरे सर्वश्रेष्ठ नाम हैं (या अवमा) और जो तेरे बनाये अति समीप, अपेक्षया निम्न स्थान वा निम्न कोटि के शरीर वा (अवमा) सामान्य नाम हैं (उत) और (या मध्यमा) जो मध्यम स्थान वा मध्यम कोटि के शरीर वा तेरे मध्यम नाम हैं तू (सखिभ्यः) ज्ञानवान् समदर्शी जनों वा मित्र जीवों रूप शिष्यों को (इमा) वे सब (शिक्ष) सिखा वा प्रदान कर। हे (स्वधावः) स्वयं जगत् को धारण-पोषणकारी शक्ति-सामर्थ्यों के स्वामिन् ! (स्वयम्) अपने आप (हविषि) अन्नादि से (वृधानः) बढ़ाता हुआ (तन्वं यजस्व) जीवों को देह प्रदान कर।

अनेन धामत्रैविध्योपन्यासेन उत्तमभूतानि देवादिशरीराणि, मध्यम-

भूतानि मनुष्यादिशरीराणि, निकृष्टभूतानि कृमिकीटादिशरीराणि च परिगृहीतानि, किं बहुना सर्वं जगदुपात्तं भवति ॥ सायणः ॥

त्रयाणि धामानि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानि चेति । निरु० ॥

आकाश अन्तरिक्ष और पृथिवी ये तीन लोक, देव, मनुष्य, पशु कीट आदि ब्रह्मा से तृण तक शरीरों में जन्म और नाम, परमेश्वर के तीन प्रकार के नाम (१) परम, सर्वश्रेष्ठ ओम् आदि जिनका अन्तःस्तल से ध्यान किया जाय, जिनसे परमेश्वर के अनेक व्यापक गुणों का ज्ञान हो, (२) मध्यम, जिनसे कई एक गुणों का ज्ञान हो (३) अवम जिनसे केवल एक गुण का ही ज्ञान हो ।

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ६ ॥

भा०—हे (विश्व-कर्मन्) समस्त जगत् को बनाने वाले प्रभो ! तू (हविषा) सबको देने योग्य अन्नादि से (वावृधानः) बढ़ाता हुआ और (हविषा) सबको अपने में ले लेने के सामर्थ्य से स्वयं (वावृधानः) बढ़ता हुआ, महान् होकर (पृथिवीम् उत द्याम् यजस्व) पृथिवी और द्यौ अर्थात् महान् आकाश को भी यज्ञ करता है, उनको सुसंगत करता वा उन्हें समस्त प्राणियों को प्रदान करता है, अपने ही भीतर उनकी आहुति देता है, अपने में उनको लेता, और उनको धारण करता है । (अभितः अन्ये जनासः) सब परमात्मा से पृथक् हुए पैदा होने वाले जीव (मुह्यन्तु) मोहित होते हैं, मूढ़ता और अज्ञान के कारण मोह में पड़ जाते हैं, वे यथार्थ ज्ञान को प्राप्त नहीं करते हैं । (मघवा) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी, परमेश्वर (अस्माकं सूरिः अस्तु) हमारे बीच ज्ञान का देने वाला हो । हम प्रभु के दिये ज्ञान से उस प्रभु के महान् यज्ञ का ज्ञान करें और मोह में न पड़ें । साधना-पक्ष में—जो पुरुष प्रभु के सर्वात्मक रूप का उपासक

होकर उसके महान यज्ञ के अनुकरण में सर्वमेध यज्ञ करना चाहता है वह भी 'विश्वकर्मा' है वह भी (हविषा वावृधानाः) साधनों से अपने को बढ़ाता हुआ पृथिवी और द्यौ रूप से अपने को यज्ञ करे अर्थात् उन दोनों में भी आत्मा का दर्शन करे। अन्य जो अज्ञानी हैं वे तो मोह में पड़े रहते हैं, वे अल्प पदार्थों में ममता से फंसे हैं, वे इतने विशाल पदार्थों में आत्मा की सत्ता का साक्षात् नहीं कर सकते इसलिये वह साधक (मघवा) आत्मिक ऐश्वर्य का वशीकार करने वाला, आत्मज्ञानी ही हमारा ज्ञानदाता हो। सर्वत्र आत्मभावना के स्पष्टीकरण के लिये प्रथम मन्त्र पर उद्धृत उपनिषद् और गीता के वचनों का मनन करना चाहिये।

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७॥ १६॥

भा०—हम (वाचः पतिम्) वाणी के पालन करने वाले, वेदवाणी के स्वामी, वाणी के ऐश्वर्य से सम्पन्न, (विश्व-कर्माणम्) समस्त जगत् के बनाने वाले (मनः-जुवम्) समस्त जीवों और ऋषियों के चित्तों में ज्ञान की प्रेरणा करने वाले उस प्रभु को हम (ऊतये) अपनी रक्षा, ज्ञान-प्राप्ति और स्नेह-समृद्धि और दुष्टों के नाश के लिये (अद्य) आज (वाजे) ऐश्वर्य, ज्ञान और बल के निमित्त (हुवेम) हम बुलाते हैं उसका स्मरण, मनन करते हैं। (सः) वह (नः) हमारे (विश्वा हवनानि) समस्त त्यागों, समर्पणों और नाम-स्मरण और पुकारों को भी (जोषत्) प्रेम से स्वीकार करे। वह (अवसे) रक्षा करने, प्रेम करने, दुष्टों का नाश करने के कारण (विश्व-शं-भूः) समस्त विश्व का कल्याण करने वाला और (साधु-कर्मा) समस्त उत्तम कर्मों को करने और जगत् को अच्छी प्रकार त्रुटिरहित रूप से बनाने वाला है। इति षोडशो वर्गः ॥

[८२]

विश्वकर्मा भौवन ऋषिः ॥ विश्वकर्मा देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ त्रिष्टुप् । २, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥

भा०—(चक्षुः पिता) ज्ञान दर्शन करने वाले इन्द्रियगण, वा देह वा सूर्य आदि का पिता के समान उत्पादक (मनसा) मन, संकल्पात्मक जगत्-धारक सामर्थ्य से ही (धीरः) समस्त जगत् को धारण करने वाला है। वह (घृतम्) सृष्टि के प्रारम्भ में महान् आकाश में तेजोमय हिरण्य-गर्भ को और पार्थिव-सर्ग के प्रारम्भ में पृथिवी पर के क्षरण, सेचन करने वाले तत्त्व जल को (अजनत्) उत्पन्न करता है। और अनन्तर (नम्नमाने एने) नमते हुए अर्थात् पूर्व परिणाम से उत्तर परिणाम में विकृति को प्राप्त होते हुए दोनों आकाश वा पृथिवी तेजोमय सूर्यादि लोक और पृथिवी दोनों को (अजनत्) बनाता है। दोनों के बनते हुए (यदा) जब उन दोनों के (अन्ताः अददृहन्त) पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा के भाग दृढ़ होते जाते हैं और (आद् इत्) अनन्तर, उत्तरोत्तर वे (पूर्वे) पूर्व विद्यमान (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनों (अप्रथेताम्) विस्तृत होते जाते हैं। जिस प्रतप्त गैस के रूप में वा हिरण्यरूप में महान् तेजोमय मण्डल था, ज्यों २ शनैः २ उसके भी प्रान्त भाग दृढ़ हुए त्यों २ प्रकृति के परमाणु रूप घनीभूत होकर आकाश को प्रकट करने लगे और उस हिरण्य गर्भ में से पृथक् २ अनेक ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डों में से अनेक सूर्य और सूर्यों में से घनीभूत पृथिवी आदि अनेक लोक निकले, फैलते हुए प्रकृति के परमाणु जो आकाश को भर रहे थे वे पुञ्जीभूत दृढ़ हो गया और खाली आकाश

प्रकट होगया। सूर्य में भी अभी वही प्रान्त-भागों का दृढ़ीभाव हो रहा है, और इसी प्रकार पृथिवी में भी इसी विधि से दृढ़ीभाव हुआ है, होते २ अग्निमय पिण्ड के दृढ़ीभाव से भाप से जल के तुल्य द्रव पदार्थ जल तत्व और जल तत्व के दृढ़ीभाव से स्थूल कठिन भूभाग प्रकट हुआ और होता जा रहा है।

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥२॥

भा०—(विश्व-कर्मा) समस्त विश्व का बनाने वाला, परमेश्वर, अनेक प्रकार के जगत् के पदार्थों को रचने वाला, (वि-मनाः) विविध मनों का स्वामी, वा विशेष संकल्पवान्, समष्टि चित्त रूप और (आत्) सर्वत्र (वि-हायाः) आकाश के तुल्य महान्, व्यापक, (धाता) सब विश्व को धारण करने वाला और (वि धाता) विशेष रूप से सूर्य, पृथिवी आदि समस्त लोकों को विविध रूप में बनाने वाला, (परमा) परम, सर्वोत्कृष्ट ज्ञानवान् (उत) और (सं-दृक्) समस्त विश्वों और जीवों के सब कार्यों का द्रष्टा है। (यत्र) जिसके विषय में विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं कि वह (सप्त-ऋषीन् परः) सातों दर्शनकारी इन्द्रियों को अतिक्रमण करके उनसे भी परे है। और (यत्र) जिस प्रभु के आश्रय (तेषाम्) उनके (इष्टानि) अभिलषित समस्त भोग्य वा दृश्य पदार्थ (इषा) उसकी प्रेरक शक्ति से (सं मदन्ति) भली प्रकार हृष्ट, प्रसन्न, एवं हर्ष-सुख के कारण होते हैं। (२) देह में आत्मा भी अपने प्रवेश योग्य देह रचने और देहोचित विविध चेष्टा करने से 'विश्वकर्मा' है। विविध संकल्प-विकल्पवान् चित्त वाला होने से 'विमना' है। (विहाया) असङ्ग, सब देह में शक्ति सामर्थ्य से व्यापक, (धाता) देह का धारक, कर्मों का विधाता, (परमा उत सं-दृक्) इन्द्रियों से भी श्रेष्ठ, (परमा) प्रमाता, ज्ञाता सम्यग्-दर्शनवान् है। (यत्र सप्त ऋषीन् परः) जिसमें सातों इन्द्रियों के भी परे। उनका

भेद भाव हटा कर (एकम्) एक असंग पुरुष, अद्वितीय रूप (आहुः) बतलाते हैं। उसी आत्मा में (तेषाम्) उन इन्द्रियों के (इष्टानि) इष्ट भोग्य, पदार्थों को (इषा) अन्न से (सं मदन्ति) हर्षित वा बलवान् करते हैं। आधिदैवत पक्ष में—विश्वकर्मा 'आदित्य' है। वृष्टि आदि विविध कर्म करने से 'विश्वकर्मा' है, उसी के आश्रय पर उन जीवों के इष्ट, भोग्य अन्नादि की उत्पत्ति होती है। जो सातों ऋषि, अर्थात् गतिशील ग्रहों से भी परे विद्यमान है। वह अद्वितीय है इत्यादि।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ३॥

भा०—(यः नः पिता) जो हमारा पालक, पिता के समान है। (यः जनिता) जो उत्पन्न करने वाला, (यः विधाता) जो समस्त जगत् का विधान, व्यवस्था और शासन करने वाला, विशेष रूप से जगत् को धारण और पोषण करने वाला है। जो (विश्वा धामानि) समस्त स्थानों, लोकों और उत्पन्न होने वाले पदार्थों को (वेद) जानता है। (यः देवानां) जो समस्त देवों के (नाम-धा) नामों को धारण करने वाला (एकः एव) अकेला, अद्वितीय ही है। (तं सम्प्रश्नं) उस प्रश्न करने योग्य, जिज्ञासा करने योग्य को लक्ष्य करके (अन्या भुवना यन्ति) अन्य समस्त लोक और उत्पन्न प्राणिवर्ग भी जा रहे हैं। अध्यात्म में—विजिज्ञास्य आत्मा और भुवन प्राणगण हैं।

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४॥

भा०—(ते) वे (पूर्वे) पूर्व के, एवं ज्ञान से पूर्ण, (ऋषयः) तत्त्वदर्शी, (जरितारः) स्तुति करने वाले भक्तजनों के तुल्य ही (भूना) बहुत १ (द्रविणम्) द्रुतगति से चलने वाले चित्त को (अस्मै) इसी

परमेश्वर को साक्षात् करने के लिये (सम् आयजन्त) सब ओर से उसको एकत्र कर उसी में संगत कर देते, उस प्रभु के प्रति ही चित्त को अर्पित कर देते हैं। और वे महाप लोग (असूर्त्ते) सरण रहित, निश्चल, स्थावर और (सूर्त्ते) चल, जंगम (रजसि) व्यवस्थित लोक में (नि-सत्ते) नियत रूप से व्यापक, वा चराचर जगत् पर (नि-सत्ते) अध्यक्ष वा नियामक रूप से विद्यमान उस प्रभु में ही (इमा भूतानि) इन समस्त भूतों; लोकों और प्राणियों को (सम् अकृण्वन्) आश्रित, जीवित देखते और मानते हैं।

प॒रो दि॒वा प॒र ए॒ना पृ॑थि॒व्या प॒रो दे॒वेभि॒रसु॑रै॒र्यदस्ति॑।
कं स्वि॒द्गर्भं॑ प्रथ॒मं द॑ध्र॒ आपो॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒मप॑श्यन्त॒ विश्वे॑ ॥५॥

भा०—वह प्रभु, महान् आत्मा (दिवा परः) इस महान् आकाश से भी परे, उससे भी महान् और (एना पृथिव्या परः) इस पृथिवी अर्थात् भूमिवत् सब की उत्पादक, अतिव्यापक प्रकृति से भी परे है। (यत्) जो (देवेभिः असुरैः) देव, ज्ञानी, और असुर, प्राण बल से जीने वालों से, वा तेजोमय सूर्यादि लोक और प्राण-जीवन देने वाले वायु, जल आदि इन से भी (परः अस्ति) परम श्रेष्ठ है। (आपः) व्यापक प्रकृति के परमाणु, 'सरिर' रूप, वा समस्त लोक (कं स्वित्) किस (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ, (गर्भम्) सब को ग्रहण करने वाले, बिखरे २ परमाणुओं को बांध २ कर सृष्टि रूप में लाने वाले को (दधे) धारण करता है, वह वह तत्त्व है (यत्र) जिसमें आश्रित (विश्वे देवाः) समस्त प्रकाशमान सूर्यादि लोक और समस्त विद्वान् वा जीवगण (सम् अपश्यन्त) अपने आप को आश्रित देखते हैं।

अस्मिन् लोका श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। उपनि०।

तमिद्गर्भं॑ प्रथ॒मं द॑ध्र॒ आपो॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒मग॑च्छन्त॒ विश्वे॑।
अ॒जस्य॒ नाभा॒वध्येक॒मर्पि॑तं॒ यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि त॒स्थुः ॥६॥

भा०—(तम् इत्) उस ही (गर्भम्) सबको अपने में ग्रहण करने वाले, सर्वाश्रय, सर्वधारक पुरुष को (आपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु या व्यापक 'सरि' मय प्रकृति तत्त्व (प्रथमं) सब से प्रथम (दध्रे) धारण करते हैं। (यत्र) जिसमें वा जिस के आश्रय (विश्वे देवाः सम् अगच्छन्त) समस्त देवगण, सूर्य में रश्मियों के तुल्य, गुरु में शिष्यों के तुल्य और राजा में प्रजाओं के तुल्य संगत, एकत्र होते हैं। (अजस्य नाभौ अधि) अजन्मा, सर्वजगत् के संचालक, उस प्रभु के 'नाभि' अर्थात् सबको अपने में बांध लेने वाले परम सामर्थ्य में (एकम्) यह समस्त विश्व एक, समूचे रूप से (अधि अर्पितम्) आश्रित है, (यस्मिन्) जिसके आश्रय में (विश्वानि भुवनानि) समस्त भुवन, लोक और भूत, प्राणि आदि जीव-सर्ग भी (तस्थुः) स्थिर हैं।

अथवा—अजरूप विराट् विश्व के नाभि में एक वह प्रभुशक्ति विराजती है, जिस में सब आश्रित हैं। अज विराट् का वर्णन देखो (अथर्ववेद का० ९। व० ६। मं० २० ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७॥१७॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (तं न विदाथ) उसको नहीं जानते, या क्या आप लोग उसको नहीं जानना चाहते (इमा जजान) जो इन सब लोकों को उत्पन्न करता है ? (अन्यत्) और जो (युष्माकम् अन्तरम्) तुम सब के भीतर और आत्मा से पृथक् (बभूव) विद्यमान है। लोग (नीहारेण प्रावृताः) कोहरे से घिरे हुओं के तुल्य (नीहारेण) ज्ञान, विवेक आदि को सर्वथा हर लेने वाले, घोर अज्ञान-अन्धकार से ढके हुए (असु-तृपः) केवल प्राण-ग्रहण, श्वासोच्छ्वास, प्राण-धारण मात्र से तृप्त होने वाले और (अ-सु-तृपः) ज्ञान से खूब तृप्त वा बहुश्रुत न होकर

(उक्थ-शासः) उक्थ, वेद-वचनों या शास्त्र वचनों का ही उच्चारण करने वाले होकर (चरन्ति) विचरते हैं वे केवल (जल्प्या प्रावृताः) वागी मात्र से युक्त होकर (चरन्ति) विचरते हैं। वे ब्रह्मतत्त्व के बारे में केवल बातें ही बहुत कह लेते हैं उनको आत्मा का साक्षात्कार नहीं है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[८३]

मन्युस्तापसः ॥ मन्युर्देवता ॥ छन्दः—१ विराड् जगती । २ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यस्ते॑ मन्यो॒ऽवि॑धद्वज्र सायक॒ सह॒ ओजः॑ पुष्यति॒ विश्व॑मानु॒षक् ।
सा॒ह्याम॒ दास॒मार्यं॒ त्वया॑ यु॒जा सह॑स्कृतेन॒ सह॑सा॒ सह॑स्वता ॥ १ ॥

भा०—हे (मन्यो) तेजस्विन्! हे सर्वज्ञान वाले! शत्रुओं पर क्रोध और उनका वध करने वाले! प्रतापिन् (यः ते अविधत्) जो तेरी सेवा करता है, तेरा आदर सत्कार और तुझे स्वीकृत करता है तुझे अपनाता है, हे (वज्र) बलवीर्य के पुञ्ज! हे (सायक) बाण के तुल्य दुष्टों और दुःखों का अन्त करने वाले! वह (ते सहः ओजः पुष्यति) तेरे शत्रु पराजयकारी पराक्रम और बल को बढ़ाता और स्वयं भी प्राप्त करता है। और वही (आनुषक् विश्वम् पुष्यति) निरन्तर समस्त विश्व को, वा राष्ट्र को भी पुष्ट करता है। (सहः-कृतेन) भारी शत्रु-पराजय करने वाले, (सहसा) बल से (सहस्वता) बलवान् (त्वया युजा) तुझ सहायक से (दासम्) नाशकारी दुष्ट को हम (सह्याम) पराजित करें, उसको हम अपने वश करें।

म॒न्युरिन्द्रो॑ म॒न्युरे॒वास॑ दे॒वो म॒न्युर्होता॒ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।
म॒न्युं विश॑ ईळते॒ मानु॑षी॒र्याः पा॒हि नो॑ मन्यो॒ तप॑सा स॒जोषाः॑ ॥ २ ॥

भा०—(मन्युः इन्द्रः) ज्ञानवान्, सब को थामने रोकने में समर्थ, संस्तम्भक ही इन्द्र महान् ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक है। (मन्युः एव देवः आस) वह मन्यु ही देव अर्थात् सबको देने और प्रकाशित करने वाला वा स्वयं प्रकाशवान् है। (मन्युः) वह मन्यु, सर्वज्ञानमय, सर्वदीप्तिमय ही (होता) सबको देने वाला, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (जात-वेदाः) सब ज्ञानों से युक्त, सब ऐश्वर्यों का स्वामी है। (याः मानुषीः) जो मनुष्य प्रजाएं हैं वे (विशः मन्युम् ईडते) सब प्रजाएं उस तेजस्वी की ही स्तुति करतीं, उसे ही चाहती हैं। हे (मन्यो) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! तू (तपसा) तपस्या और श्रम, के कारण, सब के प्रति (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः पाहि) हमारा रक्षक हो। रक्षक को सदा तपस्वी, श्रमी होना चाहिये, आलसी और विलासी नहीं।

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः॥ ३॥

भा०—हे (मन्यो) दीप्तियुक्त तेजस्विन् अग्नि के समान परंतप! तू (तवसः तवीयान्) सब बलशाली से बलवान् है। तू (अभि इहि) शत्रु के प्रति आक्रमण कर। और (तपसा) श्रमशील सहायक जन से (शत्रून् वि जहि) शत्रुओं का नाश कर। तू (अमित्र-हा) शत्रुनाशक (दस्यु-हा) दुष्ट, प्रजानाशकों का नाशक हो। और (त्वं) तू (विश्वा वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नः आ भर) हमें प्रदान कर। (२) अध्यात्म में—इन्द्र वा मन्यु आत्मा उसका सहयोगी तपःस्वरूप परमेश्वर है। उसके सहाय से ही वह (तवसः तवीयान्) बलशाली से भी अधिक बलशाली होकर मार्ग पर बढ़े। भीतरी शत्रु काम, क्रोध आदि का नाश करे और हमें समस्त अध्यात्म सुखों को प्राप्त करावे।

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि॥ ४॥

भा०—हे मन्यो ! तेजस्विन् ! (त्वं हि) क्योंकि तू (अभिभूति-ओजाः) शत्रुओं प्रतिपक्षों को पराजित करने वाले पराक्रम से सम्पन्न है, इसलिये तू (स्वयं-भूः) स्वयं अपने ही बल से सदा विद्यमान, (भामः) शत्रुओं पर असह्य कोप करने वाला, (अभिमाति-सहः) अभिमानी, शत्रुओं का पराजय करने वाला, (विश्व-चर्षणिः) सब का द्रष्टा, (सहुरिः) शत्रुओं का पराजेता, बलवान्, (सहावान्) सहनशील है । तू (अस्मासु पृतनासु) हम मानव प्रजाओं और सेनाओं में (ओजः धेहि) ओज को स्वयं धारण कर और हममें भी धारण करा । हमारे बल पर तू ओज धारण कर । सेनापति राजा आदि का बल अपनी प्रजाओं वा सेनाओं के बल पर होता है । वह अनेक कारणों से बलवान् होता है और नेता के बल से ही समस्त सेना बलवती रहती है । उसके रहते १ वह जोप से लड़ती है उसके पतन होने पर सेना हार जाती है । (२) संकल्पमात्र से जगत् को चलाने वाला प्रभु 'मन्यु' है, वही ज्ञानमय है । उसका बल सब प्रतिपक्षों को पराजय करता है वह 'स्वयं-भू' है वह विश्व का द्रष्टा है । वह सदा हम देहधारियों में 'ओज' धारण करावे ।

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥

भा०—हे (मन्यो) ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! जगत् के प्रभो ! ! मैं (अभागः सन्) भाग्यहीन, सेवनीय, परम भंजनीय तेरे से रहित होकर (परा इतः) दूर चला गया हूं और (अप अस्मि) तुझ से जुदा होगया हूँ । और हे (प्रचेतः) महान् चित्तवाले ! अति उदार ! हे (प्रचेतः) सर्वोत्कृष्ट ज्ञान वाले ! प्रभो ! (तविपस्य) महान्, बलशाली तेरे (क्रत्वा) उपदेश किये ज्ञान और कर्म से भी मैं (अप अस्मि) दूर हूं (अहम्) मैं कर्मभ्रष्ट, ज्ञानभ्रष्ट, पथभ्रष्ट होकर (अक्रतुः) ज्ञान और कर्म

से हीन होकर ही, (निहीडे) तेरा अनादर करता हूं, तुझे अपने पर क्रोधित करता हूं, तेरी उपेक्षा करता हूँ। तेरी सेवा में ढीला हूं। (अहम्) मैं (स्वा तनूः) स्वयं अपने देहमात्र निःसहाय अकेला हूं। तू (बल-देयाय) बल प्रदान करने के लिये (मा आ इहि) मुझे प्राप्त हो। (२) इसी प्रकार परमेश्वर से परम अनुगृहीत मुक्तिमार्ग का पात्र आत्मा भी प्रभु से यही प्रार्थना करता है। हे प्रभो ! मैं (अभागः) सेवनीय लौकिक देहादि भोग्य पदार्थों से रहित हो (परा इतः) दूर, परम स्थान में प्राप्त (अप अस्मि) सब बन्धनों से पृथक्, असंग हूं। (तविषस्य तव क्रत्वा) बलशाली तेरे ही ज्ञान से मैं ऐसा हूं। अब (अक्रतुः) कर्मरहित होकर (तम् त्वा जहीळे) तेरी भक्ति करता हूं, तेरी उपासना करता हूं। यह मैं (स्वा त :) केवल आत्मा रूप ही हूं। (बलदेयाय) बल देने के लिये मुझे तू प्राप्त हो। जिहीळे हिल भावकरगे, तुदादिः ॥

अ॒यं ते॑ अ॒स्म्युप॒ मेह्य॒र्वाङ् प्र॑ती॒ची॒नः स॑हुरे विश्वधायः।
मन्यो॑ वज्रिन्न॒भि मामा व॑वृत्स्व॒ हना॑व॒ दस्यूँ॑रु॒त बो॑ध्या॒पेः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मन्यो) ज्ञानवन् ! हे विश्व के जानने हारे ! हे (सहुरे) सब के अपराधों को क्षमा अर्थात् सहन करने हारे ! सब दुष्टों को दण्ड देनेहारे ! हे (विश्व-धायः) समस्त विश्व को धारण करने, दुग्ध पिलाकर सब को पुष्ट करने वाले ! हे (वज्रिन्) बल-वीर्य शालिन् ! प्रभो ! (अयम् ते अस्मि) मैं यह तेरा ही हूं। (अर्वाक् मा इहि) तू मेरे सन्मुख आ, मुझे प्राप्त हो। तू (प्रतीचीनः) मुझ से पराङ्मुख होगया है, प्रभो ! (माम् अभि आववृत्स्व) मेरे प्रति और मेरे समक्ष, तू ही तू विद्यमान हो। हम दोनों मिलकर (दस्यून् हनाव) दुष्ट, नाशकारी बाह्य और भीतरी शत्रुओं का नाश करें। (उत) और तू (आपेः बोधि) अपने इस बन्धु का भी कुछ ध्यान रख।

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥१८॥

भा०—हे प्रभो ! तू (अभि प्र इहि) समक्ष आ, दर्शन दे । (दक्षिणतः मे भव) मेरे दक्षिण ओर हो, दायें हाथ, मेरा परम सहायक और मेरा परम माननीय हो । (अध) और (वृत्राणि जंघनाव) हम दोनों विघ्नकारी शत्रुओं और आत्मा को घेरने वाले काम, क्रोधादि बाधक कारणों का नाश करें । मैं (ते) तेरे लिये (मध्वः) मधुर रस रूप आनन्द के (अग्रम्) सर्वश्रेष्ठ, (धरुणम्) धारण करने वाले आत्मा को जलपात्र के तुल्य (ते) अर्घ के तुल्य तुझे (जुहोमि) प्रदान करता हूं । और (ते मध्वः) तेरे परम मधुर आनन्द के (अग्रम् धरुणम्) सर्वश्रेष्ठ धारक स्वरूप को मैं (जुहोमि) स्वयं प्राप्त करूं । इस प्रकार (उपांशु) अति समीपतम एक दूसरे में व्याप कर (उभौ) हम दोनों (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ एवं देह-ग्रहण के पूर्व शुद्ध आत्मरूप होकर (पिबाव) एक दूसरे का पान करें । तू मेरा पान अर्थात् पालन कर वा मुझे अपने भीतर अपनी रक्षा में लेले और मैं तुझे अपने हृदय में धारण करूं, वा तेरे आनन्दमय रस का पान करूं । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[८४]

मन्युस्तापस ऋषिः ॥ मन्युर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ५ पादनिचृज्जगती । ६ आर्ची स्वराड् जगती । ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १ ॥

भा०—हे (मन्यो) ज्ञानवन् ! हे दीप्तियुक्त ! तेजस्विन् ! (स-रथम्)

रथ के सहित होकर हे (मरुत्वः) हे वीरों, मर्दों के स्वामिन्! (त्वया) तेरे सहयोग में (आरुजन्तः) शत्रुओं का सब ओर नाश करते हुए, (हर्षमाणासः) तेरे से हर्ष अनुभव करते हुए, (धृषिताः) शत्रु का धर्षण करनेहारे, (तिग्म-इषवः) तीक्ष्ण बाणों वाले, तीक्ष्ण सेनाओं वाले (आयुधा सं-शिशानाः) अनेक शस्त्रास्त्रों को तीक्ष्ण करते हुए (अग्नि-रूपाः) अग्नि के समान तेजस्वी, उज्ज्वल रूप वाले होकर (नरः) नेता लोग (अभि प्र यन्तु) आगे बढ़ें। (२) अध्यात्म में—हे (मन्यो) तेजोमय! हे ज्ञानमय प्रभो ! (स-रथम्) इस देह से युक्त होकर वा रसस्वरूप तुझ सहित विघ्नों का नाश करते हुए (हर्षमाणासः) हर्ष, लाभ करते हुए (तिग्मे-षवः) तीक्ष्ण इच्छा, प्रेरणा वाले होकर (आयुधा सं-शिशानाः) इन्द्रिय-गणों वा प्राणों वा साधनों को भी तीक्ष्ण करते हुए (अग्नि-रूपाः नरः) अग्निवत् प्रकाशमय, ज्ञानी आत्मा गण आगे बढ़ें।

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥

भा०—हे (मन्यो) तेजस्विन् ! तू (अग्निः इव) अग्नि के समान (त्विषितः) कान्तियुक्त होकर (सहस्व) सब को पराजित कर। हे (सहुरे) सहनशील ! तू (हूतः) आदर से बुलाया जाकर (नः सेनानीः एधि) हमारा सेनानायक हो। (शत्रून् हत्वाय) शत्रुओं का नाश करके (वेदः विभजस्व) विजय से प्राप्त धन को विभक्त कर। (ओजः मिमानः) बल-पराक्रम करता हुआ (मृधः वि नुदस्व) हिंसाकारी शत्रुओं और शत्रु सेनाओं को विपरीत दिशा में कर और अपनी (मृधः) सेनाओं को (वि-नुदस्व) विविध प्रकार से प्रेरित कर।

अध्यात्म में—'इन' अर्थात् स्वामी, आत्मा सहित विद्यमान समस्त इन्द्रिय-गण 'सेना' है, उसको सन्मार्ग में ले जाने वाला सेनानी है। वा स्वामी के चाहने

वाले प्रजाजन सेना, उनका नेता प्रभु हो। वह हमारे अन्तःशत्रु और हमें काटने वाले रोग आदि को नाश कर, सुख प्रदान करे। हमें बल देता हुआ हमारी (मृधः) विपत्तियों को दूर करे।

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन्प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम्॥ ३॥

भा०—हे (मन्यो) सब से मानने, आदर करने योग्य! हे तेजस्विन्! (अस्मे अभिमातिं सहस्व) तू हमारे शत्रुओं को पराजित कर और (अस्मे शत्रून्) हमारे शत्रुओं को (मृणन् प्रमृणन्) नाश करता हुआ (प्र इहि) आगे बढ़। (ते उग्रं पाजः) तेरे भयंकर बल को भला (ननु आ रुरुध्रे) कब सम्भव है कि वे रोक सकें? तू (एकजः वशी) एकमात्र प्रकट होकर, स्वयंभू होकर ही सब को वश करने वाला है, तू उनको (वशं नयसे) वश में कर लेता है।

एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे॥ ४॥

भा०—हे (मन्यो) तेजस्विन्! तू (बहूनाम्) बहुतों में से (एकः ईळितः असि) एक, अद्वितीय प्रशंसित और बहुतों का प्रेमपात्र है। तू (विशं-विशम्) प्रत्येक प्रजा को (युधये) युद्ध करने के लिये (सं शिशाधि) खूब उत्तेजित कर। उनको भी तीव्र, साहसी, उत्साही और प्रचण्ड कर। हे (अकृत्त-रुक्) कभी न नष्ट होने वाली कान्ति वाले, हे अन्यों की रुचि को विघात वा नष्ट न करने वाले! (वयम्) हम (त्वया युजा) तुझ सहायक और तुझ प्रेरक से युक्त और प्रेरित होकर (विजयाय) विजय करने के लिये (द्युमन्तं घोषं कृण्महे) दीप्तियुक्त, शानदार घोष, गर्जन, सिंहनाद करते हैं।

यह विजयघोष अध्यात्म में वही विजय लेना चाहिये जिसका वर्णन केन उपनिषद् में किया है। ब्रह्म देवेभ्यो विजिग्ये॰इत्यादि। केन उप॰ खं॰ ३।

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ॥ ५॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! सेनापते! तू (इन्द्रः इव) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक के समान (विजेष-कृत्) विजय करने वाला, (अनवब्रवः) निन्दित वचन न बोलने वाला, वा स्वयं अन्यों से हीन वचन न कहने योग्य है। हे (मन्यो) आदरणीय! हे माननीय! तू (इह अस्माकं अधिपाः भव) यहां हमारा अध्यक्ष पालक हो। हे (सहुरे) विजयशील, हे सहिष्णो! हम यहां (ते प्रियं नाम गृणीमसि) तेरे प्रिय नाम का उच्चारण करते हैं, तेरे प्रिय आदर योग्य वचन कहते हैं, तुझे नमस्कार करते हैं। हम तुझ (तम् उत्सम् विद्म) उस उत्तम सुख देने वाले परम निकास वा रसोत्पादक मेघ वा कूप के समान परमपद वा शक्ति के उन्नत करने वाले उस स्रोत को जानें (यतः) जिस रूप से तू (आबभूथ) सर्वत्र व्याप रहा है।

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम्।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि॥ ६॥

भा०—हे (वज्र) बलशालिन्! हे (सायक) दुःखों और दुष्टों के अन्त करने हारे! हे (अभि-भूते) शत्रुओं को पराजित करने हारे वा हे (अभि-भूते) सर्वत्र व्यापने वाले! तू (आ-भूत्या) अपने सर्वत्र विद्यमान सत्ता और ऐश्वर्य-विभूति से (सह-जाः) सब के साथ विद्यमान होकर (उत्तरम्) सब से उत्कृष्ट (सहः बिभर्षि) बल को धारण करता है। हे (मन्यो) मान्य! हे तेजस्विन्! हे (पुरुहूत) इन्द्रियगणों को अपने अधीन रखने वाले, आत्मा के तुल्य प्रजा के पालक नेताओं को ग्रहण करने

वाले, उनके द्वारा स्तुति किये गये नायक, स्वामिन्! तू (महाधनस्य) बड़े भारी ऐश्वर्य के (संसृजि) संसर्ग कराने और (महाधनस्य संसृजि) भारी युद्ध के करने में (मेदी) सर्वस्नेही और शत्रुओं का विनाश करने वाला (एधि) हो।

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम्॥
॥ ७ ॥ १९ ॥ ६ ॥

भा०—(वरुणः च मन्युः) माननीय और सब से वरण करने योग्य, श्रेष्ठ सेनापति और सभापति दोनों (संसृष्टं) सब के साथ मिला, (उभयम्) दोनों प्रकार का, चर और अचर (समाकृतम्) अच्छे प्रकार से सम्पादित (धनं) धन को (अस्मभ्यं) हमें (दत्ताम्) देवें। और (शत्रवः) शत्रुगण (हृदयेषु भियं दधानाः) हृदयों में भय धारण करते हुए (पराजितासः) पराजित होकर (अप निलयन्ताम्) दूर भाग कर छिप जांय। इत्येकोनविंशो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः॥

[८५]

सूर्या सावित्री॥ देवता—१—५ सोमः। ६—१६ सूर्याविवाहः। १७ देवाः। १८ सोमार्कौ। १९ चन्द्रमाः। २०—२८ नृणां विवाहमन्त्रा आशीःप्रायाः। २९, ३० वधूवासः संस्पर्शनिन्दा। ३१ यक्ष्मनाशिनी दम्पत्योः। ३२—४७ सूर्या॥ छन्दः—१, ३, ८, ११, २५, २८, ३२, ३३, ३८, ४१, ४५ निचृदनुष्टुप्। २, ४, ५, ९, ३०, ३१, ३५, ३९, ४६, ४७ अनुष्टुप्। ६, १०, १३, १६, १७, २९, ४२ विराडनुष्टुप्। ७, १२, १५, ३२ पादनिचृदनुष्टुप्। ४० भुरिगनुष्टुप्। १४, २०, २४, २६, २७ निचृत् त्रिष्टुप्। १९ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २१, ४४ विराट् त्रिष्टुप्। २३, ३७, ३६ त्रिष्टुप्। १८ पादनिचृज्जगती। ४३ निचृज्जगती। ३४ उरोबृहती॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

भा०—(सत्येन) सत्य से (भूमिः) भूमि, उत्पादन करने और धारण करने वाली पृथिवी और उसके तुल्य स्त्री और प्रकृति शक्ति (उत्-तभिता) ऊपर थामी जाती है, धारण की जाती है। (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (द्यौः) प्रकाशक तेज वाली उषा (उत्-तभिता) धारित होती है। (आदित्याः) वर्ष के १२ हों मास जो अदिति अर्थात् सूर्य और पृथिवी के द्वारा उत्पन्न होते हैं वे भी (ऋतेन) सूर्य तेज, अन्न और जलवत् सत्य, द्वारा (तिष्ठन्ति) स्थिर होते हैं (दिवि) आकाश में (सोमः) सोम, प्राणियों का उत्पादक सूक्ष्म जलीय और तैजस तत्व (ऋतेन) सूर्य के तेज के द्वारा (अधि-श्रितः) ऊपर स्थिति पाता है। इसी प्रकार इस लोक-व्यवहार के क्षेत्र में सन्तानों को उत्पन्न करने वाली 'भूमि' स्त्री है। उसको भी पुरुष सत्य के बल पर धारण करता है, सत्य वचन और सत् अर्थात् सज्जनों के योग्य सद् व्यवहार से ही धारण करता है। जिस प्रकार सूर्य द्यौ अर्थात् उज्ज्वल आकाश भाग उसको अपने ऊपर धारता है उसी प्रकार तेजस्वी 'द्यौ' रूप उषा के समान कान्ति और कामनायुक्त स्त्री को भी पुरुष धारण करने में समर्थ होता है। पुरुष जो विवाह करना चाहता है उसे सूर्य के समान तेजस्वी, दिन के पूर्व भाग में अनुराग, तेज स्नेह आदि के द्वारा आकर्षक होना चाहिये। सूर्य भूमि से उत्पन्न १२ मासों और दिन रात्रियों के तुल्य गृहस्थ में उत्पन्न पुत्र पुत्री आदित्य हैं जो अदिति अर्थात् माता पिता से उत्पन्न होते हैं, वे भी (ऋतेन) धन, अन्न, तेज वीर्य के आश्रय ही स्थिर हो सकते हैं। सोम, चन्द्र के समान पुनः उत्पन्न होने वाला सन्तान वा सन्तानोत्पादक वीर्य का उत्पन्न होना भी 'दिवि' कामना वाली स्त्री के देह में ही स्थिर होता, वह उसके सहवास और उसकी सुप्रसन्नता पर ही उत्पन्न होता, उसी में स्थिर होकर सन्तान रूप में उत्पन्न होता है। वह

भी (ऋतेन) ऋत, सत्य अन्न और उत्तम जल, प्रेम-संगति आदि पर ही निर्भर है।

इस सूक्त के प्रायः सब मन्त्र अथर्ववेद का० १०, में आये हैं। देखो अथर्व० का० १४। सू० १। १॥

सोमे॑नादि॒त्या ब॒लिनः॒ सोमे॑न पृथि॒वी म॒ही।

अथो॒ नक्ष॑त्राणामे॒षामु॒पस्थे॒ सोम॒ आहि॑तः॥ २॥

भा०—(आदित्याः सोमेन बलिनः) सूर्य की रश्मियां पृथिवी पर ओषधि, और आकाश में मेघ और विद्युत् आदि उत्पादक सामर्थ्य रूप 'सोम' तत्त्व के द्वारा ही बल से युक्त हैं। इसी प्रकार (आदित्याः) सूर्य और पृथिवी से उत्पन्न ऋतु, दिन, मास और पृथिवी पर उत्पन्न अनेक पशु-पक्षी, मनुष्य, समस्त प्राणिगण ये सब (सोमेन बलिनः) 'सोम' अर्थात् स्व-सन्तान के उत्पादक वीर्य रूप सामर्थ्य से ही बलशाली हैं। यदि वे वीर्य-हीन हों तो निर्बल और नपुंसक उत्साहहीन हो जाते हैं। इसी प्रकार 'सोम' अर्थात् उत्पादक तत्त्व वीर्य के द्वारा ही (आदित्याः) 'अदिति' अर्थात् माता पिता से उत्पन्न होने वाले पुत्र और पुत्री आदि सन्तान भी (बलिनः) बल से युक्त, हृष्ट पुष्ट उत्पन्न होते हैं, हीनवीर्य से सन्तानें भी हीनवीर्य-वाली होती हैं। (सोमेन) उत्पादक वीर्य के द्वारा ही (पृथिवी मही) यह भूमि अनेक पशु-पक्षी आदि जीवों का विस्तार करती है, उसी को पृथिवी ने अपने समस्त पृष्ठ, जल-स्थल पर सर्वत्र फैला रक्खा है। इसी प्रकार पृथिवी के सदृश सर्वोत्पादक प्रकृति उत्पादक ब्रह्म से (मही) महान् शक्ति वाली है। उत्पादक सामर्थ्य रूप सोम अर्थात् रज वीर्य के द्वारा ही, पृथिवीवत् स्त्री भी (मही) पूजनीय होती हैं। वह सामान्य स्त्री के पद से पूज्य माता के पद को प्राप्त करती है। यदि उत्तम रज-वीर्य न हों तो स्त्री वन्ध्याहाकर मान आदर वा माता होने का सौभाग्य नहीं पाती। (अथो) और (एषां नक्षत्राणाम् उपस्थे) इन नक्षत्रों के बीच में जिस प्रकार

(सोमः आहितः) चन्द्र स्थित होता और शोभा देता है उसी प्रकार (एषां) इन (नक्षत्राणाम्) 'न-क्षत्र' अर्थात् अक्षत वीर्य वाले ब्रह्मचारी पुरुषों के (उपस्थे) अंग में (सोमः आहितः) प्रजा का उत्पादक वीर्य सुरक्षित होता है। और (एषां नक्षत्राणां) एक दूसरे को आदरपूर्वक प्राप्त होने वाले गृहस्थ पुरुषों के (उपस्थे) गोद में (सोमः आहितः) पुत्र स्थित होता है।

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ३ ॥

भा०—(पपिवान्) पान करने वाला, (सोमं मन्यते) सोम उसी को मानता है (यत्) जो (ओषधिं सम्पिषन्ति) ओषधि को पीसते और कूटते हैं, उसका रस पान करते हैं। परन्तु (यं सोमं) जिस सोम को (ब्रह्माणः) ब्रह्म, वेद के जानने वाले, वा ब्रह्म के उपासक ब्रह्म का आचरण करने वाले ब्रह्मचारी लोग (विदुः) जानते हैं, (तस्य) उसको (कः चन न अश्नाति) और कोई भी मुख द्वारा खा नहीं सकता है। उस ज्ञान और वीर्य रूप सोम वा अध्यात्म में आनन्दमय सोम को अर्थात् तेज, दीर्घायु और हृदयनिष्ठ आनन्द को वे स्वयं ही अपने जीवन में आनन्द, पुत्र और अमृत तत्त्व के रूप में प्राप्त करते हैं। इस सोम के विषय में गोपथ ब्राह्मण (पू० २ । ९) में लिखा है—वेदानां दुह्यं भृग्वंगिरसः सोमपानं मन्यन्ते। सोमात्मकोयं वेदः। तदप्येतद् ऋचोक्तं सोमं मन्यते पपिवान् इति। वेदों से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को विद्वान् भृगु अर्थात् तपस्वी वेदवाणी के धारक ज्ञानी अंगिरस जन सोमपान करना जानते हैं। वेद ही सोम रूप हैं। 'सोमं मन्यते पपिवान्' इस मन्त्र ने इसी का प्रतिपादन किया है। इस वेद को ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य पालन करके ही प्राप्त करते हैं। अथर्व० का १४ । १ । ३ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ४ ॥

भा०—ब्रह्मचारी सोम जिसको आगे 'वधूयु' कहा जावेगा, जिसके आश्रय पर इस सूक्त में गृहस्थ का प्रतिपादन करना है, उसका वर्णन करते हैं। हे (सोम) सोम, वीर्य के पालक, विद्यागर्भ से उत्पन्न होने हारे, विद्वान् पुरुषों से प्रेरित ! उपदिष्ट ब्रह्मचारिन् ! (पार्थिवः) यह पृथिवी का मालिक राजा भी (ते न अश्नाति) तेरे इस महान् ज्ञान रूप धन का भोग नहीं कर सकता है। (आच्छद्-विधानैः गुपितः) जिस प्रकार चारों ओर से घेर लेने वाले प्रकोट या दीवारों, खाई आदि रचनाओं से सोम अर्थात् शासक राजा सुरक्षित होता है उसी प्रकार हे (सोम) वीर्यवान् ब्रह्मचारिन् ! तू भी (आच्छद्-विधानैः) सब ओर से सुरक्षित विद्या, विधान, सत्कर्म आचरणों को रखने वाले गुरुओं द्वारा (गुपितः) सुरक्षित होता है। और (बार्हतैः रक्षितः) बृहती नाम वेदवाणी के जानने वाले विद्वानों द्वारा सुरक्षित होता है। हे (सोम) ब्रह्मचारिन् ! (ग्राव्णाम्) ज्ञानोपदेष्टा विद्वानों के बीच में (इत्) ही (शृण्वन्) ज्ञान का श्रवण करता हुआ (तिष्ठसि) विराजता है। (ते) तेरे इस ज्ञानमय अंश का (पार्थिवः) पृथिवी का सामान्य जन (न अश्नाति) नहीं भोग करता है। वीर्यवान् ब्रह्मचारी पुरुष ही 'सोम' कहाता है, जैसा कि लिखा है—पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।३।३।३॥ (२) वीर्य पक्ष में—वीर्य की रक्षा वे पुरुष करते हैं जो 'आच्छद्-विधान' अर्थात् इन्द्रियों को सुरक्षित रखते हैं और 'बार्हत' अर्थात् वेद और ब्रह्म की उपासना करते हैं। जो गुरुजनों के अधीन विद्या का अभ्यास करते हैं, उनके इस ज्ञानमय ऐश्वर्य को कोई सामान्य जन वा राजा भी अपहरण नहीं कर सकता। फलतः इन्द्रिय दमन करने, वेद का अभ्यास और गुरुओं के पास विद्या लाभ करने वालों को वीर्य की रक्षा अवश्य करनी चाहिये।

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—जिस प्रकार चन्द्रमा (पुनः आप्यायते) फिर २ वृद्धि को प्राप्त होता है और (वायुः सोमस्य रक्षिता) वायु अर्थात् चन्द्र को चलाने वाली गति ही सोम का रक्षक है, वह (समानां) वर्षों के (मासः) मास का (आकृतिः) बनाने वा बतलाने वाला होता है । उसी प्रकार हे (देव) विद्या आदि सद्गुणों की कामना करने वाले विद्वन् ! (त्वा) तुझे (यत्) जब (प्र-पिबन्ति) गुरु आदि जन खूब अच्छी प्रकार सुरक्षित करते हैं, (ततः) तब तू (आप्यायसे) बल आदि से हृष्ट-पुष्ट हो जाता है । ऐसे (सोमस्य) सोम्य स्वभाव के, विद्याभिलाषी शिष्य का (रक्षिता) रक्षक (वायुः) ज्ञानवान् गुरु, आचार्य होता है । (मासः) ज्ञानवान् पुरुष ही (समानां) ज्ञान सहित विद्वानों का (आकृतिः) बनाने वाला होता है । इति विंशो वर्गः ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥ ६ ॥

भा०—(रैभी) उपदेश देने वाले विद्वान् पुरुषों की शिक्षा ही (अनुदेयी आसीत्) अनुदेयी अर्थात् विवाह के अनन्तर देने योग्य हो । (नाराशंसी नि-ओचनी) मनुष्यों की स्तुति ही वधू के लिये उत्तम सेविका वा, उत्तम वस्त्र वा ओढ़नी हो । (सूर्यायाः) उषा के समान नव कान्ति से युक्त नववधू का (वासः) आच्छादन वस्त्र (गाथया परिष्कृतम्) गाथा से सुशोभित (भद्रम्) अति सुखकारक रूप में (एति) प्राप्त होता है ।

सायण के मत में—'रैभी' नाम ऋचाएं हैं जो सूर्या के विवाह के अवसर में कन्या के विनोदार्थ साथ दान की जाने योग्य सखी के समान हों, नाराशंसी नाम 'प्रातारत्नम्०' इत्यादि ऋचाएं (ऋ० १।१२५) उसकी

निओचनी अर्थात् दासी के तुल्य हैं। उसका वस्त्र 'गाथा' गान करने योग्य ब्राह्मण ग्रन्थ प्रोक्त विशेष ऋचा से सुशोभित हो।

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जब (सूर्या) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ नवयुवति वधू (पतिम् अयात्) पालक पति को प्राप्त हो तब (उप बर्हणं) मस्तक को सुख देने वाले तकिये के तुल्य (चित्तिः) ज्ञान वा चित्त का उत्तम संकल्प ही (आः) हो। और (अभिअञ्जनं चक्षुः) आंखों में लगाने का अंजन जिस प्रकार आंख को अधिक शक्ति देता है उसी प्रकार (अभि-अञ्जनम्) सब ओर प्रकाश करने वाला शास्त्र ही (चक्षुः) उसको सत्य तत्त्व बतलाने वाले चक्षु के समान (आः) हो। (द्यौः भूमिः कोशः आसीत्) जिस प्रकार आकाश और भूमि ही अनेक ऐश्वर्यों के खजाने के तुल्य हैं। उसी प्रकार वधू के लिये (द्यौः) पिता और (भूमिः) उत्पादक माता ये दोनों ही (कोशः) उसके धन देने वाले खजाने के तुल्य (आसीत्) होते हैं। अथवा—(द्यौः) उसे चाहने वाला उससे रमण वा प्रेम व्यवहार करने वाला सूर्यवत् तेजस्वी पति पुरुष और (भूमिः) उसका आश्रय रूप, वह भूमिवत् सन्तान उत्पादक वह स्वयं (कोशः) गर्भ-गृह के समान रक्षक हो। (अथर्व० १४। १। ६)

स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥ ८ ॥

भा०—(सूर्यायाः) नव वधू जो सन्तान की कामना से उषाकाल के तुल्य अनुराग वाली होकर पति के साथ जाती हो उसके (स्तोमाः) उत्तम २ स्तुति योग्य गुण और, उत्तम २ उपदेश और स्तुत्य वचन ही (प्रति-धयः) उसके प्रति आदरार्थ प्रस्तुत पदार्थ के तुल्य हों, वा वे ही

उसके प्रतिपालक हों, सर्वत्र सब उसको उत्तम वचन ही कहें। और (छन्दः) उसकी मनोकामना उस समय (कुरीरं ओपशः) अपने पति के समीप शयन और कर्त्तव्य कर्म वा मैथुन-धर्म से सन्तान उत्पत्ति (आसीत्) हो। उस समय वे दोनों (अश्विना) एक दूसरे के भोग्य भोक्ता रूप से वा एक दूसरे के हृदय में व्यापक वा उत्तम अश्वों से युक्त, जितेन्द्रिय होकर (वरा) एक दूसरे का वरण करने वाले होते हैं। और उनके (पुरः-गवः) आगे चलने वाला वा उनके समक्ष वाणी को प्रकट करने वाला (अग्निः आसीत्) अग्रणी, नायक वा ज्ञानवान् पुरुष हो। अर्थात् वधू के आगे २ उसका पति ही चले, वह अपने पति का ही अनुसरण करे। अथवा उन दोनों को समस्त मार्ग दिखाने और उपदेश करने वाला विद्वान् पुरोहित हो।

कुरीरं—क्रियते इति कुरीरम् मैथुनं वा इति दयानन्द उणादिभाष्ये। ओपशः—आङ्उपपूर्वात् शेतेरसुन्।

सोमो॑ वधू॒युर॑भवद॒श्विना॑स्तामु॒भा व॒रा।
सू॒र्यां यत्पत्ये॒ शंस॑न्तीं॒ मन॑सा सवि॒ताद॑दात् ॥ ६ ॥

भा०—(सोमः) वीर्यवान्, नवयुवक विद्वान् पुरुष (वधूयुः अभवत्) वधू की कामना करने वाला हो। और (उभा) दोनों वर और वधू (अश्विना) जितेन्द्रिय, एक दूसरे के चित्त में व्यापक होकर (वरा) एक दूसरे को वरण करने वाले (आस्ताम्) हों, (यत्) जब कि (सविता) कन्या का पिता (मनसा) मन से (पत्ये) पति को प्राप्त करने के लिये (शंसन्तीम्) आशंसा वा इच्छा करती हुई (सूर्याम्) कन्या को (पत्ये अददात्) पालन करने में समर्थ, ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के लिये दान करे।

वधू—वहतीति वधूः। जो गृहस्थ-भार को व सन्तान को वहन कर सके। (२) 'ऊह्यते इति वधूः' जिसको पुरुष अपने आश्रय में धारण

करता है वह 'वधू' है। उसकी कामना करने वाला वा, उसका स्वामी 'वधूयु' 'सोम' शब्द से कहाता है। वह सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ, वा वीर्यवान् होने से 'सोम' कहाता है। पिता तभी कन्या को दे जब कन्या पति के लिये उत्सुक हो। वह उस पुरुष के हाथ कन्या को दान करे। यह दान उसका मनःसंकल्प द्वारा ही होता है। यह प्रदान कन्या को विवाह करने वाले वर के हाथों में देने पर भी पिता के पितृत्व का विलोप नहीं करता।

मनो॑ अ॒स्या अन॑ आसी॒द्द्यौरा॑सीदु॒त च्छ॒दिः।
शु॒क्राव॑न॒ड्वाहा॑वास्तां॒ यदया॑त्सू॒र्या गृ॒हम् ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(यत्) जब (सूर्या) कन्या, वरवर्णिनी (गृहम्) अपने को सर्वात्मना ग्रहण करने वाले पति को वा अपने नये बसाये गृह को (अयात्) जाती है तब वह कैसे जावे? लोक-दृष्टि से वह गाड़ी वा रथ पर चढ़कर जाती है, जिसके सुन्दर छत और उत्तम घोड़े आदि लगे होते हैं, उसी प्रकार जब वह पतिगृह वा पति को प्राप्त होती है तब (अस्याः अनः) उसका शकट वा गाड़ी रूप से उसका (मनः आसीत्) मन होता है। (उत) और (च्छदिः) ऊपर की छत (द्यौः) कामना रूप हो। वे दोनों वरवधू स्वयं ही शकट में लगे (शुक्रौ अनड्वाहौ) श्वेत, सुन्दर शकट उठाने वाले बैलों के समान (शुक्रौ) विशुद्ध कान्ति से युक्त, शुद्ध कर्म करने वाले, सदाचारी और वीर्यवान्, ब्रह्मचारी (अनड्-वाहौ), एक दूसरे के चित्तरूप वा गृहस्थ रूप शकट को ढोने में समर्थ (आस्ताम्) होवें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋ॒क्सा॒माभ्या॑म॒भिहि॑तौ॒ गावौ॑ ते साम॒नावि॑तः।
श्रोत्रं॑ ते च॒क्रे आ॑स्तां दि॒वि पन्था॑श्चराच॒रः ॥ ११ ॥

भा०—हे (सूर्ये) उषा के तुल्य कामना वा अनुराग वाली वधू!

(ते गावौ) तेरे मन रूप रथ के दोना बैल (ऋक्-सामाभ्यां) ऋग्वेद और सामवेद दोनों से अथवा ऋक् अर्थात् अर्चना, ईश्वरोपासना और सब के प्रति समान व्यवहार वा सब के प्रति शान्तियुक्त वचन इनसे (अभि-हितौ) बंधे हुए (सामनौ) सबके प्रति समान भाव वा बलवान्, एक दूसरे के सहायक होकर (इतः) चलें। (ते श्रोत्रे) तेरे दोनों कान (चक्रे) मन रूप रथ के दो चक्र के तुल्य हों। (दिवि) तेरे कामनामय व्यवहार में (चराचरः पन्थाः) यह समस्त चर और अचर पदार्थ ही मार्ग के तुल्य हैं। तू चित्त से चर और अचर दोनों पदार्थों की यथेष्ट चाहना कर। ऋचा भाग मन्त्र और साम-गायन अर्थात् ज्ञान और उपासना इन दोनों के आश्रय पर वधू का मन रहे, और उन दोनों वर-वधू का चित्त अपने से बड़ों के हित-वचन सदा श्रवण करे।

शुची॑ ते च॒क्रे या॒त्या व्या॒नो अक्ष॒ आह॑तः।
अनो॑ मन॒स्मयं॑ सू॒र्यारो॑हत्प्रय॒ती पति॑म् ॥ १२ ॥

भा०—हे वधू! (यात्याः ते) जाती हुई तेरे रथ के (चक्रे) दोनों चक्र (शुची) शुद्ध हों। उस मनोमय रथ में (अक्षः) अक्ष रूप से (व्यानः आहतः) व्यान लगा हो। (पतिम् प्रयती सूर्या) पति की ओर प्रयाण करती हुई सूर्या, नववधू (मनस्मयं अनः) मनोमय रथ को (आरोहत्) चढ़े। वधू का चित्तमय रथ गृहस्थ-धारण रूप है। उसमें स्त्री-पुरुष दोनों ही उस रथ को धारण करने से रथ में लगे दो अश्वों के तुल्य हैं। वे दोनों ऋचा और साम, ज्ञान और उपासना वा परस्पर की अर्चना, आदरभाव और समान चित्तता से बद्ध हों, इस रथ के चक्र श्रोत्र हों अर्थात् वे दोनों एक दूसरे के वचनों को चित्त देकर सुनें, एक दूसरे के कथन का अवहेलना या तिरस्कार न करें। तब वे अपनी कामनानुसार चर और अचर सभी ऐश्वर्य-सम्पदा को प्राप्त कर सकते हैं चर, पशु भृत्यादि और अचर, भूमि, गृह, स्वर्णादि। उनके कान जो चक्र रूप हैं सदा स्वच्छ रहना चाहिये। प्रायः

चुग़लख़ोर नर-नारियां, विवाहितों के कान भर कर ही एक दूसरे के प्रति द्वेष और कलह को बो देते हैं, और फिर गृहस्थ का सब सुख नष्ट हो जाता है।

सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥ १३ ॥

भा०—(सूर्यायाः) सूर्या नववधू का (वहतुः) कन्या को प्रेम से दिया द्रव्य आदि (यम् सविता अव असृजत्) जिसे उसका पिता प्रदान करता है वह (प्र अगात्) अच्छी प्रकार सुरक्षित रूप से जावे। (अघासु गावः हन्यते) अघा अर्थात् 'मघा' नक्षत्रों में सूर्य की किरणें मारी जाती हैं, मन्द हो जाती हैं, (अर्जुन्योः पर्युह्यते) और अर्जुनी अर्थात् फल्गुनी नक्षत्रों में परिवहन अर्थात् पुनः प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार विवाह और विदाई होती है। 'अथर्ववेद में—मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषुव्युह्यते।'

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितरावृणीत पूषा ॥१४॥

भा०—(यत्) जब हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! वा वर वधू आप दोनों (पृच्छमानौ) अपने पूज्य जनों से प्रश्न करते हुए (त्रि-चक्रे) तीन चक्र के रथ से (सूर्यायाः) उषा के समान कान्ति एवं अनुराग वाला कन्या के (वहतुम्) विवाह को लक्ष्य कर (अयातम्) प्राप्त होओ तब (विश्वे देवाः) सब विद्वान् धार्मिक लोग (तत्) उस विवाह की (अनु अजानन्) अनुमति देवें, क्योंकि इसी विधि से (पूषा) सब को पालन-पोषण करने और वंश की वृद्धि करने वाला (पुत्रः) पुत्र (पितरौ) माता पिता दोनों को (अवृणीत) प्राप्त होता है।

वरवधू वा स्त्री पुरुष के 'त्रिचक्र रथ' का वर्णन आगे स्पष्ट होगा।

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (शुभः पती) शोभादायक आभूषण वस्त्र आदि और उत्तम गुणों के पालन करने वाले, वा (शुभः पती) उत्तम सत्कार-साधन रूप जल के पालक वा पान करने कराने वाले आप दोनों (यत्) जब (सूर्याम् वरेयम् उप अयातम्) परस्पर वरण कार्य के निमित्त प्राप्त होवें तब (वाम्) आप दोनों का (एकं चक्रम्) एक चक्र (क आसीत्) कहां हो और (देष्ट्राय) परस्पर दान-आदान करने के लिये वा (देष्ट्राय) उपदेश करने वाले विद्वान् के सत्कारार्थ वा उसका उपदेश ग्रहण करने के लिये (क्व) कहां (तस्थथुः) खड़े होओ ?

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥ १६ ॥

भा०—हे (सूर्ये) वधू ! (ते) तेरे (चक्रे) दोनों चक्रों को (ब्रह्माणः) वेद के विद्वान् उपदेष्टा पुरुष (ऋतुथा) समय २ पर यथावसर (विदुः) जानें। (अथ) और (एकं चक्रम्) एक चक्र (यत् गुहा) जो भीतर अन्तःकरण में है (तत्) उसको (अद्-धातयः) विद्वान् बुद्धिमान्, पुरुष (इत्) ही (विदुः) प्राप्त करते हैं। उसकी गति को वही जानते हैं। विवाह योग्य कन्या के रथ का वर्णन पूर्व मन्त्र में आ चुका है जिसके दो चक्र दो कान बतलाये जा चुके हैं। 'श्रोत्रं ते चक्रे आस्ताम्' अर्थात् उस रथ के दोनों कान दो चक्र के समान हैं। तब तीसरा चक्र भीतर अन्तःकरण मन ही है। कन्या विवाह के अवसर पर जिस मार्ग पर पैर रखती है वह या तो कानों से पति के गुण-श्रवण करके रखती है वा चित्त से भावी, सुख-दुःख का विचार करके रखती है। कानों में उत्तम यथार्थ वचनों को सुनाना वेदज्ञ विद्वानों का कार्य है और चित्त का परिज्ञान भी चतुर विद्वान् पुरुष ही कर सकते हैं। वरण के अवसर पर उसका मनोमय रथ इन्हीं तीन चक्रों पर गति करता है। 'अद्धातयः' इति मेधाविनाम ।

अथर्ववेद में १४, १५ मन्त्रों के उत्तरार्धों में परस्पर विपर्यास है। यदश्विना०। 'क्वैकं चक्रं०' ॥ १४ ॥ 'यदयातं०'। विश्वे देवा० ॥ १५ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥ १७ ॥

भा०—(सूर्यायै) उत्तम वीर्ययुक्त, ब्रह्मचारिणी वधू को (देवेभ्यः) ज्ञान, गुणों आदि की शिक्षा तथा प्रेमपूर्वक द्रव्य आदि देने वाले गुरु जनों और (मित्राय वरुणाय च) उसको स्नेह करने वाले, उसके जीवन के रक्षक और श्रेष्ठ जन (ये च) और जो भी (भूतस्य) समस्त उत्पन्न प्राणियों और चराचर जगत् के (प्रचेतसः) उत्तम रीति से जानने वाले और उत्तम मति, उदार चित्त वाले हैं (तेभ्यः) उनके हितार्थ (नमः अकरम्) मैं नमस्कार, आदर-सत्कार, अन्न तथा आतिथ्य आदि करूं।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

भा०—सूर्य चन्द्र वा दिन रात्रि का दो बालकों के समान वर्णन। और उनके समान स्त्री पुरुषों का वर्णन। (एतौ) ये दोनों (क्रीडन्तौ शिशू) खेलने वाले दो बालकों वा गोद में सोने वाले दो बच्चों के समान (मायया) प्रभु की निर्माण व्यवस्था के अनुसार (पूर्व-अपरम् चरतः) पहले और पीछे चलते, (अध्वरम् परि यातः) कभी न नष्ट होने वाले चक्र वा व्यवस्थित क्रम या मार्ग को परिक्रमण करते हैं। (अन्यः) इन दोनों में से एक सूर्य (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोकों और प्राणियों को (अभिचष्टे) देखता है, प्रकाशित करता है और (अन्यः) दूसरा चन्द्र (ऋतून्) ऋतुओं, दो मास रूप काल के विभागों को बनाता हुआ, (पुनः जायते) वार २ उत्पन्न होता अर्थात् बार २ लुप्त होता और पुनः २ प्रकट होता है। (२) इसी प्रकार स्त्री पुरुष जो परस्पर विवाहित होगये हैं

वे दोनों (शिशू) एक दूसरे के प्रति बालकों के समान स्वच्छ, निष्कपट व्यवहार वाले होकर और (शिशू) एक दूसरे के प्रति उत्तम १ वचनों को बोलते हुए (क्रीडन्तौ) विहार-विनोद करते हुए, (मायया) अपनी बुद्धि के अनुसार वा (मायया) गृहस्थ एवं सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति सहित व धनोपार्जन, नाना सुख सामग्री द्वारा (पूर्वं-अपरं चरतः) एक दूसरे के पूर्व और अपर, आगे पीछे विचरते हुए (अध्वरं परि यातः) एक अविनाशी गृहस्थरूप यज्ञ वा अविनाशी प्रभु के प्रति इसी प्रकार परिगमन करें जिस प्रकार वे विवाह काल में अग्नि-यज्ञ में अग्नि के चारों ओर परिक्रमण करते हैं। विवाह काल में जैसे वे अग्नि की परिक्रमा करते हुए अग्नि को सदा दक्षिण हस्त रखते हैं, उसी के प्रकाश में कभी वधू आगे वर पीछे कभी वर आगे वधू पीछे इस प्रकार परिक्रमा करते हैं उसी प्रकार इस लोक-यात्रा में भी वे वरवधू कार्य, समय, शक्ति अनुसार एक दूसरे के आगे-पीछे चलते हुए सदा विद्वान्, ज्ञानी, पथदर्शक सर्वत्र व्यापक प्रभु परमेश्वर को अपने मान्य साक्षीपद पर रखते हुए आगे बढ़ें। उन दोनों में से (अन्यः) एक (विश्वानि भुवना अभि चष्टे) समस्त भुवनों, कार्यों को देखे। और (अन्यः) दूसरा साथी स्त्री (ऋतून् विदधत्) ऋतु-कालों को प्रकट करती हुई (पुनः) पुनः २ (जायते) सन्तान उत्पन्न करती है। (२) यह मन्त्र आत्मा परमात्मा का भी वर्णन करता है। वे दोनों (मायया) माया अर्थात् जगत् को निर्माण करने वाली प्रकृति के साथ (पूर्वापरं परि चरतः) आगे पीछे विद्यमान रहते हैं। प्रभु जगत् के पूर्व भी उस पर अधिकारवान् था, बाद भी, जीवात्मा पहले कल्पों में भी उसका भोक्ता था और अब भी भोगता है। वे दोनों अध्वर अर्थात् अविनाशी कालचक्र पर गति करते हैं। प्रभु काल-धर्म से सृष्टि बनाता बिगाड़ता है, और जीव उसका तदनुसार भोग करता है। प्रभु (विश्वानि भुवनानि) सब प्राणियों के कर्मों और समस्त लोकों का साक्षी, द्रष्टा

है और वह जीव (ऋतून् विदधत्) ऋतुओं, प्राणों को पुनः २ बनाता वा देह में प्रकट कर, धारण करता हुआ (पुनः जायते) बार २ उत्पन्न होता है अर्थात् बार २ देह धारण करता है।

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

भा०—जिस प्रकार चन्द्र (जायमानः) प्रत्येक प्रतिपदा को पुनः प्रकट होता हुआ (नवः-नवः भवति) नया ही नया होता है। वह (अह्नां केतुः) दिनों का संकेत करने वाला, (उषसाम् अग्रम् एति) कृष्णपक्ष की रातों में प्रभातों के आगे ही आता है, (देवेभ्यः भागं विदधत्) प्रकाशमान दिनों का तिथि रूप से विभाग करता हुआ (चन्द्रमाः) चन्द्र (दीर्घं आयुः तिरते) दीर्घ आयु की वृद्धि करता है। और जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश (जायमानः) प्रकट होता है (नवः-नवः भवति) सदा नवीन ही होता है वह (अह्नां केतुः उषसाम् अग्रम् एति) दिनों का ज्ञापक होकर उषाओं के अग्र अर्थात् पूर्व में आगे २ ही आता दिखाई देता है। वह (देवेभ्यः) आकाशस्थ ग्रहों को भी अपना अंश देता है, वह (आयन्) आता हुआ (चन्द्रमाः) आह्लाददायक होता है और (दीर्घम् आयुः तिरते) रोगनाशक होने से दीर्घायु करता है। (२) उसी प्रकार (चन्द्रमाः) अति आह्लाददायक आत्मा, बालक रूप से (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (नवः-नवः भवति) जब २ उत्पन्न होता है तो वह नया जीव रूप से ही उत्पन्न होता है। वह (अह्नां केतुः) न नाश होने वाले आत्मतत्वों का ज्ञापक है, वह (उषसाम्) कामना करने वाली मनःप्रवृत्तियों, इच्छाओं और विशेष वासनाओं के (अग्रम्) उदयकाल से भी पूर्व (एति) देह में प्राप्त होता है, वह देह में (देवेभ्यः) नाना शक्तियों के चमकाने और अनेक विषयों की कामना करने वाले चक्षुः, नाक, कान, रसना त्वचा और चित्त आदि देवों, इन्द्रियों को (भागं) सेवन करने योग्य अपने ज्ञान, बल

आदि का अंश (वि दधाति) प्रदान करता है, और वह (चन्द्रमाः) सबका आह्लादक होकर देह की (दीर्घम् आयुः प्र तिरते) दीर्घ आयु बढ़ाता है। यदि आत्मा नाम स्थिर तत्त्व देह का धारक न हो तो ये इन्द्रियां तो अति स्वल्प काल में थक कर शिथिल एवं मृतवत् होजातीं, फिर मुर्दे के तुल्य पड़े देह में चेतना और पुनः जागृति, बल, शक्ति आदि कौन दे। इस देह का एक दिन-रात जीना भी कठिन है। (२) इसी प्रकार राजा चन्द्रमा है वह प्रजा को प्रसन्न, सुखी, हर्षित करता है। वह नया २ होता है वह (उषसाम्) कामनाओं वाली, अनेक आशाओं से भरी प्रजाओं के बीच अग्रासन पर आता है, विद्वानों और तेजस्वियों को अन्न, वेतन और पदादि प्रदान करता है, और दीर्घायु, राष्ट्र का लम्बा जीवन बनाता है। उसको चिरस्थायी करता है, अन्यथा बलवान् निर्बलों को खा जावें और सब सेतु, मर्यादाएं भंग हो जावें। इसी प्रकार विवाह योग्य वर वधू और गुरु तथा विद्या के गर्भ में नव शिष्य के पक्ष में भी जानना चाहिये पूर्व प्रसंग से यहां विवाह का प्रकरण है इसलिये उसका भी व्याख्यान करते हैं। (४) (जायमानः) प्रकट होता हुआ (चन्द्रमाः) सबको आह्लाद देने वाला वर (नवः-नवः भवति) नये ही के तुल्य अति स्तुत्य होता है। वह (उषसाम्) कामनाओं, अनेक आशाओं अर्थात् कन्या की अनेक इच्छाओं का (अग्रम् एति) लक्ष्य होता है, वह (देवेभ्यः) उत्तम देवों को यज्ञादि से और दानादि से अनेक विद्वानों को (भागं) हवि, अन्न, द्रव्यादि का अंश देता है, और (दीर्घम् आयुः प्रतिरते) जीवन को दीर्घ बढ़ाता है, अर्थात् गृहस्थ करके वंश को चिरस्थायी करता है।

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥२३॥

भा०—हे (सूर्ये) उत्तम वीर्य और उत्तम वचन वाली, उत्तम कान्तियुक्त, प्रभात वेला के समान उत्तम दीप्ति वाली वधू! तू (सु-किं

शुकम्) उत्तम दीप्तियुक्त, उत्तम पलाश के वृक्ष से बने वा उत्तम पलाश के पुष्प के समान सुन्दर सजे और (शल्मलिं) मलरहित, पाप आदि वासनाओं से शून्य, निर्दोष, वा शल्मलि [सेमर] वृक्ष के बने (विश्व-रूपम्) नाना प्रकार के वा (हिरण्य-वर्णं) हित-रमणीय वर्ण के, वा सुवर्ण की कान्ति वाले, (सु-वृतम्) सुख से चलने वाले, उत्तम व्यवहारवान्, (सु-चक्रम्) उत्तम चक्रों से युक्त, शुभ अंगों वाले, रथ के समान गृहस्थ पर (आरोह) चढ़, उसमें विराज । और (पत्ये वहतुं) पति के साथ विवाह (कृणुष्व) कर और विवाह सम्बन्ध को (अमृतस्य) न नाश होने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त (स्योनं लोकम्) जल के समान शान्तिदायक सुखप्रद लोक (कृणुष्व) बना । (२) पक्षान्तर में उषा सूर्या का रथ स्वयं सूर्य मण्डल का वह प्रभावितान है जो सूर्योदय के पूर्व प्रकट होता है वह भी (सु-किंशुकं) उत्तम खिले शोभायुक्त पलाश वृक्ष के समान अति प्रकाशयुक्त वा (शल्मलिम्) शाल्मलि [सेमर] के पीले-लाल फूल से खिले वृक्ष के तुल्य सुन्दर, वा (शल्मलिम्) मल के आवरण, अन्धकार से रहित, (विश्व-रूपम्) विविध प्रकाशमय रूप, कान्ति से युक्त, उज्ज्वल, (हिरण्य-वर्णं) हित रमणीय वर्ण वाले, (सु-वृतम्) शोभा से आवृत, (सु-चक्रम्) उत्तम कान्ति से युक्त होता है । वह अपने (पत्ये) पालक सूर्य के (वहतुं) प्राप्त होने योग्य लोक को (स्योनं) सुखकारक और (अमृतस्य लोकं) प्रातःकालिक ओस रूप जल से युक्त कर देती है ।

(३) गृहस्थ का रथ स्वतः पति को प्राप्त करने रूप है । अतः पति ही की ओर ये सब विशेषण हैं । पति के लिये स्त्री और स्त्री के लिये पति ही गृहस्थ रूप रथ हैं । इसलिये ये विशेषण पति के गुण बतलाते हैं । पति (सु-किंशुकम्) उत्तम प्रकाश युक्त, तेजस्वी और ज्ञान-दीप्ति से भी युक्त हो । (शल्मलिम्) ज्ञान और उपदेशों से उसका मल नष्ट हो, अविद्या-अज्ञान और दुराचार से रहित एवं स्नान अभ्यंगादि से स्वच्छ हो । (विश्व-रूपम्) सब को

रुचिकर, पत्नी के लिये तो वह विश्व, समस्त जगत् के समान सर्वस्व हो, वह (हिरण्य-वर्णम्) सुवर्ण के तुल्य सुन्दर और हितकारा हो, वही उसका परम धन हो, वह (सु-वृतम्) उत्तम आचारवान्, सुख से विधि पूर्वक उत्तम रीति से वरण किया हो, वह (सु-चक्रम्) शुभ कान्तिमान् उत्तम अंगों वाला, अन्धा काणा पंगु आदि दोषों से रहित हो, उसको कन्या, (आरोह) प्राप्त हो, उसका आश्रय लेकर जगत् के जीवन मार्ग में मन करे। वह (वहतुं) अपने जीवन के रथ को (अमृतस्य) अमृत, अर्थात् पुत्र का (लोकं स्योनं कृणुष्व) सुखकारी स्थान बनावे। अर्थात् इसी के आश्रय वह उत्तम सन्तान को उत्पन्न करे। वा अमृत, जल अन्नादि से पूर्ण गृह को सुखदायक बनावे। यह लोक पति का लोक है।

उदी॑र्ष्वातः॒ पति॑वती॒ ह्ये॒३॑षा वि॒श्वाव॑सुं॒ नम॑सा गी॒र्भिरी॑ळे।
अ॒न्यामि॑च्छ पितृ॒षदं॒ व्य॑क्तां॒ स ते॑ भा॒गो ज॒नुषा॒ तस्य॑ विद्धि ॥२१॥

भा०—पति के प्रति (विश्व-वसुं) समस्त विश्व में व्यापक, समस्त विश्व रूप धन के स्वामी, समस्त जगत् के आच्छादक और सब को बसाने वाले प्रभु को हम (नमसा) नमस्कार सहित (गीर्भिः) वेदवाणियों से (ईडे) स्तुति करूं। हे पुरुष! तू (उद् ईर्ष्व) उठ, खड़ा हो, उत्साह कर (हि) जिससे (एषा) यह कन्या (पति-वती) पति वाली हो। तू इस (अन्याम्) अपने से भिन्न गोत्र की और (अन्यां) अन्य किसी द्वारा गृहादि में न लेजाई गई, (पितृ-सदम्) पिता माता पर ही आश्रित (व्यक्तां) विशेष रूप से अञ्जन, अभ्यंग आदि से सुसज्जित, विविध आभूषणादि से सजी, प्रकट रूप में तेरे आगे स्थित कन्या को (इच्छ) तू चाह। (ते) तेरा (सः भागः) यही उचित रूप से स्वीकार करने अंश योग्य है। तू (तस्य) उस कन्या रूप अंश को (जनुषा) स्वयं उसमें पुत्र रूप से उत्पन्न होने के निमित्त (विद्धि) प्राप्त कर।

'विश्वावसु' यहां कोई विशेष गन्धर्व नहीं है जिसे सायण पतीवती कन्या से पृथक् करके अन्य किसी बालिका कन्या के पास भेजने का संकेत करता है। प्रत्युत या तो 'विश्वावसु' परमेश्वर है अथवा प्रवेश योग्य गृहस्थ ही 'विश्व' है उसमें बसने वाला २४ वर्ष का ब्रह्मचारी वसु है, उत्तम वेद वाणी को धारण करने से वा विवाह काल में गोदान ग्रहण करने से वा गम्या नारी वा गो अर्थात् भूमिवत् पत्नी को धारण करने से वह पति पुरुष ही 'विश्वावसु' है। यह बात अगले मन्त्र में स्पष्ट है।

उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं१ सं जायां पत्या सृज ॥ २२ ॥

भा०—हे (विश्वावसो) प्रवेश योग्य गृहस्थ रूप वसु के स्वामिन्! वा उसमें बसने वाले वर! (त्वा नमसा) तुझे हम बड़े आदर विनय से (ईडामहे) पूजा, सत्कार करते हैं। (अतः उद् ईर्ष्व) इसलिये उठ, तैयार हो। तू (अन्याम्) अपने से भिन्न गोत्र की (प्रफर्व्यम्) खूब पुष्ट अंगों वाली कन्या को (जायाम् इच्छ) अपनी पत्नी रूप से चाह। और उसे (पत्या संसृज) पति रूप से प्राप्त हो, उससे सम्बन्ध जोड़। उसका स्वयं पालक पति होकर उसे पति से युक्त कर।

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः॥२३॥

भा०—(नः) हमारे (पन्थाः) मार्ग (अनृक्षराः) कांटों से रहित (सन्तु) हों। और (ऋजवः) सरल धर्मयुक्त हों। (येभिः) जिनसे (सखायः) मित्र, स्नेही, समान वाणी और ज्ञानदृष्टि सहित विद्वान् जन (वरेयम्) श्रेष्ठ पुरुषों से प्रार्थित प्रभु वा श्रेष्ठ फल को यन्ति प्राप्त होते हैं। (नः) हमें (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी और (भगः) सुखदायी, ऐश्वर्यवान् उन मार्गों से (सं निनियात्)

उत्तम प्रकार से ले जावे। हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (नः) हमारा (जाः-पत्यम्) पति-पत्नी भाव (सुयमम् अस्तु) उत्तम विवाह-बन्धन और सुखदायक शुभ इन्द्रियदमन वा संयम सहित हो।

ऋक्षरः कण्टक उच्यते। वरेयं वरैर्याचितव्यं, वरेण यातव्यं, वरेण्यं अत्र णकारादर्शनम्। श्रेष्ठमिति यावत्।

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि॥ २४॥

भा०—(येन) जिस पाश या प्रेम-बन्धन से (सु-शेवः) सुख-दायक (सविता) उत्पादक पिता, (त्वा अबध्नात्) तुझे बांधे हुए है हे स्त्रि! वधु! मैं (त्वा) तुझे उस (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ पिता के (पाशात्) प्रेममय पाश से (प्र मुञ्चामि) अच्छी प्रकार छुड़ाता हूं। मैं (त्वा) तुझे (ऋतस्य) सत्याचरण, यज्ञ और वेद और (सु-कृतस्य) शुभ कर्माचरण के (योनौ) आश्रय गृह और उत्तम (लोके) लोक, पतिगृह में (पत्या सह) पालक पति के साथ (अरिष्टाम्) कभी पीड़ित न होते हुए रूप में (दधामि) स्थापित करता हूं।

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति॥ २५॥ २४॥

भा०—हे कन्ये! मैं (इतः प्र मुञ्चामि) इस पितृगृह से मुक्त करता हूँ। (न अमुतः) उस दूर स्थित पतिगृह से नहीं, प्रत्युत मैं तुझे (अमुतः) उस पतिगृह से तो (सु-बद्धाम् करम्) खूब सुखपूर्वक बद्ध, दृढ़ प्रेमयुक्त करता हूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे स्वामिन् विवाहित पते! हे (मीढ्वः) वीर्य-सेचन करनेहारे पुरुष! (यथा) जिससे यह वधू (सु-पुत्रा) उत्तम पुत्रवती और (सु-भगा) उत्तम सुखप्रद, ऐश्वर्य और सुख-सौभाग्य-वती (असति) हो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६

भा०—हे कन्ये ! (पूषा) तुझे पोषण करने में समर्थ और प्रजा द्वारा तेरे सौभाग्य की वृद्धि करने वाला पुरुष (त्वा इतः) तुझे इस पितृ-गृह से (हस्त-गृह्य) तेरा हाथ ग्रहण कर विवाह में पाणिग्रहण की विधि से तुझसे विवाह करके (त्वा नयतु) तुझे ले जावे । (अश्विना) उत्तम अश्वों या वेगवान् रथ आदि साधनों वाले स्त्री पुरुष वा सेनापति, सेनानायक आदि (त्वा रथेन प्र वहताम्) तुझे रथ से, उत्तम रीति से ले जावें । तू (गृहान् गच्छ) गृहों को पहुंच । (यथा) जिससे तू (गृह-पत्नी असः) गृह की मालिकन वा गृहपति की यज्ञ-संयुक्ता विवाहित पत्नी हो । और तू (गृहान् त्वं वशिनी) गृह के भृत्य, बन्धु आदि जनों को चाहने और वश करने वाली भी (असः) हो । और तू (विदथं) गृह भर को (आ वदासि) अध्यक्षवत् आदर से आज्ञा-वचन कह । अथवा (विद-थम् आ वदासि) ज्ञानयुक्त वचन बोला कर ।

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥

भा०—(इह) इस पतिगृह में वा गृहाश्रम में (प्रजया) प्रजा के सहित (ते) तेरा (प्रियम् समृद्ध्यताम्) प्रिय सुख, और ऐश्वर्य आदि बढ़े । (अस्मिन्) इस गृह में (गार्हपत्याय) गृह के स्वामिभाव के कार्य को भली प्रकार करने के लिये (जागृहि) जाग, सदा सावधान रह ! तू (एना पत्या) इस पति से अपना (तन्वं) शरीर (सं सृजस्व सम्पर्क करा; अन्य किसी परपुरुष से नहीं । अथवा (एना पत्या) इस पति के साथ (तन्वं) प्रजातन्तु को (सं सृजस्व) भली प्रकार उत्पन्न कर । (अध) और तुम दोनों (जिव्री) वृद्धावस्था तक जीर्ण होकर

(विदथम् आ वदाथः) गृह के जनों के प्रति और परस्पर भी आदर से बोलो अथवा तुम दोनों (विदथम् आवदाथः) ज्ञान का उपदेश करो ।

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २८ ॥

भा०—(नील-लोहितम्) नीले धूम वाला लोहित वर्ण का अग्नि-मय यज्ञ (भवति) होता है । तब (कृत्या) करने योग्य (आसक्तिः) परस्पर प्रेमभाव (वि अज्यते) विशेष रूप से प्रकट होता है । उस समय (अस्याः) इस कन्या के (ज्ञातयः) बन्धुवर्ग (एधन्ते) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (पतिः) पति, पुरुष (बन्धेषु) सांसारिक प्रेम और कर्त्तव्य के बन्धनों में (बध्यते) बंध जाता है । (२) अथवा—(नील-लोहितम् भवति) नील रंग मिश्रित रक्त आर्त्तव प्रवृत्त होता है उसके अनन्तर (कृत्या) गृहस्थ के उचित पति-प्रेम कार्य में (आसक्तिः) स्त्री की प्रवृत्ति (व्यज्यते) पति के प्रति प्रकट होनी उचित है । उस समय उसके सम्बन्धी खुश होते हैं । और पति गृहस्थ-धर्मों में बंध जाता है ।

ऋतु होने के अनन्तर ही स्नात होकर कन्या पति का वरण करे, उन्हीं तिथियों में विवाह हो और श्वशुर गृह में ही गर्भाधान हो, ऐसा ऋषि दयानन्द ने लिखा है । (संस्कारविधि विवाहप्रकरण)

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥ २९ ॥

भा०—(शामुल्यं) शरीरस्थ मल के अंश को (परा देहि) दूर कर । (ब्रह्मभ्यः) विद्वान् ब्राह्मणों को (वसु वि भज) धन प्रदान कर । जब कि (एषा) यह कन्या (पद्वती) शुभ चरणों वाली वा सप्तपदी से युक्त, (कृत्या) अंगीकार करने योग्य (जाया) सन्तान उत्पन्न करने वाली पत्नी (भूत्वी) होकर (पतिम्) पति को (आ विशते)

प्राप्त होती है, उसको सर्वात्मना अंगीकार करती है। अथवा—(शामुल्यं) शान्ति को नष्ट करने वाले हार्दिक मल, दुर्भाव और रोगादि को (परा देहि) दूर कर। (ब्रह्मभ्यः) विद्वानों को (वसु वि भज) धन प्रदान कर। और उनसे प्राप्तउनका उत्तम विविध ज्ञान रूप धन (वि भज) विशेष रूप से सेवन कर क्योंकि (एषा) यह स्त्री (पद्-वती) सप्तपदों वाली, मित्र तुल्य होकर (जाया) पत्नी रूप से (कृत्या) हिंसाकारिणी, होकर (पतिम् आ विशते) पति में प्रवेश कर जाती है और विविध रोगों को उत्पन्न कर सकती है। इसलिये विवाहित पुरुष को चाहिये कि स्त्री से मैथुन करने के पूर्व स्त्री के देह में से समस्त प्रकार के विषैले रोगादि कारणों को दूर करे। नहीं तो वह पत्नी ही पति के नाना कष्टों और रोगों का कारण हो सकती है। विशेष कर जब पत्नी ऋतु-धर्म से रजस्वला होती है तब भी रोगकारी अंश रजोरुधिर में होते हैं उस समय पति स्त्री के पास सर्वथा न जावे, उसका उतने दिन परित्याग करे, नहीं तो वह पति को भयंकर रोगों का शिकार बना देती है। पुनः गर्भ स्वच्छ हो जाने पर वह मैथुन-धर्म से पति के पास आवे। विवाहान्तर विधि में कन्या के निमित्त अंग-होम के मन्त्रों में भी इस का संकेत है।

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद्वध्वो॒ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥ ३० ॥ २५ ॥

भा०—रजो धर्म या आर्त्तव के दिनों में स्त्री का (तनूः) शरीर जब (अश्रीरा) कान्तिरहित, शोभारहित विकृत, पीड़ित, रोगार्त्त होता है, तब वह (रुशती) दुःख कष्ट से पीड़ा देने वाली होती है। वह यदि (अमुया पापया) उस दूर रखने योग्य वधू से संग करे वा (वध्वः वाससा) वधू के वस्त्र, वा सहवास, वा आच्छादन से (स्वम् अंगम् अभि-धित्सते) अपने अंग को बांधना चाहे तो पति का (तनू) शरीर वा सन्तान भी (अश्रीरा भवति) श्रीरहित, रोगादि से दूषित हो जाता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ ३१ ॥

भा०—(ये यक्ष्माः) जो रोग या व्याधियां (वध्वः) वधू के (चन्द्रम्) आल्हादकारी (वहतुम्) शरीर को (जनाद् अनु यन्ति) उत्पादक माता पिता से क्रमशः प्राप्त होती हैं (यज्ञिया देवाः) पूज्य विद्वान् पुरुष (तान्) रोगों के उन कारणों को (पुनः नयन्तु) वार २ दूर करें (यतः आगताः) जिनसे वे व्याधियां पुनः २ आजाती हैं ।

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ३२ ॥

भा०—(ये) जो (दम्पती आ सीदन्ति) पति-पत्नी दोनों को प्राप्त होते हैं (वे परिपन्थिनः) शत्रु रूप होकर (मा विदन्) न प्राप्त हों । वे (सुगेभिः) सुख साधनों से (दुर्गम् अति इताम्) दुःख से जाने या पार करने योग्य संकट को अतिक्रमण करे, और (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु गण दूर भाग जावें । या जो दुष्ट शत्रु लुटेरे लोग आते हों तो ऐसा उपाय करें कि वे चोर आदि (दम्पती मा विदन्) उन वर वधू को न प्राप्त करें, न जान पावें ।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन ॥ ३३ ॥

भा०—(इयं वधूः सुमङ्गलीः) यह वधू मंगल चिन्हों से युक्त है । (सम् आ इत) आप लोग आइये । (अस्यै) इसको (सौभाग्यं) उत्तम सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद (दत्वाय) देकर (अथ) अनन्तर (अस्तं) गृह को (वि परेतन) जाइयेगा ।

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥ ३४ ॥

भा०—(एतत् तृष्टम्) यह वधू का देह दाहजनक, विष के समान प्यास लगाने वाला, (एतत् कटुकम्) यह देह कटु, अनभिलषित परिणाम उत्पन्न करने वाला, वह (अपाष्ठवत्) दूर रखने योग्य, (विषवत्) विष के तुल्य घातक भी होता है, तब (एतत् अत्तवे न भवति) वह भोगने योग्य नहीं होता। (यः) जो (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान् (सूर्यां विद्यात्) सूर्या, सावित्री, पुत्रादि उत्पन्न करने वाली स्त्री के सम्बन्ध में भली प्रकार ज्ञान रखता है (सः इत्) वह ही (वाधूयम्) वधू के सम्बन्ध में उत्तम समाधान, उसको उपयोगी बनाने का पुरस्कार आदि प्राप्त करने योग्य है।

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम्।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥ ३५॥ २६ ॥

भा०—(आ-शसनं) आशसन, (वि-शसनं) विशसन और (अधि-विकर्तनम्)अधिविकर्त्तन ये तीनों (सूर्यायाः रूपाणि) सूर्या कन्या के रूप होते हैं (तानि) उनको (ब्रह्मा तु) वेदज्ञ विद्वान् ही (शुन्धति) शुद्ध करता है (१) आशसन—अर्थात् कुछ ढिठाई (२) विशसन, विशेष ढिठाई और अधिविकर्त्तन, बढ़कर दिल काटने वाले वचन आदि कहना। ये तीन दोष कन्याओं में होते हैं उनको विद्वान् पुरुष शिष्टोपदेश से दूर करे। अथवा उसके शरीर के ये तीन दोष सम्भव हैं। (१) आशसन, रजोरक्त का अल्प होना, (२) 'विशसन' विपरीत वर्ण का होना, और (३) अधिविकर्त्तन अधिक कट २ कर गिरना। इन तीनों दोषों को विद्यावान् पुरुष ही दूर करें। तभी विवाह करने वाले पुरुष को सुख और उत्तम सन्तान मिल सकती है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥३६॥

भा०—हे वधू! मैं (तव) तेरे (हस्तं) हाथ को (सौभग-त्वाय) सौभाग्य की वृद्धि के लिये (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूँ। (यथा) जिस प्रकार से तू (मया सह) मेरे साथ (जरद्-अष्टिः) वृद्धावस्था भोगने वाली (असः) हो। (भगः) ऐश्वर्यवान्, (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) उत्पादक, सबका अनुज्ञादायक और (पुरं-धिः) देहों का धारक-पोषक आत्मा और (देवाः) विद्वान् पुरुष (गार्हपत्याय) गृहपति के कार्य, गृहस्थ सम्पादन के लिये (त्वा) तुझे (मह्यं अदुः) मेरे लिये प्रदान करते हैं।

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्॥३७॥

भा०—हे (पूषन्) सबको पोषण करने हारे, सबको वंश, प्रजा आदि से बढ़ाने हारे! (यस्यां) जिस भूमि रूप स्त्री में (मनुष्याः) मनन-शील विद्वान् जन (बीजं वपन्ति) बीज का वपन करते हैं (या) जो (नः) हम पुरुषों की (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) दोनों जांघों का (विश्रयाते) आश्रय लेती और हम पुरुष लोग (यस्याम्) जिसमें (शेपम्) प्रजनन अंग को (प्रहराम) प्रवेश करावें। (शिव-तमा) उस अतिकल्याण रूप गुणों वाली (तां) उस स्त्री को (आ ईरयस्व) तू प्रेरित कर। इन शब्दों में वेद ने पति, पत्नी के गृहस्थ के प्रजोत्पादन कार्य का स्पष्ट वर्णन कर दिया है।

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ ३८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! (तुभ्यम्) तेरे (अग्रे) आगे, तेरी समक्षता में (वहतुना सह) लोग दहेज आदि सहित (सूर्याम्) पुत्रोत्पादन समर्थ कन्या को (परि अवहन्) परिक्रमण द्वारा वहन, धारण करते, तेरी साक्षिता में विवाह करते हैं। (पुनः) और

तू (पतिभ्यः) पालक जनों को (प्रजया सह) उत्तम सन्तान सहित (जायां दाः) स्त्री प्रदान कर, अर्थात् विवाहित पुरुष को उत्तम सन्तान से सम्पन्न कर।

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ३९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि गुण से युक्त उष्णता वाला धर्म ही (आयुषा वर्चसा सह) दीर्घ आयु और तेज, कान्ति आदि सहित (पत्नीम्) पत्नी को (पुनः अदात्) फिर दे। (अस्याः यः पतिः) इसका जो पालक पति हो वह (दीर्घायुः) दीर्घायु होकर (शरदः शतं जीवाति) सौ वर्ष तक जीवे।

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ४० ॥ २७ ॥

भा०—(सोमः) प्रजा को उत्पादन करने का सामर्थ्य (प्रथमः) सब से प्रथम (विविदे) कन्या को प्राप्त हो, (उत्तरः) उसके अनन्तर (गन्धर्वः) गन्ध से युक्त अंश, रजो भाव (विविदे) प्राप्त होता है। हे कन्ये (तृतीयः) तीसरे नम्बर पर (ते पतिः अग्निः) तेरा पालक पति अग्नि के तुल्य तेजस्वी, वा उष्णता-प्रधान तत्व तेरा पालक है। (तुरीयः) चौथा (ते पतिः) तेरा पालक (मनुष्यजाः) मनुष्य से उत्पन्न पालक पुरुष है। कन्या में प्रथम उत्पादक शक्ति, द्वितीय गन्ध-विशेष, फिर उष्णतायुक्त रजोभाव प्राप्त होता है, अनन्तर मनुष्य, विवाह करके उसको पालक पति रूप से प्राप्त होता है।

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये।
रयिं च पुत्राँश्चादाद्ग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४१ ॥

भा०—(सोमः) प्रजा को उत्पन्न करने वाला सामर्थ्य कन्या को (गन्धर्वाय) गन्ध-दायक सामर्थ्य के वश (ददत्) प्रदान करता है। (गन्धर्वः) गन्धदायक सामर्थ्य (अग्नये ददत्) उष्ण रजोभाव के अधीन दे देता है। (अथ-उ) अनन्तर (इमाम्) इस कन्या को. (अग्निः) यह रजोभाव (मह्यम् अदात्) मुझे देता है और अनन्तर वही ऋतुधर्म से होना ही मुझे (रयिं च पुत्रान् च अदात्) ऐश्वर्य और अनेक पुत्र भी प्रदान करता है।

इहैव स्तं मा वि यौष्टुं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥ ४२ ॥

भा०—हे वरवधू जनो! तुम दोनों (इह एव स्तम्) यहां ही रहो। (मा वि यौष्टम्) कभी वियुक्त मत होओ। (विश्वम् आयुः) समस्त आयु को (वि अश्नुतम्) विशेष रूप से प्राप्त करो। और (गृहे) गृह में (पुत्रैः नप्तृभिः) पुत्रों और नातियों के साथ (मोदमानौ) खूब प्रसन्न और हर्षित होते हुए और (क्रीडन्तौ) उनके साथ खेलते और आनन्द-विनोद करते हुए (स्तं) रहो।

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा पालन करने वाला समर्थ पुरुष (नः) हमारे में से (प्रजाम् आ जनयतु) उत्तम सन्तान उत्पन्न करे। (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता पुरुष (नः प्रजाम्) हमारी प्रजा को (आजरसाय) वृद्धावस्था पर्यन्त सम(अनक्तु) जीवन की रक्षा करे। हे स्त्री! तू (अदुर्मङ्गली) मंगल या शुभ लक्षणों से विपरीत अशुभ लक्षणों से रहित होकर (पति-लोकम् आ विश) पतिलोक, पति के आत्मा, वा गृह में, वा पति के पिता-माता, भाई-बहिन, चाचा-ताऊ आदि सम्बन्धी जनों के बीच में प्रवेश कर।

तू (नः) हमारे (द्वि-पदे) दोपायों, भृत्यादि बन्धु वर्गों के लिये (शम् भव) शान्तिकारक हो और तू (नः चतुः-पदे शम् भव) हमारे चौपायों, गौ, अश्व आदि पशुओं के लिये भी शान्तिकारक हो ।

अघो॑रचक्षु॒रप॑तिघ्न्येधि शि॒वा प॒शुभ्यः॑ सु॒मनाः॑ सु॒वर्चाः॑ ।
वी॒र॒सूर्दे॒वका॑मा स्यो॒ना शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥ ४४ ॥

भा०—हे स्त्रि ! तू (अ-घोरचक्षुः) घोर अर्थात् क्रूरता से रहित चक्षु वाले सौम्य स्नेहमय नयनों वाली, सौम्यदृष्टि और (अपति-घ्नी) पति का नाश करने वा पति को दण्डित और पीड़ित एवं दुःखदायी न होकर (एधि) रह । तू (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याणकारिणी, (सु-मनाः) शुभ चित्त वाली, (सु-वर्चाः) उत्तम तेजस्विनी, (वीर-सूः) उत्तम पुत्र को उत्पन्न करने वाली, (देव-कामा) विद्वानों को चा अपने कान्त पति को सदा चाहने वाली, (स्योना) सुखकारिणी (एधि) हो । तू (नः द्विपदे शम् भव) हमारे दोपाये भृत्यादि के लिये और (नः चतुष्पदे शम् भव) हमारे चौपायों के लिये भी शान्तिकारक हो ।

इ॒मां त्वमि॑न्द्र मीढ्वः सुपु॒त्रां सु॒भगां॑ कृणु ।
दशा॑स्यां पु॒त्राना धे॑हि॒ पति॑मेकाद॒शं कृ॑धि ॥ ४५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे ! (त्वम्) तू (इमां) इसको (सु-भगां) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (सु-पुत्रां) उत्तम पुत्रों की माता (कृणु) कर । (दश पुत्रान् आ धेहि) दस पुत्रों का आधान कर । और तू (पतिम्) पति रूप अपने आप को (एकादशं कृधि) पुत्रों के बीच ग्यारहवां बना ।

स॒म्राज्ञी॒ श्वशु॑रे भव स॒म्राज्ञी॑ श्व॒श्र्वां भ॑व ।
नना॑न्दरि स॒म्राज्ञी॑ भव स॒म्राज्ञी॒ अधि॑ दे॒वृषु॑ ॥ ४६ ॥

भा०—हे स्त्रि ! तू (श्वशुरे सम्राज्ञी अधि भव) श्वशुर के अधीन उत्तम गुणों से सब से अधिक सुशोभित हो । तू (श्वश्र्वां) सास के अधीन रह कर भी (सम्राज्ञी) उत्तम गुणों से कान्तियुक्त, चमकने वाली रानी के सदृश (भव) हो । तू (ननान्दरि सम्राज्ञी भव) ननदों के बीच में उत्तम गुणों से सुशोभित रानी के तुल्य हो । और (देवृषु अधि) देवरों के बीच सब से अधिक दीप्तियुक्त हो ।

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥२८॥३॥

भा०—हे (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान्, ज्ञानी, पूज्य पुरुष (सम् अंजन्तु) एकत्र संगत हों और वे सूर्य की किरणों के तुल्य सब व्यवहारों को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करें । (आपः) जलों के समान आप्तजन(नौ) हम दोनों वर वधू के (हृदयानि) हृदय के समस्त भावों को (सम् अञ्जन्तु) मिलावें, मिला जानें । (मातरिश्वा) प्राण वायु देह, पार्थिव शरीर में गति करने वाला (नौ सं दधातु) हम दोनों को एक साथ मिलावे । (धाता) धारण पोषण करने वाला अन्न (नौ) हम दोनों को (सं दधातु) परस्पर एक साथ जोड़े । (देष्ट्री) उपदेश देने वाली माता के तुल्य वेदवाणी (नौ सं दधातु) हम दोनों को परस्पर एक साथ मिलावे । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः

[८६]

वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च ऋषयः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ११, १३, १४ १८, २३ पंक्तिः । २, ४ पादनिचृत् पंक्तिः । ३, ६, ९, १०, १२,१५, २०—२२ निचृत् पंक्तिः । ४, ८, १६, १७, १९ विराट् पंक्तिः ॥

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

भा०—विद्वान् लोग (सोतोः) उत्पादक परमेश्वर के विषय में (हि) निश्चय (वि असृक्षत) विविध प्रकार से यत्न करते हैं, अथवा अनेक जीवगण (सोतोः) उत्पादक प्रभु तथा उत्पादक प्रकृति तत्व से (हि) निश्चय से (वि असृक्षत) विविध प्रकार से उत्पन्न होते हैं। तो भी वे लोग (इन्द्रं) इस जगत् के धारण करने, प्रकाश करने और उस मूल भूमि, सर्वोत्पादक प्रकृति को व्यापने, विदारण करने वाले प्रभु (देवम्) सर्व-सुखद देव परमेश्वर को (न अमंसत) नहीं जानते। (यत्र) जहां (वृषा कपिः) वृष्टि करने वा जगत् को संचालन करने वाला प्रभु (अमदत्) स्वयं तृप्त और अन्य समस्त जीवों को भी तृप्त करता है, स्वयं पूर्ण रस से युक्त है वह उन (पुष्टेषु) बड़े२ महान् लोकों में भी उनका (अर्यः) स्वामी और (मत्-सखा) मुझ जीव का मित्र है वही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का देने वाला प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट है। अथवा (वृषा-कपिः) वृष्टिकारी प्रभु में सुख का पान करने वाला योगी जिस में स्वयं हर्ष, आनन्द प्राप्त करता है वह प्रभु ही सबका स्वामी सर्वोत्कृष्ट है। वृषा-कपिः, का आध्यात्मिक और समाज और राष्ट्र-पक्ष में स्पष्टीकरण देखो अथर्ववेद आलोक भाष्य (कां० २० । सू० १२६ । १ ॥)

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू तो (परा हि धावसि) परे ही परे, दूर ही दूर होता जा रहा है, यह बात (वृषाकपेः) उस बलवान् सर्वसुखवर्षी प्रभु को प्राप्त करने के लिये यत्न करने वाले और उससे भय मानने वाले उपासक आत्मा के लिये (अति व्यथिः) बहुत ही

न्यथा कारी वा कष्टदायक बात है। हे जीव (विश्वस्मात्) समस्त संसार से (इन्द्रः) वह परमैश्वर्यवान्, सर्वद्रष्ट, तेजोमय, सर्वदुःख-भंजक प्रभु ही (उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट है। (सोम-पीतये) स्व अर्थात् अपनी आत्मा के द्वारा परम रस पान के लिये (अन्यत्र) उस प्रभु से अतिरिक्त कहीं और प्रकृति आदि पदार्थ में (नो अह प्र विन्दसे) तुझे निश्चय ही अवसर प्राप्त न होगा।

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर! प्रभो! (अयं) यह (वृषा-कपिः) बलवान् एवं सुख के वर्षा करने वाले परम प्रभु में सुख-रसों का पान करने हारा साधक (हरितः) प्रभु के गुणों से आकृष्ट और (मृगः) स्वतः साधनादि द्वारा शुद्धचित्त और उस को खोजने वाला, होकर (त्वाम्) तुझ को लक्ष्य कर (किं चकार) क्या करता है, कौन सी साधना करता है जिससे प्रसन्न होकर (यस्मै) जिसे तू (अर्यः नु वा) स्वामी के समान (पुष्टिमद् वसु) पोषण और वृद्धि से युक्त ऐश्वर्य (इरस्यसि इव) देता ही जाता है। उसके प्रति भारा उदार होता चला जाता और उसको अनेक ऐश्वर्य देता है। (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) वह इन्द्र परमेश्वर ही सब से उत्कृष्ट है जिस की महिमा अपार है।

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! इस विश्व को बनाने वाले व्यापक प्रभो! (इमं यं) इस जिस (वृषा-कपिम्) सर्व सुखवर्षी प्रभु की ओर जाने वाले, आनन्द-रसपायी आत्मा जीव की तू (अभि रक्षसि) सब प्रकार से रक्षा करता है, (अस्य कर्णे) इसके कर्म वा इन्द्रिय गण पर (वराहयुः श्वा) उत्तम वचन, स्वाहादिवत् अन्न आहुति को चाहने वाला,

आशुगामी, भूख आदि से युक्त देह वा लोभ आदि उसको (जभिपत्) पकड़ लेता है। और वह जीव पुनः संसारी हो जाता है। परन्तु (इन्द्रः) वह इन्द्र परमेश्वर (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से ऊंचा और सब प्रकार के संकटों से पार उतारने वाला है।

प्रि॒या त॒ष्टानि॑ मे क॒पिर्व्य॑क्ता॒ व्य॑दूदुषत् ।
शिरो॒ न्व॑स्य राविषं॒ न सु॒गं दु॒ष्कृते॑ भुवं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥५॥१॥

भा०—(कपिः) सुखानन्द का पान करने वाला, साधक पुरुष (मे) मुझ प्रकृति के (व्यक्ता) नाना व्यक्त रूप में (तष्टा) बनाये गये अनेक (प्रिया) प्रिय रूपों को वह (वि अदूदुषत्) विविध प्रकार से दूषित करता है, वह उन प्रिय काम्य विषयों में अनेक दोष देखता है, मैं प्रकृति (अस्य) इसके (शिरः) अर्थात् उत्तमांग भाग को (नु) अवश्य ही (राविषम्) उपदेशप्रद ज्ञान से उपदेश करती हूँ। मैं (दुष्कृते) दुष्टाचारी पुरुष के लिये (सुगम् न भूवम्) सुखकारी नहीं होती। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वह परमेश्वर ही सब से ऊंचा और महान् है। इति प्रथमो वर्गः ॥

न मत्स्त्री सु॑भ॒सत्त॑रा॒ न सु॒याशु॑तरा भुवत् ।
न मत्प्रति॑च्यवीयसी॒ न सक्थ्युद्य॑मीयसी॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥६॥

भा०—(मत् स्त्री) मुझ से अधिक कोई स्त्री (सुभसत् तरा न) उत्तम दीप्ति, कान्ति और भाग्यशालिनी नहीं है। और (सु-याशु-तरा न भुवत्) मुझ से अधिक कोई स्त्री सुखपूर्वक पति का संग करने वाली नहीं। (न मत् प्रति-च्यवीयसी) मुझ से बढ़ कर दूसरी स्त्री पति के पास जाने वाली भी नहीं है, और (न सक्थि उद्यमीयसी) न मुझ से अधिक दूसरी जंघा आदि उठाने वाली स्त्री के समान (सक्थि) आसक्ति वा प्रेम पूर्व उद्योग करने वाली दूसरी कोई है। वह प्रकृति ही सब से

अधिक ऐश्वर्ययुक्त, परमेश्वर रूप पति से सुसंगत, परमेश्वर को अपने अंग२, अणु २ में व्यापने रमाने वाली, अपनी सक्थि अर्थात् समवाय शक्ति से (उद्यमीयसी) उत्तम रीति से परमेश्वरी शक्ति को नियन्त्रण और धारण करने वाली है। और उसका पालक (इन्द्रः) घोर अन्धकार को विदारण करने वाला, प्रभु परमेश्वर ही (विश्वस्मात् उत्तरः) समस्त संसार से उत्कृष्ट है। ये ही गुण गृहस्थ धारण करने वाली स्त्री में भी होने चाहियें। वह उत्तम अंगों वाली, पति के साथ सुख से संग करनेहारी, उसे प्रत्येक बात में सहाय देने वाली और उत्तम रीति से बीज ग्रहण करनेहारी हो और उसकी दृष्टि में उसका पति इन्द्र ही समस्त संसार से पूज्य हो।

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति। भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

भा०—(उवे) हे (अम्ब) मातः! जगत् की जननी! (अङ्ग सुलाभिके) हे सुखपूर्वक अनेक लाभ, ऐश्वर्य प्राप्ति करने वाली वा सुख से जन्म प्राप्त कराने वाली जन्मदात्रि! (यथा इव) जिस प्रकार भी होना होगा उसी प्रकार (मे भसत्) मेरा प्रजनन अंग (मे सक्थि) मेरी जंघा (मे शिरः) मेरा शिर (वि-इव हृष्यति) विशेष २ रूप से पुष्ट होते हैं। मुझ जीव के देह के इन सब नाना अंगों की रचना कौन करता है। यह देह रचना का करना मेरे वश की बात नहीं, माता प्रकृति जड़ होने से वह भी उत्पन्न नहीं कर सकती, तब स्पष्ट है कि (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) सब से उत्कृष्ट वह परमैश्वर्यवान् है जो 'इन्द्र' अर्थात् इस जड़ प्रकृति को गति देता है।

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

भा०—हे (सु-बाहो) उत्तम बाहु वाली स्त्री के तुल्य (सुबाहो) उत्तम रीति से मुमुक्षु जीव को बाधने वाली, हे (स्वङ्गुरे) उत्तम अंगुलियों वाली स्त्री के तुल्य (स्वङ्गुरे) उत्तम कान्तियुक्त अंगों वाली ! हे (पृथु-स्तो) विशाल केश वाली स्त्री के तुल्य बड़े विस्तार वाली ! हे (पृथु-जाघने) विशाल नितम्ब वाली स्त्री के सदृश विशाल व्यापक रूप वाली । हे (शूर-पत्नि) शूर वीर पुरुष को पति मानने वाली स्त्री के तुल्य सब दुष्टों को ताड़न करने वाले सर्वपालक प्रभु को अपना मालिक स्वीकार करने वाली ! (त्वम्) तू (नः) हमारे (वृषा-कपिम्) मेघवत् सुख की वर्षा वा आत्मा के सुख को पान करने और बलवान् होकर सब प्राकृत बाधाओं को कंपित करने वाले अवधूतपाप्मा वाले साधक को (किम्) क्यों (अभि (अमीषि) पीड़ित करती है । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सत्य तत्त्व का साक्षात् करने वाला आत्मा ही (विश्वस्मात्) समस्त संसार वा प्राकृतिक जगत् से (उत्-तरः) उत्कृष्ट है ।

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

भा०—(अयं शरारुः) यह सब विघ्न-बाधाओं को नाश करने वाला आत्मा (माम्) मुझ प्रकृति को (अवीराम् इव) विशेष ईरण अर्थात् प्रेरक शक्ति, चेतना से रहित जड़ ही (अभि मन्यते) मानता है । यह बात ठीक है कि मैं प्रकृति जड़ ही हूं स्वयं प्रेरक नहीं हूं तो भी (अहं (वीरिणी अस्मि) मैं अपने को प्रेरणा देने वाले अन्य कर्त्ता वाली, वीर पुरुष को वरने वाली स्त्री के तुल्य हूँ । मैं (इन्द्र-पत्नी) उस महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को पति, विश्वपालक रूप से धारण करती हूँ । और (मरुत्-सखा) मैं विश्व को सञ्चालन करने वाले, वायुवत् शक्तिशाली अनेक बलों को बन्धन से युक्त करने वाली, शक्ति सम्पन्न हूं । और वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सर्वस्मात् उत्तरः) सब से वा मरणधर्मा

जीवों की सखावत् उत्कृष्ट, सब को उत्तम रीति से तारने वाला है। (२) इसी प्रकार घातक दुष्ट पुरुष जो प्रजा का नाश करे डाकू, वा कुस्वामी आक्रामक 'शरारु' है। वह प्रजा को अवीरा; वीर पुरुष से रहित, अरक्षित जानकर प्रजा को पीड़ित करता है परन्तु उसे जानना चाहिये कि प्रजा के बीच वीर पुरुष ही उस प्रजा के वीर पुत्रों, पालकों के तुल्य हैं। इन्द्र राजा वा बलाध्यक्ष, धनाध्यक्ष लोग उस प्रजा के स्वामी होते हैं। वह राजा वा सेनापति हो सब से उत्कृष्ट है जो प्रजा को संकट से पार करे। (३) इसी प्रकार दुष्ट पुरुष स्त्री को अवीर, पुत्र वा पति से रहित जान पीड़ित करते हैं। इसलिये स्त्री को चाहिये कि वह सदा अपने पुत्र वा पति की रक्षा प्राप्त करे। वह वीर पुरुष की पत्नी हो, जो सब से उत्कृष्ट हो।

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१०॥

भा०—(पुरा) पूर्वकल्प में (नारी) समस्त विश्व के नायक परमेश्वर के अधीन रहने वाली, प्रकृति (सं-होत्रं) सम्यक् प्रकार से प्रदान किये परमेश्वरीय बीज अर्थात् बलशक्तिमय प्रेरण को (अव गच्छति) प्राप्त करती है। (वा) और (समनं अव गच्छति) संसर्ग को प्राप्त करती है। इस प्रकार से (इन्द्रपत्नी) ऐश्वर्यवान् प्रभु रूप पति वाली, (वीरिणी) विविध प्रेरक शक्ति से सम्पन्न होकर (ऋतस्य वेधाः) तेजोमय तत्व वा जगत् के मूलकारण सत् तत्व को (वेधाः) धारण करने वाली और उसको व्यक्त जगत् रूप में उत्पन्न करने वाली होकर (महीयते) सब से उत्कृष्ट होती है। (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु ही सब से उत्कृष्ट है। (२) मनुष्य समाज में नारी (सं-होत्रं समनम्) यज्ञ और संग्राम में भी पुरुष के साथ जावे, तभी वह (इन्द्रपत्नी) वीर स्वामी की स्त्री और (वीरिणी) वीर पुत्रों की माता,

और (ऋतस्य वेधाः) सत्य प्रतिज्ञा न्यायाचरण, का पालन करने वाली, या (ऋतस्य) पति से प्राप्त वीर्य रूप तेज को पुत्रवत् निर्माण करने वाली माता होकर (महीयते) सर्वोत्तम पूजा वा आदर को प्राप्त करती है।

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥११॥

भा०—(आसु नारिषु) इन नारियों, अर्थात् जगत् प्रवर्त्तक पुरुष की समस्त शक्तियों में से (अहम्) मैं (इन्द्राणीम्) इन्द्र, सर्वैश्वर्यवान्, तेजोमय प्रभु की सर्वेश्वरी, तेजोमय शक्ति को ही (सु-भगाम् अश्रवम्) सब से अधिक उत्तम ऐश्वर्य, सुखादि से युक्त सुनता हूं। (अपरं चन) और (अस्याः पतिः) इसका पालक पुरुष, (जरसा) सब पदार्थों को जीर्ण कर देने वाले काल से (नहि मरते) नाश को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि (इन्द्रः) इन्द्र, वह सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से अधिक उत्तम है। (२) इसी प्रकार स्त्री द्वारा वरण किया पति 'इन्द्र' है, उसकी स्त्री 'इन्द्राणी' है। वह नारियों में सबसे श्रेष्ठ गुणों वाली सुनी जाय। उसका पति वृद्धता से पीड़ित न हो अर्थात् युवा ही हो।

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१२॥

भा०—हे (इन्द्राणि) इन्द्र के अधीन प्रकृति! (अहम्) मैं प्रभु परमेश्वर (सख्युः वृषाकपेः ऋते) मित्र के समान वृषाकपि जीवात्मा के विना (न ररण) जगत् को व्यक्त नहीं करता। (यस्य इदं) जिसका यह (अप्यं हविः) 'अपः' अर्थात् सलिल वा रुधिरमय, वा सूक्ष्म लिङ्ग-देह रूप साधन (प्रियम्) अति प्रिय है और जो (देवेषु गच्छति) सूक्ष्म तेजोमय रश्मियों के आश्रय ही (गच्छति) गमन करता है। (इन्द्रः विश्वस्मात्

उत्तरः) मैं सर्वैश्वर्यवान् प्रभु सब से उत्तम हूँ। (२) अथवा जीव प्रकृति के प्रति कहता है—हे (इन्द्राणि) ऐश्वर्यवति ! मैं (वृषाकपेः) समस्त सुखों की वृष्टि करने वाले और समस्त विश्व को चलाने वाले (सख्युः) परम सखा प्रभु के (ऋते) विना (न ररण) सुख शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। वह प्रभु (यस्य इदम् अप्यं हविः) 'आपः'—सूक्ष्म प्राण-शक्ति रूप अन्न वा शक्तिदायक तत्त्व (प्रियम्) सबको तृप्तिदायक होकर (देवेषु गच्छति) जीवों को प्राप्त होता है। वह प्रभु ही सब से उत्कृष्ट है। अधिभूत पक्ष में—वृषाकपि मेघ, इन्द्राणी पृथिवी, सखा इन्द्र सूर्य, जलमय हवि, मेघ का जल, और प्रिय हवि उससे उत्पन्न सर्वतर्पक अन्न।

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१३॥

भा०—हे (वृषाकपायि) समस्त सुखों को मेघ के तुल्य वर्षण करने वाले प्रभु की अपार शक्ति ! हे (रेवति) अनेक ऐश्वर्यों की स्वामिनि ! हे (सु-पुत्रे) उत्तम पुत्रों, जीवों वाली ! हे (सु-स्नुषे) उत्तम सुखपूर्वक विराजने वाली, सुखदायिनि ! (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (उक्षणः) सेचन करने वाले मेघ से उत्पन्न अथवा (उक्षणः) जगत् को धारण करने वाले सूर्य आदि लोकों को (प्रियम्) प्रीतिकारक (काचित्-करम्) अनेक सुखों के देने वाले (ते हविः) ते उत्तम अन्न के सदृश ही इस जगत् को (घसत्) खाजाता है, इसको प्रलय काल में लील लेता है। वही ऐश्वर्य-वान् प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) देह में प्रवेश करने वाले आत्मा से कहीं उत्कृष्ट शक्तिशाली है।

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१४॥

भा०—(मे) मेरे (पञ्चदश उक्ष्णः) १५ बलयुक्त, शरीर के धारक

प्राणों को अथवा (उक्ष्णः मे पञ्चदश) शरीर को धारण करने वाले मुझ आत्मा के (पञ्चदश) पन्द्रहों प्राणों को और विंशतिम् हाथ और पैर की २० अंगुलियों के समान शरीर के भीतर के २० अंगों को, वा (विंशतिम्) देह में प्रवेशशील आत्मा को विद्वान् लोग (साकं पचन्ति) एक साथ परिपाक, ज्ञान और अभ्यास से दृढ़ करते हैं वा विस्तार से वर्णन करते हैं। (उत) और मैं (पीवः) परिपुष्ट होकर (अद्मि) पुष्टिदायक भोग्य देह और नाना भोगों को वा उन प्राणों का भोग करता हूं। वे समस्त प्राण (मे) मेरे (कुक्षी) दोनों कोखों, पार्श्वों में (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं, समस्त प्राण देह के दायें, बायें दोनों ओर अपने २ स्थान पर अंग-प्रत्यंग में व्यापते हैं। वह (इन्द्रः) अद्भुत शक्तिशाली प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से ऊपर है। उसकी इस देह-रचना का कौशल अविज्ञेय है।

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(तिग्मशृंगः वृषभः न) तीखे सींगों वाला बड़ा सांड जिस प्रकार (यूथेषु अन्तः रोरुवत्) गौओं के बीच गर्जना किया करता है उसी प्रकार वह आत्मा (वृषभः) बलशाली, अन्तःकरण में आनन्द वर्षण करने और चेतना रूप दीप्ति से चमकने वाला भी भीतरी हृदयाकाश में मेघ के समान (यूथेषु अन्तः) प्राणों के समूहों वा अंग-समूह के बीच (रोरुवत्) गर्जता है, केन्द्रस्थ राजा के तुल्य सब पर शासन करता है, वा अन्तर्नाद करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो (ते मन्थः) तेरा ध्यान-निर्मन्थन से प्राप्त परमानन्द रूप रस (यम्) जिसको (भावयुः) भाव, भक्ति करने और तेरी उपासना करने वाला उपासक (सुनोति) उत्पन्न करता है, वह (हृदे शम्) हृदय को अति शान्तिदायक होता है। अतः एव हे मनुष्यो! वह (इन्द्रः) सब जगत् और अन्तःकरण को

प्रकाशित करने वाला महान् आत्मा (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट है ।

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥१६॥

भा०—(सः न ईशे) वह ऐश्वर्यवान् नहीं है (यस्य) जिसका (कपृत्) कपाल, शिर (सक्थ्या अन्तरा) जांघों के बीच पशु के समान अपने से बलशाली के सामने (रम्बते) लटक पड़ता है । (सः इत् ईशे) वह ही सब पर शासन करता है (नि-षेदुषः यस्य) उच्चासन पर विराजे हुए जिसका (रोमशं) लोमों से युक्त मुख (विजृम्भते) विशेष रूप से खिलता है, और अधीनों पर शासन करता है, वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक तेजस्वी, (इन्द्रः) राजा (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट है । अध्यात्म में—(यस्य कपृत्) जिसका आत्म-पालक शक्ति से युक्त वा सुखग्राही अन्तःकरण (सक्थ्योः अन्तरा) समवाय या संघ बना कर विद्यमान भूमि और आकाश वा आसक्तिजनक राग द्वेषादि के बीच (रम्बते) लटक जाता, मुग्ध होजाता है (न सः इत् ईशे) वह समस्त जगत् का स्वामी होकर उसका शासन नहीं कर सकता। प्रत्युत (नि-सेदुषः) नित्य और निरन्तर निगूढ़ रूप से विद्यमान (यस्य) जिसका बनाया (रोमशं) लोम के समान तेजः किरणों वाला विम्ब उसके मुख के तुल्य विजृम्भते) गर्व पूर्वक तमतमाता है । वही (इन्द्रः) सब जगत् का स्वामी (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट है ।

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते। सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ १७॥

भा०—(नि-षेदुषः) नीचे वा उच्चासन पर बैठे हुए (यस्य) जिसका, (रोमशं) लोमों से युक्त जवानी का चेहरा भी (विजम्भते)

केवल जंभाई लेता है, जो आलस्य, निन्द्रा-तन्द्रा में समय व्यतीत करता है, (न सः ईशे) वह कभी शासन नहीं कर सकता। (सः इत् ईशे) वह समस्त जगत् पर शासन करता, सब का स्वामी होता है (यस्य) जिसका (सक्थ्या अन्तरा) सक्थि अर्थात् बाहुओं वा शक्तिशाली, समवाय बनाने वाली दोनों सेनाओं के बीच (क-पृत्) कपाल, उन्नत सिर (रम्बते) अन्यों को दृढ़ आज्ञा देता है, वही (इन्द्रः) सबका स्वामी, शत्रु और दुष्टों का नाशक सेनापति वा राजा (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट और शत्रुओं के ऊपर रह कर उनका नाशक करने वाला होता है। रबिर्भाषार्थः, भ्वादिरात्मनेभाषः। रविर्गत्यर्थो भ्वादिः परस्मैपदी। रम्बते-शब्दयति, भाषते। अथवा—(न सा ईशे) वह भूमि, ईश्वर वा सूर्यवत् स्वतन्त्र नहीं (यस्य रोमशं) जिसका लोम के समान ओषधि वनस्पति वर्ग (विजृम्भते) नाना प्रकार से उगता है। (सः इत् ईशे) वह ही सूर्य सब पर शासन करता है, (यस्य) जिसके भृत्य के तुल्य (क-पृत्) जल से विश्व को पूर्ण करने और पालने वाला मेघ (सक्थ्या अन्तरा) परस्पर सम्मिलित आकाश और भूमि दोनों के बीच (रंबते) लटकता वा गर्जना करता है। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) जलों को देने और मेघों को विदारण करने वाला वा तेजस्वी सूर्य ही सब से उत्कृष्ट है।

अ॒यमि॑न्द्र वृ॒षाक॑पिः॒ पर॑स्वन्तं ह॒तं वि॑दत्। अ॒सिं सू॒नां नवं॑ च॒रुमादेध॑स्यान॒ आचि॑तं॒ विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः॥ १८॥

भा०—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! हे ऐश्वर्य के देने वाले! प्रभो! (अयम् वृषा-कपिः) यह जीव अपने चित्त में सुखों की वर्षा करने और अपने चित्त से दुष्ट भावों को कंपा देने में समर्थ होकर, अथवा सुखों की वर्षा करने वाले प्रभु को प्राप्त करने वाला, बलवान्, प्राणों को चलाने में समर्थ होकर (परस्वन्तं) अपने भीतर विद्यमान होकर भी 'परः' दूर है प्रभु के प्रति इस भाव को (हतं विदत्) नष्ट हुआ जाने। अथवा (परस्वन्तम्) पर,

श्रेष्ठ जो अपना 'स्व' आत्मा उस पर अधिकार करने वाले अज्ञान और दुःख या देह-बन्धन को (हतं विदत्) नष्ट हुआ जानता है। (आत्) अनन्तर ही वह (असिम्) देह को प्रेरने वाले प्राण को और (सूनाम्) इन्द्रियों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाली बुद्धि-शक्ति को और (नवम्) अतिस्तुत्य नये (चरुम्) सुखवत् भोग्य कर्मफलदायक व्यापक आत्मा को और (एधस्य) दीप्तिमय, (आचितम्) सर्वत्र व्याप्त (अनः) सबके प्राणों के प्राण प्रभु को भी (विदत्) प्राप्त करता है। वह (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) ऐश्वर्यवान् आत्मा सबसे उत्कृष्ट है।

अ॒यमे॑मि वि॒चाक॑शद्विचि॒न्वन्दास॒मार्य॑म्। पिबा॑मि पाक॒सुत्व॑नो॒ऽभि धीर॑मचाक॒शं विश्व॑स्मा॒दिन्द्र॒ उत्त॑रः ॥ १९ ॥

भा०—(अयम्) यह मैं (विचाकशत्) विशेष रूप से दर्शन या साक्षात् करता हुआ, और (दासम्) दानशील, (आर्यम्) श्रेष्ठ जन को वा (दासम्) प्रजा के नाशक दुष्ट वर्ग को और (आर्यम्) प्रजा के पालक श्रेष्ठ स्वामी वर्ग को (विचिन्वत्) विवेकपूर्वक न्यायाधीश के समान पृथक् २ करता हुआ (एमि) प्राप्त होता हूं। और (पाक-सुत्वनः) पाक द्वारा यज्ञ करने वाले, वा परिपक्व, दृढ़ मन से ईश्वर की उपासना करने वालों को और (धीरम्) अन्यों को धारण योग्य सत्-ज्ञान, सत्-बुद्धि और सत्-कर्म में प्रेरणा करने वाले की मैं (अभि पिबामि) सब प्रकार से रक्षा करता हूं। (इन्द्रः) वह परमैश्वर्यवान् प्रभु ही (विश्वस्मात् उत्तरः) सबसे अधिक उत्कृष्ट है। अध्यात्म में—(२) मैं आत्मा, उपासक (विचिन्वत्) विशेष रूप से परमेश्वर की खोज लगाता हुआ (विचाकशत्) विशेष रूप से उसका साक्षात् करता हुआ उस (दासं) सब सुखों के दाता और (आर्यम्) सर्वश्रेष्ठ स्वामियों के भी स्वामी परमेश्वर को (एमि) प्राप्त होऊं। (पाक-सुत्वनः) परिपाक या कर्म फलों के स्वामी, उस प्रभु के दिये फल का ही (पिबामि) उपभोग करूं।

और (धीरम्) हमारी बुद्धियों और कर्मों को प्रेरणा करने वाले उसको ही (अभि अचाकशम्) साक्षात् करता हूं कि (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वह परमेश्वर ही सबसे उत्कृष्ट है ।

धन्वं च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना । नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥

भा०—(ता) वे अनेक (कति स्वित्) योजना आत्मा के साथ योग करने वाले देह हैं वे सब (धन्व च कृन्तत्रं च) मरु भूमि के तुल्य और उच्छेद करने योग्य भयानक जंगल के तुल्य ही हैं। उनमें कभी शान्ति और सुख प्राप्त नहीं हो सकता। हे (वृषाकपे) समस्त सुखों के वर्षाने वाले प्रभु के सुख का पान करने हारे आत्मन् ! तू सब से अधिक (नेदीयसः) समीप विद्यमान परमेश्वर के (अस्तम्) सर्व-दुःखनाशक, शरण को प्राप्त हो। तू उसके ही (गृहान्) ग्रहण करने योग्य शान्तिप्रद गुणों को (उप-इहि) प्राप्त हो। (इन्द्रः) वह परमेश्वर (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से अधिक उत्कृष्ट है ।

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहे । य एषः स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृषाकपे) जीवात्मन् ! हम प्रकृति और परमात्मा दोनों (सुविता कल्पयावहे) तेरे लिये नाना सुखप्रद, कल्याणकारी सुख जनक पदार्थ रचते हैं। तू उनको (पुनः आ इहि) पुनः २ प्राप्त हो। (यः एषः) जो यह तू (स्वप्न-नंशनः) निद्रा में लुप्त हो जाने वाले सुप्त जन के तुल्य (पथा) बाहर के मार्ग से घूम फिर कर पुनः गृह में आने वाले पथिक के समान (पथा) ज्ञान मार्ग से पुनः (अस्तम्) शरणवत् प्रभु को प्राप्त होता है, वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट है। अथवा सूर्य के उदय और अस्त के तुल्य ही जीव का मोक्ष में जाना और पुनः वहां से आना होता है ।

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन। क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृषाकपे इन्द्र) सुखवर्षी, परम रस के पान करने वाले ! वा अंधकारनाशक तेजस्विन् ! आत्मन् ! प्रभो ! (यत्-उदञ्चः) जब ऊर्ध्व, उत्तम मार्ग से जाने वाले पुरुष (गृहम्) सर्वशरण्य प्रभु को (अजगन्तन) प्राप्त हो जाते हैं तब उनका (स्यः) वह (पुलु-अघः) बहुत पापों वाला (जन-योपनः) प्राणियों को मोहने वाला (मृगः) शुद्ध, वा विषयों को खोजने वाला, पापभागी आत्मा, वा बहुतों को मारने वाला वा बहुत से जनों को त्रास देने वाला मृत्यु (क अगन् कम्) कहां चला जाता है, कहां नष्ट हो जाता है ? उसका नाश होना यही प्रभु की दया है । अतः (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) वह परमेश्वर ही सब से उत्कृष्ट है । अर्थात् मृग, सिंह जिस प्रकार (पुलु-अघः) बहुतों को मारने वाला और (जन-योपनः) अनेक जनों, जन्तुओं का नाश करने वाला सिंह गृह में आने पर न जाने कहां जाता है । अर्थात् गृह में रहते हुए सिंह का त्रास नहीं रहता । इसी प्रकार परम शरण्य प्रभु रूप गृह में आने पर त्रासकारी पाप वा मृत्यु का भी भय छूट जाता है । 'न तत्र मृत्युर्न जरा वि-पाप्मा ।' उप० । तब तो वह केवल 'कम्' सुख रूप होता है ।

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्। भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥ ४ ॥

भा०—(मानवी पर्शुः ह नाम) मननशील, संकल्प विकल्प करने वाले आत्मा वा पुरुष की विचार शक्ति या बुद्धि ही 'पर्शु' नाम की है जो (साकं) एक साथ ही (विंशतिं ससूव) हाथ और पैर की २० अंगुलियों के समान (विंशतिं) प्रकृति के २० विकारों को एक साथ उत्पन्न करती है । (त्यस्याः भल भद्रम् अभूत्) उस स्त्री का तो सदा कल्याण होता है,

(यस्या) जिस माता का (उदरम्) पेट (आमयत्) पीड़ित होता है अर्थात् जो अपने गर्भ से देही आत्मा को प्रसव करती है। इसी प्रकार प्रकृति भी 'मनु' अर्थात् सर्वजगत्-स्तम्भक, सर्वस्तुत्य प्रभु की वह स्त्रीतुल्य प्रकृति 'पर्शु' अर्थात् परम सूक्ष्म रूप में व्यापक होती है। उसका रूप 'भद्र' सुखकारी है जो २१ विकृतियों को उत्पन्न करती है (यस्याः उदरम्) जिसके मध्य भाग को (आमयत) प्रभु अपनी शक्ति से गति युक्त करता और उसमें से अनेक प्रकृति-विकृतियों को उत्पन्न करके उस जगत् को बनाता, चलाता और उनको व्यवस्था से नियन्त्रित करता है। वही (इन्द्रः) प्रभु परमेश्वर (विश्वस्मात् उत्तरः) सब से उत्कृष्ट है। दश प्राण, दश प्राणायातन ये २० अंग, अथवा प्रकृति के २० विकार अहंकार, पांच स्थूलभूत, पांच सूक्ष्म भूत और ४ अन्तःकरण, और स्वयं समष्टि देह। इति चतुर्थो वर्गः॥

[८७]

ऋषिः पायुः॥ देवता—अग्नी रक्षोहा॥ छन्दः—१, ८, १२, १७ त्रिष्टुप्। २, ३, २० विराट् त्रिष्टुप्। ४—७, ९—११, १८, १९ निचृत् त्रिष्टुप्। १३—१६ भुरिक् त्रिष्टुप्। २१ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। २२, २३ अनुष्टुप्। २४, २५ निचृदनुष्टुप्॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म। शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥१॥

भा०—मैं (रक्षःहणं) दुष्ट राक्षसों को, जो मुझ को मेरे उद्देश्य तक पहुंचने से रोके रखते हैं उनका नाश करने वाले, (वाजिनं) वेगवान्, बलवान्, (मित्रम्) मुझे मृत्यु से बचाने वाले (प्रथिष्ठं) अति पृथु, महान् उस प्रभु को मैं (आ जिघर्मि) सब ओर अग्नि के तुल्य ही प्रदीप्त, प्रज्वलित कर लूं जिससे मैं (शर्म उप यामि) सुख प्राप्त करूं। (शिशानः) सदा तीक्ष्ण (अग्निः) अग्नि के समान पापों को दग्ध करने वाला, सत्-

स्वरूप, प्रकाशमय प्रभु (क्रतुभिः) नाना कर्मों और ज्ञानों द्वारा (समिद्धः) अति देदीप्त हो। (सः) वह (नः) हमें (दिवा) दिन में और (सः नक्तं) वही रात में भी (नः) हमें (रिषः) हिंसक, दुष्ट स्वभाव के आक्रामक से (पातु) रक्षा करे। जिस प्रकार अग्नि जंगल के समीप में जलता हुआ चोर, व्याघ्र आदि से भी बचाता है उसी प्रकार हृदय में प्रभु की ज्योति भी जलती हुई लोभ, क्रोध, कामादि पापों से बचाती है। वह प्रभु सर्वत्र सदा हमारी रक्षा करता है, उसके आगे दुष्टों की नहीं चलती।

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥२॥

भा०—हे (जात-वेदः) धनों के स्वामिन्! हे बुद्धिमन्! तु (समिद्धः) खूब तेजस्वी होकर, (अयः-दंष्ट्रः) लोहों की सी दाढ़ों वाला, नाना शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न, कठोर होकर (अर्चिषा) अपने तीव्र ज्वाला वा तेज से (यातु-धानान्) प्रजाओं को पीड़ा देने वाले दुष्टों को (उप स्पृश) पकड़, उनको अग्निवत् भस्म कर, उनको दमन कर नाश कर, और निर्मूल कर दे। और (जिह्वया) अपने वाणीमात्र के शासन से (मूर-देवान्) केवल मरने मारने की क्रीड़ा करने वाले, युद्ध व्यसनियों को, (क्रव्यादः) प्रजा के मांसों के खाने वाले, प्रजा के रक्तशोषी, प्रजा के प्राण-नाशक दुष्ट डाकुओं को, (रभस्व) वश कर। उनको (वृक्त्वी) काट कर, वृक्ष के तुल्य निर्मूल करके (आसन्) अपने मुख अर्थात् अपने वचन के शासन में (अपि धत्स्व) उनको रख।

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सन्धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

भा०—हे (उभयाविन्) दोनों प्रकार के शस्त्रास्त्रों और बलों से युक्त! तू (उभा) दोनों प्रकार की (दंष्ट्रा) नाशकारिणी शक्तियों को

दोनों डाढ़ों के समान (शिशानः) अति तीक्ष्ण करता हुआ, (हिंस्रः) शत्रुओं को नाश करने हारा होकर (अवरम् परं च उप धेहि) समीप और दूर के दोनों देशों वा जनों को प्रतिष्ठित कर (उत) और हे (राजन्) तेजस्विन्! तू (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष मार्ग में भी (परि याहि) सब दूर जा। और (जम्भैः) नाशकारी, हिंसक शस्त्रास्त्रों से (यातु-धानान्) प्रजा को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुषों को (सं धेहि अभि धेहि) अच्छी प्रकार संधान कर, उनको शस्त्रों से पीड़ित कर उनका अभिधान कर, सब ओर से बांध। शस्त्रास्त्रों से संधान उनको दबा कर सन्धि या मेल करना है, जैसे—'शरसंधान'। 'अभिधान'-बांधने अर्थ में आता है जैसे—'अश्वाभिधानी' घोड़े को बांधने की रस्सी। अर्थात् राजा शस्त्रों को समक्ष रख कर दुष्टों से संधि और विग्रह करे, जिससे वे भयभीत होकर प्रजा को पीड़ित न कर सकें।

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ध्येषाम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) सेनाओं के अग्रणी नेता! सेनापते! तू (यज्ञैः) अनेक भृति, वेतन, पुरस्कार, आदर, मान-सत्कार आदि उपायों से, (इषूः) अनेक सेनाओं को (सं-नममानः) अपने अधीन करता हुआ और (वाचा) अपनी आज्ञा से (अशनिभिः) अशनि नामक महान् अस्त्रों सहित (शल्यान्) धनुष बाणों सहित वीरों को (दिहानः) खूब एकत्र करता हुआ, (ताभिः) उन शक्तियों से (यातु-धानान्) प्रजा को पीड़ा देने वाले साधनों को धारण करने वाले दुष्ट पुरुषों को (हृदये विध्य) मर्म पर आघात कर (एषाम्) उनके (प्रतीचः बाहून्) उनके प्रति द्वेषी, विरोधी, बाहुओं अर्थात् लड़ने वालों को (प्रति भङ्ग्धि) तोड़ डाल, उनको बाहुओं के समान तोड़ कर लुंजा पुंजा कर दे।

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम्।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ॥५॥

भा०—(अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! हे दुष्टों को सन्तापित, पीड़ित और दग्ध करने वाले ! तू (यातु-धानस्य) कुटिल चाल चलने वाले वा प्रजा को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुष के (त्वचं भिन्धि) त्वचा वा देह को छिन्न भिन्न कर, उसको कठोर शारीरिक अंगच्छेदन आदि दण्ड दे। वा उसके (त्वचं) आवरणकारी, छुपने के स्थान को (भिन्धि) नाश कर। (हिंस्रा) हिंसा वा प्राण नाश करने वाली (अशनिः) विद्युत् अस्त्र (हरसा) प्राणहारक ज्वाला से (एनं हन्तु) इसको मारे। (पर्वाणि) उसके पोरुओं को वा उसके पालन करने वा उसके मनोरथों को पूर्ण करने वाले साधनों, अंगों वा सहयोगियों को (शृणीहि) नाश कर (विष्णुः) व्यापक शक्तिशाली पुरुष (क्रव्याद) मांसाहारी पशु के तुल्य (वृष्णम्) दुष्ट व्यक्ति के छिन्न भिन्न अंगों को (वि चिनोतु) चुन २ कर हड़प करलें। अर्थात् जिस प्रकार किसी कटे छिन्न भिन्न देह के अंगों को गीध, कुत्ता सियार आदि खाजाते हैं उसी प्रकार दुष्ट प्रजा-पीड़क व्यक्ति के छिन्न भिन्न देहवत् राष्ट्र के अंगों को उससे अधिक शक्ति वाले राष्ट्र छीन झपट लें।

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥६॥

भा०—हे (जात-वेदः) धनैश्वर्य के स्वामिन् ! (इदानीं) इस समय (यत्र) जहां भी तू किसी दुष्ट पुरुष को (तिष्ठन्तं पश्यसि) खड़ा देखे, अथवा (चरन्तं पश्यसि) अथवा विचरता देखे, (यत् वा) अथवा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में वा (पथिभिः पतन्तं) भूमि पर मार्गों से जाता हुआ देखे (तम्) उस दुष्ट को, हे (अग्ने) सेनानी ! तू (अस्ता) दुष्टों को उखाड़ने हारा (शिशानः) तीक्ष्ण शासन करता हुआ, नियम व्यवस्थाओं और सैन्य शस्त्रादि को तीव्र रखता हुआ, दुष्टों को (शर्वा) हिंसाकारी साधन, बाण, वा शस्त्र से (विध्य) मार।

उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् । अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥ ७ ॥

भा०—हे (जात-वेदः) भूमि में या राष्ट्र में उत्पन्न हुए प्रत्येक बच्चे, मनुष्यादि को भी अपना धन मानने वाले, सब उत्पन्न जीवों के स्वामिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (उत) और तू (आलेभानात्) प्रजा के जनों को पकड़ लेने वाले (यातु-धानान्) पीड़ाकारी बन्धन बांधने वाले दुष्ट से (आलब्धं) पकड़े हुए प्रजावर्ग को (स्पृणुहि) बचा। (ऋष्टिभिः) दुष्टों को सन्तप्त करने वाले साधनों द्वारा उस से उसकी रक्षा कर। प्रजा के किसी व्यक्ति को भी यदि दूसरा राज्य पकड़ ले या कोई डाकू या दुष्ट जन पकड़े लें तो राजा उसको उन से बचावे। हे राजन् ! तू (पूर्वः) पालक होकर (शोशुचानः) पापी को सन्तप्त करता और तेज से चमकता हुआ (आमादः) कच्चे मांस को खाने वाले दुष्टों को (नि जहि) सर्वथा और खूब दण्डित कर। उसको (क्ष्विंकाः) नाना शब्द करने वाली (एनीः) वेग से उड़ने वाली चीलें (तम् अदन्तु) उसको खावें। जो व्यक्ति मांस लोभी प्रजा के जनों का कच्चा मांस खाजावें, राजा उनको मांसखोर जानवरों से फड़वा डाले। उनका आहार करा दे। जिससे अपने दुःख अनुभव करके दूसरे के मांस खाने का दोष उनको अनुभव हो और वे बुरे मार्ग से हटें।

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति । तमारभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥

भा०—(यः यातुधानः) जो प्रजा को पीड़ा देने वाला है, (यः) जो (इदम् कृणोति) पापाचार कराता है हे (अग्ने) तेजस्विन् (सः) वह (यतमः) उस प्रकार के अपराधियों में कौनसा है, उसका अपराध क्या और किस प्रकार का और कितनों में से किस वर्ग का, कौन २ है यह

सब विवरण पूर्वक (इह प्र ब्रूहि) इस राष्ट्र में अच्छी प्रकार बतला जिससे सब कोई उसके बुरे काम को जानकर धिक्कारें और (तम्) उसको (सम् इधा) खूब जलती चमकती लकड़ी या चमचमाती लोहे की सलाख 'सूर्मि' से (आ रभस्व) स्पर्श करा। हे (यविष्ठ) बलशालिन्! तू उसको (नृ-चक्षसः) मनुष्यों को यथाऽपराध दण्ड की व्यवस्था करने वाले राजा, न्यायदाता की (चक्षुषे) न्याय दृष्टि के लिये (एनम् रन्धय) इसको पीड़ित कर, उसको अपना भाई बन्धु जान कर, वा उससे धनादि बहुत पाने की आशा से भी दण्ड देने से मत त्याग, उसको अवश्य दण्डित कर।

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः॥ ९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! दुष्टों को दग्ध करने वाले राजन्! तू (तीक्ष्णेन चक्षुषा) तीक्ष्ण दृष्टि से (प्राञ्चम्) सर्वोत्कृष्ट (यज्ञम्) अपने सुसंगत राष्ट्र की (रक्ष) रक्षा कर। हे (प्रचेतः) उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त वाले! हे (नृ-चक्षः) मनुष्यों के ऊपर न्यायद्रष्टः! (रक्षांसि हिंस्रम्) दुष्टों के नाश करने वाले (अभि शोशुचानम्) मुकाबले पर दण्डित करते हुए (त्वा) तुझको (यातुधानः) पीड़ादायी दुष्टजन (मा दभन्) नाश न करें।

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा। तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च॥ १०॥ ६॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्, तेजस्विन्! तू (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों के बीच प्रधान नेता, अध्यक्ष शासकों के व्यवहारों को भी देखने हारा है। तू (विक्षु) प्रजाओं में (रक्षः परि पश्य) दुष्ट राक्षस स्वभाव के मनुष्य और अधिकारी को भी देख। (तस्य त्रीणि अग्रा) उसके तीन अगले कर्मों

को (प्रति शृणीहि) प्रति समय नाश कर और (हरसा) तीक्ष्ण तेज वा दण्ड से (तस्य पृष्टीः) उसकी पीठ पर के सहायकारी जनों को भी (प्रति शृणीहि) खूब पीड़ित कर जिससे वे उसका साथ छोड़ दें। (यातु-धानस्य) प्रजा को सताने वाले दुष्ट राक्षस के (मूलम्) मूल को (त्रेधा) तीन प्रकारों से (वृश्च) काट डाल। दुष्ट प्रजा पीड़क के तीन 'अग्र'—जनवल, धनवल, और मनोवल, उसके मूल पर तीन प्रकार का आघात, उसको नाश करना, उसके साथियों का नाश करना, उसके नष्ट होने के बाद भी उसके बाद के पुत्र-पौत्रादि वा उसके दास-भृत्यादि का नाश करना।

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! दुष्टों को भस्म करने हारे! वह (यातु-धानः) पीड़ादायक साधनों से प्रजाओं को बांधने वाला दुष्ट पुरुष, आतंककारी प्रजापीड़क, (ते) तेरे (प्रसितिम्) बन्धन को (त्रिः एतु) तीन प्रकार से आवे (यः) जो (अनृतेन हन्ति) अपने असत्य वचन वा व्यवहार से दूसरे को दण्डित, पीड़ित, नष्ट करता है। हे (जात-वेदः) सब धनों के स्वामिन्! (तम्) उसको (अर्चिषा) अपने तीव्र ताप से (स्फूर्जयन्) बिजुलीवत् पीड़ित, भयभीत करता हुआ, (समक्षम्) सब के सामने (गृणते) प्रार्थनाशील प्रजा जन के हितार्थ, (एनं निवृङ्धि) विशेष रूप से काट डाल।

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम्।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक! दुष्टों को दग्ध करने हारे! तू (येन) जिस न्यायदृष्टि से (शफारुजं यातुधानं पश्यसि) निन्दा

और कुत्सित वचनों से पीड़ा देने वाले (यातु-धानम्) पीड़ादायक पुरुष को (पश्यसि) देखता है, (तत्) उसी (चक्षुः) सत्य प्रकाशक चक्षु को (रेभे) प्रार्थना करने वाले, अपने दुःख निवेदन करने वाले, वा स्तुति कारा या शुभ वचन, सदुपदेश करने वाले पर (प्रति धेहि) डाल। (सत्यं धूर्वन्तम्) सत्य का नाश करने वाले (अचितम्) पाप को करने में न चेतने वाले, पाप के दुष्परिणाम को न जानने वाले पुरुष को (अथर्ववत्) निश्चल, अडिग, निष्प्रकम्प, स्थिरभाव से युक्त, निष्पक्षपात होकर (दैव्येन ज्योतिषा) अग्नि, आदि दिव्य पदार्थों की ज्योति से (नि ओष) खूब संतप्त कर, उन पर दिव्य परीक्षा का प्रयोग कर जिससे वे भय से सत्य कहें, असत्य न कहें।

यद॑ग्ने॒ अद्य मि॑थु॒ना शपा॑तो॒ यद्वा॒चस्तृ॒ष्टं ज॒नय॑न्त॒ रेभाः॑। म॒न्योर्मन॑सः शर॒व्या॒३॒॑ जाय॑ते॒ या तया॑ विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न् ॥१३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! सत्मार्ग के दर्शक ! (अद्य) अब (यत्) जब (मिथुना शपातः) दो मिल कर एक दूसरे पर निन्दा जनक वचन, अपशब्दों का प्रयोग करें वा (देवाः) विद्वान् जन (वाचः तृष्टं जनयन्त) वाणी का कटु रूप प्रकट करें तब (या) जो वाणी (मन्योः) मननशील वा क्रोध वाले चित्त के लिये (शरव्या) बाण के समान वेदना जनक (जायते) होती है तू (तया) उससे भी (यातु-धानान्) पीड़ादायक जनों को (हृदये विध्य) हृदय में ताड़ित कर। अर्थात् यदि स्त्री पुरुष या मित्र या विद्वान् लोग कटु वचनों का प्रयोग करें और अपराधी हों तो उनको भी चुभती तीखी हृदय में लगने वाली वाणी से ही डांट बतला कर वाग्-दण्ड देना चाहिये।

परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न्परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि। परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवाञ्छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपो॑ अ॒भि शोशु॑चानः ॥ १४ ॥

परा॑द्य दे॒वा वृ॑जि॒नं शृ॑णन्तु प्र॒त्यगे॑नं श॒पथा॑ यन्तु तृ॒ष्टाः ।
वा॒चास्ते॑नं॒ शर॑व ऋच्छन्तु॒ मर्म॒न्विश्व॑स्यैतु॒ प्रसि॑तिं यातु॒धानः॑ ॥१५।७

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (यातु-धानान्) पीड़ादायकों को (तपसा) संन्तापकारी साधनों से (परा शृणीहि) दूर तक मार भगा। (रक्षः) विघ्नकारी को (हरसा परा शृणीहि) संवरणकारी, अद्भुत आश्चर्यजनक साधन से दूर से ही नाश कर। (मूर-देवान्) मरने मारने वाले युद्धेच्छु, विजय चाहने वालों को वा मोह में पड़े हुओं को (अर्चिषा) अपनी तीव्रतायुक्त ज्वाला से (परा शृणीहि) दूर से ही पीड़ित कर। और तू (शोशुचानः) अति देदीप्यमान होकर (असु-तृपः) मनुष्यों के प्राणों से अपनी तृप्ति करने वालों वा केवल अपने प्राणों को ही तृप्त करने वाले को (अभि परा शृणीहि) उनका मुकाबला करके उनको पीड़ित करके दूर कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

यः पौरु॑षेयेण क्र॒विषा॑ सम॒ङ्क्ते यो अश्व्ये॑न प॒शुना॑ यातु॒धानः॑ ।
यो अ॒घ्न्याया॒ भर॑ति क्षी॒रम॑ग्ने॒ तेषां॑ शी॒र्षाणि॒ हर॒सापि॑ वृश्च ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (यातुधानः) अन्यों को पीड़ा देने वाला होकर अर्थात् अन्यों को पीड़ा देकर अपने को (पौरुषेयेण क्रविषा) मनुष्योपयोगी अन्न आदि साधनों से (सम् अङ्क्ते) सजाता है और (यः) जो (अश्व्येन पशुना सम् अंक्ते) अन्य को पीड़ा देकर स्वयं घोड़े के समान वेग से जाने वाले पशु से अपने को चमकाता है, जो दूसरे को पीड़ा देकर (अघ्न्यायाः क्षीरं भरति) गौ का दूध लेता है, हे (अग्ने) ज्ञान और तेज के प्रकाशक ! तू ऐसे २ दुष्टों के (शीर्षाणि) शिरों को (हरसा वृश्च) तेज शस्त्र से काट डाला।

सं॒व॒त्स॒रीणं॒ पय॑ उ॒स्रिया॑या॒स्तस्य॒ माशी॑द्यातु॒धानो॑ नृचक्षः ।
पी॒यूष॑मग्ने यत॒मस्तितृ॑प्सा॒त्तं प्र॒त्यञ्च॑म॒र्चिषा॑ विध्य॒ मर्म॑न् ॥१७॥

भा०—हे (नृ-चक्षः) मनुष्यों के अध्यक्ष ! (यातु-धानः) प्रजाओं में अन्यों को पीड़ा देने वाला पुरुष (उस्रियायाः) गौ के (संवत्सरीणं) वर्ष भर में पैदा होने वाले (पयः) दूध को (मा अशीत्) मत खावे अर्थात् दण्डरूप में उसे गौ का दूध साल भर तक पीने को न मिले। और उन दण्डितों में से (यतमः पीयूषम् तितृप्सात्) जो कोई दूध पी लेवे, (तं प्रत्यंचम्) उस आज्ञा-भंगकारी, विपरीतगामी को (अर्चिषा) जलते अग्नि मय शस्त्र से (मर्मन् विध्य) मर्मस्थान पर वेध, ताड़ित कर।

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः।
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्तात् ॥ १८ ॥

भा०—(यातु-धानाः) प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, दुष्ट, अपराधी लोग (गवां विषं) गौओं का जल, मूत्र आदि (पिबन्तु) पान करें। और (अदितये दुरेवाः) अदिति, माता पिता, पुत्र आदि के प्रति बुरा व्यवहार करने वाले जन, (परा वृश्च्यन्ताम्) बहुत बुरी तरह से काटे जांय, पीड़ित किये जांय। (सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य वा सूर्य का प्रकाश (एनान् परा ददातु) इन से परे रहे। उनको ऐसी अन्धेरी कोठड़ी में रखा जावे कि सूर्य का प्रकाश इन्हें न मिले। और वे (ओषधीनां भागं परा जयन्तु) ओषधियों का सेवनीय अंश भी प्राप्त न करें। वे रोगपीड़ित होकर कष्ट भोगें।

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी सेनापते ! तू (यातु-धानान्) पीड़ादायक दुष्ट पुरुषों को (सनात् एव मृणसि) सदा से ही नाश करता है। (रक्षांसि) दुष्ट-राक्षस लोग (पृतनासु) संग्रामों में (त्वा न जिग्युः) तुझे न जीत पावें। (सह-मूरान् क्रव्यादः) मूल वा मारने वाले शस्त्रास्त्र

साधनों वा मारने वाले सैनिकों सहित क्रव्य अर्थात् मनुष्यों का मांस खाने वाले, वा प्रजाओं के अन्नों को खाजाने वाले, (ते) तेरे (दैव्यायाः) विजयशील सैनिकों के (हेत्याः) हननकारी अस्त्रों से (मा मुक्षत) मत छूटें।

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात्।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥२०॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (त्वं) तू (नः) हमारी (अधरात्, उदक्तात्) नीचे से और ऊपर से और (त्वं) तू (पश्चात् उत पुरस्तात्) पीछे से और आगे से (रक्ष) रक्षा कर। (शोशुचतः ते) तेज से तेजस्वी तेरे (ते) वे नाना (अजरासः) बाण आदि फेंकने वाले वा कभी नष्ट न होने वाले, अत्यर्थ (तपिष्ठाः) खूब पीड़ादायक साधन, वा वीर पुरुष (अघशंसं) पाप से दूसरों की हिंसा करने वाले को (प्रति दहन्तु) प्रतिक्षण दग्ध करें, जलावें, निरन्तर पीड़ित करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन्।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं नः ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! हे (सखे) मित्र! (अमर्त्यः त्वम्) किसी को न मारने वा किसी का प्राण नाश न करने हारा तू (नः मर्त्तान्) हम मनुष्यों की (पश्चात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात्) पीछे से, आगे से, नीचे से और उत्तर से (काव्येन परिपाहि) विद्वान्, बुद्धिमानों के बनाये विधान आदि से सब प्रकार से रक्षा कर। हे (राजन्) राजन्! तेजस्विन्! प्रजा के चित्त को प्रसन्न करने हारे! तू (अजरः) न नाश होने वाला (अमर्त्यः) अमरणधर्मा होकर (सखायं परि पाहि) मित्र रूप प्रजावर्ग और मित्रवर्ग की रक्षा कर।

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! हे तेजस्विन् ! नायक ! हे (सहस्व) शत्रुओं को पराजय करने हारे ! (वयं) हम लोग (पुरं) सबके पालक, (विप्रम्) परम मेधावी, (धृषद्-वर्णं) शत्रुओं को बलपूर्वक दबाने वाले स्वरूप या तेज को धारण करने वाले, (दिवे-दिवे) दिनों दिन (भंगुरावताम्) प्रजा पीड़कों के (हन्तारं) नाश करने वाले (त्वां) तुझको (परिधीमहि) सर्वत्र स्थापित करें और (त्वां परिधीमहि) तुझको सब ओर से परिधान करें, तेरी चारों ओर से हम रक्षा करें और तेरा आश्रय लें, तुझे केन्द्र में रख कर हम तेरे चारों ओर रहें ।

विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्ने ! तू (रक्षसः) दुष्ट, विघ्नकारी पुरुषों को (तिग्मेन विषेण) तीखे विष से वा तीक्ष्ण, विशेष रूप से विविध प्रकार से जीवन का अन्त कर देने वाले (शोचिषा) तेज शस्त्र से (प्रति दह स्म) उसको भस्म कर, जला, पीड़ित कर । और (तपुः-अग्राभिः) तपे हुए अग्रभागों वाली (ऋष्टिभिः) संगीनों के सदृश शस्त्रों से (प्रति दह) भस्म कर ।

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः ॥ २४ ॥

भा०—(अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! तू (मिथुना) जोड़े २ (यातु-धाना) अन्यों को पीड़ा देने वाले (किमीदिना) समय और दूसरे के किये कार्य वा पदार्थ और जीवन को कुछ न समझने वाले, गर्वीले स्त्री पुरुषों को (प्रति दह) खूब पीड़ित कर । (अदब्धं) अहिंसक (त्वा) तुझको हे (विप्र) मेधाविन् ! (मन्मभिः) उत्तम २ विचारों से (सं शिशामि) अच्छी प्रकार शासन करूं जिससे तू (जागृहि) सदा जाग, सावधान रहे ।

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥ २५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (रक्षसः हरः) दुष्ट पुरुष के तेज को (विश्वतः) सब प्रकार से अपने (हरसा) तेज से (प्रति शृणीहि) नष्ट कर। और (यातु-धानस्य) प्रजा पीड़क दुष्ट पुरुष के (बलं) बल को और (वीर्यम्) वीर्य, सामर्थ्य को (वि-रुज) विविध उपायों से नष्ट कर। इति नवमो वर्गः॥

[८८]

ऋषिः मूर्धन्वानाङ्गिरसो वामदेव्यो वा॥ देवता—सूर्यवैश्वानरौ॥ छन्दः—२—४, ७, १५, १९ विराट् त्रिष्टुप्। ५, ८ त्रिष्टुप्। ६, ९—१४, १६, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। १८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम्॥

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त॥ १॥

भा०—(देवाः) सूर्य के चमकने और प्रकाश देने वाले किरणों और (स्वः-विदि) प्रकाश और ताप को प्रदान करने वाले, (दिवि-स्पृशि) भूमि और आकाश में व्यापने वाले (अग्नौ) अग्निमय सूर्य में (पान्तं) पान करने योग्य, (हविः) ग्रहण करने योग्य हवि के सदृश, (अजरं) अविनश्वर, (आहुतम्) प्रदान किये और (जुष्टम्) स्वयं ग्रहण किये जल तत्व को (तस्य) उसकी (भर्मणे) सर्वपोषणकारी (भुवनाय) पुनः व्यक्त रूप से प्रकट होने वाले (धर्मणे च) सबको धारण करने वाले जगत् के हितार्थ (स्वधया) स्व-शरीर वा चेतनादि की पोषणकारिणी 'स्वधा' अन्न वा जल रूप से (कं पप्रथन्त) विस्तृत करते हैं। इसी प्रकार (२) देव विद्वान् जीवगण वा प्राण गण जिस (पान्तं) पालक वा पीने खाने योग्य

अन्न को अपने जाठर अग्नि में आहुति करते हैं, उसके अग्नि के पोषणीय धारणीय देह की (स्वधया) स्वधा अर्थात् चेतना रूप से व्यक्त करते हैं। वे अन्न को खाकर उसी को चेतना रूप से देह में प्रकट करते हैं। (२) इसी प्रकार विद्वान् जन उस प्रभु रूप अग्नि में पालनीय प्रिय इस जीव को प्रभु में समर्पित करते हैं तो उसी सर्वपोषक, सर्व-धारक, सर्वोत्पादक प्रभु की स्वधा शक्ति से वे (कं पप्रयन्त) परम मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य॥२॥

भा०—(तमसा) तम से (भुवनं) यह समस्त संसार (गीर्णम्) अपने भीतर लील लिया जाता है तब वह (अप-गूढम्) अन्धकार में कहीं छुप जाता है। और (जाते अग्नौ) अग्निमय सूर्य के प्रकट होने पर (स्वः) वह सब प्रकट रूप में (आविः अभवत्) स्पष्ट हो जाता है। (२) इसी प्रकार यह समस्त जगत् 'तमस्', अव्यक्त प्रधान में लीन हो जाता है। और फिर अग्नि अर्थात् सर्वाग्रणी सत्त्वमय, तेजोमय हिरण्यगर्भ के प्रकट होने पर व्यक्त हो जाता है।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते
राज्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवन्त्यहरागमे॥ गीता॥

ब्रह्मा का एक दिन और एक रात्रि सहस्र २ युगों के होते हैं दिन के आने पर अव्यक्त से सब व्यक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं, रात्रि के आने पर सब फिर अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। समस्त भूत-समूह, प्राणि-संसार

रात्रि के आने पर उसी में लीन होता है, और दिन के आने पर प्रकट होता है। यह घटना दिन रात्रि के दृष्टान्त से ही वर्णन की जाती है। (तस्य) उस जगत् के प्रभव और प्रलय करने वाले (अस्य) इस महान् 'अग्नि' रूप स्वप्रकाश प्रभु के (सख्ये) मित्रभाव में ही (देवाः) समस्त देव, (पृथिवी, द्यौः) पृथिवी और आकाश (उत आपः ओषधीः) और समस्त लोक और ओषधियां वा तेज-धारक सूर्य आदि (अरणयन्) रमण करते हैं, प्रसन्न होते हैं।

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३॥

भा०—उसी महान् अग्नि का पुनः वर्णन करते हैं। मैं (यज्ञियेभिः) यज्ञ, देवपूजन और सत्संगति करने योग्य विद्वानों से (इषितः) प्रेरित होकर उस (अजरम्) अविनाशी, (बृहन्तम् अग्निम् स्तोषाणि) महान् अग्नि की स्तुति करूं (यः) जो (भानुना) अपने तेज से (पृथिवीम् उत द्याम्) इस पृथिवी और महान् आकाश को और (रोदसी अन्तरिक्षम्) पृथिवी, आकाश के बीच के अन्तरिक्ष को भी (आततान) विस्तृत करता है।

यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः॥४॥

भा०—(यः) जो (प्रथमः) सब से प्रथम (देव-जुष्टः) सब विद्वानों से सेवित (होता आसीत्) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने हारा है (यम्) जिसको (वृणानाः) वरण करने वाले भक्त जन (आज्येन सम् आञ्जन्) घृत से अग्नि के तुल्य प्रेम, भक्ति और सर्व प्रकाशक ज्ञानयुक्त वचन-विलास से अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं (सः) वह ही (पतत्रि) उड़ने वाले, (इत्वरम्) गमनशील जंगम संसार को

और (स्थाः जगत्) स्थावर जगत् को और (श्वात्रम् जगत्) वेग से जाने वाले सूर्यादि लोकसंमूह को (अकृणोत्) बनाता है। वही (अग्निः) अग्निवत् सर्वप्रणेता और (जात-वेदाः) समस्त पदार्थों में व्यापक है।

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन। तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः॥५॥१०॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न जगत् को व्यापने और जानने वाले! (अग्ने) हे स्वप्रकाश! सर्वप्रथम! प्रभो! (यत्) जब वा जो तू (रोचनेन) प्रकाश के समान (भुवनस्य मूर्धन्) समस्त उत्पन्न जगत् के शिर पर सूर्यवत् (अतिष्ठः) स्थिर, सर्वोपरि मूर्धन्य है। (तं त्वा) उस तुझ को हम (मतिभिः) बुद्धियों से, मननकारी चित्तों से, (गीर्भिः) वेदवाणियों से (उक्थैः) विद्वानों के व्याख्या-वचनों से (अहेम) हम प्राप्त हों, तेरा ज्ञान करें। (सः) वह तू (यज्ञियः) यज्ञों से पूजा योग्य और (रोदसि-प्राः अभवः) आकाश और भूमि सब को पूर्ण करने वाला, सर्वव्यापक (अभवः) है। इति दशमो वर्गः॥

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्। मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन्॥६॥

भा०—वह (अग्निः) प्रकट करने वाला, तेजोमय, जगत् का उत्पादक ही (नक्तम् भवति) 'नक्त' अर्थात् 'अव्यक्त' है। वह ही (भुवः) इस उत्पन्न जगत् का (मूर्धा भवति) मूर्धा, मस्तिष्क के समान सबका मूल आश्रय, प्रवर्त्तक और मूर्त्त जगत् को अपने में धारण करने वाला है। (ततः) उसी से (सूर्यः जायते) सूर्य उत्पन्न होता है जो कि (प्रातः उत् यन्) प्रातःकाल में, सृष्टि के आदि में उदित होता है। और (यत्) जो वह (तूर्णिः) अति वेगवान् होकर (प्रजानन्) सब कुछ जानता

हुआ ही (अपः चरति) समस्त कर्म करता है, जगत् को बनाता है, और (अपः) प्रकृति के समस्त परमाणुओं में व्यापता है, इसको ही (यज्ञियानां मायाम् अहेम) हम यज्ञ करने वाले विश्वस्रष्टाओं की माया अर्थात् जगत् निर्माण करने वाला शक्ति वा बुद्धि रूप से जानते हैं।

दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥७॥

भा०—(यः दृशेन्यः) जो दर्शनीय, सब के दर्शन करने योग्य, (महिना सम्-इन्द्धः) अपने महत्व या सामर्थ्य से प्रदीप्त, स्वयं प्रकाशित, (दिवि-योनिः) प्रकाश, पार्थिव शरीर और सूर्य वा तेजस्तत्व में आश्रित (वि-भावा) विशेष रूप से कान्तियुक्त होकर (अरोचत) सब को प्रिय मालूम होता है (तस्मिन् अग्नौ) उस अग्नि में (विश्वे देवाः) समस्त मनुष्य वा नाना कामनाशील, (तनू-पाः) देह की रक्षा करने वाले जीवगण (सूक्त-वाकेन) सुखपूर्वक कहने योग्य वचनों सहित (हविः आ जुहवुः) अन्न की आहुति करते हैं। वह अग्नि वैश्वानर है जो सबके उदर में स्थित है जिस में सब जीव प्रेमपूर्वक अन्न प्रदान करते हैं। भोजन करना अन्नाहुति है देखो मनु—

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं स्मृतिनोदितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥
(मनु० अ० २। श्लो० ५२ परि०)

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥८॥

भा०—(देवाः) नाना कामनावान् जीवगण (प्रथमं सूक्तवाकम् अजनयन्त) सब से प्रथम सूक्तवाक, उत्तम वचन को प्रकट करते हैं। (आत् इत्) और अनन्तर (अग्निम् अजनयन्त) अग्नि को उत्पन्न करते

हैं, और उसके पश्चात् (हविः अजनयन्त) अन्न को उत्पन्न करते हैं। (सः) वह (एषां) इन जीवगण का (तनूपाः यज्ञः अभवत्) देह की रक्षा करने वाला यज्ञ ही होता है। (तं द्यौः वेद) उसको द्यौः अर्थात् सर्वोपरि मस्तक जानता है। (तं पृथिवी) उसको यह पृथिवीमय देह अनुभव करता है। (तम् आपः) उसको ये प्राणगण जानते हैं। अथवा उस यज्ञ को द्यौ, सूर्य, पृथिवी और आपः, जल (वेद) प्राप्त कराते हैं। (२) इसी प्रकार यज्ञ में प्रथम (इदं द्यावा पृथिवी ऋ०१।१८५।११॥) मन्त्र का पाठ होता है फिर अग्नि को मथ कर उत्पन्न किया जाता है और फिर आहुति योग्य हवि बनाता है। यह यज्ञ उस यज्ञ का अनुकरण है। जगत् में, भी प्रथम भोग्य पदार्थ की कामना उत्पन्न होती है, जो प्रिय सूक्तवाक है, फिर अग्नि अर्थात् बुभुक्षा तीव्र होती है, तब उसके शमन के लिये अन्न की साधना करते हैं।

यं दे॒वासोऽज॑नयन्ता॒ग्निं यस्मि॒न्नाजु॑हवु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
सो अ॒र्चिषा॑ पृथि॒वीं द्याम्यु॒तेमामृ॑जू॒यमा॑नो अतपन्महि॒त्वा ॥९॥

भा०—(यम् अग्निम्) जिस अग्नि को (देवाः अजनयन्त) देवगण रश्मियां वा प्राणगण प्रकट करते हैं, (यस्मिन्) जिसके आश्रय में (विश्वानि भुवनानि) समस्त भुवन, लोक वा प्राणगण (आजुहवुः) आहुति करते हैं। (सः) वह (अर्चिषा) अपनी कान्ति वा तेजोमय ज्वाला से (ऋजूयमानः) अति तृप्त होता हुआ, (इमाम् द्याम्, पृथिवीम्) इस द्यौ और पृथिवी रूप देह में शिर और समस्त देह को भी (महित्वा अतपत्) अपने महान् सामर्थ्य से तपाता, गरम रखता है।

स्तोमे॑न॒ हि दि॒वि दे॒वासो॑ अ॒ग्निमजी॑जन॒ञ्छक्ति॑भी रोद॒सि॒प्राम्।
तमू॑ अकृण्वन् त्रे॒धा भु॒वे कं स ओष॑धीः पचति वि॒श्वरू॑पाः ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—(स्तोमेन हि) स्तोम अर्थात् यथार्थ गुणों के वर्णन से ही (देवासः) विद्वान् पुरुषों ने उस (अग्निम् अजीजनन्) अग्नि को प्रकट किया। उसका स्वयं ज्ञान कर अन्यों को भी बतलाया जो अग्नि (शक्तिभिः रोदसि-प्राम्) नाना शक्तियों, बलों और सामर्थ्यों से भूमि और आकाश इन दोनों को पूर्ण कर रहा है। (तम् उ) उसको (कं) सुख कर (भुवे) होने के लिये (त्रेधा) तीन रूप में (अकृण्वन्) जाना। और (सः) वही (विश्व-रूपाः ओषधीः) नाना प्रकार की ओषधियों को (पचति) पकाता है। अग्नि के तीन रूप—१ पृथिवी में अग्नि, २ अन्तरिक्ष में, विद्युत् और ३ आकाश में सूर्य ऐसा शाकपूणि आचार्य का मत है। [यदस्य दिवि तृतीये तदसावादित्य इति हि ब्राह्मणम्।] यह जो आकाश में तीसरा है वह आदित्य है ऐसा ब्राह्मण में कहा है। यज्ञ में गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि है। देह में प्राणाग्नि, औदर्य अग्नि और वीर्याग्नि है। इत्येकादशो वर्गः॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा॥११॥

भा०—(यदा इत्) जब (यज्ञियासः देवाः) यज्ञशील, यज्ञ के साधक, (देवाः) विद्वान् जन (एनम्) इस (सूर्यम्) समस्त जगत् के प्रकाशक और प्रेरक सूर्य को (दिवि) आकाश में (आदितेयम्) 'आदितेय' अर्थात् अखण्ड शक्ति, प्रकृति के अधीन कभी अस्त न होने वाला, स्वतः अविनाशी रूप से (अदधुः) धारण करते हैं, जानते हैं, उसको प्राप्त करते हैं और (यदा) जब (चरिष्णू) सूर्य चन्द्र वा उषा और आदित्य के तुल्य दोनों (मिथुनौ) एक दूसरे का आश्रय देने वाले परस्परोपजीवी, परस्पर संगत (अभूताम्) होते हैं। (आत् इत्) अनन्तर ही वे (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (प्र अपश्यन्) देखते हैं।

(२) परमेश्वर महान् सूर्य है जो अदिति, प्रकृति का स्वामी होने से आदितेय है। अदिति अर्थात् प्रकृति और सूर्य, प्रभु जब दोनों परस्पर मिथुनीभाव में होकर जगत् को रचते हैं तभी नाना लोक बनते हैं।

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२॥

भा०—(देवाः) विद्वानों ने (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी (अग्निम्) अग्निरूप सूर्य को (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त जगत् के लिये (अह्नाम् केतुम् अकृण्वन्) दिनों का बतलाने वाला वा बनाने वाला निश्चित किया, जाना। (यः) जो अग्नि (विभातीः) विशेष रूप से प्रकाश करने वाली, (उषसः ततान) उषाओं का निर्माण करता है, और (यन्) गमन करता हुआ (अर्चिषा) अपने तेज से (तमः अप-उ ऊर्णोति) अन्धकार को दूर करता है।

(२) परमेश्वर पक्ष में—कल्पों का प्रारम्भ काल 'उषा' है, और प्रलय कालिक घोर अज्ञात स्वरूप तम, अन्धकार है।

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम्।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥ १३ ॥

भा०—(वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों में विद्यमान (अग्निम्) ज्ञानवान् चेतनायुक्त 'अग्नि' को (यज्ञियासः) यज्ञ के उपासक (देवाः) ज्ञान के प्रकाशक (कवयः) विद्वान् लोग (अजनयन्) यज्ञाग्नि के तुल्य ही प्रकट करते हैं। वह (अजुर्यम्) कभी नाश न होने वाला, (नक्षत्रम्) सर्वव्यापक, (प्रत्नम्) अति पुरातन, (चरिष्णु) नाना कर्मों का फल भोगने वाला (यक्षस्य अध्यक्षम्) इस यज्ञ रूप महान् संसार वा देह-प्रपञ्च का अध्यक्ष, शासक (बृहन्तं तविषम्) महान् बलवान् है।

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (महिम्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (उर्वी परि बभूव) दोनों महान् लोकों को ढांपता, उनपर शासन करता है, जो (अवस्तात्) उनके नीचे उनका आश्रय रूप से है, (उत) और जो (देवः) सर्वप्रकाशक (परस्तात्) उनसे पर श्रेष्ठ, दूर तक भी व्यापक है, उस (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, सब के सञ्चालक (विश्वहा दीदिवांसम्) सब दिनों चमकने वाले (अग्निम्) सूर्य वा अग्नि के तुल्य स्वयं प्रकाश (कविम्) क्रान्तदर्शी, प्रभु को लक्ष्य करके हम (मन्त्रैः) मन्त्रों, नाना प्रकार के मनन संकल्पों से (अच्छ वदामः) साक्षात् स्तुति करते हैं ।

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥१५॥१२॥

भा०—(अहम्) मैं (द्वे स्रुती) दो मार्ग (अशृणवम्) श्रवण करता हूँ, गुरुजनों से उन दोनों मार्गों का उपदेश प्राप्त करता हूँ । एक (देवानाम्) देवों का मार्ग (उत) और दूसरा (मर्त्यानाम्) मर्त्य, अर्थात् मरणधर्मा प्राणियों का । एक मार्ग तो मोक्ष का है जिसमें प्रयाण करते हुए जीव फिर जन्म-मरण के चक्र में नहीं आता । दूसरा मार्ग मरणधर्मा प्राणियों का है जिसमें जीव आता और शरीरों को पुनः २ धारण करता है । (ताभ्याम्) उन दोनों मार्गों से (इदं) यह समस्त (विश्वम् एजत्) विश्व अर्थात् देह में प्रवेश करने वाला जीव-जगत् गति करता है । (यत्) जिस मार्ग से वह (पितरं मातरं च अन्तरा) पिता और माता इन दोनों के बीच पुत्र रूप से मैथुन-धर्म से (एति) उत्पन्न होता है ।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्यया वर्त्तते पुनः ॥
नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
गीता अ० ८ । २६, २७ ॥

इसका विस्तृत वर्णन प्रश्न और छान्दोग्य उपनिषदों में किया गया है ।

इति द्वादशो वर्गः ॥

द्वे स॒मीची॑ बिभृत॒श्चर॑न्तं शी॒र्षतो॑ जा॒तं मन॑सा॒ विमृ॑ष्टम् ।
स प्र॒त्यङ् विश्वा॒ भुव॑नानि तस्थाव॒प्रयु॑च्छन्त॒रणि॒र्भ्राज॑मानः ॥१६॥

भा०—(समीची द्वे) परस्पर संगत होकर स्त्री पुरुष जिस प्रकार बालक को (बिभृतः) गर्भ में धारण करते हैं और वे दोनों (शीर्षतः जातम्) शिर के बल उत्पन्न हुए और (मनसा विमृष्टम्) मनोभावना द्वारा विशेष रूप से चिन्तित, (चरन्तम्) विचरते बालक को (समीची बिभृतः) मिलकर माता पिता दोनों पालन-पोषण करते हैं । उसी प्रकार (समीची) उत्तम रीति से सु गत आकाश और पृथिवी दोनों उस (चरन्तम्) व्यापक महान् आत्मा को (बिभृतः) धारण करते हैं जो (शीर्षतः जातम्) शिरोभाग में (जातम्) प्रकट होता (मनसा विमृष्टम्) मनन, चिन्तन द्वारा विशेष रूप से विवेचन करने योग्य है । (सः) वह (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ में प्रकाशित होने वाला, प्रत्यग् आत्मतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व (तरणिः) सब को सब प्रकार के दुःखों से तारने वाला, (भ्राजमानः) सर्वत्र प्रकाशमान देदीप्यमान (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित होकर (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (तस्थौ) अधिष्ठाता रूप से विराजता है ।

यत्रा॒ वद॑ेते॒ अव॑रः॒ पर॑श्च यज्ञ॒न्योः कत॒रो नौ॒ वि वे॑द ।
आ शे॑कु॒रित्स॑ध॒मादं॒ सखा॑यो॒ नक्ष॑न्त य॒ज्ञं क इ॒दं वि वो॑चत् १७

भा०—(यत्र) जिस परम, आत्मा के विषय में (वि वदेते) वादी और

प्रतिवादी विवाद करते हैं कि वह (अवरः) इस लोक में भी विद्यमान और (परः च) इस लोक से परे है, (नौ) दो पक्षों को स्थापन करने वालों हम दोनों में से (कतरः) कौनसा वादी है जो उन (यज्ञन्योः) महान् यज्ञ का संचालन करने वाले तत्त्वों के विषय में (विवेद) विशेष रूप से जानता है। (सखायः) समस्त रूप से आख्यान-प्रवचन करने वाले मित्रवत् आचार्य, विद्वान् जन (यज्ञम् नक्षन्त) जो उस सर्वपूज्य प्रभु तक बुद्धि द्वारा पहुंचते, उसकी साधना और साक्षात् करते हैं वे ही (सधमादम्) सहयोग से आनन्दकारी उस प्रभु को (आ शेकुः) प्राप्त कर सकते और बतला सकते, उस तक पहुंचते हैं। (इदम्) इस तत्त्व को (कः वि वोचत्) अन्य कौन विशेष रूप से बतला सकता है।

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् १८

भा०—(कति अग्नयः) अग्नि कितने हैं, कितने प्रकार के हैं, कौन २ से पदार्थ और कौन २ से जन 'अग्नि' कहाने योग्य हैं, इसी प्रकार (कति सूर्यासः) सूर्य कितने हैं, (उषासः कति) उषाएं कितनी हैं, (कति उ स्वित् आपः) और कितने प्रकार के 'आपः' हैं। हे (पितरः) पालक गुरुजनो! मैं (वः उपस्पिजम्) आप लोगों के प्रति स्पर्धा हीन विचार से यह प्रश्न (न वदामि) आप से नहीं कहता हूं। प्रत्युत (विद्मने) ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही मैं हे (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् बुद्धिमान् जनो! (वः पृच्छामि) आप लोगों से यह प्रश्न (पृच्छामि) पूछ रहा हूं। इस प्रश्न का उत्तर बालखिल्य सूक्त (ऋ० ८। ५८। २॥) में दिया है,—

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम्॥ इति॥

'उपस्पिजं' इत्यस्य पदपाठे 'उप-स्फिजम्' इति रूपम्। स्फिक् शब्दो जंघैकदेशवचनः। उपस्फिजम् जंघायाः समीपम्। उपस्फिजः तत्-सदृशो वेगवान् सत्-ज्ञानमार्गे विद्यास्पर्धालुरिति भावः॥ उपस्फिजमिति स्पर्धायुक्तं वचनमुच्यते इति सायणः॥

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन्॥१९॥१३॥

भा—(यावत्-मात्रम्) जब तक, जितने काल तक, (उषसः प्रतीकम्) उषा काल का प्रतीति कराने वाले तेज को, (न) मुख को वस्त्र के तुल्य (सुपर्ण्यः वसते) रात्रियें आच्छादित किये रहती हैं। हे (मातरिश्वः) अन्तरिक्षवत् आकाश, हृदय देश में विचरने हारे! वा मातृ-तुल्य जगत्-प्रभु के आगे वेग से बढ़ने हारे साधक! (तावत्) तबतक (अवरः ब्राह्मणः) श्रेष्ठ, एक वेदज्ञ ब्राह्मण विद्वान् (होतुः) होता रूप अग्नि के समीप (निषीदन्) बैठकर (आयन्) समीप आता हुआ (यज्ञम् उप दधाति) यज्ञ की उपासना करता है। यज्ञ में—होता रूप स्वयं दी हुई आहुति को लेने वाला अग्नि है, उसके समीप यज्ञकर्ता बैठ कर यज्ञ करने के पूर्व उषा के प्रकट होने तक केवल विना आहुति वैश्वानरीय सूक्त का जप करता है। वह यज्ञ की उपासना करता है। इसी प्रकार अध्यात्म में—विशोका ज्योतिष्मती 'उषा' है उसके प्रकाश को जबतक लोक-सुख की वासना रूप रात्रियां या व्युत्थान-वृत्तियां घेरे रहती हैं तब तक ब्रह्म का उपासक पुरुष उस सर्वसुखदाता प्रभु का (अवरः) दास वा शिष्य, या छोटे भाई के तुल्य होकर 'यज्ञ', सर्वप्रद, प्रभु के समीप आता हुआ उसका (उप दधाति) उपधान, उपासना-प्रणि-धान करता है। ईश्वरप्रणिधानाद्वा। पतञ्जलि।

[८९]

ऋषिरेणुः ॥ देवता—१—४, ६—१८ इन्द्रः । ५ इन्द्रासोमौ ॥ छन्दः—१, ४, ६, ७, ११, १२, १५, १८ त्रिष्टुप् । २ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ५, ९, १०, १४, १६, १७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । १३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य महा विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा १

भा०—(यस्य मह्ना) जो अपने महान् सामर्थ्य से (रोचना) चमकने वाले, तेजस्वी, सूर्य, चन्द्र, तारों के तुल्य अनेक तेजस्वियों को (वि-बबाधे) बाधित करता, पीड़ित करता, अपने अधीन करता है, और जो अपने महान् सामर्थ्य से (ज्मः अन्तान् वि) पृथिवी के प्रान्त भागों को भी विशेष रूप से पीड़ित करता, उनको प्रकाश, ताप आदि द्वारा शोषित करता तथा आंधी आदि चलाता है । (यः चर्षणी धृत्) जो मनुष्यों को वा अध्यक्षों को धारण करने वाला, सर्वद्रष्टा सर्वाध्यक्ष सम्राट् के तुल्य होकर जगत् को (वरोभिः) नाना अन्धकार-नाशक तेजों से (आ पप्रौ) पूर्ण करता है । और जो (महित्वा) अपने महत्व परिमाण वा गुणों और शक्ति सामर्थ्यों के महान् होने से (सिन्धुभ्यः प्र रिरिचानः) समुद्रों और महान् आकाशों से भी बड़ा है (नृ-तमं) नायकों में सर्वश्रेष्ठ, सर्वपुरुषोत्तम उस (इन्द्रं) सर्वजगत् के द्रष्टा, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की तू (स्तव) स्तुति कर । (२) अध्यात्म में—नेता और प्राणों में सर्वश्रेष्ठ 'आत्मा' 'इन्द्र' है । उसकी इन्द्रिय 'रोचन' हैं । पार्थिव शरीर 'ज्म' है । ज्ञानेन्द्रिय 'चर्षणी' हैं । इच्छा शक्तियां, 'वरः' हैं और देहगत नाड़ियां 'सिन्धु' हैं ।

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥२॥

भा०—जिस प्रकार शिल्पी, वा शिल्पकला का वेत्ता विद्वान् (रथ्या इव चक्रा) रथ के वेग से चलने वाले चक्रों को चलाता है, उसी प्रकार (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी, वा (सूर्यः = सुवीर्यः) उत्तम बलशाली (इन्द्रः) इस समस्त जगत् को धारण करने वाला परमेश्वर (उरु वरांसि) महान्, जगह २ घटे हुए तेजोमय अनेकों सूर्यों वा लोकों को (परि ववृत्यात्) चला रहा है । और (अतिष्ठन्तम्) कभी न ठहरने वाले, (अपस्यम् न) मानो सदा कर्म करने वाले, (सर्गम्) जल के समान सदा गतिशील, बनने बिगड़ने वाले सृष्टिचक्र को भी (सः सूर्यः) वही सूर्यवत् महाशक्तिशाली प्रभु (परि ववृत्यात्) सब प्रकार से चलाता है । वही सूर्यतुल्य तेजोमय प्रभु उस (सर्गम् परि) इस जगत् के चारों ओर फैले (कृष्णा तमांसि) काले, कष्टदायी अन्धकारों को (त्विष्या) तीक्ष्ण कान्ति से नष्ट करता है ।

समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (अस्मै) इस महान् प्रभु की (अर्च) उपासना पूजा कर । जो (समानम्) सर्वत्र समान, निष्पक्षपात, एकरस है । (अनपवृत्) जो अपवृत् अर्थात् दूर विद्यमान नहीं, प्रत्युत सब के पास है, अथवा (अनपवृत्) सबको प्रकट न होकर गूढ़ है । जो (क्ष्मया असमं) इस पृथ्वी के समान न स्थूल, परिमित होकर (दिवः असमं) आकाश वा सूर्य से भी कहीं (ब्रह्म) महान् होने से 'ब्रह्म' है । (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् , तेजोमय, (अर्यः) सबका स्वामी होकर (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले समस्त जीव प्राणियों को (पृष्ठा इव) पालनीय करके (विचिकाय)

जानता है और (सखायम्) अपने मित्र भक्त जीव को (न ईंपे) कभी उद्विग्न नहीं करता, उसे परे नहीं धकेलता। प्रत्युत उसे अपनी शरण में रखता है। नंगा नहीं करता, प्रत्युत बचा कर रखता है। ईंप उञ्छे। उञ्छनं विवासनम्।

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ४

भा०—जो परमेश्वर (सगरस्य बुध्नात्) महान् आकाश के प्रदेश से (अनिशित-सर्गाः) अनल्प सृष्टि रचने वाले (अपः) जलों के तुल्य प्रकृति के परमाणुओं को और जीवों को वा लोकों को (प्रेरयम्) ऐसे प्रेरित करता है, जैसे (अक्षेण इव चक्रिया) अक्ष-दण्ड के बल से चक्र को चलाया जाता है। और (यः) जो (शचीभिः) अपनी अनेक शक्तियों से (पृथिवीम् विश्वक् तस्तम्भ) पृथिवी को सब ओर से थामे है (उत यः द्यां तस्तम्भ) और जो आकाश वा सूर्य को सब प्रकार से थामे है।

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५॥१४॥

भा०—(आपान्त-मन्युः) जो अपने ज्ञान वा क्रोध वा तेज को चारों ओर विस्तृत करता है, (तृपल-प्रभर्मा) जो बड़े वेग से दुष्ट शत्रुओं का प्रहार करता है, (धुनिः) जो सब को कंपाता है, वह वायुवत् बलवान्, (शिमीवान्) अनेक कर्म करता है, जो (शरुमान्) नाना हिंसाकारी साधनों से सम्पन्न है (ऋजीषी) जो सब प्रजाओं को सरल, धर्म के सत्य के मार्ग से प्रेरित करता है, (सोमः) जो सबका संचालक, सर्वोत्पादक है। उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, दीप्तिमान् इन्द्र परमेश्वर को (विश्वानि) समस्त (प्रतिमानानि) मापक साधन भी (न देभुः) उसी प्रकार अपने से कम नहीं कर सकते जैसे (अतसा वनानि न इन्द्रम्)

समस्त सूखे काष्ठ और जंगल भी तेजस्वी विद्युत् वा अग्नि को नष्ट नहीं कर सकते। भड़कती आग वा बिजली के आगे चाहे जितने लक्कड़ वा जंगल के वृक्ष हों वह उनको जला ही डालता है, एक मिनट में नष्ट कर देता है उसी प्रकार ये सब प्रतिमान, अर्थात् मपे हुए सीमित पदार्थ उस महान् असीम प्रभु का मुकाबला नहीं कर सकते। वे अल्प हैं। इति चतुर्दशो वर्गः॥

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि॥ ६॥

भा०—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (यस्य प्रतिमानं न अक्षास्ताम्) जिसके बराबर माप को नहीं प्राप्त करते (न धन्व) न जल (न अन्तरिक्षम्) न अन्तरिक्ष, (न अद्रयः) न पर्वत वा मेघ, वह (सोमः) समस्त जगत् का शासक और उत्पादक है। (यस्य मन्युः) जिसका ज्ञान, शासन बल, (अधिनीयमानः) सर्वोपरि विराजमान होकर (वीडु शृणाति) बड़े २ बलशालियों को नष्ट करता है और (स्थिराणि रुजति) स्थिरों को भी तोड़ डालता है।

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः॥७॥

भा०—(स्वधितिः वना इव) कुठार जिस प्रकार वनों की लकड़ियों को काट गिराता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् अध्यात्म सम्पदाओं से सम्पन्न प्रभु वा आत्मा, (वृत्रम् जघान) आवरणकारी विघ्न वा अज्ञान का नाश करता है। (पुरः रुरोज) राजा जिस प्रकार शत्रु की नगरियों को तोड़ डालता है, उसी प्रकार ज्ञान और तप से ब्रह्म-तत्त्व का दर्शन करने वाला 'इन्द्र' (पुरः रुरोज) देह की नगरियों को भंग करता, उसका विविध प्रकार से छेदन भेदन करता है। और (सिन्धून् न अरदत्) जिस प्रकार कोई शिल्पी नाना नहरों को बनाता और भूतल पर प्रवाहित करता है

उसी प्रकार प्रभु वा आत्मा देह में अनेक रस-वाहिनी नाड़ियों को बनाता है और चलाता है। और (नवम् इत् न कुम्भम्) जिस प्रकार शिल्पी नये बने घड़े पर सूची यन्त्र से अनेक चित्र विचित्र रेखाएं खोदता है उसी प्रकार प्रभु इस पृथिवी के गोले पर अनेक नदियों को खोद डालता है। और (स्वयुग्भिः) अपने से संयोग करने वाले भक्त, साधक द्रष्टाओं द्वारा (इन्द्रः गाः आ अकृणुत) वह सर्वैश्वर्य प्रभु अनेक वाणियों को उसी प्रकार प्रकट करता है जिस प्रकार विद्युत् मेघ में से अनेक जल-धाराओं को प्रकट करता है।

त्वं ह॒ त्यदृ॑ण॒या इ॑न्द्र॒ धीरो॒ऽसिर्न पर्व॑ वृजि॒ना शृ॑णासि।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जल अन्नादि ऐश्वर्यों के देने वाले प्रभो! (त्वं ह) तू निश्चय से (त्यत्) वह परम (ऋणयाः) धनों का देने वाला है। (असिः पर्व न) जिस प्रकार तलवार शरीर के पोरु २ को काट डालता है उसी प्रकार तू (वृजिना शृणासि) अनेक पापों को काट डालता है। शेष आधी ऋचा का अगले मन्त्र से सम्बन्ध है अतः उसका व्याख्यान भी अगली ऋचा के साथ करते हैं।

प्र ये मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ यु॒जं न जना॑ मि॒नन्ति॑ मि॒त्रम् ॥८॥
प्र ये मि॒त्रं प्रार्य॒मणं॑ दु॒रेवाः॒ प्र स॒ङ्गिरः॒ प्र वरु॑णं मि॒नन्ति॑।
न्य॑मि॒त्रेषु॑ व॒धमि॑न्द्र॒ तुम्रं॒ वृष॒न्वृषा॑णमरु॒षं शि॑शीहि ॥ ९ ॥

भा०—(ये) जो (मित्रस्य धाम मिनन्ति) स्नेह करने वाले, प्राणों के रक्षक के पद वा दिये तेज का नाश करते हैं (ये वरुणस्य धाम मिनन्ति) और जो सर्वदुःखवारक प्रभु के दिये तेज का नाश करते हैं, (ये जनाः युजं मित्रं प्र मिनन्ति) जो मनुष्य अपने सहयोगी स्नेही की हिंसा करते हैं, और (ये) जो (दुःएवाः) बुरे मार्ग से जाने वाले, (मित्रं प्र मिनन्ति) स्नेही का नाश करते हैं, और (ये अर्यमाणं प्र) न्यायकारी, राजा का नाश करते हैं, (ये संगिरः प्र मिनन्ति) जो एक समान वाणी

बोलने वाले समभाषा-भाषी का नाश करते हैं, (ये वरु मिनन्ति) जो दुःख-वारक श्रेष्ठ का नाश करते हैं इतने प्रकार के (अमित्रेषु) शत्रुओं के निमित्त हे (वृषन्) बल-शालिन् ! तू (तुत्रम्) अति वेगवान्, (वृषाणम्) बलशाली, (अरुषम्) चमचमाते, (वधम्) वधकारी दण्ड को सदा (शिशीहि) तीक्ष्ण रख ।

इन्द्रो॑ दि॒व इन्द्र॑ ईशे पृथि॒व्या इन्द्रो॑ अ॒पामिन्द्र॒ इत्पर्व॑तानाम् ।
इन्द्रो॑ वृ॒धामिन्द्र॒ इन्मेधि॑राणा॒मिन्द्रः॒ क्षेमे॒ योगे॒ हव्य॒ इन्द्रः॑ ॥१०॥१५॥

भा०—(इन्द्रः दिवः ईशे) वह परमेश्वर आकाश का स्वामी है, (पृथिव्याः ईशे) पृथिवी का स्वामी है । (इन्द्रः अपाम् ईशे) इन्द्र प्रभु समस्त जलों प्राणों और लोकों का स्वामी है । (इन्द्रः पर्वतानाम् इत् ईशे) वह परमेश्वर पर्वतों का भी स्वामी है । (इन्द्रः वृधाम् ईशे) इन्द्र बढ़तों, बढ़ाने वाले और वृद्धों का भी स्वामी है, (इन्द्रः मेधिराणाम् इत् ईशे) इन्द्र बड़े २ बुद्धिमानों का भी स्वामी है । (इन्द्रः क्षेमे हव्यः) वह इन्द्र क्षेम, अर्थात् प्राप्तव्य धन के रक्षा वा कुशल के लिये भी स्तुतियोग्य है और (इन्द्रः योगे हव्यः) वही प्रभु परमेश्वर्यवान् स्वामी योग अर्थात् अप्राप्त धन के प्राप्त करने और आत्म-समाधि के निमित्त भी प्रार्थना करने योग्य है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

प्राक्तुभ्य॒ इन्द्रः॒ प्र वृ॒धो अह॑भ्यः॒ प्रान्तरि॑क्षा॒त्प्र स॑मु॒द्रस्य॑ धा॒सेः । प्र
वात॑स्य॒ प्रथ॑सः॒ प्र ज्मो अन्ता॒त्प्र सिन्धु॑भ्यो रिरिचे॒ प्र क्षि॒तिभ्यः॑ ११

भा०—वह (इन्द्रः अक्तुभ्यः प्रवृधः) परमेश्वर रात्रियों से भी बढ़ा हुआ है, वह (अहभ्यः प्रवृधः) दिनों से भी बहुत बड़ा है, (अन्तरिक्षात्-प्र) वह अन्तरिक्ष से भी बड़ा है, (समुद्रस्य धासेः प्र) समुद्र को अपने में धारण करने वाले विशाल स्थान से भी अधिक बड़ा है । (वातस्य प्रथसः प्र) वायु के विस्तृत स्थान से भी अधिक बड़ा है, वह (ज्मः अन्तात्-प्र)

भूमि के अन्त, पर्यन्त भाग से भी बड़ा है, वह (सिन्धुभ्यः प्र रिरिचे) नदियों से भी महान् और (क्षितिभ्यः प्र रिरिचे) मनुष्यों, जीवों से भी कहीं महान् है।

प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं का नाश करने वाले (ते) तेरा (हेतिः) शत्रुहनन करने का साधन-शस्त्र (असिन्वा) कहीं न बद्ध, खुला, दूर तक जाने वाला हो। उसकी गति कहीं रुकी न रहे। वह (शोशुचत्याः उषसः) चमकने वाली उषा के (केतुः न) रश्मि के तुल्य दूर तक प्रकाश करने वाला हो। (दिवः आ सृजानः अश्मा) आकाश से प्रकट होने वाली बिजली की तरह तू (आ सृजानः) चारों ओर शस्त्रास्त्रों का विसर्जन करता हुआ (तपिष्ठेन) अति तापकारी कष्टदायक, (हेषसा) भयंकर गड़गड़ाहट का शब्द करने वाले अस्त्र से (द्रोघ-मित्रान्) मित्र का द्रोह करने वाले दुष्ट जनों को (विध्य) ताड़ना कर उनको उससे दण्डित कर।

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३॥

भा०—(इन्द्रम् अनु) इन्द्र अर्थात् जल और प्रकाश के देने वाले सूर्य के अनुकूल (मासाः अजिहत) मास भी गति करते हैं, अर्थात् चन्द्र की नाना कलाओं और उनसे बने मास-विभाग सूर्य के अनुकूल बनते हैं अर्थात् चन्द्र के जितने भाग पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तदनुसार उसकी कलाएं दीखती हैं। (वनानि इत् इन्द्रम् अजिहत) वन, तेज, आकाश, और जलों की वृष्टि आदि भी सूर्य के अनुसार ही होती है। और (ओषधीः इन्द्रम् अनु अजिहत) ओषधियां भी सूर्य का अनुसरण करती हैं। (पर्वतासः अनु अजिहत) मेघ भी सूर्य का अनुसरण करते हैं। (वावशाने रोदसी)

नाना कान्तियों से चमकने वाले, आकाश और भूमि दोनों भी (इन्द्रम् अनु अजिहताम्) सूर्य का अनुगमन करती हैं। (जायमानम् इन्द्रम् अनु आपः अजहत) प्रकट होते हुए सूर्य के अनुसार ही 'आपः'- प्राणगण भी अनुसरण करते हैं। इसी प्रकार तेजस्वी के पीछे सब कोई चलते हैं।

कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत्।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष! हे स्वामिन्! शत्रुविजयिन्! (ते) तेरी प्रसिद्ध (अघस्य चेत्या) पापी का नाश कर देने वाली शक्ति (कर्हि स्वित्) कब (असत्) प्रकट होगी? (यत्) जिससे तू (रक्षः भिनदः) दुष्ट शत्रुओं को भेदे, (मित्र-क्रुवः) मित्रों पर क्रूरकर्म करने वालों को (आ ईषत्) सब ओर से भयभीत करे (यत्) जिससे (शसने गावः नः) हत्यास्थान में पशुओं के तुल्य वे दुष्ट जन, भी (आपृक्) मर कर (अमुया पृथिव्याः) इस पृथिवी के ऊपर (शयन्ते) पड़ें।

शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः॥१५॥

भा०—(ये) जो (शत्रूयन्तः) शत्रुओं के समान आचरण करने वाले (ओगणासः) संघ बनाये हुए, (महि व्राधन्तः) हमें बहुत २ पीड़ित करते हुए, (नः अभि ततस्रे) सब ओर गिराते हैं, हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने हारे! वे (अमित्राः) स्नेहरहित शत्रुगण, (तमसा अन्धेन) अन्धा कर देने वाले तम, अन्धकार से (सचन्ताम्) युक्त हों, और (तान्) उनको (सु-ज्योतिषः) उत्तम ज्योति वाले, सुप्रकाशित दिन और (अक्तवः) रात्रिगण (अभि स्युः) पराजित करें। अथवा (सु-ज्योतिषः) प्रकाशयुक्त सुज्ञानी और (अक्तवः) स्नेही जन (तान् अभिस्युः) उनको पराजित करें, वे उनके विपरीत हों।

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम्।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६॥

भा०—हे प्रभो ! (त्वा) तुझे (जनानां) मनुष्यों के (पुरूणि हि सवनानि) अनेक अनेक उपासना, यज्ञादि और (गृणतां ऋषीणां) स्तुति करने वाले अनेकों मन्त्रार्थ द्रष्टाओं के (पुरूणि ब्रह्माणि) अनेकानेक मन्त्रगण (त्वा मन्दन्) तुझे प्रसन्न करते, तेरी स्तुति करते हैं। वे (इमाम्) इस (सन्हूतिम्) एक साथ मिलकर करने योग्य प्रार्थना को भी (अवसा) ज्ञान और प्रेम से (त्वा आघोषन्) तेरी ही स्तुति प्रकट करते हैं। हे प्रभो ! (विश्वान् अर्चतः) अर्चना, उपासना और स्तुति करने वाले समस्त जीवों को (अर्वाङ्) अति समीप, साक्षात (अवसा) प्रेम, रक्षा, दया, प्रकाश, ज्ञानादि सहित (तिरः याहि) प्राप्त हो ॥ तिरः सत इति प्राप्त स्येति निरु० ॥

एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम्।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७॥

भा०—(एव) इस प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे शत्रुनाशक ! (वयम्) हम लोग (ते) तेरी (भुंजतीनाम्) रक्षा करने वाली (नवानां) नई से नई, अति सुन्दर, स्तुति योग्य (सु-मतीनाम्) उत्तम २ बुद्धियों, अनुग्रह-व्यवस्थाओं, कृपाओं और योजनाओं को (विद्याम) सदा जानें, प्राप्त किया करें। हम (वस्तोः) दिन रात, (नूनम्) अवश्य (विश्वामित्राः) सब के स्नेही होकर (अवसा) ज्ञान और प्रेम से (ते) तेरी ही (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (ते सु-मतीनाम्) तेरी उत्तम २ बुद्धियों और ज्ञान-वाणियों का भी (विद्याम) लाभ करें।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् १८॥१६॥

भा०—हम लोग उस (मघवानम्) समस्त सुखदायक, पवित्र ऐश्वर्यों के स्वामी, (शुनं) महान् सुखस्वरूप, (इन्द्रम्) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले, (वाज-सातौ नृ-तमम्) ऐश्वर्यों और ज्ञानों के देने में सब से श्रेष्ठ, नेता, (ऊतये) रक्षा के कार्य में (उग्रम्) सबसे अधिक बलवान्, (शृण्वन्तं) भक्तों की सुनने वाले, (समत्सु) युद्धों में (वृत्राणि घ्नन्तम्) समस्त विघ्नों को नाश करने वाले और (धनानां सं-जितम्) समस्त ऐश्वर्यों का विजय करने वाले, उस प्रभु के (अस्मिन् भरे) इस समस्त पालनीय विश्व में, युद्ध में राजा के तुल्य सर्वोपरि जानकर (हुवेम) पुकारते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[९०]

ऋषिर्नारायणः ॥ पुरुषो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७, १०, १२, निचृदनुष्टुप् । ४—६, ६, १४, १५ अनुष्टुप् । ८ ११ विराडनुष्टुप् । १६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ।
स भूमिं॑ वि॒श्वतो॑ वृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥ १ ॥

भा०—पुरुष-सूक्त। (पुरुषः) पुर में व्यापक शक्ति वाले राजा के तुल्य समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक परम पुरुष परमात्मा (सहस्र-शीर्षाः) हजारों शिरों वाला है। (सः) वह (भूमिं) सब जगत् के उत्पादक, सर्वाश्रय प्रकृति को (विश्वतः वृत्वा) सब ओर से, सब प्रकार से वरण कर, व्याप कर (दश-अंगुलम् अति अतिष्ठत्) दश अंगुल अतिक्रमण करके विराजता है। अंगुल यह इन्द्रिय वा देह का उपलक्षण है, अर्थात् वह दशों इन्द्रियों के भोग और कर्म के क्षेत्र से बाहर है। वह न कर्म-बन्धन में बद्ध रहता है और न मन का विषय है। समस्त संसार के शिर उसके शिर हैं और समस्त

संसार के चक्षु और चरण भी उसी के चक्षु और चरणवत् हैं। सर्वत्र उसी की दर्शन शक्ति और गतिशक्ति कार्य कर रही है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

भा०—(पुरुषः एव इदं सर्वम्) यह सब कुछ वह पुरुष ही है (यद् भूतं यत् च भव्यम्) ये जो भूत अर्थात् उत्पन्न और जो भव्य अर्थात् आगे भी उत्पन्न होने वाले कार्य और कारण हैं। (उत) और वह (अमृतत्वस्य ईशानः) अमृतस्वरूप मोक्ष का स्वामी है, (यत्) जो (अन्नेन) अन्न से (अति रोहति) सर्वोपरि है। वही समस्त प्राणियों के अन्न अर्थात् भोग्य कर्मफल का स्वामी होकर उन सब पर वश किये हुए है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य महिमा एतावान्) इस जगत् का महान् सामर्थ्य इतना है पर (पूरुषः) वह सर्वशक्तिमान् इस जगत् में व्यापक प्रभु (अतः ज्यायान्) इससे कहीं बड़ा है। (विश्वा भूतानि) समस्त उत्पन्न पदार्थ इस के (पादः) एक चरणवत् हैं। (अस्य त्रिपात्) इस के तीन चरण (दिवि) प्रकाशमय स्वरूप में (अमृतं) अविनाशी अमृत रूप हैं।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

भा०—(त्रिपात् पूरुषः) तीन चरण वाला, जो पूर्व अमृत स्वरूप कहा है, वह (ऊर्ध्वः) सब से ऊपर (उत् ऐत्) सर्वोत्तम रूप से जाना जाता है, (अस्य पादः पुनः इह अभवत्) इसका व्यक्त स्वरूप एक चरणवत्

यहां जगत रूप से प्रकट है। (ततः) वह व्यापक प्रभु ही (विश्वङ् वि अक्रमत्) सर्वत्र व्यापता है। (स-अशन-अनशने अभि) जो 'अशन' अर्थात् भोजन व्यापार से युक्त प्राणिगण, चेतन और 'अनशन' अर्थात भोजन न करने वाले अचेतन, जड़ अथवा व्यापक और अव्यापक पदार्थ सब में वही विद्यमान है।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ गीता ॥

मैं जगत् भर को विशेष रूप से थाम कर बैठा हूं। मेरे एक अंश में जगत् स्थिर है।

तस्मा॑द्विरा॒ळ॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः।

स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(तस्मात्) उससे (विराट् अजायत) विराट् अर्थात् ब्रह्माण्ड रूप महान् शरीर समस्त शरीरों का समष्टि देह विविध पदार्थों से प्रकाशित, उत्पन्न हुआ, (विराजः अधि पूरुषः) उस विराट् ब्रह्माण्डमय देह के ऊपर अध्यक्ष रूप से 'पुरुष' देह में आत्मा, वा नगर में राजा के तुल्य ब्रह्माण्ड में स्वामी के तुल्य वह परम पुरुष है। (स जातः) वह व्यक्त होकर (अति अरिच्यत) सब से बड़ा होता है। वा परमेश्वर समस्त प्राणियों से अतिरिक्त, सब से पृथक् रहता है। (पश्चाद् भूमिम्) विराट् के प्रकट होने के उपरान्त, प्रभु ने भूमि को उत्पन्न किया (अथो पुरः) उसके अनन्तर नाना शरीर उत्पन्न किये। इति सप्तदशो वर्गः ॥

यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत।

व॒स॒न्तो अ॑स्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्म इ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः ॥ ६ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् मनुष्य (यद् यज्ञं) जिस यज्ञ को (हविषा पुरुषेण) पुरुष रूप साधन से (अतन्वत) प्रकट करते हैं। (अस्य) उस यज्ञ का (वसन्तः आज्यम् आसीत्) वसन्त घृत के तुल्य रहा, (ग्रीष्मः इध्मः) ग्रीष्म ऋतु इंधन अर्थात् जलती लकड़ी के तुल्य रहा,

और (शरत् हविः) शरद् ऋतु हवि के तुल्य था। ऋतुओं से ब्रह्माण्ड में संवत्सर यज्ञ हो रहे हैं। जैसे घृत से अग्नि अधिक दीप्त होता है इसी प्रकार वसन्त के अनन्तर ग्रीष्म अधिक तीव्र हो जाता है। शरत् फलप्रद होने से हविरूप है। सूर्य की रश्मियां 'देव' हैं जो सवंत्सर यज्ञ को करते हैं।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

भा०—(तं यज्ञं) उस यज्ञ रूप सर्वपूज्य, (अग्रतः जातम्) सबसे पहले प्रकट हुए, (पुरुषं) पुरुष को (बर्हिषि) हृदयान्तरिक्ष में (प्रौक्षन्) यज्ञ में दीक्षित पुरुष के तुल्य ही अभिषिक्त करते हैं। (देवाः) विद्वान् गण, (साध्याः) साधना वाले, और (ये च ऋषयः) जो ऋषिगण हैं वे सब (तेन) उसी पुरुष के द्वारा (अयजन्त) यज्ञ उपासना करते हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।

पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ ८ ॥

भा०—(सर्वहुतः) समस्त जगत् को अपने भीतर आहुतिवत् लेने वाले, सर्वपूज्य (यज्ञात्) यज्ञरूप (तस्माद्) उस परमेश्वर से (पृषत् आज्यं संभृतम्) तृप्तिकारक, सर्वसेचक, वर्धक, प्राणदायक अन्नादि और घृत, मधु, जल, दुग्ध आदि भी (सं-भृतम्) उत्पन्न हुआ है। (तान् पशून् चक्रे) वह परमेश्वर ही उन पशुओं, प्राणियों को भी बनाता है जो (वायव्यान्) वायु में उड़ने वाले पक्षी हैं। (आरण्यान्) जंगल में रहने वाले सिंह आदि और (ये च ग्राम्याः) और जो पशु ग्राम के गौ भैंस आदि हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

भा०—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) सर्वोपास्य यज्ञस्वरूप (सर्व-हुतः) सर्व जगत्-मय विराट् रूप परम पुरुष को अपने में धारण करने वाले परमेश्वर से (ऋचः) ऋचाएं, (सामानि) सामगण (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए। (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्) उससे छन्द उत्पन्न हुए। (तस्मात्) उससे (यजुः अजायत) यजुर्वेद उत्पन्न हुआ। 'छन्दांसि'-पद से अथर्ववेद का ग्रहण है। (दया०)

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—(तस्मात् अश्वाः अजायन्त) उससे अश्व उत्पन्न हुए और उससे वे पशु भी उत्पन्न हुए (ये के च) जो भी (उभयादतः) दोनों जबड़ों में दांतों वाले हैं। (तस्मात्) उससे (गावः ह जज्ञिरे) गौ आदि जन्तु भी उत्पन्न हुए, (तस्मात् अजावयः जाताः) उससे बकरी और भेड़ आदि छोटे पशु भी पैदा हुए। इत्यष्टादशो व र्गः॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥ ११॥

भा०—(यत्) जो (पुरुषं) पुरुष को (वि अदधुः) विशेष रूप से वर्णन किया तो (कतिधा) कितने प्रकारों से (वि अकल्पयन्) उसको विशेष रूप से कल्पित किया अर्थात् उस पुरुष को कितने भागों में विभक्त किया। (अस्य मुखम् किम्) इस पुरुष का मुख भाग क्या कहलाया, (बाहू कौ) दोनों बाहू क्या कहलाये और (ऊरू) जांघें क्या कहलाई और (पादौ कौ उच्येते) दोनों पैर क्या कहाये। इन समस्त प्रश्नों का उत्तर अगली ऋचा में देते हैं—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १२॥

भा०—(ब्राह्मणः अस्य मुखम्) ब्राह्मण इसका मुख (आसीत्) है। (राजन्यः बाहूकृतः) राजन्य इसके दोनों बाहू हैं। (यद् वैश्यः) जो वैश्य है (तत्) व (अस्य ऊरू) इसकी जांघें और वह पुरुष (पद्भ्यां) पैरों के भाग से (शूद्रः अजायत) शूद्र बना। अर्थात् जिस प्रकार समाज में ब्राह्मण प्रमुख, क्षत्रिय बलशाली और वैश्य संग्रही और शूद्र मेहनत करने वाले होते हैं उसी प्रकार शरीर में भी देहवान् आत्मा के भिन्न २ भागों की कल्पना विद्वानों ने की है। उसमें शिर भाग गले तक ब्राह्मण के तुल्य ज्ञान संग्रह करने वाला और अन्यों को ज्ञान मार्ग से लेजाने वाला है। बाहुएं, और छाती, शत्रु को मारने, शरीर को बचाने और वीर कर्म करने के लिये हैं और पेट और जांघ का भाग अन्न-भोजन का संग्रह वैश्य के समान करता और शरीर के अन्य अंगों को उचित रूप में पहुंचाता है, इसी प्रकार पैर शरीर को अपने ऊपर मज़दूर वा सेवकों के समान ढोते और उनकी आज्ञा पालन करते हैं। इस व्याख्यान से जन समुदाय और शरीर में अंग-समुदाय की तुलना करके चारों वर्णों के कर्त्तव्य भी वेद ने कहे हैं।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

भा०—(मनसः) मन अर्थात् मनन करने के सामर्थ्य से (चन्द्रमा जातः) चन्द्र हुआ। (चक्षोः) रूप दर्शन के सामर्थ्य से (सूर्यः अजायत) सूर्य हुआ। (मुखाद् इन्द्रः च अग्निः च) और मुख से इन्द्र और अग्नि, विद्युत् और आग अर्थात् तेजस्तत्त्व हुए। और (प्राणात्) प्राण से (वायुः अजायत) वायु हुआ।

जिस प्रकार पहले दो मन्त्रों में पुरुष, सदेह आत्मा की तुलना विशाल जन समुदाय की व्यवस्था से की है उसी प्रकार उस की तुलना विशाल ब्रह्माण्ड से भी की गई है। अर्थात् जिस प्रकार जगत् रूप विराट् देह में

चन्द्र है उसी प्रकार शरीर में मन है। जिस प्रकार चन्द्र मुख्य सूर्य से प्रकाशित होकर शीतल प्रकाश देता है रात्रि के अन्धकार में भी ज्योति देता है उसी प्रकार आत्मा के चैतन्य से मन चेतन है जो मनोमय संकल्प-विकल्पात्मक ज्योति पार्थिव निश्चेतन देह में सर्वत्र प्रकाश करती है। जिस प्रकार विशाल जगत् में सूर्य महान् ज्योति है और बाह्य जगत् को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार देह में चक्षु है जो बाह्य स्थूल जगत् को प्रकाशित करती, उसका ज्ञान हमें प्रदान करती है चक्षु से सभी ज्ञानेन्द्रियों का ग्रहण करना चाहिये जो हमें अनेक पदार्थों का ज्ञान कराते हैं। जिस प्रकार जगत् में सूर्य के अतिरिक्त भी अग्नि और विद्युत् ये दो तेज विद्यमान हैं उसी प्रकार देह में भी दो ज्योतियें हैं दोनों मुख में विद्यमान हैं। एक तो इन्द्र अहंतत्त्व वा ओज, जो मुख पर कान्ति रूप से चेतना रूप से रहता है, दूसरा अग्नि जो वाणी और पेट की अग्नि के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार जैसे पञ्चभूतमय विराट् जगत् में वायु अन्तरिक्ष में बहता है उसी प्रकार पञ्चभूतमय इस देह—जगत् में प्राण हैं। ये शरीर के मध्य भाग छाती, फेंफड़ों में गति करते और जलों, रुधिरों के हित देह भर में व्यापते हैं। इसी प्रकार महान् आत्मा, प्रभु परमेश्वर की इस आत्मा के तुल्य ही मन, चक्षु, मुख, प्राण आदि शक्तियों की कल्पना करके उन से विराट् जगत् में चन्द्र, सूर्य, इन्द्र (विद्युत्) अग्नि, वायु आदि महान् शक्तिमय तत्त्वों की उत्पत्ति या प्रकट होने की व्यवस्था जाननी चाहिये।

नाभ्या॑ आसीद॒न्तरि॑क्षं शी॒र्ष्णो द्यौः सम॑वर्तत।
प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिशः॒ श्रोत्रा॒त्तथा॑ लो॒काँ अ॑कल्पयन् ॥ १४ ॥

भा०—(नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत्) नाभि से अन्तरिक्ष को कल्पित किया है। (शीर्ष्णः) सिर भाग से (द्यौः सम् अवर्त्तत) विशाल आकाश कल्पित हुआ, (पद्भ्यां भूमिः) पैरों से भूमि और (श्रोत्रात्

दिशः) श्रोत्र अर्थात् कानों से दिशाएं (तथा लोकान् अकल्पयन्) और इस प्रकार से समस्त लोकों की कल्पना की है।

यहां भी पूर्व मन्त्र के समान ही विराट् जगन्मय देह के अन्तरिक्ष, द्यौ, भूमि, दिशा और अन्य लोकों के तुल्य नाभि, शिर, पैर, श्रोत्र इन्द्रिय तथा अन्यान्य अंगों की कल्पना जाननी चाहिये। इसी प्रकार जगत् के इन २ अंगों को देख कर परमेश्वर, महान् आत्मा की उन २ अनेक शक्तियों वा सामर्थ्यों को ही उनका मूल कारण वा आश्रय जानना चाहिये।

लोक-संमित पुरुष और पुरुष-सम्मित लोकों का विस्तृत वर्णन देखो (चरकसंहिता—शारीरस्थान शरीरविचयाध्याय० ५)

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

भा०—देवयज्ञ का वर्णन करते हैं। (यत्) जो (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ, परस्पर संगति करते हुए (देवाः) देव, इन्द्रियें वा पञ्चभूतादि, (पशुम्) द्रष्टा, चेतन (पुरुषं) पुरुष को (अबध्नन्) बांध लेते हैं। उस समय (अस्य) इस आत्मा चेतन की (सप्त परिधयः) सात परिधियें, तथा (त्रिः सप्त समिधः कृताः) २१ समिधाएं बनी हैं। यह अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप है, जिससे सूक्ष्म पञ्च तन्मत्राएं ही इन्द्रिय रूप देव होकर परस्पर संगति और शक्ति के दान-आदान पूर्वक यज्ञ रच रहे हैं। इसी प्रकार विशाल ब्रह्माण्ड में भी विद्वानों ने एक महान् यज्ञ की रचना वा कल्पना की है। उसमें उस परम प्रभु सर्वद्रष्टा पुरुष को योगी, ध्यानी, जन अन्तःकरण में ध्यान योग से बांधते हैं। अथवा पञ्चभूत रूप देव महत्, अंहकारादि विकृति ये उस प्रभु व्यापक पुरुष को पशु अर्थात् सर्वोपरि द्रष्टा साक्षी रूप से बांधते, अर्थात् अपने ऊपर सर्पोपरि शासक प्रभु को अध्यक्ष रूप से व्यवस्थित वा नियमबद्ध मानते हैं। इस प्रकार यद्यपि परमेश्वर जीव के समान बद्ध नहीं तो भी धर्मात्मा राजा के तुल्य जगत् को नियमों में

बांधता हुआ स्वयं भी उन नियमों में बद्ध होता है। राजा यदि प्रजावर्ग को बांधता है तो प्रकारान्तर से प्रजावर्ग राजा को भी व्यवस्थित करते हैं क्योंकि यह व्यवस्था परस्परापेक्षित है। उस दशा में इस ब्रह्माण्ड की सात परिधियां हैं। गोल चीज़ के चारों ओर एक सूत से नाप के जितना परिमाण होता है उसको 'परिधि' कहते हैं सो जितने ब्रह्माण्ड में लोक हैं ईश्वर ने उन एक २ के ऊपर सात २ आवरण बनाये हैं। एक समुद्र, दूसरा त्रसरेणु, तीसरा मेघ मण्डल अर्थात् वहां का वायु चौथा वृष्टि जल, उसके ऊपर पांचवाँ वायु, छठा अत्यन्त सूक्ष्म धनंजय वायु, और सातवाँ सूत्रात्मा वायु जो बहुत सूक्ष्म है। यह सात आवरण एक दूसरे के ऊपर विद्यमान हैं (दया०)। इस समस्त ब्रह्माण्ड के घटक २१ पदार्थ २१ समिधा के तुल्य हैं। प्रकृति, महान्, बुद्धि आदि अन्तःकरण और जीव, यह एक सामग्री परम सूक्ष्म रूप में हैं। इनके दश इन्द्रियगण, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, दो चरण, दो हस्त, गुदा और उपस्थ और पांच तन्मात्राएं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पांच भूत पृथिवी, आपः, तेज, वायु और आकाश। ये सब मिलकर २१ सामग्रियां ब्रह्माण्ड महायज्ञ की २१ समिधाएं हैं। इसके अवयव रूप से अनेक तत्व हैं। इन सब में देव, विद्वान्गण परमेश्वर को ही सर्वसंचालक, सर्वघटक रूप से ध्यान करते और उसी को बांधते अर्थात् उसी की व्यवस्था नियत करते हैं।

इसके अनुकरण में यह वैदिक यज्ञ भी प्रवृत्त होता है—यज्ञ में सात परिधियां होती हैं, ऐष्टिक आहवनीय की तीन और उत्तर वेदी की तीन और सातवीं आदित्य 'परिधि' मानी जाती है। और २१ समिधाएं, काष्ठ की बनाई जाती हैं। जो संवत्सर यज्ञ में १२ मास, पांच ऋतु, तीन लोक और २१ वां आदित्य इनकी प्रतिनिधि होती हैं। वे जिस प्रकार सर्वद्रष्टा, सूर्य रूप पुरुष को व्यवस्थित करते हैं उसी प्रकार अध्यात्म यज्ञ में आत्मा को और यज्ञ में पशु को बांधते हैं।

संवत्सर यज्ञ किस प्रकार का वेद ने बतलाया है एतद्विषयक यजुर्वेद में 'यत् पुरुषेण०' । आदि मन्त्र विशेष हैं।

यज्ञेन॑ यज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् । ते ह॒ नाकं॑ महि॒मान॑: सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः॥१६॥१९॥७

भा०—(यज्ञेन, यज्ञम् अयजन्त) यज्ञ से यज्ञ की संगति करते हैं और यज्ञ, आत्मा से ही यज्ञ, सर्वोपास्य प्रभु की उपासना करते हैं क्योंकि (तानि) वे ही (धर्माणि) संसार को धारण करने वाले अनेक बल (प्रथमानि) सर्वश्रेष्ठ, सब के मूलकारण रूप से (आसन्) होते हैं। (ते ह) और वे ही निश्चय से (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले होकर (नाकं सचन्त) परम सुख, आनन्दमय उस प्रभु को सेवते, और प्राप्त करते हैं (यत्र) जिस में (पूर्वे) पूर्व के, ज्ञान से पूर्ण, (साध्याः) साधना से सम्पन्न और अनेक साधनों वाले (देवाः) ज्ञान से प्रकाशित, सब को ज्ञान देने वाले, विद्वान् जन (सन्ति) रहते हैं। वे प्रभु के उपासक, मुक्त होकर मोक्ष को भोगते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[९१]

ऋषिः अरुणो वैतहव्यः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृज्जगती । २, ४, ५, ९, १०, १३ विराड् जगती । ८, ११ पादनिचृज्जगती । १२, १४ जगती । १५ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

सं जा॑गृ॒वद्भि॒र्जर॑माण इध्यते॒ दमे॒ दमू॑ना इ॒षय॑न्नि॒ळस्प॒दे । विश्व॑स्य॒ होता॑ ह॒विषो॒ वरे॑ण्यो वि॒भुर्वि॒भावा॑ सु॒षखा॑ सखीय॒ते ॥१॥

भा०—(जागृवद्भिः) जागरण करने वाले, नित्य सावधान, ज्ञानवान्, अप्रमादी, पुरुषों द्वारा (जरमाणः) स्तुति किया जाता हुआ, (दमे)

गृह में (दमूनाः) अग्नि के तुल्य, (दमे) समस्त जगत् के दमन, सम्यक् प्रकार से संचालन कार्य में (दमूनाः) दान्त चित्त वाला, (इडः पदे इषयन्) भूमि के प्राप्त करने में सेनाओं को संञ्चालित करने वाले राजा के तुल्य (इडः पदे इषयन्) वाणी के मार्ग में समस्त जनों को प्रेरित करता हुआ, (विश्वस्य हविषः होता) समस्त हवि के ग्रहण करने वाले यज्ञ-अग्नि के तुल्य, (हविषः विश्वस्य होता) हविवत् समस्त जगत् को अपने भीतर अन्नवत् लीलनेहारा, समस्त जगत् का अत्ता, भोक्ता, (वरेण्यः) सब से वरण करने योग्य, (विभुः) व्यापक, विशेष रूप से सर्वत्र सत्तावान्, (वि-भावा) विशेष कान्ति से सम्पन्न, (सखीयते सुसखा) सखाभाव से रहने वाले के हितार्थ उत्तम मित्र वह प्रभु है ।

स द॑र्शतश्री॒रति॑थिर्गृ॒हेगृ॑हे॒ वने॑वने शिश्रिये तक्व॒वीरि॑व ।
जनं॑जनं॒ जन्यो॒ नाति॑ मन्यते॒ विश॒ आ क्षे॑ति वि॒श्यो॒३॒॑ विशं॑विशम् ॥२॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (दर्शत-श्रीः) दर्शनीय विभूति वाला, (गृहे-गृहे अतिथिः) घर २ में अतिथि के तुल्य पूज्य एवं (गृहे-गृहे) प्रत्येक ग्रहण करने योग्य पदार्थ में बाह्य सत्ता को अतिक्रमण कर के अतीन्द्रिय रूप में विद्यमान, अन्तर्व्यापक (वने-वने) काष्ठ २ में (तक्वीः इव) व्यापक अग्नि के तुल्य (वने-वने) प्रत्येक जल बिन्दु, या प्रत्येक ऐश्वर्य युक्त पदार्थ में (शिश्रिये) शोभा को प्राप्त है, वह (जन्यः) समस्त उत्पन्न होने वाले प्राणियों का हितकारी और स्वयं भी समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला है वह (जनं-जनं) प्रत्येक प्राणी में व्यापक रह कर भी (विशः) प्रजाओं को वा लोकों को (न अति मन्यते) अभिमान से तिरस्कृत नहीं करता, वह किसी की भी उपेक्षा नहीं करता, प्रत्युत वह (विश्यः) प्रजाओं का हितकारी होकर (विशं-विशं आ क्षेति) प्रत्येक प्रजा के भीतर राजावत् निवास करता है ।

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित्।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः॥३॥

भा०—हे (अग्ने) सबके नायक, सबको सन्मार्ग में लेजाने हारे प्रभो ! तू (दक्षैः) सब बलों से (सु-दक्षः) उत्तम बलशाली है। तू (क्रतुना सु-क्रतुः असि) कर्म सामर्थ्य और प्रज्ञासामर्थ्य से उत्तम कर्म और प्रज्ञावाला है। तू (काव्येन) बुद्धिमान् जनों के उपयोगी ज्ञानमय वेद द्वारा ही (विश्ववित् कविः असि) समस्त संसार का जानने और जनाने द्वारा, क्रान्तदर्शी विद्वान् है। (यानि) जिन नाना ऐश्वर्यों को (द्यावा च पृथिवी च पुष्यतः) प्रकाशमय सूर्य, चन्द्र और पृथिवीवत् विस्तृत भूमि और आकाश दोनों पुष्ट करते हैं उन सब (वसूनां) ऐश्वर्यों और बसने वाले समस्त प्राणियों का भी (त्वम्) तू (एकः इत् क्षयसि) अकेला, अद्वितीय ही स्वामी है।

प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः॥४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वयंप्रकाश आत्मन् ! तू (प्रजानन्) सर्वोत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (इडायाः पदे) भूमि के स्थान पर (घृतवन्तं योनिम्) जिस प्रकार बीज जमता है, अग्नि जिस प्रकार भूमि पर घृतयुक्त काष्ठ में रहता है और जिस प्रकार (इडायाः) भूमि रूप स्त्री के देह में ऋतु-कालानुसार या निषिक्त वीर्य से युक्त गर्भ में आत्मा विराजता है उसी प्रकार जल युक्त स्थान में (ऋत्वियम्) ऋतु-अनुसार (इडायाः पदे) वाणी, अति प्रबलतर इच्छा के भक्ति द्वारा ज्ञान वा प्राप्त करने योग्य रूप में (ऋत्वियम्) ऋतु अर्थात् ज्ञानी पुरुषों से प्राप्त करने योग्य (घृतवन्तम्) प्रकाश व तेज से युक्त (योनिम्) स्वरूप को (आ असदः) प्राप्त है। (ते) तेरी (एतयः) मतियें, ज्ञान वा प्राप्तियें, (उषसाम् इव एतयः)

उषाकालों के आगमनों के समान और (सूर्यस्य रश्मयः) सूर्य की किरणों के तुल्य (अरेपसः) निष्पाप, शुद्ध (चिकित्रे) जाने जाते हैं।

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये॥५।२०॥

भा०—(वर्ष्यस्य इव विद्युतः) वर्षने वाले विद्युत् से युक्त चमचमाते मेघ की चमकती (श्रियः) शोभा या कान्तियों के तुल्य (तव श्रियः चिकित्रे) तेरी कान्तियां जानी जाती हैं। और (तव श्रियः) तेरी कान्ति (उषसां केतवः न) प्रभात वेलाओं की रश्मियों के तुल्य प्रतीत होती हैं। (यत्) जिस प्रकार (अग्निः वनानि अभि-सृष्टः स्वयं परि चिनुते) काष्ठों के साथ लगकर स्वयं उसको जलाने लगता है उसी प्रकार (यत् ओषधीः अभिसृष्टः) जब आत्मा देहवान् होकर ओषधियों की ओर जाता है तो (स्वयं) आप से आप (आस्ये अन्नम् परि चिनुषे) मुख में अन्न, अर्थात् खाद्य पदार्थ को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार परमेश्वर भी (ओषधीः अभि-सृष्टः) अग्नि आदि शक्तियों से सम्पन्न होकर (अन्नम्) अन्नवत् समस्त जगत् को अपने भीतर लील लेता है। इति विंशो वर्गः॥

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा॥६॥

भा०—(ओषधीः ऋत्वियं गर्भम्) ओषधियें जिस प्रकार ऋतु-अनुसार प्राप्त गर्भ को धारण करती हैं और (आपः अग्निम्) जिस प्रकार जल तत्त्व अपने भीतर अग्नि तत्त्व को वा मेघस्थ जल विद्युत् अग्नि को धारण करते और (जनयन्त) प्रकट करते हैं, (वनिनः वीरुधः तम् अग्निम्) और जिस प्रकार वन की ओषधियें उस अग्नि को अपने में धारण करती हैं उसी प्रकार (ओषधीः मातरः) वीर्य को धारण करने वाली माताएं (तम्) उस (अग्निम्) स्वप्रकाश, (समानम्) ज्ञान से युक्त आत्मा को

(ऋत्वियम् गर्भम्) ऋतु-अनुसार प्राप्त गर्भ के रूप में (दधिरे जनयन्त) धारण और उत्पन्न करती हैं। और (अन्तर्वतीः) वे गर्भिणी होकर (विश्वहा च सुवते) सर्वदा उत्पन्न करते हैं।

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृपु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक्शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः॥७॥

भा०—जिस प्रकार (वात-उपधूतः) वायु से भभका हुआ अग्नि (वशान्) अपने इच्छानुसार चमकते काष्ठों को (वेविषत्) व्याप जाता है उसी प्रकार यह आत्मा (वात-उपधूतः) प्राण वायु से प्रेरित एवं प्रकाशित और (इषितः) इच्छावान् होकर (तृपु) शीघ्र ही, (यत्) जब हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (अन्ना-अनु) अन्नों के तुल्य खाद्य वा भोग्य पदार्थों को (वेविषत्) प्राप्त करता और (वशान्) काम्य लोकों को (वितिष्ठसे) विशेष रूप से प्राप्त करता है, तब (ते शर्धांसि) तेरे नाना बल, (यथा रथ्यः) रथ में जुते अश्वों के तुल्य और (धक्षतः अजराणि शर्धांसि इव) जलाने वाले अग्नि के रथादि प्रेरक बलों के तुल्य (पृथक् यतन्ते) पृथक् २ यत्न करते हैं। वे आंख नाक चक्षुओं के रूप में पृथक् २ नाना कर्म करते हैं। वे अग्नि द्वारा सञ्चालित यन्त्रों के तुल्य अपना २ कार्य करते हैं।

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम्।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत्॥८॥

भा०—हम लोग (मेधाकारं) उत्तम बुद्धि के उत्पन्न करने वाले, ज्ञान और सन्मति के देने वाले, (विदथस्य प्र-साधनं) ज्ञान, लाभ, और यज्ञ की उत्तम रीति से साधना करने वाले, (होतारं) सब सुखों के देने वाले वा प्रेम से सबको अपने पास बुलाने वाले, (परि-भूतमं) सर्वत्र व्यापक, सब से महान् (मतिं) ज्ञान-स्वरूप (अग्निम्) तेजःस्वरूप प्रभु

को हम (आ वृणीमहे) वरण करते हैं, उसी से सब वस्तुओं की याचना करते हैं। (समानम् इत्) हम उसे ही सर्वत्र सब के प्रति समान जानते हैं और (तम् इत् अर्भे हविषि) उसको ही अल्प से अल्प पदार्थ के निमित्त में भी प्रार्थना करते हैं। (महे) और महान् पदार्थ या कर्मफलादि के निमित्त भी (तम् इत् वृणते) उस ही की प्रार्थना करते हैं। हे प्रभो! (त्वत् अन्यं न वृणते) तेरे से भिन्न दूसरे को ये विद्वान् लोग नहीं वरते हैं।

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः॥९॥

भा०—(यत्) जब (देवयन्तः) देव, सर्वसुखदाता, स प्रकाशक प्रभु की कामना करने वाले, (हविष्मन्तः) अन्नादि नाना पदार्थों और साधनों से सम्पन्न, (वृक्त-बर्हिषः) विघ्नों को कुशाओं के तुल्य छेदन करने वाले, (मनवः) ज्ञानी पुरुष (प्रयांसि) नाना अन्नों और साधनों को धारण करते हैं (अत्र) इस अवसर में हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप अग्ने! प्रभो! (त्वायवः) तेरी कामना करने वाले, तुझे चाहने वाले, तेरे भक्त, (वेधसः) कर्मकर्त्ता, विद्वान् जन, (विदथेषु) ज्ञान सत्संगों और यज्ञों में (त्वाम् होतारं वृणते) तुझ दाता से प्रार्थना करते हैं।

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे १०॥२१

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! ज्ञानस्वरूप! (तव होत्रम्) होता का कर्म तेरा है (ऋत्वियं पोत्रं तव) ऋतु २ के अनुकूल होने वाला पोता का कार्य भी तेरा है, (तव नेष्ट्रम्) नेष्टा का कार्य भी तेरा ही है, (ऋतयतः अग्नित् त्वम्) यज्ञ करने वाले का अग्नीध्र भी तू ही है। (तव प्रशास्त्रम्) प्रशास्ता का काम भी तेरा ही है। (त्वं अध्वरीयसि) अध्वर्यु का कार्य भी तू ही

करता है। तू ही (ब्रह्मा च असि) ब्रह्मा है। और (नः दमे) हमारे घर में (गृहपतिः च असि) गृह-स्वामी, यजमान भी तू ही है। विश्व में प्रभु और देह में आत्मा ही यज्ञ के होता, पोता, नेष्टा, अग्नीध्र, प्रशास्ता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और यजमान हैं।

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति।
तस्य होता भवसि यासि दूत्यमुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥

भा०—(अग्ने) ज्ञानमय, जीवनस्वरूप ! (यः मर्त्यः) जो मनुष्य (अमृताय) मोक्ष प्राप्त करने के लिये, (समिधा तुभ्यं दाशत्) समिधा रूप से अपने को तेरे समर्पित करता है, अथवा (हविःकृति) हवि रूप अपने को देने के कार्य में तुझे सौंपता है तू (तस्य होता भवसि) तू उसको अपने समीप बुलाने वाला होता है, तू उसी को (दूत्यं यासि) दूत के तुल्य नये से नया ज्ञान देने वाला होता है, तू (उप ब्रूषे) उसके समीप होकर गुरुवत् उपदेश करता है, तू (तस्य यजसि) उसे देव, पिता वा माता के समान ज्ञान, धन प्रदान करता है, और (तस्य अध्वरीयसि) उसके हिंसारहित यज्ञ की कामना करता है।

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् १२

भा०—(यासु वृद्धासु) अर्थ, गुण आदि में समृद्ध जिन वाणियों के आश्रय पर (वर्धनः चित्) सबको बढ़ाने वाला प्रभु (चाकनत्) समस्त उपासकों को चाहने लगता है, (अस्मान्) हमारी (इमाः मतयः) ये बुद्धियां, (इमाः वाचः) ये वाणियां, (इमाः ऋचः) ये ऋचाएं, स्तुतियां, (इमाः गिरः सु-स्तुतयः) ये उत्तम २ स्तुतियुक्त वाणियां, (वसूयवः) धनैश्वर्य को चाहने वाली प्रजाओं के तुल्य ही (वसवे जात-वेदसे)

सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्यापक प्रभु को प्राप्त करने के लिये (सम् अगमत) एक साथ प्राप्त होती हैं।

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥१३॥

भा०—मैं (अस्मै) इस (प्रत्नाय) अति पुरातन, सदातन, (उशते) सब के प्रिय, प्रभु की (इमां) इस (नवीयसीम्) अति उत्तम (सु-स्तुतिं) उत्कृष्ट स्तुति को (वोचेयम्) कहूं। वह (नः शृणोतु) हमारी स्तुति-प्रार्थना सुने। (पत्ये) पति के लिये (उशती) कामना वाली, (सु-वासाः) सुन्दर वस्त्र पहिने, ऋतुस्नाता (जाया इव) स्त्री के तुल्य मैं (अन्तरा) भीतर (अस्य हृदि) इसके हृदय में (नि-स्पृशे भूयाः) खूब स्पर्श करने, उसके हृदय के अन्तःस्तल तक पहुंचने वाला होऊं। अथवा प्रभु ! तू (अस्य) इस भक्त के (हृदि अन्तरा नि-स्पृशे भूयाः) हृदय के अन्तःस्तल तक स्पर्श करने वाला हो।

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये॥१४॥

भा०—जिस प्रकार पशुपाल के अधीन (अश्वासः) अश्व, (ऋषभासः) बड़े २ बैल, (वशाः) गौएं और (मेषाः) भेड़े, बकरे आदि (अव-सृष्टासः) खुले छोड़ दिये जाते हैं और (आहुताः) फिर घर पर आजाते हैं उसी प्रकार (यस्मिन्) जिसके अधीन (अश्वासः) अश्वारोही, (ऋषभासः) श्रेष्ठ (उक्षणः) कार्य वहन करने वाले समर्थ पुरुष (वशाः) वशी और (मेषाः) विद्वान् वा वीरजन (अव-सृष्टासः) नियुक्त होकर दूर जाते और (आहुताः) आदरपूर्वक बुलाये जाते हैं उस (सोम-पृष्ठाय) ऐश्वर्य को धारण करने वाले (कीलाल-पे) आदरपूर्वक अर्घ्य जल का पान करने वाले वा कीलाल नाम उदक, सलिलमय प्रकृति के पालक

प्रभु (वेधसे) मतिमान् (अग्नये) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के लिये (चारुम्-मतिम्) उत्तम स्तुति वचन (जनये) प्रकट करता हूं ।

अहाव्यग्ने हुविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् १५।२२

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! तेजस्विन् ! (स्रुचि घृतम् इव) स्रुच, में जिस प्रकार यज्ञ से घृत और हवि की आहुति दी जाती है, उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ते आस्ये) तेरे मुख में (हविः अहावि) उत्तम ग्राह्य वचन हों । और (घृतम्) मुख पर तेज हो (चम्वि इव सोमः) चमस में सोम के तुल्य (चम्वि) तेरी सेना के आधार पर तेरा (सोमः) ऐश्वर्य हो । तू (अस्मे) हमें (वाजसनिं रयिम्) बल और अन्न देने वाला ऐश्वर्य, (प्रशस्तं सु-वीरम्) उत्तम, प्रशंसा योग्य, सुखदायी वीर जन और (बृहन्तं यशसम्) महान् यश (धेहि) प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[९२]

ऋषिः शार्यातो मानवः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ६, १२, १४ निचृज्जगती । २, ५, ८, १०, ११, १५ जगती । ३, ४, ९, १३ विराड् जगती । ७ पादनिचृज्जगती । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

युज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१॥

भा०—अग्नि के दृष्टान्त से प्रभु का वर्णन । हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोग अपने (यज्ञस्य होतारम्) यज्ञ, देवोपासना के होता, स्वीकार करने वाले ऐसे प्रभु को (अकृण्वत) स्वीकार करो जो अग्नि के तुल्य (यज्ञस्य होतारं) यज्ञ, आहुतिवत् योग को स्वीकार करने वाला और (रथम्) जो रथ में लगे अश्व के समान विश्व रूप रथ का संचालक है,

(विशां विश्पतिम्) प्रजाओं में राजा के तुल्य समस्त लोकों और जीव-प्रजाओं का पालक है, (अक्तोः अतिथिम्) रात्रिकाल में चन्द्र के तुल्य अतिथिवत् आह्लादक जनक और (अक्तोः अतिथिम्) दिन में आने वाले वा सर्वोपरि विराजने वाले सूर्य के तुल्य तेजस्वी है (विभावसुं) विशेष दीप्ति से युक्त तेजोमय ऐश्वर्य का स्वामी है। (शुष्कासु शोचन्) सूखी लकड़ियों में अग्नि के तुल्य, (हरिणीषु) समस्त शक्तियों के बीच देदीप्यमान (जर्भुरत्) सब को पालन पोषण करता हुआ, (वृषा) सब सुखों का वर्षक, बलवान्, (केतुः) ज्ञानवान्, (यजतः) सर्वोपास्य होकर (द्याम् अशायत) महान् आकाश एवं सूर्यादि में भी व्यापक है।

इममंञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम्।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥ २ ॥

भा०—(उभये) दोनों, ज्ञानी और अविद्वान जन, (इमम् अग्निम्) इस अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप (अंजः-पाम्) अन्न के रक्षक मेघ के तुल्य (अञ्जः-पाम्) ज्ञान, और प्रकाश के रक्षक वा अन्न को जाठराग्निवत् जगत् के भक्षण करने वाले 'अत्तारूप' (धर्माणम्) जगत् भर को धारण करने वाले (विदथस्य) ज्ञानमय यज्ञ का (साधनम्) साधन स्वीकार करते हैं। उसी (अक्तुम् न यह्वम्) तेजोमय सूर्य के तुल्य महान् (उषसः पुरोहितम्) प्रभातवेला के प्रकाशक, सर्गारम्भ के प्रकट करने वाले, तापदायक सूर्यादि के स्रष्टा, (पुरः-हितम्) सब के साक्षिवत्, (अरुषस्य) तेजोमय आत्मा के (तनून-पातं) प्राण के तुल्य शरीर को न गिरने देने वाले उस विश्वात्मा को विद्वान् लोग (निंसते) प्राप्त करते हैं। उस तक पहुंचते हैं।

बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य पणेः) इस स्तुतियोग्य प्रभु की (नीथा) वाणी,

और नाना ज्ञान (वंट्) सदा सत्य है। उनका (वि मन्महे च) विविध प्रकार से मनन करते और ज्ञान करते हैं। (अस्य अत्तवे) इसके खाने के लिये (वयः प्र-हुताः आसुः) नाना व्यापक शक्तियां अग्नि में आहुतियों के समान प्रदत्त हैं। (यदा) जब (घोरासः) घोर तपस्वी जन (अमृत-त्वम् आशत) अमृत तत्व को प्राप्त करते हैं (आत् इत्) अनन्तर ही (दैव्यस्य) देव इन्द्रियों, प्राणों सूर्यादि लोकों में व्यापक (जनस्य) सर्वोत्पादक प्रभु की वे (चर्किरन्) गुण-स्तुति करते हैं।

ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्य१रमतिः पनीयसी।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः॥४॥

भा०—(ऋतस्य प्रसितिः) महान् तेज का उत्तम बन्धनस्थान (द्यौः) सूर्य, (उरु व्यचः) महान् अन्तरिक्ष, और (अरमतिः) विशाल, (पनीयसी) अति स्तुत्य (मही) पृथिवी, ये (नमः) उसी के शासन में हैं। (इन्द्रः मित्रः वरुणः) विद्युत्, वायु, जल, (अथो) और (भगः) सेवन योग्य वा ऐश्वर्ययुक्त (सविता) सर्वोत्पादक, सर्वप्रकाशक सूर्य, (पूत-दक्षसः) ये सब पवित्र बल वाले होकर उसी ही के (नमः चिकित्रिरे) शासन का ज्ञान कराते हैं।

प्र रुद्रेण यथिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते॥५॥२३॥

भा०—(यथिना रुद्रेण) वेग से जाने वाले और गर्जना सहित वेग से जाने वाले मेघ से प्रेरित हुई (सिन्धवः) वेग से बहने वाली जल-धाराएं (अरमतिम् महीम्) विशाल भूमि को (तिरः दधन्विरे) आच्छादित करती हैं। (येभिः) जिन मरुद्गणों से (परि-ज्मा) चारों ओर व्यापने वाला मेघ (उरु-ज्रयः) बहुत वेगवान् होकर (जठरे वि रोरुवत्) अन्त-रिक्ष में विविध गर्जना करता है। और (विश्वम् उक्षते) समस्त विश्व

पर जल वर्षण करता है। उसी प्रकार (सिन्धवः) वेगयुक्त गति वाले प्राणगण वा रुधिर प्रवाह (रुद्रेण) रुद्र रूप आत्मा से प्रेरित होकर (मही तिरः दधन्विरे) इस भूमि के विकार से बने देह को व्यापते हैं। (येभिः) जिन प्राणों से व्याप्त अति वेगवान् होकर हृदय (जठरे रोरुवत्) शरीर के मध्य में ध्वनि करता है और (विश्वम् उक्षते) समस्त देह को सेंचता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥ ६ ॥

भा०—(रुद्राः मरुतः) सब को रुलाने वाले, प्राणगण, (क्राणाः) शरीर में सब कामना करने वाले हैं, वे (विश्व-कृष्टयः) समस्त मनुष्य-देहों में विद्यमान हैं। वे (श्येनासः) उत्तम रीति से देह में गति करते हुए (दिवः असुरस्य) तेजःस्वरूप प्राणों के दाता आत्मा के (नीडयः) आधारस्थान हैं। (अर्वशः अर्वशेभिः) अश्वों का स्वामी जिस प्रकार अश्वों से आगे बढ़ता है, उसी प्रकार (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला (अर्यमा) प्राणों का नियन्ता, (इन्द्रः) इस देह का संचालक आत्मा, (तेभिः देवेभिः) नाना अर्थों, विषयों की कामना करने और ज्ञान को प्रकाशित करने वाले उन इन्द्रियगणों से (चष्टे) समस्त तत्वों को देखता है।

इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥ ७ ॥

भा०—(शशमानासः) शम का अभ्यास करने वाले साधक वा स्तुतिकर्त्ता जन (इन्द्रे) शत्रुहन्ता, तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् पुरुष में और उसके आश्रय (भुजं) पालन और रक्षा को (आशत) प्राप्त करते हैं क्योंकि वह (दृशीके) देखने में (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी

और (पौंस्ये) पौरुष और बल कर्म में (वृषणः च) बलवान् मेघ, विद्युत् के तुल्य सबके जीवन, ऐश्वर्य, सुख, अन्न, जलादि का वर्षाने वाला है। और (ये नु) जो (अस्य अर्हणा प्र ततक्षिरे) इस प्रभु की नित्य अर्चना और स्तुति करते हैं वे (नृ-सदनेषु) मनुष्यों और प्राणों के विराजने के स्थानों में या नेतृपदों पर (युजं वज्रं कारवः) अन्यों को भी सत्कर्म में लगाने वाले बल को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिस्तन्नबाधितः॥८॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (तवीयसः इन्द्रात्) बलवान्, शत्रुहन्ता, तेजस्वी और मेघ, जल के विदारक सामर्थ्य वा ऐश्वर्यसे (हरितः सूरः चित्) तेजोमय सूर्य भी (भयते) भय करता है। (अस्य तवीयसः) इस बलशाली से (कः चित् भयते) सभी कोई वा जल वायु भी भय करता है। (भीमस्य वृष्णः) इस भयानक बरसते मेघ के तुल्य बलशाली, (अभिश्वसः) सर्वत्र श्वासवत् प्राण लेने वाले वायुवत् व्यापक इस प्रभु के (जठरात्) मध्य में (दिवे दिवे) प्रति दिन (सहुरिः) सबको पराजित करने वाला मेघ (अबाधितः) बाधा रहित होकर (स्तन्) गर्जता है।

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ९

भा०—(येभिः) जिन (एव-यावभिः) वेग से जाने वाले शक्तिशाली पदार्थों सहित (स्ववान्) स्वयं शक्तिशाली (शिवः) सब का कल्याणकारी (स्व-यशः) स्वयं अपने सामर्थ्य से यशस्वी है उन ही (नि-कामभिः) नितरां कान्तियुक्त जनों से वह (दिवः सिषक्ति) नाना कामनावान् जनों की अभिलाषाओं को पूर्ण करता है। हे विद्वान् पुरुषो! (अद्य) आज,

उसी (रुद्राय) गर्जते-बरसते मेघ के तुल्य, सुखों के वर्षक दुष्टों को रुलाने वाले, (शिक्वसे) शक्तिशाली (क्षयद्-वीराय) वीर पुरुषों को नाश करने वाले, वीर सेनापति के तुल्य एवं (क्षयद्-वीराय) वीरों को बसाने वाले, की (नमसा स्तोमं दिदिष्टन) विनय भाव से स्तुति करो।

ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे १०।२४

भा०—(बृहस्पतिः) महान् आकाश का पालक सूर्य और (वृषभः) जलवर्षक मेघ और (देवाः) सूर्य की रश्मियां ये सब (सोम-जामयः) जिस प्रकार 'सोम' अर्थात् ओषधि वनस्पतिगण को उत्पन्न करने वाले उनके बन्धुवत् हैं (ते) वे ही (प्रजायाः) समस्त उत्पन्न जीव-प्रजा के लिये (श्रवः वि अभरन्त) अन्न को नाना प्रकार से पुष्ट करते और प्रदान करते हैं उसी प्रकार (हस्पतिः) वेदवाणी का पालक गुरु और महती प्रकृति का स्वामी जगदीश्वर (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ, सर्वसुखों और ज्ञानों का दाता गुरु और जगत्-बीज का निषेक्ता प्रभु और (देवाः) विद्वान् जन एवं लोकोत्पादक पञ्चमहाभूतगण ये सब (सोम-जामयः) शिष्य के बन्धु तुल्य एवं जीवगण के उत्पादक, बन्धुवत् हैं। वे जीवों के शरीर धारण में कारण हैं। (अथर्वा) प्रजाओं को शान्ति देने वाला प्रजापालक (प्रथमः) श्रेष्ठ जन (यज्ञैः) नाना यज्ञों से (श्रवः वि धारयत्) अन्न को उत्पन्न करे वही (श्रवः विधारयत्) श्रवणीय ज्ञान विविध प्रकार के शिष्यों को धारण करावे और (भृगवः) भूमि और गौवों को पोषण करने वाले (दक्षैः) बलों उत्साहों से (सं चिकित्रिरे) भली प्रकार ज्ञान करे इसी प्रकार (भृगवः) वेद वाणियों के धारक तपस्वी शिष्य जन (दक्षैः) नाना कर्म-साधनों से (श्रवः संचिकित्रिरे) श्रवणीय ज्ञान का भली प्रकार अभ्यास करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ११

भा०—(ते हि) वे दोनों (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य माता पिता (भूरि-रेतसा) बहुत बल वीर्य पराक्रम वाले, और (नराशंसः) सब मनुष्यों से स्तुति किया हुआ, (चतुरङ्गः) चार अंगों वाला (यमः) नियन्ता, (अदितिः) सूर्यवत् तेजस्वी, (देवः त्वष्टा) दानशील, तीक्ष्ण तेजस्वी, उत्तम शिल्पी, (द्रविणोदाः) धन का देने वाला सम्पन्न पुरुष और (ऋभुक्षणः) उत्तम अन्न, धन, तेज को भोगने वाले, महान् पुरुष, (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति और (मरुतः) वायुवत् बलशाली वीर, विद्वान् और वैश्यजन और (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्य वाला प्रभु ये सब (अर्हिरे) पूजा करने योग्य हैं ।

उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् १२

भा०—(उत) और (उशिजां नः) उत्तम कामना वाले हमारी (उर्विया) बहुत २ स्तुति को (स्यः) वह (कविः) क्रान्तदर्शी, अन्तर्यामी, (अहिः बुध्न्यः) सर्वाश्रय, सर्वव्यापक ज्ञानी प्रभु (हवीमनि) यज्ञ में (शृणोतु) श्रवण करे । और (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र के तुल्य प्रकाशमान्, प्रतापी और आह्लादक जन, (दिविक्षिता) ज्ञान में निवास करने वाले, वा (दिवि क्षिता धिया विचरन्ता) आकाश और भूमि में बुद्धि और कर्म सामर्थ्य से विचरण करते हुए, विविध सुखों को भोगते हुए, उत्तम स्त्री पुरुष वर्ग (शमी-नहुषी) कर्मों द्वारा बद्ध रह कर (अस्य बोधतम्) इस प्रभु वा आत्मा का ज्ञान करें ।

प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् १३

भा०—(पूषा) पृथ्वीवत् सब का पोषण करने वाला प्रभु (नः चरथम् प्र अवतु) हमारे चर, प्राणिवर्ग की रक्षा करे। (विश्व-देव्यः) सब देवों का आश्रय, (अपां नपात्) जलों को न गिरने देने वाले (वायुः) वायु के सदृश बलवान् सर्वप्राणप्रद प्रजा को न गिरने देने वाला मुख्य पुरुष (नः अवतु) हमारी रक्षा करे। हे विद्वान लोगो! आप लोग (वातम्) सर्वव्यापक (आत्मानम्) आत्मा को (वस्यः अभि अर्चत) सर्वश्रेष्ठ रूप में उपासना करो। (तत्) उसी महान् आत्मा के सम्बन्ध में हे (सु-हवा) उत्तम यज्ञाहुति देने वाले स्त्री पुरुषो (यामनि) जीवन के संयमपूर्वक व्यवहार युक्त मार्ग में रह कर (श्रुतम्) ज्ञान का श्रवण किया करो।

विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वाणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् १४

भा०—(आसाम् अभयानाम् विशाम्) इन भय रहित प्रजाओं के बीच (अधि-क्षितम्) राजा के तुल्य सब के ऊपर शासक रूप से विराजते हुए, (स्व-यशसम्) अपने पराक्रम और बल से यशस्वी, उस प्रभु की हम (गीर्भिः गृणीमसि) नाना वेद-वाणियों से स्तुति करते हैं। उस (अदितिं) अखण्ड, अविनाशी, (अनर्वाणम्) अन्य से न चलने वाले, स्वतन्त्र, (युवानम्) जवान के तुल्य सदा बलशाली, (पतिम्) गृहपति के तुल्य समस्त प्रजाओं के पालक, (नृमनाः) मनुष्यों के बीच ज्ञानी के तुल्य उन पर अनुग्रह करने वाले, प्रभु की (अक्तोः) रात्रि दिन हम (विश्वाभिः ग्नाभिः) समस्त वाणियों से (गृणीमसि) स्तुति करते हैं।

रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम्।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति १५।२५

भा०—(अत्र) इस संसार में (पूर्वः अंगिराः) सब से पूर्व विद्यमान एवं सबका पालक प्रभु ज्ञानवान् होकर (जनुषा) जगत् की

उत्पत्ति द्वारा (रेभत्) उपदेश करता है। (ग्रावाणः) उपदेष्टा (ऊर्ध्वाः) उत्तम कोटि के ज्ञानी पुरुष उसी (अध्वरम्) अविनाशी प्रभु का (अभि चक्षुः) सर्वत्र, सब प्रकार से साक्षात् करते हैं। और (ऊर्ध्वा ग्रावाणः) ऊपर के मेघगण जिस महान् यज्ञ स्वरूप को दर्शाते हैं। (येभिः) जिनसे (विचक्षणः) विश्व का द्रष्टा (विहायाः अभवत्) आकाशवत् व्यापक महान् है। वही (स्व-धितिः) अपने सामर्थ्य से जगत् को धारण करने वाला, (सुमेकं) उत्तम जलसेचक, वर्धक और उत्तम मेघ से युक्त (पाथः) पालनकारी जलयुक्त मेघ को (वनन्वति) जलादि से युक्त मार्ग में प्रेरित करता है। सुमेकं सुमेघयुक्तं। अथवा मेकशब्दो मुख-वचनः। इति केचिद्। आद्यः संवत्सरो, क्रतवो वा इति स्कन्दस्वामी। ऋ० १। ११३। ३॥ इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[९३]

ऋषिस्तान्वः पार्थ्यः। विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१ विराट् पङ्क्तिः। ४ पादनिचृत् पङ्क्तिः। ५ आर्चीभुरिक् पङ्क्तिः। ६, ७, १०, १४ निचृत् पङ्क्तिः। ८ आस्तारपङ्क्तिः। ९ अक्षरैःपङ्क्तिः। १२ आर्ची पङ्क्तिः। २, १३ आर्ची-भुरिगनुष्टुप्। ३ पादनिचृदनुष्टुप्। ११ न्यङ्कुसारिणी बृहती। १५ पादनिचृद् बृहती। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

महि॑ द्यावापृथिवी भूतमु॒र्वी नारी॑ य॒ह्वी न रोद॑सी सद॒ नः।
तेभि॑र्नः पातं सह्य॑स ए॒भिर्नः॑ पातं शू॒षणि॑॥ १॥

भा०—हे (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमिवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (महि उर्वी) खूब विस्तृत और (नारी) उत्तम नरनारी होवो और (नः) हमारे बीच (यह्वी) शक्ति सामर्थ्य में महान् (रोदसी न) आकाश और भूमि के तुल्य परस्पर उपकारक (सदं) सदा होवें। अथवा आप दोनों (नः) हमें (सह्यसः) पराजयकारी

शत्रु से वा शत्रु-पराजयी राजा के (तेभिः) उन २ उपायों से (पातम्) रक्षा करो और (शूषणि) बल के निमित्त, (एभिः) इन २ उपायों से (नः पातम्) हमारी रक्षा करो ।

यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।

यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (दीर्घ-श्रुत्तमः) अति दीर्घ काल तक अनेक शास्त्रों का श्रवण करने वाला, (एनान् देवान् आ विवास) उन अनेक विद्वानों की सेवा शुश्रूषा करता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (यज्ञे-यज्ञे) समस्त यज्ञों में (देवान् सपर्यति) उत्तम विद्वान् जनों की (सुम्नैः) नाना सुख-साधनों से सेवा करता है ।

विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः ।

विश्वेहि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (विश्वेषाम्) सब के (इरज्यवः) स्वामी जनो ! (देवानाम्) देवों, वीरों, विद्वानों का (महः वाः) बड़ा भारी धन है । (विश्वे) आप सब लोग (हि) निश्चय से (विश्व-महसः) समस्त तेजों के धारण करने वाले, सर्व पूज्य, और (यज्ञेषु) यज्ञ के अवसरों पर (यज्ञियाः) यज्ञ अर्थात् दान-मान और पूजा के योग्य हो ।

ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।

कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥ ४ ॥

भा०—(अर्यमा) न्यायकारी, शत्रुओं और दुष्ट जनों का नियन्त्रण करने वाला (मित्रः) सब का स्नेही, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (परि-ज्मा) सर्वत्र व्यापक, और (नृणां स्तुतः) मनुष्यों में प्रशंसित (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, रोगों, दुःखों को दूर करने वाला, (पूषणः मरुतः) सब

के पोषक, दुष्टों के मारने वाले, वायुवत् तीव्र, वा स्थान २ पर जाने वाले मरुद् अर्थात् वैश्यगण, वीरगण और वर्षा जनक वायुगण और (भगः) ऐश्वर्य, वा स्वामी ये सब जन (मन्द्राः) स्तुत्य हैं (ते घ) वे सब जन (अमृतस्य राजानः) अमृत, कभी न नाश होने वाले अन्न, और ज्ञान, अमर आत्मा वा नित्य सुख के (राजानः) राजा हैं, वे उससे चमकने वाले हैं ।

उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(उत) और (यत्) जब (बुध्न्यः अहिः) अन्तरिक्ष मेघ वा सूर्य के तुल्य (बुध्न्यः) ज्ञाननिष्ठ, अमृत, अविनाशी आत्मा (एषाम् बुध्नेषु) इन प्राणों के बीच में (सचा सादि) इन के साथ इन में राजा वा प्रजापति के तुल्य विराजता है, तब (अपां) प्राणों के बीच (वृषण्वसू) बलशाली दो प्राण, (सूर्या मासा) जगत् में चन्द्र सूर्य के तुल्य (सधन्या) एक साथ गति करते हुए (सदनाय) यहां रहने के लिये (नः) हमें (नक्तं) रात्रिकाल में भी (उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें । इति षड्विंशो वर्गः ॥

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥ ६ ॥

भा०—(उत) और (अश्विना देवौ) वेग से जाने वाले देव, सुखप्रद, (शुभः पती) उत्तम कल्याणकारी कर्मों, व्रतों के पालक (मित्रा-वरुणौ) मित्र और वरुण, दिन और रात्रिवत् विद्वान् स्त्री और पुरुष, एवं उत्तम जन, (नः) हमारी (धामभिः) अनेक धारक-पोषक सामर्थ्यों से (उरुष्यताम्) रक्षा करें । (सः) वह (महः) महान् (रायः) ऐश्वर्यों को (आ ईषते) प्राप्त करता है और (धन्व इव दुरिता अति)

जल के समान दुखों और पापों को पार कर जाता है, जिसकी वे रक्षा करते हैं।

उत नो॑ रुद्रा चिन्मृळताम॒श्विना॒ विश्वे॑ देवासो॒ रथ॒स्पति॒र्भगः॑ ।
ऋ॒भुर्वाज॑ ऋभुक्षणः॒ परि॑ज्मा विश्ववेदसः ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (नः) हमें (रुद्रा चित् अश्विना) उत्तम उपदेश देने वाले, स्त्री पुरुष (मृडताम्) सुखी करें। (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् सुखी करें। (रथः-पतिः भगः) रथों का पालक, स्वामी ऐश्वर्यवान् हमें सुखी करे। (ऋभुः) सत्य ज्ञान से चमकने वाला (वाजः) बलवान्, ज्ञानी, ये (ऋभुक्षणः) सब महान् और (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी और (परि-ज्मा) सर्वत्रगामी वायु ये सब हमें सुखी करें।

ऋ॒भुर्ऋ॑भु॒क्षा ऋ॒भुर्वि॑ध॒तो मद॒ आ ते॒ हरी॑ जूजु॒वान॑स्य वा॒जिना॑ ।
दु॒ष्टरं॒ यस्य॒ साम॑ चि॒दृध॑ग्य॒ज्ञो न मानु॑षः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋभुक्षाः ऋभुः) वह महान् प्रभु, सत्य ज्ञान, प्रकाश से चमकने वाला है, (विधुतः) जगत् को रचने वाले प्रभु का (मदः) हर्ष और आनन्द भी (ऋभुः) महान् है। हे प्रभो! (जुजुवानस्य) सब को सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाले (ते हरी) तेरे धारण और आकर्षण करने वाले, महान् सामर्थ्य वाले (वाजिना) बल युक्त सूर्य चन्द्रवत् दोनों बल (आ) सर्वत्र विद्यमान हैं (यस्य साम चित् दुःस्तरं) जिसका एक समान बल भी दुस्तर, अपार, सर्वोपरि है और जो स्वयं (मानुषः नः यज्ञः ऋधक्) सब मनुष्यों के प्रति एक समान पूजनीय और सब से पृथक्, सब से महान् है।

कृ॒धी नो॒ अह्र॑यो देव सवितः॒ स च॑ स्तुषे म॒घोना॑म् ।
स॒हो न॒ इन्द्रो॒ वह्नि॑भि॒र्न्ये॑षां चर्षणी॒नां च॒क्रं र॒श्मिं न यो॑युवे ॥ ९ ॥

भा०—हे (देव सवितः) समस्त सुखों और बलों को देने वाले ! हे जगत् के उत्पन्न करने और चलाने वाले ! (नः अहृयः कृधि) हमें ऐसा उत्साही और निष्पाप कर कि हमें कभी लज्जा से मुंह झुकाना न पड़े। (सः च) वह तू (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानों में (स्तुषे) सब से अधिक स्तुति किया जाता है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु ही (एषाम् चर्षणीनाम्) इन समस्त लोकों के (सहः) वशकारी बल को (रश्मिम् चक्रं न) अश्वों के वशकारी रासों और रथ को चलाने वाले चक्र के तुल्य ही (नि यो युवे) नियन्त्रित करता है।

ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—हे (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य राजा और प्रजा के वर्गो ! (अस्मे एषु वीरेषु) हमारे इन वीरों में (महत्) बड़ा (विश्व चर्षणि) सर्वमनुष्योपयोगी, वा समस्त पदार्थों के तत्व को दर्शाने वाला (श्रव) श्रवण योग्य ज्ञान (धातम्) प्रदान करो। और (वाजस्य सातये) ज्ञान और बल को प्राप्त करने के लिये (महत् पृक्षम् धातम्) बहुत बड़ा परस्पर का प्रेम और अन्न प्रदान करो, (उत राया तुर्वणे पृक्षं धातम्) और शत्रुओं को पार करने वा उनको नाश करने के लिये धन द्वारा (पृक्षं) परस्पर का सम्पर्क प्रदान कराओ। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये
सदा पाह्यभिष्टये। मेदतां वेदता वसो ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने हारे प्रभो ! हे (सहसावन्) बलशालिन् ! (त्वम् अस्मयुः) तू हमें चाहता हुआ, हमारा स्वामी (शंसम्) किसी भी स्थान पर रहते हुए इस स्तुति करने हारे भक्त (अभिष्टये (कूचित् सन्तं एतं सदा पाहि) उसकी अभीष्ट सिद्धि के लिये निरन्तर रक्षा

करं। हे (वसो) सब में बसने वाले सर्वव्यापक, (मेदताम् अनिष्टये) स्नेह करने वालों के बीच में भी अपने स्तोताओं की अभीष्ट सिद्धि के लिये तू (सदा वेदत) सदा जान।

एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम्।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (सूर्ये तना न) सूर्य में जिस प्रकार रश्मियें विस्तृत प्रकाशमय ज्योति को विस्तारित करती हैं इसी प्रकार (सूर्ये) सब के सञ्चालक प्रभु के निमित्त (मे) मेरे (द्युतद्-यामानम्) चमकते मार्ग वाले, (एतम् स्तोमम्) इस स्तुति वचन को (वावृधन्त) बढ़ाओ बलशाली करो, अथवा मेरे लिये उस प्रभु की स्तुति वचनों का उपदेश करो। और (तष्टा इव) जिस प्रकार शिल्पी (नृणां संवननं:) शत्रु मनुष्यों को मारने वाले (अश्व्यं) शीघ्रगामी अश्वों से चलने वाले, (अनपच्युतं) न टूटने फिसलने वाले, रथ को बढ़ा कर बनाता है, उसी प्रकार वे विद्वान् लोग (नृणां संवननं) मनुष्यों में विभक्त करने योग्य, उनके सेवनीय, (अश्व्यं) अश्वों, इन्द्रियों से युक्त (अनपच्युतम्) दृढ़ शरीर वा स्तुति वचन की वृद्धि करें।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥ १३ ॥

भा०—(येषाम्) जिसकी स्तुति-उपासना, (राया युक्ता) देने योग्य धन से युक्त हैं, (एषां) उनकी वाणी (हिरण्ययी) हित और रमणीय (ववर्त) होती है। और (नेमधिता) संग्राम में उनके (पौंस्या) बलों के समान जिनके पौरुष क (वृथा इव) अनायास ही यन्त्र घट माला के तुल्य (विष्ट-अन्ता) एक दूसरे से गुथे अन्तों वाले होते हैं। जिस प्रकार यन्त्र-घट माला में रस्सी के छोर एक दूसरे से बद्ध रहते हैं,

उसी प्रकार उनके पौरुषों या बलों के आदि अन्त भाग परस्पर सम्बन्ध होते हैं। उनकी वाणी भी दातव्य धन वा सुख से युक्त, अथवा अर्थ-सम्पन्न, परस्पर, सम्बद्ध, ओजस्विनी होती है।

प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥ १४ ॥

भा०—(ये) जो (अस्मयु) हमें चाहते हुए, (पञ्चशता युक्त्वाय) पांच सौ को योग कर (पथा) मार्ग से गमन करते हैं (एषां विश्रावि) उनका विविध प्रकार का यश सुनाई देता है वा उनका ज्ञान विशेष रूप से श्रवण करने योग्य है, मैं (तत) उस ज्ञान को (दुःशीमे) पराजित न होने वाले, (पृथवाने) सर्वत्र विस्तृत, (वेने) कान्तियुक्त, (रामे) रमण करने योग्य, (असुरे) बलवान् प्राणप्रद प्रभु के सम्बन्ध में (मघवत्सु) अनेक धन सम्पन्न जनों के बीच (प्र वोचम्) उसका प्र वचन करूं।

अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च। सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—(तान्वः) तनु, देह के ज्ञान का वेत्ता, (अत्र) इस सम्बन्ध में (सप्त च सप्ततिं च) ७७ नाड़ियों, तन्तु केन्द्रों का (अधि दिदिष्ट) उपदेश करता है, (पार्थ्यः) विस्तृत शक्ति का स्वामी भी (सद्यः) शीघ्र ही ७७ को (अधि दिदिष्ट) वश करे और (मायवः सद्यः दिदिष्ट) ज्ञान की कामना वाला भी इन ७७ के सम्बन्ध में ज्ञान याचना करे। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[६४]

ऋषिरर्बुदः काद्रवेयः सर्पः ॥ ग्रावाणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, १३ विराड् जगती। २, ६, १२ जगती। ८, ९ आर्चीस्वराड् जगती। ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। १४ त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः १

भा०—(एते) ये विद्वान् पुरुष (प्र वदन्तु) उत्तम २ उपदेश करें, और (वयम्) हम भी (ग्रावभ्यः) उत्तम विद्वानों की (वाचम्) वाणी को (प्र वदाम) उत्तम रीति से अन्यों को उपदेश करें, हे विद्वान् लोगो ! आप भी (वदद्भ्यः) भाषण करने वालों के लाभार्थ (वाचं वदत) उत्तम वाणी बोलो । (यत्) जब (अद्रयः) आदर योग्य (पर्वताः) मेघ तुल्य प्रजा शिष्यादि के पोषक, ((आशवः) वेगवान्, बलवान्, (सोमिनः) वीर्यवान्, वा सोम, पुत्र शिष्यादि के गुरु जन, (साकम्) एक साथ (इन्द्राय) तत्त्वदर्शी गुरु वा प्रभु के (श्लोकं) वेदमय उपदेश को (भरथ) प्राप्त करो और अन्यों तक पहुंचाओ ।

एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत २

भा०—(एते ग्रावाणः) ये ज्ञान का उपदेश करने वाले (शतवत् सहस्रवत्) सौ २ और सहस्रों शिष्यों वाले (वदन्ति) उपदेश करते हैं और वे (सु-कृतः) उत्तम कर्म करने वाले, (विष्ट्वी) गृहों में प्रवेश करके (हरितेभिः आसभिः) तेजस्वी मुखों से (सु-कृत्यया) उत्तम २ कृत्यों को (अभि क्रन्दन्ति) सर्वत्र उपदेश करते हैं। ऐसे उत्तम जनो ! आप लोग (पूर्वे) हे पूर्व आदर योग्य, विद्या और आयु में वृद्ध जनो ! आप लोग (होतुः चित् हविः-अद्यम् आशत) सात्विक दानशील जन के अन्नादि भोग्य पदार्थ का आदरपूर्वक भोजन करो, उसे स्वीकार करो ।

एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ३

भा०—(वृक्षस्य पक्वे आमिषि) वृक्ष के पके फल में जिस प्रकार (मधु अविदन्) मधुर रस आते हैं, वैसे ही उसको (अना) मुख से बतलाते और उसको पाते हैं इसी प्रकार (एते) ये विद्वान् लोग (वृक्षस्य) वृक्ष रूप देह के (आमिषि पक्वे अधि) आयु रूप फल के परिपाक होने पर अर्थात् आयु के बढ़ने पर (अना) मुख से (मधु) वेद ज्ञान का लाभ करते हैं और उसी का (वदन्ति) उपदेश करते हैं और (नि ऊंखयन्ते) नियम से उसका पुनः २ अभ्यास करते हैं। (ते सूभर्वाः) वे उत्तम सुख जनक फल वा अन्न का भोग करने वाले, (वृषभाः) उत्तम बलवान् जन, (अरुणस्य) तेजोमय, दीप्तियुक्त (वृक्षस्य शाखां बप्सतः) वृक्ष की शाखा का खाजाने वाले अग्नि के तुल्य संसार, वा वेद रूप वृक्ष की (शाखां बप्सतः) शाखा अर्थात् कांड का भोग करने वाले आत्मा वा (वृक्षस्य शाखा बप्सतः) महान् वृक्ष रूप संसार की व्यापक कारण या आश्रय रूप प्रकृति का भोग करने वाले परमेश्वर के विषय में वे (प्र ईम् अराविषुः) खूब अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं।

बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४॥

भा०—(एते) ये (मन्दिना) स्तुति युक्त, (मदिरेण) हर्षप्रद, स्तुति वचन से (बृहत्) उस महान् प्रभु का (वदन्ति) उपदेश करते हैं, (अना) मुख से (इन्द्रम्) उस प्रभु को (क्रोशन्तः) पुकारते हुए (मधु अविदन्) उसके हर्षजनक ज्ञान को स्वामी से अन्नवत् प्राप्त करते हैं। वे (उपब्दिभिः) नाना उपदेशों से (पृथिवीम् आघोषयन्ति) गर्जनाओं से मेघों के तुल्य भूमि को आघोषित करते हुए (सं-रभ्याः) कार्य में दृढोद्योगी होकर (धीराः) बुद्धिमान् जन (स्वसृभिः) स्वतः चलने वाली शक्तियों या वाणियों सहित वा भगनीवत् सहयोगिनी प्रजाओं के साथ

(अनर्त्तिपुः) प्रसन्नता से नृत्य करते, आनन्द उल्लास का अभिनय करते हैं। वे प्रभु के प्रेम और उल्लास में नाच उठते हैं। खूब प्रसन्न होते हैं।

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्य१ङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५॥ २९॥

भा०—(द्यवि) सूर्य में जिस प्रकार (सु-पर्णाः) रश्मिगण (कृष्णाः) जलाकर्षण करने वाले, (अनर्तिषुः) विविध स्थानों पर जाते हैं, (सूर्य-श्वितः) सूर्य की वे श्वेत किरण (पुरु रेतः दधिरे) बहुतसा जल धारण करते और (उपरस्य निष्कृतम् नियन्ति) मेघ का रूप धर लेते हैं (वाचम् अक्रत) बिजुली की गर्जना करते हैं उसी प्रकार (द्यवि) तेजोमय (आखरे) सर्वत्र चारों ओर सुखमय परमेश्वर में मग्न (सुपर्णाः) उत्तम मार्ग से जाने वाले, (कृष्णाः) तपस्वी, अपने देह और अन्तःकरण के दोषों का कर्षण करने वाले (इषिराः) शुभ इच्छा वाले, सन्मार्ग से जाने वाले, (वाचम् उप अक्रत) वाणी का उच्चारण करते, उपासना स्तुति प्रार्थना करते, (आ अनर्त्तिपुः) नाना हर्ष-प्रदर्शक क्रीड़ाएं करते हैं और (उपरस्य) मेघ के तुल्य सुखदायक प्रभु के (निष्कृतं नि यन्ति) स्थान को प्राप्त करते हैं, वे (सूर्यश्वितः) सूर्य के समान तेजस्वी जन (पुरु रेतः दधिरे) बहुत २ बल सामर्थ्य धारण करते हैं।

उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥६॥

भा०—प्राणों का वर्णन। (उग्राः इव प्रवहन्तः) वेगवान् बहते वायु के झकोरों के समान वा (उग्राः इव) बलवान् वीर पुरुषों के समान वे (सम् आयमुः) एक साथ आते वा (सम् आयमुः) एक साथ नियम में बंध कर कार्य करते हैं। (साकम् युक्ताः वृषणः) जिस प्रकार एक साथ जुते बैल (धुरं बिभ्रतः) शकट के धुरे का भाग धारण करते हैं उसी

प्रकार वे भी देह में (साकम् युक्ताः) एक साथ लगे हुए, (वृषणः) बलवान् होकर (धुरः बिभ्रतः) धारण करने वाले देह के अंगों को पुष्ट करते हैं। (यत्) जब वे प्राणगण (श्वसन्तः) श्वास लेते हुए (जग्रसानाः) अन्नवत् वायु को भीतर ग्रास करते हुए (अराविषुः) ध्वनि करते हैं तब (एषाम्) इनका (अर्वताम् इव प्रोथथः शृण्वे) वेगवान् अश्वों के तुल्य ही शब्द श्रवण करता हूं।

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७॥

भा०—(दश-अवनिभ्यः) दश गतियों, वा अंगुलियों के समान दश अंगों वाले, (दश-कक्ष्येभ्यो) दश प्रकार के कर्मों का प्रकाश करने वाले, (दश योक्त्रेभ्यः) दश प्रकार की योजनाओं वाले, (दश-अभीशुभ्यः) दश प्रकार के नाना कर्मों और पदार्थों को भोगने या वश करने वाले, (अजरेभ्यः) शरीर को सञ्चालित करने वाले, (वहद्भ्यः) देह को धारण करने वाले प्राणों के (दश धुरः) दश प्रकार के धारण बलों को (अर्चत) वर्णन करो, उनका ज्ञान करो। वे दशों इस देह में (युक्ताः) रथ में अश्व के समान नियुक्त हैं।

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम्।
त ऊं सुतस्य सोम्यस्यान्धसोऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८॥

भा०—(ते) वे (अद्रयः) नाना भोगों के भोगने वाले, (दश-यन्त्रासः) दश प्रकार के यन्त्र, अर्थात् उपकरणों के स्वामी, (आशवः) वेग से कार्य करने वाले हैं। (तेषाम्) उनका (हर्यतम्) अति कान्तियुक्त, अति सुन्दर, चाहने योग्य, (आधानम्) आश्रय आत्मा (परि एति) सर्वत्र जाता है, (ते उ) और वे (प्रथमस्य) सर्वश्रेष्ठ, उस सर्वप्रथम विद्यमान (सोम्यस्य सुतस्य अन्धसः) अभिषुत सोम के वा अन्न के (पीयू-

पम्) रस के समान उस (सुतस्य) सर्वप्रेरक (सोम्यस्य) वीर्यवान् (अन्धसः) प्राण धारक आत्मा के भी (पीयूषम्) रस को (भेजिरे) सेवन करते हैं। इसी प्रकार विद्वान् लोग भी दस इन्द्रिय रूप यन्त्रों वाले होकर उस परब्रह्म का सेवन करते हैं।

ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतेऽंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते॥ ९॥

भा०—(ते सोम-अदः) वे सोम, प्रेरक आत्मा की शक्ति को प्राप्त करने वाले (इन्द्रस्य हरी निंसते) उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के ज्ञान और कर्म दोनों रूपों को प्राप्त करते हैं, वे (गवि) भूमि पर या वाणी द्वारा (अंशुम्) उस व्यापक प्रभु के प्रकाश को (दुहन्तः) गौ में से गो-दुग्ध के समान उसे प्राप्त करते हुए, (गवि अधि आसते) उस वाणी में ही आश्रय लेते हैं। इसी प्रकार अंशु अर्थात् भोक्तव्य अन्न रस प्राप्त करते हुए कृषकों के तुल्य (गवि) गौ अर्थात् पृथिवी के विकार रूप देह में विराजते हैं। उन प्राणों द्वारा (दुग्धं) दुहे गये, प्राप्त किये गये (सोम्यं मधु) सोम्य मधु, ईश्वरीय ज्ञान रस को, (पपिवान्) पान करता हुआ (इन्द्रः) आत्मदर्शी पुरुष, (वर्धते) वृद्धि को प्राप्त करता है, (प्रथते) बल और सामर्थ्य में बढ़ता और (वृषायते) सुखों के वर्षा करने वाले मेघ के तुल्य सर्वसुखकारी हो जाती है।

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः।
रैवत्येव महसा चारवःस्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम्॥१०॥२०

भा०—(वः अंशुः) आप लोगों में व्यापक प्रभु वा आत्मा जो (वृषा) समस्त सुखों का वर्षाने वाला, एवं बलवान् है। तो (न किल रिषाथन) आप लोग कभी नाश को प्राप्त नहीं हो सकते। (सदम् इत्) सदा ही, (इडावन्तः) अन्न, वाणी, कर्म फलों और भूमि आदि से युक्त और

(आशिताः) भोजन द्वारा तृप्त किये जाते (स्थन) रहो। हे (ग्रावाणः) विद्वान् उपदेष्टा लोगो! (यस्य अध्वरम्) जिसके हिंसारहित यज्ञ को (अजुषध्वम्) सेवन करते हो, (रैवत्याः इव) धनवान् पुरुषों के समान (महसा) महान् सामर्थ्य से (चारवः) उत्तम आचार युक्त (स्थनः) होकर रहो। इति त्रिंशो वर्गः॥

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ११

भा—हे विद्वान् और वीर लोगो! आप लोग (तृदिलाः) दुःखों और दुष्टों को तथा संशयों के काटने वाले, और (अतृदिलासः) स्वयं कभी छिन्न भिन्न, न होने वाले, निराशा से रहित, अच्छिन्न, संगठित होवो। और आप लोग (अद्रयः) आदर योग्य (अश्रमणाः) कार्य करते हुए कभी न थकने वाले, बलशाली, (अश्रथिताः) सत्कार्य में शिथिल न होने वाले, (अमृत्यवः) मृत्यु से रहित, (अनातुराः) न घबराने वाले, (अजराः) जरा, अर्थात् बुढ़ापे से रहित, (अमविष्णवः) सदा गतिशील, (सुपीवसः) खूब हृष्ट पुष्ट, (अतृषिताः) तृष्णा, लोभ से रहित, (अतृष्णजः) निस्पृह, निर्मोह (स्थ) होवो।

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः॥१२॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! (वः पितरः) आप लोगों के पालक दलपति लोग, (ध्रुवाः एव) सदा स्थिर, दृढ़ रहें और (युगे-युगे) समय २ पर (क्षेम-कामासः) सदा सब का कल्याण और रक्षण करने की इच्छा वाले होकर (सदसः) भवनों के तुल्य (युंजते) मनोयोग देवें। वे (अजुर्यासः) जरारहित, (हरि-साचः) मनुष्यों का समवाय बनाने वाले, (हरिद्रवः) अश्वों के द्वारा वेग से जाने में समर्थ (रवेण)

गर्जना ध्वनि से मेघोंवत् (द्याम् पृथिवीम्) आकाश और पृथिवी में (आ अशुश्रवुः) अपने संदेश सुनाने वाले और अन्यों का सुनने वाले होवें ।

तदिद्वद॒न्त्यद्र॑यो वि॒मोच॑ने॒ याम॑न्नञ्ज॒स्पा इ॑व॒ घेदु॒पब्दि॑भिः ।
वप॑न्तो॒ बीज॑मिव धान्या॒कृतः॑ पृ॒ञ्चन्ति॒ सोमं॒ न मि॑नन्ति॒ बप्स॑तः ॥ १३ ॥

भा०—वे (अद्रयः) आदर योग्य, निर्भय जन (विमोचने) विविध संकटों से मोक्ष प्राप्त करने के निमित्त (यामन्) यम नियम पालन रूप सन्मार्ग में (तत् इत्) उसी परमेश्वर का (वदन्ति) उपदेश करें । वे (अञ्जःपा इव) व्यक्त ज्ञान-प्रकाश का रक्षण करने वाले विद्वानों और धान्य की रक्षा करने वाले कृषकों के तुल्य (उपब्दिभिः) उपदेश-ध्वनियों से (धान्य-कृतः) धान्य बोने वालों के तुल्य (बीजम् इव वपन्तः) बीजों का वपन करते हुए वा (धान्यकृतः बीजम् इव वपन्तः) धान का खेत काटने वालों के तुल्य वासनामय बीजों का छेदन करते हुए (सोमं पृञ्चन्ति) शिष्य पुत्रवत् आत्मा को वा प्रभु को स्नेह करें और (बप्सतः) स्वयं नाना कर्म फलों का भोग करते हुए भी किसानों के तुल्य ही (न मिनन्ति) अन्नवत् आत्मा, वा जीव के बीज का नाश नहीं करते ।

सु॒ते अ॑ध्व॒रे अधि॒ वाच॑मक्रता क्री॒ळयो॒ न मा॒तरं॑ तु॒दन्तः॑ ।
वि षू मु॑ञ्चा सुषु॒वुषो॑ मनी॒षां वि व॑र्तन्ता॒मद्र॑य॒श्चाय॑मानाः ॥ १४ ॥
॥ ३१ ॥ ४ ॥

भा०—(चायमानाः) पूजा आदर, सत्कार पाते हुए (अद्रयः) आदर योग्य जन (अध्वरे अधि) अहिंसनीय (सुते अधि) ईश्वरोपासना के कार्य में (वाचम् अक्रत) वाणी का उपदेश करें । और (क्रीडयः न मातरं तुदन्तः) खेलते हुए बालक जिस प्रकार माता को हाथों से ताड़ते

हैं, उसी प्रकार वे भी (क्रीडयः) नाना कर्मों को प्रसन्नतापूर्वक करते हुए (मातरं तुदन्तः) जगत् की माता प्रकृति के बन्धन को दूर करते हुए (वि वर्त्तन्ताम्) विविध प्रकार से रहते हैं। हे विद्वान् जन! तू (सुसुवुषः) जगत् के उत्पादक और संचालक प्रभु की (मनीषां वि सु मुञ्च) स्तुति को विविध प्रकार से कर। अथवा (सु-सुवुषः) उत्पन्न होने वाले जीव की (मनीषां) मन की भोग की चाह को (वि सु मुञ्च) विविधप्रकार से त्याग। इत्येकत्रिंशो वर्गः। इति चतुर्थोऽध्यायः॥

पञ्चमोऽध्यायः

[९५]

ऋषिः—१,३,६,८—१० १२,१४,१७ पुरूरवा ऐळः। २,४,५,७,११, १३,१५,१६,१८ उर्वशी। देवता—१,३,६,८—१०,१२,१४,१७ उर्वशी। २,४,५,७,११,१३,१५,१६,१८ पुरूरवा ऐळः छन्दः—१,२,१२ त्रिष्टुप्। ३,४,१३,१६ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ५,१० आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप्। ६—८,१५ विराट् त्रिष्टुप्। ९,११,१४,१७,१८ निचृत् त्रिष्टुप्॥ अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन्॥ १॥

भा०—सेना, सेनापति, प्रजा और राजा का पति पत्नीवत् परस्पर संवाद। हे (हये) 'हया' अर्थात् अश्व के समान सर्वाङ्ग में बलवति! (जाये) पुत्रोत्पन्न करने में समर्थ स्त्री के तुल्य अपने पालक नायक को अपने आप अपने बल पराक्रम से प्रसिद्ध करने वाली, वा (जाये) जय दिलाने वाली! हे (घोरे) घोर, दुष्कर संग्राम करने हारी! शत्रुसंहारकारिणि! तू (मनसा) ज्ञानसहित वा शत्रु स्तम्भक बल के साथ (तिष्ठ) स्थिर हो। हम दोनों (मिश्रा) परस्पर मिले हुए, दृढ़ सम्बन्ध बना रखने वाले (वचांसि) परस्पर प्रतिज्ञा-वचनों को (कृणवावहै नु) करें। क्या (नौ) हम दोनों के (एते) ये (अनु-दितासः मन्त्राः) परस्पर

अनुकूलता से सुरक्षित, परस्पर किये मन्त्र, विचार (परतरे चन अहनि) भविष्य के दिनों भी (मयः चन न करन्) सुख प्रदान नहीं कर सकते ? करते ही हैं। जैसे स्त्री पुरुषों के परस्पर रहस्यालाप चिरकाल तक उनको सुखी, सुप्रसन्न बनाये रखते हैं उसी प्रकार सेना सेनापति आदि के भी गुप्त सुविचारित मन्त्र भविष्य में उनको सुखी करते हैं, वाक्य के आदि में 'न'-कार का प्रयोग प्रश्न-वाक्य का सूचक है।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ २ ॥

भा०—(उषसाम् अग्रिया-इव) प्रभात वेलाओं में सर्वश्रेष्ठ उषा जिस प्रकार सूर्य के आगे २ चलती है और (उषसाम् अग्रिया-इव) कामना वाली स्त्रियों में श्रेष्ठ वर वर्णिनी जिस प्रकार पति के आगे २ चलती हुई अग्नि-परिक्रमा करती है, इसी प्रकार सेना, (उपासम् अग्रिया) शत्रु को दग्ध करने वाली सेनाओं में सर्वश्रेष्ठ, सब से आगे चलने वाली होकर (प्र अक्रमिषम्) तेरे आगे चलूं, तू रक्षक, पालक गोपालवत् मेरे पीछे चल, और मैं आगे २ पराक्रम करती हुई पतिंवरा के तुल्य आगे कदम बढ़ाती जाऊं। तो (एता वाचा) इस वाणी से (किं कृणव) हम दोनों क्या करेंगे ? हे (पुरूरवः) अनेक सैन्यदल के प्रति आज्ञा करने वाले सेनापति ! (अहम् वातः इव) मैं प्रबल वात के समान ही (दुरापना अस्मि) शत्रु के वश आने वाली नहीं हूं। प्रत्युत (दुर्-आपना अस्मि) प्रबल आंधी के समान शत्रु को नाना दुःख प्राप्त कराने वाली हूँ। तू युद्ध द्वारा विजय करके (पुनः अस्तम् परा इहि) अनन्तर घर को लौटना। इसी प्रकार स्त्री परिक्रमादि करने के बाद पति को स्वयं गृह में जाने की प्रेरणा करे। यह सब से उत्तम विदाई है।

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥ ३ ॥

भा०—सेनापति कैसा हो ? (इषुधेः इषुः न) तरकस के तीर के समान सेनापति (श्रिये) शोभा, राज्यलक्ष्मी के लिये और (असना) शत्रु को उखाड़ने के लिये हो। वह (गो-साः) भूमि का भोक्ता वा दाता और (शतसाः न) सैकड़ों सुखों को देने वाला तथा (रंहिः) वेगवान् रथ के तुल्य पराक्रमी और बलवान् हो। (अवीरे क्रतौ) वीरों से रहित वा युद्धादि से रहित कार्य में (न दविद्युतत्) वह नहीं चमकता, वीरोचित युद्धादि कार्य में ही उसकी शोभा है। और (उरा न) महान् अन्तरिक्ष के तुल्य (उरा) विस्तृत रणाङ्गण में (धुनयः) शत्रुओं के कंपा देने वाले वीर सेनाजन भी (मायुं चितयन्त) वायुओं के समान गर्जनाओं को करें और सेनाएं भी सेनापति के शब्द को जानें।

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात्।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥ ४ ॥

भा०—(उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती कन्या जिस प्रकार (वसु दधती) धनैश्वर्य को धारण करती हुई, (श्वशुराय वयः कामयते) अपने श्वशुर के दीर्घ जीवन वा अन्न की कामना करती है, और (अन्ति गृहात्) अपने पिता के घर से निकल कर (अस्तं ननक्षे) अपने पति के उस घर को प्राप्त होती है, (यस्मिन् दिवा नक्तं चाकन्) जिसके निमित्त वह दिन रात चाहती है, और दिन रात (वैतसेन श्नथिता) सुखानुभव से भरी पूरी रहती है। उसी प्रकार (उषः) शत्रु को संताप करने वाली सेना (यदि वयः वष्टि) जो बल, अन्न और जीवन चाहती है (सः) वह (श्वशुराय = स्वशूराय वसु दधती) अपने शूरवीर नायक के लिये ऐश्वर्य को धारण करती हुई (अन्तिगृहात्) समीप के मित्र-राज्य से, (अस्तं) शत्रु को उखाड़ने वाले बल को (ननक्षे) प्राप्त करे, (यस्मिन्) जिसके अधीन रहकर वह (दिवा नक्तं) दिन रात्रि (वैतसेन) बेंत की सी वृत्ति 'अर्थात्' प्रबल के आक्रमण को देख कर विनय से झुकने और

दुर्बल को देख कर फिर सिर उठा लेने वाले नायक से (श्रथिता) वशीभूत होकर (चाकन्) नाना सुखों की कामना करे।

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व१स्तदासीः ॥५॥१॥

भा०—हे सेनानायक! तू (मां) मुझको (अह्नः) न नाश होने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी शासक के (वैतसेन) ज्ञानमय प्रकाश से (त्रिः श्नथयः) तीनों प्रकार से बन्धन से युक्त कर। (उत) और (मे अव्यत्यै) मेरे अविरुद्ध, अनुकूल आचरण के लिये मुझे (पृणासि) पालन पोषण कर। हे (पुरूरवः) बहुतों को आज्ञा देने वाले शासक! मैं (ते केतम् अनु आयम्) तेरे गृह, ज्ञान वा शरण को प्राप्त करूं। हे (वीरः) शूरवीर! तू (मे तन्वः) मेरे विस्तृत राष्ट्र का स्त्री के शरीर का स्वामी के तुल्य (तत् राजा आसीः) तू वह परम शरण, राजा हो।

इति प्रथमो वर्गः ॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६॥

भा०—(ग्रन्थिनी न) गांठ बांधे हुए पत्नी जिस प्रकार (सुजूर्णिः) सुख से पति के साथ वार्धक्य तक रहती है, (श्रेणिः) पति का आश्रय करती, (सुम्ने आपिः) पति के सुख के निमित्त उसके बन्धु के तुल्य रहती और (ह्रदे चक्षुः) ताल में देखने वाले मनुष्य के प्रति-बिम्बित चक्षु के समान अनुकूल अनुराग वाली होती है उसी प्रकार (या) जो सेना (सु-जूर्णिः) उत्तम वेग वाली, (श्रेणिः) नायक पर आश्रित वा उत्तम दलों और पंक्तियों में बद्ध, (सुम्ने आपिः) सुख के निमित्त नायक के बन्धु के तुल्य, (ह्रदे चक्षुः) तालाब में प्रतिबिम्बित चक्षुवत् समान अनुराग से युक्त होकर (चरण्युः) नायक के साथ विचरण करने वाली है। और (ताः) वे अनेक सेनाएं भी (अञ्जयः) सुव्यक्त भाव वाली (अरुणयः)

तेजस्विनी, (धेनवः न) दुधार गौओं के तुल्य (श्रिये सस्रुः) राजा की शोभा और राज्य-समृद्धि की वृद्धि के लिये (सस्रुः) आगे बढ़ें और (गावः न) गौओं और वाणियों के तुल्य (अनवन्तः) प्रेम से राजा की स्तुति करें।

समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुरूरवः) महान् कीर्तियुक्त ! (यत्) जब (त्वा) तुझे (देवाः) विजयोत्सुक वीर पुरुष (दस्यु-हत्याय) शत्रुओं को हनन करने के निमित्त रण के लिये (अवर्धयन्) बढ़ावें तब (अस्मिन् जायमाने) इसके प्रकट होने पर (ग्नाः सम् अवर्धयन्) वाणियां वा प्रजाएं और पुरुषाधीन स्त्रियों के तुल्य उसके आश्रय (सम् आसत) मिल कर रहें, (उत) और मिल कर और (उत) उसको (स्वगूर्त्ताः) स्वयं उद्यमशील (नद्यः) समृद्ध प्रजाएं बढ़ावें।

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः॥८

भा०—(यत्) जब (सचा) एक साथ (जहतीषु) शस्त्रादि छोड़ती वा जाती हुई (आसु अमानुषीषु) इन साधारण मनुष्यों से भिन्न, प्रबल, मनन-शील वा अविवेकयुक्त सेनाओं के ऊपर (मानुषः भुज्युः) मननशील रक्षक सेनापति मैं (अत्कं निषेवे) अपने मुख्य रूप वा अधिकार का सेवन करूं तब वे (तरसन्ती न) मृगी के समान (मत् अप अत्रसन्) मेरे से भयभीत हों अथवा (रथ-स्पृशः अश्वाः न) रथ में लगे घोड़ों के तुल्य भय से शासन में रहें।

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥९॥

भा०—(यत्) जब (आसु अमृतासु) कभी नाश न होने वाली इन प्रजाओं और सेनाओं पर (निस्पृक् मर्त्तः) खूब स्नेहवान्, शत्रुमारक, बलवान् सेनापति (क्षोणीभिः) उत्तम वाणियों (न) और (क्रतुभिः) कर्मों से (पृंक्ते) सम्पर्क करता, स्नेह प्रकट करता है, (ताः) वे (आतयः न) गृहपत्नियों के तुल्य (स्वाः तन्वः शुम्भत) अपने २ देहों को अलंकृत करें। और (दंदशानाः) दांतों से लगाम को काटते हुए (अश्वासः न) घोड़ों के समान (क्रीडयः) नाना प्रकार की क्रीड़ा, विनोद करती और सन्मार्ग में चलती हैं। (२) [यदि नकारः प्रतिषेधार्थः] (यत् आसु निःस्पृक् न पृङ्क्ते) जब वह मनुष्य उनमें निस्पृह होकर उन में स्नेह नहीं करता, तब वे गृहपत्नियों के तुल्य ही (तन्वः न शुम्भन्त) अपने को नहीं सजाती, और (न क्रीडयः) न खेलती, विनोद करती और (आतयः न दंदशानाः) व्याधियों के समान कष्टकारी पीड़ादायक होती हैं।

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥२॥

भा०—(या) जो (अप्या विद्युत् न) मेघ में उत्पन्न जल से विजुली के समान (पतन्ती) वेग से जाती हुई और (मे) मेरे (काम्यानि) कामना योग्य पदार्थों को (भरन्ती) धारण करती हुई, (दविद्योत्) चमकती, शोभा पाती है, उसमें (अपः) कर्मकुशल, (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी, (सु-जातः) शुभ गुणों में प्रसिद्ध पुत्र के तुल्य होता है। (उर्वशी) बहुतों को वश करने वाली सेना राष्ट्र को (आयुः दीर्घम् तिरत) दीर्घ आयु प्रदान करती है। (२) इसी प्रकार स्त्री भी उत्तम पुत्र को जन्म देकर पति को ही मानो दीर्घ आयु प्रदान करती है। इति द्वितीयो वर्गः॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि॥११॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार तू (गोपीथ्याय हि जज्ञिषे) भूमि की रक्षा करने और इन्द्रियों वा वाणी के लिये समर्थ हो। हे (पुरूरवः) बहुतों का शासक वा जितेन्द्रिय ! (हि) क्योंकि (मे) मेरे (तव् ओजः दधाथ) तू उस पराक्रम को धारण कर मैं (तस्मिन् अहनि) सब दिन (विदुषी) जानती हुई, ज्ञान वाली होकर (त्वा अशासन्) तुझको अनुशासन करती हूं । परन्तु तू (मे न अशृणोः) मेरा वचन नहीं सुनता । (अभुक्) पालन समर्थ न होकर (किं वदासि) तू क्या कह सकता है ? अतः तू मेरा वचन-कथन श्रवण कर और पालक होकर प्रजा पर शासन कर ।

कुदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

भा०—(सूनुः) पुत्र (जातः) उत्पन्न होकर (पितरं कदा इच्छात्) पिता को कब चाहने लगे और (वि-जानन्) विशेष ज्ञान वाला होकर भी (चक्रन्) रोता हुआ (अश्रु न वर्त्तयत्) आंसू नहीं बहाता । (कः) कौन ऐसा पुत्र है जो (समनसा दम्पती) समान चित्त वाले पति पत्नी (वि यूयोत्) पृथक् करता है ? और (यत्) जो अग्नि के समान तेजस्वी होकर (श्वशुरेषु दीदयत्) श्वशुर-गृह में चमकता है अर्थात् सभी पुत्र जब पिता को चाहते हैं तब वे रोते २ आंसू बहाते हैं । ऐसे समय में पुत्र कभी माता पिता को पृथक् नहीं करता प्रत्युत उनको और भी दृढ़ प्रेम से युक्त करता है, वह पति के श्वशुरालय में नहीं रहता प्रत्युत पतिगृह में रहता और वहीं चमकता है, इसी प्रकार जो अग्निवत् तेजस्वी नायक (श्वशुरेषु) आशुगामी वीर पुरुषों के बीच में चमकता है वह (जातः) प्रसिद्ध होकर (सूनुः) सेना का प्रेरक होता और (पितरं इच्छात्) सब कोई अपने पालक राजा को चाहता है और विशेष ज्ञानी होकर (अश्रु, चक्रं वर्त्तयत्) व्यापक राजचक्र या सैन्यचक्र को चलाता है, कौन ऐसा है जो एक चित्त हुए (दम्पती) पति-पत्नी के तुल्य राजा प्रजा

को वियुक्त करदे, अर्थात् कोई नहीं। राजा के शासन में ही सेनापति सैन्य-चक्र को चलाता और राजा प्रजा को स्थिर बनाये रखता है।

प्रति॑ ब्रवाणि व॒र्तय॑ते॒ अश्रु॑ च॒क्रन्न क्र॑न्ददा॒ध्ये॑ शि॒वायै॑।
प्र तत्ते॑ हिनवा॒ यत्ते॑ अ॒स्मे परे॒ह्यस्तं॒ न॒हि मू॑र॒ माप॑: ॥ १३ ॥

भा०—प्रजा या सेना प्रयाण के लिये उद्यत सेनापति वा राजा के प्रति कहती है—हे (मूर) शत्रुनाशक! सेनापते! (अहं ते प्रति ब्रवाणि) मैं तुझे प्रतिक्षण कहती हूं कि (चक्रन् न) रोते हुए मनुष्य के समान(अश्रु वर्त्तयते) आंसू बहाती है और (क्रन्दत्) रोती हुई (शिवायै आध्ये) कल्याण की कामना करती है, (यत् ते अस्मे) जो तेरा हम में हित है मैं प्रजागण (तत् ते प्रहिनव) उसे मैं तेरे लिये प्रदान करती हूं। तू (अस्तं परा इहि) गृह पर फिर वापिस आना, यदि वापिस नहीं आवेगा तो तू (मा नहि आपः) मुझ प्रजाजन को फिर नहीं प्राप्त करेगा।

सु॒दे॒वो अ॒द्य प्र॒पते॒दना॑वृत्परा॒वतं॑ पर॒मां गन्त॒वा उ॑।
अधा॒ शयी॑त॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्थेऽधै॑नं॒ वृका॑ रभ॒सासो॑ अ॒द्युः ॥१४॥

भा०—यदि (सु-देवः) उत्तम विजिगीषु भी (अनावृत्) अरक्षित होकर (परावतं परमां गन्तवै अध प्रपतेत्) दूर से दूर के परदेश को प्रयाण करने के लिये प्रस्थान करे (अध) और (निर्ऋतेः उपस्थे) शत्रु-सेना के समीप असावधान होकर (शयीत) सोये, प्रमाद करे तब (रभसासः) बलवान् (वृकासः) भेड़ियों के तुल्य चोर डाकू आदि शत्रुजन (एनं अद्युः) उसको खा जाते हैं, उसे नष्ट कर देते हैं।

पुरू॑रवो॒ मा मृ॑था॒ मा प्र प॑प्तो॒ मा त्वा॒ वृका॑सो॒ अशि॑वास उ क्षन्।
न वै स्त्रैणा॑नि स॒ख्यानि॑ सन्ति सालावृ॒काणां॒ हृद॑यान्ये॒ता ॥१५॥३॥

भा०—हे (पुरु-रवः) बहुतों के शासक! तू (मा मृथाः) मृत्यु को

प्राप्त न हो, (मा पप्तः) दूर मत जा । तू मत भाग । (अशिवासः वृकासः) अकल्याणकारी वृक, चोर भेड़िये के स्वभाव के पुरुष (मा उ क्षन्) तुझे न खावें, तेरा नाश न करें । तू स्मरण रख, (स्त्रैणानि सख्यानि) स्त्री आदि भोग्य पदार्थों को उद्देश्य करके किये गये मैत्री आदि कार्य (न वै सन्ति) वास्तविक नहीं होते (एता) वे तो (सालावृकाणां) जंगली कुत्तों या भेड़ियों के (हृदयानि) हृदयों के तुल्य छल और क्रूरतादि से पूर्ण होते हैं । राज्य-समृद्धि आदि के लिये सन्धि आदि करके भी लोग एक दूसरे के प्राण-घात की योजना करते हैं । अतः सावधान होकर निर्व्यसन होकर रह । 'मृथाः' इति पदपाठः ॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादिवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

भा०—(या) जो मैं सेना (वि-रूपा) विविध रूप वाली, नाना व्यूहों से नाना प्रकार की (अचरम्) गति करती हूं, (मर्त्येषु) शत्रुओं को मारने वाले वीरों में (चतस्रः) चार (रात्रीः शरदः) शरद् के चारों मासों के सब दिनों (अवसम्) बसती हूँ । और (अह्नः) अहिंसनीय, अपराजित (घृतस्य) तेजस्वी वीर नायक के (सकृत्) एक साथ उद्योग करने वाले (स्तोकं) शत्रुहिंसक बल का (आश्नाम्) भोग करती हूँ, (तात् एव) उसीसे (इदम्) इस प्रकार मैं (तातृपाणा) शत्रु की निरन्तर हिंसा करती हुई (चरामि) विचरती हूं ।

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥

भा०—मैं (वसिष्ठः) सब वसुओं, प्रजाजनों में श्रेष्ठ होकर (अन्तरिक्ष-प्राम्) अन्तरिक्ष अर्थात् विजिगीषु और शत्रु-भूमियों के मध्य भाग को पूर्ण करने वाली, (रजसः विमानीम्) रजस, धाम वा लोक या राष्ट्र को

विविध प्रकार से बनाने वाली, (उर्वशीं) बहुत बड़े २ राष्ट्र के वश करने में समर्थ सेना को मैं (उप शिक्षामि) वश करता हूं। हे सेने ! (सु-कृतस्य) उत्तम रीति से किये कर्म का फल, पारितोषक आदि को (रातिः) देने वाला स्वामी, वह दान ही (त्वा उप तिष्ठात्) तुझे प्राप्त हो। तू (नि वर्तस्व) नियम में रह कर कार्य कर अन्यथा (मे हृदयं तप्यते) मेरा हृदय दुष्टों के प्रति प्रजा की पीड़ा के कारण संताप-अनुताप अनुभव करता है।

इति॑ त्वा दे॒वा इ॒म आ॑हुरैळ॒ यथे॑मे॒तद्भव॑सि मृ॒त्युब॑न्धुः।
प्र॒जा ते॑ दे॒वान्ह॒विषा॑ यजाति स्व॒र्ग उ॒ त्वमपि॑ मादयासे ॥१८॥४॥

भा०—हे (ऐड) इडा अर्थात् भूमि के स्वामिन् ! (यथा ईम्) जिस प्रकार इस प्रजा जन का (एतत्) वह परम (मृत्यु-बन्धुः भवसि) मृत्यु के तुल्य मारक, दण्डकर्त्ता और बन्धुवत् प्रिय भी तू होता है, अथवा तू ही (मृत्यु-बन्धुः भवसि) मृत्यु के समय सबका बन्धुवत् आश्वासक होता है, (इति) इसी प्रकार (इमे देवाः त्वा आहुः) ये सब विद्वान् लोग तेरे सम्बन्ध में तुझे बतलाते हैं। (ते प्रजा) तेरी प्रजा (देवान्) देवों, विद्वानों को (हविषा यजाति) अन्नादि से सत्कार करे, (त्वम् अपि स्वर्गे) तू भी सुख-समृद्धि से युक्त राज्य में (मादयासे) आनन्द लाभ कर। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[९६]

ऋषिर्वरुः सर्वहरिर्वैन्द्रः ॥ देवता—हरिस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ७, ८, जगती। २—४, ६, १० जगती। ५ आर्ची स्वराड् जगती। ६ विराड् जगती। ११ आर्ची भुरिग्जगती। १२, १३ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म्।
घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑ ॥१॥

भा०—(विदथे) संग्राम में (हरी) जिस प्रकार दो अश्वों की प्रशंसा की जाती है, उसी प्रकार (महे विदथे) बड़े भारी ज्ञानमय यज्ञ में हे प्रभो (ते हरी) तेरे दुःख और अज्ञान के हरने वाले दोनों गुणों से युक्त रूपों की मैं (प्र शंसिपम्) स्तुति करता हूँ। (वनुपः ते) भजन, सेवन करने योग्य तेरे (हर्यतम् मदम् प्रशंसिपम्) कान्तियुक्त, अति कमनीय, सबके चाहने योग्य आनन्द-सुख की प्रशंसा करता हूं। (हरिभिः घृतं न) आहरणशील किरणों से जल को सूर्य के समान जो प्रभु (हरिभिः) ज्ञान धारक विद्वानों द्वारा (चारु सेचते) सेवन योग्य, कर्म का उपदेश करता और जो (हरिभिः) मनोहर उपायों से (चारु) योग्य कर्म फल को (सेचते) प्रदान करता है। ऐसे (त्वा) तुझे (हरि-वर्पसम्) मनोहर, रमणीय रूप वाले, रश्मिमय रूपवान्, तेजोमय सूर्यवत् (त्वा) तुझको (गिरः आविशन्तु) वाणियां, वा स्तुति करने वाले प्राप्त हों, तुझ में प्रवेश करें, तन्मय हों।

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥

भा०—(ये) जो (योनिम् हरिम् अभि) सर्वाश्रय, सर्वोत्पादक प्रभु की (सम्-अभिस्वरन्) मिल कर स्तुति करते हैं, वे (हरी हिन्वन्तः) ज्ञान और कर्म दोनों के इन्द्रियगणों को प्रेरित करते हुए, उसको (यथा दिव्यं सदः तथा सम् अस्वरन्) दिव्य भवन के समान शरण योग्य रूप से उसकी स्तुति करते हैं। (धेनवः हरिभिः न) गौवें जिस प्रकार मनोहर दुग्धों से बच्चों को पालन कर पुष्ट करती हैं उसी प्रकार (धेनवः) वाणियें मनोहर वचन (यं पृणन्ति) जिस को पूर्ण करते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् प्रभु के (हरिवन्तं शूषम्) मनोहर, सुखदायक, दुःखहारक गुणों वाले बल की (अर्चत) हे विद्वानो ! आप स्तुति करो।

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ३

भा०—(सः अस्य वज्रः) वह इसका वज्र अर्थात् बल है (यः) जो (आयसः हरितः) स्वर्ण के समान रूप वाला, पीत रूप का, तेजोमय है। वह स्वयं (नि-कामः) अति कान्तियुक्त, (हरिः) सब के दुःखों वा अज्ञानों के अन्धकार को सूर्यवत् हरण करने वाला है, उसके (गभस्त्योः) बाहुओं में बल के तुल्य अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य और चन्द्र दोनों का (हरिः) सञ्चालन करने वाला है। वह (द्युम्नी) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, (सु-शिप्रः) उत्तम बलशाली, (हरिमन्यु-सायकः) दुष्टों को हरण करने वाले क्रोध रूप शस्त्र वाला, जिसका कोप ही दुष्ट जनों को बाणादिवत् पीड़ित करता है, उस (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान्, दुष्ट नाशक तेजोमय प्रभु में (हरिता रूपा निमिमिक्षिरे) हरित, तेजोमय, कमनीय मनोहर अनेक रूप वा गुण प्राप्त होते हैं।

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४॥

भा०—(दिवि: केतुः न) आकाश में ज्ञापक प्रकाश वा सूर्य के समान वह (हर्यतः) कमनीय, कान्तियुक्त प्रभु (अधि धायि) सर्वोपरि स्थापित है। उसका (वज्रः) बल (विव्यचत्) विविध प्रकार से जगत् को व्यापता है, (रंह्या) वेग से (हरितः न) अश्वों के तुल्य उसके प्रेरित लोक सूर्यादि वेग से गति कर रहे हैं। (यः) जो (आयसः) 'अयस्' रूप ज्ञानमय (हरि-शिप्रः) दुःखहारी रूप वाला, शत्रुनाशक बल वाला होकर (अहिं तुदत्) सूर्य को भी चलाता है वा (अहिम्) गतिरहित प्राकृत जगत् को चला रहा है, वह (हरिम्-भरः) समस्त जीवों का पालक-पोषक (सहस्र-शोकाः अभवत्) सहस्रों दीप्तियों का दाता, धाता, स्वामी है।

त्वन्त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (हरि-केश) तेजोमय किरणों वाले, तू (पूर्वेभिः यज्वभिः) पूर्व के देव-उपासना करने वाले यज्ञशील जनों से (उप-स्तुतः) स्तुति करने योग्य (त्वम्-त्वम्) तू ही एकमात्र (अहर्यथाः) सब दुःखों को दूर करता है । (त्वम् हर्यसि) तू ही सबको चाहता है, (तव विश्वम् उक्थ्यम्) तेरी ही समस्त प्रशंसा है, और हे (हरि-जात) समस्त लोकों और किरणों के उत्पादक ! सूर्यवत् प्रभो ! (तव) तेरा ही (विश्वं) समस्त (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (असामि) असाधारण, पूर्ण, (हर्यतम् राधः) कान्तियुक्त मनोहर धन और आराधना करने योग्य रूप है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६॥

भा०—(ता) वे अनेक (हर्यता हरी) आगे बढ़ने वाले, भूमि और सूर्यवत् नर नारी (मदे) हर्षजनक (रथे) रमणीय सुख के निमित्त अपने चित्त में (वज्रिणम्) बलशाली, सर्वशक्तिमान्, (मन्दिनं) हर्ष-आनन्दयुक्त, (स्तोम्यं) स्तुत्य (इन्द्रं) परमेश्वर को (वहतः) अपने अन्तःकरण में राजा को रथ में अश्वों के तुल्य धारण करते हैं । (सोमः हरयः) उत्पन्न हुए लोक वा प्राणी, मनुष्य जन (अस्मै हर्यते) इस कामना योग्य (इन्द्राय) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु की ही (सवनानि) उपासनाओं, वा ऐश्वर्यों को (दधन्विरे) धारण करते हैं ।

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७॥

भा०—(हरयः) मनुष्य (कामाय) सबसे चाहने योग्य प्रभु को

प्राप्त करने के लिये (अरं) बहुत अधिक अपने आपको (दधन्विरे) रखते हैं। और (हरयः) वे मनुष्य (स्थिराय) स्थिर नित्य पुरुष को प्राप्त करने के लिये (तुरा हरी) वेगवान् इन्द्रियवर्गों को (हिन्वन्) प्रेरित करते हैं, (यः) जिसको (अर्वद्भिः हरिभिः) आगे बढ़ने वाले मनुष्य (जोषम् ईयते) प्रेमपूर्वक प्राप्त होते हैं, (सः) वह प्रभु (अस्य) इस जीव के (हरिवन्तम् कामम्) हरणशील इन्द्रियों से युक्त कमनीय वा कामनावान् आत्मा को (आनशे) व्यापता है। उसकी प्रत्येक कामना को पूर्ण करता है।

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८॥

भा०—(हरि-श्मशारुः) किरणों को श्मश्रुवत् धारण करने वाला और (हरि-केशः) किरणों को केशों के समान धारण करने वाला तेजोमय सूर्य के तुल्य, (आयसः) सुवर्ण के बने पदार्थ के तुल्य कान्तिमान्, (यः) जो (हरि-पाः) सब मनुष्यों और जीवों का पालक (तुरः-पेये) अति शीघ्र पालन करने के कार्य में (अवर्धत) सबसे बड़ा है, (यः अर्वद्भिः हरिभिः) जो आगे बढ़ने वाले मनुष्यों द्वारा (वाजिनी-वसुः) अन्न-ऐश्वर्यादि को उत्पादन करने वाली पृथिवी रूप धन का स्वामी, उसे बसाने वाला है वह प्रभु वा स्वामी राजा के तुल्य ही (हरी) स्त्री-पुरुष दोनों वर्गों को (विश्वा दुरिता) समस्त दुःखों और दुष्टाचरणों से (अति पारिषत्) पार करे।

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९॥

भा०—(यस्य) जिसके शासन में (स्रुवा इव) यज्ञ में दो स्रुवों के समान (हरिणी) दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र (वि पेततुः)

विशेष रूप से गति करते हैं, और जिसकी (हरिणी) आकाश और पृथिवी दोनों (शिप्रे) दो दाढ़ों के समान (वाजाय) अन्न-ऐश्वर्य, जल आदि वा बल कार्य के निमित्त (दविध्वतः) चल रही हैं। और (यत् कृते) जिसके बनाये (चमसे) कर्मफल भोगने योग्य इस विश्व में (मदस्य) अति हर्ष-सुखदायक (हर्यतस्य) अति कान्तियुक्त (अन्धसः) प्राण धारण कराने वाले के रस को (पीत्वा) पान कर आत्मा (हरी अ मर्मृजत्) अपने इन्द्रिय वर्गों को पवित्र कर लेता है, वह प्रभु है। या वह प्रभु अन्न की (पीत्वा) रक्षा करके (हरी मर्मृजत्) समस्त नर नारी वर्गों को शुद्ध करता है।

उत स्म सद्म हर्यतस्य पुस्त्यो३रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत्।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा १०॥६॥

भा०—(उत) और (पस्त्योः) आकाश और भूमि का बना यह (सद्म) गृह के समान महान् भवन भी (हर्यतस्य स्म) उस कान्तिमान् सूर्यवत् स्वयं-प्रकाश प्रभु का ही है। (अत्यः वाजं न) अश्व जैसे संग्राम की ओर जाता है वैसे ही (हरिवान्) समस्त लोकों का स्वामी प्रभु इस गृह में (अचिक्रदत्) व्यापता है। वह (मही चित् धिषणा) समस्त लोकों को धारण करने वाले आकाश और भूमि दोनों को (ओजसा) बल और पराक्रम से सञ्चालित करता, चाहता और प्रकाशित करता है इसी कारण वह प्रभु (हर्यतः) 'हर्यत' है। वह कान्तिमान् सर्वसञ्चालक होकर (बृहत् वयः आ दधिषे) बड़ा भारी बल धारण करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्।
प्र पुस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ ११ ॥

भा०—हे स्वामिन्! प्रभो! तू (महित्वा) महान् सामर्थ्य से

(रोदसी हर्यमाणः) आकाश और भूमि दोना को कान्तियुक्त, प्रकाशित करता हुआ (नव्यम्-नव्यम् मन्म हर्यसि) सूर्य जैसे नये से नया दिन प्रकट करता है ऐसे ही तू भी नया ही नया मनन करने योग्य ज्ञान प्रकट करता है। हे (असुर) प्राणों के देने हारे! हे बलशालिन्! तू (हरये सूर्याय) सब लोकों के प्रेरक सूर्य के और (गोः) इस भूमि के लिये भो (पस्त्यम्) गृह के तुल्य इस महान् आकाश को (आविः कृधि) प्रकट करता है।

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२॥

भा०—हे प्रभो! (जनानां) मनुष्यों के बीच में (रथे) रस स्वरूप एवं रमणीय रूप मे (प्रयुजः) उत्तम योग करने वाले अभ्यासी जन (हरि-प्रियं) सब मनुष्यों के प्यारे, (हर्यन्तम्) सबको चाहने वाले (त्वा आवहन्तु) तुझको सब प्रकार से धारण करें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (प्रति-भृतस्य मध्वः) प्रीति पूर्वक लाये गये, आदर पूर्वक प्रदान किये अन्न, जल, घृत को अतिथिवत्, चरु को अग्निवत्, जलादि को मेघ वा सूर्यवत्, (प्रति-भृतस्य मध्वः हर्यन्) प्रेम पूर्वक उपाहृत, मधुर, हर्षकर वचन की कामना करता हुआ, (सध-मादे) साथ मिलकर हर्ष आनन्द लाभ के अवसर में (दश-ओणिम्) दश अङ्गों से युक्त (यज्ञं) यज्ञ का (पिब) पालन कर। (दशोणिं यज्ञं) दसों अंगुलियों से किये गये देवपूजन रूप नमस्कार को स्वीकार कर।

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥१३॥७॥

भा०—हे (हरिवः) समस्त मनुष्यों, जीवों और लोकों के स्वामिन्! तू (पूर्वेषां सुतानां) पूर्व उत्पन्न लोकों को भी (अपाः) पालन करता रहा। (अथो) और (इदं सवनं) यह उत्पन्न भुवन भी (ते केवलम्)

केवल एकमात्र तेरी ही विभूति है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मधुमन्तं सोमम्) मधुर वचनों वाले जीव को पुत्रवत् (ममद्धि) हर्षित कर। वा हे (वृषभ) बरसते मेघ के तुल्य सुखों के वर्षक प्रभो! तू (सत्रा) नित्य ही उसे (जठरे) अपने भीतर शिष्य को गुरु के तुल्य अपने गर्भ में (आवृषस्व) सब प्रकार से ग्रहण कर और ज्ञान और हर्ष से गर्भित बीजों को मेघ के तुल्य सेचित, परिवर्धित कर। इति सप्तमो वर्गः॥

[९७]

ऋषिः—१—२३ भिषगाथर्वणः॥ देवता—ओषधीस्तुतिः॥ छन्दः—१,२, ४—७, ११, १७ अनुष्टुप्। ३, ९, १२, २२, २३ निचृदनुष्टुप्। ८, १०, १३—१६, १८—२१ विराडनुष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥ १॥

भा०—(याः) जो (ओषधीः) ओषधियां (पूर्वाः) अनेक रूप, एवं जीवों को पालने में समर्थ रस आदि से पूर्ण (देवेभ्यः) किरणों द्वारा वा मनुष्यों के हितार्थ (पुरा) पहिले ही (त्रि-युगम्) तीनों ऋतुओं में (जाताः) उत्पन्न होती हैं उन (बभ्रूणाम्) पक होकर पीली पड़ी, देह की पोषक उन ओषधियों का मैं (मनै नु) अवश्य ज्ञान प्राप्त करूं। और उनके (शतं धामानि) सौ तेजों और (सप्त धामानि) सातों धारण करने योग्य सामर्थ्यों को (मनै) जानूं। (शतं०) अथवा—धारक पोषक ओषधियों के (सप्त शतं धामानि) ७०० धाम अर्थात् मनुष्य देह में विद्यमान ७०० वे मर्म जानूं जहां इन ओषधियों के अद्भुत २ प्रभाव प्रकट होते हैं। "सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणां, तेषु एना दधातीति। निरु० ९। २८॥

तीन युग तीन ऋतु हैं। शत धाम सौ वर्ष हैं। सात धाम सात देह-गत प्राण हैं। अथवा सप्त, शत, ७०० मर्मस्थान हैं जिन पर ओषधियों का प्रयोग होता है।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ २ ॥

भा०—हे (अम्ब) माता की तरह जीवों को पालने वाली, रोग-नाशक ओषधियो! (वः शतं धामानि) तुम्हारे सैकड़ों जन्म, सैकड़ों वीर्य और तदनुरूप नाम हैं, (उत) और (वः) तुम्हारे (सहस्रं रुहः) सहस्रों अंकुर वा पोधे हैं। (अध) और (यूयम्) तुम सब (शत-क्रत्वः) अनेक कर्म सामर्थ्यों से युक्त हो। (मे इमं) मेरे इस देह वा व्याधि-पीड़ित जन को (अगदं कृत) रोग से रहित, नीरोग करो।

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ३ ॥

भा०—हे (ओषधीः) ओषधियो! तुम (पुष्पवतीः) फूलों और (प्र-सू-वरीः) नाना उत्तम फलों वाली होकर (प्रति मोदध्वम्) बराबर हृष्ट, प्रसन्न रहो। तुम (अश्वाः इव स-जित्वरीः) अश्व सेनाओं के तुल्य एक साथ ही रोगरूप शत्रुओं पर विजय करने वाली और (वीरुधः) विविध प्रकार से उगने और विविध भावी और वर्त्तमान रोग-पीड़ाओं को रोकने वाली तथा (पारयिष्णवः) रोगी को कष्ट से पार करने वाली और रोग का अन्त कर देने वाली, और रोगी को मृत्यु के कष्टों से बचाने वाली हो। (२) इसी प्रकार अश्व-सेनाएं भी (पुष्पवतीः) राष्ट्र-पोषक सामर्थ्य, बल से युक्त, (प्र-सूवरीः) सन्मार्ग में प्रेरक नायक वा उत्तम धन-धान्य उत्पादक भूमि वाली, (सजित्वरीः) विजयशालिनी, (वीरुधः) शत्रु को विविध प्रकार से रोकने वाली और (पारयिष्णवः) युद्ध

से पार करने और प्रजाओं का पालन करने वाली हों। इसी प्रकार यह सूक्त उत्तम प्रजा और सन्तानोत्पादक गृहस्थ माताओं वा स्त्रियों के पक्ष में भी लगता है। जिसका निदर्शन अगले मन्त्रों में करेंगे।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे।
सनेयमश्वं गां वासं आत्मानं तव पूरुष ॥ ४ ॥

भा०—(ओषधीः) हे ओषधियो! हे (मातरः) माता के तुल्य हितकारिणी, आरोग्य देने वाली, ओषधियो! मैं (वः) तुमको (देवीः उपब्रुवे) देवियों के तुल्य सुखप्रद और रश्मियों के तुल्य रोगनाशक रूप से तुम्हारा अन्यों को उपदेश करता हूँ। हे (पुरुष) मनुष्य! विद्वन्! मैं ओषधियों को प्राप्त करने के लिये (अश्वं) घोड़ा, (गां) गौ, भूमि, (वासः) वस्त्र, और (आत्मानं) अपने आप को भी (तव) तेरे निमित्त (सनेयम्) देता हूं। रोग से मुक्त होने के लिये मनुष्य सर्वस्व देने पर भी तैयार होजाता है और वैद्य की सब प्रकार से सेवा करता है। (२) विजयशालिनी सेनाएं भी 'देवी' हैं। वे तेज धारने से 'ओषधि', शत्रु नाशक होने से 'माता' हैं। उनको अश्व, वस्त्र, भूमि और मनुष्य सब देना आवश्यक होता है।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे ओषधियो! (वः नि-सदनम्) तुम्हारा आश्रय (अश्वत्थे) आशुगामी वायु पर स्थित मेघ पर है। (वः वसतिः) तुम्हारा निवास वा आच्छादन (पर्णे) पत्र समूह पर (कृता) बना है। तुम (गो-भाजः इत् किल असथ) भूमि, सूर्य और रश्मियों का सेवन करने वाली हो, (यत्) जिससे तुम (पूरुषम् सनवथ) पुरुष के देह का सेवन करती हो, देह का पोषण करती, उसको बल देती हो। (२) सेनाएं अर्थात् अश्व बल राष्ट्र-बल पर स्थित, राजा पर आश्रित और (पर्णे) पालक स्वामी पर

आश्रित होती हैं। वे (गो-भाजः) स्वामी की आज्ञा पालन करतीं और नायक पुरुष की सेवा करती हैं। इत्यष्टमो वर्गः ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ६ ॥

भा०—(राजानः समितौ इव) राजा लोग जिस प्रकार सभा में विराजते हैं उसी प्रकार (यत्र ओषधयः सम् अग्मत) नाना ओषधिगण एकत्र होती हैं (सः विप्रः भिषक् उच्यते) वह विद्वान् पुरुष चिकित्सक कहाता है, वह (रक्षः-हा) पीड़ादायी दुष्ट पुरुषों के नाशक के तुल्य ही (अमीव-चातनः) रोगों का नाश करता है।

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (अश्व-वतीम्) अश्व के तुल्य गन्ध वाली, और (सोम-वतीम्) सोम के समान रस, वीर्य, विपाक वाली, (ऊर्जय-न्तीम्) बल उत्पन्न करने वाली और (उत्-ओजसम्) उत्तम पराक्रम बढ़ाने वाली ओषधि को और (सर्वाः ओषधीः) अन्यान्य समस्त ओषधियों को भी (अस्मै अरिष्ट-तातये) इस मनुष्य के आरोग्य सुख के लिये (आवित्सि) सब प्रकार से और सब स्थानों से प्राप्त कर। (२) सेनापक्ष में वह अश्वयुक्त और प्रेरक नायक से युक्त होती है उनको राष्ट्र का नाश न होने देने के लिये प्राप्त करे।

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८ ॥

भा०—(गावः गोष्ठात् इव) गोशाला से जिस प्रकार गौएं आती हैं उसी प्रकार (ओषधीनां) ओषधियों के बीच में से (शुष्मा उत् ईरते) नाना प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं। हे पुरुष उसी प्रकार (तव) तेरे

(आत्मानं सनिष्यन्तीनां) देह का सेवन करने वाली इन ओषधियों का (धनं) धनवत् संचित सामर्थ्य या रस भी प्राप्त होता है। (२) शत्रु को तीव्रताप देने वाला तेज 'ओष' है, उसको धारण करने वाली ओषधि सेनाएं हैं, वे जब नायक पुरुष और धन, वेतन आदि प्राप्त करती हैं तब उनका शत्रु-शोषक बल उठता, प्रकट होता है।

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ९ ॥

भा०—हे ओषधिगण ! (वः माता इष्कृतिः नाम) तुम्हारी माता, पृथिवी 'इष्कृति' अर्थात् अन्न को उत्पन्न करने वाली है। (अथो) और (यूयं निः-कृतीः स्थ) तुम सब भी रोगांश को बाहर निकालने वाली हो। जब तुम (सीराः) देह की रक्त नाड़ियों को प्राप्त कर उन में (पतत्रिणीः स्थन) वेग से गति करती हो, तब (यत् आमयति) जो पदार्थ शरीर को पीड़ित कर रहा होता है, उसको (निः कृथ) बाहर निकाल देती, दूर कर देती हो। (२) इसी प्रकार सेनाओं का निर्माता 'इष्' प्रेरणाकारी, आज्ञापक होने से 'इष्कृति' है और सेनाएं शत्रुओं को खदेड़ने से 'निष्कृति' हैं वे नदियों के तुल्य वेग से आगे बढ़ने वाली होती हैं। जो प्रजा या राष्ट्र को दुःख देता है वे उसको दबातीं और बाहर कर देती हैं।

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो३ रपः ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—(स्तेनः इव व्रजम्) चोर या लुटेरा जिस प्रकार 'व्रज' अर्थात् पथिक समूह पर (अति अक्रमीत्) आक्रमण करता है उसी प्रकार (विश्वाः) समस्त (परिस्थाः) देह में सर्वत्र विद्यमान रह कर (ओषधीः) ओषधियां (व्रजम् अति अक्रमुः) रोग समूह पर आक्रमण करती हैं (यत् किञ्च तन्वः

रपः) जो कुछ देह का कष्टदायी रोग का कारण है उसको (प्र अचुच्युवुः) देह से दूर करती हैं। (२) इसी प्रकार सेनाएं राष्ट्र में पापी पुरुष को दण्डित कर दूर करती हैं। इति नवमो वर्गः ॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।

आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (अहम्) मैं (वाजयन्) बल प्राप्त करता हुआ (इमाः ओषधीः) इन ओषधियों को (हस्ते आ-दधे) हाथ में लेता हूं। तब (यथा जीव-गृभः) जिस प्रकार जीवों को पकड़ने वाले प्राणघाती से भयभीत होकर प्राणी, पक्षी आदि भागते हैं उसी प्रकार (यक्ष्मस्य) रोग का (आत्मा) व्यापक अंश भी (पुरा) पूर्ववत् (नश्यति) लुप्त हो जाता है।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।

ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ १२ ॥

भा०—ये (ओषधीः) ओषधियां! (यस्य) जिस मनुष्य के (अंगम्-अङ्गम् परुः २) अंग २ और पोरु २ में (प्रसर्पथ) व्याप जाती हैं (उग्रः मध्यमशीः) मध्यस्थ बलवान् पुरुष के समान वे (ततः यक्ष्मं वि बाधध्वे) उसके शरीर में से रोग को नष्ट कर देती हैं।

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।

साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ १३ ॥

भा०—हे (यक्ष्म) पीड़ादायी रोग ! (त्वं) तू (चाषेण साकं नश्य) अति भक्षण, या भूख के साथ दूर हो। और (किकिदीविना साकं नश्य) कि, कि, आदि विशेष वेदना सूचक ध्वनि करने वाले रोग के साथ नष्ट हो। (वातस्य ध्राज्या साकं नश्य) वात की गति के साथ नष्ट हो और (निहाकया साकं नश्य) 'हा, मरा' इत्यादि कष्ट ध्वनिकारक

पीड़ा के साथ तू नष्ट हो। पित्तोद्रेक में राक्षसी भूख के साथ होने वाले शोष रोग वा जो रोग खाने की तीव्र इच्छा को उत्पन्न करे और अधिक खाने से ही वह बढ़ जाय उस लक्षण के साथ २ ही वह रोग नष्ट हो। कि, कि, आदि ध्वनि कास, हिचकी आदि कफ़जन्य रोग 'किंकिदीवि' हैं जिनमें मनुष्य कराहता है उन लक्षणों सहित रोग भी नष्ट हो, वात की गति से सन्धि-वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, वे वात की गति के साथ २ शान्त हों, सन्निपातिक रोग में हा मरा, उंह २ आदि जो तीव्र वेदना प्रकट करने वाली 'निहाका' है उसके सहित रोग भी नष्ट हो।

'चाषः'—चष भक्षणे भ्वादिः ॥ किकिर्दीवी—किकिना ध्वनिविशेषेण दीव्यति व्यवहरति इति किंकिदीविः ; यया पीड़या निहतोस्मि हा कष्टम् इति जायते सा पीड़ा 'निहाका'। इति सायणः। तै० सं० भाष्ये 'श्येनेन' इति पाठः।

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥ १४ ॥

भा०—(वः अन्या अन्याम् अवतु) तुम में से एक दूसरे की रक्षा करे। (अन्यस्याः उप अवत) एक दूसरे के समीप आओ, (ताः) वे सब आप (सं विदानाः) परस्पर अच्छी प्रकार सलाह करती हुई प्रजाओं के तुल्य, एक दूसरे को प्राप्त करती हुई, (मे इदं वचः प्र अवत) मेरे इस वचन की रक्षा करो। ये ही उपदेश सेना और प्रजा के मनुष्यों की भी रक्षक हैं।

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(याः फलिनीः) जो फल वाली हैं, (याः अफलाः) जो फल से रहित हैं, (याः अपुष्पाः च पुष्पिणीः) और जो फूल से रहित और फूल वाली हैं (ताः) वे (बृहस्पति-प्रसूताः) भूमि और आकाश के पालक सूर्य से

वा विद्यावान् विद्वान् द्वारा प्रदत्त या बनाई जाकर (नः अंहसः मुञ्चन्तु) हमें पापमय कष्टों या दुःखों से मुक्त करें। (२) जो सेनाएं फल वाली अर्थात् तलवार, बाण वा विस्फोट पदार्थों के अस्त्रों से युक्त या उन से रहित हैं, और पुष्प अर्थात् पोषक, सहायक सेना से युक्त वा रहित हैं वे देश को पाप या दुष्ट शत्रु से बचावें, बड़े राष्ट्र की पालक, उसका शासक हो। इति दशमो वर्गः ॥

मुञ्चन्तु मा शपुथ्या॒३॑दथो॑ वरु॒ण्या॑दु॒त ।
अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शा॒त्सर्व॑स्माद्देवकिल्बि॒षात् ॥ १६ ॥

भा०—(मा शपथ्यात् एनसः मुञ्चन्तु) मुझे शपथ अर्थात् जिस रोग में मनुष्य बके, उलटा सुलटा कहे, ऐसे बकने वाले रोग से मुक्त करें। (अथो वरुण्यात् उत मुञ्चन्तु) और ओषधियां मुझे वरुण = जल की प्यास वाले या अपान के विकार से या वरुण अर्थात् रात्रिकाल में बढ़ने वाले रोग से मुक्त करें। (अथो यमस्य पड्वीशात्) और वे यम, अर्थात् समस्त देह को बांधने या जकड़ देने वाले रोग के पैरों को बांधने वाले दुष्ट भाव से मुक्त करें। वह रोग जो पैरों में जकड़ उत्पन्न करे 'यम का पड्वीश' है। और वे ओषधियां (सर्वस्मात् देव-किल्बिषात्) सब प्रकार के दिव्य पदार्थों के योग से उत्पन्न रोग से मुक्त करें।

अ॒व॒पत॑न्तीरवदन्दि॒व ओष॑धय॒स्परि॑ ।
यं जी॒वम॒श्नवा॑महै॒ न स रि॑ष्याति॒ पूरु॑षः ॥ १७ ॥

भा०—(ओषधयः) ओषधि, ताप को धारण करने वाली (दिवः परि अव-पतन्तीः) सूर्य की किरणों के तुल्य रोग नाशक तीव्र, ओषधियां आकाश से नीचे आती हुई वा भूमि से हमें प्राप्त होती हुई (अवदन्) मानो कहती हैं कि (यं जीवम् अश्नवामहै) हम जिस जीवित देह को व्याप लेती हैं (सः पूरुषः न रिष्याति) वह पुरुष-देह रोगों से पीड़ित नहीं होता।

या ओष॑धीः॒ सोम॑राज्ञीर्ब॒ह्वीः श॒तवि॑चक्षणाः ।
तासां॒ त्वम॑स्युत्त॒मारं॒ कामा॑य॒ शं हृ॒दे ॥ १८ ॥

भा०—(याः ओषधीः सोम-राज्ञीः) जो ओषधियां सोम के समान गुणों में चमकने वाली, (बह्वीः शत-विचक्षणाः) बहुतसी सैकड़ों गुण दिखाने वाली हैं, (तासां) उनमें से (त्वम्) तू (उत्तमा असि) उत्तम है। और (कामाय अरं) मेरे इष्ट लाभ को प्राप्त कराने में पर्याप्त और (हृदेशम्) हृदय को शान्ति देने वाली हो।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।

बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥ १९ ॥

भा०—(याः सोम-राज्ञीः ओषधयः) वे ओषधियां जिन में सोम ओषधि के गुण वा सोम-तत्त्व मुख्य हैं, जो (पृथिवीम् अनु विष्ठिताः) भूमि २ के गुण से विशेष २ रूप से स्थित हैं वे विद्वान् व्यक्ति से दी जाकर (अस्यै वीर्यं सं दत्त) इस मनुष्य को बल प्रदान करें।

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।

द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥

भा०—(वः खनिता मा रिषत्) तुम को खोदने वाला स्वयं पीड़ा को प्राप्त न हो और (खनिता वः मा रिषत्) खोदने वाला भी तुम को नाश न करे, समूल उच्छेद न करे। और (यस्मै च अहं वः खनामि स मा रिषत्) जिसके आरोग्य के लिये मैं तुम को खोदता हूं वह पीड़ित न हो। (अस्माकं द्विपत् चतुष्पत्) हमारे दोपाये और चौपाये (सर्वम्) सब प्राणी वर्ग (अनातुरम् अस्तु) रोग से रहित हों। (२) सैन्यपक्ष में—(वः खनिता मा रिषत्) शत्रु को मूल से उखाड़ने में समर्थ वीर नायक तुम्हें पीड़ित न करे। मैं राजा जिस प्रजाजन के सुखार्थ शत्रु को उखाड़ता हूं वह भी (वः मा रिषत्) तुम को नष्ट न करे। हमारे दोपाये, चौपाये सुखी हों।

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः।

सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥ २१ ॥

भा०—(याः च) जिनको लक्ष्य कर के (इदम्) यह विशेष गुण-वचन (उप श्रृण्वन्ति) शिष्य आदि गुरु जनों से श्रवण करते हैं और (याः च दूरं परागताः) जो दूर २ तक फैली हुई हैं (सर्वाः वीरुधः संगत्य) वे सब ओषधियां मिल कर (अस्मै) इस रोग-युक्त काय को (वीर्यं सं दत्त) बल देवें। (२) सैन्य पक्ष में—(याः च इदम् उप श्रृण्वन्ति) जो अपने नायक का वचन सुनतीं या दूर २ तक फैलती हैं वे (वीरुधः) शत्रु को रोकने वाली इस राजा वा राष्ट्र प्रजा को बल दें।

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥ २२ ॥

भा०—(ओषधयः सोमेन राज्ञा) ओषधियां राजा सोम अर्थात् मुख्य सोमलता के साथ (सं वदन्ते) संवाद करती हैं, उसके गुणों के समान गुण रखती हैं और मानों कहती हैं (यस्मै कृणोति ब्राह्मणः) वेदज्ञ विद्वान् जिस के लिये हमारा प्रयोग करता है हे (राजन्) राजन्! हम (तं पारयामसि) उसको पूर्ण, तृप्त और संकट से पार कर देती हैं।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥२३॥११॥

भा०—(ओषधे) ओषधे (त्वम् उत्तमा असि) तू उत्तम है। (वृक्षाः तव उपस्तयः) नाना वृक्ष तेरे समीप हैं। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें नाश करे, जो हमारा शत्रु है (सः अस्माकं उपस्तिः अस्तु) वह हमारे पास, हमारे वश होकर रहे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[९८]

ऋषिर्देवापिरार्ष्टिषेणः ॥ देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। २, ६, ८, ११, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ५ त्रिष्टुप्। ६ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ४, १० विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान्त्स पर्जन्यं शन्तनवे वृषाय ॥ १ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी के पालक! हे बड़ी भारी शक्ति के स्वामिन्! विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (मित्रः वा) मित्र है और (वरुणः वा असि) वरण करने योग्य श्रेष्ठ दुःखों का निवारक भी है। (वा पूषा असि) और तू जगत् का सूर्य, वायु वा पृथिवी, वा मेघ की तरह से पोषण करने वाला भी है। तू (आदित्यैः) पृथ्वी पर से जलों के लेने वाले वा सूर्य से उत्पन्न किरणों वा १२ मासों के तुल्य आदान-प्रतिदान करने वाले वा तेजस्वी जनों से और (वसुभिः) सबको बसाने वाले जनों से (मरुत्वान्) वीरों, मनुष्यों का स्वामी है। (सः) वह तू (शं-तनवे) शान्ति विस्तार करने वाले राजा के लिये वा शान्ति से विस्तृत होने वाले राज्य-सुख के लिये (वर्षय) नाना सुखों की वृष्टि कर।

आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान्त्वद्देवापे अभि मामगच्छत्।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् २

भा०—हे (देवापे) प्रभु के बन्धु! सब सुखों के देने वाले प्रभु को वा विद्वानों को प्राप्त करने हारे उपासक! (त्वत्) तेरी ओर से, तेरा जो (देवः) प्रकाशयुक्त (दूतः) संतप्त, (अजिरः) नित्य, (चिकित्वान्) ज्ञानवान् आत्मा है। वह (माम् अभि गच्छत्) सब ओर से हट कर मेरी तरफ हो। और तू (प्रतीचीनः) सब बाह्य विषयों से विमुख होकर (माम् प्रति आववृत्स्व) मेरे प्रति ही लौट आ। (ते आसन्) तेरे मुख में मैं (द्युमतीम् वाचम् आ दधामि) तेजस्विनी, भाव-पूर्ण, बलवती वाणी को प्रदान करता हूं। आधिदैविक में—बृहस्पति सूर्य, देवापि जल है, अजिर दूत वायु है। जल उठ कर सूर्य के प्रति जाता है, मेघ रूप होकर द्युमती वाक् अर्थात् विद्युत् रूप से गर्जना रूप वाणी को धारण करता है।

अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शन्तनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ॥३॥

भा०—(बृहस्पते) ब्रह्माण्ड के वा वाणी के पालक ! प्रभो ! (अस्मे आसन् द्युमतीं वाचम् धेहि) हमें हमारे मुख में ज्ञान-प्रकाश वाली ऐसी वाणी का प्रदान कर जो (अनमीवाम्) समस्त प्रकार के दोषों से रहित और अन्यों को पीड़ा न देने वाली, (इषिराम्) व्यापक, एवं इच्छा शक्ति को सन्मार्ग में चलाने वाली हो । हे प्रभो ! (यया) जिससे हम दोनों (शं-तनवे) शान्ति के विस्तार वा जीव के देह की शान्ति के लिये (वनाव) एक दूसरे को प्राप्त हों । (दिवः) प्रकाशमय, तुम से (मधुमान् द्रप्सः) मधुर, सुखकारी रस (आ विवेश) भीतर अन्तःकरण में प्राप्त हो । (२) मेघ-सूर्य पक्ष में—हे (बृहस्पते) बड़ी शक्ति के पालक सूर्य ! तू हमें द्युमती 'वाक्' विद्युत् को प्रदान कर, अर्थात् प्रकाशयुक्त अन्न परिपाक करने वाले ताप का प्रदान कर । जो (इषिरा) अन्न जल देने वाली और (अनमीवा) रोग नाशक हो । विश्व के प्राणी देह-धारियों के शान्ति-सुख-कल्याण के लिये (वृष्टिं वनाव) हम स्त्री पुरुष व राजा प्रजा जल वृष्टि को प्राप्त करें । (दिवः) आकाश से (मधुमान्) जल और अन्न से युक्त (द्रप्सः) रस भूमि को प्राप्त हो ।

आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥ ४ ॥

भा०—(नः) हमें (मधुमन्तः द्रप्साः) मधुर रस, आनन्दप्रद सुख (आ विशन्तु) प्राप्त हों । हमारे अन्तःकरण में वे आनन्द रस प्रवेश करें । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (अधिरथम् सहस्रं देहि) अति अधिक सर्वातिशायी, सहस्रों प्रकार का रस प्रदान कर । हे (देवापे) देव प्रभु को प्राप्त होने वाले ! हे परमेश्वर के बन्धु ! जीव ! तू (होत्रं)

पुकारने योग्य वा सर्वसुख दाता प्रभु की ओर (नि सीद) जा और उसी के आश्रय रह। (ऋतुथा यजस्व) समय २ पर वा प्राणों के बल पर (यजस्व) प्रभु की ठीक नियम से उपासना, देवपूजा कर। और (देवान्) विद्वानों वा प्राणों को (हविषा सपर्य) उत्तम ग्राह्य अन्न जल से पूज, उनका सत्कार कर। (२) वृष्टि-पक्ष में—हमें (मधुमन्तः द्रप्साः) अन्न-जल युक्त रस, वृष्टि जल प्राप्त हों। (सहस्रं) खूब बलयुक्त जल सूर्य देवे। 'देव' अर्थात् सूर्य की किरणों को प्राप्त करने वाला विद्वान् समय २ पर ऋतु अनुसार यज्ञ को करे। सूर्य की किरणों को ऐसे (हविषा) द्रव्य साधन से युक्त करे जो जल को ग्रहण करें।

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५॥

भा०—(देव-सुमतिं चिकित्वान्) प्रभु परमेश्वर के प्रति शुभ मति, बुद्धि और स्तुति को जानने वाला (देवापिः) प्रभु का बन्धु, भक्त जन (आर्ष्टिषेणः) दर्शनकारिणी शक्तियों को सेनावत् वश करने वाला जितेन्द्रिय, (ऋषिः) यथार्थ तत्वदर्शी होकर (होत्रम् निषीदन्) पुकारने योग्य प्रभु की उपासना करता है, उसी में निष्ठा करता है। (सः) वह (उत्तरस्मात्) उत्कृष्ट समुद्रवत् आनन्द सागर प्रभु से (अधरं समुद्रं) नीचे के समुद्रवत् अपने अन्तःकरण के प्रति (दिव्याः वर्ष्याः अपः अभि असृजत्) दिव्य सुख-वृष्टि रूप आनन्दमय रसों को प्राप्त कराता है। (२) मेघ-वृष्टिपक्ष में—(देवापिः) किरणों को अपना हविः-तत्व प्राप्त कराने वाला विद्वान् (देव-सुमतिं चिकित्वान्) देवों, वायु, जल, सूर्य रश्मियों के उत्तम मति अर्थात् ज्ञान, वायु विज्ञान, जल-विज्ञान को जानने वाला पुरुष, (आर्ष्टिषेणः) ऋष्टि अर्थात् वृष्टि की 'सेना' अर्थात् दलों के स्वामी मेघ का ज्ञाता होकर (होत्रम् निषीदन्) आहुतिमय यज्ञ को निष्ठा पूर्वक

करे। और उत्तर समुद्र अर्थात् आकाश से अधर समुद्र अर्थात् भूतल की ओर दिव्य आकाशी वृष्टियों को नीचे लावे।

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन्। ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥६॥१२॥

भा०—(अस्मिन् उत्तरस्मिन् समुद्रे अधि) इस उत्कृष्ट, सबको तराने वाले, समुद्रवत् अपार आनन्द सागर प्रभु में (देवेभिः निवृताः आपः अतिष्ठन्) पात्र वा जलाशय में जलों की न्याईं समस्त विद्वानों द्वारा किये गये या चाहे गये प्राप्तव्य फल रहते हैं। (आर्ष्टिषेणेन) जितेन्द्रिय (देवापिना) प्रभु के बन्धु उस भक्त द्वारा (सृष्टाः) व्यक्त किये जाकर (ताः प्रइषिताः) वे भली प्रकार चाहे जाकर आपः आनन्द व्यापक रस (मृक्षणीषु) नदियों में जलों के तुल्य शुद्ध प्रजाओं और योग-भूमियों पर धारित (अद्रवन्) प्राप्त होते हैं। (२) मेघ-वृष्टि पक्ष में—देवों किरणों से (निवृताः) खुब एकत्र जल (अस्मिन्, उत्तरस्मिन् समुद्रे अधि) इस ऊपर के महान् आकाश में सुरक्षित रूप में रहते हैं। (देवापिना आर्ष्टिषेणेन) वृष्टि-दल के पति मेघ की विद्या का ज्ञाता, बहुतसी प्रजाओं का रक्षक, रश्मियों में हवि प्राप्त कराने वाले विद्वान् या वायु से (सृष्टाः) प्रेरित या बल रूप में उत्पादित होकर (मृक्षणीषु) विशुद्ध भूमियों पर (अद्रवन्) आ बहते हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्। देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥ ७ ॥

भा०—(होत्राय वृतः पुरोहितः) यज्ञ कर्म के लिये वरण किये गये पुरोहित के तुल्य (होत्राय) ज्ञान प्रदान करने के लिये (वृतः) स्वीकार किया (पुरोहितः) समक्ष स्थित, (यत् देवापिः) जो देव का बन्धु भक्त (शन्तनवे) शान्ति-सुख विस्तारने के लिये, (कृपयन्) कृपा करता हुआ, सब पर अनुग्रह करता हुआ (अदीधेत्) नाना कर्म करता

है। वह (बृहस्पतिः) बड़ी वेद वाणी का पालक प्रभु (देव-श्रुतं) विद्वानों द्वारा श्रवण करने योग्य (वृष्टि-वनिं) समस्त दुःखों को काटने वाली, सुखप्रद ऐश्वर्य विभूति को (रराणः) देता हुआ, (अस्मै वाचम् अयच्छत्) इस भक्त जन को वाणी प्रदान करे। (२) मेघ-वृष्टि पक्ष में—(शन्तनवे) विश्व में शान्ति विस्तार करने के लिये (देवापिः) रश्मि-विज्ञान वा मेघ-विज्ञान का जानने वाला, विद्वान् (होत्राय वृतः) यज्ञ के लिये वरण किया जाकर (कृपयन् अदीधेत्) समस्त प्रजाओं पर अनुग्रह करता हुआ समस्त यज्ञ कर्म करे। वह (बृहस्पतिः) बड़ी शक्ति का स्वामी सूर्य (देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणः) देव, दातृसम मेघ से स्रवित होने वाले जलवृष्टि के अंश को देता हुआ (अस्मै वाचम् अयच्छत्) इस मेघ को विद्युत् रूप वाणी प्रदान करता है।

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप! (यत्) जब (देव-आपिः) प्रभु के बन्धु के तुल्य प्रिय, प्रभु तक स्तुति उपासना से प्राप्त होने हारा (शुशुचानः) शुद्ध पवित्र, तेजस्वी होता हुआ (आर्ष्टिषेणः) दर्शन शक्तियों की सेना अर्थात् इन्द्रियगण पर विजयी एवं (मनुष्यः) मननशील होकर (त्वा सम् ईधे) तुझे भली प्रकार प्रदीप्त करता है, तेरे गुणों का प्रकाश करता है, तब तू (विश्वेभिः देवैः अनु-मद्यमानः) समस्त मनुष्यों और उपासकों से प्रति दिन स्तुति किया जाता हुआ, (वृष्टिमन्तं पर्जन्यम् प्र ईरय) वृष्टि वाले मेघ के तुल्य अपने आनन्दमय रसों के दाता रूप को प्रकट कर। मेघ-वृष्टिपक्ष में—जब देवों के विज्ञान का ज्ञाता वृष्टिज्ञानी पुरुष यज्ञ करे तो सब दिव्य गुणों से पुष्ट होकर अग्नि वा सूर्य जलप्रद मेघ को प्रकट करता है।

त्वां पूर्व॒ ऋष॑यो गी॒र्भिरा॑य॒न्त्वाम॑ध्व॒रेषु॑ पुरुहूत॒ विश्वे॑ ।
स॒हस्रा॒ण्यधि॑रथा॒न्यस्मे आ नो॑ य॒ज्ञं रो॑हिद॒श्वोप॑ याहि ॥ ९ ॥

भा०—(पूर्वे ऋपयः) पूर्व के ऋषिजन, (गीर्भिः त्वाम् आयन्) स्तुति वाणियों से तुझको प्राप्त होते हैं, हे (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे जाने वाले, बहुतों में उपाश्रित! (त्वाम्) तुझको (विश्वे) सब मनुष्य (अध्वरेषु) यज्ञों से स्तुतियों द्वारा उपासना करते हैं। (अस्मे) हमारे (सहस्राणि अधि रथानि) रथों से युक्त सहस्रों ऐश्वर्यों, देह युक्त सहस्रों अनेक सुख व बल आदि प्राप्त हों। हे (रोहिद्-अश्व) लाल, देदीप्त तेज रूप में व्यापने वाले! तू (नः यज्ञम् उपयाहि) हमारे यज्ञ को प्राप्त हो।

ए॒तान्य॑ग्ने नव॒तिर्नव॒ त्वे आहु॑तान्यधि॑रथा स॒हस्रा॑ ।
तेभि॑र्वर्धस्व त॒न्व॑ः शूर पू॒र्वीर्दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिमि॑षि॒तो रि॑रीहि ॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! तेजःस्वरूप! (एतानि नवतिः नव) ये ९९ वर्ष, और (अधिरथा सहस्रा) रथ अर्थात् देह पर आश्रित बलशाली, प्राण आदि (त्वे आहुतानि) तेरे पर ही आश्रित, तुझ पर ही समर्पित हैं, हे (शूर) दुष्टों के नाशक! (तेभिः) उनसे तू (पूर्वीः तन्वः) अनेक रूपों के तुल्य नाना व्यापक शक्तियों को (वर्धस्व) बढ़ा, प्रकट कर। (इषितः) प्रार्थित होकर (नः) हमें (दिवः वृष्टिम् रिरीहि) ज्ञान-प्रकाश की वृष्टि प्रदान कर। (२) मेघ-वृष्टि पक्ष में—अग्नि में नाना (नवतिः नव सहस्रा अधिरथा) ९९ सहस्र घृतसहित चरु की आहुति देने से अग्नि अनेक देहों, ज्वालाओं से बढ़ता है। वह (इषितः) तीव्र होकर आकाश से वृष्टि प्राप्त कराता है।

ए॒तान्य॑ग्ने नव॒तिं स॒हस्रा॒ सं प्र य॑च्छ॒ वृष्ण॒ इन्द्रा॑य भा॒गम् ।
वि॒द्वान्प॒थ ऋ॑तु॒शो दे॑व॒याना॒नप्यौ॑ला॒नं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! तेजोमय! विद्वन्! तू (वृष्णे इन्द्राय)

सब समस्त सुखों की वर्षा करने वाले (इन्द्राय) सूर्यवत् प्रभु को प्रसन्न करने के लिये (एतानि नव नवतिम् सहस्रा) इन ९९ सहस्रों को (भागम् सं प्रयच्छ) सेवनीय रूप से प्रदान कर । और (देवानाम् पथः विद्वान्) विद्वानों के गमन करने योग्य मार्गों को जानता हुआ (ऋतुशः) समय २ पर (औलानम्) जीव को (देवि देवेषु धेहि) ज्ञानमार्ग में विद्वानों के बीच रख । (२) मेघ की वृष्टि पक्ष में—अग्नि चरु हव्य आदि की ९० सहस्र आहुतियों को वृष्टिकारक मेघ के निमित्त वातावरण में प्रदान करे। देव अर्थात् किरणों के गमन मार्गों को जानता हुआ विद्वान् (औलानम्) मेघ को अन्तरिक्ष में किरणों के बल पर बना लेता है ।

अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह १२।१२

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! तू (मृधः वि बाधस्व) हिंसाकारियों को विविध प्रकारों से पीड़ित कर । (दुर्गहा वि) दुःख से ग्रहण करने योग्य दुष्पार कष्टों को दूर कर । (अमीवाम् अप) रोग को दूर कर । (रक्षांसि अप सेध) दुष्टों और विघ्नों को दूर कर । (अस्मात् बृहतः समुद्रात्) इस महान् आकाशवत् समुद्र से और (बृहतः दिवः) महान् तेजोमय सूर्य से (इह) इस भूमि लोक पर (नः) हमारे लिये (अपां भूमानम् उप सृज) जलों का बहुत भारी भाग प्राप्त करा, प्रदान कर । (२) प्रभो ! तू हमारे सब भीतरी नाशकारी क्रोध आदि शत्रुओं को नाश कर, कष्टों को दूर कर, रोग और विघ्नों को हटा और इस महान् तेज के परम सुखदायक समुद्रवत् प्रभु से हमें (अपां भूमानं) प्रकृति परमाणुओं वा लोकों के बीच उस महान् प्रभु, वा प्राणों के बीच भूमा, आत्मा को हमें प्राप्त करा ।

[६६]

ऋषिर्वम्रो वैखानसः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६, १२ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आसुरी स्वराडार्ची निचृत् त्रिष्टुप् । ८ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

कं न॑श्चि॒त्रमि॑षण्यसि चिकि॒त्वान्पृ॑थु॒ग्मानं॑ वा॒श्रं वा॑वृ॒धध्यै॑ ।
कत्तस्य॑ दा॒तु शव॑सो॒ व्यु॑ष्टौ॒ तक्ष॒द्वज्रं॑ वृत्र॒तुर॒मपि॑न्वत् ॥ १ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (चित्रं) ज्ञान देने वाले, अति पूज्य (पृथुग्मानं) परिमाण में बहुत बड़ा होजाने वाले, (वाश्रम्) स्तुत्य (कं) सुखप्रद धनैश्वर्य, ज्ञान को (नः ववृधध्यै) हमारी वृद्धि के लिये (इषण्यसि) जल को मेघवत् हमें प्रदान करता है । (तस्य शवसः) उस ज्ञानी और बलशाली प्रभु का (दातु कम्) कितना भारी दान है, उसका क्या ठिकाना है, जो (व्युष्टौ) नाना प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने के निमित्त (वृत्रतुरं वज्रं) मेघ के छिन्न भिन्न करने वाले बलशाली विद्युत् के सदृश, अज्ञान, कष्ट आदि के नाशक ज्ञान रूप वज्र को (तक्षत्) बनाता है, उपदेश करता और फिर (अपिन्वत्) जगत् को मेघ के तुल्य ज्ञान जलों से सेंचता, और जगत् को अन्न, धन-धान्य, प्रजा आदि से बढ़ाता है ।

स हि द्यु॒ता वि॒द्युता॒ वेति॒ साम॑ पृ॒थुं योनि॑मसुर॒त्वा स॑साद ।
स सनी॑ळेभिः प्रसहा॒नो अ॑स्य॒ भ्रातु॒र्न ऋ॒ते स॒प्तथ॑स्य मा॒याः २

भा०—(सः हि) और वह (द्युता) चमकने वाले, प्रकाशमय (विद्युता) विशेष कान्तियुक्त, तेज से (साम) एक समान, बलयुक्त, शान्तिदायक, (पृथुम्) विशाल आश्रय स्थान के आकाश को (वेति) व्यापता है । प्रकाशित करता है । (सः) वह परम प्रभु (सनीळेभिः)

अपने २ आश्रयों सहित सूर्य वायु आदि द्वारा (प्र-सहानः) जगत् भर को वश करता हुआ, (असुरत्वा) सर्वजगत् सञ्चालक व प्राणप्रद बल से (ससाद) विराजता है। (ऋते) सत्य ज्ञान, वा परम कारण रूप सत् प्रकृति में ही (अस्य भ्रातुः न) समस्त विश्व के भरण-पोषण करने वाले (संसर्थस्य) सर्वव्यापक वा षड्-विकारों से अतिरिक्त सातवें इस प्रभु की ही (मायाः) समस्त ये निर्माण शक्तियां या बुद्धि-कौशल हैं। अध्यात्म में मन सहित छहों इन्द्रियों से अतिरिक्त सातवां आत्मा इन्द्र है। जो प्राण के प्रेरक बल से देह में विराजता है। स्व २ स्थानों में स्थित इन्द्रियों वा अंगों से समस्त ग्राह्य विषयों को ग्रहण करता है।

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३॥

भा०—(सः वाजं याता) वह महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। वह (अप-दुः-पदा) दुःख-संवेदना से रहित, सुखमय वा दुष्टाचार से रहित पुण्य मार्ग से (यन्) जाता हुआ (स्वः-साता) सुख लाभ के निमित्त, (परि सदत्) सर्वत्र विराजता या आगे बढ़ता है। और (यत्) जो (अनर्वा) अहिंसक होकर (शत-दुरस्य वेदः) सैकड़ों द्वारों वाले प्रभु के वेद्य, ऐश्वर्य या ज्ञान को (सनिष्यन्) सेवन करना चाहता हुआ (वर्पसा) अपने बल से (शिश्न-देवान्) मूल इन्द्रिय सम्बन्धी कामना-युक्त भावों को (घ्नन्) विनष्ट करता हुआ (अभि भूत्) सामर्थ्यवान् हो। मनुष्य सदाचार से चले, सुख के लिये निष्ठा से रहे। अहिंसक होकर शतद्वार अथवा शत वर्ष अवधि तक जीने वाले देह के परम सुख को ब्रह्मचर्य पूर्वक प्राप्त करे।

स यह्व्यो३ऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्निः।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ४ ॥

भा०—(सः अर्वा) सूर्य जिस प्रकार (प्रधन्यासु गोषु यह्वयः अवनीः आजुहोति) उत्तम धान्य योग्य भूमियों में बहुत २ जलधाराओं और रश्मियों को प्रदान करता है। उन भूमियों में (अपादः) पाद रहित, (अरथाः) रथादि से रहित (युज्यासः द्रोणि-अश्वासः) वेगवान् व्यापक गुणों वाले वायुगण (वाः उदकम्) उत्तम जल (ईरते) प्रदान करते हैं। उसी प्रकार (अर्वा) देह से देहान्तर में जाने वाला आत्मा (प्रधन्यासु गोषु) उत्तम ऐश्वर्य-विभूति से सम्पन्न इन (गोषु) गमन योग्य, पार्थिव देह-भूमियों में (यह्वयः अवनीः) बड़ी २ पालनकारिणी शक्तियों या अन्न जलादि साधनों की आहुति करता है। इन देहभूमियों में (अपादः) स्वयं ज्ञानरहित (अरथाः) वेग रहित (युज्यासः) अश्वों के समान देह में लगे हुए (द्रोणि-अश्वासः) द्रुत गति से भागने वाले इन्द्रियगण (घृतम् वाः ईरते) ज्ञानप्रकाशक, वरणीय पदार्थ के प्रति गमन करते हैं। इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर समस्त लोकों और प्रजाओं में अपनी (यह्वयः अवनीः) बड़ी २ पालक शक्तियों को प्रदान करता है। सूर्यादि पिण्ड पाद से रहित रथादि या नाना साधनों से रहित भी वेग से जाते हुए (घृतं वाः ईरते) प्रकाश और जल प्रदान करते हैं।

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारे अवद्य आगात्।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (ऋभ्वा) प्रकाश वा जल से सामर्थ्यवान् सूर्य वा मेघ अपने (गयम् हित्वी) नियत स्थान वा समुद्र को छोड़ कर आता है (विवव्री मिथुना अभि इत्य) विपरीत रूप वाले मिथुन नक्षत्रों को प्राप्त होकर (अन्नम् मुषायन्) अन्न का नाश करता और (अरोदयत्) रुलाता है, उसी प्रकार (सः) वह (ऋभ्वा) महान् आत्मा (आरे-अवद्यम्) निन्दनीय पापादि से रहित (गयम्) परम शरण रूप प्रभु को (हित्वी) छोड़ कर (अशस्त-वारः) अप्रशस्त, निन्दित मार्ग को वरण कर के

(रुद्रेभिः सह आ अगात्) इन प्राणों सहित इस देह में आता है। वह (वव्रस्य) वमन करने वाले, खा २ कर पुनः २ छोड़ने, उगलने वाले इस देह के ही (मिथुना विवव्री) नर नारी रूप नाना दो २ जोड़ों को (अभि इत्य) प्राप्त करके (अन्नम् गुपायन्) अन्नवत् नाना भोगों को प्राप्त करता हुआ (अरोदयत्) प्राणियों को वा अपने को पीड़ित करता है। ऐसा (मन्ये) मानता हूं।

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ६॥१४

भा०—(सः इत् पतिः) वह ही आत्मा का स्वामी, (तुवि-रवम्) बहुत शब्द करने वाले गर्जनाशील (दासम्) नाशकारी दुष्ट मन को वा इन्द्रिय-भृत्यादि को (दन्) दमन करता हुआ (षड् अक्षम्) ६ आंखों वाले और (त्रि-शीर्षाणम्) तीन शिरों वाले वर्ष को सूर्य के समान इस देह को जिस में मन सहित छः इन्द्रियों वाले और शिरोवत् तीन धातुएं वा पेट. हृदय और मस्तक ऐसे मुख्य अंगों वाले देह को (दमन्यत्) वश करता है। वह (त्रितः) तीनों लोकों में व्यापक वा तीनों दुखों से मुक्त आत्मा (ओजसा) अपने बल से (वृधानः) बढ़ता हुआ, (अयः-अग्रया) लोहे की सूई की धार के समान तीक्ष्ण (विपा) बुद्धि से (वराहम् हन्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को प्राप्त करता है।

स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम्।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह (ऊर्ध्व-सानः) उच्च पद को प्राप्त करने वाला, उत्तम पुरुष (द्रुह्वणे) द्रोही और (अर्शसानाय) हिंसाकारी मनुष्य को दण्ड देने के लिये (शरुम् आ साविषत्) हिंसाकारी साधन का प्रयोग करे। (सः-नृ-तमः) वह नरश्रेष्ठ, (सु-जातः) उत्तम, (नहुषः) दुष्टों का

बन्धनकारी, (अर्हन्) पूज्य होकर (अस्मत् दस्यु-हत्ये) हमारे नाशकारी, शत्रुओं के विनाशकारी उद्योग, संग्राम में (पुरः) शत्रु के शरीरों और, दृढ़ दुर्गों को (अभिनत्) तोड़े, उसी प्रकार वह प्रभु द्रोही, हिंसक, दुष्ट जनों को दुःख देता है। और दुष्टों के दण्ड देने के लिये उनके शरीरों को भी नष्ट करता है।

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे।
उप यत्सीदुदिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥ ८॥

भा०—(यवसे न) जिस प्रकार जौ आदि अन्न की पुष्टि के लिये (उदन्यन्) जल से पूर्ण होकर (अभ्रियः) मेघसंघ (गातुम् विदत्) भूमि को प्राप्त करता है, बरसता है उसी प्रकार (नः क्षयाय) हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये (सः) वह प्रभु, राजा भी (नः गातुम् विदत्) हमारी प्रार्थना को प्राप्त करे। (अस्मे श्येनः) हमारे बीच में प्रशंसनीय आचार-चरित्रवान् (यत्) जो पुरुष (शरीरैः) नाना शरीरों से जन्म-जन्मान्तरों से (इन्दुम्) उस परमैश्वर्यवान्, दयालु, तेजस्वी को (उप सीदत्) प्राप्त कर लेता है तब वह (अयः-अपाष्टिः) लोह की बनी एड़ी वाले पुरुष के समान बलशाली, (अयः-अपाष्टिः) आवागमन से दूर व्यापक आत्मा वाला होकर (दस्यून् हन्ति) नाशकारी काम, क्रोधादि को शत्रुओं के तुल्य (हन्ति) नष्ट करता है।

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात्।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९॥

भा०—(सः) वह (व्राधतः) महान् प्रभु (शवसानेभिः) बलशाली उपायों से (कुत्साय) निन्दाकारी दुष्ट जन को दण्ड देने के लिये उस पर (शुष्णम्) शोषक, संतापक-दुःख जनक कष्ट (अस्य) डालता और (कृपणे) प्रार्थना करने वाले भक्त पर आये (शुष्णम्) दुःख को

परा अदात्) दूर कर देता है। और (यः) जो (नृणां) मनुष्यों के बीच में (अस्य) इस के (अर्कं) व्यापक रूप वा ज्ञान को (सनिता) प्रदान करता है उस (कविम्) क्रान्तदर्शी विद्वान् को (प्रथम् शस्यमानं) यह प्रशंसनीय पद (अनयत्) प्राप्त कराता है।

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीताररुं यश्चतुष्पात् ॥ १० ॥

भा०—(अयम् वरुणः) वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु (दस्मः) सब दुःखों का नाश करने वाला, (मायी न) बुद्धिमान्, चतुर पुरुष के तुल्य ही (नर्येभिः देवेभिः) सर्वमनुष्योपकारक, सर्वहितकारी किरणों से सूर्य के तुल्य; (देवेभिः) विजिगीषुओं, विद्वानों या दानशील पुरुषों से राजा के तुल्य इन्द्रियों वा सूर्य, जल, अग्नि आदि पदार्थों से (दशस्यन्) सुखों को प्रदान करता हुआ (अस्य) सब दुष्टों का नाश करता है, (अयम्) यह (कनीनः) कान्तिमान्, तेजस्वी, (ऋतु-पाः) ऋतुओं, प्राणों, सदस्यों, राजाओं और सत्यवान् सज्जनों का पालक (अवेदि) जाना जाता है (यः) जो स्वयं (चतुः-पात्) धर्मादि चार चरणों वाला वा चतुष्पाद् ब्रह्म होकर (अररुम् अमिमीत) खूब २ रुलाने वाले दुष्ट जन का, वा दुखदायी कष्ट का नाश करता है।

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद् गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (सुत्वा) उपासक (यजतः) देवपूजा करने वाला भक्त (गीः) स्तोता होकर (दीदयत्) अपने गुणों को प्रकाशित करता है (पुरः इयानः) अपने देहों को प्राप्त होता हुआ भी उन समस्त देहों को (वर्पसा) बल से वा उत्तम आत्मा रूप से (अभि भूत्) अपने वश कर लेता है। तब वह (ऋजिश्वा) वशीभूत इन्द्रियों वाला (औशिजः) तेजोमय प्रभु का उपासक होकर (अस्य स्तोमेभिः) उस प्रभु के स्तुति

वचनों से ही (वृषभेण) बलवान्, सुखवर्षक रूप से (पिप्रोः) नित्य पालनीय इस देह के (व्रजम्) समूह को (दरयत्) दलित करता है। देहों को तोड़ कर मुक्त हो जाता है।

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम्।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः
॥ १२ ॥ १५ ॥ ८ ॥

भा०—हे (असुर) प्राणों के देने हारे बलवान् प्रभो ! (एव) इस प्रकार (महः वक्षथाय) महान् ऐश्वर्य को धारण करने के लिये वा समस्त संसार को वहन करने वाले तुझ महान् प्रभु को प्राप्त करने के लिये (पड्भिः)नाना ज्ञानमय आचरणों से, कदम बकदम, (वम्रकः इन्द्रम् उप-सर्पत्) स्तोता वह भक्त उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को प्राप्त कर लेता है। (सः इयानः) वह प्रभु प्राप्त होकर (अस्मै) इस जीव का (स्वस्ति करति) कल्याण करता है और इसके हितार्थ ही (इषम् ऊर्जम् सु-क्षितिम्) उत्तम वृष्टि, अन्न और भूमि बनाता है और इस प्रकार (विश्वम्) देह में प्रविष्ट जीव और समस्त जगत् जिस में ये सब प्राणी और लोक प्रविष्ट हैं उनको (आ अभाः) पाल रहा है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

[१००]

ऋषिर्दुवस्युर्वान्दनः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१—३ जगती। ४, ५, ७, ११ निचृज्जगती। ६, ८, १० विराड् जगती। ९ पादनिचृज्जगती। १२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हे (मघवन्) पूज्य धनयुक्त! तू (भुजे) भोक्ता जीव के हितार्थ वा (भुजे) पालन करने के लिये

(त्वावत् इत् दक्ष) तुझ जैसे अविनाशी, चेतन आत्मा को दक्कर, उसको बल दे। (स्तुतः) स्तुति किया जाता हुआ (सुत-पाः) उपासक की पुत्रवत् रक्षा करने हारा होकर (सः वृधे बोधि) वह तू हमारी वृद्धि के लिये सदा जान और हमें भी ज्ञान दे। तू (सविता) सबका उत्पादक और प्रेरक प्रभु (देवेभिः) विद्वानों, वीरों और इन्द्रियों द्वारा (नः) हमारी (प्र अवतु) अच्छी प्रकार रक्षा, स्नेह आदि कर, हमें प्राप्त हो, हमें ज्ञान दे। हम (श्रुतम्) गुरु-उपदेश द्वारा श्रवण करने योग्य (सर्वतातिम्) सर्वहितकारी, सब जगत् के विस्तारक (अदितिम्) उस अखण्ड, माता पिता के तुल्य प्रभु को (आ वृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं, उसे चाहते हैं।

भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्दादिष्टये।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे २

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (भराय) सब के पालन पोषण करने वाले, (वायवे) वायु के समान बलवान्, सबके प्राणवत् प्रिय, (शुचि-पे) शुद्ध अन्न जल का उपभोग करने वाले, (क्रन्दत्-इष्टये) इष्टि, अभिलषित का उपदेश करने वाले के लिये (ऋत्वियम्) ऋतुओं के योग्य (भागं) सेवनीय अंश को (सु भरत) उत्तम रीति से प्राप्त कराओ। (यः) जो स्वयं (गौरस्य) शुद्ध पवित्र, गौ के तुल्य भूमि में दिये (पयसः) पुष्टिप्रद दूध के समान अंश को (पीतिम्) पान को (आनशे) पुत्रवत् प्राप्त करता है उस (अदितिम्) अदीन सूर्यवत् तेजस्वी (सर्व-तातिं) सर्वमंगलकारी शुभ राजा वा प्रभु को हम (आ वृणीमहे) आदर पूर्वक वरण करते हैं।

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(सविता देवः) सब जगत् का उत्पादक, सूर्यवत् सबका

प्रेरक, (नः) हम में से परमेश्वर (ऋजूयते) सरल धर्म मार्ग से जाने वाले (सुन्वते यजमानाय) उपासना करने वाले, आत्म-समर्पक, यज्ञशील जन के हितार्थ (पाकवत्) पाक से युक्त (वयः) अन्न के तुल्य (पाकवत् वयः) परिपक्व बल, ज्ञान (साविषत्) प्रदान करे। (यथा) जिस से हम (देवान् प्रति भूषेम) विद्वान् जनों की अपने प्राणों के तुल्य सेवा करें, उन्हें तृप्त, संतुष्ट करें। हम (सर्वतातिम् अदितिम् आवृणीमहे) उस सर्वमंगलकारी, जगद्-विस्तारक, अखण्ड तेजस्वी प्रभु से याचना और प्रार्थना करते हैं।

इन्द्रो॑ अ॒स्मे सु॒मना॑ अस्तु वि॒श्वहा॒ राजा॒ सोमः॑ सुवि॒तस्याध्ये॑तु नः।
यथा॑यथा मि॒त्रधि॑तानि सन्द॒धुरा स॒र्वता॑तिमदि॑तिं वृणीमहे ॥४॥

भा०—(विश्वहा) सब दिनों (इन्द्रः) इन्द्र ऐश्वर्यवान्, जल, अन्न का दाता प्रभु, (अस्मे सु-मनाः अस्तु) हमारे लिये शुभ चित्त वाला हो। (राजा) सूर्यवत् प्रकाशमान् (सोमः) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, शासक प्रभु (नः अधि एतु) हम पर शासन करे। हमें प्राप्त हो (यथा-यथा) जिससे समस्त लोग (मित्र-धितानि) सर्वस्नेही प्रभु के दिये वा बनाये पदार्थों को (सं-दधुः) यथायोग्य रीति से प्राप्त करते हैं। उस (अदितिं) माता पितावत् अखूट भण्डार के स्वामी प्रभु को हम (आ वृणीमहे) प्राप्त करते हैं।

इन्द्र॑ उ॒क्थेन॒ शव॑सा॒ परु॑र्दधे॒ बृह॑स्पते प्रतरी॒तास्यायु॑षः।
य॒ज्ञो मनु॒ः प्रम॑तिर्नः पि॒ता हि क॒मा स॒र्वता॑तिमदि॑तिं वृणीमहे ५

भा०—(इन्द्रः) जल, अन्न का दाता, ऐश्वर्यवान् प्रभु (उक्थेन शवसा) स्तुत्य वा उपदेश योग्य, ज्ञान-बल से (परुः दधे) सबके पालक अन्न का धारण-पोषण करता और सब को प्रदान करता है। हे (बृहस्पते) महान् विश्व एवं ब्रह्म-ज्ञान के पालक प्रभो ! तू ही (आयुषः प्र-तरीता असि)

जीवन, आयु का देने और बढ़ाने वाला है। तू (मनुः) ज्ञानवान्, माननीय (प्र-मतिः) सब से उत्तम बुद्धि और ज्ञान से सम्पन्न, सर्वोत्कृष्ट विचारवान् और (यज्ञः) सब सुखों का दाता, सर्वपूज्य, (नः पिता हि कम्) हमारा पालक पिता-मातावत् है। उस (सर्व-तातिम्) समस्त जगत् के हितकारी (अदितिम्) भूमि सूर्यवत् अन्न जल, प्रकाश तापवत् ज्ञान अन्न जीवन के देने वाले तुझको (आवृणीमहे) हम सब प्रकार से वरण करते हैं।

इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥६॥१६॥

भा०—(इन्द्रस्य) महान् ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, सूर्यवत् सर्वप्रकाशक प्रभु वा आत्मा का (नु) ही निश्चय से (सु-कृतम्) सुखजनक उत्तम रीति से सम्पादित वा उत्तमोत्तम पदार्थों को उत्पन्न करने वाला (दैव्यं) देव, इन्द्रियों, विद्वानों, पृथिव्यादि लोकों का उपकारक (सहः) बल है। वह (गृहे) गृह में (अग्निः) अग्नि के तुल्य (जरिता) सबको जीर्ण, पक्क करने वाला, ज्ञानी के तुल्य उपदेष्टा, वही (मेधिरः कविः) बुद्धिमान् क्रान्तदर्शी, विद्वान् के तुल्य है। वही (विदथे) ज्ञान में (यज्ञः) पूज्य (चारुः) सर्वत्र व्यापक और (अन्तमः) हमारे अति समीपतम है। उस (सर्वतातिम् अदितिं वृणीमहे) सर्वजगत् प्रसारक, अखण्ड देव की प्रार्थना करते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम्।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥७॥

भा०—हे (वसवः) गृह में बसे माता पितावत् पूज्य जनो! हम लोग (गुहा) छुपे घर वा मन में (दुष्कृतम्) पाप (न भूरि चकृम) सर्वथा न करें और (आविः-त्यम्) और प्रकट रूप में कर्म से भी (भूरि दुष्कृतम् न चकृम) बहुत बार २ पाप न किया करें। जिससे (देव-

हेडनम्) परमेश्वर और राजा तथा विद्वानों का क्रोध (नः माकिः) हमें न प्राप्त हो । (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) हम सर्वमंगलकारी, प्रभु से यही प्रार्थना करते हैं ।

अपामीवां सविता साविषन्न्य१ग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ८ ॥

भा०—(सविता) सूर्यवत् तेजस्वी, प्रभु (अमीवाम् अप साविषत्) दुःखदायी रोग पाप आदि को दूर करे । (अद्रयः) मेघ तुल्य उदार जन (वरीयः) बड़े २ पापों को भी (न्यक् अप सेधन्तु) जल के तुल्य नीचे दूर बहा दें । (यत्र) जिस के आश्रय (ग्रावा) विद्वान् उपदेष्टा, मेघवत् (मधुसुत् उच्यते) जलों, अन्नों के तुल्य ज्ञान को देने वाला कहा जाता है उस (बृहतः सर्वतातिं अदितिं वृणीमहे) महान्, सर्वमंगलकारी सूर्य-भूमिवत् ज्ञानप्रकाश अन्नादि के दाता प्रभु से हम प्रार्थना करते हैं ।

ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ९

भा०—हे (वसवः) पृथिवी, सूर्य, प्राणों आदि के तुल्य माता, पिता और गुरु आदि विद्वान् जनो ! (सोतरि) सब के शासक, उत्पादक प्रभु के आश्रय ही (ग्रावा) उत्तम उपदेष्टा (ऊर्ध्वः) सब से उच्च है । आप लोग (सनुतः) हमारे छिपे (द्वेषांसि) सब द्वेषों को भी (युयोत) दूर करो । (सः देवः) वह देव, सब सुखों का दाता, सर्वप्रकाशक प्रभु (नः) हमारा (पायुः) पालक और (ईड्यः) वन्दनीय और स्तुत्य है । उस (सर्वतातिम् अदितिं आ वृणीमहे) सर्वमंगलकारी प्रभु से हम प्रार्थना करते हैं ।

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ १० ॥

भा०—(याः) जो (ऋतस्य सदने) परम कारण या सत्य ज्ञान के आश्रय रूप (कोशे) कोश रूप आनन्दमय कोश में (अङ्ध्वे) अपना सत् प्रकाश प्रकट करती हैं, हे (गावः) वाणियो ! वे आप (यवसे ऊर्जं पीवः) चारे के आश्रय पर जैसे गौवें बलकारक दुग्धरस प्रदान करती हैं, उसी प्रकार आप भी (ऋतस्य पीवः ऊर्जम्) ज्ञान का बहुत बड़ा बल वा रस (अत्तन) प्राप्त कराओ, आस्वादन कराओ। (तनूः एव तन्वः भेषजम् अस्तु) एक प्रकार का देह दूसरे प्रकार के देह के रोग का निवारक हो। अर्थात् जिस प्रकार गौ का देह दुग्ध, मूत्रादि से मानव देहों के नाना रोग शान्त करता है उसी प्रकार हम में भी एक व्यक्ति गुरु, सहायक होकर दूसरे देहवान् प्राणी के कष्टों का ओषधिवत् दूर करने वाला हो। (सर्वतातिं अदितिं आ वृणीमहे) सब प्रकार के सुखप्रद भूमि माता को हम वरण करते हैं।

क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम्।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११॥

भा०—(इन्द्रः) तेजोयुक्त, प्रकाशमान् सूर्य जिस प्रकार (क्रतु-प्रावा) समस्त ऋतुओं का पूर्ण करने वाला, प्रवर्त्तक और (जरिता) काल-धर्म से सबकी आयु का ह्रास करने हारा और (सुतावताम्) उत्पन्न प्राणियों से युक्त (शश्वताम् अवः इत्) सब लोकों का प्रवर्तक, बल, रक्षक है, (यस्य भद्रा प्रमतिः) जिस की सर्वमंगलकारिणी, सर्वसुखदायिनी सबसे उत्कृष्ट ज्ञानमयी बुद्धि वा वेदमयी स्तुति वाणी है। (यस्य) जिसके मेघादि (पूर्णम् ऊधः) जल का धारण करने वाले, जल से पूर्ण मेघ स्तन के समान (सिक्तये) लोक के सेचने, वा तृप्त करने के लिये हैं उस (अदितिम्) पृथिवी-सूर्यवत् प्रकाश, अन्न आदि के अक्षय भण्डार रूप प्रभु की हम (आ वृणीमहे) सब प्रकार से प्रार्थना करते हैं।

चि॒त्रस्ते॑ भा॒नुः क्र॑तु॒प्रा अ॑भि॒ष्टिः सन्ति॒ स्पृधो॑ जरणि॒प्रा अधृ॑ष्टाः ।
रजि॑ष्ठया॒ रज्या॑ प॒श्व आ गोस्तूतू॑र्षति॒ पर्यग्रं॑ दुव॒स्युः॥१२॥१७॥

भा०—हे प्रभो ! (ते भानुः) तेरा प्रकाश (चित्रः) ज्ञान देने वाला, अद्भुत, (क्रतु-प्राः) कर्म और ज्ञान का देने वाला और (अभिष्टिः) सबके चाहने योग्य है । और (ते स्पृधः) तेरी इच्छाएं और शक्तियां भी (जरणि-प्राः) स्तोता, विद्वानों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली, (अधृष्टाः) किसी से न दबने वाली, सदा अपराजित सेनाओं के तुल्य (सन्ति) हैं । जिस प्रकार के (दुवस्युः) सेवक (पश्वः गोः-अग्रम्) बैल पशु के आगे २ के नासिका आदि भाग को (रज्या परि तुतूर्षति) रस्सी के द्वारा पीड़ित करता और आगे २ वेग से लेजाता है, इसी प्रकार मैं (दुवस्युः) तेरा सेवक (गोः-अग्रम्) वाणी के श्रेष्ठ अंश को (रजिष्ठया) अति सरल (रज्या) स्तुति से (परि तुतूर्षति) तेरी ओर वेग से आजाना चाहता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१०१]

ऋषिर्बुधः सौम्यः ॥ देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा ॥ छन्दः—१, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ८ त्रिष्टुप् । ३, १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४, ६ गायत्री । ५ बृहती । ६ विराड् जगती । १२ निचृज्जगती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

उद्बु॑ध्यध्वं॒ सम॑नसः सखायः॒ सम॒ग्निमि॑न्ध्वं ब॒हवः॒ सनी॑ळाः ।
द॒धि॒क्राम॒ग्निमु॒षसं॑ च दे॒वीमिन्द्रा॑वतो॒ऽव॑से॒ नि ह्व॑ये वः ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! आप लोग (स-मनसः) एक समान चित्त वाले और समान चित्त सहित, वा समान ज्ञान सहित होकर (उद्-बुध्यध्वं) जागो, ज्ञानवान् होवो। (इन्द्रवतः) प्रभु परमेश्वर वा आत्मा

वाले (वः) आप लोगों को (अवसे) ज्ञान, स्नेह और प्रेम रक्षादि के लिये मैं (नि ह्वये) बुलाता और उपदेश करता हूं कि आप लोग (बहवः) बहुत से मिल कर (स-नीडाः) एक समान आश्रय या स्थान में रहते हुए (अग्निम् सम् इन्धध्वं) यज्ञाग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक प्रभु परमेश्वर को अच्छी प्रकार प्रकाशित करो और उसी प्रकार (दधि-क्राम्) समस्त विश्व को, देह को आत्मवत् धारण करने वाले को और (अग्निम्) सब से पूर्व विद्यमान अग्निवत् प्रकाशस्वरूप प्रभु वा आत्मा (उषसं च देवीम्) उषावत् कान्तियुक्त सर्वसुखप्रद शक्ति देवी माता के तुल्य प्रभु को भी (सम् इन्धध्वम्) प्रकाशित करो, उसकी उपासना करो।

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥ २ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो! आप लोग (मन्द्रा कृणुध्वम्) हर्ष, आनन्द जनक कर्म और स्तोत्र आदि करो। (धियः) उत्तम २ कर्म और ज्ञानों का (आ तनुध्वम्) विस्तार करो। (अरित्र-परणीं नावं चप्पू द्वारा पार ले चलने योग्य नौका को (कृणुध्वम्) बनाओ, इसी प्रकार शत्रु से बचने और युद्ध से पार करने वाली सेना, काम क्रोधादि से बचने और जगत् से पार उतारने वाली वेद वाणी का सम्पादन करो। (आयुधा) नाना शस्त्र अस्त्रादि को (इष् कृणुध्वम्) खूब बनाओ और (अरं कृणुध्वम्) अच्छी पर्याप्त मात्रा में बनाओ। (यज्ञं) पूज्य प्रभु वा आदरणीय नायक को (प्राञ्चं प्र नयत) सबसे आगे चलने हारा करो, और सर्वोक्त प्रभु की सबसे पूर्व स्तुति करो।

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ३ ॥

भा०—आप लोग (सीरा युनक्त) हलों को जोतो, (युगा वि तनुध्वं)

जूओं को विस्तृत करो। (कृते योनौ) सुसम्पादित क्षेत्र रूप स्थान में, (इह) इस लोक में (बीजं वपत) बीज को बोवो। और (गिरा च) वेदवाणी द्वारा (नः) हमारे (स-भराः श्रुष्टिः असत्) अन्न खूब पुष्ट हो और (सृण्यः) दातरी, (पक्वम् नेदीयः) पके धान्य के पास (आ इयात्) आवे। अध्यात्म में—(सीरा युनक्त) हे अभ्यासी जनो नाड़ियों में ध्यान-योग का अभ्यास करो। (युगा वि तनुध्वम्) योग के नाना अंगों को विशेष रूप से करो। (इह योनौ) इस लोक वा देह में (कृते) किये कर्म के (बीजम् वपत) बीज का वपन करो। (गिरा च श्रुष्टिः सभराः असत्) वेद वाणी रूप आश्रय द्वारा उत्तम सुखप्रद श्रवण पूर्वक ज्ञान हो, और (सृण्यः) सरणशील जीव (पक्वम्) परिपक्व ज्ञान के प्रति प्राप्त हो।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ४ ॥

भा०—(कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग (सीरा युञ्जन्ति) खेत जोतने के साधन हल आदि को जोतते हैं (युगा वि तन्वते) नाना युगों को पृथक् २ करते हैं। (धीराः) कर्म और ज्ञान वाले विद्वान् जन (देवेषु) ज्ञानप्रद विद्वानों के बीच (सुम्नया) सुख प्राप्त करने के लिये नाना कर्म करते हैं। अध्यात्म में—वे नाना योगाङ्गों का अनुष्ठान करते, नाड़ियों में चित्त को लगाते और देवों, इन्द्रियों में सुषुम्ना नाड़ी द्वारा अभ्यास करते हैं।

निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो! आप लोग (आहावान् निः कृणोतन) गौओं के पानी पीने के नाना स्थान बनाओ। (वरत्राः सम् दधातन) उत्तम २ रज्जुओं, रस्सियों का परस्पर जोड़ो। (वयम्) हम (उद्रिणम्)

उत्तम जलयुक्त (सु-सेकम्) उत्तम रीति से खेत सींचने में समर्थ, (अनुप-क्षितम्) कभी क्षीण न होने वाले, (अवतम्) कूप को (सिञ्चामहे) सींचें। अध्यात्म में—परम सुखप्रद, प्रेममय, समृद्ध, सर्वरक्षक प्रभु (अनुपक्षितम्) कभी न खुटने वाले रस का समुद्र है। उससे हम अपने क्षेत्र, देह, नाना आत्मा वा हृदय और जीवन को सींचें। इसलिये (वरत्राः) उत्तम व्रत-पालन आदि क्रियाओं को और प्रभु की (आहावान्) स्तुतियों को (कृणोतन) करें।

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

भा०—मैं (इष्कृत-आहावम्) सुन्दर जलपान के स्थान से सुसज्जित (सु-वरत्रम्) उत्तम रज्जु से युक्त, (सु-सेचनम्) उत्तम रीति से सुखपूर्वक सेचन करने वाले, (उद्रिणम्) जल वाले (अक्षितम्) अक्षय (अवतम्) कूप को प्राप्त कर (सिञ्चे) सिंचाई करूं। (२) ऐसा अक्षय, अविनाशी रस का रक्षास्थान प्रभु है। वह उत्तम वरणीय त्राता होने से 'सुवरत्र' है। रक्षक होने से 'अवत', स्तुत्य होने से 'आहाव' से युक्त है। मैं उसके रस से अपने आपको सींचूं। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥७॥

भा०—(अश्वान् प्रीणीत) हे विद्वान् पुरुषो! अश्वों को, देह में, इन्द्रियों को तृप्त, प्रसन्न, सन्तुष्ट, हृष्ट-पुष्ट रक्खो। (हितं जयाथ) अपना हित कारक अन्न प्राप्त करो। (स्वस्ति-वाहं रथम्) सुखपूर्वक दूर तक लेजाने वाले उत्तम अश्व, वृषभादि से युक्त रथ को (इत् कृणुध्वम्) अवश्य बनाओ, वा अपने (रथं) रमण साधन देह को (स्वस्ति-वाहं कृणुध्वम्) सुखदायक कल्याण, कर्म फल प्राप्त करने वाला बनाओ। हे मनुष्यो! आप लोग

(नृपाणं) मनुष्यों का पालन करने वाले, (अंसत्रं-कोशम्) कवच के समान कोष या आवरण को धारण करने वाले, (अश्म-चक्रम्) पत्थर के घेरे वाले, वा सदा गतिशील दृढ़ चक्र से युक्त, (द्रोण-आहावम्) काष्ठ के बने जलपान-पात्र से युक्त (अवतम्) कूप को प्राप्त कर (सिञ्चत) उससे खेत आदि को सींचो। (२) उसी प्रकार अध्यात्म में (नृ-पाणम्) सबप्राणों के रक्षक, (द्रोण-आहावम्) रसयुक्त स्तुति वाले, (अश्म-चक्रम्) भोक्ता या व्यापक कर्म साधनों वाले, कवचवत् पञ्च कोशों को धारण करने वाले आत्मा को (सिञ्चत) प्राप्त कर उससे रस प्राप्त करो। उसके आनन्द रस से क्षेत्रवत् देह को युक्त करो।

व्र॒जं कृ॑णुध्वं॒ स हि वो॑ नृ॒पाणो॒ वर्म॑ सीव्यध्वं बहु॒ला पृ॒थूनि॑।
पुरः॑ कृणुध्व॒माय॑सी॒रधृ॑ष्टा॒ मा वः॑ सुस्रोच्चम॒सो दृंह॑ता॒ तम्॥८॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! आप लोग (व्रजं कृणुध्वम्) गमन योग्य मार्ग को अच्छी प्रकार बनाओ। आप लोग गौओं के रहने योग्य गोष्ठ आदि बनाओ। (सः हि वः नृ-पाणः) वह निश्चय से आप लोगों के समस्त मनुष्यों, प्राणों और वीरों आदि की रक्षा करने वाला है। आप लोग (बहुला) बहुत से (पृथूनि) बड़े २ (वर्म) नाना कवचों को (सीव्यध्वम्) सीयो। आप लोग (अधृष्टाः) शत्रु से न जीते जाने योग्य, (आयसीः) लोह की बनी, शस्त्रादि से सुसज्जित, दृढ़ (पुरः कृणुध्वम्) पुरियें, नगरियें बनाओ। (वः चमसः) आप लोगों का चमस, पात्र भी (मा सुस्रोत्) चूए नहीं, वह भी दृढ़ हो। (तम् दृंहत) उसको भी दृढ़ करो। अध्यात्म में यह देह 'जो' इन्द्रियों के रहने का स्थान है, जीव गण इसको उत्तम करें। वही 'नृ' आत्मा का पालक, सुख से रसपान करने का स्थान है, यही वर्म अर्थात् कवचवत् है। ये जीव नाना कोशों को बनाते हैं। ये ही नगरियों के तुल्य हैं। प्राणयुक्त होने से ये 'आयसी' हैं। नाना सुख रस

भोगने के कारण यही देह 'चमस' है। इसका रस-वीर्य स्रवित न हो, प्रत्युत दृढ़ हो।

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ९

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! मैं (वः) आप लोगों की (यज्ञियां धियं) पूज्य परमेश्वर को प्राप्त करने योग्य कर्म और बुद्धि को (आ वर्त्ते) प्रेरित करता हूँ। आप लोग (ऊतये) रक्षा के लिये (यज्ञियाम्) यज्ञ योग्य (यजतां) पूजनीय, सुखदायी (देवीम्) प्रभुशक्ति वा वाणी को धारण करो, उसकी उपासना करो। (यवसा इव गत्वी गौः) घास, भुस, अन्नादि को पाकर पुष्ट गौ के समान वह (मही) महती शक्ति (सहस्र-धारा) सहस्रों सुखों को धारण करने वाली, वा सहस्रों वाणियों वाली होकर (नः पयसा दुहीयत्) हमें दूधवत् ज्ञान, बल से पूर्ण करे।

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥१०॥

भा०—हे उपासक! (हरिम् आ सिञ्च) तू सर्वदुःखहारी प्रभु के सुखमय ज्ञान-रस को (ईम् द्रोः) इस द्रुत गति से जाने वाले मन के (उपस्थे) बीच में पात्र में रस के समान सेचन कर। (अश्मन्-मयीभिः वाशीभिः) लोहसार की बनी वसूलियों से काष्ठ के पात्र के समान (अश्मन्-मयीभिः) व्यापक प्रभु के गुणों से युक्त वा आत्मा की (वाशीभिः) मन को वश करने वाली योग-क्रियाओं वा वाणियों से (तक्षत) प्रभु की स्तुति करो और मनोभूमि को तैयार करो। (कक्ष्याभिः) रज्जुओं से अश्वों के समान (दश) दशों इन्द्रियों को (कक्ष्याभिः) द्रष्टा आत्मा वा प्राण की वृत्तियों द्वारा (परि स्वजध्वम्) चारों ओर से नियमित करो। और उसे (परि-सु-अजध्वम्) सन्मार्ग पर चलाओ। (उभे धुरौ) दोनों प्रकार

की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को (धुरौ) रथ को धारण करने वाले दो अश्वों के तुल्य जान कर (वह्निं प्रति युनक्त) शरीर को वहन करने वाले आत्मा को संयुक्त करो। "प्रति वह्नी युनक्त" यह सायण-सम्मत पाठ है।

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ११

भा०—(वह्निः) देह को वहन करने वाला आत्मा (आ-पिब्दमानः) सर्वत्र पूर्ण, प्रसन्न होता हुआ, (योना इव द्वि-जानिः) गृह में दो स्त्रियों के स्वामी के समान (उभे धुरौ अन्तः) देह के भीतर दोनों देहधारक इन्द्रिय-शक्तियों का (चरति) भोग करता है। और उनके बीच में गति करता है। (वनस्पतिम्) नाना विषयों को सेवन करने वाले इन्द्रियगण के पालक आत्मा को (वने) संभजन योग्य प्रभु में (आ-स्थापयध्वम्) स्थापित करो। (नि दधिध्वम्) आत्मा को उस में स्थिर करो। और (उत्सम्) रसों के परम आश्रय उस प्रभु को (अखनन्त) कूप के समान श्रमपूर्वक खोदकर, श्रम कर के जलवत् परम रस प्राप्त करो।

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥ १२ ॥ १९ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! वह प्रभु (कपृत्) सुख से जगत् को पूर्ण करने वा सुख का विस्तार करने वाला है। उस (कपृथम्) सुख-पूरक, आनन्दघन प्रभु को (उत् दधातन) सबसे ऊंचा करके अपने चित्त में धारण करो। और (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, आनन्द लाभ के लिये, अन्न के लिये जल से पूर्ण मेघ के तुल्य ही (चोदयत) उसकी स्तुति करो। (खुदत) उसी में आनन्द लाभ करो। उसी में रमो और

विहरो। हे (सबाधः) लोक-पीड़ाओं से दुःखी जनो! वा बाधना अर्थात् प्रतिपक्ष भावना के अभ्यासी जनो! आप लोग (इह) इस लोक में (ऊतये) रक्षा के निमित्त (निष्टिग्र्यः पुत्रम्) निःशेष तीक्ष्ण वा आत्म शक्ति के वा 'निष्टि' नाश वाले देह विश्व आदि को जीर्ण करने वा अपने भीतर लेने वाले, नित्य शक्ति वाले प्रभु के 'पुत्रवत्', बहुतों के पालक (इन्द्रम्) इन्द्र, आत्मा को (आच्यावय) सब प्रकार से प्राप्त करो। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[१०२]

ऋषिर्मुद्गलो भार्म्यश्वः॥ देवता—द्रुघण इन्द्रो वा॥ छन्दः—१ पादनिचृद् बृहती। ३, १२ निचृद् बृहती। २, ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७, ८, १० विराट् त्रिष्टुप्। ११ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव॥ १॥

भा०—हे जीव! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुओं और विघ्नों का नाशक परमेश्वर ही (धृष्णुया) दुष्टों के नाशक बल से (ते) तेरे (मिथू-कृतम्) सारथी बने (रथम्) सुखप्रद साधन देह की (अवतु) रक्षा करे। हे (पुरु-हूत) बहुतों के पुकारने योग्य! (अस्मिन्) इस (श्रवाय्ये) श्रवण करने योग्य (आजौ) संग्राम तुल्य, जय योग्य प्राप्तव्य मार्ग में और (धन-भक्षेषु च) धनैश्वर्य के सेवन के अवसरों में (नः अव) हमारी रक्षा कर।

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम्।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना॥२॥

भा०—(यत्) जब (वातः) वायु के समान बलशाली पुरुष (रथीः) रथस्वामी, महारथी होकर (सहस्रम्) सहस्रों, बलवान् शत्रुओं

का (अजयत्) विजय करता है, तब वह (अधि रथम्) रथ के ऊपर रह कर (अस्याः) इस सेना वा भूमि का (वासः) वस्त्र के तुल्य लज्जा-संगोपन तथा रक्षा के कार्य को अपने ऊपर धारण करता है। उस समय वह अधीन सेना (गविष्टौ) भूमियों को प्राप्त करने के निमित्त (मुद्गलानी अभूत्) हर्षों, सुखजनक साधनों को प्राप्त कराने वाली होती है। और वही (इन्द्र-सेना) शत्रु के नाशक वीर पुरुष की सेना (भरे कृतम्) संग्राम में किये विजय-लाभ और लक्ष्मी-लाभ को (वि अचेत्) विशेष रूप से, विविध प्रकार से प्राप्त करे। (२) आधिभौतिक पक्ष में—जब वायु इस भूमि के ऊपर के आच्छादक मेघ को धारण करता है (रथीः) वेगवान् रसमय मेघ से युक्त होकर (सहस्रम्) तेजस्वी सूर्य को विजय कर लेता है तब (मुद्गलानी) सुखप्रद अन्नों को देने वाली (इन्द्र-सेना) अन्नप्रद सूर्य वा किसान की स्वामित्व वाली भूमि (गो-इष्टौ) भूमि-यज्ञ, कृषि के करने पर (भरे) प्रजापोषण के निमित्त (कृतम् वि-अचेत्) उत्पन्न अन्न को विविध रूप से प्राप्त करती है।

अ॒न्तर्य॑च्छ॒ जिघां॑सतो॒ वज्र॑मिन्द्राभि॒दास॑तः ।
दास॑स्य वा मघव॒न्नार्य॑स्य वा सनु॒तर्य॑वया व॒धम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! शत्रु को नाश करने हारे! (जिघांसतः) मारना चाहने वाले (अभिदासतः) नाश करने वाले शत्रु के (अन्तः) भीतर तू अपने (वज्रम्) बल वीर्य को वा शस्त्र बल को (यच्छ) स्थापित कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (दासस्य वा आर्यस्य वा) अपने सेवक और श्रेष्ठ पुरुष के (सनुतः) सदा गूढ़ रूप से किये (वधम्) नाशकारी वध-प्रयोग को (यवय) दूर कर। अथवा—(दासस्य आर्यस्य) नाशकारी और चढ़ाई करने योग्य शत्रु के वधकारी शस्त्र वा घातक प्रयोग को हम से दूर कर।

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥४॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या मेघ (उद्नः ह्रदम्) जल से भरे जलाशय को (अपिबत्) पान कर लेता है, और (जर्हृषाणः) उसे हरण करता हुआ (कूटम् तृंहत्) पर्वत मे टकराता है, (मुष्कभारः) पृथ्वी से लिये जल को (बाहू) मानों दोनों बाहुओं से (श्रवः प्र अभरत्) इच्छापूर्वक अन्न प्रदान करता है, और (अजिरं सिषासन्) निरन्तर वेग से जल विभक्त करता है उसी प्रकार वीर पुरुष (जर्हृषाणः) हर्षित होकर (ह्रदम् अपिबत्) उत्तम बलदायक रस का पान करता हुआ (कूटम्) छल से युक्त (अभिमातिम् एति) अभिमानी शत्रु पर आक्रमण करता है, (श्रवः इच्छमानः) यश चाहता हुआ, (मुष्क-भारः) परिपुष्ट सामर्थ्यवान् होकर (सिषासन्) ऐश्वर्य चाहता हुआ (अजिरं) वेग से (बाहू प्र अभरत्) शत्रु के पीड़ाकारी दोनों सैन्यदलों से प्रहार करे ।

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥५॥

भा०—(एनम् वृषभम् उप यन्तः) इस वर्षणशील मेघ को प्राप्त होते हुए वायुगण (नि अक्रन्दयन्) गर्जना कराते हैं और (आजेः मध्ये) अन्तरिक्ष के बीच में (अमेहयन्) उससे वृष्टि कराते हैं । (तेन) उसी से (मुद्ग-लः) सबको हर्ष प्राप्त कराने वाला (सूभर्वं) उत्तम कर्म-फल के अन्नवत् भोक्ता (शतवत् सहस्रं गवाम्) गतिशील सैकड़ों, हज़ारों प्राणियों को (प्रधने) उत्तम अन्न आदि ऐश्वर्य के निमित्त (जिगाय) वश करता है । (२) उसी प्रकार विद्वान् लोग (वृषभम् उप प्रयन्तः) बलवान्, सर्वसुखवर्षी प्रभु की उपासना करते हुए (नि अक्रन्दयन्)

उसकी खूब २ स्तुति करते हैं। इसी स्तुति कर्म से (प्रधने) उत्कृष्ट धन-सम्पन्न प्रभु के निमित्त (मुद्गलः) आनन्द प्राप्त करने वाला विद्वान् (सुभर्वम्) सुख से ग्रहण-धारण करने योग्य (गवां शतवत् सहस्रं) सौ से युक्त सहस्र वाणियों अर्थात् अनेक वाणियों को भी (जिगाय) प्राप्त करता है।

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(ककर्दवे) दुःख बन्धन को काटने के लिये (वृषभः) समस्त सुखों को वर्षाने वाले प्रभु को (युक्तः आसीत्) योग द्वारा समाहित चित्त से ध्यान किया जाता है। वह ही (केशी) सूर्य के तुल्य नाना ज्ञानरश्मियों से सम्पन्न, तेजस्वी होकर (अस्य) इस जीव संसार को (सारथिः) रथ-सञ्चालक के समान (अवावचीत्) उसको स्पष्ट रूप से उपदेश करता है। (अनसा) प्राण शक्ति या जीवन के साथ (द्रवतः) वेग से जाने वाले (युक्तस्य) योगद्वारा समाहित, ध्यान किये गये (दुधेः) दुःख से धारण करने योग्य, दुर्गम्य, (निष्पदः) ज्ञान-क्षेत्र से दूर उस आत्मतत्त्व की (मुद्गलानीम्) सुखदात्री परमानन्द दायक शक्ति को (अनसा सह ऋच्छन्ति) अपने प्राण के साथ ही साक्षात् करते हैं।

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन्।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥ ७ ॥

भा०—(विद्वान्) ज्ञानवान् पुरुष, (अस्य प्रधिम्) इस संसार के सर्वोत्कृष्ट धारक पालक प्रभु को (उत् अहन्) उत्तम रीति से प्राप्त करे। वह (इन्द्रः) तत्वदर्शी पुरुष (अत्र) इसी देह में (शिक्षन्)

अपने को समर्पण करता हुआ (वंसगम्) समस्त लोकों के संञ्चालक, और उनमें व्यापक, (अघ्न्यानां पतिम्) अविनाशी शक्तियों के पालक प्रभु को (उत् आवत्) उत्तम पद पर प्राप्त करता है, और (कुकुद्मान्) श्रेष्ठ होकर (पद्याभिः अरंहत) उत्तम चलने योग्य मार्गों से गति करता है।

शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त॥८॥

भा०—(कपर्दी) सुख से जगत् भर को पूर्ण करने वाला महान् सामर्थ्य वाला, (अष्ट्रावी) व्यापक शक्तिमान् होकर (वरत्रायाम्) सर्वोत्तम रक्षाकारक शक्ति में (दारु) छिन्न भिन्न होने वाले जगत् को (आनह्यमानः) सब प्रकार से बांधता हुआ, (शुनम् अचरत्) सुख पूर्वक व्याप रहा है। वह (बहवे जनाय) बहुतसे उत्पन्न होने वाले जीवों के सुखार्थ (नृम्णानि) मनुष्यों के चाहने योग्य अनेक ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ, (पस्पशानः) जगत् को अध्यक्षवत् देखता हुआ (तविषीः अधत्त) अनेक बलवती संञ्चालक शक्तियों को धारण करता है।

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु॥९॥

भा०—(इमं तं) इस उस (वृषभस्य) परम सुखवर्षी प्रभु के (युञ्जं) योग या नियोजक, प्रेरक बल को (पश्य) देख, (काष्ठायाः मध्ये) दिशा, उपदिशा, प्रकृति के परमाणु और सूर्यादि सब के बीच में (द्रुघनम्) अपने वेगवान् गति या शक्ति से सबको आघात करने वाला या उसमें (शयानम्) व्यापक है। (येन) जिस योग के द्वारा (मुद्गलः) वह आनन्दप्रद (गवां शतवत् सहस्रं) सूर्यों और भूमियों के सैकड़ों, हज़ारों को (पृतनाज्येषु जिगाय) संग्रामों में वीर के तुल्य मनुष्यों से बसने योग्य लोकों में विजय करता, वश करता है। अध्यात्म में—आत्मा वह वृषभ

है। इसका यह देह रूप 'काष्ठा' है। उसमें यह द्रुघन = चित्-घन होकर रह रहा है, इससे वह इस देह में (शतवत् नवां सहस्रं) सौ वर्षों वाले सहस्रों सूर्यों अर्थात् दिनों को पार कर लेता है।

आरे अघा को न्वि१त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०॥

भा०—वह प्रभु ऐसा है कि (अघा आरे) उससे सब प्रकार के पाप दूर हैं। (इत्था) ऐसे शुद्ध, बुद्ध निर्मल, निष्पाप प्रभु का (कः ददर्श) कौन साक्षात् करता है? योगी लोग (यं युञ्जन्ति) जिसकी योग द्वारा उपासना करते हैं (तम् उ) उस प्रभु को ही (आस्थापयन्ति) स्थिर करते हैं, हृदय में दृढ़ करते हैं। (न अस्मै तृणम्, न उदकम् आभरन्ति) उस परमेश्वर उपास्य आत्मा लिये न घास, पत्ता और न जल लाते अर्थात् आसन, जल आदि पूजार्थ नहीं लाते हैं तो भी वह (उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट और सबको तराने वाला होकर (प्रदेदिशत्) सबको सन्मार्ग बतलाता हुआ, सबको सञ्चालित करता हुआ (धुरः वहति) धारण करने योग्य समस्त लोकों को धारण करता है। वह प्रभु सब जगत् रूप शकट को उठाता हुआ भी घास, जल आदि की अपेक्षा नहीं करता। (२) इसी प्रकार इस मन्त्र में ऐसे यन्त्र का भी वर्णन कर दिया है जिसको रथ में अश्व के स्थान पर जोड़ते हैं उसको ही उस रथ में सारथिवत् बैठाते हैं। वह पशु के तुल्य स्वयं भूमि पर खड़ा होता, न घास और न जल चाहता है, उत्तम वेग से जाता, प्रकाश करता और रथ के धुरा भाग को अपने वेग से चलाता है। ऑटोमेटिक मशीनों में सबमें यही सिद्धान्त कार्य करता है।

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन्।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥

भा०—(परि-वृक्ता इव) जिस प्रकार पिता से दी गई कन्या

(पीप्याना) शरीर और आयु में बढ़ती हुई (पति-विद्यम् आनट्) प्राप्त करने और वरने, विवाह विधि से संबन्ध करने योग्य पति, पालक को (आनट्) प्राप्त करती है उसी प्रकार यह (चित्) चेतना वा ज्ञान करने वाली बुद्धि (परि-वृक्ता) सबसे पृथक् रह कर (पीप्याना) बढ़ती हुई, (पति-विद्यम्) पालक स्वामी आत्मा के ज्ञान को (आनट्) प्राप्त करती है। (कूचक्रेण इव सिञ्चन्) जैसे मेघ पृथिवी पर चक्रवत् होकर वर्षा करता है उसी प्रकार यह आत्मा चित्त भूमि पर (सिञ्चन्) आनन्द की वर्षा करता है। वह चित्, ज्ञानमयी बुद्धि (एषं-एष्या) नाना इच्छाओं को निरन्तर करने वाली है, उससे हम (रथ्या) रमण योग्य इस देह में होने वाले नाना सुखों, कर्मों और ज्ञानों को (जयेम) विजय करते हैं। (सातम् सिनवत्) हमारा भोग किया सुखादि भी अन्न के समान (सुमंगलम् अस्तु) हमें उत्तम सुखप्रद हो।

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषासासि चोदयन्वध्रिणा युजा १२॥२१

भा०—(त्वं) तू (विश्वस्य जगतः चक्षुषः) समस्त विश्व के प्रकाशक, सूर्यादि का भी (चक्षुः असि) प्रकाशक और आंख का भी आंख, परम ज्ञान का प्रकाशक है। (यत्) क्योंकि तू (वृषा) बलवान्, सर्वशक्तिमान् होकर तू (वध्रिणा युजा) सर्वव्यापक सबको मार्ग में नियोजन करने वाले बल से (वृषणा चोदयन्) रथ में लगे दो अश्वों के तुल्य प्राणों वा मन और इन्द्रिय वर्गों को सूर्य, चन्द्रवत् (चोदयत्) प्रेरित करता हुआ (सिषाससि) सबको वश करता है। इत्येकविंशो वर्गः॥

[१०३]

ऋषिरप्रतिरथ ऐन्द्रः॥ देवता—१—३, ५—११ इन्द्रः। ४ बृहस्पतिः। १२ अप्वा। १३ इन्द्रो मरुतो वा। छन्दः—१, ३—५, ९ त्रिष्टुप्। २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप्। १३ विराडनुष्टुप्॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥१॥

भा०—सेनापति रूप से इन्द्र। (आशुः) शीघ्रकारी, व्यापक, वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला, (शिशानः) अति तीक्ष्ण, (वृषभः न भीमः) सांड के समान भयानक, वृष्टिकारी, मेघ के तुल्य भयजनक, (घनाघनः) शत्रुओं को नाश करने वाला, (चर्षणीनां क्षोभणः) सब मनुष्यों को विक्षुब्ध करने वाला, (सं-क्रन्दनः) शत्रुओं को ललकारने वाला वा शत्रुओं को रुलाने वाला, (अनिमिषः) कभी न झंपकने वाला, सदा सावधान, अप्रमादी, (एकवीरः) एकमात्र वीर्यवान्, शूरवीर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं को निवारण करने वाला है। वह (शतं सेनाः) नायकों सहित सैकड़ों दलों का एक साथ विजय करता है। ऐसा शूरवीर सेनापति ही 'इन्द्र' पद के योग्य है। (२) परमेश्वर व्यापक, (शिशानः) शासक, दुष्टों को भयंकर, सब मनुष्यों को भयप्रद, उनको सन्मार्ग में चलाने वाला, उत्तम उपदेष्टा, सदा जागृत, एक, अद्वितीय, शक्तिशाली है, वह अनेक सौर मण्डलों को एक साथ वश कर रहा है।

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥ २॥

भा०—हे (युधः नरः) योद्धा नायक, वीर पुरुषो! तुम लोग (सं-क्रन्दनेन) शत्रुओं को रुलाने वाले या उनका ललकारने वाले, निरन्तर सावधान, न चूकने वाले, (जिष्णुना) विजयशील, (युत्कारेण) युद्धकारी अति वीर (दुः-च्यवनेन) शत्रुओं से कभी विचलित या पराजित न होने वाले, मैदान छोड़ कर न भागने वाले, दृढ़ (धृष्णुना) शत्रुओं का मान-भंग करने वाले, (इषु-हस्तेन) वाण रूप साधनों से सम्पन्न (वृष्णा) बलवान् (इन्द्रेण) शत्रुहन्ता सेनापति के द्वारा (तत् जयत) उस युद्ध का विजय करो। (तत् सहध्वम्) उस शत्रु दल का पराजय करो।

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (इषुहस्तैः) बाण आदि हनन साधनों को हाथों में लिये पुरुषों के द्वारा (वशी) शत्रुओं को वश करने वाला है। (सः) वह (नि-षङ्गिभिः) तूणीर, तलवार वालों के द्वारा (वशी) सब राष्ट्र को वश करनेहारा है। (सः) वह (संस्रष्टा) उत्तम व्यवस्थाकर्त्ता, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (गणेन युधः) अपने सहकारी जनों सहित युद्ध करने वाला है। वह (सोम-पाः) प्रजा, ऐश्वर्य को पालने वाला, (संसृष्ट-जित्) परस्पर मिलकर युद्ध करने वाले शत्रुओं को भी जीतने वाला, (बाहु-शर्धी) बाहु-बल से सम्पन्न, (उग्र-धन्वा) भयंकर धनुर्धर है। वह (प्रति-हिताभिः) शत्रु पर फेंकी वा उसके प्रति सञ्चालित शस्त्रास्त्रों वा सेनाओं से (अस्ता) शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ हो।

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े भारी राष्ट्र, सेना और ऐश्वर्य के पालक! तू (रथेन) वेगयुक्त रथ नाम सेनाङ्ग से (परि दीयाः) आगे बढ़। तू (रक्षः-हा) दुष्टों, विघ्नों का नाशक होकर और (अमित्रान् अप-बाधमानः) शत्रुओं को दूर से ही पीड़ित कर भगाता हुआ, (सेनाः) नायकों सहित शत्रु दलों को (प्रभञ्जन्) तोड़ता फोड़ता हुआ, (प्रमृणः) हिंसाकारी शत्रुओं को (युधा) युद्ध द्वारा (जयन्) विजय करता हुआ, (अस्माकं रथानां) हम रथारोहियों, वा हमारे रथों का (अविता एधि) रक्षक हो। (२) अध्यात्म में—यह आत्मा 'इन्द्र' है। वह देह रथ से आगे बढ़े। सब बाधक काम क्रोधादि पर वश करे। और रथों, रमण साधन इन्द्रियों की रक्षा करे।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (बल-विज्ञायः) सब बलों को विशेष रूप से जानने वाला, सेना बल, और शस्त्रास्त्र, यन्त्रादि बलों का उत्तम ज्ञाता हो। (स्थविरः) तू महान्, ज्ञान-वृद्ध, अनुभव-वृद्ध और युद्ध में स्थिर, (प्रवीरः) उत्तम वीर्यवान्, शूरवीर, बलवान् पुरुषों से सम्पन्न, (सहस्वान्) शत्रु विजयकारी बल से सम्पन्न, (वाजी) बल, ज्ञान, धन का स्वामी, (सहमानः) शत्रु दल का पराजय करता हुआ, (उग्रः) अति तीक्ष्ण, भयंकर, (अभिवीरः) वीरों से घिरा हुआ, वा वीर्यवान् पुरुषों को पराजय करने में समर्थ, (अभि-सत्वा) बलवान् पुरुषों से सम्पन्न, (सहोः-जाः) शत्रु पराजयकारी, बल में निष्ठ, उसमें विख्यात, पराक्रमी, (गोवित्) भूमि को युद्धादि से प्राप्त करने वाला, है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्ता ! तू (जैत्रं रथम्) विजयकारी रथ पर (आतिष्ठ) विराज।

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ६॥२२॥

भा०—हे (स-जाताः) बल, कीर्ति, वंश आदि से समान रूप से विख्यात सहयोगी, सहोद्योगी वीर पुरुषो ! आप लोग (गोत्र-भिदम्) शत्रु-वंशों के नाशक, प्रतिपक्षी भूमि के रक्षक, शत्रुओं के गढ़ों और दलों के भेदक ! (गो-विदं) पृथ्वी के प्राप्त करने वाले, (वज्र-बाहुम्) बाहु-बलशाली वीर्यवान्, (अज्म जयन्तम्) संग्राम का विजय करने वाले और (ओजसा) बल पराक्रम से (प्रमृणन्तं) शत्रुओं को खूब नाश करने वाले (इमम् इन्द्रम्) इस इन्द्र, सेनापति को (अनु वीरयध्वम्) अनुसरण करके खूब साहसो, वीर बनाओ और स्वयं भी वीर के तुल्य शौर्य का कार्य करो। हे

हो (सखायः) मित्र जनो ! आप लोग (अनु संरभध्वम्) उसके अनुकूल ही मिल कर उद्योग करो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥

भा०—(शत-मन्युः) सैकड़ों क्रोधों, गर्वों और ज्ञानों वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति, (वीरः) वीर, (अदयः) शत्रु पर निर्दय, अन्यो से अपनी रक्षा की अपेक्षा न करने वाला, (सहसा) शत्रु पराजय-कारी बल से (गोत्राणि अभि) भूमि के रक्षाकारी शत्रु सैन्यों के प्रति (गाहमानः) आगे बढ़ता हुआ (दुश्च्यवनः) कठिनता से पदच्युत न करने योग्य (पृतना-षाड्) सैन्यों और संग्रामों का विजय करने वाला (अयुध्यः) ऐसा प्रचण्ड हो कि उससे शत्रुगण युद्ध न कर सकें । वह (युत्सु) युद्धों में (अस्माकं सेनाः प्र अवतु) हमारी सेनाओं का रक्षा करे ।

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) इन्द्र, परम ऐश्वर्ययुक्त शत्रु के व्यूहों को तोड़ने में समर्थ सेनापति (आसां नेता) इन सेनाओं का नायक हो । 'बृहस्पति' बड़े भारी बल, अधिकार, महती सेना का पालक, वह (यज्ञः) सर्वपूज्य, सबका दाता होकर (दक्षिणा) सर्वसैन्य का अन्न दाता होकर रहे । वह (सोमः) सब का शास्ता होकर (पुरः एतु) सबके आगे आवे । (अभि-भञ्जतीनां) शत्रुओं को सब प्रकार तोड़ती फोड़ती, (जयन्तीनां) विजय करती हुई, (देव-सेनानाम्) विजयाभिलाषी वीरों की सेनाओं के (अग्रम्) अग्र, मुख्य पद को प्राप्त कर आगे २ (मरुतः) शत्रुओं का मारने में समर्थ वायुवत् बलवान् शूरवीर पुरुष (यन्तु) चलें ।

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ९ ॥

भा०—(वृष्णः) बलवान् (इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता, सेनापति का, और (वरुणस्य) प्रजा द्वारा स्वयं वरण किये गये सर्वश्रेष्ठ राजा का, और (आदित्यानां मरुताम्) आदित्यवत् तेजस्वी, पुरुषों, वा परस्पर लेन-देन करने वाले सम्पन्न व्यवसायियों, और (मरुताम्) वायुवत् वृक्षों के तुल्य शत्रुओं को समूल उखाड़ देने वाले, वीर योद्धाओं का (उग्रं शर्धः) भयंकर, तीव्र बल, और (महामनसां) बड़े मनस्वी, विज्ञानवान् (भुवन च्यवानाम्) भूलाक वा समस्त भुवनों को कंपा देने वाले (जयताम्) विजयी (देवानां) वीरों, राजाओं का (घोषः) नाद (उत् अस्थात्) ऊपर उठे और फैले ।

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः १०

भा०—हे (मघवन्) प्रशस्त धनैश्वर्य से सम्पन्न ! तू (सत्वनाम् मामकानाम्) मेरे पक्ष के बलवान् वीर पुरुषों के (आयुधानि उद् हर्षय) शस्त्र अस्त्रों को उत्साहित कर । और उनके (मनांसि उत्-हर्षय) चित्तों को हर्षित कर । हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाशक ! (वाजिनां वाजिनानि) वेगवान् घुड़सवारों की वेगयुक्त गतियों को (उत्) उत्साहित कर । (जयतां रथानां) विजयशील रथों के (घोषाः उत् यन्तु) घोष, नाद उठें ।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ ११ ॥

भा०—(अस्माकं) हमारे (ध्वजेषु समृतेषु) ध्वजों, ध्वजा वाले वीर नायकों के एकत्र मिलकर जुट जाने पर (इन्द्रः) हमारा सेनापति

और (अस्माकं याः इषवः) हमारे जो बाण आदि युक्त सैन्य हैं (ताः) वे सब (जयन्तु) विजय लाभ करें । (अस्माकं वीराः) हमारे वीर जन (उत्तरे भवन्तु) उत्तर, अर्थात् शत्रुओं पर विजयी हों । हे (देवाः) वीर विजिगीषु लोग (हवेषु) युद्ध के अवसरों में (अस्मान् उ अवत) हमारी रक्षा करो ।

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥

भा०—हे (अप्वे) शत्रुद्वारा न पराजित होने वाली सेने ! तू (अमीषां) इन शत्रुओं के (चित्तं प्रति-लोभयन्ती) चित्त को मोहित करती हुई उनके (अंगानि गृहाण) अंगों को पकड़ ले, उन पर वश कर । तू (परा इहि) दूर तक जा । (अभि प्र इहि) आगे बढ़ती चली जा । (शोकैः) अग्नि की लपटों, आग्नेय अस्त्रों से (अमित्रान्) शत्रुओं को (हृत्सु निर्दह) हृदय में दग्ध कर । वा, उनके हृदयों को शोकों से दग्ध कर । (अन्धेन तमसा) अन्धकारयुक्त खेद, शोकादि से वे (सचन्ताम्) युक्त हों ।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ १३ ॥ २३ ॥

भा०—हे (नरः) वीर नायको ! (प्र इत) आगे बढ़ो । (जयत) विजय लाभ करो । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी (वः शर्म यच्छतु) तुम्हें सुख प्रदान करे । (वः बाहवः) आप लोगों की बाहुएं (उग्राः) ऐसी बलशाली हों (यथा) कि तुम लोग (अनाधृष्याः असथ) कभी पराजित न होने वाले होवो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१०४]

अष्टको वैश्वामित्रः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

असा॑वि॒ सोमः॑ पुरुहूत॒ तुभ्यं॒ हरि॑भ्यां य॒ज्ञमुप॑ याहि॒ तूय॑म् ।
तुभ्यं॒ गिरो॒ विप्र॑वीरा इया॒ना द॑ध॒न्वि॒र इ॑न्द्र॒ पिबा॑ सु॒तस्य॑ ॥१॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से स्वीकृत (तुभ्यम्) तेरे लिये वा तेरा ही यह (सोमः) पुत्रवत् उत्पन्न जगत् (असावि) उत्पन्न होता है। तू (यज्ञम्) इस महान् जगत् रूप यज्ञ को (हरिभ्याम्) धारण, आकर्षण, अग्नि और जल, इन दोनों शक्तियों से (तूयम् उप याहि) शीघ्र ही प्राप्त होता है। (विप्रवीराः) बुद्धिमान् उत्तम स्तुतियों को कहने वाले और वीर पुरुष (तुभ्यम्) तेरे ही लिये, तुझे ही लक्ष्य करने वाली, वा तेरी ही (गिरः दधन्विरे) वाणियों को धारण करते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शक्तिशालिन्! अन्न जल के दाता प्रभो! तू (सुतस्य पिब) इस समस्त उत्पन्न जगत् को पुत्रवत् पालन कर। (२) इसी प्रकार राजा के भी कर्त्तव्य हैं।

अ॒प्सु धू॒तस्य॑ हरिवः॒ पिबे॒ह नृभिः॑ सु॒तस्य॑ ज॒ठरं॑ पृणस्व ।
मि॒मि॒क्षुर्यमद्र॑य इन्द्र॒ तुभ्यं॒ तेभि॑र्वर्धस्व॒ मद॑मुक्थवाहः ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) समस्त मनुष्यों, प्राणियों और शक्तिशाली समस्त लोकों के स्वामिन्! (अप्सु धूतस्य) जलों के सदृश सरल एवं देह में व्यापक रक्त, रसों वा प्राणों के आश्रय पर संचालित और (नृभिः सुतस्य) नरों, पुरुषों द्वारा गर्भ में निषिक्त वा उत्पन्न जीव के (जठरम्) गर्भ वा उदर को (इह) इस लोक में (पृणस्व) पालन और पूर्ण करता है। तू ही उसकी रक्षा कर। हे (इन्द्र) सूर्यवत् जल अन्न के देने हारे! (यम्) जिस (मदम्) तृप्तिकारक, सुखप्रद जल वा अन्न को (अद्रयः) मेघगण (मिमिक्षुः) पृथ्वी पर बरसाते हैं, वह भी (तुभ्यम्) तेरा ही है, वा हे (इन्द्र) जीव! वह तेरे लिये ही है। और हे (उक्थ-वाहः) उत्तम ज्ञान-वचन, वेद को धारण करने वाले! (तेभिः वर्धस्व) उनसे तू बढ़। उनके कारण तू महान् है, तू उन सबको बढ़ा।

प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनांभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्यां गृणानः ॥३॥

भा०—हे (हर्यश्व) मनुष्यों वा जीवों में भी व्यापक ! सब लोकों के सञ्चालक ! (वृष्णे तुभ्यम्) समस्त सुखों को बरसाने वाले, तुझ बलवान् की (सुतस्य) उत्पन्न हुए जगत् विषयक (उग्राम्) सदा उद्यत, सावधानता पूर्वक की गई, बलवती (सत्याम्) सच्ची, सत्कारणों पर आश्रित (तुभ्यम् पीतिम्) तेरी रक्षा की (प्रयै) उत्तम पद प्राप्त करने के लिये (प्र इयर्मि) अच्छी प्रकार स्तुति करूं। तू (शच्या) शक्ति और वाणी द्वारा (गृणानः) सबको उपदेश करता हुआ वा स्तुति किया जाता हुआ, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (धेनाभिः) सबको रस पान कराने वाली वाणियों और (विश्वाभिः धीभिः) सर्वत्र व्यापक ज्ञान-बुद्धियों वा धारक-शक्तियों और कर्म-सामर्थ्यों से (इह मादयस्व) इस जगत् में सबको सुखी करता है ।

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिजं ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ४ ॥

भा०—हे (शचीवः) वेदवाणी और प्रभु की शक्ति के स्वामिन् ! (तव ऊती) तेरी रक्षा, स्नेह और प्रेम तथा शत्रुनाशक बल और (वीर्येण) जगत् के सञ्चालक और उत्पादक वीर्य, सामर्थ्य से (वयः दधानाः) बल और दीर्घ आयु को धारण करते हुए (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान, वेद, यज्ञ और प्रकाश को धारण करने वाले (उशिजः) तेरी कामना करने वाले विद्वान्गण, हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! प्रभो ! (मनुषः) मनुष्य के (प्रजावत् दुरोणे) प्रजा, पुत्रादि से सम्पन्न गृह में (सध-माद्यासः) सब के साथ हर्ष, प्रसन्नता अनुभव करते हुए (गृणन्तः) उपदेश और तेरी स्तुति करते हुए (तस्थुः) विराजें ।

प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधाना स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ५।२४।

भा०—हे (हर्यश्व) समस्त मनुष्यों और लोकों में व्यापक! समस्त लोकों के सञ्चालक! (सुस्तोः सु-सुम्नस्य) उत्तम स्तुति योग्य, शुभ ज्ञान, सुख. धन के स्वामी (ते) तेरे (प्र-नीतिभिः) उत्तम नीतियों से, उत्तम कार्यों से (जनासः) जन, जीवगण (पुरु-रुचः) बहुतसी कान्तियों वा नाना रुचियों वाले होते हैं! और हे (इन्द्र) ऐश्वर्य, अन्न जल, ज्ञान के देने वाले प्रभो! वे (सूनृताभिः) उत्तम सत्य ज्ञानमय वाणियों से (तव स्तोतारः) तेरी स्तुति करने वाले होकर (वि-तिरे) अन्यों को भी दान करने और स्वयं भी पार होने के लिये (मंहिष्ठाम् ऊतिम् दधानाः) तेरी बड़ी पूज्य, श्रेष्ठ रक्षा को धारण करते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥६॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों वा समस्त जीवों. और लोकों के स्वामिन्! तू (सुतस्य सोमस्य) उत्पन्न हुए इस जगत् के (पीतये) पालन करने के लिये (हरिभ्यां) अपने ज्ञान और कर्म रूप दोनों सञ्चालक बलों से (ब्रह्माणि उप याहि) समस्त लोकों वा ज्ञानों को प्राप्त है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (क्षममाणम् त्वा) शक्तिमान्, सामर्थ्यवान् तुझे (यज्ञः आनट्) यज्ञ प्राप्त होता है। हे (प्र-केतः) सर्वोत्तम ज्ञान वाले! तू (अध्वरस्य दाश्वान् असि) नाश न होने वाले कर्मफल का दाता है।

सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥७॥

भा०—(जरितुः गिरः) स्तोता की वाणियां उस ही (सहस्र-वाजम्)

सहस्रों ऐश्वर्यों, बलों, ज्ञानों के स्वामी (सुते-रणम्) उत्पन्न जगत् में रमने वाले, (अभिमाति-सहम्) अभिमानी जीवों को वश करने वाले (मघ-वानम्) समस्त ऐश्वर्यों के मालिक (सु-वृक्तिम्) उत्तम स्तुति योग्य प्रभु को ही (उप भूषन्ति) सुशोभित करती हैं और उसको लक्ष्य कर प्रकट होती हैं। और (जरितुः नमस्याः) स्तोता की समस्त नमस्कार सहित क्रियाएं और वन्दनाएं उसी (अप्रति-इतम्) अद्वितीय, सर्वोपरि (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही (पनन्त) स्तुति करती हैं।

सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित्।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पूर्भित्) देहपुरी का भेदन करने वाला है। तू (याभिः) जिनसे (सिन्धुम् अतरः) बन्धनकारी वा प्रवाह से नित्य बहने वाले जगत्-प्रवाह को (अतरः) तरता वा तरा देता है। वे (सप्त) सात (आपः) प्राणगण (देवीः) ज्ञान देने वाले, (सु-रणाः) उत्तम सुखपूर्वक रमण योग्य (अमृक्ताः) कभी नाश नहीं होते। तू (देवेभ्यः मनुषे च) विद्वान् देवों, नाना कामनावान् जीवों और मननशील ज्ञानी पुरुष को भी (नवतिं नव च स्रोत्या स्रवन्तीः) ९९ वें बहती नदियों के तुल्य ९९ वर्षों को (गातुम्) मार्ग के तुल्य (विन्दः) प्रदान करता है। पक्षान्तर में—इन्द्र तत्वदर्शी जीव स्वयं इनको प्राप्त करता है।

अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे इस जगत् को अन्न जल देने वाले सूर्यवत् तेजस्विन् ! सूर्य जिस प्रकार (वृत्र-तूर्ये) मेघ के छेदन करते हुए (याः मही अपः चकर्थ) जिन उत्तम जीवनप्रद जलों को उत्पन्न करता है (ताभिः) उनसे ही (तन्वं पुष्णाति) सब जीवों के देहों को पुष्ट करता

है। वह (आसु अधि अजागरः) उन सब के ऊपर अध्यक्षवत् प्रकाशित होता है, और उनको (अभि-शस्तेः अमुञ्चः) मेघ से मुक्त करता है (२) इसी प्रकार प्रभो! (त्वम्) तू (याः) जिन (महीः अपः) सुखप्रद बड़े प्राणों वा विद्वान् आप्तजनों को (वृत्र-तूर्ये) आवरक अज्ञान के नाश करने में (चकर्थ) समर्थ करता है, उनको (अभि-शस्तेः) हिंसक शत्रु और निन्दादि से (अमुञ्चः) मुक्त करता है। (आसु अधि) उनके ऊपर (एकः देवः) एक अद्वितीय देव, दाता, प्रकाशक होकर (अजागरः) तू ही जागता है। (ताभिः) उन द्वारा ही (विश्वायुः) सबका जीवन दाता होकर (तन्वं पुपुष्याः) सबके शरीरों को पुष्ट करता है।

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे।
आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः॥ १०॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (वीरेण्यः) वीरों के नायक सेनापति के तुल्य, वीरों, विद्वानों और प्राणों का नायक है। वह (क्रतुः) सब जगत् का कर्त्ता और (सु-शस्तिः) उत्तम ज्ञान का उपदेष्टा है। (उत-अपि) और (धेना) वाणी (पुरु-हूतम् ईट्टे) बहुतों से पूजित प्रभु की ही स्तुति करती हैं। जो (वृत्रम् आर्दयत्) आवरणकारी अन्धकार का नाश करता है और (लोकम् उ अकृणोत्) प्रकाश को उत्पन्न करता है और जो (शक्रः) शक्तिशाली (अभिष्टिः) आक्रमणकारी होकर (पृतनाः ससहे) सेनाओं को भी पराजित करता है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥ ११॥२५॥

भा०—व्याख्या देखो (मं० १०। सू० ८९। मं० १८) इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[१०५]

ऋषिः कौत्सः सुमित्रो दुर्मित्रो॰ वा ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पिपीलिकामध्या उष्णिक् । ३ पुरउष्णिक् । ४, १० निचृदुष्णिक् । ५, ६, ८, ९ विराडुष्णिक् । २ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ७ विराडनुष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् ॥

कृदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥ १ ॥

भा०—हे (वसो) जगत को देह में बसाने वाले आत्मन् ! (हर्यते) सबके चाहने वाले वा सबसे अधिक कान्तिमान्, (वाताप्याय) वायु के समान, प्राणवत् सबको चलाने वाले जीवनप्रद के लिये (कदा स्तोत्रम्) स्तुति-वचन कब करें ? (श्मशा) खेत में फैली नाली जिस प्रकार (वाः आ अव रुधत्) जल को चारों ओर से रोक कर नीचे की ओर बहाती है उसी प्रकार (श्मशा) शरीर में व्यापक चेतन आत्मा (वाः) वरण करने योग्य (दीर्घम् सुतम्) दीर्घ काल तक उपासना योग्य प्रभु को वा दूर २ तक जाने वाले चित्त को (वाताप्याय) वात अर्थात् प्राणों के निरोध द्वारा प्राप्य, महातत्त्व को प्राप्त करने के लिये (आ अव रुधत्) सब ओर से रोके । उसी का चित्त निरोध द्वारा मनन करे (२) । हे(वसो) समस्त जगत् को बसाने वाले ! (हर्यते स्तोत्रम् कदा) कब कान्तियुक्त सूर्य की स्तुति का वचन करूं ? वह तो (दीर्घं सुतम्) बहुत बड़े भारी सूक्ष्म जल-राशि को (श्मशा) महान् आकाश में (अव अरुधत्) रोकता है, और (वाताप्याय) वायु द्वारा प्राप्त करने योग्य वृष्टि-जल को प्राप्त करने वा बरसाने के लिये (वाः अरुधत्) जल को रोक लेता है और प्राप्त कराता है ।

हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥ २ ॥

॰ नाम्ना दुर्मित्रो गुणतः सुमित्रो यद्वा नाम्ना सुमित्रो गुणतो दुर्मित्रः स ऋषिरिति सायणः ।

भा०—(यस्य वेः) जिस कान्तियुक्त तेजस्वी पुरु के (विव्रता) विविध व्रताचरण करने वाले, (सु-युजा) उत्तम रीति से सत्कर्मों में लगने वाले, (अर्वन्ता) दो अश्वों के तुल्य (उभा) दोनों (केशिना) केशों के तुल्य तेजों से युक्त सूर्य चन्द्रवत् आकाश और पृथिवीवत् (रजी) सबको अनुरंजित करने वाले (शेपा) बलयुक्त, दृढ़ अंगों वाला है। (पतिः) वह स्वामी (दन्) सब कुछ देने वाला है। (२) सूर्यपक्ष में—उसके दोनों प्रकार के किरण (वि-व्रता) विविध वर्षादि कर्म कराने वाले, विविध अन्नों के उत्पादक (रजी) सबको रंजित करते हैं।

अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान्।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने वाला (तविषीवान्) बलवती शक्ति से युक्त होकर (शश्रमाणः मर्त्तः न) श्रम करने वाले उद्योगी मनुष्य के तुल्य है वह, (पापजे) पाप से उत्पादक दुष्ट पुरुष, वा पाप कर्म से उत्पन्न दुःख को दूर करने के लिये मैं (विभीवान्) भयकारक साधन वाला होकर (अप योः) उसको पाप से दूर करता और (शुभे युयुजे) शुभ कर्म के लिये प्रेरित करता है।

सचायोरिन्द्रश्चकृष आँ उपानसः सपर्यन्।
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, सर्वशक्तिमान् अन्नदाता प्रभु, (उप-अनसः) अपने समीप प्राण धारण करने वाले (आयोः सचा) मनुष्य का सहायक होकर (सपर्यन्) उसका आदर करता हुआ (आ चकृषे) सब काम करता है। और (वि-व्रतयोः नद्योः) व्रत, सत्कर्म से विपरीत गरजते हुए शत्रुओं के ऊपर (शूरः इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता शूरवीर के तुल्य है। वही स्वामी, (वि-व्रतयोः नदयोः) विविध कर्म करने वाले समुद्रवत्

स्त्री पुरुषों के ऊपर (इन्द्रः) स्वामी है। परमेश्वर आकाश और भूमि दोनों पर सूर्यवत् शासक है।

अधि यस्तुस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्टयै।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (केशवन्तौ) रश्मियुक्त (व्यचस्वन्ता) दूर दूर तक विविध दिशाओं में फैलने वाले प्रकाशों से युक्त सूर्य चन्द्र वायु वा मेघ दोनों पर (पुष्टयै) जगत् के पोषण के लिये (अधि तस्थौ) सूर्य के तुल्य उन पर अध्यक्ष रूप से विराजता है, वह (शिप्रिणीवान्) बलवती सेना के तुल्य शक्ति का स्वामी होकर (शिप्राभ्याम्) जबड़ों के तुल्य सूर्य और पृथिवी दोनों से (वनोति) जीवों को नाना ऐश्वर्य, सुखादि प्रदान करता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥ ६ ॥

भा०—(ऋष्व-ओजाः) दर्शनीय महान् बल-पराक्रम वाला प्रभु (ऋष्वेभिः) ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने वाले ऋषियों, विद्वानों द्वारा (प्र अस्तौत्) ज्ञान का उपदेश करता है वा उत्तम रीति से स्तुति किया जाता है। वह (शूरः) शूरवीर अज्ञान का नाशक (ऋभुः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाला, महान् तेजस्वी, (शवसा) ज्ञान और बल से (क्रतुभिः) नाना कर्मों द्वारा (मातरिश्वा) जगत् के निर्माण करने वाला प्रकृति में व्यापक प्रभु ही (ततक्ष) इस जगत् को बनाता है।

वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान्।
अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (हिरीमशः) कान्तियुक्त, उज्ज्वल तेज वाला, (हिरीमान्) वेगवान्, पदार्थों या शक्तियों का स्वामी, (दस्यवे सुहनाय)

नाशकारी दुष्ट जनों को ताड़ना करने के लिये (वज्रं) पापों से बचाने वाले शस्त्र रूप प्राणदण्ड या बल को प्रकट करता है (अरुत-हनुः) उसकी दण्डदात्री शक्ति कभी बाधित नहीं होती, और उसका (रजः अद्भुतं न) तेज भी आश्चर्यजनक ही है।

अव॑ नो वृजि॒ना शि॑शीह्यृ॒चा व॑नेमा॒नृचः॑ ।
नाब्र॑ह्मा य॒ज्ञ ऋ॒धग्जोष॑ति॒ त्वे ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः) हमारे (वृजिनानि) पापों को (अव शिशीहि) नष्ट कर। हम (ऋचा) स्तुति, मन्त्र द्वारा वा अर्चना द्वारा, (अनृचः) अर्चना न करने योग्य, मन्त्र रहित अभक्त्य जनों वा कर्मों को (वनेम) नाश करें। (अब्रह्मा यज्ञः) बिना वेद वा वेदज्ञ के यज्ञ (ऋधक्) सर्वथा ही (त्वे न जोषति) तुझे प्रसन्न नहीं करता। ऋधक् इति स्वीकारार्थे।

ऊ॒र्ध्वा यत्ते॑ त्रे॒तिनी॒ भूद्य॒ज्ञस्य॑ धू॒र्षु सद्म॑न् ।
स॒जूर्नावं॒ स्वय॑शसं॒ सचा॒योः ॥ ९ ॥

भा०— (यत्) जो (ते) तेरी (यज्ञस्य) महान् यज्ञ की (त्रेतिनी) तीनों लोकों में व्यापक शक्ति (धूः सु) जगत् की धारक शक्तियों वा विद्युत् आदि में और (सद्मनि) सर्वाश्रय सूर्य में (भूत्) है, वह (आयोः) मनुष्य या जीवमात्र की (सचा) सहायक और (सजूः) समान रीति से सबको प्रेरणा देती है। उस (स्वयशसम्) स्वयं यशोरूप (नावम्) सबको सन्मार्ग में चलाने वाली शक्ति को हम प्राप्त करें और जानें।

श्रि॒ये ते॒ पृश्नि॑रुप॒सेच॑नी भू॒च्छ्रि॒ये दर्वि॑रे॒पाः ।
यया॒ स्वे पात्रे॑ सि॒ञ्चस॒ उत् ॥ १० ॥

भा०—(उप-सेचनी) जलों वा रसों को सेचन करने वाली मेघ, विद्युत् वा सूर्य की शक्ति (ते श्रिये भूत्) तेरी भी समृद्धि को बतलाने के लिये है। (यया) जिससे तू (स्वे पात्रे) अपने पात्रवत् जगत् को पालन करने वाले लोक इस पृथिवी में (अरेपाः) निष्पाप एवं निष्पक्षपात होकर

(उत सिञ्चसे) ऊपर सेचता है । जल, सुख, अन्न सम्पदा की वृष्टि करता है, वह (दर्विः) पर्वत आदि को विदारण करने वाली विद्युत् भी (तव श्रिये) तेरी ही शोभा के लिये होती है ।

शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥ ११ ॥ २७ ॥ ५ ॥

भा०— हे (असुर्य) प्राणों में रमण करने वाले जीवों के हितकारक प्रभो ! हे बलवन् ! (त्वा प्रति) तुझे लक्ष्य कर (सु-मित्रः) सुख के कारण तुझे स्नेह करने वाला, (शतम्) सैकड़ों वार (इत्था अस्तौत्) इस प्रकार सत्य २ स्तुति करता है, और (शतम्) सैकड़ों वार (दुः-मित्रः) दुःख के कारण तेरा मित्र, स्नेही जीवगण भी (इत्था अस्तौत्) इसी प्रकार तेरी स्तुति करता है। तू वही है (यत्) जो (दस्यु-हत्ये) दुष्टों को नाश करने के लिये (कुत्स-पुत्रम् आवः) दुष्टों को काटने वाले और बहुतों की रक्षा करने वाले बल की रक्षा करता और (दस्यु-हत्ये) दुष्टों के नाश के लिये (यत्) जो (दस्यु-वत्सम्) दुष्टों को बसाने वाले को (प्र आवः) खूब विनष्ट करता है । अत्र अवतिर्हिंसार्थः । इति षष्ठोऽध्यायः । इति सप्तविंशो वर्गः । इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

[१०६]

ऋषि र्भूतांशः काश्यपः ॥ अश्विनो देवते ॥ छन्दः—१—३, ७ त्रिष्टुप् । २, ४, ८—११ निचृत त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (उभा उ) आप दोनों ही (नूनं) निश्चय से (तत् इत) उसी प्रासव्य ब्रह्म को (अर्थयेथे) प्रार्थना करो, उसको

प्राप्त करने का यत्न करो। (अपसा इव) शिल्पी लोग जिस प्रकार (वस्त्रा) नाना वस्त्रों को फैलाते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (अपसा) कर्मशील होकर (धियः) नाना कर्मों को (वि तन्वाथे) विशेष रूप से करते रहो। आप दोनों (सध्रीचीना) एक साथ मिलकर (ईम् यातवे) उस उद्देश्य की ओर जाने के लिये (प्र अजीगः) आप दोनों विद्वान् उपदेश करें। और (सु-दिना इव) उत्तम दिन रात्रि के समान (पृक्षः) परस्पर के सम्पर्क वा प्रेम को (आ तंसयेथे) उत्तम ही उत्तम बनाओ।

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥ २ ॥

भा०—आप दोनों (उष्टारा) एक दूसरे की सदा कामना करते हुए, परस्पर चाहते हुए, (फर्वरेषु) पूर्ण करने योग्य कार्यों में (श्रयेथे) एक दूसरे का आश्रय लेवें। आप दोनों (प्रायोगा इव) उत्तम योग से युक्त, उत्तम रीति से सम्बद्ध होकर, वा बड़ों से सत्कार्यों में प्रयुक्त होकर (श्वात्र्या) उत्तम धन सम्पन्न, एवं कार्य कुशल होकर (शासुः आ इथः) शास्ता, उपदेष्टा के अधीन होकर रहो। (जनेषु) मनुष्यों के बीच, (दूता इव यशसा हि स्थः) विद्वानों, दूतों, नव संदेश लाने वालों के समान यशस्वी होवो। (महिषा इव) महिष, भैंसें जिस प्रकार (अव-पानात्) जलाशय से दूर नहीं जाते उसी प्रकार आप दोनों (महिषा) महान्, बल-सामर्थ्यवान् होकर (अव-पानात्) पालनीय कर्त्तव्य से (मा अप स्थातम्) दूर कभी न हों।

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम्।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (शकुनस्य-इव पक्षा) पक्षी के दो पांखों के समान (शकुनस्य) आप दोनों को ऊपर, उन्नत मार्ग में उठा लेने में समर्थ प्रभु के (पक्षा) ग्रहण करने वाले होकर (साकं-युजा) सदा साथ मिलकर

रहने वाले होओ और (चित्रा पश्वा इव) पूज्य होकर दो पशुओं के तुल्य एक साथ मिलकर वा ज्ञानदर्शी (यजुः आ गमिष्टम्) यज्ञ को प्राप्त होओ। (देवयोः) विद्वानों और देवों, शुभ गुणों की कामना करने वाले यज्ञशील स्त्री पुरुषों के (अग्निः इव) अग्नि के समान (देवयोः) एक दूसरे को चाहने वाले आप दोनों में से प्रत्येक (अग्निः इव) अग्निवत् तेजस्वी होकर (दीदिवांसा) चमकते हुए (परि-ज्माना इव) चारों ओर जाने वाले दो ग्रहों वा सूर्य चन्द्र के तुल्य, (पुरु-त्रा) अनेक स्थानों और कालों में (यजथः) परस्पर संगत होकर रहो।

आपी॑ वो अ॒स्मे पि॒तरे॑व पु॒त्रोग्रेव॑ रु॒चा नृ॒पती॑व तु॒र्यै ।
इ॒र्येव॑ पु॒ष्ट्यै कि॒रणे॑व भु॒ज्यै श्रु॒ष्टीवाने॑व॒ हव॒मा ग॑मिष्टम् ॥ ४ ॥

भा०—(वः) आप दोनों (अस्मे आपी) हमारे बन्धु होवो। आप दोनों (पितरा इव पुत्रा) मां बाप के समान गुण धारण करने वाले योग्य पुत्रों वा माता पिता के तुल्य पालक जनों के प्रति पुत्रों के तुल्य आज्ञाकारी, स्नेही, वा (पितरा इव) माता पिता के समान (पुत्रा) बहुतों को पालन करने वाले होवो। (रुचा) कान्ति से (उग्रा इव) उग्र, प्रखर, उदय होते हुए सूर्य और चन्द्र के तुल्य तेजस्वी होवो। (तुर्यै नृपती इव) शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने वाले भृत्य-जनता के लिये दो राजा-रानी के तुल्य होवो। (पुष्ट्यै इर्या इव) पुष्टिदायक अन्न समृद्धि के लिये, अन्नप्रद मेघ और सूर्य दोनों के तुल्य होवो। और (भुज्यै किरणा इव) पालन और अन्नादि भोग्य सामग्री की उत्पत्ति के लिये सूर्य की प्रकाश और ताप देने वाली दो प्रकार की किरणों के तुल्य होओ। और आप दोनों (हवम्) यज्ञ को (श्रुष्टीवाना इव) शीघ्रगामी रथों से युक्त रथी सारथी के तुल्य अन्न समृद्धि से युक्त सुखी होकर (आ गमिष्टम्) आओ।

वंस॑गेव पूष॒र्या॑ शि॒म्बाता॑ मि॒त्रेव॑ ऋ॒ता श॒तरा॒ शात॑पन्ता ।
वाजे॑वो॒च्चा वय॑सा घर्म्ये॒ष्ठा मे॒षेवे॒षा स॑प॒र्या॒३॒ पुरी॑षा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—आप दोनों (वंसगा इव) दो वृषभों के तुल्य (पूपर्या) स्वयं परिपुष्ट और अन्यों को अन्नों से पुष्ट करने वाले स्वामी होवो। (मित्रा इव) परस्पर दो स्नेही मित्रों के समान (शिम्याता) एक दूसरे को सुख-प्राप्त कराने वाले, (ऋता) परस्पर सत्य व्यवहार से युक्त, धर्म मार्ग पर चलने वाले, (शतरा) सैकड़ों, अनेक धनों से सम्पन्न वा सैकड़ों धन देने वाले, (शातपन्ता) सैकड़ों व्यवहारों वा स्तुत्य कार्यों को करने वाले होवो। (वाजा इव उच्चा वयसा) बलवान् दो अश्वों के तुल्य ऊंचे और अवस्था वा बल में भी बड़े आप दोनों (घर्म्येष्ठा इव) तेजस्वी रूपों में स्थित, (मेषा इव) मेष मेषी के तुल्य वा वसन्त के दो मासों के तुल्य, (इषा सपर्या) अन्न से सेवन योग्य, (पुरीषा) अन्यों को भी पुष्ट करने वाले होवो। इति प्रथमो वर्गः ॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥ ६ ॥

भा०—(सृण्या इव) सन्मार्ग में लेजाने वाले दो नायकों के समान (जर्भरी) चेष्टा वा अधीनों का पालन करते हुए, (तुर्फरीतू) शत्रुओं का विनाश करते हुए और (नैतोशा इव तुर्फरी) दुष्टों का वध करने वाले राजा के पुत्रों के समान (तुर्फरी) दुष्टों का नाश करते हुए, (पर्फरीका) प्रजाओं का पालन और पोषण करते हुए, (उदन्यजा) जल में उत्पन्न समुद्र के दो रत्नों वा मोतियों के समान (जेमना) विजयशील, (मदेरू) सदा सुप्रसन्न होवो। (ता) वे आप दोनों (मे) मेरे (जरायु) वृद्धावस्था को प्राप्त होने वाले और (मरायु) मरणशील देह को (अजरम्) वृद्धावस्था से रहित करो।

द्विविधा सृणिर्भवति भर्त्ता च हन्ता च। तथाश्विनौ चापि भर्त्तारौ। जर्भरी भर्त्तारावित्यर्थः तुर्फरीतू हन्तारौ। नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका नितोशस्यापत्यं नैतोशं नैतोशेव तुर्फरी क्षिप्रहन्तारौ। उदन्यजेवेत्युदकजे

इव रत्ने सामुद्रे चान्द्रमसे मवा जेसने जयमाने जेनमा मदारू तामे जराय्व-जरं मरायु । एतज्जरायुजं शरीरं शरदमजीर्णम् ॥ नि० १३ । ५ ॥

पुज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७॥

भा०—आप दोनों (पज्रा इव) बलवान् पुरुषों के समान होकर (चर्चरम्) कर्मफल प्राप्त करने योग्य, (जारम्) जरा से जीर्ण होने वाले, (मरायु) अन्त में प्राण से वियुक्त होकर मृत्यु को प्राप्त होने वाले शरीर को (अर्थेषु) प्राप्तव्य, सुखदायी उद्देश्यों के लिये (क्षद्म इव) जल के समान (तर्तरीथः) पार करो । आप दोनों (उग्रा) बलवान् (ऋभु) तेज और सत्य ज्ञान से प्रकाशित सूर्य-चन्द्र के तुल्य (खर-मज्रा) सुखप्रद प्रभु में मग्न रहते हुए उन दोनों को (वायुः न) वायु के समान (खर-ज्रु) तीक्ष्ण गति से वा आनन्द प्रद रूप से व्यापने वाला प्रभु (आपत्) सब सुखप्रद पदार्थ प्राप्त करावे और (रयीणां पर्फरत्) समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे और (क्षयत्) उनको बसावे वा ऐश्वर्यवान् करे ।

घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ् मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ॥८॥

भा०—(घर्मा इव) तेजोयुक्त और आसेचन करने वाला मेघ जैसे (मधु सनेरू) जल को ग्रहण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (घर्मा) तेजस्वी होकर (जठरे) उदर में (मधु सनेरू) अन्न.जल को ग्रहण करने वाले होवो । आप दोनों । (भगे-अविता) ऐश्वर्य के बल पर अपनी और अन्यों की रक्षा करने वाले तथा (तुर्फरी) शत्रुओं का नाश करने वाले और (अरं फारिवा) अति अधिक उत्तम आयुओं को धारण करने वाले होवो । आप दोनों (पतरा इव) पक्षियों के समान स्वतन्त्र एवं सुख से विचरण करते हुए, (चन्द्र-निर्णिक्) चन्द्र के समान शुद्ध,

सुखप्रद रूप वाले होकर (मनन्या न) मननशील विद्वानों के तुल्य (जम्मी) सत्-मार्ग पर चलने वाले होओ।

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोऽंशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९॥

भा०—(बृहन्ता इव) बड़े, लम्बे ऊंचे, कद्दावर या महा-पुरुषों के तुल्य आप लोग (गम्भरेषु) गंभीर स्थानों पर भी (प्रतिष्ठां विदाथः) प्रतिष्ठा को प्राप्त करो। (तरते पदा इव) तैरने वाले के पैरों के तुल्य (गाधम् विदाथः) जल की थाह के तुल्य अपने इच्छित पदार्थ प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ। (कर्णा इव शासुः) कानों के तुल्य शासक प्रभु या गुरु के वचनों को (अनु स्मराथः) निरन्तर स्मरण करते रहो। (अंशा इव) व्यापक तेज वाले सूर्य चन्द्रवत् (नः) हमारे बीच (चित्रम् अप्नः भजतम्) अद्‌भुत रूप, धन एवं कर्म का सेवन करो।

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०॥

भा०—आप दोनों (आरंगरा इव) खूब उपदेश देने वाले अध्यापकों के तुल्य वा शब्द करने वाले सूर्य मेघों के तुल्य (मधु आ ईरयेथे) जल अन्न, तेज, ज्ञान के तुल्य मधुर वचन का प्रयोग करो। (नीचीन-वारे) नीचे की ओर द्वार वाले सत्पात्र में (गवि) वाणी में (सारघा इव) मधु मक्षियों के तुल्य। सारग्राही होकर (मधु आ-ईरयेथे) आनन्दप्रद मधु के समान ज्ञान, अन्न और तेज का प्रदान करो। (कीनारा इव) दो किसानों के तुल्य (स्वेदम् आसिस्विदाना) पसीना बहाते हुए (क्षामा इव) कृश गौ वा भूमि के तुल्य, (सु-यवसात्) उत्तम अन्न प्राप्त करते हुए (ऊर्जा सचेथे) बल, अन्नादि से परस्पर संयुक्त होकर, मिलकर प्रेमपूर्वक रहो।

ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम्।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥२॥

भा०—हम विद्वान् जन (स्तोमं ऋध्याम) स्तुति योग्य उपदेश-ज्ञान को बढ़ावें और (वाजम् सनुयाम) ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करें और अन्यों को प्रदान करें। हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों (इह) इस लोक में (स-रथा इह नः मन्त्रं) समान रति, बल, वेग तथा स्नेह से युक्त होकर हमारे इस मन्त्र, मनन करने योग्य ज्ञान को (उप यातम्) प्राप्त होवो। (पक्वं यवं गोषु) भूमियां में पके अन्न के तुल्य, (गोषु अन्तः मधु न) गौओं के बीच मधुर दुग्ध के समान (भूत-अंशः) समस्त प्राणियों में व्यापक प्रभु (अश्विनोः) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के (कामम् आ अप्राः) अभिलाषाओं को पूर्ण करे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१०७]

ऋषिर्दिव्य आंगिरसो दक्षिणा वा प्राजापत्या ॥ देवता—दक्षिणा, तद्दातारो वा ॥ छन्दः—१, ४, ७ त्रिष्टुप्। २, ३, ६, ६, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, १० पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ५ निचृज्जगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

भा०—(एषां) जिस प्रकार इन जीवों के लिये (महि माघोनम्) बड़ा भारी सूर्य का प्रकाश (आविः अभूत्) प्रकट होता है, और (विश्वं जीवं) समस्त जीव संसार (तमसः) अन्धकार से (निर्-अमोचि) मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार (माघोनं) धनवान् पुरुष वा प्रभु का (महि) महान् सामर्थ्य (आविः अभूत्) प्रकट हो। और (विश्वं जीवं) समस्त जीव संसार (तमसः) दुःख से (निर् अमोचि) मुक्त हो। (पितृभिः महि ज्योतिः दत्तम्) जगत् के पालक रश्मिगण से दिया हुआ महान् प्रकाश जिस प्रकार प्राप्त होता है और (दक्षिणायाः) अन्न की उत्पत्ति का (उरुः पन्थाः अदर्शि) महान् मार्ग दृष्टिगत होता है उसी प्रकार (पितृभिः

दत्तम्) पालक जनों से दिया (महि ज्योतिः) महान् प्रकाश (आ अगात्) प्राप्त हो। और (दक्षिणायाः) दान-शीलता का (उरुः पन्थाः) महान् मार्ग (अदर्शि) दिखाई देवे।

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥२॥

भा०—(दक्षिणावन्तः दिवि उच्चा अस्थुः) अन्न के उत्पादक सूर्य के किरण जिस प्रकार उच्च आकाश में स्थिर होते हैं उसी प्रकार दानशील पुरुष सदा (दिवि) आकाश में तारों के तुल्य (उच्चा अस्थुः) ऊंची स्थिति को प्राप्त करते हैं। (ये) जो (अश्व-दाः) अनेक अश्वों का दान करते हैं, अपनी विद्या के बल से राष्ट्र या जन-समाज को वेग से जाने वाले अश्व, रथ और अन्य वेगवान् साधन प्रदान करते हैं (ते) वे (सूर्येण सह) सूर्य के साथ (अस्थुः) स्थिर होते हैं। (हिरण्य-दाः) सुवर्ण आदि का दान देने वाले, वा हित और रमणीय, सुन्दर उपदेश देने वाले (अमृतत्वं भजन्ते) मोक्षस्वरूप अमृत का सेवन करते हैं। हे (सोम) विद्वन् (वासः-दाः) वस्त्र को देने वाले वा सज्जनों को उत्तम गृह आदि आश्रय देने वाले (आयुः प्र तिरन्ते) अपनी दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवयज्या) देव अर्थात् प्रकाशवान् किरणों से दी जाने योग्य (दक्षिणा) जल अन्न सम्पदा (दैवी पूर्त्तिः) देव, भगवान् वा सूर्यादि देवों की जगत् के जीवों को पालन करने की रीति है उसी प्रकार (देव-यज्या दक्षिणा) विद्वानों को आदर सत्कार से दिया जाने वाला (दक्षिणा) अन्न द्रव्यादि का दान भी (दैवी पूर्त्तिः) देव अर्थात्

दाता द्वारा की गई विद्वानों की पालना की उत्तम व्यवस्था है। वह उत्तम पालन करने का साधन (कव-अरिभ्यः न) कदर्य, कु-स्वामी वा कुत्सित धनों के मालिकों को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि (नहि ते पृणन्ति) वे दूसरे का पालन नहीं करते । (अथ) और (बहवः) बहुतसे (प्रयत-दक्षिणासः) दक्षिणा, अन्न, द्रव्यादि के देने वाले (नरः) लोग (अवद्य-भिया निन्दनीय पाप या निंदा से भय कर के, (पृणन्ति)अन्यों का पालन करते हैं।

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सङ्गमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥४॥

भा०—(नृ-चक्षसः ते) मनुष्यों को उपदेश करने वाले वे विद्वान् पुरुष (हविः) अन्न और दान योग्य उत्तम द्रव्य को (शत-धारं वायुम् अभि चक्षते) सैकड़ों को धारण करने वाले को वायु के तुल्य प्राणदायक 'वायु' बतलाते हैं और (स्वर्विदं अर्कं हविः अभि चक्षते) सब को सुखदायी, अर्चना करने का उत्तम साधन बतलाते हैं। (ये पृणन्ति) जो अन्यों का पालन करते हैं, और जो (सं-गमे) सबको एकत्र होने के अवसर यज्ञ आदि में (दक्षिणां प्र यच्छन्ति) अन्न और द्रव्य-दान अर्थात् दक्षिणा रूप उत्साह-जनक वस्तु का दान करते हैं वे (सप्त-मातरं दुहते) सात प्राणों को उत्पन्न करने वाली अन्नशक्ति को पूर्ण करते हैं वा (सप्त-मातरम्) सर्पणशील अनेक जन्तुओं की माता पृथिवी का (दुहते) दोहन करते हैं, गोमाता से दूध के समान भूमि-माता से वे अन्न-वस्त्र आदि द्रव्यों को प्राप्त करते हैं।

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥५॥ ३॥

भा०—अन्न द्रव्य का दाता स्वामी, (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ, रूप से (हूतः) स्वीकृत होकर (एति) सबको प्राप्त होता है। और (दक्षिणावान्) दक्षिणावान्,

दानशील पुरुष (ग्रामणीः) जन संघों को सन्मार्ग पर ले जाने हारा होकर (अग्रम् एति) अग्रासन पर आता है। (जनानां) मनुष्यों के बीच में (तम् एव नृपतिं मन्ये) उसको ही मैं मनुष्यों का पालक राजावत् मानता हूं। (यः) जो (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (दक्षिणाम् आ विवाय) दूसरों के उत्साह को उत्पन्न करने वाला दान, भृति, वेतनादि प्रदान करता है।

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम्।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (प्रथमः) सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ पुरुष (दक्षिणया) अन्न आदि बल, उत्साहजनक पदार्थ से (रराध) सब को अपने वश करता है, (सः) वह (शुक्रस्य) कान्तियुक्त, शीघ्र कार्य कराने में समर्थ, और शुद्ध पवित्र शुक्र के (तिस्रः तन्वः) तीन रूपों को (वेद) जानता, या प्राप्त करता है। (तम् एव) उसको ही (ऋषिम् आहुः) ऋषि, तत्वार्थदर्शी बतलाते हैं (तम् ब्रह्माणम् आहुः) उसको ही ब्रह्मा, महान् शक्तिमान्, स्वामी कहते हैं। (तम् उ यज्ञन्यं) उसको ही यज्ञ का नेता, (साम-गाम्) साम का गान करने वाला, सब के प्रति शान्तिदायक, समानतायुक्त वचन का उपदेश देने वाला और उसको ही (उक्थ-शासम्) उत्तम वेद वचनों का शासक या उपदेष्टा कहते हैं।

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम्।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

भा०—(यः) जो (दक्षिणा अश्वम् ददाति) दक्षिणा रूप से अश्व का दान करता है (दक्षिणा चन्द्रं ददाति) जो दक्षिणा रूप से सुवर्ण, रजत आदि, धन को प्रदान करता है, (उत यत हिरण्यम्) और जो सुवर्ण रूप दक्षिणा प्रदान करता है, और (यः) जो पुरुष (दक्षिणा) दक्षिणा रूप से (अन्नं ददाति) अन्न प्रदान करता है इसी प्रकार जो दक्षिणा रूप से अश्व, गो,

रजत, सुवर्ण, अन्न आदि दक्षिणा रूप से (वनुते) स्वीकार करता है वह (नः आत्मा) हमारा आत्मा, 'स्व' होकर (वि-जानन्) विशेष ज्ञानी होकर (दक्षिणां वर्म कृणुते) दक्षिणा को कवच के समान सब विघ्नों, कष्टों और दुखों को धारण करने वाला बना लेता है।

न भोजा मंम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥ ८ ॥

भा०—(भोजाः) रक्षा करने वाले जन (न मम्रुः) कभी मरण को प्राप्त नहीं होते। (नि-अर्थम्) निकृष्ट अर्थ, या नीच गति को (न ईयुः) प्राप्त नहीं होते (न रिष्यन्ति) कभी पीड़ित नहीं होते, वे (भोजाः) रक्षक, दाता जन (न व्यथन्ते) क्लेश को प्राप्त नहीं होते। (इदं यत् विश्वं भुवनं) यह जो समस्त उत्पन्न जगत् और (ऐतत सर्वं स्वः) यह समस्त सुख है वह सब (एभ्यः दक्षिणा ददाति) उनको उत्साह शक्ति ही प्रदान करती है।

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं १ या सुवासाः।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति॥९॥

भा०—(भोजाः) दूसरों की रक्षा करने वाले और अन्यों को नाना ऐश्वर्यों का भोग देने में समर्थ पुरुष ही (सुरभिं योनिम्) सुख देने वाले दृढ़ गृह और लोक को (अग्रे) सबसे प्रथम (जिग्युः) प्राप्त करते हैं। (या सुवासाः) जो उत्तम वस्त्र धारण करती है, वा जो सुख से गृह में रहती और गृह को बसाती है ऐसी (वध्वं) वधू को वे (भोजाः) उक्त दाता और पालक जन ही सबसे प्रथम (जिग्युः) प्राप्त करते हैं। (भोजाः) रक्षक जन ही (सु-रायाः) उत्तम सुखदायी जल के (अन्तः पेयम्) आतिथ्य-सत्कारपूर्वक गृह में पान करने योग्य वा सुखद राज्य लक्ष्मी के राष्ट्र के भीतर रक्षणीय अंश को (जिग्युः) प्राप्त करते हैं। (ये अहूताः प्रयन्ति) जो विना बुलाये ही अन्यों पर प्रयाण करते हैं उनको भी (भोजाः जिग्युः) उत्तम दाता और पालक जन विजय कर लेते हैं।

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या॒३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥ १० ॥

भा०—(भोजाय अश्वं आ संमृजन्ति) रक्षक, दाता, स्वामी के लिये ही शीघ्र वेग से जाने में समर्थ अश्व को अलंकृत करते हैं। (भोजाय) दानशील, रक्षक स्वामी के लिये ही (शुम्भमाना कन्या आस्ते) वस्त्र, भूषणादि से अलंकृत कन्या होती है। (भोजस्य) रक्षक स्वामी का ही (इदं वेश्म) यह गृह (पुष्करिणी इव) पुखरिणी के समान नाना फूलों से अलंकृत तथा (देव-माना इव) विद्वानों से बना (चित्रं) अद्भुत (परिष्कृतम्) सुसज्जित होता है।

भोजमश्वाः सुष्टुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥ ११ ॥ ४ ॥

भा०—(सुष्ठु-वाहः) उत्तम रीति से रथ वा सवार को लेजाने वाले (अश्वाः) उत्तम अश्व (भोजं वहन्ति) रक्षक, दाता को ही ले जाते हैं। (दक्षिणायाः) अन्न द्रव्यादि दान देने वाले का रथ भी (सुवृत् वर्त्तते) उत्तम २ चक्र आदि से युक्त होता है। हे (देवासः) विद्वान् और तेजस्वी विजयेच्छुक पुरुषो ! आप लोग (भरेषु) संग्रामों में (भोजम् अवत) सर्वपालक दाता स्वामी की ही रक्षा करो। क्योंकि (सम्-अनीकेषु) नाना सैन्य बलों के एकत्र होने के योग्य युद्धों में (भोजः) वही रथ का स्वामी (शत्रून् जेता) शत्रुओं को जीतने में समर्थ होता है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१०८]

ऋषिः पणयोऽसुराः । २, ४, ६, ८, १०, ११ सरमा देवशुनी ॥ देवता—१, ३, ५, ७, ९ सरमा । २, ४, ६, ८, १०, ११ पणयः ॥ छन्दः—१ । विराट् त्रिष्टुप् । २, १० त्रिष्टुप् । ३—५, ७—९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥१॥

भा०—(सरमा) एक देह से दूसरे देह में जाने वाली यह चेतना, जीव रूप चित् (किम् इच्छन्ती) क्या चाहती हुई (इदम्) इस देहमय जड़ पिण्ड को (प्र आनट्) प्राप्त होती, इसे व्याप रही है। (दूरे हि अध्वा) वह मार्ग जो ठीक लक्ष्य तक पहुंचादे वह तो बहुत दूर है। यह मार्ग (पराचैः जगुरिः) विषयों से पराङ्मुख जाने वाले साधनों या साधकों से जाने योग्य है। हे चिति शक्ते ! (अस्मे हितिः का) तू ही बता, यह हमारे शरीरों में स्थित सुख-दुःखों का ज्ञान कराने वाली कौनसी शक्ति है ? (का परि-तक्म्या) यह दुःख अनुभव करने वाली, रात्रिवत् प्रसुप्त या चारों ओर जाने भागने वाली, वा देह में उष्णता रूप से व्याप्त यह कौनसी चेतना रूप शक्ति है ? यह (रसायाः) रस वा, रुधिर रूप धातु से व्याप्त (पयांसि) द्रवों को (कथम् अतरः) किस प्रकार 'पार कर' के ज्ञान वा चेतना रूप में व्यक्त होती है।

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

भा०—हे (पणयः) लोक-व्यवहार में प्रवृत्त इन्द्रियगणो ! मैं चेतना (इन्द्रस्य) इरा अर्थात् जलवत् द्रव, रुधिर, वा द्रुत गति से बहने वाले, तेजोमय आत्मा की (दूतीः) दूती के समान उसकी इच्छा बतलाने वाली, वाणी रूप से, वा उसकी शक्ति रूप से देह को उष्ण रखने वाली, (इषिता) उसी से इच्छापूर्वक प्रेरित होकर (चरामि) प्रवृत्त होती हूँ, देह में सुख दुःखादि फल भोगती हूं। और (वः) आप लोगों के (महः निधीन् इच्छन्ती) बड़े २ ख़ज़ानों, ज्ञानों को चाहती हुई, उनका अभ्यास करती हुई (चरामि) वाणी रूप से सर्वत्र प्रचरित होती

हूं। (अति-स्कदः) सबको अतिक्रमण कर जाने वाले उसी परब्रह्म के (भियसा) भय से (नः) हमारा (तत्) वह परब्रह्म का ज्ञान ही (आवत्) रक्षा करता है। (तथा) उसी प्रकार से मैं (रसायाः) इस पृथिवीमय देह के (पयांसि) परिपोषक जलों को (अतरम्) पार कर लेती हूं।

कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात्।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

भा०—हे (सरमे) वेग से जाने वाली चित्त-वृत्ते ! (इन्द्रः कीदृङ्) वह इन्द्र आत्मा कैसा है ? (का दृशीका) उसकी दर्शनशक्ति क्या है ? (यस्य दूतीः) जिसकी दूती के तुल्य तू (पराकात्) दूर स्थित परम कर्त्ता वा, सुखमय आत्मा से (इदम् असरः) इस जड़ देह में व्यापती है। वह (मित्रम्) हमारा स्नेही (आगच्छात् च) हमें प्राप्त हो तो (एनं दधाम) उसको ही हम धारण करें, जानें। (अथ) और वह (नः) हमारी (गवां) गौओं, वाणियों या वृत्तियों का (गो-पतिः) पालक (भवाति) रहे।

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥ ४ ॥

भा०—(अहम्) मैं (तम्) उसको (दभ्यम्) कभी नाश होने योग्य (न वेद) नहीं जानती, क्योंकि (सः दभत्) वह समस्त वस्तुओं का विनाशक, उनको वश करने हारा है। (तस्य दूतीः) उसकी दूती, अर्थात् शक्ति के लिये मैं (पराकात्) इन्द्रियों से अगम्य परम स्थान से (असरम्) आरही हूं। (स्रवतः) स्रवण करती हुई (गभीराः) गहरी धाराएं भी (न तम् गूहन्ति) उसको नहीं छुपातीं। उसी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, सूर्यवत् यशस्वी से (हताः) ताड़ित या व्याप्त होकर

हे (पणयः) सर्वव्यवहार-साधक प्राणगण ! वा प्राणी जनो ! तुम (शयध्वे) सोते, वा सुख दुःख प्राप्त करते हो ।

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा॥५॥५॥

भा०—हे (सरमे) उत्तम ज्ञान रूप से जानने योग्य वाणि ! या शक्ते ! हे (सु-भगे) उत्तम ऐश्वर्य युक्ते ! तू (दिवः अन्तान् परि पतन्ती) आकाश के अन्त भागों तक पहुंचती हुई भी (याः गावः ऐच्छः) जिन वाणियों या धाराओं को चाहती है वे (इमाः गावः) ये सब भूमिवत् वाणियां हैं। (कः) कौन (एनाः) इनको (अयुध्वी) विना युद्ध किये, विना प्रहार किये (अव सृजात्) नीचे गिरा सकता है, उन पर वश कर सकता है (उत) और (अस्माकं) हमारे (तिग्मा आयुधा सन्ति) तीक्ष्ण आयुध हैं। अर्थात् हम प्राणगण भी अपने दुःख-सुखादि जनक उपायों से देह पर वश करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥६॥

भा०—हे (पणयः) व्यवहार में मग्न इन्द्रियगण ! (वः) आप लोगों के (वचांसि) सब वचन (असेन्या) सेना अर्थात् उत्तम स्वामी से युक्त शक्ति से सम्पन्न पुरुष के वचनों के समान नहीं हैं। इसीलिये (अनिषव्याः) बाण के समान स्वतन्त्र इच्छा शक्ति से रहित (तन्वः) ये सब देह (पापीः सन्तु) पापिष्ठ अर्थात् मृतशव के तुल्य हो जानी सम्भव हैं। (वः पन्थाः) आप लोगों का मार्ग (एतवै) जाने के लिये (अधृष्टः अस्तु) असमर्थ, अयोग्य हो जाता यदि (बृहस्पतिः) वाणी महती शक्ति का पालक आत्मा, (वः उभया न मृडयात्) आपके ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों वर्गों को सुखी न कर सके ?

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सरमे) उत्तम चेतना के तुल्य व्यापक शक्ते ! (अयं) यह (निधिः) ज्ञानों को धारण करने वाला कोष (अद्रि-बुध्नः) अन्न को खाने वाले देह वा प्राणों पर आश्रित है । और यह (गोभिः) ज्ञानेन्द्रिय, (अश्वेभिः) कर्मेन्द्रियों और (वसुभिः) आठ प्राणों से (नि ऋष्टः) व्याप्त है । (ये सु-गोपाः) जो उत्तम रक्षकवत् (पणयः) नाना व्यवहार के कारण मुख्य प्राण कान, नाक आदि उपकरण हैं वे ही (तं) उस निधि रूप देह की (रक्षन्ति) रक्षा किया करते हैं । हे चितिशक्ते ! तू (रेकु पदम्) इस शंकास्पद स्थान को (अलकम् = अलं आजगन्थ) व्यर्थ ही आई है, यहां मत आ ।

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥ ८ ॥

भा०—(इह) इस देह में (नव-ग्वाः) संख्या में नव मार्गों से गति करने वाले (अंगिरसः) अंग में बल के तुल्य प्राण गण (सोम-शिताः) प्रेरक वीर्य बल से तीक्ष्ण होकर (ऋषयः) ग्राह्य रूपादि का दर्शन करने वाले इन्द्रिय गण और (अयास्यः) मुख में स्थित मुख्य प्राण भी (आ गमन्) प्राप्त हैं । (ते) वे (एतम्) इस (गोनाम् ऊर्वं) इन्द्रियद्वारों के समूह रूप देह को (वि अभजन्त) विविध रूप से सेवन कर रहे हैं । (अथ) और (पणयः) स्तुतिकर्त्ता, उपदेष्टा जन (एतद् इत वचः) इसी बात को (वमन्) मुख से निकालते हैं, कहते हैं ।

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ ९ ॥

भा०—हे (सरमे) चितिशक्ते ! हे चित्तवृत्ते ! हे ज्ञानकर्त्रि बुद्धे ! (त्वं एव च) तू इस प्रकार (दैव्येन प्र-बाधिता) शक्तिप्रद, सर्वप्रकाशक

(सहसा) बल, तेज से प्रेरित होकर (आ-जगन्थ) आई है। (त्वा) तुझे (स्व-सारं) स्वसा, भगिनी के समान हम अपना सहयोगी बनाते हैं। (मा पुनः गाः) तू अब यहां से न जा। हे (सु-भगे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ! (ते) तुझे भी हम (गवाम् अव भजेम) इन्द्रियों में बांट देते हैं।

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ १० ॥

भा०—हे (पणयः) व्यवहार योग्य अंगो ! (अहम् भ्रातृत्वं न वेद) मैं बुद्धि या चित्तवृत्ति, देह इन्द्रियादि के भरण पोषण करने वाले स्वामी का पद नहीं प्राप्त करती, (नो स्वसृत्वम्) और न 'स्व', आत्मा तक पहुंचने वाला सामर्थ्य (वेद) ही प्राप्त करती हूं। पोषक पद को तो (इन्द्रः वेद) वह तेजोमय आत्मा ही प्राप्त करता है और (घोराः) उसके तेज से सम्पन्न (अंगिरसः च) अन्य प्राण ही (स्वसृत्वम्) अर्थात् आत्मा से प्रेरित होने के सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं। वे (गो-कामाः) इन्द्रिय स्थाना को प्राप्त करना चाहने वाले प्राणगण (यत्) जब मुझे (अच्छदयन्) आच्छादित कर लेते हैं तब मैं (आयम्) प्राप्त होती हूं हे (पणयः) व्यवहार-योग्य बाह्य साधनो ! आप लोग (वरीयः अप इत) बहुत दूर तक जाओ।

दूरमित पणयो वरीय उद् गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः
॥ ११ ॥ ६ ॥

भा०—हे (पणयः) व्यवहार योग्य साधनो ! (वरीयः अप इत) तुम बहुत दूर तक जाओ ! (ऋतेन) तेज से (मिनन्ती) अज्ञान-अन्धकार को नाश करती हुई (गावः) वाणियां किरणों के तुल्य (उद् यन्तु) ऊपर उठें। (याः) जिनको (बृहस्पतिः अविन्दत्) वेद का पालक विद्वान्

प्राप्त करता है (याः नि गूळ्हा) जिन गुप्त, गंभीर अर्थ वाली वाणियों को (सोमः अविन्दत्) वीर्य-पालक ब्रह्मचारी वा शासक प्राप्त करता है और (याः) जिनको (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा और (ऋषयः) ज्ञानदर्शी (विप्राः) बुद्धिमान् जन (अविन्दन्) प्राप्त करते और जानते हैं। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१०९]

ऋषिर्जुहूर्ब्रह्मजायोर्ध्वनाभा वा ब्राह्मः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ७ अनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥ १ ॥

भा०—(ते) वे (प्रथमा) सबसे आदि में वर्त्तमान, (अकूपारः) दूर वर्त्तमान सूर्य (सलिलः) गतियुक्त व्यापक जल और (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में व्यापक वायु, (ब्रह्म-किल्बिषे) ब्रह्म परमात्मा की रचना के विषय में (अवदन्) हमें तत्व ज्ञान बतलाते हैं कि (ऋतेन) कारण रूप से वे (प्रथम-जाः) सब से प्रथम प्रकट होने वाले तीनों तत्त्व (वीळु-हराः) उस प्रभु परमेश्वर के ही वीर्य वा शक्ति को धारण करने वाले हैं। उसी से वे तीनों क्रम से (उग्रः तपः) (१) उग्र रूप से तपने वाला सूर्य, (मयः-भूः) (२) शान्ति सुख का देने वाला वायु और (आपः देवीः) दिव्यगुण युक्त 'आपः' अर्थात् जल हुए।

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

भा०—(राजा) देदीप्यमान (सोमः) समस्त जगत् का उत्पादक और प्रेरक परमेश्वर (प्रथमः) सबसे पूर्व विद्यमान था। उसने

(ब्रह्म-जायाम्) महान् विश्व को जन्म देने वाली प्रकृति को (पुनः प्रायच्छत्) प्रलय के अनन्तर फिर २ प्रबद्ध किया, पुनः सृष्टि रूप में रचा। और (अनु-अर्तिता) पीछे प्रकट होने वाला (वरुणः) सबको आवरण करने वाला, आकाश और (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला वायु, और (अग्निः) अग्नि, ये तत्त्व थे। (होता) समस्त विश्व को अपने में लेने हारा प्रभु उस प्रकृति को (हस्त-गृह्य) हस्त अर्थात् अपने व्यापक बल से वश करके मानो हाथ से पकड़ कर (आ निनाय) उस प्रकृति को विश्व रूप से चलाता है। उसके एक २ परमाणु को मानो वह पकड़ २ कर विश्व रूप में बनाता है।

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥

भा०—(अस्याः आधिः) इसका सब ओर से वशीकृत स्वरूप (हस्तेन) हाथ के समान व्यापक बल से ही (ग्राह्यः) ग्रहण करने योग्य है। विद्वान् जन इसका (ब्रह्म-जाया इति च) महान् परमेश्वर की, वा महान् विश्व रूप पुत्र की उत्पादक जाया के समान ही (अवोचन्) उपदेश करते हैं। (एषा) वह प्रकृति (दूताय) संतापकारी, अन्य अवान्तर कारक के वा (प्रह्ये) प्रेरक के अधीन (न तस्थे) विद्यमान न थी। प्रत्युत उसी सर्वशक्तिमान् की प्रेरणा के अधीन थी (तथा) उस प्रकार से (क्षत्रियस्य) बल, वीर्यशाली परमेश्वर का (राष्ट्रम्) देदीप्यमान तेज, बलशाली राजा के राष्ट्र के समान ही (गुपितम्) सुरक्षित रहता है।

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुधां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

भा०—(ये) जो (एतस्याम्) इसमें (पूर्वे) पूर्व ही विद्यमान, (सप्त-ऋषयः) सात ज्ञान निदर्शक, कारण रूप तत्त्व, या ज्ञानवान् तत्त्वदर्शी

-ऋषि (तपसे निषेदुः) तप के लिये विराजे वे (देवाः) देव, प्रकाश-मान तत्त्व या विद्वान् जन इस प्रकृति के समन्ध में (अवदन्त) बतलाते हैं कि (ब्राह्मणस्य) ब्रह्म, परमेश्वर की शक्ति से उत्पन्न संसार की (जाया) उत्पन्न करने वाली, परमेश्वर की पत्नी के तुल्य प्रकृति (उप-नीता) समीप प्राप्त होकर (भीमा) अति भयानक है, वह विशाल अति-शक्तिशालिनी है। वह प्रभु (परमे वि-ओमन्) परम व्योम, परम रक्षा, बल पर ही उस (दुर्धाम्) दुर्धारणीय विशाल प्रकृति को (दधाति) धारण करता है।

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५॥

भा०—(ब्रह्मचारी) महान् ब्रह्माण्ड में व्यापक वह परमेश्वर (विषः वेविषत्) व्याप्त होने योग्य समस्त प्रकृति के परमाणुओं में व्यापक होता हुआ (चरति) सर्वत्र विद्यमान रहता है। (सः) वह (देवानां) प्रकाश से युक्त समस्त सूर्य, जल, पृथिवी आदि तत्वों का (एकम्) एक अद्वितीय (अङ्गम् भवति) प्रकाशक होता है। (तेन) इसी कारण से वह (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्ड, वा महती शक्ति का पालक प्रभु ही (जायाम्) स्त्री को ब्रह्म-चारी के तुल्य, प्रकृति को (अनु अविन्दत्) अपने अनुकूल रूप से प्राप्त करता है। (न) और उस (जुह्वं) अग्नि, जल, पृथिवी, वायु आदि तत्व रूप से ग्रहण की हुई (सोमेन) उस जगद्-उत्पादक प्रभु से (नीतां) वश की हुई को हे (देवाः) विद्वान् जनो ! आप लोग (अनु अविन्दत) ध्यान योग से, ज्ञान से साक्षात् कर उसका उपदेश करो। वा उस प्रभु का अनुकरण कर के पत्नी आदि का ग्रहण करो।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ ६ ॥

भा०—(सत्यं कृण्वानाः) सत्य का उपदेश वा सत्य ब्रह्म का ज्ञान

करते हुए (देवाः) विद्वान् मनुष्य (उत मनुष्याः) और मननशील विद्वान् जन (उत राजानः) और तेजस्वी पुरुष (ब्रह्मजायां) परमेश्वर की सर्वोत्पादक प्रकृति को (पुनः पुनः पुनः ददुः) बार २ त्यागते हैं। वे सत्य ज्ञान प्राप्त करके इस प्रकृति-बन्धन से पुनः २ मुक्त होते हैं।

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥ ७ ॥ ७ ॥

भा०—इस प्रकार (देवैः = देवाः) विद्वान् जन (ब्रह्म-जायां) जगत्-उत्पादक प्रकृति को (पुनर्दाय) पुनः २ त्याग कर और अपने को (किल्विषं कृत्वी) निष्पाप करके (पृथिव्याः इस पृथिवी, के विस्तृत प्रकृतिमय देह वा (ऊर्जं) अन्नवत् फल को (भक्त्वाय) सेवन करके (उरु-गायम्) उस महान् स्तुत्य ज्ञानमय प्रभु की (उपासते) उपासना करते, उसी को प्राप्त कर उस ही में रमते हैं।

इसी प्रकार ५ वें मन्त्र में कहे प्रकार से, विद्वान् जन ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहस्थ करते हैं। और गृहस्थ-जाल से मुक्त होकर देव, ब्राह्मण, मनुष्य, वैश्य, राजा, क्षत्रिय, तीनों वर्ण वनस्थ होकर गृहस्थ को त्यागते हैं। फिर निष्पाप होकर मुक्त हो जाते हैं। यह तत्त्व भी वेद ने कहा है। इति सप्तमो वर्गः ॥

[११०]

ऋषिः जमदग्नी रामो वा भार्गवः ॥ देवता आप्रियः ॥ छन्दः—१, २, ५, १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ आर्ची त्रिष्टुप्। ४, ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ ६, ७, ९ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥

भा०—अग्निवत् गृहपति, ज्ञानी, और आत्मा का वर्णन। (अद्य) आज (मनुषः दुरोणे) मनुष्य के गृह में (समृद्धः) अग्निवत् ज्ञान से प्रदीप्त होकर, हे (जात-वेदः) ज्ञान को प्राप्त करने हारे! ज्ञानवन्! तू (देवः) ज्ञानों का प्रकाशक होकर (देवान् यजसि) विद्या आदि के अभिलाषी जनों को शुभ गुणों का प्रदान करता है। हे (मित्र-महः) सूर्यवत् तेजस्विन्! वा स्नेही पुरुषों के आदर करने हारे! उनको मित्रवत् ज्ञान आदि के देने हारे! तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (देवान् आ वह च) विद्वानों, शुभ गुणों को धारण कर। (त्वं दूतः) तू उत्तम ज्ञान को देने वाला, (कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (प्र-चेताः असि) उत्तम चित्त और ज्ञान वाला हो। अध्यात्म में—देह में आत्मा जातवेदा अग्निवत् है, 'देव' इन्द्रियगण हैं। वह सूर्य वा अग्निवत् उनको प्रकाशित करता और धारण करता है।

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २ ॥

भा०—हे (तनूनपात्) देहवत् विस्तृत समाज को भी नीचे न गिरने देने हारे! हे (सु-जिह्व) उत्तम, सुखदायक वाणी वाले! (यानान्) जाने योग्य (ऋतस्य पथः) सत्य ज्ञान और धर्म के मार्गों को (मध्वा) मधुर ज्ञानोपदेश से (सम्-अञ्जन्) अच्छी तरह प्रकाशित करता हुआ (स्वदय) उनका अन्यों को आनन्द रस का आस्वादन करा। उनको अधिक सुखप्रद कर। तू (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों से (मन्मानि) अनेक ज्ञानमय कर्मों को और (यज्ञम्) यज्ञ को (ऋन्धन्) सम्पादन करता हुआ, (देवत्रा च) मनुष्यों के बीच में भी (नः अध्वरं) हमारा हिंसारहित यज्ञ (कृणुहि) सम्पादन कर।

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य यथार्थ अर्थों के प्रकाश करने वाले विद्वन्! (त्वम्) तू (आ-जुह्वानः) ग्राह्य पदार्थों को ग्रहण करता एवं ज्ञान-प्रकाशों को सर्वत्र प्रदान करता हुआ ही (ईड्यः वन्द्यः च) स्तुति और वन्दना करने योग्य है। तू (स-जोषाः) प्रीति से युक्त होकर (वसुभिः) अपने अधीन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने वाले शिष्यों सहित (आ याहि) आ। हे (यह्वः) महान्! तू (देवानां होता असि) ज्ञानार्थी जनों को ज्ञान आदि का देने वाला और उनको सन्मार्ग में स्वीकार करने वाला है। (सः) वह तू (यजीयान्) सबसे श्रेष्ठ दाता, सत्संगकारक और पूज्य होकर (इषितः) प्रार्थित होकर (एनान् यक्षि) इनको ज्ञान, सुख प्रदान कर।

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ ४ ॥

भा०—(अह्नाम् अग्रे) दिनों के प्रारम्भ में (अस्याः पृथिव्याः वस्तोः) इस पृथिवी को आच्छादित करने, या बसाने के लिये, (प्र-दिशा) विशेष ज्ञानोपदेश सहित, (प्राचीनं बर्हिः) पूर्व में प्रकट हुए सूर्य के तुल्य सर्वोत्कृष्ट महान् ज्ञान (वृज्यते) प्रदान किया जाता है। वह (वि-तरं) विविध प्रकार से शिष्य-परम्परा से दिया जाने योग्य एवं (वि-तरम्) विस्तृत, या विशेष रूप से जीवों को दुःख से तराने वाला, और (वरीयः) महान्, सर्वश्रेष्ठ होकर (वि प्रथते उ) विविध रूपों में विस्तृत होता है और वह (देवेभ्यः) मनुष्यों के लिये और (अदितये) समस्त जगत्, पृथिवी, माता-पिता पुत्र आदि सबके लिये (स्योनम्) सुखकारी होता है। वह 'प्राचीन बर्हि' आदित्य के प्रकाश के तुल्य वेद है।

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥८॥

भा०—(शुम्भमानाः) उत्तम गुणों और आभूषणों, वस्त्रों से सजती हुईं (जनयः न) गृह देवियां जिस प्रकार (पतिभ्यः) अपने २ पतियों के लिये (सु-प्र-अयनाः) सुख प्राप्त कराने वाली होती हैं उसी प्रकार (द्वारः) द्वार, गृह, के द्वार (देवीः) प्रकाश से युक्त (व्यचस्वतीः) विशेष विस्तृत, (उर्विया) विशाल, (बृहतीः) बड़े, (विश्वमिन्वाः) सबको प्रसन्न और सुखी करने वाले होकर (उर्विया) बहुत २ (वि श्रयन्तां) खुलें, अनेक सुख प्रदान करें, और (देवेभ्यः) उत्तम मनुष्यों के लिये (सु-प्र-अयणाः भवत) सुख से आने जाने के लिये, सुखप्रद हों। इसी प्रकार (बृहताः) वेद-वाणियां भी (वि-अचस्वतीः) विविध ज्ञान की प्रकाशक, (उर्विया वि श्रयन्तां) बहुत ज्ञान, विविध प्रकार से देने वाली हैं। (विश्व-मिन्वाः) जगत् के समस्त ज्ञान को देने वाली, (सु-प्र-अयणाः) सुखमय उत्तम मार्ग बतलाने वाली हों। इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ६ ॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन रात्रिवत् एक दूसरे के पीछे चलने वाले, (यजते) एक दूसरे का आदर करने वाले, परस्पर संगत, (सु-स्वयन्ती) खूब सुखपूर्वक उत्तम मार्ग से जाते हुए, सदाचारपरायण, होकर स्त्री पुरुष (योनौ) गृह में (उपाके नि सदताम्) समीप में रहें। वे दोनों (दिव्ये) परस्पर की कामना वाले, और (योषणे) एक दूसरे से मिले हुए, (बृहती) गुणों में महान्, (सु-रुक्मे) उत्तम रुचि वाले, वा उत्तम आभूषणादि से सुशोभित, (शुक्र-पिशं श्रियं अधि दधाने) कान्तियुक्त, तेजस्वी रूप वाली शोभा को धारण करते हुए हों।

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

भा०—(देव्या) अग्नि और सूर्य के समान देव अर्थात् शुभगुणों को किरणों के तुल्य धारण करने वाले, देव, विद्वानों के हितकारी, (होतारा) सबको सुख, अन्न, ज्ञान आदि देने हारे, (प्रथमा) श्रेष्ठ, (सु-वाचा) उत्तम वाणी के ज्ञाता, एवं प्रयोग करने वाले, (यजध्यै यज्ञं मिमाना) देवपूजा के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले, (विदथेषु) यज्ञों, और ज्ञानोपार्जनादि सत्-कार्यों में (प्र चोदयन्ता) सबको प्रेरणा करते हुए, (कारू) स्वयं उन सत्कर्मों का अनुष्ठान करने वाले, (प्र-दिशा) उत्तम उपदेश करने वाले, वेद-ज्ञान द्वारा (प्राचीनं ज्योतिः) अत्यन्त प्राचीन सर्वोत्कृष्ट ज्ञानमय प्रकाश का (दिशन्ता) अन्यों को निर्देश करते हुए उत्तम स्त्री-पुरुष हों।

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विळा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती।
ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स्यो॒नं सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सदन्तु ॥ ८ ॥

भा०—(नः यज्ञम्) हमारे यज्ञ को (भारती) सूर्य की सी कान्ति वाली, और (मनुष्वत्) ज्ञानी मनुष्य के समान (चेतयन्ती) ज्ञानयुक्त करने वाली (इडा) वाणी, और (सरस्वती) उत्तम ज्ञानोपदेश से युक्त सरस्वती, वेद वाणी (तूयम्) शीघ्र ही प्राप्त हो। (तिस्रः) तीनों (सु-अपसः) उत्तम कर्म करने वाली, (देवीः) प्रकाश और ज्ञान के देने वाली, (इदं बर्हिः) इस उत्तम आसन पर (स्योनं) सुखपूर्वक (सदन्तु) विराजें। देह में ये तीन देवी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना हैं, राष्ट्र में तीन सभाएं राजसभा, न्यायसभा, विद्वत्-सभा। लोक में, जनशक्ति, धनशक्ति और मन्त्रशक्ति ज्ञान में—ऋग्, यजुः और साम, अर्थात् मन्त्र, कर्म, और संगीत।

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपिं॑श॒द्भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान्दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (जनित्री) जगत् को उत्पन्न करने वाले (द्यावा

पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों को (रूपैः अपिंशत्) नाना रूपों और रुचिकर पदार्थों से सुशोभित करता है, और जो (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों को (रूपैः अपिंशत्) नाना रूप के पदार्थों से सुशोभित करता है, हे (होतः) विद्वान् पुरुष ! तू (इषितः) उत्तम इच्छा वा कामना वाला (यजीयान्) उत्तम यज्ञशील, उपासक होकर (इह) इस लोक में (त्वष्टारम् देवं) जगत् के निर्माता, देव, सर्वसुखदाता प्रभु की (यक्षि) उपासना कर ।

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (त्मन्या) अपने ही आत्म-सामर्थ्य से (ऋतुथा) ऋतु २ के अनुसार (देवानां) मनुष्यों और दिव्य पदार्थों के योग्य (पाथः) पान योग्य जलों और (हवींषि) अन्नों को (सम् अञ्जन्) प्रकट करता हुआ, (उप अव-सृज) अन्यों को प्रदान कर । (वनस्पतिः) सेव्य पदार्थों या, विषयों वा सेवनीय इन्द्रियगण का पालक स्वामी, जितेन्द्रिय, तेजस्वी, (शमिता) शान्तिदायक और (अग्निः देवः) ज्ञानवान्, ज्ञानदाता पुरुष सब (मधुना घृतेन) मधुर अन्न-जल से (हव्यं स्वदन्तु) खाद्य पदार्थ का आस्वाद लें वा (मधुना घृतेन हव्यं स्वदन्तु) मधुर, प्रकाश से प्राप्य परम सुख को प्राप्त करें ।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥१॥

भा०—(सद्यः जातः अग्निः) शीघ्र प्रकट हुआ अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (यज्ञं वि अमिमीत) यज्ञ का अनुष्ठान करता है । वह (देवानां पुरः-गाः अभवत्) सब मनुष्यों का अग्रणी होता है । (अस्य होतुः प्र-दिशि) इस ज्ञानदाता के शासन में और (ऋतस्य वाचि) सत्यमय वेद की

वाणी में (स्वाहा कृतम्) उत्तम रीति से उत्तम वाणी द्वारा प्रदत्त (हविः) ज्ञान और अन्न का (देवाः अदन्तु) समस्त मनुष्य उपभोग करें। इति नवमो वर्गः ॥

[१११]

ऋषिरष्ट्रादंष्ट्रो वैरूपः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप् । ३, ६, १० विराट् त्रिष्टुप् । ५, ७, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥१॥

भा०—हे (मनीषिणः) बुद्धिमान्, उत्तम स्तुति करने वाले जनो ! (यथा-यथा) जैसी जैसी (नृणां मतयः सन्ति) श्रेष्ठ मनुष्यों की बुद्धियां वा ज्ञान होते हैं वैसी-वैसी ही (मनीषाम् प्र भरध्वम्) स्तुति करो। हम (सत्यैः कृतेभिः) अपने सत्य आचरणों से (इन्द्रम् आ ईरयाम) उस प्रभु को अपनी ओर आकर्षित करें ; (सः हि वीरः) वह विविध ज्ञानों का देने वाला, विविध लोकों को सञ्चालन करने वाला, बलशाली, प्रभु (विदानः) सब कुछ जानने हारा है। वह (गिर्वणस्युः) वाणी द्वारा उपासना करने वाले भक्त को चाहता और उसका स्वामी है।

ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥ २ ॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य ज्ञान, तेज, अन्न, धन, और जगत्-कारण-रूप प्रकृति और (सदसः) सब के आश्रय रूप महान् आकाश का (धीतिः) धारण करने वाला प्रभु (अद्यौत्) सूर्य के समान देदीप्यमान है। (गार्ष्टेयः वृषभः गोभिः) एक बार प्रसूत गौ से उत्पन्न वृषभ जिस प्रकार गौओं के साथ शोभा देता है उसी प्रकार (गार्ष्टेयः) एक बार ही समस्त

जगत् का प्रसव करने वाली प्रकृति का स्वामी, (वृषभः) सब सुखों का वर्षण करने वाला, प्रभु (गोभिः) वेदवाणियों वा स्तुतियों से प्राप्त होता है, उससे उसका ज्ञान होता है, वह (तविषेण रवेण) बड़े बल से युक्त, सर्वशासक वेदमय शब्द से, गर्जन से मेघ के तुल्य ही (उद् अतिष्ठत्) सबसे ऊपर विराजता है। और (महान्ति रजांसि सं विव्याच) बड़े २ लोकों को भी व्यापता है, (२) मेघ जल का धारक, अन्न का पोषक, भूमि का पालक है। बरसने से 'वृषभ', भूमि का हितकारी होनेसे 'गार्ष्टेय' है। वह गर्जना सहित उठता है और समस्त भूमि की धूलियों को जल से पूर्ण करता है।

गार्ष्टेयः—सकृत् प्रसूता गौ गृष्टिः। इति सायणः। प्रत्यग्रप्रसूता इति काशिका। विश्वक्सेनप्रिया गृष्टिर्वाराही वदरेति च इति अमरः। अत्र लता काचित् बदरी गृष्टिः। गृह्णातेः। क्तिच्। पृषोदरादित्वात् साधुः॥ गर्षति हिनस्ति रोगम्। गृषु हिंसायां क्तिन्। इति मुकुटः। घृष्टिः इति पाठान्तरम्। गृजेर्वा, गृञ्जेर्वा शब्दार्थात् जृषेर्वा, गृणोतेर्वा, गृह्णातेर्वा गृहेर्वा क्तिन्, तिर्वौणादिकः, पृषोदरादित्वाद् रूपसिद्धिः।

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद् गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः॥३॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (श्रुत्यै) श्रवण द्वारा प्राप्त करने योग्य वेद से ही (अस्य) इस जगत् के ज्ञान को (वेद) प्राप्त कराता है। (सः हि जिष्णुः) वही सबका विजय करने वाला, सर्वोपरि है। वही (सूर्याय पथि-कृत्) सूर्य का मार्ग बनाने हारा है। (आद्) अनन्तर वही (अच्युतः) अविनाशी, अपरिच्छेय प्रभु (मेनां कृण्वन्) सर्वमाननीय, ज्ञान कराने वाली वेदवाणी को प्रकट करता हुआ (दिवः) ज्ञान-प्रकाश और (गोः पतिः) वाणी का स्वामी अथवा (दिवः गो-पतिः) आकाश, सूर्य और भूमि का पालक (भुवत्) है। वह (सन-जाः)

सनातन से विद्यमान और (अप्रतीतः) अपरिज्ञात तथा सबसे अधिक शक्तिशाली है।

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॑ व्र॒तामि॑ना॒दङ्गि॑रोभिर्गृणा॒नः।
पु॒रूणि॑ चि॒न्नि त॑ताना॒ रजां॑सि दा॒धार॒ यो ध॒रुणं॑ स॒त्यता॑ता ॥४॥

भा०—(इन्द्रः अर्णवस्य व्रता अमिनात्) जिस प्रकार सूर्य जल वाले मेघ के जलों को आघात करता, उत्पन्न करता, और पृथिवी पर फेंकता है उसी प्रकार (इन्द्रः) इस महती प्रकृति को धारण करने वाला परमेश्वर (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (महतः अर्णवस्य) महाजलमय आकाश के बीच (व्रता अमिनात्) नाना कर्मों को, नाना सृष्टियों को रचता और चलाता है। वह (अंगिरोभिः गृणानः) विद्वानों से स्तुति किया जाता और (अंगिरोभिः) तेजोमय सूर्यों से बतलाया जाता है। वे ही उसकी सत्ता को प्रमाणित करते हैं। क्योंकि वही (पुरूणि रजांसि) अनेकों लोकों को (नि ततान) नित्य रचता है (यः) जो (सत्य-ताता) सत्य रूप वा सत्कारण से बनने वाले जगत् का विस्तार करने हारा होकर (धरुणं दाधार) सबके धारक महान् आकाश को भी धारण करता है।

इन्द्रो॑ दि॒वः प्र॑ति॒मानं॑ पृथि॒व्या विश्वा॑ वेद॒ सव॑ना॒ हन्ति॒ शुष्ण॑म्।
म॒हीं चि॒द्द्यामात॑नो॒त्सूर्ये॑ण चास्क॒म्भ चि॒त्स्कम्भ॑नेन॒ स्कभी॑यान् ॥५॥१०

भा०—(इन्द्रः दिवः प्रति-मानम्) वह परमेश्वर इस महान् आकाश का भी मापने वाला और (पृथिव्याः प्रति-मानम्) पृथिवी का भी मापने वाला, तथा उन दोनों से महान् है। वह (विश्वा सवना वेद) समस्त लोकों को जानता है। वह (शुष्णम् हन्ति) समस्त दुःखों का नाश करता है। (सूर्येण द्यां महीम् आ तनोत्) वह सूर्य के द्वारा आकाश और पृथिवी को व्यापता है, उसे प्रकाशित करता तथा वृष्टि, अन्न आदि से

सम्पन्न करता है। वह (स्कम्भनेन) सबको थाम रखने वाले महान् सामर्थ्य से (चास्कम्भ) सब विश्व को थाम रहा है। क्योंकि वह (स्कभीयान्) सबसे अधिक थामने वाला है। अथर्ववेद में उसी को 'स्कम्भ', 'धरुण' आदि नामों से वर्णन किया है। इति दशमो वर्गः ॥

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥ ६ ॥

भा०—(वृत्रम्) आवरण करने वाले मेघ को जिस प्रकार सूर्य (वृत्रेण) विद्युत् वा तीक्ष्ण प्रकाश से आघात करता है उसी प्रकार वह (वृत्र-हा) घेर लेने वाले अज्ञान को नाश करने वाला (वृत्रं) घेर लेने वाले अज्ञान को (वज्रेण) ज्ञान वज्र से (अस्तः) दूर हटा दे। हे (धृष्णो) शत्रु को पराजय करने हारे ! तू (शूशुवानस्य) बढ़ने वाले, फैलने वाले (अदेवस्य) प्रकाश से रहित अज्ञान की (मायाः) मायाओं, कुटिल गतियों को (धृषता) सर्वविजयी ज्ञान-प्रकाश से (वि अस्तः) विशेष रूप से दूर कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! प्रभो ! (अथ) और तू (बाहु-ओजाः अभवः) बाहुओं में बल पराक्रम वाले वीर के तुल्य हो। वह जैसे शत्रु पराजयकारी साधन शस्त्र अस्त्रादि से (अदेवस्य वृत्रस्य) बढ़ते हुए अराजक शत्रु की चालों का नाश करता है और उसकी सब कुटिलताओं का दमन करता है उसी प्रकार तू भी कर।

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जब (उषसः सूर्येण सचन्त) उषाएं सूर्य के साथ संगत होती हैं तब (अस्य केतवः) इस सूर्य के ज्ञापक प्रकाश (चित्राम् राम्) अद्भुत आश्चर्यकारी रम्यशोभा को (अविन्दन्) प्राप्त कराते हैं। (पुनः) फिर भी (दिवः यत नक्षत्रम् न ददृशे) जो आकाश का नक्षत्र नहीं दिखाई देता (यतः) कारण कि (अद्धा) यह सत्य है कि (नकिः

नु वेद) इस को कोई नहीं जानता । इसी प्रकार सूर्य रूप आत्मा से जब कामनावान् इन्द्रियगण संयुक्त होते हैं तब इसके ज्ञान करने के सामर्थ्य (चित्राम् राम्) चेतना से युक्त रयि, अर्थात् देह को धारण करते हैं । (दिवः नक्षत्रम्) तब इस आत्मा को उस प्रकाशमय प्रभु का व्यापक रूप नहीं दिखाई देता । क्यों नहीं दिखाई देता, इसका यथार्थ तत्त्व कोई नहीं जानता, परन्तु है यह सत्य ।

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (आपः) सूक्ष्म जलों के समान व्यापने वाले, जगत् के आदिकारण रूप प्रकृति के परमाणु (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (प्र-सवे) महान् सर्वोत्कृष्ट शासन में (सस्रुः) गति करते हैं (आसाम्) उनमें से (प्रथमाः) अनेक प्रारम्भ दशा में ही (दूरं किल जग्मुः) दूर तक पहले ही व्यापे हुए हैं । (आसाम् क्वस्वित् अग्रम्) इनका अग्र, प्रारम्भ कहां है ? (क बुध्नः) इनका आश्रय, मूल कहां हैं ? हे (आपः) समस्त प्राकृत लोको ! तुम ही कहो (वः मध्यम् क्व) तुम्हारा बीच कौनसा, और (नूनम् अन्तः क्व) निश्चय से तुम्हारा अन्त कहां है ? यह ईश्वर का ही महान् सामर्थ्य है, कि वह अनन्त आकाश में व्यापक जगत्, लोक-लोकान्तरों को व्यवस्थित रूप से चला रहा है । इसी प्रकार यह जीव भी अनन्त दूर २ तक विद्यमान हैं ।

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (अहिना जग्रसानान्) मेघ से ग्रसी हुई जलधाराओं को विद्युत् वा सूर्य (सृजः) प्रकट करता है, (आत् इत् एताः जवेन प्रविविज्रे) और अनन्तर उनको बड़े वेग से बहाती निकालती है और (उत) और (याः मुमुक्षमाणाः) जो मुक्त हो रही हैं (उत

याः मुमुचूरे) और जो मुक्त हो जाती हैं (एताः) वे (नि-तिक्ताः) अति तीक्ष्ण वेग होकर (न रमन्ते) एक स्थान पर नहीं ठहरतीं, ठीक उसी प्रकार ये समस्त लोक और जीवगण वेग से गति करने से 'सिन्धु' हैं, अज्ञान-आवरण से ग्रस्त होते हैं। जब प्रभु उनको प्रेरित करता है तब वे उसकी प्रेरणा के वेग से आगे बढ़ते हैं, जो मुक्त हो रहे वा हो चुके से हैं वे सर्वथा निर्बन्ध होकर फिर इस जगत्-जाल में सुख नहीं पाते, वे इसमें नहीं रमते।

स॒ध्रीची॑: सिन्धु॑मुश॒तीरि॑वाय॒न्त्सना॑ज्जा॒र आ॑रि॒तः पू॒र्भिदा॑साम्। अस्त॒मा ते॒ पार्थि॑वा॒ वसू॑न्य॒स्मे ज॑ग्मुः सू॒नृता॑ इन्द्र पू॒र्वीः॥१०॥११॥

भा०—(सध्रीचीः सिन्धून्) एक साथ मिल कर प्रवाहित होने वाली जलधाराएं जिस प्रकार समुद्र या महाप्रवाह को प्राप्त हो जाती हैं और जिस प्रकार (उशतीः इव) कामना वाली स्त्रियें (सिन्धुम्) प्रेम सम्बन्ध से, बांधने वाले को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार ये समस्त जीवगण एक साथ ही (सिन्धुम्) सबको प्रेम-भक्ति से बांधने वाले, समुद्रवत् परम आश्रय प्रभु को प्राप्त होती हैं, क्योंकि वही (पूर्भित्) इस देहपुरी के बंधन को भेदन करने वाला, (आसाम्) इनका (आरितः) प्राप्य स्वामी और (जारः) सत्योपदेष्टा, और बंधन शिथिल करने वाला प्रेमी है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! इस प्रकार (ते) तेरे दिये (पार्थिवा वसूनि) पृथिवी या प्रकृति के बने नाना ऐश्वर्य (अस्मे) हमारे (अस्तं जग्मुः) अस्त हों, नष्ट हों और (ते) तेरी (पूर्वीः) अनादि काल से विद्यमान (सुनृताः) उत्तम ज्ञान, तेज, और परम सुखमय सत्य वाणियां तथा विभूतियां (अस्मे जग्मुः) हमें प्राप्त हों। इत्येकादशो वर्गः॥

[११२]

ऋषिर्नभः प्रभेदनो वैरूपः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ७, ८ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४—६, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्र पिब॑ प्रतिकामं सुतस्य॑ प्रातः सावस्तव॒ हि पूर्वपीतिः ।
हर्ष॑स्व॒ हन्त॑वे शूर शत्रू॑नुक्थेभि॑ष्टे वीर्या॒३ प्र ब्र॑वाम ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशन ! हे तेजस्विन् ! प्रभो ! आत्मन् ! तू (सुतस्य) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य रस को (प्रति-कामम्) अपनी अभिलाषानुसार (पिब) पान कर, उसका उपभोग कर (हि) क्योंकि (तव) तेरा (प्रातः सावः) प्रातःकाल सब से पूर्व सवन है। तेरा ही (पूर्वपीतिः) सबसे पूर्व पान करना उचित है। अथवा तू (सुतस्य प्रतिकामं पिब) प्राप्त जगत् या राष्ट्र-जन को उत्पन्न यथेष्ट, या कामना या सत्संकल्प से पालन कर, तेरी ही सबसे पूर्व उपासना और तेरा ही सबसे पूर्व, मुख्य पालन है। हम (उक्थेभिः) उत्तम वेदवचनों से (ते वीर्या प्र ब्रवाम) तेरे वीर्यों का प्रवचन करते हैं, या हम वेदमन्त्रों द्वारा तुझे (वीर्या) वीरोचित कर्मों का (प्र ब्रवाम) प्रवचन या उपदेश करते हैं। हे (शूर) शूरवीर ! तू (शत्रून् हन्तवे) शत्रुओं के नाश करने के लिये (हर्षस्व) हर्षित हो, पुलकित और उत्साहित हो। प्रातः काल मन्त्रों का उत्तम रीति से पाठ या उच्चारण करने से आत्मा उत्साहित होकर मानसिक दुर्भाव रूप शत्रुओं का नाश करता है।

यस्ते॒ रथो॒ मन॑सो॒ जवी॑या॒नेन्द्र॒ तेन॑ सोम॒पेया॑य याहि ।
तूय॒मा ते॒ हर॑यः॒ प्र द्र॑वन्तु॒ येभि॒र्यासि॒ वृष॑भि॒र्मन्द॑मानः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! राजन् ! प्रभो ! (यः) जो (ते) तेरा (रथः) रमण करने योग्य, रथ या रम्य रूप मन से भी अधिक वेगवान् मन की गति से भी परे है (तेन) उससे तू (तूयम्) शीघ्र ही, (सोम-पेयाय) 'सोम' अर्थात् उत्पन्न होने वाले इस जीव-जगत् की पालना करने और अपने में लेलेने के लिये (आ याहि) प्राप्त कर। (ते) तेरे (हरयः) ये समस्त मनुष्य, राजा के आज्ञाकारी अश्वों के तुल्य (आ प्र द्रवन्तु) आगे वेग से बढ़ें। (येभिः) जिन (वृषभिः)

बलवान्, सुखप्रद जनों से (मन्दमानः) अति प्रसन्न वा स्तुतियुक्त होता हुआ (प्र यासि) उत्तम रीति से प्राप्त होता है। विद्वानों से प्रस्तुत प्रभु सबको प्राप्त होता है। (२) आत्मपक्ष में—आत्मा का रथ, देह मन के बल से वेगवान् है। वह उस रथ से, सोमपान, कर्मफल वा अन्न-पान करता है, उसके हरि, इन्द्रियां स्वस्थ रह कर प्रवृत्त हों, उन बलवानों से सुप्रसन्न होकर जीवन-यात्रा करे।

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य॥ ३॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य (हरित्वता वर्चसा) समस्त दिशाओं में व्याप्त तेज से और (श्रेष्ठैः रूपैः) उत्तमोत्तम रूपों से (तन्वम् स्पर्शयस्व) देह को स्पर्श कर। (अस्माभिः सखिभिः) हम मित्रों से (हुवानः) बुलाया जाता हुआ, हे (इन्द्र) आत्मन्! प्रभो! (सध्रीचीनः) हमारे सदा साथ विद्यमान रह कर (नि सद्य) विराज कर हमारे हृदयों में आकर (मादयस्व) स्वयं भी प्रसन्न हो और हमें भी प्रसन्न कर। देह में आत्मा जगत् में सूर्यवत् तेज से व्याप्त होकर नाना उत्तम रूपों, रुचिकारक भोग्यों, वा साधनों से देह को ग्रहण करता है। (२)प्रभु भी हमें नाना रूपों से हमारे देह को सुखी करे या नाना उत्तम रूपों से हमें देह प्रदान करे।

यस्य त्यत्ते महिमानं मदेष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम्।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ॥ ४॥

भा०—(यस्य) जिस (ते) तेरे (मदेषु) हर्षों में, आनन्द-रसों में मग्न, (मही रोदसी) ये बड़े आकाश और भूमि, दोनों वा प्रकाशक और प्रकाश्य दोनों (त्यत् महिमानं न अविविक्ताम्) तेरे उस महान् सामर्थ्य को पृथक् २ विवेक नहीं कर सकते। हे (इन्द्र) आत्मन्! वह

तू परम आश्रय है। तू (प्रियेभिः) प्यारे (युक्तैः) युक्त, योगाभ्यासी (हरिभिः) साधक पुरुषों से (प्रियम्) प्रिय, प्रीतिकारक (अन्नम् अच्छ) भोग्य परम सुख रूप अन्न को (आ याहि) प्राप्त कर, करा।

यस्य॒ शश्व॑त्पपि॒वाँ इ॑न्द्र॒ शत्रू॑ननानुकृ॒त्या रण्या॑ च॒कर्थ॑।
स ते॒ पुर॑न्धिं॒ तवि॑षीमियर्ति॒ स ते॒ मदा॑य सु॒त इ॑न्द्र॒ सोमः॑॥५॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे तेजस्विन्! हे शत्रुहन्तः! अन्नादि के देने वाले, हे मेघादि के विदारण करने वाले सूर्य के तुल्य! (यस्य पपिवान्) जिसका पान व पालन करके, तू (अननुकृत्या) न अनुकरण करने योग्य (रण्या) रण-क्रिया वा युद्धोपयोगी साधनों से (शत्रून् चक) शत्रुओं का नाश करता, या (शत्रून्) शत्रुओं को लक्ष्य करके (अननुकृत्या रण्या चकर्थ) दूसरों से अनुकरण न करने योग्य, दुष्कर नाना रणकर्म करता है, वा (अननुकृत्या रण्या चकर्थ) न नाश करने या हर्षध्वनि से प्रकट करने योग्य अनेक कार्यों को सम्पन्न करता है (सः सोमः) वह सोम, ऐश्वर्य, (ते मदाय सुतः) तेरे हर्ष के लिये उत्पन्न है, वह (ते) तेरी (पुरन्धिम् तविषीम्) महान् विश्व को पुर के समान धारण करने वाली बड़ी भारी शक्ति को (इयर्त्ति) बतलाता है। इस देह में सोम अन्न वा वीर्य जिस प्रकार आत्मा की देहधारिणी शक्ति को प्रकट करता है उसी प्रकार सोम जगत् की उत्पादक और प्रेरक-शक्ति को बतलाता और संचालित करता है। इति द्वादशो वर्गः॥

इ॒दं ते॒ पात्रं॒ सन॑वित्तमिन्द्र॒ पिबा॒ सोम॑मे॒ना श॑तक्रतो।
पू॒र्ण आ॑हा॒वो म॑दि॒रस्य॒ मध्वो॒ यं विश्व॒ इद॑भि॒हर्य॑न्ति दे॒वाः॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! आत्मन्! हे (शत-क्रतो) अनेक, अपरमित ज्ञानों और सामर्थ्यों के स्वामिन्! (इदं सन-वित्तम् पात्रम्) यह तेरा अनादि काल से प्राप्त पात्र है, यह तेरा तप द्वारा उपार्जित

पालन सामर्थ्य है, यह तेरा अनादि ज्ञान वेद द्वारा, विज्ञात पालनीय तत्व वा रूप है। (एना) इससे (सोमम् पिब) सोम रूप आनन्द रस का पान कर। यह (मदिरस्य मध्वः) अति हर्षदायक मधुर अन्न वा जल के तुल्य सुखप्रद अमृत का (आहावः) भरा कटोरा है (यम्) जिसको (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् देवगण, सूर्यादि लोक और देह में इन्द्रियगण (इत्) भी (अभि हर्यन्ति) सदा चाहते हैं।

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते।
अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! तेजोमय! हे (वृषभ) आनन्द सुखों का मेघवत् वर्षण करने वाले! (हित-प्रयसः जनासः) जिस प्रकार क्षेत्र में अन्न डाल देने वाले कृषक लोग मेघ की आकांक्षा करते और उसी के लिये पुकारते हैं उसी प्रकार (हित-प्रयसः जनासः) यज्ञ में हविष् रखने वाले भक्त जन वा (हित-प्रयसः) तुझे प्रसन्न करने वाले वचनों का उच्चरण करने हारे (जनासः) भक्त जन (त्वाम् हि पुरुधा ह्वयन्ते) तेरी ही अनेक प्रकारों से स्तुति करते हैं, तुझे ही पुकारते हैं। (ते) तेरे लिये ही (अस्माकम्) हमारे (इमा) ये (मधुमत्-तमानि सवना) मधुर वचनों और अन्नों से युक्त यज्ञादि उपासनाएं हैं। (तेषु हर्य) उनमें तू प्रसन्न हो, उनको चाह, स्वीकार कर।

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे वाणी, ऐश्वर्य, जल, अन्न आदि के गुरु, स्वामी, मेघ, भूमि, सूर्य आदि के तुल्य देने हारे प्रभो! स्वामिन्! आत्मन्! (ते) तेरे (पूर्व्याणि) पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, दृष्ट वा सर्वश्रेष्ठ, पूर्ण शक्ति से युक्त, सबको पालन पूरण करने वाले (वीर्याणि)

अनेक वीर्यों, बलों तथा विशेष रूप से प्रवचन योग्य, ज्ञानोपदेशों को और (प्रथमा कृतानि) सबसे पूर्व, सर्वोत्तम रूप से किये कर्मों को (नूनम्) अवश्य ही मैं (प्र वोचम्) अच्छी प्रकार कहूं, अन्यों को उनका उपदेश करूं। (सतीन-मन्युः) जल प्रदान करने की शक्ति से युक्त वा जल को रश्मियों में थाम लेने वाला सूर्य जिस प्रकार (अद्रिम्) मेघ को (अश्रथयः) खण्डित, छिन्न भिन्न करता है, और वह (गाम् ब्रह्मणे सुवेदनाम् अकृणोत्) भूमि को अन्न को उत्तम रीति से प्राप्त करने वाली बनाता है उसी प्रकार हे प्रभो ! तू (सतीन-मन्युः) जलवत् स्वच्छ शान्तिप्रद, तृप्तिदायक, ज्ञान से सम्पन्न होकर (अद्रिम्) अभेद्य अज्ञान को (अश्रथयः) ढीला कर। और (ब्रह्मणे) वेद की (सु-वेदनाम्) उत्तम ज्ञानप्रद वाणी का (अकृणोः) गुरुवत् उपदेश कर।

नि षु सी॑द गणपते ग॒णेषु॒ त्वामा॑हु॒र्विप्र॑तमं कवी॒नाम् ।
न ऋ॒ते त्वत्क्रि॑यते॒ किं च॒नारे म॒हाम॒र्कं म॑घवञ्चि॒त्रम॑र्च ॥ ९ ॥

भा०—हे (गणपते) समस्त गणों, जनों, वर्गों के, इन्द्रियादिगणों के पालक स्वामिन् ! तू (गणेषु नि सु सीद) गणों के बीच में विराज। (त्वाम्) तुझको (कवीनां) क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच (विप्र-तमं आहुः) सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कर्मकृत्, कुशल बतलाते हैं। (त्वाम् ऋते) तेरे बिना (आरे) क्या समीप क्या दूर (न किंचन क्रियते) कुछ भी नहीं किया जाता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (महाम्) महान्, पूज्य (अर्कम्) अर्चना योग्य, स्तुत्य (चित्रम्) आश्चर्यजनक, ज्ञानप्रद वेदमय ज्ञान राशि को (अर्च) प्रदान कर।

अ॒भि॒ख्या नो॑ मघव॒न्नाध॑माना॒न्त्सखे॑ बो॒धि व॑सुपते॒ सखी॑नाम् ।
रणं॑ कृधि रणकृत्सत्यशु॒ष्माभ॑क्ते चि॒दा भ॑जा रा॒ये अ॒स्मान् ॥
॥ १० ॥ १३ ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! हे (सखे) परम मित्र ! (नः नाधमानान्) हम याचना, पश्चात्ताप और ऐश्वर्य की कामना करने वालों को (अभि-ख्या) कृपा दृष्टि से देख, उत्तम उपदेश कर। हे (वसु-पते) ऐश्वर्यों और समस्त जीवों और लोकों के स्वामिन् ! तू हम (सखीनाम्) अपने मित्रों, स्नेही जनों को (बोधि) जान, और ज्ञानवान् कर। हे (सत्य-शुष्म) सत्य के बल वाले ! तू (रण-कृत्) रणकारी वीर के तुल्य उत्तम उपदेश करने द्वारा होकर (रणं कृधि) युद्धवत् ही उत्तम उपदेश भी कर। (अभक्ते चित्) असंविभक्त धन के रहते हुए भी (अस्मान्) हम को (राये) ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये (आ भज) भागी कर। न्यायपूर्वक हमारा भाग हमें प्रदान कर। इति त्रयोदशो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[११३]

ऋषिः शतप्रभर्दनो वैरूपः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ जगती । ३, ६, ६ विराड् जगती । २ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ७, ८ आर्चीस्वराड् जगती । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत १

भा०—(यत्) सूर्य जिस प्रकार (क्रतुमान्) कर्म सामर्थ्य से सम्पन्न होकर (सोमस्य पीत्वी) सोम का पान कर, (महिमानं इन्द्रियं कृण्वानः) बड़े भारी ऐश्वर्य को उत्पन्न करता हुआ, (ऐत्) प्राप्त होता है और (अस्य शुष्मम्) इसके सर्वशोषक तेज को (द्यावा पृथिवी अनु आवताम्) आकाश और भूमि दोनों प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार (क्रतुमान्) कर्म सामर्थ्यवान् पुरुष (सोमस्य पीत्वी) ऐश्वर्य वा प्रजागण का पालन करके, (महिमानं इन्द्रियं कृण्वानः) महान् इन्द्रोचित ऐश्वर्य

को प्रकट करता हुआ (यत् ऐत) जब प्राप्त होता है तब (सचेतसा) समान चित्त वाले, (द्यावा पृथिवी) शास्य और शासक वर्ग (विश्वेभिः देवैः) समस्त विद्वानों सहित (अस्य शुष्मम् अनु) इसके बल के पीछे (अनु आवताम्) अनुगमन करते हैं ।

तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः ॥ २ ॥

भा०—(अस्य ओजसा) इसके ही प्रताप से (विष्णुः) व्यापक वायु (मधुनः अंशुं दधन्वान्) जल के अंश को धारण करता हुआ और इसी बल से (विष्णुः) पृथिवी (मधुनः अंशुं दधन्वान्) अन्न के व्यापक अंश को धारण करती हुई, (अस्य महिमानं विरप्शते) इस सूर्य की महिमा को बतलाती है, और (इन्द्रः) तेजस्वी (मघवा) ऐश्वर्य, समृद्धि का स्वामी सूर्य (स-यावभिः देवेभिः) एक साथ जाने वाले किरणों से (वृत्रं जघन्वान्) मेघ का नाश करता हुआ (वरेण्यः अभवत्) सबसे चाहने योग्य हो जाता है, । (२) इसी प्रकार (अस्य ओजसा) इस राजा के बल पराक्रम से (मधुनः अंशुं दधन्वान्) ज्ञान, बल, सामर्थ्य और अन्न का व्यापक सामर्थ्य धारण करता हुआ (विष्णुः) प्रजाजन (अस्य महिमानं विरप्शते) इसके महान् सामर्थ्य को बतलाता है । वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (स-यावभिः देवेभिः) एक साथ चलने वाले विजयाभिलाषी वीरों के सहित (वृत्रं जघन्वान्) बढ़ते शत्रु को नाश करता हुआ (वरेण्यः अभवत्) सर्वश्रेष्ठ होजाता है ।

वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३॥

भा०—(युधये) युद्ध के लिये (आयुधा) नाना युद्ध के साधनों, शस्त्रास्त्रों को (बिभ्रद्) धारण करता हुआ, हे ऐश्वर्यवन् ! तू (यत्)

जब (अहिना वृत्रेण) सामने से आने वाले शत्रु के साथ (शंसम् आविदे) अपनी कीर्त्ति को प्राप्त करने के लिये वा अपनी आज्ञा को मनवाने के लिये (सम् अस्थिथाः) संग्राम करता है (अत्र) इस अवसर में (विश्वे मरुतः) समस्त बलवान् मनुष्य (सह) एक साथ (त्मना) आत्म सामर्थ्य से (ते) तेरे (उग्रं महिमानम्) उग्र, महान् सामर्थ्य को और (इन्द्रियं) इन्द्रोचित महान् ऐश्वर्य को (अवर्धन्) बढ़ाते हैं। (२) इसी प्रकार जब सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न करता है तब वायुगण उसके तेज की वृद्धि करते हैं।

जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम्।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥४॥

भा०—(जज्ञानः एक-वीरः स्पृधः वि-अबाधत) प्रकट होता हुआ ही वीर्यवान् पुरुष अपने से स्पर्धा करने वालों को विविध प्रकार से पीड़ित करे। और वह (रणम् अभि) युद्ध को लक्ष्य करके अपने (पौंस्यं प्र अपश्यत्) पराक्रम-बल को अच्छी प्रकार देखे। (अद्रिम् अवृश्चत्) जिस प्रकार सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न करता है और (स-स्यदः अव सृजत्) एक साथ बहने वाली जल-धाराओं को नीचे बहा देता है उसी प्रकार वीर पुरुष (अद्रिम्) पर्वत के समान दृढ़ शत्रु को भी (अवृश्चत्) काट गिरावे और (सस्यदः) एक साथ रथों, अश्वों सहित प्रयाण करने वाली प्रजाओं सेनाओं को (अव-सृजत्) अपने अधीन कर ले। और (सु-अपस्या) उत्तम कर्म कौशल से (पृथुम्) विस्तृत (नाकम्) सुखमय राज्य को (अस्तभ्नात्) अपने वश करे।

आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥५।१४॥

भा०—(आत्) और अनन्तर (इन्द्रः) तेजस्वी, शत्रुहन्ता,

अधीनों को अन्नदाता राजा (सत्रा) एक साथ (तविषीः अपत्यत) अनेक सेनाओं को प्राप्त करे। और (वरीयः) अपने महान् सामर्थ्य से (द्यावापृथिवी अबाधत) आकाश पृथिवी के तुल्य राजसभा और प्रजा वर्ग इन दोनों को अपने वश करे। वह (धृषितः) शत्रुओं को धर्षण करने हारा (आयसम् वज्रम्) लोहे के बने तलवार आदि, शस्त्र-बल को वा (आ-यसम्) सब ओर विजयकारी बल को (अव अभरत्) धारण करे और (दाशुषे) कर आदि देने वाले (मित्राय वरुणाय) स्नेही मित्रवर्ग और श्रेष्ठ जनों को भी। (शेवम् अव अभरत्) सुख प्रदान करे। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जब वह (उग्रः) बलवान्, शस्त्रादि को उठाने वाला, भयंकर होकर (अपः बिभ्रतम्) जलों को धारण करने वाले मेघवत् आप्त प्रजाओं के धारण करने वाले और (तमसा परिवृतम्) अन्धकार से घिरे (वृत्रम्) विघ्नकारी शत्रु को (वि अवृश्चत्) विशेष रूप से काट गिराता है (अत्र) इस अवसर में (तविषीभ्यः) शक्तियों के (इन्द्रस्य) स्वामी, (विरप्शिनः) महान् (ऋघायतः) शत्रुनाशक राजा के कारण प्रतिपक्षी जन (अरंहयन्त) वेग से भाग जाते हैं।

या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥ ७ ॥

भा०—(महित्वेभिः) अपने बड़े २ बलों से (यतमानौ) यत्न करते हुए युद्धार्थी दोनों पक्ष (सम् ईयतुः) परस्पर एक साथ आते हैं और (या) जिन (कर्त्वा) करने योग्य (प्रथमानि वीर्याणि) श्रेष्ठ २ बल कार्यों को करते हैं तब (हते) बाधक शत्रु के नाश होजाने

पर (ध्वान्तं तमः) अति घोर अन्धकार (अव दुध्वसे) नष्ट हो जाता है और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, शत्रुहन्ता-वीर-विजयी (पूर्व-हूतौ) सबसे पूर्व, सर्वश्रेष्ठ आहुति या प्रजा के आह्वान पुकार या आदर-वचन पर ही अपने (मह्ना अपत्यत्) महान् सामर्थ्य से सबका स्वामी हो जाता है।

विश्वे॑ दे॒वासो॒ अध॒ वृष्ण्या॑नि॒ तेऽव॑र्धय॒न्त्सोम॑वत्या व॒चस्य॑या।
र॒द्धं वृ॒त्रम॒हि॒मिन्द्र॑स्य॒ हन्म॑ना॒ग्निर्न जम्भै॑स्तृ॒ष्वन्न॑मावयत् ॥ ८ ॥

भा०—(अध) और (विश्वेदेवासः) समस्त विजयोद्योगी जन (सोम-वत्या) ऐश्वर्य, और शासन अधिकार से युक्त (वचस्यया) वाणी द्वारा (ते वृष्ण्यानि) तेरे बलों को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं। (इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता के (हन्मना) हनन साधन से (रद्धम्) ताड़ित (अहिम् वृत्रम्) मेघवत् आवरक शत्रु को (तृषु) शीघ्र ही, ऐसे ही (आ वयत्) खाजाता वा नष्ट कर देता है जिस प्रकार (अग्निः न जम्भैः अन्नम्) अग्नि अपने ज्वालाओं से अन्न को भस्म कर देता है, वा जठराग्नि दांतों से खाये अन्न को शीघ्र पचा लेता है।

भूरि॒ दक्षे॑भि॒र्वच॑नेभि॒ॠक्व॑भिः स॒ख्येभि॑ः स॒ख्यानि॒ प्र वो॑चत।
इन्द्रो॒ धुनिं॑ च॒ चुमु॑रिं च द॒म्भय॑ञ्छ्र॒द्धाम॑न॒स्या शृ॑णुते द॒भीत॑ये ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्यो ! आप लोग (दक्षेभिः) बल और उत्साह के जनक, (ऋक्वभिः) ऋचाओं सहित, वा अर्चनायुक्त, (सख्येभिः) मित्र के प्रति प्रेम से कहने योग्य (वचनेभिः) वचनों से (भूरि) बहुत (सख्यानि) मित्रता के भावों को (प्र वोचत) वाणी द्वारा प्रकट करो। (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, तेजोमय प्रभु (धुनिम्) कंपाने वाले, त्रासकारी, और (चुमुरिम्) खाजाने वाले, नाशकारी, भीतरी और बाहरी शत्रुओं को भी (दभीतये) विनष्ट कर देने के लिये (श्रद्धा मनस्या) सत्य धारण से युक्त चित्त से (शृणुते) उत्तम मन्त्रमय वचनों को श्रवण करता है।

त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवर्चनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य॥१०।१५॥

भा०—हे प्रभो ! आत्मन् ! तू (पुरूणि) बहुतों से इन्द्रिय रूप (सु अश्व्यानि) उत्तम अश्वों के तुल्य नाना बलों को (आ भर) प्राप्त करा । (येभिः) जिनसे, मैं (नि-वचनानि शंसन्) नित्य वचनों का उच्चारण करता हुआ (मंसे) ज्ञान प्राप्त करूं । और (येभिः) जिन (सुगेभिः) सुखप्रद उपायों से हम (विश्वा दुरिता) समस्त पापों और कष्टों को (तरेम) पार करें । हे प्रभो ! (नः) हमें (उर्विया गाधम्) बड़ा प्रतिष्ठित पद (अद्य सु विदः) आज प्राप्त कराओ । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[११४]

ऋषिः साध्रिर्वैरूपो घर्मो वा तापसः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४ जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥ १ ॥

भा०—(घर्मा) परस्पर स्नेह से युक्त और स्वतः प्रकाश, (समन्ता) परस्पर सुसंगत, संमिलित, होकर अग्नि और सूर्यवत् जीव और प्रभु, प्रजा और राजा, स्त्री और पुरुष, शिष्य और गुरु दोनों (त्रि-वृतं) त्रिगुण, प्रकृति तत्त्व वा तीन प्रकार से वर्त्तमान वेद को (वि आ पतुः) विशेष रूप से प्राप्त करें । (मातरिश्वा) वायु के तुल्य ज्ञानवान् गुरु के अधीन प्राप्त होने वाला शिष्यवत् बालक (तयोः) उन दोनों के (जुष्टिं) परस्पर स्नेह को (जगाम) प्राप्त करे । जिस प्रकार (देवाः) प्रकाशयुक्त किरणें (दिवः) आकाश वा भूमि के (पयः) जल को

(दिधिषाणाः) धारण करते हुए (अवेपन्) व्यापते हैं और वे (सह-सामानम्) एक साथ, सर्वत्र, एक समान भाव से उत्पन्न होने वाले (अर्कम्) अन्न को (विदुः) प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार (देवाः) विद्वान् वा विद्या के इच्छुक शिष्य (दिवः) तेजस्वी, ज्ञानी गुरु के (पयः) ज्ञान को (दिधिषाणाः) धारण करते हुए (अवेपन्) प्राप्त होते हैं और (सह-सामानम्) सामवेद सहित (अर्कम्) ऋग्वेद के ज्ञान को (विदुः) जान लेवें।

ति॒स्रो दे॒ष्ट्राय॒ निर्ऋ॑ती॒रुपा॑सते दीर्घ॒श्रुतो॒ वि हि जा॒नन्ति॒ वह्न॑यः।
तासां॒ नि चि॑क्युः क॒वयो॑ नि॒दानं॒ परे॑षु॒ या गुह्ये॑षु व्र॒तेषु॑॥ २॥

भा०—(दीर्घ-श्रुतः) दीर्घ काल तक वेदों के ज्ञान का श्रवण करने वाले और (वह्नयः) ज्ञान के धारक विद्वान् जन (देष्ट्राय) सर्वसामान्य जनों को उपदेश करने के लिये ही (तिस्रः) तीनों (निःऋतीः) निःशेष सत्य ज्ञान से पूर्ण वेदों को (उप आसते) गुरु या प्रभु के समीप रह कर उपासना, द्वारा प्राप्त कर अभ्यास करते हैं। और वे (कवयः) क्रान्तदर्शी जन (तासां) उन वेदवाणियों के (वि जानन्ति हि) विशेष विज्ञान-रहस्य को जान लेते हैं और (याः) जो (परेषु) सर्वोत्कृष्ट (गुह्येषु व्रतेषु) बुद्धि में स्थित ज्ञानमय कर्त्तव्यों का (निदानम्) स्थिर सम्बन्ध है उसको भी (नि चिक्युः) निश्चयपूर्वक जान लेते हैं।

चतु॑ष्कपर्दा युव॒तिः सु॒पेशा॑ घृ॒तप्र॑तीका व॒युना॑नि वस्ते।
तस्यां॑ सुप॒र्णा वृष॑णा॒ नि षे॑दतु॒र्यत्र॑ दे॒वा द॑धि॒रे भा॑ग॒धेय॑म्॥ ३॥

भा०—(चतुः-कपर्दा) चार शिखाओं वाली, (युवतिः) तरुण स्त्री के तुल्य सदा शब्दार्थों को मिलाने वाली (सु-पेशाः) उत्तम वर्ण रूप वाली, (घृत-प्रतीका) ज्ञान-ज्योति से चमकते मुख वाली, वाणी वा प्रकृति (वयुनानि) नाना ज्ञानों और कर्मों को (वस्ते) आच्छादित करती

है, (तस्याम्) उसमें (वृषणा) सुखों का वर्षक और बलयुक्त साधक आत्मा दोनों (सु-पर्णा) उत्तम ज्ञानवान् जीव और परमात्मा दोनों (नि-सेदतुः) विराजते हैं। (यत्र) जिस द्वारा, या जिस के आश्रय में रह कर (देवाः) देवगण, जीवगण अपने २ (भाग-धेयम् नि दधिरे) सेव्य अंश को धारण करते हैं। वाणी की ४ शिखा, नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात हैं, प्रकृति के ४ कपर्द या सुखप्रद रूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। (२) यज्ञ की वेदी भी चौकोन होने से 'चतुष्कपर्दा' है और वह सबको धारती है, उसमें यजमान, यजमानपत्नी, सुपर्णवत् विराजते हैं। देव ऋत्विज् वे इन्द्रिय आदि अपना २ भाग दक्षिणा वा हव्य प्राप्त करते हैं।

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे।
तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥ ४ ॥

भा०—(एकः सु-पर्णः) सुख से समस्त जगत् को पूर्ण और पालन करने वाला एक, अद्वितीय है, (सः) वह (समुद्रम्) महान् आकाश को (आ विवेश) प्रवेश किये, हुए है, (सः इदम् विश्वं भुवनम्) वह ही इस समस्त जगत् को (वि-चष्टे) विशेष रूप से देखता वा प्रकाशित करता है। (तं) उसको मैं विद्वान् (पाकेन मनसा) पवित्र, उत्तम चित्त वा ज्ञान से (अन्तितः) समीप से (अपश्यम्) देखूं। (तम्) उसको (माता) ज्ञानवान् पुरुष ही (रेढि) प्राप्त करता, उसका आस्वादन करता है और (सः) वह प्रभु (मातरम्) उस ज्ञानी पुरुष को (उ) भी (रेढि) अपने भीतर ले लेता है।

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥५॥१६॥

भा०—(कवयः) क्रान्तदर्शी, बुद्धिमान् (विप्राः) विद्वान् लोग,

(एकं) एक अद्वितीय, (सुपर्णं) उत्तम पालन-पूरण करने वाले प्रभु को ही (बहुधा) बहुत से प्रकारों से (कल्पयन्ति) वर्णन करते हैं। (अध्वरेषु) यज्ञों में (छन्दांसि च दधतः) गायत्री आदि नाना छन्दों को, वा नाना अभिलाषाओं को, वा अथर्ववेद को धारण करते हुए (सोमस्य) सर्वजगत् के प्रेरक प्रभु के ही (द्वादश ग्रहान्) १२ (बारह) स्वरूपों को (मिमते) बना लेते हैं। तत्प्रतिनिधि रूप से सोम के १२ पात्रों की कल्पना करते हैं। इति षोडशो वर्गः॥

षट्त्रिंशांश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम्।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ॥६॥

भा०—पहले (षट् त्रिंशान्) ३६ [छत्तीस] और (चतुरः) चार, कुल चालिस (ग्रहान्) रूपों की (कल्पयन्तः) कल्पना करते हुए, और (आद्वादशं छन्दांसि च दधतः) १२ संख्या तक छन्दों को धारण करते हुए, (कवयः) क्रान्तदर्शी, बुद्धिमान् जन (मनीषा) बुद्धि से (ऋक्-सामाभ्याम्) ऋग्वेद और सामवेद से (यज्ञम् वि-माय) यज्ञ का विशेष ज्ञानपूर्वक निर्माण करके (रथम्) रमणीय, सर्वप्रिय यज्ञ को (प्र वर्त्तयन्ति) करते हैं।

उपांशुयाम २, ऐन्द्रवायव आदि दो २ के तीन, शुक्रामन्थी २, आग्रायण १, उक्थ १, ध्रुव १, ऋतुग्रह, १२ ऐन्द्राग्न १, वैश्वदेव १, मरुत्वतीय २, माहेन्द्र १ आदित्य १, सावित्र १, वैश्वदेव १, पात्नीवत १, हारियोजन १, योग ३६ ग्रह। और अत्यग्निष्टोम में उक्त ३६ और अंशु, अदाभ्य, दधिग्रह और षोडशी ये चार ग्रह मिलाकर ४० ग्रह हो जाते हैं। ये सब यज्ञ में प्रजापति के ही नाना सामर्थ्यों को दर्शाने वाले रूप हैं।

चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ॥ ७॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (अन्ये) और भी (चतुर्दश) चौदह (महिमानः) महान् कर्म-सामर्थ्य हैं । (तं) उस यज्ञ को (सप्त) सात (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (वाचा) वाणी द्वारा (प्र नयन्ति) सम्पादन करते हैं । उस (आप्नानं तीर्थं) व्यापक, तारने वाले मोक्ष मार्ग का (इह) इस लोक में (कः प्रवोचत्) कौन उपदेश कर सकता है ? (येन) जिस (पथा) गन्तव्य मार्ग से विद्वान् जन (सुतस्य) निष्पादित आनन्द रस का पान करते हैं । (२) सोमयाग में चात्वाल और उत्करके बीच के मार्ग को 'तीर्थ' कहते हैं उस मार्ग से जाकर यज्ञ में सोमरस का पान करते हैं ।

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥८॥

भा०—(उक्था) उक्थ, नाना प्रवचन योग्य प्रजापति के रूप (सहस्र-धा) सहस्रों में (पञ्च-दश) पन्द्रह प्रकार के हैं । (यावत् द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी जितने हैं (तावत् इत् तत्) उतना ही उसे समझो । क्योंकि उसकी (महिमानः) महिमाएं, महान् सामर्थ्य (सहस्र-धा) हज़ारों प्रकार के हैं (यावद् ब्रह्म वि-स्थितम्) ब्रह्म जितना विविध रूप से विद्यमान है (तावती वाक्) वाणी भी वर्णन करने वाली उतनी ही प्रकार की हो जाती है ।

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥९॥

भा०—(कः धीरः) कौन बुद्धिमान् है जो (छन्दसां योगम् वेद-मन्त्रों के योग, योजनाओं को (आ वेद) सब प्रकार से ठीक २ प्रकार से जानता है ? और (कः) कौन विद्वान् (धिष्ण्याम्) धारण करने योग्य अंगों के अनुरूप (वाचं) वाणी को (प्रति पपाद) वर्णन कर सकता है (ऋत्विजाम्) ऋत्विजों के बीच (अष्टमम्)

आठवें (कम्) किस (शूरम्) बलवान् को (आहुः) बतलाते हैं ? और (कः स्वित्) कौन विद्वान् है जो (इन्द्रस्य हरी नि चिकाय) इन्द्र के दो अश्वों के तुल्य बड़े बलों को नियत रूप से जानता है। वह सब परमात्मा ही है। जो वेद मन्त्रों का ठीक २ योग जानता, अंग-प्रत्यंग विषयक वाणी का प्रतिपादन करता, सर्वैश्वर्यवान् प्रभु के दो रूपों को जानता, और सातों पर आठवां व्यापक बलशाली है। अध्यात्म में—सात प्राणों में व्यापक आत्मा है। यज्ञ में सात होता आदि के स्थान 'धिष्ण्य' हैं। देह में सात प्राण, विश्व में सात विकृतियें, इनमें व्यापक प्रभु आठवां है। सूर्य के ताप और प्रकाशवत् दो अश्वों के तुल्य प्रभु के सर्गकारक और संहारक अथवा ज्ञान और क्रियाशक्ति ये दो बल हैं।

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः १०।१७

भा०—(यदा) जब (यमः) नियन्ता वा बलप्रद आत्मा राजा के तुल्य (हर्म्ये) गृहवत् देह में (स्थितः) विद्यमान, स्थिर होता है तब (एके) एक-कुछ प्राणगण (रथस्य धुर्षु युक्तासः) रथ के धुरों में जुते हुए अश्वों के तुल्य ही, (भूम्याः) भूमि अर्थात् देह के (अन्तं परि) भोग्य अंशों का भोग करते, देह के नाना स्थानों में (चरन्ति) विचरते हैं। (एभ्यः) इनको ही (श्रमस्य) श्रम करने वाले मुख्य आत्मा के ज्ञानादि के (दायम्) धन के तुल्य उसके बल, सामर्थ्य का विभाग करते हैं। अर्थात् चक्षु आदि समस्त इन्द्रियगण उसी आत्मा के दर्शन आदि सामर्थ्यों को प्राप्त करते हैं। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[११५]

ऋषिरुपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ७ विराड् जगती । ३ जगती । ५ आर्चीभुरिग् जगती । ६ निचृज्जगती । ८ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृच्छक्वरी ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥१॥

भा०—(शिशोः) सर्वशासक, सर्वव्यापक (तरुणस्य) शक्तिमान्, सर्वदुःखों के तारक उस प्रभु का (वक्षणः) जगत् को धारण करने का सामर्थ्य (चित्रः इत्) अद्भुत, आश्चर्यकारक है (यः) जो (मातरौ) जगत् सर्ग को उत्पन्न करने वाले आकाश और भूमि दोनों का (धातवे) रस पान करने के लिये (न अप्येति) नहीं आता । और (यदि) जो (अनूधाः) स्वयं स्तनादि से रहित पुरुषवत् होकर भी (मातरौ जीजनत्) आकाश और भूमि दोनों को उत्पन्न करता है (अध च नु ववक्ष) वही दोनों को धारण करता है, (सद्यः महि दूत्यं चरन्) सदा बड़ा भारी ज्ञान, अन्न, धन, जीवन आदि प्रदान करता रहता है ।

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥ २ ॥

भा०—वह (दन्) दानशील, (अपः-स्तमः) सर्वश्रेष्ठ कर्म करने वाला, (अग्निः ह नाम धायि) अग्नि, ज्ञानवान्, स्वप्रकाश रूप से धारण किया जाता है । (यः) जो (भस्मना दता) प्रकाशमय दन्त वा ज्वाला से (वना) काष्ठों को अग्नि के तुल्य ही (वना) नाना तेजों और ऐश्वर्यों को, और जलों को सूर्यवत् (सं युवते) अच्छी प्रकार से ग्रहण करता है। और (अभि-प्र-मुरा जुह्वा) सबसे उन्नत ग्रहणकारिणी शक्ति से वह (सु-अध्वरः) उत्तम अहिंसक, वा अविनाशी (इनः न) स्वामी के समान सर्वोपरि प्रभु (प्रोथमानः) सर्वत्र व्यापक होता हुआ (यवसे वृषा) अन्न देने के लिये मेघवत् सर्वत्र वर्षा करने हारा है ।

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥३॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! (वः) आप लोग (द्रु-सदं विं न) वृक्ष पर विराजते पक्षी के तुल्य, 'द्रु-सद्' द्रुतगति से जाने वाले सूर्य आदि समस्त जगत् के अधिष्ठाता, (विं) व्यापक, (अन्धसः) जीवनप्रद कर्मफल के (देवम्) दाता, (इन्दुम्) सर्वप्रकाशक, सर्वैश्वर्यवान्, (प्रोथन्तम्) सर्वत्र व्यापक, (प्र-वपन्तम्) सब लोकों में अन्न, जीवादि का बीज वपन करने वाले, (अर्णवम्) समुद्र के समान (आसा) सर्वजगत् को प्रेरणा करने वाले महान् सामर्थ्य से (वह्निम्) जगत् को उठाने हारे (वि-रप्शिनम्) महान्, (महि-व्रतम्) वड़े २ कर्म करने वाले और (शोचिषा) तेज से (अध्वनः सरजन्तम्) अनेकों मार्गों को रंजित या प्रकाशित करते हुए प्रभु की स्तुति करो।

वि यस्य॑ ते ज्रयसा॒नस्या॑जर॒ धक्षो॒र्न वाताः॒ परि॒ सन्त्यच्यु॑ताः।
आ र॒ण्वासो॒ युयु॑धयो॒ न स॑त्व॒नं त्रि॒तं न॑शन्त॒ प्र शि॒षन्त॑ इ॒ष्टये॑ ४

भा०—हे (अजर) अविनाशिन् ! (ज्रयसानस्य) व्यापक (यस्य) जिस (ते) तेरे (धक्षोः) भस्म करने वाले अग्नि के तुल्य सर्व-पाप-नाशक (वाताः न) वायुओं के समान समस्त बलशाली (अच्युताः) अविनाशी पदार्थ (परि सन्ति) चारों ओर तुझ पर आश्रित हैं, (युयुधयः न सत्वनम्) योद्धा लोग जिस प्रकार बलवान् नायक को (इष्टये) संगति प्राप्त कराने के लिये (नशन्त) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (रण्वासः) स्तुतिशील भक्त जन (युयुधयः) बाधक कारणों से युद्ध करते हुए (सत्वनम्) अति बलशाली सब जगत् के स्वामी (त्रितम्) तीनों लोकों में व्यापक तुझको (इष्टये) उपासना, प्राप्ति, संगति के लिये (शिषन्तः) स्तुति, प्रार्थना करते हुए, तुझे चाहते हुए (आ नशन्त) सब प्रकार से प्राप्त होते और (प्र नशन्त) अच्छी प्रकार से तुझे प्राप्त करते हैं।

स इद॒ग्निः कण्व॑तमः॒ कण्व॑सखा॒र्यः पर॒स्यान्त॑रस्य॒ तरु॑षः।
अ॒ग्निः पा॑तु गृण॒तो अ॒ग्निः सू॒रीन॒ग्निर्द॑दातु॒ तेषा॒मवो॑ नः ॥५॥१८॥

भा०—(सः इत्) वह ही (अग्निः) ज्ञान-प्रकाशक, स्वप्रकाश प्रभु (कण्वतमः) सबसे अधिक बुद्धिमान्, (कण्व-सखा) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जनों का परम मित्र, (परस्य अन्तरस्य तरुषः) दूर और समीप सबका तारने वाला है । वही (अग्निः) ज्ञानी (गृणतः) स्तुति करने वालों की (पातु) रक्षा करे । (अग्निः सूरीन् पातु) वही सर्वनेता, विद्वानों की रक्षा करे, और वही (अग्निः) ज्ञानवान् प्रभु ही (तेषाम् अवः नः ददातु) उन हमको ज्ञान, रक्षा आदि प्रदान करे ।

वा॒जिन्त॑माय॒ सह्य॑से सुपित्र्य तृ॒षु च्यवा॑नो॒ अनु॑ जा॒तवे॑दसे ।
अ॒नु॒द्रे चि॒द्यो धृ॒षता॒ वरं॑ स॒ते म॒हिन्त॑माय॒ धन्व॒नेद॑वि॒ष्यते॑ ॥६॥

भा०—हे (सुपित्र्य) उत्तम पिता के पुत्रवत् जीव ! (यः) जो (अनुद्रे चित्) जल से रहित मरुस्थल में भी (धृषता) अपने बड़े अप्रतिम बल से मेघ के समान (वरं) जल के तुल्य श्रेष्ठ सुख प्रदान करता है, उस (वाजिन्-तमाय) सबसे अधिक बलैश्वर्यवान् (सह्यसे), सर्वसहन करने वाले, सर्वोपरि बलशाली, (जातवेदसे) सब उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, (महिन्तमाय) सबसे महान् (सते) सत्स्वरूप (धन्वना धृषता) शत्रु-पराजयकारी धनुष से (अविष्यता) रक्षा करने वाले राजा के तुल्य (धन्वना) मेघवत् जल से वा अन्तः प्रेरणा से सबको (अविष्यते) रक्षा करने वा प्रेम करने वाले उसको तू (तृषु) शीघ्र ही, (अनु च्यवानः) प्राप्त करता हुआ, सुखी हो ।

ए॒वा॒ग्निर्मर्तैः॑ स॒ह सू॒रिभि॒र्वसुः॑ ष्टवे॒ सह॑सः सू॒नरो॒ नृभिः॑ । मि॒त्रासो॒ न ये सुधि॑ता ऋ॒ताय॑वो॒ द्यावो॒ न द्यु॒म्नैर॒भि सन्ति॒ मानु॑षान् ॥७॥

भा०—(मित्रासः न) मित्रों के समान (ये) जो (सुधिताः) उत्तम रीति से धारित, वा उत्तम पदों पर स्थित, वा उत्तम पदों पर बद्ध, नियत होकर (ऋतयवः) सत्य धर्म का पालन करने वाले, (द्यावः न)

सूर्य की किरणों या प्रकाशों के समान सत्य का प्रकाश करने वाले होकर (द्युम्नैः) धनों और तेजों से (मनुषान् अभि सन्ति) सब मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, उन (सूरिभिः मर्त्तैः) विद्वान् मनुष्यों और (नृभिः सह) उत्तम नेताओं द्वारा एक साथ (वसुः) वह सर्वत्र बसने वाला, (अग्निः) प्रकाश स्वरूप, तेजस्वी (स्तवे) स्तुति प्रार्थना किया जाता है। वही (सहसः) बल, सैन्य को (सूनरः) उत्तम नायक के तुल्य सन्मार्ग पर ले जाने हारा है।

ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक्।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपात्) अन्न रस के तुल्य बल द्वारा प्रकट होने वाले! हे (सहसावन्) बलशालिन्! (उप-स्तुतस्य) स्तुति करने वाले उपासक की (वृषा वाक्) सुखप्रद वाणी (त्वा) तुझे (इति) इसी प्रकार (वन्दते) स्तुति करती है। हम (त्वां स्तोषाम) तेरी स्तुति करते हैं। हम (त्वया) तेरे बल से ही (सु-वीराः) उत्तम वीर्यवान् होकर, (द्राघीयः प्रतरं आयुः दधानाः) अति दीर्घ, उत्तम आयु को धारण करते हुए रहें।

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन्।
तांश्च पाहि गृणतश्च सूरीन् वषड्वषळित्यूर्ध्वासो अनक्षन्
नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥ ९ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक प्रभो! (इति) इस प्रकार से (उप-स्तुतासः) स्तुति करने वाले उपासक जन (वृष्टि-हव्यस्य) अन्न आदि ग्राह्य पदार्थों की वृष्टि करने वाले तुझ प्रभु के (पुत्राः) पुत्र होकर (त्वा इति वोचन्) तेरी इस प्रकार स्तुति करते हैं। वह तू (तान् गृणतः च सूरीन् च पाहि) उन स्तुति करने वाले और विद्वानों का पालन

कर। वे (ऊर्ध्वासः) ऊपर मुख, हाथ उठाये उत्तम पति को प्राप्त होकर (वषट् वषट् इति) यज्ञ कर २ के (त्वाम् अनक्षन्) तुझे प्राप्त होते हैं और वे (ऊर्ध्वासः) उर्ध्व गति से जाने वाले जन (नमः नमः इति त्वा अनक्षन्) नमस्कार करते १ तुझे प्राप्त होते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[११६]

ऋषिरग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः ॥ इन्द्रो देवता । छन्दः—१, ८, ६ त्रिष्टुप् । २ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ६ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । नवर्चं सूक्तम्

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (महते इन्द्रियाय) बड़े भारी ऐश्वर्य के सम्पादन के लिये (सोमं पिब) ऐश्वर्य से युक्त प्रजाजन को पुत्र के समान पालन कर । हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! तू (वृत्राय हन्तवे) मेघ को छिन्न भिन्न करने, या मेघ के लिये सूर्य के समान (वृत्राय हन्तवे) बढ़ते शत्रु का नाश करने के लिये भी (पिब) प्रजा का पालन कर । तू (हूयमानः) प्रजा द्वारा प्रार्थित होकर (शवसे राये) बल और ऐश्वर्य के सम्पादन के लिये, (पिब) प्रजा का पालन कर । तृप्त होकर (मध्वः पिब) मधुर जल और अन्न का भोग कर और (तृपत्) तृप्त, क्षुधा से रहित हो । (आ वृषस्व) सब ओर मेघ के समान सुखों की वर्षा कर । जिस प्रकार जलों का पान कर सूर्य तृप्त होकर फिर समस्त जगत् को जल बरसा कर जल और अन्न से तृप्त करता है वैसे ही राजा भी स्वयं ऐश्वर्य-पूर्ण होकर अन्यों को अन्न, जल, धन से तृप्त करे ।

अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रु के विनाशक ! अन्न जलादि के दाता ! तू (अस्य) इस (क्षुमतः) स्तुति वचन से युक्त वा तेरी आज्ञा पालन करने वाले वा अन्न-सम्पदा से सम्पन्न, (प्रस्थितस्य) उत्तम रीति से स्थित (आ-सुतस्य) और आदरपूर्वक अभिषेक द्वारा प्राप्त (सोमस्य) प्रजाजन के (वरम्) श्रेष्ठ अंश की अवश्य (पिब) रक्षा कर । इसी प्रकार प्राप्त हुए समक्ष स्थित ऐश्वर्य के उत्तम अंश का तू भोग कर । तू (स्वस्ति-दा) सुख देने वाला होकर (मनसा) मन से (रेवते सौभगाय) धनैश्वर्य से युक्त सुख सौभाग्य के लिये (अर्वाचीना) अपने पास आये जनों को (मादयस्व) सुखी वा हर्षित कर ।

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥ ३ ॥

भा०—(दिव्यः सोमः) दिव्य सोम (त्वा ममत्तु) तुझे प्रसन्न करे । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ममत्तु) तुझे वह सोम प्रसन्न करे (यः) जो (पार्थिवेषु) पृथिवी पर के क्षेत्रों में (सूयते) उत्पन्न होता है । और (येन वरिवः चकर्थ) जिससे तू उत्तम धन उत्पन्न करे वह भी (त्वा ममत्तु) तुझे प्रसन्न करे । और (येन शत्रून् निरिणासि) जिससे तू शत्रुओं को नष्ट करता है वह सभी ऐश्वर्य धन, बल आदि तुझको (ममत्तु) प्रसन्न करे । इस प्रकार दिव्य सोम सूर्य का तेज है । पार्थिव सोम अन्न, धनप्रद सोम पण्य पदार्थ, और शत्रुनाशक सोम सैन्य-बल है । अध्यात्म में—दिव्य सोम ज्ञान, पार्थिव 'सोम' शरीरगत वीर्य, ज्ञान का दाता सोम गुरु, आभ्यन्तर शत्रु का नाशक सोम आत्म-ज्ञान-साधना ।

आ द्विवर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥ ४ ॥

भा०—(वृषा) बलवान् (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (द्वि-बर्हाः) सैन्य और सामान्य प्रजा दोनों का स्वामी, दोनों से बढ़ने वाला, (अमिनः) बलवानों के प्रति (आ यातु) प्राप्त हो, वा (अमिनः आयातु) गृह वाले जनों को प्राप्त हो। (गवि) भूमि पर (अन्धः) उत्तम अन्न (परि सिक्तम्) सींचा जावे। (सुतस्य) उत्पन्न हुए (प्र-भृतस्य) अच्छी प्रकार पुष्ट हुए (मध्वः) अन्न, जल की मेघवत् वा सूर्यवत् (अरुश-हा) दुःखों और पीड़ाओं का नाशक स्वामी (सत्रा) सदा, (खेदाम्) दुःखी जनों के निमित्त (आ वृषस्व) वर्षा करे। उन्हें खूब प्रदान करे। (२) सूर्य वा मेघ दोनों लोकों के स्वामी से, वा दोनों लोकों के बढ़ने से 'द्वि-बर्हाः' है। वह ताप, प्रकाश, या जल, वायु सहित आवे, अन्न सींचे, भूख से खिन्न प्राणियों को अन्न दे।

नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च॥५॥२०॥

भा०—हे राजन्! स्वामिन्! तू सूर्य के समान (तिग्मानि) तीक्ष्ण (भ्राश्यानि) दीप्तियों के तुल्य चमकने वाले शस्त्रों को (नि भ्राशयन्) खूब चमकाता हुआ, (यातु-जूनां) पीड़ा देने वाले शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ़ दुर्गों, धनों, बलों को (अव तनुहि) नीचे गिरा। (ते उग्राय) शत्रुओं के लिये उग्र रूप तुझ को मैं (सहः बलम्) पराजयकारी, सर्वविजयी बल (ददामि) प्रदान करता हूं। तू (वि-गदेषु) संग्रामों में (शत्रून् प्रति-इत्य) शत्रुओं पर आक्रमण करके उनको (वृश्च) काट डाल। इति विंशो वर्गः ॥

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) स्वामी होकर वा (अर्यः) शत्रु के (श्रवांसि) धनों, और अन्नों को (वि तनुहि) नष्ट कर। और हमें (स्थिराणि) स्थिर बल प्रदान कर। अपने (धन्वनः ओजः) धनुष के पराक्रम को (स्थिरा इव वि तनुहि) स्थिर रूप से विशेष रूप से विस्तृत कर। और (अस्मद्र्यक्) हमें प्राप्त होकर (वावृधानः) बढ़ता हुआ (अनि-भृष्टः) शत्रुओं से पराजित न होकर (सहोभिः) अपने बलों से (अभि-मातीः) अभिमानी शत्रुओं को (ववृधन्व) नित्य काट और (तन्वं) अपनी विस्तृत शक्ति को (वावृधस्व) बराबर बढ़ा।

इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वो३ऽद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तुभ्यम्) तेरे हितार्थ (इदम् हविः) यह उत्तम अन्नवत् पुष्टिकारक साधन (रातम्) प्रदान किया जाय। तू (सम्राट्) तेजस्वी होकर (अहृणानः) विना संकोच वा क्रोध के (प्रति गृभाय) ग्रहण कर, वा हे (मघवन्)ऐश्वर्यवन् ! (तुभ्यम्) तेरे ही लिये उत्पन्न अन्नवत् समस्त पदार्थ (पक्वः) परिपक्व है। तू (प्रस्थितस्य) आदर से आगे रक्खे अन्न को (अद्धि प्र पिब च) खा और पान कर। उसका उपभोग कर।

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम्।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥८

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (प्रस्थिता) आदरपूर्वक आगे रक्खे (इमा हवींषि) इन उत्तम २ अन्नों को (अद्धि इत्) अवश्य खा। (चनः) अन्न को (उत पचता उत सोमम्) और परिपक्व पदार्थों वा जल को भी (दधिष्व) तू धारण, स्वीकार कर। हम (प्र-यस्वन्तः)

उत्तम अन्न को लिये हुए (त्वा प्रति हर्यामसि) तेरे प्रति सत्कामना करते हैं। (यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु) अन्न देने वाले, यज्ञशील जन की सब अभिलाषाएं सत्य, सफल हों। विद्वान्, गुरु, आचार्य, अतिथि तथा प्रिय, पति आदि का भी सत्कार इसी प्रकार करना चाहिये।

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः।
अया इव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥९॥२१॥

भा०—(सिन्धौ इव नावम्) समुद्र में नाव के तुल्य मैं (अर्कैः) अर्चना करने वाले वेद मन्त्रों से (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्निवत् अन्न और प्रकाश देने वालों के प्रति (सुवचस्याम्) सुखजनक वचनों वाली (नावम्) स्तुति को (प्र इयर्मि) उत्तम रीति से कहता हूं और (देवाः) विद्वान् गण (अयाः इव) आने जाने वाले भृत्यों वा अश्वादि के तुल्य (परि चरन्ति) सेवा करते हैं (ये) जो (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (धन दाः) धन देने वाले और (उद्-भिदश्च) उत्तम २ अन्नादि फलों, सुखजनक पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[११७]

ऋषिर्भिक्षुः ॥ इन्द्रो देवता—धनान्नदानप्रशंसा ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती—२ पादनिचृज्जगती। ३, ७, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ६ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (क्षुधम् न ददुः) भूख का दण्ड नहीं देवें, प्रत्युत (वधं ददुः) पीड़ादायक दण्ड ही देवें। अथवा वे (क्षुधम् इत् वधं न ददुः) भूख के कारण दूसरे को नाश करने का दण्ड न देवें। (उत) क्योंकि (आशितम्) खानेवाले को भी (मृत्यवः) मरणकारी अवसर

(उप गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। (उतो) और (पृणतः रयिः) अन्यों को पालने वाले का धन (न उप दस्यति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। (उत) और (अपृणन्) दूसरों को न पालने वाला (मर्डितारं न विन्दते) अपने प्रति सुख देने और दया करने वाले को नहीं पाता।

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

भा०—(यः) जो (आध्राय) भरण पोषण करने योग्य निर्बल को और (पित्वः चकमानाय) अन्नों को चाहने वाले बुभुक्षित याचक को और (रफिताय) पीड़ित दुःखी को और (उप-जग्मुषे) समीप प्राप्त अतिथि को देखकर (अन्नवान् सन्) स्वयं अन्न वाला होकर भी अपना (मनः स्थिरं कृणुते) मन स्थिर कर लेता है, और (पुरा सेवते) उसको देने के पहले स्वयं खा लेता है (उतो न चित्) वह भी (मर्डितारं न विन्दते) अपने पर दया करने वाले को नहीं पाता।

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥ ३ ॥

भा०—(यः गृहवे ददाति) जो ग्रहण करने वाले उत्तम पात्र को अन्न आदि देता है और (यः) जो (अन्न-कामाय चरते ददाति) अन्न की अभिलाषा से भिक्षा आचरण करने वाले को अन्नदान करता है और जो (कृशाय) कृश, भूखे, निर्बल को अन्न देता है, (अस्मै यामहूतौ) उसको यज्ञ के निमित्त (अरं भवति) बहुत अधिक प्राप्त होता है, (सः इत् भोजः) वही सच्चा रक्षक है (उत) और वह (अपरीषु सखायं कृणुते) परायों में वा शत्रु आदि की प्रजाओं में भी अपना सहायक प्राप्त कर लेता है।

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

भा०—(सः न सखा) वह सखा, प्रेमी मित्र नहीं (यः) जो (सचाभुवे) साथ रहने वाले को, और (सचमानाय) सेवा करने वाले (सख्ये) मित्र को (पित्वः न ददाति) अन्न नहीं देता । क्योंकि (तत् ओकः न अस्ति) वह रहने योग्य घर के समान नहीं होता (अस्मात् अप) मनुष्य उससे दूर ही से हटते हैं । (अन्यम् पृणन्तम्) शत्रु भी यदि पालन करता है, अन्न से तृप्त करता है तो लोग उसको भी (अरणं चित् इच्छेत्) उत्तम स्वामी के तुल्य चाहने लगते हैं ।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५॥२२॥

भा०—(तव्यान्) शक्तिशाली पुरुष को चाहिये कि वह (नाधमानाय) याचना करने वाले को (पृणीयात् इत्) अवश्य पालन करे, उसे अन्नादि से तृप्त, सन्तुष्ट करे । वह (द्राघीयांसम् पन्थाम् अनु पश्येत) बहुत दूर तक के मार्ग को देखे । (ओ हि रथ्या चक्रा इव वर्त्तन्ते) ये धन, निश्चय से रथ के चक्रों के समान चला करते हैं । ये (रायः) समस्त ऐश्वर्य (अन्यम् अन्यम् उप तिष्ठन्ते) एक से दूसरे के पास जाया आया करते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥ ६ ॥

भा०—वह (अप्र-चेताः) उत्तम उदार चित्त एवं दूर तक के ज्ञान से रहित, अनुदार क्षुद्रज्ञानी पुरुष (मोघम् अन्नं विन्दते) व्यर्थ ही धन-अन्न आदि प्राप्त करता है । (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूं कि (सः तस्य वधः इत्) वह उसका मरण ही है क्योंकि वह (न अर्यमणं पुष्यति) न तो अपने शत्रुओं को वश करने वाले, स्वामी राजा को ही पुष्ट करता है और (नो सखायं) न वह अपने समान-ख्याति वाले मित्र को

पुष्ट करता है, (केवलादी) केवल स्वयं खाने या भोगने वाला पुरुष (केवल-अघः भवति) केवल पाप ही अर्जन करता है।

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥ ७ ॥

भा०—(कृषन् फालः इत् आशितं कृणोति) जो फाली भूमि में गहरा खनती है वही खाने योग्य अन्न उत्पन्न करती है, और (अध्वानं यन्) जो मार्ग पर गमन करता है वह (चरित्रैः) अपने पैरों से ही (अप वृङ्क्ते) बहुत दूर तक चला जाता है, वह संकट से छूट जाता या लक्ष्य तक पहुंचता है। (वदन्) उपदेश देता हुआ ही (ब्रह्मा) वेदज्ञ ब्राह्मण (अवदतः) न उपदेश करने वाले से (वनीयान्) अधिक सेवा करने योग्य है। (पृणन् आपिः) इच्छा पूर्ति करने वाला बन्धु, दाता पुरुष ही, (अपृणन्तम्) न देने वाले से (अभि स्यात्) कहीं बढ़ कर होजाता है।

एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥

भा०—(एक-पाद् भूयः) एक आश्रय वाला भी (द्वि-पदः) दो पैर वाले अनेक मनुष्यों से (भूयः वि चक्रमे) बहुत अधिक विक्रमशील होता है। और (द्वि-पाद्) दो चरण वाला मनुष्य भी (त्रि-पादम्) तीन चरण वाले, ज्ञानी पुरुष के (पश्चात् अभि एति) पीछे २ आता है। और (पंक्तीः) पद पंक्तियों को (सम्पश्यन्) देखता हुआ (उप-तिष्ठमानः) उपस्थित होकर (चतुष्पात्) चार पैर वाला पशु भी (द्विपदाम् अभिस्वरे) दो पाये मनुष्यों के स्थान में (एति) प्राप्त हो जाता है। इसलिये न्यूनाधिक पदों या, साधनों या आश्रयों के ऊपर समृद्धि नहीं, प्रत्युत सामर्थ्य और दानशीलता पर ही उत्तमता निर्भर है।

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरां चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ९।२३

भा०—(समौ चित् हस्तौ) दोनों हाथ एक समान होकर भी (समं न विविष्टः) एक समान व्यापार नहीं करते । (सम् मातरा चित्) एक समान दो माताएं भी (न समं दुहाते) एक समान दूध नहीं देतीं । (यमयोः चित् वीर्याणि न समा) एक साथ उत्पन्न जोड़े पुत्रों के भी एक समान बल-सामर्थ्य नहीं होते । (ज्ञाती चित् सन्तौ) दोनों समान सम्बन्धी होकर भी (समं न पृणीतः) एक समान दान देने में समर्थ नहीं होते इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[११८]

ऋषिरुरुक्षय आमहीयवः ॥ देवता—अग्नी रक्षोहा ॥ छन्दः—१ पिपीलिकामध्या गायत्री । २, ५ निचृद्गायत्री । ३, ८ विराड् गायत्री । ६, ७ पादनिचृद्गायत्री । ४, ९ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने हंसि न्य१त्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे स्वप्रकाश ! विद्वन् ! हे (शुचि-व्रत) शुद्ध कर्म करने हारे ! तू (स्वे क्षये) अपने गृह में, वा ऐश्वर्य में (दीद्यत्) प्रकाशित होता हुआ, (मर्त्येषु) मनुष्यों में विद्यमान (अत्रिणम्) भोक्ता मन, वा इन्द्रियगण वा देह को नाशकारी दुष्ट के तुल्य (नि हंसि) अपने वश कर ।

उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे ।
यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! उत्तम नायक ! आत्मन् ! (आहुतः

उत्-तिष्ठसि) जिस प्रकार अग्नि चरु, घृत आदि की आहुति पाकर ऊपर उठता है उसी प्रकार तू भी (सु-आहुतः) उत्तम रीति से आदर सत्कार पाकर उदय को प्राप्त होता है। (घृतानि प्रति मोदसे) घृतों को प्राप्त होकर जैसे अग्नि प्रसन्न होता, अधिक उज्ज्वल होकर चमकता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू (घृतानि) आदरार्थ जलों वा स्निग्ध वचनों को पाकर (प्रति मोदसे) सत्कार करने वाले के प्रति हर्ष प्रकट कर। (स्रुचः सम् अस्थिरन्) जिस प्रकार स्रुवे अग्नि को स्थिर भाव से रखते हैं उसी प्रकार हे विद्वन् ! (त्वा) तुझको (स्रुचः) प्राणगण (सम् अस्थिरन्) अच्छी प्रकार स्थिर करें।

स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥ ३ ॥

भा०—(सः अग्निः) वह अग्निवत् देदीप्यमान, (ईडेन्यः) स्तुति करने योग्य पुरुष (आहुतः) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य आदर प्राप्त करके (वि रोचते) विशेष दीप्ति से प्रकाशित होता है, और (स्रुचा गिरा प्रतीकम् अज्यते) स्रुचा से जिस प्रकार अग्नि प्रकाशित हो उसी प्रकार वह ज्ञान-प्रकाशमय पुरुष भी वाणी द्वारा प्रत्येक आत्म रूप से अन्तःकरण में प्रकट होता है।

घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः।
रोचमानो विभावसुः ॥ ४ ॥

भा०—(घृतेन अग्निः समज्यते) जैसे घी से अग्नि अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजस्वी प्रकाशवान् पुरुष भी अपने विशेष प्रकाश से (सम् अज्यते) भली प्रकार प्रकाशित होता है। (मधु-प्रतीकः) अग्नि जिस प्रकार ज्वाला रूप अवयवों में मधु अर्थात् तेज वा ताप से युक्त होता है उसी प्रकार विद्वान् भी (मधु-प्रतीकः) मधुर

वचनों को मुख में धारण करने वाला हो। वह (आ-हुतः) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य गुरु द्वारा उपदेश प्राप्त कर (रोचमानः) प्रकाशित एवं सब को प्रिय लगता हुआ, (विभा-वसुः) दीप्ति के धनी अग्नि के तुल्य (वि भाव-सुः) विशेष सामर्थ्य को प्रकट करने वाला हो।

जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।

तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (हव्य-वाहन) हव्य, चरु, घृत आदि आहुति देने योग्य पदार्थों को दूर २ तक लेजाने वाले अग्नि के तुल्य ग्राह्य, धनों, दातव्य ज्ञानों को स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को प्रदान करने वाले ! तू (देवेभ्यः) कामनावान् मनुष्यों के हितार्थ (जरमाणः) उपदेश करता हुआ (समिध्यसे) अधिक प्रकाशित हो। (तं त्वा) उस तुझको (मर्त्याः) मनुष्य (हवन्त) प्रार्थना करते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत।

अदाभ्यं गृहपतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मर्ताः) साधारण कोटि के मनुष्यो ! आप लोग (घृतेन अग्निम्) घी से अग्नि के तुल्य स्नेह से उस (अमर्त्यं) अविनाशी पुरुष की, (अदाभ्यं गृहपतिं) उस अहिंसनीय, गृहों के स्वामीवत् अवलम्ब ग्रहण करने वालों के पालक पुरुष की (सपर्यत) सेवा, परिचर्या और उपासना करो।

अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह।

गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, ज्ञान के प्रकाशक, तेजस्विन् ! (अदाभ्येन शोचिषा) अविनाशी तेज से (त्वं रक्षः दह) तू दुष्टों को दग्ध कर। तू (ऋतस्य गोपाः) सत्य ज्ञान, न्याय और धर्मतत्त्व का रक्षक होकर (दीदिहि) प्रकाशित हो।

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सः त्वम्) वह तू (प्रतीकेन) प्रतिकार करने, वा उपाय से (यातु-धान्यः) पीड़ा देने वाली दुष्ट शक्तियाँ, स्त्रियों वा विपत्तियों को (प्रति ओष) नष्ट कर। और तू (उरु-क्षयेषु दीद्यत्) बड़े २ गृहों वा ऐश्वर्यों में चमकता रहे।

तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥ ९ ॥ २५ ॥

भा०—(उरु-क्षयाः) बड़े २ गृहों वाले उपासक (मानुषे जने) मननशील जनों में (यजिष्ठं) सर्वोपरि दानी, पूज्य, (हव्यवाहं) हव्य को अग्निवत्, स्तुत्य वचन को धारण करने वाले (तं त्वा) उस तुझको, (गीर्भिः) स्तुतियों से (सम् ईधिरे) दीप्त करते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[११९]

ऋषिर्लव ऐन्द्रः ॥ देवता—आत्मस्तुतिः ॥ छन्दः—१—५, ७—१० गायत्री । ६, १२, १३ निचृद् गायत्री ॥ ११ विराड् गायत्री ।

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १ ॥

भा०—(सोमस्य कु-वित्) सोम, ऐश्वर्य, वीर्य, धनादि को बहुत बहुत, (अपाम्) मैंने सुरक्षित किया, उसका बहुत २ उपयोग किया। यज्ञ में अनेक बार सोम ओषधिरस का पान किया, योगादि द्वारा अध्यात्म में—अनेक बार मैंने अपने आत्मा का आनन्द-स्वरूप प्राप्त किया। (इति वा इति) यह इस २ प्रकार से (मे मनः) मेरा चित्त होता है कि (गाम् अश्वं सनुयाम्) मैं अर्थियों को गौ और अश्व दूं। मैं

उस प्रभु को लक्ष्य कर वाणी और अपने भोक्ता आत्मा तक को उसके अर्पण कर दूं।

प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ २ ॥

भा०—(कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने सोम रस, ऐश्वर्य, ज्ञान, आत्मानन्द का खूब २ पान किया। (इति) इसी कारण वे (पीताः) पान किये गये रस (वाताः इव) प्रबल वायुओं के झकोरों के समान (दोधतः) कंपाते हुए (मा उत् अयंसत) मुझ को उद्यमशील करते हैं।

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥

भा०—(आशवः अश्वाः इव) शीघ्रगामी घोड़े जिस प्रकार (रथम् उत् अयंसत) रथ को श्रमपूर्वक उठा कर लेजाते हैं उसी प्रकार (पीताः) सुरक्षित, परिपालित वीर्य, बलप्रद रस (मा उत् अयंसत) मुझको ऊंचे उन्नत मार्ग की ओर ले जाते हैं। (इति) इसलिये (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैं खूब अधिक वीर्य-बल का पालन करता हूं।

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥

भा०—(वाश्रा) कामनायुक्त माता जिस प्रकार (प्रियम् पुत्रम् इव) प्यारे पुत्र को प्राप्त होती है उसी प्रकार (मतिः) उत्तम बुद्धि, ज्ञान (मा उप अस्थित) मुझे भी प्राप्त होता है। (इति) इस हेतु (कुवित् सोमस्य अपाम्) मैंने अपने आत्मा के स्वरूप का खूब २ पान अर्थात् मनन, ज्ञान और दर्शन किया है।

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥

भा०—(तष्टा इव वंधुरम्) शिल्पी जिस प्रकार उत्तम रथ को बनाता है उसी प्रकार मैं भी (हृदा) हृदय से श्रद्धापूर्वक (मतिम् परि अचामि) मनन योग्य ज्ञान स्वरूप को प्राप्त करता हूं। (इति) अतः (कुवित् सोमस्य अपाम्) उस सर्वप्रेरक प्रभु के परमानन्द को खूब २ पान करूं।

नुहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—(पञ्च कृष्टयः) पांच मार्गों से खेंचने वाले पांचों इन्द्रिय रस भी (मे) मुझे (अक्षि-पत् चन) चक्षु के पतन या पलक भर भी (नहि अच्छान्त्सुः) नहीं लुभा सकते। (इति) क्योंकि मैंने (कुविद्) खूब २ (सोमस्य) उस प्रभु, सर्वोत्पादक, सर्वसञ्चालक ईश्वर का (अपाम्) ज्ञानानन्द रस-पान किया, उसका व्रत पालन किया है। इति पड्विंशो वर्गः ॥

नुहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥

भा०—(उभे रोदसी) सूर्य और भूमि दोनों मिलकर भी (मे) मेरे (अन्यं पक्षं चन प्रति) एक पक्ष अर्थात् बाजू के बराबर भी नहीं हैं। (इति) कारण कि मैं (कुवित् सोमस्य अपाम्) बहुत अधिक वीर्य का रक्षण कर चुका हूं।

अभि द्यां महिना भुवमभी३ मां पृथिवीं महीम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥

भा०—मैं (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से, (द्याम् अभि) आकाश वा सूर्य की ओर (इमां पृथिवीम् अभि भुवम्) इस पृथिवी को भी व्याप कर अपने वश कर रहा हूं। (इति) कारण कि (कुविद०) पूर्ववत्।

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥

भा०—(अहं) मैं (इमां पृथिवीं) इस पृथिवी को (इह वा इह वा नि दधानि) यहां स्थापित करूं या यहां, वा जहां जहां चाहूं रक्खूं। अथवा मैंने पृथिवी को सर्वत्र ब्रह्माण्ड में यत्र-तत्र रक्खा है वा प्रकृति को सर्वत्र गर्भित किया है क्योंकि (कुवित्०) मैं परमेश्वर 'सोम' अर्थात् सर्वजगत् उत्पादक और प्रेरक बल का बहुत भारी रखवाला हूं।

ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १० ॥

भा०—(पृथिवीम्) पृथिवी को तपाने वाले सूर्य के समान ही (अहम्) मैं (इह वा इह वा) यहां या वहां, जहां चाहूं, अथवा सर्वत्र (ओषं जंघनानि) ताप से आहत करूं। वहां तक सूर्य के समान ताप प्रकाश वा तेज पहुंचाता हूं। क्योंकि (कुवित्०) मैं ईश्वर, जगत् उत्पादक-बल को बहुत २ धारण किये हूं।

दिवि मे अन्यः पक्षो३ऽधो अन्यमचीकृषम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ११ ॥

भा०—(मे) मेरा (दिवि अन्यः पक्षः) सूर्य या आकाश में एक पक्ष है। और (अन्यम्) दूसरा पक्ष (अधः अचीकृषम्) नीचे भू लोक को बनाता हूँ। जिस प्रकार स्त्री पुरुष दायें बायें के तुल्य हैं। उसी प्रकार विराट् प्रजापति के द्यौ और आकाश दो अंश हैं। (कुवित्० पूर्ववत्)। पृथिवी पर सूर्य या आकाश के वर्षण आदि से स्त्री से सन्तानादिवत् ही अनेक प्रजाएं उत्पन्न होती हैं।

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १२ ॥

भा०—(अहम्) मैं (अभि नभ्यम्) समस्त अन्तरिक्ष में (उत् ईषतः) उदय होने वाले सूर्य के तुल्य (महामहः) महान् (अस्मि) हूँ। (कुवित्० इत्यादि पूर्ववत्)।

गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १३ ॥ २७ ॥ ६ ॥

भा०—(देवेभ्यः हव्य-वाहनः) पृथिव्यादि समस्त लोकों के लिये 'हव्य' ग्राह्य तेज, जल, अन्न प्राप्त कराने वाला और (अरं-कृतः) सुभूषित होकर गृहपति के तुल्य (गृहे यामि) जगत् रूप गृह में प्रवेश करता हूँ। (कुवित्० इत्यादि) पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

[१२०]

ऋषिर्बृहद्दिव आथर्वणः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ६ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥

भा०—(भुवनेषु) विद्यमान समस्त लोकों में (तद् इत्) वह परब्रह्म ही (ज्येष्ठम् आस) सबसे ज्येष्ठ, सबसे मुख्य, प्रशस्त और सर्वादिमय है। (यतः) जिससे (उग्रः) प्रचण्ड, (त्वेष-नृम्णः) दीप्ति का धनी सूर्य (जज्ञे) उत्पन्न हुआ। वह सूर्य (जज्ञानः) प्रकट होते

ही (सद्यः) अति शीघ्र (शत्रून् नि-रिणाति) उपासकों के भीतरी शत्रु-आलस्य, काम, क्रोधादि को वश करता है। (यम् अनु) जिसको देख कर (विश्वे ऊमाः) सब प्राणी (मदन्ति) प्रसन्न होते, जिसके बल पर समस्त जन अन्न, जलादि से तृप्त होते, जिसकी सब स्तुति करते हैं। (२) इसी प्रकार ज्येष्ठ ब्रह्म, ब्राह्मण से क्षात्र वर्ग उत्पन्न हुए वह सब शत्रुओं का नाश करता है, और उसको देखकर सब (ऊमाः) प्रजा-रक्षक वा प्रजाजन, स्नेही, पुरुष प्रसन्न होते हैं।

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

भा०—वह (भूरि-ओजाः) बहुत से बल पराक्रम वाला, (शवसा) बल से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, (शत्रुः) सब दुष्टों का नाश करने हारा होकर (दासाय) नाश करने वाले को (भियसा दधाति) भय प्रदान करता है, और (अव्यनत् व्यनत् च सस्नि) अप्राणि और प्राणि वर्ग दोनों जिससे सदा शुद्ध निर्दोष हैं। हे प्रभो ! (ते मदेषु) तेरे हर्षों में (प्रभृता) परिपालित-पोषित प्राणीगण सं नवन्त) एकत्र होते, तेरी शरण आते हैं।

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ३

भा०—(विश्वे) सब (त्वे) तुझ में ही, तेरे ही निमित्त (क्रतुम् अपि वृञ्जन्ति) यज्ञ समाप्त करते हैं। (यत्) और तेरे ही आश्रय पर (ऊमाः) परस्पर स्नेही प्राणी (द्विः भवन्ति) दो दो होते हैं और प्रजा द्वारा (त्रिः भवन्ति) तीन २ हो जाते हैं। (स्वादोः) उत्तम खाद्य अन्न से भी (स्वादीयः) अति अधिक सुखप्रद अपत्य आदि को (स्वादुना) सुखप्रद माता-पिता से (सृज) उत्पन्न कर। (मधुना

मधु) मधुर से मधुर को (सु अभि योधीः) सुखपूर्वक परस्पर संगत कर ।

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ४

भा०—(इति चित् हि त्वा) इसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रजापालक ! (धना जयन्तं त्वा) नाना ऐश्वर्यों को विजय करते हुए तुझको देख कर वा प्राप्त करके (विप्राः मदेमदे अनु मदन्ति) विद्वान् पुरुष प्रत्येक हर्ष के अवसर पर तेरी ही स्तुति किया करते हैं । हे (धृष्णो) शत्रु को पराजय करने हारे ! तू (ओजयः) सबसे अधिक पराक्रम वाला है, तू (स्थिरम्) स्थिर राज्य का (आ तनुष्व) विस्तार कर । (दुरेवाः) बुरी चालों वाले (यातु-धानाः) पीड़ादायक दुष्ट लोग (त्वा मा दभन्) तेरा नाश न कर सकें ।

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥

भा०—(त्वया) तुझ से ही बलशाली होकर (वयम्) हम लोग (रणेषु) संग्रामों में (शाशद्महे) शत्रुओं का नाश करते हैं । और (त्वया प्र-पश्यन्तः) तेरे द्वारा भली प्रकार सन्मार्ग देखते हुए (भूरि युधेन्यानि) अनेक युद्ध करने योग्य साधनों को हम जानें । (ते वचोभिः) तेरे वचनों से प्रेरित होकर मैं (आयुधा) शस्त्रों को भी (चोदयामि) चलाऊं । (ते ब्रह्मणा) तेरे धन, ज्ञान और महान् बल से मैं (वयांसि) नाना बलों को (सं शिशामि) खूब तीक्ष्ण करूं । उनको अधिक बलशाली करूं । इति प्रथमो वर्गः ॥

स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥ ६ ॥

भा०—(स्तुषेय्यं) स्तुति करने योग्य (पुरु-वर्पसम्) नाना रूप वाले, नाना गुण वाले, (ऋभ्वं) खूब प्रकाशमान , (इन-तमम्)सबसे श्रेष्ठ स्वामी और (आप्त्यानाम् आप्त्यम्) आप्त पुरुषों में से सबसे श्रेष्ठ आप्त को मैं प्राप्त होऊं। वह (शवसा) अपने बल और ज्ञान से (सप्त दानून्) सातों ज्ञानदाता, सुखप्रद इन्द्रिय रूप देवों को उनके छिद्रों को (दर्षते) विदारण करता, शरीर में उनके छिद्रों को रचता है (भूरि प्रति-मानानि) जिन से बहुत से ज्ञानों को (प्र साक्षते) प्राप्त करते हैं। साक्षतिराप्नोतिकर्मेति यास्कः।

नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥७॥

भा०—(यस्मिन् दुरोणे) जिस गृह में तू (जिगत्नू मातरा) एक दूसरे को प्राप्त होने वाले, माता पिता के तुल्य जगत् के निर्माता सूर्य और भूमि दोनों को (अवसा आविथ) अपने अन्न, तेज, बल से रक्षा करता और (स्थापयसे) स्थापित करता है उससे ही तू (अवरं परं च) इस और उस, पास और दूर के जगत् को सभी ऐश्वर्य वा लोक परलोक को भी (नि दधिषे) स्थापित करता है। (अतः) इसी से तू (पुरूणि कर्वरा इनोषि) नाना कर्मों को भी करता, वा अनेक फलों को भी देता है। कर्वरा इति कर्मनाम। नि०।

इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥८॥

भा०—(बृहद्-दिवः) सूर्य और आकाश के समान महान्, तेजस्वी, ज्ञानी, प्रभु या विद्वान् (इमा ब्रह्म) इन वेद-वचनों का (विवक्ति) विविध प्रकार से उपदेश करता है। (इन्द्राय शूषम्) परमैश्वर्यवान्, प्रभु का बल वा सुख का सूर्य के तुल्य ही, वर्णन करता है।

वह (अग्रियः) सबसे प्रथम, (स्वर्षाः) समस्त तेजों और सुखों का प्रदान करने वाला है। वह (स्व-राजः) स्वयं चमकने वाले (महः गोत्रस्य) बड़े भारी, वाणियों के पालक वेद-ज्ञान का (क्षयति) स्वामी है। वह ही (विश्वाः) समस्त (स्वः दुरः) अपने अनेकों द्वारों को (आवृणोत्) खोलता है। वही अपने समस्त रहस्यों को प्रकट करता है।

एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ।९।२॥

भा०—(एवा) इस प्रकार (महान्) सबसे बड़ा (अथर्वा) सबका पालन करने वाला, प्रजापति (बृहद् दिवः) बड़े भारी जगत् को प्रकाशित करने वाला परमेश्वर (इन्द्रम् एव) परमैश्वर्यमय विराट् रूप को (स्वां तन्वम् एव) अपने देह के समान ही (अवोचत्) बतला रहा है। (स्वसारः) उसके अपने आत्म-सामर्थ्य से चलने वाली जगत् की महान् शक्तियां (मातरिभ्वरीः) अपने निर्माता प्रभु के आश्रय से रह कर अपने को प्रकट करती हुई (अरि-प्राः) अपने स्वामी के अङ्गों की तरह उसको पूर्ण करती हुई वा (अरिप्राः) सर्वथा निर्दोष होकर (शवसा) बड़े भारी बल से (हिन्वन्ति) जगत् को सञ्चालित करतीं और (वर्धयन्ति) जगत् की वृद्धि वा संहार करती हैं वा उसी प्रभु की महिमा को बढ़ाती हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१२१]

ऋषिर्हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः ॥ को देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, ८, ९ त्रिष्टुप् २, ५ निचृत् त्रिष्टुप् ४, १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

भा०—(अग्रे) इस जगत्-प्रपञ्च के उत्पन्न होने के पहले (हिरण्य-गर्भः) सूवर्ण आदि तैजस पदार्थों को भी अपने गर्भ में रखने वाला (सम् अवर्त्तत) विद्यमान रहा। वही (भूतस्य) उत्पन्न जगत् को (पतिः जातः) पालक रूप से प्रसिद्ध है। वह (एकः आसीत्) एक अद्वितीय ही है। अर्थात् जगत् को धारण, उत्पादन, पालन में वह दूसरे किसी की अपेक्षा नहीं करता। (सः पृथिवीम् दाधार) वह पृथिवी, तद्वत् सर्वाश्रय, विस्तृत प्रकृति या प्रधान तत्त्व को भी धारण करता, (उत इमां द्याम् दाधार) और इस सूर्यवत् तेजोमय लोक समूह को भी धारण करता है। (कस्मै) उस अविज्ञात स्वरूप वाले, किसी सुखमय (देवाय) सर्वशक्तिप्रद प्रभु की वा 'क' अर्थात् जगत् के एक-मात्र कर्त्ता प्रभु की हम (हविषा विधेम) भक्ति विशेष से सेवा करें। 'कः'—करोति इति कः। कं इति सुख नाम, यदेव कं तदेव खम्। (उप०) एक इत्यस्यादिवर्णलोपाद् 'कः'। एको ऽद्वितीय इत्यर्थः॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः।
यस्य॑च्छा॒याम॒तं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥ २॥

भा०—(यः आत्म-दा) जो समस्त जीवों को अपने स्ववत् देहों का देने वाला, और सबको (बल-दा) बल देने वाला है, (यस्य विश्वे उपासते) जिसकी सब उपासना करते हैं और (यस्य प्रशिषं) जिसके उत्कृष्ट शासन को (विश्वे देवा उपासते) सब देव, सूर्य आदि लोक भी मानते हैं, और (यस्य छाया अमृतं) जिसकी शरणवत् छाया, अमृत अर्थात् मोक्ष दिलाने वाली है और (यस्य मृत्युः) जिसकी शरण न लेना मरण के समान है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप, जगत् के कर्त्ता, अद्वितीय परमेश्वर की हम विशेष भक्ति से उपासना करें।

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ इद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑।
ईश॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥३॥

भा०—(यः) जो (प्राणतः निमिषतः) प्राण लेने वाले और आंख झपकने वाले, श्वासजीवी और नेत्रवान् वा (निमिषतः) निमेष अर्थात् जीवन त्याग करने वाले, जीवित, अजीवित, (जगतः) समस्त जंगम व चर संसार का (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (एकः इत् राजा बभूव) एकमात्र अद्वितीय राजा है। और (यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे) इस दोपाये और चौपाये प्राणिवर्ग का भी स्वामी है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस एक, अद्वितीय, जगद्-विधाता की हम सब प्रकार के साधनों से भक्ति करें।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

भा०—(इमे हिमवन्तः) ये हिम वाले, ऊंचे २ पर्वत (यस्य महित्वा आहुः) जिसके महान् सामर्थ्यों को बतलाते हैं और (यस्य महित्वा रसया सह समुद्रम् आह) जिसके महान् सामर्थ्यों को 'रसा' जलयुक्त नदी वा गतिशील पृथिवी सहित यह समुद्र या महान् आकाश बतला रहा है और (यस्य इमाः प्रदिशः) जिसके महान् सामर्थ्य को ये मुख्य दिशाएं (यस्य बाहूः) जिसके बाहुवत् होकर महान् सामर्थ्य को बतला रही हैं (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस एक, अद्वितीय जगत्-कर्त्ता की हम विशेष भक्ति से उपासना करें।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥३॥

भा०—(येन) जिससे (उग्रा द्यौः) यह महान् आकाश तारक मण्डलों सहित और (पृथिवी च) यह पृथिवी (दृढा) स्थिर हैं, जिसने इनको स्थिर, अविनश्वर, चिरस्थायी बनाया है, (येनः स्वः स्तभितम्) जिसने इस महान् सूर्य को स्थिर किया है, (येन नाकः) जिसने महान्

आकाश बनाया (यः अन्तरिक्षे) जो इस अन्तरिक्ष में (रजसः) धूलिकणों के तुल्य अनन्त, असंख्य लोकों को बनाने वाला है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस एक जगद्-विधाता देव की हम विशेष रूप से उपासना करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

भा०—(यं) जिसको (अवसा तस्तभाने) बलपूर्वक दृढ़ता से थमी हुई ये दोनों (क्रन्दसी) आकाश और पृथिवी, (रेजमाने) खूब सूर्य, तारादि से प्रकाशमान होकर मानो (मनसा) मन से (अभि ऐक्षेताम्) साक्षात् देखती हैं । अथवा—(यम् मनसा रेजमाने) जिसके ज्ञानमय तेजः-सामर्थ्य से देदीप्यमान ये दोनों लोक (अभि ऐक्षेताम्) एक दूसरे को देखते वा सबको दिखाई देते हैं । (यत्र) जिसके आश्रय पर (सूरः उदितः विभाति) सूर्य उदय होकर या ऊर्ध्व आकाश में आकर चमकता है, (कस्मै देवाय) उस अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, अवाङ्-मनस-गोचर, सर्वप्रकाशक प्रभु की हम (हविषा विधेम) सब साधनों से उपासना करें ।

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

भा०—(यत्) जिस (विश्वम्) व्यापक प्रभु को (ह) सृष्टि की उत्पत्ति के भी पूर्व (बृहतीः आपः) बड़ी आपः अर्थात् प्रकृति की महत् आदि विकृतियें (आयन्) प्राप्त होती हैं और (गर्भं दधानाः) गर्भ, हिरण्यमय महान् अण्ड को धारण करती हुई (अग्निम् जनयन्ति) सर्वप्रकाशक और सर्वदाहक अग्नितत्त्व को प्रकट करती हैं । (ततः) तब ही, वह (एकः) एक अद्वितीय प्रभु (देवानां) समस्त देवों, सूर्यादि

लोकों का एकमात्र (असुः) प्राण, उनका सञ्चालक और जीवन-दाता, इन्द्रियगण में प्राणवत् (सम् अवर्त्तत) विद्यमान था। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप, जगद्-विधाता प्रभु की हम सर्वोपायों से सेवा भक्ति करें।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८॥

भा०—(यः चित्) और जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दक्षम् दधानाः) बल, कर्म और प्रज्ञानयुक्त जगत् सर्ग को धारण करती हुई और (यज्ञं जनयन्तीः) संसार रूप महान् यज्ञ को उत्पन्न करती हुई (आपः) प्रकृति तत्त्व को (परि अपश्यत्) देखता है, इस पर अध्यक्षवत् साक्षी है। (यः देवेषु अधि) जो समस्त दीप्तिमान् लोकों में (एकः) एक, अद्वितीय, सर्वोपरि (देवः) सबका प्रकाशक है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सर्वकारण, परम सुखमय देव की हम भक्ति-ज्ञानपूर्वक उपासना करें।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९॥

भा०—(यः पृथिव्याः जनिता) जो भूमि का उत्पादक एवं जो मूल प्रकृति से सृष्टि को रचने वाला है, वह प्रभु (नः मा हिंसीत्) हमें पीड़ित न करे। (यः च) और जो (सत्य-धर्मा) सत्य ज्ञान और प्रकट जगत् को धारण करने वाला है जो (दिवं जजान) आकाश और सूर्य आदि समस्त लोकों को उत्पन्न करता है। (यः च) और जो (चन्द्राः) सर्वाह्लादकारक (बृहतीः आपः) महान् २ व्यापक नाना तत्त्वों वा प्रकृति के परमाणुओं को भी (जजान) उत्पन्न करता है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुख-स्वरूप, सर्वकर्त्ता, अद्वितीय देव की हम ज्ञानपूर्वक उपासना करें।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

भा०—हे (प्रजापते) समस्त प्रजाओं के पालक ! (त्वत् अन्यः) तुझ से दूसरा कोई (एतानि ता) इन उन पास और दूर के वर्तमान, अतीत और भविष्य के (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों को (न परि बभूव) नहीं व्याप रहा, उन पर दूसरा कोई अध्यक्ष नहीं है। हे भगवन् ! (यत्-कामाः ते जुहुमः) जिस २ पदार्थ की अभिलाषा वाले होकर हम तेरी उपासना करें (तत् नः अस्तु) हमारी वह अभिलाषा पूर्ण हो, और (वयं) हम (रयीणां) समस्त मूर्त्त पदार्थों, शरीरों और ऐश्वर्यों के (पतयः) पालक और स्वामी (स्याम) हों। आपः—आप्नोतेः आदिमत्त्वाद्वा। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[१२२]

ऋषिश्चित्रमहा वासिष्ठः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ जगती । ३, ८ पादनिचृज्जगती । ४, ६ निचृज्जगती । ७ आर्ची स्वराड् जगती ॥

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥१॥

भा०—मैं (वसुं न) सबको बसाने वाले गुरु वा पिता के (चित्र-महसम्) अद्भुत तेज वाले, (वामम्) सेवा करने योग्य (शेवम्) सुख-शान्तिदायक, (अतिथिम्) सबको अतिक्रमण करने वाले, वा सर्वव्यापक, अतिथिवत् पूज्य, (अद्विषेण्यम्) किसी से द्वेष न करने वाले, प्रभु वा विद्वान् पुरुष की (गृणीषे) स्तुति करता हूं। (सः) वह (शुरुधः) शोक, दुखों को रोकने वाली, (विश्व-

धायसः) सबको आनन्द रस पान कराने वाली वाणियों का (रासते) प्रदान करता, उपदेश करता है। वह (अग्निः) तेजस्वी, सर्वाग्रणी, सन्मार्ग पर लेजाने वाला, ज्ञान का प्रकाशक, (होता) सब सुखों का दाता, विद्वानों वा जीवों को अपने पास शरण में बुलाने वाला, (गृह-पतिः) विश्व का गृहवत् पालक, हमें (सुवीर्यम् रासते) उत्तम बल, वीर्य, ज्ञान प्रदान करे।

जुषाणो अ॑ग्ने॒ प्रति॑ हर्य मे॒ वचो॒ विश्वा॑नि वि॒द्वान्व॒युना॑नि सुक्रतो।
घृत॑निर्णि॒ग्ब्रह्म॑णे गा॒तुमेर॑य॒ तव॑ दे॒वा अ॑जनय॒न्ननु॑ व्र॒तम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशक! सर्वाग्रणी, सबको सन्मार्ग में लेजाने हारे प्रभो! विद्वन्! तू (जुषाणः) सबको प्रेम करता हुआ (मे वचः प्रति हर्य) मेरे वचन को भी प्रेम से स्वीकार कर। हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करने हारे! उत्तम ज्ञान के दाता! तू (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त ज्ञानों वा समस्त लोकों का जानने वाला है। हे (घृत-निर्निक्) जल और तेज से समस्त जगत् को मेघवत् पोषण और सूर्यवत् पवित्र करने वाले! तू (ब्रह्मणे) ब्रह्म, वेद के (गातुम्) ज्ञान-मार्ग का (आ ईरय) उपदेश कर। (तव अनु) तेरा अनुकरण करके (देवाः व्रतम् अजनयन्) समस्त मनुष्य कर्म करें। समस्त विद्वान् गण तेरे को लक्ष्य कर समस्त व्रत दीक्षा आदि प्रकट करें।

स॒प्त धामा॑नि परि॒यन्नम॑र्त्यो॒ दाश॑द्दा॒शुषे॑ सु॒कृते॑ मामहस्व।
सु॒वीरे॑ण र॒यिणा॑ग्ने स्वा॒भुवा॒ यस्त॒ आन॑ट् स॒मिधा॒ तं जु॑षस्व ॥३॥

भा०—जो (अमर्त्यः) अमर आत्मा (सप्त धामानि) सूर्यवत् सातों लोकों को (परि यन्) व्यापता है और (दाशुषे) दानशील यज्ञकर्त्ता, आत्मसमर्पक, (सु-कृते) उत्तम काम करने वाले को (दाशत्) सब ऐश्वर्य प्रदान करता है, तू उसकी (महस्व) पूजा कर,

उसकी उपासना कर । हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (यः) जो (ते) तेरी (समिधा) गुणों का प्रकाश करने वाली वाणी से (आनट्) तेरी शरण आता है, (तं) उसको (सु-वीरेण) उत्तम वीर, पुत्र, प्राण आदि से युक्त (रयिणा) देह, ऐश्वर्य आदि सहित (जुषस्व) प्रेम कर, उस पर अनुग्रह कर ।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

भा०—(हविष्मन्तः) हवि, चरु आदि नाना साधनों वाले यज्ञ कर्त्ता, और प्रभु को पुकारने योग्य उक्त वचनों वाले भक्त जन, (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ को बतलाने वाले, विश्व या जीवन रूप यज्ञ के प्रकाशक, (प्रथमं पुरोहितम्) सर्वश्रेष्ठ, समक्ष स्थापित, साक्षिवत् विद्यमान, सर्वपूज्य, (सप्त-वाजिनम्) सातों प्रकार के बलों, अन्नों, प्राणों और ऐश्वर्यों से सम्पन्न, (अग्निम्) ज्ञान के प्रकाशक परमेश्वर की (ईडते) उपासना और स्तुति करते हैं । वे (शृण्वन्तं) सुनने वाले, सब की प्रार्थना के ओर ध्यान देने वाले, (घृतपृष्ठम्) प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, (उक्षणम्) जगत् को अपनी शक्ति से धारण करने वाले और सब पर आनन्द सुखों की सूर्य वा मेघवत् वर्षा करने वाले (सु-वीर्यम्) उत्तम बलशाली, शुभ मार्ग में सबको ज्ञानवाणी से प्रेरित करने वाले, ज्ञान से सम्पन्न (पृणन्तं) सबको अन्नादि से तृप्त, पालन पोषण करते हुए (देवं) सर्वदाता, सर्वोपरि विद्यमान, सर्वप्रकाशक प्रभु को (पृणते) प्रसन्न करते हैं ।

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ५।५

भा०—(त्वं) तू (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ, (वरेण्यः) सब से वरण करने योग्य है । (सः) वह तू (अमृताय) अमृत, मोक्ष प्राप्ति के लिये

(हूयमानः) प्रार्थना किया जाता हुआ (मत्स्व) प्रसन्न हो। (त्वाम्) तुझको (मरुतः) विद्वान् जन (दाशुषः गृहे) यजमान के घर में (स्तोमेभिः) मन्त्र-समूहों से (मर्जयन्) परिशोभित करते हैं और (भृगवः) तपस्वी जन भी (त्वां वि रुरुचुः) तुझे विविध प्रकार से चाहते हैं। अध्यात्म में—(२) 'दाश्वान्' यह आत्मा है। उसके देह रूप गृहों में प्राण उसको अलंकृत करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्ऋतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करने वाले आत्मन्, उत्तम रीति से जगत् के निर्माण, रक्षण आदि करने हारे विधातः ! प्रभो ! तू (यज्ञप्रिये यजमानाय) यज्ञ दान से समस्त देवों वायु जल आदि पदार्थों और विद्वानों को प्रसन्न-तृप्त करने वाले दानशील पुरुष के लिये (सु-दुघाम्) उत्तम कर्मफल वा ज्ञान को देने वाली, (विश्व-धायसम्) समस्त जगत् के धारण पालन करने वाली गौवत् प्रभु शक्ति वा वाणी से (इषं दुहन्) इष्ट-कामना को प्राप्त करता हुआ, हे अग्ने ! तू (घृत-स्नूः) जलवत् द्रवित, दयार्द्र शान्तिप्रद होकर, वा (घृत-स्नूः) अति प्रकाशमय शिरोभाव वाला, उज्ज्वल मुख, उज्ज्वल रूप, (त्रिः ऋतानि दीद्यत्) तीनों लोकों वा तीनों सत्य ज्ञानों को प्रकाशित करता हुआ, (यज्ञं वर्त्तिः परि यन्) यज्ञ के स्वरूप को धारण करता हुआ वा यज्ञ-गृह में स्थापित अग्निवत् (सुक्रतूयसे) स्वयं उत्तम यज्ञ वा सत्कर्म कर रहा है।

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥ ७ ॥

भा०—(उषसः वि-उष्टिषु) उषा के प्रकट होने के कालों में

(मनुषाः) मननशील मनुष्य (त्वाम् इत् दूतं कृण्वानाः) तुझको ही अपना दूत अर्थात् उत्तम भावों का निदर्शक करते हुए अथवा—(दूतं कृण्वानाः) संतापक अग्नि को ही उत्पन्न करते या स्थापित करते हुए, (त्वाम् इत् अयजन्त) तेरी ही उपासना करते हैं। (त्वाम्) तुझको ही (देवाः) विद्वान् जन (महयाय्याय) महान् जान कर (वावृधुः) उपासना करते हैं और हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! वे (अध्वरे) यज्ञ में (आज्यम् नि-मृजन्तः) घृत का परिशोधन करते हुए भी (त्वा वावृधुः) तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरी हां स्तुति करते हैं। यज्ञ में आज्य परिशोधन का अभिप्राय भी एक प्रकार से प्रभु को अपने हृदय में उसके व्यंजक गुणों द्वारा प्रकाशित करना ही है। अजस्य स्वरूपम् आज्यम्। अजन्मा, सर्वप्रेरक प्रभु का स्वरूप आज्य है उसकी साधना, 'आज्य-मार्जन' है।

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८।६॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (वसिष्ठाः) तेरे लिये व्रत, दीक्षादि में उपवसन करने या निष्ठ होकर रहने वाले, विद्वान् जन (विदथेषु) ज्ञान के अवसरों और यज्ञों में (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (त्वा वाजिनं अह्वन्त) तुझ ऐश्वर्यों ज्ञान वाणी के स्वामी को ही बुलाते वा स्मरण करते हैं। वह तू (रायः पोषं) धन-समृद्धि को (यजमानेषु) दानशील, परमेश्वर के उपासकों में (धारय) प्रदान कर, उनको धारण करा और हे विद्वान् जनो ! (यूयं स्वस्तिभिः) आप लोग शान्तिकारक साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा करो। इति षष्ठो वर्गः॥

[१२३]

ऋषिर्वेनः॥ वेनो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। २—४, ६, ८ त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायु रजसो विमाने ।
इममपां संङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥ १ ॥

भा०—(अयं वेनः) यह ज्ञानवान्, अर्चनीय, तेजोमय, प्रकाशवान्, (ज्योतिः जरायुः) सूर्यादि ज्योतियों के गर्भ को लपेटने वाली झिल्ली [जेर] के समान अपने भीतर रखने वाला है । वह (पृश्नि-गर्भाः) नाना सूर्यों को अपने गर्भों में लेने वाली जगद्व्यापक 'आपः' को (चोदयत्) प्रेरित करता है । और (रजसः) इन समस्त लोकों के (विमाने) निर्माण करने और (अपां सूर्यस्य) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं, तथा (सूर्यस्य) उनके प्रेरक सूर्य के (सं-गमे) अच्छी प्रकार चलाने के निमित्त ही (इमम्) इसको (विप्राः) विद्वान् जन (मतिभिः) अपनी ज्ञान-विवेकशाली मतियों और स्तुतियों से, (शिशुम् न) बच्चे को गौ के तुल्य, (रिहन्ति) आस्वाद लेते हैं, उसी तक पहुंचते, उसी का वर्णन कर प्रसन्न होते हैं।

वेन इति मेधावि नाम, यज्ञनाम, पदनामच । वेनतिः कान्तिकर्मा गतिकर्मा, अर्चतिकर्मा च । वेणृ गति-ज्ञान-चिन्ता-निशामनवादित्रग्रहणेषु । वेनृ इत्येके । भ्वादिः ।

समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२॥

भा०—(वेनः समुद्रात् ऊर्मिम् उत् इयर्त्ति) सूर्य जिस प्रकार जल को समुद्र से ऊपर उठाता है, वा सूर्य जिस प्रकार (समुद्रात्) आकाश से उषा को ऊपर उठाता है । उसी प्रकार ज्ञानी, विचारवान् पुरुष (समुद्रात्) समुद्र के समान अपार ज्ञान-भण्डार प्रभु से (ऊर्मिम्) उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता है, (नभोः-जाः हर्यतस्य पृष्ठम् दर्शि) और जिस प्रकार आकाश में उत्पन्न मेघ उस कान्तिमान् सूर्य के बल

को प्राप्त कर दिखाई देता है उसी प्रकार (नभोऽजाः) आकाशवत् महान् उस प्रभु के बीच में उत्पन्न ब्रह्मज्ञ पुरुष उस (हर्यतस्य) कान्तिमान् सुन्दर, शिव प्रभु के (पृष्ठम्) स्वरूप को (दर्शि) साक्षात् करता है। वह (ऋतस्य सानौ) ज्ञान के देने वाले (विष्टपि अधि) संताप-रहित सुखमय लोक में (भ्राट्) सूर्यवत् देदीप्यमान है। (समानं योनिम् अनु) एक समान आश्रययोग्य गृहवत् शरणप्रद उस प्रभु को लक्ष्य करके (व्राः अभि अनूषत) वरण करने वाले भक्त जन और वर्णन करने वाली वेद-वाणियां उसकी साक्षात् स्तुति करती हैं।

समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः॥३॥

भा०—(पूर्वीः) पूर्व विद्यमान, ज्ञान में पूर्ण, एवं अनादि (वाणीः) वाणियां (समानम्) अनुरूप गुणशाली का (अभि वावशानाः) वर्णन करती हुई, (वत्सस्य) स्तुत्य, वन्दनीय प्रभु की (मातरः) ज्ञान कराने वाली, (ऋतस्य सानौ) ऋत, अव्यक्त जगत् कर्मफल एवं परम प्राप्य ज्ञान, बल, यज्ञ, तेज के सर्वोन्नत पद में (चक्रमाणाः) गति करती हुई (वाणीः) वाणियां, वा सेवन करने वाली, प्रजाएं उसी (अमृतस्य मध्वः) अमृतस्वरूप, मधुर, आनन्द प्रभु का (रिहन्ति) स्पर्श करती हैं, उसी तक पपहुंचती हैं, उसी का वर्णन करती हैं।

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन्।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम॥४॥

भा०—(विप्राः) विद्वान्, ज्ञानी पुरुष, (मृगस्य) उस परम शुद्ध प्रभु के (रूपम्) अति उज्ज्वल रूप, तेज को (जानन्तः) जानते हुए (अकृपन्त) उसी महान् पुरुष की स्तुति करते हैं। और वे (महिषस्य)

उसी महान् प्रभु के (घोषं) नाद को, मेघ-ध्वनि को चातकों के तुल्य (रमन्) जानते, श्रवण करते हैं। (ऋतेन यन्तः सिन्धुम् अधि) जिस प्रकार जलमार्ग से जाते हुए नाविक समुद्र को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (ऋतेन) यज्ञ, प्रकाश, वा सत्य ज्ञानमय वेद से उसी की ओर जाते हुए (सिन्धुम् अधि अस्थुः) सब प्रकार से स्नेह से बांधने वाले उस प्रभु में ही विराजते हैं। और वह प्रभु (गन्धर्वः) जलद मेघ के समान, सूर्यादि लोकों का धारण करने वाला (अमृतानि नाम) अमृत रूप, जलों सुखों वा रूपों को (विदत्) प्राप्त कराता है।

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन्।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५।७॥

भा०—जिस प्रकार (अप्सराः योषा) रूपवती स्त्री, (उप-सिष्मियाणा) ईषत् स्मित करती हुई, अति प्रसन्न होकर, (जारम् परमे वि-ओमन् विभर्त्ति) अपने जीव को जरावस्था तक जीर्ण कर देने वाले पति पुरुष को ही परम प्रेम योग्य पद पर धारण करती है। और (प्रियस्य योनिषु) अपने प्यारे पति के गृहों में विचरती है और वह (प्रियः सन् वेनः) पत्नी को चाहने वाला पुरुष भी उसका प्रिय होकर (हिरण्यये पक्षे) हित, रमणीय ग्रहण करने योग्य कलत्र रूप गृह में (सीदत्) विराजता है। इसी प्रकार (सः वेनः) वह उपासक, देव-पूजक भक्त, (जारम्) सब कष्टों को दूर करने वाले प्रभु को (परमे वि-ओमन्) परम रक्षा पद पर (विभर्त्ति) धारण करता है, उस (प्रियस्य योनिषु) प्यारे के दिये लोकों में (चरत्) विचरता, नाना कर्मफल भोगता है। (प्रियः सन्) उसका प्यारा होकर (हिरण्यये पक्षे) तेजोमय, सब प्रकार से स्वीकारने योग्य, प्रभु के आश्रय में (सीदत्) विराजता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो! (वेनन्तः) तुझे चाहने वाले, तेरी अर्चना करने वाले ज्ञानी जन (यत्) जब (त्वा) तुझे (नाके) परम सुखमय मोक्ष में (सुपर्णम् पतन्तम्) आकाश में उड़ते पक्षी के तुल्य (पतन्तम्) सूर्य के तुल्य व्यापते (सुपर्णं) उत्तम रश्मियों वाले (त्वा) तुझको (हृदा) हृदय-चक्षु से (अभि अचक्षत) साक्षात् करते हैं तब वे तुझे (हिरण्य-पक्षम्) तेजोरूप से ग्रहण करने योग्य, (वरुणस्य दूतम्) रात्रि के नाशक सूर्यवत् अन्तःकरण के आवरक अज्ञान का नाशक और (यमस्य योनौ) सर्वनियन्ता के पद पर विराजमान (शकुनम्) शक्तिशाली, सबको ऊपर उठाने वाले, (भुरण्युम्) सबके पालक पोषक रूप से ही (अभि अचक्षत) तुझे देखते और ऐसा ही तेरा वर्णन करते हैं।

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७॥

भा०—(ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजमान, (गन्धर्वः) सूर्य और भूमि आदि लोकों का धारण करने वाला, (नाके अधि) परम सुखमय लोक, मोक्ष से (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष, सर्वव्यापक होकर (अधि अस्थात्) सर्वोपरि विराजता है। वह (अस्य) इस जगत् के (चित्रा) अद्भुत २, नाना (आयुधानि) सञ्चालन करने के नाना साधनों को–हथियारों को वीर के तुल्य (बिभ्रत्) धारण करता हुआ और (अत्कं वसानः) कवचवत् इस (सुरभिः) उत्तम रीति से ग्रहण करने योग्य, दृढ़ सुनिर्मित्त जगत् को धारत हुआ, इसमें व्यापता हुआ, (दृशे) दीखता है। वह (स्वः न) जलों को सूर्यवत् (प्रियाणि नाम) प्रिय रूपों वा पदार्थों को (जनत्) उत्पन्न करता है।

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥८॥

भा०—(द्रप्सः) द्रुत गति से जाने वाला, सूर्यवत् कान्तिमान् आत्मा, (यत्) जो (समुद्रम् अभि) समुद्रवत् रसों के सागर प्रभु को लक्ष्य कर (गृध्रस्य) रसों के आकांक्षी सूर्य के (चक्षसा) तेज से (पश्यन्) देखता हुआ उसी को (जिगाति) प्राप्त हो जाता है। और (वि धर्मणि) विविध लोकों को धारण करने वाले (रजसि) तेजोमय उस प्रभु में (शुक्रेण शोचिषा चकानः) अति शुद्ध कान्ति से चमकता हुआ, (तृतीये रजसि) सर्वश्रेष्ठ लोक में (प्रियाणि चक्रे) प्रिय सुखों को प्राप्त करता है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१२४]

ऋषिः—१, ५—६ अग्निवरुणसोमानां निहवः। २—४ अग्निः॥ देवता—१—४ अग्निः। ५—८ यथानिपातम्। ६ इन्द्रः॥ छन्दः—१, ३, ८ त्रिष्टुप्। २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप्। ७ जगती। नवर्चं सूक्तम्॥

इ॒मं नो॑ अग्न॒ उप॑ य॒ज्ञमेहि॒ पञ्च॑यामं त्रि॒वृतं॑ स॒प्ततन्तुम्।
असो॑ हव्य॒वाळु॒त नः॑ पुरो॒गा ज्योगे॒व दी॒र्घं तम॒ आश॑यिष्ठाः ॥१॥

भा०—(अग्ने) ज्ञानवन्! तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक आत्मन्! (नः इमं यज्ञम् उप एहि) तू हमारे इस यज्ञ, उपासना, वा आत्मा को प्राप्त हो। वह (पञ्च-यामं) पांच यमों वाला, नियामक ऋत्विजों के तुल्य देह को नियम में रखने वाले प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इनसे युक्त और (त्रि-वृतं) तीन दशाओं-जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में रहने वाला, और (सप्त-तन्तुम्) सात शीर्षण्य प्राणों वा देह धारक सात धातुओं में विस्तृत होने वाला है। तू (हव्यवाट् असः) यज्ञ में अग्नि के समान भोक्ता, अन्न को धारण करने वाला हो। (उत नः पुरः-गाः) और हमारा अग्रगामी नायक के समान हो। तू (ज्योक् एव) दीर्घ काल तक विद्यमान

(दीर्घं तमः) इस महान् दुःखदायी अज्ञान वा ज्ञान रहित, अन्धेरी गुफ़ावत् इस देह को (आ अशयिष्ठाः) व्याप, इसे प्रकाशित कर, इसमें नाना कर्मफल का भोग कर ।

अदे॑वाद्दे॒वः प्र॒च॒ता गुहा॒ यन्प्र॒पश्य॑मानो अमृत॒त्वमे॑मि ।
शि॒वं यत्सन्त॒मशि॑वो जहा॑मि॒ स्वात्स॒ख्यादर॑णीं॒ नाभि॑मेमि ॥ २ ॥

भा०—मैं आत्मा (देवः) स्वयं ज्योतिःस्वरूप होकर (अदेवात् प्रचता) अदेव अर्थात् प्रकाश वा ज्ञान से रहित इस देह से पृथक् अपने को जान कर (गुहा यन्) गुहा, बुद्धि या अन्तर्हृदय गुफ़ा में दहराकाश में प्रवेश करता हुआ (प्र-पश्यमानः) उत्तम रीति से तत्त्व का साक्षात् करता हुआ (अमृतत्वम् एमि) अमृत रूप को प्राप्त हो जाता हूं । (यत्) जब मैं (अशिवः) अकल्याणकारी, दुःखद, अशुद्ध इस देह-बन्धन को (जहामि) त्यागता हूं, तब (स्वात् सख्यात्) अपने सहज मित्र-भाव से मैं (सन्तम्) सत्-स्वरूप (अरणीम्) अग्नि-उत्पादक अरणि के तुल्य मूलकारण रूप (शिवं) अतिकल्याणमय, सुखप्रद (नाभिम्) प्रेम से बांधने वाले प्रभु को ही (एमि) प्राप्त हो जाता हूं ।

पश्य॑न्न॒न्यस्या॒ अति॑थिं व॒याया॑ ऋ॒तस्य॒ धाम॒ वि मि॑मे पु॒रूणि॑ ।
शंसा॑मि पि॒त्रे असु॑राय॒ शेव॑मयज्ञि॒याद्य॒ज्ञियं॑ भा॒गमे॑मि ॥ ३ ॥

भा०—(अन्यस्याः) अपने से भिन्न (वयायाः) व्यापक, शाखा के तुल्य आश्रय करने योग्य प्रकृति का अपने को (अतिथिम् पश्यन्) अतिथि के तुल्य, अधिक गुणवान् देखता हुआ मैं आत्मा (ऋतस्य) प्राप्य नाना कर्मफल के (पुरूणि) अनेक (धाम) स्थानों को (वि मिमे) विविध प्रकार से स्वयं बना लेता हूँ । और (पित्रे) सर्वपालक (असुराय) प्राणों के दाता प्रभु परमेश्वर से (शंसानि) सदा याचना करता हूं कि मैं (अयज्ञियात्) उपास्य प्रभु से रहित इस देहबन्धन से पृथक् होकर

(यज्ञियम्) उस उपास्य प्रभु के (भागम्) सेवनीय अंश या ऐश्वर्य को (एमि) प्राप्त होऊं।

बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ॥४॥

भा०—मैं (अस्मिन् अन्तः) इस देह के भीतर (इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को वरण करता हुआ, उसका भजन-सेवन करता हुआ (बह्वीः समाः अकरम्) बहुत से वर्ष व्यतीत कर देता हूं। तदनन्तर मैं (पितरम्) अपने पालक इस देह को (जहामि) छोड़ देता हूं। अथवा-(इन्द्रं पितरम् वृणानः) ऐश्वर्य वाले इन्द्र, प्रभु को वरण करता हुआ इस बन्धन को छोड़ देता हूं और उस समय (अग्निः) यह अग्नि, जाठर, और (सोमः) वीर्य, वा अन्नादि पदार्थ, तथा (वरुणः) जलमय रक्त विकार, नाड़ियां आदि (ते) वे सब मुझ से (च्यवन्ते) छूट जाते हैं। तब (राष्ट्रं) राजमान, देदीप्यमान, स्वाराज्य-प्रकाश मुझे (परि आवर्त्) पुनः प्राप्त होता है, तब मैं (आयन्) आगे बढ़ता हुआ (तत् अवामि) उस परम ब्रह्म को प्राप्त होता हूं।

निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—उस ज्ञान-दशा में (त्ये असुराः) वे नाना प्राण के बल पर रमण करने वाले आंख, नाक, कान आदि प्राणगण (निर्मायाः अभूवन्) माया, अर्थात् चेतना आदि से रहित, बुद्धिहीन हो जाते हैं। और हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ, प्रभो! (त्वं च मा कामयासे) उस समय तू मुझे चाहा करता है। तब तू, हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप प्रभो! स्वामिन्! (ऋतेन) सत्य ज्ञान से (अनृतं विविञ्चन्) असत्य का विवेक करता हुआ (मम राष्ट्रस्य) मेरे प्रकाशयुक्त अन्तःकरण-स्वाराज्य के (आधिपत्यम् एहि) पूर्ण स्वामित्व को प्राप्त करता है। इति नवमो वर्गः ॥

इदं स्वरिदमिदास वाममयं प्रकाश उर्वन्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ॥ ६ ॥

भा०—(इदं स्वः) यह साक्षात् सुखस्वरूप है, (इदम् इद् वामम् आस) यह सबसे उत्तम सेवन करने योग्य है। (अयम् प्रकाशः) यह उत्तम प्रकाशस्वरूप है। यह (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल भीतरी निवास करने वाले आकाशवत् अनन्त तत्त्व है। हे (सोम) मेरे अपने आत्मन् ! (निः एहि) निकल, आ प्रकट हो, हम दोनों (वृत्रं हनाव) उस घेर लेने वाले अन्धकार को नाश करें। (हविः सन्तं) परम प्राप्य साधन रूप सत् स्वरूप तुझको ही हम (हविषा) इस आत्म हवि से (यजाम) उपासना करते हैं।

'सोम.'—स्वा वै मे आत्मा इति सोमः। शत० ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ गीता ॥

कविः कवित्वा दिवि रूपमासजदप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवस्ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ७

भा०—(कविः) वह परम बुद्धिमान्, क्रान्तदर्शी, जगत् का स्रष्टा परमेश्वर (कवित्वा) अपने दूरदर्शी सामर्थ्य और सृष्टि रचना के कौशल से (दिवि) सूर्य में (रूपम्) कान्तियुक्त प्रकाश को (आ असजत्) प्रदान करता है। और वही (दिवि) तेज में (रूपं) रूप गुण को स्थापित करता है। और (वरुणः) वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु (अप्र-भूती) स्वल्प प्रयत्न से ही (अपः निः असृजत्) जलों को, मेघवत् रचता है। (जनयः न) जिस प्रकार स्त्रियें (शुचयः) रज से शुद्ध होकर (वर्णम् भरिभ्रति) उत्तम वीर्य को धारण करती हैं और सन्तान उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार (ताः जनयः) वे 'आपः' समस्त प्राणियों को

उत्पन्न करने वाली व्यापक, (सिन्धवः) वेग से बहने वाले द्रव रूप होकर (क्षेमम् कृण्वानाः) जगत् की रक्षा करती हुई वा जीवों के निवास या देह वा लोक को रचती हुई (शुचयः) शुद्ध, स्वच्छ, कान्तिमान् हो कर (अस्य) इस परमेश्वर के (वर्णम्) तेज को (भरिभ्रति) धारण करती हैं ।

अप एव ससर्जादौ तासु बीज-मवासृजत् ॥ मनुः ॥

ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥८॥

भा०—(ताः) वे 'आपः' रूप प्रकृति (अस्य) इस प्रभु के (ज्येष्ठम्) सबसे उत्तम (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (सचन्ते) प्राप्त करती हैं । वह (स्वधया मदन्तीः) अन्न से समस्त प्राणियों को तृप्त करती हुई भूमि के तुल्य (स्वधया) अपनी धारक शक्ति रूप प्रभु की शक्ति से पूर्ण तृप्त होती हुई (ईम् आक्षेति) उसी प्रभु को आश्रय करती हैं । (विशः न राजानं) राजा को प्रजाओं के समान (ताः ई वृणानाः) वह प्रकृति उसको ही वरण करती हुई (वृत्रात् बीभत्सवः) आवरण करने वाले अन्धकार से भयभीत वा ग्लानियुक्त होकर (अप अतिष्ठन्) उससे दूर रहती हैं ।

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥९।१०॥

भा०—(बीभत्सूनाम्) अज्ञान-अन्धकार के देह के बंधन के साधन भोग विलासादि में ग्लानि करने वाले साधकों तथा आत्मा को बांधने वाले प्राणों के (स-युजम्) साथ योग देने वाले सहायक एवं परम मित्रवत् उसी को (हंसम् आहुः) सर्वशत्रु-नाशक, विघ्ननाशक परम शुद्ध आत्मा, हंस ही (आहुः) बतलाते हैं । और उस आत्मा को ही

(दिव्यानां अपां सख्ये) तेज, ज्ञान, आदि में उत्पन्न, दिव्य आप्त जनों के मैत्रीभाव में (चरन्तम्) विचरते हुए (अनु-स्तुभम्) सबके द्वारा प्रतिदिन स्तुति करने योग्य (चर्चूर्यमाणम्) सदा विचरणशील, देह में जाते और निरन्तर सुख-दुःखादि कर्म भोग का ही भोग करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् आत्मा को ही (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् जन (मनीषा) अपनी मननशील बुद्धि द्वारा (नि चिक्युः) निश्चयपूर्वक स्थिर करते, उसी का ज्ञान सम्पादन करते हैं। इति दशमो वर्गः ॥

[१२५]

ऋषिर्वाग् आम्भृणी ॥ देवता—वाग् आम्भृणी ॥ छन्दः—१, ३, ७, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् । २ पादनिचृज्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥

भा०—(अहं) मैं परमात्मा (रुद्रेभिः वसुभिः) दुष्टों को रुलाने वाले प्राणों और पृथिवी आदि समस्त लोकों के साथ (चरामि) व्यापता हूं। (अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः) मैं १२ मासों, और समस्त तेजोमय पदार्थों के साथ व्यापता हूँ, उनके भीतर मेरी ही शक्ति है। (मित्रा वरुणौ) मित्र, दिन और वरुण रात्रि एवं ब्राह्मण और क्षत्रिय इनको सूर्य और राजावत् (उभा) दोनों को (अहम् बिभर्मि) मैं ही धारण करता, पालता, पोषता हूँ। (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि, और (अश्विना) स्त्री और पुरुष प्राण और उदान और सूर्य पृथिवी (उभा) दोनों को भी (अहम्) मैं ही धारण करता हूँ।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥

भा०—(अहम्) मैं (आहनसं सोमम्) सब दुष्टों को नाश करने वाले शासक को (बिभर्मि) धारण करता हूं। (अहं त्वष्टारम्) मैं कान्तिमान् सूर्य को (उत पूषण भगम्) सर्वपोषक भूमि को और समस्त ऐश्वर्य को ही धारण करता हूँ। (अहम् हविष्मते) मैं अनेक साधनों अन्नादि हविष्य पदार्थों वाले (यजमाना) दानशील यज्ञकर्त्ता और (सु-प्राव्ये) सुख पूर्वक उत्तम रीति से सबकी रक्षा करने वाले (सुन्वते) उपासनाशील, ऐश्वर्ययुक्त शासक को (द्रविणं दधामि) धन प्रदान करता हूँ।

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥

भा०—(अहं राष्ट्री) मैं सर्वत्र तेज से चमकने वाली, सबको चमकाने वाली, वा राष्ट्र की स्वामिनी केतुल्य, सर्वप्रभु ईश्वरी शक्ति हूँ। मैं (वसूनां संगमनी) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली, समस्त लोकों को प्राप्त कराने वाली, (यज्ञियानां) यज्ञों द्वारा उपास्य (प्रथमा) सबसे श्रेष्ठ, (चिकितुषी) ज्ञानवती हूँ। (ताम्) उस मुझको ही (भूरि-स्थात्राम्) बहुत प्रकारों से विद्यमान और (भूरि आवेशयन्तीम्) बहुत से तत्वों वा शक्ति का प्रदान करने वाली मुझको ही (देवाः वि अदधुः) विद्वान् जन विविध प्रकार से प्रतिपादन करते हैं।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

भा०—(यः विपश्यति) जो विविध प्रकार के तत्त्व ज्ञानों का दर्शन करता है, (यः प्राणिति) जो प्राण लेता है, (यः ईम् उक्तम् शृणोति) जो इस उपदिष्ट ज्ञान वेद का श्रवण करता है, (सः मया) वह मेरे दिये (अन्नं) अक्षय कर्मफल का ही भोग करता है। और

जो (माम् अमन्तवः) मुझे स्वीकार नहीं करते (ते उप क्षियन्ति) वे नष्ट हो जाते हैं। अथवा-(अमन्तवः) जो अज्ञानी हैं (ते) वे भी (माम् उप क्षियन्ति) गुरु के समीप शिष्यवत् मेरे पास रहते और ज्ञानार्जन का यत्न करते, मेरी उपासना करते हैं। हे (श्रुत) श्रवण करने में समर्थ पुरुष ! तू (श्रुधि) श्रवण कर। (ते) तुझे मैं (श्रद्धिवं) श्रद्धा से धारण करने योग्य सत्य-ज्ञान का (वदामि) उपदेश करती हूं।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ५॥११

भा०—(अहम् एव) मैं ही परमेश्वर (इदं स्वयं वदामि) यह स्वयं उपदेश करता हूँ जिसको (देवेभिः उत मानुषेभिः) विद्वान् और मननशील जन (जुष्टम्) प्रेमपूर्वक श्रवण एवं मनन करते हैं। मैं (यं कामये) जिस २ को चाहता हूँ (तं तं) उस उसको (उग्रम्) बलवान्, शत्रु-प्रकम्पक (कृणोमि) करता हूँ। और जिसको चाहता हूँ (तं ब्रह्माणं कृणोमि) उसको ब्रह्मा, चतुर्वेदवित् बनाता हूं और (तम् ऋषिं) जिस को चाहता हूं उसको ऋषि और (तं सु-मेधाम्) जिसको चाहता हूँ उसको उत्तम बुद्धि, वाणी और शक्ति से युक्त करता हूँ। इत्येकादशो वर्गः॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥ ६॥

भा०—(अहं) मैं (ब्रह्मद्विषे शरवे) ब्राह्मणों, वेद, और प्रभु को प्रेम न करने वाले हिंसक शत्रुवर्ग को (हन्तवे) नाश करने के लिये (रुद्राय धनुः) दुष्टों को रुलाने वाले क्षात्र वर्ग के धनुष को (आ तनोमि) सर्वत्र तानता हूं, (अहं) मैं (जनाय) मनुष्यों के उपकार

के लिये (सम्मदं कृणोमि) हर्ष प्राप्त करने के अवसर वा संग्राम को करता हूँ, (अहम्) मैं (द्यावा पृथिवी आ विवेश) आकाश और भूमि दोनों को व्यापता हूँ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

भा०—(अहम्) मैं (अस्य) इस संसार के (मूर्धनि) शिर पर, सबके ऊपर (अस्य पितरम्) इस जगत् के पालक सूर्य को (सुवे) उत्पन्न करता और चलाता हूं। (अप्सु) इस अन्तरिक्ष और (समुद्रे) महान् आकाश में (मम योनिः) मेरा निवास है। (ततः) मैं व्याप्त होकर ही (विश्वा भुवना वि तिष्ठे) समस्त लोकों को विशेष रूप से व्यापता हूँ। और (वर्ष्मणा) मैं कारणस्वरूप, सर्वसुखप्रद रूप से (द्याम् उप स्पृशामि) इस महान् आकाश वा सूर्य को प्राप्त हूँ, उसके समान हूँ। सूर्य जिस प्रकार वर्षण-कर्म से सब जगत् को पालता और सुखी करता है उसी प्रकार मैं भी सबको पालता, अन्न देता और सुखी करता हूँ।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥८॥ १२॥

भा०—(अहम् वातः इव प्रवामि) मैं वायु के समान सर्वत्र व्यापता हूँ। मैं (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों को (आरभमाणा) निर्माण करता हुआ, (दिवा परः) इस आकाश से भी बहुत दूर तक, (एना पृथिव्या परः) इस पृथिवी से भी कहीं दूर तक (एतावती सं बभूव) इस महान् जगत् रूप में (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट होता हूँ। इस सब में व्यापक होकर सबको चला रहा हूँ। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१२६]

ऋषिः कुल्मलबर्हिषः शैलूषिरंहोमुग्वा वामदेव्यः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५, ६ निचृद् बृहती । २—४ विराड् बृहती । ७ बृहती । ८ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) मनुष्यो ! (अर्यमा) भीतरी शत्रुओं काम, क्रोध आदि पर वश रखने वाला, (मित्रः) स्नेहवान्, मृत्यु से बचाने वाला, और (वरुणः) कष्टों, संकटों का वारण करने वाला, श्रेष्ठ पुरुष (स-जोपसः) प्रीतियुक्त होकर (यम्) जिस मनुष्य को (द्विषः) भीतरी वा बाह्य शत्रुओं से (अति नयन्ति) पार कर देते हैं (तं मर्त्यम्) उस मनुष्य को (दुः-इतम् अंहः) दुराचार वा पाप (न अष्ट) नहीं प्राप्त होता ।

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र अर्यमन्) वरुण ! हे मित्र ! हे अर्यमन् ! (येन) जिस उपाय से आप लोग (द्विषः अंहसः) पाप रूप शत्रु से (मर्त्यं) मनुष्य की (अति निः पाथ) पार करके रक्षा करते हो और (नेथ) सन्मार्ग में लेजाते हो, (वयं तत् हि वृणीमहे) हम तो आप से उसी उपाय, वा बल की याचना करते हैं ।

ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ॥ ३ ॥

भा०—(अयम् वरुणः अयम् मित्रः अयम् अर्यमा) यह वरुण,

यह मित्र, यह अर्यमा, (ते) वे सब (नूनम्) अवश्य (नः ऊतये) हमारी रक्षा, ज्ञान-वृद्धि और स्नेह के लिये हैं। (नेषणि) सन्मार्ग में (नः उ नयिष्ठाः) वे ही सबसे उत्तम लेजाने वाले नेता हैं और (पर्षणि) पालन, और संकट से पार करने के अवसर में (नः उ पर्षिष्ठाः) वे ही हमारे सबसे उत्तम पालक, पूरक और पार पहुंचाने वाले हैं।

यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः॥ ४॥

भा०—(वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ राजा, स्नेही ब्राह्मण वर्ग, और अर्यमा न्यायाधीश जन जल, वायु और सूर्यवत् ये (यूयं विश्वं परि पाथ) आप सब लोग समस्त जगत् की परि पाथ सब प्रकार से रक्षा करते हो। (युष्माकं प्रिये शर्मणि) आप लोगों के सर्वप्रिय शरणीय सुख में हम (सु-प्रणीतयः) उत्तम नीति, व्यावहार वाले होकर (द्विषः अति स्याम) भीतरी और बाह्य शत्रुओं के पार हों।

आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः॥ ५॥

भा०—(आदित्यासः) सूर्य की किरणों के समान वा ऋतुओं के समान जगत् को सुख देने वाले जन और (वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ, सर्वस्नेही और न्यायकारी जन ये हमें (स्रिधः अति) हिंसकों, शत्रुओं वा दुःखदायी पापों से पार करें। हम (उग्रम्) दुष्टों के भयदाता (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले, (रुद्रम्) शत्रुओं के नाशक, तेजस्वी, सबको जल अन्नादि के दाता, और (अग्निम्) स्वयंप्रकाश, अग्रणी, तेजस्वी स्वामी को हम (मरुद्भिः) प्राणोंवत् सुखप्रद विद्वान् मनुष्यों सहित (हुवेम) बुलाते हैं। वे हमें (द्विषः अति) शत्रुओं के पार करें।

नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ॥ ६ ॥

भा०—(चर्षणीनां राजानः) मनुष्यों के बीच राजाओं के तुल्य तेजस्वी, (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरण करने योग्य, सर्वस्नेहवान्, न्यायकारी जन, (नः) हमारी (विश्वानि दुरिता) समस्त बुराइयों को (तिरः नेतारः) दूर करने वाले और हमें (द्विषः अति नेतारः) शत्रुओं, और द्वेष करने वाले अप्रिय जनों से पार पहुंचाने वाले, हमें उनसे अधिक शक्तिशाली बनाने वाले हैं ।

शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ॥ ७ ॥

भा०—(आदित्यासः वरुणः मित्रः अर्यमा) आदित्यगण, वरुण, मित्र, अर्यमा ये सब हम (ऊतये) अपने सुख प्राप्ति और रक्षा के लिये (यत् ईमहे) जिस सुख की याचना करें उस (शुनं) सुख को और (सप्रथः) विस्तृत विभूति सहित, (शर्म) शरण, शत्रु-नाशक, बल का (यच्छन्तु) प्रदान करें, जिस से हम (द्विषः अति) शत्रुओं से अधिक बलवान् हों ।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवोष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ८ ॥ १३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (यत् वसवः) गुरु के अधीन वास करने वाले वे ब्रह्मचारिगण, (पदि सिताम्) पदों में बद्ध (गौर्यं चित्) पूज्य वेदवाणी को (अमुञ्चत) मुक्त करते हैं, (एव) अथवा (वसवः) वसु, प्रजाजन जिस प्रकार पैरों से बंधी गौ को मुक्त करते हैं (एव) उसी प्रकार हे (यजत्राः) ज्ञान प्रदान करने वाले विद्वान् जनो ! आप लोग (अस्मत्) हम से (अंहः) पाप को (मुञ्चत)

छुड़ाओ। हे (अग्ने) ज्ञानवान् प्रभो (नः आयु) हमारे आयुः को (प्रतरं प्रतारि) खूब २ बढ़ाओ। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१२७]

ऋषिः कुशिकः सौभरोः रात्रिर्वा भारद्वाजी॥ देवता—रात्रिस्तवः॥ छन्दः—१, ३, ६ विराड् गायत्री। पादनिचृद् गायत्री। ४, ५, ८ गायत्री। ७ निचृद् गायत्री॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित॥ १॥

भा०—(रात्री देवी) रात्री के तुल्य अनेक सुखों को देने वाली, शुभ गुणों का प्रकाश करने वाली देवी, (आयती) आती हुई प्राप्त होती हुई, (पुरुत्रा) अनेकों का पालन करने वाली, (वि अख्यत्) विविध प्रकार से संसार को देखती या प्रकाशित करती है। वह (अक्षभिः) अध्यक्षों द्वारा, व्यापक शक्तियों या तेजों से (विश्वाः श्रियः अधित) समस्त शोभाओं और सम्पदाओं को धारण करती है। वह प्रभु-शक्ति गृहपत्नी के तुल्य, संसार का शासन करती है। रात्रि पक्ष में—रात्रि समस्त नक्षत्रादि को धारण करती है और नक्षत्र रूप अनेक आंखों से मानो देख रही है।

ओर्व॑प्रा अम॑र्त्या नि॒वतो॑ दे॒व्यु१॒द्वतः॑।
ज्योति॑षा बाधते॒ तमः॑॥ २॥

भा०—वह (अमर्त्या) मरणधर्मा जीवों में असाधारण, कभी नाश न होने वाली (देवी) सब सुखों के देने वाली, स्वप्रकाशरूप ज्ञानों का प्रकाश करने वाली, (निवतः उद्वतः) नीचे और ऊंचे समस्त प्रदेशों वा भूमियों को (उरु आ अप्राः) खूब प्रकाश से पूर्ण

करती है और (ज्योतिषा) तेज से (तमः बाधते) अन्धकार को नाश करती है।

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती।
अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

भा०—वह (आयती देवी) चारों ओर यत्न करने वाली, सर्वसञ्चालक सर्वप्रकाशक प्रभु शक्ति, (उषसम्) उषा के तुल्य, कान्ति वा कामना से युक्त जीव-शक्ति को (स्व-सारम् अकृत) स्वयं अपने बल से संसार मार्ग पर चलने में समर्थ बनाती है। और (तमः इत् उ अप हासते) अन्धकार को दूर करती है। जिस प्रकार गुजरती हुई रात उषा को अपनी बहिन के समान बना कर अन्धकार को दूर करती है उसी प्रकार प्रभु की शक्ति ज्ञानमयी देवी, इस कामनामयी, फलाकांक्षिणी जीव रूप चिन्मयी शक्ति को कर्म करने में स्वतन्त्र करती और वेद ज्ञान द्वारा उसका अज्ञान नाश करती है। तेज से उसके लिये जगत् को प्रकाशित करती है।

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि।
वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥

भा०—(यस्याः ते) जिस तेरे (यामन्) सर्वनियामक शासन या प्रबन्ध वा स्नेह-बन्धन में (नि विक्ष्महि) हम आश्रय किये हुए हैं और जिसपर (वृक्षे वयः वसतिं न) वृक्ष पर पक्षियों के तुल्य, निवास करते हैं (सा) वह तू (नः) हमें (अद्य) आज (सुतरा भव) सुख से संकट से पार उतारने वाली हो। 'सुतरा भव' इति पदद्वयं उत्तरात् पश्चान्मन्त्रा दुत्कृष्यते।

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रभुशक्ते ! (ते यामन्) तेरे शासन में (ग्रामासः नि अविक्षत) अनेक जन-समूह डेरा डाले हैं, विश्राम पाते हैं। तेरे शासन में (पद्वन्तः निः पक्षिणः) चरणों वाले मनुष्य और पशु, और पक्षीगण और (श्येनासः) उत्तम आचरणवान् जन और (अर्थिनः चित्) बड़े धनशाली जन भी (नि) आश्रय लेते हैं।

यावया वृक्यं१ वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऊर्म्ये) रात्रिवत् उत्तम मान, शासन से युक्त ! प्रभु शक्ते ! (वृक्यं यवय) चोर स्वभाव की स्त्री को वा विविध प्रकार से काटने वाली सेना को और (स्तेनं वृकं) चोर स्वभाव के हिंसक शत्रु को (यवय यवय) तू सदा दूर कर। (अथ नः सुतरा भव) और हमें सुख से तार देने वाली, उद्देश्य तक पहुंचा देने वाली हो।

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेव यातय ॥ ७ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के तुल्य कान्तियुक्त एवं पर-पक्ष को संतापित करने वाली ! सब प्रजाओं को चाहने वाली ! (पेपिशत्) मूर्त, होता हुआ, गाढ (कृष्णम्) काला, कष्टदायी, (वि अक्तम्) कान्ति तेज से रहित, (तमः) अन्धकारवत् खेद वा अज्ञान (आ उप अस्थित) मुझे प्राप्त हुआ है। उसे तू (ऋणा इव यातय) ऋणों के समान नष्ट कर।

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥ १४ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री उषा के समान तेज ज्ञान को देने वाली ! (ते) तेरी (गाः इव) रश्मियों के तुल्य नाना वाणियों

को मैं (आ अकरम्) प्राप्त करूं। हे (रात्रि) सुख और ज्ञान देने वाली! रात्रिवत् सुखप्रद! मैं (जिग्युषे सोमं न) विजयशील के स्तुति वचन के समान (ते स्तोमं आ अकरम्) तेरी स्तुति करूं। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२८]

ऋषिर्विहव्यः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ५, ८ त्रिष्टुप्। ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ९ पादनिचृज्जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ममा॑ग्ने॒ वर्चो॑ विह॒वेष्व॑स्तु व॒यं त्वेन्धा॑नास्त॒न्वं॑ पुषेम।
मह्यं॑ नमन्तां प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒स्त्वयाध्य॑क्षेण॒ पृत॑ना जयेम ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! स्वयंप्रकाश! अग्रणी! सेनापते! राजन्! प्रभो! (वि-हवेषु) संग्रामों और यज्ञों में (मम वर्चः अस्तु) मेरा तेज हो, (त्वा इन्धानाः) तुझे प्रदीप्त करते हुए, तुझे प्रकाशित करते हुए हम (तन्वं) अपने शरीर और विस्तृत राष्ट्र को (पुषेम) पुष्ट करें (मह्यं) मेरे लिये (चतस्रः प्रदिशः नमन्ताम्) चारों दिशाएं झुकें। (त्वया) तुझ (अध्यक्षेण) अध्यक्ष से हम (पृतनाः जयेम) समस्त सेनाओं का विजय करें वा तुझ सेनापति द्वारा हम समस्त सेनाएं वा शत्रुओं का विजय करें।

मम॑ दे॒वा वि॑ह॒वे स॑न्तु॒ सर्व॒ इन्द्र॑वन्तो म॒रुतो॒ विष्णु॑र॒ग्निः।
ममा॒न्तरि॑क्षमु॒रुलो॑कमस्तु॒ मह्यं॒ वातः॑ पवतां॒ कामे॑ अ॒स्मिन् ॥२॥

भा०—(मम वि-हवे) मेरे संग्राम और यज्ञ में (सर्वे देवाः) समस्त देव, विद्वान् विजयाभिलाषी जन (मरुतः) वायुओं के तुल्य वेग वाले, वा शत्रुओं को मारने वाले तथा (इन्द्र-वन्तः) इन्द्र सेनापति को प्रमुख मानने वाले (सन्तु) हों। और वह (अग्निः विष्णुः) तेजस्वी

व्यापक पुरुष सामर्थ्यवान् हो। (मम अन्तरिक्षम्) मेरा अन्तरिक्ष के समान (उरु लोकम् अस्तु) विशाल लोक हो। अथवा मेरा अन्तरिक्ष, अन्तःकरण अधिक प्रकाशवान् हो। (मह्यं) मेरे (अस्मिन् कामे) इस कामना योग्य कार्य में (वातः पवताम्) वायुवत् प्रबल वीर आगे बढ़े और कण्टक शोधन करे।

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥ ३ ॥

भा०—(मयि देवाः) मुझ में समस्त देवगण, विद्वान् और दानशील प्रजा जन (द्रविणम् आ यजन्ताम्) ऐश्वर्य प्रदान करें। (मयि आशीः अस्तु) मेरे में आशानुरूप फल की प्राप्ति हो। (देव-हूतिः मयि) विद्वानों का सत्योपदेश दान, एवं यज्ञ मेरे में स्थिर हों। (पूर्वे) पूर्व के वृद्ध और (दैव्याः होतारः) देव प्रभु सम्बन्धी तथा मनुष्यों के हितकारी, (होतारः) ज्ञान देने वाले जन (वनुषन्तः) ज्ञान प्रदान करें और हम (सु-वीराः) उत्तम वीर होकर (तन्वा अरिष्टाः स्याम) शरीर से सुखी, अहिंसित, अपीड़ित होवें।

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४॥

भा०—(मह्यम् यजन्तु लोग मेरे लिये यज्ञ करें। मेरी शुभ कामना से प्रभु की प्रार्थना करें, वे मुझे उत्तम ऐश्वर्य, ज्ञान और यश, बल प्रदान करें। (यानि हव्या) जितने ग्रहण करने योग्य, उत्तम अन्न, ज्ञान आदि पदार्थ हैं वे मुझे प्राप्त हों। (मे मनसः आकूतिः सत्या अस्तु) मेरे मन की संकल्प शक्ति सत्य हो। (अहम्) मैं (कतमत् चन एनः मा निगाम्) किसी भी पाप की ओर न जाऊं। (विश्वे देवासः) समस्त ज्ञानी पुरुष (नः अधि वोचत) हमें उपदेश करें।

देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वेदेवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन्
॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (षट् उर्वीः देवीः) छः विशालशक्ति वाली, देवियो, आकाश, पृथिवी, दिन, रात्रि आपः और और ओषधियां इनके सदृश, पिता, माता, भाई भगिनी, आप्त पुरुष, और गृह देवियो ! (अध्यात्म में शिर, पैर, दोनों बाहु, देह में रक्त, और लोम आदि, (नः उरु कृणोत) हमारे धन, बल, सामर्थ्य को बहुत अधिक करें । (विश्वे देवासः) समस्त देव विद्वान्, पुरुष, (इह) इस देश में (वीरयध्वम्) वीर और उपदेष्टा विद्वान् के तुल्य पराक्रम और ज्ञानोपदेश करें । हम (प्रजया मा हास्महि) प्रजा से रहित न हों । (मा तनूभिः) हम देहों से वा पुत्र-पौत्रादि से रहित न हों । हे (सोम राजन्) सर्वोपरि शासक ! हे विराजमान तेजस्विन् ! प्रभो ! हम (द्विषते) प्रीति न करने वाले, शत्रु के (मा रधाम) कभी वश न हों । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते३ मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! हे तेजस्विन् ! शत्रुओं को भस्म करने हारे ! तू (परेषाम् मन्युम् प्रति नुदन्) दूसरे शत्रुओं के क्रोध और अभिमान को दूर करता हुआ, (अदब्धः गोपाः) स्वयं अहिंसित रक्षक होकर (त्वं नः परि पाहि) तू हमारी रक्षा किया कर । (ते पुनः निगुतः) वे फिर नित्य, अव्यक्त, अप्रकट बातें करने वाले, उपजापक लोग (प्रत्यञ्चः यन्तु) पराङ्-मुख होकर जावें । वा वे गिड़गिड़ाते हुए हमारे प्रत्यक्ष हों । (एषां प्र-बुधां चितम्) इन शत्रुओं, वा उत्तम ज्ञान वालों का चित्त (अमा वि नेशत्) एक साथ नष्ट हो जावे ।

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम्।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥ ७॥

भा०—(यः भुवनस्य पतिः) जो इस महान् विश्व का पालक, स्वामी है, और जो (धातॄणां धाता) सब पालकों का, और जगत्-स्रष्टाओं का स्रष्टा है, उस (देवं) सर्वप्रकाशक, सर्वसुखदाता, (त्रातारं) सर्वपालक, (अभि-माति-साहं) सब अभिमानों वाले शत्रुओं वा अभिमान आदि के नाशक प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ, उससे प्रार्थना करता हूँ। (उभा अश्विना) दोनों सूर्य चन्द्र, दिन रात, और (बृहस्पतिः) बड़े लोकों का स्वामी, (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को और (इमं यजमानम्) इस यजमान को (नि-अर्थात्) निकृष्ट पदार्थ पाप आदि अन ° से (पान्तु) बचावें।

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥ ८॥

भा०—(उरु-व्यचाः) महान् व्यापक (महिषः) बड़ा दानी, वा बड़ा पूजनीय, (पुरु-हूतः) बहुतों से पुकारने योग्य, सर्वस्तुत्य, (पुरु-क्षुः) बहुतों को निवासार्थ अपने आश्रय देने वाला (अस्मिन् हवे) इस महायज्ञ वा संग्राम में (शर्म यंसत्) सुख प्रदान करे। हे (हर्यश्व) मनुष्यों को अश्ववत् सञ्चालन करने हारे! (सः) वह तू (नः प्रजायै मृडय) हमारी प्रजाओं को सुखी कर, उन पर कृपालु हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! (नः मा रीरिषः) हमें पीड़ित मत कर। (नः मा परा दाः) हमें त्याग मत।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन्
॥ ९ ॥ १६ ॥ १० ॥

भा०—(ये नः सपत्नाः) जो हमारे शत्रु हैं (ते अप भवन्तु) वे

दूर हों। हम (इन्द्राग्निभ्याम् तान् अव बाधामहे) इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी नायकों, सभा सेनादि के अध्यक्षों द्वारा उनको पीड़ित करें। (वसवः) वसुजन, (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले (आदित्याः) आदित्यवत् तेजस्वी, पिता, मातामह प्रपितामह के तुल्य, एवं गृहस्थ, वनस्थ, संन्यस्त जन सब मिलकर (मा) मुझे (उपरि-स्पृशं) सर्वोपरि पद तक पहुंचाता हुआ और (अधि धराजम्) राजाओं के भी ऊपर महाराज एवं (चेत्तारम् अक्रन्) सब को सन्मार्ग में चेताने वाला बनावें।

इति षोडशो वर्गः॥ इति दशमोऽनुवाकः॥

[१२९]

ऋषिः प्रजापतिः परमेष्ठी॥ देवता—भाववृत्तम्॥ छन्दः—१—३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४—६ त्रिष्टुप्। ७ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥१॥

भा०—(तदानीम्) इस जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व (न असत् आसीत्) न असत् था। (नो सत् आसीत्) और न सत् था। (न रजः आसीत्) उस समय रजस् अर्थात् नाना लोक भी न थे। (नो व्योम) न वहां परम आकाश था। (यत् परः) जो उससे भी परे है वह भी न था। उस समय (किम् आ अवरीवः) क्या पदार्थ सबको चारों ओर से घेर सकता था? कुछ नहीं। (कुह) यह सब फिर कहां था और (कस्य शर्मन्) किस के आश्रय में था। तो फिर (किम्) क्या (गहनं गभीरं अम्भः आसीत्) गहन, अर्थात् जिस में किसी पदार्थ का प्रवेश न होसके, ऐसा गंभीर जिसका वार पार का पता न लगे, ऐसा "अम्भस्" (अप्-भस्) कोई व्यापक भासमान 'आपः' तत्व विद्यमान था।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥२॥

भा०—(मृत्युः न आसीत्) उस समय मृत्यु न था, (तर्हि न अमृतम्) और उस समय न अमृत था। अर्थात् जीवन की सत्ता, जीवन का लोप दोनों नहीं थे। (नः राज्याः प्रकेतः आसीत्) न रात्रि का ज्ञान था और (न अह्नः प्रकेतः आसीत्) न दिन का ज्ञान था। उस तत्व का स्वरूप (आनीत्) प्राण शक्ति रूप था, परन्तु (अवातम्) वह स्थूल वायु न था। (तत् एकम्) वह एक (स्वधया) अपने ही बल से समस्त जगत् को धारण करने वाला शक्ति से युक्त था। (तस्मात् अन्यत्) उससे दूसरा पदार्थ (किंचन) कुछ भी (परः न आस) उस से अधिक सूक्ष्म न था।

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्म॑हि॒ना जा॑य॒तैक॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(अग्रे) सृष्टि होने के पूर्व, (तमः आसीत्) 'तमस्' था। वह सब (तमसा गूढम्) तमस् से व्याप्त था। वह (अप्र-केतम्) ऐसा था कि उसका कुछ भी विशेष ज्ञान योग्य न था। वह (सलिलम्) सलिल, एक व्यापक गतिमत् तत्त्व था, जो (सर्वम् इदम् आ) इस समस्त को व्यापे था। उस समय (यत्) जो था भी वह (तुच्छ्येन) तुच्छ सूक्ष्म रूप से (आभू-अपिहितम्) चारों ओर का सब विद्यमान पदार्थ ढका था। (तत्) वह (तपसः महिना) तपस् के महान् सामर्थ्य से (एकम्) एक (अजायत) प्रकट हुआ।

काम॒स्तदग्रे॒ सम॑वर्त॒ताधि॒ मन॑सो॒ रेतः॑ प्रथ॒मं यदासी॑त्।
स॒तो बन्धु॒मस॑ति॒ निर॑विन्दन्हृ॒दि प्र॒तीष्या॑ क॒वयो॑ मनी॒षा ॥४॥

भा०—(अग्रे) सृष्टि के पूर्व में (तत्) वह (मनसः अधि) मन से उत्पन्न होने वाली (कामः) इच्छा के समान एक कामना ही, (सम् अवर्तत) सर्वत्र विद्यमान थी, (यत् प्रथमम् रेतः आसीत्) जो

सबसे प्रथम इस जगत् का प्रारम्भिक बीजवत् था। (कवयः) क्रान्तदर्शी तत्त्वज्ञानी पुरुष (हृदि प्रति इष्य) हृदय में पुनः २ विचार कर (असति) अप्रकट तत्त्व में ही (सतः बन्धुम्) सत् रूप प्रकट तत्त्व को बांधने वाला बल (निर् अविन्दन्) प्राप्त करते हैं।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ५

भा०—(एषाम्) इन पूर्वोक्त असत्, अम्भस्, सलिल अर्थात् तपस् और काम, रेतस अर्थात् रजस् और सत् इन तीनों का (रश्मिः) सूर्यरश्मि के समान रश्मि (तिरः-चित् विततः) बहुत दूर २ तक व्याप्त हुआ। (अधः स्वित् आसीत्) नीचे भी रहा और (उपरिस्वित् आसीत्) ऊपर भी था। (रेतः-धाः आसन्) उक्त 'रेतस्' को धारण करने वाले तत्त्व भी थे। (महिमानः आसन्) वे महान् सामर्थ्य वाले थे। (अवस्तात् स्वधा) नीचे 'स्वधा' और (परस्तात् प्रयतिः) उससे परे वह उत्कृष्ट यत्न आश्रय रूप था।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

भा०—(अद्धा कः वेद) सत्य २, ठीक ठीक कौन जान सकता है? (इह कः प्रवोचत्) यहां या इस विषय में कौन उत्तम रीति से प्रवचन या उपदेश कर सकता है? (कुतः आ जाता) यह सृष्टि कहां से प्रकट हुई? (इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार का सर्ग (कुतः) किस मूल कारण से और क्यों हुआ? (देवः) यह तेज से चलने वाले सूर्य चन्द्र आदि लोक भी (अस्य वि-सर्जनेन) इस जगत् को विविध प्रकार से रचने वाले मूलकारण से (अर्वाक्) पश्चात् ही हैं। (अथ कः वेद) तो फिर कौन उस तत्त्व को जानता है? (यतः) जिससे यह जगत् (आ बभूव) चारों ओर प्रकट हुआ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥१७॥

भा०—(इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार की सृष्टि (यतः आ बभूव) जिस मूल तत्त्व से प्रकट हुई है (यदि वा दधे) और जो वह इस जगत् को धारण कर रहा है (यदि वा न) और जो नहीं धारण करता (यः अस्य अध्यक्षः) जो इसका अध्यक्ष वह प्रभु (परमे व्योमन्) परम पद में विद्यमान है। (सः अङ्ग वेद) हे विद्वन्! वह सब तत्त्व जानता है (यदि वा न वेद) चाहे और कोई भले ही न जाने। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१३०]

ऋषिर्यज्ञः प्राजापत्यः ॥ देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१ विराड् जगती। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, ६, ७ त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥

भा०—(यः) जो (यज्ञः) यज्ञ (विश्वतः) सब ओर, सब प्रकार से (तन्तुभिः ततः) तन्तुओं अर्थात् उपयज्ञों से व्याप्त होकर (देव-कर्मेभिः) देवों को लक्ष्य कर किये नाना इष्टि कर्मों से (एक-शतं आयतः) सौ या १०१ वर्षों तक दीर्घ हो जाता है उसको (ये पितरः आययुः) जो पालक जन आते हैं (इमे वयन्ति) वे तन्तुओं से पट के समान यज्ञमय पट को पूर्ण आयु भर तनते या बनाते हैं और (तते) उस विस्तृत यज्ञमय पट, के निमित्त (प्र-वय अप-वय इति आसते) ऊपर से बुनो नीचे से बुनो इस प्रकार आदेश करते रहते हैं। इसी प्रकार प्रजापति का जगत्मय महान् यज्ञ है जो (विश्वतः तन्तुभिः) सब ओर प्रकृति के बने नाना तन्तु या विस्तृत तत्त्वों से बना है। वह (देव

कर्मभिः) दिव्य जल, भूमि, तेज, आकाश, वायु इन पञ्चभूतों के कर्मों से ही (एक-शतम् आ यतः) आयु १०१ वर्षों प्रमाण तक विस्तृत रहता है। (पितरः) पिताओं के तुल्य विश्व के स्रष्टा नाना प्रजापति जन उसको जो एक के बाद एक मनु के समान वर्ष, ऋतु आदि रूप में आते हैं वे इस जगत् सर्ग को (वयन्ति) विनते हैं। वे (तत्) इस विस्तृत जगत्-सर्ग रूप पट में (प्र-वय अप-वय) ऊपर को बुनों, नीचे को बुनों इस प्रकार प्रेरित करते हैं, कुछ कालों में भविष्यत् का प्रस्तुत सर्ग होता और कुछ वर्त्तमान का अवयन अर्थात् भूत काल में विलीन होता है। इस प्रकार वे वत्सर, ऋतु आदि उस (तते) विस्तृत काल-पट में विराजते हैं।

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥२॥

भा०—(पुमान् एनं तनुते) वह पुरुष ही गृहपति के तुल्य उस यज्ञ का विस्तार करता है, और (पुमान् उत् कृणत्ति) वह पुरुष ही उस यज्ञ को समाप्त करता है। वह (नाके अधि वितते) परम सुखमय लोक या महान् आकाश में जगत्-सर्ग रूप यज्ञ को करता है। और (इमे) ये (मयूखाः उ) मयूख, सूर्यकिरण, ही (सदः) यज्ञ भवन में ऋत्विजों के समान (सदः) आश्रयभूत आकाश में नाना लोकों के रूप में (उप सेदुः) उपस्थित होते हैं। और (ओतवे) बुनने के लिये (तसराणि) तिरछे तन्तुओं के समान ही यज्ञ में (सामानि) सामगण का विस्तार करते हैं। वे दिव्य शक्तियां (ओतवे) जगत् सर्ग को रचने के लिये (सामानि) समस्त जीवों और लोकों के परस्पर एक समान वर्त्तन, व्यवहारों को पट के तिरछे तन्तुवत् कल्पना करते हैं।

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

भा०—(यत्) जब (विश्वे देवाः) समस्त देवगण (देवम् अयजन्त) देव, परमेश्वर की पूजा करते हैं, उसका यज्ञ करते हैं तब (का प्रमा आसीत्) 'प्रमा' अर्थात् 'परिमाण' क्या रहा, और (प्रतिमा का आसीत्) मापने का साधन क्या था ? (किं निदानम्) इष्ट ध्येय फल क्या था ? (आज्यम् किम् आसीत्) यज्ञ में घृत के सदृश उस परम फल तक पहुंचने का साधन क्या था ? (परिधिः कः आसीत्) यज्ञ में परिधि रूप तीन समिधाएं रक्खी जाती हैं उस प्रकार उस देव भाग में क्या परिधि थी और (छन्दः किम्) गायत्री आदि छन्दवत् कौनसा छन्द था ? (प्रउगम् उक्थम्) यज्ञ में प्रउग आदि शस्त्र अर्थ-शंसनी ऋचाओं के स्थान पर देवयाग में क्या पदार्थ था ?

अ॒ग्नेर्गा॑य॒त्र्य॑भवत्स॒युग्वो॒ष्णिह॑या सवि॒ता सम्ब॑भूव ।
अ॒नु॒ष्टुभा॒ सोम॑ उ॒क्थैर्मह॑स्वा॒न्बृह॒स्पते॑र्बृह॒ती वाच॑मावत् ॥ ४ ॥

भा०—(अग्नेः सयुग्वा) अग्नि की सहयोगिनी (गायत्री अभवत्) गायत्री हुई । (उष्णिहया सविता सं बभूव) सविता उष्णिहा से युक्त हुआ । (अनुष्टुभा) अनुष्टुभ् से और (उक्थैः) स्तुति मन्त्रों से (सोमः महस्वान्) सोम महान् गुण वाला हुआ । (बृहस्पतेः वाचम्) बृहस्पति की वाणी को (बृहती) बृहती (आवत्) प्राप्त हुई ।

वि॒राण्मि॒त्रावरु॑णयोरभि॒श्रीरिन्द्र॑स्य त्रि॒ष्टुबि॒ह भा॒गो अह्नः॑ ।
विश्वा॒न्दे॒वाञ्जग॒त्या वि॑वेश॒ तेन॑ चाक्ल्प्र॒ ऋष॑यो मनु॒ष्याः॑ ॥५॥

भा०—(मित्रावरुणयोः विराट् अभि-श्रीः) मित्र और वरुण इन दोनों को विराट् आश्रित हुई, (इन्द्रस्य त्रिष्टुप्) इन्द्र की त्रिष्टुप् और (इह अह्नः भागः) यह दिन का अंश और (विश्वान् देवान्) विश्व के सब देवों को (जगती आविवेश) जगती प्राप्त हुई (तेन) उनसे

(ऋषयः) तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुष और (मनुष्याः) मननशील जन (चाक्लृपे) सामर्थ्यवान् हुए।

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥ ६ ॥

भा०—उस (पुराणे) अति प्राचीन काल से होने वाले (यज्ञे जाते) यज्ञ के होने पर (तेन) उससे ही (ऋषयः मनुष्याः) मन्त्रद्रष्टा, तत्वज्ञानी ऋषि जन और मननशील मनुष्य और (नः पितरः) हमारे पालक माता पिता (चाक्लृप्रे) समर्थ हुए। (पूर्वे) पूर्व के (ये इमं यज्ञम्) जो इस यज्ञ को (अयजन्त) करते थे (तान्) उनको मैं (मनसा) मन रूप (चक्षसा) चक्षु से (पश्यन्) देखता हुआ (मन्ये) जानता हूं। मानो उनको साक्षात् करता हूं।

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो३न रश्मीन् ७॥१८

भा०—(सह-स्तोमाः) स्तोमों, ऋचा-समूहों और (सह-छन्दसः) छन्दों सहित, (सह प्रमाः) प्रमा, परिमाणों से हित (आवृतः) विद्यमान (सप्त दैव्याः ऋषयः) सात देवों, विद्वानों के योग्य (ऋषयः) ज्ञान द्रष्टा, (धीराः) बुद्धिमान् ऋषिगण (पूर्वेषां पन्थाम् अनुदृश्य) पूर्व विद्यमानों के मार्ग को देख कर (रथ्यः रश्मीन् न) अश्व की बागों के समान (अनु आलेभिरे) बराबर वे प्रतिदिन, निरन्तर यज्ञ करते हैं।

सात दैव्य ऋषि अध्यात्म में सात शीर्षण्य प्राण हैं। आत्मा प्रजापति है। वह १०० वर्षों तक यज्ञ करता है। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१३१]

ऋषिः सुकीर्तिः काक्षीवतः ॥ देवता—१—३, ६, ७ इन्द्रः । ४, ५ अश्विनौ

छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ पाद-
निचृत् त्रिष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अप प्राच॑ इन्द्र विश्वाँ॑ अमित्रानपापा॑चो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदी॑चो अप॑ शूराधराच॑ उरौ यथा तव॒ शर्म॒न्मदे॑म ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (विश्वान् प्राचः शत्रून्) समस्त, अभिमुख आये प्रजा-नाशकारी शत्रुओं को (अप नुदस्व) दूर कर । हे (अभि-भूते) शत्रुओं को पराजित करने वाले ! तू (अपाचः शत्रून् अप नुदस्व) पीछे से आने वाले शत्रुओं को दूर कर । (उदीचः अप) ऊपर से जाने वालों को दूर हटा । हे (शूर) शूरवीर (अधराचः अप) नीचे से आने वालों को दूर कर । (यथा) जिससे (तव उरौ शर्मन् मदेम) तेरी बड़े भारी सुखप्रद शरण में हम सुखी हों, हर्ष लाभ करें ।

कुविदङ्ग यव॑मन्तो यवं॑ चिद्यथा दान्त्य॑नुपूर्वं॑ वियूय॑ ।
इहेहैषां कृणुहि भोज॑नानि ये ब॒र्हिषो नमो॑वृक्तिं न ज॒ग्मुः ॥ २ ॥

भा०—(अंग) हे जल, अन्न देने वाले मेघ वा सूर्य के समान राजन् ! प्रभो ! (यव-मन्तः) जौ आदि खेतियों के स्वामी कृषक लोग जिस प्रकार (अनु-पूर्वम्) क्रमानुसार एक के बाद एक (यवं चिद् यथा दान्ति) उत्तम पके जौ आदि को काटते हैं उसी प्रकार (ये) जो (बर्हिषः) महान् यज्ञ वा प्रभु के निमित्त (नमः-वृक्तिम्) नमस्कार वा हवि आदि के वर्जन को (न जग्मुः) नहीं जाते अर्थात् नित्य प्रभु की उपासना करते और नित्य यज्ञ-दान करते हैं (एषां) उन उनको (इह इह) इस इस राष्ट्र के नाना स्थानों को भी (भोजनानि) भोग

योग्य नाना अन्नादि रक्षा के साधन (कृणुहि) कर। अर्थात् किसानों उपासकों, यज्ञकर्त्ताओं को रक्षादि से बचा।

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

भा०—(स्थूरि) एक बैलवाली, या स्थिर बैल रहित गाड़ी (ऋतु-था) ठीक २ समय पर मार्गों में या चक्रों पर भी जिस प्रकार (यातम् न अस्ति) जाने योग्य नहीं होती उसी प्रकार ऋतु-कालों में भी (स्थूरि) एक व्यक्ति से ही गृहस्थ की गाड़ी नहीं चलती। अर्थात् गाड़ी के लिये दो बैलों के समान गृहस्थ रथ के लिये भी दो उत्तम स्त्री, पुरुष, और राज्य के लिये दो, राजा और सचिव चाहियें। (उत) और (संगमेषु) संग्रामों वा मिलापों में भी (श्रवः न विविदे) अन्न, यश, कीर्त्ति, ज्ञान का लाभ नहीं होता जब तक इन्द्र अर्थात् मेघ, सूर्य, उत्तम ज्ञानवान् वीर्यवान् पुरुष प्रयोक्ता नहीं। इसलिये (विप्राः) विद्वान् लोग (गव्यन्तः) गौ, बैल, भूमि और ज्ञान-वाणी की कामना करते हुए और (अश्वयन्तः) संग्रामार्थ अश्व और अश्ववत् कार्यवाहक समर्थ पुरुष की इच्छा करते हुए और (वाजयन्तः) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान और वेग की कामना करते हुए, (वृषणम् इन्द्रम्) बलवान्, विद्युत्वत् जलवर्षी मेघवत् और वीर्य से पुरुषवत् सुखों की वर्षा करने वाले स्वामीवत् प्रभु को (सख्याय) मित्रभाव के लिये चाहते हैं। उसकी शरण में आते हैं।

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्ववत् उत्तम साधनों वाले, जितेन्द्रिय, स्त्री पुरुषो! वा शास्य-शासक वर्गो! आप दोनों (शुभः पती) शोभा-

जनक अलंकारों वा गुणों के पालन करने वाले और (सचा) एक साथ परस्पर संगत होकर (नमुचौ आसुरे) न त्यागने योग्य, अवश्य धारणीय प्राणों के द्वारा प्राप्त जीवन के निमित्त (सुरामं विपिपाना) सुखपूर्वक आनन्द प्रमोद देने वाले अन्न जल वीर्य बल आदि का विविध प्रकार से पान और पालन करते हुए, आप दोनों (कर्मसु) अपने समस्त कर्मों में (इन्द्रम् आवतम्) उस महान् ऐश्वर्य के देने वाले स्वामी प्रभु को सदा प्रेम करो। शास्य और शासक वर्ग दोनों राजा की रक्षा करें।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

भा०—(पुत्रम् इव पितरा) पुत्र को जिस प्रकार माता और पिता दोनों पालन, रक्षा और स्नेह करते हैं उसी प्रकार (अश्विना) उत्तम अश्वों से युक्त सेना, और उत्तम अश्ववत् नायकों से युक्त प्रजागण दोनों (काव्यैः) विद्वानों से प्रदर्शित, (दंसनाभिः) नाना कर्मों से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! (त्वाम् आवथुः) तुझे प्राप्त हों, तेरी रक्षा करें, तुझे स्नेह करें। (यत्) जो तू (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (सुरामं वि अपिबः) उत्तम रमण करने योग्य राज्यैश्वर्य को विविध प्रकारों से पालन और उपभोग करता है उस (त्वाम्) तुझको हे (मघवन्) ऐश्वर्यशालिन्! (सरस्वती अभिष्णक्) स्त्रीवत् प्रजाजन भी सेवा करे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम। स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु॥७।१६॥

भा०—व्याख्या देखो। (अष्ट० ४ । अ० ७ । वर्ग ३५ तदनुसार मण्डल ६ सू० ४७ । मं० १२, १३) इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१३२]

ऋषिः शकपूतो नार्मेधः ॥ देवता—१ लिङ्गोक्ताः । २—७ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१ बृहती । २, ४ पादनिचृत् पंक्तिः । ३ पंक्तिः । ५, ६ विराट् पंक्तिः ७ महासतो बृहती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ई॒जा॒नमिद्द्यौर्गू॒र्ताव॑सुरीजा॒नं भूमि॑र॒भि प्र॑भू॒षणि॑ ।
ई॒जा॒नं दे॒वाव॒श्विना॑व॒भि सु॒म्नैर॑वर्धताम् ॥ १ ॥

भा०—(ईजानम्) यज्ञ करने वाले मनुष्य को (द्यौः) आकाश वा सूर्यवत् ज्ञानीगण, (गूर्त-वसुः) अपने ऐश्वर्य को हाथ में लिये (सुम्नैः) नाना सुखों से बढ़ाता है। इसी प्रकार (ईजानम्) यज्ञ करने वाले को (भूमिः) पृथिवी, तद्वासी प्रजा भी (प्र-भूषणि) प्रचुर सत्ता प्राप्त करने के निमित्त (अभि) खूब बढ़ाती हैं। (ईजानं) यज्ञशील, ईश्वरोपासक जन को (अश्विनौ देवौ) दिन रात्रिवत्, स्त्री पुरुष वर्ग भी (सुम्नैः अभि वर्धताम्) नाना सुखप्रद साधनों, पदार्थों से बढ़ावें।

ता वां॑ मित्रावरुणा धा॒रय॑त्क्षिती सुषु॒म्नेषि॑त॒त्वता॑ यजामसि ।
यु॒वोः क्रा॒णाय॑ स॒ख्यैर॒भि ष्या॑म र॒क्षसः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) परस्पर स्नेही एवं वरण करने वाले दो श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (धारयत्-क्षिती) भूमि वा भूमिवासिनी प्रजाओं को धारण करने वाले (सु-सुम्ना) उत्तम सुखदायक, उत्तम धन के स्वामी हो। [(ता वाम्) उन आप दोनों को हम (इषित्वता) चाहने

योग्य या प्राप्त होने योग्य गुण के कारण (यजामसि) पूजा या सत्संग करते हैं। (ऋणाय) कर्म करने वाले के हितार्थ हम (युवोः सख्यैः) आप दोनों के मित्र भावों से (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (अभि स्याम) पराजित करें।

अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः।
दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥ ३ ॥

भा०—हम (पत्यमानाः) ऐश्वर्यवान् होते हुए (वाम्) आप दोनों के (यत् प्रियम्) जिस प्रिय, प्रीतिकारक (रेक्णः) धन को (अभि दिधिषामहे) धारण करते हैं (यत् वा रेक्णः) और जिस धन को (दद्वान्) दानशील पुरुष (पुष्यति) बढ़ाता है (अस्य) इसके (मघानि) नाना उत्तम धनों को (नकिः सम् उ आरन्) कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा।
मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥ ४ ॥

भा०—हे (असुर) प्राणों को देने वाले ! हे बलवन् ! (असौ द्यौः अन्यः सूयत) यह सूर्यवत् तेजस्विनी, आकाशवत् व्यापक राजसभा अन्य अर्थात् एक को ही उत्पन्न करती है। हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! तू (विश्वेषाम् राजा असि) सबों का राजा है। तू (रथस्य मूर्धा) रथ सैन्य के शिरोदेशस्थ नायकवत् महारथी है। (अन्तक-ध्रुक्) तू प्रजा के नाशक पुरुष का द्वेषी है। तू (एतावता एनसा न चाकन्) इतने थोड़े से भी पाप के साथ प्रेम नहीं करता।

अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान्हन्ति वीरान्।
अवोर्वा यद्धात्तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्ववा ॥ ५ ॥

भा०—(अस्मिन् शक्पूते) इस शक्ति, सामर्थ्य से अभिषिक्त पुरुष में और (हिते मित्रे) हितकारक मित्र में वा सर्वप्रिय स्थापित राजा में (एतत् एनः) यह छोटासा पाप भी (निगतान् वीरान् सु हन्ति) नीचे विद्यमान वीरों को प्राप्त होता और उनका नाश करता है। इसी प्रकार (अवोः धा यत् अवः) रक्षा करने वाले का जो रक्षण बल, प्रेम, ज्ञान आदि (धात्) स्थापित होता है, वही (यज्ञियासु प्रियासु तनूषु) यज्ञ, सत्संग योग्य, प्रिय देहोंवत् प्रजाओं में भी (अवा) चला जाता है शासक के पाप, गुण दोष आदि शासकों और प्रजाओं में आते हैं।

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि।
अवं प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः॥ ६॥

भा०—हे (वि-चेतसा) विशेष ज्ञान वाले स्त्री पुरुषो ! (युवोः हि माता) क्योंकि तुम दोनों की माता, जननी के तुल्य, तुम दोनों को बनाने वाला ज्ञानवान् पुरुष (अदितिः) अखण्ड व्रत का पालक, एवं भूमि है। (द्यौः न भूमिः) आकाश के समान यह भूमि भी (पयसा) जलवत् पुष्टिकारक अन्न से (पुपूतनि) पवित्र एवं पुष्टि करने वाली है। आप लोग (प्रिया) नाना प्रीति एवं तृप्तिकारक पदार्थ (अव दिदिष्टन) प्रदान करो और (सूरः) सूर्य अपनी (रश्मिभिः) किरणों से जैसे तेजस्वी पुरुष अपने तेजस्वी सहायकों से (निनिक्त) प्रजागण को शुद्ध करे।

युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम्।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः॥७॥२०

भा०—हे आप दोनों (अप्नराजौ) उत्तम रूप और कर्म से

प्रकाशित होने वाले आप दोनों (रथम् आसदतम्) रथ पर विराजो। क्योंकि जो भी (धूः-सदम्) राष्ट्र भार को वहन करने वाली मुख्य धुरा पर आश्रित वा शत्रु को कंपाने और राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति को चलाने वाले तथा (वनःसदम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले परम (रथम्) रमणीय रथवत् राज्यपद पर महारथवत् सेनापति के तुल्य विराजता है वह (नृ-मेधः) अनेक मनुष्यों को संगत सुगठित करने वाला होकर (नः कणूकयन्तीः ताः) हम रोती, बिलबिलाती दुःखित प्रजाओं को (अंहसः त्रत्रे) पाप से नष्ट होने से बचालेता है। वही (सुमेधः) उत्तम बुद्धि से युक्त पुरुष, (अंहसः तत्रे) पाप से प्रजाजन को नाश होने से बचा सकता है। इति विंशो वर्गः ॥

[१३३]

ऋषिः सुदाः पैजवनः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३ शक्वरी । ४—६ महापंक्तिः । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रोप्व॑स्मै पुरोर॒थमिन्द्रा॑य शू॒षम॑र्चत ।
अ॒भीके॑ चिदु लोक॒कृत्स॒ङ्गे स॒मत्सु॑ वृत्र॒हास्माकं॑ बोधि
चोदि॒ता नभ॑न्तामन्य॒केषां॑ ज्या॒का अधि॒ धन्व॑सु ॥ १ ॥

भा०—(अस्मै इन्द्राय) शत्रुओं के नाश करने वाले, तेजस्वी इस पुरुष के (पुरः रथम् शूषम्) रथ के आगे १ विद्यमान बल की (अर्चत) स्तुति करो। वह (अभीके संगे) भय रहित परस्पर मिलाप में (लोक-कृत्) समस्त लोकों का उपकार करता है, और (समत्सु वृत्रहा) संग्रामों में शत्रुओं का नाश करने हारा है। वह (अस्माकं चोदिता) हमें सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला (बोधि) हमारा हित जाने। (अन्य-केषां धन्वसु) दूसरे शत्रुओं के धनुषों पर (अधि) (ज्याकाः) डोरियां (नभन्ताम्) नष्ट हों वा धनुषों पर की डोरियों को चढ़ाये हुए शत्रु नष्ट हों।

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं । तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (त्वं) तू (सिन्धून्) बहने वाले नद और नदियों के समान वेग से जाने वाले सैन्य वा शत्रुओं को (अधराचः अव असृजः) नीचे करता है। (अहिम् अहन्) मेघ को सूर्यवत् और सर्पवत् कुटिल स्वभाव के पुरुष को नाश करता है। तू (अशत्रुः जज्ञिषे) शत्रु रहित हो जाता है। (विश्वं वार्यं पुष्यसि) समस्त उत्तम वरण करने योग्य धन को पुष्ट करता है। (तं त्वा परि ष्वजामहे) उस तुझ को हम सब प्रकार से अपनाते हैं। (नभन्ताम्० इत्यादि) पूर्ववत्।

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति । या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वाः अर्यः अरातयः) समस्त शत्रु जो कर नहीं देते (वि सु नशन्त) वे विविध प्रकार से सुखपूर्वक नष्ट हों। और (नः धियः त्वा नशन्त) हमारी स्तुतियां और बुद्धियां तुझे प्राप्त हों वा हमारे कर्म भली प्रकार चलें, (इन्द्र) हे राजन् ! (यः नः जिघांसति) जो हमें मारना चाहता है उस (शत्रवे) शत्रु के नाश करने के लिये उस पर (वधं अस्ता असि) तू वध-दण्ड देने वाला हो। (ते रातिः वसु ददिः) तेरा दान, वा दानशील हाथ हमें धन प्रदान करे। (नभन्ताम्०) इत्यादि पूर्ववत्।

यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिर्नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! (यः) जो (वृकायुः जनः) भेड़िये वा चोर के समान हमारे पास आने वाला, वा चोर-स्वभाव का मनुष्य (नः अभितः) हमारे सब ओर (आदिदेशति) हम पर हिंसा का प्रयोग करता, शस्त्रादि फेंकता है, (तम् ईं अधः पदं कृधि) उसको हमारे पैर के नीचे, पदाधिकार के नीचे कर । तू (विवाधः असि) शत्रुओं को विशेष रूप से पीड़ित करने वाला है । तू (सासहिः असि) शत्रुओं को पराजित करनेवाला है । (नमन्ताम्०) इत्यादि पूर्ववत् ।

यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः नः अभि दासति) जो हमारा नाश करता है और (यः) जो (सनाभिः) हमारा सगोत्र होकर भी (निष्ट्यः) नीच स्वभाव का है तू (तस्य बलं अव तिर) उसके बल का नाश कर । तू (त्मना) अपने सामर्थ्य से स्वयं (मही व द्यौः) भूमि और सूर्य के तुल्य महान् और तेजस्वी हो । (नमन्ताम्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमारभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयम्) हम लोग (त्वायवः) तेरी कामना करते हुए, तुझे प्राप्त होते हुए (सखित्वम् आरभामहे) तेरे मित्र भाव को प्राप्त करें । तू (नः) हमें (ऋतस्य पथा नय) सत्य के मार्ग से ले चल । और हमें (विश्वानि दुरिता अति) सब

बुरे पापों वा पाप के दुःखदायी फलों से भी पार कर। (नभन्ताम्०) इत्यादि पूर्ववत्।

अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः॥७।२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे वाणी, वेदवाणी वा शासनाज्ञा को देने वाले! तत्वदर्शिन्! (त्वं) तू (अस्मभ्यम्) हमें (तां शिक्ष) वह वाणी प्रदान कर। (या) जो (अच्छिद्र-ऊध्नी) त्रुटि दोषादि से रहित स्तनों वाली गौ के तुल्य होकर (जरित्रे) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् को (प्रति) प्रत्यक्ष या प्रतिसमय, (दोहते) रस प्रदान करे। (यथा) जो (सहस्र-धारा) हज़ारों धारा वाली, हज़ारों वाणी वाली, (गौः मही) भूमिवत् पृथिवी और पृथिवीवत् गौ, और पूज्य वाणी, (नः पीपयत्) हमें पुष्ट करे। इत्येकविंशो वर्गः॥

[१३४]

ऋषिः मान्धाता यौवनाश्वः। ६, ७ गोधा॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१-—६ महापंक्तिः। ७ पंक्तिः॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो या जब तू (उषाः इव) प्रभात के समान (रोदसी आपप्राथ) द्यौ और पृथिवी, प्रकाशमान और अप्रकाशमान, बीजवप्ता और बीजग्रहीता, माता पिता आदि को रचता है, तब (महीनां चर्षणीनाम्) पूज्य, बड़े लोकों और बड़ी शक्तियों के बीच (महान्तं सम्राजं) महान् प्रकाशक को प्राप्त होकर (जनित्री देवी) संसार भर को उत्पन्न करने वाली, सुखदात्री प्रकृति

(अजीजनत्) संसार को उत्पन्न करती है । (भद्रा) समस्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी, कल्याणकारिणी प्रकृति (जनित्री) जगत् को माता पिता के तुल्य उत्पन्न करने वाली जगत् को (अजीजनत्) उत्पन्न करती है । जैसे ईश्वर और प्रकृति के जोड़े से जगत् उत्पन्न होता है इसी प्रकार सूर्य और पृथिवी के जोड़े से अन्न मेघादि और अनेक जीव तथा जीवों में पुरुष-स्त्री के भोग से पुत्र-सर्ग उत्पन्न होता है ।

अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥

भा०—(दुःहनायतः मर्त्तस्य) दुःखदायी रूप से हिंसा करने वाले दुष्ट पुरुष के (स्थिरम्) दृढ़ बल को (अव तनुहि) नीचे गिरा और (यः अस्मान् आदिदेशति) जो हम पर हुक्म चलाता हो, (तम् ईम्) उस दुष्ट पुरुष को भी (अधः पदम् कृधि) हमारे चरणों के नीचे कर । (देवी जनित्री० इत्यादि) पूर्ववत् ।

अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभि-
र्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्डित करने हारे ! तू (त्याः) उन (बृहतीः इषः) बड़ी २ अन्न सम्पदाओं और (विश्व-चन्द्राः) सबको आह्लाद करने वाली सम्पत्तियों और प्रजाओं को अपनी (शचीभिः) शक्तियों, और वाणियों से और (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षा करने वाली शक्तियों से, (अव धूनुहि) कम्पित कर, सञ्चालित कर, वश कर । (देवी जनित्री० इत्यादि) पूर्ववत् ।

अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे । रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ४

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों कर्म बल, ज्ञान सामर्थ्यों वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (विश्वानि) सब तत्त्वों को (अव धूनुषे) सञ्चालित करता है, और (सहस्र-णीभिः ऊतिभिः) सहस्रों सुखों को प्राप्त कराने वाली रक्षाओं से (सुन्वते) अपने उपासक को (रयिं न अव सुन्वते) ऐश्वर्य भी प्रदान करता है। (देवी जनित्री०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

अव स्वेदा इवाभितो विष्वक्पतन्तु दिद्यवः। दूर्वाया इव तन्तवो व्य१स्मदेतु दुर्मतिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥५॥

भा०—हे प्रभो ! (दिद्यवः) हमारे चमचमाते शस्त्र वा ज्ञान-प्रकाश, (स्वेदाः इव) पसीने के बिन्दुओं या स्नेहों के तुल्य (विष्वक् अव पतन्तु) सब ओर जावें (दूर्वायाः इव तन्तवः) घास के तिनकों के समान (दुर्मतिः अस्मत् वि एतु) दुष्ट बुद्धि वा दुःखदायी शत्रु हम से दूर हो। (देवी जनित्री०) पूर्ववत् ॥

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः। पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मन्तुमः) ज्ञानवन् ! हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (शक्तिं) शक्ति को (दीर्घं हि अंकुशं यथा) दीर्घ अंकुश के समान ही (बिभर्षि) धारण करता है। तू (यमः) सर्वनियन्ता होकर (अजः यथा) जिस प्रकार बकरा (पूर्वेण पदा वयाम्) अपने अगले पैर से शाखा को पकड़ उसके पत्ते खाजाता है उसी प्रकार तू (अजः) अजन्मा, जगत् का चालक (पूर्वेण पदा) अपने सर्वोत्कृष्ट ज्ञान सामर्थ्य से (वयां) व्यापक प्रकृति को (बिभर्षि) धारण करता और व्यापता है।

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि संरभामहे ॥ ७ ॥ २२ ॥

भा०—गोधानाम्नी ब्रह्मवादिनी, ऋषिः। हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (नकिः मिनीमसि) हम किसी की हिंसा न करें। (नकिः आयोपयामसि) हम किसी बात की गड़बड़ न करें। (पक्षेभिः अपिकक्षेभिः) पक्षों, ग्रहण करने योग्य अपनों, वा स्ववेद शाखा-प्रशाखाध्यायियों और कक्षों, सहयोगियों सहित (अत्र अभि संरभामहे) इस लोक में प्रेम से समस्त कार्य करें और उत्तम फल प्राप्त करें। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[१३५]

ऋषिः कुमारो यामायनः ॥ देवता—यमः ॥ छन्दः—१—३ ५, ६ अनुष्टुप्। ४ विराडनुष्टुप्। ७ भुरिगनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पिबते यमः।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥ १ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस (सु-पलाशे) उत्तम पत्रों से युक्त (वृक्षे) आश्रय वृक्ष के तले वा उस पर, (यमः) नियन्ता, आत्मा वा यतात्मा साधक, (देवैः) सुखप्रद और ज्ञानप्रद इन्द्रियों से ही (पुराणान् संपिबते) पूर्व के किये कर्मफलों का भोग करता है, (अत्र) उसी वृक्ष पर (नः) हमारा (विश्पतिः) प्रजापति, आत्मा इन्द्रियादि का अधिष्ठाता, (पुराणान् अनु वेनति) पूर्व भुक्त भोगों को पुनः भी चाहता है। वह 'वृक्ष' यह देह या संसार है।

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥ २ ॥

भा०—(पुराणान्) पूर्व भुक्त भोगों को (अनु वेनन्तं) पुनः

कामना करते हुए और (अमुया पापया चरन्तं) अमुक २, नाना पापों, कष्टों, भोगों को भोगते हुए पुरुष को (असूयन्) निन्दा या दोष दृष्टि से (अभि अचाकशम्) देखूं, परन्तु फिर भी मैं (तस्मै) उस पर (अस्पृहयम्) प्रेम करूं, पापी को पाप के कारण बुरा भी कहूँ, तो भी उससे स्नेह करूं। अथवा मैं पापकारी को दुःख भोगता देख कर उसे बुरा कहता हुआ भी (तस्मै अस्पृहयम्) उस पाप कर्म के लिये मैं स्वयं चाहने लगता हूँ। कैसा पतनशील हूं।

यं कु॑मार॒ नवं॒ रथ॑मच॒क्रं मन॒साकृ॑णोः ।
एके॑षं वि॒श्वत॒ः प्राञ्च॒मप॑श्य॒न्नधि॒ तिष्ठसि ॥ ३

भा०—हे (कुमार) अनुभवी बालक ! अल्पज्ञ जीव ! (यं नवं) जिस नये (अचक्रम्) विना चक्र अर्थात् स्वयं गतिशीलता से रहित रथ रूप रमणकारी, सुखदायक, प्रिय देह को (मनसा) अपने मन रूप सारथि द्वारा (अकृणोः) चलाता है, उस (एक-इषम् एक-ईषम्) एक अन्न मात्र या इच्छा रूप 'ईषा' अर्थात् अग्रदण्ड वाले और (विश्वतः प्राञ्चम्) सब ओर से आगे बढ़ने वाले देह रूप रथ पर (अपश्यन्) उसको विना देखे ही, उसके रचना तत्व, यन्त्र-संस्थान के देखे विना ही (अधि तिष्ठसि) उस पर सवार हो जाता है।

यं कु॑मार॒ प्राव॑र्तयो॒ रथं॒ विप्रे॑भ्य॒स्परि॑ ।
तं सामानु॒ प्राव॑र्तत॒ सामि॒तो ना॒व्याहि॑तम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (कुमार) अनभिज्ञ बालकवत् अल्पज्ञ अबोध जीव ! (यं रथं) जिस रथरूप देह को तू (विप्रेभ्यः परि) ज्ञानवान् पुरुषों से रहित होकर (प्र अवर्त्तयः) चला रहा है (तं) उसको (नावि आहितम्) नाव से बंधे रथ के तुल्य, (नावि आहितं) वाणी में स्थिर (साम) विशेषज्ञान बल (अनु प्र अवर्तत) दिनों दिन अच्छी

प्रकार प्राप्त होता जाता है। वह अनुभव से ज्ञानवाणी के द्वारा अधिक ज्ञानवान् हो जाता है।

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत्।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत्॥ ५॥

भा०—(कुमारं कः अजनयत्) इस अबोध बालकवत् जीव को कौन पैदा करता है? (कः रथं निर् अवर्त्तयत्) रथ रूप इस देह को निरन्तर कौन चलाता है? इसका कौन तो कर्त्ता और कौन संचालक है, (तत्) उस परम रहस्य को (कः स्वित् नः) कौन हमें (अद्य) आज (अवदत्) बतलावे (यथा) जिस प्रकार से (अनुदेयी अभवत्) निरन्तर रक्षाकारिणी या ज्ञान-बलदात्री शक्ति वा इन्द्रियशक्ति उत्पन्न हो।

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम्॥ ६॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार से या जिस कारण से (अनुदेयी अभवत्) प्रति दिन की रक्षा वा अनुक्षण देने, वा त्यागने योग्य, प्राण क्रिया या भोजन देने योग्य आत्मातिरिक्त देहादि की क्रिया होती है। (ततः) उसी से वह (अग्रम्) सबसे मुख्य तत्व मन भी (अजायत) उत्पन्न होता है। (पुरस्ताद्) उसके आगे (बुध्नः आततः) मूल प्रकृति या मूल आश्रय रूप सत् कारण ही फैला होता है अर्थात् पूर्व और पश्चात् (निर्-अयनं कृतम्) उसमें से यह जगत् निकल कर व्यक्त रूप से बनाया है।

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः॥ ७॥ २३॥

भा०—(यत् देवमानं उच्यते) जो देवों, इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान वा पांचों भौतिक पदार्थों की मात्राओं से बना कहा जाता है (इदं) यह (यमस्य सादनं) नियन्ता शासक बल राजा का मुख्य आसन (भवन) है। (इयम्) यह उसकी (नाडी) वाद्य भेरी आदि के तुल्य ही आत्मा की नाड़ी वा वाणी (धम्यते) गति या शब्द करती है। और (अयम्) यह (गीर्भिः) नाना वाणियों से (परिष्कृतः) सुशोभित होता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३६]

ऋषिः मुनयो वातरशनाः । देवता—१ जूतिः । २ वातजूतिः । ३ विप्रजूतिः । ४ वृषाणकः । ५ करिक्रतः । ६ एतशः । ७ ऋष्यशृगः ॥ केशिनः ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २—४,७ अनुष्टुप् । ५,६ निचृदनुष्टुप् । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥ १ ॥

भा०—(केशी) बालों के तुल्य नाना रश्मियों को धारण करने वाला सूर्य (अग्निं बिभर्त्ति) अग्नि को धारण करता है, वही (केशी) तेजों रश्मियों से युक्त सूर्य (विषं बिभर्त्ति) जल को धारण करता है। (केशी रोदसी बिभर्त्ति) वही रश्मियों वाला भूमि और आकाश दोनों लोकों को धारण करता है। (केशी) वह रश्मियों वाला ही (दृशे) दर्शन करने के लिये आंखों के हितार्थ, सब प्रकार का प्रकाश धारण करता है, (इदं ज्योतिः केशी उच्यते) यह प्रत्यक्ष ज्योति केशी कहाता है। इसी प्रकार अग्नि, [ताप] जल, आकाश, भूमि और प्रकाश [आकाश] को धारण करने वाला प्रभु 'केशी' है। वह ज्योतिर्मय है।

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जब (देवासः) नाना इन्द्रियगण (वातस्य अनु ध्राजिं यन्ति) प्रबल प्राण के वेग के साथ २ अनुकूल होकर गति करते हैं तब (वात-रशनाः) वायु या प्राणमात्र का भोजन करने वाले, प्राणाभ्यासी, (मुनयः) मननशील, (पिशंगा) अति उज्ज्वल पीत वर्णों को धारण करते हैं और (यत्) जब (देवासः) वे इन्द्रियगण (अविक्षत) भीतर प्रवेश करते हैं तब वे (वातरशनाः) वायु प्राण के भोक्ता, उपजीवी नाना प्राण (मला वसते) मानो तन्द्रा, आलस्य रूप मलिन तामस रूपों को धारण करते हैं। जाग्रत् काल में वे चेतन चमकते दीपकों के तुल्य होते हैं और सोते समय वे अन्धकारमय होते हैं।

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम्।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥ ३ ॥

भा०—प्राणगण कहते हैं—(वयम्) हम (मौनेयेन) मननशील अन्तःकरण के भी स्वामी आत्मा द्वारा (उन्मदिताः) उत्तम हर्षयुक्त होकर (वातान् आतस्थिम) केवल प्राणों, वायुओं के आश्रय पर विराजते हैं। हे (मर्त्तासः) मनुष्यो ! (यूयं मर्त्तासः) आप मरणधर्मा लोग (शरीरा इत् अस्माकं अभि पश्यथ) हमारे शरीरमात्र, अर्थात् बाह्य आकृति मात्र ही को देख सकते हो। भीतरी रूप को नहीं।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत्।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥ ४ ॥

भा०—(मुनिः) मननशील, विज्ञानमय आत्मा वा मनः सत्व, (अन्तरिक्षेण) भीतरी व्यास साधन या बल से (पतति) गति करता है और (विश्वा रूपा अव चाकशत्) समस्त रूपों वा रुचिकर पदार्थों को देखता है। वह (देवस्य-देवस्य) प्रत्येक इन्द्रिय के (सौकृत्याय)

उत्तम रूप से कार्य करने के लिये उसके (सखा) समान नाम रूप वाला मित्रवत् होकर (हितः) उसमें विराजता है ।

यत्रैतदाकाशमनुविपण्णं चक्षुः पुरुषो दर्शनाय चक्षुः । अथ यो वेद इदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणम् । अथ यो वेद इदमभिव्याहराणि इति स आत्मा अभिव्याहाराय वाग् । अथ यो वेदेदं शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् । अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्यदैवं चक्षुः । स वा एता एतेन दैवेन चक्षुषा मनसा एतान् कामान् पश्यन् [रमते]। छान्दोग्य उप० अ० ८ ख० १२ ॥

यदेतम् हृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टि-र्धृतिर्मनीषा, जूति स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति । छा०
एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ॥ प्रश्न० प्र० ४ । ९ ॥

वातस्याश्वो वायोः सखाथ देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥ ५ ॥

भा०—यह (मुनिः) मननशील आत्मा वा मन (वातस्य अश्वः) वायु अर्थात् प्राण का भोक्ता, और (वायोः सखा) वायु का मित्र के तुल्य समान नाम वा स्थान वाला, प्राण आदि शब्द से कहने योग्य अथ (देव-इषितः) देवों विद्वानों और इन्द्रियों द्वारा भी चाहने योग्य, वा देव तेज, बल के देने वाले प्रभु या आत्मा से 'इषित' प्रेरित होकर (यः च पूर्वः उत अपरः) जो पूर्व या जो अपर हैं (उभौ समुद्रौ) दोनों समुद्रों, हर्षदायक स्थानों को (आ क्षेति) प्राप्त होता है । अथवा जो आत्मा स्वयं (पूर्वः उत च अपरः) स्वयं ही पूर्व और स्वयं ही अपर अर्थात् पश्चात् भी रहने वाला है । दो समुद्र कौन से हैं ? मन के पक्ष में स्वप्न और जाग्रत् । भीतर और बाहर, बाहर का पूर्व और भीतर का अपर [न-परः अपरः] स्वप्न अर्थात्

जो अपने से भिन्न नहीं। अथवा वह आत्मा स्वयं ही पूर्व अर्थात् इस शरीर धारण से पूर्व विद्यमान होता है और स्वयं ही अपर अर्थात् शरीर धारण के बाद भी रहेगा।

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन्।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥ ६ ॥

भा०—(अप्सरसां) स्त्रियों और (गन्धर्वाणां) मनुष्यों और (मृगाणां) पशुओं का (सखा) मित्र होकर (केशी विद्वान्) तेजस्वी विद्यावान् पुरुष (केतस्य) ज्ञान के (चरणे चरन्) मार्ग में विचरता हुआ (सु-आदुः) उत्तम सुख का भोक्ता और (मदिन्तमः) सबसे अधिक सुप्रसन्न और अन्यों को प्रसन्न और आनन्दित करने द्वारा होता है। अध्यात्म में—आत्मा (अप्सरसां) 'अप्स' अर्थात् रूपों में विचरण करने वाली, और (गन्धर्वाणां) गन्ध में विचरने वाली चक्षु, नासिकादि और (मृगाणां) नाना विषयों को खोजने वाली इन्द्रियों के (चरणे) संचरण-व्यापार में (चरन्) अपने कर्मफल का भोग करता हुआ (केतस्य विद्वान्) ज्ञान का ज्ञाता आत्मा (सखा) उनके ही समान चक्षु आदि नाम का धारक होकर (स्वादुः) सुख का भोक्ता और (मदिन्तमः) सबसे अधिक आनन्दयुक्त होता है। वही आत्मा (केशी) तेजोमय है।

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥ ७ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार (केशी) सूर्य (रुद्रेण सह) वायु या गर्जनयुक्त मेघ या विद्युत् के साथ (पात्रेण) पान साधन रश्मिजाल से (विषस्य अपिबत्) जल का पान करता है, और (वायुः अस्मै उप अमन्थत्) वायु इसको आलोडित करता है और (कुनन्नमा) पृथिवी की

और वेग से जाने वाली विद्युत् (पिनष्टि) जलराशि को पीस २ कर मानों बिन्दु २ करती है। उसी प्रकार (केशी) ज्योतिर्मय आत्मा (रुद्रेण सह) प्राण के साथ (पात्रेण) पान या पालन करने के आधार घटवत् इस देह से ही (विपस्य = वि-सस्य) विविध प्रकार से भोगने योग्य कर्मफलों का (अपिवत्) उपभोग करता है। (वायुः अस्मै उप अमन्थीत्) प्राण वायु मानो उसके लिये रस का निचोड़न करता है। और (कुनंनमा) ध्वनि २ पर झुकने वाली जिह्वा अर्थात् मुख उसके लिये ही (पिनष्टि) अन्न पीसता है। खाता है।

(कुनन्नमा) कुर्नं, कणं ध्वनिं कर्त्तुं नमति प्रह्वीभवति या साजिह्वा। मुखोपलक्षणमेतत्।

वायु उसके लिये श्वास-प्रश्वास द्वारा मानो रक्तांश को पुनः २ बिलोता है। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१३७]

ऋषिः सप्त ऋषय एकर्चाः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, ४, ६ अनुष्टुप्। २, ३, ५, ७ निचृदनुष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥ १॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् तेजस्वी पुरुषो! आप लोग (अवहितम्) नीचे गिरे पड़े को (उत् नयथ) ऊपर उठाओ। कैसे? जैसे रश्मिगण नीचे स्थित जल को उठा लेते हैं। हे (देवाः) उत्तम गुणवान् विद्वानो! (पुनः उत् नयथ) बार २ उठाओ। (उत) और हे (देवाः) विद्वान् लोगो! (आगः चक्रुषं) अपराध और पाप करने वाले को भी (उत् नयथ) ऊपर उठाओ! हे (देवाः) दानशील, उदार पुरुषो! बख्शने वाले (पुनः जीवयथ) मेघों के समान बार २ जीवन प्रदान करो।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥ २ ॥

भा०—(इमौ) ये (द्वौ) दो (वातौ) प्रबल वायु (वातः) वेग से बहते हैं, एक तो (आ सिन्धोः) समुद्र से और दूसरा (आ परावतः) दूर के स्थल भाग से। उन दोनों में से (अन्यः) एक तो (दक्षम् आ वातु) जल, अन्न, बल, जीवन, उत्साह प्राप्त कराता है और (अन्यः) दूसरा (यत् रपः) जो देह या देश में मल, पाप है उसको (परा वातु) दूर उड़ा लेजाता है अर्थात् समुद्र से आने वाला मानसून जल-अन्न प्राप्त कराता है। स्थल से आने वाली आंधी प्रचण्ड वात रोगों को हरती है। (२) इसी प्रकार देह में आकाश से आने वाला, भीतर को जाने वाला श्वास देह में बल जीवन देता है और बाहर छोड़ा हुआ निःश्वास हमारे शरीर के रोगकारी अंश को दूर करता है।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वात) वायो ! तू (भेषजं आ वाहि) व्याधि शान्त करने वाला बल प्रदान कर, (यत् रपः) जो रोगकारी मल हो उसको (वि वाहि) विविध प्रकार से निकाल। (त्वं) तू (विश्व-भेषजः) समस्त रोगों को दूर करने वाला, (देवानां दूतः) सब उत्तम तेजों वा गुणों, सुखों को प्राप्त कराने वाला है।

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ ४ ॥

भा०—मैं (त्वा) तुझे (शं-तातिभिः) शान्ति सुख देने वाले और (अरिष्ट-तातिभिः) अहिंसाकारी, मृत्यु-नाशक उपायों सहित (आ

अगमम्) प्राप्त होता हूं। हे रोगी ! हे मनुष्य, मैं (ते भद्रं दक्षम्) तेरे लिये कल्याणकारी सुखजनक बल और अन्नादि (आभार्षम्) प्राप्त करता हूं। और (ते यक्ष्मम्) तेरे रोग को (परा सुवामि) दूर करता हूं।

त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥ ५ ॥

भा०—(इह) इस लोक में (देवाः) ज्ञानशक्ति, देने वाले, विद्वान् धनवान् और तेजस्वी पुरुष और रश्मियें, (त्रायन्ताम्) हमारी रक्षा करें। और (मरुतां गणः त्रायताम्) वायुओं और विद्वान्, बलवान् मनुष्यों का समूह हमारी रक्षा करे। और (विश्वा भूतानि) समस्त पांचों भूत भी (त्रायन्ताम्) उसकी रक्षा करें। (यथा) जिससे (अयम्) यह (अरपाः असत्) रोग और पाप से रहित हो।

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ६ ॥

भा०—(आपः इत् वा उ) जल ही (भेषजीः) समस्त रोगों को दूर करने वाले और (अमीव-चातनीः) रोग-कारणों को नाश करने वाले हैं। (आपः सर्वस्य भेषजीः) जल सब रोगों के औषध हैं (ताः ते भेषजं कृण्वन्तु) वे तेरे लिये रोग नाशक हों।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥ ७ ॥ २५ ॥

भा०—(दश-शाखाभ्यां हस्ताभ्याम्) दस शाखाओं वाले दोनों हाथों के साथ (वाचः पुरोगवी) वाणी को आगे फेंकने वाली (जिह्वा) जीभ है। (ताभ्यां अनामयित्नुभ्याम्) उन रोगहारी दोनों हाथों से (त्वा उप स्पृशामसि) हम तुझे स्पर्श करते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१३८]

ऋषिरंग औरवः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३, ५ विराड् जगती ॥ षड्ृच सूक्तम् ॥

तव॒ त्य इ॑न्द्र स॒ख्येषु॒ वह्न॑य ऋ॒तं म॑न्वा॒ना व्य॑दर्दिरुर्व॒लम् । यत्रा॑ द॒श॒स्यन्नु॒षसो॑ रि॒णन्न॒पः कुत्सा॑य॒ मन्म॑न्न॒ह्य॑श्च दं॒सयः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान तीक्ष्ण कान्ति वाले स्वामिन् ! (त्ये) वे (वह्नयः) ज़िम्मेवारी और कर्त्तव्य को अपने ऊपर लेने वाले जन (तव सख्येषु) तेरे मित्रभावों में (ऋतम् मन्वानाः) सत्य ज्ञान का मनन करते हुए, (वलम्) घेर लेने वाले अज्ञानान्धकार के मोह को (वि अदर्दिरुः) विविध उपायों से छिन्न भिन्न कर देते हैं । (यत्र) जिस स्थिति में तू भी प्रभो ! (उषसः) कार्यों को दग्ध करने वाली शक्तियों को वा कान्तियुक्त विशोका, ऋतंभरा प्रज्ञाओं को (दशस्यन्) प्रदान करता हुआ और (अपः रिणन्) कर्म बन्धनों को दूर करता हुआ, सत्कर्म करता हुआ, (कुत्साय) स्तुति करने वाले भक्तजन के (मन्मन्) मननशील अन्तःकरण में विद्यमान (अह्यः) मेघ के तुल्य आवरण को सूर्य के समान ही (दंसयः) नष्ट करता है । (२) भौतिक संसार में (ऋतं मन्वानाः) जल का स्तम्भन करने वाले, जल ढोने वाले वायुगण 'वह्नि' हैं । वे विद्युत् या सूर्य के सम्पर्क में आकर मेघ को छिन्न भिन्न करते हैं । वही इन्द्र, विद्युत् दीप्तियां करता, जल को नीचे गिराता और मेघ का नाश करता है ।

अवा॑सृजः प्र॒स्वः॑ श्व॒ञ्चयो॑ गि॒रीनुदा॑ज उ॒स्रा अपि॑बो॒ मधु॑ प्रि॒यम् । अव॑र्धयो व॒निनो॑ अस्य॒ दंस॑सा शु॒शोच॒ सूर्य॑ ऋ॒तजा॑तया गि॒रा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (प्र-स्वः) खूब अन्नादि उत्पन्न

करने वाली शक्तियों को मेघ से जल धाराओं के तुल्य ही (अव असृजः) प्रेरित करता है । (गिरीन् अज्रयः) मेघ को तू ही प्रेरिता है, (उस्राः उत् आजः) किरणों को तू ही फेंकता है और (प्रियम् मधु अपिबः) सबको तृप्त करने वाले जल को तू ही पान कर लेता है । (अस्य वनिनः) इस जल और तेज से युक्त मेघ वा विद्युत् के (दंससा) कर्म से (अवर्धयः) प्रजा अन्नादि की वृद्धि करता है, और (ऋत-जातया गिरा) जल को जन्म देने वाली, जल को वर्षण करने वाली माध्यमिका वाग् विद्युत् की कान्ति से (सूर्यः शुशोच) सूर्य ही अति उज्ज्वल रूप में चमकता है। इसी प्रकार वह प्रभु उत्पादक शक्तियों को प्रेरित करता, मेघों को प्रेरित करता, सूर्यादि को चलाता, मधुर अन्न जल का पान कराता, और (वनिनः) भक्तों को बढ़ाता है । (अस्य दंससा) इस प्रभु के ही दर्शनीय कर्म से (सूर्यः शुशोच) सूर्य चमकता है, और इसी की (ऋत-जातया गिरा) सत्य ज्ञान के देने वाली वेदवाणी से (सूर्यः) तेजस्वी विद्वान् सूर्य के तुल्य चमकता है।

वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विददासाय प्रतिमानमार्यः ।
दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना॥३॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य (दिवः मध्ये) आकाश के मध्य में (रथम् वि अमुचत्) अपने रमणीय तेज को विविध प्रकार से छोड़ता है । वह (आर्यः) श्रेष्ठ, तेजस्वी वा सञ्चालक वायु (दासाय) सेवकवत् जलदाता मेघ को (प्रति-मानं विदत्) अपना बल प्राप्त कराता है। और (इन्द्रः) मेघ के जल को छिन्न भिन्न करने वाली विद्युत् (ऋजि-श्वना) सरल मार्ग में जाने वाले वायु सहित (चकृवान्) कार्य करता हुआ, (पिप्रोः) जल से भरे (मायिनः) कुहरे की सीमा वाले (असुरस्य) प्रकाश से रहित वा प्राणिमात्र को प्राण देने वाले मेघ के (दृढानि) दृढ़, कठिन हुए जलांशों को (वि आस्यत्) विविध प्रकार

से भूमि पर फेंकता है। इसी प्रकार, (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष, (दिवः मध्ये रथं अमुचत्) पृथिवी के बीच अपना रथ, या वेगवान् अश्व छोड़े और (दासाय प्रतिमानम् अविदत्) नाशकारी दुष्ट शत्रु के लिये पूरा प्रतिकार, प्रतिद्वन्द्वी बल का प्रयोग करे, (ऋजिश्वना चक्रवान्) ऋजु, उत्तम रीति से सधे अश्वों वाले सैन्य से विजय करता हुआ (मायिनः पिप्रोः असुरस्य) मायावी, बली शत्रु के (दृढानि वि आस्यन्) दृढ़ दुर्गों को भी तोड़े वा (ऋजिश्वना पिप्रोः दृढानि चक्रवान्) सधे सैन्य से शत्रु के दृढ़ स्थानों को नाश करता हुआ उसको विविध प्रकार से नाश करे।

अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधींरदेवाँ अमृणदयास्यः।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥ ४ ॥

भा०—वह राजा (धृषितः) शत्रु को पराजित करने वाला (अनाधृष्टानि) अपीड़ित, अपराजित शत्रु-बलों को (वि आस्यत्) विशेष रूप से पीड़ित करे। (अदेवान्) कर न देने वाले (निधीन्) बल, धन के स्वामियों को (अयास्यः) स्वयं अनथक परिश्रमी होकर (अमृणत्) नाश करे। (मासा इव सूर्यः) अपने तेज से सूर्य जिस प्रकार जल को ले लेता है उसी प्रकार वह (पुर्यम्) शत्रु के पुर, नगर दुर्गादि का समस्त धन प्राप्त करे, (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, (विरुक्मता) विशेष दीप्तियुक्त शस्त्रादि से (शत्रून् अशृणात्) शत्रुओं को नाश करे।

अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते।
इन्द्रस्य वज्रादविभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥ ५ ॥

भा०—वह (विभ्वा) विविध प्रकार से उत्पन्न होने वाले (विभिन्दता)

शत्रु पक्ष को भेदन करने वाले भेद उपाय से (अयुद्ध-सेनः) बिना सेना लड़ाये ही (वृत्र-हा) शत्रु का नाश करके (तुज्यानि तेजते) अपने मारने योग्य शत्रुओं को कम करे। और (इन्द्रस्य वज्रात्) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् पुरुष के (अभि श्नथः) सब ओर मार करने वाले 'वज्र', शत्रुवर्जक बल, सैन्य, शस्त्र और पराक्रम से (अबिभेद्) सब कोई भय खावें, और (शुन्ध्यू वयः) शत्रु रूप कण्टकों को साफ करने वाली सेना (प्र अक्रामत्) आगे बढ़े। और (उषाः अनः प्र अजहात्) शत्रु संतापक सैन्य अपना रथ आगे बढ़ावे।

एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम्।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे सेनापते! स्वामिन्! (एता) ये (त्या) नाना (केवला) केवल, विशुद्ध (ते) तेरे (श्रुत्या) श्रवण करने योग्य क° हैं (यत्) कि तू (एकः) एक अकेला अद्वितीय होकर भी (एकम् अयज्ञम्) दान, सत्संगादि से रहित, न कर देने, न सन्धि करने वाले एक २ शत्रु को (अकृणोः) विनाश कर। (अधि द्यवि) पृथिवी पर (मासाम् विधानम्) मासों का विधान (अदधाः) कर, वर्ष के समस्त मासों की नियत व्यवस्था कर। और (विभिन्नं प्रधिम्) विच्छिन्न या टूटे हुए चक्र को भी (पिता) प्रजा का पालक जन (त्वया भरति) तेरे बल से धारण करता और चलाता है। (२) इसी प्रकार परमेश्वर के ये महान् कार्य श्रुति, वेद द्वारा विहित हैं कि वह (एकः) एक अद्वितीय होकर भी (अयज्ञम्) असम्बद्ध जगत् को (एकम् अकृणोः) एक, सुसम्बद्ध करता है। वह (द्यवि) आकाश में (मासां विधानम् अदधाः) मासों के कर्त्ता सूर्य और चन्द्र को बनाता है, धारण करता है, उसके बल से ही सूर्य (भिन्नं)

भिन्न २ (प्रधिम्) क्रान्तिवृत्त पर (वि भरति = विहरति) विचरता है । इसी से अयन, ऋतु आदि करता है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[१३९]

ऋषिः विश्वावसुर्देवगन्धर्वः ॥ देवता—१—३ सविता । ४—६ विश्वावसुः ॥ छन्दः—१, २, ४—६ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्ऋचं सूक्तम् ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥१॥

भा०—(सूर्य-रश्मिः) सूर्य की किरणों वाला, (हरि-केशः) हरित या पीत वर्ण की रश्मियों को केशों के तुल्य धारण करने वाला प्रभात (सविता) सबको जगाने वाला, सबको प्रेरित करने वाला, (अजस्रं ज्योतिः उत् अयान्) नाश से रहित तेज को ऊपर उठाता है । सूर्य का वह प्रभातिक प्रकाश जीवन देने वाला है । उसी प्रकार परमेश्वर जिसके सूर्यादि रश्मिवत् हैं और वायु आदि केश तुल्य है वह सर्वोत्पादक प्रभु अविनाशी, सूर्यादि जीवनप्रद ज्योतियों को उगाता है, (तस्य प्रसवे) उसके उत्तम शासन में (विद्वान् पूषा) ज्ञानवान्, सर्वपोषक (विश्वा भुवनानि गोपाः) समस्त भुवनों, लोकों और प्राणियों की रक्षा करने वाला विद्वान् भी सूर्य के समान (संपश्यन्) सम्यक् रीति से ज्ञान दर्शन करता कराता हुआ (याति) प्रयाण करता है ।

नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (दिवः मध्ये आस्ते) मध्यान्ह काल में आकाश के बीच विराजता है, (रोदसी अन्तरिक्षम् आपप्रिवान्) आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को पूर्ण करता है, (सः विश्वाचीः घृता-

चीः अभिचष्टे) वह तेजोमय समस्त दिशाओं था उषाओं को भी प्रकाशित करता है उसी प्रकार (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों को देखने वाला, सर्वद्रष्टा, सब मनुष्यों को सत्योपदेश करने वाला विद्वान् जन (वृषः) वह (दिवः मध्ये) ज्ञानमय क्षेत्र के बीच (आस्ते) विराजता है। और (रोदसी) स्त्री पुरुषों को (अन्तरिक्षम्) भीतरी अन्तःकरण को (आपप्रिवान्) सब प्रकार से ज्ञान से पूर्ण करता है। (सः) वह (विश्वाचः) सर्वत्र व्यापक (घृताचीः) तेज स्नेह से युक्त, ज्ञानमयी शक्तियों, और ज्ञान-वाणियों का दर्शन और उपदेश करता है। (अन्तरा पूर्वम् अपरं च) पूर्व से पश्चिम तक (केतुम्) ज्ञान का प्रसार करता है।

रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ३ ॥

भा०—(रायः बुध्नः) ऐश्वर्य का आश्रय, (वसूनां संगमनः) वसी प्रजाओं को एक स्थान पर मिलाने वाला, (शचीभिः) शक्तियुक्त, वाणियों से, किरणों से सूर्य के समान (विश्वा रूपा) समस्त प्रकार के रूपों, रुचिकर पदार्थों को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता है। (देवः इव सविता) तेजस्वी सूर्य के समान सबको सन्मार्ग में प्रेरणा करने वाला, (सत्य-धर्मा) सत्य को धारण करने वाला, सत्यधर्मों, व्रतों और नियमों का पालन करने वाला, (इन्द्रः न) मेघों के विदारक विद्युत् या सूर्य के तुल्य हो, (धनानां समरे) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने के कार्य में (तस्थौ) स्थित होता है।

विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन्।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसां परि सूर्यस्य परिधीँरपश्यत् ॥४॥

भा०—हे (सोम) विद्वन्! (विश्वावसुम्) समस्त लोकों को बसाने वाले, सब में बसने वाले, (गन्धर्वम्) वाणी, ध्वनि, गर्जना को

वा पृथिवी को धारण करने वाले सूर्य की ओर जिस प्रकार (आपः ऋतेन वि आयन्) जल के परमाणु उसके तेज के बल से जाते हैंउसी प्रकार (तत्) उस परम प्रभु को (ददृशुषीः आपः) साक्षात् करने वाले आप्त जन (ऋतेन) सत्य ज्ञान के बल से उसे ही (वि आयन्) विविध उपायों से प्राप्त होते हैं। और जिस प्रकार (ररहाणः इन्द्रः तत् अनु अवैत्) वेग से गति करने वाला वायु उस सूर्य के ही अनुकूल चलता है और (सूर्यस्य परि आसाम् परिधीन् अपश्यत्) सूर्य के चारों ओर इन जलों के परिधियों, परिमण्डलों को दिखाता है उसी प्रकार (ररहाणः इन्द्रः) समस्त भोग विलासादि को त्यागने वाला आत्मा, सर्वस्व त्यागी होकर (तत् अनु अवैत्) उसी का अनुसरण करता, उसी का ज्ञान करता है और (आसाम् परि) इन समस्त प्रजाओं के भी ऊपर (सूर्यस्य परिधीन्) तू उस सूर्य, सर्वसञ्चालक प्रभु के धारक बलों का (अपश्यत्) दर्शन करता है।

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः॥५॥

भा०—(दिव्यः गन्धर्वः) ज्ञानमय, समस्त ज्ञान-वाणियों को धारण करने वाला, प्रभु परमेश्वर (रजसः विमानः) समस्त लोकों को विशेष रूप से जानने और बनाने वाला है। वह (नः तत् गृणातु) हमें उस परम सत्य-ज्ञान का उपदेश करे (यत् वा सत्यम्) जो सत्य है और (यत् न विद्म) जिसको हम नहीं जानते। वही हमारी (धियः हिन्वानः) बुद्धियों को प्रेरित करता है। प्रभो! वह ही तू (नः धियः इत् अव्याः) हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों की रक्षा कर।

सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम्। प्रासां
गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम्॥६॥२७॥

भा०—(गन्धर्वः) वेदवाणी का धारण करने वाला विद्वान् (आसाम्) इन (नदीनाम्) ज्ञान का उपदेश करने वाली वाणियों के (चरणे) ऊहापोह, या विचार-विस्तार में ही (सस्निम्) उस शुद्ध प्रभु के रूप को (अविन्दत्) प्राप्त कर लेता है, और (अश्म-व्रजानां) व्यापक प्रभु को लक्ष्य करके जाने वाली (आसाम्) इन वाणियों के नाना (दुरः अप आवृणोत्) द्वारों को खोलता है। और वह इनके (अमृतानि) अमृत, अविनाशी नित्य ज्ञानों को (प्र अवोचत्) अच्छी प्रकार प्रवचन करता है। वह (इन्द्रः) सत्य ज्ञान का दर्शन करने वाला ही (अहीनाम्) संमुख आये तत्वों के (दक्षं) बल या स्वरूप को भलीभांति जान लेता है। मेघ सूर्यादि पक्ष में—सूर्य इव ध्वनि करती जल-धाराओं के चलाने में सबको स्नान कराने वाले मेघ को प्राप्त करता है, मेघ में प्राप्त जल के द्वार खोल देता है, जलों को नीचे बहा देता है। इन्द्रः बिजुली, मेघों के (दक्षं) जल को (परि जानात्) सब ओर उत्पन्न करता है।

[१४०]

ऋषिरग्निः पावकः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृत्पंक्तिः । २ भुरिक् पंक्तिः । ५ संस्तारपंक्तिः ॥ ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥

अग्ने॒ तव॒ श्रवो॒ वयो॒ महि॑ भ्राजन्ते अ॒र्चयो॑ विभावसो ।
बृह॑द्भानो॒ शव॑सा॒ वाज॑मु॒क्थ्यं१॒॑ दधा॑सि दा॒शुषे॑ कवे ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! प्रभो! (तव वयः) तेरा बल, और ज्ञान (श्रवः) श्रवण करने योग्य, और (महि) सर्वश्रेष्ठ है। हे (विभावसो) विशेष कान्ति रूप धन वाले! प्रकाशस्वरूप! (तव अर्चयः भ्राजन्ते) तेरी कान्तियें चमक रही हैं। हे (बृहद्-भानो) महान् तेज वाले! हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् विद्वन्! तू (शवसा)

बल से युक्त (उक्थ्यम्) स्तुत्य (वाजम्) ज्ञान और ऐश्वर्य (दाशुषे दधासि) दानशील को प्रदान करता है।

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥

भा०—हे अग्ने ! तू (पावक-वर्चाः) पवित्र करने वाले बल और तेज वाला; (शुक्र-वर्चाः) शुद्ध कान्तियुक्त तेज वाला होकर (भानुना) दीप्ति से (उत् इयर्षि) उत्तम पद को प्राप्त है। (पुत्रः मातरा विचरन् उप) पुत्र जिस प्रकार माता पिताओं की सेवा करता हुआ उनको स्नेह करता, उनको प्राप्त होता, उनकी रक्षा करता, उनको पालता है, उसी प्रकार तू भी (पुत्रः) बहुत से जीवों, लोकों, की रक्षा करने वाला होकर (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (पृणक्षि) पालता और पूर्ण करता है।

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों और लोकों को जानने हारे ! हे समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (ऊर्जः नपात्) बलों और अन्नों को कभी नष्ट नहीं होने देने वाला है। तू (सु-शस्तिभिः धीतिभिः) उत्तम शासनों और उत्तम कर्मों से (हितः) सर्वहितकारी, सर्वदाता होकर (मन्दस्व) स्वयं प्रसन्न तृप्त हो और को भी पूर्ण काम कर। (भूरि-वर्पसः) नाना रूपों वाले, और (चित्र-ऊतयः) अद्भुत २ शक्तियों, ज्ञानों रक्षादि वाले, (वाम-जाताः) उत्तम रूप से प्रसिद्ध, जन (त्वे इषः) तेरे में ही अपनी नाना इच्छाओं और कामनाओं को (संदधुः) स्थापित करते हैं। (२) अग्नि के पक्ष में—जन तुझ में ही

समस्त अन्नों की आहुति करते हैं। वे अन्न (भूरि-वर्पसः) नाना प्रकार के, (चित्र-ऊतयः) अद्भुत रूप से देह की रक्षा करने वाले और (वाम-जाताः) उत्तम २ गुणों से युक्त हैं।

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू नाना (जन्तुभिः) उत्पन्न होने वाले लोकों और प्राणियों से (इरज्यन्) ऐश्वर्यवान् होता हुआ, हे (अमर्त्य) अविनाशी! तू (अस्मे रायः प्रथयस्व) हमारे लिये नाना ऐश्वर्य विस्तृत कर। (सः) वह तू (दर्शतस्य वपुषः विराजसि) दर्शनीय शरीर या उत्पादक सामर्थ्य से विशेष रूप से शोभा दे रहा है। और (सानसिं क्रतुम्) नाना सुख कर्म फलादि देने वाले यज्ञ-कर्म को (पृणक्षि) पालन और पूर्ण कर रहा है।

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥

भा०—(अध्वरस्य इष्कर्त्तारम्) यज्ञ को अच्छी प्रकार करने वाले! (महः राधसः) बड़े भारी ऐश्वर्य के (क्षयन्तं) स्वामी (प्र-चेतसम्) बड़े ज्ञानी परम पुरुष की हम स्तुति करें। वह हमें (वामस्य) सेवन योग्य उत्तम धन के (सु-भगाम्) सुख सौभाग्यसम्पन्न (रातिम्) दान और (महीम् इषम्) बड़ी भारी अन्नादि समृद्धि और (सानसिं रयिम्) सुख देने वाला, वा परस्पर बांट कर सेवने योग्य ऐश्वर्य (दधासि) देता है।

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(जनाः) मनुष्य (ऋतवानं) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार वाले, तेजस्वी (महिषं) बहुत बड़े दानी, (विश्वदर्शतम्) समस्त ज्ञानों को जानने वाले, सर्वानुभवी, सर्वज्ञ, (अग्निं) ज्ञानी तेजस्वी पुरुष को (सुम्नायः पुरः दधिरे) सुख और उत्तम ज्ञान के लिये अपने समक्ष स्थापित करते हैं। हे प्रभो ! विद्वन् ! (मानुषा युगा) मनुष्यों के नाना जोड़े, स्त्री पुरुष, (श्रुत् कर्णं) श्रवणशील कर्णों वाले, (सुप्रथस्तमं) अति विख्यात (त्वा) तुझको (दैव्यं) सब मनुष्यों का हितकारी जान कर (गिरा) वाणी से स्तुति करते हैं। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[१४१]

ऋषिरग्निस्तापसः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३, ६ विराडनुष्टुप् । ४, ५ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ्नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तेजस्विन् ! तू (इह नः अच्छ वद) तू हमारे प्रति उपदेश कर। (नः प्रत्यङ्) हमारे प्रति प्राप्त होकर (सुमनाः भव) उत्तम चित्त वाला हो। अथवा तू (सुमनाः नः प्रत्यङ् भव) शुभ चित्त और ज्ञान वाला होकर हमारे प्रति आ। हे (विशः पते) प्रजा के पालक प्रभो ! (नः प्र यच्छ) तू हमें खूब दे। (त्वं नः धनदाः असि) तू हमें धन देने हारा है।

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥ २ ॥

भा०—(अर्यमा नः प्र यच्छतु) न्यायकारी जन हमें सत्य न्याय प्रदान करे। (भगः) ऐश्वर्यवान् हमें (प्र) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे।

(बृहस्पतिः) बड़े राज्य और ज्ञान का स्वामी हमें (प्र) राज्य और ज्ञान दे। (देवाः) तेजस्वी जन (उत) और (सूनृता देवी) उत्तम अन्न जल और सत्य वचन से युक्त दानशील विदुषी और भूमि हमें (रायः) देने योग्य, प्रकाश, ज्ञान, अन्न, जल, सत्य वचन (नः प्रदधातु) हमें प्रदान करें।

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ३ ॥

भा०—हम (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (अवसे) ज्ञान, वृद्धि, रक्षा, स्नेह, आत्मसुख के लिये, (सोमं राजानं) राजावत् सर्व जगत् के शासक परमेश्वर, (अग्नि) ज्ञान-प्रकाशक विद्वान् अग्रनेता को, (आदित्यान्) सूर्य की किरणोंवत् आदान प्रदान करने वाले तेजस्वी पुरुषों को, (विष्णुः) व्यापक प्रभु को (सूर्यं) सबको चलाने वाले, (ब्रह्माणं) वेदों के ज्ञाता को (बृहस्पतिम्) और बड़े धन, बल, ज्ञान के स्वामी इन २ को (हवामहे) हम प्रार्थना करते हैं।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः सङ्गत्यां सुमना असत् ॥ ४ ॥

भा०—(सु-हवा) उत्तम नाम वाले (इन्द्र-वायू) सूर्य वायुवत् ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न और (बृहस्पतिम्) बड़े राज्य के पालक जनों को (इह हवामहे) हम इस राष्ट्र में आदरपूर्वक बुलावें (यथा नः) जिससे हमारे (सर्वः इत् जनः) सभी जन (संगत्यां सुमनाः असत्) संगति में उत्तम चित्त वाले हों।

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ५ ॥

भा०—(अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुओं और प्रजाओं को नियन्त्रण करने वाले, (बृहस्पतिं) बड़े बल-पालक (इन्द्रं) शत्रुहन्ता तेजस्वी और (वातं) वायुवत् प्रबल वेगवान्, (विष्णुं) व्यापक सामर्थ्यवान्, (सरस्वतीं) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी और (वाजिनं सवितारम्) ज्ञान, बलैश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक को तू (दानाय चोदय) उत्तम २ ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये प्रेरित कर, उनकी स्तुति और प्रार्थना कर।

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्रणी पुरुष ! प्रभो ! तू (अग्निभिः) अग्नियों के समान ज्ञान प्रकाश के करने वाले विद्वानों से (नः ब्रह्मयज्ञं वर्धय) हमारे वेद ज्ञान और यज्ञ, परस्पर सत्संग, और दानशीलता का बढ़ा। (त्वं) तू (नः) हमें (देव-तातये) विद्वानों के हितार्थ (रायः दानाय) नाना धन देने के लिये (चोदय) प्रेरित किया कर। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[१४२]

ऋषिः शार्ङ्गाः। १, २ जरिता। ३, ४ द्रोणः। ५, ६ सारिसृक्कः। ७, ८ स्तम्बमित्रः अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृज्जगती। ३, ४, ६ त्रिष्टुप्। ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्। ७ निचृदनुष्टुप्। ८ अनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्यन्यदस्त्याप्यम्।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! स्वप्रकाश ! प्रत्येक देह में व्यापक, अग्निस्वरूप प्रभो ! (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् (त्वे अपि अभूत) तेरे में ही 'अप्यय' अर्थात् मग्न होकर एकीभाव प्राप्त करे।

हे (सहसः सूनो) बल के उत्पादक! सर्वशक्तिमन्! (नहि अन्यत् आप्यम् अस्ति) और कुछ भी नहीं पाना है। या और इससे अधिक दूसरी बन्धुता नहीं है (ते) तेरा दिया (भद्रं शर्म) कल्याण का जनक सुख ही (त्रि-वरूथं) तीनों दुःखों से बचाने वाला, तीनों तापों का वारक, तिमंज़िले मकान के समान (अस्ति) है। तू (हिंसानाम्) हिंसकों के (दिद्युम्) चमकते शस्त्र या क्रोध को (आरे अपाकृधि) हम से दूर कर अथवा (हिंसानाम्) मारे जाने वाले हम प्राणियों से अपने चम-चमाते क्रोध को दूर कर।

प्रवत् ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे। प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपा इव त्मना ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश आत्मन्! (पितू-यतः) अन्न या समय के समान अंकुरित होने वाले (ते) तेरा (जनिमा) प्रादुर्भाव या जन्म (प्रवत्) उत्तम रीति से वा आगे की ओर बढ़ने वाला होता है। तू (साची इव) व्यापक, सहयोगी के समान ही (विश्वा भुवनानि) समस्त उन देहों वा प्राणों को (नि ऋञ्जसे) सर्वथा वश करता है। (सप्तयः) आगे २ बढ़ने वाले ये इन्द्रियगण, (नः) हमें (धिया) नाना प्रकार के ज्ञान (प्रप्र सनिषन्त) बराबर देते रहते हैं, और (त्मना) अपने आत्म-सामर्थ्य से ही (पशुपाः इव) पशु-पालक के समान (पुरः) आगे २ विचरते हैं। अथवा—(नः धियः सप्तयः) हमारी बुद्धियां या ज्ञानेन्द्रियां अश्वों के तुल्य पशुपालवत् आगे २ (चरन्ति) विषयों का भोग करती हैं।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ गीता॥

उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद् बहोरग्न उलपस्य स्वधावः। उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार (बहोः उलपस्य बप्सत्) अग्नि बहुत से तृणों को खाजाता है, उनको भस्म कर देता है उसी प्रकार हे (अग्ने) प्रकाश-स्वरूप! हे ज्ञानवन्! आत्मन्! हे (स्वधावः) स्व, देह को धारण करने वाली शक्ति से युक्त! तू (बहोः) बहुत से (उलपस्य) तृण-वनस्पति वा अन्नवत् कर्मफल को (बप्सत्) भोग करता हुआ, (उ) भी (परि वृणक्षि) उसको शेष कर देता है, (उत) और (उर्वराणाम्) उर्वरा उपजाऊ भूमियों में से बहुतसी (खिल्याः भवन्ति) विहार योग्य या ऊसर हो जाती हैं, हम (ते तविषीं हेतिम्) तेरी बलवती शक्ति को (मा चुक्रुधाम) कोपित न करें।

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम॥ ४॥

भा०—(यत्) जब तू (उद्वतः निवतः) ऊंचे और नीचे प्रदेशों को (बप्सत्) चमकाता अग्नि की तरह से जलाता या खाता हुआ (यासि) जाता है तब तू (प्रगर्धिनी सेना इव पृथक् एषि) पृथक् २ दस्ता बना कर राष्ट्र विजय की लोलुप सेना के समान आता है, (यदा वातः ते शोचिः अनुवाति) जब तेरी ज्वाला के अनुकूल वायु बहता है, (वप्ता इव श्मश्रु भूम प्र वपसि) वालों को काटने वाले नाई के समान बहुतसा भूमि का भाग साफ़ कर देता है। इसी प्रकार अग्नि के तुल्य आत्मा, (२) जीव भी ऊंचे नीचे लोकों में बहुत सौभाग्य करता हुआ जाता है और लोलुप इन्द्रियों की टुकड़ी सेना लिये हुए इस लोक में आता है। जब उसकी जाठराग्नि वा तृष्णानुरूप प्राण चलते हैं (वप्ता इव) बीज वपन करने वाले कृषक के समान (श्मश्रुः) इस देह में आश्रित (भूम) कर्म भूमि में (प्र वपसि) बहुतसी वासनाओं को बोता है और (वप्ता इव) काटने वाले के तुल्य इस देह में (भूम प्र वपसि) बहुत २ बहुतसा कर्मफल रूप धान्य काट लेता है।

प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) और जब हे (अग्ने) स्वप्रकाश आत्मन् ! तू (बाहू अनु मर्मृजानः) अपनी बाहुओं को बार २ स्पर्श करते हुए वीरों के तुल्य, अपनी शक्तियों को भी तीक्ष्ण करता हुआ (न्यङ्) नीचे आता हुआ (उत्तानाम् भूमिम् अनु एषि) उत्तान भूमि की ओर आता है । तब (अस्य श्रेणयः) इसकी अनेक सेना की पंक्तियों के तुल्य पंक्तियां (प्रति ददृश्रे) प्रत्येक शरीर में दीख रही हैं । (एकं नियानं बहवो रथासः) एक के जाते हुए जिस प्रकार पीछे बहुत से रथारोही जाते हैं उसी प्रकार एक आत्मा के विचरते बहुत से रमण साधन सूक्ष्म इन्द्रियांश उसके साथ जाते हैं । जीव की उत्पन्न होने की भूमि मातृगर्भ है ।

उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते शुष्माः) तेरे बल, तेज अग्नि की ज्वालाओं के समान (उत् जिहताम्) ऊपर को उठें । (ते अर्चिः उत्) तेरी दीप्ति आदर और मान भी उन्नत हों । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (शशमानस्य ते) उत् क्रमण करते हुए, वा आदर और स्तुति को प्राप्त होते हुए तेरे (वाजाः उत्) बल, वेग, ज्ञान और ऐश्वर्य भी उन्नत हों । तू (वर्धमानः उत् श्वञ्चस्व) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ऊपर को उठ, और (नि नम) खूब विनयशील होकर नीचे झुक (त्वा) तुझे (अद्य) आज (विश्वे वसवः) समस्त वसुगण, गुरु को शिष्य, गृहस्थ को अतिथि आदि और राजा को प्रजागण सूर्य या अग्नि को किरणों के तुल्य (आ सदन्तु) प्राप्त हों ।

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।

अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ॥ ७ ॥

भा०—(इदं अपां नि अयनम्) यह भूमि व देह, भव में और लोक में इन्द्रियों, आप्त जनों प्रजाओं का नित्य आने का स्थान हो, और यह (समुद्रस्य निवेशनम्) ऊपर समुद्र, या मेघ का स्थान बड़ा भारी आकाश है। हे तेजस्विन्! अग्निवत्! तू (इतः अन्यं पन्थाम् कृणुष्व) इससे दूसरा मार्ग भी बता (तेन वशान् अनु याहि) उस मार्ग से इच्छाओं के अनुसार गमन कर ।

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।

ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥ ८ ॥ ३० ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (ते आ-अयने) आने और रहने के स्थानों में चारों ओर और (परा अयने) उस स्थान के दूर भी (दूर्वाः) उत्तम २ दूबें और (पुष्पिणीः) फूलवाली नाना लताएं तथा पौधे भी (रोहन्तु) उगे हों। और (ह्रदाः च) नाना जलाशय हों और उनमें (पुण्डरीकाणि) नाना कमल हों। (इमे) ये (गृहाः) गृह, एवं गृह के निवासी जन स्त्री पुत्रादि (समुद्रस्य) उमड़ते हर्ष और आनन्द एवं काम्य सुखों के स्थान हों। कामो हि समुद्रः। नहि कामस्यान्तोस्ति न समुद्रस्य। कौ०। इति त्रिंशो वर्गः। इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः

[१४३]

ऋषिः अत्रिः सांख्यः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—५ अनुष्टुप्। ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।

कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) व्यापक गुण वाले प्रधान और परम पुरुष! आप दोनों! (त्यं चित् अत्रिम्) उस अत्रि अर्थात् नाना कर्मफलों के भोक्ता वा त्रिविध तापों से निवृत्त, (ऋत-जुरम्) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने वाले जन को (अर्थं यातवे अश्वं न) प्राप्तव्य स्थान पर जाने के लिये अश्व के तुल्य, सुदृढ़, बलवान्, पुनः हरा-भरा (कृणुथः) करते हो। (यदि पुनः) और (कक्षीवन्तं) उत्तम दृष्टियों वाले और उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (रथं न) रथ के समान (नवं कृणुथः) नया बना देते हो।

अत्रिः—अत्रैव तृतीयम् ऋच्छतेत्युचुः। निरु० १। ३। ५॥ प्रधान-पुरुष इन दो से तीसरा कर्मफल भोक्ता 'अत्रि' है।

कक्षीवान्—कक्ष्यावान्। निरु० ६। ३। १॥ कक्ष्याः प्रकाशयन्ति कर्माणि।

त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः॥ २॥

भा०—(यम्) जिस (वाजिनं) वेगवान्, (अत्रिम्) तीसरे वा कर्मफलों के भोक्ता जीव को (अश्वं न) अश्व के समान (अरेणवः) अहिंसनीय प्रबल प्राणों ने (अत्नत) बांधा है, उस (यविष्ठम्) बलशाली जीव को हे प्रकृति और पुरुष आप दोनों (आरजः) इस लोक के निमित्त (ग्रन्थिं न) गांठ के समान (वि स्यतम्) विशेष रूप से खोल दो। उसे मुक्ति प्रदान करो।

नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे॥ ३॥

भा०—हे (नरा) उत्तम मार्ग से लेजाने वाले! हे (दंसिष्ठौ) उत्तम कर्म करने हारो! आप दोनों (अत्रये शुभ्राः धियः सिसासतम्)

तीनों दुःखों से रहित के लिये उत्तम २ बुद्धियां और कर्मों का माता पितावत् ज्ञानोपदेश द्वारा प्रदान करो। (अथ हि) और (वाम्) आप दोनों के प्रति (पुनः) फिर भी (दिवः) ज्ञानप्रकाश के (वि-द्यम्मे) विशेष रूप से उपदेश करने के लिये मेरी (स्तोमः न) यह स्तुति या प्रार्थना है कि आप बार २ मुझे उपदेश देते रहा करें।

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥ ४ ॥

भा०—हे (सु-राधसा अश्विना) उत्तम रीति से आराधना करने योग्य एवं उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी, प्रधान और पुरुष (वाम्) आप दोनों का (चिते) चेतनावान् इस जीव के उपकार के लिये (तत् सु-मतिः रातिः) वह शुभ ज्ञानयुक्त दान है। (यत्) जिससे आप दोनों (नरा) विश्व के चालक होकर (पृथौ) बड़े भारी, (समने) ज्ञानयुक्त (सदने) देह वा लोक में (नः पर्षथः) हमें पालन वा पूर्ण करते हो, हमारी रक्षा करते हो।

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम्।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यशील! (युवम्) आप दोनों (रजसः समुद्रे) रजोगुण के समुद्र में (ईङ्खितम्) डोलते हुए, इधर उधर गोते खाते हुए (भुज्युम्) भोक्ता इस जीव को (पतत्रिभिः) नाना गमन साधनों वा प्राणों, देहों से, (सातये) इष्ट लाभ के लिये (अच्छ पारे कृतम्) उत्तम रीति से पार करो।

आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा।
समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसा) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामि जनो ! (वां) आप दोनों (सुम्नैः) नाना सुखों वा सुख से अभ्यास करने योग्य उपदेशों से (शंयू इव) शान्तिदायक माता पिता के तुल्य (मंहिष्ठा) हमें ज्ञान शान्ति आदि देने वाले हो। हे (नरा) उत्तम २ पदार्थ प्राप्त करने वालो ! आप दोनों (पिप्युषीः इषः उत्सं न) खूब बढ़ती जल वृष्टियां या जलधाराएं जैसे कूप वा झरने को प्राप्त होती हैं वा उत्तम दुग्ध जैसे स्तनों को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (अस्मे) हमारे लिये (पिप्युषीः इषः संभृतम्) वृद्धिदायक अन्न, जल और नाना कामनाएं प्राप्त कराओ। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१४४]

ऋषिः सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृद्गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री । २ आर्ची स्वराड् बृहती । ५ सतो-बृहती । ६ निचृत् पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते ।
दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् वा प्रभो ! (अयं हि अमर्त्यः) यह न मरने वाला, अजर, अमर (इन्दुः) तेजःस्वरूप, (दक्षः) बल और ज्ञान से सम्पन्न, समस्त पापों को अग्नि के तुल्य भस्म करने वाला, (विश्व-आयुः) सब में प्राप्त, एवं सबको जीवन देने वाला (अत्यः न पत्यते) अश्व के तुल्य सबको पार करके ऐश्वर्य से (ते वेधसे) तुझ कर्म करने वाले के लिये (पत्यते) विराजता है।

अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥ २ ॥

भा०—(अयम्) यह (अस्मासु) हम में (काव्यः) कवियों, क्रान्तदर्शी विद्वानों द्वारा वर्णित, उपदिष्ट (ऋभुः) महान् सामर्थ्यवान्, बड़े तेज से चमकने वाला, सत्य के बल से दीप्तिमान्, (दाश्वते वज्रः) अपने को समर्पित कर देने वाले जन के लिये वज्र के तुल्य उसके सब बाधक कारणों को दूर करने वाला है। (अयम्) यह (ऊर्ध्व-कृशनम्) उत्तम पद की ओर तीक्ष्णता से जाने वाले अग्नि के तुल्य तेजस्वी (मदम्) स्तुति कर्त्ता को (बिभर्त्ति) धारता और पालता है और वह (ऋभुः न) बड़े धनवान्, ज्ञानी वा तेजस्वी के समान (कृत्व्यं) कर्म करने वाले (मदम्) हर्षयुक्त जन के समान कर्मण्य पुरुष को हर्ष प्रदान करता है।

घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः।
अव दीधेदहीशुवः ॥ ३ ॥

भा०—वह (श्येनाय) प्रशंसनीय आचार वाले (कृत्वने) कर्म करने वाले पुरुष के उपकार के लिये (घृषुः) अति दीप्तयुक्त होकर (आसु स्वासु) इन अपनी ही वा इन आनन्दप्रद नाड़ियों में, प्रजाओं में राजा के तुल्य (वंसगः) सेवनीय सुन्दर रीति से व्याप्त होकर (अहीशुवः) अति उत्तम व्यापक शक्तियों वा प्राणों को (अवदीधेत्) चमकाता है।

यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत्।
शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः ॥ ४ ॥

भा०—(श्येनस्य पुत्रः) उत्तम, प्रशंसनीय गति वाले गुरु का अपने इन्द्रिय-सामर्थ्यों की रक्षा करने वाला, जितेन्द्रिय शिष्य (शत-चक्रं) सौ वर्ष की आयु करने वाले वीर्य रूप (यं) जिस सोम को (आभरत्) धारण करता है और (यः) जो (अह्यः) कभी नाश न होने वाला, (वर्त्तनिः) मार्ग के तुल्य आचरणीय है।

यं ते॑ श्ये॒नश्चारु॑मवृ॒कं प॒दाभ॑रदरु॒णं मा॒नमन्ध॑सः ।
ए॒ना वयो॒ वि ता॒र्यायु॑र्जी॒वसे॑ ए॒ना जा॑गार ब॒न्धुता॑ ॥ ५ ॥

भा०—(श्येनः) ज्ञानी, सदाचारी, उत्तम गति से जाने वाला पुरुष (चारुम्) सुन्दर उत्तम आचरण करने योग्य, (अवृकम्) अदुःख दायी, सुखप्रद को (पदा) ज्ञानपूर्व आचरण द्वारा (अन्धसः) अन्न के (अरुणं मानम्) तेजोयुक्त देह के निर्माण करने वाले उत्पादक वीर्य रूप (यं) जिस अंश को (आ अभरत्) धारण करता है, (एना) इससे ही (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (वयः) बल और (आयुः वि तारि) आयु प्राप्त होता है, और (एना) इस वीर्य द्वारा ही (बन्धुता जागार) बन्धुता, नाना सम्बन्धी जन जागृत होते हैं।

ए॒वा तदिन्द्र॒ इन्दु॑ना दे॒वेषु॑ चिद्धारयाते॒ महि॒ त्यजः॑ ।
क्रत्वा॒ वयो॒ वि ता॒र्यायुः॑ सुक्रतो॒ क्रत्वा॒यम॒स्मदासु॑तः ॥६।२॥

भा०—(इन्दुना) इस दीप्तियुक्त वीर्य के द्वारा ही (इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष (तत् महि त्यजः चित्) उस बड़े भारी बल और धन पुत्र आदि को (धारयते) धारण करता है। हे (सु-क्रतो) शुभ कर्म करने हारे पुरुष ! (क्रत्वा) कर्म से ही (आयुः वयः वि तारि) आयु और बल बढ़ता है, और (क्रत्वा) यज्ञ कर्म से ही (अयम्) इसे (अस्मत् आसुतः) हम प्राप्त करते और आगे सन्तानादि में इसका उपयोग करते हैं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१४५]

ऋषि इन्द्राणी ॥ देवता—उपनिषत्सपत्नी बाधनम् । छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ४ अनुष्टुप् । ३ आर्ची स्वराडनुष्टुप् । ६ निचृत् पंक्तिः ॥
षडृचं सूक्तम् ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥

भा०—मैं (इमां) इस (वीरुधं) विपरीत मार्ग में जाने से रोकने वाली (ओषधिम्) पाप-संकल्पों को दग्ध करने का सामर्थ्य धारण करने वाली, (बलवत्-तमाम्) अधिक बलवती, उपनिषत् ब्रह्म-विद्या को (खनामि) खोदता हूं। (यया) जिससे (सपत्नीं बाधते) विद्या की सौत के तुल्य अविद्या को नाश करता है और (यया) जिससे (पतिम्) उस पालक प्रभु को (संविंदते) सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य उत्तम पालक पति को प्राप्त करता है। यहां 'उपनिषद्-सपत्नी' बाधन, देवता है।

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥ २ ॥

भा०—हे (उत्तान-पर्णे) ऊपर की ओर फैलने वाले ज्ञानमय पत्रों वाली! हे (सु-भगे) उत्तम सुख सौभाग्य से युक्त! हे (देव-जूते) विद्वानों द्वारा सेवित! हे (सहस्वति) हे बलवति! तू (मे) मेरी (सपत्नीम्) अविद्या रूप सौत को (परा धम) दूर कर। और (केवलम्) केवल आनन्दमय प्रभु को (मे) मेरा (पतिम् कृधि) पालक बना दे।

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः।
अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे (उत्तरे) उत्तम लोक को लेजाने वाली कर्मविद्ये! (अहम् उत्तरा) मैं तुझ से भी अधिक उत्कृष्ट लोक में पुरुष को पहुंचाती हूं। (उत्तराभ्यः इत् उत्तरा) उत्तम गति प्राप्त करने वाली सभी विद्याओं से मैं उत्तम हूं। (अथ) और (या) जो (मम सपत्नी)

मेरी सौत के तुल्य अविद्या है (सा अधराभ्यः अधरा) वह नीचे लेजाने वाली सब गतियों में से सबसे अधिक नीचे गिराने वाली है।

नह्यस्या नामं गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४ ॥

भा०—मैं (अस्याः नाम न हि गृभ्णामि) इस अविद्या रूप सौत का नाम भी ग्रहण नहीं करती हूं। (अस्मिन् जने) इस पुरुष में वह अविद्या (नो रमते) कभी सुख प्रदान नहीं करती। हम (सपत्नीं) आत्मा पर अपना अधिकार करने वाली वा सदा नीचे गिराने वाली अविद्या को (पराम् एव परावतम्) दूर से दूर ही (गमयामसि) करें।

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५ ॥

भा०—(अहमस्मि सहमाना) मैं सब कष्टों और विपरीत भावों को पराजित करने वाली हूं, (अथ) और (त्वम्) तू भी (सासहिः असि) पराजित करने वाला है। (उभे) हम दोनों (सहस्वती भूत्व) बलवान् होकर (मे सपत्नीं सहावहै) मेरी सौत के तुल्य आत्मा रूप पति को हरने वाली वा सपत्नी ज्ञान-नाशक अविद्या को (सहावहै) हम दोनों पराजित करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६॥३॥

भा०—हे पुरुष ! आत्मन् ! मैं ब्रह्मविद्या (ते) तेरे लिये (सहमानाम् उप अधाम्) अविद्या का नाश करने वाली शक्ति को धारण करती हूं। और (सहीयसा) बड़ी भारी शक्ति से (त्वा अभि अधाम्) तुझे धारण करती हूं, तुझे भी उपदेश करती हूं। (ते मनः) तेरा मन

(माम् अनु) मेरे अनुकूल हो और वह (वत्सं गौः इव) बछड़े के प्रति गाय के समान और (पथा वाः इव) निम्न मार्ग से जल के समान उत्सुक होकर वेग से (धावतु) दौड़ दौड़ कर आवे।

[१४६]

ऋषिर्देवमुनिरैरम्मदः ॥ देवता—अरण्यानी ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४, ६ अनुष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती३ ॥ १ ॥

भा०—हे (अरण्यानि) अरण्य अर्थात् ऋणों से मुक्त वानप्रस्थ की पत्नी, स्वयं भी वानप्रस्थ के व्रतों का पालन करने वाली विदुषि ! हे (अरण्यानि) रमण योग्य ग्राम, नगर आदि में सुख अनुभव न करने वाली विदुषि ! (या) जो तू (प्र इव नश्यसि) आगे ही आगे बढ़ी चली जाती है, तू (ग्रामं कथा न पृच्छसि) ग्राम अर्थात् नगर आदि में बसे अनेक सम्बन्धि जनों और अनेक स्त्री जनों को भी कुछ नहीं पूछती, उनके प्रति ममता नहीं दिखाती। (त्वा भीः इव न विन्दति) तुझे भय भी नहीं लगता प्रतीत होता।

वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ॥ २ ॥

भा०—(वदते वृष-रवाय) उपदेश देने वाले, मेघ के समान गर्जना वाले गुरु के समीप (चित्-चिकः) ज्ञान की कामना करने वाला पुरुष (उपावति) प्राप्त होता है। वह (अरण्यानिः) अरण्य अर्थात् अन्यों को विशेष रमण, सुखादि न देने वाले, ऋणादि से रहित आश्रम में जीवन व्यतीत करने वाला पुरुष भी (आघाटिभिः इव) बार २ पछाड़े हुए

वस्त्र के समान वा आघाटि अर्थात् वीणा के स्वरों के तुल्य अपने अन्तःकरण को (धावयन्) शुद्ध करता हुआ (महीयते) बड़ी प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है ।

उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वन में (गावः अदन्ति) गौवें विचरती और चारा चरती हैं उसी प्रकार उस विद्वान् वानप्रस्थ के अधीन गौओं के तुल्य शिष्य जन ज्ञान को प्राप्त करता वा उसके भीतर नाना वाणियां विचरती हैं। और वह स्वयं (वेश्म इव दृश्यते) गृह के समान, शिष्यों का एकमात्र शरण दीखता है, (उतो) और (सायं शकटीः इव) सायंकाल जिस प्रकार वन से नाना गाड़ियें चारा, लकड़ी आदि लेकर निकलती हैं मानों जंगल उनको प्रसव करता है इसी प्रकार वह वानप्रस्थ पुरुष भी अनेक शक्तियों वा सेनाओं को वा शक्तिमान् व्यक्तियों या वाणियों को उत्पन्न करता है। वा मन्द चलने वाले मन्दमतियों को ज्ञान दे कर तीव्र करता है, शब्द सहित बाहर आने वाली वाणियों को प्रकट करता है। शकटः शकृद् इतं भवति, शनकैस्तकतीति वा, शकेन तकतीति वा, शकादिभ्यो-ऽटन्। (उणा०) शक्नोतीति शकटः। शकेन शक्ता वा अटतीति वा। शकेऋतिन्। उणा०। शक्नोतीति शकृत्।

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ४ ॥

भा०—(अङ्ग) हे विद्वन्! (अरण्यान्याम्) ऋणों से मुक्त दशा में (वसन्) रहता हुआ (एषः) यह अमुक पुरुष (गाम् आह्वयति) वाणी का अभ्यास करता वा सूर्य को लक्ष्य कर प्रभु को पुकारता है, और (एषः) अमुक व्यक्ति (दारु अप अवधीत्) काष्ठ के समान ज्ञान

शस्त्र से अज्ञान को चीर कर नाश कर देता है। और वह अमुक व्यक्ति उस दशा में (अक्रुक्षत् इति मन्यते) मनुष्य प्रभु को ही पुकारा करे ऐसा अपना कर्त्तव्य मानता है। क्रुश आह्वाने, रोदने च भ्वा० ॥

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥ ५ ॥

भा०—(अरण्यानिः) वानप्रस्थी, ऋणों से मुक्त दशा के व्रतों का पालक पुरुष (न वै हन्ति) किसी की हिंसा नहीं करता। और (अन्यः इत् च) दूसरा कोई भी शत्रु होकर (न अभि गच्छति) उस पर आक्रमण नहीं करता। वह (स्वादोः) सुख से आस्वादन करने योग्य, वा अपने ही आत्मा को प्राप्त होने वाले वृक्ष का (फलस्य) फल (जग्ध्वाय) उपभोग करके (यथा-कामम्) अपने उत्तम संकल्प के अनुसार (नि पद्यते) रहता वा लोकान्तर में जाता है।

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार बड़ा भारी वन (आंजन-गन्धिम्) अंजन का गन्ध वाला, (सु-रभिः) उत्तम गन्ध से पूर्ण (बहु-अन्नाम्) बहुत से नीवार, वन फल आदि भक्ष्य अन्नों वाला (अकृषीवलां) खेतिहरों से रहित, (मृगाणां मातरम्) मृगों की माता के तुल्य होता है उसी प्रकार मैं (आंजन-गन्धिम्) अंजन अर्थात् आत्मा पर आये हुए रजोविकार के लेप को नाश करने वाली, (सु-रभिम्) सुख प्राप्त कराने वाली, (बहु-अन्नाम्) बहुत से अन्नों के तुल्य सुखयुक्त फलों वाली, (अकृषि-वलाम्) कष्टों के आवरण से रहित, (मृगाणाम् मातरम्) आत्म-ज्ञान की खोज लगाने वालों के लिये

(मातरम्) माता के तुल्य प्रेम से युक्त (अरण्यानिम्) इस वनस्थ वृत्तिका वा वानर विद्वान् का (अहं) मैं (प्र अशंसिषम्) उत्तम रीति से वर्णन करता हूं। इति चतुर्थो वर्गः॥

[१४७]

ऋषिः सुवेदाः शैरीशिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराड् जगती। २ आर्ची भुरिग् जगती। ३ जगती। ४ पादनिचृज्जगती। ५ विराट् त्रिष्टुप्॥
पञ्चर्चं सूक्तम्॥

श्रत्ते॑ दधामि प्रथ॒माय॑ म॒न्यवेऽह॒न्यद्वृ॒त्रं नर्यं॑ वि॒वेर॒पः।
उ॒भे यत्त्वा॒ भव॑तो॒ रोद॑सी॒ अनु॒ रेज॑ते॒ शुष्मा॑त्पृथि॒वी चि॑दद्रिवः॥१॥

भा०—(यत्) जब तू (वृत्रम् अहन्) आकाश को आच्छादन करने वाले मेघ को ताड़ित करता है, (नर्यम् अपः विवेः) समस्त मनुष्यों, जीवों का हितकारक जल प्रदान करता है, उस (प्रथमाय) सर्वश्रेष्ठ (मन्यवे) मननशील, ज्ञानी, एवं दुष्टों पर क्रोधशील (ते) तेरे लिये (श्रत् दधामि) मैं सत्य विश्वास धारता हूं। हे (अद्रिवः) मेघों और बल वीर्य के स्वामिन्! (उभे रोदसी) दोनों लोक सूर्य और पृथिवी (त्वा अनु भवतः) तेरे ही अधीन हैं। तेरे (शुष्मात्) बल से वा तेरे ही प्रताप से (पृथिवी चित् रेजते) यह पृथिवी, विशाल अन्तरिक्ष भी कांपता और गति करता है।

त्वं मा॒याभि॑रनवद्य मा॒यिनं॑ श्रवस्य॒ता मन॑सा वृ॒त्रम॑र्दयः।
त्वामिन्नरो॑ वृणते॒ गवि॑ष्टिषु॒ त्वां विश्वा॑सु॒ हव्या॒स्विष्टि॑षु॥२॥

भा०—हे प्रभो! हे (अनवद्य) कभी निन्दा न करने योग्य, हे सर्वदा सर्वस्तुत्य! (त्वं) तू (श्रवस्यता मनसा) अन्न को उत्पन्न करने की इच्छा वाले मन से, ज्ञान से वा बल से, (मायिनं वृत्रम्) गर्जना

करते हुए मेघ को (मायाभिः) गर्जना करने वाली नाना विद्युतों से (अर्दयः) ताड़ित करता है। (नरः) समस्त मनुष्य (गविष्टिषु) भूमियों और किरणों के प्राप्त करनें के लिये (त्वाम् इत् वृणते) तुझ से ही याचना करते हैं। (हव्यासु विश्वासु इष्टिषु) समस्त आहुति देने योग्य यज्ञों में और अन्नोपयोगी या अन्नप्रद कामनाओं, विधि-विधानों, या कार्यों में भी (त्वां) मेघ सूर्यवत् तुझको (वृणते) वरण करते हैं।

ए॒षु चा॑कन्धि पुरुहूत सू॒रिषु॑ वृ॒धासो॒ ये म॑घवन्नान॒शुर्म॒घम् ।
अर्च॑न्ति तो॒के तन॑ये॒ परि॑ष्टिषु मे॒धसा॑ता वा॒जिन॒मह्र॑ये॒ धने॑ ॥३॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतसी प्रजाओं द्वारा बुलाये राजावत् प्रभो! (ये) जो (वृधासः) बढ़ने हारे विद्वान् जन (मघम् आनशुः) उत्तम दान योग्य धन सम्पदा को प्राप्त कर लेते हैं (एषु) उन (सूरिषु) विद्वान् तेजस्वी पुरुषों में तू (आ चाकन्धि) सर्वप्रकार से चमकता है, उनको तू नित्य चाहता है। हे (मघवन्) पूजित धनैश्वर्य के स्वामिन्! वे लोग (वाजिनम्) बल, ज्ञान, वेग तथा ऐश्वर्य के स्वामी तुझको ही, (तोके तनये) पुत्र, पौत्र तथा (परिष्टिषु) नाना अन्य वाञ्छनीय फलों को प्राप्त करने के लिये और (मेध-साता) अन्न के समान लाभ, कृषि आदि के लिये और (आ ह्रये धने) लज्जा को दूर करने वाले धन को प्राप्त करने के लिये (अर्चन्ति) तेरी स्तुति पूजा करते हैं।

स इन्नु रा॒यः सुभृ॑तस्य चाकन॒न्मदं॒ यो अ॑स्य॒ रंह्यं॒ चिके॑तति ।
त्वावृ॑धो मघवन्दा॒श्व॑ध्वरो म॒क्षू स वाजं॑ भरते॒ धना॒ नृभि॑: ॥४॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (अस्य) इस तेजस्वी इन्द्र, विद्युत् के (रंह्यं मदं) वेग उत्पन्न करने वाले तृप्ति-योग, हर्ष, उल्लास, चमत्कार को (चिकेतति) जानता है, (सः इत् नु) वह ही (अस्य

सुभृतस्य रायः) इस उत्तम रीति से धारण करने योग्य ऐश्वर्य की (चाकनन्) कामना करता है। हे (मघवन्) पूजित ऐश्वर्य वाले ! (त्वा वृधः) तेरे बल से बढ़ने वाला, (दाशु-अध्वरः) दान रूप अखण्ड यज्ञ करने वाला, वा दान के बल से कभी नाश न होने वाला, (मक्षु) अति शीघ्र ही (नृभिः) उत्तम नायकों, वा दूर ले जाने वाले रथादि साधनों से (धना भरते) नाना धन प्राप्त करता है। अर्थात् वेग, गति, विद्युत् को जानने वाला विद्वान् इस इन्द्र के बल से नाना रथ आदि बना कर अनेक ऐश्वर्य कमा सकता है और वह सदा भृत्यों वा हिस्सेदारों को मुनाफ़ा बांटता रह सकता है।

त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता॥५॥५॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (शर्धाय) बल के प्राप्त करने के लिये (महिना गृणानः) बड़े भारी ज्ञानवान् पुरुष से उपदेश या वर्णन किया जाकर (उरु कृधि) बहुत धन उत्पन्न कर और हमें (रायः शग्धि) अनेक धन देने में समर्थ हो। (त्वं नः मित्रः) तू हमारा मित्र, स्नेही, तू हमें मरण से बचाने वाला है, (वरुणः न मायी) तू ही सर्वश्रेष्ठ, ज्ञान और बुद्धि से युक्त होकर हे (दस्म) दुःखों संकटों के काटने हारे ! हे (दस्म) दर्शनीय ! हे कर्मशक्तियुक्त ! तू (नः पित्वः सं भक्ता) हमें अन्नों का देने वाला होकर (दयसे) हमारी रक्षा करता, हम पर कृपा करता है। इति पञ्चमो वर्गः॥

[१४८]

ऋषिः—१—५ पृथुर्वैन्यः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, ५ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! हम (सु-स्वानासः) तेरी उपासना करने हारे (त्वा स्तुमसि) तेरी ही स्तुति करते हैं। हे (तुवि-नृम्ण) बहुत से धनों को प्राप्त करने हारे हम तेरी उपासना से ही (वाजं ससवांसः) ऐश्वर्य को प्राप्त हो जाते हैं। तू (यस्य चाकन्) जिस धन को चाहे (नः) हमें वही (सुवितम् आभर) सुखजनक एवं उत्तम रीति से प्राप्त करने योग्य धन प्राप्त करा। हम (त्वा-उताः) तेरे या प्रेम जन, तेरे से चिपटे, तेरे भक्त, तेरे द्वारा सुरक्षित, तेरी शरण होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (तना सनुयाम) नाना धन प्राप्त करें और दान दें।

ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) दुष्टों के दण्ड देने वाले ! अन्नादि के पोषक ! हे (शूर) मेघवत् संकटों को छिन्न भिन्न करने वाले ! शत्रुहन्तः वीर ! प्रभो ! तू (ऋष्वः) महान् (जातः) प्रसिद्ध है। तू (सूर्येण) सूर्य के सदृश प्रखर तेजस्वी रूप से (दासीः विशः) शत्रुनाशकारिणी सेनाओं को और भृत्यवत् आज्ञाकारिणी, प्रजाओं को, (सह्याः) अपने वश करता है। (प्र-स्रवणे सोमं न) जल के बरसने वा नाली आदि द्वारा खेत में बह आने पर अन्न के तुल्य ही (गुहा हितम्) बुद्धि में स्थिर और (अप्सु गूढम्) प्राणी के भीतर गूढ रूप से विराजमान तुझे हम (बि भृमसि) धारण करते हैं।

अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥ ३ ॥

भा०—तू (अर्यः) सबका स्वामी, (विद्वान्) ज्ञानवान् (विप्रः) मेधावी, (ऋषीणां सु-मतिं चकानः) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की शुभ मति की कामना करता हुआ (गिरः अभि अर्च) वाणियों को स्वीकार कर। हे (रथ-ऊढ) रथ द्वारा वहन करने योग्य रथीवत् आत्मन्! (ये) जो तुझे (सोमैः) उत्तम २ ऐश्वर्यों, अन्नों से (रणयन्त) प्रसन्न करते हैं (ते) वे हम (स्याम) हों (उत) और (तुभ्यम्) तेरे लिये (एना) इन (भक्षैः) भजन-सेवन करने योग्य पदार्थों से हम तेरी परिचर्या करें। (२) अध्यात्म में—'अर्य' स्वामी आत्मा और 'ऋषि' इन्द्रियां। वह उनके उत्तम ज्ञानों की कामना करता और वाणी द्वारा बोलता है। वह देहवान् रथीवत् है, हम जीव उसे अन्न-ओषधियों से पुष्ट करते हैं।

इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तुभ्यं) तेरी ही (इमा ब्रह्म शंसि) ये वेद-मन्त्र रूप स्तुतियां कही जाती हैं। हे (शूर) शूरवीर! (नृणां नृभ्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ, सन्मार्ग पर ले चलने वाले पुरुषों को तू (शवः दाः) बल और ज्ञान प्रदान करता है। (एषु चाकन्) जिन में प्रेम वा स्नेह है (तेभिः) उनके साथ तू (सक्रतुः भव) समान ज्ञान और कर्मवान् हो, (उत) और तू (गृणतः) स्तुति करने वालों वा उपदेष्टाओं की (उत स्तीन्) और संघ या समवाय बना कर रहने वाले जनों को (त्रायस्व) रक्षा कर।

श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥५॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे दुष्टों को दण्ड देने हारे! हे (शूर) शत्रुनाशन! तू (पृथ्याः हवम् श्रुधि) विस्तृत प्रजा की

पुकार को सुन ! तु (वेन्यस्य अर्कैः स्तवसे) तेरी कामना करने वाले जन के वा श्रेष्ठ पुरुष के अर्चना योग्य वचनों, मन्त्रों से (स्तवसे) स्तुति किया जाता है । (यः) जो (ते) तेरे (घृतवन्तं) जलवत् शीतल एवं प्रकाशयुक्त तेजोमय (योनिम्) परम पद का (आ अस्वाः) सब ओर उपदेश करता, तेरी स्तुति करता वा अन्यों को उसका ज्ञान देता है, तू उसके भी वचनों को श्रवण कर (निम्नैः ऊर्मिः न) नीचे स्थलों से जलप्रवाह के समान (वक्काः) उत्तम २ वक्ता जन भी (निम्नैः) विनययुक्त वचनों और व्यवहारों से (द्रवयन्त) तेरी ही ओर आ बहते हैं, अति शीघ्र तेरी ही ओर आ जाते हैं । इति षष्ठो व ेः ॥

[१४९]

ऋषिः अर्चन् हैरण्यस्तूपः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ २, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥ १ ॥

भा०—(सविता) समस्त संसार को पैदा करने वाला परमेश्वर जगत् का प्रेरक, सूर्य के तुल्य (यन्त्रैः पृथिवीम्) अपने नियंत्रण करने वाले अनेक साधनों और बलों से पृथिवी वा प्रकृति को (अरम्णात्) सुख से स्थिर करता और इसको अति रमण योग्य करता, उसको सुन्दर रीति से स्त्री को पति के तुल्य ही हर्षित एवं सुखप्रद करता है । (सविता) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाला प्रभु सञ्चालक ईश्वर ही (द्याम्) इस महान् सूर्य को (अस्कंभने) विना टेक के, निरवलम्ब महान् आकाश में (अदृंहत्) स्थापित करता है । और प्रभु (धुनिम्) सबको कंपाने और संचालित करने वाले वायु को (अश्वम् इव अधुक्षत्)

वेगवान् अश्व के समान तीव्रता से चलाता, हांकता है और (अतूर्त्ते) अविनाशी, और अपार आकाश में (बद्धम्) बंधे (अन्तरिक्षम्) बीच से खोखले (समुद्रम्) नाना रसों को बहाने वाले मेघ को भी (अधुक्षत्) विद्युत् आदि से दीपित करता, कंपाता, और उत्पन्न करता और गौवत् जल अन्नादि उससे प्राप्त कराता और बरसाता है। 'अधुक्षत्'—धुक्ष धिक्ष संदीपन-क्लेशन-जीवनेषु।

यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २ ॥

भा०—(यत्र) जिसके आश्रय (समुद्रः) जल बरसाने वाला आकाशस्थ समुद्र के तुल्य महान् मेघ (वि औनत्) भूमि को विशेष रूप से सेंचता है, (अपां नपात्) जलों, प्रकृति के परमाणुओं वा लोकों को थामने वाला (सविता) सूर्य वा प्रभु ही (तस्य वेद) उस महान् शक्ति को जानता, जनाता वा प्राप्त है। (अतः) इससे ही (भूः) यह पृथिवी वा प्रकृति उत्पन्न, व्यक्त होती है (अतः रजः आ उत्थितम्) उससे ही यह समस्त लोक-समूह सर्वत्र चारों ओर उठते हैं। और अतः उससे ही यह (द्यावा पृथिवी) सूर्य या आकाश और भूमि दोनों (अप्रथेताम्) विस्तार को पाते हैं।

पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥३॥

भा०—उस (अमर्त्यस्य) अविनाशी (भुवनस्य) महान् जगत् के उत्पादक प्रभु के ही (भूना) महान् सामर्थ्य से (पश्चात्) उसके पीछे (इदं अन्यत् यजत्रम् अभवत्) यह सब उससे भिन्न जड़ जगत् परस्पर संयोग से उत्पन्न हुआ है। (अङ्ग) हे विद्वन्! (सवितुः)

उस महान् जगत्-उत्पादक और जगत्-संचालक प्रभु से ही (सु-पर्णः) उत्तम रश्मियों वाला (गरुत्मान्) महान् पिण्ड वाला, बड़ा बलशाली सूर्य (पूर्वः) सबसे पहले, सबसे अधिक पूर्ण (जातः) उत्पन्न हुआ और वह (अस्य धर्म अनु) उसके धर्म अर्थात् धारण सामर्थ्य के अनुरूप सामर्थ्यवान् ही होता है।

गाव॑ इ॒व ग्राम॒ं यूयु॑धिरि॒वाश्वा॑न्वा॒श्रेव॑ व॒त्सं सु॒मना॒ दुहा॑ना।
पति॑रिव जा॒याम॒भि नो॒ न्ये॑तु ध॒र्ता दि॒वः स॑वि॒ता वि॒श्ववा॑रः॥४॥

भा०—(गावः इव ग्रामम्) गौएं जिस प्रकार अपने समूह, भोजन या ग्राम को शीघ्र ही चली जाती हैं, और (युयुधिः इव अश्वान्) योद्धा जिस प्रकार अश्वों, या सवारों को प्राप्त करता है, और (वाश्राः इव वत्सम्) गौएं जिस प्रकार प्रेम से बछड़े के प्रति (दुहानाः) दूध स्रवित करती हुई हैं, (पतिः इव जायाम् अभि न) और पति जिस प्रकार अपनी पत्नी को प्राप्त करता है, (दिवः धर्त्ता) महान् आकाश का धारण करने वाला (सविता) जगत् का उत्पादक प्रभु (विश्व-वारः) सब से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ ईश्वर (नः नि एतु) हमें उक्त सब प्रकारों से, सर्वथा प्राप्त हो।

ग्रामः—ग्रसन्ति अत्र इति ग्रामः इति नारायणः उणादिवृत्त्याम्।

हिर॑ण्यस्तूपः सवित॒र्यथा॑ त्वाङ्गिर॒सो जु॒ह्वे वाजे॑ अ॒स्मिन्।
ए॒वा त्वार्च॒न्नव॑से॒ वन्द॑मानः॒ सोम॑स्ये॒वांशुं प्रति॑ जागरा॒हम्॥५॥७॥

भा०—हे (सवितः) सूर्यवत् समस्त जगत् को संचालित करने हारे! (आङ्गिरसः हिरण्यस्तूपः) अंग २ में रस वा बल पैदा करने वा उसके समान व्यापने वाला, हित और रमणयोग्य प्रभु की स्तुति करने वाला जन, (अस्मिन् वाजे) इस ऐश्वर्य के निमित्त (यथा त्वा जुह्वे) जिस

प्रकार तुझे पुकारता है, तेरी स्तुति करता है (एव त्वा) उसी प्रकार तेरी (अर्चन्) अर्चना करने वाला, भक्त भी (त्वा वन्दमानः) तेरी वन्दना, स्तुति करता हुआ (सोमस्य अंशुम् इव) सोम के अंशु को लक्ष्य कर जागने वाले के समान (अहम् प्रति जागर) मैं तेरे प्रति प्रतिदिन जागरण करूं। तेरे लिये सदा जागृत, सचेत रहूं।

आंगिरसः—अंगानि शरीरावयवाः। तद्वद् अङ्गि शरीरम्। तस्य स्थिति-हेतुम् अशितपीतरसं करोतीत्यर्थे अङ्गिरसयति। तत्करोति तदाचष्टे इति ण्यन्तात् क्विप्। जाठरो ह्यग्निरन्नं रसीकरोति। रसो लोहितमांसस्नावास्थि मज्जाशुक्रभावेन परिणममानः शरीरस्थितिहेतुर्भवति। इति स्कन्दभाष्ये ऋ० १। १। ६॥ इति सप्तमो वर्गः॥

[१५०]

ऋषिर्मृळीको वासिष्ठः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, २ बृहती। ३ निचृद् बृहती। ४ उपरिष्टाज्ज्योतिर्नाम जगती वा। ५ उपरिष्टाज्ज्योतिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि॥१॥

भा०—हे (हव्य-वाहन) हव्य, खाने और देने योग्य पदार्थों को वहन, धारण करनेहारे, प्रभो! तू (देवेभ्यः सम् इद्धयसे) यज्ञाग्नि विद्वानों और शुभ गुणों वा समस्त सूर्य पृथिवी आदि लोकों के लिये (आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः) प्रपितामहों, पितामहों और पिताओं से भी (समिद्धः चित्) आदर पूर्वक प्रज्वलित, उपासित है, तू सुख देने के लिये हमें प्राप्त हो।

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे॥ २॥

भा०—(इमं यज्ञं जुजुषाणः) इस यज्ञ उपासना को प्रेम से सेवन करता हुआ और (इदं वचः) इस वचन-स्तुति को स्वीकार करता हुआ (उप-आगहि) प्राप्त हो। हे (समिधान) तेज से चमकनेहारे, भक्तों से निरन्तर प्रज्वलित होने वाले ! (मर्त्तासः) हम मनुष्यगण (मृडीकाय त्वा हवामहे) सुख प्राप्ति के लिये तेरी उपासना करते हैं। हम तो (त्वा हवामहे) तेरी ही उपासना करते हैं।

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (त्वाम् उ) तुझे ही मैं (विश्व-वारं जातवेदसं) सबसे वरण करने योग्य सब ज्ञानों का उत्पादक और सब उत्पन्न पदार्थों का जानने वाला, समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी जान कर (धिया गृणे) मन, वाणी और कर्म से तेरी उपासना करता हूं। तू (नः) हमें (प्रिय-व्रतान् देवान् आ वह) व्रतों, सत्कर्मों को प्रेम करने वाले विद्वान् जन प्राप्त करा और (मृडीकाय) हमारे सुख के लिये (प्रिय-व्रतान् आ वह) व्रतों, आचरणों के प्रेमी जनों को प्राप्त करा।

अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या३ ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः देवानाम् पुरोहितः अभवत्) स्वयंप्रकाश तेजस्वी ज्ञानी प्रभु ही विद्वान् दानशील तेजस्वी पुरुषों के बीच में पुरोहित के तुल्य साक्षी, सर्वोपास्य हो। (मनुष्याः ऋषयः) मननशील मनुष्य और तत्त्वार्थदर्शी ऋषि जन (अग्निं समीधिरे) उस सर्वप्रकाशक को ही प्रज्वलित करते हैं। मैं (महः धनसातौ) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (महः अग्निम्) उस महान् अग्नि को (हुवे) पुकारता हूँ और (मृडीकाय)

सुख प्राप्त करने के निमित्त (धन-सातौ) ऐश्वर्य लाभ के लिये उससे ही (हुवे) प्रार्थना करता हूं ।

अ॒ग्निरत्रिं॒ भ॒रद्वा॑जं॒ गवि॑ष्ठिरं॒ प्राव॑न्नः॒ कण्वं॑ त्र॒सद॑स्युमाह॒वे ।
अ॒ग्निं वसि॑ष्ठो हवते पु॒रोहि॑तो मृळी॒काय॑ पु॒रोहि॑तः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान्, प्रकाश स्वरूप प्रभु (आहवे) उपासना करने पर (अत्रिं) तीनों दुःखों से रहित, (भरद्-वाजं) ज्ञान बल, ऐश्वर्य को धारण करने वाले (गवि-स्थिरम्) वेदवाणी और इन्द्रियगण पर स्थिर, जितेन्द्रिय (कण्वं) विद्वान् सूक्ष्मदर्शी, आज्ञाननाशक, (त्रस-दस्युं) दुष्टों के भयभीत करने वाले पुरुषों की (प्र आवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करता है । और (वसिष्ठः) सब वसने हारों में सबसे श्रेष्ठ (पुरः-हितः) सब के समक्ष देहों में आत्मा के तुल्य स्थापित पुरुष भी (अग्निं) उसी प्रकाशक प्रभु की (हवते) स्तुति, उपासना करता है, (पुरोहितः) स्वयं सबके अग्र पद पर स्थित पुरुष भी (मृळीकाय) सुखों को प्राप्त करने के लिये उस ज्ञानवान् प्रभु की उपासना करता है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१५१]

ऋषिः श्रद्धा कामायनी ॥ देवता—श्रद्धा ॥ छन्दः—१, ४, ५ अनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

श्र॒द्धया॒ग्निः समि॑ध्यते श्र॒द्धया॑ हूयते ह॒विः ।
श्र॒द्धां भग॑स्य मू॒र्धनि॒ वच॒सा वे॑दयामसि ॥ १ ॥

भा०—(श्रद्धया) श्रद्धा, सत्य धारणावती बुद्धि से ही (अग्निः समिद्ध्यते) अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है । सत्य धारणा और श्रद्धा पूर्वक ही ज्ञानवान् प्रभु और विद्वान् की उपासना की जाती है । और

(श्रद्धया हविः हूयते) श्रद्धा से हा अन्न दान दिया जाता, एवं यज्ञ में हविष्य की आहुति की जाती है। हम (मूर्धनि) अपने मस्तक में चित्त में या सर्वोपरि (भगस्य) सेवन करने योग्य, परम सेव्य एवं सुखदायी प्रभु के विषय में (वचसा) वेदवाणी द्वारा ही (श्रद्धां) अपनी सत्य धारणा को (आ वेदयामसि) आवेदन करें।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (श्रद्धे) सत्य धारणा से युक्त द्धे ! तू (मे इदम् उदितम्) मेरे इस वचन या उत्थान को (ददतः प्रियं कृधिः) दान देते हुए को प्रिय कर। और (दिदासतः प्रियं कृधि) और दान देने की इच्छा वाले पुरुष को भी मेरा वचन या उत्थान प्रिय लगा। और मेरे कहे वचन को (भोजेषु) प्रजाओं के पालक एवं (यज्वसु) दानशील पुरुषों को भी (प्रियं कृधि) प्रिय लगने वाला बना।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (देवाः) धनादि और विजयादि के चाहने वाले जन (उग्रेषु) शत्रुओं को भयप्रद बलशाली (असुरेषु) प्राण वृत्ति आदि देने वाले, एवं बलवान् पुरुषों पर (श्रद्धाम्) श्रद्धा को (चक्रिरे) कर लेते हैं उनको उनपर पूर्ण विश्वास होजाता है इसी प्रकार (भोजेषु यज्वसु) सर्वपालक और दानशील पुरुषों में (अस्माकम् उदितं) हमारा वचन, वा उदय भी श्रद्धा योग्य, विश्वास्य, दृढ़ (कृधि) बना।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः) नाना कामनाओं को करने वाले तेजस्वी, विद्वान् जन (वायु-गोपाः) वायुवत् बलवान् पुरुष को अपना रक्षक मानने वाले, (यजमानाः) दानशील, यज्ञकर्त्ता जन (श्रद्धाम् उपासते) उसी सत्य धारणामयी देवता की उपासना करते हैं। और वे (हृदय्यया आकूत्या) हृदयगत मनोभाव से ही (श्रद्धां उपासते) श्रद्धा की उपासना करते हैं। (श्रद्धया वसु विन्दते) उस श्रद्धा, सत्य धारणा से ही परम ऐश्वर्य को भी प्राप्त करते हैं।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ११ ॥

भा०—हम (प्रातः श्रद्धां) प्रातःकाल में उस सत्य से जगत् को धारण करने वाले प्रभु शक्ति की (हवामहे) प्रार्थना करते हैं। (मध्यं-दिनं परि श्रद्धां हवामहे) दिन के मध्य काल में उस सत्य-धारक प्रभु को ध्यान करते हैं। (सूर्यस्य नि-म्रुचि) सूर्य के अस्तकाल में भी हम उसी श्रद्धामय प्रभु की उपासना करते हैं। हे (श्रद्धे) श्रद्धे सत्य धारणावति देवि! तू (नः इह श्रद्धापय) हमें इस जगत् में सत्य ही को धारण करा। इति नवमो वर्गः ॥ इत्येकादशोऽनुवाकः ॥

[१५२]

ऋषिः शासो भारद्वाजः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप्। ३ अनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (इत्था) सत्य ही (महान् शासः असि) बड़ा भारी विश्व का शासक है। और तू (अद्भुतः) आश्चर्यकारी

(अमित्र-खादः) अमित्रों, शत्रुओं का नाश करने वाला है। (यस्य सखा न हन्यते) जिसका मित्र नहीं मारा जाता, न दण्डित होता और (न कदाचन जीयते) न कभी पराजित होता है, न कभी पछाड़ खाता है।

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥ २ ॥

भा०—(स्वस्ति-दाः) कल्याण का देने वाला, (विशः पतिः) देह में प्रविष्ट जीवगण वा प्रजाओं का पालक, (वृत्र-हा) समस्त विघ्नों और आवरणकारी अज्ञानों का नाशक (वि-मृधः) संग्रामों का करने हारा, (वशी) सबको वश में रखने वाला, (वृषा) बलवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सोम-पाः) उत्पन्न जगत्, जीवगण ओषधि आदि का पालक (अभयं-करः) अभय करने वाला प्रभु (नः पुरः एतु) हमारे समक्ष साक्षात् हो।

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥

भा०—(रक्षः वि जहि) विघ्नकारी राक्षसों को विविध प्रकार से नाश कर। (मृधः वि जहि) हिंसक शत्रुओं और संग्राम करने वालों को भी विशेष रूप से ताड़ित कर। हे (वृत्र-हन्) शत्रु के नाशक! तू (वृत्रस्य) बढ़ते लोभादि शत्रु के (हनू-विरुज) आघातकारी साधनों वा खाने के दाढ़ों के तुल्य साधनों को विशेष रूप से तोड़ डाल। हे (इन्द्र) आत्मन्! तू (अभि-दासतः) हम को सब प्रकार से नाश करने वाले (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम् वि जहि) क्रोध का नाश कर।

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) अभिमुख शत्रु पर वेग से आक्रमण करनेहारे ! तू (नः मृधः वि जहि) हमारे हिंसक शत्रुओं को विनाश कर। और (पृतन्यतः नीचा यच्छ) सेनाएं चाहने वालों को नीचे गिरा। (यः अस्मान् अभि दासति) जो हमें नाश करना चाहता है उसको (अधरं तमः गमय) नीचे के अन्धकार को प्राप्त करा।

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (द्विषतः मनः अप जहि) शत्रु के चित्त को दूर कर। और (जिज्यासतः वधम् अप जहि) हमें मारने की इच्छा करने वाले के हथियार को दूर कर। और (मन्योः) अभिमानी शत्रु से हमें बचा और (शर्म वि यच्छ) सुख शरण हमें विशेष रूप से दे। (वरीयः वधम्) बड़े से बड़े शत्रु-बल को (यवय) दूर कर। अथवा—(वरीयः शर्म वि यच्छ) बड़े से बड़ा शरण सुख प्रदान कर। इति दशमो वर्गः ॥

[१५३]

ऋषयः इन्द्रमातरो देवजामयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, निचृद् गायत्री। २—५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥

भा०—(जातम्) उत्पन्न बालक को माताओं के तुल्य प्रेम पूर्वक (जातम् इन्द्रम्) प्रसिद्ध हुए ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा को (ईङ्खयन्तीः) प्राप्त होती हुई, (अपस्युवः) नाना कर्म करने वाली प्रजाएं

(सु-वीर्यम् भेजानासः) उत्तम वीर्य, बल, शौर्य को सेवन करती हुई उसकी (उप आसते) देववत् उपासना करतीं, उसका आश्रय ग्रहण करती हैं।

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।
त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

भा०—इन्द्र अध्यक्ष की उत्पत्ति। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु-नाशक! (त्वं) तू (बलात्) बल से, (सहसः) शत्रु-पराभवकारी सामर्थ्य से, और (ओजसः) पराक्रम से, (अधि जातः असि) सबका अध्यक्ष, सर्वोपरि शासक हो जाता है। हे (वृषन्) बलवन्! (त्वं) तु (वृषा इत् असि) सबसे बलवान्, सब सुखों का देने वाला, सर्व-प्रबन्धक है।

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य॑न्तरिक्षमतिरः।
उद्द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम् वृत्रहा असि) तू विघ्नकारी शत्रुओं का नाश करने वाला है। (अन्तरिक्षम् वि अतिरः) वायु जिस प्रकार मेघ को छिन्न भिन्न कर आकाश भाग को विस्तृत करता है उसी प्रकार तू भी (अन्तरिक्षम्) बीच के भूमि वाले को (वि अतिरः) शत्रु बल के छेदन-भेदन से बढ़ाता है। और (ओजसा) पराक्रम से (द्याम्) आकाश को सूर्यवत् पृथिवी वा तेजस्विनी सेना वा सभा को (उत् अस्तभ्नाः) थामता, वश करता है।

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वम्) तू (बाह्वोः) बाहुओं में (स-जोषसम्) प्रीतियुक्त (अर्कम्) अर्चनीय पूज्य बल को (बिभर्षि),

धारण करता है, और (ओजसा) पराक्रम से (वज्रम् शिशानः) बल-वीर्य युक्त शस्त्र सैन्य का तीक्ष्ण करता है।

त्वमि॑न्द्राभि॒भूर॑सि॒ विश्वा॑ जा॒तान्योज॑सा ।
स विश्वा॒ भुव॒ आभ॑वः ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन् ! तू (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा जातानि) समस्त पदार्थों को (अभि-भूः असि) अपने वश करता है, और (विश्वा-भुवः) समस्त भूमियों को, लोकों को (आ अभवः) अपने वश कर रहा है। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१५४]

ऋषिर्यमी ॥ देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१, ३, ४ अनुष्टुप् । २, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सोम॒ एके॑भ्यः पवते घृ॒तमेक॒ उपा॑सते ।
येभ्यो॒ मधु॑ प्र॒धाव॑ति॒ तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ १ ॥

भा०—(एकेभ्यः) एक जनों के लिये या एक जनों से (सोमः पवते) सोम ओषधि वा साम-गान प्रवाहित होता है, (एके घृतम् उपासते) एक विद्वान् जन घृत, तेज अर्थात् यजुर्वेद की उपासना करते हैं और हे विद्वन् ! हे ज्ञानोपासक! आत्मन् तू (येभ्यः मधु) जिनसे वा जिनके लिये मधु अर्थात् ऋग्वेद की ऋचाएं वा ज्ञान (प्र धावति) वेग से प्राप्त होते हैं (तान् चित् एव) उनको भी तू (अपि गच्छतात्) प्राप्त हो।

यत् सामानि सोमासस्ताः । यद् यजूंषि घृतस्य कुल्याः । यदथर्वांगिरसो मधोः कुल्याः, इति । शत० ॥

तप॑सा ये अ॑नाधृ॒ष्यास्तप॑सा ये स्व॑र्य॒युः ।
तपो॒ ये च॑क्रि॒रे मह॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ २ ॥

भा०—(ये तपसः अनाधृष्याः) जो तप से परास्त नहीं होते, और (ये तपसा स्वः ययुः) जो तप से समस्त सुख वा मोक्षमय आनन्द को प्राप्त होते हैं (ये महः तपः चक्रिरे) जो बहुत बड़े २ भारी तप को करते हैं। (तान् चित् एव अपि गच्छतात्) हे जिज्ञासो ! वा जीवन मार्ग के यात्रिन् ! तू उनको भी प्राप्त हो ।

ये युध्य॑न्ते प्र॒धने॑षु शूरा॑सो ये त॑नू॒त्यज॑ः ।
ये वा॑ स॒हस्र॑दक्षिणा॒स्तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (प्रधनेषु) बड़े २ युद्धों में (युद्ध्यन्ते) युद्ध करते हैं और जो (शूरासः) शूरवीर (तनू-त्यजः) देह छोड़ने हारे वीर हैं, (ये वा) और जो (सहस्र-दक्षिणाः) सहस्रों का दान देने वाले, ऐश्वर्यवान् हैं हे यात्रिन् ! जीव! (तान् चित् एव अपि गच्छतात्) तू उनको भी प्राप्त हो ।

ये चि॒त्पूर्व॑ ऋत॒साप॑ ऋ॒तावा॑न ऋता॒वृध॑ः ।
पि॒तॄन्तप॑स्वतो यम॒ तांश्चि॑दे॒वापि॑ गच्छतात् ॥ ४ ॥

भा०—(ये चित् पूर्वे) जो पूर्व के, हम से पूर्व उत्पन्न, (ऋत-सापः) सत्य ज्ञान का सेवन करने वाले, (ऋतावानः) तेज वा यज्ञ के उपासक, (ऋत-वृधः) सत्य न्याय को बढ़ाने वा उसके बल से स्वयं बढ़ने वाले हैं (तान्) उन (तपस्वतः पितॄन्) तपोनिष्ठ पालक, गुरुजनों को (चित्) भी हे (यम) जितेन्द्रिय ! तू (अपि गच्छतात्) अवश्य प्राप्त हो ।

स॒हस्र॑णीथाः क॒वयो॒ ये गो॑पा॒यन्ति॒ सूर्य॑म् ।
ऋषी॒न्तप॑स्वतो यम तपो॒जाँ अपि॑ गच्छतात् ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—(ये) जो (सहस्र-नीथाः) सहस्रों वाणियों के ज्ञाता (कवयः) क्रान्तदर्शी, मेधावी विद्वान् (सूर्यम्) सूर्यवत् सर्वप्रेरक प्रभु की (गोपायन्ति) उपासना करते हैं (तान् तपस्वतः ऋषीन् तपोजान् अपि) उन तपस्वी, तप में प्रसिद्ध यथार्थ मन्त्रद्रष्टा जनों को भी (गच्छतात्) तू प्राप्त हो।

इस सूक्त को प्रेत के समीप जाकर पढ़ने का विधान है। परन्तु वस्तुतः इस सूक्त में प्रेत के लिये कोई बात नहीं है। अपने से दूर प्रवास में जाते इष्ट बन्धु के लिये वा आचार्यकुल से पृथक् होते हुए स्नातक के प्रति गुरुजनों वा आचार्याणी की जो भी सद्भावना होनी सम्भव है उनका ही इसमें निर्देश है। मृत्यु द्वारा वियुक्त पुरुष भी प्रवासी के तुल्य ही होने से इस सूक्त का वैसा विनियोग किया है। वस्तुतः, इसकी ऋषिका यमी है और देवता सोम या भाववृत्त हैं। अतः इसमें 'यम' अर्थात् यम नियम से जितेन्द्रिय होकर जो गुरु से वा बड़ों से ज्ञानादि उपार्जनार्थ बाहर जाने को हों उनके प्रति उनके माता-पिता, बन्धु ज्ञाति जन भी ये ही वाक्य कह सकते हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१५५]

ऋषिः शिरिम्बिठो भारद्वाजः ॥ देवता—१, ४ अलक्ष्मीघ्नम्। २, ३ ब्रह्मणस्पतिः। ५ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप्। ३ अनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अरा॑यि का॒णे विक॑टे गि॒रिं ग॑च्छ सदान्वे।
शिरि॑म्बिठस्य॒ सत्व॑भि॒स्तेभि॑ष्ट्वा चातयामसि ॥ १ ॥

भा०—हे (अरायि) न देने वाली, आंखों से न दीखने वाली, सूक्ष्म, (विकटे) विविध आवरणों से ढकी, प्रबल, ऊपर २ से जाने वाली

हे (सदान्वे) सदा आक्रोश या गर्जना करने वाली, तू (गिरिं गच्छ) पर्वत को जा, उससे टकर, (शिरिम्बिठस्य) आकाश को भी भेदने वाले, पर्वत या आकाश में स्वयं छिन्न भिन्न होने वाले मेघ के (तेभिः) उन नाना (सत्वभिः) बलों से (त्वा चातयामसि) तुझे नष्ट करें।

दुर्भिक्षादि काल में जल का जो सूक्ष्म अंश होकर वायु में विद्यमान हो वह समुद्र से उठकर मानसून आकाश में गति करे और जल न दे, उसको लक्ष्य कर कहा कि, वह किसी पर्वत की ओर जाकर टकरे, तब वह यह टकर कर बरस जाती है, ऐसी अवर्षा-रूप दुर्भिक्ष की स्थिति को हम मेघ के बलों से नाश करें।

इसी प्रकार अपना अंश दूसरे को न देने वाली, (वि-कटा) विशेष रूप से कवचादि से सुरक्षित वा विक्रम करती हुई हिंसक, (सदान्वा) सदा गर्जती, वा कष्ट देने वाला सेना (गिरिं गच्छ) आज्ञाकारी पर्वतवत् अचल नायक को प्राप्त हो, ऐसी शत्रु-सेना को (शिरिम्बिठस्य) मनुष्यों के गणों को तितर-बितर कर देने वाले वीर सेनापति के नाना बलों से हम नाश करें।

'काणे'—विक्रान्तदर्शन इत्यौपमन्यवः। कणतेर्वास्यादणूभावकर्मणः। कणतिः शब्दाणूभावे भाष्यतेऽनुकणतीति मात्राणूभावात् कणा, दर्शनाणूभावात् काणः। विकटो विक्रान्तगतिरित्यौपमन्यवः। कुटतेर्वास्याद् विपरीतस्य विकुटितो भवति शिरिम्बिठो मेघः, शीर्यते बिठे। बिठमन्तरिक्षम्। बिठं विरिटेन व्याख्यातम्। अथवा शिरिम्बिठो भारद्वाजः कालकर्णोपेतोऽलक्ष्मीनिर्णाशयां-चकार। निरु० ६। ६। २॥

'काणा' जिसकी दृष्टिशक्ति नष्ट हो गयी हो। सूक्ष्मभावार्थक कण धातु से भी 'काणा' बना है। इसी से 'कणा' बना है। कम दीखता है इसी से 'काण' कहाता है। 'विकटा'—गति रहित या विक्रमपूर्वक चाल चलने

वाली, वा कुट धातु से—हिंसा करने वाली, 'शिरिम्बिठ' जो बिठ अर्थात् अन्तरिक्ष में शीर्ण हो, छिन्न-भिन्न हो। बिठ का अर्थ 'वीरिट' के समान है। अर्थात् (पूर्वं वयतेरुत्तरमिरतेर्वयांसि इरन्ति अस्मिन् भांसि वा वीरिट मन्तरिक्षं भियो भासो वा ततिः निरु० ।) जिसमें पक्षी वा प्रकाश फैलें वह 'वीरिट' है, अथवा जिसमें दीप्ति और भय व्यापें।

इससे 'शिरम्बिठ' मेघ है। भययुक्त पर-सैन्य को छिन्न-भिन्न करने वाला वीर पुरुष और तेज फैलाने वाला सूर्य भी 'शिरिम्बिठ' हैं।

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गो दृषन्निहि ॥ २ ॥

भा०—(इतः चत्तो) इधर से नाश को प्राप्त वा ताड़ित हो, (अमुतः चत्ता) उधर से भी नाशित या ताड़ी जाय, वह (सर्वा भ्रूणानि) सब गर्भों को या अंकुरों या जीवों को (आरुषी) नाश करने वाली है, ऐसी (अराय्यम्) शत्रुसेना को हे (ब्रह्मणः पते) मन्त्रों के पालक वा हे महान् धर्म-बल के पालक स्वामिन्! हे (तीक्ष्ण-शृंग) हिंसाकारी सैन्य, आयुध आदि को तीक्ष्ण करने वाले! तू (उद् ऋषन्) उत्तम गति से जाता हुआ (इहि) जा, उसका नाश कर।

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ३ ॥

भा०—(अदः) वह दूर (यत्) जो (दारु) शत्रुबल को विदारण करने वाला वा काष्ठमय नौकादि (सिन्धोः पारे) नदी, समुद्रादि के तट पर, या उसको पार करने के निमित्त है जो (अपूरुषम्) पुरुष के वेग से न चलने वाला है (तत् आ रभस्व) उसको तू प्राप्त कर। हे (दुःहनो) दुःख से नाश करने योग्य। हे प्रबल! तू (तेन) उससे (परः

तरम् गच्छ) परम तरण योग्य उत्तम पद, या दूर २ जलीय देशों को प्राप्त हो। सागर आदि पार करने के लिये वायु या अग्नि-यन्त्रादि के बल से चलने वाले नाव, जहाज़ का प्रयोग करें।

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (यत्) जब (प्राचीः) आगे बढ़ने वाली (उरो) बड़ी विशाल, एवं शत्रु हिंसक, (मण्डूर-धाणिकीः) लोह कणों को धारण करने वाली तोपें (अजगन्त) प्रयाग करती हैं, तब (इन्द्रस्य) इन्द्र, वीर राजा के (शत्रवः) शत्रु (सर्वे) समस्त (बुद्बुद-याशवः) बुलबुले के समान नष्ट होने वाले होकर (हताः) नष्ट हो जाते हैं।

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(इमे गाम् परि अनेषत) ये वीर जन भूमि के सर्वत्र स्थानों पर जावें। (अग्निम् परि अहृषत) अपने अग्रणी वा ज्ञानी नायक को प्राप्त कर खूब प्रसन्न हों, उसकी सेवा करें। (देवेषु श्रवः अक्रत) विद्वानों, वीरों के अधीन रहकर ज्ञान और अन्न को उत्पन्न करें तब (कः इमान् आ दधर्षति) कौन इनको परास्त कर सकता है ? इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१५६]

ऋषिः केतुराग्नेयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ गायत्री। २, ४ निचृद् गायत्री ॥

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु।
तेन जेष्म धनंधनम् ॥ १ ॥

भा०—(नः धियः) हमारे कर्म और हमारी बुद्धियां (वाजिषु आशुम् इव) ज्ञान, बल ऐश्वर्यादि से सम्पन्नों के बीच वेग, क्रिया-सामर्थ्य से सम्पन्न (सप्तिम् अग्निम्) सातों प्राणों के स्वामी, ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष को (हिन्वन्तु) उद्योग से युक्त करें, उसको प्रेरित करें। (तेन) उससे (धनं-धनं जेषम) प्रत्येक धन का विजय करें।

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या।
तां नो हिन्व मघत्तये॥ २॥

भा०—(यया सेनया) जिस सेना से और (यया तव ऊत्या) जिस तेरी रक्षण-शक्ति और ज्ञान-शक्ति से हम (गाः आकरामहे) भूमियों और वाणियों को प्राप्त करते हैं (तां) उसी सेना और ज्ञानमयी शक्ति को (नः मघत्तये हिन्व) हमें ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर, प्रदान कर।

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्।
अङ्ग्धि खं वर्तया पणिम्॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, हे ज्ञान के प्रकाशक! आत्मन्! तू (स्थूरम्) स्थूल, (पृथुम्) विस्तृत, (गोमन्तम्) इन्द्रियों से युक्त (रयिम् आ भर) मूर्त्तिमान् देह को सब प्रकार से ऐश्वर्य के तुल्य पुष्ट कर। (खं अङ्ग्धि) इन्द्रियगण वा हृदयाकाश को प्रकाशित कर और (पणिम् वर्त्तय) समस्त व्यवहार को सञ्चालित कर। इसी प्रकार विद्वान् नेता पुरुष बहुत विपुल धन को प्राप्त करें, अन्तःकरण वा गृह को उज्ज्वल रखें और व्यवहार करें, वा बाधक कारण को दूर करे।

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः॥ ४॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! (दिवि) महान् आकाश में प्रकाश के निमित्त (अजरम्) जीर्ण होने वाले (नक्षत्रम् सूर्यम्) नक्षत्र के तुल्य अपने स्थान से च्युत न होने वाले सूर्य को (आरोहयः) स्थापित करता और चढ़ाता, उदित करता है, जो (जनेभ्यः ज्योतिः दधत्) मनुष्यों को निरन्तर प्रकाश देता है। (२) इसी प्रकार भूमि पर राजा भी उत्तम विद्वानों को स्थिर रूप से नियत करे कि लोगों को ज्ञान-प्रकाश मिले।

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानमय ! प्रकाशस्वरूप ! तू (उपस्थ-सत्) सदा समीप रहने वाला, (प्रेष्ठः) अति प्रिय, (श्रेष्ठः) सर्व श्रेष्ठ, प्रशंसनीय, (विशां केतुः असि) प्रजाओं को ज्ञान देने वाला, सर्वोच्च ध्वजा के तुल्य मान्य है। तू (स्तोत्रे बोध) स्तुतिकर्त्ता को ज्ञान प्रदान कर और (वयः दधत्) बल, आयु, ज्ञान, तेज प्रदान कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१५७]

ऋषिर्भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः। विश्वेदेवा देवताः ॥ द्विपदा त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् प्रभु, गुरु, विद्वान् और जीव और (विश्वे च देवाः) और समस्त जीव, शिष्य, मनुष्य और इन्द्रियगण, (इमा नु भुवना सीषधाम कं) उन समस्त उत्पन्न पदार्थों और लोकों को प्राप्त हों, वश करें।

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रः) अन्न देने वाला, मेघ, सूर्य, वा प्रभु (नः यज्ञं च)

हमारे यज्ञ को, और (तन्वं च) देह को और (प्रजां च) प्रजा को (आदित्यैः सह) इस जल आदान करने वाले किरणों वा मासों सहित (चीक्लृपाति) समर्थ बलवान् करता है, हमें वृष्टि, अन्न जल देता और पालता है। राजा के उत्तम शासकगण आदित्य के तुल्य हैं।

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥३॥

भा०—(आदित्यैः) अदिति, भूमि के हितकारक किरणों, तेजों से और (मरुद्भिः) वायुओं से सूर्य के तुल्य (इन्द्रः) शत्रुहन्ता और ऐश्वर्यवान्, अन्न जलादि का स्वामी राजा भी (स-गणः) अपने गण अर्थात् सैन्य दलों सहित, (आदित्यैः मरुद्भिः) तेजस्वी विद्वानों और बलवान् पुरुषों द्वारा (अस्माकं तनूनां अविता भूतु) हमारे शरीरों वा हमारे पुत्र प्रजादिकों का रक्षक हो।

हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः) विजिगीषु एवं विद्वान् जन (यत्) जब (असुरान् हत्वाय) अपने से प्रबल शत्रुओं का नाश करके (आयन्) आवें तो वे (देवत्वम् अभि रक्षमाणाः) अपने दानशील और तेजस्वीपन की रक्षा अवश्य करते रहें। नहीं तो वे पुनः आलसी हो जाने से पराजित हो जावेंगे।

प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥५॥१५॥

भा०—वे विद्वान् एवं विजयेच्छुक उत्तम जन, (अर्कम्) अर्चना करने योग्य पुरुष को (शचीभिः) शक्तियों और उत्तम कर्मों, अधिकारों और स्तुतियों द्वारा (प्रत्यञ्चम्) प्रतिपद पर पूजनीय रूप में आगे ही आगे (अनयन्) लिये जावें, तब (आत् इत्) अनन्तर ही वे (इषिरां स्वधाम् परि अपश्यन्) अन्न देने वाली अपनी देह-पोषक आजीविका को

प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार साधक लोग (प्रत्यञ्चम् अर्कम्) अपने प्रत्यक् आत्मा, उपास्य के प्रति (शचीभिः) साधना और वाणियों द्वारा प्राप्त करते हैं और अनन्तर (इपिरां स्वधाम् परि अपश्यन्) इच्छा शक्ति से युक्त अपने देह की धारणा शक्ति चित् का दर्शन करते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[१५८]

ऋषिश्चक्षुः सौर्यः॥ सूर्यो देवता॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् गायत्री। २ स्वराड् गायत्री। ३ गायत्री। ४ निचृद् गायत्री। ५ विराड् गायत्री॥

सूर्यो नो द्विवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः॥ १॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य, सब का संचालक प्रभु (नः दिवः पातु) हमें आकाश से बचावे। (वातः) वायु (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष के उत्पातों से बचावे, (अग्निः नः पार्थिवेभ्यः) अग्नि हमें पृथिवी पर होने वाले उपद्रवों से बचावे। इस मन्त्र में सूर्य, वायु, और अग्नि ये तीनों शब्द उन २ पदार्थों की विद्याओं को जानने वालों के लिये उपलक्षण हैं। अथवा (२) सूर्य वायु अग्नि तीनों नामों से गुण भेद से परमेश्वर को ही संबोधन करके उससे ही रक्षा की प्रार्थना की है।

जोषा सवितुर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति।
पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः॥ २॥

भा०—हे (सवितः) समस्त जगत् के उत्पादक! सूर्यवत् प्रकाशमान! (यस्य ते हरः शतं सवान् अर्हति) जिससे तेरा तेज सैकड़ों ऐश्वर्यों एवं स्तुतियों के योग्य है। वह तू (जोषा) प्रेम से हमारी प्रार्थना स्वीकार कर। और (नः) हमें (पतन्त्याः दिद्युतः पाहि) गिरती हुई विद्युत् से बचा।

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।
चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ ३ ॥

भा०—(सविता देवः) सूर्य सबका प्रेरक तेजोमय लोक वा प्रभु (नः चक्षुः दधातु) हमें चक्षु प्रदान करे। (उत पर्वतः नः चक्षुः दधातु) और मेघ हमें उत्तम चक्षु या उत्तम प्रकाश दे। (धाता) सब का पोषक पालक वा कर्त्ता वायु (नः चक्षुः दधातु) हमें सेवने योग्य नेत्र वा प्रकाश दे।

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ।
सं चेदं वि च पश्येम ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे सूर्य ! (नः चक्षुषे चक्षुः धेहि) हमारे नेत्र के लिये प्रकाश दे। (नः तनूभ्यः विख्यै चक्षुः धेहि) तू हमारे शरीरों की विशेष कान्ति या दर्शन के लिये प्रकाश दे। जिससे (इदं) इस जगत् को हम (सं पश्येम च वि पश्येम च) अच्छी प्रकार देखें और विविध प्रकार से देखें।

सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।
वि पश्येम नृचक्षसः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके संचालक, सर्वप्रकाशक प्रभो ! विद्वन् ! (सु-सं-दृशम् त्वा) उत्तम रीति से दर्शन करने वाले तुझे (वयम् प्रति पश्येम) हम प्रति दिन सदा देखें, तेरा साक्षात् करें और हम (नृ-चक्षसः) मनुष्यों के बीच द्रष्टा, और राजभक्त होकर (वि पश्येम) विशेष रूप से या विविध प्रकार से प्रत्येक वस्तु को देखा करें। इति षोडशो वर्गः ॥

[१५९]

ऋषिः शची पौलोमी ॥ देवता—शची पौलोमी ॥ छन्दः—१—३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् । ६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उद॒सौ सूर्यो॑ अगा॒दुद॒यं मा॑म॒को भगः॑ ।
अ॒हं तद्वि॑द्व॒ला पति॑म॒भ्य॑साक्षि विषास॒हिः ॥ १ ॥

भा०—सेना और स्त्री का आत्म-वरण । (असौ) वह पूज्य (सूर्यः) सूर्य के समान कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष (उत् अगात्) उत्तम पद को प्राप्त होता है । (अयं मामकः भगः उत्) यह मेरा ऐश्वर्य-सौभाग्य भी उदय को प्राप्त हो। (अहम् तत् पतिं विद्वला) मैं उसको अपना पालक पति प्राप्त करती हुई, (वि-ससहिः) विशेष रूप से विरोधी शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ होकर (अभि असाक्षि) सन्मुख के शत्रुओं को पराजय करूं । इसी प्रकार स्त्री भी पति के उदय के साथ अपना सौभाग्य बढ़ता जाने, और वह खूब सहनशील, दुष्ट-दमन-कारिणी हो ।

अ॒हं के॒तुर॒हं मू॒र्धाह॑मु॒ग्रा वि॒वाच॑नी ।
ममेदनु॒ क्रतुं॒ पतिः॑ सेहा॒नाया॑ उ॒पाच॑रेत् ॥ २ ॥

भा०—(अहं केतुः) मैं ध्वजा के समान यश-वैभव को बतलाने वाली, एवं ज्ञानयुक्त और (अहं मूर्धा) मैं सिर के समान आदरणीय और मूल आश्रय को धारण करने वाली, (अहम्) मैं (उग्रा) बलवती, शत्रु को भय देने वाली (वि-वाचनी) विविध वचनों को बोलने और पालन करने वाली होऊं । (मम सेहानायाः) शत्रु का विजय करने वाली मेरे ही (क्रतुम् अनु) कर्म वा इच्छा, संकल्प के अनुकूल (पतिः उप आ चरेत्) मेरा पालक पति कार्य करे। इसी प्रकार स्त्री भी ज्ञान वाली, गृहस्थ में शिरोमणि, उत्तम वाणी युक्त, साक्षर, सहनशील हो, पति उसके मन के अनुकूल कर्म करे ।

मम॑ पु॒त्राः श॑त्रु॒हणोऽथो॑ मे दुहि॒ता वि॒राट् ।
उ॒ताहम॑स्मि सञ्ज॒या पत्यौ॑ मे॒ श्लोक॑ उत्त॒मः ॥ ३ ॥

भा०—(मम पुत्राः) मेरे बहुतों की रक्षा करने वाले पुत्र (शत्रु-हनः) शत्रुओं का नाश करने वाले हों। (अथो) और (मे दुहिता) मेरी कन्या दूर देश में, विवाहित होकर (विराट्) विविध गुणों से चमकने वाली हो। (उत) और (अहम् स-जया अस्मि) मैं मिलकर उत्तम जय प्राप्त करने वाली होऊं। (मे उत्तमः श्लोकः पत्यौ) मेरा उत्तम स्तुति योग्य वचन और यश पति के हृदय में या उसके सम्बन्ध में या उसके अधीन हो। अथवा (मे पत्यौ उत्तमः श्लोकः) मेरी उत्तम प्रसिद्धि पति के आश्रय ही हो।

येनेन्द्रो ह॒विषा॑ कृ॒त्व्यभ॑वद्द्यु॒म्न्यु॑त्त॒मः।
इ॒दं तद॑क्रि देवा असप॒त्ना किला॑भुवम् ॥ ४ ॥

भा०—(येन) जिस (हविषा) अन्न आदि साधन सामग्री से, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् मेरा स्वामी, (कृत्वी द्युम्नी उत्तमः अभवत्) कर्म करने में समर्थ, यशस्वी, और उत्तम हो। हे (देवाः) विद्वान् जनो! (इदं तत् अक्रि) वही साधन किया जाय। और मैं (असपत्ना किल अभुवम्) शत्रु वा सपत्नी से रहित होऊं।

अ॒स॒प॒त्ना स॑पत्न॒घ्नी ज॒यन्त्य॑भि॒भूव॑री।
आवृ॑क्षम॒न्यासां॒ वर्चो॒ राधो॒ अस्थे॑यसामिव ॥ ५ ॥

भा०—मैं (असपत्ना) शत्रु से रहित, (सपत्न-घ्नी) शत्रुओं का नाश करने वाली, (जयन्ती) जय लाभ करती हुई, (अभि-भूवरी) सब को पराजित करती हुई, (अन्यासां) अन्य शत्रु जनों की (अस्थेयसाम् इव) अस्थिरसी सेनाओं के (वर्चः राधः) तेज और धन को (आ अवृक्षम्) सब ओर से काट गिराऊं।

सम॑जैषमि॒मा अ॒हं स॒पत्नी॑रभि॒भूव॑री।
यथा॒हम॒स्य वी॒रस्य॑ वि॒राजा॑नि॒ जन॑स्य च ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—(अहं) मैं (इमाः सपत्नीः) इन शत्रु सेनाओं को (अभि-भूवरी) पराजित करने वाली होकर (सम् अजैषम्) अच्छी प्रकार विजय करूं। (यथा) जिससे (अहम्) मैं (अस्य वीरस्य जनस्य च) इस वीर और प्रजाजन के साथ (विराजानि) विशेष रूप से चमकूं, प्रतिष्ठा प्राप्त करूं।

इसी प्रकार स्त्री भी चाहे कि उसके पुत्र शत्रुहन्ता वीर और कन्याएं गुणवती हों। (३) वह पति के हृदय को जीते, और उसके अधीन रहकर उत्तम कीर्त्ति प्राप्त करे। (४) वह ऐसा कार्य करे जिससे उसका पति समर्थ और धनी, यशस्वी हो, (५) ऐसा न हो कि कोई उसके घर में उसकी सौत आ जावे। (६) प्रत्युत वह ही उसके साथ सदा विराजे। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१६०]

ऋषिः पूरणो वैश्वामित्रः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। २ पाद-निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते! हे शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू (अस्य) इस (तीव्रस्य) अति वेग से जाने वाले (अभि-वयसः) सर्वत्र बलयुक्त सैन्य और सर्व अन्न से सम्पन्न राष्ट्र का (पाहि) पालन कर। (इह) यहां (सर्वरथा हरी) वेग से जाने वाले रथ से संयुक्त, वा समस्त रथों में लगे अश्वों को (वि मुञ्च) खोल दें। (त्वा) तुझे (अन्ये यजमानासः) दूसरे शत्रु लोग नाना ऐश्वर्य देते हुए भी (मा नि रीरमन्) तुझे न लुभालें, (इमे सुतासः तुभ्यम्) ये समस्त उत्पन्न ऐश्वर्य और अधिकार वा अधिकारी जन एवं ऐश्वर्यवान् जन (तुभ्यम्) तेरी ही सेवा के लिये हैं।

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (तुभ्यम् सुताः) ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही लिये हैं । (तुभ्यम् उ सोत्वासः) ये ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले भी तेरे ही लिये हैं । (त्वां) तुझको (श्वात्र्याः) सुखकारिणी, शुद्ध (गिरः) वाणियां (आह्वयन्ति) सब ओर से बुला रही हैं । (अद्य इदं सवनं जुषाणः) आज इस सवन, अभिषेक को प्रेम से स्वीकार करता हुआ (विश्वस्य विद्वान्) सबको जानता हुआ (सोमम् पाहि) इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को पालन कर ।

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

भा०—(यः) जो (देव-कामः) दाता प्रभु की इच्छा करने वाला (अस्मै) इसके लिये (सर्व-हृदा) पूर्ण हृदय से (उशता मनसा) कामनायुक्त चित्त से (सोमं सुनोति) ऐश्वर्य उत्पन्न करता है, (इन्द्रः तस्य गाः) वह ऐश्वर्यवान् उसके वाणियों वा भूमियों को (न परा ददाति) नहीं टालता, नहीं नष्ट करता, और (अस्मै प्रशस्तम् इत् चारु कृणोति) उस प्रजाजन के लिये प्रशंसनीय सुन्दर मार्ग, वा धन उत्पन्न करता है ।

अनु स्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान् न) धनवान् के सदृश होकर (अस्मै) इस प्रभु के लिये ही (सोमं) अन्न, ऐश्वर्य, आदर-सत्कार पूजादि (सुनोति) प्रदान करता है, (एषः अस्य अनु स्पष्टः भवति) वह उसको

दिनों दिन दृष्टि गोचर होता जाता है, (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (तम्) उसको (अरत्नौ निः दधाति) बाहु पकड़ कर कष्टों से निकाल लेता है, और (अनानुदिष्टः) विना प्रार्थना ही के (ब्रह्म द्विषः हन्ति) वे ब्रह्म, वेद, और विद्वानों के शत्रुओं को नाश करता है।

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५।१८॥

भा०—(वयम्) हम लोग (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजयन्तः) अश्वों, गौओं, और देह में, कर्म और ज्ञानेन्द्रियों को चाहने वाले, और ऐश्वर्य चाहते हुए, (त्वा उपगन्तवै हवामहे) तुझे प्राप्त होने के लिये तुझे पुकारते हैं (ते नवायां सुमतौ) तेरी अति सुन्दर शुभ मति, ज्ञान में (आभूषन्तः) सब प्रकार से रहते हुए, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वा शुनं हुवेम) तुझ को सुखपूर्वक पुकारें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[१६१]

ऋषिर्यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः ॥ देवता—राजयक्ष्मघ्नम् ॥ छन्दः—१, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥

भा०—हे रोगिन् ! (त्वा) तुझे, (अज्ञात-यक्ष्मात्) जो रोग पता नहीं चल रहा, (उत) और (राज-यक्ष्मात्) राज-रोग [तपेदिक्] से भी (कं जीवनाय) सुख पूर्वक जीने के लिये (मुञ्चामि) छुड़ाता हूं। (यदि ग्राहिः जग्राह) यदि ग्राही नाम का शरीर जकड़ देने वाला रोग (एनम्) इस तुझ रोगी को जकड़ लिया है, (तस्याः) उस रोग से भी

(एनं) इस रोगी को (इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तम्) इन्द्र और अग्नि, विद्युत् और अग्नि के गुण वाले ओषधियां अच्छी प्रकार छुड़ावें। वा देह में प्राण इन्द्र और जाठर अग्नि है, वे दोनों ठीक होकर रोगी को रोग से मुक्त करें।

यदि॑ क्षि॒तायु॒र्यदि॑ वा॒ परे॑तो॒ यदि॑ मृ॒त्योर॑न्ति॒कं नीत ए॒व ।
तमा ह॑रामि॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॒दस्पा॑र्षमेनं श॒तशा॑रदाय ॥ २ ॥

भा०—(यदि क्षितायुः) यदि रोगी की जीवनशक्ति नष्ट ही हो गई हो, (यदि वा परा-इतः) यदि वह सीमा से भी परे चला गया है, (यदि मृत्योः अन्तिकं) यदि वह मौत अर्थात् देह त्याग के समीप (नीतः एव) ही पहुंच गया है, तो भी (तम्) उस रोगी को मैं (निर्ऋतेः उपस्थात् आ हरामि) अति कष्टप्रद रोग के पंजे से छुड़ा लाऊं। और (एनं) उस रोगी को (शत-शारदाय) सौ वर्ष के जीवन के लिये (अस्पार्षम्) बलयुक्त करूं।

स॒ह॒स्रा॒क्षेण॑ श॒तशा॑रदेन श॒तायु॑षा ह॒विषाहा॑र्षमेनम् ।
श॒तं यथे॒मं श॒रदो॒ नया॒तीन्द्रो॒ विश्व॑स्य दुरि॒तस्य॑ पा॒रम् ॥ ३ ॥

भा०—मैं (एनं) इस रोगी को (सहस्राक्षेण) सहस्रगुणा, बलयुक्त व्यापक गुण वाले, और (शत-शारदेन) सौ वर्ष तक जीवन देने में समर्थ (शत-आयुषा) सौ वर्ष तक दीर्घ जीवन से युक्त, (हविषा) औषध आदि साधन से (अहार्षम्) रोग से मुक्त करूं। (यथा) जिससे (इन्द्रः) आत्मा प्राण वा परमात्मा (शरदः शतम्) सैकड़ों वर्ष (विश्वस्य दुरितस्य पारम्) समस्त दुःखों के पार (नयाति) पहुंचावे। इमं नयति पारम् इति इन्द्रः ॥

श॒तं जी॑व श॒रदो॒ वर्ध॑मानः श॒तं हे॑म॒न्ताञ्छ॒तमु॑ वस॒न्तान् ।
श॒तमि॑न्द्रा॒ग्नी स॑वि॒ता बृह॒स्पतिः॑ श॒तायु॑षा ह॒विषे॒मं पुन॑र्दुः ॥४॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (शतं शरदः जीव)

सौ व॰ तक जीवन धारण कर। (शतं हेमन्तान्) सौ हेमन्त और (शतं वसन्तान् उ) सौ वसन्तों तक भी जी (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र अग्नि, सूर्य और अग्नि, प्राण और जाठर (सविता बृहस्पतिः) सविता और बृहस्पति उत्पादक शक्ति वीर्य और इस देह का पालक रक्त या ओज धातु (शतायुषा हविषा) सौ वर्षों के जीवन के देने के साधन या बल से (एनं पुनः दुः) इसको पुनः शक्ति पुनः प्रदान करें।

आहा॑र्षं॒ त्वावि॑दं त्वा॒ पुन॒रागाः॑ पुनर्नव।
सर्वा॑ङ्ग॒ सर्वं॑ ते॒ चक्षुः॒ सर्व॒मायु॑श्च तेऽविदम् ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे रोगी! (त्वा आहार्षम्) तुझे मैं रोग से दूर करूं। (त्वा अविदं) तुझे मैं प्राप्त करूं। (पुनः आगाः) तू पुनः आजा। हे (पुनः-नव) पुन नये जीवन को धारण करने वाले! हे (सर्व-अंग) समस्त अंगों से युक्त! (ते सर्वं चक्षुः) तेरे समस्त ज्ञान देखने वाली आंख आदि इन्द्रियें, और (सर्वं च आयुः) सम्पूर्ण आयु (ते अविदम्) तुझे प्राप्त कराऊं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६२]

ऋषिरक्षोहा ब्राह्मः ॥ देवता—गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम् ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप्। ३, ५, ६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

ब्रह्म॑णा॒ग्निः सं॑विदा॒नो र॑क्षो॒हा बा॑धतामि॒तः।
अमी॑वा॒ यस्ते॒ गर्भं॑ दु॒र्णामा॒ योनि॑मा॒शये॑ ॥ १ ॥

भा०—(ब्रह्मणा सं-विदानः) ब्रह्म अर्थात् अन्न के साथ मिलकर (रक्षोहा अग्निः) रोग कीटादि बाधक कारण को नाश करने वाला अग्नि नामक ओषधि, अथवा (ब्रह्मणा सह संविदानः अग्निः) वेद-ज्ञान के साथ

उत्तम ज्ञान लाभ करता हुआ रोगनाशक विद्वान् पुरुष (इतः) इस शरीर से (बाधताम्) उस रोग को दूर करे। (यः) जो (अमीवा) रोग (दुर्नाम) बुरे रूप वाला, (ते गर्भं योनिम् आशये) तेरे गर्भ वा योनि स्थान में गुप्त रूप से पहुंचा है।

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (दुर्नामा) बुरे रूप वाला (अमीवा) रोग (ते गर्भम् योनिम् आशये) तेरे गर्भ और योनि भाग में गुप्त रूप से है (अग्निः) ज्ञानी पुरुष वा अग्नि नाम ओषधि (तं क्रव्यादम्) उस मांस खाने वाले [पेराज़ाईट्] रोगकारक कीटाणु को (ब्रह्मणा सह) ज्ञान पूर्वक वा बल से (निः अनीनशत्) सर्वथा नष्ट करे।

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ ३ ॥

भा०—(यः) हे स्त्रि! जो रोग (ते पतयन्तं) तेरे गर्भाशय में जाते हुए वीर्यांश को (हन्ति) नाश करता है, वा (नि-सत्स्नुं) गर्भाशय में स्थिर होते हुए गर्भ को (हन्ति) नाश करता है, (यः) जो (सरीसृपं) सरकते, हिलते डोलते गर्भ को नाश करता है, (यः ते जातं जिघांसति) जो रोग तेरे उत्पन्न हुए बालक को नाश करना चाहता है (तम्) उस रोग को हम (इतः) इस स्थान से (नाशयामसि) दूर करें।

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री! (यः) जो रोगकारी कारण (ते ऊरू विहरति) तेरे दोनों जांघों के बीच रहता है, और (दम्पती अन्तरा शये) स्त्री पुरुष

दोनों में से किसी के देह में भी गुप्त रूप से है और (यः) जो (योनिम् अन्तः आरेढि) योनि, गर्भाशय के बीच में प्रविष्ट होकर गर्भ को चाट जाता है, (तम् इतः नाशयामसि) उस रोग-कारण रूप कीटाणु आदि को हम यहां से दूर करें।

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्रि! (यः) जो (त्वा) तेरे पास (भ्राता) तेरे भाई रूप से वा (पतिः) पति रूप से वा (जारो भूत्वा) प्रेमी होकर (निपद्यते) प्राप्त होता है और (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजा को नष्ट करना चाहता है, (तम् इतः नाशयामसि) हम उसको यहां से दूर करें।

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(यः) जो (त्वा) तुझे (स्वप्नेन) निद्रा से वा अन्धकार से, वा शोक से (मोहयित्वा) मोह कर (निपद्यते) तेरे पास आता है, (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजा को नष्ट करना चाहता है (तम् इतः नाशयामसि) उसको हम यहां से नष्ट करें। इति विंशो वर्गः ॥

[१६३]

ऋषिर्विवृहा काश्यपः ॥ देवता—यक्ष्मघ्नम् ॥ छन्दः—१, ६ अनुष्टुप्। २—५ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १ ॥

भा०—मैं (ते अक्षीभ्यां यक्ष्मं अधि वि वृहामि) तेरी आंखों में से रोगकारक कारण को दूर करूं। (ते नासिकाभ्यां, ते कर्णाभ्याम्) तेरी नासिकाओं से और कानों से और (छुबुकाद् अधि) तेरी ठोड़ी से भी रोग को दूर करूं और (शीर्षण्यं यक्ष्मं) सिर में बैठे रोग को (मस्तिष्कात्) मस्तिष्क से और (जिह्वायाः) जीभ से भी दूर करूं।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यऽमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ २ ॥

भा०—हे रोगी! (ते दोषण्यं यक्ष्मं) तेरे बाहुओं में बैठे रोग को (ग्रीवाभ्यः) गर्दन की नाड़ियों से (उष्णिहाभ्यः) ऊपर की ओर जाने वाली, धमनियों से, (कीकसाभ्यः) हड्डियों से और (अनूक्यात्) संधि भाग से, (अंसाभ्यां बाहुभ्यां) कंधों और बाहुओं से (वि वृहामि) दूर करूं।

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥ ३ ॥

भा०—(ते आन्त्रेभ्यः) तेरा आंतों से, (गुदाभ्यः) गुदा की नाड़ियों से और (वनिष्ठोः) स्थूल आंत से, (हृदयात् अधि) हृदय से (ते मतस्नाभ्यां) तेरे दोनों गुर्दों में से, (यक्नः) यकृत् से, (प्लाशिभ्यः) पेट में स्थित अन्य भोजन-पाचक तिल्ली आदि यन्त्रों से (यक्ष्मं वि वृहामि) रोग को दूर करूं।

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥ ४ ॥

भा०—(ते ऊरुभ्यां) तेरी जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) विशेष अस्थि वाले गोड़ों से (पार्ष्णिभ्यां) एड़ियों से, और (प्र-पदाभ्यां)

पैरों के अग्रभाग, पंजों से, (श्रोणिभ्यां) नितम्ब भागों से और (भासदात् भंससः) कटि भाग में स्थित गुदा वा उपस्थ प्रदेश से, (यक्ष्म वि वृहामि) रोग को दूर करूं।

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥ ५ ॥

भा०—हे रोगी! (वनं-करणात् मेहनात्) जल पैदा करने वाले मूत्रकारी और शुक्रसेचक मूल-इन्द्रिय से, (ते लोमभ्यः नखेभ्यः) तेरे लोमों और नखों से, और (सर्वस्मात् ते आत्मनः) तेरे समस्त देह से (ते तम् इदं वि वृहामि) तेरे इस प्रकार के उस समस्त रोग को दूर करूं।

अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(अंगात् अंगात्) अंग २ से, (लोम्नः लोम्नः) लोम लोम से, और (पर्वणि पर्वणि जातं) पोरू २ में पैदा हुए (तम् इदम्) उस इस (यक्ष्मं) रोगकारी कारण को (सर्वस्मात् आत्मनः) समस्त देह से (वि वृहामि) दूर करूं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१६४]

ऋषिः प्रचेताः ॥ देवता—दुःस्वप्नघ्नम् ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ४ विराडनुष्टुप्। ३ आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप्। ५ पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ १ ॥

भा०—हे (मनसः पते) मन अर्थात् संकल्प विकल्प करने वाले अन्तःकरण को गिराने वाले ! पाप-संकल्प ! तू (अप इहि) दूर हो, (अप क्राम) तू परे चला जा, (परः चर) परे भाग जा । तू (जीवतः मनः) प्राणी के चित्त को (वहुधा) प्रायः, बहुत प्रकार से, (निर्ऋत्यै) दुःखदायी पापप्रवृत्ति के लिये ही (आ चक्ष्व) वार २ कहा करता है । (परः) तू परे हो । (अथर्व० २० । ९६ । २४)

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥ २ ॥

भा०—मनुष्य प्रायः (भद्रं) कल्याणकारक (वरं) श्रेष्ठ पदार्थ की (वृणते) याचना करते हैं । वे (दक्षिणं) उत्साहवान् चित्त को भी (भद्रं युञ्जन्ति) कल्याण के लिये ही लगाते हैं । (जीवतः मनः बहुत्र) जीवित प्राणी का चित्त बहुत स्थानों पर जाता है वह (वैवस्वते) विविध प्राणियों के स्वामी प्रभु में ही (भद्रं चक्षुः) उत्तम कल्याण को ही देखने वाली आंख के तुल्य हो ।

यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जिस बुराई को हम (आ-शसा) आशा से, इच्छा पूर्वक (निः-शसा) निराशा से, इच्छा के विपरीत, (अभि-शसा) वा पुनः चाह कर (उपारिम) प्राप्त करें वा (यत्) जिस बुराई को हम (जाग्रतः) जागते हुए वा (स्वपन्तः) सोते हुए (उपारिम) प्राप्त हों, (अग्निः) ज्ञानवान्, तेजोमय प्रभु वा विद्वान्, उन (दुष्कृतानि) दुष्ट कर्मों और (अजुष्टानि) न सेवन करने योग्य पापों को (अस्मत् आरे) हम से दूर (अप दधातु) रखे ।

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हे (ब्रह्मणः पते) महान् ज्ञान और ब्रह्माण्ड के पालक, स्वामिन् प्रभो ! (यत् अभिद्रोहं चरामसि) हम जो सब से द्रोह का आचरण करें तो (आंगिरसः) प्रत्येक अंग २ में विराजने वाला, वा ज्ञानी पुरुषों में श्रेष्ठ (प्र-चेताः) सबके चित्तों का स्वामी, सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला, प्रभु वा विद्वान् पुरुष (द्विषतां अंहसः) अन्तः और बाह्य शत्रुओं के पाप से (नः पातु) हमें बचावे ।

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् । जाग्रत्स्वप्नः संङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—(अद्य अजैष्म) आज विजय कर लिया, (वयं अद्य असनाम) आज हमने प्राप्त करने योग्य पा लिया । (वयम् अनागसः अभूम) हम आज निष्पाप हो गये हैं । (जाग्रत्-स्वप्नः) जागते और सोते समय का (पापः संकल्पः) पाप रूप बुरा संकल्प (यम् द्विष्मः तं स ऋच्छतु) जिसको हम द्वेष करते हैं उसको वह प्राप्त हो । और (यः नः द्वेष्टि) जो हम से द्वेष करता है (तं स ऋच्छतु) उसको वह प्राप्त हो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१६५]

ऋषिः कपोतो नैर्ऋतः ॥ देवता—कपोतोपहतौ प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम् ॥ छन्दः— १ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे १

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (निर्ऋत्याः) कष्टदायी दुःख, विपत्ति या सेना वा भूमि, देशसम्बन्धी (दूतः) दूत, संदेशहर (कपोतः) ठीक २ अर्थ या तात्पर्य का दर्शाने वाला विद्वान् (इषितः) प्रेरित होकर (यत् इच्छन् इदम् आ जगाम) जो कुछ भी चाहता हुआ इस प्रकार आजावे तो भी हम (अस्मै अर्चाम) उसका आदर करें, उसका (निष्कृतिं कृणवाम) श्रम दूर करें (नः द्विपदे चतुष्पदे शम् शम् अस्तु) हमारे दोपायों और चौपायों के लिये भी शान्ति ही शान्ति हो।

उपदेष्टा, राजदूतादि बन कर आये विद्वानों का हमें सदा आदर करना चाहिये।

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥ २ ॥

भा०—(इषितः कपोतः नः शिवः अस्तु) दूसरे से भेजा हुआ विद्वान् दूत हमारे लिये भी कल्याणकारी हो। हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (नः गृहेषु) हमारे घरों में वह (अनागाः) पाप, अपराध से रहित हो, उस पर किसी प्रकार का अपमान वा आघात न हो। (अग्निः हि) वह अग्नि के तुल्य ही नियम से (नः हविः जुषताम्) हमारा उत्तम अन्न प्रेम से प्राप्त करे। (पक्षिणी हेतिः) पक्षों वाली, शस्त्र वाली सेना (नः परि वृणक्तु) हमें दूर से ही त्याग दे, हम पर आक्रमण न करे।

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः॥ ३॥

भा०—(पक्षिणी हेतिः) दोनों पक्षों वाली सेना, (अस्मान् न दभाति) हमारा नाश न करे । (आष्ट्र्यां) व्यापक सेना में वह विद्वान् पुरुष (अग्नि-धाने) अग्निवत् तेजस्वी पद के योग्य स्थान पर (पदं कृणुते) मानपद प्राप्त करता है । हे (देवाः) विद्वान् जनो ! वह (कपोतः) अद्भुतवर्णवाला पुरुष (नः मा हिंसीत) हमें न मारे । (नः गोभ्यः शम्, पुरुषेभ्यः च शम् अस्तु) हमारी गौओं और पुरुषों के लिये भी वह शान्तिदायक हो ।

यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जो (उलूकः = उरुकः) बहुत बातें बनाता है (एतत् मोघम् वदति) वह सब व्यर्थ ही बोलता है और (यत्) जब (कपोतः) उत्तम विद्वान् (अग्नौ) स्वयं तेजस्वी राजा के समीप (पदं कृणोति) अपना पद प्राप्त करता है, तब (एषः) वह (यस्य) जिसका (प्रहितः दूतः) भेजा हुआ दूत आता है (तस्मै मृत्यवे) उस मृत्युतुल्य नरसंहारक वीर शत्रुयोद्धा (यमाय) सेना-नियन्ता के प्रतिषेध के लिये (नमः अस्तु) नमस्कार वा दण्ड का प्रयोग हो ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥
॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—(प्रणोदम्) दूर करने योग्य, दूर भेजने योग्य (कपोतं) विद्वान् पुरुष को (ऋचा) उत्तम अर्चना-सत्कार सहित (नुदत) प्रेरित करो । (इषं मदन्तः) दूसरे की इच्छा को प्रसन्न रखते हुए (गाम् परि नयध्वम्) वाणी वा दुग्ध आदि पदार्थ प्रदान करो और हम (विश्वा दुरितानि

संयोपयन्तः) समस्त बुरे परिणामों को दूर करते हुए सदा सावधान रहें। (नः ऊर्जं हित्वा) हमें बल पराक्रम देता या बढ़ाता हुआ वह (पतिष्ठः) उत्तम पतनशील, दूरगामी होकर (प्र पतात्) अच्छी प्रकार जावे । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१६६]

ऋषिर्ऋषभो वैराजः शाकरो वा ॥ देवता—सपत्नघ्नम् ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप् । ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ महापङ्क्तिः पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विपासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! (मा) मुझको (समानानाम् ऋषभम्) एक समान मानपद वालों में सर्वश्रेष्ठ, और (सपत्नानां वि-ससहिम्) शत्रुओं को विशेष रूप से पराजित करने में समर्थ, (शत्रूणां हन्तारं) आघातकारी शत्रुओं का नाश करने वाले और (गवां गो-पतिम्) भूमियों के भूमिपति और (वि-राजं) विशेष कान्ति से चमकने वाला, विविध देशों का राजा (कृधि) बना ।

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥ २ ॥

भा०—(अहम्) मैं (इन्द्रः इव) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता सेनापति के तुल्य ही (अरिष्टः) स्वयं अपीड़ित और (अक्षतः) अविनष्ट होकर (सपत्नहा अस्मि) शत्रुओं का नाश करने वाला होऊं। (इमे सर्वे सपत्नाः) ये सब शत्रुगण जो मेरी भूमि के मेरे समान ही स्वामी होना चाहते हैं वा अधिकार करते हैं वे सब (अभि-स्थिताः) मेरे सन्मुख खड़े होकर भी (मे पदोः अधः) मेरे पैरों के नीचे हों।

अत्रैव वोऽपि॑ नह्याम्युभे आर्त्नी॑ इव॒ ज्यया॑ ।
वाच॑स्पते॒ नि षे॑धे॒मान्यथा॒ मदध॑रं॒ वदा॑न् ॥ ३ ॥

भा०—(ज्यया उभे आर्त्नी इव) डोरी से जिस प्रकार दोनों धनुष को कोटियों को बांधा जाता है उसी प्रकार (ज्यया) नाश वा जयकारिणी शक्ति या वाणी से हे शत्रुओ ! (वः आर्त्नी अपि नह्यामि) आप लोगों की दोनों कोटियों को बांधता हूं । हे (वाचः पते) वाणी के पालक ! (इमान् नि सेध) इनको ऐसा रोक (यथा) जिससे ये सब (मद् अधरम् वदान्) मेरे से नीचे होकर बोलें, मेरे अधीन हों ।

अ॒भि॒भूर॒हमाग॑मं वि॒श्वक॑र्मेण॒ धाम्ना॑ ।
आ व॑श्चि॒त्तमा वो॑ व्र॒तमा वो॒ऽहं समि॑तिं ददे ॥ ४ ॥

भा०—मैं (विश्वकर्मेण धाम्ना) समस्त शत्रुओं के वश करने वाले तेज से (अभि-भूः) सबका पराजय करने वाला होकर (आ अगमम्) प्राप्त होऊं । (अहं) मैं (वः व्रतम् वः समितिम्) आप लोगों के चित्त को, व्रतों, कर्मों और समिति, सभा आदि को (आ ददे) सब प्रकार से वश करूं ।

योग॒क्षेमं॑ व॒ आदा॒याहं भू॑यासमुत्त॒म आ वो॑ मू॒र्धान॑मक्रमीम् ।
अ॒ध॒स्प॒दान्म॒ उद्व॑दत म॒ण्डूका॑ इवोद॒कान्म॒ण्डूका॑ उद॒कादि॑व ५।२४

भा०—(अहम्) मैं (वः) आप लोगों के (योगक्षेमं आदाय) अप्राप्त धन की प्राप्ति और प्राप्त धन की रक्षा अर्थात् भविष्य की आय और सञ्चित धन को प्राप्त करके (उत्तमः भूयासम्) सबसे उत्तम हो जाऊं । मैं (वः) आप लोगों के (मूर्धानाम् अक्रमीम्) शिरो भाग को प्राप्त होऊं, आप के बीच शिरोमणि होऊं । आप लोग (मे पदात् अधः) मेरे पद से नीचे रह कर (उदकात् मंडूका इव) जल से. मेंडकों के

समान (उप् वदत) ऊपर मुख करके बोलो, (उदकात् इव मण्डूका) और जल से निकल कर जल में रहने वाले या निमग्न जन्तुओं के तुल्य ही जीवित रहो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१६७]

ऋषिः विश्वामित्रजमदग्नी ॥ देवता—१, २, ४ इन्द्रः । ३ लिङ्गोक्ताः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड् जगती। २, ४ विराड् जगती। ३ जगती॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (तुभ्य इदं मधु परि सिच्यते) जिस प्रकार राजा की समृद्धि के लिये ही राष्ट्र में सर्वत्र जल-सेचन, कृषि-सेचन, अन्न-सेचन या मधुपर्कादि किया दिया जाता है, उसी प्रकार (तुभ्य इम्) तेरे लिये ही (इदम्) यह सब (मधु) मधुर नाना फल, अन्न, बीजादि समस्त सुख-सामग्री, तेज, वृष्टि, जल आदि (परि सिच्यते) सींचा जाता है, बरसता है, (त्वं) तू ही (सुतस्य) इस उत्पन्न (कलशस्य) घटवद् देह के बीच में (राजसि) प्रकाशित होता है। (त्वं) तू ही (नः) हमारे (रयिम्) देह को (पुरुवीराम् कृधि) इन्द्रियों रूप वीर अर्थात् ज्ञानग्राहक साधनों से युक्त करता है। (त्वं) तू ही (तपः परितप्य) तप करके (स्वः जयसि) समस्त सुखों को प्राप्त करता है। (२) राजा के पक्ष में मन्त्रार्थ स्पष्ट है।

स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥२॥

भा०—हम (स्वः-जितं) सुखों पर या सब पर विजय पाने वाले, (अन्धसः महि मन्दानम्) अन्न के द्वारा बहुत अधिक प्रसन्नता, हर्ष

करने वाले और (सुतान् उप) उत्पन्न हुए इन देहों को प्राप्त कर (शक्रम्) शक्तिशाली, उस आत्मा को (परि हवामहे) सर्वत्र ही वर्णन करते हैं। हे आत्मन् ! तू (नः इमं यज्ञम् इह बोधि) हमारे इस यज्ञ को यहां जान, (आगहि) तू हमें प्राप्त हो। (स्पृधः जयन्तम् मघवानम्) संग्रामकारिणी स्पर्धालु सेनाओं के तुल्य बाधक शक्तियों पर विजय पाते हुए उस ऐश्वर्यवान् आत्मा से हम समस्त अभिलाषाओं की याचना करते हैं।

सोम॑स्य॒ राज्ञो॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णि॒ बृह॒स्पते॒रनु॑मत्या उ॒ शर्म॑णि।
तवा॒हम॒द्य म॑घव॒न्नुप॑स्तुतौ॒ धात॒र्विधा॑तः क॒लशाँ॑ अभक्षयम्॥३॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन् ! मैं (राज्ञः सोमस्य) दीप्तिमान् सर्वोत्पादक, सबके शासक, (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, (बृहस्पतेः) महान् विश्व के पालक प्रभु के (धर्मणि) धारण, शासन और (अनु-मत्याः) सबको अनुमति देनेवाली आज्ञापक शक्ति की (शर्मणि) शरण या वश में रहता हुआ और हे (धातः विधातः) समस्त जगत् के धारक, उत्पादक और संहारक प्रभो ! (तव उपस्तुतौ) तेरे उपदेश के अधीन रह कर ही मैं जीव (कलशान्) इन नाना देहों का (अभक्षयम्) सेवन या भोग करता हूं।

प्रसू॑तो भ॒क्षम॑करं च॒रावपि॒ स्तोमं॑ चे॒मं प्र॑थ॒मः सू॒रिरुन्मृ॑जे।
सु॒ते सा॒तेन॒ यद्याग॑मं वां॒ प्रति॒ विश्वा॑मित्रजमदग्नी॒ दमे॑॥४॥२५॥

भा०—हे (विश्वामित्र-जमदग्नी) सबको स्नेह करने वाले ! हे प्रज्वलित अग्नि, अर्थात् ज्ञान से ज्वलित आत्मा वाले श्रेष्ठ जनो ! (यदि) जब भी मैं (वाद में) आपके गृह में, वा आपके दमन या शासन में (आगमम्) आऊं तो (सातेन) सेवनीय ज्ञान से (सुते)

स्नात, परिष्कृत आत्मा में मैं (प्रथमः सूरिः सन्) सबसे उत्तम विद्वान् होकर (इमं स्तोमं उत् मृजे) इस स्तुति-वचनयुक्त वेदज्ञान का वा स्तुत्य पद आत्मा का ही उन्मार्जन, परिशोधन कर उसका स्वच्छ रूप से दर्शन करूं। और (चरौ अपि) आचरणीय मार्ग और भोक्तव्य पदार्थ के रहते हुए भी (प्रसूतः) शुभ मार्ग में प्रेरित होकर ही (भक्षम् अकरम्) भजन, भोजन या सेवन करूं। सर्वथा आप दोनों के अधीन रहूं।

[१६८]

ऋषिरनिलो वातायनः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४ त्रिष्टुप् ॥

वात॑स्य॒ नु म॑हि॒मानं॒ रथ॑स्य रु॒जन्ने॑ति स्त॒नय॑न्नस्य॒ घोषः॑ ।
दि॒वि॒स्पृग्या॑त्यरु॒णानि॑ कृ॒ण्वन्नु॒तो ए॑ति पृथि॒व्या रे॒णुमस्य॑न् ॥१॥

भा०—(वातस्य नु रथस्य) वायु और वेग से जाने वाले रथ के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को देखो, कि (अस्य) इस वायु और रथ का (घोषः) शब्द (रुजन्) नाना पदार्थों को तोड़ता फोड़ता, शत्रुओं को गिराता हुआ और (स्तनयन्) विशेष शब्द करता हुआ (एति) आता है। वह (दिवि-स्पृक्) आकाश वा भूमि को स्पर्श करता हुआ (अरुणानि कृण्वन् याति) लाल २ नाना वर्ण उत्पन्न करता हुआ जाता है और (पृथिव्याः रेणुम् आयन् याति) पृथिवी के धूलियों को इधर उधर बखेरता हुआ आता है। उसी प्रकार महारथी वा महारथ (रुजन्) शत्रुओं के गढ़ तोड़ता हुआ और (स्तनयन् मेघवत्) गर्जता हुआ (दिवि-स्पृक्) विजिगीषा में सब तक पहुंचाने वाला, (अरुणानि कृण्वन्) संग्राम स्थलों में सब लाल लाल ही करता हुआ

(पृथिव्याः) भूपृष्ठ से (रेणुम् अस्यन्) हिंसक शत्रु-दल को धूलिवत् उखाड़ता हुआ (याति एति) प्रयाण करता और दिग् विजय करके लौटता है। यह (रथस्य महिमानं) रथ की महिमा है इसको देखो। अध्यात्म में—(रथस्य वातस्य महिमानं पश्य) रमणयोग्य इस देह रूप रथ के वात अर्थात् प्राण की महिमा को देखो, वह रोगों को नाश करता हुआ, वाणी की ध्वनि करता है, इसका घोष आता है, वह देह में रुधिरों को रक्त वर्ण करता हुआ मस्तक तक जाता है, और (पृथिव्या रेणुम् अस्यन्) पृथिवी, अर्थात् पुच्छ भाग से मल को फेंकता है।

सम्प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा॥२॥

भा०—(वातस्य अनु विः-स्थाः सं प्र ईरते) जैसेवायु के वेग से ही विशेष रूप से स्थित वृक्षगण भी एक साथ कांपते हैं उसी प्रकार वायु के समान बलशाली के अनुकूल होकर (विः-स्थाः) विशेष स्थिति वाले अन्य राजगण वा अन्य विशेष पदाधिष्ठित शासक जन भी (सं प्र ईरते) मिलकर उत्तम रीति से कार्य करते हैं। (योषाः समनं न) स्त्रियें जिस प्रकार समान चित्त वाले पुरुष को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (योषाः) प्रेम से वा वृत्ति से सेवा करने वाली सेनाएं (समनं) स्तम्भनकारी बल वाले (एनं गच्छन्ति) उसको प्राप्त होती हैं। वह (देवः) विजगीषु, वीर, तेजस्वी पुरुष (ताभिः) उन से (स-युक्) सहयोगी होकर (स-रथं ईयते) समान रूप से महारथी जाना जाता है, वह (अस्य विश्वस्य भुवनस्य) इस समस्त भुवन का राजा के तुल्य है। (२) अध्यात्म में प्राण वा आत्मा के अनुसार नाना अंगों में स्थित नाना प्राण हैं। वे सब उस से संगत हैं। वही इस उत्पन्न देह का राजा है, उन शक्तियों सहित वह इस में रथवान् होकर जाता है।

अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥३॥

भा०—वायु जिस प्रकार (अन्तरिक्षे पथिभिः ईयते) अन्तरिक्ष में नाना मार्गों से जाता है, (कतमत् चन अहः न नि विशते) किसी दिन भी वह निश्चल होकर नहीं बैठता, वह (प्रथम-जाः) प्रथम प्रकट होकर (अपां सखा) मेघादि जलों का मित्र और (ऋता-वा) अन्न वा तेज से युक्त होकर (क्व स्वित् जातः) कहीं प्रकट होता है और (कुतः आ बभूव) कहीं से भी आता प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार तेजस्वी राजा अन्तरिक्ष में नाना मार्गों से जावे किसी दिन निश्चल नहीं बैठे, (अपां सखा) आप्त विद्वानों, प्रजाओं का मित्र, (ऋतावा) तेजस्वी होता है वह किसी कुल में उत्पन्न होता है, कहीं २ से आकर प्रकट होता है। इसी प्रकार प्राणात्मा भी (अपां सखा) अन्य प्राणों का मित्र (ऋतावा) जल-अन्न का भोक्ता, वह कहां से उत्पन्न होता, कहां आता है यह अज्ञात है।

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम॥४।२६॥

भा०—वह प्राणात्मा वा जिसका पूर्व मन्त्रों में वर्णन है, वह (देवानाम् आत्मा) देवों, विद्वानों, ज्ञानवान् जीवों वा इन्द्रियों का आत्मा, है। वह (भुवनस्य गर्भः) उत्पन्न देह का ग्रहण करने वाला है। (एषः देवः) वह प्रकाशस्वरूप और अन्यों का प्रकाशक होकर (यथा-वशम् चरति) अपनी इच्छानुसार विचरता और फलों का भोग करता है। वायु के समान (अस्य घोषाः इत् शृण्विरे) इसके ये घोष, नाद ही सुनाई देते हैं। इसके सम्बन्ध की ही सर्वत्र स्तुति सुनाई देती है। (न रूपम्) इसका रूप दिखाई नहीं देता। (तस्मै वाताय) उस

व्यापक, जीवन-स्वरूप प्राणात्मा की हम (हविषा) अन्न, आदि द्वारा उत्तम रूप से सेवा करते हैं।

इसी प्रकार देहस्थ जीव के समान ही महान् ब्रह्माण्ड में परमेश्वर व्यापक होने से 'वात' है। (१) वही जगत् का संहार करता है, नाना मेघ गर्जाता, सूर्यादि को तपाता, और बनाता है, (२) नाना लोकों को चलाता, सब शक्तियां उसे प्राप्त हैं, वह संसार का राजा है। (३) वह सर्वत्र व्यापक है, सब जीवों का मित्र, सबसे प्रथम, सत्-प्रकृति का स्वामी है, वह न कहीं पैदा हुआ, न किसी कारण से उत्पन्न हो सकता है। (४) समस्त सूर्यादि का आत्मा, सबका वशीकर्त्ता, सब में व्यापक, सबको वशकारिणी शक्ति से व्यापता है। इसकी ही सब स्तुतियां हैं, वह अरूप है, उस की हम भक्ति से सेवा करें। इति षड्विंशो वर्गः॥

[१६९]

ऋषिः शबरः काक्षीवतः ॥ गावो देवताः छन्दः— १ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ त्रिष्टुप्। ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥ १ ॥

भा०—(मयो-भूः) सुखजनक उत्पादक (वातः) वायु (अभि वातु) सब ओर बहे। (उस्राः) गौवें (ऊर्जस्वतीः ओषधीः) बल देने वाली, ओषधियों को (आ रिशन्ताम्) सर्व ओर खावें। और (पीवस्वतीः) अति हृष्ट पुष्ट होकर (जीव-धन्याः) प्राणों के तर्पक जलों को (पिबन्तु) पान करें। हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले! पशुओं के तुल्य जीवों को कुमार्ग से रोकने हारे! तू (पद्वते) चरणों वाले जीव के लिये (अवसाय) खाने योग्य अन्न देने के लिये (मृड) उनपर दया कर।

याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२॥

भा०—(याः) जो (स-रूपाः वि-रूपाः) एक समान रूप वाली और विविध रूप वाली, और (एक-रूपाः) एक रुचि वाले एक रूप वाली हैं, (यासाम्) जिन के (इष्टया) चाहने योग्य वा यज्ञोचित उत्तम २ (नामानि) समस्त रूपों और नामों को (अग्निः) अग्निवत् बुद्धिमान् पुरुष (वेद) जानता है (याः) जिनको (अङ्गिरसः तपसा) सूर्य के किरणों के तुल्य विद्वान् जन (इह) इस लोक में (चक्रुः) कृषि आदि रूप से उत्पन्न करते हैं हे (पर्जन्य) रसों के देने वाले (ताभ्यः) उनसे या उनके लिये (महि शर्म यच्छ) बड़ा भारी सुख प्रदान कर ।

या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

भा०—(याः) जो (देवेषु) विद्वानों के बीच में (तन्वम्) अपने स्वरूप को (ऐरयन्त) प्रकट करती हैं, (सोमः) उत्तम विद्वान् पुरुष ही (यासाम् विश्वा रूपाणि वेद) जिनके समस्त रूपों को जानता है, (प्रजावतीः) प्रजा से युक्त होकर (पयसा पिन्वमानाः) दूध आदि से पुष्ट करती हुई (ताः) उनको (प्रजावतीः) उत्तम वचनों से युक्त गौवों के तुल्य (गो-स्थे) गौओं या वाणियों के स्थिर होने के उचित स्थानों में (रिरीहि) प्रदान कर । पक्षान्तर में—इन्द्र आचार्य की वाणियें, वे शिष्यों से प्रजावती हैं ।

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकुस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ४॥२७॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक प्रभु (मह्यम्) मुझे

(एताः) इन उत्तम गौओं जैसी नाना वाणियों को (रराणः) प्रदान करता हुआ और (विश्वैः देवैः पितृभिः) समस्त विद्वानों और पालकों से (सं-विदानः) हमें अच्छी प्रकार ज्ञान प्रदान करता हुआ, (नः गोष्ठम्) हमारे वाणियों के रखने वाले, अन्तःकरण को (शिवाः सतीः) कल्याण कारिणी, शुद्ध वाणियां (आ अकः) प्राप्त कराता है। (तासां प्रजया) उनकी प्रजा से (वयम् सं सदेम) हम एक साथ शान्ति से विराजें। इस सूक्त में गौ, वाणी वाचक होने से श्लिष्ट हैं। उत्तम उपदेष्टा होने से रुद्र आचार्य है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[१७०]

ऋषिः विभ्राट् सूर्यः ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २ जगती ४ आस्तारपङ्क्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

विभ्राड्बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१॥

भा०—(वि-भ्राट्) विशेष दीप्ति से चमकने वाला, (सोम्यं मधु पिबति) जल रूप मधु को पान करता और वह जिस प्रकार (सोम्यं मधु) ओषधि वर्ग के अन्न को पालन करता है उसी प्रकार प्रभु (वि-भ्राट्) विशेष कान्ति से चमकने वाला, स्वप्रकाश प्रभु परमेश्वर (बृहत्) इस महान् (सोम्यं) सोम, जीवात्मा सम्बन्धी उसके हितकारक (मधु) तेज को (पिबतु) पालन करता है, और (यज्ञ-पतौ) यज्ञ के पालन करने वाले में (अविह्रुतं) अकुटिल, अविनाशी (आयुः) जीवन को (दधत्) धारण करता है, (यः) जो (वात-जूतः) प्राण से प्रेरित होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (प्रजाः अभि-रक्षति) प्रजाओं की रक्षा करता है, और (पुपोष) उनका पोषण करता है, और (पुरुधा विराजति) बहुत प्रकार से चमकता है।

विभ्राड्बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा २

भा०—वह (ज्योतिः) परम प्रकाश (वि-भ्राट्) विशेष दीप्ति से चमकने वाला, (बृहत्) महान् (सु-भृतं) उत्तम रीति से धारण करने योग्य, (वाज-सातमं) बल और ज्ञान को अति मात्रा में देने वाला, (दिवः धर्मन्) समस्त आकाश को भी धारण करने वाले (धरुणे) सूर्य में (सत्यम्) व्यक्त रूप से (अर्पितम्) स्थापित, (अमित्र-हा) अप्रियों का नाशक (वृत्रहा) आवरणकारी, अज्ञानान्धकार का नाशक (दस्युहंतमम्) नाशकारी कारणों का नाशक (असुरहा) असुरों, दुष्टों और विक्षेपकों, का नाशक और (सपत्नहा) शत्रुओं का भी नाशक रूप से (जज्ञे प्रकट होता है।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ३

भा०—(ज्योतिषां) समस्त ज्योतियों के बीच में से (इदं श्रेष्ठं उत्तमं ज्योतिः) यह श्रेष्ठ, सर्वोत्तम ज्योति है। वह (विश्वजित् धनजित् बृहत् उच्यते) समस्त लोकों को जीतने वाला, सबसे बड़ा, समस्त ऐश्वर्यों का जीतने वाला, और महान् कहा जाता है। वही (विश्व-भ्राट्) समस्त जगत् का प्रकाशक, (महि सूर्यः) महान् सूर्य रूप में (दृशे) दिखाई देता है। वही (सहः) सबको मात करने वाला, (अच्युतम्) अविनाशी, नित्य, स्थिर, (ओजः) बल पराक्रम तेज रूप से (उरु पप्रथे) विशाल रूप से व्याप रहा है।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता॥४।२८॥

भा०—हे प्रभो ! तू (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (स्वः वि भ्राजन्) समस्त आकाश वा सूर्यादि को वा मोक्षलोक को प्रकाशित करता हुआ, (दिवः रोचनं अगच्छः) कामनावान् इस जीव को भी तू बहुत रुचि को प्राप्त है। वह भी तुझे चाहता है। (येन) जिस तेज से (विश्व-कर्मणा) समस्त जगत् को रचने वाले तूने (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन, लोक, उत्पन्न जीवगण (आभृता) धारण किये और पाले पोसे हैं उस (विश्व-देव्यावता) समस्त सूर्यादि के हितकारी तेज से युक्त रूप से तू जीव की भी प्रीति का पात्र है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[१७१]

ऋषिरिटो भार्गवः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २, ४ विराड् गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः ।
अशृणोः सोमिनो हवम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तेजस्विन् प्रभो ! (त्वं) तू (सुत-वतः) उपासनावान् (इटः) तेरे प्रति नित्य चाहना करने वाले के (त्यम् रथम्) उस रथ अर्थात् रमण के साधन आत्मा वा देह को (प्रावः) रक्षित कर और (सोमिनः) वीर्यवान् उस पुरुष के (हवं अशृणोः) वचन प्रार्थनादि को श्रवण कर।

त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः ।
अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—(त्वं) तू (मखस्य) यज्ञ के (दोधतः) कंपाने वाले दुष्ट पुरुष के (शिरः त्वचः) शिर को देह से (अव भर = हरः) नीचे कर दे। और (सोमिनः गृहम् अगच्छः) उत्तम विद्वान् के गृह को प्राप्त हो।

त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम्।

मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (त्यम्) उस (वेन्यम् मर्त्यम्) अति कामनायुक्त मनुष्य के (आस्त्र-बुध्नाय मनस्यवे) अश्वों के बल पर शासन करने वाले, मनस्वी, उत्तम जन के लिये (मुहुः श्रथ्नाः) बार २ नाश कर।

त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि।

देवानां चित्तिरो वशम् ॥ ४ ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) तेजस्विन्! (पश्चा सन्तं सूर्यं पुरः) पश्चिम में अस्त होते हुए सूर्य को पूर्व में उदय होते हुए के समान (त्वं) तू (त्यं) उस (तिरः सन्तं) छिपते हुए (वशं) कान्तिमान् वशी पुरुष को (देवानां चित्) विद्वानों के भी बीच में (पुरः कृधि) आगे कर। वा छिपते देवों के तेज को आगे प्रकट कर। एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[१७२]

ऋषिः संवर्तः ॥ उषा देवताः ॥ छन्दः—पिपीलिकामध्या गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (उषः) गृहस्थ में बसने वाली स्त्री! (यत्) जब (गावः) गौएं (ऊधभिः) दूध से भरे थानों सहित (वर्तनिं सचन्त) गृह में आवें तब तू (वनसा सह आयाहि) पात्र या दण्ड के साथ उनको वश करने या दोहने के लिये आ। अथवा—हे (उषः) कान्तिमति विदुषि! तू (वनसा सह) तेज वा सौभाग्य सहित (आ याहि) आ, (यत्) जिससे (ऊधभिः गावः) दूध से भरे स्तनों सहित गौवें भी (वर्तनिं सचन्त) गृह में आवें।

आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः) विदुषि स्त्रि ! तू (वस्व्या धिया) वसु अर्थात् बसने वाले पुरुष के अनुरूप बसने वाली उत्तम स्त्री, गृहिणी के योग्य बुद्धि और कर्मसहित (आ याहि) आ । और इसी प्रकार (मंहिष्ठः) अति दानशील पुरुष भी (सु-दानुभिः) उत्तम दातव्य धनों सहित (जारयत्-मखः) गृहस्थ यज्ञ को पूर्ण रीति से समाप्त करने वाला हो, वह जीवन भर के यज्ञ को तेरे साथ मिलकर पूरा करे ।

पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥ ३ ॥

भा०—(पितु-भृतः सुदानवः न) अन्न धारण करने वाले जनों के लिये पालक बल और अन्न से सम्पन्न हम लोग (तन्तुम् इत् दध्मः) यज्ञ के समान प्रजा-तन्तु को धारण करें, और (यजामसि) यज्ञ करें, और मिलकर रहें ।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥ ४ ॥ ३० ॥

भा०—(उषाः) उत्तम कान्तिमती, स्त्री उषा के समान ही (स्वसुः तमः) रात्रि के अन्धकार के तुल्य अपने पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले वा अपने को प्राप्त पुरुष के (तमः) शोक, क्लेश आदि को (अप वर्त्तयति) दूर करती है और उसके (वर्त्तनिम्) मार्ग या गृह-व्यापार को (सु-जातता) उत्तम पुत्र से वा उत्तम कुल-शील-चारित्र से (सं वर्त्तयति) साथ मिलकर ठीक प्रकार से चलावे । इति त्रिंशो वर्गः ॥

[१७३]

अत्रिर्भुवः ॥ देवता—राज्ञः स्तुतिः ॥ छन्दः—१, ३—५ अनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥ १ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वा आ अहा र्षम्) मैं तुझे आगे, वा सर्वत्र, सब ओर ले जाता हूँ । तू (अन्तः एधि) हमारे बीच में या राष्ट्र के बीच में स्वामी हो । (ध्रुवः) राज्य को धारण करने वाला, (अविचाचलिः) अविचल, स्थिर हो । (त्वा सर्वाः विशः वाञ्छन्तु) तुझे समस्त प्रजाएं चाहें । (त्वद् राष्ट्रम् मा अधि भ्रशत्) तेरे हाथों से राष्ट्र निकल जावे ।

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥ २ ॥

भा०—(इह एव एधि) तू यहां ही रह । (मा अप च्योष्ठाः) तू भाग मत, पद से पतित मत हो । तु (पर्वतः इव अविचाचलिः) पर्वत के समान अविचल होकर (इन्द्रः इव) तेजस्वी, आत्मा वा बलवान् पुरुष के समान, (ध्रुवः) धारण समर्थ, धृतिमान् होकर खड़ा रह । (इह राष्ट्रम् धारय उ) यहां राष्ट्र वा दीप्तियुक्त पद को धारण कर ।

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष ही, (इमं) इसके (ध्रुवं) स्थिर राज्य को (ध्रुवेण हविषा) स्थायी साधनों से (अदीधरत्) धारण करे । (तस्मै) उसको (सोमः अधि ब्रवत्) उत्तम विद्वान् उपदेश करे और (तस्मै ब्रह्मणः पतिः) उसको ही ब्रह्म अर्थात् वेद का ज्ञानी पुरुष भी (अधि ब्रवत्) उपदेश करे ।

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ ४ ॥

भा०—(ध्रुवा द्यौः) सूर्य ध्रुव, स्थिर है, (पृथिवी ध्रुवा) पृथिवी भी ध्रुव, स्थिर है, अर्थात् वह जगत् को धारण करने में समर्थ है । और (इमे पर्वताः ध्रुवासः) ये पर्वत भी स्थिर हैं । (इदं विश्वं जगत् ध्रुवं) यह समस्त जगत् भी ध्रुव, स्थिर है । (अयम् राजा विशाम् ध्रुवः) यह राजा भी प्रजाओं के बीच स्थिर एवं उनको धारण करने वाला हो ।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ ५ ॥

भा०—हे राजा-प्रजाजन ! (ते राष्ट्रं) तेरे राष्ट्र को (राजा वरुणः) दीप्तिमान्, तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ पुरुष, (धारयताम्) धारण करे । (बृहस्पतिः देवः ध्रुवं धारयताम्) बड़े बल, वा वेद-ज्ञान का पालक सेनापति वा ब्राह्मण, विद्वान् पुरुष तेरे राष्ट्र को धारण करे । (इन्द्रः च अग्निः च) तेजस्वी और स्वप्रकाश तथा शत्रु-सन्तापक जन भी (ते राष्ट्रं ध्रुवं धारयताम्) तेरे राष्ट्र को स्थिर रूप से धारण करे ।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—हम (ध्रुवेण हविषा) स्थायी साधन से ही (ध्रुवं सोमं) स्थायी शासक को (अभि मृशामसि) विचार पूर्वक प्राप्त करें । हे राजन् ! (इन्द्रः) शत्रुहन्ता वीर पुरुष (अथो) अनन्तर, (ते विशः) तेरी प्रजाओं को (केवलीः) केवल तेरी ही प्रजाएं, और (ते बलि-हृतः) तेरे लिये कर देने वाली (करत्) करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१७४]

अभिवर्त्तः ॥ देवता—राज्ञः स्तुतिः ॥ छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) बल और धन तथा महान् राज्य के पालक ! (येन) जिस (अभीवर्त्तेन हविषा) शत्रु या उद्देश्य को लक्ष्य करके जाने के योग्य साधन से (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा वा उत्साही पुरुष (अभि ववृते) लक्ष्य की ओर जाता है, (तेन) उस साधन से (अस्मान्) हमें (राष्ट्राय) उत्तम राष्ट्र को प्राप्त करने के लिये (अभि वर्त्तय) उत्साहित कर और आगे बढ़ा ।

पुरोहितः इदं सूक्तं राजानं युद्धाय कृतसन्नाहं वाचयीत । (सायण) पुरोहित इस सूक्त को युद्धार्थ उद्यत राजा के अभ्युदय के लिये बंचवाता है । अनुक्रमणी में सूत्र है—सारयमाणमुपारुह्याभीवर्त्तं वाचयति ।

इस सूक्त में अभीवर्त्त मणि कोई पदार्थ है ऐसी प्रतीति नहीं होती है । प्रत्युत रथादि साधन ही 'अभीवर्त्त हवि' हैं । अभीवर्त्तः—अभिगच्छन्त्यनेन इति अभिवर्त्तः । करणे पचाद्यच् । हविषा साधनेन । इति सा० ॥ और स्पष्टीकरण देखो (अथर्व० ।)

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥ २ ॥

भा०—(सपत्नान् अभिवृत्य) शत्रुओं को प्राप्त होकर, चारों ओर से घेर कर, हे राजन् ! सेनापते ! (नः याः अरातयः) हमारी जो शत्रु-सेनाएं हैं उनको और (यः नः इरस्यति) जो हम से ईर्ष्या करता,

जलता है उस (पृतन्यन्तं अभि) सेना संग्रह करने के उद्योगी शत्रु पर (अभि तिष्ठ) चढ़ाई कर, उसे पराजित कर।

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥ ३ ॥

भा०—राजा का 'अभीवर्त्त' स्वरूप। (देवः सविता) तेजस्वी, प्रेरक, सञ्चालक पुरुष (त्वा अभि अवीवृतत्) तुझे लक्ष्य की ओर पहुंचावे। (सोमः त्वा अभि अवीवृतन्) उत्तम शासक तुझे लक्ष्य की ओर पहुंचावे। (विश्वा भूतानि अभि अवीवृतन्) समस्त प्राणिगण भी तुझे लक्ष्य तक पहुंचावें, (यथा) जिससे तू (अभीवर्तः असस्ति) 'अभीवर्त्त' अर्थात् शत्रु पर आक्रमण करने में सफल एवं ख्यातिमान् हो।

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद्द्युम्न्युत्तमः।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥ ४ ॥

भा०—(येन हविषा) जिस ग्राह्य, उपादेय साधन से (इन्द्रः) तेजस्वी, शत्रुहन्ता जन (द्युम्नी) धनवान् और यशस्वी और (उत्तमः) सर्वश्रेष्ठ तथा (कृत्वी) कार्य साधने हारा (अभवत्) हो जाता है, हे (देवाः) विजयाभिलाषी जनो! (इदं तत् अक्रि) वह साधन इस प्रकार किया जाय, जिससे मैं (असपत्नः किल अभवम्) शत्रु-रहित हो जाऊं।

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—और मैं (असपत्नः) शत्रुरहित, (सपत्न-हा) शत्रुओं का नाशक, (अभि-राष्ट्रः) राज्य का स्वामी, (वि-ससहिः) विशेष रूप से पराजय करने हारा होऊं और (अहम् एषां) मैं इन (भूतानां)

प्राणियों और (जनस्य च) जन वर्ग के बीच में, उन पर (विराजानि) विशेष दीप्ति, तेज से चमकूं, विराट् होकर रहूं ।

अध्यात्म में—(१) काम क्रोधादि अरिषड्-वर्ग पर विजय प्राप्त करने का साधन यम, नियमादि 'अभीवर्त्त' हैं, आत्मा उनसे आगे बढ़ता है । राष्ट्र वह 'स्वाराज्य' पद जिसमें स्वप्रकाश आत्मा का लाभ होता है । (२) काम क्रोधादि भीतरी छः शत्रु हैं । (३) देव, सविता, प्रभु सोम गुरु है । (४) इन्द्र आत्मा । (५) भूतों, पांच भूतों का स्वामी, उन पर वश करने वाला और 'जन' जन्म लेने वाले देह में भी मैं विराजूं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१७५]

ऋषिरूर्ध्वग्रावार्बुदः ॥ ग्रावाणो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा ।
धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥ १ ॥

भा०—हे (ग्रावाणः) उत्तम ज्ञान उपदेश करने वाले विद्वानो ! एवं शत्रु को पत्थरों के तुल्य दृढ़ होकर दलन करने वाले सैन्य पुरुषो ! (सविता देवः) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी, शास्त्र-ज्ञान सुखादि का दाता स्वामी, (वः प्र सुवतु) आप लोगों को उत्तम मार्ग में संचालित करे । आप लोग (धूर्षु) उत्तम उत्तम कार्यों को धारण करने योग्य पदों पर धुरन्धर के तुल्य (युज्यध्वं) नियुक्त होओ और (सुनुत) उत्तम कार्य करो, अधीनों को सन्मार्ग पर चलाओ ।

ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् ।
उस्राः कर्तन भेषजम् ॥ २ ॥

भा०—हे (ग्रावाणः) उत्तम उपदेशक और शत्रुमर्दक विद्वानों और वीरो ! आप लोग (दुच्छुनाम्) दुःखदायी विपत्ति को और दुःखकारिणी अविद्या को (अप सेधत) दूर करो और (दुर्मतिम् अप सेधत) दुष्टमति वाले को वा दुष्ट-बुद्धि और विपरीत मति को दूर करो। और आप लोग (उस्राः) उत्तम मार्ग में गमन करने और सत् आश्रय में रहने वाले, वा किरणों के तुल्य होकर (भेषजम् कर्त्तन) रोग-ताप को दूर करने का उपाय करो। अथवा आप लोग (भेषजम्) ताप-रोग दूर करने के निमित्त ही (उस्राः कर्त्तन) गौओं के तुल्य उत्तम रस देने वाली बसाने योग्य भूमियों को हलादि से कर्षण करो, उसको छेदन-भेदन करो।

ग्रावा॑ण उ॒परे॒ष्वा म॑हीयन्ते स॒जोष॑सः।
वृष्णो॒ दध॑तो॒ वृष्ण्य॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(ग्रावाणः) शत्रुओं को पाषाणवत् चूर्ण कर देने वाले जन (स-जोषसः) समान प्रीतियुक्त, एवं समान वचन कहने वाले होकर (उपरेषु) समीपस्थ जनों के बीच, मेघों में गर्जते विद्युतों के तुल्य (आ महीयन्ते) विशेष आदर को प्राप्त करते हैं और वे (वृष्णे) अपने बलशाली नायक में (वृष्ण्यम्) बल को (दधतः) स्थापित करते हैं।

ग्रावा॑णः सवि॒ता नु वो॑ दे॒वः सु॑वतु॒ धर्म॑णा।
यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥ ४ ॥ ३३ ॥

भा०—हे (ग्रावाणः) वीरो, विद्वान् जनो ! (सविता देवः वः धर्मणा) शास्ता, त्वजिगीषु, तेजस्वी पुरुष आप लोगों को अपने २ धर्मानुसार (सुन्वते यजमानाय) अभिषेक करने वाले ऐश्वर्योत्पादक करप्रद प्रजाजन के हित के लिये (सुवतु) सन्मार्ग में चलावे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१७६]

ऋषिः सूनुरार्भवः ॥ देवता—१ ऋभवः । २—४ अग्निः ॥ छन्दः—१, ४ विराडनुष्टुप । ३ अनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री । चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

प्र सूनवं ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो सूर्य की किरणों के तुल्य (विश्व-धायसः) समस्त जगत् के धारक, (धेनुं न) गौ के बच्चे के तुल्य (मातरं क्षाम्) माता भूमि को (अश्नन्) प्राप्त होते हैं वे (सूनवः) पुत्र के तुल्य होकर (ऋभूणां बृहत् वृजना) सत्य, ज्ञान, तेज से सम्पन्न जनों के बहुत बड़े २ बलों, सामर्थ्यों और ज्ञान-मार्गों को भी (प्र नवन्त) प्राप्त करते हैं। (२) सूर्य के किरण 'विश्व' अर्थात् जल का पान करने से 'विश्व-धायस्' हैं। वे अन्नदात्री माता भूमि पर आते हैं और वे भूमि पर आकर (ऋभूणां सूनवः) जल अन्न के उत्पादक मेघ वायु आदि के संचालक, उत्पादक, प्रेरक होकर (बृहत् वृजना प्र नवन्त) बहुत २ जलराशि प्रदान करते हैं।

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् ॥ २ ॥

भा०—यहां से आग्नेय तृच् है। हे विद्वान् लोगो! (जातवेदसं देवं) ज्ञानवान्, वेदज्ञ विद्वान् और प्रभु की (देव्या धिया) उपास्य देव के योग्य स्तुति और बुद्धि से (प्र भरत) उपासना करो। क्योंकि वह (नः आनुषक् हव्या वक्षत्) हमें निरन्तर ग्राह्य ज्ञानों का प्रवचन या उपदेश करता है। (२) अग्नि-पक्ष में—वह हमारे (हव्या) चरुओं को दूर तक पहुंचाता है। इसलिये उसको दातृ-बुद्धि से धारण करो।

अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥ ३ ॥

भा०—(अयम् उ स्यः) यह वही (देवयुः) विद्वानों और शिष्यों का प्रिय, (होता) ज्ञानादि का दाता (प्र नीयते) वेद में अग्निवत् आदर पूर्वक आसन पर बैठाया जाता है (यः) जो (रथः न) रथ के समान (अभि-वृतः) उत्तम रीति से अनुचरों, शिष्यों द्वारा घिरा हुआ और (घृणीवान्) दीप्तिमान् सूर्य के समान (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (चेतति) शिष्यों को ज्ञानवान् करता और बड़ों का आदर करता है ।

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥ ४ ॥ ३४ ॥

भा०—(अयम् अग्निः) यह अग्नि, तेजस्वी, ज्ञानवान्, गुरु (अमृतात् इव) अविनाशी प्रभु से उत्पन्न भय से और उसी प्रकार (जन्मनः) जन्मवान् प्राणि से उत्पन्न भय से भी (उरुष्यति) हमारी रक्षा करता है । वह (सहसः चित् सहीयान्) बलवान् से भी बलवान् (देवः) ज्ञान का दाता (जीवातवे कृतः) जीव के जीवन दान के लिये बनाया है ।

[१७७]

ऋषिः पतङ्गः प्राजापत्यः ॥ देवता—मायाभेदः ॥ छन्दः—१ जगती । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः १

भा०—(विपश्चितः) ज्ञान और कर्म का संचय करने वाले ज्ञानी

पुरुष, (हृदा मनसा) अपने हृदय से और संकल्प विकल्प करने वाले ज्ञानमय अन्तःकरण से ही (असुरस्य) जगत् के संचालक, प्राणों के दाता, प्रभु और प्राणों में रमने वाले असुर, जीव के (मायया अक्तम्) जगत् निर्माण-शक्ति, प्रकृति से वा बुद्धि से (अक्तं) व्यक्त, हुए (पतङ्गम्) ऐश्वर्य रूप से व्यापक, वा देह से देहान्तर जाने वाले आत्म-रूप को (पश्यन्ति) साक्षात् करते हैं। वे (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् जन (समुद्रे अन्तः) जिस में समस्त संसार के पदार्थ निकलते और जिसमें पुनः सब समुद्र में नदियों के तुल्य चले जाते हैं उसी महान् आत्मा के बीच में ही (वि चक्षते) विशेष रूप से आत्मा का साक्षात् करते हैं। और वे (मरीचीनां) किरणों के (वेधसः) विधाता, सूर्य के तुल्य उस जगद्विधाता के ही (पदम्) परम प्राप्तव्य पद को (इच्छन्ति) चाहते और उसी का वर्णन करते हैं। अथवा (वेधसः) विद्वान् जन उसी प्रभु को (मरीचीनां पदम्) किरणों के आश्रय सूर्यवत् (मरीचीनाम्) प्रकृति के सूक्ष्म तेजोमय परमाणुओं का परमाश्रय बतलाते हैं। 'मरीचि' के लिये देखो ऐतरेय उपनिषद्—"अम्भो मरीचिर्मरमापः"।

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥२॥

भा०—(पतङ्गः) आत्मा (वाचं) वाणी को (मनसा) संकल्प-विकल्प द्वारा ज्ञान करने वाले अन्तःकरण से (बिभर्त्ति) धारण करता है (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला, विद्वान् गुरु (ताम्) उसको (गर्भे अन्तः) गर्भ में ही विद्यमान शिष्य के प्रति उसका उपदेश करता है। (ताम्) उस (द्योतमानाम्) अर्थ का प्रकाश करने वाली (स्वर्यम्) सुखजनक, एक शब्द या ध्वनि से युक्त (मनीषाम्) स्तुति, या मन पर अधिकार करने वाली वाणी को (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान्

(ऋतस्य पदे) सत्य, ज्ञानमय, वेद वा यज्ञ के (पदे) रूप में (नि पान्ति) अच्छी प्रकार सुरक्षित करते हैं ।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३।३५॥

भा०—मैं (गोपाम्) वाणी के पालन करने वाले, प्राणवत् रक्षक को (अनि-पद्यमानम्) कभी न नाश होता हुआ, नीचे जाता हुआ (अपश्यं) देखता हूं । और उसको (आ च परा च) पास और दूर (पथिभिः) मार्गों से (चरन्तं) कर्मफल भोग करते हुए देखता हूं । (सः) वह (सध्रीचीः) साथ रहने वाली और (विषूचीः) चारों ओर फैलने वाली इन्द्रिय शक्तियों को (वसानः) धारण करता हुआ, (भुवनेषु अन्तः) देहों के बीच (आ वरीवर्त्ति) विद्यमान रहता है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[१७८]

ऋषिररिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः ॥ देवता—तार्क्ष्यः ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥

भा०—(त्यं) उस (वाजिनं) बल, वेग, ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त, (देव-जूतम्) विद्वानों द्वारा प्रेरित वा सेवित, (सह-वानम्) बलवान् (रथानाम्) अति शीघ्र जाने वाले, रथों के (अरिष्ट-नेमिम्) कभी नष्ट न होने वाले, स्थिर रथ वा चक्र धारा के सदृश लेजाने के बल वाले, (पृतनाजम्) सम्पूर्ण सेना को एक तरफ पछाड़ देने वाले, (आशुम्) अतिशीघ्र व्यापक, (तार्क्ष्यम्) अतिहिंसक, बलशाली वेगवान् तत्व, विद्युत् को (इह) यहां हम अपने कार्यकर्त्ता पुरुष के

तुल्य ही (हुवेम) अच्छी प्रकार प्रयोग करें और उसका अन्यों को उपदेश करें।

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम॥२॥

भा०—हम (इन्द्रस्य इव रातिम्) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के तुल्य विद्युत् के ही दान को (आजोहुवानाः) पुनः २ प्राप्त करते हुए (स्वस्तये) कल्याण के लिये (नावम् इव) नौका के तुल्य ही (उर्वी पृथ्वी बहुले गभीरे) बहुत गंभीर, विस्तृत, विशाल पृथ्वी आकाश इन दोनों को (आरुहेम) आरूढ़ हों, उन पर यन्त्रों द्वारा विचरें। आकाश पृथ्वी दोनों में हम (आ इतौ परा इतौ) आते और जाते समय भी (मा रिषाम) पीड़ित न हों।

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम्॥३॥२६॥

भा०—जो (सद्यः चित्) शीघ्र ही, (शवसा) बल से (सूर्यः इव ज्योतिषा) तेज से सूर्य के तुल्य (पञ्च कृष्टीः) पांचों प्रकार के मनुष्यों को (अपः ततान) मेघवत् जल देता, नाना कर्म कराता है। वह (सहस्र-साः शत-साः) सैकड़ों, हज़ारों ऐश्वर्यों को देने वाला है। (शर्याम् युवतिं न) लक्ष्य का भेद करने वाली बाण की दण्डी, वा नालिका के तुल्य अथवा शत्रु की हिंसा करने वाली नाना रसादि मिश्रणों से बनी कृत्या के तुल्य (अस्य रंहिः) इसके वेग को कोई (न वरन्ते स्म) नहीं रोक सकते॥ यहां 'युवति' शब्द का अर्थ स्त्री नहीं। अध्यात्म में—तार्क्ष्य आत्मा है। पांच कृष्टि पांच इन्द्रियगण हैं, वे अश्व के तुल्य देह में आत्मा को विषयों की ओर खेंचते हैं।

'शर्या युवति' नाम कृत्या का प्रकरण देखो (अथर्व का० १२। १ ॥)
इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

[१७९]

ऋषिः शिबिरौशीनरः । २ प्रतर्दनः काशिराजः । ३ वसुमना रौहिदश्वः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वानो ! (उत् तिष्ठत) उठो, उत्तम रीति से खड़े रहो, (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् आत्मा के (ऋत्वियम्) ऋतु २ में होने वाले (भागम्) सेवनीय, ग्राह्य ऐश्वर्य, कर आदि को (अव पश्यत) ध्यान पूर्वक देखो ! (यदि श्रातः) यदि पक गया है तो (जुहोतन) ग्रहण करो । (यदि अश्रातः) यदि नहीं पका है (ममत्तन) तो खेद करो, और प्रार्थना करो वा प्रजा वा भूमि को तृप्त करो । मदतिर्याच्ञाकर्मा । मदी हर्षग्लेपनयोः मद तृप्तियोगे । राष्ट्र में फसल पकने पर षष्ठांश राजा का होता है । प्रति फसल उस पर प्रजाजन ठीक ध्यान रखें । राजा पकने पर अवश्य ले, न पके, फसल न हो तो राजा प्रजा का पेट भरे । इसी प्रकार विद्वान् सूर्य, मेघादि के वृष्टि आदि अंश पर ध्यान रखें, यदि परिपक्व है, खूब उत्तम ग्रीष्म हुई है, तो यज्ञ करें, यदि ठीक नहीं हुई तो ईश्वर से जलादि की याचना करें वा कृत्रिम उपायों से आकाश को तृप्त और खेती को जल से सिंचन करें ।

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! (सूरः) सूर्य (अध्वनः)

मार्ग के (वि मध्यम् जगाम) बीच में आगया है । (श्रातं हविः) अन्न परिपक्व होगया है । तू (प्र याहि) उत्तम रीति से आ । (चरन्तं) जाते हुए (व्राज-पतिं) गन्तव्य मार्गों के पालक, वा गृहों के पालक पिता वा आचार्य के (परि) घेर कर (कुलपाः न) कुल के पालक, शिष्य पुत्रादि जिस प्रकार विराजते हैं उसी प्रकार (सखायः) मित्र, तेरे जैसी आख्या वा संज्ञा वाले, स्नेही जन (निधिभिः) अपने २ खजानों सहित (त्वा परि आसते) तेरे चारों ओर विराजते हैं ।

(२) वसन्त-सम्पात से प्रारम्भ कर ६ मास में सूर्य आधा मार्ग संक्रमण कर चुकता है, उस समय एक फसल हो जाती है । अन्न पक जाता है । उस समय राजा दौरा करे और कर संग्रह करले । (३) गृहस्थ में— इन्द्र गृहपति है, वह मध्याह्न में सूर्य के मध्याकाश में आने पर, अन्न पक जाने पर भोजन ग्रहण करे ।

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ ॥ ३७

भा०—हे (वज्रिन्) बल-वीर्य से सम्पन्न ! हे (पुरु-कृत्) बहुतों के ऐश्वर्य पैदा करने और बहुत से शत्रुओं का नाश करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! तू (माध्यन्दिनस्य) दिन के मध्य में सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुष के (दध्नः) धारण शील बल को (पिब) प्राप्त कर । (ऊधनि श्रातम्) गौ के स्तन या मातृस्तन में परिपक्व अंश दूध के समान और (अग्नौ सु-श्राते) अग्नि पर अच्छी प्रकार पकाये अन्न के समान, (नवीयः तत् ऋतम्) अति नया, श्रेष्ठ, स्तुत्य वह तेज (मन्ये) मानता हूं । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

[१८०]

ऋषिर्जयः ॥ इन्द्रो देवता छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं के मूलोच्छेद करने हारे ! हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित ! तू (शत्रून् प्र ससहिषे) शत्रुओं को पराजित कर। (ते शुष्मः) तेरा शत्रु-शोषक बल बहुत बड़ा, सर्वश्रेष्ठ हो। और (इह रातिः अस्तु) इस लोक में तेरा दान भी बहुत बड़ा हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (सिन्धूनां) वेग से जाने वाली सेनाओं और (रेवतीनां) धन-सम्पन्न प्रजाओं का (पतिः असि) पालक है। तू (दक्षिणेन) दक्षिण हाथ से अर्थात् निष्पाप-मार्ग से (वसूनि आ भर) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कर।

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताळिहि वि मृधो नुदस्व ३

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (भीमः मृगः न) भयंकर सिंह के समान (कु-चरः) सर्वत्र भूमि में विचरण करता हुआ और (गिरि-ष्ठाः) वाणी में स्थिर, सत्य-परायण होकर (परस्याः परावतः आ जगन्थ) दूर से दूर प्रदेश से भी आ। (सृकं पविं तिग्मम् संशाय) वेग से जाने वाले शस्त्र को अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर। (शत्रून् ताढि) तेरे बल का नाश करने वालों पर तू आघात कर। तू (मृधः वि नुदस्व) संग्रामकारियों को विशेष रूप से भगा दे।

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।
न तत्र दोषं पश्यामि मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ वासिष्ठधर्मसूत्रे ॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम्।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥३।२८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (वामम्) सुन्दर, दुष्टहिंसक, (क्षत्रं) बल-वीर्य और (ओजः) पराक्रम को लक्ष्य कर (अभि अजायथाः) प्रकट हो। (चर्षणीनां) मनुष्यों के बीच में (अमित्रयन्तं जनम्) अमित्र अर्थात् शत्रु के तुल्य आचरण करने वाले जन को तू (अप अनुदः) दूर कर। और (देवेभ्यः) उत्तम करादि देने वाले प्रजावर्ग के लिये (उरु लोकम् कृणु) विशाल राष्ट्र बना। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[१८१]

ऋषिः प्रथो वासिष्ठः। २ सप्रथो भारद्वाजः॥ ३ धर्मः सौर्यः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३ पादनिचृत् त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

प्रथश्च यस्य सुप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः॥१॥

भा०—(वसिष्ठः) सब बसने वालों में सब से उत्तम, प्रजाओं में राजा के तुल्य विद्वान् पुरुष, (द्युतानात्) चमकने वाले और (धातुः) धारण पोषण करने वाले मेघ से (विष्णोः च सवितुः) विविध जलों को बहाने वाले, सर्वप्रेरक सूर्य से, (रथन्तरं) अति वेग से युक्त ऐसे साधन विद्युत् आदि को (आ जभार) प्राप्त करे। (यस्य नाम) जिसका नाम या स्वरूप वा बल (प्रथः च सप्रथः च) विस्तृत और समान रूप से विस्तृत करने वाला है। और (यत्) जो (आनुष्टुभः हविषः हविः) प्रतिस्तम्भन अर्थात् रोकने वाले (हविषः) साधनों में (हविः) उत्तम ग्रहण करने योग्य है। ज्ञान-पक्ष में—(वसिष्ठः) उत्तम वसु ब्रह्मचारी विद्वान् (धातुः द्युतानात्) तेजस्वी पोषक गुरु से और (विष्णोः च सवितुः) पिता के तुल्य विद्वान् से (रथन्तरम्) उत्तम २

उपदेश ग्रहण करे। जिसका नाम, रूप (प्रथः सप्रथः च) विस्तृत और सुव्याख्यान है, और (आनुष्टुभस्य हविषः हविः) प्रतिदिन उपदेश योग्य ज्ञान का परम ग्राह्य रूप है।

अविन्दन्ते अतिहितं यदासींद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत्।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः॥ २॥

भा०—(यत्) जो (यज्ञस्य) यज्ञ, सर्वोपास्य प्रभु का (परमं धाम) परम तेज (गुहा) परम गुप्त स्थान, बुद्धि रूप गुफा में है और (यत्) जो (अति-हितम् आसीत्) सब से परे स्थित है उस (बृहत्) महान् ज्ञान को (द्युतानात् धातुः) तेजस्वी, धारणकर्त्ता, (विष्णोः च सवितुः) व्यापक, सर्वोत्पादक एवं (अग्नेः) ज्ञानमय प्रभु एवं गुरु जनों से (भरद्-वाजः) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य का धारक विद्वान् (आ चक्रे) ग्रहण करता है। (२) इसी प्रकार बल-धारक विद्वान् विद्युत्, सूर्य, अग्नि आदि से गुप्त बल, तेज को ग्रहण करे।

तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः स्कन्नं प्रथमं देवयानम्।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते॥ ३॥ ३९॥

भा०—(ते) वे (दीध्यानाः) तेजस्वी लोग (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ, (देव-यानम्) विद्वानों के प्राप्त करने योग्य (स्कन्नं) परम प्राप्य, ज्ञान (यजुः) उपास्य को (मनसा अविन्दन्) मन से, ज्ञान से प्राप्त करते हैं। (एते) वे (द्युतानात् धातुः) चमकने वाले परिपोषक तत्व विद्युत् से, (विष्णोः च सवितुः च सूर्यात्) व्यापक और प्रेरक सूर्य से (घर्मम्) प्रकाश को (उत् अभरन्) प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार पूर्वोक्त गुण वाले विद्वान् जनों वा प्रभु से लोग ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करते हैं।

इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः॥

[१८२]

ऋषिः तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ १ ॥

भा०—(बृहस्पतिः) महान् ब्रह्माण्ड और बड़ी २ शक्तियों का पालक प्रभु (दुः-गहा) बड़ी कठिनता से ग्रहण करने योग्य, दुर्विज्ञेय वा (दुर्ग-हा) समस्त संकटों को नाश करने वाला है । वह (तिरः नयतु) सब संकटों को दूर करे, वा वह सब (दुर्गहा तिरः नयतु) दुख से वश करने योग्य शत्रु-सैन्यों, और कष्टों को दूर करे । वा वह (तिरः) पार (नयतु) ले जावे । (पुनः) और वह (अघ-शंसाय) हम पर पाप की आंशसा करने वाले, दुर्भाव वाले दुष्ट पुरुष को दूर करने वा सुधारने के लिये (मन्म) मननीय ज्ञान और तेजोयुक्त शस्त्रादि दण्ड (नेषत्) प्रयोग करे । वह (अशस्तिम् क्षिपत्) बुराई को दूर करे, वह (अशस्ति) शासन-रहित उच्छृंखलता को उखाड़ दे । (दुर्मतिं अपहन्) दुष्ट मति को परे करे । (अथ) और (यजमानाय) अपने को समर्पण करने वाले का (शंयोः) शान्ति और दुःख-निवारण (करत्) करे ।

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ २ ॥

भा०—(नराशंसः) मनुष्यों को उत्तम मार्ग बतलाने वाला, और मनुष्यों द्वारा स्तुत्य पुरुष (प्र-याजे) उत्तम यज्ञ, दान, सत्संग के अवसर में (नः अवतु) हमारी रक्षा करे, हमें प्राप्त हो । वह (हवेषु) यज्ञों और युद्धों के अवसरों में (अनु-याजः) अनुकूल संगति, दान, सत्संग

आदि करने वाला होकर (नः शम् अस्तु) हमें कल्याणकारक, शान्तिदायक हो। (अशस्तिम् क्षिपद्०) शेष व्याख्या देखो इस से पूर्व मन्त्र में।

तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥३॥४०॥

भा०—(तपुःमूर्धा) अति तप से युक्त, शिरः स्थान, प्रमुख पद को धारण करने वाला, अग्रणी पुरुष (रक्षसः तपतु) दुष्ट जनों को पीड़ित करे। और (ये ब्रह्मद्विषः) जो ब्रह्म, ब्राह्मण, वेद, अन्न, धनादि से द्वेष करने वाले हैं उनको भी पीड़ित करे। और वह (शरवे) हिंसक जन को (हन्तवै) नाश करने के लिये (उ) भी यत्न करे। (क्षिपद्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८३]

ऋषिः प्रजावान्प्राजापत्यः ॥ अन्वृचं यजमानपत्नीहोत्राशिषो देवताः ॥ छन्दः—
१ त्रिष्टुप्। २, ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष! मैं (त्वा) तुझे (मनसा चेकितानं) ज्ञानवान् चित्त से नाना संकल्प-विकल्प करते हुए और ज्ञानवान् होते हुए (अपश्यम्) देखता वा देखती हूं। और तुझे (तपसः जातम्) तप से उत्पन्न और (तपसः विभृतम्) तप से व्याप्त, देखता वा देखती हूँ। हे (पुत्र-काम) पुत्र की कामना करने हारे! युवा पुरुष! (इह) इस आश्रम में, इस उत्तम नारी वा गृहस्थ में (प्रजां) प्रजा को और (रयिम्) ऐश्वर्य, बल, वीर्य को (रराणः) प्रदान करता हुआ, (प्रजया प्र जायस्व) उत्तम सन्तान के रूप में स्वयं उत्पन्न हो। यह मन्त्र स्त्री

द्वारा पुरुष के प्रति वा पुरोहित, गुरु, पिता आदि द्वारा युवा के प्रति अनुज्ञा रूप में है ।

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह ।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्त्ता सा स्मृताऽङ्गना ॥ मनु० अ०९।४५ ॥
पतिर्भार्यां सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ मनु० अ० ९-८ ॥

दूसरे मन्त्र से प्रतीत होता है कि स्त्री का ही पुरुष के प्रति यह वचन है । दूसरे में पुरुष स्त्री से कहता है ।

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २ ॥

भा०—हे युवति ! मैं पुरुष (त्वा) तुझे (मनसा) मन से (दीध्यानां) ध्यान करती हुई (अपश्यं) देखूं । और (स्वायां तनू) अपनी देह में (ऋत्व्ये) ऋतुकाल में (नाधमानां) सौभाग्य से सम्पन्न होती हुई भी देखूं । तू (युवतिः) युवति, यौवन से युक्त, गृहस्थ बसाने में समर्थ होकर (माम् उप उच्चा बभूयाः) मेरे समीप अति आदर को प्राप्त हो । और हे (पुत्र-कामे) पुत्र की कामना करने हारी ! तू (प्रजया प्रजायस्व) प्रजा द्वारा उत्तम सन्तान की माता बन ।

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥३॥४१॥

भा०—(अहम्) मैं कृषक तुल्य होकर (ओषधीषु) ओषधि, वनस्पतियों के बीच वायुवत् (गर्भम् अदधाम्) गर्भ को धारण कराऊं । (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) समस्त भुवनों के बीच में सूर्य के तुल्यवीर्यधारक दाराओं में गर्भ धारण कराऊं । (अहं पृथिव्याम्) मैं पृथिवी में मेघ या जल के

तुल्य अपनी पृथिवी रूप जाया में (प्रजाः अजनयम्) सन्ततिएं उत्पन्न करूं। और (अहं) मैं (जनिभ्यः) सन्तान उत्पन्न करने वाली धर्म-दाराओं से और (अपरीषु) जो पर की न हों, अपनी हों, उनमें ही (पुत्रान् अजनयम्) पुत्रों को उत्पन्न करूं। आदरार्थ बहुवचन ॥ इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[१८४]

ऋषिः त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः ॥ देवता—लिंगोक्ताः । गर्भार्थाशीः ॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १ ॥

भा०—(विष्णुः) हृदय में प्रवेश करने वाला पुरुष (योनिं कल्पयतु) उत्तम गृह बनावे। और (त्वष्टा) तेजस्वी वा शिल्पी पुरुष (रूपाणि) नाना रुचिकर पदार्थ (पिंशतु) बनावे। (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (आ सिञ्चतु) वीर्य का आसेचन करे। (धाता) हे स्त्रि! तेरा धारण-पोषण करने वा गर्भ आधान करने वाला पुरुष ही (गर्भं दधातु) तेरे गर्भ का भरण-पोषण भी करे। हृदय में प्रेमी होकर, वा शरीर में प्रजारूप होकर प्रवेश करने वाला विष्णु, नाना रुचिकर पदार्थों का रचयिता त्वष्टा, प्रजा का पालक, प्रजापति, गर्भ का आधाता, और पोषक ये सब विशेषण पति के कर्त्तव्य को बतलाते हैं।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ २ ॥

भा०—हे (सिनीवाली) बंधन में बांधने वाली और पुरुष को वरण करने वाली! हे सुभगे! वरवर्णिनि! तू (गर्भं धेहि) गर्भ को

धारण कर। हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति! तू (गर्भं धेहि) गर्भ को धारण कर। (पुष्कर-स्रजौ) पुष्टिकारक वीर्य और रज को उत्पन्न करने वाले (अश्विनौ) परस्पर व्याप्त होने वाले (देवौ) दोनों के अंग (ते गर्भं आधत्ताम्) तेरे भीतर गर्भ को धारण करावें। कामयुक्त होने से दोनों के अंग यहां 'देव' हैं। परस्पर अनुपात में व्याप्त होने वाले होने से 'अश्वी' हैं। इन नामों और विशेषणों में अन्य भी वैज्ञानिक रहस्य हैं, जिन्हें स्थानाभाव से नहीं लिखते। सिनम् अन्नं भवति। सिनाति भूतानि। वालं पर्व। वृणोतेः। तस्मिन्नन्नवती। वालिनी वा। वालेने वास्यामणुत्वाच्चन्द्रमाः सेवितव्यो भवतीति निरु०। ११। ३३॥

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे॥ ३॥ ४२॥

भा०—(यं) जिस (गर्भं) ग्रहण करने योग्य अपत्य-जनक गर्भ को (हिरण्ययी अरणी) हित और रमण योग्य सुख से युक्त दो अरणि काष्ठों के तुल्य परस्पर (अश्विना) संगत स्त्री पुरुष मिलकर (निर्मन्थतः) अग्नि के तुल्य बालक रूप से उत्पन्न करते हैं (तं) उस (ते गर्भं) तेरे गर्भस्थ सन्तान को हम (दशमे मासि सूतवे) दसवें मास में प्रसव होने के लिये (हवामहे) सब प्रकार से स्वीकार करें उसका यथोचित पालन-पोषण अपने पर सहें। इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः॥

[१८५]

ऋषिः सत्यधृतिर्वारुणिः॥ देवता—अदितिः। स्वस्त्ययनम्॥ छन्दः—
१, ३ विराड् गायत्री। २ निचृद् गायत्री॥ तृचं सूक्तम्॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।
दुराधर्षं वरुणस्य॥ १॥

भा०—(मित्रस्य) सर्वस्नेही, (अर्यम्णः) भीतरी और बाह्य शत्रुओं का नियन्त्रण करने वाले और (वरुणस्य) सबसे वरण करने योग्य, दुःखों के वारक इन (त्रीणाम्) तीनों का (द्युक्षं) अति प्रदीप्त, तेजस्वी, (अवः) रक्षण, ज्ञान और स्नेह (महि) महान् और (दुराधर्षं अस्तु) अन्यों द्वारा अपमान करने योग्य न हो।

नहि तेषांममा चन नाध्वंसु वारणेषु।
ईशे रिपुरघशंसः ॥ २ ॥

भा०—(तेषाम् अमा चन) उनके गृहों पर, उनके सहयोग में (अघ-शंसः) अनिष्ट की संभावना वाला (रिपुः) दुष्ट, शत्रु (न ईशे) समर्थ नहीं होता, कुछ बिगाड़ नहीं सकता, (तेषाम् अध्वसु) उनके मार्गों में और (तेषां वारणेषु) उनके दुःख-संकट वारण करने के साधनों, स्थानों वा (तेषां वा रणेषु) उनके सहयोग में किये युद्धों वा रमणीय स्थानों में भी (रिपुः न ईशे) शत्रु कुछ नहीं कर सकता।

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३ ॥ ४३ ॥

भा०—(अदितेः) अविनाशी, सूर्यवत् अखण्ड तेजस्वी प्रभु के (पुत्रासः) पुत्रवत् एवं बहुतों की रक्षा करने वाले जन (यस्मै मर्त्याय) जिस मनुष्य को (प्र जीवसे) उत्तम रीति से दीर्घ जीवन धारण करने के लिये (अजस्रं ज्योतिः यच्छन्ति) अविनाशी प्रकाश प्रदान करते हैं उसका भी दुष्टजन कुछ नहीं कर सकते। इति त्रिचत्वारिंशो वर्गः ॥

[१८६]

ऋषिः उलो वातायनः ॥ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३ निचृद् गायत्री ॥ तृचं सूक्तम् ॥

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥

भा०—(वातः) वह सर्वव्यापक, वायु के समान बलवान् प्रभु (भेषजम्) सब दुःखों का परम औषधि, (शं-भु) शान्तिदायक और (मयः-भु) सुखकारक होकर (नः आ वातु) हमें प्राप्त हो। (नः आयूंषि प्र तारिषत् हमें दीर्घ जीवन प्रदान करे।

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (वात) वायुवत् बलवान्, जीवनप्रद! सर्वव्यापक, सर्व-प्रेरक! (उत) और तू (नः पिता असि) पिता के तुल्य हमारा पालक है, (उत नः भ्राता) और भाई के समान हमारा भरण-पोषण करने वाला है, (उत नः सखा) और मित्र के समान हम से प्रेम करने वाला है। (सः) वह तू (नः) हमारे (जीवातवे) जीवन वृद्धि के लिये (कृधि) कृपा कर।

यददो वात ते गृहे३ऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे ॥ ३ ॥ ४४ ॥

भा०—हे (वात) व्यापक प्रभो! (यत्) जो (ते गृहे) तेरे ग्रहण योग्य, तेरे वश में (अमृतस्य निधिः हितः) अमृत का खज़ाना धरा है (ततः) उसमें से (नः) हमें (जीवसे धेहि) दीर्घ जीवन के लिये प्रदान कर। इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

[१८७]

अग्निर्वत्स आग्नेयः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री। २—५ गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (क्षितीनां वृषभाय) भूमियों पर वर्षण करने वाले मेघ के समान उदार (क्षितीनां वृषभाय) प्रजाओं के बीच श्रेष्ठ स्वामी रूप (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी, अग्रणी, पुरुष के लिये (वाचम् प्र ईरय) वाणी को प्रेरित कर, उसकी स्तुति कर। (सः) वह (नः) हमें (द्विषः) शत्रु और अप्रिय भीतरी काम क्रोधादि से भी (अति पर्षत्) पार करे।

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (परस्याः परावतः) दूर से भी दूर स्थान से (तिरः धन्व) अन्तरिक्षवत् सब पार कर (अति रोचते) खूब प्रकाशित होता है। (सः नः द्विषः अतिपर्षत्) वह सूर्यवत् तेजस्वी प्रभु हमें समस्त बाहरी और भीतरी शत्रुओं से पार करे।

यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (वृषा) बलवान् (शुक्रेण शोचिषा) अति शुद्ध कान्ति से उज्ज्वल और दीप्ति से सूर्यवत् (रक्षांसि निजूर्वति) दुष्टों वा रोगों का नाश करता है, (सः नः द्विषः अति पर्षत्) वह हमें भीतरी, बाह्य शत्रुओं से पार करे।

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।

स नः पर्षदति द्विषः ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (अभि

वि पश्यति) सम्मुख देखता और (सं पश्यति च) अच्छी प्रकार देखता है, (सः नः द्विषः अति पर्षत्) वह हमें अप्रीति - युक्त शत्रुओं, दुःखों, रोगों, कष्टों से पार करे।

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ५ ॥ ४५ ॥

भा०—(यः) जो (अस्य रजसः पारे) इस लोक के पार, रजोगुण से परे (शुक्रः अग्निः अजायत) कान्तियुक्त, सबको भस्म करने वाला, अग्निवत् स्वयं प्रकाश आत्मा प्रकट है (सः नः द्विषः अति पर्षत्) वह हमें सब कष्टों से पार करे। इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

[१८८]

ऋषिः श्येन आग्नेयः ॥ देवता—अग्निर्जातवेदाः ॥ गायत्री छन्दः ॥
तृचं सूक्तम् ॥

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम्।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (नूनं) अवश्य आप लोग (जातवेदसम्) उत्पन्न शरीर को धन के समान प्राप्त करने और भोगने वाले, (वाजिनम्) बलशाली, ज्ञानी, (अश्वम्) अश्व के तुल्य उसे ढोने और उसके भोक्ता आत्मा को (प्र हिनोत) बढ़ाओ, उसकी स्तुतियां करो। (इदं) यह (नः) हमारा (बर्हिः) वृद्धिशील देह ही उसके (आसदे) विराजने के आसन के तुल्य स्थान है। (२) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में व्यापक और उसको जानने वाला प्रभु भी 'जातवेदाः' है। समस्त बलों, ऐश्वर्यों के स्वामी होने से वाजी और व्यापक और संचालक होने से 'अश्व' है। विद्वान् लोग उसकी स्तुति करें। उसके विराजने के लिये ये (बर्हिः) समस्त लोक ही आसनवत् हैं।

अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः ।
महीमियर्मि सुष्टुतिम् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य जात-वेदसः) इस उक्त प्रकार से उत्पन्न शरीरों को लेने वाले (विप्र-वीरस्य) विविध उत्तम वीरों वत् प्राणों के स्वामी, (मीढुषः) बलवान्, वीर्य आदि-सेचक आनन्दप्रद आत्मा की (महीम् सु-स्तुतिम् इयर्मि) बड़ी उत्तम स्तुति करूं । (२) विद्वानों को विविध मार्गों में चलाने वाला होने से प्रभु 'विप्रवीर' है ।

या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः ।
ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ॥ ३ ॥ ४६ ॥

भा०—उस (जात-वेदसः) जातवेदा, आत्मा की (देव-त्रा) देवों, प्राणों के बीच में जो (हव्य-वाहनीः) ज्ञान और अन्नादि प्राप्त कराने वाली (याः रुचः) जो दीप्तियों के तुल्य अनेक कामनाएं हैं (ताभिः) उन सहित वह (नः यज्ञम् इन्वतु) हमारे यज्ञ को प्राप्त हो ।

इसी प्रकार 'जातवेदाः' अग्नि (२) हमारे यज्ञ में आत्मा और प्रभु का ही प्रतिनिधि है । इति षट्चत्वारिंशो वर्गः ॥

[१८९]

ऋषिः सार्पराज्ञी ॥ देवता—सार्पराज्ञी सूर्यो वा ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३ गायत्री ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (गौः) गमनशील, नित्य गतिमान् भूलोक सूर्य-लोक, चन्द्र-लोक आदि (पृश्निः) आकाश में (आ अक्रमीत्) सब ओर भ्रमण कर रहा है, और (पुरः मातरम् असदत्) आगे के

अपने मातृतुल्य महान् आकाश में विराजता है, और अपने (पितरं) पिता तुल्य (स्वः) महान् प्रेरक, सूर्यवत् अपने से बड़े लोक की (प्र-यन्) परिक्रमा करता है। आकाशस्थ समस्त पिण्ड गतिमान् होने से 'गौ' हैं, उनमें से प्रत्येक आकाश में आगे बढ़ता दीखता है, आकाश में ऐसे विराजता है जैसे माता की गोद में बच्चा। और वह भी किसी न किसी अपने से महान् की, पिता की बालकवत् परिक्रमा करता है। चन्द्र और पृथिवी, सूर्य और सौर-जगत् अपने से भी महान् किसी प्रेरक की परिक्रमा करता है। यही बात अन्य ग्रहों, उपग्रहों और सोपग्रह-ग्रह सहित सौर, मण्डलों के विषय में भी जानना चाहिये।

(२) अध्यात्म वा अधिविद्य में—(अयं पृश्निः) यह प्रश्नशील जिज्ञासु जन (गौः) ज्ञानार्थी होकर (आ अक्रमीत्) परिक्रमा करे। (मातरं) ज्ञानदाता गुरुरूप माता के (पुरः असदत्) आगे विराजे और इसी (स्वः) प्रकाश स्वरूप, उपदेष्टा गुरु को (पितरं प्रयन्) पिता के तुल्य जान कर प्राप्त करे। (३) इसी प्रकार (अयं गौः) यह ज्ञानी आत्मा (पृश्निः) प्रेममय, ज्योतिर्मय होकर आगे बढ़ता, माता प्रभु को प्राप्त होता, उसी में विराजता है, उसी मोक्षमय पिता, पालक प्रभु को प्राप्त करता है।

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य रोचना) इस आत्मा की रुचिकारक, दीप्ति चेतना ही (प्राणात् अपानती) प्राण ग्रहण करती और अपान का कर्म करती है। इसीसे (महिषः) वह महान् आत्मा सूर्यवत् (दिवम् वि अख्यत्) द्यौः, ब्रह्माण्डवत् इस देह को वा इच्छामय कामना को प्रकाशित करता है।

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥ ४७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (प्रति वस्तोः) प्रति दिन (द्युभिः) कान्तियों से (त्रिंशद् धाम विराजति) तीसों स्थानों पर प्रकाशित होता है और जिस प्रकार कान्तियों से चन्द्र तीसों तिथि-स्थानों पर प्रकाशित होता है उसी प्रकार जो (प्रति वस्तोः) निवास योग्य प्रत्येक देह में और निवास योग्य प्रत्येक लोक में व्यापक प्रभु (त्रिंशद् धाम विरजति) तीसों धाम प्रकाश करता है, चमकता है, उस (पतङ्गाय) सूर्य के समान गमनशील वा व्यापक के ज्ञान, और स्तुति के लिये (वाक् धीयते) वेदवाणी को धारण किया जाता है, उसी के लिये उत्तम स्तुति का प्रयोग होता है।

त्रिंशत्-धाम = (तीस धाम, स्थान) ज्योतिश्चक्र पर दिन रात्रि में तय होने वाले क्रान्तिवृत्त पर ६० अंश चिन्हित हैं जो दिन की तीस घड़ी वा मास की ३० तिथियों का निर्देश करते हैं। (२) अध्यात्म में भी जाग्रत् काल में उसी प्रकार देह में आत्मा की और जगत् में प्रभु की रक्षा को जानना चाहिये।

[१९०]

ऋषिरघमर्षणो माधुच्छन्दसः॥ देवता—भाववृत्तम्॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ पादनिचृदनुष्टुप्॥

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥ १॥

भा०—(अभीद्धात् तपसः) सब ओर से प्रकाशमान 'तप' से (ऋतं च सत्यं च अजायत) ऋत और सत्य भी प्रकट हुआ। (ततः रात्री अजायत) उसीसे रात्रि उत्पन्न होती है। (ततः) उस तप से

ही (अर्णवः समुद्रः) यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ ।

'ऋतं'—ऋतमिति सत्य नाम । ऋतं मानसं यथार्थसंकल्पनं, सत्यं वाचिकं यथार्थभाषणं चकराद्-यदपि शास्त्रीयं धर्मजातं समुच्चीयते ॥ सा० ॥

'तपः' पुरा सृष्ट्यर्थं कृतं तपः (सा०)

'समुद्रः'—समुद्रशब्दोऽन्तरिक्षोदध्योः साधारणः । सा० ।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

भा०—(अर्णवात् समुद्राद् अधि) अर्णव समुद्र से, संवत्सर, (अजायत) प्रकट हुआ । (विश्वस्य मिषतः) प्रकट होते हुए समस्त जगत् के (वशी) स्वामी (अहः-रात्राणि विदधत्) दिन और रात्रियों को भी बनाता है ।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ४८ ॥

भा०—(धाता यथापूर्वम् अकल्पयत्) विधाता, जगत्-कर्त्ता ने जिस प्रकार पहले बनाया था ठीक उसी प्रकार उसने अब भी (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा, (दिवं च पृथिवीं च) आकाश और पृथिवी, (अन्तरिक्षम् अथ स्वः) अन्तरिक्ष और प्रकाश वा समस्त पदार्थ बनाये ।

'संवत्सरः'—संवत्सरोपलक्षितः सर्वकालः । सा० ॥

'मिषतः'—निमेषादियुक्तस्य । सा० । इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः ॥

[१९१]

ऋषिः संवननः ॥ देवता—१ अग्निः । २—४ संज्ञानम् ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ ३ त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन् ! समस्त सुखों के वर्षाने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशक, प्रभो ! तू (अर्यः) स्वामी, सबका प्रेरक होकर (विश्वानि सं युवसे) समस्त प्राणियों और समस्त तत्त्वों को मिलाता है । तू (इडः पदे समिध्यसे) भूमि पर अग्नि के तुल्य इस अन्न के बने देह में आत्मा के तुल्य, (इडः पदे) वाणी के परम प्राप्तव्य ज्ञातव्य पद ओंकार रूप में प्रकाशित होता है । (सः) वह तू (नः) हमें (वसूनि) नाना ऐश्वर्य और लोक प्राप्त करा ।

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥ २ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (सं गच्छध्वं) परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो ! (सं वदध्वम्) परस्पर मिलकर प्रेम से बात चीत करो, विरोध छोड़ कर एक समान वचन कहो । (वः मनांसि) आप लोगों के सब चित्त (सं जानताम्) एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें । (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे देवाः) पूर्व के विद्वान् जन (भागं) सेवनीय और भजन करने योग्य प्रभु का (जानानाः) ज्ञान सम्पादन करते हुए (सम् उपासते) अच्छी प्रकार उपासना करते रहें उसी प्रकार आप लोग भी ज्ञान सम्पन्न होकर (भागं सम् उपासते) सेवनीय अन्न और उपास्य प्रभु का सेवन और उपासना करो ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

भा०—(एषाम् मन्त्रः समानः) इन सबका विचार एक समान हो । (समितिः समानी) परस्पर संगति, मेल जोल भी एक समान

भेद-भाव से रहित हो। (मनः समानम्) इनका अन्तःकरण एक समान हो। (एषां चित्तं सह) इनका चित्त एक दूसरे के साथ हो। (वः समानम् मन्त्रम् अभि मन्त्रये) मैं आप लोगों को एक समान विचारवान् करता हूं और (वः समानेन हविषा जुहोमि) एक समान अन्न से प्रदान कर आप लोगों को पालित-पोषित करता हूं।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥४६।८॥१२।१०॥

भा०—(वः आकूतिः समानी अस्तु) आप लोगों का संकल्प, निश्चय और भाव, अभिप्राय एक समान रहे। (वः हृदयानि समाना) आप लोगों के हृदय एक समान हों। (वः मनः समानम् अस्तु) आप लोगों के मन समान हों, (यथा) जिससे (वः) आप लोगों का (सह सु असति) परस्पर का कार्य सर्वत्र एक साथ अच्छी प्रकार होसके। इत्येकोनपञ्चाशो वर्गः। इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः !

॥ इत्यष्टमोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ इति दशमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति ऋग्वेदः सम्पूर्णः !

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थ-विरुदोपशोभितेन श्रीमत्पण्डित जयदेवशर्मणा-विरचित ऋग्वेदालोकभाष्ये अष्टमोऽष्टकः दशमञ्च मण्डलम्, ऋग्वेदालोकभाष्यं च समाप्यते ॥

भाष्यकर्त्तुरुपसंहारकथनम्

श्लेषप्रपञ्चजटिला चित्रवर्णपदान्विता ।
सनातनी जगत्सर्गस्थितिसंहारकृत्कृतिः ॥
सरस्वती गभीरार्था भवसागरतारिका ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां धारया बहुधारया ॥
विवृण्वती समस्तानि तत्त्वानि विशदान्यथ ।
समासतो व्यासतश्च ब्रह्मात्मानं नरं प्रभुम् ॥
प्राणं मुख्यं च वीर्यं चाग्नीन्द्रसोमादिदैवतैः ।
कथयन्ती विजयते वेदवाणी परस्तराम् ॥

× × ×

द्व्यङ्काङ्केन्दौ वैक्रमाब्दे पौषे मासि सिते दले ।
समाप्यत भृगौ वार ऋग्वेदालोकभाष्यकम् ॥

× × ×

विद्यालंकार-मीमांसातीर्थोपाधिविभूषितः ।
जयदेवः पौतिमाष्यो वेदब्राह्मणतत्त्ववित् ॥
सामाथर्वयजुरृक्ष्वालोकभाष्यं व्यधात् क्रमात् ।
लोकभाषां समाश्रित्य मितं यन्नातिविस्तरम् ॥
नानापक्षोपसंकेतप्रदर्शनपुरःसरम् ।

वेदज्ञानमहाराशिर्दयानन्दोपदर्शिते ॥
संञ्चरन् वर्त्मनि शुभे ज्ञानयज्ञधिया सुखम् ॥

× × ×

वेदाम्बुधिनिमग्नेन ज्ञानालोकितचेतसा ।
नात्मैवातोष्यत परमप्रीयत च सेश्वरः ॥

× × ×

आलोकभाष्यं वेदानामालोकयति दीपवत् ॥
गुह्यं रहस्यं सुस्पष्टं नानावर्णोज्ज्वलं महत् ।
यदधीत्य कृतार्थाः स्युर्वेदतत्त्वबुभुत्सवः ॥

× × ×

आर्षं च सुमहत् ज्ञानं वेदाक्षरसमन्वितम् ।
आरण्यकं ब्राह्मणं च श्रौतगृह्यादिसूत्रकम् ॥
स्मृत्यर्थधर्मशास्त्राणि दर्शनानि च षट् ततः ।
भाष्याणि चाप्यनेकानि तर्को वेदाक्षरानुगः ॥
मतिर्विविधविज्ञातुराचाराश्च सतां शुभाः ।
सर्वमेव हि वेदार्थतत्त्वालोचनसाधनम् ॥